श्रीमद्भागवत महापुराण

श्रीधराचार्य कृत
भावार्थदीपिका टीका

शिवप्रसाद द्विवेदी कृत
भावप्रकाशिका हिन्दी व्याख्या

।। ओम् नमो भगवते वासुदेवाय ।।

।। श्रीगोपालकृष्णाय नमः ।।

ॐ नमः परमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय ।

प्रथम स्कन्ध

प्रथम अध्याय

श्रीसूतजी से शौनकादि ऋषियों का प्रश्न

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥१॥

अन्वयः— अस्य यतो जन्मादि अन्वयात् इतरतश्च यः अर्थेषु अभिज्ञः स्वराट् यः हृदा आदिकवये ब्रह्म तेने, यत् सूरयः मुह्यन्ति तेजोवरिमृदां विनिमये यथा त्रिसर्गः अमृषा स्वेन धाम्ना सदानिरस्तकुहकं परं सत्यं धीमहि ।।१।।

अनुवाद— जिनसे इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय हाते हैं, जो सभी सद्रूप पदार्थों में अनुगत और असत् पदार्थों से पृथक् हैं वे जड़ नही चेतन हैं वे परतंत्र नहीं स्वयंप्रकाश हैं । वे ही ब्रह्मा को भी अपने सङ्कल्प मात्र से वेदों का ज्ञान प्रदान किये । जिन परंब्रह्म के विषय में विज्ञ पुरुष भी मोहित हो जाते हैं । जैसे तेजोमय सूर्य रश्मियों में जल का भ्रम हो जाता है, जल में स्थल का भ्रम होता है, उसी तरह उन परंब्रह्म में त्रिगुणात्मिका जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति रूपा सृष्टि मिथ्या होने पर भी सत्य के तरह प्रतीत होती है स्वयंप्रकाश वे ब्रह्म माया और माया के कार्यों से पूर्णरूप से मुक्त हैं ।।१।।

भावार्थदीपिका

वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि । यस्याऽऽस्ते हृदये संवित्तं नृसिंहमहं भजे ।।१।।
विश्वसर्गविसर्गादिनवलक्षणलक्षितम् । श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमाम तत् ।।२।।
माधवोमाधवावीशौ सर्वसिद्धिविधायिनौ । वन्दे परस्परात्मानौ परस्परनुतिप्रियौ ।।३।।
संप्रदायानुरोधेन पौर्वापर्यानुसारतः । श्रीभागवतभावार्थदीपिकेयं प्रतन्यते ।।४।।
क्वाहं मन्दमतिः क्वेदं मन्थनं क्षीरवारिधेः । किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दरः ।।५।।
मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् । यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ।।६।।
श्रीमद्भागवताभिधः सुरतरुस्ताराङ्कुरः सज्जनिः स्कन्धैर्द्वादशभिस्ततः प्रविलसद्भक्त्यालबालोदयः ।
द्वात्रिंशत्त्रिशतं च यस्य विलसच्छाखाः सहस्राण्यलं पर्णान्यष्टदशेष्टदोऽतिसुलभे वर्वर्ति सर्वोपरि ।।७।।

अथ नानापुराणशास्त्रप्रबन्धैश्चित्तप्रसत्तिमलभमानस्तत्र तत्रापरितुष्यन्नारदोपदेशतः श्रीमद्भगवद्गुणानुवर्णनप्रधानं भागवतशास्त्रं प्रारिप्सुर्वेदव्यासस्तत्प्रत्यूहनिवृत्त्यादिसिद्धये तत्प्रतिपाद्यपरदेवतानुस्मरलक्षणं मङ्गलमाचरति-जन्माद्यस्येति । परं परमेश्वरं धीमहि। ध्यायतेर्लिङि छन्दसम् । ध्यायेमेत्यर्थः । बहुवचनं शिष्याभिप्रायम् । तमेव स्वरूपतटस्थलक्षणाभ्यामुपलक्षयति ।

यत्र स्वरूपलक्षणं सत्यमिति । सत्यत्वे हेतुः – यत्र यस्मिन्ब्रह्मणि त्रयाणां मायागुणानां तमोरजःसत्त्वानां सर्गो भूतेन्द्रियदेवतारूपोऽमृषा सत्यः । यत्सत्यतया मिथ्यासर्गोऽपि सत्यवत्प्रतीयते तं परं सत्यमित्यर्थः । अत्र दृष्टान्तः – तेजोवारिमृदां यथा विनिमय इति । विनिमयो व्यत्ययोऽन्यस्मिन्नन्यावभासः । स यथाऽधिष्ठानसत्तया सद्वत्प्रतीयत इत्यर्थः । तत्र तेजसि वारिबुद्धिर्मरीचितोये प्रसिद्धा । मृदि काचादौ वारिबुद्धिर्वारिणि च काचादिबुद्धिरित्यादि यथायथमूह्यम् ।

यद्वा तस्यैव परमार्थसत्यत्वप्रतिपादनाय तदितरस्य मिथ्यात्वमुक्तम् । यत्र मृषैवायं त्रिसर्गो न वस्तुतः सन्निति । यत्रेत्यनेन प्रतीतमुपाधिसंबन्धं वारयति । स्वेनैव धाम्ना महसा निरस्तं कुहकं कपटं मायालक्षणं यस्मिंस्तम् । तटस्थलक्षणमाह- जन्मादीति। अस्य विश्वस्य जन्मस्थितिभङ्गा यतो भवन्ति तं धीमहीति । तत्र हेतुः अन्वयादितरतश्च । अर्थेष्वाकाशादिकार्येषु परमेश्वरस्य सद्रूपेणान्वयादकार्येभ्यश्च खपुष्पादिभ्यस्तद्व्यतिरेकात् ।

यद्वा अन्वयशब्देनानुवृत्तिः, इतरशब्देन व्यवृत्तिः । अनुवृत्वात्सद्रूपं ब्रह्म कारणं मृत्सुवर्णादिवत् । व्यावृत्तत्वाद्विश्वं कार्यं घटकुण्डलादिवदित्यर्थः ।

यद्वा सावयवत्वादन्वयव्यतिरेकाभ्यां यदस्य जन्मादि तद्यतो भवतीति संबन्धः ।

तथ च श्रुतिः – '**यतो वा इमानि भूतनि जायन्ते । येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति ।।**' इत्याद्या। स्मृतिश्च- '**यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे । यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ।।**' इत्याद्या।

तर्हि किं प्रधानं जगत्कारणत्वाद्ध्येयमभिप्रेतं नेत्याह । अभिज्ञो यस्तम् । '**स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति । स इमाँल्लेकनसृजत**' इत श्रुतेः । '**ईक्षतेर्नाशब्दम्**' इति न्यायाच्च ।

तर्हि किं जीवो ध्येयः स्यान्नेत्याह । स्वराट् स्वेनैव राजते यस्तम् । स्वतः सिद्धज्ञानमित्यर्थः ।

तर्हि किं ब्रह्मा ध्येयः '**हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।**' इति श्रुतेः । नेत्याह- तेन इति। आदिकवये ब्रह्मणेऽपि ब्रह्म वेदं यस्तेने प्रकाशितवान् । '**यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वे यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये**' इति श्रुतेः ।

ननु ब्रह्मणोऽन्यतो वेदाध्ययनमप्रसिद्धम् । सत्यम्, तत्तु हृदा मनसैव तेने विस्तृतवान् । स्वेन बुद्धिवृत्तिप्रवर्तकत्वेन गायत्र्यर्थो दर्शितः ।

वक्ष्यति हि- **प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताऽजस्य सतीं स्मृतिं हृदि । स्वलक्षणा प्रादुरभूत्किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ।।**' इति ।

ननु ब्रह्मा स्वयमेव सुप्तप्रतिबुद्धन्यायेन वेदमुपलभतां नेत्याह । यद्यस्मिन्ब्रह्मणि सूरयोऽपि मुह्यन्तीति । तस्माद्ब्रह्मणोऽपि पराधीनज्ञानत्वात्स्वतः सिद्धज्ञानः परमेश्वर एव जगत्कारणम् । अतएव सत्योऽसतः सत्ताप्रदत्वाच्च परमार्थसत्यः सर्वज्ञत्वेन च निरस्तकुहकस्तम् ।

धीमहीति गायत्र्या प्रारम्भेण च गायत्र्याख्यब्रह्मविद्यारूपमेतत्पुराणमिति दर्शितम् । यथोक्तं मत्स्यपुराणे पुराणदानप्रस्तावे-

'यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः । वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते।।
लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमसिंहसमन्वितम् । प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां स याति परमं पदम्।।
अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तितम् ।

पुराणानतरे च—

ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्धसंमितः । हयग्रीवब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा ।।
गायत्र्या च समारम्भस्तद्वै भागवतं विदुः ।

पद्मपुराणेऽम्बरीषं प्रति गौतमोक्तिः—

अम्बरीष शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु । पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम् ।। इति ।

अतएव भागवतं नामान्यदित्यपि न शङ्कनीयम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

वागीशा० इत्यादि- जिनके मुख में वागीशा (सरस्वती) का निवास है, वक्ष: स्थल में लक्ष्मीजी का निवास है तथा जिनके हृदय में ज्ञान का निवास है उन नृसिंह भगवान् का मैं भजन करता हूँ ।।१।। **विश्वसर्ग० इत्यादि-** सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि और उसका संहार आदि नव लक्षणों से लक्षित तथा सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र आश्रय स्वरूप परंप्राप्य भगवान् श्रीकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ।।२।। **माधवो० इत्यादि-** लक्ष्मीपति भगवान् नारायण और उमाधव (शङ्करजी) ये दोनों ही सम्पूर्ण जगत् के नियामक हैं तथा सभी प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाले हैं । वे दोनों परस्पर में एक दूसरे की आत्मा हैं तथा उन दोनों को परस्पर में प्रणाम करना प्रिय है । ऐसे लक्ष्मीपति भगवान् नारायण और शङ्करजी दोनों की मैं वन्दना करता हूँ ।।३।। **सम्प्रदाय इति-** सम्प्रदाय के अनुसार तथा पौर्वापर्य भाव के अनुसार इस श्रीमद्भागवत पुराण की भावार्थदीपिका नामक टीका का मैं विस्तार करता हूँ ।।४।। **क्वाहम्० इत्यादि-** कहाँ तो मेरी मन्द बुद्धि तथा कहाँ तो श्रीमद्भागवत रूपी क्षीरससागर का मन्थन, दोनों में किसी भी प्रकार का तारतम्य नहीं है, फिर भी जिस तरह क्षीरससागर में मन्दराचल पर्वत भी डूब जाता है, उसमें परमाणु की कौन सी बात है ? उसका तो पता भी नहीं चल सकेगा । इस श्लोक में श्रीधर स्वामी ने श्रीमद्भागवत को क्षीरसागर के समान बतलाकर उसका अर्थ निर्णय करने में सर्वथा असमर्थ अपनी बुद्धि को असमर्थ बतलाया हैं ।।५।। **मूकम्० इत्यादि-** जिनकी कृपा गूङ्गे को भी वाचाल बना देती है और लङ्गड़े से पर्वत को पार करवा देती है मै उन परमानन्द स्वरूप भगवान् लक्ष्मीपति की वन्दना करता हूँ ।।६।। **श्रीमद्० इत्यादि-** श्रीमद्भागवत रूपी कल्पवृक्ष की उत्पत्ति ओङ्कार से ही हुयी है । यह बारह स्कन्ध रूपी बड़ी शाआओं से युक्त है तथा भक्ति रूपी आलबल (थाला) में इसकी उत्पत्ति हुयी है । यह तीन सौ बत्तीस अध्यायों से सुशोभित हो रहा है । वे अध्याय ही इसकी छोटी शाखायें हैं । इसके अठारह हजार श्लोक रूपी पत्ते हैं जो सभी अभिप्रेत कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं । इस तरह से अत्यन्त सुलभ यह महापुराण सभी पुराणों से श्रेष्ठ हैं ।।७।।

अथ० इत्यादि- अनेक पुराण शास्त्रों के प्रणयन के द्वारा चित्त की शान्ति नहीं प्राप्त कर सकने के कारण असन्तुष्ट महर्षि बादरायण ने नारदजी के उपदेश को प्राप्त करके श्रीभगवान् के गुणों का जिसमें प्रधान रूप से वर्णन किया गया है ऐसे भागवत शास्त्र को प्रारम्भ करने की इच्छा से, उसकी रचना में सम्भावित विघ्नों के विनाश के लिए, इस ग्रन्थ के प्रतिपाद्य परादेवता का स्मरण रूपी मङ्गलाचरण **जन्माद्यस्य०** इत्यादि श्लोक से महर्षि व्यास करते हैं । परम् शब्द परमेश्वर का बोधक है, उन परमेश्वर का हम, धीमहि अर्थात् ध्यान करते हैं । **ध्यै-चिन्तायाम्** धातु का लिङ्लकार में छान्दस रूप धीमहि पद है । इसका अर्थ है ध्यायेम = हम सभी ध्यान करें । शिष्यों के बहुत्व के अभिप्राय से महर्षि बादरायण बहुवचनान्त प्रयोग करते हैं । **तमेव० इत्यादि** उन परमेश्वर का इस श्लोक में स्वरूप लक्षण और तटस्थ लक्षण बतलाया गया हैं ।

तत्र स्वरूप० परमेश्वर का स्वरूप लक्षण सत्यम् है । परमेश्वर के सत्यत्व में कारण है उस परब्रह्म में ही माया के सत्त्व, रजस् एवं तमस् ये तीनों गुणों के कार्य पञ्च महाभूतों, इन्द्रयों और इन्द्रियों के अधिष्ठात देवताओं की सृष्टि अमृषा = सत्य है । उनकी सत्यता के ही कारण मिथ्या भी सृष्टि सत्य प्रतीत होती है । **अत्र दृष्टान्त० इत्यादि** इस विषय में दृष्टान्त उपन्यस्त करते हुए कहते है- **तेजोवरिमृदाम्० इत्यादि** जैसे तेज जल और पृथिवी का परस्पर में होने वाले विनिमय के समान एक वस्तु में दूसरे वस्तु की होने वाली प्रतीति ही विनिमय शब्द वाच्य है । वह अधिष्ठान की सत्यता के कारण सत्य के समान प्रतीत होता है । **तत्रतेजसि०** तेज में (गर्मी के दिनों में चिलचिलाती हुयी धूप में) जल की प्रतीति प्रसिद्ध है । इसी को मृगमरीचिका कहते हैं । उसी तरह मिट्टी तथा काच आदि में जल की बुद्धि होती है तथा जल में भी काच इत्यादि का भी भ्रम होता है । इसी तरह दूसरे प्रकार के होने वाले भ्रमों की भी कल्पना कर लेनी चाहिए ।

यद्वा० इत्यादि- अथवा उस परमेश्वर को परमार्थ सत्य प्रतिपादित करने के लिए उससे भिन्न सभी वस्तुओं के मिथ्यात्व को बतलाया गया है। उस परंब्रह्म में यह जगत् की सृष्टि मिथ्या ही है। वह सत्य नही है। यत्र इस पद के द्वारा प्रतीत होने वाले उपाधि के सम्बन्ध का निषेध किया गया है। उस परम्ब्रह्म के अपने ही तेज से माया रूपी कपट का उनसे सम्बन्ध नहीं होता है। परंब्रह्म के तटस्थ लक्षण को बतलाते हुए महर्षि जन्मादि० इत्यादि कहते है। अर्थात् जिस परंब्रह्म से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय = संहार होते हैं उस परंब्रह्म का हम ध्यान करते है। इसके हेतु को बतलाते हुए कहते हैं- **अन्वयात् इतरतश्च**। क्योंकि आकाश आदि कार्यों में परंब्रह्म का सत् रूप से अन्वय (सम्बन्ध) है और कार्यव्यतिरिक्त आकाश पुष्प आदि में परंब्रह्म का व्यतिरेक (सम्बन्ध) का अभाव है।

यद्वा० इत्यादि- अथवा अन्वय शब्द से अनुवृत्ति (अनुगत प्रतीति) की तथा **इतर** = शब्द के द्वारा व्यावृति (नहीं रहने) को बतलाया गया है। सभी कार्य पदार्थों में अनुवृत्त (सद्रूप से वर्तमान) होने के कारण सत् स्वरूप ब्रह्म जगत् के कारण हैं। मिट्टी और सुवर्ण के समान। अर्थात् जैसे घट तथा मणिक आदि में अनुवृत्त होने वाली मिट्टी घट तथा मणिक आदि का कारण है। उसी तरह हार आदि में सुवर्ण की चूकि अनुगत प्रतीति होती है अतएव हार इत्यादि का कारण सुवर्ण है। उसी तरह सभी आकाशादि कार्यों में अनुगत ब्रह्म सभी कार्य पदार्थों का कारण है। **व्यवृत्तत्वात्० इत्यादि-** ब्रह्म में इन सबों की व्यावृत्ति होने के कारण सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म का कार्य है। घट तथा कुण्डल के समान।

यद्वासावयवत्वात्० इत्यादि- समस्त घट पटादि कार्य सावयव हैं अतएव वे ब्रह्म के कार्य हैं और निरवयव ब्रह्म इन समस्त कार्यो के कारण है। इस जगत् की जिससे जन्मादि (सृष्टि, स्थिति और संहार) होते है, वह ब्रह्म है इस तरह से इन सबों का अन्वय वयतिरेक के द्वारा जगत् का ब्रह्मकार्यत्व सिद्ध होता है।

तथा च श्रुति:- श्रुति भी कहती है- **यतो वा इमानि० इत्यादि-** अर्थात् जिससे ये सारे भूत उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हुए भूत जिसके द्वारा रक्षित होते है, और प्रलय काल की बेला आने पर जिसमें लीन हो जाते हैं वही ब्रह्म है।

स्मृतिश्च च यत: सर्वाणि० इत्यादि- स्मृति भी कहती है- युग का प्रारम्भ होने पर जिससे ये सम्पूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं और प्रलय काल के आने पर जिसमें वे लीन हो जाते हैं। यह स्मृति भी जगत् के ब्रह्मकार्यत्व का प्रतिपादन करती है।

तर्हिकिम्- अब प्रश्न उठता है कि यहाँ जगत् के कारण रूप से प्रधान (प्रकृति) के ध्यान का विधान किया क्या है ? तो ऐसी बात नहीं है, क्योंकि प्रकृति जड़ा है वह सृष्टि से पहले ईक्षण रूप सङ्कल्प नहीं कर सकती है। सङ्कल्प करना चेतना का कार्य है। श्रुति कहती है—

स ईक्षत लोकानुसृजा इति। स इमान् लोकानसृजत ।।

अर्थात् उस कारण तत्त्व ने ईक्षण रूप सङ्कल्प किया कि मैं लोकों की सृष्टि करूँ और उसने अपने सङ्कल्प मात्र से जगत् की सृष्टि कर दी। किञ्च प्रकृति के जगत् कारणत्व का निषेध करते हुए सूत्रकार कहते हैं— **ईक्षतेर्ना शब्दम्** अर्थात् प्रकृति को जगत् का कारण नहीं माना जा सकता है क्योंकि श्रुति ईक्षण पूर्वक सृष्टि को बतलाती है और प्रकृति के जगत् कारणत्व में कोई शब्द भी प्रमाण नहीं है।

तर्हि कि जीवोध्येय: इत्यादि- इस पर दूसरे दार्शनिक कहते हैं कि क्या जीव ही जगत् के कारण रूप से ध्येय है। क्योंकि वह तो ज्ञाता है। अतएव जगत् की सृष्टि करने का सङ्कल्प कर सकता है; तो इसके उत्तर

में ग्रन्थकार कहते हैं- **नेत्याह स्वाराट्** अर्थात् जगत् का जो कारण है वह अभिज्ञ होते हुए **स्वराट्** भी है । **स्वराट्** शब्द की व्युत्पत्ति है **स्वेनैव राजते यस्तम्** जो अपने से ही प्रकाशित होता है, वह स्वराट् है अर्थात् उसे स्वतः सिद्ध ज्ञान वाला होना चाहिए । जीवात्मा का ज्ञान परमात्मा द्वारा प्रदत्त है । अतएव वह स्वराट् नहीं हो सकता है । स्वराट् शब्द का अर्थ स्वत्रंत भी होता है किन्तु जीवात्मा स्वतंत्र नहीं अपितु परमात्मा के परतन्त्र है, अतएव वह ध्येय नहीं हो सकता है ।

तर्हि किं ब्रह्मा ध्येयः- तो फिर क्या यहाँ पर जगत् के कारण रूप से ब्रह्माजी को ध्येय बतलाया गया है ? श्रुति भी कहती है—

'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।'

अर्थात् सृष्टि से पूर्व हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी ही थे । वे सम्पूर्ण भूतसमूह के पति थे । अतएव ब्रह्माजी को ही जगत् के कारण के रूप में ध्येय यह माना जाय क्या ? तो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है; क्योंकि महर्षि कहते हैं- **तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये ।** अर्थात् जिस जगत् के कारण ने आदि कवि ब्रह्माजी के लिए वेदों को प्रकाशित किया । दूसरी श्रुति भी कहती हैं–

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोत् तस्मै ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ।।

अर्थात् जिस जगत् के कारण भूत परंब्रह्म सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम ब्रह्माजी की सृष्टि करते हैं और जिस परमात्मा ने ब्रह्माजी को वेदों का ज्ञान प्रदान किया उन आत्मबुद्धि प्रकाश स्वरूप देवता की मुमुक्षु मैं शरणागति करता हूँ । इससे पता चलता है कि जगत् के कारण ब्रह्माजी नहीं है ।

ननु० इत्यादि- अब प्रश्न उठता है कि ब्रह्माजी दूसरे से भिन्न से वेदों का अध्ययन किए यह अर्थ प्रसिद्ध नहीं है । तो इसके उत्तर में महर्षि बादरायण कहते हैं **हृदा** अर्थात् परंब्रह्म ने अपने मानसिक सङ्कल्प के ही द्वारा ब्रह्माजी को वेदों का ज्ञान प्रदान कर दिया । वे स्वयं ही बुद्धि की वृत्ति के प्रवर्तक है । अतएव उन्होंने ब्रह्माजी के लिए गायत्री के अर्थ को प्रकाशित कर दिया ।

वक्ष्यति हि० इत्यादि- आगे चलकर महर्षि बादरायण स्वयं कहेंगे भी **'प्रचोदिता०' इत्यादि** अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी के हृदय में सद्ब्रह्म विषयक ज्ञान का प्रकाश करने के लिए जिन परं ब्रह्म के द्वारा प्रेरित सरस्वती, ब्रह्माजी के हृदय में स्वरूपतः आविर्भूत हो गयीं उन अज्ञान विनाशक ऋषियों में अग्रगण्य परंब्रह्म मुझ पर प्रसन्न हो जायँ ।

ननु ब्रह्मा सुप्तप्रबुद्ध इत्यादि- अर्थात् यदि यह मान लिया जाय कि जिस तरह सोने से पहले रहने वाले समस्त ज्ञानों को जीव स्वापकाल में भूल जाता है और फिर जगने के पश्चात् स्वयम् उन ज्ञानों को प्राप्त कर लेता है, उसी तरह ब्रह्माजी भी प्रलयकाल से पहले विद्यमान ज्ञान को प्रलयकाल में सो जाने के कारण भूल जाते हैं और जगने के पश्चात् वे अपने पूर्वकल्प में विद्यमान ज्ञान को स्वयं प्राप्त कर लेते हैं , तो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है । जिस ब्रह्म के विषय में दिव्य ज्ञान सम्पन्न दिव्य सूरिजनों को भी भ्रम हो जाता है । और ब्रह्माजी तो पराधीन ज्ञान वाले हैं; अतएव स्वतः सिद्धज्ञान सम्पन्न परमेश्वर ही जगत् के कारण हैं । फलतः वे सत्य हैं। असत् पदार्थों को भी सत्ता प्रदान करने के कारण परमेश्वर परमार्थ सत्य हैं, वे सर्वज्ञ हैं अतएव उनके साथ माया का सम्बन्ध नहीं हो पाता है । ऐसे परमेश्वर का हम ध्यान करते है ।

धीमहीति-धीमहि गायत्री मन्त्र का पद है उस गायत्री के द्वारा ही इस श्रीमद्भागवत पुराण का प्रारम्भ किया

गया है । इससे स्पष्ट सूचित किया गया है कि यह पुराण गायत्री नामक ब्रह्म विद्या स्वरूप है । मत्स्य पुराण के पुराण दान के प्रकरण में कहा भी गया है—

यत्राधिकृत्य गायत्री वण्येते धर्म विस्तरः । वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते ।।
लिखित्वा तच्च यो दद्यात् हेमसिंह समन्वितम् । प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां स याति परमं पदम् ।।
अष्टादशसहस्राणि पुराणं तत् प्रकीर्तितम् ।

अर्थात् जिसमें गायत्री को ही आधार बनाकर धर्म का वर्णन किया गया है, तथा जो वृत्रासुर के वध की कथा से युक्त है, उसे ही भागवत कहा जाता है । उसको लिखकर सुवर्ण निर्मित सिंह के साथ भाद्रपदमास की पूर्णिमा तिथि को जो दान देता है, वह परम पद को प्राप्त करता है । उस पुराण में अठारह हजार श्लोक बतलाये गये हैं । दूसरे पुराण में भी कहा गया है—

ग्रन्थोष्टादश सहस्रो द्वादशस्कन्ध सम्मितः हयग्रीव ब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा ।
गायत्र्या च समारम्भः तद् वै भागवतं विदुः ।

जो ग्रन्थ अठारह हजार श्लोकों वाला है तथा जिसमें बारह स्कन्ध है । तथा जिसका गायत्री के धीमहि पदसे प्रारम्भ किया गया है उसी को भागवत कहा गया है । **पद्मपुराणे० इत्यादि-** पद्मपुराण में भी राजा अम्बरीष से महर्षि गौतम ने कहा है-

अम्बरीष शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु । पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम् ।।

अर्थात् हे अम्बरीष शुकदेवजी के द्वारा उपदिष्ट श्रीमद्भागवत का नित्य ही श्रवण करो । यदि तुम अपने संसार चक्र का नाश चाहते हो तो अपने मुख से भी भागवत को पढो । अतएव जो लोग यह कहते हैं कि भागवत नामक इससे भिन्न देवी भागवत को ही भागवत कहा जाता है उनकी वह शङ्का ठीक नहीं है ।।१।।

धर्मं प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ।।२।।

अन्वयः— अत्र परमो धर्मः प्रोज्झितकैतवः, अत्र वेद्यं वास्तवं वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् कृतिभिः शुश्रुषुभिः अत्र हरिः सद्यः हृद्यवरुध्यते रचित परैः किं वा ?।।२।।

अनुवाद— महामुनि व्यासजी द्वारा रचित इस श्रीमद्भागवत महापुराण में मोक्ष पर्यन्त फल की कामना से रहित श्रेष्ठधर्म का प्रतिपादन किया गया है । इसमें शुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषों द्वारा जानने योग्य तीनों संतापों के विनाशक और कल्याणप्रद वास्तव वस्तु परमात्मा का निरूपण किया गया है । उस पुराण को सुनने की इच्छा वाले महापुरुषों के हृदय में शीघ्र ही परमात्मा विराजमान हो जाते हैं, अतएव दूसरे शास्त्रों से क्या लाभ हैं ?।।२।।

भावार्थदीपिका

इदानीं श्रोतृप्रवर्तनाय श्रीभागवतस्य काण्डत्रयविषयेभ्यः सर्वशास्त्रेभ्यः श्रैष्ठ्यं दर्शयति- धर्म इति । अत्र श्रीमति सुन्दरे भागवते परमो धर्मो निरूप्यते । परमत्वे हेतुः- प्रकर्षेणोज्झितं कैतवं फलाभिसन्धिलक्षणं कपटं यस्मिन्सः ।

प्रशब्देन मोक्षाभिसन्धिरपि निरस्तः । केवलमीश्वराराधनलक्षणो धर्मो निरूप्यत इति अधिकारितोऽपि धर्मस्य परमत्वमाह। निर्मत्सराणां परोत्कर्षासहनं मत्सरः, तद्रहितानाम् । सतां भूतानुकम्पिनाम् । एवं कर्मकाण्डविषयेभ्यः शास्त्रेभ्यः श्रैष्ठ्यमुक्तम्।

ज्ञानकाण्डविषयेभ्योऽपि श्रैष्ठ्यमाह- वेद्यमिति । वास्तवं परमार्थभूतं वस्तु वेद्यं नतु वैशैषिकाणामिव द्रव्य गुणादिरूपम्। यद्वा वास्तवशब्देन वस्तुनोंऽशो जीवः, वस्तुनः शक्तिर्माया, वस्तुनः कार्य जगच्च, तत्सर्वं वस्त्वेव न ततः पृथगिति वेद्यम् ।

अयत्नेनैव ज्ञातुं शक्यमित्यर्थः । ततः किमत आह । शिवदं परमसुखदम् । किंच आध्यात्मिकादितापत्रयोन्मूलनं च । ज्ञानकाण्डविषयेभ्यः श्रैष्ठ्यं दर्शितम् । कर्तृतोऽपि श्रैष्ठ्यमाह । महामुनिः श्रीनारायणस्तेन प्रथमं संक्षेपतः कृते ।

देवताकाण्डविषयगतं श्रैष्ठ्यमाह- किं वेति । परैः शास्त्रैस्तदुक्तसाधनैर्वेश्वरो हृदि किं वा सद्य एवावरुध्यते स्थिरीक्रियते। वा शब्दः कटाक्षे । किंतु विलम्बेन कथंचिदेव । अत्र तु शुश्रूषुभिः श्रोतुमिच्छद्भिरेव तत्क्षणादेवावरुध्यते । इदमेव तर्हि किमिति सर्वे न शृण्वन्ति तत्राह- कृतिभिरिति । श्रवणेच्छा तु पुण्यैर्विना नोत्पद्यत इत्यर्थः । तस्मादत्र काण्डत्रयार्थस्यापि यथावत्प्रतिपादनादिदमेव सर्वशास्त्रेभ्यः श्रेष्ठम्, अतो नित्यमेतदेव श्रोतव्यमिति भावः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में महर्षि बादरायण श्रीमद्भागवत के श्रवण में लोगों को प्रवृत्त करने के लिए तीनों काण्डों कर्मकाण्ड, दैवतकाण्ड और ज्ञानकाण्ड के विषयों तथा सभी शास्त्रों से श्रीमद्भागवत की श्रेष्ठता का प्रतिपादन **धर्मः प्रोज्झितकैतवः इत्यादि** श्लोक से करते हैं । **अत्र श्रीमति० इत्यादि** इस सुन्दर श्रीमद्भगावत पुराण में श्रेष्ठ धर्म का निरूपण किया जा रहा है । उस धर्म की श्रेष्ठता इसलिए है कि यह धर्म उज्झित कैतव है । अर्थात् इसमें फलाभिसन्धि रूप कपट का पूर्णरूप से परित्याग कर दिया गया है । अतएव निष्काम धर्म होने के कारण यह श्रेष्ठ धर्म है ।

प्रोज्झित पद में प्र उपसर्ग के द्वारा बतलाया गया है कि इस पुराण में मोक्ष की प्राप्ति रूपी फल का भी परित्याग कर दिया गया है । इस महापुराण में केवल ईश्वराराधन रूपी धर्म का निरूपण किया गया है । अतएव अधिकारी की दृष्टि से भी इस धर्म की श्रेष्ठता बतलायी गयी है । **निर्मत्सराणां सताम्०** के द्वारा यह कहा गया है कि यह धर्म मत्सर रहित जीवों पर कृपा करने वाले महापुरुषों का धर्म है । दूसरे के होने वाले उत्कर्ष को देखकर जलने को मत्सर कहते हैं । यह धर्म मत्सर रहित महापुरुषों का है । इस तरह से महर्षि ने कर्मकाण्ड विषयक शास्त्रों से भागवत धर्म की श्रेष्ठता को बतलाया है ।

ज्ञानकाण्डविषये- भागवत धर्म ज्ञानकाण्ड के विषयों से भी श्रेष्ठ है, इस अर्थ का प्रतिपादन करते हुए महर्षि बादरायण कहते हैं- **वेद्यम्० इत्यादि** अर्थात् इसमें वास्तव अर्थात् परमार्थ वस्तु को ही वेद्य बतलाया गया है, न कि वैशेषिकों के समान द्रव्य गुण आदि को । **यद्वा० इत्यादि-** अथवा वास्तव शब्द से वस्तुभूत परंब्रह्म के अंश जीव, वस्तुभूत ब्रह्म की शक्ति माया, ब्रह्म के कार्य जगत् ये सभी वस्तु स्वरूप हैं, वस्तुभूत परंब्रह्म से अलग नहीं है । इस तरह से जानना चाहिए । अतएव इस श्रीमद्भागवत के माध्यम से आसानी से ये सब जाने जा सकते हैं । यदि कहें कि इससे क्या हुआ तो महर्षि कहते हैं **शिवदम्** अर्थात् यह धर्म परम सुख को प्रदान करने वाला है तथा **तापत्रयोन्मूलनम्** अर्थात् आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक संसार के इन तीनों सन्तापों को विनष्ट करने वाला है । इस तरह से महर्षि बादरायण ने भागवत प्रोक्त धर्म को ज्ञान काण्ड के विषयों से श्रेष्ठता भी प्रतिपादित की है । महामुनि शब्द से श्रीनारायण ही कहे गये हैं उन्होंने पहले इसका संक्षेप में निर्माण किया था और व्यासजी ने उसका विस्तार किया ।

देवताकाण्डविषय० इत्यादि दैवत काण्ड विषयक शास्त्रों के विषयों से इसकी श्रेष्ठता बतलाते हुए महर्षि व्यास ने कहा **किं वा० इत्यादि** अर्थात् दूसरे शास्त्रों और उनमें बतलाये गये साधनों से क्या ईश्वर सद्यः हृदय में स्थिर हो जा सकते हैं ? अर्थात कभी नहीं हो सकते । वा शब्द के द्वारा व्यासजी ने कटाक्ष किया है । उन शास्त्रों से तो बहुत देर से और बड़ी मुश्किल से ईश्वर हृदय में प्रवेश करते हैं । इस श्रीमद्भागवत शास्त्र को सुनने के ईक्षुक लोगों द्वारा तो तत्क्षण ही ईश्वर हृदय में स्थापित कर लिए जाते हैं ।

इदमेव तर्हीं इत्यादि- तो फिर प्रश्न उठता है कि सभी लोग इस श्रीमद्भागवत का ही श्रवण क्यों नहीं करते हैं ? तो इसके उत्तर में महर्षि कहते हैं कि पुण्यों के बिना श्रवणेच्छा होती ही नहीं हैं । अतएव पुण्यवान् पुरुषों को ही इसको सुनने की इच्छा होती है । इस तरह तीनों काण्डों के अर्थों का इसमें यथार्थ रूप से प्रतिपादन किए जाने के कारण यह श्रीमद्भागवत शास्त्र ही सभी शास्त्रों से श्रेष्ठ है । फलतः सदा इसका ही श्रवण करना चाहिए ॥२॥

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥३॥

अन्वयः— हे भुवि भावुकाः निगमकल्पतरोः गलितं शुकमुखादमृत द्रवसंयुतम् फलम् भागवतं रसम् आलयं मुहुः पिबत ॥३॥

अनुवाद— हे भूलोक में विद्यमान रस के मर्म को जानने वाले भक्तजन, वेदरूपी कल्प वृक्ष के पके हुए तथा शुकदेवजी रूपी तोते के मुख से जिसका संयोग हो गया है, ऐसे अमृत के समान अत्यन्त आस्वद्य रस से परिपूर्ण श्रीमद्भागवत रूपी फल के रस का आपलोग आजीवन बार-बार पान करें ॥३॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं तु न केवलं सर्वशास्त्रेभ्यः श्रेष्ठत्वादस्य श्रवणं विधीयते, अपितु सर्वशास्त्रफलरूपमिदम्, अतः परमादरेण सेव्यमित्याह- निगमेति । निगमो वेदः स एव कल्पतरुः सर्वपुरुषार्थोपायत्वात्तस्य फलं भागवतं नाम । तत्तु वैकुण्ठगतं नारदेनानीय मह्यं दत्तम् । मया च शुकस्य मुखे निहितम् । तच्च तन्मुखाद्भुवि गलितं शिष्यप्रशिष्यादिरूपपल्लवपरम्परया शनैरखण्डमेवावतीर्णं नतूच्चनिपातेन स्फुटितमित्यर्थः ।

एतच्च भविष्यदपि भूतवन्निर्दिष्टम् । अनागताख्यानेनैवास्य शास्त्रस्य प्रवृत्तेः । अत एवामृतरूपेण द्रवेण संयुतम् । लोके हि शुकमुखस्पृष्टं फलममृतमिव स्वादु भवतीति प्रसिद्धम् । अत्र शुको मुनिः । अमृतं परमानन्दः स एव द्रवो रसः । **'रसो वै सः' 'रसँह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति'** इति श्रुतेः । अतो हे रसिका रसज्ञास्तत्रापि भावुका हे रसविषेषभावनाचतुराः । अहो भुवि गलितमित्यलभ्यलाभोक्तिः । इदं भागवतं नाम फलं मुहुः पिबत ।

ननु त्वगष्ट्यादिकं विहाय फलाद्रसः पीयते कथं फलमेव पातव्यं तत्राह । रसं रसरूपम् । अतस्त्वगष्ट्यादेर्हेयांशस्याभावात्फलमेव कृत्स्नं पिबत । अत्र च रसतादात्म्यविवक्षया रसवत्त्वस्याविवक्षितत्वाद्गुणवचनेऽपि रसशब्दे मतुपः प्राप्त्यभावात्तेन विनैव रसं फलमिति सामानाधिकरण्यम् । तत्र फलमित्युक्ते पानासंभवो हेयांशप्रसक्तिश्च भवेदिति तन्निवृत्त्यर्थं रसमित्युक्तं रसमित्युक्तेऽपि गलितस्य रसस्य पातुमशक्यत्वात्फलमिति द्रष्टव्यम् । न च भागवतामृतपानं मोक्षेऽपि त्याज्यमित्याह । आलयं लयो मोक्षः । अभिविधावाकारः । लयमभिव्याप्य । नहीदं स्वर्गादिसुखवन्मुक्तैरुपेक्ष्यते किं तु सेव्यत एव । वक्ष्यति हि-

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे । कुर्बन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ॥

इति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में महर्षि व्यास बतलाते हैं कि इसके श्रवण का विधान केवल इसलिए नहीं किया जा रहा है कि यह सभी शास्त्रों से श्रेष्ठ है, अपितु इसलिए किया जा रहा है कि यह सभी शास्त्रों का फल है । अतएव इसका सेवन अत्यन्त आदर पूर्वक करना चाहिए । इसी बात को वे **निगम० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । निगम शब्द से वेद को कहा जाता है वही कल्पतरु है, क्योंकि वह कल्पतरु के ही समान सभी पुरुषार्थों को प्रदान करने वाला है । उस वेद नामक वृक्ष के फल का नाम भागवत है । **तत्तु० इत्यादि-** उस भागवत रूपी फल

को वैकुण्ठ से लोकर नारदजी ने मुझे प्रदान किया है । मैंने भी उसको शुक के मुख में डाल दिया । वह फल शुक के मुख से पृथिवी पर गिर पड़ा शिष्य प्रशिष्य रूपी पल्लवं की परम्परा से पृथिवी पर धीरे से गिर पड़ा। अतएव फटा नहीं; अपितु अखण्ड ही रहा क्योंकि वह ऊपर से नहीं गिरा था ।

एतच्च० इत्यादि- यह शिष्य परम्परा पृथिवी पर उस फल का गिरना भविष्यत् कालिक हैं । श्रीमद्भागवत प्रणयन काल में तो वह फल पृथिवी पर आया ही नहीं था; किन्तु सर्वज्ञ होने के कारण उसका महर्षि ने भूतकाल के समान निर्देश किया है; क्योंकि अनागत काल में ही इस शास्त्र की प्रवृत्ति हुयी । शुकदेव रूपी तोते के मुख से इसका संयोग होने के कारण यह अमृत के समान अत्यन्त आस्वाद्य रस से भर गया है । **लोके हि** संसार में भी प्रसिद्ध है कि जिस फल को तोता अपने मुख से छू लेता है वह अमृत के समान स्वादिष्ट हो जाता है। यहाँ शुकदेवजी को ही तोता कहा गया है । अमृत शब्द से परमानन्द को कहा गया है । वह परमानन्द ही इस भागवत रूपी फल का रस है ।

रसौ वै० इत्यादि- श्रुति भी कहती है कि परंब्रह्म रस के समान परमानन्द स्वरूप हैं । **'रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति ।'** उस रस स्वरूप परंब्रह्म को प्राप्त करके जीव आनन्द युक्त हो जाता है । **अतो हे० इत्यादि-** हे रस विशेष के ज्ञाता रसज्ञ पुरुषों यह पृथिवी पर गिरा हुआ भागवत रूपी फल अलभ्य लाभ है । अतएव इस भागवत नामक फल का आपलोग बार-बार पान करें ।

ननु० इत्यादि- यदि कहा जाय कि छिलका तथा गुठली इत्यादि को हटा कर ही फल के रस का पान किया जाता है फल का पान कैसे किया जा सकता हैं ? इसीलिए व्यासजी ने कहा– **रसम्** अर्थात् यह फल रस स्वरूप है । इसमें छिलका तथा गुठली का अभाव है अतएव सम्पूर्ण फल को ही पीजिए । **अत्र च रसतादात्म्य० इत्यादि** यहाँ पर रस से अभेद की विवक्षा के ही कारण तथा रसवत्त्व की विवक्षा का अभाव होने के कारण, गुण के वाचक भी रस शब्द में मतुप् प्रत्यय की प्राप्ति का अभाव होने के कारण मतुप् के बिना ही रस का फल के साथ सामानाधिकरण्य है । यदि फल शब्द का ही प्रयोग होता तो उसका पान करना सम्भव नहीं होता तथा त्याज्यांश की भी प्रसक्ति होती । उसकी निवृत्ति के लिए रस शब्द का प्रयोग किया गया है । रस ही यदि कहा जाता तो फिर पृथिवी पर गिरे हुए रस का पान करना सम्भव नहीं था । इसीलिए महर्षि ने फल कहा है । रस स्वरूप यह फल है । इस भागवत रूपी अमृत का पान मुक्तावस्था में भी ज्याज्य नहीं है । इसी अर्थ का बोध कराने के लिए **आलयम्** पद का प्रयोग किया गया है । लय मोक्ष का वाचक है । अपितु **अभिविधावाकारः** इस सूक्ति के अनुसार इसका पान तब तक किया जाता है जब तक मुक्ति बनी रहे । जिस तरह मुक्तजीव स्वर्गादि सुख की उपेक्षा कर देते हैं उसी तरह से भागवत रस का वे उपेक्षा नहीं करके सेवन करते रहते हैं महर्षि व्यास आगे चलकर स्वयं कहेंगे भी—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे । कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ।।

अर्थात् आत्माराम (अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले) मुनिजन, श्रीभगवान् के विषय में निर्ग्रन्थ होते हैं । वे सभी कामनाओं से रहित होकर श्रीभगवान् की भक्ति किया करते हैं, क्योंकि श्रीभगवान् के गुण ही ऐसे हैं ।।३।।

नैमिशेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः । सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ।।४।।

अन्वयः— अनिमिषक्षेत्रे नैमिषे शौनकादायः ऋषयः स्वर्गाय लोकाय सहस्रसमम् सत्रम् आसत ।।४।।

अनुवाद— भगवान् विष्णु के क्षेत्र नैमिषारण्य में एक बार ऋषिगण स्वर्ग (वैकुण्ठ लोक) की प्राप्ति की इच्छा से एक हजार वर्षों में पूरा होने वाले याग का अनुष्ठान कर रहे थे ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तदेवमनेन श्लोकत्रयेण विशिष्टदेवतानुस्मरणपूर्वकं प्रारिप्सितस्य शास्त्रस्य विषयप्रयोजनादिवैशिष्ट्येन सुखसेव्यत्वेन च श्रोतृनभिमुखीकृत्य शास्त्रमारभते- नैमिश इति । ब्रह्मणा विसृष्टस्य मनोमयस्य चक्रस्य नेमिः शीर्यते कुण्ठीभवति यत्र तन्नेमिशं, नेमिशमेव नैमिशम् । तथा च वायवीये-

एतन्मनोमयं चक्रं मया सृष्टं विसृज्यते । यत्रास्य शीर्यते नेमिः स देशस्तपसः शुभः ।।
इत्युक्त्वा सूर्यसंकाशं चक्रं सृष्ट्वा मनोमयम् । प्रणिपत्य महादेवं विससर्ज पितामहः ।।
तेऽपि हृष्टतमा विप्राः प्रणम्य जगतां प्रभुम् । प्रययुस्तस्य चक्रस्य यत्र नेमिर्व्यशीर्यत ।।
तद्वनं तेन विख्यातं नैमिशं मुनिपूजितम् ।

इति ।

नैमिष इति पाठे वराहपुराणोक्तं द्रष्टव्यम् । तथाहि गौरमुखमृषिं प्रति भगवद्वाक्यम् –

एवं कृत्वा ततो देवो मुनिं गौरमुखं तदा । उवाच निमिषेणेदं निहतं दानवं बलम् ।।
अरण्येऽस्मिंस्ततस्त्वेतन्नैमिषारण्यसंज्ञितम् । भविष्यति यथार्थं वै ब्राह्मणानां विशेषकम् ।।

इति । अनिमिषः श्रीविष्णुः अलुप्तदृष्टित्वात् । तस्य क्षेत्रे । तथा चात्रैव शौनकादिवचनं '**क्षेत्रेऽस्मिन्वैष्णवे वयम्**' इति । स्वः स्वर्गे गीयत इति स्वर्गायो हरिः, स एव लोको भक्तानां निवासस्थानं तस्मै । तत्प्राप्तय इत्यर्थः । सहस्रं समाः संवत्सरा अनुष्ठानकालो यस्य तत्सत्रं सत्रसंज्ञकं कर्मोद्दिश्य आसत उपविविशुः । यद्वा आसताऽकुर्वतेत्यर्थः । आलभेत निर्वपति उपयन्तीत्यादिवत्प्रत्ययोच्चारणमात्रार्थत्वेनाऽऽस्तेर्धात्वर्थस्याविवक्षितत्वात् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से तीन श्लोकों द्वारा विशिष्ट देवता परंब्रह्म के स्मरण पूर्वक जिसको प्रारम्भ करना अभिप्रेत है उस शास्त्र का विषय तथा प्रयोजन आदि से विशिष्ट तथा जिसका सेवन सुखपूर्वक किया जा सकता है उस शास्त्र के प्रति श्रोताओं को अभिमुख करके महर्षि व्यास प्रारम्भ **नैमिशे० इत्यादि** श्लोक से करते हुए कहते हैं । **ब्रह्मणा० इत्यादि-** ब्रह्माजी के द्वारा छोड़े गये मनोमय चक्र का नेमि जहाँ पर शीर्ण हो जाता है, अर्थात् कुण्ठित हो जाता है, उस स्थान को नेमिश कहते है । नेमिश शब्द से स्वार्थ में प्रत्यय होकर नैमिश शब्द व्युत्पन्न होता है । **तथा च० इत्यादि-** वायु पुराण में कहा भी गया है । मैंने इस मनोमय चक्र की सृष्टि की है, उसको मैं छोड़ रहा हूँ । इसकी नेमि जहाँ पर शीर्ण हो जाय वह स्थान तपस्या की दृष्टि से शुभ है । यह कहकर सूर्य के समान देदीप्यमान मनोमय चक्र की सृष्टि करके तथा महान् देवता श्रीभगवान् को नमस्कार करके ब्रह्माजी ने उसे छोड़ा । वे सभी ऋषिगण भी अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक जगत् के स्वामी ब्रह्माजी को प्रणाम करके उस चक्र के पीछे गये और जहाँ पर वह नेमि (चक्र) गिर पड़ा वही मुनिजनों के द्वारा पूजित नैमिश नामक वन विख्यात हो गया ।

नैमिष इति पाठे० इत्यादि- नैमिष इस पाठ के विषय में वराहपुराण में कहे गये निम्नांकित श्लोकों को देखना चाहिए । **तथाहि० इत्यादि-** वे श्लोक है गौरमुख मुनि के प्रति श्रीभगवान् का वाक्य है **एवम्० इत्यादि-** इस तरह से करके श्रीवराह भगवान् ने गौरमुख नामक मुनि से कहा मैंने चक्र के द्वारा दानवों की सेना को इस वन में मार दिया है अतएव वन का यथार्थ नाम नैमिष होगा यह ब्राह्मणों के लिए विशेष फल प्रदान करने वाला होगा ।

अनिमिष इति- अनिमिष शब्द श्रीभगवान् विष्णु का नाम है क्योंकि उनकी दृष्टि कभी लुप्त नहीं होती है । उन भगवान् विष्णु के क्षेत्र में ऋषिगण उस सत्र को कर रहे थे । इसीलिए इस श्रीमद्भागवत में ही शौनक आदि महर्षियों ने कहा है- **'क्षेत्रेऽस्मिन् वैष्णवे वयम् ।'** उस भगवान् विष्णु के क्षेत्र में हमलोग इस दीर्घ कालिक सत्र करने के लिए बैठे हैं ।

स्वर्गाय शब्द भगवान् विष्णु का बोधक है इस अर्थ को बतलाते हुए श्रीधरस्वामी कहते हैं **स्वः स्वर्गे गीयते इति स्वर्गायः ।** अर्थात् स्वर्गलोक में जिनका गायन किया जाता है वे भगवान् विष्णु ही स्वर्गाय हैं । उनका ही लोक भक्तों का निवास स्थान है उस भगवान् विष्णु की प्राप्ति के लिए यह स्वर्गाय पद का अर्थ है ।

सहस्रसममासत० इस पद की व्युत्पत्ति बतलाते हुए वे कहते हैं- **सहस्रं समाः संवत्सराः अनुष्ठनकालो यस्य तत् सत्रसंज्ञकं कर्मोद्दिश्य आसते = उपविविशुः'** अर्थात् एक हजार वर्ष जिसके अनुष्ठान का समय है उस सत्र संज्ञक कर्म को करने के लिए वे ऋषि बैठ गये ।

अथवा आसत शब्द का अर्थ है किए । आलभेत, निर्वपति उपयन्ति इत्यादि पदों के समान प्रत्यय का उच्चारण मात्र ही अर्थ होने के कारण **आस** धातु का अर्थ आसत पद में विवक्षित हीं है ॥४॥

त एका तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्रयः । सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥५॥

अन्वयः— ते तु एकदा प्रातर्हुतहुताग्नयः मुनयः सत्कृतम् आसीनम् सूतम् इदम् आदरात् पप्रच्छु ॥५॥

अनुवाद— एक दिव वे ऋषिगण प्रात:काल अग्निहोत्र आदि कृत्यों से निवृत्त होकर बैठे हुए सूतजी का पूजन किए और उनसे आदर पूर्वक पूछे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

सायंकाले हुता एव हुता अग्रयो यैस्ते । यद्वा हूयत इति हुतं दध्यादि तेन हुता अग्रयो यैस्ते । यद्वा प्रात:काले हुता एव हुता अग्रयो यैस्ते । अनेन नित्यनैमित्तिकहोमसाकल्यं दर्शितम् । इदं वक्ष्यमाणमादरात्पप्रच्छुः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

सायंकाल ही जिस अग्नि में जिन लोग ने होम कर दिया था वे ऋषिगण हुताग्नि शब्द वाच्य हैं । **यद्वा० इत्यादि-** अथवा जिन का होम किया जाता है उन दधि इत्यादि से जिन लोगों ने होम कर दिया था । अथवा प्रात:काल ही जिन लोगों ने अग्नि में होम कर दिया था उन ऋषियों ने । इस तरह से **हुताग्नयः** पद के द्वारा नित्य तथा नैमित्तिक आदि सभी होमों को सूचित किया गया है । जिन बातों को आगे कहा जाना है उन बातों को आदर पूर्वक ऋषियों ने सूतजी से पूछा ॥५॥

ऋषय ऊचुः

त्वया खलु पुराणानि सेतिहासानि चानघ । आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ॥६॥

अन्वयः— हे अनघ ! त्वया खलु सेतिहासानि पुराणानिः यानि उत धर्मशास्त्राणि तानि अपि अधीतानि आख्यातानि अपि ॥६॥

ऋषियों ने कहा

अनुवाद— हे निष्पाप सूतजी ! आपने इतिहासों के साथ सभी पुराणों को तथा जितने भी धर्मशास्त्र हैं उन सबों का विधिपूर्वक अध्ययन किया है तथा उन सबों की व्याख्या भी की है ।

भावार्थ दीपिका

विविदिषितानर्थान्प्रष्टुं सूतस्य सर्वशास्त्रज्ञानातिशयमाहुः- त्वयेति त्रिभिः श्लोकैः । इतिहासो महाभारतादिस्तत्सहितानि। न केवलमधीतानि अपित्वाख्यातान्यपि व्याख्यातानि च । उत अपि यानि धर्मशास्त्राणि तान्यपि ॥६॥

भाव प्रकाशिका

जिन अर्थों को जानना अभिप्रेत है उन अर्थों को पूछने के लिए सूतजी के सभी शास्त्रों के ज्ञानों के आतिशय्य

को उनलोगों ने **त्वया खलु० इत्यादि** तीन श्लोकों से कहा है । इतिहास शब्दसे महाभारत, रामायण इत्यादि को कहा गया है । उन इतिहासों के साथ पुराणों का आपने अध्ययन किया है । केवल आपने अध्ययन ही नहीं किया है, अपितु उन सबों की व्याख्या भी आपने की है, यह **आख्यातान्यपि** पद का अर्थ है। **धर्मशास्त्राणि यान्युत** इसका अर्थ है कि केवल इतिहासों और पुराणों का ही नहीं अपितु जितने भी धर्मशास्त्र हैं उन सबों की भी आपने व्याख्या की है ॥६॥

यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवान्बादरायणः। अन्ये च मुनयः सूत परावरविदो विदुः ॥७॥
वेत्थ त्वं सौम्य तत्सर्वं तत्त्वतस्तदनुग्रहात्। ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥८॥

अन्वयः— वेदविदाम् श्रेष्ठो भगवान् बादरायणः अन्ये च मुनयः परावरविदः यानि विदुः हे सूत त्वम् तदनुग्रहात् तत् सर्वं वेत्थ । स्निग्धस्य शिष्यस्य उत गुरवः गुह्यम् अपि ब्रूयुः ॥७-८॥

अनुवाद— वेदज्ञों में श्रेष्ठ भगवान् बादरायण ने तथा दूसरे जो पर तत्त्व एवं अवर तत्त्व के ज्ञाता हैं उन मुनियों ने, जिन विषयों को जाना है, उन सभी ज्ञानों को आप वास्तविक रूप से जानते हैं, क्योंकि गुरुजन अपने प्रेमी शिष्यों को गुप्त से गुप्त भी अर्थों को बता दिया करते हैं ॥७-८॥

भावार्थ दीपिका

किंच यानीत्यादि । विदां विदुषां मध्ये श्रेष्ठो व्यासो यानि वेद । परावरे सगुणनिर्गुणे ब्रह्मणी विदन्तीति तथा ॥७॥ वेत्थ जानासि । सौम्य हे साधो । तेषामनुग्रहात् । तत्त्वतो ज्ञाने हेतुमाह ब्रूयुरिति । स्निग्धस्य प्रेमवतः उत एव । गुह्यं रहस्यमपि ब्रूयुरेव ॥८॥

भावप्रकाशिका

किञ्च० इत्यादि- विदाम् पद का अर्थ है विद्वानों में, अर्थात् महर्षि बादरायण वेद के विद्वानों में श्रेष्ठ हैं। वे जिन अर्थों को जानते हैं । **परावरविदः** पद के पर शब्द से निर्गुण ब्रह्म और अवर शब्द से सगुण ब्रह्म को कहा गया है । उन दोनों प्रकार के ब्रह्म को जानने वालों को **परावरविद्** कहा गया है। **वेत्थ** पद का अर्थ है आप जानते हैं । **सौम्य** पद का अर्थ है हे साधु पुरुष ! उन सभी ऋषियों की कृपा से आप जानते है । ऋषियों द्वारा किए जाने वाले अनुग्रह के कारण **ब्रयु० इत्यादि** के द्वारा कहा गया है । यह **स्निग्ध** पद का अर्थ है प्रेमी, उत्त शब्द एवार्थक है । गुह्यमपि का अर्थ है अत्यन्त गोपनीय भी अर्थ को बतला ही देते हैं ॥७-८॥

तत्र तत्राञ्जसाऽऽयुष्मन्भवता यद्विनिश्चितम् । पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तन्नः शंसितुमर्हसि ॥९॥

अन्वयः— हे आयुष्मन् तत्र-तत्र अञ्जसा पुंसाम् एकान्ततः श्रेयः यद्विनिश्चितम् तत् नः शंसितुम् अर्हसि ॥९॥

अनुवाद— हे आयुष्मन् ! उन सभी शास्त्रों में संसारी जीवों के लिए नियमतः कल्याणकारी रूप से आप जो निश्चित किए हों उसको आप हमलोगों को बतलायें ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अञ्जसा ग्रन्थार्जवेन । एकान्ततः श्रेयोऽव्यभिचारि श्रेयः साधनम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

मूल के **अञ्जसा** पद का अर्थ है ग्रन्थानुसार सरलता पूर्वक । **एकान्ततः** पद का अर्थ है नियमतः कल्याण का साधन ॥९॥

टिप्पणी— इस अध्याय में सूतजी के प्रति शौनकादि महर्षियों ने छह प्रश्नों को किया है जीवों का नियमतः

कल्याणकारी साधन क्या है ? अवतारों का प्रयोजन क्या हैं ? अवतारों के कर्म क्या हैं ? किस अवतार की कथा कैसी है ? कृष्णावतार के चरित का वर्णन और भगवान् के अपने लोक में चले जाने पर धर्म किसके शरण में गया ? कहा भी गया है—

पुंसामेकान्ततः श्रेयश्चावतारप्रयोजनम् । तस्य कर्माण्यपि तथा चावतार कथा अपि ।।
कृष्णवतार चरितं, धर्मः कं शरणं गतः ।

उन प्रश्नों में से **पुसामेकान्ततः श्रेयः** से लेकर **येनात्मा सम्प्रसीदति** पर्यन्त पहला प्रश्न वर्णित हैं ।

प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन्युगे जनाः । मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ।।१०।।

अन्वयः— हे सभ्य ! अस्मिन् कलौ युगे, जनाः प्रायेण अल्पायुषः मन्दाः सुमन्दमतयः मन्दभाग्या, उपद्रुताः ।।१०।।

अनुवाद— हे साधो ! इस कलियुग में लोग प्रायः अल्पआयु वाले, कल्याण के साधनों का अनुष्ठान करने में आलसी, मन्दबुद्धि वाले, और अनेक प्रकर के उपद्रवों से ग्रस्त रहते हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

अन्येऽपि बहुना कालेन बहुशास्त्रश्रवणादिभिर्विनिश्चिन्वन्तु नेत्याहुः- प्रायेणेति । हे सभ्य साधो, अस्मिन्युगे कलावल्पायुषो जनास्तत्रापि मन्दा अलसास्तत्रापि सुमन्दमतयस्तत्रापि मन्दभाग्या विघ्नाकुलास्तत्राप्युपद्रुता रोगादिभिः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि दूसरे लोग भी बहुत समय में और अनेक शास्त्रों का अध्ययन करके कल्याण के साधन का निश्चय कर लें तो ऐसा नहीं कहा जा सकता है । क्योंकि महर्षियों ने कहा- **प्रायेण० इत्यादि-** हे सभ्य = हे साधो ! इस कलियुग में लोग अल्पायु हो गये हैं । उस पर भी वे मन्द अर्थात् आलसी हो गये हैं । यही नहीं वे मन्दबुद्धि वाले तथा मन्दभाग्य वाले हो गये हैं । साथ-ही-साथ वे रोग आदि के कारण सदा उपद्रव ग्रस्त बने रहते हैं ।।१०।।

भूरीणि भूरिकर्माणि श्रोतव्यानि विभागशः। अतः साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया ।।
ब्रूहि नः श्रद्धधानानां येनात्मा संप्रसीदति ।।११।।

अन्वयः— (शास्त्राणि च) भूरीणि, भूरिकर्माणिः विभागशः श्रोतव्यानि, अतः हे साधो ! अत्र यत्सारम् तत् मनीषया समुद्धृत्य श्रद्धानानां ब्रूहि, येनात्मा संप्रसीदति ।।११।।

अनुवाद— वे शास्त्र भी अनेक हैं, उनमें अनेक प्रकार के कर्मों का साधन रूप से वर्णन है । यहीं नहीं वे इतने बड़े हैं कि उनका विभाग करके ही श्रवण किया जा सकता है । अतएव हे साधो ! आप अपनी बुद्धि के अनुसार उनके सार भाग को हमलोगों को बतलायें । हम सभी श्रद्धालु हैं । जिससे की हमारे अन्तःकरण की शुद्धि हो सके उसको आप हमलोगों को बतलाएँ ।

भावार्थदीपिका

न च बहुशास्त्रश्रवणेऽपि तावतैव फलसिद्धिरित्याहुः- भूरीणीति । भूरीणि कर्माण्यनुष्ठेयानि येषु तानि । समुद्धृत्य यथावदुद्धृत्य । येनोद्धृतवचनेनात्मा बुद्धिः संप्रसीदति सम्यगुपशाम्यति ।।११।।

भाव प्रकाशिका

केवल अनेक शास्त्रों के श्रवण मात्र से ही कल्याणकारी साधन का निश्चय हो जाय तो ऐसी भी बात नहीं है । इस बात को बतलाते हुए ऋषिगण कहते हैं- **भूरीणि० इत्यादि-** उन शास्त्रों में आत्मकल्याण के साधन

रूप से अनेक अनुष्ठेय कर्म बतलाये गये हैं । मूल के समुद्धृत्य पद का अर्थ है ज्यों के त्यों उन शास्त्रों से निकाल कर, हमें बतलायें । जिस उपदिष्ट वचन के द्वारा हमलोगों का अन्त:करण अच्छी तरह से निर्मल हो जाय ॥११॥

सूत जानासि भद्रं ते भगवान्सात्वतांपतिः । देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया ॥१२॥

अन्वयः— हे सूत ! ते भद्रम्, सात्त्वतां पतिः भगवान्, देवक्याम् वसुदेवस्य, यस्य चिकीर्षया जातः तत् त्वं जानासि ॥१२॥

अनुवाद— हे सूतजी आपका कल्याण हो, आप यह भी जानते हैं कि यदुवंशियों के स्वामी श्रीभगवान् किस कार्य को करने के लिए माता देवकी के गर्भ से वसुदेवजी के पुत्र के रूप में जन्म लिए ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

प्रश्नान्तरं- सूत जानासीरति पञ्चभिः । भद्रं त इत्यौत्सुक्येनाशीर्वादः । (विस्तरेणाशीर्वादवचनेन विष्णुकथाविघातो भवतीति संग्रहेणोक्तम् । तथाहि 'सा हानिस्तन्महच्छिद्रं स मोहः स च विभ्रमः । यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवं न चिन्तयेत् ।' इति) भगावान्निरतिशयैश्वर्यादिगुणः । सात्त्वतां सच्छब्देन सत्त्वमूर्तिर्भगवान्स उपास्यतया विद्यते येषामिति सत्त्वन्तो भक्ताः । स्वार्थेऽण् राक्षसवायसादिवत् । तस्य चाश्रवणमार्षम् । तदेवं सत्वन्त इति भवति । तेषां पतिः पालकः । यस्यार्थविशेषस्य चिकीर्षया वसुदेवस्य भार्यायां देवक्यां जातः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

सूतजानासि इत्यादि पाँच श्लोकों से श्रीभगवान् के अवतारों के प्रयोजन के विषय में प्रश्न किया गया है। **भद्रम्** पद के द्वारा महर्षियों ने उत्सुकता वशात् सूतजी को आशीर्वाद दिया है । यदि वे विस्तार से (सूतजी) को आशीर्वाद देने लगते तो भगवान् विष्णु की कथा को आगे बढ़ाने में बाधा होती अतएव **भद्रम्** (आपका कल्याण हो) इस पद के द्वारा अत्यन्त संक्षेप में उन लोगों ने आशीर्वाद दिया है । **तथा हि० इत्यादि**- कहा भी गया है—

सा हानि स्तन्महच्छिद्रं स मोह सा च विभ्रमः । यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवो न चिन्तयेत् ।।

अर्थात् जिस मुहूर्त अथवा जिस क्षण में भगवान् वासुदेव का चिन्तन न किया जाय वही जीवन की सबसे बड़ी हानि है । जीवन का सबसे बड़ा विघ्न है, वह जीवन का मोह है और वही जीवन का सबसे बड़ा विकार है ।

भगवान्० इत्यादि श्रीभगवान् नि:सीम ऐश्वर्य और नि:सीम कल्याण गुणों से सम्पन्न हैं । **सात्वताम्** पद के सत् से सत्त्वमूर्ति भगवान् कहे गये हैं । वे भगवान् ही जिनके उपास्य है वे सत्त्वन्त पद वाच्य भक्त हैं । जिस तरह राक्षस वायस आदि शब्दों से स्वार्थ में अण् प्रत्यय करके इन शब्दों की सिद्धि हुयी हैं उसी तरह सत्त्वन्त पद बना है । वैदिक प्रयोग होने के कारण उसका अण् श्रवण नहीं होता है । उनके पालक होने के कारण भगवान सात्वताम् पति हैं । जिस कार्य विशेष को करने के लिए भगवान् माता देवकी के गर्भ से वसुदेवजी के पुत्र के रूप में जन्म लिए उसे आप जानते हैं ॥१२॥

तन्नः शुश्रूषमाणानामर्हस्यङ्गानुवर्णितुम् । यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय च ॥१३॥

अन्वयः— हे अङ्ग शुश्रूषमाणानां तत् अनुवर्णितुम् अर्हसि । यस्य अवतारः भूतानां क्षेमाय च भवाय च भवति ॥१३॥

अनुवाद— हे तात ! उसे हम सुनना चाहते हैं, अतएव उसे आप हमलोगों को सुनायें; क्योंकि श्रीभगवान का अवतार जीवों के कल्याण के लिए तथा उनकी प्रेममयी समृद्धि के लिए होता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अङ्ग हे सूत, तन्नोऽनुवर्णयितुमर्हसि । सामान्यतस्तावद्यस्यावतारो भूतानां क्षेमाय पालनाय । भवाय समृद्धये ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

हे सूतजी ! उसे आप हमलोगों को सुनायें, क्योकि सामान्यत: श्रीभगवान् के अवतार जीवों के क्षेम अर्थात् पालन और समृद्धि के लिए होते हैं ॥१३॥

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् । ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम् ॥१४॥

अन्वयः— घोराम् संसृतिम् आपन्नः नरः विवशः सन् यन्नाम गृणन् ततः सद्यः विमुच्येत । यत् स्वयं भयम् विभेति ॥१४॥

अनुवाद— इस भयङ्कर सृष्टि के चक्र में पड़ा हुआ भी जीव यदि विवश भी होकर श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण कर लेता है तो वह शीघ्र ही उस विपत्ति से मुक्त हो जाता है; क्योंकि भगवान् से तो भय भी भयभीत रहता हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तत्प्रभावमनुवर्णयंतस्तद्यशः श्रवणौत्सुक्यमाविष्कुर्वन्ति- आपन्न इति त्रिभिः । संसृतिमापन्नः प्राप्तः । विवशोऽपि गृणन्। ततः संसृते । अत्र हेतुः- यद्यतो नाम्नो भयमपि स्वयमेव बिभेति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

तत् प्रभावम्० इत्यादि- श्रीभगवान् के प्रभाव का वर्णन करते हुए ऋषियों ने श्रीभगवान् के यश को सुनने की उत्सुकता को अभिव्यक्त करते हुए **आपन्नः इत्यादि** तीन श्लोकों से कहा- **संसृतिमापन्नः** पद का अर्थ है सृष्टि के चक्र में पड़ा हुआ । **विवशोऽपि गृणन्** का अर्थ है विवश हो कर भी यदि भगवान् के नाम का उच्चारण कर लेता है तो उसी के कारण वह सृष्टि चक्र से छूट जाता है । उसका कारण है कि श्रीभगवान् के नाम से तो भय स्वयम् भयभीत रहता है ॥१४॥

यत्पादसंश्रयाः सूत मुनयः प्रशमायनाः । सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया ॥१५॥

अन्वयः— हे सूत ! यत्पादसंश्रयाः प्रशमायनाः मुनयः उपस्पृष्टाः सद्यः पुनन्ति, स्वर्धुन्यापः तु अनुसेवया ॥१५॥

अनुवाद— हे सूतजी ! जिन श्रीभगवान् के चरणों के शरण में रहने वाले परम शान्त मुनिजन स्पर्श कर लेने मात्र से शीघ्र ही पवित्र बना देते हैं और गङ्गाजी का जल तो दीर्घकाल तक सेवन करने से पवित्र बनाता हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

किंच यस्य पादः संश्रयो येषामत एव प्रशमोऽयनं वर्त्म आश्रयो वा येषां ते मुनय उपस्पृष्टाः सन्निधिमात्रेण सेविताः सद्यः पुनन्ति । स्वर्धुनी गङ्गा आपस्तु तत्पादान्निःसृता नतु तत्रैव तिष्ठन्त्यतस्तत्संबन्धेनैव पुनन्त्योऽप्यनुसेवया पुनन्ति नतु सद्य इति मुनीनामुत्कर्षोक्तिः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च० इत्यादि- श्रीभगवान् के चरण कमल ही जिन लोगों का आश्रय है वे मुनि प्रशमायन हैं । अत्यधिक शान्ति सम्पन्न हैं । प्रशमायन अर्थात् शान्तिमय जिनका अर्थ है, उन मुनि जनों की सन्निध में रहकर उनका सेवन करने मात्र से ही वे मुनिजन शीघ्र ही पवित्र बना देते हैं । गङ्गाजी का जल तो श्रीभगवान् के चरणों से निकला है । वह जल श्रीभगवान् के चरणों में ही नहीं रहता है अतएव गङ्गाजी का जल श्रीभगवान् के चरणों का सम्बन्ध होने के कारण पवित्र बनाने का काम करता है । किञ्च गङ्गाजी का जल तब पवित्र बनता है जब कि उसका सेवन दीर्घकाल तक किया जाय । वह शीघ्र पवित्र नहीं बनाता है इसतरह से गङ्गाजी के जल की अपेक्षा मुनियों की उत्कृष्टता बतलायी गयी है ॥१५॥

को वा भगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेड्यकर्मणः । शुद्धिकामो न शृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ॥१६॥

अन्वयः— तस्य भगवतः को वा शुद्धिकामः पुण्य श्लोकेड्य कर्मणः तस्य भगवतः कलिमलापहम् यशः न शृणुयात् ॥१६॥

अनुवाद— अपनी आत्मशुद्धि चाहने वाला कौन ऐसा मनुष्य होगा जो जिनकी लीलओं का पुण्यात्मा पुरुष गायन किया करते हैं उन श्रीभगवान् के यश को नहीं सुनना चाहेगा ?॥१६॥

भावार्थ दीपिका

पुण्यश्लोकैरीड्यानि स्तव्यानि कर्माणि यस्य तस्य यशः । कलिमलापहं संसारदुःखोपशमनम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

पुण्यश्लोकै० इत्यादि- पुण्यात्मा पुरुषों के द्वारा जिनके कर्म स्तुति करने योग्य हैं उन श्रीभगवान के यश को कौन नहीं सुनना चाहेगा ? क्योंकि श्रीभगवान् का यश तो कलिकाल के मल स्वरूप दुःखों को विनष्ट कर देने वाला है ॥१६॥

तस्य कर्माण्युदाराणि परिगीतानि सूरिभिः । ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः कलाः ॥१७॥

अन्वयः— लीलया कला दधतः तस्य उदाराणि कर्माणि सूरिभिः परिगीतानि तानि श्रद्दधानानां नः ब्रूहि ॥१७॥

अनुवाद— जो भगवान् लीला से ही अवतारों को धारण करते हैं उनके उदार कर्मों का गायन नारदादि देवर्षियों ने विस्तार से किया है । उसको आप श्रद्धा सम्पन्न हमलोगों को सुनायें ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

प्राश्नन्तरं- तस्येति । उदाराणि महन्ति विश्वसृष्ट्यादीनि । सूरिभिर्नारदादिभिः । कला ब्रह्मरुद्रादिमूर्तीः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

तस्य इत्यादि- इस श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के कर्म के विषय में मुनियों ने प्रश्न किया है । **उदाराणि** पद के द्वारा भगवान् के विश्वसृष्टि इत्यादि महान् कर्मों को कहा गया है । **सूरि** शब्द से नारद आदि महर्षियों को कहा गया है । **कला** शब्द के द्वारा श्रीभगवान् की ब्रह्मारुद्र आदि मूर्तियों को कहा गया है । अर्थात् ब्रह्मा रुद्र आदि भी श्रीभगवान् की मूर्ति विशेष हैं ॥१७॥

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः । लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया ॥१८॥

अन्वयः— हे धीमन् अथ आत्ममायया स्वैरम् लीलाविदधतः ईश्वरस्य हरेः शुभाः अवतारकथाः आख्याहि ॥१८॥

अनुवाद— हे महाबुद्धिमान् सूतजी इसके पश्चात् अपनी योगमाया से अपनी इच्छा के अनुसार लीला करने वाले सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीहरि के अवतार की कथा का आप वर्णन करें ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अथेति प्रश्नान्तरे । अवतारकथाः स्थित्यर्थमेव तत्तदवसरे ये मत्स्याद्यवतारास्तदीयाः कथाः स्वैरं लीलाः कुर्वतः । श्रीकृष्णावतारप्रयोजनप्रश्नेनैव तच्चरितप्रश्नोऽपि जात एवेति ज्ञातव्यम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

तीसरे प्रश्न के पश्चात् चौथे प्रश्न में अवतार की कथा को सूचित करने के लिए मूल में अथ शब्द का प्रयोग किया गया है । **अवतारकथाः इत्यादि-** अवतारों की कथा जगत् की स्थिति के ही लिए श्रीभगवान् भिन्न-भिन्न अवसरों पर मत्स्य आदि अवतारों को धारण करते हैं । विभिन्न अवतारों में भगवान् जो अपनी इच्छा के

अनुसार लीला करते हैं, उन सबों का आप वर्णन करें । भगवान् श्रीकृष्ण के अवतारों के प्रयोजन विषयक प्रश्न के ही द्वारा उन अवतारों के चरित के विषय में प्रश्न हो गया यह जानना चाहिए ।।१८।।

वयं तु न वितृप्याम उत्तमश्लोकविक्रमे । यच्छृण्वतां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ।।१९।।

अन्वयः— वयं तु उत्तमश्लोक विक्रमे न वितृप्यामः । यत् शृण्वताम् रसज्ञानाम् पदे-पदे स्वादु स्वादु ।।१९।।

अनुवाद— हमलोगों को पुण्य कीर्ति श्रीभगवान् की लीलाओं को सुनने से तृप्ति नहीं होती है; क्योंकि जो रसों के ज्ञाता होते हैं उन लोगों को श्रीभगवान् की लीलाओं में प्रत्येक पद में नये-नये रसास्वाद की अनुभूति होती है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

अत्यौत्सुक्येन पुनरपि तच्चरितान्येव श्रोतुमिच्छतस्तत्रात्मनस्तृप्त्यभावमावेदयन्ति- वयं त्विति । योगयागादिषु तृप्ताः स्म । उद्गच्छति तमो यस्मात्स उत्तमस्तथाभूतः श्लोको यस्य तस्य विक्रमे तु विशेषेण न तृप्यामोऽलमिति न मन्यामहे । तत्र हेतुः- यद्विक्रमं शृण्वताम् । यद्वा अन्ये तृप्यन्तु नाम वयं तु नेति तु शब्दस्यान्वयः । अयमर्थः- त्रेधा ह्यलंबुद्धिर्भवति उदरादिभरणेन वा, रसाज्ञानेन वा, स्वादुविशेषाभावाद्वा । तत्र शृण्वतामित्यनेन श्रोत्रस्याकाशत्वादभरणमित्युक्तम् । रसज्ञानामित्यनेन चाज्ञानतः पशुवत्तृप्तिर्निराकृता । इक्षुभक्षणवद्रसान्तराभावेन तृप्तिं निराकरोति । पदेपदे प्रतिक्षणं स्वादुतोऽपि स्वादु ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

अत्यौत्सुक्येन० इत्यादि— अत्यधिक उत्सुकता होने के कारण पुनः श्रीभगवान् के चरितों को सुनने की इच्छा करते हुए ऋषिगण अपनी आत्मा की तृप्ति के अभाव को ही निवेदित करते हुए **वयम् तु० इत्यादि**— श्लोक को कहते हैं । हमलोग योग तथा याग इत्यादि के विषय में तो तृप्त हो गये हैं । उत्तमश्लोक पद की व्युत्पत्ति बतलाते हुए कहते हैं । जिसमें से अज्ञान स्वरूप अन्धकार निकल गया है उसे उत्तमाः कहते हैं । इस तरह का जिसका श्लोक अर्थात् यश है उसे उत्तमश्लोक कहते हैं । ऐसे उत्तमश्लोक श्रीभगवान् ही हैं । उन श्रीभगवान् के विक्रम अर्थात् लीलाओं के विषय में हमलोगों की तृप्ति नहीं होती है । अर्थात् हम शौनकादिकों के हृदय में ऐसा कभी नहीं होता है कि हमलोगों ने श्रीभगवान् की लीलाओं को बहुत सुन लिया अब उन सबों को सुनना अनावश्यक है । उस तृप्ति के अभाव का कारण बतलाते हुए कहते हैं— **यद् विक्रमं शृण्वताम्० इत्यादि ।** श्लोक में प्रयुक्त तु शब्द का यह भी अभिप्राय हो सकता है कि दूसरे लोग भले ही तृप्त हों किन्तु हमलोगों को तृप्ति नहीं होती है ।

अथमर्थः इत्यादि- कहने का अभिप्राय यह है कि अलम् बुद्धि तीन प्रकार से होती है— १. पेट इत्यादि के भर जाने पर अलम् बुद्धि होती है । २. रस का ज्ञान नहीं होने पर अलम् बुद्धि होती है और ३. जानने योग्य वस्तु में स्वादुत्व विशेष का अभाव होने पर भी अलम् बुद्धि होती है ।

तत्र शृण्वताम्० इस पद के द्वारा यह भी अर्थ सूचित होता है कि आकाश विशेष को ही श्रोत्र शब्द से अभिहित किया जाता है । जिस तरह आकाश कभी भरता नहीं है उसी तरह श्रीभगवान् के यशों का श्रवण करने से हमलोगों के कान भरते नहीं है । अतृप्त ही रह जाते हैं । **रसज्ञानाम्** पद के ज्ञानाभाव के कारण होने वाली पशु की वृत्ति का निषेध किया गया है । **इक्षु भक्षणवत्० इत्यादि**— जैसे ईख चूसने वाले को चूकि एक ही रस की प्राप्ति होती है उसमें दूसरे रस की प्राप्ति नहीं होती है अतएव ईख चूसने वाले को तो तृप्ति हो जाती है किन्तु श्रीभगवान् की प्रत्येक लीलाओं में नये-नये ही रस की अनुभूति होती है । अतएव प्रत्येक लीलाएँ प्रतिक्षण नये-नये ही रस से युक्त प्रतीत होती हैं अतएव उन सबों का श्रवण करने से तृप्ति नहीं होती है ।।१९।।

कृतवान्किल वीर्याणि सह रामेण केशवः । अतिमर्त्यानि भगवान्गूढः कपटमानुषः ॥२०॥

अन्वयः— गूढः कपटमानुषः भगवान् केशवः, रामेण सह अतिमर्त्यानि वीर्याणि कृतवान् किल ॥२०॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण अपने को छिपाये हुए थे अतएव वे मनुष्य के समान प्रतीत होते थे । किन्तु वे बलरामजी के साथ मिलकर उन्होंने ऐसी लीलाएँ भी की जिन सबों को कोई मनुष्य नहीं कर सकता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अतः श्रीकृष्णचरितानि कथयेत्याशयेनाहुः- कृतवानिति । अतिमर्त्यानि मर्त्यानतिक्रान्तानि गोवर्धनोद्धरणादीनि । मनुष्येष्वसंभावितानीत्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

चूकि भगवान् श्रीकृष्ण के चरित अत्यन्त स्वादिष्ट हैं अतएव आप भगवान् श्रीकृष्ण की ही लीलाओं का वर्णन करें । इस बात को शौनकादि महर्षियों ने सूतजी से **कृतवान्० इत्यादि** श्लोक से कहा है **अतिमर्त्यानि** पद का अर्थ है जिसे कोई मनुष्य नहीं कर सकता है जैसे गोवर्धन पर्वत को धारण करना इत्यादि । ऐसे कर्म मनुष्यों के लिए असंभावित हैं ॥२०॥

त्वं नः संदर्शितो धात्रा दुस्तरं निस्तितीर्षताम् । कलिं सत्त्वहरं पुंसां कर्णधार इवार्णवम् ॥२२॥

अन्वयः— पुंसां सत्त्वहरं दुस्तरं कलिं निस्तितीर्षतां नः दुस्तरम् अर्णवं निस्तीर्षतां कृते कर्णधार इव त्वं नः धात्रा संदर्शितः ॥२२॥

अनुवाद— यह कलियुग मनुष्यों के अन्तःकरण की पवित्रता और शक्ति को विनष्ट कर देने वाला है अतएव इसको पार कर पाना हमलोगों के लिए कठिन है । जैसे दुस्तर समुद्र को पार करने की इच्छा वालों के लिए कोई कर्णधार मिल जाय उसी तरहसे ब्रह्माजी ने आपसे हमलोगों को मिला दिया है । अब आपके मुख से श्रीहरि की कथा को सुनते-सुनते हमलोग इसको आसानी से पार कर लेंगे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अस्मिंश्च समये त्वद्दर्शनमीश्वरेणैव संपादितमित्यभिनन्दन्ति- त्वमिति । कलिं संसारं निस्तर्तुमिच्छताम् । अर्णवं तितीर्षतां कर्णधारो नाविक इव ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इस समय तो आपका दर्शन श्रीभगवान् ने ही काराया है । इस तरह से सूतजी के दर्शन की प्रशंसा करते हुए ऋषिगण **त्वम्० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । इस कलिरूपी संसार को पार करने की इच्छा वाले हमलोगों के लिए आप समुद्र पार करने की इच्छा वालों को कर्णधार अर्थात् नाविक के समान मिल गये हैं ॥२२॥

ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि । स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे नैमिषेयोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अन्वयः— धर्मवर्मणि ब्रह्मण्ये योगेश्वरे कृष्णे स्वां काष्ठाम् उपेते अधुना धर्मः कं शरणं गतः ॥२३॥

अनुवाद— धर्म रक्षक, ब्राह्मणों के भक्त, योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के, अपने धाम में पधार जाने पर धर्म ने किसकी शरण ली है ?॥२३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के नैमिषोपाख्यान के अन्तर्गत पहले अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पुनः प्रश्नान्तरं- ब्रूहीति । धर्मस्य वर्मणि कवचवद्रक्षके । स्वां काष्ठां मर्यादाम् । स्वस्वरूपमित्यर्थः । अस्य चोत्तरं कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह इत्ययं श्लोकः ।।२३।।

इति श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ऋषियों ने फिर प्रश्न किया है **ब्रूहि इत्यादि** धर्मवर्मवर्मणि इस पद का अर्थ है कि जिस तरह कवच कवचधारी की रक्षा करता है, उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण धर्म की रक्षा करते हैं । स्वां काष्ठाम् का अर्थ है अपनी मर्यादा को प्राप्त कर लेने पर अर्थात् अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेने पर । इस छठे प्रश्न का उत्तर तीसरे अध्याय के **कृष्णे स्वधामोपगते० इत्यादि** ४३-४४ श्लोकों के द्वारा दिया गया हैं ।।२३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के प्रथम अध्याय के अन्तर्गत भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१।।

* * *

दूसरा अध्याय

भगवत् कथा और भगवद् भक्ति का माहात्म्य

व्यास उवाच

इति संप्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः । प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ।।१।।

अन्वयः— इति विप्राणाम् सम्प्रश्नसंहृष्टः रौमहर्षणिः तेषां वचः प्रतिपूज्य प्रवक्तुमुपचक्रमे ।।१।।

महर्षि व्यास ने कहा

अनुवाद— इस तरह से उन ब्राह्मणों के द्वारा किए गये प्रश्न को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर रोमहर्षण नामक सूत के पुत्र उग्रश्रवा सूत ने उत्तर देना प्रारम्भ किया ।।१।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं प्रथमेऽध्याये षट् प्रश्ना मुनिभिः कृता । द्वितीये तूत्तरं सूतश्चतुर्णामाह तेष्वथ ।।१।। विप्राणां इत्येवंभूतैः सम्यक् प्रश्नैः सम्यग् हृष्टो रोमहर्षणस्य पुत्र उग्रश्वास्तेषां वचः प्रतिपूज्य सत्कृत्य प्रवक्तुमुपचक्रमे उपक्रान्तवान् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से पहले अध्याय में मुनियों ने छह प्रश्नों को किया है । उनमें से चार (शास्त्रों के सार, श्रीभगवान् के पराक्रम, श्रीभगवान् द्वारा अवतारों में किए जाने वाले कर्म तथा पालन) विषयक प्रश्नों का उत्तर इस दूसरे अध्याय में सूतजी ने दिया है । **विप्राणाम्० इत्यादि** शौनकादि ब्राह्मणों द्वारा इस तरह से अच्छी तरह से किए गये प्रश्नों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए रोमहर्षण सूत के पुत्र उग्रश्रवा सूत ने उन ब्राह्मणों के प्रश्नों का समादर करके उन प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ।।१।।

सूत उवाच

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ।।२।।

भावार्थ दीपिका

पुनः प्रश्नान्तरं- ब्रूहीति । धर्मस्य वर्मणि कवचवद्रक्षके । स्वां काष्ठां मर्यादाम् । स्वस्वरूपमित्यर्थः । अस्य चोत्तरं कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह इत्ययं श्लोकः ।।२३।।

इति श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ऋषियों ने फिर प्रश्न किया है **ब्रूहि इत्यादि** धर्मवर्मवर्मणि इस पद का अर्थ है कि जिस तरह कवच कवचधारी की रक्षा करता है, उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण धर्म की रक्षा करते हैं । स्वां काष्ठाम् का अर्थ है अपनी मर्यादा को प्राप्त कर लेने पर अर्थात् अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेने पर । इस छठे प्रश्न का उत्तर तीसरे अध्याय के **कृष्णे स्वधामोपगते० इत्यादि** ४३-४४ श्लोकों के द्वारा दिया गया हैं ।।२३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध के प्रथम अध्याय के अन्तर्गत भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१।।

* * *

दूसरा अध्याय

भगवत् कथा और भगवद् भक्ति का माहात्म्य

व्यास उवाच

इति संप्रश्नसंहृष्टो विप्राणां रौमहर्षणिः । प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ।।१।।

अन्वयः— इति विप्राणाम् सम्प्रश्नसंहृष्टः रौमहर्षणिः तेषां वचः प्रतिपूज्य प्रवक्तुमुपचक्रमे ।।१।।

महर्षि व्यास ने कहा

अनुवाद— इस तरह से उन ब्राह्मणों के द्वारा किए गये प्रश्न को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर रोमहर्षण नामक सूत के पुत्र उग्रश्रवा सूत ने उत्तर देना प्रारम्भ किया ।।१।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं प्रथमेऽध्याये षट् प्रश्ना मुनिभिः कृता । द्वितीये तूत्तरं सूतश्चतुर्णामाह तेष्वथ ।।१।। विप्राणां इत्येवंभूतैः सम्यक् प्रश्नैः सम्यग् हृष्टो रोमहर्षणस्य पुत्र उग्रश्वास्तेषां वचः प्रतिपूज्य सत्कृत्य प्रवक्तुमुपचक्रमे उपक्रान्तवान् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से पहले अध्याय में मुनियों ने छह प्रश्नों को किया है । उनमें से चार (शास्त्रों के सार, श्रीभगवान् के पराक्रम, श्रीभगवान् द्वारा अवतारों में किए जाने वाले कर्म तथा पालन) विषयक प्रश्नों का उत्तर इस दूसरे अध्याय में सूतजी ने दिया है । **विप्राणाम्० इत्यादि** शौनकादि ब्राह्मणों द्वारा इस तरह से अच्छी तरह से किए गये प्रश्नों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए रोमहर्षण सूत के पुत्र उग्रश्रवा सूत ने उन ब्राह्मणों के प्रश्नों का समादर करके उन प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ।।१।।

सूत उवाच

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ।।२।।

अन्वयः— अनुपेतम् अपेतकृत्यं यं प्रव्रजन्तम् विरहकातरः द्वैपायनः पुत्रेति आजुहाव । तन्मयतया तरवः अभिनेदुः तं सर्वभूत हृदयं मुनिम् आ नतोऽस्मि ॥२॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— जिस समय शुकदेवजी का यज्ञोपवीत संस्कार भी नहीं सम्पन्न हो पाया था, तथा जिनको वैदिक कर्मों को करने का अवसर भी नहीं आया था, उनको संन्यास ग्रहण करने के उद्देश्य से अकेले वन में जाते हुए देखकर विरह से व्याकुल व्यासजी पुत्र ! पुत्र ! कहकर पुकारने लगे । उस समय शुकदेवजी के अपने भीतर व्याप्त होने के कारण उनकी ओर से वृक्षों ने उत्तर दिया, उन सभी जीवों के हृदय में निवास करने वाले श्रीशुकदेव मुनि को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥

भावार्थ दीपिका

प्रवचनस्योपक्रमो नाम गुरुदेवतानमस्कार इति । तमाह- यमिति त्रिभिः । तत्र स्वगुरोः शुकस्यैश्वर्यं तच्चरितेनैव द्योतयन्नाह- यमिति । यं प्रव्रजन्तं संन्यस्य गच्छन्तम् । अनुपेतं मामुपनयस्वेत्युपनयनार्थमाचार्यमनुपसन्नम् । यद्वा केनाप्यनुपेतमननुगतम्। एकाकिनमित्यर्थः । तत्र हेतुः- अपेतकृत्यं कृत्यशून्यं कर्ममार्गेऽप्रवर्तमानं नैष्ठिकत्वात् । द्वैपायनो व्यासो विरहात्कातरो भीतः सन् पुत्र ३ इति प्लुतेनाजुहावाहूतवान् । दूरादाह्वाने प्लुते सत्यपि सन्धिरार्षः । तदा तन्मयतया शुकरूपतया तरवोऽभिनेदुः प्रत्युत्तरमुक्तवन्तः । पितुः स्नेहानुबन्धपरिहाराय यो वृक्षरूपेणोत्तरं दत्तवानित्यर्थः । तं मुनिमानतोऽस्मि। तन्मयत्वोपपादनाय विशेषणम् । सर्वभूतानां हृन्मनः अयते योगबलेन प्रविशतीति सर्वभूतहृदयस्तम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उस समय अपने भीतर शुकदेवजी के व्याप्त होने के कारण शुकदेव रूप से वृक्षों ने शुकदेवजी की ओर से व्यासजी को उत्तर दिया । अर्थात् पिता के स्नेह रूपी बन्धन को दूर करने के लिए शुकदेवजी ने वृक्षरूप से उनको उत्तर दिया । उन तत्त्व मनन परायण शुकदेवजी को मैं नमस्कार करता हूँ । शुकदेवजी के तन्मयत्व का प्रतिपादन करने के लिए **सर्वभूतहृदयम्** यह विशेषण दिया गया है । योग के बल से सभी भूतों के मन में प्रवेश कर जाने वाला होने के कारण शुकदेवजी को सर्वभूत हृदयम् कहा गया है ॥२॥

यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेकमध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम् ।
संसारिणां करुणयाह पुराणगुह्यं तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥३॥

अन्वयः— यः स्वानुभावम् अखिलश्रुतिसारम्, अन्धं तमः अतितितीर्षताम् संसारिणाम् करुणया एकम् अध्यात्मदीपम् पुराणगुह्यम्, आह तम् मुनीनाम् गुरुम् व्याससूनुम् उपयामि ॥३॥

अनुवाद— जिन शुकदेवजी ने भगवत् स्वरूप का अनुभव कराने वाले, सम्पूर्ण श्रुतियों के सार स्वरूप, घोर अज्ञानान्धकार से परिपूर्ण इस संसार को पार करना चाहने वाले संसारी जीवों पर कृपा करके अद्भुत दीपक के समान इस श्रीमद्भागवत नामक रहस्यमय पुराण का वर्णन किया उन मुनियों के भी गुरु श्रीशुकदेवजी की मैं शरणागति करता हूँ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्कृपालुतां दर्शयन्नाह— य इति । अन्धं गाढं तमः संसाराख्यमतितर्तुमिच्छताम् । पुराणानां मध्ये गुह्यं गोप्यम् । तत्र हेतुत्वेन चत्वारि विशेषणानि स्वो निजोऽसाधारणोऽनुभावः प्रभावो यस्य तत्स्वानुभावम् । अखिलश्रुतीनां सारम् । एकमद्वितीयम्। अनुपममित्यर्थः । आत्मानं कार्यकारणसंघातमधिकृत्य वर्तमानमात्मतत्त्वमध्यात्मं तस्य दीपं साक्षात्प्रकाशकम् । उपयामि शरणं व्रजामि ॥३॥

भाव प्रकाशिका

तत्कृपालुताम्० इत्यादि- श्रीशुकदेवजी की कृपालुता का वर्णन **यः स्वानुभाव इत्यादि** श्लोक से करते हैं । यह संसार अज्ञानान्धकार से परिपूर्ण है । संसार में पड़े हुए जो संसारी जीव इससे बाहर निकलना चाहते हैं, उन संसारी जीवों पर कृपा करके शुकदेवजी ने इस पुराण का वर्णन किया है । **पुराणगुह्यम्** पद का अर्थ है कि यह पुराण सभी पुराणों में अत्यन्त गोपनीय है । इस पुराण की गोपनीयता का प्रकाशन चार विशेषणों से होता है । इस पुराण का अपना असाधारण प्रभाव है, अतएव यह स्वानुभाव है । सम्पूर्ण श्रुतियों का सार स्वरूप होना यह इस पुराण की दूसरी विशेषता है । इस पुराण के समान दूसरा कोई भी पुराण नहीं है । अतएव यह एक अर्थात् अद्वितीय है । **अध्यात्मदीपम्** का अर्थ है कार्य कारण समूह को अपना आश्रय बनाकर रहने वाली आत्मा को अध्यात्म कहते हैं । उस आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने के कारण यह पुराण अध्यात्मदीप है। **उपयामि पद** का अर्थ है मैं शरणागति करता हूँ ॥३॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥४॥

अन्वयः— नारायणं, नरोत्तमं नरम्, सरस्वतीं देवीं, व्यासं चैव नमस्कृत्य ततः जयमुदीरयेत् ॥४॥

अनुवाद— मनुष्यों में श्रेष्ठ अवतार नर-नारायण को, सरस्वती देवी को तथा व्यासजी को नमस्कार करने के पश्चात् संसार तथा अन्तःकरण पर विजय कराने वाले इस श्रीमद्भागवत नामक ग्रन्थ का पाठ करना चाहिए ॥४॥

भावार्थ दीपिका

जयत्यनेन संसारमिति जयो ग्रन्थस्तमुदीरयेदिति स्वयं तथोदीरयन्नन्यान्पौराणिकानुपशिक्षयति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

इस ग्रन्थ का अध्ययन करके मनुष्य संसार पर तथा अपने अन्तःकरण पर विजय प्राप्त कर सकता है । अतएव इस ग्रन्थ का नाम जय है । इसका उच्चारण कैसे करना चाहिए इस बात की शिक्षा सूतजी स्वयम् इस ग्रन्थ का उच्चारण करके दूसरे पौराणिकों को देते हैं ॥४॥

मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम् । यत्कृतः कृष्णसंप्रश्नो येनात्मा सुप्रसीदति ॥५॥

अन्वयः— मुनयः भवद्भिः यत् लोकमङ्गलम्, कृष्णसंप्रश्नः कृतः तदहं साधुपृष्टः, येन आत्मा सम्प्रसीदति ॥५॥

अनुवाद— हे मुनियों ! आपलोगों ने जो संसार का मङ्गल करने वाले भगवान् कृष्ण के विषय में प्रश्न किया है, वह आपलोगों ने बहुत अच्छा प्रश्न किया है । इससे आत्मा (अन्तःकरण) पवित्र होता है ॥५॥

भावार्थदीपिका

तेषां वचः प्रतिपूज्येति यदुक्तं तत्प्रतिपूजनं करोति । हे मुनयः ! साधु यथा भवति तथाऽहं पृष्टः । यतो लोकानां मङ्गलमेतत् । यद्यतः कृष्णविषयः संप्रश्नः कृतः । सर्वशास्त्रार्थसारोद्धारप्रश्नस्यापि कृष्णे पर्यवसानादेवमुक्तम् ॥५॥

भावप्रकाशिका

इससे पहले प्रथम श्लोक में **तेषां वचः प्रतिपूज्यः** यह जो कहा है उसके अनुसार मुनियों की वाणी का समादर करते हुए सूतजी कहते हैं, हे मुनियों ! आपलोगों ने बहुत अच्छा प्रश्न किया हैं । क्योंकि यह तो संसारी जीवों के लिए मङ्गलमय है । आप लोगों ने यह प्रश्न श्रीकृष्ण के विषय में किया है । सभी शास्त्रों के सारभूत अर्थ के प्रकाशन से संबद्ध भी प्रश्न का पर्यवसान भगवान् श्रीकृष्ण में ही होता है यह सूतजी ने मुनियों से कहा ॥५॥

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे । अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा संप्रसीदति ॥६॥

अन्वयः— पुंसां स वै परमो धर्मः यतः अधोक्षजे अहैतुकी अप्रतिहता भक्तिः भवति यया आत्मा सम्प्रसीदति ॥६॥

अनुवाद— मनुष्यों के लिए वही परम धर्म (सर्वश्रेष्ठ) धर्म है । जिससे श्रीभगवान् में निरन्तर बनी रहने वाली निष्काम भक्ति हो । जिस भक्ति से आनन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करके हृदय आनन्द से परिपूर्ण हो जाता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

तत्र यत्प्रथमं पृष्टं सर्वशास्त्रसारमैकान्तिकं श्रेयो ब्रूहिति तत्रोत्तरम् । स वै पुंसामिति । अयमर्थः- धर्मो द्विविधः । प्रवृत्तिलक्षणो निवृत्तिलक्षणश्च । तत्र यः स्वर्गाद्यर्थः प्रवृत्तिलक्षणः सोऽपरः । यतस्तु धर्माच्छ्रवणादरादिलक्षणा भक्तिर्भवति स परो धर्मः स एवैकान्तिकं श्रेय इति । कथंभूता । अहैतुकी हेतुः फलानुसन्धानं तद्रहिता । अप्रतिहता विघ्नैरनभिभूता ॥६॥

भाव प्रकाशिका

शौनकादि मुनियों ने सर्वप्रथम यह जो पूछा है कि आप सभी शास्त्रों के सारभूत अर्थ को बतलाइये उसी का उत्तर सूतजी ने **सस वै पुंसाम् इत्यादि** श्लोक से दिया है । कहने का अभिप्राय है कि धर्म दो प्रकार का होता है प्रवृत्तिलक्षण और निवृत्तिलक्षण । जो धर्म स्वर्ग आदि की प्राप्ति के लिए किए जाते हैं वह प्रवृत्ति रूप अपर धर्म है । जो श्रीभगवान के चरित के श्रवण तथा समादर आदि भक्ति स्वरूप धर्म होता है, वह पर धर्म है । वही मनुष्यों के लिए ऐकान्तिक कल्याण है । अब प्रश्न होता है कि वह भक्ति कैसी हो ? तो उसका उत्तर है **अहैतुकी** अर्थात् फल विशेष की इच्छा से रहित हो । वह विघ्नों के द्वारा अभिभूत भी नहीं होती हो ॥६॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः । जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यत्तदहैतुकम् ॥७॥

अन्वयः— भगवति वासुदेवे प्रयोजितः भक्तियोगः अशु यद् ज्ञानं वैराग्यं च जनयति तदहैतुकम् ॥७॥

अनुवाद— भगवान् वासुदेव में जो भक्ति की जाती है, वह शीघ्र ही जिस ज्ञान तथा वैराग्य को उत्पन्न करती है, वह निष्काम होता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

ननु 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन' इत्यादिश्रुतिभ्यो धर्मस्य ज्ञानाङ्गत्वं प्रसिद्धं तत्कुतो भक्तिहेतुत्वमुच्यते । सत्यम् तत्तु भक्तिद्वारेणेत्याह- वासुदेव इति । अहैतुकं शुष्कतर्काद्यगोचरमौपनिषदमित्यर्थः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न उठता है कि **'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति ।'** अर्थात् ज्ञानी पुरुष वेदवाक्य के आलोक में यज्ञ, दान, तपस्या तथा उपवास के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं । इस तरह की श्रुतियों से स्पष्ट है कि धर्म ज्ञान का अङ्ग है, अतएव उसको भक्ति को उत्पन्न करने वाला कैसे कहा जा सकता है ? तो उसका उत्तर है कि आपकी बात पूर्ण सत्य नहीं है । ज्ञान भक्ति के द्वारा ही उत्पन्न होता है, इस बात को **वासुदेवे इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । **अहैतुकम्** कहकर यह बतलाया गया है वह ज्ञान शुष्क तर्क का विषय नहीं है। अतएव वह उपनिषद् प्रतिपाद्य ज्ञान है ॥७॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः । नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥८॥

अन्वयः— पुंसां स्वनुष्ठितः यः धर्मः यदि विष्वक्सेनकथासु रतिं न उत्पादयति तदा केवलम् श्रम एव ॥८॥

अनुवाद— मनुष्यों के द्वारा अच्छी तरह से अनुष्ठित धर्म यदि श्रीभगवान् की कथा में प्रेम नहीं उत्पन्न करता है, तो उस धर्म का अनुष्ठान केवल श्रम है, उससे कोई भी लाभ नहीं है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

व्यतिरेकमाह- धर्म इति । यो धर्म इति प्रसिद्धः स यदि विष्वक्सेनस्य कथासु रतिं नोत्पादयेत्तर्हि स्वनुष्ठितोऽपि सन्नयं

श्रमो ज्ञेयः । ननु मोक्षार्थस्यापि धर्मस्य श्रमत्वमस्त्येवात आह । केवलम् । विफलः श्रम इत्यर्थः । नन्वस्ति तत्रापि स्वर्गादिफलमित्याशङ्क्यैवकारेण निराकरोति । क्षयिष्णुत्वान्न तत्फलमित्यर्थः । ननु 'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति' इत्यादिश्रुतेर्न तत्फलस्य क्षयिष्णुत्वमित्याशङ्क्य हि शब्देन साधयति । 'तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते' इति तर्कानुगृहीतया श्रुत्या क्षयिष्णुत्वप्रतिपादनात् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त धर्म के विपरीत बतलाते हुए सूतजी **धर्म० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । जो धर्म रूप से प्रसिद्ध है वह यदि श्रीभगवान् की कथाओं में प्रेम नहीं उत्पन्न करता है तो अच्छी तरह से अनुष्ठान किए जाने पर भी उसको केवल श्रम ही जानना चाहिए । **ननु मोक्षार्थस्यापि० इत्यादि-** अब प्रश्न होता है कि मोक्ष की प्राप्ति के लिए भी जिस धर्म का अनुष्ठान किया जाता है, वह भी तो श्रमरूप ही है । अतएव सूतजी ने केवल शब्द का प्रयोग किया है। अर्थात् वह श्रम व्यर्थ है । **नन्वस्ति० इत्यादि-** यदि यह कहें कि उसका भी फल स्वर्ग इत्यादि की प्राप्ति है ही तो इस शङ्का का निराकरण **एव** शब्द के द्वारा किया गया है । अर्थात् स्वर्गादि की प्राप्ति क्षयिष्णु है अतएव वह फल कोई फल नहीं है । **ननु अक्षय्यम्० इत्यादि**— यदि यह कहा जाय कि सकाम कर्मों का भी फल अक्षय होता है । श्रुति कहती हैं— **अक्षय्यं ह वै चातुर्मासस्य याजिनः सुकृतं भवति ।** अर्थात् चातुर्मास्य आदि सकाम कर्मों का फल भी अक्षय होता है । इस तरह की श्रुतियाँ सकाम कर्मों का फल अक्षय बतलाती हैं । अतएव स्वर्गादि फल क्षयिष्णु नहीं है । तो स्वर्गादि फलों की क्षयिष्णुता की सिद्धि **हि** पद के द्वारा की गयी है ।

तद् यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत एवमेवामूत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते । अर्थात् जिस तरह कर्मों से अर्जित लौकिक वस्तु क्षीण होती हैं उसी तरह पुण्यकर्मों के द्वारा अर्जित पारलौकिक स्वर्गादि लोक भी क्षयिष्णु होते हैं, यह तर्कानुगृहीत श्रुति भी पुण्यार्जित स्वर्गादि की क्षयिष्णुता बतलाती हैं ।।८।।

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते । नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लभाय हि स्मृतः ।।९।।

अन्वयः— आपवर्गस्य हि धर्मस्य अर्थः अर्थाय न उपकल्पते धर्मैकान्तस्य अर्थस्य कामोलाभाय नहि स्मृतः ।।९।।

अनुवाद— मोक्ष की प्राप्ति कराने वाले धर्म का प्रयोजन धन की प्राप्ति नहीं है अर्थ केवल धर्म के लिए है भोग विलास उसका फल नहीं माना गया है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं हरिभक्तिद्वारा तदितरवैराग्यात्मज्ञानपर्यन्तः परो धर्म इत्युक्तम् । अन्ये तु मन्यन्ते । धर्मस्यार्थः फलं, तस्य च कामः फलं, तस्य चेन्द्रियप्रीतिः, तत्प्रीतेश्च पुनरपि धर्मार्थादिपरम्परेति । यथाहुः- 'धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते' इत्यादि । तन्निराकारोति- धर्मस्येति द्वाभ्याम् । आपवर्ग्यस्योक्तन्यायेनापवर्गपर्यन्तस्य धर्मस्यार्थाय फलत्वायार्थो नोपकल्पते योग्यो न भवति तथार्थस्याप्येवंभूतधर्माव्यभिचारिणः कामो लाभाय फलत्वाय नहि स्मृतो मुनिभिः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

उस सकाम कर्म रूप धर्म से भिन्न धर्म श्रीहरि की भक्ति के द्वारा संसार से वैराग्य तथा आत्मज्ञान पर्यन्त होता है । वही परम धर्म है । **अन्ये तु० इत्यादि**— दूसरे लोग तो मानते हैं कि धर्मानुष्ठान का फल अर्थ की प्राप्ति है, और अर्थ का फल काम की प्राप्ति है । काम प्राप्ति का फल इन्द्रियों का सन्तुष्ट होना है और इन्द्रियों की सन्तुष्टि का फल पुनः धर्म अर्थ आदि की प्राप्ति है । **यथाहुः इत्यादि**— जैसा कि उनलोगों ने कहा ही है धर्म से अर्थ और काम की प्राप्ति होती है, उस अर्थ का सेवन (उपयोग) क्यों नहीं किया जाय । इत्यादि । उन लोगों के कथन का निराकरण **धर्मस्य० इत्यादि** दो श्लोकों के द्वारा किया गया है ।।९।।

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता । जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥१०॥

अन्वयः— कामस्य लाभः इन्द्रिय प्रीतिः न अपितु यावता जीवेत् इह जीवस्य लाभः तत्त्वजिज्ञासा इह कर्मभिः स्वर्गादि प्राप्ति न ॥१०॥

अनुवाद— भोग विलास का फल इन्द्रियों को तृप्त करना नहीं है, अपितु भोग उतना ही करे जितने से जीवन चल जाय । जीवन का फल तत्त्व जिज्ञासा है कर्मों द्वारा स्वर्गादि की प्राप्ति नहीं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

कामस्य च विषयभोगस्येन्द्रियप्रीतिर्लाभः फलं न भवति किंतु यावता जीवेत तावानेव कामस्य लाभः । जीवनपर्याप्ति एव कामः सेव्य इत्यर्थः । जीवस्य जीवनस्य च पुनः कर्मानुष्ठानद्वारा कर्मभिर्य इह प्रसिद्धः सोऽर्थो न भवति किंतु तत्त्वजिज्ञासैवेति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

विषयोपभोग रूपी काम का फल इन्द्रियों की सन्तुष्टि नहीं है । किन्तु जितने से जीवन चल जाय उतने ही विषयों का उपभोग करना चाहिए । अर्थात् जितना जीवन जीने के लिए पर्याप्त हो उतना ही विषयोपभोग करे । जीवों के जीवन का फल कर्मानुष्ठान द्वारा स्वर्गादि फलों की प्राप्ति नहीं है अपितु जीवन का उद्देश्य तत्त्वजिज्ञासा है ॥१०॥

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् । ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥११॥

अन्वयः— यज्ज्ञानम् अद्वयम् तदेव तत्त्वम् इति तत्त्वविदः वदन्ति । तदेव तैः तैः वादिभिः ब्रह्म इति, परमात्मा इति भगवान् इति शब्द्यते ॥११॥

अनुवाद— जिस ज्ञान को तत्त्वज्ञ पुरुष ज्ञाता ज्ञेय आदि भेदों से रहित अखण्ड या अद्वय कहते हैं उसी ज्ञान को कोई वादी ब्रह्म कहता है, कोई परमात्मा कहता है और कोई भगवान् कहता हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

ननु च तत्त्वजिज्ञासा नाम धर्मजिज्ञासैव धर्म एव हि तत्त्वमिति केचित्तत्राह । तत्त्वविदस्तु तदेव तत्त्वं वदन्ति । किं तत् । यज्ज्ञानं नाम । अद्वयमिति क्षणिकविज्ञानपक्षं व्यावर्तयति । ननु तत्त्वविदोऽपि विगीतवचना एव । मैवम् । तस्यैव तत्त्वस्य नामान्तरैरभिधनादित्याह । औपनिषदैर्ब्रह्मेति, हैरण्यगर्भैः परमात्मेति, सात्वतैर्भगवानित्यभिधीयते ॥११॥

भाव प्रकाशिका

ननु० इत्यादि यदि कोई यह कहे कि धर्म के विषय में होने वाली जिज्ञासा को तत्त्वजिज्ञासा कहते हैं अतएव धर्म ही तत्त्व है, यह कुछ विचारक कहते है । तो इसके उत्तर में कहते हैं— तत्त्वों के ज्ञाता पुरुष तो तत् शब्द वाच्य को ही तत्त्व कहते हैं । तो प्रश्न है कि तत् शब्द के द्वारा किसको कहा जाता है । तो इसका उत्तर है कि ज्ञान को ही तत् शब्द से कहा जाता है । उसी को कुछ लोग अद्वय अखण्ड या अद्वितीय कहते हैं । यह कहकर क्षणिक विज्ञानात्मवादी बौद्धों के मत का खण्डन किया गया है ।

ननुतत्त्वविदोऽपि० इत्यादि यदि कोई यह कहे कि तत्त्वों के भी द्वारा कहे गये वचनों के विषय में विवाद है तो इसके उत्तर में कहते हैं कि ऐसी बात नहीं है । उस तत्त्व को ही भिन्न-भिन्न विचारकों ने भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित किया है । औपनिषद मतावलम्बी उसको ब्रह्म शब्द से कहते हैं । ब्रह्ममतावलम्बी उसी को परमात्मा कहते हैं और वैष्णव जन उसी को भगवान् शब्द से अभिहित करते हैं ॥११॥

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया । पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ।।१२।।

अन्वयः— श्रद्दधाना मुनयः ज्ञानवैराग्ययुक्तया श्रुतगृहीतया भक्त्या तत् आत्मानं च आत्मनि पश्यन्ति ।।१२।।

अनुवाद— श्रद्धा सम्पन्न मुनिजन भागवत के सुनने से प्राप्त ज्ञान तथा वैराग्य से युक्त भक्ति के द्वारा उस परमतत्त्वस्वरूप परमात्मा का अपने हृदय में ही साक्षात्कार करते हैं ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

तच्च तत्त्वं सपरिकरया भक्त्यैव प्राप्यत इत्याह । तच्चेत्यन्वयः । ज्ञानवैराग्ययुक्तयेत्यत्र ज्ञानं परोक्षम् । तच्च तत्त्वमात्मनि क्षेत्रज्ञे पश्यन्ति । किं तत् । आत्मानं परमात्मानम् । श्रुतेन वेदान्तादिश्रवणेन गृहीतया प्राप्तयेति भक्तेर्दार्ढ्यमुक्तम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

उस परमात्मतत्त्व की प्राप्ति ज्ञान तथा वैराग्य रूपी परिकरों से युक्त ही भक्ति के द्वारा होती है, इस बात को बतलाते हुए **तच्च० इत्यादि** श्लोक को कहा गया है । **ज्ञानवैराग्ययुक्तया०** इस पद में जो ज्ञान परोक्ष है उसी तत्व को क्षेत्रज्ञ जीवात्मा में देखते हैं । यदि कहें कि वह क्या है तो इसका उत्तर है कि वही परमात्म तत्त्व है । अर्थात् वेदान्त आदि के श्रवण से जिस भक्ति की प्राप्ति होती है उसके द्वारा उस तत्त्व का साक्षात्कार होता है । इस तरह से यहाँ पर भक्ति की सुदृढता बतलायी गयी है । कहने का अभिप्राय है कि वेदान्तों तथा श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों का श्रवण करने से भक्ति सुदृढ हो जाती है । उसी भक्ति के द्वारा परमात्म तत्त्व का अपने हृदय में मुनिजन साक्षात्कार करते हैं ।।१२।।

अतः पुंभिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः । स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ।।१३।।

अन्वयः— अतः हे द्विजश्रेष्ठाः पुम्भिः वर्णाश्रमविभागशः स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिः हरितोषणम् ।।१३।।

अनुवाद— अतएव हे शौनक आदि श्रेष्ठ ब्राह्मणों मनुष्यों द्वारा अपने वर्णों तथा आश्रमों के लिए शास्त्रों द्वारा विहित धर्मों का विभागपूर्वक अनुष्ठित धर्म की पूर्णरूप से सिद्धि इसी में है कि भगवान् प्रसन्न हो जायँ ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

धर्मस्य फलं भक्तिर्नार्थकामादिकमितीममर्थमुपपाद्योपसंहरति- अत इति । हे द्विजश्रेष्ठाः । हरितोषणं हरेराराधनम् । संसिद्धिः फलम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

धर्म का फल भक्ति है अर्थ काम इत्यादि की प्राप्ति नहीं; इस अर्थ का उपसंहार करते हुए सूतजी कहते हैं— **अतः इति** हे द्विजों में श्रेष्ठ शौनक आदि महर्षियों ! हरितोषण का अर्थ श्रीहरि की आराधना है । संसद्धि अर्थात् फल ।।१३।।

तस्मादेकेन मनसा भगवान्सात्वतांपतिः । श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ।।१४।।

अन्वयः— तस्मात् एकेन मनसा नित्यदा सात्त्वतां पतिः भगवान् श्रोतव्यः कीर्तितव्यः ध्येयः पूज्यश्च ।।१४।।

अनुवाद— अतएव एकाग्रमन से नित्य मुक्ति प्रदान करने वाले श्रीभगवान् का श्रवण, कीर्तन, ध्यान और पूजन करना चाहिए ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

यस्माच्च भक्तिहीनो धर्मः केवलं श्रम एव तस्माद्भक्तिप्रधान एव धर्मोऽनुष्ठेय इत्याह- तस्मादिति। एकेनैकाग्रेण मनसा।।१४।।

भाव प्रकाशिका

चूकि भक्ति से रहित धर्म केवल श्रम स्वरूप होने के कारण व्यर्थ है अतएव भक्ति प्रधान ही धर्म का अनुष्ठान

करना चाहिए। इस बात को **तस्मात् इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है। **एकेन मनसा** पद का अर्थ एकाग्रमन से है ॥१४॥

यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम्। छिन्दन्ति कोविदास्तय को न कुर्यात्कथारतिम् ॥१५॥

अन्वयः— यद् अनुध्या असिना युक्ताः कोविदाः कर्म ग्रन्थिनिबन्धनम् छिन्दन्ति तस्य कथा रतिम् को न कुर्यात्॥१५॥

अनुवाद— जिस श्रीहरि के ध्यान रूपी तलवार से ज्ञानी पुरुष कर्म की ग्रन्थि रूपी अहङ्कार के बन्धन को काट डालते हैं। उन श्रीहरि की कथा में कौन पुरुष प्रेम नहीं करेगा ?॥१५॥

भावार्थ दीपिका

भक्तिरहितो धर्मः केवलं श्रम एवति प्रपञ्चितम्। इदानीं तु भक्तेर्मुक्तिफलत्वं प्रपञ्चयति- यदिति यस्यानुध्या अनुध्यानं सैवासिः खड्गस्तेन युक्ता विवेकिनो ग्रन्थिमहङ्कारं निबध्नाति यत्कर्म तच्छिन्दन्ति तस्य कथायां रतिं को न कुर्यात् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

भक्ति रहित धर्म केवल श्रम स्वरूप होने के कारण व्यर्थ है इस अर्थ का विस्तार के साथ वर्णन किया जा चुका है। **इदानीम्० इत्यादि** अब इस अर्थ का विस्तार **यत्० इत्यादि** श्लोक से करते हैं कि भक्ति का फल मुक्ति की प्राप्ति ही है। **यदनुध्यासिना** पद का विग्रह है **यद् अनुध्या सैव असिः तेन**। अर्थात् जिन श्रीहरि का ध्यान ही तलवार है उस ध्यान रूपी तलवार के द्वारा विवेकी पुरुष अहङ्कार रूपी ग्रन्थि को काट डालते हैं। वह अहङ्कार ही मनुष्य को कर्म के बन्धन में बाँधने का काम करता है, उसको काट डालने का काम करते हैं। उन श्रीहरि की कथा में कौन प्रेम नहीं करेगा ?॥१५॥

शुश्रुषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः। स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥१६॥

अन्वयः— हे विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् महत् सेवया श्रद्दधानस्य शुश्रूषोः वासुदेव कथा रुचिः स्यात् ॥१६॥

अनुवाद— हे विप्रो ! पवित्र तीर्थों का सेवन करने से निष्पाप पुरुष महापुरुषों की सेवा करता है। उससे उसकी उस धर्म में श्रद्धा होती है। श्रद्धा सम्पन्न व्यक्ति में भगवत् कथा को सुनने की इच्छा उत्पन्न होती है। उसके पश्चात् उस शुश्रूषु पुरुष की श्रीहरि की कथा में रुचि उत्पन्न होती है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

ननु सत्यमेव कर्मनिर्मूलनी हरिकथारतिस्तथापि तस्यां रुचिर्नोत्पद्यते किं कुर्मस्तत्राह- शुश्रूषोरिति। पुण्यतीर्थनिषेवणान्निष्पापस्य महत्सेवा स्यात्, तया च तद्धर्मश्रद्धा, ततः श्रवणेच्छा, ततो रुचिः स्यादित्यर्थः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

ननु० इत्यादि यदि कोई यह कहे कि यह सत्य है कि श्रीहरि की कथा कर्मों का नाश करती है, किन्तु श्रीहरि की कथा में प्रेम ही नहीं उत्पन्न होता है, उसके लिए क्या किया जाय ? इस पर सूतजी ने **शुशूषोः इत्यादि** श्लोक से कहा है कि पुण्यतीर्थों का सेवन करने से मनुष्य निष्पाप हो जाता है। उसके कारण वह महापुरुषों की सेवा करता है। उस सेवा के द्वारा उसकी सर्वश्रेष्ठ धर्म में श्रद्धा उत्पन्न होती है। तदनन्तर उसमें श्रीहरि की कथा को सुनने की इच्छा होती है। तदनन्तर श्रीहरि की कथा मे उस शुश्रूषु पुरुष का प्रेम उत्पन्न हो जाता है ॥१६॥

शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः। हृद्यन्तस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥१७॥

अन्वयः— पुण्यश्रवणकीर्तनः सताम्सुहृत् कृष्णः स्वकथां शृण्वताम् हृद्यन्तः स्थितः हि अभद्राणि विधुनोति ॥१७॥

अनुवाद— जिनके यश तथा कीर्तन ये दोनों पवित्र हैं ऐसे सज्जन पुरुषों (सन्तों) के सुहृत् भगवान श्रीकृष्ण

अपनी कथा सुनने वाले मनुष्यों के हृदय में स्थित रहकर उनके जो काम इत्यादि की वासनायें हैं उन सबों को विनष्ट कर देते हैं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

ततश्च शृण्वतामिति । पुण्ये श्रवणकीर्तने यस्य सः । सतां सुहृद्धितकारी । हृदि यान्यभद्राणि कामादिवासनास्तानि । अन्तस्थो हृदयस्थः सन् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

ततश्च० इत्यादि- उसके पश्चात् श्रीभगवान् की कथा सुनने वालों के जिनका श्रवण और कीर्तन पवित्र है ऐसे श्रीभगवान् सन्त महापुरुषों के सुहृत अर्थात् कल्याणकारी है । वे उन लोगों के हृदय में विद्यमान कामादिवासना रूपी जो दोष हैं उन सबों को उन लोगों के हृदय में ही रहकर विनष्ट कर देने का काम करते हैं ।।१७।।

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया । भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ।।१८।।

अन्वयः— अभद्रेषु नष्टप्रायेषु नित्यं भागवतसेवया उत्तमश्लोके भगवति नैष्ठिकी भक्तिः भवति ।।१८।।

अनुवाद— जब सभी काम वासना आदि दोषों के प्रायः विनष्ट हो जाने पर भगवद् भक्तों का श्रीमद्भागवत का नित्य ही सेवन करने से उत्तम यश वाले श्रीभगवान् में निश्चल भक्ति होती है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

ततश्च नष्टप्रायेष्विति । सर्वाभद्रनाशस्य ज्ञानोत्तरकालत्वात्प्रायग्रहणम् । भागवतानां भागवतशास्त्रस्य वा सेवया । नैष्ठिकी निश्चला विक्षेपकाभावात् भक्तिः भवति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् हृदय की कामादि वासनाएँ प्रायः नष्ट हो जाती हैं । यहाँ पर प्रायः शब्द के प्रयोग का यह अभिप्राय है कि सभी वासनाएँ तो ज्ञानोत्पत्ति के पश्चात् ही होती है । भागवतों की सेवा को भी भागवत सेवा कहते हैं तथा श्रीमद्भागवत की भी सेवा को भागवत सेवा कहते हैं । नैष्ठिकी भक्ति का अर्थ है निश्चल भक्ति; क्योंकि कामादि वासनाओं का नाश हो जाने से भक्ति में विशेषता उत्पन्न करने वाला कोई नहीं रह जाता है ।।१८।।

तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये । चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ।।१९।।

अन्वयः— तदा ये रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च एतैः अनाविद्धं चेतः सत्त्वे स्थितम् प्रसीदति ।।१९।।

अनुवाद— उस समय रजोगुण तथा तमोगुण से जन्य जो काम तथा लोभ इत्यादि की भावनाएँ हैं उनके नष्ट हो जाने से जब इन सबों से चित्त दूषित नहीं होता है तब वह सत्त्वगुण में स्थित होकर पवित्र एवं निर्मल हो जाता है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

रजश्च तमश्च ये च तत्प्रभवा भावाः कामादयः एतैरनाविद्धमनभिभूतम् । प्रसीदत्युपशाम्यति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

रजोगुण एवं तमोगुण और उनसे उत्पन्न काम इत्यादि की भावना इन सबों से जब चित्त अभिभूत नहीं होता है तो वह प्रसन्न हो जाता है । प्रसीदति का अर्थ है शान्त हो जाता है ।।१९।।

एवंप्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः । भगवत्तत्त्व विज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते ।।२०।।

अन्वयः— एवं भगवद्भक्ति योगतः मुक्तसङ्गस्य प्रसन्न मनसः भगवत्तत्त्वविज्ञानं जायते ।।२०।।

अनुवाद— इस तरह प्रेममयी भक्ति के कारण जब संसार की सारी आसक्तियाँ विनष्ट हो जाती हैं तो भक्त का मन प्रसन्न हो जाता है और उसके हृदय में भगवत् तत्त्व का विज्ञान अपने आप आविर्भूत हो जाता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

भगवद्भक्तियोगतः प्रसन्नमनसोऽत एव मुक्तसङ्गस्य ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की भक्ति करने के कारण जिसका मन प्रसन्न हो गया है उसके फलस्वरूप संसार की आसक्ति से रहित पुरुष का विज्ञान अपने आप आविर्भूत हो जाता है ॥२०॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे ॥२१॥

अन्वयः— आत्मनि ईश्वरे दृष्टे एव हृदयग्रन्थिः भिद्यते, सर्वसंशयाः छिद्यन्ते अस्य कर्माणि क्षीयन्ते च ॥२१॥

अनुवाद— हृदय में आत्मा स्वरूप श्रीभगवान् का साक्षात्कार होते ही हृदय की ग्रन्थि टूट जाती है, सारे सन्देह विनष्ट हो जाते हैं और कर्मों के बन्धन क्षीण हो जाते हैं तथा अपने आप आत्मा प्रसन्न हो जाता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

विज्ञानफलमाह- भिद्यत इति । हृदयमेव ग्रन्थिश्चिज्जडग्रथनरूपोऽहङ्कारः । अतएव सर्वे संशया असंभावनादिरूपाः । कर्माण्यनारब्धफलानि । आत्मनि स्वरूपभूते ईश्वरे दृष्टे साक्षात्कृते सति । एवकारेण विज्ञानानन्तरमेवेति दर्शयति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

भिद्यते० इत्यादि- श्लोक के द्वारा सूतजी विज्ञान का फल बतलाते हैं । हृदय ही ग्रन्थि है अर्थात् ज्ञान स्वरूप आत्मा और जड़ की ग्रन्थिरूप अहङ्कार है । ग्रन्थि के टूट जाने के ही कारण असंभावनादि रूप सभी संदेह विनष्ट हो जाते हैं तथा जिन कर्मों का फल मिलना प्रारम्भ नहीं हुआ है वे क्षीण हो जाते हैं । हृदय में ही स्वरूपभूत ईश्वर का साक्षात्कार हो जाता है । एव शब्द के द्वारा यह बतलाया गया है कि हृदय में परमात्मा का साक्षात्कार हो जाने के पश्चात् ही हृदय की ग्रन्थि का भेदन होता है ॥२१॥

अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा । वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादनीम् ॥२२॥

अन्वयः— अतः कवयः वै नित्यम् भगवति वासुदेवे आत्मप्रसादनीम् भक्तिं परमया मुदा कुर्वन्ति ॥२२॥

अनुवाद— इसीलिए ज्ञानी पुरुष भगवान् वासुदेव की आत्मप्रसाद को प्रदान करने वाली प्रेमाभक्ति को सदा बड़े ही आनन्द पूर्वक करते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तत्र च सदाचारं दर्शयन्नुपसंहरति- अत इति । आत्मनः प्रसादनीं मनःशोधनीम् । वासुदेवे भक्तिं कुर्वन्तीति भजनीयविशेषो दर्शितः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

विज्ञान के विषय में सत् पुरुषों के आचरण का निरूपण **अतौ वै० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया गया है । **आत्मप्रसादनीम्** का अर्थ है मन को शुद्ध बनाने वाली । भगवान् वासुदेव की नित्य निरन्तर भक्ति करते हैं इस कथन के द्वारा भजनीय विशेष को बतलाया गया है । अर्थात् सर्वश्रेष्ठ भजन के योग्य भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं इस बात को बतलाया गया है ॥२२॥

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहास्य धत्ते ।
स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञाः श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः ॥२३॥

अन्वयः— सत्त्वं रजः तमः इति प्रकृतेः गुणाः तैः युक्तः एकः (एव) परः पुरुषः अस्य स्थित्यादये इह हरिविरिञ्चि हरेति संज्ञाः धत्ते । तत्र नृणां श्रेयांसि खलु सत्त्वतनोः (हरेः एव) स्युः ॥२३॥

अनुवाद— सत्त्व रजस् एवं तमस् ये तीनों प्रकृति के गुण हैं । इन तीनों से युक्त एक ही परम पुरुष इस जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय के लिए विष्णु, ब्रह्मा, शिव इन तीन नामों को धारण करते हैं, किन्तु मनुष्यों का कल्याण तो सत्त्वप्रधान श्रीहरि से ही होता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तदेवोपपादयितुं ब्रह्मादीनां त्रयाणामेकात्मकत्वेऽपि वासुदेवस्याधिक्यमाह- सत्त्वमिति । इह यद्यप्येक एव परः पुमानस्य विश्वस्य स्थित्यादये स्थितिसृष्टिप्रलयार्थे हरिविरिञ्चिहरेतिसंज्ञाः केवलं भिन्ना धत्ते । हरिविरिञ्चिहरा इति वक्तव्ये सन्धिरार्षः । तत्र तेषां मध्ये श्रेयांसि शुभफलानि सत्त्वतनोर्वासुदेवादेव स्युः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही प्रतिपादन करने के लिए ब्रह्मा आदि के एकात्मक होने पर भी वासुदेव रूप की श्रेष्ठता को **सत्त्वम् इत्यादि** श्लोक बतलाते हैं । यद्यपि परम पुरुष एक ही हैं किन्तु इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने के लिए विष्णु, ब्रह्मा और शिव की अलग-अलग नाम मात्र को वे धारण करते हैं । यद्यपि यहाँ पर हरिविरिञ्चिहराः ही कहना चाहिए । क्योंकि हरिश्च विरिञ्चिश्च हरश्च इस विग्रह में **हरिविरिञ्चिहराः** यही रूप बनता है फिर भी आर्ष प्रयोग होने के कारण यहाँ सन्धि कर दी गयी है । **तत्र० इत्यादि-** इन तीनों में शुभ फलों की प्राप्ति तो सत्त्व प्रधान भगवान् वासुदेव से ही होती है ॥२३॥

पार्थिवाद्दारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः । तमसस्तु रजस्तस्मात्सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम् ॥२४॥

अन्वयः— यथा पार्थिवात् दारुणः धूमः तस्मात्त्रयीमयः अग्निः तथा तमसः तु रजः तस्मात् सत्त्वम् यद्ब्रह्म दर्शनम् ॥२४॥

अनुवाद— जिस तरह पृथिवी से उत्पन्न होने वाले काष्ठ से उत्पन्न धूम श्रेष्ठ है और उससे उत्पन्न होने वाली अग्नि श्रेष्ठ है क्योंकि वेदोक्त यागादि के द्वारा वह सद्गति प्रदान करने वाली है, उसी तरह तमोगुण से रजोगुण श्रेष्ठ है और उससे सत्त्वगुण श्रेष्ठ है क्योंकि वह भगवद् दर्शन कराने वाला है ।

भावार्थ दीपिका

उपाधिवैशिष्ट्येन फलवैशिष्ट्यं सदृष्टान्तमाह । पार्थिवात्स्वतःप्रवृत्तिप्रकाशरहिताद्दारुणः काष्ठात्सकाशाद्धूमः प्रवृत्तिस्वभावस्त्रयीमयो वेदोक्तकर्मप्रचुरः । ईषत्कर्मप्रत्यासत्तेः । तस्मादप्यग्निस्त्रयीमयः । साक्षात्कर्मसाधनत्वात् । एवं तमसः सकाशाद्रजो ब्रह्मदर्शनं ब्रह्मप्रकाशकम् । तुशब्देन लयात्मकात्तमसः सकाशाद्रजसः सोपाधिकज्ञानहेतुत्वेन किंचिद्ब्रह्म-दर्शनप्रत्यासत्तिमात्रमुक्तं, नतु सर्वथा तत्प्रकाशकत्वं विक्षेपकत्वात् । यत्सत्त्वं तत्साक्षाद्ब्रह्मदर्शनम् । अतस्तद्गुणोपाधीनां ब्रह्मादीनामपि यथोत्तरं वैशिष्ट्यमिति भावः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

उपाधि की भिन्नता से फल की भिन्नता हो जाती है । इस बात को दृष्टान्त पूर्वक **पार्थिवात्० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । जिस तरह पृथिवी से उत्पन्न होने वाले स्वतः प्रवृत्ति एवं प्रकाश से रहित काष्ठ से प्रवृत्ति स्वभाव वाला धूम उत्पन्न होता है, वह ऋग्यजुः सामवेद प्रोक्त कर्मप्रचुर होता है । उससे थोड़े से कर्म की प्रत्यासत्ति होती

है । उस धूम से त्रयी स्वरूप अग्नि की उत्पत्ति है । क्योंकि वह कर्मों का साक्षात् साधन है । इसी तरह तमस् से रजोगुण उत्पन्न होता है और उससे ब्रह्म का प्रकाश करने वाले सत्त्वगुण की उत्पत्ति होती है । मूल के तु शब्द के द्वारा यह बतलाया गया है कि लय स्वरूप तमोगुण से रजोगुण की उत्पत्ति होती है । वह ज्ञान का सोपाधिक कारण है । उसके द्वारा अल्पमात्रा में ब्रह्म दर्शन की प्रत्यासत्ति बतलायी गयी है । रजोगुण ब्रह्म का पूर्ण रूप से प्रकाशक नहीं है, क्योंकि वह ब्रह्मज्ञान का विक्षेपक है जो सत्त्वगुण है वह साक्षात् ब्रह्म का प्रकाशक है । अतएव उन गुण रूपी उपाधियों से जो ब्रह्मा आदि युक्त होते हैं उनमें उत्तरोत्तर वैशिष्ट्य है ।

कहने का अभिप्रय है कि प्रलय स्वरूप तमोगुण में ब्रह्मज्ञान का लेश भी नहीं होता है । उसके बाद कर्म स्वभाव वाले रजोगुण में शुद्ध ब्रह्मज्ञान की आशङ्का होती है, क्योकि रजोगुण के विक्षेपक होने के कारण उससे सर्वदा ब्रह्म का प्रकाश नहीं होता है और प्रकाश स्वभाव वाले सत्त्वगुण में तो ब्रह्म का साक्षात् प्रकाश उसी तरह से होता है जिस तरह अग्नि में साक्षात् प्रकाश होता है ।।२४।।

भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवन्तमधोक्षजम् । सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते येऽनु तानिह ।।२५।।

अन्वयः— मुनयः अग्रे क्षेमाय विशुद्धं सत्त्वं भगवन्तम् भेजिरे अथ ये इह तान् अनु ते क्षेमाय कल्पन्ते ।।२५।।

अनुवाद— प्राचीन युगों में मुनिगण कल्याण प्राप्त करने के लिए विशुद्ध सत्त्व स्वरूप भगवान् विष्णु की आराधना किया करते थे और जो लोग उन मुनियों का ही इस लोक में अनुगमन करते हैं वे लोग भी कल्याण को प्राप्त करते हैं ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

वासुदेवभक्तौ पूर्वाचारं प्रमाणयति- भेजिर इति । अथातो हेतोरग्रे पुराविशुद्धं सत्त्वं सत्त्वमूर्तिं भगवन्तमधोक्षजम् । अतो येताननुवर्तन्ते त इह संसारे क्षेमाय कल्पन्ते ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् वासुदेव की भक्ति पूर्वक किए गये ऋषियों के आचरण को ही प्रमाणित करते हुए सूतजी कहते हैं— **भेजिरे इत्यादि** इसीलिए प्राचीन काल में मुनिगण सत्त्वमूर्ति भगवान अधोक्षज विष्णु की आराधना करते थे। अतएव जो कल्याणकामी पुरुष उन मुनियों का अनुसरण करते हैं वे कल्याणभाजन होते हैं ।।२५।।

मुमुक्षवो घोररूपान्हित्वा भूतपतीनथ । नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः ।।२६।।

अन्वयः— अथ शान्ता अनसूयवः मुमुक्षवः घोररूपान् भूतपतीन् हित्वा शान्ताः नारायणकलाः भजन्ति ।।२६।।

अनुवाद— जो लोग इस संसार सागर से पार जाना चाहते हैं वे मुमुक्षु पुरुष किसी की भी निन्दा नहीं करते हैं, किन्तु वे घोर रूप वाले भूतों के स्वामी भैरव, पितृगण अथवा प्रजेशों इत्यादि का परित्याग करके भगवान् विष्णु और उनकी कला स्वरूप श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि का ही भजन करते हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

नन्वन्यानपि केचिद्भजन्तो दृश्यन्त । सत्यम् । मुमुक्षवस्त्वन्यान्न भजन्ति किंतु सकामा एवेत्याह- मुमुक्षव इति द्वाभ्याम्। भूतपतीनिति पितृप्रजेशादीनामुपलक्षणम् । अनसूयवो देवतान्तरानिन्दकाः सन्तः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि कुछ लोग तो भगवान् विष्णु को छोड़कर दूसरे ही देवताओं का भजन करते हैं यह लोक में देखा जाता है; तो यह बात तो ठीक; है किन्तु जो मुमुक्षु पुरुष होते हैं वे दूसरे देवता की नहीं बल्कि भगवान् नारायण की ही आराधना करते हैं । उन देवताओं की आराधना करने वाले लोग कामना विशेष से उनकी

आराधना करते हैं । इस बात को **मुमुक्षुवः इत्यादि** दो श्लोकों से कहा गया है । **भूतपतीन्०** यह पद पितरों तथा प्रजापतियों का भी उपलक्षण है । वे मुमुक्षु पुरुष अनसूयु होते हैं अर्थात् किसी दूसरे की निन्दा नहीं करते हैं ॥२६॥

रजस्तमः प्रकृतयः समशीला भजन्ति वै । पितृभूतप्रजेशादीञ्छ्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः ॥२७॥

अन्वयः— श्रियैश्वर्य प्रजेप्सवः रजस्तमः प्रकृतयः पितृभूतप्रजेशादीन् भजन्ति, ते वै समशीलाः ॥२७॥

अनुवाद— धन, ऐश्वर्य और सन्तान चाहने वाले रजोगुणी और तमोगुणी प्रकृति वाले लोग भूतों, प्रेतों और प्रजापतियों की आराधना करते हैं, क्योंकि उनका स्वभाव भूतों आदि से मिलता जुलता है ।

भावार्थ दीपिका

रजस्तमसी प्रकृतिः स्वभावो येषां ते । अतएव पितृभूतादिभिः समं शीलं येषाम् । श्रिया सहैश्वर्यं प्रजाश्चेप्सन्तीति तथा ते ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

रजस्तमः प्रकृतयः पद का अर्थ है कि जिन लोगों का स्वभाव ही रजोगुण तथा तमोगुणमय है । अतः रजोगुणी तथा तमोगुणी प्रकृति वाले होने के कारण उनका स्वभाव पितरों तथा भूतों आदि के ही समान होता है। वे धन के साथ-साथ ऐश्वर्य और सन्तान को भी चाहते हैं ॥२७॥

वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः । वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः ॥ २८॥

अन्वयः— वेदाः वासुदेव पराः मखाः वासुदेव पराः, योगाः वासुदेवपराः क्रियाः वासुदेव पराः ॥२८॥

अनुवाद— सभी वेद भगवान् श्रीकृष्ण का ही प्रतिपादन करते हैं, सभी यज्ञों के द्वारा भगवान् वासुदेव की ही आराधना की जाती है । सभी योग भगवान् श्रीकृष्ण की ही प्राप्ति के लिए किए जाते है और सभी क्रियाओं का पर्यवसान भगवान् श्रीकृष्ण में ही होता है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

मोक्षप्रदत्वाद्वासुदेवो भजनीय इत्युक्तं सर्वशास्त्रतात्पर्यगोचरत्वादपीत्याह द्वाभ्याम् । वासुदेव एव परस्तात्पर्यगोचरो येषां ते । ननुः वेदा मखपरा दृश्यन्त इत्याशङ्क्य तेऽपि तदाराधनार्थत्वात्तत्परा एवेत्युक्तम् । योगा योगशास्त्राणि । तेषामप्यासन-प्राणायामादिक्रियापरत्वमाशङ्क्य तासामपि तत्प्राप्त्युपायत्वात्तत्परत्वमुक्तम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् वासुदेव ही मोक्ष को प्रदान करते हैं, अतएव उनका ही भजन करना चाहिए इस बात का प्रतिपादन किया जा चुका है अब आगे के दो श्लोकों से यह बतलाया जा रहा है कि चूकि सभी शास्त्रों का तात्पर्य भगवान् वासुदेव में ही है, अतएव भी उनका ही भजन करना चाहिए । **वासुदेव एव० इत्यादि** सभी वेदों का तत्पर्य भगवान् वासुदेव में ही है । **ननुवेदा० इत्यादि** यदि कोई यह कहे कि वेद तो यज्ञों का भी प्रतिपादन करते हैं। इस तरह की शङ्का करके कहते हैं कि यज्ञ भी भगवान् वासुदेव के आराधन स्वरूप ही होते हैं, अतएव उन सबों के तात्पर्य के विषय भगवान् वासुदेव ही हैं । **योगाः** शब्द से योगशास्त्र को कहा गया है । यदि कोई कहे कि योग तो आसन, प्राणायाम आदि का ही प्रतिपादन करते हैं, अतएव वे भगवान वासुदेव के प्रतिपादक नहीं हैं तो इस शङ्का का उत्तर है कि आसन आदि क्रियाएँ भी भगवान् वासुदेव की प्राप्ति के उपाय हैं, और वे क्रिया रूप हैं अतएव उनको वासुदेव परक कहा जाता है ॥२८॥

वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः । वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥२९॥

अन्वयः— ज्ञानं वासुदेवपरम्, तपः वासुदेवपरम्, धर्मः वासुदेवपरः गतिः वासुदेवपरा ॥२९॥

अनुवाद— ज्ञान से भगवान् वासुदेव की ही प्राप्ति होती है, तपस्या भी भगवान् वासुदेव की प्राप्ति के लिए ही की जाती है, धर्मों का अनुष्ठान भगवान् वासुदेव की प्रसन्नता के लिए किया जाता है और सभी गतियो का पर्यवासन भगवान् वासुदेव में ही होता है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञानं ज्ञानशास्त्रम् । ननु च तज्ज्ञानपरमेवेत्याशङ्क्य ज्ञानस्यापि तत्परत्वमुक्तम् । तपोऽत्र ज्ञानम् । धर्मो धर्मशास्त्रं दानव्रतादिविषयम् । ननु तत्स्वर्गपरमित्याशङ्क्य गम्यत इति गतिः स्वर्गादिफलं सापि तदानन्दांशरूपत्वात्तत्परैवेत्युक्तम् । यद्वा वेदा इत्यनेनैव तन्मूलत्वात्सर्वाण्यपि वासुदेवपराणीत्युक्तम् । तत्र ननु तेषां मखयोगक्रियादिनानार्थपरत्वान्न तदेकपरत्वमित्याशङ्क्य मखादीनामपि तत्परत्वमित्युक्तमिति द्रष्टव्यम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

मूल में ज्ञान शब्द से ज्ञानशास्त्र को कहा गया है । उस ज्ञानशास्त्र का तात्पर्य ज्ञान के ही प्रतिपादन में है ऐसी आशंका करके कहा गया है कि ज्ञान के द्वारा चूकि भगवान् वासुदेव की ही प्राप्ति होती है, अतएव ज्ञानशास्त्र के प्रतिपाद्य भगवान् वासुदेव ही हैं । मूल का तप शब्द ज्ञान का बोधक है । धर्मशब्द धर्मशास्त्र का बोधक है। वह दान तथा व्रत का ही प्रतिपादन करता है, अतएव वे धर्मशास्त्र स्वर्ग की प्राप्ति के साधनों का प्रतिपादन करते हैं । इस तरह की आशङ्का करके कहते हैं कि स्वर्गादि रूपी फल की गतियाँ भी उन भगवान् वासुदेव के आनन्दांश रूप होने के कारण वे भी भगवान् वासुदेव परक ही हैं ।

यद्वा वेदा इत्यनेनैव० इत्यादि— अर्थात् ज्ञान, तप, मख और गतियाँ सबके सब वेदमूलक होने के कारण वे सबके सब वेद प्रतिपाद्य भगवान् वासुदेव परक हैं । यदि कहें कि वेद तो मख, योग क्रिया इत्यादि अनेक विषयों का प्रतिपादन करते हैं अतएव उन सबों के द्वारा केवल भगवान् वासुदेव का प्रतिपादन नहीं माना जा सकता है। इस तरह की आशङ्का करके यज्ञादि को भगवान् वासुदेव का ही प्रतिपादक बतलाया गया है ॥२९॥

स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया । सदसद्रूपया चासौ गुणमय्याऽगुणो विभुः ॥३०॥

अन्वयः— स एव असौ अगुणः विभुः भगवान् गुणमय्या सदसद्रूपया आत्ममायया अग्रे इदं ससर्ज ॥३०॥

अनुवाद— शास्त्रों में प्रख्यात गुणों से रहित, तथा व्यापक भगवान् सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों गुणों से युक्त अपनी माया के द्वारा सृष्टि के पूर्व इस जगत् की सृष्टि किए ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

ननु जगत्सर्गतत्प्रवेशनियमनादिविलासयुक्ते वस्तुनि सर्वशास्त्रसमन्वयो दृश्यते कथं वासुदेवपरत्वं सर्वस्य तत्राह- स एवेति चतुर्भिः । एतैरेव श्लोकैस्तस्य कर्माण्युदाराणि ब्रूहीति प्रश्नस्योत्तरमुक्तम् । सदसद्रूपया कार्यकारणात्मिकया । अगुणश्चेत्यन्वयः। स्वतो निर्गुणोऽपि सन्नित्यर्थः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि सभी शास्त्रों का समन्वय जगत् की सृष्टि तथा उसमें प्रवेश करके उसका नियमन करने वाले परब्रह्म में ही देखा जाता है, अतएव उन सबों को वासुदेव परक कैसे स्वीकार किया जा सकता है ? तो उसका उत्तर **स एव इत्यादि** चार श्लोकों से दिया गया है ।

एतैरेव० इत्यादि- इन्हीं चार श्लोकों के द्वारा उन श्रीभगवान् के महान कर्मों का आप वर्णन करें इस प्रश्न का उत्तर भी दिया गया है । **सदसद्रूपया** पद का अर्थ है कार्य कारण स्वरूप माया के द्वारा **अगुणश्च** को अर्थ है स्वाभाविक रूप से निर्गुण ।।३०।।

तया विलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव । अन्तः प्रविष्ट आभाति विज्ञानेन विजृम्भितः ।।३१।।

अन्वयः— एषु गुणेषु तया विलसितेषु अन्तःप्रविष्टः विज्ञानेन विजृम्भितः अपि गुणवान् इव आभाति ।।३१।।

अनुवाद— उस माया के विलास स्वरूप इन सत्त्व, रजस् एवं तमस् नामक गुणों में प्रविष्ट होने के कारण स्वभावतः विज्ञानानन्दस्वरूप होने पर भी श्रीभगवान् उन गुणों से युक्त के समान प्रतीत होते हैं ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

भगवतो जगत्कारणत्वमुक्तम् । प्रेवशनियमनलक्षणां लीलामाह- तयेति । विलसितेषूद्भूतेषु गुणेष्वाकाशादिष्वन्तः प्रविष्टः सन् गुणवानिव मदधीना एते गुणा इत्यभिमानवानिव नतु वस्तुतस्तथा । यतो विज्ञानेन चिच्छक्त्या विजृम्भितोऽत्यूर्जितः।।३१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के जगत् कारणत्व को बतलाया जा चुका है अब इस श्लोक में श्रीभगवान् के सभी वस्तुओं के भीतर प्रवेश करके उनके नियमन लीला को बतलाया जा रहा है । **तयाविलासितेषु** पद का अर्थ है कि उस माया से ही उत्पन्न गुणों से जन्य आकाश आदि के भीतर प्रवेश करके गुणवान् के समान प्रतीत होते हैं । अर्थात् ये सभी गुण मेरे ही अधीन हैं, इस तरह के अभिमान से युक्त के समान प्रतीत होते हैं । किन्तु वास्तविकता ऐसी नहीं हैं; क्योंकि भगवान् तो विज्ञान से विजृम्भित हैं, अर्थात् चित् शक्ति के द्वारा अत्यन्त ऊर्जा सम्पन्न हैं ?।।३१।।

यथा ह्यवहितो वह्निर्दारुष्वेकः स्वयोनिषु । नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ।।३२।।

अन्वयः— यथाहिस्वयोनिषु दारुषु अवहितः एकः अग्निः नाना इव आभाति तथा विश्वात्मा पुमान् भूतेषु नानेव आभाति ।।३२।।

अनुवाद— जिस तरह अपने अभिव्यञ्जक काष्ठों मे लगायी गयी एक ही अग्नि, काष्ठों की अनेकता के कारण अनेक के समान प्रतीत होती है, उसी तरह सम्पूर्ण जगत् की आत्मा स्वरूप परमात्मा के सभी भूतों में प्रविष्ट होने के कारण अनेक के तरह प्रतीत होते हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

बहुरूपत्वलीलामाह- यथेति । स्वयोनिषु स्वाभिव्यञ्जकेषु अवहितो निहितः । विश्वात्मा पुमान्परमेश्वरः । भूतेषु प्राणिषु अन्तर्यामिणोऽपि प्रतियोनिनानात्वेन नानात्वमिवोच्यते । क्षेत्रज्ञरूपेण वा ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

यथा इत्यादि श्लोक के द्वारा परमात्मा की बहुरूपत्व लीला को बतलाया गया है । स्वयोनिषु पद का अर्थ है अपने अभिव्यञ्जक, अवहित अर्थात् लगायी गयी विश्वात्मापुमान् का अर्थ है परमेश्वर अर्थात् भूतेषु पद का अर्थ प्राणियों में अन्तर्यामी होने पर भी परमात्मा अनेक योनियों में अनेक के समान कहे जाते हैं । अथवा वे क्षेत्रज्ञ (जीव) रूप से अनेक प्रतीत होते हैं ।।३२।।

असौ गुणमयैर्भावैर्भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मभिः । स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुङ्क्ते भूतेषु तद्गुणान् ।।३३।।

अन्वयः— असौ भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मभिः गुणमयैः भावैः स्वनिर्मितेषु भूतेषु निर्विष्टः सन् तद्गुणान् भुंक्ते ।।३३।।

अनुवाद— भगवान् ही भूत सूक्ष्म (तन्मात्राएँ) इन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण आदि गुणों के कार्यभूत भावों के

द्वारा अपने ही निर्मित अनेक प्रकार की योनियों में प्रवेश करके तत्-तत् योनियों के अनुरूप विषयों का भोग करते हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

भोगरूपां लीलामाह- असाविति । असौ हरिर्भूतसूक्ष्माणि चेन्द्रियाणि श्रोत्रादीनि चात्मा मनश्च तैः स्वयं निर्मितेषु भूतेषु चतुर्विधेष्विति भोगे स्वातन्त्र्यं द्योत्यते । तद्गुणांस्तत्तदनुरूपान्विषयानिच्छया भुङ्क्ते भोजयतीति णिजर्थो वा ज्ञेयः । भुङ्क्ते पालयतीति वा । तदा त्वात्मनेपदमार्षम् । 'भुजोऽनवने' इति स्मरणात् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

असौ इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् की भोग स्वरूपिणी लीला को बतलाया जा रहा है । **असौ॰ इत्यादि** श्रीहरि ही भूतसूक्ष्मों अर्थात् पञ्चतन्मात्राओं, श्रोत्र आदि इन्द्रियों तथा मन आदि के द्वारा निर्मित चारो प्रकार के देव, मनुष्य, तिर्यक् तथा स्थावर जीवों में प्रवेश करके भोगों को भोगने में स्वतंत्र के समान प्रतीत होते हैं। तद्गुणान् भुङ्क्ते का अर्थ है उन चारो प्रकार की योनियों के अनुसार उनके विषयों का भोग करते हैं या भोग कराते है । यहाँ णिच् प्रत्ययान्त अर्थ समझना चाहिए । अर्थात् जीवों को उन विषयों का भोग करने के लिए प्रेरित करते हैं । अथवा भुङ्क्ते पद का अर्थ पालन करते हैं भी हो सकता है । किन्तु ऐसी स्थिति में **आत्मनेपद** का प्रयोग आर्ष समझना चाहिए । अन्यथा **भुजोऽनवने** इस पाणिनीय सूत्र के अनुसार परस्मै पद का प्रयोग होना चाहिए ॥३३॥

भावयत्येष सत्त्वेन लोकान्वै लोकभावनः । लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अन्वयः— लीलावतारानुरतः लोक भावनः एष वै, देवर्तियङ्नरादिषु सत्त्वेन लोकान् भावयति ।

अनुवाद— जगत् की रचना करने वाले देव, मनुष्य, तिर्यक् तथा स्थावर आदि योनियों में प्रवेश करके लीलावतारों को ग्रहण करने वाले श्रीभगवान् ही सत्त्वगुण के द्वारा जीवों का पालन करते हैं ॥३४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के द्वितीय अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं 'सूत जानासि' इति प्रश्नस्योत्तरमाह । भावयति पालयति । एतत्तु सर्वावतारसाधारणं प्रयोजनम् । विशेषतः कृष्णावतारस्य कुन्तीस्तुतौ वक्ष्यते । लोकभावनो लोककर्ता । देवादिषु ये लीलावतारास्तेष्वनुरतोऽनुरक्तः ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकाख्यटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के द्वारा **सूत जानासि' इत्यादि** श्लोक से पूछे गये प्रश्न का उत्तर सूतजी दे रहे हैं । भावयति पद का अर्थ पालन करते हैं । जगत् का पालन करना श्रीभगवान् के सभी अवतारों का समान रूप से प्रयोजन है । भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार का विशेष प्रयोजन सूतजी कुन्ती की स्तुति में बतलायेंगे । **लोकभावनः** पद का अर्थ है लोकों का निर्माण करने वाले देवताओं आदि में प्रवेश करके जो श्रीभगवान् के लीलावतार होते हैं, उन सबों को ग्रहण करने में श्रीभगवान् लगे रहते हैं ॥३४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के द्वितीय अध्याय की भार्वार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥२॥

* * *

तीसरा अध्याय

भगवान् के विभिन्न अवतारों का वर्णन

सूत उवाच

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः । संभूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ।।१।।

अन्वयः— आदौ लोकसिसृक्षया भगवान् महदादिभिः पौरुषंरूपं जगृहे तस्मात् षोडशकलं सम्भूतम् ।।१।।

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— सृष्टि के प्रारम्भ में जगत् की सृष्टि करने की इच्छा से भगवान् ने महदादिकों से पुरुष रूप धारण कर लिया और उनमें दश इन्द्रियाँ एक मन और पाँच भूत ये सोलह कलाएँ उत्पन्न हो गयीं ।।१।।

भावार्थ दीपिका

अवतारकथाप्रश्ने तृतीये तूत्तराभिधा । पुरुषाद्यवतारोक्त्या तत्तच्चारित्रर्णनैः ।।१।। यदुक्तं 'अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः' इति तदुत्तरत्वेनावताराननुक्रमिष्यन्प्रथमं पुरुषावतारमाह– जगृह इति पञ्चभिः । महदादिभिर्महदहङ्कारपञ्चतन्मात्रैः संभूतं सुनिष्पन्नम् । एकादशेन्द्रियाणि पञ्च महाभूतानीति षोडश कला अंशा यस्मिन् । यद्यपि भगवद्विग्रहो नैवं भूतस्तथापि विराड्जीवान्तर्यामिणो भगवतो विराड्रूपेणोपासनार्थमेवमुक्तमिति द्रष्टव्यम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

मुनियों ने जो अवतार कथा के विषय में प्रश्न किया था । उसका उत्तर इस तीसरे अध्याय में पुरुष आदि अवतारों को बतलाकर तथा उन अवतारों के चरित्र वर्णन के द्वारा दिया गया है ।

यदुक्तम्० इत्यादि— मुनियों ने यह जो कहा है कि हे महाबुद्धिमान् सूतजी ! आप श्रीभगवान् के अवतारों की शुभ कथाओं को बतलायें उसके उत्तर रूप से अवतारों के वर्णन का प्रारम्भ करते हुए सूतजी ने प्रथम पुरुष अवतार को **जगृहे इत्यादि** पाँच श्लोक के द्वारा बतलाया है । **महदादिभिः** पद का अर्थ है महान् अहङ्कार तथा पञ्च तन्मात्राओं से उस पुरुष में ग्यारह इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा एक मन) तथा पाँच महाभूत ये सोलह कलायें अंश रूप से उत्पन्न हो गयीं ।

यद्यपि० इत्यादि— यद्यपि श्रीभगवान् का दिव्य विग्रह इस प्रकार का नहीं है फिर भी जीवों के अन्तर्यामी भगवान् का विराट् रूप से इस प्रकार का वर्णन उपासना के लिए किया गया है, यह जानना चाहिए ।।१।।

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः । नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ।।२।।

अन्वयः— अम्भसिशयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः यस्य नाभिह्रदाम्बुजात् विश्वसृजाम् पतिः ब्रह्मा आसीत् ।।२।।

अनुवाद— कारण जल में शयन करके योगिनिद्रा का विस्तार करने वाले जिन श्रीभगवान् के नाभिसरोवर में उत्पन्न कमल से प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुयी ।।२।।

भावार्थ दीपिका

कोऽसौ भगवानित्यपेक्षायां तं विशिनष्टि । यस्याम्भसि एकार्णवे शयानस्य विश्रान्तस्य । तत्र च योगः समाधिस्तद्रूपां निद्रां विस्तारयतो नाभिरेव ह्रदस्तस्मिन्यदम्बुजं तस्मात्सकाशाद्ब्रह्मासीदभूत्पाद्मे कल्पे । स पौरुषं रूपं जगृहे ।।२।।

भाव प्रकाशिका

वे भगवान् कौन हैं ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर उन श्रीभगवान् का निरूपण करते हुए कहते हैं । एकार्णव के जल में शयन करने वाले तथा समाधि रूपी निद्रा का विस्तार करने वाले श्रीभगवान् की नाभि ही

तीसरा अध्याय

भगवान् के विभिन्न अवतारों का वर्णन

सूत उवाच

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः । संभूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥१॥

अन्वयः— आदौ लोकसिसृक्षया भगवान् महदादिभिः पौरुषंरूपं जगृहे तस्मात् षोडशकलं सम्भूतम् ॥१॥

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— सृष्टि के प्रारम्भ में जगत् की सृष्टि करने की इच्छा से भगवान् ने महदादिकों से पुरुष रूप धारण कर लिया और उनमें दश इन्द्रियाँ एक मन और पाँच भूत ये सोलह कलाएँ उत्पन्न हो गयीं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अवतारकथाप्रश्ने तृतीये तूत्तराभिधा । पुरुषाद्यवतारोक्त्या तत्तच्चारित्रर्णनैः ॥१॥ यदुक्तं 'अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः' इति तदुत्तरत्वेनावताराननुक्रमिष्यन्प्रथमं पुरुषावतारमाह– जगृह इति पञ्चभिः । महदादिभिर्महदहङ्कारपञ्चतन्मात्रैः संभूतं सुनिष्पन्नम् । एकादशेन्द्रियाणि पञ्च महाभूतानीति षोडश कला अंशा यस्मिन् । यद्यपि भगवद्विग्रहो नैवं भूतस्तथापि विराड्जीवान्तर्यामिणो भगवतो विराड्रूपेणोपासनार्थमेवमुक्तमिति द्रष्टव्यम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

मुनियों ने जो अवतार कथा के विषय में प्रश्न किया था । उसका उत्तर इस तीसरे अध्याय में पुरुष आदि अवतारों को बतलाकर तथा उन अवतारों के चरित्र वर्णन के द्वारा दिया गया है ।

यदुक्तम्० इत्यादि— मुनियों ने यह जो कहा है कि हे महाबुद्धिमान् सूतजी ! आप श्रीभगवान् के अवतारों की शुभ कथाओं को बतलायें उसके उत्तर रूप से अवतारों के वर्णन का प्रारम्भ करते हुए सूतजी ने प्रथम पुरुष अवतार को **जगृहे इत्यादि** पाँच श्लोक के द्वारा बतलाया है । **महदादिभिः** पद का अर्थ है महान् अहङ्कार तथा पञ्च तन्मात्राओं से उस पुरुष में ग्यारह इन्द्रियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा एक मन) तथा पाँच महाभूत ये सोलह कलायें अंश रूप से उत्पन्न हो गयीं ।

यद्यपि० इत्यादि— यद्यपि श्रीभगवान् का दिव्य विग्रह इस प्रकार का नहीं है फिर भी जीवों के अन्तर्यामी भगवान् का विराट् रूप से इस प्रकार का वर्णन उपासना के लिए किया गया है, यह जानना चाहिए ॥१॥

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः । नाभिहृदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥२॥

अन्वयः— अम्भसिशयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः यस्य नाभिहृदाम्बुजात् विश्वसृजाम् पतिः ब्रह्मा आसीत् ॥२॥

अनुवाद— कारण जल में शयन करके योगिनिद्रा का विस्तार करने वाले जिन श्रीभगवान् के नाभिसरोवर में उत्पन्न कमल से प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुयी ॥२॥

भावार्थ दीपिका

कोऽसौ भगवानित्यपेक्षायां तं विशिनष्टि । यस्याम्भसि एकार्णवे शयानस्य विश्रान्तस्य । तत्र च योगः समाधिस्तद्रूपां निद्रां विस्तारयतो नाभिरेव हृदस्तस्मिन्यदम्बुजं तस्मात्सकाशाद्ब्रह्मासीदभूत्पाद्मे कल्पे । स पौरुषं रूपं जगृहे ॥२॥

भाव प्रकाशिका

वे भगवान् कौन हैं ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर उन श्रीभगवान् का निरूपण करते हुए कहते हैं । एकार्णव के जल में शयन करने वाले तथा समाधि रूपी निद्रा का विस्तार करने वाले श्रीभगवान् की नाभि ही

(हृद) है । उस हृद में उत्पन्न कमल से पाद्मकल्प में ब्रह्माजी उत्पन्न हुए । उन श्रीभगवान् ने ही पौरुष रूप को धारण किया ॥२॥

यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लोकविस्तरः । तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वमूर्जितम् ॥३॥

अन्वयः— यस्यावयव संस्थानैः लोकविस्तरः कल्पितः । तद् वै भगवतः रूपम् विशुद्धम् सत्त्वमूर्जितम् ॥३॥

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् के अङ्गों के संस्थानों से जगत् के विस्तार की कल्पना हुयी श्रीभगवान् का वह रूप विशुद्ध है तथा रजोगुण एवं तमोगुण से अमिश्रित शुद्धसत्त्व सम्पन्न है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

कीदृशं रूपं तदाह- यस्येति । ननु कीदृशो विग्रहस्तस्य योऽम्भसि शेते स्म तदाह । तत्तस्य भगवतो रूपं तु विशुद्धं रजआदिगुणान्तरेणासंभिन्नमत एवोर्जितं निरतिशयं सत्त्वम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का वह रूप किस प्रकार का है ? इस बात को **यस्य० इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया गया है । **ननु० इत्यादि** प्रश्न है कि श्रीभगवान् का वह रूप कैसा है, जो एकार्णव के जल में सोया था ? उसी को बतलाते हुए कहते है श्रीभगवान् का वह रूप विशुद्ध है । वह रजोगुण तथा तमोगुण के मिश्रण से रहित होने के कारण शुद्ध सत्त्वगुण सम्पन्न हैं ॥३॥

पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ।
सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोल्लसत् ॥४॥

अन्वयः— योगिनः अदभ्रचक्षुषा अदोरूपम् पश्यन्ति यत् । सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम्, सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकम् सहस्रमौल्यम्बर कुण्डलोल्लसत् वर्तते ॥४॥

अनुवाद— योगिजन अपनी दिव्य दृष्टि से श्रीभगवान् के उस रूप का दर्शन करते हैं । श्रीभगवान् का वह अद्भुत रूप हजारों पैरों, हजारों जङ्घाओं, हजारों भुजाओं तथा हजारों मुखों से युक्त है । उसमें हजारो शिर, हजारो कान, हजारो नेत्र तथा हजारों नाक हैं । वह हजारों मुकुट, हजारों प्रकार के वस्त्र तथा हजारों कुण्डलों से सुशोभित है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

एतच्च योगिनां प्रत्यक्षमित्याह- पश्यन्तीति । अदभ्रमनल्पं ज्ञानात्मकं यच्चक्षुस्तेन । सहस्रमपरिमितानि यानि पादादीनि तैरद्भुतम् । सहस्रं मूर्धादयो यस्मिंस्तत् । सहस्रं यानि मौल्यादीनि तैरुल्लसच्छोभमानम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के इस पौरुष रूप का साक्षात्कार योगिजन किया करते है । योगियों का वह नेत्र दिव्य है । उससे वे उस रूप को देखते हैं । वह रूप अपरिमित्त पैरों आदि के कारण अद्भुत है । उसमें हजारों शिर इत्यादि हैं, और उनके जो हजारों मुकुट इत्यादि हैं उन सबों से वह सुशोभित है ॥४॥

एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् । यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः ॥५॥

अन्वयः— एतत् नानावताराणां निधानम् अव्ययम् बीजम् यस्य अंशांशेन देवतिर्यङ् नरादयः सृज्यन्ते ॥५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का यह रूप अनेक अवतारों का अक्षय कोश है तथा यह कभी भी विकृत नहीं होने वाला अवतारों का बीज है । श्रीभगवान् के इस रूप के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश से देवताओं, पशु-पक्षियों, मनुष्यों तथा स्थावरों आदि की सृष्टि होती है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

एतत्तु कूटस्थं न त्वन्यावतारवदाविर्भावतिरोभाववदित्याह- एतदिति । एतदादि नारायणरूपम् । निधीयतेऽस्मिन्निति निधानम् । कार्यावसाने प्रवेशस्थानमित्यर्थः । बीजमुद्गमस्थानम् । बीजत्वेऽपि नान्यबीजतुल्यं किंत्वव्ययम् । न केवलमवताराणामेव बीजं किंतु सर्वप्राणिनामपीत्याह । यस्यांशो ब्रह्मा तस्यांशो मरीच्यादिस्तेन ।।५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का यह रूप कूटस्थ है । अर्थात् वह सदैव एक समान बना रहता है । दूसरे अवतारों के समान इसका न तो आविर्भाव होता है और न तिरोभाव होता है । इसी बात को **एतत्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । यही आदि रूप है और यही भगवान् का नारायण रूप है । कोश के वाचक निधान शब्द की व्युत्पत्ति **निधीयते अस्मिन्** है । अर्थात् जिसमें रखा जाय उसे निधान कहते है । जब अवतारों का कार्य समाप्त हो जाता है तो वे अवतार इसी रूप में प्रवेश कर जाते हैं । बीज कहकर बतलाया गया है कि यह अवतारों का बीज अर्थात् उद्गम स्थान है । बीज होने पर भी यह दूसरे बीजों से भिन्न इसलिए है कि इसमें कभी भी कोई विकार नहीं आता है । **न केवलम्० इत्यादि-** यह केवल अवतारों का ही बीज नहीं है अपितु यह समस्त प्राणियों का भी बीज है । ब्रह्माजी उनके अंश हैं और ब्रह्माजी के अंश मरीचि आदि हैं । यही अंशांश शब्द का अर्थ है । श्रीभगवान् के उस अंशाश से ही सभी देव तिर्यक् तथा स्थावरादि प्राणियों की उत्पत्ति होती है ।।५।।

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमास्थितः । चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ।।६।।

अन्वयः— स एव देवः प्रथमं कौमारं सर्गम् आस्थितः ब्रह्मा दुश्चरं अखण्डितम् ब्रह्मचर्यं चचार ।।६।।

अनुवाद— उन्हीं श्रीभगवान् ने प्रथम कौमार सर्ग में रहकर सनक, सनन्दन सनातन और सनत् कुमार इन चार ब्राह्मणों के रूप में अखण्डित ब्रह्मचर्य व्रत का पालन रूप कठोर तपस्या किए ।।६।।

भावार्थ दीपिका

सनत्कुमाराद्यवतारं तच्चरित्रं चाह- स एवेति । कौमार आर्षः प्राजापत्यो मानव इत्यादीनि सर्गविशेषनामानि । यः पौरुषं रूपं जगृहे स एव देवः कौमाराख्यं सर्गमास्थितः सन् ब्रह्मा ब्राह्मणो भूत्वा ब्रह्मचर्यं चचार । प्रथमद्वितीयादिशब्दा निर्देशमात्रापेक्षया ।।६।।

भाव प्रकाशिका

स एव० इत्यादि श्लोक के द्वारा प्रथम सनत्कुमार नामक आद्यवतार का तथा उनके चरित्र का वर्णन किया गया है । कौमार, आर्ष, प्राजापत्य मानव इत्यादि भिन्न-भिन्न सृष्टियों के नाम हैं । **यः पौरुषम्० इत्यादि-** जिन श्रीभगवान् ने पौरुष रूप का धारण किया था वे ही कौमार सर्ग में स्थित रहकर ब्राह्मण होकर, अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किए । प्रथम, द्वितीय इत्यादि केवल निर्देश का प्रतिपादन करने वाले शब्द हैं ।।६।।

द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् । उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ।।७।।

अन्वयः— अस्य भवाय यज्ञेशः रसातलगतां महीम् उद्धरिष्यन् द्वितीयं सौकरं वपुः उपादत्त ।।७।।

अनुवाद— इस जगत् का कल्याण करने के लिए यज्ञों के स्वामी श्रीभगवान् रसातल में गयी हुयी पृथिवी का उद्धार करने के लिए दूसरे अवतार में अपना सूकर का रूप बना लिए ।।७।।

भावार्थ दीपिका

वराहावतारमाह- द्वितीयमिति । अस्य विश्वस्य भवायोद्भवाय महीमुद्धरिष्यन्निति कर्मोक्तिः एवं सर्वत्रावतारस्तत्कर्म चोक्तमित्यनुसंधेयम् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

द्वितीयं तु० इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के वराहावतार का वर्णन किया गया है । इस जगत् की उत्पत्ति के लिए पृथिवी का उद्धार करने की इच्छा से भगवान् ने वराहावतार धारण किया । इसके द्वारा वराहावतार के कर्म का वर्णन किया गया है । इस तरह से श्रीभगवान् के सभी अवतारों तथा उनके कर्मों का वर्णन किया गया है । इस बत का अनुसन्धान करना चाहिए ।।७।।

तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः । तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ।।८।।

अन्वयः— तृतीयम् ऋषिसर्गः च सः देवर्षित्वमुपेत्य सात्वतं तन्त्रम् आचष्टे यतः कर्मणां नैष्कर्म्यम् भवति ।।८।।

अनुवाद— तीसरी ऋषियों की सृष्टि में श्रीभगवान् देवर्षि नारद होकर सात्त्वत तन्त्र (नारद पञ्चरात्र) का उपदेश दिये जिसमें कि यह बतलाया गया है कि कर्मों से कर्म का बन्धन किस तरह से नहीं होता है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

नारदावतारमाह- तृतीयमिति । ऋषिसर्गमुपेत्य । तत्र च देवर्षित्वमुपेत्येत्यर्थः । सात्वतं वैष्णवं तन्त्रं पञ्चरात्रागममाचष्टोक्तवान्। यतस्तन्त्रात् । निर्गतं कर्मत्वं बन्धहेतुत्वं येभ्यस्तानि निष्कर्माणि तेषां भावो नैष्कर्म्यम् । कर्मणामेव मोचकत्वं यतो भवति तदाचष्टेत्यर्थः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

तृतीयम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा नारदावतार का वर्णन किया गया है । तीसरे ऋषियों की सृष्टि में श्रीभगवान् नारद के रूप में अवतीर्ण हो गये । इस सृष्टि में सात्वत तन्त्र अर्थात् वैष्णव तन्त्र पाञ्चरात्रागम का उपदेश दिए। उस तन्त्र के अनुसर अनुष्ठान करने पर कर्मों का कर्मत्व नहीं रह जाता है । अर्थात् वे बन्धन कारक नहीं होते है । **निर्गतं कर्मत्वं बन्ध हेतुत्वं येभ्यः तानि निष्कर्माणि तेषां भावो नैष्कर्म्यम्** यह नैष्कर्म्य शब्द का विग्रह है। अर्थात् इस तन्त्र में जिन कर्मों का उपदेश किया गया है, उन कर्मों के द्वारा ही संसार के बन्धन से मुक्ति हो जाती है ।।८।।

तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी । भूत्वात्मोपशमोपेतमकरोद्दुश्चरं तपः ।।९।।

अन्वयः— तुर्ये धर्मकला सर्गे नरनारायणौ ऋषी भूत्वा आत्मोपशमोपेतं दुश्चरं तपः अकरोत् ।।९।।

अनुवाद— चौथी सृष्टि में धर्म की पत्नी कलादेवी के गर्भ से नर नारायण नामक दो ऋषियों के रूप में अवतीर्ण होकर श्रीभगवान् इन्द्रियों के संयम रूपी कठोर तपस्या किए ।।९।।

भावार्थ दीपिका

नरनारायणावतारमाह- तुर्ये इति । तुर्ये चतुर्थेऽवतारे । धर्मस्य कला अंशः । भार्येत्यर्थः । 'अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी' इति श्रुतेः । तस्याः सर्गे । ऋषी भूत्वेत्येकावतारत्वं दर्शयति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

तुर्ये० इत्यादि- श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के नर-नारायणवतार का वर्णन किया गया है । यह भगवान् का चौथा अवतार है । **धर्म कला** शब्द धर्म की पत्नी का बोधक है । यहाँ कला शब्द पत्नी का बोधक है । श्रुति भी कहती है **अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी** अर्थात् पत्नी पुरुष का आधा भाग होती है । धर्म की पत्नी के गर्भ से श्रीभगवान् नर-नारायण इन दो ऋषियों के रूप में अवतीर्ण हुए । अतएव नर और नारायण दोनों मिलकर श्रीभगवान् का एक ही अवतार है ।।९।।

पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् । प्रोवाचासुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥१०॥

अन्वयः— पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः आसुरये कालविप्लुतम् तत्वग्रामविनिर्णयम् सांख्यं आसुरये प्रोवाच ॥१०॥

अनुवाद— पाँचवे सर्ग में भगवान् सिद्धों के स्वामी कपिल के रूप में अवतीर्ण होकर समय की विपरीतता के कारण लुप्त हुए तथा तत्त्व समूह का निर्णय रूप सांख्य दर्शन का उपदेश आसुरि नामक ब्राह्मण को दिये ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

कपिलावतारमाह- पञ्चम इति । आसुरये तन्नाम्ने ब्राह्मणाय । तत्त्वानां ग्रामस्य सङ्घस्य विनिर्णयो यस्मिन् शास्त्रे तत्सांख्यम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

पञ्चमः इत्यादि श्लोक के द्वारा पाञ्चवें कपिल अवतार का वर्णन किया गया है । आसुरि नामक ब्राह्मण को इस अवतार में भगवान् ने सांख्य दर्शन का उपदेश दिया । तत्त्वग्राम विनिर्णयम् का अर्थ है जिसमें तत्त्वों के ग्राम अर्थात् समूह का निर्णय किया गया है, वह शास्त्र सांख्य शास्त्र है ॥१०॥

षष्ठमत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया । आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥११॥

अन्वयः— अनसूयया वृतः षष्ठम् अत्रेः अपत्यत्वं प्राप्तः अलर्काय प्रह्लादादिभ्यः आन्वीक्षिकीम् ऊचिवान् ॥११॥

अनुवाद— अनसूया के द्वारा वरदान माँगे जाने पर षष्ठ अवतार में महर्षि अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय हुए और उन्होंने अलर्क तथा प्रह्लाद आदि को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

दत्तात्रेयावतारमाह- षष्ठमिति । अत्रेरपत्यत्वं तेनैव वृतः सन् प्राप्तः 'अत्रेरपत्यमभिकाङ्क्षत आह तुष्टः' इति वक्ष्यमाणत्वात्। कथं प्राप्तः । अनसूयया मत्सदृशापत्यमिषेण मामेवापत्यं वृतवानिति दोषदृष्टिमकुर्वन्नित्यर्थः । आन्वीक्षिकीमात्मविद्याम् । प्रह्लादादिभ्यश्च । आदिपदाद्यदुहैहयाद्या गृह्यन्ते ॥११॥

भाव प्रकाशिका

षष्ठम् इत्यादि श्लोक के द्वारा दत्तात्रेय अवतार का वर्णन किया जा रहा है । भगवान् स्वयं अत्रि महर्षि के अपत्य रूप से अनसूया के द्वारा वृत्त थे, और वे उनके पुत्र हो गये । इसी बात को दूसरे स्कन्ध के सातवें अध्याय के चतुर्थ श्लोक में कहा भी जायेगा कि **अत्रेरपत्यमभिकांक्षत आह तुष्ट** अर्थात् अत्रि महर्षि के पुत्र के रूप में वरदान माँगे जाने पर प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने कहा । उसी के फलस्वरूप वे उनके पुत्र हुए । भगवान् ने अनसूया के द्वारा माँगे जाने वाले वरदान में किसी भी प्रकार की दोष दृष्टि नहीं किया और जान लिया कि अनसूया ने मेरे सदृश पुत्र का वरदान माँगने के बहाने मुझको ही माँगा है । आत्मविद्या को ही अन्वीक्षिकी विद्या कहते है । उसका उपदेश उन्होंने प्रह्लाद आदि को दिया । आदि शब्द से हैहय तथा यदु आदि को समझना चाहिए ॥११॥

ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत । स यामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायंभुवान्तरम् ॥१२॥

अन्वयः— ततः सप्तमे रुचेः आकूत्यां यज्ञः अभ्यजायत । सः यामाद्यैः सुरगणैः सह स्वायम्भुवम् मन्वन्तरम् अपात् ॥१२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् सातवें अवतार में भगवान् रुचि प्रजापति के पुत्र आकूती देवी के गर्भ से यज्ञ के रूप में अवतीर्ण हुए और याम आदि देवताओं के साथ उन्होंने स्वायम्भुव मन्वन्तर की रक्षा की ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञावतारमाह- तत इति । स यज्ञो यामाद्यैः स्वस्यैव पुत्रा यामा नाम देवास्तदाद्यैः सह स्वायंभुवं मन्वन्तरं पालितवान्। तदा स्वयमिन्द्रोऽभूदित्यर्थः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

ततः इत्यादि श्लोक के द्वारा यज्ञावतार का वर्णन किया गया है । वे यज्ञ भगवान् अपने ही याम नामक पुत्रों के साथ स्वायम्भुव मन्वन्तर का पालन (रक्षा) किए उस समय वे स्वयम् इन्द्र बन गये ।।१२।।

अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः । दर्शयन्वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ।।१३।।

अन्वयः— अष्टमे उरुक्रमः नाभेः मेरु देव्यां सर्वाश्रम नमस्कृतम् धीराणां वर्त्म दर्शयन् जातः ।।१३।।

अनुवाद— आठवें अवतार में श्रीभगवान् सभी आश्रमियों के द्वारा वन्दनीय परमहंसों के मार्ग का उपदेश करने की इच्छा से मेरुदेवी के गर्भ से महाराज नाभि के पुत्र ऋषभदेव के रूप में अवतीर्ण हुए ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ऋषभावतारमाह- अष्टम इति । सर्वाश्रमनमस्कृतमन्त्याश्रमं पारमहंस्यं वर्त्म धीराणां दर्शयन्नाभेराग्नीध्रपुत्रादृषभो जातः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

अष्टमे० इत्यादि श्लोक के द्वारा ऋषभावतार का वर्णन किया गया है । सभी आश्रमियों के द्वारा अन्तिम परमहंसों के मार्ग का उपदेश देने की इच्छा से महाराज आग्नीध्र के पुत्र महाराज नाभि के पुत्र ऋषभदेव के रूप में अवतीर्ण हुए ।।१३।।

ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः । दुग्धेमामौषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः ।।१४।।

अन्वयः— हे विप्राः ऋषिभिः याचितः सः नवमं पार्थिवं वपुः भेजे । सः इमाम् ओषधीः दुग्धे । तेन अयम् (अवतारः) उशत्तमः ।।१४।।

अनुवाद— हे विप्रों ऋषियों के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर वे भगवान् नवें अवतार में महाराज पृथु का शरीर धारण करके गोरूप धारिणी पृथिवी से सभी औषधियों का दोहन किये । अतएव यह अवतार अत्यन्त मनोहर था ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

पृथ्ववतारमाह- ऋषिभिरिति । पार्थिवं वपुः राजदेहं पृथुरूपम् । पाठान्तरे पृथोरिदं पार्थवम् । औषधीरित्युपलक्षणम्। इमां पृथ्वीं सर्वाणि वस्तूनि दुग्ध अदुग्ध । अडागमाभावस्त्वार्षः । हे विप्राः, तेन पृथिवीदोहनेन सोऽयमवतार उशत्तमः कमनीयतमः । **'वश कान्तौ'** इत्यस्मात् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

ऋषिभिः इत्यादि श्लोक के द्वारा पृथु अवतार का वर्णन किया गया है । **पार्थिवं वपुः** का अर्थ है कि राजा पृथु के शरीर को धारण किए । पार्थवम् भी पाठान्तर है । **पार्थवम्** की व्युत्पत्ति **पृथोरिदम् पार्थवम्** है । अर्थात् उन्होंने पृथु का शरीर धारण किया है । औषधि पद सभी वस्तुओं का उपलक्षण है । इस पृथिवी से सभी वस्तुओं को दूहा । आर्ष प्रयोग होने के कारण यहाँ पर अट् का आगम नहीं हुआ है । हे विप्रो ! पृथ्वी का दोहन करने के कारण यह अवतार अत्यन्त मनोहर है । **वश् कान्तौ** धातु से उशत्तम शब्द व्युत्पन्न हुआ है ।।१४।।

रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुदोषधिसंप्लवे । नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥१५॥

अन्वयः— चाक्षुषोदधि संप्लवे सः मात्स्यं रूपं जगृहे । महीमय्याम् नावि वैवस्तं मनुमारोप्य अपात् ॥१५॥

अनुवाद— चाक्षुष मन्वन्तर में समुद्र का सम्पलव होने पर वे भगवान् मत्स्यावतार धारण किए और पृथिवीमयी नौका पर वैवस्वत मनु को बैठाकर उनकी रक्षा किए ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

मत्स्यावतारमाह- रूपमिति । चाक्षुषमन्वन्तरे य उदधीनां संप्लवः संश्लेषस्तस्मिन् । यद्यपि मन्वन्तरावसाने प्रलयो नास्ति तथापि केनचित्कौतुकेन सत्यव्रताय माया प्रदर्शिता यथाऽकाण्डे मार्कण्डेयायेति द्रष्टव्यम् । महीमय्यां नावि, नौकारूपायां मह्यामित्यर्थः । अपाद्रक्षितवान् । वैवस्वतमिति भाविनी संज्ञा ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

रूपम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा मत्स्यावतार का वर्णन किया गया है । चाक्षुष मन्वन्तर में समुद्रों का संप्लव (प्रलय) नहीं हुआ था किन्तु कौतुक वशात् श्रीभगवान् ने राजा सत्यव्रत को माया प्रदर्शित किया । यह उसी तरह से हुआ जिस तरह बिना अवसर के ही भगवान् ने मार्कण्डेय को अपनी माया से प्रलय का दर्शन कराया । उस समय पृथिवी नौका बन गयी । अपात् शब्द का अर्थ है रक्षा किया । वैवस्वत मनु उसके पश्चात् हुए ॥१५॥

सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम् । दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥१६॥

अन्वयः— एकादशे विभुः सुरासुराणां उदधिं मथ्नताम् एकादशे कमठरूपेण मन्दराचलम् पृष्ठे दध्रे ॥१६॥

अनुवाद— जिस समय देवता और दैत्य मिलकर समुद्र का मंथन कर रहे थे उस समय वे ग्यारहवें अवतार में कमठ (कच्छप) का रूप धारण करके अपने पीठ पर मन्दराचल पर्वत को धारण किए ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

कूर्मावतारमाह । कमठः कूर्मस्तद्रूपेणैकादशेऽवतारे विभुर्दध्रे दधार ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

सुरासुराणाम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा कच्छपावतार का वर्णन किया गया है । ग्यारहवें अवतार में जगद् में व्यापक श्रीभगवान् ने कमठ रूप को धारण किया ॥१६॥

धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च । अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया ॥१७॥

अन्वयः— द्वादशमं धान्वन्तरम् त्रयोदशमम् मोहिन्या स्त्रिया अन्यान् मोहयन् सुरान् अपाययत् ॥१७॥

अनुवाद— बारहवें धन्वन्तरि अवतार धारण करके तथा तेरहवें अवतार में मोहिनी स्त्री का रूप धारण करके असुरों को मोहित करके श्रीभगवान् ने देवताओं को अमृत पिलाया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

धन्वन्तर्यवतारमाह । धान्वन्तरि धन्वन्तरिरूपम् । द्वादशमादिप्रयोगस्त्वार्षः । त्रयोदशममेव रूपं तच्चरितेन सह दर्शयति । अपाययदित्यत्र सुधामित्यध्याहारः । मोहिन्या स्त्रिया तद्रूपेणान्यानसुरान्मोहयन् । धन्वन्तरिरूपेणामृतमानीय मोहिन्याऽपाययदित्यर्थः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

धान्वतरम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा धन्वन्तरि अवतार और मोहिनी अवतार का वर्णन किया गया है । धान्वन्तर शब्द के द्वारा धन्वन्तरि रूप को कहा गया है । द्वादशम आदि शब्दों का आर्ष प्रयोग है । तेरहवें रूप

का वर्णन उस रूप के द्वारा किए गये चरित के साथ दिखाया गया है । **अपाययत्** पद के साथ **सुधाम्** पद का अध्याहार करना चाहिए । मोहिनी स्त्री के रूप के द्वारा असुरों को मोहित करके धन्वन्तरि रूप से अमृत को लाकर मोहिनी रूप से देवताओं को भगवान् ने अमृत पिलाया ॥१७॥

चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रद्दैत्येन्द्रमूर्जितम् । ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा ॥१८॥

अन्वयः— चतुर्दशम् नारसिंहं (रूपं) विभ्रत् उर्जितम् दैत्येन्द्रम् वक्षसि एरकाम् कटकृत् यथा करजैः ददार ॥१८॥

अनुवाद— चौदहवां नरसिंह रूप धारण करके भगवान् महाबलवान् दैत्यों के राजा हिरण्यकशिपु के वक्ष:स्थल को अपने नखों से उसी तरह से चीर दिये जिस तरह चटाई बनाने वाला सींक को अपने नखों से चीर देता है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

नृसिंहावतारमाह । नारसिंहं रूपं विभ्रत् । एरकां निर्ग्रन्थि तृणम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

चतुर्दशं इत्यादि श्लोक के द्वारा नरसिंहावतार का वर्णन किया गया है । नरसिंह रूप धारण करके । एरका गांठ रहित तृण विशेष (सींक) को कहते हैं ॥१८॥

पञ्चदशं वामनकं कृत्वागादध्वरं बलेः । पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टम् ॥१९॥

अन्वयः— पञ्चदशं वामनकं (रूपं) कृत्वा त्रिविष्टपम् प्रत्यादित्सुः प्रदत्रयं याचमानः बलेः अध्वरम् अगात् ॥१९॥

अनुवाद— पन्द्रहवाँ वामन रूप धारण करके बलि से स्वर्ग लोक को ले लेने की इच्छा से श्रीभगवान् बलि से तीन डग पृथिवी की याचना करने के लिए उसके यज्ञ में गये ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

वामनावतारमाह- पञ्चदशमिति । दुष्टानां मदं वामयतीति वामनकं रूपम् । ह्रस्वं वा । प्रत्यादित्सुस्तस्मादाच्छिद्य ग्रहीतुमिच्छुः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

पञ्चदशम् इत्यादि श्लोक के द्वारा वामनावतार का वर्णन किया गया है । दुष्टों के मद को दूर करने वाले वामन रूप को धारण किए भगवान् । अथवा छोटा रूप धारण किए । **प्रत्यादित्सुः** पद का अर्थ है बलि से छिनकर ले लेने के इच्छुक ॥१९॥

अवतारे षोडशमे पश्यन्ब्रह्मद्रुहो नृपान् । त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥२०॥

अन्वयः— षोडशमे अवतारे ब्रह्मद्रुहः नृपान् पश्यन् कुपितः महीम् त्रिःसप्तकृत्वः निःक्षत्राम् अकरोत् ॥२०॥

अनुवाद— सोलहवें परशुरामावतार में ब्राह्मणों के द्रोही राजाओं को देखकर क्रुद्ध हुए भगवान् इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रियों से रहित बना दिए ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

परशुरामावतारमाह- अवतार इति । त्रिस्त्रिगुणं यथा भवति तथा सप्तकृत्वः सप्तवारानेकविंशतिवारानित्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अवतारे० इत्यादि श्लोक के द्वारा परशुरामावतार का वर्णन किया गया है । **त्रिःसप्तकृत्वः का** अर्थ हैं इक्कीस बार ॥२०॥

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् । चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥२१॥

अन्वयः— ततः सप्तदशे पराशरात् सत्यवत्यां जातः अल्पमेधसः पुंसः दृष्ट्वा वेदतरोः शाखाः चक्रे ॥२१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् सत्रहवें अवतार में सत्यवती माता के गर्भ से महर्षि पराशर के पुत्र के रूप में उत्पन्न होकर उन्होंने वेद रूपी वृक्ष की शाखाओं का विभाग किया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— व्यासावतारमाह— तत इति । अल्पमेधसोऽल्पप्रज्ञान्पुंसो दृष्ट्वा तदनुग्रहार्थं शाखाश्चक्रे ॥२१॥

भाव प्रकाशिका— **ततः इत्यादि** श्लोक के द्वारा व्यासावतार का वर्णन किया गया है । **अल्पमेधसः इत्यादि**— अल्पबुद्धि वाले पुरुषों को देखकर व्यासजी ने एक ही वेद रूपी वृक्ष की शाखाओं का विभाग उन मनुष्यों पर कृपा करने के लिए किया ॥२१॥

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया । समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥२२॥

अन्वयः— अतः परम् सुरकार्यचिकीर्षया नरदेवत्वमापन्नः समुद्रनिग्रहादीनि विर्याणि चक्रे ॥२२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् अठारहवें अवतार में श्रीभगवान् देवताओं का कार्य सम्पन्न करने की इच्छा से राजा के रूप में रामावतार ग्रहण करके सेतुबन्धन तथा रावणवध इत्यादि वीरतापूर्ण लीलाओं को किए ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

रामावतारमाह- नरेति । नरदेवत्वं राघवरूपेण प्राप्तः सन् । अतः परमष्टादशे ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

नरदेवत्वम् इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीरामावतार का वर्णन किया गया है । श्रीराम रूप से राजा का शरीर धारण करके अठारहवें अवतार में समुद्र बन्ध तथा रावण वध का कार्य किए ॥२२॥

एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी । रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥२३॥

अन्वयः— एकोनविंशे, विंशतिमे भगवान् वृष्णिषु रामकृष्णौ इति जन्मनी प्राप्य भुवोभारम् अहरत् ॥२३॥

अनुवाद— उन्नीसवें और बीसवें अवतारों में भगवान् यदुवंश में बलराम एवं श्रीकृष्ण के रूप में जन्म लेकर पृथिवी के भार को हल्का किए ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

रामकृष्णावतारमाह- एकोनेति विंशतितम इति वक्तव्ये तकारलोपश्छन्दोनुरोधेन । रामकृष्णावित्येवं नामनी जन्मनी प्राप्य ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

एकोनविंशे इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् के बलराम और श्रीकृष्णावतार का वर्णन किया गया है । यद्यपि विंशतितमे कहना चाहिए अतएव **छन्दोभंग** से बचने के लिए **विंशतिमे** यह प्रयोग किया गया हैं । यहाँ पर तकार का लोप छन्द शास्त्र के अनुसार हो गया है । राम और कृष्ण इन दो नामों से जन्म लिया भगवान् ने ॥२३॥

ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम् । बुद्धो नाम्नाऽजनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥२४॥

अन्वयः— ततः कलौ युगे सम्प्रवृत्ते सुरद्विषाम् मोहाय कीकटेषु अजन सुतः बुद्धो नाम्ना भविष्यति ॥२४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् कलियुग के आ जने पर श्रीभगवान् देव द्रोहियों को मोहित करने के लिए मगध प्रदेश में अजन के पुत्र बुद्ध के नाम से अवतीर्ण होंगे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

बुद्धावतारमाह- तत इति । अजनस्य सुतः । 'जिनसुत' इति पाठे जिनोऽपि स एव । कीकटेषु मध्ये गयाप्रदेशे ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

ततः इत्यादि श्लोक के द्वारा बुद्धावतार का वर्णन किया गया है । **अजनसुतः** अर्थात् अजन नामक राजा के पुत्र जहाँ **जिनसुतः** पाठ है, वहाँ भी वही अर्थ है । अजन का ही नाम जिन है । गया प्रदेश को ही कीकट प्रदेश कहते हैं । वहीं पर भगवान् का बुद्धावतार होगा ॥२४॥

अथासौ युगसन्ध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु । जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥२५॥

अन्वयः— अथ युगसन्ध्यायाम् दस्युप्रायेषु राजसु असौ जगत्पतिः विष्णयशसः कल्किनाम्ना भविष्यति ॥२५॥

अनुवाद— उसके पश्चात् कलियुग के संध्याकाल में जब राजागण प्रायः लुटेरे हो जायेंगे उस समय वे जगत् के स्वामी विष्णुयशा नामक ब्राह्मण के कल्कि नामक पुत्र के रूप में अवतीर्ण होंगे ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

कल्क्यवतारमाह- अथेति । युगसन्ध्यायाम् । कलेरन्ते विष्णुयशसो ब्राह्मणात्सकाशाज्जनिता जनिष्यते ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

अथासौ० इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के कल्की अवतार का वर्णन किया गया है । **युगसन्ध्यायाम्** का अर्थ कलियुग के अन्त में भगवान् विष्णुयशा नामक ब्राह्मण के पुत्र के रूप में जन्म लेंगे ॥२५॥

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः । यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥२६॥

अन्वयः— हे द्विजाः यथा अविदासिनः सरसः सहस्रशः कुल्याः स्युः तथा सत्त्वनिधेः हरेः असंख्येयाः अवताराः स्युः ॥२६॥

अनुवाद— हे शौनक आदि महर्षियों ! जिस तरह अगाध सरोवर से हजारों नालियाँ निकलती हैं, उसी तरह सत्त्वनिधि श्रीहरि के असंख्य अवतार होते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अनुक्तसर्वसंग्रहार्थमाह- अवतारा इति । असङ्ख्येयत्वे दृष्टान्तः- यथेति । अविदासिन उपक्षयशून्यात् । 'दसु उपक्षये' इत्यस्मात् । सरसः सकाशात्कुल्याः क्षुद्रप्रवाहाः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

जिन अवतारों का वर्णन नहीं किया जा सका उन सबों का संग्रह करने के लिए **अवतारा० इत्यादि** श्लोक कहा गया है । भगवान् के अवतारों की असंख्येयता का दृष्टान्त उस अक्षय सरोवर से दिया गया है जिससे हजारों छोटी-छोटी नालियाँ निकलती हैं । विदासी पद दसु उपक्षये धातु से व्युत्पन्न है और पयुदास नञ् करके अविदासी पद व्युत्पन्न हुआ है ॥२६॥

ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः । कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥२७॥

अन्वयः— स प्रजापतयः ऋषयः मनवः तथा महौजसः मनुपुत्रा सर्वे हरेरेव कलाः ॥२७॥

अनुवाद— सभी प्रजापतिगण, ऋषिगण, मनुगण तथा महाओजस्वी मनुओं के पुत्रगण ये सबके सब श्रीहरि के अंश हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

विभूतीराह- ऋषय इति ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

ऋषयः इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् की विभूतियों को बतलाया गया है ।।२७।।

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम् । इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ।।२८।।

अन्वयः— एते पुंसः अंशकलाः कृष्णस्तु स्वयं भगवान् इन्द्रारिव्याकुलं लोकं युगे-युगे मृडयन्ति ।।२८।।

अनुवाद— ये सभी अवतार श्रीभगवान् के अंशावतार अथवा कलावतार हैं किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान ही है । दैत्यों के उत्पातों से व्याकुल जगत् को ये सभी अवतार सुखी बनाने का काम करते हैं ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

तत्र विशेषमाह- एते चेति । पुंसः परमेश्वरस्य केचिदंशाः केचित्कलाविभूतयश्च । तत्र मत्स्यादीनामवतारत्वेन सर्वज्ञत्वसर्वशक्तिमत्त्वेऽपि यथोपयोगमेव ज्ञानक्रियाशक्त्याविष्करणम् । कुमारनारदादिष्वाधिकारिकेषु यथोपयोगमंशकलावेशः। तत्र कुमारादिषु ज्ञानावेशः । पृथ्वादिषु शक्त्यावेशः । कृष्णस्तु भगवान्साक्षान्नारायण एव । आविष्कृतसर्वशक्तित्वात् । सर्वेषां प्रयोजनमाह । इन्द्रारयो दैत्यास्तैर्व्याकुलमुपद्रुतं लोकं मृडयन्ति सुखिनं कुर्वन्ति ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

एते च० इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के अवतार विशेष को बतलाया गया है । **पुंसः इत्यादि** इन सभी अवतारों में से कुछ अवतार परमेश्वर के अंश हैं और कुछ अवतार कला तथा विभूति रूप हैं । उनमें भी **मत्स्य इत्यादि** भी भगवान् के अवतार हैं अतएव उन अवतारों में भी सर्वज्ञत्व तथा शक्तिमत्त्व रहता है । किन्तु उन अवतारों में उपयोग के अनुकूल ही ज्ञान, क्रिया तथा शक्ति आविर्भूत होते हैं । कुमारावतार, नारदावतार आदि अधिकारियों में उपयोगानुकूल ही अंशों तथा कलाओं का आवेश होता है । कुमार आदि में ज्ञान का आवेश था। पृथु आदि में भगवान् की शक्ति का आवेश था । भगवान् कृष्ण तो साक्षात् नारायण ही हैं । क्योंकि इनमें श्रीभगवान् की सारी शक्तियाँ आविर्भूत हैं । इन सभी अवतारों का प्रयोजन यही है कि जब जगत् इन्द्र के शत्रु दैत्यों के द्वारा उपद्रव ग्रस्त होने के कारण व्याकुल हो जाता है तो ये अवतार समय-समय से जगत् को सुखी बनाने का काम करते हैं ।।२८।।

जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः । सायंप्रातर्गृणन्भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते ।।२९।।

अन्वयः— यः नरः भगवतः एतत् गुह्यं जन्म प्रयतः सायं प्रातः भक्त्या गृणन् भवेत् सः दुःखग्रामात् विमुच्यते ।।२९।।

अनुवाद— जो मनुष्य श्रीभगवान् के इन गोपनीय जन्मों की कथा को नियम पूर्वक भक्ति से भरकर सायंकाल एवं प्रातःकाल पढ़ते हैं वे सभी दुःखों से छूट जाते हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

एतत्कीर्तनफलमाह- जन्मेति । गुह्यमतिरहस्यं जन्म । प्रयतः शुचिः सन् । दुःखग्रामात्संसारात् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

इन अवतारों के कीर्तन का फल **जन्म० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । श्रीभगवान् के ये जन्म अत्यन्त रहस्यमय हैं । **प्रयतः** का अर्थ है पवित्रता पूर्वक अर्थात् एकाग्रमन से **दुःखग्रामात् विमुच्यते** का अर्थ है संसार से मुक्त हो जाता हैं ।।२९।।

एतद्रूपं भगवतो ह्यरूपस्य चिदात्मनः । मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥३०॥

अन्वयः— एतद्रूपम् अरूपस्य चिदात्मनः हि भगवतः मायागुणैः महददिभिः आत्मानि विरचितम् ॥३०॥

अनुवाद— जीवों का यह जो स्थूल शरीर है, रूपादि रहित तथा ज्ञान स्वरूप परमात्मा की माया के गुण महत् तत्त्व आदि से परमात्मा में ही कल्पित हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

विमुच्यत इति यदुक्तं तत्र कथं देहद्वयसंबन्धे सति तद्विमुक्तिरित्याशङ्क्य देहद्वयसंबन्धस्य भगवन्मायोत्थाविद्याविलसितत्वादेतच्छ्रवणादिजनितविद्यया तन्निवृत्तिरुपपद्यत इत्याशयेनाह- एतदिति पञ्चभिः । अरूपस्य चिदेकरसस्यात्मनो जीवस्यैतत्स्थूलं रूपं शरीरं भगवतो या माया तस्य गुणैर्महदादिरूपैर्विरचितम् । क्व आत्मनि । आत्मस्थाने शरीरं कृतमित्यर्थः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

उनतीसवे श्लोक में जो **विमुच्यते** कहा गया है उसके विषय में प्रश्न उठता है कि दो देहों का सम्बन्ध रहने पर उसकी कैसे मुक्ति हो सकती है ? इस तरह की आशङ्का करके कहते हैं, दो देहों का सम्बन्ध श्रीभगवान् की माया से उत्पन्न अविद्या का विलास रूप होने के कारण इन अवतारों के श्रवण जन्य विद्या के द्वारा निवृत्ति हो जाने में किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है । स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकार के शरीरों की मुक्ति हो जाती है। इसी अर्थ का प्रतिपादन **एतत् इत्यादि** पाँच श्लोकों से किया गया है । **अरूपस्य चिदात्मनः** इन दो पदों का अर्थ है कि जीवात्मा रूप रहित तथा ज्ञानमात्र स्वरूप है । उसी का यह स्थूल रूप शरीर है । यह भगवान् की माया के जो महत् इत्यादि गुण हैं उन सबों से विरचित है । अर्थात् आत्मा के स्थान में शरीर निर्मित हैं ॥३०॥

यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनिले । एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः ॥३१॥

अन्वयः— यथा अबुद्धिभिः मेघौघः नभसि, पार्थिवः रेणुः वा अनिले आरोपयन्ति एवम् अबुद्धिभिः द्रष्टरि आत्मनि आतानि दृश्यत्वम् आरोपितम् ॥३१॥

अनुवाद— जिस तरह अज्ञानी लोग वायु के ऊपर रहने वाले मेघ समूह का आकश में अरोप करते हैं, उसी तरह अज्ञानी पुरुष द्रष्टा आत्मा में दृश्यत्व का आरोप करते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

कथमित्यपेक्षायां स्वरूपावरणेन तदध्यासत इति सदृष्टान्तमाह- यथेति । यथा वाय्वाश्रितो मेघौघो नभस्याकाशेऽबुद्धिभिरज्ञैरारोपितः । यथा वा पार्थिवो रेणुस्तद्गतं धूसरत्वद्यनिले । एवं द्रष्टर्यात्मनि दृश्यत्वं दृश्यत्वादिधर्मकं शरीरमारोपितमित्यर्थः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि आत्मा में शरीर का अरोप कैसे होता है ? तो इसका उत्तर है कि आत्मा के स्वरूप के अज्ञान के द्वारा आवृत हो जाने के कारण उसमें शरीर का आरोप हो जाता है । इस बात को **दृष्टान्तोपन्यास** पूर्वक बतलाते हैं । **यथावाय्वाश्रितः इत्यादि** जैसे वायु के आधार पर रहने वाले मेघ के समूह का आरोप अज्ञानी पुरुष आकाश में करते हैं । अथवा जैसे पृथिवी की धूल और धूल में रहने वाले धूसरत्व का आरोप अज्ञानी जन वायु में करते हैं, उसी तरह से अज्ञानीपुरुष द्रष्टा आत्मा में, दृश्यत्वादि धर्म से युक्त शरीर का आरोप करते हैं ॥३१॥

अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम् । अदृष्टाश्रुतमवस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्भवः ॥३२॥

अन्वयः— अतः परं यत् अव्यक्तम्, अव्यूढगुणव्यूहितम् अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात् स जीवः यत् पुनर्भवः ॥३२॥

अनुवाद— जो इस स्थूल शरीर से भिन्न है, जो अपरिणत हाथ पैर आदि गुणों से निर्मित है तथा आकार विशेष से रहित होने के कारण अव्यक्त (सूक्ष्म) है । वह किसी दृष्ट अथवा श्रुत पदार्थ के समान नहीं होने के कारण अदृष्टाश्रुत वस्तु है वही जीव है । उसी का बार-बार जन्म होता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

किंच अतः स्थूलाद्रूपात्परमन्यदपि रूपमारोपितमित्यनुषङ्गः । कथंभूतं तत् । यदव्यक्तं सूक्ष्मम् । तत्र हेतुः- अव्यूढगुणव्यूहितम् । व्यूहः करचरणादिपरिणामः । तथा अव्यूढा अपरिणता ये गुणास्तैर्व्यूहितं रचितम् आकारविशेषरहितत्वादव्यक्तमित्यर्थः । एतदेव कुतस्तत्राह । अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात् । यच्चाकारविशेषवद्वस्तु तदस्मदादिवदृश्यते। श्रूयते वा इन्द्रादिवत् । इदं तु न तथा । तर्हि तस्य सत्त्वे किं प्रमाणं तत्राह । स जीवो जीवोपाधिः **'जीवो जीवेन निर्मुक्तो' 'जीवो जीवं विहाय'** इत्यादौ जीवोपाधौ लिङ्गदेहे जीवशब्दप्रयोगात् । जीवोपाधितया कल्प्यत इत्यर्थः । ननु स्थूलमेव भोगायतनत्वाज्जीवस्योपाधिरस्तु किमन्यकल्पनयेत्यत आह । यद्यस्मात्सूक्ष्मात्पुनर्भवः पुनर्जन्म । उत्क्रान्तिगत्यागतीनां तेन विनाऽसंभवादिति भावः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में जीव का निरूपण किया गया है इस स्थूल शरीर से भिन्न इसके भीतर रहने वाला जो लिङ्ग शरीर है वही आरोपित है । वह अरोपित शरीर कैसा है ? तो इसका उत्तर है, वह अव्यक्त अर्थात् सूक्ष्म है । उसके सूक्ष्म होने का हेतु है अव्यूढगुणव्यूहितम् । हाथ पैर आदि के परिणाम को व्यूह कहते है । जो अपरिणत गुण हैं । उन सबों से वह रचित है । फलत: आकार विशेष से रहित होने के कारण वह अव्यक्त है । प्रश्न है कि वह अव्यक्त कैसे है ? तो इसके उत्तर में कहा गया है क्योंकि वह अदृष्टाश्रुत वस्तु है । अर्थात् हमलोग जिन वस्तुओं को देखते अथवा सुनते हैं वे वस्तुएँ इन्द्रादि के समान आकार विशेष से युक्त होती हैं किन्तु यह जो सूक्ष्म शरीर है वह आकार विशेष से रहित है अतएव अदृष्टाश्रुत है ।

तर्हि तस्य० इत्यादि- तो प्रश्न होता है कि उस शरीर के सद्भाव में क्या प्रमाण है तो इसका उत्तर देते हैं— उसका उत्तर है कि वही जीव है । अर्थात् जीवोपाधि है । इसीलिए **जीवो जीवेन निर्मुक्तः** अर्थात् जीव-जीव (लिङ्ग शरीर) से मुक्त हो गया । इसी तरह यह भी प्रयोग होता है **जीवो जीवं विहाय** अर्थात् जीव जीव को (लिङ्ग शरीर को) छोड़कर । ऐसे प्रयोगों में जीवोपाधि जो लिङ्ग शरीर है उसी के अर्थ में जीव शब्द का प्रयोग देखा जाता है । उस लिङ्गशरीर की ही जीवोपाधि रूप से कल्पना की जाती है ।

ननुस्थूलमेव० इत्यादि- प्रश्न होता है कि भोगों का आश्रय तो स्थूल शरीर है, क्योंकि उसी शरीर में रहकर जीव सुख-दुःख इत्यादि भोगों को भोगता है । अतएव उसी को जीवोपाधिमान लेना चाहिए, उससे भिन्न सूक्ष्मशरीर की कल्पना करने की क्या आवश्यकता है ? तो इसके उत्तर में कहा गया है- **यत्पुनर्भवः** क्योंकि उसके सूक्ष्म होने के ही कारण पुनर्जन्म होता है अर्थात् बार-बार जन्म होता है । यदि उस सूक्ष्म जीवोपाधि को नहीं स्वीकार किया जाय तो **उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम्** इस सूत्र का समन्वय नहीं हो सकता है । इस सूत्र में जीव के शरीर से निकलने, तत् तत् लोकों में जाने और फिर विभिन्न लोकों से आने वाला बतलाया गया है । यदि वह सूक्ष्म हो तो यह सम्भव नहीं हो पायेगा ॥३२॥

यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा । अविद्ययात्मनि कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥३३॥

अन्वयः— इमे सदसद्रूपे आत्मन अविद्यया अरोपिते यत्र एव संविदा प्रतिषिद्धे तद्ब्रह्म दर्शनम् ॥३३॥

अनुवाद— स्थूल और सूक्ष्म ये दोनों शरीर आत्मा में अविद्या के द्वारा आरोपित हैं । जब आत्मा के स्वरूप का ज्ञान हो जाने से इन दोनों शरीरों का आरोप दूर हो जाता है, तब ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तदेवमुपाधिद्वयमुक्त्वा तदपवादेन जीवस्य ब्रह्मतामाह- यत्रेति । यत्र यदा इमे स्थूलसूक्ष्मे रूपे स्वसंविदा श्रवणमननादिभक्त्या स्वरूपसम्यग्ज्ञानेन प्रतिषिद्धे भवतः । ज्ञानेन प्रतिषेधार्हत्वे तमेव हेतुमाह । अविद्ययात्मनि कृते कल्पिते इति हेतोः । तद्ब्रह्म। तदा जीवो ब्रह्मैव भवतीत्यर्थः । कथंभूतम् । दर्शनं ज्ञानैकस्वरूपम् ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से दो उपाधियों का वर्णन करके उन दोनों उपाधियों का बाध हो जाने पर जीव ब्रह्म हो जाता है, इस बात को बतलाने के लिए **यत्रेमे० इत्यादि** श्लोक को कहा गया है । अत्र अर्थात् जिस समय ये स्थूल और सूक्ष्म रूप वाली दोनों उपाधियाँ, **स्वसंविदा** अर्थात् श्रवण मनन इत्यादि भक्ति के द्वारा स्वरूप का अच्छी तरह से ज्ञान हो जाने के कारण प्रतिषिद्ध हो जाती हैं अर्थात् दूर हो जाती है । ये दोनों उपाधियाँ ज्ञान के द्वारा आत्मा में कल्पित हैं । कल्पित होने के ही कारण मिथ्या हैं और मिथ्या वस्तु का ज्ञान से बाध हो ही जाता है। इन दोनों उपाधियों का बाध हो जाना ही ब्रह्मदर्शन है । अर्थात् उस समय जीव ब्रह्म ही हो जाता है । वह दर्शन ज्ञानमात्र स्वरूप है ।।३३।।

यद्येषोपरता देवी माया वैशारदी मतिः । संपन्न एवेति विदुर्महिम्नि स्वे महीयते ।।३४।।

अन्वयः— यदि वैशारदी देवी एषा माया उपरता तदा सम्पन्नः स्वमहिम्नि महीयते एव इति विदुः ।।३४।।

अनुवाद— जब यह ईश्वर की संसार चक्र से क्रीडा करने वाली यह माया निवृत्त हो जाती है, तो वही माया विद्यारूप से परिणत हो जाती है और इस सम्पूर्ण अविद्या के विनष्ट हो जाने के कारण जीव ब्रह्म स्वरूप होकर अपनी महिमा में ही विराजित हो जाता है यह ज्ञानी पुरुष जानते हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

तथापि भगवन्मायायाः संसृतिकारणभूताया विद्यमानत्वात्कथं ब्रह्मता तत्राह- यदीति । यदीत्यसंदेहे संदेहवचनम् '**यदि वेदाः प्रमाणं स्युः**' इतिवत् । वैशारदी विशारदः सर्वज्ञ ईश्वरस्तदीया देवी संसारचक्रेण क्रीडन्ती एषा माया यद्युपरता भवति। किमित्युपरता भवेत्तत्राह । मतिर्विद्या । अयं भावः- यावदेषाऽविद्यात्मनाऽऽवरणविक्षेपौ करोति तावन्नोपरमति । यदा तु सैव विद्यारूपेण पारिणता तदा सदसद्रूपं जीवोपाधिं दग्ध्वा निरिन्धनाग्निवत्स्वयमेवोपरमेदिति । तदा संपन्नो ब्रह्मस्वरूपं प्राप्त एवेति विदुस्तत्त्वज्ञाः किमतः । यद्येवं स्वे महिम्नि परमानन्दस्वरूपे महीयते पूज्यते विराजत इत्यर्थः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

यह प्रश्न होता है कि दोनों उपाधियों के बाधित हो जाने पर भी माया तो बनी ही रहती है ऐसी स्थिति में मोक्ष का होना कैसे सम्भव है ? क्योंकि संसार का कारण तो वह माया ही है । तो इसका उत्तर **यदि० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । विना सन्देह के जहाँ पर संदेह व्यक्त किया जाता है, वहाँ यदि शब्द का प्रयोग होता है । जैसे **यदि वेदाः प्रमाणं स्युः।**' इस वाक्य में यदि शब्द से प्रामाणिक भी वेदों के विषय में यदि शब्द से संदेह व्यक्त किया गया है ।

वैशारदी० इत्यादि— विशारद शब्द वाच्य सर्वज्ञ ईश्वर हैं माया उनकी है; अतएव माया वैशारदी है । वह देवी है अर्थात् संसार चक्र से क्रीडा करती है । जब वह माया उपरत हो जाती है अर्थात् क्रीडा करना बन्द कर देती है तो वही माया मति अर्थात् विद्या स्वरूपिणी हो जाती है । और वह स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर रूपी उपाधि को विनष्ट करके उसी तरह से विनष्ट हो जाती है जिस तरह से अग्नि सम्पूर्ण इन्धनों को जलाकर नष्ट हो जाती है । उस समय जीव सम्पन्न हो जाता है अर्थात् वह ब्रह्म स्वरूप हो जाता है और ऐसा हो जाने पर वह अपने ब्रह्मस्वरूप में विराजमान हो जाता है ।।३४।।

एवं जन्मानि कर्माणि ह्यकर्तुरजनस्य च । वर्णयन्ति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्पतेः ॥३५॥

अन्वयः— अकर्तुः अजनस्य हृत्पतेः एवं कवयः जन्मानि, कर्माणि च वेदगुह्यानि वर्णयन्ति ॥३५॥

अनुवाद— अजन्मा और अकर्ता इदयेश्वर परमात्मा के वास्तव में जन्म और कर्म नहीं होते हैं फिर भी तत्त्वज्ञ पुरुष उसके जन्मों और कर्मों का वर्णन वेदों के रहस्य रूप से करते हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

यथा जीवस्य जन्मादि माया एवमीश्वरस्यापि जन्मादि मायेत्याह- एवमिति । अकर्तुः कर्माणि । अजनस्य जन्मानि हृत्पतेरन्तर्यामिणः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह जीवों के जन्म आदि माया जन्य हैं उसी तरह ईश्वर के भी जन्मादि माया मात्र है । इसी अर्थ का प्रतिपादन **एवम्० इत्यादि** श्लोक से किया गया है । अकर्ता भी ईश्वर के कर्म और अजन्मा ईश्वर के जन्म माया रूप हैं हृत्पतेः अर्थात् अन्तर्यामी परमेश्वर के ॥३५॥

स वा इदं विश्वममोघलीलः सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् ।
भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः ॥३६॥

अन्वयः— स वा अमोघलीलः इदं विश्वम् सृजति, अवति, अत्ति किन्तु अस्मिन् न सज्जते । भूतेषु च अन्तर्हितः षड्गुणेशः षाड्वर्गिकं जिघ्रति किन्तु स्वतंत्रः सः न सज्जते ॥३६॥

अनुवाद— ईश्वर की लीला अमोघ है । वे इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं, इसकी रक्षा करते हैं और प्रलय काल के आने पर वे इसका संहार कर देते हैं, किन्तु वे जगत् से आसक्त नहीं होते हैं । क्योंकि इन कार्यों को करने में वे स्वतन्त्र हैं । वे सभी भूतों के अन्तर्यामी रूप से रहकर मन सहित छह इन्द्रियों के विषयो को उनसे दूर रहकर उसी तरह से ग्रहण करते है । वे छहो इन्द्रियो के स्वामी हैं उनके विषयों से वे अनासक्त रहते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि जीवादीश्वरस्य को विशेषः स्वातन्त्र्यमेव विशेष इत्याह- सा वा इति । षाड्वर्गिकमिन्द्रियषड्वर्गविषयं जिघ्रति दूरादेव गन्धवद्गृह्णाति न तु सज्जत इत्यर्थः । कुतः । षड्गुणेशः षडिन्द्रियनियन्ता ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि यदि जीव और ईश्वर दोनों के जन्मादि माया से होते हैं तो फिर जीव और ईश्वर में क्या भेद है ? तो इसके उत्तर में ईश्वर की स्वतन्त्रता को ही विशेष रूप से बतलाते हुए **स वा० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । **षाड्वर्गिकं** शब्द से इन्द्रियों के षड्वर्ग विषयों को बतलाया गया है । वे अन्तर्यामी षड्वर्ग विषयों को गन्ध के समान दूर से ही ग्रहण करते हैं किन्तु वे उन विषयों में आसक्त नहीं होते हैं; क्योंकि वे षड्गुणेश हैं अर्थात् इन्द्रियों के नियामक हैं ॥३६॥

न चास्य कश्चिन्निपुणेन धातुरवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः ।
नामानि रूपाणि नमोवचोभिः सन्तन्वतो नटचर्यामिवाज्ञः ॥३७॥

अन्वयः— कश्चित् कुमनीष अज्ञः जन्तुः निपुणेन मनोवचोभिः नामानि रूपाणि च नटचर्यामिव सन्तन्वत; अस्य धातुः ऊतीः न अवैति ॥३७॥

अनुवाद— कोई भी कुबुद्धि युक्त अज्ञानी मनुष्य अपनी तर्क की कुशलता के द्वारा मन से रूपों (शरीरों) तथा वाणी से नामों का अच्छी तरह से विस्तार करने वाले इस परमेश्वर की लीलाओं को नहीं जान सकता है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

ननु किमीश्वरस्य सृष्ट्यादिकर्मभिर्विषयभोगैर्वा तत्राह- न चेति । धातुर्जगद्विधातुरीश्वरस्य ऊतीर्लीला: कुमनीष: कुबुद्धिर्निपुणेन तर्कादिकौशलेन नावैति न जानाति । मनसा रूपाणि वचसा नामानि संतन्वतः सम्यग्विस्तारयतः । वचोभिरिति बहुत्वं श्रुत्यभिप्रायेण। मनोवचोभिः सहेति वा ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि ईश्वर को सृष्टि आदि कर्मों को करने से अथवा विषयों के भोग से क्या प्रयोजन है ? तो इसका उत्तर **न चास्य० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । जगत् के निर्माता ईश्वर की **ऊती:** अर्थात् लीला को **कुमनीष:** कुबुद्धि मनुष्य तर्क इत्यादि की कुशलता के द्वारा नही जान सकता है । **मनसा० इत्यादि** वे अपने मन से ही रूपों का तथा वाणी से नामों का अच्छी तरह से विस्तार करते हैं । **वचोभि:** में बहुवचनान्त प्रयोग **'यतो वाचो निर्वर्तन्ते अप्राप्यमनसा सह'** इस श्रुति के अभिप्राय से किया गया है । अथवा मन एवं वाणियों के साथ ।।३७।।

स वेद धातु: पदवीं परस्य दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः ।
योऽमायया सन्ततयाऽनुवृत्त्या भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ।।३८।।

अन्वयः— य: अमायया सन्ततया अनुवृत्या तत्पादसरोजगन्धम् भजेत सः दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः परस्य धातु: पदवीम् वेद ।।३८।।

अनुवाद— जो निष्कपट भाव से बिना किसी कामना के ही निरन्तर सेवा के द्वारा श्रीभगवान् के चरण कमलों की सुगन्धि का सेवन करता है वही नि:सीम पराक्रम सम्पन्न चक्रधारी श्रीभगवान् के स्वरूप को जान पाता है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

भक्तस्तु कथंचिज्जनातीत्याह- स वेदेति । अमाययाऽकुटिलभावेन । सन्ततया निरन्तरया । अनुवृत्त्या आनुकूल्येन भजेत् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् की लीला को किसी प्रकार से भक्त ही जान पाता है । इस अर्थ का प्रतिपादन **स वेद० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया गया है । **अमायया इत्यादि** जो अकुटिलभाव से निरन्तर अनुवृत्ति अर्थात् सेवा के द्वारा श्रीभगवान् के चरण रूपी कमलों के पराग का सदा अनुकूल रूप से सेवन करता है वही श्रीभगवान् की पदवी अर्थात् स्वरूप को जान पाता है ।।३८।।

अथेह धन्या भगवन्त इत्थं यद्वासुदेवेऽखिललोकनाथे ।
कुर्वन्ति सर्वात्मकमात्मभावं न यत्र भूयः परिवर्त उग्रः ।।३९।।

अन्वयः— अथ इह भगवन्तः धन्याः यत् अखिललोकनाथे वासुदेवे इत्थम् सर्वात्मकम् आत्मभावं कुर्वन्ति । यत्र भूयः उग्रः परिवर्तभावः न ।।३९।।

अनुवाद— अतएव आपलोग कृतार्थ हैं क्योंकि इस प्रकार के प्रश्नों के द्वारा सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् में ऐकान्तिक मनोभाव को लगाते हैं। उसके करने पर मनुष्यों के जन्म मरण आदि का चक्र समाप्त हो जाता है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

भक्तिमार्गे प्रवृत्तानृषीनभिनन्दति- अथेति। यतो भक्त एव भगवत्तत्त्वं जानाति। अथ अतो भगवन्तः सर्वज्ञा भवन्तो धन्याः कृतार्थाः। कुतः। यद्यस्मादित्थं प्रश्नैर्वासुदेव आत्मभावं मनोवृत्तिं कुर्वन्ति। सर्वात्मकमैकान्तिकम्। यत्र यस्मिन्भावे सति भूयः उग्रो गर्भवासादिदुःखरूपः परिवर्तो जन्मरणाद्यावर्तो न भवति ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

भक्ति मार्ग में प्रवृत्त शौनकादि ऋषियों का अभिनन्दन करते हुए सूतजी **अथेह० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं। चूकि भक्त ही भगवत् तत्त्व को जानते हैं अतएव सर्वज्ञ आपलोग धन्य अर्थात् कृतार्थ हैं। क्योंकि इस प्रकार के प्रश्नों के द्वारा भगवान्; वासुदेव में ऐकान्तिक आत्मभाव (मनोवृत्ति) करते हैं। उस भाव के हो जाने पर पुनः गर्भवास आदि दुःखरूप जन्म-मरण इत्यादि का चक्र समाप्त हो जाता है ॥३९॥

इद भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम्। उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः ॥४०॥

अन्वयः— भगवान् ऋषिः ब्रह्मसम्मित्तम् उत्तमश्लोकचरितं इदं भागवतं नाम पुराणम् चकार ॥४०॥

अनुवाद— ऐश्वर्य सम्पन्न महर्षि व्यास ने सम्पूर्ण वेद के समान तथा उत्तम श्लोक श्रीभगवान् के चरित से युक्त इस श्रीमद्भागवत नामक पुराण की रचना की है ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

सूत किमेतच्छास्त्रमपूर्व कथयसि तत्राह। ब्रह्मसंमितं सर्ववेदतुल्यम्। उत्तमश्लोकस्य चरितं यस्मिस्तत्। ऋषिर्व्यासः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

ऋषियों के द्वारा यह पूछे जाने पर कि आप कोई अपूर्व (नवीन) शास्त्र कह रहे हैं क्या ? तो इसके उत्तर में कहते हैं— **अथेह० इत्यादि-** ब्रह्म संमितम् अर्थात् सम्पूर्ण वेद के समान। जिसमें उत्तम श्लोक श्रीभगवान् का चरित है वह उत्तम श्लोक चरित है। ऋषि शब्द महर्षि व्यास का वाचक है ॥४०॥

निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत्। तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ॥४१॥

अन्वयः— तत् लोकस्य निःश्रेयसाय धन्यं, महत् स्वस्त्यनं इदम् आत्मवताम् वरम् सुतम् ग्राहयामास ॥४१॥

अनुवाद— संसार का कल्याण करने के लिए उन्होंने उस धन्य (सर्वश्रेष्ठ) अत्यन्त मङ्गलमय इस श्रीमद्भागवत नामक पुराण को आत्मज्ञों में श्रेष्ठ अपने पुत्र शुकदेवजी को उन्होंने पढ़ाया ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

तत्सम्प्रदाय प्रवृत्तिमाह सुतम् शुकम् ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

इस श्रीमद्भागवत पुराण के सम्प्रदाय के प्रारम्भ को **निःश्रयेसाय० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं। सुतम् पद से शुकदेवजी को कहा गया है ॥४१॥

सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम्। स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ॥४२॥

अन्वयः— सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम्। स तु महाराजं परीक्षितम् संश्रावयामास ॥४२॥

अनुवाद— इस ग्रन्थ में सभी वेदों तथा इतिहासों के सारभाग को निकालकर रख दिया गया है । वे शुकदेवजी इस पुराण को महाराज परीक्षित को सुनाये ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्रीमद्भागवत पुराण में सम्पूर्ण वेदों तथा इतिहासों के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अर्थों का सन्निवेश किया गया है । इस पुराण को श्रीशुकदेवजी ने सर्वप्रथम राजा परीक्षित् को सुनाया ।।४२।।

प्रायोपविष्टं गङ्गायां परीतं परमर्षिभिः। तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षेर्भूरितेजसः ।।४३।।
अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात्। सोऽहं वः श्रावयिष्यामि यथाधीतं यथामति।।४४।।

अन्वयः— हे विप्राः ! गङ्गायां प्रायोपविष्टम् परमर्षिभिः परीतम् तत्र भूरितेजसः विप्रर्षेः कीर्तयतः तत्र निविष्टं तदनुग्रहात् अहम् तत्र अध्यगमं सोऽहम् यथा अधीतं यथामति वः श्रावयिष्यामि ।।४३-४४।।

अनुवाद— हे विप्रों गङ्गा के तट में मरण काल पर्यन्त के लिए उपवास करके बैठे हुए तथा परमर्षियों के द्वारा घिरे हुए राजा परीक्षित् को जब विप्रर्षि (शुकदेवजी) श्रीमद्भागवत सुना रहे थे उस समय वहाँ पर बैठे हुए मैंने उसको उनकी कृपा से ही सुना, अतएव मैने जैसा पढ़ा है उसको अपनी बुद्धि के अनुसर आपलोगों को सुनाऊँगा ।।४३-४४।।

भावार्थ दीपिका

प्रायेण मृत्युपर्यन्तानाशकेनोपविष्टमिति परमवैराग्योक्तिः । हे विप्राः । विप्रर्षेः सकाशात् ।।४३।। अध्यगमं ज्ञातवानस्मि। तत्र कीर्तयतस्तत्र निविष्ट इति चान्वयभेदात्तत्रपदावृत्तिरदोषः । यथाऽधीतं नतु स्वमतिविलसितम् । तत्रापि यथामति स्वमत्यनुसारेण। संक्षेपतः कथितं विस्तरतः श्रावयिष्यामि ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

गङ्गा तट में मृत्यु काल पर्यन्त उपवास करने के लिए बैठे हुए यह **प्रायोपविष्टम्** पद का अर्थ है । यह कहकर राजा परीक्षित् के परम वैराग्य को सूचित किया गया है । हे विप्रों शुकदेवजी की सन्निधि में मैंने इस श्रीमद्भागवत शास्त्र का अध्ययन किया । यदि कोई कहे कि **तत्र कीर्तयतः** तथा **तत्र निविष्टः** इस वाक्य में दो बार तत्र पद का सन्निवेश किए जाने के कारण पुनरावृत्ति नामक दोष है तो ऐसी बात इसलिए नहीं है कि दोनों तत्र पदों का अन्वय अलग-अलग है । फलतः उक्त दोष का अभाव है । **यथाधीतम्** कहकर सूतजी ने यह बतलाया है कि जैसा मैने अध्ययन किया है, वैसा ही मैं सुनाऊँगा न कि अपनी बुद्धि से कल्पना करके सुनाऊँगा । **यथामति** का अभिप्राय है कि मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सुनाऊँगा । जो संक्षेप में कहा गया है । उसको विस्तार पूर्वक सुनाऊँगा ।।४३-४४।।

कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह । कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

अन्वयः— कृष्णे धर्मज्ञानादिभिः सह स्वधामोपगते कलौ नष्टदृशाम् अधुना पुराणार्कः उदितः ।।४५।।

अनुवाद— जब भगवान् श्रीकृष्ण धर्म तथा ज्ञान आदि के साथ अपने धाम में चले गये, उसके पश्चात् कलियुग में जो लोग अज्ञान रूपी अन्धकार से अन्धे हो रहे है, उनके लिए ज्ञान के प्रकाशक पुराण रूपी सूर्य का उदय हुआ है ।।४५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

भावार्थ दीपिका

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भार्वाथदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ।।३।।

नोट— श्रीमद्भागवत के गीताप्रेस संस्करण में **कलौ नष्टदृशाम्०** श्लोक के पश्चात् **अहं चाध्यगमम इत्यादि** श्लोक मुद्रित है ।

चौथा अध्याय

महर्षि व्यास का असन्तोष

व्यास उवाच

इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् । वृद्धः कुलपतिः सूतं वह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ॥१॥

अन्वयः— दीर्घसत्रिणाम् मुनीनां वृद्धः कुलपतिः वहवृचः शौनकः इति ब्रुवाणं सूतं संस्तूय अब्रवीत् ॥१॥

व्यासजी ने कहा

अनुवाद— दीर्घ कालीन सत्र में सम्मिलित हुए मुनियों में विद्यावयोवृद्ध, कुलपति ऋग्वेदी शौनक महर्षि ने उपर्युक्त बातों को कहने वाले सूतजी की प्रशंसा करके कहा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तुर्ये भागवतारम्भकारणत्वे वर्ण्यते । व्यासस्यापरितोषस्तु तपःप्रवचनादिभिः ॥१॥ इत्येवं प्रसन्नतया श्रावयिष्यामीति ब्रुवाणम् । मुनीनां बहूना मध्ये एकेन वक्तव्ये यो वृद्धो वृद्धेष्वपि बहुषु यः कुलपतिर्गणमुख्यस्तेष्वपि बहुषु यो बह्वृचः ऋग्वेदी तेन वक्तव्यम् । अत एवंभूतत्वाच्छौनकोऽब्रवीत् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौथे अध्याय में तपस्या तथा प्रवचन आदि के द्वारा होने वाले असन्तोष को इस श्रीमद्भागवत पुराण के प्रारम्भ के कारण रूप से वर्णन किया गया है । यह इस अध्याय का सारांश है ।

इत्येवम्० इत्यादि- इस तरह से मैं सुनाऊँगा, इस बात को सुनकर प्रसन्नता पूर्वक सुनाऊँगा यह कहने वाले सूतजी को । **मुनीनाम्० इत्यादि** नियम है कि यदि बहुत मुनि हों तो उनमें से किसी एक वृद्ध को बोलना चाहिए । अनेक वृद्धों में भी जो कुलपति (सबों में मुख्य) हो और उन सबों में भी जो ऋग्वेदी हो उसको बोलना चाहिए । अतएव इन सभी गुणों से युक्त शौनक महर्षि ने कहा ॥१॥

शौनक उवाच

सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर । कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवान् शुकः ॥२॥

अन्वयः— हे महाभाग सूत ! हे सूत ! हे वदतां वर ! भागवतीम् यां पुण्यां कथां भगवान् शुकः प्राह तां नो वद ॥२॥

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे महाभाग सूतजी जिस पवित्र श्रीमद्भागवत की कथा को शुकदेवजी ने कहा था उसी कथा को आप हमलोगों को सुनाइये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भार्वाथदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्याय: ।।३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ।।३।।

नोट— श्रीमद्भागवत के गीताप्रेस संस्करण में **कलौ नष्टदृशाम्०** श्लोक के पश्चात् **अहं चाध्यगमम इत्यादि** श्लोक मुद्रित है ।

चौथा अध्याय

महर्षि व्यास का असन्तोष

व्यास उवाच

इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् । वृद्धः कुलपतिः सूतं वह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ॥१॥

अन्वयः— दीर्घसत्रिणाम् मुनीनां वृद्धः कुलपतिः वहवृचः शौनकः इति ब्रुवाणं सूतं संस्तूय अब्रवीत् ।।१।।

व्यासजी ने कहा

अनुवाद— दीर्घ कालीन सत्र में सम्मिलित हुए मुनियों में विद्यावयोवृद्ध, कुलपति ऋग्वेदी शौनक महर्षि ने उपर्युक्त बातों को कहने वाले सूतजी की प्रशंसा करके कहा ।।१।।

भावार्थ दीपिका

तुर्ये भागवतारम्भकारणत्वे वर्ण्यते । व्यासस्यापरितोषस्तु तपःप्रवचनादिभिः ।।१।। इत्येवं प्रसन्नतया श्रावयिष्यामीति ब्रुवाणम् । मुनीनां बहूना मध्ये एकेन वक्तव्ये यो वृद्धो वृद्धेष्वपि बहुषु यः कुलपतिर्गणमुख्यस्तेष्वपि बहुषु यो बह्वृचः ऋग्वेदी तेन वक्तव्यम् । अत एवंभूतत्वाच्छौनकोऽब्रवीत् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

चौथे अध्याय में तपस्या तथा प्रवचन आदि के द्वारा होने वाले असन्तोष को इस श्रीमद्भागवत पुराण के प्रारम्भ के कारण रूप से वर्णन किया गया है । यह इस अध्याय का सारांश है ।

इत्येवम्० इत्यादि- इस तरह से मैं सुनाऊँगा, इस बात को सुनकर प्रसन्नता पूर्वक सुनाऊँगा यह कहने वाले सूतजी को । **मुनीनाम्० इत्यादि** नियम है कि यदि बहुत मुनि हों तो उनमें से किसी एक वृद्ध को बोलना चाहिए । अनेक वृद्धों में भी जो कुलपति (सबों में मुख्य) हो और उन सबों में भी जो ऋग्वेदी हो उसको बोलना चाहिए । अतएव इन सभी गुणों से युक्त शौनक महर्षि ने कहा ।।१।।

शौनक उवाच

सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर । कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवान् शुकः ॥२॥

अन्वयः— हे महाभाग सूत ! हे सूत ! हे वदतां वर ! भागवतीम् यां पुण्यां कथां भगवान् शुकः प्राह तां नो वद ।।२।।

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे महाभाग सूतजी जिस पवित्र श्रीमद्भागवत की कथा को शुकदेवजी ने कहा था उसी कथा को आप हमलोगों से सुनाइये ।।२।।

भावार्थ दीपिका

यत् यां कथामाह ॥२॥

भाव प्रकाशिका

यत् शब्द के द्वारा कहा गया है कि जिस कथा को शुकदेवजी ने सुनाया था ॥२॥

कस्मिन्युगे प्रवृत्तेयं स्थाने वा केन हेतुना । कुतः संचोदितः कृष्णः कृतवान्संहितां मुनिः ॥३॥

अन्वयः— इयं कथा कस्मिन् युगे, कस्मिन् स्थाने केन हेतुना प्रवृत्ता, केन संचोदितः कृष्णः मुनिः संहितां कृतवान् ॥३॥

अनुवाद— यह कथा किस युग में ? किस स्थान पर हुयी । तथा किस कारण से किसके द्वारा प्रेरित होकर कृष्णद्वैपायन मुनि ने इस पारमहंस्य संहिता का निर्माण किया ?॥३॥

भावार्थ दीपिका

कस्मिन्वा स्थाने । केन हेतुनेति महाभारतादिधर्मशास्त्राणि कृतवतः पुनरेतत्संहिताकरणे किं कारणमित्यर्थः । कुत इति सार्वविभक्तिकस्तसिः । केन प्रवर्तित इत्यर्थः । कृष्णो व्यासः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

यह कथा किस स्थान पर हुयी ? महाभारत आदि धर्मशास्त्रों का प्रणयन कर लेने के पश्चात् इस संहिता के निर्माण का कारण क्या था ? **कुतः** पद में सार्वविभक्तिक तसिल् प्रत्यय हुआ है । अर्थात् किसके द्वारा प्रेरित होकर महर्षि व्यास ने इसका प्रणयन किया ॥३॥

तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ्निर्विकल्पकः । एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते ॥४॥

अन्वयः— तस्य पुत्रो महायोगी, समदृक् निर्विकल्पकः, एकान्तमतिः उन्निद्रः गूढ मूढ इव इयते ॥४॥

अनुवाद— महर्षि व्यास के पुत्र श्रीशुकदेवजी महायोगी हैं ।, वे समदर्शी, भेदभाव से रहित, एकमात्र श्रीभगवान् के चिन्तन में लीन रहने वाले, तथा संसार रूपी निद्रा से जगे हुए हैं वे छिपे हुए रहने के कारण मूढ (अज्ञानी) के समान प्रतीत होते हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं '**स तु संश्रावयामास**' इति तच्छुकस्य व्याख्यानादिकं कथं घटितमिति प्रष्टुं तस्यासङ्गोदासीनतामाह द्वाभ्याम्-तस्येति । समदृक् समं ब्रह्म पश्यति । अतो निर्विकल्पकः । स्वार्थे कः । निरस्तभेदः । किंच एकस्मिन्नेवान्तः समाप्तिर्यस्यास्तथाभूता मतिर्यस्य सः । यत् उन्निद्रो मायाशयनादुद्बुद्धः '**या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी**' इति स्मृतेः । अतएव गूढोऽप्रकटः। मूढ इव प्रतीयते ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यह जो कहा जा चुका है कि व्यासजी ने उसे शुकदेवजी को पढ़ाया । ऐसी स्थिति में यह कैसे कहा जा सकता है ? कि यह शुकदेवजी का व्याख्यान है । उसी को पूछने के लिए शुकदेवजी की आसक्ति रहित उदासीनता को **तस्य० इत्यादि** दो श्लोकों को कहा गया है । जो एक समान ब्रह्म को देखे उसको समदर्शी कहते हैं । अतएव वे निर्विकल्पक अर्थात् भेदभाव से रहित हैं । निर्विकल्पक में स्वार्थ में क प्रत्यय हुआ है । निर्विकल्पक का अर्थ है भेद रहित । **एकस्मिन्नेवान्तः समाप्तिर्यस्याः तथा भूता मतिः** यह एकान्तमति शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ है । इसका अर्थ है जिसकी एक ही परमात्मा में मति लगी रहती है । क्योंकि वे **उन्निद्र** हैं अर्थात् मायारूपी निद्रा से जगे

समान अज्ञान रूपी अन्धकारमयी है, उसमें ज्ञानीपुरुष जगता रहता है । शुकदेवजी तो स्वयम् अपने को छिपाये रहते हैं फलतः वे अज्ञानी के समान प्रतीत होते हैं ।।४।।

दृष्ट्वानुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नं देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम् ।
तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति स्त्रीपुंभिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः ।।५।।

अन्वयः— आत्मजम् अनुयान्तम् अनग्नमपि ऋषिं दृष्ट्वा देव्यः ह्रिया परिदधुः सुतस्य न इति तत् चित्रं वीक्ष्य मुनौ पृच्छति, जगदुः यत् तव स्त्रीपुंभिदा अस्ति, विविक्तदृष्टेः सुतस्य तु न ।।५।।

अनुवाद— संन्यास के लिए वन में जाते हुए अपने पुत्र के पीछे व्यासजी जा रहे थे, उस समय वस्त्र धारण किए हुए भी महर्षि व्यास को देखकर स्त्रियों ने लज्जा के कारण वस्त्र को धारण कर लिया, किन्तु उनके पुत्र श्रीशुकदेवजी को देखकर उन सबों ने वस्त्र नहीं धारण किया । इस विचित्र बात को देखकर जब व्यासजी ने उसका कारण पूछा तो उन सबों ने बतलाया कि आपको स्त्री तथा पुरुष में होने वाले भेद का ज्ञान है, किन्तु आपके पुत्र शुकदेवजी की दृष्टि तो शुद्ध है, उनको स्त्री और पुरुष में होने वाले भेद का ज्ञान नहीं है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

निर्विकल्पकत्वं प्रपञ्चयति- दृष्ट्वेति । आत्मजं शुकं प्रव्रजन्तमनुगच्छन्तमृषिं व्यासमनग्नमपि दृष्ट्वा जले क्रीडन्त्यो देव्योऽप्सरसो ह्रिया लज्जया परिदधुर्वस्त्रपरिधानं कृतवत्यः । अनग्नमपीत्यनेनार्थात्तत्सुतो नग्न इत्युक्तम् । नग्नस्य पुरतो गच्छतः सुतस्य तु ह्रिया न परिदधुः । तच्चित्रं वीक्ष्य । इयं स्त्री अयं पुमानिति भिदा भेदस्तवास्ति । विविक्ता पूता दृष्टिर्यस्य ।।५।।

भाव प्रकाशिका

शुकदेवजी की निर्विकल्पकता की व्याख्या करते हुए शौनक महर्षि **दृष्टवा० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं। संन्यास ग्रहणार्थ वन में जाते हुए अपने पुत्र शुकदेवजी के पीछे जाते हुए महर्षि व्यास को अनग्न भी देखकर जल में क्रीडा करती हुयी अप्सराओं ने लज्जा के कारण वस्त्रों को धारण कर लिया । **अनग्नमपि** के अपि शब्द के द्वारा ज्ञात होता है कि उनके पुत्र शुकदेवजी नग्न थे । उन नग्न शुकदेवजी को सामने से जाते हुए देखकर अप्सराओं ने वस्त्र नहीं धारण किया । इस विचित्रता को देखकर व्यासजी ने उसका जब कारण पूछा तो उन सबों ने बतलाया कि आपको स्त्री तथा पुरुष में होने वाले भेद का ज्ञान है और आपके पुत्र तो विविक्त दृष्टि हैं उनकी दृष्टि पवित्र है । अतएव उनको इस भेद का ज्ञान नहीं है ।।५।।

कथमालक्षितः पौरैः संप्राप्तः कुरुजाङ्गलान् । उन्मत्तमूकजडवद्विचरन्गजसाह्वये ।।६।।

अन्वयः— कुरुजाङ्गलान् सम्प्राप्तः गजसाह्वये उन्मत्तमूकजडवत् विचरन् सः पौरैः कथमालक्षितः ?।।६।।

अनुवाद— कुरुजाङ्गल प्रदेश में जाकर हस्तिनापुर में पागल गूङ्गे तथा जड के समान विचरण करते हुए उनको नगर वासियों ने कैसे पहचाना ?।।६।।

भावार्थ दीपिका

एवंभूतोऽसौ कथमालक्षितो ज्ञातः । कुरवो जाङ्गलाश्च देशविशेषास्तान्संप्राप्तः प्रथमं ततो गजसाह्वये विचरन् । गजेन सहित आह्वयो नाम यस्य तस्मिन्हस्तिनापुरे । हस्ती नाम राजा तेन निर्मितत्वात् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेर्मुनिना सह । संवादः समभूत्तात यत्रैषा सात्वती श्रुतिः ॥७॥

अन्वयः— हे तात ! कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेः मुनिना सह संवादः समभूत् यत्र एषा सात्त्वती श्रुतिः ॥७॥

अनुवाद— किञ्च पाण्डव नन्दन राजर्षि परीक्षित् का किस प्रकार मनन चिन्तन परायण शुकदेवजी का संवाद हुआ, जहाँ यह भागवती संहिता कही गयी ॥७॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतेन मुनिना सह । यत्र संवादे एषा सात्वती भागवती श्रुतिः संहिता ॥७॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के मुनि शुकदेवजी के साथ जिस संवाद में यह भागवती श्रुति की संहिता कही गयी ॥७॥

स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहयेधिनाम् । अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम् ॥८॥

अन्वयः— महाभागः सः तु गृहमेधिनाम् गृहेषु तदाश्रमम् तीर्थीकुर्वन् गोदोहनमात्रं हि अवेक्षते ॥८॥

अनुवाद— महाभाग शुकदेवजी तो गृहस्थों के द्वार पर उनके आश्रम को पवित्र बनाने के लिए उतने ही देर तक रुकते हैं जितनी देर में एक गौ दूही जा सकती हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

एतद्याख्यानं बहुकालवस्थानापेक्षम्, तस्य त्वेकत्रावस्थानं दुर्लभमित्याह- स इति । गोदोहनमात्रं कालं प्रतीक्षते, तदपि न भिक्षार्थं, किंतु तेषामाश्रमं गृहं तीर्थीकुर्वन्पवित्रीकुर्वंस्तस्मादेवंभूतोऽत्र वक्तेत्याश्चर्यम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

इस ग्रन्थ का प्रवचन करने के लिए तो अत्यधिक समय की अपेक्षा होती है, उतनी देर तक उनका कहीं एक स्थान पर रुकना असम्भव है । इस अर्थ का प्रतिपादन **स तु० इत्यादि** श्लोक से किया गया है । **गोदोहोनमात्रम्० इत्यादि** वे तो गृहस्थों के द्वार पर उतने ही समय तक रुकते हैं जितनी देर में एक गौ दुह ली जाय । वह भी वे भिक्षा प्राप्त करने के लिए नहीं अपितु वे गृहस्थों के गृह को पवित्र बनाने के लिए रुकते हैं । अतएव ऐसे इस पुराण के वक्ता हैं यह तो आश्चर्य की बात है ॥८॥

अभिमन्युसुतं सूत प्राहुर्भागवतोत्तमम् । तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीहि नः ॥९॥

अन्वयः— हे सूत ! अभिमन्युसुतं भागवतोत्तमं प्राहुः तस्य महाश्चर्यं जन्म कर्माणि च नः गृणीहि ॥९॥

अनुवाद— हे सूतजी ! अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित् को तो उत्तम भगवद्भक्त कहा गया है; उनके आश्चर्यमय जन्म और कर्मों को भी आप हमलोगों को सुनायें ॥९॥

भावार्थ दीपिका

श्रोतुस्तु चरितमतीवाश्चर्यमतः कथयेत्याह- अभिमन्युसुतमिति पञ्चभिः । गृणीहि कथय ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इस श्रीमद्भागवत पुराण के श्रोता राजा परीक्षित् का भी चरित अत्यन्त आश्चर्यमय है । अतएव उसें भी आप सुनायें इस बात को **अभिमन्युसुतम् इत्यादि** पाँच श्लोकों से कहा गया है । गृणीहि का अर्थ है कि कहें ॥९॥

स सम्राट् कस्य वा हेतोः पाण्डूनां मानवर्धनः । प्रायोपविष्टो गङ्गायामनादृत्याधिराट्श्रियम् ॥१०॥

अनुवाद— महाराज पाण्डु के वंश का सम्मान बढ़ाने वाले वे सम्राट् थे । वे साम्राज्यलक्ष्मी का परित्याग करके किस कारण से मृत्युकाल पर्यन्त अनशन का व्रत लेकर गङ्गा के तट पर बैठे थे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

सम्राट् चक्रवर्ती । वेति वितर्के । कस्य वा हेतोः कस्मात्कारणात् । अधिराट्श्रियं अधिराजां श्रियं संपदमनादृत्य ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

चक्रवर्ती राजा को सम्राट् कहते हैं । वा शब्द का वितर्क के अर्थ में प्रयोग किया गया है । वे किस कारण से राजाओं के भी राजा की सम्पत्ति का अनादर करके यह **अधिराट्श्रियम् अनादृत्य** का अर्थ है ॥१०॥

नमन्ति यत्पादनिकेतमात्मनः शिवाय हानीय धनानि शत्रवः ।
कथं स वीरः श्रियमङ्ग दुस्त्यजां युवैषतोत्स्रष्टुमहो सहासुभिः ॥११॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! शत्रवः ह आत्मनः शिवाय धनानि आनीय **यत् पादनिकेतम् नमन्ति** अहो स युवा वीरः असुभिः सह दुस्त्यजां श्रियम् कथम् ऐषत ॥११॥

अनुवाद— हे सूतजी ! शत्रुगण अपने आत्मकल्याण के लिए धन लाकर जिनकी चरणचौकी को नमस्कार करते थे । यह आश्चर्य की बात है कि वे युवा वीर अपने प्राणों के साथ जिसको त्यागना कठिन है उस लक्ष्मी को क्यों त्यागने की इच्छा किए ॥११॥

भावार्थ दीपिका

यस्य पादनिकेतं चरणपीठम् । ह स्फुटम् । धनान्यानीय शत्रवो नमन्ति । अङ्ग हे सूत । युवा तरुण एव ऐषत ऐच्छत्। अत्रार्षमात्मनेपदम् । असुभिः प्राणैः सह ॥११॥

भाव प्रकाशिका

जिनकी चरणचौकी को यह **पादनिकेतम्** पद का अर्थ है । ह यह अव्यय प्रसिद्धि का द्योतक है । शत्रुगण धनों को लाकर नमस्कार करते थे । **अङ्ग** यह सूतजी का सम्बोधन है । **युवैषत** का अर्थ है कि युवा अवस्था में ही चाहे । ऐषत में आत्मने पद आर्ष प्रयोग होने के कारण है । सहासुभिः पद का अर्थ है प्राणों के साथ ॥११॥

शिवाय लोकस्य भवाय भूतये य उत्तमश्लोकपरायणा जनाः ।
जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रयं मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् ॥१२॥

अन्वयः— ये उत्तमश्लोकपरायणा जनाः लोकस्य शिवाय, भवाय, भूतये जीवन्ति नात्मार्थम् । असौ पराश्रयम् कलेवरम् कुतः निर्विद्य मुमोच ॥१२॥

अनुवाद— जिन लोगों का जीवन श्रीभगवान् के आश्रित होता है वे लोग जगत् का कल्याण अभ्युदय और समृद्धि के लिए जीवित रहते हैं । उसमें उनका अपना कोई भी स्वार्थ नहीं होता है । उनका शरीर तो परार्थ होता है, ऐसे राजा परीक्षित् किस कारण से विरक्त होकर उसे त्यागना चाहे ?॥१२॥

भावार्थ दीपिका

विरक्तस्य किं धनादिभिरिति चेत्तत्राह- शिवायेति । लोकस्य शिवाय सुखाय भवाय समृद्ध्यै भूतये ऐश्वर्याय च ते जीवन्ति न त्वात्मार्थम् । एवं सत्यसौ राजा निर्विद्य विरज्यापि परेषामाश्रयं कलेवरं कुतो हेतोर्मुमोच । न हि परोपजीवनं स्वयं त्यक्तुयुचितमित्यर्थः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि विरक्त पुरुष को धन इत्यादि से क्या प्रयोजन है ? तो इसके उत्तर में **शिवाय० इत्यादि**

श्लोक कहा गया है । अर्थात् ऐसे लोगों का जीवन जगत् के **शिवाय** अर्थात् सुख के लिए, **भवाय** अर्थात् समृद्धि के लिए और **भूतये** अर्थात् ऐश्वर्य के लिए होता है । अपने लिए नहीं होता । ऐसे राजा संसार से विरक्त होकर भी दूसरों के आश्रयभूत शरीर को क्यों त्यागना चाहे ? दूसरों के आश्रय भूत वस्तु का स्वयं त्याग देना तो उचित नहीं है ॥१२॥

तत्सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टो यदिह किंचन । मन्ये त्वां विषये वाचां स्नातमन्यत्र छान्दसात् ॥१३॥

अन्वयः— छान्दसात् अन्यत्र वाचां विषये त्वाम् अहम् स्नातं मन्ये । इह यत् किंचन पृष्टः तत्सर्वं नः समाचक्ष्व ॥१३॥

अनुवाद— वेदवाणी को छोड़कर अन्य शास्त्रों में मैं आपको पारंगत मानता हूँ । अतएव मैंने जो कुछ भी आपसे पूछा है, उन सभी विषयों को हमलोगों को सुनाइये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

यत्किंचन पृष्टोऽसि तत्सर्वं नोऽस्मभ्यं समाचक्ष्व । यद्यस्माद्वाचां विषये गिरां गोचरेऽर्थे स्नातं पारंगतं त्वां मन्ये । छान्दसादन्यत्र वैदिकव्यतिरेकेण । अत्रैवर्णिकत्वात् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

जो कुछ भी मैंने पूछा है उन सभी विषयों को आप हमलोगों को सुनाइये । क्योंकि शास्त्रों के विषय में आपको मैं पारंगत मानता हूँ । **छान्दसादन्यत्र** का अर्थ है वैदिक विषयों को छोड़कर । ऐसा इसलिए कि आप त्रैवर्णिक (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों) से भिन्न शूद्र वर्ण के हैं । और शूद्रों का वेदाध्ययन में अधिकार नहीं है। फलतः आप वेद को छोड़कर अन्य शास्त्रों में पारंगत हैं ॥१३॥

सूत उवाच

द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये । जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः ॥१४॥

अन्वयः— तृतीये युगपर्यये द्वापरे समनुप्राप्ते पराशरात् वासव्यां योगी हरेः कलया जातः ॥१४॥

अनुवाद— इस चतुर्युगी के तीसरे युग द्वापर युग के आ जाने पर उपरिचर वसु के वीर्य से उत्पन्न वसुकन्या सत्यवती के गर्भ से पराशर महर्षि के पुत्र योगी व्यासजी उत्पन्न हुए । वे श्रीहरि के कलावतार थे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

कस्मिन्युग इत्यादिप्रश्नानां व्यासजन्मकथनपूर्वकमुत्तरमाह- द्वापर इति । द्वापरे समनुप्राप्ते । कदेत्यपेक्षायामाह । तृतीये युगस्य पर्यये परिवर्ते । वासव्यामुपरिचरस्य वसोर्वीर्याज्जतायां सत्यवत्यां योगी ज्ञानी व्यासो जातः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

किस युग में श्रीमद्भागवत की कथा प्रारम्भ हुयी इत्यादि जो महर्षि शौनक के प्रश्न हैं उन सबों का उत्तर व्यासजी के जन्म वर्णन पूर्वक **द्वापरे० इत्यादि** श्लोक से सूतजी ने दिया है । द्वापर युग के आ जाने पर यह कब कथा हुयी इस प्रश्न का उत्तर है । तीसरे युग द्वापर के आ जाने पर, उपरिचर वसु के वीर्य से उत्पन्न सत्यवती के गर्भ से ज्ञानी व्यासजी का जन्म हुआ । यहाँ योगी शब्द का अर्थ ज्ञानी है ॥१४॥

स कदाचित्सरस्वत्या उपस्पृश्य जलं शुचिः । विविक्त एव आसीन उदिते रविमण्डले ॥१५॥

अन्वयः— कदाचित् सः सरस्वत्याः शुचिः जलं स्पृश्य रविमण्डले उदिते विविक्ते एव आसीन आसीत् ॥१५॥

अनुवाद— एक बार वे सरस्वती नदी के पवित्र जल में स्नान आदि करके सूर्योदय हो जाने पर एकान्त में महर्षि व्यास अकेले बैठे थे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

जलमुपस्पृश्य जले स्नानादिकं कृत्वेत्यर्थः । आसीनो वभूवेति शेषः । विविक्ते देश इत्यादि चित्तैकाग्र्यार्थमुक्तम् । अनेनैव वदरिकाश्रमस्थानं सूचितम् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

जलमुपस्पृश्य का अर्थ है जल में स्नान आदि करके बैठे हुए थे । एकान्त स्थान में इत्यादि चित्त की एकाग्रता को सूचित करने के लिए कहा गया है । इसके द्वारा यह सूचित होता है कि वह बदरिकाश्रम का स्थान था ।।१५।।

परावरज्ञः स ऋषिः कालेनाव्यक्तरंहसा । युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे ।।१६।।
भौतिकानां च भावानां शक्तिह्रासं च तत्कृतम् । अश्रद्दधानान्निसत्त्वान्दुर्मेधान्ह्रसितायुषः ।।१७।।
दुर्भगांश्च जनान्वीक्ष्यमुनिर्दिव्येन चक्षुषा । सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक् ।।१८।।

अन्वयः— परावरज्ञः स अमोघदृक् ऋषिः युगे-युगे भुवि प्राप्तं अव्यक्तरंहसा कालेन, युगधर्मव्यतिकरं, च तत्कृतम् भौतिकानां भावानां च शक्तिह्रासं, अश्रद्धधानान्, निःसत्त्वान्, दुर्मेधान्, हृसितायुषः जनान् वीक्ष्य मुनिः दिव्येन चक्षुषा सर्ववर्णाश्रमाणां यत् हितम् तद् दध्यौ ।।१६-१८।।

अनुवाद— अतीत एवं अनागत को जानने वाले वे ऋषि प्रत्येक युग में पृथिवी पर होने वाले वर्णाश्रम धर्मों के सांकर्य तथा कालकृत भौतिक पदार्थों के शक्ति के ह्रास को एवं श्रद्धारहित, धैर्यरहित मन्दमति वाले लोगों जिनकी आयु का ह्रास हो गया है ऐसे लोगों को देखकर तथा दौर्भाग्यग्रस्त लोगों को देखकर, अमोघदृष्टि वाले वे महर्षि सभी वर्णों के हितों का अपनी दिव्यदृष्टि से ध्यान किए ।।१६-१८।।

भावार्थ दीपिका

तत्र च स ऋषिर्युगधर्मव्यतिकरादिकं वीक्ष्य सर्ववर्णाश्रमाणां यद्धितं तद्ध्याविति तृतीयेनान्वयः । परावरज्ञोतीतानागतवित् । अव्यक्तं रंहो वेगो यस्य तेन कालेन युगधर्माणां व्यतिकरं सङ्करं प्राप्तं वीक्ष्य । तथा भुवि युगे युगे । भौतिकानां भावानां शरीरादीनाम् । तत्कृतं कालकृतम् निःसत्त्वान्धैर्यशून्यान् । दुर्मेधान्मन्दमतीन् ।।१६-१८।।

भाव प्रकाशिका

वहाँ पर वे ऋषि **युगधर्मव्यतिकरादिकम्** अर्थात् युगधर्मों का सांकर्य देखकर, सभी वर्णों और आश्रमों के कल्याणकारी विषय का ध्यान किये । परावरज्ञः अर्थात् अतीत तथा अनागत को जानने वाले । **कालेनाव्यक्तरंहसा** अर्थात् जिसके वेग को नहीं जाना जा सकता है ऐसे काल के द्वारा युगधर्मों के सांकर्य को देखकर जो पृथिवी पर प्रत्येक युग में होता है तथा शरीर आदि की शक्ति को कालकृत ह्रास धैर्यशून्य एवं मन्दमति वाले लोगों को देखकर ।।१६-१८।।

चातुर्होत्रं कर्मशुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम् । व्यदधाद्यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम् ।।१९।।

अन्वयः— वैदिकं चातुर्होत्रं प्रजानां शुद्धं कर्म इति वीक्ष्य एवं वेदम् यज्ञसन्तत्यै चतुर्विधं व्यदधात् ।।१९।।

अनुवाद— वेदों में वर्णित चातुर्होत्र (होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा इन चार ऋत्विजों द्वारा सम्पादित किया जाने वाला) कर्म (अग्निष्टोम आदि कर्म) लोगों को शुद्ध कर देता है । यह विचार करके यज्ञों का विस्तार करने के लिए एक ही वेद का उन्होंने चार भागों में विभाग कर दिया ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

ततश्च होत्रोपलक्षिताश्चत्वार ऋत्विजश्चतुर्होतारस्तैरनुष्ठेयं कर्म चातुर्होत्रम् । शुद्धं शुद्धिकरम् । यज्ञसन्तत्यै

भाव प्रकाशिका

अतएव होत्र शब्द के द्वारा उपलक्षित होता, अध्वर्यु, उद्‌गाता और ब्रह्मा ही चार होता है । उन लोगों के द्वारा किए जाने वाले कर्म को चातुर्होत्र कहा जाता है । शुद्धं शब्द का अर्थ शुद्धि करने वाला है । **यज्ञसन्तत्यै** का अर्थ है यज्ञों के निरन्तर होते रहने के लिए ॥१९॥

ऋग्यजुःसमामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः । इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ॥२०॥

अन्वयः— ऋग्यजुः सामाथर्वाख्याः चत्वारः वेदा उद्धृताः च इतिहासपुराणं पञ्चमो वेद उच्यते ॥२०॥

अनुवाद— उन्होंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चार वेदों को अलग-अलग किया और इतिहास पुराणों को पाँचवाँ वेद कहते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

चातुर्विध्यमेवाह- ऋगिति । उद्धृताः पृथक्कृताः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

ऋग् इत्यादि श्लोक के द्वारा वेदों के चार भेदों को बतलाया गया है । उद्धृताः शब्द का अर्थ है, पृथक् किया ॥२०॥

तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः । वैशंपायन एवैको निष्णातो यजुषामुत ॥२१॥

अन्वयः— तत्र ऋग्वेदधरः पैलः, जैमिनिः कविः, सामगः, यजुषाम् उतएक एव निष्णातः वैशम्पायनः ॥२१॥

अनुवाद— उनमें से ऋग्वेद के ज्ञाता पैल हुए, सामवेद के विद्वान् जैमिनि महर्षि हुए और यजुर्वेद के निष्णात स्नातक वैशम्पायन हुए ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उन वेदों में तीन वेदों के ज्ञाताओं का नाम इस श्लोक में बतलाया गया है । उन चारो वेदों में से ऋग्वेद के ज्ञाता महर्षि पैल हुए, सामवेद के विद्वान महर्षि जैमिनि हुए और यजुर्वेद के ज्ञाता वैशम्पायन महर्षि हुए । ये सभी महर्षि व्यास के ही शिष्य हैं ॥२१॥

अथर्वाङ्गिरसामासीत्सुमन्तुर्दारुणो मुनिः । इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ॥२२॥

अन्वयः— अथर्वाङ्गिरसां दारुणः समन्तु मुनिः आसीत्, इतिहासपुराणानां च ज्ञाता मे पिता रोमहर्षणः आसीत् ॥२२॥

अनुवाद— अथर्ववेद के ज्ञाता दरुण महर्षि के पुत्र सुमन्तु मुनि थे और इतिहास पुराणों के ज्ञाता मेरे पिता रोमहर्षण सूत हुए ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

दारुणः क्रूरः अथर्वोक्ताभिचारादिप्रवृत्तेः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

सुमन्त मुनि को दारुण इसलिए कह गया है कि वे अथर्ववेद के ज्ञाता बतलाये गये क्रूर कर्मों में प्रवृत्त थे । साथ ही वे दरुण मुनि के पुत्र भी थे ॥२२॥

त एत ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्यन्ननेकधा । शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शाखिनोऽभवन् ॥२३॥

अन्वयः— ते एते ऋषयः स्वं स्वं वेदम् अनेकधा व्यस्यन् । शिष्यैः प्रशिष्यैः तच्छिष्यैः ते वेदाः शाखिनः अभवन् ॥२३॥

अनुवाद— उन सभी ऋषियों ने अपने-अपने वेदों को अनेक प्रकार से विभक्त किया । फलतः शिष्यों, प्रशिष्यों तथा उनके भी शिष्यों के द्वारा वे वेद अनेक शाखाओं वाले हो गये ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

व्यस्यन्विभक्तवन्तः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

मूल के व्यस्यन् शब्द का अर्थ विभाजित किया है ॥२३॥

त एव वेदा दुर्मेधैर्धार्यन्ते पुरुषैर्यथा । एवं चकार भगवान्व्यासः कृपणवत्सलः ॥२४॥

अन्वयः— त एव वेदाः यथा दुर्मेधैः पुरुषै धार्यन्ते एवं कृपणवत्सलः भगवान् व्यासः चकार ॥२४॥

अनुवाद— उन वेदों को कमबुद्धि वाले लोग जैसे धारण कर सकें वैसा ही, कम बुद्धि वाले लोगों पर कृपा करने वाले महर्षि भगवान् व्यास ने बना दिया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

वेदविभागप्रयोजनमाह- त एवेति । ये पूर्वमतिमेधाविभिर्धार्यन्ते स्म त एव ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

त एव इत्यादि श्लोक के द्वारा वेदों के विभाग का प्रयोजन बतलाया गया है । जिन वेदों को अत्यन्त मेधावी पुरुष धारण करते थे उन वेदों को ही यहाँ **त एव** के द्वारा कहा गया है ॥२४॥

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा । कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह॥
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥२५॥

अन्वयः— कर्मश्रेयसि मूढानां स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयीश्रुतिगोचरा न (भवति इति) तेषाम् इह एवं श्रेयः भवेत् इति मुनिना कृपया भारतम् आख्यानं कृतम् ॥२५॥

अनुवाद— कल्याणकारी कर्मों के करने के प्रकार के विषय में अज्ञानी, वेदों के श्रवण के अनधिकारी स्त्रियों, शूद्रों तथा पतितद्विजों को इसी से कल्याण हो जाय इस तरह सोचकर महर्षि व्यास ने महाभारत नामक इतिहास का प्रणयन किया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

किंच स्त्रीशूद्रेति । द्विजबन्धवस्त्रैवर्णिकेष्वधमास्तेषाम् । कर्मरूपे श्रेयः- साधने एवं भवेदनेनैव प्रकारेण भवतु । इति अतएव तेषां कृपया भारताख्यानं मुनिना कृतम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

स्त्री शूद्र० इत्यादि श्लोक के द्वारा महाभारत के प्रणयन का प्रयोजन बतलाया गया है । त्रैवर्णिकों में जो पतित होते हैं उन लोगों का द्विजबन्धु कहते हैं । उन सबों का **कर्मश्रेयसिमूढानां** का अर्थ है कि वे कर्म रूपी कल्याण के साधन के विषय में यह कर्म ऐसे होना चाहिए इस बात को नहीं जानते हैं । अतएव उन स्त्री, शूद्र तथा द्विजबान्धवों पर कृपा करके महर्षि व्यास ने महाभारत का प्रणयन किया ॥२५॥

एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः । सर्वात्मकेनापि यदा नातुष्यद्धृदयं ततः ॥२६॥

अनुवाद— हे द्विजों इस प्रकार से सदा जीवों का कल्याण करने में ही लगे रहने वाले महर्षि व्यास का उस सर्वात्मक कर्म के द्वारा भी जब हृदय सन्तुष्ट नहीं हुआ ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

एवमनेन प्रकारेण । भूतानां श्रेयसि हिते । सर्वात्मकेनापि कर्मणा ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से सबों का कल्याण करने के लिए कर्मों को करते रहने पर भी व्यासजी का मन सन्तुष्ट नहीं हुआ ।।२६।।

नातिप्रसीदद्धृदयः सरस्वत्यास्तटे शुचौ । वितर्कयन्विविक्तस्थ इदं प्रोवाच धर्मवित् ।।२७।।

अन्वयः— नातिप्रसीदद्धृयः शुचौ सरस्वत्याः तटे विविक्तस्थः सः धर्मवित् विर्तकयन् इदं प्रोवाच ।।२७।।

अनुवाद— व्यासजी का हृदय मन बहुत अधिक प्रसन्न नहीं था, वे धर्मज्ञ सरस्वती नदी के पवित्र तट पर एकान्त में बैठे हुए विचार करके कहे ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

न अतिप्रसीदत् हृदयं यस्य सः । चित्ताप्रसत्तौ हेतुं वितर्कयन्निदमुवाच स्वगतम् ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

इन सभी लोकोपकारी कार्यों के करने पर भी व्यासजी का मन खिन्न ही था उनका मन पूर्णरूप से प्रसन्न नहीं था अपने मन की अप्रसन्नता के कारण के विषय में विचार करते हुए वे अपने मन में ही कहने लगे ।।२७।।

धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि गुरवोऽग्नयः । मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम् ।।२८।।

अन्वयः— धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि, गुरवः अग्नयः सम्मानिताः निर्व्यलीकेन च अनुशासनं गृहीतम् ।।२८।।

अनुवाद— मैंने ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेदों, गुरुजनों तथा अग्नियों का सम्मान किया और निष्कपट भाव से उनकी आज्ञाओं का पालन किया ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

निर्व्यलीकेन निष्कपटबुद्ध्या मानिताः पूजिताः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

मैंने निष्कपट बुद्धि से सबों की पूजा की है । फिर भी मेरा मन प्रसन्न क्यों नही है? इस तरह से महर्षि व्यास मन-ही-मन सोच रहे थे ।।२८।।

भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः । दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ।।२९।।

अन्वयः— भारतव्यपदेशेने हि आम्नायार्थः च दर्शितः । यत्र उत स्त्रीशूद्राभिः धर्मादि दृश्यते ।।२९।।

अनुवाद— महाभारत के व्याज से मैंने वेदों के अर्थों को स्पष्ट कर दिया है और उसके माध्यम से स्त्री शूद्र आदि भी अपने धर्म को जान लेते हैं ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

चूकि स्त्री शूद्र इत्यादि तो वेदों का अध्ययन नहीं कर सकते हैं । उन लोगों के ही कल्याण के लिए मैंने महाभारत की रचना की है और उसके माध्यम से वे लोग अपने धर्म को जान भी लेते हैं । फिर भी न जान क्यों मैं असन्तुष्ट ही हूँ ।।२९।।

अथापि बत मे दैह्यो ह्यात्मा चैवात्मना विभुः । असंपन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ॥३०॥

अन्वयः— मे दैह्यः आत्मा विभुः अथापि बत आत्मना असंपन्नः ब्रह्मवर्चसि असत्तम इव आभाति ॥३०॥

अनुवाद— मेरे शरीर के भीतर रहने वाली आत्मा व्यापक है फिर भी वह अपने रूप से ब्रह्मवर्चस सम्पन्न होने पर भी असम्पन्न अर्थात् तादात्म्य अप्राप्त के समान प्रतीत होती हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

दैह्य; देहे भव आत्मा जीवो वस्तुतो विभुः परिपूर्ण एव । आत्मना स्वेन रूपेणासंपन्नस्तादात्म्यमप्राप्त इवाभाति । ब्रह्मवर्चसं वेदश्रवणाध्यापनोत्कर्षजं तेजस्तत्र साधवो ब्रह्मवर्चस्यास्तेषु सत्तमोऽतिश्रेष्ठोऽपि । यद्वा न केवलसंपन्न इवाभाति प्रत्युत ब्रह्मवर्चसी ब्रह्मवर्चसवानप्यसत्तम इवाभाति । पाठान्तरे कमनीयतमोऽपीति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

देह के भीतर रहने वाली आत्मा ही दैह्य आत्मा है । वह आत्मा वास्तविक रूप से परिपूर्ण है । फिर भी वह अपने स्वरूप से तादात्म्य अप्राप्त के समान प्रतीत होती है । वेदों के श्रवण तथा अध्यापन जन्य उत्कर्ष के कारण तेज से सम्पन्न पुरुषों को ब्रह्मवर्चस्य कहते है । उन सबों में मैं सत्तम अर्थात् श्रेष्ठ भी हूँ । अथवा केवल असम्पन्न (तादात्म्याप्राप्त) अपितु ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न होने पर भी असत्तम अश्रेष्ठ के समान प्रतीत होता हूँ । उशत्तमः यह पाठान्तर के अनुसार कमनीयतमः भी अर्थ होगा ॥३०॥

किंवा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः । प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः ॥३१॥

अन्वयः— किंवा परमहंसानां प्रियाः भागवताः धर्माः मया प्रायेण न निरूपिताः ते एव हि अच्युतप्रियाः ॥३१॥

अनुवाद— अथवा इसका यह कारण है कि मैंने अब तक परमहंसों के प्रिय भागवत धर्मों को प्रायः नहीं निरूपीत किया है और वे ही धर्म भगवान् अच्युत को प्रिय हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

असंपत्तौ हेतुं स्वयमेवाशङ्कते- किंवेति । प्रायेण भूयस्त्वेन । हि यस्मात्त एव धर्मा अच्युतस्य प्रियाः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

व्यासजी आशंका करते हैं कि मेरे असंतोष का यह कारण है क्या कि मैंने अब तक प्रायः भागवत धर्मों का वर्णन नहीं किया है ? भागवत धर्म ही परमहंसों को प्रिय हैं और वे ही धर्म भगवान् अच्युत को भी प्रिय हैं । इसीलिए मेरी आत्मा असंतुष्ट के समान प्रतीत होती है ॥३१॥

तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः । कृष्णस्य नारदोऽभ्यागादाश्रमं प्रागुदाहृतम् ॥३२॥

अन्वयः— एवं आत्मानं खिलम् मन्यमानस्य खिद्यतः तस्य कृष्णस्य प्रागुदाहृतम् आश्रमं नारदः अभ्यगात् ॥३२॥

अनुवाद— इस तरह से आत्मा को अपूर्ण मानकर खिन्न होने वाले उन कृष्णद्वैपायन महर्षि के पूर्वोक्त आश्रम में नारदजी आ गये ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

खिलं न्यूनम् । खिद्यतः खेदं प्राप्नुवतः । कृष्णस्य व्यासस्य । प्रागुदाहृतं सरस्वतीतीरस्थम् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

खिल शब्द का अर्थ न्यून है । **खिद्यतः** अर्थात् खिन्न । **कृष्णस्य** अर्थात् व्यासजी को, अर्थात् जिस समय को अपर्ण मानकर खिन्न हो रहे थे उसी समय उनके सरस्वती नदी के तट पर विद्यमान

तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः । पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ।।३३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

अन्वयः— तम् आगतम् अभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थाय सुरपूजितम् नारदम् विधिवत् पूजयामास ।।३३।।

अनुवाद— नारदजी को आये हुए जानकर व्यासजी सहसा खड़े हो गये और ब्रह्मलोक से आये हुए देवताओं से पूजित नारदजी की उन्होंने विधिपूर्वक पूजा की ।।३३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तं नारदमागतमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थाय विधिवत्पूजयामास । सुरपूजितमिति ब्रह्मलोकादागतमित्यर्थः ।।३३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी को आये हुए जानकर व्यासजी उनको देखकर सहसा खड़े हो गये और ब्रह्मलोक से आये हुए उनकी सविधि पूजा किए ।।३३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।४।।

पाँचवाँ अध्याय

श्रीभगवान् के यश कीर्तन का माहात्म्य और देवर्षि नारदजी के पूर्व जन्म का चरित्र

सूत उवाच

अथ तं सुखमासीनं उपासीनं बृहच्छ्रवाः । देवर्षिः प्राह विप्रर्षिं वीणापाणिः स्मयन्निव ।।१।।

अन्वयः— अथ बृहच्छ्रवाः वीणापाणिः सुखमासीनः देवर्षिः स्मयन्निव उपासीनं विपर्षिं प्राह ।।१।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् परमयशस्वी वीणा हाथ में धारण किए हुए तथा सुखपूर्वक बैठे हुए देवर्षि नारदजी मुस्कुराते हुए के समान अपने सन्निकट में बैठे हुए व्यासजी से पूछे ।।१।।

भावार्थ दीपिका

पञ्चमे सर्वधर्मेभ्यो हरिकीर्तनगौरवम् । व्यासचित्तप्रसादाय नारदेनोपदिश्यते ।।१।। **उप समीपे आसीनम्** विप्रर्षि व्यासम् बृहच्छ्रवा महायशा स्मयन्नीषद्हसन्निवेत्येनेन मुखप्रसत्तिद्योत्यते । यद्वा इवेत्यनधिकारार्थम् । अहोमहानपिमुह्यति ।।१।।

भाव प्रकाशिका

पाञ्चवें अध्याय में व्यासजी के चित्त की प्रसन्नता के लिए नारदजी ने हरिकीर्तन का महत्त्व बतलाया है ।।१।। उपासीनम् पद का अर्थ है सन्निकट में बैठे हुए विप्रर्षि शब्द से व्यासजी को कहा गया है । **वृहच्छ्रवाः** का अर्थ महायशस्वी है । अल्प हास को स्मय कहते हैं । इसी को मुसकाना भी कहते है । **स्मयन्निव** पद के द्वारा नारदजी के मुख की प्रसन्नता द्योतित की गयी है ।

तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः । पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अन्वयः— तम् आगतम् अभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थाय सुरपूजितम् नारदम् विधिवत् पूजयामास ॥३३॥

अनुवाद— नारदजी को आये हुए जानकर व्यासजी सहसा खड़े हो गये और ब्रह्मलोक से आये हुए देवताओं से पूजित नारदजी की उन्होंने विधिपूर्वक पूजा की ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तं नारदमागतमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थाय विधिवत्पूजयामास । सुरपूजितमिति ब्रह्मलोकादागतमित्यर्थः ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी को आये हुए जानकर व्यासजी उनको देखकर सहसा खड़े हो गये और ब्रह्मलोक से आये हुए उनकी सविधि पूजा किए ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।४।।

पाँचवाँ अध्याय

श्रीभगवान् के यश कीर्तन का माहात्म्य और देवर्षि नारदजी के पूर्व जन्म का चरित्र

सूत उवाच

अथ तं सुखमासीनं उपासीनं बृहच्छ्रवाः । देवर्षिः प्राह विप्रर्षिं वीणापाणिः स्मयन्निव ॥१॥

अन्वयः— अथ बृहच्छ्रवाः वीणापाणिः सुखमासीनः देवर्षिः स्मयन्निव उपासीनं विपर्षिं प्राह ।।१।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् परमयशस्वी वीणा हाथ में धारण किए हुए तथा सुखपूर्वक बैठे हुए देवर्षि नारदजी मुस्कुराते हुए के समान अपने सन्निकट में बैठे हुए व्यासजी से पूछे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चमे सर्वधर्मेभ्यो हरिकीर्तनगौरवम् । व्यासचित्तप्रसादाय नारदेनोपदिश्यते ॥१॥ **उप समीपे आसीनम्** विप्रर्षि व्यासम् बृहच्छ्रवा महायशा स्मयन्नीषद्हसन्निवेत्येनेन मुखप्रसत्तिद्योत्यते । यद्वा इवेत्यनधिकारार्थम् । अहोमहानपिमुह्यति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

पाञ्चवें अध्याय में व्यासजी के चित्त की प्रसन्नता के लिए नारदजी ने हरिकीर्तन का महत्त्व बतलाया है ॥१॥ उपासीनम् पद का अर्थ है सन्निकट में बैठे हुए विप्रर्षि शब्द से व्यासजी को कहा गया है । **वृहच्छ्रवाः** का अर्थ महायशस्वी है । अल्प हास को स्मय कहते हैं । इसी को मुसकाना भी कहते है । **स्मयन्निव** पद के द्वारा नारदजी के मुख की प्रसन्नता द्योतित की गयी है ।

अथवा **इव** पद के द्वारा यह द्योतित किया गया है कि व्यासजी यद्यपि मोह के अधिकारी नहीं है फ़िर भी मोह कर रहे हैं । नारदजी ने सोचा कि ये इतने महान् होकर भी मोहित हो रहे हैं । यही सोच कर वे मुस्कुराये ॥१॥

नारद उवाच

पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना । परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा ॥२॥

अन्वयः— हे महाभाग पाराशर्य भवतः शारीरः आत्मा वा मानसः एव कच्चित् आत्मना परितुष्यति ॥२॥

अनुवाद— आपका शरीराभिमानी आत्मा तथा मन अभिमानी आत्मा अपने कर्म और चिन्तन से प्रसन्न हैं क्या?॥२॥

भावार्थ दीपिका

शारीरः शरीराभिमान्यात्मात्मना तेन शरीरेण कच्चित्किं परितुष्यति । मानस आत्मा मनोभिमानी तेन मनसा परितुष्यति। कच्चिन्नो वा ॥२॥

भाव प्रकाशिका

शरीर में रहने वाली शरीराभिमानी आत्मा अपने उस शरीर संतुष्ट है क्या ? तथा मन अभिमानी आत्मा मन से आप प्रसन्न हैं या नहीं ?॥२॥

जिज्ञासितं सुसंपन्नमपि ते महदद्भुतम् । कृतवान्भारतं यस्त्वं सर्वार्थपरिबृंहितम् ॥३॥

अन्वयः— ते जिज्ञासितम् अपि सुसम्पन्नम् यः त्वम् सर्वार्थपरिबृंहितम् भारतम् कृतवान् ॥३॥

अनुवाद— आपकी जिज्ञासा तो अच्छी तरह से पूर्ण हो गयी होगी ? क्योंकि आपने सभी अर्थों से परिपूर्ण अद्भुत महाभारत की रचना की है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

ते जिज्ञासितं ज्ञातुमिष्टं धर्मादि यत्तत्सर्वं सुसंपन्नं सम्यक् ज्ञातम् । अपिशब्दादनुष्ठितं चेत्यर्थः । **'अयि'** इति पाठे संबोधनम् । सुसंपन्नत्वे हेतुः- महदद्भुतमित्यादि । सर्वैरर्थैर्धर्मादिभिः परिबृंहितं परिपूर्णम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

आपको जो धर्म आदि जानना अभिप्रेत है, वह सब कुछ आप को ज्ञात हो गया होगा । सुसम्पन्नमपि शब्द के अपि शब्द के द्वारा यह भी बोधित होता है कि आपने उसका अनुष्ठान कर लिया होगा । **अयि** यह पाठ जहाँ पर है वहाँ पर अयि शब्द सम्बुद्धिपद होगा । सुसम्पन्नता का हेतु है **महदद्भुतम् इत्यादि** । अर्थात् यह भारत ग्रन्थ रूप से महान् और अर्थ की दृष्टि से अद्भुत है । यही महदद्भुतम् का अभिप्राय है । यह भारत ग्रन्थ धर्म आदि से परिपूर्ण है ॥३॥

जिज्ञासितमधीतं च ब्रह्म यत्तत्सनातनम् । अथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो ॥४॥

अन्वयः— यत् सनातनं ब्रह्म तत् च जिज्ञासितम् अधीतञ्च । अथापि हे प्रभो ! अकृतार्थ इव आत्मानम् (कथं) शोचसि ?॥४॥

अनुवाद— जो सनातन ब्रह्म है उनके विषय में आपने अच्छी तरह से विचार किया है और उनको आपने जान भी लिया है, फिर हे प्रभो ! आप अकृतार्थ पुरुष के समान अपनी आत्मा के विषय में क्यों शोक कर रहे हैं ?॥४॥

भावार्थ दीपिका

किंच यत् सनातनं नित्यं परं ब्रह्म तच्च त्वया जिज्ञासितं विचारितमधीतमधिगतं प्राप्तं चेत्यर्थः । अथापि शोचसि तत्किमर्थमिति शेषः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

जो सनातन परंब्रह्म हैं उनके विषय में आपने अच्छी तरह से विचार किया है । तथा अधीतम् अर्थात् उस परंब्रह्म को आपने प्राप्त भी कर लिया है, फिर भी आप शोक कर रहे हैं इसका कारण क्या हैं ?।।४।।

व्यास उवाच

अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं तथापि नात्मा परितुष्यते मे ।
तन्मूलमव्यक्तमगाधबोधं पृच्छामहे त्वात्मभवमभूतम् ।।५।।

अन्वयः— इदं सर्वं त्वया उक्तम् मे अस्त्येव तथापि मे आत्मा न परितुष्यते । हे (नारद) तन्मूलं अव्यक्तम् आत्मभवात्मभूतम् अगाधबोधं त्वा पृच्छामहे ।।५।।

व्यासजी ने कहा

अनुवाद— आपने जो कुछ कहा वह सब कुछ मैंने कर लिया है फिर भी मेरी आत्मा सन्तुष्ट नहीं है । हे नारदजी उसका कारण क्या है इसें मैं नहीं जानता हूँ । इसे मैं आपसे ही पूछता हूँ क्योंकि आप ब्रह्माजी के पुत्र हैं और आपका ज्ञान अगाध है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

आत्मा शारीरो मानसश्च । तन्मूलं तस्यापरितोषस्य कारणम् । अव्यक्तमस्फुटम् । हे नारद ! त्वा त्वां पृच्छाम । आत्मभवो ब्रह्मा तस्यात्मनो देहादुद्भूतस्तम् । अत एवागाधोऽतिगम्भीरो बोधो यस्य तं त्वाम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

यहाँ आत्मा शब्द से शरीराभिमानी तथा मन अभिमानी दोनों प्रकार की आत्माएँ अभिप्रेत हैं । तन्मूलम् अव्यक्तम् का अर्थ है कि उस असन्तोष का कारण क्या है ? इसका पता मुझको नहीं चल रहा है । हे नारदजी! इस असन्तोष का कारण मैं आपसे इसलिए पूछ रहा हूँ कि आप ब्रह्माजी के पुत्र है । यहाँ पर **आत्मभाव** शब्द से ब्रह्माजी को कहा गया है । उनसे उत्पन्न होने के कारण नारदजी **आत्मभवात्मभूत** हैं और उनका ज्ञान अगाध है ।।५।।

स वै भवान्वेद समस्तगुह्यमुपासितो यत्पुरुषः पुराणः ।
परावरेशो मनसैव विश्वं सृजत्यवत्यत्ति गुणैरसङ्गः ।।६।।

अन्वयः— स वै भवान् समस्तगुह्यम् वेद । यत् पुराणः पुरुषः उपासितः । सः परावरेशः गुणैरसङ्गः विश्वं सृजति अवति अत्ति च ।।६।।

अनुवाद— हे नारदजी ! आप समस्त गोपनीय रहस्यों को जानते हैं, क्योंकि आपने पुराण पुरुष परमात्मा की उपासना की है । जो परमात्मा प्रकृति के सत्त्व, रजस् एवं तमस् से असम्पृक्त ही रहकर अपने मानसिक सङ्कल्प मात्र से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, सृष्ट जगत् की रक्षा और प्रलय काल के आने पर सम्पूर्ण जगत् का संहार करते हैं ।।६।।

भावार्थदीपिका

अगाधबोधतां प्रपञ्चयन्नाह- स वा इति द्वाभ्याम् । सर्वगुह्यज्ञान हेतुः- यद्यस्मात्पुराणः पुरुष उपासितस्त्वया । कथंभूतः। परावरेशः कार्यकारणनियन्ता । मनसैव सङ्कल्पमात्रेण गुणैः कृत्वा विश्वं सृजतीत्यादि ।।६।।

भाव प्रकाशिका

स वै भवान्० इत्यादि दो श्लोकों से नारदजी की अगाधबोधता का विस्तार करते हुए व्यासजी कहते हैं कि आप समस्त गोपनीय रहस्यों को जानते हैं उसका कारण यह है कि आपने पुराण पुरुष परमात्मा की उपासना की है । वे परमात्मा परावरेश हैं अर्थात् सम्पूर्ण कार्य कारण तत्त्वों के नियामक हैं । और वे अपने सङ्कल्प मात्र से इस त्रिगुणात्मक जगत् की सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं ।।६।।

त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकीमन्तश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी ।
परावरे ब्रह्मणि धर्मतो व्रतैः स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व ।।७।।

अन्वयः— अर्क इव त्रिलोकीम् पर्यटन् आत्मसाक्षी । परावरे ब्रह्मणि धर्मतः व्रतैश्च स्नातस्य मे न्यूनं अलं विचक्ष्व ।।७।।

अनुवाद— सूर्य के समान त्रैलोक्य में विचरण करने वाले आप योग के बल से सबों के भीतर प्रवेश करके वायु के समान सञ्चरण करने वाले हैं आप आत्मसाक्षी अर्थात् बुद्धि की वृत्ति को जानने वाले है । अतएव योग के द्वारा परं ब्रह्म तथा वेदव्रत के द्वारा अवरब्रह्म (शब्द ब्रह्म) में निष्णात हैं मुझमें यह जो अपूर्णता है उसके कारण का आप विचार करें ।।७।।

भावार्थ दीपिका

किंच त्वं त्रिलोकीं पर्यटन्नर्क इव सर्वदर्शी । योगबलेन प्राणवायुरिव सर्वप्राणिनामन्तश्चरः सन्नात्मसाक्षी बुद्धिवृत्तिज्ञः। अतः परे ब्रह्मणि धर्मतो योगेन निष्णातस्य । तदुक्तं याज्ञवल्क्येन— 'इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम् । अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ।' इति । अवरे च ब्रह्मणि वेदाख्ये व्रतैः स्वाध्यायनियमैर्निष्णातस्य मेऽलमत्यर्थ यन्नयूनं तद्विचक्ष्व वितर्कय ।।७।।

भाव प्रकाशिका

आप त्रैलोक्य में पर्यटन करते रहते है । अतएव जिस तरह त्रैलोक्य में पर्यटन करते हुए सूर्य सबकुछ देखते हैं उसी तरह से आप भी सर्वदर्शी हैं । आप अपने योग के बल से सभी प्राणियों के अन्तःकरण में प्रवेश करके सम्पूर्ण शरीर में सञ्चरण करने वाले वायु के समान सञ्चरण करते हैं । फलतः आप आत्मसाक्षी अर्थात् बुद्धि की वृत्ति के ज्ञाता हैं । मैं भी **धर्मतः** अर्थात् योग बल के द्वारा परंब्रह्म के विषय में तथा वेद व्रत के द्वारा शब्द ब्रह्म के विषय में निष्णात् हूँ ।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा भी है **इज्याचार० इत्यादि** यज्ञ, सदाचार, इन्द्रियनिग्रह, अहिंसा, दान तथा वेदाध्ययन इन कर्मों का परम धर्म यही है कि वे योग के द्वारा आत्मदर्शन करें । फिर भी मुझमें बहुत अधिक न्यूनता है, उसके कारण का आप विचार करें ।।७।।

नारद उवाच

भवताऽनुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् । येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ।।८।।

अन्वयः— भवता भगवतः अमलं यशः अनुदित प्रायम् । येन असौ न तुष्यते तद् दर्शनम् खिलम् एव मन्ये ।।८।।

अनुवाद— आपने श्रीभगवान् के निर्मल यश का वर्णन प्रायः नहीं किया । जिसके द्वारा परमात्मा सन्तुष्ट नहीं होते हैं, उस दर्शन को मैं अपूर्ण ही मानता हूँ ।।८।।

भावार्थ दीपिका

अनुदितप्रायमनुक्तप्रायम् । अमलं भगवद्यशो विना येनैव धर्मादिज्ञानेनासौ भगवान्न तुष्येत तदेव दर्शनं ज्ञानं खिलं न्यूनं मन्येऽहम् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

अनुदितप्रायम् का अर्थ है अवर्णित प्राय । भगवान् के निर्मल यश से भिन्न जिन धर्म आदि के ज्ञान से भगवान् को सन्तोष नहीं होता है, वही ज्ञान खिल अर्थात् अधूरा होता है ऐसा मैं मानता हूँ ।।८।।

यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः । न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ।।९।।

अन्वयः— हे मुनिवर्य भवता यथा धर्मादयश्चार्था अनुकीर्तिताः तथा वासुदेवस्य महिमा नहि अनुवर्णिताः ।।९।।

अनुवाद— आपने जिस तरह से धर्म आदि पुरुषार्थों का वर्णन किया है, उस तरह भगवान् वासुदेव की महिमा का वर्णन नहीं किया है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

ननु भगवद्यश एव तत्र तत्रानुवर्णितं तत्राह- यथेति । चशब्दाद्धर्मादिसाधनानि च । तथा धर्मादिवत्प्राधान्येन वासुदेवस्य महिमा न ह्युक्त इत्यर्थः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि महाभारत आदि ग्रन्थों में श्रीभगवान् के यश का ही वर्णन किया गया है । तो इस पर **यथा॰ आदि** श्लोक कहते हैं । **धर्मादयश्च का च शब्द** धर्म आदि के साधनों को भी बतलाता है । अर्थात् आपने जिस तह से धर्म और धर्म के साधनों का वर्णन किया है उन धर्मादि के ही समान प्रधान रूप से भगवान् वासुदेव की महिमा का वर्णन आपने नहीं किया हैं ।।९।।

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः ।।१०।।

अन्वयः— यद् वचः चित्रपदं जगत् पवित्रं हरेः यशः कर्हिचित् न प्रगृणीत् तदवायसं तीर्थम् उशन्ति । यत्र उशिक्क्षयाः मानसाः हंसाः न निरमन्ति ।।१०।।

अनुवाद— रस, अलङ्कार आदि से अलंकृत पदों से युक्त जिस वाणी के द्वारा श्रीहरि के जगत् को पवित्र बना देने वाली महिमा का वर्णन नहीं किया जाता है उस वाणी को तो परमहंस जन उस अपवित्र स्थान के समान मानते हैं; जहाँ पर कौओं के लिए उच्छिष्ट फेंका जाता है । मानसरोवर के कमल वन में बिहार करने वाले हंसों के समान सत्त्वप्रधान मन में रमण करने वाले यतिजन उसमें कभी भी रमण नहीं करते हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

वासुदेवव्यतिरिक्तान्यविषयज्ञानवदेवान्यविषयं वाक्चातुर्यं च खिलमेवेत्याह- नेति । चित्रपदमपि यद्वचो हरेर्यशो न प्रगृणीत तद्वायसं तीर्थं काकतुल्यानां कामिनां रतिस्थानमुशन्ति मन्यन्ते । कुतः । मानसाः सत्त्वप्रधाने मनसि वर्तमाना हंसा यतयो यत्र न निरमन्ति कर्हिचिदपि नितरां न रमन्ते । उशिक्क्षया उशिक् कमनीयं ब्रह्म क्षयो निवासो येषां ते । यथा प्रसिद्धा हंसा मानसे सरसि चरन्तः कमनीयपद्मखण्डनिवासास्त्यक्तविचित्रान्नादियुक्तेऽप्युच्छिष्टगर्ते काकक्रीडास्थाने न निरमन्ति इति श्लेषः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् वासुदेव से भिन्न ज्ञान के ही समान अन्य विषयक वाणी की निपुणता भी अपूर्ण ही होती है, इस अर्थ का प्रतिपादन **न यद्वचश्चित्रपदम्॰ इत्यादि** श्लोक से किया जा रहा है । **चित्रपदमपि॰ इत्यादि** रसालङ्कार आदि से अलंकृत भी जो वाणी श्रीहरि के यश का वर्णन नहीं करती है, वह वाणी वायस तीर्थ है । अर्थात् कौओं के समान कामी पुरुषों के ही लिए रमणीय मानी जाती है । क्योंकि सत्त्व प्रधान अपने मन में रमण करने वाले

जो परमहंस यतिजन हैं । वे कमनीय ब्रह्म में निवास करते हैं और वे उस वाणी को उसी तरह से रमणीय नहीं मानते है जैसे मान सरोवर में सञ्चरण करने वाले तथा कमनीय कमल वन में निवास करने वाले हंस अपने निवास स्थान को त्यागकर, अनेक प्रकार के उच्छिष्ट अन्नों को डालने के स्थान वाले गढ़े में कभी भी रमण नहीं करते हैं ।

इस श्लोक में परमहंस पक्ष में **मानस** शब्द सत्त्व प्रधान मन का, **हंस** शब्द परमहंस का और **उशिक्क्षय** शब्द कमनीय ब्रह्म रूपी निवास स्थान का बोधक है । और हंस अर्थ में **मानस** शब्द मानसरोवर का, **हंस** शब्द हंस का और **उशिक्क्षयाः** शब्द कमनीय कमलवन रूपी निवास स्थान का बोधक है ।

उशिक्क्षयाः पद की व्युत्पत्ति भी अर्थ भेद के कारण दो प्रकार की है । उशिक् अर्थात् कमनीयं ब्रह्म क्षय; निवासो येषां ते, यह परमहंस पक्ष में व्युत्पत्ति है और उशिक् कमनीयं कमलवनं क्षयः निवासो येषां की यह हंस पक्ष में व्युत्पत्ति है । इस तरह इस श्लोक में श्लेषालङ्कार हैं ॥१०॥

तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥११॥

अन्वयः— अबद्धवती अपि यस्मिन् प्रतिश्लोकम् अनन्तस्य यशोऽङ्कितानि नामानि तद् वाग्विसर्गः जनताघविप्लवः यत् साधवः शृण्वन्ति, गायन्ति, गृणन्ति च॥११॥

अनुवाद— इसके विपरीत जो वाणी अप शब्द से युक्त होने के कारण सुन्दर रचना से युक्त भी नहीं है तथा जिसके प्रत्येक श्लोक में श्रीभगवान् के यश को सूचित करने वाले नामों का सन्निवेश होता है, वह वाणी जन समूह के पापों को प्राणष्ट कर देने वाली होती है । क्योंकि साधुजन उसी को सुनते हैं गाते हैं और उसी का उच्चारण भी करते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

विनापि पदचातुर्यं भगवद्यशःप्रधानं वचः पवित्रमित्याह- तदिति । तद्वाग्विसर्गः स चासौ वाग्विसर्गो वाचः प्रयोगः जनानां समूहो जनता तस्या अघं विप्लावयति नाशयतीति तथा सः । यस्मिन्वाग्विसर्गे अबद्धवत्यप्यपशब्दादियुक्तेऽपि प्रतिश्लोकमनन्तस्य यशसाङ्कितानि नामानि भवन्ति । तत्र हेतुः- यद्यानि नामानि साधवो महान्तो वक्तरि सति शृण्वन्ति । श्रोतरि सति गृणन्ति । अन्यदा तु स्वयमेव गायन्ति कीर्तयन्ति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

जिसमें रस, भाव तथा अलङ्कारों के सन्निवेश रूपी पद का चातुर्य नहीं रहता है किन्तु जिसमें भगवान् के यश की ही प्रधानता होती है वह वाणी पवित्र होती है, इसी अर्थ का प्रतिपादन **तद्वग्विसर्गः इत्यादि** श्लोक से किया गया है । **'स चाऽसौ वाग्विसर्गः'** इस व्युत्पत्ति के अनुसार **तद्वाग्विसर्गः** शब्द का अर्थ उस वाणी का प्रयोग है । **जनानां समूहो जनता** इस व्युत्पत्ति के अनुसार जनता शब्द जन समूह का बोधक है । उस वाणी का प्रयोग जन समूह के पापों का प्रणाशक होता है । जो वाणी का प्रयोग अपशब्द आदि से युक्त होने पर भी उसके प्रत्येक श्लोक में श्रीभगवान् के यश के बोधक उनके नामों का सन्निवेश रहता है । उसका कारण यह है कि सन्त महापुरुष उस वाणी के प्रयोग को किसी वक्ता के रहने पर सुनते है । तथा श्रोताओं के रहने पर उसी वाणी को सुनाते हैं और किसी के भी नहीं रहने पर वे उसका स्वयं गायन और कीर्तन करते हैं ॥११॥

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥१२॥

अन्वयः— अच्युतभाववर्जितम्, निरञ्जनम्, नैष्कर्म्यम् अपि ज्ञानम् अलं न शोभते । शश्वत् अभद्रम्, किंच अकारणम् अपि यत् ईश्वरे न अर्पितं तत् पुनः कुतः शोभेत ।।१२।।

अनुवाद— निरञ्जन अर्थात् उपाधियों का निवर्तक होने के कारण निर्मल तथा मोक्ष की प्राप्ति के साधन भूत भी कर्म जो भगवान् की भक्ति की भावना से रहित होता है वह अत्यन्त सुशोभित नहीं होता है । जो साधन तथा सिद्धि दोनों ही दशाओं में अमङ्गलमय होता है, वह काम्यकर्म अथवा जिसको भगवान् को नहीं समर्पित किया गया है, वह निष्कामकर्म भी कैसे सुशोभित हो सकता ?।।१२।।

भावार्थ दीपिका

भक्तिहीनं कर्म शून्यमेवेति कैमुत्यन्यायेन दर्शयति- नैष्कर्म्यमिति । निष्कर्म ब्रह्म तदेकाकारत्वान्निष्कर्मतारूपं नैष्कर्म्यम्। अज्यतेऽनेनत्यञ्जनमुपाधिस्तन्निवर्तकं निरञ्जनम् । एवंभूतमपि ज्ञानमच्युते भावो भक्तिस्तद्वर्जितं चेदलमत्यर्थ न शोभते । सम्यगापरोक्ष्याय न कल्पत इत्यर्थः तदा शश्वत्साधनकाले फलकाले चाभद्रं दुःखरूपं यत्काम्यं कर्म यदप्यकारणमकाम्यं तच्चेति चकारस्यान्वयः। तदपि कर्म ईश्वरे नार्पितं चेत्कुतः पुनः शोभेत बहिर्मुखत्वेन सत्त्वशोधकत्वाभावात् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

भक्ति की भावना से रहित कर्म शून्यस्वरूप (व्यर्थ) ही होता हे, इस अर्थ का प्रतिपादन कैमूत्य न्याय से **नैष्कर्म्यमि० इत्यादि** श्लोक से बतलाया जा रहा है । ब्रह्म निष्कर्म है; क्योंकि ब्रह्म की प्राप्ति कर्मों की निवृत्ति के द्वारा ही होती है । उस ब्रह्म के समान आकार वाला होने के कारण उस ज्ञान को नैष्कर्म्य कहते हैं । निष्कर्म अर्थात् मोक्ष का साधन होने के कारण उस ज्ञान को नैष्कर्म्य कहते हैं । **निष्कर्मणः मोक्षस्य साधनं नैष्कर्म्यं** यह नैष्कर्म्य शब्द की व्युत्पत्ति है । उपाधि के निवर्तक ज्ञान को निरञ्जन ज्ञान कहते है । निरञ्जन का अर्थ है निर्मल। **अज्यते अनेन** इस व्युत्पत्ति के अनुसार अञ्जन शब्द उपाधि का बोधक है, और उसको दूर करने वाले ज्ञान को निरञ्जन कहते हैं ।

इस प्रकार का भी ज्ञान यदि श्रीभगवान् की भक्ति से रहित है, तो वह ज्ञान पूर्ण रूप से नहीं सुशोभित होता है । अर्थात् उसके द्वारा परम तत्त्व का अच्छी तरह से साक्षात्कार नही हो सकता है । ऐसी स्थिति में जो साधनकाल तथा सिद्धिकाल दोनों ही स्थितियों में दुःख रूप होने के कारण अमङ्गलमय ही है, वह काम्य कर्म, तथा निष्कामकर्म भी यदि ईश्वर को नहीं समर्पित किया गया है तो वह कैसे सुशोभित हो सकता है ? क्योंकि वह बहिर्मुख होने के कारण अन्तःकरण को शुद्ध नहीं बना सकता है ।।१२।।

अथो महाभाग भवानमोघदृक् शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः ।
उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम् ।।१३।।

अन्वयः— अथो, महाभाग भवान् अमोघदृक् शुचिश्रवाः, सत्यरतः, धृतव्रतः । तत् अखिलबन्धमुक्तये, उरुक्रमस्य विचेष्टिम् समाधिना अनुस्मर ।।१३।।

अनुवाद— अतएव हे महाभाग व्यासजी, आपकी दृष्टि अमोघ हैं, आपका यश पवित्र हैं, आप सदा सत्य भाषण करते हैं तथा आप दृढव्रत हैं । अतएव आप सम्पूर्ण जीवों की मुक्ति के लिए समाधि के द्वारा श्रीभगवान् की लीलाओं का स्मरण कीजिये ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं भक्तिशून्यानि ज्ञानवाक्चातुर्यकर्मकौशलानि व्यर्थान्येव यतः, अतो हरेश्चरितमेवानुवर्णयेत्याह । अथो यतः कारणात् । अमोघा यथार्था दृक् धीर्यस्य, शुचि शुद्धं श्रवो यशो यस्य, सत्ये रतः, धृतानि व्रतानि येन स भवानेवं महागुणस्तावत्।

अत उरुक्रमस्य विविधं चेष्टितं लीलां समाधिना चित्तैकाग्र्येणाखिलस्य बन्धमुक्तये हे महाभाग्यनिधे, त्वमनुस्मर, स्मृत्वा च वर्णयेत्यर्थः । एतच्च वाक्यान्तरमिति मध्यमपुरुषप्रयोगो नानुपपन्नः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से इस अर्थ का प्रतिपादन किया गया है कि भक्ति से रहित ज्ञान वाणी की निपुणता तथा कर्मों की कुशलता ये सब-के-सब व्यर्थ हैं । अतएव आप श्रीभगवान् के चरित का ही वर्णन करें इस अर्थ का प्रतिपादन **अथो० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया जा रहा है । अतएव हे महाभाग व्यासजी ! आप अमोघदृष्टि वाले हैं । **अमोघा दृष्टिः यस्य सः** यह अमोघदृक् पद की व्युत्पत्ति है । **आप शुचिश्रवाः** अर्थात् आपका यश पवित्र है। **शुचि शुद्धं, श्रवः यशो यस्य सः** यह **शुचिश्रवाः** शब्द की व्युत्पत्ति है । आप सत्य वक्ता है एवं आप दृढव्रत है । आप अपने व्रतों का पालन करते हैं । इन सभी गुणों से सम्पन्न आप चित्त की एकाग्रता रूपी समाधि के द्वारा श्रीभगवान् की विविध प्रकार की चेष्टाओं का स्मरण सभी जीवों के संसार के बन्धन से मुक्ति के लिए करें और स्मरण करके उसका वर्णन करें ।

यदि कोई यह कहे कि **भवान्** इस कर्तृ पद के अनुसार स्मरतु यह क्रियापद का प्रयोग किया जाना चाहिए फलतः स्मर इस मध्यम पुरुष की क्रिया पद का प्रयोग कैसे ? तो इसका उत्तर है कि इस श्लोक का उत्तरार्द्ध दूसरा वाक्य है अतएव इसमें स्मर पद का प्रयोग अनुपन्न नहीं है ।।१३।।

ततोऽन्यथा किंचन यद्विवक्षतः पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः ।
न कुत्रचित्क्वापि च दुःस्थिता मतिर्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम् ।।१४।।

अन्वयः— ततः पृथग्दृशः अन्यथा यत् किञ्चन विवक्षतः तत् कृत रूपनामभिः दुःस्थिता मतिः वाताहतनौरिव कुचत्रित् क्वापि आस्पदम् न लभेत ।।१४।।

अनुवाद— जो मनुष्य श्रीभगवान् की लीला के अतिरिक्त और कुछ कहने की इच्छा करता हैं वह उस इच्छा के द्वारा ही निर्मित अनेक नामों और रूपों के चक्र में फँस जाता है । उसकी बुद्धि चञ्चल हो जाती है वह कभी भी तथा कही भी उसी तरह से स्थिर नहीं हो पाती है जिस तरह वायु के द्वारा प्रेरित नौका कहीं भी स्थिर नहीं हो पाती है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

विपक्षे दोषान्तरमाह- तत इति । तत उरुक्रमचेष्टितात्पृथग्दृशोऽत एवान्यथा प्रकारान्तरेण यत्किंचिदर्थान्तरं विवक्षतस्तया विवक्षया कृतैः स्फुरितै रूपैर्नामभिश्च वक्तव्यत्वेनोपस्थितैर्दुःस्थिताऽनवस्थिता सती मतिः कदाचित्क्वापि विषये आस्पदं स्थानं न लभेत, वातेनाऽऽहता आघूर्णिता नौरिव । तदुक्तं गीतासु— **'व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन । बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ।'** इत्यादि ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् की लीला से भिन्न बातों का वर्णन करने पर होने वाले दूसरे दोषों का वर्णन **ततोऽन्यथा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया जा रहा है । उरुक्रम श्रीभगवान् का नाम है, क्योंकि उन्होंने त्रिविक्रमावतार में अपना डेग बढाकर एक ही डेग में पृथिवी के ऊपर के सभी लोकों को नाप लिया था । **उरवःक्रमाः यस्य सः** यह उरुक्रम शब्द का विग्रह है । उन श्रीभगवान् की लीला से भिन्न बातों का जो दूसरे प्रकार से वर्णन करने की इच्छा करते हैं, उनकी उस इच्छा के ही कारण उत्पन्न अनेक नामों और रूपों से वर्णनीय रूप से उपस्थित विषय के कारण उन लोगों की बुद्धि दुःस्थित अर्थात् चञ्चल हो जाती है । फलतः वह बुद्धि किसी भी विषय में स्थिर नहीं हो पाती

है। यह उसी तरह से कभी भी तथा किसी भी विषय में स्थिर नहीं होती है जैसे वायु के चक्रवात में फँसी हुयी नौका कहीं भी अपने रुकने योग्य स्थान को नहीं प्राप्त कर पाती है।

श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् ने कहा भी हैं— **व्यवसायात्मिकाबुद्धि इत्यादि** अर्थात् जिन लोगों की बुद्धि निश्चयात्मिका होती है उन लोगों के वर्णनीय विषय एक मात्र परमात्मा ही हैं और जिन लोगों की बुद्धि निश्चयात्मिका नहीं है, उन लोगों की वह बुद्धि अनेक विषयिणी होती है तथा उसकी अनन्त शाखायें हो जाती हैं ॥१४॥

जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान्व्यतिक्रमः ।
यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥१५॥

अन्वयः— स्वभावरक्तस्य धर्मकृते जुगुप्सितम् अनुशासतः तव अयं महान् व्यतिक्रमः यद्वाक्यतः धर्म इति स्थितः इतरः जनः तस्य निवारणं न मन्यते ।

अनुवाद— स्वभाव से ही सकाम कर्मों में अनुराग रखने वाले लोगों को आपने महाभारतादि के व्याज से उन कर्मों को करने का जो उपदेश दे दिया है, वह महान् अन्याय है; क्योंकि उन वाक्यों को ही पशु हिंसादि निन्दित कर्मों को धर्म मानने वाले लोग, उन कर्मों का निषेध करने वाले वाक्यों को ठीक नहीं मानते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं हरियशो विना भारतादिषु कृतं धर्मादिवर्णनमकिंचित्करमित्युक्तम्। प्रत्युत विरुद्धमेव जातमित्याह- जुगुप्सितमिति जुगुप्सितं निन्द्यं काम्यकर्मादि तत्र स्वभावत एव रक्तस्य अनुरागिणः पुरुषस्य धर्मकृते धर्मार्थमनुशासतः प्रेरयतस्तव महानयं व्यतिक्रमोऽन्यायः। कुत इत्यत आह। यस्य वाक्यतोऽयमेव मुख्यो धर्म इति स्थिर इतरः प्राकृतो जनः। तस्य काम्यकर्मादेरन्येन तत्त्वज्ञेन क्रियमाणं निवारणं स्वयमेव वा त्वया क्रियमाणम्। यद्वा '**न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः**' इत्यादिश्रुत्या क्रियमाणं निवारणं यथार्थमेतदिति न मन्यते, किंतु प्रवृत्तिमार्गानधिकृतविषयं तदिति कल्पयति। तदुक्तं मतान्तरोपन्यासे भट्टैः '**तत्रैवं शक्यते वक्तुं येऽन्धपङ्ग्वादयो नराः। गृहस्थत्वं न शक्ष्यन्ति कर्तुं तेषामयं विधिः॥ नैष्ठिकं ब्रह्मचर्यं वा परिव्राजकतापि वा। तैरवश्यं ग्रहीतव्या तेनादावेतदुच्यते॥** इत्यादि ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीहरि के यश से रहित महाभारत आदि में जो धर्मों का वर्णन किया गया है वह केवल व्यर्थ ही नहीं है, अपितु वह विरुद्ध भी है, इस अर्थ का प्रतिपादन, **जुगुप्सितम्** इत्यादि श्लोक से किया गया है। जुगुप्सित का अर्थ है निन्दित, इस प्रकार के जो काम्यकर्म हैं उन कर्मों को करने में संसारी जीव स्वाभाविक रूप से लगा रहता है। उनको आपने धार्मिक रूप से करने की प्रेरणा की है, यह आपका बहुत बड़ा व्यतिक्रम (अन्याय) है।

कुतः इत्यादि- इसका कारण यह है कि उसी को मुख्य धर्म मानने वाले संसारी मनुष्यों को उन काम्य कर्म आदि से भिन्न तत्त्वज्ञान के द्वारा यदि कोई दूसरा अथवा स्वयं आप ही निषेध करें तो उस निषेध को वे संसारी जीव उचित नहीं मानते हैं। श्रुति स्वयं कहती है- **न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः** अर्थात् काम्य कर्मों, या सन्तानों, या धन से किसी ने मुक्ति नहीं प्राप्त की अपितु ज्ञानी पुरुष इन सबों के त्याग के ही द्वारा मुक्ति की प्राप्ति किये। किन्तु काम्य कर्मों का निषेध करने वाली इस श्रुति को लोग नहीं मानते हैं।

इन वाक्यों को सुनकर वे कहते हैं कि यह जो काम्य कर्मों का निषेध वाक्य है, वह उन्हीं लोगों के लिए है जो लोग प्रवृत्ति मार्ग के अधिकारी नहीं है। मतान्तर का उपन्यास करते हुए कुमारिल भट्ट ने कहा भी है उसके विषय में यह कहा जा सकता है कि जो लोग लङ्गड़े तथा अन्धे है जो गाहर्स्थ्य का पालन करने में असमर्थ हैं

उन लोगों के ही लिए नैष्ठिक ब्रह्मचर्य तथा संन्यास का विधान किया गया है । अतएव उन लोगों को नैष्ठिक ब्रह्मचर्य इत्यादि का पालन अवश्य करना चाहिए । इसीलिए इसको सर्व प्रथम कहा गया है । इत्यादि ॥१५॥

विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभोरनन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम् ।
प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मनस्ततो भवान्दर्शय चेष्टितं विभो ॥१६॥

अन्वयः— अनन्तपारस्य अस्य विभोः विचक्षणः निवृत्तितः एव सुखम् वेदितुम् अर्हति हे विभो ! अनात्मनः गुणैः प्रवर्तमानस्य ततः भवान् चेष्टितं दर्शय ॥१६॥

अनुवाद— देश और काल की सीमा से रहित इस सर्व व्यापक परमात्मा के निर्विकल्प सुखात्मक स्वरूप को कोई विचक्षण निपुण व्यक्ति ही जान सकता है । जो अनात्मज्ञ देहाभिमानी हैं वे परमात्मा के उस सुखात्मक स्वरूप को नहीं जान सकते हैं क्योंकि वे प्रकृति के गुणों से प्रेरित होते हैं । उन्हीं जीवों के कल्याण के लिए आप भगवान् की लीलाओं का वर्णन करें ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

ननु यद्येवं प्रवृत्तिमार्गो निन्द्यते सर्वक्रियानिवृत्त्यास्य विभोः सुखं निर्विकल्पकसुखात्मकं स्वरूपं वेदितुं ज्ञातुमर्हति न पुनरविचक्षणः प्रवृत्ति स्वभावः । विभुत्वे हेतुः- न अन्तः कालतः, पारं च देशतो यस्य तस्य विभोश्चेष्टितम् । ततः कारणात् हे विभो, अनात्मनो देहाद्यभिमानिनोऽत एवं गुणैः सत्त्वादिभिः प्रवर्तमानस्य जनस्य दर्शय भवानिति । त्वमित्यर्थः । पाठान्तरे हे भवान्निति संबोधनम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न उठता है कि यदि इस प्रकार से प्रवृत्ति मार्ग की निन्दा की जाती है और निवृत्ति मार्ग में सभी कर्मों के त्याग से ही परमात्मा से सुख स्वरूप अनुभूति हो सकती है, तो फिर श्रीभगवान् के यश का कीर्तन करने से क्या लाभ है ? तो उसके उत्तर में विचक्षणः इत्यादि श्लोक कहते हैं । कोई निपुण व्यक्ति ही सभी कर्मों के परित्याग से ही परमात्मा के सुखात्मक निर्विकल्पक स्वरूप को जान सकता है । जो विचक्षण नहीं है वह परमात्मा के उस स्वरूप को नहीं जान सकता है क्योंकि वह तो स्वभाव से ही प्रवृत्ति मार्गानुयायी होता है ।

विभुत्वे० इत्यादि- परमात्मा के विभुत्व का कारण बतलाते हुए कहा गया है कि वे अनन्तपार हैं, अर्थात् वे देश और काल की सीमा से परे हैं । अर्थात् वे सभी देशों और सभी कालों में व्यापक हैं । उन परमात्मा की लीलाओं का वर्णन उन आत्मज्ञ देहाद्यमिमानी जीवों, जो प्रकृति के गुणों सत्त्व रजस् आदिओं के द्वारा प्रवृत्त होते हैं, उन जीवों के कल्याण के लिए ही आप भगवान् की लीलाओं का वर्णन करें । पाठान्तर होने पर भवन् यह सबोधन होगा ॥१६॥

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेर्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ।
यत्र क्व वाऽभद्रमभूदमुष्य किं को वार्थआप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥१७॥

अन्वयः— अथ स्वधर्मं त्यक्त्वा हरेः चरणाम्बुजं भजन् यदि ततः अपक्वः पतेत् अमुष्य यत्र क्व वा अभद्रमभूत्किम्। स्वधर्मतः अभजताम् कः वा अर्थः आप्तः ॥१७॥

अनुवाद— अपने वर्णाश्रम का त्याग करके श्रीहरि के चरण कमलों की सेवा करने वाले की भक्ति का परिपाक हुए बिना उससे पहले ही उसकी मृत्यु हो जाय तो भी उसका कही अमङ्गल होता है क्या ? अर्थात् नहीं होता है । किञ्च जो लोग अपने धर्म का पालन करने में लगे रहते है, भगवान् का भजन नहीं करते हैं वे ही लोग क्या प्राप्त कर लेते हैं ?॥१७॥

भावार्थ दीपिका

एवं तावत्काम्यधर्मादेरनर्थहेतुत्वात्तं विहाय हरेर्लीलैव वर्णनीयेत्युक्तम् । इदानीं तु नित्यनैमित्तिकस्वधर्मनिष्ठामप्यनादृत्य केवलं हरिभक्तिरेवोपदेष्टव्येत्याशयेनाह- त्यक्त्वेति । ननु स्वधर्मत्यागेन भजन् भक्तिपरिपाकेन यदि कृतार्थो भवेत्तदा न काचिच्चिन्ता, यदि पुनरपक्व एव म्रियेत ततो भ्रश्येद्वा तदा स्वधर्मत्यागनिमित्तोऽनर्थः स्यादित्याशङ्क्याह । ततो भजनात्कथंचित्पतेद्भ्रश्येन्म्रियेत वा यदि तदापि भक्तिरसिकस्य कर्मानधिकारन्नानर्थशङ्का । अङ्गीकृत्याप्याह । वाशब्दः कटाक्षे । यत्र क्व वा नीचयोनावप्यमुष्य भक्तिरसिकस्याभद्रमभूत्किम् । नाभूदेवेत्यर्थः भक्तिवासनासद्भावादिति भावः । अभजद्भिस्तु केवलं स्वधर्मतः को वा अर्थ आप्तः । अभजतामिति षष्ठी तु संबन्धमात्रविवक्षया ।।१७।।

भावप्रकाशिका

इस तरह से काम्य कर्म आदि चूकि अनर्थ के साधन हैं अतएव उसको छोड़कर श्रीहरि की लीला का ही वर्णन करना चाहिए यह कहा जा चुका है । अब **त्यक्त्वा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा यह बतलाया जा रहा है कि नित्य नैमित्तिक आदि अपने धर्म की निष्ठा का भी परित्याग करके श्रीहरि की भी भक्ति का ही उपदेश करना चाहिए ।

ननु स्वधर्म त्यागेन० इत्यादि अब प्रश्न होता है कि अपने धर्म का परित्याग करके जो श्रीहरि की भक्ति करता है, उसकी भक्ति का यदि परिपाक हो जाता है तब तो कोई चिन्ता की बात नहीं है; किन्तु परिपक्व हुए बिना ही उसके बीच में ही वह मर जाता है, अथवा उससे भ्रष्ट हो जाता है तब तो स्वधर्म त्यगजन्य अनर्थ होगा ही इस प्रकार की शङ्का करके कहते हैं यदि वह भक्ति से भ्रष्ट हो जाता है अथवा वह बीच में ही मर जाता है तो भी जो भक्ति रसिक होता है उसका कर्म करने का अधिकार ही नहीं होता है; अतएव उसके अनर्थ की शङ्का नहीं की जा सकती है । **अङ्गीकृत्याप्याह** उसको स्वीकार करके भी कहते हैं **यत्र क्ववा० इत्यादि** नीच योनि में भी उस भक्तिरसिक का अमङ्गल होता है क्या ? अर्थात् नहीं होता है । क्योंकि उस व्यक्ति में भक्ति की वासना का सद्भाव बना रहता है । **अभजद्भिस्तु० इत्यादि-** जो लोग भगवद् भक्ति नहीं करते हैं, उन लोगों को अपने धर्म मात्र के पालन से ही क्या प्राप्त हो जाता है ? **अभजताम्** पद में सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी विभक्ति हुयी है ।।१७।।

तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा ।।१८।।

अन्वयः— कोविदः तस्यैव हेतोः प्रयतेत यत् उपरि अधः भ्रमताम् न लभ्येत । तत् अन्यतः सुखं तु गम्भीरंहसा कालेन सर्वत्र लभ्यते ।।१८।।

अनुवाद— विज्ञ पुरुष को चाहिए वह उसी सुख की प्राप्ति के लिए प्रयास करे जो सुख ब्रह्मलोक से लेकर स्थावर पर्यन्त की योनियों में भ्रमण करने वाले जीवों को नहीं प्राप्त होता है । उससे भिन्न सुख तो गम्भीर वेग वाले काल के द्वारा सर्वत्र उसी तरह अपने आप मिलता रहता है जिस तरह दुःख की प्राप्ति बिना प्रयास के ही होती रहती है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

ननु स्वधर्ममात्रादपि '**कर्मणा पितृलोकः**' इति श्रुतेः पितृलोकप्राप्तिफलमस्त्येव तत्राह- तस्यैवेति । तस्यैव हेतोस्तदर्थं यत्नं कुर्यात् । यत् उपरि ब्रह्मपर्यन्तमधः स्थावरपर्यन्तं च भ्रमद्भिर्जीवैर्न लभ्यते । षष्ठी तु पूर्ववत् । तत्तु विषयसुखमन्यत एव प्राचीनकर्मणा सर्वत्र नरकादावपि लभ्यते दुःखवत् । यथा दुःखं प्रयत्नं विनापि लभ्यते तद्वत् । तदुक्तम् '**अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनाम् । सुखान्यपि तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते ।**' इति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि वर्णाश्रम धर्मों के भी पालन से **कर्मणा पितृलोकः** श्रुति के अनुसार पितृलोक की प्राप्ति होती ही है तो इसके उत्तर में **तस्यैव हेतोः** इत्यादि श्लोक को पढ़ते हैं । अर्थात् उसी सुख की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए जो ब्रह्मलोक से लेकर नीचे के स्थावर पर्यन्त में भ्रमण करने वाले जीवों को न प्राप्त हो सके । यहाँ भी सम्बन्ध सामान्य की ही विवक्षा में षष्ठी विभक्ति है । विषय जन्य सुख की प्राप्ति तो पूर्व कर्मों के अनुसार नरक आदि में भी उसी तरह प्राप्त होते हैं जिस तरह दुःखों की प्राप्ति बिना प्रयास के ही होती रहती है । कहा भी गया हैं— जिस तरह से शरीरधारियों को बिना चाहे भी दुःख की प्राप्ति होती रहती है उसी तरह सुखों की भी प्राप्ति होती रहती है । इस लोक में दैन्य की अधिकता होती हैं ॥१८॥

न वै जनो जातु कथंचनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम् ।
स्मरन्मुकुन्दांघ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो यतः ॥१९॥

अन्वयः— हे अङ्ग, मुकुन्दसेवीजनः जातु कथंचन अन्यवद् संसृतिं न व्रजेत् मुकुन्दांधयुपगूहनं पुनः स्मरन् । विहातुं न इछेत् यतः रसग्रहः ॥१९॥

अनुवाद— हे व्यासजी ! श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करने वाला मनुष्य यदि किसी प्रकार निन्दित योनि में भी चला जाता है तो वह केवल कर्मनिष्ठ के समान जन्ममृत्युमय संसार चक्र में नहीं पड़ता है क्योंकि फिर श्रीभगवान् के चरणों का आलिङ्गन स्मरण करके वह उसे छोड़ना नहीं चाहता है क्योंकि उसे श्रीभगवान् के चरणों का रस प्राप्त हो चुका रहता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं यत्र क्व वाऽभद्रमभूदिति तदुपपादयति- न वा इति । मुकुन्दसेवी जनो जातु कदाचित्कथंचन कुयोनिगतोऽपि संसृतिं नाव्रजेन्नाविशेत् । अङ्गरहो । अन्यवत्केवलकर्मनिष्ठवदिति वैधर्म्ये दृष्टान्तः । कुत इत्यत आह । मुकुन्दाङ्घ्रेरुपगूहनमालिङ्गनं पुनः स्मरन्विहातुं नेच्छेत् । यतोऽयं जनो रसग्रहः रसेन रसनीयेन गृह्यते वशीक्रियते । यद्वा रसे रसनीये ग्रह आग्रहो यस्य । तदुक्तं भगवता- **यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन । पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः** ।।'इति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

सत्रहवें श्लोक में **'यत्र क्ववा भद्रमभूत्'** अर्थात् भगवद् भक्त का कहीं भी अमङ्गल होता है क्या ? यह जो कहा गया है उसी का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं । **न वै जनः इत्यादि** श्रीभगवान् भोग तथा मोक्ष दोनों प्रदान करते हैं; अतएव उनका एक नाम मुकुन्द है । **मुं च कुं च ददातीति** यह मुकुन्द शब्द की व्युत्पत्ति है । भगवान् मुकुन्द की सेवा करने वाला मनुष्य यदि किसी तरह कुयोनि में भी चला जाता है तो भी वह केवल कर्मनिष्ठ के समान जन्ममरणमय संसारचक्र में नहीं पड़ता है । अन्यवत् पद के द्वारा वैधर्म्य में दृष्टान्त उपन्यस्त किया गया है ।

कुत इत्यादि यदि कहें कि ऐसा क्यों होता है तो इसके उत्तर में कहते हैं क्योंकि वह उस योनि में भी जाकर श्रीभगवान् के चरण कमलों के आलिङ्गन का स्मरण करता है और उसको छोड़ना नहीं चाहता है ऐसा इसलिए होता है कि उसके पहले श्रीभगवान् के चरणों की सेवा जन्य आनन्द का अनुभव उसे हो चुका है । श्रीभगवान् के अनवद्य चरणों के वश में वह हो चुका रहता है । अथवा उसका श्रीभगवान् के सेवनीय चरणों में आग्रह बना रहता है ।

तदुक्तम्० इत्यादि भगवद् गीता में भगवान् ने कहा भी है वह पुनः मुक्ति की प्राप्ति करने का प्रयास करता है । अपने पूर्व जन्म के अभ्यास के कारण वह विवश होकर भक्ति के मार्ग में आ जाता है ॥१९॥

इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत्स्थाननिरोधसंभवाः ।
तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथापि वै प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥२०॥

अन्वयः— यतः जगत्स्थाननिरोधसंभवाः । इदं विश्वं भगवान् इव इतरः च तद्धि भवान् स्वयं वेद । तथापि भवतः वै प्रादेशमात्रं प्रदर्शितः ॥२०॥

अनुवाद— जिन भगवान् से इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार होते हैं वे भगवान् ही यह विश्व हैं, फिर भी वे इस जगत् से भिन्न हैं, इस बात को आप स्वयं जानते हैं, मैंने तो आपको केवल दिशा निर्देश मात्र किया है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं भगवल्लीलां प्राधान्येन वर्णयेत्युक्तं, तत्र को भगवान् काश्च तस्य लीला इत्यपेक्षायामाह । इदं विश्वं भगवानेव। स त्वस्माद्विश्वस्मादितरः । ईश्वरात्प्रपञ्चो न पृथगीश्वरस्तु प्रपञ्चात्पृथगित्यर्थः । तत्र हेतुः- यतो भगवतो हेतोर्जगतः स्थित्यादयो भवन्ति । अनेनैव लीला अपि दर्शिताः । यद्वा इदं विश्वं भगवान् । इतर इव यः स जीवोऽपि भगवान् । चेतनाचेतनः प्रपञ्चस्तद्व्यतिरेकेण नास्ति स एवैकस्तत्त्वमित्यर्थ; । हिशब्देन **सर्वं खल्विदं ब्रह्म** इत्यादिप्रमाणं सूचितम् । तद्धि स्वयमेव भवान्वेद । प्रादेशमात्रमेकदेशमात्रं **'आचार्यवान्पुरुषो वेद'** इत्यादिश्रुत्यर्थसंपादनाय प्रदर्शितम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से नारदजी ने व्यासजी को बतलाया कि आप श्रीभगवान् की लीला का ही प्रधान रूप से वर्णन करें । अब प्रश्न होता है कि भगवान् कौन हैं ? और उनकी लीला क्या है ? इसके उत्तर में **इदं हि विश्वम् इत्यादि** श्लोक कहा गया है । यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् ही हैं । मूल के इव शब्द का ही अर्थ **भगवानेव** का एव है । वे भगवान् तो इस सम्पूर्ण जगत् से भिन्न ही हैं । यह प्रपञ्च ईश्वर से अलग नहीं है किन्तु ईश्वर प्रपञ्च से भिन्न हैं ।

तत्र हेतुः इत्यादि ईश्वर के जगत् से भिन्न होने के कारण को बतलाते हुए कहा गया है क्योंकि श्रीभगवान् ही जगत् की सृष्टि पालन और संहार करते हैं । इसी कथन के द्वारा श्रीभगवान् की लीला भी बतला दी गयी है। अर्थात् जगत् की सृष्टि, पालन और उसका संहार ये सब श्रीभगवान् की लीलायें है । **यद्वा० इत्यादि** अथवा इसका यह भी अर्थ है कि यह विश्व भगवन् ही है और उनसे भिन्न यह जो जीव है, वह भी भगवान् है । यह चेतनाचेतनात्मक प्रपञ्च श्रीभगवान् से पृथक् नहीं है । एक मात्र तत्त्व श्रीभगवान् ही है । **तद्धि के हि** शब्द के द्वारा इस कथन में **सर्वं खल्विदं ब्रह्म** अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म ही है । इस प्रमाण को सूचित किया गया है ।

तद्धि इत्यादि- इन सारी बात को आप स्वयं जानते हैं मैंने तो उसके देश को बतलाकर दिशा निर्देश मात्र किया है । उसका एक मात्र उद्देश्य है कि **आचार्यवान् पुरुषो वेद** इस श्रुति के अर्थ की पूर्ति होती है । श्रुति का अर्थ है कि आचार्य के माध्यम से ही पुरुष शास्त्रीय तत्त्व को जान पाता है ॥२०॥

त्वमात्मनात्मानमवेह्यमोघदृक् परस्य पुंसः परमात्मनः कलाम् ।
अजं प्रजातं जगतः शिवाय तन्महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यताम् ॥२१॥

अन्वयः— हे अमोघदृक्त्वम् आत्मना आत्मानं परस्य पुंसः परमात्मनः कलाम् अजम् जगतः शिवाय प्रजातम् अवेहि तत् महानुभावाभ्युदयम् अधिगण्यताम् ॥२१॥

अनुवाद— हे अमोघ दृष्टि सम्पन्न व्यास जी ! आप अपने को परम पुरुष परमात्मा की कला, अजन्मा, तथा जगत् का कल्याण करने के लिए उत्पन्न जानें । अतएव महान् प्रभाव सम्पन्न श्रीभगवान् की अधिकाधिक लीलाओं का आप वर्णन करें ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

न च तवाचार्यपेक्षा ईश्वरावतारत्वादित्याह- त्वमिति । हे अमोघदृक्, त्वमात्मना स्वयमात्मानमजमेव सन्तं जगतः शिवाय प्रजातमवेहि । कुतः परस्य पुंसः कलामंशभूतम् । तत्तस्मान्महानुभावस्य हरे रभ्युदयः पराक्रमः अधि अधिकं गण्यतां निरूप्यताम् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

न च० इत्यादि व्यासजी ! आपको आचार्य की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आप तो स्वयं ईश्वर के अवतार हैं । इस बात को नारदजी ने **त्वम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा है । हे अमोघ दृष्टि सम्पन्न । आप अपने को स्वयम् ही अजन्मा तथा जगत् का कल्याण करने के लिए आविर्भूत जानें । क्योंकि आप परम पुरुष परमात्मा के अंश हैं । अतएव आप महान् प्रभाव सम्पन्न श्रीहरि के पराक्रमों का आधिकाधिक रूप से निरूपण करें ।।२१।।

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ।।२२।।

अन्वयः— कविभिः पुंसः तपसः, श्रुतस्य वास्विष्टस्य, सूक्तस्य यज्ञ दतयोः इदमेव अविच्युतः अर्थः निरूपितः यत् उत्तमश्लोकगुणानुकीर्तनम् ।।२२।।

अनुवाद— विद्वानों ने इस बात का प्रतिपादन किया है कि मनुष्य की तपस्या वेदाध्ययन, अच्छी तरह से किये गये यज्ञ, तथा स्वाध्याय ज्ञान और दान का यही नित्य फल है कि श्रीभगवान् की लीलाओं तथा गुणों का वर्णन किया जाय ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

अनेनैव तपआदि सर्वं तव सफलं स्यादित्याह- इदं हीति । श्रुतादयो भावे निष्ठाः । इदमेव हि तपःश्रवणादेरविच्युतो नित्योऽर्थः फलम् । किं तत् । उत्तमश्लोकस्य गुणानुवर्णनमिति यत् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

ऐसा ही करने से आपके तप आदि सबके सब सफल हो सकते हैं इस बात को नारदजी ने **इदं हि इत्यादि** श्लोक से कहा है । **श्रुत इत्यादि** में भाव के अर्थ निष्ठा **'क्त'** प्रत्यय हुआ है । वेदाध्ययन तथा तपस्या आदि का नित्य फल यही है कि उत्तमश्लोक श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन किया जाय ।।२२।।

अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम् ।
निरूपितो बालक एव योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ।।२३।।

अन्वयः— मुने अहं तु पुरा अतीतभवे वेदवादिनाम् कस्याश्चन दास्याः अभवम् । बालक एव प्रावृषि निर्विविक्षताम् योगिनां शुश्रूषणे निरूपितः ।।२३।।

अनुवाद— हे मुने ! मैं तो पूर्व कल्प में पूर्व जन्म में वेदवादी ब्राह्मणों की किसी दासी का पुत्र था । बाल्यावस्था में विद्यमान भी मैं वर्षा ऋतु में एक स्थान पर निवास करने वाले उन योगियों की सेवा में नियुक्त कर दिया गया ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

सत्सङ्गतो हरिकथाश्रवणादिफलं स्ववृत्तान्तेन प्रपञ्चयति- अहमिति । अहं पुरा पूर्वकल्पेऽतीतभवे पूर्वजन्मनि वेदवादिनां दास्याः सकाशादभवं जातोऽस्मि । निरूपितो नियुक्तः । क्व । योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि वर्षोपलक्षिते चातुर्मास्ये । निर्विविक्षतां निवेशमेकत्र वासं कर्तुमिच्छताम् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

सत्सङ्ग के द्वारा श्रीहरि की कथा सुनने को मिलना रूपी फल नारदजी अपने वृत्तान्त के द्वारा बतला रहे हैं । **अहम्० इत्यादि** मैं पूर्व कल्प में पूर्वजन्म में वेदवादी (वैदिक ब्राह्मणों) की किसी दासी के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ था । **निरूपितः** पद का अर्थ नियुक्त कर दिया गया है । अर्थात् बाल्यावस्था में ही वर्षा ऋतु से प्रारम्भ होने वाले चातुर्मास्य में एकत्र निवास करने के इच्छुक उन योगियों की सेवा में लगा दिया गया ॥२३॥

ते मय्यपेताखिलचापलेऽर्भके दान्तेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि ।
चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्यदर्शनाः शुश्रूषमाणे मुनयोऽल्पभाषिणि ॥२४॥

अन्वयः— अपेताखिलचापले, दान्ते, अधृतक्रीडनके, अनुवर्तिनि, शुश्रूषमाणे अल्पभाषिणि मयि अर्भके, यद्यपि तुल्यदर्शनाः तथापि कृपां चक्रुः ॥२४॥

अनुवाद— बालसुलभ सभी प्रकार की चपलताओं से रहित, जितेन्द्रिय, खिलौनों से नहीं खेलने वाले, आज्ञा का पालन करने वाले, सेवा करने वाले तथा अल्प बोलने वाले मुझ बालक पर यद्यपि वे समदर्शी थे फिर भी कृपा किए ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अपेतानि गतान्यखिलानि चापलानि यस्मात्तस्मिन् । दान्ते नियतेन्द्रिये । अधृतक्रीडनके त्यक्तक्रीडासाधने। अनुवर्तिन्यनुकूले ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

सभी प्रकार की चपलताओं से रहित यह **अपेतखिलचापले** पद का अर्थ है । **दान्ते** शब्द जितेन्द्रिय का बोधक है । अर्थात् जितेन्द्रिय मुझ पर । अधृतकीऽनके । अर्थात् खिलौनों से नहीं खेलने वाले । अनुवर्तिनि अर्थात् अनुकूल रहने वाले । ये सभी बालक नारदजी की विशेषताएँ हैं । अर्थात् नारदजी बचपन में इन सभी गुणों से सम्पन्न थे ॥२४॥

उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः सकृत्स्म भुञ्जे तदपास्तकिल्विषः ।
एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतसस्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते ॥२५॥

अन्वयः— द्विजैः अनुमोदितः उच्छिष्टलेपान् सकृत् भुञ्जेस्म एवं अपास्तकिल्विषः एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतसः तद्धर्मे एव आत्मरुचिः प्रजायते स्म ॥२५॥

अनुवाद— उन ब्राह्मणों की आज्ञा प्राप्त करके मैं उनके उच्छिष्ट पात्रों में लगे हुए अन्न को एक बार खा लेता था उससे मेरे सारे पाप विनष्ट हो गये । इस तरह उनकी सेवा करने वाले मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया और मेरी रुचि परमात्मभजन रूपी उनके ही धर्म में हो गयी ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

उच्छिष्टस्य लेपान्पात्रलग्नांस्तैर्द्विजैरनुज्ञातः सन् भुञ्जे स्म । तेन भोजनेनापास्तकिल्विषो जातोऽस्मि । तेषां धर्मे परमेश्वरभजने एवात्मनो मनसो रुचिः प्रजायते स्म इत्यनुषङ्गः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

उन ब्राह्मणों की आज्ञा पाकर उनके उच्छिष्ट पात्रों में जो अन्न लगा रहता था, उसको मैं एक बार खा लेता था । उस अन्न के खाने से मेरे सारे पाप दूर हो गये और मेरी रुचि ब्राह्मणों के भजन रूपी धर्म में हो गयी ॥२५॥

तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायतामनुग्रहेणाशृणवं मनोहराः ।
ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विशृण्वतः प्रियश्रवस्यङ्ग ममाभवद्रुचिः ॥२६॥

अन्वयः— हे अङ्ग तत्र अन्वहम् कृष्णकथाः प्रगायताम् अनुग्रहेण मनोहराः ताः श्रद्धया अनुपदं विशृण्वतः मम प्रियश्रवसि रुचिः अभवत् ॥२६॥

अनुवाद— हे व्यासजी ! वहाँ प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्ण की कथाओं का गायन करने वाले उन महात्माओं की कृपा से मनोहर उन भगवल्लीलाओं के प्रत्येक पदों को श्रद्धा पूर्वक ध्यान पूर्वक सुनने वाले मेरी प्रियकीर्ति श्रीभगवान् में स्वाभविक रूप से रुचि हो गयी ॥२६॥

भावार्थदीपिका

अशृणवं श्रुतवानस्मि । मे श्रद्धया ममैव स्वतःसिद्धया नत्वन्येन बलाज्जनितया । अतो ममेत्यस्यापौनरुक्त्यम् । अनुपदं प्रतिपदम् । प्रियं श्रवो यशो यस्य तस्मिन् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

मूल के **अशृणवम्** पद का अर्थ मैं सुनता था **मे श्रद्धया** का अर्थ है मेरी स्वाभाविक श्रद्धा के कारण जो किसी दूसरे के द्वारा प्रेरित होकर नहीं । अतएव यह नहीं कहा जा सकता है कि **'मे'** तथा **'मम'** इन दोनों पदों का प्रयोग होने से इस श्लोक में पुनरुक्त दोष है । **अनुपदम्** का अर्थ है प्रत्येक पद को प्रियंश्रवो यशः यस्य तस्मिन् यह **प्रियश्रवसि** पद का विग्रह है अर्थात् जिन श्रीभगवान् को यश प्रिय है उन श्रीभगवान् में ॥२६॥

तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने प्रियश्रवस्यस्खलिता मतिर्मम ।
ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥२७॥

अन्वयः— हे महामुने ! तदा तस्मिन् लब्ध रुचेः प्रियश्रवसि मे अस्खलिा मतिः अभवत् । यया अहम् एतत् सदसत् ब्रह्मणि मयि स्वमायया कल्पितं पश्ये ॥२७॥

अनुवाद— हे महामुने व्यासजी ! उस समय मेरी रुचि श्रीभगवान् में हो गयी थी । उसके फल स्वरूप मेरी बुद्धि श्रीभगवान् में सुदृढ हो गयी । उसके कारण इस जगत् प्रपञ्च से भिन्न ब्रह्मस्वरूप मुझमें यह स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर मेरी ही माया (अविद्या) के द्वारा अपने में कल्पित रूप से देखने लग गया ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

प्रियं श्रवो यस्य तस्मिन्भगवति लब्धरुचेर्ममास्खलिताऽप्रतिहता मतिरभवदित्यनुषङ्गः । यया मत्या परे प्रपञ्चातीते ब्रह्मरूपे मयि सदसत्स्थूलं सूक्ष्मं चैतच्छरीरं स्वमायया स्वाविद्यया कल्पितं नतु वस्तुतोऽस्तीति तत्क्षणमेव पश्यमि ॥२७॥

भावप्रकाशिका

जिन श्रीभगवान् को लीलाएँ प्रिय हैं, उनमें मेरी अस्खलिता अप्रतिहत (सुदृढ) बुद्धि हो गयी । उस बुद्धि के कारण मैं इस प्रपञ्च से ऊपर उठ गया । इस प्रकार के ब्रह्म स्वरूप मुझमें ही यह स्थूल और सूक्ष्म शरीर कल्पित है इस प्रकार मैंने उसी क्षण जान लिया । कल्पित है यह कहकर बतलाया गया है कि ये दोनों प्रकार के शरीर मिथ्या हैं वास्तविक नहीं हैं ॥२७॥

इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू हरेर्विशृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलम् ।
संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभिर्भक्तिः प्रवृत्तात्मरजस्तमोपहा ॥२८॥

अन्वयः— इत्थं शरत्प्रावृषिकौ ऋतू अनुसवम् महात्मभिः मुनिभिः संकीर्त्यमानम् अमलं यशः शृण्वतः मे आत्मरजस्तमोऽपहा भक्तिः प्रवृत्ता ॥२८॥

अनुवाद— इस तरह वर्षा तथा शरत् इन दोनों ऋतुओं में तीनों कालों में महात्मा मुनियों के द्वारा कीर्तन किए जाने वाले श्रीहरि के निर्मल यश को सुनने के कारण मुझमे रजोगुण तथा तमोगुण को विनष्ट करने वाली भक्ति उत्पन्न हो गयीं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

एवं शुद्धे त्वंपदार्थे ज्ञाते देहादिकृतविक्षेपनिवृत्तेस्तत्कारणभूतरजस्तमोनिवर्तिका दृढा भक्तिर्जातेत्याह- इत्थमिति। हरेर्यश: अनुसवं त्रिकालम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह **तत्त्वमसि वाक्यगत त्वं** पदार्थ का ज्ञान हो जाने पर देहादि के द्वारा होने वाले विक्षेपों (विघ्नों) का नाश हो गया। उसके कारण रजोगुण और तमोगुण को विनष्ट करने वाली भक्ति का मुझमें उदय हो गया ॥२८॥

तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हतैनसः। श्रद्दधानस्य बालस्य दान्तस्यानुचरस्य च ॥२९॥
ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत्साक्षाद्भगवतोदितम्। अन्ववोचन्गमिष्यन्तः कृपया दीनवत्सलाः ॥३०॥

अन्वयः— एवम् अनुरक्तस्य, प्रश्रितस्य, हतैनसः श्रद्दधानस्य, दान्तस्य, अनुचरस्य च बालस्य मे दीनवत्सलाः ते गमिष्यन्तः कृपया तत् गुह्यतमं ज्ञानम् अन्ववोचन् यत् साक्षात् भगवता उदितम् ॥२९-३०॥

अनुवाद— इस तरह उन मुनियों से प्रेम करने वाले, विनयी, निष्पाप, श्रद्धा सम्पन्न, जितेन्द्रिय तथा उनकी सेवा करने वाले मुझको जाने की इच्छा वाले तथा दीनों पर वात्सल्य प्रदर्शित करने वाले उन मुनियों ने मुझ बालक को उस रहस्यमय ज्ञान का उपदेश दे दिया जिस ज्ञान को स्वयम् श्रीभगवान् ने कहा है ॥२९-३०॥

भावार्थ दीपिका

तस्येति। तस्य ज्ञानशुद्धत्वंपदार्थस्य दृढभक्तिमतो मे। प्रश्रितस्य विनीतस्य ॥२९॥ गुह्यतममिति। साधनभूतधर्मतत्त्वज्ञानं गुह्यम्। तत्साध्यं विविक्तात्मज्ञानं गुह्यतरम्। तत्प्राप्येश्वरज्ञानं गुह्यतमम्। भगवतोदितं भागवतं शास्त्रमन्ववोचन्नुपदिष्टवन्तः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

चूकि ज्ञान के द्वारा मेरा त्वं पदार्थ अर्थात् अन्त:करणावच्छिन्न चैतन्य शुद्ध हो गया था। अतएव सुदृढ भक्ति सम्पन्न तथा विनीत मुझको मुनियों ने गुह्यतम ज्ञान का उपदेश दे दिया। साधनभूत धर्मतत्त्व का ज्ञान गुह्य है। उसके द्वारा साध्यभूत ऐकान्तिक आत्मज्ञान गुह्यतर है एवं उस ज्ञान के द्वारा प्राप्य ईश्वर का ज्ञान गुह्यतम है। भगवतोदितम् का अर्थ है भागवत शास्त्र का उपदेश कर दिया ॥२९-३०॥

येनैवाहं भगवतो वासुदेवस्य वेधसः। मायानुभावमविदं येन गच्छन्ति तत्पदम् ॥३१॥

अन्वयः— येन एव अहं वेधसः भगवतो वासुदेवस्य मायानुभावं अविदम् येन तत् पदं गच्छन्ति ॥३१॥

अनुवाद— उसी ज्ञान से मैंने जगत् के कर्ता भगवान् श्रीकृष्ण की माया के प्रभाव को जान सका उसी ज्ञान से लोग परम पद को प्राप्त करते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तदेव ज्ञानं पूर्वोक्तत्वंपदार्थज्ञानाद्विवेकेन दर्शयति- येनैवेति। अविदं ज्ञातवानहम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

पूर्वोक्त त्वम् पदार्थ के ज्ञान जन्य विवेक के द्वारा ही मैं **अविदम्** श्रीभगवान् की माया के प्रभाव को जान सका ॥३१॥

एतत्संसूचितं ब्रह्मंस्तापत्रयचिकित्सितम् । यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम् ॥३२॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् यत् ईश्वरे ब्रह्मणि भगवति भावितम् कर्म एतत् तापत्रयचिकित्सितम् ॥३२॥

अनुवाद— हे व्यासजी सम्पूर्ण जगत् के नियामक सम्पूर्ण जगत् में व्यापक श्रीभगवान् को अपने समस्त कर्मों को समर्पित कर देना ही संसार के आध्यात्मिक आदि तीनों तापों के दूर करने की दवा है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

तत्साधनधर्मरहस्यं च सूचितमित्याह- एतदिति । तापत्रयस्याध्यात्मिकादेश्चिकित्सितं भेषजं निवर्तकम् । सत्त्वशोधकमिति यावत् । किं तत् । भगवति भावितं समर्पितं यत्कर्म तत् । कथंभूते भगवति । ईश्वरे सर्वनियन्तरि । एवमपि च ब्रह्मण्यप्रच्युतपूर्णरूपे ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

एतत्० इत्यादि इस श्लोक के द्वारा उसके साधन भूत धर्म के रहस्य को सूचित किया गया है । संसार में प्राप्त होने वाले आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक इन तीनों प्रकार के संतापों को दूर करने वाली वही औषधि है अर्थात् वही अन्तःकरण को शुद्ध करने वाला है । अब प्रश्न उठता है कि वह क्या है तो इसका उत्तर है अपने समस्त कर्मों को श्रीभगवान् को समर्पित कर देना ही वह साधन है । वे ही श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर अर्थात् नियामक हैं तथा ब्रह्म हैं । अर्थात् पूर्ण ब्रह्म हैं उनके स्वरूप में कभी भी कोई भी विकार नहीं आता है ॥३२॥

आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत । तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ॥३३॥

अन्वयः— हे सुव्रत येन भूतानां यश्च आमये जायन्ते तदेव हि चिकित्सितम् आमयं द्रव्यं न पुनाति किम् ॥३३॥

अनुवाद— हे सुन्दर व्रत वाले व्यासजी जिस पदार्थ के सेवन से मनुष्यों को रोग उत्पन्न हो जाता है उसी द्रव्य का यदि चिकित्सा विधि से सेवन किया जाय तो वह उस रोग को दूर नहीं कर देता है क्या ?॥३३॥

भावार्थ दीपिका

ननु संसारहेतोः कर्मणः कथं तापत्रयनिवर्तकत्वम् । साम्रगीभेदेन घटत इति सदृष्टान्तमाह द्वाभ्याम् । य आमयो रोगो येन घृतादिना जायते तदेव केवलमामयकारणभूतं द्रव्यं तमामयं न पुनाति । न निवर्तयतीत्यर्थः । किंतु चिकित्सितं द्रव्यान्तरैर्भावितं सत्पुनात्येव यथा ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि कर्म तो संसार के बन्धन का साधन है वह संसार के सन्तापत्रय का विनाशक कैसे हो सकता है ? तो इसका उत्तर है कि सामग्रीभेद के कारण ऐसा होता है । इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक दो श्लोकों के द्वारा कहा गया है । जिन घृत आदि का सेवन करने से जो रोग उत्पन्न होते हैं, वे अकेले घृत आदि का सेवन रोग का कारण होते हैं वे उस रोग को दूर नहीं कर सकते हैं । किन्तु वह जब चिकित्सा विधि से दूसरे द्रव्यों से मिश्रित कर दिया जाता है तो वही उस रोग को जैसे दूर कर देता है, उसी तरह संसार का कारणभूत कर्म श्रीभगवान् को समर्पित कर दिए जाने पर संसार के बन्धन को दूर कर देने का काम करता है ॥३३॥

एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः । त एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे ॥३४॥

अन्वयः— एवं नृणां सर्वे क्रियायोगाः संसृति हेतवः ते एव परे कल्पिता; आत्मविनाशाय कल्पन्ते ॥३४॥

अनुवाद— ऐसे तो मनुष्यों के द्वारा किए जाने वाले सभी कर्म संसार के बन्धन के कारण बनते हैं । किन्तु परमात्मा को समर्पित कर दिए जाने पर वे ही कर्मों की निवृत्ति के साधन बन जाते हैं ।

भावार्थ दीपिका

तथा आत्मविनाशाय कर्मनिवृत्तये कल्पन्ते समर्था भवन्ति । परे ईश्वरे कल्पिता अर्पिताः सन्तः । अत्र च प्रथमं महत्सेवा, ततश्च तत्कृपा, ततस्तद्धर्मश्रद्धा, ततो भगवत्कथाश्रवणं, ततो भगवति रतिः, तया च देहद्वयविवेकात्मज्ञानं, ततो दृढा भक्तिः, ततो भगवत्तत्त्वज्ञानं, ततस्तत्कृपया सर्वज्ञत्वादिभगवद्गुणाविर्भाव इति क्रमो दर्शितः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

ईश्वर को समर्पित कर दिए जाने वाले कर्म ही कर्मों की निवृत्ति के साधन बन जाते हैं । यहाँ पर यह क्रम बतलाया गया है कि पहले महापुरुषों की सेवा होती है, उसके पश्चात् महापुरुषों की कृपा प्राप्त होती है । उसके पश्चात् महापुरुषों के कर्मों में श्रद्धा होती है, उसके पश्चात् भगवत् कथा सुनने को मिलती है, उसके पश्चात् श्रीभगवान् में प्रेम उत्पन्न हो जाता है, इस प्रेम के द्वारा स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकार के देहों के भेदज्ञानजन्य आत्मज्ञान होता है उसके पश्चात् भक्ति सुदृढ हो जाती है । उसके पश्चात् भगवत् तत्त्व का ज्ञान होता है । उसके पश्चात् श्रीभगवान् की कृपा से भगवद् गुणों का आविर्भाव होता है ।।३४।।

यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम् । ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम् ।।३५।।

अन्वयः— अत्र यत् भगवत् परितोषणम् कर्म क्रियते तदधीनं यत् ज्ञानं तत् भक्तियोगसमन्वितम् भवति ।।३५।।

अनुवाद— इस लोक में श्रीभगवान् को प्रसन्न करने वाले जिन कर्मों को किया जाता है उसके द्वारा जिस ज्ञान की उत्पत्ति होती है, वह भक्तियोग से युक्त होता है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

ननु च ज्ञानेनाज्ञानप्राप्तकर्मनाशस्तच्च ज्ञानं भक्तियोगाद्भवति कथं कर्मणा कर्मनाशः स्यात्तत्राह- यदत्रेति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि ज्ञान के द्वारा अज्ञान जन्य कर्म का नाश होता है । वह ज्ञान भक्ति योग के द्वारा उत्पन्न होता , किन्तु कर्मों के द्वारा कर्म का नाश कैसे होता है ? इसके उत्तर में **यदत्र० इत्यादि** श्लोक कहा गया है। अर्थात् इस कर्म भूमि में कर्मों को श्रीभगवान् को समर्पित कर दिए जाने के कारण श्रीभगवान् को प्रसन्न करने वाला जो कर्म पुरुषों के द्वारा किया जाता है, जो भक्ति योग से युक्त ज्ञान होता है वह उस कर्म के अधीन ही होता है । श्रीभगवान् को अर्पित किए गये कर्म के द्वारा भगवद्भक्ति युक्त ज्ञान उत्पन्न होता है । और कर्म निवर्तक भक्ति के साथ ज्ञान के उत्पादन द्वारा कर्मों का नाश हो जाता है ।।३५।।

कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिक्षयाऽसकृत् । गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरन्ति च ।।३६।।

अन्वयः— यत्र असकृत् भगवत् शिक्षया कर्माणि कुर्वाणा कृष्णस्य गुण नामानि, गृणन्ति कृष्णंच अनुस्मरन्ति ।।३६।।

अनुवाद— जब मनुष्य बार-बार श्रीभगवान् सम्बन्धी शिक्षा के द्वारा कर्मों को करते हैं तो वे श्रीभगवान् के गुणों के सूचक नामों का उच्चारण करते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण भी करते हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

भगवदर्पणेन क्रियमाणं कर्म भक्तियोगं जनयतीति सदाचारेण दर्शयति । यत्र यदा भगवतः शिक्षया कर्माणि भवन्ति श्रीकृष्णस्य गुणनामानि गृणन्त्यनुस्मरन्ति च कृष्णमित्यर्थः । इयं च भगवच्छिया '**यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्** ।।' इति ।।३६।।

भावप्रकाशिका

श्रीभगवान् को अर्पण करने के लिए जो कर्म किया जाता है वह कर्म भक्तियोग को उत्पन्न करता है इस अर्थ का प्रतिपादन सदाचार के द्वारा बतलाते हैं । जब मनुष्य श्रीभगवान् की शिक्षा के द्वारा कर्मों को करते हैं तब

वे भगवान् के गुणों के सूचक नामों का उच्चारण करते हैं तथा भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण भी करते हैं भगवान् की शिक्षा यह है कि—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।। (भगवद् गीता)

अर्थात् हे अर्जुन ! तुम जो करते हो, जो भोजन करते हो, जो होम करते हो तथा जो दान करते हो वह सबकुछ मुझको अर्पित कर दो ।।३६।।

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि। प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च।।३७।।
इति मूर्त्यभिधानेन मन्त्रमूर्तिममूर्तिकम्। यजते यज्ञपुरुषं स सम्यग्दर्शनः पुमान्।।३८।।

अन्वयः— भगवते वासुदेवाय तुभ्यं नमः, धीमहि । प्रद्युम्नाय, अनिरुद्धाय सङ्कर्ष्णाय च नमः इति मूर्त्यभिधानेन, अमूर्तिकम् मन्त्रमूर्तिं यज्ञपुरुषं यः यजते स सम्यग् दर्शनः ।।३७-३८।।

अनुवाद— भगवान् वासुदेव को नमस्कार है, हम आपको नमस्कार करते हैं, हम आपका ध्यान करते है। सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध को भी नमस्कार है । इस तरह से जो पुरुष मूर्तिवाचक मन्त्र के द्वारा मूर्ति व्यतिरिक्त मूर्तिशून्य यज्ञपुरुष भगवान् का पूजन करता है उसी का ज्ञान पूर्ण और यथार्थ है ।।३७-३८।।

भावार्थ दीपिका

कीर्तनस्मरणरूपभक्तिहेतुत्वमुक्तं, ज्ञानहेतुत्वमाह द्वाभ्याम्- नम इति । नमो धीमहि मनसा नमनं कुर्वीमहि ।।३७।। अमूर्तिकं मन्त्रोक्तव्यतिरिक्तमूर्तिशून्यम् । यजते पूजयति स पुमान्सम्यग्दर्शनो भवति ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

कीर्तन तथा स्मरण रूप भक्ति के हेतुत्व का प्रतिपादन किया जा चुका है अब ज्ञान के हेतुत्व का प्रतिपादन **नमो भगवते तुभ्यम्० इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा किया जा रहा है । नमो धीमहि का अर्थ है मन से हम आपको नमस्कार करते हैं । **अमूर्तिकम्** का अर्थ है मन्त्रोक्त मूर्ति से भिन्न मूर्ति से रहित **यजते** अर्थात् पूजा करता है । उसी मनुष्य का ज्ञान पूर्ण एवं यथार्थ है यह **सम्यग्दर्शनः** का अर्थ है । यद्यपि श्रीभगवान् की कोई भी प्राकृत मूर्ति नहीं है किन्तु मूर्ति के वाचक मन्त्र के द्वारा मन्त्र के ध्यान में बतलाये गये मूर्ति का मन्त्र पढ़ने से वह मूर्ति अविर्भूत हो जाती है । इस तरह से यज्ञपुरुष भगवान् की आराधना करने वाले व्यक्ति का ही ज्ञान पूर्ण और यथार्थ है ।।३७-३८।।

इमं स्वनिगमं ब्रह्मन्नवेत्य मदनुष्ठितम् । अदान्मे ज्ञानमैश्वर्यं स्वस्मिन्भावं च केशवः ।।३९।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् इमं मदनुष्ठितम् स्वनिगमम् अवेत्य केशवः मे ज्ञानम् ऐश्वर्यं स्वस्मिन् भक्तिं च अदात् ।।३९।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन मेरे द्वारा अपने उपदेश का पालन किया गया जानकर प्रसन्न हुए भगवान् केशव ने मुझको ज्ञान, ऐश्वर्य और अपने में मुझको भक्ति प्रदान किया ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

एवं कृतवति मयि हरिः स्वसदृशं ज्ञानादिकं दत्त्वानित्याह । इमं स्वनिगमं स्वोपदेशं मदनुष्ठितं मयानुष्ठितमवेत्य ज्ञात्वा। भावं च प्रीतिं च ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से मेरे द्वारा श्रीभगवान् के उपदेश का पालन किए जाने पर श्रीभगवान् ने अपने सदृश ही मुझको ज्ञान इत्यादि प्रदान किया । **इमं स्वनिगममवेत्य** का अर्थ है मेरे द्वारा अपने उपदेश का अनुष्ठान जानकर भाव शब्द प्रीति का बोधक है ।।३९।।

त्वमप्यदभ्रश्रुत विश्रुतं विभोः समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम् ।
प्रख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां यत्क्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे व्यासनारदसंवादे पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

अन्वयः— हे अदभ्रश्रुत त्वमपि विभोः विश्रुतम् आख्याहि येन विदां बुभुत्सितं समाप्यते यत् दुःखैः मुहुरर्दितात्मनाम् क्लेश निर्वाणम् उशन्ति, अन्यथा न ।।४०।।

अनुवाद— हे पूर्णज्ञान सम्पन्न व्यासजी आप भी श्रीभगवान् के अत्यन्त प्रख्यात यश (लीलाओं) का वर्णन करें जिन लीलाओं को जान लेने पर विद्वान् की जानने की इच्छा पूरी हो जाती है तथा जिन लोगों को दुखों ने बार-बार रौंद डाला है उनके दुःखों को दूर करने वाला उसी को लोग मानते है । उसके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उपाय नहीं हैं ।।४०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

भावार्थ दीपिका

अतस्त्वमप्येवं कुर्वित्याह– त्वमिति । अदभ्रमनल्पं श्रुतं यस्य हे अदभ्रश्रुत, विभोर्विश्रुतं यशः प्रख्याहि कथय । येन विश्रुतेन बुद्धेन विदां विदुषां बुभुत्सितं बोद्धुमिच्छा समाप्यते । यद्यतो दुःखैः पीडितानां क्लेशशान्तिं प्रकारान्तरेण न मन्यन्ते ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

आप भी मेरे ही समान श्रीभगवान् को अपने सभी कर्मों को समर्पित कर दें । इस बात को **त्वमप्यदभ्रश्रुत० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । **अदभ्रमलं श्रुतं यस्य तत्सम्बुद्धौ** यह अदभ्रश्रुत पद का विग्रह है । अर्थात् हे पूर्ण ज्ञान सम्पन्न व्यासजी आप भी व्यापक श्रीभगवान् के विख्यात यश (लीलाओं) का वर्णन करें । श्रीभगवान् के यश का ज्ञान हो जाने पर विद्वानों (ज्ञानियों) की जिज्ञासा शान्त हो जाती है । तथा बार-बार दुःखों से पीड़ित प्राणियों के दुःखों की शान्ति का साधन श्रीभगवान् की लीलाओं का ज्ञान ही माना जाता है अन्य प्रकार से दुःखों की शान्ति नहीं मानी जाती हैं ।।४०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के पाञ्चवें अध्याय की भावार्थ दीपिका टीका की श्रीशिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।५।।

छठा अध्याय

नारदजी के पूर्व चरित्र का अवशिष्ट भाग

सूत उवाच

एवं निशम्य भगवान्देवर्षेर्जन्म कर्म च । भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन्व्यासः सत्यवतीसुतः ॥१॥

अन्वयः— देवर्षेः एवं जन्म कर्म च निशम्य सत्यवती सुतः भगवान् व्यासः तं भूयः पप्रच्छ ॥१॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— देवर्षि नारद के जन्म और कर्म को इस प्रकार से सुनकर माता सत्यवती के पुत्र ऐश्वर्य सम्पन्न व्यासजी ने नारदजी से पुनः पूछा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

व्यासस्य प्रत्ययार्थं च षष्ठे प्राग्जन्मसंभवम् । स्वभाग्यं नारदः प्राह कृष्णसंकथनोद्भवम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

नारदजी को विश्वास दिलाने के लिए नारदजीने छठे अध्याय में पूर्वजन्म में भगवान् श्रीकृष्ण की कथा से उत्पन्न अपने भाग्य का वर्णन किया है ॥१॥

व्यास उवाच

भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिस्तव । वर्तमानो वयस्याद्ये ततः किमकरोद्भवान् ॥२॥

अन्वयः— तव विज्ञानादेष्टृभिः भिक्षुभिः विप्रवसिते आद्ये वयसि वर्तमानः भवान् ततः किम् अकरोत् ॥२॥

व्यासजी ने कहा

अनुवाद— आपको ज्ञानोपदेश करने वाले महात्माओं के चले जाने पर बाल्यावस्था में रहने वाले आप ने उसके पश्चात् क्या किया ?॥२॥

भावार्थ दीपिका

स्वयमपि तथा चिकीर्षुर्गुरूपदेशानन्तरभावि तच्चरितं पृच्छति- भिक्षुभिरिति । विप्रवसिते दूरदेशगमने कृते सति । विज्ञानस्यादेष्टृभिरूपदेशकर्तृभिः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

व्यासजी नारदजी के ही समान आचरण करने की इच्छा से गुरुओं के उपदेश के पश्चात् नारदजी ने जो किया उनके उस चरित को व्यासजी ने **भिक्षुभिः इत्यादि** श्लोक से पूछा अर्थात् विज्ञान का उपदेश करने वाले मुनियों के **विप्रवसिते** अर्थात् दूर देश में चले जाने पर ॥२॥

स्वायंभुव कया वृत्त्या वर्तितं ते परं वयः । कथं चेदमुदस्राक्षीः काले प्राप्ते कलेवरम् ॥३॥

अन्वयः— हे स्वायम्भुव ते परं वयः कया वृत्त्या वर्तितम् । काले प्राप्ते च इदं कलेवरम् कथम् उदस्राक्षीः ॥३॥

अनुवाद— हे ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी, आपकी शेष आयु किस प्रकार से व्यतीत हुयी तथा मृत्यृ का समय आ जाने पर आपने इस दासीपुत्र का शरीर किस प्रकार से त्यागा ॥३॥

भावार्थ दीपिका

परं वय उत्तरमायुः । ते त्वया वर्तितं नीतम् । इदमिति दासीपुत्रभूतं कलेवरमुदस्राक्षीरुत्सृष्टवानसि ॥३॥

भाव प्रकाशिका

ज्ञानोपदेष्टा गुरुओं के चले जाने के बाद बची हुय आयु को आपने कैसे बिताया । और मृत्यु काल के आने पर दासीपुत्र रूपी शरीर को आपने कैसे त्यागा ?।।३।।

प्राक्कल्पविषयामेतां स्मृतिं ते सुरसत्तम । न ह्येष व्यवधात्काल एष सर्वनिराकृतिः ।।४।।

अन्वयः— एषकालः सर्वनिराकृतिः । हे सुरसत्तम एष प्राक्कल्प विषयां ते स्मृतिं कथं न व्यवधात् ।।४।।

अनुवाद— यह काल सबों को विनष्ट कर देने वाला है । हे देवश्रेष्ठ नारदजी पूर्वकल्प की बातों को याद रखने वाली आपकी स्मृति को यह काल कैसे विनष्ट नहीं किया ? व्यवधात में अट् का आगम आर्ष प्रयोग के कारण नहीं हुआ है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

एष कल्पान्तलक्षणः कालस्ते स्मृति कथं न व्यवधान्न खण्डितवान् । अडागमाभावस्त्वार्षः । हि यत एष निराकृतिरपलापो यस्मात्सः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

कल्प का अन्त होने पर भी काल ने आपकी स्मृति को किस कारण से नहीं विनष्ट कर सका ? व्यवधात् में अट् के आगम का अभाव आर्ष प्रयोग के कारण नहीं हुआ है ।।४।।

नारद उवाच

भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिर्मम । वर्तमानो वयस्याद्ये तत एतदकारषम् ।।५।।

अन्वयः— मम विज्ञानादेष्टृभिः भिक्षुभिः विप्रवसिते आद्ये वयसि वर्तमान एतत् अकार्षम् ।।५।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— मुझको ज्ञानोपदेश करने वाले सन्तों के चले जाने पर बाल्यावस्था में विद्यमान मैंने यह किया ।।५।।

भावार्थ दीपिका

अकारषं कृतवानहम् । रेफषकारयो विश्लेषश्छन्दोऽनुरोधेन ।।५।।

भाव प्रकाशिका

छन्दो भङ्ग से बचने के लिए अकारषम् इस पद में रकार और षकार का विलेष हो गया है । अन्यथा अकार्षम् यह पद होना चाहिए । अकार्षम् का अर्थ है मैंने किया ।।५।।

एकात्मजा मे जननी योषिन्मूढा च किंकरी । मय्यात्मजेऽनन्यगतौ चक्रे स्नेहानुबन्धनम् ।।६।।

अन्वयः— मे जननी एकात्मजा योषित् मूढा, किङ्करी च, अनन्यगतौ आत्मजे मयि स्नेहानुबन्धनम् चक्रे ।।६।।

अनुवाद— मैं अपनी माता का इकलौता पुत्र था । मेरी माँ एक तो स्त्री थी, दूसरे मूढ (अज्ञानी) थी और तीसरे दासी थी मेरा भी कोई दूसरा सहारा नहीं था अतएव वह अपने पुत्र प्रेम में ही मुझको को बाँध रखा था।।६।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तावत्कंचित्कालं तत्रैव मातृस्नेहयन्त्रितो न्यवसमित्याह त्रिभिः । एक एवाहमात्मजो यस्याः सा । योषिदिति मूढेति च स्नेहानुबन्धे हेतुः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

माता के ही स्नेह पाश में बन्धा हुआ मैंने कुछ समय तक वहीं निवास किया इस बात को नारदजी ने

तीन श्लोकों द्वारा बतलाया । जिसका केवल मैं ही पुत्र था यह एकात्मजा पद का अर्थ है । मुझमें उसके स्नेहानुबन्धन का कारण यह था कि वह मूढ स्त्री थी ॥६॥

साऽस्वतन्त्रा न कल्पासीद्योगक्षेमं ममेच्छती । ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा ॥७॥

अन्वयः— अस्वतन्त्रा सा मम योगक्षेमम् इच्छती कल्पा न आसीत् दारुमयी योषा यथा लोकः ईशस्य हि वशे ॥७॥

अनुवाद— वह मेरे योगक्षेम का निर्वाह करना चाहकर भी परतन्त्र होने के कारण नहीं कर पाती थी । जिस तरह कठपुतली नचाने वाले की इच्छा के अनुसार कठपुतली नाचती है, उसी प्रकार यह जगत् परमात्मा की इच्छा के ही अधीन है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

किंकरीत्यस्यार्थं प्रपञ्चयति- सेति । अस्वतन्त्रा सा । अतो न कल्पा न समर्था आसीत् । दारुमयी योषेत्यतिपारवश्ये दृष्टान्तः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

अपनी माता के किंकरित्व को ही विस्तार से **साऽस्वतंत्रा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया गया है । वह परतन्त्र होने के कारण मेरे योगक्षेम का निर्वाह करने में असमर्थ थी । पारतन्त्र्य में कठपुतली को दृष्टान्त रूप से उपन्यस्त किया गया है ॥७॥

अहं च तद्ब्रह्मकुलं ऊषिवांस्तदवेक्षया । दिग्देशकालाव्युत्पन्नो बालकः पञ्चहायनः ॥८॥

अन्वयः— अहं च तत् अवेक्षया तद् ब्रह्मकुले उषिवान् । तदा अहम् दिग्देशकालाव्युत्पन्नः पञ्चहायनः बालक आसम् ॥८॥

अनुवाद— मैं भी अपनी माता के स्नेह पाश की समाप्ति की प्रतीक्षा करता हुआ उस ब्राह्मण परिवार में ही रह रहा था । उस समय देश तथा काल से अपरिचित मैं पाँच वर्ष का बालक था ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं सा स्नेहं चक्रेऽहं च दिगादिष्वनभिज्ञोऽतस्तत्रैव न्यवसमित्याह । अहं च तस्मिन्ब्रह्मकुले तस्या मातुः स्नेहानुबन्धस्यावेक्षया । कदा विरमेदिति प्रतीक्षयेत्यर्थः । ऊषिवान्वासं कृतवान् । पञ्चहायनः पञ्चवर्षः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

मेरी माँ मुझसे इस प्रकार से प्रेम करती थी और मैं भी दिग् देश और काल से अपरिचित था अतएव उस ब्राह्मण परिवार में ही रहने लगा । इस बात को **अहं च० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । मैं भी उस ब्राह्मण के परिवार में अपनी माता के स्नेह के बन्धन के समाप्त होने की प्रतीक्षा करते हुए रहने लगा । उस समय मेरी अवस्था पाँच वर्ष की थीं । **पञ्चहायनः** पद क अर्थ पाँच वर्ष का है ॥८॥

एकदा निर्गतां गेहाद्दुहन्तीं निशि गां पथि । सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टः कृपणां कालचोदितः ॥९॥

अन्वयः— एकदा गां दुहन्तीं निशि गेहात् निर्गताम् पथि पदा स्पृष्टः कालचोदितः कृपणां तां अदशत् ॥९॥

अनुवाद— एक दिन गौ दूहने के लिए रात में जब घर से बाहर गयी थी उस समय पैर से छू जाने के कारण काल के द्वारा प्रेरित सर्प ने उसे काट लिया ॥९॥

भावार्थ दीपिका

गेहान्निर्गतां गां दुहन्तीम् हेतौ शतृप्रत्ययः । दोग्धुं निर्गतामित्यर्थः । पदा पादेनास्पृष्ट ईषदाक्रान्तः अदशदखादत् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

गौ दूहने के लिए घर से निकली हुयी उसको पैर से छू जाने के कारण सर्प ने काट लिया। **दुहन्तीम्** में हेतु के अर्थ में शतृ प्रत्यय हुआ है। अतएव इसका अर्थ दूहने के लिए है ॥९॥

तदा तदहमीशस्य भक्तानां शमभीप्सतः। अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम् ॥११॥

अन्वयः— तदा तदहम् भक्तानां शमम् अभीप्सतः ईशस्य अनुग्रहं मन्यमानः उत्तरां दिशम् प्रातिष्ठम् ॥११॥

अनुवाद— उस समय उस माता की मृत्यु को भक्तों पर कृपा करने वाले श्रीभगवान् की कृपा मानकर मैं उत्तर दिशा में चल पड़ा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तन्मातुर्मरणं भक्तानां शं कल्याणमभीप्सत ईशस्यानुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं प्रस्थितोऽस्मि ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

माता की उस मृत्यु को भक्तों का कल्याण करने की इच्छा वाले श्रीभगवान् की कृपा मानने वाले मैंने उत्तर दिशा में प्रस्थान किया ॥१०॥

स्फीताञ्जनपदांस्तत्र पुरग्रामव्रजाकरान्। खेटखर्वटवाटीश्च वनान्युपवनानि च ॥११॥
चित्रधातुविचित्राद्रीनिभभग्नभुजद्रुमान्। जलाशयान् शिवजलान्नलिनीः सुरसेविताः ॥१२॥
चित्रस्वनैः पत्ररथैर्विभ्रमद्भ्रमरश्रियः। नलवेणुशरस्तम्बकुशकीचकगह्वरम् ॥१३॥
एक एवातियातोऽहमद्राक्षं विपिनं महत्। घोरं प्रतिभयाकारं व्यालोलूकशिवाजिरम् ॥१४॥

अन्वयः— तत्र स्फीतान् जनपदान्, पुरग्रामव्रजाकरान् खेटखर्वट वाटीश्च वनानि, उपवनानि च, चित्रधातुविचित्राद्रीन् इभभुग्नभुजद्रुमान् शिवजलान् जलाशयान् चित्रस्वनैः पत्ररथैः विभ्रद्भ्रमरश्रियः सुरसेविताः नलिनीः एक एव अतियातः अहम्, नलवेणुशरस्तम्बकुशकीचक गह्वरम् व्यालोलूकशिवाजिरम् प्रतिभयाकारं, घोरं महत् विपिनम् अद्राक्षम् ॥११-१४॥

अनुवाद— जाते हुए मैंने मार्ग में समृद्ध देशों, नगरों, ग्रामों गोशालाओं, खेटों (कृषकों के ग्रामों) खर्वटों (पर्वत की तराई) में वसे ग्रामों, वाटिकाओं, उद्यानों, उपवनों, रङ्गविरङ्गे धातुओं से युक्त होने के कारण मनोहर पर्वतों, जिनकी शाखाओं को हाथियों ने तोड़ दिया था ऐसे वृक्षों, सुन्दर जल से भरे जलाशयों, देवताओं द्वारा सेवन किए जाने योग्य कमलों से मनोहर ध्वनि करने वाले पक्षियों तथा मँडराने वाले भौरों की शोभा से युक्त सरोवरों को अकेले पार करके मैंने नरकट, बाँस सेठा, कुश तथा कीचक से भरे हुए एवं सर्प, उल्लू तथा स्यार से भरे हुए अत्यन्त भयङ्कर एक महान् वन को देखा ॥११-१४॥

भावार्थ दीपिका

स्फीतान् जनपदादीनतियातः सन् महद्विपिनमद्राक्षमिति चतुर्थेनान्वयः। जनपदादिषु नानागुणदोषयुक्तेषु समदृष्टिः सन्गतोऽहमिति तात्पर्यार्थः। स्फीतान्समृद्धान्। जनपदान्देशान्। तत्र तस्यां दिशि। पुरग्रामव्रजाकरान्। तत्र पुराणि राजधान्यः। ग्रामा भृगुप्रोक्ताः- '**विप्राश्च विप्रभृत्याश्च यत्र चैव वसन्ति ते। स तु ग्राम इति प्रोक्तः शूद्राणां वास एव च॥**' इति। व्रजा गोकुलानि। आकरा रत्नाद्युत्पत्तिस्थानानि तान्। खेटाः कर्षकग्रामाः। खर्वटा गिरितटग्रामाः, भृगुप्रोक्ता वा **एकतो यत्र तु ग्रामो नगरे चैकतः स्थितम्। मिश्रं तु खर्वटं नाम नदीगिरिसमाश्रयम्॥** इति वाट्यः पूगपुष्पादीनां वाटिकास्ताः। वनानि स्वतः सिद्धवृक्षाणां समूहाः। उपवनानि रोपितवृक्षाणां समूहाः। तानि च ॥११॥ चित्रैर्धातुभिः स्वर्णरजताद्यैर्विचित्रानद्रींश्च। इभैर्भग्ना भुजाः शाखा येषां ते द्रुमायेषु तान्। शिवानि भद्राणि जलानि येषां तान्। नलिनीः सरसीः ॥१२॥ चित्राः स्वना येषां तैः पत्ररथैः पक्षिभिस्तन्नादप्रबुद्धैरित्यर्थः। विभ्रमद्भिर्भ्रमरैः श्रीः शोभा यासां ता नलिनीरतियातोऽतिक्रम्य गतः सन्महद्विपिनं

वनमद्राक्षम् । कीदृशम् । नलवेणुशराणां स्तम्बैः कुशैः कीचकैश्च गह्वरं दुर्गमम् । तत्र वेणुजातय एव विपुलान्तरालगर्भाः कीचकाः ।।१३।। घोरं दुःसहम् । प्रतिभयाकारं भयङ्कररूपम् । व्यालादीनामजिरं क्रीडास्थानम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

स्फीतान्० इत्यादि- समृद्ध जनपदों (देशों) आदि को पार करके मैंने एक बहुत बड़े वन को देखा । इस तरह से इस श्लोक के चतुर्थ चौदहवें श्लोक से इसका अन्वय है । अर्थात् अनेक प्रकार के दोषों तथा गुणों से युक्त जनपदों में समान दृष्टि रखने वाला मैं जा रहा था । **स्फीतान् जनपदान्** अर्थात् समृद्ध देशों को मैंने उस दिशा में देखा । नगरों अर्थात् राजधानियों, ग्रामों, गो समूहों तथा रत्नों के उत्पत्ति स्थानों को देखते हुए ।

ग्राम शब्द को निरूपित करते हुए महर्षि भृगु ने कहा है— **'विप्रश्च विप्रभृत्याश्च यत्र चैव वसन्ति ते । स तु ग्राम इति प्रोक्तः ।'** जहाँ पर ब्राह्मण तथा ब्राह्मणों के भृत्य रहते हैं, उस स्थान को ग्राम शब्द से अभिहित किया जाता है । खेट अर्थात् कृषकों के ग्राम, खर्वट अर्थात् पर्वत की तराई में वसे ग्राम । महर्षि भृगु ने कहा भी है—

एकतो यत्र तु ग्रामो नगरं चैकतः स्थितम् । मिश्रं तु खर्वटं नाम नदी गिरिसमाश्रयम् ।।

जिसके एक भाग में ग्राम हो और दूसरे भाग में नगर हों इन दोनों से मिश्रित तथा नदी तथा पर्वत के किनारे वसे हुए ग्राम को खर्वट कहते हैं । सुपारी तथा पुष्पों आदि की वाटिका को वाटी कहते है । स्वाभाविक रूप से उत्पन्न वृक्षों के समूह को वन कहते हैं । रोपे गये वृक्षों के समूह को उपवन कहते हैं । उन सबों को देखते हुए अनेक प्रकार के सुवर्ण रजत आदि धातुओं से अद्भुत बने पर्वतों को जिन वृक्षों की शाखाओं को हाथियों ने तोड़ दिया था ऐसे वृक्षो को सुन्दर स्वच्छ जलों से परिपूर्ण जलाशयों को, अनेक प्रकार की बोली बोलने वाले पक्षियों तथा मँडराते हुए भ्रमरों की शोभा से युक्त कमलों वाले सरोवरों को पार करके जाते हुए मैंने नरकट, बाँस सेठा कुश तथा कीचक से भरे हुए सर्प, उल्लू तथा स्यारों के क्रीडा स्थान रूप प्रतिभयङ्कर (मूर्तिमान भय स्वरूप) बहुत बड़े वन को अकेले जाते हुए मैंने देखा ।।११-१४।।

परिश्रान्तेन्द्रियात्माहं तृट्परीतो बुभुक्षितः । स्नात्वा पीत्वा ह्रदे नद्या उपस्पृष्टो गतश्रमः ।।१५।।
तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये पिप्पलोपस्थ आश्रितः । आत्मनात्मानमात्मस्थं यथाश्रुतमचिन्तयम् ।।१६।।

अन्वयः— परिश्रान्तेन्द्रियात्मा, तृट्प्ररीतः बुभुक्षितः नद्या ह्रदे स्नात्वा पीत्वा उपस्पृष्टः गतश्रमः अहं तस्मिन् निर्मनुजे अरण्ये पिप्पलोपस्थे आश्रितः आत्मना आत्मस्थं यथाश्रुतम् आत्मानम् अचिन्तयम् ।।१५-१६।।

अनुवाद— मेरी इन्द्रियाँ और शरीर थक गये थे, मुझे भूख तथा प्यास लगी थी; अतएव नदी के ह्रद में मैंने स्नान करके पानी पिया और मेरी थकान दूर हो गयी उस मनुष्य रहित वन में पिप्पल के नीचे बैठा हुआ मैंने मन से हृदय में विद्यमान परमात्मा का रूप जैसा सुना था उसीविधि से ध्यान किया ।।१५-१६।।

भावार्थ दीपिका

परिश्रान्तानीन्द्रियाण्यात्मा देहश्च यस्य । तृषा परीतो व्याप्तः । उपस्पृष्ट आचान्तः ।।१५।। पिप्पलोपस्थे अश्वत्थमूले। आश्रित उपविष्टः । आत्मना बुद्ध्या मनसा वा । आत्मस्थं हृदिस्थम् । आत्मानं परमात्मानम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

परिश्रान्तानि इन्द्रियाणि आत्मा देहश्च यस्य यह परिश्रान्तेन्द्रियात्मा पद का विग्रह है । अर्थात् जिसकी इन्द्रियाँ और मन थक गये थे तथा भूखा एवं प्यासा हुआ मैं उपस्पृष्टः अर्थात् आचमन करके, पिप्पलोपस्थे अर्थात् पिप्पल की जड़ में, आश्रितः बैठा हुआ मैं आत्मना अर्थात् मन अथवा बुद्धि के द्वारा आत्मस्थ हृदय में विद्यमान परमात्मा का मैंने ध्यान किया ।।१५-१६।।

ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा । औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः ॥१७॥

अन्वयः— भवानिर्जितचेतसा चरणाम्भोजं ध्यायतः औत्कण्ठयाश्रु कलाक्षस्य में हृदि हरिः शनैः आसीत् ॥१७॥

अनुवाद— भक्तिभाव से भरे हुए चित्त में मैंने जब श्रीभगवान् के चरणों का ध्यान किया उस समय श्रीभगवान् के दर्शन की उत्कण्ठा के कारण मेरे नेत्रों में आँसू भर गया था, और धीरे-धीरे श्रीहरि मेरे हृदय में प्रकट हो गये ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

भावेन भक्त्या निर्जितं वशीकृतं यच्चेतस्तेन । औत्कण्ठ्येनाश्रुकलायुक्ते अक्षिणी यस्य ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

भावेन भक्त्या निर्जितं यच्चेतः तेन यह भाव निर्जित चेतसा पद का विग्रह है और इस का अर्थ है भक्ति के अधीन हुए अन्तः करण के द्वारा औत्कण्ठ्याश्रकल्पाक्षस्य पद का विग्रह है औत्कण्ठ्येन अश्रु कलायुक्ते अक्षिणी यस्य अर्थात् परमात्म दर्शन की उत्कण्ठा के कारण जिसके नेत्रों में आँसू भर गया था ऐसे नारदजी ने परमात्मा का ध्यान किया ॥१७॥

प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः । आनन्दसंप्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने ॥१८॥

अन्वयः— हे मुने ! प्रेमातिभर निभिन्न पुलकाङ्गः अतिनिर्वृतः आनन्दसम्पल्वे लीनः अहं उभयम् न अपश्यम् ॥१८॥

अनुवाद— हे व्यासजी ! प्रेमातिशय्य के कारण मेरे सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया, मैं तो कृतार्थ हो गया और आनन्द के महाप्रवाह में मग्न मैं आत्मा और परमात्मा को नहीं देख सका ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

प्रेम्णोऽतिभरेण निर्भिन्नपुलकान्यङ्गानि यस्य । आनन्दानां संप्लवे महापूरे परमानन्दे । उभयमात्मानं परं च ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गः पद का अर्थ है प्रेमातिशय्य के कारण जिसके सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया था । इस पद का विग्रह है प्रेम्णः अतिभरेण निर्भिन्नपुलकानि अङ्गानि यस्य । इस प्रकार का मैं आनन्द के महाप्रवाह में मग्न हो गया था और कृतार्थ हो गया । फलतः उस समय मैं आत्मा तथा परमात्मा दोनों को नहीं देख सका ॥१८॥

रूपं भगवतो यत्तन्मनः कान्तं शुचापहम् । अपश्यन्सहसोत्तस्थे वैक्लव्याद्दुर्मना इव ॥१९॥

अन्वयः— भगवतः यत् मनः कान्तं शुचापहम् रूपं तत् अपश्यन् अहम् वैकलव्याद् दुर्मना इव सहसा उत्तस्थे ॥१९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का जो मनोज्ञ तथा शोक को विनष्ट करने वाला रूप था उसको नहीं देखने के कारण मैं व्याकुल हो गया और उदास के समान अचानक मेरा ध्यान भङ्ग हो गया ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

मनसः कान्तमभीष्टम् । शुचा शोकस्तामपहन्तीति तथा तत् । उत्तस्थे व्युत्थितोऽस्मि ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

मनः कान्तम् का अर्थ मन को प्रिय लगने वाला । **शुचापहम्** का अर्थ है शोक को विनष्ट करने वाला **उत्तस्थे** का अर्थ है मैं समाधि से उठ गया । अर्थात् समाधि काल में श्रीभगवान् का जो मनोहर रूप था उसके दिखना बन्द होते ही मैं व्याकुल हो गया और उदास होने के कारण मेरी समाधि टूट गयी ॥१९॥

दिदृक्षुस्तदऽहं भूयः प्रणिधाय मनो हृदि । वीक्षमाणोऽपि नापश्यमवितृप्त इवातुरः ॥२०॥

अन्वयः— तत् भूयः दिदृक्षुः मनः हृदि प्रणिधाय अवितृप्तः वीक्षमाण अपि न अपश्यम् आतुरः इव अभवम् ॥२०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के उस रूप को पुनः देखने के इच्छुक अतृप्त मैंने मन को हृदय में स्थिर करके देखने की कोशिश की किन्तु उस रूप को पुनः मैं नहीं देख सका फलतः मैं बेचैन सा हो गया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

हृदि मनः प्रणिधाय स्थिरीकृत्यावितृप्तोऽहमातुर इवाभवमिति शेषः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के उस रूप को मैं पुनः देखना चाहा और उसके लिए हृदय में मन को स्थिर करके देखने की कोशिश भी किया; किन्तु श्रीभगवान् के उस रूप का पुनः दर्शन नहीं हुआ । फलतः मैं अतृप्त ही रह गया और उसके कारण मैं बेचैन सा हो गया ॥२०॥

एवं यतन्तं विजने मामाहागोचरो गिराम् । गम्भीरश्लक्ष्णया वाचा शुचः प्रशमयन्निव ॥२१॥

अन्वयः— एवम् विजने यतन्तम् गिराम् अगोचरः (ईश्वरः) गम्भीरश्लक्षणया वाचा शुचः प्रशमयन् इव माम् आह ॥२१॥

अनुवाद— इस तरह से निर्जन वन में प्रयास करते हुए मुझको वाणी के अविषयभूत ईश्वर ने गम्भीर तथा मधुर वाणी से मानो मेरे शोक को शान्त करते हुए कहा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

गिरामगोचरः संवेदनस्य विषयभूत ईश्वरः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

मैं उस निर्जन वन में श्रीभगवान् के रूप का पुनः दर्शन करने का प्रयास कर रहा था उसी समय मुझको आकाशवाणी के माध्यम से मेरे शोक को शान्त करते हुए के समान ईश्वर ने गम्भीर और मधुर वाणी से कहा। ईश्वर को **गिराम्** अगोचर इसलिए कहा गया है कि ईश्वर का वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता है । उनको तो ज्ञान के ही माध्यम से जाना जा सकता है ॥२१॥

हन्तास्मिन् जन्मनि भवान्मा मा द्रष्टुमिहार्हति । अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम् ॥२२॥

अन्वयः— हन्त, अस्मिन् जन्मानि इह भवान् मा मा द्रष्टुमर्हति । अविपक्वकषायाणाम् कुयोगिनाम् अहं दुर्दर्शः ॥२२॥

अनुवाद— नारदजी आप इस जन्म में मेरा दर्शन नहीं कर सकते हैं, जिनके काम आदि की वासनायें विनष्ट नहीं हुयी हैं उन अनिष्पन्न योग वाले योगियों के लिए मैं दुर्दर्श हूँ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

हन्तेति सानुकम्पसंबोधने । मा इति माम् । द्रष्टुं नार्हति । यतः न विपक्वा दग्धाः कषाया मलाः कामादयो येषां तेषां कुयोगिनामनिष्पन्नयोगानाम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

हन्त इस अव्यय पद का प्रयोग अनुकम्पा पूर्वक संबोधन करने के अर्थ में होता है । अर्थात् इस जन्म में तुम मेरा दर्शन इसलिए नहीं कर सकते हो कि जिन योगियों के काम आदि रूपी कषाय अन्तःकरण के मल दूर नहीं हुए हैं जिनका योग परिपूर्ण नहीं हुआ है ऐसे योगी कुयोगी हैं । और कुयोगी मेरा दर्शन नहीं कर सकते हैं । तुम्हारी भी ये वासनाएँ दूर नहीं है, अतएव तुम कुयोगी हो । फलतः तुम मेरा दर्शन नहीं कर सकते हो।

कुयोगिनाम् पद का कु शब्द निन्दार्थक नहीं है, अपितु ईषदर्थक है । अर्थात् जिन लोगों ने अल्प मात्रा में योग किया है, वे कुयोगी हैं ॥२२॥

सकृद्यद्दर्शितं रूपमेतत्कामाय तेऽनघ । मत्कामः शनकैः साधुः सर्वान्मुञ्चति हृच्छयान् ॥२३॥

अन्वयः— हे अनघ ते यत् सकृत् रूपं दर्शित तत् एतत् कामाय । मत्कामः साधुः सर्वान् हृच्छयान् मुञ्चति ॥२३॥

अनुवाद— हे निष्पाप नारद ! मैंने जो तुमको अपना एक बार रूप दिखया वह इसलिए कि तुम्हारा मुझमें अनुराग हो । मुझको देखने की इच्छा वाले पुरुष के हृदय के सारे दोष धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

कुतस्तर्हि दृष्टोऽसि तत्राह । सकृद्दर्शितं मयेति यदेतत्कामाय मय्यनुरागाय । त्वत्कामेन किमित्यत आह । मत्कामः पुमान् । हृच्छयान्कामान् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि यदि आप कुयोगियों को दर्शन नहीं देते हैं तो फिर आपने मुझे दर्शन कैसे दिया? तो इसका उत्तर है **सकृद्दर्शितम्०** एक बार मैंने अपना रूप इसलिए दिखाया कि उससे तुम्हारा मुझमें प्रेम बढ़े। यदि कहो कि आपके प्रेम बढ़ने से क्या लाभ है ? तो इसका उत्तर है कि मुझसे प्रेम करने वाले साधु पुरुष के हृदय की सारी कामनाएँ धीरे-धीरे नष्ट हो जाती हैं ॥२३॥

सत्सेवयाऽदीर्घया ते जाता मयि दृढा मतिः । हित्वाऽवद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जनतामसि ॥२४॥

अन्वयः— अदीर्घया सत्सेवयापि ते मति मयि दृढा संजाता अतएव अवद्यं इमं लोकं हित्वा मत् जनताम् गन्ता असि ॥२४॥

अनुवाद— यद्यपि तुमने दीर्घ काल तक महापुरुषों की सेवा नही की है फिर भी तुम्हारी बुद्धि मुझमें स्थिर हो गयी है । अतएव तुम इस निन्दित शरीर को त्यागकर मेरा पार्षद बन जाओगे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अदीर्घयापि सतां सेवया । अवद्यं निन्द्यम् । इमं लोकं देहं हित्वा । मज्जनतां मत्पार्षदतां गन्तासि ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

प्रायः दीर्घकाल तक महापुरुषों की सेवा करने पर ही मनुष्यों की उनकी कृपा से मुझमें सुदृढ बुद्धि होती है, किन्तु तुमने तो अल्प काल तक ही महापुरुषों की सेवा की है फिर भी तुम्हारी बुद्धि मुझमें सुदृढ हो गयी। उसके फल स्वरूप तुम अपने इस दासीपुत्र रूप निन्दित शरीर का परित्याग करके मेरे पार्षद हो जाने वाले हो ॥२४॥

मतिर्मयि निबद्धेयं न विपद्येत कर्हिचित् । प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात् ॥२५॥

अन्वयः— मयि निबद्धा इयं मति कर्हिचित् न विपद्येत । प्रजासर्गनिरोधेऽपि मदनुग्रहात स्मृतिश्च भवेत् ॥२५॥

अनुवाद— मुझको प्राप्त करने का जो तुम्हारा सुदृढ निश्चय है वह कभी भी नहीं टूटेगा और मेरी कृपा के कारण प्रलयकाल हो जाने पर भी तुम्हे मेरी स्मृति बनी रहेगी ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

प्रजानां सर्गे सृष्टौ निरोधे संहारेऽपि । प्रजासर्गस्य निरोध इति वा ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

प्रजा सर्गनिरोधेऽपि का अर्थ है सृष्टि का संहार हो जाने पर भी अथवा प्रजाओं की सृष्टि रुक जाने पर भी ।

इस श्लोक में श्रीभगवान् ने नारदजी को आशीर्वाद दिया है कि प्रलय काल के हो जाने पर भी तुम्हारा जो मुझको प्राप्त करने का सुदृढ निश्चय है वह नहीं टूटेगा। तथा प्रलय काल के हो जाने पर भी तुम्हें मेरी स्मृति बनी रहेगी ॥२५॥

एतावदुक्त्वोपरराम तन्महद्भूतं नभोलिङ्गमलिङ्गमीश्वरम् ।
अहं च तस्मै महतां महीयसे शीर्ष्णाऽवनामं विदधेऽनुकम्पितः ॥२६॥

अन्वयः— नभोलिङ्गम् महद्भूतम् अलिङ्गम् ईश्वरम् एतावदुक्त्वा उपरराम अनुकम्पितः अहं च महतां महीयसे तस्मै शीर्ष्णा अवनामं विदधे ॥२६॥

अनुवाद— आकाश के समान अव्यक्त सबों के नियामक ईश्वर इतना ही कहकर चुप हो गये और उन परमात्मा की कृपा प्राप्त मैंने महान् से भी महान् ईश्वर को शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तत् प्रसिद्धं महद्भूतम्। **'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदः'** **इत्यादिश्रुतेः**। कीदृशम्। ईश्वरं सर्वनियन्तृ। नभसि लिङ्गं मूर्तिर्यस्य तन्नभोलिङ्गम्। सन्निहितमपि न लिङ्ग्यत इत्यलिङ्गं तस्मै अदृष्टाय भगवतेऽवनामं प्रणामं विदधे कृतवानहम्। तेनानुकम्पितः सन् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

महद्भूतम् यह परमात्मा के नाम का प्रथमा एक वचन का रूप है। श्रीभगवान् का महत् नाम है इसमें प्रमाण **अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितामेतद् यदृग्वेदः'** इत्यादि श्रुति है। इस श्रुति में भगवान् के ही लिए महतोभूतस्य का प्रयोग किया गया है। श्रुति का अर्थ है इस महत्भूत परमात्मा के ऋग्वेद आदि वेद निःश्वास हैं। अर्थात् जिस तरह से श्वास लेने के लिए किसी प्रयास को नहीं करना पड़ता है, उसी तरह परमात्मा के प्रयास के बिना ही वेद उत्पन्न हो गये। **महतो भूतस्य** यहाँ जो सन्धि नहीं हुयी है उसका कारण है कि यह आर्ष प्रयोग है। अन्यथा महद्भूतस्य यह प्रयोग होता। वे परमात्मा ईश्वर अर्थात् सबों के नियामक हैं। **नमो लिङ्गम्** का अर्थ है हार्दाकाश में उस परमात्मा की लिङ्ग मूर्ति है। यहाँ नभस शब्द हार्दाकाश का और लिङ्ग शब्द मूर्ति का बोधक है। **अलिङ्गम्** कहने का अभिप्राय है कि परमात्मा हार्दाकाश में रहने के कारण अत्यन्त सन्निकट हैं किन्तु दिखायी नहीं पड़ते हैं। उन नहीं दिखायी पड़ने वाले परमात्मा को मैनें प्रणाम किया। मैंने परमात्मा को प्रणाम इसलिए किया मैंने परमात्मा की कृपा प्राप्त कर ली थी ॥२६॥

नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन्गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन् ।
गां पर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन्विमदो विमत्सरः ॥२७॥

अन्वयः— हतत्रपः अनन्तस्य गुह्यानि, भद्राणि कृतानि नामानि पठन् स्मरन् च विमदः विमत्सरः तुष्टमनाः गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन् गां पर्यटन् आसम् इति शेषः ॥२७॥

अनुवाद— उसी समय से लज्जा का परित्याग करके अनन्त परमात्मा के मङ्गलमय नामों को पढ़ते हुए तथा श्रीभगवान् को स्मरण करते हुए मद तथा मत्सर से रहित मैं सभी प्रकार के स्पृहाओं से रहित होकर पृथिवी पर पर्यटन करने लगा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अनन्तस्य नामानि पठन्ननवरतं गृणन् हतत्रपस्त्यक्तलज्जो विमत्सरो जातोऽस्मि इति शेषः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के नामों को निरन्तर पढ़ते रहने के कारण मेरा सबों से द्वेष समाप्त हो गया और मैं लज्जा का परित्याग करके सदा श्रीभगवान् के नामों का उच्चारण करने लगा ।।२७।।

एवं कृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः । कालः प्रादुरभूत्काले तडित्सौदामनी यथा ।।२८।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् एवं कृष्णमतेः असक्तस्य अमलात्मनः मम, काले तडित सौदामिनी यथा कालः प्रादुरभूत् ।।२८।।

अनुवाद— इस प्रकार कृष्ण परायण, आसक्ति रहित, तथा शुद्ध अन्तःकरण वाले मेरा आचानक मृत्यु काल आ जाने पर उसी तरह मृत्यु हो गयी जैसे अचानक बिजली चमक जाती है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

काले स्वावसरे कालो मृत्युः प्रादुरभूदाविर्बभूव । अकस्मात्प्रादुर्भावे दृष्टान्तः- तडिदिवेति । सौदामनीति विशेषणं स्फुटत्वप्रदर्शनार्थम् । तथा हि सुदामामाला तत्र भवा सौदामनी मालाकारेत्यर्थः । यद्वा सुदामानामा कश्चित्स्फटिकपर्वतः । ततः **'तेनैकदिक्'** इति सूत्रेणाण् । स्फटिकादिमयपर्वतप्रन्ते भवा हि विद्युदतिस्फुटा भवति तद्वदित्यर्थः । यद्वा तडिदित्यन्तिके इत्यर्थः **'तडिदित्यन्तिकवधयोः'** इति नैरुक्तस्मरणात् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

हे व्यासजी समय आने पर मेरी मृत्यु अचानक हो गयी । मृत्यु के अकमस्मात् होने का उदाहरण **तडित् सौदामनी यथा** कहकर दिया गया है । तडित् का सौदामनी विशेषण उसके स्पष्ट प्रकाश को सूचित करने के लिए प्रयुक्त है । सुदामा माला को कहते है । उससे उत्पन्न होने के कारण सौदामनी कहा गया है । अर्थात् बिजली जैसे माला के आकार की चमकती है उसी तरह । अथवा सुदामा नामक एक स्फटिक का पर्वत है । सुदामा शब्द से **तेनैकदिक्** सूत्र से अण् प्रत्यय करके स्त्रीत्व की विवक्षा में सौदामनी पद व्युत्पन्न है । स्फटिकादिमय पर्वत के सन्निकट में बिजली अत्यधिक चमकती है । यहाँ पर तडित शब्द सन्निकट के अर्थ में प्रयुक्त है । निरुक्त में कहा गया भी गया है । **'तडिदित्यन्तिकवधयोः'** अर्थात् तडित शब्द का प्रयोग सन्निकट तथा वध के अर्थ में होता हैं ।।२८।।

प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम् । आरब्धकर्मनिर्वाणो न्यपतत्पाञ्चभौतिकः ।।२९।।

अन्वयः— तां शुद्धां भागवतीं तनुम् मयि प्रयुज्यमाने आरब्धकर्म निर्वाणः पाञ्चभौतिकः न्यपतत् ।।२९।।

अनुवाद— जिस समय श्रीभगवान् मुझे भगवत् पार्षद का शुद्ध शरीर प्रदान कर रहे थे उस समय प्रारब्ध कर्म के समाप्त हो जाने के कारण मेरा यह पाञ्चभौतिक शरीर नष्ट हो गया ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

प्रयुज्यमाने मयि तामिति । अयमर्थः- **'हित्वाऽवद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जनतामसि'** इति या भागवती भगवत्पार्षदरूपा शुद्धा सत्त्वमयी तनुः प्रतिश्रुता तां प्रति भगवता मयि प्रयुज्यमाने नीयमाने आरब्धं यत्कर्म तन्निर्वाणं समाप्तं यस्य, आरब्धकर्मणो निर्वाणमेव निर्वाणं यस्येति वा । स पञ्चभूतात्मको देहो न्यपतत् । अनेन पार्षदतनूनामकर्मारब्धत्वं शुद्धत्वं नित्यत्वमित्यादि सूचितं भवति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

'प्रयुज्माने मयि ताम्' इस श्लोक का अर्थ यह है कि श्रीभगवान् ने यह जो कहा था कि इस निन्दित शरीर का त्याग करके मेरा पार्षद बनोगे, इस प्रतिज्ञा के अनुसार पार्षद स्वरूप शुद्ध सात्त्विक शरीर को जब श्रीभगवान् मुझे दे रहे थे उस समय मेरा जो प्रारब्ध कर्म था उसकी निर्वाण अर्थात् समाप्ति हो गयी और मेरा पाञ्चभौतिक

शरीर विनष्ट हो गया । इस कथन से यह अर्थ सूचित हो गया कि पार्षदों का शरीर कर्मारब्ध नहीं होता है । वह शुद्ध सात्त्विक तथा नित्य शरीर होता है ॥२९॥

कल्पान्त इदमादाय शयानेऽम्भस्युदन्वतः । शिशयिषोरनुप्राणं विविशेऽन्तरहं विभोः ॥३०॥

अन्वयः— कल्पान्ते उदन्वतः अम्भसि शयाने शिशयिषोः विभोः अन्तः अनुप्राणं अन्तः विविशे ॥३०॥

अनुवाद— कल्प के अन्त में जिस समय भगवान् नारायण एकार्णव के जल में शयन करते हैं उस समय उनके हृदय में शयन करने के इच्छुक ब्रह्माजी जव इस सम्पूर्ण जगत् को समेट कर प्रवेश करने लगे उस समय मैं भी उनके श्वास के साथ उनके हृदय में प्रवेश कर गया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

इदं त्रैलोक्यमादायोपसंहृत्योदन्वत एकार्णवस्याम्भसि शयाने श्रीनारायणे शिशयिषोः शयनं कर्तुमिच्छोर्विधेर्ब्रह्मणोऽन्तर्मध्यमनुप्राणं निःश्वासेन सह विविशे प्रविष्टोऽहम् । '**ततोऽवतीर्य विश्वात्मा देहमाविश्य चक्रिणः। अवाप वैष्णवीं निद्रामेकीभूयाथ विष्णुना** ।।' इति कौर्मोक्तिः । '**स्वायनेऽम्भसि**' इति पाठे स्वायने स्वस्यायने आश्रयेऽम्भसि शिशयिषोर्ब्रह्मण इति श्रीनारायणेनाभेदविलक्षयोक्तमित्यवगन्तव्यम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

एकार्णव के समय में जव भगवान् नारायण शयन करते हैं उस समय त्रैलोक्य को समेट कर श्रीभगवान् के भीतर शयन करने के इच्छुक ब्रह्माजी उनमे प्रवेश करने लगे उस समय उनके निःश्वास के साथ मैं भी श्रीभगवान् में प्रवेश कर गया । कूर्म पुराण में कहा भी गया है **ततोऽवतीर्य० इत्यादि** अर्थात् उस समय अवतीर्ण होकर ब्रह्माजी चक्रधारी भगवान् के शरीर में प्रवेश करके भगवान् विष्णु के साथ एकात्मिकता को प्राप्त करके वैष्णवी निद्रा में सो गये । जहाँ पर **स्वायनेऽम्भसि** यह पाठ है वहाँ पर अपने आश्रय जल में ब्रह्माजी के यह अर्थ होगा। भगवान् नारायण से अभेद को वतलाने की इच्छा से ऐसा कहा गया है, यह समझना चाहिए ॥३०॥

सहस्रयुगपर्यन्त उत्थायेदं सिसृक्षतः । मरीचिमिश्रा ऋषयः प्राणेभ्योऽहं च जज्ञिरे ॥३१॥

अन्वयः— सहस्रयुगपर्यन्ते उत्थाय इदं सिसृक्षतः प्राणेभ्यः मरीरीचिमिश्राः ऋषयः अहं च जज्ञिरे ॥३१॥

अनुवाद— एक हजार युग वीत जाने के पश्चात् जव ब्रह्मजी जगे तो उन्होंने जगत् की सृष्टि की; उस समय उनके प्राणों से मरीचि आदि ऋषिगण और मैं भी प्रकट हुआ ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

प्राणेभ्य इन्द्रियेभ्यः अहं मरीचिमिश्रास्तन्मुख्या ऋषयश्च जज्ञिरे ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी पूरे एक हजार चतुर्युगी पर्यन्त सोते रहे उसके पश्चात् जब वे जगे उस समय उनकी सृष्टि करने की इच्छा हुयी । उसी समय उनके प्राणों अर्थात् इन्द्रियों से मरीचि जिनमें प्रधान थे वे सभी ऋषिगण उत्पन्न हो गये ॥३१॥

अन्तर्वहिश्च लोकांस्त्रीन्पर्येम्यस्कन्दितव्रतः । अनुग्रहन्महाविष्णोरविघातगतिः क्वचित् ॥३२॥

अन्वयः— महाविष्णोः अनुग्रहात् क्वचित् अविघात गतिः अस्कन्दित व्रतः अहम् त्रीन् लोकान् अन्तर्बहिश्च पर्येमि ॥३२॥

अनुवाद— भगवान् महाविष्णु की कृपा प्राप्त होने के कारण अप्रतिहत गति वाला मैं तथा अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला मैं तीनों लोकों के भीतर तथा उससे बाहर वैकुण्ठ आदि लोकों में भ्रमण करता रहता हूँ ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— ये कर्मिणस्ते बहिर्न यान्ति । ये तपआदिभिर्ब्रह्मलोकं गतास्तेऽन्तर्न यान्ति । अहं तु महाविष्णोरनुग्रहादखण्डितब्रह्मदेवेनेश्वरेण दत्ताम् । स्वराः **'निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवतपञ्चमा'** इति सप्त एव ब्रह्म, ब्रह्माभिव्यञ्जकत्वात् । तेन विभूषिताम् । स्वतः सिद्धसप्तस्वरामित्यर्थः मूर्च्छयित्वा मूर्च्छनालापवतीं कृत्वा ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने कहा है कि मैं भ्रमण करता रहता हूँ किन्तु उस भ्रमण का उद्देश्य क्या है ? तो इसका उत्तर है कि श्रीभगवान् की आज्ञा से संसार के जीवों का कल्याण करने के लिए भ्रमण करता रहता हूँ । यह चार श्लोकों से नारदजी ने कहा है । **देवेन दत्ताम्** यह देवदत्ताम् पद का विग्रह है । यहाँ देव शब्द ईश्वर का वाचक है । अर्थात् ईश्वर के द्वारा प्रदत्त जो स्वर ब्रह्म से विभूषित है, निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम धैवत तथा पञ्चम ये सात स्वर ब्रह्माभिव्यञ्जक हैं, उन सबों से विभूषित अर्थात् स्वाभाविक रूप से सात स्वरों से सिद्ध इस वीणा को मूर्छना के आलाप से युक्त करके मैं भ्रमण करता हूँ ।।३३।।

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः । आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ।।३४।।

अन्वयः— स्ववीर्याणि प्रगायतः तीर्थपादः प्रियश्रवाः आहूत इव मे चेतसि शीघ्रं दर्शनं याति ।।३४।।

अनुवाद— जब उन श्रीभगवान् की लीलाओं का मैं गान करता हूँ उस समय तीर्थपाद तथा प्रियश्रवा श्रीभगवान् मेरे अन्तःकरण में प्रवेश करके मुझे शीघ्र ही दर्शन दे देते हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

स्वप्रयोजनमाह- प्रगायत इति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में अपने लीला गायन का प्रयोजन बतलाते हुए नारदजी ने कहा कि मैं श्रीभगवान् की लीलाओं का गायन करते रहता हूँ । श्रीभगवान् को तीर्थपाद इसलिए कहा गया है कि उनके चरण कमल तीर्थों के समान अत्यन्त पवित्र हैं और सबों को पवित्र बनाने का काम करते हैं । उनको अपनी लीलाये अत्यन्त प्रिय है । उनको सुनकर श्रीभगवान् नारदजी के अन्तःकरण में प्रवेश करके शीघ्र ही उनको दर्शन देने लगते हैं ।।३४।।

एतद्ध्यातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया मुहुः । भवसिन्धुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम् ।।३५।।

अन्वयः— मुहु; मात्रा स्पर्शेच्छया आतुरचितानाम् एतद्धि हरिचर्यानुवर्णनम् भवसिन्धु प्लवः दृष्टः ।।३५।।

अनुवाद— बार-बार विषयोपभोग की इच्छा से जिनका मन चञ्चल बना रहता है उन लोगों को इस संसार सागर को पार करने के लिए श्रीहरि की लीलाओं का गायन ही जहाज के समान हैं यह मेरा अपना अनुभव हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

परप्रयोजनमाह- एतद्धीति । मात्रा विषयास्तेषां स्पर्शा भोगास्तेषामिच्छया आतुराणि चित्तानि येषां तेषां हरिचर्यानुवर्णनं यदेतदेव भवसिन्धौ प्लवः पोतः । न केवलं श्रुतिप्रामाण्येन किंत्वन्वयव्यतिरेकाभ्यां दृष्ट एवेत्यर्थः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की लीलाओं के गायन से सिद्ध होने वाले दूसरों के प्रयोजन को नारदजी ने **एतद्धि इत्यादि** श्लोक से कहा है । बार-बार विषयों का भोग करने की इच्छा से जिन लोगों का चित्त व्याकुल बना रहता है, उन लोगों के इस संसार सागर को पार करने के लिए श्रीभगवान् की लीलाओं का गायन ही जहाज के समान है । इस अर्थ की सिद्धि केवल श्रुति प्रमाण के ही द्वारा नहीं होती है; अपितु अन्वय व्यतिरेक के द्वारा भी इस अर्थ की सिद्धि होती है ।।३५।।

यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः । मुकुन्दसेवया यद्वत्तथात्माऽद्धा न शाम्यति ।।३६।।

अन्वयः— मुहु कामलोभहतः आत्मा मुकुन्दसेवया शाम्यति तथा यमादिभिः योगपथैः न शाम्यति ।।३६।।

अनुवाद— बार-बार काम लोभ आदि से संतप्त आत्मा जिस तरह से श्रीभगवान् की सेवा से शान्त होती है उस तरह से यम नियम आदि योग के द्वारा नहीं शान्त होती है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

एतदेवेत्युक्तमवधारणमनुभवेन द्रढयति– यमादिभिरिति । यमादिभिस्तथा न शाम्यति । यद्वन्मुकुन्दसेवयाऽद्धा साक्षादात्मा मनः शाम्यति । कथंचिन्मुकुन्दसेवामात्रेण शाम्यति किं पुनस्तद्गुणवर्णनेनेति भावः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

एतदेव इत्यादि श्लोक के द्वारा कहे गये निश्चय का अनुभव के द्वारा सुदृढ करते हुए **यमादिभिः इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । यमादि योगरूपी साधनों के द्वारा आत्मा को उतनी शान्ति नहीं मिलती है । जितनी शान्ति श्रीभगवान् की किसी तरह भी की गयी सेवा से होती है । श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन करने पर तो क्या कहना है ?।।३६।।

सर्वं तदिदमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ । जन्मकर्मरहस्यं मे भवतश्चात्मतोषणम् ।।३७।।

अन्वयः— हे अनघ ! अहं त्वया यत् पृष्टः तदिदं भवतः आत्मतोषणं मे जन्म कर्मरहस्यम् सर्वं आख्यताम् ।।३७।।

अनुवाद— आपने मुझसे जो कुछ पूछा था उन आपकी आत्मा को सन्तोष दिलाने वाले अपने जन्म तथा कर्मों के सम्पूर्ण रहस्यों का मैंने वर्णन कर दिया ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

भवतो मनःपरितोषकं चाख्यातम् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

आपने मुझसे मेरे जन्म तथा रहस्यों के विषय में प्रश्न किया था । उन सारी बातों का वर्णन मैंने आपके मन के सन्तोष के लिए किया है ।।३७।।

सूत उवाच

एवं संभाष्य भगवान्नारदो वासवीसुतम् । आमन्त्र्य वीणां रणयन्ययौ यादृच्छिको मुनिः ।।३८।।

अन्वयः— एवं सम्भाष्य वासवीसुतम् आमन्त्र्य यादृच्छिकः मुनिः भगवान् नारदः वीणां रणयन् ययौ ।।३८।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से सारी बातें कहकर सत्यवती के पुत्र व्यासजी से विदा लेकर अपना कोई भी सङ्कल्प तथा प्रयोजन नहीं होने के कारण ऐश्वर्य सम्पन्न नारद मुनि वीणा बजाते हुए चले गये ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

आमन्त्र्यानुज्ञाप्य । यादृच्छिकः स्वप्रयोजनसङ्कल्पशून्यः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

व्यासजी से उपर्युक्त सारी बातों को करके नारदजी व्यासजी से विदा माँगे और बीणा बजाते हुए वे स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण करने के लिए चल पड़े ।।३८।।

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः । गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे व्यासनारदसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अन्वयः— अहो अयं देवर्षिः धन्यः यत् तन्त्र्या शार्ङ्गधन्वनः कीर्तिं गायन् माद्यन् आतुरं जगत् रमयति ॥३९॥

अनुवाद— अरे ये देवर्षि धन्य हैं, क्योंकि वीणा बजाकर श्रीभगवान् के यश को गाते हुए आनन्द मग्न होते हैं और इस सन्ताप सन्तप्त जगत् को आनंदित करते हैं ॥३९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के व्यासनारदसंवाद के अन्तर्गत छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

भावार्थ दीपिका

हरिकथागायकनारदभाग्यं श्लाघते- अहो इति । माद्यन् हृष्यन् । तन्त्र्या वीणया ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि की कथा का गान करने वाले नारदजी की प्रशंसा करते हुए **अहो० इत्यादि** श्लोक को कहा गया है । हृष्यन् पद का अर्थ है प्रसन्न होते हैं । तन्त्र्या का अर्थ है वीणा के द्वारा इस श्लोक में सूतजी नारदजी की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि नारदजी धन्य हैं, क्योंकि वे वीणा बजा-बजाकर श्रीभगवान् की लीलाओं को गाते हैं और आनन्दित होते हैं और संताप-संतप्त इस जगत् को भी आनन्दित करते हैं ॥३९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के छठे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ।।६।।

◆

सातवाँ अध्याय

अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के पुत्रों का वध तथा अर्जुन द्वारा अश्वत्थामा का मानमर्दन

शौनक उवाच

निर्गते नारदे सूत भगवान्बादरायणः । श्रुतवांस्तदभिप्रेतं ततः किमकरोद्विभुः ॥१॥

अन्वयः— हे सूत ! भगवान् बादरायणः तदभिप्रेतं श्रुतवान् ततः नारदे निर्गते स विभुः किम् अकरोत् ।।१।।

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे सूतजी ! भगवान् बादरायण ने नारदजी के अभिप्राय को सुना, उसके पश्चात् जब नारदजी चले गये तो फिर व्यासजी ने क्या किया ?॥१॥

भावार्थ दीपिका

अथ भागवतश्रोतुर्जन्म वक्तुं परीक्षितः । सुप्तबालवधाद्द्रौणेर्दण्डः सप्तम उच्यते ।।१।। तस्य नारदस्याभिप्रेतं श्रुतवान् सन् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इसके पश्चात् इस सातवें अध्याय में भागवत के श्रोता महाराज परीक्षित् के जन्म और कर्म को बतलाने

के लिए सोए हुए द्रौपदी के बालकों का वध करने वाले अश्वत्थामा को अर्जुन द्वारा दण्डित किए जाने का वर्णन किया जा रहा है । उपर्युक्त प्रकार से व्यासजी ने नारदजी के अभिप्राय को जान लिया और उसके पश्चात् जब नारदजी चले गये तो व्यासजी ने क्या किया ? यह शौनक महर्षि ने सूतजी से पूछा ॥१॥

सूत उवाच

ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः पश्चिमे तटे । शम्याप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्धनः ॥२॥

अन्वयः— ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यां पश्चिमे तटे ऋषीणां सत्रवर्धनः शम्याप्रास इति आश्रमः प्रोक्तः ॥२॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— ब्रह्मनदी सरस्वती के पश्चिम तट पर शम्याप्रास नामक आश्रम है । वहाँ ऋषियों का सत्र निरन्तर चलता रहता है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मनद्यां ब्रह्मदैवत्यायां ब्राह्मणैराश्रितायां च । सत्रं कर्म वर्धयतीति तथा ॥२॥

भाव प्रकाशिका

सरस्वती नदी के अधिष्ठातृ देवता ब्रह्माजी हैं । उसके तट पर ब्राह्मणों का निवास है । वहीं पर शम्याप्रास नामक एक आश्रम है । उस आश्रम में सत्रकर्म (यज्ञकर्म) चलता ही रहता है ॥२॥

तस्मिन्स्व आश्रमे व्यासो बदरीषण्डमण्डिते । आसीनोऽप उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनः स्वयम् ॥३॥

अन्वयः— बदरीषण्डमण्डिते स्वे आश्रमे अपः उपस्पृश्य आसीनः व्यासः स्वयम् मनः प्रणिदध्यौ ॥३॥

अनुवाद— बेर के वन से अलंकृत अपने उसी आश्रम में जल का आचमन करके अपने आश्रम में बैठे हुए व्यासजी ने स्वयं अपने मन को समाहित किया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

बदरीणां षण्डेन समूहेन मण्डिते । मनः प्रणिदध्यौ स्थिरीचकार । समाधिनाऽनुस्मर तद्विचेष्टितम् इति नारदोपदिष्टं ध्यानं कृतवानित्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उस शम्याप्रास आश्रम में ही व्यासजी का आश्रम था । वह बेर के पेड़ों के समूह से अलंकृत था । नारदजी के चले जाने के पश्चात् व्यासजी ने जल का अचमन किया फिर बैठ कर उन्होंने अपने मन को स्थिर किया और नारदजी ने यह जो कहा था कि समाधि के द्वारा आप श्रीभगवान् की लीलाओं का स्मरण करें । उसी के अनुसार उन्होंने ध्यान किया । **बदरीणां षण्डेन समूहेन मण्डिते** यह बदरीषण्ड मण्डित पद का विग्रह हैं ॥३॥

भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले । अपश्यत्पुरुषं पूर्वं मायां च तदुपाश्रयाम् ॥४॥

अन्वयः— भक्तियोगेन अमले मनसि सम्यक् प्रणिहिते पूर्वं पुरुषं तदुपाश्रयां मायां च अपश्यत् ॥४॥

अनुवाद— भक्तियोग के द्वारा निर्मल मन के स्थिर हो जाने पर व्यासजी ने आदि पुरुष परमात्मा और उनके अधीन रहने वाली माया को देखा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

प्रणिहिते निश्चले । अत्र हेतुः- भक्तियोगेनामले । पूर्व प्रथमं पुरुषमीश्वरमपश्यत् । **पूर्णम्** इति वा पाठः । तदुपाश्रयामीश्वराश्रयां तदधीनां मायां चापश्यत् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

जब व्यासजी ने ध्यान किया उस समय भक्ति की भावना के कारण उनका मन निर्मल हो गया था और उनका मन पूर्ण रूप से एकाग्र हो गया । उसके फलस्वरूप व्यासजी ने पहले आदि पुरुष परमात्मा का साक्षात्कार किया और उसके साथ ही श्रीभगवान् के अधीन रहने वाली माया का भी साक्षात्कार किया । व्यासजी का मन पूर्ण रूप से निश्चल इसलिए हो गया कि उनका मन भक्तियोग के कारण निर्मल हो गया था ।।४।।

यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् । परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ।।५।।

अन्वयः— यया, सम्मोहितो जीवः परोऽपि आत्मानं त्रिगुणात्मकम् मनुते तत्कृतम् अनर्थं च अभिपद्यते ।।५।।

अनुवाद— उस माया से ही मोहित होने के कारण तीनों गुणों से रहित होने पर भी जीव अपने को त्रिगुणात्मक मान लेता है और उसके कारण होने वाले अनर्थों को भी भोगता है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

ईशमायाकृतां च जीवानां संसृतिमपश्यदित्याह- ययेति । यया संमोहितः स्वरूपावरणेन विक्षिप्तः परोऽपि गुणत्रयाद्यतिरिक्तोऽपि तत्कृतं त्रिगुणत्वाभिमानकृतमनर्थं च कर्तृत्वादिकं प्राप्नोति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

व्यासजी ने परमात्म की माया से निर्मित सृष्टि को देखा, इस बात को **यया० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । माया अपनी आवरण शक्ति के द्वारा जीवों को मोहित कर देती है । उसका स्वरूप ढँक जाता है । और फिर वह जगत् का विस्तार करती है । जीव यद्यपि माया से परे है । फिर भी वह माया से मोहित होने के कारण अपने में त्रिगुणात्मकत्व का अभिमान कर लेता है । फलतः वह अपने में कर्तृत्व आदि को प्राप्त कर लेता है ।।५।।

अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे । लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ।।६।।

अन्वयः— अजानतो लोकस्य अनर्थोपशमं अधोक्षजे साक्षात् भक्तियोगम् विद्वान् सात्त्वतसंहिताम् चक्रे ।।६।।

अनुवाद— अज्ञानी संसार के अनर्थों को शान्त करने का साधन श्रीभगवान् में की जाने वाली भक्ति है, इस बात को जानने वाले व्यासजी ने इस सात्वतसंहिता श्रीमद्भागवत की रचना की ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अनर्थमुपशमयति योऽधोक्षजे साक्षाद्भक्तियोगस्तं चापश्यत् । एतत्सर्व स्वयं दृष्ट्वा एवमजानतो लोकस्यार्थे सात्वसंहितां श्रीभागवताख्यां चक्रे । तदनेन श्लोकत्रयेण भागवतार्थः संक्षेपतो दर्शितः । एतदुक्तं भवति- विद्याशक्त्या मायानियन्ता नित्याविर्भूतपरमानन्दस्वरूपः सर्वज्ञः सर्वशक्तिरीश्वरस्तन्मायया संमोहितस्तिरोभूतस्वरूपस्तद्विपरीतधर्मा जीवस्तस्य चेश्वरभक्त्या लब्धज्ञानेन मोक्ष इति तदुक्तं विष्णुस्वामिना '**ह्लादिन्या संविदाश्लिष्टः सच्चिदानन्द ईश्वरः । स्वाविद्यासंवृतो जीवः संक्लेशनिकराकरः।।**' तथा '**स ईशो यद्वशे माया स जीवो यस्तयार्दितः । स्वाविर्भूतपरानन्दः स्वाविर्भूतसुदुःखभूः। स्वादृगुत्थविपर्यासभवभेदजभीशुचः । यन्मायया जुषन्नास्ते तमिमं नृहरिं नुमः ।।**' इत्यादि ।।६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् में की गयी भक्ति अनर्थ का नाश कर देती है उस भक्ति का भी व्यासजी ने साक्षात्कार किया। इन सारी बातों को स्वयं देखकर तथा इस बात को नहीं जानने वाले संसार का कल्याण करने के लिए उन्होंने श्रीमद्भागवत नाम की सात्वत-संहिता का निर्माण किया इस तरह इन तीन श्लोकों द्वारा श्रीमद्भागवत के अर्थ का संक्षेप में वर्णन किया गया है ।

एतदुक्तं भवति- कहने का अभिप्राय है कि नित्य ही आविर्भूत स्वरूप वाले परमानन्द स्वरूप सर्वज्ञ ईश्वर

विद्या शक्ति के द्वारा माया का नियमन करते हैं । परमात्मा की माया से जिसका स्वरूप तिरोहित हो जाता है, ईश्वर के विपरीत धर्म वाला जीव इस ईश्वर की भक्ति के द्वारा ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।

तदुक्तं विष्णुस्वामिना० इत्यादि विष्णु स्वामी ने कहा भी है **ह्लादिन्या० इत्यादि** अर्थात् ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप (विशिष्ट) हैं और सम्पूर्ण क्लेश समूह के आश्रयभूत जीव अपनी ही अविद्या (अज्ञान) से तिरोहित स्वरूप वाला है । और यह भी कहा गया है कि जिसके अधीन माया रहती है वही ईश्वर है तथा जो माया के द्वारा मोहित किया जाता है, वही जीव है । ईश्वर का अपना परमानन्द आविर्भूत रहता है और जीव अपने में आविर्भूत सुख-दुःख का आश्रय होता है । अपनी दृष्टि जन्य विपर्यास के कारण ही संसार में प्रतीत होने वाले भेद तज्जन्य भय तथा शोक होते है । **यन्मायया०** जिस परमात्मा की माया का जीव प्रेम पूर्वक सेवन करता है उन भगवान् नृसिंह को हम नमस्कार करते हैं ॥६॥

यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे । भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा ॥७॥

अन्वयः— यस्यां श्रूयमाणायां वै पुसः परमपुरुषे कृष्णे शोकमोहभयापहा भक्तिः उत्पद्यते ॥७॥

अनुवाद— उस भागवत संहिता का श्रवण कर लेने पर निश्चित रूप से मनुष्य की परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण में ऐसी भक्ति उत्पन्न हो जाती है जो शोक-मोह तथा भय को विनष्ट करने वाली होती है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

संहिताया अनर्थोपशामकत्वं दर्शयति- यस्यामिति । यस्यां वै श्रूयमाणायामेव, किं पुनः श्रुतायामित्यर्थः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

यस्यां वै० इत्यादि श्लोक के द्वारा यह बतलाया गया है कि श्रीमद्भागवत नामक संहिता सभी अनर्थों को विनष्ट कर देती है । **यस्यां वैश्रूयमाणायाम्** के द्वारा यह बतलाया गया है कि जब श्रीमद्भागवत संहिता सुनते समय ही अनर्थों को विनष्ट कर देती है तो फिर सुन लेने पर क्या कहना है ?॥७॥

स संहितां भागवतीं कृत्वाऽनुक्रम्य चात्मजम् । शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनिः ॥८॥

अन्वयः— सः मुनिः भागवतीम् संहितां कृत्वा च निवृत्तिनिरतं आत्मजम् शुकम् अनुक्रम्य अध्यापयामास ॥८॥

अनुवाद— वे महर्षि व्यास भागवती संहिता का निर्माण करके निवृत्ति मार्ग को अपनाये हुए अपने पुत्र शुकदेवजी को संशोधित करके पढ़ाये ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अनुक्रम्य शोधयित्वा ॥८॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के अनुकम्य का अर्थ है शोधित करके ॥८॥

शौनक उवाच

स वै निवृत्तिनिरतः सर्वत्रोपेक्षको मुनिः । कस्य वा बृहतीमेतामात्मारामः समभ्यसत् ॥९॥

अन्वयः— स वै मुनिः निवृत्ति निरतः सर्वत्रोपेक्षकः आत्मारामः कस्य वा (हेतोः) एताम् बृहतीं (संहिताम्) समभ्यसत् ॥९॥

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— वे शुकदेव मुनि तो निवृत्ति परायण, सभी वस्तुओं में उपेक्षा बुद्धि रखने वाले तथा अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले थे फिर वे किसलिए इस विस्तृत संहिता का अध्ययन किये ?॥९॥

भावार्थ दीपिका

कस्य वा हेतोः । बृहतीं विततान् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

कस्य वा के पश्चात् हेतोः पद का अध्याहार करना चाहिए। बृहतीम् पद का अर्थ है विस्तृत अर्थात् शुकदेवजी जब आत्माराम थे निवृत्ति मार्ग के पथिक थे तथा सर्वत्र उपेक्षा बुद्धि रखते थे फिर उनको इस विस्तृत संहिता का अध्ययन करने की कौन सी आवश्कता पड़ी ?।।९।।

सूत उवाच

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे । कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ।।१०।।

अन्वयः— आत्मारामा निर्ग्रन्था अपि मुनय ऊरुक्रमे अहैतुकीं भक्तिं कुर्वन्ति हरिः इत्थंभूतगुणः ।।१०।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— आत्मा में ही रमण करने वाले तथा जिनके अज्ञान की गाँठ खुल गयी है ऐसे ज्ञानी पुरुष श्रीभगवान् की विना किसी प्रयोजन के ही भक्ति करते हैं, क्योंकि श्रीहरि के गुण ही ऐसे हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

निर्ग्रन्थाः ग्रन्थेभ्यो निर्गताः । तदुक्तं गीतासु- **यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति । तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।**' इति । यद्वा ग्रन्थिरेव ग्रन्थः (निवृत्तः क्रोधाहंकाररूपो ग्रन्थिर्येषां ते) निवृत्तहृदयग्रन्थय इत्यर्थः । ननु मुक्तानां कि भक्त्येत्यादिसर्वाक्षेपपरिहारार्थमाह- इत्थंभूतगुण इति ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

निर्ग्रन्थाः शब्द अर्थ है कि जो अहङ्कार की ग्रन्थियों से रहित हैं । श्रीमद् भगवद् गीता में भगवान् ने स्वयं भी कहा है **यदा ते० इत्यादि** अर्थात् जब तुम्हारी बुद्धि मोह रूपी कीचड़ को पार कर जायेगी तब ही तुम संसार सागर को पार कर पाओगे । अथवा ग्रन्थि ही ग्रन्थ है । अर्थात् जिनके हृदय की ग्रन्थियाँ समाप्त हो चुकी हैं । ऐसे भी ज्ञानी पुरुष भगवान् की भक्ति करते हैं । **ननु मुक्तानाम्** अर्थात् जो ज्ञानी-पुरुष जीवन मुक्त हो चुके हैं, उन लोगों को भक्ति से क्या लाभ है ? इस तरह के सभी आक्षेपों के परिहार के लिए कहा गया है कि श्रीभगवान् के गुण ही ऐसे हैं कि वे मुक्तों को भी अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं ।।१०।।

हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान्बादरायणिः । अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ।।११।।

अन्वयः— हरेर्गुणाक्षिप्तमतिः नित्यं विष्णुजनप्रियः भगवान् बादरायणिः महदाख्यानम् अध्यगात् ।।११।।

अनुवाद— श्रीहरि के गुणों से आकृष्टबुद्धि वाले तथा सदा भगवान् के भक्तों से प्रेम करने वाले, महाज्ञानी महर्षि बादरायण के पुत्र श्रीशुकदेवजी इस महान् ग्रन्थ का अध्ययन किए ।।११।।

भावार्थ दीपिका

ननु भक्तिं कुर्वन्तु नाम, एतच्छास्त्राभ्यासे शुकस्य किं कारणमित्यत आह- हरेरिति । अध्यगादधीतवान् । विष्णुजनाः प्रिया यस्येति । व्याख्यानादिप्रसङ्गेन तत्सङ्गतिकाम इति भावः । एतेन **तस्य पुत्रो महायोगी** इत्यादिना शुकस्य व्याख्याने प्रवृत्तिः कथमिति यत्पृष्टं तस्योत्तरमुक्तम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि मुक्त जीव भी भगवान् की भक्ति करते हैं तो ठीक है उसका कारण क्या हैं ? तो इसके उत्तर में **हरेर्गुणाक्षिप्त० इत्यादि** श्लोक कहते है । अध्यगात् पद का अर्थ है अध्ययन किया । विष्णुजन-प्रियः का

विग्रह है । **विष्णुजनाः प्रियाः यस्य ।** अर्थात् व्याख्यान आदि के प्रसङ्ग में भागवतों की सङ्गति की कामना होने के कारण उन्होंने इस विस्तृत संहिता का अध्ययन किया । इस कथन के द्वारा शौनक महर्षि ने यह जो पूछा था कि उनके पुत्र महायोगी शुकदेवजी की प्रवचन करने में प्रवृत्ति कैसे हुयी ? इसका उत्तर दिया गया ।।११।।

परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्मकर्मविलायनम् । संस्थां च पाण्डुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ।।१२।।

अन्वयः— अथ राजर्षेः परीक्षितः जन्म कर्म विलायनम् पाडुपुत्राणां संस्थां कृष्णकथोदयं च वक्ष्ये ।।१२।।

अनुवाद— हे शौनक जी ! मैं राजर्षि राजा परीक्षित् के जन्म, कर्म तथा मुक्ति, पाण्डवों के स्वर्गारोहण तथा भगवान् श्रीकृष्ण की कथाओं के प्रारम्भ का वर्णन करूँगा ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

यदन्यत्पृष्टं परीक्षितः प्रायोपवेशन श्रवणं कथमिति **'तस्य जन्म महाश्चर्यम्'** इत्यादिना तस्योत्तरं वक्तुमाह- परीक्षित इति । विलायनं मुक्तिं मृत्युं वा । संस्थां महाप्रस्थानम् । श्रीकृष्णकथानामुदयो यथा भवति तथा ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

यह जो पूछा गया था कि राजा परीक्षित मारण काल पर्यन्त उपवास का व्रत लेकर क्यों बैठे थे, उन्होंने भागवत संहिता श्रवण कैसे किया, उनके रहस्यमय जन्म और कर्म रूपी महा आश्चर्य का वर्णन करें इत्यादि का उत्तर देने के लिए **परीक्षितोऽथ इत्यादि** श्लोक कहा गया है । विलायन शब्द से मुक्ति अथवा मोक्ष को कहा गया है । संस्था से महाप्रस्थान को कहा गया है । और इन सबों से भगवान् श्रीकृष्ण की कथाओं का उदय कैसे होता है ? उसको हम बतलायेंगे ।।१२।।

यदा मृधे कौरवसृञ्जयानां वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु ।
वृकोदराविद्धगदाभिमर्शभग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे ।।१३।।
भर्तुः प्रियं द्रौणिरिति स्म पश्यन्कृष्णासुतानां स्वपतां शिरांसि ।
उपाहरद्विप्रियमेव तस्य तज्जुगुप्सितं कर्म विगर्हयन्ति ।।१४।।

अन्वयः— यदा मृधे कौरवसृञ्जयानाम् वीरगतिं गतेषु, अथो वृकोदराविद्ध गदाभिमर्शभग्नोरुदण्डे धृतराष्ट्रपुत्रे, भर्तुः प्रियं स्म इति पश्यन् द्रौणिः स्वपतां कृष्णा-सुतानां शिरांसि उपाहरत् तत् तस्य विप्रियमेव तत् जुगुप्सितं कर्म सर्वे विगर्हयन्ति ।।१३-१४।।

अनुवाद— जब कौरवों तथा पाण्डवों की सेना के अनेक वीरों की युद्ध में मृत्यु हो गयी थी उसके पश्चात् भीम के द्वारा किए गये गदा के प्रहार से धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन की दोनों जंघाएँ टूट चुकी थीं उस समय अपने स्वामी दुर्योधन का प्रिय समझकर अश्वत्थामा द्रौपदी के सोते हुए पुत्रों के शिर को काटकर दुर्योधन को दिखाया, वह दुर्योधन को अप्रिय ही लगा क्योंकि ऐसे निन्दित कार्य की सबलोग निन्दा ही करते हैं ।।१३-१४।।

भावार्थ दीपिका

तत्र परीक्षितो जन्म निरूपयिष्यन्नादौ तावद्गर्भस्थ एवाश्वत्थाम्नो ब्रह्मास्त्रात्कृष्णेन रक्षित इति वक्तुं कथां प्रस्तौति- यदेत्यादिना। यदा द्रौणिरश्वत्थामा कृष्णासुतानां द्रौपदीपुत्राणां शिरांस्युपाहरत्तदा तन्माताऽरुदत्तां च सान्त्वयन्किरीटमाल्यर्जुन आहेति तृतीयेनान्वयः। किमिति बालानां शिरास्यानीतवानित्यपेक्षायामाह । मृधे युद्धे । यद्यपि पाण्डवा अपि कौरवा एव तथापि सृञ्जयवंशजो धृष्टद्युम्नः सेनापतिरिति सृञ्जयानामित्युक्तम् । वीरगतिं स्वर्गम् । अथो अनन्तरम् । वृकोदरेणाविद्धायाः क्षिप्ताया गदाया अभिमर्शेनाभिघातेन भग्नावुरुदण्डौ यस्य तथाभूते घृतराष्ट्रपुत्रे दुर्योधने सति ।।१३।। भर्तुर्दुर्योधनस्य । स्मेति वितर्के । इत्येवं प्रियं स्यादिति पश्यन्। तस्य तद्विप्रियमेवेति वाक्यान्तरम् । विप्रियत्वे हेतुः जुगुप्सितमिति ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

परीक्षित् के जन्म का निरूपण करने की इच्छा से सर्वप्रथम गर्भ में ही विद्यमान परीक्षित् की अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से रक्षा भगवान् श्रीकृष्ण ने की इस कथा को बतलाने के लिए **यदा मृधे० इत्यादि** श्लोक को कहा गया है । जब अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पुत्रों का शिर काट दिया । उस समय उन सबों की रोती हुयी माता द्रैपदी को सान्त्वना प्रदान करते हुए अर्जुन ने कहा मैं अश्वत्थामा का शिर काटकर लाऊँगा । **किमिति० इत्यादि** प्रश्न है कि अश्वत्थामा पुत्रों का शिर क्यों काटकर दुर्योधन के पास लाया ? इस प्रकार की आशङ्का होने पर कहा **यदा मृधे० इत्यादि** मृधे का अर्थ है युद्ध में । यद्यपि पाण्डव भी कुरुवंशीय ही थे फिर भी पाण्डवों की सेना के सेनापति सृञ्जय वंशीय धृष्टद्युम्न थे इसीलिए पाण्डवों को सृञ्जयानाम् कहा गया है । वीरगतिं गतेषु का अर्थ है स्वर्ग में चले गये थे । उसके पश्चात् भीम के द्वारा किए गये गदा के प्रहार से धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन की दोनों जङ्घायें टूट गयी थीं । उस समय अपने स्वामी दुर्योधन का प्रिय समझकर अश्वत्थामा द्रौपदी के सोते हुए पुत्रों के शिरों को काटकर दुर्योधन के समक्ष लाया । वह दुर्योधन को बुरा ही प्रतीत हुआ । बुरा लगने का कारण था कि उसने यह निन्दित कार्य किया था ।

श्लोक के अथ शब्द आनन्तर्य का वाचक है । **वृकोदराविद्धगदाभिमर्श भग्नोरुदण्डे** पद का विग्रह इस प्रकार हैं । वृकोदरेण भीमेन, अविधाया: क्षिप्ताया: गदाया: अभिमर्शेन अभिघातेन भाग्नौ उरूदण्डौ यस्य । चौदहवें श्लोक में प्रयुक्त स्म अव्यय वितर्क के अर्थ में प्रयुक्त है ।।१३-१४।।

माता शिशूनां निधनं सुतानां निशम्य घोरं परितप्यमाना ।
तदारुदद्वाष्पकलाकुलाक्षी तां सान्त्वयन्नाह किरीटमाली ।।१५।।

अन्वय:— तदा शिशूनां सुतानां निधनं निशम्य घोरं परितप्यमाना वाष्पकलाकुलाक्षी माता अरुदत् तां सान्त्वयन् किरीटमाली आह ।।१५।।

अनुवाद— अपने पुत्रों की मृत्यु को सुनकर अत्यन्त सन्तप्त होती हुयी उन सबों की माता द्रौपदी की आँखों में आँसू भर गये थे और वह रोने लगी । द्रौपदी को सान्त्वना प्रदान करते हुए अर्जुन ने कहा ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

घोरं दु:सहं यथा भवति । वाष्पस्य कलाभिर्विन्दुभिराकुले अक्षिणी यस्या: । किरीटस्यैकत्वेऽपि तदग्राणां बहुत्वात्किरीटमालीत्युक्तम् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

पुत्रों की मृत्यु द्रौपदी के लिए असह्य थी इस अर्थ को सूचित करने के लिए **घोरम्** पद का प्रयोग किया गया है । **वाष्पस्य कलाभि: विन्दुभि: आकुले अक्षिणी यस्या: सा यह वाष्पकलाकुलाक्षी** पद का विग्रह है किरीट के एक होने पर भी उसके अग्रभाग अनेक थे अतएव अर्जुन किरीटमाली हैं ।।१५।।

तदा शुचस्ते प्रमृजामि भद्रे यद्ब्रह्मबन्धो: शिर आततायिन: ।
गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरे त्वाक्रम्य यत्स्नास्यसि दग्धपुत्रा ।।१६।।

अन्वय:— भद्रे ! ते शुच: तदा प्रमृजामि यदा आततायिन: ब्रह्मबन्धो: शिर: गाण्डीवमुक्तै: विशिखै: उपाहरे दग्ध पुत्रा त्वम् यत् आक्रम्य स्नास्यसि ।।१६।।

अनुवाद— कल्याणि ! तुम्हारे शोक का अपनोदन मैं तब करूँगा जब कि उस आततायी ब्राह्मणाधम के

शिर को गाण्डीव धनुष से छोड़े गये बाणों से काटकर लाऊँगा और पुत्रों की अन्त्येष्टि क्रिया के पश्चात् तुम उस शिर पर पैर रखकर स्नान करोगी ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

शुचः शोकाश्रूणि । प्रमृजामि परिमार्जयामि । यद्यदा ब्रह्मबन्धोर्ब्राह्मणाधमस्य आततायिन इति '**अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः । क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते ह्याततायिनः ।**' इति स्मरणादत्राततायी शस्त्रपाणिस्तेन च पुत्रहन्तृत्वं लक्ष्यते। गाण्डीवाद्धनुषो मुक्तैर्विशिखैर्बाणैरुपाहरे त्वत्समीपमानयामि । यच्छिर आक्राम्यासनं विधाय । दग्धपुत्रा सती ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

शुच शब्द से शोकजन्य आंसुओं को कहा गया है । प्रमृजामि का अर्थ है दूर करूँगा । यत् शब्द यदा का बोधक है । ब्रह्म बन्धु का अर्थ है अधम ब्राह्मण । आततायियों का निरूपण करते हुए कहा गया है । **अग्निदो गरदश्चैव० इत्यादि** अर्थात् दूसरों के घर में आग लगाने वाले, दूसरे को विष खिलाकर मार डालने वाले, दूसरों पर प्रहार करने के लिए सदा हाथ में शस्त्र धारण किए रहने वाले, दूसरों के धन को चुराने वाले, दूसरे के खेत का अपहरण करने वाले तथा दूसरों की पत्नी को छीन लेने वाले ये छहो आततायी है । यहाँ पर **आततायी** शब्द से हाथ में शस्त्र धारण करके पुत्रों को मारने के कारण अश्वत्थामा को आततायी कहा गया है । **गाण्डीवाद् धनुषो० इत्यादि** गाण्डीव धनुष से छोड़ गये बाणों से अश्वत्थामा के शिर को काटकर तुम्हारे पास लाऊँगा और उस पर तुम अपने पैरों को रखकर अपने पुत्रों को जलाने के पश्चात् स्नान करोगी ॥१६॥

इति प्रियां वल्गुविचित्रजल्पैः स सान्त्वयित्वाऽच्युतमित्रसूतः ।
अन्वाद्रवद्दंशित उग्रधन्वा कपिध्वजो गुरुपुत्रं रथेन ॥१७॥

अन्वयः— इति वल्गुविचित्रजल्पै प्रियां सान्त्वयित्वा अच्युतमित्रसूतः दंशितः उग्रधन्वा कपिध्वजः रथेन गुरुपुत्रं अन्वाद्रवद् ॥१७॥

अनुवाद— इस तरह की मनोहर तथा विचित्र बातों से प्रिय पत्नी द्रौपदी को सान्त्वना प्रदान करके जिनके मित्र तथा सारथि भगवान् श्रीकृष्ण हीं है ऐसे कवच बाँधे हुए तथा भयङ्कर धनुष धारण किए हुए अर्जुन ने रथ के द्वारा अपने गुरु के पुत्र अश्वत्थामा का पीछा किया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

वल्गवो रम्या विचित्रा जल्पा भाषणानि तैः । सोऽर्जुनः । अच्युत एव मित्रं सूतश्च यस्य । दंशितो बद्धकवचः । उग्रं धनुश्चापं यस्य । कपिर्हनुमान् ध्वजे यस्य सः । गुरोः पुत्रं रथेनान्वाद्रवदन्वधावत् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

अर्जुनने उपर्युक्त प्रकार के मनोज्ञ तथा अद्भुत बातों से अपनी पत्नी द्रौपदी को सान्त्वाना प्रदान की और भगवान् श्रीकृष्ण रूपी मित्र और सारथि वाले अर्जुन ने कवच बाँधकर तथा भयङ्कर धनुष धारण करके रथ पर सवार होकर अश्वत्थामा का पीछा किया ।

वल्गुविचित्रजल्पैः का विग्रह **वल्गवः रम्याः विचित्रा जल्पा भाषणानि तैः** है । **अच्युतमित्रसूतः** पद का विग्रह **अच्युत एव मित्रम् सूतश्च यस्य** है । अर्जुन को कपिध्वज इस लिए कहा जाता है कि अर्जुन के ध्वज पर हनुमानजी सदा विराजमान रहते थे । **'उग्रं' धनुर्यस्य सः** यह उग्रधन्वा पद का विग्रह है ॥१७॥

तमापतन्तं स विलक्ष्य दूरात्कुमारहोद्विग्नमना रथेन ।
पराद्रवत्प्राणपरीप्सुरुर्व्यां यावद्गमं रुद्रभयाद्यथा कः ॥१८॥

अन्वयः— रथेन आपतन्तं तं दूरात् विलक्ष्य उद्विग्नमनाः स कुमारहा, रुद्रभयाद् को यथा यावद्गमं उर्व्यां पराद्रवत्।।१८।।

अनुवाद— रथ से पीछा करने वाले अर्जुन को दूर से ही देखकर भयभीत तथा बच्चों को मारने वाले अश्वत्थामा अपने प्राणों की रक्षा करने की इच्छा से रुद्र के भय से भागने वाले ब्रह्माजी के समान पृथिवी पर उतने दूर तक भागा जितना वह भाग सकता था ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

आपतन्तमाधावन्तम् । स द्रौणिः । कुमारहा बालघाती । उद्विग्नमनाः कम्पितहृदयः । प्राणपरीप्सुः प्राणान् लब्धुमिच्छुर्न तु कीर्तिम् । यावद्गमं यावद्गन्तुं शक्यं तावदुर्व्यां पराद्रवदपलायत । को ब्रह्मा मृगो भूत्वा सुतां जब्धुमुद्यतः सन् रुद्रस्य भयाद्यथा पलायते स्म । '**अर्क**' इति पाठे वामनपुराणकथा सूचिता । तथा हि विद्युन्माली नाम कश्चिद्राक्षसो माहेश्वरस्तस्मै रुद्रेण सौवर्णं विमानं दत्तम्, ततोऽसावर्कस्य पृष्ठतो भ्राम्यन्विमानदीप्त्या रात्रिं विलोपितवान्, ततोऽर्केण निजतेजोभिर्द्रावयित्वा तद्विमानं पातितम्, तच्छ्रुत्वा कुपिते रुद्रे भयादर्कः पराद्रवत्, ततो रुद्रस्य क्रूरदृष्ट्या दन्दह्यमानः पतन्वाराणस्यां पतितो लोलार्कनाम्ना विख्यात इति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

पीछा करते हुए अर्जुन को दूर से ही देखकर द्रोणाचार्य का पुत्र जो बालघाती था वह भयभीत होकर अपने प्राणों की रक्षा करना चाहता था, अपनी कीर्ति की नहीं जितना दूर तक वह भाग सकता था उतने दूर तक भागा।

रुद्रभयात् कः का अर्थ है कि ब्रह्मा जब मृग का रूप धारण करके अपनी पुत्री के साथ ही सङ्गम करने के लिए तैयार हो गये थे उस समय क्रुद्ध रुद्र को देखकर भाग चले । जहाँ पर रुद्रभयाद् यथार्कः यह पाठ है तो उसके द्वारा वामन पुराणकी निम्नाङ्कित कथा सूचत होती है ।

विद्युन्माली नामक एक राक्षस था वह रुद्र का भक्त था । प्रसन्न होकर शिवजी ने उसको सोने का रथ प्रदान किया । उसके पश्चात् सूर्य के पीछे भ्रमण करते हुए उसने रात्रि को ही विलुप्त कर दिया । यह देखकर सूर्य ने अपने तेज से उसके विमान को द्रव बनाकर गिरा दिया । रुद्र ने जब सुना कि उस विमान को सूर्य ने गिरा दिया है तो वे कुपित हो गये । रुद्र के कुपित हो जाने पर भयभीत होकर सूर्य भाग चले । उस रुद्र की क्रोधभरी दृष्टि से देखे जाने के कारण जलते हुए सूर्य वाराणसी में जाकर गिर पड़े उसी समय से वे लोलार्क के नाम से विख्यात हो गये ।।१८।।

यदाऽशरणमात्मानमैक्षत श्रान्तवाजिनम् । अस्त्रं ब्रह्मशिरो मेन आत्मत्राणं द्विजात्मजः ।।१९।।

अन्वयः— यदा श्रान्तवजिनम् आत्मानम् अशरणम् ऐच्छत तदा द्विजात्मजः ब्रह्मशिरः अस्त्रं आत्मत्राणम् मेने ।।१९।।

अनुवाद— जब उसने देखा कि हमारे अश्व थक गये हैं अतएव अब हमारा रक्षक कोई नहीं तो अश्वत्थामा ने अपना रक्षक ब्रह्मास्त्र नामक अस्त्र को ही माना ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

अशरणं रक्षकरहितम् । ननु पलायनमेव रक्षकमस्ति, न, तस्यापि कुण्ठितत्वादित्याह । श्रान्ता वाजिनो यस्य तम् । ब्रह्मशिरोऽस्त्रं ब्रह्मास्त्रम् । द्विजात्मज इत्यदीर्घदर्शितामाह ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

जब अश्वत्थामा ने देखा कि मेरे रथ के घोड़े थक गये है अब मेरी रक्षा कोई नहीं कर सकता है तब उसने सोच लिया कि अब मेरी रक्षा ब्रह्मास्त्र नामक अस्त्र से ही हो सकती है । यदि कोई कहे कि वह भाग करके ही अपनी जान बचा सकता था तो इसका उत्तर है कि उसके घोड़े थक गये थे वे चल नहीं पाते थे । ब्रह्मशिरः ब्रह्मास्त्र

का ही वाचक है अश्वत्थामा के लिए द्विजात्मज शब्द के प्रयोग के द्वारा उसकी अदीर्घदर्शिता को सूचित किया गया है ॥१९॥

अथोपस्पृश्य सलिलं संदधे तत्समाहितः । अजानन्नुपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपस्थिते ॥२०॥

अन्वयः— अथ प्राणकृच्छ्र उपस्थिते सः उपसंहारम् अजानन् सलिलम् उपदृश्य समाहितः सन् तत् संदधे ॥२०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् प्राण सङ्कट उपस्थित हो जाने पर अश्वत्थामा यद्यपि ब्रह्मास्त्र का उपसंहार नहीं जानता था फिर भी उसने जल का आचमन करके उसका प्रयोग कर दिया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तद्ब्रह्मास्त्रम् । समाहितः कृतध्यानः । उपसंहारमजानतोऽपि संधाने हेतुः- प्राणकृच्छ्र इति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अश्वत्थामा ब्रह्मास्त्र का उपसंहार नहीं जानता था फिर भी प्राणसङ्कट उपस्थित होने के कारण ध्यान करके उसने उसका प्रयोग कर दिया ॥२०॥

ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचण्डं सर्वतोदिशम् । प्राणापदमभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुरुवाच ह ॥२१॥

अन्वयः— ततः प्रादुष्कृतं सर्वतोदिशम् प्रचण्डं तेजः अभिप्रेक्ष्य ततः प्राणापदम् अभिप्रेक्ष्य जिष्णुः विष्णुम् उवाच॥२१॥

अनुवाद— उस अस्त्र से सभी दिशाओं में फैलने वाले प्रचण्ड तेज को देखकर तथा उससे प्राणसङ्कट को देखकर अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

ततोऽस्त्रात् सर्वतोदिशं प्रादुष्कृतं तेजोऽभिप्रेक्ष्य ततः प्राणापदं चाभिप्रेक्ष्य ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उस अस्त्र से चारो तरफ फैलने वाले भयङ्कर तेज को देखकर तथा उसके कारण प्राणसङ्कट को देखकर अर्जुन ने उसके विषय में भगवान् श्रीकृष्ण से पूछा ॥२१॥

अर्जुन उवाच

कृष्ण कृष्ण महाभाग भक्तानामभयङ्कर । त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः ॥२२॥

अन्वयः— हे भक्तानामभयङ्कर महाभाग कृष्ण संसृतेः दह्यमानानाम् एकः त्वम् अपवर्गः असि ॥२२॥

अनुवाद— हे भक्तों को अभय बनाने वाले महाभाग कृष्ण संसारचक्र में जलने वालों के संसार संताप को केवल आप ही विनाशक है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतं विज्ञापयितुं प्रथमं स्तौति- कृष्णेति चतुर्भिः । संसृतेर्हेतोर्दह्यमानानां तस्या अपवर्गोऽपवर्जयिता । नाशक इत्यर्थः॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रस्तुत तेज के विषय में बतलाने के लिए चार श्लोकों के द्वारा अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशसां करते हैं । अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा संसारचक्र में संतप्त जीवों के संताप को दूर करने वाले एक मात्र आप ही हैं ॥२२॥

त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः ।
मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि ॥२३॥

अन्वयः— त्वम् साक्षात् ईश्वरः प्रकृतेः परः आद्यः पुरुषः चित् शक्त्या मायां व्युदस्य कैवाल्ये आत्मनि स्थितः ॥२३॥

अनुवाद— आप साक्षात् ईश्वर हैं, प्रकृति से परे परम पुरुष हैं तथा इस जगत् के कारणभूत पुरुष हैं। यद्यपि आप कारण पुरुष हैं फिर भी सदा निर्विकार रहते हैं आप अपनी चित् शक्ति के द्वारा माया को दूर करके कैवल्य रूप आत्मा में स्थित रहते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यतस्त्वमीश्वरः साक्षात् कुतः यतः प्रकृतेः परः पुरुषः । तत्कुतः । यत आद्यः कारणम् । कारणत्वेऽप्यविकारितामाह। मायां व्युदस्याभिभूय कैवल्यरूपे आत्मन्येव स्थित इति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा कि आप साक्षात् ईश्वर हैं, अतएव सम्पूर्ण जगत् के नियामक हैं, क्योंकि आप प्रकृति से परे परम पुरुष हैं अतएव आप जगत् के आदि कारण हैं ।

श्रीभगवान् जगत् के कारण होने पर भी निर्विकार ही रहते हैं इस बात को कहते हुए अर्जुन ने कहा कि आप माया को अभिभूत करके कैवल्य स्वरूप अपनी आत्मा में ही स्थित हैं ॥२३॥

स एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः । विधत्से स्वेन वीर्येण श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥२४॥

अन्वयः— स एव भगवान् मायामोहितचेतसः जीवलोकस्य स्वेन वीर्येण धर्मादि लक्षणं श्रेयः विधत्से ॥२४॥

अनुवाद— माया को अभिभूत करके अपनी आत्मा में स्थित ही आप माया से मोहित जीव समूह के द्वारा स्थित होकर अपने प्रभाव के द्वारा धर्मादि रूप कल्याण प्रदान करते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

त्रिवर्गदातापि त्वमेवेत्याह- स इति । यस्त्वं मायामभिभूय स्थितः स एव मायाभिभूतस्य जनस्य धर्मादिफलमुपासितः सन्विधत्से । वीर्येण प्रभावेण ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

अर्जुन ने कहा कि हे भगवन् आप ही जीवों को धर्म, अर्थ तथा काम इस त्रिवर्ग को प्रदान करते हैं । जो आप माया को अभिभूत करके स्थित हैं वे ही आप मायाभिभूत जीवों की उपासना से प्रसन्न होकर उन सबों को अपने प्रभाव से धर्मादि रूप त्रिवर्ग को प्रदान करते हैं, यही इस श्लोक का अभिप्राय हैं ॥२४॥

तथायं चावतारस्ते भुवो भारजिहीर्षया । स्वानां चानन्यभावानामनुध्यानाय चासकृत् ॥२५॥

अन्वयः— अयं च त अवतारः भुवः भारजिहीर्षया, अनन्यभावानां स्वानां च असकृत् अनुध्यानाय ॥२५॥

अनुवाद— आपका यह अवतार पृथिवी का भार उतारने के लिए तथा आपके जो अनन्य भक्त हैं उनके बार-बार ध्यान करने के लिए हुआ है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तथा चानेनावतारेण तव साधुपक्षपातो लक्ष्यत इत्याह- तथेति । किं भूभारहरणं मदिच्छामात्रेण न भवति तत्राह । स्वानां ज्ञातीनामनुध्यानाय च तथानन्यभावानामेकान्तभक्तानां च ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

तथायम्० **इत्यादि** श्लोक से अर्जुन ने कहा कि इस अवतार के द्वारा आपका सज्जनों के प्रति पक्षपात लक्षित होता है । यदि भगवान् कहें कि पृथिवी के भार का अपहार मेरी इच्छा मात्र से नहीं हो सकता है क्या कि उसके लिए मेरा यह अवतार हुआ है, तो इसके उत्तर में अर्जुन ने कहा बन्धु बान्धवों तथा आपके जो अनन्य भक्त हैं उनके ध्यान के लिए आपका अवतार हुआ है ।।२५।।

किमिदं स्वित्कुतो वेति देवदेव न वेद्म्यहम् । सर्वतोमुखमायाति तेजः परमदारुणम् ।।२६।।

अन्वयः— हे देवदेव । इदं किंस्वित् कुतो वा एति इति अहम् न वेद्मि सर्वतोमुखम् परमदारुणं तेजः आयाति ।।२६।।

अनुवाद— मुझे इस बात का पता नहीं चलता है कि यह क्या है ? तथा कहाँ से आ रहा है चारो ओर फैलता हुआ अत्यन्त भयङ्कर तेज आ रहा है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

एवं स्तुत्वा प्रस्तुतं विज्ञापयति- किमिति । किमात्मकमिदं कुतो वा आयातीति । स्विद्वितर्के ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से भगवान् की स्तुति करके अर्जुन ने प्रस्तुत बात बतलायी कि यह क्या है और कहाँ से आ रहा है ? स्वित् अव्यय का प्रयोग वितर्क के अर्थ में हुआ हैं ।।२६।।

श्रीभगवानुवाच

वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं प्रदर्शितम् । नैवासौ वेद संहारं प्राणबाध उपस्थिते ।।२७।।

अन्वयः— प्राणवाधे उपस्थिते इदं द्रोणपुत्रस्य प्रदर्शितं, ब्राह्मं अस्त्रं वेत्थ असौ संहारं न वेद ।।२७।।

अनुवाद— प्राण सङ्कट उपस्थित होने के कारण द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा के द्वारा प्रयुक्त इसे तुम ब्रह्मास्त्र समझो । अश्वत्थामा इसको लौटाना नहीं जानता है ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

इदं द्रोणापुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रम् । तेन च प्राणबाधे प्राप्ते प्रदर्शितं केवलम् । न तत्प्रयोगे कुशल इत्यर्थः । यतोऽसावुपसंहारं न वेद । एतच्च त्वं तु वेत्थ जानासि ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

इसको तुम ब्रह्मास्त्र जानो । प्राणसङ्कट उपस्थित होने पर उसने इसका केवल प्रदर्शन किया है । इसके प्रयोग में अश्वत्थामा कुशल नहीं है क्योंकि वह इसका उपसंहार नहीं जानता है । तुम तो इसके उपसंहार को जानते हो ।।२७।।

नह्यस्यान्यतमं किंचिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् । जह्यस्त्रतेज उन्नद्धमस्त्रज्ञो ह्यस्त्रतेजसा ।।२८।।

अन्वयः— अस्य प्रत्यवकर्शनं किंचिदन्यतमं अस्त्रं न त्वम् अस्त्रज्ञः असि, अस्त्रतेजसा हि उनद्धम् अस्त्रतेजः जहि ।।२८।।

अनुवाद— किसी भी दूसरे अस्त्र में इसको क्षीण करने की शक्ति नहीं है । तुम तो अस्त्रज्ञ हो, अतएव ब्रह्मास्त्र के ही तेज से इसके उत्कट तेज को नष्ट कर दो ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

प्रत्यवकर्शनं कृशत्वकरम् । निवर्तकमित्यर्थः । अतस्तदस्त्रतेज उन्नद्धमुत्कटं ब्रह्मास्त्रतेजसैव जहि घातय । त्वत्प्रयुक्तं चास्त्रं तदुपसंहृत्य स्वयमुपशाम्येत् । यतस्त्वमस्त्रज्ञोऽसि ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् ने कहा कि इस अस्त्र के तेज को क्षीण करने वाला कोई भी दूसरा अस्त्र नहीं है। तुम तो शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता ही अतएव ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके इसका जो भयङ्कर तेज है उसको तुम शान्त कर दो ॥२८॥

सूत उवाच

श्रुत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः परवीरहा। स्पृष्ट्वापस्तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे ॥२९॥

अन्वयः— भगवता प्रोक्तं श्रुत्वा परवीरहा फाल्गुन अपः स्पृष्ट्वा तं परिक्रम्य ब्राह्माय ब्राह्मं संदधे ॥२९॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण की बातों को सुनकर शत्रुओं को मारने वाले अर्जुन ने जल का आचमन किया और भगवान् श्रीकृष्ण की परिक्रमा की तथा उस ब्रह्मास्त्र को निवर्तित करने के लिए ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

परे शत्रवस्त एव वीरास्तान्हन्तीति तथाविधः फाल्गुनोऽर्जुनोऽपः स्पृष्ट्वाचम्य तं श्रीकृष्णं परिक्रम्य प्रदक्षिणीकृत्य। ब्राह्माय ब्रह्मास्त्रं निवर्तयितुम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की बातों को सुनकर अर्जुन जल का अचमन करके भगवान् की परिक्रमा किए और अश्वत्यामा के ब्रह्मास्त्र को लौटाने के ही लिए उसे विनष्ट करने के लिए नहीं, ब्रह्मास्त्र का अनुसंधान किये ॥२९॥

संहत्यान्योन्यमुभयोस्तेजसी शरसंवृते। आवृत्य रोदसी खं च ववृधातेऽर्कवह्निवत् ॥३०॥

अन्वयः— उभयोः शरसंवृते तेजसी अन्योन्यम् संहत्य रोदसीखं च आवृत्य अर्कवह्निवत् ववृधाते ॥३०॥

अनुवाद— बाणों से वेष्टित दोनों ब्रह्मास्त्रों का तेज परस्पर में एक दूसरे से टकराकर सूर्य तथा संवर्तकाग्नि के समान तेज आकाश और अन्तरिक्ष में व्याप्त होकर फैल गया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

ततश्चोभयोर्ब्रह्मास्त्रयोस्तेजसी शरैः संवृते संवेष्टिते परस्परं मिलित्वा ववृधाते अवर्धेताम्। किं कृत्वा। रोदसी द्यावापृथिव्यौ खमन्तरिक्षं चावृत्य। यथा प्रलये सङ्कर्षणमुखाग्निरुपरिस्थितोऽर्कश्च संहत्य वर्धेते तद्वत् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अर्जुन के द्वारा ब्रह्मास्त्र का संधान कर दिए जाने के पश्चात् दोनों ब्रह्मास्त्रों का बाणों से वेष्टित तेज परस्पर में एक दूसरे से टकराकर इतना बढ़ा कि वह भूलोक से लेकर स्वर्गलोक पर्यन्त व्याप्त हो गया। जैसे प्रलयकाल में सङ्कर्षण के मुख से निकली हुयी अग्नि और सूर्य का तेज दोनों बढ़ते हैं उसी तरह से वे दोनों तेज बढ़े ॥३०॥

दृष्ट्वास्त्रतेजस्तु तयोस्त्रींल्लोकान्प्रदहन्महत्। दह्यमानाः प्रजाः सर्वाः सांवर्तकममंसत ॥३१॥

अन्वयः— त्रीन् लोकान् प्रदहन् तयोः महत् तेजः दृष्ट्वा तु दह्यमानाः सर्वाः प्रजाः, सांवर्तकम् अमंसत् ॥३१॥

अनुवाद— तीनों लोकों को जला देने वाली अर्जुन तथा अश्वत्थामा दोनों के अस्त्रों की महान अग्नि को देखकर जलती हुयी सी सारी प्रजाओं ने समझ लिया कि यह प्रलयाग्नि है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तयोर्द्रौणिफाल्गुनयोः। तेन दह्यमानाः सांवर्तकः प्रलयाग्निममंसत मेनिरे ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

अश्वत्थामा और अर्जुन दोनों के ब्रह्मास्त्र जब एक दूसरे से टकराये तो उन दोनों से आविर्भूत तेज तीनों लोकों को जलाने लगा । उससे जलती हुयी प्रजाओं ने समझा, कि लगता है कि यह प्रलय कालीन अग्नि हैं ।।३१।।

प्रजोपप्लवमालक्ष्य लोकव्यतिकरं च तम् । मतं च वासुदेवस्य संजहारार्जुनो द्वयम् ।।३२।।

अन्वयः— तम् प्रजोपप्लवम् लोकव्यतिकरं च आलक्ष्य अर्जुनः वासुदेवस्य मतं द्वयम् संजहार ।।३२।।

अनुवाद— उस अग्नि के कारण प्रजाओं तथा लोकों का नाश देखकर अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण की अनुमति प्राप्त करके उन दोनों ब्रह्मास्त्रों को लौटा लिया ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

लोकानां व्यतिकरं व्यत्ययं नाशमित्यर्थः । वासुदेवस्य मतं चालक्ष्य ब्रह्मास्त्रद्वयमुपसंहृतवान् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

श्लोक का व्यतिकर शब्द नाश का बोधक है । अर्जुन ने देखा कि इन दोनों ब्रह्मास्त्रों के तेज से संसार संतप्त हो रहा है । ऐसे तो लोगों का नाश हो जायेगा । उन्होंने देखा कि श्रीभगवान् को भी यही अभिमत है। उन्होंने उन दोनों ब्रह्मास्त्रों को लौटा लिया ।।३२।।

तत आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतम् । बबन्धामर्षताम्राक्षः पशुं रशनया यथा ।।३३।।

अन्वयः— ततः तरसा दारुणं गौतमी सुतम् आसाद्य आमर्षताम्राक्ष रशनया पशुं यथा बबन्ध ।।३३।।

अनुवाद— उसके पश्चात् वेग पूर्वक भयङ्कर कर्म करने वाले गौतमी देवी के पुत्र अश्वत्थामा को पकड़कर क्रोध से लाल आँखें किए हुए अर्जुन ने यज्ञ पशु के समान उसे रस्सी से बाँध लिया ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

गौतमवंशजा गौतमी कृपी तस्याः सुतम् । अमर्षेण कोपेन ताम्रे अक्षिणी यस्य सः । निष्कृपत्वे दृष्टान्तः- पशुं यथेति। तस्य बन्धनं धर्म इत्यत्र दृष्टान्तः- यथा याज्ञिकः पशुमिति । रशनया रज्वा ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

अश्वत्थामा की माता का नाम कृपी था; किन्तु गौतम वंश में उत्पन्न होने के कारण उनको गौतमी कहा गया है ।

दोनों ब्रह्मास्त्रों को लौटा लेने के पश्चात् अर्जुन वेग पूर्वक अश्वत्थामा के पास पहुँच गये और अश्वत्थामा को पकड़कर उन्होंने उसको उसी तरह से बाँध दिया, जिस तरह से यज्ञ पशु को बाँध दिया जाता है। **पशुं रशनया यथा** कहकर यह सूचित किया गया है कि जिस तरह यज्ञपशु को बाँधना धर्म है, उसी तरह निन्दित कर्म करने वाले अश्वत्थामा को भी बाँध देना धर्म ही है ।।३३।।

शिबिराय निनीषन्तं रज्ज्वा वद्ध्वा रिपुं बलात् । प्राहार्जुनं प्रकुपितो भगवानम्बुजेक्षणः ।।३४।।

अन्वयः— बलात् रिपुं रज्ज्वा बद्ध्वा शिविराय निनीषन्तं प्रकुपित अम्बुजेक्षणः भगवान् प्राह ।।३४।।

अनुवाद— शत्रु को बल पूर्वक रस्सी से बाँधकर शिविर में लाने के इच्छुक अर्जुन को कमल के समान मनोहर नेत्र वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने क्रोध करके कहा ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

शोकरोषादियुक्तस्याप्यर्जुनस्य धर्मनिष्ठाख्यापनाय श्रीकृष्णवाक्यम् । तदाह षड्भिः शिबिराय राजनिवेशाय नेतुमिच्छन्तम्। प्रकुपित इवेति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि अर्जुन शोक तथा क्रोध दोनों से युक्त थे फिर भी अर्जुन की धर्मनिष्ठता को बोधित करने के लिए भगवान् ने उनसे कहा भगवान् के वाक्यों कि छह श्लोकों में कहा गया है । जहाँ पर राजाओं का निवास होता है, उसे शिविर कहते हैं । प्रकुपित इव कहकर श्रीधरस्वामी कहते हैं कि श्रीभगवान कुपित नहीं थे फिर भी कुपित के समान कहे ॥३४॥

मैनं पार्थार्हसि त्रातुं ब्रह्मबन्धुमिमं जहि । योऽसावनागसः सुप्तानवधीन्निशि बालकान् ॥३५॥

अन्वयः— यः असौ निशि सुप्तान् अनागसः बालकान् अवधीत् एनं त्रातुं न अर्हसि इमं ब्रह्मबन्धुम् जहि ॥३५॥

अनुवाद— अर्जुन इसने रात्रि में सोए हुए निरपराध बालकों का वध किया है अतएव आप इसको बचाएँ मत, अपितु इसका आप वध कर दें ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

अनागसो निरपराधान् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् ने अर्जुन से कहा कि इसने रात्रि में सोए हुए निरपराध बालकों का वध किया है । यह अधम ब्राह्मण है इसको आप बचाइये नहीं इसका वध कर दीजिये ॥३५॥

मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम् । प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित् ॥३६॥

अन्वयः— मत्तम् प्रमत्तम्, उन्मत्तम्, सुप्तम्, बालम्, स्त्रियम्, जडम्, प्रपन्नम्, विरथम् भीतम् रिपुम् धर्मवित् न हन्ति ॥३६॥

अनुवाद— मद्य का सेवन करने से मत्त, असावधान तथा ग्रह या बात इत्यादि के कारण पागल हुए, सोए हुए, बालक, स्त्री, उद्योग रहित, शरणागत, जिसका रथ टूट गया हो तथा भयभीत शत्रु का धर्मज्ञ पुरुष वध नहीं करते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

रिपोरपि सुप्तस्य बालस्य च वधो न धर्म इत्यन्यार्थैर्दर्शयति- मत्तमिति । मत्तं मद्यादिना । प्रमत्तमनवहितम् । उन्मत्तं ग्रहवातादिना । जडमनुद्यमम् प्रपन्नं शरणागतम् । विरथं भग्नरथम् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

शत्रु का भी बालक यदि सोया हो तो उसका वध करना धर्म नहीं पाप है । इस बात को श्रीभगवान् अन्य अर्थों को उपन्यस्त करते हुए कहते हैं । धर्मज्ञ पुरुष इन दश प्रकार के शत्रुओं को नहिं मारते हैं— १. मत्त (जो मद्यापन करके मत्त हो गया हो), २. प्रमत्त, (असावधान), ३. उन्मत्त (ग्रह अथवा वात इत्यादि के कारण पागल हो गया हो), ४. सुप्त (सोये हुए), ५. बालम् (बालक), ६. स्त्री, ७. जड, ८. प्रपन्न (शरणागत), ९. विरथ (जिसका रथ टूट गया हो), १०. भयभीत ॥३६॥

स्वप्राणान्यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः तद्वधस्तस्य हि श्रेयो यद्दोषाद्यात्यधः पुमान् ॥३७॥

अन्वयः— यः अघृणः खलः परप्राणैः स्वप्राणान् पुष्णाति तस्य हि श्रेयः तद्वधः यद् दोषात् पुमान् अधः याति ॥३७॥

अनुवाद— जो क्रूर और दुष्ट दूसरे को मार करके अपने प्राणों की रक्षा करता है उसका इसी में कल्याण है कि उसका वध कर दिया जाय । अन्यथा उस पाप के कारण वह मनुष्य नरक में जाता हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तद्वधो दण्डरूपस्तस्यैव श्रेयः पुरुषार्थः । यद्यतो दण्डप्रायश्चित्तरहिताद्दोषात्स पुमानधो यातीति । तथा च स्मरन्ति- 'राजभिर्धृतदण्डास्तु कृत्वा पापानि मानवाः । विधूतकल्मषा यान्ति स्वर्गं सुकृतिनो यथा ।।' इति ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

अश्वत्थामा का जो दण्ड रूप से तुम वध करोगे उससे उसका ही कल्याण होगा, क्योंकि दण्ड रूपी प्रायश्चित्त से रहित दोष के कारण पापी मनुष्य नरक में जाता है । स्मृतियों में कहा भी गया है **राजभिर्धृतदण्डस्तु० इत्यादि** अर्थात् पाप करने वाले मनुष्य को जब राजा दण्ड दे देता है, तो उस दण्ड के कारण वह मनुष्य निष्पाप हो जाता है और वह पुण्यवानों के समान स्वर्ग में जाता है ।।३७।।

प्रतिश्रुतं च भवता पाञ्चाल्यै शृण्वतो मम । आहरिष्ये शिरस्तस्य यस्ते मानिनि पुत्रहा ।।३८।।

अन्वयः— मम शृण्वतः भवता प्रतिश्रुतं यत् हे मानिनि यः ते पुत्रहा तस्य शिर आहरिष्ये ।।३८।।

अनुवाद— मेरे सामने आपने द्रौपदी के समक्ष प्रतिज्ञा की है कि हे मानिनि ! जिसने तुम्हारे पुत्रों को मारा है मैं उसका शिर काटकर लाऊँगा ।।३८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।

तदसौ वध्यतां पाप आततायात्मबन्धुहा । भर्तुश्च विप्रियं वीर कृतवान्कुलपांसनः ।।३९।।

अन्वयः— हे वीर असौ आततायी आत्मबन्धुहा कुलपांसनः पापः भर्तुश्च विप्रियं कृतवान् तद असौ वध्यताम्।।३९।।

अनुवाद— हे वीर ! यह अततायी अपने बान्धवों को मारने वाला तथा अपने वंश को विनष्ट करने वाला है । यही नहीं यह अपने स्वामी दुर्योधन के भी विरुद्ध कार्य किया है, अतएव उसको मार दो ।।३९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।

सूत उवाच

एवं परीक्षता धर्मं पार्थः कृष्णेन चोदितः । नैच्छद्धन्तुं गुरुसुतं यद्यप्यात्महनं महान् ।।४०।।

अन्वयः— एवं धर्मं परीक्षता कृष्णेन चोदितः महान् पार्थः यद्यपि आत्महनं तं गुरुसुतं हन्तुं नैच्छत् ।।४०।।

अनुवाद— इस तरह से अर्जुन के धर्म की परीक्षा लेने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को प्ररित किया फिर भी महान् अर्जुन अपने पुत्रों को मारने वाले अपने गुरु अश्वत्थामा के पुत्र को नही मारना चाहें ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

यद्यपि चोदितस्तथापि हन्तुं नैच्छत् आत्महनं पुत्रहन्तारमपि । यतो महान् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि भगवान् ने अर्जुन को प्रेरित किया कि अर्जुन अश्वत्थामा का वध कर दें किन्तु अर्जुन अश्वत्थामा का वध नहीं करना चाहे, क्योंकि अश्वत्थामा आचार्य द्रोण का पुत्र था । और महान् होने के कारण अर्जुन का हृदय विशाल था ।।४०।।

अथोपेत्य स्वशिबिरं गोविन्दप्रियसारथिः । न्यवेदयत्तं प्रियायै शोचन्त्या आत्मजान्हतान् ।।४१।।

अन्वयः— अथ स्वशिबिरम् उपेत्य गोविन्दप्रियसारथिः अर्जुनः हतान् आत्मजान् शोचन्त्यै प्रियायै तं न्यवेदयत्।।४१।।

अनुवाद— उसके पश्चात् अपने शिबिर में आकर, भगवान् गोविन्द जिनके प्रिय सारथि थे, वे अर्जुन अपने मारे गये पुत्रों के विषय में शोक करने वाली द्रौपदी को अश्वत्थामा को निवेदित कर दिये ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

गोविन्दः प्रियः सारथिर्यस्य सः । आत्मजान् शोचन्त्यै ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

अर्जुन के भगवान् प्रियतम थे और उनके सारथि का भी काम किये अतएव अर्जुन को **गोविन्दप्रिय सारथिः** कहा गया है । जिस समय द्रौपदी अपने पुत्रों के विषय में शोक कर रही थी उसी समय वे अश्वत्थामा को द्रौपदी को सौंप दिए ॥४१॥

तथाऽऽहृतं पशुवत्पाशबद्धमवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन ।
निरीक्ष्य कृष्णाऽपकृतं गुरोः सुतं वामस्वभावा कृपया ननाम च ॥४२॥

अन्वयः— तथा आहृतम् पशुवत् पाशबद्धं कर्मजुगुप्सितेन, अवाङ्मुखम् अपकृतं गुरोः सुतम् निरीक्ष्य वामस्वभावा कृष्णा कृपया ननाम च ॥४२॥

अनुवाद— इस तरह अपमान पूर्वक लाये गये, पशु के समान पाश में बाँधे गये, निन्दित कर्म करने के कारण नीचे मुख किए हुए अपकारी तथा अपने गुरु के पुत्र अश्वत्थामा को देखकर सुन्दर स्वभाव वाली द्रौपदी का हृदय कृपा से भर गया और उसने अश्वत्थामा को प्रणाम किया ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

तथा परिभवेनाहृतमानीतम् । कर्मणो जुगुप्सितेन दोषेणावाङ्मुखमधोवदनम् । अपकृतमपकारिणम् । कृपया निरीक्ष्य। वामः शोभनः स्वभावो यस्याः सा ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

अनादर पूर्वक लाये गये अश्वत्थामा को दौपद्री ने देखा । अश्वत्थामा उस समय निन्दित कर्म करने के कारण नीचे मुख किए हुए थे अपकारी भी अश्वत्थामा को देखकर सुन्दर स्वभाव वाली द्रौपदी ने उनको प्रणाम किया ॥४२॥

उवाच चासहन्त्यस्य बन्धनानयनं सती । मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ॥४३॥

अन्वयः— अस्य बन्धनानयनं असहन्ती च उवाच मुच्यतां मुच्यताम् एष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ॥४३॥

अनुवाद— अश्वत्थामा को बान्धकर लाने को नहीं सह सकने के कारण द्रौपदी ने कहा इनको खोल दीजिए खोल दीजिए ये ब्राह्मण हैं ब्राह्मण सबों के गुरु होते हैं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

ननाम चोवाच चेति चकाराभ्यां संभ्रमः सूचितः । बन्धनेनाऽऽनयनमसहमाना ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

नानाम च उवाच च इन दो चकारों के द्वारा द्रौपदी की शीघ्रता को सूचित किया गया, वह अश्वत्थामा को बाँधकर लाये जाने को नहीं बर्दास्त कर पा रही थी । उसने शीघ्रता से कहा कि ये ब्रह्मण हैं ब्राह्मण सबों का गुरु होता है । इनको आप शीघ्र ही बन्धनमुक्त कर दीजिए ॥४३॥

सरहस्यो धनुर्वेदः सविसर्गोपसंयमः । अस्त्रग्रामश्च भवता शिक्षितो यदनुग्रहात् ॥४४॥
स एष भगवान्द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते । तस्यात्मनोऽर्धं पत्न्यास्ते नान्वगाद्वीरसूः कृपी॥४५॥

अन्वयः— यदनुग्रहात् सरहस्यः सविसर्गोपसंयमः धनुर्वेदः अस्त्रग्रामश्च भवता शिक्षितः स एष भगवान् द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते तस्यात्मनोऽर्धं पत्नी कृपी न अन्वगात् वीरसूः आस्ते ॥४४-४५॥

अनुवाद— जिनकी कृपा से आपने गोप्यमन्त्रों के साथ अस्त्र प्रयोगों तथा उपसंहार के साथ धनुर्वेद तथा अस्त्र समूह की शिक्षा प्राप्त की है । वे द्रोणाचार्य आपने पुत्र के रूप में ये विद्यमान हैं । उनके शरीर के आधा भाग उनकी पत्नी कृपी हैं । वे द्रोणाचार्य के साथ अपना शरीर त्याग नहीं कीं क्योंकि वे वीर पुत्र की माता हैं ।।४४-४५।।

भावार्थ दीपिका

सरहस्यो गोप्यमन्त्रसहितः । विसर्गोऽस्त्रप्रयोगः उपसंयमः ताभ्यां सहितोऽस्त्रसमूहश्च ।।४४।। किंच तस्य द्रोणस्यात्मा देहस्तस्यार्धं कृपी आस्ते । अर्धत्वे हेतुः- पत्नी । '**अर्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नी**' इति श्रुतेः । **जायापती अग्निमादधीयातां**' इति श्रुतेरुभयोरेकाकारत्वावगमाच्च । ननु भर्तरि मृते सा कथं जीवति तत्राह- नान्वगाद्भर्तारम् । यतो वीरसूः पुत्रवती ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

द्रौपदी ने कहा कि आपने जिन दोणाचार्य की कृपा प्राप्त करके गोप्यमन्त्रों वाले अस्त्रों के प्रयोग तथा उन अस्त्रों के उपसंहार के साथ धनुर्वेद तथा अस्त्रसमूह की शिक्षा प्राप्त की है वे ही द्रोणाचार्य अपने पुत्र के रूप में विद्यमान हैं । उन भगवान् द्रोणाचार्य के शरीर का आधा भाग उनकी पत्नी कृपी हैं । श्रुति भी कहती हैं- **अर्द्धो वा एष आत्मनो यत्पत्नीं** अर्थात् पत्नी पति के शरीर का आधाभाग होती है । **जयापती अग्निमादधीयाताम् ।** पत्नी तथा पति दोनों मिलकर अग्न्याधान करें । इस श्रुति के द्वारा दोनों की एकाकारता सूचित होती हैं । प्रश्न है कि पति के मर जाने पर कृपी कैसे जीवित हैं तो इसका उत्तर है कि वे वीर पुत्र की माता हैं ।।४४-४५।।

तद्धर्मज्ञ महाभाग भवद्भिर्गौरवं कुलम् । वृजिनं नार्हति प्राप्तुं पूज्यं वन्द्यमभीक्ष्णशः ।।४६।।

अन्वयः— हे धर्मज्ञ महाभाग तत् कुलम् भवद्भिः गौरवम् । तत् अभीक्ष्णशः पूज्यं वन्द्यं वृजिनं प्राप्तुं नार्हति ।।४६।।

अनुवाद— हे धर्मज्ञ महाभाग ! उनका वंश आपलोगों के द्वारा गौरव प्राप्त है । अतएव सदा पूज्य तथा वन्दनीय उस कुल को आप दुःख नहीं दे सकते हैं ।

भावार्थ दीपिका

तत्तस्माद्गौरवं गुरोः कुलं भवद्भिः कर्तृभिर्वृजिनं दुःखं प्राप्तुं नार्हति । किंतु पूज्यं वन्द्यं च ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

अतएव गौरव प्राप्त गुरु के वंश को आप दुःखी न बनायें क्योंकि वह वंश तो सदा पूजनीय एवं वन्दनीय है ।।४६।।

मारोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता । यथाहं मृतवत्सार्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः ।।४७।।

अन्वयः— यथा मृतवत्सा आर्ता अश्रुमुखी अहं मुहुरोदिमि तथा अस्य पतिदेवता जननी गौतमी मारोदीत् ।।४७।।

अनुवाद— जिस तरह पुत्रों के मर जाने के कारण आर्त बनी हुयी तथा आँसुओं भरे मुख वाली मैं बार-बार रो रही हूँ उसी तरह पतिव्रता इनकी माता गौतम वंशोद्भूत कृपी न रोएँ ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

मृतवत्सा मृतपुत्रा ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

मूल का मृतवत्सा पद का अर्थ है जिसके पुत्र मर गये हैं ।।४७।।

यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरकृतात्मभिः । तत्कुलं प्रदहत्याशु सानुबन्धं शुचार्पितम् ॥४८॥

अन्वयः— यैः अकृतात्मभिः राजन्यैः ब्रह्मकुलं कोपितम् तत्कुलम् शुचार्पितम् ब्रह्मकुलम् सानुबन्धं आशु प्रदहति ॥४८॥

अनुवाद— जो अनात्मज्ञ क्षत्रिय ब्राह्मणों के वंश को क्रुद्ध बना देते हैं उनके सपरिवार वंश को ब्राह्मणों का शोकसंतप्त वंश शीघ्र ही भस्म कर देता है ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

विपक्षे दोषमाह- यैरिति । तेषां राजन्यानां कुलं कर्म । कथंभूतम् । सानुबन्धं सपरिवारम् । शुचा शोकेनार्पितं व्याप्तं च । ब्रह्मकुलं कर्तृ । प्रदहति ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों के वंश को कुपित बनाने पर अनात्मज्ञ क्षत्रियों के वंश को ब्राह्मण का शोक सन्तप्त वंश भस्म कर देता है इस भस्म क्रिया में अनात्मज्ञ क्षत्रियों का वंश कर्म है और शोक सन्तप्त ब्राह्मणों का वंश कर्ता है ॥४८॥

सूत उवाच

धर्म्यं न्याय्यं सकरुणं निर्व्यलीकं समं महत् । राजा धर्मसुतो राज्ञ्याः प्रत्यनन्दद्वचो द्विजाः ॥४९॥

अन्वयः— हे द्विजाः धर्म्यं, न्यायं, सकरुणं, निर्व्यलीकं सममहत् वचः श्रुत्वा राजा धर्मसुत; प्रत्यनंदत् ॥४९॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— हे शौनकादि ऋषियों द्रौपदी के धर्म युक्त, न्यायानुकूल करुणाभरी, निष्कपट, तथासमता पूर्ण होने के कारण महत्त्व पूर्ण वाणी को सुनकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर ने उसका अभिनन्दन किया ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

धर्म्यमित्यादयो वचसः षड्गुणाः पूर्वश्लोकषट्के द्रष्टव्याः । तत्र धर्म्ये धर्मादनपेतं मुच्यतां मुच्यतामिति । न्याय्यं न्यायादनपेतं सरहस्यं इत्यादि । सकरुणं तस्यात्मनोऽर्धमिति । निर्व्यलीकं तद्धर्मज्ञेति । समं मारोदीदिति। दुःखसाम्योक्तेः । महत् यैः कोपितमिति निष्ठुरोक्त्या हितोपदेशात् । एवं भूतं राज्ञ्या वचो हे द्विजाः, राजा प्रत्यनन्ददनुमोदितवान् ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

द्रौपदी की वाणी के धर्म्य इत्यादि छह गुण बतलाये गये है वे सभी गुण इससे पहले के छह श्लोकों से सूचित है । धर्म्य का अर्थ है धर्मयुक्त । वह **मुच्यताम् मुच्यताम्** इत्यादि श्लोक में है । न्याय्यम् का अर्थ है न्यायानुकूल यह गुण **सरहस्यो धनुर्वेदः** इत्यादि श्लोक से स्पष्ट है । **तस्यात्मनोर्द्धम इत्यादि** से द्रौपदी की वाणी की करुणा युक्तता सूचित होती है । उस वाणी की कपट रहितता **तद् धर्मज्ञ इत्यादि** श्लोक से स्पष्ट है । **मारोदित् इत्यादि** श्लोक से समता युक्त वाणी प्रतीत होती है । क्योंकि इस श्लोक में दुःख की समता बतलायी गयी है। द्रौपदी की वाणी की श्रेष्ठता **यैः कोपितम्** इत्यादि निष्ठुर वाणी से ज्ञात होती है । इस श्लोक में द्रौपदी ने कल्याण का उपदेश किया है ।

इस प्रकार की द्रौपदी की वाणी का महाराज युधिष्ठिर ने अनुमोदन किया ॥४९॥

नकुलः सहदेवश्च ययुधानो धनंजयः । भगवान्देवकीपुत्रो ये चान्ये याश्च योषितः ॥५०॥

अन्वयः— नकुलः सहदेवः युयुधानः धनंजयः भगवान् देवकीपुत्रः ये च तत्र अन्ये तथा याश्च योषितः तत्र आसन् ते सर्वे द्रौपद्याः वचसः समर्थनम् आकार्षुः ॥५०॥

अनुवाद— नकुल, सहदेव, युयुधान, अर्जुन, भगवान् श्रीकृष्ण तथा वहाँ पर विद्यमान जो दूसरे लोग थे वे सब तथा वहाँ जो स्त्रियाँ थीं वे भी द्रौपदी की बात का समर्थन कीं ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

नकुलादयश्च प्रत्यनन्दन । ययुधानः सात्यकिः ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

नकुल इत्यादि जो थे उन लोगों ने तथा सात्यकि ने भी द्रौपदी का समर्थन किया । सात्यकि का ही नाम युयुधान है ॥५०॥

तत्राहामर्षितो भीमस्तस्य श्रेयान्वधः स्मृतः । न भर्तुर्नात्मनश्चार्थे योऽहन् सुप्तान् शिशून्वृथा ॥५१॥

अन्वयः— तत्र अमर्षितः भीमः आह यः सुप्तान् शशून् न भर्तुः न आत्मनः च अर्थे अपितु वृथा अहन् तस्य वध एव श्रेयान् स्मृतः ॥५१॥

अनुवाद— वहाँ पर क्रुद्ध हुए भीम ने कहा कि जिसने न तो अपने स्वामी के लिए और न अपने लिए बल्कि व्यर्थ ही सोये हुए बालकों को मारा है, उसका तो वध ही कल्याणकारी कहा गया है ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

तस्य तथाविधस्य द्रौणेर्वध एव श्रेष्ठः । अन्यथाऽस्य नरकपातप्रसङ्गात् । तदाह- न भर्तुरिति । अहन् जघान ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

भीम ने कहा कि यह पापी है, अतएव इस तरह का पाप करने वाले का तो वध करना ही श्रेष्ठ है । यदि इसका वध नहीं किया गया तो फिर यह नरकगामी होगा ॥५१॥

निशम्य भीमगदितं द्रौपद्याश्च चतुर्भुजः । आलोक्य वदनं सख्युरिदमाह हसन्निव ॥५२॥

अन्वयः— भीमगदितं, द्रौपाद्यश्च निशम्य चतुर्भुजः सख्युः वदनं आलोक्य हसन्निव इदम् आह ॥५२॥

अनुवाद— भीम की तथा द्रौपदी की दोनों की बातों को सुनकर भगवान श्रीकृष्ण अपने मित्र अर्जुन के मुख को देखकर हँसते हुए के समान यह कहे ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्भुजोक्तेरयं भावः- भीमे तं हन्तुं प्रवृत्ते द्रौपद्यां च सहसा तन्निवारणे प्रवृत्तायामुभयोः संवरणायाविष्कृतचतुर्भुज इति। संदिहानस्य सख्युर्जुनस्य ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को चतुर्भुज कहने का अभिप्राय यह है कि भीम जब उसको मारने लग जायेंगे । और द्रौपदी उनको रोकने लग जायेगी तो दोनों को रोकने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना चतुर्भुज रूप बना लिया । उस समय संदेह में पड़े हुए अर्जुन के मुख को देखकर भगवान् मुस्कुराते हुए कहे ॥५२॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः । मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्यनुशासनम् ॥५३॥

अन्वयः— ब्रह्मबन्धुः न हन्तव्यः आततायी वधार्हणः मयैव उभयम् आम्नातम् त्वम् अनुशासनम् परिपाहि ॥५३॥

अनुवाद— अधम भी ब्राह्मणको नहीं मारना चाहिए, और आतातायी का वध कर ही देना चाहिए, इन दोनों बातों को मैने शास्त्र में कहा है, अतएव तुम मेरी आज्ञा का पालन करो ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

वधार्हणो वधार्हः । मयैव शास्त्रकृता **ब्राह्मणो न हन्तव्यः'** तथा **'आततायिनमायान्तमपि वेदान्तपारगम् । जिघांसन्तं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ।।'** इति च वदता । तदुभयमप्यनुशासनं परिपालय ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

वधार्हण शब्द का अर्थ है वध कर देने योग्य श्रीभगवान् ने कहा कि शास्त्रों का निर्माता मैं ही हूँ शास्त्रों में मैंने कहा है कि **ब्राह्मणो न हन्तव्यः** ब्राह्मण को नहीं मारना चाहिए । तथा मैंने यह भी कहा है **अप्ततायिनम्० इत्यादि** यदि वेदान्त शास्त्र में पारंगत भी कोई आततायी मारने की इच्छा से आ रहा हो तो उसका वध कर देना चाहिए। उसको मारने से ब्रह्महत्या का दोष नहीं लगता है । अतएव मेरी इन दोनों आज्ञाओं का तुम पालन करो ।।५३।।

कुरु प्रतिश्रुतं सत्यं यत्तत्सान्त्वयता प्रियाम् । प्रियं च भीमसेनस्य पाञ्चाल्या मह्यमेव च ।।५४।।

अन्वयः— प्रियाम् सान्त्वयता त्वया यत् प्रतिश्रुतं तत् सत्यं कुरु । भीमसेनस्य, पाञ्चाल्या, मह्यमेव च प्रियं कुरु ।।५४।।

अनुवाद— अपनी प्रिया द्रौपदी को सान्त्वना प्रदान करते हुए तुमने जो प्रतिज्ञा की थी उसको सत्य करो भीमसेन, द्रौपदी और मेरा भी प्रिय कार्य करो ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

तव च प्रतिज्ञां पूरयेत्याह- कुर्विति । प्रियां सान्त्वयता त्वया यत्प्रतिश्रुतं हननं तच्च सत्यं कुरु प्रियं च कुरु । मह्यं मम । तत्र वधे भीमस्य प्रियं भवति । अवधे द्रौपद्याः । द्वये श्रीकृष्णस्य ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

कुरुप्रतिश्रुतम् इत्यादि वाक्य से भगवान् ने कहा तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो । द्रौपदी को सान्त्वना प्रदान करते हुए तुमने जो अश्वत्थामा के वध की प्रतिज्ञा की थी उसको सत्य करो और द्रौपदी का प्रिय कार्य भी करो और मेरा भी प्रिय करो । मारने पर भीम का प्रिय होता है । नहीं मारने पर द्रौपदी का प्रिय होता है । दोनों में कोई भी होने से श्रीकृष्ण का प्रिय होता है ।।५४।।

सूत उवाच

अर्जुनः सहसाज्ञाय हरेर्हार्दमथासिना । मणिं जहार मूर्धन्यं द्विजस्य सहमूर्धजम् ।।५५।।

अन्वयः— हरेः हार्दम् सहसा आज्ञाया अर्जुन; असिना द्विजस्य मूर्धजम् सह मूर्धन्यां मणिं जहार ।।५५।।

अनुवाद— अर्जुन ने श्रीभगवान् के हृदय की बात सहसा जान ली और तलवार से बालों के साथ अश्वत्थामा के शिर में विद्यमान मणि को निकाल लिया ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

हार्दमभिप्रायमाज्ञाय ज्ञात्वा । न ह्यशक्यमुभयं विदध्यादतोऽस्यायमभिप्राय इति ज्ञात्वेत्यर्थः असिना खड्गेन । मूर्धन्यं मूर्धनि जातम् । सहमूर्धजं सकेशम् ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन ने श्रीभगवान् के हार्दिक अभिप्राय को जान लिया । एक ही समय में वध और अवध दोनों तो किया नहीं जा सकता है । अतएव इनका यही अभिप्राय है इस बात को जानकर तलवार से अश्वत्थामा के शिर में विद्यमान मणि को बालों के साथ उन्होंने उतार लिया ।।५५।।

विमुच्य रशनाबद्धं बालहत्याहतप्रभम् । तेजसा मणिना हीनं शिबिरान्निरयापयत् ।।५६।।

अन्वयः— रशनाबद्धं, बालहत्याहतप्रभम्, तेजसा मणिना हीनं विमुच्य शिबिरात् निरयापयत् ।।५६।।

अनुवाद— रस्सी से बँधे हुए, बालकों की हत्या करने के कारण जिसकी कान्ति समाप्त हो गयी थी तेज से रहित तथा मणि से रहित अश्वत्थामा को खोलकर अर्जुन ने अपने शिबिर से निकाल दिया ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

मणिना च हीनम् । निरयापयन्निः सारितवान् ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

बालहत्या के कारण अश्वत्थामा का तेज समाप्त हो गया था ओर वह मणि से भी हीन हो गया था इस तरह के अश्वत्थामा को अर्जुन ने अपने शिबिर से निकाल दिया ।।५६।।

वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा । एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ।।५७।।

अन्वयः— वपनं दविणादानं, तथा स्थानात् निर्यापणं एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधः अन्यः दैहिकः न ।।५७।।

अनुवाद— शिर मूंड़ देना, धन छिन लेना और स्थान से निकाल देना अधम ब्राह्मणों का यही वध है, शारीरिक वध नहीं ।।५७।।

भावार्थ दीपिका

अनेन श्रीकृष्णोक्तं सर्वं संपादितमित्याह- वपनमिति ।।५७।।

भाव प्रकाशिका

वपनम् इत्यादि श्लोक के द्वारा यह बतलाया गया है कि अर्जुन ने भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा प्रोक्त सारे कार्यों को किया ।।५७।।

पुत्रशोकातुराः सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया । स्वानां मृतानां यत्कृत्यं चक्रुर्निर्हरणादिकम् ।।५८।।

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे द्रौणिनिग्रहो नाम सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

अन्वयः— पुत्रशोकातुराः सर्वे पाण्डवा कृष्णया सह मृतानां स्वानां निर्हरणादिकम् यत् कृत्यम् तत् चक्रुः ।।५८।।

अनुवाद— पुत्रों के शोक से आतुर बने हुए सभी पाण्डवों ने द्रौपदी के साथ अपने मरे हुए लोगों की दाहादि अन्त्येष्टि क्रिया को किया ।।५८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के अश्वत्थामा निग्रह नामक सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

भावार्थ दीपिका

निर्हरणं दाहार्थं नयनम् ।।५८।।

इति श्रीमद्भागवते प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

जलाने के लिए लाये जाने को निर्हरण कहा गया है ।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के सातवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।७।।

* * *

आठवाँ अध्याय

श्रीभगवान् द्वारा गर्भस्थ परीक्षित् की रक्षा कुन्ती द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति और महाराज युधिष्ठिर का शोक

सूत उवाच

अथ ते संपरेतानां स्वानामुदकमिच्छताम् । दातुं सकृष्णा गङ्गायां पुरस्कृत्य ययुः स्त्रियः ॥१॥

अन्वयः अथ सम्परेतानां, उदकमिच्छताम् स्वानाम् उदकं दातुं स्त्रियः पुरस्कृत्य सकृष्णा स्त्रियः गङ्गायां ययुः॥१॥

अनुवाद उसके पश्चात् सभी पाण्डव मरे हुए तथा जल चाहने वाले स्वजनों का तर्पण करने के लिए स्त्रियों को आगे करके भगवान् श्रीकृष्ण के साथ गङ्गाजी में गये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टमे कुपितद्रौणेरस्त्राद्रक्षा परीक्षितः । श्रीकृष्णेन स्तुतिः कुन्त्या राज्ञः शोकश्च कीर्त्यते ॥१॥ ते पाण्डवाः संपरेतानां मृतानां गङ्गायामुदकं दातुं सकृष्णाः श्रीकृष्णेन सहिताः । स्त्रियः स्त्रीः पुरस्कृत्याग्रतः कृत्वा । तस्मिन्कार्ये स्त्रीपुरःसरत्वविधानात् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

आठवें अध्याय में अश्वत्थामा के अस्त्र से परीक्षित् की भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा रक्षा, कुन्ती द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति तथा महाराज युधिष्ठिर के शोक का वर्णन है ॥१॥ वे पाण्डव मरे हुओं को जलदान करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण के साथ तथा स्त्रियों को आगे करके गङ्गाजी में गये । तर्पण करने में स्त्रियों को आगे करके जाने का शास्त्र विधान करता है ॥१॥

ते निनीयोदकं सर्वे विलप्य च भृशं पुनः । आप्लुता हरिपादाब्जरजःपूतसरिज्जले ॥२॥

अन्वयः— ते सर्वे जलं निनीय पुनः भृशं विलप्य हरिपादाब्जरजःपूतसरित्‌जले पुनः आप्लुताः ॥२॥

अनुवाद— उन लोगों ने जलदान करके, उसके पश्चात् मरे लोगों के गुणों का स्मरण करके बहुत विलाप किया पुनः श्रीहरि के चरण कमल की धूलि से पवित्र जलवाली गङ्गा नदी में उन लोगों ने स्नान किया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

निनीय दत्त्वा । हरिपादाब्जरजोभिः पूता या सरिद्गङ्गा तस्या जले । पुनर्ग्रहणादादावपि स्नाता इति गम्यते ॥२॥

भाव प्रकाशिका

निनीय पद का अर्थ है देकर । श्रीहरि के चरण कमलों से पवित्र जो गङ्गा नदी उसके जल में । पुनः शब्द के प्रयोग से पता चलता है कि उन लोगों ने स्नान करके ही जलदान किया और अन्त में भी स्नान किया। कहने का अभिप्राय यह है कि सभी पाण्डवों ने गङ्गा नदी में पहले स्नान किया, उसके बाद जलदान किया और उसके पश्चात् पुनः स्नान किया ॥२॥

तत्रासीनं कुरुपतिं धृतराष्ट्रं सहानुजम् । गान्धारीं पुत्रशोकार्तां पृथां कृष्णां च माधवः ॥३॥
सान्त्वयामास मुनिभिर्हतबन्धून् शुचार्पितान्। भूतेषु कालस्य गतिं दर्शयन्नप्रतिक्रियाम् ॥४॥

अन्वयः— तत्र आसीनं सहानुजम् कुरुपतिं, धृतराष्ट्रम, पुत्रशोकार्तां गान्धारीं, पृथां, कृष्णां च हतबन्धून सुचार्पितान् भूतेषु कालस्य अप्रतिक्रियाम् दर्शयन् मुनिभिः सहमाधवः सान्त्वयामास ॥३-४॥

अनुवाद— वहाँ गङ्गातट में बैठे हुए अपने अनुजों के साथ युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र तथा पुत्रों के शोक से संतप्त गान्धारी, कुन्तीं तथा द्रौपदी को जो मारे गये अपने बान्धवों के शोक से संतप्त थे उन सभी लोगों को मुनियों के साथ भगवान् ने यह बतलाते हुए सान्त्वना प्रदान किया कि सभी प्राणियों के विषयों में होने वाली काल की गति को कोई नहीं रोक सकता है । सभी प्राणी काल के अधीन हैं ।।३-४।।

भावार्थ दीपिका

कुरुपतिं युधिष्ठिरम् । सहानुजं भीमादिभिः सहितम् । (पुत्रशोकार्तामिति तिसृणां विशेषणम्) ।।३।। मुनिभिः सहितः।।४।।

भाव प्रकाशिका

तीसरे श्लोक में **सहानुजं कुरुपतिं** शब्द से भीमादि के साथ युधिष्ठिर को कहा गया है । पुत्र शोकार्ताम् पद गान्धारी, कुन्ती तथा द्रौपदी इन तीनों का विशेषण है । कहने का अभिप्राय है कि जलदान और स्नान करने के पश्चात् गङ्गातट पर ही बैठकर अपने अनुजों के साथ युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र और पुत्रों के शोक से सन्तप्त गान्धारी, कुन्ती तथा द्रौपदी ये तीनों स्त्रियाँ अपने बान्धवों के मारे जाने के कारण शोक सन्तप्त हो गयीं । उन सबों को धौम्य आदि मुनियों के साथ भगवान श्रीकृष्ण ने समझाया कि संसार के सभी जीव काल के अधीन हैं । काल को कोई भी रोक नहीं सकता है इस संसार के सभी प्राणियों की मृत्यु होनी ही है ।।३-४।।

साधयित्वाऽजातशत्रोः स्वराज्यं कितवैर्हृतम् । घातयित्वाऽसतो राज्ञः कचस्पर्शक्षतायुषः ।।५।।
याजयित्वाश्वमेधैस्तं त्रिभिरुत्तमकल्पकैः । तद्यशः पावनं दिक्षु शतमन्योरिवातनोत् ।।६।।

अन्वयः— कितवैः हृतम् अजातशत्रोः स्वं राज्यं साधयित्वा कचस्पर्शक्षतायुषः असतो राज्ञः घातयित्वा, त्रिभिः उत्तमकल्पकैः अश्वमेधैः तं याजयित्वा शतमन्योरिव तत् पावनं यशः दिक्षुः आतनोत् ।।५-६।।

अनुवाद— धूर्त दुर्योधन आदि के द्वारा छल से छिन लिए गये; अजातशत्रु युधिष्ठिर के राज्य को उन्हें दिलाकर, द्रौपदी के बालों का स्पर्श करने के कारण जिनकी आयु क्षीण हो गयी थी ऐसे दुष्ट राजाओं का वध कराकर, उत्तम सामग्रियों से युक्त युधिष्ठिर के तीन अश्वमेध यज्ञों को कराकर, इन्द्र के समान महाराज युधिष्ठिर के यश को भगवान् श्रीकृष्ण ने सभी दिशाओं में फैला दिया ।।५-६।।

भावार्थ दीपिका

कितवैर्धूर्तैर्दूर्योधनादिभिः । द्रौपद्याः कचग्रहणादिना क्षतं नष्टमायुर्येषां तान् ।।५।। याजयित्वेत्यादिभाविकथासंक्षेपः । शतमन्योः शतक्रतोरिव ।।६।।

भाव प्रकाशिका

धूर्त दुर्योधन आदि ने महाराज युधिष्ठिर के राज्य को छल पूर्वक छिन लिया था, उनके उस राज्य को भगवान् ने दिलाया । तदर्थ द्रौपदी के केशों का स्पर्श करने के कारण जिन राजाओं की आयु क्षीण हो गयी थी उन पापी राजाओं का श्रीभगवान् ने वध करवा दिया । उसके पश्चात् भगवान् ने महाराज युधिष्ठिर से उत्तम सामग्रियों द्वारा तीन अश्वमेध यागों को कराया । उसके द्वारा श्रीभगवान् ने युधिष्ठिर के यश को दशो दिशाओं में उसी तरह फैला दिया जिस तरह सौ अश्वमेध यज्ञ करने वाले इन्द्र का यश सभी दिशाओं में फैला हुआ है ।।५-६।।

आमन्त्र्य पाण्डुपुत्रांश्च शैनेयोद्धवसंयुतः । द्वैपायनादिभिर्विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः ।।७।।
गन्तुं कृतमतिर्ब्रह्मन्द्वारकां रथमास्थितः । उपलेभेऽभिधावन्तीमुत्तरां भयविह्वलाम् ।।८।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! पाण्डुपुत्रांश्च आमान्त्र्य द्वैपायनादिभिः विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः शैनेयोद्धवसंयुतः द्वारकां गन्तुं कृतमतिः रथमास्थितः भगवान् भयविह्वलाम् अभिधावन्तीम् उत्तराम् उपलेभे ।।७-८।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! पाण्डवों से विदा लेकर, द्वैपायन आदि पूजित ब्राह्मणों के द्वारा पूजित सात्यकि तथा उद्धव के साथ द्वारका जाने के लिए रथ पर बैठे हुए श्रीभगवान् ने देखा कि भय से व्याकुल उत्तरा सामने से दौड़ती हुयी आ रही है ।।७-८।।

भावार्थ दीपिका

शैनेयः शिनेर्नप्ता सात्यकिस्तेन चोद्धवेन च संयुतः ।।७।। रथमास्थितः सन्नुत्तरां परीक्षिन्मातरम् । भयेन विह्वलां व्याकुलाम् । अभिमुखं धावन्तीमुपलेभे ददर्श ।।८।।

भाव प्रकाशिका— शिनि के नाती सात्यकि को शैनेय कहा गया है । श्रीभगवान् द्वारका जाने के लिए पाण्डवों से आज्ञा माँगे । उसके पश्चात् जिन व्यास आदि महर्षियों की भगवान् ने पूजा की थी वे महर्षि गण भी श्रीभगवान् का बहुत सत्कार किये । उसके पश्चात् वे सात्यकि तथा उद्धवजी के साथ रथ पर बैठ गये । उसी समय भगवान् ने देखा कि उत्तरा दौड़ती हुयी चली आ रही है । वह अत्यन्त भयभीत भी थी ।।७-८।।

उत्तरोवाच

पाहि पाहि महायोगिन् देवदेव जगत्पते । नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ।।९।।

अन्वयः— हे महायोगिन्, देवदेव, जगत्पते ! मां पाहि पाहि त्वदन्यम् अभयं न पश्ये, यत्र मृत्युः परस्परम् ।।९।।

अनुवाद— हे महायोगिन् ! हे देवाधिदेव ! हे जगत् के स्वामिन् आप मेरी रक्षा कीजिये, मेरी रक्षा कीजिये। आपसे भिन्न कोई भी मेरा रक्षक नहीं है यहाँ तो सब एक दूसरे की मृत्यु के कारण हैं ।।९।।

भावार्थ दीपिका

उत्तरा श्रीकृष्णं प्रार्थयते- पाहि पाहीति द्वाभ्याम् । अन्यस्तु प्रार्थनायोग्यो नास्तीत्याह । त्वत् त्वत्तोऽन्यमभयं भयरहितं न पश्यामि । यत्र लोके परस्परमन्योन्यं मृत्युर्भवति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की प्रार्थना करती हुयी उत्तरा ने कहा— हे भगवन् ! आप मेरी रक्षा करें । वह अत्यन्त घबरा गयी थी अतएव दोबार कही कि रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये । इस समय कोई दूसरा प्राथनीय नहीं है । आपसे भिन्न कोई भी भय रहित नहीं है । अतएव आप ही मुझे अभय प्रदान कर सकते हैं । इस लोक में तो सभी एक-दूसरे की मृत्यु के कारण बने हुए हैं ।।९।।

अभिद्रवति मामीश शरस्तप्तायसो विभो । कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम् ।।१०।।

अन्वयः— हे विभो ! हे ईश ! तप्तायसः शरः माम् अभिद्रवति । मां कामो दहतु मे गर्भं मा निपात्यताम् ।।१०।।

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् में व्यापक ! हे सम्पूर्ण जगत् के नियामक जलता हुआ लोहे का बाण मेरी ओर आ रहा है । यह मुझको भले ही जला डाले, किन्तु यह मेरे गर्भ को न गिराये ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रस्तुतं भयमावेदयति । अभिद्रवत्यभिमुखमायाति । तप्तमायस लोहमयं शल्यं यस्य सः । अतिकार्पण्येनाह- काममिति । कामं यथेच्छम् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

उपस्थित भय को बतलाती हुयी उत्तरा ने कहा यह जलता हुआ लोहे का बाण मेरी ओर दौड़ता हुआ आ रहा है । उसने अत्यन्त विह्वल होकर कहा कि यह बाण मुझे भले ही जला दे किन्तु यह मेरे गर्भ को न विनष्ट करे ।।१०।।

सूत उवाच

उपधार्य वचस्तस्या भगवान्भक्तवत्सलः । अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥११॥

अन्वयः— तस्याः वचः उपधार्य भक्तवत्सलः भगवान् इदं अपाण्डवं कर्तुम् द्रौणे अस्त्रम् अबुध्यत ॥११॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— उत्तरा की बातों को सुनकर भक्त वत्सल भगवान् ने यह जान लिया कि इस संसार को पाण्डवों से रहित बनाने के लिए यह अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

पराभवेनातिकुपितस्य द्रौणेरपाण्डवं पाण्डवशून्यमिदं विश्वं कर्तु प्रवृत्तं ब्रह्मास्त्रमबुध्यत ॥११॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् तो भक्तवत्सल हैं । उन्होंने उत्तरा की वाणी को सुना और जान लिया कि पराभाव के कारण अत्यन्त क्रुद्ध हुए अश्वत्थामा का यह ब्रह्मास्त्र है । अश्वत्थामा ने इस विश्व को पाण्डव शून्य बना देने के लिए इसका प्रयोग किया है ॥११॥

तर्ह्येवाथ मुनिश्रेष्ठ पाण्डवाः पञ्च सायकान् । आत्मनोऽभिमुखान्दीप्तानालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥१२॥

अन्वयः— हे मुनिश्रेष्ठ तर्हि एव पाण्डवाः आत्मनोऽभिमुखान् दीप्तान् पञ्च सायकान् अभिलक्ष्य अथ अस्त्राणि उपाददुः ॥१२॥

अनुवाद— हे मुनिश्रेष्ठ ! उसी समय पाण्डवों ने भी अपने सामने देदीप्यमान पाञ्च बाणों को आते हुए देखकर अपने अपने अस्त्रों को उठा लिया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अतएव बहुमुखं तदागतमित्याह- तर्ह्येवेति । तर्ह्येव तदानीमेव ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

वह ब्रह्मास्त्र अनेक बाणों के रूप में आया इस बात को **तर्ह्येव इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । **तर्ह्येव** का अर्थ है उसी समय । एक ही ब्रह्मास्त्र छह रूप में आया था । एक रूप से वह उत्तरा के सामने से आ रहा था और पाँच रूपों में वह पाञ्च पाण्डवों के सामने बाण के रूप में आ रहा था । आते हुए उन बाणों को देखकर उसका प्रतिकार करने के लिए पाण्डवों ने अपना-अपना अस्त्र उठा लिया ॥१२॥

व्यसनं वीक्ष्य तत्तेषामनन्यविषयात्मनाम् । सुदर्शनेन स्वास्त्रेण स्वानां रक्षां व्यधाद्विभुः ॥१३॥

अन्वयः— अनन्यविषयात्मनाम् तेषां तत् व्यसनं वीक्ष्य विभुः स्वास्त्रेण सुदर्शनेन स्वानां रक्षां व्यधात् ॥१३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् में ही निष्ठा करने वाले पाण्डवों की उस दुष्परिहर विपत्ति को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने भक्त पाण्डवों की रक्षा अपने अस्त्र सुदर्शन चक्र से की ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मास्त्रस्यास्त्रान्तरैरनिवर्त्यत्वात्तदुष्परिहरं व्यसनं वीक्ष्य । अनन्यविषय आत्मा येषाम् । स्वैकनिष्ठानामित्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने देखा कि ब्रह्मास्त्र का किसी दूसरे अस्त्र से निवारण नहीं किया जा सकता है, अतएव यह तो पाण्डवों पर भयङ्कर विपत्ति है । पाण्डव मेरे भक्त हैं । उन पाण्डवों की रक्षा श्रीभगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र नामक अस्त्र के प्रयोग से की ॥१३॥

अन्तःस्थः सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः । स्वमाययावृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतन्तवे ॥१४॥

अन्वयः— सर्वभूतानाम् आत्मा योगेश्वरः हरिः अन्तस्थः सन् स्वमायया वैराट्याः गर्भं कुरुतन्तवे आवृणोत् ॥१४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् तो सभी जीवों की आत्मा हैं ये योगेश्वर श्रीहरि कुरुवंश को चलाने के लिए विराट् की पुत्री उत्तरा के भीतर स्थित रहकर उसके गर्भ को अपनी माया से ढँक दिए ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

वैराट्या उत्तराया अन्तःस्थः सन् गर्भमावृतवान् । तत्र हेतुः- यत आत्मान्तर्यामी । योगेश्वर इति बहिःस्थस्यापि प्रवेशघटनार्थमुक्तम् । कुरूणां तन्तवे सन्तानाय । पाण्डवानामपि कुरुवंशजत्वादेवमुक्तम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् उत्तरा के भी हृदय में विद्यमान थे अतएव उन्होंने उत्तरा के गर्भ को ही माया से ढँक दिया । उसका कारण यह था कि श्रीभगवान् तो अन्तर्यामी हैं, योगेश्वर हैं अतएव वे बाहर भी रहकर भीतर प्रवेश करके इन सभी कार्यों को करने में समर्थ हैं । कुरुतन्तवे पद का अर्थ है कुरुवंशियों की सन्तान के लिए यह सारा कार्य भगवान् ने किया, चूकि पाण्डव भी कुरुवंशी ही हैं अतएव कुरुतन्तवे कहा गया है ॥१४॥

यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम् । वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यद्भृगूद्वह ॥१५॥

अन्वयः— हे भृगूद्वह ! यद्यपि ब्रह्मशिरः अस्त्रं तु अमोघम्, अप्रतिक्रियं च किन्तु वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यत्॥१५॥

अनुवाद— हे भृगुवंशीय शौनकजी यद्यपि ब्रह्मास्त्र अमोघ है, उसका प्रतिकार नहीं किया जा सकता है; किन्तु वह भगवान् श्रीकृष्ण के तेज के समक्ष आकर विल्कुल शान्त हो गया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अमोघमप्रतिक्रियं च । समशाम्यत् संशान्तमासीत् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मास्त्र एक ऐसा अस्त्र है जो कभी भी विफल नहीं होता है और उसका निवारण करने वाला कोई दूसरा अस्त्र भी नहीं है; किन्तु श्रीभगवान के तेज के सामने वह तेज बिल्कुल शान्त हो गया; क्योंकि श्रीभगवान् का तेज तो सभी तेजों से श्रेष्ठ है । उसके सामने सभी तेज शान्त हो जाते हैं ॥१५॥

मामंस्था ह्येतदाश्चर्यं सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते । य इदं मायया देव्या सृजत्यवति हन्त्यजः ॥१६॥

अन्वयः— सर्वाश्चर्यमये अच्युते, एतत् आश्चर्यं मा मंस्थाः । यः अजः इदं जगत् सृजति, अवति हन्ति च ॥१६॥

अनुवाद— सर्वाश्चर्यमय भगवान् अच्युत हैं, अतएव उनके द्वारा किए गये इस कार्य को आश्चर्य नहीं मानना चाहिए, क्योंकि वे अजन्मा भी होकर इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं रक्षा करते है और प्रलय काल के आ जाने पर इसका संहार कर देते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

एतद्ब्रह्मास्त्रशमनमाश्चर्यं मामंस्था न मन्यस्व । इदं जगत् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

सूतजी ने कहा कि शौनकजी भगवान् के तेज के समक्ष ब्रह्मास्त्र जो शान्त हो गया उसे आप आश्चर्य न मानें । भगवान् तो सभी आश्चर्यों से युक्त हैं । वे सर्वशक्तिमान् हैं जो चाहें कर सकते हैं । उनके लिए कुछ भी आश्चर्य नहीं है ॥१६॥

ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तैरात्मजैः सह कृष्णाया । प्रयाणाभिमुखं कृष्णामिदमाह पृथा सती ॥१७॥

अन्वयः— प्रयाणाभिमुखं कृष्णम् वीक्ष्य ब्रह्मतेजो विनिर्मुक्तैः कृष्णया च सह सती पृथा इदमाह ॥१७॥

अनुवाद- द्वारका जाने के लिए उद्यत भगवान् कृष्ण से ब्रह्मास्त्र के तेज से मुक्त हुए अपने पुत्रों तथा द्रौपदी के साथ सती पृथा ने कहा ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

कृष्णया सह ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

मूल के कृष्णया पद के पश्चात् सह पद का अध्याहार करना चाहिए । कुन्ती ने देखा कि मेरे पुत्र ब्रह्मास्त्र के तेज से जिनकी कृपा से बचे हैं । वे भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका जाने के लिए तैयार हैं । अतएव सती साध्वी कुन्ती ने अपने पुत्रों और द्रौपदी के साथ इस प्रकार से श्रीभगवान् की स्तुति की ॥१७॥

कुन्त्युवाच

नमस्ये पुरुषं त्वाद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् । अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम् ॥१८॥

अन्वयः— आद्यं पुरुषं प्रकृतेः परम, ईश्वरं, अलक्ष्यं, सर्वभूतानाम्, अन्तः बहिः अवस्थितम् त्वा नमस्ये ॥१८॥

कुन्तीदेवी ने कहा

अनुवाद— हे आदि पुरुष आपको नमस्कार करती हूँ । आप प्रकृति से ऊपर हैं तथा प्रकृति के भी नियामक हैं । सभी भूतों के भीतर और बाहर आप अवस्थित हैं फिर भी आपको कोई जान नहीं पाता है । ऐसे आपको मैं नमस्कार करती हूँ ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

त्वा त्वां नमस्ये नमस्करोमि । ननु कनिष्ठं मां कथं नमस्करोषि तत्राह । आद्यं पुरुषम् । कुतः । प्रकृतेः परम् । तत्कुतः । ईश्वरं प्रकृतेरपि नियन्तारम् । अतएव सर्वभूतानामन्तर्बहिश्च पूर्णत्वेनावस्थितम् । तथाप्यलक्ष्यम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

कुन्ती देवी ने कहा हे भगवन् आपको मैं नमस्कार करती हूँ । यदि आप कहें कि मैं तो छोटा हूँ और आप मुझसे बड़ी हैं फिर भी क्यों नमस्कार कर रही हैं । उसके उत्तर में कुन्ती देवी ने कहा आप आदि पुरुष हैं, क्योंकि आप प्रकृति से भी परे हैं । यदि आप पूछें कि यह कैसे तो इसका उत्तर है कि आप प्रकृति के भी नियन्ता हैं । अतएव आप सभी भूतों के भीतर और बाहर दोनों प्रकार से व्याप्त होकर भी उस प्रकार का प्रतीत नहीं होते हैं ॥१८॥

मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाऽधोक्षजमव्ययम् । न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा ॥१९॥

अन्वयः— अहम् अज्ञा, माया जवनिकाच्छन्नम्, अधोक्षजम् अव्ययं नाट्यधरः नटः यथा मूढदृशा न लक्ष्यसे ॥१९॥

अनुवाद— मैं तो अज्ञानी हूँ आपकी भक्ति करना नहीं जानती हूँ और आप अपनी माया रूपी जवनिका (पर्दा) से अपने को ढँके रहते हैं । मनुष्य जो कुछ भी इन्द्रियों के द्वारा जानता है, उसके मूल में (अधः) आप ही विद्यमान रहते हैं । आप सर्वदा सभी अवस्थाओं में निर्विकार बने रहते हैं । आप अज्ञानी जीवों द्वारा उसी तरह से नहीं जाने जाते हैं जैसे नाटक करने वाले नट को अज्ञानी जीव नहीं पहचान पाते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः- मायैव जननिका तिरस्करिणी तया आच्छन्नं प्रतिच्छन्नम् । अतोऽहमज्ञा भक्तियोगानभिज्ञा केवलं नमस्यामि। अधः अक्षजमिन्द्रियजं ज्ञानं यस्मात्तम् । अव्ययमपरिच्छिन्नम् । तत्प्रपञ्चः मूढदृशा देहाभिमानिना पुंसा त्वं न लक्ष्यसे ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

कुन्ती देवी ने भगवान् को अलक्ष्य बतलाया । अलक्ष्य होने का कारण बतलाते हुए कहा कि आप अपनी माया रूपी पर्दे से अपने को छिपाये रहते हैं । अतएव मैं भक्ति को नहीं जानने के कारण अज्ञा हूँ । केवल आपको नमस्कार करती हूँ । आप तो अधोक्षज हैं । अर्थात् मनुष्य इन्द्रियों के माध्यम से जो कुछ भी जानता है, उसके मूल में आप बने रहते हैं आप अव्यय अर्थात् अपरिच्छिन्न हैं । यही कारण है कि इस तरह से देहाभिमानी पुरुष आपको नहीं जान पाते हैं ।।१९।।

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् । भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ।।२०।।

अन्वयः— परमहंसानाम् मुनीनाम्, अमलात्मनाम् अपि तथा अतः भक्तियोग विधानार्थं (त्वाम् वयम्) स्त्रियः हि कथं पश्येम ।।२०।।

अनुवाद— जो आत्मा और अनात्मा के ज्ञान से सम्पन्न हैं जो सदा तत्वों का मनन करते हैं । तथा रागद्वेष आदि दोषों से रहित होने के कारण जो निर्मल अन्त:करण वाले हैं ऐसे परमहंसों के लिए भी आप उसी तरह अलक्ष्य हैं ऐसे आपकी भक्तियोग करने के लिए हम स्त्रियाँ आपको कैसे जानें ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

किंच परमहंसानामात्मानात्मविवेकिनां ततो मुनीनां मननशीलानामपि ततश्चामलात्मनां निवृत्तरागादीनामपि तथा तेन निजमहिम्ना न लक्ष्यसे, अतो भक्तियोगं विधातुं त्वां वयं स्त्रियः कथं हि पश्येम । यद्वा परमहंसादीनामपि भक्तियोगविधानार्थं त्वां आत्मारामाणामप्यचिन्त्यनिजगुणैराकृष्य भक्तियोगं विधातुं कारयितुमवतीर्णमित्यर्थः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

जो परमंहंस पुरुष हैं, वे आत्मा क्या है ? तथा अनात्मा क्या है ? इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं । जो सदा तत्वों का ही चिन्तन किया करते हैं तथा रागद्वेष आदि अन्त:करण के दोषों से रहित जिनका अन्त:करण हैं; ऐसे निर्मल अन्त:करण वाले पुरुषों के लिए भी आप अलक्ष्य ही हैं । ऐसे आपकी भक्ति करने में असमर्थ हम स्त्रियाँ आपको कैसे जान सकती हैं ? अथवा जो परमहंस इत्यादि हैं उनमें भक्तियोग का विधान करने के लिए आप अपने अचिन्त्य गुणों के द्वारा उन लोगों को भी आकृष्ट करके उनके द्वारा भी भक्तियोग कराने के लिए आप अवतीर्ण हुए हैं ।।२०।।

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च । नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ।।२१।।

अन्वयः— कृष्णाय, वासुदेवाय, देवकीनन्दनाय, नन्दगोपकुमारायगोविन्दाय च नमो नमः ।।२१।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है, वसुदेवजी के पुत्र तथा सम्पूर्ण जगत् के आश्रय भगवान् वासुदेव को नमस्कार है, देवकी माता को आनन्दित करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है, नन्दगोप के कुमार भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है तथा भगवान् गोविन्द को नमस्कार है ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

ज्ञानभक्त्योरशक्यत्वमुक्त्वा पुनः केवलं नमस्करोति- कृष्णायेति द्वाभ्याम् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

कुन्ती देवी ने स्त्रियों के लिए ज्ञान योग तथा भक्तियोग को करना अशक्य बतलाकर पुनः भगवान् श्रीकृष्ण को **कृष्णाय० इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा केवल नमस्कार किया हैं ॥२१॥

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने । नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥२२॥

अन्वयः— पङ्कजनाभाय नमः, पङ्कजमालिने नमः, पङ्कजनेत्राय नमः पङ्कजाङ्घ्रये नमस्ते ॥२२॥

अनुवाद— जिनकी नाभि से ब्रह्माजी का जन्म स्थान कमल उत्पन्न है ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है, कमल की माला धारण करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है, कमल के समान मनोहर नेत्र वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है तथा कमल के समान कोमल चरणों वाले आप श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

पङ्कजं नाभौ यस्य । पङ्कजानां मालास्ति यस्य । पङ्कजवत्प्रसन्ने नेत्रे यस्य । पङ्कजाङ्कितावङ्घ्री यस्य तस्मै ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

जिनकी नाभि में कमल है ऐसे भगवान् को नमस्कार है, जिनकी माला कमलों की है, ऐसे भगवान् को नमस्कार है, कमल के समान मनोहर जिनके दोनों नेत्र हैं ऐसे भगवान् को नमस्कार है तथा जिनके चरणों में कमल का चिह्न बना हुआ है ऐसे आप श्रीभगवान् को नमस्कार हैं ॥२२॥

यथा हृषीकेश खलेन देवकी कंसेन रुद्धाऽतिचिरं शुचार्पिता ।
विमोचिताहं च सहात्मजा विभो त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥२३॥
विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः ।
मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चाऽऽस्म हरेऽभिरक्षिताः ॥२४॥

अन्वयः— हे हृषीकेश यथा खलेन कंसेन रुद्धा चिरं शुचार्पिता देवकी विमोचिता हे विभो अहं च सहात्मजा त्वयैव नाथेन विपद्गणात् मुहुःविमोचिता । विषात्, महाग्नेः, पुरुषाद दर्शनात् असत् सभायाः वनवासकृच्छ्रतः मृधे मृधे अनेकमहारथास्त्रतः, द्रौण्यस्त्रतः च हे हरे अभिरक्षिताः च आस्म ॥२३-२४॥

अनुवाद— हे हृषीकेश ! जिस तरह दुष्ट कंस के द्वारा कैद की गयी तथा दीर्घकाल से शोकग्रस्त देवकीजी की आपने रक्षा की थी उसी प्रकार पुत्रों के साथ आपने मेरी भी रक्षा विपत्तियों से बार-बार की है । विष से, लाक्षागृह की अग्नि से, हिडिम्बासुर आदि राक्षसों द्वारा देखे जाने पर, दुष्ट दुर्योधन आदि की द्यूत सभा में तथा वनवास कालीन विपत्ति से, अनेक बार के युद्धों में महारथियों के महास्त्रों से तथा अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से आपने हम सबों की रक्षा की है ॥२३-२४॥

भावार्थ दीपिका

तत्कृतोपकाराननुस्मरति- यथेति द्वाभ्याम् । अयमर्थः- मातृतोऽपि मय्यधिका तव प्रीतिः । तथा हि, हे हृषीकेश, यथा देवकी कंसेन रुद्धा त्वया विमोचिता, अहं च तथैव किं विमोचितेति काक्वा महान्विशेष उक्तः । तं दर्शयति- सातिचिरं रुद्धा सती तस्मादेव सकृद्विमोचिता तथा शुचार्पिता च सती न च तस्याः पुत्रा रक्षिताः । अस्ति चान्यो नाथस्तस्याः । अहं तु विपद्गणात्तत्रापि मुहुः शीघ्रं च सात्मजा च त्वयैव च नाथेनेति ॥२३॥ विपद्गणमेव दर्शयति । विषाद्भीमस्य विषमोदकदानात्। महाग्नेर्जतुगृहदाहात्। पुरुषादा हिडिम्बादयो राक्षसास्तेषां दर्शनात् । असत्सभाया द्यूतस्थानात् । अभितो रक्षिता आस्म अभवाम ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के द्वारा किए गये उपकारों को **यथा० इत्यादि** दो श्लोकों के द्वारा कुन्ती देवी स्मरण करती हैं । कहने का अभिप्राय है कि आपका अपनी माता से भी मुझ पर अधिक स्नेह है वह इस प्रकार से है कि हे हृषीकेश ! जिस तरह कंस के द्वारा कैद की गयी देवकी को आपने कैद से मुक्त किया किन्तु मैं भी क्या उसी तरह से मुक्त हुयी हूँ ? मुझको तो आपने बार-बार विपत्तियों से बचाया है । उसीको वे बतलाती हैं । देवकी तो दीर्घकाल से कैद की गयी थीं और दीर्घकाल से शोक सन्तप्त थीं उनको आपने एक ही बार मुक्त किया । आपने देवकी के पुत्रों की भी रक्षा नहीं की । उसका कारण यह था कि देवकी के दूसरे रक्षक वसुदेवजी हैं । मेरी तो बार-बार तथा शीघ्र ही आपने रक्षा की क्योंकि मेरे नाथ तो आप ही हैं ।।२३।।

उन विपत्तियों को वे बतलाती हैं विषमय मिष्ठान्न खाने पर आपने भीम की रक्षा की; लाक्षागृह में जली हुयी भयङ्कर अग्नि से, हीडिम्बासुर आदि राक्षसों द्वारा देखे जाने पर, आपने रक्षा की । दुर्योधन आदि दुष्टों के द्यूत स्थान से भी आपने रक्षा की । इस तरह हम आपके द्वारा बार-बार रक्षित हैं ।।२४।।

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो । भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ।।२५।।

अन्वयः— हे जगद्गुरो ! नः तत्र-तत्र शश्वत् विपदः एव सन्तु यत् अपुनर्भव दर्शनम् भवतः दर्शनम् ।।२५।।

अनुवाद— हे जगद्गुरो हमलोगों पर बार-बार सदा विपत्तियाँ ही आती रहें, क्योंकि उससे आपका दर्शन होता है । और आपके दर्शन से संसार चक्र से मुक्ति मिल जाती है ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

यत् यासु विपत्सु । कीदृशं दर्शनम् । नास्ति पुनरपि भवदर्शनं यस्मात् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

हमलोगों पर सदा विपत्तियाँ इसलिए आती रहें कि उन विपत्तियों में आपका दर्शन होता है और वह दर्शन ऐसा है कि उससे फिर इस संसार का दर्शन नहीं होता । अर्थात् जन्म मृत्यु के चक्र रूपी इस संसार से मुक्ति मिल जाती हैं ।।२५।।

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् । नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिंचनगोचरम् ।।२६।।

अन्वयः— जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिः एधमानमदः पुमान् अकिंचन गोचरम् त्वाम् वै अभिधातुं न अर्हति ।।२६।।

अनुवाद— सद्वंश में जन्म, एश्वर्य, ज्ञान तथा श्री से जिसका मद बढ़ता है वह पुरुष तो आपका नाम भी नहीं ले सकता है, क्योंकि आप अकिञ्चन पुरुषों को ही दर्शन देते हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

संपदस्तु श्रेयः परिपन्थिन्य इत्याह- जन्म सत्कुले । जन्मादिभिरेधमानो मदो यस्य सः । अभिधातुं श्रीकृष्णगोविन्देति वक्तुमपि । अकिंचनानां गोचरं विषयभूतम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

सम्पत्तियाँ तो मुक्ति की विरोधिनी हैं इस बात को **जन्मैश्वर्य० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । सद्वंश में जन्म, ऐश्वर्य, ज्ञान तथा धन सम्पत्ति से तो मनुष्य का मद ही बढ़ता है । इन सबों से जिस व्यक्ति का मद (अहङ्कार) बढ़ जाता है वह व्यक्ति तो श्रीभगवान् के कृष्ण गोविन्द इत्यादि नामों का भी उच्चारण नहीं कर सकता है । क्योंकि आप तो अकिञ्चन जीवों के विषय हैं । अकिञ्चन शब्द का अर्थ है जिसके पास इन जन्मादिकों में

से कुछ भी नहीं है । अकिञ्चन शब्द का दूसरा अर्थ है कि जो मनुष्य आपसे भिन्न किसी भी वस्तु को परमार्थ नहीं मानता है, ऐसे जो आपके ऐकान्तिक भक्त हैं, वह भी अकिञ्चन हैं । ऐसे अकिञ्चन भक्तों को ही आप दर्शन देते हैं ।।२६।।

नमोऽकिञ्चनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये । आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ।।२७।।

अन्वयः— अकिंचन वित्ताय, निवृत्तगुणवृत्तये, आत्मारामाय, शान्ताय कैवल्यपतये नमः ।।२७।।

अनुवाद— अकिञ्चन पुरुषों के परम धन स्वरूप आपको नमस्कार है, माया के गुणों के संस्पर्श से भी रहित आपको नमस्कार है, अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले आपको नमस्कार है, परमशान्त स्वरूप आपको नमस्कार है तथा कैवल्य (मोक्ष) को प्रदान करने वाले आप को नमस्कार हैं ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमनोरथपूरणाय पुनः प्रणमति । अकिंचना भक्ता एव वित्तं सर्वस्वं यस्य तस्मै । ततः किम् । निवृत्ता गुणवृत्तयो धर्मार्थकामविषया यस्मात्तस्मै । तत्कुतः । आत्मारामाय । तत्कुतः । शान्ताय रागादिरहिताय । किंच कैवल्यपतये कैवल्यं दातुं समर्थाय ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

अपने मनोरथ की पूर्ति करने के लिए कुन्ती पुनः श्रीभगवान् को प्रणाम करती हैं अकिंचन भक्त ही जिन श्रीभगवान् के सर्वस्व हैं, ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है । जिनके श्रीभगवान् से धर्म, जो सत्त्वादि गुणों के फल हैं धर्म, अर्थ, काम, वे सदैव जिनसे दूर रहा करते हैं, ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है । अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले श्रीभगवान् को नमस्कमार है । रागादि से रहित होने के कारण परम शान्त श्रीभगवान् को नमस्कार है, किञ्च कैवल्य रूपी मोक्ष प्रदान करने में समर्थ श्रीभगवान् को नमस्कार है । अकिञ्चनविताय पद में समान्यतः षष्ठी तत्पुरुष समास करके अकिञ्चन के परम धन स्वरूप अर्थ किया जाता है । किन्तुश्रीधरस्वामी अकिंचन वित्ताय पद में कर्मधारय समास करके कहते हैं- अकिञ्चना भक्ता एवं वित्तं यस्य तस्मै । अर्थात् अकिंचन भक्त ही श्रीभगवान् के परम धन हैं । यह अर्थ बड़ा ही मनोहर है ।।२७।।

मन्ये त्वां कालमीशानमनादिनिधनं विभुम् । समं चरन्तं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ।।२८।।

अन्वयः— अहं त्वां कालम् ईशानम्, अनादिनिधनं, विभुम् सर्वत्र समं चरन्तम् भूतानां यन्मिथः कलिः ।।२८।।

अनुवाद— मैं आपको काल स्वरूप, सबों के नियामक, आदि और अन्त से रहित होने के कारण नित्य, व्यापक तथा सर्वत्र समान रूप से संचरण करने वाला मानती हूँ । कारण भूत आपके ही कारण संसार के सभी प्राणियों में परस्पर में स्वतः कलह हो रहा है । आपमें किसी भी प्रकार का वैषम्य नहीं है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

ननु देवकीपुत्रं मां कथमेवं स्तौषि तत्राह । मन्थे त्वां कालं नतु देवकीपुत्रम् । तत्र हेतवः- ईशानं नियन्तारम् । अनादिनिधनमाद्यन्तशून्यम् । विभुं प्रभुम् । समं यथा भवति तथा सर्वत्र चरन्तम् । ननु पार्थसारथेः कथं मम साम्यं तत्राह। यद्यतस्त्वत्तो निमित्तभूताद्भूतानामेव मिथः कलिः कलहो भवति नतु स्वतस्त्वयि वैषम्यम् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मैं तो देवकी का पुत्र हूँ । तुम मेरी इस तरह से स्तुति क्यों कर रही हों तो इस पर कुन्ती देवी कहती हैं- **मन्ये त्वाम्० इत्यादि** मैं तो आपको काल स्वरूप मानती हूँ केवल देवकी पुत्र नहीं मानती। ऐसा इसलिए कि आप सम्पूर्ण जगत् के नियन्ता हैं, आदि और अन्त से रहित होने के कारण नित्य हैं, आप सबों के स्वामी तथा सर्वत्र व्यापक हैं, तथा समान रूप से सर्वत्र संचरण करने वाला मानती हूँ ।

यदि आप कहें कि मैं तो अर्जुन का सारथि हूँ आप मुझमें साम्य कैसे कह सकती हैं ? तो इस पर कुन्ती कहती हैं **यत भूतानां मिथः कलिः** । आपके ही लिए इस संसार के सभी प्राणियों में परस्पर में कलह हो रहा है । अतएव आपमें वैषम्य का लेश भी नहीं है ॥२८॥

न वेद कश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितं तवेहमानस्य नृणां विडम्बनम् ।
न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद्द्वेष्यश्च यस्मिन्विषमा मतिर्नृणाम् ॥२९॥

अन्वयः— हे भगवन् ! नृणां विडम्बनम् ईहमानस्य भवतः चिकीर्षितं कश्चित् न वेद, यस्य तव कश्चित् दयितः नास्ति कर्हिचित् द्वेष्यः न च अस्ति । यस्मिन् त्वयि नृणाम् मतिः विषमा ॥२९॥

अनुवाद— हे भगवन् ! मनुष्यों के समान लीला करना चाहने वाले आप क्या करना चाहते हैं, इस बात को कोई भी नहीं जानता है । आपका न तो कोई प्रिय है और न तो कोई द्वेष्य है । आपके विषय में मनुष्यों की ही बुद्धि विषमतामयी है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

ननु निग्रहानुग्रहरूपं मयि प्रसिद्धं वैषम्यमत आह- न वेदेति । नृणां विडम्बनमनुकरणमीहमानस्य कुर्वतः । यस्मिंस्त्वयि विषमा मतिरनुग्रहनिग्रहरूपा भवति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मेरी विषमता के विषय में तो प्रसिद्ध हैं कि मैं किसी पर कृपा करता हूँ और किसी का निग्रह करता हूँ । तो इस पर कुन्ती देवी ने कहा **न वेद० इत्यादि** । आप तो मनुष्यों का अनुकरण करना चाहते हैं और उसके अनुसार लीलाएँ करते भी है, किन्तु आप क्या करना चाहते हैं यह कोई भी नहीं जानता है । आपको न तो कोई प्रिय है और न तो अप्रिय, मनुष्य ही आपके विषय में निग्रह तथा अनुग्रह रूपी विषम बुद्धि करते हैं ॥२९॥

जन्म कर्म च विश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः । तिर्यङ्नृषिषु यादःसु तदत्यन्तविडम्बनम् ॥३०॥

अन्वयः— हे विश्वात्मन् ते अजस्य जन्म, अकर्तुः कर्म यत् तिर्यङ्नृ षिषु यादःसु यत् जन्म तत् अत्यन्त विडम्बनम् ॥३०॥

अनुवाद— हे विश्वात्मन् ! आजन्मा होकर जो आप जन्म लेते है और अकर्ता होकर भी तत्-तत् कर्मों को करते हैं एवं तिर्यकों में, मनुष्यों में, ऋषियों एवं जलचरों में जो जन्म लेते हैं वह आपकी लीला ही हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

ते अजस्य जन्म । अकर्तुः कर्म । तिर्यक्षु वराहादिरूपेण । नृषु रामादिरूपेण । ऋषिषु वामनादिरूपेण । यादःसु मत्स्यादिरूपेण ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

हे भगवन् ! आप यद्यपि अजन्मा हैं फिर भी जन्म लेते हैं अकर्ता हैं फिर भी तत्-तत् कर्मों को करते हैं। आप तिर्यक् योनि में वराह आदि रूप से जन्म लेते हैं, मनुष्यों में श्रीराम आदि रूप से, ऋषियों में वामन आदि रूप से तथा जलचरों में मत्स्य कूर्म आदि रूप से जो कर्म करते हैं वह अत्यन्त आश्चर्यमय आपकी लीला ही है ॥३०॥

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसंभ्रमाक्षम् ।
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥३१॥

अन्वयः— कृतागसि त्वयि तावद् गोपी दाम आददे अश्रुकलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्षम् वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य ते या दश सा मां विमोहयति यत् भीरपि विभेति ॥३१॥

अनुवाद— आपने जब दही का भाण्ड फोड़ दिया था उस अपराध के कारण गोपी (यशोदाजी) ने अपने हाथ में आपको बाँधने के लिए रस्सी ले लिया था उस समय रोने के कारण आँसुओं से मिलकर आपके आँखों का अञ्जन आपके पूरे मुख पर फैल गया था। उस मुख को आप भयभीत हुए से नीचे करके खड़े थे, आपकी वह दशा मुझको मोहित करती है। क्योंकि आपके भय से तो भय भी भयभीत रहता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

नरविडम्बनमत्याश्चर्यमित्याह- गोपीति। गोपी यशोदा त्वयि कृतागसि दधिभाण्डस्फोटनं कृतवति यावद्दाम रज्जुमाददे जग्राह तावत्तत्क्षणमेव या ते दशावस्था सा मां विमोहयति। किंभूतस्य। अश्रुभिः कलिलं व्यामिश्रमञ्जनं ययोस्ते च ते संभ्रमेण व्याकुले अक्षिणी यस्मिंस्तद्वक्त्रं निनीयाधः कृत्वा ताडयिष्यतीति भयस्य भावनया स्थितस्य। यद्यतस्त्वत्तो भीरपि स्वयं बिभेति तस्य ते दशा ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् द्वारा मनुष्यों का अनुकरण करना अत्याश्चर्यमय है, इस बात को बतलाती हुए कुन्ती देवी कहती हैं **गोप्याददे० इत्यादि**। आपने जब दधि का मटका फोड़ दिया था उस अपराध के कारण यशोदाजी ने आपको बाँध देने के लिए अपने हाथ में रस्सी उठा लिया। उस समय आप की जो दशा हुयी उसको सोचकर मुझे भी मोह होता है। उस समय रोने के कारण आपकी आँखों का अञ्जन आंसू से मिलकर मुख पर फैल गया था। ऐसे मुख को आप नीचे करके भयभीत से खड़े हो गये थे। आपको भय था कि माँ मुझको मारेगी। आपके भय से तो भय भी भयभीत रहता है, आपकी वह दशा सोचकर मुझे भी मोह होता है ॥३१॥

केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये। यदोः प्रियस्यान्ववाय मलयस्येव चन्दनम् ॥३२॥

अन्वयः— केचित् त्वम् यदोः प्रियस्य अन्ववाये मलयस्य चन्दनम् इव पुण्य श्लोकस्य कीर्तये जातम् अजम् आहुः ॥३२॥

अनुवाद— कुछ लोगों ने यह कहा है कि यदु के प्रियवंश में पुण्य कीर्ति महाराज युधिष्ठिर की कीर्ति को फैलाने के लिए अजन्मा भी आप उसी तरह से जन्म लिए हैं जिस तरह मलयाचल की कीर्ति के लिए उस पर चन्दन का वृक्ष उत्पन्न होता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अतएव जगन्मोहनतया दुर्ज्ञेयत्वात्तव जन्मादि बहुधा वर्णयन्तीत्याह- केचिदिति चतुर्भिः। पुण्यश्लोकस्य युधिष्ठिरस्य कीर्तये। यदोरेव कीर्तय इति वा। मलयस्य कीर्तये वंशे वा चन्दनं यथा ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

आपका जन्म आदि जगत् को मोहित कर देने वाला है अतएव उसके दुर्ज्ञेय होने के कारण विचारक पुरुष उसका अनेक प्रकार से वर्णन करते हैं। इस बात को कुन्ती देवी ने केचित् इत्यादि चार श्लोकों में कहा है। पुण्य श्लोकस्य कीर्तये का अर्थ महाराज् युधिष्ठिर की कीर्ति को बढ़ाने के लिए है। यदि पुण्यश्लोकस्य पद को यदोः का विशेषण मान लिया जाय तो अर्थ होगा कि पवित्र कीर्ति वाले यदु की कीर्ति को फैलाने के लिए शेष अर्थ अनुवाद के ही समान हैं ॥३२॥

अपरे वासुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात्। अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥३३॥

अन्वयः— अपरे (कथयन्ति यत् पूर्वजन्मनि) वसुदेवदेवकीभ्यां (सुतपा पृश्निरूपेण) याचितः अजः त्वम्, अस्य, क्षेमाय सुरद्विषां वधाय च अभ्यगात् ॥३३॥

अनुवाद— दूसरे लोगों का कहना है कि वसुदेव और देवकी ही पूर्वजन्म में सुतपा और पृश्नि के रूप

से आपसे पुत्र होने का वरदान माँगा था अतएव आप वसुदेवजी के पुत्र के रूप में देवकीजी के गर्भ से उत्पन्न हुए ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तथा वसुदेवस्य भार्यायां देवक्यामज एव त्वमभ्यगात् । पुत्रत्वमिति शेषः प्रथमपुरुषस्त्वार्षः । अर्भत्वमिति पाठः सुगमः । ताभ्यामेव पूर्वं सुतपःपृश्निरूपाभ्यां याचितः सन् । अस्य जगतः क्षेमाय ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

कुन्ती देवी ने कहा कि दूसरे तरह कि लोगों का कहना है कि वसुदेव और देवकी ने पूर्व जन्म में सुतपा और पृश्नि के रूप में तपस्या किया था और आपसे पुत्र होने का वर माँगा था । उसी के फल स्वरूप आप वसुदेव की पत्नी देवकीजी के गर्भ से अजन्मा भी होकर जन्म लिए । आपके जन्म का प्रयोजन इस जगत् का कल्याण और देव शत्रुओं का वध है । **अभ्यगात्** यह प्रथम पुरुष का प्रयोग आर्षप्रयोग होने के कारण है, अन्यथा **अभ्यगाः** यह पद होता ॥३३॥

भारावतरणायान्ये भुवो नाव इवोदधौ । सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवार्थितः ॥३४॥

अन्वयः— अन्ये उदधौ भूरिभारेण सीदन्त्याः नौरिव भूरि भारेण सीदन्त्याः भुवः भारावतरणाय आत्मभुवा अर्थितः जातः ॥३४॥

अनुवाद— दूसरे लोग कहते हैं कि समुद्र में अत्यधिक भार के कारण डगमगाने वाली नौका के समान, दैत्यों के अत्यधिक पापों के भार से पीडित पृथिवी के भार को उतारने के लिए ब्रह्माजी द्वारा प्रार्थित होकर आप अवतार ग्रहण किए हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

आत्मभुवेति ब्रह्मप्रार्थनस्य प्राधान्यविवक्षया ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे लोगों के अनुसार आपके इस अवतार का प्रधान कारण है ब्रह्माजी की प्रार्थना ॥३४॥

भवेऽस्मिन्क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः । श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥३५॥

अन्वयः— केचन अस्मिन् भवे, अविद्याकामकर्मभिः क्लिश्यमानानां श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन् जातः इति ॥३५॥

अनुवाद— दूसरे लोगों का कहना है कि इस संसार में अज्ञान, कामना तथा कर्मों के कारण पीड़ित लोगों द्वारा सुनने तथा स्मरण किए जाने योग्य लीलाओं को करने की इच्छा से आपने यह अवतार ग्रहण किया है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

मतान्तरम् । परमानन्दस्वरूपाज्ञानमविद्या ततो देहाद्यभिमानात्कामस्ततः कर्माणि तैः क्लिश्यमानानां तन्निवृत्तये श्रवणाद्यर्हाणि कर्माणि करिष्यन् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे मतों को उपन्यस्त करती हुयी कुन्ती देवी कहती हैं कि कुछ लोगों के अनुसार परमानन्द स्वरूप विषयक अज्ञान से मोहित जीवों के हृदय में कामना उत्पन्न होती है, उसके पश्चात् वे उस कामना के अनुसार कर्मों को करते है । इस तरह अज्ञान कामना तथा कर्म इन तीनों के द्वारा वे जीव इस संसार में क्लेश का अनुभव करते हैं । उन जीवों के कल्याण के लिए, उन लोगों द्वारा सुनने योग्य तथा स्मरण किए जाने योग्य लीलाओं को करने के लिए ही आपने इस अवतार को ग्रहण किया है ॥३५॥

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥३६॥

अन्वयः जनाः तव ईहितं अभीक्ष्णशः शृण्वन्ति, गायन्ति, गृणन्ति, स्मरन्ति, नन्दन्ति त एव तावकं पदाम्बुजम् अचिरेण पश्यन्ति भवप्रवाहोपरमं च कुर्वन्ति ॥३६॥

अनुवाद आपके भक्तजन आपकी इन लीलाओं को बार बार सुनते हैं, गाते हैं, उच्चारण करते हैं, स्मरण करते हैं तथा आनन्दित होते हैं । वे ही भक्तजन आपके चरण कमलों का शीघ्र ही साक्षात्कार कर लेते हैं और इस जन्म मरण के प्रवाह रूप संसारचक्र का अन्त कर देते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

अन्यं पक्षमपि सिद्धान्तत्वाभिप्रेत्य श्रवणादिफलमाह– शृण्वन्तीति । नन्दन्त्यन्यैः कीर्त्यमानमभिनन्दन्ति । ये जनाः । ईहितं चरितम् । तावकं त्वदीयं पदाम्बुजं त एव पश्यन्त्येव, अचिरेणैवेति च सर्वत्रावधारणम् । कीदृशम् । भवप्रवाहस्य जन्मपरम्पराया उपरमो यस्मात् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

इसमें पहले के पक्ष को ही सिद्धान्त रूप से मानकर कुन्तीदेवी श्रीभगवान की लीलाओं के श्रवण आदि के फल को बतलाती हैं । नन्दन्ति का अर्थ है कि दूसरों द्वारा आपकी लीलाओं का कीर्तन किए जाने पर उसका अनुमोदन करते हैं । **ईहित** शब्द चरित का बोधक है । जो भक्तजन आपके चरण कमलों का साक्षात्कार करते हैं । यहाँ सर्वत्र **एव** इस अवधारणार्थक पद का अन्वय करना चाहिए । वे भक्त शीघ्र ही साक्षात्कार करते हैं । उसके कर लेने पर उनके इस जन्मपरम्परा का विराम हो जाता है ॥३६॥

अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहित प्रभो जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ।
येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात्परायणं राजसु योजितांहसाम् ॥३७॥

अन्वयः हे स्वकृतेहित प्रभो । सुहृदः अनुजीविनः नः अपि अद्य जिहाससि स्वित् । राजसु योजितांहसाम् येषां नः भवतः पदाम्बुजात् अन्यत् परायणं न ॥३७॥

अनुवाद अपने लोगों के लिए अपेक्षित कार्यों को करने वाले हे प्रभो । आपके सम्बन्धी तथा अनुजीवी हमलोगों को आज आप छोड़ना चाहते हैं क्या ? पृथिवी के अन्य राजाओं को हमलोगों ने तो दुःखी ही बनाया है, अतएव वे हमारे विरोधी हैं । ऐसे हमलोगों का आश्रय आपके चरण कमलों से भिन्न कोई नहीं है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं तवास्मत्परित्यागोऽनुचित इत्याशयेनाह– अपीति चतुर्भिः । हे प्रभो , सुहृदोऽतिस्निग्धाननुजीविनश्च नोऽस्मापि स्वित् किंस्वित्त्वं जिहाससि । येषामस्माकमन्यत्परायणं नैवास्ति । तत्कुतः । राजसु योजितमंहो दुःखं यैस्तेषाम् । स्वानां कृतमीहितमपेक्षितं येन तस्य संबोधनम् । विसर्गान्तपाठे त्वंपदविशेषणम् ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

अब कुन्ती देवी बतलाती हैं कि इस समय हमलोगों को छोड़ना अनुचित है । इस बात को वे **अप्यद्य० इत्यादि** चार श्लोकों के द्वारा बतलाती हैं । वे कहती हैं कि हे प्रभो ! हमलोग आपके अत्यन्त स्निग्ध अनुचर हैं । आप तो अपने लोगों के लिए उनके अपेक्षित कार्यों को करते ही हैं । क्या आप हमलोगों को छोड़ देना चाहते हैं ? आपके अतिरिक्त हमलोगों का कोई दूसरा आश्रय नहीं है । हमलोगों ने पृथिवी के दूसरे राजाओं को दुःख ही दिया है, अतएव वे हमारे विरोधी हैं । यदि **स्वकृतेहितः** पाठ होगा तो वह त्वम् पद का विशेषण हो जायेगा।

योजितांहसाम् का **योजितम् अंहः दुखम् यै ते तेषाम्** यह विग्रह है । **स्वकृतेहित** का विग्रह **स्वानां कृतम् इहितम् अपेक्षितं येन तत् संबुद्धौ** है ।।३७।।

के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः । भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणामिवेशितुः ।।३८।।

अन्वयः— ईशितुः विना हृषीकाणाम् इव यर्हि भवतः अदर्शनः तर्हि यदुभिः सह पाण्डवा वयम् नामरूपाभ्याम् के ?।।३८।।

अनुवाद— जिस तरह आत्मा के बिना इन्द्रियों की सत्ता समाप्त हो जाती है, उसी तरह जब आपका दर्शन नहीं मिलेगा तो यादवों और हम पाण्डवों के नाम और रूप की सत्ता कैसे रह पायेगी ?।।३८।।

भावार्थ दीपिका

ननु तव बन्धवो यदवाः पुत्राश्च पाण्डवाः शूरा समर्थाश्च तत्किं कार्पण्यं भाषसेऽत आह- के वयमिति । यर्हि भवतोऽदर्शनं यदा त्वमस्मान्न पश्यसि तदा नामरूपाभ्यां नाम्रा विख्यात्या रूपेण समृद्धया च यदुभिः सहिताः पाण्डवा नाम के वयं न केऽपि। अतितुच्छा इत्यर्थः । हृषीकाणामिन्द्रियाणामीशितुर्जीवस्यादर्शने यथा न किंचिन्नाम च रूपं च तद्वत् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तुम्हारे बान्धव यदुवंशी हैं और तुम्हारे पुत्र पाण्डव वीर और समर्थ भी हैं ऐसी स्थिति में तुम इतनी दीनतापूर्ण बातें क्यों कहती हो ? तो इसके उत्तर में कुन्ती देवी ने कहा **के वयम्० इत्यादि** जब आप हमलोगों को नहीं देखेंगे तो ऐसी स्थिति में नाम मात्र से व्याप्त तथा रूप से समृद्ध सभी यादव और पाण्डवों की क्या स्थिति होगी ? कुछ भी नहीं । यह उसी तरह से हो जायेगा जिस तरह से आत्मा के शरीर से निकल जाने पर न तो इन्द्रियों का नाम रह जाता है और न रूप रह जाता है ।।३८।।

नेयं शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाधरः । त्वत्पदैरङ्किता भाति स्वलक्षणविलक्षितैः ।।३९।।

अन्वयः— हे गदाधर ! स्वलक्षणविलक्षितैः त्वत् पदै अङ्किता इयं यथा भाति तत्र इयं न शोभिष्यते ।।३९।।

अनुवाद— हे गदाधर ! आपके विलक्षण चरण चिह्नों से अङ्कित यह कुरुजाङ्गल प्रदेश की भूमि जिस तरह इस समय सुशोभित होती है, वह आपके यहाँ से चले जाने पर इस तरह से नहीं सुशोभित होगी ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

किंच । यथेदानीमियमस्मत्पाल्या भूमिः स्वैरसाधारणैर्वज्राङ्कुशादिभिर्लक्षणैर्विलक्षितैश्चि- ह्नितैस्त्वत्पदैरङ्किता सती भाति। तत्र तदा त्वयि निर्गते सति न शोभिष्यते ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

जिस तरह से हमलोगों के द्वारा पालन की जाने वाली कुरुजाङ्गल प्रदेश की भूमि अपने असाधारण वज्र अङ्कुश आदि चिह्नों से चिह्नित आपके चरणों से अङ्कित होने के कारण सुशोभित होती है, आपके चले जाने पर यह उस तरह से सुशोभित नहीं होगी ।।३९।।

इमे जनपदाः स्वृद्धाः सुपक्वौषधिवीरुधः । वनाद्रिनद्युदन्वन्तो ह्येधन्ते तव वीक्षितैः ।।४०।।

अन्वयः— तव वीक्षितैः एव इमे सुपक्वौपधि वीरुधः स्वृद्धा इमे जनपदाः वनाद्रिनद्युदन्वन्तः एधन्ते ।।४०।।

अनुवाद— आपके देखने मात्र से ही पकी हुयी फसलों तथा लताओं और वृक्षों से अच्छी तरह से समृद्ध ये जनपद तथा वन, पर्वत, नदी तथा समुद्र भी समृद्ध हो रहे हैं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

अपि च इमे जनपदा देशाः स्वृद्धाः सुसमृद्धाः सन्तः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

आपके देखने से ही ये जनपद भी समृद्ध हैं ।।४०।।

अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते स्वकेषु मे । स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु ।।४१।।

अन्वयः— अथ हे विश्वेश ! विश्वात्मन् । विश्वमूर्ते मे स्वकेषु पाण्डुषु वृष्णिषु च दृढं इमं स्नेह पाशम् छिन्धि ।।४१।।

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् ! हे सम्पूर्ण जगत् की आत्मा ! हे सम्पूर्ण जगत् शरीरक भगवन्! आप मेरे जो अपने पाण्डव एवं यदुवंशी हैं उनमें लगी हुयी मेरी ममता का जो बन्धन है, उसे आप काट दें ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

गमने पाण्डवानामकुशलमगमने च यादवानामित्युभयतो व्याकुलचित्ता सती तेषु स्नेहनिवृत्तिं प्रार्थयते- अथेति । विश्वेशेत्यादिसंबोधनानि स्नेहपाशच्छेदे सामर्थ्यख्यापनाय । दृढं सन्तम् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के चले जाने पर पाण्डवों के अकुशल को और नहीं जाने पर यदुवंशियों के अकुशल को सोचकर कुन्ती देवी का चित्त व्याकुल हो गया; अतएव वे भगवान् से प्रार्थना करती हैं कि मेरा पाण्डवों एवं यादवों में स्नेह का जो बन्धन हैं, उसको आप दूर कर दें । कुन्ती देवी ने श्रीभगवान् को विश्वात्मन् इत्यादि सम्बोधनों से श्रीभगवान् के स्नेह पाश के बन्धन के काटने के सामर्थ्य को बोधित करने के लिए उनको संबोधित किया है । क्योंकि उनका पाण्डवों एवं यादवों में अत्यधिक स्नेह हैं ।।४१।।

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् । रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ।।४२।।

अन्वयः— हे मधुपते ! उदन्वति गङ्गौघ इव मे त्वयि अनन्यविषया मतिः असकृत् रतिम् उद्वहतात् ।।४२।।

अनुवाद— जिस तरह गङ्गाजी की धारा निरन्तर समुद्र में ही गिरती है, उसी तरह अन्य सारे विषयों को त्यागकर मेरी बुद्ध सदा आप में ही प्रेम करें ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह- त्वयीति । अनन्यविषया सती मे मतिः रतिमुद्वहतात् । अनवच्छिन्नां प्रीतिं करोत्वित्यर्थः । ओघं पूरम् । यथा गङ्गा प्रतिबन्धं न गणयत्येवं मतिरपि विघ्नान्मा गणयत्विति भावः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि पाण्डवों और यादवों में रहने वाले प्रेम के बधन को काट देने से तुमको क्या मिलेगा? तो इसके उत्तर में कुन्ती देवी कहती हैं **त्वयि मे० इत्यादि** जिस तरह से गङ्गा का अविरल प्रावाह निरन्तर समुद्र में हीं गिरता है, उसी तरह से हमारी भी अनन्य विषयिणी बुद्धि आपसे निरन्तर प्रेम करती रहे । जिस तरह गङ्गा का प्रवाह किसी विघ्न की परवाह नहीं करता है उसी तरह से मेरी भी बुद्धि विघ्नों की परवाह किए बिना निरन्तर आप में ही लगी रहे ।।४२।।

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ।।४३।।

अन्वयः— हे कृष्णसख श्रीकृष्ण वृष्णिऋषभ, अवनिध्रुग राजन्यवंशदहन, अनपवर्गवीर्य, गोविन्द, गोद्विज सुरार्ति हरावतार, योगेश्वर, अखिलगुरो भगवान् ते नमः ।।४३।।

अनुवाद— हे अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण ! हे यदुवंशियों में श्रेष्ठ ! हे पृथिवी से द्रोह करने वाले राजाओं

के वंश को जला देने वाले, भगवन् ! आपका पराक्रम कभी भी क्षीण नहीं होता है । हे गोविन्द ! आपका यह अवतार गौओं, ब्राह्मणों तथा देवताओं के कष्ट को दूर करने के लिए हुआ है । हे योगेश्वर, हे चराचर के गुरु भगवन् आपको नमस्कार है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

एवमभ्यर्थ्य पुनः प्रणमति । हे श्रीकृष्ण, ते नमः उपकराननुस्मरन्ती बहुधा संबोधयति । कृष्णसखार्जुनस्य सखे । वृष्णीनामृषभ श्रेष्ठ । अवन्यै भूम्यै द्रुह्यन्ति ये राजन्यास्तेषां वंशस्य दहन । एवमप्यनपवर्गवीर्याक्षीणप्रभाव । गोविन्द प्राप्तकामधेन्वैश्वर्य गोद्विजसुराणामार्तिहरोऽवतारो यस्येति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से प्रार्थना करके कुन्ती देवी श्रीभगवान् के उपकारों का स्मरण करती हुयी श्रीभगवान् को नमस्कार कीं तथा उनको अनेक संबोधनों से सबोंधित करती हैं- वे कहती हैं हे अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण ! आप वृष्णिवंशियों में श्रेष्ठ हैं । पृथिवी से द्रोह करने वाले राजाओं के वंश को भस्म कर देने वाले आप अग्नि के समान हैं । ऐसा होने पर भी आप अनपवर्गवीर्य हैं । अर्थात् आपका प्रभाव कभी भी क्षीण नहीं होता है । हे गोविन्द ! आप कामधेनु के समान ऐश्वर्य सम्पन्न हैं । क्योंकि आपकी सारी कामनाएँ पूर्ण हैं । आपका यह अवतार गौओं ब्राह्मणों तथा देवताओं के कष्ट को दूर करने वाला है । **अवनिध्रुग्राजन्यवंशदहन** इस पद का विग्रह इस प्रकार है **अवन्यै भूम्यै द्रुह्यन्ति ये राजन्याः तेषा वंशस्य दहन** ।।४३।।

सूत उवाच

पृथयेत्थं कलपदैः परिणूताखिलोदयः । मन्दं जहसा वैकुण्ठो मोहयन्निव मायया ।।४४।।

अन्वयः— पृथया इत्थं कलपदैः परिणूताखिलोदयः वैकुण्ठः मायया मोहयन्निव मन्दं जहास ।।४४।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह कुन्ती देवी द्वारा मनोहर पदों से स्तुति किए गये सम्पूर्ण महिमा सम्पन्न श्रीभगवान् अपनी माया से मोहित करते हुए के समान मुस्कुराने लगे ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

कलानि मधुराणि पदानि येषु तैर्वाक्यैः परिणूतः स्तुतोऽखिल उदयो महिमा यस्य सः । णु स्तुतावित्यस्मात् । परिणुतेति वक्तव्ये दीर्घश्छन्दोनुरोधेन । मन्दमीषत् । तस्य हास एव माया । वक्ष्यति हि हासो जनोन्मादकरी च माया इति ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

मधुर पदों से युक्त वाक्यों से कुन्ती देवी द्वारा स्तुति किए गये तथा सम्पूर्ण महिमा सम्पन्न श्रीभगवान् अपनी माया से मोहित करते हुए के समान मन्द-मन्द मुस्काने लगे । श्रीभगवान्की हँसी ही माया है । कहेंगे भी **'हासो जनोन्मादकरी च माया'** अर्थात् श्रीभगवान् की हँसी मनुष्यों को उन्मत्त बना देने वाली माया है । परिपूर्वक **'णुस्तुतौ'** धातु से परिणुत पद व्युत्पन्न होता है किन्तु छन्द की दृष्टि से यहाँ पर परिणूत में दीर्घ उकार किया गया है ।।४४।।

तां बाढमित्युपामन्त्र्य प्रविश्य गजसाह्वयम् । स्त्रियश्च स्वपुरं यास्यन्प्रेम्णा राज्ञा निवारितः ।।४५।।

अन्वयः— ताम् बाढम् इत्युपामन्त्र्य गजसाह्वयम् प्रविश्य, स्त्रियश्च उपामन्त्र्य स्वपुरं यास्यन् राज्ञा प्रेम्णा निवारितः ।।४५।।

अनुवाद— भगवान् ने कहा ठीक है आपका मुझमें प्रेम होगा । उसके पश्चात् हस्तिनापुर में प्रवेश करके सुभद्रा द्रौपदी आदि स्त्रियों से विदा लेकर जब भगवान् अपनी नगरी द्वारका जाना चाहते थे, उस समय महाराज युधिष्ठिर ने उनको जाने से प्रेम पूर्वक रोक लिया ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिरिति यत्प्रार्थितं तद्वाढमित्यङ्गीकृत्य रथस्थानाद्गजसाह्वयमागत्य पश्चात्तां चान्याश्च सुभद्राप्रमुखाः स्त्रिय उपामन्त्र्यानुज्ञाप्य स्वपुरं यास्यन् राज्ञा युधिष्ठिरेण प्रेम्णाऽत्रैव किंचित्कालं निवसेति संप्रार्थ्य निवारितः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

कुन्ती देवी ने यह प्रार्थना किया था कि आपमें मेरी अनन्य विषयिणी बुद्धि बनी रहे तो उसके विषय में भगवान् ने कहा कि ठीक है । उस रथ स्थान से हस्तिनापुर में प्रवेश करने के पश्चात् वे कुन्ती, द्रौपदी तथा सुभद्रा आदि स्त्रियों से विदा लेकर अपनी द्वारकापुरी में जाने की इच्छा वाले श्रीभगवान् को महाराज युधिष्ठिर ने प्रेम पूर्वक प्रार्थना किया कि यहाँ ही कुछ दिन रहें और उन्होंने श्रीभगवान् को जाने से रोक लिया ।।४५।।

व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा । प्रबोधितोऽपीतिहासैर्नाबुध्यत शुचार्पितः ।।४६।।

अन्वयः— ईश्वरेहाज्ञैः व्यासाद्यैः अद्भुतकर्मणा कृष्णेन इतिहासैः प्रबोधितेऽपि राजा शुचार्पितः न अबुध्यत ।।४६।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की इच्छा को नहीं जानने वाले व्यास आदि महर्षियों द्वारा तथा अद्भुत कर्मों को करने वाले श्रीभगवान् के द्वारा इतिहासों के माध्यमों से सान्त्वना प्रदान करने पर भी अपने बन्धु बान्धवों के शोक से सन्तप्त राजा युधिष्ठिर को सान्त्वना नहीं प्राप्त हुयी ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

अथ भीष्मनिर्याणोत्सवं वक्तुमुपोद्घातकथां प्रस्तौति । व्यासाद्यैः प्रबोधितोऽपि शुचा व्याप्तः सन्नाबुध्यत विवेकं न प्राप। कुतः ईश्वरेहाया अज्ञैः । स्वभक्तभीष्मनिर्याणमहोत्सवाय राज्ञा सह कुरुक्षेत्रं गन्तव्यं तत्र तन्मुखेनैवायं प्रबोधनीय इतीश्वराभिप्रायःकार्यद्वयविधायकस्तमजानद्भिरित्यर्थः । श्रीकृष्णेनापि प्रबोधितो नाबुध्यत् । अत्र हेतुः- अद्भुतकर्मणेति । यथा कुरुपाण्डवसंधानार्थं गतोऽपि यथोचितमेव वदन्नपि विग्रहमेव दढीकृतवानेवमत्रापि प्रबोधयन्नबोधमेव दृढीचकारेत्यर्थः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

इसके पश्चात् भीष्म के परधाम गमनोत्सव का वर्णन करने के लिए उपोद्घात कथा को **व्यासाद्यैः इत्यादि** श्लोक से उपन्यस्त किया गया है । राजा युधिष्ठिर शोक सन्तप्त थे । उनको अपने मारे गये बान्धवों के विषय में शोक था । उन ईश्वर की इच्छा को नहीं जानने वाले व्यास आदि महर्षियों ने भी उन्हें समझाया । ईश्वर की इच्छा थी कि अपने भक्त भीष्म के परधाम गमनमहोत्सव को देखने के लिए राजा युधिष्ठिर के साथ कुरुक्षेत्र चलना चाहिए और वहीं पर उनके ही मुख से युधिष्ठिर को प्रबोधित करवाना चाहिये । इन दो विषयों से सम्बद्ध था श्रीभगवान् का अभिप्राय, किन्तु व्यास आदि महर्षि भगवान् के इस अभिप्राय को नहीं जानते थे । भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा भी समझाये जाने पर वे सन्तुष्ट नहीं हुए । इसका कारण यह था कि भगवान् तो अद्भुत कर्मों को करने वाले हैं । जैसे कौरवों और पाण्डवों की सन्धि कराने के लिए गये हुए वे उसके अनुकूल बातों को करके भी श्रीभगवान् ने युद्ध को ही सुदृढ बना दिया, उसी तरह से राजा को समझाते हुए श्रीभगवान् ने राजा के अबोध को ही सुदृढ कर दिया ।।४६।।

आह राजा धर्मसुतश्चिन्तयन्सुहृदां वधम् । प्राकृतेनात्मना विप्राः स्नेहमोहवशं गतः ।।४७।।

अन्वयः— हे विप्राः प्राकृतेन आत्मना स्नेहमोहवशं गतः, राजा धर्मसुतः सुहृदांवधम् चिन्तयन् आह ।।४७।।

अनुवाद— हे शौनकादि महर्षियों अपने अविवेक प्राप्त चित्त के द्वारा मरे हुओं के प्रति स्नेह होने के कारण और जीवितों के प्रति मोहग्रस्त होने के कारण धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर अपने संबन्धियों के विषय में शोक करते हुए कहे ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

अबोधमेव प्रपञ्चयति- आहेति षड्भिः । प्राकृतेनाविवेकव्याप्तेनात्मना चित्तेन । हे विप्राः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

महाराज युधिष्ठिर के अविवेक का ही **आह० इत्यादि** छह श्लोकों से विस्तार से सूतजी वर्णन करते हैं। मूल के **प्राकृतेनात्मना** पद का विग्रह है, **प्राकृतेन अविवेकव्याप्तेन आत्मना** । अर्थात् अविवेक ग्रस्त चित्त के द्वारा ।।४७।।

अहो मे पश्यताज्ञानं हृदि रूढं दुरात्मनः । पारक्यस्यैव देहस्य बह्व्यो मेऽक्षौहिणीर्हताः ।।४८।।

अन्वयः— अहो मे दुरात्मनः हृदि रूढं अज्ञानं पश्यत, पारक्यस्यैव देहस्य कृते मे बह्व्यः अक्षौहिणीः हताः ।।४८।।

अनुवाद— मुझ दुरात्मा के हृदय में रूढ अज्ञान को तो देखो कि कुत्ते तथा शृङ्गाल के भोजन भूत इस शरीर के लिए मेरी कई अक्षौहिणी सेना मार दी गयी ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

पारक्यस्य श्वशृगालाद्याहारस्य देहस्यार्थे । मे मया । अक्षौहिणीरक्षौहिण्यः । अक्षौहिणीप्रमाणं तु व्यासेनोक्तम्- **'अक्षौहिणी प्रसंख्याता रथानां द्विजसत्तमाः । संख्यागणनतत्त्वज्ञैः सहस्राण्येकविंशतिः ।। शतान्युपरि चैवाष्टौ तथा भूयश्च सप्ततिः । गजानां च प्रसंख्यानमेतदेव प्रकीर्तितम् । ज्ञेयं शतसहस्रं तु सहस्राणि नवैव तु । नराणामपि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि चैव हि । पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाश्वानां शतानि च । दशोत्तराणि षट् प्राहुः संख्यातत्त्वविदो जनाः । एतामक्षौहिणीं प्राहुर्यथावदिह संख्यया ।'** इति ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

यह शरीर पारक्य है अर्थात् कुत्तों और स्यारों का भोजन स्वरूप है, इसी शरीर के लिए मैंने अपनी अनेक अक्षौहिणी सेना को मरवा दिया । अक्षौहिणी सेना के प्रमाण को बतलाते हुए महर्षि व्यास ने महाभारत में कहा हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों अक्षौहिणी सेना की संख्या और प्रमाण के विषय में संख्या तत्त्व को जानने वालों ने कहा है कि उसमें इक्कीस हजार आठ सौ सत्तर रथ होते हैं तथा इतने ही हाथी होते हैं । उसमें एक लाख नब्बे हजार तीन सौ पचास मनुष्य तथा संख्या तत्त्व को जानने वाले लोगों ने उसमें अश्वों की संख्या पैंसठ हजार छह सौ दश बतलायी है । इस तरह से अक्षौहिणी सेना की संख्या ठीक-ठीक बतलायी गयी हैं ।।४८।।

बालद्विजसुहृन्मित्रपितृभ्रातृगुरुद्रुहः । न मे स्यान्निरयान्मोक्षो ह्यपि वर्षायुतायुतैः ।।४९।।

अन्वयः— बाल-द्विज-सुहृन्मित्र-पितृभ्रातृगुरुद्रुहः मे अयुतायुतैः अपि वर्षैः निरयात् मोक्षः न स्यात् ।।४९।।

अनुवाद— बालक, ब्राह्मण, सम्बन्धी, मित्र चाचा तथा गुरु से द्रोह करने वाले मेरी नरक से करोड़ों वर्षों में भी मुक्ति नहीं हो सकती है ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

सुहृदः संबन्धिनः । मित्राणि सखायः । पितरः पितृव्याः ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर कह रहे हैं कि मैंने बालकों, ब्राह्मणों, सम्बन्धियों, मित्रों तथा चाचाओं एवं द्रोणाचार्य इत्यादि गुरुओं से इस युद्ध के माध्यम से द्रोह किया है । अतएव इसके फलस्वरूप मुझे करोड़ों वर्षों में भी नरक से मुक्ति नहीं मिलेगी ।।४९।।

नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् । इति मे न तु बोधाय कल्पते शासनं वचः ॥५०॥

अन्वयः— प्रजाभर्तुः राज्ञः धर्मयुद्धे द्विषाम् वधः एनः न इति शासनं वचः मे बोधाय न कल्पते ॥५०॥

अनुवाद— प्रजाओं के स्वामी राजा के द्वारा धर्मयुद्ध में शत्रुओं का मारा जाना पापकारक नहीं होता है, यह शास्त्रीय वाक्य मुझे संतुष्ट नहीं कर पाता है ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

स्मृत्याद्यनुशासनाद्धर्मयुद्धे न दोष इति चेत्तत्राह- नैनो राज्ञ इति । द्विषां वध एनः पापं न भवतीति यच्छासनं शिक्षारूपं वचः कुतो न कल्पते । यतस्तद्वचः प्रजाभतुरेव । अयं भावः । स्वप्रजानामन्यतो वाधे प्रसक्ते तद्वधोऽनुज्ञातः दुर्योधनेन तु प्रजायां पाल्यमानायां मया केवलं राज्यलोभेन हतत्वात्पापमेवेदमिति ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहा जाय कि स्मृतियों की वाणी है कि धर्मयुद्ध करने में पाप नहीं होता है तो इसके उत्तर में **नैनो राज्ञः इत्यादि** श्लोक कहा गया है । यदि कहें कि धर्मयुद्ध में शत्रुओं को मारना पाप कारक नहीं होता है यह जो उपदेशात्मक वाक्य है उसे आप क्यों नहीं मानते हैं तो इसका उत्तर है कि वह वाक्य प्रजा के स्वामी के लिए है । कहने का अभिप्राय है कि अपनी प्रजा के दूसरे द्वारा वाधित होने पर उसका वध करने के लिए शास्त्र आज्ञा देता है । दुर्योधन के द्वारा ही प्रजापालन किया जा रहा था, मैंने तो केवल राज्य के लोभ से इन सबों को मारा अतएव यह तो पाप ही है ॥५०॥

स्त्रीणं मद्धतबन्धूनां द्रोहो योऽसाविहोत्थितः । कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाहं कल्पो व्यपोहितुम् ॥५१॥

अन्वयः— इइ यः असौ मद्हतबन्धूनां स्त्रीणां द्रोहः उत्थितः तत् गृहमेधीयैः कर्मभिः अहं व्यपोहितुं कल्पो न ॥५१॥

अनुवाद— इस युद्ध में जिनके बान्धव मार दिए गये हैं ऐसी स्त्रियों का जो द्रोह रूपी पाप मैंने किया है उसको मैं गृहस्थोचित यज्ञ यागादि कर्मों के द्वारा दूर नहीं कर सकता हूँ ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

किंच ! युद्धे पुंसां बधो भवतु नाम धर्मः स्त्रीणां तु मया हता बन्धवो यासां तासां योऽसौ द्रोहोऽनुद्दिष्टोऽप्युत्थितस्तं व्यपोहितुमपाकर्तुं कल्पः समर्थो नाहम् । गृहमेधीयैर्गृहाश्रमविहितैः ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी बात हैं कि मान लें कि युद्ध में पुरुषों का वध धर्म हैं किन्तु जिन स्त्रियों के वान्धवों को मैंने मार दिया है, उन सबों का जो अवर्णित द्रोह हुआ है, उसको तो मैं इन गृहस्थाश्रमोचित विहित यज्ञादि के द्वारा दूर नहीं ही कर सकता हूँ ॥५१॥

यथा पङ्केन पङ्काम्भः सुरया वा सुराकृतम् । भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे प्रथम स्कन्धे कुन्तीस्तुतियुधिष्ठिरानुतापो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अन्वयः— यथा पङ्केन पङ्काम्भः (स्वच्छीकर्तं न शक्यते) सुरया वा सुराकृतम् तथैव यज्ञैः एकां भूतहत्याम् मार्ष्टुम् न अर्हति ॥५२॥

अनुवाद— जिस तरह कीचड़ से गन्दे जल को स्वच्छ नहीं किया जा सकता है, अथवा मदिरा से मदिरा

की अपवित्रता को दूर नहीं किया जा सकता है, उसी तरह हिंसा बहुल अश्वमेधादि यज्ञों के द्वारा एक भी प्राणी की हत्या का प्रायश्चित्त नहीं किया जा सकता है ।।५२।।

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के कुन्ती द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति तथा युधिष्ठिर के संताप का वर्णन नामक आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

भावार्थ दीपिका

ननु 'सर्वं पाप्मानं तरति तरति ब्रह्महत्यां योऽश्वमेधेन यजते य उ चैनमेवं वेद' इति श्रुतेः पापमश्वमेधेन नश्येदेवेत्याशङ्क्य अविवेकविजृम्भितं हेतुवादमाश्रित्य निराकरोति- यथेति । यथा घनपङ्केन पङ्काम्भो न मृज्यते, यथा वा सुरालेशकृतमपावित्र्यं बह्व्या सुरया न मृज्यते तथैव भूतहत्यामेकां प्रमादतो जातां बुद्धिपूर्वहिंसाप्रायैर्यज्ञैर्मार्ष्टुं शोधयितुं नार्हतीति ।।५२।।

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टमोऽध्यायः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

सर्व पाप्मानम् इत्यादि श्रुति कहती है कि अश्वमेध यज्ञ करने वाला मनुष्य सभी पापों तथा ब्रह्महत्या जन्य पापों को भी नष्ट कर देता है, जो इस तरह से जानता है । इस श्रुति के अनुसार अश्वमेध याग करने से मनुष्य पापों को विनष्ट कर देता है, इस तरह की शङ्का करके युधिष्ठिर तर्क को अपनाकर उसका खण्डन करते हुए कहते हैं— जिस तरह कीचड़ से गदले पानी को साफ नहीं किया जा सकता है अथवा थोड़ी सी भी मदिरा जन्य अपवित्रता को बहुत अधिक मदिरा के द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है, उसी तरह प्रमादवशात् एक भी प्राणी की की गयी हत्या का प्रायश्चित्त इन बुद्धि पूर्वक किए जाने वाले हिंसा बहुल यज्ञों के द्वारा नहीं किया जा सकता है ।।५२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

नवाँ अध्याय

युधिष्ठिर आदि का भीष्म के पास जाना तथा श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए भीष्मजी का प्राणत्याग करना

सूत उवाच

इति भीतः प्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविवित्सया । ततो विनशनं प्रागाद्यत्र देवव्रतोऽपतत् ॥१॥

अन्वयः— इति प्रजाद्रोहात् भीतः ततः सर्वधर्मविवित्सया, विनशनं प्रागात्, यत्र देवव्रतः अपतत् ॥१॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से प्रजाद्रोह से भयभीत महाराज युधिष्ठिर सभी धर्मों को जानने के लिए कुरुक्षेत्र गये जहाँ पर भीष्मजी शरशय्या पर पड़े थे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

युधिष्ठिराय भीष्मेण सर्वधर्मनिरूपणम् । कृष्णस्तुतिश्च मुक्तिश्च नवमे तस्य वर्ण्यते । यदर्थं तस्याविवेकः श्रीकृष्णेन संवर्धितस्तद्दर्शयति- इतीति । सर्वेषां धर्माणां विवित्सया वेदितुमिच्छया। विनशनं कुरुक्षेत्रम् । देवव्रतो भीष्मः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

नवें अध्याय में भीष्मजी द्वारा युधिष्ठिर को सभी धर्मों का उपदेश तथा उनके द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति एवं उनकी मुक्ति का वर्णन किया गया है ।।१।।

यदर्थमित्यादि— भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस कार्य को करने के लिए राजा युधिष्ठिर के अविवेक को बढ़ाया उसी को **इति भीतः इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया गया है **सर्वधर्मविवित्सया** पद का विग्रह है **सर्वेषां धर्माणां विवित्सया वेदितुमिच्छया** । अर्थात् सभी धर्मों को जानने की इच्छा से विनशन कुरुक्षेत्र का नाम है । भीष्मजी का एक नाम देवव्रत है ।।१।।

तदा ते भ्रातरः सर्वे सदश्वैः स्वर्णभूषितैः । अन्वगच्छन्रथैर्विप्रा व्यासधौम्यादयस्तथा ।।२।।

अन्वयः— हे विप्राः तदा सदश्वैः स्वर्णभूषितैः रथैः ते सर्वे भातरः तथा व्यासधौम्यादयः अन्वगच्छन् ।।२।।

अनुवाद— हे शौनकादि विप्रों ! उस समय अच्छे घोड़ों से युक्त तथा स्वर्ण जटित रथों पर सवार होकर वे सभी भाई गये तथा व्यास धौम्य इत्यादि विप्रों ने भी राजा युधिष्ठिर का अनुगमन किया ।।२।।

भावार्थ दीपिका

सन्तः श्रेष्ठा अश्वा सेषु तै रथैः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

जिनमें श्रेष्ठ अश्व जुते थे ऐसे रथों से ।।२।।

भगवानपि विप्रर्षे रथेन सधनंजयः । स तैर्व्यरोचत नृपः कुबेर इव गुह्यकैः ।।३।।

अन्वयः— विप्रर्षे ! सधनञ्जयः भगवानापि रथेन अन्वगच्छत् तैः स नृपः गुह्यकैः कुबेर इव व्यरोचत् ।।३।।

अनुवाद— हे विप्रर्षे शौनकजी अर्जुन के साथ भगवान् श्रीकृष्ण भी रथ से उनके साथ गये । इन सबों से राजा युधिष्ठिर यक्षों द्वारा अनुगमन किए जाते हुए कुबेर के समान सुशोभित हुए ।।३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।३।।

भाव प्रकाशिका— भगवान् श्रीकृष्ण भी अर्जुन के साथ रथ से राजा युधिष्ठिर के पीछे-पीछे गये । उससे राजा युधिष्ठिर की उसी तरह शोभा हो रही थी जिस तरह गुह्यकों (यक्षों) द्वारा अनुगमन किये जाने वाले कुबेर की शोभा होती है ।।३।।

दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवश्च्युतमिवामरम् । प्रणेमुः पाण्डवा भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा ।।४।।

अन्वयः— दिवश्च्युतम् अमरम् इव भूमौ निपतितं भीष्मं दृष्ट्वा चक्रिणा सह सानुगाः पाण्डवाः प्रणेमुः ।।४।।

अनुवाद— स्वर्ग से गिरे हुए देवता के समान पृथिवी पर पड़े हुए भीष्म को देखकर अनुचरों से युक्त पाण्डवों ने भगवान् श्रीकृष्ण के साथ उनको प्रणाम किया ।।४।।

भावार्थ दीपिका

सानुगाः परिवारसहिताः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

मूल के सानुगाः पद का अर्थ परिवार के साथ है ।।४।।

तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षयश्च सत्तम । राजर्षयश्च तत्रासन्द्रष्टुं भरतपुङ्गवम् ।।५।।

अन्वयः— तत्र हे सत्तम ! भरतपुङ्गवम् द्रष्टुं सर्वे ब्रह्मर्षयः देवर्षयः च राजर्षयः च आसन् ।।५।।

अनुवाद— हे महर्षियों में श्रेष्ठ शौनकजी उसी समय भरतवंशियों में श्रेष्ठ भीष्मजी को देखने के लिए वहाँ पर सभी ब्रह्मर्षि, सभी देवर्षि तथा सभी राजर्षि गण भी आ गये ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तदा । तत्रासन् । तत्क्षणमेवागता इत्यर्थः । भरतपुङ्गवं भीष्मम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में दो बार तत्र् शब्द का प्रयोग हुआ है । उसमें प्रथम तत्र शब्द का अर्थ है उसी क्षण और दूसरे तत्र शब्द का अर्थ है वहाँ पर, भरतपुङ्गव शब्द से भीष्मजी को कहा गया है ।।५।।

पर्वतो नारदो धौम्यो भगवान्बादरायणः । बृहदश्वो भरद्वाजः सशिष्यो रेणुकासुतः ।।६।।
वसिष्ठ इन्द्रप्रमदस्त्रितो गृत्समदोऽसितः । कक्षीवान् गौतमोऽत्रिश्च कौशिकोऽथ सुदर्शनः।।७।।
अन्ये च मुनयो ब्रह्मन् ब्रह्मरातादयोऽमलाः । शिष्यैरुपेता आजग्मुः कश्यपाङ्गिरसादयः ।।८।।

अन्वयः— पर्वतः, नारदः, धौम्यः, भगवान् बादरायणः, बृहदश्वः, भरद्वाजः, सशिष्यः रेणुकासुतः, वसिष्ठः, इन्द्रप्रमदः त्रितः, गृत्समदः, असितः, कक्षीवान्, गौतमः, अत्रिः, कौशिकः अथ सुदर्शनः, अन्येच अमलाः ब्रह्मरातादयः मुनयः कश्यपाङ्गिरसादयः आजग्मुः ।।६-८।।

अनुवाद— हे शौनकजी पर्वत, नारद, धौम्य भगवान् व्यास, बृहदश्व, भरद्वाज, अपने शिष्यों के साथ परशुरामजी, वसिष्ठ, इन्द्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, सुदर्शन, दूसरे भी शुद्धहृदय वाले शुकदेवजी इत्यादि महर्षिगण, कश्यप महर्षि तथा आङ्गिरस महर्षि के पुत्र बृहस्पति आदि वहाँ आयें ।।६-८।।

भावार्थ दीपिका

रेणुकासुतः परशुरामः ब्रह्मरातः शुकः । आङ्गिरसो बृहस्पतिः ।।६-८।।

भाव प्रकाशिका

रेणुकासुत परशुरामजी का नाम है । ब्रह्मरात शुकदेवजी का नाम है । और आङ्गिरस बृहस्पति का नाम है क्योंकि वे आङ्गिरा महर्षि के पुत्र हैं ।।६-८।।

तान्समेतान्महाभागानुपलभ्य वसूत्तमः । पूजयामास धर्मज्ञो देशकालविभागवित् ।।९।।

अन्वयः— समेतान्तान् महाभागान् उपलभ्य देशकालविभागवित् वसूत्तमः उपलभ्य पूजयामास ।।९।।

अनुवाद— आये हुए उन सभी महाभागों का जानकार वसुओं में श्रेष्ठ भीष्मजी उन सबों की पूजा किए ।।९।।

अनुवाद— माया के द्वारा शरीर धारण किए हुए, हृदय में विद्यमान जगत् के स्वामी सामने विद्यमान भगवान् श्रीकृष्ण की भी उन्होंने मन से पूजा की ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

हृदिस्थं सन्तं पुरतश्चासीनं पूजयामास ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

हृदय में विद्यमान तथा सामने बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्ण की उन्होंने मन ही मन पूजा की ॥१०॥

पाण्डुपुत्रानुपासीनान्प्रश्रयप्रेमसङ्गतान् । अभ्याचष्टानुरागास्त्रैरन्धीभूतेन चक्षुषा ॥११॥

अन्वयः— प्रश्रयप्रेमसङ्गतान्, उपासीनान् पाण्डुपुत्रान् अनुरागास्त्रैः अन्धीभूतेन चक्षुषा अभ्यचष्ट ॥११॥

अनुवाद— नम्रता एवं प्रेम पूर्वक सन्निकट में बैठे हुए पाण्डुपुत्रों को प्रेमाश्रुओं से भरे नेत्रों से देखकर उन्होंने कहा ॥११॥

भावार्थ दीपिका

उपासीनान् समीपे उपविष्टान् । प्रश्रयो विनयः प्रेम स्नेहस्ताभ्यां सङ्गतानुपसन्नान् । पाठान्तरे ताभ्यामवनतान् । अभ्याचष्टाभ्यभाषत् । अनुरागास्त्रैः स्नेहाश्रुभिरन्धीभूतेन चक्षुषोपलक्षितः । ददर्शेति वा ॥११॥

भाव प्रकाशिका

सभी पाण्डव भीष्मजी के सन्निकट में विनय एवं नम्रता पूर्वक बैठे थे, उन सबों को देखकर भीष्मजी की आँखों में प्रेमाश्रुभर गया । उन्होंने पाण्डवों से कहा अभ्याचष्ट का अर्थ देखा भी होगा ॥११॥

अहो कष्टमहोऽन्याय्यं यद्यूयं धर्मनन्दनाः । जीवितुं नार्हथ क्लिष्टं विप्रधर्माच्युताश्रयाः ॥१२॥

अन्वयः— अहो कष्टम्, अहो अन्याय्यम् यत् धर्मनन्दना यूयं विप्रधर्माच्युताश्रयाः क्लिष्टं जीवितुं नार्हथ ॥१२॥

अनुवाद— यह अत्यन्त निन्दित तथा महा अन्याय की बात है की आप लोग धर्मपुत्र हैं । ब्रह्मण, धर्म और भगवान् अच्युत के आश्रित हैं । आपलोग कष्ट पूर्वक जीने के योग्य नहीं थे ॥१२॥

भावार्थदीपिका

अभिभाषणमाह अहो इत्येकादशभिः । हे धर्मनन्दनाः, क्लिष्टं यथा भवत्येवं जीवितुं नार्हथ यूयमिति यदेतदहो कष्टं जुगुप्सितम् । अहो अन्याय्यं चैतत् । यतो यूयं विप्रा धर्मोऽच्युतश्चाश्रयो येषां ते ॥१२॥

भावप्रकाशिका

भीष्मजी ने जो कहा उसको **अहोकष्टम्० इत्यादि** ग्यारह श्लोकों में कहा गया है । भीष्मजी ने कहा कि तुमलोग धर्मपुत्र हो, कष्ट पूर्वक जीने के योग्य नहीं हो, किन्तु कष्ट भोगना पड़ा यह अत्यन्त निन्दित है । तथा यह अत्यन्त अन्यायमय है । क्योंकि आपलोगों के आश्रय तो ब्राह्मण, धर्म और भगवान् श्रीकृष्ण थे।

यद्यपि युधिष्ठिर ही धर्मपुत्र थे, फिर भी सभी पाण्डवों को धर्मपुत्र कहने का अभिप्राय है कि पाण्डवों में युधिष्ठिर ही प्रधान थे और उन्हीं के अनुसार सभी पाण्डव रहते थे ॥१२॥

संस्थितेऽतिरथे पाण्डौ पृथा बालप्रजा बधूः । युष्मत्कृते बहून्क्लेशान्प्राप्ता तोकवती मुहूः ॥१३॥

अन्वयः— अतिरथे पाण्डौ संस्थिते तोकवती बालप्रजा वधूः पृथा युष्मत्कृते बहून् क्लेशान् मुहुः प्राप्ता ॥१३॥

अनुवाद— अतिरथी पाण्डु की मृत्यु हो जाने पर उस समय तुमलोग बहुत छोटे थे । बाल प्रजाओं वाली बधू कुन्ती तुमलोगों के कारण बार-बार बहुत अधिक कष्टों को भोगी ॥१३॥

भावार्थदीपिका

किंच संस्थिते मृते । बालाः प्रजाः पुत्रा यस्याः सा । वधूश्चेति दैन्यं प्रदर्शितम् । तोकान्यपत्यानि तद्वती । अपत्यैः सह क्लेशान्प्राप्तेत्यर्थः ।।१३।।

भावप्रकाशिका

महाराज पाण्डु अतिरथ वीर थे उनकी मृत्यु हो जाने पर चूकि तुम लोग बहुत छोटे थे । इन छोटे बच्चों वाली वधू कुन्ती ने बार-बार तुमलोगों के साथ ही बहुत अधिक कष्ट भोगा ।।१३।।

सर्वं कालकृतं मन्ये भवतां च यदप्रियम् । सपालो यद्वशे लोको वायोरिव घनावलिः ।।१४।।

अन्वयः— भवतां यत् अप्रियं तत् सर्वं कालकृतम् मन्ये, धनावलिः वायोः इव यद्वशे सपालः लोकः ।।१४।।

अनुवाद— मैं मानता हूँ कि आपलोगों को जो कष्ट भोगना पड़ा वह सब कुछ कालकृत ही है । जिस काल के अधीन लोकपालों सहित यह सारा जगत् उसी तरह रहता है जिस तरह वायु के अधीन मेघ समूह रहता है ।।१४।।

भावार्थदीपिका

कालकृतत्वेन शोकं वारयति-सर्वमिति द्वाभ्याम् । भवतामपि । यद्वशे यस्य वशवर्ती ।।१४।।

भावप्रकाशिका

भीष्मजी ने कहा कि आपलोगों को जो कष्टों को भोगना पड़ा वह सब कुछ कालकृत है । उसमें किसी दूसरे का हाथ नहीं है । काल सबको अपने वश में रखता है । काल के ही अधीन सभी लोकपाल रहा करते है । इसका उदाहरण उन्होंने बतलाया जिस तरह वायु जिधर चाहती है उसी तरफ मेघ समूह को उड़ा ले जाती हैं ।।१४।।

यत्र धर्मसुतो राजा गदापाणिर्वृकोदरः । कृष्णोऽस्त्री गाण्डिवं चापं सुहृत्कृष्णस्ततो विपत् ।।१५।।

अन्वयः— यत्र धर्मसुतो राजा, गदापाणिः वृकोदरः, अस्त्री कृष्णः, गाण्डीवं चापं, सुहृत् कृष्णः ततः विपत् :।।१५।।

अनुवाद— अन्यथा जहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिर राजा हों, भीम जैसे गदाधारी हो, अर्जुन जैसे अस्त्र धारण करने वाले हों जहाँ गाण्डीव जैसा धनुष हो एवं भगवान् श्रीकृष्ण जैसे सम्बन्धी भी हों वहाँ पर विपत्ति कैसे सम्भव थीं ?।।१५।।

भावार्थदीपिका

अहो दुर्घटघटनापटुः काल इत्याह- यत्रेति । कृष्णोऽर्जुनः अस्त्री धन्वी । ततस्तत्रापि विपत् । पुण्यशारीरबलास्त्रनैपुण्यशस्त्रदेवसंपत्तावपीत्यर्थः ।।१५।।

भावप्रकाशिका

यह काल असम्भव को भी सम्भव करने में अत्यन्त निपुण है, इस अर्थ का प्रतिपादन **यत्र० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । इस श्लोक में कृष्ण शब्द से अर्जुन को उसको धनुर्धारी बतलाया गया है । जहाँ पर पुण्य, शारीरिक बल, अस्त्र की निपुणता शस्त्र तथा देवता ये सभी विद्यमान हों वहाँ पर भी विपत्ति होना तो आश्चर्य की बात है । तुम पाण्डवों में सारे सुख के साधन विद्यमान थे फिर भी काल के अधीन रहने वाले तुम लोगों को कष्ट हुआ । यह काल का ही कार्य हैं ।।१५।।

न ह्यस्य कर्हिचिद्राजन्पुमान्वेद विधित्सितम् । यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यन्ति कवयोऽपि हि ।।१६।।

अन्वयः— राजन् अस्य विधित्सितम् कर्हिचित पुमान् न वेद । यद्विजिज्ञासया युक्ता कवयः अपि मुह्यन्ति ।।१६।।

अनुवाद— राजन् ! ये कालरूपधारी श्रीकृष्ण कब क्या करना चाहते हैं ? इस बात को कोई मनुष्य कभी नहीं जान सकता है । इनके विषय में विशेष रूप से जिज्ञासा से युक्त ज्ञानी पुरुष भी मोहित हो जाते हैं ।।१६।।

भावार्थदीपिका

ननु कृष्णं कथं कालोऽतिक्रमेदित्यपेक्षायामाह । न ह्यस्य श्रीकृष्णस्येत्यङ्गुल्या निर्दिशति । विधित्सितं कर्तुमिष्टं यत्। यस्य विधित्सितस्य जिज्ञासया ॥१६॥

भावप्रकाशिका

यदि कहे कि भगवान् श्रीकृष्ण का अतिक्रमण काल कैसे कर सकता है ? तो इसके उत्तर में भीष्मजी **नह्यस्य० इत्यादि** श्लोक कहते है । ये श्रीकृष्ण स्वयं काल हैं । इसलिए उनका अङ्गुल्या निर्देश करके कहते हैं कि ये क्या करना चाहते हैं ? इस बात को कोई भी नहीं जान सकता है । श्रीभगवान् की विधित्सा के विषय में जिज्ञासा से युक्त ज्ञानी पुरुष भी मोहित हो जाते हैं ॥१६॥

तस्मादिदं दैवतन्त्रं व्यवस्य भरतर्षभ । तस्यानुविहितोऽनाथा नाथ पाहि प्रजाः प्रभो ॥१७॥

अन्वयः— तस्मात् हे भरतर्षभ इदं दैवतन्त्रं व्यवस्य तस्य अनुविहितः हे नाथ ! हे प्रभो ! अनाथाः प्रजाः पाहि ॥१७॥

अनुवाद— अतएव हे भरतवंश में श्रेष्ठ युधिष्ठिर, यह सबकुछ सुख दुःख परमात्माधीन है, इस बात का निश्चय करके आप इनका अनुवर्ती होकर हे कुल परम्परागत स्वामिन् ! हे समर्थ प्रभो ! आप अनाथ प्रजाओं का पालन करें ॥१७॥

भावार्थदीपिका

इदं सुखदुःखादि दैवतन्त्रमीश्वराधीनं व्यवस्य निश्चित्य तस्येश्वरस्यानुविहितोऽनुवर्ती सन् । कर्तरि क्तः । हे नाथ कुलपरम्परागतस्वामिन्, प्रभो समर्थ, अनाथाः प्रजाः पाहि ॥१७॥

भावप्रकाशिका

संसार में प्राप्त होने वाले सुख और दुःख परमात्माधीन हैं, इस बात का निश्चय करके इन परमात्म का अनुवर्ती बनकर हे कुल परम्परा से प्राप्त स्वामिन् ! हे समर्थ ! आप अब अनाथ प्रजाओं का पालन करें । अनुविहितः में कर्ता के अर्थ में क्त प्रत्यय हुआ हैं ॥१७॥

एष वै भगवान्साक्षादाद्यो नारायणः पुमान् । मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु ॥१८॥

अन्वयः— एष वै साक्षात् भगवान् आद्यः पुमान् नारायणः मायया लोकं मोहयन् वृष्णिषु गूढः चरति ॥१८॥

अनुवाद— ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं ये आदि पुरुष नारायण हैं, ये अपनी माया द्वारा जगत् को मोहित करके यदुवंशियों में छिपकर लीला कर रहे हैं ॥१८॥

भावार्थदीपिका

अनुविधेयः परमेश्वरश्च श्रीकृष्ण एवेत्याह । एष एव भगवान्सर्वेश्वरः । यत आद्यः पुमान् । तच्च कुतः । यतो नारायणः साक्षात् ॥१८॥

भावप्रकाशिका

श्रीकृष्ण भगवान् का अनुवर्तन करना चाहिए ये परमेश्वर हैं । अतएव भगवान् अर्थात् सर्वेश्वर हैं ये ही आदि पुरुष हैं क्योंकि ये साक्षात् नारायण ही हैं ॥१८॥

अस्यानुभावं भगवान्वेद गुह्यतमं शिवः । देवर्षिर्नारदः साक्षाद्भगवान्कपिलो नृप ॥१९॥

अन्वयः— नृप अस्य गुह्यतमं अनुभावं भगवान् शिवः वेद देवर्षिः नारदः भगवान् कपिलश्च साक्षात् वेद ॥१९॥

अनुवाद— इनके रहस्यात्मक प्रभाव को भगवान् शिव, देवर्षि नारद तथा भगवान् कपिल साक्षात् जानते हैं ॥१९॥

भावार्थदीपिका

तदुपपादयति- अस्येति । अनुभावं प्रभावम् ।।१९।।

भावप्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के नारायणत्व का प्रतिपादन करते हुए भीष्मजी कहते हैं कि इनके रहस्यात्मक प्रभाव को भगवान् शङ्कर साक्षात् जानते हैं, देवर्षि नारद तथा भगवान् कपिल भी साक्षात् जानते हैं ।।१९।।

यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहृत्तमम् । अकरोः सचिवं दूतं सौहृदादथ सारथिम् ।।२०।।

अन्वयः— यं त्वं मातुलेयम् प्रियं मित्रम्, सुहृत्तमम् मन्यसे अथ सौहृदात् सचिवं, दूतम् सारथिम् च अकरोः सोऽयं परमेश्वरः ।।२०।।

अनुवाद— जिनको तुम अपना ममेरा भाई मानते हो, अत्यन्त स्नेहिल सम्बन्धी, मानते हो और इनके सौहार्द के कारण तुमने इनको अपना सचिव, दूत तथा सारथि भी बना डाले ये साक्षात् परमेश्वर हैं ।।२०।।

भावार्थदीपिका

त्वमज्ञानाद्यमेवं मन्यसे । मातुलेयं देवक्याः सुतम् । प्रियं प्रीतिविषयम् । मित्रं प्रीतिकर्तारम् । सुहृत्तममुपकारानपेक्ष्योपकारकं च । सौहृदाद्विश्वासात् । अकरोः कृतवानसि । सचिवं मन्त्रिणम् ।।२०।।

भावप्रकाशिका

तुम अज्ञान के कारण जिनको ममेरा भाई, देवकी का पुत्र मानते हो, प्रिय मित्र मानते हो तथा सुहृत्तम मानते हो अर्थात् यह मानते हो कि उपकार की अपेक्षा किए बिना ही उपकार करने वाले हैं तथा विश्वास के कारण तुमने इनको अपना सचिव, दूत बनाये और सारथि भी बनाया ये परमेश्वर हैं ।।२०।।

सर्वात्मनः समदृशो ह्यद्वयस्यानहंकृतेः । तत्कृतं मतिवैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित् ।।२१।।

अन्वयः— सर्वात्मनः समदृशः, अद्वयस्य अनहंकृतेः, निरवद्यस्य तत् कृतं क्वचित् मतिवैषम्यं न ।।२१।।

अनुवाद— सर्वात्मा, समदर्शी, अद्वितीय, अहङ्कार रहित तथा निष्पाप परमात्मा में कर्म को लेकर कहीं भी किसी प्रकार की बुद्धि की विषमता नहीं होती हैं ।।२१।।

भावार्थदीपिका

नन्वीश्वरश्चेत्कथं नीचे सारथ्यादौ प्रवृत्तस्तत्राह- सर्वेति । अस्य तत्कृतं नीचोच्चकर्मकृतं मम योग्यमयोग्यमिति मतेर्वैषम्यं क्वचिदपि नास्ति । कुतः । निरवद्यस्य रागादिशून्यस्य । तत्कुतः । अनहंकृतेः । तच्च कुतः । अद्वयस्य । तदपि कुतः । समदृशः। तत्रापि हेतुः- सर्वस्यात्मनः । यथेष्टं वा हेतुहेतुमद्भावः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि ये यदि ईश्वर हैं तो फिर सारथि जैसे नीच कर्म को करने में इनकी प्रवृत्ति कैसे हुयी ? तो इसका उत्तर **सर्वात्मनः इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । इन भगवान् श्रीकृष्ण की नीच कर्म को लेकर या उच्च कर्म को लेकर यह कार्य मेरे योग्य है यह मेरे योग्य नहीं है, इस प्रकार की बुद्धि की विषमता कही भी नहीं हैं, क्योंकि ये तो निरवद्य हैं, अर्थात् राग द्वेष आदि दोषों से रहित हैं, ऐसा इसलिए कि इनमें अहङ्कार है ही नहीं वह भी इसलिए है कि वे भेद रहित होने के कारण अद्वितीय हैं । समदर्शी हैं तथा सर्वात्मा है । अर्थात् समदर्शित्व के कारण सर्वात्मा हैं । समदर्शित्व और सर्वात्मत्व में हेतुहेतुमद्भाव है ।।२१।।

तथाप्येकान्तभक्तेषु पश्य भूपानुकम्पितम् । यन्मेऽसूंस्त्यजतः साक्षात्कृष्णो दर्शनमागतः ॥२२॥

अन्वयः— तथापि हे भूप ! एकान्तभक्तेषु अनुकम्पितम् पश्य यत् असून् त्यजतः मे साक्षात् कृष्णः दर्शनमागतः ॥२२॥

अनुवाद— फिर भी हे राजन् ! इनकी अपने ऐकान्तिक भक्तों पर अनुकम्पा तो देखो कि अपने प्राणों का त्याग करते समय ये भगवान् श्रीकृष्ण मुझे साक्षात् दर्शन देने के लिए आ गये ॥२२॥

भावार्थदीपिका

तथापि समत्वेऽपि । हे भूप, अनुकम्पितमनुकम्पाम् ॥२२॥

भावप्रकाशिका

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण समदर्शी हैं फिर भी इनकी अपने ऐकान्तिक भक्तों पर होने वाली कृपा को तो देखो इस समय मैं अपने प्राणों का परित्याग करने जा रहा हूँ और इस समय ये भगवान् मुझ पर कृपा करके मुझे साक्षात् दर्शन देने के लिए आ गये हैं ॥२२॥

भक्त्यावेश्य मनोयस्मिन्वाचा यन्नाम कीर्तयन् । त्यजन्कलेवरं योगी मुच्यते कामकर्मभिः ॥२३॥

अन्वयः— भक्त्या यस्मिन् मनः आवेश्य, वाचा यन्नामगृणन्, कलेवरम् त्यजन् योगी कामकर्मभिः मुच्यते ॥२३॥

अनुवाद— जिन श्रीभगवान में भक्ति के द्वारा अपने मन को लगाकर उनके नामों का उच्चारण करते हुए अपने शरीर का त्याग करने वाला योगी कामनाओं तथा कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥२३॥

भावार्थदीपिका

इदानीं स्वदेहत्यागपर्यन्तं श्रीकृष्णावस्थानं प्रार्थयते-भक्त्येति द्वाभ्याम् ॥२३॥

भावप्रकाशिका

अब भीष्मजी **भक्त्यावेश्य० इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हैं कि तब तक वे उनके सामने बने रहें जब तक कि वे अपने शरीर का परित्याग करते हैं ॥२३॥

स देवदेवो भगवान्प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम् ।
प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसन्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥२४॥

अन्वयः— यावद् इदं कलेवरम् अहम् हिनोमि तावत् सः प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसत्मुखाम्बुजः ध्यानपथः चतुर्भुजः देवदेवः भगवान् प्रतीक्षताम् ॥२४॥

अनुवाद— भीष्मजी ने कहा जब तक मैं इस शरीर का परित्याग करता हूँ तब तक मनोहर हँसी और लाल कमल के समान मनोहर नेत्रों से युक्त मुख कमल वाले, जिनका ध्यान में ही चतुर्भुज रूप से दर्शन होता है ऐसे देवताओं के भी आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ मेरे शरीर त्याग की प्रतीक्षा करें ॥२४॥

भावार्थदीपिका

यावदिति विलम्बं द्योतयति । अहं हिनोमि त्यजामीति स्वातन्त्र्यम् । इदमित्यनात्मत्वेन ज्ञातम् । प्रसन्नहासेनरुणलोचनाभ्यां चोल्लसद्रुचिरं मुखाम्बुजं यस्य । ध्यानस्य पन्था विषयः । योऽन्यैश्चिन्त्यते केवलं सोऽग्रतः स्थितः सन्मां प्रतीक्षतामित्यर्थः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

भीष्मजी **यावत्** पद का प्रयोग करके शरीर त्याग करने में होने वाले विलम्ब को सूचित करते हैं । **अहं हिनोमि** इस वाक्यांश के द्वारा उन्होंने शरीर त्याग के विषय में अपने स्वतन्त्र्य को सूचित किया है । **इदम्** शब्द के द्वारा उन्होंने सूचित किया है कि शरीर आत्मा से भिन्न है । **ध्यानपथः** अर्थात् ध्यान में प्रतीत होने वाले ।

जिन श्रीभगवान् का दूसरे लोग चिन्तन करते हैं वे भगवान् मेरे आँखों के सामने स्थित रहकर मेरे शरीर त्याग की प्रतीक्षा करें। **प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लन्मुखाम्बुजः** पद का विग्रह इस प्रकार है प्रसन्नहासेन अरुण लोचनाभ्याम् च उल्लसद्रुचिरं मुखाम्बुजम् यस्य सः ॥२४॥

सूत उवाच

युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्य शयानं शरपञ्जरे । अपृच्छद्विविधान्धर्मानृषीणामनुशृण्वताम् ॥२५॥

अन्वयः— तदाकर्ण्य युधिष्ठिरः शरपञ्जरे शयानं ऋषीणां च अनुशृण्वताम् विविधान् धर्मान् अपृच्छत् ॥२५॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— भीष्मजी के उस वाक्य को सुनकर महाराज युधिष्ठिर ने शरशय्या पर सोये हुए भीष्मजी से ऋषियों के सामने ही अनेक धर्मों के विषय में प्रश्न किए ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तत् सानुकम्पं वाक्यमाकर्ण्य ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

भीष्मजी के अनुकम्पायुक्त वाक्य को सुनकर राजा युधिष्ठिर ने भीष्मजी से अनेक धर्मों के रहस्यों के विषय में पूछा ॥२५॥

पुरुषस्वभाविहितान्यथावर्णं यथाश्रमम्। वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातोभयलक्षणान् ॥२६॥
दानधर्मान्राजधर्मान्मोक्षधर्मान्विभागशः । स्त्रीधर्मान्भगवद्धर्मान्समासव्यासयोगतः ॥२७॥
धर्मार्थकाममोक्षांश्च सहोपायान्यथा मुने। नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास तत्त्ववित्॥२८॥

अन्वयः— हे मुने ! तत्त्ववित् भीष्मः यथावर्णं यथाश्रमम् पुरुषस्वभावविहितान् वैराग्यरागोपाधिभ्याम् आम्नातोभय लक्षणान् दानधर्मान्, राजधर्मान, मोक्षधर्मान् स्त्रीधर्मान्, भगवद्धर्मान् विभागशः समास व्यासयोगतः धर्मार्थकाममोक्षान् च सहोपायान् यथा नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास ॥२६-२८॥

अनुवाद— हे शौनकजी ! तत्त्ववेता भीष्मजी ने वर्णों एवं आश्रमों के अनुसार पुरुषों के स्वाभाविक धर्मरूप से बतलाये गये वैराग्य तथा राग रूपी उपाधियों के कारण निवृत्ति तथा प्रवृत्ति इन दोनों प्रकार के धर्मों का वर्णन किया। उन्होंने, दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, स्त्रीधर्म तथा भगवद्धर्म को अलग-अलग विभाग पूर्वक संक्षेप में तथा विस्तार से वर्णन किया। हे मुने ! उन्होंने धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारो पुरुषार्थों का तथा उनकी प्राप्ति के साधनों का भी अनेक आख्यानों और इतिहासों के माध्यम से वर्णन किया ॥२६-२८॥

भावार्थ दीपिका

पुरुषस्वभावेन विहितान्नरजातिसाधारणान् वर्णयामासेति तृतीयेनान्वयः । यथावर्णं वर्णधर्मान् । यथाश्रममाश्रमधर्मांश्च। वैराग्यरागाभ्यामुपाधिभ्यां क्रमेणाम्नतमुभयं निवृत्तिप्रवृत्तिरूपं लक्षणं येषां तान् ॥२६॥ पुनस्तत्रैव विशेषमाह- दानेति । मोक्षधर्मान् शमदमादीन् । भगवद्धर्मान् हरितोषणान् द्वादश्यादिनियमरूपान् । समासव्यासौ संक्षेपविस्तारौ तावेव योगावुपायौ ततस्ताभ्याम्॥२७॥ धर्मादींश्च यथाधिकारं प्रतिनियतोपायसहितान् । यथा यथावत् नानाख्यानेषु ये इतिहासास्तेषु यथा सन्ति तथा वर्णयामासेति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

पुरुष स्वभाव के अनुसार मनुष्य जाति के लिए समान रूप से बतलाये गये धर्मों का वर्णन किया **यथावर्णम्** अर्थात् तत्-तत् वर्णों के जो धर्म हैं, एवं तत्-तत् आश्रमों के जो धर्म हैं उन वैराग्योपधि से युक्त निवृत्ति धर्मों एवं रागोपाधि से युक्त प्रवृत्ति धर्मों का भी उन्होंने वर्णन किया।

पुनस्तत्रैव विशेषम्० इत्यादि- उसके पश्चात् उन सबों में होने वाली विशेषताओं को बतलाते हुए कहते हैं- **दानधर्मान्० इत्यादि** दानधर्म, शम दम इत्यादि रूप मोक्षधर्मों द्वादशी आदि तिथियों को उपवास आदि के नियमों से युक्त श्रीहरि को प्रसन्न करने वाले मोक्षधर्मों को, उनके उपायों के साथ उन्होंने संक्षेप में तथा विस्तार से बतलाया । इनमें जो धर्म जिसके लिए बतलाये गये हैं, उनके पालन में जिन लोगों का अधिकार है, तथा उनके अनुष्ठान के जो निश्चित किए गये उपाय हैं, इन सबों के साथ उन्होंने बतलाया । अनेक आख्यानों तथा इतिहासों में वे जैसे वर्णित किए गये हैं वैसे ही उन सबों को उन्होंने युधिष्ठिर को बतलाया ।।२६-२८।।

धर्मं प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः । यो योगिनश्छन्दमृत्योर्वाञ्छितस्तूत्तरायणः ।।२९।।

अन्वयः— धर्मं प्रवदतः तस्य सः उत्तरायणः कालः समुपस्थितः यः छन्दमृत्योः योगिनः वाञ्छितः ।।२९।।

अनुवाद— इस तरह से धर्मोपदेश करते हुए वह उत्तरायण का समय आ गया जिसको अपनी इच्छा के अनुसार शरीर त्याग करने वाले योगिजन चाहते हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

छन्देनेच्छया मृत्युर्यस्य ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

इन सभी धर्मों का उपदेश करते हुए दक्षिणायन का काल समाप्त हो गया और उत्तरायण आ गया । यह वही समय है जिस समय में योगिजन अपनी इच्छा के अनुसार शरीर त्याग करते हैं । **छन्दमृत्योः** पद का विग्रह **छन्देन इच्छया मृत्युः यस्य** है ।।२९।।

तदोपसंहृत्य गिरः सहस्रणीर्विमुक्तसङ्गं मन आदिपूरुषे ।
कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे पुरःस्थितेऽमीलितदृग्व्यधारयत् ।।३०।।

अन्वयः— तदा सहस्रणीः गिरः उपसंहृत्य, पुरःस्थिते लसत्पीतपटे चतुर्भुजे आदिपुरुषे कृष्णे आमीलितदृक् विमुक्त सङ्गम् मनः व्यधारयत् ।

अनुवाद— उस समय भीष्मजी ने बोलना बन्द कर दिया और सामने विद्यमान सुन्दर पीताम्बर धारण किए हुए, चतुर्भुज रूपधारी आदि पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण में अपने निःसङ्ग मन को तथा खुली हुयी आँखों को लगा दिया ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

सहस्रणीर्युद्धे समीपस्थान् सहस्रं रथिनो नयति पालयतीति सहस्रणीर्भीष्मः । '**सहस्रिणीः**' इति पाठे सहस्रार्थवतीर्गिरः । लसन्तौ पीतौ पटौ यस्य तस्मिन् अमीलितदृगेव मनो व्यधारयत् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

सहस्रणी उस वीर को कहते हैं जो युद्ध में अपने सन्निकटस्थ एक हजार रथियों की रक्षा करता है । भीष्मजी सहस्रणी थे । जहाँ पर सहस्रिणी पाठ है, वहाँ पर हजारों अर्थों वाली वाणी अर्थ होगा । **लसत् पीतपटे** का विग्रह है, **लसन्तौ पीतौ पटौ यस्य तस्मिन्** है । भीष्मजी ने अपनी मन को सभी विषयों से समेट कर भगवान् श्रीकृष्ण में लगा दिया और एकटक से वे भगवान् श्रीकृष्ण को देखने लगे ।।३०।।

विशुद्धया धारणया हताशुभस्तदीक्षयैवाशु गतायुधव्यथः ।
निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रमस्तुष्टाव जन्यं विसृजन् जनार्दनम् ।।३१।।

अन्वयः— तदीक्षयैव आशु गतायुधव्यथः विशुद्धया धारणया हताशुभः, निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रमः जन्यं विसृजन् जनार्दनं तुष्टाव ।।३१।।

अनुवाद— श्रीभगवान् का दर्शन करने मात्र से ही उनकी आयुधों के प्रहार की जो व्यथा थी दूर हो गयी, और श्रीभगवान् में विशुद्ध धारणा होने के कारण उनके समस्त अशुभ विनष्ट हो गये । उन्होंने अपनी सारी इन्द्रियों के विलास का परित्याग कर दिया तथा इस शरीर का परित्याग करने की इच्छा करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

अनयैव विशुद्धया धारणया हतमशुभं यस्य सः । तस्य श्रीकृष्णस्येक्षया कृपादृष्ट्यैव गत आयुधश्रमो यस्य सः । अतएव निवृत्तः सर्वेन्द्रियवृत्तीनां विभ्रमो विविधं भ्रमणं यस्मात्सः । जन्यं देहं जनार्दनमस्तौत् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

इसी धारणा के द्वारा जिनके समस्त अशुभ विनष्ट हो गये थे तथा भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा दृष्टि के कारण जिनकी आयुध प्रहार जन्य व्यथा समाप्त हो गयी थी, अतएव उनकी इन्द्रियों का चाञ्चल्य समाप्त हो गया था। इस प्रकार के भीष्मजी अपने इस शरीर को त्यागने की इच्छा से श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ॥३१॥

भीष्म उवाच

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥३२॥

अन्वयः— इति सात्त्वपुङ्गवे विभूम्नि, स्वसुखमुपगते भगवति क्वचिद् विहर्तुम् प्रकृतिमुपेयुषि वितृष्णा भक्तिः उपकल्पिता यद्भवप्रवाहः ॥३२॥

श्रीभीष्मजी ने कहा

अनुवाद— अब मैं सात्त्वतों में श्रेष्ठ स्वेतर समस्त वस्त्वपेक्षया महान् होने के कारण अनन्त तथा स्वरूप भूत परमानन्द में स्थित रहते हुए कभी-कभी कहीं पर विहार करने के लिए अपनी योगमाया को जो अपनाते हैं ऐसे श्रीभगवान् में अपनी निष्काम बुद्धि को समर्पित करता हूँ । जिससे यह सृष्टि परम्परा चलती है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

परमफलरूपां श्रीकृष्णे रतिं प्रार्थयितुं प्रथमं स्वकृतमर्पयति । इति नानाधर्माद्युपायैर्मतिर्मनोधारणलक्षणा उपकल्पिता समर्पिता । क्व । सात्वतानां पुङ्गवे श्रेष्ठे भगवति । वितृष्णा निष्कामा । अवितृष्णेति वा छेदः । अवितृप्तेत्यर्थः । विगतो भूमा यस्मात्तस्मिन् । यमपेक्ष्यान्यत्र महत्त्वं नास्तीत्यर्थः । तदेव परमैश्वर्यमाह । स्वसुखं स्वस्वरूपभूतं परमानन्दमुपगते प्राप्तवत्येव। क्वचित् कदाचिद्विहर्तुं क्रीडितुं प्रकृतिं योगमायामुपेयुषि स्वीकृतवति नतु स्वरूपतिरोधानेन जीववत्पारतन्त्र्यमित्यर्थः । विहर्तुमिति यदुक्तं तत्प्रपञ्चयति । यद्यतः प्रकृतेर्भवप्रवाहः सृष्टिपरम्परा भवति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण में प्रेमाभक्ति का होना ही जीवन का सबसे बड़ा फल है । उसके लिए प्रार्थना करने के लिए अपने किए हुए कर्मों को श्रीभगवान् को समर्पित करते हुए भीष्मजी कहते हैं । **इतिमतिरुपकल्पिता० इत्यादि** अनेक प्रकार के धर्मादि साधनों से मनोधारणा स्वरूपिणी बुद्धि को मैंने लगा दी है । यदि पूछें कि किस में तो इसका उत्तर है । यदुवंशियों में श्रेष्ठ पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण में लगा दी है । वह जो मेरी निष्काम बुद्धि है, सभी कामनाओं से रहित है । यदि अवितृष्णा पदच्छेद करें तो उसका अर्थ होगा अवितृप्त । क्योंकि श्रीभगवान् का दर्शन करने से मेरी बुद्धि तृप्त नहीं हुयी है । वे भगवान् विभूमा है, अर्थात् उनसे महान् कुछ भी नहीं है । **विगतो भूमा यस्मात् तस्मिन्** यह **विभूम्नि** पद का विग्रह है । वही श्रीभगवान् का परम ऐश्वर्य है । वे श्रीभगवान् अपने स्वरूपभूत

परमानन्द में स्थित रहकर ही जब कभी लीला करना चाहते हैं तो वे उसके लिए अपनी योगमाया को अपना लेते हैं । उसी से यह सृष्टि का प्रवाह प्रवृत्त होता है । वे जैसे जीव अपने स्वरूप के माया के द्वारा तिरोहित हो जाने के कारण माया के परतन्त्र हो जाता है वैसे भगवान् माया के परतन्त्र न होकर स्वतन्त्र रूप से लीलाओं को करते हैं ।।३२।।

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने ।
वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ।।३३।।

अन्वयः— त्रिभुवन कमनं तमाालवर्णं रविकगौरवराम्बरं, अलककुलावृताननाब्जं वपुः दधाने विजयसखे मे अनवद्या रतिः अस्तु ।।३३।।

अनुवाद— त्रैलोक्य में सबसे सुन्दर तमाल पत्र के समान श्याम वर्ण वाले, प्रात:कलीन सूर्य की किरणों के समान पीले श्रेष्ठ पीताम्बर को धारण किए हुए, काले घुंघराले केशों से आच्छन्न मुख कमल वाले शरीर को धारण करने वाले अर्जुन के मित्र भगवान् श्रीकृष्ण में मेरी अहैतुकी (फलाभिसंधि) रहित प्रेममयी बुद्धि बनी रहे ।।३३।।

भावार्थदीपिका

इदानीं श्रीकृष्णमूर्तिं वर्णयन् रतिं प्रार्थयते । त्रिभुवनकमनं त्रिलोक्यामेकमेव कमनीयं यत्तद्वपुर्दधाने रतिर्मेऽस्तु कथंभूतं वपुः । तमालवन्नीलो वर्णो यस्य तत् । प्रातःकालीना रवेः करा इव स्वत एव गौरे पीते वरे निर्मले चाम्बरे यस्मिंस्तत अलककुलैरुपर्यावृतमाननाब्जं यस्मिंस्तत् । विजयसखे पार्थसारथौ अनवद्या अहैतुकी फलाभिसन्धिरहित रतिरस्तु ।।३३।।

भावप्रकाशिका

अब भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर का वर्णन करते हुए भीष्मजी उनमे प्रेमाभक्ति की प्रार्थना करते हुए कहत हैं कि त्रैलोक्य सुन्दर शरीर को धारण करने वाले श्रीभगवान् में मेरी प्रेममयी बुद्धि हो । श्रीभगवान् का वह शरी तमाल पत्र के समान श्याम वर्ण का है । वे प्रात:कालीन सूर्य के समान पीले दो श्रेष्ठ पीताम्बरों को धारण कि हुए हैं । काले घुंघराले केश उनके मुख कमल पर लटके हुए हैं । ऐसे श्रीभगवान् अर्जुन के मित्र हैं । ऐसे श्रीकृष भगवान् में मेरी निष्काम प्रेममयी बुद्धि बनी रहें ।।३३।।

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये ।
मम निशितशरैर्विभिद्यमानत्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ।।३४।।

अन्वयः— युधि, तुरगरजो विधूम्रविष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये मम निशित शरैः विभिद्यमानत्वचि विलस कवचे कृष्णे आत्मा अस्तु ।।३४।।

अनुवाद— युद्ध में अश्वों के खुर से उठी हुयी धूलि से घूसरित चारो ओर फैले हुए बालों से विकीर्ण स्वे विन्दुओं से अलंकृत मुख वाले, मेरे तीक्ष्ण बाणों से टूटे हुए कवच वाले भगवान् श्रीकृष्ण में मेरा मन लगा रहे ।।३४

भावार्थ दीपिका

विजयसखित्वमेवानुवर्णयन् रतिं प्रार्थयते । युधि युद्धे तुरगाणां खुररजस्तुरगरजस्तेन विधूम्रा धूसारास्ते च ते विष्व इतस्ततश्चलन्तः कचाः कुन्तलास्तैर्लुलितं विकीर्णं श्रमवारि स्वेदबिन्दुरूपं तेन भक्तवात्सल्यद्योतकेनालंकृतमास्यं यस्य तस्मि श्रीकृष्णे ममात्मा मनोऽस्तु रमतामित्यर्थः । पुनः किंभूते । मदीयैर्निशितैस्तीक्ष्णैः शरैर्विभिद्यमाना त्वग्यस्य तस्मिन् । शरैरे विलसत्रुट्यत् कवचं यस्य तस्मिन् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की अर्जुन के साथ मित्रता का ही वर्णन करते हुए उनमें अपने प्रेममयी बुद्धि की प्रार्थना करते हुए भीष्मजी **युधि० इत्यादि** श्लोक में कहते हैं युद्ध में अश्वों के खुर से निकली हुयी धूलि से जिनके केश धूलिधूसरित हो गये थे । वे श्रीभगवान् के मुखमण्डल पर फैलकर उनके मुख के पसीने को हटाने का काम करते थे ऐसे मुखमण्डल वाले भगवान् श्रीकृष्ण में मेरी प्रेममयी बुद्धि बनी रहे । किञ्च मेरे तीक्ष्ण बाणों से जिनके कवच टूट गये थे और मेरे बाण उनकी त्वचा को छेद रहे थे ऐसे भगवान् में मेरी प्रेममयी बुद्धि बनी रहे । इस वर्णन से भीष्मजी ने श्रीभगवान् की भक्तवत्सलता का द्योतन किया हैं ।।३४।।

सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य ।
स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ।।३५।।

अन्वयः— सखिवचो निशम्य निजपरयोः बलयोर्मध्ये सपदि रथं निवेश्य स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा हृतवति पार्थसखे मम रतिः अस्तु ।।३५।।

अनुवाद— अपने मित्र अर्जुन की बातों को सुनकर अपनी और शत्रु की सेनाओं के बीच में शीघ्र ही रथ को लाकर स्थित तथा अपनी दृष्टिमात्र से शत्रु के सैनिकों की आयु को छीन लेने वाले अर्जुन के मित्र भगवान् श्रीकृष्ण में मेरी प्रेममयी बुद्धि बनी रहे ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

किंच सपदीति '**सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत । यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।।**' इति सख्युरर्जुनस्य वचो निशम्य सपदि तत्क्षणमेव स्वपरयोर्बलयोः सैन्ययोर्मध्ये रथं निवेश्य स्थिते पार्थसखे मम रतिरस्तु । तत्र स्थित्वा कृतं सख्यं दर्शयति । परस्य दुर्योधनस्य सैनिकानामायुरक्ष्णा कालदृष्ट्या हृतवति । असौ भीष्मोऽसौ द्रोणोऽसौ कर्ण इत्यादितत्तत्प्रदर्शनव्याजेन दृष्ट्यैव सर्वेषामायुराकृष्यार्जुनस्य जयं कृतवति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

किञ्च अर्जुन के हे अच्युत जिससे कि मैं इन युद्ध करने की कामना से तैयार शत्रुओं की सेना को देख लूं अतएव आप इन दोनों सेनाओं के बीच मेरे रथ को खड़ा कीजिये । इस वाणी को सुनकर उसी क्षण अपनी और शत्रु की सेनाओं के बीच में रथ को लाकर स्थित अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण भगवान् में मेरी प्रेममयी बुद्धि हो। वहाँ पर स्थित होकर उन्होंने जो मित्रभाव दिखाया उसको भीष्मजी ने कहा— उन्हांने दुर्योधन के सैनिकों की अपनी काल दृष्टि के द्वारा आयु को ही छिन लिया । ये भीष्म हैं ये द्रोणाचार्य हैं इत्यादि विभिन्न लोगों को दिखाने के बहाने सबों की आयु को खींचकर अर्जुन को जिन्होंने विजय दिलाया उन भगवान् में मेरी प्रेममयी बुद्धि हो ।।३५।।

व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या ।
कुमतिमहरदात्मविद्यया यश्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ।।३६।।

अन्वयः— व्यवहितपृतनामुखं निरीक्षय दोषबुद्ध्या स्वजनवधाद् विमुखस्य आत्मविद्यया यः कुमातिम् अहरत् तस्य परमस्य चरणरतिः मे अस्तु ।।३६।।

अनुवाद— दूरस्थ शत्रुओं की सेना में प्रमुख हमलोगों को देखकर दोष बुद्धि के उत्पन्न हो जाने से युद्ध में स्वजनों का वध करने से विमुख हुए अर्जुन के अज्ञान को जिन्होंने आत्मविद्या का उपदेश देकर दूर कर दिया उन परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में मेरी प्रेममयी बुद्धि बनी रहें ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

न केवलमर्जुनस्य सपत्नायुर्हरणेनैव जयमावहत् । किंत्वविद्याहरणेनापीत्याह । व्यवहिता दूरे स्थिता या पृतना तस्या मुखमिव मुखमग्रे स्थितान् । भीष्मादीन्निरीक्ष्येत्यर्थः । स्वजनवधाद्विमुखस्य निवृत्तस्य । तदुक्तं गीतासु **एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् । विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ।'** इति । कुमतिमहं हन्तेत्यादिकुबुद्धिम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

केवल शत्रुओं की आयु को छिनकर ही श्रीभगवान् अर्जुन को विजयी बनायें हो ऐसी बात नहीं है, अपितु उन्होंने अर्जुन के अज्ञान को भी दूर किया और उसके द्वारा उन्होंने अर्जुन को विजयी बनाया इस बात को भीष्मजी ने **व्यवहित० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा है । उन्होंने कहा— कि अर्जुन ने जब दूर से ही शत्रुओं की सेना को देखा और उसमें प्रमुख रूप से हमलोगों को देखा तो उसने सोचा कि इन लोगों का युद्ध में वध करना तो महापाप है । उसने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा भगवन् मैं इन लोगों से युद्ध नहीं कर सकता । गीताकार कहते हैं- **एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये० इत्यादि** अर्थात् युद्ध के मैदान में श्रीभगवान् से इस तरह से कहकर अर्जुन रथ के पिछले भाग में जाकर बैठ गये । उनहोंने धनुष बाण को रख दिया और उस समय उनका मन शोक से व्याकुल हो गया।

इस तरह से सोचना वस्तुतः अर्जुन का अज्ञान ही था वे सोचते थे कि मैं मारने वाला हूँ । अर्जुन के इस प्रकार के अज्ञान को आत्मविद्या का उपदेश देकर श्रीभगवान् ने दूर किया और अर्जुन को विजयी बनाया ।।३६।।

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ।।३७।।

अन्वयः— स्वनिगमम् अपहाय मत्प्रतिज्ञां अधिकं ऋतम् कर्तुम् रथस्थः अवप्लुतः, धृतरथचरणः इभं हन्तुं सिंह इव गतोत्तरीयः अभ्ययात् येन गुः अचलत् ।

अनुवाद— श्रीभगवान् ने प्रतिज्ञा की थी कि इस युद्ध में मैं बिना शस्त्र धारण किए हुए सहायता करूँगा। मैंने भी प्रतिज्ञा की थी की मैं भगवान् से शस्त्र उठवाकर ही रहूँगा । भीष्म पितामह के बाणों से व्याकुल अर्जुन को देखकर भगवान् रथ से पृथिवी पर कूद पड़े और अपने हाथ में चक्र उठाकर भीष्मजी पर टूट पड़े । उसी को याद करके भीष्मजी कहते हैं कि भगवान् तो सबकुछ करने में समर्थ हैं वे अपनी इच्छा मात्र से ही मुझे मार सकते थे, किन्तु मेरी प्रतिज्ञा को सत्य करने के लिए भगवान् अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ दिए । वे रथ से कूदकर अपने हाथ में चक्र उठाकर इतने वेग से मेरे सामने दौड़ पड़े कि पृथिवी काँप गयी और उनका उत्तरीय रास्ते में ही गिर पड़ा वे ऐसे मुझपर झपटे जैसे हाथी को मारने के लिए सिंह उस पर टूट पड़ा है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

मम तु महान्तमनुग्रहं कृतवानित्याह द्वाभ्याम् । स्वनिगममशस्त्र एवाहं साहाय्यमात्रं करष्यिामीत्येवंभूतां स्वप्रतिज्ञां हित्वा श्रीकृष्णं शस्त्रं ग्राहयिष्यामीत्येवंरूपां मत्प्रतिज्ञामृतं सत्यं यथा भवति तथा अधि अधिकां कर्तु यो रथस्थः सन् अवप्लुतः सहसैवावतीर्णः सन् योऽभ्ययादभिमुखमधावत् । इभं हन्तुं हरिः सिंह इव । किंभूतः । घृतो रथचरणश्चक्रं येन सः । तदा च संरम्भेण मानुष्यनाट्यविस्मृतेरुदरस्थसर्वभूतभुवनभारेण प्रतिपदं चलद्गुश्चलन्ती गौः पृथ्वी यस्मात्सः । तेनैव संरम्भेण पथि गतं पतितमुत्तरीयं वस्त्रं यस्य स मुकुन्दो मे गतिर्भवत्वित्युत्तरेणान्वयः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

भीष्मजी ने कहा कि श्रीभगवान् ने अर्जुन को विजयी बनाया और मेरे ऊपर तो उन्होंने बहुत बड़ी कृपा की । इस बात को इन दो श्लोकों के द्वारा वे कहते हैं । भगवान् की प्रतिज्ञा थी कि विना शस्त्र धारण किए ही मैं सहायता करूँगा । उन्होंने अपनी इस प्रतिज्ञा को तोड़ दी । मेरी जो यह प्रतिज्ञा थी कि मैं श्रीकृष्ण से शस्त्र

उठवाकर ही रहूँगा मेरी इस प्रतिज्ञा को पूर्ण रूप से सत्य करने के लिए वे जो रथ पर बैठे थे सहसा कूद पड़े और अपने हाथ में सुदर्शन चक्र उठाकर मेरे सामने उसी तरह दौड़ पड़े जिस तरह से कोई सिंह किसी हाथी को मारने के लिए उस पर टूट पड़ता है ।

उस समय मानवीय लीला करते हुए श्रीभगवान् इस बात को भूल गये कि उनके उदर में ही सम्पूर्ण जगत् का निवास है । उनके प्रत्येक डेग के भार से पृथिवी काँप रही थी और उनका उत्तरीय बीच मार्ग में ही गिर पड़ा था । ऐसे भगवान् मुकुन्द मेरे एक मात्र आश्रय बनें । यह अगले श्लोक से अन्वित है ।।३७।।

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ।
प्रसभमभिससार मद्वधार्थं स भवतु मे भगवन् गतिर्मुकुन्दः ।।३८।।

अन्वयः— मे शितविशिखहतः विशीर्णदंश क्षतजपरिप्लुतः आततायिनः मद्वधार्थम्प्रसभं य अभिससार स भगवान् मुकुन्दः मे गतिः भवतु ।।३८।।

अनुवाद— मेरे तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से जिनका कवच टूट गया था, और वे रक्त से सराबोर हो गये थे, उसके पश्चात् मुझ आततायी का वध करने के लिए जो भगवान् वेग से दौड़ पड़े वे ही भगवान् मुकुन्द मेरे एक मात्र आश्रय हों ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

एवं यदाऽभ्ययात्तदा स्मयमानस्याततायिनो धन्विनो में शितैस्तीक्ष्णैर्विशिखैर्हतोऽतो विशीर्णदंशो विध्वस्तकवचः क्षतजेन रुधिरेण परिप्लुतो व्याप्तः सन् प्रसभं बलाद्वारयन्तमर्जुनमप्यतिक्रम्य मद्वधार्थमभिससाराभिमुखं जगाम । एवं यो लोकप्रतीत्यार्जुनपक्षपातीव लक्षितो वस्तुतस्तु ममैवानुग्रहं कृतवान्यन्मद्भक्तेनोक्तं वचो मा मृषाऽस्त्विति स भगवान्मे गतिर्भवत्वित्यर्थः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

भीष्मजी कहते हैं जब भगवान् हाथ में चक्र धारण करके मेरे समक्ष दौड़े उस समय मैं मुस्कुरा रहा था। मुझे गर्व था कि मैंने अपनी प्रतिज्ञा सत्य कर ली और श्रीकृष्ण की प्रतिज्ञा टूट गयी । इस तरह से त्रैलोक्याधिपति से द्रोह करने के कारण धनुष धारण किए मैं अतातायी था । मेरे तीक्ष्ण बाणों के प्रहार से भगवान् का कवच टूट गया था और वे रक्त से सराबोर हो गये थे । अर्जुन उनको बलपूर्वक रोक रहे थे; किन्तु वे माने नहीं अपितु मुझ पर टूट ही पड़े । यह देखकर लोगों को लगा कि भगवान् अर्जुन के पक्षपाती हैं किन्तु वह तो श्रीभगवान् का मुझ पर अनुग्रह था वे सोचे मेरी प्रतिज्ञा टूट जाय किन्तु मेरे भक्त भीष्म की प्रतिज्ञा तो सुरक्षित रहे । ऐसे भगवान् एकमात्र मेरे आश्रय रहें ।।३८।।

विजयरथकुटुम्ब आत्ततोत्रे घृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये ।
भगवति रतिरस्तु मे मुमूर्षोर्यमिह निरीक्ष्य हता गताः सरूपम् ।।३९।।

अन्वयः— विजयरथकुटुम्बे आततोत्रे घृतहयरश्मिनि, तच्छ्रिया ईक्षणीये भगवति मुमुर्षोः मे रतिः अस्तु, यमिह निरीक्ष्य हताः गताः सरूपम् ।।३९।।

अनुवाद— अर्जुन के रथ की रक्षा में सावधान रहने वाले, अपने दाहिने हाथ में अश्वों को हाँकने के लिए चाबुक धारण करने वाले तथा बायें हाथ में घोड़ों की लगाम धारण करने वाले दर्शनीय शोभा से सम्पन्न श्रीभगवान् में मेरी परम प्रीति हो ।।३९।।

भावार्थदीपिका

तदेवमन्यायैरपि भृत्यरक्षाव्यग्रे कृष्णे रतिमाशास्ते । विजयोऽर्जुनस्तस्य रथ एव कुटुम्बमकृत्यशतैरपि रक्षणीयो यस्य तस्मिन् । आत्तं तोत्रं प्रतोदो येन तस्मिन् । धृताश्च ते हयानां रश्मयः प्रग्रहास्ते सन्ति यस्य तस्मिन् । '**व्रीह्यादिभ्यश्च**' इत्यनकारान्तादपि रश्मिशब्दादिनिः । तच्छ्रिया तया सारथ्यश्रिया ईक्षणीये शोभमाने । मुमूर्षोर्मर्तुमिच्छोः । नत्वन्यायवर्तिनि किमिति रतिः प्रार्थ्यतेऽत आह । भगवत्यचिन्त्यैश्वर्ये । तदाह । इह युद्धे हताः सर्वे यं निरीक्ष्य सरूपं तत्समानं रूपं गताः प्राप्ता इति दिव्यदृष्ट्या पश्यन्नाह ।।३९।।

भावप्रकाशिका

इस तरह से अन्यायों के द्वारा भी अपने भक्त की रक्षा करने में व्यग्र रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण में अपने प्रीति की प्रार्थना करते हुए भीष्मजी **विजयरथ० इत्यादि** कहते हैं अर्जुन का एक नाम विजय था । उनका रथ ही श्रीभगवान् का कुटुम्ब है, उसकी रक्षा सैकड़ों अकृत्यों से भगवान द्वारा रक्ष्य है । तथा वे चाबुक धारण किए हुए है । तोत्र चाबुक का नाम है । तथा वे अश्वों के लगाम को धारण करने वाले हैं । रश्मिनि शब्द में इनि प्रत्यय नकारान्त नही होने पर भी **व्रीह्यादिभ्यश्च** इस सूत्र से इनी हुआ है । उन श्रीभगवान् के सारथिरूप की शोभा भी दर्शनीय थी । उस श्री से सुशोभित श्रीभगवान् में मेरी प्रीति बनी रहे । भगवत् शब्द का प्रयोग करके उनको अचिन्त्य ऐश्वर्य सम्पन्न कहा गया है । इस युद्ध में जो मारे गये हैं वे सबके श्रीभगवान् के इस सौन्दर्य को देखकर सारूप्य मुक्ति को प्राप्त कर लिए हैं इस बात को अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर उन्होंने कहा ।।३९।।

ललितगतिविलासवल्गुहासप्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ।
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपवध्वः ।।४०।।

अन्वयः— ललितगति विलास वल्गुहासप्रणयनिरीक्षण कल्पितोरुमानाः उन्मदान्धाः यस्य कृतम् अनुकृतवत्यः गोपवध्वः किल प्रकृतिम् अगन् ।।४०।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की मनोहर चाल, विलास, हावभाव युक्त चेष्टाएँ, मधुरमुसकान तथा प्रेम पूर्वक अवलोकन के द्वारा अत्यन्त सम्मानित, जिनकी गोवर्धन धारण आदि लीलाओं का अनुकरण करके गोपियाँ सारूप्य मुक्ति को प्राप्त कर लीं उन्हीं श्रीभगवान् में मेरा परम प्रेम हो ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

क्षत्रधर्मेण युध्यमानास्तत्सरूपं प्रापुरित्येतन्न चित्रम् । यतो मदान्धा अपि प्रापुरित्याह । ललितगतिश्च विलासश्च वल्गुहासादिश्च मञ्जुगत्यादिभिरात्मीयैस्तदीयैर्वा कल्पित उरुर्मानः पूजा यासां ताः । अत उत्कटेन मदेनान्धा विवशाः । अतएव तदेकचित्तत्वेन तस्य कृतं कर्म गोवर्धनोद्धरणादिकमनुकृतवत्यो गोपवध्वो यस्य प्रकृतिं स्वरूपमगन्नगमन् । मकारलोपस्त्वार्षः किल प्रसिद्धम्। तस्मिन्मे रतिरस्त्विति पूर्वेणैवान्वयः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

क्षत्रिय धर्म के अनुसार उनसे युद्ध करने वाले श्रीभगवान् की सरूपता को प्राप्तकर लिए यही आश्चर्य नहीं है, अपितु मदान्ध गोपियों ने भी उनकी सरूपता प्राप्त कर ली । श्रीभगवान् की मनोहर चाल, विलास, हाव-भाव पूर्ण चेष्टाएँ, मधुर हँसी तथा प्रेम पूर्वक अवलोकन के द्वारा जिन सबों ने अत्यधिक सम्मान प्राप्त कर लिया था वे उन्मदान्ध अत्यधिक मद के कारण मदमत्त बनी हुयी गोपियाँ श्रीभगवान् के विरह से व्याकुल होकर उनके द्वारा की गयी गोवर्धनधारण आदि की लीलाओं का अनुकरण करके हीं सरूप मुक्ति को प्राप्त कर ली यह प्रसिद्ध है, उन्हीं श्रीभगवान् में मेरी अत्यन्त प्रेममयी बुद्धि बनी रहे, इस तरह से इसका पहले के श्लोक से अन्वय है ।।४०।।

मुनिगणनृपवर्यसंकुलेऽन्तःसदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम् ।
अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो मम दृशिगोचर एष आविरात्मा ॥४१॥

अन्वयः— युधिष्ठिरराजसूये मुनिगणनृपवर्यसंकुले अन्तः सदसि एषाम् अर्हणम् उपपेदे, ईक्षणीयः एष आत्मा मम दृशिगोचरः आविः अस्ति ॥४१॥

अनुवाद— युधिष्ठिर के राजसूर्य यज्ञ के अवसर पर मुनि समूह तथा श्रेष्ठ राजाओं से भरी हुयी सभा के भीतर जिन्होंने इन पाण्डवों के द्वारा अग्रपूजा प्राप्त की ऐसे देखने योग्य सबों की अन्तरात्मा ये भगवान् मेरी इस मृत्यु की बेला में मेरी आँखों के सामने विराजमान हैं, इन्हीं श्रीभगवान् में मेरा अत्यन्त प्रेम होए ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

जगत्पूज्यतामनुस्मरन्नाह । मुनिगणैर्नृपवर्यैश्च सङ्कुले व्याप्तेऽन्तःसदसि सभामध्ये युधिष्ठिरस्य राजसूये एषां मुनिगणादीनामीक्षणीयः अहो रूपमहो महिमेत्येवमाश्चर्येण विलोकनीयः सन्नर्हणमुपपेदे प्राप । एष जगतामात्मा दृशिगोचरो दृष्टिविषयः सन्नाविः प्रकटो वर्तते । अहो मे भाग्यमिति भावः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की जगत् पूज्यता का स्मरण करते हुए भीष्मजी मुनिगण इत्यादि श्लोक को कहते हैं । मुनिसमूहों तथा श्रेष्ठ राजाओं से भरी हुयी सभा के बीच में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर इन मुनि समूहों के द्वारा कितनी महान है इनकी महिमा यह सोचकर आश्चर्य पूर्वक देखने योग्य ये श्रीभगवान् इन पाण्डवों के द्वारा अग्रपूजा को प्राप्त किए इस प्रकार के सम्पूर्ण जगत् की आत्मा श्रीभगवान् इस मेरे शरीर त्याग की बेला में मेरी आँखों के सामने विराजमान हैं, यह मेरा परम सौभाग्य है ॥४१॥

तमिममहमज शरीरभाजां हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम् ।
प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥४२॥

अन्वयः— आत्मकल्पितानाम् शरीरभाजाम् हृदि-हृदि धिष्ठितम् एकम् अर्कम् अनेकधा प्रतिदृशमिव विधूतभेदमोहःतम् इमम् अजम् समधिगतोऽस्मि ॥४२॥

अनुवाद— उन श्रीभगवान् के ही द्वारा कल्पित शरीरधारियों के प्रत्येक हृदय को अधिष्ठित करने वाले अधिष्टिान भेद के कारण प्रत्येक देखने वालों को भ्रम के कारण अनेक दिखने वाले एक ही सूर्य के समान इन अजन्मा श्रीभगवान् को मैंने प्राप्त कर लिया है ।

भावार्थ दीपिका

सोऽहं कृतार्थोऽस्मीत्याह । तमिममजं सम्यगधिगतः प्राप्तोऽस्मि । सम्यक्त्वमाह । विधूतभेदमोहः । तदर्थ भेदस्यौपाधिकत्वमाह। आत्मकल्पितानां स्वयं निर्मितानां शरीरभाजां प्राणिनां हृदि हृदि प्रतिहृदयं धिष्ठितमधिष्ठितम् । अधिष्ठाय स्थितमिति यावत् । अकारलोपस्त्वार्षः । नैकधा अनेकधा । अधिष्ठानभेदनेकधा भातमित्यर्थः । अत्र दृष्टान्तः- सर्वप्राणिनां दृशं दृशं प्रत्येकमेवार्कमनेकधा प्रतीतमिवेति ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

तमिम् इत्यादि श्लोक के द्वारा भीष्मजी बतलाते हैं कि मैं तो कृतार्थ हो गया हूँ । क्योंकि मैंने उस अज परमात्मा को अच्छी तरह से प्राप्त कर लिया है । प्राप्ति की सम्यक्ता को बतलाते हुए उन्होंने कहा— मेरा भेदमोह समाप्त हो गया है । वे परमात्मा अपने से ही निर्मित इन प्रत्येक शरीरधारियों के हृदय में अधिष्ठित होकर विराजमान हैं, फिर भी वे अधिष्ठानों की भिन्नता के कारण अनेक रूप में प्रतीत होते हैं, यह उसी तरह से प्रतीति होती

है जिस तरह सूर्य के एक होने पर अधिष्ठान की भिन्नता के कारण अनेक सूर्य प्रतीत होते है । **धिष्ठितम्** में अकार का लोप आर्ष प्रयोग के कारण हो गया है ॥४२॥

सूत उवाच

कृष्ण एवं भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः । आत्मन्यात्मानमावेश्य सोऽन्तःश्वास उपारमत् ॥४३॥

अन्वयः— मनोवाग्दृष्टि वृत्तिभिः कृष्ण एव भगवति आत्मन्यात्मानम् आवेश्य सः अन्तःश्वासः उपारमत् ॥४३॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— मन, वाणी तथा दृष्टि की वृत्तियों को आत्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण में भीष्मजी ने लीन कर दिया और उनके श्वासों का विराम हो गया ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

मनोवाग्दृष्टीनां वृत्तिभिः । परमात्मनि श्रीकृष्णे । अन्तरेव विलीनः श्वासो यस्य सः ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

भीष्मजी के मन, वाणी और दृष्टियाँ अपनी-अपनी वृत्ति के साथ भगवान् श्रीकृष्ण में लीन हो गयीं और उन्होंने अन्तिम श्वास लिया ॥४३॥

सम्पद्यमानमाज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले । सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं वयांसीव दिनात्यये ॥४४॥

अन्वयः— निष्कले ब्रह्मणि सम्पद्यमानं भीष्मम् आज्ञाय ते सर्वे दिनात्यये व्यांसि इव तुष्णीं बभूवुः ॥४४॥

अनुवाद— निष्कल ब्रह्म में लीन हुए भीष्मजी को जानकर वे सभी उसी तरह से मौन हो गये जिस तरह दिन के बीत जाने पर पक्षीगण बोलना बन्द कर देते हैं ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

निष्कले निरुपाधौ परात्मनि । संपद्यमानं मिलितमाज्ञायालक्ष्य । वयांसि पक्षिण इव ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

उपाधि रहित अखण्ड ब्रह्म में भीष्मजी को मिल गये जानकर वे सभी लोग जो वहाँ पर भीष्मजी को देखने के लिए आये थे, उसी तरह से चुप हो गये जिस तरह दिन के बीत जाने पर पक्षीगण बोलना बन्द कर देते हैं॥४४॥

तत्र दुन्दुभयो नेदुर्देवमानववादिताः । शशंसुः साधवो राज्ञां खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः ॥४५॥

अन्वयः— तत्र देवमानवादिताः दुन्दुभयो नेदुः राज्ञां साधवः शसंसुः खात् पुष्पवृष्टयः पेतुः ॥४५॥

अनुवाद— उस समय देव मानवों ने दुन्दुभियों को बजाया, सज्जन राजाओं ने प्रशंसा किया और आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुयी ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

देवैर्मानवैश्च वादिताः । राज्ञां मध्ये ये साधवोऽनसूयवः ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं और मानवों ने दुनदुभियों को बजाया जो असूया रहित राजागण थे वे उनकी प्रशंसा किए ॥४५॥

तस्य निर्हरणादीनि संपरेतस्य भार्गव । युधिष्ठिरः कारयित्वा मुहूर्तं दुःखितोऽभवत् ॥४६॥

अन्वयः— हे भार्गव ! सम्परेतस्य तस्य निर्हरणादीनि कारयित्वा युधिष्ठिरः मुहूर्तं दुःखितः अभवत् ॥४६॥

अनुवाद— हे भृगुवंशी शौनकजी ! मरे हुए भीष्मजी की दाहादि क्रियाओं को राजा युधिष्ठिर ने कराया और कुछ समय तक के लिए वे दुःखी हुए ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

निर्हरणादीनि दाहसंस्कारादीनि । सम्यक् परेतस्य । मुक्तस्यापीत्यर्थः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

निर्हरणादीनि पद से दाहादि संस्कार आदि को कहा गया है । **सम्परेतस्य** का अर्थ केवल मरे हुए ही नहीं है अपितु मुक्त हुए भी है ।।४६।।

तुष्टुवुर्मुनयो हृष्टाः कृष्णं तद्गुह्यनामभिः । ततस्ते कृष्णहृदयाः स्वाश्रमान्प्रययुः पुनः ।।४७।।

अन्वयः— हृष्टाः मुनयः कृष्णं गुह्यनामभिः तुष्टुवुः । ततः कृष्णहृदयाः ते पुनः स्वाश्रमान् प्रययुः ।।४७।।

अनुवाद— उसके पश्चात् प्रसन्न हुए मुनिजन उनके गोपनीय नामों से भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति किए और उसके पश्चात् फिर भगवान् श्रीकृष्ण को अपने हृदय में धारण किए हुए वे लोग अपने-अपने आश्रमों में चले गये ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

तस्य गुह्यनामभिर्वेदोक्तैः । कृष्ण एव हृदयं येषां ते कृष्णहृदयाः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के वेदोक्त रहस्यात्मक नामों से मुनियों ने उनकी स्तुति की । वे ऋषिगण कृष्णहृदय थे। अर्थात् भगवान् ही उनके हृदय थे ।।४७।।

ततो युधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णो गजाह्वयम् । पितरं सान्त्वयामास गान्धारीं च तपस्विनीम् ।।४८।।

अन्वयः— ततः सह कृष्णः गजाह्वयम् गत्वा युधिष्ठिरः पितरं तपस्विनीम् गान्धारीं च सान्त्वयामास ।।४८।।

अनुवाद— उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण के साथ हस्तिनापुर में जाकर महाराज युधिष्ठिर अपने पिता धृतराष्ट्र को तथा पुत्रों के दुःसह शोक से सन्तप्त गान्धारी को सान्त्वना प्रदान किये ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

पितरं धृतराष्ट्रम् । तपस्विनीं सन्तापवतीम् ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में **पितरम्** पद से धृतराष्ट्र को कहा गया है । **तपस्विनीम्** पद से पुत्रों के दुःसह शोक से युक्त गान्धारी को कहा गया है ।।४८।।

पित्रा चानुमतो राजा वासुदेवानुमोदितः । चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभुः ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे युधिष्ठिरराज्यप्रलम्भो नाम नवमोऽध्यायः ।।९।।

अन्वयः— पित्रा अनुमतः वासुदेवानुमोदितः विभुः राजा पितृपैतामहं राज्यं धर्मेण चकार ।।४९।।

अनुवाद— पिता धृतराष्ट्र की आज्ञा प्राप्त करके तथा भगवान् श्रीकृष्ण से अनुमोदित होकर राजा युधिष्ठिर अपने पिता तथा पितामह की परम्परा से प्राप्त राज्य का प्रशासन करने लगे ।।४९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के युधिष्ठिर को राज्यलाभ नामक नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

राजा युधिष्ठिरः अनुमतोऽनुज्ञातः ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां नवमोऽध्यायः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इसके पश्चात् धृतराष्ट्र ने राजा युधिष्ठिर को राज्य करने के आज्ञा प्रदान कर दी और भगवान् श्रीकृष्ण ने उसका समर्थन भी कर दिया। इसके पश्चात् अपने पिता पितामह की परम्परा से प्राप्त राज्य का उन्होंने धर्मपूर्वक प्रशासन किया ॥४९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के नवें अध्याय की भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।९।।

दशवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण का द्वारका गमन

शौनक उवाच

हत्वा स्वरिक्थस्पृध आततायिनो युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः ।
सहानुजैः प्रत्यवरुद्धभोजनः कथं प्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ॥१॥

अन्वयः— स्वरिक्थस्पृध आततायिनः हत्वा धर्मभृतां वरिष्ठः राजा युधिष्ठिर प्रत्यवरुद्धभोजनः अनुजैः सह कथं प्रवृत्तः ततः किमकारषीत् ॥१॥

शौनकजी ने कहा

अनुवाद— अपने पैतृक संम्पति से स्पर्धा करने वाले आततायियों को मारकर धार्मिकों में श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर बन्धुजन वियोग के कारण भोजन करना भी बन्द कर दिये थे, वे अपने छोटे भाइयों के साथ राज्य करने में कैसे प्रवृत्त हुए और उसके पश्चात् उन्होंने क्या किया ?॥१॥

भावार्थ दीपिका

दशमे कृतकार्यस्य हस्तिनापुरतो हरेः । स्त्रीभिः संस्तूयमानस्य वर्ण्यते द्वारकागमः ॥१॥ राज्यं चकारेत्युक्तं तत्र पृच्छति- हत्वेति । स्वस्य रिक्थे धने स्पर्धन्ते स्म ये ते तथा । यद्वा स्वरिक्थाय स्पृत्संग्रामो येषामत एव धनादिहरणादाततायिनस्तान्हत्वा प्रत्यवरुद्धभोजनो बन्धुवधदुःखेन सङ्कुचितभोगो, राज्यलाभेन प्राप्तभोगो वा । कथं राज्ये प्रवृत्तः, प्रवृत्तो वा ततः किमकार्षीत् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दशवें अध्याय में जिन्होंने अपना काम पूरा कर लिया था तथा स्त्रियाँ जिनकी स्तुति कर चुकी थीं ऐसे श्रीहरि का हस्तिनापुर से द्वारका गमन का वर्णन किया गया है ॥१॥

नवें अध्याय के अन्त में कहा गया है कि युधिष्ठिर ने राज्य किया उसी के विषय में **हत्वा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा शौनक जी पूछते हैं । **स्वरिक्थस्पृधः** इसका विग्रह है— **स्वस्य रिक्थे धनेस्पृहन्ति ये ते तथा** । अर्थात् उनकी अपनी सम्पत्ति के विषय में जो स्पर्धा करते थे । अथवा स्वरिक्थाय स्पृत् संग्रामो येषाम्, अर्थात् अपनी सम्पत्ति के लिए जिन सबों के साथ संग्राम हुआ ऐसे धन आदि का हरण करने वाले आतयियों को मारकर बान्धवों के दुःख के कारण जिन्होंने भोजन भी करना बन्द कर दिया था अथवा राज्य के प्राप्त हो जाने से जिन्होंने भोगों को प्राप्त कर लिया था ऐसे राजा युधिष्ठिर पुनः राज्य करने में कैसे प्रवृत्त हुए और उसके पश्चात् उन्होंने क्या किया ॥१॥

सूत उवाच

वंशं कुरोर्वंशदवाग्निनिर्हृतं संरोहयित्वा भवभावनो हरिः ।
निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरो युधिष्ठिरं प्रीतमना बभूव ह ॥२॥

अन्वयः— कुरोः वंशदवाग्नि निर्हृतं वंशं संरोहयित्वा भवभावनः ईश्वरः हरिः युधिष्ठिरं, निजराज्ये निवेश्य प्रीतमना बभूव ॥२॥

अनुवाद— कलहाग्नि के द्वारा कुरु का वंश तो दग्ध ही हो गया था उसको तथा सम्पूर्ण सृष्टि को उज्जीवित करने वाले सम्पूर्ण जगत् के प्रशासक श्रीहरि पुनः अङ्कुरित करके तथा राजा युधिष्ठिर को उनके राज्य पर बैठाकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२॥

भावार्थ दीपिका

राज्यप्रवृत्तौ श्रीकृष्णस्य प्रीतिं पर्यालोच्य प्रवृत्त इत्याशयेनोत्तरमाह । वंशं कुरोः संरोहयित्वा परीक्षिद्रक्षणेन संरोह्याङ्कुरितं कृत्वा । कथंभूतम् । वंशदवाग्निनिर्हृतं वंश एव दवो वनं तस्मादुद्भूतो यः क्रोधरूपोऽग्निस्तेन निर्हृतं दग्धम् । निजराज्ये निवेश्य च ॥२॥

भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर ने देखा कि मेरे राज्य करने से भगवान् श्रीकृष्ण को प्रसन्नता होगी, इस बात का विचार करके वे राज्य करने में प्रवृत्त हुए । उसी अभिप्राय से सूतजी ने कहा कुरु के विनष्ट वंश को परीक्षित् की रक्षा करके श्रीभगवान् ने उसको पुनः अङ्कुरित कर दिया । कुरु का वंशरूपी दवाग्निसे ही विनष्ट हो चुका था । वंशदवाग्निनिर्हृतम् पद का विग्रहार्थ इस प्रकार है वंश रूपी वन में परस्पर में उत्पन्न क्रोध रूपी जो अग्नि थी उसी ने उसको जला दिया था । उस वंश को भगवान् ने पुनः अङ्कुरित कर दिया और उसके बाद उन्होंने युधिष्ठिर को उनके राज्य सिंहासन पर बैठा दिया । इन दो कार्यों को करके श्रीहरि को अत्यन्त प्रसन्नता हुयी ॥२॥

निशम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रमः ।
शशास गामिन्द्र इवाजिताश्रयः परिध्युपान्तामनुजानुवर्तितः ॥३॥

अन्वयः— भीष्मोक्तम् अथ अच्युतोक्तं निशम्य प्रवृत्त विज्ञानविधूतविभ्रमः अजिताश्रयः अनुजानुवर्तितः राजा युधिष्ठिरः परिध्युपान्ताम्गाम् इन्द्र इव शशास ॥३॥

अनुवाद— भीष्मजी के उपदेशों को सुनकर तथा भगवान् कृष्ण के वचनों को सुनकर महाराज युधिष्ठिर के विज्ञान का उदय हो गया और उनकी भ्रान्ति विनष्ट हो गयी । उसके पश्चात् भगवान् के आश्रय में रहकर तथा अपने छोटे भाइयों द्वारा अनुवर्तित किए जाते हुए उन्होंने समुद्र पर्यन्त की पृथिवी का इन्द्र के समान प्रशासन किया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

प्रवृत्तौ हेतुमुक्त्वा किमकार्षीदित्यस्योत्तरमाह । प्रवृत्तं यद्विज्ञानं परमेश्वराधीनं जगन्न स्वतन्त्रमित्येवंभूतं तेन विधूतो विभ्रमोऽहंकर्तेत्येवंभूतो मोहो यस्य सः । अनुजैरनुवर्तितः सेवितः सन् । अजितः श्रीकृष्ण एवाश्रयो यस्य सः । परिधिः समुद्रस्तत्पर्यन्तां गां पृथ्वीं पालयामास ॥३॥

भाव प्रकाशिका

महाराज युधिष्ठिर की राज्य में होने वाली प्रवृत्ति का कारण बतलाकर, उन्होंने क्या किया ? इस प्रश्न का उत्तर सूतजी ने **निशम्य० इत्यादि** श्लोक के द्वारा दिया है । भीष्मजी के उपदेश को सुनकर तथा भगवान्

श्रीकृष्ण की बातों को सुनकर युधिष्ठिर को यह ज्ञान हो गया कि यह जगत् परमात्मा के अधीन है, स्वतंत्र नहीं है, उसके कारण उनको जो यह भ्रम था कि मैं युद्ध करने वाला हूँ यह भ्रम मिट गया । उसके पश्चात् वे अपने छोटे भाइयों द्वारा सेवित होते हुए तथा भगवान् श्रीकृष्ण को ही अपना आश्रय मानते हुए समुद्र पर्यन्त की पृथिवी का पालन करने लगे ।।३।।

कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही । सिषिचुः स्म व्रजान्गावः पयसोधस्वतीर्मुदा ।।४।।

अन्वयः— पर्जन्यः कामं ववर्ष, मही सर्वकामदुधा उधस्वतीः मुदा गावः पयसा व्रजान् सिसिचुः स्म ।।४।।

अनुवाद— युधिष्ठिर के राज्य में मेघ पर्याप्त मात्रा में वर्षा करते थे, पृथिवी सभी काम्य पदार्थों को उत्पन्न करती थी, बड़े-बड़े थनों वाली गायें अपने दूध से गोशालाओं को प्रसन्नता पूर्वकर सीचंती रहती थीं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तस्य राज्यमनुवर्णयति-काममिति त्रिभिः । मही सर्वकामदोग्ध्री बभूव । व्रजान् गोष्ठानि । ऊधस्वतीरूधस्वत्यः ऊधः क्षीराशयस्तद्वत्यः । स्थूलोधस इत्यर्थः । सिषिचुरभ्यषिञ्चन् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर के राज्य का वर्णन करते हुए सूतजी कहते हैं । कामम् कहने का अभिप्राय है कि उनके राज्य में प्रतिवर्ष तीन बार वर्षा होती थी । उनके राज्य की भूमि सभी काम्य पदार्थों को उत्पन्न करती थी । बड़े-बड़े थनों वाली गायें प्रसन्नता पूर्वक गोशालाओं को अपने दूध से सींचती रहती थीं ।।४।।

नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुधः । फलन्त्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै ।।५।।

अन्वयः— नद्यः समुद्राः गिरयः सवनस्पतिवीरुध अनु ऋतु तस्य वै सर्वाः ओषधयः तस्य कामम् फलन्ति।।५।।

अनुवाद— नदियाँ, समुद्र, पर्वत, वनस्पतियाँ, लताएँ, ओषधियाँ, प्रत्येक ऋतुओं में यथेष्ट मात्रा में अपनी-अपनी वस्तुओं को राजा को प्रदान करती थीं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

अन्वृतु ऋतावृतौ ।।५।।

भाव प्रकाशिका

अन्वृतौ पद का अर्थ है प्रत्येक ऋतुओं में ।।५।।

नाधयो व्याधयः क्लेशा दैवभूतात्महेतवः । अजातशत्रावभवन् जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित् ।।६।।

अन्वयः— अजातशत्रौ राज्ञि आधयो व्याधयः दैवभूतात्मा हेतवः क्लेशाः न अभवन् ।।६।।

अनुवाद— युधिष्ठिर के राज्य में किसी भी जीव को न तो आधियाँ (मानसिक कष्ट) और न तो व्याधियाँ (रोग) होती थीं दैवक, भौतिक तथा दैहिक संताप भी किसी को नहीं होता था ।।६।।

भावार्थ दीपिका

आधयो मनोव्यथाः । व्याधयो रोगाः । क्लेशाः शीतोष्णादिकृताः । दैवं च भूतानि चात्मा च हेतुर्येषामाधिदैविकादीनां वै जन्तूनां नाभवन् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

मानसिक कष्ट को अधि कहा जाता है तथा रोग इत्यादि को व्याधि कहा जाता है । गर्मी अथवा ठंढी से होने वाले कष्ट को क्लेश कहते है । ये सब युधिष्ठिर के राज्य में किसी भी जीव को नहीं होते थे, किसी को

दैहिक दैविक तथा भौतिक सन्ताप भी नहीं होता था । सबलोग हर प्रकार से सुखी थे । **दैवभूतात्महेतवः** का विग्रह है **दैवं च, भूतानि च आत्मा च हेतुः येषां ते** ।।६।।

उषित्वा हास्तिनपुरे मासान्कतिपयान्हरिः । सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च प्रियकाम्यया ।।७।।
आमन्त्र्य चाभ्यनुज्ञातः परिष्वज्याभिवाद्य तम् । आरुरोह रथं कैश्चित्परिष्वक्तोऽभिवादितः ।।८।।

अन्वयः— सुहृदां च विशोकाय, स्वसुः च प्रियकाम्यया हरिः कतिपयान् मासान् हस्तिन पुरे उषित्वा तम् अभिवाद्य, परिष्वज्य च आमन्त्र्य अभ्यनुज्ञातः कैश्चित् परिष्वक्तः अभिवादितः रथम् आरुरोह ।।७-८।।

अनुवाद— अपने सम्बन्धियों का शोक मिटाने के लिए तथा अपनी बहन सुभद्रा की प्रसन्नता के लिए श्रीहरि कुछ महीने हस्तिनापुर में रहकर राजा युधिष्ठिर को प्रणाम करके उनका आलिङ्गन किए और उसके बाद जब उन्होंने आज्ञा माँगी तो युधिष्ठिर उनको जाने की आज्ञा दे दिए । उसके पश्चात् कुछ लोगों से आलिङ्गित और अभिवादित होकर भगवान् रथ पर चढ गये ।।७-८।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं द्वारकागमनं निरूपयितुमाह- उषित्वेति । स्वसुः सुभद्रायाः । तं युधिष्ठिरम् ।।७-८।।

भाव प्रकाशिका

अब श्रीभगवान् के द्वारका गमन का वर्णन करने के लिए सूतजी ने उषित्वा इत्यादि श्लोक को कहा है। स्वसुः शब्द का अर्थ है सुभद्रा का । तम् शब्द से युधिष्ठिर को कहा गया है ।।७-८।।

सुभद्रा द्रौपदी कुन्ती विराटतनया तथा । गान्धारी धृतराष्ट्रश्च युयुत्सुर्गौतमो यमौ ।।९।।
वृकोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो मत्स्यसुतादयः । न सेहिरे विमुह्यन्तो विरहं शार्ङ्गधन्वनः ।।१०।।

अन्वयः— सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, विराटतनया, गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सुः, गौतमः, यमौ, वृकोदरः, धौम्यः, मत्स्यसुतादयः स्त्रियश्च विमुह्यन्तः शार्ङ्गधन्वनः विरहं न सेहिरे ।।९-१०।।

अनुवाद— सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, विराट पुत्री उत्तरा, गान्धारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सुः, गौतमवंशीय कृपाचार्य, नकुल, सहदेव, भीम, धौम्य तथा सत्यवती इत्यादि स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के विरह को नहीं सह सकीं वे सब मूर्छित जैसे हो गयीं ।।९-१०।।

भावार्थ दीपिका

युयुत्सुर्धृतराष्ट्राद्वैश्यायां जातः । गौतमः कृपः । यमौ नकुलसहदेवौ ।।९।। अन्याश्च स्त्रियः । मत्स्यसुता उत्तरा । तस्याः पुनर्ग्रहणं गर्भरक्षककृष्णविरहे मोहाधिक्यात् । यद्वा मत्स्यसुता सत्यवती ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

धृतराष्ट्र के वैश्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र युयुत्सु थे । गौतम शब्द से कृपाचार्य को कहा गया है । नकुल और सहदेव को यमौ शब्द से कहा गया है । मत्स्यसुता उत्तरा हैं, उनका दोबार नाम यहाँ इसलिए आया है कि उनके गर्भ के रक्षक भगवान् श्रीकृष्ण का विरह होने से अधिक मोह था । अथवा मत्स्यसुता शब्द से सत्यवती को कहा गया है ।।९-१०।।

सत्सङ्गान्मुक्तदुःसङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः । कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ।।११।।
तस्मिन्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन्विरहं कथम् । दर्शनस्पर्शसँल्लापशयनासनभोजनैः ।।१२।।

अन्वयः— सत्सङ्गात् मुक्त दुःसङ्गः बुधः यस्य रोचनं कीर्त्यमानं यशः सकृत् आकर्ण्य हातुं न उत्सहते तस्मिन् दर्शन-स्पर्श-संल्लाप-शयन-आसन भौजनैः न्यस्तधियः पार्थाः भगवतो विरहं कथं सहेरन् ।।११-१२।।

अनुवाद— सत्सङ्ग के कारण जिसका दु:सङ्ग छूट गया है ऐसे विज्ञ पुरुष वर्णन किए जाने वाले जिन श्रीभगवान् के मनोहर यश को एक बार भी सुनकर उसे नहीं छोड़ना चाहता है, उस श्रीभगवान् के साथ-साथ देखने, स्पर्श करने, बातें करने, सोने, बैठने तथा भोजन करने के कारण जिनकी बुद्धि उनमें ही लग गयी थे वे पाण्डव उन श्रीभगवान् के विरह को कैसे सह सकते थे ।।११-१२।।

भावार्थ दीपिका

तेषां कृष्णविरहासहनं कैमुत्यन्यायेनाह-सत्सङ्गादिति द्वाभ्याम् । सतां सङ्गाद्धेतोर्मुक्तः पुत्रादिविषयो दु:सङ्गो येन सः। सद्भिः कीर्त्यमानं रुचिकरं यशः सकृदप्याकर्ण्य सत्सङ्गं त्यक्तुं न शक्नोति ।।११।। दर्शनादिभिस्तस्मिन् श्रीकृष्णे न्यस्ता अध्यस्ता धीर्येषां ते ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

वे पाण्डव भगवान् श्रीकृष्ण के विरह को नहीं सह पा रहे थे इस बात का **सत्सङ्गात्० इत्यादि** दो श्लोकों से कैमुत्यन्याय से बतलाते हैं । सत्सङ्ग के कारण जिसका पुत्रादि विषयक दु:सङ्ग छूट गया हो, वह व्यक्ति भगवान् के मनोहर यश को एक बार भी सुनकर उसे छोड़ना नहीं चाहता है, क्योंकि भगवान् का यशरूपी सत्सङ्ग अत्यन्त आकर्षक होता है । पाण्डव तो भगवान् श्रीकृष्ण के साथ ही एक दूसरे को देखते थे, उनका स्पर्श करते थे उनसे बातें करते थे, सोते थे, बैठते थे और साथ ही भोजन करते थे, अतएव पाण्डवों की चित्तवृत्ति, श्रीभगवान् में ही समर्पित हो गयी थी इसीलिए वे उन भगवान् श्रीकृष्ण का वियोग नहीं सह पा रहे थे ।।११-१२।।

सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्रुतचेतसः । वीक्षन्तः स्नेहसंबद्धा विचेलुस्तत्र तत्र ह ।।१३।।

अन्वयः— अनुद्रुतचेतसः ते अनिमिषैः अक्षैः तम् वीक्षन्तः स्नेहसंवद्धा तत्र तत्र विचेलुः ।।१३।।

अनुवाद— उन सबों का अन्त:करण द्रवित हो गया था वे अपनी निर्निमेष नेत्रों से श्रीभगवान् को देख रहे थे और इधर-उधर चल रहे थे । क्योंकि वे सभी पाण्डव श्रीभगवान् से स्नेह के बन्धन में बंधे हुए थे ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अतएवानिमिषैर्नेत्रैस्तमेव वीक्षमाणास्तत्र तत्रार्हणानयनाद्यर्थं चलन्ति स्म । यतः स्नेहेन सम्यग्बद्धाः । अतएव तमनुद्रुतानि गतानि चेतांसि येषां ते ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

चूकि सभी पाण्डव श्रीभगवान् के साथ स्नेह के बन्धन में बन्धे थे । अतएव जाते हुए श्रीभगवान् श्रीकृष्ण को निर्मिमेष नेत्रों से देख रहे थे । और वहाँ पर विद्यमान पूजन की सामग्री लाने के लिए चल रहे थे । उन सभी पाण्डवों का चित्त जाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा था ।।१३।।

न्यरुन्धन्नुद्गलद्बाष्पमौत्कण्ठ्याद्देवकीसुते । निर्यात्यगारान्नोऽभद्रमिति स्याद्बान्धवस्त्रियः ।।१४।।

अन्वयः— अगारात् निर्याति देवकी सुते औत्कण्ठ्यात् उद्गलद्बाष्पम् बान्धवस्त्रियः अभद्रम् नो स्यात् इति न्यरून्धन्।।१४।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के घर से निकलते समय उत्कण्ठावशात् स्त्रियों के नेत्र आँसू के जल से भर गये किन्तु उनके बान्धवों की स्त्रियों ने आँसुओं को इसलिए रोक लिया कि कोई अमङ्गल न हो जाय ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

अगारान्निर्याति निर्गच्छति सति । औत्कण्ठयादासक्त्यतिशयाद्धेतोरुद्गलत् स्रवद्बाष्पमश्रुन्यरुन्धन्नेष्वेव स्तम्भितवत्यः । तत्र हेतुः- अभद्रं नो स्यादमङ्गलं मा भूदित्येतदर्थम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

जब भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका जाने के लिए घर से निकलने लगे तब उनके बान्धवों की स्त्रियों के नेत्रों में आँसू छलछला गये, क्योंकि उन सबों की भगवान् श्रीकृष्ण में अत्यधिक आसक्ति बढ गयी थी, किन्तु उन सबों ने आंसुओं को अपने नेत्रों में ही इसलिए रोक लिया कि श्रीभगवान् को रास्ते में कोई अमङ्गल न हो ।।१४।।

मृदङ्गशङ्खभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः । धुन्धुर्यानकघण्टाद्या नेदुर्दुन्दुभयस्तथा ।।१५।।

अन्वयः— मृदङ्ग, शङ्ख भेर्यः वीणापणवगोमुखाः धुन्धुर्यानकघण्टाद्याः तथा दुन्दुभयः नेदुः ।।१५।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के जाते समय मृदङ्ग, शङ्ख, भेरी वीणा, ढ़ोल, नरसिंधे, धुन्धुरी, नगारे घण्टे तथा दुन्दुभियाँ इत्यादि बाजे बजने लगे ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

मृदङ्गादयो दश वाद्यभेदाः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

जिस समय भगवान् जाने लगे उस समय उनके मङ्गल के लिए अनुवाद में गिनाये गये दश प्रकार के बाजे बजने लगे ।।१५।।

प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदृक्षया । ववृषुः कुसुमैः कृष्णे प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः ।।१६।।

अन्वयः— दिदृक्षया, प्रासादशिखरारूढाः प्रेमवीडास्मितेक्षणाः कुरुनार्यः कृष्णे कुसुमैः ववृषुः ।।१६।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के जाते समय उनको देखने की इच्छा से अट्टालिकाओं के ऊपर चढी हुयी कुरुवंश की नारियाँ प्रेम, लज्जा तथा मुस्कान युक्त नेत्रों से देखती हुयी भगवान् के ऊपर पुष्पों की वर्षा की ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

प्रेमव्रीडास्मितपूर्वकमीक्षणं यासां ताः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

प्रेम, लज्जा तथा मुसकान पूर्वक अपने नेत्रों से जाते हुए कुरुवंश की नारियों ने पुष्पों की वर्षा की ।।१६।।

सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् । रत्नदण्डं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ।।१७।।

अन्वयः— प्रियः गुडाकेशः प्रियतमस्य रत्नदण्डं, मुक्तादामविभूषितम् सितातपत्रं जग्राह ह ।।१७।।

अनुवाद— भगवान् के प्रिय अर्जुन ने अपने प्रियतम भगवान श्रीकृष्ण के रत्न निर्मित दण्डों वाले तथा मोतियों के झालर से सुशोभित श्वेत छत्र को अपने हाथ में ले लिया ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

गुडाका निद्रा तस्या ईशो जितनिद्रोऽर्जुनः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन का एक नाम गुडाकेश है । गुडाका निद्रा को कहते हैं, अर्जुन ने निद्रा पर विजय प्राप्त कर लिया था अतएव उनका नाम गुडाकेश है ।।१७।।

उद्धवः सात्यकिश्चैव व्यजने परमाद्भुते । विकीर्यमाणः कुसुमै रेजे मधुपतिः पथि ।।१८।।

अन्वयः— उद्धवः सात्यकिः चैव परमाद्भुते व्यजने जगृहतुः विकीर्यमाणः कुसुमैः मधुपति पथिरेजे ।।१८।।

अनुवाद— भगवान् के अत्यन्त अद्भुत दोनों चामरों को उद्धव और सात्यकि ने धारण किया । रास्ते में भगवान् श्रीकृष्ण पर पुष्पों की वर्षा की जा रही थी और भगवान् श्रीकृष्ण सुशोभित हो रहे थे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

व्यजने चामरे जगृहतुः । मधुपतिः श्रीकृष्णः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

उद्धव और सात्यकि दोनों भगवान् के दोनों अद्भुत चामर को पकड़ लिए, भगवान् पर मार्ग में पुष्पों की वर्षा की जा रही थी । उससे भगवान् श्रीकृष्ण की अत्यन्त शोभा हो रही थी ॥१८॥

अश्रूयन्ताशिषः सत्यास्तत्र तत्र द्विजेरिताः । नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥१९॥

अन्वयः— तत्र-तत्र द्विजेरिताः सत्याः आशिषः अश्रूयन्त ता निर्गुणस्य गुणात्मनः अनुरूपाः आसन् ॥१९॥

अनुवाद— जहाँ-तहाँ ब्राह्मणों के द्वारा उच्चारण किए गये श्रीभगवानृ के लिए सत्य आशीर्वाद भी सुनायी पड़ रहे थे । वे निर्गुण भगवान के लिए तो अनुरूप नहीं थे किन्तु मनुष्यावतार धारण करके लीला करने वाले सभी गुणों से सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण के लिए तो अनुरूप ही थे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

सत्याः श्रीकृष्णे तासामव्यभिचारात्, किंतु नानुरूपाश्चानुरूपाश्च । निर्गुणस्य परमानन्दस्य सुखी भवेत्यादयो नानुरूपा मानुष्यनाट्यावतारेऽनुरूपाश्चेत्यर्थः । सन्धिरार्षः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

सर्वगुण सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण में पूर्णरूप से पाये जाने के कारण वे आशीर्वचन सत्य थे निर्गुण अर्थात् परमानन्द स्वरूप श्रीभगवान् के लिए सुखी रहें इस तरह का आशीर्वाद अनुरूप नहीं था किन्तु मानवावतार धारण करके, लीला करने वाले श्रीभगवान् के लिए तो वे आशीर्वचन अनुरूप हीं थे । नानुरूपानुरूपाः पद में की गयी सन्धि आर्ष हैं ॥१९॥

अन्योन्यमासीत्संजल्प उत्तमश्लोकचेतसाम् । कौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः ॥२०॥

अन्वयः— उत्तमश्लोकचेतसाम् कौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः संजल्पः अन्योन्यम् आसीत् ॥२०॥

अनुवाद— जिन सबों का मन भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा था वे युधिष्ठिर के नगर की स्त्रियाँ सबों को सुनने में मनोहर ही आपस में बातें करती थीं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

सर्वासां श्रुतीनां मनोहरः । उपनिषदोऽपि मूर्तिमत्यः सत्यस्तं संजल्पमभ्यनन्दन्नित्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

उन नारियों की बातों का अभिनन्दन मूर्तिमान श्रुतियाँ भी करती थीं क्योंकि उनकी बातें सभी श्रुतियों से मनोहर थीं ॥२०॥

स वै किलायं पुरुषः पुरातनो य एक आसीदविशेष आत्मनि ।
अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे निमीलितात्मन्निशिसुप्तशक्तिषु ॥२१॥

अन्वयः— अयं किल स वै पुरातनः पुरुषः, यः गुणेभ्यः अग्रे अविशेषे आत्मनि एक आसीत् । जगदात्मनि ईश्वरे, निमीलितात्मनि, सुप्तशक्तिषु ॥२१॥

अनुवाद— वे आपस में कहती थी कि ये भगवान् श्रीकृष्ण परम पुरुष हैं । प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न होने से पहले प्रलयकाल में भी अपने निर्विशेष स्वरूप में एक मात्र स्थित थे । उस समय भी जीवात्माएँ जगत् की आत्मा परमात्मा में लीन थीं और महदादि सारी शक्तियाँ अव्यक्त में लीन थीं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तेज: सौन्दर्याद्यतिशयेन विस्मिताभ्य: सखीभ्योऽन्या: स्त्रिय: कथयन्ति । नात्र विस्मय: कार्य:, साक्षादीश्वरत्वादस्येति। स वा इति चतुर्भि: । वै स्मरणे । किलेति प्रसिद्ध्या प्रमाणद्योतकम् । य एक एवाद्वितीय: पुरुष आसीत् एवायं श्रीकृष्ण: । कुत्रासीत् । अविशेषे आत्मनि निष्प्रपञ्चे निजस्वरूपे । कदा अग्रे गुणेभ्यो गुणक्षोभात्पूर्वम् । तथा निशि प्रलये च । तस्य लक्षणम्। जगतामात्मनि जीवे । निमीलितात्मनि । निमीलितात्मन्निति लुप्तसप्तम्यन्तं पदम् । जातावेकवचनम् । ईश्वरे लीनरूपेषु जीवेषु सत्स्वित्यर्थ: । ननु जीवानां ब्रह्मत्वात्कथं लयस्तत्राह । सुप्तासु शक्तिषु सतीषु । जीवोपाधिभूतसत्त्वादिशक्तिलय एव जीवलय इत्यर्थ: ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के तेज तथा सौन्दर्यातिशय्य को देखकर आश्चर्यित सखियों से दूसरी सखियाँ कहती थीं भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में आश्चर्य करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे तो साक्षात् ईश्वर हैं । इस बात को उन सबों ने **सवै किलायम्० इत्यादि** चार श्लोकों में कहा है । यहाँ वै यह अव्यय स्मरणार्थक है । किल शब्द प्रसिद्धि के अनुसार प्रमाण का द्योतक है । वे कहती थीं कि सृष्टि से पहले जब प्रकृति में न तो क्षोभ उत्पन्न हुआ था और न तो गुणों का उद्रेक हुआ था । उस समय जो एक मात्र अद्वितीय पुरुष थे वे ही ये श्रीकृष्ण हैं । उस समय जगत् की आत्मा परमात्मा में सभी जीव लीन हो गये थे । यदि कहें कि **जीवो ब्रह्मैव नापर:** इस सूक्ति के अनुसर जीव तो ब्रह्म है, ब्रह्म में उसका लय कैसे सम्भव है ? तो इसका उत्तर है कि जब महदादि सभी शक्तियाँ सुप्त हो जाती हैं, अर्थात् अपने कारणभूत प्रकृति में लीन हो जाती हैं उस समय जीवों की उपाधि भूत सत्त्व आदि शक्तियों का भी लय हो जाता है । इसी को जीवों का लय कहा जाता है ।

निमीलितात्मन् यह लुप्त सप्तम्यन्त पद है । यहाँ पर जाति के अर्थ में एक वचनान्त प्रयोग हैं ।।२१।।

स एव भूयो निजवीर्यचोदितां स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम् ।
अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत् ।।२२।।

अन्वय:— स एव भूय: अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समान: निजवीर्यचोदितां सिसृक्षतीम् स्वजीवमायाम् अनुससार शास्त्रकृत् ।

अनुवाद— वे ही परम पुरुष पुन: सृष्टिकाल के आ जाने पर नाम रूप से रहित निर्विशेष स्वरूप नाम और रूप के निर्माण करने की इच्छा से अपनी काल शक्ति के द्वारा प्रेरित प्रकृति का अनुसरण किए । वह प्रकृति परमात्मा के अंशभूत जीव को मोहित करने का काम करती है तथा सृष्टि में प्रवृत्त होती । उन्होंने ही व्यवहार के लिए वेद आदि शास्त्रों की रचना की ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं सृष्टेरादौ प्रलयानन्तरं च निष्प्रपञ्चावस्थानमुक्त्वा सृष्टिप्रलययोर्मध्ये सप्रपञ्चावस्थानमाहु: । स एवाप्रच्युतस्वरूपस्थितिरेव प्रकृतिमनुससाराधिष्ठितवान् । भूय: पुन: । सृष्टिप्रवाहस्यानादित्वात् । कीदृशीम् । निजवीर्यचोदितां स्वकालशक्तिप्रेरिताम् । स्वांशभूतानां जीवानां मायां मोहिनीम् । अतएव सिसृक्षतीं स्रष्टुमिच्छन्तीम् । किमर्थमनुससार । अनामरूपे आत्मनि जीवे रूपनामनी विधातुमिच्छन् । उपाधिसृष्ट्या जीवानां भोगायेत्यर्थ: । कर्माणि च विधातुं वेदान्कृतवानित्याहु:- शास्त्रकृदिति ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से सृष्टि के प्रारम्भ में और प्रलय के पश्चात् प्रपञ्चरहित परमात्मा की स्थिति को कहकर सृष्टि और प्रलय के बीच में परमात्मा की स्थिति का वर्णन करती हुयी उन नारियों ने कहा कि जिन श्रीभगवान् के स्वरूप और स्थिति में किसी प्रकार का विकार नहीं आता है वे भगवान् पुन: प्रकृति को अधिष्ठित किए क्योंकि सृष्टि का प्रवाह तो अनादि है। अतएव परमात्मा अपनी कालशक्ति के द्वारा प्रकृति को अधिष्ठित किए। वह प्रकृति ही माया है। वह माया परमात्मा के अंशभूत जीवों को मोहित करने का काम करती है तथा वह सृष्टि करने के कार्य में प्रवृत्त होती है। परमात्मा ने प्रकृति को इसलिए अधिष्ठित किया कि नाम तथा रूप से रहित जीवों को मैं नाम और रूप प्रदान कर दूँ; जिससे कि वे जीव इस नाम और रूप रूपी उपाधि के द्वारा भोगों को भोग सकें। वे कर्मों को भी करें एतदर्थ परमात्मा ने शास्त्रों का ब्रह्माजी इत्यादि के द्वारा प्रवर्तन कराया ॥२२॥

स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वनः ।
पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ॥२३॥

अन्वयः— स वै अयं यत् पदम् अत्र जितेन्द्रिया, निर्जितमातरिश्वनः सूरयः भक्त्युत्कलितात्मना पश्यन्ति नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुम् अर्हति ॥२३॥

अनुवाद— निश्चित रूप से ये ही परमात्मा हैं जिनके चरण कमलों का साक्षात्कार योगिजन अपनी इन्द्रियों को वश में करके तथा अपनी प्राण वायु को वश में करके भक्ति की भावना से प्रफुल्लित हृदय में करते हैं। इनके ही द्वारा अन्त:करण की पूर्ण रूप से शुद्धि हो सकती है, योग के द्वारा नहीं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

अस्य दर्शनमतिदुर्लभमस्माभिर्लब्धमित्याहुः । स वै अयम् । यस्य पदं स्वरूपमङ्घ्रि वा । निर्जितो मातरिश्वा प्राणो यैः । ह्रस्वत्वमार्षम् । ते सूरय एव पश्यन्ति । केन । भक्तया उत्कलित उत्कण्ठितोऽमलो य आत्मा बुद्धिस्तेन । **'दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या'** इति श्रुतेः । बुद्धिवैमल्यस्याप्ययमेव हेतुरित्याहुः । ननु हे सखि, एष एव सत्त्वं बुद्धिं परिमार्ष्टुं सम्यक् शोधयितुमर्हति नतु योगादय इत्यर्थः । यद्वा नु अहो एष सत्त्वं ज्ञानं परिमार्ष्टुं नाशयितुं दूरगमनेनाप्रत्यक्षीभवितुं नार्हति, किंत्वनेन सहैव गन्तव्यमित्यर्थः ॥२३॥

भावप्रकाशिका

उन नारियों ने कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन जिसको हमलोगों ने प्राप्त किया है वह अत्यन्त दुर्लभ है। इस बात को उन सबों ने **स वा अयम् इत्यादि** श्लोक से कहा है। **यत्पदम्** के पद शब्द का अर्थ स्वरूप तथा चरण दोनों है। अर्थात् योगिजन अपने हृदय में भगवान् के स्वरूप अथवा चरण का साक्षात्कार करते हैं। निर्जित मातरिश्वन का विग्रह है। **निर्जित मातरिश्वा प्राणो यैः ते**। अर्थात् जिन लोगों ने अपनी प्राणवायुको अपने वश में कर लिया है, ऐसे ही सूरिजन श्रीभगवान् का साक्षात्कार करते हैं। **मातरिश्वनः** में ह्रस्व आर्ष प्रयोग होने के कारण है **अन्यथा मातरिश्वानः** पद होना चाहिए। उन परमात्मा के साक्षात्कार करने के साधन का वर्णन करते हुए उन सबों ने कहा **भक्त्युकलितात्मलात्मना** भक्ति की भावना से उत्कण्ठित अर्थात् निर्मल जो आत्मा अर्थात् बुद्धि उसके द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं। श्रुति भी कहती है **दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या** अर्थात् श्रवण मनन तथा निदिध्यासन के संस्कार से सम्पन्न मन के द्वारा ही परमात्मसाक्षात्कार होता है।

नारियों न कहा कि बुद्धि की शुद्धि परमात्मा के द्वारा होती है। इस बात को उन सबों ने कहा **नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति** अर्थात् हे सखि ये बुद्धि को अच्छी तरह शुद्ध बना सकते है योग के द्वारा बुद्धि की शुद्धि नहीं हो सकती है।

नन्वेष० इत्यादि का यह भी अर्थ किया जा सकता है कि ये दूर जाकर हमलोगों के ज्ञान को नष्ट नहीं कर सकते है अर्थात् हमलोगों को भी इनके ही साथ चलना चाहिए ॥२३॥

स वा अयं सख्यनुगीतसत्कथो वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः ।
य एक ईशो जगदात्मलीलया सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते ॥२४॥

अन्वयः— हे सखि स वै अयम् यःगुह्यवादिभिः वेदेषु गुह्येषु च अनुगीत सत्कथः । यः एक एव ईशः आत्मलीलया जगत् सृजति, अवति अत्ति च किन्तु तत्र सज्जते न ॥२४॥

अनुवाद— हे सखि ! ये ही ईश्वर हैं जिनकी सुन्दर लीलाओं का वर्णन व्यास आदि रहस्यवादी ऋषियों ने गोपनीय वेदों और शास्त्रों में किया है । जो ईश्वर अकेले ही अपनी लीलामात्र से जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते है, फिर भी वे उसमें स्वयं आसक्त नहीं होते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

पुण्यश्लोकतामाहुः । हे सखि, यो वेदेषु रहस्यागमेषु च रहस्यनिरूपकैरनुगीतसत्कथः । अनुगीताः सत्यः कथा यस्य स एवायम् । गानप्रकारमाहुः- य एक ईश इत्यादि ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

उन नारियों ने श्रीभगवान् की पुण्यश्लोकता का वर्णन करते हुए कहा— हे सखि ! ये वे भगवान् हैं जिनकी सत्य कथाओं का वर्णन रहस्यवादी जो व्यास आदि ऋषिगण हैं उन लोगों ने वेदों तथा रहस्यागमों में किया है। उनके द्वारा श्रीभगवान् की कथाओं का वर्णन करने का प्रकार यह है कि ये परमात्मा अपनी लीलामात्र से इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, रक्षा और संहार का कार्य अकेले करते हैं, किन्तु ये उसमें आसक्त नहीं होते हैं ॥२४॥

यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा जीवन्ति तत्रैष हि सत्त्वतः किल ।
धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे ॥२५।

अन्वयः— यदा हि तमोधियो नृपाः अधर्मेण जीवन्ति, तत्र एष हि युगे, युगे भवाय रूपाणि दधत् किल सत्त्वतः भगं, सत्यम्, ऋतम्, दयाम् धत्ते ॥२५॥

अनुवाद— जब तामसी बुद्धि वाले राजागण अधर्म पूर्वक अपना पेट पालने लग जाते हैं उस समय ये ही भगवान् जगत् का कल्याण करने के लिए प्रत्येक युग में अपने शुद्ध सात्त्विक गुण के द्वारा भग (ऐश्वर्य) सत्त्य (सत्यप्रतिज्ञत्व) ऋत (यथार्थोपदेश) दया (भक्तों पर कृपा) तथा अद्भुत कर्म रूपी यश को धारण करते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतस्य नानावतारे कारणमाहुः- यदा हीति । तमोव्याप्ता धीर्येषां ते नृपा यदाऽधर्मेण जीवन्ति केवलं प्राणान्पुष्णन्ति तत्र तदैव एष भवाय स्थित्यै सत्त्वतो विशुद्धसत्त्वेन रूपाणि दधद्भगादीनि धत्ते प्रकटयति । युगे युगे तत्तदवसरे । भगमैश्वर्यम्। सत्यं सत्यप्रतिज्ञत्वम् । ऋतं यथार्थोपदेशकत्वम् । दयां भक्तकृपाम् । यशोऽद्भुतकर्मत्वम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के परमात्मा जो अनेक अवतारों को धारण करते हैं उसका कारण बतलाती हुई उन नारियों ने कहा **यदा हि० इत्यादि** श्लोक । स्त्रियों ने कहा कि जब तमोगुणी प्रकृति वाले राजागण अधर्म परायण हो जाते है और केवल अपने ही प्राणों के पोषण में लग जाते हैं, उस समय पर श्रीभगवान् अनेक अवतारों को धारण करते हैं और अपने शुद्ध सत्त्वगुण के द्वारा, ऐश्वर्य आदि को धारण करते हैं ॥२५॥

अहो अलं श्लाध्यतमं यदोः कुलमहो अलंपुण्यतमं मधोर्वनम् ।
यदेष पुंसामृषभः श्रियः प्रियः स्वजन्मना चंक्रमणेन चाञ्चति ॥२६॥

अन्वयः— अहो ! यदोः कुलं श्लाध्यतमं यदेष पुंसाम् ऋषभः श्रियः पतिः स्वजन्मना अञ्चति अहो मर्धोर्वनम् अलं पुण्यतमं यदेष चङ्क्रमणेन च अञ्चति ॥२६॥

अनुवाद— अरे यह महाराज यदु का वंश अत्यन्त प्रशंसनीय है क्योंकि इसको पुरुषों में अग्रगण्य लक्ष्मीपति श्रीभगवान् ने सम्मानित किया है और यह मथुरा भी अत्यन्त पवित्र है, क्योंकि यहाँ पर श्रीभगवान् ने भ्रमण करके इसको पवित्र बना दिया है ॥२६॥

भावार्थदीपिका

विशेषतः श्रीकृष्णावतारसौभाग्यं वर्णयन्ति– अहो इति पञ्चभिः । यद्यस्मादेषु पुरुषोत्तमः श्रियः पतिः स्वजन्मना यदोः कुलमञ्चति पूजयति सत्करोति । अतः श्लाघ्यतमं तत् । चङ्क्रमणेन च मधोर्वनं मथुरां सत्करोत्यतस्तत्पुण्यतममिति । तमेवर्थस्याप्यत्यन्तातिशयेऽलमिति । तत्राप्याश्चर्ये अहो इत्युक्तम् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

वे स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार जन्य सौभाग्य का वर्णन विशेष रूप से करती हुयी **अहो अलम्० इत्यादि** पाँच श्लोकों को कहती हैं । चूकि ये लक्ष्मीपति अपने जन्म से यदुवंश को सम्मानित किए हैं अतएव यह वंश अत्यन्त प्रशंसनीय है । मधुवन इसलिए अत्यन्त प्रवित्र है कि यहाँ पर श्रीभगवान् अपने भ्रमण के द्वारा उसे सम्मानित किए हैं ॥२६॥

अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः ।
पश्यन्ति नित्यं यदनुग्रहेषितं स्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः ॥२७॥

अन्वयः— अहो बत स्वर्यशसः तिरस्करी कुशस्थली भुवः पुण्ययशस्करी यत् प्रजाः यदनुग्रहेषितं स्मितावलोकं स्वपतिं नित्यं पश्यन्ति स्म ॥२७॥

अनुवाद— यह आश्चर्य की बात है कि स्वर्ग के यश को तिरस्कृत करने वाली कुशस्थली द्वारकापुरी पृथिवी के पवित्र यश को बढ़ा रही है । ऐसा इसलिए है कि वहाँ की प्रजाएँ कृपादृष्टि-युक्त एवं मुस्कान युक्त अपने स्वामी श्रीभगवान् का नित्य ही दर्शन करती हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

द्वारकां श्लाघन्ते । अहो वताऽत्याश्चर्यम् । किं तत् । कुशस्थली द्वारका । स्वर्ग उत्कृष्ट इति यद्यशस्तस्य तिरस्करी परिभवकर्त्री । भुवश्च पुण्ययशःकर्त्री भवति । यद्यतो यत्रत्याः सर्वाः प्रजाः । स्वानुग्रहेणेषितं प्रेषितम् । स्मितपूर्वकोऽवलोको यस्य तम् । यद्वा अनुग्रहार्थमिषितमिष्टम् । **'अनुग्रहेषितम्'** इति पाठे स्वानुग्रहार्थमुषितं कृतानि वासम् ऐकपद्यपाठे त्वनुग्रहेणेषितं यत्स्मितं तत्पूर्वकोऽवलोको यस्य तम् । स्वस्यात्मनः पतिं श्रीकृष्णं न तु पित्रादिवद्देहमात्रपतिं नित्यं न पश्यन्ति स्म । नैतत्स्वर्गेऽस्तीत्यर्थः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

द्वारका की प्रशंसा करती हुयी वे कहती हैं यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है । अहो बत का प्रयोग अत्यन्त आश्चर्य के अर्थ में हुआ है । यदि कहो कि क्या आश्चर्य हैं ? तो इसका उत्तर है कि कुशस्थली (द्वारकापुरी) स्वर्ग के उत्कृष्ट यश को तिरस्कृत कर रही है । और भूलोक के पवित्र यश को बढ़ा रही है । उसका कारण यह है कि वहाँ प्रजायें अनुग्रह पूर्वक तथा मन्दमुस्कान से युक्त देखने वाले अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण का नित्य ही दर्शन करती हैं ॥२७॥

नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः ।
पिबन्ति याः सख्यधरामृतं मुहुर्व्रजस्त्रियः संमुहुहुर्यदाशयाः ॥२८॥

अन्वयः— सखि ! गृहीतपाणिभिः हि नूनं व्रत स्नानहुतादिना ईश्वरः समर्चितः याः अस्य अधरामृतं पिबन्ति । यदाशयाः व्रजस्त्रियः संमुमुहुः ॥२८॥

अनुवाद— हे सखि ! इनकी पाणिगृहीता पत्नियों ने निश्चित रूप से ईश्वर की व्रतों तथा तीर्थों में स्नानों एवं होम इत्यादि के द्वारा अच्छी तरह से पूजा की होगी क्योंकि वे भगवान् श्रीकृष्ण के अधरामृत का पान करती हैं । जिस अधरामृत को याद करके व्रज की स्त्रियाँ बार-बार मूर्छित हो जाती हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

हे सखि ! अस्य गृहीतपाणिभिः पत्नीभिरीश्वरोऽयमेव नूनं जन्मान्तरेषु समर्चितः । यस्मिन्नधरामृते आशयश्चित्तं यासां ता संमोहं प्राप्ता इति मनोहरत्वमुक्तम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

वे स्त्रियाँ परस्पर में बातें करती हुयी कहती हैं कि इन भगवान श्रीकृष्ण की पत्नियों ने जन्मान्तर में निश्चित रूप से इनकी व्रत, स्नान तथा होम इत्यादि के द्वारा अच्छी तरह से पूजा की होंगी क्योंकि वे इनके अधरामृत का पान करती हैं । जिस अधरामृत को याद करके व्रज की नारियाँ मूर्छित सी हो जाती हैं ॥२८॥

या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान् हि शुष्मिण ।
प्रद्युम्नसाम्बाम्बसुतादयोऽपरा याश्चाहृता भौमवधे सहस्रशः ॥२९॥
एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं निरस्तशौचं वत साधु कुर्वते ।
यासां गृहात्पुष्करलोचनः पतिर्न जात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ॥३०॥

अन्वयः— या हि स्वयम्बरे चैद्य प्रमुखान् शुष्मिणः प्रमथ्य वीर्यशुक्लेन हृताः या प्रद्युम्न साम्बाम्बसुतादयः अपराः, याश्च भौमवधे सहस्रशः आहृताः एताः अपास्तपेशलम् निरस्तशौचं परं स्त्रीत्वम् बत साधु कुर्वते यासां गृहात् आहृतिभिः हृदि स्पृशन्, पुष्करलोचनः पति जातु न अपैति ॥२९-३०॥

अनुवाद— स्वयम्बर में जिस रुक्मिणी का भगवान् ने अपने पराक्रम से हरण किया, तथा दूसरी जो प्रद्युम्न साम्ब अम्ब आदि की मातायें रुक्मिणी, जाम्बवती सत्यभामा नाग्नजीति इत्यादि पटरानियाँ तथा नरकासुर का वध करके जिन हजारों नारियों को भगवान् लाये, उन सबों ने स्वातन्त्र्य आदि से रहित तथा पावित्र्य रहित केवल स्त्रीत्व को ही पवित्र और सुन्दर बना दिया । जिन सबों के हृदय को सुन्दर वचनों तथा पारिजातादि उपहारों के प्रदानादि के द्वारा आनन्दमय बनाते हुए भगवान् उन सबों के भवन से कभी भी बाहर नहीं निकलते हैं, उन सबों के सौभाग्य और महिमा का कौन वर्णन कर सकता है ॥२९-३०॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयन्ति-या इति द्वाभ्याम् । वीर्यं प्रभाव एव शुल्कं मूल्यं तेन । शुष्मिणो बलिष्ठान् । प्रद्युम्नश्च साम्बश्च अम्बश्च सुता यासां रुक्मिणीजाम्बवतीनाग्नजितीनां ता आदिर्यासां सत्यभामादीनां ताः । याश्चापराः । अस्य श्लोकस्योत्तरश्लोकेनान्वयः। एताः स्त्रीत्वमेव परं केवलं साधु शोभनं कुर्वते । किंभूतम् । अपास्तं गतं पेशलं भद्रं स्वातन्त्र्यं यस्मात्तत् । निरस्तं शौचं शुचित्वं यस्मात्तथाभूतमपि । जातु कदाचिदपि नापैति न निर्गच्छति । आहृतिभिर्व्याहारैः । यद्वा पारिजातादिप्रियवस्त्वाहरणैः । हृदि स्पृशन्नानन्दयन् ॥२९-३०॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बातों का ही विस्तार वे सब **यावीर्यशुल्केन इत्यादि** श्लोकों से करती हुयी कहती हैं अपने प्रभाव रूपी शुल्क के द्वारा रुक्मिणी को भगवान् ने स्वयम्बर में शिशुपाल आदि बलवान तथा मदमत्त राजाओं का मंथन करके हरण किया तथा प्रद्युम्न, साम्ब तथा अम्ब इत्यादि पुत्रों की जो माताएँ हैं ऐसी रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा तथा नाग्नजीती इत्यादि आठ पटरानियाँ है, तथा भौमासुर का वध करने के पश्चात् जिन हजारों स्त्रियों को भगवान् लाये उन सबों की महिमा और भाग्य का वर्णन कौन कर सकता है। श्रीभगवान् की इन सभी पत्नियों ने स्वातन्त्र्य, मङ्गल तथा पवित्रता से रहित स्त्रीत्व को अत्यन्त मङ्गलमय तथा पवित्र बना दिया। इन स्त्रियों के गृह से कमलनयन भगवान् कभी बाहर भी नहीं निकलते हैं और अपने प्रेमपूर्ण वचनों से तथा पारिजात आदि उपहारों को प्रदान आदि क्रियाओं के द्वारा उन पत्नियों के हृदय को आनन्दमय बनाते रहते हैं ॥२९-३०॥

एवंविधा गदन्तीनां स गिरः पुरयोषिताम् । निरीक्षणेनाभिनन्दन्सस्मितेन ययौ हरिः ॥३१॥

अन्वयः— एवं विधाः गदन्तीनां पुरयोषिताम् गिरः सस्मितेन निरीक्षणेन अभिनन्दन हरिः ययौ ॥३१॥

अनुवाद— इस प्रकार से बात करने वाली उन नगर की नारियों की बातों का मुसकान पूर्ण अवलोकन के द्वारा अभिनन्दन करते हुए श्रीहरि चले गये ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

एवंविधा विचित्रा गिरः सस्मितेन निरीक्षणेनाभिनन्दन् स हरिर्ययौ ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

हस्तिनापुर की नारियों की इस प्रकार की विचित्र वाणियों का मुस्कानपूर्ण अवलोकन के द्वारा अभिनन्दन करते हुए श्रीभगवान् द्वारका चले गये ॥३१॥

अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः । परेभ्यः शङ्कितः स्नेहात्प्रायुङ्क्त चतुरङ्गिणीम् ॥३२॥

अन्वयः— अजातशत्रुः स्नेहात् परेभ्यः शङ्कित मधुद्विषः गोपीथाय चतुरङ्गिणीम् सेनां प्रायुंक्त ॥३२॥

अनुवाद— युधिष्ठिर को यह शङ्का हो गयी कि बीच में शत्रुगण इन पर आक्रमण न कर दें, अतएव स्नेह के कारण वे मधुनामक दैत्य को मारने वाले श्रीभगवान् की रक्षा के लिए चतुरङ्गिणी सेना को उनके साथ लगा दिए ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

मधुद्विषोऽवि गोपीथाय रक्षणाय स्नेहात् परेभ्यः शत्रुभ्यः शङ्कितः सन् पायुंक्त '**हस्त्यश्वपदातं**' सेनाङ्गं स्याच्चतुर्विधम्। इत्येवंचतुरङ्गिणीम् पृतनां सेनाम् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

रास्ते में जाते हुए श्रीभगवान् पर शत्रुगण कहीं आक्रमण न कर दें इस शङ्का से राजा युधिष्ठिर ने भगवान् की रक्षा करने के लिए उनके साथ चतुरङ्गिणी सेना भेज दिया। यह उन्होंने श्रीभगवान के प्रति स्नेह होने के कारण किया॥३२॥

अथ दूरागताञ्छौरिः कौरवान्विरहातुरान् । संनिवर्त्य दृढं स्निग्धान्प्रायात्स्वनगरीं प्रियैः ॥३३॥

अन्वयः— दूरागतान् विरहातुरान् दृढं स्निाग्धान् कौरवान् शौरिः संनिवर्त्य प्रियैः सह स्वनगरीं ययौ ॥३३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् दूर आये हुए, विरह से व्याकुल अत्यन्त स्निग्ध कुरुवंशी पाण्डवों को लौटाकर श्रीहरि अपने प्रिय उद्धव आदि के साथ अपनी नगरी द्वारका चले गये ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

पाण्डोः कुरुवंशजत्वात् पाण्डवा अपि कौरवा एव तान् प्रियैरुद्धवादिभिः सह ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

पाण्डु भी कुरुवंश में ही उत्पन्न हुए थे इसलिए पाण्डव भी कुरुवंशी ही हैं। वे श्रीभगवान् के साथ उन्हें भेजने के लिए बहुत दूर तक चले गये थे। यह देखकर उन पाण्डवों को भगवान् ने लौटाया और अपने प्रिय उद्धव सात्यकि इत्यादि के साथ वे अपनी नगरी द्वारकापुरी के लिए प्रस्थान किए ।।३३।।

कुरुजाङ्गलपाञ्चालाञ्शूरसेनान्स यामुनान्। ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान्सारस्वतानथ ।।३४।।
मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान्। आनर्तान्भार्गवोपागाच्छ्रान्तवाहो मनाग्विभुः ।।३५।।

अन्वयः— कुरुजाङ्गलपाञ्चालान् शूरसेनान् सयामुनान् ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्रं, मत्स्यान्, सारस्वतान् अथ मरुधन्वम् सौवीराभीरयोः परान् अतिक्रम्य आनर्तान् उपागात् तत्र विभुः मनाक् श्रान्तवाहः अभवत् ।।३४-३५।।

अनुवाद— हे भृगुवंशीय शौनकजी श्रीभगवान् कुरुजाङ्गल प्रदेश, शूरसेन प्रदेश, यमुना के तटवर्ती ब्रह्मावर्त प्रदेश, कुरुक्षेत्र, मत्स्य प्रदेश, सारस्वत प्रदेश, मरुधन्व प्रदेश को पारकर सौ वीर और आभीर प्रदेश के पश्चात् द्वारका देश में आ गये। वहाँ बहुत अधिक चलने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण के रथ के घोड़े कुछ थक गये थे ।।३४-३५।।

भावार्थ दीपिका

कुरुक्षेत्रं कुरुदेशान्तरगतमेव। क्रमोऽत्र न विवक्षितः ।।३४।। मरुर्निरुदको देशः। धन्वोऽल्पोदकः। अग्नर्ताख्यो द्वारकादेशः। स विभुरुपागात्प्राप्तः। हे भार्गव। मनागीषत् श्रान्ता वाहा यस्य सः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

जहाँ बहुत कम पानी मिलता है वह धन्व प्रदेश है। जहाँ पानी ही नहीं मिलता है वह मरु प्रदेश है कुरुक्षेत्र कुरुदेश के अन्तर्गत ही है। यहाँ पर देशों का क्रम नहीं विवक्षित है, उन सबों का नाम केवल गिना दिया गया है। आनर्त शब्द से द्वारका देश ही कहा गया है। द्वारका प्रदेश में आकर श्रीकृष्णभगवान् के रथ के घोड़े थोड़ा थक से गये थे ।।३४-३५।।

तत्र तत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यतार्हणः। सायं भेजे दिशं पश्चाद्गविष्ठो गां गतस्तदा ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ।।१०।।

अन्वयः— तत्र तत्र ह तत्रत्यैः प्रत्युद्यतार्हणः हरिः सायं पश्चात् दिशं भेजे तदा गविष्ठः गाम् गतः ।।३६।।

अनुवाद— विभिन्न स्थानों पर वहाँ के लोगों से उपायन प्राप्त करके श्रीहरि सायंकाल पश्चिम दिशा में पहुँचे उस समय स्वर्गस्थ सूर्य अस्त हो गये ।।३६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथमस्कन्ध के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तत्र देशे तत्रत्यैर्जनैः। प्रत्युद्यतानि निवेदितान्यर्हणान्युपायनानि यस्मै सः। सायमपराह्णे पश्चाद्दिशं पश्चिमां दिशं भेजे प्राप्तः। तदा च गविष्ठः स्वर्गस्थः सूर्यो गामुदकं गतः प्रविष्टोऽस्तं गत इत्यर्थः। अद्भ्य वा एष प्रातरुदेत्यपः सायं प्रविशति, इति श्रुतेः। यद्वा तदा सायङ्काले जाते रथादवतीर्य गविष्ठो भूमौ स्थितस्ततो गां जलाशयं गतः सन् पश्चाद्दिशं सन्ध्यां भेजे। उपासितवानित्यर्थः ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवात महापुराणे भावार्थदीपिकायां टीकायां दशमोऽध्यायः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

रास्ते में विभिन्न स्थानों पर वहाँ के लोगों ने श्रीभगवान् को उपहार प्रदान किया । उसके पश्चात् सायंकाल श्रीभगवान् पश्चिम दिशा के द्वारका प्रदेश में आ गये । उस समय स्वर्गस्थ सूर्य जल में प्रवेश कर गये थे । अर्थात् सूर्यास्त हो गया था । श्रुति भी कहती है **अद्भयो वा एष प्रातरुदेत्यपः सायं प्रविशति** अर्थात् ये सूर्य जल से उदित होते हैं और सायंकाल ये सूर्य जल में प्रवेश कर जाते हैं । अथवा सायंकाल हो जाने पर श्रीभगवान् रथ से पृथिवी पर उतरकर खड़े हुए उसके पश्चात् जलाशय पर जाकर वे सायंकालिक संध्योपासन किए ।।३६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के दशवें अध्याय की भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ।।१०।।

ग्यारहवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण का द्वारका में प्रवेश वर्णन

सूत उवाच

आनर्तान्स उपव्रज्य स्वृद्धान् जनपदान्स्वकान् । दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव ॥१॥

अन्वयः— सः स्वृद्धान् स्वकान् आनर्तान् उपव्रज्य तेषां विषादं शमयन्निव दरवरं दध्मौ ॥१॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण अच्छी तरह से समृद्ध अपने द्वारका प्रदेश में प्रवेश करके वहाँ के लोगों के विषाद को शान्त करते हुए के समान अपने श्रेष्ठ पाञ्चजन्य नामक शङ्ख को बजाये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

आनर्तैः स्तूयमानस्य पुरीं निर्विश्य बन्धुभिः । एकादशे रतिः सम्यग्यादवेन्द्रस्य वर्ण्यते । उत्सवैरुच्चलत्पौरमुदञ्चद्ध्वजतोरणम्। उल्लसद्रत्नदीपालि स्वपुरं प्रभुराविशत् । स्वृद्धान्समृद्धान् । दरवरं पाञ्चजन्यं शङ्खम् । दध्मौ वादितवान् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

आनर्त देशवासियों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकापुरी में प्रवेश करके अपने बान्धवों के प्रति प्रेम को प्रदर्शित किए इस बात का वर्णन ग्यारहवें अध्याय में किया गया है । जब नगर के लोग उत्सव मना रहे थे उस समय ध्वजा और तोरण से सुशोभित और रत्नदीपों से प्रकाशित अपने नगर में श्रीभगवान् प्रवेश किए । सायंकाल की बेला में भगवान् कृष्ण द्वारका प्रदेश के लोगों के विषाद को शान्त करते हुए अपने पाञ्चजन्य नामक श्रेष्ठ शङ्ख को बजाये ॥१॥

स उच्चकाशे धवलोदरो दरोऽप्युरुक्रमस्याधरशोणशोणिमा ।
दाध्मायमानः करकञ्जसंपुटे यथाऽब्जषण्डे कलहंस उत्स्वनः ॥२॥

अन्वयः— ऊरुक्रमस्य अधरशोणशोणिमा दाध्मायमानः धवलोदरः दरः करकञ्जसम्पुटे अब्जषण्डे उत्स्वनः कलहंसः यथा उच्चकाशे ॥२॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण की ओठों की लाली से लाल बना हुआ बजाया जाता हुआ श्वेत वर्ण का शङ्ख श्रीभगवान् के करकमलों में इस तरह से सुशोभित हो रहा था जैसे लाल रङ्ग के कमल के ऊपर बैठा हुआ कोई राजहंस जोर-जोर से ध्वनि कर रहा हो ॥२॥

भावार्थ दीपिका

स इति । दरः शङ्खो दाध्मायमानो भगवता आपूर्यमाण उच्चकाशेऽतिशयेन शुशुभे इत्यन्वयः । कथंभूतो दरः । धवलमुदरं यस्य सः । तथाप्युरुक्रमस्य कृष्णस्याधरस्य यः शोणगुणस्तेन शोणिमा यस्य सः । करकञ्जे करकमले तयोः संपुटे मध्ये वर्तमानः । कथमुच्चकाशे । अब्जषण्डे रक्तकमलसमूहे कलहंसो राजहंस उत्स्वन उच्च शब्दो यथा तद्वत् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

दर शङ्ख को कहते हैं । इस श्लोक से बतलाया जा रहा है कि श्रीभगवान् का पाञ्चजन्य शङ्ख तो श्वेत वर्ण का था, किन्तु उसको बजाते समय श्रीभगवान् के लाल-लाल ओठों के सम्पर्क के कारण उसमें भी लालिमा संक्रान्त हो गयी और भगवान् के दोनों हाथों के बीच में विद्यमान वह उजला शङ्ख उसी तरह से सुशोभित हो रहा था जैसे लाल कमल के ऊपर बैठा हुआ कोई उजला राजहंस जोर से ध्वनि कर रहा हो ।।२।।

तमुपश्रुत्य निनदं जगद्भयभयावहम् । प्रत्युद्ययुः प्रजाः सर्वा भर्तृदर्शनलालसाः ।।३।।

अन्वयः— तम् जगद्भयभयावहम् निनदम् उपश्रुत्य सर्वाः प्रजाः भर्तृदर्शनलालसाः प्रत्युद्ययुः ।।३।।

अनुवाद— संसार के भय को भयभीत करने वाली उस ध्वनि को सुनकर सारी प्रजाएँ अपने स्वामी के दर्शन की लालसा से नगर से बाहर निकल आयी ।।३।।

भावार्थ दीपिका

जगतो यद्भयं तस्य भयावहम् । प्रत्युद्ययुः प्रत्युज्जग्मुः । भर्तुर्दर्शने लालसौत्सुक्यं यासां ताः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

जगतो यद्भयम् तस्य भयावहम् जगद्भयभयावहम् पद का विग्रह है । इसका अर्थ है जगत् के भय को भयभीत कर देने वाला । इस प्रकार के भगवान् के शङ्ख की ध्वनि को सुनकर सारी प्रजायें भगवान् का दर्शन करने की लालसा से नगर से बाहर निकल आयी । **भतृदर्शनलालसाः** पद का विग्रह है **भर्तुः दर्शनस्य लालसा औत्सुक्यं यासां ताः ।।३।।**

तत्रोपनीतबलयो रवेर्दीपमिवादृताः। आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा।।४।।
प्रीत्युत्फुल्लमुखाः प्रोचुर्हर्षगद्गदया गिरा। पितरं सर्वसुहृदमवितारमिवार्भकाः ।।५।।

अन्वयः— तत्र आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा उपनीत बलयः रवे आदृता दीपम् इव । सर्वं सुहृदम् अवितारम् पितरम् अर्भका इव प्रीत्युत्फुल्लमुखाः हर्षगद्गदयागिरा प्रोचुः ।।४-५।।

अनुवाद— श्रीभगवान् तो आत्माराम है, वे आत्मलाभ से ही सदा पूर्णकाम हैं उनको प्रजाओं ने उसी तरह से उपहार प्रदान किया जिस तरह कोई प्रेम पूर्वक सूर्य को दीपक दिखाता है । उसके पश्चात् उन प्रजाओं ने जिस तरह सुहृद अपने पिता की स्तुति बालक करते हैं उसी तरह से उन प्रजाओं ने भी प्रसन्नता पूर्वक तथा हर्षातिरेक के कारण गद् गद् वाणी से श्रीभगवान् की स्तुति की ।।४-५।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तस्मिन् श्रीकृष्णे उपनीताः समर्पिता बलय उपायनानि याभिस्ताः । निरपेक्षेऽपि तस्मिन्नादरेण समर्पणं दृष्टान्तः- रवेर्दीपमिवेति । पितरमर्भका इव तं सर्वसुहृदमवितारं प्रोचुरित्युत्तरेणान्वयः । सुहृत्त्वेनैवावितारं नतु कामेन । अत्र हेतुः- आत्मारामम् । तत्रापि हेतुः- परमानन्दनिजस्वरूपलाभेनैव पूर्णकामम् ।।४-५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् तो सभी वस्तुओं से निरपेक्ष हैं । किन्तु प्रजाओं ने उनको उसीतरह से उपहारों को प्रदान किया जिस तरह से कोई प्रेमपूर्वक सूर्य को दीपक दिखाता है । सूर्य तो स्वयं प्रकाश है सभी वस्तुओं को प्रकाशित

करते हैं उनको दीपक दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं है फिर भी अर्चना करने वाले उनकी प्रसन्नता के लिए उन्हें दीपक दिखाते ही हैं । इसके पश्चात् प्रजाओं ने सबों के रक्षक श्रीभगवान् की उसी तरह से स्तुति की जिस तरह से अपने सभी पुत्रों का कल्याण चाहने वाले और सबों की रक्षा करने वाले अपने पिता की बालक स्तुति करते हैं ।

भगवान् के उपायन निरपेक्ष होने के कारण को बतलाते हुए कहा गया है कि भगवान् तो आत्माराम हैं । उसका भी कारण यह है कि आत्मलाभ से ही पूर्णकाम हैं ।।४-६।।

नताः स्म ते नाथ सदाङ्घ्रिपङ्कजं विरिञ्चवैरिञ्च्यसुरेन्द्रवन्दितम् ।
परायणं क्षेममिहेच्छतां परं न यत्र कालः प्रभवेत्परप्रभुः ।।६।।

अन्वयः— हे नाथ वयम् विरिञ्चिवैरिञ्च्य सुरेन्द्रसेवितम् इहक्षेमम् इच्छताम् परं परायणम् ते अङ्घ्रिपंकजम् नताः स्म यत्र पर प्रभुः कालः न प्रभवेत् ।।६।।

अनुवाद— हे नाथ ! ब्रह्मा सनकादि तथा इन्द्र जिसकी वन्दना करते हैं, इस लोक में कल्याण चाहने वाले लोगों के लिए जो सर्वश्रेष्ठ आश्रय हैं ऐसे आपके चरण कमलों की हम सदा वन्दना करते हैं । आपके उन चरणों की वन्दना करने वालों का; ब्रह्मा इत्यादि को भी अपने वश में रखने वाला काल कुछ नहीं विगाड़ पाता हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

किमूचुरित तदाह- नताः स्मेति । विरिञ्चो ब्रह्मा । वैरिञ्च्याः सनकादयः । इह संसारे परं क्षेममिच्छतां परायणं परमं शरणम् । कुतः । परेषां ब्रह्मादीनां प्रभुरपि कालो यत्र प्रभुर्न भवेत् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

उन प्रजाओं ने श्रीभगवान् से क्या कहा ? इस बात को **नताः स्म० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । विरिञ्च ब्रह्माजी का नाम है और वैरिञ्च्य अर्थात् ब्रह्माजी के मानसिक पुत्र सनकादि हैं । प्रजाओं ने कहा कि हे नाथ! हमलोग आपके चरण कमलों की सदा वन्दना करते हैं । आपके इन चरणों की वन्दना ब्रह्माजी, सनकादि महर्षि तथा इन्द्र भी किया करते हैं । आपके ये चरण उन लोगों के सर्वश्रेष्ठ रक्षक हैं जो लोग इस संसार में आत्म कल्याण प्राप्त करना चाहते हैं । आपके चरणों के शरणागत जीवों का काल कुछ भी नहीं विगाड़ पाता है । जो काल ब्रह्माजी को भी अपने वश में रखता है उसका आपके भक्तों पर कोई भी वश नहीं चलता है ।।६।।

भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन त्वमेव माताथ सुहृत्पतिः पिता ।
त्वं सद्गुरुर्नः परमं च दैवतं यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम ।।७।।

अन्वयः— हे विश्वभावन त्वम् नः भवाय भव । त्वमेव नः माता, पिता सुहृत्, पतिः, सद्गुरुः परमं दैवतम् च यस्य तव अनुवृत्त्या वयम् कृतिनः बभूविम ।।७।।

अनुवाद— हे विश्वभावन ! आप ही हमलोगों का कल्याण करें । आप ही हमारे माता, पिता, सुहृद्, स्वामी, सद्गुरु तथा परमाराध्य देवता हैं । आपके ही चरण कमलों की सेवा करने के कारण हम सभी कृतार्थ हैं ।।७।।

भावार्थ दीपिका

अतो भवायोद्भवाय नोऽस्माकं त्वं भव । हे विश्वभावन । कृतिनः कृतार्था बभूविम जाता वयम् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

प्रजाएँ कहती हैं कि हमलोग आपके शरण में है अतएव आप हमलोगों का कल्याण करें । हमारे माता,

पिता सुहृद् स्वामी, सद्गुरु तथा परमाराध्य आप ही हैं । आप से ही हमारे सारे सम्बन्ध हैं और आपके चरणों की सेवा करने के कारण हम सभी कृतार्थ हुए हैं ॥७॥

अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं त्रैविष्टपानामपि दूरदर्शनम् ।
प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं पश्येम रूपं तव सर्वसौभगम् ॥८॥

अन्वयः— अहो वयम् सनाथा भवता स्मः यत् त्रैविष्टपानाम् अपि दूरदर्शनम् प्रेम-स्मित-स्निग्धनिरीक्षणाननम् तव सर्वसौभगम् रूपं पश्येम ॥८॥

अनुवाद— यह हमलोगों का परम सौभाग्य है कि हमलोग आपसे सनाथित हैं । उसी के कारण जिनका दर्शन देवताओं को भी मिलना कठिन है ऐसे आपको प्रेमपूर्ण मुस्कान से तथा स्निग्ध नेत्र से युक्त आपके मुख का तथा आपके सर्वाङ्ग सुन्दर रूप का हम लोग दर्शन करते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

कृतार्थत्वमेवाहुः । अहो भवता वयं सनाथाः स्मः । यद्यस्मात्तव रूपं पश्येम । त्रैविष्टपानामपि दूरे दर्शनं यस्य तत्। देवानामपि दुर्लभदर्शनमित्यर्थः । प्रेम्णा यत्स्मितं तद्युक्तं स्निग्धं निरीक्षणं यस्मिंस्तदाननं यस्मिंस्तद्रूपम् । सर्वेषु चाङ्गेषु सौभगं यस्मिंस्तत् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अहोसनाथा० इत्यादि श्लोक के द्वारा प्रजाएँ अपनी कृतार्थता का ही वर्णन करती हैं । वे कहती हैं कि आप हमारे स्वामी हैं यह हमलोगों का परम सौभाग्य है । यही कारण है कि हमलोग आपके प्रेमपूर्ण मुस्कान तथा स्नेह भरे नेत्रों से युक्त मुखड़े का तथा आपके सवाङ्ग व्याप्त सौन्दर्य से युक्त रूप का दर्शन करते हैं । आपके इस रूप का दर्शन तो देवताओं को भी दुर्लभ हैं ॥८॥

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान्कुरून्मधून्वाथ सुहृद्दिदृक्षया ।
तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद्रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत ॥९॥

अन्वयः— भो अम्बुजाक्ष यर्हि भवान् सुहृद्दिदृक्षया कुरून् अथ मधून् अपससार तर्हि हे अच्युत नः क्षणः अब्दकोटिः इव रविं विना अक्ष्णोः इव भवेत् ॥९॥

अनुवाद— हे कमलनयन भगवन् ! जब आप अपने संबन्धियों को देखने के लिए हस्तिनापुर अथवा मथुरा चले जाते हैं तब हे अच्युत ! आपके बिना हमलोगों का एक-एक क्षण करोड़ों वर्ष के समान अथवा सूर्य के बिना आँखों के समान बड़े कष्ट से वितता है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अर्भका इव सकरुणमाहुः । यर्हि यदा । भो अम्बुजाक्ष । नो भवानिति पाठे न इत्यनादरे षष्ठी । अस्माननादृत्यापससारापहाय जगाम । कुरून्हस्तिनापुरम् । मधून्मथुरां वा । तत्र तदा । रविं विना आन्ध्यादक्ष्णोर्यथैकोऽपि क्षणोऽब्दकोटिप्रतिमो भवेत् । एवं तव नः त्वदीयानामस्माकमीत्यर्थः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

बालकों के समान अत्यन्त करुण होकर प्रजाओं ने कहा **नो भवान्** जहाँ पाठ है वहाँ **नः** में षष्ठी विभक्ति अनादर के अर्थ में होगी और अर्थ होगा । हे कमलनयन जब हमलोगों की परवाह किए बिना आप अपने सम्बन्धियों को देखने के लिए हस्तिनापुर अथवा मथुरा चले जाते हैं उस समय हमलोगों का एक-एक क्षण बितना मुस्किल हो जाता है । जिस तरह सूर्य के बिना आखों की बेचैनीमय स्थिति हो जाती है उसी तरह ॥९॥

इति चोदीरिता वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः । शृण्वानोऽनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन्प्राविशत्पुरीम् ॥१०॥

अन्वयः— इति प्रजानां च उदीरिताः वाचः शृण्वानः भक्तवत्सलः भगवान् दृष्ट्या अनुग्रहं वितन्वन् पुरीम् प्राविशत् ॥१०॥

अनुवाद— इस तरह से प्रजाओं द्वारा कही गयी बातों को सुनते हुए भक्तवत्सल भगवान् अपनी दृष्टि के द्वारा उन सबों पर कृपा करते हुए अपनी नगरी द्वारकापुरी में प्रवेश कर गये ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

इति च एवंविधा अन्याश्चोच्चारिता वाचः शृण्वन् दृष्ट्या साभिनन्दनावलोकेनानुग्रहं कुर्वन् पुरीं द्वारकां प्राविशत् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से प्रजाओं के द्वारा कही गयी दूसरी भी बातों को भी भगवान् सुनते हुए तथा अपनी दृष्टि द्वारा अभिनन्दनमयी दृष्टि के द्वारा उन प्रजाओं पर कृपा करते हुए द्वारका पुरी में प्रवेश कर गये ॥१०॥

मधुभोजदशार्हार्हकुकुरान्धकवृष्णिभिः । आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैर्भोगवतीमिव ॥११॥

अन्वयः— नागैः भोगवतीम् इव आत्मतुल्यबलैः मधुभोजदशार्हार्हकुकुरान्धकवृष्णिभिः रक्षिताम् पुरीं प्राविशत् ॥११॥

अनुवाद— जिस तरह नागों द्वारा नागो की नगरी भोगवती सुरक्षित है, उसी तरह अपने सदृश ही बल वाले मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, कुकुर, अन्धक तथा यदुवंशियों द्वारा सुरक्षित अपनी द्वारकापुरी में वे प्रवेश किए ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तां द्वारकां स्तौति पञ्चभिः । स्वतुल्यबलैर्मधुभोजादिभिर्गुप्तां रक्षिताम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त द्वारका का वर्णन पाञ्च श्लोकों द्वारा किया गया है । भगवान् के सदृश ही बलवाले मधु भोज इत्यादि वंशीयों से वह द्वारका पुरी संरक्षित थी ॥११॥

सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः । उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्रियम् ॥१२॥

अन्वयः— सर्वतु सर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः उद्यानोपवनारामैः वृत्तपद्माकरश्रियम् (पुरीं प्राविशत्)॥१२॥

अनुवाद— वह नगरी सभी ऋतुओं के सभी विभवों से युक्त थी वह स्थान स्थान पर पवित्र वृक्षों लताओं तथा आश्रमों से युक्त थी, उद्यानों, उपवनों और पुष्पवाटिकाओं से युक्त तथा कमलों से भरे सरोवरों की शोभा से वह सम्पन्न थी ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

सर्वेष्वृतुषु सर्वे विभवाः पुष्पादिसम्पदो येषां ते पुण्यवृक्षा लताश्रमा लतामण्डपाश्च येषु तैरुद्यानादिभिर्वृता ये पद्माकराः सरांसि तैः श्रीः शोभा यस्यां ताम् । उद्यानं फलप्रधानम् । उपवनं पुष्पप्रधानम् । आरामः क्रीडार्थं वनम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

सभी ऋतुओं में होने वाली सम्पूर्ण ऐश्वर्य पुष्प इत्यादि से युक्त पवित्र वृक्षों, लताश्रमों अर्थात् ललितमण्डपों, से युक्त उद्यानों आदि से घिरे हुए कमलों से भरे हुए सरोवरों की शोभा से सम्पन्न फलों से भरे उद्यानों, पुष्पों से भरे उपवनों तथा क्रीडावनों से युक्त द्वारकापुरी में भगवान् ने प्रवेश किया ॥१२॥

गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम् । चित्रध्वजपताकाग्रैरन्तःप्रतिहतातपाम् ॥१३॥

अन्वयः— गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम्, चित्रध्वजपताकाग्रैः अन्तः प्रतिहतातपाम् (पुरीं प्रविशतत्)॥१३॥

अनुवाद— नगर के द्वार पर तथा गृहों के द्वार पर एवं मार्गों में श्रीभगवान् के स्वागत के लिए जिसमें उत्सव पूर्वक तोरण लगाये गये थे, गरुड आदि के चित्रों से युक्त ध्वजाओं तथा विजय प्रदान करने वाले यन्त्रों के चित्रों से चित्रित पताकाओं से जिसके भीतर घूप नहीं लगती थी ऐसी द्वारकापुरी में श्रीभगवान् प्रवेश किए ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

गोपुरं पुरद्वारम् । द्वारं गृहद्वारम् । कृतानि कौतुकेनोत्सवेन तोरणानि यस्यां ताम् । गरुडादिचिह्नाङ्किता ध्वजाः । जयप्रदयत्राङ्किताः पताकाः । चित्राणां ध्वजपताकानामग्रैरन्तः प्रतिहत आतपो यस्यां ताम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

उस नगरी में नगर द्वार पर तथा गृहों के द्वार पर एवं मार्गों में लोग श्रीभगवान् का स्वागत करने के लिए तोरण बाँधे थे, गरुड आदि के चित्रों से चित्रित ध्वजों तथा विजयप्रद यन्त्रों से चित्रित पताकाओं के कारण उस नगरी में धूप का कोई भी असर नहीं होता था ।।१३।।

संमार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम् । सिक्तां गन्धजलैरुप्तां फलपुष्पाक्षताङ्कुरैः ।।१४।।

अन्वयः— संमार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम्, गन्धजलैः सिक्तां फलपुष्पाङ्कुराक्षतैः उप्ताम् पुरीं प्राविशत् ।।१४।।

अनुवाद— उस नगरी के राजमार्ग, गलियाँ, बाजार तथा चौराहे झाड़कर सुगन्धित जल से सींच दिए गये थे तथा श्रीभगवान् के स्वागतार्थ बरसाये गयें फल, पुष्प, अक्षत और अङ्कुर उसमें विखरे हुए थे ऐसी द्वारकापुरी में भगवान् प्रवेश किए ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

संमार्जितानि निःसारितरजस्कानि महामार्गादीनि यस्यां ताम् । महामार्गा राजमार्गाः । रथ्या इतरमार्गाः आपणकाः पण्यवीथयः । चत्वराण्यङ्गनानि फलादिभिरुप्तामवकीर्णाम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

राजमार्ग तथा दूसरे मार्ग वाजार की गलियों तथा चौराहों को झाड़कर साफ कर दिया गया था और उन सबों को सुगन्धित जलों से सींच दिया गया था तथा श्रीभगवान् के स्वागत के लिए बरसाये गये फल तथा पुष्प जहाँ विखे हुए थे ऐसी द्वारकापुरी में श्रीभगवान् प्रवेश किए ।।१४।।

द्वारि द्वारि गृहाणां च दध्यक्षतफलेक्षुभिः । अलंकृतां पूर्णकुम्भैर्बलिभिर्धूपदीपकैः ।।१५।।

अन्वयः— गृहाणां द्वारि द्वारि च दध्यक्षतफलेक्षुभिः, पूर्णकुम्भैः, धूपदीपकैः बलिभिः अलङ्कृताम् (पुरीं प्रविशत्) ।।१५।।

अनुवाद— प्रत्येक गृहों के द्वारों पर, दधि, अक्षत, फल, ईख, जलभरे कलश तथा धूप-दीप आदि पूजा की सामग्री सजाकर रख दी गयी थी । ऐसी द्वारका नगरी में श्रीभगवान् प्रवेश किए ।।१५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के स्वागत के लिए नगर के प्रत्येक द्वारों पर दधि, अक्षत, ईख, जलभरे कलश तथा धूप दीप इत्यादि पूजा की सामग्री सजाकर रख दी गयी थी, इस प्रकार की द्वारकापुरी में भगवान् प्रवेश किए ।।१५।।

निशम्य प्रेष्ठमायान्तं वसुदेवो महामनाः। अक्रूरश्चोग्रसेनश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः ।।१६।।
प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः। प्रहर्षवेगोच्छशितशयनासनभोजनाः ।।१७।।
वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य ब्राह्मणैः ससुमङ्गलैः। शङ्ख तूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषेण चादृताः ।।
प्रत्युज्जगमू रथैर्हृष्टाः प्रणयागतसाध्वसाः ।।१८।।

अन्वयः— प्रेष्ठम् आयान्तम् निशम्य महामनाः वसुदेवः अक्रूरश्च उग्रसेनश्च अद्भुत विक्रमः रामश्च, प्रद्युम्नः, चारुदेष्णः च जाम्बवती सुतः साम्बः प्रहर्षवेगोच्छ्शितशयनासन भोजनाः वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य ससुमङ्गलैः ब्राह्मणैः शङ्खतूर्य निनादेन, ब्रह्मघोषेण च आदृताः च प्रणयागत साध्वसाः प्रत्युज्जग्मुः ॥१६-१८॥

अनुवाद— अपने प्रियतम श्रीकृष्ण भगवान् को आते हुए सुनकर अत्यन्त उदार वासुदेवजी, अक्रूरजी, उग्रसेनजी अद्भुत पराक्रमी बलरामजी, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, जाम्बवती के पुत्र साम्ब ये सबके सब हर्षातिरेक के कारण, शयन, आसन तथा भोजन करना छोड़कर गजराज को आगे करके श्रीभगवान् का स्वागत करने के लिए मङ्गलमय ब्राह्मणों, शङ्ख, तूरी आदि वाद्यों की ध्वनि पूर्वक तथा वेद पाठ के द्वारा स्मरण पूर्वक अगवानी करने के लिए आदर पूर्वक रथों पर चढ़कर आगे आये ॥१६-१८॥

भावार्थ दीपिका

प्रेष्ठान्तरात्मानमायान्तं निशम्य श्रुत्वा वसुदेवादयः प्रत्युज्जग्मुरिति चतुर्थेनान्वयः । प्रहर्षवेगेनोच्छशितान्युल्लङ्घितानि शयनादीनि यैस्ते । **‘शश प्लुतगतौ’** । वारणेन्द्रं मङ्गलार्थं पुरतः कृत्वा । ससुमङ्गलैः सुमङ्गलपुष्पादितद्युक्तपाणिभिः ब्रह्मघोषो मन्त्रपाठः प्रणयेन स्नेहेनागतं साध्वसं संभ्रमो येषां ते । वारमुख्या नटादयश्च प्रत्युज्जग्मुः ॥१६-१८॥

भाव प्रकाशिका

अपने प्रियतम अन्तरात्मा भगवान् श्रीकृष्ण को आते हुए सुनकर वसुदेवजी आदि ने उनकी अगवानी की इसका उन्नीसवें श्लोक से सम्बन्ध है । इन वसुदेवजी आदि ने शीघ्रता से जाने के लिए अपने शयनादि क्रियाओं का परित्याग कर दिया । उन लोगों ने मङ्गल के लिए गजराज को आगे कर लिया था । अपने हाथों में मङ्गलमय पुष्प आदि को ले लिया था और शङ्ख आदि बाद्यों की ध्वनि तथा वैदिक मन्त्रों का पाठ करते हुए वे लोग रथ पर चढ़कर स्नेहातिरेक के कारण शीघ्रता से अगवानी किए । श्रीभगवान् की अगवानी वेश्याओं ने तथा नटों आदि ने भी किया ॥१६-१८॥

वारमुख्याश्च शतशो यानैस्तद्दर्शनोत्सुकाः। लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनश्रियः ॥१९॥
नटनर्तकगन्धर्वाः सूतमागधबन्दिनः। गायन्ति चोत्तमश्लोकचरितान्यद्भुतानि च ॥२०॥

अन्वयः— तद्दर्शनायोत्सुकाः लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनश्रियः शतशो वारमुख्याश्च यानै तत् प्रत्युज्जग्मुः । नटनर्तकगन्धर्वाः सूतमागधबन्दिनः च उत्तमश्लोकचरितानि अद्भुतानि गायन्ति स्म ॥१९-२०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के दर्शन के लिए उत्कण्ठित जिनके मुख तथा कपोलों पर चमकते हुए कुण्डल सुशोभित हो रहे थे ऐसी सैकड़ों मुख्यवाराङ्गनायें सवारियों पर चढ़कर श्रीभगवान् की अगवानी करने के लिए गयीं। उस समय अनेक नट, नर्तक, गन्धर्व, सूत, मागध और बन्दीजन भगवान श्रीकृष्ण के अद्भुत चरित्रों का गायन कर रहे थे ॥१९-२०॥

भावार्थ दीपिका

लसत्कुण्डलैर्निर्भातानि यानि कपोलानि तैर्वदनेषु श्रीः शोभा यासां ताः । वारमुख्या नर्तक्यः । वेश्या इति यावत् । अद्भुतानि चेति चकारस्य बन्दिनश्चेत्यन्वयः । नटा नवरसाभिनयचतुराः । तालाद्यनुसारेण नृत्यन्तो नर्तकाः । गन्धर्वा गायकाः। **‘सूता पौराणिकाः प्रोक्ता मागधा वंशशंसकाः । वन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः ।’** ते सर्वे गायन्ति चेत्यन्वयः। उत्तमश्लोकस्याद्भुतानि चरित्राणि भक्तवात्सल्यादीनि ॥१९-२०॥

भाव प्रकाशिका

चमकते हुए कुण्डलों से प्रकाशित होने वाले कपोलों की शोभा से सुशोभित मुख वाली नर्तकियाँ भी भगवान्

की अगवानी करने के लिए गयीं । उस समय श्रीभगवान् के भक्तवात्सल्य से सम्बद्ध चारितों का गायन नट, नर्तक, गन्धर्व, सूत, मागध तथा बन्दीगण भी कर रहे थे ।

श्रीभगवान् के यश उत्तम कोटि के हैं, इसलिए भगवान् का नाम उत्तम श्लोक है । नवरसों का अभिनय करने में निपुण व्यक्ति को नट कहा गया है । ताल आदि के अनुसार नृत्य करने वालों को नर्तक कहा जाता है। गाने वालों को गन्धर्व कहते हैं ।

सूतों मागधों और बन्दिजनों को निम्नाङ्कित सूक्ति से परिभाषित किया गया है-

सूताः पौराणिकाः प्रोक्ताः मागधा वंशशंसकाः । बन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्ताव सदृशोक्तयः ।।

अर्थात् जो पुराणों के ज्ञाता होते हैं उनको सूत कहा गया है, राजाओं के वंशों का वर्णन करने वालों को मागध कहा जाता है । बन्दीजनों की बुद्धि निर्मल होती है, वे प्रसङ्ग के अनुसार ही वर्णन करते हैं ।।१९-२०।।

भगवांस्तत्र बन्धूनां पौराणामनुवर्तिनाम् । यथाविध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे ।।२१।।

अन्वयः— तत्र भगवान् बन्धूनां, पौराणाम्, अनुवर्तिनाम् यथाविधि उपसंगम्य सर्वेषां मानम् आदधे ।।२१।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण भी वहाँ अपने बान्धवों, नागरिकों, तथा सेवकों से यथायोग्य मिलकर सबों का समादर किए ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

यथाविधि यैः सह यथोचितं तैस्तथा समागमं कृत्वा । सर्वेषां मानमादधे कृतवानित्यर्थः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

जिसके साथ जिस विधि से मिलना चाहिए वैसे ही उन सबों से मिलकर भगवान् सबों का यथोचित्त सम्मान किए ।।२१।।

प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः । आश्वास्य चाश्वपाकेभ्यो वरैश्चाभिमतैर्विभुः ।।२२।।
स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि। आशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्बन्दिभिश्चाविशत्पुरम्।।२३।।

अन्वयः— प्रह्वाभिवादन-श्लेष-स्पर्श-स्मितेक्षणैः अभिमतैः वरैश्च आश्वपाकेभ्यः आश्वास्य विभुः स्वयम् गुरुभिः, सदारैः, विप्रैः स्थविरैः अपि आशीर्भिः युज्यमानः अन्यैः वन्दिभिः च पुरम् आविशत् ।।२२-२३।।

अनुवाद— श्रीभगवान् किसी को तो शिर झुकाकर प्रमाण किए, किसी का अभिवादन किए, किसी का आलिङ्गन किए, किसी से हाथ मिलाये तथा किसी को देखकर मुस्कुरा दिए, किसी को प्रेम पूर्वक देखे; जिसको जैसी इच्था थी उसको वैसा ही वरदान दिए । इस तरह श्रीभगवान् चाण्डाल पर्यन्त सबों को सन्तुष्ट किए ।

स्वयम् भी वे गुरुजनों, सपत्नीक ब्राह्मणों, तथा वृद्धों से आशीर्वाद प्राप्त करके दूसरे लोगों तथा बन्दीजनों के साथ अपनी नगरी में प्रवेश किए ।।२२-२३।।

भावार्थ दीपिका

तदाह- प्रह्वेति । प्रह्वं प्रह्वत्वं शिरसा नतिः । अभिवादनं वाचा नतिः । आश्वास्याभयं दत्त्वा । श्वपाकानभिव्याप्य वरैरभीष्टदानैश्च मानं कृतवान् । अन्यैश्च वन्दिभिश्च ।।२२-२३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने सबों का जो सम्मान किया उसी का वर्णन **प्रह्वाभिवादन० इत्यादि** श्लोक के द्वारा करते हैं । शिर झुकाकार प्रणाम करने को प्रह्वा कहते हैं । वाणी से नमस्कार करने को अभिवादन कहते हैं । अभय

प्रदान करने को आश्वासन कहते हैं । श्रीभगवान् ने चाण्डाल इत्यादि सबों को अभिप्रेत वरदान देकर उन सबों का सम्मान किया इसके बाद वे दूसरे बन्दीजनों के साथ नगर में प्रवेश किए ।।२२-२३।।

राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः । हर्म्याण्यारुरुहुर्विप्र तदीक्षणमहोत्सवाः ।।२४।।

अन्वयः— हे विप्र ! कृष्णे राजमार्गं गते तत् ईक्षणमहोत्सवाः द्वारकायाः कुलस्त्रियः हर्म्याणि आरुरुहुः ।।२४।।

अनुवाद— हे शौनकजी ! जब भगवान् श्रीकृष्ण राजमार्ग पर जा रहे थे उस समय उनके दर्शन को ही महोत्सव मानने वाली द्वारका की कुलस्त्रियाँ उनको देखने के लिए अट्टालिकाओं पर चढ़ गयीं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

हे विप्र शौनक ! तस्येक्षणेन महानुत्सवो यासां ताः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

विप्र शब्द से यहाँ शौनकजी को कहा गया है । द्वारका की कुल स्त्रियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन को ही अपना महोत्सव मानती थीं ।।२४।।

नित्यं निरीक्षमाणानां यदपि द्वारकौकसाम्। न वितृप्यन्ति हि दृशः श्रियो धामाङ्गमच्युतम्।।२५।।
श्रियो निवासो यस्योरः पानपात्रं मुखं दृशाम् । बाहवो लोकपालानां सारङ्गाणां पदाम्बुजम्।।२६।।

अन्वयः— यस्य उरः श्रियः निवासः, मुखम् दृशम् पानपात्रम् बाहवः लोकपालानां निवासः, पदाम्बुजम् सारङ्गाणाम् निवास श्रियः धामाङ्गम् अच्युतम् नित्यं निरीक्षमाणानाम् द्वारकौकसाम् दृश नहि वितृप्यन्ति ।।२५-२६।।

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में सौन्दर्यलक्ष्मी का निवास स्थान है, उनका मुखारविन्द नेत्रों द्वारा सौन्दर्यामृत पान करने के लिए पानपात्र है, उनकी भुजाओं में लोकपालों का निवास है, तथा श्रीभगवान् के चरण में शास्त्रों के सार स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण का गायन करने वाले भक्तों का निवास स्थान है ऐसे सौन्दर्य लक्ष्मी के आश्रयभूत अङ्गों वाले भगवान् श्रीकृष्ण को नित्य ही देखने वाले द्वारका वासियों की स्त्रियों के नेत्र पूर्ण रूप से कभी भी तृप्त नहीं होते हैं ।।२५-२६।।

भावार्थ दीपिका

यद्यस्मान्नित्यं सदाऽच्युतं निरीक्षमाणानामपि दृशो नैव तृप्यन्त्यतः आरुरुहुः । कथंभूतम् । श्रियः शोभाया धामस्थानमङ्गं यस्य तम् । एतदेवाभिनयेनाह । श्रियो लक्ष्म्याः यस्योरो वक्षो निवासः । यस्य मुखं सर्वप्राणिनां दृशां सौन्दर्यामृतपानाय पात्रम्। यस्य बाहवो लोकपालानां निवासः । सारं श्रीकृष्णं गायन्तीति सारङ्गा भक्तास्तेषां यस्य पदाम्बुजं निवासः तं निरीक्षमाणानां दृश इति पूर्वेणान्वयः ।।२५-२६।।

भाव प्रकाशिका

चूकि सदैव भगवान् अच्युत का दर्शन करने वाले द्वारका वासियों की स्त्रियों की कभी भी देखने से तृप्ति नहीं होती है, अतएव वे कुलस्त्रियाँ अट्टालिकाओं पर चढ़ गयीं, क्योंकि श्रीभगवान् के अङ्ग शोभा के आश्रय हैं ऐसे भगवान् को देखने से तृप्ति नहीं होती है । इसी को अभिनय पूर्वक बतलाते हैं— श्रीभगवान् का वक्षःस्थल लक्ष्मीजी का निवास स्थान है । श्रीभगवान् का मुख सभी प्राणियों के नेत्रों के लिए श्रीभगवान् के सौन्दर्य रूपी अमृत का पान करने के लिए पात्र है । उनकी भुजाओं में लोकपालों का निवास है, सभी शास्त्रों के सारभूत श्रीकृष्ण का गायन करने वाले भक्तों का निवास उनके चरण कमल है । इस श्लोक का पच्चीसवे श्लोक के साथ अन्वय हैं ।।२५-२६।।

सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि ।
पिशङ्गवासा वनमालया बभौ घनो यथाऽर्कोडुपचापवैद्युतैः ॥२७॥

अन्वयः— पथि सितातपत्रव्यजनैः उपास्कृतः प्रसूनवर्षैः अभिवर्षितः पिशङ्गवासा वनमालया च अर्कोडुपचापवैद्युतैः धनः यथा बभौ ॥२७॥

अनुवाद— द्वारका के राजमार्ग पर श्वेतछत्र तथा चामरों से मण्डित चारो ओर से बरसाये जा रहे फूलों की वर्षा से पीताम्बर से वनमाला से भगवान् उसी तरह से सुशोभित हो रहे थे जैसे श्याम वर्ण का मेघ सूर्य तारों से युक्त चन्द्रमा इन्द्रधनुष तथा विद्युत् से सुशोभित हो रहा हो ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

सितैरातपत्रव्यजनैरुपस्कृतो मण्डितः । अर्कश्चोडुपो नक्षत्रसहितश्चन्द्रश्च चापमिन्द्रधनुश्च वैद्युतं विद्युत्तेजश्च तैः । अर्कश्छत्रस्योपमानम् । नक्षत्राणि पुष्पवृष्टेः । चन्द्रः परिभ्रमकृतमण्डलाकारयोश्चामरव्यजनयोः । चापं वनमालायाः विद्युत्तेजः पिशङ्गवाससोः । अभूतोपमेयम् । यदि धनस्योपरि सूर्यबिम्बमुभयतश्चन्द्रो सर्वतो नक्षत्राणि मध्ये च मिलितं चापद्वयं स्थिरं विद्युत्तेजश्च यदि भवेत्तर्हि स धनो यथा भाति तथा हरिर्बभावित्यर्थः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

द्वारका के राजमार्ग पर जाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण श्वेत छत्र से आवृत्त थे और चामरों से उनको हवा की जा रही थी । वे पीताम्बर और वनमाला धारण किए थे । इन सबों से अलंकृत भगवान् की शोभा सूर्य, तारों सहित चन्द्रमा, इन्द्रधनुष और विद्युत् से अलंकृत श्याम वर्ण के मेघ के समान हो रही थी । सूर्य छत्र के उपमान हैं, नक्षत्र पुष्पों के उपमान हैं, चन्द्रमा चारो ओर घुमाये जा रहे चामरों के उपमान हैं इन्द्रधनुष वनमाला का उपमान है, विद्युत् का तेज पीताम्बरों का उपमान है । इस श्लोक में अभूतोपमा अलङ्कार हैं । यदि मेघ के ऊपर सूर्य का बिम्ब हो और उसके दोनों ओर दो चन्द्रमा, चारो ओर तारे हों, बीच में मिले हुए दो इन्द्र धनुष हों तथा विद्युत् का स्थिर तेज हो इस प्रकार का श्याम मेघ जैसे सुशोभित होए उसी तरह की शोभा श्रीहरि की हो रही थीं ॥२७॥

प्रविष्टस्तु गृहं पित्रोः परिष्वक्तः स्वमातृभिः। ववन्दे शिरसा सप्त देवकीप्रमुखा मुदा ॥२८॥
ताः पुत्रमङ्कमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः। हर्षविह्वलितात्मानः सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ॥२९॥

अन्वयः— पित्रोः गृहं प्रविष्टः देवकी प्रमुखाः सप्त शिरसा ववन्दे । स्वमातृभिः परिष्वक्तः । स्नेह स्नुतपयोधराः ताः पुत्रम् अङ्के आरोप्य हर्षविह्वलितात्मानः नेत्रजैः जलैः सिषिचुः ॥२८-२९॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण सर्वप्रथम अपने माता-पिता के गृह में प्रवेश किए और देवकी आदि अपनी सातो माताओं के चरणों पर शिर रखकर उनकी वन्दना किए, माताओं ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपने हृदय से लगा लिया । उन माताओं के स्तनों से स्नेह के कारण दूध प्रवाहित होने लगा । उन लोगों ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपनी गोद में बैठा लिया और अपने स्नेहाश्रुओं से उनके शिर को भिङ्गो दिया ॥२८-२९॥

भावार्थ दीपिका

देवकीप्रमुखाः सप्त ववन्द इति मातृसौन्दर्यादादरविशेषज्ञापनार्थमुक्तम् । अष्टादशापि वसुदेवभार्या मातृतुल्यत्वान्नमस्कृता एव । नेत्रजैर्जलैर्हर्षाश्रुभिः ॥२८-२९॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी सातो माताओं को प्रणाम करके उनकी प्रार्थना की । देवकीजी उन सबों में सुन्दर

थीं उनके प्रति आदर विशेष को बोधित करने के लिए **देवकीप्रमुखाः सप्तववन्दे** कहा गया है वसुदेवजी की अठारहो पत्नियाँ माता के ही तुल्य थीं अतएव श्रीभगवान् उन सबों को भी नमस्कार किए । **नेत्रजैर्जलैः** अर्थात् आँसुओं से ॥२८-२९॥

अथाविशत्स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमम् । प्रसादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश ॥३०॥

अन्वयः— अथ सर्वकाममनुत्तमम् स्वभवनं अविशत् यत्र च षोडश सहस्राणि पत्नीनां प्रसादाः ॥३०॥

अनुवाद— इसके पश्चात् श्रीभगवान् सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले सर्वोत्तम अपने महल में प्रवेश किए जिसमे सोलह हजार पत्नियों के अलग-अलग महल थे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

स्वगृहप्रवेशमाह- अथेति । सहस्राणि च षोडशेति च करादष्टोतरशतानीतिच ज्ञेयम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अथ इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् के अपने गृह में प्रवेश का वर्णन किया गया है । सहस्राणि षोडशेति च के चकार का अर्थ है कि सोलह हजार एक सौ आठ महल थे ॥३०॥

पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागतं विलोक्य संजातमनोमहोत्सवाः ।
उत्तस्थुरारात् सहसासनाशयात्साकं व्रतैर्व्रीडितलोचनानाः ॥३१॥

अन्वयः—प्रोष्य गृहान् उपागतं पतिं विलोक्य संजातमनोमहोत्सवाः, व्रतैः व्रीडितलोचनानाःपत्न्यः आरात् आसनाशयात् सहसा साकं उत्तस्थुः ॥३१॥

अनुवाद— परदेश में रहकर घर आये अपने पति श्रीभगवान् को दूर से ही देखकर प्रोषित भर्तृका के नियमों तथा शय्या तथा आसन का त्याग करके श्रीभगवान् की पत्नियाँ अचानक एक साथ खड़ी हो गयीं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

प्रोष्य देशान्तरे उषित्वा आरात् दूरादेव विलोक्य संजातो मनसि महोत्सवो यासाम् ताः आसनादाशयाच्च आसनाद देहेनोत्तस्थुः । आशयोऽन्तः करणं तस्मादप्यात्मनोत्तथुः श्रीकृष्णेनात्मनः संश्लेषेऽन्तः करणव्यवधानमपि ता नसहन्तेत्यर्थः। व्रीडितानि लोचनान्याननानि च यासां ताः अपाङ्गैरेव वीक्षणाद् व्रीडितलोचनाः अवनतमुखत्वाद् व्रीडिताननाः साकं व्रतैः हास्य क्रीडावर्जनादिनियमा अपि ताभ्य उत्तस्थुरित्यर्थः । धृतव्रता उत्तस्थुरिति वा । व्रतानि च याज्ञवल्क्येनोक्तानि-

क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् । हास्यं पर गृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्तृका ॥ इति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

प्रोष्य अर्थात् दूसरे देश में रहकर । **अरात्** अर्थात् दूसरे ही देखकर जिन सबों के मन में अत्यधिक प्रसन्नता हो गयी थी । वे सब अपने शरीर से आसन से उठकर खड़ी हो गयीं और अन्तःकरण से उठ खड़ी हुई । श्रीकृष्ण के द्वारा आत्मालिङ्गन के समय वे सब अपने अन्तःकरण के भी व्यवधान को नहीं सह सकीं । उस समय उन सबों के नेत्र और मुख लज्जा के कारण झुक गये थे । कटाक्षपातों से ही उन सबों के नेत्र लज्जित हो गये और उन सबों ने अपना मुख झुका लिया था । साथ ही साथ प्रोषित पतिका के हँसी करना, क्रीडा करना आदि के परित्याग आदि नियमों का भी परित्याग कर दिया । अथवा व्रत धारण किए हुए ही उठकर खड़ी हो गयीं । प्रोषित पतिका के व्रत का महर्षि याज्ञवल्क्य ने बतलाया भी है— १. क्रीडा करना, २. अपने शरीर को अलंकृत करना, अपने शरीर को अलंकृत करना, ३. समाज में जाकर उत्सव देखना, ४. हँसना तथा ५. दूसरे के घर जाना, प्रोषित भर्तका का इन पाँच कामों को त्याग देना चाहिए ॥३१॥

तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना दुरन्तभावाः परिरेभिरे पतिम् ।
निरुद्धमप्यास्रवदम्बु नेत्रयोर्विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात् ॥३२॥

अन्वयः— हे भृगुवर्य ! दुरन्तभावाः ताः अन्तरात्मना, दृष्टिभिः आत्मजैश्च तं पतिं परिरेभिरे । विलज्जतीनां नेत्रयोः अम्बु निरुद्धम् अपि आस्रवत् ॥३२॥

अनुवाद— हे भृगुवंशियों में श्रेष्ठ शौनकजी ! जिन सबों का भाव अत्यन्त गम्भीर था । उन सबों ने सर्वप्रथम मन से, उसके पश्चात् दृष्टि से तथा उसके पश्चात् पुत्रों के व्याज से शरीर से उनका आलिङ्गन किया । उन सबों की आखों में जो प्रेमाश्रु आ गये थे उनको उन सबों ने अत्यधिक लज्जा के कारण बहुत रोका किन्तु वे रुक नहीं सकें ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

आयान्तं तं पतिं दर्शनात्पूर्वमात्मना बुद्ध्यान्तर्हृदये परिरेभिरे ततो दृष्टिभिस्ततः समीपमागतमात्मजैः पुत्रैर्गृहीतकण्ठमालिङ्गयन्त्य इव स्वयमालिङ्गितवत्य इत्यर्थः । अत्र हेतुः- दुरन्तभावा गम्भीराभिप्रायाः । तदा च तासां नेत्रयोर्निरुद्धमप्यम्बु बाष्पं वैक्लव्याद्वैवश्यादास्रवदीषत्सुस्राव । अतएव धैर्यहान्या विलज्जतीनाम् । हे भृगुवर्य । चित्रं शृण्विति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

आते हुए अपने पति को देखने से पूर्व उन सबों ने अपने मन से पति का आलिङ्गन किया, उसके पश्चात् श्रीभगवान् को अपनी आँखों से देखकर दृष्टि से आलिङ्गन किया, श्रीभगवान् के समीप आ जाने पर जब श्रीभगवान् अपने पुत्रों को उठाकर गले से लगा रहे थे उस समय आलिङ्गित होते हुए के समान उन सबों ने भगवान् का शरीर से आलिङ्गन किया । इसका कारण यह था कि उन सबों का भाव गम्भीर था । उस समय उन सबों के नेत्रों में जो प्रेमाश्रु आ गये थे उन सबों ने लज्जावशात् उसे बहुत रोकना चाहा किन्तु वे आँसू बाहर निकल ही आये । हे भृगुवर्य इस आश्चर्य को आप सुनें ॥३२॥

यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगतस्तथापि तस्याङ्घ्रियुगं नवं नवम् ।
पदे पदे का विरमेत तत्पदाच्चलापि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित् ॥३३॥

अन्वयः— यद्यपि रहः गतः असौ पार्श्वगतः तथापि तस्य अङ्घ्रियुगं (आसांकृते) पदे पदे नवं नवम् (एव) यत् श्रीः कर्हिचित् न जहाति तत् पदात् का विरमेत् ॥३३॥

अनुवाद— यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण एकान्त में उन सबों के पास ही रहते थे फिर भी श्रीभगवान् के दोनों चरणकमल उन सबों को प्रतिक्षण नवीन ही प्रतीत होते थे । श्रीभगवान् के जिन चरणों को लक्ष्मीजी नहीं छोड़ना चाहती हैं उन चरणों को कौन रमणी छोड़ सकती हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

पार्श्वगतः समीपस्थस्तत्रापि रहोगत एकान्ते प्रवर्तते स्म । पदे पदे प्रतिक्षणं नवं नवमेव । अत्र कैमुत्यन्यायः । का विरमेतेति । चला चञ्चलस्वभावापि ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि श्रीभगवान् एकान्त में उन सबों के समीप ही बने रहते थे फिर भी श्रीभगवान् के चरण युगल उन पत्नियों को प्रतिक्षण नवीन ही प्रतीत होते हैं । और ऐसा होना भी स्वाभाविक ही है; क्योंकि भगवान् के जिन चरणों का चञ्चल स्वभाव वाली लक्ष्मी भी नहीं छोड़ना चाहती हैं उन चरणों को कोई पत्नी कैसे छोड़ सकती हैं ?॥३३॥

एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मनामक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् ।
विधाय वैरं श्वसनो यथाऽनलं मिथो वधेनोपरतो निरायुधः ॥३४॥

अन्वयः— यथा श्वसनः (परस्पर संघर्षेण) अनलम् (उत्पाद्य वंशान् विनाशयति एवमेव) क्षितिभारजन्मनाम्, अक्षैहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् नृपाणां मिथः वैरं विधाय वधेन उपरतः ॥३४॥

अनुवाद— जिस तरह वायु बाँसों में संघर्ष उत्पन्न करके अग्नि को उत्पन्न कर देती है और उससे बांसों को जला देती है, उसी तरह आयुध हीन भी रहकर भगवन् पृथिवी के भार रूप से जन्म लेने वाले तथा कई अक्षौहिणी सेनाओं से युक्त होने के कारण तेजस्वी राजाओं में परस्पर में वैर उत्पन्न करके स्वयम् उपरत हो गये ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

उक्तं श्रीकृष्णचरितं संक्षिप्याह- एवमिति द्वाभ्याम् । क्षितेर्भाराय जन्म येषाम् । अक्षौहिणीभिः कृत्वा परिवृत्तं सर्वतः प्रसृतं तेजः प्रभावो येषाम् । श्वसनो वायुर्वेणूनामन्योन्यसंघर्षेणाानलं विधाय मिथो दाहेन यथोपशाम्यति तद्वत् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

जिस श्रीकृष्ण चरित का वर्णन किया जा चुका है उसी को संक्षेप में एवम् इत्यादि दो श्लोकों से कहते हैं । **क्षितिभारजन्मनाम्** पद का विग्रह है **क्षितेर्भाराय जन्म येषाम्** । जिन सबों का जन्म पृथिवी पर पाप का भार बढ़ाने के ही लिए होता है । अक्षौहिणी सेनाओं को ही लेकर जिन सबों का प्रभाव सब ओर फैला था, ऐसे राजागण को । वायु जिस तरह से बाँस में संघर्ष कराकर अग्नि को उत्पन्न कर देती है वही अग्नि बाँसों को भस्म करके अन्त में स्वयं शान्त हो जाती है । उसी तरह अपने हाथ में आयुध धारण किए बिना ही उन राजाओं में वैर पैदा करके एक दूसरे के द्वारा उन सबों का वध भी करवाकर भगवान् शान्त हो गये ॥३४॥

स एष नरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया । रेमे स्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान्प्राकृतो यथा ॥३५॥

अन्वयः— स एष भगवान् स्वमायया अस्मिन् नरलोके अवतीर्णः स्त्रीरत्नकूटस्थः प्राकृतो यथा रेमे ॥३५॥

अनुवाद— वे ही ये भगवान् अपनी माया का आश्रय लेकर इस मनुष्य लोक में अवतीर्ण हुए और स्त्रीरत्न समूह के बीच रहकर प्राकृत मनुष्य के समान रमण किए ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

स्त्रीरत्नकूटस्थ उत्तमस्त्रीकदम्बस्थः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

उत्तम कोटि के स्त्री समूह में स्थित यह **स्त्रीरत्नकूटस्थ** पद का अर्थ हैं ॥३५॥

उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहासव्रीडावलोकनिहतो मदनोऽपि यासाम् ।
संमुह्य चापमजहात्प्रमदोत्तमास्ता यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः ॥३६॥

अन्वयः— यासाम् उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहास-ब्रीडावलोक-निहतः मदनः अपि संमुह्य चापम् अजहात् ताः प्रमदोत्तमाः कुहकैः यस्य इन्द्रियं विमथितुम् न शेकुः । **अथवा** यासाम् उद्दाम भावपिशुनामल वल्गुहास ब्रीडावलोक निहतः अमदनः महादेवोऽपि संमुह्य पिनाकम् अजहात् ताः प्रमदोत्तमाः कुहकैः यस्य इन्द्रियं विमथितुम् न शेकुः ॥३६॥

अनुवाद— जिन सबों की निर्मल और मनोहर हँसी उन सबों के उन्मुक्त हार्दिक भावों को सूचित करने वाली थी उनके लज्जापूर्ण अवलोकन के कारण मोहित (किङ्कर्तव्य विमूढ) कामदेव भी अपने धनुष का परित्याग कर दिये थे उन कामिनियों का काम विलास श्रीभगवान् की इन्द्रियों में क्षोभ नहीं पैदा कर सका ।

अथवा इस श्लोक का यह भी अर्थ है कि जिन सबों की निर्मल और मनोहर हंसी उन सबों के हृदय के उन्मुक्त भाव को अभिव्यक्त करने वाली होती है, उन स्त्रियों की लज्जा तथा अवलोकन के द्वारा प्रताडित होकर काम की भावना रहित महादेवजी भी मोहित होकर अपने पिनाक का परित्याग कर दिए, ऐसी पुराणों में प्रख्यात कोई आख्यायिका है, यह प्राचीनों का कहना है । इसी प्रकार कामिनियों का कामद्बोधक विलास श्रीभगवान् की इन्द्रियों में क्षोभा पैदा नहीं कर सका ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं स्त्रीसङ्गादिभिः संसारप्रतीतेः कथं भगवानवतीर्ण इत्युच्यते तत्राह– उद्दामेति द्वाभ्याम् । यासामुद्दामो गम्भीरो यो भावोऽभिप्रायस्तस्य पिशुनः सूचकोऽमलो वल्गुः सुन्दरो हासो व्रीडावलोकश्च ताभ्यां निहतः अमदनः श्रीमहादेवोऽपि संमुह्य लज्जया चापं पिनाकमजहात् । एवंप्रभावा याः स्त्रिय इत्येतावद्विवक्षितम् । यद्वा भगवतो मोहिनीरूपेण महेशोऽपि मोहित एवमेताश्च तादृग्विलासा एवेति तथोक्तम् । ताः कुहकैः कपटैर्विभ्रमैर्यस्येन्द्रियं मनो विमथितुं क्षोभयितुं न शेकुर्न शक्ताः । अथवा निहतस्ताडितो मदनोऽपि जगद्विजयी संमुह्य तत्तत्कर्तव्यतामूढः संश्चापं धनुर्लज्जयाऽजहाज्जहौ । ताश्च प्रमदोत्तमाः कामविजयिन्योऽपीत्यादिपूर्ववत् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि श्रीभगवान् भी स्त्रियों आदि का संङ्ग करते है अतएव वे संसारी ही प्रतीत होते हैं, यह कैसे कहा जाता है श्रीभगवान् ही श्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हुए हैं । इसका उत्तर उद्दाम इत्यादि दो श्लोकों से दिया गया है । उन सबों के गम्भीर अभिप्राय की सूचना उन नारियों की मनोज्ञ हँसी लज्जापूर्वक देखने के कारण कामरहित शङ्करजी भी मोहित होकर लज्जा के कारण अपने पिनाक का परित्याग कर दिए । इस प्रकार की वे स्त्रियाँ थीं। या भगवान् ने अपनी मोहिनी रूप से शङ्करजी को भी मोहित कर दिया इस प्रकार के विलास वाली स्त्रियाँ जिन श्रीभगवान् के मन आदि इन्द्रियों को मोहित नहीं कर सकीं अथवा इन सबों के द्वारा प्रताडित होकर किं कर्तव्य विमूढ जगद् विजयी काम भी लज्जित होकर अपना धनुष त्याग दिया । इस तरह की काम को भी जित लेने वाली नारियाँ भी श्रीभगवान् के मन को मोहित नही कर सकीं ॥३६॥

तमयं मन्यते लोको ह्यसङ्गमपि सङ्गिनम् । आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः ॥३७॥

अन्वयः— तम् असङ्गम् अपि लोकः सङ्गिनम् आत्मौपम्येन व्यापृण्वानं मनुजं मन्यते, यतः अयम् अबुधः ॥३७॥

अनुवाद— उन आसक्ति रहित श्रीभगवान् को यह संसार इसलिए आसक्त मानता है कि यह संसार अज्ञानी हैं और अपने ही समान श्रीभगवान् को कार्यों को करते हुए देखता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तं श्रीकृष्णमयं प्राकृतो लोक आत्मौपम्येन स्वसादृश्ये सङ्गिनं मनुजं मन्यते । अत्र हेतुः– व्यापृण्वानं व्याप्रियमाणम्। यतोऽयमबुधोऽतत्त्वज्ञः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

उन आसक्ति रहित भगवान श्रीकृष्ण को यह जो अज्ञान संसार है वह अपने ही समान आसक्त मनुष्य मानता है उसका कारण यही है कि सत्यभामा आदि में आसक्त रहने के कारण वे पारिजात आदि का हरण किए । यह सब इसीलिए है कि यह संसार तत्त्वज्ञ नहीं है ॥३७॥

एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः । न युज्यते सदात्मस्थैर्यया बुद्धिस्तदाश्रया ॥३८॥

अन्वयः—ईशस्य एतदेव ईशनम् यत् प्रकृतिस्थ अपि तद्गुणैः न युज्यते यथा सदा आत्मस्थैः तदाश्रया बुद्धिः न युज्यते॥३८॥

अनुवाद— परमात्मा का यही ईश्वरत्व है कि प्रकृति में भी रहकर वे प्रकृति के गुणों से संबद्ध नहीं होते हैं। यह उसी तरह से होता है जिस तरह श्रीभगवान् को अपना आश्रय बनाने वाली बुद्धि प्राकृतिक गुणों से लिप्त नहीं होती है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

कुत इत्यपेक्षायामैश्वर्यलक्षणमाह- एतदिति । ईशस्य ईशनमैश्वर्य नामैतदेव । किं तत् । प्रकृतिस्थोऽपि तस्या गुणैः सुखदुःखादिभिः सदा न युज्यते इति यत् । यथात्मस्थैरानन्दादिभिरात्माश्रयापि बुद्धिर्न युज्यते तद्वत् । वैधर्म्ये दृष्टान्तो वा । आत्मस्थैः सत्ताप्रकाशादिभिर्यथा बुद्धिर्युज्यत इति । एवं वा । असदात्मा देहस्तत्रस्थैर्गुणैस्तदाश्रया बुद्धिस्तदुपाधिर्जीवो यथा युज्यते एवं प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैर्न युज्यत इति यदेतदीशनमीशस्येति ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

यह क्यों होता है ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर ऐश्वर्य का स्वरूप **एतद्० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं। परमात्मा का यही ऐश्वर्य है कि प्रकृति में स्थित रहकर भी वे प्रकृति के गुणों सुख दुःख आदि से कभी भी सम्बद्ध नहीं होते हैं। यह उसी तरह से होता है जिस तरह आत्माश्रित भी बुद्धि प्रकृति के गुणों से कभी लिप्त नहीं होती है। आत्म व्यतिरिक्त शरीर में रहने वाली बुद्धि भी शरीर के सुख दुःख आदि से युक्त नहीं होती है। किन्तु शरीरोपहित जीव शरीर के गुणों से युक्त होता है। अतएव प्रकृति में रहकर भी उसके गुणों से युक्त नहीं होना ही ईश्वर का ईश्वरत्व हैं ॥३८॥

तं मेनिरेऽबला मूढाः स्त्रैणं चानुव्रतं रहः । अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे श्रीकृष्णद्वारकाप्रवेशो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अन्वयः— भर्तुः अप्रमाण विदः मूढाः अबला स्त्रैणम् रह अनुव्रतं च यथा मतयः ईश्वरम् मेनिरे ॥३९॥

अनुवाद— अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा को नहीं जानने वाली अज्ञानी स्त्रियों ने उनको अपने वशवर्ती तथा सदा कामपरायण उसी तरह मानती थीं जिस तरह कोई अहङ्कारी ईश्वर को भी अपने ही समान मानता हैं ॥३९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के भगवान् श्रीकृष्ण का द्वारका में प्रवेश वर्णन नामक ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तत्पत्न्योऽपि तस्य तत्त्वं न जानन्तीत्याह । तं स्त्रैणमात्मवश्यं रह एकान्तेऽनुव्रतमनुसृतं च मेनिरे । भर्तुरप्रमाणविदः प्रमाणमियत्तां महिमानमजानन्त्य इत्यर्थः । ईश्वरं क्षेत्रज्ञं मतयोऽहंवृत्तयो यथा स्वाधीनं स्वधर्मयोगिनं मन्यन्ते तद्वत् । यद्वा यथा यथा तासां मतयः कल्पनास्तथा तथा तमीश्वरं स्त्रैणादिरूपं मेनिरे इत्यर्थः ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकादशोऽध्यायः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियाँ भी उनके तत्त्व को नहीं जानती थीं उन सबों ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपने अधीन और अपने में ही सदा आसक्त रहने वाला माना। ऐसा इसलिए कि वे अपने पति भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा को नहीं जानती थीं। यह उसी तरह से है जिस तरह से कोई अहङ्कारी व्यक्ति ईश्वर को अपने ही समान मनुष्य मानता है। अथवा वे पत्नियाँ जैसी कल्पना करती थीं उसी तरह से भगवान् श्रीकृष्ण को स्त्रैण मानती थीं॥३९॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के ग्यारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥११॥

* * *

बारहवाँ अध्याय

परीक्षित् का जन्म वर्णन

शौनक उवाच

अश्वत्थाम्नोपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा । उत्तराया हतो गर्भ ईशेनाजीवितः पुनः ॥१॥

अन्वयः— अश्वत्थाम्नः । उपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णः उरुतेजसा उत्तराया गर्भः हतः पुनः ईशेन आजीवितः ॥१॥

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— अश्वत्थामा के द्वारा छोड़े गये ब्रह्मास्त्र के द्वारा उत्तरा का गर्भ तो विनष्ट ही हो गया था ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसको फिर से जीवित कर दिया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पुरोक्तं यत्प्रसङ्गाय द्रौणिदण्डादि विस्तरात् । द्वादशे तु तदेवाथ परीक्षिज्जन्म वर्ण्यते ॥ '**परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्मकर्मविलायनम् । संस्थां च पाण्डुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ।।**' इति प्रतिज्ञाय पाण्डवानां राज्यस्थितिरुपोद्घातरूपा सप्रसङ्गं सप्तमाध्यायमारभ्य निरूपिता । इदानीमौपोद्घातिकमुक्तानुवादपूर्वकं पृच्छति- अश्वत्थाम्नेति। उपसृष्टेन विसृष्टेन । तस्य जन्मादि ब्रूहीत्युत्तरेणान्वयः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

जिसके प्रसङ्ग में पहले अश्वत्थामा के दण्ड आदि का विस्तार से वर्णन किया जा चुका है । उस परीक्षित् के जन्म का वर्णन बारहवें अध्याय में किया जा रहा है । इससे पहले सूतजी ने कहा है कि मैं राजा परीक्षित् के जन्म कर्म तथा उनकी मुक्ति का वर्णन, पाण्डवों का स्वर्गारोहण तथा भगवान् श्रीकृष्ण की कथा का प्रारम्भ इन सारी बातों का वर्णन करूँगा, इस तरह से प्रतिज्ञा करके पाण्डवों को राज्य की प्राप्ति का सप्रसङ्ग वर्णन सातवें अध्याय से प्रारम्भ करके यहाँ तक किया गया । इस अध्याय में उपोद्घात में कही गयी बातों का अनुवाद पूर्वक शौनक महर्षि ने **अश्वत्थाम्नो० इत्यादि** श्लोक से पूछा कि अश्वत्थामा के द्वारा छोड़े गये ब्रह्मास्त्र के द्वारा उत्तरा का गर्भ तो विनष्ट हो ही गया था, उसको भगवान् श्रीकृष्ण ने पुनः जीवित कर दिया ॥१॥

तस्य जन्म महाबुद्धेः कर्माणि च महात्मनः। निधनं च यथैवासीत्स प्रेत्य गतवान्यथा ॥२॥
तदिदं श्रोतुमिच्छामो गदितुं यदि मन्यसे। ब्रूहि नः श्रद्दधानानां यस्य ज्ञानमदाच्छुकः ॥३॥

अन्वयः— तस्य महाबुद्धेः महात्मनः जन्म, कर्माणि निधनं च यथैव आसीत् यस्य ज्ञानम् शुकः आदात् सः प्रेत्य यथा गतवान् तदिदं श्रोतुम् इच्छामः यदि गदितुम् मन्यसे (तदा) श्रद्दधानानां नः ब्रूहि ॥२-३॥

अनुवाद— उन महाबुद्धिमान् महात्मा परीक्षित् का शुकदेवजी ने जिनको ज्ञान प्रदान किया था उन परीक्षित् के जन्म, कर्म तथा निधन जैसे हुए तथा मृत्यु के पश्चात् उन्होंने जैसे मुक्ति को प्राप्त किया उन सारी बातों को हमलोग सुनना चाहते हैं, यदि आप उसे ठीक समझें तो श्रद्धा सम्पन्न हमलोगों को सुनायें ॥२-३॥

भावार्थ दीपिका

स परीक्षित् । प्रेत्य देहं त्यक्त्वा । प्रार्थये नत्वाज्ञापयामीत्याह । गदितुं यदि मन्यसेऽनुग्रहेण तर्हि ब्रूहीति । यस्य ज्ञानमदाच्छुकः इति श्रवणेच्छायां कारणम् ॥२-३॥

भाव प्रकाशिका

वे परीक्षित् मृत्यु के पश्चात् जिस तरह से मुक्ति प्राप्त किए उसे आप बतलायें, यह मेरी प्रार्थना है न कि

मैं आपको आज्ञा दे रहा हूँ। यदि उसे आप कहने योग्य समझें तो कृपा करके बतलायें। उसको सुनने की इच्छा इसलिए है कि राजा परीक्षित् को श्रीशुदकेवजी ने ज्ञानोपदेश किया था ॥२-३॥

सूत उवाच

अपीपलद्धर्मराजः पितृवद्रञ्जयन्प्रजाः। निस्पृहः सर्वकामेभ्यः कृष्णपादानुसेवया ॥४॥

अन्वयः— कृष्णपादाब्जसेवया सर्वकामेभ्यः निःस्पृहः धर्मराजः पितृवद् प्रजाः रञ्जयन् अपीपलत् ॥४॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा करने के कारण धर्मराज युधिष्ठिर समस्त भोगों से निःस्पृह हो गये थे। वे पिता के ही समान प्रजाओं को प्रसन्न रखते हुए उन सबों का पालन किए ॥४॥

भावार्थ दीपिका

निस्पृहस्यापि राज्ञः श्रीकृष्णानुग्रहात्तादृक् पौत्रः समजनीति वक्तुं तस्य श्रीकृष्णे भक्त्युद्रेकमाह- अपीपलदिति त्रिभिः। पितृवदपीपलत् पालयामास ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि महाराज युधिष्ठिर निःस्पृह थे फिर भी भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से उनको परीक्षित् जैसा पौत्र प्राप्त हुआ इस बात को बतलाने के लिए सूतजी ने राजा युधिष्ठिर का भगवान् कृष्ण में भक्ति के उद्रेक को **अपीपलत् इत्यादि** तीन श्लोकों से कहा। युधिष्ठिर ने अपने पिता पाण्डु के ही समान प्रजाओं का पालन किया ॥४॥

सम्पदः क्रतवो लोका महिषी भ्रातरो मही। जम्बूद्वीपाधिपत्यं च यशश्च त्रिदिवं गतम्॥५॥
किं ते कामाः सुरस्पार्हा मुकुन्दमनसो द्विजाः। अधिजह्रुर्मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथेतरे ॥६॥

अन्वयः— हे द्विजाः ! सम्पदः क्रतवः लोकाः महीषी, भ्रातरः मही, जम्बूद्वीपाधिपत्यं त्रिदिवं गतं यशः च ते सुरस्पार्हाः ते कामाः राज्ञः क्षुधितस्य इतरे यथा मुकुन्दमनसः राज्ञः मुदः अधिजह्रुःकिम् ॥५-६॥

अनुवाद— हे महर्षियों ! अतुल सम्पतियाँ, किये गये याग, उसके फल स्वरूप अधिकृत लोक, पत्नी, भाईगण, पृथिवी, जम्बूद्वीप का साम्राज्य, स्वर्गपर्यन्त फैला हुआ यश तथा देवताओं के लिए भी स्पृहणीय भोग सामग्री, जिस तरह से भूखे के लिए भोजन व्यतिरिक्त भोग्य पदार्थ अच्छे नहीं लगते हैं, उसी तरह जिनका मन सदा भगवान् में लगा रहता था उन महाराज की प्रसन्नता को वे सभी भोग्य पदार्थ नही बढा सके क्या ? अर्थात् जिस तरह भूखे को भोजन से भिन्न कोई भी दूसरी वस्तु अच्छी नहीं लगती है, उसी तरह राजा युधिष्ठिर को ये सारी भोग सामग्रियाँ आकृष्ट नहीं कर सकीं ॥५-६॥

भावार्थ दीपिका

क्रतवस्तदुपार्जिता लोकाश्च। सुरस्पार्हाः सुराणां स्पृहणीयास्ते सम्पदादयः कामा विषया राज्ञः किं मुदं प्रीतिमधिजह्रुः कृतवन्तः। न कृतवन्त इत्यर्थः। अत्र हेतुः। मुकुन्दे एव मनो यस्येति। क्षुधितस्यान्नैकमनसो यथेतरे स्रक्चन्दनादयो न कुर्वन्ति तद्वत् ॥५-६॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञों के करने के फलस्वरूप राजा युधिष्ठिर जिन लोकों पर अधिकार प्राप्त कर लिए थे वे लोक तथा देवताओं के लिए भी स्पृहा योग्य सम्पत्ति इत्यादि भोग की सामग्रियाँ क्या राजा युधिष्ठिर को प्रसन्न कर सकीं ? अपितु वे नहीं कर सकीं। उसका कारण यह था कि उनका मन सदा भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा रहता था उनको श्रीभगवान् से भिन्न दूसरी वस्तुएँ उसी तरह अच्छी नहीं लगती थीं जिस तरह भूखे को भोजन से भिन्न कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती हैं ॥५-६॥

मातुर्गर्भगतो वीरः स तदा भृगुनन्दन । ददर्श पुरुषं कंचिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा ॥७॥

अन्वयः— हे भृगुनन्दन ! मातुर्गर्भगतः, अस्त्रतेजसा दह्यमानः स वीरः तदा कंचित् पुरुषं ददर्श ॥७॥

अनुवाद— हे भृगुनन्दन शौनकजी ! अपनी माता के गर्भ में विद्यमान तथा ब्रह्मास्त्र के तेज से जलते हुए उस वीर शिशु ने किसी पुरुष को देखा ॥७॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमाह-मातुरिति । सः परीक्षित् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

प्रस्तुत परीक्षित् के जन्मादि का वर्णन **मातुःगर्भगतः इत्यादि** श्लोक से प्रारम्भ किया गया है । सः शब्द से परीक्षित् को कहा गया है ॥७॥

अङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमौलिनम् । अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम् ॥८॥
श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुं तप्तकाञ्चनकुण्डलम् । क्षतजाक्षं गदापाणिमात्मनः सर्वतोदिशम् ॥
परिभ्रमन्तमुल्काभां भ्रामयन्तं गदां मुहूः ॥९॥
अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः । विधमन्तं संनिकर्षे पर्यैक्षत क इत्यसौ ॥१०॥

अन्वयः— अङ्गुष्ठमात्रम् अमलम् स्फुरत्पुरटमौलिनम्, अपीच्यदर्शनम् श्यामं, तडिद् वाससम् अच्युतम्, श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुम् तप्तकाञ्चनकुण्डलम्, क्षतजाक्षं, गदापाणिम्, आत्मनः सर्वतोदिशम्, उल्काभां गदाम् मुहुः भ्रामयन्तम्, स्वगदया गोपतिः निहारम् इव अस्त्र तेजः'विधमन्तं पुरुषं सनिकर्षे असौ कः इति पर्यैक्षत ॥८-१०॥

अनुवाद— गर्भस्थ शिशु ने देखा कि एक पुरुष अङ्गुष्ठ परिमाणक है, उसका स्वरूप निर्मल है, उसके शिर पर सुवर्ण का मुकुट चमक रहा है, वह देखने में अत्यन्त सुन्दर तथा श्याम वर्ण का है । वह विद्युत् के समान चमकने वाले पीताम्बर को धारण किए है तथा निर्विकार है । उसकी सुन्दर तथा लम्बी भुजायें है । वह अपने कानों में तप्त सुवर्ण के कुण्डलों को धारण किए हुए है । उसकी आखें लाल हैं तथा वह अपने चारो ओर उल्का के समान अपनी गदा को घुमा रहा है । वह अपनी गदा के द्वारा ब्रह्मास्त्र के तेज को उसी तरह विनष्ट कर रहा है जिस तरह सूर्य कुहरे को विनष्ट कर देते हैं । अपने सन्निकट में इस प्रकार के पुरुष को देखकर उस शिशु ने सोचा कि यह कौन है ?॥८-१०॥

भावार्थ दीपिका

पुरटं सुवर्णम् । स्फुरन् पुरटमौलिर्यस्यास्ति तम् । **'ब्रीह्यादिभ्यश्च'** इति इनिप्रत्ययः । अपीच्यमतिसुन्दरं दृश्यत इति दर्शनं रूपं यस्य तम् । तडिद्वाससी यस्येति श्याममिति च पदाभ्यां विद्युद्युक्तमेघोपमा सूचिता । अच्युतमविकारम् । तप्तं दाहोत्तीर्णं यत्काञ्चनं तन्मये कुण्डले यस्य । क्षतजाक्षं संरम्भादत्यारक्तनेत्रम् । अहो मद्भक्तस्यापि गर्भेऽस्त्रपीडेति क्रोधादिति भावः । अस्त्रतेजो विधमन्तं विनाशयन्तम् । नीहारं हिमं गोपतिः सूर्य इव । (एवंविधं गर्भगतो बालः) संन्निकर्षे समीपे ददर्श। दृष्ट्वा चासौ क इति पर्यैक्षत वितर्कितवान् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

पुरट सुवर्ण को कहते है । उस पुरुष के शिर पर सुवर्ण का मुकुट चमक रहा था । मौलिनम् में **ब्रीह्यादिभ्यश्च** इस सूत्र से इनि प्रत्यय हुआ है । उस पुरुष का रूप देखने में अत्यन्त मनोहर था । उस पुरुष के दोनों वस्त्र बिजली के समान चमक रहे थे और उसका शरीर श्याम वर्ण का था । **ताडिद्वासस्म् और श्यामम्** इन दोनों पदों के द्वारा विद्युत् से युक्त मेघ की उपमा सूचित होती है । अच्युत शब्द के द्वारा उस पुरुष को निर्विकार बतलाया

गया है । उस पुरुष के कानों के दोनों कुण्डल तपाये गये सुवर्ण के समान चमक रहे थे । क्रोध के कारण पुरुष की आँखें लाल हो गयी थीं । उसको इस बात का क्रोध था कि मेरे भक्त को भी यह ब्रह्मास्त्र पीडित कर रहा है । वह पुरुष अपनी गदा के तेज से ब्रह्मास्त्र के तेज को उसी तरह विनष्ट कर रहा था जिस तरह सूर्य अपने तेज से कुहरे को विनष्ट कर देते हैं । इस प्रकार के पुरुष को उस गर्भस्थ शिशु ने अपने सन्निकट में देखा । उस पुरुष को देखकर वह सोचने लगा कि ये कौन पुरुष हैं ?॥८-१०॥

विधूय तदमेयात्मा भगवान्धर्मगुब्विभुः । मिषतो दशमास्यस्य तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥११॥

अन्वयः— धर्मगुप् विभुः अमेयात्मा भगवान् हरिः तत् विधूय दशमास्यस्य मिषतः तत्रैव अन्तर्दधे ॥११॥

अनुवाद— अप्रमेय धर्म की रक्षा करने वाले, सर्व व्यापक, ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीहरि उस ब्रह्मास्त्र के तेज को विनष्ट करके दश मास के उस बालक की आँखों के सामने से अन्तर्धान हो गये ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अमेयात्मा कथं तद्विधूतवानित्यवितर्क्यरूपः । धर्मं गोपायतीति धर्मगुप् । यद्वा धर्म गोपायन्तीति धर्मगुपो राजानस्तत्प्रभुस्तेषामपि पालकत्वात् । दशमासपरिच्छेद्यस्य तस्य मिषतः पश्यतो यत्र दृष्टस्तत्रैवान्तर्हितो नत्वन्यत्र गतः । यतो विभुः सर्वगतः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् अमेयात्मा हैं, उनको पूर्णरूप से कोई भी नहीं जान सकता है । उन्होंने ब्रह्मास्त्र के तेज को कैसे विनष्ट कर दिया इसको तर्क के द्वारा कोई नहीं जान सकता है । श्रीभगवान् धर्म की रक्षा करते हैं अतएव धर्मगुप् हैं । अथवा धर्म की रक्षा करने वाले जो राजागण हैं उन राजाओं की रक्षा भगवान् करते हैं अतएव वे धर्मगुप् हैं । धर्मं गोपायतीति धर्मगुप् अथवा धर्मं गोपान्तीति धर्मगुपः राजानः तत्प्रभुः । यह दोनों प्रकार की व्युत्पत्ति है। वे भगवान् ब्रह्मास्त्र के तेज को विनष्ट करके दश मास के उस शिशु के सामने से अन्तर्धान हो गये क्योंकि वे सर्वव्यापक हैं ॥११॥

ततः सर्वगुणोदर्के सानुकूलग्रहोदये । जज्ञे वंशधरः पाण्डोर्भूयः पाण्डुरिवौजसा ॥१२॥

अन्वयः— ततः सानुकूलग्रहोदये सर्वगुणोदर्के पाण्डोः वंशधरः ओजसा पाण्डुरिव जज्ञे ॥१२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् जिस समय सभी अनुकूल ग्रहों का उदय हो गया था उस सभी गुणों को प्रदान करने वाले काल में पाण्डु के वंश को बढ़ाने वाले तथा पाण्डु के ही समान ओजस्वी परीक्षित् का जन्म हुआ ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

उदर्क उत्तरफलम्। सर्वगुणानामुत्तरोत्तराधिक्यसूचके लग्ने। तत्र हेतुः-अनुकूलैरन्यैर्ग्रहैः सहितानां शुभग्रहाणामुदयो यस्मिन्॥१२॥

भाव प्रकाशिका

उदर्क फल को कहते हैं । सभी गुणों के उत्तरोत्तर आधिक्यसूचक लग्न में तथा दूसरे अनुकूल ग्रहों के साथ जिस लग्न में शुभ ग्रहों का उदय हो गया था उस लग्न में परीक्षित् का जन्म हुआ ॥१२॥

तस्य प्रीतमना राजा विप्रैर्धौम्यकृपादिभिः । जातकं कारयामास वाचयित्वा च मङ्गलम् ॥१३॥

अन्वयः— तस्य जन्मनः प्रीतमना राजा धौम्य कृपादिभिः मङ्गलम् वाचयित्वा जातकं कारयामास ॥१३॥

अनुवाद— उस बालक के जन्म से प्रसन्न हुए राजा युधिष्ठिर धौम्य तथा कृपाचार्य इत्यादि ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन कराकर जातकर्म कराये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

जातकं जातकर्म । मङ्गलं पुण्याहम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

प्रसन्न होकर युधिष्ठिर ने उस बालक का पुण्याह वाचन कराकर जातकर्म कराया ।।१३।।

हिरण्यं गां महीं ग्रामान् हस्त्यश्वान्नृपतिर्वरान् । प्रादात्स्वन्नं च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे स तीर्थवित् ।।१४।।

अन्वयः— तीर्थवित् नृपतिः प्रजतीर्थे विप्रेभ्यः हिरण्यम्, गाम् महीम् ग्रामान् हस्ती, वरान् अश्वान् स्वन्नं च प्रादात् ।।१४।।

अनुवाद— तीर्थवेत्ता, राजा युधिष्ठिर प्रजातीर्थ के समय ब्राह्मणों को सुवर्ण, गौ, पृथिवी, ग्राम, हाथी, श्रेष्ठ घोड़े तथा सुन्दर अन्न का दान दिये ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

वरान् श्रेष्ठान् । स्वन्नं शोभनमन्नं च । तीर्थविद्वानकालज्ञः । '**यावन्न च्छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम् । छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते ।**' इति वचनात्ततः पूर्वं प्रादात् । आमान्नं वा प्रजातीर्थे पुत्रोत्पत्तिपुण्यकाले । '**पुत्रे जाते व्यतीपाते दत्तं भवति चाक्षयम्**' इति स्मृतेः । '**देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम् । आयान्ति हि नृपश्रेष्ठ पुण्याहमिति चाब्रुवन् ।**' इति च ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर ने श्रेष्ठ कोटि के हाथियों और अश्वों का दान दिया । नालच्छेदन से पहले सूतक नहीं होता है कहा भी गया है—

यावन्न च्छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम् । छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते ।।

अर्थात् जब तक उत्पन्न शिशु के नाल का छेदन नहीं होता है तब तक सूतक नहीं लगता है । नालच्छेदन के पश्चात् ही सूतक का विधान किया गया है । इस वाक्य के अनुसार उन्होंने नालच्छेदन से पूर्व ही दान किया अथवा पुत्रोत्पत्ति के पुण्यकाल में प्रजातीर्थ में आमान्न कच्चा अन्न दान किया । पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् और नालच्छेदन से पहले का कार्य प्रजातीर्थ कहलाता है । स्मृति में यह भी कहा गया है— **पुत्रे जाते व्यतीपाते दत्तं भवति चाक्षयम्** । अर्थात् पुत्र के उत्पन्न होने पर तथा व्यतीपात योग में दिया गया दान अक्षय होता है । दूसरी भी स्मृति कहती है—

देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम् । आयान्ति हि नृपश्रेष्ठ ! पुण्याहम् इति चाबुवन् ।।

अर्थात् हे राजश्रेष्ठ द्विजातियों के यहाँ पुत्र उत्पन्न होने पर देवता तथा पितृगण पुण्याह का उच्चारण करते हुए आते हैं ।।१४।।

तमूचुर्ब्राह्मणास्तुष्टा राजानं प्रश्रयान्वितम् । एष ह्यस्मिन्प्रजातन्तौ कुरूणां पौरवर्षभः ।।१५।।
दैवेनाप्रतिघातेन शुक्ले संस्थामुपेयुषि । रातो वोऽनुग्रहार्थाय विष्णुना प्रभविष्णुना ।।१६।।
तस्मान्नाम्ना विष्णुरात इति लोके बृहच्छ्रवाः । भविष्यति न संदेहो महाभागवतो महान् ।।१७।।

अन्वयः— तुष्टाः ब्राह्मणा प्रश्रयान्वितम् तम् राजानम् ऊचुः पौरवर्षभ कुरूणाम् शुक्ले अस्मिन् प्रजातन्तौ अप्रतिघातेन दैवेन संस्थाम् उपेयुषि वः अनुग्रहार्थम् प्रभविष्णुना विष्णुना एषः रातः अतएव एषः विष्णुरात इति नाम्ना लोके भविष्यति। अयम् महान् महाभागवतो भविष्यति इति न संदेहः ।।१५-१७।।

अनुवाद— ब्राह्मणों ने सन्तुष्ट होकर अत्यन्त विनीत राजा युधिष्ठिर से कहा— हे पुरुवंशियों में अग्रगण्य काल की दुर्निवार गति के कारण यह पवित्र पुरुवंश मिट ही जाने वाला था; किन्तु आपलोगों पर कृपा करने के लिए भगवान्

विष्णु ने यह वंश आपलोगों को प्रदान किया है और आपके वंश की रक्षा की है । अतएव इसका नाम विष्णुरात होगा। संसार में इसका महान् यश फैलेगा इसमें कोई सन्देह नहीं है । क्योंकि यह महाभागवत होगा ॥१५-१७॥

भावार्थ दीपिका

हे पौरवर्षभ, कुरूणां कुरुवंश्यानां शुक्ले शुद्धेऽस्मिन्प्रजातन्तौ । दैवेन । कथंभूतेन । अप्रतिघातेन दुर्वारेण । संस्थां नाशमुपेयुषि गति सति वः युष्माकं अनुग्रहार्थाय यस्मात्प्रभवनशीलेन श्रीविष्णुना रातो दत्तस्तस्माल्लोके विष्णुरात इति नाम्ना भविष्यति महाभागवतश्च । गुणैश्च महान् भविष्यति नात्र संदेह इति तं राजानं ब्राह्मणा ऊचुरिति त्रयाणामन्वयः ॥१५-१७॥

भाव प्रकाशिका

हे पुरुवंशियों में श्रेष्ठ राजन् कुरुवंशियों का शुद्ध वंश जब कि दुर्निवार काल की गति के कारण विनष्ट ही हो जा रहा था, उस समय आपलोगों पर कृपा करने के लिए सब कुछ करने में समर्थ भगवान् विष्णु ने आपलोगों को यह सन्तान प्रदान किया है । अतएव इस बालक का नाम लोक में विष्णुरात होगा । यह निसन्देह महायशस्वी होगा । इसके गुण महान् होंगे और यह महाभागवत होगा । इस तरह से संतुष्ट हुए ब्राह्मणों ने राजा युधिष्ठिर से कहा ॥१५-१७॥

युधिष्ठिर उवाच

अप्येष वंश्यान्राजर्षीन्पुण्यश्लोकान्महात्मनः । अनुवर्तिता स्विद्यशसा साधुवादेन सत्तमाः ॥१८॥

अन्वयः— हे सत्तमाः एष वंश्यान् राजर्षीन् पुण्यश्लोकान् महात्मनः साधुवादेन यशसा अनुवर्तिता स्वित् ॥१८॥

युधिष्ठिर ने कहा

अनुवाद— हे महापुरुषों ! यह हमारे वंश के पवित्र कीर्ति वाले तथा महात्मा राजर्षियों का अपनी सत् कीर्ति तथा यश के द्वारा अनुसरण करेगा क्या ?॥१८॥

भावार्थ दीपिका

महाभागवतो भविष्यतीत्युक्ते हृष्टः पृच्छति । अपिस्वित् किंस्वित् । साधुवादेन यशसा सत्कीर्त्या चानुवर्तिता भविष्यतीति पूर्वस्यैवातः परमप्यनुषङ्गः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

यह महाभागवत होगा यह कहने पर प्रसन्न होकर राजा ने पूछा क्या यह सत्कीर्ति और यश के द्वारा अपने वंश के राजाओं के समान होगा ? अतएव इसका भी इससे पहले के श्लोक से सम्बन्ध है ॥१८॥

ब्राह्मणा ऊचुः

पार्थ प्रजाविता साक्षादिक्ष्वाकुरिव मानवः । ब्रह्मण्यः सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यथा ॥१९॥

अन्वयः— पार्थ (एषः) साक्षात् मानवः इक्ष्वाकुरिव प्रजाविता दाशरथिः रामः यथा सत्यसन्धः ब्रह्मण्यः (भविष्यति) ॥१९॥

अनुवाद— धर्मराज ! यह साक्षात् मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के समान प्रजाओं की रक्षा करेगा तथा महाराज दशरथ के पुत्र श्रीराम के समान सत्य का पालन करने वाला तथा ब्राह्मणों का भक्त होगा ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

हे पार्थ, प्रजानामविता रक्षकः । मानवो मनोः पुत्रः । ब्राह्मणेभ्यो हितः । सत्यप्रतिज्ञश्च श्रीरामो यथा ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों ने कहा पार्थ यह मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के समान प्रजाओं की रक्षा करेगा । महाराज दशरथ के पुत्र श्रीराम के समान ब्राह्मणों का हितकारी और सत्यवक्ता होगा ॥१९॥

एष दाता शरण्यश्च यथा ह्यौशीनरः शिबिः । यशो वितनिता स्वानां दौष्यन्तिरिव यज्वनाम् ॥२०॥

अन्वयः— एषः औशीनरः शिविः यथा दाताशरण्यश्च, यज्वनाम् दौष्यन्तिः इव स्वानाम् यशः वितनिता ॥२०॥

अनुवाद— यह उशीनर नरेश शिवि के समान दान करने वाला तथा शरणागत रक्षक होगा और यज्ञ करने वालों में दुष्यन्त के पुत्र भरत के समान तथा अपने वंश वालों के यश का विस्तार करेगा ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

उशीनरदेशाधिपतिः शिविः । येन स्वमांसं श्येनाय दत्त्वा शरणागतः कपोतो रक्षितः । स्वानां ज्ञातीनां यज्वनां च यशोविस्तारको दौष्यन्तिर्भरत इव ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह उशीनर देश के स्वामी शिवि ने अपना मांस बाज को देकर शरणागत कपोत की रक्षा किया, उसी तरह का यह दाता तथा शरणागत रक्षक होगा । अपने वंश वालों तथा यज्ञ करने वालों के यश का विस्तार यह दुष्यन्त पुत्र भरत के समान करेगा ॥२०॥

धन्विनामग्रणीरेष तुल्यश्चार्जुनयोर्द्वयोः । हुताश इव दुर्धर्षः समुद्र इव दुस्तरः ॥२१॥
मृगेन्द्र इव विक्रान्तो निषेव्यो हिमवानिव । तितिक्षुर्वसुधेवासौ सहिष्णुः पितराविव ॥२२॥
पितामहसमः साम्ये प्रसादे गिरिशोपमः । आश्रयः सर्वभूतानां यथा देवो रमाश्रयः ॥२३॥
सर्वसद्गुणमाहात्म्य एष कृष्णमनुव्रतः । रन्तिदेव इवोदारो ययातिरिव धार्मिकः ॥२४॥
धृत्या बलिसमः कृष्णे प्रह्लाद इव सद्ग्रहः । आहर्तैषोऽश्वमेधानां वृद्धानां पर्युपासकः ॥२५॥

अन्वयः— एषः धन्विनामग्रणीः द्वयोः अर्जुनयोः तुल्यः हुताशः इव दुर्धर्षः, समुद्र इव दुस्तरः, मृगेन्द्र इव विक्रान्तः, हिमवान् इव निषेव्यः, असौ बसुधा इव तितिक्षुः, पितरौ इव सहिष्णुः, पितामहसमः साम्ये गिरिशोपमः प्रसादे, रमाश्रयः देवोः यथा, सर्वभूतानामाश्रयः, एषः सर्वसद्गुण माहात्म्ये कृष्णम् अनुव्रतः, रन्तिदेव इव उदारः, ययातिः इव धार्मिकः, धृत्या बलिसमः, कृष्णे प्रह्लाद इव सद्ग्रहः, एषः अश्वमेधानां आहर्ता वृद्धानां पर्युपासकः च भविष्यति ॥२१-२५॥

अनुवाद— यह धनुधारियों में सहस्रार्जुन और अर्जुन के समान अग्रगण्य होगा, यह अग्नि के समान दुर्धर्ष होगा और समुद्र के समान दुस्तर होगा । यह सिंह के समान पराक्रम सम्पन्न होगा और हिमालय के समान सेवनीय होगा । यह पृथिवी के समान तितिक्षु और माता-पिता के समान सहनशील होगा । इसमें ब्रह्माजी के समान समता होगी, शङ्करजी के समान यह कृपा करने वाला होगा, यह लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु के समान सबों का आश्रय होगा और सभी सद्गुणों की महिमा धारण करने में यह भगवान् श्रीकृष्ण का अनुयायी होगा । यह राजा रन्तिदेव के समान उदार होगा तथा ययाति के समान धार्मिक होगा । यह बलि के समान धैर्ययुक्त होगा तथा भगवान् श्रीकृष्ण में प्रह्लाद के समान निष्ठावान् होगा । यह अनेक अश्वमेध यागों को करेगा तथा वृद्धों की सेवा करने वाला होगा ॥२१-२५॥

भावार्थ दीपिका

अर्जुनयो पार्थकार्तवीर्ययोः । हिमवानिव सतां निषेव्योऽनन्यगतिकत्वेन । वसुधेव तितिक्षुः क्षन्ता । प्रीत्या मातापितराविव सहिष्णुः । पितामहो ब्रह्मा तेन समः समत्वे । रमाश्रयो हरिः । सर्वैः सद्गुणैर्माहात्म्यं यत्तस्मिन् । श्रीकृष्णतुल्यः । धृत्या धैर्येण। सद्ग्रहः सन् भद्रो ग्रहोऽभिनिवेशो यस्य सः । आहर्ता कर्ता ॥२१-२५॥

भाव प्रकाशिका

अर्जुनयोः पद के द्वारा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन तथा पार्थ अर्जुन दोनों को कहा गया है । वह अनन्य गतिक होने के कारण हिमालय के समान सेवनीय होगा । समता के विषय में यह ब्रह्माजी के समान होगा । **रमाश्रयः**

पद से लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु को कहा गया है । सभी सद्गुणों से सम्पन्न वह भगवान् श्रीकृष्ण का अनुगमन करने वाला होगा । उसमें बलि के समान धैर्य होगा । उसका सद्वस्तुओं में अभिनिवेश होगा और अश्वमेधादि यज्ञों को करेगा ।।२१-२५।।

राजर्षीणां जनयिता शास्ता चोत्पथगामिनाम् । निग्रहीता कलेरेष भुवो धर्मस्य कारणात्।।२६।।
तक्षकादात्मनो मृत्युं द्विजपुत्रोपसर्जितात्। प्रपत्स्यत उपश्रुत्य मुक्तसङ्गः पदं हरेः ।।२७।।
जिज्ञासितात्मयाथात्म्यो मुनेर्व्याससुतादसौ। हित्वेदं नृप गङ्गायां यास्यत्यद्धाऽकुतोभयम्।।२८।।

अन्वयः— एषः राजर्षीणां जनयिता, उत्पथगामिनाम् शास्ता भुवः धर्मस्य कारणात् एषः कलेः निग्रहीता, द्विजपुत्रोप सर्जितात् तक्षकात् आत्मनः मृत्युं उपश्रुत्य मुक्तसङ्गः हरेः पदं प्रपत्स्यते । व्याससुतात् मुनेः असौ आत्मयाथात्म्यं जिज्ञासितम्, इदम् गङ्गायाम् हित्वा अकुतोभयं यास्यति ।।२६-२८।।

अनुवाद— यह राजर्षि पुत्रों (जनमेजय आदि) को उत्पन्न करेगा, मर्यादा का उल्लंघन करने वालों का यह प्रशासन करेगा । पृथिवी तथा धर्म की रक्षा करने के लिए यह कलियुग को निगृहीत करेगा । ब्राह्मण के पुत्र के द्वारा प्रेरित तक्षक के द्वारा अपनी मृत्यु को सुनकर संसार से विरक्त होकर श्रीभगवान् के चरणों में शरणागति करेगा। उसके पश्चात् महर्षि व्यास के पुत्र से आत्मा के स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करके, अपने इस शरीर को गङ्गा में त्यागकर मुक्ति को प्राप्त कर लेगा यह निश्चित है ।।२६-२८।।

भावार्थ दीपिका

राजर्षीणां जनमेजयादीनाम् । द्विजपुत्रेण प्रेरितात्तक्षकादात्मनो मृत्युमुपश्रुत्य विरक्तः सन् हरेः पदं प्रपत्स्यते भजिष्यति। ततश्च जिज्ञासितमात्मनो याथात्म्यं येन सः । इदं शरीरं गङ्गायां हित्वाऽकुतोभयं पदं यास्यति । अद्धा निश्चयेन ।।२६-२८।।

भाव प्रकाशिका

राजर्षि शब्द से जनमेजय आदि को कहा गया है । अर्थात् इसके जनमेजय आदि राजर्षि पुत्र होंगे । यह जब जानेगा की ब्राह्मण पुत्र के द्वारा प्रेरित होकर तक्षक से मेरी मृत्यु होगी तो वह संसार से विरक्त होकर श्रीभगवान् के चरणों को ही अपने रक्षक रूप से वरण कर लेगा । उसके पश्चात् आत्मा के स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त करके यह अपने इस पाञ्चभौतिक शरीर का गङ्गा में परित्याग कर देगा तथा मुक्ति को प्राप्त कर लेगा यह निश्चित है । **सम्यग्विचारपूर्वकम् ज्ञातम् आत्मनो भगवतः स्वरूपयाथात्म्यं निर्णयो येन । यह जिज्ञासितात्मयाथात्म्यम्ः** पद की व्युत्पत्ति है । अर्थात् अच्छी तरह से आत्मा और परमात्मा के स्वरूप को जिसने जान लिया है ।।२६-२८।।

इति राज्ञ उपादिश्य विप्रा जातककोविदाः । लब्धापचितयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान् गृहान् ।।२९।।

अन्वयः— इति राज्ञे उपादिश्य जातककोविदाः सर्वे विप्राः लब्धापचितयः सन्तः स्वकान् गृहान् प्रतिजग्मुः ।।२९।।

अनुवाद— इस तरह जातक शास्त्र को जानने वाले ज्योतिषी सभी ब्राह्मण राजा को इस तरह से बातें बतलाकर तथा राजा के द्वारा पूजा प्राप्त करके अपने-अपने घर चले गये ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

लब्धा अपचित्तिः पूजा यैस्ते ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

अर्थात् राजा से पूजा प्राप्त करके वे ज्योतिषी ब्राह्मणगण अपने घर चले गये ।।२९।।

स एष लोकविख्यातः परीक्षिदिति यत्प्रभुः । गर्भदृष्टमनुध्यायन्परीक्षेत नरेष्विह ।।३०।।

अन्वयः— स एष लोकविख्यातः परीक्षित् इति । यत् प्रभुः गर्भदृष्टम् अनुध्यायन् इह नरेष्विह परीक्षेत ।।३०।।

अनुवाद— वही बालक लोक में परीक्षित् के नाम से विख्यात हुआ। वह समर्थ बालक गर्भ में देखे गये पुरुष का चिन्तन करते हुए लोक में मनुष्यों की परीक्षा करता है कि कहीं ये तो वह पुरुष नहीं है ?॥३०॥

भावार्थ दीपिका

परीक्षिदिति नाम निर्वक्ति-स एष इति। यद्यस्मात्प्रभुः समर्थः सन् गर्भे दृष्टं पुरुषमनुध्यायन्निह दृश्यमानेषु नरेषु मध्ये सर्वमपि नरं परीक्षेताऽयमसौ भवेन्नो वेति विचारयेदतः परीक्षिदिति विख्यातः। '**पूर्वदृष्टम्**' इति वा पाठः। तदा मातृगर्भे पूर्वं दृष्टमित्यर्थः॥३०॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में परीक्षित् इस नाम का अर्थ बतलाते हैं— चूकि यह समर्थ पुरुष गर्भ में देखे गये पुरुष का चिन्तन करते हुए, इस संसार में दिखाई देने वाले सभी मनुष्यों को यह सोचकर परीक्षा करता है कि कहीं ये ही तो वह पुरुष नहीं हैं ?॥३०॥

स राजपुत्रो ववृध आशु शुक्ल इवोडुपः। आपूर्यमाणः पितृभिः काष्ठाभिरिव सोऽन्वहम्॥३१॥

अन्वयः— स राजपुत्रः शुक्ल अन्वहम् काष्ठाभिः आपूर्यमाणः उडुप इव पितृभिः काष्ठाभिः आपूर्यमागः आशु ववृधे॥३१॥

अनुवाद— वह राजकुमार शुक्ल पक्ष में कलाओं के द्वारा प्रतिदिन बढ़ने वाले चन्द्रमा के समान अपने पितृजनों द्वारा चौसठो कलाओं से परिपूर्ण किया जाता हुआ शीघ्र ही बड़ा हो गया॥३१॥

भावार्थ दीपिका

शुक्ले शुक्लपक्षे स प्रसिद्ध उडुपोऽन्वहं यथा काष्ठाभिः पञ्चदशकलाभिरापूर्यमाणो वर्धते, एवं पितृभिर्युधिष्ठिरादिभिः कामैश्चतुःषष्ठिकलाभिश्चापूर्यमाणो ववृधे॥३१॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह शुक्ल पक्ष में पन्द्रह कलाओं से परिपूर्ण होते हुए चन्द्रमा प्रतिदिन बढ़ते हैं उसी तरह वह राजकुमार भी प्रतिदिन अपने पितृजनों द्वारा चौसठ कलाओं की शिक्षा प्राप्त करते हुए शीघ्र ही बड़ा हो गया॥३१॥

यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेन ज्ञातिद्रोहजिहासया। राजाऽलब्धधनो दध्यावन्यत्र करदण्डयोः॥३२॥

अन्वयः— ज्ञातिद्रोहजिहासया राजा अश्वमेधेन यक्ष्यमाणः करदण्डयोः अन्यत्र अलब्धधनः दध्यौ॥३२॥

अनुवाद— उसी समय राजा युधिष्ठिर अपने बान्धवों के वध का प्रायश्चित्त करने के लिए अश्वमेध यज्ञ करना चाहे किन्तु कर तथा दण्ड के रूप में वसूले गये धन से भिन्न धन नहीं प्राप्त होने के कारण वे चिन्तित हो गये॥३२॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वमपकृष्योक्तानश्वमेधान् स्वावसरे सप्रकारं कथयति। ज्ञातिद्रोहस्य हानेच्छया यक्ष्यमाणः करदण्डयोरन्यत्र ताभ्यां विनाऽलब्धधनो दध्यौ चिन्तयामास। करदण्डजस्य परिजनभरणमात्रोपक्षीणत्वात्॥३२॥

भाव प्रकाशिका

पहले कहे गये अश्वमेधों का उचित समय पर विशेष रूप से वर्णन करते हैं। राजा युधिष्ठिर अपने बान्धवों के वधजन्य पाप को दूर करने की इच्छा से ऐसे धन से अश्वमेध यज्ञ करना चाहते थे जो धन कर तथा दण्ड के रूप में नहीं प्राप्त हुआ हो। किन्तु वैसा धन उनको इसलिए नहीं मिला कि वह तो परिजनों के भरण-पोषण में ही समाप्त हो चुका था। अतएव राजा युधिष्ठिर चिन्तित हो गये॥३२॥

तदभिप्रेतमालक्ष्य भ्रातरोऽच्युतचोदिताः। धनं प्रहीणमाजह्रुरुदीच्यां दिशि भूरिशः॥३३॥

अन्वयः— तदभिप्रेतम् आलक्ष्य अच्युतचोदिताः भ्रतरः उदीच्यां दिशि भूरिशः प्रहीणं धनम् आजह्रुः॥३३॥

अनुवाद— राजा के अभिप्राय को जानकर भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा प्रेरित उनके भाइयों ने उत्तर दिशा में छोड़ दिये गये बहुत अधिक धन को ला दिया ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

प्रहीणं मरुत्तस्य यज्ञे ब्राह्मणैस्त्यक्तं सुवर्णपात्रादिकमानीतवन्तः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

प्राचीन काल में राजा मरुत्त ने यज्ञ किया था उस यज्ञ में सभी पात्र सुवर्ण के थे। यज्ञ समाप्त हो जाने पर राजा ने उन सभी पात्रों को उत्तर दिशा में फेंकवा दिया। उन्होंने ब्राह्मणों को भी इतना धन दिया कि वे उस धन को नहीं ले जा सके अतएव वे भी उस धन को वही छोड़कर चले गये। चूंकि परित्यक्त धन पर राजा का ही अधिकार होता है, अतएव भगवान् ने उस धन को मँगवा लिया और उसी धन से राजा युधिष्ठिर का यज्ञ कराया। उसी धन को यहाँ मरुत्त के यज्ञ में छोड़ा गया धन कहा गया है उन सभी सुवर्ण पात्रों को पाण्डवों से भगवान् ने मँगवा लिया ॥३३॥

तेन संभृतसंभारो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः । वाजिमेधैस्त्रिभिर्भीतो यज्ञैः समयजद्हरिम् ॥३४॥

अन्वयः— तेन संभृत संभारः भीतः राजा युधिष्ठिरः त्रिभिः वाजिमेधैः यज्ञैः हरिम् समयजत् ॥३४॥

अनुवाद— उसी धन से पाप के भय से भयभीत राजा युधिष्ठिर यज्ञ के उपकरणों को एकत्रित करके तीन अश्वमेध यज्ञों के द्वारा श्रीहरि की आराधना किए ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

संभृतसंभारः संपादितयज्ञोपकरणः । भीतो ज्ञातिद्रोहात् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

उसी धन से सभी साधनों को तैयार करके धर्मभीरु राजा युधिष्ठिर तीन अश्वमेध यज्ञों के द्वारा श्रीहरि की आराधना किए ॥३४॥

आहूतो भगवान्राज्ञा याजयित्वा द्विजैर्नृपम् । उवास कतिचिन्मासान्सुहृदां प्रियकाम्यया ॥३५॥

अन्वयः— राज्ञा आहूतः भगवान् द्विजैः नृपम् याजयित्वा सुहृदां प्रियकाम्यया कतिचिन् मासान् उवास ॥३५॥

अनुवाद— राजा युधिष्ठिर के द्वारा आहूत भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मणों द्वारा राजा युधिष्ठिर का यज्ञ करवाकर अपने संबन्धियों की प्रसन्नता के लिए वहीं पर कुछ महीने निवास किए ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर ने श्रीभगवान् को बतलाया तो भगवान् हस्तिनापुर में आये और ब्राह्मणों द्वारा उनके यज्ञ को सम्पन्न कराये। अपने सम्बन्धी पाण्डवों की प्रसन्नता के लिए वे वहाँ कुछ महीनों तक निवास भी किए ॥३५॥

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञातः कृष्णया सह बन्धुभिः । ययौ द्वारवतीं ब्रह्मन्सार्जुनो यदुभिर्वृतः ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे परीक्षिज्जन्माद्युत्कर्षो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! ततः राज्ञा कृष्णया सह बन्धुभिः अभ्यनुज्ञातः यदुभिः वृतः सार्जुनः द्वारवतीं ययौ ॥३६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् राजा युधिष्ठिर द्रौपदी तथा बान्धवों से आज्ञा प्राप्त करके भगवान् यादवों से घिरे हुए अर्जुन के साथ द्वारका पुरी गये ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के परीक्षित् के जन्म आदि उत्कर्ष का वर्णन नामक बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

यज्ञ समाप्त होने के पश्चात् कुछ महीने बीत जाने पर राजा युधिष्ठिर, द्रौपदी तथा बान्धवों से आज्ञा लेकर भगवान् यदुवंशियों से घिरे हुए अर्जुन के साथ द्वारकापुरी चले गये ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थदीपिका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१२।।

* * *

तेरहवाँ अध्याय

विदुरजी के उपदेश से प्रेरित धृतराष्ट्र और गान्धारी का वन गमन

सूत उवाच

त्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम् । ज्ञात्वाऽगादधस्तिनपुरं तयावाप्तविवित्सितः ॥१॥

— विदुरः तीर्थयात्रायां मैत्रेयात् आत्मनः गतिं ज्ञात्वा तया अवाप्तविवित्सितः हस्तिनपुरम् अगात् ॥१॥

— विदुरजी तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में मैत्रेय महर्षि से आत्मा (परमात्मा) की गति (प्राप्यत्व) को जानकर, के विषय में प्राप्त ज्ञान के ही द्वारा जो कुछ उनको जानना था वे जान लिए और उसके पश्चात् ाये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तराष्ट्रस्य विदुरोक्त्या त्रयोदशे । उक्तः पौत्राभिषेकेण वक्तुं राज्ञो महापथम् । इदानीं परीक्षितः कलिनिग्रहादिकर्माणि गमनेन धृतराष्ट्रप्रस्थानं ततोऽर्जुनागमनं ततः श्रीकृष्णान्तर्धानं निशम्य पाण्डवप्रस्थानं च निरूपयति त्रिभिरध्यायैः। ात्मगत्याऽवाप्तं विवित्सितं ज्ञातुमिष्टं सर्वं येन ॥१॥

भाव प्रकाशिका

त्र परीक्षित् के राज्याभिषेक पूर्वक युधिष्ठिर के महामार्ग (स्वर्गारोहरण) को बतलाने के लिए विदुरजी ृतराष्ट्र के हस्तिनापुर से निकलकर चले जाने का वर्णन इस तेरहवें अध्याय में किया गया है । ः अब परीक्षित् के कलि के निग्रह आदि कर्मों का वर्णन करने के लिए विदुर के आने से धृतराष्ट्र का, उसके पश्चात् अर्जुन के द्वारकापुरी से आगमन का, उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्धान को सुनकर पाण्डवों के प्रस्थान का निरूपण तीन अध्यायों से किया जा रहा है । इस श्लोक श्रीहरि को कहा गया है । अर्थात् जीव के लिए एकमात्र प्राप्य श्रीहरि ही हैं । इस ज्ञान के विषय व का ज्ञान हो जाने के कारण विदुरजी जो कुछ भी जानना चाहते थे वह सबकुछ जान लिए और तीर्थ यात्रा से हस्तिनापुर लौट आये ॥१॥

वान्प्रश्नान्क्षत्ता कौषारवाग्रतः । जातैकभक्तिर्गोविन्दे तेभ्यश्चोपरराम ह ॥२॥

— क्षता कौषारवाग्रतः यावतः प्रश्नान् कृतवान् जातैकभक्तिः गोविन्दे तेभ्यश्च ह उपरराम ॥२॥

— विदुरजी ने मैत्रेयजी के समक्ष जितने प्रश्नों को किया उन सबों का उत्तर सुनने से पहल ही क्ति उत्पन्न हो जाने के कारण वे उपरत हो गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह । यावतः कर्मयोगव्रतादिविषयान् प्रश्नान्प्रथमं कृतवान् । कौषारवस्य मैत्रेयस्य पुरतः । पश्चात्रिचतुःप्रश्नार्थज्ञानमात्रेण गोविन्दे जातैकभक्तिः कृतार्थः संस्तेभ्यः प्रश्नेभ्य उपरराम । ततः परं न विजिज्ञासितवान् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

उसी बात का वर्णन करते हुए सूतजी कहते है— विदुरजी ने कर्मयोग तथा व्रत इत्यादि विषयक जितने प्रश्नों को मैत्रेय महर्षि के समक्ष किया था, उन सबों में तीन चार प्रश्नों का उत्तर सुनने मात्र से उनकी भगवान् गोविन्द में ऐकान्तिक भक्ति उत्पन्न हो जाने से वे कृतार्थ हो गये, उसके आगे वे प्रश्नों का उत्तर नहीं जानना चाहे।।२।।

तं बन्धुमागतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः सहानुजः । धृतराष्ट्रो युयुत्सुश्च सूतः शारद्वतः पृथा ।।३।।
गान्धारी द्रौपदी ब्रह्मन्सुभद्रा चोत्तरा कृपी । अन्याश्च जामयः पाण्डोर्ज्ञातयः ससुताः स्त्रियः।।४।।
प्रत्युज्जग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्व इवागतम् । अभिसंगम्य विधिवत्परिष्वङ्गाभिवादनैः ।।५।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! बन्धुं तं आगतं दृष्ट्वा, सहानुजः धर्मपुत्रः, धृतराष्टः, युयुत्सुः, सूतः, शारद्वतः, पृथा, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी, अन्याश्च जामयः पाण्डोः ज्ञातयः, ससुताः स्त्रियः तन्वे आगतं प्राणम् इव प्रहर्षेण प्रत्युज्जग्मुः ।।३-५।।

अनुवाद— हे शौनकजी ! अपने बान्धव (चाचा) विदुरजी को आये हुए देखकर अपने छोटे भाइयों के साथ महाराज युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, सञ्जय, शारद्वत, कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी (द्रोणाचार्य की पत्नी) पाण्डव परिवार के अन्य सभी स्त्री पुरुष, अपने पुत्रों के साथ स्त्रियाँ, जैसे मृत शरीर में प्राण आ गये हों उसी तरह अत्यधिक प्रसन्नता से आलिङ्गन और प्रणाम पूर्वक उनसे मिलकर उनकी अगवानी किए ।।३-५।।

भावार्थ दीपिका

सूतः सञ्जयः । शारद्वतः कृपः । पृथा कुन्ती । कृपी द्रोणभार्या । जामयो ज्ञातिभार्याः । अन्याश्च स्त्रियः । प्राणं तन्व इवेति कुतश्चिन्मूर्च्छादिदोषतः प्राणेऽवसन्ने सति तन्वः कराङ्घ्र्यादयो निश्चेष्टा भवन्ति पुनस्तस्मिन्नाविर्भूते यथोत्तिष्ठन्ति तद्वत्।।५।।

भाव प्रकाशिका

सूत शब्द से संजय को, शारद्वत शब्द से कृपाचार्य को, पृथा शब्द से कुन्ती को, कृपी शब्द से द्रोणाचार्य की पत्नी को, जामी शब्द से परिवार वालों की पत्नियों को कहा गया है । इसके अतिरिक्त दूसरी भी स्त्रियाँ विदुरजी की आगवानी में गयीं । कहीं पर मूर्छा आदि के कारण शरीर शिथिल हो जाता है, हाथ पैर इत्यादि चेष्टा विहीन हो जाते हैं और जब वह व्यक्ति होश में आ जाता है, तो वे अङ्ग पहले जैसे काम करने लगते हैं, इसी अर्थ को **प्राणं तन्व इवागतम्** के द्वारा कहा गया है । विदूरजी के आ जाने से अगवानी करने वाले लोगों में जैसे प्राण का सञ्चार हो गया ।।३-५।।

मुमुचुः प्रेमबाष्पौघं विरहौत्कण्ठ्यकातराः । राजा तमर्हयाञ्चक्रे कृतासनपरिग्रहम् ।।६।।

अन्वयः— विरहौत्कण्ठ्य कातराः प्रेमवाष्पौधं मुमुचुः । कृतासनपरिग्रहम् तम् राजा अर्हयाञ्चके ।।६।।

अनुवाद— विरह जन्य उत्कण्ठा से कातर बने हुए उन सब लोगों ने प्रेमाश्रु को बहाया उसके पश्चात् आसन पर बैठे हुए विदुरजी की राजा युधिष्ठिर ने पूजा की ।।६।।

भावार्थ दीपिका

विरहेण यदौत्कण्ठ्यं तेन कातरा विवशाः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

विदुरजी युद्ध प्रारम्भ होने से पहले ही तीर्थयात्रा में चले गये थे । अतएव विदुरजी से नहीं मिलने के कारण विरह की व्यथा से व्याकुल वे लोग एक साथ बैठकर प्रेमाश्रु को बहाये ।।६।।

तं भुक्तवन्तमासीनं विश्रान्तं सुखमासने । प्रश्रयावनतो राजा प्राह तेषां च शृण्वताम् ।।७।।

अन्वयः— भुक्तवन्तम्, विश्रान्तम् आसने सुखम् आसीनम् च तम् प्रश्रयावनतो राजा तेषां शृण्वताम् प्राह ।।७।।

अनुवाद— भोजन एवं विश्राम करके जब विदुरजी सुखपूर्वक अपने आसन पर बैठे हुए थे तब नम्रता पूर्वक राजा युधिष्ठिर ने सबों के सामने ही विदुरजी से पूछा ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तं विदुरम् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

इस **श्लोक में तम्** शब्द से विदुरजी को कहा गया है ।।७।।

युधिष्ठिर उवाच

अपि स्मरथ नो युष्मत्पक्षच्छायासमेधितान् । विपद्गणाद्विषाग्न्यादेर्मोचिता यत्समातृकाः ।।८।।

अन्वयः— समातृकाः विषाग्न्यादेः विपद्गणात् यत् मोचिताः युष्मत् पक्षच्छाया समेधितान् नः स्मरथ अपि ।।८।।

युधिष्ठिर ने कहा

अनुवाद— अपनी माता के साथ हमलोगों को जो विषमिश्रित अन्न के भोजन तथा लाक्षागृह की अग्नि रूपी भयङ्कर विपत्तियों से जो आपने हमलोगों को बचाया है, हमलोग जो आपकी ही छत्र-छाया में बड़े हुए ऐसे हमलोगों को आप कभी स्मरण करते थे क्या ?।।८।।

भावार्थ दीपिका

पक्षिणो ह्यपत्यानि यथातिस्नेहेन पक्षच्छायया वर्धयन्ति तद्वद्युष्मत्पक्षपातच्छायया समेधितान्वर्धितान्नोऽस्मान्किं स्मरथ। समेधितत्वमेवाह । विपद्गणाद्यस्मान्मोचिताः स्मः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

जैसे पक्षी अपने बच्चों को अत्यन्त स्नेह पूर्वक अपने पङ्खों की छाया में पालते-पोषते हैं, उसी तरह आपके पक्षपात की छाया में बढ़े हुए हमलोगों को क्या आप कभी स्मरण करते थे । क्योंकि आपने हमलोगों को विपत्ति समूह से बचाया है ।।८।।

कया वृत्त्या वर्तितं वश्चरद्भिः क्षितिमण्डलम् । तीर्थानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानीह भूतले ।।९।।

अन्वयः— क्षितिमण्डलं चरद्भिः वः कया वृत्त्या इह भूतले वर्तितम् कानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानि ?।।९।।

अनुवाद— पृथिवी पर सञ्चरण करते हुए आपने किस वृत्ति से अपना जीवन निर्वाह किया ? इस पृथिवी पर आपने किन-किन तीर्थों और मुख्य क्षेत्रों का सेवन किया ?।।९।।

भावार्थ दीपिका

वो युष्माभिः कया वृत्त्या वर्तितं देहवृत्तिः कृता । कानि च तीर्थादीनि सेवितानीति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

आप पृथिवी पर सञ्चरण करते हुए किस वृत्ति से अपनी जीवन यात्रा चलाते थे ? तथा आपने किन-किन मुख्य तीर्थों आदि का सेवन किया ?।।९।।

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो । तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तस्थेन गदाभृता ॥१०॥

अन्वयः— हे विभो ! भवद्विधाः तीर्थभूताः भागवताः स्वान्तस्थेन गदाभृता तीर्थानि तीर्थी कुर्वन्ति ॥१०॥

अनुवाद— हे विभो ! आप जैसे भगवान् के प्रिय भक्त स्वयं तीर्थ स्वरूप होते हैं, और वे अपने हृदय में विद्यमान श्रीभगवान् के द्वारा तीर्थों को भी पवित्र बनाने का काम करते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

भवता च तीर्थाटनं न स्वार्थ किंतु तीर्थानुग्रहार्थमित्याह-भवद्विधा इति । मलिनजनसंपर्केण मलिनानि तीर्थानि सन्तः पुनः स्वयं तीर्थीकुर्वन्ति । स्वान्तं मनस्तत्रस्थेन । स्वस्यान्तः स्थितेनेति वा ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

आप जैसे भगवतों के द्वारा किया जाने वाला तीर्थाटन अपने लिए नहीं होता है, अपितु वह तीर्थों पर कृपा करने के लिए होता है । इस बात को युधिष्ठिर ने **भवदविधा० इत्यादि** श्लोक से कहा है । आप जैसे भागवत पापी लोगों के सम्पर्क से जब तीर्थ मलीन हो जाते है, तब उन सबों को पवित्र बनाने के लिए तीर्थों में जाते हैं । भागवतों के मन में श्रीभगवान् का निवास होता है । उन भगवान् के सम्पर्क से तीर्थ पवित्र हो जाया करते हैं ॥१०॥

अपि नः सुहृदस्तात बान्धवाः कृष्णदेवताः । दृष्टाः श्रुता वा यदवः स्वपुर्यां सुखमासते ॥११॥

अन्वयः— हे तात अपि नः सुहृदः बान्धवाः कृष्णदेवताः यदवः स्वपुर्याम् सुखमासते इति दृष्टाः श्रुता वा ? ॥११॥

अनुवाद— हे तात ! हमारे भी सुहृद तथा भाई बन्धु जो भगवान् श्रीकृष्ण को देवता मानते हैं, यदुवंशियों को आपने द्वारका में सुख पूर्वक रहते हुए देखा अथवा सुना है ?॥११॥

भावार्थ दीपिका

अपि किं सुखमासते भवद्भिः क्वापि दृष्टाः श्रुताः वा ॥११॥

भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर ने पूछा की यदुवंशी हमारे भाई बन्धु हैं, वे हमारे सुहृत् हैं । वे लोग भगवान् कृष्ण को ही अपना आराध्य मानते हैं । आप द्वारका में जाकर उन लोगों को सुख पूर्वक रहते हुए देखा है क्या ? यदि देखा नहीं है तो आप उन लोगों के विषय में सुने हैं क्या ?॥११॥

इत्युक्तो धर्मराजेन सर्वं तत्समवर्णयत् । यथानुभूतं क्रमशो विना यदुकुलक्षयम् ॥१२॥

अन्वयः— इति धर्मराजेन उक्तः यथा अनुभूतं तत् सर्वं यदुकुलक्षयं बिना क्रमशः समवर्णयत् ॥१२॥

अनुवाद— इस तरह से धर्मराज युधिष्ठिर के द्वारा पूछे जाने पर विदुरजी ने जैसा अनुभव किया था उन सारी बातों को उन्होंने क्रमशः बतला दिया किन्तु यदुवंश के विनाश को उन्होंने नहीं बतलाया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर ने विदुरजी से जो कुछ भी पूछा था उन सारी बातों को उन्होंने उसी तरह क्रमशः बतलाया जिस तरह से उन्होंने तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में अनुभव किया था, किन्तु उन्होंने यदुवंश के विनाश की बात को नहीं बतलाया॥१२॥

नन्वप्रियं दुर्विषहं नृणां स्वयमुपस्थितम् । नावेदयेत्सकरुणो दुःखितान्द्रष्टुमक्षमः ॥१३॥

अन्वयः— ननु दुखितान् द्रष्टुम् अक्षमः सकरुणः स्वयमुपस्थितम् दुर्विषहम, अप्रियम् न आवेदयेत् ॥१३॥

अनुवाद— क्योंकि दुखितों को देखने में असमर्थ करुणायुक्त व्यक्ति को चाहिए कि जो अपने आप उपस्थित असह्य अप्रिय बात हो उसे न सुनाये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

यदुकुलक्षयावर्णने कारणमाह- नन्विति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने पाण्डवों को यदुकुल के क्षय की बात को नहीं सुनाया । उसका कारण **नन्वप्रियम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया गया है । नियम यही है कि जो व्यक्ति करुणा, युक्त हो उसको चाहिए कि वह स्वयम ज्ञात हो जाने वाली असह्य अप्रिय घटना को न बतलाये । विदुरजी पाण्डवों को दुःखी देखने में असमर्थ थे । इसीलिए उन्होंने यादवों के विनाश रूपी असह्य अप्रिय बात पाण्डवों को नहीं बतलाया ॥१३॥

कंचित्कालमथावात्सीत्सत्कृतो देववत्सुखम् । भ्रातुर्ज्येष्ठस्य श्रेयस्कृत्सर्वेषां प्रीतिमावहन् ॥१४॥

अन्वयः— अथ देववत् सुखम् सत्कृतः ज्येष्ठस्य भ्रातुः श्रेयस्कृत् सर्वेषां प्रीतिम् आवहन् कंचित् कालम् अवात्सीत् ॥१४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् देवताओं के समान राजा युधिष्ठिर द्वारा समादृत विदुरजी अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र का कल्याण करने के लिए सबों को प्रसन्न रखते हुए विदुरजी कुछ समय तक हस्तिनापुर में ही निवास किये ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

श्रेयस्कृत्तत्त्वमुपदिशन् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

धृतराष्ट्र को आत्म कल्याणकारी विषयों का उपदेश देते हुए विदुरजी हस्तिनापुर में निवास किए ॥१४॥

अबिभ्रदर्यमा दण्डं यथावदघकारिषु । यावद्दधार शूद्रत्वं शापाद्वर्षशतं यमः ॥१५॥

अन्वयः— यावत् यमः शापात् वर्षशतं शूद्रत्वं दधार तावत् अर्यमा अघकारिषु यथावत् दण्डं दधार ॥१५॥

अनुवाद— माण्डव्य ऋषि के शाप के कारण यम सौ वर्षो तक शूद्रत्व को धारण किए थे उतने समय तक अर्यमा ही पापियों को उचित दण्ड देने का काम करते थें ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

ननु शूद्रोऽसौ कथमुपदिशेत् । न ह्यसौ शूद्रः किंतु यमस्तद्रूपेणासीत् । किं तत्र कारणं यमे चात्रागतेऽमुत्र को दण्डधर इत्यपेक्षायामाह-अविभ्रदिति । धृतवानित्यर्थः । माण्डव्यस्य शापात् । तथाहि । क्वचिच्चोराननु धावन्तो राजभटा माण्डव्यस्य ऋषेस्तपश्चरतः समीपे तान् संप्राप्य तेन सह निबध्यानीय राज्ञे निवेद्य तदाज्ञया सर्वान् शूलमारोपयामासुः । ततो राजा तमृषिं ज्ञात्वा शूलादवतार्य प्रसादयामास । ततो मुनिर्यमं गत्वा कुपित उवाच कस्मादहं शूलमारोपित इति । तेनोक्तं त्वं बाल्ये शलभं कुशाग्रेणाविध्य क्रीडितवानिति । तच्छ्रुत्वा माण्डव्यस्तं शशाप । बाल्येऽजानतो मे महान्तं दण्डं यतस्त्वं कारितवानतः शूद्रो भवेति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि विदुरजी तो दासी पुत्र होने के कारण शूद्र थे, वे कैसे उपदेश दे सकते थे ? तो इसका उत्तर है कि वे शूद्र नहीं थे अपितु यमराज ही उस रूप में वहाँ विद्यमान थे । अब प्रश्न होता है कि यमराज क़े शूद्र होने का कारण क्या था ? यमराज के मर्त्यलोक में आ जाने पर पापियों को दण्ड देने का काम कौन करता था ? तो इसका उत्तर **अबिभ्रमदर्यमा० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । **अबिभृत्** पद का अर्थ है धारण किया । माडव्य महर्षि के शाप का कारण क्या था ? तो उसका उत्तर **अबिभ्रत०** श्लोक है । एक समय चोरों के पीछे दौड़ते हुए राजा के सिपाहियों ने तपस्या करने वाले मण्डव्य ऋषि के सन्निकट से ही चोरों को पकड़ा

उन सबों के साथ बाँधकर वे ऋषि को भी लाये, उन सबों को सिपाहियों ने राजा को समर्पित कर दिया। राजा की आज्ञा से उन सबों ने सबों को शूलारोपण कर दिया। राजा ने जब जाना कि ये तो ऋषि हैं तो उनको शूल पर से उतरवाकर राजा ने उनसे क्षमा प्रार्थना की। उसके पश्चात् क्रुद्ध होकर मुनि यमराज के पास गये और पूछे कि मैं शूल पर क्यों चढ़ाया गया ? यमराज ने कहा आपने बाल्यावस्था में कीड़े को कुश से छेद कर उसके साथ क्रीडा की। यमराज की बात को सुनकर माण्डव्य ऋषि ने यमराज को शाप दिया। बाल्यावस्था में मैं तो अज्ञानी था उसके बदले में मुझको इतना बड़ा दण्ड तुमने दिया अतएव तुम सौ वर्षों तक शूद्र रहोगे माण्डव्य महर्षि के इस शाप से ही यमराज सौ वर्षों तक शूद्र रहे ॥१५॥

युधिष्ठिरो लब्धराज्यो दृष्ट्वा पौत्रं कुलन्धरम्। भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्मुमुदे परया श्रिया ॥१६॥

अन्वयः— लब्धराज्यः युधिष्ठिरः कुलन्धरं पौत्रं दृष्ट्वा लोकपालाभैः भार्तृभिः परया श्रिया मुमुदे ॥१६॥

अनुवाद— राज्य के प्राप्त हो जाने पर राजा युधिष्ठिर अपने वंश को बढ़ाने वाले पौत्र परीक्षित् को देखकर लोकपालों के समान कान्ति वाले अपने छोटे भाइयों के साथ अपनी अतुलनीय सम्पत्ति को देखकर प्रसन्न रह रहे थे॥१६॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं राज्यस्यापकर्षं निरूपयितुमुत्कर्षं निगमयति- युधिष्ठिर इति। कुलन्धरं वंशधरम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

अब राज्य का अपकर्ष दिखाने के लिए सूतजी राज्य के उत्कर्ष का वर्णन करते हैं कुलन्धर का अर्थ है वंश को बढ़ाने वाले ॥१६॥

एवं गृहेषु सक्तानां प्रमत्तानां तदीहया। अत्यक्रामदविज्ञातः कालः परमदुस्तरः ॥१७॥

अन्वयः— एवं गृहेषु सक्तानां तदीहया प्रमत्तानां अविज्ञातः परमदुस्तरः कालः अत्यक्रामत् ॥१७॥

अनुवाद— इसी तरह से गृहकार्यों में लगे हुए परमात्मा की इच्छा के ही अनुसार प्रमत्त बने हुए पाण्डवों के लिए अत्यन्त भयङ्कर काल आ गया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तदीहया गृहव्यापारेण प्रमत्तानाम्। अत्यक्रामदायुःकालोऽतिक्रान्तः। यद्वा तानभ्यभवदित्यर्थः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मा की इच्छा से गृह व्यापार में अत्यन्त असावधन बने हुए पाण्डवों की आयु बीत चली। अथवा उन पाण्डवों को काल ने अभिभूत कर दिया ॥१७॥

विदुरस्तदभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत। राजन्निर्गम्यतां शीघ्रं पश्येदं भयमागतम् ॥१८॥

अन्वयः— विदुरः तत् अभिप्रेत्य, धृतराष्ट्रम् अभाषत। राजन् शीघ्रं निर्गम्यताम्, इदम् आगतं भयं पश्य ॥१८॥

अनुवाद— उस भयङ्कर काल को देखकर विदुरजी ने अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र से कहा कि राजन् इस भयङ्कर काल को देखिए और शीघ्र ही यहाँ से निकल चलिये ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अभिप्रेत्य ज्ञात्वा ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने उस भयङ्कर काल को जान लिया कि अब सबों की मृत्यु की बेला आ गयी है, इसीलिए उन्होंने धृतराष्ट्र से कहा कि मृत्यु को कोई रोक नहीं सकता है। यह अत्यन्त भयङ्कर समय है; अतएव आपको यहाँ से निकल जाना चाहिए। इसमें विलम्ब करना ठीक नहीं है ॥१८॥

प्रतिक्रिया न यस्येह कुतश्चित्कर्हिचित्प्रभो । स एव भगवान्कालः सर्वेषां नः समागतः ॥१९॥

अन्वयः— प्रभो ! यस्य इह कुतश्चित् कर्हिचित् प्रतिक्रिया न, स एव नः सर्वेषां भगवान् कालः समागतः ॥१९॥

अनुवाद— हे प्रभो ! इस लोक में जिसका कोई भी प्रतिकार नहीं कर सकता, वे ही हम सबों के भगवान् काल आ गये हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ननु तत्प्रतीकारः क्रियतां किं निर्गमनेन तत्राह- प्रतिक्रियेति । सर्वेषामिति । यैः प्रतिकर्तव्यं तेषामपीत्यर्थः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहे कि उसको रोकना चाहिए यहाँ से निकल चलने से कौन सा लाभ है? तो इसका उत्तर है कि जो रोकने वाले हैं उनकी भी मृत्यु की बेला आ गयी है । काल तो स्वयम् भगवान् का रूप है, काल को कौन रोक पायेगा ?॥१९॥

येन चैवाभिपन्नोऽयं प्राणैः प्रियतमैरपि । जनःसद्यो वियुज्येत किमुतान्यैर्धनादिभिः ॥२०॥

अन्वयः— येन चैव अभिपन्नः अयं जनः प्रियतमैः प्राणैः अपि सद्यः वियुज्यते अन्यैः धनादिभिः किमुत ?॥२०॥

अनुवाद— जिस काल से ग्रस्त होकर यह मानव शीघ्र ही अपने अत्यन्त प्रिय प्राणों से भी वियुक्त हो जाता है तो फिर धनों की क्या बात है ?॥२०॥

भावार्थ दीपिका

कथं धनादिवियोगः सोढुं शक्योऽत आह-येन चेति । अभिपन्नोऽभिग्रस्तः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि इन धनादिकों को कैसे त्यागा जा सकता है ? तो इसके उत्तर में **येन चैव० इत्यादि** श्लोक को कहा गया है । अर्थात् सबों को अपना प्राण अत्यन्त प्रिय है । उस काल से जब मनुष्य ग्रस्त हो जाता है तो मनुष्य को शीघ्र ही अपने प्राणों को भी त्यागना पड़ जाता है तो फिर इन धन आदि की कौन सी बात है ?॥२०॥

पितृभ्रातृसुहृत्पुत्रा हतास्ते विगतं वयः । आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहमुपाससे ॥२१॥

अन्वयः— ते पितृ-भ्रातृ सुहृत् पुत्राः हताः, वयः विगतम्, आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहम् उपाससे ॥२१॥

अनुवाद— आपके पिता, भाई, मित्र पुत्र सबके सब मारे जा चुके हैं, अवस्था भी ढल चुकी है, शरीर को बुढापे ने ग्रस्त कर लिया है और आप स्वयम् दूसरों के घर में रह रहे हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

कथं धनादिवियोगः सोढुं शक्योऽत आह-येन चेति । अभिपन्नोऽभिग्रस्तः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अब आपका यहाँ रहना अत्यन्त दीनता है । इस बात को बतलाने के लिए विदुरजी **पितृभातृ० इत्यादि** सात श्लोकों के द्वारा पहले वैराग्य को उत्पन्न करते हैं । यहाँ आत्मा शब्द से शरीर को कहा गया है ॥२१॥

अहो महीयसी जन्तोर्जीविताशा यया भवान् । भीमेनावर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालवत् ॥२२॥

अन्वयः— अहो जन्तोः जीविताशा महीयसी यया भवान् गृहपालवत् भीमेन आवर्जितं पिण्डम् आदत्ते ॥२२॥

अनुवाद— मनुष्य की जीने की आशा कितनी बलवती होती है ? उसी के कारण आप अपने पुत्रों को मारने वाले भीम के हाथों से दिए गये अन्न को कुत्ते के समान खाते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

येन पुत्रा हतास्तेन भीमेन दत्तं पिण्डं गृहपाल इव । गृहपालः श्वा ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

गृहपाल कुत्ते को कहते हैं । जिस भीम ने आपके पुत्रों को मार डाला उसी भीम के हाथों से दिए गये भोजन को आप कुत्ते के समान खा रहे हैं ॥२२॥

अग्निर्निसृष्टो दत्तश्च गरो दाराश्च दूषिताः । हृतं क्षेत्रं धनं येषां तद्दत्तैरसुभिः कियत् ॥२३॥

अन्वयः— येषां अग्निः निसृष्टः गरो दत्तः, दाराः च दूषिताः, धनं क्षेत्रं च हृतम् तद् दत्तै असुभिः कियत् ॥२३॥

अनुवाद— जिन पाण्डवों को आप आग में जलाना चाहे, विष मिश्रित अन्न खिलाया, उनकी पत्नी को अपमानित किए, और उनके धन और भूमि को छिन लिए उन्हीं पाण्डवों के द्वारा दिए गये अन्न से प्राणों को पोषने से क्या लाभ है ?॥२३॥

भावार्थ दीपिका

निसृष्टः प्रक्षिप्तः । गरो विषम् । दूषिता अवमताः तद्दत्तैरन्नादिभिर्लब्धैरसुभिः कियत्प्रयोजनम् । न किंचिदित्यर्थः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि इन पाण्डवों को मार डालने के लिए आपने लाक्षागृह में आग लगवा दी, विष भी आपने दिया, और इन सबों की पत्नी को अपमानित किया, इन्हीं पाण्डवों के द्वारा प्रदत्त अन्न से प्राणों का पोषण करने में आपका कौन सा गौरव है ?॥२३॥

तस्यापि तव देहोऽयं कृपणस्य जिजीविषोः । परैत्यनिच्छतो जीर्णो जरया वाससी इव ॥२४॥

अन्वयः— तस्य कृपणस्य जिजीविषोः अनिच्छतः अपि तव अयं देहः जरया जीर्णः वाससी इव परैति ॥२४॥

अनुवाद— इस तरह से दैन्य का अनुभव करते हुए भी जीवित रहने वाले आपका यह वार्द्धक्य के कारण जीर्ण हुआ शरीर उसी तरह क्षीण होता जा रहा है जिस तरह जीर्ण वस्त्र क्षीण होता जाता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तस्यापि तवैव दैन्यमनुभवतोऽपि परैति क्षीयते । अतएव धीरो भवेति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से दीनता पूर्वक जीवन जीने के इच्छुक भी आपका यह शरीर वार्द्धक्य के कारण क्षीण होता जा रहा है । अतएव आपको धैर्य धारण करना चाहिए ॥२४॥

गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः । अविज्ञातगतिर्जह्यात्स वै धीर उदाहृतः ॥२५॥

अन्वयः— मुक्तबन्धनः विरक्तः अविज्ञातगतिः यः गतस्वार्थम् इमं देहम् जह्यात् स वै धीरः उदाहृतः ॥२५॥

अनुवाद— सम्पूर्ण सांसारिक बन्धनों से मुक्त, संसार से विरक्त तथा अपने लोग जिसे जान न सके इस तरह से जो पुरुष यश एवं धर्म रूपी स्वार्थ से रहित इस शरीर का परित्याग कर देता है, वही धीर कहलाता हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

किंलक्षणो धीर इत्यपेक्षायामाह । गतस्वार्थं यशोधर्मादिशून्यम् । मुक्तबन्धनस्त्यक्ताभिमानः । क्व गत इत्यविज्ञाता गतिर्यस्य । स धीरः । प्राप्तदुःखस्य स्वयं सहनेन मुक्तिप्राप्तेः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न है कि धीर किसको कहते हैं ? तो इसके उत्तर में कहा गया है **गतस्वार्थम्० इत्यादि** अर्थात् आपका यह शरीर यश एवं धर्म प्राप्ति के लिए अनुपयोगी हो चुका है । अतएव इस देह में स्वीयत्वाभिमान को आप त्याग दें ओर सांसारिक समस्त सम्बन्ध रूपी बन्धनों से आप रहित हो जायँ । आप कहाँ चले गये इस बात को कोई जान न सके इस तरह से अपने सभी लोगों से दूर जाकर जो इस शरीर का परित्याग कर देता है, वही धीर कहलाता है ।।२५।।

यः स्वकात्परो वेह जातनिर्वेद आत्मवान् । हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स नरोत्तमः ।।२६।।

अन्वयः— यः आत्मवान् स्वकात् परतः वा इह निर्वेदः हृदि हरिं कृत्वा गेहात् प्रव्रजेत् सः नरोत्तमः ।।२६।।

अनुवाद— जो आत्मज्ञ पुरुष स्वयम् अथवा दूसरे के उपदेश को सुनकर संसार से उदासीन हो जाता है और अपने हृदय में श्रीहरि को स्थापित करके घर से निकल जाता है वही उत्तम पुरुष है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

नरोत्तमस्तु ततः प्रागेव कृतप्रतीकारः । स्वकात्स्वत एव । परतः परोपदेशतो वा ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

उत्तम पुरुष तो वह होता है जो कि अपने अथवा दूसरे के उपदेश को सुनकर संसार से विरक्त हो जाता है और अपने हृदय में श्रीहरि का ध्यान करते हुए घर से चुपचाप निकल जाता है ।।२६।।

अथोदीचीं दिशं यातु स्वैरज्ञातगतिर्भवान् । इतोऽर्वाक्प्रायशः कालः पुंसां गुणविकर्षणः ।।२७।।

अन्वयः— इतः अर्वाक् कालः प्रायशः पुंसां गुणविकर्षणः अथ स्वैः अज्ञातगतिः भवान् उदीचीं दिशं यातु ।।२७।।

अनुवाद— इसके आगे जो काल आयेगा वह मनुष्यों के गुणों को घटाने वाला होगा; अतएव आप अपने लोगों से छिपकर जिससे कि कोई जान न सके ऐसे आप उत्तर दिशा में चले जाइये ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

त्वं तु नरोत्तमो नाभूः, अत इदानीं धीरो भवेत्याह-अथेति । अर्वागर्वाचीनः एष्यन्नित्यर्थः । गुणान् धैर्यदयादीन् विकर्षत्याच्छिनत्तीति तथा ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

आप नरोत्तम तो नहीं हो सके अतएव आप धीर पुरुष बनें । इस बात को विदुरजी ने **अथोदीचीम्० इत्यादि** श्लोक से कहा है । अर्वाक् शब्द आगे आने वाले अर्थ का बोधक है । यह आने वाला समय गुणों को घटाने वाला होगा ।।२७।।

एवं राजा विदुरेणानुजेन प्रज्ञाचक्षुर्बोधितो ह्याजमीढः ।
छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान्द्रढिम्नो निश्चक्राम भ्रातृसंदर्शिताध्वा ।।२८।।

अन्वयः— एवं विदुरेण अनुजेन बोधितः प्रज्ञाचक्षुः आजमीढः राजा स्वेषु द्रढिम्नः स्नेह पाशान् छित्त्वा भ्रातृसंदर्शिताध्वा निश्चक्राम ।।२८।।

अनुवाद— इस तरह से अपने छोटे भाई विदुर के द्वारा उपदेश दिए जाने पर प्रज्ञाचक्षु (जन्मान्ध) तथा अजमीढ के वंश में उत्पन्न धृतराष्ट्र अपने लोगों में विद्यमान अत्यन्त सुदृढ स्नेहपाश के बन्धन को काटकर अपने भाई के द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर घर से निकल कर चल पड़े ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

आजमीढोऽजमीढवंशजः । प्रज्ञाचक्षुरन्धः । एवं बोधितः सन् । द्रढिम्नश्चित्तदार्ढ्यात् भ्रात्रा संदर्शिताऽध्वा बन्धमोक्षयोर्मार्गो यस्य सः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

विदुरजी के उपदेश को सुनकर अजमीढ के वंश में उत्पन्न राजा धृतराष्ट्र के प्रज्ञानेत्र खुल गये । उन्होंने अपने लोगों से सम्बद्ध स्नेह के बन्धन को काट दिया; वे घर से निकल पड़े और विदुरजी के द्वारा उपदिष्ट संसार से मुक्ति के मार्ग पर वे चल पड़े ।।२८।।

पतिं प्रयान्तं सुबलस्य पुत्री पतिव्रता चानुजगाम साध्वी ।
हिमालयं न्यस्तदण्डप्रहर्षं मनस्विनामिव सत्संप्रहारः ।।२९।।

अन्वयः— प्रयान्तं पतिं पतिव्रता सुबलस्य साध्वी पुत्री मनस्विनां सत् सम्प्रहार इव न्यस्तदण्डप्रहर्षम् हिमालयं अनुजगाम ।।२९।।

अनुवाद— हिमालय में जाते हुए अपने पति का राजा सुबल की साध्वी पुत्री तथा पतिव्रता गान्धारी ने उनके साथ ही योगियों को सुख देने वाले हिमालय में उसी तरह गयी जिस तरह से वीरों पर न्याय पूर्वक किया गया प्रहार उनको सुख ही देता है ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

सुबलस्य पुत्री गान्धारी साध्वी सुशीला हिमालयं प्रयान्तं पतिमनुजगाम । ननु कथं सा सुकुमारी हिमादिदुःखबहुलं हिमवन्तं गताऽत आह । न्यस्तदण्डानां प्रहर्षो यस्मिंस्तम् । दुःखदमपि केषांचित्प्रहर्षहेतुर्भवतीत्यत्र दृष्टान्तः । मनस्विनां शूराणां युद्धे संस्तीव्रः संप्रहारो यथा । पाठान्तरे संत्संप्रहारं युद्धं यथेति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

धृतराष्ट्र की पत्नी गान्धारी पतिव्रता और सुशीला नारी थीं । उन्होंने देखा कि उनके पति धृतराष्ट्र हिमालय में जा रहे हैं, और यह देखकर गान्धारी उनके पीछे-पीछे हिमालय में चली गयी । यदि कोई कहे कि हिमलाय तो वर्फ आदि के कारण बहुत दुःख देने वाला है सुकुमारी गान्धारी वहाँ कैसे गयी ? तो इसका उत्तर है **न्यस्तः त्यक्तो दण्डो भूतद्रोहो यैस्तेषां भूतसुहृदाम् योगिनामिति यावत् प्रहर्षकरम्** । अर्थात् जिन लोगों ने जीवों से द्रोह करना छोड़ दिया है । ऐसे सभी भूतों के सुहृद योगियों को हिमालय सुख ही देता है, दुःख नहीं देता । यह उसी तरह से होता है जिस तरह युद्ध में वीरों को तीव्र सम्प्रहार सुख देता है जहाँ **सत्म्प्रहारम्** यह पाठ है उसके अनुसार **सत्सम्प्रहारम्** पद का अर्थ होगा युद्ध ।।२९।।

अजातशत्रुः कृतमैत्रो हुताग्निर्विप्रान्नत्वा तिलगोभूमिरुक्मैः ।
गृहं प्रविष्टो गुरुवन्दनाय न चापश्यत्पितरौ सौबलीं च ।।३०।।

अन्वयः— कृतमैत्रः हुताग्निः अजातशत्रुः तिलगोभूमिरुक्मैः विप्रान् नत्वा, गुरून् वन्दनाय गृहं प्रविष्टः पितरौ सौबली च न अपश्यत् ।।३०।।

अनुवाद— मित्र देवताक संन्ध्या वन्दन करके तथा अग्निहोत्र करके युधिष्ठिर ब्राह्मणों को प्रणाम किए और उनको तिल गौ, भूमि तथा सुवर्ण दान दिए । इसके पश्चात् वे अपने गुरुजनों को प्रणाम करने के लिए जब गृह में प्रवेश किए तो उन्होंने, धृतराष्ट्र, विदुर और गान्धारी को नहीं देखा ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

कृतं मैत्रं मित्रदैवत्यं सन्ध्यावदनं येन । नत्वा संपूज्य । पितरौ विदुरधृतराष्ट्रौ ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

कृतमैत्रः पद की विग्रह है **कृतं मैत्रं मित्रश्चदैवत्यं सन्ध्यावन्दनं येन** । मूल में पितरौ शब्द से धृतराष्ट्र और विदुर दोनों कहे गये हैं । संध्या वन्दन के अधिष्ठातृ देवता चूकि मित्र है अतएव संध्या वन्दन को मैत्र शब्द से कहा गया है । युधिष्ठिर ने नित्य संन्ध्यावन्दन तथा अग्निहोत्र कर्म को किया और उसके पश्चात् ब्राह्मणों को नमस्कार किया तथा उनको दान दिया । उसके पश्चात् जब वे गृह में गये तो उनको धृतराष्ट्र, विदुर और गान्धारी ये तीनों नहीं मिले ॥३०॥

तत्र संजयासीनं पप्रच्छोद्विग्नमानसः । गावल्गणे क्व नस्तातो वृद्धो हीनश्च नेत्रयोः ॥३१॥

अन्वयः— उद्विग्नमानसः तत्र आसीनं संजयं पप्रच्छ गावल्गणे, नः वृद्धः नेत्रयोः हीनश्च तातः क्व ॥३१॥

अनुवाद— उद्विग्नमना होकर युधिष्ठिर ने वहाँ पर बैठे हुए सञ्जय से पूछा कि हे गावल्गणे ! मेरे वृद्ध तथा नेत्रहीन पिता धृतराष्ट्र कहा हैं ?॥३१॥

भावार्थ दीपिका

हे गावल्गणे गवल्गणस्य पुत्र सञ्जय ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

सञ्जय को गावल्गण इसलिए संम्बोधित किया गया है कि वे गवल्गण के पुत्र थे । गवल्गणस्य अपत्यं पुमान् इस अर्थ में गवल्गण शब्द से **अतइञ** सूत्र से इञ् प्रत्यय होकर गावल्गणि शब्द बनता है और उसका सम्बोधन में रूप हैं गावल्गणे ॥३१॥

अम्बा च हतपुत्रार्ता पितृव्यः क्व गतः सुहृत्। अपि मय्यकृतप्रज्ञे हतबन्धुः स भार्यया ॥
आशंसमानः शमलं गङ्गायां दुःखितोऽपतत् ॥३२॥

अन्वयः— हतपुत्रार्ता अम्बा सुहृत् पितृव्यः च क्व गतः हतबन्धुः दुःखितः सः अकृत प्रज्ञे मयि शमलं आशंसमानः गङ्गायाम् अपतत् किम् ?॥३२॥

अनुवाद— पुत्रों के मारे जाने के कारण दुःखिनी माता गान्धारी और मेरे सुहृत् मेरे चाचा विदुरजी कहाँ गये ? कहीं महाराज धृतराष्ट्र बान्धवों के मारे जाने के कारण दुःखी होकर अपनी पत्नी गान्धारी के साथ गङ्गा में तो नहीं कूद गये ?॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अकृतप्रज्ञे मन्दमतौ । शमलमपराधमाशंसमान आशङ्कमानः । भार्यया सह ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर ने कहा कि कहीं ऐसा तो नहीं हो गया कि अपने बान्धवों के मारे जाने के कारण दुःखी धृतराष्ट्र मन्दबुद्धि मुझसे किसी प्रकार के पाप की शङ्का करके अपनी पत्नी गान्धारी के साथ गङ्गा में तो नहीं कूद गये ॥३२॥

पितर्युपरते पाण्डौ सर्वान्नः सुहृदः शिशून् । अराक्षतां व्यसनतः पितृव्यौ क्व गतावितः ॥३३॥

अन्वयः— पितरि पाण्डौ उपरते सुहृदः सर्वान् शिशून् नः व्यसनतः अरक्षताम् इमौ पितृव्यौ इतः क्व गतौ ॥३३॥

अनुवाद— मेरे पिता पाण्डु की मृत्यु हो जाने पर हमारे प्रिय हम सभी बच्चों को इन दोनों चाचाओं ने विपत्तियों से बचाया ऐसे मेरे दोनों चाचा यहाँ से कहाँ चले गये ?॥३३॥

भावार्थ दीपिका

यावरक्षतां तौ । इतः स्थानात् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

जिन दोनों चाचाओं ने हमसबों की रक्षा की वे इस स्थान से कहाँ चले गये ?।।३३।।

सूत उवाच

कृपया स्नेहवैक्लव्यात्सूतो विरहकर्शितः । आत्मेश्वरमचक्षाणो न प्रत्याहातिपीडितः ।।३४।।

अन्वयः— आत्मेश्वरम् अचक्षाणः विरहकर्शितः सूतः कृपया स्नेह वैकल्यात् अतिपीडितः न प्रत्याह ।।३४।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— अपने स्वामी धृतराष्ट्र को नहीं देखकर विरह से दुःखी सञ्जय कृपा तथा स्नेह के कारण व्याकुल होने के कारण अत्यन्त पीडित होने से कुछ भी नहीं बोले ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

कृपया स्नेहवैक्लव्याच्चातिपीडित आत्मेश्वरं धृतराष्ट्रमपश्यन् । विरहकर्शितश्च सूतः संजयो न प्रत्युत्तरमाह ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

कृपा तथा स्नेह के कारण अत्यन्त दुःखी सञ्जय अपने स्वामी धृतराष्ट्र को नहीं देखने के कारण विरह से व्याकुल थे; अतएव राजा युधिष्ठिर का उत्तर नहीं दिए ।।३४।।

विमृज्याश्रूणि पाणिभ्यां विष्टभ्यात्मानमात्मना । अजातशत्रुं प्रत्यूचे प्रभोः पादावनुस्मरन् ।।३५।।

अन्वयः— पाणिभ्यां अश्रूणि विमृज्य, आत्मना आत्मानम् विष्टभ्य प्रभोः पादौ अनुस्मरन् अजातशत्रुं प्रत्यूचे ।।३५।।

अनुवाद— अपने दोनों हाथों से आँसुओं को पोंछकर, बुद्धिपूर्वक अपने मन को धैर्य सम्पन्न बनाकर अपने स्वामी धृतराष्ट्र के चरणों का स्मरण करते हुए वे युधिष्ठिर से कहे ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

आत्मना बुद्ध्यात्मानं मनो विष्टभ्य धैर्ययुक्तं कृत्वा । प्रभोर्धृतराष्ट्रस्य ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

सञ्जय ने बुद्धिपूर्वक अपने मन को धैर्ययुक्त बनाया और अपने स्वामी धृतराष्ट्र के चरणों का स्मरण करके वे युधिष्ठिर से कहे ।।३५।।

संजय उवाच

नाहं वेद व्यवसितं पित्रोर्वः कुलनन्दन । गान्धार्या वा महाबाहो मुषितोऽस्मि महात्मभिः ।।३६।।

अन्वयः— हे महाबाहो, कुलनन्दन, वः पित्रोः गन्धार्या वा व्यवसितं अहं न वेद, महात्मभिः मुषितः अस्मि ।।३६।।

संजय ने कहा

अनुवाद— हे महाबाहो कुलनदंन युधिष्ठिर ! मैं आपके दोनों चाचाओं और गान्धारी के सङ्कल्प को नहीं जानता हूँ, मुझको तो उन महात्माओं न ठग लिया ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

गान्धार्याश्च । व्यवसितं निश्चितम् । यतो मुषितो वञ्चितोऽस्मीति ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

संजय ने युधिष्ठिर से कहा कि आपके दोनों चाचाओं और गान्धारी इन तीनों का क्या सङ्कल्प है, इस विषय में मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ; क्योंकि इन लोगों ने मुझे कुछ भी नहीं बतलाया । मुझे तो इन लोगों ने ठग ही लिया।।३६।।

अथाजगाम भगवान्नारदः सहतुम्बुरु । प्रत्युत्थायाभिवाद्याह सानुजोऽभ्यर्चयन्निव ॥३७॥

अन्वयः— अथ तुम्बुरुः सह भगवान् नारदः आजगाम सानुजः प्रत्युत्थाय, अभिवाद्य अभ्यर्च्य इव आह ॥३७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् वहाँ पर तुम्बुरु के साथ भगवान् नारदजी आये उनको देखकर राजा अपने भाइयों के साथ खड़े होकर उनकी पूजा करते हुए कहने लगे ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

एवं कंचित्कालं शोचति तस्मिन्नथ नारद आजगाम । अत्रास्ति क्वचित्पुस्तके पाठान्तरं तदुल्लङ्घ्य यथासंप्रदायं व्याख्यायते। शोकवेगादभ्यर्चयन्निवाह राजा नत्वभ्यर्चयत् '**शोकाक्रान्तः कृपाविष्टः श्रद्धया रहितः पुमान् । गुरुदेवद्विजातीनां पूजनं न समाचरेत् ।**' इति स्मृतेः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह कुछ देर तक जब युधिष्ठिर शोच ही रहे थे उसी समय वहाँ पर तुम्बुरु के साथ महिमा सम्पन्न नारदजी आ गये । यहाँ पर किसी-किसी पुस्तक में **अभ्यर्चयन् मुनिम्** यह पाठ भेद है किन्तु उस पाठान्तर पर ध्यान न देकर यहाँ सम्प्रदायानुसारी व्याख्या की गयी है । चूकि राजा युधिष्ठिर को उस समय शोक था और शोकग्रस्त व्यक्ति को महापुरुषों की पूजा नहीं करनी चाहिए, इसलिए सूतजी ने अभ्यर्चयन्निव कहा है । अर्थात् उन्होंने नारदजी की पूजा नहीं कि बल्कि उनका केवल सत्कार और प्रणाम किया । स्मृति भी कहती है— **शोकाक्रान्तः इत्यादि** अर्थात् शोक ग्रस्त कृपायुक्त, तथा श्रद्धारहित पुरुष को गुरु, देवता और ब्राह्मण की पूजा नहीं करनी चाहिए ॥३७॥

युधिष्ठिर उवाच

नाहं वेद गतिं पित्रोर्भगवन्क्व गतावितः। अम्बा वा हतपुत्रार्ता क्व गता च तपस्विनी॥
कर्णधार इवापारे भगवान्पारदर्शकः ॥३८॥

अन्वयः— भगवन् अहं पित्रोः गतिं न वेद यत् इतः क्व गतौ वा हतपुत्रा आर्ता तपस्विनी अम्बा च क्व गता भगवान् अपारे पारदर्शकः कर्णाधार इव ॥३८॥

युधिष्ठिरजी ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! मुझे अपने दोनों चाचाओं का पता नहीं चल रहा है कि वे दोनों यहाँ से कहाँ चले गये, तथा पुत्रों के मारे जाने के कारण आर्त बनी हुयी माता गन्धारी कहाँ गयीं । हे भगवन् इस अपार दुःख सागर में पार को दिखाने वाले आप ही कर्णधार हैं, अतएव आप ही उन लोगों के विषय में बतलायें ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

नाहं वेद वेद्मि । तपस्विनी दुःखयुक्ता । अपारे शोकार्णवे भगवांस्त्वमेव पारदर्शकः । अतो ब्रूहीति शेषः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर ने नारदजी से कहा कि अपने दोनों चाचा और दुःखिनी चाची का मुझे पता नहीं चल रहा है अतएव मैं अपार शोक सागर में डूब रहा हूँ । आप ही मेरे लिए सहारा हैं आप उन लोगों का पता बतलाइये ॥३८॥

अथाबभाषे भगवान्नारदो मुनिसत्तमः । मा कंचन शुचो राजन्यदीश्वरवशं जगत् ॥३९॥

अन्वयः— अथ मुनिसत्तमः भगवान् नारदः आबभाषे । राजन् कंचन मा शुचः यत् जगत् ईश्वरवशं वर्तते ॥३९॥

अनुवाद— इसके बाद मुनियों में श्रेष्ठ ऐश्वर्य सम्पन्न नारदजी ने कहा— राजन् किसी के भी विषय में आप शोक मत कीजिये । यह सम्पूर्ण जगत् ईश्वर के अधीन है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

आदावेव यथावृत्तकथने शोकेन मूर्च्छितः पतेदिति प्रथमं तावच्छोकमुपशमयति । कंचन मा शुचो मा शोचः । न केवलं तानेव । यद्यस्मादीश्वराधीनं जगत् ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने सोचा कि यदि मैं सारी घटना ठीक-ठीक बतला दूँ तब तो युधिष्ठिर प्रारम्भ में ही मूर्छित होकर गिर जायेंगे । अतएव सर्वप्रथम वे उनके शोक को शान्त करते हुए कहे कि यह सारा जगत् परमात्मा के अधीन है, अतएव आपका किसी के विषय में शोक करना व्यर्थ है । परमात्मा की जैसी इच्छा होती है, उसे कोई रोक नहीं सकता है ।।३९।।

लोकाः सपाला यस्येमे वहन्ति बलिमीशितुः । स संयुनक्ति भूतानि स एव वियुनक्ति च ।।४०।।

अन्वयः— इमे सपालाः लोकाः यस्य ईशितुः बलिम् आवहन्ति सः भूतानि संयुनक्ति स एव वियुनक्ति च ।।४०।।

अनुवाद— ये सारे लोक तथा लोकपाल जिस नियामक परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हैं, वे ही परमात्मा जीवों को मिलने तथा विलग करने का काम करते हैं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-लोका इति । संयुनक्ति संयोजयति । वियुनक्ति वियोजयति च ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

लोकाः इत्यादि श्लोक के द्वारा परमात्मा के सम्पूर्ण जगत् नियामकत्व का वर्णन करते हुए नारदजी कहते हैं कि सारा जगत् परमात्मा का नियाम्य है । सारे लोक और लोकपाल परमात्मा की ही पूजा करते हैं । वे ही परमात्मा किसी व्यक्ति को किसी से मिलाने और किसी से विलग करने का काम करते हैं ।।४०।।

यथा गावो नसि प्रोतास्तन्त्यां बद्धाः स्वदामभिः । वाक्तन्त्यां नामभिर्बद्धा वहन्ति बलिमीशितुः ।।४१।।

अन्वयः— यथा नसि प्रोता तन्त्यां स्वदामभिः बद्धाः ईशितुः बलिम् आवहन्ति तथा वाक्तन्त्यां नामभिः बद्धाः मनुष्याः ईशितुः बलिमावहन्ति ।।४१।।

अनुवाद— जैसे छोटी सी रस्सी से नाक में नथे हुए तथा अपनी बड़ी रस्सी में बंधे हुए बैल अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करते हैं उसी तरह कर्तव्य तथा अकर्तव्य का निर्देश करने वाली वेदवाणी रूपी रस्सी में बन्धे हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नामधारी मनुष्य जगत् नियामक परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हैं ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

गावो बलीवर्दा नसि नासिकायां प्रोतास्तन्त्यां दीर्घतन्त्यां दामभिर्बद्धाः स्वामिनो बलिं वहन्ति यथा एवं वाक्तन्त्यां कर्तव्याकर्तव्यविधायकवेदलक्षणायां नामभिर्ब्राह्मणो ब्रह्मचारीत्यादिवर्णाश्रमलक्षणैर्बद्धाः परमेश्वरस्य बलिं तेन प्रेरिताः सर्वे वहन्तीत्यर्थः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

जैसे बैल नाक में छोटी रस्सी से नथे हुए बड़ी रस्सी में बन्धे रहते हैं और अपने मालिक की आज्ञा का पालन करते हैं, उसी तरह कर्तव्य एवं अकर्तव्य का विधान करने वाले वेद की वाणी में बन्धे हुए ब्राह्मण आदि तथा ब्रह्मचारी आदि अपने-अपने वर्णों एवं आश्रमों रूपी रस्सी में बन्धे रहकर परमात्मा की आराधना उन्हीं के द्वारा प्रेरित होकर किया करते हैं । अतएव आप अनावश्यक शोक न करें ।।४१।।

यथा क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह । इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम् ॥४२॥

अन्वयः— यथा इह कीडितुः इच्छया क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमौ स्याताम् तथैव ईशेच्छया नृणाम् संयोगवियोगौ भवतः इति शेषः ॥४२॥

अनुवाद— जिस तरह इस संसार में क्रीडा करने वाले व्यक्ति की इच्छा से ही क्रीड़ा के साधन भूत खिलौनों का संयोग और विलगाव होता है, उसी तरह से नियामक परमात्मा की ही इच्छा से मनुष्यों का मिलना और विछुडने का काम होता है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

प्रवृत्तौ पारतन्त्र्यमुक्त्वा संयोगवियोगयोरप्याह-यथेति । क्रीडोपस्कराणां क्रीडासाधनानां (दारुरचितमेषादीनाम्) ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

ऊपर के श्लोक में बतलाया गया है कि मनुष्यों की किसी भी कार्य में प्रवृत्ति परमात्मा की इच्छा के अनुसार ही होती है । जीव स्वतंत्र रूप से किसी कार्य को करने में समर्थ नहीं है । इस श्लोक में यह बतलाते हैं कि किसी भी जीव का संयोग और विप्रयोग भी परमात्मा की इच्छा के अधीन ही होता है । क्रीडा के साधनभूत खिलौनों को ही क्रीडोपस्कर कहते हैं । जैस क्रीडा करने वाला जब चहाता है तब एक खिलौना को दूसरे खिलौना से मिला देता है और जब चाहता है तो दोनों को अलग-अलग कर देता है । उसी तरह ईश्वर जब चाहते हैं तो एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से मिला देते हैं और जब चाहते हैं तो उन दोनों को अलग-अलग कर देते हैं । लकड़ी के बनाये हुए भेंड़ा क्रीडोपस्कर के उदाहरण हैं ॥४२॥

यन्मन्यसे ध्रुवं लोकमध्रुवं वा न चोभयम् । सर्वथा न हि शोच्यास्ते स्नेहादन्यत्र मोहजात् ॥४३॥

अन्वयः— यत् लोकं ध्रुवं मन्यसे, वा अध्रुवम्, न ध्रुवं न अध्रुवं सर्वथा मोहजात् स्नेहात् अन्यत्र ते हि शोच्या न ॥४३॥

अनुवाद— यदि आप जीव को नित्य मानें, या अनित्य मानें, या न तो नित्य मानें और न अनित्य मानें इन चारों ही पक्षों में शोक करना व्यर्थ है । यह तो अज्ञानजन्य स्नेह से भिन्न कुछ है ही नहीं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

ईश्वराधीनत्वान्न शोकः कार्य इत्युक्तम् । शोकतत्त्वे च विचार्यमाणे निर्विषयोऽयं शोक इत्याह । यद्यदि लोकं जनं ध्रुवं जीवरूपेण । अध्रुवं देहरूपेण । न चेति । न ध्रुवं नाप्यध्रुवम् । शुद्धब्रह्मरूपेणानिर्वचनीयत्वेन वा उभयं वा चिज्जडांशतः। सर्वथा चतुर्ष्वपि पक्षेषु ते पित्रादयो न शोच्याः स्नेहादन्यत्र । स्नेह एव केवलं शोकहेतुः स चाज्ञानमूल इत्यर्थः ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि जो कुछ भी होता है वह ईश्वर की इच्छा के अधीन होता है अतएव शोक करना व्यर्थ है । शोक तत्त्व पर यदि विचार किया जाय तो इस शोक का कोई विषय नहीं है । क्योंकि यदि आप मनुष्य को जीव रूप से नित्य मानें अथवा देह रूप से अनित्य मानें, अथवा उसे न तो नित्य मानें और न अनित्य मानें अथवा शुद्ध ब्रह्म होने के कारण तथा अनिर्वचनीय होने के कारण अथवा चित् तथा जडांश होने के कारण दोनों ही मानें, इन चारो ही पक्षों में तुम्हें अपने चाचा इत्यादि के विषय में शोक नहीं करना चाहिए । उन्होंने कहा कि केवल स्नेह ही शोक का कारण है और स्नेह अज्ञान मूलक है ।

जीव के विषय में चारो पक्षों को स्पष्ट करते हुए दीपिकाकार ने कहा ध्रुव और अध्रुव ये दो पक्ष हुए और न ध्रुव और न अध्रुव ये दो पक्ष हुए इस तरह से चार पक्ष हो गये । यदि ध्रुव है तो उसका नाश नहीं हो सकता है । और यदि अध्रुव है तो उसका विनाश होकर ही रहेगा । यह जीव न तो ध्रुव ही कहा जा सकता है और

न तो अध्रुव ही कहा जा सकता है । भावार्थदीपिकाकार ने उसे उभयम् कहा है । उसका अभिप्राय है कि वह चित् रूप से ध्रुव है और देहाध्यास रूप से अध्रुव है ॥४३॥

तस्माज्जह्यङ्ग वैक्लव्यमज्ञानकृतमात्मनः । कथं त्वनाथाः कृपणा वर्तेरंस्ते च मां विना ॥४४॥

अन्वयः— तस्मात् हे अङ्ग ! मां विना अनाथाः कृपणाः ते कथं वर्तेरन् । इति अज्ञानकृतम् आत्मनः वैक्लव्यं जहि।॥४४॥

अनुवाद— अतएव हे धर्मराज आप अपने इस अज्ञानजन्य मन की विकलता को छोड़ दीजिये कि मेरे बिना दीन तथा अनाथ वे कैसे रहेंगे ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

तस्मान्मां विना कथं ते वर्तेरन्नित्यात्मनो मनसो वैक्लव्यं व्याकुलतां त्यज ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने युधिष्ठिर से कहा कि आप अपने मन की इस विकलता को छोड़ दीजिये कि मेरे बिना वे कैसे रहेंगे ?॥४४॥

कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः । कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथा परम् ॥४५॥

अन्वयः— अयं पाञ्चभौतिकः देहः काल-कर्म-गुणाधीनः परम् सर्पग्रस्तः यथा अन्यान् तु कथं गोपायेत् ॥४५॥

अनुवाद— यह पाञ्चभौतिक शरीर, काल, कर्म तथा गुणों के अधीन होने के कारण पराधीन है । अजगर के मुँह में पड़े हुए के समान यह दूसरों की रक्षा कैसे कर सकता है ?॥४५॥

भावार्थ दीपिका

तत्र त्वद्देहतस्तेषां वृत्तिरेतत्तावन्नास्तीत्याह । कालो गुणक्षोभकः । कर्म जन्म निमित्तम् । गुणा उपादानम् । तदधीनः पाञ्चभौतिको जडस्तद्विभागे नाशवांश्च । सर्पग्रस्तोऽजरगिलितो यथाऽन्यं न रक्षति तद्वत् ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

आपके अधीन ही उन लोगों की वृत्ति हो ऐसी बात नहीं है । कालगुणों में क्षोभ उत्पन्न करता है कर्म जन्म का कारण है, गुण ही उपादान कारण हैं उसके ही अधीन यह पाँच भौतिक जड़ शरीर है। उन सबों का विभाग होने पर यह नष्ट हो जाता है । जैसे अजगर के मुँह में स्वयं पड़ा हुआ दूसरों की रक्षा नहीं कर सकता है उसी तरह से इस शरीर से दूसरों की रक्षा नहीं हो सकती हैं ॥४५॥

अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् । फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ॥४६॥

अन्वयः— अहस्तानि सहस्तानाम् अपदानि चतुष्पदाम् फल्गूनि महताम् इत्थम् जीवः जीवस्य जीवनम् ॥४६॥

अनुवाद— बिना हाथ वाले खरगोश, कबूतर इत्यादि पक्षी हाथ वाले मनुष्यों के; बिना पैर वाले तृण आदि पैर वाले पशुओं के तथा छोटे जीव बड़े जीवों के जीवन आहार हो जाते हैं इस तरह एक जीव दूसरे जीव के जीवन (आहार) हैं ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

ईश्वरेण विहिता वृत्तिश्च सर्वतः सुलभैवेत्याह । अहस्तानि पश्वादीनि । अपदानि तृणादीनि । तत्र तेष्वहस्तादिष्वपि फल्गून्यल्पानि । एवं जीवः सर्वोऽपि जीवस्य सर्वस्य जीवनं जीविका । एतेनैव सर्वतो मृत्युग्रासत्वं चोक्तम् ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मा के द्वारा प्रदत्त जीविका सर्वत्र सुलभ है इस बात को अहस्तानि इत्यादि के द्वारा कहा गया है ।

हाथ रहित पशु आदि हाथ वाले मनुष्यों के आहार बन जाते हैं हस्तहीनों में भी छोटे जीव बड़े जीवों के अहार बन जाते हैं इस तरह सभी जीव सभी जीवों की जीविका हैं । इस कथन से ही यह बतलाया गया है कि जो जहाँ कहीं भी रहता है, वह मृत्यु का ग्रास बनता ही है ॥४६॥

तदिदं भगवान्राजन्नेक आत्मात्मनां स्वदृक् । अन्तरोऽनन्तरो भाति पश्य तं माययोरुधा ॥४७॥

अन्वयः— राजन् तदिदं भगवान् एकः आत्मनाम् आत्मा स्वदृक् अन्तरः अन्तरः भाति तं मायया उरुधा पश्य ॥४७॥

अनुवाद— राजन् ये एक मात्र भगवान् ही सभी आत्माओं की आत्मा हैं वे स्वयम्प्रकाश हैं वे ही सबों के भीतर और बाहर प्रतीत हो रहे है, माया के कारण ही उनकी अनेक रूप से प्रतीति होती है ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

मोहनिवृत्त्यर्थं द्वैतस्यावस्तुत्वमाह । तदिदमहस्तसहस्तादिरूपं जगत् । स्वदृग्भगवानेव न ततः पृथक् । स चैक एव न तु नाना । ननु सजातीयविजातीयभेदे प्रत्यक्षे कुत एतत्तत्राह । आत्मनां भोक्तृणामात्मा स्वरूपम् । अतो न सजातीयभेदः। अन्तरोऽनन्तरश्च अन्तर्बहिश्च भोक्तृभोग्यरूपश्च भाति । अतो न विजातीयभेदोऽपि । नन्वेकः कथं तथा प्रतीयतेऽत आह । मायया बहुधा भाति तं पश्येति ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर के मोह की निवृत्ति के लिए नारदजी ने भेद की प्रतीति को इस श्लोक में अवास्तविक बतलाया है । यह जगत् अहस्त सहस्त इत्यादि रूप है । यह स्वयम्प्रकाश भगवत् स्वरूप ही है, उनसे भिन्न नहीं है वे एक हैं अनेक नहीं । यदि कोई कहे कि सजातीय एवं विजातीय भेद तो प्रत्यक्षतः प्रतीत होते हैं अतएव भेद का निषेध कैसे किया जा सकता है ? तो इसके उत्तर में उन्होंने कहा— भोक्ता आत्माओं का स्वरूप आत्मा ही है अतएव सजातीय भेद नहीं माना जा सकता है । आत्मा ही भीतर और बाहर भोक्ता और भोग्य रूप से प्रतीत होता है । अतएव विजातीय भेद को भी नहीं स्वीकारा जा सकता है ।

नन्वेकः इत्यादि अब प्रश्न है कि यदि आत्मा एक ही है तो वह अनेक रूप में कैसे प्रतीत होता है तो इसके उत्तर में कहा गया है एक ही आत्मा माया के कारण अनेक रूप से प्रतीत होती है । इस बात को आपको जानना चाहिए ॥४७॥

सोऽयमद्य महाराज भगवान्भूतभावनः । कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभवाय सुरद्विषाम् ॥४८॥

अन्वयः— महाराज ! अद्य सोऽयम् भूतभावनः भगवान् सुरद्विषाम् अभवाय कालरूपः अस्याम् अवतीर्णः ॥४८॥

अनुवाद— हे महाराज ! इस समय जीवों को जीवन देने वाले भगवान् देव द्रोहियों का विनाश करने के लिए इस पृथिवी पर अवतीर्ण हुए हैं ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

क्वासावस्तीदृशो महामायावी, द्वारकायामित्याह-सोऽयमिति । अस्यां भूम्याम् । अभवाय नाशाय ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप पूछें कि वे महामायावी भगवान् द्वारका में ही हैं क्या ? तो इसका उत्तर है कि वे भूमि पर अवतीर्ण हुए हैं और असुरों का विनाश करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं ॥४८॥

निष्पादितं देवकृत्यमवशेषं प्रतीक्षते । तावद्यूयमवेक्षध्वं भवेद्यावदिहेश्वरः ॥४९॥

अन्वयः— देवकृत्यं निष्पादितम्, अवशेषं प्रतीक्षते यावदिह ईश्वरः भवेत् तावद् यूयम् अवेक्षध्वम् ॥४९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् देवताओं का कार्य पूरा कर चुके हैं, अब थोड़े से बचे हुए कार्य की वे प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब तक श्रीभगवान् इस भूलोक में हैं तब तक आपलोग उनका दर्शन करें ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि श्रीकृष्णाऽत्रास्तीत्यत्रैवास्थां मा कृथा इत्याह । तच्च देवानां कार्यं तेन निष्पादितं, केवलमवशेषं प्रतीक्षते । यदुकुलक्षयमिति हृदिस्थम् । ततो निजं धाम यास्यति ततो यूयमपि गच्छतेत्यर्थः । तच्च भूतमपि विदुरवदेव नावर्णयत् ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ ही है इस बात को आपलोग न सोचें । उन्होंने देवताओं का कार्य पूरा कर लिया है, केवल बचे हुए कार्य की वे प्रतीक्षा कर रहे है । उनके हृदय में बचा हुआ कार्य यदुकुल का विनाश था उसके पश्चात् वे अपने लोक में चले जायेंगे । अतएव आपलोग भी जायँ । यद्यपि यदुकुल का नाश हो ही गया था किन्तु जिसतरह विदुरजी ने उसका वर्णन नहीं किया था उसी तरह उन्होंने भी उसका वर्णन नहीं किया ।।४९।।

धृतराष्ट्रः सह भ्रात्रा गान्धार्या च स्वभार्यया । दक्षिणेन हिमवत ऋषीणामश्रमं गतः ।।५०।।

अन्वयः— धृतराष्ट्रः भ्रात्रा भार्यया गान्धार्या च सह हिमवतः दक्षिणेन ऋषीणाम् आश्रमं गतः ।।५०।।

अनुवाद— धृतराष्ट्र अपने भाई विदुरजी तथा अपनी पत्नी गान्धारी के साथ हिमालय की दक्षिण दिशा में ऋषियों के आश्रम में चले गये हैं ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं शोकमास्थां च निवार्य जिज्ञासवे तस्मै यथावृत्तं कथयति-धृतराष्ट्र इति षड्भिः । हिमवतो दक्षिणे भागे ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से शोक तथा आस्था को दूर करके जिज्ञासु युधिष्ठिर को यथार्थ वृत्तान्त **धृतराष्ट्रः इत्यादि** छह श्लोकों से कहते हैं वे बतलाये कि धृतराष्ट्र हिमालय के दक्षिण भाग में ऋषियों के आश्रम में चले गये हैं ।।५०।।

स्रोतोभिः सप्तभिर्या वै स्वर्धुनी सप्तधा व्यधात् । सप्तानां प्रीतये नाना सप्तस्रोतः प्रचक्षते ।।५१।।

अन्वयः— स स्वर्धुनी सप्तानां प्रीतये नाना सप्तभिः स्रोतोभिः सप्तधाव्यधात् यत् सप्तस्रोत प्रचक्षते ।।५१।।

अनुवाद— जहाँ पर गङ्गाजी ने सात ऋषियों की प्रसन्नता के लिए पृथक्-पृथक् सात स्रोतों में अपने को विभक्त कर दिया जिसे सप्तस्रोत (सप्त सरोवर) कहते हैं ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

तदपि कुत्रेत्याह-स्रोतोभिरिति । या वै प्रसिद्धा स्वर्धुनी सा आत्मानं यत्र सप्तधा व्यधात् । किमर्थम् । नाना पृथक् सप्तभिः स्रोतोभिः प्रवाहैः सप्तानामृषीणां प्रीतये । अतएव तत्तीर्थं सप्तस्रोतो वदन्ति ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

यदि पूछें कि ऋषियों के किस आश्रम में गये हैं तो इसका उत्तर है **स्रोतोभिः इत्यादि** जो प्रसिद्ध देवनदी गङ्गाजी है जहाँ पर सात ऋषियों की प्रसन्नता के लिए अपने को सात अलग-अलग धाराओं में विभक्त कर दिया है, जिसे सप्तस्रोत कहते हैं वहीं पर चले गये हैं ।।५१।।

स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्हुत्वा चाग्नीन्यथाविधि । अब्भक्ष उपशान्तात्मा स आस्ते विगतैषणः ।।५२।।

अन्वयः— यस्मिन् अनुसवनं स्नात्वा, यथाविधि अग्नीन् हुत्वा अब्भक्षः उपशान्तात्मा स विगतैषणः आस्ते ।।५२।।

अनुवाद— वहाँ वे त्रिकालस्नान और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करके आहार के रूप में जल को लेते हैं और शान्त चित्त वाले हो गये हैं । उनकी सारी इच्छाएँ समाप्त हो गयी हैं । इस तरह से वे निवास करते हैं ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तेन कृतमष्टाङ्गयोगमाह-स्नात्वेति चतुर्भिः । तत्र स्नानं होमोऽब्भक्षणं चेति नियमा उक्ताः भक्षस्थाने अपां स्वीकारादब्भक्षः। उपशान्त आत्मा यस्य सः । विगताः पुत्राद्येषणा यस्मादिति यमा उक्ताः ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

वहाँ पर धृतराष्ट्र अष्टाङ्ग योग करते हैं इस बात को **स्रोतोभि० इत्यादि** चार श्लोकों से बतलाया गया है । उसमें स्नान, होम और जलाहार ये नियम बतलाये गये हैं । भोजन के स्थान पर जल लेने के कारण उनको अब्भक्ष कहा गया है । उपशान्त आत्मा (चित्त) यस्य सः, यह उपशान्तात्मा पद का विग्रह है । अर्थात् वे शान्त चित्त वाले हो गये हैं । उनकी सारी अभिलाषाएँ समाप्त हो गयी हैं । इस तरह से योग के अङ्ग यम को बतलाया गया है ।।५२।।

जितासनो जितश्वासः प्रत्याहृतषडिन्द्रियः । हरिभावनया ध्वस्तरजःसत्त्वतमोमलः ।।५३।।
विज्ञानात्मनि संयोज्य क्षेत्रज्ञे प्रविलाप्य तम् । ब्रह्मण्यात्मानमाधारे घटाम्बरमिवाम्बरे ।।५४।।
ध्वस्तमायागुणोदर्को निरुद्धकरणाशयः । निवर्तिताखिलाहार आस्ते स्थाणुरिवाचलः ।।५५।।

अन्वयः— जितासनः, जितश्वासः, प्रत्याहृतषडिन्द्रियः हरिभावनया ध्वस्त रजः सत्त्वतमोमलः । विज्ञानात्मनि संयोज्य, क्षेत्रज्ञे प्रविलप्य, अम्बरे घटाम्बरम् इवतम् आधारे ब्रह्मणि प्रविलाप्य, निरुद्धकरणाशयः ध्वस्त मायागुणोदर्कः निवर्तिता खिलाहारः स्थाणुः इव अचलः आस्ते ।।५३-५५।।

अनुवाद— उन्होंने आसन को जितकर, श्वास को भी जित लिया है । उन्होंने छहो इन्द्रयों को उनके विषयों से लौटा लिया है । श्रीहरि की भावना से युक्त उन्होंने सत्त्व, रजस् एवं तमस् मलों को विनष्ट कर दिया है । अहङ्कार को बुद्धि से संयुक्त करके उसे क्षेत्रज्ञ आत्मा में उन्होंने लीन कर दिया है । उसको भी महाकाश में घटाकाश के समान सबों के आधार ब्रह्म में उन्होंने मिला दिया है । अपनी सभी इन्द्रियों और मन को अवरुद्ध करके इन्द्रियों के विषयों को बाहर से ही लौटा दिया है तथा माया के गुणों के परिणामों को विनष्ट कर दिया है । समस्त कर्मों का परित्याग करके वे इस समय स्थाणु के समान स्थिर हो गये हैं ।।५३-५५।।

भावार्थ दीपिका

जितासन इत्यादिना आसनप्राणायामप्रत्याहारा उक्ताः । हरिभावनयेति धारणोक्ता । ध्वस्ता रजःसत्त्वतमोरूपा मला यस्येति फलतो ध्यानमुक्तम् ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

जितासनः इत्यादि श्लोक से धृतराष्ट्र के द्वारा पालन किए जाने वाले आसन, प्राणायाम प्रत्याहार को वतलाया गया है । **हरिभावनया० इत्यादि** के द्वारा धारणा कही गयी है । उसके फलस्वरूप उन्होंने सत्त्व, रजस् तथा तमस् रूपी मलों को विनष्ट कर दिया है, यह कहकर ध्यान नामक योगाङ्ग को कहा गया है ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

समाधिमाह-विज्ञानेति द्वाभ्याम् । आत्मानं मनोऽहङ्कारास्पदं स्थूलदेहाद्वियोज्य विज्ञानात्मनि बुद्धौ संयोज्यैकीकृत्य तं च विज्ञानात्मानं दृश्यांशाद्वियोज्य क्षेत्रं द्रष्टरि प्रविलाप्य तं च क्षेत्रज्ञं द्रष्टृंशाद्वियोज्याधारे आश्रयसंज्ञे ब्रह्मणि प्रविलाप्य । घटाम्बरं घटोपाधेर्वियोज्य यथा महाकाशे प्रविलाप्यते तद्वत् ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

विज्ञानात्मनि० इत्यादि दो श्लोकों के द्वारा समाधि नामक अन्तिम योगाङ्ग को कहा गया है । **आत्मानम्०**

इत्यादि अहङ्कार के विषयभूत मन को स्थूल देह से वियुक्त करके तथा ज्ञान स्वरूप बुद्धि में उसको संयुक्त करके उन्होंने उसको एक कर दिया है । उस विज्ञान स्वरूप आत्मा को दृश्यांश से अलग करके क्षेत्रज्ञ द्रष्टा आत्मा में लीन करके । उस क्षेत्रज्ञ को भी द्रष्टा रूपी अंश से पृथक् करके उसे आश्रय संज्ञक ब्रह्म में उन्होंने लीन कर दिया है । यह ठीक उसी तरह से है जिस तरह घटोपहित आकाश को घटरूपी उपाधि से अलग करके जैसे महाकाश में मिला दिया जाता है उसी तरह ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

व्युत्थानाभावमाह-ध्वस्तेति । अन्तर्गुणक्षोभाद्वा वहिरिन्द्रियविक्षेपाद्वा व्युत्थानं भवेत्, तदुभयं तस्य नास्ति । यतो ध्वस्तो मायागुणानामुदर्क उत्तरफलं वासना यस्य सः । निरुद्धानि करणानि चक्षुरादीन्याशयो मनश्च यस्य सः । अतएव निवर्तितोऽखिल आहारो भोज्यमिन्द्रियैर्विषयाहरणं वा येन सः । स्थाणुरिव निश्चल आस्ते ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

आभ्यन्तर गुणों के क्षोभ के कारण अथवा बाह्येन्द्रियों के विक्षेप के कारण किसी भी प्रकार से उनको व्युत्थान नहीं होता है, क्योंकि उन्होंने माया के गुणों का फल जो वासना है उसको उन्होंने विनष्ट कर दिया है । उन्होंने चक्षुरादि बाह्यइन्द्रियों और मन को भी अपने वश में कर लिया है । उन्होंने सभी प्रकार के आहारों का परित्याग कर दिया है । वे न तो किसी प्रकार का भोज्य आहार लेते हैं और न तो इन्द्रियों के विषयों का अनुभव करते हैं । वे स्थाणु के समान निश्चल हो गये हैं ।।५५।।

तस्यान्तरायो मैवाभूः संन्यस्ताखिलकर्मणः । स वा अद्यतनाद्राजन्परतः पञ्चमेऽहनि ।।
कलेवरं हास्यति स्वं तच्च भस्मीभविष्यति ।।५६।।

अन्वयः— संन्यास्तखिल कर्मणः तस्य अन्तरायो मैव अभूः । राजन् स वै अद्यतनात् परतः पञ्चमे अहनि स्वं कलेवरं हास्यति तच्च भस्मीभविष्यति ।।५६।।

अनुवाद— राजन् उन्होंने अपने समस्त कर्मों का परित्याग कर दिया है, आप उनके कार्य में विघ्न न बनें । निश्चित रूप से आज के पाँचवें दिन वे अपने शरीर का परित्याग कर देंगे और उनका वह शरीर भस्म हो जायेगा ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

तथाभूतमप्यानेतुमुद्यतं प्रत्याह-तस्येति । अन्तरायो विघ्नः । मैवाभूरित्यडागमश्छान्दसः । दर्शनमपि तावत्कुर्यामित्युद्यतं। प्रत्याह । स वै अद्यतनादह्नः परत उत्तरत्र । स्वं स्वाधीनम् । तर्हि तद्दाहार्थं गमिष्यामि नेत्याह-तच्चेति ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

उस तरह के भी धृतराष्ट्र को लाने के लिए उद्यत युधिष्ठिर को उन्होंने कहा आप उनके कार्यों में विघ्न न करें । अभूः में अट् का आगम वैदिक प्रयोग है । राजा ने कहा कि उनका मैं दर्शन ही कर लूँ तो उनसे नारदजी ने कहा वे आज के बाद पाँचवें दिन अपने अधीन शरीर का परित्याग कर देंगे । यदि कहो कि उस शरीर को जलाने के लिए मैं जाऊँ तो ऐसी भी बात नहीं है । उनका वह शरीर अपने आप जल जायेगा ।।५६।।

दह्यमानेऽग्निभिर्देहे पत्युः पत्नी सहोटजे । बहिःस्थिता पतिं साध्वी तमग्निमनुवेक्ष्यति ।।५७।।

अन्वयः— सहोटजे पत्युः देहे अग्निभिः दह्यमाने बहिः स्थिता साध्वी पत्नी तम् अग्निम् पतिम् अनुवेक्ष्यति ।।५७।।

अनुवाद— झोपड़ी के साथ पति के देह को अग्नि के द्वारा जलते हुए देखकर झोपड़ी के बाहर बैठी हुयी उनकी साध्वी पत्नी पति के उसी अग्नि में प्रवेश कर जायेगी ।।५७।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि गान्धार्यानयनाय गमिष्यामि नेत्याह । पत्युर्देहे सहोटजे पर्णशालासहिते योगाग्निना सह गार्हपत्यादिभिर्दह्यमाने तस्य पत्नी बहिः स्थिता सती तं पतिमन्वग्निं वेक्ष्यति प्रवेक्ष्यति ।।५७।।

भाव प्रकाशिका

यदि युधिष्ठिर कहें कि तो फिर मैं गान्धारी को लेकर आऊँगा । तो ऐसा भी नहीं करना चाहिए इस बात को **दह्यमाने० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । झोपड़ी के साथ पति के शरीर को योगाग्नि से जलते हुए देखकर झोपड़ी से बाहर बैठी हुयी उनकी सुशील पत्नी उसी अग्नि में अपने पति के साथ प्रवेश कर जायेगी ।।५७।।

विदुरस्तु तदाश्चर्यं निशाम्य कुरुनन्दन । हर्षशोकयुतस्तस्माद्गन्ता तीर्थसिषेवकः ।।५८।।

अन्वयः— हे कुरुनन्दन ! तदाश्चर्यं निशाम्य तीर्थसिषेवकः विदुरस्तु हर्षशोकयुतः तस्मात् गन्ता ।।५८।।

अनुवाद— हे कुरुनन्दन ! उस आश्चर्य को देखकर तीर्थों का सेवन करने के इच्छुक विदुर जी तो धृतराष्ट्र की मुक्ति हो जाने के कारण हर्ष से एवं उनकी मृत्यु हो जाने के कारण शोक से युक्त होकर वहाँ से चले जायेंगे ।।५८।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि विदुरानयनार्थं गन्तव्यमेव नेत्याह । विदुरस्तु तन्निशाम्य दृष्ट्वा भ्रातुः सुगत्या हर्षस्तन्मृत्युना शोकश्च ताभ्यां युक्तस्तस्मात्स्थानात्तीर्थानि सेवितुं गन्ता गमिष्यति ।।५८।।

भाव प्रकाशिका

यदि युधिष्ठिर कहें कि तो फिर विदुरजी को लाने के लिए मुझे जाना चाहिए तो वह भी ठीक नहीं; क्योंकि उस आश्चर्य को देखकर अपने भाई की सद्गति के कारण हर्ष से तथा उनकी मृत्यु के कारण शोक से युक्त विदुरजी उस स्थान से तीर्थों की सेवा करने के लिए चले जायेंगे ।।५९।।

इत्युक्त्वाथारुहत्स्वर्गं नारदः सहतुम्बुरुः । युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाऽजहाच्छुचः ।।५९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

अन्वयः— इत्युक्त्वा अथ तुम्बुरुः सह नारदः स्वर्गं अरुहत् तस्य वचः हृदि कृत्वा युधिष्ठिरः शुचः अजहात् ।।५९।।

अनुवाद— इस तरह से कहने के पश्चात् नारदजी तुम्बुरु के साथ स्वर्ग लोक में चले गये । उनकी वाणी को हृदय में रखकर युधिष्ठिर ने शोक का परित्याग कर दिया ।।५९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

शुचः शोकान् ।।५९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

मूल का शुचः पद शोक का बोधक है ।।५९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१३।।

चौदहवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में युधिष्ठिर की अनेक प्रकार की शङ्का

सूत उवाच

संप्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बन्धुदिदृक्षया। ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥१॥
व्यतीताः कतिचिन्मासास्तदा नायात्ततोऽर्जुनः। ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वहः ॥२॥

अन्वयः— बन्धु द्विदृक्षया पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य विचेष्टितम् च ज्ञातुम् जिष्णौ द्वारकायां प्रस्थिते कतिचित् मासाः व्यतीताः तदा अर्जुनः नायात् कुरुद्वहः घोररूपाणि निमित्तानि ददर्श ॥१-२॥

अनुवाद— अपने बान्धवों को देखने की इच्छा से तथा पवित्र यश वाले भगवान् श्रीकृष्ण की चेष्टओं तथा अभिप्राय को जानने के लिए अर्जुन के द्वारका गये हुए कुछ महीने बीत गये, किन्तु वहाँ से अर्जुन नहीं आये और इधर राजा युधिष्ठिर भयङ्कर शकुनों को देखते थें ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्दशे त्वरिष्टानि दृष्ट्वा राजा विशङ्कितः। अशृणोदर्जुनात्कृष्णतिरोधानमितीर्यते। कृष्णस्य चेति चकारेणाभिप्रायं च ज्ञातुम्। कतिचित्सप्त। तदा कालातिक्रमेऽपि ततो द्वारकातो नायात् नागतः। निमित्तान्युत्पातान्। कुरूद्वहो युधिष्ठिरः ॥१-२॥

भाव प्रकाशिका

चौदहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि अपशकुनों को देखकर राजा अनेक प्रकार की शङ्का करने लगे थे। उसके पश्चात् उन्होंने अर्जुन के मुख से भगवान् श्रीकृष्ण के स्वधाम गमन की बात को सुना।

कृष्णस्य च के चकार के द्वारा अभिप्राय को ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् अर्जुन अपने बान्धवों को देखने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण की चेष्टाओं और अभिप्राय को जानने के लिए द्वारका गये थे। उनके द्वारका गये हुए सात महीने बीत गये थे किन्तु अर्जुन वहाँ से नहीं लौटे और इधर राजा युधिष्ठिर अनेक प्रकार के अपशङ्कुनों को देख रहे थे ॥१-२॥

कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिणः। पापीयसीं नृणां वार्तां क्रोधलोभानृतात्मनाम् ॥३॥
जिह्मप्रायं व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदम्। पितृमातृसुहृद्भ्रातृदम्पतीनां च कल्कनम् ॥४॥
(कन्याविक्रयिणं तातं सुतं पित्रोरपोषकम्। ब्राह्मणान्वेदविमुखान् शूद्रान्वै ब्रह्मवादिनः) ॥
निमित्तान्यत्यरिष्टानि काले त्वनुगते नृणाम्। लोभाद्यधर्म प्रकृतिं दृष्ट्वोवाचानुजं नृपः ॥५॥

अन्वयः— विपर्यस्र्तुधर्मिणः कालस्य रौद्रां गतिं, क्रोध लोभानृतात्मनाम् नृणां पापीयसीं वार्ताम्, जिह्मप्रायं व्यवहृतम् शाठ्यमिश्रं च सौहृदम्, पितृ-मातृ-सुहृद-भ्रातृ-दम्पतीनां च कल्कनम्, कन्याविक्रयिणं तातम्, पित्रोः अपोषकम्, सुतम्, वेदविमुखान्, ब्राह्मणान् ब्रह्मवादिनः वै शूद्रान्, अत्यरिष्टानि निमित्तानि काले अनुगते तु नृणाम् लोभाद्य धर्म प्रकृतिं दृष्ट्वा नृपः अनुजं उवाच ॥३-५॥

अनुवाद— जिसमें ऋतुओं के धर्म उलटा हो गये हैं ऐसे काल की भयङ्कर गति को, क्रोध, लोभ तथा मिथ्या भाषण करने वाले मनुष्यों की पापमयी जीविका को, कपटयुक्त व्यवहार को, ठगी युक्त मित्रता को, पिता, माता, भाई, मित्र, भाई तथा मित्रता को, पिता, माता, मित्र भाई तथा पति-पत्नी में होने वाल कलह आदि को, कन्या बेंचने वाले पिता को, माता-पिता का पोषण नहीं करने वाले पुत्र को, वेदाध्ययन पराङ्मुख ब्राह्मणों को, ब्रह्मवादी शूद्रों को, अत्यन्त अशुभ शकुनों को तथा काल का अनुसरण करने वाले मनुष्यों की लोभ आदि अधर्म से युक्त प्रकृति को देखकर राजा युधिष्ठिर ने अपने छोटे भाई भीम से कहा ॥३-५॥

भावार्थ दीपिका

रौद्रां घोराम् । तदेवाह । विपर्यस्ता ऋतुधर्मा यस्मिंस्तस्य । वार्तां जीविकाम् । क्रोधलोभानृतैर्युक्त आत्मा येषाम् । जिह्मप्रायं कपटबहुलम् । व्यहृतं व्यवहारम् । शाठ्यं वञ्चनं सौहृदं सख्यम् । पित्रादीनां स्वप्रतियोगिभिः कल्कनं कलहादि । अत्यरिष्टान्यत्यन्तमशुभानि दृष्ट्वा । नृणां लोभाद्यधर्मप्रकृतिं च दृष्ट्वा । अनुजं भीमम् ।।३-५।।'

भाव प्रकाशिका

अर्जुन के द्वारका गये हुए बहुत दिन बीत गये थे, इधर महाराज युधिष्ठिर को अनेक प्रकार के अपशकुन दिखाई देने लग गये थे, अतएव वे चिन्तित से हो गये और अपने भाई भीम के आगे अधो वर्णित बातें कहने लगे । उस समय काल की गति भयङ्कर हो गयी थी जिस ऋतु में जो होना चाहिए उसके उलटा ही हो रहा था, लोग कपटमय व्यवहार करने लग गये थे, एक मित्र भी दूसरे मित्र को ठगता था । माता-पिता, भाई तथा पति-पत्नी आपस में कलह करने लगे थे । पिता, कन्या बेचने का काम करता था, पुत्र वृद्ध माता-पिता को त्याग देता था । ब्राह्मण वेद नहीं पढ़ते थे और शूद्र ब्रह्मज्ञान की बातें करते थे । इस तरह अत्यन्त अशुभ शकुन होते थे । काल के प्रभाव के कारण लोगों की प्रकृति लोभ आदि अधर्मो से युक्त हो गयी थी । इन्हीं सारी बातों को देखकर युधिष्ठिर चिन्तित हो रहे थे ।।३-५।।

युधिष्ठिर उवाच

संप्रेषितो द्वारकायां जिष्णुर्बन्धुदिदृक्षया । ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम्।।६।।
गताः सप्ताधुना मासा भीमसेन तवानुजः । नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमञ्जसा ।।७।।

अन्वयः— भीमसेन, तवानुजः जिष्णुः बन्धुदिदृक्षया पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ज्ञातुं द्वारकायां प्रेषितः अधुना सप्त मासाः गताः कस्य वा हेतोः नायाति अञ्जसा अहम् इदम् न वेद ।।६-७।।

युधिष्ठिर ने कहा

अनुवाद— भीमसेन तुम्हारे छोटे भाई अर्जुन को बान्धवों को देखने के लिए तथा पवित्र यश वाले भगवान् श्रीकृष्ण की चेष्टाओं को जानने के लिए मैंने द्वारका भेजा । अर्जुन के गये हुए सात महीने बीत गये और अभी तक अर्जुन नहीं आये । उनके नहीं आने का कारण क्या है, इस बात को मैं समझ नहीं पा रहा हूँ ।।६-७।।

भावार्थ दीपिका— वेति वितर्के कस्माद्धेतोर्नायातीत्यहं न वेद्मि ।।६-७।।

भाव प्रकाशिका— सातवें श्लोक का वा शब्द वितर्क के अर्थ में प्रयुक्त है । युधिष्ठिर ने कहा कि अर्जुन क्यों नहीं आ रहा है ? इस बात का मुझे पता नहीं चलता है ।।६-७।।

अपि देवर्षिणा दिष्टः स कालोऽयमुपस्थितः । यदात्मनोऽङ्गमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति ।।८।।

अन्वयः— अपि देवर्षिणा दिष्टः अयं सः कालः उपस्थितः यदा भगवान् आत्मनः आक्रीडम् अङ्गम् उत्सिसृक्षति ?।।८।।

अनुवाद— देवर्षि नारद के द्वारा उपदिष्ट वह काल आ गया है क्या ? जिस काल में श्रीभगवान् क्रीडा के साधन भूत अपने लीला विग्रह का परित्याग करना चाहते हैं ?।।८।।

भावार्थ दीपिका

अपि किम् । यदा आत्मन आक्रीडं क्रीडासाधनमङ्गं मनुष्यनाट्यमुत्स्रष्टुमिच्छति स कालः प्राप्तः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

अपि शब्द का अर्थ क्या है ? युधिष्ठिर भीम से पूछते है कि यह वही काल आ गया है क्या ? जिस समय श्रीभगवान् मनुष्य नाट्य के साधनभूत अपने लीलाविग्रह (शरीर) का त्याग करना चाहते हैं ?।।८।।

यस्मान्नः संपदो राज्यं दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः ।
आसन्सपत्नविजयो लोकाश्च यदनुग्रहात् ॥९॥

अन्वयः— यस्मात् नः संपदः, राज्यं, दाराः, प्राणाः, कुलं, प्रजाः, यदनुग्रहात् सपत्नविजयः, लोकाश्च आसन् ॥९॥

अनुवाद— उन्हीं श्रीभगवान् से हमलोगों को सम्पत्ति, राज्य, पत्नियाँ, प्राण, वंश और प्रजाएँ प्राप्त हुयीं तथा उनकी कृपा से ही हमलोगों को शत्रुओं पर विजय प्राप्त हुयी एवं हमारा लोकों पर अधिकार प्राप्त हुआ ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अस्माकं सर्वपुरुषार्थत्वे हेतुः श्रीकृष्णोऽतस्तद्वियोगं विनाऽनिष्टं न स्यादित्याशयेनाह । यस्मात् श्रीकृष्णाद्धेतोः । एतच्चोपरिष्टादर्जुनः स्पष्टीकरिष्यति । लोकाश्च यज्ञकरणानुरूपा यस्यानुग्रहात् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

हमलोगों के समस्त पुरुषार्थो की प्राप्ति के एक मात्र साधन भगवान् श्रीकृष्ण हैं अतएव उनके वियोग के बिना हमलोगों के अनिष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती है । भगवान् श्रीकृष्ण ने ही हमलोगों को सम्पत्ति तथा राज्य आदि को प्राप्त कराया है । इन सारी बातों को अर्जुन स्पष्ट करेंगे । हमलोगों ने जैसा यज्ञ किया है हमलोगों ने उसके अनुकूल ही लोकों की प्राप्ति हुयी हैं ॥९॥

पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्यान्भौमान्सदैहिकान् । दारुणान् शंसतोऽदूराद्भयं नो बुद्धिमोहनम् ॥१०॥

अन्वयः— हे नरव्याघ्र नः बुद्धि मोहनम् अदूराद भयं शंसतः दारुणान् दिव्यान्, भौमान् सदैहिकान् उत्पातान् पश्य ॥१०॥

अनुवाद— हे मनुष्यों में महाबलवान् हमलोगों की बुद्धि को मोहित करने वाले सन्निकट भविष्य में सम्भव भय को सूचित करने वाले भयङ्कर आकाश से होने वाले उल्कापात इत्यादि, भूमि से होने वाले भूकम्प इत्यादि और शरीर में होने वाले रोग इत्यादि उत्पातों को देखो ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अदूरात्संनिहितम् । नोऽस्माकम् । आशंसत उत्पातान् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

ये जो दिव्य, भौम तथा शारीरिक उत्पात होते हैं उन सबों से तात होता है कि निकट भविश्य में कोई भयङ्कर भय हमलोगों के समक्ष उपस्थित होने वाला है ॥१०॥

ऊर्वक्षिबाहवो मह्यं स्फुरन्त्यङ्ग पुनः पुनः । वेपथुश्चापि हृदय आराद्दास्यन्ति विप्रियम् ॥११॥

अन्वयः— हे अङ्ग मह्यम् ऊर्वक्षिबाहवः पुनः पुनः स्फुरन्ति । हृदये वेपयुश्च अरात् विप्रियं दास्यन्ति ॥११॥

अनुवाद— हे अङ्ग ! मेरी जङ्घायें, नेत्र तथा भुजाएँ बार-बार फड़क रहे है । मेरे हृदय में कँप हो रहा है उससे लगता है कि सन्निकट भविष्य में मेरा कोई अनिष्ट होने वाला है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

दैहिकानाह- ऊर्विति । ऊर्वादयो वामाः स्फुरन्ति । वेपथुः कम्पश्च हृदये वर्तते । एते मह्यमारात्सन्निहितं विप्रियं दास्यन्ति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

शारीरिक उत्पातों को बतलाते हुए युधिष्ठिर कहते है ऊर्वक्षि बाहवः इत्यादि उन्होंने बतलाया है कि मेरी जङ्घायें, नेत्र और भुजाएँ बार-बार फड़क रही है तथा रह-रहकर हृदय काँपने लगता है इससे सूचित हो

रहा है कि सन्निकट भविष्य में हमलोगों पर कोई भयङ्कर विपत्ति आने वाली हैं । **आरात्** शब्द सन्निकटस्थ का बोधक है ।।११।।

शिवैषोद्यन्तमादित्यमभिरौत्यनलानना । मामङ्ग सारमेयोऽयमभिरौति ह्यभीरुवत् ।।१२।।

अन्वयः— एषा अनलानना, शिवा उद्यन्तम् आदित्यम् अभिरौति, हे अङ्ग ! अयम् सारमेयः माम् अभीरुवत् अभिरौप्ति।।१२।।

अनुवाद— जिसके मुख से आग निकल रही है, ऐसी यह स्यारिन न उगते हुए सूर्य की ओर मुख करके रो रही है । हे भाई ! यह कुत्ता मेरी ही ओर मुख करके निडर होकर चिल्ला रहा है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

भौमानाह सार्धैस्त्रिभिः । शिवा क्रोष्ट्री उद्यन्तं आदित्यभिरौत्युद्यत्सूर्याभिमुखं क्रोशति । अनलानना अग्निं मुखेन वमन्ती। अङ्ग हे भीम । मामभिलक्ष्य सारमेयः श्वाऽभिरौति प्लुतं भषति । अभीरुवन्नि शङ्कम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

इन साढ़े तीन श्लोकों में महाराज युधिष्ठिर पृथिवी पर होने वाले उत्पातों को बतलाते हैं— स्यारिन का रोना अत्यन्त अमङ्गलमय होता है, उसमें भी सूर्योदय के समय में जिसके मुख से आग निकल रही हो ऐसी स्यारिन का सूर्य की ओर मुख करके रोना तो महाअमङ्गलमय होता है । किन्तु यह अग्नि को उगलती हुयी स्यारिन् सूर्य की ओर मुख करके रोती है यह कुत्ता भी मेरी ओर मुख करके निडर होकर रो रहा है । यह भी अमङ्गल का सूचक हैं ।।१२।।

शस्ताः कुर्वन्ति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे । वाहांश्च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदतो मम ।।१३।।

अन्वयः— शस्ताः मां सव्यं कुर्वन्ति अपरे पशवः दक्षिणम् हे पुरुषव्याघ्र मम वाहांश्च रुदतः लक्षये ।।१३।।

अनुवाद— हे पुरुषों में श्रेष्ठ ! गौ आदि पशु मुझको बायीं ओर करके जाते हैं और दूसरे बूरे पशु मुझे दाहिनी ओर करके जाते हैं । मैं देखता हूँ कि मेरे घोड़े आदि वाहन रो रहे हैं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

शस्ता गवादयो मां सव्यं वामं कुर्वन्ति अपरे गर्दभाद्याः प्रदक्षिणं कुर्वन्ति । वाहानश्वान् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

ये गौ आदि मङ्गलमय पशु मुझको बायीं ओर करके जाते है और गधे इत्यादि बुरे पशु मुझको दाहिनी ओर करके जाते हैं, यह दोनों ही अपशकुन है बाहनों का रोना भी अमङ्गलमय ही माना जाता है ।।१३।।

मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कम्पयन्मनः । प्रत्युलूकश्च कुह्वानैरनिद्रो शून्यमिच्छतः ।।१४।।

अन्वयः— अयम् कपोतः मृत्युदूतः मनः कम्पयन् उलूकः पत्युलूकश्च अनिद्रौ कुह्वानैः शून्यम् इच्छतः ।।१४।।

अनुवाद— यह कबूत्तर मृत्यु का दूत है । मन को कँपा देने वाला उल्लू और उसका विरोधी कौआ ये दोनों रात को नहीं सोकर कठोर वाणी को बोलते हैं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

अयं कपोतो मृत्युदूतो मृत्युसूचकः । उलूको घूकः । प्रत्युलूकस्तत्प्रतिपक्षो घूकः काको वा । कुह्वानै कुत्सितशब्दैर्विश्वं शून्यं कर्तुमिच्छतः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

यह कबूतर तो मृत्यु की सूचना दे रहा है । उल्लू और उसके विरोधी कौआ ये दोनों ही रात्रि को नहीं सोते हैं । कठोर वाणी बोलते रहते हैं । इससे भी मेरा मन काँपता है, क्योंकि ये सबके सब अपशकुन हैं ।।१४।।

धूम्रा दिशः परिधयः कम्पते भूः सहाद्रिभिः । निर्घातश्च महानासीत्साकं च स्तनयित्नुभिः ।।१५।।

अन्वयः— धूम्रा दिशः परिधयः अद्रिभिः सह भूः कम्पते । स्तनयित्नुभिः साकं महान् निर्घातश्च आसीत् ।।१५।।

अनुवाद— दिशायें धुंधली हो गयी हैं, सूर्य और चन्द्रमा के चारो ओर बार-बार मेडर बैठता है । पर्वतों के साथ पृथिवी काँपती है । बिना मेघ के ही बिजली गिरती है और जोर से गर्जना भी होती है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

धूम्रा धूसरा दिशः परिधयोऽग्निमिव लोकमावृण्वन्ति । दिव्यानाह सार्धाभ्याम् । निर्घातो निरभ्रवज्रपातः । स्तनयित्नवोऽत्र गर्जितानि तैः सह ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के पूर्वार्द्ध में भौम उत्पातों का वर्णन है तथा उत्तरार्द्ध में दिव्य उत्पातों का वर्णन है । दिशाओं का धूसर होना, पर्वतो तथा पृथिवी का काँपना ये सब पार्थिव उत्पात हैं । सूर्य चन्द्रमा के चारो ओर बार-बार मेंडर का बैठना भी अमङ्गल है । आकाश में बिना मेघ के बिजली का चमकना और गर्जना भी अमङ्गल है । ये सभी हो रहे हैं ।।१५।।

वायुर्वाति खरस्पर्शो रजसा विसृजंस्तमः । असृग्वर्षन्ति जलदा बीभत्समिव सर्वतः ।।१६।।

अन्वयः— रजसा तमः विसृजन् खर स्पर्शः वायुः वाति जलदा सर्वतः बीभत्सम् इव असृक् वर्षन्ति ।।१६।।

अनुवाद— धूलि से अन्धकार बनाने वाली रुक्ष वायु चल रही है और चारो ओर मेघ डरावना दृश्य उपस्थित करके रक्त की वर्षा करते हैं ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

तमो विशेषेण सृजन् । असृग्रक्तम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

दिव्य उत्पातों का ही वर्णन करते हुए महाराज युधिष्ठिर कहते हैं कि धूल भरी आँधी चल रही है, इससे अन्धकार हो जाता है मेघ से रक्त की वर्षा होती है जो कि भयावह दृश्य है ।।१६।।

सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथो दिवि । ससंकुलैर्भूतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ।।१७।।

अन्वयः— हतप्रभं सूर्यं पश्य दिवि मिथः ग्रहमर्दं भवति, ससंकुलैः भूतगणैः रोदसी ज्वलिते इव ।।१७।।

अनुवाद— देखो सूर्य का प्रकाश मन्द हो गया है, आकाश में परस्पर में ग्रह एक दूसरे से टकरा जा रहे हैं । शङ्करजी के गण भूतों से भरी भीड़ में पृथिवी आकाश में जैसे आग लगी हो ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

ग्रहाणां मर्दं युद्धम् । भूता रुद्रानुचरास्तेषां गणैः सङ्कुलैर्व्यामिश्रैः प्राणिभिः सहितैः । रोदसी द्यावापृथिव्यौ ज्वलिते प्रदीप्ते इव च पश्येति ।।१७।।

नद्योनदाश्च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च । न ज्वलत्यग्निराज्येन कालोऽयं किं विधास्यति ॥१८॥

अन्वयः— नद्यः नदाः क्षुभिताः सरांसि मनांसि (च क्षुभितानि) अग्निः आज्येन न ज्वलति अयं कालः किं विधास्यति इति न जाने ॥१८॥

अनुवाद— नदियाँ, नद, सरोवर और लोगों के मन क्षुब्ध हो गये हैं । अग्नि घी से नहीं जल रही है । यह काल न जाने क्या करने वाला है ?॥१८॥

भावार्थ दीपिका

पुनर्भौमानाह-नद्य इति सार्धैस्त्रिभिः । प्राणिनां मनांसि च ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

नद्य० इत्यादि साढ़े तीन श्लोकों से फिर भौतिक उत्पातों का वर्णन करते हैं । नदियाँ, नदों, सरोवरों और मन में क्षोभ उत्पन्न हो गया है । इस समय घी डालने पर अग्नि नहीं प्रज्वलित हो रही है । न जाने कौन सा अमङ्गल यह काल दिखलायेगा ?॥१८॥

न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यन्ति च मातरः । रुदन्त्यश्रुमुखा गावो न हृष्यन्त्यृषभा व्रजे ॥१९॥

अन्वयः— वत्साः न पिबन्ति, मातरः च न दुह्यन्ति, गावः अश्रुमुखाः रुदन्ति, ऋषभाः व्रजे न हृष्यन्ति ॥१९॥

अनुवाद— बछड़े अपनी माताओं का दूध नहीं पीते हैं, गौएँ दूहने नहीं देती हैं । गौओं की आँखों से आँसू निकल रही है और गोशालाओं में बैल उदास रहते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

दुह्यन्तीति कर्मकर्तर्यार्षम् । न प्रस्नुवन्तीत्यर्थः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

दुह्यन्ति यह कर्मकर्ता में यह आर्ष प्रयोग । बछड़ों का दूध न पीना गौओं का दूहने नहीं देना, गौओं की आँखों से आँसू निकलना और बैलों का उदास रहना ये सबके-सब अमङ्गल के सूचक हैं ॥१९॥

दैवतानि रुदन्तीव स्विद्यन्ति ह्युच्चलन्ति च । इमे जनपदा ग्रामाः पुरोद्यानाकराश्रमाः ॥
भ्रष्टश्रियो निरानन्दा किमघं दर्शयन्ति नः ॥२०॥

अन्वयः— दैवतानि रुदन्ति इव स्विद्यन्ति हि उच्चलन्ति च, इमे जनपदाः ग्रामः पुरोद्यानाकराश्रमाः भ्रष्टश्रियः निरानन्दाः नः किम् अघं दर्शयन्ति ?॥२०॥

अनुवाद— ये देवमूर्तियाँ जैसे रो रही हैं, इनसे पसीना निकलता हैं तथा ये हिलने लग जाती हैं । ये देश, ग्राम, नगर, उद्यान, खदान और आश्रम श्रीहीन हो गये हैं और आनन्द रहित हो गये हैं । न जाने ये हमारे किस दुःख की सूचना देती हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

दैवतानि प्रतिमाः । अघं दुःखम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

दैवत शब्द देव मूर्तियों का बोधक है और अघ शब्द दुःख का बोधक है । मूर्तियों का रोना, उनसे पसीना निकलना इत्यादि जो कुछ भी इस श्लोक में वर्णित है वह सबके सब भावी दुःख के सूचक हैं ॥२०॥

मन्य एतैर्महोत्पातैर्नूनं भगवतः पदैः । अनन्यपुरुषश्रीभिर्हीना भूर्हतसौभगा ॥२१॥

अन्वयः— एतैः महोत्पातैः मन्ये नूनं हतसौभगा भूः अनन्यपुरुषश्रीभिः भगवतः पदैः हीना ॥२१॥

अनुवाद— इन महा उत्पातों को देखकर मुझे तो लगता है कि जिसका सौभाग्य विनष्ट हो गया है ऐसी यह पृथिवी निश्चित रूप से दूसरे के चरणों में नहीं पाये जाने वाले वज्र, अङ्कुश आदि चिह्नों से चिह्नित श्रीभगवान् के चरण चिह्नों से रहित हो गयी है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

एतैर्महोत्पातैः कृत्वा । न विद्यतेऽन्येषु पुरुषेषु श्रीर्वज्राङ्कुशादिशोभा येषां तैर्भगवतः पदैर्हीना भूरित्यहं मन्ये ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

अनन्य पुरुषश्रीभिः का विग्रह है, **न विद्यते अन्येषु पुरुषेषु श्रीः वज्राङ्कुशादिशोभा येषां तैः** अर्थात् दूसरे पुरुषों के चरणों में नहीं पाये जाने वाली व्रज अङ्कुश आदि की शोभा से युक्त । श्रीभगवान् के चरण चिह्नों से यह हतभाग्य भूमि रहित हो गयी है ॥२१॥

इति चिन्तयतस्तस्य दृष्टारिष्टेन चेतसा । राज्ञः प्रत्यागमद्ब्रह्मन्यदुपुर्याः कपिध्वजः ॥२२॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! दृष्टारिष्टेन चेतसा तस्य राज्ञः इति चिन्तयतः यदुपुर्याः कपिध्वजः प्रत्यागात् ॥२२॥

अनुवाद— हे शौनकजी ! अपशकुनों के देखने के कारण इस तरह से जब राजा युधिष्ठिर चिन्तन कर ही रहे थे उसी समय द्वारका से अर्जुन आ गये ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तस्य राज्ञ इत्येवं दृष्टान्यरिष्टानि येन तेन चेतसा चिन्तयतः सतः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अपशकुनों को देखने के कारण राजा उपर्युक्त प्रकार से जब चिन्ता ही कर रहे थे उसी समय द्वारका से अर्जुन आ गये ॥२२॥

तं पादयोर्निपतितमयथापूर्वमातुरम् । अधोवदनमब्बिन्दून्मुञ्चन्तं नयनाब्जयोः ॥२३॥
विलोक्योद्विग्नहृदयो विच्छायमनुजं नृपः । पृच्छति स्म सुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितम् ॥२४॥

अन्वयः— पादयोः निपतितम् अयथापूर्वं आतुरम् अधोवदनम्, नयनाब्जयोः अब्बिन्दून मुञ्चतम्, विच्छायम्, अनुजम् विलोक्य नृपः नारदेरितम् संस्मरन् सुहृन्मध्ये पृच्छति स्म ॥२३-२४॥

अनुवाद— आते ही अर्जुन युधिष्ठिर के चरणों पर गिर पड़े । वे उस समय इतना आतुर थे कि जितना वे कभी भी पहले अतुर नहीं हुए थे, वे नीचे मुँह किए हुए थे तथा उनके कमलवत् नेत्रों से आँसू बह रहा था। उनका हृदय उद्विग्न था, वे शोभा विहीन लगते थे । इस प्रकार के अपने छोटे भाई अर्जुन को देखकर राजा युधिष्ठिर को नारदजी की कही हुयी बातें याद आ गयीं । उन सबों को स्मरण करते हुए वे अपने सुहृदों के बीच में ही अर्जुन से पूछे ॥२३-२४॥

भावार्थ दीपिका

अयथापूर्वं निपतितम् । तदेवाह- आतुरमित्यादि । अपां बिन्दनश्रूणि नेत्राभ्यां विसृजन्तमित्यर्थः । उद्विग्नं कम्पितं हृदयं यस्य सः । विच्छायं विगतकान्तिम् ॥२३-२४॥

भाव प्रकाशिका

अर्जुन आकर राजा युधिष्ठिर के चरणों पर उस तरह से गिर पड़े जिस तरह वे पहले कभी नहीं उनके चरणों पर गिरे थे । अर्जुन की आतुरता भी अभूतपूर्व थी । उनकी आँखों से आँसू निकल रहे थे । उनका हृदय काँप रहा था तथा उनकी कान्ति भी समाप्त हो गयी थी ॥२३-२४॥

युधिष्ठिर उवाच

कच्चिदानर्तपुर्यां नः स्वजनाः सुखमासते । मधुभोजदशार्हार्हाः सात्वतान्धकवृष्णयः ॥२५॥

अन्वयः— क्वचित् आनर्तुपुर्यां नः स्वजनाः मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, सात्त्वत, अन्धक तथा वृष्णय सुखमासते ?॥२५॥

अनुवाद— द्वारका पुरी में हमारे बान्धव, मधु भोज, दर्शाह, अर्ह सात्त्वत अन्धक तथा वृष्णिवंशी सुख पूर्वक हैं न ?॥२५॥

भावार्थ दीपिका

स्वजना बान्धवाः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

श्लोक का स्वजन शब्द बान्धवों का बोधक है । युधिष्ठिर ने बतलाया कि द्वारकापुरी में रहने वाले, मधुवंशी, भोजवंशी, दशार्हवंशी, अर्हवंशी, सात्त्वतवंशी, अन्धकवंशी तथा वृष्णिवंशी हमारे बान्धव हैं । वे सब कुशल पूर्वक हैं न ॥२५॥

शूरो मातामहः कच्चित्स्वस्त्यास्त वाथ मारिषः । मातुलः सानुजः कच्चित्कुशल्यानकदुन्दुभिः ॥२६॥

अन्वयः— मारिषः मातामहः शूरः कच्चित् स्वस्ति आस्ते ? कच्चित् सानुजः मातुलः आनकदुन्दुभिः कुशली आस्ते ?॥२६॥

अनुवाद— समादरणीय हमारे नाना शूरसेनजी प्रसन्न हैं न ? हमारे मामा वसुदेवजी अपने अनुज के साथ कुशल पूर्वक हैं न ? ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

कि वक्ष्यतीति शङ्कया व्यवहितक्रमेण पृच्छति- शूर इत्यादिना । मारिषो मान्यो मातामहः शूरो नाम यादवः कुन्त्याः पिता । आनकदुन्दुभिर्वसुदेवः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अर्जुन न जाने क्या उत्तर देंगे इस शङ्का से राजा युधिष्ठिर बिना किसी क्रम के ही उनसे **शूरइत्यादि** श्लोक से पूछ रहे हैं । समादरणीय शूरसेन जो यदुवंशी हैं वे कुन्ती के पिता हैं और युधिष्ठिर के नाना हैं । वसुदेवजी का एक नाम आनकदुन्दुभि है । वे युधिष्ठिर के मामा है उन दोनों के कुशल के विषय में युधिष्ठिर ने पूछा ॥२६॥

सप्त स्वसारस्तत्पत्न्यो मातुलान्यः सहात्मजाः । आसते सस्नुषाः क्षेमं देवकीप्रमुखाः स्वयम् ॥२७॥

अन्वयः— देवकीप्रमुखाः सप्तस्वसारः तत्पत्न्यः, मातुलान्यः सहात्मजाः सस्नुषाः स्वयं क्षमं आसते :॥२७॥

अनुवाद— देवकी आदि सात बहनें जो उनकी पत्नियाँ हैं और हमारी मातुलानियाँ हैं वे अपने पुत्रों तथा बहुओं के साथ कुशल पूर्वक हैं न?॥२७॥

भावार्थ दीपिका

स्वसारः परस्परम् । वसुदेवक्षेमेण तासामपि क्षेमं पृष्टमेव, तथापि पृथक् पृच्छति-स्वयमिति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

आपस में बहन लगने वाली देवकी इत्यादि जो उनकी सात पत्नियाँ हैं, वे सब भी सुखपूवक हैं न ? यद्यपि वसुदेवजी के कल्याण पूछने से ही उन सबों का कल्याण पूछ लिया गया फिर भी अलग से युधिष्ठिर ने उन सबों का कल्याण पूछा यह **स्वयम्** इस पद से पता चलता हैं ।।२७।।

कच्चिद्राजाहुको जीवत्यसत्पुत्रोऽस्य चानुजः । हृदीकः ससुतोऽक्रूरो जयन्तगदसारणाः ।।२८।।

अन्वयः— असत्पुत्रः अहुकः अस्य अनुजः । च जीवति कच्चित् हृदीकः ससुतः अक्रूरः जयन्तगदसारणाः ।।२८।।

अनुवाद— असत् पुत्र वाले आहुक (उग्रसेन) उनके छोटे भाई हृदीक, जयन्त, गद तथा सारण और अपने पुत्रों के साथ अक्रूरजी जीवित हैं न ?।।२८।।

भावार्थ दीपिका

आहुक उग्रसेनः । असन् पुत्रो यस्य । अतएव जीवमात्रमेव पृष्टम् । अनुजश्च देवकः । हृदीकः सुतः कृतवर्मा । जयन्तादयः कृष्णभ्रातरः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

जिनका पुत्र कंस दुष्ट था वे आहुक (उग्रसेन) जीवित हैं न ? उग्रसेन के जीवन के ही विषय में पूछा गया है। उनके छोटे भाई देवक कृतवर्मा, ये सभी तथा कृष्ण के भाई जयन्त गद और सारण कुशल से हैं न ?।।२८।।

आसते कुशलं कच्चिद्ये च शत्रुजिदादयः । कच्चिदास्ते सुखं रामो भगवान्सात्वतां प्रभुः ।।२९।।

अन्वयः— ये कच्चित् शत्रुजिदादयः कुशलं आसते ? कच्चित् सात्त्वतां प्रभुः रामः सुखं आस्ते ।

अनुवाद— जो शत्रुजित् इत्यादि हैं वे सभी कुशल पूर्वक हैं न ? सात्त्वत् वंशियों के स्वामी बलरामजी सुख पूर्वक हैं न ?।।२९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२९।।

भाव प्रकाशिका— यहाँ पर बलरामजी को ही राम कहा गया है ।।२९।।

प्रद्युम्नः सर्ववृष्णीनां सुखमास्ते महारथः । गम्भीररयोऽनिरुद्धो वर्धते भगवानुत ।।३०।।

अन्वयः— वृष्णीनां महारथः प्रद्युम्नः सुखम् आस्ते ? उत गम्भीररयः भगवान अनिरुद्धः वर्धते ।।३०।।

अनुवाद— वृष्णिवंशियों में महारथी प्रद्युम्नजी सुख पूर्वक तो हैं ? अथवा युद्ध करने में महावेग सम्पन्न भगवान् अनिरुद्ध समृद्धि सम्पन्न हैं न ?।।३०।।

भावार्थ दीपिका

सर्ववृष्णीनां मध्ये महारथः । गम्भीररयो युद्धे महावेगः वर्धते मोदत इत्यर्थः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

सभी यदुवंशियों में महारथी प्रद्युम्नजी है, और युद्ध करने में अत्यधिक वेग सम्पन्न अनिरुद्ध जी हैं । ये लोग तो कुशल से हैं न ।।३०।।

सुषेणश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः । अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः सपुत्रा ऋषभादयः ।।३१।।

अन्वयः— सुषेणः चारुदेष्णः जाम्बवती सुतः साम्बः अन्ये कार्ष्णिप्रवराः ऋषभादयः स पुत्राः कुशलाः सन्ति न ?।।३१।।

अनुवाद— सुषेण, चारुदेष्ण, जाम्बवती के पुत्र साम्ब तथा दूसरे भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र ऋषभ इत्यादि अपने पुत्रों के साथ सकुशल हैं न ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

कृष्णस्यापत्यानि कार्ष्णयस्तेषु प्रवराः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

कृष्णस्य अपत्यानि तेषां प्रवराः यह कार्ष्णिप्रवराः पद का विग्रह है । इसका अर्थ है कि भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्रों में श्रेष्ठ ऋषभ इत्यादि अपने पुत्रों के साथ सकुशल हैं न ?।।३१।।

तथैवानुचराः शौरेः श्रुतदेवोद्धवादयः । सुनन्दनन्दशीर्षण्या ये चान्ये सात्वतर्षभाः ।।३२।।
अपि स्वस्त्यासते सर्वे रामकृष्णभुजाश्रयाः । अपि स्मरन्ति कुशलमस्माकं बद्धसौहृदाः ।।३३।।

अन्वयः— तथैव शौरेः श्रुतदेवोद्धवादयः अनुचरा ये च सुनन्दनन्दशीर्षण्याः अन्ये सात्वतर्षभाः रामकृष्णभुजाश्रयाः अपि स्वस्ति आसते । बद्धसौहृदाः अस्माकं कुशलं अपि स्मरन्ति ।।३२-३३।।

अनुवाद— तथा भगवान् श्रीकृष्ण के श्रुतदेव उद्धव इत्यादि जो अनुचर हैं, जिनमें सुनन्द और नन्द प्रमुख हैं ऐसे यदुवंशियों में श्रेष्ठ पुरुष हैं जो भगवान् राम कृष्ण की भुजाओं की छत्र-छाया में रहने वाले हैं वे सभी कुशल पूर्वक हैं न ? क्या सुदृढ सौहार्द सम्पन्न वे हमलोगों की कुशलता का स्मरण भी करते हैं ।।३२-३३।।

भावार्थ दीपिका

सुनन्दनन्दौ शीर्षण्यौ मुख्यौ येषां ते ।।३२-३३।।

भाव प्रकाशिका

इन दोनों श्लोकों में राजा युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण के अनुचरों तथा भगवान् श्रीकृष्ण की भुजाओं की छत्र-छाया में रहने वाले यदुवंशियों के विषय में अर्जुन से पूछा है । उन्होंने यह भी पूछा है कि क्या वे लोग हमलोगों का भी कभी स्मरण करते हैं ?।।३२-३३।।

भगवानपि गोविन्दो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः । कच्चित्पुरे सुधर्मायां सुखमास्ते सुहृद्वृतः ।।३४।।

अन्वयः— ब्रह्मण्यः भक्तवत्सलः भगवान् गोविन्दः अपि पुरे सुधर्मायां सुहृद्वृतः कच्चित सुखम् आस्ते ।।३४।।

अनुवाद— ब्राह्मणभक्त भक्तवत्सल भगवान् गोविन्द भी अपनी नगरी द्वारका की सुधर्मा सभा में अपने सुहृदों के साथ सुखपूर्वक हैं क्या ?।।३४।।

भावार्थ दीपिका

भगवति सुखमास्त इति प्रश्नस्यानौचित्यमाशङ्क्याह- पुर इत्यादि ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् के विषय में वे सुख पूर्वक हैं न ? इस तरह से किए जाने वाले प्रश्न को अनुचित समझकर राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि अपनी नगरी की सुधर्मा सभा में वे सुखपूर्वक हैं न ?।।३४।।

मङ्गलाय च लोकानां क्षेमाय च भवाय च । आस्ते यदुकुलाम्भोधावाद्योऽनन्तसखः पुमान्।।३५।।
यद्बाहुदण्डगुप्तायां स्वपुर्यां यदवोऽर्चिताः । क्रीडन्ति परमानन्द महापौरुषिका इव ।।३६।।

अन्वयः— लोकानाम् मङ्गलय क्षेमायच भवायच अनन्तसखः आद्यः पुमान् यदुकुलाम्भोधौ आस्ते । यद्बाहुदण्डगुप्तायां स्वपूर्याम् महापौरुषिका इव अर्चिताः यादवाः परमानन्दं कीडन्ति ।।३५-३६।।

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् का मङ्गल करने के लिए, पालन करने के लिए, तथा उद्भव करने के लिए बलरामजी के साथ आदि पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण यदुवंश रूपी क्षीरार्णव में निवास कर रहे हैं न। उनके ही बाहुबल से संरक्षित द्वारकापुरी में सबों से पूजित यदुवंशी, महापुरुष भगवान् विष्णु के पार्षदों के समान परमानन्द को प्राप्त करके क्रीडा करते हैं ॥३५-३६॥

भावार्थ दीपिका

भगवतोऽत्रावस्थाने हि लोकानां मङ्गलं नान्यथेत्याशयेनाह चतुर्भिः । मङ्गलाय शुभाय । क्षेमाय लब्धपालनाय । भवायोद्भवाय । अनन्तसखो बलभद्रसहायः । अर्चिताः सर्वैः पूजिताः । परमानन्दं यथा भवति तथा । महापुरुषो विष्णुस्तदीया महापौरुषिका वैकुण्ठनाथानुचरा इव ॥३५-३६॥

भाव प्रकाशिका

जब तक भगवान् इस लोक में हैं तब तक ही जगत् का मङ्गल हो रहा है, अन्यथा नहीं हो सकता है, इसी अभिप्राय से वे चार श्लोकों को कहते है । **मङ्गलाय** का अर्थ मङ्गल के लिए है । लब्ध वस्तु का पालन करने के क्षेम कहते है । उद्भव (उत्पत्ति) को ही भव कहते हैं । अनन्त सखः का अर्थ है बलभद्रजी के साथ । अर्चिताः का अर्थ है सबों से पूजित । परमानन्द का अर्थ है महानन्द सम्पन्न । महापुरुष भगवान् विष्णु हैं उनके पार्षदों को महापौरुषिक कहते हैं । शेष अर्थ अनुवाद के ही समान है ॥३५-३६॥

यत्पादशुश्रूषणमुख्य कर्मणा सत्यादयो द्व्यष्टसहस्रयोषितः ।
निर्जित्य संख्ये त्रिदशांस्तदाशिषो हरन्ति वज्रायुधवल्लभोचिताः ॥३७॥

अन्वयः— यत्पादशुश्रूषणमुख्य कर्मणा सत्यादयः द्वयष्टसहस्रयोषितः संख्ये त्रिदशान् निर्जित्य वज्रायुधवल्लभोचिताः तदाशिषः हरन्ति ॥३७॥

अनुवाद— उन श्रीभगवान् के चरणों की सेवा रूपी मुख्य कर्म के द्वारा ही सत्यभामा इत्यादि सोलह हजार श्रीभगवान् की पत्नियाँ युद्ध में इन्द्रादि देवताओं को परास्त करके इन्द्रकी पत्नी शची के ही उपभोग के योग्य तथा उनके अभीष्ट देवभोग योग्य पारिजात आदि का उपभोग करती हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

यस्य पादशुश्रूषणमेव मुख्यं तपआदिभ्यः श्रेष्ठं यत्कर्म तेन । सत्यभामादयः संख्ये युद्धे श्रीकृष्णबलेन त्रिदशान्देवान्निर्जित्य। तदाशिषो देवभोग्यान्पारिजातादीन् । वज्रायुधस्य बल्लभा शची तस्य उचिताः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के चरणों की सेवा तपस्या आदि कर्मो से श्रेष्ठ है । उसी के द्वारा सत्यभामा आदि रानियाँ, युद्ध में भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा देवताओं को परास्त करके देवताओं के ही द्वारा उपयोग किए जाने योग्य पारिजात इत्यादि जो इद्राणी के उपयोग के योग्य हैं, उनका उपभोग करती हैं ॥३७॥

यद्बाहुदण्डाभ्युदयानुजीविना यदुप्रवीरा ह्यकुतोभया मुहूः ।
अधिक्रमन्त्यङ्घ्रिभिराहृतां बलात्सभां सुधर्मां सुरसत्तमोचिताम् ॥३८॥

अन्वयः— यद्बाहुदण्डाभ्युदयानुजीविनः अकुतोभया हि यदुप्रवीराः, बलात् आहृताम् सुरसत्तमोचिताम् सुधर्मां अंघ्रिभिःमुहुः अधिक्रामन्ति ॥३८॥

अनुवाद— जिन भगवान् श्रीकृष्ण की भुजाओं के प्रभाव को अपना उपजीव्य बनाने वाले निर्भय यदुवंशी वीर बलपूर्वक जीतकर लयी गयी श्रेष्ठ देवताओं के लिए उचित सुधर्मा सभा में अपने पैरों को रख कर चलते हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

यद्बाहुदण्डप्रभावोपजीविनः सुधर्मामङ्घ्रिभिरधिक्रामन्ति स गोविन्दः सुखमास्ते इति गतपञ्चमश्लोकेनान्वयः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

जिन भगवान् श्रीकृष्ण की भुजाओं के प्रभाव को अपना उपजीव्य बनाने वाले निर्भय यदुवंशी वीर देवताओं के लिए उचित सुधर्मा सभा को अपने पैरों से आक्रान्त करते हैं वे भगवान् गोविन्द सुख पूर्वक हैं न । इस तरह इसका सम्बन्ध पीछे के पाञ्चवें श्लोक से है ।।३८।।

कच्चित्तेऽनामयं तात भ्रष्टतेजा विभासि मे । अलब्धमानोऽवज्ञातः किं वा तात चिरोषितः ।।३९।।

अन्वयः— तात कच्चित् ते अनामयम् मे भ्रष्टतेजा विभासि । तात चिरोषितः अलब्धमानः किं वा अवज्ञातः ।।३९।।

अनुवाद— हे भाई यह बतलाओ तुम स्वयम् कुशल पूर्वक हो न मुझे तो तुम तेजोहीन से प्रतीत हो रहे हो । वहाँ बहुत दिन तक रहने के कारण तुम्हारा कोई सम्मान नहीं किया क्या ? अथवा किसी ने तुम्हारा अपमान किया है ?।।३९।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं तस्यैव कुशलं पृच्छति । कच्चिदिति षड्भि; । अनामयमारोग्यम् । न लब्धो येन बन्धुभ्यः सकाशात् । किंवा तैः प्रत्युतावज्ञातस्तिरस्कृतः । यतश्चिरोषितो बहुकालं तत्र स्थितः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

इस समय राजा युधिष्ठिर अर्जुन का ही कुशल **कच्चित्० इत्यादि** छह श्लोकों से पूछ रहे हैं । अनामय आरोग्य को कहते हैं । **अलब्धमानः** का विग्रह है । न लब्धो मानो येन बन्धुभ्यः सकाशात् । अर्थात् जिसका बान्धवों ने सम्मान नहीं किया है । अवज्ञात अर्थात् तिरस्कृत अर्थात् द्वारका में बहुत दिनों तक रहने के कारण किसी ने तुम्हारा सम्मान नहीं किया है क्या ? या किसी ने तुम्हारा तिरस्कार किया है ?।।३९।।

कच्चिन्नाभिहतोऽभावैः शब्दादिभिरमङ्गलैः । न दत्तमुक्तमर्थिभ्य आशया यत्प्रतिश्रुतम् ।।४०।।

अन्वयः— कच्चित् अभावैः अमङ्गलै शब्दादिभिः अभिहतः, अर्थिभ्यः आशया यत् प्रतिश्रुतम् उक्तम् न दतम्।।४०।।

अनुवाद— किसी ने प्रेम शून्य अमङ्गल मय शब्दों आदि के द्वारा तुमको दु:खी बनाया है क्या, अथवा किसी याचक से याचना करने पर देने की प्रतिज्ञा करके उसको वह वस्तु नहीं दे सके हो ?।।४०।।

भावार्थ दीपिका

अभावैरिति छेदः । प्रेमशून्यैः । अमङ्गलैः परुषैः शब्दादिभिर्नाभिहतो न ताडितोऽसि किम् । यद्वा अर्थिभ्यः किमपि दास्यामीति नोक्तं किम् । यद्वा आशया सह यथा आशा भवति तथा दास्यामीति प्रतिश्रुतं यत्तन्न दत्तं किम् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

हतो भावैः में अभावैः यह पदच्छेद करना चाहिए । अभावैः का अर्थ है प्रेम शून्य । अमङ्गल अर्थात् कठोर शब्दों के द्वारा तुम दु:खी तो नहीं बनाये गये हो न ? अथवा याचकों को तुमने कहा है कि नहीं दूँगा । अथवा मैं दूगा इस तरह से प्रतिज्ञा करके पुनः आशा युक्त होने पर उसे नहीं दे पाये क्या ?।।४०।।

कच्चित्त्वं ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियम् । शरणोपसृतं सत्त्वं नात्याक्षीः शरणप्रदः ।।४१।।

अन्वयः— शरणप्रदः त्वं कच्चित् ब्राह्मणं, बालं, गाम्, वृद्धम् रोगिणम् स्त्रियं शरणोपसृतं सत्त्वं न अत्याक्षीः ।।४१।।

अनुवाद— तुम शरणागत रक्षक हो किन्तु तुमने किसी शरणागत ब्राह्मण, बालक, गौ, वृद्ध, रोगी, स्त्री अथवा किसी दूसरे प्राणी का परित्याग तो नहीं कर दिए हो ?।।४१।।

भावार्थ दीपिका

अन्यद्वा शरणागतं सत्त्वं प्राणिमात्रं न त्यक्तवानसि किम् । यतस्त्वं पूर्वं शरणप्रद आश्रयप्रदः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि पहले तो तुम शरणागत रक्षक थे, किन्तु किसी शरणागत प्राणी का तुमने परित्याग कर दिया है क्या ? जिसके कारण निस्तेज प्रतीत होते हो ?।।४१।।

कच्चित्त्वं नागमोऽगम्यां गम्यां वाऽसत्कृतां स्त्रियम् । पराजितो वाथ भवान्नोत्तमैर्नासमैः पथि।।४२।।

अन्वयः— कच्चित्वं अगम्यां न अगमः ? गम्यां वा स्त्रियं असत्कृतां अगमः । अथवा पथिर्वात्वम् नोत्तमैः असमै वा पराजितः ।।४२।।

अनुवाद— तुमने किसी अगम्या स्त्री के साथ सङ्गम तो नहीं किया है ? अथवा किसी गम्या स्त्री से असत्कार पूर्वक गमन किया है या रास्ते में तुम किसी अपने बराबरी वाले से अथवा अपने से हीन बलवाले से पराजित तो नहीं हुए हो ?।।४२।।

भावार्थ दीपिका

अगम्यामिति छेदः । निन्दितां स्त्रियं नागमः किं न गतवानसि । असत्कृतां मलिनवस्त्रादिना नागमः किम् । नोत्तमैरनुत्तमैः समैरित्यर्थः । असमैरधमैर्वा किं न पराजितोऽऽसीत्यर्थः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

नागमोगम्याम् में अगम्याम् इस तरह पदच्छेद करना चाहिए । धर्मशास्त्र के अनुसार अगम्या स्त्री के साथ सङ्गम करना तथा गम्या स्त्री के साथ सङ्गम न करना या अनादर पूर्वक उसके साथ सङ्गम करना भी पाप है । युधिष्ठिर पूछ रहे हैं कि तुमने ऐसा तो नहीं किया है जिसके कारण भ्रष्ट तेज के समान प्रतीत हो रहे हो । या मार्ग में तुम किसी अपने समान बल वाले, अथवा हीन बलवाले से पराजित तो नहीं हो गये हो ।

मूल के **असत्कृताम्** का अर्थ यह है कि अनादर पूर्वक अथवा मलिन वस्त्र धारण करके गम्या स्त्री के साथ सङ्गम करना भी अनादर पूर्वक गमन है ।

नोत्तमैः पद का विग्रह है **न उत्तमैः अनुत्तमैः समैरित्यर्थः ।**

अपने समान बलवाले अथवा हीन बल वाले से पराजय भी तेजो राहित्य का कारण हो सकता है । ऐसा तो तुम्हारे साथ नहीं हुआ है न ?।।४२।।

अपिस्वित्पर्यभुङ्क्थास्त्वं संभोज्यान्वृद्धबालकान् । जुगुप्सितं कर्म किंचित्कृतवान्न यदक्षमम् ।।४३।।

अन्वयः— अपिस्वित् त्वम् सम्भोज्यान् वृद्धबालकान् भुंक्थाः अथवा जुगुप्सितम् किञ्चित कर्म यदक्षमम् न कृतवान् ।।४३।।

अनुवाद— अथवा तुम वृद्धों तथा बालकों को भोजन कराये ही बिना भोजन तो नही कर लिए हो अथवा कोई अक्षम्य निन्दित कर्म तो नहीं किए हो ?।।४३।।

भावार्थ दीपिका

संभोजनार्हान्वृद्धान्बालकांश्च किंस्वित्पर्यभुङ्क्थाः त्यक्त्वा भुक्तवानसि किम् । अक्षमं कर्तुमयोग्यं यत्तन्न कृतवानसि किम् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

धर्मशास्त्र के अनुसार वृद्धों और बालकों को भोजन कराकर ही स्वयं भोजन करना चाहिए । कहीं ऐसा

तो नहीं हुआ है कि तुम वृद्धों और बालकों को भोजन कराये बिना ही भोजन कर लिए हो। अथवा तुमने कोई अक्षम्य निन्दित कर्म तो नहीं कर लिया है, जिसके कारण इस तरह से तेजोभ्रष्ट हो गये हो ॥४३॥

कच्चित्प्रेष्ठतमेनाथ हृदयेनात्मबन्धुना। शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक् ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे युधिष्ठिरवितर्को नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अन्वयः— कच्चित् अथ प्रेष्ठतमेन, हृदयेन आत्माबन्धुना रहितः सन् शून्यः अस्मि इति नित्यं मन्यसे अन्यथा ते रुक् न ?॥४४॥

अनुवाद— अथवा अपने प्रियतम, अभिन्न हृदय श्रीकृष्ण से मैं सदा के लिए रहित हो गया हूँ इस तरह से अपने को शून्य मान रहे हो, अन्यथा तुमको इतनी उदासी नहीं हो सकती थी ॥४४॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथमस्कन्ध के युधिष्ठिरवितर्क नामक चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

नित्यं सदा प्रेष्ठतमेन हृदयेनान्तरङ्गेण स्वबन्धुना श्रीकृष्णेन रहितः शून्योऽस्मीति मन्यसे। अन्यथा ते रुक् मनः पीडा न घटेत ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमे स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

या मैं अपने प्रियतम तथा अन्तरङ्ग मित्र श्रीकृष्ण से रहित होने के कारण अब शून्य हो गया हूँ इस तरह से मानकर इतना उदास हो गया हो। अन्यथा तुमको इतनी उदासी नहीं हो सकती थी ॥४४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथमस्कन्ध के चौदहवें अध्याय की भावार्थदीपिका नाम टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥१४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण विरह व्याकुल पाण्डवों का परीक्षित् को राज्य देकर स्वर्गारोहरण करना

सूत उवाच

एवं कृष्णसखः कृष्णो भ्रात्रा राज्ञाऽऽविकल्पितः । नानाशङ्कास्पदं रूपं कृष्णविश्लेषकर्शितः ॥१॥

अन्वयः— एवं कृष्णसखः कृष्णविश्लेष कर्षितः कृष्णः भ्रात्रा राज्ञा नानाशङ्कास्पदं रूपम् आविकल्पितः ॥१॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण के मित्र तथा भगवान् श्रीकृष्ण के विश्लेषजन्य विरह व्यथा से दुःखी अर्जुन से उनके भाई राजा युधिष्ठिर ने अनेक प्रकार की शङ्काओं से ग्रस्त होने के कारण अनेक प्रश्नों को पूछा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

कलिप्रवेशमालक्ष्य धुरं न्यस्य परीक्षिति । आरुरोह नृपः स्वर्गमिति पञ्चदशेऽब्रवीत् । कृष्णोऽर्जुनः आविकल्पित इति छेदः । नानाशङ्कास्पदं रूपमालक्ष्य विकल्पित इत्यर्थः । प्रतिभाषितुं नाशक्नोदित्युत्तरेणान्वयः । तत्र हेतवः- कृष्णाविश्लेषेण कर्शितः कृशः कृतः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी पर कलि के प्रवेश को देखकर राजा युधिष्ठिर परीक्षित् को राज्य का भार सौंपं कर स्वर्गारोहरण कर गये, इस अर्थ का प्रतिपादन इस पन्द्रहवें अध्याय में किया गया हैं ।

श्लोकस्थ दूसरा कृष्ण शब्द अर्जुन का बोधक है । **राज्ञाऽऽविकल्पितः** में **आविकल्पितः** पदच्छेद है । राजा युधिष्ठिर ने अनेक प्रकार की शङ्काओं के योग्य अर्जुन को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण के विरह की व्यथा से व्याकुल तथा भगवान् श्रीकृष्ण के मित्र अर्जुन से अनेक प्रकार के प्रश्नों को पूछा; किन्तु श्रीकृष्ण भगवान् के विरह के कारण कमजोर हो गये अर्जुन उसका उत्तर नहीं दे सकें ॥१॥

शोकेन शुष्यद्वदनहृत्सरोजो हतप्रभः । विभुं तमेवानुध्यायन्नाशक्नोत्प्रतिभाषितुम् ॥२॥

अन्वयः— शोकेन शुष्यत् हृतसरोजः हतप्रभः तमेव विभुं अनुध्यायन् प्रतिभाषितुम् न अशक्नोत् ॥२॥

अनुवाद— शोक के कारण जिनका हृदय कमल और मुख सुख गया था, अतएव कान्ति विहीन अर्जुन, सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण का ही चिन्तन करते हुए राजा युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकें ॥२॥

भावार्थ दीपिका

शोकेन हेतुना । वदनं च हृच्च ते एव सरोजे । शुष्यती वदनहृत्सरोजे यस्य सः । हता प्रभा तेजो यस्य सः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

शोक के कारण जिनके हृदय कमल तथा मुखकमल दोनों सूख गये थे, ऐसे अर्जुन निष्प्रभ हो गये थे । वे राजा युधिष्ठिर का उत्तर नहीं दे पाये ।

वदनहृत्सरोजः का विग्रह है **वदनं च हृच्च त एव सरोजे शुष्यती वदनहृत् सरोजे यस्य सः शुष्यत् वदनहृत्सरोजः हतप्रभः** का विग्रह है **हता प्रभा यस्य सः** ॥२॥

कृच्छ्रेण संस्तभ्य शुचः पाणिनामृज्य नेत्रयोः। परोक्षेण समुन्नद्धप्रणयौत्कण्ठ्यकातरः ॥३॥
सख्यं मैत्रीं सौहृदं च सारथ्यादिषु संस्मरन्। नृपमग्रजमित्याह बाष्पगद्गदया गिरा ॥४॥

अन्वयः— कृच्छ्रेण शुचः संस्तभ्य पाणिना नेत्रयोः परामृज्य, परोक्षेण, विरहोत्कण्ठ्यकरतरः सन् सारथ्यादिषु सख्यं मैत्रीम् सौहृदम् च संस्मरन् वाष्पगद्गदया गिरा अग्रजम् नृपम् इत्याह ॥३-४॥

अनुवाद— बड़ी ही कठिनाई से अपने शोक को रोककर तथा हाथ से दोनों नेत्रों को पोंछकर । भगवान् श्रीकृष्ण के नहीं दिखायी पड़ने के कारण प्रेमजन्य उत्कण्ठा के बढ़ जाने के कारण कातर बने हुए अर्जुन सारथि आदि कर्मों में श्रीभगवान् की हितैषी की भावना, मित्रता तथा संबन्धित्व का स्मरण करते हुए अपने बड़े भाई तथा राजा युधिष्ठिर से रुँधे हुए गले से कहे ॥३-४॥

भावार्थ दीपिका

शुचः शोकाश्रूणि यान्युद्गच्छन्ति तानि नेत्रयोरेव संस्तभ्य गलितानि च पाणिना आमृज्य परोक्षेण दर्शनागोचरेण श्रीकृष्णेन हेतुना समुन्नद्धमधिकं यत्प्रेमौत्कण्ठ्यं तेन कातरो व्याकुलः सन्नृपमित्याहेत्युत्तरेणान्वयः । सख्यं हितैषिताम् । मैत्रीमुपकारिताम्। सौहृदं सुहृत्त्वं चात् संबन्धितां च । वाष्पेण कण्ठावरोधाद्गद्गदया ॥३-४॥

भाव प्रकाशिका

शोकजन्य जो आँसू आँख से निकल रहे थे उन सबों को उन्होंने बड़ी ही कठिनाई से रोका और निकले हुए आँसुओं को उन्होंने हाथ से पोंछा इसके बाद दर्शन के अविषय बने हुए भगवान् श्रीकृष्णके विषय में अत्यधिक

प्रेमजन्य उत्कण्ठा थी उसके कारण व्याकुल बने हुए अर्जुन ने राजा युधिष्ठिर से इस प्रकार से कहा। इसका अन्वय अगले चौथे श्लोक से हैं ॥३॥

भगवान् की हितैषिता, उपकार करने की भावना, सुहृदता और संबन्धिता इत्यादि का स्मरण करने के कारण उनका कण्ठावरोध हो गया था उन्होंने अपनी घर्घर वाणी से कहा ॥४॥

अर्जुन उवाच

वञ्चितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा । येन मेऽपहृतं तेजो देवविस्मापनं महत् ॥५॥

अन्वयः— येन देवविस्मापनं महत् तेजः अपहृतं तेन बन्धुरूपीणा हरिणा अहं वञ्चितः ॥५॥

अर्जुन ने कहा

अनुवाद— जिन्होंने देवताओं को भी आश्चर्यित कर देने वाले मेरे महान् तेज को छिन लिया उन बन्धुरूपधारी श्रीहरि ने मुझको ठग लिया है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

येन मां वञ्चयता । देवान्विस्मापयति यत् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अर्जुन ने बतलाया कि मेरा ऐसा महान् तेज था कि उसको देखकर देवता भी आश्चर्यित हो जाते थे। किन्तु मेरे साथ वञ्चना करके श्रीहरि ने उसको मुझसे छिन लिया ॥५॥

यस्य क्षणवियोगेन लोको ह्यप्रियदर्शनः । उक्थेन रहितो ह्येष मृतकः प्रोच्यते यथा ॥६॥

अन्वयः— यथा उक्थेन रहितः एषः मृतकः प्रोच्यते तथा यस्य क्षणवियोगेन लोकः हि अप्रियदर्शनः ॥६॥

अनुवाद— जिस तरह प्राण के शरीर से निकलते ही शरीर उसी क्षण मृत कहलाने लगता है उसी तरह श्रीकृष्ण का वियोग हो जाने के कारण मुझे यह सारा जगत् अप्रिय लगने लगा है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

यस्य क्षणवियोगेनेत्यादि यच्छब्दानां तेनाहमद्य मुषित इति सप्तमश्लोकस्थेन तच्छब्देन सम्बन्धः। प्रियस्याप्यप्रियत्वे दृष्टान्तः उक्थेन प्राणेन। एष पित्रादिः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यस्य क्षणवियोगेन इत्यादि श्लोक के यत् पद का अग्रिम सातवें अर्थात् तेरहवें श्लोक के तेन मुषितः इत्यादि के तत् शब्द से सम्बन्ध हैं। प्रिय वस्तु के अप्रिय होने का दृष्टान्त है कि जैसे पिता इत्यादि का प्रिय शरीर भी प्राण रहित होते ही अप्रिय लगने लगता है ॥६॥

यत्संश्रयाद्द्रुपदगेहमुपागतानां राज्ञां स्वयंवरमुखे स्मरदुर्मदानाम् ।
तेजो हृतं खलु मयाभिहतश्च मत्स्यः सज्जीकृतेन धनुषाधिगता च कृष्णा ॥७॥

अन्वयः— यत् संश्रयात् स्वयम्वरमुखे द्रुपदगेहमुपागतानां स्मरदुर्मदानाम् राज्ञाम् सज्जीकृतेन धनुषा मया तेजः हृतम् खलु सज्जीकृतेन धनुषा मत्स्यः अभिहतः कृष्णा च अधिगता ॥७॥

अनुवाद— उन श्रीभगवान् का ही आश्रय प्राप्त करने के कारण द्रौपदी स्वयम्बर के समय राजा द्रुपद के यहाँ आये हुए कामोन्मत्त राजाओं के तेज का मैंने हरण कर लिया और धनुष पर बाण को चढ़ाकर मत्स्यवेध किया तथा द्रौपदी को प्राप्त किया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णोपकराननुस्मरति–यत्संश्रयादिति दशभिः । यस्य संश्रयाद्बलात् स्मरेण कामेन दुर्मदानामतिमत्तानां तेजः प्रभावो हृतं धनुर्ग्रहणेनैव । पश्चात्तद्धनुः सज्जीकृतं च । तेन च मत्स्यो यत्रोपरि भ्रमन्विद्धः । ततस्तान्विजित्य द्रौपदी प्राप्ता च ।।७।।

भाव प्रकाशिका

अब अर्जुन दश श्लोकों द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा किए गये उपकार का स्मरण करते हैं। जिन भगवान् श्रीकृष्ण के आश्रय के बल से काम से अत्यन्त मत्त बने हुए राजाओं के तेज का मैंने अपहरण धनुष धारण करके ही कर लिया और उसके द्वारा यन्त्र के ऊपर घूमते हुए मत्स्य का वेध किया उसके पश्चात् सभी राजाओं को जितकर मैंने द्रौपदी को प्राप्त किया ।।७।।

यत्सन्निधावहमु खाण्डवमग्नयेऽदामिन्द्रं च सामरगणं तरसा विजित्य ।
लब्धा सभा मयकृताद्भुतशिल्पमाया दिग्भ्योऽहरन्नृपतयो बलिमध्वरे ते ।।८।।

अन्वयः— यत् सन्निधौ अहम् सामरगणं इन्द्रं तरसा विजित्य खण्डवम् अग्नये अदाम्, मयकृता अद्भुत शिल्पमाया सभा लब्धा ते अध्वरे नृपतयः दिग्भ्यः बलिम् अहरन् ।।८।।

अनुवाद— जिन श्रीकृष्ण भगवान् के सन्निधान मात्र से मैंने देवगणों के साथ इन्द्र को बलपूर्वक परास्त करके खाण्डव को अग्नि देव को उनकी तृप्ति के लिए प्रदान कर दिया तथा मय नामक दैत्य के द्वारा अद्भुत माया से निर्मित सभा को प्राप्त किया। जिसके कारण विभिन्न दिशाओं से आपके यज्ञ में आये हुए राजाओं ने आपको उपहार प्रदान किया ।।८।।

भावार्थ दीपिका

उ इति विस्मये । खाण्डवमिन्द्रस्य वनमग्नयेऽदां दत्तवानस्मि । खाण्डवदाहे रक्षितेन मयेन कृता च सभा लब्धा अद्भुतशिल्परूपा माया यस्यां सा । ते अध्वरे यागे राजसूये ।।८।।

भाव प्रकाशिका

अहम् उ का उ शब्द विस्मय के अर्थ में प्रयुक्त है। अर्जुन ने कहा कि भगवान् के सन्निकर्ष मात्र से मैंने इन्द्र के खाण्डव नामक वन को इन्द्र से जीतकर उसे अग्नि को मैने प्रदान कर दिया। खाण्डवदाह के समय मैंने मय नामक दानव की रक्षा कर ली, उससे प्रसन्न होकर उसने मुझे ऐसी सभा प्रदान की जिसमें अद्भुत शिल्परूपी माया थी। और उनकी ही कृपा के कारण विविध दिशाओं से आकर राजाओं ने आपको राजसूय यज्ञ में उपहार प्रदान किया ।।८।।

यत्तेजसा नृपशिरोऽङ्घ्रिमहन्मखार्थे आर्योऽनुजस्तव गजायुतसत्त्ववीर्यः ।
तेनाहृताः प्रमथनाथमखाय भूपा यन्मोचितास्तदनयन्बलिमध्वरे ते ।।९।।

अन्वयः— यत् तेजसा गजायुत सत्त्ववीर्यः आर्यः अनुजः मखार्थे नृपशिरोऽङ्घ्रिम् अहन् । तेन प्रमथनाथमखाय आहृताः भूयः यत् मोचितः तत् ते अध्वरे बलिम् अनयन् ।।९।।

अनुवाद— उन्हीं श्रीभगवान् के तेज से मेरे बड़े भाई और आपके अनुज जो दश हजार हाथियों के बल से सम्पन्न हैं वे भीम, राजाओं के शिर पर पैर रखने वाले जरासन्ध को मार सके। उस जरासन्ध के द्वारा महाभैरव के यज्ञ में बलि प्रदान करने के लिए बन्दी बनाकर लाये गये जिन राजाओ को भगवान् ने मुक्त किया वे ही राजा आपके राजसूय यज्ञ में आपको उपहार प्रदान किए ।।९।।

भावार्थ दीपिका

अनन्तरश्लोको विगीतस्तथापि व्याख्यायते । नृपशिरःअङ्घ्रिर्यस्य तं जरासन्धं तवानुजो भीमो मखार्थमहन् हतवान्। तन्निर्जयं विना राजसूय मखानुपपत्तेः । गजायुतस्येव सत्त्वमुत्साहशक्तिवीर्यं बलं च यस्य सः । तं हत्वा प्रमथनाथो महाभैरवस्तस्य मखाय ये राजानस्तेनाहृतास्ते च यद्यस्मान्मोचितास्तत्तस्मात्तेऽध्वरे बलिमानीतवन्तः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के विषय में विवाद है । कुछ लोग इसको भागवत का मानते हैं और कुछ लोग इसको भागवत का नहीं मानते हैं फिर भी मैं इसकी व्याख्या करता हूँ ।

नृपशिरस्स्वाङ्घ्रिः इत्यादि राजाओं के शिर पर पैर रखने वाले जरासन्ध को राजसूय यज्ञ करने के लिए आपके भाई भीम ने जिसका वध किया था, क्योंकि उसको परास्त किए बिना राजसूय यज्ञ नहीं हो सकता था। उन भीम की दश हजार हाथियों के समान उत्साह शक्ति थी और बल था । जरासन्ध को मारने के बाद महाभैरव के यज्ञ में बलि देने के लिए जिन राजाओं को वह बन्दी बनाकर लाया था उन राजाओं को श्रीभगवान् ने मुक्त कर दिया । वे ही राजागण आपके यज्ञ में आपको उपहार प्रदान किए थे ।।९।।

पत्न्यास्तवाधिमखक्लृप्तमहाभिषेकश्लाघिष्ठचारुकबरं कितवैः सभायाम् ।
स्पृष्टं विकीर्य पदयोः पतिताश्रुमुख्या यैस्तत्स्त्रियोऽकृत हतेशविमुक्तकेशाः ।।१०।।

अन्वयः— तव पत्न्याः अधिमखक्लृप्तमहाभिषेक श्लाघिष्ठचारु कवरं कितवैः समायाम् विकीर्य स्पृष्टं पतिताश्रुमुख्याः यैः तत्स्त्रियः हतेशविमुक्तकेशाः अकृत ।।१०।।

अनुवाद— आपकी पत्नी महारानी द्रौपदी के राजसूय यज्ञ के महान् अभिषेक से पवित्र हुए उन सुन्दर केशों को जिन दुष्टों ने भरी सभा में छूने का साहस किया उन केशों को विखेरकर तथा आँखों में आँसू भरकर जब भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों पर गिर पड़ीं तो उन सबों की स्त्रियों को भगवान् ने ऐसा बना दिया कि पतियों के मारे जाने के कारण उन सबों ने स्वयम् अपना केश खोल दिया ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

यैः कितवैर्दुःशासनादिभिस्तव पत्न्याः कबरं विकीर्योन्मुच्य स्पृष्टमाकृष्टं तेषां स्त्रियो हतेशा अतएव वैधव्याद्विमुक्तकेशा अकृत चकार । कथंभूतं कबरम् । अधिमुखं राजसूयमधिकृत्य क्लृप्तो रचितो यो महाभिषेकस्तेन श्लाघ्यतमम् । चारु रम्यम्। यत्स्मरणात्तदानीमेवास्मत्कृपया प्राप्तस्य श्रीकृष्णस्य नमने पादयोः पतितान्यश्रूणि मुखाद्यस्याः पत्न्याः । पदशब्दसापेक्षस्यापि पतितशब्दस्याश्रुपदेन समासो नित्यसापेक्षितत्वात् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

जिन दुष्ट दुशासन आदि ने आपकी पत्नी द्रौपदी के केशों को खोलकर खींचा था उन दुष्टों की पत्नियाँ पतियों के मारे जाने के कारण विधवा हो गयीं और उनके केश हमेशा-हमेशा के लिए खुल गये । **कथंभूतम्० इत्यादि-** द्रौपदी के केशों का वर्णन करते हुए कहते हैं राजसूय यज्ञ में सम्पन्न महाभिषेक के कारण प्रशंसनीय तथा मनोहर वे केश थे । द्रौपदी के द्वारा स्मरण किए जाने के कारण हमलोगों पर कृपा करने के लिए पधारे हुए श्रीकृष्ण को प्रणाम करते समय उसके मुख से जो आंसू भगवान् के पैर पर गिरे । उसके कारण भगवान् ने उन सबों के पतियों का वध करवाकर उनकी पत्नियों के केश को हमेशा के लिए बन्धनमुक्त बना दिया ।

पतिताश्रुमुख्याः में पद शब्द की अपेक्षा होने पर भी पति शब्द का अश्रुपद के साथ समास नित्य सापेक्ष होने के कारण हुआ है ।।१०।।

यो नो जुगोप वनमेत्य दुरन्तकृच्छ्राद्दुर्वाससोऽरिविहितादयुताग्रभुग्यः ।
शाकान्नशिष्टमुपयुज्य यतस्त्रिलोकीं तृप्ताममंस्त सलिले विनिमग्नसङ्घः ।।११।।

अन्वयः— यः वनम् एत्य अरिविहितात् दुर्वाससः कृच्छ्रात् नः जुगोप । शाकान्नशिष्टम् उपयुज्य यतः अयुताग्रभुक् यः सलिले विनिमग्न संघः त्रिलोकीं तृप्ताम् अमंस्त ।।११।।

अनुवाद— जो भगवान् श्रीकृष्ण वन में आकर शत्रु के द्वारा आयोजित महर्षि दुर्वासा के भयङ्कर शाप से केवल शाक को ही खाकर हमलोगों की रक्षा किये । जिससे कि दश हजार शिष्यों से पहले भोजन करने वाले महर्षि दुर्वासा और जल में अघमर्षण करने के लिए प्रविष्ट मुनियों का समूह त्रिलोकी को ही तृप्त मान लिया ।।११।।

भावार्थ दीपिका

शिष्याणामयुतस्याग्रे तत्पङ्क्तौ भुङ्क्ते यस्तस्माद्दुर्वाससो हेतोररिणा दुर्योधनेन रचितं यद्दुरन्तं कृच्छ्रं शापलक्षणं तस्मात्सकाशान्नोऽस्मान्वनमेत्य जुगोप । किं कृत्वा । शाकमेवान्नं तस्मिन्नेव पात्रेऽवशिष्टमुपयुज्य जग्ध्वा । यत उपयोगात्सलिले विनिमग्नो मुनीनां सङ्घस्त्रिलोकीं तृप्ताममंस्त । एवं हि भारते कथा— **'कदाचिद्दुर्वाससो दुर्योधनेनातिथ्यं कृतम् । तेन च परितुष्टेन वरं वृणीष्वेत्युक्ते दुर्वाससः शापात्पाण्डवा नश्येयुरिति मनसि विधाय दुर्योधनेनोक्तम् । युधिष्ठिरोऽस्मत्कुलमुख्यः, अतस्तस्यापि भवतैवमेव शिष्यायुतसहितेनातिथिना भवितव्यं, किंतु द्रोपदी यथा क्षुधा न सीदेत्तथा तस्यां भुक्तवत्यां तद्गृहं गन्तव्यमिति । ततश्च तथैव दुर्वाससि प्राप्ते परमादरेण युधिष्ठिरेण माध्याह्निकं कृत्वा आगम्यतामिति विज्ञापितो मुनिसङ्घोऽघमर्षणाय जले निममज्ज । तत्र चिन्तातुरया द्रौपद्या स्मृतमात्रः श्रीकृष्णोऽङ्कस्थां रुक्मिणीं हित्वा तत्क्षणमेव भक्तवत्सलतया चागतः । तया चावेदिते वृत्तान्ते भगवतोक्तं- हे द्रौपदि, अहं च बुभुक्षितोऽस्मि प्रथमं मां भोजयेति । तया चातिलज्ज्योक्तं- स्वामिन्, मद्भोजनपर्यन्तमक्षयमप्यन्नं सूर्यदत्तस्थाल्यां मया च सर्वान्नंसंभोज्य भुक्तमतो नास्त्यन्नमिति । तथाप्यतिनिर्बन्धेन स्थालीमानाय्य तत्कण्ठलग्नं किंचिच्छाकान्नं प्राश्योक्तमनेन विश्वात्मा भगवान्प्रीयताम् । अथ भोक्तुं मुनिसङ्घमाह्वयेति भीमं प्रहितवान् । स च तावतातितृप्तो वृथापाकभयेन पलायितः' इति ।।११।।**

भाव प्रकाशिका

दश हजार शिष्यों की पंक्ति में सबसे पहले भोजन करने वाले जो दुर्वासा महर्षि थे उनको दुर्योधन ने भेजा था, उनके भयङ्कर शाप रूप कष्ट से जो भगवान् श्रीकृष्ण वन में आकर हमलोगों की रक्षा किए । प्रश्न है कि कैसे रक्षा किए ? तो इसका उत्तर है कि उस पात्र में ही लगे हुए शाक नामक भोज्य पदार्थको खाकर भगवान् के उस शाक के खाते ही अघमर्षण करने के लिए जल में निमग्न मुनि समूह ने त्रिलोकी को ही तृप्त मान लिया।

एवं ही भारते कथा महाभारत ग्रन्थ में यह कथा आयी है कि एक बार दुर्योधन ने महर्षि दुर्वासा का आतिथ्य सत्कार किया । उससे प्रसन्न होकर महर्षि दुर्वासा ने कहा वरदान माँगो । दुर्योधन ने सोचा कि महर्षि के शाप से ही पाण्डवों का नाश हो जाय । यह विचार करके दुर्योधन ने कहा हमारे वंश में मुख्य युधिष्ठिर हैं । अतएव आप इसी तरह अपने दश हजार शिष्यों के साथ उनके अतिथि बनें । किन्तु द्रौपदी भूख के कारण दुःखी न हो अतएव जब वह भोजन कर ली हो उसके बाद ही आप जायँ ।

उसके पश्चात् दुर्वासा ऋषि उसी तरह उनके यहाँ गये । युधिष्ठिर ने अत्यन्त आदर के साथ कहा आपलोग मध्याह्न की क्रिया करके आयें । इस तरह से कहने पर मुनियों का समूह अघमर्षण करने के लिए जल में प्रवेश कर गया । उस समय अत्यन्त चिन्तित द्रौपदी ने भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण किया । स्मरण करते ही भगवान् श्रीकृष्ण अपने गोद में बैठी हुयी रुक्मिणी को छोड़कर भक्तवत्सलता के कारण उसी समय वहाँ आ गये ।

द्रौपदी के द्वारा सारा वृत्तान्त बतलाये जाने पर भगवान् ने कहा— द्रौपदी मैं भूखा हूँ मुझे पहले भोजन कराओ अत्यन्त लज्जा पूर्वक द्रौपदी ने कहा— हे स्वामिन् ! मेरे भोजन पर्यन्त ही सूर्य के द्वारा प्रदत्त स्थाली में अक्षय अन्न रहता है । सबों को खिलाकर मैंने भी भोजन कर लिया है । अतएव अन्न बिल्कुल नहीं है ।

फिर भी अतिथि श्रीभगवान् ने आग्रह पूर्वक उस स्थाली को मँगवाकर उस स्थली के कण्ठ में सटे शाक के पत्ते को खाकर कहा इससे विश्वात्मा भगवान् प्रसन्न हो जायँ । उसके पश्चात् मुनि समूह को भोजन करने के लिए बुलाने के लिए भीम को उन्होंने भेजा । उतने मात्र से तृप्त मुनिसमूह व्यर्थ भोजन बनवाने के भय से भाग गया ।।११।।

यत्तेजसाऽथ भगवान्युधि शूलपाणिर्विस्मापितः सगिरिजोऽस्त्रमदान्निजं मे ।
अन्येऽपि चाहममुनैव कलेवरेण प्राप्तो महेन्द्रभवने महदासनार्धम् ।।१२।।

अन्वयः— अथ यत् तेजसा युधि सगिरिजः भगवान् शूलपाणिः विस्मापितः निजम् अस्त्रम् मे अदात् अन्येऽपि च, अहम् अमुना एव कलेवरेण महेन्द्र भवने महत् अर्धासनम् प्राप्तः ।।१२।।

अनुवाद— उन्हीं श्रीभगवान् के तेज से सम्पन्न मैंने पार्वतीजी के साथ विद्यमान भगवान् शिव को युद्ध में आश्चर्यित कर दिया था और उससे प्रसन्न होकर शिवजी ने मुझे अपना पाशुपतास्त्र नामक अस्त्र प्रदान किया तथा दूसरे लोकपाल भी मुझे अपना अस्त्र प्रदान किए । किञ्च इसी शरीर से मैंने इन्द्र की सभा में इन्द्र के आसन पर बैठने का सम्मान प्राप्त किया ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

गिरिजासहितो विस्मापितः सन्निजं पाशुपतमस्त्रम् । अन्येऽपि लोकपाला निजान्यस्त्राण्यदुः । अन्यप्याश्चर्यमाह- अमुनेति। महत इन्द्रस्यासनार्धम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण के ही तेज से मैंने पार्वतीजी के साथ विद्यमान भगवान् शङ्कर को युद्ध में आश्चर्यित कर दिया था और वे प्रसन्न होकर मुझे अपना पाशुपतास्त्र प्रदान किए और दूसरे लोकपाल भी मुझको अपना अस्त्र प्रदान किए । दूसरा आश्चर्य यह कि इसी शरीर से मैंने इन्द्र के आधे आसन पर बैठने का सौभाग्य भी प्राप्त किया ।।१२।।

तत्रैव मे विहरतो भुजदण्डयुग्मं गाण्डीवलक्षणमरातिवधाय देवाः ।
सेन्द्राः श्रिता यदनुभावितमाजमीढ तेनाहमद्य मुषितः पुरुषेण भूम्ना ।।१३।।

अन्वयः— हे आजमीढ तत्रैव विहरतः सेन्द्राः देवा अरातिवधाय गाण्डीवलक्षणं मे यदनुभावितं भुजदण्डयुमं श्रिताः तेन भूम्ना पुरुषेण अहम् अद्य मुषितः ।।१३।।

अनुवाद— हे अजमीढवंशावतंस उस स्वर्ग लोक में विहार करते समय इन्द्र सहित सभी देवगण निवात कवच नामक दैत्य शत्रुओं का वध करने के लिए गाण्डीव धनुष से सुशोभित तथा श्रीभगवान् के प्रभाव से युक्त मेरी दोनों भुजाओं का सहारा लिया, वे ही भूमाविद्या में वर्णित पुरुष श्रीभगवान् ने मुझको ठग लिया ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

तत्रैव स्वर्गे क्रीडतो गाण्डीवं लक्षणं चिह्नं यस्य तत् । अरातयो निवातकवचा दैत्यास्तेषां वधार्थमाश्रितवन्तः । येनानुभावितं प्रभावयुक्तं कृतम् । हे आजमीढ युधिष्ठिर । तेन मुषितो वञ्चितोऽस्मि । कथंभूतेन । भूम्ना निजमहिमावस्थानेन ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

स्वर्ग में ही विहार करने वाले गाण्डीव धनुष से सुशोभित मेरी भुजाओं का सहारा इन्द्रादि देवताओं ने निवात कवच दैत्यों को मारने के लिए लिया । जिन भगवान की ही कृपा से मैं प्रभाव सम्पन्न हुआ । हे आजमीढ युधिष्ठिर उन्हीं विपुल महिमा सम्पन्न श्रीभगवान् ने मुझको ठग लिया ।।१३।।

यद्बान्धवः कुरुबलाब्धिमनन्तपारमेको रथेन ततरेऽहमतीर्यसत्त्वम् ।
प्रत्याहृतं बहुधनं च मया परेषां तेजास्पदं मणिमयं च हृतं शिरोभ्यः ।।१४।।

अन्वयः— यद्बान्धवः अहम् कुरुबलाब्धिम् अनन्तपारम् अतीर्यसत्त्वम् एकः अहम् रथेन ततरे । मया परेषां बहुधनं प्रत्याहृतम्, तेजास्पदं मणिमयं च शिरोभ्यः हृतम् ।।१४।।

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् श्रीकृष्ण का बान्धव मैं भीष्म तथा द्रोण रूप अपराजेय वीरों से युक्त कौरवों की अनन्तपार समुद्र के समान सेना को अकेले रथ पर सवार होकर पार कर गया और राजा विराट् के गोधन को लौटा लाने के समय उनके बहुमूल्य अलङ्कारों तथा शिर पर चमकते हुए मुकुटों को भी मैं उतार लाया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

यद्बान्धव इत्यादिश्लोकत्रयस्यापि तेन मुषितोऽहमिति पूर्वेणैव संबन्धः । श्रीकृष्णबान्धव एक एवाहं कौरवसैन्याब्धिं नास्त्यन्तो गाम्भीर्येण, पारं च देशतो यस्य तं ततरे तीर्णवानुत्तरगोग्रहे । अतीर्याणि दुस्तराणि सत्त्वानि तिमिङ्गिलादीनि भीष्मादिरूपाणि यस्मिन् । परैर्नीतं गोधनं प्रत्याहृतम् । परेषां च शिरोभ्यः सकाशात्तेजास्पद प्रभावस्यास्पदमुष्णीषरूपं मणिमयं मुकुटरत्नरूपं च बहुधनं तान्मोहनास्त्रेण मोहयित्वा हृतम् । यद्बान्धवेन मया ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

यद्बान्धव इत्यादि तीन श्लोकों का भी मुषितोऽहम् इस पहले के श्लोक से ही सम्बन्ध है । भगवान् श्रीकृष्ण का बान्धव अकेला ही मैं जिसकी गम्भीरता और देश का कोई अन्त नहीं था ऐसी कौरवों की सेना रूपी सागर को मैंने पार कर लिया ।

उसके पश्चात् विराट की गौओं को लौटा लाने के समय दुस्तर पराक्रम वाले तिमिङ्गिल इत्यादि सभान भीष्म इत्यादि वीरों से पार पाना असम्भव था ऐसे शत्रुओं के द्वारा ले जाये जाते हुए गोधन को मैं लौटा लाया और शत्रुओं के शिरों से तेज तथा प्रभावयुक्त उष्णीश स्वरूप मणिमय मुकुट रूपी बहुत धनों को गन्धर्वास्त्र से मोहित करके ले आया । यह सबकुछ मैंने भगवान् श्रीकृष्ण का बान्धव होने के कारण ही कर सका ।।१४।।

यो भीष्मकर्णगुरुशल्यचमूष्वदभ्रराजन्यवर्यरथमण्डलमण्डितासु ।
अग्रेचरो मम विभो रथयूथपानामायुर्मनांसि च दृशा सह ओज आर्च्छत् ।।१५।।

अन्वयः— हे विभो ! यः भीष्म कर्ण-गुरु-शल्य चमूषु अदभ्र राजन्यवर्यरथमण्डलमण्डितासु मम अग्रेचरः रथयूथपानाम् दृशा आयुः मनांसि च सह ओजः आर्च्छत् ।।१५।।

अनुवाद— महाराज ! भीष्म, कर्ण, गुरुद्रोण तथा शल्य एवं दूसरे बड़े-बड़े राजाओं और क्षत्रिय वीरों के रथों से कौरवों की सेना सुशोभित थी जो भगवान् मेरे आगे-आगे चलते हुए अपनी दृष्टि मात्र से ही उन सभी महारथी यूथपतियों की आयु, मन, उत्साह और बलको छीन लिया करते थे । उन्होंने ही आज मुझको ठग लिया ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अदभ्रा अनल्पा ये राजन्यवर्यास्तेषां रथमण्डलैर्मण्डितासु भीष्मादीनां चमूषु सारथिरूपेण ममाग्रेचरः सन् हे विभो, तेषां रथयूथपानामायुरादीनि यो दृशा दृष्ट्यैवार्च्छत् हृतवान् । मनांसीत्युत्साहादिशक्तिम् । सहो बलम् । ओजः शस्त्रादिकौशलम् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अदभ्र शब्द अत्यधिक का बोधक है । बहुत अधिक श्रेष्ठ राजाओं के रथ समूह से सुशोभित भीष्म आदि की सेनाओं में सारथि रूप से मेरे आगे चलते हुए हे महाराज ! उन रथ यूथपों की आयु आदि को जो भगवान् अपनी दृष्टिमात्र से छिन लिए । मनांसि शब्द से उत्साह शक्ति को, सह शब्द से बल को तथा ओज: शब्द से शस्त्रादि कौशल को कहा गया है । इन सबों को भगवान् छिन लिए ॥१५॥

यद्दोःषु मा प्रणिहितं गुरुभीष्मकर्णद्रौणित्रिगर्तशलसैन्धववाह्लिकाद्यैः ।
अस्त्राण्यमोघमहिमानि निरूपितानि नो पस्पृशुर्नृहरिदासमिवासुराणि ॥१६॥

अन्वयः— यद् दोःषु प्रणिहितं मा गुरु-भीष्म-कर्ण-द्रौणि-निर्गत-शल-सैन्धव बाह्लिकाद्यै निरूपितानि अमोघमहिमानि अस्त्राणि आसुराणि हरिदासम् इव न पस्पृशुः ॥१६॥

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् के हाथों में मैंने अपने को डाल दिया था उसके कारण आचार्य द्रोण, भीष्म, कर्ण, अश्वत्थामा, सुशर्मा, शल्य, सिन्धुदेशाधिपति जयद्रथ, शन्तुनु के भाई बह्लोक आदि के द्वारा चलाये गये कभी भी विफल नहीं होने वाले अस्त्र मुझको उसी तरह छू नहीं पाये जिस तरह दैत्यों के द्वारा प्रयुक्त अस्त्र भगवद् भक्त प्रह्लाद को स्पर्श नहीं कर पाते थे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

यस्य दोःषु भुजेषु मा मां प्रणिहितं स्थापितं तैरेव गुर्वादिभिर्निरुपितानि प्रयुक्तान्यस्त्राणि न स्पृशन्ति स्म । गुरुर्द्रोणः । त्रिगर्तस्त्रिगर्तदेशाधिपतिः सुशर्मा । शलः शल्यः । सैन्धवः सिन्धुदेशाधिपतिर्जयद्रथः । वाह्लिकः शन्तनोर्भ्राता । अमोघो महिमा येषां तथाभूतान्यपि । पाठान्तरेऽपि स एवार्थः । प्रतीकाराकरणेऽप्यस्पर्शे दृष्टान्तः- नृहरिदासं प्रह्लादमिवेति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

जिन भगवान् के हाथों में समर्पित मुझको आचार्य द्रोण आदि के द्वारा प्रयुक्त अमोघ अस्त्र मुझको छू तक नहीं सके । यहाँ गुरु शब्द से द्रोणाचार्य को, त्रिगर्त शब्द से त्रिगर्त देशाधिपति सुशर्मा को, शल शब्द से शल्य को और सैन्धव शब्द से सिन्धु देशाधिपति जयद्रथ को कहा गया है । **अमोघमहिमानि** पद का विग्रह, **अमोघो महिमा येषां तानि** है । **अमोघमहितानि** इस पाठान्तर का भी वहीं अर्थ है । प्रतिकार नहीं करने पर भी स्पर्श नहीं कर सकने का उदाहरण भगवान् नृसिंह के भक्त प्रह्लाद को दिया गया है ॥१६॥

सौत्ये वृतः कुमतिनात्मद ईश्वरो मे यत्पादपद्ममभवाय भजन्ति भव्याः ।
मां श्रान्तवाहमरयो रथिनो भुविष्ठं न प्राहरन्यदनुभावनिरस्तचित्ताः ॥१७॥

अन्वयः— भव्याः यदपादपद्मम् अभवाय भजन्ति, सः आत्मदः ईश्वरः कुमतिना मे सौत्ये वृतः रथिनः अरयः यदनुभावनिरस्तचित्ताः श्रान्तवाहम् भुविष्ठं मां न प्राहरन् ॥१७॥

अनुवाद— श्रेष्ठ पुरुष संसार से मुक्ति प्राप्त करने के लिए जिनके चरण कमलों की सेवा करते हैं; उन अपने को भी दे डालने वाले परमात्मा को मैंने सारथि रूप से वरण किया, यह मेरी निन्दित मति का परिणाम है । जिन श्रीभगवान् के प्रभाव से ही जिनकी बुद्धि मारी गयी थी ऐसे रथी शत्रुगण उस समय मुझ पर प्रहार नहीं कर सके जब थके हुए अश्वों वाला मैं पृथिवी पर खड़ा था ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

स्वापराधमनुस्मरन् संतप्यमान आह । सौत्ये सारथ्ये कुमतिना मे मया स वृतः । कुमतित्वमेवाह-आत्मद इत्यादिना। अभवाय मोक्षाय । भव्याः श्रेष्ठाः । श्रान्ता वाहा अश्वा यस्य तं माम् । जयद्रथवधे हि जलपानं विनाऽश्वाः श्रान्तास्ततो

रथादवतीर्य बाणैर्भुवं भित्त्वा मया जलं संपादितम् । तदा यस्यानुभावेन निरस्तचित्ता अरयो मां न प्रहृतवन्तः स सौत्ये वृत इति कुमतित्वम् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

अपने अपराध का स्मरण करते हुए संताप करते हुए अर्जुन ने कहा मेरी यह कुमति ही है कि मैंने उनको अपना सारथि बनाया । अपनी कुमतित्व का वर्णन करते हुए अर्जुन ने कहा वे ईश सम्पूर्ण जगत् के नियामक ईश्वर थे और अपने तक को दे देने वाले थे । श्रेष्ठ पुरुष उनके चरणों की सेवा मुक्ति प्राप्त करने के लिए करते है । जब जयद्रथ वध के समय पानी पिए बिना मेरे अश्व थक गये थे उस समय मैं रथ से पृथिवी पर उत्तर गया था और बाणों से पृथिवी का भेदन करके जल उत्पन्न किया । उस समय उन श्रीभगवान् के प्रभाव के ही कारण मेरे रथी शत्रुओं की बुद्धि मारी गयी थी, क्योंकि भूमि पर खड़े मुझ पर सभी शत्रुओं ने प्रहार नहीं किया ।।१७।।

नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि हे पार्थ हेऽर्जुन सखे कुरुनन्दनेति ।
संजल्पितानि नरदेव हृदिस्पृशानि स्मर्तुर्लुठन्ति हृदयं मम माधवस्य ।।१८।।

अन्वयः— हे नरदेव, माधवस्य उदार-रुचिर-स्मितशोभितानि हे पार्थ ! हे अर्जुन हे सखे ! हे कुरुनन्दन ! इति हृदि स्पृशानि संजल्पितानि नार्माणि स्मर्तुः मम हृदयं लुठन्ति ।।१८।।

अनुवाद— हे राजन् ! श्रीकृष्ण भगवान् के उदार, मनोहर तथा मुसकान से युक्त हे अर्जुन ! हे पार्थ ! हे कुरुनन्दन ! इस तरह की हृदय स्पशी, परिहास भरी वाणियों को स्मरण करने वाले मेरे हृदय में उथल-पुथल मच जाता है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

हे नरदेव, उदारं गम्भीरं रुचिरं च यत् स्मितं तेन शोभितानि नर्माणि परिहासवाक्यानि तथा कार्यप्रस्तावेषु हे पार्थेत्यादीनि मधुराक्षराणि संजल्पितानि च हृदिस्पृशानि मनोज्ञानि माधवस्य यान्येतानि तानीदानीं स्मर्तुर्मम हृदयं लुठन्ति लोठयन्ति क्षोभयन्ति। णिजभाव आर्षः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन ने कहा हे राजन् ! श्रीभगवान् के उदार, गम्भीर्य पूर्ण तथा मनोहर मुसकानसे सुशोभित परिहास भरे वाक्यों तथा कार्य प्रारम्भ करते समय हे पार्थ इत्यादि मधुर अक्षरों से युक्त वाक्यों को जो हृदय स्पर्शी तथा मनोहर थे उन श्रीकृष्ण वाक्यों को स्मरण करते ही मेरे हृदय में उथल-पुथल मच जाता है ।।१८।।

शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिष्वैक्याद्वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्धः ।
सख्युः सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं सेहे महान्महितया कुमतेरघं ते ।।१९।।

अन्वयः— शय्यासनाटन विकत्थन भोजनादिष्वैक्याद् वयस्य ऋतवान् इति विप्रलब्धः तदापि महान ् महितया सख्युः सखेव, तनयस्य पितृवत् कुमतेः मे सर्वम् अघं सेहे ।।१९।।

अनुवाद— सोने, बैठने, टहलने तथा आत्मश्लाघा के समय सदा एक साथ रहने के कारण कभी-कभी मैं यह कहकर उपहास करता था कि आप तो सत्यवादी हैं, उस समय महामहिमा से समन्न होने के कारण जिस तरह से कोई मित्र अपने मित्र के तथा पिता अपने पुत्र के अपराधों को सह लेता है, उसी तरह से वे मुझ कुबुद्धि के सारे अपराधों को सह लेते थे ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

विकत्थनं स्वगुणश्लाघनादि । शय्यादिष्वैक्यादव्यतिरेकाद्धेतोः । कदाचिद्व्यभिचारं दृष्ट्वा हे वयस्य, ऋतवान् सत्ययुक्तस्त्वमिति वक्रोत्तया विप्रलब्धस्तिरस्कृतोऽपि । '**ऋभुमान्**' इति पाठे ऋभवो देवाः सेवकाः सन्ति यस्य सः । असौ महानपि मया वयस्य इति मत्वा विप्रलब्धस्तिरस्कृत इत्यर्थः । '**ऋतमान्**' इति पाठे वत्त्वाभाव आर्षः । मे अघमपराधमसहत। महितया महत्त्वेन । ऐकपद्ये अतिमहत्त्वेनेत्यर्थः । सख्युरघं सखेव । तनयस्याघं पितेव ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अपने गुणों की प्रशंसा करने आदि को विकत्थन कहते हैं, सोने आदि के समय सदा एक साथ रहने के कारण, कभी उनमें देर हो जाने पर मैं व्यंग्य करता था कि मित्र तुम तो बड़े सत्यवादी हो ? इस तरह से कहकर मैं उनका तिरस्कार कर देता था । किन्तु वे महान् थे और मेरे द्वारा तिरस्कृत होने पर भी अपनी महत्ता के कारण मेरे सभी अपराधों को उसी तरह से सह लेते थे जैसे कोई मित्र अपने मित्र के तथा पिता अपने पुत्र के अपराधों को सह लेता है । ऋभुमान पाठ होने पर अर्थ होगा जिनके ऋभु आदि देवता सेवक हैं । ऋतमान् पाठ होने पर वत्त्व का अभाव आर्ष प्रयोग के कारण मानना चाहिए ॥१९॥

सोऽहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन सख्या प्रियेण सुहृदा हृदयेन शून्यः ।
अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमङ्ग रक्षन्गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि ॥२०॥

अन्वयः— हे नृपेन्द्र ! सोऽहं प्रियेण सख्या पुरुषोत्तमेन रहितः, सुहृदाहृदयेन शून्यः हे अङ्ग अध्वनि, उरुक्रमपरिग्रहम् रक्षन् असद्भिः गोपैः अबला इव विनिर्जितः अस्मि ॥२०॥

अनुवाद— हे नृपेन्द्र ! वही मैं अपने प्रिय मित्र पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण भगवान् से रहित होकर अपने मित्र रूप हृदय से शून्य हो गया हूँ हे राजन् ! रास्ते में श्रीभगवान् की सोलह हजार स्त्रियों की रक्षा करते समय नीच गोपों द्वारा किसी अबला के समान पराजित कर दिया गया हूँ ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

त्वया शङ्कितं पराजयं चापि प्राप्तोऽहमित्याह । तेन सख्या रहितोऽतो हृदयेन शून्यः । अङ्ग हे राजन्, उरुक्रमस्य परिग्रहं षोडशसहस्रस्त्रीलक्षणम् । असद्भिर्नीचैः अबला योषेव ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

आपके द्वारा शङ्कित मैं पराजित भी हुआ हूँ । उन अपने मित्र श्रीकृष्ण से रहित होने के कारण मैं हृदय से रहित हो गया हूँ, क्योंकि वे तो मेरे हृदय में थे । हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण की सोलह हजार स्त्रियों को लाता हुआ मैं उन सबों की रक्षा नहीं कर सका और नीच गोपों ने मुझे किसी अबला नारी के समान हरा दिया ॥२०॥

तद्वै धनुस्तइषवः स रथो हयास्ते सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमन्ति ।
सर्वं क्षणेन तदभूदसदीशरिक्तं भस्मन्हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ॥२१॥

अन्वयः— तद्वै धनुः त इषवः स रथः, ते हयाः अहं सः रथी यतः नृपतयः आनमन्ति ईश रिक्तम् सर्वं तत् क्षणेन भस्मन् हुतम्, कुहकराद्धम्, ऊष्याम् उप्तमिव क्षणेन असत् अभूत् ॥२१॥

अनुवाद— मेरा गाण्डीव धनुष वही है वे ही मेरे बाण हैं मेरा रथ भी वही है और वही मैं रथी भी हूँ। जिसको राजागण शिर झुकाया करते थे । श्रीभगवान् के अभाव में वह सबकुछ भस्म में किए गये होम के समान कपट पूर्वक की गयी सेवा और उषर में बोये गये बीज के समान व्यर्थ हो गया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णवियोग एवात्र हेतुर्नान्य इत्याह-तदिति । यतो येभ्यो नृपतय आनमन्ति ईशेन रिक्तं शून्यमसत्कार्याक्षमं सन्मन्त्रविधानैरपि भस्मानि हुतमिव । अतिप्रीतादपि कुहकान्मायाविनः सकाशाद्राद्धं लब्धं यथा असत् । सम्यक्कर्षणादिनाप्यूषरभूमावुप्तं बीजमिव ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

इसका कारण भी भगवान् श्रीकृष्ण का वियोग ही है, दूसरा कोई भी नहीं जिन सबों को राजागण नमस्कार करते हैं श्रीकृष्ण के विना वे सभी साधन उसी तरह से कार्य करने में असमर्थ हो गये जिस तरह मन्त्रों तथा विधान पूर्वक भी भस्म में किया गया होम व्यर्थ हो जाता है । अथवा मायावियों से अत्यन्त प्रेम पूर्वक भी प्राप्त किया गया धन व्यर्थ हो जाता है, अथवा जिस तरह अच्छी तरह से जोतकर भी ऊपर भूमि में बोया गया बीज नहीं जमता है ॥२१॥

राजंस्त्वयाभिपृष्टानां सुहृदां नः सुहृत्पुरे। विप्रशापविमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिर्मिथः ॥२२॥
वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथितचेतसाम्। अजानतामिवान्योन्यं चतुष्पञ्चावशेषिताः ॥२३॥

अन्वयः— राजन् त्वया अभिपृष्टानां विप्रशापविमूढानाम् वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथित चेतसाम् अजानतामिव मिथः मुष्टिभिः निघ्नताम् सुहृत् पुरे न सुहृदाम् चतुः पञ्च अवशेषिताः ॥२२-२३॥

अनुवाद— हे राजन् ! आपने जिनलोगों के विषय में पूछा है वे ब्राह्मणों के शाप से अज्ञानी बने हुए वारुणी मदिरा पीकर मदोन्मत्त होकर एक दूसरे को नहीं पहचानते हुए परस्पर में एक दूसरे पर एरका मुष्टि से प्रहार करने के कारण हमारे सुहृदों की नगरी में हमारे सुहृदों में केवल चार पाँच लोग ही बचे हुए हैं ॥२२-२३॥

भावार्थ दीपिका

सुहृत्पुरे त्वया पृष्टानां नः सुहृदां मध्ये चत्वारः पञ्च वाऽवशेषिताः । तत्र हेतुः-विप्रशापेत्यादि । वारुणीमन्नमयीम् । अजानतामिवान्योन्यमेरकामुष्टिभिर्निघ्नताम् ॥२२-२३॥

भाव प्रकाशिका

आप जिन द्वारकावासी हमारे सुहृदों के विषय में पूछे हैं उनमें से केवल चार-पाँच ही लोग बचे हैं, उसका कारण यह है कि ब्राह्मणों के शाप के कारण अज्ञानी बने हुए सबों ने अन्नमयी वारुणी मदिरा को पी ली और वे मदमत्त हो गये । एक दूसरे को जैसे वे पहचान ही नहीं पाते थे और वे एरका की मुष्टि से वज्र कल्प प्रहार करके विनष्ट हो गये ॥२२-२३॥

प्रायेणैतद्भगवत ईश्वरस्य विचेष्टितम् । मिथो निघ्नन्ति भूतानि भावयन्ति च यन्मिथः ॥२४॥

अन्वयः— प्रायेण एतद् भगवतः विचेष्टितम् यत् भूतानि मिथः निघ्नन्ति भावयन्ति च ॥२४॥

अनुवाद— प्रायः यह भगवान् की ही चेष्टा है जिसके कारण एक जीव दूसरे को मारते हैं और उसका पालन भी करते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अवशेषिता इत्यनेनोक्त हेतुकर्तारमाह त्रिभिः-प्रायेणेति । भावयन्ति पालयन्ति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

यह जो कहा गया है कि अब केवल चार पाँच ही बचे हैं, उसके कर्ता हेतुको प्रायेण इत्यादि तीन श्लोकों से बतलाया गया है । भावयन्ति पद का अर्थ पालन करते हैं ॥२४॥

जलौकसां जले यद्वन्महान्तोऽदन्त्यणीयसः। दुर्बलान्बलिनो राजन्महान्तो बलिनो मिथः ॥२५॥
एवं बलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान्विभुः। यदून्यदुभिरन्योन्यं भूभारान्संजहार ह ॥२६॥

अन्वयः— राजन् यद्वत् जले जलौकसां महान्तः अणीयसः अदन्ति, दुर्बलान् बलिनः महान्तमिथः बलिनः, एवं विभुः बलिष्ठैः महद्भिः यदुभिः इतरान् यदुभिः अन्योन्यं यदून् भूभारान् संजहार ह ॥२५-२६॥

अनुवाद— हे राजन् ! जिस तरह जल में रहने वाले छोटे जलचरों को बड़े जलचर को खा जाते हैं, दुर्बलों को बलवान् मार देते हैं, और बलवानों में भी एक बलवान् दूसरे बलवान् को मार डालते हैं, उसी तरह परमात्मा ने बलवान् यदुवंशियों के द्वारा दूसरे बड़े राजाओं को विनष्ट करके पृथिवी के भारभूत यदुवंशियों में भी एक यदुवंशी से दूसरे यदुवंशी का नाश कराकर पृथिवी के भार को दूर कर दिया है ॥२५-२६॥

भावार्थ दीपिका

जलौकसां मत्स्यादीनां मध्ये महान्तः स्थूला अणीयसः यथाऽदन्ति भक्षयन्ति । एवं बलिष्ठैर्महद्भिः पाण्डवैर्दुर्योधनजरासन्धादीन्निहत्य, यदुभिरितरान् शाल्वादीन्निहत्य, यदून्यदुभिरन्योन्यं निहत्य, भगवान् भुवो भारभूतान् संहृतवान् ॥२५-२६॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह जल में रहने वाली मछलियों आदि में जैसे बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियों को खा जाती हैं, इसी तरह बलवान् तथा महान् पाण्डवों के द्वारा दुर्योधन जरासन्ध आदि को विनष्ट करके, यदुवंशियों द्वारा शाल्व इत्यादि को मारकर तथा परस्पर में यदुवंशियों द्वारा यदुवंशियों का नाश कराकर पृथिवी के भारभूत इन सबों को उन्होंने विनष्ट कर दिया ॥२५-२६॥

देशकालार्थयुक्तानि हृत्तापोपशमानि च । हरन्ति स्मरतश्चित्तं गोविन्दाभिहितानि मे ॥२७॥

अन्वयः— देशकालार्थयुक्तानि, हृत्तापोपशामनि गोविन्दाभिहितानि स्मरतः मे चित्तम् हरन्ति ॥२७॥

अनुवाद— देश काल और प्रयोजनोपयोगी तथा हृदय के संताप को शान्त करने वाली जिन बातों को भगवान् गोविन्द ने मुझको बतलाया था उन सबों का स्मरण करने वाले मेरे चित्त को वे बातें आकृष्ट करती हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अतः परं वक्तुं न शक्नोमीति सूचयन्नाह । देशकालोचितार्थयुक्तानि मनःपीडोपशमकराणि च गोविन्दस्य वचनानि स्मरतो मे मम चित्तं हरन्त्याकर्षन्ति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

इससे अधिक कुछ भी कहने में मैं समर्थ नहीं हूँ इस अर्थ को सूचित करते हुए उन्होंने कहा देश कालोचित अर्थ से युक्त तथा मन की पीडा को शान्त करने वाली गोविन्द की बातों का स्मरण करने वाले मेरे हृदय को वे बातें आज भी आकृष्ट करती हैं ॥२७॥

एवं चिन्तयतो जिष्णोः कृष्णपादसरोरुहम् । सौहार्देनातिगाढेन शान्तासीद्विमला मतिः ॥२८॥

अन्वयः— एवं अतिगाढेन सौहार्देन कृष्णपादसरोरुहम् चिन्तयतः जिष्णोः विमला मतिः शान्ता आसीत् ॥२८॥

अनुवाद— इस तरह अत्यन्त प्रगाढ प्रेमपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों का चिन्तन करने वाले अर्जुन की बुद्धि निर्मल बुद्धि शान्त हो गयी ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

एवमिति सूतोक्तिः । अतिदृढेन स्नेहेन कृष्णपादसरोरुहं चिन्तयतोऽर्जुनस्य मतिः शान्ता विशोका विमला विरक्ता चासीत् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

एवम् इत्यादि यह सूतजी की उक्ति है । इस तरह प्रगाढ प्रेमपूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों का चिन्तन करते हुए अर्जुन की बुद्धि शान्त अर्थात् शोकरहित तथा विमल अर्थात् विरक्त हो गयी ।।२८।।

वासुदेवाङ्घ्र्यनुध्यानपरिबृंहितरंहसा । भक्त्या निर्मथिताशेषकषायधिषणोऽर्जुनः ।।२९।।

अन्वयः— वासुदेवाङ्घ्र्यनुध्यान परिबृंहितरंहसा । भक्त्या अर्जुनः निर्मथिताशेष कषायधिषणः अभूत् ।।२९।।

अनुवाद— भगवान् वासुदेव के निरन्तर चिन्तन के कारण जिसका वेग बढ़ गया था उस भक्ति के द्वारा मथित अर्जुन के हृदय के सारे विकार बाहर निकल गये ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

मतिवैमल्यफलमाह । वासुदेवाङ्घ्र्यनुध्यानेन परिबृंहितं रंहो वेगो यस्यास्तया भक्त्या निर्मथिता उन्मूलिता अशेषाः कषायाः कामादयो यस्याः सा धिषणा बुद्धिर्यस्य सः । ज्ञानं पुनरध्यगमदित्युत्तरेणान्वयः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन की बुद्धि की विमलता का फल बतलाते हुए सूतजी ने कहा— भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का ध्यान करने से जिसका वेग बढ़ गया था । उस भक्ति के द्वारा, उनकी बुद्धि के सारे विकार विनष्ट हो गये और उन्होंने पुनः ज्ञान प्राप्त कर लिया यह आगे के श्लोक से इसका सम्बन्ध है ।।२९।।

गीतं भगवता ज्ञानं यत्तत्संग्राममूर्धनि । कालकर्मतमोरुद्धं पुनरध्यगमद्विभुः ।।३०।।

अन्वयः— भगवत् संग्राममूर्धनि यत् ज्ञानं गीतं कालकर्मतमोरुद्धं विभुः तत् पुनरध्यगमत् ।।३०।।

अनुवाद— संग्राम के समय भगवान् श्रीकृष्ण जो ज्ञान अर्जुन को दिए थे, वह काल, कर्म तथा भोगाभिनिवेश के कारण विस्मृत सा हो गया था उसको उन्होंने पुनः प्राप्त कर लिया ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

कालेन कर्मभिस्तमसा भोगाभिनिवेशेन च रुद्धमावृतं सत् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

काल, कर्म तथा भोगाभिनिवेश रूपी अज्ञान के कारण वह ज्ञान अवरुद्ध हो गया था उस ज्ञान को अर्जुन ने पुनः प्राप्त कर लिया ।।३०।।

विशोको ब्रह्मसंपत्त्या संछिन्नद्वैतसंशयः । लीनप्रकृतिनैर्गुण्यादलिङ्गत्वादसंभवः ।।३१।।

अन्वयः— ब्रह्मसम्पत्त्या विशोकः संछिन्नद्वैतसंशयः लीनप्रकृतिनैर्गुण्यात् अलिङ्गत्वात् असंभवः ।।३१।।

अनुवाद— ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होते ही वे विशोक हो गये अर्थात् उनके माया का आवरण भङ्ग हो गया। उसके कारण उनका द्वैत रूपी संशय समाप्त हो गया । मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार के ज्ञान होने से अविद्या नामक जो प्रकृति है, वह भी लीन हो जाती है । उसके कारण सूक्ष्म शरीर का भङ्ग हो जाने से वह जन्म मरण के च्रक्र से छूट जाता है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

ज्ञानफलमाह-विशोक इति । एतदेव शोकहेत्वभावेनोपपादयति । शोकस्य हि हेतुर्द्वैतभ्रमस्तस्य देहस्तस्य लिङ्गं तस्य

गुणास्तेषामविद्या । तत्र ब्रह्मसंपत्त्या वेदान्तश्रवणेन ब्रह्माहमिति ज्ञानेन लीना प्रकृतिरविद्या यस्मिंस्तन्नैर्गुण्यं भवति ननु सुषुप्तिप्रलययोरिवाविद्याशेषः । तस्मान्नैर्गुण्याद्गुणकार्यलिङ्गनाशः । अलिङ्गत्वाच्चासंभवः सम्यग्भोगाय भवति पुनःपुनरिति सम्भवः स्थूलदेहस्तद्रहितः । ततश्च तत्परिच्छेदाभावात्संछिन्नो द्वैतलक्षणः संशयो भ्रमो यस्य स विशोको जात इति ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन को जो ज्ञान प्राप्त हो गया था । उस ज्ञान का विशेष फल **विशोक इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । शोक के हेतु के अभाव के द्वारा इसी अर्थ का प्रतिपादन किया जा रहा है । शोक का हेतु द्वैतभ्रम (भेदभ्रम) है । उसका कारण देह है उसका कारण लिङ्ग (कारण) शरीर है । उसका कारण गुण है । उन गुणों का कारण अविद्या है । वेदान्त श्रवण के द्वारा मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार का ज्ञान हो जाता है । उस ज्ञान से प्रकृति के लीन हो जाने से नैर्गुण्य की प्राप्ति हो जाती है । उस समय जिस तरह सुषुप्ति तथा प्रलय काल में अविद्या बची ही रहती है, उस तरह से अविद्या बची नहीं रहती । उसके कारण नैर्गुण्य हो जाने के कारण गुण के कार्य लिङ्ग शरीर का नाश हो जाता है । अलिङ्ग हो जाने के कारण जन्म-मरण का चक्र मिट जाता है । जीव जो भोगों को प्राप्त करने के लिए बार-बार जन्म लेता है उसको सम्भव कहते हैं । अर्थात् स्थूल देह की प्राप्ति अलिङ्ग हो जाने के कारण उस स्थूल देहाभिमान छूट जाता है । फलत: उस परिच्छेद का अभाव हो जाने से उसकी द्वैतभावना विनष्ट हो जाती है अतएव वह विशोक हो जाता है ।।३१।।

निशम्य भगवन्मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च । स्वःपथाय मतिं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ।।३२।।

अन्वयः— भगवन्मार्गं यदुकुलस्य संस्थां च निशम्य निभृतात्मा युधिष्ठिरः स्वपथाय मतिं चक्रे ।।३२।।

अनुवाद— भगवान् के स्वधामगमन, और यदुवंश के विनाश का वृत्तान्त सुनकर निश्चित मति वाले युधिष्ठिर ने स्वर्गारोहण का निश्चय कर लिया ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

भगवतो मार्गमालक्ष्य यदुकुलस्य संस्थां नाशं श्रुत्वा नारदोक्तं चानुस्मृत्य स्वःपथाय स्वर्गमार्गाय । निभृतात्मा निश्चलचित्तः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के मार्ग को जानकर तथा यदुकुल के विनाश को सुनकर एवं नारदजी द्वारा कही गयी बातों का स्मरण करके निश्चल बुद्धि वाले युधिष्ठिर ने स्वर्ग के मार्ग को अपनाने का निश्चय कर लिया ।।३२।।

पृथाप्यनुश्रुत्य धनंजयोदितं नाशं यदूनां भगवद्गतिं च ताम् ।
एकान्तभक्त्या भगवत्यधोक्षजे निवेशितात्मोपरराम संसृतेः ।।३३।।

अन्वयः— धनंजयोदितं यदूनां नाशं भगवद्गतिं च अनुश्रुत्य पृथा अपि एकान्तभक्त्या भगवति अधोक्षजे निवेशितात्मा संसृतेः उपरराम ।।३३।।

अनुवाद— अर्जुन के द्वारा वर्णित यदुवंश के नाश और भगवान् के स्वधाम गमन की बात को सुनकर कुन्ती भी अपनी ऐकान्तिक भक्ति के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण में ही अपने मन को लगाकर संसार चक्र से मुक्त हो गयीं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

तां दुर्विज्ञेयाम् । वक्ष्यति ह्येकादशे- 'सौदामिन्या यथाकाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलम् । गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः' इति । संसृतेरुपरराम जीवन्मुक्ता बभूव । देहं जहाविति वा ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

भगवद् गति को दुर्विज्ञेय बतलाते हुए ग्यारहवें स्कन्ध में कहेंगे भी—

सौदामिन्या यथाकाशे यान्त्या हित्वाभ्रमण्डलम् । गतिर्नलक्ष्यते मर्त्यैः तथा कृष्णस्य दैवतैः ।।

अर्थात् जिस तरह मेघमण्डल को हटाकर जाने वाली विद्युत् की गति जैसे कोई नहीं जान पाता है, उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण की स्वधाम गमन की गति को देवता तथा मनुष्य कोई नहीं जान सका । **संसृतेः उपरराम** का अर्थ है वह जीवन्मुक्त हो गयी अथवा अपने शरीर का त्याग कर दी ।।३३।।

ययाहरद्भुवो भारं तां तनुं विजहावजः । कण्टकं कण्टकेनेव द्वयं चापीशितुः समम् ।।३४।।

अन्वयः— अजः यया भुवो भारम् अहरद् तां तनुं कण्टकं कण्टकेन इव विजहौ द्वयं चापि ईशितुः समम् ।।३४।।

अनुवाद— श्रीभगवान् ने जिस शरीर से पृथिवी के भार को दूर किया उस शरीर को उसी तरह से उन्होंने त्याग दिया जिस तरह से कोई एक काँटे से दूसरे काँटे को निकालकर दोनों को फेंक देता है । क्योंकि दोनों श्रीभगवान् के लिए संहार्य होने के कारण एक समान थे ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

तदेवमुक्तमपि यादवेभ्यो भगवतो वैलक्षण्यमबुद्ध्वा तत्साम्यं वदतो मन्दमतीन्प्रति वैलक्षण्यं स्पष्टयति द्वाभ्याम् । यया यादवरूपया तन्वा भुवो भारं कण्टकेन कण्टकमिवाहरत् । यादवतनुर्भरतनुश्चेति द्वयमपीश्वरस्य संहार्यत्वेन सममेव ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से यह बात बतलायी गयी कि यादवों से भगवान् की विलक्षणता को न जानकर दोनों में समता बतलाने वाले मन्दबुद्धि वालों के प्रति यादवों से भगवान् की विलक्षणता को दो श्लोकों से स्पष्ट करते हैं । जिस यादव रूपी शरीर के द्वारा भगवान् ने पृथिवी के भार को; जिस तरह से कोई एक काँटे से दूसरे काँटे को निकालता है उसी तरह दूर किए और उसके बाद उन्होंने अपने उस शरीर को त्याग दिया । क्योंकि चाहे यादव शरीर हो अथवा पृथिवी का भारभूत शरीर हो ये दोनों श्रीभगवान् के लिए समान रूप से संहार्य थे ।।३४।।

यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्याद्यथा नटः । भूभारः क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरम् ।।३५।।

अन्वयः— यथा भगवान् मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्यात् तथा येन भूभारः क्षपितः तच्च कलेवरम् जहौ ।।३४।।

अनुवाद— जिस तरह श्रीभगवान् मत्स्य आदि रूपों को धारण करते हैं और नट के समान उसका त्याग भी कर देते हैं, उसी तरह से उन्होंने जिस शरीर से पृथिवी के भार को उतारा उस श्रीकृष्ण शरीर का उन्होंने त्याग कर दिया ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णमूर्तेर्विशेषमाह- यथेति । तान्यपि यथा धत्ते जहाति च । तदाह । यथा नटो निजरूपेण स्थितोऽपि रूपान्तराणि धत्तेऽन्तर्धत्ते च तथा तदपि कलेवरं जहौ । अन्तरधादित्यर्थः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीकृष्ण शरीर की विशेषता उन्होंने **यथा० इत्यादि** श्लोक से बतलायी है । जिस तरह से भगवान् मत्स्य इत्यादि रूपों को धारण करते हैं और उनका परित्याग कर देते है । या जैसे नट अपने रूप में स्थित रहकर भी विभिन्न रूपों को धारण करता है और फिर उन रूपों को त्याग देता है । उसी तरह से भगवान् ने भी अपने श्रीकृष्ण शरीर का परित्याग कर दिया ।।३५।।

यदा मुकुन्दो भगवानिमां महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः ।
तदाहरेवाप्रतिबुद्धचेतसामधर्महेतुः कलिरन्वर्तत ॥३६॥

अन्वयः— यदा श्रवणीयसत्कथः भगवान् मुकुन्दः इमां महीम् स्वतन्वा जहौ तदा अहः एव अप्रतिबुद्धचेतसाम् अधर्म हेतुः कलिः अन्ववर्तत ॥३६॥

अनुवाद— जिनकी कथाएँ सुनने के योग्य हैं वे भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले भगवान् मुकुन्द जिस दिन अपने शरीर से इस पृथिवी का परित्याग किए उसी दिन अज्ञानी मनुष्यों को अधर्म में लगाने वाला कलियुग आ गया ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

युधिष्ठिरस्य स्वर्गारोहप्रसङ्गाय कलिप्रवेशमाह-यदेति । स्वतन्वा जहौ । सतनोरेव वैकुण्ठारोहात् । श्रवणार्हा सती कथा यस्य । तदा यदहस्तस्मिन्नेव । अहरिति लुप्तसप्तम्यन्तं पदम् । अप्रतिबुद्धचेतसामविवेकिनां इति । विवेकिनां तु न प्रभुरित्युक्तम्। अन्ववर्ततेति पूर्वमेवांशेन प्रविष्टस्य तेन रूपेणानुवृत्तिरुक्ता ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर के स्वर्गारोहण के प्रसङ्ग को उपन्यस्त करने के लिए **यदा इत्यादि** श्लोक के द्वारा सूतजी कलि के प्रवेश का वर्णन करते हैं । **स्वतन्वा जहौ** का अभिप्राय है कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने शरीर के साथ ही अपने लोक में चले गये । **श्रवणीय सत्कथः** का विग्रह है **श्रवणीया सती कथा यस्य** । अर्थात् श्रीभगवान् की सत्कथा सुनने योग्य है । जिस दिन श्रीभगवान् ने पृथिवी का परित्याग किया उसी दिन पृथिवी पर कलियुग आ गया । **अहः** यह लुप्त सप्तम्यन्त पद है । अविवेकियों द्वारा किए जाने वाले अधर्म का कारण कलि है । कलि अविवेकियों का ही स्वामी है विवेकियों का नहीं । चूकि कलियुग पहले ही अंशतः प्रविष्ट हो गया था । उसी रूप से उसकी अनुवृत्ति यहाँ बतलायी गयी है ॥३६॥

युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणं बुधः पुरे च राष्ट्रे च गृहे तथात्मनि ।
विभाव्य लोभानृतजिह्महिंसनाद्यधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ॥३७॥

अन्वयः— बुधः युधिष्ठिरः तत् परिसर्पणम् पुरे राष्ट्रे, गृहे, तदात्मनि लोभानृतजिह्महिंसनाद्यधर्मचक्रं विभाव्य गमनाय पर्यधात् ॥३७॥

अनुवाद— ज्ञानी युधिष्ठिर उसका (कलिका) प्रसार नगर, राष्ट्र, गृह और प्राणियों में लोभ, असत्य, कपट, हिंसा आदि अधर्म समूह को देखकर महा प्रस्थान करने का निश्चय कर लिए ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

बुधो युधिष्ठिरः । तस्य कलेः परिसर्पणं प्रसरणं विलोक्य । कथंभूतम् । लोभाद्यधर्मचक्रं यस्मिन् । जिह्मं कौटिल्यम्। पर्यधात्तदुचितं परिधानमकरोत् ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

युधिष्ठिर ज्ञानी थे । उन्होंने सर्वत्र कलि के प्रसार को देखा । उस कलि में लोभ, असत्य, छल तथा हिंसा आदि अधर्म समूह विद्यमान था । जिह्म कुटिलता को कहते है । इस प्रकार के कलि को देखकर उन्होंने महाप्रस्थानानुकूल अपने परिधान को धारण कर लिया ॥३७॥

स्वराट् पौत्रं विनयिनमात्मनः सुसमं गुणैः । तोयनीव्याः पतिं भूमेरभ्यषिञ्चद्गजाह्वये ॥३८॥

अन्वयः— स्वराट् गुणैः आत्मनः सुसमं विनयिनं पौत्रम् तोयनीव्याः भूमेः पतिं गजाह्वये अभ्यसिंचत् ॥३८॥

अनुवाद— सम्राट् युधिष्ठिर ने गुणों के विषय में अपने ही समान विनीत अपने पौत्र परीक्षित् को समुद्र पर्यन्त की पृथिवी के स्वामी के रूप में हस्तिनापुर में अभिषिक्त किया ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनः स्वस्य गुणैः सुसममतिसदृशम् । तोयं परिवेषाकारेण सर्वतः समुद्रोदकमेव नीवी परिधानविशेषो यस्यास्तस्या भूमेः पतित्वेनाभिषिक्तवान् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

सम्राट् युधिष्ठिर ने देखा कि उनके पौत्र परीक्षित् में वे सारे गुण विद्यमान हैं जो उनमें हैं, साथ ही वह विनीत भी है इसलिए उन्होंने समुद्र पर्यन्त पृथिवी के स्वामी के रूप में परीक्षित् को हस्तिनापुर में अभिषिक्त कर दिया । **तोपनीव्याः** पद का विग्रह है **तोयम् परिवेषाकारेण सर्वतः स्थितम् समुद्रोदकम् एव नीवी परिधान विशेषो यस्याः तस्याः ॥३८॥**

मथुरायां तथा वज्रं शूरसेनपतिं ततः । प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमग्नीनपिबदीश्वरः ॥३९॥

अन्वयः— तथा मथुरायां शूरसेनाधिपतिं वज्रम् कृत्वा प्राजापत्याम् इष्टिं निरूप्य ईश्वरः अग्नीन् अपिबत् ॥३९॥

अनुवाद— और उन्होंने मथुरा में शूरसेन को पति के रूप में अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को अभिषिक्त करके प्राजापत्य इष्टि की और अग्नियों को उन्होंने अपनी आत्मा में स्थापित कर लिया ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

वज्रमनिरुद्धस्य पुत्रम् । निरूप्य कृत्वेत्यर्थः । अपिवदात्मनि समारोपयामास । ईश्वरः समर्थः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

समर्थ युधिष्ठिर ने अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को शूरसेनाधिपति बनाकर अपनी आत्मा में ही अग्नियों को स्थापित किया ॥३९॥

विसृज्य तत्र तत्सर्वं दुकूलवलयादिकम् । निर्ममो निरहङ्कारः संछिन्नाशेषबन्धनः ॥४०॥

अन्वयः— तत्र तत्सर्वं दुकूलवलयादिकम् विसृज्य निर्ममः निरहङ्कारः संछिन्नाशेष बन्धनः ॥४०॥

अनुवाद— उन्होंने वहीं पर अपने वस्त्र तथा आभूषण इत्यादि को त्याग दिया और ममता तथा अहङ्कार से रहित होकर सारे बान्धन्नों को काट दिया ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

संछिन्नान्यशेषाणि बन्धनान्युपाधयो येन ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

उन्होंने समस्त उपाधियों को काट दिया ॥४०॥

वाचं जुहाव मनसि तत्प्राण इतरे च तम् । मृत्यावपानं सोत्सर्गं तं पञ्चत्वे ह्यजोहवीत् ॥४१॥

अन्वयः— वाचं मनसि जुहाव, तत्प्राणे, तम् च इतरे, सोत्सर्गमपानं मृत्यौ तं पञ्चत्वे अजोहवीत् ॥४१॥

अनुवाद— उन्होंने वाणी को मन में लीन कर दिया, मन को प्राण में, प्राण को अपान में, क्रिया के साथ अपान को मृत्यु में तथा उसको पाँच भौतिक शरीर में लीन कर दिया ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

तदेव दर्शयति द्वाभ्याम् । वाचमित्युपलक्षणम् । सर्वेन्द्रियाणि मनसि प्रविलापितवानित्यर्थः । तच्च मनः प्राणे, प्राणाधीनप्रवृत्तित्वात् । तं च प्राणमितरे अपाने, तेनाकर्षणात् । अपानव्यापार उत्सर्गस्तत्सहितमपानं मृत्यौ तदधिष्ठातृदेवतायाम्। अनेनैव वागादिष्वपि तत्तत्कर्मसाहित्यं ज्ञेयम् । तं मृत्युं पञ्चत्वे पञ्चभूतानामैक्ये देहे । देहस्यैव मृत्युर्नात्मन इति भावितवानित्यर्थः। अजोहवीदिति यङ्लुगन्ताल्लुङि रूपम् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

उसी को **वाचं जुहाव० इत्यादि** दो श्लोकों से स्पष्ट करते हैं । युधिष्ठिर ने वाणी आदि समस्त इन्द्रियों को मन में लीन किया, उसको प्राण में लीन किया, प्राण को अपान में लीन किया क्योंकि अपान प्राण का आकर्षण करता है । अपान का व्यापार उत्सर्ग है । उसके साथ अपान को उन्होंने मृत्यु में अर्थात् मृत्यु के अधिष्ठातृ देवता में लीन किया । इस तरह वाणी आदि को भी उनकी क्रियाओं के साथ ही लीन करने की क्रिया को समझना चाहिए। उस मृत्यु को भी पञ्चभूतों के एकीभूत शरीर में लीन किया । क्योंकि मृत्यु तो देह की ही होती है आत्मा की नहीं । इस तरह से उन्होंने भावना की । अजोहवीत् यह यङ्लगन्त लुङ् लकार का रूप है ।।४१।।

त्रित्वे हुत्वाथ पञ्चत्वं तच्चैकत्वेऽजुहोन्मुनिः । सर्वमात्मन्यजुहवीद्ब्रह्मण्यात्मानमव्यये ।।४२।।

अन्वयः— पञ्चत्वम् त्रित्वे हुत्वा मुनिः तत् च एकत्वे अजुहोत् सर्वम् आत्मनि अजुहवीत्, आत्मानम् अव्यये ब्रह्मणि अजोहवीत् ।।४२।।

अनुवाद— शरीर को मृत्यु रूप जानकर मनन शील युधिष्ठिर ने उसको त्रिगुण में मिला दिया, त्रिगुण को प्रकृति में मिला दिया, सबों के कारण स्वरूप प्रकृति को आत्मा में उन्होंने लीन किया और आत्मा को अविनाशी ब्रह्म में विलीन कर दिया ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

त्रित्वे गुणत्रये पञ्चत्वं देहम् । तच्च त्रित्वमेकत्वे अविद्यायाम् । सर्वं सर्वारोपहेतुमविद्यामात्मनि जीवे । अजोहवीदिति वक्तव्ये अजुहवीदित्यार्षम् । एवं शोधितमात्मानं ब्रह्मण्यव्यये कूटस्थे । न तस्यान्यत्रलय इत्यर्थः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

देह के तीनों गुणों में उन्होंने लीन किया । उन तीनों गुणों को प्रकृति (अविद्या) में लीन किया । अविद्या ही सभी आरोपों का हेतु है । उस अविद्या को उन्होंने आत्मा में लीन किया । **अजोहवीत्** कहना चाहिए किन्तु उसके स्थान में अजुहवीत् यह आर्ष प्रयोग है । इस प्रकार से शोधित आत्मा को उन्होंने कूटस्थ ब्रह्म में लीन किया । आत्मा का ब्रह्मव्यतिरिक्त में लय नहीं हो सकता है ।।४२।।

चीरवासा निराहारो बद्धवाङ्मुक्तमूर्धजः । दर्शयन्नात्मनो रूपं जडोन्मत्तपिशाचवत् ।।४३।।
अनवेक्षमाणो निरगादशृण्वन्बधिरो यथा । उदीचीं प्रविवेशाशां गतपूर्वां महात्मभिः ।।
हृदि ब्रह्म परं ध्यायन्नावर्तेत यतो गतः ।।४४।।

अन्वयः— चीरवासा निराहारः बद्धवाक्, मुक्तमूर्धजः आत्मनः रूपम् जडोन्मत्तपिशाचवत् दर्शयन्, अनपेक्षमाणः बधिरः यथा अशृण्वन् निरगात् । महात्मभिः पूर्वगताम् हृदि परंब्रह्मध्यायन् उदीचीम् आशां प्रविवेश यतो गतः न आवर्तेत ।।४३-४४।।

अनुवाद— उन्होंने शरीर पर चीर वस्त्र धारण कर लिया, आहार का परित्याग कर दिया और मौन धारण कर लिया एवं अपने केशों को खोल दिया, वे अपने रूप को जड, या उन्मत्त या पिशाच के समान दिखाने लगे। वे किसी की अपेक्षा किए बिना ही, बहरे के समान किसी की बात सुने बिना ही घर से निकल पड़े । हृदय में

परब्रह्म का ध्यान करते हुए जिस दिशा में ज्ञानी पुरुष पहले जा चुके हैं उस उत्तर दिशा में वे चले गये । जिस दिशा में जाकर कोई लौटता नहीं है ॥४३-४४॥

भावार्थ दीपिका

तदेवमात्मप्रतिपत्तिमुक्त्वा बाह्यस्थितिमाह- चीरवासा इति द्वाभ्याम् । बद्धवाङ्मौनी । अनवेक्षमाणोऽनुजादिप्रतीक्षामकुर्वन् आशां दिशम् । गतपूर्वां पूर्वं प्रविष्टाम् । महात्मभिर्विवेकवद्भिः । यतो यां दिशं गतः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

इससे पहले के दो श्लोक में आत्मा की स्थिति को बतलाकर सूतजी राजा युधिष्ठिर की वाह्यस्थिति का वर्णन **चीरवासा० इत्यादि** दो श्लोकों में करते है । बद्धवाक् का अर्थ है कि उन्होंने मौन धारण कर लिया । **अनवेक्षमाणः** का अर्थ है कि वे अपने अनुजों की प्रतीक्षा किए बिना ही उस उत्तर दिश में चल दिए जिस दिशा में पहले ज्ञानी पुरुष जा चुके हैं उस दिशा में जाकर कोई पुनः नहीं लौटता है ॥४३-४४॥

सर्वे तमनु निर्जग्मुर्भ्रातरः कृतनिश्चयाः । कलिनाऽधर्ममित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ॥४५॥

अन्वयः— भुवि, प्रजाः अधर्ममित्रेण स्पृष्टाः दृष्ट्वा कृतनिश्चयाः तमनु सर्वे भ्रातरः निर्जग्मुः ॥४५॥

अनुवाद— पृथिवी पर सारी प्रजा को अधर्म के मित्र कलि के द्वारा स्पृष्ट देखकर उनके सभी छोटे भाई भी निश्चय करके उनके पीछे घर से निकल गये ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

अधर्मो मित्रं यस्य तेन ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

जिसका अधर्म ही मित्र है, उस कलि के द्वारा पृथिवी की सारी प्रजाओं को प्रभावित देखकर भीम, अर्जुन आदि युधिष्ठिर के सभी भाई भी घर से निकल गये ॥४३॥

ते साधुकृतसर्वार्था ज्ञात्वात्यन्तिकमात्मनः । मनसा धारयामासुर्वैकुण्ठचरणाम्बुजम् ॥४६॥

अन्वयः— साधुकृतसर्वार्थाः ते आत्मनः आत्यन्तिकं ज्ञात्वा वैकुण्ठचरणाम्बुजम् मनसा धारयामासुः ॥४६॥

अनुवाद— उन लोगों ने जीवन के धर्म आदि समस्त प्रयोजनों को अच्छी तरह से सम्पन्न कर लिया था अतएव आत्मा के अन्तिम शरण रूप से वैकुण्ठाधिपति भगवान् के चरण कमल को जानकर उसीको अपने मन में वे लोग धारण किए ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

साधु सम्यक् कृताः सर्वेऽर्था धर्मादयो यैः । अतएव वैकुण्ठस्य चरणाम्बुजमेवात्यन्तिकं शरणं ज्ञात्वा ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

जीवन का प्रयोजन है अच्छी तरह से धर्मादि का अनुष्ठान । सभी पाण्डव उन सभी प्रयोजनों को पूरा कर लिए थे । उन लोगों ने जान लिया था कि आत्मा के अन्तिम रक्षक श्रीभगवान् के चरण कमल ही है । अतएव उन लोगों ने अपने मन में भगवान् के चरण कमलों को धारण किया ॥४६॥

तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या विशुद्धधिषणाः परे । तस्मिन्नारायणपदे एकान्तमतयो गतिम् ॥४७॥
अवापुर्दुरवापां ते असद्भिर्विषयात्मभिः । विधूतकल्मषास्थानं विरजेनात्मनैव हि ॥४८॥

अन्वयः— तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या परेविशुद्धधिषणाः एकान्तमतयः ते विरजेनात्मनैव हि असद्भि विषयात्मभिः दुरवापाम् गतिम् तस्मिन् नारायणपदे विधूत कल्मषास्थानं अवापुः ॥४७-४८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के चरण कमलों का ध्यान करने के कारण जिनकी भक्ति उद्रिक्त हो गयी थी। फलतः उनकी बुद्धि भी सर्वथा शुद्ध हो गयी थी। उनकी बुद्धि के केवल श्रीभगवान् में ही लगे रहने के कारण वे अपने निष्कल्मष आत्मा के द्वारा उस गति को प्राप्त कर लिए जिसे विषयासक्त कोई भी दुष्ट व्यक्ति नहीं प्राप्त कर सकता है। श्रीभगवान् का चरण ही निष्पाप पुरुष का निवास स्थान है उन्हीं भगवान् नारायण के चरण कमलों को उन लोगों ने प्राप्त कर लिया ॥४७-४८॥

भावार्थ दीपिका

कथंभूते पदे। विधूतकल्मषाणामास्थानं निवासस्थानं यत्तस्मिन्। विरजेनात्मनैव गतिं प्रापुर्नतु षोडशकलेन लिङ्गेन। गतेर्वा विशेषणम्। विरजेनात्मनैवावस्थानरूपां गतिं ते विधूतकल्मषाः प्रापुरिति ॥४७-४८॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् का चरण कमल निष्पाप पुरुषों का निवास स्थान है, उसी में उन लोगों ने गति प्राप्त कर ली। उन लोगों ने रजोगुणादि से रहित ही आत्मा के द्वारा प्राप्त किया, सोलह अवयवों वाले लिङ्ग शरीर से नहीं; क्योंकि उन लोगों के सारे पाप विनष्ट हो गये थे ॥४७-४८॥

विदुरोऽपि परित्यज्य प्रभासे देहमात्मवान्। कृष्णावेशेन तच्चित्तः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ॥४९॥

अन्वयः— आत्मवान् विदुरोऽपि प्रभासे देहं विसृज्य कृष्णावेशेन तच्चितः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ॥४९॥

अनुवाद— प्रभास क्षेत्र में अपने शरीर को त्याग कर भगवान् श्रीकृष्ण की भावना से भूषित चित्त वाले आत्मज्ञ विदुरजी भी पितृगणों के साथ अपने लोक (यमलोक) में चले गये ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

विदुरोऽपि तीर्थान्यटन्प्रभासे श्रीकृष्णावेशेन कृष्णे चित्तमावेश्य देहं परित्यज्य तच्चित्त एव संस्तदानीं नेतुमागतैः पितृभिः सह स्वक्षयं स्वाधिकारस्थानं ययौ ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

तीर्थाटन करते हुए विदरुजी भी प्रभास क्षेत्र में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेमावेश में श्रीकृष्ण में ही अपने चित्त को लगाकर अपने देह का परित्याग करके उनको लेने के लिए आये हुए पितरों के साथ अपने अधिकार स्थान यमलोक में चले गये ॥४९॥

द्रौपदी च तदाज्ञाय पतीनामनपेक्षताम्। वासुदेवे भगवति ह्येकान्तमतिराप तम् ॥५०॥

अन्वयः— द्रौपदी च तदा पतीनाम् अनपेक्षताम् आज्ञाय भगवति वासुदेवे एकान्तमतिः सती तम् आप ॥५०॥

अनुवाद— द्रौपदी ने जब यह जान लिया कि उनके पति उनसे अनपेक्ष हो गये हैं तो उन्होंने अपनी बुद्धि केवल श्रीभगवान् में लगा दी और श्रीभगवान् को ही प्राप्त कर लिया ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

आत्मानं प्रत्यनपेक्षतां तदा ज्ञात्वा तमाप ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

द्रौपदी ने जब जाना कि उनके पति उनसे अपेक्षा रहित हो गये हैं तो उन्होंने अपना मन एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण में लगा दिया और अन्त में उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त कर लिया ॥५०॥

यः श्रद्धयैतद्भगवत्प्रियाणां पाण्डोः सुतानामिति संप्रयाणम् ।
शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम् ॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे पाण्डवस्वर्गारोहरणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अन्वयः— यः भगवत्प्रियाणां पाण्डोः सुतानाम् एतत् अलंस्वस्त्ययनम् पवित्रं इति संप्रयाणम् श्रद्धया शृणोति सः हरौ भक्तिं लब्ध्वा सिद्धिम् उपैति ॥५१॥

अनुवाद— जो व्यक्ति भगवान् के प्रिय पाण्डु के पुत्रों (पाण्डवों) के इस अत्यन्त मङ्गलमय तथा पवित्र महाप्रयाण की कथा को श्रद्धा पूर्वक सुनता है वह निश्चित रूप से भगवान् की भक्ति को प्राप्त करके मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥५१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के पाण्डवस्वर्गारोहण नामक पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

इति एवं यत्संप्रयाणम् । अलमतिशयेन स्वस्त्ययनं मङ्गलास्पदम् । अलं पवित्रं च ॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायाम् टीकायाम् पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

पाण्डवों का यह जो महाप्रयाण है वह अत्यन्त मङ्गलमय है और अत्यन्त पवित्र भी है ॥५१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के पन्द्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥१५॥

* * *

सोलहवाँ अध्याय

पृथिवी धर्मसंवाद

सूत उवाच

ततः परीक्षिद्द्विजवर्यशिक्षया महीं महाभागवतः शशास ह ।
यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः समादिशन्विप्र महद्गुणस्तथा ॥१॥

अन्वयः— हे विप्र ! ततः द्विजवर्यशिक्षया महाभागवतः परीक्षित् महीं शशास सूत्याम् अभिजातकोविदः यथा समादिशन् तथा महद्गुणः ॥१॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— पाण्डवों के परधाम गमन के पश्चात् हे शौनकजी महाभागवत राजा परीक्षित् पृथिवी का प्रशासन श्रेष्ठ ब्राह्मणों की शिक्षा के अनुसार करने लगे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च षोडशे भूमिधर्मयोः कलिखिन्नयोः । संवादे वर्ण्यते प्राप्तिः पालकस्य परीक्षितः । द्विजवर्याणां शिक्षया सदुपदेशेन। सूत्यां जन्मनि । अभिजातकोविदा जातकर्मविदः । हे विप्र, महतां गुणा यस्मिन् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् सोलहवें अध्याय में कलि से खिन्न हुए भूमि तथा धर्म के संवाद का तथा पृथिवी के पालक राजा परीक्षित् का संवाद वर्णित है । श्रेष्ठ ब्राह्मणों के उपदेशानुसार राजा परीक्षित् पृथिवी का प्रशासन करते थे। जन्म के समय ज्योतिषियों ने परीक्षित् के जिन गुणों का वर्णन किया था वे सभी गुण उनमें विद्यमान थे ।।१।।

स उत्तरस्य तनयामुपयेम इरावत्तीम् । जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयत्सुतान् ।।२।।

अन्वयः— सः उत्तरस्य तनयाम् इरावतीम् उपयेमे तस्याम् जनमेजयादीन् चतुरः सुतान् उत्पादयत् ।।२।।

अनुवाद— उन्होंने उत्तर की पुत्री इरावती के साथ विवाह किया और उससे जनमेजय आदि चार पुत्रों को उत्पन्न किया ।।२।।

भावार्थ दीपिका

जनमेजयादीनित्यक्षराधिक्यं छान्दसम् । **'उत्पादयन्'** इति पाठे हेतौ शतृप्रत्ययः । सुतानुत्पादयितुमिरावतीमुपयेम इति वाक्ययोजना ।।२।।

भाव प्रकाशिका

जनमेजयादीन् इत्यादि श्लोक के प्रथम पाद में एक अक्षर अधिक छन्दस प्रयोग होने के कारण है । टिप्पणीकार का कहना है कि **'प्रधानकर्मण्याख्येये न्यादीनामाहुर्द्विकर्मणाम् ।' इत्यादि** के समान नव अक्षरों का एक चरण वाला यह अनुष्टुप् विशेष है । उत्पादयत् इस पाठ में हेतु के अर्थ में शतृप्रत्यय समझना चाहिए । उन्होंने पुत्रों को उत्पन्न करने के लिए इरावती के साथ विवाह किया यह वाक्य योजना है ।।२।।

आजहाराश्वमेधांस्त्रीन् गङ्गायां भूरिदक्षिणान् । शारद्वतं गुरुं कृत्वा देवा यत्राक्षगोचराः ।।३।।

अन्वयः— सः शारद्वतं गुरुं कृत्वा गङ्गायाम्त्रीन् अश्वमेधान् आजहार यत्र देवा अक्षगोचराः ।।३।।

अनुवाद— उन्होंने कृपाचार्य को गुरु बनाकर गङ्गा के तट पर तीन अश्वमेध यज्ञों को किया, उस यज्ञ में देवता प्रकट होकर पूजा ग्रहण करते थे ।।३।।

भावार्थ दीपिका

आजहार कृतवानित्यर्थः । शारद्वतं कृपम् । यत्र येष्वश्वमेधेषु देवा दृष्टिगोचरा बभूवुः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

शारद्वत कृपाचार्य का नाम है । परीक्षित् ने कृपाचार्य को अपना गुरु बनाकर गङ्गा के तट पर तीन अश्वमेध यज्ञों को किया उन यज्ञों में देवता प्रत्यक्ष रहते थे ।।३।।

निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित् । नृपलिङ्गधरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा ।।४।।

अन्वयः— सः वीरः क्वचित् दिग्विजये नृप लिङ्गधरं शूद्रं पदा गोमिथुनं घ्नन्तम् कलिम् ओजसा निजग्राह ।।४।।

अनुवाद— वीर राजा परीक्षित् एक बार दिग्विजय के प्रसङ्ग में राजा का रूप बनाये हुए एक शूद्र को जो अपने पैरों से दो गौ के जोड़े को मारते हुए देखा और उसको बलपूर्वक पकड़कर उन्होंने दण्डित किया ।।४।।

भावार्थ दीपिका

निजग्राह निगृहीतवान् । कलिमेव निर्दिशति-नृपेति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

उन्होंने कलि को ही निगृहीत किया । वह राजा का चिह्न धारण किए हुए था और एक गौ और एक बैल को पैर से मार रहा था ।।४।।

शौनक उवाच

कस्य हेतोर्निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः। नृदेवचिह्नधृक् शूद्रः कोऽसौ गां यः पदाऽहनत्॥५॥
तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम्। अथवाऽस्य पदाम्भोजमकरन्दलिहां सताम्॥६॥

अन्वयः— दिग्विजये नृपः कलिं कस्य हेतो केवलं निजग्राह (हतवान् नहि यतः) असौ नृदेवचिह्नधृक् शूद्रःकः यः गां पदा अहनत् । हे महाभाग ! यदि कृष्ण कथाश्रयम् अथवा अस्य पदाम्भोजमकरन्दलिहां सताम् तत्कथ्यताम् ॥५-६॥

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— दिग्विजय के प्रसङ्ग में राजा ने कलि को केवल दण्ड ही देकर क्यों छोड़ दिया, उसे मारा क्यों नहीं ? एक तो वह राजा का चिह्न धारण किए हुए था दूसरे शूद्र था और गौ को अपने पैरों से मार रहा था उसको नहीं मारने का कारण क्या था ? हे महाभाग सूतजी यदि इस वृत्तान्त का सम्बन्ध भगवान् की कथा से हो अथवा श्रीभगवान् के चरण कमलों के पराग का पान करने वाले सन्तों से इसका सम्बन्ध हो तो इसको आप मुझे बतलाइये ॥५-६॥

भावार्थ दीपिका

कस्य हेतोरति । अयमर्थः- कलिं कस्माद्धेतोः केवलं निजग्राह नतु हतवान् । यतोऽसौ शूद्रः अतिकुत्सितः । यो गां पदाऽहनदहन्निति । अस्य विष्णोः पदाम्भोजयोर्मकरन्दस्तं लिहन्त्यास्वादयन्ति ये तेषां सतां महतां वा कथाश्रयमिति समासान्निष्कृष्टस्यानुषङ्गः । तर्हि कथ्यताम् ॥५-६॥

भाव प्रकाशिका

शौनकजी के **कस्य हेतोः** कहने का अभिप्राय है कि राजा परिक्षित् कलि का केवल निग्रह करके क्यों छोड़ दिये ? और उसको मारे नहीं । क्योंकि एक तो वह अत्यन्त निन्दित शूद्र था और वह पैर से गौ के जोड़े को मारता था, अतएव उसका तो उन्हे वध ही कर देना चाहिए था । इस बात का यदि भगवान् की कथा से सम्बन्ध हो अथवा भगवान् विष्णु के चरणारविन्द के पराग का रस पान करने वाले सन्तों की कथा से सम्बन्ध हो तो बतलाइये ॥५-६॥

किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः। क्षुद्रायुषां नृणामङ्ग मर्त्यानामृतमिच्छताम् ॥
इहोपहूतो भगवान्मृत्युः शामित्रकर्मणि ॥७॥

अन्वयः— अन्यै असदालापैः किम् यद् आयुषः असद् व्यर्थः । हे अङ्गः । क्षुद्रायुषाम् मर्त्यानाम् नृणाम् ऋतम् इच्छताम् इह भगवान् मृत्युः उपहूतः ॥७॥

अनुवाद— दूसरी व्यर्थ की बातों से क्या लाभ है ? उससे तो आयु व्यर्थ में ही नष्ट हो जाती है । हे अङ्ग मरणशील मनुष्य होकर भी जो लोग मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं उन लोगों के ही कल्याण के लिए यहाँ इस शोमित्र कर्म में यमराज को नियुक्त किया गया है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

नो चेत्किमन्यैरसद्भिरालापैः । यद्यैरायुषो वृथा क्षयः । अस्माकमयं सत्रप्रयत्नोऽपि हरिकथामृतपानार्थ एवेत्याह सार्धाभ्याम्। क्षुद्रमल्पमायुर्येषाम् । अतो मर्त्यानां मरणधर्मवताम् । तथापि ऋतं सत्यं मोक्षमिच्छताम् । यो मृत्युः स इह सत्रे शमितुरिदं शामित्रं कर्म पशुहिंसनं तदर्थमुपहूतः । ततः आह-न कश्चिदिति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

यदि इसका भगवान् अथवा भागवतों की कथा से सम्बन्ध हो अन्यथा दूसरे व्यर्थ की बातों से क्या लाभ

है ? क्योंकि उन सभी बातों से तो व्यर्थ ही में आयु का क्षय ही होना है । हमलोगों का यह सत्र करने का प्रयोजन श्रीहरि की कथा रूपी अमृत का पान करना है । इस बात को डेढ श्लोक से कहा गया है । मरणशील मनुष्यों की आयु तो अत्यल्प है किन्तु ऐसा होकर भी जो लोग मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं । उनके कल्याण के लिए यह शामित्र कर्म आयोजित है । जो मृत्यु है उसको शान्त करने के लिए यह शामित्र कर्म है । इसमें पशुओं की हिंसा नहीं होने वाली है । इसीलिये यहाँ यमराज को आहूत किया गया है । अतएव व्यर्थ की बातों को करने से कोई लाभ नहीं है । इस बात को **न कश्चित्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ॥७॥

न कश्चिन्म्रियते तावद्यावदास्त इहान्तकः। एतदर्थं हि भगवानाहूतः परमर्षिभिः ॥
अहो नृलोके पीयेत हरिलीलामृतं वचः ॥८॥

अन्वयः— यावद् इहान्तकः तावत् कश्चित् न म्रियते । एतदर्थं हि परमर्षिभिः भगवान् आहूतः । अहो नृलोके हरिलीलामृतं वचः पीयेते ॥८॥

अनुवाद— जब तक यहाँ पर यमराज हैं तब तक कोई नहीं मरेगा । इसीलिए परमर्षियों ने भगवान् को यहाँ आहूत किया है । जिसका बड़ा ही भाग्य होता है वही मनुष्य लोक में श्रीहरि के लीलामृत का पान करने का अवसर प्राप्त करता है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

ततोऽपि किमत आह । अहो नृलोके हरिलीलामृतं वचः पीयेतेत्येतदर्थम् । हरिलीलैवामृतं यस्मिंस्तत् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

उससे भी क्या लाभ है तो उसके उत्तर में कहते हैं, **अहोनृलोके० इत्यादि** इस संसार में रहने वाले मनुष्य का सबसे बड़ा भाग्य यही है कि वह इस लोक में श्रीहरि की लीलामृत से युक्त वाणी का श्रवण करे । ऐसी वाणी जिसमें श्रीहरि की लीला रूपी अमृत विद्यमान हो ॥८॥

मन्दस्य मन्दप्रज्ञस्य वयो मन्दायुषश्च वै । निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः ॥९॥

अन्वयः— मन्दायुषः मन्दस्य, मन्दप्रज्ञस्य आयुः नक्तं निद्रया दिवा च व्यर्थकर्मभिः ह्रियते ॥९॥

अनुवाद— अल्पआयु वाले मनुष्य जो मन्द हैं अर्थात् आलासी हैं तथा उनकी बुद्धि भी अल्प होती है, ऐसे मनुष्य की आयु रात्रि में सोने में और दिन में व्यर्थ के कर्मों को करने में ही बीत जाती हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तदभावे वृथैव जीवनमित्याह । मन्दस्यालसस्य । नक्तं रात्रौ यद्वय आयुस्तन्निद्रया ह्रियते । दिवा अह्नि च यद्वयस्तद्व्यर्थकर्मभिरपह्रियते ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में बतलाया जा रहा है कि लीलामृत पान के बिना जीवन व्यर्थ ही हो जाता है । कम आयु वाले आलसी मनुष्य की आयु रात्रि में सोने में ही बीत जाती है और दिन में वह व्यर्थ के कर्मों को करने में ही अपनी आयु बिता देता है ॥९॥

सूत उवाच

यदा परीक्षित्कुरुजाङ्गले वसन्कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिते ।
निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः शरासनं संयुगशौण्डिराददे ॥१०॥

अन्वयः— यदा कुरुजाङ्गले वसन परीक्षित् निज चक्रवर्तिते कलिं प्रविष्टां अनतिप्रियां वार्तां निशम्य ततः संयुगशौण्डिः सः शरासनम् आददे ॥१०॥

अनुवाद— कुरुजाङ्गल प्रदेश में रहते हुए राजा परीक्षित् ने अपने राज्य में कलि के प्रवेश विषयक वार्ता को सुना तो उन्हें कष्ट भी हुआ और प्रसन्नता भी हुयी कि इसी बहाने मुझे युद्ध करने का अवसर मिला। उसके पश्चात् युद्ध करने में निपुण वे अपने हाथ में धनुष को उठा लिए ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तावत्कलिनिग्रहप्रसङ्गमाह-यदेति। यदा निजचक्रवर्तिते स्वसेनया पालिते देशे कलिं प्रविष्टं शुश्राव, तदा तामनतिप्रियां वार्तां किंचित्प्रियाम्। च युद्धकौतुकसंपत्तेः निशम्य ततः शरासनं दुष्टनिग्रहार्थमाददे। संयुगे शौण्डिर्युद्धे प्रगल्भः। पाठान्तरे युद्धे शौरिः कृष्णतुल्यः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम सूतजी कलियुग के निग्रह के प्रसङ्ग को **यदा इत्यादि** श्लोक से उपन्यस्त करते हैं। जब राजा परिक्षित् अपनी सेना के द्वारा पालित देश में कलि के प्रवेश की बात को सुने तो उनको यह बात कुछ प्रिय भी लगी, क्योंकि उनको युद्ध करने का कुतूहल हो गया। उसके पश्चात् दुष्टों का निग्रह करने के लिए उन्होंने धनुष को उठा लिया। **संयुग शौडिः** शब्द का अर्थ है युद्ध करने में निपुण जहाँ **संयुगशौरिः** पाठ है वहाँ अर्थ होगा युद्ध करने में कृष्ण के समान ॥१०॥

स्वलंकृतं श्यामतुरङ्गयोजितं रथं मृगेन्द्रध्वजमाश्रितः पुरात्।
वृतो रथाश्वद्विपपत्तियुक्तया स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ॥११॥

अन्वयः— स्वलंकृतम्, श्यामतुरङ्गयोजितं मृगेन्द्रध्वजम् रथम् आश्रितः रथाश्वद्विपपत्ति युक्तया सेनाया परिवृतः दिग्विजयाय पुरात् निर्गतः ॥११॥

अनुवाद— जिसमें श्याम वर्ण के अश्व जुते थे ऐसे अलंकृत तथा सिंह के चिह्न से चिह्नित ध्वज वाले रथ पर सवार होकर रथ, अश्व, हाथी और पैदल सेना से घिरे हुए वे अपनी सेना के साथ दिग्विजय प्राप्त करने के लिए अपने नगर से निकल पड़े ॥११॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च दिग्विजयाय निर्गतः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

दुष्ट कलि का निग्रह करने के लिए राजा अपनी सेना के साथ अपनी नगरी से निकल पड़े ॥११॥

भद्राश्वं केतुमालं च भारतं चोत्तरान्कुरून्। किंपुरुषादीनि वर्षाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥१२॥

अन्वयः— भद्राश्वं, केतुमालं च भारतं, उत्तरान्कुरुन्, किंपुरुषादीनि, वर्षाणि विजित्य, बलिं जगृहे ॥१२॥

अनुवाद— भद्राश्ववर्ष, केतुमालवर्ष, भारतवर्ष, उत्तरकुरुवर्ष, किंपुरुषवर्ष आदि वर्षों को जितकर उन सबों में उन्होंने उपहार प्राप्त किया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

भद्राश्वादीनि पूर्वपश्चिमदक्षिणोत्तरतः समुद्रलग्नानि वर्षाणि। मेरोः सर्वत इलावृतम्। तत उत्तरतो रम्यकं हिरण्मयं च। दक्षिणतो हरिवर्षं किंपुरुषं च। तानि विजित्य ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण समुद्र से सटे हुए भद्राश्व आदि वर्षों को उन्होंने जीत लिया और वहाँ

उन्होंने उपहार भी प्राप्त किया। सुमेरु पर्वत के चारो ओर इलावृत वर्ष है, सुमेरु पर्वत की उत्तर दिशा में रम्यक और हिरण्यमय वर्ष है। सुमेरु के दक्षिण दिशा में हरिवर्ष और कुरुवर्ष है। इन सबों को जीतकर वे उपहार प्राप्त किए ।।१२।।

तत्र तत्रोपशृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम्। प्रगीयमानं च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम् ।।१३।।
आत्मानं च परित्रातमश्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः। स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे।।१४।।
तेभ्यः परमसंतुष्टः प्रीत्युज्जृम्भितलोचनः। महाधनानि वासांसि ददौ हारान्महामनाः ।।१५।।

अन्वयः— तत्र तत्र स्वपूर्वेषां महात्मनाम् कृष्णमाहात्म्य सूचकम् प्रगीयमानं यशः उपशृण्वन्, अश्वथाम्नः अस्त्रतेजसः, परित्रातम् आत्मानं, स्नेहं च वृष्णिपार्थानाम् तेषां केशवे भक्तिम् च उपशृण्वन्, तेभ्यः परमसंतुष्टः, प्रीत्युजृम्भितलोचनः महाधनानि वासांसि हारान् च ददौ ।।१३-१५।।

अनुवाद— उन्होंने स्थान-स्थान पर अपने पूर्वज महात्माओं का भगवान् श्रीकृष्ण के माहात्म्य सूचक गाये जाते हुए यश सुनते हुए, अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र के तेज से भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा रक्षित अपने को, यदुवंशियों और पाण्डवों में परस्पर में होने वाले प्रेम को तथा पाण्डवों की भगवान् श्रीकृष्ण में होने वाली भक्ति को वे सुने इन सभी बातों को करने वाले लोगों से राजा अत्यन्त सन्तुष्ट थे। प्रेमातिरेक के कारण उनके नेत्रकमल विकसित हो गये और महामनस्वी राजा परीक्षित् ने उन लोगों को बहुमूल्य वस्त्रों को तथा हारों को प्रदान किया ।।१३-१५।।

भावार्थ दीपिका

प्रगीयमानं यशः यशआदीनि शृण्वंस्तेभ्यो ददाविति तृतीयेनान्वयः ।।१३-१५।।

भाव प्रकाशिका

गाये जाने वाले यश को लोगों के मुख से राजा परीक्षित् ने सुना। उन यश आदि को सुन कर वे महामनस्वी प्रसन्न हो गये तथा उन लोगों को बहुमूल्य वस्त्रों एवं हारों को प्रदान किए ।।१३-१५।।

सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्यवीरासनानुगमनस्तवनप्रणामम् ।
स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत्प्रणतिं च विष्णोर्भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविन्दे ।।१६।।

अन्वयः— सारथ्य-पारषद-सेवन-सख्य-दौत्य-वीरासन-अनुगमन्-स्तवन-प्रणामम्-स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत् प्रणतिं च शृण्वन् नृपतिः विष्णोः चरणारविन्दे भक्तिं करोति ।।१६।।

अनुवाद— उन यशोगान करने वाले लोगों के मुख से राजा परीक्षित् ने सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण प्रेमातिरेक के कारण, पाण्डवों के सारथि बन गये, उनके सभापति बने, वे पाण्डवों की सेवा भी करते थे, वे पाण्डवों के सखा बने तथा पाण्डवों के दूत बनने का भी काम किए रात्रि को भगवान् हाथ में खड्ग लेकर पाण्डवों के शिविर की रक्षा रात्रि में करते थे, पाण्डवों के पीछे-पीछे चलते थे, पाण्डवों की स्तुति करते थे तथा पाण्डवों को प्रणाम भी करते थे। वे अपने स्नेहपात्र पाण्डवों के चरणों में संसार को झुका दिये। इन सारी बातों को सुनकर राजा परीक्षित् भगवान् विष्णु के चरणकमलों में भक्ति करते थे ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

किञ्च स्निग्धेषु पाण्डवेषु विष्णोर्यानि सारथ्यादीनि कर्माणि तानि शृण्वन्। तथा विष्णोर्जगत्कर्तृकां प्रणतिं च शृण्वन्। नृपतिः। परीक्षिद्विष्णोश्चरणारविन्दे भक्तिं करोति स्म। पारषदमिति रेफषकारयोर्विश्लेषश्छान्दसः। तत्र पार्षदं सभापतित्वम्। सेवनं चित्तानुवृत्तिः। वीरासनं रात्रौ खड्गहस्तस्य तिष्ठतो जागरणम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

उन्होंने यशोगान करने वाले लोगों के मुख से सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने स्नेह के पात्र पाण्डवों के सारथि आदि का भी काम किए । उन्होंने यह भी सुना कि भगवान् ने सम्पूर्ण जगत् को पाण्डवों के चरणों में झुकाकर प्रणाम करवाया । वे रात्रि में अपने हाथ में खड्ग धारण करके पाण्डवों के शिविर की रक्षा भी करते थे । इन सारी बातों को सुनकर राजा परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों की भक्ति करते थे ।।१६।।

तस्यैवं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्वहम् । नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासीतन्निबोध मे ।।१७।।

अन्वयः— एवं पूर्वेषाम् अन्वहम् वृत्तिम् वर्तमानस्य, नातिदूरे किल यत् आश्चर्यम् आसीत् तत् मे निबोध ।।१७।।

अनुवाद— इस तरह से अपने पूर्वजों की वृत्ति का प्रतिदिन अनुवर्तन करने वाले राजा के साथ बहुत जल्दी ही जो आश्चर्यकारी घटना हुयी, उस आश्चर्य को आप मुझसे सुनें ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

वृत्तिमनुवर्तमानस्य सतः । नातिदूरे शीघ्रमेव ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् भी अपने पूर्वज पाण्डवों की ही वृत्ति का अनुगमन करते थे । उनके जीवन में शीघ्र ही जो आश्चर्यकारी घटना हुयी उसको आप मुझसे सुनें ।।१७।।

धर्मः पदैकेन चरन्विच्छायामुपलभ्य गाम् । पृच्छति स्माश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ।।१८।।

अन्वयः— एकेन पद चरन् धर्मः, विच्छायां गाम् उपलभ्य, विवत्साम् मातरम् इव अश्रुवदनाम् उपलभ्य पृच्छति स्म ।।१८।।

अनुवाद— बैल का रूप धारण करके एक पैर से चलता हुआ धर्म मृतवत्सा माता के समान दुःखी पृथिवी से मिलकर पूछे ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

धर्मो वृषरूपः । विच्छायां हतप्रभाम् । गां गोरूपां पृथ्वीम् । विवत्सां नष्टापत्याम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

वृष का रूप धारण किए धर्म, जो एक पैर पर चल रहा था, वह गौ रूप धारिणी पृथिवी से मिला । वह गौ जिसका बच्चा मर गया हो ऐसी निष्प्रभ माता के समान गौ से पूछा ।।१८।।

धर्म उवाच

कच्चिद्भद्रेऽनामयमात्मनस्ते विच्छायाऽसि म्लायतेषन्मुखेन ।
आलक्षये भवतीमन्तराधिं दूरे बन्धुं शोचसि कंचनाम्ब ।।१९।।

अन्वयः— भद्रे ! कच्चित् ते आत्मनः अनामयम् ? ईषत् म्लायता मुखेन विच्छायासि, भवतीम् अन्तराधिम् आलक्षये। अम्ब ! कञ्चन दूरे बन्धुं शोचसि ।।१९।।

धर्म ने कहा

अनुवाद— हे भद्रे ! तुम्हारा कुशल तो है न ! कुछ मलीन होते हुए मुख के कारण तुम श्रीहीन प्रतीत होती हो, लगता है तुम्हारे मन में बहुत अधिक कष्ट है । हे अम्ब ! तुम अपने किसी दूर देश में विद्यमान अपने बान्धव को सोच रही हो क्या ?।।१९।।

भावार्थ दीपिका

ते आत्मनो देहस्य यद्यपि वहिरामयो न लक्ष्यते तथाप्यन्तर्मध्ये आधिः पीडा यस्यास्तां त्वामालक्षये । केन । यतो विच्छायासि, अत ईषन्म्लायता वैवर्ण्यं भजता मुखेन लिङ्गेन । तत्र कारणानि कल्पयन्पृच्छति–दूरेबन्धुमित्यादिपञ्चभिः । दूरे स्थितं बन्धुम् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

वृष रूपधारी धर्म ने कहा कि तुम्हारे शरीर में तो कोई रोग नही दिखता है, लेकिन मुझे लगता है कि तुम्हारे मन में बहुत अधिक पीडा है, इसीलिए तुम श्रीहीन सी प्रतीत हो रही हो । यह तुम्हारे थोड़ा सा मलिन पड़े हुए मुख के कारण प्रतीत होता है । उसके विषय में कारण की कल्पना करते हुए **दूरे बन्धुम्० इत्यादि** पाञ्च श्लोकों से वह पूछता है दूर देश में विद्यमान किसी अपने बन्धु के विषय में सोचती हो क्या ?।।१९।।

पादैर्न्यूनं शोचसि मैकपादमात्मानं वा वृषलैर्भोक्ष्यमाणम् ।
आहो सुरादीन्हृतयज्ञभागान्प्रजा उतस्विन्मघवत्यर्षति ।।२०।।

अन्वयः— पादैः न्यूनम् एकपादं माम् शोचसि वा वृषलैः भोक्ष्यमाणम् आत्मानं शोचसि । आहो हृतयज्ञभागान् सुरान् शोचसि, उतस्वित् अवर्षति मघवति शोचसि ।।२०।।

अनुवाद— क्या तीन पादों के विनष्ट हो जाने के कारण एक पैर वाले मेरे विषय में सोचती हो क्या ? अथवा अपने विषय में सोच रही हो कि मेरे ऊपर शूद्र प्रशासन करेंगे ? अथवा जिनके यज्ञों का भाग छिन लिया गया है, उन देवताओं के विषय में तुम सोच रही हो क्या ? अथवा इन्द्र के द्वारा वर्षा नहीं किए जाने के कारण अकाल से पीड़ित अपने विषय में तुम सोच रही हो ?।।२०।।

भावार्थ दीपिका

त्रिभिः पादैर्न्यूनमत एवैकपादम् । मा मां मल्लक्षणं जनमित्यर्थः । वृषलैरित ऊर्ध्वं भोक्ष्यमाणम् । पुंस्त्वमात्मपदविशेषणत्वात् । हृता यज्ञभागा येषां तान् । यज्ञाद्यकरणात् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

तीन पैरों के नहीं रहने के कारण एक पैर वाले मेरे विषय में सोचती हो क्या ? मेरे जैसे व्यक्ति के विषय में सोचती हो ? अब इसके बाद मेरे ऊपर प्रशासन शूद्र करेंगे यह सोचकर दुःखी हो क्या ? मे आत्मा पद का विशेषण होने के कारण भोक्ष्यमाणम् में पुल्लिङ्ग है यज्ञ आदि के नहीं किए जाने के कारण जिनके भाग अपहृत हो गये हैं ऐसे देवताओं के विषय में सोच रही हो क्या ?।।२०।।

अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालान् शोचस्यथो पुरुषादैरिवार्तान् ।
वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्मण्यब्रह्मण्ये राजकुले कुलाग्र्यान् ।।२१।।

अन्वयः— हे उर्वि देवि ! अरक्ष्यमाणाः स्त्रियः अथो पुरुषादैः इव आर्तान् बालान् शोचसि ? कुकर्मणि ब्रह्मकुले वाचं देवीं शोचसि, वा अब्रह्मण्ये राजकुले शोचसि, अथवा कुलाग्र्यान् शोचसि ।।२१।।

अनुवाद— हे पृथिवी देवि ! आप क्या पतियों के द्वारा जिनकी रक्षा नहीं की जा रही है, उन स्त्रियों के विषय में सोच रही हैं, अथवा राक्षस के समान पिताओं के द्वारा आर्त बने हुए बालकों के विषय में सोचती हो? अथवा निन्दित कर्म करने वाले ब्राह्मणों के हाथ में पड़ी हुयी विद्यादेवी के विषय में आप सोच रही हो । या नास्तिक राजाओं के विषय में आप सोच रही हो, अथवा श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न दुःखी ब्राह्मणों के विषय में आप सोच रही हो ?।।२१।।

भावार्थ दीपिका

हे उर्वि पृथ्वि, भर्तृभिररक्ष्यमाणाः स्त्रियः पितृभिररक्ष्यमाणान्बालान्प्रत्युत तैरेव निर्दयैरार्तान् क्लिष्टान् । वाचं देवीं सरस्वतीं कुकर्मणि दुराचारे स्थितान् । कुलाग्र्यान्ब्राह्मणोत्तमान्सेवकान् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

हे पृथिवी ! आप क्या पतियों के द्वारा जिनकी रक्षा नहीं की जा रही है उन स्त्रियों के विषय में सोच रही हो ? अथवा अपने पिता के द्वारा जिनकी रक्षा नही की जा रही है उन बालकों के विषय में सोच रही हो ? जिन बालकों के पिता ही राक्षसों के समान उन बालकों को अत्यधिक कष्ट देते है, उन बालकों के विषय में सोच रही हो अथवा दुराचारी ब्राह्मणों के हाथ में पड़ी हुयी सरस्वती देवी के विषय में सोचती हो ? अथवा ब्राह्मणों के द्रोही राजाओं के विषय में सोचती हो ? या सेवक बने हुए ब्राह्मणों के विषय में तुम सोचती हों ?।।२१।।

किं क्षत्रबन्धून्कलिनोपसृष्टान् राष्ट्राणि वा तैरवतोषितानि ।
इतस्ततो वाशनपानवासः स्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ।।२२।।

अन्वयः— किं कलिना उपसृष्टान् क्षत्रबन्धून् वातैः अवरोपितानि राष्ट्राणि वा अशन-पान स्नान व्यवावायोन्मुखम् जीवलोकम् शोचसि ।।२२।।

अनुवाद— आप कलि दोष से व्याप्त राजाओं को या उन सबों से व्याप्त राष्ट्रों को; खान-पान-निवास-स्नान तथा मैथुन के विषय में मनमानी करने वाले मनुष्यों के विषय में सोच रही हैं क्या ?।।२२।।

भावार्थ दीपिका

उपसृष्टन् व्याप्तान् अवरोपितान्युद्धासितानि । व्यवायो मैथुनम् । इतस्ततो निषेधानादरेण सर्वतोऽशनादिषून्मुखं प्रवर्तमानं जीवलोकं वा ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

उपसृष्ट पद व्याप्त का बोधक है, अवरोपितानि का अर्थ है विनष्ट कर दिए गये । व्यवाय का अर्थ है मैथुन इन सबों के विषय में जो शास्त्रों में नियम बतलाये गये हैं, उन सबों का अनादर करने वाले जीव समूह के विषय में आप सोच रही हैं क्या ?।।२२।।

यद्वाम्ब ते भूरिभरावतारकृतावतारस्य हरेर्धरित्रि ।
अन्तर्हितस्य स्मरती विसृष्टा कर्माणि निर्वाणविलम्बितानि ।।२३।।

अन्वयः— यद्वा हे धारित्रि अम्ब ते भूरिभारकृतावतारस्य अन्तर्हितस्य हरेः स्मरती विसृष्टाऽसि कर्माणि शोचसि ?।।२३।।

अनुवाद— अथवा हे धरती माँ आपके अत्यधिक भार को दूर करने के लिए अवतार ग्रहण करने वाले श्रीभगवान् के अन्तर्धान हुए श्रीहरि को स्मरण कर रही हो, जिन श्रीहरि ने तुमको त्याग दिया है, जिनकी लीलाएँ मोक्षकामी पुरुषों के आश्रय हैं, उन श्रीहरि के विषय में शोच रही हो क्या ?।।२३।।

भावार्थ दीपिका

हे अम्ब मातः हे धरित्रि, ते तव यो भूरिभारस्तस्यावतारणार्थं कृतावतारस्य कर्माणि स्मरन्ती तेन विसृष्टा सती शोचसि। निर्वाणं विलम्बितमाश्रितं येषु तानि । पाठान्तरे निर्वाणं विडम्बितमुपहसितं यैः । मोक्षादप्यधिकसुखानीत्यर्थः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

हे मातः पृथिवी ! तुम्हारे ऊपर जब बहुत भार बढ़ जाता है उस समय तुम्हारे भारातिशय्य को दूर करने के लिए श्रीभगवान् अवतार ग्रहण करते हैं । जहाँ पर **निर्वाण विडम्बितानि** पाठ हैं उसका अर्थ होगा कि मोक्ष

से भी अधिक सुख देते हैं । तथा जो भगवान् तुमको छोड़कर अपने लोक में चले गये हैं उनके विषय में तुम सोचती हो क्या ?॥२३॥

इदं ममाचक्ष्व तवाधिमूलं वसुन्धरे येन विकर्शितासि ।
कालेन वा ते बलिनां बलीयसा सुरार्चितं किं हृतमम्ब सौभगम् ॥२४॥

अन्वयः— हे वसुन्धरे ! येन त्वं विकर्शितासि इदं तवाधिमूलम् मम आचक्ष्व, हे अम्ब ! बलिनाम् बलियसा कालेन ते सुरार्चितम् सौभागम् हृतम् शोचसि ॥२४॥

अनुवाद— हे भूदेवि ! आप तो धनधान्य की खान हैं । जिसके कारण आप इतना दुखी है, अपनी उस अन्तर्व्यथा का कारण मुझे बतलाइये । अथवा सभी बतलवानों से भी बलवान् काल ने देवताओं से पूजित जो आपका सौभाग्य है उसको आप से छिन लिया है उसके विषय में आप दु:खी हैं ?॥२४॥

भावार्थ दीपिका

हे अम्ब, ते सौभाग्यं कालेन वा हृतम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

धर्म ने कहा कि आप तो वसुन्धरा हैं, अर्थात् समस्त धन-धान्यों की खान हैं, आप इतना दु:खी क्यों हैं? क्या आप देवताओं के द्वारा भी पूजित होने वाले अपने सौभाग्य के विषय में सोच रही हैं जिसको काल ने आपसे छिन लिया है ? काल के समान तो कोई भी बलवान् नहीं है । आप उसी के विषय में सोचकर दु:खी हो रही हैं क्या ?॥२४॥

धरण्युवाच

भवान्हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपृच्छसि । चतुर्भिर्वर्तसे येन पादैर्लोकसुखावहैः ॥२५॥

अन्वयः— हे धर्म ! भवान् हि यत् मामनु पृच्छसि तत् सर्वं वेद येन त्वम् चतुर्भिः लोकसुखावहैः पादैः वर्तसे ॥२५॥

अनुवाद— पृथिवी ने कहा हे धर्म ! आप जो कुछ मुझसे पूछ रहे हैं वह सबकुछ आप जानते हैं, क्योंकि संसार को सुख प्रदान करने वाले आपके चार चरण हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

भवान् जानात्येव तथापि वक्ष्यामीत्याह । येन हेतुभूतेन त्वं चतुर्भिः पादैर्वर्तसे । यत्र च सत्यादयो महागुणा न वियन्ति (न क्षीयन्ते स्म) तेन श्रीनिवासेन रहितं लोकं शोचमीति षष्ठेनान्वयः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी ने कहा— आप तो जानते ही हैं, फिर भी मुझसे पूछे रहे हैं, तो मैं आपको बतला रही हूँ क्योंकि आपके चार चरण हैं, और वे सभी चरण संसार को सुख देने वाले हैं जिन श्रीभगवान् के सत्यादि गुण कभी क्षीण नहीं होते हैं, उन भगवान् श्रीनिवास से रहित हो गया है संसार; उस संसार के विषय में मैं सोचती हूँ इस श्लोक का सम्बन्ध आगे के छठे श्लोक से हैं ॥२५॥

सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः संतोष आर्जवम् ।
शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम् ॥२६॥
ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यं तेजो बलं स्मृतिः । स्वातन्त्र्यं कौशलं कान्तिर्धैर्यं मार्दवमेव च ॥२७॥
प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः। गाम्भीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मानोऽनहंकृतिः॥२८॥

एते चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणाः। प्रार्थ्या महत्त्वमिच्छद्भिर्न वियन्ति स्म कर्हिचित्॥२९॥
तेनाहं गुणपात्रेण श्रीनिवासेन सांप्रतम्। शोचमि रहितं लोकं पाप्मना कलिनेक्षितम्॥३०॥

अन्वयः— सत्यं, शौचम् दया, क्षान्तिः, त्यागः, सन्तोषः आर्जवम्, शमः दमः, तपः साम्यम्, तितिक्षा उपरतिः, श्रुतम्, ज्ञानम्, विरक्तिः, ऐश्वर्यम्, शौर्यं तेजः बलं स्मृतिः, स्वातंत्र्यम्, कौशलम्, कान्तिः, धैर्यम्, मार्दवम्, प्रागल्भ्यं, प्रश्रयः, शीलम् सह, ओजः, बलम्, भगः, गाम्भीर्यम्, स्थैर्यम्, आस्तिक्यम्, कीर्तिः मानः, अनहंकृतिः, एते च अन्ये च महत्त्वम् इच्छद्भिः प्रार्थ्याः महागुणाः यत्र नित्याः कदाचन न वियन्ति। तेन गुणपात्रेण श्रीनिवासेन रहितं पाप्मना कलिना ईक्षितम् लोकम् पश्यन् शोचामि ॥२९-३०॥

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् में सत्य, पवित्रता, दया, क्षमा, त्याग, सन्तोष, सरलता, शम, दम, तप, समता, तितिक्षा, उपरति, शास्त्रविचार, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, शौर्य, तेज, बल, स्मृति, स्वतन्त्रता, कौशल, कान्ति, धैर्य, कोमलता, निर्भीकता, विनय, शील, साहस, उत्साह, बल, सौभाग्य, गम्भीरता, स्थिरता, आस्तिकता, कीर्ति, गौरव और अहङ्कार राहित्य ये जो अप्राकृत गुण हैं, तथा महत्त्वाकांक्षी पुरुषों के द्वारा वांछित महान् गुण कभी क्षीण नहीं होते हैं, उन सभी गुणों के एक मात्र आश्रय श्रीभगवान् से रहित और पापी कलियुग के द्वारा दृष्ट संसार के विषय में सोचती हूँ ॥२९-३०॥

भावार्थ दीपिका

सत्यं यथार्थभाषणम्। शौचं शुद्धत्वम्। दया परदुःखासहनम्। क्षान्तिः क्रोधप्राप्तौ चित्तसंयमनम्। त्यागोऽर्थिषु मुक्तहस्तता। संतोषोऽलंबुद्धिः। आर्जवमवक्रता। शमो मनोनैश्चल्यम्। दमो बाह्येन्द्रियनैश्चल्यम्। तपः स्वधर्मः। साम्यं शत्रुमित्राद्यभावः। तितिक्षा परापराधसहनम्। उपरतिर्लाभप्राप्तावौदासीन्यम्। श्रुतं शास्त्रविचारः। ज्ञानमात्मविषयम्। विरक्तिर्वैतृष्ण्यम्। ऐश्वर्यं नियन्तृत्वम्। शौर्यं संग्रामोत्साहः। तेजः प्रभावः। बलं दक्षत्वम्। स्मृतिः कर्तव्याकर्तव्यार्थानुसन्धानम्। स्वातन्त्र्यमपराधीनता। कौशलं क्रियानिपुणता। कान्तिः सौन्दर्यम्। धैर्यमव्याकुलता। मार्दवं चित्ताकाठिन्यम्। प्रागल्भ्यं प्रतिभातिशयः। प्रश्रयो विनयः। शीलं सुस्वभावः। सहओजोबलानि मनसो ज्ञानेन्द्रियाणां कर्मेन्द्रियाणां च पाटवानि। भगो भोगास्पदत्वम्। गाम्भीर्यमक्षोभ्यत्वम्। स्थैर्यमचञ्चलता। आस्तिक्यं श्रद्धा। कीर्तिर्यशः। मानः पूज्यत्वम्। अनहंकृतिर्गर्वाभावः। एते एकोनचत्वारिंशत्। अन्ये च ब्रह्मण्यशरण्यत्वादयो महान्तो गुणा यस्मिन्नित्याः सहजा न वियन्ति न क्षीयन्ते स्म। तेन गुणपात्रेण गुणालयेन। पाप्मना पापहेतुना ॥२९-३०॥

भाव प्रकाशिका

यथार्थ बात को कहने को सत्य कहते हैं, शुद्धता को ही शौच कहते हैं, दूसरे के दुःख को नहीं सह सकने को दया कहते हैं, क्रोध हो जाने पर भी चित्त को संयमित करके क्षमाकर देने को क्षान्ति कहते हैं, मुक्त हस्त होकर अर्थियों को देने को त्याग कहते हैं, अब और नहीं चाहिए इस प्रकार की बुद्धि को सन्तोष कहते हैं। सीधे पन को आर्जव कहते हैं, मन की निश्चलता को शम कहते हैं बाह्येन्द्रियों को अपने वश में रखने को दम कहते हैं अपने धर्म के पालन को तप कहते है, शत्रु तथा मित्र के भाव से रहित होकर सबों को एक समान देखने को साम्य कहते है, दूसरे के अपराध को सहने को तितिक्षा कहते हैं। लाभ की प्राप्ति होने पर भी उससे उदासीन बने रहने को उपरति कहते हैं। शास्त्रों के चिन्तन को श्रुत कहते हैं। आत्मविषयक ज्ञान को ज्ञान कहते हैं, किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा का नहीं होना ही विरक्ति है। नियामकता को ऐश्वर्य कहते हैं। संग्राम में सदा उत्साह के बने रहने को शौर्य कहते हैं। प्रभाव सम्पन्नता को तेज कहते हैं। दक्षता (निपुणता) को बल कहते हैं। करने योग्य तथा नहीं करने योग्य के विचार को स्मृति कहते हैं। विषयों के पराधीन नहीं रहने को स्वातन्त्र्य कहते हैं, कार्यों को करने की निपुणता को कौशल कहते हैं, सौन्दर्य को कान्ति कहते हैं। व्याकुल न होने को

धैर्य कहते है । चित्त की कठिनता का न होने को ही मार्दव कहते हैं । प्रतिभा की अतिशयता को प्रागल्भ्य कहते हैं, नम्रता को प्रश्रय कहते हैं, स्वभाव के सुन्दर होने को शील कहते हैं, सह, ओज एवं बल इन तीनों से मन, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियों में कार्य करने की क्षमता बढ़ती है । भोग की योग्यता को भग कहते हैं । क्षोभ राहित्य को गाम्भीर्य कहते हैं । चाञ्चल्य राहित्य को स्थैर्य कहते हैं, श्रद्धा को ही अस्तिक्य कहते हैं । यश को ही कीर्ति कहते हैं, पूज्यत्व को मान कहते हैं । गर्व के अभाव को अनहंकृति कहते हैं ।

ये श्रीभगवान् के उनतालिस दिव्य गुण हैं । इसके अतिरिक्त उनमें ब्रह्मण्य (ब्राह्मणों का भक्त होना) शरण्य (रक्षक होना), इत्यादि महान् गुण सदैव बने रहते हैं, अतएव उनके ये गुण स्वाभाविक है । उनके ये गुण कभी भी क्षीण नहीं होते हैं । इन सभी गुणों के एक मात्र आश्रय हैं श्रीभगवान् तथा कलियुग । सारे पापों का साधन है । उस पापकारी कलियुग की दृष्टि के विषय बने हुए जगत् के विषय में मैं सोचती हूँ ।।२६-३०।।

आत्मानं चानुशोचामि भगवन्तं चामरोत्तमम् । देवान्पितृनृषीन्साधून्सर्वान्वर्णांस्तथाश्रमान् ।।३१।।

अन्वयः— अहम्, आत्मानम्, अमरोत्तमम् भवन्तम्, देवान् पितृन् ऋषीन् साधून् तथा सर्वान् वर्णान् अनुशोचामि ।।३१।।

अनुवाद— मैं अपने विषय में, देवताओं में श्रेष्ठ आपके विषय में, देवताओं, पितरों, ऋषियों, साधुजनों तथा सभी ब्राह्मणादि वर्णों के विषय में सोच रही हूँ ।।३१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी ने कहा कि मैं अपने विषय में, आप (धर्म) के विषय में, देवताओं, पितरों, ऋषियों, साधुओं तथा ब्राह्मणादि सभी वर्णों के विषय में चिन्तित हूँ । क्योंकि पापी कलियुग इन सबों को दूषित कर देने वाला है ।।३१।।

ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपाङ्गमोक्षकामास्तपः समचरन्भगवत्प्रपन्नाः ।
सा श्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता ।।३२।।

अन्वयः— यदपाङ्गमोक्षकामाः भगवत् प्रपन्नाः ब्रह्मादयः बहुतिथं तपः समचरन् सा श्रीः स्ववासम् अरविन्दवनम् विहाय अनुरक्ता सती यत्पादसौभगम् अलं भजते ।।३२।।

अनुवाद— जिस लक्ष्मी जी का कृपा कटाक्ष प्राप्त करने के लिए श्रीभगवान् के शरणागत ब्रह्मा इत्यादि उत्तम देवता बहुत समय तक तपस्या किए वे ही लक्ष्मीजी अपने निवास स्थान कमल वन का परित्याग कर प्रेम पूर्वक अनुरक्त होकर श्रीभगवान् के चरण कमलों के सौन्दर्य का सदा सेवन करती हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

तस्य विरहो दुःसह इत्याह चतुर्भिः । ब्रह्मादयो यस्याः श्रियोऽपाङ्गमोक्षः स्वस्मिन् दृष्टिपातस्तत्कामाः सन्तो बहुतिथं बहुकालं तपः समचरन्सम्यक्चरन्ति स्म । भगवद्भिरुत्तमैः प्रपन्ना आश्रितापि सा श्रीर्यस्य पादलावण्यमलमनुरक्ता सती सेवते ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

उन श्रीभगवान् के विरह को सह पाना अत्यन्त कठिन है इस बात को पृथिवी देवी ने **ब्रह्मादयः इत्यादि** चार श्लोकों से कहा है । **ब्रह्मा इत्यादि** देवता जिस श्रीदेवी के कृपाकटाक्ष को प्राप्त करने के लिए बहुत दिनों तक तपस्या किए वे उन उत्तम देवताओं के आश्रय रूप से जाने जाने पर भी श्रीदेवि जिन भगवान् के चरणों के सौन्दर्य से आकृष्ट होकर उनके चरणों में अत्यधिक अनुरक्त रहकर उन दोनों चरणों की सेवा करती हैं, उन श्रीभगवान् के विरह को सह पाना अत्यन्त कठिन है ।।३२।।

तस्याहमब्जकुलिशांकुशकेतुकेतैः श्रीमत्पदैर्भगवतः समलंकृताङ्गी ।
त्रीनत्यरोच उपलभ्य ततो विभूतिं लोकान्स मां व्यसृजदुत्स्मयतीं तदन्ते ॥३३॥

अन्वयः— तस्य अब्जकुलिशाङ्कुश केतुकेतैः श्रीमत्पदैः समलंकृताङ्गी सती भगवतः विभूतिम् उपलभ्य त्रीन् लोकान् अत्यरोचे, तदन्ते उत्समयन्तीं मां व्यसृजत् ।।३३।।

अनुवाद— उन श्रीभगवान् के कमल, वज्र, अङ्कुश, ध्वजा आदि के चिह्नों से चिह्नित श्रीचरणों से विभूषित होने के कारण मुझे बहुत अधिक वैभव की प्राप्ति हुयी थी । मैं तीनों लोकों से भी अधिक सुशोभित हो गयी थी । उसके नाशक समय आ जाने पर अत्यधिक गर्विली मुझको श्रीभगवान् ने त्याग दिया ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

तस्य भगवतः श्रीमद्भिः पदैः । केतुर्ध्वजः । अब्जादयः केताश्चिह्नानि येषां तैः । यद्वा अब्जादीनामाश्रयैः सम्यगलंकृतमङ्गं यस्याः साऽहं ततो भगवतो विभूतिं संपदमुपलभ्य प्राप्य त्रीन् लोकानतिक्रम्य अरोचे शोभितवत्यस्मि । पश्चात्तस्या विभूतेरन्ते नाशकाले प्राप्ते सत्युत्स्मयन्तीं गर्वं कुर्वाणां मां स व्यसृजत्त्यक्तवान् ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

कमल, वज्र, अङ्कुश तथा ध्वजा इत्यादि के चिह्नों से युक्त शोभा सम्पन्न श्रीभगवान् के चरणों से अथवा कमल आदि के आश्रयभूत श्रीभगवान् के चरणों से मेरे अङ्ग अच्छी तरह से अलंकृत हो गये थे । इस प्रकार की मैं श्रीभगवान् से विभूति को प्राप्त करके तीनों लोकों से भी अधिक सुशोभित होने लग गयी थी । उसके पश्चात् मेरी उस विभूति के नाश का काल आने पर मैं अपने पर गर्व करने लग गयी थी यह देखकर लगता है कि श्रीभगवान् ने मुझे त्याग दिया है ।।३३।।

यो वै ममातिभरमासुरवंशराज्ञामक्षौहिणीशतमपानुददात्मतन्त्रः ।
त्वां दुःस्थमूनपदमात्मनि पौरुषेण संपादयन्यदुषु रम्यमबिभ्रदङ्गम् ॥३४॥

अन्वयः— यो वै आत्मतन्त्रः आसुरवंशराज्ञाम् मम् अतिभरम् अक्षौहिणीशतम् अपानुदत् ऊन पदम् दुःस्थम् त्वाम् पौरुषेण आत्मनि सम्पादयन् युदुषु रम्यम् अङ्गम् अबिभ्रत् ।।३४।।

अनुवाद— स्वतन्त्र रहने वाले जो परमात्मा आसुर वंश में उत्पन्न राजाओं के मेरे ऊपर अत्यन्त भार स्वरूप सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाओं को विनष्ट कर दिए तथा पैरों के कम हो जाने के कारण तुमको अपने पौरुष से सर्वाङ्ग पूर्ण बना देने की इच्छा से जिन्होंने यदुवंश में अत्यन्त मनोहर शरीर वाले के रूप में अवतीर्ण हुए उन श्रीभगवान् के विरह को सह पाना अत्यन्त कठिन हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

किंच यो वै आसुरो वंशो येषां तेषां राज्ञामक्षौहिणीशतरूपं ममातिभरं भारमपनीतवान् । त्वां चोनपदत्वाद्दुःस्थं सन्तं पौरुषेण पुरुषकारेणात्मनि स्वस्मिन् संपूर्णपदं सुस्थं संपादयन् । 'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' इति हेतौ शतृप्रत्ययः । संपादयितुमित्यर्थः। अविभ्रत् धृतवानित्यर्थः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् तो स्वतंत्र है । अतएव वे हमारे ऊपर भार बने हुए जिन असुर वंश वाले राजाओं की सैकड़ों अक्षौहिणी सेना थी उनकी उस सेना को भगवान् ने विनष्ट करके मेरे अत्यधिक भार को दूर कर दिया, तथा तीन पैरों के कम होने के कारण तुम दुःखी थे, तुमको अपने ही पौरुष से पूर्ण बनाने के लिए जिन भगवान् ने अत्यन्त सुन्दर शरीर धारण करके यदुवंश में अवतार ग्रहण किया उन भगवान् के विरह को सह पाना अत्यन्त कठिन है।

सम्पादयन् पद में **लक्षण हेत्वोः क्रियया:** इस सूत्र से हेतु के अर्थ में शतृप्रत्यय हुआ है और उसका अर्थ है सम्पादित करने के लिए ।।३४।।

का वा सहेत विरहं पुरुषोत्तमस्य प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः ।
स्थैर्यं समानमहरन्मधुमानिनीनां रोमोत्सवो मम यदङ्घ्रिविटङ्किताया: ।।३५।।

अन्वयः— यः प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः मधुमानिनीनां समानम् स्थैर्यं अहरत् यदङ्घ्रिविटङ्कितायाः मम रोमोत्सवः तस्य पुरुषोत्तमस्य विरहं का वा सहेत ।।३५।।

अनुवाद— जिन्होंने अपने प्रेम पूर्ण दृष्टिपात मधुर मुसकान तथा प्रेमभरी बातों से मधुमानिनियों सत्यमामा इत्यादि के मान के साथ-साथ उनके धैर्य को भी छिन लिया तथा जिनके चरण कमलों के संस्पर्श से निरन्तर रोमाञ्चित मैं आनन्दमग्न रहती थे उन पुरुषोत्तम भगवान् के विरह को कौन बर्दास्त कर सकती है ?।।३५।।

भावार्थ दीपिका

तस्य विरहं का वा सहेत । प्रेमावलोकश्च रुचिरस्मितं च वल्गुजल्पश्च तैर्मधुमानिनीनां सत्यभामादीनां समानं गर्वसहितं स्थैर्यं स्तब्धत्वं योऽहरत् । यस्याङ्घ्रिणा रजस्युत्थितेन विटङ्किताया अलंकृतायाः सस्यादिमिषेण रोमोत्सवो भवति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

उन पुरुषोत्तम भगवान् के विरह को कौन रमणी बर्दास्त कर सकती है ? जिन भगवान् ने अपने प्रेमपूर्वक चितवन, मधुर मुस्कान और मनोहर बातों से सत्यभामा इत्यादि द्वारकापुरी की मानिनियों के मान के साथ-साथ उनके धैर्य को भी अपहृत कर लिया तथा जिनके चरणों से निकली धूलि से अलंकृत मुझको सस्य सम्पत्ति के व्याज से रोमोत्सव हो जाया करता था ।।३५।।

तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा । परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे पृथ्वीधर्मसंवादो नाम षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

अन्वयः— तयोः पृथिवी धर्मयोः एवं कथयतोः तदा परीक्षित् नाम राजर्षिः प्राचीं सरस्वतीम् प्राप्तः ।।१६।।

अनुवाद— जिस समय वे दोनों पृथिवी और धर्म आपस में इस तरह से बातें कर रहे थे उसी समय परीक्षित् नामक राजर्षि प्राची सरस्वती में आ गये ।।३६।।

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के पृथिवीधर्मसंवाद नामक सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

कथयतोः सतोः प्राचीं पूर्ववाहिनीं सरस्वतीं कुरुक्षेत्रे ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से जब धर्म और पृथिवी परस्पर में बातें कर ही रहे थे उसी समय पूर्व बाहिनी सरस्वती कुरुक्षेत्र में परीक्षित् नामक राजर्षि आ गये ।।३६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के सोलहवें अध्याय की भावार्थदीपिका नामक टीका की भावप्रकाशिका नामक शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१६।।

सत्रहवाँ अध्याय

महाराज परीक्षित् द्वारा कलियुग का निग्रह

सूत उवाच

तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् । दण्डहस्तं च वृषलं ददृशे नृपलाञ्छनम् ।।१।।

अन्वयः— तत्र राजा नृपलाञ्छनम् दण्डहस्तं वृषलम् गोमिथुनम् अनाथवत् हन्यमानम् ददृशे ।।१।।

अनुवाद— वहाँ पर राजा परीक्षित् ने देखा कि राजा का वेष बनाये हुए कोई शूद्र अपने हाथ में दण्डा लेकर गौ और बैल के जोड़े को ऐसे पीट रहा था जैसे वे अनाथ हों ।।१।।

भावार्थ दीपिका

ततः सप्तदशे राज्ञः कलेर्निग्रह उच्यते । तस्यैवं वीर्यभाजोऽपि वैराग्यं वक्तुमद्भुतम् ।। हन्यमानं ताड्यमानम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

सोलहवें अध्याय के बाद सत्रहवें अध्याय में राजा परीक्षित् के द्वारा कलि के निग्रह का वर्णन इसलिए किया जा रहा है कि इस तरह के पराक्रम से सम्पन्न राजा परीक्षित् के अद्भुत वैराग्य का आगे वर्णन किया जा सके।

ताड्यमानम् का अर्थ मारे जाते हुए है । अर्थात् वह शूद्र गौ और बैल के जोड़े को बड़ी ही निर्दयता के साथ मार रहा था ।।१।।

वृषं मृणालधवलं मेहन्तमिव बिभ्यतम् । वेपमानं पदैकेन सीदन्तं शूद्रताडितम् ।।२।।

अन्वयः— शूद्रताडितम् तदैकेन सीदन्तम् विभ्यतम्, वेपमानम् मेहन्तमिव मृणालधवलं वृषं ददृशे ।।२।।

अनुवाद— एक पैर से खड़ा तथा दुःखी भयभीत, काँपते हुए तथा डर के मारे मूत्र त्याग करते हुए मृणाल तन्तु के समान श्वेत वर्ण के बैल को शूद्र के द्वारा पीटे जाते हुए राजा ने देखा ।।२।।

भावार्थ दीपिका

मृणालं पद्मकन्दस्तद्वद्धवलम् । भयान्मेहन्तं मूत्रयन्तम् । इवेत्यनेन पादावशेषो धर्मो भयान्मूत्रयन्निव प्रतिक्षणं क्षीयमाणांशस्तस्याप्यनिर्वाहात्कम्पमान इवेति दर्शितम् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

कमल के डंठल के समान श्वेत वर्ण के तथा भय के कारण मूत्र त्याग करते हुए के समान बैल को राजा ने देखा । यह कहकर बतलाया गया है कि जिसका केवल एक ही पैर बचा था और वह भय के कारण मूत्र त्याग कर रहा था अर्थात् प्रत्येक क्षण क्षीण होता जा रहा था । बचे हुए धर्म के अंश का निर्वाह नहीं होने के कारण जैसे वह काँप रहा हो ।।२।।

गां च धर्मदुघां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम् । विवत्सां साश्रुवदनां क्षामां यवसमिछतीम् ।।३।।

अन्वयः— धर्मदुघां दीनाम् भृशंशूद्रपदाहताम्, विवत्सां साश्रुवदनाम् क्षामां यवसम् इच्छन्तीम् गां च ददृशे ।।३।।

अनुवाद— धर्म के साधनभूत दूध दधि घृत इत्यादि को पैदा करने वाली, दीन, शूद्र के पैरों द्वारा बहुत अधिक प्रताडित, बछड़े रहित, जिसकी आंखों से आसू बह रहे थे, दुर्बल, तथा भूख के कारण घास खाना चाहने वाली गौ को राजा ने देखा ।।३।।

भावार्थ दीपिका— धर्मदुघां हविर्दोग्ध्रीम् । क्षामां कृशाम् । यवसं तृणम् । अत्र सस्यादिप्रसवक्षयाद्विवत्सेव । यज्ञाद्यभावात् कृशा । अतएव यज्ञभागमिच्छन्ती पृथ्वीति सूचितम् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

धर्मदुघां का अर्थ है हविष्य को उत्पन्न करने वाली, क्षामाम् अर्थात् अत्यन्त दुर्बल, यवस अर्थात् तृण खाना चाहने वाली, सस्यादि के नहीं उत्पन्न करने के कारण विवत्सा के समान पृथिवी थी । यज्ञ इत्यादि के नहीं होने के कारण वह कृश थी, अतएव यज्ञ के भाग को प्राप्त करना चाहती थी पृथिवी, इस अर्थ को भी सूचित किया गया है ।।३।।

पप्रच्छ रथमारूढः कार्तस्वरपरिच्छदम् । मेघगम्भीरया वाचा समारोपितकार्मुकः ।।४।।

अन्वयः— कार्तस्वरपरिच्छदम् रथम् आरूढः समारोपितकार्मुकः राजा मेघगम्भीरया वाचा पप्रच्छ ।।४।।

अनुवाद— सुवर्ण जटित रथ पर बैठे हुए और धनुष को चढ़ाये हुए राजा ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से पूछा ।।४।।

भावार्थ दीपिका

कार्तस्वरं सुवर्णं तन्मयः परिच्छदः यस्य । स्वर्णनिबद्धमित्यर्थः । सज्जीकृतकार्मुकः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् सुवर्णमय परिच्छदों से युक्त रथ पर बैठे हुए थे और धनुष को चढ़ाये हुए थे । उन्होंने उस शूद्र से मेघ की गर्जना के समान गम्भीर वाणी से पूछा ।।४।।

कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यबलान्बली । नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणाऽद्विजः ।।५।।

अन्वयः— मच्छरणे लोके त्वं कः यः बली सन् बलात् अबलान् हंसि ? नटवत् वेषेण नरदेवः, किन्तु कर्मणा अद्विजः असि ?।।५।।

अनुवाद— अरे तुम कौन हो ? जो मेरे राज्य में बलवान् होकर भी बलपूर्वक दुर्बल पशुओं को मार रहे हो ? तुम नट के समान राजा का वेष बनाये हो किन्तु तुम्हारा कर्म शूद्र का है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

हंसि घातयसि । राजाहमिति चेत्तत्राह । नट इव वेषमात्रेण नरदेवोऽसि । कर्मणा त्वद्विजः शूद्रः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

हंसि घातयसि । अर्थात् तुम कौन हो ? जो इन दुर्बल पशुओं को मार रहे हो ? यदि कहो कि मैं राजा हूँ तो ऐसी बात नहीं है तुम किसी नट के समान राजा का वेष बनाये हो, तुम्हारा कर्म तो शूद्र का है ।।५।।

कस्त्वं कृष्णे गते दूरं सहगाण्डीवधन्वना । शोच्योऽस्यशोच्यान् रहसि प्रहरन्वधमर्हसि ।।६।।

अन्वयः— गाण्डीवधन्वना सह कृष्णे दूरं गते त्वम् कः यः रहसि अशोच्यान् प्रहरन् शोच्योऽसि अतः वधम् अर्हसि ।।६।।

अनुवाद— गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के परंधाम गमन कर जाने पर तुम कौन हो ? जो एकान्त में निरपराधों को मार रहे हो, अतएव तुम वध कर दिए जाने के योग्य हो ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अशोच्यान्निरपराधान् रहसि यस्त्वं प्रहरन् प्रहरसि स शोच्यः सापराधोऽस्यतो वधमर्हसि ।।६।।

भाव प्रकाशिका

निर्जन स्थान में निरपराध जीवों को मारने वाले तुम अपराधी हो अतएव तुम वध कर दिए जाने के

त्वं वा मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् । वृषरूपेण किं कश्चिद्देवो नः परिखेदयन् ॥७॥

अन्वयः— मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् नः परिखेदयन् वृषरूपेण कश्चिद् देवः किम् ?॥७॥

अनुवाद— कमल नाल के समान श्वेत वर्ण वाले, तीन पैरों से रहित होने पर भी एक ही पैर से संचरण करने वाले तथा मुझको अत्यधिक चिन्तित बनाने वाले आप कोई देवता हैं क्या ? इस तरह से राजा ने धर्म से पूछा ॥७॥

भावार्थ दीपिका

वृषं प्रत्याह । त्वं वा कः । स्वयमेव संभावयति । किं कश्चिद्देवो वृषरूपेणास्मान् परिखेदयन् वर्तसे ॥७॥

भाव प्रकाशिका

राजा ने धर्म से पूछा कि आप कौन हैं ? राजा ने स्वयम् ही विचार करते हुए कहा क्या आप कोई देवता है ? जिससे हमें चिन्तित बना रहे हैं क्योंकि आपके तीन पैर नहीं है एक ही पैर से आप चल फिर रहे हैं यही देखकर मुझको कष्ट हो रहा है ॥७॥

न जातु पौरवेन्द्राणां दोर्दण्डपरिरम्भिते । भूतलेऽनुपतन्त्यस्मिन्विना ते प्राणिनां शुचः ॥८॥

अन्वयः— पैरवेन्द्राणाम् दोर्दण्डपरिरम्भिते अस्मिन् भूतले ते विना प्राणिनां शुचः जातु न अनुपतन्ति ॥८॥

अनुवाद— पुरुवंशी राजाओं की भुजाओं से संरक्षित इस भूतल पर आपको छोड़कर किसी भी प्राणी के शोकाश्रु नहीं गिरते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

दोर्दण्डैः परिरम्भिते परिरम्भितवत्सुरक्षिते ते शुचोऽश्रूणि विनान्येषामश्रूणि नानुपतन्तीति खेदहेतुत्वं दर्शितम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

भुजाओं से परिरम्भित आर्थात् परिरम्भित के समान सुरक्षित इस पृथिवी पर, आपकी शोकाश्रुओं को छोड़कर किसी दूसरे प्राणी के शोकाश्रु नहीं गिरते हैं । नानुपतन्ति पद के द्वारा राजा को होने वाले खेद के कारण को बतलाया गया है ॥८॥

मा सौरभेयानुशुचो व्येतु ते वृषलाद्भयम् । मा रोदीरम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ॥९॥

अन्वयः— हे सौरभेय ! मा अनुशुचः ते वृषलद्भयं व्येतु । हे अम्ब ! खलानांशास्तरि मयि मा रोदीः ते भद्रम् अस्तु ॥९॥

अनुवाद— हे सौरभेय (धेनुपुत्र) अब आप शोक न करें, इस शूद्र से आप निर्भय हो जायँ । हे गो माता मैं दुष्टों को दण्डित करने वाला हूँ, मेरे रहते आप न रोएँ । आपका कल्याण हो ॥९॥

भावार्थ दीपिका

एवमुक्ते पुनरपि शोचन्तं प्रत्याह । भो सुरभेः पुत्र, मा शुचः शोकं मा कुरु । व्येतु अपयातु । गां प्रत्याह । हे अम्ब मातः, शास्तरि मयि जीवति सति ते भद्रमेवाऽतो मा रोदीः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से कहने के पश्चात् भी शोक करने वाले धर्म से राजा ने कहा हे धेनुपुत्र ! आप शोक न करें। आप इस शूद्र से निर्भय रहें । गाय से राजा ने कहा आप न रोएँ । जब तक मैं जीवित हूँ तब तक आपका कल्याण हो । व्येतु पद का अर्थ दूर हो जाय है ॥९॥

यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यन्ते साध्वयसाधुभिः । तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगो गतिः ॥१०॥

अन्वयः— हे साध्वि ! यस्य राष्ट्रे सर्वाः प्रजाः असाधुभिः त्रस्यन्ते तस्य मत्तस्य कीर्तिः आयुः भगः गतिश्च नश्यन्ति ॥१०॥

अनुवाद— हे देवि ! जिस राजा के राज्य में दुष्टों के उपद्रव के कारण प्रजायें भयभीत रहती हैं, उस राजा के यश, आयु, भोग तथा परलोक नष्ट हो जाते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

मद्धितार्थमेवैनं हनिष्यामि न तवोपकारायेत्याह-यस्येति द्वाभ्याम् । हे साध्वि, सर्वा याः काश्चिदपीत्यर्थः असाधुभिस्त्रस्यन्ते पीड्यन्त इत्यर्थः । भगो भाग्यम् । गति परलोकः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इस शूद्र का वध मैं अपने ही कल्याण के लिए करूँगा तुम्हारा उपकार करने के लिए नहीं । इस बात को राजा ने **यस्य इत्यादि** दो श्लोकों से कहा । हे साध्वि ! अर्थात् हे देवि ! जिस राजा के राज्य में सारी प्रजायें दुष्टों के उत्पात के कारण भयभीत रहती हैं, उस राजा के यश, आयु और भग (भाग्य) तथा परलोक ये सबके सब विनष्ट हो जाते हैं ॥१०॥

एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः । अत एनं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥११॥

अन्वयः— आर्तानाम् अर्तिनाशनम् एष हि राज्ञां परमो धर्मः । अतः भूतद्रुहम् असत्तमम् एनं वाधिष्यामि ॥११॥

अनुवाद— दुखियों के दुःख को दूर करना यही राजाओं का सबसे बड़ा धर्म है, अतएव महादुष्ट और प्राणियों को पीड़ित करने वाले इस शूद्र का मैं वध करूँगा ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नही है ॥११॥

भाव प्रकाशिका

राजा ने कहा कि मैं इस बात को जानता हूँ कि राजाओं का यह सबसे बड़ा धर्म है कि वे दुखियों के दुःख को दूर करें । यह शूद्र महादुष्ट है और प्रजाओं से द्रोह करता है अतएव मैं इसका वध कर देता हूँ ॥११॥

कोऽवृश्चत्तव पादांस्त्रीन्सौरभेय चतुष्पद । माभूवंस्त्वादृशा राष्ट्रे राज्ञां कृष्णानुवर्तिनाम् ॥१२॥

अन्वयः— हे चतुष्पद सौरभेय ! तव त्रीन् पादान् कः अवृश्चत् कृष्णानुवर्तिनां राज्ञां राष्टे त्वादृशाः मा भुवन् ॥१२॥

अनुवाद— हे चार पैर वाले सुरभिनन्दन ! आपके तीन पैरों को किसने काट दिया है ? भगवान् श्रीकृष्ण के अनुयायी राजाओं के राज्य में आपके जैसे दुःखी किसी को भी नहीं होना चाहिए ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

पुनरपि शोचन्तं वृषं प्रत्याह । कः अवृश्चच्चिच्छेद । त्वादृशास्त्वद्विधा दुःखिताः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

शोक करते हुए वृष से राजा ने फिर कहा आपके तीन् पैरों को किसने काटा है ? मैं भगवान् श्रीकृष्ण का अनुयायी राजा हूँ । मेरे राज्य मैं आपके जैसे दुःखी किसी को भी नहीं होना चाहिए ॥१२॥

आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनामकृतागसाम् । आत्मवैरूप्यकर्तारं पार्थानां कीर्तिदूषणम् ॥१३॥

अन्वयः— हे वृष ! वः भद्रम् अकृतागसाम् साधूनाम् आत्मवैरूप्यकर्तारम्, पार्थानां कीर्तिदूषणम् आख्याहि ॥१३॥

अनुवाद— वृष ! आपका कल्याण हो । निरपराध सज्जनों का अङ्गभङ्ग करने वाले तथा पाण्डवों की कीर्ति को दूषित करने वाले को आप बतलायें ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

वो भद्रमस्तु । आत्मनस्त्व पादच्छेदेन वैरूप्यं कृतवन्तं कीर्तिं दूषयतीति तथा तमाख्याहि ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

आपलोगों का कल्याण हो आपके पैरों को काटकर आपके शरीर को विरूप बना देने वाले तथा पाण्डवों की कीर्ति को दूषित करने वाले को आप बतलाइये ॥१३॥

जनेऽनागस्यघं युञ्जन्सर्वतोऽस्य च मद्भयम् । साधूनां भद्रमेव स्यादसाधुदमने कृते ॥१४॥

अन्वयः— अनागसि जने अघं युञ्जन् अस्य च सर्वतः मद्भयं भवतु । असाधु दमने कृते साधूनां भद्रमेव स्यात् ॥१४॥

अनुवाद— निरपराध को सताने वाले इसको चाहे यह जहाँ कहीं भी रहे मुझसे भय होना चाहिए । दुष्टों का दमन कर दिए जाने पर सज्जनों का कल्याण होता ही है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

ननु तदाख्याने कृते कथं भद्रं स्यादित्यत आह । यस्मादनागसि जने योऽघं दुःखं युञ्जन् कुर्वन् भवत्यस्यैवंभूतस्य मत्तः सकाशात् सर्वत्रापि भयं भवति, ततः साधूनां भद्रं भवेदेवेति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि उसको बतलाने से कल्याण कैसे सम्भव है ? तो इसका उत्तर है कि जो कोई भी निरपराध को इस तरह से पीडित करता है, इस तरह के लोगों को मुझसे सदा भयभीत रहना चाहिए इस तरह से दुष्टों का दमन करने से साधु पुरुषों का कल्याण होता ही है ॥१४॥

अनागस्स्विह भूतेषु य आगस्कृन्निरङ्कुशः । आहर्ताऽस्मि भुजं साक्षादमर्त्यस्यापि साङ्गदम् ॥१५॥

अन्वयः— अनागस्सु भूतेषु य निरङ्कुशः इह आगः कृत् तस्य साक्षात् अमर्त्यस्यापि साङ्गदम् भुजं आहर्ता अस्मि ॥१५॥

अनुवाद— इस संसार में निरपराध भी जीव का जो अपराध करता है, वह चाहे साक्षात् देवता ही क्यों न हो उसके बाजूबन्द से अलंकृत भुजा को मैं काट डालूँगा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

एतस्य दण्डेऽहमसमर्थ इति माशङ्कीरित्याह-अनागःस्विति । आगस्कृदपराधकर्ता । तस्यामर्त्यस्य देवस्यापि भुजमाहर्तास्म्याहरिष्यामि । साङ्गदमित्यनेन मूलत उत्पाट्याहरिष्यामीति दर्शितम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

इस दुष्ट को दण्डित करने में मैं असमर्थ हूँ आप इस तरह की शङ्का न करें इस बात को राजा ने **अनागः सु० इत्यादि** श्लोक से कहा— अपराधी को आगस्कृत् कहते हैं । निरपराधों को दण्डित करने वाला चाहे देवता ही क्यों न हो उसकी भुजा को मैं जड़ से ही काट दूँगा इस बात को साङ्गदम् कहकर सूचित किया गया है ॥१५॥

राज्ञो हि परमो धर्मः स्वधर्मस्यानुपालनम् । शासतोऽन्यान्यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ॥१६॥

अन्वयः— अनापदि इह उत्पथान् अन्यान् यथा शास्त्रम् शासतः राज्ञः स्वधर्मस्य अनुपालनम् परमो धर्मः ॥१६॥

अनुवाद— बिना किसी आपत्ति के दूसरे कुमार्ग गामियों को इस लोक में शास्त्रानुसार प्रशासन करना ही राजा का सबसे बड़ा धर्म है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेकस्य निग्रहेणान्यस्यानुग्रहे तव किं प्रयोजनं तत्राह-राज्ञो हीति । अन्यानधर्मिष्ठान् । शासतो दण्डयतः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न उठता है कि एकका प्रशासन करने और दूसरे पर अनुग्रह करने में आपका कौन सा प्रयोजन है ? तो इस पर राजा ने कहा कि अधार्मिकों को शास्त्रानुसार दण्ड देकर अपने धर्म का पालन करना ही राजाओं का सबसे बड़ा धर्म है ।।१६।।

धर्म उवाच

एतद्वः पाण्डवेयानां युक्तमार्ताभयं वचः । येषां गुणगणैः कृष्णो दौत्यादौ भगवान्कृतः ।।१७।।

अन्वयः— पाण्डवेयानाम्, वः एतत् आर्ताभयं वचः युक्तम् । येषां गुणगणैः कृष्णः दौत्यादौ भगवान् कृतः ।।१७।।

अनुवाद— धर्म ने कहा— पाण्डवों के वंश में उत्पन्न हुए आपके द्वारा दुःखी जीवों को अभय प्रदान करने वाली आपकी वाणी आपके स्वरूपानुरूप ही है । जिन पाण्डवों के गुणसमूहों ने भगवान् को उनके (पाण्डवों के) दूतकर्म और सारथि कर्म में भी लगा दिया ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

आर्तानामभयं यस्मात्तद्वचो वो युष्माकं युक्तमुचितमेव ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

धर्म ने कहा कि आप तो उन पाण्डवों के वंश में उत्पन्न हुए हैं जिन पाण्डवों के गुण से आकृष्ट होकर श्रीभगवान् उनके दूत तथा सारथि भी बन गये । अतएव आपकी आर्तजीवों को अभय प्रदान करने वाली वाणी उचित ही है ।।१७।।

न वयं क्लेशबीजानि यतः स्युः पुरुषर्षभ । पुरुषं तं विजानीमो वाक्यभेदविमोहिताः ।।१८।।

अन्वयः— हे पुरुषर्षभ ! वाक्यभेदविमोहिता : वयम् तं पुरुषं न विजानीमः यतः क्लेशवीजानि ।।१८।।

अनुवाद— हे पुरुषो में श्रेष्ठ परीक्षित् ! शास्त्रों के विभिन्न वाक्यों से मोहित हुए उस पुरुष को नहीं जानता हूँ जिससे कि क्लेशों के कारण उत्पन्न होते हैं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

वयं तु यतः पुरुषात्प्राणिनां क्लेशहेतवो भवेयुस्तं पुरुषरूं न विजानीमः । यतो वादिनां वाक्यभेदैर्विमोहिताः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

जिस पुरुष से प्राणियों को प्राप्त होने वाली क्लेशों के बीज उत्पन्न होते हैं, उस पुरुष को मैं नहीं जानता हूँ, क्योंकि हमलोग वादियों के भिन्न-भिन्न प्रकार के वाक्यों के कारण मोहित हैं ।।१८।।

केचिद्विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः । दैवमन्येऽपरे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम् ।।१९।।

अन्वयः— केचित् विकल्पवसनाः आत्मानमेव आत्मनः प्रभुम् आहुः, अन्ये दैवम् अपरे कर्म, अपरे स्वभावम् प्रभुम् आहुः ।।१९।।

अनुवाद— जो लोग किसी प्रकार के द्वैत को नहीं मानते हैं, वे लोग अपने को ही अपने दुःख का कारण बतलाते है दूसरे लोग दैव (भाग्य) को, उनसे भिन्न लोग कर्म को तथा तीसरे प्रकार के लोग स्वभाव को ही दुःख का कारण मानते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

वाक्यभेदानेवाह । विकल्पं भेदं वसते आच्छादयन्ति ये योगिनस्ते आत्मानमेवात्मनः प्रभुं सुखदुःखप्रदमाहुः । तदुक्तम् **आत्मैव ह्यात्मनो वन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः'** इति । यद्वा विकल्पैः कुतर्कैः प्रावृता नास्तिकाः । एवं हि ते वदन्ति । न

तावद्देवतादीनां प्रभुत्वम्, कर्माधीनत्वात् । न च कर्मण: स्वाधीनत्वादचेतनत्वाच्च । अत: स्वयमेव प्रभुर्न चान्य: कश्चिदिति। अन्ये दैवज्ञा दैवं ग्रहादिरूपां देवताम् । परे तु मीमांसका: कर्म । अपरे लौकायतिका: स्वभावम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

वादियों के वाक्य भेद को ही बतलाते हुए धर्म ने कहा जो योगी जन भेद को नहीं मानते हैं, वे अपने को ही सुख-दु:ख का प्रदाता मानते हैं । कहा भी गया है- **आत्मैव० इत्यादि** आत्मा ही आत्मा का बन्धु (सुख प्रदाता) है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु (दु:खप्रदाता) है । अथवा विकल्प शब्द कुतर्क का वाचक है । उन कुतर्कों से युक्त जो नास्तिक पुरुष हैं, वे भी अपने को ही सुख दु:ख का कारण मानते हैं । वे किसी देवता के प्रभुत्व को नहीं मानते हैं वे सबकुछ कर्मों के अधीन मानते हैं । कर्म तो अपने अधीन रहने वाले हैं तथा अचेतन भी हैं । अतएव वे अपने को ही प्रभु मानते हैं, अपने से भिन्न किसी दूसरे को नियामक नहीं मानते हैं । दूसरे जो ज्योतिषी हैं वे ग्रह रूपी देवताओं को ही सुख तथा दु:ख देने वाला मानते हैं । मीमांसक कर्मों को ही सुख एवं दु:खों को देने वाला मानते हैं । और चार्वाक स्वभाव को ही सुख एवं दु:ख को देने वाला मानते हैं ॥१९॥

अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति केष्वपि निश्चय: । अत्रानुरूपं राजर्षे विमृश स्वमनीषया ॥२०॥

अन्वय:— केष्वपि अप्रतर्क्यात् अनिर्देश्यात् इति निश्चय: । राजर्षे अत्र स्वमनीषया अनुरूपं विमृश ॥२०॥

अनुवाद— कुछ वादियों का निश्चय है कि सुख एवं दु:ख के कारण को न तो तर्क के द्वारा जाना जा सकता है और न तो उसका वाणी के द्वारा निर्देश ही किया जा सकता है, अतएव आप अपनी बुद्धि के अनुसार उसका विचार करें ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

केष्वपि सेश्वरेषु मध्ये । केष्वपीति दुर्लभत्वं दर्शितम् निश्चय इति सिद्धान्तत्वम् । अप्रतर्क्यान्मनोऽगोचरादनिर्देश्याद्वचनागोचरात्परमेश्वरात्सर्वं भवतीति विमृश विचारय स्वबुद्ध्या ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

जो लोग ईश्वर कों मानते हैं, उन लोगों के दुर्लभत्व को केष्वपि पद के द्वारा बतलाया गया है । निश्चय पद के द्वारा उनके कथन को सिद्धान्तानुकूल कहा गया है । वे लोग बतलाते हैं कि सुख और दु:ख के कारणों को न तो तर्क के द्वारा जाना जा सकता है और न तो वाणी से सबकुछ करने वाले परमात्मा है इस बात का बुद्धि पूर्वक विचार करो ॥२०॥

सूत उवाच

एवं धर्मे प्रवदति स सम्राड्द्विजसत्तम । समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्टतम् ॥२१॥

अन्वय:— हे द्विजसत्तम ! एवं धर्मे प्रवदति विखेदः स सम्राट् समाहितेन मनसा तम् पर्यचष्ट ॥२१॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— हे द्विज ! श्रेष्ठ शौनकजी धर्म के इस तरह कहने पर राजा परीक्षित् का खेद शान्त हो गया उन्होंने शान्तमना होकर उससे कहा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

विखेदो गतमोहः । पर्यचष्ट प्रत्यभाषत ज्ञातवानिति वा ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

धर्म की बातों को सुनकर राजा परीक्षित् का अज्ञान समाप्त हो गया और उन्होंने धर्म से कहा अथवा उसको धर्म रूप से जान लिया ॥२१॥

राजोवाच

धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोऽसि वृषरूपधृक् । यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥२२॥

अन्वयः— हे धर्मज्ञ धर्मं ब्रवीषि अतः वृषरूपधृक् धर्मः असि यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥२२॥

राजा ने कहा

अनुवाद— हे धर्मज्ञ ! आप धर्म की बातें करते हैं, अतएव निश्चित रूप से आप वृष का रूप धारण किए धर्म हैं; क्योंकि पापी को जिस स्थान की प्राप्ति होती है, वही स्थान चुगली करनने वालों को भी प्राप्त होता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अनिर्धारितमिव ब्रुवन्घातकं जानन्नपि न सूचयेदित्येवंरूपं धर्मं ब्रवीष्यतो धर्मोऽसि । सूचने को दोष इत्यत आह- यदिति। स्थाानं नरकादि ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अपने घातक को भी आप अनिर्धारित के समान बतला रहे हैं, क्योंकि घातक को जानते हुए नहीं बतलाना चाहिए । इस तरह से आप धर्मोपदेश कर रहे हैं । अतएव आप धर्म ही हैं । यदि कहें कि घातक को सूचक को कह देने पर कौन सा दोष होता है ? तो उसे बतला रहे हैं । जो स्थान पाप करने वाले को मिलता है, वही स्थान उसके सूचक को भी मिलता है । अर्थात् उसको भी नरकादि की प्राप्ति होती है ॥२२॥

अथवा देवमायाया नूनं गतिरगोचरा । चेतसो वचसश्चापि भूतानामिति निश्चयः ॥२३॥

अन्वयः— अथवा नूनं भूतानाम् चेतसः वचसः चापि देवमायायाः गतिः अगोचरा इति निश्चयः ॥२३॥

अनुवाद— अथवा यह भी निश्चित है कि जीवों के मन तथा वाणी के द्वारा परमात्मा की माया की गति को नहीं जाना जा सकता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यद्वा अज्ञानादप्यकथनं भवतीत्याह-अथवेति। देवस्य मायाया गतिर्वध्यघातकलक्षणा वृत्तिर्भूतानां चेतसो वचसश्चागोचरा सुज्ञेया न भवतीति निश्चय इत्यर्थः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

अथवा नहीं जान पाने के कारण भी नहीं कहा जा सकता है, इस बात को राजा ने **अथवा० इत्यादि** श्लोक से कहा है । परमात्मा की बध्यघातक रूपी वृत्ति जीवों के मन और वाणी का विषय नहीं बनती है । अतएव वह आसानी से जानने योग्य नहीं है यह निश्चित है ॥२३॥

तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्तिताः । अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसङ्गमदैस्तव ॥२४॥

अन्वयः— तपः शौचम् दया सत्यम् इति तव पादाः प्रकीर्तिताः । अधर्मांशैः स्मय सङ्गमदैः त्रयः भग्नाः ॥२४॥

अनुवाद— तपस्या, पवित्रता, दया और सत्य ये आपके चार-चरण बतलाये गये है, इनमें अधर्म के अंश भूत गर्व आसक्ति और मद के कारण आपके तीन चरण टूट गये हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

धर्मोऽसाविति ज्ञात्वा तस्य पादानुवादेन व्यवस्थामाह-तप इति द्वाभ्याम् । अधर्मपादैस्तव त्रयः पादास्त्रिभिरंशैर्भग्नाः । स्मयो विस्मयः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

राजा ने उसे धर्म जानकर उसके चरणों का अनुवाद करके **तपः इत्यादि** दो श्लोक से व्यवस्था बतलाया। अधर्म के तीन चरणों के द्वारा आपके तीन चरण टूट चुके हैं । अधर्म के तीन चरण हैं स्मय (गर्व) आसक्ति और मद, उन सबों से धर्म के तप पवित्रता और दया नामक तीन चरण टूट चुके हैं । स्मय-विस्मय (गर्व) को कहते हैं ।।२४।।

इदानीं धर्मं पादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः । तं जिघृक्षत्यधर्मोऽयमनृतेनैधितः कलिः ।।२५।।

अन्वयः— धर्मं इदानीं ते सत्यं पादः यतः निर्वर्तयेत् तम् अनृतेन एधितः अधर्मः कलिः जिघृक्षति ।।२५।।

अनुवाद— हे धर्म ! इस समय आपका सत्य नामक पाद अवशिष्ट है जिससे कि आप आत्मधारण कर सकें । उसको असत्य के द्वारा समृद्ध बना हुआ अधर्म रूपी कलि विनष्ट कर देना चाहता हैं ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं कलौ हे धर्म, ते पादश्चतुर्थौऽशस्तत्रापि सत्यमेवास्ति । यतः सत्याद्भवानात्मानं निर्वर्तयेत् कथंचिद्धारयेत् यद्वा पुरुषस्त्वां साधयेत् । तमपि पादमनृतेन संवर्धितः कलिः कलिरूपोऽयमधर्मो ग्रहीतुमिच्छति, तत्रेयं स्थितिः कृतयुगे प्रथमं संपूर्णश्चतुष्पाद्धर्मः । त्रेतायां चतुर्णामपि पादाना मध्ये स्मयेन तपः, सङ्गेन शौचं, मदेन दया, अनृतेन सत्यमित्येवं चतुर्थांशो हीयते । द्वापरे त्वर्धम् कलौ चतुर्थोऽशोऽवशिष्यते सोऽप्यन्ते विनङ्क्ष्यतीति ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

हे धर्म ! इस समय कलियुग में आपके चरणों का चौथा अंश सत्य बचा हुआ है । उससे आप किसी तरह आत्मधारण किए हैं । अथवा सत्य को अपनाकर मनुष्य धर्म को प्राप्त कर सकता है । आपके उस चरण को असत्य के द्वारा समृद्ध बना हुआ कलि अर्थात् कलि रूपी अधर्म, विनष्ट कर देना चाहता है ।

तत्रेयं स्थितिः इत्यादि- धर्म के चार चरणों की स्थिति इस प्रकार है । सत्ययुग में पहले धर्म के चारो चरण विद्यमान थे वह चतुष्पाद था त्रेतायुग में स्मय (गर्व) नामक अधर्मांश से चारो पैरों में से तप गर्व के द्वारा शौच आसक्ति के द्वारा, दया मद के द्वारा और सत्य अनृत (मिथ्या) भाषण के द्वारा इन सबों का चतुर्थांश विनष्ट हो जाता है । द्वापर में आधा विनष्ट हो जाता है कलियुग में चतुर्थांश बचा रहता है, और कलियुग के अन्त में वह भी विनष्ट हो जायेगा ।।२५।।

इयं च भूर्भगवता न्यासितोरुभरा सती । श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ।।२६।।

अन्वयः— इयं च भूः भगवता न्यसितोरुभरा सती श्रीमद्भिः तत् पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ।।२६।।

अनुवाद— ये भूदेवी हैं, श्रीभगवान ने इनके महान् भार को उतार दिया था । श्रीभगवान् के ऐश्वर्य पूर्ण चरणों के विन्यास से ये सर्वत्र उत्सवमयी बनी रहती थीं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

न्यासितोऽन्योन्यद्वारेणावतारित उरुर्भरो भारो यस्याः । कृतं कौतुकं मङ्गलं यस्याः सा ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने दुष्ट क्षत्रिय राजाओं में वैर उत्पन्न करके एक के द्वारा दूसरे का विनाश कर पृथिवी के महान् भार को उतार दिया था । उस समय ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीभगवान् के चरण विन्यास के द्वारा पृथिवी मङ्गलमयी हो गयी थी ।।२६।।

शोचत्यश्रुकला साध्वी दुर्भगेवोज्झिताऽधुना । अब्रह्मण्या नृपव्याजाः शूद्रा भोक्ष्यन्ति मामिति ॥२७॥

अन्वयः— अधुना साध्वी उज्झिता दुर्भगा इव अश्रुकलाशोचति । यत् अब्रह्मण्या नृपव्याजाः शूद्राः माम् भोक्ष्यन्तीति ॥२७॥

अनुवाद— साध्वी भू देवी परमात्मा से परित्यक्त हो जाने के कारण अभागिनी के समान आँखों में आँसू भरकर सोच रही हैं कि अब राजा का वेष बनाकर ब्राह्मणद्रोही शूद्र मेरा उपभोग करेंगे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अश्रूणि कलयति मुञ्चतीत्यश्रुकला । तेन उज्झिता त्यक्ता सती शूद्रा भोक्ष्यन्ति मामिति शोचति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

इस समय ये भूदेवी अपनी आँखों से आँसू बहाती हुयी सोच रही हैं कि आगे आने वाले समय में शूद्र ही राजा होंगे । राजा का वेष बनाये हुए वे ब्राह्मणद्रोही होंगे । वे ही सब मेरा उपभोग करेंगे ॥२७॥

इति धर्मं महीं चैव सान्त्वयित्वा महारथः । निशातमाददे खड्गं कलयेऽधर्महेतवे ॥२८॥

अन्वयः— इति महारथः धर्मं महीं च सान्त्वयित्वा धर्महेतवे निशातम् खड्गम् आददे ॥२८॥

अनुवाद— इस तरह से महारथी परीक्षित् भूदेवी और धर्म को सान्त्वना प्रदान करके अधर्म के कारण भूत कलियुग को मारने के लिए हाथ में तीक्ष्ण खड्ग ले लिए ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

निशातं निशितम् । अधर्मस्य हेतुर्यः कलिस्तं हन्तुमित्यर्थः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने अधर्म के कारणभूत कलि को मारने के लिए अपने हाथ में अत्यन्त तीक्ष्ण खड्ग ले लिया ॥२८॥

तं जिघांसुमभिप्रेत्य विहाय नृपलाञ्छनम् । तत्पादमूलं शिरसा समगाद्भयविह्वलः ॥२९॥

अन्वयः— तं जिघांसुम् अभिप्रेत्य नृपलाञ्छनम् विहाय भयविह्वलः शिरसा तत्पादमूलं समगात् ॥२९॥

अनुवाद— राजा परीक्षित् को मारने की इच्छा वाला जानकर कलि ने अपने राजा के चिह्न का परित्याग कर दिया और भय से काँपता हुआ वह राजा परीक्षित् के चरणों पर गिर पड़ा ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अभिप्रेत्य ज्ञात्वा ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

हथ में तीक्ष्ण खड्ग ग्रहण किए हुए राजा को देखकर कलियुग ने जान लिया कि राजा मुझको मार देना चाहते हैं । यह जानकर उसने राजा के चिह्न को जो धारण किया था उसका परित्याग कर दिया और राजा के चरणों पर गिर पड़ा ॥२९॥

पतितं पादयोर्वीक्ष्य कृपया दीनवत्सलः । शरण्यो नावधीच्छ्लोक्य आह चेदं हसन्निव ॥३०॥

अन्वयः— पादयोः पतितं वीक्ष्य दीनवत्सलः शरण्यः श्लोक्यः राजा न अवधीत् हसन् इव कृपया इदं आह ॥३०॥

अनुवाद— पैरों पर गिरे हुए कलि को देखकर दीनों पर दया करने वाले तथा शरणागतों की रक्षा करने वाले राजा परीक्षित् ने उसका वध नहीं किया, वे दया करके हँसते हए के समान कलि से कहे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

शरण्य आश्रयार्हः । श्लोक्यः सत्कीर्त्यर्हः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् आश्रयण करने के योग्य तथा सत्कीर्ति कें योग्य थे । उन्होंने कृपा करके कलि को मारा नहीं अपितु कलियुग से कहा ।।३०।।

राजोवाच

न ते गुडाकेशयशोधराणां बद्धाञ्जलेर्वै भयमस्ति किंचित् ।
न वर्तितव्यं भवता कथंचन क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबन्धुः ।।३१।।

अन्वयः— गुडाकेश यशोधराणां बद्धाञ्जलेः ते किञ्चित् भयं न अस्ति त्वम् अधर्मबन्धुः, अतएव भवता मदीये क्षेत्रे कथञ्चन न वर्तितव्यम् ।।३१।।

अनुवाद— अर्जुन के यशस्वी वंश में उत्पन्न किसी भी वीर से हाथ जोड़े हुए तुमको कोई भी भय नहीं है, किन्तु तुम अधर्म बन्धु हो, अतएव तुमको मेरे राज्य में किसी भी प्रकार से नहीं रहना चाहिए ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

गुडाकेशोऽर्जुनस्तस्य यशोधरा ये वयं तेषां तान्प्रति बद्धोऽञ्जलिर्येन तस्य ते भयं न किंतु मदीये क्षेत्रे कथंचन केनाप्यंशेन न वर्तितव्यम्। यस्मात्त्वमधर्मस्य बन्धुः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

गुडाकेश अर्जुन का नाम है । उनके यश को धारण करने वाले हमलोगों से किसी भी प्रकार से तुमको भय नहीं है; क्योंकि तुमने हाथ जोड़ लिया है । किन्तु तुमको मेरे राज्य के किसी भी अंश में नहीं रहना होगा, क्योंकि तुम अधर्म बन्धु हो ।।३१।।

त्वां वर्तमानं नरदेवदेहेष्वनुप्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः ।
लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो ज्येष्ठा च माया कलहश्च दम्भः ।।३१।।

अन्वयः— नरदेवदेहेषु वर्तमानं त्वाम् अनु, लोभः अनृतम् चौर्यम्, अनार्यम्, अंहः, ज्येष्ठा, माया, कलहः दम्भः अवृतं च अयम् अधर्म पूगः अनुप्रवृत्तः ।।३२।।

अनुवाद— तुम्हारे राजाओं के देह में रहने के कारण ही, लोभ, झूठ, चोरी, दुर्जनता, अंह (स्वधर्मत्यग) अलक्ष्मी, कपट, कलह और दम्भ यह अधर्म समूह इतना बढ़ा है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

तदेवाह । राजदेहेषु वर्तमानं त्वामनु सर्वतः प्रवृत्तः । अनार्यं दौर्जन्यम् । अंह स्वधर्मत्यागः । ज्येष्ठा अलक्ष्मीः । माया कपटम् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बात को ही बतलाते हुए राजा परीक्षित् कहते हैं कि चूकि तुम राजाओं के शरीर में निवास कर रहे हो उसी के कारण सब जगह अनार्य (दुर्जनता) अंहः (स्वधर्म त्याग) माया (कपट) इत्यादि ये सारे अधर्म समूह इतना बढ़े हुए हैं, अतएव तुम मेरे राज्य में नहीं रह सकते हो ।।३२।।

न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ।
ब्रह्मावर्ते यत्र यजन्ति यज्ञैर्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ॥३३॥

अन्वयः— तत् अधर्मबन्धो ! यत्र वितानविज्ञाः यज्ञैः यज्ञेश्वरम् यजन्ति एतादृशे धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ब्रह्मावर्ते न वर्तितव्यम् ॥३३॥

अनुवाद— अतएव हे अधर्मबन्धो ! जहाँ पर यज्ञ की विधि को जानने वाले यज्ञों के द्वारा यज्ञों के स्वामी श्रीभगवान् की आराधना करते हैं, उस सत्य एवं धर्म पूर्वक रहने योग्य इस ब्रह्मावर्त में तुमको नहीं रहना चाहिए ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्माद्धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये वर्तितुमर्हे ब्रह्मावर्ते देशे । यज्ञस्य वितानं विस्तारस्तत्र विज्ञा निपुणाः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

यह ब्रह्मावर्त नामक देश है । यहाँ पर सत्य एवं धर्म का पालन पूर्वक ही निवास किया जा सकता है । यहाँ पर यज्ञ का विस्तार करने में निपुण पुरुष यज्ञों के द्वारा यज्ञों के स्वामी श्रीहरि की आराधना करते हैं, अतएव तुमको इस देश में विल्कुल नहीं रहना चाहिए ॥३३॥

यस्मिन्हरिर्भगवानिज्यमान इज्यामूर्तिर्यजतां शं तनोति ।
कामानमोघान्स्थिरजङ्गमानामन्तर्बहिर्वायुरिवैष आत्मा ॥३४॥

अन्वयः— यस्मिन् इज्यामूर्तिः इज्यमानः भगवान् हरिः यजताम् शं तनोति कामान् अमोघान् करोति । एषः वायुः इव स्थावरजङ्गमानां आत्मा ॥३४॥

अनुवाद— जिस ब्रह्मवर्त देश में यज्ञमूर्ति श्रीहरि यज्ञों के द्वारा आराधित किए जाते हैं । भगवान् श्रीहरि यज्ञों को करने वालों का कल्याण करते हैं और उनकी कामनाओं को सफल बना देते हैं । वे वायु के समान सम्पूर्ण चराचर में आत्मा रूप से उनके भीतर और बाहर विद्यमान रहते हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

इज्या यागस्तद्रूपा मर्तिर्यस्य । शं क्षेमं कामांश्च । नन्विन्द्रादयो देवा इज्यन्ते नतु हरिस्तत्राह- स्थिरेति । एष स्थावरादीनामात्मेति । तथापि जीववन्न परिच्छिन्न इत्याह-अन्तर्बहिरिति । यथा वायुः प्राणरूपेणान्तस्थोऽपि बहिरप्यस्ति तद्वत्सर्वान्तर्यामीश्वरोऽपीति ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की मूर्ति इज्या रूपिणी है । जो लोग इसका यजन करते हैं भगवान् श्रीहरि उनका कल्याण करते हैं और उनकी सारी कामनाओं को पूर्ण करते हैं । इस जगत् में जितने भी जड-चेतन पदार्थ हैं उन सबों के भीतर वे अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहते हैं और बाहर-अन्तर प्रदेश तक उसी तरह से व्यापक रहते हैं जिस तरह वायु सभी वस्तुओं के भीतर और बाहर दोनों प्रकार से व्यापक है ॥३४॥

सूत उवाच

परीक्षितैमवादिष्टः स कलिर्जातवेपथुः । तमुद्यतासिमाहेदं दण्डपाणिमिवोद्यतम् ॥३५॥

अन्वयः— एवम् परीक्षिता आदिष्टः जातवेपथुः सः कलिः उद्यतम् दण्डपाणिमिव उद्यतासिं इदम् आह ॥३५॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— राजा परीक्षित् के द्वारा इस तरह से आदेश दिए जाने पर काँपता हुआ कलि दण्ड उठाये हुए यमराज के समान तलवार उठाये हुए राजा परीक्षित् से कहा ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

उद्यतासिमुद्यतखड्गम् । दण्डपाणिं यमम् । उद्यतमुद्युक्तम् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् उसी तरह से खड्ग उठाये थे जिस तरह मानो यमराज दण्ड देने के लिए तैयार हों । उनसे काँपते हुए कलि ने कहा ।।३५।।

कलिरुवाच

यत्र क्वचन वत्स्यामि सार्वभौम तवाज्ञया । लक्षये तत्र तत्रापि त्वामात्तेषुशरासनम् ।।३६।।

अन्वयः— हे सार्वभौम ! यत्र क्वचन तवाज्ञया वत्स्यामि तत्र तत्रापि आतेषुशरासनम् त्वाम् लक्षये ।।३६।।

कलि ने कहा

अनुवाद— हे सार्वभौम ! आपकी आज्ञानुसार जहाँ कहीं पर भी मैं रहूँगा वहाँ सर्वत्र मैं धनुष बाण धारण किए हुए आपको देखूँगा । अर्थात् आपका भय मुझे सर्वदा बना रहेगा ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

अत्र न वस्तव्यमिति या तवाज्ञा तया यत्र क्वापि वत्स्यामि किंतु तत्र तत्राप्यात्तो गृहीत इषुः शरासनं च येन तं त्वामेव लक्षये ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

आपने यह जो आज्ञा दी है कि तुमको यहाँ नहीं रहना चाहिए अतएव जहाँ कहीं भी रहूँगा वहाँ सर्वत्र आप मुझको धनुष एवं बाण को धारण किए हुए दिखायी पड़ेंगे ।।३६।।

तन्मे धर्मभृतांश्रेष्ठ स्थानं निर्देष्टुमर्हसि । यत्रैव नियतो वत्स्य आतिष्ठंस्तेऽनुशासनम् ।।३७।।

अन्वयः— तत् हे धर्मभृतां श्रेष्ठ मे स्थानं निर्देष्टुम् अर्हसि यत्रैव ते अनुशासनम् आतिष्ठन् नियतं वत्स्ये ।।३७।।

अनुवाद— अतएव हे धार्मिकों में श्रेष्ठ ! आप मुझको ऐसे स्थान को बतला दें जहाँ पर मैं आपकी आज्ञा का पालन करते हुए निश्चल रूप से निवास कर सकूँ ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मात् । नियतो निश्चलः । वत्स्ये वत्स्यामि ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

कलि ने राजा से प्रार्थना किया कि आप मुझे ऐसा स्थान बतला दें जहाँ मैं निश्चल होकर निवास कर सकूँ और आपकी आज्ञा का पालन करता रहूँ ।।३७।।

सूत उवाच

अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ । द्यूतं पानं स्त्रियः सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ।।३८।।

अन्वयः— तदा अभ्यर्थितः तस्मै कलये, द्यूतं, पानं, स्त्रियः, सूना यत्र चतुर्विधः अधर्म तथा विधानि स्थानानि ददौ ।।३८।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— कलियुग के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर उस कलि को द्यूत, जुआ खेलने के स्थान, पान, मदशाला, स्त्रियाँ तथा सूना (कसाईखाना) इन चार स्थानों को प्रदान किया जहाँ पर चार प्रकार के अधर्म होते हैं ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

पानं मद्यादेः । सूना प्राणिवधः । द्यूतेऽनृतम् । पाने मदः । पूर्वं मदो दयानाशकत्वेनोक्तोऽत्र तु गर्वद्वारा तपोनाशकत्वेन। स्त्रीषु सङ्गः । हिंसायां क्रौर्यं दयानाशकमिति ज्ञेयम् । यद्यपि सर्वं सर्वत्र संभवति, तथापि प्राधान्येनानृतादीनां द्यूतादिषु यथासङ्ख्यं ज्ञेयम् । द्वादशस्कन्धे तु **'सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप'** इत्यत्र दानशब्देन शौचमेवोक्तम् । मनः शुद्धिरूपत्वाद्भूताभयदानस्य । **'त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः । अधर्मपादैरनृतहिंसाऽसन्तोषविग्रहैः'** इत्यत्र चाऽसन्तोषशब्देन तस्य हेतुर्गर्वो लक्ष्यते । विग्रहशब्देन च तद्धेतुः स्त्रीसङ्ग इत्यविरोधः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

मदिरा आदि को पीने को **पानं** शब्द से अभिहित किया गया है । प्राणियों के वध को सूना कहते हैं । द्यूत में झूठ बोलना पड़ता, मदिरा पान से मद नामक पाप होता है । इससे पहले पचीसवें श्लोक में मद को दया का नाश करने वाला कहा गया है और यहाँ पर गर्व के द्वारा तप का नाश कहा गया है । स्त्रियों में आसक्ति बढ़ती है । हिंसा करने से दया का नाश करने वाली क्रूरता बढ़ती है ।

यद्यपि सर्वम्० इत्यादि- यद्यपि सभी पाप इन सभी स्थानों में होते हैं । फिर भी प्रधान रूप से द्यूत इत्यादि में मिथ्या भाषण आदि पाप होते है । अतएव द्यूत इत्यादि को क्रमशः अनृत इत्यादि का जनक जानना चाहिए। **द्वादशस्कन्धे तु० इत्यादि सत्यं दया तपो दानम्० इत्यादि** श्लोक में दान शब्द से शौच को ही कहा गया है, क्योंकि जीवों को अभय प्रदान करने से मन की शुद्धि होती है । **त्रेतायाम्० इत्यादि** त्रेता में धर्म के चरणों का चतुर्थांश अधर्म के अनृत, हिंसा, असन्तोष तथा विग्रह के द्वारा धीरे-धीरे ह्रास होता है । इस श्लोक में असन्तोष शब्द के द्वारा उसके कारणभूत गर्व को लक्षित किया गया है तथा विग्रह शब्द के द्वारा उसके कारण भूत स्त्री सङ्ग को लक्षित किया गया है । इस तरह से कहीं भी विरोध नहीं है ।।३८।।

पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः । ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ।।३९।।

अन्वयः— पुनश्च प्रभुः याचमानाय जातरूपम् अदात् । ततः अनृतं, मदं, कामं, रजः पञ्चमम् वैरं च जायते ।।३९।।

अनुवाद— उसके पश्चात् भी कलियुग के द्वारा याचना किए जाने पर राजा परीक्षित् ने कलि के लिए सुवर्ण को निवास स्थान के रूप में प्रदान किया । इस तरह कलि के पाँच निवास स्थान हो गये । उन पाँचों स्थानों में क्रमशः मिथ्याभाषण, मद, काम, रजोगुण और वैर ये पाँच प्रकार के पाप होते हैं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

चतुर्विधस्याप्येकत्रैवावस्थानं देहीति पुनर्याचमानाय जातरूपं सुवर्णं दत्तवान् । ततः सुवर्णदानात् अनृतम्, मदम्, काममिति स्त्रीषु सङ्गम्, रज इति रजोमूलां हिंसाम्, एतानि चत्वारि पञ्चमं वैरं चाददिति ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

इन चारो प्रकार के अधर्मों के एक स्थान में स्थिति आप मुझे प्रदान करें इस प्रकार से याचना किए जाने पर राजा ने उसे सुवर्ण को प्रदान किया ।

उस सुवर्ण प्रदान से, मिथ्या भाषण, मद, काम, स्त्रियों में आसक्ति रूपी काम, रजस् शब्द से रजोगुण मूलक हिंसा इन चार प्रकार के अधर्म स्थान को तथा पाँचवे वैर के स्थान को उन्होंने कलियुग को प्रदान किया।।३९।।

अमूनि पञ्च स्थानानि ह्यधर्मप्रभवः कलिः । औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत्तन्निदेशकृत् ।।४०।।

अन्वयः— तन्निदेशकृत अधर्म प्रभवः कलिः औत्तरेयेण दत्तानि अमूनि पञ्च स्थानि न्यवसत् ।।४०।।

अनुवाद— राजा परीक्षित् की आज्ञा का पालन करने वाला अधर्म का मूल कारण कलि, राजा परीक्षित् के द्वारा प्रदत्त इन्हीं पाञ्च स्थानों में रहने लगा ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

औत्तरेयेण परीक्षिता अमून्यमीषु स्थानेषु न्यवसदित्यर्थः । तस्य राज्ञो निदेशकृदाज्ञाकृत् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

उत्तरा के पुत्र परीक्षित् के द्वारा प्रदत्त इन्हीं पाँचों स्थानों में कलि राजा परीक्षित् की आज्ञाओं का पालन करता हुआ रहने लगा ।।४०।।

अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित् । विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ।।४१।।

अन्वयः— अथ बुभूषुः पुरुषः धर्मशीलो राजा, लोकपतिः गुरुश्च एतानि क्वचित् न सेवेत ।।४१।।

अनुवाद— अतएव आत्मकल्याण कामी पुरुष विशेष रूप से धार्मिक राजा, लोक स्वामी, तथा गुरुजनों को आसक्ति पूर्वक कभी भी इन सबों का सेवन नहीं करना चाहिए ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

अथ इति हेतोः बुभूषुरुद्भवितुमिच्छुः । स्त्रीसुवर्णयोरसेवनं नाम तयोरनासक्तिः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

इसीलिए जो पुरुष आत्मकल्याण करना चाहाता है, वह तथा धार्मिक राजा लोगों के स्वामी (नेता) तथा धर्मोपदेष्टा गुरुजनों को इन सभी वस्तुओं का सेवन कभी भी नहीं करना चाहिए । स्त्री तथा सुवर्ण के असेवन का अर्थ है कि इन दोनों में आसक्ति न रखे ।।४१।।

वृषस्य नष्टांस्त्रीन्पादांस्तपः शौचं दयामिति । प्रतिसंदध आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ।।४२।।

अन्वयः— वृषस्य नष्टान् त्रीन् पादान् तपः शौचं दयाम् इति प्रतिसंदधे आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ।।४२।।

अनुवाद— इस तरह से कलि का निग्रह करके राजा धर्म के तप, शौच और दया इन तीन चरणों को प्रवर्तित किए और पृथिवी को सान्वना प्रदान किए ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

एवं कलिं निगृह्य वृषस्य पादान्प्रतिसंदधे तपआदीनि प्रवर्तितवानित्यर्थः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से कलियुग को निगृहीत करके तथा धर्म और पृथिवी को आश्वासन प्रदान करके राजा परीक्षित् ने टूटे हुए धर्म के तप, शौच और दया रूप पैरों को प्रवर्तित किए ।।४२।।

स एष एतर्ह्यध्यास्त आसनं पार्थिवोचितम् । पितामहेनोपन्यस्तं राज्ञारण्यं विविक्षता ।।४३।।

अन्वयः— अरण्यं विविक्षता पितामहेन राज्ञा उपन्यस्तम् पार्थिवोचितम् आसनम् एतर्हि स एष अध्यास्ते ।।४३।।

अनुवाद— वन में जाते समय पितामह राजा युधिष्ठिर के द्वारा प्रदत्त राजसिंहासन पर ही राजा परीक्षित् विराजमान हैं ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

युष्मदीयसत्रप्रवृत्तिरपि तत्प्रभावादेवेत्याह त्रिभिः । एतर्हीदानीं युधिष्ठिरेणारण्यं प्रवेष्टुमिच्छता उपन्यस्तं समर्पितमासनमध्यास्ते। अधुना आस्ते पालयत इति वर्तमानसमीप्ये वर्तमानवन्निर्देशः स्मेत्यध्याहारो वा ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

सूतजी ने कहा कि आप लोग यह जो सत्र चला रहे हैं वह इसलिए चल रहा है कि यह राजा परीक्षित्

का प्रभाव है । इस बात को उन्होंने तीन श्लोकों में कहा— इस समय वन जाते समय राजा युधिष्ठिर के द्वारा प्रदत्त राज सिंहासन पर राजा परीक्षित् ही विराजमान हैं । इस समय वे इस राज्य का पालन कर रहे हैं । **अध्यास्ते** पद में वर्तमान कालिक क्रिया का प्रयोग वर्तमान सामिप्य के अर्थ में हुआ है । अथवा यहाँ पर स्म पद का अध्याहार भी किया जा सकता है ॥४३॥

आस्तेऽधुना स राजर्षिः कौरवेन्द्रश्रियोल्लसन् । गजाह्वये महाभागश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ॥४४॥

अन्वयः— अधुना महाभागः चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः सः राजर्षिः महाह्वये कौरवेन्द्रश्रिया उल्लसन् आस्ते ॥४४॥

अनुवाद— इस समय महाभाग, चक्रवर्ती महान् यशस्वी वे ही राजर्षि परीक्षित् हस्तिनापुर में कौरवकुल की राज्यालक्ष्मी से सुशोभित हैं ॥४४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

सूतजी ने शौनकादि महर्षियों को बतलाया कि राजा परीक्षित् महाभाग तथा चक्रवर्ती होने के साथ-साथ महायशस्वी हैं । इस समय वे ही हस्तिनापुर के राजा हैं ॥४४॥

इत्थंभूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतो नृपः । यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥४५॥

इतिश्रीमद्भागवतमहापुराणे प्रथमस्कन्धे कलिनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अन्वयः— अयम् अभिमन्यु सुतः नृपः इत्थंभूतानुभावः यस्य क्षोणीं पालयतः यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥४५॥

अनुवाद— ये अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित् इस प्रकार के प्रभाव से सम्पन्न है । उनके ही पृथिवी पालकत्व काल में आपलोग इस दीर्घकालिक सत्र के लिए दीक्षित हुए हैं ॥४५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के कलिनिग्रह नामक सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

सत्राय सत्रं कर्तुं दीक्षिता दीक्षां कृतवन्तः ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे प्रथम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

सत्राय दीक्षिताः का अर्थ है कि आपलोग इस दीर्घ कालिक सत्र को करने के लिए दीक्षित हुए हैं ॥४५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथमस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥१७॥

* * *

अठारहवाँ अध्याय

राजा परीक्षित् को शृङ्गी ऋषि का शाप

सूत उवाच

यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टो न मातुरुदरे मृतः । अनुग्रहाद्भगवतः कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥१॥

अन्वयः— यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टः अद्भुतकर्मणः भगवतः कृष्णस्य अनुग्रहात् मातुरुदरे न मृतः ॥१॥

अनुवाद— जो परीक्षित अश्वत्थामा के अस्त्र से जल जाने पर भी अद्भुत कर्मों को करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा के कारण अपनी माता की कोख में नहीं मरे

भावार्थ दीपिका

राज्ञस्त्वष्टादशे तस्य ब्रह्मशापो निरूप्यते । स चानुग्रह एवास्य जातो वैराग्यमावहन् ॥१॥ परीक्षितो निर्याणमत्याश्चर्यं वक्तुं तत्संभावनाय जन्माश्चर्यमनुस्मारयति-यो वा इति । विप्लुष्टो निर्दग्धः सन् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

अठारहवें अध्याय में राजा परीक्षित को ब्राह्मण द्वारा प्रदत्त शाप का वर्णन किया गया है । श्रीभगवान् की कृपा से ही राजा परीक्षित वैराग्य सम्पन्न हो गये ॥१॥

राजा परीक्षित् के अत्यन्त आश्चर्यमय परमपद गमन का वर्णन करने के लिए परीक्षित् के आश्चर्यमय परीक्षित् के आश्चर्यमय जन्म की याद दिलाते हुए सूतजी **योवा० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । विप्लुष्टः पद का अर्थ है जले हुए ॥१॥

ब्रह्मकोपोत्थिताद्यस्तु तक्षकात्प्राणविप्लवात् । न संमुमोहोरुभयाद्भगवत्यर्पिताशयः ॥२॥

अन्वयः— ब्रह्म कोपोत्थितात् तक्षकात् प्राणविप्लवात् उरुभयात् भगवति अर्पिताशयः यः न संमुमोह ॥२॥

अनुवाद— ब्राह्मण के क्रोध से उत्पन्न तक्षक के काट लेने के कारण उत्पन्न प्राणनाश से भी राजा परीक्षित् इसलिए भयभीत नहीं हुए कि उनका मन भगवान् में उस समय लगा था ॥२॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मकोपादुत्थितात्तक्षकाद्यः प्राणविप्लवः प्राणनाशस्तस्माद्यदुरु भयं तस्मान्न संमुमोह । तत्र हेतुः- यस्तु भगवत्येवार्पिताशय इति ॥२॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण के क्रोध के कारण उत्पन्न तक्षक के काट लेने से उत्पन्न प्राणनाश के भय से राजा परीक्षित् भयभीत नहीं हुए । उसका कारण यह था कि उस समय उनका मन श्रीभगवान में लगा हुआ था ॥२॥

उत्सृज्य सर्वतः सङ्गं विज्ञाताजितसंस्थितिः । वैयासकेर्जहौ शिष्यो गङ्गायां स्वं कलेवरम् ॥३॥

अन्वयः— विज्ञाताजितसंस्थितिः वैयासकेः शिष्यः सर्वतः सङ्गम् उत्सृज्य गङ्गायां स्वकलेवरं जहौ ॥३॥

अनुवाद— जिन्होंने मृत्युकाल में परमात्म साक्षात्कार कर लिया था ऐसे शुकदेवजी के शिष्य राजा परीक्षित् ने सब ओर से अपनी आसक्ति का परित्याग करके गङ्गा नदी में अपने शरीर का परित्याग कर दिया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

किंतु उत्सृज्येति । वैयासकेः शुकस्य शिष्यः सन् । विज्ञाता अजितस्य हरेः संस्थितिस्तत्त्वं येन सः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् शुकदेवजी के शिष्य बनकर अपनी मृत्यु की बेला में परमात्मा का साक्षात्कार कर लिए थे; अतएव वे मृत्यु की विभीषिका से भयभीत नहीं हुए । **विज्ञाताजितसंस्थितिः** पद का विग्रह इस प्रकार है । **विज्ञाता अजितस्य हरेः संस्थितिः येन** । इसका अर्थ होगा कि उन्होंने परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया था । किन्तु विजयध्वजी कार ने इस पद का विग्रह इस तरह से किया है **विज्ञातः अजितः श्रीहरिः संस्थितौ मृत्युकाले येन सः** ॥३॥

नोत्तमश्लोकवार्तानां जुषतां तत्कथामृतम् । स्यात्संभ्रमोऽन्तकालेऽपि स्मरतां तत्पदाम्बुजम् ॥४॥

अन्वयः— उत्तमश्लोकवार्तानां तत्कथामृतम् जुषताम्, तत्र पदाम्बुजम् स्मरताम् अन्तकाले अपि सम्भ्रमः न स्यात् ॥४॥

अनुवाद— जो लोग सदा श्रीभगवान् की चर्चा करते हैं और जो लोग सदा श्रीभगवान् के कथामृत का सेवन करते हैं तथा इन दोनों ही साधनों के द्वारा जो लोग उनके चरण कमल का स्मरण करते हैं, उनलोगों को मृत्यु काल में भी किसी प्रकार का मोह नहीं होता है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

न चैतच्चित्रमित्याह । उत्तमश्लोकस्यैव वार्ता येष्वत एव नित्यं तत्कथारूपममृतं जुषतां संभ्रमो मोहो न स्यात् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यह कोई आश्चर्य की बात नही है कि भगवद्भक्त को मृत्यु की विभीषिका जन्य भय भी नहीं होता है, क्योंकि वे लोग बातें भी श्रीभगवान् की ही करते हैं, एवं नित्य ही भगवान् के कथामृत का सेवन करते हैं ऐसे लोगों को किसी प्रकार का मोह होता ही नही है ॥४॥

तावत्कलिर्न प्रभवेत्प्रविष्टोऽपीह सर्वतः । यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट् ॥५॥

अन्वयः— यावत् उर्व्याम् अभिमन्यवः एकराट् महान् ईशः तावत् इह सर्वतः प्रविष्ट अपि कलिः न प्रभवेत् ॥५॥

अनुवाद— जब तक इस पृथिवी पर एक मात्र चक्रवर्ती महान् राजा अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित् हैं तब तक भूलोक में पूर्ण रूप से प्रवेश करके भी कलियुग अपना प्रभाव नहीं दिखा सकता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

तस्मिन्राज्ञि सुतरां तत्र चित्रमित्याशयेनाह-तावदिति । अभिमन्योः पुत्र एकराट् चक्रवर्ती ईशः पतिर्यावत् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् के भी विषय में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है; इस बात को **तावत् कलिः इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । अभिमन्यु के पुत्र राजा परीक्षित् चक्रवर्ती सम्राट् थे । इसलिए उनके भय से भयभीत कलियुग पृथिवी पर पूर्ण रूप से प्रवेश करके भी अपने प्रभाव को नहीं प्रदर्शित कर सकता था ॥५॥

यस्मिन्नहनि यर्ह्येव भगवानुत्ससर्ज गाम् । तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः ॥६॥

अन्वयः— यस्मिन् अहनि, जर्ह्येव भगवान् गाम् उत्ससर्ज तदैव अधर्मप्रभवः कलिः इह अनुवृत्तः ॥६॥

अनुवाद— जिस दिन जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण इस पृथिवी का परित्याग किए उसी समय अधर्म का मूल कारण कलियुग पृथिवी पर प्रवृत्त हो गया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

ननु तदा कलेरप्रवेश एवास्तु, इह प्रविष्टोऽपि न प्राभवदिति कुतस्तत्राह-यस्मिन्नहनि । यर्हि यस्मिन्नेव क्षणे । गां पृथ्वीम्। अनुवृत्तः प्रविष्टः अधर्मस्य प्रभवो यस्मिन् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि तब तो उस समय तक कलि का पृथिवी पर प्रवेश ही नहीं हुआ होगा ? तो ऐसी बात नहीं है । कलि तो उसी दिन पृथिवी पर आ गया जिस दिन जिस समय भगवान् ने इस पृथिवी का परित्याग किया । वह कलि ही अधर्मका मूल कारण है । किन्तु वह राजा परीक्षित् के प्रशासन काल तक अपना प्रभाव नहीं प्रदर्शित कर सकता है ॥६॥

नानुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् । कुशलान्याशु सिध्यन्ति नेतराणि कृतानि यत् ॥७॥

अन्वयः— सारङ्ग इव सारभुक् सम्राट् कलिं न अनुद्वेष्टि, यतः कलौ कुशलानि आशु सिध्यन्ति न इतराणि कृतानि ॥७॥

अनुवाद— भौंरे के समान सार तत्त्वग्राही राजा कलियुग से इसलिए द्वेष नहीं करते हैं कि इस युग में अच्छे कर्मों की शीघ्र ही सिद्धि हो जाती है और बुरे कर्म किए गये भी फलद नहीं होते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

नन्वधर्महेतुं कलिं सर्वथा किं न हतवांस्तत्राह– नानुद्वेष्टीति । सारङ्गो भ्रमर इव सारग्राही । सारमाह । यद्यस्मिन्कुशलानि पुण्यान्याशु सङ्कल्पमात्रेण फलन्ति । इतराणि पापान्याशु न सिध्यन्ति । यतस्तानि कृतान्येव सिध्यन्ति नतु सङ्कल्पितमात्राणीति।।७।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि अधर्म का कारणभूत कलि है । उसको राजा परीक्षित् ने क्यों नहीं मार दिया ? उसका उत्तर **नानुद्वेष्टि० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । राजा परीक्षित् कलियुग से द्वेष नहीं करते हैं क्योंकि जिस तरह भौंरा केवल पराग का ही पान करता है उसी तरह राजा परीक्षित् भी सारग्राही हैं । इस युग का गुण है कि इस युग में अच्छे कार्यों का सङ्कल्प भी शीघ्र ही फलद हो जाता है और पाप कर्म किए जाने पर भी फल नहीं देते हैं केवल सङ्कल्प मात्र की तो कोइ बात ही नहीं है ॥७॥

किं न बालेषु शूरेण कलिना धीरभीरुणा । अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको नृषु वर्तते ॥८॥

अन्वयः— बालेषु शूरेण, धीर भीरुणा कलिना किनु यः प्रमत्तेषु नृषु अप्रमत्तः वृक इव वर्तते ॥८॥

अनुवाद— बालकों पर वीरता दिखाने वाले तथा धीर पुरुष से डरने वाले भेंडिये के समान प्रमादी जीवों के प्रति सावधान रहने वाले कलियुग से क्या होने वाला है ?॥८॥

भावार्थ दीपिका

ननु दोषाधिक्याद्द्वेष एव युक्तः, न, धीरेषु तस्याकिंचित्करत्वादित्याह-किं न्विति । किं नु तेन भवेत् । बालेष्वधीरेषु। अप्रमत्तोऽवहितः सन् यो वृक इव वर्तते ॥८॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि कलियुग में तो दोष ही अधिक है अतएव उसके प्रति द्वेष बुद्धि से उसको मार देना ही उचित था, तो ऐसा कहना इसलिए उचित नहीं है कि कलियुग धैर्य सम्पन्न व्यक्ति का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है । ऐसे कलियुग से क्या मतलब है, जो लोग धैर्यहीन हैं, उन्हीं लोगों के प्रति सावधान रहकर उन लोगों को वह अपना विषय बनाता है । वह तो उस भेंडिये के समान है जो बच्चों पर तो वीरता दिखाता है और बड़े बलवान् लोगों को देखते ही डरकर भाग जाता है ॥८॥

उपवर्णितमेतद्वः पुण्यं पारीक्षितं मया । वासुदेवकथोपेतमाख्यानं यदपृच्छत ॥९॥

अन्वयः— वासुदेवकथोपेतम् एतत् पुण्यं पारीक्षितं आख्यानं मया वः उपवर्णितम् यद् अपृच्छत् ॥९॥

अनुवाद— शौनकादि महर्षियों भगवान् वासुदेव की कथा से युक्त इस पवित्र परीक्षित् आख्यान को मैंने आपलोगों को सुनाया इसी को आपलोगों ने पूछा था ॥९॥

भावार्थ दीपिका

पारीक्षितमाख्यानम् । अपृच्छत पृष्टवन्तो यूयम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

सूतजी ने कहा कि शौनकादि महर्षियों मैंने आपलोगों को यह भगवान् वासुदेव की कथा से युक्त राजा परीक्षित् के इस पवित्र आख्यान को सुना दिया । इसी के विषय में आपलोगों ने प्रश्न भी किया था ॥९॥

या याः कथा भगवतः कथनीयोरुकर्मणः । गुणकर्माश्रयाः पुंभिः संसेव्यास्ता बुभूषुभिः ॥१०॥

अन्वयः— कथनीयोरुकर्मणः भगवतः याः याः गुणकर्माश्रयाः कथाः ताः बुभूषुभिः संसेव्याः ॥१०॥

अनुवाद— महान् कर्मों को करने वाले श्रीभगवान् की जो वर्णन करने योग्य कथाएँ हैं, तथा जिन कथाओं का श्रीभगवान् के कर्मों तथा गुणों से सम्बन्ध हैं, उन कथाओं का सेवन आत्मकल्याण चाहने वाले पुरुषों को करना चाहिए ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

किं बहुना नरैरेतावदेव कर्तव्यमिति सर्वशास्त्रार्थसारं कथयति-या या इति । कथनीयान्युरूणि कर्माणि यस्य तस्य गुणकर्मविषयाः । बुभूषुभिः सद्भावमिच्छद्भिः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

बहुत अधिक कहने से क्या लाभ है, मनुष्यों को इस श्लोक में बतलाये जाने वाले कार्यों को ही करना चाहिए । अतएव शास्त्रों के सार को बतलाते हुए सूतजी **या याः इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । श्रीभगवान् के कर्म महान् तथा वर्णनीय हैं । उन श्रीभगवान् के गुणों एवं कर्मों से सम्बन्ध रखने वाली जो कथाएँ है, कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को उन सभी कथाओं का सेवन करना चाहिए ॥१०॥

ऋषय ऊचुः

सूत जीव समाः सौम्य शाश्वतीर्विशदं यशः । यस्त्वं शंससि कृष्णस्य मर्त्यानाममृतं हि नः ॥११॥

अन्वयः— हे सौम्य सूत शाश्वतीः समाः जीव यःत्वम् मर्त्यानां हि नः कृष्णस्य विशदम् अमृतम् यशः शंससि ॥११॥

ऋषयों ने कहा

अनुवाद— हे सौम्य स्वभाव वाले सूतजी ! आप युगों तक जीवित रहें क्योंकि आप हम मर्त्य जीवों को भगवान् श्रीकृष्ण के अमृतमय विशद यश को सुना रहे हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

पुनर्विस्तरेण कथनार्थं सूतोक्तिं तत्सङ्गं चाभिनन्दन्ति-सूतेति त्रिभिः । शाश्वतीः समा अनन्तान्वत्सरान् जीव । अत्यन्तसंयोगे द्वितीया । विशुद्धं यशः कीर्तयसि । तच्चास्माकं मर्त्यानाममृतं मरणनिवर्तकम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

फिर विस्तार से परीक्षित् की कथा को कहने के लिए सूतजी की बातों की तथा उनकी सङ्गति की प्रशंसा करते हुए शौनक महर्षि ने **सूत जीव० इत्यादि** तीन श्लोकों में कहा कि हे सूतजी आप अनन्त वर्षों तक जीवित रहें । यहाँ **शाश्वतीः समाः** में अत्यन्त संयोग के अर्थ में द्वितीया विभक्ति है । क्योंकि आप हमलोगों को भगवान्

श्रीकृष्ण के विशुद्ध यश को सुनाते हैं। वह हम मरणशील जीवों की मृत्यु को दूर करने वाले अमृत के समान है ।।११।।

कर्मण्यस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान् । आपाययति गोविन्दपादपद्मासवं मधु ।।१२।।

अन्वयः— अस्मिन् अनाश्वासे कर्मणि धूम धूम्रात्मनां नः भवान् गोविन्दपादपद्मासवं मधु आपाययति ।।१२

अनुवाद— इन यज्ञ रूपी कर्मों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है, और इन यज्ञादि कर्मों के धूम से हमलोगों का शरीर धूमिल हो गया है। आप हमलोगों को भगवान् गोविन्द के चरण कमलों का मादक मधु पिलाकर तृप्त कर रहे हैं ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

किंच अस्मिन्कर्मणि सत्रेऽनाश्वासेऽविश्वसनीये। वैगुण्यबाहुल्येन फलनिश्चयाभावात्। धूमेन धूम्रो विवर्ण आत्मा शरीरं येषां तानस्मान्। कर्मणि षष्ठी। आसवं मकरन्दम्। मधु मधुरम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

किञ्च यह सत्र रूपी कर्म ऐसा हैं कि इस पर यह विश्वास नहीं किया जा सकता है कि यह अपना फल प्रदान करेगा ही; क्योंकि इसके अनुष्ठान में अनेक प्रकार के विघ्न सम्भव हैं। अतएव इसके फल का निश्चय नहीं किया जा सकता है; और इस यज्ञ कर्म के धूम से हमलोगों का शरीर धूमिल हो गया है। और आप भगवान् गोविन्द के चरण कमल के मकरन्द से संबद्ध मधुर कथा को सुनाकर हमलोगों को आप्यायित कर रहे हैं ।।१२

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् । भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ।।१३।।

अन्वयः— भगवत् साङ्गिसङ्गस्य, लवेन अपि न स्वर्गं न अपुनर्भवम् तुलयाम मर्त्यानाम् आशिषः किमुत ।।१३।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के भक्तों के सत्सङ्ग के लवमात्र की भी तुलना न तो स्वर्ग से की जा सकती है और न तो मोक्ष से की जा सकती है, ऐसे मनुष्यों को राज्यादि से प्राप्त होने वाले भोगों से इसकी तुलना कैसे की जा सकती है ?।।१३।।

भावार्थ दीपिका

भगवत्सङ्गिनो विष्णुभक्तास्तेषां सङ्गस्य यो लवोऽत्यल्पः कालस्तेनापि स्वर्गं न तुलयाम समं न पश्याम। न चापवर्गम्। संभावनायां लोट्। मर्त्यानां तुच्छा आशिषो राज्याद्या न तुलयामेति किमु वक्तव्यम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् विष्णु के भक्त भगवत् सङ्गी है। उनका जो होने वाला सङ्ग है, उसके अत्यल्प भाग की भी तुलना न तो स्वर्ग सुख से की जा सकती है और न मुक्ति से ही की जा सकती है। तुलयाम में सम्भावना के अर्थ में लोट् लकार हुआ है। ऐसी स्थिति में राज्यादि जन्य भोगों की तुलना उससे नहीं करते हैं, इस बात को क्या कहना है ? वह तो अर्थत: ही सिद्ध है ।।१३।।

को नाम तृप्येद्रसवित्कथायां महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
नान्तं गुणानामगुणस्य जग्मुर्योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः ।।१४।।

अन्वयः— को नाम रसवित् कथायां तृप्येत्, महत्तमैकान्तपरायणस्य अगुणस्य गुणानाम् ये भवपाद्ममुख्याः योगेश्वराः ते अन्तं न जग्मुः ।।१४।।

अनुवाद— कौन ऐसा रसज्ञ प्राणी होगा जो श्रीभगवान् की कथाओं को सुनने से तृप्त हो जायेगा। जो

भगवान् महापुरुषों के लिए एकमात्र आश्रय हैं तथा निर्गुण (प्राकृतिक गुणों से रहित हैं), उनके गुणों के अन्त का पता शिवजी तथा ब्रह्माजी आदि योगेश्वर भी नहीं लगा सके । क्योंकि भगवान् के गुण अनन्त हैं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

एवं सत्सङ्गमभिनन्द्य श्रवणौत्सुक्यमाविष्कुर्वन्ति-को नामेति । रसविद्रसज्ञः । महत्तमानामेकान्तेन परमायनमाश्रयो यस्तस्य कथयन् अगुणस्य प्राकृतगुणरहितस्य । कल्याणगुणानामन्तं ये योगेश्वरास्तेऽपि न जग्मुरेतावन्त इति न परिगणयाञ्चक्रुः भवः शिवः अजो ब्रह्मा च मुख्यौ येषां ते ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से सत्सङ्ग की प्रशंसा करके महर्षि शौनक भगवत् कथा के श्रवण की उत्सुकता को अभिव्यक्त करते हुए **को नाम रसवित् इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । रसवित् रस के वेत्ता पुरुष को कहते हैं; श्रीभगवान् महापुरुषों के लिए एक मात्र आश्रय हैं, उन श्रीभगवान् की कथाओं को सुनने से कोई कैसे तृप्त हो सकता है? श्रीभगवान् अगुण हैं अर्थात् वे प्राकृतिक गुणों से रहित हैं और वे अनन्त कल्याण गुणों के आश्रय है । उन श्रीभगवान् के कल्याण गुणों के अन्त का पता लगाने वाले शिवजी तथा ब्रह्माजी इत्यादि जो योगेश्वर हैं; वे भी उनके गुणों का अन्त नहीं पा सके ।।१४।।

तन्नौ भवान्वै भगवत्प्रधानो महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
हरेरुदारं चरितं विशुद्धं शुश्रूषतां नो वितनोतु विद्वन् ।।१५।।

अन्वयः— हे विद्वन् भवान् वै भगवत् प्रधानः शुषूषतां नः हरेः उदारं विशुद्धं चहिरतं वितनोतु ।।१५।।

अनुवाद— हे विद्वन् ! आपके प्रधान सेव्य श्रीभगवान् ही हैं ऐसे आप सुनना चाहने वाले हमलोगों को श्रीहरि के धर्मार्थ काममोक्ष प्रदान करने वाले विशुद्ध चरित को सुनायें ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

नोऽस्माकं मध्ये भगवान्प्रधानं सेव्यो यस्य स भवान्नः हरेश्चरितं विस्तारयतु ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

हमलोगों के बीच में विद्यमान आपके प्रधान सेव्य श्रीभगवान हैं । ऐसे आप सुनना चाहने वाले हमलोगों को महापुरुषों के एक मात्र आश्रय श्रीहरि के धर्म, अर्थ काम तथा मोक्ष प्रदान करने वाले विशुद्ध चरित को सुनायें ।।१५।।

स वै महाभागवतः परीक्षिद्येनापवर्गाख्यमभ्रबुद्धिः ।
ज्ञानेन वैयासकिशब्दितेन भेजे खगेन्द्रध्वजपादमूलम् ।।१६।।

अन्वयः— स वै महाभागवतः परीक्षित् अदभ्रबुद्धिः येन वैयासकिः शब्दितेन ज्ञानेन अपवर्गाख्यं खगेन्द्रध्वजपादमूलम् भेजे ।।१६।।

अनुवाद— वे महाभागवत परीक्षित् महान् बुद्धि सम्पन्न थे, उन्होंने शुकदेवजी द्वारा उपदिष्ट ज्ञान के द्वारा मोक्ष नामक गरुडध्वज भगवान् विष्णु के चरणों के सन्निध्य को प्राप्त किया ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

तच्च शुकपरीक्षित्संवादेन कथयेत्याहुः- स वा इति द्वाभ्याम् । वैयासकिना श्रीशुकेन शब्दितेन कथितेन येन ज्ञानेन ज्ञानसाधनेनापवर्ग इत्याख्या यस्य तत् खगेन्द्रध्वजस्य हरेः पादमूलं भेजे ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

शौनकजी ने कहा कि श्रीभगवान् के चरित को आप शुक-परीक्षित् संवाद के माध्यम से सुनायें । इस बात को उन्होंने **स वै० इत्यादि** दो श्लोकां के माध्यम से कहा । व्यासजी के पुत्र श्रीशुकदेवजी द्वारा उपदिष्ट ज्ञान रूपी साधन के द्वारा राजा परीक्षित् अपवर्ग (मोक्ष) नामक भगवान् गरुडध्वज के चरणों को प्राप्त कर लिए ।।१६।।

तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थमाख्यानमत्यद्भुतयोगनिष्ठम् ।
आख्याह्यनन्ताचरितोपपन्नं पारीक्षितं भागवताभिरामम् ।।१७।।

अन्वयः— तत् असंवृतार्थम् अत्यद्भुतयोगनिष्ठम् । अनन्तचरितोपपन्नम् भागवताभिरामम् परं पुण्यं पारीक्षितम् आख्यानम् आख्याहि ।।१६।।

अनुवाद— ज्यों के त्यों, अत्यन्त, भगवत् प्रेम की अद्भुत योगनिष्ठा से युक्त, श्रीभगवान् की लीलामयी कथाओं से युक्त, भगवद् भक्तों को अत्यन्त प्रिय, अत्यन्त पवित्र महाराज परीक्षित् के चरित का आप वर्णन करें ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

तदसंवृतार्थं यथा तथा आख्याहि । तदेव निर्दिशन्ति । परीक्षिते कथितं पारीक्षितमायानं श्रीभागवतं पुराणम् । परं पुण्यं सत्त्वशोधकम् । अत्यद्भुते योगे निष्ठा यस्य । अनन्तस्याचरितैरुपपन्नं युक्तम् । अतएव भागवतानामभिरामं प्रियम् । एतैर्विशेषणैः कर्मज्ञानभक्तियोगप्रकाशकत्वं दर्शितम् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् के चरित को आप ज्यों के त्यों हमलोगों को सुनायें । उसी को बतलाते हुए शौनक महर्षि कहते हैं राजा परीक्षित् के विषय में वर्णित आख्यान को पारीक्षित् कहते हैं अर्थात् परीक्षित् से संबद्ध श्रीमद्भागवत पुराण को जो अन्तःकरण को स्वच्छ बनाने वाला होने के कारण अत्यन्त पवित्र है । जिसकी अत्यन्त अद्भुत योग में निष्ठा है तथा अनन्त श्रीभगवान् की लीलाओं से युक्त होने के कारण भगवद् भक्तों को जो अत्यन्त प्रिय है उस परीक्षित् के आख्यान का आप वर्णन करें । इन सभी विशेषणों से यह बतलाया गया है कि राजा परीक्षित् की कथा कर्मयोग, ज्ञानयोग एव भक्तियोग का प्रकाशक है ।।१७।।

सूत उवाच

अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्म वृद्धानुवृत्त्यापि विलोमजाताः ।
दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति शीघ्रं महत्तमानामभिधानयोगः ।।१८।।

अन्वयः— विलोमजाता जन्मभृतः अपि वयं वृद्धानुवृत्त्या अद्य अहो, यतः महत्तमानामाभिधानयोगः दौष्कुल्यम् आधिं शीघ्रं विधुनोति ।।१८।।

अनुवाद— विलोम जाति में उत्पन्न होने पर भी वृद्ध पुरुषों की सेवा करने के कारण आज हम धन्य हो गये; क्योंकि महापुरुषों के साथ बातें करने का अवसर नीच वंश में उत्पन्न होने की मनोव्यथा को शीघ्र ही विनष्ट कर देती है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

श्रीभागवतव्याख्याने लब्धप्रसङ्गं महतामादरपात्रमात्मानं श्लाघते द्वाभ्याम् । अहो इत्याश्चर्ये । ह इति हर्षे । वयमिति बहुवचनं श्लाघायाम् । प्रतिलोमजा अप्यद्य जन्मभृतः सफलजन्मान आस्म जाताः । वृद्धानामनुवृत्त्या आदरेण । ज्ञानवृद्धः शुकस्तस्य सेवयेति वा । यतो दुष्कुलत्वं तन्निमित्तमाधिं च मनःपीडां महत्तमानामभिधानयोगो लौकिकोऽपि संभाषणलक्षणः संबन्धो विधुनोत्यपनयति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीमद्भागवत की कथा कहने का प्रसङ्ग प्राप्त होने के कारण सूतजी दो श्लोकों के द्वारा अपनी प्रशंसा करते हैं । अहो इस अव्यय का प्रयोग आश्चर्य के अर्थ में किया गया है । ह इस अव्यय का प्रयोग हर्ष के अर्थ में हुआ है । वयम् इस बहुवचनान्त पद का प्रयोग प्रशंसा के अर्थ में है । सूतजी अपनी प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि यद्यपि मैं प्रतिलोम जाति में उत्पन्न हुआ हूँ किन्तु आज मेरा जन्म सफल हो गया; क्योंकि ज्ञान वृद्ध शुकदेवजी की मैंने सेवा की है । महापुरुषों के साथ बात-चित भी करने का अवसर प्राप्त होने के कारण नीच जाति में उत्पन्न होने की मनोव्यथा को विनष्ट कर देता है ।।१८।।

कुतः पुनर्गृणतो नाम तस्य महत्तमैकान्तपरायणस्य ।
योऽनन्तशक्तिर्भगवाननन्तो महद्गुणत्वाद्यमनन्तमाहुः ।।१९।।

अन्वयः— महत्तमैकान्तपरायणस्य तस्य नाम गुणतः कुतः । यः अनन्तशक्तिः भगवान् अनन्तः यम् महद्गुणत्वात् अनन्तम् आहुः ।।१९।।

अनुवाद— महापुरुषों के लिए जो एक मात्र आश्रय हैं, उन श्रीभगवान् के नामों का उच्चारण करने वाले के विषय में फिर क्या कहना है । जो श्रीभगवान् अनन्त शक्तियों से सम्पन्न हैं तथा देश, काल एवं वस्तु की सीमा से रहित हैं । जिन श्रीभगवान के महान् गुणों से सम्पन्न होने के कारण ही महापुरुषों ने अनन्त कहा है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

कुतः पुनः किं पुनर्वक्तव्यं तस्यानन्तस्य नाम गृणतः पुंसो महत्तमानामभिधानयोगो दौष्कुल्यं विधुनोतीति । यद्वा नाम गृणतः पुनः कुतो दौष्कुल्यमिति । यद्वा गृणतः पुंसस्तस्य नाम दौष्कुल्यं विधुनोतीति किं वक्तव्यमिति कैमुत्यन्यायमेवाह । अनन्ताः शक्तयो यस्य । स्वतोऽप्यनन्तः किंच महत्सु गुणा यस्य स महद्गुणः तस्य भावस्तस्मात् । यं गुणतोऽप्यनन्तमाहुः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् अनन्त के नामों का उच्चारण करने वाले पुरुष के विषय में क्या कहना है ? महापुरुषों के साथ बातचित करने का अवसर भी नीच वंश में उत्पन्न होने की मनोव्यथा को विनष्ट कर देता है । अथवा श्रीभगवान् के नामों का उच्चारण करने वाले के नीच जाति का होने का प्रसङ्ग ही कहाँ हैं । अथवा उच्चारण किया जाने वाला भगवान् का नाम नीच वंशोत्पन्नत्व को ही विनष्ट कर देता है । यह क्या कहना है, यह तो अपने आप ही सिद्ध है । इसतरह कैमुत्यन्याय को यहाँ पर बतलाया गया है । भगवान् में अनन्त शक्तियाँ हैं अतएव वे अनन्त शक्ति शब्द से अभिहित किए जाते हैं । वे स्वयं भी अनन्त है । अथवा जिनके गुण महापुरुषों में पाये जाते हैं ऐसे महद्गुण सम्पन्नता के कारण भी भगवान् को अनन्त शब्द से अभिहित किया गया है ।।१९।।

एतावताऽलं ननु सूचितेन गुणैरसाम्यानतिशायनस्य ।
हित्वेतरान्प्रार्थयतो विभूतिर्यस्याङ्घ्रिरेणुं जुषतेऽनभीप्सोः ।।२०।।

अन्वयः— गुणैः असाम्यानतिशायनस्य ननु एतावता सूचितेन अलम् यत् प्रार्थयतः इतरान् हित्वा विभूतिः अनभीप्सोः यस्य अङ्घ्रिरेणुम् जुषते ।।२०।।

अनुवाद— जब कोई भगवान् के गुणों की ही समता नहीं कर सकता है तो फिर उनसे बढ़कर कहाँ से कोई होगा ? उनके विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि लक्ष्मीजी को प्राप्त करने की इच्छा से जो उनकी प्रार्थना करते हैं उन सबों को त्यागकर लक्ष्मीजी नहीं चाहने वाले भी श्रीभगवान् के चरणरजों का प्रेमपूर्वक सेवन करती हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति त्रिभिः- एतावतेति । तस्य यदसाम्यानतिशायनं च गुणैस्तत्साम्यं तदाधिक्यं चान्यस्य नास्तीत्यस्यार्थस्य ज्ञानमेतावता सूचितेनैवालं प्रर्याप्तं कस्तद्विस्तरो वक्तुं शक्नोति । तदेवाह । इतरान्ब्रह्मादीन्प्रार्थयमानान् हित्वा विभूतिर्लक्ष्मीरनभीप्सोरपि यस्याङ्घ्रिरेणुं सेवत इति ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बातों का ही विसतार से वर्णन **एतावतालम्० इत्यादि** तीन श्लोंकों से किया जा रहा है । श्रीभगवान के गुणों के ही कारण उनका साम्यातिशय राहित्य है । अतएव श्रीभगवान् के गुणों के समान गुणों वाला कोई दूसरा नहीं है और न तो उनसे बढ़कर ही गुणों वाला कोई है । इस प्रकार का जो ज्ञान है उसके विषय में इतना ही कह देना पर्याप्त है कि भगवान् के गुणों का विस्तार से वर्णन कौन कर सकता है ? इसी बात को बतलाते हुए सूतजी कहते हैं **हित्वा० इत्यादि** दूसरे ब्रह्माजी इत्यादि लक्ष्मीजी की प्रार्थना करते हैं कि वे उनको प्राप्त हो जायँ, किन्तु उन प्रार्थना करने वालों को त्यागकर लक्ष्मीजी उन श्रीभगवान् के चरणों की सेवा अत्यन्त प्रेम पूर्वक करती हैं, जिन श्रीभगवान् को लक्ष्मीजी को प्राप्त करने की लालसा है ही नहीं ।।२०।।

अथापि यत्पादनखावसृष्टं जगद्विरिञ्चोपहृतार्हणाम्भः ।
सेशं पुनात्यन्यतमो मुकुन्दात्को नाम लोके भगवत्पदार्थः ।।२१।।

अन्वयः— अथापि यत्पादनखावसृष्टं विरिञ्चोपहृतअर्हणाम्भः सेशं जगत् पुनाति लोके मुकुन्दात् को नाम अन्यतमः भगवत् पदार्थः ।।२१।।

अनुवाद— किञ्च जिन श्रीभगवान् के चरणों के नख से निकले हुए तथा ब्रह्माजी के द्वारा प्रदत्त पूजनीय जल गङ्गाजी के रूप में शङ्करजी के साथ ही सम्पूर्ण जगत् को पवित्र बनाता है, उन भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले श्रीमुकुन्द से भिनन दूसरा कौन नाम है जो भगवान् पद का वाच्यार्थ बन सके ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

अथेत्यर्थान्तरे । यस्य पादनखादवसृष्टं निःसृतमपि विरिञ्चेनोपहृतं समर्पितमर्हणाम्भोऽर्घोदकमीशसहितं जगत्पुनाति । विरिञ्चोपहृतं सेशमिति च तयोरप्युपासकत्वमुक्तम् । तस्मान्मुकुन्दव्यतिरिक्तः को नाम भगवत्पदस्यार्थः । स एव सर्वेश्वर इत्यर्थः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

यहाँ अथ शब्द का अर्थान्तर के अर्थ में प्रयोग हुआ है । जिन श्रीभगवान् के चरणों से निकला हुआ जल जिसे ब्रह्माजी ने शङ्करजी को अर्घोदक के रूप में प्रदान किया वह गङ्गाजी के रूप में शङ्करजी के साथ ही सम्पूर्ण जगत् को पवित्र बनाता है । **विरिञ्चिचोपहृतं सेशम्** कहने का अभिप्राय है कि वह शङ्करजी के साथ ही ब्रह्माजी को भी पवित्र बन दिया । इस तरह ब्रह्माजी और शिवजी दोनों के उपासकत्व की प्रतीति होती है । अतएव भगवान् मुकुन्द को छोड़कर दूसरा कौन है जिसको भगवान् पद से अभिहित किया जाय । फलतः भगवान् विष्णु ही सर्वेश्वर सिद्ध होते हैं ।।२१।।

यत्रानुरक्ताः सहसैव धीरा व्यपोह्य देहादिषु सङ्गमूढम् ।
व्रजन्ति तत्पारमहंस्यमन्त्यं यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ।।२२।।

अन्वयः— यत्रानुरक्ताः धीराः सहसा एव देहादिषु ऊढं सङ्गं व्यपोह्य, तत् अन्त्यं पारमहंस्यं व्रजन्ति यस्मिन् अहिंसोपशमः स्वधर्मः ।।२२।।

अनुवाद— उन श्रीभगवान् में अनुरक्त ज्ञानी पुरुष अचानक ही शरीर आदि में गृहीत आसक्ति का परित्याग करके उस अन्तिम पारमहंस्य आश्रम को अपना लेते हैं जिसमें अहिंसा और उपशम ही अपना धर्म हो जाता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

धीराः सन्तः । ऊढं धृतम् । अन्त्यं परमकाष्ठापन्नम् । तदाह । यस्मिन्नहिंसा उपशमश्च स्वाभाविको धर्मः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

सूतजी बतलाते हैं कि श्रीभगवान् में जब सुदृढ प्रेम हो जाता है, उस समय ज्ञानी पुरुष इन शरीरादिकों में जो आसक्ति हो गयी है, उसको अचानक बिना किसी हिचक के ही त्याग देते हैं और जीवन का जो अन्तिम आश्रम है उस संन्यास आश्रम को अपना लेते हैं और उस आश्रम में हिंसा का त्याग रूपी अहिंसा और उपशम ये दोनों अपना स्वाभाविक धर्म बन जाता है ॥२२॥

अहं हि पृष्टोऽर्यमणो भवद्भिराचक्ष आत्मावगमोऽत्र यावान् ।
नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्रिणस्तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः ॥२३॥

अन्वयः— हे अर्यमणः अहं हि भवद्भिः पृष्टः यावान् आत्मावगमः अत्र वक्ष्ये । यथा पतत्रिणः आत्मसमं नभः पतन्ति तथा समं विपश्चितः विष्णु गतिम् ॥२३॥

अनुवाद— हे सूर्य के समान देदीप्यमान महर्षिगण, आपलोगों ने जो मुझसे पूछा है उसे मैं अपने ज्ञान के अनुसार बतलाता हूँ । जिस तरह पक्षीगण अपनी शक्ति के अनुसार ही आकाश में उड़ते हैं उसी तरह ज्ञानी पुरुष भी अपने ज्ञान के अनुसार ही भगवान् की लीलाओं का वर्णन करते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

एवं स्वभाग्यमभिनन्द्य पारीक्षितोपाख्यानं वक्तुमाह-अहं हीति । हे अर्यमणः हे सूर्यास्त्रयीमूर्तयः, अत्र यावानात्मावगमो मम ज्ञानं तावदाचक्षे प्रवक्ष्यामि । तथाहि । यथा पक्षिणो नभ आत्मसमं स्वशक्त्यनुरूपमेवोत्पतन्ति न कृत्स्नं, तथा विपश्चितोऽपि विष्णोर्गतिं लीलां समं स्वमत्युनरूपमेव वदन्तीत्यर्थः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से अपने भाग्य की सराहना करने के पश्चात् सूतजी ने परीक्षितोपाख्यान का वर्णन करने के लिए **अहंहि० इत्यादि** श्लोक को कहा है । उन्होंने कहा— हे सूर्य के समान देदीप्यमान प्रकाश सम्पन्न त्रयीमूर्ति महर्षियों इस विषय में मेरी जितनी जानकारी है । उसी के अनुसार मैं परीक्षित् चरित का वर्णन करूँगा । उदाहरणार्थ- पक्षीगण अपनी शक्ति के ही अनुसार आकाश में उड़ते हैं, वे सम्पूर्ण आकाश में तो उड़कर जा नहीं सकते हैं। उसी तरह विद्वान् पुरुष भी अपनी ज्ञानशक्ति के अनुसार ही भगवान् की लीलाओं का वर्णन करते हैं । वे भगवान् की सारी लीलाओं का वर्णन तो नहीं कर सकते हैं ॥२३॥

एकदा धनुरुद्यम्य विचरन्मृगयां वनं । मृगाननुगतः श्रान्तः क्षुधितस्तृषितो भृशम् ॥२४॥
जलाशयमचक्षाणः प्रविवेश तमाश्रमम् । ददर्श मुनिमासीनं शान्तं मीलितलोचनम् ॥२५॥

अन्वयः— एकदा धनुः उद्यम्य वने मृगयां विचरन् मृगानुगतः श्रान्तः भृशम् क्षुधितः तृषितः जलाशयम् आचक्षाणः तम् आश्रमम् प्रविवेश । आसीनम् शान्तम् मीलितलोचनम् मुनिं ददर्श ॥२४-२५॥

अनुवाद— एक बार राजा परीक्षित् वन में आखेट के प्रसङ्ग में विचरण करते हुए तथा मृग का पीछा करते हुए बहुत अधिक थक गये भूखे तथा प्यासे राजा जलाशय की खोज करते हुए एक आश्रम में प्रवेश कर गये। उन्होंने आसन पर बैठे हुए शान्त तथा नेत्रों को बन्द किए हुए ऋषि को देखा ॥२४-२५॥

भावार्थ दीपिका

संप्रति कथामुपक्षिपति-एकदेति । अचक्षाणोऽपश्यन् तं प्रसिद्धमाश्रमम् । तस्मिंश्च मुनिं शमीकम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

अब **एकदा० इत्यादि** श्लोक से सूतजी ने कथा प्रारम्भ की । उन्होंने कहा— राजा परीक्षित् एक बार धनुष धारण करके वन में मृगया विहार कर रहे थे । एक मृग का पीछा करते हुए वे बहुत थक गये और भूख तथा प्यास के मारे वे जलाशय को खोजते हुए एक आश्रम में प्रवेश कर गये । वह शमीक मुनि का आश्रम था। वहाँ उन्होंने आसन पर बैठे हुए, शान्त तथा आँखें बन्द किए हुए शमीक मुनि को देखा ।।२४-२५।।

प्रतिरुद्धेन्द्रियप्राणमनोबुद्धिमुपारतम् । स्थानत्रयात्परं प्राप्तं ब्रह्मभूतमविक्रियम्।।२६।।
विप्रकीर्णजटाच्छन्नं रौरवेणाजिनेन च । विशुष्यत्तालुरुदकं तथाभूतमयाचत।।२७।।

अन्वयः— प्रतिरुद्धेन्द्रिय प्राणमनोबुद्धिम् उपारतम् स्थानत्रयात् परं प्राप्तं ब्रह्मभूतम्, अविक्रियम्, विप्रकीर्णजटा रौरवेण अजिनेन छन्नं तथा भूतम् विशुष्यत् तालुः उदकम् अयाचत् ।।२६-२७।।

अनुवाद— इन्द्रिय, प्राण, मन तथा बुद्धि के अवरुद्ध हो जाने के कारण संसार से ऊपर उठे हुए, जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से ऊपर तुरीयावस्था को प्राप्त कर गये अतएव विकार रहित ब्रह्म स्वरूप ऋषि की जटायें विखरी हुयी थी और रुरु मृग के चर्म को वे ओढे हुए थे, उस प्रकार के मुनि से प्यास से जिनका तालु सुख रहा था वे राजा जल माँगे ।।२६-२७।।

भावार्थ दीपिका

प्रतिरुद्धाः प्रत्याहृता इन्द्रियादयो येन तम् । अत एवोपरतम् । स्थानत्रयाज्जग्रदादिलक्षणात्परं तुरीयं पदं प्राप्तम् अतएव ब्रह्मभूतत्वादविक्रियम् । विप्रकीर्णाभिर्जटाभिराच्छन्नम् । रुरुर्मृगविशेषस्तस्य चर्मणा चाच्छन्नम् । विशेषेण शुष्यत्तालु यस्य सः। तथाभूतं मुनिमुदकमयाचत ।।२६-२७।।

भाव प्रकाशिका

उस समय महर्षि अपनी इन्द्रियों, प्राण, मन तथा बुद्धि को निरुद्ध कर दिये थे, अतएव वे संसार से ऊपर उठ चुके थे । जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से ऊपर उठकर वे तुरीयावस्था को प्राप्त कर लिए थे । फलत: वे ब्रह्मस्वरूप तथा निर्विकार हो गये थे महर्षि उनकी जटायें विखरी हुयी थीं और वे रुरु मृग के चर्म को ओढ़े हुए थे । इस प्रकार के महर्षि से राजा ने जल माँगा । उस समय प्यास के कारण राजा का कण्ठ सूखा जा रहा था ।।२६-२७।।

अलब्धतृणभूम्यादिरसंप्राप्तार्घसूनृतः । अवज्ञातमिवात्मानं मन्यमानश्चुकोप ह ।।२८।।

अन्वयः— अलब्धतृणभूम्यादिः न संप्राप्तार्घसुनृतः अवज्ञातम् इव आत्मानं मन्यमानः चुकोप ह ।।२८।।

अनुवाद— बैठने के लिए तृण आसन तथा भूमि आदि राजा को नहीं प्राप्त हुआ, राजा को किसी ने न तो अर्घ प्रदान किया और न तो उनको किसी ने प्रिय वाणी से सत्कृत किया । उससे राजा ने मान लिया कि वहाँ पर उनका अपमान हुआ है । अतएव वे क्रुद्ध हो गये ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

न लब्धं तृणं तृणासनं भूम्याद्युपवेशस्थानं च येन सः । न संप्राप्तोऽर्घः सूनृतं प्रियवचनं य येन सः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

अलब्ध तृण भूम्यादिः पद का विग्रह है । **न लब्धं तृणं तृणासनं भूम्याद्युपवेशन स्थानं येन सः । असंप्राप्तार्घसुनृतः** का विग्रह है न **सम्प्रातोऽर्घः सुनृतं प्रियवचनं च येन सः** । अर्थात् वहाँ पर किसी ने राजा को न तो बैठने के लिए कोई तृण निर्मित आसन ही दिया और न तो उनको भूमि पर ही बैठ जाने के लिए किसी ने कहा । इसी तरह उनको न तो किसी ने न तो अर्घ प्रदान किया और न तो किसी ने प्रियवाणी से उनका सत्कार ही किया । यह देखकर राजा ने मान लिया कि यहाँ तो मेरा अपमान हो रहा है । राजा मन ही मन क्रुद्ध हो गये ।।२८।।

अभूतपूर्वः सहसा क्षुत्तृड्भ्यामर्दितात्मनः । ब्राह्मणं प्रत्यभूद्ब्रह्मन्मत्सरो मन्युरेव च।।२९।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! क्षुततृड्भ्याम् अर्दितात्मनः सहसा तस्य ब्राह्मणं प्रति अभूतपूर्वः मत्सरः मन्युरेव च अभूत् ।।२९।।

अनुवाद— हे शौनकजी भूख तथा प्यास से व्याकुल राजा परीक्षित् के मन में ब्राह्मण के प्रति अचानक अभूतपूर्व द्वेषमयी बुद्धि हो गयी और क्रोध उत्पन्न हो गया । राजा के जीवन में इससे पहले किसी ब्राह्मण के प्रति द्वेषबुद्धि और क्रोध कभी नहीं हुआ था ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

मत्सरस्तदुत्कर्षासहनम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

राजा के मन में महर्षि शमीक के प्रति द्वेष बुद्धि हो गयी । दूसरे के उत्कर्ष को नहीं सह पाने को ही मत्सर कहते हैं यह राजा के जीवन में इस प्रकार का पहला अवसर था ।।२९।।

स तु ब्रह्मऋषेरंसे गतासुमुरगं रुषा । विनिर्गच्छन्धनुष्कोट्या निधाय पुरमागमत् ।।३०।।

अन्वयः— स तु रुषा विनिर्गच्छन् धनुष कोट्या गतासुम् उरगं निधाय पुरमागमत् ।।३०।।

अनुवाद— वे राजा क्रोध करके आश्रम से निकलते हुए अपने धनुष के अग्रभाग से मरे हुए सर्प को उठाकर ऋषि के गले में उसे डालकर अपने नगर में आ गये ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

गतासुं मृतम् । धनुष्कोट्या चापाग्रेण ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

राजा क्रोध के आवेश में थे, उन्होने एक मरे हुए सर्प को अपने धनुष के अग्रभाग से उठाकर ऋषि के गले में डाल दिया ।।३०।।

एष किं निभृताशेषकरणो मीलितेक्षणः । मृषासमाधिराहोस्वित्किं तु स्यात्क्षत्रबन्धुभिः ।।३१।।

अन्वयः— एषः मीलितेक्षणः किं निभृताशेषकरणः आहोस्वित् क्षत्रबन्धुभिः किं नु स्यात् इति मृषा समाधिः ।।३१।।

अनुवाद— आँखों को बन्द किए ये मुनिः वस्तुतः अपनी इन्द्रियों की वृत्तियों का निरोध कर लिए हैं अथवा यह जानकर कि क्षत्रियों के आने जाने से क्या होता है ? यह सोचकर झूठी समाधि लगा रखे हैं यही सोचकर राजा ने ऋषि के गले में मरा साँप डाल दिया ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

सर्पनिधाने राज्ञोऽभिप्रायमाह । एष किं प्रत्याहृतसर्वेन्द्रियः सन् मीलितेक्षणः स्थितो यद्वा क्षत्रबन्धुभिरागतैर्गतैर्वा किं नु स्यादित्यवज्ञया मृषासमाधिः सन्निति जिज्ञासयेत्यर्थः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

ऋषि के गले में सर्प डालते समय राजा के मन में यह जानने की इच्छा हो गयी थी कि ये आँखे बन्द किए हुए ऋषि वस्तुत अपनी इन्द्रियों आदि का निग्रह कर लिए हैं अथवा यह सोचकर कि क्षत्रियों के आने-जाने से क्या होता है ? आँखे बन्द किए हुए झूठी समाधि लगाये हुए हैं ।।३१।।

तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी विहरन्बालकोऽर्भकैः । राज्ञाऽघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्रेदमब्रवीत् ।।३२।।

अन्वयः— तस्य अतितेजस्वी बालकः पुत्रः विहरन् सन् अर्भकैः राज्ञा अघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्र इदम् अब्रवीत् ।।३२।।

अनुवाद— उन शमीक ऋषि का बालक पुत्र अत्यन्त तेजस्वी था वह बालकों के साथ खेल रहा था । बालकों से उसने जब यह सुना कि राजा ने मेरे पिता को दु:ख दिया है तो उसने बालकों के बीच में ही कहा ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

तस्य पुत्रः शृङ्गीनामा । अतितेजस्वी तपोबलसंपन्नः । अघं दुःखम् । तत्र अर्भकमध्ये ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

ऋषि शमीक के पुत्र का नाम शृङ्गी था । शृङ्गी ऋषि यद्यपि बालक थे और बालकों के साथ खेल रहे थे। फिर भी वे अत्यन्त तेजस्वी थे । उनको तपस्या का बल प्राप्त था । उन्होंने बालकों से जब यह सुना कि राजा ने उनके पिता को दु:ख पहुँचाया है तो वे क्रुद्ध हो गये, उन्होंने बालकों के बीच में ही निम्नलिखित बातों को कहा ।।३२।।

अहो अधर्मः पालानां पीव्नां बलिभुजामिव । स्वामिन्यघं यद्दासानां द्वारपानां शुनामिव ।।३३।।

अन्वयः— पीव्नां बलिभुजामिव पालानां अहो अधर्मः स्वामिनि अघं कुर्वतां दासानाम् द्वारपानां शुनामिव ।।३३।।

अनुवाद— उच्छिष्ट भोजन खा करके मोटे हुए कौओं के समान भोजन करके मोटे हुए राजाओं का यह कितना बड़ा पाप है । यह उसी तरह से है जिस तरह उच्छिष्टभोजी भृत्य स्वामी का अपकार करने लग जाय या द्वार की रक्षा करने वाला कुत्ता स्वामी को काटने के लिए दौड़ने लगे ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

पालानां राज्ञाम् । पीव्नां पुष्टानाम् । अधर्ममेव निर्दिशति । स्वामिनि दासानां यदघं पापाचरणं बलिभुजां काकानामिव शुनामिव चेति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

ये खाकर मोटे हुए राजागण अपने स्वामी ब्राह्मणों के प्रति पाप करने लगे हैं । यह तो उसी तरह से है जैसे खाकर मोटे हुए भृत्य, या द्वारों का रक्षक कुत्ता या बलिभोजी उच्छिष्ट भोजी कौआ अपने स्वामी का ही अपकार करने लगे ।।३३।।

ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुर्हि द्वारपालो निरूपितः । स कथं तद्गृहे द्वास्थः सभाण्डं भोक्तुमर्हति ।।३४।।

अन्वयः— ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुः हि द्वारपालो निरूपितः द्वाःस्थःसःकथं तद्गृहे सभाण्डं भोक्तुमर्हति ।।३४।।

अनुवाद— ब्राह्मणों ने क्षत्रियों को अपना द्वारपाल नियुक्त किया है । द्वार पर रहने वाला वह अपने स्वामी के घर में घुसकर स्वामी के ही पात्र में कैसे भोजन कर सकता है ?।।३४।।

भावार्थ दीपिका

दासत्वं दर्शयति-ब्राह्मणैरिति । सभाण्डं भाण्डे एव स्थितम् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

क्षत्रिय ब्राह्मणों के दास हैं, इस बात का निरूपण करते हुए ब्राह्मणों ने क्षत्रियों को द्वार पर रहकर घर की रखवाली करने का काम सौंपा है । वह द्वार पर रहने वाला स्वामी के घर में घुसकर स्वामी के ही पात्र में भोजन करने का अधिकारी कैसे हो सकता है ?।।३४।।

कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनाम् । तद्भिन्नसेतूनद्याहं शास्मि पश्यत मे बलम् ।।३५।।

अन्वयः— उत्पथगामिनां शास्तरि भगवति कृष्णे गते, तद्भिन्न सेतून् अद्य अहं शास्मि मे बलम् पश्यत ।।३५।।

अनुवाद— उन्मार्ग गामियों का प्रशासन करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के परम धाम गमन कर जाने के पश्चात् मर्यादा का उल्लंघन करने वाले इन राजाओं को आज मैं दण्ड देता हूँ । तुमलोग मेरा बल देखो ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

तत्तदनन्तरम् । अहं शास्मि दण्डयामि ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के पश्चात् इन राजाओं को मैं दण्डित कर रहा हूँ । तुमलोग मेरे बल को देखो इस तरह से शृङ्गी ऋषि ने बालकों से कहा ।।३५।।

इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो वयस्यानृषिबालकान् । कौशिक्याप उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह ।।३६।।

अन्वयः— रोषताम्राक्षः वयस्यान् ऋषिबालकान् इति उक्त्वा कौशिक्यापः उपस्पृश्य वाग्वज्रं विससर्ज ह ।।३६।।

अनुवाद— क्रोध से आँखें लाल किए हुए बालक शृङ्गीं अपने मित्र बालको से इस बात को कहकर कौशिकी नदी के जल का आचमन करके वाणी रूप वज्र (शाप) का प्रयोग किया ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

इति वयस्यानुक्त्वा रोषेण ताम्रे अक्षिणी यस्य सः । कौशिकी नदी तस्या अपः । सन्धिरार्षः । वाग्वज्रं शापम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से अपने मित्रों से कहकर ऋषि कुमार ने कौशिकी नदी के जल से आचमन करके शाप दे दिया ।।३६।।

इति लङ्घितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि । दङ्क्ष्यति स्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्रुहम् ।।३७।।

अन्वयः— इति लङ्घितमर्यादम् कुलाङ्गरम् मे तत द्रुहम् सप्तमे अहनि प्रेरितः तक्षकः दंक्ष्यति ।।३७।।

अनुवाद— इस प्रकार से मर्यादा का उल्लङ्घन करने वाले अपने वंश के लिए अङ्गार स्वरूप तथा मेरे पिता से द्रोह करने वाले राजा को आज के सातवें दिन मेरे द्वारा प्रेरित होकर तक्षक काट लेगा ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

इत्येवं सर्पनिक्षेपेण । दङ्क्ष्यति भक्षयिष्यति । पाठान्तरे भस्मीकरिष्यति । स्मेति । पादपूरणे । कुलस्स्याङ्गारतुल्यम्। मे मया । ततेति ह्रस्वत्वमार्षम् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से मेरे पिता के गले में सर्प डालने से मर्यादा का उल्लङ्घन करने वाले, अपने वंश के लिए अङ्गार के समान उसको विनष्ट करने वाले राजा को मेरे द्वारा प्रेरित होकर तक्षक आज के सातवें दिन काट लेगा।

दंक्ष्यति के स्थान पर जहाँ पर धक्ष्यति पाठ भेद हैं वहाँ पर भस्म कर देगा यह अर्थ होगा। **दंक्ष्यति स्म** में **स्म** का प्रयोग पादपूर्ति के लिए है। **ततद्रुहम्** में तत यह ह्रस्व पाठ आर्ष प्रयोग है ।।३७।।

ततोऽभ्येत्याश्रमं बालो गलेसर्पकलेवरम् । पितरं वीक्ष्य दुःखार्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ।।३८।।

अन्वयः— ततः बालः आश्रमं अभ्येत्य गले सर्पकलेवरम्, पितरं वीक्ष्य दुःखार्तः मुक्तकण्ठः रुरोद ।।३८।।

अनुवाद— उसके पश्चात् वह बालक अपने आश्रम में आकर तथा पिता के गले में सर्प को देखकर दुःख से आर्त हो गया और जोर-जोर से रोने लगा ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

गले सर्पकलेवरं यस्येत्यलुक्समासः मुक्तकण्ठः उच्चैरित्यर्थः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

गले सर्पकालेवरम् इस पद में अलुक् समास है, अर्थात् विभक्ति का लुक् नहीं हुआ है। मुक्त कण्ठः का अर्थ है जोर-जोर से। अर्थात् पिता के गले में सर्प के शरीर को देखकर वह बालक अत्यन्त दुःखी होकर जोर-जोर से रोने लगा ।।३८।।

स वा आङ्गिरसो ब्रह्मन् श्रुत्वा सुतविलापनम् । उन्मील्य शनकैर्नेत्रे दृष्ट्वा स्वांसे मृतोरगम् ।।३९।।
विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ वत्स कस्माद्धि रोदिषि । केन वा ते प्रतिकृतमित्युक्तः स न्यवेदयत् ।।४०।।

अन्वयः— स वै आङ्गिरसः सुतविलापनं श्रुत्वा शनकैः नेत्रे उन्मील्य स्वांसे मृतोरगम् दृष्ट्वा, विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ, कस्मात् हि रोदिषि वा केन ते प्रतिकृतम्? इत्युक्तः स न्यवेदयत् ।।३९-४०।।

अनुवाद— अङ्गिरा गोत्रीय वे शमीक महर्षि अपने पुत्र का रुदन सुनकर धीरे-धीरे अपनी आँखों को खोले और गले में मरे सर्प को देखकर उसे हटाकर अपने पुत्र से पूछे— वत्स! तुम्हारा किसने अपकार किया है? ऋषि के द्वारा इस तरह पूछे जाने पर बालक ने सारी बातें बता दी ।।३९-४०।।

भावार्थ दीपिका

तं सर्पं विसृज्य । केनापकारः कृतः ।।३९-४०।।

भाव प्रकाशिका

अपने गले से मरे सर्प को हटाकर ऋषि ने अपने पुत्र से पूछा तुम्हारा किसने अपकार किया है ?।।३९-४०।।

निशम्य शप्तमतदर्हं नरेन्द्रं स ब्राह्मणो नात्मजमभ्यनन्दत् ।
अहो बतांहो महदज्ञ ते कृतमल्पीयसि द्रोह उरुर्दमोधृतः ।।४१।।

अन्वयः— अतदर्हं नरेन्द्रं शप्तं निशम्य स ब्राह्मणः आत्मजम् न अभ्यनन्दत्। अहो अज्ञ बत ते महत् अंहः कृतम् यत् अल्पीयसि द्रोहे उरुः दमः त्वया धृतः ।।४१।।

अनुवाद— शाप के अयोग्य राजा को अभिशप्त सुनकर ब्राह्मण शमीक ऋषि ने अपने पुत्र की सराहना नही की। उन्होंने कहा मूर्ख बालक तुमने बहुत बड़ा पाप किया है; क्योंकि अत्यन्त छोटे अपराध के लिए तुमने राजा को इतना बड़ा दण्ड दे दिया है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

अनभिनन्दनवाक्यमहो इत्यादि। बत कष्टम्। ते त्वया महत्पापं कृतम्। द्रोहे अपराधे। दमो दण्डः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

द्रोह शब्द अपराध का बोधक है और दम शब्द दण्ड का बोधक है । पुत्र की बातों को सुनकर शमीक ऋषि ने उसकी प्रशंसा नहीं किया । उन्होंने कहा— मुझे कष्ट है कि तुमने छोटे से अपराध के बदले में राजा को इतना बड़ा दण्ड दे दिया यह तुम्हारा अनुचित कार्य है ।।४१।।

न वै नृभिर्नरदेवं पराख्यं संमातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे ।
यत्तेजसा दुर्विषहेण गुप्ता विन्दन्ति भद्राण्यकुतोभयाः प्रजाः ।।४२।।

अन्वयः— अविपक्व बुद्धे पराख्यं नरदेवं नृभिः सम्मातुम् न अर्हसि यत् दुर्विषहेण तेजसा गुप्ता अकुतोभया प्रजाः भद्राणि विन्दन्ति ।।४२।।

अनुवाद— ऋषि ने कहा— वत्स ! तुम्हारी बुद्धि परिपक्व नहीं हुयी है । राजा परमात्मा का रूप होता है । उसकी तुलना तुम सामान्य मनुष्य से नहीं कर सकते हो । राजा के असह्य तेज के कारण ही सारी प्रजाएँ निर्भय रहती हैं और कल्याण को प्राप्त करती हैं ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

परो विष्णुरित्याख्या खयातिर्यस्य तं नरदेवम् । नृभिः संमातुं समं द्रष्टुम् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

राजा की ख्याति भगवान् विष्णु के रूप में है । उस राजा को तुम सामान्य मनुष्यों के समान नहीं देख सकते हो ।।४२।।

अलक्ष्यमाणे नरदेवनाम्नि रथाङ्गपाणावयमङ्ग लोकः ।
तदा हि चोरप्रचुरो विनङ्क्ष्यत्यरक्ष्यमाणोऽविवरूथवत्क्षणात् ।।४३।।

अन्वयः— नरदेवनाम्नि अलक्ष्यमाणः लोकः अविवरुथवत् तदा हि चोरप्रचुरः अरक्ष्यमाणः अविबरुथवत् क्षणात् विनंक्ष्यति ।।४३।।

अनुवाद— हे वत्स ! जब राजा नामक भगवान् विष्णु इस लोक में नहीं रहेंगे उस समय चोरों से संसार भर जायेगा और किसी रक्षक के नहीं रहने पर वह क्षणभर में विनष्ट हो जायेगा, जिस तरह रक्षक से रहित भेड़ों का समूह विनष्ट हो जाता है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

अलक्ष्यमाणेऽदृश्यमाने । अविवरुथवन्मेषसङ्घवत् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

राजा नामक भगवान् विष्णु के नहीं दिखायी देने पर चोर बहुल तथा रक्षक रहित संसार उसी तरह विनष्ट हो जायेगा जिस तरह रक्षक से रहित मेष समूह (भेड़ समूह) विनष्ट हो जाता है ।।४३।।

तदद्य नः पापमुपैत्यनन्वयं यन्नष्टनाथस्य वसोर्विलुम्पकात् ।
परस्परं घ्नन्तिशपन्ति वृञ्जते पशून् स्त्रियोऽर्थान्पुरुदस्यवो जनाः ।।४४।।

अन्वयः— अद्य नष्टनाथस्य वसोः विलुम्पकात् यत् पापम् तत् अनन्वयमपि अद्य नः उपैति । पुरुदस्यवो जनाः परस्परं ध्नन्ति, शपन्ति, पशून् स्त्रियः अर्थान् वृञ्जते ।।४४।।

अनुवाद— राजा के विनष्ट हो जाने के कारण संसार की सम्पत्ति को लूटने वाले लुटेरों के द्वारा किए गये

पाप का हमसे सम्बन्ध नहीं होने पर भी हमको भी वह पाप लगेगा; क्योंकि हमारे ही चलते राजा का नाश हुआ है। राजा के नहीं रहने पर दस्युप्रचुर सभी लोगों के हो जाने पर वे परस्पर में एक दूसरे को मारते हैं। एक दूसरे को गाली देते हैं और उनके पशुओं स्त्रियों और धनों को लूट लेने का काम करते हैं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

नष्टो नाथो यस्य लोकस्य तस्य वसोर्वसुनो धनस्य विलुम्पकादपहर्तुश्चोरादेर्हेतोर्यत्पापं भविष्यति तदस्मन्निमित्तत्वादस्मानुपैष्यति। अनन्वयं सम्बन्धशून्यमेव। तदेव पापं दर्शयति–परस्परमिति। शपन्ति परुषं वदन्ति। पश्वादीन्वृञ्जतेऽपहरन्ति। पुरुदस्यवश्चोरबहुलाः ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों के स्वामी का नाश हो जाता है उन लोगों की सम्पत्ति को लूटने वाले लोगों के द्वारा जो पाप किया जाता है उन सबों के हमलोगों के कारण ही होने के कारण यद्यपि उसका सम्बन्ध हमलोगों से नहीं है, फिर भी उसका पाप हमलोगों को लगेगा ही। उन लोगों के द्वारा किए जाने वाले पापों को बतलाते हुए ऋषि कहते हैं सभी लोगों के चोरप्राय हो जाने पर वे आपस में एक दूसरे को मारते हैं, गाली देते हैं, उनके पशुओ, स्त्रियों और सम्पत्तियों को लूट लेते हैं ।।४४।।

तदार्यधर्मश्च विलीयते नृणां वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमय ।
ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्मनां शुनां कपीनामिव वर्णसङ्करः ।।४५।।

अन्वयः— तदा नृणाम् वर्णाश्रमाचारयुतः त्रयीमयः आर्यधर्मः विलीयते। अथकामाभिनिवेशितात्मनाम् शुनां कपनीनाम्। इव वर्ण सङ्करः जायते ।।४५।।

अनुवाद— उस समय मनुष्यों के वर्णों एवं आश्रमों के आचार युक्त वेदत्रयी के द्वारा प्रतिपादित आर्य धर्म का नाश हो जाता है। अर्थ एवं काम लोलुप मनुष्यों में कुत्तों और वानरों के समान वर्णसांकर्य हो जाता है ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

आर्यधर्मः सदाचारः शुनां कपीनामिवार्थकामयोरेवाभिनिवेशितचित्तानाम् ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

आर्य धर्म सदाचार को ही कहते हैं। किन्तु चेरप्राय लोगों के हो जाने पर तो सदाचारमय आर्यधर्म नष्ट ही हो जाता है। लोग भी अर्थपरायण और कामपरायण हो जाते हैं। उसके फलस्वरूप मनुष्यों में भी उसी तरह से वर्णसाङ्कर्य का साभ्राज्य हो जाता है जिस तरह काम परायण वन्दरों और कुत्तों में वर्णसङ्कर्य हो जाता है ।।४५।।

धर्मपालो नरपतिः स तु सम्राड् बृहच्छ्रवाः। साक्षान्महाभागवतो राजर्षिर्हयमेधयाट् ।।
क्षुत्तृट्श्रमयुतो दीनो नैवास्मच्छापमर्हति ।।४६।।

अन्वयः— स तु नरपतिः धर्मपालः सम्राट् बृहच्छ्रवाः साक्षात् महाभागवतः हयमेधयाट् राजर्षिः क्षुत् तृट्श्रमयुतः दीनः अस्मत् शापं नैव अर्हति ।।४६।।

अनुवाद— राजा परीक्षित् धर्म के रक्षक हैं, वे सम्राट (चक्रवर्ती राजा हैं) वे महायशस्वती हैं तथा साक्षात् महाभागवत हैं। उन्होंने अश्वमेघ याग किया है। वे राजर्षि, भूख तथा प्यास से व्याकुल होने के कारण दीन हो गये होंगे। अतएव वे हमलोगों के शाप के पात्र नहीं हैं ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

एवं राजमात्रस्य शापानर्हत्वमुक्त्वा प्रस्तुत विशेषमाह-धर्मपाल इति सार्धेन । हयमेधयाडश्वमेधयाजी । नन्वेवंभूतश्चेत्तत्कुतोऽपकृतवांस्तत्राह-क्षुतृडिति । स्वागतप्रश्नाभावेनावज्ञातः प्रत्युत शापं कथमर्हतीथ्यर्थः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

पहले यह बतलाया जा चुका है कि राजा शाप के पात्र नहीं होते हैं । अब राजा परीक्षित् की विशेषताओं को बतलाते हुए महर्षि शमीक ने कहा राजा धर्म के रक्षक हैं और अवमेध याग किए हुए है । यदि कोई यह कहे कि यदि राजा इस तरह की विशेषताओं से सम्पन्न थे तो उन्होंने महर्षि का अनुपकार क्यों किया ? इसका उत्तर है कि वे राजा भूख तथा प्यास से व्याकुल थे । उनका हमलोगों को स्वागत करना चाहिए था ऐसी स्थिति में वे शाप के योग्य कैसे हो सकते हैं ?।।४६।।

अपापेषु स्वभृत्येषु बालेनापक्वबुद्धिना । पापं कृतं तद्भगवान्सर्वात्मा क्षन्तुमर्हति ।।४७।।

अन्वयः— अपापेषु स्वभृत्येषु अपक्वबुद्धिना त्वया । पापं कृतं तत् सर्वात्मा भगवान् क्षुन्तुम् अर्हति ।।४७।।

अनुवाद— निरपराध अपने भी अनुचर के प्रति बुद्धि के परिपक्व नहीं होने के कारण बालक होने के कारण तुमने अपराध किया है, उसको सम्पूर्ण जगत् की आत्मा श्रीभगवान् क्षमा करें ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

अस्य महापापस्यान्यत्प्रायश्चित्तमदृष्ट्वा पापमावेदयन् भगवन्तं प्रार्थयते-अपापेष्विति ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

मेरे पुत्र के द्वारा किए गये इस महान् अपराध का कोई भी दूसरा प्रायश्चित नहीं हो सकता है यह सोचकर ऋषि श्रीभगवान्से अपापेषु० इत्यादि श्लोक के द्वारा क्षमा प्रार्थना करते हैं ।।४७।।

तिरस्कृता विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ता हतापि वा ।
नास्य तत्प्रतिकुर्वन्ति तद्भक्ताः प्रभवोऽपि हि ।।४८।।

अन्वयः— प्रभवोऽपि हि तद्भक्ताः तिरस्कृताः विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ताः हता अपि वा अस्य तत् न प्रतिकुर्वन्ति ।।४८।।

अनुवाद— बदला लेने में सक्षम होने पर भी भगवद् भक्त दूसरों के द्वारा किए गये अपमान, धोखे बाजी, शाप, अभद्रशब्द व्यवहार तथा प्रताड़ना करने वाले का बदला नहीं लेते हैं ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

राजा चेत्प्रतिशापं दद्यात्तर्हि निष्कृतिर्भवेदपि तत्तु न संभवति तस्यमहाभागवतत्वादित्याह । तिरस्कृता निन्दिताः । विप्रलब्धा वञ्चिताः । क्षिप्ता अवज्ञाताः । हतास्ताडिताः । अस्य तिरस्कारादिकर्तुः । न तत्प्रतीकारं कुर्वन्ति । तद्भक्ता विष्णुभक्ताः । प्रभवः समर्थाः अपि ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

यदि उस शाप के बदले में राजा भी शाप दे दे तो उसका प्रायश्चित भी हो सकता था किन्तु वह भी सम्भव नहीं है, क्योंकि राजा तो महाभागवत हैं । इस बात को ऋषि ने **तिरस्कृता० इत्यादि** श्लोक से कहा है । तिरस्कृत अर्थात् निन्दित विप्रलब्ध ठगे गये, आर्त, अपमानित तथा मारे गये भगवान् के भक्त उसका प्रतिकार करने में समर्थ होकर भी तिरस्कृत आदि करने वाले से बदला नहीं चुकाते हैं ।।४८।।

इति पुत्रकृताघेन सोऽनुतप्तो महामुनिः । स्वयं विप्रकृतो राज्ञा नैवाघं तदचिन्तयत् ॥४९॥

अन्वयः— इति पुत्रकृताघेन सः महामुनिः अनुतप्तः स्वयं राज्ञा विप्रकृतः तदघं नैव अचिन्तयत् ॥४९॥

अनुवाद— इस तरह से अपने पुत्र के द्वारा किए गये अपराध के कारण महामुनि शमीक बहुत अधिक दुःखी हुए किन्तु अपने विषय में राजा के द्वारा किए गये अपराध के विषय में ऋषि ने सोचा भी नहीं ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

विप्रकृतोऽपकृतः । अघमपराधम् ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

विप्रकृतः अपकार किए गये, अघ अर्थात् अपराध पुत्र ने जो राजा को शाप दे दिया था उसके विषय में तो शमीक महर्षि को बड़ा कष्ट हुआ, किन्तु राजा ने उनका जो अपराध किया था उसके विषय में उन्होंने सोचा भी नहीं ॥४९॥

प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः । न व्यथन्ति न हृष्यन्ति यत आत्माऽगुणाश्रयः ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे प्रथम स्कन्धे विप्रशापोपलम्भनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अन्वयः— परैः द्वन्द्वेषु योजिता साधवः प्रायशः न व्यथयन्ति न हृष्यन्ति यतः आत्मा अगुणाश्रयः ॥५०॥

अनुवाद— महात्माओं का यह स्वभाव होता है कि दूसरे लोगों के द्वारा दुःख अथवा सुख को प्राप्त करके वे न तो दुःखी होते हैं और न तो प्रसन्न होते है, क्योंकि आत्मा तो गुणों का आश्रय है नहीं ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथम स्कन्ध के विप्रशापोपलम्भन नामक अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

युक्तं चैतदित्याह-प्रायश इति द्वन्द्वेषु सुखदुःखादिषु । अगुणाश्रयः सुखदुःखाद्याश्रयो न भवति ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे प्रथमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

सूतजी ने ऋषियों से कहा कि ऋषि शमीक जो अपने पुत्र के द्वारा ही किए गये अपराध से दुःखी थे और राजा के द्वारा किए गये अपराध के विषय में उन्होंने सोचा भी नहीं, यह उचित ही था । क्योंकि सन्तों का यह स्वभाव ही होता है कि वे दूसरे के द्वारा दिए गये सुख अथवा दुःख से न तो प्रसन्न होते हैं और न दुःखी होते हैं । वे जानते हैं कि आत्मा गुणों का आश्रय नहीं होता है ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रथमस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के अठारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१८।।

उन्नीसवाँ अध्याय

राजा परीक्षित् का अनशन व्रत और शुकदेवजी का आगमन

सूत उवाच

महीपतिस्त्वथ तत्कर्म गर्ह्यं विचिन्तयन्नात्मकृतं सुदुर्मनाः ।
अहो मया नीचमनार्यवत्कृतं निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ॥१॥

अन्वयः— अथ महीपति आत्मकृतं तत् गर्ह्यं कर्म विचिन्तयन् सुदुर्मनाः चिन्तयति स्म अहो मया निरागसि, गूढतेजसि ब्रह्मणि अनार्यवत् नीचम् कृतम् ॥१॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् राजा अपनी राजधानी में जाकर अपने द्वारा किए गये उस निन्दित कर्म की चिन्ता करते हुए अत्यन्त दुःखी हो गये । वे सोच रहे थे अरे मैंने अपने तेज को छिपाये रखने वाले तथा निरपराध ब्राह्मण के साथ अनार्य के समान बड़ा ही नीच कर्म किया है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

प्रायोपविष्टे गङ्गायां राज्ञि योगिजनावृते । शुकस्यागमनं तत्र प्रोक्तमेकोनविंशके ॥१॥ स्वकृतं तत्कर्म मुनिस्कन्धे सर्पप्रक्षेपणं गर्ह्यं निन्द्यं चिन्तयन्सुदुर्मना जातः । चिन्तामेवाह सार्धाभ्याम्-अहो इति । नीचं पापम् । अमीवमिति पाठे स एवार्थः। ब्रह्मणि ब्राह्मणे । गूढं गुप्तं तेजो यस्य तस्मिन् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उपवास करके योगिजनों से घिरे हुए राजा परीक्षित् के गङ्गाजी ते तट पर बैठ जाने पर वहाँ पर शुकदेवजी के आगमन का वर्णन उन्नीसवें अध्याय में किया गया है ॥१॥

राजा परीक्षित् मुनि के गले में सर्प डालना रूपी अपने निन्दित कर्म की चिन्ता करते हुए राजा अत्यन्त दुःखी हो गये । राजा की चिन्ता का ही वर्णन **अहो मया० इत्यादि** डेढ श्लोक में किया गया है । नीच शब्द पाप का बोधक है । जहाँ **अमीवम्** यह पाठ भेद है वहाँ भी यही अर्थ है । ब्रह्म शब्द ब्राह्मण का बोधक । गूढ तेजसि पद का विग्रह है । **गूढ तेजो यस्य तस्मिन्** । अर्थात् जिनका तेज छिपा हुआ है उन ब्राह्मण के प्रति मैंने महान् अपराध किया है ॥१॥

ध्रुवं ततो मे कृतदेवहेलनाद्दुरत्ययं व्यसनं नातिदीर्घात् ।
तदस्तु कामं त्वघनिष्कृताय मे यथा न कुर्यां पुनरेवमद्धा ॥२॥

अन्वयः— ततः कृतदेवहेलनात् नातिदीर्घात् मे दुरत्ययं व्यसनं ध्रुवम् तत् मे अघनिष्कृताय कामं अद्धा अस्तु यथा पुनरेवम् न कुर्याम् ॥२॥

अनुवाद— उस ब्राह्मण देवता का अपकार करने के कारण अत्यधिक कष्ट मुझको शीघ्र ही मिलेगा । वह कष्ट निश्चित रूप से मुझको साक्षात् मिले, जिससे कि मैं पुनः इस प्रकार का अपराध न करूँ ॥२।

भावार्थ दीपिका

कृतं यद्देवहेलनमीश्वरावज्ञापापमित्यर्थः । तस्मान्मे व्यसनं भविष्यति तत्तु नातिदीर्घात्कालादचिरादेवास्तु तत्राप्यद्धा साक्षान्ममैव न पुत्रादिद्वारेणेति प्रार्थना । काममसंकोचतः । एवं प्रार्थनायाः प्रयोजनम् । अघस्य निष्कृताय प्रायश्चित्ताय । यथा पुनरेवं न कुर्यामिति ॥२॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मा का अपमान रूपी जो मैंने पाप किया है । अतएव उसके कारण मुझपर शीघ्र ही कोई बहुत बड़ी विपत्ति आयेगी । वह दण्ड जो है वह मुझको ही साक्षात् मिलना चाहिए । पुत्रादि के द्वारा नहीं । इस तरह राजा ने श्रीभगवान् से प्रार्थना किया । वह जितना दण्ड मिलना हो उतना मिले । इस प्रकार की प्रार्थना का प्रयोजन है कि उससे मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो जाय जिससे कि मैं पुनः ऐसा पाप न करूँ ।।२।।

अद्यैव राज्यं बलमृद्धकोशं प्रकोपितब्रह्मकुलानलो मे ।
दहत्वभद्रस्य पुनर्न मेऽभूत्पापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः ।।३।।

अन्वयः— प्रकोपितो ब्रह्मकुलानलः अभद्रस्य मे अद्यैव राज्यं, बलम् ऋद्धंकोशं च दहतु येन मे पुनः द्विजदेवगोम्यः पायीयासी धी न अभूत ।।३।।

अनुवाद— क्रुद्ध ब्राह्मणवंश की क्रोधाग्नि आज ही मेरे राज्य, सेना और समृद्ध कोश को जलाकर भस्म कर दे जिससे कि मुझ पापी की पुनः कभी, देवताओं, ब्राह्मणों और गौओं के विषय में ऐसी बुद्धि न हो ।।३।।

भावार्थ दीपिका

एवं साक्षात्स्वस्यैव व्यसनं संप्रार्थ्य ततः प्रागेव किंचित्प्रार्थयते । अद्यैव मे राज्यादि दहतु प्रकोपितं ब्रह्मकुलमेवानलः पुनर्द्विजादीन्पीडयितुं धीर्मे मा भून्न भवेदित्यर्थः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से साक्षात् अपने कष्ट की प्रार्थना करके उससे पहले ही कुछ प्रार्थना करते हैं । वे कहते हैं कि ब्राह्मणवंश की जो क्रोधाग्नि है वह आज ही क्रुद्ध होकर मेरे राज्य सेना तथा कोश को भस्म कर दे ।।३।।

स चिन्तन्नित्थमथाश्रृणोद्यथा मुनेः सुतोक्तो निर्ऋतिस्तक्षकाख्यः ।
स साधु मेने न चिरेण तक्षकानलं प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ।।४।।

अन्वयः— इत्थं चिन्तयन् सः अथ मुनेः सुतोक्तः तक्षकाख्यः निऋति यथा तथा अश्रृणोत् । सः तक्षकाख्यं साधुमेने यतः प्रसक्तस्य न चिरेण विरक्तिकारणम् ।।४।।

अनुवाद— जब राजा परीक्षित् इस तरह से सोच ही रहे थे कि उसी समय शमीक प्रेषित शिष्य से मुनि के पुत्र के द्वारा उक्त सातवें दिन उनकी मृत्यु जैसे हो जायेगी उसके विषय में उन्होंने सुना । उन्होंने तक्षक की विषाग्नि को अच्छा ही माना, क्योंकि उसके द्वारा विषयों में आसक्त राजा की शीघ्र ही विरक्ति हो गयी ।।४।।

भावार्थ दीपिका

इत्थं चिन्तयन्स राजा मुनेः सुतेनोक्तः सप्तमेऽहनिं निर्ऋतिर्मृत्युर्यथा भविष्यति तथाऽश्रृणोत् । शमीकप्रेषितशिष्याच्छ्रुत्वा च स तक्षकस्य विषाग्निं साधु मेने । यतो विषयेषु प्रसक्तस्य विरक्तिकारणम् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से जब राजा चिन्तन ही कर रहे थे उसी समय उन्होंन सुना कि मुनि के पुत्र ने उनको उसके सातवें दिन मृत्यु का शाप दे दिया है । महर्षि शमीक के द्वारा प्रेषित शिष्य से उस समाचार को सुनकर राजा ने तक्षक की विषाग्नि को अच्छा ही माना, क्योंकि उससे विषय में आसक्ति से शीघ्र विरक्ति हो जाती है ।।४।।

अथो विहायेमममुं च लोकं विमर्शितो हेयतया पुरस्तात् ।
कृष्णाङ्घ्रिसेवामधिमन्यमान उपाविशत्प्रायममर्त्यनद्याम् ।।५।।

अन्वयः— अथो पुरस्तात् हेयतया विमर्शितौ इमम् अमूं च लोकं विहाय कृष्णांघ्रिसेवाम् अधिमन्यमानः अमर्त्यनत्द्यां प्रायम् उपाविशत् ।।५।।

अनुवाद— राजा पहले से ही जिसे त्याज्य समझते थे उन लोक और परलोक दोनों को त्यागकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हुए वे गङ्गानदी के तट पर आमरण अनशन का व्रत लेकर बैठ गये ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अथो अनन्तरमुभौ लोकौ पुरस्ताद्राज्यमध्य एव हेयतया विचारितौ विहाय श्रीकृष्णाङ्घ्रिसेवामेवाधिमन्यमानः सर्वपुरुषार्थाधिकां जानन् प्रायमनशनं तस्मिन्नित्यर्थः । तत्सङ्कल्पेनोपाविशदिति यावत् । यद्वा प्रायं प्रकृष्टमयनं शरणं यथा भवति तथा ॥५॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् राजा परीक्षित् अपने राज्य काल में ही जिन लोक और परलोक दोनों को त्याज्य मान चुके थे उन दोनों लोकों का ही परित्याग करके तथा भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा को ही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ मानते हुए गङ्गा के तट पर आमरण अनशन का व्रत लेकर बैठ गये । अथवा **प्रायम्** पद का यह भी अर्थ है कि जिससे प्रकृष्ट आश्रय की प्राप्ति होती है, वैसे राजा बैठ गये ॥५॥

या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्रकृष्णाङ्घ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री ।
पुनाति लोकानुभयत्र सेशान् कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥६॥

अन्वयः— लसच्छ्रीतुलसीविमिश्रकृष्णाङ्घ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री या वै सेशान् उभयत्र लोकान् पुनाति तां कःमरिष्यमाणः न सेवेत ॥६॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों का पराग लेकर प्रवाहित होने वाले गङ्गाजी का जो जल तुलसीजी की सुगन्धि से मिश्रित है तथा जो लोकपालों के साथ दोनों लोकों को पवित्र बनाता है कौन ऐसा मरने वाला व्यक्ति होगा जो उसका सेवन न करे ?॥६॥

भावार्थ दीपिका

अमर्त्यनद्यामिति विशेषणस्य फलमाह । या गङ्गा लसन्ती श्रीर्यस्यास्तुलस्यास्तया विमिश्रा ये कृष्णाङ्घ्रिरेणवस्तैरभ्यधिकं सर्वोत्कृष्टं यदम्बु तस्य नेत्री तद्वाहिनी । उभयत्र अन्तर्बहिश्च सेशान् लोकपालैः सहितान् लोकान् पुनाति । मरिष्यमाण आसन्नमरणः। मरणस्यानियतकालत्वात्सर्वोऽपि तथा । अतस्ता को न सेवेत ॥६॥

भाव प्रकाशिका

पाँचवें श्लोक में गङ्गाजी को अमर्त्य नदी कहा गया है । उस विशेषण के फल को बतलाते हुए कहते हैं । **या गङ्गा० इत्यादि** जो गङ्गाजी श्रीसम्पन्न तुलसी से मिश्रित जो भगवान् श्रीकृष्ण के चरण रज से युक्त अत्यधिक जल को प्रवाहित करती हैं । वे लोकपालों सहित इस लोक को तथा परलोक को पवित्र करती हैं, उन गङ्गाजी का सन्निकट भविष्य में मरने वाला कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो सेवन न करे ?॥६॥

इति व्यवच्छिद्य स पाण्डवेयः प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्याम् ।
दध्यौ मुकुन्दाङ्घ्रिमनन्यभावो मुनिव्रतो मुक्तसमस्तसङ्गः ॥७॥

अन्वयः— सः पाण्डवेयः विष्णुपद्याम् प्रायोपवेशम् प्रति व्यवच्छिद्य अनन्यभावः, मुनिव्रतः मुक्तसमस्तसङ्गः मुकुन्दाङ्घ्रिम् दध्यौ ॥७॥

अनुवाद— पाण्डववंशावतंस राजा परीक्षित् गङ्गा नदी के तट पर आमरण अनशन का व्यवच्छिद्य (निश्चय करके) अनन्यमना होकर तथा मुनियों का व्रत लिए हुए तथा सभी प्रकार की आसक्तियों से रहित होकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों का ध्यान करने लगे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

इत्येवं विष्णुपद्यां गङ्गायां प्रायोपवेशं प्रति व्यवच्छिद्य निश्चित्य । पाण्डवेय इति तत्कुलौचित्यं दर्शयति । नास्त्यन्यस्मिन् भावो यस्य सः । कुतः । मुनिव्रत उपशान्तः । तत्कुतः । मुक्तः समस्तसङ्गो येन सः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से गङ्गा नदी के तट पर आमरण अनशन का निश्चय करके । पाण्डवेय पद का प्रयोग करके उनके वंश के औचित्य को बतलाया गया है । अनन्यभाव: का विग्रह है **नास्त्यन्यस्मिन् भावोयस्य** अर्थात् उनका श्रीभगवान् को छोड़कर किसी दूसरे में भाव नहीं था । वे मौन व्रत धारण किए हुए थे परीक्षित्; उनकी सब ओरे से असक्ति भी समाप्त हो गयी थी ।।७।।

तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना महानुभावा मुनयः सशिष्याः ।
प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ।।८।।

अन्वयः— तत्र प्रायेण तीर्थापदेशैः भुवनं पुनाना महानुभावाः सशिष्याःमुनयः आजग्मुः स्वयं हि सन्तः तीर्थानि पुनन्ति ।।८।।

अनुवाद— वहाँ पर प्राय: तीर्थ के बहाने संसार को पवित्र बनाने वाले महान् प्रभाव वाले मुनिगण अपने शिष्यों के साथ आ गये । सन्तजन तो स्वयं ही तीर्थों को पवित्र करने का काम करते हैं ।।८।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तदा तद्दर्शनार्थं मुनय उपागता न तु तीर्थस्नानार्थम् । कृतार्थत्वात् । ननु तादृशानामपि तीर्थयात्रा दृश्यते तत्राह-प्रायेणेति । तीर्थयात्राव्याजैः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

वहाँ पर राजा को देखने के लिए मुनिगण आ गये तीर्थ में स्नान करना उनका उद्देश्य नहीं था; क्योंकि वे ऋषिगण कृतार्थ थे । यदि कहें कि वैसे लोग भी तीर्थ यात्रा करते हुए देखे जाते हैं तो इसका उत्तर **प्रयेण० इत्यादि** से दिया गया है । वे सभी तीर्थ यात्रा के व्याज से वहाँ आये थे ।।८।।

अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वानरिष्टनेमिर्भृगुरङ्गिराश्च ।
पराशरो गाधिसुतोऽथ राम उतथ्य इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ ।।९।।
मेधातिथिर्देवल आर्ष्टिषेणो भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः ।
मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भयोनिर्द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ।।१०।।
अन्ये च देवर्षिब्रह्मर्षिवर्या राजर्षिवर्या अरुणादयश्च ।
नानार्षेयप्रवरान्समेतानभ्यर्च्य राजा शिरसा ववन्दे ।।११।।

अन्वयः— अत्रिः वसिष्ठः च्यवनः शरद्वान्, अरिष्टनेमिः भृगुः अङ्गिराः, पराशरः, गाधिसुतः, रामः, उतथ्यः, इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ, मेधातिथिः, देवालः अर्ष्टिषेणः, भारद्वाजः गौतमः, पिप्पलादः, मैत्रेय, और्वः कवषः, कुम्भयोनिः, द्वैपायनः भगवान् नारदश्च । अन्ये च देवर्षि ब्रह्मर्षिवर्याः, राजर्षियाः, अरुणादयः च । नानार्षेयप्रवरान् समेतन् अभ्यर्च्य शिरसा ववन्दे ।।९-११।।

अनुवाद— उस समय वहाँ पर अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्टनेमि, भृगु, अङ्गिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इध्मवाह, मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय,

और्व, कवष, अगस्त्य, व्यास, भगवान् नारद, इन सबों के अतिरिक्त और भी कई श्रेष्ठ देवर्षि, ब्रह्मर्षि तथा श्रेष्ठ राजर्षिगण भी वहाँ आये । वहाँ पर अनेक गोत्रों के मुख्य ऋषियों की पूजा करके राजा परीक्षित् ने उनके पैरों पर शिर रखकर प्रणाम किया और उनकी वन्दना की है ।।९-११।।

भावार्थ दीपिका

अरुणादयः काण्डर्षित्वविशेषेण पृथक् निर्दिष्टाः । नाना यान्यार्षेयाणि ऋषीणां गोत्राणि तेषु प्रवरान् श्रेष्ठान् । शिरसा भुवं स्पृष्ट्वा ववन्दे ।।९-११।।

भाव प्रकाशिका

अरुण आदि के काण्डविशेष के ऋषि होने के कारण उनका अलग निर्देश किया गया है । अनेक जो ऋषियों के गोत्र हैं उनमें से श्रेष्ठ ऋषि वहाँ आ गये थे राजा ने सबों के पैरों पर शिर रखकर प्रणाम किया ।।९-११।।

सुखोपविष्टेष्वथ तेषु भूयः कृतप्रणामः स्वचिकीर्षितं यत् ।
विज्ञापयामास विविक्तचेता उपस्थितोऽग्रेऽभिगृहीतपाणिः ।।१२।।

अन्वयः— अथ तेषु सुखोपविष्टेषु कृतप्रणामः विविक्तचेता राजा अभिगृहीतपाणिः अग्रे उपस्थितः स्वचिकीर्षितं विज्ञापयामास ।।१२।।'

अनुवाद— उसके पश्चात् उन सभी महर्षियों के सुख पूर्वक बैठ जाने पर राजा ने शुद्ध हृदय से सबों को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर उन सभी लोगों के सामने खड़े होकर उन्होंने अपने अभिप्रेत बातों का निवेदन किया ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

विज्ञापनार्थं पुनः कृतप्रणामः । विविक्तं शुद्धं चेतो यस्य । अभिगृहीतौ संयोजितौ पाणी येन सः । स्वचिकीर्षितं प्रायोपवेशनादियुक्तमयुक्तं वेति विज्ञापयामास ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

राजा सबों के सामने अपनी बातें कहना चाहते थे इसलिए उन्होंने उन सभी ऋषियों को फिर प्रणाम किया, उन्होंने शुद्ध हृदय से हाथ जोड़कर सबों से निवेदित किया कि आमरण अनशन व्रत ठीक है कि नहीं ।।१२।।

राजोवाच

अहो वयं धन्यतमा नृपाणां महत्तमानुग्रहणीयशीलाः ।
राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद्दूराद्विसृष्टं बतगर्ह्यकर्म ।।१३।।

अन्वयः— अहो वयं नृपाणां धन्यतमाः महत्तमानुग्रहणीयशीलाः । वत गर्ह्यकर्म राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद् दूराद् विसृष्टं ।।१३।।

अनुवाद— हम सभी राजाओं में धन्य है क्योंकि आप सभी महापुरुषों के अनुग्रह का पात्र बन गया हूँ निन्दित कर्म करने वाला राजाओं का वंश ब्राह्मणोंके चरणोदक से दूर चला जाता है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अनुमोदनेनानुग्रहमालक्ष्यात्मानं श्लाघते-अहो इति । नृपाणां महत्तमैरनुग्रहणीयं शीलं वृत्तं येषां ते । एतच्च राज्ञामतिदुर्लभमित्याह। ब्राह्मणानां पादशौचात् पादक्षालनोदकात् **'दूरादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसि समुत्सृजेत्'** इति स्मृतेः, दूरे हि तैस्तद्विसृज्यते । ततोऽपि दूरादेव विसृष्टं क्षिप्तम् । तत्रापि स्थातुमयोग्यमित्यर्थः । गर्ह्यं कर्म यस्येत्यात्मानमुद्दिश्योक्तम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

महर्षियों के द्वारा अनुग्रह को देखकर राजा अपनी प्रशंसा करते हैं राजाओं के बीच में हम इसलिए धन्य हैं कि हमारा शील महापुरुषों के अनुग्रह का विषय हो गया है। यह राजाओं के लिए अत्यन्त दुर्लभ है। निन्दित कर्म करने वाले राजागण के वे **'दूरादुच्छिष्ट' इत्यादि** सूक्ति के अनुसार ब्राह्मणों के भी चरणों से दूर फेंक देते हैं ॥१३॥

तस्यैव मेऽघस्य परावरेशो व्यासक्तचित्तस्य गृहेष्वभीक्ष्णम् ।
निर्वेदमूलो द्विजशापरूपो यत्र प्रसक्तो भयमाशु धत्ते ॥१४॥

अन्वयः— तस्यैव अघस्य, गृहेषु अभीक्ष्णम् व्यासक्तचित्तस्य मे द्विजशापरूपः निर्वेदमूलः परावरेशः यत्र प्रसक्तः आशुभयम् धत्ते ॥१४॥

अनुवाद— निन्दित कर्म करने के कारण मैं पाप रूप हो गया हूँ। निरन्तर गृह में ही मेरा चित्त लगा रहता है। ऐसे मुझ पर संसार से वैराग्य के कारणभूत ब्राह्मण के शाप रूपी परमात्मा ने कृपा की ही। इस प्रकार के शाप से डरा हुआ संसार में आसक्त पुरुष शीघ्र ही वैराग्य को धारण कर लेता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

आस्तां तावदनुग्रहः, ब्रह्मशापोऽपि भगवत्प्रसादादेव जात इत्याह। तस्य गर्ह्यकर्मण एव। अतोऽघस्य पापात्मनो गृहेष्वासक्तचित्तस्य मे स्वप्राप्तये परावराणामीश एव द्विजशापतया बभूव। यत्र यस्मिन् शापे सति गृहेषु प्रसक्तो भयं धत्ते निर्विण्णो भवति। यतो निर्वेदमूलो निर्वेदो वैराग्यं मूलं प्राप्तिकारणं यस्मिन्। स्वस्य वैराग्यप्राप्यत्वात्तस्य च भयमूलत्वात्तदर्थं द्विजशापं कारितवानित्यर्थः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

यह भी भगवान् की कृपा ही है। ब्राह्मण का शाप भी श्रीभगवान् की कृपा से ही हुआ है। उस निन्दित कर्म करने वाले राजवंश का होने के कारण मैं भी पाप स्वरूप हूँ। गृहादि में आसक्तचित्त वाले मुझको प्राप्त होने के ही लिए सम्पूर्ण जगत् के स्वामी ब्राह्मण का शाप बन गये हैं। उस शाप के हो जाने से गृह परिवार में आसक्त चित्त वाले व्यक्ति को भय उत्पन्न हो जाता है। उसके फलस्वरूप उसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। परमात्मा तो निर्वेद मूल हैं। अर्थात् निर्वेद (संसार से वैराग्य) ही परमात्मा की प्राप्ति का मूल कारण है। परमात्मा तो संसार से वैराग्य के द्वारा ही प्राप्त होते हैं। वैराग्य तब होता है जबकि संसार से भय हो जाय। इसीलिए परमात्मा ने मुझे ब्राह्मण से शाप दिलवाया है ॥१४॥

तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा गङ्गा च देवी धृतचित्तमीशे ।
द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥१५॥

अन्वयः— हे विप्राः गङ्गा देवी च ईशे धृतचित्तम् उपयातं मा प्रतियन्तु द्विजोपसृष्टः कुहकः तक्षको वा अलं दशतु विष्णगाथाः गायत ॥१५॥

अनुवाद— हे ब्राह्मणों ! हे गङ्गा देवी ! आपलोग मुझे शरणागत समझें मैंने अपने चित्त को परमात्मा में लगा दिया है। ब्राह्मण के द्वारा निर्मित कोई माया अथवा स्वयं तक्षक ही मुझे आकर डंस ले, मुझे इसकी कोई परवाह नहीं है। आप लोग मुझे भगवान् विष्णु की लीलाओं को ही सुनायें ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तान्प्रार्थयते-तमिति द्वाभ्याम्। तं मा मामुपयातं शरणागतं प्रतियन्तु जानन्तु। देवी देवतारूपा गङ्गा च प्रत्येतु। वाशब्दः प्रतिक्रियानादरे। गाथाः। कथाः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों की प्रार्थना **तं मोपयातम्** इन दो श्लोकों से करते हुए ब्राह्मणों से कहते हैं आपलोग मुझे अपना शरणागत समझें, अथवा गङ्गा देवी भी मुझे शरणागत समझें । वा शब्द का प्रयोग प्रतिक्रिया के अनादर के अर्थ में है । अर्थात् वे मेरे इस कथन समर्थन की कोई आवश्यकता नहीं है । मैंने अपने चित्त को परमात्मा में लगा दिया है । अब आप लोग मुझे भगवान् विष्णु की ही कथाओं को सुनाएँ ॥१५॥

पुनश्च भूयाद्भगवत्यनन्ते रतिः प्रसङ्गश्च तदाश्रयेषु ।
महत्सु यां यामुपयामि सृष्टिं मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः ॥१६॥

अन्वयः— यां यां योनिमुपयामि पुनः अनन्ते भगवति रतिः तदाश्रयेषु प्रसङ्गः सर्वत्र द्विजेभ्यो नमः मैत्री अस्तु ॥१६॥

अनुवाद— मैं आपलोगों से ही आशीर्वाद माँगता हूँ कि मैं जिस-जिस योनि में जन्म लूँ पुनः मेरा भगवान् अनन्त में प्रेम हो, तथा भगवद् भक्तों का सत्सङ्ग प्राप्त होए । मैं सभी ब्राह्मणों को नमस्कार करूँ और सबों में मेरा प्रेम बना रहे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

स आश्रयो येषां तेषु प्रकृष्टः सङ्गो भूयात् । तस्यां तस्यां सृष्टौ जन्मनि ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

तदाश्रयेषु प्रसङ्गः का अर्थ है कि भगवद् भक्तों में मेरा प्रकृष्ट सङ्ग हो सभी जन्मों में भगवान् विष्णु की भक्ति करूँ, ब्राह्मणों को सदा नमस्कार करूँ यही मैं आप लोगों से आशीर्वाद माँगता हूँ ॥१६॥

इति स्म राजाध्यवसाययुक्तः प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः ।
उदङ्मुखो दक्षिणकूल आस्ते समुद्रपत्न्याः स्वसुतन्यस्तभारः ॥१७॥

अन्वयः— स्वसुतन्यस्तभार धीरः राजा इति अध्यवसाययुक्त समुद्रपत्न्याः दक्षिणे कूले उदङ्मुखः प्राचीन मूलेषु कुशेषु आस्ते ॥१७॥

अनुवाद— जिन्होंने अपने पुत्र जनमेजय पर राज्य का भार डाल दिया था, वे धैर्य सम्पन्न राजा परीक्षित् इस तरह का निश्चय करके गङ्गा के दाहिने तट पर पूर्वाग्र कुशों के आसन पर उत्तराभिमुख होकर बैठ गये ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अध्यवसायो निश्चयः । प्राचीनानि प्रागग्राणि मूलानि येषां तेषु प्रागग्रेषु कुशेष्वास्ते स्म । स्वसुते जनमेजये न्यस्तो भारो राज्यं येन सः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

अध्यवसाय, निश्चय को कहते है । राजा उपर्युक्त प्रकार से निश्चय करके कुशों से निर्मित आसन पर गङ्गाजी के दाहिने तट पर बैठ गये । उनके आसन के कुशों के मूल पूर्वाग्र थे । वे उत्तर की ओर मुख करके बैठे थे ॥१७॥

एवं च तस्मिन्नरदेवदेवे प्रायोपविष्टे दिविदेवसङ्घाः ।
प्रशस्य भूमौ व्यकिरन्प्रसूनैर्मुदा मुहुर्दुन्दुभयश्च नेदुः ॥१८॥

अन्वयः— तस्मिन् नरदेवदेवे एवं प्रायोपविष्टे दिविदेवसंघाः प्रशस्य भूमौ मुदा प्रसूनै व्याकिरन् दुन्दुभयश्च नेदुः॥१८॥

अनुवाद— चक्रवर्ती सम्राट् राजा परीक्षित् के इस प्रकार से आमरण अनशनव्रत पर बैठ जाने पर स्वर्ग में देवताओं के समूह ने उनकी प्रशंसा की और प्रसन्नतापूर्वक भूमि पर फूलों की वर्षा की तथा बार-बार दुन्दुभियों को बजाया ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

मुदा व्याकिरन् । देवसङ्घैर्वादिता दुन्दुभयो नेदुः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

आमरण अनशन पर बैठे हुए राजा परीक्षित् के ऊपर प्रसन्न होकर देवताओं ने पुष्पों की वर्षा की तथा बार-बार दुन्दुभियों को बजाया ॥१८॥

महर्षयो वै समुपागता ये प्रशस्य साध्वित्यनुमोदमानाः ।
ऊचुः प्रजानुग्रहशीलसारा यदूत्तमश्लोकगुणाभिरूपम् ॥१९॥

अन्वयः— ये वै प्रजानुग्रहशीलसाराः समुपागताः ते साधु इति प्रशस्य अनुमोदमानाः यदूमत्तश्लोकगुणाभिसमम् इति ऊचुः ॥१९॥

अनुवाद— प्रजाओं पर कृपा करने के शील रूपी प्रधान गुण से सम्पन्न जो महर्षि वहाँ आये थे वे साधु! साधु !! कहकर राजा के निश्चय की प्रशंसा किए और उनके इस कार्य का अनुमोदन करते हुए उनलोगों ने कहा कि राजा का यह कार्य भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों से प्रभावित होने के कारण अत्यन्त सुन्दर है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

प्रजानुग्रहे शीलं स्वभावः सारो बलं च येषाम् उत्तमश्लोकगुणैरभिरूपं सुन्दरम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

प्रजानुग्रहशील साराः का अर्थ है जिनका प्रजाओं पर कृपा करने का स्वभाव है और उसी में जो अपने बल का सदुप्रयोग करते हैं, ऐसे वहाँ पर उपस्थित महर्षियों ने राजा के आमरण अनशन व्रत की सराहना की और कहा कि यह कार्य भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों से युक्त होने के कारण अत्यन्त सुन्दर है ॥१९॥

न वा इदं राजर्षिवर्य चित्रं भवत्सु कृष्णं समनुव्रतेषु ।
येऽध्यासनं राजकिरीटजुष्टं सद्यो जहुर्भगवत्पार्श्वकामाः ॥२०॥

अन्वयः— हे राजर्षि वर्य ! कृष्णं समनुव्रतेषु भवत्सु इदंवै चित्रं न ये राजकिरीटजुष्टं अध्यासनं भगवत् पार्श्वकामाः सद्यः जहुः ॥२०॥

अनुवाद— हे राजर्षिवर्य ! भगवान् श्रीकृष्ण के अनुयायी आप पाण्डुवंशीयों के लिए यह कोई आश्चर्य जनक कार्य नहीं है । श्रीभगवान् के सान्निध्य की प्राप्ति की कामना से आप पाण्डु वंशीयों ने उस सिंहासन का शीघ्र ही परित्याग कर दिया जिस सिंहासन की सेवा बड़े-बड़े राजा अपने किरीट से किया करते थे ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

भवत्सु पाण्डोर्वंश्येषु । ये जहुरिति युधिष्ठिराद्यभिप्रायेण ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

महर्षियों ने कहा कि आप पाण्डुवंशीय चक्रवर्ती सम्राटों ने भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए अपने समृद्धराज्य का परित्याग कर दिया अतएव आपका यह भगवत् सान्निध्य प्राप्त्यर्थ आमरण अनशन व्रत करना कोई आश्चर्यकारी नहीं है । राजा युधिष्ठिर ने भी यही किया था ॥२०॥

सर्वे वयं तावदिहास्महेऽद्य कलेवरं यावदसौ विहाय ।
लोकं परं विरजस्कं विशोकं यास्यत्ययं भागवतप्रधानः ॥२१॥

अन्वयः— वयं सर्वे अद्य इहतावद् आस्महे यावत् अयं भागवतप्रधानः असौ कलेवरं विहाय विरजस्कं विशोकं परं लोकं यास्यति ॥२१॥

अनुवाद— आज से हमलोग तब तक यहाँ रहेंगे जब तक ये भगवद् भक्तों में प्रधान राजा परीक्षित् इस शरीर का परित्याग करके माया तथा शोक रहित परमात्मा के श्रेष्ठ लोक में नहीं चले जाते हैं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

परस्परं संमत्रयन्ते-सर्व इति । परं श्रेष्ठं लोकम् । तत्र हेतुः-विरजस्कं निर्मायं विशोकं च यास्यतीति । कुतस्तत्राह-अयमिति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

सभी महर्षियों ने आपस में मन्त्रणा की कि हमलोग यहाँ पर तब तक बने रहेंगे तब तक कि राजा परीक्षित् इस शरीर का परित्याग करके माया और शोक से रहित श्रेष्ठ लोक में नहीं चले जाते हैं ।।२१।।

आश्रुत्य तदृषिगणवचः परीक्षित्समं मधुच्युद्गुरु चाव्यलीकम् ।
आभाषतैतानभिनन्द्य युक्तं शुश्रूषमाणश्चरितानि विष्णोः ।।२२।।

अन्वयः— परीक्षित् समं, मधुच्युत्, गुरु अव्यलीकम् च तत् ऋषिगणवचः आश्रुत्य युक्तान् एतान् अभिनन्द्य विष्णोः चरितानि शुश्रूषमाणः आभाषत ।।२।।

अनुवाद— पक्षपात रहित, अमृतस्रावी, अर्थ गौरव सम्पन्न तथा सत्य ऋषियों की उस वाणी को सुनकर उन योग युक्त महर्षियों का अभिनन्दन करके भगवान् के चरित्र को सुनने की इच्छा से उन ऋषियों से राजा परीक्षित् ने कहा ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

आश्रुत्याकर्ण्य । समं पक्षपातशून्यम् । मधुच्युदमृतस्रावि । गुरु गम्भीरार्थम् । अव्यलीकं सत्यम् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

ऋषिगण जो मन्त्रणा कर रहे थे उनके वे निर्णीत वाक्य सर्वथा सम (पक्षपात रहित) मधुच्युत् (अमृत के समान अत्यन्त मधुर) गुरु (अर्थगौरवसम्पन्न) तथा अव्यलीक (सत्य) थे । उन बातों को सुनकर राजा ने उन महर्षियों की बातों का समर्थन किया, क्योंकि वे ऋषि युक्तयोगी थे । और भगवान की कथा सुनने की इच्छा से उन्होंने महर्षियों से कहा ।।२२।।

समागताः सर्वत एव सर्वे वेदा यथा मूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे ।
नेहाथवामुत्र च कश्चनार्थ ऋते परानुग्रहमात्मशीलम् ।।२३।।

अन्वयः— त्रिपृष्ठे, मूर्तिधराः वेदा यथा भवन्तः सर्वे सर्वतः समागताः परानुग्रहम् आत्मशीलम् ऋते भवताम् इह अथवा अमुत्र कश्चन अर्थः न ।।२३।।

अनुवाद— जिस तरह स्वर्गलोक से ऊपर सत्यलोक में वेद शरीर धारण करके रहते हैं, उसी तरह आप सभी लोग सभी ओर से पधारे हैं । आप लोगों का यही स्वभाव है कि आपलोग दूसरे जीवों पर कृपा करते हैं, इसके अतिरिक्त लोक अथवा परलोक में आपलोगों का कोई भी दूसरा प्रयोजन नहीं है ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

त्रयाणां लोकानां पृष्ठे उपरि सत्यलोके वेदा यथा मूर्तिधरा भवन्ति तत्तुल्याः । ज्ञानातिशयमुक्त्वा कृपालुतामाह- नेहेति। भवतां प्रयोजनं परानुग्रहं विना नास्ति । तर्हि स एवार्थः स्यात्, न । आत्मशीलं स्वस्वभावम् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

तीनों लोकों के ऊपर जो सत्यलोक है वहाँ पर सभी वेद जिस तरह शरीर धारण करके रहते हैं आप सभी लोग मूर्तिमान वेद के समान हैं और सभी ओर से यहाँ पधारे हैं। इस तरह से महर्षियों के ज्ञानातिशय्य को बतलाकर राजा ने उन महर्षियों की कृपालुता का वर्णन करते हुए कहा। आपलोगों का एक मात्र प्रयोजन है दूसरों पर कृपा करना। यही आपलोगों का स्वभाव है। अतएव उसी कार्य को होना चाहिए ॥२३॥

ततश्च वः पृच्छ्यमिमं विपृच्छे विश्रभ्य विप्रा इतिकृत्यतायाम्।
सर्वात्मना म्रियमाणैश्च कृत्यं शुद्धं च तत्रामृशताभियुक्ताः ॥२४॥

अन्वयः— ततश्च हे विप्राः वः विश्रभ्य इमं पृच्छ्यं विपृच्छे सर्वात्मना म्रियमाणैःच इति कृत्यतायाम्, शुद्धं कृत्यं विप्पृच्छे हे अभियुक्ताः तत्र आमृशत ॥२४॥

अनुवाद— अतएव हे महर्षियों आपलोगों पर विश्वास करके पूछने योग्य यह पूछ रहा हूँ कि सबों को सभी अवस्थाओं में तथा शीघ्र मरने वालों को कौन सा शुद्ध कर्म करना चाहिए ? इस विषय पर आपलोग विचार करें ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

पृच्छ्यं प्रष्टव्यम्। विश्रभ्य विश्वासं कृत्वा। एवं कर्तव्यमित्यस्य भाव इतिकृत्यता तस्मिन्विषये। सर्वात्मना सर्वावस्थासु यत्कृत्यं विशेषतश्च म्रियमाणैस्तच्च शुद्धं पापसंपर्करहितमामृशत विचारयत ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने कहा— हे महर्षियों आपलोगों पर विश्वास करके पूछने योग्य बात यह पूछ रहा हूँ कि मनुष्य को सभी अवस्थाओं में तथा विशेष रूप से सन्निकट भविष्य में मरने वालों को कौन सा पाप रहित कर्म करना चाहिए, इस विषय पर आपलोग विचार करें ॥२४॥

तत्राभवद्भगवान्व्यासपुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः।
अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो वृतः स्त्रिबालैरवधूतवेषः ॥२५॥

अन्वयः— तत्र गाम् अटमानः अनपेक्षः अलक्ष्यलिङ्गः निजलाभ तुष्टः स्त्रीबालैः वृतः, अवधूतवेषः भगवान् व्यासपुत्रः यदृच्छया अभवत् ॥२५॥

अनुवाद— जिस समय सभी महर्षि परस्पर में याग, योग, तप तथा दान को लेकर विवाद कर रहे थे उसी समय पृथिवी पर भ्रमण करने वाले, किसी से, जिनका वर्ण, तथा आश्रम रूपी बाह्य कोई भी चिह्न लक्षित नहीं हो रहा था वे आत्मलाभ के कारण सन्तुष्ट रहने वाले तथा स्त्रियों एवं बालकों से घिरे हुए ऐसे अवधूत वेष में विद्यमान महर्षि व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी वहाँ अचानक आ गये ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तेषु यागयोगतपोदानादिभिर्विवदमानेषु सत्सु यदृच्छया गां पर्यटन्व्यासपुत्रस्तत्राभवत्प्राप्तः। न लक्ष्यमाश्रमादिलिङ्गं यस्य। अवधूतोऽवज्ञया जनैस्त्यक्तो यस्तस्येव वेषो यस्य सः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् की बात को सुनकर कोई यज्ञ को बतला रहा था, तो कोई योग का महत्त्व दे रहा था, तो कोई तपस्या का, कोई दान का, इस तरह से परस्पर में जब महर्षिगण विवाद कर रहे थे, उसी समय वहाँ व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी अचानक आ गये। वे पृथिवी पर भ्रमण करते हुए वहाँ आये थे, वे सबों से तथा सभी वस्तुओं से निरपेक्ष थे, वे किस वर्ण के हैं तथा किस आश्रम के हैं, इस बात का सूचक कोई भी उनका वाह्य चिह्न दिखायी

नहीं देता था । आत्मलाभ हो जाने के कारण वे अपने आप में संतुष्ट थे । वे अवधूत वेष में थे । अर्थात् ऐसा वेष जिसका लोगों ने त्याग कर दिया था अर्थात् सर्वजन परित्यक्त उनका वेष था । क्योंकि वे नग्न थे और स्त्रियाँ और बच्चे उनको घेर रखे थे । इस प्रकार के शुकदेवजी वहाँ अचानक आ गये ॥२५॥

तं द्व्यष्टवर्षं सुकुमारपादकरोरुबाह्वंसकपोलगात्रम् ।
चार्वायताक्षोन्नसतुल्यकर्णसुभ्र्वाननं कम्बुसुजातकण्ठम् ॥२६॥
निगूढजत्रुं पृथुतुङ्गवक्षसमावर्तनाभिं वलिवल्गूदरं च ।
दिगम्बरं वक्त्रविकीर्णकेशं प्रलम्बबाहुं स्वमरोत्तमाभम् ॥२७॥
श्यामं सदाऽपीच्यवयोऽङ्गलक्ष्म्या स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरस्मितेन ।
प्रत्युत्थितास्ते मुनयः स्वासनेभ्यस्तल्लक्षणज्ञा अपि गूढवर्चसम् ॥२८॥

अन्वयः— द्व्यष्टवर्षं सुकुमारकरोरुबाह्वंश कपोलगात्रम् चार्वायतवक्षोन्नत तुल्यकर्ण सुभ्र्वावाननं कम्बुसुजातकण्ठम्, निगूढजत्रुम् पृथुतुङ्गवक्षसमम् आवर्तनाभिं, वलिवल्गूदरं च, दिगम्बरं, वक्त्रकीर्णकेशं प्रलम्बवाहुं, स्वमरोतमाभम्, श्यामं सदापीच्यवयो अङ्गलक्ष्म्या रुचिरस्मितेन च स्त्रीणां मनोज्ञं, गूढवर्चसम् अपि तल्लक्षणज्ञाः मुनयः स्वासनेभ्यः तं प्रत्युत्थिताः ॥२६-२८॥

अनुवाद— सोलह वर्ष की अवस्था वाले, अत्यन्त कोमल, हाथ, पैर, ऊरू (जङ्घे), भुजाएँ, दोनों कंधे, दोनों गाल तथा शरीर वाले, मनोहर तथा विस्तृत नेत्रों वाले, उठी हुयी नाक, एक समान कान, सुन्दर भौंहों तथा मुख वाले, शङ्ख के समान मनोहर कण्ठ वाले, ढंकी हुयी हँसली वाले विस्तृत तथा उठे हुए वक्षःस्थल वाले, आवर्त के समान गहरी नाभि वाले, त्रिबली से मनोहर उदर (पेट) वाले, नग्न तथा विखरे हुए केश जिनकें मुख पर आ गये थे, लम्बी भुजाओं वाले तथा देवताओं के समान सुन्दर कान्ति वाले श्याम वर्ण वाले, अत्युत्तम युवावस्था के कारण अथवा शरीर की कान्ति और मनोहर मुसकान के द्वारा ब्रह्मतेज के छिपाये रखने पर भी उनके लक्षण को जानने वाले मुनिगण ने उनको देखकर अपने आसन से उठकर शुकदेवजी की अगवानी की ॥२६-२८॥

भावार्थ दीपिका

तमित्यादीनां प्रत्युत्थिता इति तृतीयश्लोकेनान्वयः । द्विगुणान्यष्टौ वर्षाणि यस्य । सुकुमारौ कोमलौ पादौ कराबूरू बाहू अंसौ कपोलौ गात्रं च यस्य । चारुणी आयते अक्षिणी यस्मिन् । उन्नता नासा यस्मिन् । लम्बह्रस्वादिवैषम्यं विना तुल्यौ कर्णौ यस्मिन् । शोभने च भ्रुवौ यस्मिन् एवंभूतमाननं यस्य कम्बुवद्रेखात्रयाङ्कितः सुष्ठु जातः कण्ठो यस्य । कण्ठस्याधोभागयोः स्थिते ते अस्थिनी जत्रुणी । मांसेन निगूढे जत्रुणी यस्य । पृथु विस्तीर्णं तुङ्गमुन्नतं च वक्षो यस्य । आवर्तवन्नाभिर्यस्य । बलिभिस्तिर्यङ्निम्नरेखाभिर्वल्गु रम्यमुदरं यस्य । दिश एवाम्बरं यस्य । वक्त्रविकीर्णाः केशा यस्य । प्रलम्बौ बाहू यस्य । स्वमरेषु श्रेष्ठदेवेषूत्तमो हरिस्तद्वदाभा यस्य तम् । सदा अपीच्यमत्युत्तमं यद्वयो यौवनं तेन याऽङ्गलक्ष्मीर्देहकान्तिस्तया रुचिरस्मितेन च । गूढवर्चसमपि प्रत्युत्थितास्तं दृष्ट्वा प्रत्युद्गमं कृतवन्त इत्यर्थः ॥२६-२८॥

भाव प्रकाशिका

तम् इत्यादि शुकदेवजी के सारे विशेषणों के वाचक पदों का आगे के तीसरे **प्रत्युत्थिताः** श्लोक से अन्वय है । शुकदेवजी की अवस्था सोलह वर्ष की थी, उनके हाथ, पैर, दोनों जङ्घे, दोनों भुजाएँ, तथा दोनों गालों से युक्त शरीर कोमल था । उनकी दोनों फैली हुयी और मनोहर आँखें थी, नाक उठी हुयी थी, दोनों कान बराबर मात्रा में लम्बे थे उनकी दोनों भौहे और मुख मनोहर थे । उनका कण्ठ शङ्ख के समान तीन रेखाओं से युक्त और सुन्दर था कण्ठ के नीचे की हंसली मांस से भरी हुयी होने के कारण छिपी हुयी थी, उनका वक्षःस्थल विस्तृत

तथा उठा हुआ था तथा आवर्त (जल के चकोह) के समान उनकी गहरी नाभी थी तथा त्रिबली के कारण उनका उदर मनोहर दिखता था, वे दिगम्बर (नग्न) रूप में थे, उनके विखरे हुए केश मुख पर लटक रहे थे, दोनों भुजाएँ लम्बी थीं, उनकी कान्ति देवता के समान सुन्दर थी, उनका वर्ण श्याम था सदा उत्तम युवावस्था से युक्त शरीर की सुन्दरता तथा मनोहर मुसकान के कारण स्त्रियों के लिए वे मन मोहक थे । उनका तेज यद्यपि छिपा हुआ था फिर भी उनके लक्षण को जानने वाले मुनिगण उनको देखते ही पहचान गये, और अपने आसन से उठकर उनलोगों ने उनकी (शुकदेवजी की) अगवानी की ॥२६-२८॥

स विष्णुरातोऽतिथय आगताय तस्मै सपर्यां शिरसाऽऽजहार ।
ततो निवृत्ता ह्यबुधाः स्त्रियोऽर्भका महासने सोपविवेश पूजितः ॥२९॥

अन्वयः— स विष्णुरातः आगताय तस्मै अतिथये शिरसा सपर्यां आजहार, ततः अबुधाः स्त्रियः अर्भकाः च निवृत्ताः पूजितः सः महासने उपविवेश ॥२९॥

अनुवाद— राजा परीक्षित् आये हुए अतिथि श्रीशुकदेवजी के शिर झुकाकर प्रणाम किए और उनकी पूजा किए । शुकदेवजी की इस महिमा को देखकर उनको नही जानने वाली स्त्रियाँ और बालक गण वहाँ से लौट गये और राजा के द्वारा पूजित होकर शुकदेवजी महान् आसन पर विराजमान हो गये ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

शिरसैव सपर्यामाजहारात्मनिवेदनं कृतवान् । तेन सहागताः स्त्र्यादयो निवृत्ताः । स चोपविवेश सन्धिरार्षः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने आये हुए शुकदेवजी की पूजा शिर झुकाकर प्रणाम पूर्वक की । शुकदेवजी के साथ जो स्त्रियाँ और बच्चे वहाँ तक आये थे उन सबों ने उनका जब इस प्रकार से समादर देखा तो वे वहाँ से लौट कर चले गये । राजा परीक्षित् के द्वारा पूजित शुकदेवजी महान् आसन पर बैठ गये ॥२९॥

स संवृतस्तत्र महान्महीयसां ब्रह्मर्षिराजर्षिदेवर्षिसङ्घैः ।
व्यरोचतालं भगवान्यथेन्दुर्ग्रहर्क्षतारानिकरैः परीतः ॥३०॥

अन्वयः— महीयसां महान् सः तत्र, ब्रह्मर्षि राजर्षि देवर्षि संघैः संवृतः ग्रहर्क्षतारानिकरैः भगवान् इन्दुः यथा अलं व्यरोचत ॥३०॥

अनुवाद— राजर्षियों तथा देवर्षियों के समूह से घिरे हुए महानो में भी महान् शुकदेवजी की शोभा, ग्रह, नक्षत्र, तथा तारों से घिरे हुए ऐश्वर्य सम्पन्न चन्द्रमा के समान अत्यधिक हो रही थी ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

स भगवान् ब्रह्मर्ष्यादिसङ्घैः संवृतः सन्नलं व्यरोचत । ग्रहाः शुक्रादयः । ऋक्षाण्यश्विन्यादीनि । अन्यास्तारा: ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मर्षि आदि से घिरे हुए भगवान् शुकदेवजी की शोभा ग्रहों नक्षत्रों एवं तारों से घिरे हुए चन्द्रमा के समान अत्यधिक हो रही थी । ग्रह शब्द से शुक्र आदि तथा अश्विनी आदि नक्षत्र एवं तारों को लेना चाहिए ॥३०॥

प्रशान्तमासीनमकुण्ठमेधसं मुनिं नृपो भागवतोऽभ्युपेत्य ।
प्रणम्य मूर्ध्नाऽवहितः कृताञ्जलिर्नत्वा गिरा सूनृतयाऽन्वपृच्छत् ॥३१॥

अन्वयः— प्रशान्तम्, आसीनम्, अकुण्ठमेधसं मुनिम् अभ्युपेत्य अवहितः कृताञ्जलिः महाभागवतः राजा मूर्ध्ना प्रणम्य पुनः नत्वा सुनृतया गिरा अन्वपृच्छत् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

शुकदेवजी शान्त भाव से बैठ गये। उनकी बुद्धि किसी भी विषय में कुण्ठित नही थी। उनके पास महाभागवत राजा परीक्षित् आये, वे सावधान और हाथ जोड़े हुए थे। उन्होंने सर्वप्रथम शिर झुकाकर श्रीशुकदेवजी को प्रणाम किया। उसके पश्चात् प्रश्न पूछने के लिए उन्होंने शुकदेवजी को पुनः प्रणाम किया तथा अत्यन्त मधुर वाणी में उनसे प्रश्न किये ॥३१॥

अहो अद्य वयं ब्रह्मन्सत्सेव्याः क्षत्रबन्धवः। कृपयाऽतिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाः कृताः ॥३२॥

अन्वयः— अहो ब्रह्मन् अद्यवयं क्षत्रबन्धवः सत्सेव्या यतः, भवद्भिः अतिथिरूपेण कृपया तीर्थकाः कृताः ॥३२॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् यह मुझ क्षत्रिय का बहुत बड़ा भाग्य है कि हम सत् पुरुषों के द्वारा सेवनीय हो गये, क्योंकि आज आप हमारे अतिथि बनकर मुझे पवित्र बना दिए हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

सूनृतां गिरमाह-अहो इति पञ्चभिः। सतां सेव्या जाताः। यतः अतिथिरूपेण हेतुना तीर्थका योग्याः कृता ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

अहो इत्यादि पाञ्च श्लोकों से राजा परीक्षित् की सुन्दर वाणी का वर्णन करते हैं। राजा परीक्षित् ने कहा हे ब्रह्मन् आज हम क्षत्रिय भी सत्पुरुषों के द्वारा सेवनीय हो गये हैं। क्योंकि आज आप हमारे अतिथि बनकर हमको उस योग्य बना दिये हैं ॥३२॥

येषां संस्मरणात्पुंसां सद्यः शुध्यन्ति वै गृहाः। किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ॥३३॥

अन्वयः— येषां संस्मरणात् वै पुंसा गृहाः सद्यः शुध्यन्ति दर्शनस्पर्शपादशौच आसनादिभिः पुनः किम् ॥३३॥

अनुवाद— जिन आप जैसे महापुरुषों को स्मरण करने मात्र से ही गृहस्थों के गृह सद्यः पवित्र हो जाते हैं तो फिर, दर्शन, स्पर्श, पादप्रक्षालन तथा आसन प्रदान आदि करने पर क्या कहना है ?॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से कहा कि आप जैसे महापुरुषों का केवल नाम स्मरण कर लेने मात्र से ही गृहस्थों का गृह पवित्र हो जाता है। आज तो मुझे आपका दर्शन करने, स्पर्श करने, पाद प्रक्षालन करने का एवं आसन प्रदान करने का अवसर प्राप्त हो गया है। अतएव हमारी योग्यता के विषय में आज क्या कहना है। मुझे आपने कृतार्थ कर दिया ॥३३॥

सान्निध्यात्ते महायोगिन् पातकानि महान्त्यपि। सद्यो नश्यन्ति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः ॥३४॥

अन्वयः— हे महायोगिन्! ते सान्निध्यात् महान्ति अपि पातकानि सद्यः तथैव नश्यन्ति यथा भगवतः विष्णोः सन्निध्यात् सुरेतरा सद्यः नश्यन्ति ॥३४॥

अनुवाद— हे महायोगिन् आपके सान्निध्य मात्र से बड़े-से-बड़े भी पाप उसीतरह विनष्ट हो जाते हैं जिस तरह से भगवान् विष्णु के सन्निधान मात्र से बड़े-बड़े पापी दैत्य इत्यादि भी विनष्ट हो जाते हैं ।

भावार्थ दीपिका

विष्णोः सान्निध्यादसुरादय इव ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् विष्णु के सान्निध्य मात्र को प्राप्त करके मय इत्यादि असुर भी विनष्ट हो गये ।।३४।।

अपि मे भगवान्प्रीतः कृष्णः पाण्डुसुतप्रियः । पैतृष्वस्रेयप्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्यात्तबान्धवः ।।३५।।

अन्वयः— पाण्डुसुतप्रियः पैतृष्वास्रेय तद्गोत्रस्य आत्तबान्धवः भगवान् कृष्णः अपि मे प्रीतः ।।३५।।

अनुवाद— पाण्डवों के प्रिय अपने फुफेरे भाइयों की प्रसन्नता के लिए, उनके गोत्र में उत्पन्न होने के कारण मुझसे भी अपना सम्बन्ध मानकर भगवान् श्रीकृष्ण भी आज मुझ पर प्रसन्न हो गये हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

पाण्डुसुतानां प्रियोऽतस्तेषां पैतृष्वस्रेयानां प्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्य मे आत्तं स्वीकृतं बन्धुकृत्यं येन सः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों के प्रिय हैं । वे अपने फुफेरे भाई पाण्डवों की प्रसन्नता के लिए, पाण्डवों के गोत्र में उत्पन्न मुझसे भी अपना सम्बन्ध स्वीकार कर लिए हैं और मुझ पर प्रसन्न हो गये हैं ।।३५।।

अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणाम् । नितरां म्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः ।।३६।।

अन्वयः— अन्यथा अव्यक्तगतेः संसिद्धस्य वनीयसः ते दर्शनम् नितरांम्रियमाणानां नृणाम् नः कथम् दर्शनम् ?।।३६।।

अनुवाद— यदि भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा नहीं होती तो अव्यक्त गति वाले, वन में रहने वाले तथा परम सिद्ध आपका दर्शन, शीघ्र ही मर जाने वाले मुझ जैसे मनुष्य को कैसे होता ? ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

अन्यथा श्रीकृष्णप्रसादं विना । अव्यक्ता गतिर्यस्य । म्रियमाणानां नितरां कथं स्यात् । वनयिता याचयिता वनयितृतमो वनीयांस्तय । अत्युदारतया मां याचेथा इति प्रवर्तकस्येत्यर्थः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

यदि भगवान् श्रीकृष्ण की मुझ पर कृपा नहीं होती तो फिर आपका दर्शन मुझको कैसे मिलता ? क्योंकि आपकी अव्यक्त गति हैं । आपकी गति को कोई नहीं जानता है, साथ ही आप परम सिद्ध हैं तथा वन में रहने वाले है और मैं तो शीघ्र ही मर जाने वाला मनुष्य हूँ । **वनीयसः** पद की व्याख्या है वन में रहने वाले को वनीय यानी वनवासी कहते हैं । इस ऋषि समुदाय की अपेक्षा अत्यधिक वन में रहने वाले हैं । श्रीधर स्वामी भी लिखते हैं **वनयिता** अर्थात् याचना करने वाले । सर्वोत्तम वनयितृ (याचना करने वाले) होने के कारण वनीयान् हैं । अर्थात् अत्यन्त उदार होने के कारण मुझसे याचना करो इस तरह से प्रेरित करने वाले हैं आप । ऐसे आपका दर्शन मुझको कैसे सम्भव था ?।।३६।।

अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् । पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ।।३७।।

अन्वयः— अत इह योगिनां परमं गुरुम् पृच्छामि यत् सर्वथा म्रियमाणस्य पुरुषस्य यत् कार्यम् संसिद्धिं च पृच्छामि ।।३०।।

अनुवाद— अतएव मैं योगियों के परम गुरु आप से यह पूछ रहा हूँ कि मरने वाले पुरुष को इस लोक में कौन सा कार्य करना चाहिए जिससे कि मुक्ति की प्राप्ति हो ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

सम्यक् सिद्धिर्यस्मात्तम् । कार्यं कर्तुं योग्यम्, कर्तव्यं त्वावश्यकमिति भेदः । अतएव सर्वथा म्रियमाणस्य पुरुषस्य यस्मिन्कृते संसिद्धिर्मोक्षलक्षणा सिद्धिर्भवति तत्त्वां योगिनां गुरुं पृच्छामि ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने कहा कि जो मनुष्य शीघ्र ही मर जाने वाला हो, उसको कौन सा ऐसा कार्य करना चाहिए कि जिसके करने से सम्यक् सिद्धिरूप मुक्ति मिल जाय ? आप योगियों के परम गुरु हैं । यही मैं आपसे पूछ रहा हूँ ।।३७।।

यच्छ्रोतव्यमथो जाप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो । स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ।।३८।।

अन्वयः— हे प्रभो ! नृभिः यच्छ्रोतव्यम्, यत् जाप्यं, यत् कर्तव्यम् यत् स्मर्तव्यम्, यत भजनीयं वा यद्वा विपर्ययम् तद्ब्रूहि ।।३८।।

अनुवाद— हे प्रभो ! इस संसार में मनुष्यों को जो सुनना चाहिए, जो जपना चाहिए, जो करना चाहिए, जिसका स्मरण करना चाहिए, तथा जिसका भजन करना चाहिए तथा जिसे न तो सुनना चाहिए, न जपना चाहिए, न करना चाहिए, न स्मरण करना चाहिए और न जिसका भजन (सेवन) करना चाहिए उसको आप मुझे बतलायें ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

यच्छ्रोतव्यं यज्जाप्यं यत्कर्तव्यं यत्स्मर्तव्यं तद्ब्रूहि । विपर्ययमश्रोतव्यामादि ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में राजा ने सभी कल्याणकामी पुरुषों के द्वारा श्रोतव्य, जपने योग्य, अवश्य करने योग्य, स्मरण करने योग्य तथा सेवन करने योग्य तथा जिसको नहीं सुनना आदि चाहिए ऐसे साधनों के विषय में शुकदेवजी से पूछा है । इस तरह सैंतीसवें और अड़तीसवें इन दोनों श्लोकों में राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से दो बातों को पूछा है । १. मियमाण पुरुष को मुक्ति की प्राप्ति कैसे होती है तथा २. इस संसार में कल्याण चाहने वाले पुरुषों को क्या करना चाहिए ? इस सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत महापुराण में इन्हीं दोनों बातों का उत्तर दिया गया है ।।३८।।

नूनं भगवतो ब्रह्मन्गृहेषु गृहमेधिनाम् । न लक्ष्यते ह्यवस्थानमपि गोदोहनं क्वचित् ।।३९।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! गृहमेधिनाम् गृहेषु भगवतः क्वचित् गोदोहनम् अपि हि अवस्थानं न लक्ष्यते ।।३९।।

अनुवाद— हे भगवन् ! आप तो किसी गृहस्थ के घर पर गोदोहन काल पर्यन्त भी नहीं रुकते हैं अतएव इसी समय आप मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दीजिए ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

तव दर्शनस्य पुनर्दुर्लभत्वादिदानीमेव कथनीयमित्याशयेनाह-नूनमिति । गोदोहनमात्रकालमपि अस्माकं भाग्यवशात्त्वद्दर्शनं जातमिति भावः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

नूनम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा राजा परीक्षित् ने कहा कि आपका दर्शन दुर्लभ है, अतएव आप इसी समय मेरे इस प्रश्न का उत्तर दें । क्योंकि आप तो किसी गृहस्थ के यहाँ गोदोहन काल अर्थात् मुहूर्त के आठवें भाग के बराबर भी समय तक नहीं ठहरते हैं । मेरे भाग्य से ही आपका दर्शन हुआ है ।।३९।।

सूत उवाच

एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा । प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान्बादरायणिः ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां
प्रथमस्कन्धे शुकागमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥
समाप्तोऽयं प्रथमस्कन्धः ॥१॥

अन्वयः— एवमाभाषितः राज्ञा श्लक्षणया गिरा पृष्टः धर्मज्ञः भगवान् बादरायणिः प्रत्यभाषत ॥४०॥

अनुवाद— इस तरह से **अहो अद्य० इत्यादि** श्लोक के द्वारा अपनी ओर आकृष्ट करके राजा परीक्षित् द्वारा मधुर वाणी से पूछे जाने पर धर्मज्ञ तथा ब्रह्मावास शुकदेवजी राजा परीक्षित् के वाक्यों का उत्तर देना प्रारम्भ किए ॥४०॥

इस तरह से श्रीमद्भागवम महापुराण नामक अठारह हजार श्लोकों वाली पारमहंस्य संहिता के प्रथम स्कन्ध के शुकागमन नामक उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

यह पहला स्कन्ध सम्पूर्ण हो गया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एवमहो इत्यादिकया श्लक्ष्णया मधुरया गिरा आभाषितोऽभिमुखीकृतः पृष्टश्च । आर्यं धर्मजमाहतारिमवनौ कृत्वा परीक्षिन्नृपं ब्रह्मास्त्रादभिरक्षितं कलिजयख्यातं च कृत्वा भुवि । अन्ते यः शुकरूपतः स्वपरमज्ञानोपदेशेन तं शापादावदमुं नामामि परमानन्दाकृतिं माधवम् ॥१॥

इति श्रीमद्भागवगतभावार्थदीपिकायां श्रीधरस्वामिविरचितायां प्रथमस्कन्धटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अहोअद्य० इत्यादि श्लोकों के द्वारा मधुर वाणी से शुकदेवजी को अपनी ओर आकृष्ट करके राजा परीक्षित् ने उनसे उपर्युक्त प्रश्नों को पूछा और शुकदेवजी ने उन प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥४०॥

आर्यं० इत्यादि अपने पूज्य धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर को पृथिवी का अजातशत्रु राजा बनाकर, ब्रह्मास्त्र से रक्षित राजा परीक्षित् को कलि विजयी रूप से पृथिवी पर विख्यात बनाकर, अन्त में शुकदेव महर्षि के रूप में परमात्मा के ज्ञानोपदेश के द्वारा परीक्षित् की ब्रह्मशाप से रक्षा जिन्होंने की उन लक्ष्मीपति परमानन्द स्वरूप भगवान् माधव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के श्रीधरस्वामी द्वारा प्रणीत भावार्थदीपिका नामक प्रथम स्कन्ध की टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥१९॥

इस तरह यह पहला स्कन्ध सम्पूर्ण हो गया ॥१॥

।।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।।

द्वितीयस्कन्ध

प्रथम अध्याय

ध्यान विधि और भगवान् के विराट् स्वरूप का वर्णन

श्रीशुक उवाच

वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप । आत्मवित्संमतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ।।१।।

अन्वयः— नृप आत्मवित् संमतः, पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः, लोकहितं प्रश्नः कृतः एव वरीयान् ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् आपने आत्मज्ञ पुरुषों के अभिमत (अनुकूल) तथा पुरुषों को सुनने, करने, जपने, स्मरण करने योग्य सभी वस्तुओं में श्रेष्ठ वस्तु विषयक तथा लोक कल्याणकारी प्रश्न किया है । अतएव यह श्रेष्ठ प्रश्न है ।।१।।

भावार्थ दीपिका

द्वितीये तु दशाध्यायैः श्रीभागवतमादितः । उद्देशलक्षणोक्तिभ्यां संक्षेपेणोपवर्ण्यते ।।१।। तत्र तु प्रथमेऽध्याये कीर्तनश्रवणादिभिः। स्थविष्ठे भगवद्रूपे मनसो धारणोच्यते ।।२।। यन्नामकीर्तनं दानतपोयोगादिसत्फलम् । तं नित्यं परमानन्दं हरिं नर नम स्मर ।।३।। अथ द्वितीयस्कन्ध व्याख्या । उक्तः पूर्वमुपोद्धातः सप्रसङ्गः शुकागतः । राज्ञा पृष्ट नृणां कृत्यमथाह शुकसन्मुनिः ।।४।। राज्ञः प्रश्नमभिनन्दति-वरीयानिति । ते त्वया पुंसां श्रोतव्यादिषु मध्ये यः परः श्रेष्ठगोचरः प्रश्नः कृतः एष वरीयान् । यतो लोकहितमेतत्, मोक्षहेतुत्वात् । आत्मविदां मुक्तानां च संमतो यतः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध में दश अध्याओं के माध्यम से उद्देश (पदार्थी के नाम का निर्देश) पूर्वक पदार्थों के स्वरूप निरूपकधर्म वर्णन रूप लक्षण के द्वारा श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ से लेकर अन्ततक के पदार्थों का संक्षेप में वर्णन किया गया है ।।१।। सर्वप्रथम इस स्कन्ध के प्रथम अध्याय में कीर्तन तथा श्रवण आदि के द्वारा श्रीभगवान् का जो स्थूल रूप है उसमें मन की धारणा का वर्णन किया गया है ।।२।। हे मनुष्य ! कीर्तन, दान, तप तथा योग इत्यादि साधनो के जो सर्वोत्तम फल हैं उन परमानन्द स्वरूप श्रीहरि को नमस्कार पूर्वक निरन्तर स्मरण करो ।।३।।

अथ द्वितीय स्कन्ध व्याख्या- इन तीन श्लोकों द्वारा वर्णित भागवत शास्त्र सार का वर्णन करने के पश्चात् भावार्थ दीपिका व्याख्या के लेखक श्रीधर स्वामी दूसरे स्कन्ध की व्याख्या को प्रारम्भ करते हैं । इससे पहले प्रसङ्ग निरूपण के साथ-साथ श्रीमद्भागवत महापुराण का शुकदेवजी के आगमन रूप उपोद्घात का वर्णन प्रथम स्कन्ध

में किया जा चुका है। प्रतिपाद्य अर्थ को ध्यान में रखकर उसकी सिद्धि के लिए जो दूसरे विषयों का वर्णन किया जाता है उसी को उपोद्घात कहते हैं, कहा भी गया है **'चिन्तां प्रकृत सिद्धयर्थमुपोद्घातं विदुः बुधाः ।'** उसके पश्चात् इस द्वितीय स्कन्ध में शुकदेव महर्षि ने जिसे राजा ने प्रथम प्रश्न के रूप में पूछा है उस अवश्य कर्तव्य का वर्णन किया है ॥४॥

राज्ञः प्रश्नमभिनन्दति० इत्यादि- राजा परीक्षित् के द्वारा किए गये प्रश्न का अनुमोदन करते हुए शुकदेवजी **वरीयान् इत्यादि** श्लोक को कहते हैं। मनुष्यों के द्वारा श्रोतव्य आदि में श्रेष्ठ पदार्थ क्या है, उसे आप बतलायें यह जो आपने प्रश्न किया है, यह श्रेष्ठ प्रश्न है। क्योंकि आपका यह जो प्रश्न है सम्पूर्ण संसार के लिए कल्याणकारी है, क्योंकि वह पदार्थ मोक्षप्राप्ति का साधन है, तथा जो आत्मज्ञ पुरुष हैं उनके अभिमत है ॥१॥

श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रशः । अपश्यतामात्मत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥२॥

अन्वयः— राजेन्द्र ! आत्मतत्त्वम् अपश्यताम् गृहमेधिनाम्, नृणाम् गृहेषु श्रोतव्यादीनि सहस्रशः सन्ति ॥२॥

अनुवाद— हे राजाओं में श्रेष्ठ राजन् ! परीक्षित् जिन लोगों ने आत्मतत्त्व का साक्षात्कार नहीं किया है, ऐसे गृहस्थ मनुष्यों के लिए घरों में सुनने जानने और स्मरण आदि करने योग्य कार्य तो हजारों हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तावत्स्वाभाविकक्रियाणामनर्थहेतुत्वं वदन् **ब्रूहि यद्वा विपर्ययम्'** इत्यस्योत्तरमाह- श्रोतव्यादीनीति त्रिभिः। गृहेषु सक्तानामत एव गृहमेधिनां तद्गतपञ्चसूनापराणाम् । मेधति हिंसार्थः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम शुकदेवजी यह बतलाते हैं कि स्वाभाविक रूप से जो क्रियायें की जाती है, वे सबके सब अनर्थकारी ही हैं। यह कहकर राजा ने यह जो कहा था कि जिन कार्यों को नहीं करना चाहिए उन कार्यों के विषयमें शुकदेवजी बतलायें। उन्हीं को गृह में भी **श्रोतव्यदीनि** तीन श्लोकों में बतलाते हैं। गृह में जो आसक्त बने रहते हैं ऐसे लोगों को कहा जाता है। गृहमेधी का अर्थ है गृहस्थ। गृहस्थों को गृहमेधी इसलिए कहा जाता है कि वे प्रतिदिन पाँच प्रकार से जीवों की हत्या करते रहते हैं। गृहमेधी पद में मेध धातु से निष्पन्न मेधी पद का अर्थ हिंसा करने वाला है मेध धातु हिंसार्थक है ॥२॥

निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः। दिवा चार्थेहया राजन् कुटुम्बभरणेन वा॥३॥
देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि । तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥४॥

अन्वयः— राजन् नक्तं निद्रया, व्यवायेन च वा वयः ह्रियते, दिवा च अर्थेहया कुटुम्ब भरणेन वा ह्रयते, देहापत्यक लत्रेषु आत्मसैन्येषु असत्स्वपि च दिवा ह्रियते, तेषां प्रमत्तः निधनं पश्यन् अपि न पश्यति ॥३-४॥

अनुवाद— राजन् ! मनुष्य सोने में अथवा स्त्री प्रसङ्ग में ही रात्रि को तथा आयु को बिता देता है। दिन को वह धन प्राप्त करने की इच्छा से कार्य करता रहता है, अथवा परिवार के ही पालन-पोषण में लगा रहता है। अपने शरीर, सन्तान, पत्नी आदि में अथवा अपनी सेना के सङ्गठन में लगा रहता है। यद्यपि ये सबके सब असत् पदार्थ हैं, अतएव मिथ्याभूत हैं। वह अपने पिता इत्यादि को मरते हुए भी देखता है, फिर भी वह यह नहीं सोचता है कि मुझे भी इन सारी वस्तुओं को छोड़कर मरना है। अतएव उसका देखना भी नहीं देखने के तुल्य है ॥३-४॥

भावार्थ दीपिका

तैश्च वृथैवायुर्व्ययो भवतीत्याह । नक्तं रात्रौ यद्वय आयुस्तन्निद्रया व्यवायेन रत्या वा ह्रियते । दिवा अह्नि यद्वयस्तत् अर्थेहया अर्थार्थमुद्यमेन, सिद्धेऽर्थे कुटुम्बपोषणेन वा । चकारावनुक्तसमुच्चार्थौ । ननु नश्वरकुटुम्बाद्यर्थं कथमायुर्व्ययं कुर्यात्तत्राह। देहादिषु आत्मनः सैन्येषु परिकरेष्वसत्सु मिथ्याभूतेष्वपि प्रमतः प्रसक्तस्तेषां पित्रादिदृष्टान्तेन नाशं पश्यन्नपि नानुसंधत्ते ।।३-४।।

भाव प्रकाशिका

उन गृह कार्यों में व्यर्थ ही आयु बीत जाती है, इस बात को शुकदेवजी कहते हैं- गृहस्थ मनुष्य रात्रि में अपनी आयु को या तो सोने में बिता देता है अथवा स्त्री के साथ सङ्गम करने में बिता देता है । दिन में वह अपनी आयु को धन कमाने की इच्छा से उद्योग करता हुआ बिता देता है । जब धन की प्राप्ति हो जाती है तो उससे अपने परिवार के पालन में अपनी आयु को बिताता है । श्लोक का दो चकार उन अर्थों को सूचित करता है जिनको यहाँ पर नहीं कहा गया है । यदि कोई कहे कि परिवार तो नश्वर है, उसके लिए वह क्यों अपनी आयु बितायेगा । तो इसका उत्तर है कि देह, पुत्र, पत्नी इत्यादि तथा अपनी सेना इत्यादि यद्यपि परिकर होने के कारण असत् पदार्थ हैं । फलत: वे मिथ्या हैं किन्तु उसी में आसक्त होकर मनुष्य देखता है कि हमारे माता-पिता यह सब कुछ छोड़कर चले गये, किन्तु वह यह नहीं सोचता है कि एक दिन मुझे भी इन सबों को छोड़कर जाना है ।।३-४।।

तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः । श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताऽभयम् ।।५।।

अन्वयः— तस्मात् हे भारत ! अभयम् इच्छता सर्वात्मा, भगवान् ईश्वरः हरिः श्रोतव्यः कीर्तितव्यः स्मर्तव्यः च ।।५।।

अनुवाद— अतएव हे भरतवंशी राजन् अभयपद (मोक्ष) प्राप्त करना चाहने वाले को चाहिए कि वह सबों की आत्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि का ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करे ।।५।।

भावार्थ दीपिका

एवं विपर्ययप्रश्नोत्तरमुक्त्वा श्रोतव्यादिप्रश्नस्योत्तरमाह–तस्मादिति । हे भारत भरतवंश। सर्वात्मेति प्रेष्ठत्वमाह । भगवानिति सौन्दर्यम् । ईश्वर इत्यावश्यकत्वम् । हरिरिति बन्धहारित्वम् । अभयं मोक्षमिच्छता ।।५।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से राजा परीक्षित् के द्वारा पृष्ट विपर्यय शब्द वाच्य अश्रोतव्यादि का वर्णन करके श्रोतव्यादि (सुनने योग्य) विषयक प्रश्न का उत्तर शुकदेवजी ने **तस्माद्० इत्यादि** श्लोक से दिया है । उन्होंने बतलाया कि जो पुरुष मोक्ष प्राप्त करना चाहे उसे सर्वात्मा, भगवान् तथा ईश्वर श्रीहरि का ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना चाहिए। श्रीभगवान् को सर्वात्मा कहकर उनके प्रियतमत्व को बतलाया गया हैं । परमेश्वर प्रेष्ठ (प्रियतम) इसलिए हैं कि श्रुति उनको प्रियतम बतलाती है । **भगवान्** इस विशेषण के द्वारा परमात्मा के सौन्दर्य को बतलाया गया है । **ईश्वर** पद के द्वारा आवश्यकत्व को बतलाया गया है । **हरिः** पद के द्वारा परमात्मा के बन्धहारित्व को बतलाया गया है ।।५।।

एतावान्सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया । जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः ।।६।।

अन्वयः— पुंसाम् एतावान् परः जन्मलाभः यत् सांख्ययोगाभ्याम् स्वधर्मपरिनिष्ठया च अन्ते नारायणस्मृतिः ।।६।।

अनुवाद— मानव जन्म प्राप्त करने का सबसे बड़ा लाभ यही है कि मनुष्य, ज्ञान, भक्ति अथवा अपने धर्म की निष्ठा के द्वारा अपने जीवन के अन्त में भगवान् नारायण का स्मरण करे ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अतः परमन्यच्छ्रेयो नास्तीत्याह । एतावानेव जन्मनो लाभः फलम् । तमाह–नारायणस्मृतिरिति। सांख्यादिभिः साध्य इति तेषां स्वातन्त्र्येण लाभत्वं वारयति । सांख्यमात्मानात्मविवेकः । योगोऽष्टाङ्गः । अन्ते तु स्मृतिः परो लाभः । न तन्महिमा वक्तुं शक्य इत्यर्थः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

जीवन के अन्त में परमात्मा के स्मरण से बढ़कर मानव जीवन का दूसरा कोई लाभ है ही नहीं । मानव जन्म प्राप्त करने का यही फल है । उस फल को शुकदेवजी ने बतलाया कि जीवन के अन्त में भगवान् नारायण का स्मरण ही हो जाना मानव जीवन का सबसे बड़ा लाभ है । गीता में भी भगवान् ने कहा कि जो मनुष्य अपने जीवन के अन्त में ओम् इस एकाक्षर ब्रह्म (वेद) का जप करते हुए तथा मेरा स्मरण करते हुए अपने शरीर का त्याग करता है वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ।

सांख्ययोगाभ्याम् पद के द्वारा यह बतलाया गया है कि ये सभी साधन स्वतन्त्र रूप से मुक्ति रूपी फल प्रदान करने में समर्थ नहीं हैं । **सांख्य** शब्द से आत्मा और अनात्मा के भेद पूर्वक ज्ञान को कहा गया है और योग शव्द से अष्टाङ्ग योग को बतलाया गया है । जीवन के अन्त में परमात्मा का स्मरण करना ही मानव जीवन का सवसे वड़ा लाभ है । उसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता है ।।६।।

प्रायेण मुनयो राजन्निवृत्ता विधिषेधतः । नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः ।।७।।

अन्वयः— हे राजन् ! विधिषेधतः निवृत्ताः नैर्गुण्यस्थाः मुनयः प्रायेण हरेः गुणानुकथने रमन्तेस्म ।।७।।

अनुवाद— हे राजन् ! विधि एवं निषेध की मर्यादा से ऊपर उठे हुए तथा निर्गुण ब्रह्म में स्थित मुनिजन प्रायः श्रीहरि के दिव्य गुणों के वर्णन में ही रमे रहते हैं ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तत्र सदाचारं प्रमाणयति–प्रायेणेति । विधिषेधतो विधिनिषेधाभ्यां निवृत्ता नैर्गुण्ये ब्रह्मणि स्थिता अपि । स्म प्रसिद्धम् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

नारायण स्मृति में सत्पुरुषों के आचरण को उपन्यस्त करके उसकी प्रामाणिकता का प्रातिपादन **प्रायेण० इत्यादि** श्लोक से किया गया है । विधिशास्त्र तथा निषेध शास्त्र की मर्यादा से ऊपर उठे हुए तथा ब्रह्म में स्थित रहने वाले मुनिगुण भी प्रायः परमात्मा के अनन्त तथा दिव्य गुणों के वर्णन में ही रमे रहते हैं । स्म पद के द्वारा इस अर्थ की प्रसिद्धि को सूचित किया गया है ।

नैर्गुण्ये रमन्ते स्म० इस श्लोकांश के द्वारा यह सूचित किया गया है कि नैर्गुण्य पद के द्वारा परब्रह्म में गुणों के अत्यन्ताभाव के प्रतिपादन में तात्पर्य न होकर परमात्मा में प्राकृतिक गुणों का ही अभाव अभिप्रेत है। अन्यथा भगवान के गुणों के वर्णन का प्रसङ्ग ही कैसे हो सकता है । अतएव निर्गुणत्व का अर्थ यहाँ पर परमात्मा के प्राकृत गुण रहितत्व तथा दिव्य गुण सम्पन्नत्व रूप ही स्वीकार करना चाहिए ।।७।।

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् । अधीतवान्द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम् ।।८।।

अन्वयः— इदं भागवतं नाम ब्रह्मसंमितम् पुराणम् अहम् द्वापरादौ पितुः द्वैपायनात् अधीतवान् ।।८।।

अनुवाद— इस श्रीमद्भागवत नामक पुराण सम्पूर्ण वेद के सदृश है, इसको मैंने द्वापर के अन्त में अपने पिता बादरायण से पढ़ा ।।८।।

भावार्थ दीपिका

किमिदमपूर्वं कथयसि, सत्यम्, अत्यपूर्वमेवेदमित्याह । इदं भगवत्प्रोक्तं तन्नामैकप्रधानं पुराणं ब्रह्मसंमितं सर्ववेदतुल्यम् यद्वा ब्रह्म सम्यक् मितं येन । कुतस्त्वया प्राप्तमत आह-अधीतवानिति । द्वैपायनात्पितुः । कदा । द्वापरादौ द्वापरः आदिर्यस्य कालस्य तस्मिन् द्वापरान्ते इत्यर्थः । शन्तनुसमकाले व्यासावतारप्रसिद्धेः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कोई कहे कि आप यह अपूर्व सी बात कैसे कह रहे हैं तो इसका उत्तर है कि यह अपूर्व ही बात है । यह मैं जो कह रहा हूँ वह अत्यन्त अपूर्व है । यह भगवान् के द्वारा प्रोक्त भागवत पुराण है इसमें श्रीभगवान् के नामों की प्रधानता बतलायी गयी है । यह सभी वेदों के समान होने के कारण ब्रह्मसंहिता है । अथवा इसको ब्रह्मसंमित कहने का अभिप्राय यह है कि इस पुराण के द्वारा ब्रह्म का खूब अच्छी तरह से ज्ञान हो जाता है । **ब्रह्म सम्यक् मितं येन** यह ब्रह्मसंमितम् पद का विग्रह है । प्रश्न होता है कि आपने इस पुराण को कहाँ से प्राप्त किया ? तो इसका उत्तर है कि मैंने इसको अपने पिता महर्षि द्वैपायन से पढा है । फिर प्रश्न होता है कि कब आपने पढा तो इसका उत्तर है द्वापरादौ । द्वापर युग के अन्त में । **द्वापरादौ०** पद का विग्रह है **द्वापरः आदिर्यस्य कालस्य** । अर्थात् जिस काल के आदि में द्वापर विद्यमान हों, अर्थात् द्वापर के अन्त में। क्योंकि यह प्रसिद्धि है कि व्यासजी का अवतार राजा शन्तनु के समय में हुआ था ॥८॥

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमश्लोकलीलया । गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ॥९॥

अन्वयः— राजर्षे ! नैर्गुण्ये परिनिष्ठितोऽपि उत्तमश्लोकलीलया, गृहीतचेताः यत् आख्यानम् अधीतवान् ॥९॥

अनुवाद— राजर्षे ! यद्यपि मैं परमात्मा के निर्गुण स्वरूप में ही पूर्ण रूप से निष्ठित था फिर भी उत्तम श्लोक भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं से आकृष्ट चित्त वाला होने के कारण मैंने इस पुराण का अध्ययन किया ॥९॥

भावार्थ दीपिका

सिद्धस्य तव कुतोध्ययने प्रवृत्तिस्तत्राह-परिनिष्ठतोऽपीति । गृहीतचेता आकृष्टचित्तः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि आप तो परम सिद्ध हैं फिर भी इस पुराण के अध्ययन में आपकी प्रवृत्ति कैसे हुयी ? इसका उत्तर **परिनिष्ठितो० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । अर्थात् मैं यद्यपि निर्गुण ब्रह्म में ही परिनिष्ठित था । फिर भी भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं ने मेरे चित्त को आकृष्ट कर लिया, उसी के कारण श्रीभगवान् की लीला की प्रधानता होने के कारण मैंने इसका अध्ययन किया ॥९॥

तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिको भवान् । यस्य श्रद्दधतामाशु स्यान्मुकुन्दे मतिः सती ॥१०॥

अन्वयः— भवान् महापौरुषिकः ते तत् अभिधास्यामि यस्य श्रद्दधताम् सती मतिः मुकुन्दे आशु स्यात् ॥१०॥

अनुवाद— आप महापुरुष भगवान् विष्णु के भक्त हैं, अतएव मैं आपको उस पुराण को सुनाऊँगा । उस पुराण में श्रद्धा रखने वाले मनुष्यों की शुद्धबुद्धि श्रीभगवान् में शीघ्र ही लग जाती हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

महापरुषो विष्णुस्तदीयः । यस्य यस्मिन् श्रद्धां कुर्वताम् । सती अहैतुकी ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

महापुरुष भगवान् विष्णु हैं । उनके भक्त ही महापौरुषिक शब्द से कहे जाते हैं । शुकदेवजी ने कहा कि राजन् आप तो भगवान् विष्णु के भक्त हैं । अतएव मैं आपको श्रीमद्भागवत पुराण सुनाऊँगा । उस पुराण में जो

मनुष्य श्रद्धा रखता है उसकी श्रीभगवान् में शीघ्र ही अहैतुकी बुद्धि बन जाती है । वह भगवान् की निष्काम आराधना करने लग जाता है ॥१०॥

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् । योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥११॥

अन्वयः— हे नृप ! एतत् निर्विद्यमानानां, अकुतोभयम् इच्छताम्, योगिनां च हरेर्नामानुकीर्तनम् निर्णीतम् ॥११॥

अनुवाद— जो लोग इस संसार से विरक्त हो गये हैं, जो लोग मोक्ष को प्राप्त करना चाहते हैं ऐसे योगिजनों के लिए सभी शास्त्रों में यही निर्णय किया गया है कि वे श्रीभगवान् के नामों का प्रेम पूर्वक कीर्तन करें ॥११॥

भावार्थ दीपिका

साधकानां सिद्धानां च नातः परमन्यच्छ्रेयोऽस्तीत्याह-एतदिति । इच्छतां कामिनां तत्तत्फलसाधनमेतदेव । निर्विद्यमानानां मुमुक्षूणां मोक्षसाधनमेतदेव । योगिनां ज्ञानिनां फलं चैतदेव निर्णीतम् । नात्र प्रमाणं वक्तव्यमित्यर्थः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

साधकों तथा सिद्धों के लिए इस श्रीमद्भागतव श्रवण से बढ़कर कोई भी दूसरा कल्याणकारी साधन नहीं है । सभी शास्त्रों में यही निर्णय किया गया है कि सभी साधकों तथा सिद्धों को परमात्मा के नामों का कीर्तन करना चाहिए इस विषय में किसी प्रमाण को उपन्यस्त करने की आवश्यकता नहीं है ॥११॥

किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षैर्हायनैरिह । वरं मुहूर्तं विदितं घटेत श्रेयसे यतः ॥१२॥

अन्वयः— प्रमत्तस्य परोक्षैः बहुभिः हायनैः इह किम् । विदितं मुहूर्तंवरं यतः श्रेयसे घटेत ॥१२॥

अनुवाद— अपनी मृत्यु के प्रति असावधान रहने वाले मनुष्यों के बीते हुए अनेकों वर्षों से क्या लाभ है? उससे तो अच्छा यही है कि जान लिया जाय कि एक ही मुहूर्त मेरे जीवन का अवशिष्ट है क्योंकि वैसा जानकर कल्याण के साधन के प्रति कुछ भी तो प्रयास किया जा सकता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अल्पमेवायुरवशिष्टं किमहं साधयेयमिति मा शुच इत्याह-किमिति त्रिभिः । परोक्षैरलक्षितैर्हायनैर्वर्षैः । विदितं वृथा यातीति ज्ञातम् । यतो येन ज्ञानेन । घटेत यत्नं कुर्यात् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

यदि परीक्षित् कहें कि मेरी तो बहुत कम आयु बची हुयी है, ऐसी स्थिति में मैं क्या कर सकता हूँ इसके उत्तर में शुकदेवजी ने कहा कि जो मनुष्य अपनी मृत्यु के प्राति असावधान हो उसको कुछ भी पता नहीं चलता है कि हमारे इतने वर्ष कैसे बीत गये ? उस व्यक्ति के व्यर्थ में बीते हुए अनेक वर्षों से तो वह एक भी मुहूर्त अच्छा है जिसके विषय में व्यक्ति यह जान ले कि अब मुझे एक ही मुहूर्त जीवित रहना है क्योंकि उस एक ही मुहूर्त में वह आत्मकल्याण का प्रयास कर सकता है । आपके तो अभी सात दिन बाकी हैं ॥१२॥

खट्वाङ्गो नाम राजर्षिर्ज्ञात्वेयत्तामिहायुषः । मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयं हरिम् ॥१३॥

अन्वयः— खट्वाङ्गो नाम राजर्षि, इह आयुषः इयत्ताम् ज्ञात्वा मुहूर्तात् सर्वम् उत्सृज्य अभयं हरिं गतवान् ॥१३॥

अनुवाद— खट्वाङ्ग नामक राजर्षि को जब इस बात का पता चल गया कि अब मेरी आयु एक मुहूर्त ही है तो वे सब कुछ का त्याग करके श्रीहरि की शरणागति करके मुक्ति प्राप्त कर लिए ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

खट्वाङ्गो हि देवपक्षे स्थित्वा दैत्यानजयत्, ततः प्रसन्नैर्देवैर्वरं वृणीष्वेत्युक्ते तेनोक्तं प्रथमं तावन्ममायुः कथ्यतामिति,

ततो देवैरुक्तं तत्तु मुहूर्तमात्रमस्तीति, ततोऽतिशीघ्रं विमानेन भुवमेत्य हरिं शरणं गत इति । यत इयं स्वर्गभूमि रजोधिका । कर्मभूमिः पृथ्वी ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

राजर्षि खट्वाङ्ग देवताओं की ओर से युद्ध करते हुए विजय प्राप्त किए । प्रसन्न होकर देवताओं ने कहा आप वरदान माँगें । राजा ने कहा आपलोग मेरी आयु बतलायें । देवताओं ने कहा राजर्षे ! अब आपकी आयु केवल एक मुहूर्त बची है । उसके पश्चात् राजा शीघ्रता पूर्वक विमान से पृथिवी पर आ गये और श्रीभगवान् की शरणागति करके मुक्ति को प्राप्त कर लिए । वे जान गये कि स्वर्गभूमि रजोगुण प्रधान है यहाँ मुक्ति सम्भव नहीं है । पृथिवी कर्मभूमि है । अतएव वे पृथिवी पर आकर श्रीभगवान् की शरणागति किए ।।१३।।

तवाप्येतर्हि कौरव्य सप्ताहं जीवितावधिः । उपकल्पय तत्सर्वं तावद्यत्सांपरायिकम् ।।१४।।

अन्वयः— हे कौरव्य ! एतर्हि तवापि जीवितावधिः सप्ताहम् । तावत् यत् साम्परायिकम् तत्सर्वम् उपकल्पय ।।१४।।

अनुवाद— हे कुरुवंशीय राजन् ! परीक्षित् अभी तो तुम्हारे पास सात दिन तक जीवन की अवधि है । इसी बीच में ही तुम अपने परम कल्याण के लिए जो कुछ भी करना हो कर लो ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

तव तु एतर्ह्यपि इदानीमपि । तावदिति तावता कालेन साम्परायिकं पारलौकिकं साधनं संपादय ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

राजन् आपके पास तो अभी भी जीने के लिए सात दिन का समय बचा है । इतने समय में तुम सारे पारलौकिक साधनों को सम्पन्न कर लो ।।१४।।

अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः । छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहां देहेऽनु ये च तम्।।१५।।

अन्वयः— अन्त काले तु आगते गतसाध्वसः पुरुष असङ्ग शस्त्रेण देहे, ये च तम् अनु स्पृहां छिन्द्यात् ।।१५।।

अनुवाद— मृत्यु की बेला आ जाने पर मनुष्यों को चाहिए कि वह भय का त्याग करके तथा अनासक्ति रूपी शस्त्र के द्वारा शरीर तथा शरीर से सम्बनध रखने वाले पुत्र-पत्नी आदि से प्राप्त होने वाली सुख की इच्छा रूपी ममता को काट डाले ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

तत्र वैराग्यं तावदाह-अन्तकाल इति । गतसाध्वसो मृत्युभयशून्यः । असङ्गो नाम अनासक्तिस्तेन शस्त्रेण स्पृहां सुखेच्छां, तं देहमनु ये पुत्रकलत्रादयस्तेष्वपि स्पृहां छिन्द्यात् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम वैराग्य का उपदेश देते हुए शुकदेवजी **अन्तकाले० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । गतसाध्वसः का अर्थ है भयरहित होकर । असङ्ग अनासक्ति को कहते हैं । अर्थात् मृत्यु की बेला हो जाने पर मनुष्य को भयरहित होना चाहिए । वह शरीर और शरीर से सम्बन्ध रखने वाले पुत्र, मित्र तथा कलत्र में होने वाली ममता को अनासक्ति रूपी शास्त्र के द्वारा काट दें ।।१५।।

गृहात्प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः । शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने।।१६।।
अभ्यसेन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम् । मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन् ।।१७।।

अन्वयः— गृहात् प्रव्रजितः धीरः पुण्यतीर्थ जलाप्लुतः, विधिवत् कल्पितासने, शुचौ विविक्त आसीनः, त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परमं शुद्धं मनसा अभ्यसेत् । ब्रह्मबीजम् अविस्मरन् जितश्वासः मनः यच्छेत् ।।१६-१७।।

अनुवाद— वह धैर्य सम्पन्न पुरुष अपने घर से निकल जाय, पवित्र तीर्थ के जल में जाकर स्नान करें, विधिपूर्वक निर्मित पवित्र आसन पर एकान्त में बैठ जाय। उसके पश्चात् तीन मात्राओं अ, उ, म् इन तीन मात्राओं से युक्त परम पवित्र प्रणव का मन में ही जप करे। उसके बाद प्राण वायु को वश में करके मन को अपने वश में कर ले, उस समय प्रणव जप को भूलना नहीं चाहिए, जप करते रहना चाहिए ॥१६-१७॥

भावार्थ दीपिका

किंच गृहात्प्रव्रजितो निर्गतः। गृहे स्थितस्य पुनरप्यासक्तिसंभवात्। तत्राष्टाङ्गयोगमाह। धीर इति ब्रह्मचर्यादियमोपलक्षणम्। पुण्यतीर्थेति स्नानदिनियमोपलक्षणम्। आसनमाह-शुचाविति। विविक्ते एकान्ते। विधिवत् कुशाजिनचैलैः क्रमेण निर्मिते। जपगर्भं प्राणायामं वक्तुं जप्यमाह। त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं त्रिवृत्रिभिरकारादिभिर्वर्तितं ग्रथितं ब्रह्माक्षरं प्रणवं मनसाऽभ्यसेदावर्तयेत्। मनसेन्द्रियप्रत्याहारं वक्तुं प्राणायामेन मनोनियमनमाह। मनो यच्छेद्वशीकुर्यात्। ब्रह्मबीजं प्रणवमविस्मरन्नेव। जितश्वासः सन् ॥१६-१७॥

भाव प्रकाशिका

उस पुरुष को धैर्य धारण करके गृह का त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि गृह में रहने पर हो सकता है, फिर उसकी पत्नी, पुत्र तथा परिवार में आसक्ति हो जाय। उसके पश्चात् शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् के अष्टाङ्गयोग का उपदेश देते हुए कहा। उस पुरुष की धीर कहकर ब्रह्मचर्य आदि जो यम बतलाये गये हैं उनके पालन को कहा गया है। पुण्यतीर्थ जल में स्नान रूपी नियम का पालन बतलाया गया है। **शुचौ० इत्यादि** के द्वारा आसन का निर्देश किया गया है। आसन को चैलाजिनकुशोत्तर के नियम के अनुसार निर्मित होना चाहिए। तथा एकान्त एवं पवित्र स्थान में उस आसन पर बैठना चाहिए।

जप युक्त प्राणायाम को बतलाने के लिए जपने योग्य मन्त्र को बतलाते हुए शुकदेवजी ने कहा कि अ, उ और म् इन तीन मात्राओं से निर्मित प्रणव का मन में ही जप करें। मन के द्वारा इन्द्रियों के प्रत्याहार अर्थात् विषयों से विमुख बनाने के लिए प्राणायाम के द्वारा मन के नियमन को बतलाते हुए कहा गया है कि मन को अपने वश में करना चाहिए ॥१६-१७॥

नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः। मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया ॥१८॥

अन्वयः— बुद्धि सारथिः मनसा विषयेभ्यः अक्षान् नियच्छेत् कर्मभिः आक्षिप्तं मनः शुभार्थे धिया धारयेत् ॥१८॥

अनुवाद— बुद्धि की सहायता से मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा ले, तथा कर्म की वासनाओं से चञ्चल हुए मन को विचार के द्वारा रोककर उसको श्रीभगवान् के मङ्गलमय रूप में लगा देना चाहिए ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्याहारमाह। नियच्छेन्निगृह्णीयात्। अक्षानिन्द्रियाणि। निश्चयात्मिका बुद्धिः सारथिर्यस्य सः। धारणामाह। मन इति। पुनश्च कर्मभिस्तद्वासनाभिराक्षिप्तमाकृष्टम्। शुभार्थे भगवद्रूपे ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

नियच्छेत्० इत्यादि श्लोक के द्वारा योग के पाँचवें अङ्ग प्रत्याहार को बतलाया जा रहा है। नियच्छेत् का अर्थ है कि निगृहीत करे। निश्चयात्मिका बुद्धि रूपी सारथि वाले पुरुष को चाहिए कि वह मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा ले। धारणा को बतलाते हुए उन्होंने कहा कि कर्मों की वासना से चञ्चल बने हुए मन को बुद्धिपूर्वक परमात्मा के शुभ रूप (मङ्गलमय रूप) में लगा दे। मन को किसी शुभाश्रय में लगा देने को ही धारण कहते हैं। प्रत्याहार को परिभाषित करते हुए महर्षि पतञ्जलि ने कहा **स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकारे**

इन्द्रियाणाणां प्रत्याहारः अर्थात् जब इन्द्रियों का अपने विषयों से सम्बन्ध नहीं होता है उस समय इन्द्रियाँ चित्त का अनुकरण करने लग जाती है, इसी को प्रत्याहार कहते हैं ॥१८॥

तत्रैकावयवं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा। मनो निर्विषयं युंक्त्वा ततः किंचन न स्मरेत् ॥
पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति ॥१९॥

अन्वयः— तत्र अव्युच्छिन्नेन चेतसा एकावयवं ध्यायेत् ततः निर्विषयं मनः युंक्त्वा किंचन न स्मरेत् विष्णोः तत् परमं पदं यत्र मनः प्रसीदति ॥१९॥

अनुवाद— उस समय अपने सम्पूर्ण अन्तःकरण के द्वारा श्रीभगवान् के किसी एक अङ्ग का ध्यान करे। उसके पश्चात् विषयों की वासना से रहित मन को परमात्मा के उस अङ्ग में इस प्रकार से लगा दे कि वह किसी दूसरे विषय का स्मरण न कर सके भगवान् विष्णु का वही परमपद है। जिसको प्राप्त करके मन भगवत्प्रेम रूपी आनन्द से भर जाता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ध्यानमाह-तत्रेति। एकमेकं पादाद्यवयवम्। अव्युच्छिन्नेन समग्ररूपादवियुक्तेन। आश्रयविशेषेण सामान्यतश्चित्तस्थिरीकरणं धारणा। अवयवविभावनया तद्दाढर्यं ध्यानमिति भेदः। समाधिमाह। निर्विषयं मनो युंक्त्वा समाधाय। स्थिरीभूते मनसि स्फुरत्परमानन्दमात्राकारं कृत्वेत्यर्थः। प्रसीदति उपशाम्यति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

तत्र० इत्यादि श्लोक के द्वारा ध्यान को बतलाया गया है। श्रीभगवान् के मङ्गलमय रूप के एक-एक अङ्ग का मुमुक्षु पुरुष ध्यान करे उस समय उसके अन्तःकरण में श्रीभगवान् के सम्पूर्ण रूप से विच्छिन्न नहीं होना चाहिए। उस प्रकार के मन से वह श्रीभगवान् के किसी एक अङ्ग का ध्यान करना चाहिए। आश्रय विशेष के साथ सामान्यतः चित को स्थिर करने को धारण कहते है। तथा अवयव की भावना से उस धारणा को दृढ करने को ध्यान कहते हैं। यही ध्यान और धारणा में भेद है। विषयों की वासना से रहित मन को परमात्मा के उस अङ्ग में समाहित करे। परमात्मा के उस अङ्ग में स्थिर बने हुए मन में जब केवल परमानन्द आकार की ही प्रतीति हो, किसी दूसरे वस्तु की प्रतीति नहीं हो ऐसी स्थिति में मन परमात्मा के प्रेमरूपी परमानन्द में मग्न हो जाता है इसी को समाधि कहते हैं ॥१९॥

रजस्तमोभ्यामाक्षिप्तं विमूढं मन आत्मनः। यच्छेद्धारणया धीरो हन्ति या तत्कृतं मलम् ॥२०॥

अन्वयः— धीरः रजस्तमोभ्याम् आक्षिप्तं विमूढं आत्मनः मनः धारणया यच्छेत् या तत्कृतं मलम् हन्ति ॥२०॥

अनुवाद— यदि फिर रजोगुण एवं तमोगुण के द्वारा आक्षिप्त (क्षुब्ध) मन हो जाय तो अपने मन को धारण के द्वारा वश में करना चाहिए, क्योंकि धारणा रजोगुण एवं तमोगुण जन्य मल को विनष्ट कर देने का काम करती है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

गुणवशात्पुनरपि क्षोभे सति धारणामेव स्थिरीकुर्यादित्याह। रजसा आक्षिप्तं तमसा विमूढं स्वीयं मनो निरुध्यात्। तत्कृतं रजस्तमोभ्यां कृतम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

समाधिस्थ हो जाने पर भी ऐसा हो सकता है कि गुणों के कारण मन में क्षोभ उत्पन्न हो जाय। उस स्थिति में धारणा को ही स्थिर करना चाहिए, क्योंकि धारणा रजोगुण एवं तमोगुण जन्य दोष को विनष्ट कर देने का काम करती है ॥२०॥

यतः संधार्यमाणायां योगिनो भक्तिलक्षणः । आशु संपद्यते योग आश्रयं भद्रमीक्षतः ॥२१॥

अन्वयः— यतः संधार्यमाणायां भद्रम् आश्रयं इच्छतः योगिनः भक्तिलक्षणः योगः आशु सम्पद्यते ।

अनुवाद— क्योंकि धारणा के स्थिर हो जाने पर सुखात्मक अपने आश्रय का साक्षात्कार करने वाले योगी का भक्ति रूपी योग शीघ्र ही सम्पन्न हो जाता है । अर्थात् योगी की उस शुभाश्रय में ही भक्ति हो जाती है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

यतो यस्यां क्रियमाणायां भद्रं सुखात्मकाश्रयं विषयं पश्यतस्तत्रैव प्रीतिर्भवति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

जिस धारणा के सम्पन्न हो जाने पर सुखमय विषय को देखने से उस विषय में ही प्रीति हो जाती हैं ॥२१॥

राजोवाच

यथा संधार्यते ब्रह्मन्धारणा यत्र संमता । यादृशी वा हरेदाशु पुरुषस्य मनोमलम् ॥२२॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् संमता धारणा, यथा यत्र संधार्यते, यादृशी वा संधार्यते, पुरुषस्य, मनोमलम् आशु हरेत् तद्वद ।।२२।।

राजा ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! सभी योगियों के लिए अभिमत धारण जिस तरह से की जाती है, जिस वस्तु के विषय में की जाती है तथा और जिस तरह से की जाती है, जिससे कि वह पुरुष के मनोमल को शीघ्र ही विनष्ट कर देती है, उसे आप मुझे बतलायें ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

यथा यत्र यादृशी चेतिकर्तव्यताविषयतत्तद्विशेषाणां प्रश्नाः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में यथा, यत्र तथा यादृशी, ये धारणा करने के प्रकार के विषय में प्रश्न हैं । अर्थात् धारणा किस तरह से की जाती है, उस धारणा का आश्रय क्या हो, और उस धारणा का स्वरूप क्या है ? इन तीनों विषयों में प्रश्न किया गया है क्योंकि कहा जा चुका है कि धारणा मनोमल को शीघ्र ही दूर करने का काम करती है ॥२२॥

श्रीशुक उवाच

जितासनो जितश्वासो जितसङ्गो जितेन्द्रियः । स्थूले भगवतो रूपे मनः संधारयेद्धिया ॥२३॥

अन्वयः— जितासनः, जितश्वासः, जितसङ्ग, जितेन्द्रियः धिया भगवतः स्थूले रूपे मनः संधारयेत् ।।२३।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् आसन, श्वास, आसक्ति और इन्द्रियों को अपने वश में करके बुद्धि पूर्वक भगवान् के स्थूल रूप में मन को लगाना चाहिए ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यथेत्यस्योत्तरं-जितासन इति । विषयमाह-स्थूल इति सार्धेन ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

राजा ने यथा पद के द्वारा जो धारणा करने के प्रकार के विषय में प्रश्न किया है उसका उत्तर दिया गया है । स्थूल इत्यादि डेढ श्लोक से धारणा के विषय को बतलाया गया है । जिसको परीक्षित् ने यत्र संमता कहकर पूछा था ॥२३॥

विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम् । यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत् ॥२४॥

अन्वयः— अयम् विशेषः तस्य स्थवीयसाम् स्थविष्ठः देहः यत्र इदं भूतं, भव्यं भवच्च विश्वं दृश्यते ॥२४॥

अनुवाद— यह सम्पूर्ण जगत् उस परमात्मा का स्थूल से भी अत्यन्त स्थूल शरीर है । उसी में यह भूतकालिक, भविष्यत्कालिक तथा वर्तमानकालिक जगत् दिखायी पड़ता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

विशेषो विराड्देहः अतिस्थूलानामपि स्थूलतरः । सत् कार्यमात्रम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

यह सम्पूर्ण जगत् परमात्मा का विराट् शरीर है । जितने भी स्थूल पदार्थ हैं, उन सबों से यह अधिक स्थूल है । इससे स्थूल कुछ भी नहीं । श्लोक के सत् शब्द के द्वारा सम्पूर्ण कार्य जगत् को बतलाया गया है ॥२४॥

आण्डकोशे शरीरेस्मिन्सप्तावरणसंयुते । वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान्धारणाश्रयः ॥२५॥

अन्वयः— सप्तावरण संयुते, अस्मिन् आण्डकोशे शरीरे यः असौ वैराजः पुरुषः सः भगवान् धारणाश्रयः ॥२५॥

अनुवाद— जल, तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत् तत्त्व और प्रकृति इन सात आवरणों से युक्त इस ब्रह्माण्ड रूपी शरीर में जो वैराज पुरुष हैं वे ही भगवान् धारण के विषय हैं, उनकी ही धारण की जाती है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अस्य चोपलक्षणत्वे विषयत्वं, वस्तुतस्तु विराड् जीवनियन्ता भगवानेव विषय इत्याह । आण्डकोशान्तर्वर्तिनि कटाह एव पृथिव्यावरणम् । ततः अप्तेजोवाय्वाकाशाहंकारमहत्तत्त्वानीति सप्त ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

यह सम्पूर्ण जगत् उपलक्षण रूप से विषय है । वास्तविकता तो यह है कि जीवों के नियामक भगवान् ही धारणा के विषय हैं । ब्रह्माण्ड तो उनका उपलक्षण है । ब्रह्माण्ड के भीतर रहने वाला कटाह ही पृथिवी रूपी आवरण है । अतएव जल, तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृति ये सात ब्रह्माण्ड के आवरण है । इस ब्रह्माण्ड को विराट् इसलिए कहा जाता है कि बाहर से तो यह देखने में कपित्थ फल के समान गोल आकार वाला है किन्तु इसके भीतर चरण इत्यादि अवयवों से युक्त कच्छप के समान आकार वाले ब्रह्मा नामक अपने अभिमानी जीव का विशेष रूप से भोग्य होने के कारण उसके विराजमान रहने के कारण विराट् कहा जाता है । उसमें (ब्रह्माण्ड में) उपास्य रूप से रहने के कारण भगवान् को वैराज कहा जाता है ॥२५॥

पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम् ।
महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे ॥२६॥
द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरुद्वयं वितलं चातलं च ।
महीतलं तज्जघनं महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ॥२७॥
उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य ।
तपो रराटीं विदुरादिपुंसः सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः ॥२८॥

अन्वयः— हे महीयते ! एतस्य हि पादमूलं पातालं पठन्ति, पार्ष्णिप्रपढे रसातलम् अथ विश्वसृजः गुल्फौ महातलम् तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे, द्वे जानुनी सुतलम् वितलं अतलं च विश्वमूर्तेः उरूद्वयम्, महीतलम् तत् जघनम् नभस्तलम् नाभिसरः गृणन्ति, अस्य उरःस्थलम् ज्योतिरनीकम्, महः वै ग्रीवा, अस्य जनः तपः रराटीम् सहस्रशीर्ष्णः आदिपुंसः शीर्षाणि तु सत्यम् ॥२६-२८॥

अनुवाद— हे राजन् ! परीक्षित् तत्त्वज्ञ पुरुष इस विराट् पुरुष के पैरों का मूल स्थान पैर का तलवा पाताल को बतलाते हैं, रसातल को इस विराट् पुरुष की एंड़ी और पैर का पञ्जा बलाते हैं, महातल ही इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले विराट् पुरुष के दोनों गुल्फ हैं, तलातल ही इस विराट् पुरुष के दोनों जङ्घे हैं, सुतल ही उनके दोनों घुटने हैं, अतल और वितल ये दोनों विश्वशरीरक भगवान् के दोनों उरू प्रदेश (जंङ्घे) हैं । राजन् भूतल ही पेंडू हैं, । आकाश को ही विश्वरूप परमात्मा का नाभिसरोवर बतलाते हैं । ज्योति समूह को ही उनका वक्ष:स्थल बतलाते है । महर्लोक ही उनकी ग्रीवा हैं । जनलोक उनका मुख है । तपोलोक उनका ललाट है तथा सत्य लोक ही सहस्रशीर्षा आदि पुरुष का शिर है ॥२६-२८॥

भावार्थ दीपिका

विराड्देहतज्जीवतदन्तर्यामिणामभेदमारोप्योपासनं कर्तव्यमित्याशयेनाह । पातालं पादमूलं पादस्याधोभागम् । पातालादीनां तदवयवता विधीयते । पातालादीन्यतलान्तान्यधस्तनादारभ्य सप्त भूविवराणि । पठन्ति गृणन्तीत्यादिप्रमाणप्रदर्शनम् । पार्ष्णिप्रपदे पादस्य पश्चात्पुरोभागौ । ऊरुद्वयस्याधोभागे वितलम, उत्तरभागे अतलमिति ज्ञेयम् । नाभिरेव सरः । ज्योतिरनीकं ज्योतिषां समूहं स्वर्गम् । महर्लोकं ग्रीवेति गृणन्ति । तपोलोकं रराटीं ललाटम् । सत्यं सत्यलोकम् ।॥२८॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मा के विराट् शरीर उसके भीतर रहने वाले जीव तथा उसके अन्तर्यामी में अभेद का अरोप करके उपासना करनी चाहिए । इसी अभिप्राय से शुकदेवजी ने **पातलमेतस्य० इत्यादि** श्लोकों से विश्वशरीरक परमात्मा का वर्णन किया है । पाताल आदि को ही परमात्मा के पैरों की एंडी और पंजा बतलाया गया है । पाताल से लेकर अतल पर्यन्त पृथिवी के नीचे जो सात पाताल हैं उनको विराट् पुरुष के अङ्ग प्रामाणिक पुरुष बतलाते हैं यह कहकर इस वर्णन में शुकदेवजी प्रमाणों को उपन्यस्त करते हैं । पार्ष्णिप्रपदौ पद के द्वारा पैर की एंडी और पैर के पञ्जों को कहा गया है ।

दोनों जङ्घों के नीचे के भाग में वितल है, ऊपर तथा ऊपर के भाग में अतल को जानना चाहिए विराट् पुरुष की नाभि ही सरोवर है ॥२६-२७॥

ज्योतियों के समूह रूप स्वर्ग को ज्योतिरनीक कहा गया है । महर्लोक को ग्रीवा बतलाते हैं, तपोलोक को ललाट तथा सत्यलोक को शिरोभाग बतलाते हैं ॥२८॥

इन्द्रादयो बाहव आहुरुस्राः कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः ।
नासत्यदस्रौ परमस्य नासे घ्राणोऽस्य गन्धो मुखग्निरिद्धः ॥२९॥

अन्वयः— इन्द्रादयः उस्राः बाहवः दिशः कर्णो आहुः शब्दः अमुष्य श्रोत्रम्, नासत्यदस्रौ परमस्य नासे, अस्य घ्राणः गन्धः मुखम् इद्धः अग्निः आहुः ॥२९॥

अनुवाद— उन विश्वशरीरक परमात्मा के तेजः सम्पन्न इन्द्रादि देवता ही भुजाएँ हैं दिशाएँ ही उनके दोनों कान हैं, शब्दों का आश्रय आकाश ही श्रोत्रेन्द्रिय हैं, दोनों अश्विनी कुमार उनकी नाकों के दोनों छिद्र हैं, और गन्ध ही घ्राणेन्द्रिय है, प्रदीप्त अग्नि को ही तत्त्वज्ञों ने परमात्मा का मुख बतलाया है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

उस्रा देवाः तेजोमयशरीरत्वात् ते बाहव इत्याहुः । दिशोऽस्मदादिश्रोत्राधिष्ठात्र्यो देवताः कर्णौ, श्रोत्रस्याधिष्ठानम् । शब्दस्तु श्रोत्रविषयः स तस्य श्रोत्रेन्द्रियम् । एवं नासिकादिष्वपि । नासत्यदस्रावश्विनौ नासे नासापुटे । इद्धो दीप्तः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र इत्यादि देवतागण उस विश्वरूप परमात्मा की भुजाएँ है, क्योंकि उनके तेजोमय शरीर हैं। दिक् शब्द से हम संसारी जीवों की जो श्रोत्रेन्द्रिय हैउसकी अधिष्ठातृ देवता को कहा गया है। वे ही विश्वरूप भगवान् के दोनों कान हैं, अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय के अधिष्ठान हैं। शब्द श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है वही उस विश्वरूप परमात्मा का श्रेत्रेन्द्रिय है। इसी तरह से नासिका आदि के भी विषय मे समझना चाहिए। दोनों अश्विनी कुमार परमात्मा के नाक के छिद्र हैं। देदीप्यमान अग्नि ही परमात्मा के मुख हैं ॥२९॥

द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतङ्गः पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च ।
तद्भूविजृम्भः परमेष्ठिधिष्ण्यमापोऽस्य तालू रस एव जिह्वा ॥३०॥

अन्वयः— द्यौः अक्षिणी, पतङ्गः चक्षुः, अहनी विष्णोः पक्ष्माणि, परमेष्ठिधिष्ण्यम् तद्भ्रूविजृम्भः, आपः अस्य तालू रस एव जिह्वा ॥३०॥

अनुवाद— अन्तरिक्ष ही भगवान् विष्णु के दोनों नेत्र है। सूर्य ही उनकी चक्षुरिन्द्रिय हैं, दिन और रात दोनों भगवान् विष्णु के दोनों पलक हैं, ब्रह्मलोक ही उनका भ्रूविलास है। जल ही तालु है और रस ही उनकी जीभ है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

द्यौरन्तरिक्षम्। अक्षिणी नेत्रगोलके। चक्षुरिन्द्रियम्। पतङ्गः सूर्यः। अहनी रात्र्यहनी। परमेष्ठिधिष्ण्यं ब्रह्मपदम्। तालु अधिष्ठानम्। जिह्वा इन्द्रियम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अन्तरिक्ष ही भगवान् के दोनों नेत्र है। उस अन्तरिक्ष में विद्यमान सूर्य ही उनकी चक्षुरिन्द्रिय है। रात और दिन ये दोनों भगवान् विष्णु के नेत्रों की पलके हैं। ब्रह्माजी का लोक ही भगवान् की भौहों का विलास है। जल ही उनका तालु है। भगवान् का तालु ही जल का आधार है। रस ही उनकी रसनेन्द्रिय है ॥३०॥

छन्दांस्यनन्तस्य शिरो गृणन्ति दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि ।
हासो जनोन्मादकरी च माया दुरन्तसर्गो यदपाङ्गमोक्षः ॥३१॥

अन्वयः— छन्दांसि अनन्तस्य शिरः गृणन्ति, यमः दंष्ट्रा, द्विजानि स्नेहकलाः, जनोन्मादकरी माया च हासः, यद् दुरन्त सर्गः अपाङ्गमोक्षः ॥३१॥

अनुवाद— वेद को ही तत्त्वज्ञ पुरुष श्रीभगवान् का शिरोभाग (ब्रह्मरन्ध्र) बतलाते हैं, यम ही उनकी दाढें हैं, और पुत्रों आदि में होने वाला जो स्नेह का अत्यल्प अंश होता है वे ही उनके दाँत हैं। संसार को मोहित करके उन्मत्त बना देने वाली माया ही उनकी हँसी है, यह अपार सृष्टि ही उनका कटाक्षपात है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

छन्दांसि वेदाः। शिरो ब्रह्मरन्ध्रम्। स्नेहकलाः पुत्रादिस्नेहलेशाः। द्विजानि दन्ताः। षण्ढत्वमार्षम्। दुरन्तोऽपारः सर्ग इति यत् स तस्य कटाक्षः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

छन्दः शब्द से वेदों को कहा गया है। वेद ही परमात्मा के शिरोभाग हैं। यहाँ पर शिरोभाग ब्रह्मरन्ध्र का बोधक है। यमराज ही उनकी दाढें हैं और पुत्र पत्नी आदि में जो स्नेह होता है, वही परमामा के दाँत हैं। स्नेह का

भी वर्ण श्वेत है और दाँतों का भी वर्ण श्वेत है। माया ही संसारी जीवों को मोहित करके उनको उन्मत्त बना देती है। परमात्मा की हँसी भी मोहित कर देने वाली होती है। यह अपार सृष्टि ही परमात्मा के कटाक्षपात हैं ॥३१॥

व्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभो धर्मः स्तनोऽधर्मपथोऽस्य पृष्ठः ।
कस्तस्य मेढ्रं वृषणौ च मित्रौ कुक्षिः समुद्रा गिरयाऽस्थिसङ्घाः ॥३२॥

अन्वयः— व्रीडा उत्तरोष्ठः, लोभः अधर, धर्मः स्तनः, अधर्मपथः अस्य पृष्ठः, कः तस्य मेढ्रं, मित्रौ वृषणौ, समुद्राः कुक्षिः, गिरयः अस्थि संघा च ॥३२॥

अनुवाद— लज्जा ही विश्वरूप परमात्मा के ऊपर का ओष्ठ है, लोभ ही परमात्मा का अधर है, धर्म ही उनका स्तन है और अधर्ममार्ग ही उनकी पीठ है। प्रजापति ब्रह्माजी उनके मूत्रेन्द्रिय हैं, मित्रावरुण नामक दोनों देवता उनके दोनों अण्डकोश हैं, सभी समुद्र ही उनकी कोख हैं और पर्वत ही उन विश्वशरीर की हड्डियाँ हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अधर्ममार्गोऽस्य पृष्ठभागः। कः प्रजापतिः। मित्रौ मित्रावरुणौ ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

अधर्म मार्ग ही उनका पृष्ठ भाग है। कः शब्द से ब्रह्माजी को कहा गया है, वे ही उनके मूत्रेन्द्रिय हैं तथा मित्रावरुण देवता उनके दोनों अण्डकोश स्थानी हैं ॥३२॥

नद्योऽस्य नाड्योऽथ तनूरुहाणि महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र ।
अनन्तवीर्यः श्वसितं मातरिश्वा गतिर्वयः कर्मगुणप्रवाहः ॥३३॥

अन्वयः— हे नृपेन्द्र विश्वतनो अस्य नद्यः नाड्यः अथ महीरुहा तनूरुहाणि, अनन्तवीर्यः मातरिश्वा श्वसितम्, वयः गतिः गुणप्रवाहः कर्म च ॥३३॥

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् शरीरक परमात्मा की नदियाँ ही नाडियाँ है, वृक्ष ही उनके रोम हैं, निःसीम पराक्रम सम्पन्न वायु ही उनके श्वास है, वयः शब्द वाच्य काल ही उनकी गति है और प्राणियों का संसार ही उनकी क्रीडा हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अनन्तं वीर्यं यस्य सः। वयः कालस्तस्य गमनम्। गुणप्रवाहः प्राणिनां संसारः कर्म तस्य क्रीडा ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

अनन्त वीर्यः पद का विग्रह है अनन्तं वीर्यं यस्य सः। अर्थात् अनन्त पराक्रम सम्पन्न वायु ही उनका निःश्वास है। वायु शब्द काल का बोधक हैं, वह काल ही विश्व शरीरक परमात्मा की गति है। गुणप्रवाह शब्द प्राणियों के संसार का बोधक है। वह परमात्मा की क्रीडा है ॥३३॥

ईशस्य केशान्विदुरम्बुवाहान् वासस्तु संध्यां कुरुवर्य भूम्नः ।
अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च स चन्द्रमाः सर्वविकारकोशः ॥३४॥

अन्वयः— हे कुरुवर्य ज्ञानिनः अम्बुवाहान् ईशस्य केशान्, भूम्नः वासः तु संध्याम्, ते अव्यक्तं हृदयम् आहुः सर्वविकार कोशः सः चन्द्रमाः च मनः विदुः ॥३४॥

अनुवाद— हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ परीक्षित् ज्ञानी पुरुषों ने जल भरे मेघों को ही परमात्मा का केश कहा है, सन्ध्या को ही उन वैपुल्य गुण सम्पन्न परमात्मा का वस्त्र कहा है। उन लोगों ने प्रकृति को ही परमरत्मा का हृदय और सभी विकारों का आश्रय चन्द्रमा को ही उनका मन कहा है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

भूम्नो विभोः अव्यक्तं प्रधानम् । सः प्रसिद्धश्चन्द्रमास्तदीयं मनः । सर्वेषां विकाराणां कोश इवाश्रयभूतम् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

भूमन् शब्द विभुत्व का वाचक है । परमात्मा सर्वव्यापक होने के कारण विभु हैं, अव्यक्त शब्द से प्रकृति कही गयी है । मेघ ही परमात्मा के केश हैं संध्यायें उनका वस्त्र हैं तत्त्वज्ञों ने प्रकृति को उनका हृदय कहा है सभी विकारों का आश्रय चन्द्रमा ही परमात्मा का मन है ।।३४।।

विज्ञानशक्तिं महिमामनन्ति सर्वात्मनोऽन्तःकरणं गिरित्रम् ।
अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजा नखानि सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशे ।।३५।।

अन्वयः— महिम् विज्ञानशक्तिम् गिरित्रम् अन्तःकरणम्, अश्व अश्वतरी ऊष्ट्र–गजाः नखानि सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशे ।।३५।।

अनुवाद— ज्ञानी पुरुष महत् तत्त्व को परमात्म का, चित्त कहते है, रुद्र को उनका अहङ्कार कहते हैं, अश्व, खच्चर, ऊँट और हाथी आदि उनके नख हैं तथा सभी हिरण आदि मृग एवं गौ आदि पशु परमात्मा के कटि प्रदेश में स्थित हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

विज्ञानशक्तिं चित्तम् । महिं महत्तत्त्वम् । अन्तःकरणमहंकारम् । गिरित्रं श्रीरुद्रम् गर्दभाद्वडवायामुत्पन्ना अश्वतरी ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

मूलका विज्ञान शक्ति चित्त का बोधक है, महि महत् तत्त्व का बोधक है, अन्तः करण शब्द अहङ्कार का बोधक है, गिरित्र श्रीरुद्र का बोधक है । गधे से घोड़ी के पेट से उत्पन्न होने वाले बच्चे को खच्चर कहते हैं ।।३५।।

वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं मनुर्मनीषा मनुजो निवासः ।
गन्धर्वविद्याधरचारणाप्सरः स्वरस्मृतीरसुरानीकवीर्यः ।।३६।।

अन्वयः— वयांसि तद् विचित्रं व्याकरणम्, मनुः मनीषा, मनुजः निवासः गन्धर्वविद्याधरचारणाप्सरः स्वरस्मृतीः, असुरानीकवीर्यः ।।३६।।

अनुवाद— विभिन्न प्रकार के पक्षिगण उन श्रीभगवान् के विचित्र रचना कौशल हैं । मनु उनकी बुद्धि हैं, मनुष्य उनके निवास स्थान हैं । गन्धर्व, विद्याधर, चारण और अप्सराएँ परमात्मा के स्वरों और उनकी स्मृतियाँ हैं । असूर समूह उनका पराक्रम है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

वयांसि पक्षिणः । तस्य व्याकरणं '**नामरूपे व्याकरवाणि**' इति श्रुत्युक्तं शिल्पनैपुणम् । यथाहुः–'**येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरितीकृताः । मयूराश्चित्रिता येन स ते वृत्तिं विधास्यति ।।**' इति । मनुः स्वायंभुवः, मनीषा बुद्धिः, मनुजः पुरुषः, निवास आश्रयः । '**पुरुषत्वे चाविस्तरामात्मा**' इति श्रुतेः । गन्धर्वादीनां द्वन्द्वैक्यम् । गन्धर्वादयः स्वरस्मृतीः। षड्जादिस्वरस्मृतय इत्यर्थः । असुरानीकं वीर्यं यस्य सः । '**स्वरः स्मृतिरसुरानीकवर्यः**' इति पाठे गन्धर्वादयः स्वरः असुरसमूहश्रेष्ठः प्रह्लादः स्मृति स्तस्येति ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

अनेक प्रकार के पक्षीगण ही उनके व्याकरण हैं '**नाम रूपे व्याकरवाणि**' श्रुति में बतलायी गयी उनकी शिल्पकला हैं, कहा भी गया है '**येन शुक्लीकृताः' इत्यादि** अर्थात् जिन परमात्मा ने हंसों को श्वेत बनाया शुकपक्षियों को हरा बनाया मयूर को चित्र-विचित्र बनाया, वे ही परमात्मा तुम्हारी वृत्ति का विधान करेंगे । मनु

शब्द से स्वायम्भुव मनु को कहा गया है । वे ही परमात्मा की बुद्धि है, मनु से उत्पन्न होने वाले मनुष्य उनके निवास स्थान हैं । श्रुति भी कहती है **पुरुषत्वे चा विस्तारामात्मा** पुरुषत्व में आत्मा विस्तृत नहीं है । गन्धर्व विद्याधर चारणाप्सर: में समाहार द्वन्द समास होने के कारण एक वचनान्त प्रयोग हुआ है । गन्धर्व इत्यादि परमात्मा की षड्ज आदि सातो स्वरों की स्मृतियाँ हैं । असुरों की सेना ही परमात्मा का पराक्रम है । जहाँ पर स्वर: स्मृतिरसुरानीकवर्य: पाठ है वहाँ अर्थ होगा कि गन्धर्व आदि स्वर है, असुर समूह में श्रेष्ठ प्रह्लाद स्मृति हैं ॥३६॥

ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा विड्रूरुरङ्घ्रिश्रितकृष्णवर्णः ।
नानाभिधाभीज्यगणोपपन्नो द्रव्यात्मकः कर्म वितानयोगः ॥३७॥

अन्वयः— ब्रह्माननं, क्षत्रभुजः महात्मा, विड् ऊरू अङ्घ्रिश्रित कृष्णवर्णः, नाना भिधामभीज्यगणोपपन्नः द्रव्यात्मकः वितानयोगः कर्म ॥३७॥

अनुवाद— ब्राह्मण ही परमात्मा के मुख है, क्षत्रिय ही भुजाएँ हैं, ऐसे परमात्मा की वैश्य ही जघाएँ है कृष्ण वर्ण का शूद्र उनके पैर हैं तथा अनेक नाम वाले अभीज्या (देवगण) वसु रुद्र इत्यादि देवताओं के जो गण है उनसे युक्त जो द्रव्यात्मक यज्ञ है, वही परमात्मा का कार्य है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्म विप्रस्तस्याननं मुखम् । क्षत्रं क्षत्रियो भुजौ यस्य । विड् वैश्य ऊरू यस्य । अङ्घ्रिश्रितः कृष्णवर्णः शूद्रो यस्य। नानाभिधा नामानि येषां ते च ते अभीज्या देवास्तेषां गणैर्वसुरुद्रादिभिरुपपन्नो युक्तो द्रव्यात्मको हविःसाध्यो वितानयोगो यज्ञप्रयोगस्तस्य कर्म कार्यम् । आवश्यकोऽभिप्रेत इत्यर्थः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण ही उस परमात्मा के मुख हैं, क्षत्रिय ही भुजा हैं, महान् आत्मा वैश्य परमात्मा की दोनों जङ्घाएँ है । उनके पैरों में रहने वाला कृष्ण वर्ण ही शूद्र हैं । अनेक नामों वाले देवताओं का जो वसु, रुद्र इत्यादि समूह है उन सबों से युक्त द्रव्यात्मक यज्ञ ही परमात्मा का कर्म है । अर्थात् वह उनको आवश्यक रूप से अभिप्रेत है ॥३७॥

इयानसावीश्वरविग्रहस्य यः संनिवेशः कथितो मया ते ।
संधार्यतेऽस्मिन्वपुषि स्थविष्ठे मनः स्वबुद्ध्या न यतोऽस्ति किंचित् ॥३८॥

अन्वयः— इयान् असौ, ईश्वर विग्रहस्य यः संनिवेशः ते मया कथितः अस्मिन् स्थविष्ठे वपुषि स्वबुद्ध्या मनः संधार्यते। यतः किञ्चित् न अस्ति ॥३८॥

अनुवाद— राजन् परमात्मा के स्थूल शरीर का इतना ही अवयव संस्थान है, इसे मैंने आपको सुना दिया। परमात्मा के इस अत्यन्त स्थूल शरीर में ही अपनी बुद्धि की सहायता से मन को लगाना धारणा है । परमात्मा के इस स्थूल शरीर से भिन्न इसमें कुछ भी नहीं हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

इयानेतावान्सन्निवेशोऽवयवसंस्थानम् । अस्मिन्स्वबुद्ध्या मनः संधार्यते मुमुक्षुभिः । यतो व्यतिरिक्तं किंचिन्नास्ति तस्मिन् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

विश्व शरीरक परमात्मा के अवयवों का इस अध्याय के छब्बीसवें श्लोक से लेकर सैंतीसवें श्लोक तक विस्तार से वर्णन करने के पश्चात् शुकदेवजी ने राजा परीक्षित् से कहा कि विराट् पुरुष परमात्मा के स्थूल शरीर के इतने ही अङ्ग है । इस स्थूल शरीर में मन को लगने को धारणा कहते हैं । इन वर्णित अवयवों से भिन्न कोई भी अवयव इस शरीर में नहीं हैं ॥३८॥

स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व आत्मा यथा स्वप्नजनेक्षितैकः ।
तं सत्यमानन्दनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेद्यत आत्मपातः ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे द्वितीयस्कन्धे महापुरुषसंस्थानुवर्णने प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अन्वयः— स्वप्नजनेक्षिता एकः यथा सः सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व आत्मा तं सत्यम्, आनन्दनिधिं भजेत अन्यत्र न सज्जेत् यतः आत्मपातः ॥३९॥

अनुवाद— जिस तरह स्वप्न देखने वाला पुरुष एक होता है, और वह स्वापकालिक अनेक पुरुषों को देखता है, उसी तरह परमात्मा भी एक हैं, वे ही सबों की बुद्धियों की वृत्ति के द्वारा सबकुछ अनुभव करते हैं । उन सत्य स्वरूप आनन्दनिधि परमात्मा का ही भजन करना चाहिए । उससे भिन्न किसी भी वस्तु में वह आसक्त न हो, क्याकि दूसरी वस्तु की धारणा करने पर तो आत्मपात की सम्भावना होती है ॥३९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध के महापुरुष संस्थानुवर्णन नामक पहले अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं चित्तस्थैर्यार्थं विराड्देहजीवेश्वराणामभेदेनोपासनमुक्तं, तत्र तु देहजीवावीश्वरे प्रविलाप्य स एव ध्येय इति निर्धारयति- स इति । सर्वेषां धीवृत्तिभिरनुभूत सर्वं येन स एक एव सर्वान्तर आत्मा तमेव सत्यं भजेत । अन्यत्रोपलक्षणे न सज्जेत् । यत आसङ्गादात्मनः पातः संसारो भवति । एकस्य तत्तदिन्द्रियैः सर्वानुभूतौ दृष्टान्तः-स्वप्नजनानामीक्षिता यथेति । स्वप्ने हि कदाचिद्बहून्देहान्प्रकल्प्य जीवस्तत्तदिन्द्रियैः सर्वं पश्यति तद्वत् । ईश्वरस्य तु विद्याशक्तित्वान्न बन्धः ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से चित्त की स्थिरता के लिए विराट् देह, जीव तथा ईश्वर की अभेद पूर्वक उपासना बतलायी गयी । उसमें भी देह तथा जीव को अच्छी तरह से ईश्वर में ही लीन करके ईश्वर का ही ध्यान करना चाहिए इस बात का निर्धारण करते हुए शुकदेवजी **'स सर्वधीवृत्ति' इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । सबों की ज्ञानकी इन्द्रिय स्वरूप वृत्तियों के द्वारा सबका अनुभव करने वाले परमात्मा एक ही हैं । वे ही सबों की अन्तरात्मा है । अतएव उन आनन्दनिधि सत्य स्वरूप आत्मा का भजन करना चाहिए । परमात्मा के उपलक्षणभूत किसी भी दूसरी वस्तु में आसक्ति न रखे । क्योंकि परमात्मशरीरव्यतिरिक्त में आसक्ति होने पर आत्मपात होता है ।

एक ही परमात्मा सबों की इन्द्रियों के द्वारा सबों का अनुभव करता है । इसमें दृष्टान्त उपन्यस्त करते हुए उन्होंने कहा जैसे स्वप्न में दिखायी देने वाले लोगों का द्रष्टा एक ही पुरुष होता है । वह स्वप्न काल में अनेक देहों की कल्पना करके अपनी विभिन्न इन्द्रियों के द्वारा सब कुछ देखता हैं, उसी तरह परमात्मा एक ही हैं परमात्मा सबों को देखता है । ईश्वर चूकि विद्या शक्ति से सम्पन्न होता है अतएव उसको संसार का बन्धन नहीं होता है॥३९॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के प्रथम अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१।।

* * *

द्वितीय अध्याय

श्रीभगवान् के स्थूल एवं सूक्ष्म रूपों की धारणा तथा क्रममुक्ति एवं सद्योमुक्ति का वर्णन

श्रीशुक उवाच

एवं पुरा धारणयात्मयोनिर्नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य तुष्टात् ।
तथा ससर्जेदममोघदृष्टिर्यथाऽप्ययात्प्राग्व्यवसायबुद्धिः ॥१॥

अन्वयः— एवं धारणया तुष्टात् हरेः पुरा नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य आत्मयोनिः अप्ययात् प्राक् इदं यथा तमथ अमोघ दृष्टिः ससर्ज ॥१॥

अनुवाद— इस तरह से धारण के द्वारा प्रसन्न हुए श्रीहरि से सृष्टि के प्रारम्भ में नष्ट हुयी सृष्टि विषयिणी स्मृति को प्राप्त करके अमोघ दृष्टि सम्पन्न ब्रह्माजी प्रलयकाल से पहले यह जगत् जैसा था उसी प्रकार से इसकी रचना किए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वितीये तु ततः स्थूलधारणातो जितं मनः । सर्वसाक्षिणि सर्वेशे विष्णौ धार्यमितीर्यते ॥१॥ दृश्यालम्बनरूपैवमुक्ता वैराजधारणा इहोच्यते तु तत्साध्या सर्वान्तर्यामिधारणा ॥२॥ तत्र तावत्पूर्वोक्तधारणाया अवान्तरफलमाह । एवं या धारणा तया तुष्टाद्धरेः पुरा प्रलयसमये नष्टां सृष्टिस्मृतिं प्रत्यवरुध्य लब्ध्वा ब्रह्मा अप्ययात्प्रागिदं विश्वं यथासीत्तथा ससर्ज । व्यवसायात्मिका बुद्धिर्यस्य सः । अत एवामोघा दृष्टिर्यस्येति । अतस्तया धारणया विश्वसृष्टिसामर्थ्यं भवति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे स्कन्ध के दूसरे अध्याय में स्थूल धारणा के द्वारा अपने मन को वश में करे । अतएव सबों का साक्षी तथा सबों के स्वामी भगवान् विष्णु की धारणा करनी चाहिए यह कहा गया है ॥१॥

दृश्यालम्बन० इत्यादि- इस तरह दृश्य आलम्बन रूपा वैराज की धारणा कही गयी है । इस अध्याय में वैराज धारणा के द्वारा प्राप्त होने वाली सर्वन्तर्यामी परमात्मा की धारणा बतलायी जा रही है ॥२॥

एवंतावत्० इत्यादि- सर्वप्रथम पूर्वोक्त धारणा के अवान्तर फल को बतलाया जा रहा है । इस तरह की स्थूल धारणा जो बतलायी गयी है उसके द्वारा प्रसन्न हुए श्रीहरि से प्रलय के काल में जो सृष्टि विषयिणी स्मृति नष्ट हो गयी थी उसे प्राप्त करके ब्रह्माजी प्रलयकाल से पहले यह जगत् जैसा था उसी तरह के विश्व की सृष्टि उन्होंने कर दी; क्योंकि ब्रह्माजी निश्चयात्मिका बुद्धि से सम्पन्न थे । उसी धारणा से जगत् की सृष्टि का सामर्थ्य उत्पन्न होता है ॥१॥

शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः ।
परिभ्रमंस्तत्र न विन्दतेऽर्थान्मायामये वासनया शयानः ॥२॥

अन्वयः— शाब्दस्य हि ब्रह्मणः एष पन्था यत् अपार्थैं नामभिः धीः ध्यायति । तत्र मायामये वासनया शयानः परिभ्रमन् अर्थान् न विन्दते ॥२॥

अनुवाद— वेदों की ऐसी वर्णन शैली है कि उसके कारण साधक अर्थशून्य स्वर्गादि नामों के द्वारा विभिन्न प्रकार की इच्छाओं को करता है । वह मायामय मार्ग में सुख की वासना से स्वप्न देखने के समान विभिन्न लोकों में जाकर भी निर्दोष सुख को नहीं प्राप्त कर पाता है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

उपासनाफलादपि विरक्तस्य शुद्धात्मधारणायामधिकारः । अतो वैराग्यार्थं सर्वं कर्मफलं निन्दति । शाब्दं शब्दमयम्। ब्रह्म वेदः । तस्य एष पन्थाः कर्मफलबोधप्रकारः । कोऽसौ । अर्थशून्यैरेव स्वर्गादिनामभिः साधकस्य धीर्ध्यायति तत्तदिच्छां करोतीति यत् । अपार्थत्वमेवाह । तत्र मायामये पथि सुखमिति वासनया शयानः स्वप्नान्पश्यन्निव परिभ्रमन्नर्थान्न विन्दति । तत्तल्लोकं प्राप्तोऽपि निरवद्यं सुखं न लभत इत्यर्थः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

शुद्ध आत्मा की धारणा में उसी का अधिकार होता है जो उपासना के फल को भी नहीं प्राप्त करना चाहता है । अतएव वैराग्य की प्राप्ति के लिए वे सभी कर्मों के फलों की निन्दा करते हैं । वेद को ही शब्दमय ब्रह्म कहते हैं । ब्रह्म शब्द वेद का वाचक है । उस वेद का यही मार्ग है कि वह तत्-तत् कर्मों के फलों का वर्णन करता है । अर्थशून्य ही स्वर्ग इत्यादि नामों से साधक की बुद्धि विभिन्न प्रकार के सुखों की प्राप्ति की इच्छा करती है । उसके द्वारा की जाने वाली इच्छा को निरर्थक बतलाते हुए शुकदेवजी कहते हैं । उस मायामय मार्ग में सुख की वासना से सोए हुए स्वप्न द्रष्टा जैसे स्वप्न देखता है, उसी तरह तत्-तत् लोकों में भ्रमण करता हुआ जीव शुद्ध सुख को नहीं प्राप्त कर पाता है ।।२।।

अतः कविर्नामसु यावदर्थः स्यादप्रमत्तो व्यवसायबुद्धिः ।
सिद्धेऽन्यथाऽर्थे न यतेत तत्र परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः ।।३।।

अन्वयः— अतः अप्रमत्तः व्यवसायबुद्धिः कविः नामसु यावदर्थः यतेत । तत्र परिश्रमं समीक्षमाणः अन्यथासिद्ध अर्थे न यतेत ।।३।।

अनुवाद— अतएव प्रमाद रहित तथा निश्चयात्मिका बुद्धि सम्पन्न विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह नाम मात्र वालों से उतना ही व्यवहार करे जितना शरीर निर्वाह के लिए अपेक्षित हो । यदि प्रारब्धवशात् संसार के पदार्थ अपने आप मिल जायँ तो वह उनको प्राप्त करने के लिए किए जाने वाले परिश्रम को व्यर्थ समझकर उनकी प्राप्ति के लिए प्रयास नहीं करे ।।३।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि सर्वथा कर्मफलत्यागे सद्य एव देहपातः स्यादित्याशङ्क्याह । अतः कविर्नामसु नाममात्रेषु भोग्येषु यावताऽर्थेनार्थो देहनिर्वाहो यस्य स तथाभूतः स्यात् । अप्रमत्तस्तावन्मात्रेऽप्यनासक्तः । व्यवसायबुद्धिर्नेदं सुखमिति निश्चयवान् । तदापि तत्र तस्मिन्नर्थेऽन्यथैव सिद्धे सति तत्र यत्ने परिश्रमं पश्यन्न यतेत ।।३।।

भाव प्रकाशिका

यदि सभी कर्मों के फल का त्याग कर दिया जाय तब तो शीघ्र ही शरीर का पात हो जायेगा । इस प्रकार की शङ्का करके कहते हैं अतएव विज्ञपुरुष को चाहिए कि वह केवल नाम प्रधान भोग्य वस्तुओं में उतना ही आसक्त हो जितने से उसके शरीर का निर्वाह हो जाय । और उन प्राप्त वस्तुओं में भी उसकी आसक्ति नहीं होनी चाहिए। उसको यह मन में निश्चय रखना चाहिए कि वस्तुतः इन वस्तुओं में सुख नहीं है । वह भी वस्तु यदि अपने आप प्राप्त हो जाय तो उसकी प्राप्ति के लिए प्रयास किए जाने में होने वाले परिश्रम को देखकर उसके लिए प्रयास न करे ।।३।।

सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासैर्बाहौ स्वसिद्धे ह्युपबर्हणैः किम् ।
सत्यञ्जलौ किं पुरुधाऽन्नपात्र्या दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलैः ।।४।।

अन्वयः— क्षितौ सत्यां कशिपोः प्रयासैः किम् ? बाहौ सर्वसिद्धे हि उपबर्हणैः किम् ? सत्यञ्जलौ पुरुधा अन्नपात्र्या किम् ? दिग् बल्कलादौ सति दुकूलैः किम् ?।।४।।

अनुवाद— यदि सोनें के लिए पृथिवी अपने आप प्राप्त है तो फिर शय्या प्राप्त करने के लिए प्रयास करने से क्या लाभ है ? यदि भुजाएँ स्वतः प्राप्त हैं तो फिर तकियों की क्या आवश्यकता है ? यदि परमात्मा ने अञ्जलि रूपी पात्र प्रदान ही किया है तो बहुत अधिक वर्तनों को प्राप्त करना व्यर्थ है । जब दिगम्बर रहा जा सकता है अथवा बल्कल धारण करके रहा जा सकता है तो वस्त्रों की क्या आवश्यकता है ?॥४॥

भावार्थ दीपिका

अन्यथा सिद्धिमाह द्वाभ्याम् सत्यामिति । कशिपोः शय्यायाः । स्वतःसिद्धे बाहौ सति उपबर्हणैरुच्छीर्षकैः । पुरुधा बहुप्रकारयाऽन्नपात्र्या भोजनपात्रेण ॥४॥

भाव प्रकाशिका

विभिन्न वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए प्रयास करने को व्यर्थ बतलाते हुए शुकदेवजी **सत्याम्० इत्यादि** दो श्लोकों को कहते हैं । कशिपु शब्द शय्या का बोधक है । अपने आप प्राप्त भुजाओं के रहने पर तकिया के लिए प्रयास करना व्यर्थ है । उपबर्हण शब्द तकिया का बोधक है । अन्नपात्री शब्द भोजन पात्र का बोधक है ॥४॥

चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन् ।
रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नापसन्नान् कस्माद्भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान् ॥५॥

अन्वयः— **पथि चीराणि न सन्ति किम्, परभृतः अङ्घ्रिपाः भिक्षां न दिशन्ति किम् ? सरितः अपि अशुष्यन् । गुहाः रुद्धा किम् । उपसन्नान् अजितः न अवति किम् । कवयः धनदुर्मदान्धान् कस्माद् भजन्ति ?॥५॥**

अनुवाद— राजन् ! मार्ग में वस्त्र के टुकड़े नहीं पड़े हैं क्या कि दूसरें से कपड़े माँगे जायँ । दूसरों का पालन करने वाले वृक्ष फलों एवं पुष्पों की भिक्षा नहीं प्रदान करते हैं क्या ? कि दूसरों से भोजन माँगा जाय। जल प्रदान करने वाली सारी नदियाँ सूखी भी नहीं हैं और रहने के लिए पर्वतों की गुफायें बन्द भी नहीं हुयी हैं । अतएव दूसरों से जल और निवास स्थान की याचना करना अनावश्यक है । शरण में आये हुए जीवों की रक्षा करना श्रीभगवान् छोड़ दिए हैं क्या ? अतएव किस कारण से ज्ञानी पुरुष धन के मद से मदमत्त बने हुए धनिकों की सेवा करते हैं ?॥५॥

भावार्थ दीपिका

ननु दिक्सद्भावो नाम नग्नत्वमेव, बल्कलमन्नं तोयं वासस्थानं तु याच्ञाप्रयत्नं विना कथं प्राप्येत तत्राह । चीराणि वस्त्रखण्डानि परान्बिभ्रति पुष्णन्ति फलादिभिर्ये । गुहाः गिरिदर्यः । ननु कदाचिदेषामलाभे किं कार्यं तत्राह । अजितो हरिरुपसन्नान् शरणागतान्किं नावति न रक्षति । किंशब्दस्य पूर्वत्रापि संबन्धः । धनेन यो दुर्मदस्तेनान्धान्नष्टविवेकान् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि आपने दिशाओं के सद्भाव को बतलाकर दिगम्बर का उपदेश दिया है अतएव उससे तो काम चल सकता है । किन्तु बल्कलवस्त्र, अन्न, जल और निवास स्थानकी प्राप्ति तो बिना माँगे नहीं हो सकती है । अतएव उसके लिए तो याचना करनी ही होगी तो इसके उत्तर में शुकदेवजी कहते हैं वस्त्र के फटे पुराने टुकड़े रास्ते में पड़े ही रहते हैं, उनसे भी काम चलाया जा सकता है । वृक्षों का स्वभाव ही है कि दूसरों का भरण व पोषण करते रहते हैं । वे अपने पास में आये हुए मनुष्यों को फल तथा पुष्प आदि की भिक्षा प्रदान करते रहते है । उससे भोजन का काम चल जायेगा रहने के लिए पर्वतों की गुफाएँ खुली हुयी हैं उनमें रहा जा सकता है ।

ननु कदाचिदेषाम्० इत्यादि- यदि कहें कि कभी ऐसा भी हो सकता है कि ये वस्तुएँ उपलब्ध न हों

पायें। ऐसी स्थिति में याचना तो करनी ही होगी। तो इसके उत्तर में शुकदेवजी पूछते हैं कि क्या शरणागत जीवों की रक्षा करना भगवान् छोड़ दिए हैं क्या ? इससे पहले भी सर्वत्र किम् शब्द का सम्बन्ध करना चाहिए। ये सारी आवश्यकता की वस्तुएँ यदि अपने आप प्राप्त है तो जो लोग धन के मद से मदमत्त हैं जिनका विवेक नष्ट हो गया है, ऐसे धनिकों की सेवा विज्ञ परुष भी क्यों करते हैं ?॥५॥

एवं स्वचित्ते स्वत एव सिद्ध आत्मा प्रियोऽर्थो भगवाननन्तः।
तं निर्वृतो नियतार्थो भजेत संसारहेतूपरमश्च यत्र ॥६॥

अन्वयः— एवं आत्मा, प्रियः अर्थः अनन्तः भगवान् स्वचित्ते स्वतः एव सिद्धः। निर्वृतः नियतार्थः तं भजेत। यत्र संसार हेतूपरमश्च ॥६॥

अनुवाद— इस तरह से सम्पूर्ण जगत् की आत्मा स्वरूप हाने के कारण अत्यन्त प्रियतम अनन्त परमात्मा हृदय में अपने आप विराजमान हैं। अतएव संसार से विरक्त होकर उनकी ही सेवा करनी चाहिए, क्योंकि उनकी सेवा करने से इस संसार के बन्धन का कारण जो अज्ञान है उसका अपने आप नाश हो जाता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

तदा तेन किं कर्तव्यं हरिस्तु सेव्य इत्याह। एवं विरक्तः संस्तं भजेत। भजनीयत्वे हेतवः-स्वचित्ते स्वत एव सिद्धः। यत आत्मा अतएव प्रियः। प्रियस्य च सेवा सुखरूपैव। अर्थः सत्यो न त्वनात्मवन्मिथ्या। भगवान् भजनीयगुणश्च अनन्तश्च नित्यः। य एवं भूतस्तं भजेत् नियतार्थो निश्चितस्वरूपः। तदनुभवानन्देन निर्वृतः सन्निति स्वतः सुखात्मत्वं दर्शितम्। किंच यत्र यस्मिन्भजने सति संसारहेतोरविद्याया उपरमो नाशो भवति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई पूछे तो फिर क्या करना चाहिए ? तो उसका उत्तर है कि आत्मकल्याण चाहने वाले को श्रीहरि की ही सेवा करनी चाहिए। उपर्युक्त प्रकार से संसार से विरक्त हो जाना चाहिए। श्रीभगवान् इसलिए सेवनीय हैं कि वे अपने आप अन्तःकरण में विराजमान हैं। उसका कारण है कि वे ही आत्मा है। आत्मा से बढ़कर कोई भी दूसरी वस्तु प्रिय नहीं होती है। वे भगवान् सम्पूर्ण जगत् में व्यापक होने के कारण अनन्त हैं वे देश काल एवं वस्तु की सीमा से परे हैं। उन प्रियतम परमात्मा की सेवा सुख स्वरूप होती है। वे सत्य हैं। आत्मव्यतिरिक्त वस्तुओं के समान मिथ्या नहीं है।

भगवान् भजनीय गुणश्च० इत्यादि- भगवान् में सेवोचित गुण ये हैं कि वे अनन्त हैं और नित्य हैं इस प्रकार के परमात्मा की सेवा करनी चाहिए। वे निश्चित स्वरूप वालें हैं। श्रीभगवान् की सेवा से उत्पन्न आनन्द से उपासक परमानन्द सम्पन्न हो जाता है। यह कहकर शुकदेवजी ने बतलाया कि मनुष्य स्वाभाविक रूप से सुखात्मक हैं। दूसरी बात यह है कि उन परमात्मा की सेवा करने से संसार रूपी बन्धन का कारण अज्ञान भी विनष्ट हो जाता है ॥६॥

कस्तां त्वनादृत्य परानुचिन्तामृते पशूनसतीं नाम युञ्ज्यात्।
पश्यञ्जनं पतितं वैतरण्यां स्वकर्मजान्परितापाञ्जुषाणम् ॥७॥

अन्वयः— वैतरण्यां पतितं स्वकर्मजान् परितापान् जुषाणम् जनं पश्यन् पशून् ऋते कः नाम तां परानुचिन्ताम् अनादृत्य असतीम् युञ्ज्यात् ॥७॥

अनुवाद— यम के द्वार पर विद्यमान वैतरणी नदी में गिरे हुए तथा अपने किए हुए कर्मों के फल को भोगने वाले मनुष्य को देखकर भी पशुओं को छोड़कर कौन ऐसा मनुष्य होगा जो उन परमात्मा की धारणा रूपी चिन्ता

का परित्याग करके असत् विषयों के भोग का चिन्तन करेगा ? क्योंकि वियोपभोग का ही फल है वैतरणी नदी में गिरकर अनेक प्रकार के कर्म फलों को भोगना ॥७॥

भावार्थ दीपिका

एतदेवान्यचिन्तानिन्दया द्रढयति-क इति । तां तथाभूतां परस्य हरेरनुचिन्तां धारणामनादृत्य पशून्कर्मजडान्विना । **'यथा पशुरेवायं स देवानाम्'** इति श्रुतेः । असतीं विषयचिन्तां को नाम कुर्यात् । तया चिन्तया वैतरण्यां पतितं, तत्र च स्वकर्मजानाध्यात्मिकादिक्लेशान्सेवमानं जनं पश्यन् । वैतरणी यमस्य द्वारस्था नदी तत्तुल्यत्वात्संसृतिर्वैतरणी ॥७॥

भाव प्रकाशिका

इस बात का समर्थन. अन्य चिन्ताओं की निन्दा के माध्यम से **कस्ताम् इत्यादि** श्लोक द्वारा करते हैं । पशुओं के समान तत्-तत् कर्मों के अनुष्ठान में ही लगे रहने वाले कर्म जड़ों को छोड़ कर दूसरा कौन ऐसा मनुष्य होगा जो उपर्युक्त प्रकार की परमात्मानुचिन्तन रूपी धारणा का परित्याग करके अपने को असत् (मिथ्या) विषयों की सेवा में लगा देगा ? केवल कर्मों के अनुष्ठान में ही लगे रहने वाले की निन्दा करती हुयी श्रुति भी कहती है **'यथा पशुरेवायं स देवानाम्'** वह कर्मों के ही करने में लगे रहने वाला देवताओं के पशु के समान है । उन असत् कर्मों की चिन्ता में कौन लग सकता है ? कर्मों का ही निरन्तर चिन्तन करने के कारण वे जीव अपने कर्मजन्य अनेक प्रकार के क्लेशों को वैतरणी नदी में गिरकर भोगते रहते हैं । ऐसे जीवों को देखकर भी वह कैसे केवल कर्मपरायण हो सकता है ? यम के द्वार पर विद्यमान नदी का नाम वैतरणी है । उसमें गिरकर वे जीव अनेक प्रकार के कष्टों को भोगते हैं । उस वैतरणी नदी के ही समान यह सृष्टि रूपी वैतरणी है ॥७॥

केचित्स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम् ।
चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्खगदाधरं धारणया स्मरन्ति ॥८॥

अन्वयः— केचित् स्वदेहान्तः हृदयावकाशे वसन्तम् प्रादेशमात्रं कञ्जरथाङ्गशङ्खगदाधरं चतुर्भुजं पुरुषं धारणया स्मरन्ति ॥८॥

अनुवाद— कुछ ऐसे भी भाग्यवान् साधक हैं जो अपने शरीर के भीतर विद्यमान हृदयाकाश में रहने वाले, प्रादेशमात्र शरीर वाले, कमल, चक्र, शङ्ख तथा गदा धारण करने वाले चार भुजाओं वाले पुरुष परमात्मा का धारणा के द्वारा स्मरण करते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तामेवं धारणां सविशेषणामाह-केचिदिति षड्भिः । स्वदेहस्यान्तर्मध्ये यद्धृदयं तत्र योऽवकाशस्तस्मिन्वसन्तम् । प्रादेशस्तर्जन्यङ्गुष्ठयोर्विस्तारः, स एव मात्रा प्रमाणं यस्येति हृदयपरिमाणं तत्रोपचर्यते । कञ्जं पद्मम् । रथाङ्गं चक्रम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

उस विशेषण विशिष्ट धारणा का **केचित्० इत्यादि** छह श्लोकों के द्वारा वर्णन करते हैं । अपने शरीर के भीतर जो हृदयाकाश है उसमें रहने वाले, प्रादेशमात्र शरीरक, हृदय के भीतर जो अवकाश है उसमें रहने वाले शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण करने वाले परमात्मा का ध्यान करने वाले कुछ ही भाग्यवान पुरुष हैं । अङ्गूठे से लेकर तर्जनी पर्यन्त की दूरी को प्रादेश मात्र कहते है । हृदय के भीतर रहने वाले अन्तर्यामी परमात्मा का भी परिमाण प्रादेश मात्र ही है ॥८॥

प्रसन्नवक्त्रं नलिनायतेक्षणं कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससम् ।
लसन्महारत्नहिरण्मयाङ्गदं स्फुरन्महारत्नकिरीटकुण्डलम् ॥९॥

अन्वयः— प्रसन्नवक्त्रं, नलिनायतेक्षणम्, कदम्बकिञ्जलकपिशङ्गवाससम्, लसन्महारत्नहिरण्मयाङ्गदम् स्फुरन् महारत्न किरीट कुण्डलम् स्मरन्ति ॥९॥

अनुवाद— वे साधक प्रसन्नमुख वाले, कमल दल के समान सुन्दर तथा बड़े-बड़े नेत्रों वाले, कदम्ब पुष्प के समान पीताम्बर धारण किए हुए, जड़े गये महारत्नों से सुशोभित बिजाइठ धारण किए हुए एवं देदीप्यमान रत्न जटित किरीट तथा कुण्डल धारण किए हुए श्रीभगवान् का अपने हार्दाकाश में स्मरण करते हैं ।।९।।

भावार्थ दीपिका

नलिनं पद्मं तद्वत्प्रसन्ने आयते दीर्घे ईक्षणे यस्य । कदम्बकुसुमस्य किञ्जल्काः केसरास्तद्वत्पिशङ्गे पीते वाससी यस्य । लसन्ति महारत्नानि येषु तानि सुवर्णमयान्यङ्गदानि यस्य । स्फुरन्ति च तानि महारत्नानि च तन्मयानि किरीटकुण्डलानि यस्य ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में प्रयुक्त सभी पद श्रीभगवान् के विशेषण हैं । हार्दाकाश में विराजमान श्रीभगवान् का मुख प्रसन्न एवं सुन्दर है । जिस तरह विकसित कमल के दल चौड़े और सुन्दर होते हैं उसी तरह श्रीभगवान् के नेत्र भी विस्तृत और मनोहर हैं, यह **नलिनायतेक्षणम्** पद का अर्थ है । कदम्ब पुष्प के पराग जिस तरह पीले होते हैं, उसी तरह के पीले पीताम्बरों को भगवान् धारण किए हुए हैं । वे अपनी भुजाओं में जिन विजाइठों को धारण किए हुए उनमें अत्यन्त मूल्यवान् रत्न जड़े हुए हैं । उनके किरीट और कुण्डलों के महान् रत्न चमक रहे हैं, इस प्रकार के श्रीभगवान् की धारणा साधक अपने हार्दाकाश में करते हैं ।।९।।

उन्निद्रहृत्पङ्कजकर्णिकालये योगेश्वरास्थापितपादपल्लवम् ।
श्रीलक्ष्मणं कौस्तुभरत्नकन्धरमम्लानलक्ष्म्या वनमालयाऽऽचितम् ।।१०।।

अन्वयः— उन्निद्रहृत्पङ्कजकर्णिकालये योगेश्वरास्थापितपाद पल्लवम् श्रीलक्ष्मणम् कौस्तुभरत्नकन्धरं अम्लानलक्ष्म्या वनमालया अचितम् पुरुषं स्मरन्ति ।।१०।।

अनुवाद— योगेश्वरों ने अपने विकसित हृदय कमल की कर्णिका रूपी स्थान पर श्रीभगवान् के चरण कमलों को स्थापित कर रखा है । श्रीभगवान् श्रीवत्स नामक लक्ष्मीजी के चिह्न से सुशोभित हैं, उनके गले में कौस्तुभ मणि लटक रही है तथा तरोताजी शोभा से युक्त वनमाला को धारण किए हुए श्रीभगवान् का वे साधक अपने हृदय में धारणा के द्वारा चिन्तन करते हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

उन्निद्रं विकसितं यद्धृत्पङ्कजं तस्य कर्णिकैवाऽऽलयः स्थानं तस्मिन् । योगेश्वरैरास्थापितौ पादपल्लवौ यस्य । श्रीरेव लक्ष्म चिह्नं तद्युक्तम् । पामादिविहितो मत्वर्थीयो नप्रत्ययः । कौस्तुभरत्नं कन्धरायां यस्य । अम्लाना लक्ष्मीः शोभा यस्यास्तया वनमालया अचितं व्याप्तम् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के भी सभी पद श्रीभगवान् के विशेषण हैं । इन सभी पदों का विग्रह भी भावार्थ दीपिका में स्पष्ट है । वेदों में हृदय को कमलाकृति बतलाया गया है वह हृदय विकसित कमल के समान है । उसके बीच में विद्यमान जो कर्णिका है वही श्रीभगवन् का निवास स्थान है । योगेश्वरों ने अपने उस हृदय रूपी कमल की कर्णिका पर श्रीभगवान के लाल-लाल पल्लवों के समान अत्यन्त कोमल चरणों को स्थापित कर दिया है । उन श्रीभगवान् के वक्षस्थल में श्रीलक्ष्मी का पीतवर्ण का चिह्न विद्यमान है । तथा उनके गले में कौस्तुभ मणि लटक रही है । वे भगवान् जिस वनमाला को धारण किए हैं उसकी शोभा बिल्कुल तरोताजी है । उस माला से सुशोभित भगवान् की धारणा साधक जन किया करते हैं ।।१०।।

विभूषितं मेखलयाऽङ्गुलीयकैर्महाधनैर्नूपुरकङ्कणादिभिः ।
स्निग्धामलाकुञ्चितनीलकुन्तलैर्विरोचमानाननहासपेशलम् ॥११॥

अन्वयः— मेखलया, महाधनैः अङ्गुलीयकै, महाधनैः नूपुर कङ्कणादिभिः विभूषितम्, स्निग्धामलकुञ्चितनीलकुन्तलैः विरोचमानं हासपेशलम् आननम् पुरुषं हृदयावकाशे धारणया स्मरन्ति ॥११॥

अनुवाद— कमर में करधनी, अङ्गुलियों में बहुमूल्य अङ्गूठी, चरणों में नुपूर और हाथ में कङ्गन आदि आभूषणों को धारण किए हुए चिकने स्वच्छ घुघराले तथा काले केशों से सुशोभित एवं मन्दमुसकान से मनोहर मुख वाले श्रीभगवान् का वे अपने हार्दाकाश में धारणा के द्वारा स्मरण करते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

स्निग्धत्वादिविशिष्टैः कुन्तलैर्विरोचमाने आनने यो हासस्तेन पेशलं सुन्दरम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

काले घुंघराले केश जिस पर लटक आये हैं ऐसे मुस्कान से मनोहर बने मुख से युक्त श्रीभगवान् की धारणा करे ॥११॥

अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भ्रूभङ्गसंसूचितभूर्यनुग्रहम् ।
ईक्षेत चिन्तामयमेनमीश्वरं यावन्मनो धारणयाऽवतिष्ठते ॥१२॥

अन्वयः— अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भ्रूभङ्गसंसूचितभूर्यनुग्रहम् चिन्तामयम् एनम् ईश्वरम् मनः यावद् धारणया अवतिष्ठेत् तावत् ईक्षेत् ॥१२॥

अनुवाद— लीला पूर्ण उन्मुक्त हास्य एवं अवलोकन से सुशोभित भौहों के द्वारा जिनका बहुत अनुग्रह सूचित होता है ऐसे चिन्तन के द्वारा आविर्भूत श्रीभगवान् का तब तक साधक को दर्शन करते रहना चाहिए जब तक मन धारणा के द्वारा उनमें लगा रहे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अदीनमुदारं यल्लीलाहसितं तेन यदीक्षां तस्मिन्नुल्लसन्तो ये भ्रूभङ्गा भ्रूविक्षेपास्तैः संसूचितो भूरिरनुग्रहो येन । चिन्तामयं चिन्तया आविर्भवन्तम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक का पूर्वार्द्ध एक ही पद है, और वह श्रीभगवान् का विशेषण है । इसका विग्रह भी भावार्थ दीपिका में दिया गया है । इस पद का अभिप्राय है कि श्रीभगवान लीला पूर्वक उन्मुक्त भाव से मुसकुरा रहे हैं। उसके कारण उनकी उठी हुयी जो सुन्दर भौहें हैं उसके द्वारा वे अपने भक्तों पर विपुल मात्रा में अनुग्रह की वर्षा कर रहे हैं । धारणा के समय इस प्रकार से हृदय में आविर्भूत परमात्मा का तब तक ध्यान के माध्यम से दर्शन करते रहना चाहिए जब तक कि धारणा के द्वारा मन उनमें लगा रहे ॥१२॥

एकैकशोऽङ्गानि धियाऽनुभावयेत्पादादि यावद्धसितं गदाभृतः ।
जितं जितं स्थानमपोह्य धारयेत् परं परं शुध्यति धीर्यथा यथा ॥१३॥

अन्वयः— गदाभृतः पादादिहसितं यावत् एकैकशः अङ्गानि धिया अनुभावयेत् । यथा-यथा धीः शुद्धयति तथा-तथा जितं-जितं स्थानम् अपोह्य परं परं धारयेत् ॥१३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के पैर से लेकर मुसकान युक्त मुख पर्यन्त एक-एक अङ्ग का बुद्धि के द्वारा ध्यान करना

चाहिए, जैसे-जैसे बुद्धि शुद्ध होकर स्थिर होती जाती है, वैसे ही वैसे श्रीभगवान् का जो-जो अङ्ग स्वाभाविक रूप से प्रकाशित होने लगे उस-उस को छोड़कर उसके ऊपर के घुटना जङ्घा इत्यादि अङ्गों की धारणा करता जाय ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अस्यैव ध्यानमाह-एकैकश इति । अनुभावयेद्ध्यायेत् । यद्यज्जितमयत्नतः स्फुरितं पादगुल्फादिस्थानमवयवस्तत्तदपोह्य त्यक्त्वा परं परं जङ्घाजान्वादि धारयेद्ध्यायेत् शुध्यति तस्मिन्निश्चला भवति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के ही ध्यान को एकैकशः इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीशुकदेवजी बतलाते हैं । साधक को चाहिए कि वह श्रीभगवान् के पैर से लेकर मुख पर्यन्त एक-एक अङ्ग की धारणा करे । ध्यान के अभ्यास के कारण श्रीभगवान् का जो-जो अङ्ग स्वाभाविक रूप से बुद्धि में प्रकाशित होने लगे, उसको छोड़कर उससे ऊपर के अङ्गों का ध्यान करना चाहिए श्रीभगवान् की धारणा से जैसे-जैसे बुद्धि शुद्ध होती जाती है, वैसे ही वैसे चित्त स्थिर होता जाता है ॥१३॥

यावन्न जायेत परावरेऽस्मिन्विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः ।
तावत्स्थवीयः पुरुषस्य रूपं क्रियावसाने प्रयतः स्मरेत् ॥१४॥

अन्वयः— यावत् अस्मिन् परावरे द्रष्टरि विश्वेश्वरे भक्तियोगः न जायेत तावत् क्रियावसाने पुरुषस्य स्थवीयः रूपं प्रयतः स्मरेत् ॥१४॥

अनुवाद— राजन् ! जब तक स्वेतर समस्त जीवों से श्रेष्ठ, द्रष्टा, तथा सम्पूर्ण जगत् के नियामक परमात्मा में साधक का प्रेम पूर्ण भक्तियोग नहीं उत्पन्न हो जाय तब तक वह अपनी नित्य नैमित्तिक क्रियाओं के अन्त में परम पुरुष परमात्मा के इस स्थूल रूप का प्रयत्न पूर्वक स्मरण करता रहे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वोक्तवैराजधारणाया एतद्धारणाङ्गत्वमाह-यावदिति । परे ब्रह्मादयोऽवरे यस्मात् । कुतः विश्वेश्वरे द्रष्टरि न तु दृश्ये, चैतन्यघनत्वात् । भक्तियोगः प्रेमलक्षणः । क्रियावसाने आवश्यककर्मानुष्ठानानन्तरम् । अनेन कर्मापि भक्तियोगपर्यन्तमेवेत्युक्तम्। प्रयतो नियमतत्परः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

पूर्वोक्त वैराज धारण का यह धारणा अङ्ग है इस बात को **यावन्न० इत्यादि** श्लोक से शुकदेवजी ने बतलाया है । श्रीभगवान् को परावर इस लिए कहा गया है कि ब्रह्मा इत्यादि देवता भी श्रीभगवान् की अपेक्षा हीन कोटि के हैं । वे भगवान् सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं । वे द्रष्टा है, दृश्य नहीं है क्योंकि वे ज्ञान घन स्वरूप हैं उन परमात्मा में जब तक भक्तियोग साधक का नहीं उत्पन्न हो जाय तब तक आवश्यक कर्मों के अनुष्ठान के पश्चात् नियम पूर्वक परमात्मा के इस स्थूल रूप का ध्यान करना चाहिए । यह कहकर उन्होंने यह बतलाया कि कर्मों का अनुष्ठान भी तब तक ही करना चाहिए जब तक भक्तियोग नहीं उत्पन्न हो जाय । उसके पश्चात् तो सभी कर्मों का त्याग ही हो जाता है ॥१४॥

स्थिरं सुखं चासनमाश्रितो यतिर्यदा जिहासुरिममङ्ग लोकम् ।
काले च देशे च मनो न सज्जयेत्प्राणं नियच्छेन्मनसा जितासुः ॥१५॥

अन्वयः— अङ्ग ! यदा यतिः इमम् लोकम् जिहासुः तदा देशे काले च मनः न सज्जयेत अपितु सुखं स्थिरं च आसनं आश्रितः जितासुः मनसा प्राणं नियच्छेत् ॥१५॥

अनुवाद— राजन् जब घर से निकला हुआ योगी, इस लोक का परित्याग करना चाहे तो वह तीर्थादि पुण्य स्थानों तथा उत्तरायण आदि काल विशेष में मन को आसक्त न करे, क्योंकि देश और काल योगी की सिद्धि (मुक्ति प्राप्ति) के साधन नहीं हैं अपितु वह सुख पूर्वक स्थिर आसन पर बैठकर जितेन्द्रिय होकर अपने प्राणों का जीते ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

एवं तावदासन्नमृत्योः पुंसः कृत्यमुक्तम्, इदानीं तस्यैव स्वयं देहं त्यक्तुमिच्छतः कृत्यमाह-स्थिरमिति सार्धैश्चतुर्भिः । अङ्ग हे राजन्, एवंभूतो यतिर्यदा इमं लोकं देहं जिहासुर्हातुमिच्छति, तदा देशे पुण्यक्षेत्रे काले चोत्तरायणादौ मनो न सज्जयेत् सङ्गं न प्रापयेत् । न हि देशकालौ योगिनः सिद्धिहेतू, किंतु योग एवेति दृढनिश्चयो भूत्वा स्थिरं सुखकरं चासनमास्थितः प्राणं नियच्छेदित्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ तक जिसकी मृत्यु सन्निकट होए ऐसे व्यक्ति के द्वारा किए जाने वाले आवश्यक कर्मों को बतलाया गया है । अब शुकदेवजी शरीर त्याग करने के इच्छुक राजा परीक्षित् को उनके द्वारा किए जाने योग्य कर्मों को **स्थिरं सुखम्** इत्यादि साढे चार श्लोकों द्वारा बतला रहे हैं । वे कहते हैं— राजन् ! जब संसार से विरक्त योगी इस लोक का परित्याग करना चाहता है तब उसे पुण्य क्षेत्र इत्यादि देशों तथा उत्तरायण काल इत्यादि में अपने मन को नहीं लगाना चाहिए; क्योंकि योगियों को सिद्धि किसी देश विशेष अथवा काल विशेष के द्वारा नहीं प्राप्त होती है अपितु योग के द्वारा ही उनको सिद्धि (मुक्ति) मिलती है, यह दृढ निश्चय कर लेना चाहिए । उसके पश्चात् योगी को सुखप्रद और स्थिर आसन पर बैठकर इन्द्रियों को अपने वश के करके प्राणों को नियन्त्रित करना चाहिए ॥१५॥

मनः स्वबुद्ध्याऽमलया नियम्य क्षेत्रज्ञ एतां निनयेत्तमात्मनि ।
आत्मानमात्मन्यवरुध्य धीरो लब्धोपशान्तिर्विरमेत कृत्यात् ॥१६॥

अन्वयः— स्व अमलया बुद्ध्या मनः नियम्य एतां क्षेत्रज्ञे निनयेत् तम् आत्मनि, आत्मानम् आत्मनि अवरुध्य धीरः लब्धोपशान्तिः कृत्यात् विरमेत ॥१६॥

अनुवाद— अपनी निर्मल बनी बुद्धि के द्वारा मन को विषयों से हटाकर उसको बुद्धि में लीन कर दे। उसके पश्चात् बुद्धि को क्षेत्रज्ञ में लीन करे । क्षेत्रज्ञ को आत्मा में लीन करे और आत्मा को परमात्मा में लीन करे । उसके पश्चात् शान्ति प्राप्त वह धीर पुरुष सभी कर्मों से विरक्त हो जाय ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तत् गृहीतविषयं मनो बुद्ध्या निश्चयरूपया नियम्य तन्मात्रं कृत्वा, एता बुद्धिं क्षेत्रज्ञे बुद्ध्यादिद्रष्टरि निनयेत्प्रविलापयेत्। तं च क्षेत्रज्ञमात्मनि शुद्धे । तं च शुद्धमात्मानमात्मैवाहमित्यामनि शुद्धे ब्रह्मण्यवरुध्यैकीकृत्य लब्धोपशान्तिः प्राप्तनिर्वृतिः सन् कृत्याद्विरमेत, ततः परं प्राप्याभावात् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

योगी को चाहिए कि वह सर्वप्रथम वह अपनी निर्मल बुद्धि के द्वारा विषय प्रवण मन को विषयों से हटा ले । उसके पश्चात् वह उस मन को अपनी स्वच्छ बुद्धि में लीन कर दे । उसके पश्चात् उस बुद्धि को क्षेत्रज्ञ में लीन करे । उस क्षेत्रज्ञ को शुद्ध आत्मा अन्तर्यामी में लीन करे । उस शुद्ध आत्मा की मैं आत्मा ही हूँ इस प्रकार से मानते हुए उसे शुद्ध ब्रह्म में लीन करके शान्ति प्राप्त कर ले । और शान्ति प्राप्त करके वह अपने प्रयास से विरत हो जाय क्योंकि परंब्रह्म की प्राप्ति से बढ़कर कोई दूसरी वस्तु उसके लिए प्राप्य रह ही नहीं जाती है ॥१६॥

न यत्र कालोऽनिमिषां परः प्रभुः कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे ।
न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च न वै विकारो न महान्प्रधानम् ॥१७॥

अन्वयः— यत्र अनिमिषां परः प्रभुः कालः न, कुतः, नुदेवाः, ये जगताम् ईशिरे । यत्र सत्त्वं न, रजः तमश्च न, न वै विकारः, न महान्, न प्रधानम् ॥१७॥

अनुवाद— जिस अवस्था में देवताओं का भी नियामक काल कुछ भी करने में समर्थ नहीं होता है, तो देवता वहाँ पर क्या कर सकते हैं ? और मनुष्यों के नियामक राजागणों के विषय में क्या कहना है ? वे तो उस अवस्था में कुछ भी नहीं कर सकते हैं । उस अवस्था में सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण, अहङ्कार महान् तथा प्रकृति भी नहीं रहती है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-न यत्रेति । यत्रात्मस्वरूपे कालो न प्रभुः किमपि कर्तुं न समर्थः । अतएव देवा न प्रभव इत्याह । अनिमिषां देवानां परः प्रभुः कालोऽपि यत्र न प्रभुस्तत्र कुतो नु देवाः प्रभवेयुः । दैवनियम्यानां तु जगतां प्राणिनां का वार्तेत्याह-जगतामिति। कुतो न प्रभवन्तीत्यपेक्षायां निरुपाधित्वादित्याह-न यत्रेति । यद्वा जगत्कारणान्यपि न यस्य सृष्ट्यादौ प्रभवन्तीत्याह-न यत्रेति । विकारोऽहङ्कारः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

न यत्र इत्यादि श्लोक के द्वारा उपर्युक्त अवस्था का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं जिस ब्रह्मरूप आत्मा के विषय में काल कुछ भी करने में समर्थ नहीं होता है, तो काल के नियाम्य भूत देवता अथवा मनुष्य क्या कर सकते हैं ? अब प्रश्न उठता है कि उस आत्मा के स्वरूप के विषय में काल, देवता अथवा मनुष्य कुछ भी क्यों नहीं कर पाते हैं तो उसके उत्तर में बतलाते हैं कि जीव की वह स्थिति निरूपाधिक है । सोपाधिक अवस्था में ही जीवात्मा पर कालादि का प्रभाव होता है । उस ब्रह्मस्वरूप आत्मा के विषय में सत्त्व, रजस, तमस् अहङ्कार महान् अथवा प्रकृति का भी संस्पर्श नहीं रहता है । उस स्थिति में पहुँचा हुआ उपासक शुद्ध आत्मस्वरूप होता है श्लोक में विकार शब्द से अहङ्कार को कहा गया है ॥१७॥

परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ।
विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यार्हपदं पदे पदे ॥१८॥

अन्वयः— यत् अतत् नेति-नेति उत्सिसृक्षवः दौरात्म्यम् विसृज्य अर्हपदं पदे पदे हृदा उपगुह्य अनन्य सौहृदाः सन्तः तद् वैष्णवं पदं परं आमनन्ति ॥१८॥

अनुवाद— चूकि योगिजन, आत्म व्यतिरिक्त वस्तुओं को यह नहीं यह नहीं इस प्रकार से कहकर त्याग देना चाहते हैं । देह आदि में आत्मत्व का परित्याग करके पूज्य भगवान् विष्णु के पद को प्रतिक्षण हृदय से लगाकर, श्रीभगवान् के चरणों से ही जिन योगियों का सौदार्ह है, वे लोग भगवान् विष्णु के ही पद को सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

निरूपाधित्वं कुत इत्यत आह-परमिति । यद्यस्मात् अतत् आत्मव्यतिरिक्तं नेति नेतीत्येवमुत्स्रष्टुमिच्छवो दौरात्म्यं देहाद्यात्मत्वं विसृज्य अर्हस्य पूज्यस्य श्रीविष्णोः पदं पदे पदे क्षणे क्षणे हृदा उपगुह्य आश्लिष्य नान्यस्मिन्सौहृदं येषां तथाभूताः सन्तस्तद्वैष्णवं पदम् अतएव परं सर्वतः श्रेष्ठमामनन्तीत्यन्वयः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

आत्मा के उस स्वरूप को निरूपाधिक बतलाते हुए कहते हैं— चूकि आत्मव्यतिरिक्त वस्तुओं को त्याग देने की इच्छा वाले योगिजन यह नहीं, यह नहीं इस तरह से कहकर देहादि में होने वाले आत्मत्व भ्रम को त्यागकर पूज्य भगवान् विष्णु के पद (चरणों) को ही सदा हृदय से लगाकर उससे भिन्न सभी वस्तुओ से सौहार्द रहित वे श्रीभगवान् के चरणों को ही सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं ॥१८॥

इत्थं मुनिस्तूपरमेद्व्यवस्थितो विज्ञानदृग्वीर्यसुरन्धिताशयः ।
स्वपार्ष्णिनापीड्य गुदं ततोऽनिलं स्थानेषु षट्सून्नमयेज्जितक्लमः ॥१९॥

अन्वयः— विज्ञानदृग्वीर्यः सुरन्धिताशयः व्यवस्थितः मुक्तिः तु इत्थम् उपरमेत् स्वपार्ष्णिना गुदं निपीड्य ततः अनिलं षट्सु स्थानेषु उन्नमयेत् ॥१९॥

अनुवाद— शास्त्रजन्य ज्ञान दृष्टि के बल से जिसके चित्त की वासना नष्ट हो गयी है उस योगी को अपने शरीर का त्याग इस तरह करना चाहिये । सर्वप्रथम वह अपनी एंडी से गुदा को दबाकर स्थिर हो जाय उसके पश्चात् बिना घबड़ाहट के प्राणवायु को वह ऊपर की ओर ले जाय ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तस्मादित्थं ब्रह्मत्वेन व्यवस्थितो मुनिरुपरमेत् । तुशब्देन **'यदि प्रयास्यन्'** इति वक्ष्यमाणात्सकामाद्विशेष उक्तः । तमाह। विज्ञायतेऽनेनेति विज्ञानं शास्त्रं तेन जाता दृग् ज्ञानं तस्य वीर्यं बलं तेन सुरन्धिता विहिंसिता आशया विषयवासना यस्य सः । इदानीं तस्य देहत्यागप्रकारमाह । स्वपार्ष्णिना पादमूलेन गुदं मूलाधारमापीड्य निरुध्यानिलं प्राणमुन्नमयेदूर्ध्वं नयेत् जितःक्लमो येन । षट्सु स्थानेषु नाभ्यादिषु ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्म की प्राप्ति के प्रकार को बतलाने के लिए इस श्लोक में देह से उत्क्रमण करने के प्रकार को बतलाते हुए शुकदेवजी कहते हैं— इस प्रकार से ब्रह्म रूप से व्यवस्थित योगी ऊपरत हो जाय । श्लोक के तु शब्द के द्वारा इस अध्याय के बाइसवें श्लोक में जिसको बतलाया जायेगा उस सकाम उत्क्रमण की अपेक्षा इसकी विशेषता बतलायी गयी है । इसी को बतलाते हुए कहते है शास्त्रजन्य ज्ञान के बल से जिसने अपनी चित्त की वासना को नष्ट कर दिया है, उसी के देह त्याग के प्रकार को बतलाते हुए शुकदेवजी कहते हैं कि सर्वप्रथम अपनी एंडी से अपने मूलाधारचक्र गुदा को दबाकर प्राण वायु को ऊपर की ओर बिना किसी घबड़ाहट के नाभि आदि के क्रम से ऊपर की ओर ले जाय ॥१९॥

नाभ्यां स्थितं हृद्यधिरोप्य तस्मादुदानगत्योरसि तं नयेन्मुनिः ।
ततोऽनुसंधाय धिया मनस्वी स्वतालुमूलं शनकैर्नयेत ॥२०॥

अन्वयः— नाभ्यां स्थितं हृदि अधिरोप्य तस्मात् उदानगत्या मुनि तं नयेत। ततः धिया अनुसंधाय शनकैः स्वतालुमूलं नयेत ॥२०॥

अनुवाद— मनस्वी योगी को चाहिये कि वह नाभिचक्र (मणि पूरक चक्र) में स्थित वायु को हृदय चक्र (अनाहतचक्र) में स्थापित करके, वहाँ से उदान वायु के द्वारा वक्षः स्थल के ऊपर विशुद्धिचक्र में लाये उस वायु को धीरे-धीरे तालु के मूल में विशुद्धिचक्र के अग्रभाग में लाये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

नाभ्यां मणिपूरके स्थितं हृदि अनाहतचक्रेऽधिरोप्य । उरसि कण्ठादधोदेशे स्थिते विशुद्धिचक्रे । मनस्वी जितचित्तः। स्वतालुमूलं तस्यैव चक्रस्याग्रदेशम् । ततो बहुधा गमनसंभवाच्छनकैरित्युक्तम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

नाभि में विद्यमान मणिपूरकचक्र में स्थित वायु को हृदय में विद्यमान अनाहतचक्र में स्थापित करे फिर उस वायु को वक्षःस्थल से ऊपर तथा कण्ठ के नीचे विद्यमान विशुद्धिचक्र में लाकर जिसने अपने मन को वश में कर लिया है जिसने वह योगी तालु के मूल में विद्यमान उस चक्र के अग्रभाग में वायु को धीरे-धीरे लाये, अन्यथा वह दूसरी ओर चली जा सकती है ॥२०॥

तस्माद्भ्रुवोरन्तरमुन्नयेत निरुद्धसप्तास्वयनोऽनपेक्षः ।
स्थित्वा मुहूर्तार्धमकुण्ठदृष्टिर्निर्भिद्य मूर्धन्विसृजेत्परं गतः ॥२१॥

अन्वयः— तस्माद् भ्रुवोः अन्तरम् उन्नयेत निरुद्धसप्तास्वयनः । अनपेक्षः मुहूर्तार्धम् स्थित्वा अकुण्ठदृष्टिः मूर्धम् निर्भद्य परं गतः विसृजेत् ॥२१॥

अनुवाद— उस विशुद्धिचक्र से प्राण वायु को दोनों भौहों के मध्य में स्थित आज्ञाचक्र में लाये । यदि उसको किसी लोक में जाने की इच्छा न हो ता वह प्राणों के निकलने के जो सात (दो आँख, दो नाक, दो कान और मुख) मार्गों को रोककर वहाँ दो घड़ी (आधा मुहूर्त) ठहरकर अपने ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके शरीर तथा इन्द्रियों आदि का त्याग कर दे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तस्माद्भ्रुवोरन्तरमाज्ञाचक्रम् । निरुद्धानि श्रोत्रे नेत्रे नासिके मुखं चेत्येवं सप्तास्वयनानि प्राणमार्गा येन सः । अनपेक्षश्चेत्परं ब्रह्म गतः सन् मूर्धन्मूर्धनि ब्रह्मरन्ध्रे निर्भिद्य देहमिन्द्रियाणि च विसृजेत् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उस विशुद्धि चक्र के अग्रभाग से प्राणवायु को दोनों भौहों के बीच में विद्यमान आज्ञा चक्र में लाये फिर दोनों आँख, दोनों नाक, दोनों कान एवं मुख इन सातो प्राण के निकलने के मार्ग को रोककर यदि योगी की किसी लोक में जाने की इच्छा न हो तो वह वहाँ प्राण वायु के साथ आधा मुहूर्त (दो घड़ी) तक रहकर मूर्धा प्रदेश में विद्यमान ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके शरीर तथा इन्द्रियों आदि को त्याग देना चाहिए ॥२१॥

यदि प्रयास्यन्नृप पारमेष्ठ्यं वैहायसानामुत यद्विहारम् ।
अष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये सहैव गच्छेन्मनसेन्द्रियैश्च ॥२२॥

अन्वयः— नृप यदि पारमेष्ठ्यं उत वैहायसानाम् यद्विहारम् अष्टाधिपत्यम् गुण सन्निवाये प्रयास्यन् मनसा इन्द्रियैः च सहैव गच्छेत् ॥२२॥

अनुवाद— राजन् यदि योगी की इच्छा हो कि मैं ब्रह्मलोक में जाऊँ और अणिमा आदि आठो सिद्धियों को प्राप्त करके आकाशचारी सिद्धों के साथ विहार करूँ अथवा ब्रह्माण्ड के सभी प्रदेशों में विचरण करूँ तो उसे मन तथा इन्द्रियों को साथ लेकर ही शरीर से निकलना चाहिए ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

सद्योमुक्तिमुक्त्वा क्रममुक्तिप्रकारमाह-यदीति दशभिः । यदि तु पारमेष्ठ्यं पदं प्रयास्यन्भवति । उत वैहायसानां खेचराणां सिद्धानां क्रीडास्थानम् । कीदृशम् । अष्टावाधिपत्यान्यणिमाद्यैश्वर्याणि यस्मिंस्तदपि प्रयास्यन् । क्व गुणसन्निवाये गुणसमुदायरूपे ब्रह्माण्डे । सर्वत्रेत्यर्थः । तर्हि देहत्यागावसरे मनश्चेन्द्रियाणि च न त्यजेत्, किंतु तैः सहैव तत्तल्लोकभोगार्थं गच्छेत् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

सद्यःमुक्ति का वर्णन करने के बाद क्रममुक्ति के प्रकार का वर्णन **यदि प्रयास्यन्० इत्यादि** दश श्लोकों

द्वारा करते हैं । यदि योगी ब्रह्मलोक में जाना चाहे अथवा आकाश में चलने वाले सिद्धों का जो विहार स्थल है उसमें जाकर अणिमा आदि आठ सिद्धियों को प्राप्त करके विहार करना चाहे अथवा त्रिगुणमय ब्रह्माण्ड में ही सर्वत्र विचरण करना चाहे तो उसको देहत्याग के समय मन तथा इन्द्रियों का त्याग नहीं करना चाहिए, उसे उन लोकों में भोगों को प्राप्त करने के लिए मन एवं इन्द्रियों के साथ ही जाना चाहिए ॥२२॥

योगेश्वराणां गतिमाहुरन्तर्बहिस्त्रिलोक्याः पवनान्तरात्मनाम् ।
न कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवन्ति विद्यातपो योगसमाधिभाजाम् ॥२३॥

अन्वयः— पवनान्तरात्मनाम् विद्या तपो-योग-समधिभाजाम् योगेश्वराणाम् त्रिलोक्य अन्तः बहिः गतिमाहुः, कर्मभिः तं गतिम् न आप्नुवन्ति ॥२३॥

अनुवाद— वायु के भीतर जिनका लिङ्ग शरीर होता है, ऐसे विद्या (उपासना) तप (भगवद् धर्म) योग (अष्टाङ्ग योग तथा समाधि) एवं ज्ञान से युक्त योगेश्वरों की गति त्रिलोकी के भीतर और बाहर दोनों ओर बतलायी गयी है केवल कर्म करने वाले; योगेश्वरों की गति को नहीं प्राप्त कर सकते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यतः कर्मगतिवन्न योगगतिःपरिच्छिन्नेत्याह । योगेश्वराणां त्रिलोक्या अन्तर्बहिश्च महर्लोकादिषु ब्रह्माण्डाद्बहिश्च गतिमाहुः। अत्र हेतुः- पवनस्यान्तः आत्मा लिङ्गशरीरं येषामिति । विद्या उपासना, तपो भगवद्धर्म, योगोऽष्टाङ्गः समाधिर्ज्ञानं, तान्येव भजन्ति तेषां या गतिस्ताम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

चूंकि कर्म गति के समान योग की गति सीमित नहीं होती है, उसका कारण यह है कि योगेश्वरों का लिङ्ग शरीर वायु के भीतर अत्यन्त सूक्ष्म होता है । वे उपासना भगवद् धर्म, अष्टाङ्गयोग तथा ज्ञान से सम्पन्न होते हैं । अतएव योगेश्वरों की गति को केवल कर्म के द्वारा नहीं प्राप्त किया जा सकता है । योगेश्वरों की गति त्रिलोकी के भीतर और बाहर बिना किसी रोक-टोक के होती है ॥२३॥

वैश्वानरं याति विहायसा गतः सुषुम्नया ब्रह्मपथेन शोचिषा ।
विधूतकल्कोऽथ हरेरुदस्तात्प्रयाति चक्रं नृप शैशुमारम् ॥२४॥

अन्वयः— नृप ! विहायसां ब्रह्मपथेन गतः सुषुम्नया वैश्वानरं याति, शोचिषा विधूतकल्मषः उदस्तात् हरेः चक्रं शैशुमारं प्रयाति ॥२४॥

अनुवाद— हे नृप ! आकाश नामक ब्रह्ममार्ग से जाकर सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा योगी अग्नि के अभिमानी देवता के लोक में जाता है । उसके ऊपर भगवान् विष्णु के शिशुमार चक्र में जाता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तामाह वैश्वानरमित्यष्टभिः । शोचिषा ज्योतिर्मय्या विधूतस्त्यक्तः कल्को मलो येन सः । क्वाप्यसज्जमान इत्यर्थः । उदस्तादुपरिष्टाद्वर्तमानं हरेः संबन्धि तारारूपम् । नारायणाधिष्ठितमित्यर्थः । शैशुमारं चक्रं पञ्चमस्कन्धे वक्ष्यमाणं शिशुमाराश्रयं ज्योतिश्चक्रम् । चक्रस्थान्यादित्यादि ध्रुवान्तानि पदानि प्रयातीत्यर्थः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

वैश्वानरम् इत्यादि आठ श्लोकों के द्वारा योगेश्वरों की गति का वर्णन करते हुए शुकदेवजी कहते हैं— आकाशस्थ ब्रह्मलोक मार्ग से गया हुआ योगी अग्नि के अभिमानी देवता के लोक में जाता है । वहाँ वह सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा जाता है । सुषुम्ना नाड़ी शरीर के बाहर भी फैली हुयी है । इस बात को वे उसको प्रकाशमयी बतलाकर

कहते हैं । वहाँ पर उसके सारे मल विनष्ट हो जाते है । उसकी कहीं भी आसक्ति नहीं होती है, उसके ऊपर श्रीहरि का जो तारा रूपी शिशुमार नामक ज्योतिश्चक्र है, उसमें वह जाता है । वह चक्र स्थानी आदित्य से लेकर ध्रुव पर्यन्त के स्थानों में वह जाता है ।।२४।।

तद्विश्वनाभिं त्वतिवर्त्य विष्णोरणीयसा विरजेनात्मनैकः ।
नमस्कृतं ब्रह्मविदामुपैति कल्पायुषो यद्विबुधा रमन्ते ।।२५।।

अन्वयः— विष्णोः तत् तु विश्वनाभिम् अतिवर्त्य अणीयसा विरजेन आत्मना एकः अन्यैः नमस्कृतम् ब्रह्मविदाम् उपैति यत् कल्पायुषोः विबुधा रमन्ते ।।२५।।

अनुवाद— विष्णोः तत् तु विश्वनाभिम् अतिवर्त्य आणीयसा विरजेन आत्मना एकः अन्यैः नमस्कृतम् ब्रह्मविदाम् उपैति यत् कल्पायुषः विबुधा रमन्ते ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

तद्विष्णोश्चक्रम् । विश्वस्य नाभिं सूर्याद्याश्रयभूतम् । आविष्टलिङ्गत्वान्नाभिशब्दस्य न षण्ढत्वम् । अतिवर्त्यातिक्रम्य । परतः स्वर्गिणां गत्यभावादेक एव निर्मलेन लिङ्गशरीरेण ब्रह्मविदां स्थानमन्यैर्नमस्कृतं महर्लोकमुपैति । यत् यस्मिन्विबुधा महाकल्पायुषा भृग्वादयः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

शिशुमार चक्र नामक भगवान् विष्णु का चक्र सूर्य आदि सम्पूर्ण विश्व का आश्रय है । आविष्ट लिङ्ग (अजहल्लिङ्ग) होने के कारण ही यहाँ नाभि शब्द का नपुंसक लिङ्ग में प्रयोग नहीं हुआ है । उस शिशुमारचक्र को पार करके योगी अपने अत्यन्त सूक्ष्म तथा निर्मल शरीर के द्वारा अन्य जीवों से नमस्कृत महर्लोक में अकेले जाता है । उस लोक में महाकल्प पर्यन्त जीने वाले भृगु आदि महर्षि रहते हैं ।।२५।।

अथो अनन्तस्य मुखानलेन दन्दह्यमानं स निरीक्ष्य विश्वम् ।
निर्याति सिद्धेश्वरजुष्टधिष्ण्यं यद्द्वैपरार्ध्यं तदु पारमेष्ठ्यम् ।।२६।।

अन्वयः— अथो अनन्तस्य मुखानलेन दन्दह्यमानं विश्वं निरीक्ष्य सिद्धेश्वरजष्टधिष्ण्यं तदुपारमेष्ठयं, यद् द्विपरार्ध्यम् ।।२६।।

अनुवाद— कल्प के अन्त में शेषनाग के मुख से निकली हुयी अग्नि से भस्म होते हुए विश्व को देखकर योगी उस ब्रह्मलोक में चला जाता है जहाँ पर बड़े-बड़े सिद्धेश्वर विमानों पर निवास करते हैं । उस ब्रह्मलोक की आयु ब्रह्माजी की आयु के ही समान दो परार्द्धों की है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

अथो अनन्तरं कल्पान्ते स विश्वं त्रैलोक्यमतिशयेन दह्यमानं निरीक्ष्य, तत्राप्यूष्मप्राप्तेः । यत् द्विपरार्धस्यायि तत्पारमेष्ठ्यं पदं प्रति निर्याति । सिद्धेश्वरैर्जुष्टानि धिष्ण्यानि विमानानि यस्मिंस्तत् । उत इति श्रैष्ठ्यं सूचितम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् कल्प के अन्त में शेष के मुख से निकली हुयी अग्नि के द्वारा जलते हुए विश्व को देखकर महर्लोक में उष्णता हो जाने के कारण जो दो परार्ध पर्यन्त रहने वाला है, उस ब्रह्मलोक में योगी चला जाता है। उस लोक में योगेश्वरों के द्वारा अधिष्ठित विमान रहते है । उत इस अव्यय के द्वारा ब्रह्मलोक की श्रेष्ठता को सूचित किया गया है ।।२६।।

न यत्र शोको न जरा न मृत्युर्नार्तिर्न चोद्वेग ऋते कुतश्चित् ।
यच्चित्ततोऽदः कृपयाऽनिदंविदां दुरन्तदुःखप्रभवानुदर्शनात् ॥२७॥

अन्वयः— यत्र न शोकः, न जरा, न मृत्यु न आर्ति न च कुतश्चित् उद्वेगः, किंतु यत् चित्ततः, अदः अनिदं विक्षं कृपया दुरन्त दुःखप्रभवानुदर्शनात् ऋते ॥२७॥

अनुवाद— उस ब्रह्मलोक में शोक, जरा (बुढ़ापा), मृत्यु, आर्ति तथा किसी भी प्रकार का उद्वेग भी नहीं है अपितु इस ब्रह्मलोक को नहीं जानने के कारण संसार के जीवों को होने वाले कष्ट को देखकर जो संताप होता है, वहाँ के लोगों का केवल यह कष्ट है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-न यत्रेति । । अर्तिर्दुःखम् । उद्वेगो भयम् । किंतु चित्ततो हेतोर्यद्दुखं अदः ऋते तदेकं विना तत्कुतो भवति। अनिदंविदामिदं भगवतो ध्यानमजानतां प्राणिनां दुरन्तदुःखो यः प्रभवो जन्म तस्यानुदर्शनात्तेषां कृपया । यद्वा चित्तमोदो मनः पीडेति यत् तद्विना कुतश्चिदपि यत्र शोकादयो न सन्तीति । तत्र ब्रह्मलोकं गतानां त्रिविधा गतिः । ये पुण्योत्कर्षेण गतास्ते कल्पान्तरे पुण्यतारस्तम्येनाधिकारिका भवन्ति ये तु हिरण्यगर्भाद्युपासनाबलेन गतास्ते ब्रह्मणा सह मुच्यन्ते । ये तु भगवदुपासकास्ते स्वेच्छया ब्रह्माण्डं भित्त्वा वैष्णवं पदमारुहन्ति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

न यत्र० इत्यादि श्लोक के द्वारा ब्रह्मलोक की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है आर्ति दुःख को कहते हैं । उद्वेग भय का बोधक है । शुकदेवजी बतला रहे हैं कि उस ब्रह्मलोक में शोक, जरा, मृत्यु, दुःख, भय इत्यादि कोई भी कष्ट नही है । केवल उन अज्ञानी जीवों को होने वाले कष्ट को देखकर उनको कष्ट होता है कि ये अज्ञानी जीव श्रीभगवान् के ध्यान को करना नहीं जानते हैं । उस ब्रह्मलोक में गये जीवों की तीन प्रकार की गति होती हैं—

१. जो लोग पुण्यातिरेक के कारण ब्रह्मलोक में जाते हैं, वे कल्पान्तर में अपने पुण्य के अनुसार वहाँ के कोई अधिकारी होते हैं ।

२. जो जीव ब्रह्माजी इत्यादि की उपासना के द्वारा ब्रह्मलोक में जाते हैं वे ब्रह्माजी के साथ ही मुक्त हो जाते हैं ।

३. जों लोग श्रीभगवान् की उपासना करके ब्रह्मलोक में जाते हैं वे अपनी इच्छा के अनुसार ब्रह्माण्ड का भेदन करके श्रीभगवान् के लोक में चले जाते हैं ॥२७॥

ततो विशेषं प्रतिपद्य निर्भयस्तेनात्मनाऽपोऽनलमूर्तिरत्वरन् ।
ज्योतिर्मयो वायुमुपेत्य काले वाय्वात्मना खं बृहदात्मलिङ्गम् ॥२८॥

अन्वयः— ततो विशेषं प्रतिपद्य योगी निर्भयः त्वरन् तेनात्मना अपः अनलः मूर्ति ज्योतिर्मयः काले वायुमुपेत्य, वाय्वात्मना बृहदात्मलिङ्गं खम् प्राप्नोति ॥२८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् ब्रह्मलोक में पहुँचा हुआ योगी निर्भय होकर अपने सूक्ष्म शरीर (लिङ्ग शरीर) को पृथिवी में मिला देता है । उसके पश्चात् शीघ्रता किए बिना वह पृथिवी रूप से जल को और जल रूप से अग्निमय आवरण को प्राप्त करता है । उसके पश्चात् वह ज्योति रूप से वायुरूप आवरण को प्राप्त करके वहाँ से ब्रह्म की अनन्तता के बोधक आकाश रूप आवरण में आ जाता है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रस्तुतस्य भगवद्भक्तस्य ब्रह्माण्डभेदनप्रकारमाह- तत इत्यादिना । तत्रेयं प्रक्रिया-ईश्वराधिष्ठितायाः प्रकृतेः केनचिदंशेन महत्तत्त्वं भवति । तस्यांशेनाहंकारः । तस्यांशेन शब्दतन्मात्रद्वारा नभः' तस्यांशेन स्पर्शतन्मात्रद्वारा वायुः । तस्यांशेन रूपतन्मात्रद्वारा तेजः । तस्यांशेन रसतन्मात्रद्वारा आपः तदंशेन गन्धतन्मात्रद्वारा पृथ्वी । तैश्च मिलितैश्चतुर्दशभुवनात्मकं विराट्शरीरम् । तस्य च पञ्चाशत्कोटियोजनविशालस्य पृथिव्येवाण्डकटाहविशेषशब्दवाच्या कोटियोजनविशालं प्रथमावरणम् पञ्चाशत्कोटियोजनविशालमित्येके । ततश्चाबादीनां ये परिणता अंशास्तान्येवोत्तरोत्तरं दशगुणान्यावरणानि । अष्टमं तु प्रकृत्यावरणं व्यापकमेव । तदेवं स्थिते पृथिव्याद्यावरणभेदप्रकारःा कथ्यते । ततो विशेषं प्रतिपद्य । लिङ्गदेहेन पृथिव्यात्मतां प्राप्येत्यर्थः। एवमुत्तरत्रापि द्रष्टव्यम् । निर्भयः कथं यास्यामीति शङ्काशून्यः । तेनात्मना पृथिवीरूपेण तन्निरन्तरा अपः प्रतिपद्य । अत्वरंस्त्वरामकुर्वन् तत्तदात्मत्वेन क्लेददाहादिशङ्काभावाद्यथेष्टं भोगान्भुञ्जान इत्यर्थः । एवं ज्योतिर्मयः सन् । काले भोगावसाने । बृहदात्मनो लिङ्गं परमात्ममूर्तित्वेनोपासनेषूक्तम् । यद्वा वेदशब्दात्मना तस्य प्रमापकमिति ।।२८।।'

भाव प्रकाशिका

जिसका वर्णन यहाँ पर उपक्रान्त है उस भगवद् भक्त के द्वारा किए जाने वाले ब्रह्माण्ड भेदन के प्रकार का वर्णन **ततो० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया जा रहा है । ब्रह्माण्डभेदन की प्रक्रिया इस प्रकार की है । परमात्मा के द्वारा अधिष्ठित प्रकृति अपने अंश विशेष के द्वारा महत्त्तत्त्व बन जाती है । महत् तत्त्व के अंश से अहङ्कार उत्पन्न होता है । अहङ्कार के अंश विशेष से शब्द तन्मात्रा द्वारा आकाश उत्पन्न होता है । आकाश के अंश विशेष से स्पर्श तन्मात्रा द्वारा वायु की उत्पत्ति होती है । वायु के अंश विशेष से रूप तन्मात्रा द्वारा तेज की उत्पत्ति होती है । तेज के अंश विशेष से रस तन्मात्रा द्वारा जल की उत्पत्ति होती है, जल के अंश विशेष से रस तन्मात्रा द्वारा पृथिवी की उत्पत्ति होती है उन सबों के सम्मिश्रण द्वारा चतुर्दश भुवनात्मक ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है । वह ब्रह्माण्ड पचास करोड़ योजन विशाल है । उसका पृथिवी ही प्रथम आवरण है । उसी को अण्डकटाह कहते है। यह पहला आवरण एक करोड़ योजन ऊँचा है । कुछ लोग इस प्रथम आवरण को पचास करोड़ योजन ऊँचा मानते हैं । अतएव जल आदि के जो परिणत अंश हैं वे ही पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर दश-दश गुना अधिक आवरण हैं, आठवाँ आवरण प्रकृति का है । वही व्यापक है इस प्रकार से आवरणों के ही भेदन का प्रकार इस श्लोक में कहा जा रहा है ।

ततो विशेषंप्रतिपद्य० इत्यादि योगी अपने लिङ्ग शरीर में पृथिवी तत्त्व को प्राप्त कर जाता है अर्थात् वह अपने को पृथिवी में मिला देता है । इस तरह से आगे भी समझना चाहिए । निर्भयः कहने का अर्थ है कि योगी को इस प्रकार की शङ्का ही नहीं होती है कि मैं कैसे बाहर जाऊँगा ।

तेनात्म० इत्यादि- वह पृथिवी रूप से ही जल के आवरण में चला जाता है । उसके बाद वह जल रूप से तेज के आवरण में चला जाता है । वहाँ उसको किसी प्रकार की शीघ्रता नहीं रहती हैं क्योंकि उसको इस प्रकार की शङ्का भी नहीं होती है कि मैं भींग जाऊँगा या जल जाऊँगा वह यथेष्ट मात्रा में भोगो को भोगता हुआ ही उत्तरोत्तर आवरण में जाता है । वह तेजोमय रूप से वायु के आवरण में चला जाता है । वहाँ पर भी भोगों के अन्त में वह उस आकाश के आवरण में चला जाता है । जिसको उपासनाओं के प्रसङ्ग में परमात्मा की मूर्ति कहा गया है । वह अपने गुण स्वरूप वेद शब्द के द्वारा परमात्मा का बोधक है ।।२८।।

घ्राणेन गन्धं रसनेन वै रसं रूपं तु दृष्ट्या श्वसनं त्वचैव ।
श्रोत्रेण चोपेत्य नभोगुणत्वं प्राणेन चाकूतिमुपैति योगी ।।२९।।

अन्वयः— घ्राणेन गन्धं, रसनेन रसं, दृष्ट्या तु रूपम्, त्वचा श्वसनम्, श्रोत्रेण नभोगुणत्वं च उपेत्य योगी प्राणेन च आकूतिम् उपैति ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

इन्द्रियार्थानां भूतसूक्ष्माणामतिक्रममाह । घ्राणेनाधिष्ठितेन गन्धमुपेत्य । श्वसनं स्पर्शम् । नभोगुणत्वं शब्दात्मताम् । प्राणेन तत्तत्कर्मेन्द्रियेण । आकूतिं तत्तत्क्रियाम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के द्वारा इन्द्रियों के विषयभूतसक्ष्मों के अतिक्रमण को बतलाया गया है । वह घ्राण रूपी अधिष्ठिान के द्वारा गन्धतन्मात्रा को प्राप्त करके, रसनेन्द्रिय के द्वारा रस तन्मात्रा को चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा रूप तन्मात्रा तथा (वगिन्द्रिय के द्वारा) स्पर्श तन्मात्रा को तथा श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा शब्द तन्मात्रा को प्राप्त करके तथा भिन्न-भिन्न कर्मेन्द्रियों के द्वारा तत्-तत् क्रियाओं को प्राप्त करके योगी, आवरणों को पार करता है ।।२९।।

स भूतसूक्ष्मेन्द्रियसन्निकर्षं मनोमयं देवमयं विकार्यम् ।
संसाद्य गत्या सह तेन याति विज्ञानतत्त्वं गुणसन्निरोधम् ।।३०।।

अन्वयः— सः भूतसूक्ष्मेन्द्रियसन्निकर्षम् मनोमयम् देवमयम् विकार्यं संसाद्य तेन सह गत्या गुणसन्निरोधम् विज्ञान तत्त्वं याति ।।३०।।

अनुवाद— योगी इस तरह से पञ्च भूतों के स्थूल तथा सूक्ष्म आवरणों को पार करके मन एवं इन्द्रियों के अधिष्ठाता अहङ्कार को प्राप्त करता है । यहाँ विकार्य शब्द से अहङ्कार को कहा गया है । वह भूतसूक्ष्मों को तामस अहङ्कार में लीन करता है एवं इन्द्रियों तथा मन के अधिष्ठाता देवताओं को सात्त्विक अहङ्कार में लीन करता है। उसके पश्चात् अहङ्कर के साथ लय रूपी गति के द्वारा वह महत् तत्त्व में प्रवेश करता है । और अन्त में सभी गुणों के लय स्थान प्रकृति नामक आवरण में लीन हो जाता है ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं स्थूलसूक्ष्मभूतातिक्रममुक्त्वा तदावरणभूताहङ्कारप्राप्त्या महदादिप्राप्तिमाह । स योगी विकार्यं संसाद्य विज्ञानतत्त्वं याति । विविधं कार्यमस्येति विकार्योऽहङ्कारः । स त्रिविधः, तामसो राजसः सात्त्विक इति । तत्र तामसाज्जडानि भूतसूक्ष्माणि जायन्ते । राजसाद्बहिर्मुखानि दशेन्द्रियाणि । सात्त्विकान्मन इन्द्रियदेवताश्च । तेषां लयश्च तत्तदहङ्कारे तत्र भूतसूक्ष्माणामिन्द्रियाणां च सन्निकर्षं लयस्थानं तामसं, राजसं च मनोमयं देवमयं च सात्त्विकं प्राप्य । गत्या एवं गमनेन । तेनाहङ्कारेण सह विज्ञानतत्त्वं महत्तत्त्वं याति । ततो गुणानां सन्निरोधो लयो यस्मिंस्तत्प्रधानं याति ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह स्थूल एवं सूक्ष्म भूतों के आवरणों के अतिक्रमण का वर्णन करके शुकदेवजी उसके आवरणभूत अहङ्कार की प्राप्ति के द्वारा महदादि की प्राप्ति का वर्णन करते हैं । वे बतलाते हैं कि वह योगी अहङ्कार को प्राप्त करके विज्ञान को प्राप्त कर लेता है । विविधं कार्यमस्य इस विग्रह के अनुसार विकार्य शब्द अहङ्कार का बोधक हैं । वह अहङ्कार तीन प्रकार का होता है, तामस, राजस एवं सात्त्विक । तामसाहङ्कार से जड भूतसूक्ष्म उत्पन्न होते हैं । राजसाहङ्कारसे बहिर्मुख दश इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है । सात्त्विक अहङ्कार से मन और इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता उत्पन्न होते है । उन सबों का उन्हीं अहङ्कारों में लय हो जाता है ।

भूतसूक्ष्मों तथा इन्द्रियों का लय स्थान तामसाहङ्कार है । राजस मनोमय तथा देवमय सात्त्विक अहङ्कार को प्राप्त करके उसी में लीन हो जाते हैं । गति शब्द गमन का बोधक है । उस अहङ्कार के साथ योगी महत् तत्त्व (विज्ञान तत्त्व) को प्राप्त करता है ! उसके पश्चात् जिसमें सभी गुणों का लय हो जाता है उस प्रधान में वह लीन हो जाता है ।।३०।।

तेनात्मनात्मानमुपैति शान्तमानन्दमानन्दमयोऽवसाने ।
एतां गतिं भागवतीं गतो यः स वै पुनर्नेह विषज्जतेऽङ्ग ।।३१।।

अन्वयः— हे अङ्ग तेन आत्मना आनन्दमयः अवसाने शान्तम् आनन्दम् आत्मानम् उपैति । यः एतां भगवतीं गतिं गतः स वै पुनः इइ न विषज्जते ।।३१।।

अनुवाद— उस प्रधान रूप से आनन्दमय योगी उपाधियों के समाप्त हो जाने पर शान्त (विकार रहित) तथा आनन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर लेता है । जो कोई भी इस भगवन्मयी गति को प्राप्त कर लेता है। वह फिर इस संसार में नहीं आता है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

तेनात्मना प्रधानरूपेणानन्दमयः सन्नुपाधीनामवसाने शान्तमविकृतमानन्दं परमात्मानमुपैति न विषज्जते नावर्तत इत्यर्थः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

उस प्रधान रूप से आनन्दमय स्वयम् उपाधियों के समाप्त हो जाने पर निर्विकार आनन्द स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर लेता है । यह गति भगवन्मयी गति है । इस गति से जाने वाला मनुष्य पुनः इस संसार में नहीं आता है ।।३१।।

एते सृती ते नृप वेदगीते त्वयाऽभिपृष्टे ह सनातने च ।
ये वै पुरा ब्रह्मण आह पृष्ट आराधितो भगवान्वासुदेवः ।।३२।।

अन्वयः— हे नृप एते सृती वेदगीते सनातने च येत्वयाभिपृष्टे ते वर्णिते । ये वै पुरा ब्रह्मण पृष्टः आराधितो भगवान् वासुदेव आह ।।३२।।

अनुवाद— राजन् ! ये दो गतियाँ (सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति) वैदिक और सनातन हैं । प्राचीन काल में पूजन से प्रसन्न हुए भगवान् वासुदेव ब्रह्माजी द्वारा पूछे जाने पर इन दोनों गतियों का वर्णन किए थे ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

सृती मार्गौ, प्रकारावित्यर्थः । हे नृप, (अनपेक्षो) 'निर्भिद्य मूर्धन् विसृजेत्परं गतः' इति या सद्योमुक्तिः सैका सृतिः। 'यदि प्रयास्यन्' इत्यादिना क्रममुक्तिश्च द्वितीया सृतिः । एते सृती वेदेन गीते उक्ते नतु स्वोत्प्रेक्षिते । तत्र 'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते' इति सद्योमुक्तिः । 'तेऽर्चिरभिसंभवन्ति' इत्यादिना क्रममुक्तिश्च वेदेनोक्ता । यद्वा 'न कर्मभिसतां गतिमाप्नुवन्ति- इति दक्षिणमार्गस्यापि सूचितत्वादेते सृती इति द्विवचनम् । त्वयाऽभिपृष्टे 'यच्छ्रोतव्यं' इत्यादिप्रश्नेन, अर्थान्मुक्तिविषये द्वे अपि सृती पृष्टे । 'ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् इति दक्षिण मार्गोऽप्यर्थात्पृष्टः एवं त्वया च ये पृष्टे एते सृती सुखरूपो निर्विघ्नाश्च नास्त्येव ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त ये दोनों मुक्ति के मार्ग हैं, सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति । हे राजन् अनपेक्ष पुरुष ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके शरीर त्याग कर दे, इस तरह से मैंने सद्योमुक्ति नामक एक मार्ग को बतलाया है । **यदि प्रयास्यन्** इत्यादि श्लोकों के द्वारा मैंने क्रम मुक्ति को बतलाया है । यही दूसरा मुक्ति का मार्ग हैं । ये दोनों गतियाँ वेद वर्णित है

न: कल्पित नहीं है । इसी का वर्णन श्रीभगवान् ने गीता के **यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते०** इत्यादि श्लोक के द्वारा सद्यो क्ति का वर्णन किया है । इस श्लोक का अर्थ है कि जिस अवस्था में उपासक के हृदय की सारी कामनायें समाप्त जाती हैं, उसी समय मर्त्य उपासक अमृत हो जाता है और इस लोक में ही ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है । **तेर्चिरिभिसम्भवन्ति'** यह श्रुति क्रम मुक्ति का वर्णन करती है । अथवा **न कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवन्ति** इस वाक्य द्वारा दक्षिण मार्ग (धूमादि मार्ग) के भी सूचित किए जाने के कारण एते सृती यह द्विवचनान्त प्रयोग किया या है । राजन् आपने भी मुझसे जो (यच्छ्रोतव्यम्) इत्यादि प्रश्न के द्वारा जिन दोनों मार्गों को पूछा था उन दोनों ो मैंने कह दिया । आपने **ब्रूहि यद्वा विपर्ययम्** इस वाक्य के द्वारा दक्षिण मार्ग को पूछा था । इस तरह से आपने जिन दोनों मार्गों के विषय में पूछा था वे ये ही दोनों गतियाँ हैं ॥३२॥

ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह । वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत् ॥३३॥

अन्वयः— इह संसृतौ विशतः इतः अन्यः शिवः पन्था नहि यतः भगवति वासुदेवे भक्तियोगो भवेत् ॥३३॥

अनुवाद— इस सृष्टि चक्र में पड़े हुए जीवों के लिए इन दोनों मार्गों से बढ़कर दूसरा कोई भी कल्याणकारी मार्ग नहीं हैं जिससे कि भगवान् वासुदेव में भक्तियोग उत्पन्न हो सके ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

सन्ति संसरतः पुंसो बहवो मोक्षमार्गास्तपोयोगादयः, समीचीनस्त्वयमेवेत्याह नहीति । यतोऽनुष्ठिताद्भक्तियोगो भवेदतोऽन्यः शिवः सुखरूपो निर्विघ्नश्च नास्त्येव ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

इस संसारचक्र में संसरण करने वाले पुरुषों के लिए तपस्या योग इत्यादि अनेक मोक्ष के मार्ग हैं, किन्तु उन सबों में ये ही दोनों मार्ग समीचीन हैं । दूसरा कोई भी मार्ग समीचीन नहीं है जिसका अनुष्ठान करने से भगवान् वासुदेव में भक्तियोग उत्पन्न हो सके । अतएव सुख स्वरूप तथा निर्विघ्न ये ही दोनों मार्ग हैं ॥३३॥

भगवान्ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया । तदध्यवस्यत्कूटस्थो रतिरात्मन्यतो भवेत् ॥३४॥

अन्वयः— कूटस्थो भगवान् ब्रह्मा कार्त्स्न्येन मनीषया अन्वीक्ष्य तद् अध्यवस्यत् यत् आत्मनि रतिर्भवेत् ॥३४॥

अनुवाद— निर्विकार भगवान् ब्रह्माजी ने तीन बार सम्पूर्ण वेदों का अवलोकन करके निश्चय किया जिसके द्वारा श्रीभगवान् में प्रेम हो वही सर्वश्रेष्ठ मार्ग हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

कुत एतदत आह । भगवान्ब्रह्मा । कूटस्थो निर्विकारः । एकाग्रचित्तः सन्नित्यर्थः त्रिस्त्रीन्वारान् कार्त्स्न्येन ब्रह्म वेदमन्वीक्ष्य विचार्य । यत आत्मनि हरौ रतिर्भवेत्तदेव मनीषया अध्यवस्यत् निश्चितवान् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

ये दोनों मार्ग सर्वश्रेष्ठ हैं यह कैसे कहा जा सकता है तो इसके उत्तर में शुकदेवजी कहते हैं **भगवान् ब्रह्म० इत्यादि** अर्थात् ब्रह्माजी निर्विकार हैं । वे ब्रह्माजी एकाग्रचित्त से सम्पूर्ण वेदों का अवलोकन करके विचार किए और निश्चय किए कि जिससे परमात्मा में प्रेमात्मिका भक्ति उत्पन्न हो वही सर्वश्रेष्ठ मार्ग हैं ॥३४॥

भगवान्सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः । दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः ॥३५॥

अन्वयः— भगवान् हरिः सर्वभूतेष स्वात्मना दृश्यैः बुद्ध्यादिभिः अनुमापकैः लक्षणै द्रष्टा लक्षितः ॥३५॥

अनुवाद— भगवान् श्रीहरि ही सम्पूर्ण चराचर भूतों में आत्मा रूप से लक्षित होते हैं, इन दृश्य बुद्धि आदि अनुमापक साधनों में वे द्रष्टा रूप से लक्षित होते हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

नन्वनुभूतेऽर्थे रतिर्भवति, अननुभूते तु भगवति कथं रतिः स्यात्तत्राह । भगवान् लक्षितो दृष्टः कथम् । स्वात्मना क्षेत्रज्ञान्तर्यामितया । कैः दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिः । तदेव द्वेधा दर्शयति । दृश्यमानं जनानां दर्शनं स्वप्रकाशं द्रष्टारं विना न घटत इत्यनुपपत्तिमुखेन लक्षणैः स्वप्रकाशान्तर्यामिलक्षक तथा बुद्ध्यादीनि कर्तृप्रयोज्यानि, करणत्वात् वास्यादिवत् इति व्याप्तिमुखेनानुमापकैः । स्वतन्त्रश्च कर्त्रेत्येवमीश्वरसिद्धिः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि प्रेम उसमें ही होता है जो विषय अनुभूत होता है । परमात्मा का तो अनुभव हुआ नहीं है, अतएव उनमें प्रेम कैसे हो सकता है ? तो इसके उत्तर में कहा गया है कि परमात्मा का तो अपनी आत्मा के द्वारा क्षेत्रज्ञ के अन्तर्यामी रूप से दर्शन होता है । अब प्रश्न है कि उस अन्तर्यामी का साक्षात्कार कैसे होता है? इसका उत्तर है कि दृश्य बुद्धि आदि के द्वारा होता है । वह दो प्रकार से होता है । लोगों को दृश्य पदार्थों का दर्शन स्वप्रकाश द्रष्टा के बिना नहीं हो सकता है, इस प्रकार की अनुपपत्ति होने के कारण स्वप्रकाश अन्तर्यामी का ज्ञान **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** **'यतो वा इमानि'** इत्यादि लक्षण वाक्यों से होता है । तथा इस प्रकार के अनुमानों से भी होता है । बुद्धि आदि का प्रयोजक कोई न कोई कर्ता होगा; क्योंकि बुद्धि आदि तो करण है । वासी (वसूली) आदि के समान । अर्थात् कर्ता के द्वारा प्रयुक्त होने पर जैसे वसूली आदि के द्वारा चौकी आदि का निर्माण होता है, उसी तरह अन्तर्यामी आत्मा के द्वारा भी प्रेरित होकर बुद्धि आदि इन्द्रियाँ दर्शनादि का कार्य करती हैं । कर्त्ता स्वतन्त्र होता है । महर्षि पाणिनि भी कहते हैं । **स्वतन्त्रःकर्ता** क्रिया के करने में जो स्वतंत्र होता है, उसे ही कर्ता कहते हैं । जो करण होता है वह कर्ता के द्वारा की जाने वाली क्रिया में साधकतम होता है । महर्षि पाणिनि ने कहा है **साधकतमं करणम्** । करण सर्वदा कर्ता के अधीन ही रहकर कार्य करता है । इस तरह से ईश्वर की अन्तर्यामी रूप से सिद्धि हो जाती है ।।३५।।

तस्मात्सर्वात्मना राजन्हरिः सर्वत्र सर्वदा । श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ।।३६।।

अन्वयः— तस्मात् हे राजन् हरिः नृणाम् सर्वात्मना, सर्वत्र, सर्वदा श्रोतव्यः कीर्तितव्यः स्मर्तव्यः च ।।३६।।

अनुवाद— अतएव राजन् परीक्षित् मनुष्यों को चाहिए कि वे अपनी सम्पूर्ण शक्ति से सर्वत्र तथा सर्वदा भगवान् श्रीहरि का ही श्रवण, कीर्तन और स्मरण करें ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

यच्छ्रोतव्यमित्यादि प्रश्नोत्तरमुपसंहरति- तस्मादिति ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने यह जो पूछा था कि जो सुनना चाहिए उसी प्रश्न के उत्तर का उपसंहार इस श्लोक के द्वारा शुकदेवजी ने किया है ।।३६।।

पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु संभृतम् ।
पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ।।३७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे पुरुषसंस्थावर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

अन्वयः— सताम् आत्मनः भगवतः ये श्रवण पुटेषु सम्भृतम् कथामृतम् पिबन्ति ते विषय विदूषिताशयं पुनन्ति, तच्चरण सरोरुहान्तिकम् व्रजन्ति ।।३७।।

अनुवाद— सन्त महापुरुषों की आत्मा स्वरूप परमात्मा के कथामृत को अपने कर्णपुट रूपी दोनों में भरकर जो लोग पीते हैं, वे विषयों के द्वारा दूषित हुए अपने अन्तःकरण को पवित्र बना देते हैं, और उसके फलस्वरूप वे श्रीभगवान् के चरण कमलों के सन्निध्य को प्राप्त कर लेते हैं ।।३७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्ध के पुरुषसंस्थान वर्णन नामक दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

भावार्थ दीपिका

श्रवणादिफलमभिनयेनाह-पिबन्तीति । सतामात्मन आत्मत्वेन प्रकाशमानस्य कथैवामृतम् । विषयैर्विदूषितं मलिनीकृतमाशयं पुनन्ति शोधयन्ति । तस्य चरणपद्मान्तिकं श्रीविष्णुपदं व्रजन्ति ।।३७।।

इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

श्रवण आदि के फल को **पिबन्ति इत्यादि** श्लोक के द्वारा अभिनय पूर्वक बतलाते हैं । श्रीभगवान् सन्त पुरुषों की आत्मा रूप से ही प्रकाशित होते हैं । उनकी कथा ही अमृत है । उस कथामृत का जो अपने कानों से श्रवण करते हैं, वे अपने विषयों के दोष से दूषित अन्तःकरण को शुद्ध बना देते हैं । उसके फलस्वरूप श्रीभगवान् के चरण कमलों के सन्निधान को वे प्राप्त कर लेते हैं ।।३७।।

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्ध के द्वितीय अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।२।।

तीसरा अध्याय

कामनाओं के अनुसार विभिन्न देवताओं की उपासना तथा भक्ति की प्रधानता का वर्णन

श्रीशुक उवाच

एवमेतन्निगदितं पृष्टवान्यद्भवान्मम । नृणां यन्म्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम् ॥१॥

अन्वयः— यद् भवान् मम पृष्टवान् यत् मनुष्येषु म्रियमाणानां कर्तव्यम् तत् एवम् एतन्निगदितम् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— आपने मुझसे यह जो पूछा था कि म्रियमाण मनीषी मनुष्यों को क्या करना चाहिए ? उसका उत्तर मैंने विगत अध्याय में दे दिया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तृतीये विष्णुभक्तेषु वैशिष्टयं शृण्वतो मुनेः । भक्त्युद्रेकेण तत्कर्मश्रवणादर ईर्यते ॥१॥ इदानीमन्यदेवताभजनस्यापि पुत्रादिभजनवदेव तुच्छफलत्वेन हेयत्वं वक्तुं पूर्वोक्तमनुवदति-एवमिति । ममेति माम् । कदाचिद्दैवयोगेन मनुष्यत्वं प्राप्तेषु जीवेषु ये मनीषिणस्तेषां तत्रापि ये म्रियमाणास्तेषां विशेषत एवमेतद्धरिकथाश्रवणादिकं निगदितं विहितमित्यर्थः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तीसरे अध्याय में भगवान् विष्णु की भक्ति का वैशिष्ट्य सुनने वाले मुनियों में भक्ति का उद्रेक हो जाता है अतएव श्रीभगवान् की लीलाओं को सुनने से होने वाले आदर का वर्णन किया जाता है ॥१॥

इदानीम्० इस अध्याय में जिस तरह पुत्रों इत्यादि की सेवा तुच्छ है, उसी तरह अन्य देवताओं की भी आराधना त्याज्य है, इस बात को बतलाने के लिए पूर्वोक्त अर्थ का अनुवाद एवम् शब्द से किया गया है। मम शब्द का अर्थ मुझको है ।

भाग्यवशात् मनुष्यत्व प्राप्त जीवों में जो मनीषी हैं तथा मरने ही वाले है, उन जीवों के लिए श्रीहरि की कथा विशेष रूप से विहित है । यह इस श्लोक का अभिप्राय है ॥१॥

ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम् । इन्द्रमिन्द्रियकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतीन् ॥२॥

अन्वयः— ब्रह्मवर्चसकामः ब्रह्मणस्पतिं यजेत, इन्द्रियकामः इन्द्रम्, प्रजाकामः प्रजापतीन् यजेत् ॥२॥

अनुवाद— ब्रह्मवर्चस (ब्रह्मतेज) चाहने वाले को ब्रह्माजी की आराधना करनी चाहिए, इन्द्रियों की पटुता चाहने वाला इन्द्र की पूजा करे, प्रजा (सन्तान) चाहने वाला प्रजापतियों की पूजा करे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मणस्पतिं वेदस्य पतिं ब्रह्माणम् । इन्द्रियपाटवकामस्त्विन्द्रम् । प्रजाकामः प्रजापतीन् दक्षादीन् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणस्पति शब्द वेदों के स्वामी ब्रह्माजी का बोधक है । इन्द्रियों की पटुता चाहने वाला इन्द्र की पूजा करे और सन्तान चाहने वाला दक्ष इत्यादि प्रजापतियों की पूजा करे ॥२॥

देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम् । वसुकामो वसून्रुद्रान् वीर्यकामोऽथ वीर्यवान्॥३॥

अन्वयः— श्रीकामः मायां देवीम्, तेजः कामः विभावसुम्, वसुकामः वसून् वीर्यवान् वीर्यकामः रुद्रान् यजेत् ॥३॥

अनुवाद— श्रीचाहने वाले को दुर्गा देवी की पूजा करनी चाहिए, तेज चाहने वाला अग्नि की पूजा करे, धन चाहने वाला वसुओं की आराधना करे और गला काटने आदि साहसिक कार्य करने वाले को रुद्रों की पूजा करनी चाहिए ॥३॥

भावार्थ दीपिका

मायां दुर्गाम् । विभावसुमग्निम् । वसुकामो धनार्थी । वीर्यं प्रभवस्तत्कामो वीर्यवान्सन् रुद्रान् यजेत् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

माया शब्द से दुर्गादेवी को कहा गया है, विभावसु अग्नि को कहते है । धन चाहने वाले को वसुओं की पूजा करनी चाहिए, पराक्रम चाहने वाले पराक्रमियों को रुद्रों की पूजा करनी चाहिए ॥३॥

अन्नाद्यकामस्त्वदितिं स्वर्गकामोऽदितेः सुतान् ।
विश्वान्देवान्राज्यकामः साध्यान्संसाधको विशाम् ॥४॥

अन्वयः— अन्नाद्यकामः तु अदितिम्, स्वर्गकामः अदितेः सुतान्, राज्यकामः विश्वान्देवान् विशाम् संसाधकः साध्यान् यजेत् ॥४॥

अनुवाद— अन्न इत्यादि चाहने वाले को अदिति की आराधना करनी चाहिए, स्वर्गप्राप्त करना चाहने वाले को देवताओं की आराधना करनी चाहिए, राज्य चाहने वाले को विश्वेदेवों की पूजा करनी चाहिए और प्रजाओं को अनुकूल बनाये रखना चाहने वाले को साध्य देवताओं की आराधना करनी चाहिए ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अन्नाद्यं भोज्यं भक्ष्यं च अदितेः सुतान् द्वादशादित्यान् । विशां देशस्थप्रजानां स्वाधीनतामिच्छन् साध्यान्यजेत् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

भोज्य तथा भक्ष्य पदार्थों को अन्नाद्य शब्द से कहा गया है। भोज्य भक्ष्य पदार्थों का चाहने वाले को अदिति की पूजा करनी चाहिए। स्वर्ग चाहने वाले को अदिति के पुत्र द्वादशादित्यों की आराधना करनी चाहिए। अपने देश की प्रजाओं को अपने अधीन बनाना चाहने वाला राजा साध्य देवताओं की पूजा करें ॥४॥

आयुष्कामोऽश्विनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत्। प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदसी लोकमातरौ ॥५॥

अन्वयः— आयुष्कामः अश्विनौ देवौ, पुष्टिकामः इलाम्, प्रतिष्ठा कामः पुरुषः लोकमातरौ रोदसी यजेत् ॥५॥

अनुवाद— आयु चाहने वाला दोनों अश्विनी कुमारों की पूजा करें; पुष्टि चाहने वाला पृथिवी की तथा प्रतिष्ठा चाहने वाला पुरुष पृथिवी और आकाश की पूजा करे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

इलां पृथ्वीम्। प्रतिष्ठा स्थानादप्रच्युतिः। रोदसी द्यावाभूमी ॥५॥

भाव प्रकाशिका

इला शब्द पृथिवी का वाचक है, अपने स्थान पर बने रहने को प्रतिष्ठा कहते हैं। रोदसी शब्द द्युलोक (अकाश) और भूमि दोनों का वाचक है। द्युलोक और भूमि ये दोनों लोक माताएँ हैं ॥५॥

रूपाभिकामो गन्धर्वान् स्त्रीकामोऽप्सर उर्वशीम्। आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत् परमेष्ठिनम् ॥६॥

अन्वयः— रूपाभिकामः गन्धर्वान्ः स्त्रीकामः अप्सरउर्वशीम्, सर्वेषाम् आधिपत्यकामः परमेष्ठिनाम् यजेत् ॥६॥

अनुवाद— सौन्दर्य प्राप्त करने की इच्छा वाला पुरुष गन्धर्वों का यजन करे; सुन्दर स्त्री प्राप्त करना चाहने वाले को उर्वशी नामक अप्सरा की पूजा करनी चाहिए, और सबों पर स्वामित्व प्राप्त कने की इच्छा वाला ब्रह्माजी का यजन करें ॥६॥

भावार्थ दीपिका

अप्सराश्चासावुर्वशी च ताम् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

अप्सरउर्वशीम् पद का विग्रह है अप्सराश्चा सौ उर्वशी ताम्। इस तरह इसपद में कर्मधारय समास हैं ॥६॥

यज्ञं यजेद्यशस्कामः कोशकामः प्रचेतसम्। विद्याकामस्तु गिरिशं दाम्पत्यार्थं उमां सतीम् ॥७॥

अन्वयः— यशः कामः यज्ञं यजेत्, कोश कामः प्रचेतसम् यजेत विद्याकामः गिरिशं यजेत, दाम्पत्यार्थं सतीम् उमाम् यजेत् ॥७॥

अनुवाद— यश की कामना वालों को यज्ञ पुरुष भगवान् विष्णु की आराधना करनी चाहिए, कोश प्राप्त करने की इच्छा वाले को प्रचेता की आराधना करनी चाहिए, विद्या प्राप्त करने की इच्छा वाले को शिवजी की पूजा करनी चाहिए और पति-पत्नी में प्रेम चाहने वाले को पतिव्रता पार्वती जी की पूजा करनी चाहिए ॥७॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञं यज्ञोपाधिं विष्णुम्। कोशो वसुसंचयः। वसुकाम इत्यत्र धनमात्रमिति भेदः। दाम्पत्यमन्योन्यप्रीतिस्तदेवार्थो यस्य सः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञ शब्द से यज्ञ पुरुष भगवान् विष्णु को कहा गया है। धन संपत्ति के संचय को ही वसु कहते है।

अतएव धन सम्पत्ति के संचय को चाहने वाले को प्रचेता की आराधना करनी चाहिए । यदि कोई कहे कि तीसरे श्लोक में वसु चाहने वाले को वसुओं की पूजा करने की बात कही गयी है और यहाँ कोश चाहने वाले के लिए प्रचेता की आराधना करने की बात कैसे कही गयी हैं ? यह तो पुनरुक्ति है । तो इसका उत्तर है कि वसुशब्द केवल धन का बोधक है और कोश शब्द धनसंपत्ति के संचय को कहा जाता है । अतएव यह दोनों में अन्तर है । दाम्पत्य शब्द का अर्थ है, पति और पत्नी में रहने वाला परस्पर में एक दूसरे के प्रति प्रेम, उसकी प्राप्ति के लिए पार्वती देवी की आराधना करनी चाहिए ।।७।।

धर्मार्थ उत्तमश्लोकं तन्तुं तन्वन्पितॄन्यजेत् । रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्गणान् ।।८।।

अन्वयः— धर्मार्थम्, उत्तमश्लोकम् तन्तुन् तन्वन् पितॄन् रक्षाकामः पुण्यजनान् ओजस्कामः मरुद्गणान् यजेत् ।।८।।

अनुवाद— धर्म की प्राप्ति करना चाहने वाले भगवान् विष्णु की उपासना करे, सन्तान की वृद्धि चाहने वाले को पितृगणों की आराधना करनी चाहिए, बाधाओं से बचने की इच्छा वाले को यक्षों की पूजा करनी चाहिए तथा बल चाहने वाले को मरुद्गणों की आराधना करनी चाहिए ।।८।।

भावार्थ दीपिका

धर्मार्थो धर्मकामः । उत्तमश्लोकोपाधिं विष्णुम् । तन्तुं तन्वन् संतानवृद्धिमन्विच्छन् । रक्षा बाधानिवृत्तिस्तत्कामः । पुण्यजनान्यक्षान् । ओजो बलं तत्कामो मरुद्गणान्देवान् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

धर्म चाहने वाले को उत्तम श्लोक नामक भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए, सन्तान की वृद्धि चाहने वाले को पितरों की पूजा करनी चाहिए । जो होने वाली बाधाओं को दूर करना चाहे वह यक्षों की पूजा करे तथा वल प्राप्त करने की इच्छा वाले को मरुद्गण नामक देवताओं की पूजा करनी चाहिए ।।८।।

राज्यकामो मनून्देवान्निर्ऋतिं त्वभिचरन्यजेत् । कामकामो यजेत्सोममकामः पुरुषं परम् ।।९।।

अन्वयः— राज्यकामः मनून् देवान्, अभिचरन् तु निर्ऋतिम्, काम कामः सोमम्, अकामः परम् पुरुषं यजेत् ।।९।।

अनुवाद— राज्य की प्रप्ति के लिए मन्वन्तरों के अधिपति देवताओं की पूजा करनी चाहिए । अभिचार कर्म करने के लिए निर्ऋति देवता की आराधना करे । भोगों की प्राप्ति के लिए चन्द्रमा की आराधना करे और निष्कामत्व की प्राप्ति के लिए परम पुरुष परमात्मा की आराधना करे ।।९।।

भावार्थ दीपिका

राज्यं राजत्वं तत्कामो मनून्देवान्मन्वन्तरपालान् । राज्ञः कर्म राज्यं तत्कामो विश्वान्देवानिति विशेषः । अभिचरञ्छत्रुमरणमिच्छन् निर्ऋतिं राक्षसम् । कामकामो भोगेच्छुः । आकामो वैराग्यकामः । पुरुषं परं प्रकृतिव्यतिरेकोपाधिमीश्वरम् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

राज्य शब्द से यहाँ राजत्व को कहा गया है । उसकी प्राप्ति के लिए मन्वन्तरों के अधिपति देवताओं की पूजा करनी चाहिए । राजा के कर्म को राज्य कहते हैं उसकी प्राप्ति के लिए विश्वेदेवों की उपासना करे; अतएव यहाँ पर द्विरुक्ति नहीं है । शत्रुओं को मारने के कर्म को अभिचार कर्म कहते हैं । उसको करने के लिए निर्ऋति देवता की पूजा करे । भोगों को चाहने वाला चन्द्रमा की पूजा करे । जो वैराग्य सम्पन्न होना चाहे वह परम पुरुष प्रकृति रूपी उपाधि से रहित पुरुष ईश्वर की आराधना करे ।।९।।

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः । तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥१०॥

अन्वयः— अकामः सर्वकामः वा मोक्षकामःउदारधीः तीव्रेण भक्तियोगेन परम् पुरुषं यजेत् ॥१०॥

अनुवाद— बुद्धिमान पुरुष चाहे निष्काम हो, या सभी प्रकार की वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा वाला हो या मोक्ष चाहने वाला हो वह तीव्र भक्तियोग के द्वारा परम् पुरुष परमात्मा की आराधना करे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अकाम एकान्तभक्तः उक्तानुक्तसर्वकामो वा पुरुषं पूर्णं निरूपाधिम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ अकाम शब्द से ऐकान्तिक भक्त को कहा गया है । सर्वकाम शब्द का अर्थ है कि जो ऊपर बतलायी गयी हैं अथवा नहीं बतलायी गयी हैं, उन सभी कामनाओं से युक्त पुरुष, अथवा जो मोक्ष प्राप्त करना चाहता हो वह पुरुष सभी उपाधियों से रहित पूर्ण पुरुष परमात्मा की आराधना करे ॥१०॥

एतावानेव यजतामिह निःश्रेयसोदयः । भगवत्यचलो भावो यद्भागवतसङ्गतः ॥११॥

अन्वयः— इह यजताम् एतावान् एव निःश्रेयसोदयः यत् भागवतसङ्गतः भगवति अचलः भावः ॥११॥

अनुवाद— इस संसार में जितने भी उपासक हैं, उन सबों का सर्वाधिक हित इसी में है कि भगवद् भक्तों की सङ्गति को प्राप्त करके श्रीभगवान् में निश्चल प्रेमभाव को प्राप्त कर ले ॥११॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वोक्तनानादेवतायजनस्यापि संयोगपृथक्त्वेन भक्तियोगफलत्वमाह–एतावानिति । इन्द्रादीनपि यजतामिह तत्तद्यजनेन भागवतानां संगतो भगवत्यचलो भावो भक्तिर्भवतीति यत् एतावानेव निःश्रेयसस्य परमपुरुषार्थस्योदयो लाभः । अन्यत्तु सर्वं तुच्छमित्यर्थः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

इससे पहले जितने भी देवताओं की आराधना बतलायी गयी है उस सबों का संयोगपृथक्त्वन्याय से भक्तियोग ही फल हैं । इस बात को **एतावानेव० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । इन्द्र इत्यादि देवताओं की आराधना करने से भगवद् भक्तों का सङ्ग मिलता है । उसके फल स्वरूप भगवान् में जो निश्चल भक्ति का उदय होता है, वही परम पुरुषार्थ का उदय रूपी लाभ है । इससे भिन्न सारी बातें तुच्छ (व्यर्थ) हैं ।

संयोग पृथक्त्व का अर्थ है संबन्ध की भिन्नता । भिन्न-भिन्न देवताओं की आराधना करने से भिन्न-भिन्न फलों की सिद्धि ही पृथक्त्व है । विभिन्न देवताओं की आराधना करने से पापों का नाश हो जाता है उसके फलस्वरूप भगवान् के भक्तों की सङ्गति होती है । भागवतों का सङ्ग मिलने से श्रीभगवान् में अविचल भक्ति होती है । इसी को संयोग कहते है । इन दोनों का समुदित रूप ही संयोगपृथक्त्व कहलाता है । उदाहरणार्थ खैर का यूप होना चाहिए । इस सूक्ति के अनुसार खैर का स्तम्भ यज्ञ का अङ्ग है । और **खादिरोवीर्यकामस्य** इस सूक्ति के अनुसार वीर्य चाहने वाले को यज्ञ में खैर की लकड़ी का ही स्तम्भ बनाना चाहिए । इस तरह से वह वीर्य (पराक्रम) प्रदान करने वाला भी है । उसी तरह अनेक देवताओं की आराधना विभिन्न फलों को प्रदान करने वाली होने के साथ ही श्रीभगवान् की भक्ति को भी प्रदान करती है । इस तरह दोनों प्रकार का फल प्रदान करने वाले इन्द्रादि देवताओं की आरााना श्रीहरि की भक्ति की प्राप्ति की कामना से ही करनी चाहिए । इसीलिए गोपियों ने कात्यायनी देवी की आराधना श्रीभगवान् को पति बनाने की कामना से की थी ॥११॥

ज्ञानं यदा प्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्रमात्मप्रसाद उत यत्र गुणेष्वसङ्गः ।
कैवल्यसंमतपथस्त्वथ भक्तियोगः को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ॥१२॥

अन्वयः— यत् आप्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्रं संमतपथः भक्तियोगः, कः निर्वृतः हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ॥१२॥

अनुवाद— जिस भागवत सङ्गति से ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है कि उसके कारण राग आदि गुणों का समूह पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है और उसके पश्चात् अन्तःकरण शुद्ध होने से आनन्द का अनुभव होने लगता है, इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति नहीं रहती है । कैवल्य मोक्ष का सर्व सम्मत मार्ग भक्तियोग हो जाता है । भगवान् की ऐसी कथाओं का चस्का लग जाने पर उससे कौन प्रेम नहीं करेगा ?॥१२॥

भावार्थ दीपिका

भागवतसङ्गत इत्यनेन सूचितां हरिकथारतिं स्तौति-ज्ञानमिति । यत् यासु कथासु ज्ञानं भवति । कीदृशम् । आ सर्वतः प्रतिनिवृत्तमुपरतं गुणोर्मीणां रागादीनां चक्रं समूहो यस्मात्तत् । उत अनन्तरम् । तद्धेतुरात्मप्रसादश्च । यत्र यासु मनःप्रसादहेतुः, गुणेषु विषयेष्वसङ्गो वैराग्यं च । उभयत्रेति पाठे इहामुत्र च गुणेष्वसङ्गः । कैवल्यमित्येव संमतः पन्थाः यो भक्तियोगः । निर्वृतः श्रवणसुखेन । अन्यत्रानिर्वृत इति वा । तासु हरिकथासु को रतिं न कुर्यात् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

ग्यारहवें श्लोक के **भागवत सङ्गतः** के द्वारा सूचित श्रीहरिकथा की प्रशंसा **ज्ञानं यदा** इस श्लोक से करते हैं । श्रीहरि कथाओं से ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है कि उससे सभी प्रकार के रागादि समूह पूर्ण रूप से विनष्ट हो जाते हैं । अन्तःकरण स्वच्छ हो जाता है और विषयों से वैराग्य हो जाता है तथा मुक्ति प्राप्ति के मार्ग स्वरूप श्रीभगवान् में प्रेमा भक्ति की उत्पत्ति हो जाती है उससे तृप्त हुआ कौन ऐसा मानव होगा जो श्रीभगवान् की कथाओं से प्रेम न करे ॥१२॥

शौनक उवाच

इत्यभिव्याहृतं राजा निशम्य भरतर्षभः। किमन्यत्पृष्टवान्भूयो वैयासकिमृषिं कविम् ॥१३॥

अन्वयः— इति अभिव्याहृतं निशम्य भरतर्षभः राजा वैयासिकिम् ऋषिं कविम् किम् अन्यत् भूयःपृष्टवान् ॥१३॥

शौनक महर्षि ने सूतजी से पूछा

अनुवाद— श्रीशुकदेवजी द्वारा कही गयी इन बातों को सुनकर भरतवंशियों में श्रेष्ठ राजा परीक्षित् ने परंब्रह्म का साक्षात् करने वाले शब्दब्रह्मनिष्ठ शुकदेवजी से दूसरी कौन सी बात पूछा ?॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अभिव्याहृतमुक्तम् । ऋषिं परब्रह्मदर्शिनम् । कविं शब्दब्रह्मनिष्णातम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में शुकदेवजी के लिए दो विशेषणों का प्रयोग किया गया है— १. **ऋषिम्** इसका अर्थ है परंब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले और कवि शब्द का अर्थ है वेदविद्यानिष्णात । इस तरह से शुकदेवजी ने उपर्युक्त बातों को राजा परीक्षित् को बतलाया था ॥१३॥

एतच्छुश्रूषतां विद्वन् सूत नोऽर्हसि भाषितुम् । कथा हरिकथोदर्काः सतां स्युः सदसि ध्रुवम् ॥१४॥

अन्वयः— हे विद्वन् सूत एतत् शुश्रूषतां नः भाषितुम् अर्हसि । सतां सदसि हरिकथोदर्काः कथाः ध्रुवम् स्युः ॥१४॥

अनुवाद— हे विज्ञ सूतजी हमलोग इसे सुनना चाहते हैं अतएव इसे आप हमलोगों को सुनाएँ क्योंकि सत् पुरुषों की सभा में उस कथा को तो अवश्य होनी चाहिए जिसका पर्यवसान श्रीहरि की कथाओं में होता हो ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

श्रवणेच्छायां हेतुः-हरिकथा एव उदर्कः उत्तरफलं यासु ताः कथाः सतां भागवतानां सदसि सभायां स्युः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

शौनकादि महर्षियों ने राजा परीक्षित् के द्वारा जिज्ञासित बातों को सुनने की इच्छाका कारण बतलाते हुए कहा कि भागवतों की सभा में तो उन कथाओं को अवश्य कहा जाना चाहिए जिन कथाओं का पर्यवसान श्रीहरि की कथाओं में होता हो । अतएव हमलोग उसे सुनना चाहते हैं ॥१४॥

स वै भागवतो राजा पाण्डवेयो महारथः। बालक्रीडनकैः क्रीडन् कृष्णक्रीडां य आददे॥१५॥

अन्वयः— स वै महारथः पडवेयः राजा भागवतः यः बालकीडनकैः कीडन् कृष्णक्रीडाम् आददे ॥१५॥

अनुवाद— निश्चित रूप से महारथी तथा पाण्डुवंशावतंस राजा परीक्षित् भगवद्भक्त थे, वे बाल्यावस्था में बालकों के खिलौनों द्वारा भी भगवान् श्रीकृष्ण की क्रीडाओं को ही किया करते थे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति-स वा इति द्वाभ्याम् । कृष्णपूजादिरूपां क्रीडां यः स्वीकृतवान् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बात का ही विस्तार से वर्णन **सवै० इत्यादि** दो श्लोकों के द्वारा किया गया है । राजा परीक्षित् महारथी थे । वे पाण्डवों के वंश का संवर्धन करने वाले थे । वे भगवद्भक्त थे क्योंकि बाल्यावस्था में भी जब वे खिलौनों से खेला करते थे तो भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा रूपी खेल खेला करते थे ॥१५॥

वैयासकिश्च भगवान् वासुदेवपरायणः । उरुगायगुणोदाराः सतां स्युर्हि समागमे ॥१६॥

अन्वयः— भगवान् वैयासकिश्च वासुदेव परायणः । सतां समागमे हि उरुगायगुणोदाराः कथाः स्युः ॥१६॥

अनुवाद— भगवत स्वरूप शुकदेवजी भी भगवान् वासुदेव के भक्त थे । ऐसे भागवतों का समागम होने पर तो श्रीभगवान् की महती कथाओं की चर्चा अवश्य हुयी होगी ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

उरुगायस्य गुणैरुदारा महत्यः कथाः स्युः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का एक नाम उरुगाय है । जहाँ पर भगवद् भक्तों का समागम होता है वहाँ पर श्रीभगवान् के गुणों से परिपूर्ण होने के कारण महान् कथाओं का होना स्वाभाविक ही है । अतएव उस कथा को आप हमलोगों को सुनायें ॥१६॥

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ। तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तया॥१७॥

अन्वयः— उत्तम श्लोकवार्तया यत्क्षणः नीतः तस्य ऋते, यन् असौ उद्यन् अस्तं च पुंसाम् आयुः हरति ॥१७॥

अनुवाद— जो समय श्रीभगवान् सम्बन्धी चर्चा के द्वारा व्यतीत होता है, उसके अतिरिक्त समय और आयु को उदय और अस्त होते हुये सूर्य व्यर्थ में ही हरण करते रहते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

किंच वृथैव क्षीयमाणमायुर्हरिकथया सफलं कुर्वित्याशयेनाह त्रिभिः । आयुरिति । असौ सूर्यः उद्यन्नुद्गच्छन्नस्तमदर्शनं च यन् गच्छन् । यत् येन क्षणो नीतस्तस्य आयुः ऋते वर्जयित्वा वृथैव हरति ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

आयुर्हरति० इत्यादि तीन श्लोकों द्वारा बतलाया जा रहा है कि व्यर्थ ही विनष्ट होने वाली आयु को श्रीहरि की कथा के द्वारा ही सफल बनाना चाहिए । ये सूर्य उदय और अस्त होते हुए जिसका समय श्रीहरि की कथा में बितता है उसको छोड़कर दूसरों की आयु का व्यर्थ में ही हरण करते हैं ।।१७।।

तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत । न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपशवोऽपरे ।।१८।।

अन्वयः— तरवः न जीवन्ति किम्, उत भस्त्राः न श्वसन्ति किम्, अपरे ग्राम पशव न खादन्ति, न मेहन्ति किम् ।।१८।।

अनुवाद— वृक्ष जीवित नहीं रहते है क्या ? लुहार की धौंकनी श्वास नहीं लेती है क्या ? ग्रामपशु तथा दूसरे पशु खाने और मैथुनादि क्रियाओं को नहीं करते हैं क्या ?।।१८।।

भावार्थ दीपिका

ननु जीवनमेव तेषामायुषः फलमस्ति तत्राह-तरव इति । ननु तेषां श्वासो नास्ति तर्हि, भस्त्राश्चर्मकोशाः । ननु तासामाहारादिकं नास्ति तत्राह । न खादन्ति नाश्नन्ति, न मेहन्ति रेतःसेकं मैथुनं न कुर्वन्ति किम् । उत अपि । नराकारं पशुं मत्वाह-अपरे इति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि भगवत् कथा पराङ्मुख मनुष्यों की आयु का जीवित रहना ही फल है तो ऐसी स्थिति में उन मनुष्यों में और वृक्षों में क्या अन्तर है ? वे भी जीवित रहते हैं । यदि कहें, कि वृक्ष जीवित तो रहते हैं किन्तु वे मनुष्य क तरह श्वास नहीं लेते हैं तो इसका उत्तर है कि श्वास तो लुहार की भाथी भी लेती है । यदि कहें कि लुहार की भाथी श्वास तो लेती है किन्तु वह आहार आदि को ग्रहण नहीं करती है । तो इसका उत्तर है कि इन नराकृति पशुओं के समान ग्रामपशु भी खाते हैं तथा मैथुनादि क्रियाओं को करते हैं अतएव ये मनुष्य तो उन पशुओं के ही समान हैं ।।१८।।

श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः । न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ।।१९।।

अन्वयः— यत् कर्णपथा जातु गदाग्रजः नाम न उपेतः सः पशुः पुरुषः श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः ।।१९।।

अनुवाद— जिसके कानों में कभी भी भगवान् श्रीकृष्ण की कथा नहीं पड़ी वह मनुष्य कुत्ता, ग्राम सूकर, ऊँट तथा गधे के समान जानने योग्य हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

तदेवाह । श्वादिभिः संस्तुतः सदृशो निरूपितः । यस्य कर्णपथं कदाचिदपि नागतः । स अवज्ञास्पदत्वाच्छ्वभिः, कश्मलविषयासक्तत्वाद्विड्वराहैर्ग्रामसूकरैः, कण्टकवद्दुःखदविषयासक्तत्वादुष्ट्रैः भारवाहित्वात्खरैस्तुल्य इत्यर्थः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही प्रतिपादन करते हुए कहते है जिस व्यक्ति ने अपने कानों से श्रीभगवान् की कथा को नहीं सुना है वह कुत्ते के समान अपमान का पात्र है, निन्दित विषयोपभोग में आसक्त रहने के कारण ग्रामसूकर के समान है, कण्टकपूर्ण दुःख प्रदान करने वाले विषयों में आसक्त रहने के कारण कंटीले पदार्थों को खाने वाले ऊँट के समान तथा पारिवारिक भार वहन करने के कारण भारवाही गधे के समान है ।।१९।।

बिले बतोरुक्रम विक्रमान्ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।
जिह्वाऽसती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः ।।२०।।

अन्वयः— उरुक्रमस्य विक्रमान् न शृण्वतः नरस्य कर्णपुटे बत बिले । हे सूत उरुगायगाथाः न गायती असती जिह्वा दुर्दुरिका इव ।।२०।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की लीलाओं को नहीं सुनने वाले मनुष्य के दोनों कान वस्तुत: बिल के ही समान है तथा हे सूत जी भगवान् श्रीकृष्ण की कथाओं का कभी गायन नहीं करने वाली मनुष्य की दोष दूषित जीभ मेढक की जीभ के समान व्यर्थ है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तस्याङ्गानि च निष्फलानीत्याह- बिले इति पञ्चभिः । बतेति खेदे । न शृण्वतोऽशृण्वतो नरस्य ये कर्णपुटे ते बिले वृथारन्ध्रे । न चेदुपगायति तस्य जिह्वा असती दुष्टा दुर्दुरो भेकस्तदीया जिह्वेव ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

भगवत्कथा पराङ्मुख रहने वाले मनुष्य के अङ्ग भी व्यर्थ हैं, इस बात का प्रतिपादन **बिले बतोरुक्रम० इत्यादि** पाँच श्लोकों से बतलाते हैं । बत पद का प्रयोग खेद के अर्थ में हुआ है । श्रीभगवान् की कथा को कभी नहीं सुनने वाले मनुष्य के दोनों कान बिल के समान हैं तथा भगवन्नामोचारण नहीं करने वाली उसकी दोष दूषित जीभ बरसाती मेढक के जीभ के समान व्यर्थ हैं ॥२०॥

भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम् ।
शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥२१॥

अन्वयः— पट्टकिरीटजुष्टं मुकुन्दं अपि यत् उत्तमाङ्गं न नमेत् तत् परं भारः, वा यत् लसत्काञ्चनकङ्कणौ हरेः सपर्यां न कुरुतः करौ शावौ ॥२१॥

अनुवाद— रेशमी वस्त्र तथा मुकुट से युक्त भी वह शिर अत्यन्त भार स्वरूप है जो भगवान् के समक्ष प्रणाम करने के लिए नहीं झुकता है तथा सुवर्ण निर्मित कङ्कणों से युक्त वे दोनों हाथ मूर्दे के हाथ के समान हैं जो श्रीभगवान् की सेवा में नहीं लगते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

पट्टवस्त्रोष्णीषेण किरीटेन च जुष्टमपि शिरो यदि न नमेत्तर्हि केवलं भार एव । शवो मृतकस्तत्करतुल्यौ । लसती काञ्चनकङ्कणे ययोस्तौ । अप्यर्थे वाशब्दः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

रेशमी वस्त्र से निर्मित पगड़ी और मुकुट से युक्त वह शिर केवल भार स्वरूप है यदि वह भगवान् मुकुन्द को प्रणाम करने के लिए नहीं झुकता है । जिन हाथों से श्रीभगवान् की सेवा नहीं की जाती हैं, वे सुवर्ण निर्मित कङ्कणों से भूषित हाथ भी मूर्दे के हाथ के समान व्यर्थ हैं । इस श्लोक का वा शब्द अप्यर्थक है ॥२१॥

बर्हायिते ते नयने नराणां लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ।
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥२२॥

अन्वयः— नराणां ये नेत्रे विष्णोः लिङ्गानि न निरीक्षतः ते बर्हायिते, नृणां यौ पादौ हरेः क्षेत्राणि न व्रजतः तौ द्रुमजन्म भाजौ ॥२२॥

अनुवाद— मनुष्यों के जो नेत्र श्रीभगवान् की मूर्तियों का दर्शन नहीं करते हैं वे नेत्र मयूर पिच्छ में विद्यमान नेत्रों के समान व्यर्थ हैं तथा मनुष्यों के जो पैर श्रीभगवान के क्षेत्रों की यात्रा नहीं करते हैं वे दोनों पैर वृक्ष होने के लायक हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

ये नयने विष्णोर्मूर्तीर्न निरीक्षेते ते बर्हायिते मयूरपिच्छनेत्रतुल्ये । द्रुमवज्जन्म भजत इति तथा । वृक्षमूलतुल्यावित्यर्थः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

जिन नेत्रों के द्वारा भगवान् की मूर्तियों का दर्शन नहीं किया जाता है, वे नेत्र उसी तरह से व्यर्थ हैं जिस तरह मयूर पिच्छ में रहने वाले नेत्र व्यर्थ हैं । तथा मनुष्यों के वे पैर भी वृक्ष ही होने लायक है जिन पैरों से भगवान् के क्षेत्रों की यात्रा नहीं की जाती है । वे पैर वृक्ष की जड़ के समान हैं ॥२२॥

जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु ।
श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम् ॥२३॥

अन्वयः— यस्तु मर्त्यः भागवताङ्घ्रिरेणुं न जातु अभिलभेत सः जीवन् शवः, यस्तु मनुजः विष्णुपद्याः तुलस्याः गन्धं न वेद सः श्वसन शवः ॥२३॥

अनुवाद— जिस मनुष्य ने भगवद् भक्तों के चरणों की धूलि को कभी भी अपने शिर पर नहीं चढ़ाया वह जीवित मुर्दा है तथा जिसने कभी भी श्रीभगवान् के चरणों पर चढ़ी हुयी तुलसी की गन्ध को नहीं सूंघा वह श्वास लेता हुआ मुर्दा है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

नाभिलभेत अभितो न स्पृशेन्न धारयेत् । श्रीविष्णुपद्याः श्रीविष्णुपदलग्रायाः । न वेदेति अवघ्राय नाभिनन्देदित्यर्थः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

जिसने जीवन में श्रीभगवान् के भक्तों के चरणों की धूलि को अपने शिर पर चढ़ाने के लिए नहीं प्राप्त किया वह जीते जी मुर्दा है तथा जिसने श्रीभगवान् के चरणों पर चढ़ी हुयी तुलसी को सूंघकर उसकी सराहना कभी नहीं की वह श्वास लेते हुए मुर्दे के समान है ॥२३॥

तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ।
न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥२४॥

अन्वयः— बत तदिदं हृदयं अश्मसारं यद्गृह्यमाणैः हरिनामधेयैः न विक्रियेत । यदा विकारः तदा नेत्रे जलम् गात्ररुहेषु हर्षः ॥२४॥

अनुवाद— निश्चित रूप से वह हृदय पत्थर के समान अत्यन्त कठोर है जो उच्चारण किए जाने वाले श्रीहरि के नामों को सुनकर पिघल नहीं जाता है । जब हरिनामों को सुनकर हृदय में विकार उत्पन्न होता है उस समय आँखों में आँसू भर जाते हैं तथा रोओं में रोमाञ्च हो जाता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अश्मवत् सारो बलं काठिन्यं यस्य । विक्रियालक्षणमाह-अथेति । गात्ररुहेषु रोमसु हर्ष उद्गमः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

अश्म पत्थर को कहते हैं उसके समान कठोर को अश्मसार कहा जाता है । भगवन् नाम संकीर्तन को सुनकर जिस हृदय में विकार नहीं उत्पन्न होता है, वह हृदय पत्थर के समान कठोर है । जब हृदय में विकार उत्पन्न हो जाता है तो आँखों में अश्रुजल भर जाता है और रोमाञ्च हो जाता है । रोंगटे खड़े हो जाते हैं ॥२४॥

अथाभिधेह्यङ्ग मनोनुकूलं प्रभाषसे भागवतप्रधानः ।
यदाह वैयासकिरात्मविद्याविशारदो नृपतिं साधु पृष्टः ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अन्वयः— अथ हे अङ्ग अनुकूलं प्रभाषसे साधुपृष्टः भागवतप्रधानः आत्मविद्याविशारदः वैयासकिः यत् नृपतिं आह तत् अभिधेहि ॥२५॥

अनुवाद— हे सूतजी आप अत्यन्त अनुकूल बातें सुनाते हैं । राजा परीक्षित् द्वारा अच्छी तरह से पूछे जाने पर आत्मविद्या में पारङ्गत श्रीशुकदेवजी ने राजा को जो कहा उसे आप हमें सुनायें ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध के तृतीय अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

भावार्थ दीपिका

यस्मादभक्तस्य सर्वमेतद्व्यर्थम् । मनसोऽनुकूलं प्रियं च ब्रूषे । अथ अतः साधु पृष्टः सन् वैयासकिर्नृपतिं प्रति यदाह तदभिधेहीति ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

चूकि भगवद् भक्ति से रहित मनुष्यों के ये सारे देह तथा इन्द्रियों की पटुता आदि व्यर्थ है । और आप हमलोगों के अनुकूल बातें कहते हैं । अतएव राजा के द्वारा नियमानुसार प्रश्न किए जाने पर श्रीशुकदेवजी ने राजा को जो कुछ भी सुनाया उन सारी बातों को आप हमलोगों को सुनाइये ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्भागवतमहापुराण के द्वितीयस्कन्ध के तृतीय अध्याय की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।३।।

चौथा अध्याय

राजा परीक्षित् का सृष्टि विषयक प्रश्न और श्रीशुकदेवजी द्वारा कथा का आरम्भ

सूत उवाच

वैयासकेरिति वचस्तत्वनिश्चयमात्मनः । उपधार्य मतिं कृष्ण औत्तरेयः सतीं व्यधात् ॥१॥

अन्वयः— वैयासकेः इति आत्मनः तत्त्वनिश्चयम् वचः उपधार्य औतरेयः कृष्णे सतीं मतिं व्यधात् ॥१॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— श्रीशुकदेवजी के भगवत्तत्त्वनिश्चयात्मक इस वाणी को अपने मन में धारण करके उत्तरा के पुत्र राजा परीक्षित् ने भगवान् श्रीकृष्ण में अपनी शुद्ध बुद्धि को लगा दी ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तुर्ये परीक्षिता पृष्टं सृष्ट्यादि हरिचेष्टितम् । शुकेन ब्रह्मतत्पुत्रसंवादेनोपवर्ण्यते ॥१॥ राज्ञ प्रश्नं कथयितुं तस्य प्राक्तनीं स्थितिमाह चतुर्भिः । वैयासकेः शुकस्य इति एवं भूतमात्मनस्तत्त्वस्य निश्चयो यस्मात् तद्वचः उपधार्य आकलय्य सतीं कृष्ण एव सेव्यो नान्य इत्येवं भूताम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इस चौथे अध्याय में राजा परीक्षित् के द्वारा सृष्टि तथा श्रीहरि की चेष्टाओं के विषय में पूछे गये प्रश्न का उत्तर शुकदेवजी ने ब्रह्माजी तथा उनके पुत्र नारदजी के संवाद क माध्यम से दिया है ।।१।।

राजा के प्रश्न का वर्णन करने के लिए उसके पहले की स्थिति का वर्णन **वैयासकेः इत्यादि** चार श्लोकों के द्वारा किया गया है । श्रीशुकदेवजी के इस प्रकार से आत्मतत्त्व की निश्चायिका वाणी का विचार करके राजा ने भगवान् श्रीकृष्ण की ही सेवा करनी चाहिए दूसरे किसी की नहीं, इस प्रकार की अपनी शुद्धबुद्धि को भगवान् श्रीकृष्ण में लगा दिया ।।१।।

आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु । राज्ये चाविकले नित्यं विरूढां ममतां जहौ ।।२।।

अन्वयः— आत्म-जाया-सुत-आगार-पशु-दविण-बन्धुषु अविकले राज्ये च नित्यं विरूढां ममतां जहौ ।।२।।

अनुवाद— राजा ने शरीर, पत्नीं, पुत्र, गृह, पशु, सम्पत्ति तथा बान्धवों में एवं निष्कण्टक राज्य में जो नित्य के अभयास के कारण ममता सुदृढ हो गयी थी उसका त्याग कर दिया ।।२।।

भावार्थ दीपिका

आत्मा देहः । पशवो गजादयः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

आत्मा शब्द से शरीर को कहा गया है और पशु शब्द से हाथी घोड़े इत्यादि कहे गये हैं । इन सभी वस्तुओं में जो राजा की ममता अत्यन्त सुदृढ हो गयी थी उसका राजा ने शुकदेवजी की बाणी को सुनकर त्याग कर दिया ।।२।।

पप्रच्छ चेममेवार्थं यन्मां पृच्छथ सत्तमाः । कृष्णानुभावश्रवणे श्रद्दधानो महामनाः ।।३।।

अन्वयः— हे सत्तमाः कृष्णानुभावश्रवणे श्रद्दधानाः महामनाः हे सत्तमाः यन्मां पृच्छथ इमम् एव अर्थं प्रपच्छ ।

अनुवाद—हे श्रेष्ठ महर्षियों ! भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव श्रवण में श्रद्धा करने वाले महामनस्वी राजा परीक्षित् उसी प्रश्न को पूछा जिसे आपलोग मुझसे पूछ रहे हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

इममेवार्थं हरिलीलालक्षणम् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

अर्थात् जिस तरह से आपलोग मुझ से श्रीहरि की लीला के विषय में पूछते हैं उसी तरह से राजा ने भी शुकदेवजी से श्रीहरि की लीला के ही विषय में पूछा ।।३।।

संस्थां विज्ञाय संन्यस्य कर्म त्रैवर्गिकं च यत् । वासुदेवे भगवति आत्मभावं दृढं गतः ।।४।।

अन्वयः— संस्थां विज्ञाय त्रैवर्गिकं यत् कर्म तत् संन्यस्य, भगवति वासुदेवे आत्मभावं दृढं गतः ।।४।।

अनुवाद— राजा अपनी मृत्यु के विषय में जानकर धर्म, अर्थ एवं काम सम्बन्धी संपूर्ण कर्मों से संन्यास लेकर भगवान् श्रीकृष्ण में आत्मभाव को पूर्ण रूप से प्राप्त हो गये थे ऐसे राजा श्रीशुकदेवजी से पूछे ।।४।।

भावार्थ दीपिका

संस्थां मृत्युम् । त्रैवर्गिकं धर्मार्थकामप्रधानम् । संन्यस्य त्यक्त्वा आत्मभावं परमप्रेम्णा भगवदात्मत्वं गतः प्राप्तः सन् पप्रच्छ ।।४।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् इस बात को जान गये की मेरी मृत्यु सात दिन में हो जाने वाली है। इसीलिए उन्होंने धर्म, अर्थ एवं काम सम्बन्धी सभी कर्मों से संन्यास ले लिया। वे अत्यन्त प्रेम पूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण में आत्मभाव को प्राप्त हो गये थे। इस प्रकार के राजा ने शुकदेवजी से पूछा ॥४॥

राजोवाच

समीचीनं वचो ब्रह्मन्सर्वज्ञस्य तवानघ । तमो विशीर्यते मह्यं हरेः कथयतः कथाम् ॥५॥

अन्वयः— हे अनघ ! ब्रह्मन् सर्वज्ञस्य तव वचः समीचीनम्, हरेः कथाः कथयतः तव मह्यम् तमः विशीर्यते ॥५॥

राजा ने कहा

अनुवाद— हे निष्पाप ब्रह्मन् ! आप सर्वज्ञ हैं, आपकी वाणी समीचीन है (सुन्दर है)। आपके द्वारा श्रीहरि की कथा कहे जाने के कारण मेरा अज्ञान दूर हो रहा है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

मह्यं मम तमोऽज्ञानं विशीर्यते नश्यति तव कथयतः सतः। अतः समीचीनम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

आप जो श्रीभगवान् की कथा कह रहे हैं, उसको सुनकर मेरा अज्ञान विनष्ट हो रहा है, अतएव आपकी वाणी अत्यन्त सुन्दर है ॥५॥

भूय एव विवित्सामि भगवानात्ममायया । यथेदं सृजते विश्वं दुर्विभाव्यमधीश्वरैः ॥६॥

अन्वयः— आत्ममायया भगवान् अधीश्वरैः दुर्विभाव्यं इदं विश्वं यथा सृजते तदिदम् अहं भूयः विवित्सामि ॥६॥

अनुवाद— श्रीभगवान् अपनी माया के द्वारा ब्रह्मा आदि देवताओं के द्वारा भी नहीं जानने योग्य इस सम्पूर्ण जगत् की रचना कैसे करते है ? इस बात को मैं पुनः जानना चाहता हूँ ॥६॥

भावार्थ दीपिका

पुनश्च वेदितुमिच्छामि। इदं दुर्विभाव्यमवितर्क्यं विश्वं यथा सृजति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

मैं पुनः यह जानना चाहता हूँ कि श्रीभगवान् अपनी माया के द्वारा इस अवितर्क्य जगत् की सृष्टि कैसे करते हैं ॥६॥

यथा गोपायति विभुर्यथा संयच्छते पुनः। यां यां शक्तिमुपाश्रित्य पुरुशक्तिः परः पुमान्॥
आत्मानं क्रीडयन्क्रीडन् करोति विकरोति च ॥७॥

अन्वयः— विभुः यथा गोपायति पुनःयथा संयच्छते। यां यां शक्तिम् उपाश्रित्य पुरुशक्तिः परः पुमान्, आत्मानं क्रीडयन् क्रीडन् करोति विकरोति च ॥७॥

अनुवाद— वे व्यापक परमात्मा किस तरह से जगत् की रक्षा करते हैं और अन्त में वे किस प्रकार से इसका संहार भी कर देते हैं। अनेक शक्तियों से सम्पन्न परम-पुरुष किस-किस शक्ति को अपनाकर स्वयं क्रीडा करते हैं ? और ब्रह्मादि रूप वाले जगत् को क्रीडा कराते हैं, वे किस तरह से इस जगत् को उत्पन्न करते हैं और अन्त में इसे विनष्ट कर देते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

गोपायति पालयति । संयच्छते संहरते । पुरुशक्तिर्बहुशक्तिमान् । क्रीडन् यथा करोति । आत्मानं ब्रह्मादिरूपिणं क्रीडयन् विकरोति विविधं करोति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने पूछा कि परमात्मा किस प्रकार से संसार की रक्षा करते हैं ? और किस प्रकार से इस जगत् का संहार करते हैं ? किन-किन शक्तियों को अपना कर परमात्मा इस जगत् को खिलौना बना देते हैं और ब्रह्मा आदि रूप से उसके साथ वे किस तरह से अपने को अनुरञ्चित करते है ? वे किस तरह से इस जगत् का निर्माण करके इसका अनेक रूपों में विस्तार करते हैं ?।।७।।

नूनं भगवतो ब्रह्मन् हरेरद्भुतकर्मणः । दुर्विभाव्यमिवाभाति कविभिश्चापि चेष्टितम् ॥८॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! अद्भुत कर्मणः भगवतः हरेः चेष्टितम् कविभिः अपि दुर्विभाव्यं इव आभाति ।।८।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! अद्भुत कर्मों को करने वाले भगवान् श्रीहरि की चेष्टाएँ निश्चित रूप से बड़े-बड़े विज्ञ पुरुषों के लिए भी दुर्विभाव्य के समान है । अर्थात् वे प्रयास करके भी उसे नहीं समझ सकते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।८।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रीभगवान् को अद्भुत कर्म करने वाला बतलाकर यह कहा गया है कि श्रीभगवान् की चेष्टाओं को बड़े-बड़े विज्ञ पुरुष भी नहीं जान सकते हैं तो औरों की कौन कहें ?।।८।।

यथा गुणांस्तु प्रकृतेर्युगपत्क्रमशोऽपि वा । बिभर्ति भूरिशस्त्वेकः कुर्वन्कर्माणि जन्मभिः ॥९॥

अन्वयः— एकः पुरुष रूपेण युगपत् प्रकृतेः गुणः भूरिशः विभर्ति वा जन्माभिः कर्माणि कुर्वन् क्रमशः अपि विभर्ति ।।९।।

अनुवाद— एक ही परमात्मा पुरुष रूप से प्रकृति के अनेक गुणों को धारण करते हैं अथवा ब्रह्मा आदि अवतार रूप से जन्मों के द्वारा कर्मों को करते हुए क्रमशः प्रकृति के गुणों को धारण करते हैं ।।९।।

भावार्थ दीपिका

एकः पुरुषरूपेण युगपत्, जन्मभिर्ब्रह्माद्यवतारैः क्रमशो वा यथा प्रकृतेर्गुणान्गृह्णाति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा तो एक ही हैं वे अनेक कर्मों को करते हैं । तदर्थ वे अकेले पुरुष रूप से ही प्रकृति के अनेक गुणों को धारण करते हैं, अथवा ब्रह्मा आदि अवतार रूपी जन्मों के द्वारा क्रमशः प्रकृति के गुणों को धारण करते हैं ?।।९।।

विचिकित्सितमेतन्मे ब्रवीतु भगवान्यथा । शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परस्मिंश्च भवान्खलु ॥१०॥

अन्वयः— भवान् खलु शाब्दे परस्मिन् च ब्रह्मणि निष्णातः अतएव भगवान् यथा मे एतत् विचकित्सितम् ब्रवीतु ।।१०।।

अनुवाद— राजा ने कहा आप वेद तथा परब्रह्म दोनों के पूर्ण से ज्ञाता हैं, अतएव आप मेरे इन संदेहों को यथोचित रूप से दूर करें ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

विचिकित्सितं संदिग्धम् । शाब्दे ब्रह्मणि विचारेण निष्णातः परस्मिन्ननुभवेन ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

विचकित्सतसं देहास्पद विषय को कहते हैं । राजा ने शुकदेवजी से निवेदन किया कि हे भगवन् आप तो शब्दब्रह्म तथा परब्रह्म दोनों के पूर्ण रूप से ज्ञाता हैं । फलतः आप मेरे इन संदहों को यथोचित रूप से दूर करें ॥१०॥

सूत उवाच

इत्युपामन्त्रितो राज्ञा गुणानुकथने हरेः । हृषीकेशमनुस्मृत्य प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे ॥११॥

अन्वयः— इति राज्ञा हरेः गुणानुकथने उपामन्त्रितः हृषीकेशम् अनुस्मृत्य प्रतिवक्तुम् उपचक्रमे ॥११॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह राजा परीक्षित् के द्वारा श्रीहरि के गुणों का वर्णन करने के लिए प्रार्थना किए जाने पर भगवान् हृषीकेश का स्मरण करके श्रीशुकदेवजी ने उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

उपामन्त्रितः प्रार्थितः । प्रचक्रमे देवतागुरुनमस्कारादिरूपमुपक्रमं कृतवानित्यर्थः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

उपामन्त्रितः पद का अर्थ है प्रार्थित । अर्थात् उपर्युक्त प्रकार से राजा के द्वारा श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन करने के लिए राजा के प्रार्थना करने पर श्रीशुकदेवजी ने उनके प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥११॥

श्रीशुक उवाच

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ।
गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥१२॥

अन्वयः— सदुदभवस्थितिनिरोधलीलया, गृहीतशक्तित्रितयाय, देहिनामन्तर्भवाय, अनुपलक्ष्य वर्त्मने भूयसे, परस्मै पुरुषाथ नमः ॥१२॥

अनुवाद— संसार की, सृष्टि, स्थिति और संहार रूप लीला करने के लिए जो परमात्मा सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीन शक्तियों को धारण करके विष्णु, ब्रह्मा और शङ्कर का रूप धारण करते हैं, अन्तर्यामी स्वरूप होने के कारण जिनकी प्राप्ति के मार्ग को जाना नहीं जा सकता है, ऐसे निःसीम महिमा सम्पन्न परम पुरुष को नमस्कार है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह त्रयोदशभिः । परस्मै सर्वोत्तमाय । तत्र हेतुः-भूयसे अपरिमितमहिम्ने । तद्दर्शयति । सतः प्रपञ्चस्य उद्भवादिषु निमित्तभूता या लीला तया गृहीतं ब्रह्मादिरूपेण रज आदि शक्तित्रितयं येन तस्मै । अन्तर्भवाय अन्तर्यामिणे । अतएव सर्वान्तरत्वादनुपलक्ष्यं वर्त्म यस्य ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को नमस्कार करते हुए शुकदेवजी अपने प्रवचन का उपक्रम तेरह श्लोकं में करते हैं । वे कहते है कि परमात्मा परंपुरुष है । अर्थात् वे ही सर्वश्रेष्ठ पुरुष हैं । भूयसे कहकर उन्होंने श्रीभगवान् को अनन्त महिमा सम्पन्न बतलाया । वे भगवान् इस जगत् की सृष्टि, स्थिति (रक्षा) तथा संहार लीला करने के लिए करते है । अर्थात् जगत् के जन्मादि का मुख्य प्रयोजन भगवान् की लीला है । वे इस कार्य को करने के लिए, सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण इन तीन शक्तियों को अपनाकर विष्णु, ब्रह्मा और शङ्कर रूप हो जाते हैं । वे सभी शरीरधारियों

के शरीर में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं । अतएव उनकी प्राप्ति के मार्ग को आसानी से नहीं जाना जा सकता है । ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है ।।१२।।

भूयो नमः सद्वृजिनच्छिदेऽसतामसंभवायाखिलसत्त्वमूर्तये ।
पुंसां पुनः पारमहंस्य आश्रमे व्यवस्थितानामनुमृग्यदाशुषे ।।१३।।

अन्वयः— भूयः सद्वृजिनच्छिदे, असतामसंभवाय, अखिलसत्त्वमूर्तये, पारमहंस्य आश्रमे व्यवस्थितानाम् पुंसां अनुमृग्यदाशुषे नमः ।।१३।।

अनुवाद— सत् पुरुषों के दुःख को दूर करने वाले, दुष्टों की समृद्धि को रोक देने वाले, सम्पूर्ण जीव शरीरक तथा पारमहंस्य आश्रम में पुरुषों को उनके अभीष्ट पदार्थ को प्रदान करने वाले श्रीभगवान् को पुनः नमस्कार हैं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

विचित्रफलदातृत्वमनुस्मरन् प्रणमति । भूयः पुनश्च नमः । सतां धर्मवर्तिनां वृजिनच्छिदे दुःखहन्त्रे । असतामधर्मशीलानामसंभवायानुद्भवहेतवे । अखिलसत्त्वमूर्तये, तत्तद्देवतादिरूपेण तत्तत्फलदायेत्यर्थः । समग्रसत्त्वमूर्तये इति वा । पुनरिति पूर्वोक्तोभयवैलक्षण्यमाह । पारमहंस्ये प्रत्यङ्निष्ठारूपे आश्रमे व्यवस्थितानां पुंसामनुमृग्यमेतन्निरसनेन पुनःपुनर्मृग्यं यदात्मतत्त्वं तस्य दाशुषे दात्रे ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् विचित्र फलों को प्रदान करने वाले हैं इस बात का स्मरण करके पुनः इस श्लोक से शुकदेवजी उनको नमस्कार करते हैं । वे भगवान् धार्मिक पुरुषों के कष्ट को दूर करते हैं, तथा जो अधार्मिक मनुष्य हैं उनकी होने वाली समृद्धि को रोक देने का काम करते हैं । सम्पूर्ण जगत् उनकी ही मूर्ति (शरीर) हैं । वे उन जीवों को विभिन्न देवताओं का रूप धारण करके उन सभी जीवों को फल प्रदान करते हैं । पुनः उन दोनों प्रकारों से विलक्षणता बतलाते हुए कहते हैं, पारमहंस्य आश्रम में आत्मानिष्ठा स्वरूप है । उस आश्रम को अपनाने वाले संन्यस्त पुरुषों के अभिप्रेत अर्थ को प्रदान करने वाले हैं ऐसे भगवान् को वे पुनः नमस्कार करते हैं ।।१३।।

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ।।१४।।

अन्वयः— सात्वतां ऋषभाय नमो नमस्ते अस्तु, कुयोगिनाम् विदूरकाष्ठाय निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि रंस्यते नमः ।।१४।।

अनुवाद— भगवद् भक्तों का पालन करने वाले श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार है । भगवद् भक्ति विहीन जीवों को जिनकी दिशा भी अत्यन्त दूर है अर्थात् उन लोगों के लिए श्रीभगवान् दुर्ज्ञेय हैं । श्रीभगवान् के समान ही कोई नहीं है, अतएव उनसे महान् होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है । ऐसे ऐश्वर्य से सम्पन्न अपने धाम में विहार करने वाले श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

सात्त्वतां भक्तानामृषभाय पालकाय । कुयोगिनां भक्तिहीनानां विदूरा काष्ठा दिगपि यस्य । दुर्ज्ञेयायेत्यर्थः । तदेवं वैषम्यप्रतीतावपि निर्दोषत्वायाचिन्त्यमैश्वर्यमाह । निरस्तं साम्यमतिशयश्च यस्य यदपेक्षया अन्यस्य साम्यमतिशयश्च नास्ति, तेन राधसा ऐश्वर्येण स्वधामनि स्वरूपे ब्रह्मणि रममाणाय ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् भक्तों का पालन करते हैं तथा जो लोग भक्ति की भावना से विहीन हैं, ऐसे जीवों के लिए उनकी दिशा भी बहुत दूर है । अर्थात् उन जीवों के लिए श्रीभगवान् दुर्ज्ञेय हैं । श्रीभगवान् का ऐसा ऐश्वर्य है कि उनके

समान ही कोई नहीं है तो फिर उनसे अधिक ऐश्वर्यशाली कोई कैसे हो सकता है ? इस प्रकार के ऐश्वर्य से सम्पन्न श्रीभगवान् अपने धाम में सदा रमण किया करते हैं । ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है ।।१४।।

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ।।१५।।

अन्वयः— यत् कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं, यच्छ्रवणं यदर्हणम् लोकस्य कल्मषं सद्यः विधुनोति, तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ।।१५।।

अनुवाद— जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण और पूजन जीवों के पापों को शीघ्र ही विनष्ट कर देता है उन पुण्यकीर्ति श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार हैं ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

सर्वसाधनेभ्यो भक्तेः श्रैष्ठ्यमनुस्मरन्प्रणमति । यत्कीर्तनमिति द्वाभ्याम् । अर्हणं पूजनम् । सुभद्रं मङ्गलं श्रवो यशो यस्य तस्मै ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

सभी साधनों की अपेक्षा भक्ति की श्रेष्ठता का स्मरण करते हुए श्रीशुकदेवजी पुनः नमस्कार **यत् कीर्तनम्० इत्यादि** दो श्लोकों से करते हैं । अर्हण पूजन को कहते है । श्रीभगवान् की लीलाएँ मङ्गलमय हैं अतएव वे सुभद्रश्रवा हैं ।।१५।।

विचक्षणा यच्चरणोपसादनात्सङ्गं व्युदस्योभयतोऽन्तरात्मनः ।
विन्दन्ति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमास्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ।।१६।।

अन्वयः— विचक्षणाः यच्चरणोपसादनात् उभयतः सङ्गं व्युदस्य गतक्लमाः ते ब्रह्मगतिं विन्दति तस्मै सुभदश्रवसे नमो नमः ।।१६।।

अनुवाद— विवेकी पुरुष जिनके चरणों की शरणागति करके लोक और परलोक दोनों में होने वाली आसक्ति का परित्याग करके विना किसी परिश्रम के ही ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेते हैं, उन मङ्गलमय यश वाले श्रीभगवान् को बारम्बार नमस्कार है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

विचक्षणा विवकिनो यस्य चरणयोरुपसादनादुपसत्तेर्भजनादन्तरात्मनो मनस उभयत्रेह च परत्र च सङ्गं व्युदस्य निरस्य। गतक्लमाः प्रयासरहिताः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

विवेकी पुरुष जिन श्रीभगवान् के चरणों की शरणागति करके लोक एवं परलोक दोनों में होने वाली आसक्ति को अपनी अन्तरात्मा से निकालकर बिना किसी प्रयास के ही ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेते हैं उन मङ्गलमय यश वाले भगवान् को बार-बार नमस्कार है ।।१६।।

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ।।१७।।

अन्वयः— तपस्विनः, दानपराः, यशस्विनः, मनस्विनः मन्त्रविदः सुमङ्गलाः, यदर्पणं विना क्षेमं न विन्दन्ति तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ।।१७।।

अनुवाद— बड़े-बड़े तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी मन्त्रवेत्ता तथा सदाचार परायण भी अपने तप, दान आदि को श्रीभगवान् को समर्पित किए बिना कल्याण नहीं प्राप्त करते हैं, उन श्रीभगवान् को बार-बार नमस्कार है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

भक्तिशून्यानां सर्वसाधनवैफल्यं दर्शयन्नमति-तपस्विन इति । मनस्विनो योगिनः । सुमङ्गलाः सदाचाराः । यस्मिंस्तपआद्यर्पणं विना । सुभद्रश्रवसे इत्यस्यावृत्तिर्यशःश्रवणादेः प्राधान्यज्ञापनाय ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

जो लोग भगवान् की भक्ति से रहित है, उन लोगों के द्वारा साधन रूप से अपनाये गये तप, दान, मनस्विता, यश, मन्त्र तथा सदाचार तब तक कल्याणप्रद नहीं होते हैं, जब तक कि उन साधनों को श्रीभगवान् को समर्पित नहीं कर दिया जाय । सुभद्रश्रवसे इस पद को बार-बार कहने का अभिप्राय है श्रीभगवान् का यश ही प्रधान हैं ॥१७॥

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवनाः खसादयः ।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥१८॥

अन्वयः— किरात-हूण-आन्ध्र-पुलिन्द-पुल्कस, आभीरकङ्काः यवनाः खसादयः अन्ये च ये पापाः यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥१८॥

अनुवाद— किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, यवन, तथा खस जाति के मनुष्य तथा दूसरे भी पापी मनुष्य जिन श्रीभगवान के शरणागत जीवों के शरणागत हो जाने पर शुद्ध हो जाते हैं, उन सर्वशक्तिमान श्रीभगवान् को बार-बार नमस्कार है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

भक्तेः परमशुद्धिहेतुत्वं दर्शयन्नाह । किरातादयो ये पापजातयोऽन्ये च ये कर्मतः पापरूपास्ते यदुपाश्रया भागवतास्तदाश्रयाः सन्तः शुध्यन्ति । असंभावनाशङ्कां परिहरति, प्रभविष्णवे प्रभवनशीलायेति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

भक्ति परम शुद्धि का साधन है इस बात को **किरात्त० इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया गया है । किरात इत्यादि जो पापमयी जातियाँ हैं तथा जो पाप कर्म करने वाले लोग हैं, वे भी भगवद् भक्तों के शरणागत हो जाने पर शुद्ध हो जाते हैं । यदि कहें कि यह कैसे हो सकता है ? तो इसका उत्तर है कि श्रीभगवान् प्रभविष्णु हैं, वे असम्भव को भी सम्भव बना देते हैं, ऐसे भगवान् को नमस्कार है ।

किरात इत्यादि जातियों का परिचय इस प्रकार है । शबर पुरुष से पर्णशबरी जाति की स्त्री के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को वैदेहक कहते हैं । वैदेहक पुरुष से पुल्कसी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न को हूण कहते हैं । वैदेहक के पुत्र को आन्ध्र कहते हैं । निष्ठय पुरुष से किराती स्त्री के गर्म से उत्पन्न पुत्र को पुलिन्द कहते हैं । शूद्र पुरुष से ब्राह्मणी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को चाण्डाल कहते है । चाण्डाल पुरुष के पुत्रः को पुल्कस कहते हैं । ब्राह्मण पुरुष से वैश्यानारी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को अम्बष्ठ कहते हैं । अम्बष्ठ की अविवाहिता पुत्री के गर्भ से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न पुत्र को आभीर कहते हैं । कर्परा को कङ्क कहा जाता है । राजा से वैश्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र को यवन कहते हैं । तुरुष्कों की ही एक जाति शक जाति है ॥१८॥

स एष आत्मात्मवतामधीश्वरस्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः ।
गतव्यलीकैरजशंकरादिभिर्वितर्क्यलिङ्गो भगवान्प्रसीदताम् ॥१९॥

अन्वयः— अत्मवताम् आत्मा अधीश्वरः त्रयीमयः धर्ममयः, तपोमयः, गतव्यलीकैः अजशङ्करादिभिः वितर्क्य लिङ्गः स एष भगवान् प्रसीदताम् ॥१९॥

अनुवाद— जो भगवान् ज्ञानियों की आत्मा है, भक्तों के स्वामी हैं, कर्मकाण्डियों के लिए वेदमूर्ति हैं, धार्मिकों के लिए धर्ममूर्ति हैं और तपस्वियों के लिए तपोमय हैं । ब्रह्मा तथा शिव आदि बड़े-बड़े देवता निष्कपटभाव से उन श्रीभगवान् का चिन्तन करते हैं वे ही श्रीभगवान् मुझ पर प्रसन्न हो जायँ ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

सर्वोपास्यत्वमनुस्मरन् प्रार्थयते । स एष आत्मवतां धीराणामात्मा आत्मत्वेनोपास्य इत्यर्थः । त्रयीमयत्वादिविशेषणैस्तत्तन्मार्गेणोपास्यत्वं विवक्षितम् । गतव्यलीकैर्निष्कपटैर्भक्तैर्वितर्क्यमत्याश्चर्येण वीक्षणीयं लिङ्गं मूर्तिर्यस्य स प्रसीदतु ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

वे श्रीभगवान् सबों के लिए उपास्य हैं, इस बात का स्मरण करते हुए श्रीशुकदेवजी उनकी प्रार्थना करते हैं कि वे भगवान् आत्मज्ञानियों के लिए आत्मा रूप से उपास्य हैं । **त्रयीमयत्व** इत्यादि विशेषणों के द्वारा विभिन्न मार्गावलम्बियों के लिए उनकी उपास्यता बतलायी गयी है । वे भक्तों के द्वारा स्वामी रूप से उपास्य हैं, वैदिकों के लिए वेदमूर्ति के रूप से उपास्य हैं । धार्मिकों द्वारा धर्ममूर्ति रूप से तथा तपस्वयों द्वारा तपोमूर्ति रूप से उपास्य हैं । जो भगवान् के निष्कपट भक्त हैं उन ब्रह्माजी तथा शङ्करजी द्वारा उनकी मूर्ति अत्यन्त आश्चर्यमयी रूप से अवलोकनीय है । ऐसे भगवान् प्रसन्न हों ॥१९॥

श्रियःपतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियांपतिर्लोकपतिर्धरापतिः ।
पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्त्वतां प्रसीदतां मे भगवान्सतां पतिः ॥२०॥

अन्वयः— श्रियः पतिः, यज्ञपतिः प्रजापतिः, धियां पतिः, लोकपतिः, धरापतिः अन्धकवृष्णिसात्त्वताम् पतिः गतिः च सतां पतिः भगवान् मे प्रसीदताम् ॥२०॥

अनुवाद— जो भगवान् लक्ष्मीजी के पति पालक हैं, यज्ञों के भोक्ता (स्वामी) हैं, प्रजाओं के पालक हैं बुद्धि के स्वामी हैं, लोकों के स्वामी है तथा पृथिवी के स्वामी हैं जो भगवान् अन्धकवंशियों वृष्णिवंशियों एवं यदुवंशियों के स्वामी और आश्रय हैं वे भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

सर्वपालकत्वमनुस्मरन्नाह- श्रिय इति । गतिश्च सर्वापत्सु रक्षकः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

पति शब्द पालक और स्वामी दोनों का समान रूप से बोधक है । श्रीभगवान् के सर्वपालकत्व का स्मरण करते हुए शुकदेवजी श्रीभगवान् की प्रार्थना करते हैं । जो भगवान् लक्ष्मीजी, यज्ञ, प्रजाएँ, बुद्धि, सम्पूर्ण जगत् पृथिवी, तथा साधु पुरुष इन सबों के एक मात्र रक्षक हैं । वे ही अन्धकवंशियों, वृष्णिवंशियों तथा यदुवंशियों के पालक तथा सभी अवस्थाओं में रक्षक हैं वे ही भगवान् श्रीकृष्ण मुझ पर प्रसन्न हों ॥२०॥

यदङ्घ्रयनुध्यानसमाधिधौतया धियाऽनुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मनः ।
वदन्ति चैतत्कवयो यथारुचं स मे मुकुन्दो भगवान्प्रसीदताम् ॥२१॥

अन्वयः— विवेकिनः यदंघ्र्यनुध्यानसमाधिधौतया धिया आत्मनः हि तत्त्वम् अनुपश्यन्ति कवयः च यथारुचम् एतत् वदन्ति सः भगवान् मुकुन्दः मे प्रसीदताम् ।।२१।।

अनुवाद— विवेकी पुरुष जिन श्रीभगवान् की चिन्तन पूर्ण समाधि से निर्मल बनी हुयी बुद्धि के द्वारा आत्म तत्त्व का साक्षात्कार करते हैं । ब्रह्मज्ञानी पुरुष जिनका अपनी-अपनी रुचि के अनुसार वर्णन करते हैं, वे ही भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले श्रीभगवान मुझ पर प्रसन्न हो जायँ ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञानप्रदत्वमनुस्मरन्नाह-यदङ्घ्रीति द्वाभ्याम् । यस्याङ्घ्र्योरनुध्यानमेव समाधिस्तेन धौतया शोधितया । यथारुचं रुच्यनुसारेण सगुणनिर्गुणादिभेदैः । यद्वा रुक् प्रतिभा । यथामतीत्यर्थः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ही ज्ञान प्रदान करने वाले हैं, इस बात का स्मरण करते हुए शुकदेवजी दो श्लोकों द्वारा कहते हैं कि जिन श्रीभगवान् के चरणों का निरन्तर चिन्तन ही समाधि है । उससे श्रीभगवान् के चरणों का चिन्तन करने वाले की बुद्धि निर्मल हो जाती है । उन श्रीभगवान् का साक्षात्कार करने के पश्चात् भिन्न-भिन्न विवेकी पुरुष अपनी रूचि के अनुसार ही श्रीभगवान् का वर्णन करते हैं, वे ही भगवान् हम पर प्रसन्न हो जायँ ॥२१॥

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताऽजस्य सतीं स्मृतिं हृदि ।
स्वलक्षणा प्रादुरभूत्किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ॥२२॥

अन्वयः— पुरा अजस्य हृदि सतीं स्मृतिं वितन्वता येन प्रचेदिता सरस्वती किल आस्यतः स्वलक्षणा प्रादुरभूत , सः ऋषीणाम् ऋषभः मे प्रसीदताम् ।।२२।।

अनुवाद— कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्माजी के हृदय में सृष्टि विषयिणी स्मृति को जागृत करने के लिए जिन परमात्मा के द्वारा प्रेरित सरस्वती ब्रह्माजी के मुख से वेदाङ्गों के साथ वेद के रूप में प्रकट हुयी ऐसे ज्ञान प्रदान करने वालों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् मुझपर प्रसन्न होएँ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

किंच पुरा कल्पादावजस्य हृदि सतीं सृष्टिविषयां स्मृतिं वितन्वता येन प्रचोदिता सती सरस्वती तस्य मुखतः किल प्रादुर्भूता स्वानि लक्षणानि शिक्षाद्युक्तानि यस्याः सा । ऋषीणां ज्ञानप्रदानामृषभः श्रेष्ठः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्माजी के हृदय में सृष्टि विषयिणी स्मृति को उत्पन्न करने के लिए जिन श्रीभगवान् के द्वारा प्रेरित सरस्वती ब्रह्माजी के मुख से शिक्षा इत्यादि वेदाङ्गों के साथ वेदों के रूप में प्रकट हुयी ऐसे ज्ञान प्रदान करने वालों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् मुझ पर प्रसन्न हो जायँ ॥२२॥

भूतैर्महद्भिर्य इमाः पुरा विभुर्निर्माय शेते यदमूषु पूरुषः ।
भुंक्ते गुणान् षोडश षोडशात्मकः सोऽलंकृषीष्ट भगवान्वचांसि मे ॥२३॥

अन्वयः— यः विभुः महद्भिः भूतैः इमाः निर्माय अमूषु यत् पुरुषः शेते षोडशात्मकः षोडश गुणान् भुंक्ते सः भगवान् मे वचांसि अलङ्कृषीष्ट ।।२३।।

अनुवाद— जो परमात्मा पञ्चमहाभूतों से इन शरीरों का निर्माण करके उन सबों में जीव रूप से शयन करते हैं और (पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पाञ्च कर्मेन्द्रियाँ, पाञ्च प्राण और मन इन) सोलह कलाओं से युक्त होकर इनके द्वारा सोलह विषयों का भोग करते है, वे सर्वभूतमय भगवान् मेरी वाणी को अलंकृत करें ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं स्ववाचं श्रोतृजनाह्लादिनीं शृङ्गारकरुणादिशोभां प्रार्थयते-भूतैरिति । स मे वचांस्यलंकृषीष्ट अलंकरोतु । अन्यस्य वचसामन्येनालंकारासंभवमाशङ्क्य तस्यान्तर्यामितामाविष्करोति । यो महद्भिर्भूतैरिमाः पुरः शरीराणि सृष्ट्वा अमूषु पूर्ष्वन्तर्यामितया शेते वसति । अत्र पुरुषसमाख्यां प्रमाणयति । यद्यस्मात्पूरुष इति । अतएव य एकादशेन्द्रियपञ्चभूतरूपान्षोडशगुणान्कला भुङ्क्ते प्रकाशयति पालयतीति वा । तदा त्वात्मनेपदमार्षम् । अत्र हेतुः-यतः षोडशानामात्मा चेतयिता । स्वार्थे कः । नत्वत्र जीवत्वमुच्यते प्रार्थनाविरोधात् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

भूतैमर्हद्भिः इत्यादि इस श्लोक से शुकदेवजी श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वे उनकी वाणी को श्रोताओं को आह्लादित करने वाली तथा शृङ्गार तथा करुण आदि रसों आदि की शोभा से सम्पन्न बना दें । वे भगवान् मेरी वाणी को अलंकृत कर दें । दूसरे की वाणी को दूसरा कोई कैसे अलंकृत कर सकता है; इस तरह की आशङ्का करके वे श्रीभगवान् के अन्तर्यामित्व को ही अविष्कृत करते हैं । जो परमात्मा महाभूतों के द्वारा इन शरीरों का निर्माण करते हैं और इन शरीरों में अन्तर्यामी रूप से निवास करते है । जीव के इस पुरुष नाम को प्रमाणित करते हुए कहते है कि वे पूरुष हैं । अतएव ग्यारह इन्द्रियाँ तथा पञ्चभूत रूप सोलह कलाओं का वे भोग करते है । अथवा प्रकाशित करते हैं या पालन करते है । किन्तु ऐसा अर्थ करने पर **भुंक्ते** पद में आत्मनेपद का प्रयोग आर्ष मानना होगा । उसका कारण है कि वे सोलह कलाओं को ज्ञान युक्त बना देते है । आत्मा शब्द में स्वार्थ में ही कप्रत्यय हुआ है । यहाँ पर जीवत्व को इसलिए नहीं कहा गया है कि उसको वैसा मानने पर प्रार्थना का विरोध होगा ॥२३॥

नमस्तस्मै भगवते व्यासायामिततेजसे । पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम् ॥२४॥

अन्वयः— सौम्याः ज्ञानमयं यन्मुखाम्बुरुहासवम् पपुःतस्मै अमिततेजसे भगवते व्यासाय नमः ॥२४॥

अनुवाद— सन्त पुरुषों ने जिनके मुख रूपी कमल के पराग रूपी ज्ञानमय आसव का पान किया उन निःसीम तेजस्वी भगवान् वासुदेव के अवतार व्यासजी को मेरा नमस्कार है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

श्रीव्यासं नमस्करोति-नम इति । सौम्या भक्ताः । यस्य मुखाम्बुरुहे आसवो मकरन्दस्तम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

नम० इत्यादि श्लोक के द्वारा वे श्रीव्यासजी को नमस्कार करते हैं । सौम्य शब्द से यहाँ पर भक्तों को कहा गया है । **यन्मुखाम्बुरुहासवम्** का विग्रह है जिनका मुख रूपी कमल में विद्यमान पराग रूपी आसव उसका पान भक्तों ने किया ॥२४॥

एतदेवात्मभू राजन्नारदाय विपृच्छते । वेदगर्भोऽभ्यधात्साक्षाद्यदाह हरिरात्मनः ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुरणे द्वितीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अन्वयः— राजन् विपृच्छते नारदाय वेदगर्भः आत्मभूः एतद`वाभ्यधात् यत् साक्षात् हरिः आत्मनः आह ॥२५॥

अनुवाद— हे राजन् नारदजी के द्वारा पूछे जाने पर वेदगर्भ ब्रह्माजी ने उनको वही बतलाया था जिसको साक्षात् श्रीहरि ने ब्रह्माजी को बतलाया था, उसी को मैं आपको बतला रहा हूँ ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं प्रश्नोत्तरतया ब्रह्मनारदसंवादं प्रस्तौति- एतदिति । उत्पत्तिसमय एव वेदा गर्भे यस्य सः । साक्षाद्धरिर्यदाह ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थ दीपिकाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

एतत्० इत्यादि इस श्लोक के द्वारा प्रश्नोत्तर रूप में ब्रह्मा एवं नारदजी के संवाद को प्रस्तुत करते हैं। ब्रह्माजी को वेदगर्भ इसलिए कहा जाता है कि उत्पत्ति काल में ही उनके भीतर वेद विद्यमान थे ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के चौथे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।४।।

* * *

पाँचवाँ अध्याय

सृष्टि का वर्णन

नारद उवाच

देवदेव नमस्तेऽस्तु भूतभावन पूर्वज । तद्विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनम् ॥१॥

अन्वयः— हे भूतभावनपूर्वज देवदेव ते नमः अस्तु । यत् ज्ञानम् आत्मतत्त्वनिदर्शनम् तत् विजानीहि ॥१॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— हे भूतभावन तथा सबों द्वारा पूजित ! हे देवताओं में श्रेष्ठ ब्रह्माजी आप मुझको वह ज्ञान प्रदान करें जिस ज्ञान के द्वारा आत्मतत्त्व का पूर्ण रूप से ज्ञान हो जाता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चमे नारदेनाथ पृष्टः सृष्ट्यादि वक्त्यजः । हरेर्लीलां विराट्सृष्टिं कालकर्मादिशक्तिभिः ॥१॥ नारदाय विपृच्छते वेदगर्भोऽभ्यधादित्युक्तं, तत्र नारदप्रश्नमाह–देवदेवेति । हे भूतभावन, अतएव सर्वेषां पूर्वज अनादे, ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानं तत्साधनं यत्तद्विजानीहि । विशेषेण ज्ञापयेत्यर्थः । कथंभूतम् । आत्मतत्त्वं नितरां दृश्यते येन तत् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

पाँचवे अध्याय में नारदजी के द्वारा पूछे जाने पर ब्रह्माजी ने सृष्टि का वर्णन किया । साथ ही उन्होंने श्रीहरि की लीला का वर्णन तथा काल कर्म आदि शक्तियों से युक्त विराट् की सृष्टि का वर्णन किया ॥१॥

नारदजी के द्वारा पूछे जाने पर वेदगर्भ ब्रह्माजी ने इस तरह से कहा— नारदजी के प्रश्न का वर्णन करते हुए वे कहते है देव-देव इत्यादि । अर्थात् हे भूतभावन देवताओं में श्रेष्ठ अतएव सबों के पूर्वज आप हैं, क्योंकि आप अनादि हैं । आत्मतत्त्व के ज्ञान के साधनभूत ज्ञान का आप उपदेश दें । **विजानीहि** पद का अर्थ है कि विशेष रूप से उपदेश दें । वह ज्ञान जिस ज्ञान के द्वारा आत्मा अच्छी तरह से दिखायी देती है ॥१॥

यद्रूपं यदधिष्ठानं यतः सृष्टमिदं प्रभो । यत्संस्थं यत्परं यच्च तत्तत्त्वं वद तत्त्वतः ॥२॥

अन्वयः— प्रभो इदं जगत् यद्रूपम्, यदधिष्ठानम् यतः सृष्टम्, यत्संस्थम् यत परम् तत् तत्त्वं तत्त्वतः वद ॥२॥

अनुवाद— हे प्रभो ! इस जगत् जिसके द्वारा प्रकाशित है, इसका जो आधार है, जिसके द्वारा निर्मित है, जिसमें लीन होता है तथा जिसके अधीन रहता है, तथा यदात्मक है, उस तत्त्व को आप तात्त्विक रूप से बतलायें ॥२॥

भावार्थ दीपिका

उपलक्षणभूतं विश्वमेवात्मज्ञानसाधनमतस्तद्विशेषं पृच्छति । यद्रूपं येन रूप्यते प्रकाश्यते । यदधिष्ठानं यदाश्रयम् । यतो येन सृष्टम् । यत्संस्थं यस्मिँल्लीयते । यत्परं यदधीनम् । यच्चेति यदात्मकम् । स्वतः सत्कारणतो वेत्यर्थः । तस्य तत्त्वं याथार्थ्यं तत्त्वतो वद ॥२॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्म का उपलक्षण स्वरूप यह जगत् ही है आत्मज्ञान का साधन है । अतएव इस जगत् की विशेषताओं के विषय में नारदजी पूछते हैं । यद्रूपम् का अर्थ है कि यह जगत् जिसके द्वारा प्रकाशित होता है । उस तत्त्व को आप मुझे बतलायें । इस जगत् का जो आधार है तथा इस जगत् के जो स्रष्टा हैं, उनको मुझे आप बतलायें। प्रलयकाल के आने पर यह जगत् जिसमें लीन हो जाता है यह जिसके अधीन हैं तथा यह यदात्मक है, उस तत्त्व को आप मुझे यथार्थ रूप से बतलायें ॥२॥

सर्वं ह्येतद्भवान्वेद भूतभव्यभवत्प्रभुः । करामलकवद्विश्वं विज्ञानावसितं तव ॥३॥

अन्वयः— एतत् हि सर्वं भवान् वेद भवान् भूतभव्यभवत्प्रभुः विज्ञानावसितं विश्वं तव करामलकवत् ॥३॥

अनुवाद— आप इन सारी बातों को जानते हैं, क्योंकि आप भूतकालिक भविष्यत्कालिक तथा वर्तमान कालिक सभी वस्तुओं के स्वामी हैं । विशिष्ट ज्ञान के द्वारा निश्चित किया गया यह सम्पूर्ण जगत् आपको करामलकवत् प्रत्यक्ष है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

न जानामीति न वक्तव्यमित्याह-सर्वमिति । भूतं जातं, भव्यं जनिष्यमाणं, भवत् जायमानं, तेषां प्रभुर्यतः, अतो विशिष्टेन ज्ञानेनावसितं निश्चितम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

आप यह नहीं कह सकते हैं कि मैं इसे नहीं जानता हूँ क्योंकि आप भूतकालिक, भविष्यत्कालिक एवं वर्तमानकालिक सभी वस्तुओं के स्वामी हैं अतएव विशिष्ट ज्ञान के द्वारा आपने इसको निश्चित किया है ॥३॥

यद्विज्ञानो यदाधारो यत्परस्त्वं यदात्मकः । एकः सृजसि भूतानि भूतैरेवात्ममायया ॥४॥

अन्वयः— त्वं यद्विज्ञानः यदाधारः, यत्परः यदात्मकः एकः त्वम् आत्ममायया भूतैरेव भूतानि सृजसि ॥४॥

अनुवाद— आपको यह ज्ञान किससे मिला ? आप किसके आधार पर स्थित हैं ? आपका स्वामी कौन हैं? आपका स्वरूप क्या है ? अकेले ही आप अपनी माया से पञ्चभूतों के द्वारा भूतों की सृष्टि कर लेते हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

आस्तामिदम्, आदौ तावत्त्वामेव कथयेत्याह । यतो विज्ञानं यस्य । कस्तव विज्ञानद इत्यर्थः । यदाधारः कस्तवाश्रयः यत्परो यदधीनः । यदात्मको यत्स्वरूपः । मम तु त्वमेव स्वतन्त्रः परमेश्वर इति बुद्धिः । तव तपश्चरणेन तु पराशङ्कया पृच्छामीत्याह सार्धैश्चतुर्भिः । एकोऽसहायः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

इन सारी बातों को रहने दें सर्वप्रथम आप अपने ही विषय में बतलायें कि आपका यह जो ज्ञान है उस ज्ञान को आपको किसने प्रदान किया ? आपका आश्रय कौन है ? आप किसके अधीन हैं ? आपका रूप क्या है ? मेरे मतानुसार तो आप ही स्वतंत्र परमेश्वर हैं; किन्तु आप तपस्या करते हैं इसके कारण मुझे शङ्का है, अतएव ही आपसे मैं इन सारी बातों को साढे चार श्लकों से पूछता हूँ । आप बिना किसी सहायक के ही सृष्टि का काम करते हैं ।।४।।

आत्मन्भावयसे तानि न पराभावयन्स्वयम् । आत्मशक्तिमवष्टभ्य ऊर्णनाभिरिवाक्लमः ।।५।।

अन्वयः— आत्मशक्तिम् आवष्टभ्य अक्लमः उर्णनाभिः इव तानि स्वयम् पराभावयन् आत्मनि भावयसे ।।५।।

अनुवाद— जिस तरह मकड़ी बिना किसी प्रयास के ही अपने मुख से जाल निकालकर उसमें क्रीड़ा करती हैं, उसी तरह आप भी बिना किसी प्रयास के ही दीन जीवों को अपने में ही उत्पन्न करते हैं किन्तु आपमें किसी प्रकार का विकार नहीं आता है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनि भावयसे पालयसि स्वयमेव पराभवमप्रापयन् अक्लमः श्रमरहितः । यथोर्णनाभिरात्मन एव शक्तिमवष्टभ्य सृजति तद्वत् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

आप इन जीवों को अपने में ही प्रलीन करते हैं किन्तु आपको इस कार्य को करनें में किसी भी प्रकार के श्रम का अनुभव नहीं होता है । जिस तरह उर्णनाभि मकड़ी अपनी ही शक्ति से जाल की रचना कर देती है, और उसमें उसको थोड़ा सा भी श्रम नहीं होता है ।।५।।

नाहं वेद परं ह्यस्मिन्नापरं न समं विभो । नामरूपगुणैर्भाव्यं सदसत्किंचिदन्यतः ।।६।।

अन्वयः— हे विभो ! अस्मिन् नामरूपगुणैः भाव्यं सत् असत् परं अपरं समं वा किञ्चित् अन्यतः अहं न वेद ।।६।।

अनुवाद— हे प्रभो ! इस जगत् मे नाम रूप और गुणों से जानने योग्य सत् असत्, उत्तम, अधम या सम किसी भी ऐसी वस्तु को नहीं जानता हूँ जो आपसे भिन्न किसी दूसरे से उत्पन्न हो ।।६।।

भावार्थ दीपिका

तस्मादहं त्वस्मिन्विश्वस्मिन्परमुत्तममपरमधमं समं मध्यमं च । तत्रापि नाम मनुष्यादि, रूपं द्विपदत्वादि, गुणः शुक्लत्वादिस्तैर्भाव्यं साध्यं, तत्रापि सदसत्स्थूलं सूक्ष्मं च किंचिदप्यन्यतो न वेद किंतु त्वत्त एव सर्व भवतीति मन्ये ।।६।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने कहा अतएव मैं इस सम्पूर्ण जगत् में परम (उत्तम) अपर (अधम) सम (मध्यम) जो नाम के द्वारा जानने योग्य मनुष्य आदि रूप से जानने योग्य द्विपदत्व आदि तथा गुण रूप से जानने योग्य शुक्लत्व आदि इन सबों के द्वारा साध्य उनमें सत् असत् स्थूल अथवा सूक्ष्म ऐसी किसी भी वस्तु को मैं नहीं जानता हूँ जो आपको छोड़कर किसी दूसरे से उत्पन्न हो । यह सम्पूर्ण जगत् आपसे ही उत्पन्न होता है ।।६।।

स भवानचरद्धोरं यत्परः सुसमाहितः । तेन खेदयसे नस्त्वं पराशङ्कां प्रयच्छसि ।।७।।

अन्वयः— स भवान् सुसमाहितः घोरम् तप अचरत् तेन नः खेदयसे, परां शङ्कां च प्रयच्छसि ।।७।।

अनुवाद— इस तरह से सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाले आपने पूर्ण रूप से समाहित होकर घोर तपस्या

की उसके कारण मुझे यह शङ्का होती है, कि क्या आपसे भी बढ़कर कोई है क्या ? जिसको प्रसन्न करने के लिए आपने तपस्या की ।।७।।

भावार्थ दीपिका

स तथाविधोऽपि भवांस्तपोऽचरदिति यत्तेन नोऽस्मान्खेदयसे मोहयसि । यतः पराशङ्कामीश्वरान्तराशङ्कां प्रयच्छसि ।।७।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के सबों की सृष्टि करने वाला भी होकर आपने जो घोर तपस्या की उससे हमको मोह के साथ-साथ यह शङ्का होती है कि आपसे भी बड़ा कोई है क्या जिसको प्रसन्न करने के लिए आपने यह तपस्या की ?।।७।।

एतन्मे पृच्छतः सर्वं सर्वज्ञ सकलेश्वर । विजानीहि यथैवेदमहं बुध्येऽनुशासितः ।।८।।

अन्वयः— हे सर्वज्ञ, हे सकलेश्वर,'पृच्छतः मे एतत् सर्वं विजानीहि यथैव अहम् इदम् अनुशासितः बुध्ये ।।८।।

अनुवाद— हे सर्वज्ञ, हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् ब्रह्माजी मैंने जो आप से पूछा है इन सारी बातों को मुझे आप इस तरह से बतलायें कि आपके द्वारा उपदिष्ट होकर मैं इन सारी बातों को जान सकूँ ।।८।।

भावार्थ दीपिका

यथैवाहं त्वयाऽनुशासितः शिक्षितः सन्बुध्ये बुध्येयं तथा विजानीहि विशेषेण ज्ञापय ।।८।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की कि आप इन सारी बातों को मुझे इस तरह से बतलायें कि आपके द्वारा उपदिष्ट होकर इन सारी बातों को मैं जान सकूँ ।।८।।

ब्रह्मोवाच

सम्यक्कारुणिकस्येदं वत्स ते विचिकित्सितम् । यदहं चोदितः सौम्य परधर्मप्रदर्शने ।।९।।

अन्वयः— हे वत्स ! कारुणिकस्य ते इदं विचिकित्सितम् सम्यक् यतः हे सौम्य ! अहं परधर्मप्रदर्शनं चोदितः ।।९।।

अनुवाद— हे वत्स ! तुम करुणा करने वाले हो अतएव तुम्हारा यह प्रश्न बहुत ही अच्छा है क्योंकि इस प्रश्न के द्वारा प्रेरित होकर भगवद् धर्म का निरूपण करने में मैं प्रवृत्त हो रहा हूँ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

प्रश्नमभिनन्दति । वत्स हे पुत्र, तवेदं विचिकित्सितं संदेहः तत्पूर्वकः प्रश्नोऽयं सम्यगित्यर्थः । यतः कारुणिकस्य तवायं प्रश्नः। अत्र हेतुः-यत् परधर्मप्रदर्शने भगवद्वीर्यप्रकाशने प्रवर्तितोऽस्मि । अतस्त्वं जिज्ञासुरपि मयि कृपामेव कृतवानित्यर्थः।।९।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रश्न की प्रशंसा करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि तुम्हारा यह प्रश्न बहुत अच्छा है, क्योंकि यह तुम करुणा करने वाले का प्रश्न है । इस प्रश्न के द्वारा मैं श्रीभगवान् के पराक्रम को ही प्रकाशित करने में प्रवृत्त हो रहा हूँ । फलतः तुमने जिज्ञासु होने के साथ ही मुझ पर कृपा भी किया है ।।९।।

नानृतं तव तच्चापि यथा मां प्रब्रवीषि भो । अविज्ञाय परं मत्त एतावत्त्वं यतो हि मे ।।१०।।

अन्वयः— भोः तव तत् च अपि अनृतं न यथा मां प्रब्रवीषि । यतः मतः परम् अविज्ञाय मोह एतावत्त्वम् ।।१०।।

अनुवाद— नारद ! आपने जो मेरे विषय में जो कुछ कहा है वह भी मिथ्या नहीं है, क्योंकि जब तक मुझसे महान् तत्त्व परमात्मा का ज्ञान नहीं होता है, तब तक तो मैं सम्पूर्ण जगत् का ईश्वर हूँ हीं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

ननु त्वमेव भगवानित्युक्तं मया 'एकः सृजसि भूतानि' इत्यादिना । सत्यम्, यथा मामीश्वरत्वेन प्रभाषसे तदपि तव भाषणं नात्यन्तमनृतम् । यतः कारणादेतावत्प्रभावस्य भाव एतावत्त्वं मे अस्ति, किंतु मत्तः परमीश्वरमविज्ञाय ब्रूषे । अतः सादृश्यात्तवेयं भ्रान्तिर्न तु बुद्धिपूर्वमनृतमित्यर्थः । यत ईश्वरान्ममैतावत्त्वं तमविज्ञायेति वान्वयः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

यदि तुम यह कहो कि मैंने आपको यह जो कहा है कि आप ही भगवान् हैं । आप ही अकेले जगत् की सृष्टि करते हैं । यह सब जो तुमने मेरे विषय में कहा है मुझको तुमने ईश्वर कहा है, वह भी तुम्हारा कहना सत्य ही है । क्योंकि इस प्रकार का मेरा प्रभाव भी है किन्तु इन सारी बातों को तुम इसलिए कह रहे हो कि तुम्हें इस बात का ज्ञान नहीं हैं, कि मुझसे महान् ईश्वर हैं । अतएव ईश्वर और मुझमें सादृश्य होने के कारण तुमको मुझमें ईश्वरत्व का भ्रम है । तुमने जानकर यह बात नहीं कहा है, अतएव तुम्हारा कहना असत्य नहीं है । अथवा ईश्वर की अपेक्षा मेरी सीमितता को नहीं जानने के कारण तुमने मेरे विषय में ऐसा कहा है ।।१०।।

येन स्वरोचिषा विश्वं रोचितं रोचयाम्यहम् । यथाऽर्कोऽग्निर्यथा सोमो यथर्क्षग्रहतारकाः ।।११।।

अन्वयः— यथा अर्कः, अग्निः यथा सोमः ऋक्ष ग्रहतारका यथा येन स्वरोचिषा रोचितं विश्वम् अहम् रोचयामि ।।११।।

अनुवाद— जिस तरह सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ऋक्ष, ग्रह तथा तारे परमात्मा से ही प्रकाश को प्राप्त करके इस सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करते हैं उसी तरह मैं भी उन स्वयम्प्रकाश परमात्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित विश्व को में सृष्टि के द्वारा प्रकाशित करने का काम करता हूँ ।।११।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि कोऽसावीश्वर इत्यपेक्षायां भक्त्या नमस्कुर्वन्नेव तं कथयति त्रिभिः । येन स्वप्रकाशेन रोचितं प्रकाशितमेव प्रकाशयामि सृष्ट्याऽभिव्यक्तं करोमि । यथाऽर्कादयश्चैतन्यप्रकाश्यमेव प्रकाशयन्ति । तथाच श्रुतिः-'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' इति ।।११।।

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि वे ईश्वर कौन हैं ? इस प्रकार की शङ्का होने पर भक्ति पूर्वक श्रीभगवान् को नमस्कार करते हुए ब्रह्माजी तीन श्लोकों में बतलाते हैं । **येन० इत्यादि** जिन स्वयम्प्रकाश परमात्मा के प्रकाश से ही प्रकाशित जगत् को मैं सृष्टि के माध्यम से अभिव्यक्त करने का काम करता हूँ यह उसी तरह से है जैसे सूर्य इत्यादि ज्ञानमात्र स्वरूप परब्रह्म के द्वारा प्रकाशित ही जगत् को प्रकाशित करने का काम करते हैं । श्रुति भी कहती हैं- **न तत्र सूर्यो भाति० इत्यादि** उस परमात्मा के समक्ष न सूर्य, न चन्द्रमा, न तारे प्रकाशित होते हैं । बिजलियाँ भी परमात्मा के समक्ष नहीं प्रकाशित होती हैं । तो फिर अग्नि वहाँ कैसे प्रकाशित हो सकती है ? उस परमात्मा के प्रकाश को ही प्राप्त करके सूर्य, चन्द्रमा तथा तारे इत्यादि प्रकाशित होते हैं । उस परमात्मा के ही प्रकाश से यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है ।।११।।

तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि । यन्मायया दुर्जयया मां ब्रुवन्ति जगद्गुरुम् ।।१२।।

अन्वयः— तस्मै भगवते वासुदेवाय नमः, धीमहि यत् दुर्जयया मायया जनाः मा जगद्गुरुम् ब्रुवन्ति ।।१२।।

अनुवाद— उन भगवान् वासुदेव को नमस्कार है हम उन्हीं का ध्यान करते हैं । उन श्रीभगवान् की माया से ही मोहित होकर लोग मुझको ही जगद्गुरु कहते हैं । भगवान् की उस माया को पार करना बड़ा ही कठिन है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

तस्मै नमो धीमहि । यस्य मायया विमोहिताः सन्तो युष्मदादयो मां जगद्गुरुं जगत्कारणं वदन्ति तस्मै ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

हम उन भगवान् वासुदेव को मन से नमस्कार करते है जिन श्रीभगवान् की माया से मोहित होकर तुमलोग मुझको ही जगत् का कारण कह रहे हो ॥१२॥

विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया । विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः ॥१३॥

अन्वयः— यस्य ईक्षापथे स्थातुम् विलज्जमानया अमुया विमोहिता दुर्धियः मम अहम् इति विकत्थन्ते ॥१३॥

अनुवाद— भगवान् की आँखों के सामने लज्जित होने के कारण नहीं रूकने वाली माया के द्वारा मोहित ये सभी अज्ञानी जीव यह मेरा है, यह मैं हूँ, इस प्रकार से आत्मश्लाधा करते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

यन्माययेति मायासंबन्धोक्तेस्तस्या दुर्जयत्वोक्तेश्च तस्यापि किमस्ति संसारो नैवेत्याह । मत्कपटमसौ जानातीति यस्य दृष्टिपथे स्थातुं विलज्जमानयैव तस्मिन्स्वकार्यमकुर्वत्या अमुया मायया विमोहिता अस्मदादयो दुर्धियोऽविद्यावृतज्ञाना एव केवलं विकत्थन्ते श्लाघन्ते । अनेन 'यद्रूपम्' इत्यस्य प्रश्नस्योत्तरमुक्तं भवति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

यन्मायया इस पद से परमात्मा का माया से सम्बन्ध प्रतीत होता है । उस माया को दुर्जय बतलाया गया है । अब प्रश्न होता है कि उस माया का ही संसार है क्या ? तो इसका उत्तर है कि नहीं । यह माया जानती है कि ये परमात्मा मेरे कपट को जानते हैं । अतएव यह परमात्मा के समक्ष ठहरने में लज्जित होती है । वह परमात्मा के प्रति अपना मोहन रूप कार्य नहीं करती है । उस माया से हम लोग (देव मनुष्यादि सभी) अज्ञानी हो गये हैं । अविद्या ने हम लोगों के ज्ञान को आच्छादित कर दिया है । उसके फलस्वरूप हमलोग आत्मश्लाघा करते रहते हैं । इस कथन के द्वारा यद्रूपम् यह जो प्रश्न किया गया था उसका उत्तर दिया गया है ॥१३॥

द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च । वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ॥१४॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! द्रव्यं, कर्म च, कालश्च, स्वभावः, जीवः एव च । तत्त्वतः वासुदेवात् परः अर्थः च न अस्ति ॥१४॥

अनुवाद— हे आत्म स्वरूप नारद द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव तथा जीव ये सभी वस्तुतः भगवान् वासुदेव से भिन्न नहीं हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं स्वस्मादन्यं परमेश्वरं निरूप्येदानीं 'यदधिष्ठानम्' इत्यादिनवप्रश्नानां स एवाधिष्ठनादिकं सर्वमित्युत्तरं वक्तुं तद्व्यतिरेकेणान्यस्यासत्त्वमाह-द्रव्यमिति । द्रव्यं महाभूतान्युपादानरूपाणि । कर्म जन्मनिमित्तम् । कालस्तत्क्षोभकः । स्वभावस्तत्परिणामहेतुः । जीवो भोक्ता । वासुदेवात्परोऽन्योऽर्थो नास्ति, कारणाव्यतिरेकात्कार्यस्य ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से अपने से भिन्न परमेश्वर को बतलाकर ब्रह्माजी अब नारदजी के नव प्रश्नों में यदधिष्ठानम् के उत्तर में परमेश्वर ही जगत् के अधिष्ठान आदि सबकुछ हैं, इस बात को बतलाने के लिए परमेश्वर व्यतिरिक्त की सत्ता का अभाव बतलाते हुए **द्रव्यम् इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । द्रव्य शब्द से उपादान कारण रूप महाभूतों को कहा गया है । जन्म के निमित्त कारण को कर्म कहते हैं, जगत् में क्षोभ उत्पन्न करने वाला काल है, जगत् के परिणाम का जो कारण है वही स्वभाव है, जीव शब्द से भोक्ता को कहा गया है । ये सबके सब भगवान् वासुदेव से भिन्न नहीं हैं; क्योंकि भगवान् वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं तथा कारण तथा कार्य में अभेद होता हैं ॥१४॥

नारायणपरा वेदा देवा नारायणाङ्गजाः। नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः॥१५॥
नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः। नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः॥१६॥

अन्वयः— वेदाः नारायणपराः देवा नारायणाङ्गजाः, लोकाः नारायणपराः मखाः नारायणपराः योगाः नारायण पराः, तपः नारायणपरं, ज्ञानं नारायण परं, गतिः नारायण परा ॥१५-१६॥

अनुवाद— वेदों के परं प्रतिपाद्य भगवान् नारायण ही हैं। सभी देवता भगवान् नारायण के अङ्गों से उत्पन्न हैं, सम्पूर्ण लोगों के परं कारण भगवान् नारायण हैं, तथा सभी यज्ञों के आराध्य भगवान् नारायण ही हैं। सभी योगों के द्वारा प्राप्य भगवान् नारायण हैं, तपों से भी आराध्य भगवान् नारायण ही हैं। ज्ञान के भी ज्ञेय भगवान् नारायण हैं तथा भगवान् नारायण ही सबों के एक मात्र आश्रय हैं ॥१५-१६॥

भावार्थ दीपिका

तत्प्रपञ्चयति द्वाभ्याम् नारायणः परः कारणं येषां ते। अनेनैव शास्त्रयोनित्वप्रतिपादनेनेश्वरे प्रमाणं सर्वज्ञत्वादिकं चोक्तम्। देवाश्च तदङ्गाज्जाता अतो न तद्व्यतिरिक्ताः। लोकाः स्वर्गादयस्तदानन्दांशाः। मखास्तत्साधनभूताः। योगः प्राणायामादिः। तपस्तत्साध्यं चित्तैकाग्र्यम्। ज्ञानं तत्साध्यम्। गतिस्तत्फलम्। अनेनैव सर्वं तदधीनमित्युक्तम् ॥१५-१६॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही विस्तार से वर्णन **नारायण पराः इत्यादि** दो श्लोकों से किया जा रहा है। नारायण पराः का विग्रह है **नारायणः परः कारणं येषां ते।** अर्थात् वेदों के परम् कारण भगवान् नारायण ही हैं। वे ही वेद प्रतिपाद्य हैं। इस तरह से **परमेश्वर** के शास्त्रयोनित्व का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रतिपादन के द्वारा ईश्वर में प्रमाण को उपन्यस्त करके उनके सर्वज्ञत्वं इत्यादि को बतलाया गया है। देवता भी श्रीभगवान् के अङ्गों से उत्पन्न होने के कारण उनसे भिन्न नहीं हैं। स्वर्ग आदि लोक भी परमात्मा के आनन्द के अंश स्वरूप हैं। यज्ञ परमात्मा की प्राप्ति के साधन स्वरूप है। योग के द्वारा प्राप्य भगवान् नारायण ही हैं तथा भगवान् नारायण ही तपस्याओं के द्वारा प्राप्य हैं। ज्ञान के द्वारा भगवान् नारायण को ही जाना जाता है। परमात्मा की प्राप्ति रूपी फल को ही गति कहते हैं। इस तरह से सबकुछ परमात्मा ही है इस अर्थ का प्रतिपादन किया गया ॥१५-१६॥

तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः। सृज्यं सृजामि सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः॥१७॥

अन्वयः— तेन सृष्टः अहम् तस्य द्रष्टुः अपि ईशस्य कूटस्थस्य, अखिलात्मनः इच्छयैव अभिचोदितः सृज्यं सृजामि ॥१७॥

अनुवाद— मैं उन परमेश्वर के ही द्वारा सृष्ट हूँ। वे ही द्रष्टा, स्वामी, निर्विकार तथा सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं। मैं उनके सङ्कल्प से प्रेरित होकर उनके द्वारा सृज्य पदार्थों की सृष्टि करता हूँ ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि त्वं किं करोषीत्यपेक्षायामाह। तस्य सृज्यमपि तेन सृष्टोऽहं सृजामि। ईक्षया कटाक्षेण। तत्र हेतवः- द्रष्टुरित्यादयः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न उठता है कि जब सबकुछ परमेश्वर का ही है तो आप क्या करते हैं? तो इसका उत्तर है कि मैं परमात्मा के ही द्वारा सृष्ट हूँ और परमात्मा के सङ्कल्प के द्वारा प्रेरित होकर उनके द्वारा सृज्य पदार्थों की मैं सृष्टि करता हूँ क्योंकि वे ही द्रष्टा और स्वामी हैं ॥१७॥

सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः। स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः॥१८॥

अन्वयः— निर्गुणस्य विभोः सत्त्वं, रजस्तमः इति त्रयः गुणाः स्थिति सर्गनिरोधेषु मायया गृहीताः ॥१८॥

अनुवाद—भगवान् माया के गुणों से रहित हैं। सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय के लिए रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण माया के द्वारा स्वीकार किए गये हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

ननु कुतोऽयं जीवेश्वरविभागः, यतस्त्वं प्रेर्यः स च प्रेरकः स्यादित्यपेक्षायां जीवेश्वरविभागहेतुमाह त्रिभिः-सत्त्वमिति। निर्गुणस्यापीश्वरस्यैते त्रयो गुणा बध्नन्तीत्युत्तरेणान्वयः। कथंभूताः। तेनैव स्वातन्त्र्येण स्थित्याद्यर्थं मायया गृहीताः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि यह जीव और ईश्वर का विभाग कैसे होता है। जिसके कारण आप प्रेर्य हैं और ईश्वर आपके पेरक हैं ? इस प्रकार का प्रश्न होने पर ब्रह्माजी तीन श्लोकों कों द्वारा जीव और ईश्वर के विभाग के हेतु को बतलाते हैं। वे **सत्त्वम्० इत्यादि** श्लोक पढते हैं। निर्गुण भी परमात्मा के ये तीन गुण बन्धन करने का काम करते हैं। वे गुण कैसे हैं ? तो उत्तर है कि उसके द्वारा (गुणत्रय के द्वारा) ही स्वतंत्रता पूर्वक रहने के लिए माया ने इन तीनों गुणों को स्वीकार किया है ॥१८॥

कार्यकारणकर्तृत्वे द्रव्यज्ञानक्रियाश्रयाः। बध्नन्ति नित्यदा मुक्तं मायिनं पुरुषं गुणाः ॥१९॥

अन्वयः— मुक्तं मायिनं पुरुषं द्रव्यज्ञानक्रियाश्रयाः गुणाः कार्यकारणकर्तृत्वे नित्यदा बध्नन्ति ॥१९॥

अनुवाद— वस्तुत सर्वदा मुक्त भी परमात्मा को द्रव्य, ज्ञान तथा क्रिया का सहारा लेकर ये तीनों गुण जीव को कार्य, कारण और कर्तृत्व के अभिमान से बाँधने का काम करते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

वस्तुतः सर्वदा मुक्तमपि मायिनं मायाविषयं पुरुषं जीवं बध्नन्ति क्व। कार्यमधिभूतं, कारणमध्यात्मं, कर्ताऽधिदैवतं तेषां भावस्तत्त्वं तस्मिन्। द्रव्यं महाभूतानि, ज्ञानशब्देन देवताः, क्रिया इन्द्रियाणि, तदाश्रयास्तेषां कारणभूतास्तत्तदभिमानेन बध्नन्ति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

वास्तविकता यह है कि मायी पुरुष परमात्मा सर्वदा मुक्त हैं किन्तु माया अपने विषयभूत जीव को बाँधने का काम करती हैं। उस समय द्रव्य (महाभूत) ज्ञान (देवता) तथा क्रिया (इन्द्रियाँ) उसके आश्रय होते हैं। उसके द्वारा माया जीव को कार्यत्वाभिमान के द्वारा अधिभूत को, कारणत्वाभिमान रूप अध्यात्म को तथा कर्तृत्वाभिमान से अधिदैवत को बाँधने का काम करती है ॥१९॥

स एष भगवाँल्लिङ्गैस्त्रिभिरेभिरधोक्षजः। स्वलक्षितगतिर्ब्रह्मन् सर्वेषां मम चेश्वरः ॥२०॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! स एष भगवान् अधोक्षजः, एभिः, त्रिभिः लिङ्गैः स्वलक्षितगतिः। सः सर्वेषां मम च ईश्वरः ॥२०॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् नारदजी इन्हीं तीनों आवरणों से श्रीभगवान् अपने को आच्छादित कर लेते हैं उसके फल स्वरूप लोग उनकी गति को नहीं जान पाते हैं। वे सबों के तथा मेरे भी स्वामी हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अतः स एष वश्यमाय एभिगुणैर्लिङ्गैर्जीवानामावरकैरुपाधिमिः। सुष्ठुलक्षिता गतिस्तत्त्वं यस्य सः, स्वैर्भक्तैरेव लक्षिता गतिस्तत्त्वं यस्येति वा ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

वे ही परमात्मा इन तीनों गुण रूपी उपाधियों से जीवों को अपने अधीन कर देते हैं। उन परमात्मा की गति को अच्छी तरह से नहीं जाना जा सकता है। अथवा भक्तजन ही उनकी गति को जान पाते हैं। ये दोनों ही अर्थ स्वलक्षितगतिः पद के हैं ॥२०॥

कालं कर्म स्वभावं च मायेशो मायया स्वया । आत्मन्यदृच्छया प्राप्तं विबुभूषुरुपाददे ॥२१॥

अन्वयः— हे आत्मन् ! विबुभुषुः मायेशः स्वया मायया यदृच्छया प्राप्तं कालं, कर्म, स्वभावं च उपाददे ॥२१॥

अनुवाद— हे आत्म स्वरूप नारद एक से अनेक होने की इच्छा वाले परमात्मा ने अपनी माया से अपने स्वरूप में प्राप्त, काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार कर लिया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तस्य सृष्टिप्रकारमाह-कालमिति । कर्म जीवादृष्टम् । विबुभूषुर्विविधं भवितुमिच्छन् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मा के द्वारा की जाने वाली सृष्टि के प्रकार को **कालम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया गया है। सृष्टि के प्रारम्भ में अपनी ही माया के द्वारा अपने स्वरूप में प्राप्त काल, कर्म तथा स्वभाव को परमात्मा ने एक से अनेक होने की इच्छा से स्वीकार किया ॥२१॥

कालाद्गुणव्यतिकरः परिणामः स्वभावतः । कर्मणो जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितादभूत् ॥२२॥

अन्वयः— पुरुषाधिष्ठितात् कालात् गुणव्यतिकरः स्वभावतः परिणामः कर्मणः महतः जन्म अभूत् ॥२२॥

अनुवाद— परमात्मा के द्वारा अधिष्ठित काल ने गुणों में क्षोभ पैदा कर दिया, स्वभाव ने उन सबों को परिणाम अर्थात् रूपान्तरित कर दिया और कर्म ने महत् तत्त्व को उत्पन्न कर दिया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

गुणानां व्यतिकरः क्षोभः साम्यत्यागः । स्वभावतः परिणामो रूपान्तरापत्तिः । पुरुष ईश्वरस्तेनाधिष्ठितत्वं त्रयाणां विशेषणम् । महतः महत्तत्वस्य ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मा के द्वारा अधिष्ठित होकर काल ने प्रलय काल में जो प्रकृति में गुणों का साम्य था उसमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया अर्थात् उन गुणों में वैषम्य उत्पन्न कर दिया, परमात्माधिष्ठित ही स्वभाव ने उन सबो का परिणाम कर दिया अर्थात् उन सबों के रूप में परिवर्तन ला दिया और ईश्वराधिष्ठित ही कर्म ने महत् तत्त्व को उत्पन्न कर दिया ॥२२॥

महतस्तु विकुर्वाणाद्रजःसत्त्वोपबृंहितात् । तमःप्रधानस्त्वभवद्द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥२३॥

अन्वयः— रजः सत्त्वोपबृंहितात् विकुर्वाणात् महतः तु तमः प्रधानः द्रव्यज्ञानकियात्मकः अभवत् ॥२३॥

अनुवाद— रजोगुण और सत्त्वगुण से उपबृंहित होने के कारण विकृत महत् तत्त्व से द्रव्य, ज्ञान और क्रियात्मक विकार उत्पन्न हुआ ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्विक्रियमाणात् तस्य च क्रियाज्ञानशक्तित्वात्त्रिगुणत्वेऽपि रजःसत्त्वाभ्यामुपबृंहितत्वम्, अहंकारस्य त्वावराकत्वात्तमःप्रधानत्वम् । अत एवहंकारकार्येषु तामसमाकाशादिकं बहु । राजसं सात्त्विकं चाल्पम् । एवं तदुपाधिकेषु जीवेष्वपि तथैव तामसाधिक्यम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

विकृत होने वाले महत्तत्त्व क्रिया, ज्ञान एवं शक्ति इन तीनों से युक्त होने के कारण त्रिगुण होने पर भी वह रजोगुण और सत्त्वगुण से उपबृंहित हुआ और उससे अहङ्कार उत्पन्न हुआ । अहङ्कार चूकि आवरक होता है अतएव उसमें तमोगुण की प्रधानता रहती है, रजोगुण और सत्त्वगुण अल्पमात्रा में रहते हैं ।

अतएव अहङ्कार के जो कार्य होते हैं, उनमें तामस अकाश आदि की अधिकता होती है । राजस एवं सात्त्विक अंश अल्पमात्रा में रहते हैं । इसीलिए अहंकारोपाधिक जीवों में भी तामस अधिक होता है ॥२३॥

सोऽहंकार इति प्रोक्तो विकुर्वन्समभूत्त्रिधा । वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेति यद्भिदा ॥
द्रव्यशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिरिति प्रभो ॥२४॥

अन्वयः— सःअहङ्कार इति प्रोक्तः विकुर्वन् त्रिधा समभूत् वैकारिकः तैजसः च तामसः च । हे प्रभो ! तद्भिदा द्रव्यशक्तिः, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्तिः इति ॥२४॥

अनुवाद— वह विकार अहङ्कार कहलाया । वह अहङ्कार भी विकृत होकर तीन प्रकार का हुआ वैकारिक, तैजस और तामस । हे नारदजी वैकारिक अहङ्कार ज्ञान शक्ति से युक्त है, तैजस अहङ्कार क्रिया शक्ति से युक्त है तथा तामस (भूतादि) अहङ्कार द्रव्यशक्ति से युक्त हुआ ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

स च विकुर्वन् रूपान्तरं गच्छन् । त्रैविध्यमेवाह । वैकारिकः सात्त्विकः । तैजसो राजसः तामसः भूतादिः । यद्भिदा यस्य भेदः द्रव्यशक्तित्यादीनि प्रातिलोम्येन त्रयाणां लक्षणानि । द्रव्ये महाभूताख्ये शक्तिर्यस्य । क्रियासु इन्द्रियेषु शक्तिर्यस्य ज्ञानेषु वेदेषु शक्तिर्यस्य । हे प्रभो बोद्धुं शक्त ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

वह अहङ्कार भी विकृत होकर तीन प्रकार का हुआ । वैकारिक अर्थात् सात्त्विकअहङ्कार, तैजस अर्थात् राजस अहङ्कार और तामस अर्थात् भूतादिअहङ्कार । द्रव्य शक्ति इत्यादि इन तीनों के विपरीत क्रम से विशेष होते हैं । अर्थात् भूतादि अहङ्कार द्रव्यशक्ति से युक्त है, तैजस अहङ्कार क्रिया शक्ति प्रधान है और वैकारिक अहङ्कार ज्ञानशक्ति प्रधान है ।

महाभूत नामक द्रव्य में तामसाहङ्कार की प्रधानता होती है, तैजस इन्द्रियों में क्रियाशक्ति की प्रधानता होती है और वेदों में ज्ञान शक्ति की प्रधानता होती है । हे प्रभो ! अर्थात् जानने में समर्थ हे नारदजी ॥२४॥

तामसादपि भूतादेर्विकुर्वाणादभून्नभः । तस्य मात्रा गुणः शब्दो लिङ्गं यद्द्रष्टृदृश्ययोः ॥२५॥

अन्वयः— विकुर्वाणात् भूतादेः तामसात् अपि नभः अभूत् तस्य मात्रा गुणः च शब्दः यद् द्रष्ट दृश्ययोः लिङ्गम् ॥२५॥

अनुवाद— विकृत होते हुए उस महाभूतों के कारण रूप तामस अहङ्कार से आकाश की उत्पत्ति हुयी और उस आकाश की तन्मात्रा और गुण दोनों शब्द ही है । शब्द से ही द्रष्टा और दृश्य का बोध होता हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

भूतादेरिति तामसस्य विशेषणम् । ननु तामसाठाथमं शब्दो भवतीति प्रसिद्धम् । सत्यम् । स तु तस्य नभसो मात्रा सूक्ष्मं रूपम् । गुणश्चासाधारणो व्यावर्तको धर्मः । शब्दद्वारा नभ उत्पद्यत इत्यर्थः । एवमेव स्पर्शादिष्वपि द्रष्टव्यम् । शब्दश्च लक्षणं लिङ्गमिति । कुड्याद्यन्तरितेन केनचिदुच्चैर्गजो गज इत्युक्ते यो गजद्रष्टा यश्च तेन दृश्यो गजस्तयोर्लिङ्गं बोधकम । लिङ्गविशेषणत्वाद्यच्छब्दस्य षण्ढत्वम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

भूतादि तामस अहङ्कार का विशेषण है । प्रश्न होता है कि तामस अहङ्कार से सर्वप्रथम शब्द तन्मात्र उत्पन्न होती है यह प्रसिद्ध है । आप तासम अहङ्कार से आकाश की उत्पत्ति कैसे कहते हैं ? तो इसका उत्तर है कि शब्द तन्मात्रा आकाश का सूक्ष्म रूप है । वह आकाश का असाधारण धर्म है । अतएव शब्द तन्मात्रा से आकाश की उत्पत्ति होती है इसीतरह स्पर्श आदि तन्मात्राओं के विषय में जानना चाहिए । शब्द ही लिङ्ग है । दिवाल

इत्यादि से व्यवहित कोई व्यक्ति यदि जोर से कहता है, हाथी हाथी उस शब्द को सुनकर उससे देखे जाने वाले हाथी और द्रष्टा दोनों का ज्ञान होता है । यत् शब्द लिङ्ग का विशेषण होने के कारण नपुंसक लिङ्ग में प्रयुक्त हैं ॥२५॥

नभसोऽथ विकुर्वाणादभूत्स्पर्शगुणोऽनिलः । परान्वयाच्छब्दवांश्च प्राण ओजः सहो बलम् ॥२६॥

अन्वयः— विकुर्वाणात् आकाशात् स्पर्शगुणः अनिलः परान्वयात् शब्दवान् च प्राणः ओजः सहः बलम् तस्य रूपम् ॥२६॥

अनुवाद— विकृत होने वाले आकाश से स्पर्श गुण वाले वायु की उत्पत्ति हुयी । आकाश से भी सम्बन्ध होने के कारण उसमें शब्द नामक भी गुण है । इन्द्रियों में स्फूर्ति और प्राण में देह धारण की शक्ति, ओज और बल वायु के ही कारण है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

परस्य नभसः कारणत्वेनान्वयाच्छब्दवांश्च वायुः । तस्यैव लक्षणं प्राणो देहधारणम् । ओजःसहोबलानीन्द्रियमनःशरीराणां पाटवानि तेषां हेतुरित्यर्थः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

वायु का असाधारण गुण स्पर्श है । उसका अपने कारणभूत आकाश से सम्बन्ध होने के कारण उसमें शब्द भी हैं । वायु के कारण प्राण देह को धारण किए रहता है । ओज, सह तथा बल ये इन्द्रिय मन और शरीर की पटुता रूप हैं । इन सबों का कारण वायु ही हैं ॥२६॥

वायोरपि विकुर्वाणात्कालकर्मस्वभावतः । उदपद्यत तेजो वै रूपवत्स्पर्शशब्दवत् ॥२७॥

अन्वयः— कालकर्मस्वभावतः, विकुर्वाणात् वायोरपि रूपवत् स्पर्शशब्दवत् तेजः उदपद्यत ॥२७॥

अनुवाद— काल, कर्म और स्वभाव से विकृत होने वाले वायु से भी रूप, स्पर्श तथा शब्द गुण वाले तेज की उत्पत्ति हुयी ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

उदपद्यत उत्पन्नम् । स्वतो रूपवत्तेजो वायुर्नभसोः कारणभूतयोरन्वयात्स्पर्शशब्दवच्चः । एवमम्भसः पृथिव्याश्च परान्वयाधिक्याद्गुणाधिक्यम् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

उदपद्यत का उत्पन्न हुआ यह अर्थ है । तेज स्वभावतः रूपवान होता है । अपने कारणभूत वायु तथा आकाश से भी सम्बन्ध होने के कारण तेज में स्पर्श और शब्द होते हैं । इस तरह जल एवं पृथिवी का भी अपने कारण से सम्बन्ध होने के कारण उनमें गुणों की अधिकता जाननी चाहिए ॥२७॥

तेजसस्तु विकुर्वाणादासीदम्भो रसात्मकम् । रूपवत्स्पर्शवच्चाम्भो घोषवच्च परान्वयात् ॥२८॥

अन्वयः— विकुर्वाणात् तेजसः रसात्मकम् रूपवत् स्पर्शवत् च घोषवत् च अम्भः परान्वयात् आसीत् ॥२८॥

अनुवाद— विकृत होने वाले तेज से रसयुक्त जल की उत्पत्ति हुयी अपने कारणभूत वायु से अन्वित होने के कारण वह स्पर्श तथा शब्द से भी युक्त था ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

घोषः शब्दः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

तेज से जल की उत्पत्ति हुयी और वह रूप, स्पर्श और शब्द से युक्त हुआ। उसमें अपने कारण भूत वायु के स्पर्श और शब्द नामक गुण हो गये। रस जल का अपना असाधारण गुण हैं ॥२८॥

विशेषस्तु विकुर्वाणादम्भसो गन्धवानभूत्। परान्वयाद्रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वितः ॥२९॥

अन्वयः— विकुर्वाणात् अभ्भसः तुः, गन्धवान् विशेषः अभूत् परान्वयात् रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वित्ः अभूत् ॥२९॥

अनुवाद— विकृत होने वाले जल से गन्ध से युक्त पृथिवी की उत्पत्ति हुयी। अपने कारण से सम्बन्ध होने के कारण उसमें रूप, रस, शब्द तथा स्पर्श नामक भी गुण आ गये। अधिक गुणों से युक्त होने के कारण पृथिवी को विशेष शब्द से अभिहित किया गया है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

विशेषः पृथ्वी। पृथिव्याश्च परान्वयाधिक्याद्गुणाधिक्यम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

विशेष शब्द से पृथिवी को कहा गया है। अधिक गुण सम्पन्न तेज नामक कारण से सम्बन्ध होने के कारण स्वेतर भूतों की अपेक्षा उसमें अधिक गुण हुए ॥२९॥

वैकारिकान्मनो जज्ञे देवा वैकारिका दश। दिग्वतार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥३०॥

अन्वयः— वैकारिकात् मनः जज्ञे दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विबह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः वैकारिकाः देवाः दश ॥३०॥

अनुवाद— सात्त्विक अहङ्कार से मन तथा दशो इन्द्रियों के अधिष्ठातृ दिक् वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनी कुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति नामक देवताओं की भी उत्पत्ति हुयी ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

मनःशब्देनैव तदधिष्ठाता चन्द्रोऽपि द्रष्टव्यः। अन्ये च दश देवा वैकारिकाः सात्त्विकाहंकारकार्याः। तानाह। दिशश्च वातश्च अर्कश्च प्रचेताश्च अश्विनौ च, एते पञ्च श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिहाघ्राणानामधिष्ठातारः वह्निश्च इन्द्रश्च उपेन्द्रश्च मित्रश्च कश्च प्रजापतिः, एते पञ्च वाक्पाणिपादपायूपस्थानामधिष्ठातारः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

मन शब्द का प्रयोग होने से ही उसके अधिष्ठातृ देवता चन्द्रमा की भी उत्पत्ति स्वीकार करना चाहिए। अन्य जो दश देवता बतलाये गये हैं वे सात्त्विक हैं तथा अहङ्कार के कार्य हैं, वे देवता हैं दिशा, वायु, सूर्य, प्रचेता और दोनों अश्विनी कुमार, ये पाञ्चो देवता क्रमशः श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण नामक पाँच ज्ञानेन्द्रियो के अधिष्ठातृ देवता हैं। अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति ये पाञ्चो देवता क्रमशः वाक्, पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ नामक कर्मेन्द्रियों के अधिष्ठाता हैं ॥३०॥

तैजसात्तु विकुर्वाणादिन्द्रियाणि दशाभवन्। ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्बुद्धिः प्राणस्तु तैजसौ॥
श्रोत्रत्वग्घ्राणदृग्जिह्वावाग्दोर्मढ्राङ्घ्रिपायवः ॥३१॥

अन्वयः— विकुर्वाणात् तैजसात् दश इन्द्रियाणि, ज्ञानशक्तिः बुद्धिः क्रियाशक्तिः, प्राणः तु तैजसौ। श्रोत्रत्वग् घ्राण दृग् जिह्वा वाग् दोःमेढः अङ्घ्रि-पायवः इमानि दश इन्द्रियाणि सन्ति ॥३१॥

अनुवाद— विकृत होने वाले तैजस अहङ्कार से दश इन्द्रियाँ ज्ञानशक्ति बुद्धि तथा क्रियाशक्ति प्राण ये दोनों तैजस हैं, श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, त्वगिन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, रसनेन्द्रिय वागिन्द्रिय, पाणीन्द्रिय, पादेन्द्रिय, पाय्विन्द्रिय तथा उपस्थेन्द्रिय ये दश इन्द्रियाँ हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

यतो ज्ञानशक्तिर्बुद्धिः क्रियाशक्तिः प्राणश्च तैजसाहंकारकार्यौ । अतो ज्ञानक्रियाविशेषरूपाणीन्द्रियाण्यपि तैजसादभवन्नित्यर्थः। तान्याह–श्रोत्रमिति । दोः पाणिः । मेढ्रमुपस्थः । क्रमस्त्वत्र न विवक्षितः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

चूकि ज्ञानशक्ति बुद्धि तथा क्रियाशक्ति प्राण ये दोनों भी राजसाहङ्कारजन्य हैं अतएव इन्द्रियाँ भी ज्ञानविशिष्ट और क्रियाविशिष्ट हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञानविशिष्ट हैं और कर्मेन्द्रियाँ क्रियाविशिष्ट हैं। और ये सब तैजस अहङ्कार से उत्पन्न हैं। उन सबों को श्रोत्रत्वग इत्यादि पद से कहा गया है। मूल में इन्द्रियों का क्रम विवक्षित नहीं हैं ॥३१॥

यदैतेऽसङ्गता भावा भूतेन्द्रियमनोगुणाः । यदायतननिर्माणे न शेकुर्ब्रह्मवित्तम ॥३२॥

अन्वयः— हे ब्रह्मवित्तम यदा भूतेन्द्रियमनोगुणा, भावाः असङ्गताः यदायतननिर्मणे न शेकुः ॥३२॥

अनुवाद— हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ नारदजी जब तक, पञ्चभूत, इन्द्रियाँ, मन और सत्त्व, रजस्, तथा तमस् ये सभी भावपदार्थ संगठित नहीं थे तब तक ये अपने रहने के आश्रय भूत शरीर का निर्माण नहीं कर सके ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

एवं कारणसृष्टिमुक्त्वा कार्यसृष्टिमाह । यदा एते असङ्गता अमीलिता आसन्, अतएव यदा आयतनस्य शरीरस्य निर्माणे न शेकुः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से कारण तत्त्वों की सृष्टि को बतलाकर कार्यसृष्टि को इस श्लोक से बतलाते हैं कि जब तक उपर्युक्त वर्णित सभी भावपदार्थ असंगठित थे तब तक वे अपने आश्रयभूत शरीर का निर्माण नहीं कर सके॥३२॥

तदा संहत्य चान्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः । सदसत्त्वमुपादाय चोभयं ससृजुर्ह्यदः ॥३३॥

अन्वयः— तदा भगवत्शक्तिचोदिता अन्योन्यं संहत्य सदसत् उभयं भावमुपादाय अदः ससृजुः ॥३३॥

अनुवाद— उस समय भगवान् की शक्ति से प्रेरित होकर वे परस्पर में मिल गये और आपस में कारण-कार्यभाव को स्वीकार करके व्यष्टि एवं समष्टि रूप शरीर और ब्रह्माण्ड दोनों की रचना किए ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तदा सदसत्त्वं प्रधानगुणभावमुपादाय स्वीकृत्य । उभयं समष्टिव्यष्ट्यात्मकं शरीरम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

उस समय प्रधान एवं गौणभाव को अपनाकर उन सबों ने समष्टि एवं व्यष्टि शरीर और ब्रह्माण्ड दोनों को उत्पन्न किया ॥३३॥

वर्षपूगसहस्रान्ते तदण्डमुदकेशयम् । कालकर्मस्वभावस्थो जीवोऽजीवमजीवयत् ॥३४॥

अन्वयः— उदकेशयम् तत् अण्डम्, वर्षपूगसहस्रान्ते काल कर्म स्वभवस्थः जीवः अजीवम् अजीवयत् ॥३४॥

अनुवाद— एक हजार वर्ष तक जल में पड़े रहने पर उस निर्जीव ब्रह्माण्ड को काल, कर्म और स्वभाव को स्वीकार करके जीव शब्द वाच्य परमात्मा ने उसको जीवित कर दिया ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

कालकर्मस्वभावानधिष्ठाय स्थितो जीवयतीति जीवः परमात्मा अजीवमचेतनमजीवयच्चेतयति स्म ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

जिस ब्रह्माण्ड का निर्माण पञ्चमहाभूत, इन्द्रियाँ मन एवं गुणों ने मिलकर किया था वह ब्रह्माण्ड एक हजार वर्ष तक जल में पड़ा रहा । वह निर्जीव था । उसको काल, कर्म तथा स्वभाव को अधिष्ठित करके परमात्मा ने जीवित कर दिया अर्थात् चेतनारहित उसको चेतना से युक्त कर दिया । जीवित करने का काम करने के कारण परमात्मा को जीव शब्द से अभिहित किया गया है ।।३४।।

स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भिद्य निर्गतः । सहस्रोर्वङ्घ्रिबाह्वक्षः सहस्राननशीर्षवान् ।।३५।।

अन्वयः— अण्डं निर्भिद्य: स एव पुरुष: सहस्रोर्वङ्घ्रि बाहवक्ष: सहस्राननशीर्षवान् तस्मात् निर्गत: ।।३५।।

अनुवाद— उस अण्डे को फोड़कर वे ही विराट् पुरुष हजारों जंघाओं, चरणों, भुजाओं, नेत्रों, मुखों तथा शिरों से युक्त होकर निकले ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

निर्भिद्य पृथक्कृत्य स्थित इत्यर्थः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

निर्भद्य अर्थात् पृथक्-पृथक् करके जो परमात्मा उस ब्रह्माण्ड में प्रवेश किये थ वे ही विराट् पुरुष के रूप में उससे निकले । उनके जङ्घा इत्यादि अवयव हजारों की संख्या में थे ।।३५।।

यस्येहावयवैर्लोकान्कल्पयन्ति मनीषिणः । कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः ।।३६।।

अन्वयः— यस्य अवयवैः इह मनीषिणः कट्यादिभिः सप्त अधोलोकान् जघानादिभिः सप्तउर्ध्वं लोकान् कल्पयन्ति।।३६।।

अनुवाद— उन्हीं विराट् पुरुष के अङ्गों में मनीषीपुरुष लोकों की कल्पना करते हैं । विराट् पुरुष के कमर से नीचे के भागों में पृथिवी के नीचे के सात पातालों की कल्पना करते हैं ओर पेडू के ऊपर के भागों में सात स्वर्गों की कल्पना उपासना करने के लिए करते हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

तदवयवैर्लोकरचनामाह-यस्येति । कटिरित्यूरुमूलयोः पश्चाद्भागः । जघनं पुरोभागः । अधः सप्तलोकान् अतलादीन्। ऊर्ध्वं भूरादीन् सप्त ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

उस विराट् पुरुष के अङ्गों से ही लोकों की रचना बतलाते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि जङ्घा के मूल के पीछे के भाग को कटि कहते हैं और आगे के भाग को जङ्घा कहते हैं । नीचे के अत्तल आदि सात लोक हैं और ऊपर के भूलोक आदि सात लोक हैं ।।३६।।

पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः । ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत ।।३७।।

अन्वयः— अस्य पुरुषस्य मुखं ब्रह्म, क्षत्रम् एतस्य बाहव: भगवतः ऊर्वो: वैश्य: पद्भयां शुद्र: अभ्यजायत ।।३७।।

अनुवाद— विराट् पुरुष का मुख ही ब्राह्मण हैं, इसकी भुजाएँ ही क्षत्रिय है । श्रीभगवान् के दोनों ऊरूभाग ही वैश्य हैं और पैर ही शूद्र की उत्पत्ति का स्थान हैं ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

वर्णानां तत उत्पत्तिं दर्शयति-पुरुषस्येति । ब्रह्म ब्राह्मणो मुखमिति कार्यकारणयोरभेदविवक्षयोक्तम् । बाहव इति च। क्षत्रं क्षत्रियः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

विराट् पुरुष के अङ्गों से वर्णों की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं यहाँ ब्रह्म शब्द, ब्राह्मण का वाचक है । ब्राह्मण उस विराट् पुरुष का मुख है यह कारण और कार्य में अभेद की विवक्षा से कहा गया है । अर्थात् विराट् पुरुष के मुख से ब्रह्मण वर्ण की उत्पत्ति हुयी । इसी तरह क्षत्रिय वर्ण की भुजाओं से उत्पत्ति हुयी, ऊरुओं से वैश्य वर्ण की उत्पत्ति हुयी और पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति हुयी ॥३७॥

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ।
हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः ॥३८॥

अन्वयः— पद्भ्यां भूर्लोकः, भुवर्लोकः नाभितः, स्वर्लोकः हृदा, महात्म्नः, महर्लोकः, उरसा कल्पितः ॥३८॥

अनुवाद— विराट् पुरुष के पैरों में भूलोक की कल्पना की गयी है नाभि में भुवर्लोक की कल्पना की गयी है हृदय में स्वर्लोक की कल्पना की गयी है और वक्षःस्थल में महर्लोक की कल्पना की गयी है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

इदानीमुपासनार्थं लोककल्पनाभेदान्दर्शयन् सप्तलोकपक्षमाह द्वाभ्याम्। भूर्लोकः पातालमारभ्य। पद्भ्यां कटिपर्यन्ताभ्याम्॥३८॥

भाव प्रकाशिका

अब उपासना के लिए लोकों की कल्पना के भेदों को बतलाते हुए दो श्लोकों द्वारा सप्त लोक पक्ष का वर्णन करते हैं । पाताल से लेकर भूलोक पर्यन्त की कल्पना पैरों से लेकर कटि पर्यन्त प्रदेश में की गयी हैं ॥३८॥

ग्रीवायां जनलोकाश्च तपोलोकः स्तनद्वयात् । मूर्धभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः ॥३९॥

अन्वयः— ग्रीवायां च जनलोकः, स्तनद्वयात् तपोलोकः मूर्धभिः तु सत्यलोकः कल्पितः स एव सनातनः ब्रह्मलोकः ॥३९॥

अनुवाद— विराट् पुरुष की ग्रीवा में जनलोक की, दोनों स्तनों में तपोलोक की, और शिरोभाग में सत्य लोक की कल्पना की गयी है, उसके ऊपर ही सनातन ब्रह्मलोक है वही वैकुण्ठ हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

स्तनद्वयादित्युपासनार्थत्वादूर्ध्वाधोभागवैपरीत्यं न दोषः । यद्वा स्तनच्छब्दं कुर्वद्यदोष्ठद्वयं तस्मादित्यर्थः ब्रह्मलोको वैकुण्ठाख्यः, सनातनो नित्यः नतु सृज्य प्रपञ्चान्तर्वर्तीत्यर्थः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

दोनों स्तनों में तपोलोक की कल्पना की गयी है और ग्रीवा में महलोक की कल्पना की गयी है । यह उलटा क्रम प्रतीत होता है । तो इस कल्पना का उद्देश्य उपासनार्थ है । अतएव ऊपर के अङ्ग और नीचे के अङ्ग को लेकर कल्पना करने में किसी प्रकार का विरोध नहीं है अथवा स्तन शब्द दोनों ओष्ठ के अर्थ में प्रयुक्त मान लें और उसी में तपोलोक की कल्पना होती है । यह ब्रह्मलोक ही वैकुण्ठ है वही सनातन और नित्य है । यह सृज्य प्रपञ्च के अन्तर्गत नहीं है ॥३९॥

तत्कट्यां चातलं क्लृप्तमूरूभ्यां वितलं विभोः।
जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जङ्घाभ्यां तु तलातलम् ॥४०॥
महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम् ।
पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान् ॥४१॥

अन्वयः— तत्कट्यां च अतलं कल्पतं, ऊरुभ्यां वितलं, विभोः जानुभ्यां शुद्धं सुतलम् जंघाभ्यां तु तलातलम्, गुल्फाभ्यां तु महातलम्, प्रपदाभ्यां रसातलम्, पादतलतः पाताल इति लोकमयः पुमान् ॥४०-४१॥

अनुवाद— उस विराट् पुरुष की कटि में अतल, जङ्घों मे वितल, धुटनों में पवित्र सुतल, जङ्घाओं में तलातल गुल्फों में महातल पञ्चों और एड़ियों में रसातल, तथ पैर के तलवों में पाताल को जानना चाहिए। इस तरह विराट् पुरुष सर्वलोक मय है ॥४०-४१॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं चतुर्दशलोकपक्षं दर्शयति। तत्र जघनादिभिर्भूरादयः पूर्वोक्ता एव सप्त, कट्यादिभिरधः सप्तलोकानाह-तत्कट्यामिति द्वाभ्याम्। शुद्धं हरिभक्तिनिवासत्वात् ॥४०-४१॥

भाव प्रकाशिका

अब चतुर्दश लोक पक्ष को बतलाते हैं। जङ्घे से लकर भूर्लोक पर्यन्त पूर्वोक्त सात लोक हैं। कटि के नीचे के सात लोकों को तत्कट्याम् इत्यादि दो श्लोकों द्वारा बतलाया गया हैं सुतल इसलिए पवित्र है कि वहाँ श्रीहरि की भक्ति का निवास है ॥४०-४१॥

भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः।
स्वर्लोकः कल्पितो मूर्ध्ना इति वा लोककल्पना ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुरणे द्वितीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अन्वयः— भूर्लोकः पद्भ्यां कल्पितः, अस्य नाभितः भुवर्लोकः मूर्ध्ना स्वर्लोकः कल्पितः इति लोकल्पना ॥४२॥

अनुवाद— अथवा विराट् पुरुष के दोनों पैरों में भूर्लोक की कल्पना की गयी है। विराट् पुरुष की नाभि में भुवर्लोक की कल्पना की गयी है। विराट् पुरुष के शिरोभाग में स्वर्लोक की कल्पना करनी चाहिए ॥४२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध के पाञ्चवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

भावार्थ दीपिका

त्रिलोकपक्षमाह। भूर्लोकः पातालादिसहितः ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीय स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में त्रिलोक पक्ष का वर्णन किया गया है। भूर्लोकः शब्द से पाताल सहित भूलोक को ग्रहण करना चाहिए ॥४२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के पाञ्चवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥५॥

* * *

छठा अध्याय

विराट् स्वरूप की विभूतियों का वर्णन

ब्रह्मोवाच

वाचां वह्नेर्मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्त धातवः । हव्यकव्यामृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य च ॥१॥

अन्वयः— वाचांबह्नेः च क्षेत्रं मुखं, छन्दसां सप्त धातवः, हव्यकव्यामृतान्नानां सर्वरसस्य च जिह्वा क्षेत्रम् ॥१॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— उन विराट् पुरुष के मुख से वाणी और उसके अधिष्ठातृ देवता अग्नि की उत्पत्ति हुयी । वैदिक सातो छन्दों की उत्पत्ति उनकी सातो धातुओं से हुयी । देवता, पितृगण और देवताओं के अमृतमय अन्न रसनेन्द्रिय से और सभी प्रकार के रसों की उत्पत्ति विराट पुरुष की जिह्वा से हुयी हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षष्ठे विराड्विभूतिश्च प्रोक्ताऽध्यात्मादिभेदतः । दृढीकृतं च पूर्वोक्तं सर्वं पुरुषसूक्ततः ॥१॥ इदानीं वैराजस्य विभूतिः सप्रपञ्चमनुवर्ण्यते । वाचामस्मदादिवागिन्द्रियाणां तदधिष्ठातुर्वह्नेश्च तस्य मुखं क्षेत्रमुत्पत्तिस्थानम् । छन्दसां गायत्र्यादीनां सप्तानां तस्य सप्तधातवस्त्वगादयः क्षेत्रम् । हव्यं देवानामन्नम् । कव्यं पितॄणाम् । अमृतं तदुभयशेषो मनुष्याणाम् । तेषामन्नानां सर्वरसस्य मधुरादेः षड्विधस्य चकारादस्मदादिरसनेन्द्रियस्य तदधिष्ठातुर्वरुणस्य चैतस्य जिह्वा क्षेत्रमुत्पत्तिस्थानम् । एवं सर्वत्रानुक्तमुन्नेयम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

छठे अध्याय में अध्यात्म इत्यादि भेद से विराट् की विभूति बतलायी गयी है और पूर्वोक्त सारी बातों का समर्थन पुरुष सूक्त के द्वारा किया गया है ॥१॥

इदानीम्० इत्यादि- इस समय वैराज की विभूति का वर्णन विस्तार के साथ किया जा रहा है । वाणी तथा वाणी के अधिष्ठातृ देवता अग्नि का उत्पत्तिस्थान विराट् पुरुष का मुख है । गायत्री आदि सात (गायत्री, त्रिष्टुप्, उष्णिक्, जगती, बृहती, पंक्ति और अनुष्टुप्) इन छन्दों के उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष के त्वक् आदि (चर्म, मांस, रुधिर, मेदस्, मज्जा एवं अस्थियाँ हैं) देवताओं के अन्न को हव्य कहते हैं, पितरों के अन्न को कव्य कहते हैं तथा उन दोनों से अवशिष्ट मनुष्यों के अन्न ये सब अमृत स्वरूप हैं उन सभी अन्नो, सभी मधुर आदि अम्ल, लवण, कटु, कषाय और तिक्त रसों तथा हमलोगों की रसनेन्द्रिय तथा उसके अधिष्ठातृ देवता के उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की जिह्वा है ॥१॥

सर्वासूनां च वायोश्च तन्नासे परमायने । अश्विनोरोषधीनां च घ्राणो मोदप्रमोदयोः ॥२॥

अन्वयः— सर्वासूनाम् च वायोश्च तन्नासे परमायने, अश्विनोः ओषधीनाम् तथा मोदप्रमोदयोः घ्राणः ॥२॥

अनुवाद— हमलोगों के सभी प्राणों तथा वायु के उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की नाक के छिद्र हैं । मोद तथा प्रमोद सामान्य तथा विशेष गन्धों) के भी विराट् पुरुष के नाक के छिद्र ही श्रेष्ठ उत्पत्ति स्थान हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

सर्वासूनामस्मदादिप्राणानां तस्य नासे नासारन्ध्रे परमायने उत्तमक्षेत्रे । मोदप्रमोदयोश्च सामान्यविशेषगन्धयोर्घ्राणा घ्राणेन्द्रियं परमायनम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

हमलोगों के प्राण, अपान, समान व्यान तथा उदान इन सभी प्राणों तथा सामान्य एवं विशेष गन्धों के श्रेष्ठ उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की नाकों के छिद्र हैं ॥२॥

रूपाणां तेजसां चक्षुर्दिवः सूर्यस्य चाक्षिणी । कर्णौ दिशां च तीर्थानां श्रोत्रमाकाशशब्दयोः ॥३॥

अन्वयः— रूपाणां, तेजसां चक्षुः दिवः सूर्यस्य अक्षिणी, दिशाम् तीर्थानाम् च कर्णौ, आकाश शब्दयोःश्रोत्रम् क्षेत्रम् ॥३॥

अनुवाद— सभी रूपों तथा तेजों की उत्पत्ति का स्थान विराट् पुरुष की चक्षुरिन्द्रियाँ हैं स्वर्ग लोक और सूर्य की उत्पत्ति का स्थान विराट् पुरुष के दोनों नेत्र गोलक हैं । दिशाओं तथा तीर्थों के उत्पत्ति का स्थान दोनों कान हैं और आकाश तथा शब्द की उत्पत्ति का स्थान विराट् पुरुष की श्रोत्रेन्द्रिय है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

रूपाणां तेजसां रूपप्रकाशानां च चक्षुरिन्द्रियम् । अक्षिणी नेत्रगोलके । सर्वत्र षष्ठ्यन्तानां प्रथमान्तं क्षेत्रं द्रष्टव्यम् । कर्णौ श्रोत्राधिष्ठाने । श्रोत्रमिन्द्रियम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

सभी रूपों तथा रूपों के प्रकाशक तेजों के उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की चक्षुरिन्द्रिय है । स्वर्गलोक और सूर्य के उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की दोनों आँखें हैं । सर्वत्र प्रयुक्त षष्ठ्यन्त पदों का अर्थ प्रथमान्त क्षेत्र करना चाहिए । कर्ण शब्द से श्रेत्रेन्द्रिय का अधिष्ठान स्थान बतलाया गया है । श्रोत्र शब्द से श्रोत्रेन्द्रिय कहा गया है। श्रोत्रेन्द्रिय के अधिष्ठान (रहने के स्थान) कान है ॥३॥

तद्गात्रं वस्तुसाराणां सौभगस्य च भाजनम् । त्वगस्य स्पर्शवायोश्च सर्वमेधस्य चैव हि ॥४॥

अन्वयः— वस्तु साराणां सौभगस्य भाजनम् तद्गात्रम् स्पर्शवायोः सर्वमेधस्य च अस्य त्वक् क्षेत्रम् ॥४॥

अनुवाद— विराट् पुरुष का शरीर सभी वस्तुओं के सार तथा सौन्दर्य का उत्पत्ति स्थान है । सभी यज्ञों स्पर्श तथा वायु का उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष की त्वगिन्द्रिय है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तस्य गात्रं शरीरं वस्तूनां ये सारास्तेषां भाजनं स्थानम् । अस्य त्वक्स्पर्शस्य वायोश्चेत्यर्थः । सर्वस्य मेधस्य यज्ञस्य ॥४॥

भाव प्रकाशिका

सभी वस्तुओ के जो सारभाग हैं तथा सौन्दर्य का उत्पत्तिस्थान उस विराट् पुरुष का सम्पूर्ण शरीर है और स्पर्श, वायु तथा सभी यज्ञों के उत्पत्तिस्थान विराट् पुरुष की त्वगिन्द्रिय है ॥४॥

रोमाण्युद्भिज्जातीनां यैर्वा यज्ञस्तु संभृतः । केशश्मश्रुनखान्यस्य शिलालोहाभ्रविद्युताम् ॥५॥

अन्वयः— उद्भिज् जातीनाम् रोमाणि वा यैस्तु यज्ञः संभृतः । शिलालोहाभ्रविद्युताम् अस्य केशाश्मश्रुनखानि क्षेत्राणि॥५॥

अनुवाद— सभी वृक्ष जातियों के उत्पत्तिस्थान उनके रोम हैं अथवा जिन वृक्षों से यज्ञ का कार्य किया जाता है उन वृक्षों के उत्पत्तिस्थान विराट् पुरुष के रोम हैं । उनके केश मेधों के, श्मश्रु विद्युतों के तथा पैरों एवं हाथों के नख शिलाओं और लोहों के उत्पत्तिस्थान हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

उद्भिज्जतातीनां सर्ववृक्षाणाम् । यैर्वृक्षैर्यज्ञः सम्यक् साधितस्तेषामेव वा । केशा मेघानां क्षेत्रम्, पूर्वं तथोक्तेः । श्मश्रूणि विद्युताम् । पादकरनखानि शिलालोहानामिति सादृश्यादूह्यम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

उद्भिज्जाति के जितने भी वृक्ष हैं उन सबों के उत्पत्तिस्थान विराट् पुरुष के रोएँ हैं । अथवा जिन वृक्षों से यज्ञ अच्छी तरह सम्पन्न किया जाता है, उन्हीं वृक्षों के उत्पत्तिस्थान विराट् पुरुष के रोम हैं । केश मेंधों के उत्पत्तिस्थान हैं । उनके श्मश्रु विद्युत् के उत्पत्तिस्थान हैं । पैरों तथा हाथों के नख ही शिलाओं तथा लोहों के उत्पत्तिस्थान हैं । सादृश्य के कारण ऐसा अर्थ करना चाहिए ।।५।।

बाहवो लोकपालानां प्रायशः क्षेमकर्मणाम् । विक्रमो भूर्भुवः स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च ।।६।।

अन्वयः— क्षेमकर्मणाम् लोकपालानाम् प्रायशः बाहवः । भूर्भुवः स्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च विक्रमः ।।६।।

अनुवाद— विराट् पुरुष की भुजाओं से प्रायः लोकों की रक्षा करने वाले लोकपालों की उत्पत्ति हुयी । उनके पादविन्यास से भूर्लोक, भुवर्लोक एवं स्वर्लोक की उत्पत्ति हुयी है क्षेम और रक्षा की भी उत्पत्ति उनके चरणों से ही हुयी हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

क्षेमकर्मणां पालनकर्तृणाम् । विक्रमः पादन्यासो भूरादिलोकानामास्पदमाश्रयः । भूरादिशब्दानामव्ययत्वात्पष्ठ्या लुक् क्षेमो लब्धशरणम् । शरणं भयाद्रक्षणम् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी बतला रहे हैं कि संसार की रक्षा करने वाले लोकपालों की उत्पत्ति विराट् पुरुष की भुजाओं से हुयी हैं । उनके चरणविन्यासों से भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक की उत्पत्ति हुयी है । भूः आदि शब्दों के अव्यय होने के कारण भू र्भुवः स्वः इन तीनों की षष्ठी विभक्ति का लुक् हुआ है । प्राप्त वस्तु की रक्षा करने को क्षेम कहते हैं किसी की भय से रक्षा करने को शरण कहते है । श्रीभगवान् के चरण विन्यास ही क्षेम और शरण हैं ।।६।।

सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरण आस्पदम् । अपां वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापतेः ।।
पुंसः शिश्न उपस्थस्तु प्रजात्यानन्दनिर्वृतेः ।।७।।

अन्वयः— सर्वकामवरस्य अपि हरेः चरणः आस्पदम् । अपाम् वीर्यस्य, सर्गस्य, पर्जन्यस्य प्रजापतेः पुंसः शिश्नः प्रजात्यानन्दनिर्वृतेः तु उपस्थः ।।७।।

अनुवाद— सभी कामनाओं की पूर्ति के स्थान विराट् पुरुष के चरण ही हैं । विराट् पुरुष का लिङ्ग जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ तथा प्रजापति की उत्पत्ति का स्थान है । विराट् पुरुष का जननेन्द्रिय मैथुनजन्य आनन्द का उत्पत्ति स्थान है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

सर्वेषां कामनां वरस्य वरुणस्यापि हरेरङ्घ्रिरास्पदम् । वीर्यस्य शुक्रस्य । शिश्नोऽधिष्ठानम् उपस्थस्त्विन्द्रियम् । प्रजात्यानन्दः सन्तानार्थः संभोगस्तेन या निर्वृतिस्तापहानिस्तस्याः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

सभी कामनाओं की पूर्ति का भी स्थान विराट् पुरुष के चरण हैं । जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ और प्रजापति का उत्पत्ति स्थान लिङ्ग है । शिश्न शब्द से लिङ्ग को कहा गया है । उपस्थ इन्द्रिय है । सन्तानोत्पत्ति के लिए किए जाने वाले संभोग और तज्जन्य आनन्द की उत्पत्ति का स्थान विराट् पुरुष की उपस्थेन्द्रिय हैं ।।७।।

पायुर्यमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नारद । हिंसाया निर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्य गुदः स्मृतः ॥८॥

अन्वयः— नारद ! यमस्य, मित्रस्य, परिमोक्षस्य पायुः । हिंसायाः, निर्ऋतेः मृत्योः निरयस्य गुदः स्मृतः ॥८॥

अनुवाद— हे नारद ! विराट् पुरुष की पायु इन्द्रिय ही यम, मित्र तथा मलत्याग का उत्पत्ति स्थान है और हिंसा, निर्ऋति, मृत्यु और नरक का उद्‌गम स्थान विराट् पुरुष का गुदाद्वार है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

परिमोक्षस्य मलत्यागस्य पायुरिन्द्रियम् । गुदः स्थानम् । निर्ऋतेरलक्ष्म्या ॥८॥

भाव प्रकाशिका

गुदः स्थान मल द्वार को कहते है । यम, मित्र, मलत्याग इन सबों का उद्गम स्थान पायुरिन्द्रिय है । हिंसा अलक्ष्मी, मृत्यु, तथा नरक का उत्पत्ति स्थान विराट् पुरुष का गुदाद्वार हैं ॥८॥

पराभूतेरधर्मस्य तमसश्चापि पश्चिमः । नाड्यो नदनदीनां तु गोत्राणामस्थिसंहतिः ॥९॥

अन्वयः— पश्चिमः पराभूतेः अधर्मस्य तमसः च अपि, नदनदीनाम् नाड्यः गोत्रणाम् अस्थिसंहति उद्‌गमस्थानम् ॥९॥

अनुवाद— विराट् पुरुष की पीठ पराजय अधर्म और अज्ञान का उद्गम स्थान है । नदियों और नक्षत्रों का उद्गम स्थान विराट् पुरुष की नाडियाँ हैं तथा पर्वतों का उद्गमस्थान विराट् पुरुष के अस्थिसमूह हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तमसोऽज्ञानस्य । पश्चिमः पृष्ठभाग गोत्राणां गिरीणामस्थिसंघातः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

विराट् पुरुष की पीठ अज्ञान का उत्पत्ति स्थान है । गोत्र शब्द वाच्य पर्वतों की उत्पत्ति विराट् पुरुष के अस्थिसमूह से हुयी ॥९॥

अव्यक्तरससिन्धूनां भूतानां निधनस्य च । उदरं विदितं पुंसो हृदयं मनसः पदम् ॥१०॥

अन्वयः— अव्यक्त-रस-सिन्धूनां भूतानां निधनस्य च पुंसः उदरम् विदितम् मनसः हृदयम् पदम् ॥१०॥

अनुवाद— प्रकृति अन्नों के सारभूत रस विशेष, समुद्र तथा जीवों की मृत्यु का स्थान विराट् पुरुष का उदर है और मन का उद्गम स्थान हृदय है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अव्यक्तं प्रधानम्, रसोऽन्नादिसारः, सिन्धवः समुद्रास्तेषाम् । निधनस्य लयस्य । उदरं पदं स्थानं विदितं ज्ञानिभिः । मनसोऽस्मदादिलिङ्गशरीरस्य ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

अव्यक्त शब्द वाच्य प्रकृति अन्नों के सारभूत रसविशेष, समुद्र तथा जीवों की मृत्यु का उद्गम स्थान विराट् पुरुष का उदर है; यह ज्ञानियों ने कहा है । मनः शब्द वाच्य हमलोगों के लिङ्ग शरीर का उद्गम स्थन विराट् पुरुष का हृदय है ॥१०॥

धर्मस्य मम तुभ्यं च कुमाराणां भवस्य च । विज्ञानस्य च सत्त्वस्य परस्यात्मा परायणम् ॥११॥

अन्वयः— धर्मस्य, मम, तुभ्यं च कुमाराणं, भवस्य च विज्ञानस्य सत्त्वस्य च आत्मा परायणम् ॥११॥

अनुवाद— धर्म का, मेरा, तुम्हारा, सनकादियों का, शङ्करजी का, विज्ञान का और सत्त्व का आश्रय विराट् पुरुष का चित्त है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तुभ्यं तव । कुमाराणां सनकादीनाम् । भवस्य श्रीरुद्रस्य । आत्मा चित्तं परमयनम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

धर्म, ब्रह्माजी का, नारदजी का, सनकादिक महर्षियों का, शङ्करजी का और सत्त्व अन्त:करण का परम आश्रय विराट् पुरुष का चित्त ही है ।।११।।

अहं म्भवान्भवश्चैव त इमे मुनयोऽग्रजाः । सुरासुरनरा नागाः खगा मृगसरीसृपाः ।।१२।।
गन्धर्वाप्सरसो यक्षा रक्षोभूतगणोरगाः । पशवः पितरः सिद्धा विद्याध्राश्चारणा द्रुमाः।।१३।।
अन्ये च विविधा जीवा जलस्थलनभौकसः । ग्रहर्क्षकेतवस्तारास्तडितः स्तनयित्नवः ।।१४।।
सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत्। तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति ।।१५।।

अन्वयः— अहम्, भवान् भवः च त इमे अग्रजा मुनयः सुरासुरनराः नागाः खगाः, मृगसरीसृपाः, गन्धर्वाप्सरसः यक्षाः रक्षोभूतगणोरगाः, पशवः पितरः, सिद्धाः विद्याध्राः चारणाः द्रुमाः अन्येच विविधा जीवाः, जलस्थलनभौकसः, ग्रहर्क्षकेतवः, ताराः तडितः, स्तनयित्नवः सर्वं इदं यत् भूतं भव्यं भवत् च इदं विश्वं तेन आवृतं किञ्च सः वितस्तिम् अधितिष्ठति ।।१२-१५।।

अनुवाद— मैं (ब्रह्माजी) तुम (नारदजी) शङ्करजी तुम्हारे बड़े भाई सनकादिक महर्षिगण, देवता, असुर, मनुष्य, नाग, मृग, रेंगने वाले जीव, गन्धर्व, अप्सरायें, यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेत, सर्प, पशु, पितृगण, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष, अनेक प्रकार के दूसरे जीव जो आकाश, जल अथवा पृथिवी पर रहते हैं, ग्रह, नक्षत्र केतु, तारे, विद्युत् और मेघ यह सम्पूर्ण जगत् विराट् पुरुषमय हैं । यह सम्पूर्ण विश्व जो कभी हुआ, या होगा अथवा है, ये सबके सब उस विराट् पुरुष से धिरे हैं । यह सम्पूर्ण विश्व विराट पुरुष के एक वितस्ति वित्ता मात्र में स्थित है । इस विश्व का परिमाण विराट् पुरुष का एक वित्ता है ।।१२-१५।।

भावार्थ दीपिका

एवं तावत्परमेश्वराज्जातं विश्वं ततो न भिन्नम् । यथा कुण्डलं सुवर्णान्न पृथक् । स तु सर्वनियन्ता सर्वप्रकाशको नित्यमुक्त इत्यर्थादुक्तम् । एतदेव पुरुषसूक्तार्थकथनेन द्रढयति । तत्र 'सहस्रशीर्षा' इत्यर्धर्चस्य 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' इत्यादेश्च ऋक्त्रयस्यार्थः पूर्वाध्याय एव दर्शितः । 'पुरुष एवेदं सर्वम्' इत्यस्यार्थं दर्शयति । अहं भवानिति सार्धत्रिभिः । ते तव अग्रजा इमे सनकादयो मरीच्यादयश्च जलं च स्थलं च नभश्चौकांसि येषां ते । नभौकस इति सन्धिरार्षः । सर्वमिदं पुरुष एव न ततः पृथगित्यर्थः । प्रपञ्चेन तस्या परिच्छेदं वक्तुं **स भूमिम्**' इत्यस्यार्थमाह तेन पुरुषेण । विश्वमिति भूमिपदस्यार्थः । वितस्तिमिति दशाङ्गुलपदस्य, अधीत्यतिशब्दस्य, आवृतमिति वृत्वेत्यस्य, स च वितस्तिमधिकं व्याप्य तिष्ठतीत्याधिक्यमात्रं विवक्षितं, नतु परिमाणम् अनुपयोगादपरिच्छिन्नत्वाच्च ।।१२-१५।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा से उत्पन्न होने वाला यह जगत् उनसे भिन्न नहीं है । यह उसी तरह से है जैसे सुवर्ण से निर्मित कुण्डल सुवर्ण से भिन्न नहीं होता है । वे परमेश्वर जो हैं वे सबों के नियामक हैं, सबों के प्रकाशक है और नित्य मुक्त हैं यह अर्थत: ही सिद्ध हो जाता है । इस अर्थ का प्रतिपादन ब्रह्माजी ने पुरुषसूक्त का वर्णन करके किया है । पुरुष सूक्त के **सहस्रशीर्षा इत्यादि** आधे मन्त्र का तथा **ब्रह्मणोऽस्य मुखमासीत् इत्यादि** तीन मन्त्रों का अर्थ इससे पहले के अध्याय में बतलाया जा चुका है । **अहं भवान् इत्यादि** साढे तीन श्लोकों द्वारा ब्रह्माजी ने **पुरुष एवेदं सर्वम्** इस मन्त्र का अर्थ बतलाया है । **वितस्तिम्** इस पद के द्वारा श्रुति के **दशाङ्गुलम्** पद का अधि इस अव्यय के द्वारा **अति** पद का अर्थ बतलाया गया है । परमेश्वर विराट् पुरुष के वित्तामात्र प्रपञ्च को अधिक

व्याप्त करके रहता है यह कहने का इतना ही मात्र अभिप्राय है कि वह प्रपञ्च की अपेक्षा अधिक व्यापक है। यहाँ परिमाण विवक्षित नहीं है। क्योंकि परिमाण प्रतिपादन का कोई उपयोग नहीं है और विराट् पुरुष परिच्छिन्न हैं भी नहीं ॥१२-१५॥

स्वधिष्ण्यं प्रतपन्प्राणो बहिश्च प्रतपत्यसौ । एवं विराजं प्रतपंस्तपत्यन्तर्बहिः पुमान् ॥१६॥

अन्वयः— यथा असौ प्राणः स्वधिष्ण्यं प्रतपन् बहिश्च प्रतपति, एवं पुमान् विराजं प्रतपन् अन्तर्बहिश्च प्रतपति ॥१६॥

अनुवाद— जैसे प्रकाशित होने वाले सूर्य अपने मण्डल को प्रकाशित करते हुए उसके बाहर भी प्रकाशित होते हैं, उसी तरह परमात्मा भी अपने शरीरभूत विराट् को प्रकाशित करते हुए उसके बाहर भी प्रकाशित होते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

एतत्सदृष्टन्तमाह। असौ प्राण आदित्यः 'असौ वा अदित्यः प्राणः' इति श्रुतेः। स्वधिष्ण्यं मण्डलं प्रकाशयन्यथा बहिश्च प्रकाशयति एवं विराड्देहं प्रकाशयन् ब्रह्माण्डमन्तर्बहिश्च प्रकाशयति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का प्रतिपादन दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक करते हैं। जैसे दूर देश में विद्यमान प्राण शब्द वाच्य आदित्य अपने मण्डल को प्रकाशित करते हुए उसके बाहर भी प्रकाशित होते हैं उसी तरह परमेश्वर भी अपने विराट् देह को प्रकाशित करते हुए ब्रह्माण्ड के भीतरी भाग को और बाहर भी प्रकाशित करते हैं। प्राण शब्द आदित्य का वाचक है इसमें **'असौ वा आदित्यः प्राणः'** यह श्रुति ही प्रमाण हैं ॥१६॥

सोऽमतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात् । महिमैष ततो ब्रह्मन् पुरुषस्य दुरत्ययः ॥१७॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् यत् मर्त्यमन्नम् अत्यगात् ततः पुरुषस्य एष महिमा दुरत्ययः सः अमृतस्य अभयस्य ईशः ॥१७॥

अनुवाद— हे नारदजी ! जो कुछ भी मनुष्य की क्रिया और सङ्कल्प से बनता है, ईश्वर उससे परे हैं। वह अमृत अभयप्रद (मोक्ष) का स्वामी है। इसीलिए परमेश्वर की महिमा का कोई पार नहीं पा सकता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

नित्यमुक्तत्वं दर्शयितुं 'उतामृतत्वस्य' इत्यस्यार्थमाह- स इति। अभयस्येति मन्त्रगतामृतपदव्याख्या। अन्नेनेति पदं विभक्तिव्यत्ययेन व्याचष्टे। मर्त्ये मरणधर्मकमन्नं कर्मफलं यस्मादत्यगादतिक्रान्तवान्। अतो न केवलं सर्वात्मकः, किंत्वमृतत्वस्य निजानन्दस्यापीश्वर इत्यर्थः। प्रपञ्चात्मकस्य कुतो नित्यमुक्तत्वमित्याशङ्क्य तत्परिहाराय 'एतावानस्य' इत्यस्यार्थमाह- महिमेति। प्रपञ्चात्मकस्याप्यमृतेशत्वमित्येष महिमा दुरत्ययोऽपारः। प्रपञ्चानिभिभूतत्वादिति भावः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

यह विराट् पुरुष नित्यमुक्त है इस बात को बतलाने के लिए ब्रह्माजी **सोऽमृतस्य इत्यादि** श्लोक के द्वारा **उतामृतत्वस्येशानो इत्यादि** श्रुति का अर्थ बतलाते हैं। श्लोक के **अभयस्य** पद के द्वारा मन्त्र के अमृत पद की व्याख्या की गयी है। मन्त्र के अन्नेन पद की व्याख्या अन्नम् पद से विभक्ति को परिवर्तित करके कहा गया है। मर्त्यम् पद के द्वारा मरणशील अन्न कर्मफल को कहा गया है। चूकि वह विराट् पुरुष कर्म फल का अतिक्रमण किए हुए है, अतएव वह केवल सर्वात्मक ही नहीं है अपितु वह अमृतत्त्व अर्थात् अपने आनन्द का भी स्वामी है। यह प्रपञ्चात्मक विराट् कैसे नित्य मुक्त हो सकता है तो इस प्रकार की शङ्का का परिहार करने के लिए **एतावानस्य** इस मन्त्र का अर्थ ब्रह्माजी ने **महिमैष इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया है। अर्थात् प्रपञ्चात्मक भी परमेश्वर की महिमा अपार है; क्योंकि वह प्रपञ्च से अभिभूत नहीं है ॥१७॥

पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः । अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायि मूर्धसु ॥१८॥

अन्वयः— पुंसः पादेषु सर्वभूतानि स्थिति पदोविदुः त्रिमूर्ध्नः मूर्धसु अमृतं क्षेमम् अभयं अधायि ॥१८॥

अनुवाद— सम्पूर्ण लोक परमेश्वर के एक पद मात्र (अंश मात्र) हैं । उनके अंश मात्र लोकों में समस्त प्राणियों का निवास है । भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक के ऊपर महर्लोक विद्यमान है । उसके ऊपर जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक विद्यमान हैं । उन लोकों में क्रमशः अमृत, क्षेम और अभय का निवास रहता हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

मन्त्रेण चैतावानस्य महिमा विभूतिः, स तु ज्यायान्महत्तर इति वदताऽयमेवार्थ उक्तः । तदेवमीश्वरो नित्यमुक्त इत्युक्तं **'तदाश्रितानां भूतानां बन्धमोक्षौ व्यवस्थया'** इति दर्शयन् **'पादोऽस्य विश्वा भूतानि'** इत्यस्यार्थमाह-पादेष्विति । तिष्ठन्त्यत्रेति स्थितयो भूरादिलोकास्ते पादा इव पादा अंशा यस्य स स्थितिपात् तस्य पादेश्वंशभूतेषु लोकेषु सर्वाञ्जीवान्विदुः । मन्त्रे तु **'पादोऽस्य विश्वा भूतानि'** इति सामानाधिकरण्यमधिष्ठानाधिष्ठेयाभेदविवक्षया । पाद इत्येकवचनं च सामान्याभिप्रायेणेति व्याख्यातं भवति । भूतेषु फलवैचित्र्यं दर्शयन् । **'त्रिपादस्यामृतं दिवि'** इत्यस्यार्थमाह । अस्येश्वरसंबन्धि त्रिपादमृतं नित्यसुखं दिवि ऊर्ध्वलोकेषु । न त्रिलोक्यामित्यर्थः । तदेव त्रिपाच्छब्दोक्तं त्रैविध्यं दर्शयन्नाह । त्रयाणां लोकानां मूर्धा महर्लोकस्तस्य मूर्धानस्तदुपरितनलोकास्तेषु यथाक्रमममृतादिकमधायि निहितम् । तत्र त्रिलोक्यां नश्वरमेव सुखम् । महर्लोकस्य क्रममुक्तिस्थानत्वेऽपि कल्पान्ते तत्रत्यानां स्थानत्यागान्नाविनाशिसुखम् । जनलोके त्वमृतमविनाशिसुखम् । यावज्जीवं स्वस्थानापरित्यागात् । किंतु महर्लोकवासिनां कल्पान्ते त्रिलोकदाहोष्मपीडितानां तदा तत्र गमनादक्षेमदर्शनमस्ति । तपोलोके तस्याभावात्क्षेममेव । वक्ष्यति हि **'त्रिलोक्यां दह्यमानायां शक्त्या सङ्कर्षणाग्निना । यान्त्युष्मणा महर्लोकाज्जनं भृग्वादयोऽर्दिताः'** इति । सत्यलोके त्वभयं मोक्षः, तत्प्रत्यासत्तेः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

एतावानस्य० इत्यादि मन्त्र के द्वारा यह कहा गया है कि इतना उस पुरुष की महिमा अर्थात् विभूति है और वह पुरुष उससे भी महान् है । इस बात को बतलाने वाले मन्त्र के द्वारा यही बतलाया गया है । इस तरह सिद्ध हो गया कि ईश्वर नित्य ही मुक्त हैं । उसके अधीन रहने वाले भूतों की बन्ध और मोक्ष की व्यवस्था को बतलाते हुए ब्रह्माजी **पादोऽस्य विश्वाभूतानि** इस मन्त्र का अर्थ पादेषु इस वाक्य से कहे हैं । उस ईश्वर में भूलोक अदि लोक है वे चरणों के समान हैं । पाद शब्द यहाँ अंश का बोधक है । वे लोक जिसके चरण है वह स्थिति पाद है । उसके अंश भूत लोकों में सभी जीवों को ज्ञानी पुरुष जानते हैं । मन्त्र में जो सामानाधिकरण्य अधिष्ठान और अधिष्ठेय के अभेद की विवक्षा से किया गया है । **पादोऽस्य** में पाद शब्द का एकवचनान्त प्रयोग जाति की विवक्षा से किया गया है । इस तरह से इस बात की व्याख्या की गयी है । प्रत्येक भूतों को अलग-अलग फल की प्राप्ति को बतलाते हुए **त्रिपादस्यामृतं दिवि** श्रुति का अर्थ बतलाया गया है । उसका अर्थ है कि ईश्वर सम्बन्धी अमृतत्रिपाद है । अर्थात् वहाँ सदा सुख ही बना रहता है । वह ऊपर के लोकों में विद्यमान है वह अमृतत्रिपाद त्रिलाकी के भीतर नहीं है । उस त्रिपाद शब्द से उक्त की त्रिविधता बतलाते हुए त्रिमूर्ध्नः कहा गया है । इसका विग्रह है त्रयाणां लोकानां मूर्धा । वह महर्लोक है । उस महर्लोक के ऊपर विद्यमान जो लोक हैं उन लोकों में क्रमशः अमृत, क्षेभ तथा अभय विद्यमान हैं । त्रिलोकी में रहने वाला सुख तो नश्वर है । यद्यपि महर्लोक क्रममुक्ति का स्थान है, किन्तु कल्प का अन्त होने पर वहाँ के भी जीव महर्लोक का त्यग कर देते हैं । अतएव वहाँ का भी सुख अविनाशी नहीं है । जनलोक में तो अमृत अर्थात् अविनाशी सुख रहता है । क्योंकि वहाँ के जीव जीवनभर उस लोक का परित्याग नहीं करते हैं । किन्तु महर्लोक में रहने वाले जीव कल्पान्त में त्रिलोकदाह की गर्मी से पीड़ित होकर जनलोक में चले जाते हैं । अतएव वहाँ उनको सुख नहीं मिलता है । तपोलोक में दुख का अभाव है अतएव वहाँ क्षेम का निवास है । आगे चलकर कहा भी जायेगा—

त्रिलोक्यां० इत्यादि- अर्थात् कल्प के अन्त में संकर्ष के मुख से निकली हुयी अग्नि से जब त्रैलोक्य जलने लग जाता है तो उसकी गर्मी से सन्तप्त महर्लोकवासी जीव महर्षि भृगु इत्यादि जनलोक में चले जाते हैं। सत्यलोक में तो अभय पद वाच्य मोक्ष का निवास है । क्योंकि सत्यलोक का वैकुण्ठ लोक से सन्निधान हैं ।।१८।।

पादास्त्रयो बहिश्चासन्नप्रजानां य आश्रमाः । अन्तस्त्रिलोक्यास्त्वपरा गृहमेधोऽबृहद्व्रतः ।।१९।।

अन्वयः— अप्रजानां ये आश्रमाः त्रयः पादाः त्रिलोक्याः बहिश्चासन् अपरः अबृहद्व्रतः गृहमेधः स त्रिलोक्याः अन्तः।।१९।।

अनुवाद— जिन लोकों में पुत्र-पौत्र इत्यादि नहीं होते हैं, वे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी ये तीनों आश्रम त्रिलोकी के भीतर नहीं रहते हैं, वे उसके बाहर के लोकों में रहते हैं, जिसमें महान् ब्रह्मचर्य व्रत का पालन नहीं किया जाता है, ऐसे गृहस्थ त्रिलोकी के भीतर ही रहते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

एतदेव वैचित्र्यमधिकारिभेदेनोपपादयन् **'त्रिपादूर्ध्व'** इत्यस्यार्थमाह । नहि प्रजायन्ते पुत्रादिरूपेणेत्यप्रजा नैष्ठिकब्रह्मचारिवानप्रस्थयतयस्तेषामाश्रमास्त्रिलोक्या बहिरासन्, गृहमेधस्त्वन्तः । यस्माद्बृहद्व्रतो ब्रह्मचर्यव्रतरहितः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इसी विचित्रता को अधिकारी के भेद से प्रतिपादित करते हुए ब्रह्माजी **त्रिपादूर्ध्वमुदैत् इत्यादि** मन्त्र का अर्थ बतलाते हैं जिन आश्रमों में जीवों की पुत्र आदि रूप से उत्पत्ति नहीं होती है । उन आश्रमों को अप्रजा कहते है । ऐसे आश्रम नैष्ठिकब्रह्मचारी वानप्रस्थ तथा संन्यासियों का आश्रम हैं । वे त्रिलोकी के बाहर हैं और गृहमेधी (गृहस्थ) तो त्रिलोकी के भीतर ही रहते हैं । क्योंकि गार्हस्थ्य ब्रह्मचर्यव्रत रहित होता है ।।१९।।

सृति विचक्रमे विष्वङ् साशनानशने उभे । यदविद्या च विद्या च पुरुषस्तूभयाश्रयाः ।।२०।।

अन्वयः— साशनानशने उभे सृती विष्वङ् विचक्रमे यद् विद्या च अविद्या च । पुरुषस्तूभयाश्रयः ।।२०।।

अनुवाद— शास्त्रों में दो प्रकार के मार्ग वर्णित हैं भोगप्रद तथा मोक्षप्रद । इन दोनों में से एक अविद्या रूप है, जो सकाम पुरुषों के लिए है और दूसरा उपासना रूप मोक्ष प्रदान करने वाला है । इन दोनों को क्रमशः धूमादिमार्ग या दक्षिणमार्ग तथा अर्चिरादिमार्ग या उत्तरमार्ग कहा जाता है । मनुष्य इन दोनों में किसी एक में ही जाता है किन्तु परमात्मा तो उभयाश्रय (दोनों के आधार) हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

अयं चाधिकारभेद एकस्यैवावस्थाभेदेन न त्वत्यन्तभिन्नविषय इति दर्शयन् **'ततो विष्वङ्'** इत्यस्यार्थमाह । विविधं सुष्ठु अञ्चतीति विष्वङ् पुरुषः क्षेत्रज्ञः सृती मार्गौ दक्षिणोत्तरौ विचक्रमे चलति स्म । कथंभूते सृती, साशनानशने भोगापवर्गप्राप्तिसाधनभूते । अत्र हेतुत्वेन पुनर्विशेषणम् । यद्यतः अविद्या कर्मरूपा एका विद्या च तत्साधनोपासनारूपान्या ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

यह अधिकार भेद एक के ही अवस्था भेद के कारण है । यह अत्यन्त भिन्न विषयक नहीं हैं इस बात को बतलाते हुए ब्रह्माजी ने **ततो विष्वङ्व्यक्रामत** क्षेत्रज्ञ पुरुष इन दोनों मार्गों पर चलता है । यह विष्वङ् शब्द का विविधं (सुष्ठु) अञ्चतीति, इस विग्रह के अनुसार अर्थ हैं । द्विवचनान्त सृती पद दक्षिण एवं उत्तर इन दोनों मार्गों का बोधक है । साशनानशने पद के द्वारा दोनों मार्गों को क्रमशः भोग तथा मोक्षप्रद बतलाया गया है । उनमें एक सृति अविद्या अर्थात् कर्म रूप है और दूसरी मोक्षप्राप्ति के साधन भूत उपासना रूप है । इसको विद्या भी कहते हैं ।।२०।।

यस्मादण्डं विराड् जज्ञे भूतेन्द्रियगुणात्मकः । तद्द्रव्यमत्यगाद्विश्वं गोभिः सूर्य इवातपन् ॥२१॥

अन्वयः— यस्माद् भूतेन्द्रिय गुणात्मकः विराट् आण्डं जज्ञे तत गोभिः विश्वं अतपन् सूर्य इव द्रव्यम् अत्यगात् ॥२१॥

अनुवाद— जिस तरह सूर्य सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हुए भी सबों से अलग है, उसी तरह से जिस परमात्मा से पञ्चभूत, इन्द्रिय और गुणमय विराट् की उत्पत्ति हुयी है वे इन समस्त वस्तुओं के भीतर और बाहर रहते हुए भी उससे पूर्ण रूप से पृथक् हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं विराडन्तवर्तिनां फलवैचित्र्यमुक्त्वा तत्कारणेश्वरस्य तद्वैलक्षण्यं दर्शयितुं **'तस्माद्विराडजायत'** इत्यस्यार्थमाह। यस्मादण्डं जज्ञे, तत्र च भूतेन्द्रियगुणात्मको विराट् च जज्ञे, स ईश्वरस्तद्विश्वं विराट्देहं द्रव्यमण्डं च अतिक्रान्तवान्। सूर्य इवेति पूर्वोक्त एव दृष्टान्तः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से ब्रह्माण्डन्तर्वर्ती जीवों के फलों की भिन्नता को बतलाकर उसके कारणभूत परमेश्वर की उससे भिन्नता को बतलाने के लिए **तस्माद्विराडजायत** इस श्रुत्यंश का अर्थ बतलाया गया है। और उसीसे भूतेन्द्रिय गुणात्मक विराट् भी उत्पन्न हुआ। वे ईश्वर अपने सम्पूर्ण विराट् देह और द्रव्य अण्ड से भिन्न हैं। सूर्य के समान। यह दृष्टान्त बतलाया गया है। जिस तरह सूर्य सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हुए उससे भिन्न हैं उसी तरह परमेश्वर सबों से अपने विराट् देह और ब्रह्माण्ड से भिन्न हैं ॥२१॥

यदाऽस्य नाभ्यान्नलिनादहमासं महात्मनः । नाविदं यज्ञसंभारान्पुरुषावयवादृते ॥२२॥

अन्वयः— यदा अहम् अस्य महात्मनः नाभ्यात् नलिनाद् आसं पुरुषावयवात् ऋते यज्ञ संभारान् न अविदम् ॥२२॥

अनुवाद— जिस समय इस विराट पुरुष के नाभिकमल से मेरा जन्म हुआ उस समय मुझको इस पुरुष के अङ्गों के अतिरिक्त कोई भी दूसरी यज्ञ की सामग्री नहीं मिली ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं पुरुष एव चेत्सर्वं। तर्हि यज्ञस्य तत्साधनानां चापृथग्भावाद्यज्ञैः पुरुषाराधनं न सिध्येदित्याशङ्क्य तत्परिहाराय **'यत्पुरुषेण हविषा'** इत्यादिमन्त्रार्थं संगृह्य दर्शयति- यदेत्यादिना। अस्येति विराडन्तर्यामिणः। तस्यैव प्रकृतत्वात्। नाभौ भवं नाभ्यं तस्मात्। यज्ञस्य संभारान्साधनानि नापश्यम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि यदि पुरुष ही सम्पूर्ण जगत् है तो यज्ञ तथा उसके साधनों की अभिन्नता के कारण यज्ञों के द्वारा पुरुष की आराधना सिद्ध नहीं हो सकती है, इस तरह की आशङ्का करके उसका परिहार करने के लिए **यत् पुरुषेण हविषा इत्यादि** मन्त्र के अर्थ को **यदास्य इत्यादि** श्लोक के द्वारा संक्षेप में ब्रह्माजी ने बतलाया। श्लोक के अस्य पद के द्वारा विराट् के अन्तर्यामी परमेश्वर का परामर्श किया गया है; क्योंकि यहाँ उसी का वर्णन प्रसङ्ग प्राप्त है। नाभि से उत्पन्न होने के कारण कमल को नाभ्य कहा गया है। ब्रह्माजी ने कहा कि उस पुरुष के अवयवों से भिन्न किसी भी वस्तु को मैंने नहीं देखा ॥२२॥

तेषु यज्ञस्य पशवः सवनस्पतयः कुशाः । इदं च देवयजनं कालश्चोरुगुणान्वितः ॥२३॥
वस्तून्योषधयः स्नेहा रसलोहमृदो जलम् । ऋचो यजूंषि सामानि चातुर्होत्रं च सत्तम ॥२४॥
नामधेयानि मन्त्राश्च दक्षिणाश्च व्रतानि च । देवतानुक्रमः कल्पः संकल्पस्तन्त्रमेव च ॥२५॥
गतयो मतयश्चैव प्रायश्चित्तं समर्पणम् । पुरुषावयवैरेते संभाराः संभृता मया ॥२६॥

अन्वयः— हे सत्तम तेषु यज्ञस्य पशवः वनस्पतयः कुशाः, इदं देवयजनं, उरु गुणान्वितः कालः, वस्तूनि, ओषधयः स्नेहा, रस-लोह-मृदः, जलम्, ऋचः यजूंषि, सामानि, चातुर्होत्रं च , नामधेयानि, मन्त्राः च, दक्षिणाः च व्रतानि च, देववानुक्रमः, कल्पः, सङ्कल्पः, तन्त्रम् एव च गतयः मतयः, श्रद्धा, प्रायश्चितं समर्पणम् एते सम्भाराः मया पुरुषावयवैः सम्भृताः।।२३-२६।।

अनुवाद— मैंने पुरुष के अवयवों में ही, यज्ञ के पशु स्तम्भ (यूप) वनस्पति, कुश, यह यज्ञभूमि, यज्ञ के योग्य काल, यज्ञ के लिए आवश्यक वस्तु औषधियाँ, तिल, चावल, यव, आदि अन्न) घृत आदि स्नेह, छहोरस, लोहा, मिट्टी, जल, ऋक्, यजुष् और साम, चातुर्होत्र, यज्ञों के नाम, मन्त्र, दक्षिणा, व्रत, देवताओं के नाम, पद्धति ग्रन्थ (कल्प) सङ्कल्प, तन्त्र (अनुष्ठान की रीति, गति, मति, श्रद्धा) प्रायश्चित तथा समर्पण इन समस्त यज्ञ सामग्रियों को प्राप्त किया ।।२३-२६।।

भावार्थ दीपिका

तदा तेषु संभारेषु साध्येषु सत्सु '**पुरुषावयवैरेते संभाराः संभृताः**' इति चतुर्थेनान्वयः । वनस्पतयो यूपाः । देवयजनं यज्ञभूमिः । इदं चेति वचनात् यज्ञार्हे स्थाने उपविष्टः कथयतीति गम्यते । बहुगुणान्वितो वसन्तादिकालः । वस्तूनि पात्रादीनि। ओषधयो ब्रीह्यादयः । स्नेहा घृतादयः । रसा मधुरादयः, सुवर्णादीनि लोहानि, मृदश्च जलं च, चातुर्होत्रं हौत्रादिकं कर्म । नामधेयानि ज्योतिष्टोमादीनि । ऋगादीनामुक्तत्वान्मत्रा इति स्वाहाकारादयः । देवतानामनुक्रम उद्देशः । कल्पो बौधयनादिकर्मपद्धतिग्रन्थः । अनेनाहं यक्ष्य इति सङ्कल्पः । तन्त्रमनुष्ठानप्रकारः । गतयो विष्णुक्रमाद्याः । मतयो देवताध्यानानि। कृतस्य भगवति समर्पणम् ।।२३-२६।।

भाव प्रकाशिका

उस समय जिन यज्ञ की सामग्रियों को एकत्रित करना था, उस सबों को मैंने पुरुष के अवयवों से ही एकत्रित किया । इस तरह से इस श्लोक का चौथे श्लोक से अन्वय है । श्लोक में वनस्पति शब्द से यूप (स्तम्भ) को कहा गया है । देवयजन शब्द यज्ञभूमि का बोधक है । इदं शब्द के द्वारा यज्ञ के योग्य स्थान पर बैठे हुए ब्रह्माजी कह रहे हैं, यह प्रतीत होता है । यज्ञ के योग्य वसन्त ऋतु आदि काल को काल शब्द से कहा गया है । वस्तु शब्द से पात्र इत्यादि को कहा गया है । धान आदि अन्नों को ओषधि शब्द से कहा गया है । घृत आदि को स्नेह कहा गया है । मधुर इत्यादि षट् रसों को रसा शब्द से कहा गया है । सुवर्ण आदि को लोह शब्द से कहा गया है । मिट्टी, जल, तथा चातुर्होत्र अर्थात् होत्रादि कर्म भी ब्रह्माजी ने उस पुरुष के अवयवों से ही प्राप्त किया । ज्योतिष्टोम इत्यादि यज्ञों के नाम, ऋग् आदि वेदों के मन्त्र स्वाहाकार आदि यज्ञ के देवताओं के उद्देश (नाम) बोधायन आदि महर्षियों द्वरा प्रणीत बौधायान कर्म पद्धति इत्यादि ग्रन्थों को कल्प शब्द से कहा गया है । इससे मैं यज्ञ करूँगा । इत्यादि रूप सङ्कल्पों तथा अनुष्ठान के प्रकार इन सबों को ब्रह्माजी ने विराट् पुरुष के अवयवों से ही प्राप्त किया । गति शब्द से यज्ञ के अन्त में **विष्णोः क्रमोऽस्यभिमतिहा'** इस मन्त्र से यजमान के द्वारा की जाने वाली गति विशेष को कहा गया है, मति शब्द से देवताओं के ध्यान को और सभी कर्मो को श्रीभगवान् को समर्पित करना इन सबों को ब्रह्माजी ने उस पुरुष के अवयवों से ही प्राप्त किया ।।२३-२६।।

इति संभृतसंभारः पुरुषावयवैरहम्। तमेव पुरुषं यज्ञं तेनैवायजमीश्वरम्।।२७।।

अन्वयः— इति पुरुषावयवैः संभृतसंभारः अहम् तमेव, यज्ञं पुरुषं तेनैव अयजम् ।।२७।।

अनुवाद— इस प्रकार से पुरुषों के अवयवों से सामग्रियों को एकत्रित करके मैंने उस यज्ञपुरुष परमात्मा का उसी सामग्री समूह से मैंने यजन किया ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

संभृताः संपादिताः संभारा येन सोऽहम् । तेनैव यज्ञेनैव । अनेन '**यज्ञेन यज्ञमयजन्त**' इति मन्त्रार्थः सूचितः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से यज्ञ की सारी सामग्रीको एकत्रित करके मैंने उस यज्ञ के द्वारा ही उस परमपुरुष का यजन किया । इस श्लोक के द्वारा **यज्ञेन यज्ञमयजन्त इत्यादि** मन्त्र के अर्थ को सूचित किया गया है ॥२७॥

ततस्ते भ्रातर इमे प्रजानां पतयो नव । अयजन्व्यक्तमव्यक्तं पुरुषं सुसमाहिताः ॥२८॥

अन्वयः— ततः ते इमे भ्रातरः नव प्रजानां पतयः सुसमाहिताः व्यक्तम् अजयन् ॥२८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् तुम्हारे जो नव प्रजापति भाई हैं इन लोगों ने अपने चित्त को अच्छी तरह से समाहित करके विराट् तथा अन्तर्यामी रूप से स्थित परमात्मा का यजन किया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

तेन देवा अयजन्त इत्यस्यार्थ सप्रपञ्चं दर्शयति- तत इति द्वाभ्याम् । व्यक्तिमिन्द्रादिरूपेण । अव्यक्तं स्वतः । अनेन **'पुरुषं जातमग्रतः'** इत्यस्यार्थो दर्शितः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

ततस्ते इत्यादि दो श्लोकों द्वारा **तेन देवा अयजन्त' इत्यादि** का विस्तार के साथ वर्णन करते हैं । व्यक्त का अर्थ है इन्द्रादि रूप से व्यक्त तथा अव्यक्त अर्थात् स्वयम् इन दोनों रूपों में विद्यमान यज्ञपुरुष ईश्वर का यजन किया इस श्लोक के द्वारा **'पुरुषं जातमग्रतः'** इस मंत्र के अर्थ को बतलाया गया है ॥२८॥

ततश्च मनवः काले ईजिरे ऋषयोऽपरे । पितरो विबुधा दैत्या मनुष्याः क्रतुभिर्विभुम् ॥२९॥

अन्वयः— ततः च काले मनवः अपरे ऋषयः पितरः विवुधाः दैत्याः मनुष्याः क्रतुभिः विभुम् ईजिरे ॥२९॥

अनुवाद— उसके पश्चात् समय-समय पर मनुओं, दूसरे ऋषियों, पितरों, देवताओं, दैत्यों तथा मनुष्यों ने यज्ञों के द्वारा परमात्मा की आराधना की ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

काले स्वस्वावसरे ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

जिस मनु, देवता, ऋषि इत्यादि का जब समय आया तो उन लोगों ने भी परमात्मा की आराधना यज्ञों के द्वारा की ॥२९॥

नारायणे भगवति तदिदं विश्वमाहितम् । गृहीतमायोरुगुणः सर्गादावगुणः स्वतः ॥३०॥

अन्वयः— तत् स्वतः अगुणः सर्गादौ गृहीतमायोरुगुणः यः तस्मिन् नारायणे भगवति इदं विश्वम् आहितम् ॥३०॥

अनुवाद— जो परमात्मा स्वाभाविक रूप से प्राकृतिक गुणों से रहित हैं, किन्तु सृष्टि के प्रारम्भ में अनेक गुणों को ग्रहण कर लेते हैं, ऐसे भगवान् नारायण में ही यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

'यदधिष्ठानम्' इत्येतत्प्रश्नोत्तरार्थमुपसंहरति-नारायण इति । आहितमधिष्ठितम् । भगवत्त्वे हेतुः-यः स्वतोऽगुणः । सर्गादौ गृहीता मायया उरवो गुणा येन स तस्मिन् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने यह जो पूछा था कि इस जगत् का अधिष्ठान कौन है ? उसी के उत्तर का उपसंहार करते हुए ब्रह्माजी **नारायणो इत्यादि** श्लोक को कहे हैं । आहित शब्द का अर्थ है अधिष्ठित । भगवान् नारायण के भगवत्त्व

का कारण स्वाभाविक रूप से प्राकृत गुण रहित बतलाया गया है । वे भगवान् सृष्टि के प्रारम्भ में माया के अनेक गुणों को धारण कर लेते हैं ।।३०।।

सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः । विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक् ।।३१।।

अन्वयः— तन्नियुक्तः अहं सृजामि, तद्वशः हरः हरति, पुरुष रूपेण त्रिशक्ति धृक् विश्वं परिपाति ।।३१।।

अनुवाद— उन परमेश्वर के ही द्वारा नियुक्त होकर मैं सृष्टि करने का काम करता हूँ, शङ्करजी उनके ही अधीन रहकर जगत् का संहार करते हैं और माया की सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों शक्तियों को धारण करने वाले परमात्मा ही पुरुष रूप से जगत् का पालन करते हैं ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

'यत्परस्त्वम्' इत्येतत्प्रश्नोत्तरं यदुक्तं **'स एष भगवान्सर्वेषां मम चेश्वरः'** इति तदुपसंहरति- पालनं तु स्वयमेव करोतीत्याह-विश्वमिति । पुरुषरूपेण विष्णुरूपेण । त्रिशक्तिर्माया तां धरतीति तथा सः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने जो पूछा था कि आप जिसके अधीन हैं, उसका जो उत्तर ब्रह्माजी ने दिया था उसी का उपसंहार इस श्लोक से किया गया है । ब्रह्माजी ने कहा था कि वे भगवान् ही सबों के तथा मेरे स्वामी है उसी का उपसंहार उन्होंने मैं सृष्टि करने का काम करता हूँ, यह कहकर किया है । जगत् का पालन तो भगवान् स्वयं ही करते हैं, इस बात को उन्होंने विश्वम् इत्यादि श्लोक के उत्तरार्ध से किया है । पुरुष रूपेण का अर्थ है विष्णु के रूप से। वे भगवान् तीन शक्तियों से युक्त माया को धारण करते हैं ।।३१।।

इति तेऽभिहितं तात यथेदमनुपृच्छसि । नान्यद्भगवतः किंचिद्भाव्यं सदसदात्मकम् ।।३२।।

अन्वयः— हे तात ! यथेदमनुपृच्छसि इति ते अभिहितम् । भगवतः अन्यत् किञ्चत् सदसदात्मके न भाव्यम् ।।३२।।

अनुवाद— हे तात ! आपने जो कुछ भी पूछा था वह मैंने बतला दिया । श्रीभगवान् से भिन्न इस जड़चेतनात्मक जगत् में कुछ भी नहीं हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

यच्चेदं विश्वं यदात्मकश्च त्वमित्येवमादिसर्वप्रश्नानां सामान्योत्तरं, यदुक्तं **'वासुदेवात्परो ब्रह्मन् न चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः'** इति **'पुरुष एवेदं सर्वम्'** इति श्रुत्या च यद्दृढीकृतं तदुपसंहरति-इतीति । सदसदात्मकं कार्यकारणात्मकं भाव्यं सृज्यं भगवतः सकाशादन्यत्पृथङ् न भवतीत्यभिहितम् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने यह जो पूछा था कि यह सम्पूर्ण जगत् जैसा है और आपकी जो आत्मा हैं, उसको आप मुझे बतलायें । इस तरह से पूछे गये सभी प्रश्नों का सामन्य उत्तर यह है कि हे ब्रह्मन् भगवान् वासुदेव से भिन्न कुछ भी नहीं है । इसी बात का समर्थन **पुरुष एवेदं सर्वम्** इस श्रुति से भी किया गया है । उसी का उपसंहार **इति तेऽभिहितम्** इत्यादि श्लोक से किया गया है । इस तरह सदसदात्मक अर्थात् कार्य कारण रूप जो सृज्य जगत है वह श्रीभगवान् से भिन्न नहीं है ।।३२।।

न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः ।
न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथे यन्मे हृदौत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः ।।३३।।

अन्वयः— हे अङ्ग यत् मे हृदौतण्ठ्यवता हरिः धृत अतएव मे भारती मृषा न उपलक्ष्यते, मे मनसः क्वचिन् मृषा गतिः न मे हृषीकाणि असत् पथे न पतन्तीति ।।३३।।

अनुवाद— हे नारद ! मैं उत्कण्ठा पूर्ण हृदय से प्रेम पूर्वक श्रीभगवान् को धारण करता हूँ अतएव मेरी वाणी कभी भी असत्य होती हुयी नहीं दिखायी देती है, मेरा मन भी कभी असत् सङ्कल्प नहीं करता है और मेरी इन्द्रियाँ भी कभी असत् मार्ग में प्रवृत्त नहीं होती हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं एतावत्त्वं यतो हि मे, तमविज्ञाय मामीश्वरं प्रब्रवीषि इति तदुपपाद्योपसंहरति- न भारतीति । यद्यस्मान्मे मया औत्कण्ठ्यं भक्त्युद्रेकस्तद्युक्तेन हृदा हरिर्धृतो ध्यातः अङ्ग हे नारद । अतो मे वाङ्मनइन्द्रियाणां वृत्तयः सत्यार्थाः, नतु मत्प्रभावेणेत्यर्थः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने पहले यह जो कहा है कि मेरी इतनी ही स्थिति है । उसको तुम नहीं जानते हो इसीलिए मुझे ईश्वर कहते हो । उसी का उपपादन करके ब्रह्माजी **न भारती इत्यादि** श्लोक के द्वारा उपसंहार करते हैं । चूंकि मैं भक्ति के उद्रेक हो जाने के कारण उत्कण्ठा पूर्वक हृदय में परमात्मा को धारण करता हूँ, इसीलिए मेरी वाणी, मन तथा इन्द्रियों की वृत्ति सत्य वस्तु विषयिणी होती है । मेरे प्रभाव से वे असत्य वस्तु विषयक नहीं होती हैं ॥३३॥

सोऽहं समाम्नायमयस्तपोमयः प्रजापतीनामभिवन्दितः पतिः ।
आस्थाय योगं निपुणं समाहितस्तं नाध्यगच्छं यत आत्मसंभवः ॥३४॥

अन्वयः— सः अहं समाम्नायमयः तपोमयः प्रजापतीनाम् अभिवन्दितः पतिः, निपुणं योगं आस्थाय समाहितः सन् यतः आत्मसंभवः तं न अध्यगच्छम् ॥३४॥

अनुवाद— वही मैं वेद मूर्ति तथा तपोमूर्ति हूँ सभी प्रजापति मेरी वन्दना करते हैं और मैं उन सबों का स्वामी हूँ । मैंने पूर्वकाल में सर्वाङ्ग योग का अनुष्ठान किया किन्तु जिससे मेरी उत्पत्ति हुयी है उन परमात्मा को मैं नहीं जान सका ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

अत्र स्वानुभवमेवान्वयव्यतिरेकाभ्यां प्रमा जयति द्वाभ्याम् । सोऽहं समाम्नायादिभिः सर्वोत्कृष्टोऽपि योगमाश्रित्यापि यत आत्मने मम संभवो जन्म तमेव न ज्ञातवान्, कुतोऽन्यस्य वार्ता । एतच्च तृतीयस्कन्धे पद्मोद्भवे वक्ष्यते ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी अन्वयव्यतिरेक के द्वारा अपने अनुभव को ही दो श्लोकों द्वारा प्रमाणित करते हैं उपर्युक्त प्रकार का मैं सबों से उत्कृष्ट होकर तथा योग को धारण करके भी अपने मूल कारण परमात्मा को ही नहीं जान सका तो दूसरे के विषय में मैं क्या कहूँ ? इस बात को तीसरे अध्याय में कमल की उत्पत्ति के प्रसङ्ग में बतलायेंगे ॥३४॥

नतोऽस्म्यहं तच्चरणं समीयुषां भवच्छिदं स्वस्त्ययनं सुमङ्गलम् ।
यो ह्यात्ममायाविभवं स्म पर्यगाद्यथा नभः स्वान्तमथापरे कुतः ॥३५॥

अन्वयः— अहं समीयुषां भवच्छिदं स्वस्त्ययनं मुमङ्गलम् तत् चरणं नतः अस्मि यः आत्ममायाविभवं नभो यथा स्वान्तम् पर्यगात् अथ अपरे कुतः ॥३५॥

अनुवाद— मैं श्रीभगवान् के उन चरणों को नमस्कार करता हूँ जो चरण अपने शरण में आये हुए जीवों के संसार के बन्धन को काट देते हैं, जो कल्याणमय तथा मङ्गलमय हैं । उन श्रीभगवान् की माया की शक्ति अपार

है । वे अपनी महिमा के अन्त को स्वयम् उसी प्रकार नहीं जानते हैं जिस प्रकार आकाश अपने अन्त को नहीं जानता है । ऐसी स्थिति में दूसरा कोई परमात्मा की महिमा का अन्त कैसे जान पायेगा ?॥३५॥

भावार्थ दीपिका

तदा समीयुषां शरणागतानां संसारनिवर्तकं मङ्गलावहं सुसेव्यं च तस्य चरणं नतोऽस्मि । ततोऽचिन्त्यमहिमत्वेन ज्ञातवानस्मीति कैमुत्यन्यायेनाह-यो हीति । स्वमायाविस्तारं यः स्वयमपि पर्यगात् । परिशव्दो निषेधे । तावानिति न ज्ञातवानित्यर्थः। अपरे कुतो जानीयुः । तस्य चरणं नतोऽस्मीति पूर्वेण संबन्धः । ननु सर्वज्ञः कथं न जानाति अन्ताभावादिति दृष्टान्तेनाह । यथा स्वस्यान्तं नभो नाप्नोति तद्वत् । न हि खपुष्पादर्शनं सार्वज्ञ्यं विहन्तीति भावः । तथा च वक्ष्यति द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः' इत्यादि । श्रुतिश्च '**यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद**' इति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् शरणागत जीवों के भव बन्धन को दूर करने वाले मङ्गलप्रद तथा सुसेव्य श्रीभगवान् के चरणों को ही मैं नमस्कार करता हूँ । इस तरह से मैंने यह जान लिया कि श्रीभगवान् की महिमा अचिन्त्य है इस बात को मैंने अपने आप जान लिया है । जो परमात्मा स्वयम् भी अपनी माया के विस्तार को नहीं जान सके । पर्यगात् मे परि शब्द निषेधार्थक है । अर्थात् यह नहीं जान सके परमात्मा की माया इतनी ही है । तो फिर दूसरे लोग उसको कैसे जान सकते हैं ? इसीलिए मैं उनके चरणों में ही नतमस्तक हूँ । यदि कोई कहे कि परमात्मा तो सर्वज्ञ हैं, वे कैसे नहीं जान सके तो इसका उत्तर है कि जैसे आकाश स्वयम् अपने अन्त को नहीं जानता हैं उनकी महिमा का कोई अन्त है ही नहीं तो उसका अन्त वे कैसे जानेंगे ? आकाश पुष्प का अदर्शन परमात्मा की सर्वज्ञता को विनष्ट नहीं कर सकता है । भगवान् के विषय में दशवें स्कन्ध के सत्तासीवें अध्याय के एकतालिसवें श्लोक में कहेंगे भी कि द्युलोक के स्वामीगण ही आपके अन्त को नहीं जान सकें क्योकि ब्रह्माण्ड अनन्त हैं । आप भी नहीं जान सके कि आवरणों से विशिष्ट कितने ब्रह्माण्ड हैं । श्रुति भी कहती हैं **यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अङ्गवेद यदि वा न वेद** अर्थात् हे वत्स जो इस माया के स्वामी परमाकाश त्रिपाद् विभूति में रहते हैं वे भी इस माया के अन्त को जानते हैं कि नहीं जानते हैं यह कोई निश्चित नहीं है ॥३५॥

नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदुर्न वामदेवः किमुतापरे सुराः ।
तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्विदं विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे ॥३६॥

अन्वयः— न अहं न यूयं न वामदेव यद् ऋतां गतिं न विदुः तदा अपरे सुराः किमुत ? तन्मायया विनिर्मितं इदं मोहित बुद्धयः वयं आत्मसमं विचक्ष्महे ।।३६।।

अनुवाद— मैं तुमलोग, मेरे पुत्र, तथा शङ्करजी जिन परमात्मा के सत्य स्वरूप को नहीं जान पाते हैं । उनकी माया से निर्मित इस जगत् के भी विषय में हमलोग अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार केवल अन्दाजा लगाते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति-नाहमिति द्वाभ्याम् । वामदेवो रुद्रः । यस्य ऋतां गतिं परमार्थस्वरूपम् । किंत्विदं प्रपञ्चरूपं तस्य मायया विनिर्मितं विचक्ष्महे विद्मः । तदप्यात्मसमं स्वज्ञानानुरूपमेव, न तु कृत्स्नम् । मोहितबुद्धय इत्ययं तदज्ञाने प्रपञ्चाज्ञाने च हेतुः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

माया के विस्तार के अज्ञेयत्व का ही विस्तार से वर्णन करते हुए ब्रह्माजी **नाहम् इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । वामदेव शङ्करजी का नाम हैं । मैं शङ्करजी तथा तुमलोग जिस परमात्मा के परमार्थ स्वरूप को नहीं जानते

हैं । अपितु उन परमात्मा की माया के द्वारा निर्मित माया द्वारा रचित इस जगत् को भी नहीं जानते हैं । वह भी हमलोग अपने-अपने ज्ञान के अनुसार ही जानते हैं, पूर्णरूप से नहीं जानते हैं । परमात्मा का ज्ञान न होने और माया का ज्ञान होने के कारण हमलोनों की बुद्धि का मोहित होना है ॥३६॥

यस्यावतारकर्माणि गायन्ति ह्यस्मदादयः । न यं विदन्ति तत्त्वेन तस्मै भगवते नमः ॥३७॥

अन्वयः— अस्मदादयः यस्य अवतार कर्माणि गायन्ति यं तत्त्वेन न विदन्ति तस्मै भगवते नमः ॥३७॥

अनुवाद— हमलोग जिस परमात्मा के अवतार की लीलाओं का ही गायन करते है उनके वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते हैं, उन परमात्मा को नमस्कार है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

ननु सर्वेऽपि तं वर्णयन्तो दृश्यन्ते तत्राह- यस्येति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि देखा जाता है कि सबलोग परमात्मा का वर्णन करते हैं तो ब्रह्माजी ने कहा कि हमलोग तो उनके अवतार की लीलाओं का वर्णन करते हैं उनके स्वरूप को नहीं जानते हैं ॥३७॥

ए एष आद्यः पुरुषः कल्पे कल्पे सृजत्यजः । आत्मात्मन्यात्मनात्मानं संयच्छति च पाति च ॥३८॥

अन्वयः— स एष आद्यः पुरुषः अजः कल्पे कल्पे आत्मनि आत्मना आत्मानं संयच्छति च पाति च ॥३८॥

अनुवाद— वे ही आदि पुरुष अजन्मा और पुरुषोत्तम हैं । वे ही प्रत्येक कल्पों में अपने आप में अपने आपकी सृष्टि करते हैं और रक्षा करते हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

अवतारकर्माणि संक्षेपतो दर्शयति । स एष आद्यो भगवान् यः पुरुषावतारः सन्सृष्ट्यादि करोति । आत्मात्मन्यात्मनात्मानमिति। कर्ता अधिकरणं साधनं कर्म च स्वयमेवेत्यर्थः । पुरुषावतारः सृष्ट्यादीनि च कर्माणीति संक्षेपोक्तिः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

एष० इत्यादि इस श्लोक से संक्षेप में अवतारों के कर्मों को बतलातें हैं । वे ही भगवान् आदि हैं वे ही पुरुषावतार धारण करके सृष्टि आदि के कर्मों को करते हैं । वे ही आत्मा (कर्त्ता) आत्मनि (अधिकरण) आत्मना (साधन) और आत्मानम् (कर्म) इस सृष्टि में स्वयं हैं । पुरुषावतार धारण करना और सृष्टि आदि कर्मों को इस तरह से अवतार के कर्मों को संक्षेप में कहा गया है ॥३८॥

विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक्सम्यगवस्थितम् । सत्यं पूर्णमनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ॥३९॥

अन्वयः— विशुद्धं, केवलं, ज्ञानं, प्रत्यक् सम्यगवस्थितम् सत्यं पूर्णम् अनाद्यन्तं निर्गुणम् नित्यम् अद्वयम् ॥३९॥

अनुवाद— माया के लेश से रहित होने के कारण विशुद्ध हैं, केवल ज्ञान स्वरूप हैं, और अन्तरात्मा के रूप में सदा एक समान बने रहते हैं । वे त्रिकाल सत्य हैं पूर्ण हैं तथा आदि अन्त से रहित हैं । वे सत्त्व आदि तीनों गुणों से रहित सनातन एवं अद्वितीय हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

'न यं विदन्ति तत्त्वेन' इत्युक्तं किं तत्तत्त्वमित्यपेक्षायामाह । ज्ञानं केवलं सत्यं तत्त्वम् । घटाद्याकारवृत्तिज्ञानव्यवच्छेदार्थं विशेषणानि । विशुद्धं विषयाकारशून्यम् । यतः प्रत्यक् सर्वान्तरम् । अतएव सम्यक् संदेहादिरहितम्। अवस्थितं स्थिरम् । यतो निर्गुणम् । गुणकार्यं हि गुणव्यतिकराच्चचञ्चलं भवति । यद्यपि वृत्तिज्ञानमपि स्वरूपज्ञानमेवेति

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने यह जो कहा है कि जिस परमात्मा को हमलोग तत्त्वत: नहीं जान पाते हैं तो यहाँ प्रश्न होता है कि तत्त्व क्या है ? इसके उत्तर में उन्होंने कहा वे केवल ज्ञान स्वरूप हैं और सत्य तत्त्व हैं । जिस तरह से तलाब का जल नालियों के माध्यम से खेत में जाकर खेत के जैसा चतुष्कोण आदि आकार वाला होता है, उसी के आकार का बन जाता है, उसी तरह से अन्त:करण की वृत्ति चक्षुरादि इन्द्रियों के माध्यम से निकलकर घटादि विषयों से संसक्त होकर घट आदि के आकार वाला हो जाती है, उसी को घटाद्याकार वृत्ति ज्ञान कहते है, उससे उसकी भिन्नता बतलाने के लिए इन ज्ञान के विशेषणों को बतलाया गया है । वह विशुद्ध है अर्थात् विषयों के सम्बन्ध से रहित है, वह प्रत्येक अर्थात् सबों के भीतर विद्यमान रहता है । इसीलिए वह सम्यक्ज्ञान है । अर्थात उसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है । वह अवस्थित अर्थात् स्थिर है क्योंकि वह निर्गुण है । गुणों के मिश्रण से ही ज्ञान में चञ्चलता आती है ।

यद्यपि वृत्तिज्ञानमपि० इत्यादि यद्यपि वृत्ति ज्ञान भी स्वरूप ज्ञान ही है । उसमें चाञ्चल्यादि दोष नहीं है फिर भी अन्त:करण की वृत्ति के दोष से ही वह अनेक प्रकार का हो जाता है अतएव यह तत्त्व ज्ञान उससे भिन्न है । इन्हीं विशेषणों से उसका सत्यत्व भी समर्थित हो जाता है ।

किञ्च० इत्यादि दूसरी बात यह है कि लोक में देखा जाता है कि जो विकारों से युक्त होता है, वह असत्य होता है, किन्तु इस तत्त्वभूत ज्ञान में वस्तुओं में पाये जाने वाले जन्म आदि षड्विकार नहीं हैं । वह आदि और अन्त (विनाश) से रहित है । अतएव जन्म के पश्चात् होने वाले अस्तित्व इत्यादि भी विकार उसमें नहीं हैं । उस ज्ञान में वृद्धि, विपरिणाम तथा अपक्षय आदि भी विकार नहीं है क्योंकि वह पूर्ण हैं । वह नित्य ही अद्वय हैं अर्थात् भेद प्रतीति के काल में भी अद्वितीय बना रहता है । अतएव वह परमार्थत: अद्वितीय हैं ॥३९॥

ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः । यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥४०॥

अन्वयः— हे ऋषे यदा मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः तदा विदन्ति, यदा असत् तर्कैः विप्लुतम् तिरोधीयेत ॥४०॥

अनुवाद— हे ऋषे ! जब मुनिगण अपने अन्त:करण, इन्द्रियाँ और शरीर को शान्त कर लेते हैं, उसी समय वे उसको जान पाते हैं, जिस समय दुस्तर्कों के द्वारा उस तत्त्व को आच्छन्न कर दिया जाता है उस समय वह ज्ञान प्रतीत नहीं होता हैं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

अत्र विद्वदनुभवं प्रमाणयति । हे ऋषे नारद, प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः प्रसन्नदेहेन्द्रियमनसो यदा भवन्ति तदा विदन्ति । अन्यदा तदज्ञाने कारणमाह । यदा तदेव प्रकाशमानमेवासतां तर्कैर्विप्लुतं स्यात्तदा तिरोधीयेतेति ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी अपने इस प्रतिपादन में विद्वानों के अनुभव को प्रमाण रूप से उपन्यस्त करते हैं । हे ऋषे नारद! जब मुनिजन प्रसन्न, देह, इन्द्रिय और मन से युक्त होते हैं तो उनलोगों को वह ज्ञान प्रकाशित होता है । उससे भिन्न काल में उसका ज्ञान नहीं होने का कारण बतलाते हुए वे कहते हैं- जब वह प्रकाशित होने वाला ज्ञान असत् पुरुषों के कुतर्कों से उपप्लुत (उपद्रवगस्त) हो जाता है तो वह ज्ञान तिरोहित हो जाता है ॥४०॥

आद्योऽवतारः पुरुषः परस्य कालः स्वभावः सदसन्मनश्च ।
द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः ॥४१॥

अन्वयः— परस्य आद्यः अवतारः पुरुषः, कालः स्वभावः, सदसत् मनः च द्रव्यं, विकारः, गुणः, इन्द्रियाणि, विराट् स्वराट् स्थास्नु, चरिष्णु च तस्य अवताराः सन्ति ।

अनुवाद— परम पुरुष परमात्मा का प्रथम अवतार पुरुषावतार है, काल, स्वभाव, सदसत् मन (महत् तत्त्व) द्रव्य (महाभूत) विकार (अहङ्कार) सत्त्व आदि गुण, विराट् समष्टि शरीर, स्वराट् (वैराज) स्थास्नु (स्थावर वृक्ष आदि) चरिष्णु (जङ्गम ये सब भी) भगवान् के अवतार ही हैं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

अवतारान्विस्तरेणाह-आद्य इत्यादि यावदध्यायसमाप्ति । परस्य भूम्नः पुरुषः प्रकृतिप्रवर्तकः । यस्य **'सहस्रशीर्षा'** इत्युक्तो लीलाविग्रहः स आद्योऽवतारः । वक्ष्यति हि **'भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् । स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः ।'** यथोक्तम् **'विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यतो विदुः । प्रथमं महतः स्रष्टृ द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम् । तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते'** इति । यद्यपि सर्वेषामविशेषेणावतारत्वमुच्यते, तथापि कालश्च स्वभावश्च सदसदिति कार्यकारणात्मिका प्रकृतिश्च एताः शक्तयः, मनआदीनि कार्याणि, ब्रह्मादयो गुणावताराः, दक्षादयो विभूतय इति विवेक्तव्यम् । मनो महत्तत्वम् । द्रव्यं महाभूतानि । क्रमोऽत्र न विवक्षितः । विकारोऽहंकारः । गुणः सत्त्वादिः । विराट् समष्टिशरीरम् । स्वराट् वैराजः । स्थास्नु स्थावरम् । चरिष्णु जङ्गमं च व्यष्टिशरीरम् ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् के अवतारों का विस्तार से वर्णन **आद्यः इत्यादि** श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त करते हैं परम पुरुष परमात्मा का प्रथम अवतार पुरुषावतार है । वही प्रकृति का प्रवर्तक है । **सहस्रशीर्षा इत्यादि** मन्त्र से उस पुरुष का लीला विग्रह बतलाया गया है । वही परमात्मा का पहला अवतार है । आगे चलकर कहेंगे भी अपने से सृष्ट पञ्चमहाभूतों के द्वारा विराट् पुरुष की रचना करके उसमें भगवान् नारायण अपने एक अंश से प्रवेश कर गये और पुरुष शब्द से अभिहित किए गये । कहा भी गया है **विष्णोस्तु० इत्यादि** भगवान् विष्णु के तीन रूपों को मुनियों ने पुरुष रूप से जाना है । उनका पहला रूप महत्तत्त्व की सृष्टि करने वाला है । दूसरा ब्रह्माण्ड में स्थित रूप है । तीसरा रूप सभी प्राणियोंके भीतर अन्तर्यामी रूप से स्थित है । इन तीनों रूपों को जानकर मनुष्य मुक्त हो जाता है ।

यद्यपि सर्वेषामविशेषेण० इत्यादि यद्यपि इस श्लोक में उक्त सबों को समान रूप से भगवान् का अवतार कहा गया है फिर भी काल, स्वभाव सदसत् तथा कारण-कार्य स्वरूप प्रकृति ये सभी शक्तियाँ हैं । मन आदि कार्य हैं । ब्रह्मा आदि उनके गुणावतार हैं तथा दक्ष इत्यादि उनकी विभूतियाँ हैं । इन सबों का इस प्रकार से विभाग करना चाहिए ।

मन महत्तत्व को कहा गया है । महाभूतों को द्रव्य कहा गया है । यहाँ पर क्रम विवक्षित नहीं है । विकार शब्द से अहङ्कार को और गुण शब्द से सत्त्व आदि गुणों को कहा गया है । समष्टि शरीर को विराट् कहा गया है । स्वराट् शब्द वाच्य वैराज है । स्थावरों को स्थास्नु और जङ्गमों को चरिष्णु कहा गया है । ये सब व्यष्टि शरीर हैं ॥४१॥

अहं भवो यज्ञ इमे प्रजेशा दक्षादयो ये भवदादयश्च ।
स्वर्लोकपालाः खगलोकपाला नृलोकपालास्तललोकपालाः ॥४२॥

गन्धर्वविद्याधरचारणेशा ये यक्षरक्षोरगनागनाथाः ।
ये वा ऋषीणामृषभाः पितॄणां दैत्येन्द्रसिद्धेश्वरदानवेन्द्राः ॥
अन्ये च ये प्रेतपिशाचभूतकूष्माण्डयादोमृगपक्ष्यधीशाः ॥४३॥
यत्किंच लोके भगवन्महस्वदोजःसहस्वद्बलवत्क्षमावत् ।
श्रीह्रीविभूत्यात्मवदद्भुतार्णं तत्त्वं परं रूपवदस्वरूपम् ॥४४॥

अन्वयः— अहम् भव यज्ञः इमे दक्षादयाः प्रजेशा स्वर्लोकपालाः खगलोकपालाः, नृलोकपालाः तललोकपालाः, गन्धर्वविद्याधरचारणेशाः ये यक्षरक्षोरगनागनाथाः, ये वा ऋषीणां ऋषभाः पितॄणां वा ऋषभाः दैत्येन्द्र सिद्धेश्वर दानवेन्द्राः, ये च अन्ये प्रेतपिशाचभूतकुष्माण्डयादोमृगपक्ष्यधीशाः, यत् किञ्च भगवत् महस्वत् ओजः सहस्वत् बलवत् क्षमावत् श्री ह्री विभूत्यात्मवत् अद्भूतार्णं रूपवत् अस्वरूपम् तत्परंतत्त्वम् ॥४२-४४॥

अनुवाद— मैं शङ्कर, विष्णु, दक्ष आदि प्रजापति तुम और तुम्हारे जैसे अन्य भक्त, स्वर्ग लोक के रक्षक, पक्षियों के रक्षक गरुड आदि, मनुष्य लोक के राजा, गन्धर्व, विद्याधर तथा चारणों के अधिनायक, यक्ष, राक्षस, सर्प और नागों के स्वामी, महर्षि, पितृपति, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर, दानवराज तथा प्रेत, पिशाच भूत, कूष्माण्ड, जल-जन्तु, मृग तथा पक्षियों के स्वामी, एवं संसार में जितनी भी वस्तुएँ ऐश्वर्य सम्पन्न तेजः सम्पन्न, इन्द्रियबल, मनोबल, शरीरबल या क्षमा से युक्त हैं, अथवा विशेष सौन्दर्य, लज्जा, वैभव तथा विभूति से युक्त हैं, एवं जितनी भी वस्तुएँ अद्भुत वर्णवाली हैं रूपवान् या रूप रहित हैं वे परं तत्त्वमय भगवत् स्वरूप हैं ॥४२-४४॥

भावार्थ दीपिका

अहं ब्रह्मा। भवो रुद्रः। यज्ञो विष्णुः। दक्षादयो य इमे प्रजेशाः। तललोकपालाः पातालाधिपतयः। गन्धर्वादीनामीशाः। यक्षादीनां नाथाः। रक्षोरगेति सन्धिरार्षः। ऋषीणां पितृणां च श्रेष्ठाः। प्रेतादीनामधीशाः। किं बहुना, यत्किंचिद्भगवदादि तत्सर्वं परमेव तत्त्वमित्यन्वयः। भगवदैश्वर्ययुक्तम्, महस्वत्तेजोयुक्तम्। ओजः सहसी इन्द्रियमनः शक्ती तद्युक्तम्। बलं दाक्ष्यम्। श्रीशोभा ह्रीकर्मजुगुप्सा, विभूतिः संपत्ति, आत्मा बुद्धिस्तद्युक्तम्। अर्णो वर्णः। अद्भुतार्णमाश्चर्यवर्णमित्यर्थः। रूपमेव स्वरूपम्, रूपवदस्वरूपं च यत्तत्सर्वं परं तत्त्वं तद्विभूतिरित्यर्थः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कहते हैं कि मैं, शङ्कर, विष्णु, दक्ष इत्यादि जो प्रजापति हैं वे पातालों के जो स्वामी हैं गन्धर्वों आदि के स्वामीगण हैं, यक्षों आदि के स्वामीगण रक्षोरग में जो गुणसन्धि हुयी है वह आर्ष है। जो ऋषियों और पितरों में श्रेष्ठ हैं, जो प्रेतों आदि के स्वामी है। बहुत अधिक क्या कहें जो कुछ भी ऐश्वर्य आदि से सम्पन्न वस्तुएँ हैं वे सबके सब परमतत्त्व स्वरूप ही हैं। ऐश्वर्य युक्त, तेजः सम्पन्न, ओज तथा सहः सम्पन्न, इन्द्रियशक्ति तथा मनः शक्ति से युक्त सभी वस्तुएँ परं तत्त्व स्वरूप है। बल अर्थात् दक्षता, श्रीअर्थात् शोभा, ह्री लज्जा, सम्पत्ति, आत्मा तथा बुद्धि से युक्त भी वस्तुएँ परंतत्व स्वरूप हैं। अर्ण वर्ण को कहते हैं। अद्भुतार्ण अर्थात् अद्भुत वर्ण से युक्त रूप का अर्थ स्वरूप है तथा रूपवान् अर्थात् स्वरूप से रहित जो कुछ भी है वह सब परंब्रह्म की विभूति हैं ॥४२-४४॥

प्राधान्यतो यानृष आमनन्ति लीलावतारान्पुरुषस्य भूम्नः ।
आपीयतां कर्णकषायशोषाननुक्रमिष्ये त इमान्सुपेशान् ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अन्वयः— हे ऋषे, यान् भूम्नः पुरुषस्य प्राधान्यतः लीलावतारान् आमनन्ति तान् कर्णकषायशोषान् पीयताम् सुपेशान् इमान् ते अनुक्रमिष्ये ॥४५॥

अनुवाद—उस परम पुरुष के जिन प्रधान-प्रधान लीलावतारों का वर्णन शास्त्रों में किया गया हे, वे सबके सब श्रवणेन्द्रियों के दोषों को दूर करने वाले हैं अतएव उन सबों का आप श्रवण करें मैं उन सबों को क्रमश: सुनाता हूँ ।।४५।।

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

भावार्थ दीपिका

शुद्धसत्त्वावतारान्वक्तुमाह- प्राधान्यत इति । असत्कथाश्रवणैर्ये कर्णयोः कषाया मलास्तान् शोषयन्तीति तथा तान् । सुपेशान्सुन्दरान् । सकारलोपश्चार्षः । हे ऋषे, ते तुभ्यमनुक्रमिष्ये, तदनुक्रमेणामृतं त्वया पीयतामित्यर्थः । यद्वा पीयतामिति शत्रन्तम् । आपितवतां कर्णकषायशोषानित्यर्थः।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थ दीपिका टीकायां षष्ठोऽध्यः।।६।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा के शुद्ध सात्त्विक अवतारों का वर्णन करने के लिए ब्रह्माजी **प्रधान्यतः इत्यादि** श्लोक को बतलाते है । असत् कथाओं के सुनने से जो कानो में दोष आ जाते हैं उन सबों को विनष्ट करने का काम करते हैं । श्रीभगवान् के जो लीलामृतावतार हैं वे अत्यन्त सुन्दर हैं । सुपेशस् शब्द के सकार का आर्ष लोप हो गया है । हे ऋषे मैं उन सबों को क्रमशः सुनाता हूँ उसे आप अपने कानों से सुनें । अथवा पीयताम् पद को शतृ प्रत्ययान्त भी माना जा सकता है । पीङ् पाने इस दिवादिक धातु से शतृप्रत्यय करके पीयताम् बना है उसका अर्थ है उन कर्णकषाओं को विनष्ट करने वाले लीलावतारों को पूर्णरूप से सुनें ।।४५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीय स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के छठे अध्ययाय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।६।।

सातवाँ अध्याय

श्रीभगवान् के लीलावतारों का वर्णन

ब्रह्मोवाच

यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत्क्रौडीं तनु सकलयज्ञमयीमनन्तः ।
अन्तर्महार्णव उपागतमादिदैत्यं तं दंष्ट्रयाद्रिमिव वज्रधरो ददार ॥१॥

अन्वयः— यत्र क्षितितलोद्धरणाय उद्यतः अनन्तः सकल यज्ञमयीं कौडीं तनुंविभ्रत अन्तर्महार्णव उपागतं तम् आदिदैत्यम् व्रजधरः इन्द्रम् इव दंष्ट्रया ददार ॥१॥

अनुवाद— प्रलयकालीन जल में डूबी हुयी पृथिवी का उद्धार करने के लिए तैयार श्रीभगवान् अपने सम्पूर्ण यज्ञमय सूकर शरीर धारण किए हुए जल के भीतर ही युद्धार्थ आये हुए आदि दैत्य हिरण्याक्ष को अपनी द्रंष्ट्रा से उसी तरह चिर दिए जिस तरह व्रज धारण करके इन्द्र ने पर्वतों के पंख को काट डाला था ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तमे भगवल्लीलावतारा ब्रह्मणोदिताः । नारदाय तु तत्कर्म प्रयोजनगुणैः सह । यत्र यदा क्षितितलोद्धरणार्थं वाराहीं तनुं विभ्रत्सन्नुद्यतोऽनन्तस्तदा तं सुप्रसिद्धं हिरण्याक्षं दंष्ट्रया ददार ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सातवें अध्याय में ब्रह्माजी ने नारदजी को श्रीभगवान् के लीला अवतारों को उनके गुणों प्रयोजनों तथा कर्मों के साथ सुनाया था उसी का वर्णन किया गया हैं ॥१॥

यत्र इत्यादि जब पृथिवी का उद्धार करने के लिए सूकर शरीर धारण किए हुए श्रीभगवान् उद्यत हुए तो उस समय उन्होंने प्रख्यात उस हिरण्याक्ष नामक दैत्य को अपने दाँतों से चिर दिया ॥१॥

जातो रुचेरजनयत्सुयमान्सुयज्ञ आकूतिसूनुरमरानथ दक्षिणायाम् ।
लोकत्रयस्य महतीमहरद्यदार्तिं स्वायंभुवेन मनुना हरिरित्यनूक्तः ॥२॥

अन्वयः— रुचेः आकूतिसुतः जातः सुयज्ञः दक्षिणायाम् सुयमान् अमरान् अजनयत् लोक त्रयस्य महतीम् अर्तिं अहरत् तदनु स्वायम्भुवेन मनुना हरिः इति उक्तः ॥२॥

अनुवाद— रुचि प्रजापति की पत्नी के गर्भ से सुयज्ञ नामक पुत्र के रूप में उत्पन्न होकर उन्हांने अपनी पत्नी दक्षिणा के गर्भ से सुयम नामक देवताओ को उत्पन्न किया और त्रैलोक्य के बहुत बड़े कष्ट को उन्होंने दूर किया । उसके कारण उनके मातामह स्वायम्भुव मनु ने उनका नाम हरि रखा ॥२॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञावतारमाह । रुचेः प्रजापतेः सकाशात्तद्भार्याया आकूतेः सूनुः सुतः सुयज्ञो नाम जातः । स च स्वभार्यायां दक्षिणायां सुयमान्देवानजनयत् । स एवेन्द्रः सन् यदा आर्तिमहरत्तदा पूर्वं सुयज्ञ इत्युक्तोऽप्यनु पश्चान्मनुनना मातामहेन हरिरित्युक्तः । अनेन देवोत्पादनं लोकत्रयार्तिहरणं च तस्य कर्म दर्शितम् । एवं सर्वत्रावतारस्तत्कर्म च ज्ञेयम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के यज्ञावतार का वर्णन करते हुए ब्रह्मजी ने कहा रूचि प्रजापति की पत्नी आकूति देवी के गर्भ से भगवान् सुयज्ञ नामक उनके पुत्र हुए । उन्होंने दक्षिणा नामक अपनी पत्नी के गर्भ से सुयम नामक देवताओं को उत्पन्न किया और उन्होंने त्रैलोक्य के बहुत बड़े कष्ट को दूर किया । इसीलिए स्वयम्भुव मनु ने उनका नाम हरि रखा । अर्थात् वे ही भगवान् इन्द्र रूप से त्रैलोक्य के कष्ट को दूर किये । उसके कारण भगवान् का जो सुयज्ञ नाम था उनके मातामह ने उसके पश्चात् उनका नाम हरि रख दिया । इस प्रतिपादन से ब्रह्माजी ने भगवान् के दो कर्मों को बतलाया देवताओं का उत्पादन और त्रैलोक्य के कष्ट का हरण । इस तरह से सभी अवतारों तथा उनके कर्मों को जानना चाहिए ॥२॥

जज्ञे च कर्दमगृहे द्विज देवहूत्यां स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगतिं स्वमात्रे ।
ऊचे ययात्मशमलं गुणसङ्गपङ्कमस्मिन्विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे ॥३॥

अन्वयः— हे द्विज ! कर्दमगृहे देवहुत्यां नवभिः स्त्रीभिः समं, जज्ञे । स्वमात्रे आत्मगतिं उचे । यया अस्मिन् आत्मशमलं गुणसङ्गपङ्कम् विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे ॥३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् महर्षि कर्दम की पत्नी के गर्भ से अपनी नव बहिनों के साथ पुत्र रूप में उत्पन्न हुए । उन्होंने अपनी माता देवहूति को आत्मज्ञान का उपदेश दिया । उस आत्मज्ञान को प्राप्त करके माता देवहूति

ने इस जन्म में ही हृदय के समस्त मलों तथा गुणों की आसक्ति रूपी समस्त कीचड़ को धो दिया और कपिल भगवान् के स्वरूप को प्राप्त हो गयीं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

कपिलावतारमाह । कर्दमस्य प्रजापतेर्गृहे च तद्भार्यायां देवहूत्यां जज्ञे । नवभिः स्त्रीभिर्भगिनीभि सह । स च स्वमात्रे आत्मगतिं ब्रह्मविद्यामुक्तवान् यया आत्मगत्या सा आत्मनः शमलं मलिनीकरणं गुणसङ्गरूपं पङ्कमस्मिन्नेव जन्मनि विधूय कपिलस्य गतिं मुक्तिं प्राप्तवती ॥३॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् के कपिलावतार का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी ने कहा कर्दम प्राजपति के गृह में उनकी पत्नी देवहूति के गर्भ से भगवान् अपनी नव बहिनों के साथ पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए । उन्होंने अपनी माता देवहूति को ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया । उस आत्मविद्या के द्वारा माता देवहूति इसी जन्म में आत्मा के मलिनीकरण रूप गुणों की आसक्ति रूपी कीचड़ को दूर करके मुक्ति को प्राप्त कर लीं ॥३॥

अत्रेरपत्यमभिकाङ्क्षत आह तुष्टो दत्तो मयाऽहमिति यद्भगवान्स दत्तः ।
यत्पादपङ्कजपरागपवित्रदेहा योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयाद्याः ॥४॥

अन्वयः— अपत्यम् अभिकांक्षतः अत्रेः तुष्टः मया अहम् दत्तः इति आह स भगवान् दत्तः । यत्पाद पङ्कज परागपवित्रदेहाः यदु हैहयाद्याः उभयीं योगर्द्धिम् आपुः ॥४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् को अपने पुत्र रूप में प्राप्त करना चाहने वाले महर्षि अत्रि से प्रसन्न होकर भगवान् ने उनसे कहा मैं अपने को दे दिया । उसके कारण वे भगवान् दत्त कहलाये । उनके चरण कमलों की धूलि रूपी पराग से पवित्र शरीर वाले यदु तथा हैहयवंशी सहस्रार्जुन भोग तथा मोक्ष रूप दोनों सिद्धियों को प्राप्त किये ॥४॥

भावार्थ दीपिका

दत्तात्रेयावतारमाह । मयाऽहमेव तुभ्यं दत्त इति यद्यत आह ततः स नाम्ना दत्तो जातः स्वभक्तेभ्यो योगैश्वर्यदानं तच्चरितं च दर्शयति । यस्य पादपङ्कजयोः परागस्तेन पवित्रा देहा येषां ते । उभयीमैहिकीमामुष्मिकीं च भुक्तिमुक्तिरूपां वा ॥४॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् के दत्तात्रेयावतार का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि पुत्र को प्राप्त करना चाहने वाले महर्षि अत्रि से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने कहा कि मैंने अपने को ही आपको दे दिया; अतएव उनका नाम दत्त हुआ। इस रूप में भगवान् अपने भक्तों को योग का ऐश्वर्य प्रदान किए और अपना चरित भी प्रदर्शित किए अतएव उनका नाम दत्त है । उन दत्त भगवान् के चरण कमलों के पराग रूप धूलि से पवित्र शरीर वाले यदु तथा सहस्रार्जुन आदि लौकिक तथा पारलौकिक अथवा भोग तथा मोक्ष रूपी सिद्धि को प्राप्त किए ॥४॥

तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे आदौ सनात्स्वतपसः स चतुःसनोऽभूत् ।
प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं सम्यग्जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन् ॥५॥

अन्वयः— आदौ लोकसिसृक्षया मे तपः तप्तः सनात् स्वतपसः सः चतुः सनः अभूत प्राक् कल्प संपलव विनष्ट आत्मतत्त्वं सम्यक् जगाद मुनयः आत्मन् अचक्षत ॥५॥

अनुवाद— सृष्टि के प्रारम्भ में मैंने लोको की सृष्टि करने के लिए घोर तपस्या की उस अखण्ड तपस्या से वे परमात्मा सन नाम से युक्त सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार इन चार रूप वाले हो गये । इन चार रूप वाले श्रीहरि ने प्रलय के कारण विनष्ट हुए पूर्वकल्प के ज्ञान का ऋषियों को उपदेश दे दिया । उस उपदेश से मुनियों ने अपने मन मे उस आत्मज्ञान का साक्षात्कार किया ॥५॥

भावार्थ दीपिका

कुमारावतारमाह । मे मया आदौ यत्तपस्तप्तं तस्मात्स्वतपसो मत्तपसो हेतोः सहरिश्चतुःसनोऽभूत् । सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातन इति चत्वारः सनशब्दा नाम्नि यस्य सः । कथंभूतात्स्वतपसः । सनादखण्डितात् । यद्वा स्वतपसः सनाद्दानात् समर्पणादित्यर्थः । षणु दाने । स च पूर्वकल्पस्य संप्लवे प्रलये विनष्टमुच्छिन्नसंप्रदायमात्मतत्त्वमिहास्मिन्कल्पे सम्यग्जगादोक्तवान् । सम्यक्त्वं दर्शयति । यदगदितमात्रमेव मुनय आत्मन् आत्मनि मनस्यचक्षत साक्षादपश्यन् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी कुमारावतार का वर्णन करते हैं । सृष्टि के प्रारम्भ में सृष्टि करने की इच्छा से मैंने घोर तपस्या की मेरे उस सन नामक अखण्ड तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् सन शब्द से युक्त चार रूप वाले हो गये सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार अथवा मेरी इस तपस्या को मेरे द्वारा परमात्मा को ही समर्पित किए जाने के कारण चार रूप वाले हो गये । यह षणुदाने धातु से सनशब्द व्युत्पन्न है ।

सच पूर्वकल्पस्य० इत्यादि वे भगवान् पूर्व कल्प के प्रलय होने के कारण आत्मज्ञान विनष्ट हो गया था । उसका सम्प्रदाय इस कल्प में उन्होंने मुनियों को अच्छी तरह से उपदेश द्वारा दिया । उस उपदेश मात्र से मुनियों ने उस ज्ञान का अपने मन में साक्षात्कार किया ॥५॥

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नर इति स्वतपःप्रभावः ।
दृष्ट्वात्मनो भगवतो नियमावलोपं देव्यस्त्वनङ्गपृतना घटितुं न शेकुः ॥६॥

अन्वयः— दक्षदुहितरि धर्मस्य पत्न्यां मूर्त्यां नर नारायणः अजनिष्ट । स्वतपः प्रभावः दृष्ट्वा अनङ्गस्य पृतना देव्यः भगवतः नियमावलोपं घटितुम् न शेकुः ॥६॥

अनुवाद— दक्षप्रजापति की पुत्री तथा धर्म की पत्नी मूर्ति देवी के गर्भ से भगवान् नर-नारायण रूप दो मूर्तियों के रूप में अवतीर्ण हुए । श्रीभगवान् की तपस्या के प्रभाव को देखकर काम की सेना रूपी अप्सरायें श्रीभगवान् के नियम का लोप नहीं कर सकीं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

नरनारायणावतारमाह । धर्मस्य पत्न्यां दक्षदुहितरि मूर्तिसंज्ञायां नारायणो नर इति मूर्तिद्वयेन जातः । कथंभूतः । स्वोऽसाधारणस्तपः प्रभावो यस्य । तदेवाह । अनङ्गस्य पृतनाः देव्योऽप्सरसो भगवतः सकाशादआत्मनः स्वप्रतिरूपा उर्वश्याद्याः स्त्रीर्दृष्ट्वा तस्य नियमावलोपं व्रतभङ्गं घटितुं साधयितुं न शेकुः । यद्वा आत्मनः स्वस्य यो नियमस्तपोनाशनरूपस्तस्यावलोपं तत्र दृष्ट्वा भगवतः घटयितुं न शेकुरिति । एतच्चाख्यानमेकादशे भविष्यति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् के नरनारायणावतार का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि धर्म की पत्नी तथा दक्ष की पुत्री मूर्ति देवी के गर्भ से भगवान् ने नर तथा नारायण इन दो मूर्तियों के रूप में अवतार ग्रहण किया । उनके असाधारण तप के प्रभाव को देखकर काम की सेना रूपी अप्सराओं ने श्रीभगवान् के सन्निकट में अपने से भी सुन्दर उर्वशी को देखकर श्रीभगवान् के नियम का भङ्ग नहीं कर सकीं । अथवा उनका अपना जो तपस्या का नाश करना रूप नियम था उसका लोप देखकर वे भगवान् के नियम को भङ्ग नहीं कर सकीं । यह कथा ग्यारहवें स्कन्ध में आयेगी ॥६॥

कामं दहन्ति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या रोषं दहन्तमुत ते न दहन्त्यसह्यम् ।
सोऽयं यदन्तरमलं निविशन्बिभेति कामः कथं नु पुनरस्य मनः श्रयेत ॥७॥

अन्वयः— कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या कामं द्रहन्ति ते उत दहन्तं असह्यम् रोषं न दहन्ति सोऽयं यत् अमलम् अन्तः निविशन् विभेति, तस्य मनः कथं नु कामः श्रयेत ।।७।।

अनुवाद— शङ्करजी आदि महापुरुष अपनी रोष भरी दृष्टि से काम को जला देते हैं, किन्तु अपने को जलाने वाले असह्य रोष को वे नहीं जला पाते। वही क्रोध भगवान् नर-नारायण के स्वच्छ हृदय में प्रवेश करने में भयभीत हो जाता है तो भला उन नरनारायण के हृदय में कैसे प्रवेश कर सकता है ?।।७।।

भावार्थ दीपिका

यत्र कामविजयी क्रोधोऽपि विभेति तत्र कामो न प्रभवतीति किं वक्तव्यमित्याह काममिति। कृतिनः श्रीरुद्रप्रमुखा रोषयुक्ता दृष्ट्वा कामं दहन्ति। रोषं त्वात्मानं दहन्तमपि ते न दहन्ति। क्रोधेनाभिभूयन्त इत्यर्थः। नु अहो सोऽयं रोषो यदन्तरं यन्मध्यं प्रविशन्नलं विभेति। यद्वा यस्यान्तर्मनः। कथंभूतम्। अमलं निर्मलं प्रविशन्निति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

जिन नर नारायण भगवान् से काम विजयी क्रोध भी भयभीत हो जाता है, उन भगवान्‌का काम कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है, यह अर्थ तो अपने आप ही सिद्ध हैं, इसको क्या कहना है। इसी अर्थ को **कामम् इत्यादि** इस श्लोक के द्वारा कहा गया है। श्रीशङ्करजी प्रभृति महापुरुष अपनी क्रोध भरी दृष्टि से काम को जला देते हैं। किन्तु अपने को भी जलाने वाले इस असह्य रोष को वे नहीं जला पाते हैं। अर्थात् उनको क्रोध अभिभूत कर देता है। वही रोष भगवान् के मन में प्रवेश करने में अत्यन्त भयभीत होता है उन भगवान् के स्वच्छ अन्तःकरण में काम कैसे प्रवेश कर सकता है ।।७।।

विद्धः सपत्न्युदितपत्त्रिभिरन्ति राज्ञो बालोऽपि सन्नुपगतस्तपसे वनानि ।
तस्मा अदाद्ध्रुवगतिं गृणते प्रसन्नो दिव्याः स्तुवन्ति मुनयो यदुपर्यधस्तात् ।।८।।

अन्वयः— सपत्न्युदितपत्त्रिभि विद्ध राज्ञः अन्ति बालोऽपि सन् तपसे बनानि गतः तस्मै गृणते प्रसन्नः ध्रुवगतिम् अदात् यदुपर्यधस्तात् दिव्याः मुनयः स्तुवन्ति ।।८।।

अनुवाद— अपनी माता की सौत सुरुचि के द्वारा उक्त वाक्य रूपी बाण से विद्ध तथा अपने पिता राजा उतानपद के सन्निकट में बैठा हुआ बालक ध्रुव तपस्या करने के लिए वन में चला गया उसकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने उसको ध्रुवगति को प्रदान किया। उस स्थान के ऊपर रहने वाले भृग्वादि महर्षि तथा उसके नीचे रहने वाले सप्तर्षि महर्षि आदि ध्रुव की स्तुति करते हैं ।।८।।

भावार्थ दीपिका

चरित्रेणैव कमप्यवतारं सूचयति। मातुः सपत्न्याः उदितान्युक्तानि वाक्यान्येव पत्रिणो बाणास्तैर्विद्धो ध्रुवो राज्ञ उत्तानपदोऽन्ति समीपे तपसे तपस्तप्तुम्। ध्रुवगतिं ध्रुवपदम् यत् यामुपरि स्थितामधस्तात्स्थिता दिवि भवा दिव्याः सप्तर्षयः स्तुवन्ति। यद्वा उपरि भृग्वादयः अधस्तात्सप्तर्षय इति ।।८।।

भाव प्रकाशिका

चरित्र वर्णन के द्वारा ही श्रीभगवान् के किसी अवतार का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैंकि अपनी माता की सौत सुरुचि के द्वारा कहे गये वाक्य रूपी बाणों से विद्ध राजा उत्तानपाद के सन्निकट में बैठा हुआ उनका पाँच वर्ष का पुत्र तपस्या करने के लिए वन में चला गया। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने उस बालक को ध्रुवपद प्रदान कर दिया। उस स्थान के ऊपर और नीचे रहने वाले दिव्य ऋषिगण उस ध्रुव की स्तुति करते रहते हैं। अथवा ध्रुव पद के ऊपर रहने वाले भृगु आदि दिव्य ऋषिगण तथा नीचे रहने वाले सप्तर्षि गण उस ध्रुव की स्तुति किया करते हैं ।।८।।

यद्वेनमुत्पथगतं द्विजवाक्यवज्रविप्लुष्टपौरुषभगं निरये पतन्तम् ।
त्रात्वाऽर्थितो जगति पुत्रपदं च लेभे दुग्धा वसूनि वसुधा सकलानि येन ।।९।।

अन्वयः— उत्पथगतं द्विजवाक्यवज्रविप्लुष्ट पौरुषभगं निरये पतन्तं वेनं त्रात्वा जगति अर्थितः पुत्रपदं च लेभे येन वसुधा च सकलानि वसूनि दुग्धा ।।९।।

अनुवाद— कुमार्गगामी ब्राह्मणों के वाक्य रूपी वज्र से जिनके पौरुष तथा ऐश्वर्य विनष्ट हो गये थे ऐसे वेन को नरक में जाने से जिन्होंने बचा लिया तथा मुनियों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर जो राजा वेन के पुत्र बन गये तथा प्रजाओं द्वारा प्रार्थना किए जान पर जिन्होंने गोरूप धारण की हुयी पृथिवी से सम्पूर्ण द्रव्यों का दोहन किया ।।९।।

भावार्थ दीपिका

पृथ्ववतारमाह । यद्यदा ऋषिभिरर्थितस्तदा वेनं त्रात्वा अन्वर्थं तत् पुत्र इति पदं नाम लेभे । '**पुंनाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः । तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ।**' इति हि पुत्रपदव्युत्पत्तिः । कथंभूतम् । द्विजानां शापवाक्यमेव वज्रं तेन विप्लुष्टं दग्धं पौरुषं भगमैश्वर्य च यस्य तम् । चरित्रान्तरमाह । येन च जगति जगदर्थे वसून्यन्नादिद्रव्याणि दुग्धा ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी श्रीभगवान् के पृथु अवतार का वर्णन किए हैं । राजा वेन कुमार्ग गामी थे । इसके कारण क्रोध करके ऋषियों ने हुङ्कार भरा और उन ऋषियों के शाप रूपी वाग्वज्र से राजा वेन का पौरुष और ऐश्वर्य दोनों विनष्ट हो गया । नि:सन्तान राजा के शरीर का मंथन करते समय मुनियों ने प्रार्थना की तो भगवान् उनके पुत्र बनकर उन्हे नरक में जाने स बचा लिए ।

पुनाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुतः । तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा ।।

अर्थात् पुं नामक नरक में जाने से पिता को पुत्र चूकी बचा लेता है अतएव स्वयम् ब्रह्माजी ने पुत्र को पुत्र कहा है । यही पुत्रपद की व्युत्पत्ति है । कैसे राजा को बचाये तो उत्तर है कि ब्राह्मणों के शाप के वाक्य रूपी वज्र से राजा के पौरुष और ऐश्वर्य दोनों भस्म हो गये थे ऐसे राजा को भगवान् पृथु ने नरक जाने से बचाया भगवान् पृथु के दूसरे चरित्र का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं । जिन भगवान् पृथु ने संसार के लिए गोरूप धारिणी गौ से अन्न इत्यादि द्रव्यों को दूहा ।।९।।

नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनुर्यो वै चचार समदृग्जडयोगचर्याम् ।
यत्पारमहंस्यमृषयः पदमामनन्ति स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः।।१०।।

अन्वयः— असौ नाभेः सुदेविसूनु ऋषभ आस । यो वै स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः समदृग् जडयोगचर्याम् चचार, ऋषयः यत् पारमहंस्यपदम् आमनन्ति ।।१०।।

अनुवाद— वे ही भगवान् राजा नाभि के पुत्र के रूप में उनकी पत्नी सुदेवी के गर्भ से ऋषभ नाम से उत्पन्न हुए । जो ऋषभ अपने स्वरूप में स्थित रहकर अपनी सभी इन्द्रियों को अपने वश में रखे तथा संसार में सभी प्रकार की आसक्तियों से दूर रहे । वे समदृष्टि थें और जड़ो की भाँति योगाचर्या का इन्होंने अनुष्ठान किया। इस स्थिति को महर्षियों ने पारमहंस्य पद अथवा अवधूतचर्या कहा है ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

ऋषभावतारमाह । असौ हरिर्नाभेराग्रीध्रपुत्रात्सुदेव्याः सूनुरास । नाभेर्भार्याया मेरुदेव्या एव सुदेवीत्यपि संज्ञा । जडवद्योगेन नित्यसमाधिना चर्याम् । यदिति याम् । तत्र हेतुः- समदृक् । तत्रापि हेतुः-स्वस्थः स्वस्वरूपे स्थितः । यतः प्रशान्तेन्द्रियः। तत्कुतः । यतः परितो मुक्तसङ्गः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने भगवान् के ऋषभावतार का वर्णन किया है। वे कहते हैं कि वे श्रीहरि महाराज् आग्नीध्र के पुत्र राजा नाभि की पत्नी मेरुदेवी के गर्भ से उनके पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए। मेरुदेवी का ही नाम सुदेवी भी था। वे जडों के समान नित्य ही समाधि रूपी चर्या को अपनाये। यह उनकी जडयोगचर्या थी। उसका कारण था कि वे समदर्शी थे। वे सदा अपने स्वरूप मे स्थित रहते थे और उनकी इन्द्रियाँ नियन्त्रित थीं। क्योंकि वे सभी प्रकार की आसक्तियों से रहित थे ॥१०॥

सत्रे ममास भगवान्हयशीरषाऽथो साक्षात्स यज्ञपुरुषस्तपनीयवर्णः ।
छन्दोमयो मखमयोऽखिलदेवतात्मा वाचो बभूवुरुशतीः श्वसतोऽस्य नस्तः ॥११॥

अन्वयः— अथ मम सत्रे स भगवान् साक्षात् यज्ञपुरुषः तपनीयवर्णः हयशिरसा छन्दोमयः मखमयः अखिल देवतात्मा आस। अस्य नस्तः उशतीः वाचो बभुवुः ॥११॥

अनुवाद— वे ही यज्ञ पुरुष भगवान् मेरे यज्ञ में साक्षात् सुवर्ण के समान कान्ति वाले हयग्रीव के रूप में अवतार ग्रहण किये। उनका वह शरीर वेदमय और यज्ञमय था। वे सर्वदेवमय हैं। उनके ही नाकों के छिद्र से कमनीय वेदवाणी आविर्भूत हुयी ॥११॥

भावार्थ दीपिका

हयग्रीवावतारमाह- सत्रे इति। अथो इत्यर्थान्तरे। स एव साक्षाद्भगवान्मम ब्रह्मणः सत्रे यज्ञे हयशीर्षा आस। तपनीयं सुवर्णं तद्वद्वर्णो यस्य छन्दोमयो वेदमयः तद्विधेया ये मखास्तन्मयः। '**अमृतमय**' इति वा पाठः। मखैर्यजनीया अखिला देवतास्तदात्मा च। अस्य श्वसतः श्वासं मुञ्चतो नस्तो नासापुटादुशतीरुशत्यः कमनीया वेदलक्षणा वाचो बभूवुः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने हयग्रीवावतार का वर्णन किया है। इस श्लोक में अथ शब्द का प्रयोग अर्थान्तर के अर्थ में किया गया है। वे ही यज्ञमय भगवान् मेरे यज्ञ में हयग्रीव के रूप में आविर्भूत हुए। उनका देदीप्यमान सुवर्ण के समान वर्ण था। वे वेदमय तथा यज्ञमय हैं। कहीं-कहीं पर अमृतमय भी पाठ है। यज्ञों के द्वारा जितने भी देवताओं की पूजा की जाती हैं, उन सबों की वे आत्मा हैं। इन भगवान् के नाकों से जो श्वास निकलती थी उसी से कमनीय वेदवाणी भी प्रकट हुयी ॥११॥

मत्स्यो युगान्तसमये मनुनोपलब्धः क्षोणीमयो निखिलजीवनिकायकेतः ।
विस्रंसितानुरुभये सलिले मुखान्मे आदाय तत्र विजहार ह वेदमार्गान् ॥१२॥

अन्वयः— युगान्त समये मनु आस क्षोणीमयः निखिलजीवनिकायकेतः मत्स्यो लब्धः। मे मुखात् सनिले विस्रंसितान् वेदमार्गान् आदाय उरुमये सलिले तत्र विजहार ॥१२॥

अनुवाद— चाक्षुष् मन्वन्तर के अन्त में भावी मनु सत्यव्रत ने पृथिवी रूपी नौका के आधार बने हुए वे भगवान् सभी जीवों के आश्रय बन गये। मेरे मुख से गिरे हुए वेद को लेकर उस भयङ्कर जल में ही विहार करते रहे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

मत्स्यावतारमाह। मत्स्यो भाविना वैवस्वतेन मननुना दृष्टः। क्षोणीमयः पृथ्वीप्रधानः, तदाश्रय इत्यर्थः। अतएव निखिलजीवनिकायानामाश्रयः। मे मुखाद्विस्रंसितान्गलितान् वेदस्य मार्गान्वेदानादाय तत्र युगान्तसलिले विजहार। ह हर्षेण॥१२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में मत्स्यावतार का वर्णन किया गया है । भावी वैवस्वत मनु सत्यव्रत ने भगवान् को मत्स्य रूप से देखा । भगवान् के आश्रितों में प्रधान पृथिवी ही थी उसके आश्रय हैं । वे भगवान् । इसीलिए वे सम्पूर्ण जीव समूह के भी आश्रय हैं । मेरे (ब्रह्मा के) मुख से जल में गिरे हुए वेदों को लेकर वे भगवान् अत्यन्त भयङ्कर उस जल में प्रसन्नता पूर्वक विहार करते रहे ।।१२।।

क्षीरोदधावमरदानवयूथपानामुन्मथ्नताममृतलब्धय आदिदेवः ।
पृष्ठेन कच्छप वपुर्विदधार गोत्रं निद्राक्षणोऽद्रिपरिवर्तकषाणकण्डूः ।।१३।।

अन्वयः— अमरदानवयूथपानाम् अमृत लब्धये क्षीरोदधौ उन्मथ्नतां आदिदेवः पृष्ठेन गोत्रं दधार अद्रिपरिवर्तकषाणकण्डूः निद्राक्षणः ।।१३।।

अनुवाद— जब बड़े-बड़े दैत्य एवं देवता अमृत की प्राप्ति के लिए क्षीरसागर का मन्थन कर रहे थे, तब श्रीभगवान् ने अपने पीठ पर मन्दराचल पर्वत को धारण किया और पर्वत के रगड़ से उनके पीठ की खुजली मिट्टी तो वे क्षणभर के लिए सो गये ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

कूर्मावतारमाह । क्षीरोदधौ कच्छपवपुः सन् गोत्रं मन्थनार्थं मन्दरगिरिं पृष्ठेन धृतवान् । कदा । अमृतलब्धये क्षीराब्धिमुन्मथ्नतां सताम् । निद्रायाः क्षणोऽवसर उत्सवो वा यस्य सः । निद्रावसरः कुतस्तत्राह । अद्रेः परिवर्तः परिभ्रम एव कषाणः कषणं धर्षणसुखप्रदो यस्यां सा कण्डूर्यस्य सः । यद्वा अद्रिपरिवर्त एव कषः कषणं तेन अणिति अपयातीति कषाणा कण्डूर्यस्य ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

क्षीरोदधौ इत्यादि श्लोक के द्वारा ब्रह्माजीने श्रीभगवान् के कच्छपावतार का वर्णन किया है । क्षीर सागर में कच्छप शरीर धारण किए हुए भगवान् ने मन्थन क्रिया के लिए अपने पीठ पर मन्दर पर्वत को धारण किया था। यह कार्य उन्होंने तब किया जब देव एवं दानव यूथप अमृत का मन्थन कर रहे थे । उस समय उनको नींद आ गयी। क्योंकि पर्वत के धूमने से जो रगड़ पैदा हुयी उसी से उनकी पीठ की खुजली मिट गयी । **यद्वा अद्रिपरिवर्त० इत्यादि** अथवा पर्वत का धूमना ही उनकी पीठ की रगड़ थी उसी से उनकी खुजली चली गयी ।।१३।।

त्रैविष्टपोरुभयहासनृसिंहरूपं कृत्वा भ्रमद्भ्रुकुटिदंष्ट्रकरालवक्त्रम् ।
दैत्येन्द्रमाशु गदयाऽभिपतन्तमारादूरौ निपात्य विददार नखैः स्फुरन्तम् ।।१४।।

अन्वयः— भ्रमद् भुकुटि दंष्ट्र करालवक्त्रम् त्रैविष्टिपोरुभयहास नृसिंहरूपं कृत्वा गदयाभिपतन्तं दैत्येन्द्रम् आशु आरात् ऊरौ निपात्य स्फुरन्तं तं नखैः विददार ।।१४।।

अनुवाद— फड़कती हुयी भौहों और तीक्ष्ण दाँतों से जिनका मुख भयङ्कर था ऐसे श्रीभगवान् ने देवताओं के महान् भय को दूर करने के लिए नृसिंह रूप धारण करके गदा धारण करके आते हुए दैत्यों के राजा हिरण्यकशिपु को सन्निकट से ही शीघ्रता पूर्वक पकड़कर अपनी जङ्घों पर लिटा दिया और छटपटाते हुए हिरण्यकशिपु को उन्होंने अपने नखों से चीर दिया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

श्रीनृसिंहावतारमाह । त्रैविष्टपा देवास्तेषामुरुभयं हन्तीति तथा स भगवान् । यद्वा त्रैविष्टपानां देवानामप्युरुभयं यस्मात्तादृशो हासो यस्य तन्नृसिंहरूपम् । अथवा हिरण्यकशिपो राज्यकाले त्रैविष्टपानां दैत्यानामुरु भयं यस्मात्तादृशो हासो यस्य तन्नृसिंहरूपम्। कथंभूतम् । भ्रमन्त्यौ भ्रुकुट्यौ दंष्ट्राश्च यस्मिंस्तत्करालं वक्त्रम् यस्मिंस्तत् । दैत्येन्द्रं स्फुरन्तमारात्समीप एव गदयोपलक्षितमभिपतन्तं नखैर्विददार ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने नृसिंहावतार का वर्णन किया है । **त्रैविष्टपोरुभयहासनृसिंह रूपम्** पद की व्याख्या श्रीधर स्वामी ने तीन प्रकार से किया है । श्रीभगवान् त्रैविष्टप शब्द से देवता कहे गये है, उनका जो महान् भय था उसको दूर करने वाला था भगवान् का नृसिंह रूप (त्रैविष्टपा देवा तेषामुरु भयं हन्तीति तथा स भगवान् नृसिंह रूपं कृत्वा) अथवा देवताओं को भी जिससे महान् भय हो गया था भगवान् की हंसी से उससे युक्त थे भगवान् नृसिंह । अथवा हिरण्यकशिपु के राज्य काल में देवताओं और दैत्यों को जिससे महान् भय हो गया था उस तरह की हँसी वाला था भगवान् नृसिंह का रूप । इन तीनों प्रकार के विग्रहों का अर्थ थोड़े भेद पूर्वक प्राय: एक ही है । उन भगवान् की भौहें और तीक्ष्ण दाँत चमक रहे थे । उससे उनका मुख भयङ्कर बन गया था । ऐसे सन्निकट में ही गदा धारण करके आते हुए हिरण्यकशिपु को शीघ्रता से पकड़कर भगवान् ने उसको अपनी जङ्घा पर लिटा दिया और उसको अपने तीक्ष्ण नखों से चीर दिया ।।१४।।

अन्तःसरस्युरुबलेन पदे गृहीतो ग्राहेण यूथपतिरम्बुजहस्त वार्तः ।
आहेदमादिपुरुषाखिललोकनाथ तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ।।१५।।

अन्वयः— अन्तः सरस्युरुबलेन ग्राहेण पदे गृहीतः आर्तः यूथपतिः अम्बुजहस्तः इदम् आह हे आदिपुरुष, हे अखिललोकनाथ ! हे तीर्थश्रवः, हे श्रवणमङ्गलनामधेय ।।१५।।

अनुवाद— सरोवर के भीतर महाबलवान् ग्राह के द्वारा पैर पकड़ लिए जाने पर आर्त बने हुए यूथपति गजेन्द्र ने अपनी सूंड में कमल लेकर भगवान् को इस तरह पुकारा हे आदिपुरुष, हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् हे पवित्र यश वाले भगवन् ! तथा हे सुनने में मङ्गलमय नाम वाले भगवान् आप मेरी रक्षा करें ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

हरिसंज्ञकावतारमाह- अन्तरिति युगलेन । गजयूथस्य पतिः । तीर्थरूपं श्रवो यशो यस्य स तीर्थश्रवाः हे तीर्थश्रवः। श्रवणेनैव मङ्गलं नामधेयं यस्य सः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अन्त: सरसि इत्यादि दो श्लोकों द्वारा श्रीभगवान् के हरि संज्ञक अवतार का वर्णन ब्रह्माजी करते हैं । श्लोक में यूथपति शब्द से हाथियों के समूह के पति गजेन्द्र को कहा गया है । जिनके यश का श्रवण तीर्थ के समान पवित्र बना देने वाला है अत: श्रीभगवान् का नाम तीर्थश्रवा है । भगवान् के नामों के सुनने से ही मङ्गल होता है अतएव उनका नाम श्रवणमङ्गल है ।

अर्थात् सरोवर के भीतर जब बलवान् ग्राह ने गजेन्द्र के पैर को पकड़ लिया और उसे अथाह जल में ले जाने लगा तो आर्त बने हुए गजेन्द्र अपनी सूंड में एक कमल का पुष्प लेकर भगवान् को अपनी रक्षा के लिए आदिपुरुष अखिलोकनाथ तीर्थश्रव तथा श्रवणमङ्गलनामधेय इन चार नामों से पुकारा ।।१५।।

श्रुत्वा हरिस्तमरणार्थिनमप्रमेयश्चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः ।
चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य तस्माद्धस्ते प्रगृह्य भगवान्कृपयोज्जहार ।।१६।।

अन्वयः— अरणार्थिनम् तम् श्रुत्वा अप्रमेयः चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः हरिः चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य भगवान् हस्ते प्रगृह्य तस्मात् कृपया उज्जहार ।।१६।।

अनुवाद— शरणार्थी उस गजराज की वाणी को सुनकर अनन्त शक्ति सम्पन्न श्रीभगवान् गरुड पर चढ़कर आये और चक्र से घड़ियाल के मुँह को चीरकर श्रीभगवान् गजराज की शुण्ड पकड़कर अपनी कृपा के परतन्त्र होकर उस गजराज को उस घड़ियाल के मुख से ऊपर खींच लिए ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

तद्वचनं श्रुत्वा शरणार्थिनं तं हस्ते शुण्डायां प्रगृह्य । किं कृत्वा । नक्रस्य ग्राहस्य वदनं विनिपाट्य विदार्य । तस्मात्तद्वदनात् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

गजराज शरणार्थी था, वह चाहता था कि श्रीभगवान् उसकी रक्षा करें । उसकी वाणी को सुनकर भगवान् गरुड़ के पीठ पर सवार होकर आये और चक्र से ग्राह के मुख को चीर दिये तथा गजराज की शुण्ड पकड़कर उसको वे ग्राह के मुख से ऊपर खींच लिए ।।१६।।

ज्यायान्गुणैरवरजोऽप्यदितेः सुतानां लोकविन्चक्रम इमान्यदथाधियज्ञः ।
क्ष्मां वामनेन जगृहे त्रिपदच्छलेन याच्ञामृते पथि चरन्प्रभुभिर्न चाल्यः ।।१७।।

अन्वयः— अदितेः सुतानां अवरजोऽपि गुणैः ज्यायान् अधियज्ञः इमान् लोकान् विचक्रमे, त्रिपदच्छलेन वामनेन क्ष्माम् जगृहे । पथिचरन् याञ्चा ऋते प्रभुभिः न चाल्यः ।।१७।।

अनुवाद— भगवान् वामन अदिति के पुत्रों में सबसे छोटे थे किन्तु गुणों के विषय में वे सबसे बड़े थे। क्योंकि उन्होंने इन समस्त लोकों को अपने पादन्यासों द्वारा ही नाप लिया । बलि के प्रर्थना स्वीकार करते ही वामन रूप धारी भगवान् ने बलि की सारी पृथिवी ले ली याचना के द्वारा पृथिवी लेकर भगवान् ने लोगों को उपदेश दिया है कि सन्मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को याचना के अतिरिक्त किसी दूसरे प्रकार से ऐश्वर्यभ्रष्ट नहीं किया जा सकता है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

वामनावतारमाह । अदितेः सुतानां द्वादशादित्यानां मध्य अधियज्ञो यज्ञाधिष्ठाता विष्णुः । अवरजः कनीयानपि गुणैर्ज्यायाञ्ज्येष्ठः। गुणानेवाह । यद्यत इमाँल्लोकान्विचक्रमे पादन्यासैः क्रान्तवान् । अथ प्रतिश्रुतनन्तरमेव । तत्र हेतुः । बलेः क्ष्मां वामनरूपेण जगृहे। नन्वीश्वरः स्वयं किमिति दुर्बलवत्तथा चक्रे तन्नाह । याच्ञां बिना धर्ममार्गे वर्तमानो न चाल्यः ऐश्वर्यान्न भ्रंशनीय इति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

ज्यायान् इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के वामनावतार का वर्णन किया गया है । अदिति माता के पुत्र जो द्वादशादित्य हैं उन सबों में छोटे हैं यज्ञों के अधिष्ठाता भगवान् विष्णु; किन्तु सबों से छोटे होने पर भी वे गुणों के विषय में सबों से बड़े हैं । भगवान् के गुणों को बतलाते हुए कहते हैं कि बलि के सङ्कल्प करते ही उन्होंने बलि की पृथिवी को वामन रूप से ही नाप लिया । यदि कोई कहे कि वे तो ईश्वर (सम्पूर्ण जगत् के नियामक) थे फिर भी दीन के समान बलि से याचना करने क्यों गये ? तो इसका उत्तर है कि भगवान् वामन ने लोगों को उपदेश दिया है कि सन्मार्ग पर चलने वाले को याचना के बिना ऐश्वर्य से भ्रष्ट नहीं करना चाहिए।।१७।।

नार्थो बलेरयमुरुक्रमपादशौचमापः शिखा धृतवतो विबुधाधिपत्यम् ।
यो वै प्रतिश्रुतमृते न चिकीर्षदन्यदात्मानमङ्ग शिरसा हरयेऽभिमेने ।।१८।।

अन्वयः— हे अङ्ग ! उरुक्रमपाद शौचम् आपः शिखा धृतवतो बलेः विवुधाधिपत्यम् अर्थो न । यः प्रतिश्रुतम् ऋते अन्यत् च चिकीर्षत् । आत्मानम् शिरसा हरये अभिमेने ।।१८।।

अनुवाद— हे नारद ! जिस बलि ने अपने शिर पर श्रीभगवान् के चरणों के जल को धारण कर लिया था । उसने आगे चलकर जो इन्द्रत्व प्राप्त किया था उसमें उसके अतिरिक्त उसका अपना कोई पुरुषार्थ नहीं था। उसने अपनी प्रतिज्ञात अर्थ के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी करना नहीं चाहा । उसने तीसरे डग की पूर्ति के लिए श्रीभगवान् के चरणों में अपना शिर रखकर अपने शरीर को भी श्रीहरि को समर्पित कर दिया ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि याच्ञयापि चालनमनुचितमवेत्याशङ्क्य, ततोऽधिकं स्वसालोक्यादि दास्यामीत्याशयेन हृतवानित्याह- नार्थ इति । यद्विबुधाधिपत्यमिदानीं बलात्प्राप्तमग्रे दीयमानं बलेः पुरुषार्थो न भवति । कुत इत्यत आह । आ अप इति च्छेदः । उरुक्रमस्य पादशौचं चं चरणक्षालनरूपा अपः आ सर्वतो धृतवतः । क्व । शिखा शिखायां मूर्ध्नीत्यर्थः । किंच शुक्रेण वारितः शप्तोऽप्यङ्ग हे नारद, यः प्रतिश्रुतं विनाऽन्यत्र चिकीर्षत्कर्तु नैच्छत् । यश्च तृतीयपादपूरणार्थं हरये आत्मानं देहमप्यभिमेनेऽङ्गीकृतवान्। एवं सदेहं त्रैलोक्यं दत्तवतो विबुधाधिपत्यमर्थो न भवतीत्यर्थः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि याचना के माध्यम से भी सन्मार्गगामी को ऐश्वर्य से भ्रष्ट करना ठीक नहीं है तो इस प्रकार की शङ्का करके भगवान् ने सोचा कि इसको मैं इसमें भी बड़ा अपना सालोक्य आदि प्रदान करूँगा इस अभिप्राय से उसकी पृथिवी को भगवान् ने हरण कर लिया । इस बात को बतलाते हुए ब्रह्माजी ने **नार्थो बले** इत्यादि श्लोक को कहा है ।

बलि ने आगे चलकर जो देवराजत्व प्राप्त किया उसमें इसके अतिरिक्त अपना दूसरा कोई भी पुरुषार्थ नहीं था । उसी समय भगवान् ने बलि को देवराज का पद देने को सोच लिया । इसका एकमात्र कारण था कि बलि ने भगवान् वामन के चरणों के प्रक्षालन का जल अपने शिर पर अच्छी तरह से धारण कर लिया था । शुक्राचार्य ने दान का सङ्कल्प करने से पहले रोका भी यहाँ तक कि उन्होने बलि को शाप भी दे दिया फिर भी बलि ने जो सङ्कल्प किया था उसके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं करना चाहा । श्रीभगवान् के तीसरे पद की पूर्ति के लिए राजा बलि ने श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करके अपना शरीर भी समर्पित कर दिया । इस तरह से देह के साथ अपनी आत्मा को भी जिसने श्रीहरि को समर्पित कर दिया उस बलि को देवराजत्व प्राप्त करना कोई पुरुषार्थ नहीं था ।।१८।।

तुभ्यं च नारद भृशं भगवान्विवृद्धभावेन साधु परितुष्ट उवाच योगम् ।
ज्ञानं च भागवतमात्मसतत्त्वदीपं यद्वासुदवशरणं विदुरञ्जसैव ।।१९।।

अन्वयः— नारद ! विवृद्धभावेन साधुपरितुष्टः भगवान् तुभ्यं च योगम् आत्मसतत्त्वदीपं भागवतं ज्ञानं च उवाच यद् वासुदेवशरणं एवं अञ्जसा विदुः ।।१९।।

अनुवाद— नारद ! तुम्हारे अत्यन्त प्रेम भाव से परम प्रसन्न होकर हंसावतार धारण करने वाले श्रीभगवान् ने तुमको योग तथा आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने वाले ज्ञान का उपदेश दिया । उस ज्ञान को केवल भगवत् शरणागत भक्त ही आसानी से प्राप्त करते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

हंसावतारमाह-तुभ्यमिति । भृशं विवृद्धेन भावेनात्युद्रिक्तया भक्तया परितुष्टः सन् भक्तियोगं साधु यथा तथा उवाच । ज्ञानं चेति ज्ञानसाधनम् । किं तत् । भागवतं नाम । कथंभूतम् । तत्त्वमेव सतत्त्वम् । आत्मतत्त्वदीपकम् । विवृद्धभावेनेति विशेषणस्य फलमाह-यदिति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

तुभ्यम् इत्यादि श्लोक के द्वारा ब्रह्माजी ने भगवान् के हंसावतार का वर्णन किया है । ब्रह्माजी ने कहा नारद तुम्हारी जो श्रीभगवान् में भक्ति अत्यधिक समृद्ध हो गयी थी उससे श्रीभगवान् परम प्रसन्न हो गये । उसके फलस्वरूप श्रीभगवान् ने तुमको योग का उपदेश दिया तथा आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने वाले भागवत धर्म का

उपदेश दे दिया । उस आत्मज्ञान को वे ही लोग आसानी से प्राप्त कर पाते हैं जो लोग भगवान् वासुदेव के शरणागत होते हैं ।।१९।।

चक्रं च दिक्ष्वविहतं दशसु स्वतेजो मन्वन्तरेषु मनुवंशधरो बिभर्ति ।
दुष्टेषु राजसु दमं व्यदधात्स्वकीर्तिं सत्ये त्रिपृष्ठ उशतीं प्रथयंश्चरित्रैः।।२०।।

अन्वयः— मन्वन्तरेषु मनुवंशधरः दशसु दिक्षु अविहतं स्वतेजः चक्रं विभर्ति । चरित्रैः त्रिपृष्ठे सत्ये उशतीं स्वकीर्तिं प्रथयन् दुष्टेष राजसु दमं व्यधात् ।।२०।।

अनुवाद— वे ही भगवान् स्वायम्भुव आदि मन्वन्तरों में मनुओं के वंशधर के रूप में अवतारण ग्रहण करके दशो दिशाओं में अपने अप्रतिहत तेज रूपी चक्र के द्वारा मनुवंश की रक्षा करते हैं । और अपने चरित्रों के द्वारा त्रैलोक्य के ऊपर विद्यमान सत्यलोक पर्यन्त के लोकों में अपनी कमनीय कीर्ति का विस्तार करते हैं । समय-समय पर राजाओं के दुष्ट हो जाने पर उन सबों का दमन भी करते हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

तत्तन्मन्वन्तरावतारमाह-चक्रमिति । स्वतेजो निजं प्रभावमेव चक्रं सुदर्शनं विभर्ति । चक्रवदप्रतिहतं प्रभावं विभर्तीत्यर्थः। तदेवाह । मनुवंशपालकः सन् त्रयाणां लोकानां पृष्ठे उपरि स्थिते सत्यलोकेऽपि कमनीयां स्वकीर्तिं विस्तारयन् राजसु दण्डं विधत्ते ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

चक्रम् इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् के विभिन्न मनुओं के रूप में अवतार ग्रहण का वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं कि श्रीभगवान् के सुदर्शन नामक चक्र का जिस प्रकार से तेज अप्रतिहत है उसी तरह से मनुओं के रूप में अवतीर्ण भगवान् का भी दशो दिशाओं में फैला हुआ तेज अप्रतिहत होता है । उस तेज के द्वारा भगवान् मनुवंश की रक्षा करते हैं, अपने चरित्रों के द्वारा सत्यादि लोक पर्यन्त अपनी मनोहर कीर्ति का विस्तार करते हैं, और समय-समय पर जब राजागण दुष्ट प्रकृति के हो जाते हैं तो वे ही भगवान् उन दुष्ट राजाओं का दमन करके उनके दण्ड का विधान करते हैं ।।२०।।

धन्वन्तरिश्च भगवान्स्वयमेव कीर्तिर्नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति ।
यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्ध आयुश्च वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके ।।२१।।

अन्वयः— स्वयमेव कीर्तिः भगवान् धन्वन्तरिः नाम्ना पुरुरुजां नृणां रुज आशु हन्ति । यज्ञे च अमृतायुः अवावरुन्ध लोक अवतीर्ण च आयुः वेदम् अनुशास्ति ।।२१।।

अनुवाद— स्वयमेव कीर्ति स्वरूप भगवान् धन्वन्तरि संसार में महान् रोगों से ग्रस्त मनुष्यों के रोगों को अपने नाम मात्र से ही दूर कर देते हैं । दैत्यों के द्वारा छिन लिए गये मरण रहित आयु को देने वाले यज्ञ के भाग को वे प्राप्त करते हैं और संसार में वे धन्वन्तरि रूप से अवतार ग्रहण करके आयुर्वेद का प्रचार करते हैं।।२१।।

भावार्थ दीपिका

धन्वन्तर्यवतारमाह । लाकेऽवतीर्य धन्वन्तरिः सन् पुरुरुजां महारोगिणां स्वनाम्नैव रुजो रोगान् हन्ति । स्वयमेव कीर्तिरिति कीर्त्यतिशयोक्तिः । अमृतं मरणशून्यमायुर्यस्मात्सः । अव अवसन्नं पूर्वं दैत्यैः प्रतिबद्धं यज्ञे भागमवरुन्धे लभते । '**अवाव रुन्द्धम**' इति पाठेऽप्ययमेवार्थः । आयुर्विषयं वेदं चानुशास्ति प्रवर्तयति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी धन्वन्तरि अवतार का वर्णन करते हैं। भगवान् संसार में धन्वन्तरि रूप से अवतीर्ण होकर संसार के महारोगी पुरुषों के रोगों को अपने नाममात्र से ही विनष्ट कर देते हैं। स्वयमेव कीर्ति होकर भगवान् के कीर्त्यतिरेक को बतलाया गया है। दैत्यों के द्वारा हरण कर लिए गये मरणरहित आयु प्रदान करने वाले यज्ञ के भाग को वे भगवान् देवताओं को प्रदान करते हैं। जहाँ पर अवावरुद्धम पाठ है। वहाँ पर भी यही अर्थ होगा। वे धन्वन्तरि रूप से अवतार ग्रहण करके आयुविषयक शास्त्र आयुर्वेद का प्रवर्तन करते हैं ॥२१॥

क्षत्रं क्षयाय विधिनोपभृतं महात्मा ब्रह्मध्रुगुज्झितपथं नरकार्तिलिप्सु ।
उद्धन्त्यसाववनिकण्टकमुग्रवीर्यस्त्रिःसप्तकृत्व उरुधारपरश्वधेन ॥२२॥

अन्वयः— ब्रह्मधुग् उज्झितपथं नरकार्तिलिप्सु, अवनि कण्टकम् दैवोपभृतं क्षत्रं क्षयाय, असौ उरुधारपरश्वधेन त्रिसप्तकृत्वः उद्धन्ति ॥२२॥

अनुवाद— ब्राह्मणों से द्रोह करने वाले तथा कुमार्गगामी नारकीय कष्ट प्राप्त करना चाहने वाले तथा दैववशात् बढ़े हुए तथा पृथिवी के कण्टक स्वरूप क्षत्रिय राजाओं का विनाश करने के लिए श्रीभगवान् महापराक्रमी श्रीपरशुरामजी के रूप में अवतार ग्रहण करके अपने तीक्ष्ण धार वाले फरसे से इक्कीस बार उन राजाओं का संहार करते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

परशुरामावतारमाह। जगतः क्षयाय विधिना दैवेनोपभृतं संवर्धितं, मृत्यवे समर्पितमिति वा। ब्राह्मणेभ्यो द्रुह्यतीति तथा अत उज्झितः पन्था वेदमार्गो येन। अतएव नरकार्ति लिप्सतीव। एवंभूतमवनेः कण्टकतुल्यं क्षत्रमसौ महात्मा हरिरुद्धन्त्युत्पाटयति, दीर्घतीक्ष्णधारेण परशुना ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने परशुरामावतार का वर्णन किया है। संसार का नाश करने के लिए दैववशात् बढ़े हुए अथवा मृत्यु को समर्पित ब्राह्मणों से द्रोह करने के कारण सन्मार्ग का परित्याग किए हुए; उसके फलस्वरूप नारकीय कष्ट प्राप्त करने के इच्छुक के समान तथा पृथिवी के कण्टक तुल्य क्षत्रिय राजाओं का श्रीहरि ने विनाश अपने दीर्घ तथा तीक्ष्ण धार वाले फरसे से किया ॥२२॥

अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे ।
तिष्ठन्वनं सदयितानुज आविवेश यस्मिन्विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छत् ॥२३॥

अन्वयः— अस्मत् प्रसाद सुमुखः कलया कलेशः इक्ष्वकु वंश अवतीर्ण गुरोर्निदेशे तिष्ठन् सदयितानुजः वनम् आविवेश। यस्मिन् विरुध्य दशकन्धरःआर्तिम् आर्च्छत् ॥२३॥

अनुवाद— हमलोगों पर प्रसन्न होकर कृपा करने के लिए श्रीभगवान् अपनी भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न रूपी कलाओं के साथ श्रीराम रूप से इक्ष्वाकु वंश में अवतार ग्रहण करके अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए अपनी पत्नी तथा छोटे भाई के साथ में वन में चले गये और उन श्रीभगवान् से विरोध करके रावण मारा गया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

रामावतारमाह त्रिभिः-अस्मदिति। अस्माकं ब्रह्मादीनां प्रसादे सुमुखः, कलया भरतादिरूपया सह, कला माया तस्य ईशो गुरोर्दशरथस्याज्ञायां तिष्ठन् सीतालक्ष्मणाभ्यां सहितो वनमाविवेश। यस्मिन्विरोधं कृत्वा रावणो नाशं प्राप्तः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

तीन श्लोक से ब्रह्माजी श्रीरामावतमार का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हम ब्रह्मा आदि देवताओं पर कृपा करने के लिए अपनी भरतजी इत्यादि कलाओं के साथ कलेश माया के स्वामी श्रीभगवान् अपने पिता दशरथजी की आज्ञा का पालन करते हुए अपनी पत्नी सीताजी तथा लक्ष्मणजी के साथ वन में चले गये । उन भगवान् श्रीराम से विरोध करके रावण का नाश हो गया ॥२३॥

यस्मा अदादुदधिरूढभयाङ्गवेपो मार्गं सपद्यरिपुरं हरवद्दिधक्षोः ।
दूरसुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥२४॥

अन्वयः— दिधक्षोः हरवत् दूरे सुहृन्मथितरोष सुशोणदृष्ट्या तातप्यमान मकरोरग नक्रचक्रः रूढभयाङ्गवेपः उदधिः यस्मै सपदि अरिपुरं मार्गं अदात् ॥२४॥

अनुवाद— त्रिपुर विमान को जलाने की इच्छा से क्रुद्ध शङ्करजी के समान अपने शत्रु रावण की नगरी को जला देने की इच्छा से समुद्र तट पर आये हुए श्रीरामचन्द्रजी की आँखें सीताजी के हरण जन्य वियोग के कारण क्रोध से लाल हो गयी थीं । उसके कारण समुद्र के मगर सर्प तथा घड़ियाल समूह अत्यन्त संतप्त हो गये और भय के कारण काँपते हुए समुद्र उनको लङ्का जाने का शीघ्र ही मार्ग प्रदान कर दिया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

यस्मै रामायोदधिर्मार्गं ददौ । सपदि शीघ्रं हरो यथा त्रिपुरं दिधक्षुस्तद्वदरिपुरं लङ्कां दग्धुमिच्छोः । षष्ठी चतुर्थ्यर्थे । यद्वा पञ्चमीयम् । दिधक्षोः रामाद्यद्भयं प्राप्तं तेनाङ्गे कम्पो यस्येति । कथंभूत उदधिः । ऊढं प्राप्तं यद्भयं तेनाङ्गेषु वेषः कम्पो यस्य। अत्र हेतुः दूरे वर्तमाना सुहृत् सीता तथा निमित्तभूतया मथितः क्षुभितो रोषस्तेन सुशोणाऽत्यरुणा दृष्टिस्तयाऽत्यन्तं तप्यमानं मकराणामुरगाणां नक्राणां च चक्रं यस्मिन् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

त्रिपुर विमान को जला देने की इच्छा वाले शङ्करजी के समान शत्रु रावण की नगरी को भस्म कर देने की इच्छा वाले यहाँ इच्छोः पद में चतुर्थी के अर्थ में षष्ठी विभक्ति है अथवा इसमें पञ्चमी विभक्ति हैं । भय से काँपते हुए समुद्र ने शीघ्र ही मार्ग प्रदान कर दिया । उस भय का कारण बताते हुए कहते हैं **दूरे सुहृन्मथितरोषसुशोण दृष्ट्या** अपनी प्रियतमा के विप्रयोग के कारण क्षुब्ध होने से रोष के कारण उनकी ऑखें अत्यन्त लाल हो गयी थीं । उस दृष्टि से समुद्र के मगर सर्प तथा घड़ियाल आदि सन्तप्त हो गये थे, ऐसे समुद्र ने भगवान् श्रीराम को शीघ्र ही मार्ग प्रदान कर दिया ॥२४॥

वक्षः स्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाहदन्तौर्विडम्बितककुब्जुष ऊढहासम् ।
सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तुर्विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये ॥२५॥

अन्वयः— वक्षः स्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाहदन्तैः विडम्बितजुषः ऊढहासम् । अधिसैन्ये उच्चरतः धनुषः विस्फूर्जितैः दारहर्तुः असुभिः सह सद्यः विनेष्यति ॥२५॥

अनुवाद— रावण के वक्षःस्थल से टकराकर इन्द्र के वाहन ऐरावत के दाँत चूर-चूर होकर विखर गये और उससे प्रकाशित होने वाली दिशाओं को देखकर जो रावण हँसने लगा उस श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी का अपहरण करने वाले रावण का गर्व सेना के बीच में घोष करने वाले धनुष के टंकार से ही उसके प्राणों के साथ शीघ्र ही विनष्ट हो गया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

किंच युद्धे रावणस्य वक्षःस्थलस्पर्शेन रुग्णा भग्ना ये महेन्द्रवाहस्यैरावतस्य दन्तास्तैर्विडम्बिताः स्वधवलिम्ना धवलीकृताः। तत्तद्दिक्षु पतितैः प्रकाशिता इत्यर्थः । या एवंभूताः ककुभो दिशस्ता जुषते सेवते पालयतीति वा तथा तस्य दारहर्तू रावणस्य अहो मत्समः कोऽन्योऽस्तीति महागर्वेणोढं प्राप्तं हासमसुभिः प्राणैः सह सद्यः शीघ्रं विनेष्यत्यपनेष्यति । कैः धनुषो विस्फूर्जितैः टङ्कारघोषैरेव । कथंभूतस्य । अधिसैन्ये स्वपरसैन्यमध्ये उच्चरत उत्कर्षेण विचरतः । **ककुब्जयरूढहासम्**' इति पाठे दन्तैरुज्वलितानां ककुभां जयेन यो रूढहासः संजातो गर्वस्तमपनेष्यतीत्यर्थः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

युद्ध में रावण के वक्षःस्थल से टकराकर इन्द्र के वाहन ऐरावत के दाँत टूटकर विखर गये और उन विखरे हुए दाँत के प्रकाश से दिशाएँ प्रकाशित हो गयीं । इस प्रकार की दिशाओं का पालन करने वाले तथा श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी सीताजी का हरण करने वाले रावण का यह सोचकर गर्व करना कि मेरे समान दूसरा कौन हो सकता है । प्राणों के साथ ही उस गर्व को भी भगवान् श्रीराम की दोनों सेनाओं में होने वाली धनुष के टङ्कार की ध्वनि दूर कर देने वाली है ।

जहाँ **ककुब्जयरूढहासम्** पाठ है वहाँ अर्थ होगा कि दाँतों से प्रकाशित दिशाओं को जीत लेने से उत्पन्न हँसी पूर्वक गर्व को विनष्ट कर देगी ।।२५।।

भूमेः सुरेतरवरूथविमर्दितायाः क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्णकेशः ।
जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः कर्माणि चात्ममहिमोपनिबन्धनानि ।।२६।।

अन्वयः— सुरेतरवरूथ विमार्दिता याः भूमेः क्लेशव्ययाय सितकृष्ण केशः कलया जातः जनानुपलक्ष्यमार्गः आत्ममहिमोपनिबन्धनानि कर्माणि च करिष्यति ।।२६।।

अनुवाद— जब दैत्यों के समूह ने इस पृथिवी को रौंद डाला तब पृथिवी के क्लेश को दूर करने के लिए भगवान् अपने उजले और काले केश रूपी कला से बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में कलावतार ग्रहण करेंगे । अपनी महिमा को अभिव्यक्त करने वाले ऐसे अद्भूत कर्मों को वे करेंगे कि मनुष्य उनकी लीलाओं का रहस्य नहीं समझ पायेगा ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णावतारमाह- भूमेरिति दशभिः । सुरेतरा असुरांशभूता राजानस्तेषां वरूथैः सैन्यैर्विमर्दिताया मारेण पीडितायाः। कलया रामेण सह जातः सन् । कोऽसौ जातः । सितकृष्णौ केशौ यस्य भगवतः स एव साक्षात् । सितकृष्णकेशत्वं शोभैव नतु वयःपरिणामकृतम्, अविकारित्वात् । यत्तूक्तं विष्णुपुराणे '**उज्जहारात्मनः केशौ सितकृष्णौ महामुने**' इति । यच्च भारते '**स चापि केशौ हरिरुज्जजह्ने शुक्लमेकमपरं चापि कृष्णम्**' **तौ चापि केशवाविशतां यदूनां कुले स्त्रियौ रोहिणीं देवकीं च । तयोरेको बलभद्रो बभूव योऽसौ श्वेतस्य देवस्य केशः । कृष्णो द्वितीयः केशवः संबभूव केशो योऽसौ वर्णतः कृष्ण उक्तः**' इति । तत्तु न केशमात्रावताभिप्रायं, किंतु भूभारावतरणरूपं कार्यं कियदेतन्मत्केशावेवैतत्कर्तु शक्ताविति द्योतनार्थम् । रामकृष्णयोर्वर्णसूचनार्थं च केशोद्धरणमिति गम्यते । अन्यथा तत्रैव पूर्वापरविरोधापत्तेः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् इत्येतद्विरोधाच्च । कथंभूतः । परमेश्वरतया जनैरनुपलक्ष्यो मार्गो यस्य । तर्हीश्वरत्वे किं प्रमाणम्, अतिमानुषकर्मान्यथानुपपत्तिरेवेत्याह। आत्मनो महिमा उपनिबध्यतेऽभिव्यज्यते येषु तानि ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

अब भूमेः सुरेतर इत्यादि दश श्लोकों के द्वारा ब्रह्माजी श्रीकृष्णावतार का वर्णन करते हैं । जब असुरों के अंश स्वरूप राजाओं की सेना के भार से अत्यन्त बढ़े हुए पृथिवी का भार उतारने के लिए बलरामजी के साथ

भगवान् श्रीकृष्ण श्वेत और काले केश श्रीभगवान् के ही हैं । सित कृष्णकेशों वाला भगवान् को उनकी शोभा के लिए कहा गया हैं । बुढ़ापे को बोधित करने के लिए नहीं । क्योंकि भगवान् तो विकाररहित हैं ।

विष्णु पुराण में कहा गया है— हे महामुने ! श्रीभगवान् ने श्वेत तथा काले दो केशों को उखाड़ लिया। महाभारत में कहा गया हैं— **स चापिकेशो इत्यादि** अर्थात् वे भगवान् अपने एक श्वेत तथा एक काले केश को उखाड़ लिये । वे दोनों यादवों के वंश में उत्पन्न हुए तथा रोहिणी और देवकी दो स्त्रियाँ भी यदुवंश की हुयीं। श्रीभगवान् का जो श्वेत केश था वह बलराम हो गया और जो केश काले वर्ण का बतलाया गया है वही केशव के रूप में अवतीर्ण हुआ ।

तत्तु न केशमात्र० इत्यादि उसका अभिप्राय यह नहीं हैं कि ये केश ही बलराम तथा श्रीकृष्ण रूप में अवतीर्ण हैं, अपितु उसका अभिप्राय यह है कि यह पृथिवी के भार को उतारना रूपी जो कार्य है, वह बहुत छोटा कार्य है उसको तो मेरे केश ही दूर कर देंगे उसके लिए मुझे अवतार लेने की कोई आवश्यकता नहीं है । बलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् के वर्णों को भी द्योतित करने के लिए दोनों प्रकार के केशों को उखाड़ा श्रीभगवान् ने ।

यदि ऐसा नहीं माना जाय तो फिर **'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** इस उक्ति से विरोध होगा । उनके प्रकार को बतलाते हुए कहते हैं भगवान् श्रीकृष्ण परमेश्वर हैं, अतएव संसार के लोग उनके मार्ग को नहीं जान सकते हैं । यह **जनानुपलक्ष्यमार्गः** इस पद से कहा गया है ।

प्रश्न होता है कि श्रीकृष्ण भगवान् ईश्वर हैं इसमें क्या प्रमाण है ? तो इसका उत्तर है कि यदि वे ईश्वर नहीं होते तो वे अतिमानुष कर्मों को कैसे कर सकते थे ? उनके जो कर्म है वे उनकी महिमा को अभिव्यक्त करने वाले हैं ॥२६॥

तोकेन जीवहरणं युदलूकिकायास्त्रैमासिकस्य च पदा शकटोऽपवृत्तः ।
यद्रिङ्गताऽन्तरगतेन दिविस्पृशोर्वा उन्मूलनं त्वितरथाऽर्जुनयोर्न भाव्यम् ॥२७॥

अन्वयः— इतरथा तोकेन उलूकिकायाः जीव हरणम् त्रैमासिकस्य च पदा शकटोपवृत्तः यत् रिङ्गता अन्तरगतेन दिवि स्पृशोः वा अर्जुनयोः उन्मूलनं न भाव्यम् ॥२७॥

अनुवाद— यदि भगवान् श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं होते तो अत्यन्त छोटे बालक श्रीकृष्ण के द्वारा पूतना का प्राणापहार, तीन मास के बच्चे द्वारा पैर से विशाल गाड़ी को उलट देना तथा घुटनों के बल रेंगते हुए दोनों अर्जुन वृक्षों के बीच में जाकर उन आकाशचुम्बी अर्जुन के वृक्षों को उखाड़ देना इन सभी कार्यों को वे नहीं कर सकते थें ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव प्रपञ्चयति-तोकनेत्यादिना । बालेन पूतनाया जीवहरणम् । यद्रिङ्गता जानुभ्यां गच्छता अन्तरं गतेन मध्यं प्राप्तेन। दिविस्पृशोरत्युच्चयोः । इतरथाऽनीश्वरत्वे तन्न भवितव्यम् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व का वर्णन करते हुए **तोकेन० इत्यादि** श्लोक को ब्रह्माजी कहते हैं । यदि भगवान् श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं होते तो अत्यन्त छोटे बच्चे के द्वारा पूतना का प्रणापहार करना, घुटनों के बल रेङ्गते हुए दोनों आकशचुम्बी अर्जुन के वृक्षों का उखाड़ देना इन सब कामों को वे नहीं कर सकते थे ॥२७॥

यद्वैव्रजे व्रजपशून्विषतोयपीथान् पालांस्त्वजीवयदनुग्रहदृष्टिवृष्ट्या ।
तच्छुद्धयेऽतिविषवीर्यविलोलजिह्वमुच्चाटयिष्यदुरगं विहरन्ह्रदिन्याम् ।।२८।।

अन्वयः— यद्वै व्रज विषतोयपीथान् व्रजपशून् पालांस्तु अनुग्रहदृष्टिवृष्टया अजीवयत् तच्छुद्धये अतिविषवीर्य विलोलजिह्वम् उरगम् ह्रदिन्याम् विहरन् उच्चाटयिष्यति ।।२८।।

अनुवाद— वे भगवान् व्रज मे विषैले पानी के पी लेने के कारण बछड़े तथा ग्वाल बाल भी मर जायेंगे तब वे अमृतमयी अनुग्रह दृष्टि की वर्षा से उन सबों को जीवित कर देंगे । उस यमुना के जल को शुद्ध कर देने के लिए यमुना में विहार करते हुए विषातिरेक के कारण चञ्चल जिह्वा वाले कालिय नाग को वहाँ से निकाल देंगे ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

विषतोयपीथान् विषमयतोयस्य पीथं पानं येषां तान् पालान्गोपांश्च कृपादृष्टिसुधावृष्ट्या जीवयिष्यतीति । यमुनायां क्रीडन्नुरगं कालियमुच्चाटयिष्यति । तच्छुद्धये तस्या ह्रदिन्या निर्विषत्वाय । अतिविषवीर्येण विलोलाऽतिचञ्चला जिह्वा यस्य ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

विषैले जल को पी लेने के कारण जब बछड़े और ग्वालबाल मर जायेंगे उस समय अपनी कृपा रूपी अमृतमयी दृष्टि से वे भगवान् उन सबों को जीवित कर देंगे और यमुना में विहार करते हुए वे सर्प को वहाँ से भगा देंगे । उनके यमुना में विहार करने का उद्देश्य यमुना के जल को विष रहित बना देना होगा और वे विष के आतिशय्य के कारण चञ्चल जिह्वा वाले सर्प कालीय को वहाँ से निकाल देंगे ।।२८।।

तत्कर्म दिव्यमिव यन्निशि निःशयानं दावाग्निना शुचिवने परिदह्यमाने ।
उन्नेष्यति व्रजमतोऽवसितान्तकालं नेत्रे पिधाप्य सबलोऽनधिगम्यवीर्यः ।।२९।।

अन्वयः— दवाग्निना शुचिवाने परिदह्यमाने निशि निःशयाननं अवसितान्त कालं व्रजम् सबलः नेत्रेपिधाप्य उन्नेष्यत्ति तत्कर्म दिव्यमिव ।।२९।।

अनुवाद— कालिय मर्दन के ही दिन सब लोग जब यमुना तट पर सो जायेंगे और ग्रीष्म ऋतु होने के कारण जब आस-पास का मुंजवन जलने लगेगा उस समय बलरामजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण प्राण संकटापन्न सबों के नेत्रों को बन्द करवाकर सबों को उस अग्नि से बचा लेंगे । उनका यह कर्म दिव्य होगा ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

दिव्यमलौकिकमिवेति लोकोक्तिः । उन्नेष्यत्युद्धरिष्यति । शुचिर्ग्रीष्मस्तत्संबन्धिनि वने । शुष्क इत्यर्थः । अतो दावाग्रेर्हेतोरवसितो निश्चितोऽन्तकालो यस्य तम् । सबलः सरामः अनधिगम्यं दुर्ज्ञेयं वीर्यं यस्य । तत्र निशि निःशयानमिति कालियदमने रात्र्यां यमुनातीरे । नेत्रे पिधाप्य पिहिते कारयित्वेति मुञ्जाटव्यामिति ज्ञेयम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् का वह कर्म दिव्य ही होगा । उन्नेष्यति का अर्थ है, बचा लेंगे । **शुचिवने** पद का अर्थ है, ग्रीष्म ऋतु के वन में । अतएव सुखे हुए **अवसितान्तकालः** जब सबों का अन्तिम समय आ जायेगा । **सबलः** पद का अर्थ है बलरामजी के साथ । **अनधिगम्यवीर्यः** पद का अर्थ है कि श्रीभगवान् के पराक्रम का कोई पता नहीं लगा सकता है ।

जिस दिन भगवान् ने कालिय दमन किया था उस दिन रात्रि में वज्रवासियों के यमुनातट पर ही सो जाने

पर रात्रि में मुञ्जाटवी में आग लग जाने पर सबों के प्राण सङ्कटापन्न हो गये तो भगवान् सबों की आँखों को बन्द कराकर सबों को बचा लेंगे ॥२९॥

गृह्णीत यद्यदुपबन्धममुष्य माता शुल्वं सुतस्य न तु तत्तदमुष्य माति ।
यज्जृम्भतोऽस्य वदने भुवनानि गोपी संवीक्ष्य शङ्कितमनाः प्रतिबोधितासीत् ॥३०॥

अन्वयः— अमुष्य माता यत् उपबन्धं शुल्वं गृह्ण तत् तु अमुष्यन माति जृम्भातः अस्य वदनं गोपी अस्य भुवनानि संवीक्ष्य शंकितमनाः प्रतिबोधितासीत् ॥३०॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण को बाँध देने के लिए उनकी माता जितनी भी रस्सी लेंगी वह उनके पेट में दो अङ्गुल छोटी हो जायेगी। तथा जम्भाई लेते हुए भगवान् के मुख में सम्पूर्ण विश्व को देखकर यशोदाजी आश्चर्यित हो जायेंगी और बाद में वे आश्वस्त होंगी ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

उपबध्यतेऽनेनेत्युपबन्धं तत्साधनं शुल्वं अमुष्य माता यशोदाऽग्रहीत्। अमुष्योदरे न माति बन्धनसंमितं न भवति। न पूर्यत इत्यर्थः। गोपी यशोदा संवीक्ष्य दृष्ट्वा प्रतिबोधिता निजैश्वर्यं ज्ञापिता आसीदिति यत्, तच्च कर्म दिव्यमिवेति सर्वत्र पूर्वेणान्वयः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण को बान्ध देने के लिए माता यशोदा ने जितनी भी रस्सियों को लिया वे सब रस्सियाँ इनके कमर में छोटी ही पड़ गयी। तथा भगवान् के जम्भाई लेते समय उनके मुख में सम्पूर्ण विश्व को देखकर माता यशोदा पहले तो आश्चर्यित हो गयीं किन्तु वे बाद में आश्वस्त हो गयीं ये सारे भगवान् के कर्म दिव्य ही हैं ॥३०॥

नन्दं च मोक्ष्यति भयाद्वरुणस्य पाशाद्गोपान्विलेषु पिहितान् मयसूनुना च ।
अह्न्यापृतं निशि शयनमतिश्रमेण लोके विकुण्ठ उपनेष्यति गोकुलं स्म ॥३१॥

अन्वयः— नन्दं भयात् वरुणस्य पाशात् मोक्षयति मयसूनुना विलेषु पिहितान् गोपान् भयाद् मोक्ष्यति। अहन्यापृतं अतिश्रमेण निशिशयानं गोकुलं लोकं विकुण्ठम् उपनेष्यति ॥३१॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण नन्दजी के अजगर के मुख से बचायेंगे तथा वरुण के पाश से मुक्त करेंगे। मय दानव के पुत्र व्योमासुर के द्वारा ग्वाल बालों के गुफा में बन्द कर दिए जाने पर वे उन सबों को बचा लेंगे दिन भर कामों में लगे रहने के अत्यन्त श्रान्त तथा रात्रि में सोने के कारण मुक्ति प्राप्ति के साधन से रहित गोकुल के लोगों को भगवान् वैकुण्ठ ले जायेंगे, यह उनका दिव्य कर्म ही होग ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

वरुणस्य पाशाद्यद्भयं तस्मान्मोचयिष्यति मयसूनुना व्योमनाम्ना। अह्नि आपृतं व्यापारयुक्तं निशि शयानमिति च वैकुण्ठप्राप्तिसाधनानुष्ठानाभावो दर्शितः। उपनेष्यति प्रापयिष्यति गोकुलवासिनं जनम्। स्मेत्याश्चर्ये ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

नन्दजी के वरुण के पाशरूपी अजगर के मुख से बचाने वाले, व्योमासुर के द्वारा ग्वालों को गुफा में बन्द कर दिए जाने पर बचाने वाले तथा दिन भर कार्यों में लगे रहने के कारण अत्यन्त थककर रात्रि में सोने वाले गोकुल के लोगों को वैकुण्ठ प्रदान करने वाले श्रीभगवान् के ये सब कार्य आश्चर्यमय होंगे ॥३१॥

गोपैर्मखे प्रतिहते व्रजविप्लवाय देवेऽभिवर्षति पशून्कृपया रिरक्षुः ।
धर्त्तोच्छिलीन्ध्रमिव सप्तदिनानि सप्तवर्षो महीध्रमनघैककरे सलीलम् ॥३२॥

अन्वयः— हे अनघ ! गोपैः मखे प्रतिहते व्रजविप्लवाय देवे अभिवर्षति कृपया पशून् रिरक्षु सप्तवर्षः सप्तदिनानि उच्छिलीन्ध्रमिव एककरे महीध्रम् सलीलम् धर्ता ।।३२।।

अनुवाद— हे निष्पाप नारद ! गोपों द्वारा इन्द्र यज्ञ नहीं किए जाने परे क्रुद्ध होकर जब इन्द्र वर्षा करने लगेंगे तो कृपा परतन्त्र होकर पशुओं की रक्षा करने के लिए सात वर्ष की अवस्था वाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने एक हाथ पर छत्रक पुष्प के समान आसानी से गोवर्धन पर्वत को सात दिनों तक धारण किए रहेंगे ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

देवे इन्द्रे ! पशून् रिरक्षुः । रिरक्षिषुरित्यर्थः । श्रमरहिते एकस्मिन्नेव करे सलीलं यथा तथा महीध्रं गोवर्धनं धर्ता धारयिष्यति । उच्छिलीन्ध्रमुद्गतं छत्राकमिव । सप्तवर्षाणि वयो यस्य सः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भी ब्रह्माजी नारदजी को भगवान् श्रीकृष्ण की आश्चर्यमयी लीला को बतलाते हैं वे कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण के कहने से गोप जब इन्द्र का यज्ञ करना बन्द कर देंगे उस समय व्रज को विनष्ट करने के लिए इन्द्र मुसलाधार वर्षा करेंगे । यह देखकर सात वर्ष की अवस्था वाले भगवान् श्रीकृष्ण पशुओं की रक्षा करने के लिए खेल-खेल में ही गोवर्धन पर्वत को अपने एक हाथ पर छत्रक पुष्प के समान विना किसी प्रयास के धारण किए रहेंगे ।।३२।।

क्रीडन्वने निशि निशाकररश्मिगौर्यां रासोन्मुखः कलपदायतमूर्च्छितेन ।
उद्दीपितस्मररुजां व्रजभृद्वधूनां हर्तुर्हरिष्यति शिरो धनदानुगस्य ॥३३॥

अन्वयः— निशाकररश्मिगौर्याम् निशि रासोन्मुखः कलपदायतमूर्छितेन वने क्रीडन् उद्दीपिपतस्मररुजां व्रजभृद्वधूनां हर्तुः धनदानुगस्य शिरः हरिष्यति ।।३३।।

अनुवाद— पूर्णिमा की रात्रि की चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशित रात्रि में रासक्रीडा करने की इच्छा से मनोहर संगीत से युक्त वन में क्रीडा करते हुए उद्दीप्त काम की वासना से युक्त गोपियों का हरण करने वाले यक्ष का श्रीभगवान् शिर काट देंगे ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

निशि रात्रौ । निशाकररश्मिभिर्गौर्यां धवलायाम् । वने क्रीडन् कलानि मञ्जुलानि पदानि यस्मिंस्तच्च तदायतं दीर्घं मूर्च्छितमालापविशेषयुक्तं गीतं तेनोद्दीपितः स्मर एव रुक् यासां तासां गोपीनां हर्तुः शङ्खचूडस्य शिरो हरिष्यति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

पूर्ण चन्द्रमा की चाँदनी से प्रकाशित रात्रि में वन में क्रीडा करते हुए श्रीभगवान् के मनोहर पदों से युक्त होने के कारण दीर्घ आलाप युक्त गीत से जिन गोपियों का कामज्वर उद्दीप्त हो गया था उन सबों को चुराने वाले शंख चूड़ नामक यक्ष का श्रीभगवान् शिर काट देंगे ।।३३।।

ये च प्रलम्बखरदर्दुरकेश्यरिष्टमल्लेभकंसयवनाः कुजपौण्ड्रकाद्याः ।
अन्ये च शाल्वकपिबल्वलदन्तवक्रसप्तोक्षशम्बरविदूरथरुक्मिमुख्याः ॥३४॥
ये वा मृधे समितिशालिन आत्तचापाः काम्बोजमत्स्यकुरुकैकयसृञ्जयाद्याः ।
यास्यन्त्यदर्शनमलं बलभीमपार्थव्याजाह्वयेन हरिणा निलयं तदीयम् ॥३५॥

अन्वयः— ये च प्रलम्बरखर-दुर्दुर-केश्यरिष्ट-मल्लेभ-कंस-यवनाः कुजपौण्ड्रकाद्याः अन्ये च शाल्व-कपि-बल्वल दन्तवक्त्र-सप्तोक्ष-शम्बर-विदूरथ-रुक्मिमुख्याः, ये वा काम्बोज मत्स्यकुरु-कैकय-सृञ्जयाद्याः मृधे समितिशालिनः आत्तचापाः बल-पार्थ-भीमव्याजाह्वयेन अलम् अदर्शनम् तदीयम् निलयंयास्यन्ति ।।३४-३५।।

अनुवाद— जितने भी प्रलम्बासुर धेनुकासुर बकासुर, केशी, अरिष्टासुर आदि दैत्य, चाणूर आदि पहलवान, कुवलयापीड हाथी, कंस, काल यवन, भौमासुर, पौण्ड्रक, शाल्व, द्विविद नामक वानर, बल्वल, दन्तवक्त्र, राजा नग्नजित् के सात बैल, शम्बरासुर, विदूरथ तथा रुक्मी एवं काम्बोज, मत्स्य, कुरु, कैकय और सृञ्जय आदि देशों के राजा लोग तथा जो भी योधा धनुष धारण करके युद्ध के मैदान में युद्ध करने के लिए आयेंगे वे सबके सब बलराम, भीमसेन तथा अर्जुन आदि नामों के बहाने स्वयं श्रीभगवान् के द्वारा मारे जाकर उनके ही लोक में जायेंगे ।।३४-३५।।

भावार्थ दीपिका

ये च प्रलम्बादयस्ते सर्वे हरिणा हेतुभूतेन तदीयं निलयमदर्शनं दर्शनायोग्यं वैकुण्ठमलं यास्यन्तीत्युत्तरेणान्वयः खरो धेनुकः, दर्दुरो इव दर्दुरो बकः, इभः कुवलयापीडः, कुजो नरकः, कपिर्द्विविदः । ये च मृधे आत्तचापाः, समितौ संग्रामे शालन्ते श्लाघन्ते ते समितिशालिनः । ननु प्रलम्बखरकपिबल्बलरुक्मिप्रमुखा बलभद्रेण निहताः, काम्बोजादयश्च भीमार्जुनादिभिः, शम्बर प्रद्युम्नेन, यवनो मुचुकुन्देन, न तु हरिणा तत्राह । बलो भीमः पार्थ इत्यादयो व्याजाह्वयाः कपटनामानि यस्य तेन । सप्तोक्षाणस्तु तेन दमिताः कालान्तरे यास्यन्तीति भावः । एतच्च सर्वमपि कर्म दिव्यमिव, तच्चान्यथा न भाव्यमिति पूर्वेणैव संबन्धः ।।३४-३५।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी बतला रहे हैं कि प्रलम्बासुर इत्यादि जो दैत्य होंगे वे सबके सब श्रीहरि के द्वारा मारे जाने के कारण श्रीभगवान् के वैकुण्ठ लोक जिसको देखा नहीं जा सकता है उसमें चले जायेंगे । धेनुकासुर, दर्दुर (बकासुर) कुबलयापीड हाथी, नरकासुर, द्विविद नामक वानर । वे सबके सब श्रीभगवान् के लोक में चले जायेंगे ।

जो लोग युद्ध में धनुष धारण करके प्रख्यात योद्धा हैं वे सब भी मारे जाकर श्रीभगवान् के लोक में चले जायेंगे । प्रश्न है कि प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, द्विविद, बल्वल तथा रुक्मी को तो बलरामजी ही मारने वाले हैं । काम्बोज इत्यादि का वध भीम, अर्जुन इत्यादि ने किया, शम्बरासुर को प्रद्युम्नजी ने मारा, कालयवन को मुचुकुन्द ने मारा । इन सबों को तो श्रीहरि ने मारा नहीं था तो इसके उत्तर में ब्रह्माजी ने कहा कि भीम, अर्जुन, बलराम ये सबके सब श्रीहरि के कपट नाम हैं । इन सबों के बहाने मारने का काम तो श्रीहरि ने ही किया ।

राजा नग्नजीत के जो सात बैल थे उन सबों का दमन भगवान् ने किया वे सब जब मरेंगे तब श्रीभगवान् के वैकुण्ठ लोक में जायेंगे ।।३४-३५।।

कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः ।
आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म ।।३६।।

अन्वयः— मीलित धियाम् स्तोकायुषां नृणाम् स्वनिगमः बत दूरपारः अवमृश्य अनुयुगम् सत्यवत्याम् अविहितः सन् सः हि वेदद्रुमं विटपशः विभजिष्यति स्म ।।३६।।

अनुवाद— समयानुसार लोगों की बुद्धि मन्द पड़ जाती है और उन लोगों की आयु भी कम हो जाती है। उस समय जब भगवान् देखते हैं कि मेरे आत्मतत्त्व को बतलाने वाले वेदों को समझने में लोग असमर्थ हैं; उस समय प्रत्येक युग में माता सत्यवती के गर्भ से व्यासजी के रूप में अवतीर्ण होकर श्रीभगवान् वेद रूपी वृक्ष की शाखाओं का विभाग करते हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

व्यासावतारमाह । अनुयुगं मीलिता संकुचिता धीर्येषाम् । स्तोकमल्पमायुर्येषां तेषां स्वनिगमः स्वकृतो वेदराशिर्वताहो दूरे पारं यस्येति दुर्गम इत्यवमृश्य सत्यवत्यामाविर्भूतः सन्स एव हरिः । विटपशः शाखाभेदेन ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

प्रत्येक युगों में लोगों की बुद्धिमन्द होती जाती है, उन लोगो की आयु भी कम होती जाती है । ऐसे लोगों को देखकर भगवान् प्रत्येक कल्प में माता सत्यवती के गर्भ से व्यासजी के रूप में अवतीर्ण होकर वेदरूपी महान् वृक्ष की शाखाओं का विभाग करेंगे ।।३६।।

देवद्विषां निगमवर्त्मनि निष्ठितानां पूर्भिर्मयेन विहिताभिरदृश्यतूर्भिः ।
लोकान्ध्नतां मतिविमोहमतिप्रलोभं वेषं विधाय बहु भाष्यत औपधर्म्यम् ।।३७।।

अन्वयः— निगमवर्त्मनि निष्ठितानां देवद्विषाम् मयेन निर्मिताभिः अदृशतूर्भिः पूर्भिः लोकान्ध्नताम् अति प्रलोभं मतिविमोहम् वेषं विधाय बहु औपधर्म्यम् भाष्यते ।।३७।।

अनुवाद— देवताओं के शत्रु सभी वेदमार्ग का सहारा लेकर मयदानव के द्वारा निर्मित नगरियों के अदृश्य वेग वाली नगरियों में रहकर लोगों का विनाश करने लगेगें उस समय भगवान् लोगों की बुद्धि को मोह में डालने वाले तथा अत्यन्त लोभ उत्पन्न करने वाले वेष को धारण करके बहुत से पाख्ण्ड धर्म का उपदेश करेंगे ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

बुद्धावतारमाह । देवद्विषां निगमवर्त्मनि वेदमार्गे निष्ठितानां नितरां स्थितानाम् । तद्बलेन च पूर्भिः पुरीभिः । अदृश्यतूर्भिरलक्ष्यवेगाभिः । मतेर्विमोहो योग्यतात्यागो यस्मात्, मतेः प्रलोभश्चायुक्तस्वीकारो यस्मात्तं पाखण्डवेषं विधाय तेनौपधर्म्य पाखण्डधर्मम् । स्वार्थेष्यञ् । बहु भाषिष्यत इत्यर्थः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी बुद्धावतार का वर्णन करते हैं । जब देवताओं के शत्रु भी वेदमार्ग को अपना कर उसके सहारे मयदानव के द्वारा निर्मित अदृश्य गति वाली नगरीयों में रहकर दैत्य; लोगों का विनाश करने लगेंगे। उस समय मति को मोहित करने वाले तथा लोभ को उत्पन्न करने वाले वेष को धारण करके श्रीभगवान् बुद्ध रूप से बहुत अधिक पाखण्ड धर्मों का उपदेश करेंगे ।।३७।।

यर्ह्यालयेष्वपि सतां न हरेः कथाः स्युः पाखण्डिनो द्विजजना वृषला नृदेवाः ।
स्वाहा स्वधा वषडिति स्म गिरो न यत्र शास्ता भविष्यति कलेर्भगवान्युगान्ते ।।३८।।

अन्वयः— यर्हि सताम् अपि आलयेषुहरेः कथा न स्युः द्विजजनाः पाखण्डिनः स्युः, नृदेवाः वृषलाः स्युः, यत्र स्वाहा, स्वधा वषडिति गिरः न स्युः तदा युगान्ते भगवान् कलेः शास्ता भविष्यति ।।३८।।

अनुवाद— जिस समय सज्जनों के भी गृह में श्रीहरि की कथा नहीं होगी, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य भी पाख्ण्डी हो जायेंगे, राजा लोग शूद्र हो जायेंगे तथा जिस समय कहीं भी स्वाहा, स्वधा तथा वषट् शब्द सुनाई नहीं पड़ेगें उस समय युग के अन्त में कलियुग का शासन करने के लिए भगवान् कल्कि अवतार ग्रहण करेंगे ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

कल्क्यवतारमाह । यर्हि यदा सतामप्यालयेषु गृहेषु हरेः कथा न स्युः, त्रैवर्णिकाः पाखण्डिनः स्युः, शूद्रश्च राजानः स्युस्तदा कल्किरूपेण कलेः शास्ता भविष्यति । अत्र च ब्रह्मनारदसंवादात्प्राग्भाविनो वराहादयः, मन्वन्तरावतारास्तु भूता भाविनश्च, धन्वन्तरिपरशुरामौ तदा वर्तेते, श्रीरामादयस्तु भाविनः, तत्र तु क्वचिद्भूतादिनिर्देशश्छान्दस इति द्रष्टव्यम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी कल्कि अवतार का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जब सज्जनों के भी गृह में श्रीभगवा की कथा नहीं होगी, त्रैवर्णिक भी पाखण्डी हो जायेंगे तथा शूद्र राजा हो जायेंगे । कहीं भी स्वाहा स्वधा तथा वषट शब्द सुनाई नहीं पड़ेंगे उस समय भगवान् कलियुग का प्रशासन करने के लिए कल्की अवतार धारण कर लेंगे ब्रह्मानारद संवाद से पहले वराहावतार इत्यादि अवतार हुए हैं, मन्वन्तरों का अवतार भूतकालिक और भविष्यत कालिक होगा । धन्वन्तरि और परशुरामावतार उस समय रहेंगे । श्रीराम आदि अवतार भविष्यत् कालिक होंगे । इन सबों में जहाँ कहीं भी भूत कालिक निर्देश हैं वहाँ आर्ष प्रयोग समझना चाहिए ॥३८॥

सर्गे तपोहमृषयो नव ये प्रजेशाः स्थाने च धर्ममखमन्वमरावनीशाः ।
अन्ते त्वधर्महरमन्युवशासुराद्या मायाविभूतय इमाः पुरुशक्तिभाजः ॥३९॥

अन्वयः— पुरुशक्तिभाजः इमा माया विभूतयः सर्गे, तपः अहम् ऋषयः ये च नवप्रजेशजाः ते भवन्ति, स्थाने धर्ममखमन्वमरावावनीशाः भवन्ति, अन्ते तु अधर्महरमन्युवशासुराद्याः भवन्ति ॥३९॥

अनुवाद— अनेक परा शक्तियों से सम्पन्न परमात्मा की माया की ये विभूतियाँ अविर्भूत होती हैं वे सृष्टिकाल के समय तपस्या, रूप में ऋषिगण और नव प्रजापतियों के रूप में अविर्भूत होती हैं स्थिति काल में धर्म, यज्ञ, मनु, देवता और राजा के रूप में अविर्भूत होती हैं और संहार काल में तो अधर्म, शङ्करजी, क्रोधवशा नामक सर्प तथा दैत्यों के रूप में आविर्भूत होती हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

सृष्ट्यादिकार्यभेदेन मायागुणावतारविभूतीराह- सर्ग इति । स्थाने स्थितौ । मखो विष्णुः । धर्मश्च मखश्च मनवश्च अमराश्च अवनीशाश्च । अन्ते संहारे । हरो रुद्रः । मन्युवशाः सर्पाः । बहुशक्तिधारिणो भगवत इमा मायाविभूतयः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

सृष्टि आदि कार्यों की भिन्नता के कारण माया के गुणों के अवतार रूपी विभूतियों को बतलाते हुए ब्रह्माजी कहते है । जिस समय स्थिति की बेला आती है उस समय वे विष्णु, धर्म, मख, मनु, देवता और राजाओं के रूप में अवतीर्ण होती है । संहार के समय वे ही रुद्र मन्युवशा सर्प होती हैं, सृष्टि के समय तपस्या, ब्रह्मा, ऋषिगण तथा नव प्रजापतियों के रूप में अविर्भूत होती हैं ॥३९॥

विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ।
चस्कम्भ यः स्वरंहसाऽस्खलता त्रिपृष्ठं यस्मात्त्रिसाम्यसदनादुरुकम्पयानम् ॥४०॥

अन्वयः— यः कविः पार्थिवानि रजांसि अपि विमाने तादृशः अपिः कतमः नु विष्णो वीर्यगणानाम् अर्हति । यः स्वरहंसा अस्खलता यस्मात् त्रिसाम्यसदनात् उरु कम्पयानम् त्रिपृष्ठम् चस्कम्भ ॥४०॥

अनुवाद— अपनी प्रतिभा के बल से पृथिवी के सारे धूलिकणों को भी गिन सकने में समर्थ कौन ऐसा पुरुष है जो भगवान् विष्णु के सम्पूर्ण लीलाओं को गिन सके ? त्रिविक्रमावतार में त्रैलोक्य को नापते समय उनके अदम्य वेग के कारण जब ब्रह्माण्ड अत्यधिक काँपने लगा उस समय भगवान् ने अपनी शक्ति से उसको स्थिर किया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

इदं मया संक्षेपेणोक्तं विस्तरेण वक्तुं न कोऽपि समर्थ इत्याह । पृथिव्याः परमाणूनपि यो विममे गणितवांस्तादृशोऽपि को नु विशणोर्वीर्यगणनां कर्तुमर्हति । कथंभूतस्य । यो विष्णुस्त्रिपृष्ठं सत्यलोकं चस्कम्भ धृतवान् । किमिति चस्कम्भ ।

यस्मात्त्रैविक्रमेऽस्खलता प्रतिघातशून्येन स्वरंहसा स्वपादवेगेन त्रिसाम्यरूपं सदनमधिष्ठानं प्रधानं तस्मादारभ्योरु अधिकं कम्पयानं कम्पमानम्, कम्पेन यानं यस्येति वा । अतः कारणाच्चस्कम्भ । आ त्रिपृष्ठमिति वा च्छेदः, सत्यलोकमभिव्याप्य यः सर्वं धृतवानित्यर्थः । तथाच मन्त्रः विणोर्नुकम् इति । अस्यार्थ-विष्णोर्नु वीर्याणि कं प्रावोचम्, कः प्रावोचदित्यर्थः । यः पार्थिवानि रजांस्यपि विममे सोऽपि । यो विष्णुस्त्रेधा विचक्रमाणस्त्रिविक्रमं कुर्वन्नुत्तरं लोकमस्कभायदवष्टब्धावान् । कथंभूतम् । सधस्थम्। सहस्य सधादेशाः । तिष्ठन्तीति स्थाः, तत्रस्थैर्देवैः सह वर्तमानमित्यर्थः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

यह तो मैंने संक्षेप में वर्णन किया है कोई भी परमात्मा की विभूतियों का विस्तार से वर्णन नहीं कर सकता है । ऐसा पुरुष जो अपनी प्रतिभा के बल से पृथिवी के परमाणुओं को भी गिन सकता हैं, इस तरह का भी कौन ऐसा पुरुष है जो भगवान् विष्णु की शक्तियों की गणना कर सके ? यदि कोई कहे कि वे विष्णु कैसे हैं तो इस पर कहते हैं जो भगवान् विष्णु सत्यलोक पर्यन्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण किए । प्रश्न है कि उन्होंने क्यों धारण किया ? तो इसका उत्तर है कि चूकि त्रिविक्रमावतार में प्रतिघात रहित अपने पैरों के वेग से त्रिगुण साम्य रूपी अधिष्ठान भूत प्रकृति से लेकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जब अत्यधिक काँपने लगा था, उस सत्य लोक पर्यन्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को धारण किया । **उरुकम्पयानम्** पद का अर्थ है अत्यधिक काँपने वाले ब्रह्माण्ड को अथवा काँपने के कारण जो ब्रह्माण्ड डगमगाने लगा था ऐसे ब्रह्माण्ड को भगवान् ने अपनी शक्ति से स्थिर किया ।

इस अर्थ का प्रतिपादन **विष्णोर्नुकम् इत्यादि** मन्त्र करता है । मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है— भगवान् विष्णु की शक्तियों का वर्णन कौन कर सकता है ? यदि वह पृथिवी की सम्पूर्ण धूलिकण को गिनने में समर्थ है तो भी, जो भगवान् विष्णु अपनी शक्ति से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड वासियों के साथ काँपने वाले ब्रह्माण्ड को अपनी शक्ति से स्थिर किए ।

सधस्थम् पद का विग्रह है, सह तिष्ठति यत् । यहाँ पर सह शब्द का सध आदेश होकर सधस्थम् पद व्युत्पन्न हुआ है । अर्थात् ब्रह्माण्ड में रहने वाले देवताओं के साथ काँपते हुए ब्रह्माण्ड को भगवान् ने स्थिर किया ।।४०।।

नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये ।
गायन्गुणान्दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ।।४१।।

अन्वयः— मायाबलस्य पुरुषस्य अन्तं अहम् नविदामि, अमी ते अग्रजाः मुनयोऽपि न, ये अपरे ते कुतः? दशशतानन आदिदेवः शेषःगायन् अपि अस्य गुणान् अधुनापि पारं न समवस्यति ।।४१।।

अनुवाद— माया रूपी शक्ति से सम्पन्न श्रीभगवान् के सम्पूर्ण गुणों का अन्त हम नहीं जानते हैं, ये तुम्हारे बड़े भाई सनकादिक महर्षि गण भी नहीं जानते हैं, तो फिर दूसरों की क्या बात है ? आदिदेव शेष भी उनके गुणों का गायन करते हुए श्रीभगवान् के गुणों का आज तक भी अन्त नहीं जान सके ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति-नान्तमिति । पुरुषस्य यन्मायाबलं तस्यान्तं न विदामि न वेद्मि । दशशतान्याननानि यस्य स शेषोऽप्यस्य गुणान्गायन्पारं न समवस्यति न प्राप्नोति ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के गुणों के अन्त्य का ही विस्तार से वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं माया नामक शक्ति से सम्पन्न श्रीभगवान् की सारी शक्तियों को मैं नहीं जानता हूँ । तुम्हारे बड़े भाई जो सनकादि महर्षि हैं वे भी नहीं जानते है । एक हजार मुखों वाले आदिदेव शेष जी भी भगवान् के गुणों का गायन करते हुए उन सबों के अन्त का पता आज तक भी नहीं लगा सके हैं ।।४१।।

येषां स एव भगवान्दययेदनन्तः सर्वात्मनारितपदो यदि निर्व्यलीकम् ।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये ॥४२॥

अन्वयः— येषां यदिं स एव भगवान् अनन्तः दययेत् त एव निर्व्यलीकम् सर्वात्मनाश्रितपदः ते दुस्तराम् देवमायाम् अतितरन्ति एषां श्वभृगालभक्ष्ये मम अहम् इति धीः न ॥४२॥

अनुवाद— जिन जीवों पर भगवान् दया करते हैं, वे ही जीव निष्कपट भाव से अपने को श्रीभगवान् के चरणों के आश्रित बना देते हैं । वे ही महापुरुष भगवान् की माया के पार जाते हैं, उन महापुरुषों को अपने तथा अपने पुत्रादि के शरीर में अहंन्त्व और ममत्व की भावना नहीं होती है । यह शरीर तो कुत्तों और स्यारों का भक्ष्य हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

यदि न केऽपि विदन्ति तर्हि कथं मुच्येरन् तत्कृपयैवेत्याह–येषामिति । दययेद्दयां कुर्यात् । ते च यदि निष्कपटमाश्रितचरणाः भवन्ति । ते दुस्तरां देवमायामतितरन्ति । चकारान्मायावैभवं विदन्ति च । अथेति वा पाठः प्रत्यक्षमेव तेषां मायातरणमित्याह–नैषामिति ।श्वभृगालानां भक्ष्ये देहे ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि यदि कोई भी भगवान् की माया के बल को नहीं जानता है तो फिर जीवों की मुक्ति कैसे हो सकती है ? तो इसका उत्तर **येषां स० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । जिन जीवों पर अनन्तभगवान् कृपा करते हैं, वे जीव निष्कपट भाव से श्रीभगवान् के चरणों के आश्रित हो जाते हैं, वे ही श्रीभगवान् की माया का अन्त पा सकते हैं । उनकी अपने तथा अपने पुत्रादि के शरीर में अहन्त्व एवं ममत्त्व की भावना नहीं होती है, क्योंकि यह शरीर तो कुत्तों और स्यारों का भक्ष्य है ॥४२॥

वेदाहमङ्ग परमस्य हि योगमायां यूयं भवश्च भगवानथ दैत्यवर्यः ।
पत्नी मनोः स च मनुश्च तदात्मजाश्च प्राचीनबर्हिऋभुरङ्ग उतध्रुवश्च ॥४३॥

अन्वयः— अस्य परमस्य मायाम् अहम् वेद, यूयम्, भगवान् भवश्च, दैत्यवर्यः मनोः पत्नी स मनुश्च तदात्मजाः च प्राचीन बर्हिः ऋभुः उत ध्रुवश्च ॥४३॥

अनुवाद— हे वत्स उस परम पुरुष की माया को मैं जानता हूँ, तुमलोग, भगवान् शिव, दैत्य शिरोमणि प्रह्लाद, मनु की पत्नी शतरूपा, मनु, मनु के पुत्र प्रियव्रत आदि प्राचीन बर्हि, ऋभु और ध्रुव भी जानते हैं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

अन्तर्ज्ञानाभावेऽपि मायेयमिति ज्ञानं तत्कृपया बहूनामस्तीत्याह–वेदाहमति त्रिभिः । यूयमिति सनकादीनन्तर्भाव्य बहुत्वम्। दैत्यवर्यः प्रह्लादः । मनुः स्वायम्भुवस्तस्य पत्नी शतरूपा च । तदात्मजाः प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ कन्याश्च । प्राचीनवर्हिषो विसर्गलोपश्छान्दसः । अङ्गो वेनपिता ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि मुझको आत्मज्ञान नहीं है फिर भी श्रीभगवान् की कृपा से श्रीभगवान् की यह माया है, इस तरह से मैं इसको जानता हूँ । तुमलोग भी जानते हो, यूयम् में बहुवचन के द्वारा यह सूचित किया गया है कि सनकादि महर्षि गण भी माया को जानते हैं । दैत्यों में श्रेष्ठ प्रह्लाद, स्वायम्भुव मनु, तथा उनकी पत्नी शतरूपा भी माया को जानती हैं । मनु के पुत्र प्रियव्रत, उत्तानपाद और उनकी कन्यायें भी जानती हैं । प्राचीनबर्हि ऋभु, वेन के पिता राजा अङ्ग तथा ध्रुव भी जानते हैं प्राचीन वर्हि में विसर्ग का लोप आर्ष है ॥४३॥

इक्ष्वाकुरैलमुचुकुन्दविदेहगाधिरघ्वम्बरीषसगरा गयनाहुषाद्याः ।
मान्धात्रलर्कशतधन्वनुरन्तिदेवा देवव्रतो बलिरमूर्तरयो दिलीपः ॥४४॥
सौभर्युतङ्कशिबिदेवलपिप्लादसारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः ।
येऽन्ये विभीषणहनूमदुपेन्द्रदत्तपार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः ॥४५॥

अन्वयः— इक्ष्वाकुः ऐलमुचकुन्दविदेहगाधिः रघु-अम्बरीष-सगराः गयनाहुषाद्याः मन्धात्रलर्कशतधन्वन रन्तिदेवाः देवव्रतः बलिः, अमूर्तरयः, दिलीपः, सौभार्युतशिविदेवल पिप्पलाद सारस्व-तोद्धवपराशरभूरिषेणाः । अन्ये ये विभीषण हनुमदुपेन्द्र दत्तपार्थाष्टिषेण विदुर श्रुतदेववर्याः ॥४४-४५॥

अनुवाद— इसके अतिरिक्त इक्ष्वाकु, पुरुरवा, मुचकुन्द, जनक, गाधि, रघु, अम्बरीष, सगर, गय, ययाति आदि मान्धाता, अलर्क, शतधन्वा, अनु, रन्तिदेव, भीष्म, बलि, अमूर्तरय, दिलीप, सौभरि, उतङ्क, शिवि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर और भूरिषेण । तथा दूसरे जो विभीषण हनुमान, शुकदेव, अर्जुन, अर्ष्टिषेण, विदुर तथा श्रुतदेव इत्यादि भी जानते हैं ॥४४-४५॥

भावार्थ दीपिका

शतधनुः अनुश्च । सन्धिरार्षः । रन्तिदेवा इति पाठः सुगमः । ऐकपद्ये एतैः सहितो देवव्रत इत्यर्थः । उपेन्द्रदत्तः शुकः। विभीषणादयो वर्या मुख्या येषां ते ॥४४-४५॥

भाव प्रकाशिका

शतधनु और अनु में आर्ष सन्धि । **रन्ति देवाः** यह पाठ सुगम है । यहाँ पर एक पद मानने पर **रन्तिदेवदेव व्रताः** यह पाठ होगा । उपेन्द्रदत्त शब्द से शुकदेवजी को कहा गया है । विभीषण हनुमान आदि जिन में श्रेष्ठ है ऐसे लोग भी माया को जानते हैं ।

इन दोनों श्लोको में ब्रह्माजी ने भगवान् की माया को जानने वाले भगवद् भक्तों के नाम को बतलाया है ॥४४-४५॥

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः ।
यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षास्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥४६॥

अन्वयः— अद्भुतक्रमपरायणशीलदीक्षाः स्त्रीशूद्रहूणशबराः पापजीवाः अपि तिर्यग्जना अपि यदि देवमायां विदन्ति अतितरन्ति च तदा ये श्रुतधारणाः किमु ॥४६॥

अनुवाद— यदि अद्भुत पद विन्यास करने वाले श्रीभगवान् के भक्तों के समान स्वभाव बनाने की शिक्षा प्राप्त, स्त्री, शूद्र, हूण और शबर जाति के जीव यहाँ तक कि पशु-पक्षी भी श्रीभगवान् की माया को जानकर उसको पार कर जाते हैं तो फिर जो वेदज्ञ ब्राह्मण हैं उनके विषय में क्या कहना हैं ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

किं बहुना सत्सङ्गेन सर्वेऽपि विदन्तीत्याह-ते वा इति । अद्भुताः क्रमाः पादन्यासा यस्य हरेस्तत्परायणास्तद्भक्तास्तेषां शीले शिक्षा येषां ते तथा यदि भवन्ति तर्हि तेऽपि विदन्तीत्यर्थः । श्रुतधारणा ब्राह्मणास्ते देवमायां विदन्तीति किमु वक्तव्यम्। शुभेति पाठे शुभे भगवतो रूपे धारणा मनोनियमनं येषां ते विदन्तीति किमु वक्तव्यम् ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

बहुत अधिक क्या कहना है ? सत्सङ्ग को प्राप्त करके सभी जीव श्रीभगवान् की माया को जान जाते हैं

इस बात को ब्रह्माजी ने **ते वै इत्यादि** श्लोक से कहा है । **अद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षाः** पद का विग्रहार्थ है कि अद्भुत पादविन्यास करने वाले श्रीहरि के जो भक्त हैं अथवा उनके समान स्वभाव बनाने की शिक्षा प्राप्त जो स्त्री, शूद्र, हूण और शबर जाति के पापी जीव हैं, यहाँ तक कि तिर्यक् जाति के जो पशु-पक्षी हैं, वे भी श्रीभगवान् की माया को जान जाते हैं, और उस माया को पार कर जाते हैं, तो जो वेदाध्ययन करने वाले जीव हैं, वे तो माया के स्वरूप को जानकर उसको पार कर ही जा सकते है । उनको केवल सत्सङ्ग प्राप्त करने मात्र की ही आवश्यकता है ।।४६।।

शश्वत्प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमात्रं शुद्धं समं सदसतः परमात्मतत्त्वम् ।
शब्दो न यत्र पुरुकारकवान्क्रियार्थो माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना ।।४७।।

अन्वयः— आत्मतत्त्वं, शश्वत् प्रशान्तम्, अभयम् शुद्धं, समं, सदसतः परम्, यत्र पुरुकारकवान् कियार्थः शब्दः न, अभिमुखे च विल्ज्ञमाना, माया परैति ।।४७।।

अनुवाद— परमात्मा का स्वरूप एक समान, शान्त एवं केवल ज्ञान स्वरूप है । वे माया के मल से रहित है, सम (माया कृत विषमताओं से रहित) हैं । वे सत् एवं असत् दोनों से रहित हैं । वे किसी भी शब्द का विषय नहीं बनते हैं अनेक प्रकार के साधनों से सम्पन्न होने वाली क्रियाओं का फल भी वहाँ नहीं होता है । उस परमात्मतत्व के सम्मुख जाने पर लज्जित होकर माया उस परमात्मा से दूर चली जाती है ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

किं तद्भगवतः स्वरूपं यस्मिन्मनोधारणां विधाय मायां तरन्तीत्यपेक्षायामाह– शश्वदिति द्वाभ्याम् । यद्ब्रह्मेति विदुर्मुनयस्तद्वै भगवतः पदं स्वरूपम् । किं तद्ब्रह्म तदाह अजस्त्रं नित्यं च तत्सुखं च विशोकं चेति । अजस्रसुखत्वे हेतुः-शश्वत्सदा प्रशान्तम्। अतो नित्यसुखरूपम् । विशोकत्वे हेतुः-अभयम् । तत्कुतः । यतः समं भेदशून्यम् । अतोऽभयम् '**द्वितीयाद्वै भयं भवति**'इति श्रुतेः । तत्कुतः। यतः प्रतिबोधमात्रं ज्ञानैकरसम् । ननु ज्ञानस्यापि नीलपीताद्याकारेण चक्षुरादिकरणभेदेन च भेदो दृश्यते, न। शुद्धं निर्मलम् । ननु दर्शितो विषयकरणोपरागरूपो मल इत्यत आह । सदसतः परं विषयकरणसङ्गशून्यम् । वृत्तेरेवतदुपरागो न ज्ञानस्येति भावः । ननु तथापि ज्ञात्रा सह भेदः स्यात् । न, आत्मतत्त्वमात्मनो ज्ञातुः स्वरूपमेव, तन्न, ततो भिन्नम् । ननु **'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' इति शब्दबोध्यत्वप्रतीतेः कुतो बोधरूपत्वं तत्राह**-शब्दो न यत्रेति । आरोपितनिवृत्तावेव शब्दस्य व्यापारो न तद्बोध इत्यर्थः । ननु च भवतु नाम निरस्तभेदज्ञानरूपत्वाद्विशोकत्वं, सुखस्य तु नानाकारकसाध्यक्रियाफलत्वात्कथमजस्रसुखत्वं तस्येत्यत आह । यत्र बहुकारकसाध्यः क्रियार्थः उत्पाद्याप्यविकार्यसंस्कार्यरूपं चतुर्विधं क्रियाफलं च नास्ति । इन्द्रियैर्ज्ञानांशाभिव्यक्तिरिव क्रियाभिरानन्दांशाभिव्यक्तिमात्रं क्रियते नोत्पत्त्यादिकमिति भावः। ननु उत्पत्याद्यभावेऽपि माया मलापाकरणेन विकार्यत्वमेव स्याद्ब्रीहीणामिव तुषापाकरणेनेत्याशङ्क्याह । मायाऽभिमुखे स्थातुं विलज्जमानेव यस्मात्परैति दूरतोऽपसरति ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि भगवान् का स्वरूप क्या है ? जिसमें मन की धारणा करके मनुष्य माया को पार करते हैं? तो इसका उत्तर **शाश्वत इत्यादि** दो श्लोकों से देते हैं । मुनिगण जिसको ब्रह्मरूप से जानते हैं, वही भगवान् का रूप है । अब प्रश्न होता है कि वे ब्रह्म कौन हैं ? तो उसको बतलाते है कि वह सदैव सुख स्वरूप और शोक रहित है । उसके सदैव सुख रूप बने रहने का कारण है कि वह सदा प्रशान्त बने रहता है अतएव नित्य ही सुख स्वरूप है । उसके विशोकत्व का कारण है ? वह अभय है, क्योंकि वह भेदरहित है । भेद रहित होने के कारण अभय है । श्रुति भी कहती है द्वितीयाद्वै भयं भवति । दूसरे के रहने पर ही भय होता है । वह भेद रहित इसलिए है कि ज्ञान स्वरूप ही है ।

ननु ज्ञानस्यापि० इत्यादि यदि कहें कि ज्ञान के भी नील पीत इत्यादि आकार के द्वारा तथा चक्षु आदि इन्द्रियों के भेद के कारण भेद देखे जाते हैं। तो ऐसा इसलिए नहीं कहा जा सकता है कि वे शुद्ध हैं, अर्थात् मायाकृत मल से रहित हैं। यदि कहें कि विषयों के साथ होने वाले संबन्ध रूप भी मल देखे जाते हैं। इसीलिए कहा गया कि वह **सदसतः परम्।** अर्थात् वह विषयों तथा इन्द्रियों के संबन्ध से रहित हैं। वह जो उपाधि होती है वह वृत्ति की ही हाती है ज्ञान की नहीं।

ननु तथा पि० इत्यादि यदि कहें कि वैसा होने पर उस का ज्ञाता से तो भेद होगा ही तो ऐसा इसलिए नहीं कहा जा सकता है कि आत्मा ज्ञाता आत्मा का स्वरूप ही है। अतएव वह उससे (ज्ञाता से) भिन्न नहीं है।

ननु तं त्वौप० इत्यादि अब प्रश्न होता है कि मैं उस उपनिषदों के प्रतिपाद्य पुरुष के विषय में पूछ रहा हूँ। इस श्रुति से ज्ञात होता है कि आत्मतत्त्व शब्द बोध्य है। अतएव उसे ज्ञान स्वरूप कैसे कहा जा सकता है ? तो उसके उत्तर में कहा गया है कि **शब्दो न यत्र** इत्यादि अर्थात् आरोपित की निवृत्ति होने पर ही शब्द का व्यापार होता है उसका बोध नहीं होता है।

ननु भवतु नाम० इत्यादि यदि कहें कि ठीक है भेदों से रहित और ज्ञान स्वरूप होने के कारण आत्म तत्त्व विशोक हो सकता है, किन्तु सुख तो अनेक कारकों के द्वारा की जाने वाली क्रियाओं के फलस्वरूप होता है आत्मा की सर्वदा सुख रूपता कैसे हो सकती है ? तो इसके उत्तर में कहा गया है कि वह आत्मा अनेक कारकों द्वारा की जाने वाली क्रियाओं के जो, उत्पाद्य, आप्य, विकार्य तथा संस्कार्य रूप चार प्रकार के विषय होते हैं उन क्रियाओं का फल होता ही नहीं है। जिस तरह से इन्द्रियों के द्वारा ज्ञानांश की अभिव्यक्ति मात्र होती है, उसी तरह क्रियाओं के द्वारा आनंदांश की केवल अभिव्यक्ति होती है। उसके द्वारा उत्पत्ति इत्यादि नहीं होते हैं।

ननु उत्पत्त्याद्यभावे० इत्यादि प्रश्न होता है कि उत्पत्ति इत्यादि के नही हाने पर भी माया के मल को अपाकृत करने के कारण उसमें विकार्यत्व तो है ही। यह उसी तरह से होता हैं जिस तरह ब्रीहि की भूसी को उससे दूर करने पर उसमें विकार्यत्व है तो इस शङ्का को दूर करते हुए कहते हैं माया तो उस आत्मतत्त्व के सामने स्थित रहने में लज्जित सी होकर दूर से ही भाग जाती हैं ।।४७।।

तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो ब्रह्मेति यद्विदुरजस्रसुखं विशोकम् ।
सध्र्यङ् नियम्य यतयो यमकर्तहेतिं जह्युः स्वराडिव निपानखनित्रमिन्द्रः ।।४८।।

अन्वयः— अस्य पुंसः तद्वै परमं पदम् यत् मुनयः अजस्रसुखं, विशोकम् ब्रह्मेति विदुः। यस्मिन् यतय सध्र्यङ् नियम्य यम अकर्तहेतिं निपान खनित्रम् स्वराड् इन्द्र इव जह्युः ।।४८।।

अनुवाद— इस परम पुरुष का वही परम पद है जिसे मुनिजन अजस्र सुख, विशोक तथा ब्रह्मरूप से जानते हैं। जिसमें यतिजन अपने सहचारी मन को नियन्त्रित करके भेद रहित होने के कारण ज्ञान के साधनों का उसी तरह परित्याग कर देते हैं जिस तरह से स्वयं मेघ रूप होने के कारण इन्द्र कूप खोदेने के लिए अपने साथ कुदाल नहीं रखते हैं ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

तस्मादेवं भूतं भगवति नियमितमनसां कृतार्थानां न किमपि कृत्यमस्तीत्याह। सहाञ्चतीति सध्र्यङ् सहचरं मनो यं प्रति नियम्य यस्मिन् स्थिरीकृत्य यतयो यत्नशीलाः कर्तो भेदस्तन्निरासोऽकर्तस्तत्र हेतिं साधनं जह्युस्त्यजेयुः। अनुपयोगात्तन्नाद्रियन्त इत्यर्थः। उपयोगाभावेन साधनानादरे दृष्टान्तः-निपीयतेऽस्मिन्निति निपानं कूपस्तस्य खनित्रं खननसाधनं यथा स्वराट् स्वयमेव पर्जन्यरूपेण विराजमान इन्द्रो नादत्ते तद्वदिति। यद्वा स्वेनैव राजत इति स्वराट् दरिद्रः स यथा इन्द्रः समृद्धः सन् कर्मकारदशायां गृहीतं निपानखनित्रं जहाति तद्वदित्यर्थः ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के परमात्मा में जिन लोगों ने अपने मन को लगा दिया है और कृतार्थ हो गये हैं ऐसे लोगों के लिए कुछ भी कर्तव्य नहीं रह जाता हैं इसी बात को **तद्दै० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है जो मुनिगण आत्मा के सहचारी मन को परमात्मा में नियन्त्रित करके, भेद को मिटाने के साधनों का परित्याग कर देते हैं ।

उपयोगाभावेन० इत्यादि उपयोग न होने के कारण साधनों के परित्याग करने का उदाहरण देते हुए कहा गया है । जिस तरह स्वयम् मेघस्वरूप इन्द्र कूप खोदने के लिए अपने पास कुल्हाड़ी नहीं रखते हैं । उसी तरह स्वराट् शब्द की दूसरी व्युत्पत्ति बतलाते हुए श्रीधर स्वामी कहते हैं- **स्वेनैवराजते इति स्वराट् दरिद्रः** जैसे इन्द्र कार्य करने की स्थिति में लिए हुए कुल्हाड़ी को त्याग देते हैं उसी तरह ।।४८।।

स श्रेयसामपि विभुर्भगवान्यतोऽस्य भावस्वभावविहितस्य सतः प्रसिद्धिः ।
देहे स्वधातुविगमेऽनुविशीर्यमाणे व्योमेव तत्र पुरुषो न विशीर्यतेऽजः ।।४९।।

अन्वयः— यतः सः भगवान् अस्य भावस्वभाव विहितस्य सतः श्रेयसाम् अपि विभुः । इति प्रसिद्धिः स्वधातु विगमे अनु विशीर्यमाणे देहे तत्र व्योम इव अजः पुरुषः यथा न विशीर्यते तथा ।।४९।।

अनुवाद— अपने स्वभाव के अनुसार मनुष्यों द्वारा किए गये शुभ कर्मों का फल भी वे ही परमात्मा देते हैं यह प्रसिद्धि है । यह उसी तरह से होता है जैसे जिन धातुओं से शरीर का निर्माण होता है उन धातुओं के विनष्ट हो जाने पर उसके पश्चात् शरीर विनष्ट हो जाता है । किन्तु उस शरीर में विद्यमान आकाश नष्ट नहीं होता है । उसी तरह उस शरीर के भीतर विद्यमान अजन्मा आत्मा भी विनष्ट नहीं होती है ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

एवं तावदजस्रसुखं विशोकं ब्रह्मैव भगवतः स्वरूपं तत्प्राप्तानां च न प्राप्यं कृत्यं वा किंचिदस्तीत्युक्तम् । इदानीं तत् प्राक् स एव सर्वफलदाता सर्वकर्मप्रवर्तकश्चेत्याह । स एव श्रेयसां फलानां विभुर्दातापि । तत्र हेतुः-भावानां ब्राह्मणादीनां स्वभावैः शमदमादिभिर्विशेषणैर्विहितस्यास्य सतः शुभस्य कर्मणो यतः प्रवर्तकात्प्रसिद्धिः । यद्वा भावानां महदादीनां स्वभावेन परिणामेन विहितस्य सतः कार्यस्य प्रसिद्धिः । सा स्वर्गादीनां दातेत्यर्थः । ननु कर्मकर्तुर्मृतस्य कथं स्वर्गादिफलं स्यात्तत्राह। स्वारम्भकधातूनां भूतानां विगमे वियोगे सति अन्वनु विशीर्यमाणेऽपि देहे तत्रस्थं व्योमेव यस्तेन सह न विशीर्यते । यतोऽजस्तेन सह न जातः तस्य पुरुषस्य श्रेयसां प्रभुरित्यर्थः ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

एवं तावदस्रसुखम् इत्यादि इस तरह यह प्रतिपादित किया जा चुका है कि आत्मा सदा सुख स्वरूप है तथा विशोक ब्रह्म ही भगवान् का स्वरूप है । उस ब्रह्म को जिन साधकों ने प्राप्त कर लिया है उनको कुछ भी प्राप्त करने के लिए अथवा करने के लिए अवशिष्ट नहीं रह जाता है ।

इदानीम्० इत्यादि अब यह बतलाया जा रहा है कि प्राप्ति से पहले परमात्मा ही सभी कर्मों के फल को प्रदान करते है । वे ही सभी कर्मों के प्रवर्तक हैं । वे ही शुभ कर्मों का फल भी प्रदान करते हैं । उसका कारण है कि ब्राह्मण आदि जो अपने स्वभाव के अनुसार शम दम आदि शुभ कर्मों के भी प्रवर्तक हैं । यह प्रसिद्धि है। अथवा महदादि जो पदार्थ हैं उनके स्वभाव के अनुसार होने वाले परिणाम से कार्य होते हैं, यह प्रसिद्धि है। वे परमात्मा ही स्वर्गादि लोकों को प्रदान करते हैं ।

ननु कर्मकतुर्मृतस्य० प्रश्न होता है कि जब कर्मों को करने वाला मनुष्य मर जाता है तब उसको स्वर्ग आदि की प्राप्ति कैसे हो सकती है तो इसके उत्तर में कहा गया है कि जिन धातुओं से शरीर का निर्माण होता

है, उन धातुओं के विनष्ट हो जाने पर जैसे उसके पश्चात् शरीर विनष्ट हो जाता है लेकिन उस शरीर में रहने वाला आकाश और उसके साथ नहीं विनष्ट होने वाला आत्मा तो बना ही रहता है उसी को मृत्यु को पश्चात् भी स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति होती है ॥४९॥

सोऽयं तेऽभिहितस्तात भगवान्विश्वभावनः । समासेन हरेर्नान्यदन्यस्मात्सदसच्च यत् ॥५०॥

अन्वयः— हे तात ! सःअयम्, विश्वभावन भगवान् ते समासेन अभिहितः । सत् असच्च हरेः अन्यत न अन्यस्मात्॥५०॥

अनुवाद— हे नारद इस सम्पूर्ण जगत् के स्रष्टा भगवान् का वर्णन मैंने आपके समक्ष संक्षेप में किया है। यह कार्य कारण रूप जगत् श्रीहरि से भिन्न नहीं है । किन्तु इस जगत् का कारण होने के कारण श्रीहरि उससे भिन्न हैं ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

अध्यायत्रयस्यार्थमुपसंहरति । सोऽयं ते समासेन संक्षेपेणाभिहितः । तमेवाह । सदसत्कार्यं कारणं च हरेरन्यन्न भवति। ननु हरेस्तदव्यतिरेके तद्गतविकारप्रसङ्गः स्यात्, न । अन्यस्मात्कारणभूतो हरिः कार्याद्यतिरिक्त इत्यर्थः ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

सोऽयं त इत्यादि श्लोक के द्वारा तीन अध्याय के अर्थ का उपसंहार किया गया है । ब्रह्माजी ने कहा कि यह मैंने तुम्हें संक्षेप में बतलाया है सदसत् जितने भी कारण-कार्य हैं वे श्रीहरि से भिन्न नहीं हैं । **ननु० इत्यादि** यदि कहें कि जगत् को श्रीहरि से अभिन्न मानने पर तो, जगत् के सारे विकार कारणभूत श्रीहरि में आ जायेंगे। तो ऐसा इसलिए नहीं कहा जा सकता है कि श्रीहरि कार्यभूत जगत् से भिन्न हैं क्योंकि वे कारण है । कार्य ही कारणत्मक होता है कारण कार्यात्मक नहीं होता है ॥५०॥

इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम् । संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद्विपुलीकुरु ॥५१॥

अन्वयः— भगवता यन्मे उदितं तदिदं भागवतं नाम । अयं विभूतीनां संग्रह, एतत् त्वं विपुली कुरु ॥५१॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने मुझको जिसका उपदेश दिया वही भागवत है । यह श्रीभगवान् की विभूतियों का संक्षिप्त रूप है । तुम इसका प्रचार करो ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

अयं च विभूतीनां संग्रह उदितः ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने कहा कि विगत तीन अध्यायों में मैंने जो कहा है, वह श्रीभगवान् की विभूतियों का संक्षिप्त रूप है, इसके प्रचार-प्रसार का काम तुम करो ॥५१॥

यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति । सर्वात्मन्यखिलाधारे इति संकल्प्य वर्णय ॥५२॥

अन्वयः— यथा सर्वात्मनि अखिलाधारे हरौ नृणां भक्ति भविष्यति इति संकल्प्य वर्णय ॥५२॥

अनुवाद— जिस तरह से श्रीहरि में लोगों की भक्ति हो इस तरह से मन में विचार करके तुम इसका वर्णन करो ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

यथा वर्णितेन नृणां भक्तिर्भविष्यतीत्येवं संकल्प्य संचिन्त्य तथा हरिलीलाप्राधान्येन श्रीमद्भागवतं वर्णय । नतु भक्तिरसविघातेन केवलं तत्त्वमित्यर्थः ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

तुम इस भागवत को श्रीहरि की लीलाओं का प्रधान रूप से ऐसा वर्णन करो कि लोगों की श्रीभगवान् में भक्ति हो। भक्ति रस को छोड़कर केवल तत्त्व का वर्णन न करो ॥५२॥

मायां वर्णयतोऽमुष्य ईश्वरस्यानुमोदतः । शृण्वतः श्रद्धया नित्यं माययात्मा न मुह्यति ॥५३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे ब्रह्मनारदसंवादे सप्तमोऽध्यायः॥७॥

अन्वयः— अमुष्य मायां वर्णयतः, ईश्वरस्य अनुमोदयतः नित्यं श्रद्धया शृण्वतः आत्मा मायया न मुह्यति ॥५३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की अचिन्त्य भक्ति माया का वर्णन करने वाले, उसका अनुमोदन करने वाले तथा दूसरे के द्वारा कहे जाने पर उसको नित्य ही श्रद्धा पूर्वक सुनने वाले का मन कभी भी माया से मोहित नहीं होता है ॥५२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्ध के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

भावार्थ दीपिका

ननु लीला मायाश्रया किं तद्वर्णनेनेत्यत आह-मायामिति ॥५३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न उठताा है कि श्रीभगवान् की लीला तो मायाश्रित है। उसका विस्तार पूर्वक वर्णन करने से क्या लाभ है ? तो उसके उत्तर में **मायाम्० इत्यादि** श्लोक कहा गया है अर्थात् श्रीभगवान् की माया शक्ति अचिन्त्य है उसका वर्णन करने तथा ईश्वर का अनुमोदन करने वाले तथा दूसरों के द्वारा वर्णन किए जाने पर उसका सदा श्रद्धा पूर्वक श्रवण किए जाने वाले का चित्त कभी भी माया से मोहित नहीं होता है ॥५३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के द्वितीयस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।७।।

◆

आठवाँ अध्याय

राजा परीक्षित के अनेक प्रश्न

राजोवाच

ब्रह्मणा चोदितो ब्रह्मन् गुणाख्यानेऽगुणस्य च । यस्मै यस्मै यथा प्राह नारदो देवदर्शनः ॥१॥
एतद्वेदितुमिच्छामि तत्त्वं वेदविदांवर । हरेरद्भुतवीर्यस्य कथा लोकसुमङ्गलाः ॥२॥

अन्वयः— वेदविदांवर ब्रह्मन् ब्रह्मणा अगुणस्य गुणाख्याने चोदितः देवदर्शनः यस्मै यस्मै यथा प्राह, अद्भुत वीर्यस्य हरेः लोकसुमङ्गलाः कथाः वेदितुम् इच्छामि ॥१-२॥

अनुवाद— हे वेदज्ञों में श्रेष्ठ शुकदेवजी ! ब्रह्माजी के द्वारा निर्गुण परंब्रह्म के गुणों का वर्णन करने के लिए प्रेरित, देखने में देवता के समान लगने वाले नारदजी जिस-जिस को अद्भुत पराक्रम सम्पन्न श्रीहरि की मङ्गलमयी कथाओं को जैसे-जैसे बतलाये उसको मैं तत्त्वतः सुनना चाहता हूँ ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

अष्टमे देहसंबन्धमाक्षिपन्नीशजीवयोः । बहून्परिक्षिदापृच्छत्पुराणार्थान्बुभुत्सितान् । त्वमेतद्विपुलीकुर्वित्युक्तं तदेव विपुलीकरणं पृच्छति-ब्रह्मणेति त्रिभिः । अगुणस्य गुणातीतस्यापि । देववद्दर्शनं यस्य सः ।।१-२।।

भाव प्रकाशिका

आठवें अध्याय में जीव और ईश्वर के शरीर संबन्ध को लेकर राजा परीक्षित् ने जानने के लिए अभिप्रेत पौराणिक विषयों को पूछा ।।१।।

ब्रह्माजी ने नारदजी से कहा तुम इसका प्रचुर प्रचार करो । नारदजी द्वारा किए गये उस विपुली करण के विषय में राजा ने अनेक प्रश्नों को **ब्रह्मणा० इत्यादि** तीन श्लोकों में पूछा— अगुण कहकर परमात्मा को गुणातीत बतलाया गया है । देवदर्शन शब्द का अर्थ है जिनका दर्शन देवता के समान है ।।१-२।।

कथयस्व महाभाग यथाहमखिलात्मनि । कृष्णे निवेश्य निःसङ्गं मनस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ।।३।।

अन्वयः— हे महाभाग ! कथयस्व यथा अहम् अखिलात्मनि कृष्णे निःसङ्गं मनः निवेश्य कलेवरम् त्यक्ष्ये ।।३।।

अनुवाद— हे महाभाग ! आप उसका वर्णन करें जिससे कि मैं सम्पूर्ण जगत् की आत्मा भगवान् श्रीकृष्ण में अपने अनासक्त मन को लगाकर अपने शरीर का त्याग कर सकूं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

निःसङ्गं मनः श्रीकृष्णे निवेश्येति स्वप्रयत्नो दर्शितः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

अनासक्त मन को भगवान् श्रीकृष्ण में लगाकर इस वाक्यांश के द्वारा राजा परीक्षित् ने अपने प्रयत्न को अभिव्यक्त किया है ।।३।।

शृण्वतः श्रद्धया नित्यं गृणतश्च स्वचेष्टितम् । कालेन नातिदीर्घेण भगवान्विशते हृदि ।।४।।

अन्वयः— स्वचेष्टितम् नित्यं श्रद्धया शृण्वतः गृणतश्च हृदि भगवान् नातिदीर्घेण कालेन विशते ।।४।।

अनुवाद— भगवान् की चेष्टाओं का नित्य ही श्रद्धा पूर्वक श्रवण करने वाले और उसका वर्णन करने वाले के हृदय में श्रीभगवान् शीघ्र ही प्रवेश कर जाते हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

सोऽपि श्रद्धया शृण्वतो नावश्यक इत्याह-शृण्वत इति । स्वप्रयत्नं विनापि भगवान्स्वयमेव हृदि विशति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

जो व्यक्ति नित्य ही श्रद्धा पूर्वक श्रीभगवान् की कथाओं का श्रवण करता है उसको प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता नहीं है । अपने प्रयास के बिना भी श्रीहरि अपनी कथा का श्रवण करने वाले के हृदय में स्वयम् प्रवेश कर जाते हैं ।।४।।

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम् । धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ।।५।।

अन्वयः— कृष्णः स्वानां कर्णरन्ध्रेन भावसरोरुहम् प्रविष्टः तद्गतं शमलं सलिलस्य शरत् यथा धुनोति ।।५।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तों के कानों के छिद्र के माध्यम से हृदय कमल में प्रवेश करके उस हृदय में विद्यमान दोष को उसी तरह से विनष्ट कर देते हैं जिस तरह से शरद्ऋतु जल के गदलेपन को दूर कर देती है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

भावसरोरुहं हृदयकमलं प्रविष्टश्च तद्गतं सर्व मलं धुनोति । सलिलस्येति । द्रव्यान्तरमिश्रणादिना कुम्भस्थे जले शोधिते तदेव शुध्यति नतु नदीतडागादिगतम्, स च मलः कुम्भस्यान्तस्तिष्ठत्येव नतु सर्वाणि विलीयते । अतएव किंचिच्चलनेन पुनः क्षुभ्यति च । एवं तपोदानादि प्रायश्चित्तं च सर्वथा सर्वेषां सर्वं पापं धुनोति, किंतु सावशेषम्, तच्च कस्यचिदेव, किंचिदेव, हृदि प्रविष्टमात्रस्तु श्रीकृष्णः सर्वेषां सर्वं पापं निःशेषं हरतीत्यनेन दृष्टान्तेनोक्तं–सलिलस्य मलं यथा शरदिति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् अपने भक्तों के हृदय कमल में प्रवेश करके उनके हृदय में विद्यमान दोष को उसी तरह दूर कर देते हैं जिस तरह **सलिलस्येति०** कतक (निर्मली) इत्यादि दूसरे द्रव्यों को घड़े के जल में मिलाने से केवल उसी घड़े का जल शुद्ध हो जाता है । उससे नदियों और सरोवरों का जल नहीं शुद्ध होता है । उस जल का दोष नीचे के भाग में बैठ जाता है, वह पूर्ण रूप से विनष्ट नहीं होता है । उस जल को थोड़ा सा भी हिलाने पर वह पुनः गंदला हो जाता है । **एवं तपोदानादि० इत्यादि** इसी तरह से तपरूप और दान रूपी प्रायश्चित सबों के सम्पूर्ण पापों को नहीं विनष्ट करते हैं । अपितु कुछ पाप बचा ही रहता है । उन प्रायश्चितों के द्वारा किसी का भी थोड़ा सा ही पाप दूर होता है । भगवान् श्रीकृष्ण तो केवल हृदय में प्रवेश करके सबों के सम्पूर्ण पापों को विनष्ट कर देते हैं । इसी बात को **सलिलस्य मलं यथा शरत्** इस दृष्टान्त के द्वारा बतलाया गया है । शरद् ऋतु के आते ही नदियों तथा सरोवरों में रहने वाला सारा जल जैसे शुद्ध हो जाता है ।।५।।

धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुञ्चति । मुक्तसर्वपरिक्लेशः पान्थः स्वशरणं यथा ।।६।।

अन्वयः— धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादम् तथैव न मुञ्चति यथा मुक्तसर्वपरिक्लेशः पान्थः यथा स्वशरणम् ।।६।।

अनुवाद— जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, वह पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का उसी तरह कभी भी परित्याग नहीं करना चाहता है जिस तरह मार्ग के समस्त क्लेशों से मुक्त होकर आया हुआ पुरुष अपने गृह का त्याग नहीं करना चाहता है ।।६।।

भावार्थ दीपिका

ततश्च कृतार्थो भवतीत्याह । धौतात्मा निष्पापः । मुक्ताः सर्वे रागद्वेषादयः परिक्लेशा येन । पान्थः प्रवासादागतः स्वस्य गृहं यथा न मुञ्चति तद्वत् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

इसके पहले यह जो कहा गया है कि उसके पश्चात् वह कृतार्थ हो जाता है । उसी की **धौतात्मा० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । धौतात्मा पद का अर्थ है निष्पाप । जिसने रागद्वेष इत्यादि समस्त क्लेशों का परित्याग कर दिया है । प्रवास से आया हुआ पुरुष जिस तरह अपने गृह का परित्याग नहीं करना चाहता है, उसी तरह रागद्वेष आदि सभी क्लेशों से रहित निष्पाप पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का परित्याग नहीं करता है ।।६।।

यदधातुमतो ब्रह्मन् देहारम्भोऽस्य धातुभिः । यदृच्छया हेतुना वा भवन्तो जानते यथा ।।७।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् अधातुमतःअस्य देहारम्भः धातुभिः यद्भवति यदृच्छया वा हेतुना वा यथा भवन्तः जानते ।।७।।

अनुवाद— हे भगवन् ! (शुकदेवजी) इस आत्मा का पञ्चभूतों से कोई भी सम्बन्ध नहीं है, किन्तु इसके शरीर का निर्माण धातुओं से ही होता है । यह स्वभाव से ही होता है, अथवा किसी कारण से होता इस बात को आप मुझे अच्छी तरह से बतलाइये ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं श्रवणौत्सुक्यमाविष्कृत्य संदिग्धानर्थान्पृच्छति । अधातुमतः धातवो महाभूतानि तत्संबन्धशून्यस्यास्य लौकिकस्यात्मनो जीवस्य धातुभिर्देहारम्भ इति यत् । एतत्किम् । यदृच्छया निर्निमित्तं हेतुना वा कर्मादिना भवन्तो यथावज्जानते । अतः कथयन्त्विति शेषः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से श्रवण की उत्सुकता को अभिव्यक्त करते हुए, जिन विषयों में सन्देह है, उन सबों के विषय में राजा पूछते हैं । जिस तरह संसारी जीव का महाभूतों से सम्बन्ध नहीं है, फिर भी उसके शरीर का निर्माण महाभूतों से ही होता है, ऐसा बिना किसी कारण के ही होता है या किसी कारणवशात् होता है । इस बात को आप अच्छी तरह से जानते हैं। अतएव उसको आप मुझे बतलाइये ।।७।।

आसीद्यदुदरात्पद्मं लोकसंस्थानलक्षणम्। यावानयं वै पुरुष इयत्तावयवैः पृथक् ।।
तावानसाविति प्रोक्तः संस्थावयववानिव ।।८।।

अन्वयः— यदुदरात् लोकसंस्थान लक्षणं पद्मं आसीत् अयं पुरुषो वै यावान् इयतावयवैः पृथक् तावान् असौ, संस्थावयववानिव प्रोक्तः ।।८।।

अनुवाद— आपने यह कहा है कि जिससे लोकों का निर्माण हुआ है वह कमल भी भगवान् के नाभिकमल से उत्पन्न हुआ है । यह जीव जिस तरह अपने सीमित अवयवों से युक्त होता है उसी तरह से ईश्वर भी अपने सीमित अवयवों से युक्त हैं । ऐसी स्थिति में जीव और ईश्वर में कौन सा भेद हैं ।।८।।

भावार्थ दीपिका

यश्चासावीश्वरः सोऽप्येतत्तुल्यदेहवान्प्रोक्तः, अतस्तस्य को विशेष ? इत्याशयेन पृच्छति–आसीदिति सार्धेन । लोकानां संस्थानं रचना तदेव लक्षणं स्वरूपं यस्य तत्त्रैलोक्यात्मकं पद्मं यस्योदरादासीत् । असावीश्वर इयत्तायुक्तैः स्वपरिमितैरवयवैरयं लौकिकः पुरुषो यावान् यत्संख्याकावयवयुक्तस्तावान् प्रोक्तः संस्थावानवयववानिव च प्रोक्तः । अतः को विशेषस्तस्येति ।।८।।

भाव प्रकाशिका

इससे पहले शुकदेवजी कह चुके हैं कि जीव के ही समान ईश्वर भी अङ्गों से युक्त शरीर वाले हैं । अतएव जीव और ईश्वर में कौन सा भेद है ? इसी अभिप्राय से राजा परीक्षित् **आसीत् इत्यादि** डेढ श्लोक से पूछते हैं कि जिससे लोकों की रचना हुयी है, वह त्रैलोक्यात्मक पद्म भगवान् के नाभि सरोवर से उत्पन्न हुआ है । जिस तरह यह संसारी जीव अपने सीमित अङ्गों से युक्त होता है, उसी तरह ईश्वर भी अपने सीमित अङ्गों से युक्त होते हैं । ईश्वर के अङ्ग भी मनुष्य के ही अङ्गों के समान हैं । अतएव ईश्वर की मनुष्यों से कौन सी भिन्नता है ।।८।।

अजः सृजति भूतानि भूतात्मा यदनुग्रहात् । ददृशे येन तद्रूपं नाभिपद्मसमुद्भवः ।।९।।

अन्वयः— यदनुग्रहात् नाभिपद्म समुद्भव भूतात्मा अजः भूतानि सृजति, येन तद्रूपं ददृशे ।।९।।

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् की कृपा से श्रीभगवान् के नाभिकमल से उत्पन्न तथा व्यष्टि जीवों के नियन्ता ब्रह्मा भूतों की सृष्टि करते हैं तथा जिन श्रीभगवान् की कृपा के कारण परमात्मा के रूप का साक्षात्कार उन्होंने किया। उसे आप मुझे बतलायें ।।९।।

भावार्थ दीपिका

अवश्यं च विशेषो वाच्य इत्याह । अजो ब्रह्मा भूतानां व्यष्ट्युपाधीनामात्मा नियन्ता, समष्ट्युपाधित्वात् । येन चानुगृह्णता तस्य रूपं ददृशे दृष्टवान् । एतच्च तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः । सृज्यं सृजामि सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः। इत्यादिनोक्तमनूद्यते । अग्रे तु स्पष्टं भविष्यति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

जीव और ईश्वर में जो भेद है उसको आप अवश्य मुझे बतलाइये । ब्रह्माजी व्यष्टि उपाधि से युक्त जीवों के नियामक हैं, क्योंकि वे समष्टि उपाधि से युक्त हैं । जिस परमात्मा के द्वारा अनुगृहीत होकर उन्होंने परमात्मा के रूप का साक्षात्कार किया ।

एतच्च० इत्यादि यह शुकदेवजी ने ब्रह्माजी के इस कथन का अनुवाद किया है **तस्यापि० इत्यादि** अर्थात् सम्पूर्ण जगत् के द्रष्टा तथा जगत् नियामक, निर्विकार तथा सम्पूर्ण जगत् की आत्मा परमात्मा के सृज्य जगत् की सृष्टि उनके ही द्वारा प्रेरित होकर करने का मैं काम करता हूँ । यह बात आगे चलकर स्पष्ट हो जायेगी ।।९।।

स चापि यत्र पुरुषो विश्वस्थित्युद्भवाप्ययः । मुक्त्वात्ममायां मायेशः शेते सर्वगुहाशयः ।।१०।।

अन्वयः— विश्वस्थित्युद्भवाप्ययः सर्वगुहाशयः मायेशः पुरुषः आत्मा मायां मुक्त्वा यत्र शेते तदब्रूहि ।।१०।।

अनुवाद— जिसमें सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा लय होता हैं सर्वान्तर्यामी माया के स्वामी परम पुरुष अपनी माया का त्याग करके जहाँ सोते हैं उसे आप बतलाइये ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

प्रश्नान्तरमाह- स चापीति । यत्र शेते येन रूपेणावतिष्ठत । विश्वस्य स्थित्यादयो यस्मात् । एवमादिप्रश्नानां **'तत्त्वतोऽर्हस्युदाहर्तुम्'** इति सर्वान्ते क्रियया संबन्धः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् दूसरा प्रश्न पूछते हैं प्रलय काल में परमात्मा जहाँ सोते हैं, जिससे विश्व की सृष्टि इत्यादि होती है, इस तरह सभी प्रश्नों के अन्त में क्रिया पद को जोड़ना चाहिए ।।१०।।

पुरुषावयवैर्लोकाः सपालाः पूर्वकल्पिताः । लोकैरमुष्यावयवाः सपालैरिति शुश्रुम ।।११।।

अन्वयः— पुरुषावयवैः सपालाः पूर्वकल्पिताः, इति शुश्रुम सपालैः लोकैः अमुष्याः अवयवाः कल्पिताः इत्यपि शुश्रुम ।।११।।

अनुवाद— आपने यह कहा है कि उस पुरुष के अवयवों से लोकों की कल्पना की गयी है और लोकपालों सहित लोकों की उस विराट् पुरुष के अङ्गों से कल्पना की गयी है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

प्रश्नान्तरमाह । पुरुषस्यावयवैः पूर्वं कल्पिताः **यस्येहावयवैर्लोकान्कल्पयन्ति'** इत्यादौ । **'लोकैश्चामुष्यावयवा' इति पातालमेतस्य हि पादमूलम्'** इत्यादौ च त्वन्मुखाच्छ्रुतवन्तो वयम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

राजा अगला यह प्रश्न पूछते हैं कि अपने यह कहा है कि जिस पुरुष के अवयवों से मुनिगण लोकों की कल्पना करते हैं । आपने यह भी कहा है कि इस पुरुष के पैर का तलवा ही पाताल है । यह कहने का अभिप्राय क्या हैं ?।।११।।

यावान्कल्पो विकल्पो वा यथा कालोऽनुमीयते । भूतभव्यभवच्छब्द आयुर्मानं च यत्सतः ।।१२।।

अन्वयः— यावान् कल्पः विकल्प वा तद्वद, यथा भूतभव्यभवत् शब्दः कालः अनुमीयते तद् वद । यत् सतः आयुर्मानं तद् वद ।।१२।।

अनुवाद— जितने भी कल्प अथवा उसके अवान्तर भेद होते हैं, उसे बतलायें । जैसे भूत भविष्यत् और

वर्तमान शब्द का काल विषय बनता है, उसे बतलायें, तथा स्थूल शरीर के अभिमानी जो देवता, मनुष्य तथा पितृगणों की आयु का जितना प्रमाण है उसे आप बतलायें ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

एवं संदेहविपर्ययाभ्यां पृष्टम्, इदानीमज्ञातान्बहूनर्थान्पृच्छति । यावानित्यादिना । कल्पो महान् । विकल्पोऽवान्तरः । भूतादिः शब्दो यस्मात्, यस्य वाचक इति वा । सतः स्थूलदेहाभिमानिनो मनुष्यपितृदेवादेरायुषः प्रमाणम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने इस तरह संदेह तथा विपर्यय ज्ञान के द्वारा बहुत सी बातों को पूछा अब वे बहुत से अज्ञात विषयों को **यावान् कल्पो० इत्यादि** श्लोक से पूछते हैं । महान् कल्प और विकल्प अर्थात् उसके अवान्तर भेदों को आप बतलायें तथा जिस तरह से काल भूत भविष्यत् इत्यादि शब्दों का वाच्य होता है, उसे आप मुझे बतलायें। तथा स्थूल देह के अभिमानी, देवता पितृगण और मनुष्यों की आयु का प्रमाण मुझे आप बतलायें ॥१२॥

कालस्यानुगतिर्या तु लक्ष्यतेऽण्वी बृहत्यपि । यावत्यः कर्मगतयो यादृशीर्द्विजसत्तम ॥१३॥

अन्वयः— हे द्विजसत्तम ! कालस्य या अण्वी वृहती अपि गतिः लक्ष्यते तां वद, यावत्यः यादृशीः कर्मगतयः ताः वद ॥१३॥

अनुवाद— हे द्विजश्रेष्ठ ! काल की जो सूक्ष्म आदि तथा स्थूल वर्ष आदि गति हैं, उसको आप मुझे बतलायें तथा कर्मों की जितनी तथा जिस प्रकार की गतियाँ होती हैं, उन सबों को आप मुझे बतलायें ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अनुमानप्रकारः पृष्टो विशेषं पृच्छति-कालस्येति । अनुगतिः प्रवृत्तिः । कर्मगतयः कर्मप्राप्याणि स्थानानि । यादृशीः यादृश्यः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

इससे पहले काल के अनुमान के प्रकार के विषय में पूछा गया है, अब कालविशेष के विषय में राजा परीक्षित् प्रश्न करते हैं, काल की जो सूक्ष्म तथा स्थूल जो दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ होती है, उसे आप बतलायें तथा काल द्वारा प्राप्त किए जाने वाले स्थानों तथा कर्मों के प्रकार को आप मुझे बतलायें ॥१३॥

यस्मिन्कर्मसमवायो यथा येनोपगृह्यते । गुणानां गुणिनां चैव परिणाममभीप्सताम् ॥१४॥

अन्वयः— गुणानां परिणाम् अभीप्सतां गुणिनां, कर्मसमवायः यस्मिन् यथा येन उपगृह्यते तद् वद ॥१४॥

अनुवाद— सत्त्व आदि गुणों का जो देवादि शरीर की प्राप्ति रूपी परिणाम होता है, उसको प्राप्त करना चाहने वाले गुणिनां गुणी जीवों में पुण्य पाप रूप कर्मों का समूह जिस गुण का परिणाम होने पर जिस प्रकार से तथा जिसको प्राप्त होता है, उसके आप मुझे बतलायें ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

गुणानां सत्त्वादीनां परिणामं देवादिरूपमिच्छतां गुणिनां जीवानां मध्ये यस्मिन्परिणामे कर्मणां पुण्यपापानां समावायः समुदायः । केन कर्मसमुदायेन कथं कृतेन कोऽधिकारी देवादिभावं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

सत्त्वादि गुणों के परिणाम स्वरूप देवादि शरीर को प्राप्त करने के इच्छुक जीवों में जिस गुण का परिणाम होने पर पुण्य पाप रूप कर्मों का समूह, किसी कर्म समुदाय को जिस प्रकार से करने पर जीव देवादि शरीरों को प्राप्त करता है, इसको आप मुझे बतलाइये ॥१४॥

भूपातालककुब्व्योमग्रहनक्षत्रभूभृताम् । सरित्समुद्रद्वीपानां संभवश्चैतदौकसाम् ॥१५॥

अन्वयः— भूपातालककुब् व्योम ग्रह नक्षत्र भूभृताम्, सरित् समुद्रद्वीपानां एतदौकसाम् संभवः कथं भवतीति शेषः ॥१५॥

अनुवाद— पृथिवी, पाताल, दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप की तथा उनमें रहने वाले जीवों की उत्पत्ति जैसे होती है, उसे आप मुझे बतलाइये ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

भूपातालादीनां संभवः । एतान्योकांसि येषां प्राणिनां तेषां च संभवः । यथेति सर्वत्रानुषङ्गः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी, पाताल आदि की तथा इन लोकों आदि में रहने वाले जीवों की उत्पत्ति को आप मुझे बतलायें ॥१५॥

प्रमाणमण्डकोशस्य बाह्याभ्यन्तरभेदतः । महतां चानुचरितं वर्णाश्रमविनिश्चयः ॥१६॥

अन्वयः— वाह्यऽभ्यन्तरभेदतः अण्डकोशस्य प्रमाणम् महताम् अनुचरितम् वर्णाश्रम विनिश्चयः च वद ॥१६॥

अनुवाद— भीतर और बाहर दोनों प्रकार के भेद पूर्वक, ब्रह्माण्ड के प्रमाण को, महापुरुषों के चरित्र को तथा वर्णों एवं आश्रमों के भेदों तथा उनके धर्मों को आप मुझे बतलाएँ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

वर्णानामाश्रमाणां च विनिश्चयस्तत्तत्स्वभावैर्निर्धारः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में राजा परीक्षित् ने तीन बातों को पूछा है । १. ब्रह्माण्डों का परिमाण, २. महापुरुषों का चरित्र और ३. वर्णों एवं आश्रमों का निर्धारण ॥१६॥

अवतारानुचरितं यदाश्चर्यतमं हरेः । युगानि युगमानं च धर्मो यश्च युगे युगे ॥१७॥

अन्वयः— युगानि, युगमानं च, युगे युगे यश्च धर्मः, हरेः यत्, आश्चर्यतमं अवतारानुचरितम् ॥१७॥

अनुवाद— युगों के भेद, उनके परिमाण, प्रत्येक युगों के अलग-अलग धर्म तथा श्रीहरि के जो अत्यन्त आश्चर्यमय अवतार हुए हैं, उन सबों के चरितों को आप बतलााएँ ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

युगे युगे प्रतियुगं यो धर्मो यच्च हरेरवतारानुचरितम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में युगों के भेद, उनके धर्म और श्रीहरि के अवतारों के आश्चर्यकारी चरित्रों को राजा परीक्षित् ने पूछा है ॥१७॥

नृणां साधारणो धर्मः सविशेषश्च यादृशः । श्रेणीनां राजर्षीणां च धर्मः कृच्छ्रेषु जीवताम् ॥१८॥

अन्वयः— नृणाम्, साधारणः धर्मः, यादृशः सविशेषश्च, श्रेणीनां धर्मः, राजर्षिणाम् कृच्छ्रेषु जीवताम् धर्मः कः ॥१८॥

अनुवाद— मनुष्यों के वर्णों एवं आश्रमों के अनुसार साधारण और विशेष धर्म कौन हैं ? व्यावसायिक लोगों के धर्म, राजर्षियों के धर्म, तथा विपत्ति ग्रस्त मनुष्यों के धर्म को आप मुझे बतलाइये ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

सविशेषो वर्णाश्रमनिबन्धनः । श्रेणीनां तत्तद्यवसायोपजीविनां व्यवहारनियमलक्षणो धर्मः । राजर्षीणां प्रजापालनाधिकारिणाम्। कृच्छ्रेष्वापत्सु जीवतां सर्वेषाम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में राजा परीक्षित् ने मनुष्यों के साधारण धर्म, वर्णों एवं आश्रमों के धर्म, व्यवसायियों के धर्म, राजर्षियों के धर्म और आपद् धर्म के विषय में प्रश्न किया है ॥१८॥

तत्त्वानां परिसंख्यानं लक्षणं हेतुलक्षणम् । पुरुषाराधनविधिर्योगस्याध्यात्मिकस्य च ॥१९॥

अन्वयः— तत्त्वानां परिसंख्यानं, लक्षणम्, हेतुलक्षणम्, पुरुषारानविधिः, आध्यात्मिकस्य योगस्य च विधिः कः ॥१९॥

अनुवाद— तत्त्वों की संख्या, उनके स्वरूप लक्षण और तटस्थ लक्षण, परम पुरुष परमात्मा की आराधन विधि और अध्यात्म योग विधि को आप मुझे बतलायें ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

सर्वेषां तत्त्वानां प्रकृत्यादीनां परिसंख्यानं संख्या । लक्षणं स्वरूपम् । हेतुतो लक्षणम् । तत्तत्कार्यहेतुत्वेन च लक्षणमित्यर्थः। पुरुषाराधनस्य विधिर्देवपूजाप्रकारः । अष्टाङ्गयोगस्य च विधिः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

प्रकृति आदि तत्त्वों की संख्या, उनके स्वरूप लक्षण तथा तटस्थ लक्षण, परमात्माराधन के प्रकार तथा अष्टाङ्ग योग की विधि के विषय में राजा ने इस श्लोक में पूछा है ॥१९॥

योगेश्वरैश्वर्यगतिर्लिङ्गभङ्गस्तु योगिनाम् । वेदोपवेदधर्माणामितिहासपुराणयोः ॥२०॥

अन्वयः— योगेश्वरैश्वर्यगतिः योगिनां लिङ्गभङ्गः वेदोपवेद धर्माणाम्, इतिहास पुराणयोः ॥२०॥

अनुवाद— योगेश्वरों को प्राप्त होने वाले ऐश्वर्य, उन लोगों को प्राप्त होने वाली गति तथा योगियों के लिङ्ग शरीर के भङ्ग होने के प्रकार, वेदों, उपवेदों, धर्मशास्त्रों इतिहासों और पुराणों के स्वरूप को आप बतलायें ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

योगेश्वराणामैश्वर्येणाणिमादिनाऽर्चिरादिगतिः । लिङ्गशरीरस्य भङ्गः प्रलयः । वेदा ऋग्वेदादयः, उपवेदा आयुर्वेदादयः, धर्माः धर्मशास्त्राणि तेषाम्, इतिहासपुराणयोश्च गतिः स्वरूपम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

योगेश्वरों को प्राप्त होने वाले अणिमा आदि ऐश्वर्यों के स्वरूप क्या हैं ? उनसे प्राप्त होने वाली अर्चिरादि गतियों का स्वरूप क्या है ? योगियों के लिङ्ग शरीर के प्रलय का प्रकार क्या है ? ऋग्वेद इत्यादि वेदों, आयुर्वेद इत्यादि उपवेदों तथा धर्मशास्त्रों का स्वरूप तथा तात्पर्य क्या हैं ? इतिहासों और पुराणों के स्वरूप और तात्पर्य क्या हैं ? इसे आप मुझे बतलाइये ॥२०॥

संप्लवः सर्वभूतानां विक्रमः प्रतिसंक्रमः । इष्टापूर्तस्य काम्यानां त्रिवर्गस्य च यो विधिः ॥२१॥

अन्वयः— सर्वभूतानां संप्लवः, विक्रमः प्रति संक्रमः इष्टापूर्तस्य, काम्यानां, त्रिवर्गस्य च यो विधिः तंब्रूहि ॥२१॥

अनुवाद— आप मुझे सभी प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय, इष्टापूर्तकर्म, काम्यकर्म तथा धर्म अर्थ और काम इन सबों के साधनों की विधि मुझे बतलायें ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

संप्लवोऽवान्तरप्रलयः । यद्वा सम्यक् प्लवनमुद्भवः, विक्रमः स्थितिः, प्रतिसंक्रमो महाप्रलयः, इष्टं वैदिकं कर्म, पूर्तस्मार्त वापीकूपतडागादि देवतायतनानि च । अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते इति तत्र च काम्यानामग्निहोत्रादीनां विधिः। त्रिवर्गस्य धर्मार्थ कामस्य विधिरविरोधप्रकारः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में राजा ने पूछा कि आप मुझे सभी प्राणियों को अवान्तर प्रलय को बतलायें अथवा सम्प्लव अर्थात् उत्पत्ति विक्रम अर्थात् स्थिति तथा प्रतिसंक्रम अर्थात् महाप्रलय काल को बतलायें। ईष्ट अर्थात् वैदिक कर्म तथा पूर्त तालाब, बाबली आदि के निर्माण आदि स्मार्त कर्मों को बतलायें। कहा भी गया है **वापीकूपतडागादि इत्यादि** अर्थात् बावली, कूप, तलाब, देव मन्दिरों का निर्माण, अन्न दान कराना, बगीचा लगाना, इन सबों को पूर्त कर्म कहते हैं।

काम्य अग्निहोत्र आदि की विधि, तथा त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम इन सबों का जिस प्रकार से विरोध न हो उस विधि को आप मुझे बतलायें ॥२१॥

यश्चानुशायिनां सर्गः पाखण्डस्य च संभवः। आत्मनो बन्धमोक्षौ च व्यवस्थानं स्वरूपतः ॥२२॥

अन्वयः— यः च अनुशायिनां सर्ग, पाखण्डस्य च यथा संभवः आत्मनः बन्धमोक्षौ स्वरूपतः व्यवस्थानं च ब्रूहि ॥२२॥

अनुवाद— प्रलय काल में प्रकृति में लीन रहने वाले जीवों की उत्पत्ति कैसे होती हैं ? पाखण्ड की उत्पत्ति कैसे होती है, आत्मा के बन्ध और मोक्ष का स्वरूप क्या है ? तथा वह अपने स्वरूप में कैसे स्थित होता हैं ?॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अनुशायिनां लीनोपाधीनां जीवानाम्। आत्मनो जीवस्य। व्यवस्थानं बन्धमोक्षातिरिक्तस्वरूपेणावस्थानम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

प्रलय काल में प्रकृति में लीन रहने वाले जीवों को अनुशायी जीव कहते हैं, उन जीवों की उत्पत्ति कैसे होती है ? पाखण्डों की उत्पत्ति कैसे होती है ? जीवात्मा का बन्ध और मोक्ष कैसे होता है ? और जीव अपने स्वरूप में कैसे स्थित हो जाता है ?॥२२॥

यथात्मतन्त्रो भगवान् विक्रीडत्यात्ममायया। विसृज्य वा यथा मायामुदास्ते साक्षिवद्विभुः ॥२३॥

अन्वयः— आत्मतन्त्रः भगवान् आत्ममायया यथा विक्रीडति, यथा वा मायाम् विसृज्य साक्षिवद् उदास्ते तद् ब्रूहि ॥२३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् परम स्वतन्त्र हैं वे जिस तरह अपनी माया से क्रीडा करते हैं तथा माया को छोड़कर जिस तरह साक्षी के समान उदासीन हो जाते हैं, उसे आप मुझे बतलायें ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

उदास्ते प्रलये ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में राजा परीक्षित् शुकदेवजी से पूछते हैं कि श्रीभगवान् परम स्वतन्त्र हैं। वे सृष्टिकाल में अपनी ही माया के साथ क्रीडा करते हैं, और प्रलयकाल में उसका परित्याग करके साक्षी के समान उदासीन हो जाते हैं, यह सब जिस प्रकार से होता है उसे आप मुझे बतलायें ॥२३॥

सर्वमेतच्च भगवन् पृच्छते मेऽनुपूर्वशः। तत्त्वतोऽर्हस्युदाहर्तुं प्रपन्नाय महामुने ॥२४॥

अन्वयः— हे महामुने भगवन्! एतत् पृच्छते प्रपन्नाय मे सर्वं अनुपूर्वशः तत्त्वतः उदाहर्तुम् अर्हसि ॥२४॥

अनुवाद— हे महामुने भगवन्! मैं आपका शरणागत हूँ, इन सारी बातों को पूछने वाले मुझको आप तात्त्विक रूप से बतलायें ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

च शब्दादपृष्टमपि ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

एतत् च में जो चकार है उसका अभिप्राय है कि जिन बातों को मैं नहीं भी पूछ पाया हूँ उन सबों को भी आप मुझे तात्त्विक रूप से बतलाएँ ।।२४।।

अत्र प्रमाणं हि भवान् परमेष्ठी यथात्मभूः । परे चेहानुतिष्ठन्ति पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् ।।२५।।

अन्वयः— अत्र हि भवान् आत्मभू परमेष्ठी यथा प्रमाणम् परे च पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् अनुतिष्ठन्ति ।।२५।।

अनुवाद— इस विषय में आप तो स्वयं ब्रह्माजी के ही समान परम प्रमाण हैं, दूसरे लोग तो अपने पूर्व पुरुषों की परम्परा से कही गयी ही बातों का अनुष्ठान करते हैं ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

प्रमाणं सम्यक् ज्ञाता । यतस्तव ब्रह्मनारदव्यासक्रमेण संप्रदायोऽस्तीति सामान्यन्यायेनाह- परे चेति । यद्वा त्वदन्ये प्रायशो गतानुगतिका एव न तत्त्वविद इत्याह- परे चेति ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में राजा परीक्षित् कहते हैं कि जिन बातों को मैंने पूछा है, उन बातों को आप अच्छी तरह से जानते हैं, क्योंकि आप का सम्प्रदाय तो ब्रह्मा, नारद और व्यासजी की परम्परा का है । सामान्यतः दूसरे जितने भी ज्ञाता हैं, वे गतानुगतिक ही हैं वे तात्त्विक रूप से उसे नहीं जानते हैं ।।२५।।

न मेऽसवः परायन्ति ब्रह्मन्ननशनादमी । पिबतोऽच्युतपीयूषमन्यत्र कुपिताद्द्विजात् ।।२६।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् अच्युतपीयूष पिबतः मे अमी असवः कुपितात् द्विजात् अन्यत्र अनशनाद न परायन्ति ।।२६।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन्, ! भगवान् अच्युत के लीलामृत का पान करने वाले ये मेरे प्राण क्रुद्ध ब्राह्मण के शाप के अतिरिक्त अनशन (उपवास) के कारण नहीं निकल सकते हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

ननु तवानशनद्विजकोपाभ्यां व्याकुलस्य कुतः श्रवणं तत्राह-नेति । न परायन्ति नापगच्छन्ति । न व्याकुलीभवन्तीत्यर्थः। अच्युतकीर्तिपीयूषम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि अनशन के कारण तथा ब्राह्मण के कोप के कारण तुम्हारे तो प्राण व्याकुल हैं, तुम इन सारी बातों का श्रवण कैसे कर सकते हों ? तो इसका उत्तर है कि मेरे प्राण व्याकुल नहीं हैं, क्योंकि मैं तो भगवान् अच्युत की लीला रूपी अमृत का पान कर रहा हूँ । उसी से मेरे प्राण तृप्त हैं ।।२६।।

सूत उवाच

स उपामन्त्रितो राज्ञा कथायामिति सत्पतेः । ब्रह्मरातो भृशं प्रीतो विष्णुरातेन संसदि ।।२७।।

अन्वयः— विष्णुरातेन राज्ञा सत्पतेः कथायाम् इति उपामन्त्रितः सः ब्रह्मरातः भृशं प्रीतः ।।२७।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— राजा परीक्षित् के द्वारा संतों की सभा में श्रीभगवान् की कथा कहने के लिए इस प्रकार से प्रार्थना किए जाने पर शुकदेवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

उपामन्त्रितः पृष्टः । संश्चासौ पतिश्च तस्य ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने उपर्युक्त प्रकार से शुकदेवजी से प्रार्थना की कि वे सन्तों के स्वामी अथवा संसार के सर्वोत्तम स्वामी श्रीभगवान् की कथा इस सभा में सुनाएँ तो यह सुनकर शुकदेवजी को अत्यन्त प्रसन्नता हुयी ॥२७॥

प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् । ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ॥२८॥

अन्वयः— ब्रह्मकल्प उपागते ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तम् ब्रह्मसंमितम् भागवतं नाम पुराणं प्राह ॥२८॥

अनुवाद— ब्रह्म कल्प के प्रारम्भ में ब्रह्माजी को श्रीभगवान् ने जिस वेदतुल्य भागवत पुराण को सुनाया था उसी को उन्होंने सुनाया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मकल्पे सृष्ट्युपक्रमकल्पे । भागवताख्यानेनैव प्रश्नानामुत्तरं दातुमुपक्रान्तवानित्यर्थः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

सृष्टि के प्रारम्भ में जो ब्रह्मकल्प था उसमें श्रीभगवान् ने ब्रह्माजी को जो भागवत पुराण सुनाया था, वह वेद के समान था, उसी को उन्होंने राजा परीक्षित् को भी सुनाया । अर्थात् भागवत श्रावण के माध्यम से ही राजा परीक्षित् के प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥२८॥

यद्यत्परीक्षिदृषभः पाण्डूनामनुपृच्छति । आनुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे प्रश्नविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अन्वयः— पाण्डूनामृषभः परीक्षित् यद् यद् अनुपृच्छति तत् सर्वम् आनुपूर्व्येण आख्यातुम् उपचक्रमे ॥२९॥

अनुवाद— पाण्डु के वंश में अग्रगण्य राजा परीक्षित् ने जो कुछ भी पूछा था उन सारे प्रश्नों का उत्तर श्रीशुकदेवजी ने क्रमशः देना प्रारम्भ किया ॥२९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दूसरे स्कन्ध के प्रश्न विधि नामक आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥

भावार्थ दीपिका

पाण्डूनामृषभः श्रेष्ठः । आनुपूर्व्येणेति प्रस्तावक्रमोऽत्र विवक्षितो न प्रश्नक्रमः ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टमोऽध्यायः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् महाराज पाण्डु के वंश में श्रेष्ठ थे । उन्होंने जिन प्रश्नों को शुकदेवजी से पूछा था उन सबों का उन्होंने प्रस्ताव क्रम से उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥२९॥

इस तरह श्रीमद्भागावत महापुराण के द्वितीयस्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥८॥

* * *

।। ओम नमो भगवते वासुदेवाय ।।

तृतीय स्कन्ध

पहला अध्याय

उद्धावजी से विदुरजी की भेंट

श्रीशुक उवाच

एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान्किल । क्षत्त्रा वनं प्रविष्टेन त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ।।१।।

अन्वयः— एवम् पुरा ऋद्धिमत् स्वगृहं त्यक्त्वा वनं प्रविष्टेन क्षत्त्रा किल भगवान् मैत्रेयः एवम् एतत् पृष्टः ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— पूर्वकाल में सुख समृद्धि से सम्पन्न अपने गृह को त्याग कर वन में गये हुए विदुराजी ने भी इस प्रकार का प्रश्न महर्षि मैत्रेयजी से किया था ।।१।।

भावार्थ दीपिका

श्रीगोपालकृष्णाय नमः । तृतीये तु त्रयस्त्रिंशदध्यायैः सर्गवर्णनम् । ईशेक्षया गुणक्षोभात्सर्गो ब्रह्माण्डसंभवः ।।१।। तत्र तु प्रथमेऽध्याये बन्धून्हित्वा गतायुषः । निर्गतस्योद्धवेनादौ संवादः क्षत्तुरुच्यते ।।२।। भगवद्ब्रह्मसंप्रोक्तं संक्षिप्तं वर्णितं पुरा। प्राह भागवतं शेषप्रोक्तं विस्तरतः पुनः ।।३।। द्वेधा हि श्रीमद्भागवतसंप्रदायप्रवृत्तिः । एकतः संक्षेपतः श्रीनारायणब्रह्मनारदादिद्वारेण, अन्यतस्तु विस्तरतः शेषसनत्कुमारसांख्यायनादिद्वारेण । तत्र द्वितीये श्रीनारायणब्रह्मसंवादेन संक्षेपतोऽहमेवासमित्यादि चतुःश्लोक्या श्रीभागवतं निरूपितम् । तदेव ब्रह्मनारदसंवादेन दशलक्षणतया किंचिद्विस्तरेणोक्तम् । तदेव शेषोक्तमतिविस्तरतो वक्तुं तृतीयाद्यारम्भः। तत्र तृतीये प्रथमं क्षत्तुर्मैत्रयसंगमश्चतुर्भिरध्यायैस्ततोऽष्टभिः सविसर्गः सर्गप्रपञ्चस्ततो विसर्गप्रस्तावेन सप्तभिर्वराहावतारस्तत एकेन विसर्गसमाहारस्तत्प्रसङ्गेन चतुर्भिः कपिलावतारस्ततो नवभिः कपिलाख्यानमिति त्रयस्त्रिंशताऽध्यायतस्तृतीयस्कन्धप्रवृत्तिः। तत्र द्वितीयस्कन्धान्ते **परिमाणं च कालस्य कल्पलक्षणविग्रहम् । यथा पुरस्ताद्व्याख्यास्ये पाद्मं कल्पमथो शृणु** ।।' इति प्रतिज्ञातमर्थं विस्तरेण निरूपयितुमितिहासं प्रस्तौति भगवान् शुकः । एवमिति द्वाभ्याम् । ऋद्धिमत्सर्वसंपद्भिः संपूर्णम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

तीसरे स्कन्ध में तैंतिस अध्यायों में सृष्टि का वर्णन किया गया है । परमात्मा के संकल्प के द्वारा प्रकृति के गुणों में क्षोभ उत्पन्न हुआ और उसी से सृष्टि रूपी ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुयी ।।१।। **तत्र तु इत्यादि** तीसरे स्कन्ध के पहले अध्याय में जिन सबों की आयु समाप्त हो गयी थी उन अपने बान्धवों को त्यागकर जो घर से निकल गये उन विदुरजी का उद्धवजी के साथ संवाद वर्णित है ।।२।। **भगवद्ब्रह्म० इत्यादि** सर्वप्रथम श्रीभगवान् ने ब्रह्माजी को संक्षेप में श्रीमद्भागवत का उपदेश दिया है । शुकदेवजी ने शेषजी के द्वारा वर्णित भागवत का विस्तार से वर्णन किया है ।।३।।

द्वेधा हि० श्रीमद्भागवत का सम्प्रदाय दो प्रकार से प्रचलित हुआ । एकतो भगवान् नारायण और ब्रह्माजी के सम्प्रदाय के रूप में; इस सम्प्रदाय में अत्यन्त संक्षेप में श्रीमद्भागवत वर्णित हैं । दूसरे सम्प्रदाय में श्रीमद्भागवत

विस्तार से वर्णित है । यह सम्प्रदाय शेष सनत्कुमार तथा सांख्यायन इत्यादि के द्वारा प्रवृत है । इस सम्प्रदाय में भागवत विस्तार से वर्णित है ।

तत्रद्वितीये० इत्यादि- उसमें भी दूसरे सम्प्रदाय में श्रीनारायण और ब्रह्मा संवाद के प्रसङ्ग में **अहमेवासम् पूर्वम् इत्यादि** चतु: श्लोकी के माध्यम से भागवत का निरूपण संक्षेप में किया गया है । ब्रह्मनारद संवाद के प्रसङ्ग में कुछ विस्तार से दश श्लोक में वर्णित है । शेष के द्वारा उक्त उसी श्रीमद्भागवत को विस्तार से कहने के लिए तीसरे स्कन्ध का प्रारम्भ हुआ है ।

इस तीसरे स्कन्ध के प्रारम्भ में चार अध्यायों में विदुर और मैत्रेयजी की भेट का वर्णन है । उसके पश्चात् अध्यायों में अवान्तर कल्पों के साथ सृष्टि का वर्णन है । उसके पश्चात् विसर्ग के वर्णन के प्रसङ्ग में सात अध्यायों में वराहावतार का वर्णन है । तदनन्तर एक अध्याय में विसर्ग का संक्षेप किया गया है । उसी के प्रसङ्ग में चार अध्यायों में कपिलावतार का वर्णन है । तदनन्तर नव अध्यायों में कपिलोपाख्यान का वर्णन है । इस तरह तैंतिस अध्यायों में सम्पूर्ण तृतीयस्कन्ध वर्णित है ।

तत्र द्वितीयस्कन्धस्यान्ते० इत्यादि उसमें भी द्वितीय स्कन्ध के अन्त में शुकदेवजी ने राजा परीक्षित से यह जो कहा था कि काल के परिमाण तथा उसका कल्प स्वरूप जो विग्रह (शरीर) है उसका मैं तृतीय स्कन्ध में वर्णन करूँगा । आप सावधानी पूर्वक पाद्मकल्प का वर्णन सुनें यह जो उन्होंने प्रतिज्ञा की थी, उसीका विस्ताार से वर्णन करने के लिए शुकदेवजी इतिहास को एवम् इत्यादि दो श्लोकों से कहते हैं । ऋद्धिमत पद का अर्थ है सभी सम्पत्तियों से परिपूर्ण । ऐसे अपने घर का परित्याग करके विदुरजी वन में प्रवेश कर गये ॥१॥

यद्वा अयं मन्त्रकृद्वो भगवानखिलेश्वरः । पौरवेन्द्रगृहं हित्वा प्रविवेशात्मसात्कृतम् ॥२॥

अन्वयः— वः मन्त्रकृत अयम् अखिलेश्वरः भगवान् पौरवेन्द्र गृहं हित्वा आत्मसात् कृतम् यत् प्रविवेश ॥२॥

अनुवाद— पाण्डवों के दौत्य कर्म करने वाले सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण दुर्योधन के गृह को त्यागकर जिस गृह को अपना गृह मानकर उसमें प्रवेश कर गये, ऐसे गृह का परित्याग करके विदुर जी वन में चले गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

किंचातिश्लाघ्यं त्यागानर्हमित्याह । यद्वै प्रसिद्धं गृहं वः पाण्डवानां मन्त्रकृद्दौत्यकर्ता सन्नयं श्रीकृष्णः । बुद्धिसन्निधानादयमिति निर्देशः । पौरवेन्द्रो दुर्योधनस्तस्य गृहं हित्वाऽनाहूत एव प्रविवेश । तत्र हेतुः-आत्मसात्कृतमात्मीयत्वेन गृहीतम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी बात यह की वह गृह अत्यन्त प्रशंसनीय था अतएव त्यागने योग्य नहीं था । विदुरजी का वह प्रसिद्ध गृह जिसमें पाण्डवों को सलाह देने वाले तथा दौत्यकर्म को करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण-शुकदेवजी की बुद्धि में भगवान् श्रीकृष्ण का सन्निधान बन रहता था अतएव वे कहते ये श्रीकृष्ण दुर्योधन के राजमहल का परित्याग करके बिना बुलाये भी विदुरजी के घर में चले गये; क्योंकि विदुरजी के घर को भगवान् श्रीकृष्ण अपना घर मानते थे। उस घर का परित्याग कर दिया विदुरजी ने ॥२॥

राजोवाच

कुत्र क्षत्तुर्भगवता मैत्रेयेणाऽऽस संगमः । कदा वा सह संवाद एतद्वर्णय नः प्रभो ॥३॥

अन्वयः— क्षत्तुः भगवता मैत्रेयेण सह सङ्गमः कुत्र कदा वा संवाद आस हे प्रभो नः एतद् वर्णय ॥३॥

राजा परीक्षित ने कहा

अनुवाद— विदुरजी की भगवान् मैत्रेय से भेंट कहाँ हुयी और उनका मैत्रेयजी के साथ संवाद कब हुआ? हे प्रभो ! इन सारी बातों को आप मुझे बतलायें ॥३॥

भावार्थ दीपिका

कुत्र संगम आस बभूव ॥३॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने पूछा— हे प्रभो ! विदुरजी की भगवान् मैत्रेय से कहाँ पर भेंट हुयी, उसे आप मुझे बतलायें ॥३॥

न ह्यल्पार्थोदयस्तस्य विदुरस्यामलात्मनः । तस्मिन्वरीयसि प्रश्नः साधुवादोपबृंहितः ॥४॥

अन्वयः— तस्य अमलात्मनः विदुरस्य तस्मिन् वरीयसि साधुवादोपबृंहितः प्रश्नः अल्पार्थोदयः न ॥४॥

अनुवाद— महात्मा विदुरजी अमलात्मा थे । उनका उन महापुरुष महर्षि मैत्रेयजी से छोटी वस्तु विषयक संवाद नहीं हुआ होगा, क्योंकि महर्षि मैत्रेयजी ने विदुरजी के उस प्रश्न को अभिनंदित करके महिमा मण्डित किया था ॥४॥

भावार्थ दीपिका

वरीयसि श्रेष्ठे । अल्पस्यार्थस्योदयो यस्मात्तथाभूतो न भवति । साधुवादेन सतामनुमोदनेनोपबृंहितः संबर्धितः । यद्वा साधोर्मैत्रेयस्य वादेनोत्तरेण श्लाघित इत्यर्थः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि मैत्रेय श्रेष्ठ पुरुष थे । उनसे विदुरजी किसी छोटी मोटी वस्तु विषयक प्रश्न नहीं किए होंगे; क्योंकि विदुरजी के उस प्रश्न को सुनकर मैत्रेय महर्षि ने उनको साधुवाद प्रदान किया था अथवा मैत्रेयजी साधु पुरुष थे और उन्होंने उसका उत्तर प्रदान करके उनकी प्रशंसा की थी ॥४॥

सूत उवाच

स एवमृषिवर्योऽयं पृष्टो राज्ञा परीक्षिता । प्रत्याह तं सुबहुवित्प्रीतात्मा श्रूयतामिति ॥५॥

अन्वयः— स अयं ऋषिवर्यः राज्ञा परीक्षिता एवम् पृष्टः सुबहुवित् प्रीतात्मा तं प्रति आह श्रूयताम् इति ॥५॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— ऋषियों में श्रेष्ठ थे शुकदेवजी । राजा परीक्षित् ने जब इस प्रकार का प्रश्न किया तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए, क्योंकि वे बहुज्ञ थे । अतएव उन्होंने राजा परीक्षित् से कहा सुनो ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् ने शुकदेवजी से पूछा कि विदुरजी की मैत्रेय से कहाँ पर और कब भेंट हुयी ? उन्होंने मैत्रेय महर्षि से क्या प्रश्न किया था ? विदुरजी महात्मा थे । वे उतने महान् पुरुष से समान्य प्रश्न तो पूछे नहीं होंगे; क्योंकि विदुरजी के प्रश्न को सुनकर मैत्रेय महर्षि प्रसन्न हुए तथा उनके प्रश्न का समुचित उत्तर देकर उन्होंने विदुरजी को सम्मानित किया यह सुनकर शुकदेवजी भी प्रसन्न होकर राजा से कहे कि सुनो ॥५॥

श्रीशुक उवाच

यदा तु राजा स्वसुतानसाधून् पुष्णन्नधर्मेण विनष्टदृष्टिः ।
भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतान्विबन्धून् प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह ॥६॥

अन्वयः— यदा तु विनष्ट दृष्टिः राजा आसाधून स्वसुतान् अधर्मेण पुण्णन् यविष्ठस्य भ्रातुः विवन्धून् सुतान् लाक्षा भवने प्रवेश्य ददाह तदा क्षता आयात् इति शेषः ॥६॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जब अन्धे राजा धृतराष्ट्र अन्यायपूर्वक अपने दुष्टपुत्रों का पालन करते रहे और अपने छोटे भाई पाण्डु के पितृहीन पुत्रों को लाक्षागृह में भेजकर उसमें आग लगवा दिया उस समय विदुर ने अपने गृह का त्याग कर दिया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

त्यागानर्हस्यापि गृहस्य त्यागे हेतुत्वेन कौरवापराधानाह-यदेत्येकादशभिः । एतेषां च तदा स क्षत्ता अयादित्येकादशे क्रियासंबन्धः । यविष्ठस्य कनिष्ठस्य पाण्डोः । विबन्धून्पितृहीनान् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि विदुरजी का गृह त्यागने योग्य नहीं था फिर भी विदुरजी ने अपने उस गृह का त्याग कर दिया इसके कारण रूप से कौरवों के अपराधों को **यदा इत्यादि** ग्यारह श्लोकों में शुकदेवजी ने बतलाया है । छठे श्लोक से लेकर पन्द्रहवें श्लोक के बाद सोलहवें श्लोक के तदा स क्षत्ता आयात् इस क्रिया से सम्बन्ध है । शुकदेवजी ने कहा कि राजा धृतराष्ट्र केवल आँखों के ही अन्धे नहीं थे उनकी बुद्धि भी मारी गयी थी । वे अपने दुष्टपुत्रों का तो अन्याय पूर्वक पालन करते थे और अपने छोटे भाई पाण्डु के पितृहीन पुत्रों को लाक्षागृह में भेजकर उसमें आग लगवा दिए थे । उस समय विदुरजी ने अपने गृह का त्याग कर दिया ॥६॥

यदा सभायां कुरुदेवदेव्याः केशाभिमर्शं सुतकर्म गर्ह्यम् ।
न वारयामास नृपः स्नुषायाः स्वास्त्रैर्हरन्त्याः कुचकुङ्कुमानि ॥७॥

अन्वयः— यदा राजा सभायां स्वास्त्रैः कुचकुङ्कुमानि हरन्त्याः कुरुदेवदेव्याः स्नुषायाः केशभिमर्शं गर्ह्यम् सुतकर्म न वारयामास तदा क्षत्ता आयात् इति शेषः ॥७॥

अनुवाद— जब भरी सभा में दुःशासन ने द्रौपदी के केशों को पकड़कर खींचा और रोती हुयी द्रौपदी की अश्रुधारा से उसके स्तनों में लगा केसर बहने लगा, किन्तु अपनी पुत्रवधू तथा महाराज युधिष्ठिर की पटरानी द्रौपदी के केशों को पकड़कर खींचने जैसे निन्दित कर्म को करने से राजा धृतराष्ट्र ने नहीं रोका, तब विदुरजी अपना घर छोड़कर वन में चले गये ॥७॥

भावार्थ दीपिका

कुरुदेवस्य युधिष्ठिरस्य देव्या द्रौपद्याः आत्मनः स्नुषायाः स्वीयैरस्त्रैरश्रुभिः स्वकुचकुङ्कुमानि रिपुस्त्रीणां वा तद्भर्तृवधेन हरन्त्याः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

महराज युधिष्ठिर की पत्नी तथा अपनी पुत्र वधू देवी द्रौपदी के आँसुओं से उनके स्तनों का अथवा शत्रुओं की स्त्रियों के स्तन का केसर बहने लगा था तब विदुरजी अपने गृह को छोड़कर वन में चले गये ॥७॥

द्यूते त्वधर्मेण जितस्य साधोः सत्यावलम्बस्य वनागतस्य ।
न याचतोऽदात्समयेन दायं तमोजुषाणो यदजातशत्रोः ॥८॥

अन्वयः— द्युते अधर्मेण जितस्य सत्यावलम्बस्य साधोः अजातशत्रोः वनागतस्य समयेन दायं याचतः तमो जुषाणः यदा न अदात् तदा वनम् अयात् ॥८॥

अनुवाद— द्यूतक्रीडा में दुर्योधन ने अन्यायपूर्वक साधुस्वभाव वाले सत्यवादी अजातशत्रु युधिष्ठिर का राज्य जीत लिया था, और राजा युधिष्ठिर वन में चले गये, जब वे वन से लौटे तो प्रतिज्ञानुसार अपना हिस्सा माँगे तो अज्ञानी राजा धृतराष्ट्र ने उनका दायभाग (हिस्सा) नहीं दिया उसके कारण विदुरजी वन में चले गये ॥८॥

भावार्थ दीपिका

सत्यावलम्बस्य सत्याश्रयस्य वनात्प्रत्यागतस्य समयेन पूर्वकृतेन दायमंशं याचमानस्य यद्यदा नादान्न ददौ । तमो मोहं जुषाणः (पुत्रं सेवमानः, अविवेकं वा) ॥८॥

भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर सत्यवादी थे । वे जब तेरह वर्ष के वनवास के पश्चात् वन से लौटे तो पूर्वकृत प्रतिज्ञा के अनुसार अपना हिस्सा माँगे । उस समय अज्ञान का सेवन करने वाले राजा धृतराष्ट्र ने उनको उनका हिस्सा नहीं दिया तो दुःखी होकर विदुरजी वन में चले गयें ॥८॥

यदा च पार्थप्रहितः सभायां जगद्गुरुर्यानि जगाद कृष्णः ।
न तानि पुंसाममृतायनानि राजोरु मेने क्षतपुण्यलेशः ॥९॥

अन्वयः— यदा च प्रार्थप्रहितः जगद्गुरुः कृष्णः सभायां पुंसाम् अमृतायनानि जगाद तानि क्षतपुण्यलेशः राजा उरु न मेने तदा वनम् अयात् ॥९॥

अनुवाद— जब राजा युधिष्ठिर के द्वारा दूत के रूप में भेजे गये जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण कौरवों की सभा में पुरुषों के लिए अमृतस्त्रावी बातें को कहे किन्तु जिनके पुण्य का लेश भी समाप्त हो गया थे वे राजा धृतराष्ट्र उनकी बातों का सम्मान नहीं किए तो दुःखी होकर विदुरजी हस्तिनापुर छोड़कर वन में चले गये ॥९॥

भावार्थ दीपिका

यानि वचनानि पुंसां भीष्मादीनाममृतायनान्यमृतस्त्रावीणि राजा धृतराष्ट्रो दुर्योधनो वा उरु बहु न मेने । क्षतो नष्टः पुण्यलेशो यस्य सः । न सुखकीर्तिधर्मादिहेतुः किंतु राज्यप्राप्तिमात्रहेतुः पुण्यलेश एवासीत्तस्यापि नष्टत्वादनादृतवानित्यर्थः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

राजा युधिष्ठिर के द्वारा दूत के रूप में भेजे गये भगवान् श्रीकृष्ण कौरवों की सभा में आकर भीष्म इत्यादि के लिए अमृतस्त्रावी जिन वचनों को कहे उन वचनों का राजा धृतराष्ट्र ने सम्मान नहीं किया, क्योंकि राजा धृतराष्ट्र का सारा पुण्य समाप्त हो गया था । उससे भी दुःखी होकर विदुरजी ने अपने गृह का परित्याग कर दिया ॥९॥

यदोपहूतो भवनं प्रविष्टो मन्त्राय पृष्टः किल पूर्वजेन ।
अथाह तन्मन्त्रदृशां वरीयान्यन्मन्त्रिणो वैदुरिकं वदन्ति ॥१०॥

अन्वयः— यदा पूर्वजेन मन्त्राय उपहूतः भवनं प्रविष्टःसन् पृष्टः किल तन्मन्त्रकृतां मन्त्रिणः वरीयान् विदुरः अथाह तत् वैदुरिकं वदन्ति ॥१०॥

अनुवाद— अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र के द्वारा सलाह के लिए बुलये गये विदुरजी सलाह करने वालों में श्रेष्ठ मन्त्री थे । उन्होंने जिन बातों को कहा उसे विदुर नीति के नाम से जाना जाता है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं विदुरस्यैव कृतं पराभवं दर्शयति-यदेत्यादिषड्भिः । यदा पूर्वजेन धृतराष्ट्रेण मन्त्राय चोपहूतोऽन्तर्गृहं प्रविष्टो मन्त्रं पृष्टः सन्नथानन्तरं तदाह । किम् । मन्त्रिणोऽद्यापि यद्वैदुरिकं विदुरवाक्यमिति प्रसिद्धं वदन्ति ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

अब **यदोपहूतः इत्यादि** छह श्लोकों में धृतराष्ट्र ने विदुरजी का जो अपमान किया उसका वर्णन शुकदवेजी करते हैं । अपने बड़े भाई राजा धृतराष्ट्र के द्वारा सलाह करने के लिए जब विदुरजी बुलाये गये तो विदुरजी राज भवन में गये और सलाह पूछने पर विदुरजी ने जिन बातों को कहा उन सबों को मन्त्रीगण आज भी विदुरनीति के नाम से अभिहित करते हैं ।।१०।।

अजातशत्रोः प्रतियच्छ दायं तितिक्षतो दुर्विषहं तवागः ।
सहानुजो यत्र वृकोदराहिः श्वसन्रुषा यत्त्वमलं बिभेषि ।।११।।

अन्वयः— तव दुर्विषहं आगः तितिक्षतः अजातशत्रोः दायं प्रतियच्छ, यत्र वृकोदराहिः सहानुजः रुषाश्वसन् यत्त्वम् अलं विभेषि ।।११।।

अनुवाद— विदुरजी ने कहा अजातशत्रु युधिष्ठिर आप के नहीं सहने योग्य अपराध को सह रहे हैं, उनको उनका हिस्सा आप दे दें । उनके साथ भीम रूपी काले सर्प विद्यमान हैं । वे अपेन अनुजों के साथ क्रोध करके बदला लेने के लिए फुफकार रहे हैं । उनसे तो आप भी बहुत डरते हैं ।।११।।

भावार्थ दीपिका

तदेवाह अजातशत्रोरिति त्रिभिः । तव आगोऽपराधं सहमानस्य दायं प्रतियच्छ देहि । यत्रापराधेऽनुजैः सह वर्तमानो वृकोदररूपोऽहिः क्रोधेन श्वसन्वर्तते । यद्यस्मात्त्वमलमत्यर्थ विभेषि ।।११।।

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने जो सलाह दिया उसका तीन श्लोकों में वर्णन किया जा रहा है । युधिष्ठिर आपके नहीं सहने योग्य अपराधों के सह रहे हैं, अतएव आप उनको उनका हिस्सा प्रदान कर दें । उन अपराधों को सोचकर भीमरूपी भयङ्कर सर्प अपने छोटे भाईयों के साथ क्रोध करके फुफकार रहे हैं । भीम से तो आप भी बहुत अधिक डरते हैं ।।११।।

पार्थांस्तु देवो भगवान्मुकुन्दो गृहीतवान्सक्षितिदेवदेवः ।
आस्ते स्वपुर्यां यदुदेवदेवो विनिर्जिताशेषनृदेवदेवः ।।१२।।

अन्वयः— क्षितिदेवदेवः यदुदेवदेवः विनिर्जिताशेष नृदेवदेवः देवो भगवान् मुकुदः पार्थान् गृहीतवान् सः स्वपुर्याम् आस्ते ।।१२।।

अनुवाद— सभी ब्राह्मणों के आराध्य तथा सभी यदुवंशियों के भी आराध्य दिव्य गुण सम्पन्न भगवान मुकुन्द ने सभी राजाओं को परास्त किया है, उन्होंने पाण्डवों को अपने आत्मीय रूप से स्वीकार किया है, इस समय वे अपनी राजधानी द्वारका में ही विद्यमान हैं, कही अन्यत्र नहीं गये हैं । अतएव आप युधिष्ठिर को उनका हिस्सा प्रदान कर दें ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

ननु मम तादृशाः पुत्रा बहवः सन्तीति गर्वं मा कृथा इत्याह । पार्थांस्तु मुकुन्द आत्मीयत्वेन गृहीतवान् । स च देवस्तत्रापि भगवान्न तु प्राकृतः । किंच सह क्षितिदेवैर्विप्रैर्देवैश्चेन्द्रादिभिर्वर्तमानः । यतोऽसौ तत्रैव विप्रा देवाश्चेत्यर्थः । स च

स्वपुर्यामेव सुखमास्ते, न त्वन्यत्र गतः । किंच यदुदेवानां देवः पूज्यः । यतोऽसौ तत्रैव यदुप्रवीरा इत्यर्थः । किंच नृदेवेषु मण्डलेश्वरेषु दीव्यन्ति प्रकाशन्त इति नृदेवदेवा राजानः, विनिर्जिता अशेषा नृदेवदेवा येन । यतोऽसौ तत्रैव सर्वे राजानः । अतः पार्थानां दायं देहीति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

आपको इस प्रकार का गर्व नहीं करना चाहिए कि भीम के समान मेरे अनेक पुत्र हैं । भगवान् श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को आत्मीय रूप से स्वीकार कर लिया है । वे प्राकृत पुरुष नहीं हैं, बल्कि वे भगवान् हैं । वे विप्रों तथा इन्द्र आदि देवताओं के साथ वर्तमान हैं । क्योंकि जिस पक्ष में श्रीभगवान् रहते हैं उसी पक्ष में सभी देवता और ब्राह्मण रहते हैं, वे अपनी नगरी द्वारका में ही सुख पूर्वक रह रहे हैं वे कहीं अन्यत्र नहीं गये हैं । वे सभी यदुवंशियों के पूज्य हैं । अतएव वे जिस पक्ष में हैं उसी पक्ष में सभी यदुवंशी वीर भी हैं । तथा श्रीभगवान् ने पृथिवी के समस्त बड़े-बड़े राजाओं को जीत लिया है । अतएव जिस पक्ष में भगवान् हैं, उसी पक्ष में सभी राजा भी हैं । इन सारी बातों का विचार करके आप पाण्डवों का हिस्सा प्रदान कर दें ॥१२॥

स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते गृहान्प्रविष्टोऽयमपत्यमत्या ।
पुष्णासि कृष्णाद्विमुखे गतश्रीस्त्यजाश्वशैवं कुलकौशलाय ॥१३॥

अन्वयः— यम् अपत्यमत्या पुष्णासि स एष दोषः गृहान् प्रविष्टः पुरुषद्विड आस्ते कृष्णादिमुखः गतश्रीः त्वम् कुकौशलाय अशैवं तं आशु त्यज ॥१३॥

अनुवाद— जिस दुर्योधन को आप अपना पुत्र मानकर उसका पालन पोषण कर रहें हैं, वह मूर्तिमान दोष हैं और आपके घर में प्रवेश कर गया है । वह परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करता है, उसके ही चलते आप भगवान् श्रीकृष्ण से विमुख होकर श्रीहीन हो गये हैं । अतएव इस अमङ्गल स्वरूप दुर्योधन का आप शीघ्र त्याग कर दें इसी में आपके वंश की भलाई हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

दुर्योधनस्तत्र मन्यत इति चेदत आह । स एप मूर्तो दोप एव गृहान्प्रविष्ट आस्ते । दोपत्वे हेतुः-पुरुपद्विट् श्रीकृष्णद्वेष्टा। कोऽसौ । यं त्वमपत्यमत्या पुष्णासि न त्वपत्यमसौ । न पतत्यस्मादिति ह्यपत्यं प्राहुः । गता श्रीर्यस्मात्स त्वमित्याक्रोशति । अत एनमशैवममङ्गलमाशु त्यज । कथं पुत्रस्त्याज्यस्तत्राह । कुलस्य कौशलाय । **'त्यजेदेकं कुलस्यार्थे'** इत हि न्यायः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि क्या करूँ दुर्योधन नहीं मानता है । तो इसका उत्तर है कि दुर्योधन तो मूर्तिमान दोष हैं और वह आपके गृह में प्रवेश कर गया है । उसके दोष स्वरूप होने का कारण यह है कि वह भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करता है । जिसको आप अपना अपत्य (सन्तान) मानते हैं वह आपका अपत्य नहीं है । क्योंकि अपत्य तो उसको कहते हैं जिसके कारण मनुष्य का पतन न हो । आप तो उसी के कारण भगवान् श्रीकृष्ण से विमुख हो गये हैं और आपकी श्रीसमाप्त हो गयी है । अतएव यह दुर्योधन अमङ्गल स्वरूप है, इसका आप शीघ्र ही त्याग कर दें । यदि कहें कि पुत्र का त्याग कैसे किया जाय तो इसका उत्तर है कि **कुलकौशलाय** अपने वंश की रक्षा के लिए अपने पुत्र का भी त्याग किया जा सकता है । कहा भी गया है कि कुल को बचाने के लिए किसी एक को त्यागना पड़े तो त्याग देना चाहिए ॥१३॥

इत्यूचिवांस्तत्र सुयोधनेन प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण ।
असत्कृतः सत्स्पृहणीयशीलः क्षत्ता सकर्णानुजसौबलेन ॥१४॥

क एनमत्रोपजुहाव जिह्मं दास्याः सुतं यद्बलिनैव पुष्टः ।
तस्मिन्प्रतीपः परकृत्य आस्ते निर्वास्यतामाशु पुराच्छ्वसानः ॥१५॥

अन्वयः— सत्स्पृहणीयशीलः क्षत्ता इति ऊचिवान् । तत्र प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण सकर्णानुजसौबलेन सह दुर्योधनेन असत्कृतः । एनम् दास्याः सुतम् अत्र कः उपजुहाव ? यद् बलिना पुष्टः तस्मिन् प्रतीपः परकृत्ये आस्ते । अतः श्वशानः पुरात् निर्वास्यताम् ॥१४-१५॥

अनुवाद— जिनके शील को साधु पुरुष प्राप्त करना चाहते हैं ऐसे विदुरजी की इस तरह की बातों को सुनकर कर्ण, दुःशासन, शकुनि तथा दुर्योधन के ओठ फड़कने लगे और विदुरजी का अपमान करते हुए दुर्योधन ने कहा— इस दासी के पुत्र को यहाँ पर किसने बुलाया है ? यह जिसका अन्न खाता है, उसी के विरुद्ध काम करता है । यह शत्रु का काम बनाना चाहता है । इसको जीवित ही इस नगर से निकाल बाहर करो ॥१४-१५॥

भावार्थ दीपिका

इत्यूचिवानेवमुक्तवान् । असौ क्षत्ता विदुरः सतां स्पृहणीयं शीलं यस्य कर्णदुःशासनशकुनिसहितेन दुर्योधनेनासत्कृतस्तिरस्कृतः। तिरस्कारमाह-क इति । दासीसुतो ह्यत्राह्वानानर्हः । जिध्यश्च कुटिलः । जिह्मतामाह । यस्य बलिनाऽन्नेन पुष्टस्तस्मिन्नेव प्रतीपः प्रतिकूलः परेषां कार्ये वर्तते । अतः पुरान्निर्वास्यताम् श्वसानः जीवमात्रशेष इत्यर्थः । पाठान्तरे श्मशानवदमङ्गलः ॥१४-१५॥'

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने इस प्रकार से दुर्योधन के विषय में कहा— विदुरजी का शील सत् पुरुषों के भी लिए स्पृहणीय था, उनकी बातों को सुनकर कर्ण, दुःशासन, शकुनि और दुर्योधन क्रुद्ध हो गये । दुर्योधन ने विदुरजी को अपमानित करते हुए कहा— यह तो दासी पुत्र है, यह यहाँ बुलाने योग्य नहीं है । यह स्वभाव से जिह्म अर्थात् कुटिल है । यह जिसका अन्न खाकर जीता है, उसके ही विरुद्ध कार्य करता है और उसके शत्रुओं का कार्य करता है; अतएव इसको इस हस्तिनापुर से बाहर निकाल दो इसको मारो मत जीते ही जी निकाल दो । जहाँ पर **पुराच्छ्मशानः** पाठ है, वहाँ इसका अर्थ होगा, यह श्मशान के समान अमङ्गलमय है, अतएव इसको नगर से बाहर निकाल दो ॥१४-१५॥

स इत्थमत्युल्बणकर्णबाणैर्भ्रातुः पुरो मर्मसु ताडितोऽपि ।
स्वयं धनुर्द्वारि निधाय मायां गतव्यथोऽयादुरु मानयानः ॥१६॥

अन्वयः— इत्थम् भ्रातु पुरः उल्बाणकर्णबाणैः मर्मसु ताडितोऽपि, गतव्यथः मायां पुरो मानयानः द्वारि धनुः निधाय अयात् ॥१६॥

अनुवाद— इस प्रकार से अपने बड़े भाई के सामने ही मर्मवेधी शब्द रूपी कानों से हृदय में प्रवेश करने वाले बाणों से वेधित होकर उनको कोई व्यथा इसलिए नहीं हुयी कि वे माया को ही इसमें अधिक महत्त्व देते थे । वे उन सबों के द्वारा निकाले जाने से पहले ही अपने धनुष को दरवाजे पर रख दिए और घर से बाहर निकल गये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

अत्युल्वणैः कर्णयोर्बाणवत्प्रविशद्भिः परुपवाक्यैर्मर्मसु ताडितोऽपि गतव्यथः । तत्र हेतुः-मायामुरु बहु मानयन्नहो मायाया माहात्म्यमिति तामेव तत्र हेतुं मन्यमानस्तन्निःसारणात्पूर्वं स्वयमेव अयान्निर्जगाम । किं कृत्वा । एते नूनं मरिष्यन्ति किं धनुषेति तस्य द्वारि धनुःर्निधाय । यद्वा भीमादिभिः संगत्यास्माभिर्योत्स्यतीति मा शङ्कीरिति धनुर्निधानम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

दुर्योधन के वे कठोर वचन कानों के मार्ग से हृदय में प्रवेश करके मर्मस्थल को आहत करने वाले थे, किन्तु उन शब्दों को सुनकर भी विदुरजी को इससे कष्ट नहीं हुआ; क्योंकि वे इसमें माया का ही महत्त्व देते थे। वे जानते थे कि माया ही प्रेरित करके दुर्योधन से इस तरह की बातें करवा रही है । अतएव वे सब विदुरजी को हस्तिनापुर से बाहर निकालें उससे पहले ही वे अपने आप उस नगर से निकल गये । वे नगर से निकलते समय धनुष को राजमहल के द्वारा पर ही रख दिए । क्योंकि वे यह जानते थे कि ये सब मरने वाले हैं, फिर धनुष का क्या उपयोग है ? अथवा यह सोचकर उन्होंने धनुष को रख दिया कि यदि मैं धनुष लेकर जाऊँगा तो ये सब सोचेंगे कि यह भीमादि के साथ मिलकर युद्ध करेगा, इसीलिए उन्होंने धनुष रख दिया ॥१६॥

स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात्तीर्थपदः पदानि ।
अन्वाक्रमत्पुण्यचिकीर्षयोर्व्यां स्वधिष्ठितो यानि सहस्रमूर्तिः ॥१७॥

अन्वयः— कौरवपुण्यलब्धः सः गजाह्वयात् निर्गतः पुण्यचिकीर्षया उर्व्यां तीर्थपदः पदानि अन्वाक्रमत यानि सहस्रमूर्तिः स्वधिष्ठितः ॥१७॥

अनुवाद— कौरवों के पुण्य के फल रूप में उन सबों को प्राप्त विदुरजी हस्तिनापुर से निकल गये और पुण्य प्राप्त करने की इच्छा से वे तीर्थपाद श्रीहरि के क्षेत्रों में पृथिवी पर विचरण करने लगे । जिन तीर्थों में श्रीभगवान् ब्रह्मा, शिव आदि हजारों मूर्ति के रूप में विद्यमान है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ततो निर्गतस्य तीर्थाटनप्रकारमाह–स इत्यष्टभिः । स गजाह्वयान्निर्गतः । संस्तीर्थ पादौ यस्य तस्य हरेः पदानि क्षेत्राणि पुण्यचिकीर्षयाऽन्वाक्रमत्प्रत्यपद्यत । कौरवाणां पुण्येन लब्ध इति तेषां भाग्यमेव तेन रूपेण गतमिति सूचितम् । उर्व्यां सहस्रमूर्तिर्ब्रह्मरुद्राद्यनेकमूर्तिः संस्तीर्थपाद्यानि यान्यधिष्ठाय स्थितः तानि तानि जगामेत्यर्थः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

हस्तिनापुर से निकलकर विदुरजी ने जिस प्रकार से तीर्थो में भ्रमण किया उस प्रकार को **स निर्गतः इत्यादि** आठ श्लोकों से बतलाते हैं । हस्तिनापुर से निकले हुए वे तीर्थपाद श्रीहरि के क्षेत्रों में पुण्य करने की इच्छा से घूमने लगे । **कौरवपुण्य लब्धः** इस पद के द्वारा शुकदेवजी ने इस अर्थ को सूचित किया है कि वे कौरवों को उनके पुण्यों के फलरूप से ही प्राप्त थे । उनके नगर से निकलने का अर्थ है कि उनके रूप में कौरवों का पुण्य ही उस नगर से निकलकर चला गया । विदुरजी श्रीभगवान् के उन तीर्थों में गये जिन तीर्थों में ब्रह्मा रुद्र आदि अनेक मूर्तियों को धारण करने वाले श्रीभगवान् अधिष्ठाता के रूप में विद्यमान हैं । उन तीर्थ स्थलों में वे गये॥१७॥

पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुञ्जेष्वपङ्कतोयेषु सरित्सरस्सु ।
अनन्तलिङ्गैः समलंकृतेषु चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः ॥१८॥

अन्वयः— अनन्य सः अनन्तलिङ्गैः समलंकृतेषु पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुञ्जेषु अपङ्कतोयेषु सरित्सरस्सु तीर्थायतनेषु चचार ॥१८॥

अनुवाद— विदुरजी अकेले ही जहाँ-जहाँ भगवान् की प्रतिमाओं से सुशोभित तीर्थ स्थान नगर, पवित्र वन, पर्वत, निकुञ्ज और स्वच्छ जल से भरे हुए नदी सरोवर थे उन सभी स्थानों में विचरण किए ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

पुण्यानि यान्युपवनादीनि तेषु कुञ्जं लतादिगूढस्थानम् । अपङ्कानि तोयानि येषां तेषु सरित्सरःसु च तीर्थेष्वायतनेषु क्षेत्रेषु च । कीदृशेषु । अनन्तस्य लिङ्गैर्मूर्तिभिः सम्यगलंकृतेषु । अनन्य एकाकी ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी जो पवित्र वन थे उनमें विद्यमान कुञ्ज तथा लता स्थान थे, स्वच्छ जल से भरे हुए सरोवर और नदियों, तीर्थों, मन्दिरों तथा क्षेत्रों में गये । प्रश्न है कि ये सभी किस प्रकार के थे ? तो इसका उत्तर है कि अनन्त मूर्तियों वाले श्रीभगवान् की मूर्तियाँ जिन स्थानों में थीं उन स्थानों में गये । वे इन सभी स्थानों में अकेले विचरण करते थे ॥१८॥

गां पर्यटन्मेध्यविविक्तवृत्तिः सदाप्लुतोऽधःशयनोऽवधूतः ।
अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥१९॥

अन्वयः— स्वैरवधूतवेषः अलक्षितः मेध्य विविक्तवृत्तिः गां पर्यटन सदाऽऽप्लुतः अधः शयानः हरितोषणानि व्रतानि चेरे ॥१९॥

अनुवाद— वे अवधूत वेष में अपनी इच्छानुसार विचरण करते थे, कोई भी आत्मीय व्यक्ति उनको पहचान नहीं पाता था । वे पवित्र वृत्ति से अपने जीवन का निर्वाह करते थे । प्रत्येक तीर्थों में स्नान करते थे और पृथिवी पर सोते थे एवं श्रीहरि को प्रसन्न करने वाले व्रतों का पालन करते थे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

किंच गां पर्यटन् व्रतानि चेरे आचरत् । मेध्या पवित्रा विविक्ताऽसंकीर्णा वृत्तिर्जीविका यस्य । सदाप्लुतः प्रतितीर्थं स्नातः । अधः शयनं यस्य । अवधूतोऽसंस्कृतदेहः, अवधूतवेषो वल्कलादिधारी । अतएव स्वैरलक्षितः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

तीर्थों में सञ्चरण करते हुए विदुरजी ने व्रतों का पालन किया । उनकी वृत्ति पवित्र तथा दूसरों की वृत्ति से सङ्कीर्ण नहीं थी । वे प्रत्येक तीर्थों में जाकर स्नान करते थे पृथिवी पर सोते थे और अपने शरीर को सजाते नहीं थे । बल्कल आदि धारण किए हुए अवधूत वेष में रहते थे । इसीलिए उनको कोई भी आत्मीय व्यक्ति पहचान नहीं पाता था ॥१९॥

इत्थं व्रजन्भारतमेव वर्षं कालेन यावद्गतवान्प्रभासम् ।
तावच्छशास क्षितिमेकचक्रामेकातपत्रामजितेन पार्थः ॥२०॥

अन्वयः— इत्थम् भारतमेव वर्षं व्रजन् यावत् कालेन प्रभासम् गतवान् तावत् अजितेन पार्थः एकचक्राम् एकातपत्राम् क्षितिं शशास ॥२०॥

अनुवाद— इस तरह भारत वर्ष में ही भ्रमण करते हुए विदुरजी जब तक प्रभास क्षेत्र में पहुँचे तब तक भगवान् श्रीकृष्ण के साथ सम्पूर्ण पृथिवी के राजा युधिष्ठिर एक छत्र राज्य किये । सम्पूर्ण पृथिवी में उनकी ही सेना थी ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

एकस्यैव चक्रं सैन्यं यस्याम् । एकमेव राजचिह्नं श्वेतातपत्रं यस्यां ताम् । अजितेन श्रीकृष्णेन सहायेन ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

उतने समय तक भगवान् श्रीकृष्ण की सहायता से राजा युधिष्ठिर ने सम्पूर्ण पृथिवी का एक छत्र राज्य किया। **एकचक्राम्** कहने का अभिप्राय है कि सम्पूर्ण पृथिवी पर एकमात्र राजा युधिष्ठिर की ही सेना थी तथा **एकातपत्राम्** पद का अर्थ है सम्पूर्ण पृथिवी राजा युधिष्ठिर के श्वेतच्छत्र के तले प्रशासित होती थी ॥२०॥

तत्राथ शुश्राव सुहृद्विनष्टिं वनं यथा वेणुजवह्निसंश्रयम् ।
संस्पर्धया दग्धमथानुशोचन्सरस्वतीं प्रत्यगियाय तूष्णीम् ॥२१॥

अन्वयः— अथ तत्र वेणुजवह्नि संश्रयम् संस्पर्धया दग्धं वनं यथा सुहृदविनष्टिं शुश्राव अथ अनुशोचन् तुष्णीम् प्रत्यक् सरस्वतीम् इयाय ॥२१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् प्रभास क्षेत्र में ही जैसे अपनी ही रगड़ से उत्पन्न अग्नि के द्वारा बांसों का सम्पूर्ण वन जल जाता है, उसी तरह परस्पर के कलह के कारण विनष्ट हुए अपने कौरव बन्धुओं के विनाश का समाचार उन्होंने सुना। यह सुनकर शोक करते हुए विदुरजी चुपचाप सरस्वती नदी के तट पर आ गये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रभासे परस्परस्पर्धया निमित्तभूतया सुहृदां कौरवाणां विनष्टिं विनाशमशृणोत् । परस्परनाशे दृष्टान्तः-वेणुजं वह्निं संश्रयते यद्वनं तद्यथा दग्धं भवति तथा प्रत्यगुद्गमाभिमुखम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उस प्रभास क्षेत्र में ही विदुरजी ने परस्पर के कलह के कारण अपने कौरव बान्धवों के विनाश को सुना। परस्पर विनाश का उदाहरण देते हुए कहा गया है कि जिस तरह बाँसों के परस्पर रगड़ के कारण उत्पन्न अग्नि से जैसे बांसों का वन विनष्ट हो जाता है उसी तरह कौरवों का विनाश हो गया। यह सुनकर विदुरजी शोक संतप्त हो गये और वहाँ से वे चुपचाप सरस्वती नदी के उद्‌गम स्थान के प्रवाहाभिमुख तट पर आ गये ॥२१॥

तस्यां त्रितस्योशनसो मनोश्च पृथोरथाग्नेरसितस्य वायोः ।
तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥२२॥

अन्वयः— तस्यां त्रितस्य उशनसः मनोः च पृथोः, अथाग्नेः असितस्य वायोः, सुदासस्य, गवां, गुहस्य, श्राद्धदेवस्य च यत् तीर्थं स आसिषेवे ॥२२॥

अनुवाद— वहाँ पर त्रित, उशना, मनु, पृथु, अग्नि, असित, वायु, सुदास, गौ, गुह तथा श्राद्धदेव के नाम से विद्यमान ग्यारह तीर्थों का उन्होंने सेवन किया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

त्रितादीनामेकादशतीर्थानि तत्तन्नाम्ना प्रसिद्धान्यासेवितवान् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

वहाँ पर विदुरजी ने त्रित आदि के नाम से विख्यात तथा वहाँ पर विद्यमान ग्यारह तीर्थों का उन्होंने सेवन किया ॥२२॥

अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः कृतानि नानायतनानि विष्णोः ।
प्रत्यङ्गमुख्याङ्कितमन्दिराणि यद्दर्शनात्कृष्णमनुस्मरन्ति ॥२३॥

अन्वयः— इह अन्यानि च द्विजदेवदेवैः कृतानि विष्णोः नानायतनानि प्रत्यङ्गमुख्यांकित मन्दिराणि, यद् दर्शनात् कृष्णमनुस्मरन्ति, तानि सिषेवे ॥२३॥

अनुवाद— इस पृथिवी पर ब्राह्मणों तथा देवताओं द्वारा निर्मित भगवान् विष्णु के अनेक मन्दिरों का, जिन मन्दिरों के प्रत्येक अङ्ग पर भगवान् श्रीकृष्ण के मुख्य आयुध चक्र का चिह्न है, जिसको देखने से ही भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण हो जाता है, उन मन्दिरों का भी उन्होंने सेवन किया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

द्विजदेवैर्ऋषिभिर्देवैश्च कृतानि अङ्गमङ्गं प्रति वर्तन्ते इति प्रत्यङ्गान्यायुधानि तेषु मुख्यं चक्रं तेनाङ्कितानि मूर्धन्यहेमकुम्भेषु चिह्नितानि मन्दिराणि येषु तानि नानाविधानि विष्णोरायतनानि क्षेत्राणि तीर्थानि चासिषेवे । येषां चक्राङ्कितमन्दिरवतां दर्शनाच्छ्रीकृष्णस्मरणं भवति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

द्विजदेवों अर्थात् ऋषियों और देवताओं द्वारा निर्मित मन्दिरों जिन मन्दिरों के प्रत्येक अङ्गों में भगवान् के मुख्य आयुध चक्र जिनके शिखर पर विद्यमान सुवर्णकलशों पर चिह्नित हैं तथा अनेक प्रकार के भगवान् विष्णु के मन्दिरों का क्षेत्रों तथा तीर्थों का विदुरजी ने सेवन किया । जिन तीर्थों के चक्र चिह्नित मन्दिरों को देखने मात्र से भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण हो जाता है, उन मन्दिरों का विदुरजी ने सेवन किया ।।२३।।

ततस्त्वतिव्रज्य सुराष्ट्रमृद्धं सौवीरमत्स्यान्कुरुजाङ्गलांश्च ।
कालेन तावद्यमुनामुपेत्य तत्रोद्धवं भागवतं ददर्श ।।२४।।

अन्वयः— ततः तु ऋद्धं सुराष्ट्रम्, सौवीरम्, मत्स्यान् कुरुजाङ्गलान् च कालेन अतिव्रज्य यमुनाम् उपेत्य तत्र भागवतं उद्धवं ददर्श ।।२४।।

अनुवाद— वहाँ से समृद्ध सुराष्ट्र, सौवीर, मत्स्य, कुरुजाङ्गल, प्रदेशों को पार करके जब यमुना के तट पर आये तो विदुरजी ने वहाँ पर महाभागवत उद्धवजी को देखा ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

अतिव्रज्यातिक्रम्य । यावदुद्धवः प्राप्तस्तावत्स्वयमपि यमुनामुपेत्य ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

मूल के अतिव्रज्य का अर्थ है पार करके । सुराष्ट्र आदि प्रदेशों को पार करके जब तक यमुना तट पर उद्धवजी आये तब तक विदुरजी भी वहाँ आ गये ।।२४।।

स वासुदेवानुचरं प्रशान्तं बृहस्पतेः प्राक्तनयं प्रतीतम् ।
आलिङ्ग्य गाढं प्रणयेन भद्रं स्वानामपृच्छद्भगवत्प्रजानाम् ।।२५।।

अन्वयः— वासुदेवानुचरम् प्रशान्तम् बृहस्पतिः पाक्तनयं प्रतीतम् उद्धवम् प्रणयेन आलिङ्ग्य स्वानाम् भगवत् प्रजानाम् भद्रम् अपृच्छत् ।।२५।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के प्रख्यात अनुचर तथा शान्त स्वभाव वाले बृहस्पति के प्राचीन शिष्य रूप से प्रख्यात उद्धवजी का प्रेम पूर्वक गाढालिङ्गन करके विदुरजी ने अपने आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण की प्रजाओंका समाचार पूछा ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

स विदुरः । प्राक्तनयं पूर्वशिष्यं नीति शास्त्रे । पाठान्तरे प्राप्तो नयो नीतिशास्त्रं येन तम् । प्रतीतं प्रख्यातम् । स्वानां ज्ञातीनां भद्रमपृच्छत् । प्रश्ने हेतुः-भगवतः प्रजानां पोष्याणाम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी आचार्य बृहस्पति के प्राचीन शिष्य थे, वे भगवान् श्रीकृष्ण के प्रख्यात अनुचर और शान्त स्वभाव वाले थे । जहाँ पर प्राप्तनयं पाठ है, वहाँ पर अर्थ होगा नीतिशास्त्र के ज्ञाता उद्धवजी का, विदुरजी ने प्रेम पूर्वक

गाढालिङ्गन किया, और उनसे अपने दायादों पाण्डवों का समाचार पूछा । उनका समाचार पूछने का कारण था कि वे भगवान् के पाल्य थे ॥२५॥

कच्चित्पुराणौ पुरुषौ स्वनाभ्यपाद्मानुवृत्त्येह किलावतीर्णौ ।
आसात उर्व्याः कुशलं विधाय कृतक्षणौ कुशलं शूरगेहे ॥२६॥

अन्वयः— स्वनाभ्य पाद्मानुवृत्या इह किल अवतीर्णौ पुराणौ पुरुषौ ऊर्व्याः कुशलं विधाय कृतक्षणौ कच्चित शूरगेहे कुशलं आसाते ॥२६॥

अनुवाद— अपने नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्माजी की प्रार्थना से इस लोक में अवतीर्ण, पुराण पुरुष श्रीबलरामजी और श्रीकृष्णजी पृथिवी के भार को उतारकर पृथिवी को सुखमय बनाकर शूरसेन के गृह में कुशल पूर्वक तो हैं न ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

प्रथमं तावद्रामकृष्णयोः कुशलं पृच्छति । कच्चिदिति प्रश्ने । स्वनाभौ भवः स्वनाभ्यः पाद्मो ब्रह्मा तस्यानुवृत्त्या प्रार्थनयेहावतीर्णौ कुशलमासाते वर्तते । कृतक्षणौ दत्तावसरौ सर्वेषां कृतोत्सवाविति वा । तयोर्नित्यकुशलत्वेऽप्युक्तविशेषणविशिष्टौ शूरसेनस्य गृहे कच्चिदासाते इति प्रश्नः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी सर्वप्रथम श्रीबलरामजी और श्रीकृष्ण भगवान् का कुशल इस श्लोक के द्वारा पूछते हैं । कच्चित् शब्द प्रश्न के अर्थ में प्रयुक्त है । भगवान् की अपनी नाभि से उत्पन्न होने के कारण स्वनाभ्य शब्द से कमल को कहा गया है, उस कमल से उत्पन्न होने के कारण ब्रह्माजी पाद्म शब्द से कहे गये हैं । उनकी ही प्रर्थना से प्रसन्न होकर भगवान् इस लोक में श्रीबलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् के रूप में अवतीर्ण हुए है ं वे दोनों पुराण पुरुष परमात्मा ही हैं । वे दोनों कुशल पूर्वक हैं न । **कृतक्षणौ** का अर्थ है कि भगवान् ने पृथिवी के भार को उतार कर सबों को उत्सव मनाने का अवसर प्रदान किया है । यद्यपि उन दोनों का सदा कुशल रहता है फिर भी वे दोनों जो उपर्युक्त विशेषण से विशिष्ट हैं, वे शूरसेन के गृह में सुख पूर्वक हैं, न इस तरह से विदुरजी ने उद्धवजी से प्रश्न किया ?॥२६॥

कच्चित्कुरूणां परमः सुहृन्नो भामः स आस्ते सुखमङ्ग शौरिः ।
यो वै स्वसृणां पितृवद्ददाति वरान्वदान्यो वरतर्पणेन ॥२७॥

अन्वयः— हे अङ्ग नः ! कुरूणां परमः सुहृत् भामः शौरिः कच्चित् सुखम् आस्ते । यो वै वदान्यः स्वसृणां वरान् वरतर्पणेन पितृवद् ददाति ॥२७॥

अनुवाद— हे प्रियवर ! हम कुरुवंशियों के परम सुहृत् पूज्य वसुदेवजी जो अपने पिता के समान उदारता पूर्वक कुन्ती आदि अपनी वहिनों को और उनके स्वामियों का सन्तोष कराते हुए उनकी सभी मन चाही वस्तुओं को देते हैं वे तो आनन्द पूर्वक हैं न ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

यदूनां कुशलं पृच्छति नवभिः । भामः पूज्यः । शौरिर्वसुदेवः । यद्वा भामो भगिनीभर्ता । कुन्ती वसुदेवस्य भगिनी अतो देवकी पाण्डोर्भगिनीति लोकव्यवहारः । वरानर्थान् । वदान्योऽत्युदारः । वराणां तत्पतीनां तर्पणेन संतर्पणेन सह ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

अब विदुरजी नव श्लोकों से यदुवंशियों का कुशल पूछते हैं । भाम शब्द पूज्य का वाचक है अथवा भाम शब्द से बहनोई बहिन के पति को भी भाम कहते हैं । इस श्लोक में विदुरजी कहते हैं कि पूज्य वसुदेवजी कुशल पूर्वक हैं न । वसुदेवजी की बहन कुन्ती हैं । अतएव देवकी पाण्डु की बहन हैं । यह लोक में माना जाता है। विदुरजी कहते हैं कि वसुदेवजी अपने पिता के ही समान अपनी बहिनों के समान उनके पतियों को भी उदारता पूर्वक वस्तुओं को प्रदान करते हैं ॥२७॥

कच्चिद्वरूथाधिपतिर्यदूनां प्रद्युम्न आस्ते सुखमङ्ग वीरः ।
यं रुक्मिणी भगवतोऽभिलेभे आराध्य विप्रान्स्मरमादिसर्गे ॥२८॥

अन्वयः— अङ्ग ! यदूनां बरूथधिपतिः वीरः प्रद्युम्नः कच्चित् सुखमास्ते यः आदि सर्गे कामः आसीत् विप्रान् आराध्य रुक्मिणी यं भगवतः अभिलेभे ॥२८॥

अनुवाद— प्रियवर उद्धवजी ! यादवों के सेनापति वीर प्रद्युम्न तो सुख पूर्वक हैं न जो पूर्वजन्म में कामदेव थे । ब्राह्मणों की आराधना करके जिनको देवी रुक्मिणी ने श्रीभगवान् से पुत्र रूप में प्राप्त किया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

वरूथाधिपतिः सेनानीः । आदिसर्गे पूर्वजन्मनि स्मरं कामं संतमभिलेभे पुत्रं लब्धवती ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

बरूथाधिपति सेनापति को कहते हैं । प्रद्युम्नजी पूर्व जन्म में कामदेव थे । ब्राह्मणों की अराधना करके रुक्मिणीजी ने श्रीकृष्ण भगवान् से पुत्र के रूप में उनको प्राप्त किया था ॥२८॥

कच्चित्सुखं सात्वतवृष्णिभोजदाशार्हकाणामधिपः स आस्ते ।
यमभ्यषिञ्चच्छतपत्रनेत्रो नृपासनाशां परिहृत्य दूरात् ॥२९॥

अन्वयः— सात्वतवृष्णिभोजदाशार्हकाणाम् अधिपतिः (उग्रसेनः) कच्चित् सुखमास्ते । सः नृपासनाशां दूरतः परिहृत्य (स्थित आसीत्) यम शतपत्रनेत्रः अभ्यषिञ्चत् ॥२९॥

अनुवाद— सात्वत वृष्णि, भोज तथा दाशार्हवंशी यादवों के स्वामी उग्रसेन जी तो सुख पूर्वक हैं न । वे प्राणभय के कारण सिंहासन की आशा का पूर्ण रूप से परित्याग कर दिये थे । उनको कमल के समान नेत्र वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने राजसिंहासन पर बैठाया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

सात्वतादीनामधिप उग्रसेनः । शतपत्रनेत्रः श्रीकृष्णः । नृपासनाशां राज्याभिलाषं परिहृत्य प्राणभयेन दूरात्स्थितमित्यर्थः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

सात्वतवंशी आदि यादवों के स्वमी उग्रसेन तो प्राणभय के कारण राजसिंहासन की आशा का विल्कुल त्याग कर दिए थे । किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने उनको राजसिंहासन पर बैठाया ॥२९॥

कच्चिद्धरे सौम्य सुतः सदृक्ष आस्तेऽग्रणी रथिनां साधु साम्बः ।
असूत यं जाम्बवती व्रताढ्या देवं गृहं योऽम्बिकया धृतोऽग्रे ॥३०॥

अन्वयः— हे सौम्य हरेः सदृक्षः सुतः रथिनाम् अग्रणी साम्बः कच्चित् साधु आस्ते यः अग्रे अम्बिकया धृतः यं गुहं देवं ब्रताढ्या जाम्बवती यं असूत ॥३०॥

अनुवाद— हे सौम्य उद्धवजी ! श्रीहरि के ही समान उनके पुत्र तथा रथियों में अग्रगण्य साम्ब तो सुख पूर्वक हैं न । जिनको पूर्व जन्म में पार्वतीजी ने अपने गर्भ में धारण किया था, उन कार्तिकेय की आराधना करके अनेक व्रतों को करने वाली जाम्बवती देवी ने पुत्र के रूप में जन्म दिया ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

हे सौम्य ! हरेः सुतस्तेन सदृक्षः सदृशः साधु सुखमास्ते । गुहं स्वामिकार्तिकेयम् । अग्रे पूर्वजन्मनि यो भवान्या गर्भे धृतस्तम् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

हे सौम्य ! उद्धव जी श्रीहरि के पुत्र और उनके समान साम्ब सुख पूर्वक तो हैं । पूर्वजन्म में ये कार्तिकेय थे । इनको पार्वतीजी ने अपने गर्भ में धारण किया था । उनकी ही आराधना करके जाम्बवती देवी ने उनको अपने पुत्र के रूप में जन्म दिया था ।।३०।।

क्षेमं स कच्चिद्युयुधान आस्ते यः फाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः ।
लेभेऽञ्जसाऽधोक्षजसेवयैव गतिं तदीयां यतिभिर्दुरापाम् ।।३१।।

अन्वयः— सः युयुधानः कच्चित् क्षेमं आस्ते यः फाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः यः अधोक्षज सेवयैव अञ्जसा यतिभिर्दुरापां तदीयां गतिं लेभे ।।३१।।

अनुवाद— वे युयुधान (सात्यकि) सुख पूर्वक तो हैं न जिन्होंने अर्जुन से धनुर्विद्या की शिक्षा को प्राप्त किया । जो भगवान् श्रीकृष्ण की ही आराधना करके अनायास ही उस महान स्थिति पर पहुंच गये जो योगियों के भी लिए दुर्लभ है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

युयुधानः सात्यकिः । क्षेमं कुशलमास्ते । फाल्गुनादर्जुनाल्लब्धं धनुषो रहस्यं येन । तदीयामधोक्षजसंवन्धिनीम् ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

युयुधान का ही नाम सात्यकि है । वे अर्जुन से धनुर्विद्या के रहस्य को सीखे थे । वे भगवान् की सेवा करके योगियों के लिए भी दुष्प्राप्य महान् गति को प्राप्त किये थे वे सात्यकि सुख पूर्वक हैं न ।।३१।।

कच्चिद्बुधः स्वस्त्यनमीव आस्ते श्वफल्कपुत्रो भगवत्प्रपन्नः ।
यः कृष्णपादाङ्कितमार्गपांसुष्वचेष्टत प्रेमविभिन्नधैर्यः ।।३२।।

अन्वयः— भगवत्प्रपन्नः श्वफल्कपुत्रः बुधः अनमीव कच्चित् स्वस्ति आस्ते, यः कृष्ण पादाङ्कित मार्गपांसुषु प्रेमविभिन्न धैर्यः अचेष्टत ।।३२।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के शरणागत श्वफल्क के पुत्र विद्वान् अक्रूरजी निरोग तथा कुशली तो हैं न प्रेमातिरेक के कारण जिनका धैर्य टूट गया था और भगवान् के चरण चिह्नों से युक्त मार्ग की धूलि में जो लोटने लग गये थे ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

श्वफल्कपुत्रोऽक्रूरः । बुधो विद्वान् । अतो भगवन्तं प्रपन्नोऽनुसृतः । अत एवानमीवो निष्पापः । भक्तौ लिङ्गम् । योऽचेष्टत व्यलुण्त् । प्रेम्णा विभिन्न विभिन्नंधैर्यं यस्य सः । अस्ति क्षेममास्ते ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

अक्रूरजी के पिता का नाम श्वफल्क था । वे विद्वान और श्रीभगवान् के शरणागत होने के कारण अनमीवा अर्थात् निष्पाप थे । भगवान् श्रीकृष्ण में प्रेमातिरेक होने के कारण उनका धैर्य टूट गया और वे भगवान् श्रीकृष्ण के चरण चिह्नों से युक्त मार्ग की धूलि में लोटने लगे थे । वे कल्याण पूर्वक हैं न ॥३२॥

कच्चिच्छिवं देवकभोजपुत्र्या विष्णुप्रजाया इव देवमातुः ।
या वै स्वगर्भेण दधार देवं त्रयी यथा यज्ञवितानमर्थम् ॥३३॥

अन्वयः— देवमातुः इव विष्णुप्रजायाः देवकभोजपुत्र्याः कच्चित् शिवम् या वै यज्ञवितानमर्थम् त्रयी यथा देवं स्वगर्भेण दधार ॥३३॥

अनुवाद— देवताओं की माता अदिति देवी के समान देवकभोज की पुत्री जिनके पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण ही बन गये वे देवकी जी सुख पूर्वक हैं न । जिस तरह त्रयी अपने मन्त्रों में यज्ञ विस्तार रूप अर्थ को धारण करती हैं, उसी तरह देवकीजी ने भी भगवान् श्रीकृष्ण को अपने गर्भ में धारण किया था ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

देवकनामा यो भोजस्तस्य पुत्र्या देवक्याः । विष्णुः प्रजा पुत्रो यस्यास्तस्याः देवमातुरदितेरिव । कच्चिच्छिवम् । यज्ञवितानरूपमर्थं त्रयी यथा प्रकाशकतया बिभर्ति तथा दधार ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

देवक नामक जो भोजवंशी थे उनकी पुत्री देवकीजी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण उसी तरह से हैं जिस तरह देवताओं की माता अदिति के पुत्र भगवान् विष्णु हैं । वे तो सुख पूर्वक हैं न ? जिस तरह यज्ञ विस्तार रूपी अर्थ के प्रकाशक मन्त्रों को त्रयी धारण करती है, उसी तरह देवकीजी ने भगवान् श्रीकृष्ण को अपने गर्भ में धारण किया ॥३३॥

अपिस्विदास्ते भगवान्सुखं वो यः सात्वतां कामदुघोऽनिरुद्धः ।
यमामनन्ति स्म ह शब्दयोनिं मनोमयं सत्त्वतुरीयतत्त्वम् ॥३४॥

अन्वयः— वः सात्वतां यः कामदुघः भगवान् अनिरुद्धः अपिस्वित् सुखं आस्ते यं शब्दयोनिम् मनोमयम् सत्त्वतुरीय तत्त्वम् आमनन्ति ॥३४॥

अनुवाद— आप भक्तजनों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् अनिरुद्ध तो सुख पूर्वक हैं ? जिनको शास्त्रों के कारण स्वरूप और अन्तःकरण के चतुर्थ अंश मन के अधिष्ठाता बतलाया गया है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

सात्वतानामुपासकानां कामान् दोग्धि पूरयतीति कामदुघः । भगवत्त्वे हेतुः-यं शब्दस्य शास्त्रस्य योनिं कारणमामनन्ति वेदाः । कुतः । मनोमयं मनसः प्रवर्तकम् । तत्कुतः । सत्त्वस्यान्तःकरणस्य चतुर्विधस्य तुरीयं तत्त्वं चतुर्थमधिदैवम् । चित्ताहंकारबुद्धिमनसामन्तःकरणभेदानां क्रमेण वासुदेवसंकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धा ह्यधिष्ठातारः । मनसश्च शब्दयोनित्वं प्रसिद्धम् । **'मनः पूर्वरूपं । वागुत्तररूपम्'** इति । तथा **अन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः'** इति प्रस्तुत्य **'तस्य यजुरेव शिरः । ऋग्दक्षिणः पक्षः । सामोत्तरः पक्षः'** इत्यादिश्रुतेः । तथाच शिक्षायाम् **'आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया । मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् । मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम्'** इत्यादि ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

अपने उपासकों की कामनाओं को पूर्ण करने के कारण अनिरुद्धजी कामदुघ हैं । वे भगवान् हैं । वेद उनको

शास्त्र का योनि अर्थात् कारण बतलाते हैं क्योंकि वे मन के प्रवर्तक है । वह भी इसलिए कि चित्त, अहङ्कार, बुद्धि और मन ये जो अन्त:कारण के चार अंश हैं, उनमें चतुर्थ अंश मन के वे अधिष्ठातृ देवता हैं । अन्त:करण के चार भेद हैं- चित्त अहङ्कार बुद्धि और मन । इन चारों के अधिष्ठातृ देवता क्रमश: वासुदेव सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं । मन का शास्त्रयोनित्व प्रधान है । तैत्तिरीय श्रुति कहती है **मन: पूर्वरूपम् वागुत्तर रूपम् ।** अर्थात् मन ही पूर्वरूप है, वाणी उत्तर रूप है । इसीतरह यह भी कहा गया हैं- अन्योन्तर आत्मा मनोमय है । अर्थात् उस प्राणमय से भिन्न उसके भीतर रहने वाली आत्मा मनोमय है । इस तरह से वर्णन करके यह भी कहा गया है । उस मनोमय ब्रह्म का यजुर्वेद ही शिर है, सामवेद ही उसका उत्तरपक्ष है । इन श्रुतियों से मन का शास्त्रयोनित्व सिद्ध होता है ।

शिक्षाबल्ली में भी कहा गया है— आत्मा बुद्धि से विषयों को प्राप्त करके रोकने की इच्छा से मन से संयुक्त हो जाता है । मन शरीराग्नि को प्रेरित करता है और अग्नि वायु को प्रेरित करता हैं । वायु भी हृदय प्रदेश में सञ्चरण करते हुए गम्भीर ध्वनि को उत्पन्न करता है ॥३४॥

अपिस्विदन्ये च निजात्मदैवमनन्यवृत्त्या समनुव्रता ये ।
हृदीकसत्यात्मजचारुदेष्णगदादय: स्वस्ति चरन्ति सौम्य ॥३५॥

अन्वय:— हे सौम्य ! अन्ये च निजात्मदैवम् अनन्यवृत्या समनुव्रता: ये हृदीक सत्यात्मज चारुदोष्ण गदादय: अपि स्वस्ति चरन्ति ॥३५॥

अनुवाद— हे सौम्य ! स्वभाव वाले उद्धवजी जो अपने हृदयेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण का अनन्यभाव से अनुसरण करते हैं वे सत्यभामाजी के पुत्र पुत्र हृदीक, चारुदेष्ण और गद आदि तो सुखपूर्वक रहते हैं न ?॥३५॥

भावार्थ दीपिका

अपिस्वित्किंस्वित् अन्ये च स्वस्ति चरन्ति । निजस्य देहादिव्यतिरिक्तस्यात्मनो दैवं श्रीकृष्णमनन्यवृत्त्यैकान्तभक्तिभावेन ये सम्यगनुव्रता: अनुसृता: । हृदीकश्च सत्यभामाया आत्मजश्च चारुदेष्णश्च गदश्चादिर्येषां तेऽपि ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

क्या दूसरे लोग जो हैं, वे तो कल्याण प्राप्त हैं न, जो अपने शरीर से भिन्न अपने हृदय के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण का ऐकान्तिक भक्ति भावना पूर्वक अनुसरण करते हैं, वे हृदीक सत्यभामाजी के पुत्र चारुदेष्ण, तथा गद आदि हैं, वे तो सुख पूर्वक हैं न ॥३५॥

अपि स्वदोर्भ्यां विजयाच्युताभ्यां धर्मेण धर्म परिपाति सेतुम् ।
दुर्योधनोऽतप्यत यत्सभायां साम्राज्यलक्ष्म्या विजयानुवृत्त्या ॥३६॥

अन्वय:— अपि स्वदोर्भ्यां विजयाच्युताभ्यां धर्म: धर्मेण सेतुम् परिपाति । यत्सभायां विनयानुवृत्या साम्राज्यलक्ष्म्या दुर्योधन अतप्यत ॥३६॥

अनुवाद— अपनी अर्जुन तथा श्रीकृष्ण रूपी दोनों भुजाओं के द्वारा धर्मराज युधिष्ठिर न्यायपूर्वक धर्म की मर्यादा का पालन करते हैं न । मयदानवनिर्मित सभा में इनकी साम्राज्य लक्ष्मी और प्रभाव को देखकर दुर्योधन अत्यन्त संतप्त होता था ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं कुरून् पृच्छति षड्भि: । अपि किम् । स्वदोर्भ्यां स्वबाहुवद्वर्तमानाभ्यां विजयाच्युताभ्यामर्जुनकृष्णाभ्यां धर्ममार्गेण धर्मो युधिष्ठिर: सेतुं धर्ममर्यादां परिपाति । यस्य सभायां विजयानुवृत्त्या जयपरम्परया, अर्जुनस्य सेवयेति वा । एवंभूतं यस्यैश्वर्यमित्यर्थ: ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

अब विदुरजी छह श्लोकों के द्वारा कुरुवंशियों के विषय में पूछते हैं। क्या अपनी दोनों भुजाओं के समान रहने वाले अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर धर्म की मर्यादा का पालन करते हैं ? जिन युधिष्ठिर की मयनिर्मित सभा में युधिष्ठिर की विजय की परम्परा अथवा अर्जुन की सेवा को देखकर दुर्योधन अत्यन्त दुःखी हुआ था। इस प्रकार का युधिष्ठिर का ऐश्वर्य था ॥३६॥

किं वा कृताघेष्वघमत्यमर्षी भीमोऽहिवद्दीर्घतमं व्यमुञ्चत् ।
यस्याङ्घ्रिपातं रणभूर्न सेहे मार्गं गदायाश्चरतो विचित्रम् ॥३७॥

अन्वयः— किं वा कृताघेषु दीर्घतमं अहिवद् अत्यमर्षी भीमः व्यमुञ्चत्। यस्य विचित्रं गदायाः मार्गं चरतः रणभूः न सेहे ॥३७॥

अनुवाद— क्या अपराधियों के अपराध को बहुत दिनों तक चिन्तन करके सूर्य के समान उसको नहीं वर्दास्त करके भयङ्कर सर्प के समान क्रोध करने वाले भीम अपने क्रोध को छोड़ दिये हैं क्या, युद्ध के मैदान में गदायुद्ध के विचित्र प्रकार की पैंतरा चलने वाले, जिन भीम के पैरों की धमक से पृथिवी काँपने लगती थी ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

कृताघेषु कृतापराधेषु कुरुषु स्वकर्तृकमघं दीर्घतमं बहुकालानुचिन्तितमहिवदत्यमर्षी भीमः किं व्यमुञ्चन्नो वा। गदाया विचित्रं विविधं चरतः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

पापी दुर्योधन आदि के द्वारा अपने विषय में किए गये अपराधों का दीर्घकाल तक चिन्तन करने के कारण क्रुद्ध सर्प के समान अपराधों को नहीं सहने वाले भीम ने क्रोध करना त्याग दिया है क्या ? जिस भीम के अद्भुत प्रकार के गदा युद्ध के पैंतरा चलते समय उनके पैरों की धमक को पृथिवी नहीं वर्दास्त कर पाती थी ?॥३७॥

कच्चिद्यशोधा रथयूथपानां गाण्डीधन्वोपरतारिरास्ते ।
अलक्षितो यच्छरकूटगूढो मायाकिरातो गिरिशस्तुतोष ॥३८॥

अन्वयः— रथयूथपानां यशोधा गाण्डीवधन्वा कच्चित् उपरतारिः आस्ते ? यच्छरकूटगूढः माया किरातः अलक्षितः गारिशः तुतोष ॥३८॥

अनुवाद— रथियों और यूथपतियों के यश को बढ़ाने वाले गाण्डीव नामक धनुष को धारण करने वाले जिन अर्जुन के शत्रु शान्त हो गये होंगे वे अर्जुन सुख पूर्वक हैं न ? जिन अर्जुन के बाण समूह से ढँककर माया पूर्वक किरात का रूप धारण करने वाले शङ्करजी प्रसन्न हो गये थे ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

रथयूथपानां मध्ये यशोधाः कीर्तिधारी। यद्वा स्वीयानां तेषां कीर्तिप्रदः। उपरता अरयो यस्मात्। यस्य शरकूटेन बाणसमूहेन गूढ आच्छन्नः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

रथों के यूथपतियों में यश धारण करने वाले अथवा अपने लोगों को यश प्रदान करने वाले। अर्जुन। तथा जिनके शत्रुगण मर चुके हैं ऐसे अर्जुन माया के द्वारा किरात बने हुए भगवान् शङ्कर जिनके बाण समूह से ढँक गये और अर्जुन से संतुष्ट हो गये ऐसे अर्जुन तो सुख पूर्वक हैं न ?॥३८॥

यमावुतस्वित्तनयौ पृथायाः पार्थैर्वृता पक्ष्मभिरक्षिणीव ।
रेमात उद्दाय मृधे स्वरिक्थं परात्सुपर्णाविव वज्रिवक्रात् ॥३९॥

अन्वयः— उतस्वित् पृथायाः यमौ तनयौ पक्ष्मभिरक्षिणीम् पार्थैः वृतौ, वज्रिवक्त्रात् सुपर्णाविव मृधे परात् स्वरिक्थं उद्दायं रेमाते ॥३९॥

अनुवाद— क्या माद्री के दोनों पुत्र नकुल और सहदेव जिनकी रक्षा पृथा के पुत्र उसी तरह से करते हैं जिस तरह दोनों आँखों की रक्षा पपनियाँ (पलकें) करती हैं, वे युद्ध में अपने शत्रु से उसी तरह से अपने राज्य को छिन लिए होंगे जिस तरह से इन्द्र के मुख से अपने रिक्थ अमृत को गरुड़ छिन लिए थे । वे दोनों कुशली हैं न ?॥३९॥

भावार्थ दीपिका

उतस्वित्किंस्वित् । यमौ नकुलसहदेवौ । रेमाते क्रीडाते इत्यर्थः । माद्र्याः सुतावपि पृथायास्तनयौ पृथायाः पुत्रैर्वृतौ सुपर्णाविव रेमाते । किं कृत्वा । परात् दुर्योधनात्स्वरिक्थं स्वीय राज्यमुद्दायाच्छिद्य । वज्रिवक्त्रदिद्रस्य मुखात्स्वरिक्थममृतं गरुड इवेति । यद्वा सुपर्णाविवेति । यदि द्वौ गरुडावमृतमानयेतां तर्हि तद्वत् । अक्षिणीवेति मणीवादिगणत्वात्सन्धिः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

क्या जुड़वे भाई नकुल सहदेव प्रसन्नता पूर्वक क्रीडा करते हैं न ? यद्यपि ये दोनों माद्री के पुत्र थे फिर भी पृथा के ही ये पुत्र हैं, क्योंकि कुन्ती ने ही इन दोनों का पालन पोषण किया था । वे कुन्ती के पुत्रों युधिष्ठिर आदि से रक्षित होकर दो गरुड़ों के समान आनन्दपूर्वक होंगे । वे अपने शत्रु दुर्योधन से अपना राज्य छिन लिए होंगे । ये उस तरह से अपने राज्य को ले लिए होंगे जिस तरह से इन्द्र के मुख से गरुड़ ने अमृत ले लिया था । जिस तरह से दो गरुड मिलकर अमृत को लायें उसी तरह अक्षिणीव में मणीवादि गण होने के कारण सन्धि हुयी है ॥३९॥

अहो पृथापि ध्रियतेऽर्भकार्थे राजर्षिवर्येण विनापि तेन ।
यस्त्वेकवीरोऽधिरथो विजिग्ये धनुर्द्वितीयः ककुभश्चतस्रः ॥४०॥

अन्वयः— अहो तेन राजर्षिवर्येण विनाऽपि अर्भकार्थे पृथाऽपि ध्रियते यस्तु एकवीरः अधिरथः धनुर्द्वितीयः चतस्रः ककुभः विजिग्ये ॥४०॥

अनुवाद— आश्चर्य है कि प्रख्यात वीर राजर्षि पाण्डु के बिना भी पृथा अपने पुत्रों का पालन करने के लिए जीवित है । वे रथियों में श्रेष्ठ पाण्डु प्रख्यात वीर थे उन्होंने अपने धनुष के ही सहारे चारो दिशाओं को जित लिया था ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

पृथायाः किं नु कुशलं पृच्छेयम् । यतस्तस्याः पाण्डुना बिना प्राणधारणमेवाश्चर्यमित्याह- अहो इति । ध्रियते जीवति। न चात्याश्चर्यम् । यतोऽर्भकार्थे ध्रियते न भोगार्थम् । तथापि त्वाश्चर्यमेवेत्याह । तेन तथाभूतेन बिना । तदेवाह-यस्त्विति । धनुरेव द्वितीयं सहायो यस्य ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि मैं कुन्ती के विषय में क्या पूछूँ ? वह राजर्षि श्रेष्ठ पाण्डु के वियोग में मृतप्राय हो गयी थी । वह अपने प्राणों को धारण कर रही है, यही आश्चर्य है । वह अपने लिए नहीं अपितु अपने पुत्रों के लिए जी रही है, भोगों को भोगने के लिए नहीं । फिर भी तो आश्चर्य ही है । उस महावीर पाण्डु के बिना भी

उसका जीना आश्चर्य है पाण्डु केवल धनुष धारण करके धनुष के बल पर ही चारो दिशाओं को अपने वश में कर लिए थे ॥४०॥

सौम्यानुशोचे तमधः पतन्तं भ्रात्रे परेताय विदुद्रुहे यः ।
निर्यापितो येन सुहृत्स्वपुर्या अहं स्वपुत्रान्समनुव्रतेन ॥४१॥

अन्वयः— हे सौम्य अधः पतन्तं तम् अनुशोचे, यः परेताय विदुद्रुहे । स्वपुत्रान् समनुव्रतेन येन सुहृत् अहं स्वपुर्या निर्यापितः ॥४१॥

अनुवाद— हे सौम्य स्वभाव वाले उद्धवजी ! मुझे अधः पतन की ओर जाने वाले धृतराष्ट्र के विषय में चिन्ता होती है कि वे पाण्डवों के रूप में विद्यमान अपने मृतभाई पाण्डु से द्रोह करते है । साथ ही अपने पुत्रों से मिलकर अपने हितचिन्तक मुझको भी उन्होंने अपने नगर से निकलवा दिया ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

पृथा अर्भकार्थे जीवतीति युक्तमेवेत्याह । हे सौम्य, तं धृतराष्ट्रं जीवन्तमनुशोचामि । तत्किम् । अधःपतन्तम् । तत्र हेतुः-परेताय मृताय भ्रात्रे पाण्डवे तत्पुत्रद्रोहेण या विदुद्रुहे द्रोहं कृतवान् । किंच जीवतोऽपि भ्रातुर्ममापकृतवानित्याह । येन सुहृद्भ्राताऽहं स्वपुर्याः सकाशान्निर्यापितो विवासितः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

कुन्ती अपने पुत्रों के लिए जी रही हैं, यह तो उचित ही है । मैं उन जीवित रहने वाले धृतराष्ट्र के विषय में सोचता हूँ क्योंकि उनका अधःपतन हो रहा है । क्योंकि उन्होंने अपने मरे हुए तथा पाण्डवों के रूप में विद्यमान अपने भाई पाण्डु से उन्होंने द्रोह किया । उन्होंने अपने जीवन में ही अपने सुहृद भाई मेरा भी अपमान किया । मैं उनका हितकारी भाई था । मुझको उन्होंने अपने नगर से निकलवा दिया ॥४१॥

सोऽहं हरेर्मर्त्यविडम्बनेन दृशो नृणां चालयतो विधातुः ।
नान्यापलक्ष्यः पदवीं प्रसादाच्चरामि पश्यन् गतविस्मयोऽत्र ॥४२॥

अन्वयः— सोऽहं मर्त्यविडम्बनेन नृणां दृशः चालयतः विधातुः हरेः प्रसादात् पदवीं पश्यन् नान्योपलक्ष्यः गत विस्मयः अत्र चरामि ॥४२॥

अनुवाद— मैं तो जानता हूँ कि मानवी लीला करने वाले श्रीभगवान् ही मनुष्यों की बुद्धि को भ्रमित कर देते हैं । उन्हीं की कृपा से मैं सम्पूर्ण संसार में उनकी लीला का अनुभव करता हुआ बिना किसी खेद अथवा आश्चर्य के संचरण करता हूँ ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

अहो खलु विस्मयो जानतोऽपि तस्यैवं दुश्चेष्टितं, यतस्त्वं साधुरपि दुःखं प्रापितोऽसीत्यत आह । सोऽहं हरेः प्रसादात्तस्य पदवीं माहात्म्यं पश्यन्गतविस्मयोऽत्र भूतले नान्योपलक्ष्यो गूढः सन्सुखं विचरामि । कथंभूतस्य । मर्त्यविडम्बनेनैश्वर्याच्छादकेन मानुष्यानुकरणेन नृणां दृशश्चित्तवृत्तीश्चालयतो भ्रामयतः ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि यह तो बड़े आश्चर्य की बात है कि दुर्योधन की दुष्टता को जानने वाले धृतराष्ट्र ने आपको भी इस प्रकार से दुःख दिया है । तो ऐसी कोई बात नहीं है । मानवीय लीला करने वाले श्रीभगवान् ही मनुष्यों की चित्तवृत्ति को भ्रमित कर देते हैं । किन्तु मैं उन्हीं की कृपा से सर्वत्र उनके ही माहात्म्य का अनुभव करता हुआ ऐसे सुख पूर्वक छिपकर विचरण कर रहा हूँ कि कोई भी मुझको पहचान भी नहीं पाता है ॥४२॥

नूनं नृपाणां त्रिमदोत्पथानां महीं मुहुश्चालयतां चमूभिः ।
वधात्प्रपन्नार्तिजिहीर्षयेशोऽप्युपैक्षताघं भगवान्कुरूणाम् ॥४३॥

अन्वयः— नूनं चमूभिः मुहुः महीं चालयताम् त्रिमदोत्पथानां नृपाणा नृपाणां वधात् प्रपन्नार्तिजिहीर्षया ईशऽपि भगवान् कुरूणां अघं उपैक्षत ॥४३॥

अनुवाद— अपनी सेनाओं के द्वारा बार-बार पृथिवी को कँपा देने वाले भी धन, विद्या तथा अभिजन के मद से मदमत्त कुमार्गगामी राजाओं का वध करके अपने भक्तों के कष्ट को दूर करने की इच्छा वाले सम्पूर्ण जगत् के नियामक भी भगवान् कौरवों द्वारा किए जाने वाले अपराध को क्षमा करते रहे, यही हमको आश्चर्य है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

ननु हरेः किमेवं लीलया, येन स्वभक्तानां वनवासादिक्लेशा भवन्ति, स्वस्य च दौत्ये बन्धनोद्यमादिपराभवः, तद्वरं तेषामपराधानन्तरमेव हननं नापराधोपेक्षेत्यत आह । नूनं निश्चितं त्रिभिर्मदैरुत्पथानामुद्धत्तानां बधाद्धेतोः प्रपन्नानामार्तिजिहीर्षयेशोऽघसमय एव हन्तुं समर्थोऽपि कुरूणामघमुपैक्षत । तदानीमेव तेषां बधे सर्वदुष्टराजवधो न स्यादित्याशयेनेत्यर्थः । विद्यामदो धनमदस्तथैवाभिजनो मदः । एते मदा मदान्धानां त एव हि सतां दमाः । इति त्रयो मदाः ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि श्रीभगवान् की इस तरह की लीलाओं से कौन सा लाभ है ? जिसके कारण उनके भक्तों को भी वनवास आदि का क्लेश सहना पड़ा । भगवान् ने जब पाण्डवों के दूत का काम किया उस समय दुर्योधन ने उनको बन्धनगत करने का प्रयास करके उनका अपमान किया । इससे अच्छा यही था कि उन सबों के अपराध के पश्चात् ही दुष्ट कौरवों का वध कर देते । अपराधों की उपेक्षा करना तो ठीक नहीं है । इसका कारण यह है कि तीनों प्रकार के मद से मदमत्त कुमार्गगामी तथा उद्घत बने कौरवों का वध करके अपने शरणागतों के कष्ट को दूर कर देते । किन्तु कौरवों द्वारा किए जनें वाले पापों के ही समय कौरवों का वध कर देने में समर्थ भी भगवान् कौरवों के अपराधों को इसलिए सहते रहे कि वैसा करने से कौरवों का तो वध हो जाता है किन्तु सभी दुष्ट राजाओं का वध नहीं हो पाता । इसीलिए वे कौरवों के अपराधों को सहते रहे । तीन प्रकार के मदों को बतलाते हुए कहा भी गया है—

विद्यामदो धनमदास्तथैवाभिजनोमदः । एते मदा मदान्धानां त एव हि सतां दमः ॥

विद्या का मद, धन का मद तथा परिवार का मद इन तीनों; मदो से अन्धे बने रहने वालों के लिए सदा मद का कारण बने रहते हैं । किन्तु वे ही सत्पुरुषों के लिए सदा दम का कारण बने रहते है । इस तरह से तीन प्रकार के मद बतलाये गये हैं ॥४३॥

अजस्य जन्मोत्पथनाशनाय कर्माण्यकर्तुर्ग्रहणाय पुंसाम् ।
नन्वन्यथा कोऽर्हति देहयोगं परो गुणानामुत कर्मतन्त्रम् ॥४४॥

अन्वयः— अजस्य जन्म उत्पथनाशनाय, अकर्तुः कर्माणि पुसां ग्रहणाय । ननु अन्यथा परः गुणातीतः देहयोगम् कर्मतन्त्रम् वा कः अर्हति ॥४४॥

अनुवाद— हे उद्धवजी जन्म और कर्म से रहित होने पर भी श्रीभगवान् का जन्म दुष्टों का दमन करने के लिए होता है और वे जीवों को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए कर्मों को करते हैं । यदि ऐसी बात नहीं होती तो कोई भी गुणातीत व्यक्ति कर्मों के अधीन होने वाले शरीर के सम्बन्ध को क्यों धारण करता ?॥४४॥

भावार्थ दीपिका

सर्वदुर्वृत्तवधाद्यर्थमेव भगवतो जन्मकर्माणि नान्यथेति कैमुत्यन्यायेनाह । अजस्यापि जन्म, अकर्तुरपि कर्माणि पुंसां ग्रहणाय कर्मसु प्रवृत्तये । अन्यथा न चेदेवं तर्हि भगवतो जन्मादिकथा तावदास्ताम् । को वान्योऽपि गुणानां परो गुणातीतो देहयोगं कर्मविस्तारं वाऽर्हतीति ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में विदुरजी इस अर्थ का प्रतिपादन कैमुत्यन्याय से करते हैं कि श्रीभगवान् के जन्म और कर्म दुष्टों का दमन आदि कार्य करने के लिए होते है उसका कोई दूसरा प्रयोजन नहीं होता है । अजन्मा भी श्रीभगवान् के जन्म और अकर्ता भी श्रीभगवान् के कर्म अपने भक्त जीवों को अपनी ओर अकर्षित करने के लिए होते हैं। यदि ऐसी बात नही होती तो श्रीभगवान् की जन्मादि की कथा से क्या लाभ था ? गुणों से स्वभावत: परे, दूसरा भी कोई जीव देह के सम्बन्ध अथवा कर्मो के विस्तार को क्यों स्वीकार करेगा ।।४४।।

तस्य प्रपन्नाखिललोकपानामवस्थितानामनुशासने स्वे ।
अर्थाय जातस्य यदुष्वजस्य वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे विदुरोद्धव संवादे प्रथमोऽध्याय: ।।१।।

अन्वय:— हे सखे ! तस्य प्रपन्नाखिललोकपानाम् स्वेअनुशासने अवस्थितानाम् अर्थाय यदुषु जातस्य अजस्य तीर्थकीर्ते: वार्तां कीर्तय ।।४५।।

अनुवाद— हे मित्र ! अपने शरण में रहने वाले समस्त लोकपालों और समस्त भक्तों का प्रिय कार्य करने के लिए यदुवंश में जन्म लेने वाले अजन्मा श्रीभगवान् की ही पवित्रकारिणी कथा को आप मुझे सुनायें ।।४५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के विदुरोद्धवसंवाद के अन्तर्गत प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

भावार्थ दीपिका

तस्मादेवंभूताचिन्त्यमायाविनोदस्य कथां कथयेत्याह । तस्य प्रपन्ना येऽखिललोकपालास्तेषामन्येषां च स्वीयेऽनुशासने स्थितानामर्थाय प्रयोजनाय यदुषु जातस्य । तीर्थे संसारतारिणी कीर्तिर्यस्येति ।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्याय: ।।१।।

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि मित्र उद्धव ! इस तरह की अचिन्त्य माया के द्वारा विनोद करने वाले श्रीभगवान् की कथा आप मुझे सुनायें । उन श्रीभगवान् के शरण में ही सभी लोकपाल रहते हैं । उन सभी लोगपालों का तथा अपने दूसरे भक्तों का कल्याण करने के ही लिए श्रीभगवान् यदुवंश में जन्म ग्रहण किए हैं, उनकी कीर्ति पवित्र बना देने वाली है । उनकी ही कथा मुझे आप सुनायें ।।४५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका प्रथमाध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१।।

द्वितीय अध्याय

श्रीउद्धवजी द्वारा श्रीभगवान् की बाललीलाओं का वर्णन

श्रीशुक उवाच

इति भागवतः पृष्टः क्षत्रा वार्तां प्रियाश्रयाम् । प्रतिवक्तुं न चोत्सेह औत्कण्ठ्यात्स्मारितेश्वरः ॥१॥

अन्वयः— इति क्षत्रा प्रियाश्रयाम् वार्तां पृष्टः भागवतः औत्कण्ठयात् स्मारितेश्वरः प्रतिवक्तुं च न उत्सेहे ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से विदुरजी द्वारा महाभागवत उद्धवजी से उनके परम प्रिय श्रीकृष्ण भगवान् के विषय में पूछे जाने पर उत्कण्ठावशात् श्रीभगवान् की याद आ जाने से उद्धवजी उत्तर नहीं दे सके ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वितीये कृष्णविश्लेषादनुशोचन्नथोद्धवः । क्षत्रे बालचरित्राणि कृष्णस्यावर्णयच्छ्वसन् । तदेवं प्रियवार्तां पृष्टस्योद्धवस्य श्रीकृष्णविरहौत्कण्ठ्यावेशेन प्रतिवचनासामर्थ्यमाह षड्भिः इतीति । स्मारितः ईश्वरो यस्य ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण का विप्रयोग सोचते हुए उद्धवजी लम्बी श्वास लेते हुए विदुरजी को भगवान् श्रीकृष्ण के बाल चरित्रों को सुनाये ॥१॥

तदेवम्० इत्यादि- उस तरह से प्रियतम श्रीकृष्ण संबन्धी बातें पूछे जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण के विरह विषयक उत्कण्ठा के कारण उद्धवजी उनका उत्तर सहसा नहीं दे सके । इस बात को शुकदेवजी ने छह श्लोक में वर्णन किया है । **स्मारितेश्वरः** पद का विग्रह स्मारित ईश्वरो यस्य है ॥१॥

यः पञ्चहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः । तन्नैच्छद्रचयन्यस्य सपर्यां बाललीलया ॥२॥

अन्वयः— पञ्च हायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः बाललीलया यस्य सपर्यां रचयन् न ऐच्छत् ॥२॥

अनुवाद— पाँच वर्ष के बालक उद्धवजी को कलेवे के लिए जब उनकी माता बुलाती थीं तो बालक्रीडा में श्रीभगवान् की पूजा में मग्न होने के कारण वे कलेवा नहीं करना चाहते थे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव कैमुत्यन्यायेन प्रपञ्चयति-य इति द्वाभ्याम् । यः पञ्चवर्षोऽपि बाललीलयेति कृष्णं कंचित्परिकल्प्य कल्पितैरेव साधनैः परिचर्यां कुर्वन् प्रातर्भोजनार्थं मात्रा प्रार्थितोऽपि तद्भोजनं नैच्छत् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

प्रथम श्लोक के ही अर्थों को कैमुत्य न्याय से विस्तार पूर्वक **यः पञ्चहायनः इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा वर्णन करते हैं । **यः इत्यादि** जो उद्धवजी पाँच वर्ष की अवस्था में किसी को कृष्ण बनाकर अपने मनः कल्पित साधनों से पूजा करते हुए माता के द्वारा प्रातः भोजन (जलपान) करने के लिए प्रार्थना करने पर भी भगवान् की पूजा छोड़कर जलपान करना नहीं चाहते थे ॥२॥

स कथं सेवया तस्य काले न जरसं गतः । पृष्टो वार्तां प्रतिब्रूयाद्भर्तुः पादावनुस्मरन् ॥३॥

अन्वयः— तस्य सेवया कालेन जरसं गतः सः पृष्टः सन् भर्तुःपादावनुस्मरन् भर्तुः वार्तां पृष्टः कथं प्रति ब्रूयात् ॥३॥

अनुवाद— उन भगवान् श्रीकृष्ण की ही सेवा करते हुए उनकी जब वृद्धावस्था आ गयी थी वे पूछे जाने पर अपने स्वामी श्रीकृष्ण के चरणों की याद आ जाने के कारण अपने स्वामी विषयक उत्तर कैसे दे सकते थे ?॥३॥

भावार्थ दीपिका

जरसं वृद्धत्वं गतः प्राप्तः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की ही सेवा करते हुए उनकी वृद्धावस्था आ गयी थी। विदुरजी के द्वारा पूछे जाने पर उन्हें अपने स्वामी की याद आ गयी और उसके कारण वे विदुरजी का उत्तर सहसा नहीं दे सकें ।।३।।

स मुहूर्तमभूत्तूष्णीं कृष्णाङ्घ्रिसुधया भृशम् । तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधुनिर्वृतः ।।४।।

अन्वयः— कृष्णांघ्रिसुधया साधुनिर्वृतः तीव्रेण भक्तियोगेन भृशम् निमग्नः सः मुहूर्तम् तुष्णीम् अभूत् ।।४।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल की सुधा से सराबोर वे तीव्र भक्तियोग के कारण उसमें डूब कर आनन्दमग्न हो गये और एक मुहूर्त तक कुछ भी नहीं बोल सके ।।४।।

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णाङ्घ्रिसुधया साधु निर्वृतः । तस्यामेव तीव्रेण विवशत्वापादकेन भक्तियोगेन भृशं निमग्नश्च ।।४।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल की सुधा से पूर्ण रूप से सराबोर हो गये और तीव्र भक्तियोग के कारण वे उसी में मग्न भी हो कर डूब गये ।।४।।

पुलकोद्भिन्नसर्वाङ्गो मुञ्चन्मीलद्दृशा शुचः । पूर्णार्थो लक्षितस्तेन स्नेहप्रसरसंप्लुतः ।।५।।

अन्वयः— पुलकोद्भिन्न सर्वाङ्गः मीलद् दृशा शुचः मुञ्चन् स्नेह प्रसरसम्प्लुतः पूर्णार्थः तेन लक्षितः ।।५।।

अनुवाद— उद्धवजी के सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो आया था। उनकी मुंदी हुयी आँखों से शोकाश्रु प्रवाहित हो रहा था और प्रेम के प्रवाह में मग्न उद्धवजी को विदुरजी ने कृतकृत्य माना ।।५।।

भावार्थ दीपिका

पुलकैरुद्भिन्नान्युज्जृम्भितानि सर्वाण्यङ्गानि यस्य । मीलन्त्या दृशा शुचोऽश्रूणि मुञ्चन् । तेन विदुरेण पूर्णार्थः कृतार्थो लक्षितः । यतो भगवति यः स्नेहस्तस्य प्रसरः पूरस्तस्मिन्संप्लुतो निमग्नः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी के सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया था। उनकी आँखों से शोकाश्रु प्रवाहित हो रहा था। और श्रीभगवान् के प्रेम के प्रवाह में उद्धवजी मग्न हो गये थे। यह दशा देखकर विदुरजी ने उद्धवजी को कृतार्थ माना ।।५।।

शनकैर्भगवल्लोकान्नृलोकं पुनरागतः । विमृज्य नेत्रे विदुरं प्रत्याहोद्धव उत्स्मयन् ।।६।।

अन्वयः— शनकैः भगवल्लोकात् नृलोकं पुनः आगतः नेत्रे विमृज्य उत्स्मयन् उद्धवः विदुरं प्रति आह ।।६।।

अनुवाद— धीरे-धीरे भगवान् के लोक से पुनः मनुष्य लोक में आये हुए उद्धवजी ने अपनी आँखों को पोंछकर यदुवंश के संहार आदि श्रीभगवान् के चातुर्य का स्मरण करके आश्चर्यित से होते हुए विदुरजी से कहा ।।६।।

भावार्थ दीपिका

भगवानेव लोकस्तस्मात् । नृलोकं देहानुसन्धानम् । उत्स्मयन् । यदुकुलसंहारादिभगवच्चातुर्यस्मरणेन विस्मयं प्राप्नुवन्।।६।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् ही लोक है, उससे धीरे-धीरे उन्हें अपने शरीर का अनुसन्धान होने लगा तो उन्होंने अपने दोनों

आँखों को पोंछा और श्रीभगवान् के द्वारा किए गये यदुवंश के संहार रूपी चातुर्य का स्मरण करके वे आश्चर्यित हो गये और विदुरजी से कहे ॥६॥

उद्धव उवाच

कृष्णद्युमणिनिम्लोचे गीर्णेष्वजगरेण ह । किं नु नः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम् ॥७॥

अन्वयः— कृष्णद्युमणि निम्लोचे ह अजगरेण गीर्णेषु गतश्रीषु गृहेषु अहम् किं नु नः कुशलं ब्रूयाम् ॥७॥

उद्धवजी ने कहा

अनुवाद— श्रीकृष्ण भगवान् रूपी सूर्य के अस्त हो जाने पर हमारे गृहों को काल रूपी अजगर ने निगल लिया है । इस तरह से श्रीहीन अपने गृह का मैं क्या कुशल बतलाऊँ ॥७॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णविरहेण संतप्यमानः प्रत्याह । श्रीकृष्ण एव द्युमणिः सूर्यस्तस्य निम्लोचेऽस्तमये सत्यजगरेण कालमहासर्पेण गीर्णेषु निगिलितेषु नो गृहेषु त्वत्पृष्टानां बन्धूनां किं नु कुशलं ब्रूयाम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के विरह से संतप्त होते हुए उद्धवजी ने कहा श्रीकृष्ण रूपी सूर्य के अस्त हो जाने पर हमारे गृहों को काल रूपी महासर्प ने निगल लिया, इस प्रकार के अपने बान्धवों का मैं कौन सा कुशल बतलाऊँ ॥७॥

दुर्भगो बत लोकोऽयं यदवो नितरामपि । यं संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम् ॥८॥

अन्वयः— दुर्भगो बत अयं लोकः यदवः नितराम् अपि ये संवसन्तः हरिं मीना उडुपम् इवं न विदुः ॥८॥

अनुवाद— निश्चित रूप से यह लोक अभागा है, यदुवंशी तो उससे भी अधिक भाग्यहीन हैं, क्योंकि वे उनके साथ में निवास करते हुए भी श्रीहरि को उसी तरह से नहीं जान सके जिस तरह क्षीर समुद्र में सदा एक साथ रहने वाली मछलियाँ अमृतमय चन्द्रमा को नहीं जान सकीं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अनुशोचन्नाह । दुर्भगो भाग्यहीनः । ये सह संवसन्तोऽपि श्रीहरिरयमिति न विदुः । यथा क्षीरसमुद्रे जातमुडुपं चन्द्रं तदा तत्रत्या मीनाः केवलं कमनीयः कश्चिज्जलचर इत्येवं विदुर्न त्वमृतमय इति तद्वत् । यद्वा जले प्रतिबिम्बितं चन्द्रं यथेति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

पुनः संताप करते हुए वे कहते हैं कि निश्चित रूप से यह संसार भाग्यहीन है । और यदुवंशी तो सर्वाधिक भाग्यहीन थे जो सदा श्रीहरि के साथ रहते हुए भी श्रीहरि को नहीं जान सके । यह उसी तरह से है जिस तरह क्षीर सागर में उत्पन्न चन्द्रमा को उनके साथ रहने वाली मछलियों ने यही जाना कि यह कोई देखने में सुन्दर लगने वाला जलजन्तु हैं, उन सबों ने चन्द्रमा को अमृतमय नहीं जाना ॥८॥

इङ्गितज्ञाः पुरुप्रौढा एकारामाश्च सात्वताः । सात्वतामृषभं सर्वे भूतावासममंसत ॥९॥

अन्वयः— इङ्गितज्ञाः पुरुप्रौढा, एकारामाश्च सर्वे सात्वताः भूतावासम् तं सात्वताम् ऋषकभम् अमंसत ॥९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के मानसिक भावों को पहचानने वाले, अत्यन्त ज्ञानवान तथा श्रीभगवान् के साथ में ही रहने वाले सभी यादव सम्पूर्ण जगत् के आश्रय भूत श्रीहरि को यदुवंशियों में श्रेष्ठ मात्र ही जाने ॥९॥

भावार्थ दीपिका

भाग्यहीनत्वादेव न विदुर्न तु ज्ञानसामग्र्यभावादित्याह । इङ्गितं चित्तस्थं जानन्तीति तथा । पुरु अतिशयेन प्रौढा निपुणाः। एकस्मिन्नेव स्थाने आरमन्तीति तथा । एवंभूता अपि भूतानामावासमीश्वरं सन्तं सात्वतामृषभं सात्वतश्रेष्ठममन्यन्त ॥९॥

भाव प्रकाशिका

वे यदुवंशी भाग्यहीन होने के ही कारण श्रीभगवान् को नहीं जान सके ऐसा नहीं था कि उन लोगों को ज्ञान नही था। भगवान् क्या चाहते हैं इस बात को वे जान जाते थे, वे प्रौढज्ञान सम्पन्न थे, तथा श्रीभगवान् के साथ ही रहते भी थे। इस प्रकार का होने पर भी सम्पूर्ण विश्व के आश्रयभूत श्रीभगवान् को उन लोगों ने केवल यदुवंशियों में श्रेष्ठ मात्र जाना ॥९॥

देवस्य मायया स्पृष्टा ये चान्यदसदाश्रिताः । भ्राम्यते धीर्न तद्वाक्यैरात्मन्युप्तात्मनो हरौ ॥१०॥

अन्वयः— देवस्य मायया स्पृष्टाः ये च अन्यद् असदाश्रिताः तद्वाक्यैः आत्मनि हरौ उप्तात्मन तेषां धीः न भ्राम्यते॥१०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की माया से मोहितबुद्धि वाले यादवगण और श्रीभगवान् से वैर करने वाले शिशुपाल आदि के वाक्यों से भक्तों की बुद्धि इसलिए भ्रमित नहीं होती थी कि वे भगवान् को अपना प्राण मानते थे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ये यादवा देवस्य मायया स्पृष्टा व्याप्ता यादवोऽयमस्मद्वन्धुरिति वदन्ति, ये च शिशुपालादयोऽसदेवान्यद्वैरमाश्रिता निन्दन्ति तेषां वाक्यैरात्मनि हरावुप्तात्मनो निक्षिप्तचित्तस्य मादृशस्य बुद्धिर्न भ्राम्यते मोहं न प्राप्यते, अन्ये तु मूढा एवेत्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की माया से मोहित जो यादव थे वे यही जानते थे कि ये हमारे बन्धु हैं शिशुपाल इत्यादि जो थे वे तो दुष्ट थे ही भगवान् से बैर करते थे। ऐसे लोगों के वाक्यों को सुनकर भी जिन लोगों का चित्त सदा श्रीभगवान् में ही लगा रहता था उन मुझ जैसे भक्तों की बुद्धि भ्रमित नहीं होती थी और दूसरे लोग तो अज्ञानी थे ही ॥१०॥

प्रदर्श्यातप्ततपसामवितृप्तदृशां नृणाम् । आदायान्तरधाद्यस्तु स्वबिम्बं लोकलोचनम् ॥११॥

अन्वयः— अतप्ततपसां अवितृप्तदृशां नृणां स्वविम्बम् प्रदर्श्य, लोकलोचनम् आदाय यस्तु अन्तरधात् ॥११॥

अनुवाद— जिन लोगों ने तपस्या नहीं की थी ऐसे लोगों को भी इतने समय तक अपने शरीर का दर्शन कराकर उनकी दृष्टि दर्शन करने से यद्यपि तृप्त नहीं हुयी थीं फिर भी संसार के नेत्रों के लिए दर्शनीय अपने शरीर को भगवान् ने तिरोहित कर लिया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

कोऽसौ हरिरित्यपेक्षायामाह-प्रदर्श्येति । न तप्तं तपो यैरतोऽवितृप्ता दृशो येषां तेषां स्वबिम्बं श्रीमूर्तिमेतावन्तं कालं दर्शयित्वा योऽन्तर्हितवान् । लोकस्य लोचनमादायाऽऽच्छिद्य । तादृशस्यान्यस्य विलोकनीयस्याभावात् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न यह है कि श्रीहरि कौन थे ? इसका उत्तर **प्रदर्श्या० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है (जिन लोगों ने तपस्या नहीं की थी अतएव उनकी दृष्टि भगवान् का दर्शन करने से तृप्त नहीं हो सकी। ऐसे लोगों को भी श्रीभगवान् ने इतने समय तक अपने श्रीविग्रह का दर्शन कराया और उसके पश्चात् संसार के लिए दर्शनीय अपने श्रीविग्रह को अन्तर्धान कर लिए। **लोकलोचनमादाय** का अभिप्राय है कि श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के समान कोई भी दूसरी वस्तु दर्शनीय नहीं हैं ॥११॥

यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम् ।
विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् ॥१२॥

अन्वयः— स्वयोगमाया बलं दर्शयता मर्त्यलीलौपयिकं सौभगर्द्धेः परं पदम् स्वस्य च विस्मापनं भूषण भूषणाङ्गम् गृहीतम् ॥१२॥

अनुवाद— अपनी योगमाया के बल को प्रदर्शित करने वाले, मानव लीलाओं के लिए योग्य जिस शरीर को श्रीभगवान् ने धारण किया वह अपने सौन्दर्य की पराकाष्ठा के कारण श्रीभगवान् को भी आश्चर्यित कर देता था। श्रीभगवान् के उस शरीर के अङ्ग भूषणों को भी अलंकृत कर देते थे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तदेव बिम्बं वर्णयति त्रिभिः । यन्मर्त्यलीलास्वौपयिकं योग्यम् । स्वस्यापि विस्मयजनकम् । यतः सौभगर्द्धेः सौभाग्यातिशयस्य परं पदं पराकाष्ठा । भूषणानां भूषणान्यङ्गानि यस्मिन् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के उसी शरीर का वर्णन उद्धवजी तीन श्लोकों में करते हैं। श्रीभगवान् का वह श्रीविग्रह मानव लीलाओं को प्रदर्शित करने के लिए उपयोगी था। वह सौन्दर्य की पराकाष्ठा स्वरूप होने के कारण श्रीभगवान् को भी मोहित कर देता था। उस श्रीविग्रह के अङ्ग भूषणों को भी भूषित कर देने का काम करते थे। ऐसे शरीर को श्रीभगवान् ने अपनी योगमाया के बल को प्रदर्शित करने के लिए धारण किया था ॥१२॥

यद्धर्मसूनोर्बत राजसूये निरीक्ष्य दृक्स्वस्त्ययनं त्रिलोकः ।
कार्त्स्न्येन चाद्येह गतं विधातुरर्वाक्सृतौ कौशलमित्यमन्यत ॥१३॥

अन्वयः— धर्मसूनोः राजसूये दृक्स्वस्त्ययनं यत् निरीक्ष्य त्रिलोकः इत्यमन्यत यत् विधातुः अर्वाक् सृतौ कौशलम् इह कार्त्स्न्येन गतम् ॥१३॥

अनुवाद— महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जिनके नयनाभिराम दिव्यमङ्गल विग्रह को देखकर त्रैलोक्य के लोगों ने यही माना कि भगवान् के शरीर की रचना में ही ब्रह्माजी की मानव सृष्टि की सम्पूर्ण निपुणता समाप्त हो गयी है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

दृशां स्वस्त्ययनं परमानन्दकरम् । त्रिभुवनस्थो लोकः प्राणिमात्रम् । अद्येदानीमिह बिम्बे । अर्वाक्सृतावर्वाचीनसंसारनिर्माणे मनुष्यनिर्माणे वा यत्कौशलं नैपुणं तत्कार्त्स्न्येन गतमुपक्षीणं नातः परं तस्य कौशलमस्तीत्येवं मेने । तन्मूर्तेर्विधातुः सृज्यत्वाभावेऽपि लोकदृष्टिरियमुक्ता ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का वह दिव्यमङ्गल विग्रह परमानन्दप्रद था। उस शरीर को देखकर जितने भी मनुष्य थे वे सबके सब लोग यही माने कि इस शरीर की रचना में ही ब्रह्माजी की मानव सृष्टि विषयिणी सारी निपुणता समाप्त हो गयी है। अब ब्रह्माजी की कोई भी मानव शरीर रचना की निपुणता अवशिष्ट नहीं रह गयी है। यद्यपि श्रीभगवान् का वह दिव्य मङ्गल विग्रह ब्रह्माजी के द्वारा सृष्ट नहीं था फिर भी इस श्लोक में संसार की जो दृष्टि थी उसको कहा गया है ॥१३॥

यस्यानुरागप्लुतहासरासलीलावलोकप्रतिलब्धमानाः ।
व्रजस्त्रियो दृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुः किल कृत्यशेषाः ॥१४॥

अन्वयः— यस्यानुरागप्लुतहासरास लीलावलोक प्रतिलनब्धमानाः, व्रजस्त्रियः दृग्भिरनुप्रवृत्तधियः किल कृत्यशेषाः अवतस्थुः ॥१४॥

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् के हास्य विनोद और लीला पूर्वक अवलोकन के द्वारा सम्मान प्राप्त व्रजनारियों की आँखें तथा बुद्धि जाते हुए श्रीभगवान् में ही लग जाती थीं वे घर के सारे कार्यों को भूलकर श्रीभगवान् को ही देखती रह जाती थीं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अनुरागेण प्लुतो व्याप्तो हासो रासो विनोदश्च लीलावलोकश्च तैः स्वकृतहासाद्यनन्तरं प्रतिलब्धो मानो याभिस्ताः । दृग्भिः सह अनुप्रवृत्ता गच्छन्तं तमेवानुगता धियो यासां ताः । कृत्ये शेषो यासां ताः असमापितकृत्या एव तस्थुः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अनुराग से परिपूर्ण हास विनोद और लीलापूर्वक अवलोकन के द्वारा सम्मानित व्रजबालाओं की आँखें तथा बुद्धि जाते हुए श्रीकृष्ण में लग जाती थीं तो वे उनको देखती ही रह जाती थीं और करने के लिए बचे हुए कार्य बिना किए हुए ही पड़े रह जाते थे ॥१४॥

स्वशान्तरूपेष्वितरैः स्वरूपैरभ्यर्द्यमानेष्वनुकम्पितात्मा ।
परावरेशो महदंशयुक्तो ह्यजोऽपि जातो भगवान्यथाऽग्निः ॥१५॥

अन्वयः— स्वशान्तरूपेषु इतरैः पीड्यमानेषु अनुकम्पितात्मा अजोऽपि परावरेशः महदंशयुक्तः भगवान् अग्निः यथा जातः ॥१५॥

अनुवाद— अपने शान्तरूप महात्माओं के अपने ही घोर रूप असुरों द्वारा सताये जाने पर भगवान् करुणा से द्रवित होकर अजन्मा हाने पर भी अपने अंश से बलरामजी के साथ उसी तरह से प्रकट हो गये जिस तरह काष्ठ से अग्नि प्रकट होती है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतबिम्बदर्शने कारणमाह । स्वीयान्येव शान्तान्यशान्तानि च रूपाणि । तत्र शान्तरूपेषु इतरैः । पीड्यमानेष्वनुकम्पितः कृतानुकम्प आत्मा यस्य । अजोऽपि जात अविर्भूतः । महाभूतरूपेण नित्यसिद्ध एवाग्निर्यथा काष्ठेष्वाविर्भवति तद्वत् । अजस्य जन्मनि हेतुः- महान्महत्त्वमंशः कार्यलेशो यस्याव्यक्तस्य तन्महदंशं तद्युक्त इति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के द्वारा अपने शरीर को प्रकट करने के कारण को बतलाते हुए उद्धवजी कहते हैं— श्रीभगवान् के दो रूप हैं शान्त और अशान्त । महात्मागण भगवान् के शान्त रूप हैं और असुर इत्यादि भगवान् के अशान्त रूप हैं । जब असुर महात्माओं को सताने लगते हैं तो उसे देखकर श्रीभगवान् दया से द्रवित हो जाते हैं । और अजन्मा भी होकर वे जन्म लेते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण भी इसीतरह बलरामजी के साथ प्रकट हुए । जिस तरह महाभूतों में अग्नि एक है और वह नित्यसिद्ध है किन्तु वह जैसे काष्ठ से उत्पन्न हो जाती है । उसी तरह श्रीभगवान् भी अपने महदंश से युक्त होकर बलराम जी के साथ प्रकट हुए वे परावरेश हैं ॥१५॥

मां खेदयत्येतदजस्य जन्मविडम्बनं यद्वसुदेवगेहे ।
व्रजे स वासोऽरिभयादिव स्वयं पुराद्व्यवात्सीद्यदनन्तवीर्यः ॥१६॥

अन्वयः— वसुदेवगेहे अजस्य जन्मविडम्बनम्, अरिभयादिव व्रजे च वासः, स्वयम् अनन्तवीर्यः पुरात् यद् व्यवात्सीत् एतत् मां खेदयति ॥१६॥

अनुवाद— अजन्मा होकर भी वसुदेवजी के गृह में जन्म लेने की लीला करना, कंस नामक शत्रु के भय से व्रज में जाकर छिपे रहना, तथा स्वयम् अनन्त पराक्रम संपन्न होने पर भी कालयवन आदि के भय से अपनी नगरी मथुरा से भागकर उनका द्वारका में जाकर निवास करना, श्रीभगवान् की ये लीलायें जो हैं उनको सोचकर मैं भी बेचैन हो जाता हूँ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

ननु कुतोऽसौ परावराणामीशः पारतन्त्रप्रतीतेस्तत्राह द्वाभ्याम् । मामप्येतद्दुर्वितर्क्यं दुर्घटं च खेदयति, तदेवाह । वसुदेवगेहे बन्धनागारे यज्जन्मनो विडम्बनमनुकरणं, नतु नृसिंहवदकस्मादाविर्भावः । कंसभयादिव निलीय व्रजे वासश्च । कालयवनादिरिपुभयादिव पुरान्मथुराया व्यवात्सीदपलायत ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि उनमें भी परतन्त्रता की प्रतीति होती है, वे सबों के स्वामी (पुरावरेश) कैसे हो सकते हैं ? तो उसका उत्तर उद्धवजी दो श्लोकों से देते हैं । वे कहते हैं कि मुझको भी ये सारी बातें दुर्घट तथा दुर्वितर्क्य प्रतीत होती हैं । उसे सोचकर मैं भी खिन्न हो जाता हूँ । भगवान् श्रीकृष्ण ने जो वसुदेवजी के यहाँ बन्धनागार में मानव जन्म की लीला किया, वे नृसिंह इत्यादि के समान अकस्मात् प्रकट नहीं हुए । वे मानों कंस के भय से छिपकर व्रज में निवास किए । कालयवन इत्यादि शत्रुओं के भय से मानो मथुरा से भागकर द्वारका में चले गये । उनकी ये सारी लीलायें याद आकर मुझे भी बेचैन बना देती हैं ॥१६॥

दुनोति चेतः स्मरतो ममैतद्यदाह पादावभिवन्द्य पित्रोः ।
ताताम्ब कंसादुरुशङ्कितानां प्रसीदतं नोऽकृतनिष्कृतीनाम् ॥१७॥

अन्वयः— यत् पित्रोः पादावभिवन्द्यआह ताताम्ब कंसादुरुशंकितानां अकृत निष्कृतीनाम् प्रसीदतम् ॥१७॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने अपने माता-पिता देवकी और वसुदेवजी के दोनों चरणों की वन्दना करके यह जो कहा कि हे पिताजी ! हे मां ! कंस के अत्यधिक भय के कारण हमलोग आपकी कोई भी सेवा नहीं कर सके इसके लिए आप हमलोगों को क्षमा कर दें और प्रसन्न हो जायँ । इन सारी बातों को स्मरण करके मुझे भी अत्यन्त व्यथा होती हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

एतच्च हरेश्चरितं स्मरतो मम चेतः कर्मभूतं दुनोति व्यथयति । तदेव दर्शयति-यदाहेति । हे तात, हे अम्ब, युवां प्रसीदतं प्रसादं कुरुतम् । न कृता निष्कृतिः शुश्रूषणं यैस्तेषाम् । नोऽस्माकमिति बहुवचनं तु रामाद्यभिप्रायम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के इस चरितको भी याद करके मेरे अन्तःकरण में व्यथा होती है । श्रीभगवान् के उस चरित को बतलाते हुए उद्धवजी ने कहा— भगवान् ने यह जो कहा— हे तात ! हे अम्ब ! आप दोनों हमलोगों पर प्रसन्न हो जायँ । क्योंकि हमलोगों ने कंस के भय से आप दोनों की कोई सेवा नहीं की है । **नः** यह बहुवचनान्त प्रयोग बलरामजी आदि के अभिप्राय से किया गया है ॥१७॥

को वा अमुष्याङ्घ्रिसरोजरेणुं विस्मर्तुमीशीत पुमान्विजिघ्रन् ।
यो विस्फुरद्भ्रूविटपेन भूमेर्भारं कृतान्तेन तिरश्चकार ॥१८॥

अन्वयः— यो विस्फुरद्भ्रूविटपेन कृतान्तेन भूमेः भारं तिरश्चकार अमुष्याङ्घ्रि सरोजरेणुं विजिघ्रन् को वा पुमान् विस्मर्तुमीशीत ॥११॥

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् ने अपने काल स्वरूप भ्रुकुटि बिलास के द्वारा पृथिवी के भार को विनष्ट कर दिया। उन श्रीभगवान् के चरण कमल के पराग का सेवन करने वाला कौन ऐसा पुरुष होगा जो उसको भूल जाय ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्ह्यनीश्वर एव किं न स्यात्, तव तु श्रद्धामात्रमेतत्तत्राह त्रिभिः । को वा अङ्घ्रिसरोजयोर्यो रेणुस्तमपि विजिघ्रन् सेवमानः पुमान्विस्मर्तुमीशीत शक्नुयात् । विस्फुरन् भ्रूविटपो भ्रूलता स एव कृतान्तस्तेन ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि यदि ऐसी स्थिति है तो उनको अनीश्वर ही क्यों न मान लिया जाय, आप तो अपनी श्रद्धा के कारण उनको ईश्वर मानते हैं । तो इसका उत्तर उद्धवजी तीन श्लोको से देते हैं । जिन श्रीभगवान् ने अपने कालस्वरूप भ्रुकुटि के विलास मात्र से पृथिवी के भार को दूर कर दिया उन श्रीभगवान् के चरण कमल के पराग का सेवन करने वाला कौन ऐसा व्यक्ति हो सकता है जो उसे भूल जाय ॥१८॥

दृष्टा भवाद्भिर्ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोऽपि सिद्धिः ।
यां योगिनः संस्पृहयन्ति सम्यग्योगेन कस्तद्विरहं सहेत ॥१९॥

अन्वयः— भवद्भिः ननु राजसूये कृष्णं द्विषतोऽपि चैद्यस्य सिद्धिः दृष्टा । यां योगिनः सम्यग्योगेन संस्पृहयन्ति तद् विरहं कः सहेत ॥१९॥

अनुवाद— आप लोगों ने भी राजसूय यज्ञ में देखा है कि भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करने वाले शिशुपाल को भी वह मुक्ति मिल गयी, जिस मुक्ति को योगिजन अपनी योगसाधना के द्वारा प्राप्त करने की कामना करते हैं ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण के विरह को कौन सह सकता है ?॥१९॥

भावार्थ दीपिका

न च तस्येश्वरत्वं साधनीयं, भवद्भिरपि दृष्टत्वादित्याह-दृष्टेति । यां सिद्धिं सम्यग्योगेन प्राप्तुमिच्छन्ति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीकृष्ण के भगवत्व की सिद्धि करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है । आपलोगों ने भी उनके भगवत्व को राजसूय यज्ञ में देखा है । शिशुपाल को जो सिद्धि मिली उस सिद्धि को प्राप्त करने की इच्छा योगिजन भी किया करते हैं ॥१९॥

तथैव चान्ये नरलोकवीरा य आहवे कृष्णमुखारविन्दम् ।
नेत्रैः पिबन्तो नयनाभिरामं पार्थास्त्रपूताः पदमापुरस्य ॥२०॥

अन्वयः— तथैव अन्ये ये नरलोकवीरा आहवे नेत्रैः नयनाभिरामं कृष्णमुखारविन्दम् पिबन्तः पार्थास्त्रपूताः सन्तः अस्य पदमापुः ॥२०॥

अनुवाद— उसी तरह महाभारत युद्ध में जो दूसरे मानव वीर अपने नेत्रों से भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द का दर्शन करते हुए अर्जुन के अस्त्रों से पवित्र होकर मारे गये वे भी श्रीकृष्ण के धाम में चले गये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

आहवे युद्धे पार्थस्यास्त्रैः पूताः निष्पापाः सन्तः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

महाभारत युद्ध में भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करते हुए जो प्रख्यात वीर अर्जुन के अस्त्रों के संप्रयोग के कारण पवित्र होकर मारे गये वे भी भगवान् के लोक में ही गये ॥२०॥

स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः ।
बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः किरीटकोट्येडितपादपीठः ॥२१॥

अन्वयः— स्वयं तु असाम्यातिशयः त्र्यधीशः स्वाराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः, चिरलोकपालैः बलिं हरद्भिः किरीटकोट्येडितपादपीठः ॥२१॥

अनुवाद— श्रीभगवान् स्वयम् ऐसे हैं कि उनके समान ही कोई नहीं है तो उनसे बढ़कर कहाँ से कोई होगा। वे त्रिलोकी के स्वामी हैं । वे अपने ऐश्वर्य लक्ष्मी से ही अवाप्तसमस्तकाम हैं । इन्द्र आदि असंख्य लोकपाल अनेक प्रकार के उपहारों को उनको प्रदान करके अपने मुकुटों के अग्रभाग से श्रीभगवान् की चरण चौकी को प्रणाम करते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं परमैश्वर्ये सत्यपि यदुग्रसेनानुवर्तित्वं तत्पुनरस्मानत्यन्तं व्यथयतीत्याह । स्वयं तु य एवंभूतस्तस्य तत्कैङ्कर्यं नोऽस्मान् विग्लापयतीत्युत्तरेणान्वयः । न साम्यातिशयौ यस्य । यमपेक्ष्यान्यस्य साम्यमतिशयश्च नास्तीत्यर्थः । तत्र हेतवः- त्र्यधीशस्त्रयाणां पुरुषाणां लोकानां गुणानां वा ईशः । स्वराज्यलक्ष्म्या परमानन्दस्वरूपसंपत्त्यैव प्राप्तसमस्तभोगः । बलिं करमर्हणं वा हरद्भिः समर्पयद्भिश्चिरकालीनैर्लोकपालैः किरीटाग्रेणेडितं स्तुतं पादपीठं यस्य । प्रणमतां किरीटसंघट्टनध्वनिरेव स्तुतित्वेनोत्प्रेक्ष्यते ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी कहते है कि इस प्रकार के ऐश्वर्य से स्वयं सम्पन्न होने पर भी भगवान् उग्रसेन इत्यादि की आज्ञा का जो पालन करते थे उसको सोचकर हमलोगों को अत्यन्त कष्ट होता है । जो भगवान् इस प्रकार के ऐश्वर्य सम्पन्न थे उनका उग्रसेन आदि की आज्ञा का पालक होना हमलोगों को दु:खी बनाता है, इस तरह से बाइसवें श्लोक के साथ इसका अन्वय है । भगवान् से न तो किसी की समता हो सकती है और उनसे किसी की अधिकता हो सकती है इसके कारण इस प्रकार से हैं वे तीनों प्रकार के पुरुषों (बद्ध, मुक्त एवं नित्य) या तीनों लोकों (भूर्भुव: स्व:) तीनों गुणों (सत्त्व, रजस् एवं तमस्) के स्वामी हैं श्रीभगवान् । परमानन्द स्वरूप सम्पत्ति के द्वारा ही वे समस्त भोगों को प्राप्त कर लिए हैं तथा इन्द्रादि लोकपालों द्वारा कर प्रदान किए जाने तथा उनके मुकुटों के अग्रभाग से भगवान् की चरण चौकी को नमस्कार किए जाने से भगवान् परमैश्वर्य सम्पन्न हैं ॥२१॥

तत्तस्य कैङ्कर्यमलं भृतान्नो विग्लापयत्यङ्ग यदुग्रसेनम् ।
तिष्ठन्निषण्णं परमेष्ठिधिष्ण्ये न्यबोधयद्देव निधारयेति ॥२२॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! परमेष्ठिधिष्ण्य निष्ण्णम् उग्रसेनं तिष्ठन् देव निधारय यत् न्यवोधयत् तस्य अलं कैङ्कर्यम् तत् नः भृतान् विग्लापयति ॥२२॥

अनुवाद— हे विदुरजी राजसिंहासन पर बैठे हुए उग्रसेन के समक्ष जाकर जो भगवान् उनसे प्रार्थना करते थे कि महाराज आप हमारी प्रार्थना सुनें उनके इस सेवाभाव की याद आने पर हम भगवद् भक्तों को कष्ट होता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अङ्ग विदुर । भृतान् भृत्यान् । उग्रसेने यत्किंकरत्वं तदेवाह । परमेष्ठिधिष्ण्ये राजासने निषण्णमासीनं स्वयं तिष्ठन् हे देव, निधारयावधरयेति न्यबोधयद्विज्ञापितवान् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

हे विदुरजी भगवान् की उग्रसेन के विषय में जो उनकी किंकरत्व की भावना थी वह हम भगवद् भक्तों को व्यथित करती है । उग्रसेन राजसिंहासन पर जब बैठे थे उस समय उनके सामने खड़े होकर भगवान् ने जो प्रार्थना किया उसको सोचकर कष्ट होता है ॥२२॥

अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी ।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥२३॥

अन्वयः— अहो इयं असाध्वी बकी जिघांसया स्तनकालकूटम् अपाययत् । सा च धात्र्युचितां गतिं लेभे कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥२३॥

अनुवाद— दुष्टा पूतना श्रीभगवान् को मार डालने की इच्छा से अपने स्तन में कालकूट भरकर उनको पिलायी थी उसको भी श्रीभगवान् ने धाय के लिए उचित गति प्रदान की; ऐसे दयालु भगवान् श्रीकृष्ण के छोड़कर मैं किस दयालु की शरणागति करूँ ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

एवमनुवृत्तिः कृपयैवेति सूचयन्नपकारिष्वपि तस्य कृपालुतां दर्शयन्नाह । अहो आश्चर्यं कृपालुतायाः । हन्तुमिच्छयापि स्तनयोः संभृतं कालकूटं विषं यमपाययत् । बकी पूतना असाध्वी दुष्टापि धात्र्या यशोदाया उचितां गतिं लेभे । भक्तवेषमात्रेण यः सद्गतिं दत्तवानित्यर्थः । ततोऽन्यं कं वा भजेम ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की कृपा के ही कारण भगवान् की अनुवृत्ति को सूचित करते हुए अब यह बतलाते हैं कि भगवान् अपने अपकारी जीवों पर भी कृपा प्रदर्शिति करते हैं । अहो ! इस अव्यय के द्वारा श्रीभगवान् की कृपालुता पर आश्चर्य व्यक्त किया गया है । पूतना ने तो कालकूट विष से भरे हुए अपने स्तनों को भगवान् को मार देने की इच्छा से पिलायी थी उस दुष्टा पूतना को भगवान् ने वह गति प्रदान किया जो गति उनकी माता यशोदा को मिलना चाहिए । पूतना को भक्त का केवला वेष बनाने के कारण सद्गति प्रदान किया । ऐसे श्रीभगवान् को छोड़कर किस दूसरे की हमलोग सेवा करें ॥२३॥

मन्येऽसुरान्भागवतांस्त्र्यधीशे संरम्भमार्गाभिनिविष्टचित्तान् ।
ये संयुगेऽचक्षत तार्क्ष्यपुत्रमंसेसुनाभायुधमापतन्तम् ॥२४॥

अन्वयः— अहं असुरान् भागवतान् मन्ये त्र्यधीशे संरम्भमार्गाभिनिविष्ट चित्तान् ये संयुगे सुनाभायुधम् आपतन्तम् तार्क्ष्य पुत्रम् आचक्षत ॥२४॥

अनुवाद— मैं असुरों को भगवान् का भक्त मानता हूँ, क्योंकि वैरभाव के कारण उनका चित्त त्रैलोक्याधिपति श्रीभगवान् में लगा रहता था । उन सबों को सुदर्शन चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण को अपने कन्धें पर चढ़ाकर आक्रमण करते हुए गरुड़ का दर्शन हुआ करता था ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

ननु भागवतानेव भगवाननुगृह्णातीति प्रसिद्धम्, सत्यम्, असुरानप्यहं भागवतानेव मन्ये, यतो भागवता इव तेऽपि भगवद्ध्यानाभिनिवेशेन भवन्तमपरोक्षं पश्यन्तीत्याह । संरम्भः क्रोधावेशस्तेन मार्गेणाभिनिविष्टं चित्तं येषां तान् । अतएव ये संग्रामे तार्क्ष्यः कश्यपस्तस्य पुत्रं गरुडमंसे स्कन्धे सुनाभायुधश्चक्रायुधोऽरिर्यस्य तमचक्षतापश्यन् । तस्मात्तेष्वप्यनुग्रहो युक्त एवेत्यर्थः । वक्ष्यति च **'तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्'** इति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि यह प्रसिद्ध है कि श्रीभगवान् अपने भक्तों पर ही कृपा करते हैं तो यह कहना ठीक ही है । मैं तो असुरों को भी भगवद् भक्त ही मानता हूँ । क्योंकि उन सबों का भी भागवतों के ही समान श्रीभगवान् में अभिनिवेश वशात् ध्यान लगा रहता था । और वे भी भगवान् का साक्षात्कार करते थे । उन सबों का बैरभाव

के कारण क्रोधावेश वशात् भगवान् में मन लगा रहता था । अतएव वे भी युद्ध में तार्क्ष्य (महर्षि कश्यप) के पुत्र गरुड के कन्धे पर बैठे हुए सुदर्शन चक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करते थे । इसीलिए भगवान् का उन सबों पर कृपा करना उचित ही था । इसलिए कहेंगे भी- **तस्मात् केनाप्युपायेन** किसी भी साधन के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण में मन को लगाना चाहिए ।।२४।।

वसुदेवस्य देवक्यां जातो भोजेन्द्रबन्धने । चिकीर्षुर्भगवानस्याः शमजेनाभियाचितः ।।२५।।

अन्वयः— अजेन अभियाचितः अस्यश्शम् चिकीर्षुः भोजेन्द्रबन्धने वासुदेवस्य देवक्यां जातः ।।२५।।

अनुवाद— ब्रह्माजी के प्रर्थना करने पर पृथिवी का भार उतारने की इच्छा से श्रीभगवान् कंस के कारागार में देवकी के गर्भ से वसुदेवजी के पुत्र के रूप में अवतार ग्रहण किए ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं तस्यान्तर्धानप्रकारं वक्तुमादित आरभ्य तच्चरितं संक्षेपतः कथयति । वसुदेवस्य भार्यायां जातः । भोजेन्द्रः कंसस्तस्य बन्धनागारे । अस्याः पृथिव्याः शं सुखं स्वयं चिकीर्षुः । अजेन ब्रह्मणा च याचितः सन् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के तिरोधन प्रकार को बतलाने के लिए प्रारम्भ से ही श्रीभगवान् के चरित का संक्षेप से वर्णन करते हुए उद्धवजी कहते हैं- श्रीभगवान् वसुदेवजी की पत्नी देवकीजी के गर्भ से जन्म लिए । वे कंस के कैदखाने में जन्म लिए । इस पृथ्वी का स्वयं कल्याण करने के लिए उत्पन्न हुए । किञ्च वे ब्रह्माजी के प्रार्थना करने पर जन्म लिए ।।२५।।

ततो नन्दव्रजमितः पित्रा कंसाद्विबिभ्यता । एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ।।२६।।

अन्वयः— ततः इतः कंसाद्विभ्यता पित्रा, नन्दव्रजम् गतः, तत्र गूढार्चिः एकादशसमाः सबलः अवसत् ।।२६।।

अनुवाद— उसके पश्चात् कंस से भयभीत पिता के द्वारा वे नन्दव्रज से चले गये । वहाँ पर छिपे हुए तेजः से सम्पन्न वे बलरामजी के साथ रहे ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

पित्रा हेतुभूतेन नन्दव्रजमितो गतः । समाः संवत्सरान् । गूढार्चिर्गुप्ततेजाः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के पिता वसुदेवजी कंस से बहुत डरते थे । उन्होंने श्रीकृष्ण भगवान् को नन्द्रव्रज में पहुँचा दिया और वहाँ पर छिपे हुए तेज से युक्त वे बलरामजी के साथ ग्यारह वर्षो तक निवास किए ।।२६।।

परीतो वत्सपैर्वत्सां श्चारयन्व्यहरद्विभुः । यमुनापवने कूजद्द्विजसंकुलिताङ्घ्रिपे ।।२७।।

अन्वयः— तत्र वत्सपैः परीतः विभुः वत्सान् चारयन् कूजद्द्विजसंकुलिताङ्घ्रिपे यमुनोपवने व्यहरत् ।।२७।।

अनुवाद— वहाँ पर बछड़ों को चराने वाले ग्वाल बालों से घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण बछड़ो को चराते हुए कलरव करने वाले पछियों से व्याप्त वृक्षों वाले यमुना के उपवन में बिहार किए ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

व्यहरदक्रीडत् । कूजद्भिर्द्विजैः पक्षिभिः संकुलिता व्याप्ता अङ्घ्रिपा यस्मिन् ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

नन्द्रव्रज में गौओं के बछड़ो को चराने वाले ग्वाल बालों के साथ श्रीभगवान् बछड़ों को चराते हुए कलरव करने वाले पक्षियों से व्याप्त वृक्षों से युक्त यमुना के उपवन में क्रीड़ा करते रहे ।।२७।।

कौमारीं दर्शयंश्चेष्टां प्रेक्षणीयां व्रजौकसाम् । रुदन्निव हसन्मुग्धबालसिंहावलोकनः ॥२८॥

अन्वयः— रुदन्निव, हसन्, मुग्धबालसिंहावलोकनः व्रजौकसाम् प्रेक्षणीयां कौमारीं चेष्टां दर्शयन् ॥२८॥

अनुवाद— रोते हुए, हंसते हुए तथा बाल सिंह के समान देखते हुए वे व्रजवासियों को आकर्षित करने वाली बाल सुलभ चेष्टाओं को करते हुए वहाँ ग्यारह वर्षों तक निवास किए ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

रुदन्निवेतीवशब्दस्य यथायोगं सर्वत्राप्यन्वयः । मुग्धो बालश्च यः सिंहस्तद्वदवलोकनं यस्य सः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

रुदन्निव में जो इव शब्द है उसका अन्वय सर्वत्र करना चाहिए । अर्थात् रोते हुए के समान, हंसते हुए के समान तथा बाल सिंह के समान मनोहर ढंग से देखते हुए के समान वे नन्दव्रज में व्रजवासियों को आकृष्ट करने वाली बालसुलभ चेष्टाओं को दिखाते रहे ॥२८॥

स एव गोधनं लक्ष्म्या निकेतं सितगोवृषम् । चारयन्ननुगान्गोपान्रणद्वेणुररीरमत् ॥२९॥

अन्वयः— स एव लक्ष्म्या निकेतं गोधनं सितगोवृषं चारयन् रणद्वेणुः अनुगानगोपान् अरीरमत् ॥२९॥

अनुवाद— कुछ बड़े होने पर वे शोभारूपी सम्पत्ति से तथा श्वेत गोवृष (सांड़) से युक्त गौओं को चराते हुए अपनी बाँसुरी बजाते हुए अपने साथ के गोपों को आनन्दित करते थे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

स एवाधिकं वयः प्राप्तः सन् गोधनं चारयन् । कथंभूतं गोधनम् । लक्ष्म्याः शोभादिसंपदो निकेतनम् । सिता गोवृषायस्मिन्नानावर्णे गोसङ्घे । रणन् शब्दं कुवन्वेणुर्यस्य । अरीरमद्रमयामास ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

वे ही भगवान् जब कुछ, बड़े हुए तो अनेक रङ्गों की शोभा से सम्पन्न एवं श्वेत सांडों से युक्त गौओं को चराने लगे और वे अपनी बांसुरी बजाकर अपने साथ रहने वाली गौओं के चरवाहों को आनन्दित करने लगे ॥२९॥

प्रयुक्तान्भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः । लीलया व्यनुदत्तांस्तान्बालः क्रीडनकानिव ॥३०॥

अन्वयः— भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः प्रयुक्तान् राक्षसान् बालः क्रीडनकानि इव लीलया व्यनुदत् ॥३०॥

अनुवाद— राजा कंस के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण को मार डालने के लिए भेजे गये मायावी तथा अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाले राक्षसों को उन्होंने लीला पूर्वक उसी तरह से मार दिया जिस तरह से कोई बालक खिलौनों को तोड़ देता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

व्यनुदज्जघान । क्रीडनकांस्तृणादिनिर्मितान्सिंहादीन्यथा ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

व्यनुदत् पद का अर्थ है मार दिया । अर्थात् जिस तरह से कोई बालक तृण इत्यादि के द्वारा निर्मित सिंहादि को खेल-खेल में तोड़ देता है, उसी तरह से कंस के द्वारा भेजे गये मायावी तथा अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाले राक्षसों को खेल-खेल में ही मार दिए ॥३०॥

विपन्नान्विषपानेन निगृह्य भुजगाधिपम् । उत्थाप्यापाययद्गावस्तत्तोयं प्रकृतिस्थितम् ॥३१॥

अन्वयः— भुजगाधिपम् निगृह्य विषपानेन विपन्नान् उत्थाप्य गावः प्रकृतिस्थितम् तोयं अपाययत् ॥३१॥

अनुवाद— सर्पों के स्वामी कालिय नाग का दमन करके श्रीभगवान् ने विषैले पानी के पीने से मरे हुए ग्वाल बालों तथा गौओं को शुद्ध पानी पिलाया ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

विपन्नान्मृतान्गोपान्गाव इति गाश्चोत्थाप्य तदेव तोयं । प्रकृतिस्थितं निर्विषम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

मरे हुए गोपों और गौओं को भगवान् ने जीवित कर दिया और उस कालियदह के शुद्ध जल को पिलाया ॥३१॥

अयाजयद्गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः । वित्तस्य चोरुभारस्य चिकीर्षन्सद्व्ययं विभुः ॥३२॥

अन्वयः— विभुः उरुभारस्य वित्तस्य सद्व्ययं चिकीर्षन् गोपराज द्विजोत्तमैः गोसवेन अयाजयत् ॥३२॥

अनुवाद— बहुत अधिक बढ़े हुए धन सम्पत्ति का सद् व्यय करने के इच्छुक श्रीभगवान् ने श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा गोपराज से गोसव नामक यज्ञ कराया ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्रपूजाभङ्गेन कृता गवां पूजैव गोसवस्तेन । गोपराजं नन्दम् । वित्तस्य चेति चकारादिन्द्रस्य मानभङ्गं कुर्वन् उरुभारस्याऽतिसमृद्धस्य ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र की पूजा को रोकवाकर श्रीभगवान् ने जो गौओं की पूजा करवायी वह पूजा ही गोसव है । गोपराज शब्द से नन्दजी को कहा गया है । **वित्तस्य च** के च के द्वारा इन्द्र का मान भङ्ग सूचित है । अर्थात् उस धन के द्वारा यज्ञ कराकर श्रीभगवान् ने नन्दजी के धन का सदुपयोग कराया और उसके साथ इन्द्र के धमण्ड को चूर किया । **उरुभार** शब्द अत्यन्त समृद्धि का बोधक है ॥३२॥

वर्षतीन्द्र व्रजः कोपाद्भग्नमानेऽतिविह्वलः । गोत्रलीलातपत्रेण त्रातो भद्रानुगृह्णता ॥३३॥

अन्वयः— हे भद्र ! भाग्नमाने इन्द्रे कोपाद् वर्षति अतिविह्वलः व्रजः गोत्रलीलातपत्रेण अनुगृह्णता त्रातः ॥३३॥

अनुवाद— हे भद्र !मान के भङ्ग हो जाने के कारण क्रुद्ध होकर इन्द्र जब मुसलाधार वर्षा व्रज में करने लगे तो सभी व्रजवासी घबरा गये उस समय उन सबों पर कृपा करके भगवान् ने गोवर्धन पर्वत रूपी छातें के द्वारा रक्षा की ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

कोपाद्वर्षति । गोत्रः पर्वत एव लीलातपत्रं तेन । हे भद्र ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

मानभंग हो जाने के कारण क्रुद्ध होकर जब इन्द्र घन-घोर वर्षा करने लगे उस समय गोवर्धन पर्वत रूपी लीलापत्र के द्वारा भगवान् ने सबों की रक्षा की । भद्र शब्द से विदुरजी को सम्बोधित किया गया है ॥३३॥

शरच्छशिकरैर्मृष्टं मानयन्रजनीमुखम् । गायन्कलपदं रेमे स्त्रीणां मण्डलमण्डनः ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवत् महापुराणे तृतीयस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अन्वयः— शरच्छशिकरैः मृष्टं रजनीमुखम् मानयन् स्त्रीणां मण्डलमण्डनः कलपदं गायन् रेमे ।।३४।।

अनुवाद— शरत् कालीन चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशित संध्या का सम्मान करते हुए स्त्रियों के समूह को अलंकृत करने वाले श्रीभगवान् मनोहर गीत गाते हुए उस चाँदनी रात में रास विहार किए ।।३४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के द्वितीय अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

भावार्थ दीपिका

मृष्टमुज्ज्वलम् । स्त्रीणां मण्डलं मण्डयतीति तथा ।।३४।।

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिका टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

मृष्ट शब्द का अर्थ प्रकाशित है । श्रीभगवान् गोपियों के समूह को अलंकृत करने वाले थे । इस प्रकार के श्रीभगवान् ने शरत् की चन्द्रमा से प्रकाशित सन्ध्या को देखकर उसके सम्मान में स्त्रियों के समूह को अलंकृत करते हुए तथा मनोहर गीत गाते हुए रासलीला किए ।।३४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

तृतीय अध्याय

श्रीभगवान् के दूसरे चरित्रों का वर्णन

उद्धव उवाच

ततः स आगत्य पुरं स्वपित्रोश्चिकीर्षया शं बलदेवसंयुतः ।
निपात्य तुङ्गाद्रिपुयूथनाथं हतं व्यकर्षद्व्यसुमोजसोर्व्याम् ॥१॥

अन्वयः— ततः सः स्वपित्रोः शंचिकीर्षुः पुरं आगत्य रिपुयूथनाथं तुङ्गात् निपात्य व्यसुं हतं ओजसा उर्व्याम् व्यकर्षत्॥१॥

उद्धवजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् अपने माता-पिता देवकीजी तथा वसुदेवजी का कल्याण करने के लिए भगवान् मथुरापुरी में आये और उन्नत सिंहासन पर बैठे हुए शत्रुसमूह के स्वामी कंस को पटककर मरे हुए कंस की लाश को बड़े जोर से भगवान् घसीटे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तृतीये मथुरामेत्य व्रजात्कंसवधादिकम् । यत्कृतं द्वारकायां च कृष्णेन तदवर्णयत् ॥१॥ शमित्यव्यम् । पित्रोः सुखस्य चिकीर्षयेत्यर्थः । तुङ्गाद्राजमञ्चात् । रिपुयूथानां नाथं कंसम् । व्यसोरपि विकर्षणं पित्रोः सुखार्थम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

व्रज से मथुरा आकर भगवान् ने जो कंस के वध आदि का कार्य किया तथा उन्होंने द्वारका में जिन कार्यों को किया उन सबों का वर्णन तीसरे अध्याय में किया गया है ॥१॥ **शमित्यादि** शम् यह अव्यय पद है । अपने

माता-पिता को सुख प्रदान करने की इच्छा से भगवान् बलरामजी के साथ मथुरा आये तथा ऊँचे राजमञ्च से कंस को पटक कर मरे हुए भी कंस को अपने पिता को प्रसन्न करने के लिए घसीटे ।।१।।

सांदीपनेः सकृत्प्रोक्तं ब्रह्माधीत्य सविस्तरम् । तस्मै प्रादाद्वरं पुत्रं मृतं पञ्चजनोदरात् ।।२।।

अन्वयः— सांदीपनेः सकृत्प्रोक्तं ब्रह्म सविस्तरमधीत्य तस्मै मृतं पुत्रं पञ्चजनोदरात् वरं प्रादात् ।।२।।

अनुवाद— सांदपनि मुनि के द्वारा एक बार उच्चारण किये गये साङ्गोपाङ्ग वेद का अध्ययन करके दक्षिणा के रूप में उनके मरे हुए पुत्र को पञ्चजन नामक राक्षस के पेट से (यमपुरी) से लाकर प्रदान किए ।।२।।

भावार्थ दीपिका

ब्रह्म वेदम् । सविस्तरं षडङ्गादिसहितम् । पञ्चजनोदरविदारणद्वारा पुत्रमानीयेत्यर्थः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्म शब्द वेद का वाचक है । **सविस्तरम्** का अर्थ है अङ्गों और उपाङ्गों के साथ । श्रीभगवान् संदीपनि मुनि के द्वारा एक बार उच्चारण किए गये साङ्गोपाङ्ग वेद का अध्ययन किए और दक्षिणा के रूप में उनके मरे हुए पुत्र को पञ्चजन नामक राक्षस के पेट को फाड़कर उसको निकाल कर यमपुरी से लाये और अपने गुरु को प्रदान किए ।।२।।

समाहुता भीष्मककन्यया ये श्रियः सवर्णेन बुभूषयैषाम् ।
गान्धर्ववृत्त्या मिषतां स्वभागं जह्रे पदं मूर्ध्नि दधत्सुपर्णः ।।३।।

अन्वयः— भीष्मकन्यया समहुताः श्रियः सवर्णेन गान्धर्ववृत्या बुभूषया एषां मिषतां मूर्ध्नि पदं दधत् सुपर्णः स्वभागं जह्रे ।।३।।

अनुवाद— भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी अथवा रुक्मी के द्वारा बुलाये गये गान्धर्व विधि से लक्ष्मीजी के समान रूप वाली रुक्मिणी का पति होने की इच्छा से आये हुए समस्त शिशुपाल आदि के सामने ही रुक्मिणीजी का उसी तरह से श्रीभगवान् हरण कर लिए जिस तरह गरुड़ अमृत कलश को ले आये थे ।।३।।

भावार्थ दीपिका

भीष्मककन्यया रुक्मिण्या ये राजानः समाहूताः । ह्रस्वमार्षम् । **समाहृता** इति पाठे आकृष्टा इत्यर्थः । केन साधनेन। श्रियो लक्ष्म्याः सवर्णेन समानेन रूपेण । यद्यपि तया केवलं श्रीकृष्ण एवाहूतो न सर्वे, तथापि लावण्यं तेषामागमने हेतुरिति तयैवाहूता इत्युच्यते । एषां मिषतां पश्यतां मूर्ध्नि पदं दधत् । तया सह गान्धर्ववृत्त्या परस्परसमयरूपया बुभूषया भवितुमिच्छया जहार । कथंभूताम् । स्वभागं लक्ष्म्यंशत्वात् । तया स्वात्मनोऽर्पितत्वाच्च । सुपर्णः सुपतनः । यद्वा सुपर्ण इव स्वभागं सुधामित्यर्थः । यद्वा श्रियो रुक्मिण्याः समानं वर्णद्वयं वाचकं यस्य स श्रियः सवर्णो रुक्मी तेन समाहूताः शिशुपालादयः । किमर्थम् । भीष्मककन्यया सह तेषां बुभूषया भूतिर्भवत्वित्येतदर्थम् । तत्र शिशुपालस्याह्वानं वरत्वेन बुभूषया, जरासन्धादीनां तद्विवाहोत्सवेन । शेषं पूर्ववत् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

भीष्मक की पुत्री रुक्मिणीजी के द्वारा आहूत जो राजा थे । समाहुत मे ह्रस्व आर्ष प्रयोग के कारण है । जहाँ पर समाहृत पाठ है वहाँ आकृष्ट अर्थ होगा । सबों को बुलाने का साधन रुक्मिणीजी का लक्ष्मीजी के समान रूप था । यद्यपि रुक्मिणीजी ने तो केवल भगवान् श्रीकृष्ण को ही बुलाया था किन्तु सभी राजाओं के आगमन का कारण रुक्मिणीजी का आकर्षक रूप था । इसीलिए रुक्मिणीजी के द्वारा आहूत कहा गया है । उन सबों के सामने ही सबों के शिर पर पैर रखकर भगवान् ने गान्धर्व विधि को अपनाकर बना लेने की इच्छा से हरण कर

लिया । रुक्मिणीजी लक्ष्मीजी के अंश थीं अतएव वे उनका ही भाग थीं । और रुक्मिणीजी ने अपने को भगवान् को समर्पित कर दिया था सुपर्ण शब्द का अर्थ है सुन्दर रूप से आक्रमण करने वाले । अथवा जिस तरह से गरुड़ ने अपने भाग अमृत कलश का अपहरण कर लिया था उसी तरह से भगवान् ने रुक्मिणीजी का अपहरण कर लिया । अथवा **श्रिय: सवर्णेन समाहूता:** का अर्थ है लक्ष्मीजी के ही समान दो वर्णों के नाम वाले रुक्मी के द्वारा शिशुपाल इत्यादि इसलिए बुलाये गये थे कि उन सबों का रुक्मिणीजी के साथ विवाह हो । शिशुपाल को रुक्मी न वर बनाने के लिए बुलाया था और जरासन्ध इत्यादि को विवाहोत्सव में भाग लेने के लिए बुलाया था ।।३।।

ककुद्मतोऽविद्धनसो दमित्वा स्वयंवरे नाग्नजितीमुवाह ।
तद्भग्नमानानपि गृध्यतोऽज्ञाञ्जघ्नेऽक्षत: शस्त्रभृत: स्वशस्त्रै: ।।४।।

अन्वय:— अविद्धनस: ककुद्मत: दमित्वा स्वयम्बरे नग्नजितीम् उवाह । तद्भग्नमानान् अपि शस्त्रभृत: गृध्यत: अज्ञान् अक्षत: सन् स्वशस्त्रै: जघान ।।४।।

अनुवाद— बिना नथे हुए सांड़ों को नाथ पहनाकर भगवान् ने स्वयम्बर में नग्नजिती (सत्या) से विवाह किया । उसके कारण जिन मूर्ख राजाओं का मान भङ्ग हो गया था वे सब राजकुमारी को छिन लेना चाहते थे और उन सबों ने शस्त्र धारण कर लिया तो बिना किसी प्रकार से घायल हुए भगवान् उन सबों को अपने शस्त्रों से मार डाला ।।४।।

भावार्थ दीपिका

ककुद्मतो वृषभान् अविद्धनासिकान् । विद्धनासिकान्कृत्वेति वा । तैर्वृषभैस्तद्दमनेन च भग्नो मानो येषां तथापि तान् गृध्यत: कामयमानान्, अतएवाज्ञान् शस्त्रभृतो राज्ञस्तच्छस्त्रैरक्षत एव जघान ।।४।।

भाव प्रकाशिका

बिना नाथे गये बैलों को नाथकर भगवान् उन सबों का दमन कर दिये । उन सबों के दमन के साथ ही जिन सबों के मान का दमन हो गया था फिर भी स्वयम्बर में आये हुए राजागण राजकुमारी को प्राप्त कर लेना चाहते थे । उन अज्ञानी तथा शस्त्रधारण किए हुए राजाओं के शस्त्रों से विना क्षतिग्रस्त हुए भगवान् उन सबो को अपने शस्त्रों से मार दिए ।।४।।

प्रियं प्रभुर्ग्राम्य इव प्रियाया विधित्सुरार्च्छद्द्युतरुं यदर्थे ।
वज्र्याद्रवत्तं सगणो रुषाऽन्ध: क्रीडामृगो नूनमयं वधूनाम् ।।५।।

अन्वय:— प्रभु: प्रियाया: ग्राम्य: इव प्रियं विधित्सु: यदर्थे द्युतरुं आर्च्छत् रुषान्ध: वज्री तं सगण: आद्रवत् । नूनम् अयं वधूनाम् क्रीडामृग: ।।५।।

अनुवाद— यद्यपि श्रीभगवान् स्वतन्त्र हैं फिर भी विषयी पुरुषों के समान अपनी प्रियतमा पत्नी सत्यभामाजी की प्रसन्नता के लिए स्वर्ग के कल्प वृक्ष को उखाड़कर लाये । उस समय क्रोधान्ध बने इन्द्र ने अपने सैनिकों के साथ उन पर आक्रमण किया क्योंकि निश्चित रूप से वह अपनी स्त्रियों का क्रीडा मृग बना हुआ है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

यदाऽदित्या: कुण्डले दातुं स्वर्गं गतस्तदा प्रभु: स्वतन्त्रोऽपि ग्राम्य: स्त्रीपरतन्त्र इव प्रियाया: सत्यभामाया: प्रियं विधातुमिच्छुर्द्युतरुं पारिजातमानीतवान् । यदर्थे यन्निमित्तं तं कृष्णं वज्री स्त्रीप्रेरितो योद्धुमन्वधावत् । स्वकार्यसाधकेन तेन युद्धोद्यमस्तस्यायुक्त एवेत्याह-क्रीडामृग इति । अयं व्रजी ।।५।।

भाव प्रकाशिका

जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण देवताओं की माता अदिति देवी को उनका कुण्डल उनको देने के लिए स्वर्ग गये उस समय वे अपनी प्रियतमा पत्नी सत्यभामाजी को प्रसन्न करने के लिए विषयी पुरुष के समान स्वर्ग से कल्पवृक्ष को उखाड़ लाये । इस बात को सुनकर अपनी अपनी पत्नी शची से प्रेरित होकर इन्द्र ने अपने सैनिकों के साथ श्रीभगवान् पर आक्रमण कर दिया । निश्चित रूप से यह इन्द्र अपनी पत्नियों का क्रीडा मृग हैं ।।५।।

सुतं मृधे खं वपुषा ग्रसन्तं दृष्ट्वा सुनाभोन्मथितं धरित्र्या ।
आमन्त्रितस्तत्तनयाय शेषं दत्त्वा तदन्तःपुरमाविवेश ।।६।।

अन्वयः— वपुषा खं ग्रसन्तं सुतं मृधे सुनाभोन्मथितं दृष्ट्वा धरित्र्या आमन्त्रितः तत् तनयाय शेषं दत्वा तदन्तः पुरम् आविवेश ।।६।।

अनुवाद— अपने विशाल शरीर से आकाश को भी ढंक देने वाले भौमासुर नामक अपने पुत्र को युद्ध में चक्र के द्वारा मारे गये देखकर भूदेवी ने श्रीभगवान् की प्रार्थना की । उस समय भगवान् ने बचे हुए राज्य को भौमासुर के पुत्र भगदत्त को प्रदान कर दिया और वे भौमासुर के अन्तःपुर में प्रवेश किए ।।६।।

भावार्थ दीपिका

सुनाभेन चक्रेणोन्मथितं सुतं भौमं दृष्ट्वा तस्य मात्रा धरित्र्या भूम्या आमन्त्रितः प्रार्थितः संस्तस्य तनयाय भगदत्ताय हतशेषं राज्यं दत्त्वा ।।६।।

भाव प्रकाशिका

चक्र के द्वारा मारे गये अपने पुत्र भौमासुर को देखकर उसकी माता पृथिवी देवी ने श्रीभगवान् की प्रार्थना की तो बचे हुए राज्य को भगवान् ने भौमासुर के पुत्र भगदत्त को प्रदान कर दिया और उसके पश्चात् वे भौमासुर के अन्तःपुर में प्रवेश किए ।।६।।

तत्राहृतास्ता नरदेवकन्याः कुजेन दृष्ट्वा हरिमार्तबन्धुम् ।
उत्थाय सद्यो जगृहुः प्रहर्षव्रीडानुरागप्रहितावलोकैः ।।७।।

अन्वयः— तत्र कुजेन आहृताः ताः नरदेव कन्याः आर्तबन्धुम् हरिम् दृष्ट्वा सद्यः उत्थाय प्रहर्षव्रीडानुरागप्रहिताव-लोकैः जगृहुः ।।७।।

अनुवाद— वहाँ पर भौमासुर के द्वारा हरण करके लायी गयी राजकुमारियाँ दीनबन्धु, श्रीहरि को देखकर खड़ी हो गयीं और उन सबों ने तत्काल ही हर्ष, लज्जा तथा प्रेमपूर्वक श्रीभगवान् को देखकर भगवान् को पति के रूप में वरण किया ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तत्रान्तःपुरे कुजेन भौमेन या आहृतास्ताः प्रहर्षश्च व्रीडा चानुरागश्च तैः प्रहिताः प्रेरिता येऽवलोकास्तैर्जगृहुः स्वीकृतवत्यः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

उस अन्तःपुर में भौमासुर के द्वारा हरण करके लायी गयी राजकुमारियों ने दीनबन्धु श्रीभगवान् को देखा और खड़ी होकर तत्काल ही हर्ष, लज्जा तथा प्रेमपूर्वक श्रीहरि को देखते हुए उनको पति के रूप में वरण कर लिया ।।७।।

आसां मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु योषिताम् । सविधं जगृहे पाणीननुरूपः स्वमायया ॥८॥

अन्वयः भगवान् एकस्मिन् मुहूर्ते आसां योपिताम् पाणीन् सविधं स्वमायया अनुरूपः नानागारेपु जगृहे ॥८॥

अनुवाद— उस समय भगवान् ने अपनी माया के द्वारा अनेक गृहों में अनेक रूप को धारण करके एक ही मुहूर्त में उन सबों का पाणिग्रहण किया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

आसां योषितां पाणींस्तत्तदनुरूपः सन्सविधं विवाहोचितप्रकारसहितं यथा भवति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् ने अपनी माया के द्वारा अनेक रूपों को धारण करके अनेक गृहों में उन सबों का एक ही मुहूर्त में पाणिग्रहण किया ॥८॥

तास्वपत्यान्यजनयदात्मतुल्यानि सर्वतः । एकैकस्यां दश दश प्रकृतेर्विबुभूषया ॥९॥

अन्वयः— प्रकृतेः विबुभूषया तासु एकैकस्यां सर्वतः आत्मतुल्यानि दश-दश अपत्यानि अजनयत् ॥९॥

अनुवाद— अपनी प्रकृति का विस्तार करने की इच्छा से श्रीभगवान् ने अपनी प्रत्येक पत्नियों के गर्भ से अपने ही समान गुणों से सम्पन्न दश-दश पुत्रों को उत्पन्न किया ॥९॥

भावार्थ दीपिका

सर्वतः सर्वैर्गुणैः स्वतुल्यानि । प्रकृतेर्मायाया विविधं भवनं विस्तारस्तदिच्छया । यद्वा प्रकृतेर्हेतोर्विविधं भवितुमिच्छया॥९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् अपनी माया का विस्तार करने की इच्छा से अथवा प्रकृति रूपी साधन से अनेक होने की इच्छा से श्रीभगवान् ने उन प्रत्येक पत्नियों के गर्भ से अपने ही समान गुणों से सम्पन्न दश-दश पुत्रो को उत्पन्न किया ॥९॥

कालमागधशाल्वादीननीकै रुन्धतः पुरम् । अजीघनत्स्वयं दिव्यं स्वपुंसां तेज आदिशत् ॥१०॥

अन्वयः— अनीकैः पुरम् रुन्धतः कालमागधशाल्वादीन् स्वपुंसां दिव्यं तेजः आदिशत् स्वयं अजीघनत् ॥१०॥

अनुवाद— जव कालयवन, जरासन्ध तथा शाल्व आदि ने अपनी सेना के द्वारा मथुरा पुरी को घेर लिया उस समय भगवान् ने अपने लोगों को अपना दिव्य तेज प्रदान करके स्वयं ही उन सबों को मार दिया ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

कालः कालयवनः । रुन्धत आवृण्वतः । मुचुकुन्दभीमादिभिर्निमित्तमात्रैः स्वयमेवाजीघनद्घातितवान् । तेन च स्वपुंसां तेजः प्रभावं कीर्तिं वा दत्तवान् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

जिस समय कालयवन, जरासन्ध, तथा शाल्व इत्यादि ने अपनी सेना के द्वारा मथुरा को घेर लिया उस समय भगवान् ने मुचकुन्द तथा भीम आदि को निमित्त वनाकर उन सबों को स्वयं मार दिया किन्तु उसके द्वारा उन्होंने अपने इन भक्तों को दिव्य यश प्रदान किया ॥१०॥

शम्बरं द्विविदं बाणं मुरं बल्वलमेव च । अन्यांश्च दन्तवक्रादीनवधीत्कांश्च घातयत् ॥११॥

अन्वयः— शम्बरं, द्विविदं, वाणं, मुरं, वल्वलम् अन्या च दन्तवक्त्रदीन एतेपु कांश्चन अवधीत् कांश्चन च घातयत्॥११॥

अनुवाद— शम्वरासुर द्विविद, वाणासुर, मुर, वल्वल तथा दूसरे दन्तवक्त्र इत्यादि इनमें से कुछ को भगवान् ने स्वयम् मारा और कुछ को मरवा दिया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

शम्बरद्विविदबल्वलानन्यानपि कांश्चित्प्रद्युम्नरामादिभिर्घातयदघातयत् । घातयन् इति वा पाठः । दन्तवक्रादीन्स्वयमवधीत् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

शम्बर, द्विविद, बल्वल तथा इनसे भिन्न भी असुरों में से कुछ को श्रीभगवान् ने प्रद्युम्न, बलराम आदि के द्वारा मरवा दिया । कहीं-कहीं पर घातयन् भी पाठ है । दन्तवक्त्र आदि को तो श्रीभगवान् ने स्वयम् मारा ॥११॥

अथ ते भ्रातृपुत्राणां पक्षयोः पतितान्नृपान् । चचाल भूः कुरुक्षेत्रं येषामापततां बलैः ॥१२॥

अन्वयः— अथ ते भ्रातृपुत्राणां पक्षयोः पतितान् नृपान् येषाम् आपतताम् बलैः कुरुक्षेत्रं भूः चचाल ॥१२॥

अनुवाद— इसके अतिरिक्त आपके धृतराष्ट्र और पाण्डु दोनों भाइयों के पुत्रों के पक्ष में आये हुए राजाओं का भी वध भगवान् ने करवा दिया । उन राजाओं की सेना सहित कुरुक्षेत्र में जाते समय सारी पृथिवी काँपने लगी थी ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

नृपान्घातयदित्यनुषङ्गः । कथंभूतान् । कुरुक्षेत्रमापततां गच्छतां येषां बलैः सैन्यैर्भूः सर्वापि चचाल चकम्पे ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भी घातयत् पद का अन्वय है । उद्धवजी ने कहा कि आपके जो घृतराष्ट्र और पाण्डु दोनों भाई थे उनके पुत्र क्रमशः कौरव और पाण्डव थे । उन दोनों के पक्ष में जो राजा युद्ध करने के लिए अपनी सेना के साथ कुरुक्षेत्र में आये थे उनके सेना के साथ आते समय सारी पृथिवी काँपने लगी थी । उन सभी राजा और उनके सैनिकों को भगवान् ने विभिन्न माध्यमों से मरवा दिया ॥१२॥

स कर्णदुःशासनसौबलानां कुमन्त्रपाकेन हतश्रियायुषम् ।
सुयोधनं सानुचरं शयानं भग्नोरुमुर्व्यां न ननन्द पश्यन् ॥१३॥

अन्वयः— कर्ण दुःशासन सौबलानां कुमन्त्रपाकेन हतश्रियायुषाम् । भग्नोरुम् सानुचरम् ऊर्व्यां शयानम् सुयोधनं पश्यन् सः न ननन्द ॥१३॥

अनुवाद— कर्ण, दुःशासन तथा शकुनि की निन्दित सलाह के कारण जिसकी श्री और आयु दोनो समाप्त हो चुकी थी तथा भीम की गदा के प्रहार से जिसकी जांघ टूट चुकी थी इस प्रकार के अपने अनुचरों के साथ पृथिवी पर पड़े हुए दुर्योधन को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण को प्रसन्नता नहीं हुयी ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

स कृष्णः । हता श्रीरायुश्च यस्य । भग्नावूरू यस्य तमुर्व्यां शयानं पश्यन्नपि न ननन्द संतोषं न प्राप ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

कर्ण, दुशासन और शकुनि ये तीनों दुर्योधन को सदा निन्दित ही सलाह देते रहते थे । उसके फलस्वरूप दुर्योधन की श्री और आयु दोनों समाप्त हो गयी । भीम ने अपनी गदा के प्रहार से दुर्योधन की जंघा को तोड़ दिया था और मरणासन्न दुर्योधन अपने अनुचरों के साथ पृथिवी पर पड़ा हुआ था । इस स्थिति में भी पापी दुर्योधन को देखकर भगवान् को सन्तोष नहीं हुआ ॥१३॥

**किियान्भुवोऽयं क्षपितोरुभारो यद्द्रोणभीष्मार्जुनभीममूलैः ।
अष्टादशाक्षौहिणिको मदंशैरास्ते बलं दुर्विषहं यदूनाम् ॥१४॥**

अन्वयः— यद् द्रोणभीष्मार्जुन भीममूलैः अष्टादशाक्षौहिणिकिः भुवः भारः कियान् क्षपितः मदंशै यदूनाम् दुर्विषहं बलं आस्ते ॥१४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने सोचा यदि द्रोण, भीष्म, अर्जुन तथा भीम के द्वारा यह अठारह अक्षौहिणी वाली सेना के संहार से पृथिवी के महान् भार का कितना अंश समाप्त हुआ ? अभी तो मेरे अंश रूप यादवों की दु:सह सेना बनी ही हुयी है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अनभिनन्दनप्रकारमेवाह-कियानिति । द्रोणादिभिर्मूलैः कारणभूतैः । यदिति यः अष्टादशाक्षौहिणीयुक्तः । ह्रस्वत्वमार्षम्। क्षपितो य उरुर्भारो भुवः अयं कियान् । अत्यल्प इत्यर्थः । यस्मान्मदंशैः प्रद्युम्नादिभिर्हेतुभूतैर्दुर्विषहं बलमास्ते ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की अप्रसन्नता का प्रकार कियान् इत्यादि श्लोक से बतलाते हैं । द्रोण भीष्म अर्जुन तथा भीम आदि के द्वारा जो अठारह अक्षौहिणी सेना का संहार हुआ उससे पृथिवी के महान् भार का कितना अंश दूर हुआ? यह नगण्य सा है । **अक्षौहिणिकः** में हि में ह्रस्व आर्ष है । क्योंकि मेरे अंश से युक्त प्रद्युम्न आदि वाली यादवों की दु:सह सेना तो अभी बनी ही हुयी है ॥१४॥

**मिथो यदैषां भविता विवादो मध्वामदाताम्रविलोचनानाम् ।
नैषां वधोपाय इयानतोऽन्यो मय्युद्यतेऽन्तर्दधते स्वयं स्म ॥१५॥**

अन्वयः— मध्वामदाताम्रविलोचनानाम् एषां यदा विवादो भविता तदा इयानेव एषां वधोपायः अतः अन्यः न । मयि उद्यतेऽन्तर्दधते स्वयं स्म ॥१५॥

अनुवाद— मधुपान के कारण मद से लाल-लाल आंखें किए हुए इन सबों का जब परस्पर में ही कलह होगा तो यही इन सबों के विनाश का साधन है, उसके अतिरिक्त कोई भी दूसरा साधन नहीं है । मेरे संकल्प करने पर इन सबों का स्वयं विनाश हो जायेगा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

न चात्रान्य उपायः प्रभवति, किंतु मधुना य आमदः सर्वतो मदस्तेनाताम्रविलोचनानामेषां विवादो यदा भविष्यति तदेयानेवैषां वधोपायः अतोऽन्यो नास्ति । एकात्मानोऽपि मय्युद्यते सति स्वयमेव विवादेनान्तर्दधीरन्नित्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने कहा कि श्रीभगवान् ने सोचा कि इन यदुवंशियायों का तो एक ही बार में विनाश सम्भव है, जब कि ये सब मदिरापान करके परस्पर में कलह करने लगेंगे । इसके अतिरिक्त इन सबों के विनाश का कोई दूसरा साधन नहीं है । मैं एकात्मा हूँ अतएव जब मैं सङ्कल्प करूँगा तब ये स्वयं विनष्ट हो जायेंगे ॥१५॥

एवं संचिन्त्य भगवान् स्वराज्ये स्थाप्य धर्मजम् । नन्दयामास सुहृदः साधूनां वर्त्म दर्शयन् ॥१६॥

अन्वयः— एवं संचिन्त्य भगवान् धर्मराजं स्वराज्ये स्थाप्य साधूनां वर्त्म दर्शयन् सुहृदः नन्दयामास ॥१६॥

अनुवाद— इस तरह से विचार करके श्रीभगवान् ने युधिष्ठिर को उनके पिता के सिंहासन पर बैठाकर अपने संबन्धियों को सत्पुरुषों का मार्ग बतलाकर उन सबों को आनंदित किया ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

एवं श्लोकद्वयेनोक्तं क्रमेण संचिन्त्य स्वराज्ये स्थापयित्वा ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से दो श्लोकों द्वारा विचार करके भगवान् ने युधिष्ठिर को उनके पिता के सिंहासन पर बैठाया और अपने सभी संबन्धियों को सत्पुरुषों के मार्ग को बतलाया ।।१५।।

उत्तरायां धृतः पूरोर्वंशः साध्वभिमन्युना । स वै द्रौण्यस्त्रसंछिन्नः पुनर्भगवता धृतः ।।१७।।

अन्वयः— अभिमन्युना उत्तरायां पूरोः वंशः साधुधृतः स वै द्रौण्यस्त्र संछिन्नः पुनः भगवता धृतः ।।१७।।

अनुवाद— अभिमन्यु ने उत्तरा के गर्भ में महाराज पुरु के वंश का अच्छी तरह से आधान किया था किन्तु अश्वत्थामा के अस्त्र से वह नष्ट हो चुका था उसकी पुनः रक्षा श्रीभगवान् ने की ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

धृतो रक्षितः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

अभिमन्यु ने अपनी पत्नी उत्तरा के गर्भ में महाराज पूरू के वंश का आधान किया था, किन्तु वह अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से प्रायः विनष्ट सा हो गया था, किन्तु उसकी रक्षा श्रीभगवान् ने कर दी ।।१७।।

आयाजयद्धर्मसुतमश्वमेधैस्त्रिभिर्विभुः । सोऽपिक्ष्मामनुजै रक्षन् रेमे कृष्णमनुव्रतः ।।१८।।

अन्वयः— विभुः धर्मसुतम् त्रिभिः अश्वमेधैः आयाजयत् सः कृष्णमनुव्रतः अनुजैः क्ष्मां रक्षन् रेमे ।।१८।।

अनुवाद— श्रीभगवान् ने युधिष्ठिर से तीन अश्वमेध यज्ञों को कराया । युधिष्ठिर भी भगवान् श्रीकृष्ण का अनुगामी बनकर अपने छोटे भाइयों की सहायता से पृथिवी की रक्षा करते हुए आनन्द पूर्वक रहने लगे ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

अनुजैः सह ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीभगवान् से प्रेरित होकर महाराज युधिष्ठिर तीन अश्वमेध यज्ञों को किए वे भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति करते हुए अपने भाइयों की सहायता से पृथिवी की रक्षा करते हुए आनन्द पूर्वक रहने लगे ।।१८।।

भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः । कामान्सिषेवे द्वार्वत्यामसक्तः सांख्यमास्थितः ।।१९।।

अन्वयः— लोकवेदपथानुगः विश्वात्मा भगवान् अपि द्वार्वत्याम् सांख्यमतस्थितः सन् असक्तः कामान् सिषेवे ।।१९।।

अनुवाद— लोक तथा वेद की मर्यादा का पालन करने वाले सम्पूर्ण जगत् की आत्मा स्वरूप श्रीभगवान् भी प्रकृति पुरुष विवेक से युक्त होकर द्वारका में रहते हुए अनासक्त रूप से अनेक प्रकार के भोगों को भोगे ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

सांख्यं प्रकृतिपुरुषविवेकम् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

मूल में सांख्य शब्द से प्रकृत पुरुष विवेक को कहा गया है ।।१९।।

स्निग्धसस्मितावलोकेन वाचा पीयूषकल्पया । चरित्रेणानवद्येन श्रीनिकेतेन चात्मना ॥२०॥
इमं लोकममुं चैव रमयन्सुतरां यदून् । रेमे क्षणदया दत्तक्षणस्त्रीक्षणसौहृदः ॥२१॥

अन्वयः— स्निग्धस्मितावलोकेन, पीयूषकल्पया वाचा अनवद्येन चरित्रेण श्रीनिकेतेनात्मना क्षणदया, दत्तस्त्रीक्षणसौहृदः इमम् अमूं च लोकम् सुतरां यदून् चैव रमयन् रेमे ॥२०-२१॥

अनुवाद— मधुरमुसकान संवलित अवलोकन अमृत के समान मधुरवाणी, निर्दोष चरित्र, समस्त शोभा, के आश्रय भूत अपने श्रीविग्रह के द्वारा लोक, परलोक तथा समस्त यदुवंशियों को आनन्दित करते हुए तथा रात्रि में अपनी प्रियतमाओं को क्षणिक आनन्द प्रदान करते हुए श्रीभगवान् स्वयं विहार किये तथा अपनी पत्नियां को भी आनन्द प्रदान किए ॥२०-२१॥

भावार्थ दीपिका

स्निग्धो यः स्मितसहितोऽवलोकस्तेन । पीयूषकल्पया सुधातुल्यया । पाठान्तरे सुधाप्रवाहरूपया । आत्मना देहेन । क्षणदया रात्र्या दत्तः क्षणोऽवसर उत्सवो वा यासां स्त्रीणां तासु क्षणं सौहृदं यस्य सः ॥२०-२१॥

भाव प्रकाशिका

मधुर मुस्कान युक्त चितवन के द्वारा तथा अमृत के समान अत्यन्त मधुरवाणी के द्वारा जहां पर **पीयूषकुल्यया** पाठ है उसका अर्थ होगा अमृत के प्रवाह के समान वाणी के द्वारा । आत्मा शब्द से देह को कहा गया है । रात्रि में श्रीभगवान् जिन स्त्रियों को क्षणभर के लिए आनन्द प्रदान करते थे उन सबों के साथ श्रीभगवान् का क्षणिक सौहार्द था ॥२०-२१॥

तस्यैवं रममाणस्य संवत्सरगणान्बहून् । गृहमेधेषु योगेषु विरागः समजायत ॥२२॥

अन्वयः— तस्य एवं गृहमेधेषु योगेषु बहून् संवत्सरगणान् रममाणस्य विरागः समजायत ॥२२॥

अनुवाद— इस तरह से गार्हस्थ्य सम्बन्धी साधनों से बिहार करते हुए श्रीभगवान् के अनेक वर्ष बीत गये। उसके पश्चात् उनको गार्हस्थ्य से विराग उत्पन्न हो गया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

गृहमेधेषु गृहधर्मेषु । योगेषु कामभोगोपायेषु । विराग औदासीन्यं जातमित्यर्थः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

गृहमेध शब्द से गृहस्थ धर्म को कहा गया है तथा योग शब्द से कामोपभोग के साधनों को कहा गया है। अनेक वर्षो तक गार्हस्थ्य का पालन करते हुए श्रीभगवान् को विराग उत्पन्न हो गया ॥२२॥

दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधीनः स्वयं पुमान् । को विस्रम्भेत योगेन योगेश्वरमनुव्रतः ॥२३॥

अन्वयः— दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधीनः स्वयं पुमान् योगेन योगेश्वरमनुव्रतः को विस्रम्भेत ॥२३॥

अनुवाद— ये भोग सामग्रियाँ परमात्मा के अधीन हैं और जीव भी परमेश्वर के ही अधीन है । अतएव भक्तियोग के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करने वाला कौन पुरुष उन भोग्य पदार्थो पर विश्वास कर सकता है । उन भोग सामग्रियों से जब भगवान् को भी विराग हो गया है तो मनुष्यों के विषय में क्या कहना है ?॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यदा स्वाधीनेष्वपि भगवतो विरागस्तदा दैवाधीनो को विस्रम्भेत विश्वासं प्रीतिं वा कुर्यात् । योगेन चोद्योगेश्वरं श्रीकृष्णमनुव्रतः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

भोग सामग्रियाँ तो श्रीभगवान् के अधीन हैं फिर भी उन सबों से श्रीभगवान का वियोग हो गया तो फिर परमात्माधीन रहने वाली सामग्रियों की प्राप्ति कब तक होगी इस विषय में तो वह व्यक्ति कभी भी विश्वास नहीं कर सकता है जो भक्तियोग के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करता है ।।२३।।

पुर्यां कदाचित्क्रीडद्भिर्यदुभोजकुमारकैः । कोपिता मुनयः शेपुर्भगवन्मतकोविदाः ।।२४।।

अन्वयः— कदाचित् पूर्यां क्रीडद्भिः यदुभोजकुमारकैः कोपिताः तदा भगवन्मत कोविदाः मुनयः शेपुः ।।२४।।

अनुवाद— एक बार द्वारकापुरी में ही क्रीडा करने वाले यदुवंशी तथा भोजवंशी बालकों ने खेल-खेल में मुनियों को क्रुद्ध बना दिया । उस समय यह जानकर कि श्रीभगवान् को विनाश ही अभिमत है उन मुनियों ने शाप दे दिया ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

शेपुः शापं ददुः । भगवतो मतेऽभिप्राये कोविदाः अभिज्ञाः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

जिन मुनियों को बालकों ने क्रुद्ध कर दिया वे मुनिगण जानते थे कि अब भगवान् को यदुवंश का विनाश ही अभिमत है इसीलिए उन मुनियों ने उन बालकों को विनाश का शाप दे दिया ।।२४।।

ततः कतिपयैर्मासैर्वृष्णिभोजान्धकादयः । ययुः प्रभासं संहृष्टा रथैर्देवविमोहिताः ।।२५।।

अन्वयः— ततः कतिपयैः मासैः वृष्णिभोजान्धकादयः देवैःविमोहिताः संहृष्टाः रथैः प्रभासं ययुः ।।२५।।

अनुवाद— उसके कुछ महीने बाद वृष्णि, भोज तथा अन्धक वंशी यादव भावीवश रथों पर बैठकर प्रसन्नता पूर्वक प्रभास क्षेत्र में गये ।।२५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

मुनियों के शाप दिए हुए कुछ महीने बीत जाने पर वृष्णिवंशी, भोजवंशी तथा अन्धक वंशी यादव माया के द्वारा मोहित होकर रथों पर बैठकर प्रसन्नता पूर्वक प्रभास क्षेत्र में गये ।।२५।।

तत्र स्नात्वा पितृन्देवानृषींश्चैव तदम्भसा । तर्पयित्वाऽथ विप्रेभ्यो गावो बहुगुणा ददुः ।।२६।।

अन्वयः— तत्र स्नात्वा तदम्भसा पितृन् देवान् ऋषींश्चैव तर्पयित्त्वा अथ विप्रेभ्यः बहुगुणाः गावः ददुः ।।२६।।

अनुवाद— वहाँ पर स्नान करके वहाँ के जल से पितरों देवताओं और ऋषियों का तर्पण करके ब्राह्मणों को अत्यधिक गुण सम्पन्न गौओं का दान दिया ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

वयः शीलादिबहुगुणोपेता या गावस्ताः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

उन लोगों ने प्रभास क्षेत्र में जाकर वहाँ के जल में स्नान किया, तदनतर देवताओं ऋषियों तथा पितरों का तर्पण करके ब्राह्मणों को उत्तम कोटि की गायों का दान दिया ।।२६।।

हिरण्यं रजतं शय्यां वासांस्यजिनकम्बलान्। यानं रथानिभान्कन्या धरां वृत्तिकरीमपि ॥२७॥
अन्नं चोरुरसं तेभ्यो दत्त्वा भगवदर्पणम्। गोविप्रार्थासवः शूराः प्रणेमुर्भुवि मूर्धभिः ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे विदुरोद्धवसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अन्वयः— हिरण्यं, रजतं, शय्यां, वासांसि, अजिनकम्बलान्, यानं, रथान् इभान् कन्याः वृत्तिकरीं धराम् अपि, भगवदर्पणम् ऊरूरसं अन्नं दत्वा गोविप्रार्थासवः शूराः भुवि मूर्धभिः प्रणेमुः ॥२७-२८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उन लोगों ने ब्राह्मणों को सुवर्ण, चाँदी, शय्या, वस्त्र, मृगचर्म, कम्बल, सवारी, रथों हाथियों जिससे जीविका चल सके ऐसी भूमि तथा श्रीभगवान् को निवेदित अनेक प्रकार के सरस अन्नों का दान करके गौओं तथा ब्राह्मणों के लिए प्राणधारण करने वाले उन वीरों ने पृथिवी पर शिर टेक कर प्रणाम किया ॥२७-२८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के विदुरोद्धव संवाद के अन्तर्गत तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

भावार्थ दीपिका

कन्याश्च । वृत्तिकरीं जीविकापर्याप्ताम् । भगवदर्पणं यथा भवति । गोविप्रार्था असवो येषाम् ॥२७-२८॥

इति श्रीमद्भागवते तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

स्नान तर्पण और गोदान करके उन वीरो नें ब्राह्मणों को निम्नांकित वस्तुओं का भी दान दिया । सुवर्ण, चाँदी, शय्या, वस्त्रों, मृगचर्मों, कम्बलों, सवारियों, रथों, हाथियों, कन्याओं तथा जीविका के लिए पर्याप्त भूमि तथा श्रीभगवान् को अर्पित अनेक प्रकार के रसों से युक्त अनेक प्रकार के अन्नों का दान करके गौओं तथा ब्राह्मणों के ही लिए प्राणों को धारण करने वाले उन वीरों ने पृथिवी पर माथा टेककर ब्राह्मणों को प्रणाम किया ॥२७-२८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३।।

चतुर्थ अध्याय

उद्धवजी से आज्ञा लेकर विदुरजी का मैत्रेय महर्षि के पास जाना

उद्धव उवाच

अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम् । तया विभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्म पस्पृशुः ॥१॥

अन्वयः— अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा वारुणीं च पीत्वा तया विभ्रंशित ज्ञाना दुरुक्तैः मर्म पस्पृशुः ॥१॥

उद्धवजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर इन सबों ने भोजन किया और वारुणी मदिरा पी । उसके कारण उन सबों का ज्ञान नष्ट हो गया और अपने दुर्वचनों के द्वारा वे एक दूसरे के हृदय को कष्ट देने लगे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्थे बन्धुनिधनं श्रुत्वात्मज्ञानलब्धये । उद्धवस्योपदेशेन क्षत्ता मैत्रेयमागमत् ।।१।। तैर्ब्राह्मणैरनुज्ञाताः । वारुणीं पैष्टीं मदिराम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

अपने बान्धवों के विनाश का समाचार सुनकर विदुरजी उद्धवजी के उपदेशानुसार आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए मैत्रेय महर्षि के पास गये ।।१।।

उन ब्राह्मणों की आज्ञा प्राप्त करके उन यादव वीरों ने भोजन किया और उसके पश्चात् पैष्टी मदिरा को पिया। मदिरा पीने के कारण उन लोगों को ज्ञान नष्ट हो गया और वे अपने दुर्वचनों से एक दूसरे के हृदय को कष्ट पहुँचाने लगे ।।१।।

तेषां मैरेयदोषेण विषमीकृतचेतसाम् । निम्लोचति रवावासीद्वेणूनामिव मर्दनम् ।।२।।

अन्वयः— मैरेयदोषेण विषमीकृतचेतसाम् तेषां निम्लोचति रवौ वेणूनामिव मर्दनम् आसीत् ।।२।।

अनुवाद— मदिरापानजन्य दोष के कारण उन सबों की बुद्धि विनष्ट हो गयी थी और सूर्यास्त होते-होते उनमें उसी प्रकार कलह होने लगा जैसे परस्पर की रगड़ से बाँसों में आग लग जाती हैं ।।२।।

भावार्थ दीपिका

वारुण्येव मैरेयं तस्य दोषेण । रवौ निम्लोचत्यस्तं गच्छति सति । मर्दनं कदनम् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

वारुणी मदिरा को ही मैरेय कहते हैं । उससे उत्पन्न दोष के कारण सूर्यास्त के समय में एक दूसरे को मारने काटने लगे ।।२।।

भगवान्स्वात्ममायाया गतिं तामवलोक्य सः । सरस्वतीमुपस्पृश्य वृक्षमूलमुपाविशत् ।।३।।

अन्वयः— स भगवान् स्वात्ममायायाः तां गतिमवलोक्य सरस्वतीम् उपस्पृश्य वृक्षमूलम् उपाविशत् ।।३।।

अनुवाद— श्रीभगवान् अपनी माया की अद्भुत गति को देखकर सरस्वती नदी के जल से आचमन करके वृक्ष की जड़ में जाकर बैठ गये ।।३।।

भावार्थ दीपिका

उपस्पृश्य सस्वत्यामाचम्य ।।३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने अपनी माया की विचित्र लीला को देखा और वे सरस्वती नदी के जल से आचमन करके जाकर वृक्ष के नीचे उसकी जड़ में जाकर बैठ गये ।।३।।

अहं चोक्तो भगवता प्रपन्नार्तिहरेण ह । बदरीं त्वं प्रयाहीति स्वकुलं संजिहीर्षुणा ।।४।।

अन्वयः— स्वकुलं संजिहीर्षुणा प्रपन्नार्तिहरेण भगवता अहं चोक्तः त्वं बदरीं प्रयाहि ।।४।।

अनुवाद— अपने वंश का विनाश करने के इच्छुक तथा शरणागत जीवों की रक्षा करने वाले श्रीभगवान् ने मुझसे कहा कि तुम बदरिकाश्रम चले जाओ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

अहं चोक्तः पूर्वमेव द्वारकायाम् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

पहले द्वारका में ही भगवान् ने मुझसे कह दिया था कि तुम बदरिकाश्रम में चले जाओ ।।४।।

अथापि तदभिप्रेतं जानन्नहमरिन्दम । पृष्ठतोऽन्वगमं भर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः ।।५।।

अन्वयः— अथापि भर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः अहम् हे अरीन्दम ! तदभिप्रेतं जानन् पृष्ठतः अन्वगमम् ।।५।।

अनुवाद— फिर भी अपने स्वामी के विप्रयोग को वर्दास्त करने में असमर्थ होने के कारण मैं उनके अभिप्राय को जानता हुआ भी उनके पीछे-पीछे गया ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तदभिप्रेतं कुलसंहारादिकम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने कहा कि मैं यह जानता था कि भगवान् अपने वंश का संहार करना चाहते हैं । फिर भी मैं उनके पीछे-पीछे प्रभासक्षेत्र गया ।।५।।

अद्राक्षमेकमासीनं विचिन्वन्दयितं पतिम् । श्रीनिकेतं सरस्वत्यां कृतकेतमकेतनम् ।।६।।

अन्वयः— कृतकेतम् अकेतनम् श्रीनिकेतम् दयितं पतिम् विचिन्वन् सरस्वत्याम् एकम् आसीनम् अद्राक्षम् ।।६।।

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र आश्रय तथा जिनका कोई भी आश्रय नहीं है, सम्पूर्ण शोभाओं के एकमात्र आश्रय अपने प्रिय प्रभु को खोजते हुए मैंने उनको सरस्वती नदी के किनारे अकेले बैठे हुए देखा ।।६।।

भावार्थ दीपिका

कृतकेतं कृतावासम् । अकेतनममनाश्रयम् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् वृक्ष मूल को ही अपना आश्रय बनाये थे तथा उनका कोई भी आश्रय नहीं था । ऐसे अपने प्रियतम प्रभु को मैंने सरस्वती नदी के तट पर अकेले बैठे हुए देखा ।।६।।

श्यामावदातं विरजं प्रशान्तारुणलोचनम् । दोर्भिश्चतुर्भिर्विदितं पीतकौशाम्बरेण च ।।७।।
वाम ऊरावधिश्रित्य दक्षिणाङ्घ्रिसरोरूहम् । अपाश्रितार्भकाश्वत्थमकृशं त्यक्तपिप्पलम् ।।८।।

अन्वयः— श्यामावदातं, विरजं, प्रशान्तारुणलोचनम्, चतुर्भिः दोर्भिः विदितम्, पीतकौशाम्बरेण च वाम ऊरौ, दक्षिणाङ्घ्रिसरोरुहम् अधिश्रित्य, अपाश्रितार्भकाश्वत्थं, अकृशम् व्यक्तपिप्पलम् ।।७-८।।

अनुवाद— दिव्य श्याम वर्ण से युक्त, जिसमें रजोगुण का लेश भी न हो ऐसे शुद्ध सत्वमय, चार भुजाओं से युक्त, पीला पीताम्बर धारण किए हुए, अपने दाहिने चरण कमल को बायीं जंघे पर रखकर, छोटे से पिप्पल के वृक्ष का सहारा लेकर बैठे हुए, आनन्दपूर्ण तथा विषय सुख का परित्याग किए हुए श्रीभगवान् को मैंने देखा ।।७-८।।

भावार्थ दीपिका

विरजं विरजसं शुद्धसत्त्वमयम् । विदितं लक्षितम् । कौशं कौशेयम् । अधिश्रित्योपरि स्थापयित्वा । अपाश्रितः पृष्ठतोऽवष्टब्धोऽर्भको बालः कोमलोऽश्वत्थो येन तम् । त्यक्तं पिप्पलं विषयसुखं येन तम् । तथाप्यकृशमानन्दपूर्णम् ।।७-८।।

भाव प्रकाशिका

विरजं पद का अर्थ रजोगुण रहित शुद्ध सत्वमय है । विदित का अर्थ है लक्षित अर्थात् दिव्य दिखायी देने

वाले पिताम्बरधारी, बायीं जंघा पर दाहिने चरण कमल को रखकर तथा छोटे से पिप्पल के वृक्ष का सहारा लिए हुए, **त्यक्तपिप्पलम्** पद का अर्थ हैं, विषय सुख से विरक्त और **अकृशम्** पद का अर्थ है आनन्दपूर्ण ।।७-८।।

तस्मिन्महाभागवतो द्वैपायनसुहृत्सखा । लोकाननुचरन्सिद्ध आससाद यदृच्छया ।।९।।

अन्वयः— तस्मिन् महाभागवतः द्वैपायनसुहृत् सखा, सिद्धः लोकान् अनुचरन् यदृच्छया आससाद ।।९।।

अनुवाद— उसी स्थान पर महाभागवत तथा महर्षि बादरायण के प्रिय मित्र तथा सिद्ध मैत्रेय महर्षि लोकों में स्वच्छन्द विचरण करते हुए आ गये ।।९।।

भावार्थ दीपिका

द्वैपायनः सुहृत्सखा च यस्य सः स्वगुरुपुत्रत्वात्, पराशरशिष्यो मैत्रेय इत्यर्थः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

उस समय लोकों में अपनी इच्छानुसार विचरण करने वाले पराशर महर्षि के शिष्य होने के कारण महर्षि बादरायण के प्रिय मित्र महर्षि मैत्रेय वहाँ आ गये ।।९।।

तस्यानुरक्तस्य मुनेर्मुकुन्दः प्रमोदभावानतकन्धरस्य ।
आशृण्वतो मामनुरागहाससमीक्षया विश्रमयन्नुवाच ।।१०।।

अन्वयः— तस्यानुरक्तस्य मुनेः प्रमोदभावानतकन्धरस्य, आशृण्वतः अनुरागहासमीक्षया माम् विश्रमयन् उवाच ।।१०।।

अनुवाद— श्रीभगवान् में अनुराग से युक्त तथा अनन्द एवं भक्ति की भावना से झुकी हुयी कन्धा वाले महर्षि मैत्रेय के सामने ही प्रेम तथा मुस्कान युक्त चितवन से मुझको आनन्दित करते हुए श्रीभगवान् कहे ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

प्रमोदेन भावेन चानता कन्धरा यस्य । पाठान्तरे प्रमोदस्य भारेण । अनुरागेण सह हासो यस्यां तया समीक्षया विश्रमयन्विगतश्रमं कुर्वन् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

आनन्द तथा भक्ति की भावना से जिनकी गर्दन झुकी हुयी थी ऐसे मैत्रेय महर्षि के सामने; जहाँ प्रमोदभारेण पाठ है वहाँ अर्थ होगा आनन्द के भार से झुकी हुयी गर्दन वाले मैत्रेय महर्षि के सामने ही प्रेम तथा हँसी से युक्त होकर मुझको देखते हुए श्रीभगवान् ने मुझको आनन्दित करते हुए कहा ।।१०।।

श्रीभगवानुवाच

वेदाहमन्तर्मनसीप्सितं ते ददामि यत्तद्दुरवापमन्यैः ।
सत्रे पुरा विश्वसृजां वसूनां मत्सिद्धिकामेन वसो त्वयेष्टः ।।११।।

अन्वयः— हे वसो ! अहं ते मनसि यद् इप्सितं तत् ददामि । तत् अन्यैः दुखापम् हे वसो पुरा विश्वसृजां वसूनां सत्रे मत्सिद्धिकामेन त्वया इष्टः ।।११।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे वसो ! तुम्हारे मन में क्या है, उसे मैं जानता हूँ । अतएव मैं तुमको वह साधन प्रदान करता हूँ जो दूसरों के लिए दुर्लभ हैं । विश्व की सृष्टि करने वाले प्रजापतियों और वसुओं के यज्ञ मे तुमने मुझको ही प्राप्त करने के लिए मेरी आराधना की थी ।।११।।

भावार्थ दीपिका

हे उद्धव, ते मनसीप्सितमहमन्तः स्थितो वेद वेद्मि । दाने हेतुः-विश्वसृजां वसूनां च मिलितानां सत्रे । हे वसो इति पुरा पूर्वजन्मनि त्वं वसुरभूस्तदा मत्प्राप्तिकामेन त्वयाऽहमिष्टः, अतस्तत्साधनं ददामि दास्यामि । अन्यैर्मत्पराङ्मुखैर्दुष्प्रापम्।।११।।

भाव प्रकाशिका

हे उद्धव ! तुम्हारे मन में क्या है ? इसे मैं तुम्हारे भीतर रहकर जानता हूँ । उसे मैं तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ । उसे प्रदान करने का कारण बतलाते हुए भगवान् ने कहा पूर्वजन्म में तुम वसु थे और विश्व की सृष्टि करने वाले सभी प्रजापतियों और वसुगण जो यज्ञ कर रहे थे उस यज्ञ में तुमने मेरी आराधना मुझे प्राप्त करने के ही लिए की थी । अतएव मैं तुम्हें उस साधन को दूँगा । जो लोग मुझसे विपरीत रहते हैं उन लोगों के लिए वह दुष्प्राप्य है ।।११।।

स एष साधो चरमो भवानामासादितस्ते मदनुग्रहो यत् ।
यन्मां नृलोकान्रह उत्सृजन्तं दिष्ट्या ददृश्वान्विशदानुवृत्त्या ।।१२।।

अन्वयः— हे साधो ! एष भवानाम् चरमः, यद् मदनुग्रहः आसादितः यत् रहः लोकान् उत्सृजन्तं माम् दिष्ट्या विशदानुवृत्त्या ददृश्वान् ।।१२।।

अनुवाद— हे साधु ! स्वभाव वाले उद्धव ! तुम्हारे जितने भी जन्म हुए हैं उन सबों में यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है । इसीलिए तुमने मेरा अनुग्रह प्राप्त किया है । मैं एकान्त में इस जीवलोक का परित्याग कर रहा हूँ, किन्तु ऐकान्तिक भक्ति के कारण तुमने यहाँ पर भी सौभग्यवशात् मेरा दर्शन प्राप्त कर लिया ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

तस्य भाग्यमभिनन्दति । स एष भवो जन्म ते भवानां मध्ये चरमः । यद्यस्मिन्मदनुग्रहः आसादितो लब्धः । यत्पुनर्मां रह एकान्ते विशदानुवृत्त्या एकान्तभक्त्या ददृश्वान् दृष्टवानसि एतद्दिष्ट्या । भद्रं जातमित्यर्थः । नृलोकान् नृशब्देन जीवास्तेषां लोकानुत्सृजन्तं वैकुण्ठं गच्छन्तमित्यर्थः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी के भाग्य की सराहना करते हुए भगवान् ने कहा— तुम्हारे जितने भी जन्म हुए हैं उन सबों में यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है । उसी के कारण तुमने मेरी कृपा प्राप्त की है । अपनी ऐकान्तिक भक्ति के द्वारा तुमने मेरा एकान्त में दर्शन प्राप्त किया है । यह तुम्हारे सौभाग्य की बात है । इस समय मैं मनुष्य लोक को छोड़कर वैकुण्ठ लोक जा रहा हूँ ।।१२।।

पुरा मया प्रोक्तमजाय नाभ्ये पद्मे निषण्णाय ममादिसर्गे ।
ज्ञानं परं मन्महिमावभासं यत्सूरयो भागवतं वदन्ति ।।१३।।

अन्वयः— पुरा आदि सर्गे मम नाभ्ये पद्मे निषण्णाय अजाय मया मन्महिमावभासं परं ज्ञानम् प्रोक्तम् यत्सूरयः भागवतं वदन्ति ।।१४।।

अनुवाद— पहले के आदि सर्ग में (पाद्मकल्प) में मेरे नाभिकमल पर बैठे हुए ब्रह्माजी को मेरी महिमा को प्रकाशित करने वाले जिस ज्ञान को मैंने ब्रह्माजी को दिया था और ज्ञानी पुरुष जिसे भागवत कहते हैं, उसे ही मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ददामीति यदुक्तं तदेव निर्दिशति । पुरा पूर्वस्मिन्पाद्मे कल्पे । आदिसर्गे सर्गोपक्रमे । मम महिमा लीलाऽवभास्यते येन तत् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् ने जिसे देने के लिए कहा था उसे ही उद्धवजी को बतलाते हैं पहले के पद्मकल्प को ही आदि सर्ग कहा गया है। उस कल्प में मैंने ब्रह्माजी को भागवत का उपदेश दिया था। उससे मेरी महिमा का प्रकाश होता है उसे ही मैं तुम्हें दे रहा हूँ ॥१३॥

इत्यादृतोक्तः परमस्य पुंसः प्रतीक्षणानुग्रहभाजनोऽहम् ।
स्नेहोत्थरोमा स्खलिताक्षरस्तं मुञ्चञ्छुचः प्राञ्जलिराबभाषे ॥१४॥

अन्वयः— परमस्य पुंसः प्रतिक्षणानुग्रहभाजनः अहम् इत्यादृतोक्तः स्नेहोत्थरोमा स्खलिताक्षरः शुचः मुञ्चन् तम् प्राञ्जलिः आबभाषे ॥१४॥

अनुवाद— उन परम पुरुष श्रीभगवान् के प्रत्येक क्षण अनुग्रह का पात्र बना हुआ मैं श्रीभगवान् के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर मेरे शरीर में स्नेहातिरेक के कारण रोमाञ्च हो गया, आँखों से आँसू की धारा प्रवाहित होने लगी और मेरी वाणी गद्गद हो गयी मैंने हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से कहा ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

इत्येवमादृतश्चासावुक्तश्चाहम् । प्रतीक्षणं कृपावलोक एवानुग्रहस्तस्य भाजनः पात्रभूतः । पाठान्तरे प्रतिक्षणमनुग्रहस्य पात्रमिति । शुचोऽश्रूणि मुञ्चन्नाबभाषे उक्तवानस्मि ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने विदुरजी को बतलाया कि इस प्रकार से श्रीभगवान् ने मेरा आदर करके मुझे कहा। मै तो प्रतिक्षण श्रीभगवान् की कृपा का पात्र बना हुआ था। श्रीभगवान् का देखना ही अनुग्रह है। भगवान् मुझे उस समय देख रहे थे। मेरी आँखों से आँसू निकलने लगी और मैंने भगवान् से हाथ जोड़कर कहा ॥१४॥

कोन्वीश ते पादसरोजभाजां सुदुर्लभोऽर्थेषु चतुर्ष्वपीह ।
तथापि नाहं प्रवृणोमि भूमन् भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकः ॥१५॥

अन्वयः— हे ईश पादजसरोजभाजां इह चतुर्षु अपि अर्थेषु को न दुर्लभः ? तथापि हे भूमन् ! भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकः अहं न प्रवृणोमि ॥१५॥

अनुवाद— जगत् के स्वामिन् अपके चरण कमलों की सेवा करने वाले पुरुषों के लिए इस संसार में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारो पुरुषार्थों में से कोई भी पुरुषार्थ दुर्लभ नहीं है, फिर भी मैं उन सबों को नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ। मैं तो केवल आपके चरण कमलों की सेवा करना चाहता हूँ ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

नहि स्वाज्ञाननिवृत्तिमात्रकामोऽहं, किंतु त्वन्निषेवणोत्सुकस्त्वयि चाघटमानाचरणं दृष्ट्वा मे मोहो भवति, अतस्त्वं तत्त्वज्ञानं देहीति प्रार्थयितुमाह-कोन्विति । चतुर्षु धर्मादिषु तथापि हे भूमन्, भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकोऽहम् तान्न प्रवृणोमि ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने कहा भगवन् मैं केवल अपने अज्ञान की ही निवृत्ति नहीं चाहता हूँ अपितु मैं आपके चरण कमलों की सेवा भी करना चाहता हूँ। आपके अद्भुत आचरण को देखकर मुझको मोह हो जाता है। अतएव आप मुझको तत्त्वज्ञान का उपदेश करें। इस तरह से प्रार्थना करने के लिए उन्होंने कहा आपके चरण कमलो की सेवा करने वाले पुरुषों के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में से कोई भी दुर्लभ नहीं होता है। हे

प्रभो ! मैं तो आपके चरण कमलों की सेवा करने के लिए उत्सुक हूँ अतएव उनमें से किसी भी पुरुषार्थ को मैं नहीं चाहता हूँ ॥१५॥

कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते दुर्गाश्रयोऽथारिभयात्पलायनम् ।
कालात्मनो यत्प्रमदायुताश्रयः स्वात्मन्रतेः खिद्यति धीर्विदामिह ॥१६॥

अन्वयः— अनीहस्य ते कर्माणि, अभवस्य ते भवः, कालात्मनः अथ अरिभयात् पलायनम्, दुर्गाश्रयः स्वात्मन् रतेः यत् प्रमदायुताश्रयः इह विदाम् धीः खिद्यति ॥१६॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप निःस्पृह होकर भी कर्मों को करते हैं, अजन्मा होकर भी जन्म लेते हैं, स्वयं काल स्वरूप होकर भी शत्रु के भय से पलायन कर जाते हैं और जाकर अपने द्वारका के किले में छिप जाते हैं, आप स्वात्माराम हैं फिर गृहस्थाश्रम का निर्वाह करने के लिए हजारों स्त्रियों के साथ रमण करते है, इस तरह के आपके अद्भुत चरित्र को देखकर ज्ञानियों की भी बुद्धि भ्रमित हो जाती है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

अघटमानाचरणं दर्शयति । कर्माण्यनीहस्य निःस्पृहस्य निष्क्रियस्य वा । अभवस्याजन्मनः भवो जन्म । कालान्मनस्तवारिभयाद्दुर्गाश्रयः पलायनं च स्वात्मनि रतिर्यस्य तस्य वह्वीभिः स्त्रीभिर्गृहस्थाश्रम इति यदिहास्मिन्विषयो विदुषामपि धीः संशयेन खिद्यति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के अद्भुत चरित्रों का ही वर्णन इस श्लोक में किया जा रहा है । उद्धवजी ने कहा भगवन् आप निःस्पृह अथवा निष्क्रिय हैं फिर भी आप कर्मो को करते रहते है, आप अजन्मा हैं फिर भी जन्म लेते हैं । आप स्वंय कालस्वरूप हैं फिर भी आप शत्रु के भय से युद्ध से पलायन कर जाते हैं । और दुर्ग में जाकर छिप जाते हैं । आप स्वात्माराम होकर भी गृहस्थाश्रम का पालन करने के लिए अनेक स्त्रियों के साथ रमण करते है । आपके इस तरह के आचरण को देखकर ज्ञानी पुरुषों की बुद्धि भ्रमित हो जाती हैं ॥१६॥

मन्त्रेषु मां वा उपहूय यत्त्वमकुण्ठिताखण्डसदात्मबोधः ।
पृच्छेः प्रभो मुग्ध इवाप्रमत्तस्तन्नो मनो मोहयतीव देव ॥१७॥

अन्वयः— हे प्रभो ! अकुण्ठितखण्डसदात्मबोधः त्वम् यत् मन्त्रेषु मां वा उपहूय मुग्ध इव अप्रमत्तः पृच्छेः हे देव! तत् नः मनः मोहयतीव ॥१७॥

अनुवाद— हे देव आपका स्वरूपज्ञान अखण्ड निर्वाध और संशय इत्यादि से रहित है, फिर भी आप सलाह करने के लिए मुझको बुलाकर भोले मनुष्यों के समान बड़ी सावधानी से मुझसे पूछते थे । आपका वह आचरण मेरे मन को मोहित सा कर देता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

किंच मन्त्रेषु च प्रस्तुतेषु च सत्सु मामाहूय वै अहो पृच्छेरपृच्छः । अकुण्ठितः कालादिनाऽखण्डः संततः सदात्मा संशयादिरहितो बोधो विद्याशक्तिर्यस्य । मुग्धवदज्ञवत् । अप्रमत्तोऽवहितः सन् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने कहा प्रभो आपका ज्ञान सदा निर्वाध, परिपूर्ण तथा संशय इत्यादि से रहित है । फिर भी आपको जब किसी विषय में मुझसे सलाह करनी होती थी तो आप मुझको बुलाकर सामान्य मनुष्यों के समान बड़ी सावधानी पूर्वक मुझसे पूछते थे । आपकी यह लीला मेरे मन को भ्रम में डाल देती है ॥१७॥

ज्ञानं परं स्वात्मरहः प्रकाशं प्रोवाच कस्मै भगवान्समग्रम् ।
अपि क्षमं नो ग्रहणाय भर्तर्वदाञ्जसा यद्वृजिनं तरेम ॥१८॥

अन्वयः— हे भर्तः ! स्वात्मरहः प्रकाशं समग्रं परं, ज्ञानं यत् भगवान् कस्मै प्रोवाच अपि क्षमं नो ग्रहणाय तर्हि अञ्जसा वद यद वयं वृजिनं तरेम ॥१८॥

अनुवाद— हे स्वामिन् आपने अपने स्वरूप तथा रहस्य के प्रकाशक जिस सम्पूर्ण ज्ञान को ब्रह्माजी को बतलाया है वह यदि हमारे भी समझने योग्य हो तो मुझे भी उसे बतलाइये जिससे मैं इस संसार सागर को आसानी से पार कर सकूँ ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

स्वात्मनस्तव रहो रहस्यं तत्त्वं तस्य प्रकाशकम् । कस्मै ब्रह्मणे । सर्वनामत्वमार्षम् । नोऽस्माकं ग्रहणायापि क्षमं योग्यं तर्हि वद । भर्तः स्वामिन् यद्यतो वृजिनं संसारदुःखमञ्जसाऽनायासेन तरिष्यामः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने भगवान् से प्रार्थना किया कि आपने अपने स्वरूप तथा रहस्य के प्रकाशक जिस सम्पूर्ण ज्ञान को ब्रह्माजी को बतलाया उसको यदि मैं भी समझने योग्य होऊँ तो आप मुझे भी बतलायें जिससे कि मैं भी इस दुःखमय संसार सागर को आसानी से पार कर सकूँ ॥१८॥

इत्यावेदितहार्दाय मह्यं स भगवान्परः । आदिदेशारविन्दाक्ष आत्मनः परमां स्थितिम् ॥१९॥

अन्वयः— इत्यावेदितहार्दाय, मह्यम् स परः भगवान् अरविन्दाक्षः आत्मनः परमां स्थिति आदिदेश ॥१९॥

अनुवाद— इस तरह से अपने हार्दिक अभिप्राय को निवेदित करने पर परम पुरुष भगवान् कमल नयन ने अपनी आत्मा की परम स्थिति का मुझे उपदेश दिया ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

आवेदितो हार्दो हृदिस्थितोऽभिप्रायो येन तस्मै ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अपने हार्दिक अभिप्राय को प्रकाशित करने वाले मुझको श्रीभगवान् ने अपने स्वरूप की परम स्थिति का उपदेश दिया ॥१९॥

स एवमाराधितपादतीर्थादधीततत्त्वात्मविबोधमार्गः ।
प्रणम्य पादौ परिवृत्य देवमिहागतोऽहं विरहातुरात्मा ॥२०॥

अन्वयः— स अहम् एवमाराधितपादतीर्थात् अधीत तत्त्वात्मविबोधमार्गः पादौ प्रणम्य देवं परिवृत्य विरहातुरात्मा, इह आगतः ॥२०॥

अनुवाद— जिनके चरणों की आराधना मैंने की है, ऐसे श्रीभगवान् ही तीर्थपाद अर्थात् मेरे गुरु हैं, उनसे उन आत्मतत्त्व के ज्ञान को प्राप्त करके, उनके चरणों की बन्दना करके तथा श्रीभगवान् की परिक्रमा करके विरह से व्याकुल होकर मैं यहाँ आया हूँ ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

आराधितपादो भगवान्स एव तीर्थं गुरुस्तस्मादधीतोऽधिगतस्तत्त्वात्मविबोधस्य परमार्थात्मज्ञानस्य मार्गो येन सोऽहम्। देवं परिवृत्य प्रदक्षिणीकृत्य ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

जिन श्रीभगवान् के चरणों की मैंने आराधना की है, वे ही भगवान् मेरे गुरु हैं, उनसे परमार्थ आत्मतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके मैंने श्रीभगवान् के चरणों में प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा की। उसके पश्चात् विरह से व्याकुल होकर मैं यहाँ आया हूँ ॥२०॥

सोऽहं तद्दर्शनाह्लादवियोगार्तियुतः प्रभोः । गमिष्ये दयितं तस्य बदर्याश्रममण्डलम् ॥२१॥

अन्वयः— सोऽहं प्रभोः दर्शनाह्लादवियोगार्तियुतः तस्य दयितं वदर्याश्रममण्डलं गमिष्ये ॥२१॥

अनुवाद— वही मैं श्रीभगवान् के दर्शन से आनन्दित किन्तु इस समय इनके वियोग जन्य कष्ट से दुःखी श्रीभगवान् के प्रिय बदरिकाश्रम नामक स्थान में जाऊँगा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तस्य दर्शनेनाह्लादो वियोगेनार्तिश्च ताभ्यां युतो बदर्याश्रमस्थानं गमिष्यामि ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने विदुरजी को बतलाया कि श्रीभगवान् का दर्शन हो जाने के कारण परमानन्द सम्पन्न तथा उनके वियोग जन्य कष्ट से दुःखी मैं श्रीभगवान् के प्रिय बदरिकाश्रम में जाऊँगा ॥२१॥

यत्र नारायणो देवो नरश्च भगवानृषिः । मृदु तीव्रं तपो दीर्घं तेपाते लोकभावनौ ॥२२॥

अन्वयः— यत्र नारायणो देवः भगवान् नरश्च लोकभावनौ मृदुतीव्रं दीर्घं तपः तेपाते ॥२२॥

अनुवाद— जिस बदरिकाश्रम में भगवान् नर एवं नारायण लोगों पर अनुग्रह करने के लिए मृदु एवं तीव्र दीर्घकाल से तपस्या कर रहे हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

मृदु परोपद्रवशून्यम् । तीव्रं दुश्चरम् । दीर्घमाकल्पान्तम् । तेपाते तपश्चरत इत्यर्थः । लोकभावनौ लोकानुग्रहकारकौ ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ने बतलाया कि उस बदरिकाश्रम में भगवान् नारायण जिससे कि किसी को कष्ट न हो इस प्रकार का दुश्चर तथा कल्प पर्यन्त चलने वाली तपस्या लोगों पर अनुग्रह करने के लिए कर रहे हैं ॥२२॥

श्रीशुक उवाच

इत्युद्धवादुपाकर्ण्य सुहृदां दुःसहं वधम् । ज्ञानेनाशमयत्क्षत्ता शोकमुत्पतितं बुधः ॥२३॥

अन्वयः— बुधः क्षत्ता इति उद्धवाद् सुहृदाम् दुःसहं वधम् उपाकर्ण्य उत्पतितं शोकम् ज्ञानेन अशमयत् ॥२३॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— ज्ञानी विदुरजी इस प्रकार से अपने सुहृदों के असाध्य वध का समाचार सुनकर उससे उत्पन्न शोक को उन्होंने ज्ञान के द्वारा शान्त कर दिया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञानेन विवेकेन ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

मूल के ज्ञान शब्द का अर्थ है विवेक । विदुरजी ने उद्धवजी से अपने प्रिय बान्धवों के वध का समाचार सुना उसको सुनकर उनको शोक तो उत्पन्न हुआ किन्तु उसको उन्होंने विवेक के द्वारा शान्त कर दिया ॥२३॥

सतं महाभागवतं व्रजन्तं कौरवर्षभः । विश्रम्भादभ्यधत्तेदं मुख्यं कृष्णपरिग्रहे ॥२४॥

अन्वयः— सः कौरवर्षभः व्रजन्तं तं महाभागवतम् विश्रम्भात् इदं अभ्यधत्त ॥२४॥

अनुवाद— कौरवो में श्रेष्ठ विदुरजी ने जाते हुए भगवान् के मुख्य किंकर महाभागवत उद्धवजी को देखकर उनसे विश्वासपूर्वक पूछा ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

विश्रम्भाद्विश्वासात् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

मूल के विश्रम्भात् पद का अर्थ विश्वास पूर्वक है । उद्धवजी भगवान् श्रीकृष्ण के मुख्य किंकर तथा महाभागवत थे । उनसे विदुरजी ने पूछा ॥२४॥

विदुर उवाच

ज्ञानं परं स्वात्मरहः प्रकाशं यदाह योगेश्वर ईश्वरस्ते ।
वक्तुं भवान्नोऽर्हति यद्धि विष्णोर्भृत्याः स्वभृत्यार्थकृतश्चरन्ति ॥२५॥

अन्वयः— योगेश्वरः ईश्वरः ते यत् स्वात्मरह; प्रकाशं यत् परं ज्ञानं आह भवान् नः वक्तुम् अर्हति यद्धि विष्णोः भृत्याः स्वभृत्यार्थ कृतश्चरन्ति ॥२५॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने आपको अपने स्वरूप तथा रहस्यों को प्रकाशित करने वाले जिस ज्ञान को बतलाया उसे आप मुझे भी बतलायें क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त तो अपने सेवकों के कार्य को सिद्ध करने के लिए ही पृथिवी पर संचरण करते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

यद्यस्माद्विष्णोर्भृत्याः स्वभृत्यप्रयोजनसाधकाः सन्तश्चरन्ति । न हि कृतार्थानामन्यत्कृत्यमस्तीत्यर्थः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के भक्त तो अपने सेवकों के प्रयोजनों की ही सिद्धि के लिए इस लोक में संचरण करते हैं इसके अतिरिक्त उनका दूसरा कोई प्रयोजन नहीं होता हैं । अतएव आप मुझे उस ज्ञान को बतलाएँ जिस ज्ञान को भगवान् श्रीकृष्ण ने आपको बतलाया था ॥२५॥

उद्धव उवाच

ननु ते तत्त्वसंराध्य ऋषिः कौषारवोऽन्ति मे । साक्षाद्भगवतादिष्टो मर्त्यलोकं जिहासता ॥२६॥

अन्वयः— ननु ते तत्त्वसंराध्यः कौषारवः ऋषिः । मर्त्यलोकं जिहासता भगवता मे अन्ति साक्षात् अदिष्टः ॥२६॥

उद्धवजी ने कहा

अनुवाद— आपको उस तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति के लिए महर्षि मैत्रेय की अराधना करनी चाहिए, क्योंकि इस मर्त्यलोक को त्यागने के इच्छुक श्रीभगवान् ने मेरे सामने ही उनको आपको उपदेश कर देने के लिए आदेश दिया था ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तत्त्वाय संराध्य इति । अयं भावः- भगवतैव स्मरणमात्रेण तवापि तत्त्वमुपदिष्टप्रायम् । अथ केवलमसंभावनादिनिवृत्तये ज्ञानी कश्चिदाराध्यः । स च तवाराध्यो मैत्रेयो न त्वहम् । ममान्तिक एव त्वदुपदेशे तस्यादिष्टत्वादिति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

तत्त्वसंराध्य: का अर्थ है तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए सेवनीय । कहने का अभिप्राय है कि चूकि भगवान् ने भी आपका स्मरण किया इतने ही मात्र से आपको भी तत्त्वज्ञान का उपदेश उन्होंने कर ही दिया फिर भी उस ज्ञान में असंभावना इत्यादि दोषों को दूर करने के लिए किसी ज्ञानी की आराधना करनी चाहिए । उसके लिए आपको मैत्रेय महर्षि की ही सेवा करनी चाहिए मेरी नहीं, क्योंकि मेरे सामने ही भगवान् ने आपको उस ज्ञान को प्रदान कर देने के लिए उनको आदेश दिया था ।।२६।।

श्रीशुक उवाच

इति सहविदुरेण विश्वमूर्तेर्गुणकथया सुधया प्लावितोरुताप: ।
क्षणमिव पुलिने यमस्वसुस्तां समुषित औपगविर्निशां ततोऽगात् ।।२७।।

अन्वय:— इति विदुरेण सह विश्वमूर्ते: गुणैककथया सुधया प्लावितोरुताप: औपगवि: यमस्वसु: पुलिने तां निशाम् क्षणमिव समुषित तत: अगात् ।।२७।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से विदुरजी के साथ विश्वमूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण की ही कथा रूपी सुधा के द्वारा उद्धवजी के हृदय का महान् संताप समाप्त हो । यमुनाजी के तट पर उनकी वह रात एकक्षण के समान बीत गयी और प्रात: काल वे वहाँ से चल दिए ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

प्लावितोऽपनीत उरुस्तापो यस्य । यमस्वसुर्यमुनाया: पुलिने तीरे तां निशां क्षणमिव समुषित: । औपगवि: उद्धव: ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

उपगवस्य अपत्यं पुमान् इस अर्थ में व्युत्पन: औपगवि: पद का अर्थ उद्धव है क्योंकि वे उपगव के पुत्र थे । विदुरजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण से संबन्धित चर्चा करते हुए उद्धवजी के हृदय का संताप समाप्त हो गया और वे उस रात्रि को यमुना के तट पर सोए हुए एक क्षण के समान बिता दिए । प्रात: काल होते ही उद्धवजी वहाँ से चल दिए ।।२७।।

राजोवाच

निधनमुपगतेषु वृष्णिभोजेष्वधिरथयूथपयूथपेषु मुख्य: ।
स तु कथमवशिष्ट उद्धवो यद्धरिरपि तत्यज आकृतिं त्र्यधीश: ।।२८।।

अन्वय:— वृषिणभोजेषु निधनमुपगतेषु अधिरथयूथपयूथपेषु मुख्य: स तु उद्धव: कथमवशिष्ट: यत् त्र्यधीश: हरि अपि आकृतिं तत्यज ।।२८।।

राजा परीक्षित के कहा

अनुवाद— वृष्णिवंशियों और भोज वंशियों का निधन हो जाने पर तथा सभी रथियों तथा यूथिपतियों के नष्ट हो जाने पर भी उन सबों में मुख्य उद्धवजी कैसे बचे रहे ? जबकि ब्रह्मा आदि के भी स्वामी श्रीहरि को भी अपना मानव शरीर त्यागना पड़ा ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मशापेन निधनं प्राप्तेषु यद्यस्मात्त्रयाणां ब्रह्मादीनामीशो हरिरप्याकृतिं मनुष्याकारं त्यक्तवान् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों के शाप के कारण जब सभी वृष्णिवंशी और भोजवंशी रथी, यूथपति इत्यादि का निधन हो गया, यहाँ तक कि श्रीभगवान् भी अपने मानव शरीर का परित्याग कर दिए, उस समय यूथपतियों में श्रेष्ठ उद्धवजी कैसे बचे रहे ।।२८।।

श्रीशुक उवाच

ब्रह्मशापापदेशेन कालेनामोघवाञ्छितः । संहृत्य स्वकुलं नूनं त्यक्ष्यन्देहमचिन्तयत् ।।२९।।

अन्वयः— ब्रह्मशापापदेशेन कालेन अमोघवाञ्छितः स्वकुलं संहृत्य देहम् त्यक्ष्यन् नून अचिन्तयत् ।।२९।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जिन श्रीहरि की इच्छा अमोघ है, वे ब्राह्मणों के शाप के बहाने अपने वंश का संहार करके अपने शरीर का त्याग करते समय सोचे ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मशापः अपदेशो मिषं यस्य तेन कालेन स्वशक्तिरूपेण अमोघं वाञ्छितं यस्य । न ह्यत्र शापः प्रभुः, किंतु भगवदिच्छैवेत्यर्थः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों का शाप तो एक बहाना था काल रूपी अपनी शक्ति के द्वारा जिन श्रीभगवान् की इच्छा अमोघ है, अर्थात् कभी भी व्यर्थ नहीं होती है । उसी के द्वारा यदुवंशियों का नाश हुआ । उनके नाश में शाप की प्रभुता नहीं थी अपितु वैसी श्रीहरि की इच्छा ही थी । उन श्रीभगवान् ने अपने शरीर का त्याग करते समय सोचा ।।२९।।

अस्माल्लोकादुपरते मयि ज्ञानं मदाश्रयम् । अर्हत्युद्धव एवाद्धा संप्रत्यात्मवतां वरः ।।३०।।

अन्वयः— मयि अस्माल्लोकात् उपरते मदाश्रयं ज्ञानं सम्प्रति आत्मतां वरः उद्धव एव अर्हति ।।३०।।

अनुवाद— इस लोक से मेरे चले जाने पर मेरे ज्ञान को तो इस समय आत्मज्ञों में श्रेष्ठ उद्धवजी ही धारण करने योग्य हैं ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

मय्युपरते सति ज्ञानमर्हति ज्ञानयोग्यो भवति ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

इस लोक से परमधाम गमन कर जाने के पश्चात् केवल उद्धव ही ऐसे आत्मज्ञ हैं जो मेरे ज्ञान को धारण कर सकने के योग्य हैं ।।३०।।

नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः । अतो मद्वयुनं लोकं ग्राहयन्निह तिष्ठतु ।।३१।।

अन्वयः— उद्धवः अणु अपि मन्नयूनः न यत् प्रभुः गुणैः अर्दितः न अतएव मद्वयुनम् लोकं ग्राहयन् इह तिष्ठतु ।।३१।।

अनुवाद— उद्धव मुझसे अणुमात्र भी न्यून नहीं है । वे आत्मज्ञ भी है । वे विषयों से कभी भी विचलित नहीं हुए । अतएव वे मेरे ज्ञान को संसार को प्रदान करते हुए यहीं रहें ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

मत्तः सकाशादीषदपि न्यूनो न भवति । यद्यस्माद्गुणैर्विषयैर्न क्षोभितः । मद्वयुनं ज्ञानं लोकस्योपदिशन् ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने सोचा कि उद्धव मुझसे थोड़ा सा भी कम नहीं हैं । उन्होंने अपने मन को वश में कर रखा है विषय उनको विचलित नहीं कर पाये हैं । अतएव वे मेरे ज्ञान का लोगों को उपदेश करने के लिए यहीं रहें ॥३१॥

एवं त्रिलोकगुरुणा संदिष्टः शब्दयोनिना । बदर्याश्रममासाद्य हरिमीजे समाधिना ॥३२॥

अन्वयः— एवं शब्दयोनिना त्रिलोकगुरुणा संदिष्टः वदर्याश्रममासाद्य समाधिना हरिमीजे ।।३२।।

अनुवाद— इस तरह वेदों के मूल भूत त्रैलोक्याधिपति श्रीहरि के द्वारा उपदिष्ट होकर उद्धवजी बदरिकाश्रम में जाकर समाधि योग के द्वारा श्रीहरि की पूजा करने लगे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

एवमनेनाभिप्रायेण शब्दयोनिना वेदकर्त्रा ईजे पूजयामास ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

इसी अभिप्राय से श्रीभगवान् ने उनको अपने ज्ञान का उपदेश दिया और उद्धवजी भी बदरिकाश्रम में जाकर समाधियोग के द्वारा श्रीहरि की आराधना करने लगे ॥३२॥

विदुरोऽप्युद्धवाच्छ्रुत्वा कृष्णस्य परमात्मनः । क्रीडयोपात्तदेहस्य कर्माणि श्लाघितानि च ॥३३॥
देहन्यासं च तस्यैव धीराणां धैर्यवर्धनम् । अन्येषां दुष्करतरं पशूनां विक्लवात्मनाम् ॥३४॥
आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसेक्षितम् । ध्यायन्गते भागवते रुरोद प्रेमविह्वलः ॥३५॥

अन्वयः— क्रीडयोपात्त देहस्य परमात्मनः कृष्णस्य श्लाघितानि कर्माणि उद्धवात् श्रुत्वा तस्य एव देहन्यासं धीराणां धैर्यवर्धनम् अन्येषां विक्लवात्मनाम् पशूनां दुष्करतरम् । हे कुरुश्रेष्ठ ! आत्मानं च कृष्णेन मनसेक्षितम् भगवते गते ध्यायन् प्रेमविह्वलः रुरोद ।।३३-३५।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण ने लीला पूर्वक ही अपने शरीर को धारण किया था । उनके प्रशंसनीय कर्मों को उद्धवजी के मुख से सुनकर तथा यह सुनकर कि भगवान् ने लीला पूर्वक ही अपने शरीर का त्याग किया। यह सुनकर जो धैर्य सम्पन्न पुरुष हैं । उनका धैर्य बढ़ता है, किन्तु जो लोग पशु के समान चञ्चल चित्त वाले हैं उनके लिए यह अत्यधिक कठिन है । विदुरजी ने यह जब सुना कि अन्तिम समय में श्रीभगवान् ने विदुरजी का स्मरण किया था तब उद्धवजी के चले जाने पर यह सोचकर विदुरजी प्रेम विह्वल होकर रोने लगे ॥३३-३५॥

भावार्थ दीपिका

अन्येषां पशुतुल्यानाम् । विक्लवात्मनामधीरचित्तानाम् । मनसेक्षितं चिन्तितम् ।।३३-३५।।

भाव प्रकाशिका

मूल के अन्येषाम् शब्द के द्वारा पशुओं के समान चञ्चल चित्त वाले लोगों को कहा गया है । मनसेक्षितम् शब्द का अर्थ मन से चिन्तित है ॥३३-३५॥

कालिन्द्याः कतिभिः सिद्ध अहोभिर्भरतर्षभः । प्रापद्यत स्वः सरितं यत्र मित्रासुतो मुनिः ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धें विदुरोद्धवसंवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अन्वयः— कालिन्द्याः कतिभिः अहोभिः सिद्धः भरतर्षभः स्वः सरितं प्रापद्यत यत्र मित्रासुतो मुनिः ।।३६।।

अनुवाद— यमुनातट से चलकर सिद्ध शिरोमणि विदुरजी कुछ दिनों में गङ्गातट पर पहुँचे जहाँ पर मैत्रेय महर्षि रहते थे ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरेस्कन्ध के विदुरोद्धवसंवाद के अन्तर्गत चतुर्थ अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

कालिन्द्याः सकाशात्सिद्ध एव विदुरः कतिपयैर्दिनैः स्वःसरितं गङ्गां प्रापद्यत प्राप्तः ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

विदुरजी सिद्ध थे वे यमुना तट से चलकर गङ्गा तट पर आये वहीं पर मैत्रेय महर्षि रहते थे ।।३६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरेस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।४।।

* * *

पाँचवाँ अध्याय

विदुरजी के प्रश्नों को सुनकर मैत्रेय महर्षि का सृष्टि का वर्णन करना

श्रीशुक उवाच

द्वारि द्युनद्या ऋषभः कुरूणां मैत्रेयमासीनमगाधबोधम् ।
क्षत्तोपसृत्याच्युतभावशुद्धः पप्रच्छ सौशील्यगुणाभितृप्तः ॥१॥

अन्वयः— द्युनद्याः द्वारि अगाधबोधम् आसीनं मैत्रेयम् अच्युतभावशुद्धकुरूणां ऋषभः क्षता उपसृत्य सौशील्य गुणाभितृप्तः पप्रच्छः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हरिद्वार में अगाध ज्ञान सम्पन्न बैठे हुए मैत्रेय महर्षि के पास जाकर श्रीभगवान् की भक्ति से शुद्ध अन्तःकरण वाले विदुरजी उनके सौशील्य आदि गुणों से तृप्त होकर पूछे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चमे भगवल्लीलां क्षत्त्रा पृष्टो महामुनिः । प्रोवाच महदादीनां सर्गं तैश्च हरेः स्तुतिम् ॥१॥ उक्तश्चतुर्भिरध्यायैः क्षत्तुर्मैत्रेयसङ्गमः । संवादस्तु तयोः स्कन्धद्वयेनाथ निगद्यते ॥२॥ द्युनद्या गङ्गाया द्वारि हरिद्वारे आसीनं नतु कर्मव्यग्रम् । तत्र हेतुः-अगाधोऽपरिच्छिन्नो बोधो यस्येति । मैत्रेयस्य सौशील्यमार्जवादि, गुणाश्च करुणादयस्तैरभितृप्तः । पाठान्तरे क्षत्तुः सौशील्यादिभिरभितृप्तं संतुष्टं मैत्रेयम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी द्वारा पूछे जाने पर महामुनि मैत्रेय महर्षि ने महदादि की सृष्टि वर्णन पूर्वक श्रीहरि की स्तुति का वर्णन पाँचवें अध्याय में किया है ॥१॥ चार अध्यायों में विदुर और मैत्रेय महर्षि का संगम वर्णित है । अब दो अध्यायों में उन दोनों का संवाद का वर्णन किया जा रहा है ॥२॥ हरिद्वार में अगाधज्ञानसम्पन्न मैत्रेय महर्षि बैठे थे, वे कार्यों के करने में व्यग्र नहीं थे । उन मैत्रेय महर्षि के सौशील्य, आर्जव, करुणा तथा दया आदि गुणों से तृप्त होकर विदुरजी ने उनसे प्रश्न किया । जहाँ पर गुणाभितृप्तं पाठ है वहाँ पर सौशील्य आदि से अत्यन्त तृप्त हुए मैत्रेय महर्षि से अर्थ होगा ॥१॥

विदुर उवाच

सुखाय कर्माणि करोति लोको न तैः सुखं वाऽन्यदुपारमं वा ।
विन्देत भूयस्तत एव दुःखं यदत्र युक्तं भगवान्वदेन्नः ।।२।।

अन्वयः— लोकः सुखाय कर्माणि करोति किन्तु तैः न सुखं न वाऽन्यदुपारमं ततः भूयः दुखमेव विन्देत अत्र यद् युक्तं भगवान् नः विन्देत ।।२।।

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— मनुष्य सुख की प्राप्ति के लिए कर्मों को करता है किन्तु उससे उसको सुख की प्राप्ति नहीं होती है और न तो उससे उसके दुःखों का विराम ही होता है । उससे तो उसका दुःख और बढ़ जाता है । अतएव इस विषय में उसे क्या करना चाहिए । हे भगवन् इसे आप मुझे बतलायें ।।२।।

भावार्थ दीपिका

प्रश्नानेवाह– सुखायेति पञ्चदशभिः । तैः कर्मभिः । सुखं वाऽन्यस्य दुःखस्योपशमं वेत्यर्थः । अथवाऽन्यद्वा न विन्देत। किं तदित्यपेक्षायां तस्यैव निर्देशः । उपरमं वेति । ततस्तैः कर्मभिर्भूयः पुनःपुनर्दुःखमेव विन्देत । अत्रैवंविधे संसारे नोऽस्माकं यद्युक्तं कर्तुं योग्यं तत्सर्वज्ञो भगवान्वदेन्निरूपयतु ।।२।।

भाव प्रकाशिका

सुखाय० इत्यादि पन्द्रह श्लोकों में विदुरजी के प्रश्नों का वर्णन किया जा रहा है । विदुरजी ने कहा कि मनुष्य सुख की प्राप्ति के लिए ही कर्मों को करता है, किन्तु उन कर्मों के द्वारा उसको न तो सुख की प्राप्ति होती है और न तो उसके दुखों की शान्ति ही होती है; अपितु उन कर्मों को करने से उसके दुःख और बढ़ जाते हैं। वह बार-बार दुःख का अनुभव करता है । इस प्रकार के संसार में हमलोगों को क्या करना चाहिए ? इसे आप मुझे बतलायें । आप तो सर्वज्ञ हैं ।।२।।

जनस्य कृष्णाद्विमुखस्य दैवादधर्मशीलस्य सुदुःखितस्य ।
अनुग्रहायेह चरन्ति नूनं भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य ।।३।।

अन्वयः— दैवात् कृष्णाद् विमुखस्य जनस्य, अधर्मशीलस्य सुदुःखितस्य अनुग्रहाय नूनं जर्नादनस्य भव्यानि भूतानि चरन्ति ।।३।।

अनुवाद— दुर्भाग्य वशात् जो लोग भगवान् श्रीकृष्ण से विमुख हो गये हैं अधार्मिक हैं अतएव दुःखी हैं, ऐसे ही जीवों पर कृपा करने के लिए मङ्गलमय आपके जैसे लोग इस संसार में विचरण किया करते हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

दैवात्प्राचीनकर्मणो निमित्तभूतात्कृष्णाद्विमुखस्यातोऽधर्मशीलस्यातः सुदुःखितस्य जनस्यानुग्रहाय भव्यानि मङ्गलानि भूतानि चरन्ति । भवन्तः परोपकारस्वभावा एवेत्यर्थः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

जीव अपने पूर्वकृत कर्मों के ही फलस्वरूप परमात्मा से पराङ्मुख होकर अधार्मिक हो जाता है । उसके कारण वह सदा दुःखी रहता है । ऐसे ही जीवों पर कृपा करने के लिए आप जैसे मङ्गलमय भगवद्भक्त इस भूलोक में संचरण किया करते हैं । आपका तो स्वभाव ही है दूसरों का उपकार करना ।।३।।

तत्साधुवर्यादिश वर्त्म शं नः संराधितो भगवान्येन पुंसाम् ।
हृदिस्थितो यच्छति भक्तिपूते ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणम् ॥४॥

अन्वयः— तत् हे साधुवर्य ! नः शं वर्त्म आदिश येन संराधितो भगवान् पुंसाम् भक्तिपूते हृदिस्थितः सत्त्वाधिगमं पुराणं ज्ञानं यच्छति ॥४॥

अनुवाद— हे साधुवर्य ! आप उस शान्तिप्रद मार्ग का उपदेश करें जिसके द्वारा आराधना किए जाने पर श्रीभगवान् भक्तों की भक्तिभावना से पवित्र बने हुए हृदय में स्थित होकर ऐसे जन को ज्ञान प्रदान कर देते हैं जिससे कि उसे आत्मा के स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाता है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मात् हे साधुवर्य, शं सुखरूपं वर्त्म नः आदिश कथय । येन वर्त्मना संराधितो हृदि स्थितः सन् । सतत्त्वाधिगमं आत्मापारोक्ष्यं तत्सहितम् । पुराणमनादिवेदप्रमाणकम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

अतएव हे साधु शिरोमणे ! आप हमें उस सुखमय मार्ग का उपदेश दें जिस मार्ग को अपना कर श्रीहरि की आराधना करने पर श्रीभगवान् प्रसन्न होकर भक्ति की भावना से पवित्र बने हुए उसके हृदय में स्थित हो जाते हैं और ऐसा वेददोदित ज्ञान प्रदान कर देते हैं, जिससे कि मनुष्यों को अपने स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान हो जाता है ॥४॥

करोति कर्माणि कृतावतारो यान्यात्मतन्त्रो भगवांस्त्र्यधीशः ।
यथा ससर्जाग्र इदं निरीहः संस्थाप्य वृत्तिं जगता विधत्ते ॥५॥

अन्वयः— त्र्यधीशः आत्मतन्त्रः भगवान् कृतावतारः यानि कर्माणि करोति यथा च निरीहः अग्रे इदं ससर्ज, संस्थाप्य जगतो वृत्तिं विधत्ते तद्व्रण्य ॥५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् त्रैलोक्यधिपति हैं, तथा स्वतन्त्र हैं । वे भगवान् अवतार ग्रहण करके जिन कर्मों को करते हैं तथा निरीह (निःस्पृह) होकर भी सृष्टि के प्रारम्भ में उन्होंने जिस प्रकार से जगत् की सृष्टि की पुनः उन्होंने जगत् को संस्थापित करके जिस तरह से इसकी जीविका का विधान किया उसे आप मुझे बतलायें ॥५॥

भावार्थ दीपिका

करोति कर्माणीत्यादीनां वर्णयेति पञ्चमश्लोके क्रियासंबन्धः । यथा येन प्रकारेण पुरुषरूपेण कृतावतारः सन् त्र्यधीशः त्रिगुणमायानियन्ता अतः स्वतन्त्र एव यानि कर्माणि करोति । कर्माण्येव विशेषतः पृच्छति-यथेत्यादिना । निरीहो निष्क्रियो निःस्पृहो वा संस्थाप्य सुस्थितं कृत्वा । वृत्तिं जीविकाम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

करोति कर्माणि० इत्यादि श्लोक का नवें श्लोक के वर्णय क्रिया के साथ सम्बन्ध है । श्रीभगवान् तो त्रिगुणात्मिका माया के स्वामी हैं । जिस प्रकार से उन्होंने पुरुष रूप से अवतार ग्रहण किया, और माया के नियन्ता होने के कारण वे स्वतन्त्र होकर भी जिन कर्मों को करते हैं उनको आप बतलाएँ । उन कर्मों के ही विषय में विशेष रूप से पूछते हैं । श्रीभगवान् तो निष्क्रिय और निस्पृह हैं । वे जगत् को सुस्थिर करके जिस प्रकार से उसकी जीविका का विधान करते हैं उसे आप बतलायें ॥५॥

यथा पुनः स्वे स्व इदं निवेश्य शेते गुहायां स निवृत्तवृत्तिः ।
योगेश्वराधीश्वर एक एतदनुप्रविष्टो बहुधा यथासीत् ॥६॥

अन्वयः— यथा पुनः इदं पुनः स्वे स्वे निवेश्य निवृत्तवृत्तिः गुहायां शेते योगेश्वराधीश्वरः एतदनुप्रविष्टः एकः बहुधा यथासीत् तद्वर्णय ॥६॥

अनुवाद— पुनः वे जिस प्रकार इस जगत् को अपने हार्दाकाश में लीन करके वृत्तिशून्य हो जाते हैं और अपनी योगमाया का आश्रय लेकर योगमाया में ही शयन करते हैं । उसका आप वर्णन करें । श्रीभगवान् योगेश्वर हैं और एक है, फिर भी इस ब्रह्माण्ड में अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करके अनेक प्रतीत होते हैं । इन समस्त रहस्यों को आप मुझे बतलायें ॥६॥

भावार्थ दीपिका

स्वे स्वीये स्वे हृदयाकाशे निवेश्य स्थापयित्वा । निवृत्ता वृत्तयो यस्य । गुहायां योगमायायाम् । बहुधा ब्रह्मादिरूपेण ॥६॥

भाव प्रकाशिका

प्रलय काल के आ जाने पर भगवान् अपने हृदयाकाश में सम्पूर्ण जगत् को लीन कर लेते है और वृत्ति शून्य होकर अपनी योगमाया में शयन करते हैं । योगेश्वर होने के कारण श्रीभगवान् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करके अनेक ब्रह्मादि रूप से प्रतीत होते हैं ॥६॥

क्रीडन्विधत्ते द्विजगोसुराणां क्षेमाय कर्माण्यवतारभेदैः ।
मनो न तृप्यत्यपि शृण्वतां नः सुश्लोकमौलेश्चरितामृतानि ॥७॥

अन्वयः— द्विजगोसुराणां क्षेमाय अवतारभेदैः क्रीडन् कर्माणि विधत्ते सुश्लोकमौलेश्चरितामृतानि शृण्वतां अपि, नः मनः न तृप्यति ॥७॥

अनुवाद— ब्राह्मण, गौ तथा देवताओं का कल्याण करने के लिए विभिन्न अवतारों के माध्यम से लीला पूर्वक श्रीभगवान् जिन कर्मों को करते हैं, उन सबों को आप हमें सुनायें । यशस्वियों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् के चरित रूपी अमृत का पान करते रहने पर भी हमलोगों का मन तृप्त नहीं होता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

मत्स्याद्यवतारभेदैः क्रीडन् यानि यथा कर्माणि विधत्ते । पुनर्विशेषं प्रष्टुमौत्सुक्यमाविष्करोति-मन इति । सुश्लोकाः पुण्यकीर्तयस्तेषां मौलिरिवाधिक्येनोपरि विराजमानस्तस्येत्यर्थः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

मत्स्य आदि विभिन्न अवतारों के द्वारा क्रीडा करते हुए श्रीभगवान् जिन कर्मो को करते हैं, उन विशेष कर्मों को पूछने की उत्सुकता को अविष्कृत करते हुए विदुरजी कहते हैं । श्रीभगवान् यशस्वियों में श्रेष्ठ हैं । उनके चरितामृत को सुनने से हमारा मन तृप्त नहीं होता है ॥७॥

यैस्तत्त्वभेदैरधिलोकनाथो लोकानलोकान् सहलोकपालान् ।
अचीक्लृपद्यत्र हि सर्वसत्त्वनिकायभेदोऽधिकृतः प्रतीतः ॥८॥

अन्वयः— अधिलोकनाथः लोकपालान् सह लोकान्, आलोकान् यैः तत्त्वभेदैः अचीक्लृपत्, यत्र हि सर्वसत्व निकाय भेदः प्रतीतः । इति वर्णय ॥८॥

अनुवाद— आप हमें यह भी बतलायें कि सम्पूर्ण लोकपतियों के स्वामी श्रीभगवान् ने, लोकों, लोकपालों

तथा लोकालोक पर्वत से बाहर के भागों की कल्पना किन तत्त्वों से की, जिनमें इन सम्पूर्ण जीव समूहों की अधिकारानुसार प्रतीति होती है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अधिलोकनाथो लोकनाथाधिपतिः । अलोकान् लोकालोकपर्वताद्वहिर्भागान् । अचीक्लृपत्कल्पयामास । यत्र येषु सर्वाणि यानि सत्त्वानि तेषां निकायास्तेषां भेदोऽधिकृतस्तत्तत्कर्माधिकारी आश्रित इति वा ॥८॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि आप यह भी बतलायें कि सम्पूर्ण लोकपतियों के स्वामी श्रीभगवान् लोकों, लोकपालों तथा लोकलोक पर्वत के भागों की रचना किन तत्त्वों से की है जिसमें सम्पूर्ण जीव समूहों के भेद तथा अपने अधिकारानुसार कर्मों के अधिकारी प्रतीत होते हैं ॥८॥

येन प्रजानामुत आत्मकर्मरूपाभिधानां च भिदां व्यधत्त ।
नारायणो विश्वसृडात्मयोनिरेतच्च नो वर्णय विप्रवर्य ॥९॥

अन्वयः— हे विप्रवर्य विश्वसृट् आत्मयोनिः, नारायणः उत प्रजानाम् आत्मकर्मरूपाभिधानां च भिदां येन व्यधत्त एतत् च नः वर्णय ॥९॥

अनुवाद— हे विप्रश्रेष्ठ ! सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले आत्मयोनि (स्वत:सिद्ध) भगवान् नारायण भी प्रजाओं के स्वभाव, कर्म, रूप तथा नामों का भेद जिसके द्वारा किए उसका भी वर्णन हमें आप सुनाइये ॥९॥

भावार्थ दीपिका

उताऽपि न येन प्रकारेण जीवानामात्मा स्वभावस्तत्कृतं कर्म तत्कृतं रूपं तत्कृता अभिधास्तासां भेदं कृतवान् । विश्वस्त्रष्टा स्वयमात्मयोनिः स्वतःसिद्धः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि हे विप्रश्रेष्ठ ! आप हमें यह भी बतलायें कि सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले तथा स्वत: सिद्ध भगवान् नारायण ने किस प्रकार से जीवों के स्वभाव, कर्म, रूप तथा नामों के भेदों का निर्माण किया ॥९॥

परावरेषां भगवन्व्रतानि श्रुतानि मे व्यासमुखादभीक्ष्णम् ।
अतृप्नुमक्षुल्लसुखावहानां तेषामृते कृष्णकथामृतौघात् ॥१०॥

अन्वयः— हे भगवन् ! परावरेषां व्रतानि मया व्यासमुखाद् अभीक्ष्णम् श्रुतानि कृष्णकथामृतौघात् ऋते क्षुल्लसुखावहानां तेषाम् अतृप्नुम् ॥१०॥

अनुवाद— हे भगवन् ! मैंने महर्षि व्यास के मुख से त्रैवर्णिकों तथा शूद्रों के धर्मों को कई बार सुना है। किन्तु वे सब बहुत अल्प सुखप्रद है अतएव मैं उन धर्मों के सुनते-सुनते तृप्त हो चुका हूँ । भगवान् श्रीकृष्ण की कथामृत से रहित होने के कारण श्रीभगवान् की ही कथा को सुनना चाहता हूँ ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ननु महाभारते त्वया सर्वं श्रुतमेव, किं पुनः प्रश्नैस्तत्राह । परे त्रैवर्णिका अवरे शूद्रादयस्तेषां व्रतानि धर्माः । मे मया। अभीक्ष्णं पुनः पुनः । तेषां श्रवणेनातृप्नुम तृप्ताः स्म । तेषां तुच्छसुखावहत्वात् । यस्तु तत्र कृष्णकथामृतौघः सूचितस्तस्मादृते। तत्र त्वलंबुद्धिर्नास्तीत्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि महाभारत में तो तुमने सब कुछ सुन लिया है अतएव तुम्हें प्रश्न करने का क्या औचित्य है ? तो इसका उत्तर है **परावरेषाम्० इत्यादि** श्लोक । मैंने त्रैवर्णिकों तथा शूद्रों आदि के धर्मों को महर्षि व्यास के मुख से बार-बार सुना है । अतएव उन सबों को सुनकर मैं तृप्त हो चुका हूँ । किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की कथा रूपी अमृत को सुनने से मेरी तृप्ति नहीं हुयी है ।।१०।।

कस्तृप्नुयात्तीर्थपदोऽभिधानात्सत्रेषु वः सूरिभिरीड्यमानात् ।
यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥११॥

अन्वयः— वः सूरिभिः सत्रेषु ईडयमानात् तीर्थपदः अभिधानात् कः तृप्नुयात् । यः पुरुषस्य कर्णनाडीं यातः भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ।।११।।

अनुवाद— आप जैसे साधुओं के सत्रों में जिनका कीर्तन नारदादि देवर्षिगण भी करते हैं, ऐसे भगवान् की कथाओं से तृप्त कौन हो सकता है ? श्रीहरि की जो कथा मनुष्यों के कानों में प्रवेश करके संसारचक्र में डालने वाले गृहादि प्रेम को विनष्ट कर देने का काम करती है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः-क इति । तीर्थपदः कृष्णस्य । अभिधानात् कथामृतौघात् । सत्रेषु समाजेषु । सूरिभिर्नारदादिभिः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के कथामृत प्रवाह से तृप्त नहीं होने के कारण **कस्तृप्नुयात्० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । भगवान् श्रीकृष्ण के कथामृत प्रवाह से तृप्त नहीं होने का कारण है, कि साधुओं के समाज में नारदादि देवर्षिगण भी उसका गान करते हैं । दूसरा कारण यह है कि उस कथा के कान में पड़ते ही मनुष्य की गृहादि में होने वाला प्रेम विनष्ट हो जाता है । और गेहादि में होने वाला प्रेम तो संसार चक्र में डालने वाला है ।।११।।

मुनिर्विवक्षुर्भगवद्गुणानां सखापि ते भारतमाह कृष्णः ।
यस्मिन्नृणां ग्राम्यसुखानुवादैर्मतिर्गृहीता नु हरेः कथायाम् ॥१२॥

अन्वयः— ते सखा कृष्णः मुनिः अपि, भगवद गुणानां विवक्षुः भारतमाह यस्मिन् नु नृणां ग्राम्यसुखानुवादैः हरेः कथायाम् मतिः गृहीता ।।१२।।

अनुवाद— आपके मित्र कृष्णमुनिः (व्यासजी) भी श्रीभगवान् के गुणों का ही वर्णन करने के लिए महाभारत का वर्णन किए; किन्तु उसमें ग्राम्य सुखों का अनुवाद करके श्रीहरि की कथाओं में लोगों की बुद्धि को लगाने का प्रयास किया गया है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

महाभारतस्याप्यत्रैव तात्पर्यमित्याह । मुनिः कृष्णो वेदव्यासो भगवद्गुणान्मोक्षधर्मान्ते नारायणीयाख्याने वक्तुमिच्छुः सन् । अर्थकामादिवर्णनं तु हरिकथायां मतिप्रवेशार्थमेवेत्याह-यस्मिन्निति । नृणां मतिर्ग्राम्यसुखानुवादैर्द्वारभूतैर्नु निश्चितं हरेः कथायां गृहीता नीता । तदुक्तमितिहाससमुच्चये- '**कामिनो वर्णयन्कामाँल्लोभं लुब्धस्य वर्णयन् । नरः किं फलमाप्नोति कूपेऽन्धमिव पातयन् । लोकचित्तावतारार्थं वर्णयित्वाऽत्र तेन तौ । इतिहासैः पवित्रार्थैः पुनरत्रैव निन्दितौ । अन्यथा घोरसंसारबन्धहेतू जनस्य तौ । वर्णयेत्स कथं विद्वान्महाकारुणिको मुनिः ।।**' इति ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

महाभारत का भी इसी अर्थ के वर्णन में ताप्पर्य है, इसी अर्थ को बतलाते हुए कहा गया है कि— महर्षि

व्यास भी भगवान् के गुणों का वर्णन मोक्ष धर्म के अन्त में नाराणीयोपाख्यान में करने की इच्छा से ही अर्थ एवं काम आदि का वर्णन श्रीहरि की कथा में बुद्धि को लगाने के ही लिए किया है। उस महाभारत में मनुष्यों की बुद्धि को ग्राम्य सुखों का अनुवाद करके ही श्रीहरि की कथा में लगाया गया है। इसीलिए इतिहास समुच्चय में कहा भी गया है- कामियों के काम का वर्णन करते हुए तथा लोभियों के लोभ का वर्णन करने वाला कूएँ में अन्धे को गिरने वाले के समान उस मनुष्य को कौन सा फल मिल सकता है ? लोगों के चित्त को श्रीहरि की कथा में लगाने के ही लिए महर्षि व्यास ने अर्थ और काम का वर्णन करके पवित्र अर्थ वाले इतिहासों के द्वारा इस महाभारत में उन दोनों निन्दित पुरुषार्थों का वर्णन किया गया है। यदि श्रीभगवान् की कथा में लोगों की बुद्धि को लगाना रूप प्रयोजन न रहे तो फिर काम और लोभ का वर्णन तो मनुष्यों को संसार के बन्धन में ही डालने वाला होगा। महर्षि बादरायण तो महादयालु विद्वान हैं, वे केवल काम और लोभ का वर्णन कैसे कर सकते हैं ?॥१२॥

सा श्रद्दधानस्य विवर्धमाना विरक्तिमन्यत्र करोति पुंसः ।
हरेः पदानुस्मृतिनिर्वृतस्य समस्तदुःखात्ययमाशु धत्ते ॥१३॥

अन्वयः— श्रद्दधानस्य विवर्धमाना सा पुंसः अन्यत्र विरक्तिं करोति। हरेः पदानुस्मृतिनिर्वृतस्य समस्त दुःखात्ययम् आशु धत्ते ॥१३॥

अनुवाद— श्रद्धालु व्यक्ति के हृदय में जब भगवत् कथा की रुचि बढने लग जाती है तब वह उस व्यक्ति को दूसरे विषयों से विरक्त बना देती है। उसके पश्चात् वह व्यक्ति श्रीहरि की कथा का निरन्तर चिन्तन करने के कारण आनन्दमग्न हो जाता है उसके फलस्वरूप शीघ्र हीं उसके समस्त दुःखों का नाश हो जाता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

श्रीहरिकथायां मतिप्रवेशस्य फलमाह। सा कथा मतिर्वा। अन्यत्र ग्राम्यसुखे। ततः किमत आह-हरेरिति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि की कथा में बुद्धि के लग जाने का फल बतलाते हुए कहा गया है कि वह कथा अथवा बुद्धि मनुष्य को ग्राम्यसुखों से विरक्त बना देती है। उस विरक्ति का फल **हरेः इत्यादि** उत्तरार्द्ध से बतलाया गया है ॥१३॥

तान् शोच्यशोच्यानविदो नु शोचे हरेः कथायां विमुखानघेन ।
क्षिणोति देवोऽनिमिषस्तु येषामायुर्वृथा वादगतिस्मृतीनाम् ॥१४॥

अन्वयः— अहं तान् शोच्यशोचान् अविदः अघेन हरेः कथायां विमुखान् अनुशोचे येषां वृथा वादगतिस्मृतीनाम् आयुः अनिमिषो देवः क्षिणोति ॥१४॥

अनुवाद— मैं तो उन शोचनीयों में भी सर्वाधिक शोचनीय अज्ञानी जीवों के विषय में सोचता हूँ जो लोग पूर्वकृत पाप के कारण श्रीहरि की कथाओं से विमुख रहते हैं तथा व्यर्थ में ही व्यर्थ के बाद विवाद, चेष्टा और चिन्तन में लगे रहते हैं और काल स्वरूप भगवान् उनकी आयु को क्षीण करते रहते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

एवं भूतायां कथायां ये न रमन्ते तान् शोचति। शोच्या ये तेषामपि शोच्यांश्च। तत्राऽविदो भारततात्पर्यानभिज्ञान् शोच्यान्। ये तु ज्ञात्वापि हरेः कथायां विमुखास्तांस्तेषामपि शोच्यानिति योज्यम्। अनिमिषः कालो येषामायुः क्षिपति। अत्रैव हेतुः-वृथैव वादगतिस्मृतयो वाग्देहमनोव्यापारा येषाम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार की भगवत कथा में जो पापी लोग अपने मन को नहीं लगाते हैं उनके विषय में शोक करते हुए विदुरजी कहते हैं **शोच्यशोच्यान्** का अर्थ है कि शोचनीयों में शोचनीय । अर्थात् पूर्व जन्म के पाप के कारण जिन लोगों का मन भगवत् कथा में नहीं लगता है वे लोग अत्यन्त शोचनीय हैं । उनमें जो लोग महाभारत के तात्पर्य को नहीं समझते हैं वे तो अत्यन्त शोचनीय हैं । महाभारत के तात्पर्य को जानकर भी भगवत् कथा से विमुख रहने वाले उन सबों से अधिक शोचनीय हैं । उन लोगों की आयु को काल व्यर्थ ही काटता रहता है। क्योंकि ऐसे लोगों के वाणी, देह और मन के द्वारा किए जाने वाले सारे व्यापार व्यर्थ ही होते हैं ॥१४॥

तदस्य कौषारव शर्मदातुर्हरेः कथामेव कथासु सारम् ।
उद्धृत्य पुष्पेभ्य इवार्तबन्धो शिवाय नः कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥१५॥

अन्वयः— तत् हे दीनबन्धो कौषारव । पुष्पेभ्यः सारमिव कथासु सारम् उद्धृत्य अस्य शर्मदातुः तीर्थकीर्तेः कथामेव नः शिवाय कीर्तय ॥१५॥

अनुवाद— अतएव हे दीनबन्धो ! मैत्रेय महर्षे ! जिस तरह भ्रमर पुष्पों से उसके सारभूत पराग को ही निकाल लेता है, उसी तरह कथाओं में से उनके सारभूत इस विश्व का कल्याण करने वाले पवित्रकीर्ति वाले श्रीहरि की कथाओं को ही आप कहें जिससे कि हम लोगों का कल्याण हों ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्माद्धे कौषरव, अस्य विश्वस्य शिवाय कथासु सारभूतां हरेः कथामेवोद्धृत्य नः कीर्तय । यथा पुष्पेभ्यो मधु मधुप उद्धरति तद्वदुद्धृत्य ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

हे मैत्रेयजी इस विश्व का कल्याण करने के लिए सभी कथाओं के सारभूत श्रीहरि की कथाओं को उसी तरह से आप सुनायें जिस तरह से भौंरा पुष्पों के सारभूत उसके मधु को निकाल लेता है ॥१५॥

स विश्वजन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारः प्रगृहीतशक्तिः ।
चकार कर्माण्यतिपूरुषाणि यानीश्वरः कीर्तय तानि मह्यम् ॥१६॥

अन्वयः— विश्वजन्मस्थितिसंयमार्थे प्रगृहीत शक्तिः कृतावतारः स ईश्वरः यानि अतिपूरुषाणि कृत्यानि चकार तानि मह्यम् कीर्तय ॥१६॥

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि स्थिति और संहार करने के लिए अपनी माया शक्ति को अपनाकर अवतार ग्रहण करने वाले परमात्मा ने जिन अतिलौकिक कर्मों को किया उन सबों को आप मुझे सुनायें ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

विशेषतः श्रीकृष्णकथा कथनीयेत्याशयेनाह-स इति । यो विश्वसर्गाद्यर्थं पूर्वं गृहीतशक्तिः स एव पुरुषेषु कृतावतारः सन् पुरुषानतिक्रम्य वर्तमानानि यानि चकार तानि विस्तराद् वद ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

आप विशेष रूप से भगवान् श्रीकृष्ण की कथाएँ कहें इसी आशय से उन्होंने कहा **स० इत्यादि** इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि आदि को करने के लिए जिन्होंने पूर्वकाल में अपनी मायाशक्ति को अपनाया था वे ही पुरुष रूप से अवतार ग्रहण करने वाले हैं जिन कर्मों को कोई दूसरा पुरुष नहीं कर सकता है, ऐसे जिन कर्मों को श्रीभगवान् ने किया उन्हीं कर्मों का आप विस्तार से वर्णन करें ॥१६॥

श्रीशुक उवाच

स एवं भगवान्पृष्टः क्षत्रा कौषारविर्मुनिः । पुंसां निःश्रेयसार्थेन तमाह बहु मानयन् ॥१७॥

अन्वयः— क्षत्रा एवं पृष्टः स भगवान् कौषरविः मुनिः पुंसां निःश्रेयसार्थाय तम् बहुमानयन् आह ॥१७॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— विदुरजी के द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर वे मैत्रेय महर्षि जीवों का कल्याण करने के लिए विदुरजी का बहुत अधिक सम्मान करते हुए इस प्रकार से कहे ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

पुंसां निःश्रेयसमेवार्थः प्रयोजनं तेन हेतुना पृष्टः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी के द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्न का एकमात्र प्रयोजन विश्व का कल्याण था इसीलिए मैत्रेयजी ने उनका बहुत अधिक सम्मान करते हुए कहा ॥१७॥

मैत्रेय उवाच

साधु पृष्टं त्वया साधो लोकान्साध्वनुगृह्णता । कीर्तिं वितन्वता लोके आत्मनोऽधोक्षजात्मनः ॥१८॥

अन्वयः— हे साधो लोकान् साध्वनुगृह्णतात्वया अधोक्षाजात्मनः आत्मनः लोके कीर्ति वितन्वता त्वयासाधु पृष्टं॥१८॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे साधु स्वभाव वाले विदुरजी संसारी जीवों पर कृपा करके आपका मन चूकि हमेशा श्रीभगवान् में ही लगा रहता है, ऐसे आप अपनी कीर्ति का इस संसार में विस्तार करेंगे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

बहुमानमेवाह-साध्विति पञ्चभिः । अधोक्षजे एवात्मा मनो यस्य तस्यात्मनः स्वस्य कीर्तिं च प्रसङ्गाद्वितन्वता ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

मैत्रेय महर्षि ने जो विदुरजी का बहुत सम्मान किया उसका ही वर्णन पाँच श्लोकों में किया गया है । अधोक्षजात्मनः आत्मनः का अर्थ है । सदा श्रीभगवान् में ही मन लगाये रहने वाले अपना भी प्रसङ्गवशात् इस लोक में कीर्ति का विस्तार करते हुए ॥१८॥

नैतच्चित्रं त्वयि क्षत्तर्बादरायणवीर्यजे । गृहीतोऽनन्यभावेन यत्त्वया हरिरीश्वरः ॥१९॥

अन्वयः— हे क्षतः ! बादरायणवीर्यजे त्वयि एतत् चित्रं न यत् त्वया अनन्य भावेन ईश्वरः हरिः गृहीतः ॥१९॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! आप महर्षि बादरायण के औरस पुत्र हैं अतएव आपके द्वारा इस तरह का प्रश्न किया जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । क्योंकि आपने सम्पूर्ण जगत् के नियामक श्रीहरि को ही अनन्य भाव से अपना आश्रय रूप से स्वीकार किया है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

हरिर्यद्गृहीतः एतच्चित्रं न भवति । कुतः । बादरायणवीर्यजे । ननु बादरायणवीर्यजो धृतराष्ट्रोऽपि भवति, सत्यम्, परंतु त्वयि ततो विशेष-इत्याह गृहीत इति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

आपने चूकि श्रीभगवान् को ही अपने आश्रय रूप से स्वीकार किया है, अतएव यह आपके लिए कोई आश्चर्यकारी बात नहीं है । क्योंकि आप महर्षि बादरायण के वीर्य से उत्पन्न हैं । यदि कहें कि बादरायण महर्षि

के वीर्य से तो धृतराष्ट्र का भी जन्म हुआ था ? तो यह कहना ठीक है, किन्तु धृतराष्ट्र ने श्रीभगवान् को अपना आश्रय नहीं बनाया और आपने श्रीभगवान् को अपनाया यही आप दोनों में अन्तर हैं ॥१९॥

माण्डव्यशापाद्भगवान्प्रजासंयमनो यमः । भ्रातुः क्षेत्रे भुजिष्यायां जातः सत्यवतीसुतात् ॥२०॥

अन्वयः— प्रजासंयमनः यमः माण्डव्यशापाद् भातुक्षेत्रे भुजिष्यायां सत्यवतीसुतात् जातः ॥२०॥

अनुवाद— पापी पुरुषों को दण्ड देने वाले आप साक्षात् यमराज है, महर्षि माण्डव्य के शाप के कारण आप अपने भाई विचित्रवीर्य की दासी के गर्भ से उत्पन्न है महर्षि व्यास ने आपको उत्पन्न किया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि कथं शूद्रत्वं, कथं च लोकानुग्राहकत्वं तत्राह–माण्डव्यशापादिति । भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रे क्षेत्रत्वेन स्वीकृतायां भुजिष्यायां दास्यां यम एवं त्वं जातोऽसि ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि यदि मैं बादरायण के वीर्य से उत्पन्न हूँ तो फिर मैं शूद्र कैसे हूँ और कैसे मैं जीवों पर कृपा करने वाला हूँ ? तो उसका उत्तर है कि महर्षि माण्डव्य के शाप के कारण अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य की भोगदासी के गर्भ से बादरायण महर्षि ने आपको उत्पन्न किया ऐसे तो आप साक्षात् यम ही हैं ॥२०॥

भवान्भगवतो नित्यं संमतः सानुगस्य च । यस्य ज्ञानोपदेशाय मादिशद्भगवान्व्रजन् ॥२१॥

अन्वयः— भवान् नित्यं सानुगस्य भगवतो सम्मतः यस्यज्ञानोपदेशाय व्रजन् भगवान् मादिशद् ॥२१॥

अनुवाद— आप सदा भगवान् और उनके भक्तों के प्रिय रहे हैं । इसीलिए इस संसार से जाते समय श्रीभगवान् ने आपको ज्ञानोपदेश कर देने के लिए मुझको आदेश भी दिया है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

किंच । भवानिति । कुतः । यस्य तव ज्ञानोपदेशाय मामादिष्टवान् चकारात्स्वयमपि स्मृत्यैवोपदिष्टवानिति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी बात यह है कि आप श्रीभगवान् और उनके भक्तों को अत्यन्त प्रिय हैं क्योंकि इस लोक से परमधाम गमन करते समय श्रीभगवान् ने आपको स्मरण करके ही ज्ञान प्रदान कर दिया और मुझको भी आपको ज्ञानोपदेश करने के लिए आदेश किया ॥२१॥

अथ ते भगवल्लीला योगमायोपबृंहिताः । विश्वस्थित्युद्भवान्तार्था वर्णयाम्यनुपूर्वशः ॥२२॥

अन्वयः— अथ विश्वस्थित्युद्भवान्तार्थाः योगमायोपबृंहिताः भगवतः लीला ते अनुपूर्वशः वर्णयामि ॥२२॥

अनुवाद— अब मैं सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार ही जिसका प्रयोजन है उसी योग माया के द्वारा विस्तारित भगवान् की लीलाओं का क्रमशः वर्णन करूँगा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

विश्वस्थित्यादयोऽर्था विषया यासां ताः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि स्थिति और संहार के लिए अपनी योगमाया को अपनाकर विभिन्न प्रकार की लीलाओं को किया करते हैं, उनका ही मैं क्रमशः वर्णन करता हूँ ॥२२॥

भगवानेक आसेद मग्रे आत्मात्मनां विभुः । आत्मेच्छानुगतावात्माऽनानामत्युपलक्षणः ॥२३॥

अन्वयः— इदम् अग्रे आत्मनां आत्मा भगवान् एक एव आसीत् आत्मेच्छानुगतौ आत्मा नानामत्युपलक्षणः ॥२३॥

अनुवाद— सृष्टि से पहले यह जगत् सम्पूर्ण आत्माओं की आत्मा भगवद्रूप था श्रीभगवान् एक ही थे । और अनेक वृत्तियों के भेद के कारण उनमें जो अनेकता प्रतीत होती है वह भी वे ही थे, क्योंकि उनकी इच्छा अकेले रहने की थी ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तत्र सृष्टिलीला वर्णयितुं ततः पूर्वावस्थामाह । इदं विश्वमग्रे सृष्टेः पूर्वं परमात्मा भगवानेक एव आस आसीत् । आत्मनां जीवानामात्मा स्वरूपं विभुः स्वामी च । नान्यद्द्रष्टृदृश्यात्मकं किंचिदासीत् । कारणात्मना सत्त्वेऽपि पृथक्प्रतीत्यभावादित्याह। अनानामत्युपलक्षणो नानाद्रष्टृदृश्यादिमतिभिर्नोपलक्ष्यत इति तथा । यद्वा अकारप्रश्लेषं विनैवायमर्थः । यः सृष्टौ नानामतिभिरुपलक्ष्यते स तदैक एवासीदिति । कुतः । आत्मेच्छा माया तस्या लये सति । यद्वा आत्मन एकाकित्वेनावस्थानेच्छायामनुवृत्तायामित्यर्थः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

सृष्टि लीला का वर्णन करने के लिए सृष्टि से पहले की अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं । यह सम्पूर्ण जगत् सृष्टि से पहले केवल भगवान् का ही रूप था । वे भगवान् सम्पूर्ण जीवों की आत्मा तथा विभु अर्थात् स्वामी हैं, यह द्रष्टा दृश्य रूप जगत् कुछ भी नहीं था । यद्यपि यह जगत् कारण रूप से तो विद्यमान था ही किन्तु इसकी श्रीभगवान् से अलग प्रतीति नहीं होती थी । अनेक द्रष्टा दृश्य रूप ज्ञान के द्वारा वह उपलक्षित नहीं होता था।

यद्वा० इत्यादि अथवा अकार के प्रश्लेष के बिना ही यह अर्थ होगा कि जो परमात्मा अनेक प्रकार की बुद्धियों के द्वारा उपलक्षित होते हैं वे परमात्मा सृष्टिकाल में एक ही थे । क्योंकि उनकी माया का लय होनेमें इच्छा ही कारण है । अथवा उनके अकेले रहने में अपनी इच्छा का अनुवर्तन ही कारण होता है ॥२३॥

स वा एष तदास द्रष्टा नापश्यद्दृश्यमेकराट् । मेनेऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥२४॥

अन्वयः— तदा द्रष्टा एव आस वै दृश्यम् न अपश्यत् सुप्तशक्तिः असुप्तदृक् स आत्मानम् असन्तमिव मेने ॥२४॥

अनुवाद— वे ही परमात्मा द्रष्टा होकर देख़ने लगे तो किसी भी दृश्य पदार्थ को नहीं देखे । उस समय उनकी शक्ति ही सोयी थी उनके ज्ञान का लोप नहीं हुआ था ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रथमं मायोद्भवप्रकारमाह द्वाभ्याम् । स वै एष द्रष्टा सन् दृश्यं नापश्यत् । यत एकराट् एक एव तदा प्रकाशते। आत्मानमसन्तमिव मेने । दृश्याभावे द्रष्टृत्वाभावात् । तदाह । सुप्ता मायाद्याः शक्तयो यस्य सः । न त्वसन्तमेव मेने । यतोऽसुप्ता दृक् चिच्छक्तिर्यस्येति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

मैत्रेय महर्षि ने सर्वप्रथम माया के उत्पन्न होने के प्रकार को दो श्लोकों से बतलाया है । वे परमात्मा द्रष्टा बनकर जब देखे तो वे किसी भी दृश्य पदार्थ को नहीं देखे क्योंकि उस समय (सृष्टि से पूर्व) वे अकेले प्रकाशित होते थे । उस समय उन्होंने अपने को शून्य की तरह माना । क्योंकि द्रष्टा तो कोई तब हो सकता है जब कि दृश्य हो; बिना दृश्य के कोई द्रष्टा नहीं हो सकता है । इसके उत्तर में मैत्रेय महर्षि कहते हैं— सुप्तशक्तिरसुप्तदृक्। अर्थात् उस समय उनकी माया इत्यादि शक्तियाँ सुप्त थीं । उनकी चित् शक्ति का लोप नहीं हुआ था ॥२४॥

सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका । माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ।।२५।।

अन्वयः— हे महाभाग एतस्य संद्रष्टु सा शक्तिः वै सदसदात्मिका माया नाम यया विभुः इदं निर्ममे ।।२५।।

अनुवाद— हे महाभाग विदुर ! उन द्रष्टा पुरुष की वह शक्ति सदसदात्मिका है, अर्थात् कार्य-कारण स्वरूपिणी है । उसी को माया कहते हैं । उसी के कारण द्रष्टा और दृश्य की प्रतीति होती है । परमात्मा ने इस सदसदनिर्वचनीय माया के द्वारा इस जगत् का निर्माण किया ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

सा वै द्रष्टृदृश्यानुसंधानरूपा सदसदात्मिका कार्यकारणरूपा । यद्वा सत् दृश्यम्, असत् अदृश्यमात्मस्वरूपं च तयो यस्याः । तदुभयानुसन्धानरूपत्वात् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

वह माया शक्ति ही द्रष्टा दृश्य के अनुसंधान स्वरूपिणी होने के कारण सदसदात्मिका अर्थात् कार्यकारण स्वरूपिणी है । अर्थात् यहाँ सत् शब्द से दृश्य को और असत् शब्द से अदृश्य आत्मा को कहा गया है और उन दोनों का कारण माया ही है । क्योंकि उसकी सत् एवं असत् दोनों रूपों से प्रतीति हाती है ।।२५।।

कालवृत्त्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः । पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान् ।।२६।।

अन्वयः— कालवृत्त्या गुणमय्याम् मायायाम् वीर्यवान् अधोक्षजः आत्मभूतेन पुरुषेण वीर्यमाधत्त ।।२६।।

अनुवाद— सृष्टि के प्रारम्भ में जव त्रिगुणात्मिका माया में कालशक्ति के द्वारा क्षोभ उत्पन्न हुआ, उस समय चिन्मय परमात्मा ने अपने अंश पुरुष शक्ति के द्वारा उसमें चिदाभास रूप वीर्य का आधान किया ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

कालवृत्त्या कालशक्त्या गुणमय्यां क्षुभितगुणायाम् । अधोक्षजः परमात्मा । आत्मांशभूतेन पुरुषेण प्रकृत्यधिष्ठातृरूपेण वीर्यं चिदाभासमाधत्त । वीर्यवांश्चिच्छक्तियुतः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

जब काल शक्ति के द्वारा गुण स्वरूपिणी माया में क्षोभ उत्पन्न हुआ तो उस समय अपने अंशभूत प्रकृति के अधिष्ठातृ रूप से पुरुष के द्वारा चित् शक्ति रूप परमात्मा ने प्रकृति में चिदाभास रूप वीर्य को आहित (स्थापित) किया ।।२६।।

ततोऽभवन्महत्तत्त्वमव्यक्तात्कालचोदितात् । विज्ञानात्मात्मदेहस्थं विश्वं व्यञ्जंस्तमोनुदः ।।२७।।

अन्वयः— ततः कालचोदितात् अव्यक्तात् महत् तत्त्वम् अभवत् तमोनुदः विज्ञानात्मा आत्मदेहस्थं विश्वं व्यंजयन्।।२७।।

अनुवाद— उसके पश्चात् काल शक्ति के द्वारा प्रेरित उस अव्यक्त माया से महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ । वह अज्ञान का नाशक विज्ञान स्वरूप था तथा अपने में सूक्ष्म रूप से विद्यमान प्रपञ्च को अभिव्यक्त करने वाला था।।२७।।

भावार्थ दीपिका

कालप्रेरितादव्यक्तान्मायातः । तत्त्वपदं परित्यज्य महतो लक्षणम्, अतः पुल्लिङ्गनिर्देशो विज्ञानात्मेति । सत्त्वप्रधानत्वात्स्वदेहस्थं विश्वमुच्छूनबीजगत्तमङ्कुरादि रूपं वृक्षमिव व्यञ्जयन् व्यञ्जयन्प्रकाशयन् । यतोऽसौ तमो नुदतीति तमोनुदः। तदुक्तं सात्वततन्त्रे । विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदुः । प्रथमं महतः स्रष्टृ द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम् । तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते इति ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

कालशक्ति के द्वारा प्रेरित होने पर अव्यक्त माया से महत्तत्त्व प्रकट हुआ। यहाँ पर तत्त्व पद का परित्याग करके विज्ञानत्मापद का प्रयोग किया गया है इसीलिए पुल्लिङ्ग निर्देश किया गया है। अर्थात् वह महान् अज्ञान का नाशक विज्ञान स्वरूप था। सत्त्वगुण की प्रधानता होने के कारण वह अपने भीतर विद्यमान सम्पूर्ण प्रपञ्च का प्रकाशक था। जिस तरह से फूले हुए बीज से वृक्ष रूप अङ्कुर प्रकट होता है। प्रकाशक होने के ही कारण महान् अज्ञान का विनाशक था। सात्त्वत तन्त्र में कहा भी गया है— **विष्णोऽस्तु त्रीणि रूपाणि** भगवान् विष्णु के पुरुष शब्द वाच्य तीन रूप बतलाये गये हैं। उनका पहला रूप महत् तत्त्व का स्रष्टा रूप है। दूसरा रूप ब्रह्माण्ड में स्थित है। और तीसरा सभी भूतों के भीतर अन्तर्यामी रूप से विद्यमान है। भगवान् विष्णु के इन तीनों रूपों को जानने वाला पुरुष संसारचक्र से मुक्त हो जाता है ॥२७॥

सोऽप्यंशगुणकालात्मा भगवद्दृष्टिगोचरः। आत्मानं व्यकरोदात्मा विश्वस्यास्य सिसृक्षया ॥२८॥

अन्वयः— भगवद्दृष्टिगोचरः अंशगुणकालात्मा सोऽपि अस्य विश्वस्य सिसृक्षया आत्मा आत्मानं व्याकरोत् ॥२८॥

अनुवाद— भगवान् की दृष्टि पड़ने पर चिदाभास गुण तथा काल के अधीन उस महत् तत्त्व ने विश्व की सृष्टि के लिए अपने को विकृत किया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अहङ्कारोत्पत्तिमाह सार्धाभ्याम् सोऽपीति। अंशश्चिदाभासो निमित्तं, गुणा उपादानं, कालः क्षोभकः, तदात्मा तदधीनः भगवान् सर्वाध्यक्षस्तद्दृष्टिगोचरः सन् स्वयमात्मानं व्याकरोत् रूपान्तरमनयत् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

अब डेढ श्लोक में अहङ्कार की उत्पत्ति का वर्णन **सोऽपि० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया जा रहा है। भगवान् के द्वारा देखे जाने पर वह महान् चिदाभास रूपी निमित्तकारण, गुण रूपी उपादानकारण, काल रूपी क्षोभक उसके अधीन होने वाले सबों के अधिष्ठाता श्रीभगवान् के द्वारा देखे जाने पर महान् ने स्वयम् अपने को दूसरे रूप में परिणत कर दिया ॥२८॥

महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणादहंतत्त्वं व्यजायत। कार्यकारणकर्त्रात्मा भूतेन्द्रियमनोमयः ॥२९॥

अन्वयः— विकुर्वाणात् महत्तत्त्वात् अहं तत्त्वं व्यजायत स च कार्यकारणकर्त्रात्मा भूतेन्द्रियमनोमयः ॥२९॥

अनुवाद— महत् तत्त्व के विकृत होने पर अहङ्कार की उत्पत्ति हुयी वह अहङ्कार कार्य (अधिभूत) कारण (अध्यात्म) तथा कर्ता (अधिदैव) रूप होने से भूत, इन्द्रिय और मन का कारण है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अहङ्कारस्य लक्षणमाह। कार्यमधिभूतम्, कारणमध्यात्मम्, कर्तृ अधिदैवं, तेषामात्मा आश्रयः। अत्र हेतुः भूतेन्द्रियमनोमयस्तद्विकारवान्। मन इति देवानामप्युपलक्षणम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

अब अहंकार का लक्षण बतलाते हैं। महान् से अहंङ्कार की उत्पत्ति हुयी। वह अहङ्कार कार्य (अधिभूत) कारण (अध्यात्म) और कर्ता अधिदैव इन तीनों का आश्रय है। क्योंकि वह भूत, इन्द्रिय तथा मन इन तीनों का कारण है। मन शब्द मन आदि के अधिष्ठातृ देवताओं का उपलक्षण है।

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा । अहंतत्त्वाद्विकुर्वाणान्मनो वैकारिकादभूत् ॥
वैकारिकाश्च ये देवा अर्थाभिव्यञ्जनं यतः ॥३०॥

अन्वयः— अहं त्रिधा वैकारिकः, तैजसः, च तामसः च । वैकारिकात् अहङ्कारात् विकुर्वाणात् मनः अभूत् । यतः अर्थाभिव्यञ्जनं ये देवाः ते अभूवन् ॥३०॥

अनुवाद— वह अहङ्कार तीन प्रकार का हुआ वैकारिक (सात्त्विक) तैजस (राजस) और तामस् (भूतादि) अहं तत्त्व में विकार उत्पन्न होने पर वैकारिक अहङ्कार से मन आदि इन्द्रियों की अधिष्ठातृ देवता हुए । उन देवताओं के द्वारा ही विषयों का ज्ञान होता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव विभागतः प्रपञ्चयति-वैकारिक इत्यादिना । वैकारिकः सात्त्विकः, तैजसो राजसः । देवाश्च वैकारिकाः, सात्त्विकाहंकारकार्यभूता इत्यर्थः । यतो येभ्य इन्द्रियाधिष्ठातृभ्यो देवेभ्यो हेतुभ्योऽर्थाभिव्यञ्जनं शब्दादिप्रकाशो भवति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

इस अहङ्कार के ही विभागों को **वैकारिकः इत्यादि** श्लोक से बतलाया जा रहा है । अर्थात् अहङ्कार के तीन भेद हैं वैकारिक (सात्त्विक) तैजस (राजस) और भूतादि (तामस) । सात्त्विक अहङ्कार में विकार होने पर उससे मन, और शब्दादि विषयों को प्रकाशित करने वाले इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता उत्पन्न हुए । इस तरह देवता भी सात्त्विकाहङ्कार के कार्य हैं ॥३०॥

तैजसानीन्द्रियाण्येव ज्ञानकर्ममयानि च । तामसो भूतसूक्ष्मादिर्यतः खं लिङ्गमात्मनः ॥३१॥

अन्वयः— ज्ञानकर्ममयानि इन्द्रियाणि तैजसान्येव तामसः भूतसूक्ष्मादिः आत्मनः लिङ्गं खम् ॥३१॥

अनुवाद— ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ तैजस अहङ्कार जन्य ही हैं । और तामस अहङ्कार से सूक्ष्म भूतों का कारण शब्दतन्मात्र हुआ वह आत्मा का बोध कराने वाला है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तैजसान्येवेत्यन्वयः । ज्ञानमयानां सात्त्विकत्वशङ्का मा भूदित्येवकारः । तामसो भूतसूक्ष्मस्य शब्दस्यादिः कारणम् । यतः शब्दात्खमाकाशो भवति । आत्मनो लिङ्गं स्वगुणशब्दरूपेण प्रकाशकं हृदयाकाशतया वा । यद्वा लिङ्गं शरीरम् '**आकाशशरीरं ब्रह्म**' इति श्रुतेः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ राजसाहङ्कार जन्य ही हैं । मूल के एव शब्द के द्वारा यह बतलाया गया है कि उनके सात्त्विक होने की शङ्का नहीं करनी चाहिए । तामसाहङ्कार भूतसूक्ष्म शब्दतत्त्व का कारण है । क्योंकि शब्द तन्मात्र से आकाश की उत्पत्ति होती है । लिङ्गमात्मन: का अर्थ है कि वह आकाश अपने गुण शब्द के द्वारा आत्मा का बोध कराता है । अथवा लिङ्ग शब्द शरीर का वाचक है । श्रुति भी कहती है— **आकाशशरीरं ब्रह्म** अर्थात् ब्रह्म का आकश शरीर है ॥३१॥

कालमायांशयोगेन भगवद्वीक्षितं नभः । नभसोऽनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन्निर्ममेऽनिलम् ॥३२॥

अन्वयः— भगवद्वीक्षितं नमः कालमायांश योगेन नभसः अनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन् अनिलम् निर्ममे ॥३२॥

अनुवाद— भगवान् की दृष्टि जब आकाश पर पड़ी तो उस आकाश से कालात्मा और चिदाभास के योग से स्पर्शतन्मात्र उत्पन्न हुआ तथा उसमें विकार होने पर वायु की उत्पत्ति हुयी ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

नभसः स्वस्मादनुसृतमुद्भूतं स्पर्शं विकुर्वद्रूपान्तरं नयदनिलं वायुम् । एवं सर्वत्र तन्मात्रद्वारा भूतोत्पत्तिरिति ज्ञातव्यम् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

आकाश से उद्भूत स्पर्शतन्मात्र से वायु की उत्पत्ति हुयी । इसी तरह सर्वत्र तन्मात्राओं से भूतों की उत्पत्ति को जानना चाहिए ।।३२।।

अनिलोऽपि विकुर्वाणो नभसोरुबलान्वितः । ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ।।३३।।

अन्वयः— उरुबलान्वितः अनिलः अपि नभसा विकुर्वाणः रूपतन्मात्रं ससर्ज तस्मात् लोकस्य लोचनम् ज्योतिः ।।३३।।

अनुवाद— अत्यधिक बलवान् वायु आकाश के साथ विकृत होकर रूप तन्मात्रा को उत्पन्न किया और उससे अहङ्कार को प्रकाशित करने वाला तेज उत्पन्न हुआ ।।३३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३३।।

अनिलेनान्वितं ज्योतिर्विकुर्वत्परवीक्षितम् । आधत्ताम्भो रसमयं कालमायांशयोगतः ।।३४।।

अन्वयः— परवीक्षितम् अनिलेनान्वितं ज्योतिः कालमायांशयोगतः रसमयम् अम्भः आधत्त ।।३४।।

अनुवाद— परमात्मा की दृष्टि पड़ने पर वायुयुक्त तेज ने काल, माया तथा चिदाभास के योग से विकृत होकर रस तन्मात्रा के कार्यभूत जल को उत्पन्न किया ।।३४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३४।।

ज्योतिसाम्भोऽनुसंसृष्ट विकुर्वद्ब्रह्मवीक्षितम् । महीं गन्धगुणामाधात्कालमायांशयोगतः ।।३५।।

अन्वयः— ब्रह्मवीक्षितम् ज्योतिषा अनुसृष्टम् अम्भः कालमायांशयोगतः विकुर्वत अम्भः गन्धगुणाम् महीम् आधत्त ।।३५।।

अनुवाद— ब्रह्म की दृष्टि पड़ने पर तेज से युक्त जलने काल माया और चिदाभास के योग से विकृत होकर गन्धतन्मात्र के कार्यभूत पृथिवी को उत्पन्न किया ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

भूतानां नभआदीनां यद्यद्भव्यावरावरम् । तेषां परानुसंसर्गाद्यथासंख्यं गुणान्विदुः ।।३६।।

अन्वयः— नभ आदीनां भूतानां यद् यद् अवरावरं तेषां परानुसंसर्गात् यथासंख्यं गुणान् विदुः ।।३६।।

अनुवाद— आकाश आदि भूतों में पूर्व-पूर्व भूतों के गुण उत्तरोत्तर भूतों में संख्यानुसार अनुगत जानना चाहिए ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

हे भव्यविदुर ! पाठान्तरे भाव्यं कार्यम् । यद्यदवरमवरं कार्यं तेषां कार्याणां परैः कारणैरनुसंसर्गाद्यथासंख्यं यथाक्रममुत्तरोत्तरमधिकान्गुणान्विदुः । तथाहि नभसः शब्द एव गुणोऽन्यान्वयाभावात् । वायोस्तु स्पर्श आकाशान्व्याच्छदश्च। एवं तैजसस्तौ च रूपं च । अम्भसस्तानि रसश्च । मह्याः सर्वे ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

हे विदुर जी ! जहाँपर भाव्यं पाठ है वहां पर कार्य रूप अर्थ होगा । जो पीछे-पीछे के कार्य हैं उन सबों का अपने पूर्व-पूर्व के भूतों से सम्बन्ध होने के कारण उत्तरोत्तर भूतों में संख्या के अनुसार अधिक-अधिक गुणों को बतलाया गया है । जैसे आकाश का किसी दूसरे पूर्ववर्ती भूत से सम्बन्ध नहीं है अतएव आकाश का गुण

शब्द है। वायु के गुण स्पर्श और शब्द दोनों है, क्योंकि उसका आकाश से सम्बन्ध है। इसी तरह तेज के गुण शब्द, स्पर्श और रूप तीनों है। इसी तरह जल के चार गुण हैं शब्द, स्पर्श, रूप और रस। पृथिवी में पाँच गुण हैं- शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं शब्द ॥३६॥

एते देवाः कला विष्णोः कालमायांशलिङ्गिनः ।
नानात्वात्स्वक्रियाऽनीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयो विभुम् ॥३७॥

अन्वयः— काल, मायांश लिङ्गिनः एते देवाः विष्णोः कलाः, नानात्वात् क्रियानीशाः, ते माञ्जलयः विभुम् प्रोचुः ॥३७॥

अनुवाद— महत् तत्त्व आदि के अभिमानी विकार, विक्षेप और चेतनांश विशिष्ट देवगण भगवान् विष्णु के अंश हैं। फिर भी पृथक्-पृथक् रहने के कारण ब्रह्माण्ड की रचना करने में असमर्थ होने से हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से कहे ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

देवा महदाद्यभिमानिनः। विष्णोः कला अंशाः, काललिङ्गं विकृतिः, मायालिङ्गं विक्षेपः, अंशालिङ्गं चेतना, तानि विद्यन्ते येषु। अतः समत्वेन नानात्वात्परस्परासंबन्धात्स्वक्रियायां ब्रह्माण्डरचनायामनीशा अशक्ताः सन्तो विभुं परमेश्वरं प्रोचुः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

इन महत् तत्त्व आदि के अभिमानी काल, माया तथा चेतना से विशिष्ट देवगण, समान रूप से अलग-अलग रहने के कारण ब्रह्माण्ड की रचना में असमर्थ होने के कारण परमेश्वर से कहे ॥३७॥

देवा ऊचुः

नमाम ते देव पदारविन्दं प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ।
यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरुसंसारदुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति ॥३८॥

अन्वयः— हे देव प्रपन्नतापोपशमआतपत्रम् ते पदारविन्दं नमाम, यत् मूलकेताःयतः उरु संसारदुःखं। बहिः उत्क्षिपन्ति ॥३८॥

देवताओं ने कहा

अनुवाद— हे देव! शरणागत जीवों के सन्ताप को शान्त करने के लिए छत्र के समान आपके चरणों की हम शरणागति करते हैं। आपके जिन चरणों के तलवों को अपना आश्रय बनाने वाले यतिजन महान् संसार के दुःखो को आसानी से दूर फेंक देते हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

मिथः स्पर्धिष्णवो देवा नमिलन्तः परस्परम्। विश्वकर्मण्यनीशाना निर्विण्णा हरिमीडिरे। नमामेति। प्रपन्नानां तापोपशमे आतपत्रं छत्रम्। तत्र हेतुः। यस्य पादारविन्दस्य मूलं तलं केत आश्रयो येषां ते। संसारदुःखं बहिर्दूरत उत्क्षिपन्ति परित्यजन्ति। पान्थाः स्वगृहं प्राप्य मार्गश्रममिव ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

परस्पर में मैं बड़ा हूँ इस प्रकार की भावना के कारण एक दूसरे से नहीं मिल पाने के कारण ब्रह्माण्ड की रचना में असमर्थ होने से वे उदास होकर श्रीहरि की स्तुति किए। देवताओं ने कहा कि आपके ये चारण शरणागतों के सन्ताप को दूर करने के लिए छत्र का काम करते हैं। अपने इस कथन में हेतु उपन्यस्त करते हुए देवों ने कहा कि आपके चरणों को ही अपना आश्रय बनाने वाले यतिजन महान् सांसारिक दुःखों को उसी तरह से त्याग देते हैं जिस तरह से अपने घर में आया हुआ पथिक मार्ग के श्रम को त्याग देता है ॥३८॥

**धातर्यदस्मिन्भव ईश जीवास्तापत्रयेणोपहता न शर्म ।
आत्मँल्लभन्ते भगवंस्तवाङ्घ्रिच्छायां सविद्यामत आश्रयेम ॥३९॥**

अन्वयः— हे धातः हे ईश यत् अस्मिन् भवे तापत्रयेण उपहताः जीवाः आत्मनि शर्म न लभन्ते । अत हे भगवन् सविद्याम् तवाङ्घ्रिच्छायां आश्रयेम ॥३९॥

अनुवाद— हे जगत् के कर्त्ता परमेश्वर इस संसार में तापत्रय से संतप्त जीवों को थोड़ी सी भी शान्ति नहीं मिलती है । अतएव हे भगवन् ! हम आपके चरणों की ज्ञानमयी छाया का आश्रय ग्रहण करते हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

श्रमं विनिवेदयन्त आहुः । हे धातः पितः, यत् यस्माद्भवे संसारे । आत्मन्नात्मनि । संबोधनं वा । शर्म सुखम् । ऋते यदिति पाठे यत्पादभजनं बिना शर्म न लभन्ते ननु ज्ञानादज्ञानकृतस्तापो निवर्तते, किं मदङ्घ्रिच्छायाश्रयणेन तत्राहुः । सविद्यां तदाश्रयणमेव विद्याप्रापकमित्यर्थः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

संसार में होने वाले खेद को निवेदित करते हुए देवताओं ने कहा हे सम्पूर्ण जगत् के पिता संसारी जीव संसार में उपलब्ध होने वाले तीनों प्रकार के सन्तापों से सन्तप्त रहते हैं, उन लोगों को अपनी आत्माओं में विल्कुल शान्ति नहीं प्राप्त होती है । अथवा हे परमात्मन् ! यह सम्बोधन आत्मन् शब्द का मानना चाहिए । जहाँ पर ऋते पाठ है, वहाँपर अर्थ होगा जिन चरणों का भजन किए बिना जीवों को शान्ति नहीं प्राप्त होती आपके उन चरणों की ज्ञानमयी छाया का हम आश्रयण करते हैं ।

ननुज्ञानाद्० इत्यादि- यदि आप कहें कि ज्ञान से ही अज्ञानजन्य संतापों की निवृत्ति हो जाती है, फिर चरणों की शरणाति करने की क्या आवश्यकता है ? तो उसके उत्तर में देवताओं ने कहा **सविद्याम्** अर्थात् आपके चरणों को ही शरण रूप से अपनाने से ज्ञान की प्राप्ति होती है । अतएव हमलोग उनकी शरणागति करते हैं ॥३९॥

**मार्गन्ति यत्ते मुखपद्मनीडैश्छन्दःसुपर्णैर्ऋषयो विविक्ते ।
यस्याघमर्षोदसरिद्वरायाः पदं पदं तीर्थपदः प्रपन्ना ॥४०॥**

अन्वयः— विविक्ते ऋषयः ते मुखपद्मनीडैः छन्दःसुपर्णैः यत् मार्गन्ति अघमर्षोदसरिद्वरायाः यस्य यत्पदं मार्गन्ति तीर्थपदः ते पदं वयं प्रपन्नाः ॥४०॥

अनुवाद— हे भगवन् ! ऋषिगण एकान्त में रहकर आपके मुख कमल रूपी घोसले का आश्रय लेने वाले वेदमन्त्र रूपी पक्षियों के द्वारा जिनका सदा अनुसन्धान करते रहते हैं तथा सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाली नदियों में श्रेष्ठ गङ्गा नदी के जो उद्गम स्थान हैं आपके उन चरणों की हम शरणागति करते हैं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

अज्ञातस्याश्रयणायोगात्तज्ज्ञानसाधनमाहुः । मार्गन्त्यन्वेषयन्ति यत्ततीर्थपदस्तव पदं वयं प्रपन्नाः । कैर्मार्गन्ति, छन्दःसुपर्णैर्वेदपक्षिभिः । तवैव मुखपद्मं नीडं येषाम् । यथा पक्षिणो नीडादुद्गतास्ततस्ततः परिभ्रम्य पुनस्तत्रैव विशन्ति तथा वेदा त्वत्त उद्गतास्त्वय्येव पर्यवस्यन्ति । अतो वेदानाश्रित्य त्वत्पदं मृगयन्त इति । विविक्ते असङ्गे मनसि । किंचाघमर्षमघनाशकमुदमुदकं यासां सरितां तासु वराया गङ्गायाः पदमुद्गमस्थानम् । अतो गङ्गामनुसेवमाना अपि तदुद्गमस्थानं त्वत्पदं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

जो ज्ञात वस्तु होती है उसी का आश्रयण किया जा सकता है अज्ञात वस्तु का तो आश्रयण किया नहीं

जा सकता । अतएव उस परमात्मा के चरणो के ज्ञान का साधन बतलाते हुए देवगण बतलाते हैं । श्रीभगवान् के चरणों का अन्वेषण ऋषिगण एकान्त में उन वेद के मन्त्र रूप पक्षियों के द्वारा करते हैं जिन वेदमन्त्रों का आश्रय स्थान परमात्मा का मुखकमल है । जैसे पक्षिगण अपने घोसले से निकल कर इधर-उधर भ्रमण करके पुनः अपने घोसले में प्रवेश कर जाते हैं, उसी तरह हे भगवन् आपके ही मुख से निकले हुए वेद मन्त्रों का पर्यवसान आपके मुख में ही हो जाता है । उन वेदों के सहारे ही ऋषिगण आपके चरणों का अन्वेषण करते हैं ।

किञ्चाघमर्षमघनाशकम्० इत्यादि जिन नदियों का जल पापों का विनाश करने वाला है उनमें श्रेष्ठ नदी गङ्गा का उद्गम स्थान भी श्रीभगवान् का चरण कमल ही है । अतएव गङ्गा का सेवन करने वाले भी गङ्गा के उद्गम स्थान श्रीभगवान् के चरणों को ही प्राप्त करते हैं ॥४०॥

यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या संमृज्यमाने हृदयेऽवधाय ।
ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा व्रजेम तत्तेऽङ्घ्रिसरोजपीठम् ॥४१॥

अन्वयः— ते तत् अङ्घ्रिसरोजपीठम् यत् श्रद्धया श्रुतवत्या भक्त्या च परिमृज्यमाने हृदये अवधाय वैराग्य बलेन ज्ञानेन धीराः भवन्ति ॥४१॥

अनुवाद— हम आपके चरण कमलों की चौकी की शरणागति करते हैं जिसे भक्तजन श्रद्धा तथा श्रवण रूप भक्ति के द्वारा परिमार्जित अपने अन्तःकरण में ध्यान द्वारा स्थापित करके वैराग्य के बल से परिपुष्ट ज्ञान के द्वारा धैर्य सम्पन्न हो जाते हैं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

ननु विषयाकृष्टचित्तानां कुतस्तदन्वेषणं तत्राहुः । यद्धृदयेऽवधाय ध्यात्वा । वैराग्यं बलं यस्य तेन ज्ञानेन धीरा भवन्ति। सरागे चित्ते ध्यानमेव कुतस्तत्राहुः । श्रद्धया श्रवणपूर्विकया भक्त्या च संमृज्यमाने संशोध्यमाने ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि जिन संसारी जीवों के चित्त को विषय अपनी ओर आकृष्ट किए रहते हैं वे जीव किसलिए भगवान् के चरण कमलों का अन्वेषण करेंगे ? तो इसका उत्तर है कि भगवान् के जिस चरणकमल का अपने अन्तःकरण में ध्यान करके भक्तजन वैराग्य के बल से परिपुष्ट ज्ञान के द्वारा धैर्य सम्पन्न हो जाते हैं, वे भक्त विषयाकृष्ट नहीं हो सकते हैं ।

सरागेचित्ते० इत्यादि जिसका अन्तःकरण राग से युक्त है वह ध्यान भी कैसे कर सकता है ? तो इसका उत्तर है कि श्रद्धा पूर्वक श्रवण तथा कीर्तन आदि रूप भक्ति से जिनका हृदय स्वच्छ हो गया है ऐसे भक्त पुरुष भगवान् का अपने हृदय में ध्यान कर ही सकते हैं ॥४१॥

विश्वस्य जन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते ।
व्रजेम सर्वे शरणं यदीश स्मृतं प्रयच्छत्यभयं स्वपुंसाम् ॥४२॥

अन्वयः— हे ईश विश्वस्य जन्मस्थिति संयमार्थे कृतावतारस्य ते पदाम्बुजं वयं शरणं व्रजेम यत् स्मृतं स्वपुंसाम् अभयं प्रयच्छति ॥४२॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय की प्राप्ति के लिए अवतार लेते हैं । हम आपके उन चरणों की शरणागति करते हैं आपके वे चरण स्मरण करनेवाले अपने भक्तों को अभयप्रदान कर देते हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

भक्तानुग्रहं स्मरन्त आहुः-विश्वस्येति ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के चरणकमल अपने भक्तों पर जैसी कृपा करते हैं उसका स्मरण करते हुए देवताओं ने **विश्वस्य० इत्यादि** श्लोक को कहा है । श्रीभगवान् सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि आदि का कार्य करने के लिए अवतार ग्रहण करते हैं और श्रीभगवान् के चरण कमल तो स्मरण करने वाले अपने भक्तों को स्मरण करने मात्र से ही अभय प्रदान कर देते हैं ।।४२।।

यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ।
पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन्पदाब्जम् ।।४३।।

अन्वयः— देह गेहे मम अहम् इति ऊढदुराग्रहाणाम् पुंसां सानुबन्धे असति पुर्याम् वसतः अपि यत् सुदूरं तत् ते पदाब्जं व्रजेम ।।४३।।

अनुवाद— जिन लोगों का तुच्छ देह तथा गृह आदि में एवं उपकरणों से युक्त शरीर में भी अहंत्व एवं ममत्व का दुराग्रह बना हुआ है ऐसे लोगों के शरीर में भी यद्यपि आप अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहते हैं फिर भी ऐसे लोगों से आपके चरण कमल अत्यन्त दूर बने रहते हैं । ऐसे आपके चरण कमलों की हम शरणागति करते हैं ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

अन्तर्यामितया नित्यं संनिहितेऽनर्थकं व्रजनमित्याशङ्क्याहुः-यदिति । सानुबन्धे सोपकरणे । असति तुच्छे । पूर्यां स्वदेह एव वसतोऽपि यत्सुदूरं दुष्प्रापम् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सबों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहते हैं, किन्तु आपके चरण उन लोगों से अत्यन्त दूर यह सोचकर रहते हैं कि उन शरीरों में जाना व्यर्थ है । इसी अर्थ का प्रतिपादन देवताओं ने इस श्लोक में किया है । सानुबन्धे पद का अर्थ है उपकरणों से युक्त, असति का अर्थ है तुच्छ, पुरी शब्द शरीर का वाचक है । सुदूर शब्द का अर्थ है दुष्प्राप्य। अर्थात् अपने तुच्छ देह और गेह में ही अहंत्व और ममत्व के अभिमान से युक्त मनुष्य के भी शरीर में श्रीभगवान् का नित्य सन्निधान बना हुआ है किन्तु वे दुराग्रही पुरुष परमात्मा को प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।।४३।।

तान्वा असद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये पराहृतान्तर्मनसः परेश ।
अथो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं ये ते पदन्यासविलासलक्ष्म्याः ।।४४।।

अन्वयः— हे परेश असद्वृत्तिभिः अक्षिभिः पराहृतान्तर्मनसः ते नूनं तान् वै न पश्यन्ति ये उरुगायपदन्यास विलासलक्ष्म्याः विशदाशयाः ।।४४।।

अनुवाद— हे परमात्मन् जिन लोगों का मन बहिर्मुख इन्द्रियों के कारण बाह्य विषयों में ही लगा रहता है ऐसे लोग उन भगवद् भक्तों का दर्शन भी नहीं कर पाते हैं; जो भगवद्भक्त आपके चरणविन्यास की शोभा के विशेषज्ञ हैं । इसी कारण आपके चरण उन लोगों से सदा दूर रहते हैं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

ननु यदि हृदिस्थस्यापि पदाब्जं केषांचित्सुदूरं तर्ह्यन्येषामपि तथैव स्यादविशेषादित्याशङ्क्याहुः । तानिति । असद्वृत्तिभिर्वहिर्मुखैरक्षिभिरिन्द्रियैः पराहृतं दूरमपहृतमन्तस्थं मनो येषां ते । अथो अतएव ते नूनं तान्न पश्यन्ति । वै प्रसिद्धम्।

कुतः पुनस्तेषां तत्सङ्गः स्यात् । कान् ते तव पदन्यासो गमनं तस्य विलासो विभ्रमस्तस्य लक्ष्मीः शोभा तस्य ये त्वल्लीलाकथादिभिः शोभमानांस्त्वद्भक्तानित्यर्थः । पथ इति लक्ष्या इति च पाठे त्वत्पदन्यासविलासो लक्ष्यो येषां तान् । पथस्त्वन्मार्गभूतान्सतो मार्गान्वा श्रवणादीन्न पश्यन्तीत्यर्थः । यद्वा ये एवंभूता भागवतास्ते तानुन्मत्तान्नूनं नैव पश्यन्तीत्यन्वयः । सत्सङ्गाभावेन हरिकथाश्रवणाभावाद्धृदि स्थितमपि तेषां सुदूरमिति भावः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि हृदय में विद्यमान भी मेरे चरणकमल कुछ लोगों के लिए अत्यन्त दूर हैं तो उसी तरह से दूसरे लोगों के लिए भी वे अत्यन्त दूर रह सकते हैं, तो इस प्रकार की आशङ्का करके देवों ने **तान् वै०** **इत्यादि** श्लोक को कहा— अर्थात् बहिर्मुख इन्द्रियों के होने के कारण जिन लोगों का मन सदा बाह्य विषयों में ही लगा रहता है वे लोग तो आपके चरणों को निश्चित रूप से नहीं देखते हैं । अतएव उन लोगों का उन चरणों से सङ्ग कैसे हो सकता है ? जो लोग आपके चरणों के विन्यासजन्य शोभा के जानकार हैं, उन आपके भक्तों का वे दर्शन भी नहीं कर पाते हैं, तो फिर आपके भक्तों का उनके साथ सङ्ग ही कैसे हो सकता है ? जहाँ पर **अथ** के स्थान पर **पथ** का तथा **लक्ष्म्याः** के स्थान पर **लक्ष्या** पाठ है, वहाँ पर अर्थ होगा कि जिन भक्तों का आपके पदविन्यास ही लक्ष्य हैं,उन भक्तों का दर्शन नहीं पाते हैं । अथवा आपके मार्गभूत सन्मार्ग को जो अर्थात् श्रवणादि को नहीं देखते हैं । **यद्वा० इत्यादि** अथवा आपके जो भक्त है उन भगवद् भक्तों को नहीं देखते है। सत्सङ्ग का अभाव होने के कारण वैसे लोग श्रीहरि की कथा को नहीं सुनते हैं । ऐसे लोगों के हृदय में विद्यमान रहने पर भी उन लोगों के लिए श्रीहरि के चरण अत्यन्त दूर ही हैं ॥४४॥

पानेन ते देव कथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ।
वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथाऽञ्जसाऽन्वीयुरकुण्ठधिष्ण्यम् ॥४५॥

अन्वयः— हे देव ते कथासुधायाः पानेन प्रवृद्धभक्त्या ये विशदाशयाः ते वैराग्यसारं बोधं प्रतिलभ्य यथाञ्जसा वैकुण्ठधिष्ण्यम् अन्वीयुः ॥४५॥

अनुवाद— हे देव ! आपके कथारूपी अमृत का पान करने के कारण जिनकी भक्ति समृद्ध हो गयी है, उसके फलस्वरूप निर्मल अन्तःकरण वाले भगवद् भक्त वैराग्य प्रधान आत्मज्ञान को प्राप्त करके अनायास आपके वैकुण्ठलोक में चले जाते हैं ॥४५ ॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव स्फुटयन्ति-पानेनेति द्वाभ्याम् । वैराग्यं सारो बलं यस्य बोधस्य तं लब्ध्वा । अन्वीयुः प्राप्नुयुः । अकुण्ठधिष्ण्यं वैकुण्ठलोकम् ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

चैवालिसवें श्लोक में ही कही गयी बातों को देवताओं ने स्पष्ट करते हुए कहा— यद्यपि श्रीभगवान् सबों के हृदय में समान रूप से विद्यमान रहते हैं फिर में भगवद्भक्त श्रीहरि की कथामृत का श्रवण करके सदा मग्न रहते हैं । उन लोगों को संसार से वैराग्य हो जाता है और वे आत्मज्ञान को प्राप्त करके बिना किसी प्रयास के वैकुण्ठलोक को प्राप्त कर लेते हैं ॥४५॥

तथाऽपरे चात्मसमाधियोगबलेन जित्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ।
त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ॥४६॥

अन्वयः— तथा अपरे च धीराः समाधियोगबलेन बलिष्ठां प्रकृतिं विजित्य त्वामेव पुरुषं विशन्ति तेषांश्रमः स्यात् सेवया तु न ॥४६॥

अनुवाद— दूसरे धीर पुरुष चित्त के निरोध रूप समाधि योग के सहारे बलवती प्रकृति को जित लेते हैं और परं पुरुष आप में ही प्रवेश कर जाते हैं । उन लोगों को भी श्रम करना पड़ता है किन्तु सत्सङ्ग रूपी सेवा के मार्ग से मुक्ति को प्राप्त करने वालों को कोई भी कष्ट नहीं होता है ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनि समाधिर्मनः स्थैर्यं स एव योग उपायस्तस्य बलेन । ज्ञानयोगतः श्रमेण मोक्षः सत्सङ्गतस्त्वत्कथाश्रवणादिना त्वनायासेनैव । अहंममताविष्टानां तु न कथंचिदिति भावः ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

चित्त की वृत्ति को रोककर मन को आत्मा में ही लगाये रखने को योग कहते हैं । योग जन्य ज्ञान के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करने में परिश्रम तो होता ही है । किन्तु आपकी कथा का श्रवण आदि रूप सत्सङ्ग के द्वारा तो अनयास ही वैकुण्ठ की प्राप्ति हो जाती है । जो लोग अहंत्व ममत्व आदि की भावना से ग्रस्त हैं वे तो कभी भी वैकुण्ठ को नहीं प्राप्त कर सकते ॥४६॥

तत्ते वयं लोकसिसृक्षयाऽद्य त्वयाऽनुसृष्टास्त्रिभिरात्मभिः स्म ।
सर्वे वियुक्ताः स्वविहारतन्त्रं न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवे ते ॥४७॥

अन्वयः— हे आद्य तत् ते वयं त्वया लोकसिसृक्षया अनुसृष्टाः त्रिभिः आत्मभिः सर्वे वियुक्ताः स्म अतएव स्वविहारतन्त्रं प्रतिहर्तवे न शक्नुमः ॥४७॥

अनुवाद— हे आदि पुरुष हमलोग आपके हैं । आपने विश्व की रचना करने के लिए हमलोगों की क्रमशः सृष्टि की है । किन्तु सत्त्व, रजस् एवं तमस् से युक्त होने के कारण हमलोग आपस में नहीं मिल पाते हैं । फलतः आपकी क्रीडा के साधनभूत ब्रह्माण्ड की रचना करके आपको समर्पित नहीं कर पा रहे हैं । अतएव आप अपना ज्ञान हमें प्रदान करें ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं स्तुत्वा प्रार्थयन्ते चतुर्भिः । तत्तस्मात् हे आद्य, ते त्वदीया वयं यस्माल्लोकानां सिसृक्षया त्वयाऽनुसृष्टा क्रमेणोत्पादिताः त्रिभिरात्मभिः सत्त्वादिस्वभावैः अतएव विरूद्धस्वभावत्वाद्वियुक्ताः सन्तो यदर्थं सृष्टास्तत्स्वविहारतन्त्रं त्वत्क्रीडोपकरणं ब्रह्माण्डं ते तुभ्यं प्रतिहर्तवे प्रतिहर्तुं समर्पयितुं न शक्नुमः, अतस्त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहीति त्रयाणां श्लोकानां चतुर्थेनान्वयः ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से श्रीभगवान् की स्तुति करके देवगण श्रीभगवान् की प्रार्थना चार श्लोकों से करते हैं । अतएव हे आदिपुरुष ! हमलोग आपके ही हैं, क्योंकि आपने ब्रह्माण्ड की रचना करने के लिए हमलोगों की क्रमशः सृष्टि की है । हमलोगों का सत्त्वादि गुण युक्तता ही स्वभाव है । फलतः परस्पर विरोधी स्वभाव वाले होने के कारण आपस में हम नहीं मिल पाते हैं । आपने जिसलिए हमलोगों की सृष्टि की है आपकी क्रीडा के साधन भूत ब्रह्माण्ड की रचना करके उसको आपको समर्पित करने में हमलोग असमर्थ हैं । अतएव आप हमलोगों को अपना ज्ञान प्रदान करें । इस तरह तीन श्लोकों का चौथे श्लोक से सम्बन्ध है ॥४७॥

यावद्बलिं तेऽज हराम काले यथा वयं चान्नमदाम यत्र ।
यथोभयेषां त इमे हि लोका बलिं हरन्तोऽन्नमदन्त्यनूहाः ॥४८॥

अन्वयः— हे अज ! काले यावत् ते बलिं हराम वयं च यथा यत्र अन्नम् अदाम ते इमे लोकाः यथा उभयेषां बलिं हरन्तः अनूहाः अन्नम् अदन्ति ॥४८॥

अनुवाद— हे अजन्मा ! भगवन् जिस तरह से हम ब्रह्माण्ड की रचना करके समयानुसार आपको भोग प्रदान कर सकें और हमलोग भी जहाँ पर रहकर अपने भोगों को प्राप्त कर सकें, तथा ये सभी जीव भी आपको तथा हमलोगों को भोग प्रदान करें स्वयम् भी बिना किसी विघ्न के अपने-अपने भोगों को प्राप्त कर सकें ऐसा ज्ञान आप हमें प्रदान करें ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

असामर्थ्यमेव प्रपञ्चयितुं कार्यस्यातिवैचित्र्यमाहुः । भो अज, काले तत्तदवसरे बलिं भोगं यावत्साकल्येन ते तुभ्यं हराम समर्पयाम । यथा येन प्रकारेणान्नमदाम भक्षयामेत्यनेनान्नमात्रं चास्माकम्, ऐश्वर्येण तु भोगस्तवैवेत्युक्तम् । उभयेषां तव चास्माकं च यत्र स्थित्वा इमे जीवा अनूहा अप्रत्यूहा निर्विघ्नाः । यद्वा अनूहा अवितर्काः, निःसंशया इत्यर्थः । तथाच श्रुतिः- **'ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन्प्रतिष्ठिता अन्नमदाम'** इति ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

सामर्थ्य के अभाव को ही विस्तार से बतलाने के लिए कार्य की अत्यन्त विचित्रता को बतलाते हैं । हे अजन्मा भगवन् ! जिस प्रकार से समयानुसार हम आपको पूर्ण रूप से बलि प्रदान कर सकें तथा जिस तरह से हमलोग अपने-अपने भोगों को प्राप्त कर सकें; अर्थात् हमलोग तो केवल अन्न प्राप्त करना चाहते हैं किन्तु ऐश्वर्य रूपी भोग तो आपको ही प्राप्त होगा । और जहाँ रहकर ये सभी जीव आपको तथा हमलोगों को भी भोग प्रदान कर सकें और निर्विघ्न बने रहें अथवा संशय रहित बने रहें ऐसा ज्ञान हमें प्रदान करें । श्रुति भी कहती हैं- **ता एनम् इत्यादि** उन देवताओं ने प्रजापति से कहा आप हमें आश्रय प्रदान करें जिसमें स्थित रहकर हम अपने भोगों को प्राप्त कर सकें ॥४८॥

त्वं नः सुराणामसि सान्वयानां कूटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः ।
त्वं देव शक्त्यां गुणकर्मयोनौ रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः ॥४९॥

अन्वयः— नः सान्वयानां सुराणाम् कूटस्थः पुराण पुरुषः त्वम् आद्यः अजः त्वं गुणकर्मयोनौ अजायां शक्त्यां कवि रेतः आदधे ॥४९॥

अनुवाद— कार्यवर्ग सहित हम देवताओं के भी निर्विकार अन्जमा तथा पुराण पुरुष आप ही आदि कारण है । सृष्टि काल में अजन्मा आपने ही अपनी माया शक्ति में चिदाभास रूप वीर्य का आधान किया था ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

अवश्यं च त्वयाऽस्माकमेषां च कार्योपाधीनां जीवानां वृत्तिः परिकल्पनीया जनकत्वादित्याहुः । नोऽस्माकं सान्वयानां सकार्याणाम् । यद्वा । अन्वेतीत्यन्वयः कारणं तत्सहितानां त्वमेवाद्यः कारणम् । अत्र हेतवः । कूटस्थोऽविक्रियः । पुरुषोऽधिष्ठाता। पुराणः पुरातनः । एतदुपपादयन्ति -त्वमिति । हे देव, अज एव त्वं गुणानां सत्त्वादीनां कर्मणां जन्मादीनां च योनौ कारणभूतायां शक्त्यां मायायां प्रथमं रेत आदधे । निहितवानसीत्यर्थः । कीदृशम् । कविं सर्वज्ञं महत्तत्त्वरूपम् ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

आपको अवश्य ही हम कार्योपधि जीवों की वृत्ति की परिकल्पना करनी चाहिये क्योंकि आप ही कार्य वर्ग सहित हमलोगों को उत्पन्न करने वाले हैं । अथवा अन्वय शब्द क्रम का बोधक है । इस तरह अर्थ होगा कि हमलोगों के तथा हमारे जो कारण महदादि हैं उनके भी कारण आप ही हैं । क्योंकि आप निर्विकार अधिष्ठाता और सबसे पुरातन हैं ।

एतदेवोपपादयति० इत्यादि- इसी अर्थ का प्रतिपादन इस श्लोक के उत्तरार्द्ध के द्वारा किया गया है ।

हे देव आप अजन्मा हैं और सत्त्व आदि गुणों तथा जन्म आदि के कारणभूत माया में आपने महत् तत्त्व रूप सर्वज्ञ समष्टि जीव रूप वीर्य का आधान किया है ॥४९॥

ततो वयं सत्प्रमुखा यदर्थे बभूविमात्मन् करवाम किं ते ।
त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देव क्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे तृतीयस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अन्वयः— हे आत्मन् देव ! ततः सत्प्रमुखा वयं यदर्थे बभूविम ते किं करवाम यदनुग्रहाणां नः क्रियार्थे शक्त्या स्वचक्षुः परिदेहि ॥५०॥

अनुवाद— हे परमात्मन् देव ! महत् तत्त्वादिरूप हम देवगण जिस कार्य के लिए उत्पन्न हुए है, उसके बारे में हम क्या करें । ब्रह्माण्ड रूप कार्य की रचना करने के लिए आप हमें अपनी शक्ति के साथ अपनी ज्ञान शक्ति को भी प्रदान करें जिससे कि हमलोग ब्रह्माण्ड की रचना कर सकें । हमलोग पर कृपा करने वाले आप ही हैं ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरेस्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

भावार्थ दीपिका

तथा हे आत्मन् देव, सत्प्रमुखा महदादयो वयं यदर्थं बभूविम, तत्किं ते कार्यं करवाम। सृष्टिमिति चेत्तत्राहुः । तर्हि नोऽस्माकं त्वं स्वचक्षुः स्वीयं ज्ञानं शक्त्या सह परिदेहि प्रयच्छ । यस्मात्त्वत्त एवानुग्रहो येषां ते यदनुग्रहास्तेषामस्माकम् । क्रियार्थे इयानेवैतावाननुग्रहो येषामित्येकं वा पदम् । त्वदीयज्ञानक्रियाशक्तिभ्यामेव वयं सृष्टौ क्षमा नान्यथेत्यर्थः ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिका टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

तथा आत्म स्वरूप भगवन् महदादि प्रधान हम देवगण जिस कार्य के लिए उत्पन्न हुए हैं, आपके उस कार्य के विषय में हम क्या करें । यदि आप कहें कि तुमलोग ब्रह्माण्ड की सृष्टि करो तो इसके विषय में देवताओं ने कहा यदि ऐसी बात है ते आप हमलोगों को क्रियाशक्ति के साथ अपनी ज्ञान शक्ति प्रदान करें । क्योंकि आपके द्वारा अनुगृहीत होने पर ही हम ब्रह्माण्ड की रचना करने में समर्थ होंगे नही तो नहीं ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के पाँचवे अध्याय के भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ॥५॥

छठा अध्याय

विराट् शरीर की उत्पत्ति का वर्णन

ऋषिरुवाच

इति तासां स्वशक्तीनां सतीनामसमेत्य सः । प्रसुप्तलोकतन्त्राणां निशाम्य गतिमीश्वरः ॥१॥
कालसंज्ञां तदा देवीं बिभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः । त्रयोविंशतितत्त्वानां गणं युगपदाविशत् ॥२॥

अन्वयः— सः पुरुक्रमः ईश्वरः इति तासां स्वशक्तीनाम् असमेत्य सतीनाम् प्रसुप्तलोकन्तन्त्राणां गतिम् निशाम्य तदा कालसंज्ञा देवीं विभ्रत् त्रयोविंशत् तत्त्वानां गणं युगपत् आविशत् ॥१-२॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— सर्वशक्तिमान् परमात्मा अपनी शक्तिभूत महदादि तत्त्वों को पृथक्-पृथक् रहने के कारण विश्व की रचना में असमर्थ देखकर दिव्यकालशक्ति को स्वीकार करके एक ही समय में महत्तत्त्व, अहङ्कार, पञ्च महाभूत पञ्चतन्मात्रायें तथा मन सहित ग्यारह इन्द्रियाँ इन तेइसों के समूह में प्रवेश कर गये ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

षष्ठे तैरीश्वराविष्टैः सृष्टिमाह विराट्तनोः । अधिदैवादिभेदं च तत्रैव भगवत्कृतम् । स्वशक्तीनां महदादीनामसमेत्यामिलित्वा सतीनां स्थितानाम् । प्रसुप्तं लोकतन्त्रं विश्वरचना यासाम् । यद्वा प्रसुप्तजीवोपकरणानां गतिं स्थितिं दृष्ट्वा आविशदित्युत्तरेणान्वयः। कालेन संज्ञा उद्बोधो यस्याः, कालयति क्षोभयति स्वकार्याणीति वा कालसंज्ञा प्रकृतिस्तां शक्तिम् । प्रकृत्या सह प्रवेशस्त्रयोविंशतितत्त्वानामित्युक्तम् । अन्तर्यामितया प्राविशत् ॥१-२॥

भाव प्रकाशिका

छठे अध्याय में ईश्वर से अविष्ट उन महदादिकों के द्वारा विराट् शरीर की सृष्टि बतलायी गयी है और उसमें ही अधिदैव इत्यादि भेदों को परमात्मने कर दिया ॥१॥

अपनी शक्ति महदादिकों में जो पृथक् पृथक् विद्यमान थीं और उसके कारण विश्वरचना का कार्य प्रसुप्त था । अथवा जिनके जीवोपकरण प्रसुप्त थे । उनकी स्थिति को देखकर श्रीभगवान् कालशक्ति के द्वारा जिसका उद्बोध होता है, वह प्रकृति अथवा कालयति अर्थात् जो अपने कार्यों में क्षोभ पैदा कर देती है, उस प्रकृति के साथ प्रवेश करने के कारण तेइस तत्त्वों में भगवान् प्रवेश किए । अर्थात् उन सभी महदादि तत्त्वों में भगवान् प्रकृति के साथ अन्तर्यामी रूप से प्रवेश कर गये ॥१-२॥

सोऽनुप्रविष्टो भगवांश्चेष्टारूपेण तं गणम् । भिन्नं संयोजयामास सुप्तं कर्म प्रबोधयन् ॥३॥

अन्वयः— तं गणम् चेष्टारूपेण अनुप्रविष्टः भगवान् सुप्तं कर्म प्रबोधयन् भिन्नं संयोजयामास ॥३॥

अनुवाद— उन तेइसों के भीतर चेष्टा रूप से प्रवेश करके श्रीभगवान् ने उनके सोये हुए अदृष्ट को जगाते हुए उन सबों को एक में मिला दिया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

चेष्टारूपेण क्रियाशक्त्या । कर्म तेषां क्रियां जीवानामदृष्टं वा ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उन सबों में चेष्टा रूप से अर्थात् क्रिया शक्ति के द्वारा उन सबों की क्रिया अथवा जीवों के अदृष्ट को भगवान् ने जागृत कर दिया और उसके पश्चात् वे सभी प्राकृत तत्त्व जो अलग-अलग थे उन सबों को एक में मिला दिया ॥३॥

प्रबुद्धकर्मा दैवेन त्रयोविंशतिकोगणः । प्रेरितोऽजनयत्स्वाभिर्मात्राभिरधिपूरुषम् ॥४॥

अन्वयः— प्रबुद्धकर्मा त्रयेविंशतिकोगणः दैवेन प्रेरितः एवम् त्रिभिः अधिपूरुषम् अजनयत् ॥४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के द्वारा जिनका अदृष्ट कार्योन्मुख बना दिया गया था इस प्रकार के महादादि तेइसों के समूह ने अपने अंश से विराट् को उत्पन्न किया ॥४॥

भावार्थ दीपिका

प्रबुद्धं कर्म क्रियाशक्तिर्यस्य स त्रयोविंशतेर्गणः दैवेनेश्वरेण प्रेरितः । मात्राभिरंशैः । अधिपूरुषं विराड्देहम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

जिनकी क्रिया शक्ति को श्रीभगवान् ने प्रवुद्ध कर दिया था इस प्रकार का तेइस तत्त्वों के गण ने अपने अंश से विराट् शरीर को उत्पन्न किया ॥४॥

परेण विशता स्वस्मिन्मात्रया विश्वसृड्गणः । चुक्षोभान्योन्यमासाद्य यस्मिँल्लोकाश्चराचराः ॥५॥

अन्वयः— परेण मात्रया स्वस्मिन् विशता विश्वसृड्गणः अन्योन्यम् आसाद्य चुक्षोभ, यस्मिन् लोकाश्चराचराः ॥५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने उस ब्रह्माण्ड नामक शरीर में अपने अंश से प्रवेश किया ब्रह्माण्ड की रचना करने वाला महदादि का गण एक दूसरे से मिलाकर परस्पर में परिणाम किया । यह तत्त्वों का परिणाम हीं विराट् पुरुष है उसी में सभी चराचर जीव विद्यमान हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

जननमेवाह । परेणेश्वरेण । विश्वसृजां सत्त्वानां गणः । मात्रया चुक्षोभ परिणतो न सर्वात्मना । यस्मिँल्लोकाः स्थिताः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को ही बतलाते हुए **परेण इत्यादि** श्लोक को कहा गया है । परमात्मा के उस विराट् शरीर में प्रवेश कर जाने पर विश्व की रचना करने वाले तेइस तत्त्वों के समूह आपस में मिलकर चराचरात्मक ब्रह्माण्ड में क्षोभ को उत्पन्न किया । किन्तु वह परिणाम पूर्णरूप से नहीं था ॥५॥

हिरण्मयः स पुरुषः सहस्रपरिवत्सरान् । आण्डकोश उवासाप्सु सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥६॥

अन्वयः— सर्वसत्त्वोपवृंहितः सः हिरण्मयः पुरुषः अप्सु सहस्रपरिवत्सरान् अण्डकोशे अप्सु उवास ॥६॥

अनुवाद— सभी चराचरात्मक जीवों के साथ वह हिरण्यमय पुरुष (विराट् पुरुष) उस ब्रह्माण्ड में एक हजार दिव्य वर्षो तक जल में निवास किया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

स पुरुषोऽधिपुरुष इत्युक्तः आण्डकोशे ब्रह्माण्डकोशे ब्रह्माण्डमध्ये । सर्वैः सत्त्वैरनुशायिभिर्जीवैः सहितः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

वह विराट् पुरुष जिसको अधिपुरुष कहा गया हैं, वह अपने साथ शयन करने वाले समस्त जीवों के साथ उस ब्रह्माण्ड रूपी अपने आश्रय में जल के भीतर एक हजार दिव्य वर्षों तक पड़ा रहा ॥६॥

स वै विश्वसृजां गर्भो देवकर्मात्मशक्तिमान् । विबभाजात्मनात्मानमेकधा दशधा त्रिधा ॥७॥

अन्वयः— स वै विश्वसृजां गर्भः देवकर्मात्मशक्तिमान् अत्मना आत्मानं एकधा, दशधा त्रिधा च विबभाज ॥७॥

अनुवाद— विश्व की रचना करने वाले उन महदादिकों का गर्भ (कार्य) देवशक्ति, कर्मशक्ति और आत्मशक्ति

से अपने आपको एक दश और तीन भागों में विभक्त कर दिया । अर्थात् देवशक्ति यानी ज्ञानशक्ति के द्वारा एक हृदयावच्छिन्न चैतन्य के रूप में कर्मशक्ति यानी क्रियाशक्ति के द्वारा दश प्राणों के रूप में और आत्म शक्ति के द्वारा अध्यात्म, अधिदेव तथा अभिभूत के इन तीन रूपों में अपने आपको विभक्त कर दिया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

गर्भः कार्यरूपो विराट् । देवशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्तयैकधा हृदयावच्छिन्नचैतन्यरूपेण । कर्मशक्तिः क्रियाशक्तिस्तया दशधा प्राणरूपेण प्राणादयः पञ्च **'नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनजयः'** इत्येते पञ्च । एवं वृत्तिभेदेन दशविधः प्राणः । आत्मशक्तिर्भोक्तृशक्तिस्तयाऽध्यात्मादिभेदेन त्रिधात्मानं विभक्तं कृतवान् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

महदादि का कार्य भूत जो विराट् था वह देवशक्ति (ज्ञान शक्ति) कर्मशक्ति (क्रिया शक्ति) तथा आत्म शक्ति (भोक्तृशक्ति) से युक्त था, उसने अपने आप को ज्ञानशक्ति के द्वारा हृदयावच्छिन्न चैतन्य के रूप में; क्रिया शक्ति के द्वारा दशप्राणों के रूप में और आत्मशक्ति (भोक्तृशक्ति) के द्वारा अध्यात्म इत्यादि के रूप में विभक्त कर दिया। प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान नाग कूर्म, कृकल, देवदत्त एवं धनञ्जय ये दश प्राण हैं । अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत ये अध्यात्मादि हैं ॥७॥

एष ह्यशेषसत्त्वानामात्मांशः परमात्मनः । आद्योऽवतारो यत्रासौ भूतग्रामो विभाव्यते ॥८॥

अन्वयः— एष हि अशेषसत्त्वानाम् आत्मा परमात्मनः अंशः, आद्य अवतारः यत्र असौ भूतग्रामः विभाव्यते ॥८॥

अनुवाद— यह विराट् पुरुष ही प्रथम जीव होने के कारण समस्त जीवों की आत्मा है, जीव होने के कारण परमात्म का अंश है, प्रथम अभिव्यक्त होने के कारण भगवान् का आदि अवतार है, सम्पूर्ण जीव समूह इसी में प्रकाशित होता है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

एवं विभागसामर्थ्याय तस्योत्कर्षमाह- एष हीति । अशेषसत्त्वानां प्राणिनामात्मा । व्यष्टीनां तदंशत्वात् । अंशो जीवः। अवतारत्वोक्तिस्तस्मिन्नारायणाविर्भावाभिप्रायेण ॥८॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के विभाग रूपी सामर्थ्य के लिए **एष हि० इत्यादि** श्लोक के द्वारा उसके उत्कर्ष का वर्णन करते हैं । यह विराट् पुरुष सभी प्राणियों की आत्मा है, जीव रूप होने के कारण उस परमात्मा का अंश है प्रथम अभिव्यक्त होने के कारण भगवान् का आदि अवतार है । इसी में नारायण की अभिव्यक्ति होने के कारण इस विराट् पुरुष को अवतार कहा गया है ॥८॥

साध्यात्मः साधिदैवश्च साधिभूत इति त्रिधा । विराट् प्राणो दशविध एकधा हृदयेन च ॥९॥

अन्वयः— एष विराट् साध्यात्मः साधिदैवः साधिभूत इति त्रिधा, दशविधः प्राणः, हृदयेन च एकविधः ॥९॥

अनुवाद— यह विराट् अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत रूप से तीन प्रकार का प्राण रूप से दश प्रकार का और हृदय रूप से एक प्रकार का है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वश्लोकार्थं विवृणोति । साध्यात्मः अध्यात्मानीन्द्रियाणि तत्सहितः । विराडिति सर्वत्र ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में आठवें श्लोक की व्याख्या की गयी है। अध्यात्म शब्द से इन्द्रियों को कहा गया है। वह विराट् ही अध्यात्मादि भेद से तीन प्रकार का है। प्राण रूप से वह दश प्रकार का है और वह हृदय रूप से एक प्रकार का है ॥९॥

स्मरन्विश्वसृजामीशो विज्ञापितमधोक्षजः। विराजमतपत्स्वेन तेजसैषां विवृत्तये ॥१०॥

अन्वयः— विश्वसृजाम् ईशः भगवान् विज्ञापितं स्मरन् स्वेन तेजसा एषां विवृत्तये विराजम् अतपत् ॥१०॥

अनुवाद— महदादिकों के स्वामी श्रीभगवान् उन सबों की प्रार्थना को स्मरण करते हुए उन सबों की वृत्ति को जगाने के लिए अपने चेतना रूप तेज के द्वारा विराट् को जगाये ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अध्यात्मादिभेदं प्रपञ्चयितुमाह-स्मरन्निति। विज्ञापितं **'यावद्बलिं तेऽज हराम'** इत्यादि। स्वेन तेजसा चिच्छक्त्या। अतपत् एवं करिष्यामीत्यालोचितवान्॑ **'यस्य ज्ञानमयं तपः'** इति श्रुतेः। विवृत्तये विविधवृत्तिलाभाय ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

अध्यात्म इत्यादि भेदों को विस्तार से बतलाने के ही लिए स्मरन् विश्वसृजाम् इत्यादि श्लोक कहा गया है। देवताओं ने **यावदबलिं देव इत्यादि** श्लोक से प्रार्थना की थी उसका स्मरण करते हुए श्रीभगवान् ने उन सबों की वृत्ति को जगाने के लिए अपनी चित् शक्ति के द्वारा विचार किया कि मैं विराट् को इस प्रकार का कर दूँगा। श्रुति भी कहती है, यस्य ज्ञानमयं तपः। अर्थात् जिस परमात्मा का तप ज्ञान स्वरूप है। उन सबों को अनेक प्रकार की वृत्ति प्रदान करने के लिए परमात्मा ने उस विराट् को उद्बोधित किया ॥१०॥

अथ तस्याभितप्तस्य कति चायतनानि ह। निरभिद्यन्त देवानां तानि मे गदतः शृणु ॥११॥

अन्वयः— अथ अभितप्तस्य तस्य देवानां कति आयतनानि निरभिद्यन्त तानि गदतः मे शृणु ॥११॥

अनुवाद— उसके पश्चात् परमात्मा के सङ्कल्प के पश्चात् जगे हुए उस विराट् में देवताओं के कितने आश्रय प्रकट हुए उसे मैं बतला रहा हूँ इसे आप सुनें ॥११॥

भावार्थ दीपिका

मे मत्तः शृणु ॥११॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मा ने सङ्कल्प के द्वारा उस विराट् को जगाया उसके परश्चात् विराट् पुरुष के कितने आयतन प्रकट हुए उसे मैं बतला रहा हूँ आप सुनें ॥११॥

तस्याग्निरास्यं निर्भिन्नं लाकपालोऽविशत्पदम्। वाचा स्वांशेन वक्तव्यं ययाऽसौ प्रतिपद्यते ॥१२॥

अन्वयः— तस्य आस्यं निर्भिन्न तत् पदं लोकपालः अग्निः स्वांशेन वाचा आविशत् यया असौ वक्तव्यं प्रतिपद्यते ॥१२॥

अनुवाद— सर्व प्रथम उस विराट् पुरुष का मुख प्रकट हुआ उसमें अग्नि नामक लोकपाल अपने अंशभूत वागिन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये। उस वागिन्द्रिय के द्वारा ही जीव बोलने का काम करता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

आयतनान्येवाह- तस्याग्निरित्यादि चतुर्दशभिः। आस्यं निर्भिन्नं पृथग्जातम्। पदं स्वस्थानम्। स्वांशेन स्वशक्त्या वाचा सहाविशत्। असौ जीवः वक्तव्यं प्रतिपद्यते, शब्दमुच्चारयतीत्यर्थः। सर्वत्र यन्निर्भिन्नं तदधिष्ठानम्। अग्न्यादिप्रथमान्तमधिदैवम्। वागादीन्द्रियम्। तृतीयान्तमध्यात्मम्। प्रतिपत्तव्यमधिभूतम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अग्नि इत्यादि चौदह श्लोकों के द्वारा आयतनों का ही वर्णन मैत्रेय महर्षि करते हैं । सर्वप्रथम उस विराट् का मुख प्रकट हुआ । अपने अंश भूत वागिन्द्रिय के साथ अग्नि नामक लोकपाल अपने उस मुख नामक वागिन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये । उस वागिन्द्रिय के द्वारा ही जीव बोलने का काम करता है । सब जगह जो प्रकट होता है, वही आश्रय है । प्रथमान्त से बतलाये गये अग्नि आदि अधिदैव हैं । वाणी आदि इन्द्रियाँ जो हैं उनको तृतीयान्त पद के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है । तथा प्रतिपत्तव्य रूप से अधिभूत को कहा गया है ॥१२॥

निर्भिन्नं तालु वरुणो लोकपालोऽविशद्धरेः । जिह्वयांऽशेन च रसं ययाऽसौ प्रतिपद्यते ॥१३॥

अन्वयः— हरेः तालु निर्भिन्नं स्वांशेन जिह्वया लोकपालः वरुणः पदम् आविशत् यया असौ रसं प्रतिपद्यते ॥१३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष का तालु प्रकट हुआ अपने उस स्थान में वरुण नामक लोकपाल अपने अंश भूत रसनेन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये । उसी के द्वारा जीव रस का अनुभव करता हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

हरेर्विराजः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

हरि शब्द से इस श्लोक में विराट् पुरुष को कहा गया है ॥१३॥

निर्भिन्ने अश्विनौ नासे विष्णोराविशतां पदम् । घ्राणेनांशेन गन्धस्य प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥१४॥

अन्वयः— विष्णोः नासे निर्भिन्ने तत् पदं अश्विनौ घ्राणेनांशेन आविशताम् । यतः गन्धस्य प्रतिपत्तिः भवेत् ॥१४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष की दोनों नासिकाएँ प्रकट हुयी उस स्थान में दोनों अश्विनी कुमार अपने अंशभूत घ्राणेन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये । उसी के द्वारा जीव गन्ध का ग्रहण करता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥१४॥

निर्भिन्ने अक्षिणी त्वष्टा लाकपालोऽविशद्विभोः । चक्षुषांशेन रूपाणां प्रतिपत्तिर्यत भवेत् ॥१५॥

अन्वयः— विभोः अक्षिणी निर्भिन्ने तत्र लोकपालः त्वष्टा चक्षुषा अंशेन अविशत् यतः रूपाणां प्रतिपत्ति र्भवेत् ॥१५॥

अनुवाद— उसके प्रश्चात् उस विराट् पुरुष के दोनों नेत्र प्रकट हुए । उसमें त्वष्टा (आदित्य) नामक लोकपाल अपने अंशभूत चक्षुरिन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये । उस चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा ही मनुष्य रूपों का ग्रहण करता हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

त्वष्टा आदित्यः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

त्वष्टा शब्द से आदित्य को कहा गया है ॥१५॥

निर्भिन्नान्यस्य चर्माणि लोकपालोऽनिलोऽविशत् । प्राणेनांशेन संस्पर्शं येनासौ प्रतिपद्यते ॥१६॥

अन्वयः— अस्य चर्माणि निभिन्नानि येषु लोकपाल अनिलः अंशेन प्राणेन आविशत् येनासौ संस्पर्श प्रतिपद्यते॥१६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष की त्वचा प्रकट हुयी उसमें लोकपाल वायु अपने अंशभूत त्वगिन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये उसी के द्वारा जीव स्पर्श का अनुभव करता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

प्राणेनेति । प्राणवद्देहव्यापिना त्वगिन्द्रियेणेत्यर्थः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

प्राण के समान सम्पूर्ण शरीर में व्यापक त्वगिन्द्रिय के साथ वायु त्वचा में प्रवेश कर गया ॥१६॥

कर्णावस्य विनिर्भिन्नौ धिष्ण्यं स्वं विविशुर्दिशः । श्रोत्रेणांशेन शब्दस्य सिद्धिं येन प्रपद्यते ॥१७॥

अन्वयः— तदनन्तरं तस्य कर्णौ विनिर्भिन्नौ तत्र श्रोत्रेणांशेन स्वं धिष्ण्यं दिशः विविशुः येन सिद्धिं प्रपद्यते ॥१७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष के दोनों कान प्रकट हो गये और अपने उन आश्रय भूत स्थानों में अपने अंशभूत श्रोत्रेन्द्रिय के साथ दिशाएँ प्रवेश कर गयीं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

शब्दस्य सिंद्धिं ज्ञानम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

उस विराट् पुरुष के शरीर में जब दोनों कान प्रकट हो गये तो उनमें श्रोत्रेन्द्रिय नामक अपने अंश के साथ दिशाएँ अधिष्ठातृदेवता के रूप में प्रवेश कर गयीं । जीव उस श्रोत्रेन्द्रिय के द्वारा ही सुनने का काम करता है ॥१७॥

त्वचमस्य विनिर्भिन्नां विविशुर्धिष्ण्यमोषधीः । अंशेन रोमभिः कण्डूं यैरसौ प्रतिपद्यते ॥१८॥

अन्वयः— अस्य विनिर्भिन्नां त्वचम् रोमभिः अंशेन ओषधीः स्वं धिष्ण्यं विविशुः यैः असौ कण्डूं प्रतिपद्यते ॥१८॥

अनुवाद— उस विराट् पुरुष की निकली हुयी त्वचा में अपने आश्रयभूत रोमों के साथ ओषधियाँ प्रवेश कर गयीं । रोमों के द्वारा ही जीव खुजली का अनुभव करता है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

त्वचं चर्म । ओषधीरोषधयः । त्वगिन्द्रियस्यैव स्थानभेदेन विषयद्वयं कण्डूः स्पर्शश्च । तत्र चायं नामभेदो देवताभेदश्चेति द्वितीयस्कन्ध एव व्याख्यातम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में त्वचा शब्द से चमड़े को कहा गया है । त्वगिन्द्रिय के ही स्थान के भेद से दो विषय हो गये खुजली और स्पर्श देवता की भिन्नता के ही कारण यहाँ पर दो नाम बतलाये गये हैं । इस अर्थ की व्याख्या दूसरे स्कन्ध में ही की जा चुकी है ॥१८॥

मेढ्रं तस्य विनिर्भिन्नं स्वधिष्ण्यं क उपाविशत् । रेतसांऽशेन येनासावानन्दं प्रतिपद्यते ॥१९॥

अन्वयः— तस्य मेढ्रं विनिर्भिन्नं तत्र रेतसांशेन कः स्वधिष्ण्यं उपाविशत् । येन असौ आनन्दं प्रतिपद्यते ॥१९॥

अनुवाद— उस विराट् पुरुष के शरीर में लिङ्ग उत्पन्न हुआ उस अपने आश्रयभूत स्थान में अपने अंशभूत रेतस् के साथ प्रजापति ने प्रवेश किया । उस रेतस् के द्वारा ही जीव आनन्द विशेष का अनुभव करता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

कः प्रजापतिः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ कः शब्द से प्रजापति को कहा गया है ॥१९॥

गुदं पुंसो विनिर्भिन्नं मित्रो लोकेश आविशत् । पायुनांऽशेन येनासौ विसर्गं प्रतिपद्यते ॥२०॥

अन्वयः— तदनन्तरं पुंसः गुदं विनिर्भिन्नं तत्र लोकेशः मित्रः स्वांशेन पायुना अविशत् येन असौ विसर्गं प्रतिपद्यते ॥२०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष की गुदा प्रकट हुयी और उसमें मित्र नामक देवता अपने अंशभूत पायु इन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गयी । पायू इन्द्रिय के द्वारा ही मनुष्य मलत्याग करता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

हस्तावस्य विनिर्भिन्नाविन्द्रः स्वर्पतिराविशत् । वार्तयांऽशेन पुरुषो यया वृत्तिं प्रपद्यते ॥२१॥

अन्वयः— अस्य हस्तौ विनिर्भिन्नौ तत्र वार्तया अंशेन स्वर्पतिः इन्द्रः आविशत् यया वृत्तिं प्रतिद्यते ॥२१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष के दोनों हाथ निकल आये उस अपने आश्रयभूत स्थान में स्वर्ग लोक के स्वामी इन्द्र अपने अंश भूत क्रय-विक्रयादि शक्ति के साथ प्रवेश कर गये उसी के द्वारा जीव अपनी वृत्ति को प्राप्त करता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

स्वर्पतिः स्वर्गस्य पतिः । वार्तया क्रयविक्रयादिशक्त्या वृत्तिं जीविकाम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् विराट् पुरुष के शरीर में दोनों हाथ निकल आये अपने आश्रयभूत उन दोनों हाथों में स्वर्ग लोक के स्वामी इन्द्र अपने अंश भूत क्रय-विक्रय की शक्ति के साथ अधिष्ठातृ देवता के रूप में प्रवेश कर गये। उस क्रय-विक्रय की शक्ति के द्वारा ही जीव जीविका को प्राप्त करता है ॥२१॥

पादावस्य विनिर्भिन्नौ लोकेशो विष्णुराविशत् । गत्या स्वांशेन पुरुषो यया प्राप्यं प्रपद्यते ॥२२॥

अन्वयः— तदनन्तरं अस्य पादौ विनिर्भिन्नौ तत्र स्वांशेन गत्या लोकेशः विष्णुराविशत् यया पुरुषः प्राप्यं प्रपद्यते ॥२२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष के शरीर में दोनों पैर निकल आये और अपने आश्रयभूत उन पैरों में अपने अंशभूत गति के साथ लोकस्वामी विष्णु प्रवेश कर गये । उस गति की शक्ति द्वारा ही जीव अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

बुद्धिं चास्य विनिर्भिन्नां वागीशो धिष्ण्यमाविशत् । बोधेनांशेन बोद्धव्यं प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥२३॥

अन्वयः— तदनन्तरं अस्य विनिर्भिन्नां बुद्धिं बोधेनांशेन धिष्ण्यं वागीशः आविशत् यतः बोद्धव्यं प्रतिपत्तिः भवेत्॥२३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् इस विराट् पुरुष की बुद्धि उत्पन्न हुयी अपने इस स्थान में अपने अंशभूत बुद्धि शक्ति के साथ वाक्पति ब्रह्माजी प्रवेश कर गये । इस बुद्धिशक्ति के साथ ही जीव ज्ञातव्य विषयों को जान सकता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

हृदयं चास्य निर्भिन्नं चन्द्रमा धिष्ण्यमाविशत् । मनसांऽशेन येनासौ विक्रियां प्रतिपद्यते ॥२४॥

अन्वयः— ततः अस्य हृदयं निर्भिन्नं तत्र मनसा अंशेन चन्द्रमा धिष्ण्यम् अविशत् येन असौ विक्रियां प्रतिपद्यते ॥२४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उसमें हृदय प्रकट हुआ अपने उस स्थान में चन्द्रमा अपने अंशभूत मन के साथ प्रवेश कर गये । मन के द्वारा ही जीव सङ्कल्प विकल्प रूप विकारों को प्राप्त करता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

विक्रियां सङ्कल्पादिरूपाम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

अर्थात् जब विराट् पुरुष का हृदय प्रकट हुआ तो उसके अधिष्ठातृ देवता चन्द्रमा उसमें अपने अंशभूत मन रूपी इन्द्रिय के साथ प्रवेश कर गये । मन रूपी आभ्यन्तरेन्द्रिय के द्वारा ही जीव सङ्कल्प विकल्प को करने का काम करता है ॥२४॥

आत्मानं चास्य निर्भिन्नमभिमानोऽविशत्पदम् । कर्मणांशेन येनासौ कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥२५॥

अन्वयः— तदनंतरं अस्य आत्मानं निर्भिन्नम् पदम् कर्मणा अंशेन अभिमानः अविशत् येन असौ कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥२५॥

अनुवाद— उसके पश्चात् इस विराट पुरुष का अहङ्कार प्रकट हुआ अपने उस स्थान में अपने कर्म रूपी अहंवृत्ति के साथ अभिमान प्रवेश कर गया इस अहंवृत्ति के द्वारा ही जीव विभिन्न क्रियाओं को करने का काम करता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

आत्मानमहंकारम् । अभिमन्यतेऽनेनेत्यभिमानो रुद्रः । कर्मणाऽहंवृत्त्या । कर्तव्यमिति क्रियाम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में आत्मा शब्द से अहङ्कार को कहा गया है । कर्म शब्द से अहम् अहम् इस तरह से प्रतीत होने वाली वृत्ति को कहा गया है । कर्तव्य शब्द क्रिया का बोधक है । अर्थात् अहङ्कार का अधिष्ठातृ देवता अभिमान है । अहंवृत्ति उसका अंश है । क्रिया ही उसका विषय है ॥२५॥

सत्त्वं चास्य विनिर्भिन्नं महान् धिष्ण्यमुपाविशत् । चित्तेनांशेन येनासौ विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥२६॥

अन्वयः— तदनंतरम् अस्य सत्त्वम् विनिर्भिन्नम् तत्र धिष्ण्यम् चित्तेन अंशेन महान् उपाविशत् येन असौ विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥२६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस विराट् पुरुष का चित्त प्रकट हुआ अपने उस स्थान में चित्तशक्ति के साथ महत्तत्त्व ब्रह्मा प्रवेश कर गये उस चित्त शक्ति से जीव विज्ञान को प्राप्त करता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

सत्त्वमिति बुद्धिचित्तयोरभेदेन निर्देशः । महानिति ब्रह्मा । चित्तेन चेतनया ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

बुद्धि तथा चित्त दोनों के एक होने के कारण ही चित्त को यहाँ पर सत्त्व शब्द से कहा गया है । महान् शब्द से चित्त के अधिष्ठतृ देवता ब्रह्माजी को कहा गया है । चित्त शब्द से चेतना को कहा गया है ॥२६॥

शीर्ष्णोऽस्य द्यौर्धरा पद्भ्यां खं नाभेरुदपद्यत । गुणानां वृत्तयो येषु प्रतीयन्ते सुरादयः ॥२७॥

अन्वयः— अस्य शीर्ष्णः द्यौः पद्भ्यांधरा, नाभेः खम् उदपाद्यत् येषु गुणानां वृत्तयः सुरादयः प्रतीयन्ते॥२७॥

अनुवाद— इस विराट पुरुष के शिरोभाग से स्वर्ग, पैरों से पृथिवी और नाभि से अन्तरिक्ष लोक उत्पन्न हुए। इन लोकों में सत्त्व, रजस् एवं तमस् तीनों गुणों के परिणामभूत क्रमशः देवता, मनुष्य और प्रेत आदि देखे जाते हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

त्रिलोकोत्पत्तिमाह- शीर्ष्ण इति । वृत्तयः परिणामाः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में विराट् पुरुष से त्रैलोक्य की उत्पत्ति को बतलाया गया है । विराट् पुरुष के शिरोभाग से स्वर्गलोक की उत्पत्ति हुयी, पैरों से पृथिवी की उत्पत्ति हुयी और नाभि से अन्तरिक्ष (भुवः) लोक की उत्पत्ति हुयी। स्वर्ग लोक में सत्त्व गुण के परिणाम भूत देवता रहते हैं, पृथिवी पर रजोगुण प्रधान मनुष्यों का निवास होता है और भुवर्लोक (अन्तरिक्ष) में तमोगुण प्रधान प्रेतों आदि का निवास होता है ॥२७॥

आत्यन्तिकेन सत्त्वेन दिवं देवाः प्रपेदिरे । धरां रजः स्वभावेन पणयो ये च ताननु ॥२८॥

अन्वयः— आत्यन्तिकेन सत्त्वेन देवाः दिवं प्रपेदिरे, रजः स्वाभावेनप णयः ये च ताननु धरां प्रपेदिरे इति शेषः॥२८॥

अनुवाद— सत्त्वगुण की प्रधानता के कारण देवगण स्वर्गलोक में रहते हैं रजोगुण की प्रधानता होने के कारण मनुष्य और उनके साधन स्वरूप गौ आदि भूलोक में रहते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव प्रपञ्चयति द्वाभ्याम् । आत्यन्तिकेनोर्जितेन । **पण व्यवहारे** । पणन्ते यागादिना व्यवहरन्तीति पणयो मनुष्याः ताननु एतदुपकरणभूता ये गवादयस्तेऽपि धरां प्रपेदिरे ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

सत्ताइसवें श्लोक में ही वर्णित अर्थ को **आत्यन्तिकेन इत्यादि** दो श्लोकों के द्वारा विस्तार से बतलाते हुए मैत्रेय महर्षि कहते हैं कि देवताओं में सत्त्वगुण की प्रधानता होती है, इसीलिए देवता स्वर्गलोक में रहते हैं। पणयः शब्द से मनुष्यों को कहा गया है । पण व्यवहारे धातु से पणयः पद व्युत्पन्न है । पणन्ते यागादिना व्यवहरन्तीति अर्थात् यज्ञ इत्यादि कार्यों को करते रहने के कारण मनुष्यों को **पणयः** पद से कहा गया है । और यज्ञ इत्यादि कार्यों के लिए उपयोगी गौओं आदि को **ताननु** शब्द से कहा गया है। इस तरह मनुष्य तथा उनके लिए उपयोगी गौएँ आदि भूलोक में रहती हैं ॥२८॥

तार्तीयेन स्वभावेन भगवन्नाभिमाश्रिताः । उभयोरन्तरं व्योम ये रुद्रपार्षदां गणाः ॥२९॥

अन्वयः— तार्तीयेन स्वभावेन उभयोः अन्तरं भगवन्नाभिम् व्योम ये रुद्रपार्षदां गणाः ते आश्रिताः ॥२९॥

अनुवाद— तमोगुण प्रधान स्वाभाव वाले जो रुद्र के पार्षद, प्रेत, पिशाच आदि हैं वे भूलोक और स्वर्गलोक दोनों के बीच में विद्यमान विराट् पुरुष के नाभि स्थानीय अन्तरिक्ष लोक में निवास करते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तृतीयं तमस्तदीयेन तामसेन उभयोर्द्यावापृथिव्योरन्तरं मध्यं व्योमान्तरक्षिं तदेव भगवतो नाभिस्तामाश्रिता रुद्रपार्षदा रुद्रस्य पार्षदानां भूतादीनां गणाः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

तीसरा गुण तमस् है उस तमोगुण प्रधान स्वभाव वाले होने के कारण भूतों प्रेतों आदि का गण अन्तरिक्ष लोक में रहता है। स्वर्गलोक और भूलोक दोनों के बीच में विद्यमान लोक का नाम भुवर्लोक या अन्तरिक्ष लोक है। वही भगवान् का नाभि स्थान है। उसी में प्रेतों आदि का निवास है। प्रेत इत्यादि ही रुद्र के पार्षद हैं ॥२९॥

मुखतोऽवर्तत ब्रह्म पुरुषस्य कुरूद्वह । यस्तून्मुखत्वाद्वर्णानां मुख्योऽभूद्ब्राह्मणो गुरुः ॥३०॥

अन्वयः— कुरुद्वह पुरुषस्य मुखतः ब्रह्म अवर्तत । यस्तु उन्मुखत्वात् वर्णानां मुख्यः सोऽपि अवर्तत । अतः ब्राह्मणः गुरुः ॥३०॥

अनुवाद— हे विदुरजी, उस विराट् पुरुष के मुख से वेद प्रकट हुए और मुख से ही ब्राह्मण भी प्रकट हुए। मुख से प्रकट होने के कारण सभी वर्णों में प्रधान ब्रह्मण हुए। ब्राह्मण ही वेदों को पढ़ाते हैं अतएव सभी वर्णों के गुरु हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

अवर्तत प्रवृत्तम् । ब्रह्म वेदः यस्तून्मुखत्वान्मुखोद्भवतद्वर्णानां मुख्यः मुखमिव प्रथमो गुरुश्च अभूत्सोऽपि मुखतोऽवर्ततेत्यनुषङ्गः अध्यापनादिना ब्राह्मणस्य वेदो वृत्तिः । तया वृत्त्या सह ब्राह्मणो मुखतो जात इत्यर्थः । एवमुत्तरत्र वर्णत्रयेऽपि ज्ञातव्यम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अवर्तत पद का अर्थ है, प्रकट हुए। ब्रह्म शब्द वेद का बोधक है। विराट् पुरुष के मुख से ही उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण मुख के ही समान सभी वर्णों मे मुख्य हैं। वे सर्वप्रथम उत्पन्न हुए अतएव भी सबों के गुरु हैं। ब्राह्मण चूकि वेद के अध्यापन आदि का कार्य करते हैं, अतएव वेद ब्राह्मणों की वृत्ति हैं। वेद रूपी वृत्ति के साथ ब्राह्मण विराट् पुरुष के मुख से उत्पन्न हुए। इसी तरह से आगे के भी श्लोकों में जानना चाहिए॥३०॥

बाहुभ्योऽवर्तत क्षत्रं क्षत्रियस्तदनुव्रतः । यो जातस्त्रायते वर्णान् पौरुषः कण्टकक्षतात् ॥३१॥

अन्वयः— बाहुभ्यः क्षत्रं तदनुव्रतः क्षत्रियः अवर्तत यः पौरुषः जातः कण्टकक्षतात् वर्णान् त्रायते ॥३१॥

अनुवाद— उस विराट् पुरुष की भुजाओं से क्षत्रिय वृत्ति और उसका अवलम्बन करने वाला क्षत्रिय वर्ण उत्पन्न हुआ। जो विराट् पुरुष का अंश उत्पन्न कर सभी वर्णों की उपद्रवों से रक्षा करता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

क्षत्रं पालनरूपा वृत्तिस्तत्क्षत्रमनुव्रतोऽनुसृतः क्षत्रियोऽपि बाहुभ्योऽवर्तत इत्यर्थः । तदनुव्रतत्वमेवाह-य इति । पौरुषः पुरुषस्य विष्णोरंशः । कण्टकाश्चोरादयस्तेभ्यो यत्क्षतमुपद्रवस्तस्मात्त्रायते रक्षति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

क्षत्र शब्द से पालन स्वरूपिणी वृत्ति को कहा गया है। विराट् पुरुष की भुजाओं से पालन स्वरूपिणी वृत्ति और पालन वृत्ति का अनुसरण करने वाला क्षत्रिय वर्ण उत्पन्न हुआ। क्षत्रिय के पालन कर्तृत्व को बतलाते हुए कहते हैं। विराट् पुरुष का अंशभूत क्षत्रिय उत्पन्न होकर सभी वर्णों की उपद्रव से रक्षा करने का काम करता है ॥३१॥

विशोऽवर्तन्त तस्योर्वोर्लोकवृत्तिकरीर्विभोः । वैश्यस्तदुद्भवो वार्तां नृणां यः समवर्तयत् ॥३२॥

अन्वयः— तस्य विभोः उर्वोः लोकवृत्तिकरीः विश अवर्तन्त तदुद्भवः वैश्यः यः नृणां वार्तां समवर्तयत् ॥३२॥

अनुवाद— उन श्रीभगवान् की दोनों जंघाओं से कृषि आदि व्यवसाय रूप सबलोगों का निर्वाह करने वाली

वैश्य वृत्ति की उत्पत्ति हुयी और उसी से वैश्य वर्ण की उत्पत्ति हुयी । यह वर्ण अपनी वृत्ति के द्वारा सभी लोगों की जीविका का निर्वाह करता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

विशः कृष्यादिव्यवसायः । लोकस्य वृत्तिकरीर्जीविकाहेतवः । तस्य विभोरूर्वोः प्रवृत्ताः । तदुद्भव ऊरुजो वार्ता। जीविकां यः स्ववृत्त्या संपादितवान् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

उन परमात्मा की दोनों जंघाओं से सभी लोगों का निर्वाह करने वाली कृषि आदि व्यवसाय स्वरूपिणी वृत्ति उत्पन्न हुयी । उन परमात्मा की जङ्घाओं से ही वैश्य वर्ण भी उत्पन्न हुआ और वह परमात्मा की जङ्घाओं से ही उत्पन्न अपनी वृत्ति से सबों की जीविका का सम्पादन किया ॥३२॥

पद्भ्यां भगवतो जज्ञे शुश्रूषाधर्मसिद्धये । तस्यां जातः पुरा शूद्रो यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः ॥३३॥

अन्वयः— भगवतः पदभ्यां धर्मसिद्धये शुश्रूषां जज्ञे तस्यां पुराशूद्रो जातः यद्वृत्त्या हरिः तुष्यते ॥३३॥

अनुवाद— सभी धर्मों की सिद्धि के लिए श्रीभगवान् के चरणों से शुश्रूषा (सेवावृत्ति) उत्पन्न हुयी और भगवान् के चरणों से उस सेवावृत्ति को अपनाने वाला शूद्र वर्ण उत्पन्न हुआ । उस सेवावृत्ति से श्रीहरि प्रसन्न होते हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तस्यां निमित्तभूतायाम् । यस्य वृत्त्या हरिः स्वयमेव तुष्यति ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के चरणों से सेवावृत्ति का प्राकट्य हुआ और उन चरणों से ही उस सेवावृत्ति का अधिकारी शूद्र वर्ण उत्पन्न हुआ उस सेवावृत्ति को अपनाने वाले पर श्रीभगवान् प्रसन्न हो जाते हैं ॥३३॥

एते वर्णाः स्वधर्मेण यजन्ति स्वगुरुं हरिम् । श्रद्धयात्मविशुद्ध्यर्थं यज्जाताः सहवृत्तिभिः ॥३४॥

अन्वयः— एते वर्णाः आत्मविशुद्ध्यर्थं श्रद्धया स्वगुरुम् स्वधर्मेण यजन्ति यत् वृत्तिभिः सह जाताः ॥३४॥

अनुवाद— ये सभी वर्ण अपने अन्तःकरण की वृत्तियों की शुद्धि के लिए अपने-अपने धर्मों के द्वारा अपने गुरु श्रीहरि की पूजा करते है । चूकि ये सभी श्रीहरि से ही उत्पन्न हुए हैं अतएव उनका पूजन करना इन वर्णों के लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

यत् यस्माज्जाताः गुरुत्वाज्जनकत्वाद्वृत्तिप्रदत्वाच्च हरेराराधनं तेषां परो धर्म इत्यर्थः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

चूकि ये सभी अपनी-अपनी वृत्तियों के साथ श्रीहरि से ही उत्पन्न हैं, अतएव इनका सबसे बड़ा धर्म है श्रीहरि की पूजा करना । श्रीहरि इन सबों के गुरु, पिता तथा वृत्ति प्रदान करने वाले हैं ॥३४॥

एतत्क्षत्तर्भगवतो दैवकर्मात्मरूपिणः । कः श्रद्दध्यादुपाकर्तुं योगमायाबलोदयम् ॥३५॥

अन्वयः— क्षत्तः दैवकर्मात्मरूपिणः भगवतः एतत् योगमायाबलोदयम् उपाकर्तुं कः श्रद्दध्यात् ॥३५॥

अनुवाद— हे विदुर ! यह विराट् पुरुष काल, कर्म तथा स्वभाव शक्ति से युक्त श्रीभगवान् की योगमाया के बल से विजृम्भित है । इसका पूर्ण रूप से वर्णन करने की इच्छा कौन कर सकता है । उसकी इच्छा भी जब नहीं की जा सकती है तो फिर निरूपण करना तो दूर की बात है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

भो क्षत्तः, देवकर्मात्मरूपिण: कालकर्मस्वभावशक्तिमता भगवतो योगमायाबलेनोज्जृम्भितमेतद्विराड्रूपमुपाकर्तुं साकल्येन निरूपयितुं क: श्रद्दध्यादिच्छेत् । इच्छाऽप्यशक्या निरूपणं तु दूरत इत्यर्थः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

हे विदुर जी ! श्रीभगवान् काल, कर्म तथा स्वभाव की शक्ति से सम्पन्न है । उनकी योगमाया के ही प्रभाव को प्रकट करने का काम यह विराट् करता है । इसका पूर्ण रूप से वर्णन करने की कोई इच्छा भी नहीं कर सकता है । ऐसी स्थिति में उसका पूर्ण रूपेण वर्णन करने की बात तो बहुत दूर की है ।।३५।।

अथापि कीर्तयाम्यङ्ग यथामति यथाश्रुतम् । कीर्तिं हरेः स्वां सत्कर्तुं गिरमनयाभिधाऽसतीम् ।।३६।।

अन्वयः— अथापि हे अङ्ग अन्याभिधाऽसतीम् स्वाम् गिरम् सत्कर्तुम् यथामति यथाश्रुतम् हरेः कीर्तिं कीर्तयामि ।।३६।।

अनुवाद— फिर भी हे विदुरजी ! अन्य विषयों की चर्चा करने से अपवित्र बनी हुयी अपनी वाणी को पवित्र बनाने के लिए अपनी बुद्धि तथा अपने ज्ञान के अनुसार मैं श्रीहरि की कीर्ति का वर्णन कर रहा हूँ ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

अङ्ग विदुर, अथापि हरेः कीर्तिं कीर्तयामि । यथाश्रुतं गुरुमुखात् । तदपि न सर्वात्मना, किंतु यथामति स्वमत्यनुसारेण। अन्याभिधा हरिव्यतिरिक्तार्थाभिधानं तया असतीं मलिनां स्वीयां वाचं सत्कर्तुं पवित्रीकर्तुम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

हे विदुर ! यद्यपि श्रीहरि की कीर्ति का सामस्त्येन वर्णन नहीं किया जा सकता है फिर भी मैं गुरुमुख से सुने हुए ज्ञान और अपने बुद्धि के अनुसार श्रीहरि की कीर्ति का वर्णन कर रहा हूँ । इस वर्णन करने का उद्देश्य यह है कि श्रीहरि व्यतिरिक्त विषयों की चर्चा करने के कारण मेरी बुद्धि मलिन हो गयी है । उसको पवित्र बनाने के लिए मैं यह कार्य कर रहा हूँ ।।३६।।

एकान्तलाभं वचसो नु पुंसां सुश्लोकमौलेर्गुणवादमाहुः ।
श्रुतेश्च विद्वद्भिरुपाकृतायां कथासुधायामुपसंप्रयोगम् ।।३७।।

अन्वयः— पुंसां वचसः एकान्तलाभं सुश्लोकमौलेः गुणवादम् विद्वद्भिरूपाकृतायां कथा सुधायाम् श्रुतश्च उपसम्प्रयोगम् आहुः ।।३७।।

अनुवाद— महापुरुषों ने कहा है कि मनुष्यों की वाणी का सबसे बड़ा लाभ परम यशस्वी श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन तथा मनुष्यों के कानों का सबसे बड़ा लाभ विज्ञ पुरुषों के द्वारा ही जानी जाने वाली श्रीभगवान् की कथा में उपयोग ही है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

अज्ञात्वापि यथामति कीर्तने श्रवणे वा आवश्यकं कैवल्यमित्याह । एकान्ततो लाभं नु निश्चितमाहुः । श्रुतेः श्रोत्रस्य। उपाकृतायां निरूपितायाम् उपसंप्रयोगं सन्निधावर्पणम् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि की महिमा को पूर्णरूप से जाने बिना भी यदि उसका अपनी बुद्धि तथा गुरुमुख से श्रवण जन्य ज्ञान के अनुसार कीर्तन और श्रवण करने मात्र से निश्चित रूप से कैवल्य की प्राप्ति होती है यही इस श्लोक में कहा गया है । महापुरुषों ने यह कहा है कि मनुष्यों की वाणी का सबसे बड़ा लाभ यही है कि भगवान् की

कथाओं का कीर्तन किया जाय और कानों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि उनसे श्रीभगवान् की कथाओं का श्रवण किया जाय ।।३७।।

आत्मनोऽवसितो वत्स महिमा कविनाऽऽदिना । संवत्सरसहस्रान्ते धिया योगविपक्वया ।।३८।।

अन्वयः— हे वत्स ! आदिना कविना योगविपक्वयाधिया संवत्सर सहस्रान्ते आत्मनो महिमा अवसिता ।।३८।।

अनुवाद— हे वत्स ! आदि कवि ब्रह्माजी के द्वारा एक हजार वर्ष पर्यन्त अपनी योग परिपक्व बुद्धि द्वारा विचार किए जाने पर भी क्या वे भगवान् की महिमा का पार पा सके ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

न चातीव ज्ञाने निर्बन्धः कर्तव्यः, ब्रह्मणोऽपि दुर्ज्ञेयत्वादित्याह । आत्मनो हरेर्महिमा योगविपक्वयापि धिया संवत्सरसहस्रान्तेऽप्यादिकविना ब्रह्मणापि किमवसितः किं ज्ञात इति काकूक्त्या एतावानिति न ज्ञात एवेत्युक्तम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की महिमा को पूर्ण रूप से जानने का आग्रह नहीं करना चाहिए, क्योंकि जब ब्रह्माजी उसे पूर्ण रूप से नहीं जान सकते हैं तो सामान्य मनुष्यों की क्या बात है । आदिकवि ब्रह्माजी के द्वारा भी अपनी योग परिपक्व बुद्धि के द्वारा एक हजार वर्ष पर्यन्त विचार किएं जाने पर भी वे कितनी श्रीहरि की महिमा को जान सके ? इस काकूक्ति के द्वारा यह बतलाया गया है कि वे भी उसे पूर्णरूप से नहीं जान सके ।।३८।।

अतो भगवतो माया मायिनामपि मोहिनी । यत्स्वयं चात्मवर्त्मात्मा न वेद किमुतापरे ।।३९।।

अन्वयः— अतः भगवतः माया मायिनाम् अपि मोहिनी यत् स्वयम् आत्मा आत्मवर्त्मा न वेद अपरे किमुत ।।३९।।

अनुवाद— अतएव श्रीभगवान् की माया बड़े-बड़े मायावियों को भी मोहित कर देने वाली है, क्योंकि स्वयं परमात्मा भी अपनी माया की गति को जब नहीं जान पाते हैं तो दूसरों की कौन सी बात है ?।।३९।।

भावार्थ दीपिका

यत् यस्मात्स्वयमप्यात्मा हरिरात्मवर्त्म स्वमायागतिमेतावदिति न वेद, अनन्तत्वात् ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

क्योंकि श्रीभगवान् की माया अनन्त है अतएव वे भी अपनी माया की महिमा का अन्त नहीं जान पाते हैं । ऐसी स्थिति में दूसरा कोई उस माया को पूर्ण रूप से कैसे जान सकता है ?।।३९।।

यतोऽप्राप्य न्यवर्तन्त वाचश्च मनसा सह । अहं चान्य इमे देवास्तस्मै भगवते नमः ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

अन्वयः— यतः अप्राप्य मनसा सह वाचश्च अहं इमे देवाश्च न्यवर्तन्त तस्मै भगवते नमः ।।४०।।

अनुवाद— चूकि श्रीभगवान् की महिमा का अन्त न पाकर मन के साथ-साथ वाणी अहङ्काराभिमानी रुद्र और ये सभी इन्द्रियाभिमानी देवगण भी लौट गये उन श्रीभगवान् को नमस्कार है ।।४०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अतो दुर्ज्ञेयत्वात्केवलं नमस्करोति-यत इति । यस्य ज्ञानाय प्रवृत्ता वाचोऽपि मनसा सह तमप्राप्यैव न्यवर्तन्त दुर्ज्ञेयत्वात्। न केवलं वाङ्मनसी, अहमहंकारस्याधिष्ठाता रुद्रोऽपि । इमे इन्द्रियाधिष्ठातारो देवा अन्ये च ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की महिमा दुर्ज्ञेय है। इसीलिए महर्षि मैत्रेय उसको **यतोऽप्राप्य० इत्यादि** द्वारा नमस्कार करते हैं। श्रीभगवान् की महिमा के अन्त का पता लगाने में प्रवृत्त मन के साथ वाणी भी असमर्थ होकर लौट गयी यही नहीं अहङ्काराभिमानी रुद्र और इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवगण भी असमर्थ होकर लौट गये ॥४०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के छठे अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुयी ॥६॥

सातवाँ अध्याय

विदुरजी के प्रश्न

श्रीशुक उवाच

एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायनसुतो बुधः। प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ॥१॥

अन्वयः— एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं बुधः द्वैपायनसुतः विदुरः भारत्या प्रीणयन् इव प्रत्यभाषत ॥१॥

शुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से कहने वाले मैत्रेय महर्षि से बुद्धिमान विदुरजी ने उनको प्रसन्न करते हुए कहा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तमे संशयच्छेदि प्रतिनन्द्य मुनेर्वचः। पुनः क्षत्त्रा कृता नाना प्रश्नाः सम्यगुदीरिताः। '**अथ ते भगवल्लीला-योगमायोपबृंहिताः**' इत्यादिना मायागुणैर्लीलया भगवान् सृष्ट्यादि करोतीत्येवं ब्रुवाणं मैत्रेयं भारत्या प्रार्थनारूपया प्रीणयन्निवेत्यभिप्रायाज्ञानेनाक्षेपात् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सातवें अध्याय में मैत्रेय महर्षि की बातों का अभिनन्दन करके, विदुरजी के द्वारा किए गये अनेक प्रश्नों का वर्णन किया गया है ॥१॥ पीछे के अध्यायों में **अथ ते भगवल्लीला इत्यादि** श्लोक के द्वारा मैत्रेय महर्षि ने यह जो कहा है कि श्रीभगवान् माया के गुणों के द्वारा सृष्टि आदि के कार्यो को करते हैं। उन मैत्रेय महर्षि के अभिप्राय को नहीं जानने के कारण उनको आक्षेप करके अपनी प्रार्थना रूपी वाणी के द्वारा प्रसन्न करते हुए विदुरजी कहे ॥१॥

विदुर उवाच

ब्रह्मन्कथं भगवतश्चिन्मात्रयाविकारिणः। लीलया चापि युज्येरन्निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ॥२॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् चिन्मात्रस्य, अविकारिणः निर्गुणस्य भगवतः लीलया चापि गुणाः क्रियाः कथं युज्येरन् ॥२॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ज्ञान मात्र, विकार रहित एवं निर्गुण भी भगवान् से लीला द्वारा भी गुणों एवं क्रियाओं का सम्बन्ध कैसे हो सकता है ?॥२॥

भावार्थ दीपिका

निर्विकारस्य क्रिया, निर्गुणस्य च गुणाः कथम्। लीलयेत्युक्तिः प्रयोजनाभावं परिहरति न वस्तुविरोधमिति भावः ॥२॥

सातवाँ अध्याय

विदुरजी के प्रश्न

श्रीशुक उवाच

एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायनसुतो बुधः । प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ॥१॥

अन्वयः— एवं बुवाणं मैत्रेयं बुधः द्वैपायनसुतः विदुरः भारत्या प्रीणयन् इव प्रत्यभाषत ॥१॥

शुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से कहने वाले मैत्रेय महर्षि से बुद्धिमान विदुरजी ने उनको प्रसन्न करते हुए कहा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तमे संशयच्छेदि प्रतिनन्द्य मुनेर्वचः । पुनः क्षत्त्रा कृता नाना प्रश्नाः सम्यगुदीरिताः । '**अथ ते भगवल्लीलायोगमायोपबृंहिताः**' इत्यादिना मायागुणैर्लीलया भगवान् सृष्ट्यादि करोतीत्येवं ब्रुवाणं मैत्रेयं भारत्या प्रार्थनारूपया प्रीणयन्निवेत्यभिप्रायाज्ञानेनाक्षेपात् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सातवें अध्याय में मैत्रेय महर्षि की बातों का अभिनन्दन करके, विदुरजी के द्वारा किए गये अनेक प्रश्नों का वर्णन किया गया है ॥१॥ पीछे के अध्यायों में **अथ ते भगवल्लीला इत्यादि** श्लोक के द्वारा मैत्रेय महर्षि ने यह जो कहा है कि श्रीभगवान् माया के गुणों के द्वारा सृष्टि आदि के कार्यो को करते हैं । उन मैत्रेय महर्षि के अभिप्राय को नहीं जानने के कारण उनको आक्षेप करके अपनी प्रार्थना रूपी वाणी के द्वारा प्रसन्न करते हुए विदुरजी कहे ॥१॥

विदुर उवाच

ब्रह्मन्कथं भगवतश्चिन्मात्रयाविकारिणः । लीलया चापि युज्येरन्निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ॥२॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् चिन्मात्रस्य, अविकारिणः निर्गुणस्य भगवतः लीलया चापि गुणाः क्रियाः कथं युज्येरन् ॥२॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ज्ञान मात्र, विकार रहित एवं निर्गुण भी भगवान् से लीला द्वारा भी गुणों एवं क्रियाओं का सम्बन्ध कैसे हो सकता है ?॥२॥

भावार्थ दीपिका

निर्विकारस्य क्रिया, निर्गुणस्य च गुणाः कथम् । लीलयेत्युक्तिः प्रयोजनाभावं परिहरति न वस्तुविरोधमिति भावः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने पूछा कि श्रीभगवान् तो निर्गुण हैं उनसे गुणों का सम्बन्ध कैसे होता है ? या यदि वे निर्विकार हैं तो वे सृष्टि आदि क्रियाओं को कैसे करते हैं ? लीलया इस पद के द्वारा यह बतलाया गया है कि इन सबों का एकमात्र प्रयोजन लीला ही है । भगवान् लीला करने के लिए ही गुणों और क्रियाओं से सम्पृक्त हो जाते हैं। अतएव इसमें किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है ॥२॥

क्रीडायामुद्यमोऽर्भस्य कामश्चिक्रीडिषाऽन्यतः । स्वतस्तृप्तस्य च कथं निवृत्तस्य सदाऽन्यतः ॥३॥

अन्वयः— अर्भस्य क्रीडायाम् उद्यमः अन्यतः चिक्रीडिषा कामः स्वतः तृप्तस्य अन्यतः निवृत्तस्य च भगवतः कथम् ॥३॥

अनुवाद— बालक तो दूसरों के साथ खेलने की इच्छा से क्रीडा की कामना करता है किन्तु भगवान् तो स्वतः तृप्त हैं और दूसरों से असङ्ग हैं, उनमें क्रीडा के लिए भी इच्छा कैसे सम्भव हैं ?॥३॥

भावार्थ दीपिका

अर्भकवल्लीलापि न युज्यते वैषम्यादित्याह । उद्यमयति प्रवर्तयतीत्युद्यमः । अर्भकस्य क्रीडायां प्रवृत्तिहेतुः कामोऽस्ति। अन्यतस्तु वस्त्वन्तरेण बालान्तरप्रवर्तनेन वा तस्य क्रीडेच्छा भवति । ईश्वरस्य तु स्वतस्तृप्तस्य कथं कामोऽन्यतः सदा निवृत्तस्य चासङ्गाद्वितीयस्य कथमन्यतश्चिक्रीडिषेत्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि जिस तरह कोई बालक लीला करता है, उसी तरह श्रीभगवान् लीला के लिए ही सृष्ट्यादि कर्मों को करते हैं, तो इसका उत्तर है कि श्रीभगवान् की बालक के समान लीला भी सम्भव नहीं है । बालक तो खेलने की इच्छा से क्रीडा में प्रवृत्त होता है कि वह दूसरे बालक के साथ क्रीडा करे । किन्तु भगवान् स्वतः तृप्त हैं अतएव उनमें कामना सम्भव नहीं है वे असङ्ग हैं अतएव उनमें दूसरे के साथ क्रीडा करने की इच्छा भी नहीं हो सकती है ॥३॥

अस्राक्षीद्भगवान्विश्वं गुणमय्यात्ममायया । तया संस्थापयत्येतद्भूयः प्रत्यपिधास्यति ॥४॥

अन्वयः— भगवान् गुणमय्या आत्ममायया विश्वम् अस्राक्षीत् तया एतत् संस्थापयति भूयः प्रत्यपिधास्यति ॥४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने अपनी त्रिगुणात्मिका माया के द्वारा विश्व की रचना की उसी के द्वारा वे इसकी रक्षा करते है और उसी के द्वारा वे पुनः इसका संहार भी करेंगे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

यच्चोक्तं **स्मरन्विश्वसृजामीशो विज्ञापितमधोक्षजे**' इत्यादिनाऽविद्योपाधेर्जीवस्य भोगार्थमीश्वरः सृष्ट्यादि करोतीति तदप्याक्षेप्तुमनुवदति-अस्राक्षीदिति । गुणमयी आत्मनो जीवस्य कर्तृत्वभोक्तृत्वादिमोहोत्पादिका या माया तया सृष्टवान् । तदुक्तं प्रथमे— **यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् । परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ।**' इत्यादिना । अत्र च **अतो भगवतो माया मायिनामपि मोहिनी** इति । संस्थापयति पालयति । प्रत्यपिधास्यति प्रातिलोम्येन तिरोहितं करिष्यति। पाठान्तरे प्रातिलोम्येनात्मन्यभितो घारयिष्यति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

पीछे के अध्यायों में **स्मरन् विश्वसृजामीशः इत्यादि** श्लोक के द्वारा यह जो कहा गया है कि विश्व की सृष्टि करने वाले महदादिकों की प्रार्थना का स्मरण करने वाले श्रीभगवान् अविद्योपहित जीव के भोगों के लिए सृष्टि आदि के कार्यों को करते है । उस कथन पर आक्षेप करते हुए विदुरजी **अस्राक्षीत् इत्यादि** श्लोक को कहते हैं।

श्रीभगवान् ने जीव में कर्तृत्व,भोक्तृत्व आदि मोह को उत्पन्न करने वाली त्रिगुणात्मिका माया के द्वारा इस जगत् की सृष्टि की। इस बात को प्रथम स्कन्ध में कहा जा चुका है कि माया से परे होने पर भी जीव माया से मोहित होकर अपने को त्रिगुणात्मक मानने लगता है और उसी के कारण वह सुख दुःख आदि अनर्थों को प्राप्त करता है। इस स्कन्ध में भी कहा गया है कि भगवान् की माया बड़े-बड़े मायावियों को भी मोहित कर देती है। उसी माया के द्वारा वे विश्व की रक्षा करते हैं और प्रलय काल के आने पर सृष्टि के विपरीत क्रम से इसका उपसंहार भी करेंगे। पाठान्तर के अनुसार तो अर्थ होगा कि विपरीत क्रम से अपने में अच्छी तरह से धारण करेंगे ॥४॥

देशतः कालतो योऽसाववस्थातः स्वतोऽन्यतः । अविलुप्तावबोधात्मा स युज्येताजया कथम् ॥५॥

अन्वयः— यः असौ आत्मा देशतः कालतः अवस्थातः स्वतः अन्यतः वा अविलुप्तावबोध स अजया कथं युज्येत ॥५॥

अनुवाद— यह जीव ब्रह्म स्वरूप है। उसके ज्ञान का किसी देश, काल एवं अवस्था या अपने आप या किसी दूसरे कारण से लोप नहीं हो सकता ऐसी स्थिति में उसका अविद्या से कैसे सम्बन्ध हो सकता हैं ?॥५॥

भावार्थ दीपिका

एतच्च जीवस्याविद्याश्रयत्वे घटेत, नतु तत्रांभवतीत्याह-देशत इति। योऽसौ देशादिभिरविलुप्तावबोध आत्मा जीवः, ब्रह्मस्वरूपत्वात्। स कथमजयाऽविद्यया युज्येत। तत्र देशतो दीपप्रभाया इव लोपो नास्ति, सर्वगतत्वात्। न कालतः विद्युत इव नित्यत्वात्। नावस्थातः, स्मृतिवदविक्रियत्वात्। न स्वतः, स्वप्नवत्सत्यत्यात्। नान्यतः, घटादिवदद्वितीयत्वात्। एवमेतैर्यस्य बोधो न लुप्यते स कथमजया युज्येत। अजा चात्राविद्यैव न माया, तस्य अवबोधेन विरोधाभावात् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

यह तो तब सम्भव था जब कि जीव अविद्या का आश्रय बने, किन्तु जीव अविद्या का आश्रय इसलिए नहीं हो सकता है कि जीव ब्रह्मस्वरूप है। फलतः उसके ज्ञान का लोप देश, काल आदि के कारण नहीं हो सकता है। अतएव उसका अविद्या से सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? जैसे देश की भिन्नता के कारण दीप की प्रभा का लोप हो जाता है। किन्तु आत्मा (जीव) तो सर्व देश व्यापक है। अतएव उसके ज्ञान का लोप देश विशेष के कारण नहीं हो सकता है। जिस तरह से विद्युत् का प्रकाश कालान्तर में लुप्त हो जाता हैं किन्तु आत्मा का प्रकाश कालभेद के कारण इसलिए नहीं लुप्त हो सकता है कि वह नित्य है। जिस तरह से अवस्था के भेद के कारण स्मृति का लोप हो जाता है उस तरह से आत्मा का प्रकाश इसलिए नहीं लुप्त हो सकता है कि वह अविक्रिय (निर्विकार) है। जिस तरह से स्वप्न की बातें असत्य होने के कारण लुप्त हो जाती हैं उस तरह भी आत्मा का ज्ञान इसलिए लुप्त नहीं हो सकता है कि वह सत्य है। भेद के कारण जिस तरह घटादि का लोप हो जाता है, उस तरह भी आत्मा का ज्ञान लुप्त नहीं हो सकता है क्योंकि वह अद्वितीय है। जिस आत्मा का ज्ञान इनमें से किसी भी साधन से लुप्त नहीं होता उस आत्मा का अविद्या (अज्ञान) से कैसे सम्बन्ध होता है ? इस श्लोक में अजा शब्द से अविद्या ही कही गयी हैं माया नहीं, क्योंकि माया का ज्ञान से विरोध नहीं हैं ॥५॥

भगवानेक एवैष सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितः । अमुष्य दुर्भगत्वं वा क्लेशो वा कर्मभिः कुतः ॥६॥

अन्वयः— एष एक एव भगवान् सर्वक्षेत्रेषु अवस्थितः अमुष्य दुर्भगत्वं कर्मभिः क्लेशो वा कुतः ॥६॥

अनुवाद— ब्रह्म स्वरूप एक ही आत्मा सभी शरीरों में साक्षी रूप से विद्यमान है, अतएव उसके ज्ञान का भ्रंश अथवा कर्मों के कारण क्लेश की प्राप्ति कैसे सम्भव है ?॥६॥

भावार्थ दीपिका

किंच ब्रह्मरूपत्वादेव जीवस्य संसारोऽपि न विद्यत इत्याक्षिपति। सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितो भोक्तापि वस्तुतो भगवानेव,

चिद्रूपत्वेन तद्व्यतिरेकाभावात् । एवं च सत्यमुष्य जीवस्य दुर्भगत्वमानन्दादिभ्रंशःकर्मभिर्हेतुभूतैः क्लेशो वा कुतः, कर्मसंबन्धाभावात्। अन्यथेश्वरस्यापि तत्प्रसङ्गः स्यादिति भावः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

दूसरी बात यह है कि जीव ब्रह्म स्वरूप है अतएव उसका संसार होना भी सम्भव नहीं है । इसी अभिप्राय से विदुरजी अक्षेप करते हुए कहते हैं । सभी शरीरों में विद्यमान भोक्ता भी वस्तुतः भगवान् ही हैं क्योंकि जीव भी तो ज्ञान स्वरूप है, अतएव वह ब्रह्म से भिन्न नहीं हो सकता है । जब उससे कर्मों का सम्बन्ध होता ही नहीं तो फिर उसके आनन्दादि का भ्रंश और कर्मों के कारण क्लेशों की प्राप्ति कैसे होती है ? यदि ब्रह्म होने पर भी उसको दुर्भगत्व आदि होगा तव तो ईश्वर को भी क्लेशादि की प्राप्ति और दुर्भगत्व की प्राप्ति का प्रसङ्ग होगा ।।६।।

एतस्मिन्मे मनो विद्वन् खिद्यतेऽज्ञानसंकटे । तन्नः पराणुद विभोकश्मलं मानसं महत् ।।७।।

अन्वयः— हे विद्वन् एतस्मिन् अज्ञानसंकटे मे मनः खिद्यते हे विभो तत् नः महत् मानसं कश्मलं पराणुद ।।७।।

अनुवाद— हे विद्वन् ! इस अज्ञानसंकट में पड़ा हुआ मेरे मन खिन्न हो रहा है । हे भगवन् आप मेरे मन के इस महान् मोह को दूर करें ।।७।।

भावार्थ दीपिका

अज्ञानमेव संकटं दुर्गं तस्मिन् । तन्मानसं कश्मलं मोहं पराणुद अपाकुरु ।।७।।

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि अज्ञान रूपी संकट में पड़ा हुआ मेरा मन अत्यन्त खिन्न हो रहा है । उपर्युक्त प्रकार का मेरे मन का बहुत बड़ा मोह है, आप अपने समाधान के द्वारा मेरा मन के इस मोह को दूर कर दें ।।७।।

श्रीशुक उवाच

स इत्थं चोदितः क्षत्त्रा तत्त्वजिज्ञासुना मुनिः । प्रत्याह भगवच्चित्तः स्मयन्निव गतस्मयः ।।८।।

अन्वयः— तत्त्वजिज्ञासुना क्षत्त्रा इत्थं चोदितः भगचच्चितः गतस्मयः मुनिः स्मयन्निव प्रत्याह ।।८।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— तत्त्वज्ञान प्राप्ति के इच्छुक विदुरजी द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर अहङ्कार रहित महर्षि मैत्रेय मुस्कुराते हुए कहने लगे ।।८।।

भावार्थ दीपिका

चोदित आक्षिप्तः स्मयन्निव प्रौढिमाविष्कुर्वन्निव । वस्तुतस्तु गतस्मयः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

विदुरजी के द्वारा इस प्रकार से प्रश्न किए जाने पर मानो अपनी प्रौढि आविष्कृत कर रहे हों, ऐसे मैत्रेयजी मुस्कुराते हुए उत्तर देने लगे । उनमें वास्तविक रूप से अहङ्कार था ही नहीं ।।८।।

मैत्रेय उवाच

सेयं भगवतो माया यन्नयेन विरुध्यते । ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्पण्यमुत बन्धनम् ।।९।।

अन्वयः— भगवतः सेयं माया यत् नयेन विरुध्यते यत् विमुक्तस्य ईश्वरस्य कार्पण्यं बन्धनम् उत ।।९।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— अचिन्त्यशक्ति से युक्त श्रीभगवान् की यही माया है, जो युक्ति विरुद्ध है । उस माया के ही कारण पुरुष अविद्या के बन्धन में पड़ जाता है और दीन हो जाता है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

भगवतोऽचिन्त्यशक्तेरीश्वरस्य सेयं माया नयेन तर्केण विरुध्यत इति यत् । तर्कविरोधमेवानुवदति । विमुक्तस्यैव पुंसोऽविद्याबन्धनं कार्पण्यं चेति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न श्रीभगवान् की माया युक्ति की कोई परवाह नहीं करती है । माया का युक्ति से होने वाले विरोध को बतलाते हुए महर्षि मैत्रेय कहते हैं, कि मुक्त भी जीव माया के बन्धन में पड़कर दीनता का अनुभव करता है ।।९।।

यदर्थेन विनाऽमुष्य पुंस आत्मविपर्ययः । प्रतीयत उपद्रष्टुः स्वशिरश्छेदनादिकः ।।१०।।

अन्वयः— यत् अर्थेन विना उपद्रष्टुः पुंसः स्वशिरः छेदनादिकः प्रतीयते तद्वत् अमुष्य आत्मविपर्ययः ।।१०।।

अनुवाद— जिस तरह स्वप्न देखने वाले व्यक्ति को मिथ्या होने पर भी लगता है कि मेरा शिर इत्यादि कट गया उसी तरह बन्धन आदि के नही होने पर भी अज्ञानवशात् आनिशिक बन्धनादि की प्रतीति होती है ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

अत्रोदाहरणमाह । यत् यथा अर्थेन शिरश्छेदादिना विनाप्युपद्रष्टुः स्वप्नसाक्षिणो ममेदं शिरश्छिन्नमित्यात्मविपर्ययः केवलं मृषैव प्रतीयते तद्वत् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त कथन में उदाहरण प्रस्तुत करते हुए मैत्रेय महर्षि कहते हैं— जिस तरह शिरः छेदादि क्रिया के नहीं होने पर भी स्वप्न देखने वाले पुरुष को लगता है कि मेरा शिर कट गया, उसी तरह से बन्धनादि के नहीं होने पर भी जीव को अज्ञान वशात् बन्धनादि की प्रतीति होती है ।।१०।।

यथा जले चन्द्रमसः कम्पादिस्तत्कृतो गुणः । दृश्यतेऽसन्नपि द्रष्टुरात्मनोऽनात्मनो गुणः ।।११।।

अन्वयः— यथा जले कम्पादिः तत्कृतः गुणः चन्द्रमसः प्रतीयते तथा द्रष्टुः आत्मनः असन अपि अनात्मनः गुणः दृश्यते ।।११।।

अनुवाद— जिस तरह जल में होने वाले कम्पन आदि गुण, प्रतिविम्बित होने वाले चन्द्रमा में प्रतीत होते हैं, यद्यपि कम्पादि चन्द्रमा में नहीं होते हैं, उसी तरह बन्धनादि शरीर के धर्म आत्मा में नहीं हैं, फिर भी वे जीव में अज्ञानवशात् प्रतीत होते हैं ।।११।।

भावार्थ दीपिका

तर्हीश्वरस्यापि किं न प्रतीयेत, तत्राह । यथा जले प्रतिविम्बितस्यैव चन्द्रमसो जलोपाधिकृतः कम्पादिधर्मो दृश्यते, न त्वाकाशे स्थितस्य । तथाऽनात्मनो देहादेर्धर्मोऽसन्नपि तदभिमानिनो द्रष्टुरात्मनो जीवस्यैव नत्वीश्वरस्येत्यर्थः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि तो फिर इन बन्धनादि की प्रतीति ईश्वर में भी क्यो नहीं होती है, तो इसके उत्तर में मैत्रेयजी कहते हैं कि जिस तरह जल में प्रतिविम्बित होने वाले ही चन्द्रमा में जल रूपी उपाधि में होने वाले कम्पादि की प्रतीति होती है; किन्तु आकाश में रहने वाले चन्द्रमा में उन कम्पादि क्रियाओं की प्रतीति नहीं देखी जाती है । उसी तरह अनात्मा देह आदि के धर्म बन्धनादि हैं, वे आत्मा के धर्म नहीं है, फिर भी उन बन्धनादि धर्मों की प्रतीति देहादि उपाधियों में प्रतिम्बित जीव में ही होती है, ईश्वर में नहीं ।।११।।

स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया । भगवद्भक्तियोगेन तिरोधत्ते शनैरिह ॥१२॥

अन्वयः— स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवानुकम्पया भगवद् भक्तियोगेन शनैः तिरोधत्ते ॥१२॥

अनुवाद— उस अनात्मधर्म की निवृत्ति निष्काम भागवत धर्म के द्वारा प्रसन्न हुए भगवान् वासुदेव की कृपा से प्राप्त भगवान् की भक्ति के द्वारा धिरे-धिरे हो जाती है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तन्निवृत्त्युपायमाह । स वै अनात्मनो गुणो निवृत्तिधर्मेण वासुदेवस्यानुकम्पया च तस्मिन्भक्तियोगस्तेन तिरोधत्तेऽदृश्यो भवति । शनैरित्यनेन साधनानुसारेणेत्युक्तम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

जब जीव निष्काम भाव से धर्मों का आचरण करता है तो उससे भगवान् वासुदेव की उस जीव पर कृपा होती है । भगवान् की कृपा से उस जीव में भगवान् की भक्ति उत्पन्न हो जाती है और उस भगवद्भक्ति को करने से धिरे-धिरे अनात्मा के जो बन्धनादि गुण जीव में प्रतीत होते हैं उनकी निवृत्ति हो जाती है ॥१२॥

यदेन्द्रियोपरामोऽथ द्रष्ट्रात्मनि परे हरौ । विलीयते तदा क्लेशाः संसुप्तस्येव कृत्स्नशः ॥१३॥

अन्वयः— अथ यदा इन्द्रियोपरामः द्रष्ट्रात्मनि परे हरौ तदा संसुप्तस्य इव कृत्स्नशः क्लेशाः विलीयन्ते ॥१३॥

अनुवाद— जब सभी इन्द्रियाँ विषयों से उपरत होकर साक्षी परमात्मा में निश्चल भाव से लग जाती हैं उसी समय समस्त क्लेशों का उसी तरह से नाश हो जाता है, जिस तरह सुपुप्त पुरुष के सभी राग द्वेष आदि सारे क्लेश विनष्ट हो जाते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि सर्वानर्थनिवृत्तिः कदेत्यपेक्षायामाह । यदेन्द्रियाणामुपरामो नैश्चल्यम् । क्व । द्रष्टुरात्मन्यन्तर्यामिरूपे । अथानन्तरमेव। कृत्स्नक्लेशविलयमात्रे दृष्टान्तः संसुप्तस्येवेति । नतु पुनरुत्थाने ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि जीवों के सम्पूर्ण क्लेशों की निवृत्ति कब होती है ? तो इसका उत्तर है कि जब इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों से हटकर निश्चल रूप से परमात्मा में लग जाती हैं । उदाहरणार्थ जब तक मनुष्य जगता रहता है तब तक वह क्लेशों का अनुभव करता है और जब वह सुसुप्तावस्था में चला जाता है तब उसे किसी भी प्रकार के क्लेश की प्रतीति नहीं होती है । उसी तरह उस जीव के भी सारे क्लेश समाप्त हो जाते हैं ॥१३॥

अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते गुणानुवादश्रवणं मुरारेः ।
कुतः पुनस्तच्चरणारविन्दपरागसेवारतिरात्मलब्धा ॥१४॥

अन्वयः— मुरारेः गुणानुवादश्रवणं अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते, तच्चरणारविन्दपराग सेवारति आत्मलब्धा पुनः कुतः ॥१४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के गुणों का कीर्तन तथा श्रवण ही सम्पूर्ण क्लेशों को शान्त कर देने वाले हैं जिसके हृदय में भगवान् के चरण कमल की सेवा का प्रेम जग गया हो तो फिर उसके विषय में क्या कहना है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

भक्तियोगेन क्लेशनिवृत्तिं दर्शयति-अशेषेति । गुणानामनुवादश्च श्रवणं च । आत्मनि मनसि लब्धा श्रवणकीर्तनापेक्षया सप्रेमध्याने किं पुनर्न्यायोक्तिः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

भक्तियोग के द्वारा तो सम्पूर्ण क्लेशों का नाश हो जाता है इस बात को बतलाते हुए **अशेष संक्लेश० इत्यादि** श्लोक कहा गया है । श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन करना तथा उनके गुणों का श्रवण करने से सारे क्लेशों का नाश हो जाता है । यदि मन में प्रेमपूर्वक श्रीभगवान् का ध्यान करने पर क्लेशों का नाश होता है तो फिर यह क्या कहना है कि उसके सारे क्लेश विनष्ट हो जाते हैं यह तो कैमुत्यन्याय से ही सिद्ध है ।।१४।।

विदुर उवाच

संछिन्नः संशयो मह्यं तव सूक्तासिना विभो । उभयत्रापि भगवन् मनो मे संप्रधावति ।।१५।।

अन्वयः— हे विभो ! तव सूक्तासिना मह्यं संशयः सछिन्नः मे मनः उभयत्र अपि संप्रधावति ।।१५।।

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! आपकी युक्तियुक्त वाणी के द्वारा मेरा संन्देह छिन्न-भिन्न हो गया है, अब मेरा मन ईश्वर की स्वतंत्रता और जीव की परतन्त्रता इन दोनों विषयों में अच्छी तरह से प्रवेश कर रहा है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

उत्तरमभिनन्दन्नात्मनः कृतार्थतामाविष्करोति–संछिन्न इति षड्भिः । चिद्रूपत्वाविशेषेऽपि कथमीश्वरस्य जगत्कर्तृत्वादि, कथं वा जीवस्य संसार इति यः संशयो ममासीत्स तव सूक्तं सोपपत्तिकं वाक्यमेवासिः खड्गस्तेन संछिन्नः । अत इदानीं मे मन उभयत्रापीश्वरस्वातन्त्रत्रये जीवपरातन्त्रये च संप्रधावति सम्यक् प्रविशति । एवं वाऽविलुप्तावबोधरूपस्यात्मनः कथमविद्यया बन्धः, कुतो वा तन्निवृत्तिरिति संशयः । उभयत्रेति, बन्धे मोक्षे चेत्यर्थः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

मैत्रेय महर्षि द्वारा दिये गये उत्तर का अभिनन्दन करके विदुरजी अपनी कृतार्थता को प्रकट करते हुए छह श्लोकों में कहते हैं— जब जीव और ईश्वर दोनों ज्ञान स्वरूप हैं तो फिर ईश्वर जगत् की सृष्टि आदि के कर्ता हैं और जीव इस संसार में कैसे संसरण करता है ? अर्थात् आविद्यिक बन्धन में पड़कर अज्ञान और कष्टादि का अनुभव करता है यह जो मेरा सन्देह था वह आपकी इस सुन्दर वाणी रूपी कृपाण के द्वारा विनष्ट हो गया । अतएव इस समय मेरा मन ईश्वर की स्वतंत्रता और जीव की परतंत्रता को अच्छी तरह से समझता है । अतएव मैंने यह जो प्रश्न किया था कि चूकि देश, काल आदि के कारण चिन्मात्र स्वरूप जीव के ज्ञान का लोप नहीं हो सकता है ऐसी स्थिति में जीव किस तरह अविद्या के बन्धन में बन्ध जाता है और फिर उसकी कैसे उससे मुक्ति होती है, इस बन्ध और मोक्ष दोनों ही विषयों को मेरा मन अच्छी तरह से समझता है ।।१५।।

साध्वेतद्व्याहृतं विद्वन्नात्ममायायनं हरेः । आभात्यपार्थं निर्मूलं विश्वमूलं न यद्बहिः ।।१६।।

अन्वयः— हे विद्वन् एतत् साधु व्याहृतं यत् एतत् हरेः मायायनम् अपार्थं निर्मूलं आभाति यद् बहि विश्वमूलं न ।।१६।।

अनुवाद— हे भगवन् ! आपने बिल्कुल ठीक कहा है कि जीव की जो क्लेश तथा अज्ञान आदि की प्रतीति हो रही है उसका एकमात्र आधार भगवान् की माया है । वह क्लेश आदि भी मिथ्या और निर्मूल हैं । इस जगत् का कारण भी अविद्या से अतिरिक्त कुछ नहीं है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

यस्मात्त्वया साधु व्याहृतम् । किं तत् । हरेः शक्तिर्या आत्ममाया जीवविषया माया तदयनं तदाश्रयमेतद्दुर्भगत्वादिकं भातीति । यत् यस्मात्स्वशिरश्छेदादिवदपार्थमवस्तुभूतं निर्मूलं मूलशून्यं च । यस्मादस्य मूलं विश्वस्य मूलं स्वाज्ञानं बहिर्विना नास्ति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

चूंकि आपने ठीक कहा है कि श्रीहरि की जो जीव को अपना विषय बनाने वाली माया है, उसी के द्वारा जीव के दुर्भगत्व (अज्ञता) आदि की प्रतीति होती है । वह स्वप्न में प्रतीत होने वाले अपने सिर: छेद आदि के समान ही मिथ्या है । उसका कोई भी मूल नहीं है । इस जीव के दुर्भगत्व तथा देह आदि प्रपञ्च का कारण उसके अपने अज्ञान से भिन्न कुछ भी नहीं है ॥१६॥

यश्च मूढतमो लोको यश्च बुद्धेः परं गतः । तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥१७॥

अन्वयः— लोके यश्च मूढतमः यः च बुद्धेः परं गतः तौ उभौ सुखम् एधेते, अन्तरितः जनः क्लिश्यति ॥१७॥

अनुवाद— संसार में रहने वाले दो प्रकार के लोग सुखी होते हैं जो अत्यन्त अज्ञानी है अथवा अत्यन्त ज्ञानी होने के कारण श्रीभगवान् को प्राप्त कर चुके हैं । बीच की श्रेणी में रहने वाले संशयग्रस्त लोग तो दुःखी ही हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अल्पज्ञत्वात्पूर्वं मम संशयो जात इत्याह-यश्चेति । मूढतमो देहाद्यासक्तो यश्च बुद्धेः प्रकृतेः परमीश्वरं प्राप्तः, तौ सुखं यथा भवति तथा एधेते जीवत इत्यर्थः । संशयक्लेशाभावात् । यस्तु दुःखानुसंधानेन प्रपञ्चं जिहासति स्वानन्दसंवेदनाभावात्तं न शक्नोति स तु क्लिश्यतीत्यर्थः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में विदुरजी कहते हैं कि अल्पज्ञ होने के कारण मुझे पहले संशय हुआ था । संसार में रहने वाले दो तरह के प्राणी सुख पूर्वक जीवित रहते हैं । वे लोग जो देह आदि में आसक्त होने के कारण अत्यन्त अज्ञानी हैं तथा वे लोग जो ज्ञान की पराकाष्ठा को प्राप्त करके ईश्वर को प्राप्त कर चुके हैं, क्योंकि इन दोनों प्रकार के लोगों को संशय रूपी क्लेश नहीं होता है । जो व्यक्ति दुःखानुभव करने के कारण इस प्रपञ्च का परित्याग करना चाहता है और आत्मानन्द का अनुभव नहीं कर सकने के कारण उसे त्याग भी नहीं पाता है, वह तो क्लेश का ही अनुभव करता है ॥१७॥

अर्थाभावं विनिश्चित्य प्रतीतस्यापि नात्मनः । तां चापि युष्मच्चरणसेवयाऽहं पराणुदे ॥१८॥

अन्वयः— अनात्मनः प्रतीतस्य अपि अर्थाभावं विनिश्चित्य युष्मत् चरणसेवया अहं तां चापि पराणुदे ॥१८॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आपके चरणों की सेवा के प्रभाव से मैंने यह निश्चय कर लिया है कि ये अनात्म पदार्थ हैं नहीं, इनकी प्रतीति मात्र होती है, अब मैं उस प्रतीति को भी आपके चरणों की सेवा से हटा दूँगा ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं तु कृतार्थोऽस्मि, यतस्त्वया संशयश्छिन्नः केवलं वाधितानुवृत्तिरेवावशिष्टा, सापि युष्मत्प्रसादान्निवर्तिष्यत इत्याह। नात्मनः अनात्मनः प्रपञ्चस्य प्रतीतस्याप्यर्थाभावमर्थोऽत्र नास्ति, किंतु प्रतीतिमात्रमिति युष्मच्चरणसेवया निश्चित्य तां प्रतीतिमप्यहं पराणुदे, अपनेष्यामीत्यर्थः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि आपने मेरे संशय को विनष्ट कर दिया है, अतएव मैं कृतार्थ हो गया हूँ । अब केवल वाधितानुवृत्ति ही बची हुयी है, वह भी आपकी कृपा से दूर हो जायेगी इसी बात को इस श्लोक के द्वारा कहा गया है । यह प्रपञ्च भी अनात्मा है, इसकी प्रतीति तो होती है किन्तु यह है नहीं इसकी केवल प्रतीति होती है। आपके चरणों की सेवा से इसके अभाव का निश्चय करके मैं इसको भी त्याग दूँगा ॥१८॥

यत्सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः । रतिरासो भवेत्तीव्रः पादयोर्व्यसनार्दनः ॥१९॥

अन्वयः— यत् पादयोः सेवया कूटस्थस्य मधुद्विषः भगवतः पादयोः व्यसनार्दनः तीव्रः रतिरासः भवेत् ॥१९॥

अनुवाद— आपके इन चरणों की सेवा से निर्विकार भगवान् मधुसूदन के चरणों में तीव्र एवं स्वाभाविक प्रेमोत्सव होता है, जिससे संसार चक्र विनष्ट हो जाता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

मधुद्विषः पादयोः रतिरासः प्रेमोत्सवस्तीव्रो दुर्वारः स्वाभाविकः । व्यसनं संसारमर्दयति नाशयतीति तथा ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

आपके चरणों की सेवा करने से भगवान् मधुसूदन के चरणों में दुर्वार स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न होता है, उससे संसारचक्र ही विनष्ट हो जाता है ॥१९॥

दुरापा ह्यल्पतपसः सेवा वैकुण्ठवर्त्मसु । यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्दनः ॥२०॥

अन्वयः— अल्पतपसः वैकुण्ठवर्त्मसु सेवा दुरापा, यत्र देवदेवः जनार्दनः नित्यम् उपगीयते ॥२०॥

अनुवाद— वैकुण्ठ प्राप्ति के मार्गभूत महापुरुषों की सेवा करने का अवसर अल्पपुण्य वाले पुरुषों को नहीं प्राप्त होता है । उन महात्माओं के यहाँ सदैव ही देवताओं के भी आराध्य भगवान् के गुणों का गायन होता रहता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अहो दुर्लभं प्राप्तं मयेत्याह । दुरापा दुर्लभा । वैकुण्ठस्य विष्णोस्तल्लोकस्य वा वर्त्मसु मार्गभूतेषु महत्सु । यत्र येषु। महत्सेवया हरिकथाश्रवणं, ततो हरौ प्रेम, तेन च देहाद्यनुसंधानमपि निवर्तत इति तात्पर्यम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि मैंने तो दुर्लभ वस्तु को प्राप्त कर लिया है । भगवान् विष्णु के लोक की प्राप्ति के साधन भूत मार्ग स्वरूप महात्मागण की सेवा करने का अवसर अल्पपुण्य वाले पुरुषों के लिए दुर्लभ है । उन महापुरुषों की सेवा करने से श्रीहरि की कथा सुनने को मिलती है । उससे श्रीहरि में प्रेम होता है और उसके कारण अपने शरीर आदि की भी प्रतीति विनष्ट हो जाती है । यही इस श्लोक का तात्पर्य है ॥२०॥

सृष्ट्वाऽग्रे महदादीनि सविकाराण्यनुक्रमात् । तेभ्यो विराजमुद्धृत्य तमनु प्राविशाद्विभुः ॥२१॥

अन्वयः— अग्रे सविकाराणि महदादीनि सृष्ट्वा विभुः तेभ्यः विराजम् उद्धृत्य तम् अनुप्राविशत् ॥२१॥

अनुवाद— सृष्टि के प्रारम्भ में श्रीभगवान् का महदादिकों तथा उनके विकारों (कार्यों) की सृष्टि करके उन सबों के अंश से विराट् को उत्पन्न किया और उसके पश्चात् वे उसमें स्वयं प्रवेश कर गये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अर्थान्तरं प्रष्टुं तदुक्तमनुवदति त्रिभिः-सृष्ट्वेति । विकारैरिन्द्रियादिभिः सहितानि । उद्धृत्य तदंशैर्विराजं सृष्ट्वा ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी बात पूछने के लिए विदुरजी मैत्रेय महर्षि की बातों का तीन श्लोकों से अनुवाद करते हैं । सृष्टि के प्रारम्भ में श्रीभगवान् महदादि के कार्यभूत इन्द्रियों आदि के साथ महदादि की सृष्टि किए और उन सबों से विराट् को उत्पन्न किए तथा उनमें प्रवेश कर गये ॥२१॥

यमाहुराद्यं पुरुषं सहस्राङ्घ्र्यूरुबाहुकम् । यत्र विश्व इमे लोकाः सविकाशं समासते ॥२२॥

अन्वयः यम् सहस्राङ्घ्र्युरुपादकम् वेदा आद्यं पुरुषं आहुः यत्र इमे विश्वे लोकाः सविकाशं समासते ॥२२॥

अनुवाद उस हजारों पैरो, जङ्घाओं और भुजाओं वाले विराट् पुरुष को वेदों ने आदि पुरुष कहा है। उस विराट् पुरुष में ही यह सारा जगत् विस्तार पूर्वक स्थित हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

प्रविष्टस्य रूपमाह-यमिति । विराजं विशिनष्टि-यत्रेति । ते इमे विश्वे सर्वे लोकाः । सविकाशमसंकोचेन ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

प्रविष्ट पुरुष के स्वरूप को वतलाते हुए कहा कि उस विराट् पुरुष के हजारो पैर इत्यादि हैं । वेद विराट् पुरुष को ही आदिपुरुष कहते हैं । उस विराट् पुरुष में ही यह सारा जगत् बिना किसी संकोच के निवास करता है ॥२२॥

यस्मिन्दशविधः प्राणः सेन्द्रियार्थेन्द्रियस्त्रिवृत् । त्वयेरितोयतो वर्णास्तद्विभूतीर्वदस्व नः ॥२३॥
यत्र पुत्रैश्च पौत्रैश्च नप्तृभिः सह गोत्रजैः । प्रजा विचित्राकृतय आसन्याभिरिदं ततम् ॥२४॥

अन्वयः— यस्मिन् दशविधः प्राणः सेन्द्रियार्थेन्द्रियः त्रिवृत् यत्र पुत्रैश्च पौत्रैश्च गोत्रजैनप्तृभिः सह विचित्रा कृतयः प्रजा आसन् याभिः इदं ततम् यतः त्वया इरिताः वाणी तद्विभूतीः नः वदस्व ॥२३-२४॥

अनुवाद— जिस विराट् पुरुष में इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषय, इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं के साथ इन्द्रिय वल, मनोवल और शरीरवलरूप से दश प्रकार के प्राण हैं । तथा आपने कहा है कि उस विराट् पुरुष से ही ब्राह्मणादि वर्ण उत्पन्न हुए हैं । अव आप उनकी व्रह्मा आदि विभूतियों को बतलायें जिनके पुत्र, पौत्र नाती और कुटुम्वियों के साथ विभिन्न प्रकार की प्रजाएँ उत्पन्न हुयी हैं । जिन सवों से यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भर गया है ॥२३-२४॥

भावार्थ दीपिका

प्राणादयः पञ्च नागादयः पञ्चेत्येव दशविधः । इन्द्रियाणि च अर्थाश्च इन्द्रियाणि चेति पुनरुक्तिस्तद्देवतालक्षणार्था, तत्सहितः। सर्वोपवृंहकत्वात्प्राणस्य तत्साहित्यम् । एवं त्रिवृत्त्रिविधः प्राणस्त्वयेरित उक्तः । तस्य विभूतीर्ब्रह्माद्या विसर्गशब्दवाच्याः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

उस विराट् पुरुष में पाँच प्रकार के और नाग कृकर आदि इस तरह से दश प्रकार के प्राण है इन्द्रियों का वल, मनोवल तथा शरीरवल से युक्त प्राण, इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के विषय रूप, रस आदि तथा इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता स्थित हैं । आपने उस विराट् पुरुष से ही व्राह्मण आदि वर्णो की उत्पत्ति को बतलाया है । उनकी ब्रह्मा आदि विभूतियाँ जिनको विसर्ग शब्द से कहा गया है उनका वर्णन आप करें जिनके पुत्रों, पौत्रों, नप्ताओं और कुटुम्वियों के साथ विविध प्रकार की प्रजाएँ उत्पन्न हुयीं, जिनसे यह सारा ब्रह्माण्ड भर गया ॥२३-२४॥

प्रजापतीनां स पतिश्चक्लृपे कान्प्रजापतीन् । सर्गांश्चैवानुसर्गांश्च मनून्मन्वन्तराधिपान् ॥२५॥

अन्वयः— सः प्रजातीनां पतिः कान् प्रजापतीन् सर्गान् चैव, अनुसर्गान् च मनून् मन्वन्तराधिपान् चक्लृपे ॥२५॥

अनुवाद— विराट् पुरुष प्रजापतियों के भी पति हैं । उन्होंने किन प्रजापतियों, सर्गों, अनुसर्गों, और मन्वन्तरों के स्वामी मनुओं की सृष्टि की ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

एवमेतत्पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान्किल इति परीक्षित्प्रश्नोत्तरतया विदुरमैत्रेयसंवादः प्रस्तावितः, अतस्तानेव विदुरेण

तान्प्रश्नानाह यावत्समाप्तिम् । प्रजापतीनां पतिर्ब्रह्मेत्यादीनां वर्णयेति वक्ष्यमाणेनान्वयः चक्लृपेऽकल्पयत् । सर्गान् नवविधान्। अनुसर्गांस्तद्भेदान् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् के प्रश्नों को सुनकर श्रीशुकदेवजी कह चुके हैं कि इसी प्रकार से विदुर ने भी महर्षि मैत्रेय से पूछा था. इस प्रकार से उन्होंने विदुर मैत्रेय संवाद को प्रस्तावित किया था । अतएव उन्हीं विदुरजी के प्रश्नों का इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त वर्णन किया गया हैं ।

प्रजापतीनाम्० इत्यादि प्रजापतियों के भी पति ब्रह्मा जी हैं, उन ब्रह्मा आदि का आप वर्णन करें । नव प्रकार की सृष्टियों, अनुसर्गों तथा उसके भेदों का जिनकी कल्पना विराट् पुरुष ने किया उसका आप वर्णन करें, इस तरह से विदुरजी ने मैत्रेयजी से कहा ।।२५।।

एतेषामपि वंशांश्च वंश्यानुचरितानि च । उपर्यधश्च ये लोका भूमेर्मित्रात्मजाऽऽसते ।।२६।।
तेषां संस्थां प्रमाणं च भूर्लोकस्य च वर्णय । तिर्यङ्मानुषदेवानां सरीसृपपतत्रिणाम् ।।
वद नः सर्गसंव्यूहं गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् ।।२७।।

अन्वयः— हे मित्रात्मज ! एतेषाम् अपि वंशान्, य वंश्यानुचरितानि च, भूमेः उपरि अधश्च ये लोकाः आसते तेषां भूर्लोकस्य च संस्थां प्रमाणं च वर्णय, तिर्यङ्मानुष देवानां सरीसृपपतत्रिणाम् गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् सर्गसंव्यूहम् वर्णय ।।२६-२७।।

अनुवाद— हे मैत्रेयजी ! आप उन मनुओं के वंशों तथा उन वंशों के वंशधर राजाओं के चरित्र का, पृथिवी के ऊपर तथा नीचे के लोकों तथा भूलोक के विस्तार और स्थिति का भी वर्णन करें । आप यह भी बतलायें कि मनुष्य, तिर्यक् देवता और सरीसृप (सर्प आदि) पक्षी, जरायुज, स्वेदज अण्डज और उद्भिज ये चारो प्रकार के प्राणी किस तरह उत्पन्न हुए ।।२६-२७।।

भावार्थ दीपिका

हे मित्राया आत्मज । संस्थां सन्निवेशम् । सर्गाणां संव्यूहं संविभागम् । गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् । गार्भा जरायुजाः, स्वेदाच्च द्वाभ्यां च जाताः स्वेदद्विजाः उद्भिदश्च तेषाम् ।।२६-२७।।

भाव प्रकाशिका

मित्रा देवी की पुत्र होने के कारण मैत्रेयजी को मित्रात्मज कहा गया है । संस्था शब्द स्थिति का बोधक हैं। सर्गसंव्यूह शब्द से नव प्रकार की सृष्टियों को कहा गया है । गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् शब्द के द्वारा जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिद् प्राणियों को कहा गया है ।।२६-२७।।

गुणावतारैर्विश्वस्य सर्गस्थित्यप्ययाश्रयम् । सृजतः श्रीनिवासस्य व्याचक्ष्वोदारविक्रमम् ।।२८।।
वर्णाश्रमविभागांश्च रूपशीलस्वभावतः । ऋषीणां जन्मकर्मादि वेदस्य च विकर्षणम् ।।२९।।

अन्वयः— विश्वस्य सर्गस्थित्यप्ययाश्रयम् गुणावतारैः सृजतः श्रीनिवास्य उदार विक्रमम् व्याचक्ष्व रूपशीलस्वभावतः वर्णाश्रमविभागान् च, ऋषीणां जन्म, कर्मादि, वेदस्यविकर्षणम् च व्याचक्ष्व ।।२८-२९।।

अनुवाद— सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिए अपने गुणवतारों से ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र से सृष्टि कराने वाले भगवान् श्रीनिवास की कल्याणकारी लीलाओं का आप वर्णन करें और रूप शील तथा स्वभाव के अनुसार ऋषियों के जन्म कर्म आदि तथा वेदों के भेद का भी आप वर्णन करें ।।२८-२९।।

भावार्थ दीपिका

सर्गादीनामाश्रयं च सृजतः । रूपं लिङ्गम्, शीलमाचारः स्वभावः शमादिः, ततः विकर्षणं विभागम् ॥२८-२९॥

भाव प्रकाशिका

सृष्टि आदि तथा उनके करण की सृष्टि करने वाले भगवान् श्रीनिवास की कल्याणकारी लीलाओं को आप बतलायें ॥२८-२९॥

यज्ञस्य च वितानानि योगस्य च पथः प्रभो । नैष्कर्म्यस्य च सांख्यस्य तन्त्रं वा भगवत्स्मृतम् ॥३०॥
पाखण्डपथवैषम्यं प्रतिलोमनिवेशनम्। जीवस्य गतयो याश्च यावतीर्गुणकर्मजाः ॥३१॥

अन्वयः— हे प्रभो यज्ञस्य च वितानानि, योगस्य नैष्कर्म्यस्य, सांख्यस्य च पथः वा भगवत्स्मृतं तन्त्रम्, पाखण्डपथ वैषम्यम् प्रतिमलोमनिवेशनम् गुणकर्मजाः जीवस्य यावतीः या च गतयः एतत् सर्वं वद ॥३०-३१॥

अनुवाद— हे प्रभो आप हमें, यज्ञों के विस्तार को, योग मार्ग, ज्ञान मार्ग और सांख्य मार्ग को, श्रीभगवान् के द्वारा कहे गये नारद पाञ्चरात्र आदि तन्त्रों को, पाखण्डमार्गों के प्रचार के कारण होने वाली विषमता को, नीच वर्ण के पुरुष से उच्चवर्ण की स्त्री से उत्पन्न होने वाली सन्तानों को तथा गुण, कर्म एवं स्वभाव जन्य जीवों की जितनी तथा जो गतियाँ होती हैं उन सबों को आप मुझे बतलाइये ॥३०-३१॥

भावार्थ दीपिका

वितानानि विस्तारान् । नैष्कर्म्यस्य च ज्ञानस्य तदुपायस्य च सांख्यस्य पथः मार्गान् तीव्रं चेत्यर्थः ॥३०॥ पाखण्डानां पन्थाः प्रवृत्तिस्तदेव वैषम्यम् ॥३०-३१॥

भाव प्रकाशिका

रूप शब्द लिङ्ग (वेष) का वाचक है । शील शब्द आकार का तथा शम दम आदि को स्वभाव शब्द से कहा गया है । वेदस्यविकर्षणम् अर्थात् वेदो का विभाग वितान विस्तार का बोधक है । नैष्कर्म्य ज्ञानयोग का और उसके उपायभूत सांख्य का बोधक है । पथः का अर्थ है मार्गों को । तन्त्र शब्द नारद पञ्चरात्र को कहा गया है। पाखण्ड पथ वैषम्यम् शब्द का अर्थ है पाखण्डों की पाखण्ड के प्रचार से होने वाली विषमता ॥३०-३१॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां निमित्तान्यविरोधतः। वार्ताया दण्डनीतेश्च श्रुतस्य च विधिं पृथक् ॥३२॥
श्राद्धस्य च विधिं ब्रह्मन् पितॄणां सर्गमेव च। ग्रहनक्षत्रताराणां कालावयवसंस्थितिम् ॥३३॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! धर्मार्थकाममोक्षाणाम् अविरोधतः निमित्तानि, वार्तायाः दण्डनीतेः य श्रुतस्य विधिम् श्राद्धस्य विधिम्, पितॄणां सर्गम् एव च, ग्रहनक्षत्रताराणां कालावयवसंस्थितिम्, पृथक् वद ॥३२-३३॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! आप हमें धर्म, अर्थ और काम मोक्ष की प्राप्ति के परस्पर में अविरोधी साधनों को वाणिज्य, दण्डनीति और शास्त्र श्रवण की विधियों को, श्राद्ध की विधि को तथा पितरों की सृष्टि को अलग-अलग बतलाइये । आप कालचक्र में ग्रह, नक्षत्र और तारागण की स्थिति को भी अलग-अलग बतलाइये ॥३२-३३॥

भावार्थ दीपिका

निमित्तान्युपायान्परस्पराविरोधेन । ग्रहादीनां कालचक्रे संस्थितिम् ॥३२-३३॥

भाव प्रकाशिका

निमितान्यविरोधतः का अर्थ है परस्पर में विरोध रहित उपायों को । काल चक्र में ग्रहों, नक्षत्रों एवं तारा गणों की स्थिति को ॥३२-३३॥

दानस्य तपसो वापि यच्चेष्टापूर्तयोः फलम्। प्रवासस्थस्य यो धर्मो यश्च पुंस उतापदि ॥३४॥
येन वा भगवांस्तुष्येद्धर्मयोनिर्जनार्दनः। संप्रसीदति वा येषामेतदाख्याहि चानघ॥३५॥

अन्वयः— हे अनघ ! दानस्य, तपसः, वापि, यत् च इष्टापूर्तयोः फलम्, प्रवासस्थस्य यः धर्म, उत आपदि पुंसः यः धर्मः येन वा धर्मयोनिः जनार्दनः तुष्येत् वा साम्प्रसीदति एतद् आख्याहि ॥३४-३५॥

अनुवाद— हे अनघ ! मैत्रेयजी आप मुझे दान, तपस्या, इष्टकर्म यज्ञादि तथा और पूर्तकर्म (कूप आदि का निर्माण) का फल बतलायें प्रवास के समय में मनुष्यों के धर्म को तथा आपद् धर्म को भी बतलायें। धर्म के मूल कारण भगवान् जनार्दन जिस आचरण से सन्तुष्ट होते हैं तथा जिन लोगों पर कृपा करते हैं, उसे आप मुझे बतलाइये ॥३४-३५॥

भावार्थ दीपिका

येन मार्गेण संतुष्येत् येषामिति यादृशानाम् ॥३४-३५॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि धर्म के मूल कारण भगवान जनार्दन ही हैं, वे जिस साधन से प्रसन्न होते हैं, उसे आप मुझे बतलायें तथा जिन लोगों पर वे प्रसन्न होकर जो करते हैं उसे आप मुझे बतलाइये ॥३४-३५॥

अनुव्रतानां शिष्याणां पुत्राणां च द्विजोत्तम । अनापृष्टमपि ब्रूयुर्गुरवो दीनवत्सलाः ॥३६॥

अन्वयः— हे द्विजोत्तम ! दीनवत्सलाः गुरवः अनुव्रतानां शिष्याणां पुत्राणाम् अनापृष्टम् अपि हितम् ब्रूयुः ॥३६॥

अनुवाद— हे द्विजोत्तम ! दीनजनों पर कृपा करने वाले गुरुजन अपनी आज्ञा का पालन करने वाले शिष्यों तथा पुत्रों को पूछे बिना भी उनके कल्याण की बातों को बतला दिया करते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

अनापृष्टमप्यपृष्टमपि मद्योग्यं वक्तव्यमिति भावः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि हे प्रभो ! गुरुजन तो दीन वत्सल होते हैं, वे अपने प्रिय तथा आज्ञा पालक शिष्यों और पुत्रों को पूछे बिना भी उनके कल्याण की बातों को बतला दिया करते है। अतएव मैं जो कुछ नही पूछे होऊँ मेरे कल्याण की उन बातों को भी आप बतला दें ॥३६॥

तत्त्वानां भगवंस्तेषां कतिधा प्रतिसंक्रमः । तत्रेमं क उपासीरन् क उ स्विदनुशेरते ॥३७॥

अन्वयः— हे भगवन् तेषां तत्त्वानां कतिधा प्रतिसंक्रमः। तत्र इमं के उपासीरन् क उ स्विद् अनुशेरते ॥३७॥

अनुवाद— हे भगवन् ! उन महदादि तत्त्वों के कितने प्रकार के प्रलय होते हैं। जब भगवान् योगनिद्रा में शयन करते हैं उस समय उनकी सेवा कौन करते हैं और कौन उनमें लीन हो जाते हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिसंक्रमः प्रलयः। तत्र प्रलये इमं परमेश्वरं शयानं राजानमिव चामरग्राहिणः के वाऽनुशेरते शयानमनुस्वपन्ति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

महदादि तत्त्वों का कितने प्रकार का प्रलय होता है ? जिस समय भगवान् योगनिद्रा में शयन करते हैं, उस समय जिस तरह सोए हुए राजा की चामरग्राही सेवा करते हैं, उसी तरह सोये हुए परमात्मा की सेवा कौन-कौन तत्त्व करते हैं ? और कौन तत्त्व उनके ही साथ सो जाते हैं ॥३७॥

पुरुषस्य च संस्थानं स्वरूपं वा परस्य च । ज्ञानं च नैगमं यत्तद्गुरुशिष्यप्रयोजनम् ॥३८॥

अन्वयः— पुरुषस्य संस्थानं परस्य च स्वरूपम्, नैगमं ज्ञानं, गुरुशिष्य प्रयोजनम् च वद ॥३८॥

अनुवाद— जीव के स्वरूप को, परमात्मा के स्वरूप को, उपनिषत् प्रतिपादित ज्ञान को एवं गुरु तथा शिष्य के प्रयोजन को आप मुझे बतलायें ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

पुरुषस्य संस्थानं जीवस्य तत्त्वम् । परमेश्वरस्य स्वरूपम् । येनांशेन तयोरैक्यम् । तथा ज्ञानं च । नैगममौपनिषदम् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि आप मुझे जीव के तत्त्व को, परमात्मा के स्वरूप को, जिस अंश में जीव और परमेश्वर की एकता है उसको, उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित ज्ञान को एवं गुरु एवं शिष्य के प्रयोजन को आप मुझे बतलायें ॥३८॥

निमित्तानि च तस्येह प्रोक्तान्यनघ सूरिभिः । स्वतो ज्ञानं कुतः पुंसां भक्तिर्वैराग्यमेव वा ॥३९॥

अन्वयः— हे अनघ ! इह सूरिभिः तस्य प्रोक्तानि, निमित्तानि पुंसां स्वतः ज्ञानं भक्तिवैराग्यं एव वा कुतः ॥३९॥

अनुवाद— हे निष्पाप ! मैत्रेय जी विद्वानों ने उस ज्ञान की प्राप्ति के जिन-जिन साधनों को बतलाया है, उन सबों को आप मुझे बतलायें, क्योंकि मनुष्यों को अपने आप ज्ञान भक्ति एवं वैराग्य की प्राप्ति का होना कैसे सम्भव है ?॥३९॥

भावार्थ दीपिका

यानि सूरिभिः प्रोक्तानि तस्य ज्ञानस्य साधनानि तानि च ब्रूहि । गुरु विनैतन्न भवतीत्याह-स्वत इति ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

विद्वानों ने उस ज्ञान की प्राप्ति के जिन साधनों को बतलाया है, उन साधनों को आप मुझे बतलायें, क्योंकि मनुष्यों को ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य की प्राप्ति तो गुरु के बिना अपने आप नहीं हो सकती हैं ॥३९॥

एतान्मे पृच्छतः प्रश्नान्हरेः कर्मविवित्सया । ब्रूहि मेऽज्ञस्य मित्रत्वादजया नष्टचक्षुषः ॥४०॥

अन्वयः— हरेः कर्मविवित्सया एतान् प्रश्नान् पृच्छतः अज्ञस्य अजया नष्टचक्षुषः मे मित्रत्वात् ब्रूहि ॥४०॥

अनुवाद— श्रीहरि की लीलाओं को जानने की इच्छा से इन प्रश्नों को मैं आपसे पूछ रहा हूँ । मैं तो अज्ञानी हूँ । माया ने मेरे ज्ञान को विनष्ट कर दिया है । आप मेरे परम मित्र हैं अतएव आप मुझे इन सारी बातों को बतलायें ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

मे प्रश्नान्मे मित्रत्वात्स्निधत्वादित्यन्वयभेदान्न मे पदस्य पौनरूक्त्यम् ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में **मे** पद दो बार आया है उनमें से एक मे पद का प्रश्नान् के साथ अन्वय है और दूसरे मे पद का मित्रत्वात् पद के साथ अन्वय है अतएव इस श्लोक मे पुनरुक्त दोष के होने की सम्भावना नहीं की जा सकती है ॥४०॥

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ । जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन्कलामपि ॥४१॥

अन्वयः— हे अनघ ! सर्वे वेदाश्च, यज्ञाश्च, दानानि च जीवाभयप्रदानस्य कलामपि न कुर्वीरन् ॥४१॥

अनुवाद— हे निष्पाप ! मैत्रेय जी समस्त वेद, यज्ञ तथा दान जीव को अभय प्रदान के अंश भी नहीं उत्पन्न कर सकते है । जीव को अभय प्रदान तो तत्त्वोपदेश के द्वारा ही सम्भव है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

तत्त्वोपदेशेन जीवाभयप्रदानस्य ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

आचार्य तत्त्वों का उपदेश करके जीव को जन्म तथा मरण से मुक्ति प्रदान करके जिस अभयको प्रदान कर देते हैं सभी वेद यज्ञ और दान मिलकर उस अभय प्रदान के एक अंश को भी नहीं प्रदान कर सकते हैं ॥४१॥

श्रीशुक उवाच

स इत्थमापृष्टपुराणकल्पः कुरुप्रधानेन मुनिप्रधानः ।
प्रवृद्धहर्षो भगवत्कथायां संचोदितस्तं प्रहसन्निवाह ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अन्वयः— कुरु प्रधानेन इत्थम् आ पृष्टः पुराणकल्पः मुनिप्रधानः सः प्रवृद्धहर्षः भगवत् कथायां संचोदितः प्रहसन्निव तं आह ॥४२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— कुरुवंशियों में प्रधान विदुरजी के द्वारा इस तरह से पुराण विषयक प्रश्न पूछे जाने पर भगवत् चर्चा के लिए प्रेरित किए जाने के कारण मैत्रेय महर्षि बड़े प्रसन्न हुए और मुस्कुराकर उनसे कहने लगे ॥४२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के सातवें अध्याय का
शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७॥

भावार्थ दीपिका

पुराणे कल्पते प्रकाशत इति पुराणाकल्पो बुभुत्सितोऽर्थः आपृष्टः पुराणकल्पोऽयं स मुनिप्रधानः ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

जो पुराणों में ही प्रकाशित होता है उस जानने योग्य अर्थ के पूछे जाने पर मुनिगणों में प्रधान मैत्रेय महर्षि ने प्रसन्नता का अनुभव किया और वे मुस्कुराते हुए विदुरजी का उत्तर देने लगे ॥४२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के सातवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की
शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥७॥

* * *

आठवाँ अध्याय

ब्रह्माजी की उत्पत्ति

मैत्रेय उवाच

सत्सेवनीयो बत पूरुवंशो यल्लोकपालो भगवत्प्रधानः ।
बभूविथेहाजितकीर्तिमालां पदे पदे नूतनयस्याभीक्ष्णम् ॥१॥

अन्वयः— बत पूरुवंशः सत्सेवनीयः यत इह भगवत्प्रधानः लोकपालः बभूविथ । अभीक्ष्णम् पदे पदे अजित-कीर्तिमालां नूतनयसि ॥१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— निश्चित रूप से पूरुवंश सत् पुरुषों के द्वारा सेवनीय है, क्योंकि इस वंश में आप यमराज नामक लोकपाल जन्म लिए हैं और निरन्तर पद पद पर आप श्रीहरि की कीर्तिमाला को नवीन भी बना रहे हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टमे समभूद्ब्रह्मा नाभेस्तु जलशायिनः । तमजानञ्जले बिभ्यत्तपसाऽतोषयद्विभुम ॥१॥ श्रोतारमभिनन्दति । सतां सेवितुं योग्यः । बत अहो । यत् यस्मादिहास्मिन्वंशे लोकपालो धर्मराजस्त्वं बभूविथ जातोऽसि । कथंभूतः भगवानेव प्रधानभूतो यस्य सः । अत्र हेतुः-अजितेति । प्रतिक्षणं नूतनयसि नवीनां करोषि ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इस आठवें अध्याय में जलशायी भगवान् के नाभिकमल से उत्पन्न ब्रह्माजी श्रीभगवान् को नही जानने के कारण जल में अकेले डरने लगे । उन्होंने तपस्या के द्वारा श्रीभगवान् को प्रसन्न किया; यही वर्णित है ॥१॥

इस श्लोक में श्रोता विदुरजी की प्रशंसा मैत्रेय महर्षि करते हैं । वे बतलाते हैं कि चूकि इस पूरु के वंश में आप जन्म लिए हैं । आप भगवद्भक्तों में प्रधान लोकपाल यमराज हैं । और आप निरन्तर श्रीभगवान् की कीर्ति को पद-पद पर नवीन बना रहे हैं । अतएव यह पुरुवंश सत्पुरुषों द्वारा सेवनीय है । **भगवत् प्रधानः** का विग्रह है **भगवानेव प्रधानभूतो यस्य सः ॥१॥**

सोऽहं नृणां क्षुल्लसुखाय दुःखं महद्गतानां विरमाय तस्य ।
प्रवर्तये भागवतं पुराणं यदाह साक्षाद्भगवानृषिभ्यः ॥२॥

अन्वयः— सोऽहं क्षुल्लसुखाय महददुखं गतानां नृणां विरमाय भागवतं पुराणं प्रवर्तये, यत् साक्षात् भगवान् ऋषिभ्यः आह ॥२॥

अनुवाद— मैं अल्पसुख प्राप्त करने के लिए महान् दुःख का अनुभव करने वाले जीवों के दुःखों का विराम करने के लिए, श्रीमद्भागवतपुराण को प्रारम्भ करता हूँ उसको साक्षात् भगवान् संकर्षण ने ऋषियों को सुनाया था ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अल्पसुखाय महद्दुःखं प्राप्तानां तस्य दुःखस्य विरामाय प्रवर्तये प्रारभे ॥२॥

भाव प्रकाशिका

क्षुद्र विषय सुख की प्राप्ति के लिए महान् दुःख को भोगने वाले मनुष्यों के दुःख को दूर करने के लिए मैं इस श्रीमद्भागवत पुराण को प्रारम्भ करता हूँ । इस पुराण को भगवान् संकर्षण ने ऋषियों को सुनाया था ॥२॥

आसीनमुर्व्यां भगवन्तमाद्यं संकर्षणं देवमकुण्ठसत्त्वम् ।
विवित्सवस्तत्त्वमतः परस्य कुमारमुख्या मुनयोऽन्वपृच्छन् ॥३॥

अन्वयः— अकुण्ठसत्त्वम् उर्व्यां आसीनम् आद्यं भगवन्तम् सङ्कर्षणं परस्य तत्त्वम् विवित्सवः कुमारमुख्याः मुनयः अन्वपृच्छन् ॥३॥

अनुवाद— अखण्ड ज्ञान सम्पन्न पृथिवी पर विराजमान आदि देव भगवान् सङ्कर्षण से परतत्त्व को जानने की इच्छा से सनत्कुमार आदि ऋषियों ने पूछा ॥३॥

भावार्थ दीपिका

कोऽसौ भगवान्, केभ्यश्चर्षिभ्य आह, कथं च त्वया प्राप्तमित्यपेक्षायामाह–आसीनमिति सप्तभिः । उर्व्यां पातालतले अकुण्ठसत्त्वमप्रतिहतज्ञानम् । अतः सङ्कर्षणात्परस्य श्रीवासुदेवस्य ॥३॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि वे भगवान् कौन है ? वे भगवान् किन ऋषियों को भागवत का उपदेश दिए ? आपने उस श्रीमद्भागवत पुराण को कैसे प्राप्त किया ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर मैत्रेय महर्षि ने **आसीनम्० इत्यादि** सात श्लोकों से इन सारी बातों को बतलाया । आदि भगवान् सङ्कर्षण पाताल में पृथिवी पर बैठे थे । वे भगवान् अखण्ड ज्ञान सम्पन्न हैं । अतएव सङ्कर्षण से भी श्रेष्ठ श्रीवासुदेव भगवान् के तत्त्वों को जानने की इच्छा से सनत्कुमार आदि महर्षियों ने उनसे प्रश्न किया ॥३॥

स्वमेवधिष्ण्यं बहु मानयन्तं यं वासुदेवाभिधमामनन्ति ।
प्रत्यग्धृताक्षाम्बुजकोशमीषदुन्मीलयन्तं विबुधोदयाय ॥४॥

अन्वयः— स्वमेवधिष्ण्यं बहुमानयन्तं यं वासुदेवाभिधं आमनन्ति प्रत्यग्धृताक्षाम्बुजकोशम् विबुधोदयाय ईषदुन्मीलयन्तम् ॥४॥

अनुवाद— जिन भगवान् को वेद वासुदेव नाम से अभिहित करते हैं उन अपने आश्रयभूत श्रीभगवान् का अत्यन्त आदर पूर्वक मानसिक पूजन करने वाले, जिनके कमलकोश के समान सुन्दर नेत्र बन्द थे; ऐसे भगवान् सङ्कर्षण उन महर्षियों के प्रश्न को सुनकर उन ज्ञानी सनत्कुमार आदि को आनन्दित करने के लिए अपनी अधखुली आँखों से देखे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तमेव विशिनष्टि । स्वमेव धिष्ण्यं स्वीयमाश्रयं वासुदेवसंज्ञं परमानन्दरूपं ध्यानपथेऽनुभूय बहु मानयन्तं सर्वोत्कर्षेण पूजयन्तम् । प्रत्यग्धृतमन्तर्मुखीकृतं नेत्राम्बुजमुकुलं किंचिदुन्मीलयन्तम् । कृपावलोकेन सनत्कुमारादीनामभ्युदयार्थम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् सङ्कर्षण की ही विशेषता इस श्लोक में बतलायी जा रही है । अपने आश्रयभूत परमानन्द स्वरूप भगवान् वासुदेव का ध्यान में अनुभव करके अत्यन्त आदर पूर्वक सर्वोत्कृष्ट तत्त्व के रूप में उनकी पूजा करते हुए, जिनकी नेत्र कलिका अन्तर्मुखी हो गयी थी उन दोनों नेत्रों को थोड़ा सा खोलकर सनत्कुमारादि ऋषियों को आनन्दित करते हुए वे देखे ॥४॥

स्वर्धुन्युदार्द्रैः स्वजटाकलापैरुपस्पृशन्तश्चरणोपधानम् ।
पद्मं यदर्चन्त्यहिराजकन्याः सप्रेम नानाबलिभिर्वरार्थाः ॥५॥

अन्वयः— स्वर्धुन्युदार्द्रैः स्वजटाकलापैः चरणोपधानम् पद्म स्पृशन्तः यत् अहिराजकन्याः वरार्थाः नानाबलिभिः सप्रेम अर्चयन्ति ॥५॥

अनुवाद— गङ्गा के जल से भिङ्गे हुए अपने जटा समूह से भगवान् सङ्कर्षण के चरण चौकी के रूप में स्थित कमल का उन महर्षियों ने स्पर्श किया अर्थात् भागवत की कथा सुनने के लिए प्रणाम किया, जिस कमल की पूजा नाग राजकुमारियाँ अपने मनोनुकूल पति को प्राप्त करने की इच्छा से अनेक उपहारों से किया करती हैं॥५॥

भावार्थ दीपिका

मुनीनां विशेषणं सार्धेन । स्वर्धुन्या उदकेनार्द्रैरिति । श्रीभागवतश्रवणार्थं सत्यलोकात्पातालं प्रत्यवतरन्तो निरन्तरं गङ्गामध्यत एवावतीर्णा इति भावः । चरणावुपाधीयेते । यस्मिन् पद्मे । तदुपस्पृशन्तो नमन्तः । कथंभूतं तदाह । यत्पद्मं प्रेमसहितं यथा भवत्येवं नानोपहारैः पूजयन्ति । वरार्थाः पतिकामाः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

मुनियों की विशेषता डेढ श्लोकों में बतलायी गयी है । श्रीमद्भागवत का श्रवण करने के लिए सत्यलोक से पाताल लोक में आते हुए सनकादिक महर्षियों के सिर गङ्गाजी के जल से भिङ्गा था क्योंकि वे गङ्गा के बीच से ही आ रहे थे । सङ्कर्षण भगवान् जिस पर चरण रखते थे उस कमल को उन लोगों ने नमस्कार किया । उसकमल की विशेषता बतलाते हुए मैत्रेय महर्षि ने कहा कि उस कमल की पूजा नागराज की कुमारियाँ अपने मनोनुकूल पति को प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के उपहारों से प्रेम पूर्वक किया करती हैं ॥५॥

मुहूर्गृणन्तो वचसानुरागस्खलत्पदेनास्य कृतानि तज्ज्ञाः ।
किरीटसाहस्रमणिप्रवेकप्रद्योतितोद्दामफणासहस्रम् ॥६॥

अन्वयः— अस्य कृतानि तज्ज्ञाः अनुरागस्खलत्पदेन वचसा कृतानि मुहुर्गृणन्तः किरीट साहस्रमणिप्रवेक-प्रद्योतितोद्दामफणासहस्रम् ॥६॥

अनुवाद— भगवान् सङ्कर्षण की लीलाओं के ज्ञाता वे सनत्कुमार आदि महर्षि प्रेमातिरेक के कारण गद्‌गद वाणी से उनकी लीलाओं का बार-बार गायन कर रहे थे । उस समय शेष भगवान् के उठे हुए हजारों फण उनके हजारों किरीटों में लगी उत्तम मणियों के प्रकाश से प्रकाशित हो रहे थे ॥६॥

भावार्थ दीपिका

कृतानि कर्माणि गृणन्तः । केन । अनुरागेण स्खलन्ति पदानि यस्मिंस्तेन वचसा । तानि जानन्तीति तज्ज्ञाः । सहस्रमेवसाहस्रं किरीटानां साहस्रे ये मणिप्रवेका रत्नोत्तमास्तैः प्रद्योतितमुद्दामफणानां सहस्रं यस्य तमपृच्छन्निति पूर्वेणान्वयः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

वे सनत् कुमारादि ऋषि शेष भगवान् की लीलाओं के अभिज्ञ थे, अतएव वे प्रेम पूर्वक अपनी गद्गद वाणी से शेष भगवान् की लीलाओं का गायन कर रहे थे । शेष भगवान् की फणाओं के जो हजारो किरीट थे उनमें जटित उत्तम कोटि के रत्नों की किरणों से उनके उठे हुए हजारों फण जगमगा रहे थे । इस प्रकार के शेष भगवान् से सनत्कुमार आदि ऋषियों ने प्रश्न किया ॥६॥

प्रोक्तं किलैतद्भगवत्तमेन निवृत्तिधर्माभिरताय तेन ।
सनत्कुमाराय स चाह पृष्टः सांख्यायनायाङ्ग धृतव्रताय ॥७॥

अन्वयः— भगवतमेन तेन निवृत्तिधर्माभिरताय सनत्कुमाराय एतत् प्रोक्तं किल हे अङ्ग स च पृष्टः धृतव्रताय सांख्यायनाय आह ॥७॥

अनुवाद— भगवान् सङ्कर्षण ने निवृत्ति परायण सनत्कुमार को यह भागवत् सुनाया । यह प्रसिद्ध है । सनत्

कुमार महर्षि ने भागवत को सुनने के लिए ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन रूप परम व्रत धारण करने वाले सांख्यायन मुनि को उनके द्वारा पूछे जाने पर सुनाया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तेन सङ्कर्षणेन सनत्कुमाराय प्रोक्तम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम सङ्कर्षण भगवान् ने श्रीभगवान् को सनत् कुमार महर्षि को भागवत सुनाया क्योंकि वे निवृत्ति मार्ग के अनुयायी थे । उन्होंने सांख्यायन मुनि को श्रीमद्भागवत सुनाया ॥७॥

सांख्यायनः पारमहंस्यमुख्यो विवक्षमाणो भगवाद्विभूतीः ।
जगाद सोऽस्मद्गुरवेऽन्विताय पराशरायाथ बृहस्पतेश्च ॥८॥

अन्वयः— पारमहंस्यमुख्यः सांख्यायनः भगवद्विभूतीः विवक्षमाणः बृहस्पतेः अन्विताय अस्मद्गुरवे पराशराय जगाद॥८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की विभूतियों का वर्णन करने के इच्छुक परमहंसों में मुख्य संख्यायन महर्षि ने आचार्य बृहस्पति के शिष्य मेरे गुरु महर्षि पराशर को उसे सुनाया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

पारमहंस्ये धर्मे मुख्यः । विवक्षमाण इत्यात्मनेपदं, ब्रूञादेशस्य वचेरुभयपदित्वात् । अन्वितायानुगताय ॥८॥

भाव प्रकाशिका

पारमहंस्य धर्म का पालन करने वालों में मुख्य सांख्यायन मुनि को जब भगवान की विभूतियों का वर्णन करने की इच्छा हुयी तो उन्होंने आचार्य बृहस्पति के शिष्य और हमारे गुरु महर्षि पराशर को उसे सुनाया । **विवक्षमाणः** में आत्मने पद इसलिए है कि ब्रूधातु के आदेशभूत वच् धातु उभयपदि है ॥८॥

प्रोवाच मह्यं स दयालुरुक्तो मुनिः पुलस्त्येन पुराणमाद्यम् ।
सोऽहं तवैतत्कथयामि वत्स श्रद्धालवे नित्यमनुव्रताय ॥९॥

अन्वयः— पुलस्त्येन उक्तः सः दयालुः मुनिः आद्यं पुराणम् मह्यम् प्रोवाच । हे वत्स ! सोऽहं नित्यमनुव्रताय श्रद्धालवे तव एतत् कथयामि ॥९॥

अनुवाद— पुलस्त्य मुनि के कहने से वे दयालु मुनि उस आदिपुराण को मुझे सुनाये । हे वत्स ! वही पुराण अब मैं तुमको सुना रहा हूँ, क्योंकि तुम श्रद्धालु हो तथा सदा अनुगत रहने वाले हो ॥९॥

भावार्थ दीपिका

पुलस्त्येनोक्त इत्यत्रैवमाख्यायिका । पितरं राक्षसभक्षितं श्रुत्वा पराशरो राक्षससत्रे प्रवृत्तो वसिष्ठवचनान्निवृत्तस्ततः पुलस्त्येन स्वसंततिरक्षणात्तुष्टेन वरो दत्तः पुराणप्रवक्ता भविष्यसीति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि पुलस्त्य के कहने से, कहने की, इस प्रकार की आख्यायिका है कि महर्षि पराशर ने जब यह जाना की उनके पिता शक्ति महर्षि को राक्षस ने खा लिया तो उसके पश्चात् वे राक्षस सत्र करने लगे । उस समय महर्षि वसिष्ठ ने आकर उनके उस सत्र को बन्द करवा दिया । उसके पश्चात् उनकी सन्तान की रक्षा हो जाने के कारण महर्षि पुलस्त्य ने कहा कि तुम पुराण के वक्ता होओगे ॥९॥

उदाप्लुतं विश्वमिदं तदासीद्यन्निद्रयाऽमीलितदृङ् न्यमीलयत् ।
अहीन्द्रतल्पेऽधिशयान एकः कृतक्षणः स्वात्मरतौ निरीहः ॥१०॥

अन्वयः— यत् इदं विश्वम् उदाप्लुतं आसीत् तदा एकः अहीन्द्रतल्पे अधिशयानः कृतक्षणः स्वात्मरतौ निरीहः निद्रया अमीलित दृङ्न्यमीलयत् ॥१०॥

अनुवाद— सृष्टि से पूर्व यह सम्पूर्ण जगत् जल में डूबा हुआ था । उस समय अकेले श्रीभगवान् शेष शय्या पर सोए थे । निद्रा के कारण नेत्रों के बन्द होने पर भी वे अपनी आँखें बन्द किए हुए थे । सृष्टि के कार्य को बन्द करके वे आत्मानन्द में मग्न थे । वे उस समय निष्क्रिय थे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं संकर्षणात्संप्रदायप्रवृत्तिं प्रदर्श्य विभूतिकथनाय पद्मोद्भवं वक्तुमाह । उदाप्लुतमेकार्णवोदके निमग्नं यद्यदा आसीत्तदाऽमीलितदृगतिरोहितचिच्छक्तिरेव श्रीनारायणो नेत्रे निमीलितवानित्यर्थः । मायाविनोदं परित्यज्य स्वात्मरतौ स्वरूपानन्द एव कृतोत्सवः । अतएव निरीहो निष्क्रियः सन् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से भगवान् सङ्कर्षण से भागवत के सम्प्रदाय की प्रवृत्ति बतलाकर भगवान् की विभूतियों का वर्णन करने के लिए ब्रह्माजी की उत्पत्ति का वर्णन करने के लिए मैत्रेयजी ने कहा जिस समय विश्व जल में डूबा हुआ था, वह एकार्णव की बेला थी । उस समय चित्शक्ति तिरोहित नहीं थीं किन्तु शेष शय्या पर सोये हुए भगवान् अपनी आँखों को बन्द कर लिए थे माया के विनोद का परित्याग करके वे अपने स्वरूपानन्द में मग्न थे । फलत: वे निष्क्रिय हो गये थे ॥१०॥

सोऽन्तःशरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्मः कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाणः ।
उवास तस्मिन्सलिले पदे स्वे यथाऽनलो दारुणि रुद्धवीर्यः ॥११॥

अन्वयः— अन्तः शरीरेऽर्पित भूतसूक्ष्मः सः दारुणि रुद्धवीर्यः अनलो यथा तस्मिन् स्वे पदे सलिले कालात्मिकां शक्तिम् उदीरयाणः उवास ॥११॥

अनुवाद— अपने शरीर में भूतसूक्ष्मों को छिपाये हुए श्रीभगवान् काष्ठ में व्याप्त तथा अपनी दाहिका शक्ति को छिपाये रहने वाले अग्नि के समान, अपने अधिष्ठानभूत उस जल में शयन किये थे । उस समय उन्होंने केवल कालशक्ति को सृष्टि का समय आने पर जगाने के लिए जागृत रखा ॥११॥

भावार्थ दीपिका

कालशक्तेः प्रेरणं पुनः सृष्ट्यवसरे प्रबोधनार्थम् । स्वे पदेऽधिष्ठाने । बहिर्वृत्त्यभावे दृष्टान्तः-यथाऽनल इति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

योगनिद्रा में शयन करते समय श्रीभगवान् ने काल शक्ति को इसलिए जागृत रखा था कि सृष्टि काल के आने पर वह उनको जगा दे । उस समय श्रीभगवान् की बहिर्वृत्ति का अभाव था । इसका उदाहरण है कि जिस तरह अरणि के काष्ठ में अग्नि व्यापक रहती है, किन्तु वह अपनी दाहिका शक्ति को छिपाये रहती है, उसी तरह श्रीभगवान् अपने अधिष्ठानभूत जल में अपने शरीर में भूतसूक्ष्मों को छिपाये हुए निवास किए थे ॥११॥

चतुर्युगानां च सहस्रमप्सु स्वपन्स्वयोदीरितया स्वशक्त्या ।
कालाख्ययासादितकर्मतन्त्रो लोकानपीतान्ददृशे स्वदेहे ॥१२॥

अन्वयः— चतुर्युगानां सहस्रम् अप्सु स्वपन् स्वया उदीरितया कालाख्यया स्वशक्त्या आसादित कर्मतन्त्रः स्वदेहे अपीतान् लोकान् ददृशे ॥१२॥

अनुवाद— अपनी चित् शक्ति के साथ एक हजार चतुर्युग पर्यन्त जल में शयन करने के पश्चात् अपने ही द्वारा नियुक्त कालात्मिका शक्ति ने उनको जीवों की कर्मशक्ति की प्रवृत्ति के लिए प्रेरित किया। उसके पश्चात् उन्होंने अपने शरीर में लीन अनन्त लोकों को देखा ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

स्वया चिच्छक्त्या सह वर्तमान एव योगनिद्रया स्वपन् पूर्वमेव बोधनार्थं नियुक्तया स्वकालशक्त्या आसादितं प्रापितं कर्मतन्त्रं क्रियाकलापो यस्य सः । अपीतान् लीनान् ददर्श ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अपनी चित्शक्ति के साथ ही योगनिद्रा में शयन करने वाले भगवान् सोने से पहले ही जगाने के लिए नियुक्त काल शक्ति के द्वारा जगाये जाने पर अपने कर्मतन्त्र को अपना कर उन्होंने अपने शरीर में लीन अनन्त लोकों को देखा ॥१२॥

तस्यार्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेरन्तर्गतोऽर्थो रजसा तनीयान् ।
गुणेन कालानुगतेन विद्धः सूष्यंस्तदाऽभिद्यत नाभिदेशात् ॥१३॥

अन्वयः— अर्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेः तस्य कालानुगतेन रजसा गुणेन विद्धः अन्तर्गतः तनीयान् अर्थान् सूष्यन् तदा नाभिदेशात् अभिद्यत ॥१३॥

अनुवाद— जिस समय श्रीभगवान् की दृष्टि अपने में निहित लिङ्गशरीर आदि सूक्ष्म तत्त्वों पर पड़ी तो कालाश्रित रजोगुण के द्वारा क्षुब्ध होकर वे सृष्टि की रचना के लिए उनके नाभिदेश से बाहर निकला ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

लोकसृष्ट्यर्थमर्थसूक्ष्मेऽभिनिविष्टा दृष्टिर्यस्य । कालानुसारिणा रजोगुणेन विद्धः संक्षोभितः सन् तनीयानतिसूक्ष्मोऽर्थः सूष्यन्प्रसोष्यन्नुद्भविष्यन्नाभिदेशादुद्भूत इत्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

लोकों की सृष्टि करने के लिए लिङ्गशरीर आदि सूक्ष्म तत्त्वों पर जब उनकी दृष्टि पड़ी तो कालाश्रित रजोगुण के द्वारा क्षुब्ध होकर अत्यन्तसूक्ष्म तत्त्व उन सूक्ष्म विषयों को उत्पन्न करने के लिए श्रीभगवान् के नाभिप्रदेश से बाहर निकला ॥१३॥

स पद्मकोशः सहसोदतिष्ठत्कालेन कर्मप्रतिबोधनेन ।
स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं विद्योतयन्नर्क इवात्मयोनिः ॥१४॥

अन्वयः— कर्म प्रतिबोधनेन कालेन स आत्मयोनिः पद्मकोशः स्वरोचिषा तत् विशालं सलिलं स्वरोचिषा अर्क इव विद्योतयन् सहसा उदतिष्ठत् ॥१४॥

अनुवाद— कर्मशक्ति को जागृत करने वाले भगवान् विष्णु की नाभि से प्रकट हुआ वह कमलकोश अपनी कान्ति से उस विशाल जल को सूर्य के समान प्रकाशित करते हुए सहसा ऊपर की ओर उठा ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

स तनीयानर्थः पद्मकोशः सन्नुदतिष्ठत् । कर्माणि जीवादृष्टानि प्रतिप्रबोधयति यः कालस्तेन । आत्मा श्रीविष्णुर्योनिर्यस्य ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

जीवों के आदृष्टों को जागृत करने वाले काल शक्ति के द्वारा प्रेरित वह सूक्ष्म तत्त्व ही भगवान् विष्णु की

नाभि से कमल कोश के रूप में ऊपर की ओर उठा वह अपनी कान्ति से उस विशाल जल समूह को प्रकाशित कर रहा था ॥१४॥

तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत्सर्वगुणावभासम् ।
तस्मिन्स्वयं वेदमयो विधाता स्वयंभुवं यं स्म वदन्ति सोऽभूत् ॥१५॥

अन्वयः— सर्वगुणावभासं तल्लोकपद्मं स विष्णुः एव प्रावीविशत् तस्मिन् सः स्वयं वेदमयो विधाता अभूत् यं स्वयम्भुवं वदन्तिस्म ॥१५॥

अनुवाद— सभी गुणों को प्रकाशित करने वाले उस लोककमल में भगवान् विष्णु ही अन्तर्यामी रूप से प्रवेश कर गये उसके पश्चात् उसमें से बिना पढ़ाये ही वेदों के ज्ञाता ब्रह्माजी प्रकट हुए जिनको लोग स्वयम्भू कहते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तल्लोकात्मकं पद्मं सर्वान्गुणान् जीवभोग्यानर्थानवभासयतीति तथा । तद्यस्माज्जातं स एव विष्णुः । उ इति संबोधने। प्रावीविशत्प्रकर्षेणालुप्तशक्तिरेवान्तर्यामितया विवेश । तस्मिन्विष्णुनाऽधिष्ठिते पद्मे विधाता ब्रह्माऽभूत् । कथंभूतः स्वयमेव वेदमयो न त्वध्ययनेन प्राप्तवेदः । अदृष्टपितृत्वेन यं स्वयंभुवं वदन्ति सः । प्राक्कल्पान्ते नारायणेन सह निद्रयैकीभूत आसीत्तस्मिंश्च प्रबुद्धे तत एव पाद्मे कल्पे पद्मद्वारेणाभिव्यक्तिं प्राप्त इत्यर्थः॥१५॥

भाव प्रकाशिका

जीवों के समस्त भोग्य विषयों को प्रकाशित करने वाले उस लोकात्मक पद्म के भीतर जिनकी शक्ति विल्कुल लुप्त नही हुयी थी ऐसे भगवान् विष्णु अन्तर्यामी रूप से प्रवेश कर गये । उस कमल के भगवान् विष्णु के द्वारा अधिष्ठित होने पर उससे ब्रह्माजी प्रकट हुए । वे वेदाध्ययन किए बिना ही वेद के ज्ञाता थे । अब प्रश्न है कि वे ब्रह्मा कौन हैं तो इसका उत्तर है, कि उनके पिता को नहीं देखने के कारण लोग उनको स्वयम्भू कहते हैं इस पाद्मकल्प से पहले जो कल्प था उसके अन्त में भगवान् नारायण के साथ ही उनमें मिलकर वे सो गये थे । पाद्मकल्प में जगने पर उस पद्म से ही वे प्रकट हुए ॥१५॥

तस्यां च चाम्भोरुहकर्णिकायामवस्थितो लोकमपश्यमानः ।
परिक्रमन्व्योम्नि विवृत्तनेत्रश्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि ॥१६॥

अन्वयः— तस्याम् अम्भोरुहकर्णिकायां अवस्थितः लोकमपश्यमानः व्योम्निपरिक्रमन् अनुदिशं चत्वारि मुखानि लेभे॥१६॥

अनुवाद— कमल की उस कर्णिका पर बैठे हुए ब्रह्माजी जब किसी भी लोक को नहीं देखा तो वे अपनी आँखों को अच्छी तरह से खोलकर चारो दिशाओं में देखने लगे, उस समय उनको चार दिशाओं में चार मुख प्राप्त हो गये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

स च तस्मिन्कल्पे चतुर्मुखोऽभूदित्याह- तस्यामिति । परिक्रमंस्तत्रस्थ एव ग्रीवां चालयन् लोकनिरीक्षणार्थं विवृत्ते विचलिते नेत्रे यस्य ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

वे उस कल्प में चतुर्मुख हो गये इस अर्थ को **तस्यामित्यादि** श्लोक से कहा गया है । ब्रह्माजी जिस कमल पर प्रकट हुए थे उसी कमल की कर्णिका पर बैठकर वे देख लगे किन्तु उस समय उनको कोई लोक नहीं दिखायी पड़ा । इसके पश्चात् वे बैठे ही बैठे चारो दिशाओं में अपनी गर्दन घुमाकर तथा अच्छी तरह से आँखों को खोलकर देखने लगे । उसी समय उनके दिशाओं के अनुसार चार मुख हो गये ॥१६॥

तस्माद्युगान्तश्वसनावघूर्णजलोर्मिचक्रात्सलिलाद्विरूढम् ।
उपाश्रितः कञ्जमु लोकतत्त्वं नात्मानमद्धाऽविददादिदेवः ॥१७॥

अन्वयः— तस्मात् युगान्तश्वसनावघूर्णजलोर्मिचकात् सलिलात् विरुढ़म् लोकतत्त्वे कञ्जम् उपाश्रितः आदिदेवः अद्धा नात्मानम् अविदत् ॥१७॥

अनुवाद— उस समय प्रलय कालीन वायु के झंकोरों से उछलती जल की तरङ्गों से उस जल राशि से ऊपर उठे हुए कमल पर बैठे हुए ब्रह्माजी को उस लोकतत्त्व स्वरूप कमल के तथा अपने रहस्य का कुछ भी पता नहीं चला ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तस्य च श्रीनारायणोपासनयैवाविर्भूतज्ञानक्रियाशक्तेर्लोककर्तृत्वं न स्वत इति वक्तुं प्रथमं तस्य विमोहमाह । तस्मात्सलिलाद्विरूढमुद्गतं कञ्जशमुपाश्रितोऽपि साकल्येन तत्कञ्जं लोकतत्त्वं चात्मानं च साक्षान्न ज्ञातवान् । उत इति विस्मये। कथंभूतात् । युगान्तश्वसनः प्रलयवायुस्तेनावघूर्णं तत्र तत्र प्रकम्पितं यस्मात्सर्वत ऊर्मिचक्रं यस्मिन् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् नारायण की उपासना से ही ब्रह्माजी को ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और लोककर्तृत्व की शक्ति प्राप्ति हुयी अपने आप नहीं; इस अर्थ को बतलाने के ही लिए ब्रह्माजी के मोह का वर्णन मैत्रेय महर्षि इस श्लोक में करते हैं। श्लोक का उ शब्द आश्चर्य का बोधक है । उस समय चलने वाली वायु के झंकोरों के कारण एकार्णव में ऊँची लहरें उठ रही थीं । उस जल से निकले हुए कमल पर ब्रह्माजी बैठे हुए थे किन्तु वे पूर्णरूप से उस कमल को जान नही सके, और न लोकतन्त्र को जान सके, साथ ही अपने भी विषय में वे कुछ भी नहीं जान सके ॥१७॥

क एष योऽसावहमब्जपृष्ठ एतत्कुतो वाऽब्जमनन्यदप्सु ।
अस्ति ह्यधस्तादिह किंचनैतदधिष्ठितं यत्र सता नु भाव्यम् ॥१८॥

अन्वयः— स असौअब्जपृष्ठे अहम् एषः कः, अनन्यत् एतत् अब्जं वा अप्सु कुतः । यत्र एतत् अधिष्ठितं इह अधस्तात् किञ्चन सता भाव्यम् नु ॥१८॥

अनुवाद— ब्रह्मजी सोचने लगे कि इस कमल के ऊपर बैठा हुआ मैं कौन हूँ ? जल के भीतर केवल यही कमल कैसे पैदा हो गया ? जिस पर यह कमल टिका हुआ है, ऐसी किसी वस्तु को इसके नीचे होना चाहिए जिसके आधार पर यह कमल स्थित है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अविदुषस्तस्य वितर्कमाह । योऽसावहमब्जपृष्ठे एष कः । अनन्यदेकमेवैतदब्जं कुतो वा जातम् । यत्रैतदधिष्ठितं तेनाधस्तात्सता वर्तमानेन तु निश्चितं भाव्यम् । स इत्थमुद्वीक्ष्येत्युत्तरेणान्वयः । तथा च श्रुतिः-**सोऽपश्त्पुष्करपर्णे तिष्ठन्सोऽमन्यत अस्मि चैतद्यस्मिन्निदमधितिष्ठति**' इति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

उस कमल तथा अपने विषय में कुछ नहीं जान पाने वाले ब्रह्माजी के वितर्क को ही इस श्लोक में कहा गया है । ब्रह्माजी सोच रहे थे कि इस कमल की कर्णिका पर बैठा हुआ मैं कौन हूँ ? इस विशाल जल राशि में यह अकेला कमल कहाँ से उत्पन्न हो गया ? इसके नीचे किसी वस्तु को होना चाहिए जिसके ऊपर यह कमल स्थित है, श्रुति भी कहती है— **सोऽपश्यत् पुष्करपर्णे० इत्यादि** अर्थात् कमल दल के ऊपर बैठे हुए ब्रह्माजी ने सोचा कि कोई ऐसी वस्तु है जिसके ऊपर यह कमल स्थित है ॥१८॥

स इत्थमुद्वीक्ष्य तदब्जनालनाडीभिरन्तर्जलमाविवेश ।
नार्वाग्गतस्तत्खरनालनालनाभिं विचिन्वंस्तदविन्दताजः ॥१९॥

अन्वयः— इत्थम् उद्वीक्ष्य सः तदब्जनालनाडीभिः जलम् अन्तः आविवेश, अर्वाक् गतः अजः तत्खरनालनालनाभिं विचिन्वन् तत् न अविन्दत ॥१९॥

अनुवाद— इस प्रकार से विचार करके ब्रह्माजी उस कमल के नाल के छिद्र से जल में प्रवेश कर गये उसके भीतर जाकर कमल नाल के आधार भूत नाभि का अन्वेषण करके भी उसे वे नहीं जान सके ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तस्य च बहिर्मुखप्रवृत्त्या महतापि कालेन तदप्राप्तिमाह-स इति द्वाभ्याम् । तस्याब्जस्य यन्नालं तस्य नाडीभिरन्तश्छिद्रैः। तस्य खरनालस्य पद्मस्य यन्नालं तस्य नाभिमधिष्ठानं विचिन्वन्नर्वाग्गतोऽपि तत्तदा नाविन्दत ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की बहिर्मुखी प्रवृत्ति होने के कारण ब्रह्माजी बहुत अधिक प्रयास करके उस कमल के आधार को नहीं जान सके, इस बात को **स इत्थम् इत्यादि** दो श्लोकों से मैत्रेयजी ने कहा— उस कमल के नाल के छिद्रों के माध्यम से जल में प्रवेश करके भीतर जाने पर भी उस कमल के अधिष्ठान का पता ब्रह्माजी नहीं लगा सके॥१९॥

तमस्यपारे विदुरात्मसर्गं विचिन्वतोऽभूत्सुमहांस्त्रिणेमिः ।
यो देहभाजां भयमीरयाणः परिक्षिणोत्यायुरजस्य हेतिः ॥२०॥

अन्वयः— हे विदुर ! अपारे तमसि आत्मसर्गं विचिन्वतः महान् त्रिणेमिः अभूत् यः अजस्य हेतिः भयम् ईरयाणः आयुः क्षिणोति ॥२०॥

अनुवाद— विदुरजी उस घोर अन्धकार में अपने उत्पत्तिस्थान को खोजते हुए वहुत समय बीत गया । वह काल भगवान् का चक्र है, जो शरीरधारियों को भयभीत करते हुए उनकी आयु को क्षीण करता रहता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

हे विदुर, आत्मसर्गं स्वकारणम् । त्रिणेमिः कालः । अजस्य विष्णोर्हेतिः सुदर्शनरूपं शस्त्रम् । देहभाजां नराणां भयमुत्पादयन्निति संवत्सरशतमतिक्रान्तमित्युक्तं भवति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

हे विदुरजी ! उस घोर अन्धकार में अपनी उत्पत्ति का स्थान खोजते हुए ब्रह्माजी के सौ वर्ष से भी अधिक समय बीत गया । वह काल ही भगवान् का सुदर्शन चक्र है जो शरीरधारियों को भयभीत करते हुए उनकी आयु को क्षीण करने का काम करता है ॥२०॥

ततो निवृत्तोऽप्रतिलब्धकामः स्वधिष्ण्यमासाद्य पुनः स देवः ।
शनैर्जितश्वासनिवृत्तचित्तो न्यषीददारूढसमाधियोगः ॥२१॥

अन्वयः— ततः अप्रतिलब्धकामः निवृत्तः पुनः स्वधिष्ण्यम् असाद्य स देवः शनैः जितश्वास निवृत्तचित्तः आरूढसमाधियोगः न्यषीदत् ॥२१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् विफल मनोरथ बह्माजी लौट आये फिर अपने स्थान पर आकर धीरे-धीरे प्राणवायु को जीतकर चित्त को सङ्कल्प रहित बनकर समाधिस्थ हो गये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अन्तर्मुखतया तु भगवन्तं दृष्टवानित्याह द्वाभ्याम् । ततोऽन्वेषणान्निवृत्तः । न प्रतिलब्धः कामो मनोरथो येन । स्वधिष्ण्यं पद्मम् । जितेन श्वासेन निवृत्तं संयतं चित्तं यस्य, अत एवारूढ आश्रितः समाधियोगो येन तथाभूतः सन्न्यषीददुपविवेश॥२१॥

भाव प्रकाशिका

अब दो श्लोकों से यह बतलाया जा रहा है कि ब्रह्माजी अपनी बाह्य शक्तियों को निगृहीत करके केवल परमात्मध्यान परायण होकर श्रीभगवान् का साक्षात्कार किए । उसके पश्चात् अपने कारण तत्त्व के अन्वेषण से निवृत्त हुए ब्रह्माजी क्योंकि उनका मनोरथ सिद्ध नहीं हो पाया था । पुनः आकर वे अपने स्थान पर बैठ गये । उन्होंने प्राणवायु को जीतकर अपने चित्त को सङ्कल्प विहीन वनाया और समाधि में वे स्थित हो गये ॥२१॥

कालेन सोऽजः पुरुषायुषाऽभिप्रवृत्तयोगेन विरूढबोधः ।
स्वयं तदन्तर्हृदयेऽवभातमपश्यतापश्यत यन्न पूर्वम् ॥२२॥

अन्वयः— सोऽजः पुरुषायुषा कालेन अभिप्रवृत्तयोगेन विरुढबोधः सन् यत् पूर्वम् न अपश्यत तत् अन्तः हृदये स्वयम् अवभातम् अपश्यत् ॥२२॥

अनुवाद— किसी पुरुष के पूर्ण आयु का जितना काल होता है उतने काल तक अच्छी तरह से निष्पन्न योग के द्वारा ब्रह्माजी को ज्ञान प्राप्त हुआ । उसके पश्चात् अपने जिस अधिष्ठान का अन्वेष्ण करके भी ब्रह्माजी नहीं देख पाये थे उसका अपने आप ही अन्तःकरण में प्रकाशित रूप से साक्षात्कार किए ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

पुरुषायुषा संवत्सरशतेन कालेनाभिप्रवृत्तः सुनिष्पन्नो योगस्तेन विरूढ उत्पन्नो बोधो यस्य । यत्पूर्वं विचिन्वन्नपि नापश्यत्तत्स्वयमेवान्तर्हृदयेऽवभातमपश्यत् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

सौ वर्षों तक लगातार योग साधना करने से ब्रह्माजी को ज्ञान उत्पन्न हुआ और उसके पश्चात् वे जिस अपने कारण तत्त्व का अन्वेषण करके भी दर्शन नहीं कर पाये थे । वे श्रीभगवान् अपने आप उनके अन्तःकरण में प्रकाशित हो गये और ब्रह्माजी ने उनका दर्शन किया ॥२२॥

मृणालगौरायतशेषभोगपर्यङ्क एकं पुरुषं शयानम् ।
फणातपत्रायुतमूर्धरत्नद्युभिर्हतध्वान्तयुगान्ततोये ॥२३॥

अन्वयः— युगान्ततोये मृणालगौरायतशेषभोगपर्यङ्के शयानम्, फणातपत्रायुतमूर्धरत्नद्युर्भिः हतध्वान्तं एकं पुरुषम् अपश्यत् ॥२३॥

अनुवाद— उन्होंने देखा कि उस प्रलय कालीन जल में शेष नाग के कमल नाल के समान गौर एवं विशाल शरीर की शय्या पर पुरुषोत्तम भगवान् नारायण अकेले ही लेटे हुए हैं । शेषजी की हजार फणायें छत्र के समान फैली हुयी हैं । उनके सिर पर विद्यमान मुकुट की मणियों की कान्ति से सारा अन्धकार विनष्ट हो रहा है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यदपश्यत्तद्वर्णयति-मृणालेति नवभिः । नवस्वप्यपश्यदित्यस्यैवानुषङ्गः । मृणालवद्गौरश्चासावायतश्च यः शेषस्तस्य भोगो देहः स एव पर्यङ्कस्तस्मिन् । कुत्र स्थिते पर्यङ्के फणातपत्रैरायुताः सर्वतो युक्ता ये मूर्धानस्तेषां रत्नानि किरीटस्थानि तेषां द्युभिः प्रभाभिर्हतध्वान्ते युगान्ततोये ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने जिसे देखा उसका वर्णन नव श्लोकों से करते हैं । इन नव श्लोकों में अपश्यत् क्रिया का सम्बन्ध

है। शेषजी का शरीर कमल नाल के समान गौर वर्ण का तथा विस्तृत था। उसी पर श्रीभगवान् सोये थे, शेषजी के हजारों फण छत्र के समान फैले थे। शेषजी के शिर पर विद्यमान किरीट की मणियों के प्रकाश से सारा अन्धकार विनष्ट हो रहा था ॥२३॥

प्रेक्षां क्षिपन्तं हरितोपलाद्रेः सन्ध्याभ्रनीवेरुरुरुक्ममूर्ध्नः ।
रत्नोदधारौषधिसौमनस्यवनस्रजो वेणुभुजाङ्घ्रिपाङ्घ्रेः ॥२४॥

अन्वयः— हरितोपलाद्रेः सन्ध्याभ्रनीवेः, ऊरूरुक्ममूर्ध्नः रत्नोदधारौषधिसौमनस्य वनस्रजः वेणुभुजाङ्घ्रिपाङ्घ्रेः च प्रेक्षां क्षिपन्तम् अपश्यत् ॥२४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का श्याम वर्ण का श्रीविग्रह मरकत मणि की शोभा को तिरस्कृत रहा था, उनकी कमर का पीताम्बर पर्वत के प्रान्तभाग में स्थित सायंकालीन मेघों की शोभा को तिरस्कृत कर रहा था, श्रीभगवान् के सिर पर विद्यमान सुवर्ण मुकुट सुवर्णमय पर्वत शिखर की शोभा को तिरस्कृत कर रहा था, श्रीभगवान् की अनेक वर्णों वाली वनमाला पर्वत के रत्नों, जलप्रपात, ओषधियों और पुष्पों की शोभा को तिरस्कृत कर ही थी उनके भुजदण्ड वेणुदण्ड की शोभा को तथा चरण वृक्षों की शोभा को तिरस्कृत कर रहे थे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

कथंभूतं पुरुषम्। हरितोपलाद्रेर्मरकतशिलामयपर्वतस्य प्रेक्षां शोभां क्षिपन्तं स्वलावण्यातिशयेन तिरस्कुर्वन्तम्। सन्ध्याभ्रं नीवी परिधानं यस्य तस्य शोभां पीताम्बरेण क्षिपन्तम्। उरुरुक्ममूर्ध्नोऽनेकस्वर्णशिखरस्य तस्य स्वकिरीटैः। रत्नानि च उदधाराश्च ओषधयश्च सौमनस्यानि च, पुष्पसमूहाः सुमनस एव वा तेषां वनस्रजो वनमाला यस्य, वेणव एव भुजा यस्य, अङ्घ्रिपा एवाङ्घ्रयो यस्य स चासौ स च तस्य। अयमर्थः-यदि तस्मिन्माला इव स्थिता रत्नादयो भवन्ति, वेणवश्च भुजा इव, वृक्षाश्च पादा इव तर्हि तस्य शोभां स्वीयरत्नमुक्तातुलसीपुष्पदामभिर्भुजैरङ्घ्रिभिश्च क्षिपन्तमिति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में शेष शय्या पर सोये हुए श्रीभगवान् की अतुलनीय शोभा का वर्णन किया गया है। श्रीभगवान् का शरीर श्याम वर्ण का था। वह अपनी शोभा से नील वर्ण के मरकत मणि के पर्वत की शोभा को तिरस्कृत कर रहा था। श्रीभगवान् अपने कमर में पीला पीताम्बर धारण किये थे। उसकी शोभा पर्वत के प्रान्तभाग में विद्यमान सायंकालीन पीतिमासे पीत बने मेघों की शोभा को तिरस्कृत कर रहा था। श्रीभगवान् के सिर पर विद्यमान सुवर्ण का मुकुट अपनी शोभा से पर्वत के सुवर्णमय शिखरों की शोभा को फीका बना रहा था। अनेक वर्ण के पुष्पों से निर्मित श्रीभगवान् की वनमाला पर्वत के रत्नों, जलधाराओं, ओषधियों, तथा पुष्पों की शोभा को तिरस्कृत कर रही थी, उनके भुजदण्ड पर्वत के वेणुदण्ड की शोभा को तथा उनके चरण वृक्षों की शोभा को तिरस्कृत कर रहे थे।

अयमर्थः इत्यादि- कहने का अभिप्राय है कि श्रीभगवान् की वनमाला में अनेक प्रकार के रत्न पुष्प एवं तुलसी पुष्प ग्रथित थे। अतएव उसकी शोभा पर्वत पर विद्यमान रत्नों, जलप्रपातों, औषधियों और पुष्पों की समुदित शोभा के समान प्रतीत हो रही थी। श्रीभगवान् की भुजाएँ वेणुदण्ड के समान सुदृढ थीं और उनके चरण वृक्षों के समान सुशोभित हो रहे थे। इस प्रकार के श्रीभगवान् का ब्रह्माजी ने दर्शन किया ॥२४॥

आयामतो विस्तरतः स्वमानदेहेन लोकत्रयसंग्रहेण ।
विचित्रदिव्याभरणांशुकानां कृतश्रियापाश्रितवेषदेहम् ॥२५॥

अन्वयः— आयामतः विस्तरतः लोकत्रयसंग्रहेण स्वदेहमानेन विचित्रदिव्याभरणांशुकानाम् कृतश्यिापाश्रित वेष देहम् अपश्यत् ॥२५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का श्रीविग्रह अपनी लम्बाई तथा चौड़ाई के द्वारा त्रैलोक्य के समान विस्तृत था। वह अपनी शोभा से विचित्र तथा दिव्य वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा को सुशोभित करने वाला होने पर भी पीताम्बर तथा आभूषणों आदि से अलंकृत था ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

किंच आयामतो दैर्ध्येण विस्तरतश्च स्वमानदेहेन मीयतेऽनेनेति मानमुपमा शोभनश्चासावमानो निरूपमो देहस्तेन । यद्वा सुष्ठु अमानोऽपरिच्छिन्नस्तेन । यद्वा ताभ्यां स्वानुरूपप्रमाणेन अतएव लोकत्रयं संगृह्यते यस्मिंस्तथा । विचित्राणि नानाविधानि दिव्यान्यपूर्वाणि चाभरणान्यंशुकानि च तेषां कृता आसमन्ताच्छ्री: शोभा येन, तेन देहेन विशिष्टम् । एवं स्वत एवातिरम्यत्वेऽप्यपाश्रितवेष: स्वीकृतालंकारो देहो यस्य तमपश्यत् । यद्वा केन प्रेक्षां क्षिपन्तमित्यपेक्षायामेवंभूतेन देहेनेति सम्बन्धः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के श्रीविग्रह की लम्बाई तथा चौड़ाई त्रैलोक्य के विस्तार के समान अत्यन्त विस्तृत थी। उनके शरीर की शोभा इतनी अच्छी थी कि उस शोभा से दिव्य एवं विचित्र वस्त्रों एवं आभूषणों की शोभा बढ़ जाती थी इतना सुन्दर होने पर भी भगवान् का श्रीविग्रह दिव्य पीताम्बर तथा आभूपणों आदि से समलंकृत था। इस प्रकार के श्रीभगवान् का दर्शन ब्रह्माजी ने किया।

स्वमानदेहेन का मान शब्द उपमा का बोधक है। अर्थात् उनका श्रीविग्रह निरूपम था। स्वमान शब्द का सुष्ठ अमान: अपरिच्छिन्न: यह भी विग्रह हो सकता है। यह भी अर्थ सम्भव है कि श्रीभगवान् का श्रीविग्रह अपने स्वरूपानुरूप लम्बाई तथा चौड़ाई के द्वारा सम्पूर्ण त्रैलोक्य के समान विस्तृत था।

अथवा किसके द्वारा शोभा को तिरस्कृत कर रहे थे श्रीभगवान् ? इस तरह की अपेक्षा होने का उत्तर है कि वे अपने इस प्रकार के निरूपम शरीर के द्वारा उपर्युक्त सबों की शोभा को तिरस्कृत कर रहे थे ।।२५।।

पुंसां स्वकामाय विविक्तमार्गैरभ्यर्चतां कामदुघाङ्घ्रिपद्मम् ।
प्रदर्शयन्तं कृपया नखेन्दुमयूखभिन्नाङ्गुलिचारुपत्रम् ।।२६।।

अन्वयः— नखेन्दुमयूखभिन्नाङ्गुलि चारुपत्रम् स्वकामाय विविक्तमार्गैः अभ्यर्चतां पुंसां कृपया कामदुधांङ्घ्रिपदमम् प्रदर्शयन्तं पुरुषम् अपश्यत् ।।२६।।

अनुवाद— जिनके नखचन्द्र की चन्द्रिका से सुशोभित अङ्गुलियाँ ही सुन्दर दल के समान प्रतीत हो रही थीं ऐसे अपनी मन: कामना की पूर्ति के लिए शुद्ध वैदिक पद्धतियों से पूजा करने वाले भक्तों की कामना को पूर्ण करने वाले, अपने चरण कमलों को कृपा पूर्वक प्रदर्शित करने वाले, श्रीभगवान् का दर्शन ब्रह्माजी ने किया ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

स्वाभिलषितफलाय विविक्तैः शुद्धैर्वेदोक्तैर्मार्गैरभ्यर्चतां पुंसां कामदुघमङ्घ्रिपद्मं प्रदर्शयन्तं किंचिदुन्नमय्य समर्पयन्तम् नखा एव इन्दवस्तेषां मयूखा रश्मयस्तैर्भिन्ना: संभिन्ना अङ्गुलय एव चारूणि पत्राणि यस्य तत् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

अपने अभिलाषित फल की प्राप्ति के लिए शुद्धवेदोक्त पद्धति से पूजा करने वाले लोगों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले, अपने चरण कमल को कृपा पूर्वक पदर्शित करने वाले, तथा जिन चरण कमलों की सुन्दर अङ्गुलियाँ नख चन्द्र की कान्ति से सुशोभित होने के कारण उस चरण कमल के दल के समान थीं ऐसे श्रीभगवान् का दर्शन ब्रह्माजी ने किया। इस श्लोक में यह बतलाया गया है कि भगवान् के चरण कमल ही भक्तों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं ।।२६।।

मुखेन लोकार्तिहरस्मितेन परिस्फुरत्कुण्डलमण्डितेन ।
शोणायितेनाधरबिम्बभासा प्रत्यर्हयन्तं सुनसेन सुभ्र्वा ॥२७॥

अन्वयः— लोकार्तिहरस्मितेन मुखेन, परिस्फुरत् कुण्डलमण्डितेन शोणायितेन अधरविम्बभासा सुनसेन सुभ्रूवा प्रत्यर्हयन्तं अपश्यत् ।।२७।।

अनुवाद— संसार के कष्ट को विनष्ट करने वाले मुसकान से युक्त मुखारविन्द के द्वारा, चमकते हुए कुण्डल की शोभा से युक्त कानों के द्वारा, विम्बफल के समान नाक और सुन्दर भौहें के द्वारा, अपने आराधक भक्तों का सम्मान करने वाले श्रीभगवान् का ब्रह्माजी ने दर्शन किया ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

लोकार्तिहरं स्मितं यस्मिंस्तत् । परिस्फुरद्भ्यां कुण्डलाभ्यां मण्डितेन । अधरबिम्बदीप्त्या शोणवदाचरितेन शोभननासायुक्तेन सुभ्र्वा च प्रत्यर्हयन्तं पूजकान्प्रति पूजयन्तं संमानयन्तम् ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

मुसकान से मण्डित श्रीभगवान् का मुख मण्डल संसारी जीवों के कष्टों को विनष्ट कर देने वाला है, ऐसे मुख के द्वारा, उनके कानों में चमकते हुए कुण्डल विम्बफल के समान, लाल-लाल ओष्ठ की कान्ति से सुन्दर नासिका एवं मनोहर भौहों से अपने आराधकों का सम्मान करने वाले श्रीभगवान् का ब्रह्माजी ने दर्शन किया ।।२७।।

कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससा स्वलंकृते मेखलया नितम्बे ।
हारेणचानन्त धनेन वत्स श्रीवत्स वक्षःस्थल बल्लभेन ॥२८॥

अन्वयः— हे वत्स कदम्बकिञ्जल्क पिशङ्गवाससा मेखलया च नितम्बे अनन्तधनेन हारेण श्रीवत्स वक्षःस्थल बल्लभेन स्वलङ्कृतं अपश्यत् ।।२८।।

अनुवाद— उनके नितम्ब वक्षःस्थल अनर्घ्यहार और सुनहरी रेखा वाले श्रीवत्सचिह्न की अपूर्व शोभा हो रही थी ऐसे श्रीभगवान् को ब्रह्माजी ने देखा ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

कदम्ब किञ्जल्कवत् पिशङ्गं यद्वासस्तेन मेखलया च नितम्बे स्वलङ्कृतम् । श्रीवत्सयुक्तं यद्वक्षःस्थलं तस्य बल्लभेन वक्षयमर्घ्येण हारेणस्वलङ्कृतमित्यर्थः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

वे अपने कमर मे कदम्बपुष्प के पराग के समान पीताम्बर तथा सुवर्ण निर्मित करधनी को धारण किए थे। श्रीवत्स चिह्न से युक्त जो वक्षःस्थल था उसको प्रिय लगने वाले बहुमूल्य हार से अलंकृत श्रीभगवान् को ब्रह्माजी ने देखा ।।२८।।

पराघ्र्यकेयूरमणिप्रवेकपर्यस्तदोर्दण्डसहस्रशाखम् ।
अव्यक्तमूलं भुवनाङ्घ्रिपेन्द्रमहीन्द्रभोगैरधिवीतवल्शम् ॥२९॥

अन्वयः— अव्यक्तमूलं भुवनाङ्घ्रिपेन्द्रम् परार्घ्यकेयूरमणिप्रवेकपर्यस्तदोर्दण्ड सहस्रशाखम् अहीन्द्र भोगैरधिवीतवल्शम् अपश्यत् ।।२९।।

अनुवाद— वे श्रीभगवान् अव्यक्तमूल चन्दन वृक्ष के समान है, उत्तम मणियों से जटित महामूल्यवान् केयूर से सुशोभित उनके विशाल भुजदण्ड ही मानो उसकी सहस्त्रों शाखायें हैं जिस तरह के वृक्षों में सर्प लिपटे रहते हैं उसी तरह उनके कन्धों को शेषजी के फणों ने लपेट रखा है ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

महाचन्दनवृक्षरूपकेण निरूपयितुं तं विशिनष्टि । परार्घ्यानि श्रेष्ठानि केयूराण्यङ्गदानि मणिप्रवेकाश्च मण्युत्तमास्तैः पर्यस्ता व्याप्ता दोर्दण्डा एव सहस्रमनन्ताः शाखा यस्य । चन्दनवृक्षोऽपि केयूरादितुल्यैः फलपुष्पादिभिर्व्याप्तशाखो भवति । अव्यक्तं प्रधानं मूलमधोभागो यस्य । यद्वा अव्यक्तं ब्रह्म मूलं यस्य, ब्रह्माभिव्यक्तिरूपत्वात् । वृक्षस्यापि मूलं न व्यक्तम् । भुवनात्मकमङ्घ्रिपेन्द्रम् । अहीन्द्रस्यानन्तस्य भोगैः फणैर्देहावयवैर्वाऽधिवीताः संवेष्टिताः स्पृष्टा वल्शाः स्कन्धा यस्य । '**वनस्पते शतवल्शो विरोह**' इति श्रुतेः । सोऽपि सर्पैर्वेष्टितो भवति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रीभगवान् को रूपकालंकार के माध्यम से महान् चन्दन वृक्ष के समान बतलाया गया है। जिसमें उत्तम मणियाँ जटित हैं ऐसे केयूर से मण्डित भगवान् की भुजाएँ ही उस महावृक्ष की अनन्त शाखायें हैं। चन्दन वृक्ष भी फल पुष्पादि को से व्याप्त होता है । श्रीभगवान् के नीचे अव्यक्त प्रकृति है । श्रीभगवान् ब्रह्म की अभिव्यक्ति हैं अतएव अव्यक्त ही उनका मूल है । वृक्ष का भी मूल व्यक्त नहीं होता है । ऐसे भगवान् भुवनात्मक महावृक्ष के समान हैं । सर्पों के स्वामी श्रीशेषनाग के देहों के अवयव उनसे लिपटे हुए हैं और चन्दन वृक्ष की भी शाखाओं में सर्प लिपटे रहते हैं । श्रुति भी कहती है **वनस्पते शतवल्शो विरोहः** अर्थात् हे वनस्पति स्वरूप भगवन् आप सैकड़ो शाखाओं से युक्त और आरोह रहित हैं ।।२९।।

चराचरौको भगवामहीध्रमहीन्द्रबन्धुं सलिलोपगूढम् ।
किरीटसाहस्रहिरण्यशृङ्गमाविर्भवत्कौस्तुभरत्नगर्भम् ।।३०।।

अन्वयः— अहीन्द्रबन्धुम् सलिलोपगूढम् चराचरौको भगवान् महध्रम् किरीट साहस्र हिरण्यशृङ्गम् कौस्तुभरत्नगर्भम् भगवन्तम् अपश्यत् ।।३०।।

अनुवाद— नागराज शेष के बन्धु भगवान् नारायण जल से चारो तरफ से धिरे हुए पर्वत के समान थे। सम्पूर्ण चराचर के आश्रय स्वरूप भगवान् अनेक जीवों के आश्रय स्वरूप पर्वत के समान थे । जिस तरह भगवान् एकार्णव के जल से घिरे थे उसी तरह मैनाक आदि पर्वत भी जल से घिरे रहते हैं । उनके हजारों किरीट ही मेरु आदि पर्वतों के शिखर के समान थे, तथा रत्नों को उत्पन्न करने वाले पर्वत के समान श्रीभगवान् के वक्षःस्थल पर कौस्तुभ मणि सुशोभित हो रही थी । इसप्रकार के श्रीभगवान् का ब्रह्माजी ने दर्शन किया ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

प्रेक्षां क्षिपन्तमित्यत्रैव पर्वतरूपकेण निरूपितमपि विशेषणान्तरैः पुनर्निरूपयति । भगवानेव महीध्रस्तम् । चराचराणामोकः स्थानम् । सोऽपि तथा । अहीन्द्रस्य बन्धुम् । सोऽप्यहीन्द्राणां बन्धुः । सलिलेनोपगूढमावृतम् । पर्वतोऽपि मैनाकादिस्तथा । किरीटसाहस्रमेव हिरण्यशृङ्गाणि यस्य । सोऽपि मेर्वादिस्तथा यथा पर्वतस्य गर्भे क्वचिद्रत्नमाविर्भवति तथा आविर्भवत्स्पष्टं दृश्यमानं कौस्तुभरत्नं गर्भे मूर्तिमध्ये यस्य तम् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

इससे श्रीभगवान् को पर्वतरूपक के माध्यम से निरूपित किया जा चुका है, फिर भी दूसरे विशेषणों से श्रीभगवान् को पर्वत रूपक के माध्यम से निरूपित करते हैं । श्रीभगवान् ही पर्वत हैं सम्पूर्ण चराचरों के आश्रय स्थान हैं, पर्वत भी चराचरों का आश्रय है । श्रीभगवान् शेषनाग के बन्धु हैं और पर्वत भी सर्पों का बन्धु होता है । उस पर सर्पों का निवास होता है । भगवान् एकार्णव के जल से घिरे हैं । मैनाक आदि पर्वत भी जल से घिरा है । श्रीभगवान् सहस्रशीर्षा हैं । उनके हजारों किरीट ही शिखर हैं । सुमेरु पर्वत के शिखर भी सुवर्णमय हैं । जैसे पर्वत के भीतर कहीं पर रत्न मिलता है । श्रीभगवान् के भी वक्षःस्थल में कौस्तुभमणि दिखायी देती है ।।३०।।

निवीतमाम्नायमधुव्रतश्रिया स्वकीर्तिमय्या वनमालया हरिम् ।
सूर्येन्दुवाय्वग्न्यगमं त्रिधामभिः परिक्रमत्प्राधनिकैर्दुरासदम् ॥३१॥

अन्वयः— आम्नायमधुव्रतश्रिया स्वकीर्तिमय्या वनमालया निवीतम् सूर्येन्दुवाय्वग्न्यगमं त्रिधामभिः परिक्रमत्प्राधनिकैः दुरासदम् हरिम् अपश्यत् ॥३१॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने वेद रूपी भौरों से गुंजित अपनी कीर्तिमयी वनमाला से मण्डित, सूर्य, चन्द्रमा, वायु तथा अग्नि के लिए भी अगम्य त्रैलोक्य में निबाध रूप से विचरण करने वाले सुदर्शन चक्र आदि आयुधों के लिए भी दुष्प्राप्य श्रीहरि को देखा ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

किंच वनमालया निवीतं कण्ठलम्बिन्या व्याप्तम् । आम्नाया वेदा एव मधुव्रतास्तैः श्रीर्यस्यास्तया हरिमिति पर्वतादिरूपमपश्यत्, हरिरसाविति ज्ञातवानित्यर्थः । सूर्यादिभिरगममगम्यम् । स्वव्यापारैराकलयितुमशक्यमित्यर्थः । किंच त्रिष्वपि लोकेषु धाम स्फूर्तिर्येषां तैः, रक्षणार्थं परिक्रमद्भिः परितो धावद्भिः प्राधनिकैः प्रधनं संग्रामस्तत्प्रयोजनैः सुदर्शनादिभिर्हेतुभूतैर्दुरासदं दुष्प्रापम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

कण्ठ में लटकने वाली वनमाला जो वेद रूपी भौरों से गुंजित है, उससे व्याप्त पर्वतादि रूप श्रीहरि को ब्रह्माजी ने देखा, अर्थात् वे जाने कि ये ही श्रीहरि हमारे अधिष्ठान (आश्रय) हैं । वे श्रीहरि सूर्य चन्द्रमा आदि देवताओं के भी लिए अगम्य हैं । अर्थात् सूर्य चन्द्रमा उन श्रीभगवान् को अपने व्यापार से संतप्त नहीं कर सकते हैं । जिन लोगों की तीनों लोकों में अवाध रूप से गति हैं, अर्थात् जो त्रैलोक्य की रक्षा करने के लिए चारो ओर आते-जाते रहते हैं, ऐसे सुदर्शन चक्र आदि जो युद्ध में काम आने वाले आयुध हैं उन लोगों के लिए भी दुष्प्राप्य हैं वे श्रीभगवान् ॥३१॥

तर्ह्येव तन्नाभिसरःसरोजमात्मानमम्भः श्वसनं वियच्च ।
ददर्श देवो जगतो विधाता नातः परं लोकविसर्गदृष्टिः ॥३२॥

अन्वयः— तर्हि एव लोकविसर्गदृष्टिः जगतः विधाता तन्नाभिसरः सरोजम्, आत्मानम्, अम्भः श्वसनं वियत् च ददर्श अतः परं न किञ्चिदिति शेषः ॥३२॥

अनुवाद— उस समय विश्व रचना की दृष्टि वाले ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् की नाभिसरोवर में उत्पन्न कमल को, अपने को, जल, वायु को तथा आकाश को इन पाँच वस्तुओं की देखा इनसे अतिरिक्त किसी दूसरी वस्तु को उन्होंने नहीं देखा ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

यदैवं हरिमपश्यत्तर्ह्येव तदैव लोकविसर्गदृष्टिः संस्तस्य नाभिसरसि सरोजं श्वसनं प्रलयवायुं वियदाकाशं च ददर्श॥३२॥

भाव प्रकाशिका

जिस समय ब्रह्माजी ने इस प्रकार से श्रीहरि को देखा उसी समय उन्होंने जगत् की सृष्टि की इच्छा वाले ब्रहह्माजी ने श्रीभगवान् के नाभि रूपी सरोवर में विद्यमान कमल को, जल को, अपने को, प्रलयकालीन वायु को तथा आकाश को देखा ॥३२॥

स कर्मबीजं रजसोपरक्तः प्रजाः सिसृक्षन्नियदेव दृष्ट्वा ।
अस्तौद्विसर्गाभिमुखस्तमीड्यमव्यक्तवर्त्मन्यभिवेशितात्मा ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीय स्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अन्वयः— रजसा उपरक्तः प्रजाः सिसृक्षन् स इयदेव कर्मबीजं दृष्ट्वा विसर्गाभिमुखः सन् अव्यक्तवर्त्मनि अभिवेशितात्मा अस्तौद् ॥३३॥

अनुवाद— रजोगुण से युक्त तथा प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा वाले ब्रह्माजी सृष्टि के कारण भूत इन पाँच ही वस्तुओं को देखकर सृष्टि करने के लिए उत्सुक होने के कारण अज्ञात गति श्रीभगवान् में अपने चित्त को लगाकर उनकी स्तुति करने लगे ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥

भावार्थ दीपिका

कर्मबीजं लोकसृष्टेः कारणम् । रजसा उपरक्तो रजोगुणयुक्तः । अतः प्रजाः स्रष्टुमिच्छन्नियदेव नाभिसरोजादिपञ्चकमेव । विसर्गेऽप्यभिमुखो दत्तचित्तः अव्यक्तवर्त्मनि भगवति निवेशितचित्तः ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे तृतीय स्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

रजोगुण से युक्त होने के कारण ब्रह्माजी सृष्टि करना चाहते थे और उन्होंने बत्तीसवें श्लोक में वर्णित कमल आदि पाञ्च वस्तुओं को ही सृष्टि के कारण रूप से देखा । उनका मन सृष्टि करने में लगा था अतएव उन्होंने अव्यक्त गति श्रीभगवान् की स्तुति की ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध की भावार्थदीपिकाटीका के आठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥८॥

* * *

नवाँ अध्याय

ब्रह्माजी द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति

ब्रह्मोवाच

ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ।
नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥१॥

अन्वयः— अद्य मे सुचिरात् ज्ञातोऽसि ननु देहभाजां भगवतः गतिः न ज्ञायत इति अवद्यम्, भगवन् त्वदन्यत् न अस्ति। अपि तन्न शुद्धम् मायागुण व्यतिकरात् उरुः विभासि ॥१॥

अनुवाद— आज आप दीर्घकाल की तपस्या के पश्चात् ज्ञात हुए हैं । शरीर धारियों का यह बहुत अधिक दुर्भाग्य है कि वे आपके स्वरूप को जान नहीं पाते हैं । आपके अतिरिक्त दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है । जिस वस्तु की प्रतीति होती है वह भी स्वरूपतः सत्य नहीं है । माया के गुणों से मिश्रित होकर आप ही अनेक रूपों में प्रतीत होते हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

नवमे तपसा तुष्टं दृष्ट्वा नारायणं त्वजः । अस्तौदेकार्णवे सीदँल्लोकसर्गचिकीर्षया ।।१।। भगवज्ज्ञानेनात्मनः कृतार्थतामाविष्कुर्वन्नज्ञांश्च शोचन्नाह । ज्ञातोऽसीति । सुचिराद्बहुकालोपासनेनाद्य मे मया ज्ञातोऽसि नन्वहो देहभाजामेतन्महान् दोषः । किं तत् । यद्भगवतस्तव गतिसत्त्वं न ज्ञायत इति । यतस्त्वमेव ज्ञातुं योग्यः सत्यत्वान्नान्यदसत्यत्वादित्याह । सत्यं त्वत्तोऽनयन्नास्ति । यदप्यस्तीति प्रतिभाति तदपि शुद्धं सत्यं न भवति । कथमसतः प्रतीतिस्तत्राह । यद्यतो मायागुणक्षोभात्त्वमेवोरु-र्बहुरूपो विभासि ।।१।।

भाव प्रकाशिका

विश्व की सृष्टि की इच्छा वाले ब्रह्माजी किंकर्तव्यविमूढ होने के कारण एकार्णव की बेला में कष्ट का अनुभव कर रहे थे । ब्रह्माजी की तपस्या से प्रसन्न हुए भगवान् नारायण की की गयी स्तुति का वर्णन इस नवें अध्याय में किया गया है ।।१।। भगवत् तत्त्व का ज्ञान हो जाने के कारण अपनी कृत-कृत्यता का अनुभव करते हुए तथा भगवत् तत्त्व से अनभिज्ञ जीवों के विषय में शोक करते हुए ब्रह्माजी ने **ज्ञातोऽसि० इत्यादि** श्लोक को कहा है । वे कहते हैं कि हे प्रभो ! बहुत समय तक उपासना के द्वारा आज मैं आपको जान सका हूँ । जीवों का यह बहुत बड़ा दोष है कि वे आपके तत्त्व को नहीं जान पाते हैं । इसका कारण यह है कि केवल आप ही जानने योग्य तत्त्व हैं, आप ही सत्य हैं । आप से भिन्न वस्तु असत्य होने के कारण जानने योग्य नहीं है । जिन वस्तुओं की सत्ता प्रतीत भी होती है वे भी सत्य नहीं हैं । यदि कहें कि असत् वस्तु की प्रतीति कैसे सम्भव हैं तो इसका उत्तर है कि आप ही माया के गुणों से युक्त होकर अनेक रूपों में प्रतीत होते हैं ।।१।।

रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय ।
आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ।।२।।

अन्वयः— अवबोध रसोदयेन शश्वत् निवृत्ततमसः स्वरूपं सदनुग्रहाय आदौ गृहीतम् अवतार शतैकबीजम्, यन्नाभिपद्म भवनात् अहम् आविरासम् ।।२।।

अनुवाद— हे भगवन् ! आपकी चित्शक्ति के प्रकाशित रहने के कारण अज्ञान सदा आपसे दूर रहता है, आपका यह रूप, जिसके नाभिकमल से मैं प्रकट हुआ हूँ; यह सैकड़ों अवतारों का मूल है । सत्पुरुषों पर कृपा करने के ही लिए आपने इसे सर्वप्रथम प्रकट किया है ।।२।।

भावार्थ दीपिका

ननु त्वमपि सम्यङ् न जानासि । यत्त्वया दृष्टं रूपमेतदपि गुणात्मकमेव । निर्गुणं ब्रह्मैव तु सत्यं तत्राह-रूपमिति द्वाभ्याम् । अवबोधरसोदयेन चिच्छक्त्याविर्भावेन शश्वत्सदा निवृत्तं तमो यस्मात्तस्य तव यदेतद्रूपं त्वयैव स्वातन्त्र्येण सतामुपासकानामनुग्रहाय गृहीतमाविष्कृतमवतारशतस्य शुद्धसत्त्वात्मकस्य यदेकं बीजं मूलम् । तत्प्रदर्शनार्थं गुणावतारबीजत्वं दर्शयति-यन्नाभीति ।।२।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तुम भी अच्छी तरह से नहीं जानते हो तुमने जिस रूप को देखा है, यह भी गुणात्मक ही है । निर्गुण ब्रह्म ही सत्य है । तो इस पर ब्रह्माजी दो श्लोकों द्वारा कहते हैं— आपकी चित्शक्ति सदा अविर्भूत रहती है, उसके कारण आपसे अज्ञान सदा दूर ही रहता है । आपने इस अवतार को अपने उपासकों पर कृपा करने के लिए धारण किया है । यह आपके शुद्ध सत्त्वात्मक सैकड़ो अवतारों का मूल कारण है । आपके इस रूप के नाभि कमल से मैं अविर्भूत हुआ हूँ । अतएव आपका यह अवतार गुणावतारों का मूल कारण है । इसी अर्थ का प्रतिपादन **यन्नाभि० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया गया है ।।३।।

नातः परं परम यद्भवतः स्वरूपमानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ।
पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन् भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥३॥

अन्वयः— अतः परम् भवतः यत् आनन्दमात्रम् अविकल्पम् अविद्धवर्चः स्वरूपम् तत् परं न, पश्यामि । हे आत्मन् ते अदः विश्वसृजम् अविश्वम् भूतेन्द्रियात्मकम् अदः रूपं उपाश्रितोऽस्मि ॥३॥

अनुवाद— हे भगवन् ! उससे भिन्न जो आपका आनन्दस्वरूप, भेद रहित अखण्डतेजोमय स्वरूप है । उसे मैं इससे भिन्न नहीं मानता हूँ, इसीलिए आपका यह, विश्व की सृष्टि करने वाला होने पर भी विश्वातीत भूतों तथा इन्द्रियों के कारण स्वरूप है इस रूप की मैंने शरण ली है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

हे परम्, अविद्धवर्चोऽनावृतप्रकाशम् । अतोऽविकल्पं निर्भेदम् । अत एवानन्दमात्रम् । एवंभूतं यद्भवतः स्वरूपं तदतो रूपात्परं भिन्नं न पश्यामि किंत्विदमेव तत् । अतः कारणात्ते तव अदः इदं रूपमाश्रितोऽस्मि । योग्यत्वादपीत्याह । एकमुपास्येषु मुख्यम् । यतो विश्वसृजं विश्वं सृजतीति विश्वसृजमत एवाऽविश्वं विश्वस्मादन्यत् । किंच भूतेन्द्रियात्मकं भूतानामिन्द्रियाणां चात्मानं कारणमित्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

हे आत्मस्वरूप परमात्मन् आपका जो अनावृत्त प्रकाशस्वरूप होने के कारण भेदरहित तथा आनन्दमात्र इससे भिन्न स्वरूप है, उसकी मैं इसलिए इससे भिन्न नहीं मानता हूँ कि आपका जो यह विश्व की सृष्टि करने वाला रूप है वह विश्वातीत है तथा भूतों एवं इन्द्रियों का कारण है ॥३॥

तद्वा इदं भुवनमङ्गल मङ्गलाय ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम् ।
तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसङ्गैः ॥४॥

अन्वयः— हे भुवनमङ्गल तद् वा इदं नः उपासकानाम् मङ्गलाय ध्याने दर्शितम्, तस्मै भगवते तुभ्यम् नमः अनुविधेम यः नरकभाग्भिः असत् प्रसङ्गैः अनादृतः ॥४॥

अनुवाद— हे संसार के कल्याण स्वरूप भगवन् आपका वह रूप हम उपासकों के लिए मङ्गलकारी है । इसीलिए आपने ध्यान में अपने इस रूप को दिखाया । हम आपके इसी रूप को बार-बार नमस्कार करते हैं । जो पापी विषयी जीव हैं वे ही आपके इस रूप का अनादर करते हैं । वे नरक के भागी हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवमपि सोपाधिकमेतदर्वाचीनमेवेत्याशङ्क्याह । तद्वै तदेवेदम् । हे भुवनमङ्गल । यतस्ते त्वया नोऽस्माकमुपासकानां मङ्गलाय ध्याने दर्शितम् । न ह्यव्यक्तवर्त्माभिनिवेशितचित्तानामस्माकं सोपाधिकदर्शनं युक्तमिति भावः । अतस्तुभ्यं नमोऽनुविधेमाऽनुवृत्त्या करवाम । तर्हि किमिति केचिन्मां नाद्रियन्ते तत्राह-योऽनादृत इति । असत्प्रङ्गैर्निरीश्वरकुतर्कनिष्ठैः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मेरा यह भी रूप सोपाधिक कहने के कारण अर्वाचीन है, तो इसका उत्तर है कि आपका यह वही रूप है । हे जगत् के लिए मङ्गल स्वरूप भगवन् ! आपने हम उपासकों का मङ्गल करने के लिए इस रूप का दर्शन ध्यान में कराया है । आप अविज्ञातगति हैं । आपमें अपने चित्त को लगाने वाले हमलोगों को सोपाधिक दर्शन कराना उचित नहीं है । अतएव मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ । यदि कहें कि इससे क्या हुआ? कुछ लोग मेरा अनादर करते हैं । तो इसका उत्तर है कि वे पापी जीव हैं और निरीश्वर कुतर्कों को उपन्यस्त करते हैं । अतएव वे नरकगामी जीव हैं ॥४॥

ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं जिघ्रन्ति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम् ।
भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम् ॥५॥

अन्वयः— हे नाथ ये तु श्रुतिवातनीतम् त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं कर्णविवरैः जिघ्रन्ति ह तेषां परया भक्त्या गृहीत चरणः तेषां स्वपुंसाम् हृदयाम्बुरुहात् नापैषि ॥५॥

अनुवाद— हे नाथ ! जो लोग वेदरूपी वायु के द्वारा लाये गये आपके चरण कमल रूपी कोश की सुगन्धि को अपने कर्णविवरों के द्वारा ग्रहण करते हैं वे अपनी परा भक्ति रूपी रस्सी से आपके चरणों को बाँध लेते हैं। फलतः उन अपने भक्तों के हृदय से आप नहीं निकल पाते हैं ।

भावार्थ दीपिका

आदरेण तु त्वां भजन्तः कृतार्था इत्याह-ये त्विति । श्रुतिर्वेदः स एव वातस्तेन नीतं प्रापितम् । नापैषि नापयासि । ये त्वत्कथाश्रवणमत्यादरेण कुर्वन्ति तेषां हृदि नित्यं प्रकाशसे इत्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

जो जीव आपका भजन आदर पूर्वक करते हैं वे कृतार्थ हो जाते हैं इस अर्थ को **ये तु इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । ब्रह्माजी कहते हैं कि हे प्रभो ! जो लोग वेदों में वर्णित आपके चरण कमलों की महिमा का श्रवण करते हैं, वे अपनी पराभक्ति रूपी रस्सी से आपके चरणों को बांध लेते हैं, और अपने उन भक्तों के हृदय से आप निकल नहीं पाते हैं । उन लोगों के हृदय में आप सदा प्रकाशित होते रहते हैं ॥५॥

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवा विपुलश्च लोभः ।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥६॥

अन्वयः— यावत् लोकःते अभयम् अङ्घ्रि न प्रवृणीत तावत् द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं भयं, शोकः, स्पृहा, परिभवः विपुलः लोभः च तावत् अर्तिमूलं मम इति असद्ग्रहः ॥६॥

अनुवाद— जब तक मनुष्य आपके अभयप्रद चरणों को शरण रूप से नहीं अपनाता है । तब तक उसे धन, गृह तथा बान्धवों के द्वारा होने वाला भय शोक, लालसा, दीनता और अत्यधिक लोभ सताते रहते हैं और उतने ही समय तक समस्त दुःखों के मूल अहंत्व एवं ममत्व इत्यादि उसे सताते रहते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह-तावदिति । द्रविणादौ विद्यमाने भयं, गते शोकः, पुनश्च स्पृहा, ततः परिभव, तथापि विपुलो लोभस्तृष्णा पुनः कथंचित्प्राप्ते ममेत्यसदाग्रहः । आर्तिमूलं भयशोकादेः कारणम् । न प्रवृणीत नाश्रयेत् त्वत्पादाश्रयणमात्रेण भयादिनिवृत्तिः किं पुनस्त्वत्प्रकाशे सतीति भावः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

भक्तों के हृदय में विद्यमान रहने मात्र से क्या हुआ ? तो इसके उत्तर में **तावत्० इत्यादि** यह श्लोक कहा गया है । धन इत्यादि के रहने पर उनके विनष्ट होने का भय बना रहता है और विनष्ट हो जाने पर शोक होता हैं उसके पश्चात् धन प्राप्त करने की लालसा होती है, तदर्थ अनादर भी होता है, फिर भी बहुत अधिक लोभ होता है । किसी तरह धन के प्राप्त हो जाने पर भी भय एवं शोक इत्यादि का कारण भूत धनादि में अहंत्व ममत्व आदि का दुराग्रह हो जाता है । ये सभी उत्पात तब तक होते हैं जब तक मनुष्य आप श्रीभगवान् के चरणों को अपने रक्षक रूप से नहीं अपनाता है । आपके चरणों का आश्रय प्राप्त हो जाने पर सारे भय आदि दूर हो जाते हैं । यदि आपका प्रकाश हृदय में बना रहे तो फिर क्या कहना है ॥६॥

दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसङ्गात्सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रिया ये ।
कुर्वन्ति कामसुखलेशलवाय दीना लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् ॥७॥

अन्वयः— ते दैवेन हतधियः ये सर्वाशुभोपशमनात् भवतः प्रसङ्गात् विमुखेन्द्रियाः कामसुखलेशलवाय दीनाः लोभाभिभूतमनसः शाश्वत् अकुशलानि कुर्वन्ति ॥७॥

अनुवाद— वे लोग अभागे हैं जो लोग समस्त कष्टों को दूर करने वाली आपकी कथा का श्रवण तथा कीर्तन आदि से अपने मन को हटाकर काम सुख के लेशमात्र की प्राप्ति के लिए दीन और सदा लालायित मना होकर निरन्तर पापकर्मों को किया करते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

ये निष्कामा अपि सन्तस्त्वां नाद्रियन्ते ते नरकभाज इत्युक्तं ये तु त्वत्कथाश्रवणादिविमुखाः सन्तः काम्यकर्मपरास्तेऽतिमन्दा इत्याह । दैवेन ते हतधियो नष्टमतयः । प्रसङ्गाच्छ्रवणकीर्तनादिरूपात्सर्वदुःखनिवर्तकाद्विमुखानीन्द्रियाणि येषाम् । अकुशलान्यक्षेमकराणि ॥७॥

भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि जो लोग निष्काम हैं फिर भी आपका समादर नहीं करते हैं वे नरक के पात्र हैं, जो लोग काम्य कर्मो को करते है किन्तु आपकी कथा इत्यादि के श्रवण से विमुख रहते हैं वे अत्यन्तमन्द भाग्य वाले हैं । इसी अर्थ का प्रतिपादन **दैवेन ते इत्यादि** श्लोक से किया जा रहा है । उनकी बुद्धि को दैव ने नष्ट कर दिया है । वे लोग समस्त दुःखों को विनष्ट करने वाले श्रीभगवान् की कथा के श्रवण तथा कीर्तन से अपने मन को हटा लेते हैं । तथा क्षणिक कामसुख की प्राप्ति के लिए दीन होकर मन ही मन सदा लालायित रहते हैं और उसके कारण निरन्तर पाप ही करते रहते हैं ॥७॥

क्षुत्तृटत्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः शीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च ।
कामाग्निनाऽच्युतरुषा च सुदुर्भरेण संपश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥८॥

अन्वयः— हे उरुक्रम हे अच्युत इमाः क्षुत् तृटत्रिधातुभिः शीतोष्णवात वर्षैःइतरेतराच्च, सुदुर्भरेण कामाग्निना रुषा च मुहुरर्द्यमानाः सम्पश्यतः मे मन सीदते ॥८॥

अनुवाद— हे भगवन् अच्युत इन प्रजाओं को भूख, प्यास, वात, पित्त, कफ, शीत, उष्ण, वायु, वर्षा तथा परस्पर में एक दूसरे को, जिसको पूरा करना अत्यन्त कठिन है उस कामाग्नि से तथा क्रोध से बार-बार कष्ट पाते हुए देखकर मेरा मन अत्यन्त कष्ट का अनुभव करता है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अकुशलत्वमेव दर्शयति । क्षुच्च तृट् च त्रिधातवश्च वातपित्तश्लेष्माणस्तैः । इमाः प्रजाः सुदुर्भरेण दुःसहेन कामाग्निनाऽच्युतया रुषाऽविच्छिन्नक्रोधेन च पीड्यमानाः संपश्यतो मे मनः सीदति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

जीवों की अकुशलता का ही वर्णन करते हैं । भूख, प्यास, कफ, वात और पित्त इन तीनों धातुओं से दुःसह कामाग्नि से तथा निरनतर क्रोध से पीड़ित होती हुयी इन समस्त प्रजाओं को देखकर मेरा मन अत्यन्त दुःखी होता है, सोचता हूँ कि इन जीवों को किस साधन से मैं मुक्त करूँ ?॥८॥

यावत्पृथक्त्वमिदमात्मन इन्द्रियार्थमायाबलं भगवतो जन ईश पश्येत् ।
तावन्न संसृतिरसौ प्रतिसंक्रमेत व्यर्थापि दुःखनिवहं वहती क्रियार्था ॥९॥

अन्वयः— हे ईश यावत् असौ इन्द्रियार्थमायाबलं इदम् आत्मनः पृथक्त्वं न पश्यति तावत् असौ व्यर्थापि दुःखनिवहं वहती संसृतिः न प्रतिसंक्रमेत ॥९॥

अनुवाद— हे भगवन् जब तक मनुष्य माया के प्रभाव से प्रतीत होने वाले इन्द्रियों के विषय से तथा आपसे अपने आप के पृथक्त्व का अनुभव नहीं करता है तब तक उसके संसारचक्र की निवृत्ति नहीं हो सकती है। यद्यपि यह मिथ्या है फिर भी कर्मों के फल का क्षेत्र होने के कारण कष्टों को प्रदान करता ही है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवंभूतायाः संसृतेरपरमार्थत्वात्किमर्थं विषादः क्रियते तत्राह यावदिति । आत्मन इदं पृथक्त्वं देहादिभावम् । भगवतस्त्वेन्द्रियार्थरूपा या माया तया बलमाधिक्यं यस्य तत् । न प्रतिसंक्रमेत नोपरमेत । दुःखसमूहं प्रापयन्ती । क्रियाणामर्थः फलं यस्याम् । पृथक्तामिदमिति पाठे इदं देहादि त्वदिति त्वत्तः पृथक् पश्येद्यावत्तावद्व्यर्थापि नोपरमेत ॥९॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि यह संसारचक्र तो मिथ्या है, इसके लिए इतना विषाद क्यों करते ही तो इस पर ब्रह्माजी ने **यावत् इत्यादि** श्लोक को कहा— यह आपकी माया इन्द्रियों के विषय स्वरूपिणी है, उसके कारण यह संसार चक्र अधिक बल सम्पन्न है । जब तक मनुष्य आपकी माया से अपने देहादि भाव को अलग नहीं मानता है तब तक उसका संसारचक्र नहीं निवृत्त हो सकता है । यह संसारचक्र मनुष्य को बहुत अधिक कष्ट प्रदान करता है। इसमें कर्मों का फल भोगना पड़ता है । जहाँ पर पृथक्तामिदम् पाठ है, वहाँ पर अर्थ होगा कि आपसे अलग देहादि भाव को वह नहीं देखता है तब तक व्यर्थ संसारचक्र से नहीं निवृत्त होता है ॥९॥

अह्न्यापृतार्तकरणा निशि निःशयाना नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः ।
दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव युष्मत्प्रसङ्गविमुखा इह संसरन्ति ॥१०॥

अन्वयः— हे देव ! युष्मत् प्रसङ्गविमुख ऋषयः अपि अह्नि आपृतार्तकरणा, निशि निःशयानाः नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः दैवाहतार्थरचनाः इह संसरन्ति ॥१०॥

अनुवाद— हे देव ! आपके कथा प्रसङ्ग से विमुख रहने वाले मुनिजन भी दिन में अनेक प्रकार के व्यापारों के कारण विक्षिप्त चित्त वाले रहते हैं और रात्रि में अचेत होकर सोने वाले तथा सोते समय भी विभिन्न प्रकार के मनोरथों के कारण क्षण-क्षण में उनकी नीद खुल जाती है । तथा दैववशात् उनके सारे मनोरथ भग्न भी होते रहते हैं । इस तरह से उन ऋषियों को भी संसार चक्र में पड़ना पड़ता है तो औरों की क्या बात हैं ?॥१०॥

भावार्थ दीपिका

भवत्वेवमविवेकिनां, विवेकिनस्तु मुक्ता एवेति किं तेषां भक्त्या कृत्यमत आह । अह्नि आपृतानि व्यापृतानि च तान्यार्तानि क्लिष्टानि करणानीन्द्रियाणि येषां रात्रौ विषयसुखलवोऽपि नास्ति, यतो निशि निःशयानाः स्वप्नदर्शनेन च क्षणे क्षणे भग्ननिद्रा दैवेनाहताः सर्वतः प्रतिहता अर्थरचना अर्थोद्यमा येषाम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि अज्ञानी जीव तो संसार चक्र में पड़कर कष्ट भोगते हैं किन्तु जो विवेकी जीव हैं वे तो मुक्त हैं ही । उन लोगों को भक्ति करने की कौन सी आवश्यकता है ? इस पर ब्रह्माजी कहते हैं कि जो ऋषिजन भी आपकी कथा के श्रवण तथा कीर्तन आदि से पराङ्मुख रहते है वे भी संसारचक्र में फँसते हैं । दिन में अनेक

प्रकार के व्यापारों को करते रहने के कारण वे विक्षिप्तचित्त रहते हैं। उन लोगों को रात्रि में विषयों का सुख बिल्कुल नहीं प्राप्त होता है। वे रात्रि में अचेत सोये रहते हैं और स्वप्न देखने के कारण उनकी नींद बार-बार खुलती रहती है। दैववशात् उनके सारे प्रयास विहत भी होते रहते हैं ॥१०॥

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥११॥

अन्वयः— हे नाथ त्वं ननु श्रुतेक्षितपथः पुंसां भावयोगपरिभावितहृतसरोजे आस्से। हे उरुगाय धिया यद् यद् विभावयन्ति तत् तत् वपुः सदनुग्रहाय प्रणयसे ॥११॥

अनुवाद— हे नाथ ! आपके मार्ग को केवल आपके गुणों के श्रवण के मार्ग से ही जाना जा सकता है। हे प्रभो ! भक्ति की भावना से परिशुद्ध अन्तःकरण वाले पुरुषों के हृदय में आप निवास करते हैं। आपके जन जिस-जिस भाव से आपका चिन्तन करते हैं अपने उन भक्तों पर कृपा करने के लिए उन-उन रूपों को आप धारण कर लेते हैं ॥११

भावार्थ दीपिका

तदेवमभक्तानां संसारानिवृत्तिमुक्त्वा भक्तानां तन्निवृत्तिमाह-त्वमिति। भक्तियोगेन शोधिते हृत्सरोजे आस्से तिष्ठसि। श्रुतेन श्रवणेनेक्षितः पन्था यस्य। किंच श्रवणं विनापि त्वद्भक्ता मनसा यद्यत्तव वपू रूपं स्वेच्छया ध्यायन्ति तत्तत्प्रणयसे प्रकटयसि। सतां भक्तानामनुग्रहाय ॥११॥

भाव प्रकाशिका

जो लोग भगवद् भक्त नहीं हैं उनकी मुक्ति नहीं होती है, इस बात को बतलाकर **त्वमित्यादि** इस श्लोक के द्वारा बतलाया जाता है कि भक्तों के संसार की निवृत्ति हो जाती है। ब्रह्माजी कहते हैं कि हे भगवन् ! जिस भक्ति की भावना से जिस पुरुष का अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। उसी व्यक्ति के हृदय में आप निवास करते हैं। आपके गुणों के श्रवण के द्वारा ही आपके मार्ग को जाना जा सकता है। यही नहीं आपके जो भक्त आपके गुणों का श्रवण नहीं कर सके हैं, वे भी जिस-जिस रूप से आपकी भावना करते हैं अपने भक्तों पर कृपा करके आप उन-उन रूपों को ही धारण कर लेते हैं ॥११॥

नातिप्रसीदति तथोपचितोपचारैराराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः।
यत्सर्वभूतदयया सदलभ्ययैको नाना जनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ॥१२॥

अन्वयः— एकः नानाजनेषु अवहितः सुहृदन्तरात्मा, भगवान् हृदि बद्धकामैः उपचितोपचारैः सुरगणैः आराधितः नातिप्रसीदति यत् असदलभ्यया सर्वभूतदयया ॥१२॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप एक हैं और सभी प्राणियों के हृदय में स्थित रहने वाले आप उनके परम कल्याणकारी हैं। अन्तरात्मा हैं आप; अनेक प्रकार की हृदय में कामनायें रखकर बहुत अधिक पूजन सामग्रियों से देवताओं द्वारा पूजित होकर उतना प्रसन्न नहीं होते जितना कि सभी जीवों पर दया करने से आप प्रसन्न होते हैं। किन्तु वह सभी जीवों पर दया करना असत् पुरुषों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

भक्तानां च निष्कामानां त्वमतिसुलभो नेतरेषामित्याह-नेति। उपचितैरूर्जितैरुपचारैः पुष्पोपहारादिभिः। यद्यथा असतामभक्तानामलभ्यया सर्वभूतदयया। प्रसादे हेतु एक इत्यादि ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कह रहे है कि हे प्रभो ! आप कामनारहित भक्तों के लिए अत्यन्त सुलभ हैं; किन्तु उनसे भिन्न लोगो के लिए नहीं; यही इस श्लोक से कहा गया है । पुष्पोपहार आदि अत्यधिक उपहारों से अनेक प्रकार की कामना करने वाले देवताओं के द्वारा भी आराधित आप उतना प्रसन्न नहीं होते हैं, जितना सभी जीवों पर दया करने से आप प्रसन्न होते हैं । सभी भूतों पर दया करने का गुण असत् पुरुषों के लिए दुर्लभ है । आपकी प्रसन्नता का कारण यह है कि आप एक हैं और सभी प्राणियों के हृदय में स्थित रहकर उन सभी जीवों का परम कल्याण करने वाले तथा उनकी अन्तरात्मा हैं ।।१२।।

पुसांमतो विविधकर्मभिरध्वराद्यैर्दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च ।
आराधनं भगवतस्तव सत्क्रियार्थो धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद्ध्रियते न यत्र ।।१३।।

अन्वयः— अतः पुंसाम् अध्वराद्यैः विविध कर्मभिः दानेन, उग्रतपसा व्रतचर्यया च तव भगवतः आराधनं सत्क्रियार्थः यत्र अर्पितः धर्मः कर्हिचित् न ध्रियते ।।१३।।

अनुवाद— अतएव पुरुषों द्वारा किये जाने वाले यज्ञ आदि अनेक कर्म, दान, कठोर तपस्या तथा व्रतों का पालन के द्वारा आप श्रीभगवान् को प्रसन्न करना ही कर्मों का सबसे बड़ा फल है, जो कर्म आपको अर्पित कर दिया जाता है, वह अक्षय हो जाता है । वह कभी भी क्षीण नहीं होता ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

यतः सकामानां भवान्नातिप्रसीदत्यतः कामप्राप्तिः क्रियाणामुत्तमं फलं न भवति, किंतु त्वत्प्रीणनमेव। कामसंयोगस्त्ववान्तरफलेन प्ररोचनार्थमित्याह-पुंसामिति । भगवतस्तवाराधनमेव संश्चासौ क्रियार्थश्च श्रेष्ठं क्रियाफलम्। श्रेष्ठत्वे हेतुः-यत्रत्वय्यर्पितो धर्मो न कदाचिद्ध्रियते न नश्यति, कामार्थस्तु धर्मः कामं दत्त्वा नश्यतीत्यर्थः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे भगवन् ! आप चूकि कामना पूर्वक आराधना करने वालों से अत्यधिक प्रसन्न नहीं होते हैं अतएव कामनाओं की पूर्ति, के लिए की जानने वाली क्रियाओं का उत्तम फल नहीं होता है, कर्मों का उत्तम फल तो आपकी प्रसन्नता ही है । कामना की पूर्ति तो परमात्मा की प्रसन्नताका अवान्तर फल है, वह केवल प्रलोभन के लिए है । इसी अर्थ का प्रतिपादन **पुंसामतः इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया गया है । इसका अर्थ है कि मनुष्यों के द्वारा किए जाने वाले यज्ञादि अनेक प्रकार के कर्म, दान, कठोर तपस्या एवं व्रतानुष्ठान का उत्तम फल आप श्रीभगवान् की प्रसन्नता ही है । जो कर्म आपको समर्पित कर दिया जाता है वह अक्षय हो जाता है वह कभी नष्ट नहीं होता कामना विशेष की पूर्ति के लिए किया गया कर्म तो कामना की पूर्ति करके विनष्ट हो जाता है ।।१३।।

शश्वत्स्वरूपमहसैव निपीतभेदमोहाय बोधधिषणाय नमः परस्मै ।
विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीलारासाय ते नम इदं चकृमेश्वराय ।।१४।।

अन्वयः— शश्वतस्वरूपमहसैव निपीतभेदमोहाय बोधधिषणाय परस्मै नमः, विश्वोदभवस्थितिलयेषु निमित्तलीलारासाय, ईश्वराय ते इदं नमः चकृम ।।१४।।

अनुवाद— आप अपने शश्वत स्वरूप तेज के ही द्वारा प्राणियों के भेदभ्रम को दूर किया करते हैं । आप ज्ञान के अधिष्ठान भूत परम पुरुष हैं, ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ । जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार के लिए आपकी माया की जो लीला होती है वह आपकी ही क्रीडा है । अतएव हे परमेश्वर आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

अतस्त्वामेव वयं नता इत्याह । शश्वत्सर्वदा स्वरूपचैतन्येनैव निरस्तभेदभ्रमाय । पुनश्च बोध एवधिषणा विद्याशक्तिर्यस्य। यद्वा धिषणमाश्रयः । अतएव परस्मै । अत्र हेतुः-विश्वोद्भवादिनिमित्तं या माया तस्या लीला विलासस्तया रासः क्रीडा यस्य। ते तुभ्यमिदं नमः नमनं चकृम कृतवन्तो वयम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

अतएव आपको ही हम नमस्कार करते हैं । इस बात को ब्रह्माजी ने इस श्लोक में कहा है । आप अपने शाश्वत रूप ज्ञान के द्वारा प्राणियों को जो भेद भ्रम हो रहा है उसका नाश कर रहे हैं । ज्ञान ही आपकी विद्याशक्ति हैं, अथवा घिषणा शब्द आश्रय का बोधक है । अर्थात् आप ज्ञान के अधिष्ठान (आश्रय) हैं । ऐसे परम पुरुष आपको हम नमस्कार करते हैं । उसका कारण है कि जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार के लिए आपकी माया, का जो विलास है, वही आपकी रास (क्रीडा) है । आप परमेश्वर हैं, आपको हम नमस्कार करते हैं ।।१४।।

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ।।१५।।

अन्वयः— असुविगमे विवशा अपि यस्य अवतारगुणकर्मविडम्बानि नामानि गृणन्ति ते नैकजन्म शमलं सहसैव हित्वा अपावृतम् अमृतं यान्ति तम् अजं प्रपद्ये ।।१५।।

अनुवाद— शरीर परित्याग के समय जो लोग विवश होकर आपके अवतार गुण, तथा कर्मों से सम्बन्ध रखने वाले आपके नामों का उच्चारण कर लेते हैं, वे तत्काल अनेक जन्म के पापों से मुक्त होकर मायादि आवरणों से रहित ब्रह्म पद को प्राप्त कर लेते हैं । आप अजन्मा हैं मैं आपकी शरणागति करता हूँ ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

नामग्रहणमात्रतः कैवल्यप्रदत्वेनैश्वर्यं व्यञ्जयन्नमस्करोति-यस्येति । अवतारादीनां विडम्बनमनुकरणमस्ति येषु । तत्रावतारविडम्बनानि देवकीनन्दन इत्यादीनि । गुणविडम्बनानि सर्वज्ञो भक्तवत्सल इत्यादीनि । कर्मविडम्बनानि गोवर्धनोद्धरणः कंसारातिरित्यादीनि । असुविगमेऽपि विवशा अपि गृणन्त्युच्चारयन्ति केवलम् । शमलं पापम् । अपावृतं निरस्तावरणम् । ऋतं ब्रह्म प्राप्नुवन्ति ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

केवल नामोच्चारण मात्र से भगवान कैवल्य प्रदान कर देते हैं, इस प्रकार के भगवान् के ऐश्वर्य को अभिव्यक्त करते हुए ब्रह्माजी श्रीभगवान् को **यस्यावतारः इत्यादि** श्लोक के द्वारा नमस्कार करते हैं । श्रीभगवान् के जो नाम हैं, उनमें से कुछ उनके अवतार के सूचक है जैसे देवी नन्दन इत्यादि । कुछ नाम गुणसूचक है जैसे भक्तवत्सल, सर्वज्ञ इत्यादि तथा कुछ नाम उनके कर्मों के व्यञ्जक हैं, जैसे गोवर्धनोद्धरण कंसाराति इत्यादि । इन नामों का यदि कोई भी व्यक्ति मृत्यु के समय में विवश भी होकर उच्चारण कर लेता है तो वह मृत्यु के पश्चात् माया के आवरण से रहित ब्रह्मपद को प्राप्त करता है। इसके पश्चात् ब्रह्माजी कहते हैं कि हे भगवन् आप सदा अजन्मा है, आपकी मैं शरणागति करता हूँ ।।१५।।

यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम्।
भित्त्वा त्रिपाद्ववृध एक उरुप्ररोहस्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ।।१६।।

अन्वयः— यः एकः आत्ममूलं भित्वा अहं वा गिरिशः च स्वयं विभुः च स्थित्युद्भव प्रलय हेतवः उरुप्ररोह त्रिपाद् ववृधे तस्मै भुवनदुमाय भगवते नमः ।।१६।।

अनुवाद— हे भगवन् ! आप इस विश्ववृक्ष के रूप में स्थित हैं । आप ही अपनी मूल प्रकृति को स्वीकार करके जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के लिए मेरे, अपने और शङ्करजी के रूप में प्रधान तीन शाखाओं

मे विभक्त हैं । फिर प्रजापति, मनु आदि शाखा प्रशाखाओ के रूप मे फैलकर बहुत विस्तृत हो गये है । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तत्र गुणावतारकर्माणि दर्शयन्प्रणमति । या वै एकस्त्रिपात् त्रयो ब्रह्मादय: पादा: स्कन्धा यस्य । प्रत्येकं च उरव: शाखोपशाखा मरीच्यादिमन्वादिरूपा यस्य तथाभूत: सन्ववृधे तस्मै भुवनाकाराय द्रुमाय नम: । किं कृत्वा ववृधे । आत्म स्वयमेव मूलमधिष्ठानं यस्य तत्प्रधानं भित्त्वा गुणत्रयरूपेण विभज्य । त्रिपात्त्वमेवाह । अहं ब्रह्मा, गिरिशश्च, स्वयं विभुर्विष्णुः स्थित्युद्भवप्रलयहेतवो ये वयम् । त्रिपाद्भूत्वा यो ववृधे इत्यर्थ: ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के गुणों अवतारों तथा कर्मो को बोधित करते हुए उनको नमस्कार करते हैं । विश्वाकार वृक्षस्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार हैं । वे भुवनाकाराकारित वृक्ष स्वरूप श्रीभगवान् एक ही हैं किन्तु ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र नामक तीन मुख्य शाखाओं के रूप में फैले है । इन तीनों शाखाओं का मरीचि आदि प्रजापति तथा मन्वादि के रूप में बहुत अधिक विस्तार हो गया है । इस प्रकार के श्रीभगवान् भुवनाकार रूपी वृक्ष के रूप में स्थित है । ऐसे आपको नमसकार है । वे भगवान् कैसे बढ़े इसको बतलाते हुए कहते हैं कि स्वयम् ही जिनके आश्रय है उस प्रकृति को तीन गुणों के रूप मे विभक्त करके बढ़े । श्रीभगवान् रूपी वृक्ष की तीन शाखाओं को बतलाते हुए कहते है मैं, शिवजी तथा स्वयं भगवान् विष्णु ये तीनों क्रमश: जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा संहार को करते हैं । वे ही त्रिपाद् होकर बढ़े ॥१६॥

लोको विकर्मनिरत: कुशले प्रमत: कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥१७॥

अन्वय:— विकर्मनिरत: अयं लोक: त्वदुदिते भवदर्चने स्वकर्मणि कुशले प्रमत्त: य: बलवान्विद्अस्य जीविताशां सद्य: छिनति तस्मै अनिमिषाय तुभ्यं नम: अस्तु ॥१७॥

अनुवाद— हे भगवन् आपने अपनी आराधना को ही लोकों के लिए कल्याणकारी स्वधर्म बतलाया है । किन्तु वे इस ओर मे उदासीन रहकर सदा निषिद्ध कर्मो को ही करते हैं । इस तरह से प्रमाद की अवस्था में पड़े हुए इन जीवों की जीवन की आशा को जो सदा सावधान रहकर काटता है, वह बलवान काल भी आपका स्वरूप है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

एवं गुणावतारकर्मविडम्बनमुक्त्वा तस्यैव तत्कालाख्यं रूपं तत्कर्म च दर्शयन्प्रणमति-लोक इति द्वाभ्याम् । विकर्मनिरतो विरुद्धकर्मनिष्ठ: कुशले हिते स्वे आत्मीये त्वदुदिते त्वयैव साक्षादुक्ते भवदर्चनरूपे कर्मणि । उक्तं हि गीतासु-**'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।'** इति । तस्मिन्प्रमतोऽदत्तचितो यावद्वर्तते तावदस्य लोकस्य । अनिमिषाय कालाय ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से गुणावतार तथा कर्मो। का अनुष्ठान बतलाकर ब्रह्माजी बतलाते हैं कि श्रीभगवान् का ही एक रूप काल है तथा वह उनका कर्म भी है । इस बात को बतलाकर वे श्रीभगवान् को दो श्लोकों से प्रणाम करते हैं । वे कहते है कि संसारी लोग शास्त्र विरुद्ध कर्मो में सदा लगे रहते हैं । भगवान ने स्वयम् अपनी अर्चना को प्राणियों का हितकारी बतलाया है, उस अपने हित के विषय में वे असावधान रहते है । ऐसे लोगों के जीवन को काल शरीरक परमात्मा शीघ्र ही क्षीण कर देते हैं । ऐसे आप परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ । श्रीभगवान्

ने गीता में कहा भी है **यत्करोषि० इत्यादि** अर्थात् हे अर्जुन तुम जो भी करते हो, जो भोजन करते हो, जो होम करते हो तथा जो दान करते हो एवं जो तपस्या करते हो उन सबों को मुझे समर्पित कर दो । इस तरह से साक्षात् परमात्मा के द्वारा उक्त भगवदर्चन रूपी अपने कल्याण के विषय में मनुष्यजब तक अनवधान रहता है तब तक परमात्मा उसकी आयु को काल रूप से क्षीण करते हैं । ऐसे काल स्वरूप आपको मैं प्रमाण करता हूँ ॥१७॥

यस्माद्बिभेम्यहमपि द्विपरार्धधिष्ण्यमध्यासितः सकललोकनमस्कृतं यत् ।
तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समानस्तस्मै नमो भगवतेऽधिमखाय तुभ्यम् ॥१८॥

अन्वयः— द्विपरार्द्धधिष्ण्यम् अध्यासितः यत् सकललोकनमस्कृतम्, अहमपि यस्माद् विभोमि, अवरुरुत्समानः बहुसवः तपः तेपे तस्मै अधिमखाय भगवते नमः ॥१८॥

अनुवाद— मैं दो परार्द्ध पर्यन्त रहने वाले सत्यलोक का अधिष्ठाता हूँ, मेरा वह लोक सर्वलोक वन्दनीय है; फिर भी मैं आपके उस काल रूप से भयभीत रहता हूँ । आपको ही प्राप्त करने की इच्छा से मैंने अनेक यागों को करता हुआ बहुत काल तक तपस्या की आप ही मेरी इस तपस्या के अधियज्ञ रूप से साक्षी है, ऐसे अधियज्ञ स्वरूप आपको मेरा नमस्कार है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

आस्तां तावल्लोकस्य कथा, यस्मात्कालाख्यात् त्वत्तो यद्द्विपरार्धावस्थायि धिष्ण्यं स्थानं तदारूढोऽपि विभेमि, भीतश्च संस्त्वामेवावरुरुत्समानः प्राप्तुमिच्छस्तपस्तप्तवान् । कथंभूतः । बहुसवः बहवः सवा यागाः संवत्सरा वा यस्य । बहून्यागान्कृत्वापि बहून्संवत्सरान्वा तपस्तप्तवानित्यर्थः । अधिमखाय मखाधिष्ठात्रे ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कहते हैं कि लोगों की बात तो छोड़िये । दो परार्द्धकाल पर्यन्त रहने वाला जो मेरा सत्यलोक है, उसका अधिष्ठाता मैं हूँ । मेरा वह लोक सभी लोकों के द्वारा स्तुत है । फिर भी मैं आपके इस काल नामक रूप से भयभीत रहता हूँ । आपको ही प्राप्त करने के लिए मैंने दीर्घ काल तक तपस्या भी की । अर्थात् बहुत से यागों को करके बहुत वर्षों तक तपस्या भी किया । आप अधियज्ञ रूप से मेरी उस तपस्या के साक्षी भी हैं । ऐसे अधियज्ञ शरीरक मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥१८॥

तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिष्वात्मेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सया यः ।
रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहस्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥१९॥

अन्वयः— आत्मसेतु परीप्सया यः आत्मेच्छया निरस्तरतिः अपितिर्यङमनुष्य विवुधादिषु जीवयोनिषु अवरुद्ध देहः रेमे तस्मै पुरुषोत्तमाय भगवते नमः ॥१९॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप तो पूर्णकाम हैं फिर भी आपके द्वारा निर्मित धर्म की मर्यादा पालन करने के लिए, आपको किसी भी विषय सुख की इच्छा नहीं है फिर भी अपनी इच्छा मात्र से आप देव, तिर्यक् तथा मनुष्य योनियों में शरीर धारण करके अनेक प्रकार की लीलाओं को करते हैं । ऐसे पुरुषोत्तम आपको मेरा नमस्कार है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं तत्तत्कालभाविलीलावतारकर्माणि दर्शयन्नाह । तिर्यगादिषु जीवयोनिषु स्वेच्छया स्वीकृतमूर्तिः सन् स्वकृतधर्ममर्यादापालनेच्छया रेमे । वस्तुतः स्वानन्दानुभवेनैव निरस्तविषयसुखोऽपि योऽत एव पुरुषोत्तमः तत्तदुपाधिधर्मासंस्पर्शात्। तदुक्तं गीतासु-'**यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः । अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।।**' इति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी श्रीभगवान् के लीलावतारों के कर्मों का वर्णन करते है। श्रीभगवान् अपने ही द्वारा निर्धारित धर्म की मर्यादा का पालन करने की इच्छा से तिर्यक् आदि जीवों की योनियों में अपनी इच्छा मात्र से शरीर धारण करके लीलाओं को किए। वे भगवान् अपने आत्मानन्द के अनुभव से ही समस्त विषय सुखों की इच्छा से रहित हैं। अतएव वे पुरुषोत्तम है। इसीलिए उन्होंने गीता में कहा भी हैं— **"यस्मात् क्षरादतीतोऽमक्षरादपि चोत्तमः। अतोस्मि लोक वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।।** अर्थात् मैं क्षर एवं अक्षर दोनों प्रकार के जीवों में उत्तम हूँ, इसीलिए मैं लोक तथा वेद दोनों में पुरुषोत्तम रूप से प्रख्यात हूँ ॥१९॥

योऽविद्ययाऽनुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः ।
अन्तर्जलेऽहिकशिपुस्पर्शानुकूलां भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् ॥२०॥

अन्वयः— दशार्धवृत्त्या अविद्यया अनुपहत अपियः जठरीकृत सर्वलोकयात्रः भीमोऽर्मिमालिनि अन्तर्जले जनस्य सुखं विवृण्वन् अहिकशिपुस्पर्शानुकूलां निद्रामुवाह ॥२०॥

अनुवाद— जो श्रीभगवान् अविद्या: अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पाँचों प्रकार की अविद्याओं में से किसी से भी उपहत (आच्छन्न) नहीं है, सम्पूर्ण जगत् को अपने उदरस्थ करके, प्रलयकालीन भयङ्कर तरङ्ग मालाओं से तरङ्गायित जल के भीतर कोमल शेष शय्या पर पूर्वकल्प की कर्म परम्परा से श्रान्त हुए जीवों को विश्राम देने के ही लिए शयन कर रहे हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं दृश्यमानामेवमूर्तिं प्रणमति-योऽविद्ययेति द्वाभ्याम्। दशार्धाः पञ्च वृत्तयो यस्यास्तयाऽविद्यया निद्राहेतुभूतयाऽनभिभूतोऽपि योगनिद्रामुवाह तस्मै ते नम इत्युत्तरेणान्वयः। जठरीकृता उदरे प्रविलापिता लोकयात्रा लोकस्थितिर्येन। अहिरेव कशिपुः शय्या तस्याः स्पर्शोऽनुकूलो यस्यास्तां निद्राम्। भीमानामूर्मीणां माला विद्यन्ते यस्मिन्नन्तर्जले निद्राणस्याविवेकिनो जनस्य निद्रासुखमीदृगिति विवृण्वन्प्रदर्शयन्, उपहसन्नित्यर्थः। अत एवान्तर्जलादिविशेषणानि। यद्वा पूर्वकल्पे श्रान्तस्य जनस्य विश्रामसुखं विवृण्वन्स्फारयन्। तदा तु परोपकाराय स्वयं दुःसहमपि दुःखं सोढव्यमिति द्योतनार्थं विशेषणानि ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अब **योऽविद्यया इत्यादि** दो श्लोकों से दिखायी देने वाली श्रीभगवान् की मूर्ति को ही ब्रह्माजी प्रणाम करते हैं। श्रीभगवान् अविद्या के जो अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश या तम मोह, महामोह तामिस्र और अन्धतामिस्र जो पाँच प्रकार के भेद बतलाये गये हैं इनमें से कोई भी निद्रा के कारणों से अभिभूत नहीं हैं, फिर भी भयङ्कर तरङ्गमालाओं से युक्त प्रलयकालीन जल के भीतर अत्यन्त कोमल शेषशय्या पर शयन कर रहे हैं ऐसे भगवान् को नमसकार है। इस समय श्रीभगवान् ने सम्पूर्ण जगत् को अपने उदर में लीन कर लिया है। शेष नामक सर्प के शरीर की शय्या अत्यन्त सुखस्पर्श होती है, उस पर वे शयन कर रहे है। वे भगवान् ऐसे जल में शयन कर रहे हैं जिसके भीतर भयङ्कर जलतरङ्गे विद्यमान हैं। निद्रा के कारण अविवेकी पुरुष की निद्रा भी इसी प्रकार की नहीं होती है, इस बात का उपहास करते हुए श्रीभगवान् सो रहे हैं। इसलिए भगवान् की योग निद्रा के **अन्तर्जलादि** विशेषण दिए गये हैं। अथवा पूर्व कल्प में श्रान्त हुए जीवों को विश्रामसुख प्रदान करने के लिए श्रीभगवान् योगनिद्रा में शयन करते है। ऐसा अर्थ करने पर विशेषणों के द्वारा इस अर्थ को सूचित किया गया है कि परोपकार के लिए दुःसह भी दुःख को सहना चाहिए ॥२०॥

यन्नाभिपद्मभवनादहमासमीड्य लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ।
तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योगनिद्रावसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥२१॥

अन्वयः— हे इड्य यन्नभिपद्मभवनात् अहम् आसम् यदनुग्रहेण अहम् लोकत्रयोपकरणः, तस्मै उदरस्थ भवाय योगनिद्रावसाने विकसन्नलिनेक्षणाय ते नमः ॥२१॥

अनुवाद—हे वन्दनीय भगवन् आपके जिस नाभिकमल रूपी भवन से मेरा जन्म हुआ है, आपकी ही कृपा से मैं त्रैलोक्य की रचना रूपी उपकार में प्रवृत्त हूँ । जिस आपके उदर में यह सम्पूर्ण जगत् लीन हैं और योगनिद्रा की समाप्ति होने पर आपके नेत्र कमल विकसित हो रहे हैं; ऐसे आपको मेरा नमस्कार है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

किंच यस्य नाभिपद्ममेव भवनं तस्मात् । लोकत्रयमुपकरणं यस्य । यद्वा लोकत्रयस्य सृष्ट्यादिद्वारेणोपकरोतीति तथा तादृशोऽहं यदनुग्रहेणाऽऽसम् । उदरे स्थितो भवः संसारप्रपञ्चो यस्य । योगनिद्रावसाने किंचिद्विकसन्नलिनवदीक्षणं यस्य ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी कह रहे हैं कि आपके नाभिकमल रूपी भवन से मेरा जन्म हुआ है । आपकी ही कृपा से मैं त्रैलोक्य की रचना में प्रवृत्त हुआ हूँ । अथवा त्रैलोक्य की सृष्टि आदि कार्यों को करके आपका उपकार करता हूँ । आपके उदर में सम्पूर्ण प्रपञ्च स्थित है । उसको आपने अपने उदर में लीन कर लिया है । योगनिन्द्रा की समाप्ति के समय आपके ये नेत्रकमल कुछ विकसित हो रहे हैं, ऐसे आपको मेरा नमस्कार है ॥२१॥

सोऽयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा सत्त्वेन यन्मृडयते भगवान्भगेन ।
तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद्यथाहं स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं प्रणतप्रियोऽसौ ॥२२॥

अन्वयः— सोऽयं समस्तजगताम् एकः सुहृत आत्मा, प्रणतप्रियः असौ भगवान् सत्त्वेन भगेन यत् मृडयते तेनैव मे दृशम् अनुस्पृशतात् यथा अहं पूर्ववद् इदं स्रक्ष्यामि ॥२२॥

अनुवाद— वे ही आप सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र सुहृत् और आत्मा हैं तथा शरणागत जीवों पर कृपा करने वाले हैं । आप अपने जिस ज्ञान तथा ऐश्वर्य से जगत् को आनन्दित करते हैं उसी ज्ञान से आप मुझे भी युक्त कर दें जिससे कि मैं पूर्वकल्प के ही समान इस जगत् की सृष्टि कर सकूँ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

एवं स्तुत्वा प्रार्थयते-सोऽयमिति चतुर्भिः । यद्येन सत्त्वेन ज्ञानेन भगेनैश्वर्येण च मृडयते सुखयति विश्वम् । दृशं प्रज्ञामनुस्पृशताद्योजयतु, यथाऽहं स्रष्टुं क्षमो भविष्यामि । यतः प्रणतप्रियोऽसावहं च प्रणतो न चान्यः प्रार्थनीयोऽस्ति । यतो भगवान् । स एव समस्तजगतां सुहृद्यतोऽसावेकोऽनुस्यूत आत्माऽन्तर्यामी ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से श्रीभगवान् की स्तुति करके उनसे सोऽयम् इत्यादि चार श्लोकों से प्रार्थना करते हैं । ब्रह्माजी भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि आप अपने जिस ज्ञान एवं ऐश्वर्य के द्वारा जगत् को आनन्दित करते हैं उसी ज्ञान से मेरी भी दृष्टि को युक्त कर दें जिससे कि मैं पूर्वकल्प के ही समान जगत् की सृष्टि करने का कार्य कर सकूं। क्योंकि आप शरणागत जीवों पर कृपा करने वाले हैं । मैं भी आपका शरणागत हूँ कोई दूसरा नहीं है जिससे कि प्रार्थना की जा सके । आप तो भगवान् हैं । आप ही एकमात्र सम्पूर्ण जगत् के सुहृत् हैं और सबों के भीतर अनतर्यामी रूप से स्थित हैं ॥२२॥

एष प्रपन्नवरदो रमयाऽऽत्मशक्त्या यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः ।
तस्मिन्स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेतो युञ्जीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम् ॥२३॥

अन्वयः— एषः प्रपन्नवरदः आत्मशक्त्या रमया सह गृहीतगुणावतारः यत् यत् करिष्यति तस्मिन् स्वविक्रमम् इदं सृजतः मे चेतः युञ्जीत यथा च कर्मशमलं विजह्याम् ॥२३॥

अनुवाद— हे भगवान् ! आप तो शरणगत जीवों को वरदान प्रदान करने वाले हैं । आप अपनी शक्ति लक्ष्मीजी के साथ गुणावतारों को धारण करके जिन-जिन कर्मों को करेंगे मेरा यह जगत् की रचना करने का प्रयास भी उन्हीं कर्मों में से एक है । अतएव इस जगत् की रचना करते समय मेरे चित्त को ऐसी शक्ति प्रदान करें जिससे कि मैं सृष्टि रचना विषयक अभिमान का परित्याग कर सकूँ । यह कर्तृत्वाभिमान भी तो एक प्रकार का मल (दोष) ही है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

आत्मशक्त्या रमया सह यद्यत्कर्म करिष्यति । स्वविक्रमं स्वस्य विष्णोरेव विक्रमः प्रभावो यस्मिंस्तदिदं विश्वं सृजतोऽपि मे चेतः स एव युञ्जीत प्रवर्तयतु । कर्मासक्तिं तत्कृतं शमलं च वैषम्यादिपापं यथा विजह्यां त्यक्ष्यामि ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

हे भगवन् आपकी अपनी शक्ति हैं लक्ष्मीजी, उनके साथ गुणावतारों को धारण करके आप जिन-जिन कर्मों को करेंगे आपके उन्हीं कर्मों में से मेरा विश्व रचना का प्रयास भी एक है । क्योंकि मैं तो आपकी आज्ञा से ही विश्व की रचना का कार्य करूँगा । अतएव आप ही मेरे चित्त को प्रेरित करें जिससे की मुझमें विश्व रचना के कर्तृत्वाभिमान रूप दोष न आ सके उससे मैं दूर रहूँ ॥२३॥

नाभिह्रदादिह सतोऽम्भसि यस्य पुंसो विज्ञानशक्तिरहमासमनन्तशक्तेः ।
रूपं विचित्रमिदमस्य विवृण्वतो मे मारीरिषीष्ट निगमस्य गिरांविसर्गः ॥२४॥

अन्वयः— अम्भसि सतः अनन्तशक्तेः यस्य पुंसः अहं विज्ञानशक्तिः आसम् अस्य विचित्रं रूपं विवृण्वतः मे निगमस्य गिरां विसर्गः मा रीरिष्ट ॥२४॥

अनुवाद— इस प्रलय कालीन जल के भीतर शयन करने वाले अनन्त शक्तिसम्पन्न आपके नाभिकमल से मेरा जन्म हुआ है । मैं आपकी विज्ञान शक्ति हूँ । इस जगत् के विचित्र रूप का विस्तार करते समय आपकी कृपा से मेरी वेद रूपी वाणी का उच्चारण लुप्त न हो ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अम्भसि सतो यस्य नाभिह्रदादिहासम् । विज्ञाने शक्तिर्यस्य महत्तत्त्वात्मकस्य चित्तस्य तदभिमानी अस्य रूपमिदं विस्तारयतो मे निगमस्यावयवभूतानां गिरां विसर्ग उच्चारणं मारीरिषीष्ट । हलान्तं ब्रह्मवर्चसमिति न्यायेन मालुप्यतामित्यर्थः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कह रहे हैं कि जल के भीतर रहने वाले जिन अनन्त शक्ति सम्पन्न श्रीभगवान् के नाभिह्रद से उत्पन्न कमल से मेरा जन्म हुआ है । जिस महत् तत्त्व की विज्ञान में शक्ति है मैं उसका अभिमानी देवता हूँ, इस महत् तत्त्व को विश्वात्मक रूप का विस्तार करने वाले मेरी वेदों के अवयवभूत वेदवाणी का कभी **हलान्तं ब्रह्मवर्चसम्** न्याय से लोप न हो ॥२४॥

सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान्विवृद्धप्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन् ।
उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं माध्व्या गिराऽपनयतात्पुरुषः पुराणः ॥२५॥

अन्वयः— सः असौ अदभ्रकरुणः भगवान् विवृद्धप्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन् विश्वविजयाय उत्थाय च नः विषादं माध्व्या गिरा अपनयतात् ॥२५॥

अनुवाद— वे आप श्रीभगवान् अपार करुणा सम्पन्न तथा पुराण पुरुष हैं। आप प्रेम पूर्ण मुसकान पूर्वक अपनी आँखें खोलें तथा विश्व की उत्पत्ति के लिए तथा हम लोगों पर कृपा करने के लिए अपनी मधुर वाणी से हमारे विषाद को दूर करें ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

विवृद्धप्रेम्णा स्मितेन विजृम्भयन्। विश्वस्य विजयायोद्भवाय। चकारादस्मदनुग्रहाय चोत्थाय ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हैं कि आप तो अपार करुणासम्पन्न हैं तथा पुराणपुरुष हैं। आप समृद्ध प्रेम के कारण मुसकान पूर्वक अपने नेत्रों को खोलें तथा उठकर विश्व की उत्पत्ति के लिए हमलोगों पर कृपा करने के लिए ही अपनी मधुरवाणी के द्वारा हमारे विषाद को दूर करें ॥२५॥

मैत्रेय उवाच

स्वसंभवं निशाम्यैवं तपोविद्यासमाधिभिः। यावन्मनोवचः स्तुत्वा विरराम सखिन्नावत् ॥२६॥

अन्वयः— एवं तपोविद्यासमाधिभिः स्वसंभवं निशाम्य यावन्मनोवचः स्तुत्वा सः खिन्नवत् विरराम ॥२६॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे विदुरजी! इस प्रकार से तपस्या, ज्ञान और समाधि के द्वारा अपने उत्पत्तिस्थान को देखकर अपने मन एवं वाणी की शक्ति के अनुसार श्रीभगवान् की स्तुति करके ब्रह्माजी थके हुए के समान मौन हो गये॥२६॥

भावार्थ दीपिका

स्वस्य संभवो यस्मात्तम्। तपः शारीरम्, विद्या उपासना, समाधिरैकाग्र्यम्, तैर्निशाम्य दृष्ट्वा यथाशक्ति स्तुत्वा श्रान्तवद्विरराम॥२६॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में तप: शब्द आत्मा का, विद्या शब्द उपासना का और समाधि शब्द एकाग्रता का बोधक है। इन तीनों के द्वारा अपने उत्पत्तिस्थान श्रीभगवान् का दर्शन करके ब्रह्मा जी ने अपनी वाणी और मन की शक्ति के अनुसार उनकी स्तुति की और उसके पश्चात् वे थके हुए के समान मौन हो गये ॥२६॥

अथाभिप्रेतमन्वीक्ष्य ब्रह्मणो मधुसूदनः। विषण्णचेतसं तेन कल्पव्यतिकराम्भसा ॥२७॥
लोकसंस्थानविज्ञान आत्मनः परिखिद्यतः। तमाहागाधया वाचा कश्मलं शमयन्निव॥२८॥

अन्वयः— तेन कल्पव्यतिकराम्भसा विषण्णचेतसं लोकसंस्थानविज्ञाने आत्मनः परिखिद्यतः ब्रह्मणः अभिप्रेतम् अन्वीक्ष्य मधुसूदनः अगाधया वाचा कश्मलं शमयन्निव तम् आह ॥२७-२८॥

अनुवाद— प्रलयकालीन जलराशि से घबराये हुए तथा लोकरचना के विषय में कोई निरश्चित विचार नहीं होने के कारण अत्यन्त खिन्न ब्रह्माजी के अभिप्राय को जानकर श्रीभगवान् मधुसूदन उनके विषाद को शान्त सा करते हुए कहने लगे ॥२७-२८॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनो लोकसंस्थानविज्ञान परिखिद्यतो ब्रह्मणोऽभिप्रेतमालक्ष्य तमाहेति द्वयोरन्वयः तेन प्रलयोदकेन विषण्णचेतसम्। कश्मलं मोहम्। इवेति समस्तमोहशमनं दर्शयति ॥२७-२८॥

भाव प्रकाशिका

अपने लोक रचना विज्ञान के विषय में घबराये हुए ब्रह्माजी के अभिप्राय को जानकर श्रीभगवान् ने कहा।

क्योंकि ब्रह्माजी उस प्रलय कालीन जलराशि को देखकर घबराये हुए थे । उनके मोह को शान्त से करते हुए भगवान् ने कहा । इव पद के प्रयोग से यह बतलाया गया है कि वे ब्रह्मजी के मोह के पूर्ण रूप से शान्त नहीं कर रह थे ॥२७-२८॥

श्रीभगवानुवाच

मा वेदगर्भ गास्तन्द्रीं सर्ग उद्यममावह । तन्मयापादितं ह्यग्रे यन्मां प्रार्थयते भवान् ॥२१॥

अन्वयः— वेदगर्भ तन्द्रीं मा गाः सर्गे उद्यमम् आवह भवान् यत् मां प्रार्थयते तत् मयाहि अग्रे आपादितम् ॥२१॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे वेदगर्भ विषाद के कारण तुम आलस्य मत करो, सृष्टि रचना का प्रयास करो, तुम जो कुछ भी मुझसे चाहते हो वह मैं पहले ही तुम्हें दे चुका हूँ ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

हे वेदगर्भ, तन्द्रीं विषादकृतमालस्यं मा गाः । तेनैव मे दृशमनुस्पृशतादित्यादि यत्प्रार्थयते तदग्रे पूर्वमेव संपादितम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

वेदगर्भ ब्रह्मन् तुम विषाद के कारण अलस्य न करो तुमने जो यह प्रार्थना की है कि जिस ज्ञान के द्वारा आप जगत् को आनन्दित करते हैं उसी ज्ञान से मेरी भी बुद्धि को सम्पन्न कर दें, वह मैं पहले से ही तुमको दे चुका हूँ ॥२९॥

भूयस्त्वं तप आतिष्ठ विद्यां चैव मदाश्रयाम् । ताभ्यामन्तर्हृदि ब्रह्मँल्लोकान्द्रक्ष्यस्यपावृतान् ॥३०॥

अन्वयः— ब्रह्मन् त्वं भूयः तप मदाश्रयां विद्यां च आतिष्ठ ताभ्यां अन्तर्हृदि अपावृतान् लोकान द्रक्ष्यसि ॥३०॥

अनुवाद— ऐ ब्रह्मन् ! तुम फिर एक बार तपस्या करो और भागवत ज्ञान का अनुष्ठान करो उन दोनों के द्वारा तुम अपने हृदय में सम्पूर्ण लोकों को देखोगे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि कथमहं न जानामीत्यत आह-भूय इति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप मुझे पहले से ही प्रदान कर रखे हैं तो फिर मैं उसे क्यों नहीं देख रहा हूँ; इसके उत्तर में भगवान् ने कहा कि तुम फिर एकबार तपस्या करो और भागवत ज्ञान का अनुष्ठान करो तब अपने हृदय में सम्पूर्ण लोकों को स्पष्ट रूप से देखोगे ॥३०॥

तत आत्मनि लोके च भक्तियुक्तः समाहितः । द्रष्टाऽसि मां ततं ब्रह्मन् मयि लोकांस्त्वमात्मनः ॥३१॥

अन्वयः— ततः हे ब्रह्मन् भक्तियुक्तः समाहितः आत्मनि लोके च ततं मां द्रष्टा असि मयि च आत्मनः लोकान् च द्रष्टा असि ॥३१॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! उसके पश्चात् भक्ति और एकाग्रचित होकर तुम अपने में तथा सम्पूर्ण लोकों में मुझको व्याप्त देखोगे तथा मुझमें सभी जीवों तथा लोकों को देखोगें ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

भक्तियुक्तः समाहितश्च सन्नात्मनि स्वस्मिन् लोके च मां ततं व्याप्य स्थितं द्रष्टासि द्रक्ष्यसि । आत्मनो जीवांश्च ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

भक्ति पूर्वक समाहित होकर तुम अपने हृदय में तथा सम्पूर्ण जगत् में व्यापक रूप से मुझको देखोगे तथा मुझमें भी लोकों और जीवों को देखोगे ॥३१॥

यदा तु सर्वभूतेषु दारुष्वग्निमिव स्थितम् । प्रतिचक्षीत मां लोके जह्यात्तर्ह्येव कश्मलम् ॥३२॥

अन्वयः— यदा तु लोकः सर्वभूतेषु दारुषु अग्निमिव स्थितम् माम् प्रतिचक्षीत तर्ह्येव कश्मलं जह्यात् ॥३२॥

अनुवाद— जब मनुष्य काष्ठ में स्थित अग्नि के समान सभी भूतों में स्थित मुझको ही देखने लगता है, उसी समय वह अपने अज्ञान रूप मल से मुक्त हो जाता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

सर्वत्र मद्दर्शने मोहो निवर्तत इत्याह-यदा त्विति । प्रतिचक्षीत पश्येत् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

यदा तु इस श्लोक में श्रीभगवान् ने कहा है कि जो व्यक्ति सभी वस्तुओं के भीतर मुझको ही अन्तर्यामी रूप से देखता है तो उसका अज्ञान दूर हो जाता है । श्लोक के प्रतिचक्षीत् पद का अर्थ है देखने लगे तो ॥३२॥

यदा रहितमात्मानं भूतेन्द्रियगुणाशयैः । स्वरूपेण मयोपेतं पश्यन्स्वाराज्यमृच्छति ॥३३॥

अन्वयः— यदा भूतेन्द्रियगुणाशयैः रहितम् स्वरूपेण मया उपेतम् पश्यन् स्वाराज्यम् ऋच्छति ॥३३॥

अनुवाद— जब मनुष्य अपने को भूत, इन्द्रिय, गुण एवं कर्म से रहित और स्वरूपतः मुझसे अभिन्न देखता है तो वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तदा च मिथ्याज्ञाननिवृत्तौ मुच्यत इत्याह-यदेति । भूतादिभिर्विरहितमात्मानं जीवं शुद्धं त्वंपदार्थं स्वरूपेण स्वस्यात्मभूतेन मया तत्पदार्थेनोपेतमेकीभूतं पश्यन्भवति तदा स्वाराज्यं मोक्षं प्राप्नोति ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

उस समय उसके मिथ्या ज्ञान की निवृत्ति हो जाती है और वह मुक्त हो जाता है; इस बात को **यदारहितमात्मानम्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । भूत इन्द्रिय आदि से रहित **जो तत्त्वमसि** वाक्य का जो त्वं पदार्थ है उस शुद्ध जीव को स्वरूपतः अपनी आत्माभूत तत् पदार्थ के साथ अभिन्न देखने वाला जीव स्वराज्य (मोक्ष) को प्राप्त कर लेता है ॥३३॥

नानाकर्मवितानेन प्रजा वह्वीः सिसृक्षतः । नात्मावसीदत्यस्मिंस्ते वर्षीयान्मदनुग्रहः ॥३४॥

अन्वयः— नानाकर्मवितानेन बह्वीः प्रजाः सिसृक्षतः ते आत्मा नावसीदति मत् वर्षीयान् अनुग्रहः ॥३४॥

अनुवाद— अनेक प्रकार के कर्मों के संस्कार के कारण अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा होने पर तुम्हारा चित्त मोहित नहीं होता है यह मेरी महती कृपा है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

यतो वर्षीयान् वृद्धतरः । अत्यधिकोऽस्तीत्यर्थः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

भिन्न-भिन्न जीवों में भिन्न प्रकार के कर्मों के संस्कार पड़े हुए हैं उसी के अनुसार तुम अनेक प्रकार के जीवों की सृष्टि करना, चाहते हो; किन्तु इस कार्य में तुम्हारी बुद्धि मोहित इसलिए नहीं होती है कि तुम पर मेरी बहुत अधिक कृपा है ॥३४॥

ऋषिमाद्यं न बध्नाति पापीयांस्त्वां रजोगुणः । यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजताऽपि ते ॥३५॥

अन्वयः— आद्यं ऋषिं त्वां पापीयान् रजोगुणः न बध्नाति यत् प्रजाः संसृजतः अपि ते मनः निर्बद्धः ॥३५॥

अनुवाद— तुम सर्वप्रथम ऋषि (मन्त्रद्रष्टा) हो, प्रजाओं की सृष्टि करते समय भी चूकि तुम्हारा मन मुझमें ही लगा रहता है इसीलिए रजोगुण तुमका बाँध नहीं पाता है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

अनुग्रहमेवाह-ऋषिमिति चतुर्भिः । यत् यतस्ते मनो मयि निर्बद्धम् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

ऋषिमाद्यम् इत्यादि चार श्लोकों से श्रीभगवान् अपने अनुग्रह का ही वर्णन करते हैं । प्रजाओं की सृष्टि करते समय भी तुम्हारा मन चूकि मुझमें ही लगा रहता है इसीलिए रजोगुण तुमको बाँध नहीं पाता है ॥३५॥

ज्ञातोऽहं भवता त्वद्य दुर्विज्ञेयोऽपि देहिनाम् । यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतोऽपि ते ॥३६॥

अन्वयः— यत् त्वं मां भूतेन्द्रियम् गुणात्मभिः अयुक्तं मन्यसे अतःदेहिनाम् दुर्विज्ञेयः अपि भवता अद्यः ज्ञातः ॥३६॥

अनुवाद— चूकि तुम भूत, इन्द्रियगण तथा अन्तःकरण से रहित मुझको मानते हो इसीलिए देहधारी जीवों के लिए कठिनाई से जानने योग्य होने पर भी तुमने मुझे आज जान लिया है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

यद्यस्माद्भूतैरिन्द्रियैर्गुणैः सत्त्वादिभिरात्मनाऽहंकारेण चायुक्तं मन्यसे ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रीभगवान् कहते हैं कि तुम मुझको भूतेन्द्रियों तथा सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन गुणों तथा अहङ्कार से रहित मानते हो इसीलिए तुम मुझे जान पाये हो, क्योंकि मैं तो शरीरधारी जीवों के लिए दुर्विज्ञेय हूँ॥३६॥

तुभ्यं मद्विचिकित्सायामात्मा मे दर्शितोऽबहिः । नालेन सलिले मूलं पुष्करस्य विचिन्वतः ॥३७॥

अन्वयः— मद्विचिकित्सायां पुष्करस्य नालेन सलिलस्य मूलं विचिन्वतः तुभ्य मे अबहिः आत्मा दर्शितः ॥३७॥

अनुवाद— तुमको अपने मूल के विषय में संदेह हुआ कि मेरा कोई मूल है कि नहीं ? उसके पश्चात् तुम कमल नाल के द्वारा जल में अपने मूल का अन्वेषण करने लगे इसीलिए मैंने तुम्हारे हृदय में ही अपने को प्रदर्शित कर दिया ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तुभ्यं तव नालेन मार्गेण पुष्करस्य मूलमधिष्ठानं सलिले विचिन्वतो मयि विचिकित्सायां भवितव्यमस्याश्रयेण, नच दृश्यते ततोऽस्ति नास्तीति संदेहे सत्यात्मा स्वरूपं मे मया अबहिरन्तर्हृदि दर्शितः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

तुम कमल नाल के मार्ग से जल के भीतर अपने मूल का अन्वेषण कर रहे थे । तुमको मेरे विषय में संदेह हुआ ही होगा । यदि है तो क्यों नहीं दिखायी दे रहा है, अतएव है कि नहीं हैं, मेरा मूल ? इस तरह से तुम्हें संदेह होने पर मैंने अपने को तुम्हारे हृदय में ही प्रदर्शित कर दिया ॥३७॥

यच्चकर्थाङ्ग मत्स्तोत्रं मत्कथाभ्युदयाङ्कितम् । यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रगहः ॥३८॥

अन्वयः— अङ्ग मत्कथाभ्युादयाङ्कितम् यत् मत्स्तोत्रं चकर्थ यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रहः ॥३८॥

अनुवाद— हे वत्स ! मेरी कथाओं के वैभव से युक्त जो तुमने मेरी स्तुति की है तथा तुम्हारी जो तपस्या में निष्ठा है वह मेरी कृपा का ही फल है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

अङ्ग हे ब्रह्मन् चकर्थ कृतवानसि । मत्कथैवाभ्युदयस्तेनाङ्कितम् । स एष बन्धाभावो मयि मनोनिर्बन्धा मज्ज्ञानं मद्रूपस्य हृदि दर्शनं मत्स्तुतिस्तपोनिष्ठा चेति यद्येष सर्वोऽपि मदनुग्रहः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

हे ब्रह्मन् ! मेरी कथा रूपी ऐश्वर्य से युक्त जो तुमने मेरी स्तुति की है, यह संसार के बन्धन का अभाव है, मुझ में जो तुम्हारा मन लगा रहता है, मेरा ज्ञान, तथा अपने अन्तःकरण में मेरे रूप का दर्शन तथा मेरी स्तुति में तथा तपस्या में निष्ठा का होना यह सब कुछ मेरी कृपा का ही फल है ॥३८॥

प्रीतोऽहमस्तु भद्रं ते लोकानां विजयेच्छया । यदस्तौषीर्गुणमयं निर्गुणं माऽनुवर्णयन् ॥३९॥

अन्वयः— लोकानां विजयेच्छया गुणमयं मा निर्गुणं अनुवर्णयन् यत् अस्तौषीः तेन अहं प्रीतः ते भद्रम् अस्तु ॥३९॥

अनुवाद— लोकों की रचना करने की इच्छा से गुण युक्त रूप से प्रतीत होने वाले भी मेरी स्तुति तुमने जो निगुर्ण रूप से की है उससे मैं प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

गुणमयत्वेन प्रतीयमानमपि निर्गुणमेवानुवर्णयन् ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि मेरी प्रतीति सगुण रूप से होती है फिर भी तुमने मेरी स्तुति निगुर्ण रूप से की है, अतएव मैं तुम पर प्रसन्न हूँ तुम्हारा कल्याण हो ॥३९॥

य ऐतेन पुमान्नित्यं स्तुत्वा स्तोत्रेण मां भजेत् । तस्याशु संप्रसीदेयं सर्वकामवरेश्वरः ॥४०॥

अन्वयः— यः पुमान् एतेन स्तोत्रेण मां स्तुत्वा नित्यं मां भजते तस्य सर्वकामवरेश्वरः अहं आशु संप्रसीदेयम् ॥४०॥

अनुवाद— जो मनुष्य इस स्तोत्र के द्वारा मेरी स्तुति करके मेरा भजन करता है उस पर सभी कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ मैं शीघ्र ही प्रसन्न हो जाऊँगा ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

तव प्रीत इति किं वक्तव्यमित्याह-य इति ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

मुझे यह क्या कहना है कि मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । जो काई दूसरा भी जीव इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करके नित्य ही मेरा भजन करेगा उस पर मैं प्रसन्न हो जाऊँगा ॥४०॥

पूर्तेन तपसा यज्ञैर्दानैर्योगसमाधिना । राद्धं निःश्रेयसं पुंसां मत्प्रीतिस्तत्वविन्मतम् ॥४१॥

अन्वयः— पूर्तेन, तपसा यज्ञैः दानैः योगसमाधिना राद्धं निःश्रेयसा पुंसां मत्प्रीतिः तत्त्ववित् मतम् ॥४१॥

अनुवाद— तत्त्वज्ञ पुरुषों का मानना है कि मनुष्य पूर्व कर्म, तपस्या, यज्ञ, दान योग तथा समाधि के द्वारा जिस परम कल्याण को प्राप्त करता है वह मेरी प्रसन्नता का ही फल है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

नच मत्प्रीतेरप्यधिकं किंचिदस्तीत्याह । पूर्तादिभिः राद्धं सिद्धं यन्निःश्रेयसं फलं तन्मत्प्रीतिरेवेति तत्त्वविदां मतम्॥४१॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रीभगवान् बतला रहे है कि मेरी प्रसन्नता से बढ़कर कुछ भी नहीं है । तत्त्वज्ञ पुरुषों का कहना है कि मनुष्य पूर्तकर्म कूप, सरोवर आदि जलाशयों को बनवाना तपस्या, यज्ञ, दान, योग तथा समाधि आदि साधनों के द्वारा जिन परम कल्याणमय फल को प्राप्त करता है, वह मेरी कृपा का ही फल है ।।४१।।

अहमात्मात्मनां धातः प्रेष्ठः सन्प्रेयसामपि । अतो मयि रतिं कुर्याद्देहादिर्यत्कृते प्रियः ।।४२।।

अन्वयः— धातः अहम् आत्मनाम् आत्मा प्रेयसाम् अपि प्रेष्ठः यत् कृते देहादिः प्रियः अतः मयि रतिं कुर्यात् ।।४२।।

अनुवाद— ब्रह्मन् मैं आत्माओं की भी आत्मा हूँ प्रियों का भी प्रिय हूँ, देह आदि भी मेरे लिए ही प्रिय हैं, अतएव मुझसे ही प्रेम करना चाहिए ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

अत्र हेतुमाह-अहमिति । आत्मनाहंकारोपधीनां जीवानामात्मा । अतः प्रेयसामतिप्रियाणामपि मध्ये प्रेष्ठः प्रियतमः सन् निरवद्यः । यत्कृते यदर्थम् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

इसका कारण इस श्लोक में बतलाया गया है । भगवान् ने कहा हैं— मैं अहंकरोपाधि जीवों की भी आत्मा हूँ तथा अत्यन्त प्रिय पत्नी पुत्रादिकों में भी मैं सबसे अधिक प्रिय हूँ मैं निर्दोष हूँ । मेरे लिए ही देह इत्यादि प्रिय हैं।।४२।।

सर्ववेदमयेनेदमात्मनात्मात्मयोनिना । प्रजाः सृज यथापूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ।।४३।।

अन्वयः— इदम् याश्च प्रजाः मयि अनुशेरते ताः आत्मयोनिना सर्ववेदमयेन आत्मना यथापूर्वं सृज ।।४३।।

अनुवाद— ब्रह्मन् तुम इस त्रैलोक्य को तथा जो लीन हुयी प्रजा मुझमें सो रही उसको, मुझसे उत्पन्न सर्ववेदमय स्वरूप से पहले के ही समान स्वयम् रचो ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

अतस्त्वं कृतार्थ एव तथापि मत्प्रियार्थं सृष्टिं कुर्वित्याह-सर्वेति । आत्मा त्वमिदं त्रैलोक्यं या मय्यनुशेरते ताः प्रजाश्च सृज । केन आत्मनैवान्यनिरपेक्षेण । तत्र ज्ञापकापेक्षाभावमाह-सर्ववेदमयेनेति । आत्मा अहं योनिः कारणं यस्येति ज्ञानक्रियाशक्त्यतिशयं सूचयति । यथापूर्वमिति । तवात्राभ्यासोऽप्यस्तीत्युक्तम् । मय्यनुशेरत इति स्थितानामभिव्यक्तिमात्रमेव कर्तव्यमित्यनायासत्वमुक्तम् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त कारणों से तुम तो कृतार्थ ही हो । फिर भी मेरी प्रसन्नता के लिए सृष्टि करो । इस बात को इस श्लोक से कहा गया है । श्लोक का अर्थ है कि तुम इस त्रैलोक्य की तथा जो प्रजा मुझमें लीन होकर सो रही हैं उसकी सृष्टि निरपेक्ष होकर करो । उस सृष्टि के कार्य में ज्ञापक की कोई आवश्यकता नहीं है इस बात को बतलाते हुए भगवान् ने कहा कि तुम मुझसे सर्ववेदज्ञ रूप से उत्पन्न हो अतएव तुम ज्ञान शक्ति एवं क्रिया शक्ति से सम्पन्न हो । इसमें तुमको कोई नया प्रयास भी नहीं करना है, पूर्व कल्प के ही समान सृष्टि करो ।।४३।।

मैत्रेय उवाच

तस्मा एवं जगत्स्रष्ट्रे प्रधानपुरुषेश्वरः । व्यज्येदं स्वेन रूपेण कञ्जनाभस्तिरोदधे ।।४४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पद्मोद्भवे विदुरमैत्रेयसंवादे नवमोऽध्यायः ।।९।।

अन्वयः— कञ्जनाभिः प्रधानपुरुषेश्वरः तस्मै जगत् स्रष्ट्रे एवं स्वेन रूपेण इदं अभिव्यज्य तिरोदधे ।।५५।।

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से प्रकृति एवं पुरुष (जीव) दोनों के स्वामी जिनकी नाभि से कमल उत्पन्न हुआ ऐसे भगवान् पद्मनाभ अपने स्वरूप से ही इस जगत् को ब्रह्माजी को प्रदर्शित करके तिरोहित हो गये ।।४४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के ब्रह्माजी की उत्पत्ति के अन्तर्गत विदुरमैत्रेयसंवाद के अन्तर्गत नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

इदं सृज्यं व्यज्य प्रकाश्य पद्मनाभः श्रीनारायणरूपेण तिरोदधेऽदृश्योऽभवत् ।।४४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे भावार्थदीपिकाटीकायां नवमोऽध्यायः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से पद्मनाभ रूप से भगवान् नारायण इस जगत् को अभिव्यक्त करके अदृश्य हो गये ।।४४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या समपूर्ण हुयी ।।९।।

* * *

दसवाँ अध्याय

दस प्रकार की सृष्टियों का वर्णन

विदुर उवाच

अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लोकपितामहः । प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः ॥१॥

अन्वयः— भगवति अन्तर्हिते विभुः लोकपितामहः ब्रह्मा दैहिकीः मानसिकीः कतिधा प्रजाः ससर्ज ? ॥१॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे मैत्रेयजी ! श्रीभगवान् के अन्तर्धान हो जाने पर सम्पूर्ण जगत् के स्वामी लोक पितामह ब्रह्माजी ने कितने प्रकार की दैहिकी तथा मानसिकी सृष्टियों को किया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

दशमे कालसंप्रश्नप्राप्तिं वक्तुं तदुद्भवः । प्राकृतादिविभागेन सर्गस्तु दशधोच्यते ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दशवें अध्याय में कालविषयक प्रश्न का उत्तर बतलाने के लिए प्राकृत आदि विभागो वाली दश प्रकार की सृष्टियों का वर्णन किया गया है ॥१॥

ये च मे भगवन्पृष्टास्त्वय्यर्था बहुवित्तम । तान्वदस्वानुपूर्व्येण छिन्धि नः सर्वसंशयान् ॥२॥

अन्वयः— हे बहुवित्तम भगवन् ये अर्था मया त्वयि पृष्टाःतान् आनुपूर्व्येण वदस्व, नः संशयान् छिन्धि ॥२॥

अनुवाद— हे बहुज्ञों में श्रेष्ठ भगवन् ! आपसे मैंने जिन विषयों में प्रश्न किया है, आप इन सबों को क्रमशः बतलाकर मेरे सन्देह को दूर कीजिये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

मे मया । बदस्व वद । भासयस्वेति वा ।।२।।

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने कहा कि मैंने जिन-जिन प्रश्नों को आपसे पूछा है, आप उन सबों का उत्तर मुझे बतलायें। वदस्व पद की व्याख्या करते हुए श्रीधर स्वामी दो अर्थ लिखते है, वद अर्थात् कहें किन्तु वदस्व यह आत्मने पद में प्रयोग है अतएव दूसरा पर्यायवाची शब्द भासयस्व लिखा है । वादनोपसंभाषा इत्यादि के द्वारा वद धातु का भास आदेश होने पर लोट्लकार में भासयस्व रूप होगा ।।२।।

सूत उवाच

एवं संचोदितस्तेन क्षत्रा कौषारवो मुनिः । प्रीतः प्रत्याह तान्प्रश्नान् हृदिस्थानथ भार्गव ।।३।।

अन्वयः— हे भार्गव : एवं तेन क्षत्रा संचोदितः अथ कौषारवो मुनिः प्रीतः सन् तान् हृदिस्थान् प्रश्नान् प्रत्याह।।३।।

अनुवाद— हे भृगुवंशीय शौनक महर्षे ! विदुरजी के द्वारा इस तरह से प्रार्थना किए जाने पर उसके पश्चात् मैत्रेय महर्षि प्रसन्न होकर अपने हृदय में विद्यमान प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किए ।।३।।

भावार्थ दीपिका

संचोदितः प्रार्थितः । हृदिस्थानेवाह नतु ते प्रश्नास्तेन विस्मृता इत्यर्थः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से विदुरजी द्वारा की गयी प्रार्थना को सुनकर मैत्रेय महर्षि को बड़ी प्रसन्नता हुयी। पहले विदुरजी ने जिन प्रश्नों को किया था । वे सभी प्रश्न मैत्रेय महर्षि को याद थे वे भूले नहीं थे और उन्होंने विदुरजी के प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ।।३।।

मैत्रय उवाच

विरिञ्चोऽपि तथा चक्रे दिव्यं वर्षशतं तपः । आत्मन्यात्मानमावेश्य यदाह भगवानजः ।।४।।

अन्वयः— यद् भगवान् अजः आह विरिञ्चः अपि आत्मनि आत्मानम् आवेश्य दिव्यं वर्षशतंतपः चक्रे ।।४।।

अनुवाद— जैसा कि श्रीभगवान् ने आदेश दिया था उसी के अनुसार ब्रह्माजी भी अपनी आत्मा भगवान् नारायण में अपने मन को लगाकर दिव्य सौ वर्षों तक तपस्या किए ।।४।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनि श्रीनारायणे आत्मानं मन आवेश्य ।।४।।

भाव प्रकाशिका

मैत्रेय महर्षि ने कहा कि भगवान् नारायण ब्रह्माजी को तपस्या करने का आदेश देकर अदृश्य हो गये थे। उनके ही आदेशानुसार ब्रह्माजी भी भगवान् नारायण में ही लगाकर अपने मन को सौ दिव्यवर्षों तक तपस्या किये ।।४।।

तद्विलोक्याब्जसंभूतो वायुना यदधिष्ठितः । पद्मम्भश्च तत्कालकृतवीर्येण कम्पितम् ।।५।।

अन्वयः— अब्जसंभूतः यदधिष्ठितः तत् पद्मम् अम्भश्च कालकृतवीर्येण वायुना कम्पितम् विलोक्य ।।५।।

अनुवाद— ब्रह्माजी ने देखा कि वे जिस कमल पर बैठे हैं प्रलयकालीन वायु के द्वारा वह कमल तथा जल दोनों काँप रहे हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

अब्जसंभूतो ब्रह्मा यदधिष्ठाय स्थितः, कर्तरि क्तः । तत्पद्ममम्भश्च विलोक्य । कथंभूतं पद्ममम्भश्च । तेन प्रलयकालेन कृतं वीर्यं यस्य तेन वायुना कम्पितं, न्यापादित्युत्तरेणान्वयः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

कमल से उत्पन्न हेने वाले ब्रह्माजी ने देखा कि वे जिस कमल पर बैठे हुए हैं, वह कमल और जल प्रलय कालीन वायु के झंकोरों से काँप रहे हैं ।।५।।

तपसा ह्येधमानेन विद्यया चात्मसंस्थया । विवृद्धविज्ञानबलो न्यपाद्वायुं सहाम्भसा ।।६।।

अन्वयः— एधमानेन तपसा हि आत्मसंस्थया विद्यया विवृद्धविज्ञानबलः अम्भसा सह वायुं न्यपात् ।।६।।

अनुवाद— बढी हुयी तपस्या एवं अपने हृदय में विद्यमान आत्मज्ञान के द्वारा उनका विज्ञानबल बढ गया था और उन्होंने जल के साथ वायु को पी लिया ।।६।।

भावार्थ दीपिका

विवृद्धं विज्ञानबलं च यस्य । न्यपात्सर्वं पीतवान् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के आदेशानुसार ब्रह्माजी की तपस्या और हृदय में विद्यमान आत्मज्ञान ये दोनों समृद्ध हो गये थे । उसके कारण उनके विज्ञान और बल दोनों बढ गये थे । उसी के सहारे उन्होंने सम्पूर्ण जल और वायु दोनों को पी लिया ।।६।।

तद्विलोक्य वियद्व्यापि पुष्करं यदधिष्ठितम् । अनेन लोकान्प्राग्लीनान् कल्पितास्मीत्यचिन्तयत् ।।७।।

अन्वयः— यद् अधिष्ठितम् पुष्करं तद् वियद व्यापि विलोक्य अनेन प्राक् लीनान् लोकान् कल्पितास्मि इति अचिन्तयत्।।७।।

अनुवाद— जिस कमल पर ब्रह्माजी बैठे थे उसको आकाश में व्याप्त देखकर ब्रह्माजी ने सोचा कि पूर्व कल्प में जो लोक लीन हो गये थे उन सबों की रचना मैं इसी कमल से ही करूँगा ।।७।।

भावार्थ दीपिका

पुष्करं पद्मम् । प्राग्लीनान् त्रींल्लोकान् कल्पितास्मि स्त्रक्ष्यामि ।।७।।

भाव प्रकाशिका

अपने द्वारा अधिष्ठित कमल को आकाश व्यापी देखकर ब्रह्माजी ने विचार किया कि इस कल्प से पहले के कल्प में जो त्रैलोक्य लीन हो गया था उसकी सृष्टि मैं इस कमल के द्वारा ही करूँगा ।।७।।

पद्मकोशं तदाविश्य भगवत्कर्मचोदितः । एकं व्यभाङ्क्षीदुरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा ।।८।।

अन्वयः— तदा भगवत् कर्मचोदितः पद्मकोशं प्रावेश्य द्विसप्तधा, उरुधाभाव्यं एकं त्रिधाव्यभांक्षीत् ।।८।।

अनुवाद— भगवान् के द्वारा सृष्टि के कार्य में नियुक्त किए गये ब्रह्माजी उस कमल के कोश में प्रवेश कर गये और उस एक ही कमल कोश को, जो चौदह भुवनो या उससे भी अधिक भागों में विभक्त होने के योग्य था उसको त्रिलोकी के रूप में विभक्त कर दिए ।।८।।

भावार्थ दीपिका

भगवता स्वयं करणीये कर्मणि चोदितो नियुक्तः संस्तदा पद्मकोशं प्रविश्य तमेकमेव त्रिधा लोकरूपेण व्यभाङ्क्षीद्विभाज। एकेन कमलमुकुलेन कथं लोकत्रयसृष्टिरित्यसंभावनां वारयितुं तस्य विशालतामाह । द्विसप्तधा चतुर्दशलोकरूपेण । उरुधा ततोऽपि बहुप्रकारेण । भाव्यं भावयितुं योग्यम् । अतो न तेन त्रिलोकीकरणं चित्रमित्यर्थः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

सृष्टि कार्य किया जाना था और उस कार्य में श्रीभगवान् ने स्वयं ब्रह्माजी को नियुक्त किया था। वे ब्रह्माजी उस एक ही कमल के कोश में प्रवेश कर गये और उसी को वे त्रैलोक्य के रूप में तीन भागों में विभक्त कर दिये। एक ही कमल की कली से त्रैलोक्य की सृष्टि कैसे की जा सकती है, यह तो असंभव है। इस असंभावना को दूर करने के लिए मैत्रेय महर्षि ने कहा कि उसका इतना अधिक विस्तार था कि उसको चौदहों भुवनों के रूप में अथवा उससे भी अधिक रूपों में विभक्त किया जा सकता था ॥८॥

एतावाञ्जीवलोकस्य संस्थाभेदः समाहृतः । धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठ्यसौ ॥९॥

अन्वयः— जीवलोकस्य संस्थाभेदः एतावान् समाहृतः असौ परमेष्ठी अनिमित्तस्य हि धर्मस्य विपाकः ॥९॥

अनुवाद— जीवों के भोगस्थान के रूप में इन्हीं तीनों लोकों का विभाग शास्त्रों में वर्णित है। ब्रह्माजी आदि के जो महः, जनः तपः एवं सत्यम् लोक हैं वे निष्काम कर्म करने वालों के लोक के रूप में विभक्त हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

त्रिलोकीरूपेणैव विभागे हेतुमाह। एतावांस्त्रिलोकीरूपो जीवलोकस्य जीवानां भोगस्थानस्य प्रत्यहं सृज्यस्य संस्थाभेदो रचनाविशेष उक्तः। ननु परमेष्ठिनोऽपि जीवत्वाविशेषाद् ब्रह्मलोकस्यापि किमिति प्रत्यहं सृष्टिर्न भवति तत्राह। हि यस्मादनिमित्तस्य निष्कामस्य धर्मस्य विपाकः फलरूपोऽसौ। उपलक्षणमेतत्सल्यलोकस्य महःप्रभृतिलोकानां तद्वासिनां च। त्रैलोक्यस्य काम्यकर्मफलत्वात्प्रतिकल्पमुत्पत्तिविनाशौ भवतः। महःप्रभृतीनामुपासनासमुचितनिष्कामधर्मफलत्वाद्द्विपरार्धपर्यन्तं न नाशः। तत्रस्थानां च ततःपरं प्रायेण मुक्तिरिति भावः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने त्रिलोकी के रूप में ही जो कमल कोशका विभाग किया उसका कारण इस श्लोक में बतलाया गया है। ब्रह्माजी अपने प्रत्येक दिन में त्रिलोकी रूप ही जीवलोकों की रचना करते हैं यह शास्त्रों में वर्णित है। यदि कोई कहे कि ब्रह्माजी भी तो जीव ही हैं, अतएव ब्रह्मलोक की भी प्रत्येक कल्प रूपी दिन में सृष्टि क्यों नहीं होती है। तो इसके उत्तर में कहा गया है कि त्रिलोकी के ऊपर जो चार लोक हैं वे लोक निष्काम कर्मों के फलस्वरूप हैं। ब्रह्माजी का लोक महर्लोक से लेकर सत्य लोक पर्यन्त के लोकों तथा उन लोकों में रहने वाले जीवों का उपलक्षण है। त्रैलोक्य की प्राप्ति काम्यकर्मों का फलस्वरूप है। अतएव त्रैलोक्य की उत्पत्ति और विनाश प्रत्येक कल्प में होते रहते हैं। महः इत्यादि लोकों की प्राप्ति तो उपसना स्वरूप निष्काम कर्मों का फलरूप है। अतएव उन लोकों का द्विपरार्द्धपर्यन्त नाश नहीं होता है। उन लोकों में रहने वाले जीव द्विपरार्द्ध के पश्चात् प्रायः मुक्त हो जाते हैं ॥९॥

विदुर उवाच

यदात्थ बहुरूपस्य हरेरद्भुतकर्मणः । कालाख्यं लक्षणं ब्रह्मन् यथा वर्णय नः प्रभो ॥१०॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् अद्भुतकर्मणः बहुरूपस्य हरेः यत् कालाख्यं लक्षणमाह हे प्रभो नः यथा वर्णय ॥१०॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन्! अद्भुत कर्मों को करने तथा विश्वरूप श्रीहरि की जिस काल नामक शक्ति का आपने वर्णन किया था हे प्रभो! कृपया आप उसका विस्तार से वर्णन करें ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

कालभेदेन लोकसृष्टिभेदं श्रुत्वा तमेव कालं जिज्ञासुः पृच्छति । यत्कालाख्यं लक्षणं स्वयमात्थ अब्रवीः । कथं कालः कल्पते, किं वा तस्य सूक्ष्मं च रूपमिति यथावद्वर्णयेत्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

काल के भेद से लोकों की सृष्टि को सुनकर विदुरजी काल के विषय में जानने की इच्छा से पूछे कि प्रभों! आपने पहले श्रीभगवान् की काल नामक शक्ति का वर्णन किया था, मैं उसके विषय में जानना चाहता हूँ । उस काल का किस लक्षण के द्वारा अनुमान किया जाता है उसके सूक्ष्म तथा स्थूल भेद क्या हैं ? इन सारी बातों का आप वर्णन करें ॥१०॥

मैत्रेय उवाच

गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः । पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयाऽसृजत् ॥११॥

अन्वयः— गुणव्यतिकराकारः निर्विशेषः अप्रतिष्ठितः पुरुषः तदुपादानम् लीलया आत्मानं असृजत् ॥११॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— गुणों का जिसके द्वारा महदादि के रूप में परिणाम होता है उसे ही काल कहते हैं । वह निर्विशेष तथा अनादि एवं अनन्त है । उसी को निमित्त बनाकर भगवान् लीलापूर्वक ही सृष्टि कर देते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तत्र सामान्यतः कालस्य स्वरूपमत्रोच्यते, उत्तराध्याये तु विशेषतः । गुणानां व्यतिकरो महदादिपरिणामस्तेनैवाक्रियते यः स काल इति शेषः । वक्ष्यते चैकादशे **गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च** इति । स्वतस्तु निर्विशेषः । अप्रतिष्ठितः क्वाप्यपर्यवसितः । आद्यन्तशून्य इत्यर्थः । एतदेव दर्शयितुमीश्वरः । सृष्ट्यादि तेन निमित्तभूतेन करोतीत्याह-पुरुष इति । उपादीयते निमित्ततया स्वीक्रियते इत्युपादानम् । स काल उपादानं निमित्तं यस्मिंस्तमात्मानमेव विश्वरूपेणासृजत् । स्वव्यतिरेकेण सृज्यस्याभावात् । एतच्च वस्तुकथनमात्रम् । कालेन निमित्तेन चासृजदित्येतावदेव विवक्षितम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ पर कल का सामान्य लक्षण कहा गया है । इसके बाद वाले अध्याय में उसका विशेष लक्षण कहा जायेगा । गुणों का महदादि के रूप में जिसके द्वारा परिणाम होता है, उसे काल कहते हैं । ग्यारहवें स्कन्ध में कहा भी जायेगा कि गुणों का महदादि के रूप में परिणाम जिसके द्वारा होता है उसे काल कहते है । वही स्वभाव तथा सूत्र है । कालस्वभावतः निर्विशेष है । वह किसी भी रूप में परिणत नहीं होता है अतएव वह आदि और अन्त से रहित है । इस काल को ही बतलाने के लिए ईश्वर उस निमित्तभूत काल के द्वारा सृष्टि आदि कार्य बिना किसी प्रयास के ही कर देते हैं । वे परमात्मा काल को ही निमित्त बनाकर अपने को ही विश्व के रूप में परिणत कर दिए । क्योंकि अपने से भिन्न कोई दूसरी वस्तु सृज्य है ही नहीं । यह केवल सिद्धान्त कथन मात्र है । सम्पूर्ण जगत् परमात्मा का कार्य होने के कारण उनसे अभिन्न है । यहाँ पर केवल इतना ही विवक्षित है कि श्रीभगवान् ने काल रूपी निमित्त द्वारा जगत् की सृष्टि की ॥११॥

विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया । ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्तमूर्तिना ॥१२॥

अन्वयः— विष्णुमायया संस्थितं ब्रह्मतन्मात्रं वै विश्वं ईश्वरेण अव्यक्तमूर्तिना कालेन परिच्छिन्नम् ॥१२॥

अनुवाद— सृष्टि से पूर्व यह सारा विश्व भगवान् की माया में लीन होकर ब्रह्मरूप से स्थित था, उसी को अव्यक्तमूर्ति काल के द्वारा परमेश्वर ने पृथक् रूप से प्रकट किया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

स्वव्यतिरिक्तसृज्याभावं दर्शयन् कालस्य सृष्टिनिमित्ततां दर्शयति- विश्वमिति । विष्णुमायया संस्थितं संहृतं ब्रह्मतन्मात्रं सद्विश्वम् । ईश्वरेण कर्त्रा कालेन निमित्तेन परिच्छिन्नं पृथक् प्रकाशितम् । अव्यक्ता मूर्तिः स्वरूपं यस्येति स्वतो निर्विशेषता दर्शिता ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मव्यतिरिक्त सृज्य के अभाव को बतलाते हुए यह बतलाया जा रहा है कि काल ही सृष्टि का निमित्त है । भगवान् की माया के द्वारा संहृत विश्व ब्रह्ममात्र ही था । अर्थात् ब्रह्मरूप में स्थित था । परमात्मा ने कालरूपी निमित्त के द्वारा ब्रह्म से पृथक् विश्व प्रकाशित कर दिया । काल अव्यक्त स्वरूप होने के कारण निर्विशेष है ॥१२॥

यथेदानीं तथाऽग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम् । सर्गो नवविधस्तस्य प्राकृतो वैकृतस्तु यः ॥१३॥

अन्वयः— एतद् यथा इदानीम् तथा अग्रे पश्चात् अपि एतत् इदृशम् तस्य नवविधः सर्गः तथा प्राकृतः वैकृतः तु यः॥१३॥

अनुवाद— यह जगत् इस समय जैसा है वैसा ही पहले भी था और भविष्य में भी यह वैसा ही होगा इसकी ही प्राकृत नव प्रकार की सृष्टि होती है और दशवीं वैकृत सृष्टि हुयी ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अप्रतिष्ठितत्वं दर्शयितुं तत्कार्यविश्वप्रवाहस्याप्रतिष्ठामाह । यथेदानीमस्ति तथाऽग्रे पूर्वमप्यासीत्पश्चादपि भविष्यति । एवं सामान्यतः कालं निरूप्य विशेषतो निरूपयिष्यंस्तन्निमित्तस्य सर्गस्य पूर्वोक्तानेव भेदाननुवदति-सर्ग इति । यस्तु प्राकृतो वैकृतश्च स दशमः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

काल के आदि और अन्त राहित्य को दिखाने के लिए उसके कार्यभूत विश्व के प्रवाह की अनादिता और अनन्तता को इस **यथेदानीम् श्लोक** से कहा गया है । यह जगत् इस समय जैसा है, पहले भी वैसा ही था और भविष्य में भी यह वैसा ही रहेगा । इस तरह से काल का सामान्य रूप से निरूपण करके उसका विशेष रूप से निरूपण करने के लिए उसके कारणभूत सृष्टि के पूर्वोक्त भेदों का अनुवाद श्लोक के उत्तरार्द्ध से किया गया है । जो प्राकृत और वैकृत सृष्टि है वह दशवें प्रकार की है । इसी को कौमार सर्ग भी कहते हैं ॥१३॥

कालद्रव्यगुणैरस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः । आद्यस्तु महतः सर्गो गुणवैषम्यमात्मनः ॥१४॥

अन्वयः— काल, द्रव्य गुणैः अस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः आद्यः महतः सर्गः आत्मनः गुणवैषम्यम् ॥१४॥

अनुवाद— इस जगत् का प्रलय काल द्रव्य एवं गुणों के भेद से तीन प्रकार का होता है । पहले मैं दस प्रकार की सृष्टियों का वर्णन करता हूँ । पहली सृष्टि महत् तत्त्व की है । भगवान् की प्रेरणा से गुणों में वैषम्य का हो जाना ही उसका स्वरूप है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तन्निमित्तमेव त्रिविधं प्रलयमाह । कालेनैव केवलेन नित्यः प्रलयः । द्रव्येण संकर्षणाग्न्यादिना नैमित्तिकः । गुणैः स्वस्वकार्यं ग्रसद्भिः प्राकृतिकः । तानेव सर्गान्प्रपञ्चयति-आद्य इत्यादिना यावदध्यायसमाप्तिम् । महतो लक्षणमात्मनो हरेः सकाशाद्गुणानां वैषम्यमिति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

काल के कारण होने वाले तीन प्रकार के प्रलयों को बतलाया गया । केवल काल के कारण नित्यप्रलय होता है । सङ्कर्षण के मुख से निकली हुयी अग्नि के कारण जो प्रलय होता है वह नैमित्तिक प्रलय कहलाता है।

जब गुण अपने-अपने कार्यों को अपने में लीन करने लग जाते हैं तो उसको प्राकृतिक प्रलय कहते हैं। उन सृष्टियों का विस्तार से वर्णन इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त करते हैं। महान् का यही लक्षण है कि श्रीहरि की इच्छा से गुणों में विषमता का उत्पन्न हो जाना ।।१४।।

द्वितीयस्त्वहमो यत्र द्रव्यज्ञानक्रियोदयः । भूतसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रो द्रव्यशक्तिमान् ।।१५।।

अन्वयः— द्वितीयस्तु अहमः यत्र द्रव्यज्ञानक्रियादयः । तृतीयः तु द्रव्यशक्तिमान् तन्मात्रः भूतसर्गः ।।१५।।

अनुवाद— दूसरी अहङ्कार की सृष्टि है, जिससे महाभूतों ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। तीसरी सृष्टि का नाम भूतसर्ग है। जिससे पञ्चमहाभूतों को उत्पन्न करने वाला तन्मात्र समूह रहता है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अहमोऽहंकारस्य । तस्य लक्षणम् यत्रेति । द्रव्यादयो वक्ष्यमाणास्त्रयः सर्गाः तन्मात्रो भूतसर्गः, भूतसूक्ष्मसर्ग इत्यर्थः। द्रव्यशक्तिमान् महाभूतोत्पादकः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अहम् शब्द अहङ्कार का वाचक है। **यत्र इत्यादि** के द्वारा अहङ्कार का लक्षण कहा गया है। **द्रव्यादयः** शब्द से आगे कहे जाने वाली तीन सृष्टियाँ कही गयी हैं। महाभूतों की सूक्ष्मावस्था तन्मात्र शब्द से कही जाती है। तन्मात्रों से ही महाभूतों की सृष्टि होती है। **द्रव्य शक्तिमान** का अर्थ है महाभूतों को उत्पन्न करने वाला ।।१५।।

चतुर्थ ऐन्द्रियः सर्गो यस्तु ज्ञानक्रियात्मकः । वैकारिको देवसर्गः पञ्चमो यन्मयं मनः ।।१६।।

अन्वयः— चतुर्थः ऐन्द्रियः सर्गः यस्तु ज्ञानक्रियामयः । वैकारिको देवसर्गः पञ्चमो यन्मयं मनः ।।१६।।

अनुवाद— चौथी सृष्टि इन्द्रियों की है। यह ज्ञान और क्रियामय है। पाञ्चवीं सृष्टि सात्त्विक अहंकार से उत्पन्न होने वाले इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं की है, मन भी उसी के अन्तर्गत है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

ज्ञानकर्मेन्द्रियात्मकश्चतुर्थः । पञ्चमो वैकारिकः इन्द्रियाधिष्ठातारो देवा मनश्च ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

चौथी सृष्टि ज्ञानेन्द्रियात्मक और कर्मेन्द्रियात्मक हैं। सात्त्विक अहङ्कार जन्य इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं और मन की सृष्टि है। मन की सृष्टि भी पाञ्चवीं सृष्टि के अन्तर्गत ही है ।।१६।।

षष्ठस्तु तमसः सर्गो यस्त्वबुद्धिकृतः प्रभो । षडिमे प्राकृताः सर्गा वैकृतानपि मे शृणु ।।१७।।

अन्वयः— प्रभो षष्ठः तु तामसः सर्गः यस्तु अबुद्धिकृत इमे षट प्राकृताः सर्गाः वैकृतान् अपि मे शृणु ।।१७।।

अनुवाद— छठी सृष्टि तामस अहङ्कार जन्य अविद्या की है। इसमें पाँच पर्व हैं, तम, मोह, महाहोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र। ये छह प्राकृत सृष्टियाँ हैं अब आप वैकृत सृष्टियों को सुनें ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

षष्ठस्तु तमसः पञ्चपर्वाऽविद्यायाः । अबुद्धिर्जीवानामावरणं विक्षेपश्च तां करोतीत्यबुद्धिकृत्तस्य । मत्तः शृणु ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

छठी सृष्टि तामस अहङ्कार जन्य अविद्या की है। इसमें पाँच पर्व है, तम, मोह, महामोह तामिस्र और अन्धतामिस्र। यह जीवों का आवरण और विक्षेप करती है अतएव यह अबुद्धिकृत है। अबुद्धिकृतः षष्ठी का रूप है। अब आप अविकृत की सृष्टि मुझसे सुनें ।।१७।।

रजोभाजो भगवतो लीलेयं हरिमेधसः । सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषां च यः ॥१८॥

अन्वयः— रजोभाजः भगवतः हरिमेधसः इयं लीला सप्तमः मुख्यसर्गः तु तस्थुषां यः षड्विधः ॥१८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् अपना चिन्तन करने वालों के दुःखों को हर लेते हैं अतएव वे हरिमेधस शब्द वाच्य हैं । यह सारी लीला उन श्रीहरि की ही है । वे ही रजोगुण को अपनाकर जगत् की रचना करते हैं । सातवीं प्रधान वैकृत सृष्टि छह प्रकार के स्थावर वृक्षों की है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अनुद्वेगेन श्रोतव्यतामाह । यद्विषया मेधा संसारं हरति तस्य हरेर्लीला । यद्वा इयमिति । तमआदिसर्गरूपा । रजोभाज इति ब्रह्मरूपस्येत्यर्थः । अस्मिन्पक्षे अबुद्धिकृत इति प्रथमान्तम् । अनवधानकृत इत्यर्थः । मुखमिव प्रथमं कृतो मुख्यसर्गः। तस्थुषां स्थावराणाम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

सावधान मन से इसको सुनना चाहिये । इस बात को बतलाते हुए कहते हैं । जिन श्रीभगवान् का चिन्तन संसार के बन्धन को विनष्ट कर देता है । उन्हीं श्रीहरि की यह लीला है । अथवा **इयम्** पद से तम आदि की सृष्टि कही गयी है । रजोगुण को स्वीकार करके भगवान् ब्रह्माजी का रूप धारण कर लेते हैं । इस तरह का अर्थ करने पर अबुद्धिकृतः पद को प्रथमान्त मानना होगा । अर्थात् अनवधान जन्य है । सातवीं मुख्यसृष्टि छह प्रकार के स्थावरों की है ॥१८॥

वनस्पत्यौषाधिलता त्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः । उत्स्रोतसस्तमःप्राया अन्तःस्पर्शा विशेषिणः ॥१९॥

अन्वयः— वनस्पत्योषधिलतात्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः । उत्स्रोतसः तमः प्रायाः अन्तः स्पर्शा विशेषिणाः ॥१९॥

अनुवाद— वनस्पति, ओषधि, लता, त्वक्सार, वीरुध और द्रुम ये छह प्रकार के स्थावर है । इनका संचार नीचे से ऊपर की ओर होता है । इनमें ज्ञान शक्ति प्रकट नहीं रहती है, ये भीतर ही भीतर केवल स्पर्श का अनुभव करते हैं । इनमें से किसी में भी कोई विशेष गुण नहीं होता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

षड्विधत्वमेवाह । ये पुष्पं बिना फलन्ति ते वनस्पतयः । ओषधयः फलपक्वान्ताः । लता आरोहणापेक्षाः । त्वक्सारा वेण्वादयः । लता एव काठिन्येनारोहणानपेक्षा वीरुधः । ये पुष्पैः फलन्ति ते द्रुमाः । तेषां साधारणं लक्षणमाह ऊर्ध्वं स्रोतः आहारसंचारे येषाम् । तमःप्राया अव्यक्तचैतन्याः । अन्तःस्पर्शाः स्पर्शमेव जानन्ति नान्यत् । तदप्यन्तरेव न बहिः । विशेषिणोऽव्यवस्थितपरिणामाद्यनेकभेदवन्तः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में स्थावरों के छह भेदों को बतलाया गया है । जो पुष्प दिए बिना ही फल जाते हैं वे स्थावर वनस्पति कहलाते हैं । जो फल के पकने पर विनष्ट हो जाते हैं ऐसे स्थावर ओषधि कहलाते हैं । जो किसी के सहारे से ऊपर की ओर चढते हैं उनको लता कहते हैं । जिनके छिलके में ही बल होता है ऐसे बांस आदि त्वक्सार हैं । जो लताएँ कठिन पदार्थ के बिना ही ऊपर चढ जाती हैं वे वीरुध हैं और जो स्थावर पुष्प देकर फल देते हैं वे द्रुम कहलाते हैं । स्थावरों का साधारण लक्षण है कि उनके आहार का संचार ऊपर की ओर होता है । उनका ज्ञान अनुद्भूत होता है । वे केवल स्पर्श का ही अनुभव करते हैं और किसी दूसरी बात को नहीं जानते । वह भी भीतर ही अनुभव करते हैं बाहर नहीं । उनके परिणाम तथा पुष्प आदि अनेक प्रकार के होते हैं ॥१९॥

तिरश्चामष्टमः सर्गः सोऽष्टाविंशद्विधो मतः । अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हृद्यवेदिनः ॥२०॥

अन्वयः— तिरश्चामष्टमः सर्गः सः अष्टाविंशविधः मतः अविदः भूरितमसः घ्राणज्ञाः हृद्यवेदिनः ॥२०॥

अनुवाद— आठवीं सृष्टि पशु-पक्षियों की है, उसके अठाइस भेद कहे गये हैं । इन्हें काल का ज्ञान नहीं होता है । तमोगुण की अधिकता के कारण वे खाना-पीना सोना आदि ही जानते हैं । सूघंने मात्र से ही उनको वस्तुओं का ज्ञान होता है । उनके हृदय में विचार शक्ति नहीं होती हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तिर्यक्स्त्रोतसां सर्गमाह-तिरश्चामिति । स चाष्टाविंशतिभेदः । तिरश्चां लक्षणम् । अविदः श्वस्तनादिज्ञानशून्याः । भूरितमसः आहारादिज्ञानमात्रनिष्ठाः । घ्राणेनैवेष्टमर्थं जानन्ति । हृदि अवेदिनो दीर्घानुसंधानशून्याः । तथा च श्रुतिः '**अथेतरेषां पशूनामशनापिपासे एवाभिविज्ञानं न विज्ञातं वदन्ति न विज्ञातं पश्यन्ति न विदुः श्वस्तनं न लोकालोकौ** इति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में पशुपक्षियों की सृष्टि का वर्णन करते हैं । इस सृष्टि के अठाइस भेद हैं । पशु-पक्षियों का यही लक्षण है कि उनको आज और काल का ज्ञान नहीं होता है । तमोगुण की अधिकता होने के कारण वे केवल अपने आहार को जानते हैं । वे सूंघकर ही जान लेते हैं कि यह प्रियवस्तु है यह अप्रिय वस्तु है । उनको दीर्घ अनुसन्धान नहीं होता है । श्रुति भी कहती है— **अथेतरेषाम्० इत्यादि** मनुष्यों से भिन्न जो पशु हैं उनको अपने भूख प्यास का ही ज्ञान होता है । वे किसी को जानकर उससे बातें नहीं करते हैं और न तो किसी परिचित को देखते हैं । उनको न तो आज और कल का ज्ञान होता है और न तो उन्हें प्रकाश और अन्धकार का ज्ञान होता है ॥२०॥

गौरजो महिषः कृष्णः सूकरो रुरुः । द्विशफाः पशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्च सत्तम ॥२१॥

अन्वयः— हे सत्तम ! गौः, अजः, महिषः, कृष्णः, सूकरः, गवयः, रुरुः, अविः, उष्ट्रः च इमे पशवः द्विशफाः ॥२१॥

अनुवाद— हे साधु श्रेष्ठ ! गौ, बकरा, भैंसा, कालामृग, सूकर, नीलगाय, रुरुमृग, भेंड़ तथा ऊँट ये सभी पशु दो खुरों वाले हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टाविंशतिभेदानेवाह । गवादय उष्ट्रान्ता द्विशफा द्विखुरा नव ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

पशुओं के अट्ठाइस भेदों को बतलाते हैं । गौ से लेकर ऊँट पर्यन्त पशु दो खुरों वाले हैं इनकी संख्या नव है ॥२१॥

खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरी तथा । एते चैकशफाः क्षत्तः शृणु पञ्चनखान्पशून् ॥२२॥

अन्वयः— खरः अश्वः अश्वतरः, गौरः शरभः तथा चमरी हे क्षतः एते एकशफाः पञ्चनखान् पशून् शृणु ॥२२॥

अनुवाद— गधा, घोड़ा, खच्चर, गौरमृग शरभ तथा चमरी ये सभी पशु एक खुर वाले हैं । अब आप पाँच नख वाले पशुओं को सुनें ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

खरादय एकशफाः षट् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

गधे आदि छह पशु एक खुर वाले हैं । अब पाँच नख वाले पशुओं को बतलाया जा रहा है ॥२२॥

श्वा सृगालो वृको व्याघ्रो मार्जारः शशशल्लकौ । सिंहः कपिर्गजः कूर्मो गोधा च मकरादयः ॥२३॥

अन्वयः— श्वा, शृगालः, वृकः व्यघ्रः, मार्जारः, शशशल्लकौ, सिंहः, कपिः गजः कूर्मः गोधा मकरादयः च ॥२३॥

अनुवाद— कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, विडाल, खरगोश, साहिल, सिंह, बन्दर, हाथी, कछुआ, गोह और मगर आदि ये सभी पाँच नखों वाले पशु हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

श्वादयो गोधान्ताः पञ्चनखा द्वादश । एवमेते भूचराः सप्तविंशतिः । मकरादयो जलचराः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में वर्णित कुत्ते से लेकर गोह पर्यन्त बारह पशु पाँच नख वाले हैं । इसतरह पृथिवी पर चलने वाले सत्ताइस पशु गिनाये गये हैं । मगर इत्यादि जल में रहने वाले हैं ॥२३॥

कङ्कगृध्रवटश्येनभासभल्लूकबर्हिणः । हंससारसचक्राह्वकाकोलूकादयः खगाः ॥२४॥

अन्वयः— कङ्क-गृध-वट-श्येन-भास-भल्लूक-वर्हिणः हंस-सारस-चक्राह्व-काकोलूकादयः खगाः ॥२४॥

अनुवाद— कङ्क (बगुला) गृध्र, बटेर, बाज, भास, भल्लूक, मोर, हंस, सारस, चकवा, कौआ और उल्लू ये आकाश में उड़ने वाले जीव पक्षी हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

कङ्कादयश्च खगा अभूचरत्वेनैकीकृत्या गृहीताः तदेवमष्टाविंशतिभेदा भवन्ति । तेषु कृष्णरुरुगौरा मृगविशेषाः । अन्येषामपि तिर्यक्प्राणिनां यथायथमेतेष्वेवान्तर्भावः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

कङ्क (बगुला) आदि पक्षी है । ये पृथिवी पर रहने वाले नहीं है । अतएव इन सबों को एक ही में गिना गया है । इस तरह से पशु-पक्षियों के अठाइस भेद हो गये । दूसरे भी तिर्यक् प्राणियों का यथायोग्य इनमें ही अन्तर्भाव हो जाता है ॥२४॥

अर्वाक्स्रोतस्तु नवमः क्षत्तरेकविधो नृणाम् । रजोधिकाः कर्मपरा दुःखे च सुखमानिनः ॥२५॥

अन्वयः— क्षत्तः नृणाम् अर्वाक्सोतः तु नवमः एकविधः रजोधिकाः कर्मपराः दुःखे च सुखमानिनः ॥२५॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! जिनके आहार का प्रचार ऊपर से नीचे की ओर होता है, उन मनुष्यों की सृष्टि एक प्रकार की होती है । उनमें रजोगुण की अधिकता होती है, वे कर्मपरायण होते हैं । तथा दुख में ही सुख मानने वाले होते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अध आहारसंचारो यस्य सोऽर्वाक्स्रोताः । ह्रस्वत्वमार्षम् । नृणां सर्गो नृणां लक्षणम् । रजोऽधिकं येषु ते ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

जिनके आहार का संचार ऊपर से नीचे की ओर होता है, वे अर्वाक्स्रोत मनुष्य हैं । अर्वाक्स्रोत यह आर्ष प्रयोग हैं अन्यथा अर्वाक् स्रोता रूप होना चाहिए । यह मनुष्यों की सृष्टि नवीं सृष्टि है । मनुष्यों का लक्षण यह है कि उनमें रजोगुण की अधिकता होती है । वे कर्मपरायण और दुःख में ही सुख मानने वाले होते हैं ॥२५॥

वैकृतास्त्रय एवैते देवसर्गश्च सत्तम । वैकारिकस्तु यः प्रोक्तः कौमारस्तूभयात्मकः ॥२६॥

अन्वयः— हे सत्तम ! एते त्रय एव वैकृताः, देवसर्ग च, यः वैकारिकः प्रोक्तः कौमारस्तु उभयात्मकः ॥२६॥

अनुवाद— हे साधुवर्य विदुरजी स्थावर, पशुपक्षी और मनुष्य और देवसर्ग ये वैकृत सर्ग है । महतत्त्व आदि को प्राकृत सर्ग कहा जा चुका है । कौमारसर्ग यह प्राकृत एवं वैकृत दोनों प्रकार का है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

एते त्रयो वैकृता एव न कौमारवदुभयात्मकाः । देवसर्गश्च वैकृत इत्यनुषङ्गः । वैकारिकस्तु देवसर्गः प्राकृतेषु पूर्वमेव प्रोक्तः । अयं तु ततो न्यूनत्वाद्वैकृतो देवसर्गत्वात्तदन्तर्भूतश्च । सनत्कुमारादीनां सर्गस्तु प्राकृतो वैकृतश्च देवत्वेन मनुष्यत्वेन च सृज्य इत्यर्थः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

स्थावर, तिर्यक् तथा मनुष्यों की सृष्टि ये तीनों सृष्टियाँ, वैकृत सृष्टि हैं देवों की सृष्टि भी वैकृत ही है । सात्विक अहङ्कार जन्य देवों की सृष्टि को पहले ही प्राकृत सृष्टियों में कहा गया है । यह मनुष्यों की सृष्टि देव सृष्टि से न्यून होने के कारण वैकृत कही गयी है । देवसर्ग होने के कारण उसके अन्तर्गत है । सनत्कुमार आदि की सृष्टि को प्राकृत एवं वैकृत दोनों इसलिए कहा गया है कि उनकी सृष्टि देव और मनुष्य रूप में होती हैं ॥२६॥

देवसर्गश्चाष्टविधो विबुधाः पितरोऽसुराः । गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चारणाः ॥२७॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च विद्याध्राः किन्नरादयः । दशैते विदुराख्याताः सर्गास्ते विश्वसृक्कृताः ॥२८॥

अन्वयः— हे विदुर ! देवसर्गः च अष्टविधः, विवुधा, पितरः, असुराः गन्धर्वाप्सरसः, सिद्धाः यक्षरक्षांसि चारणाः। भूतप्रेत पिशाचाः च विद्याध्राः किन्नरादयः, एतेदश सर्गाः विश्वसृक् कृता ते आख्याताः ॥२७-२८॥

अनुवाद— देवता, पितर, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, सिद्ध, चारण, विद्याधर, भूत प्रेत, पिशाच और किन्नर इत्यादि के भेद से देवताओं की सृष्टि आठ प्रकार की है । हे विदुरजी ! इस तरह से ब्रह्माजी द्वारा की गयी दस प्रकार की सृष्टियाँ हैं । यह मैंने आपको बतला दिया ॥२७-२८॥

भावार्थ दीपिका

वैकृतश्च देवसर्गोऽष्टविधः । तत्र विवुधादयस्त्रयो भेदाः । गन्धर्वाप्सरस एकः । यक्षरक्षांस्येकः । भूतप्रेतपिशाचा एकः। सिद्धचारणविद्याधरा एकः । किन्नरादय एकः । आदिशब्दत्किंपुरुषाश्वमुखादयः । एतद्विंशेऽध्याये स्पष्टं भविष्यति ॥२७-२८॥

भाव प्रकाशिका

वैकृत देवसर्ग आठ प्रकार का है विबुध, पितर और असुर ये तीन उनके विभाग हुए । गन्धर्वाप्सरों का चौथा विभाग है । यक्षों एवं राक्षसों का पाँचवाँ विभाग है, भूतप्रेत तथा पिशाचों का छठा भेद है, सिद्धों चारणों एवं विद्याधरों को सातवाँ भेद हैं और किन्नरों आदि का आठावाँ भेद है । किन्नरादि के आदि शब्द से किंपुरुष अश्वमुख आदि सूचित हैं । बीसवें अध्याय में ये सारी बातें स्पष्ट हो जायेंगी ॥२७-२८॥

अतःपरं प्रवक्ष्यामि वंशान्मन्वन्तराणि च । एवं रजःप्लुतः स्रष्टा कल्पादिष्वात्मभूर्हरिः ॥
सृजत्यमोघसंकल्प आत्मैवात्मानमात्मना ॥२९॥

अन्वयः— अतः परं वंशान् मन्वतराणि च प्रवक्ष्यामि । रजः प्लुतः स्रष्टा अमोघ सङ्कल्पः हरिः कल्पदिषु आत्मभूः आत्मन आत्मैव सृजति ॥२९॥

अनुवाद— इसके पश्चात् मैं वंशों तथा मन्वन्तरों का वर्णन करूँगा इस तरह रजोगुण प्रधान सत्य सङ्कल्प श्रीहरि ही कल्पों के प्रारम्भ में ब्रह्मा बनकर जगत् के रूप में अपनी ही रचना करते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नही है ॥२९॥

गुणव्यत्यय एतस्मिन्मायावित्वादधीशितुः। न पौर्वापर्यमिच्छन्ति नद्यां भ्राम्यद्भ्रमेरिव ॥३०॥
देवासुरादयः क्षत्तः कल्पेऽस्मिन्ये च कीर्तिताः। त एव नामरूपाभ्यामासन्मन्वन्तरान्तरे ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अन्वयः— हे क्षत्तः एवम् अधीशितुः मायावित्वात् एतस्मिन् गुणव्यत्यये, नद्यां भ्रमेः, इव पौर्वापर्यं न इच्छन्ति। अस्मिन् कल्पे ये च देवासुरादयः कीर्तिताः ते एव मन्वन्तरान्तरे नामरूपाभ्याम् आसन् ॥३०-३१॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! इस तरह से परमात्मा के माया का स्वामी होने के कारण गुणों के परिणाम में कोई भी पौर्वापर्य भाव उसी तरह से नहीं होता हैं जिस तरह नदी में प्रकट होने वाले चकोह में कोई भी पौर्वापर्य भाव नहीं होता है। इस कल्प में जो देवता तथा असुर इत्यादि कहे गये हैं वे ही दूसरे भी मन्वन्वतरों में उन्हीं नामों और रूपों से युक्त थे ॥३०-३१॥

भावार्थ दीपिका

ननु कथं तर्हि प्रथमं सृष्टिः प्रलयो वा, तत्राह-गुणेति। गुणव्यत्यये सर्गे भ्राम्यन्भ्रमणशीलो भ्रमिरविशेषाद्भ्राम्यद्भ्रमिस्तस्य नद्यां भ्रमतो यथा नादिर्नान्तस्तथा सृष्टिसंहारयोरित्यर्थः। संसारस्यानादित्वमेकरूपत्वं चाह-देवासुरादय इति। त एवेति। तन्नामानस्तद्रूपाश्चेत्यर्थः ॥३०-३१॥

इति श्रीमद्भगावते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न हाता है कि तो फिर प्रथम सृष्टि अथवा प्रथम प्रलय कैसे कहा जाता है ? तो उसके उत्तर में मैत्रेय महर्षि **गुणव्य० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। गुणो के परिणाम स्वरूप सृष्टि के होने में कोई भी आदि और अन्त उसी प्रकार नहीं होता हैं जिस तरह नदियों में होने वाले चकोहों में कोई भी प्रथम अथवा अन्तिम नहीं होता हैं संसार अनादि एवं एकरूप ही रहता है। इस बात को बतलाते हुए मैत्रेय महर्षि ने **देवासुरादयः इत्यादि** श्लोक को कहा है। प्रत्येक कल्पों में देवताओं और असुरों के वे ही नाम और वे ही रूप रहते हैं। वे सदा एक समान ही होते हैं ॥३०-३१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भार्वार्थदीपिकाटीका के दशवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

मन्वन्तर आदि कालों का विभाग

मैत्रेय उवाच

चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा । परमाणु स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः ॥१॥

अन्वयः— सद्विशेषाणाम् चरमः, सदा अनेकः असंयुतः सः परमाणुः विज्ञेयः यतः नृणाम् ऐक्यभ्रमः भवति ॥१॥

अनुवाद— विदुरजी ! पृथिवी आदि का जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश है जिसका कोई भी विभाग नहीं हो सकता है तथा जो कार्यरूप को नहीं प्राप्त हुआ है तथा जिसका दूसरे परमाणुओं से संयोग भी नहीं हुआ है उसे परमाणु जानना चाहिए । अनेक परमाणुओं के मिलने से ही मनुष्यों को भ्रम के कारण उनमें एकत्व का भ्रम होता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तत एकादशे कालः परमाण्वादिलक्षणैः । युगमन्वन्तरादिभ्यः कल्पमानादि वर्ण्यते ॥१॥ तदेवं सामान्यतः कालस्योपलक्षणभूतं गुणव्यतिकरं दशविधं निरूप्येदानीं तस्यैव विशेषं निरूपयितुं तत्परिच्छेद्यं वस्तु लक्ष्यति द्वाभ्याम् सतः कार्यस्य विशेषाणामंशानां यश्चरमोऽन्त्यो यस्यांशो नास्ति । अनेकः कार्यावस्थामप्राप्तः । असंयुतः समुदायावस्थां चाप्राप्तः। अतएव सदा कार्यसमुदायावथयोरपगमेऽप्यस्ति स परमाणुर्विज्ञेयः । किं तत्र प्रमाणमत आह । यतो येभ्यः समुदितेभ्यो नृणां व्यवहर्तृणामैक्यभ्रमोऽवयविबुद्धिः । तथा च पञ्चमेऽवयविनिराकरणे वक्ष्यति, येषां समूहेन कृतो विशेष इति । कार्यानुपपत्त्या कल्प्यत इति भावः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इसके पश्चात् ग्यारहवें अध्याय में परमाणु आदि लक्षणों से युक्त काल के युग, मन्वन्तर आदि तथा कल्प आदि के परिमाणों का वर्णन किया जा रहा है ॥१॥ इस तरह काल के उपलक्षण स्वरूप दस प्रकार की सृष्टियों का निरूपण करके उसके भेदों का निरूपण करने के लिए दो श्लोकों से उसके परिचछेद्य वस्तु का लक्षण बतलाते हैं । **सतः कार्यस्य० इत्यादि** कार्य के अंशों का जो सबसे अन्तिम भाग, जिसका कोई भी विभाग नहीं किया जा सकता है, उसको परमाणु कहते हैं । वह कार्यावस्था और समुदायावस्था को अप्राप्त होता है । यही कारण है कि कार्यावस्था और समुदायावस्था के विनष्ट हो जाने पर भी जो बना रहता है वही परमाणु है। यदि कोई कहे कि इसमें क्या प्रमाण है ? तो उसके उत्तर में कहते हैं, क्योंकि उन परमाणुओं के समुदित हो जाने पर मनुष्यों को उनमें अवयवी का भ्रम होता है । पाञ्चवें स्कन्ध में अवयवी के निराकरण के समय **येषां समूहेन कृतो विशेषः** अर्थात् जिन परमाणुओं के समूह के कारण ही अवयवी की प्रतीति होती है । अर्थात् कार्य के नहीं होने के कारण उनमें अवयवित्व की कल्पना की जाती है ॥१॥

सत एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत् । कैवल्यं परममहानविशेषो निरन्तरः ॥२॥

अन्वयः— स्वरूपावस्थितस्य सत एव पदार्थस्य यत् कैवल्यं निरन्तरः विशेषः परममहान् ॥२॥

अनुवाद— परमाणु जिसका सूक्ष्मतम अंश है अपने सामान्य स्वरूप में स्थित उस पृथिवी आदि कार्यो की एकता का नाम परम महान् है । इस समय उसमें न तो प्रलयादि अवस्था भेदों की स्फूर्ति होती है और न तो काल भेद की प्रतीति होती है । उसमें घट पट आदि वस्तुओं की भी कल्पना नहीं होती है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

सूक्ष्ममुक्त्वा स्थूलमाह-सत एवेति । यस्य चरमोंऽशः परमाणुस्तस्यैव सतः कार्यमात्रस्य स्वरूपावस्थितस्य परिणामान्तरमप्राप्तस्य यत्कैवल्यमैक्यं स परममहान् । पुंस्त्वं तु परमाणुप्रतियोगित्वात् । ननु नानाविशेषवान् परस्परं भिन्नश्च सर्वः पदार्थः, कथमैक्यं तस्य तत्राह। अविशेषो विशेषविवक्षारहितो निरन्तरो भेदविवक्षारहितश्च सर्वोऽपि प्रपञ्चः परममहानित्यर्थः॥२॥

भाव प्रकाशिका

सूक्ष्म काल का वर्णन करके काल के स्थूल रूप को **सत एव इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । जिसका अन्तिम (सूक्ष्मतम) अंश परमाणु है इसी कार्यमात्र की जो स्वरूपतः स्थिति है, जिसका कोई भी दूसरा परिणाम नहीं हुआ है । उसका एकत्व ही परम महान् कहलाता है । परमाणु का प्रतियोगी होने के कारण परम महान् यह पुलिङ्ग प्रयोग हुआ है । **ननुनानाविशेषणवान इत्यादि** प्रश्न है कि जो परस्पर में एक दूसरे से भिन्न सभी पदार्थ अनेक भेदों से युक्त हैं । अतएव उनकी कैसे एकता हो सकती है ? तो उसका उत्तर है कि वह विशेष (भेद की विवक्षा रहित है) इस तरह से सम्पूर्ण प्रपञ्च (जगत्) परम महान् है ॥२॥

एवं कालोऽप्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम । संस्थानभुक्त्या भगवानव्यक्तो व्यक्तभुग्विभुः ॥३॥

अन्वयः— हे सत्तम एवं सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च कालोऽप्यनुमितः अव्यक्तो विभुः भगवान्संस्थान भुक्त्या व्यक्तभुक्॥३॥

अनुवाद— हे साधुवर्य ! जैसे सूक्ष्म और स्थूल पदार्थ होते हैं उसी तरह सूक्ष्मावस्था और स्थूलावस्था से युक्त काल का भी अनुमान किया जाता है । यह काल श्रीहरि की शक्ति स्वरूप है और परमाणु आदि सबों में व्यापक है । वह स्वयं अव्यक्त है किन्तु समस्त व्यक्त पदार्थों में व्यापक होकर उन सबों को एक दूसरे से अलग करता है । यह उत्पत्ति इत्यादि में निपुण होने के कारण विभु हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

यथा सूक्ष्मस्थूलश्चायं पदार्थः। एवं कालोऽप्यनुमितः । चकारान्मध्यमावस्था गृह्यते । संस्थानं परमाण्वाद्यवस्थानस्य भुक्तिर्व्याप्तिस्तया भगवानिति हरेः शक्तिः स्वतोऽव्यक्तो व्यक्तं भुङ्क्ते व्याप्नोति परिच्छिनत्तीति तथा । विभुरुत्पत्त्यादिषु दक्षः॥३॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह पदार्थों के सूक्ष्म और स्थूल भेद होते हैं उसी तरह से काल का भी सूक्ष्म और स्थूल रूप से अनुमान होता है । चकार के द्वारा स्थूल तथा सूक्ष्म इन दोनों के बीच की मध्यम अवस्था को सूचित किया गया है । यह काल श्रीभगवान् की शक्ति है तथा परमाणु आदि सभी पदार्थों में यह व्याप्त है । काल स्वयं तो अव्यक्त है किन्तु यह समस्त व्यक्त पदार्थों में व्यापक रूप से विद्यमान है ॥३॥

स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम् । ततोऽविशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान् ॥४॥

अन्वयः— यः परमाणुताम् भुंक्ते स वै कालः परमाणुः । यः तु ततोऽविशेषभुक् स कालः परमो महान् ॥४॥

अनुवाद— जो काल जगत् की परमाणु जैसी सूक्ष्म अवस्था में व्यापक रहता है, वह अत्यन्त सूक्ष्म है तथा जो काल सृष्टि से लेकर उसके प्रलयकाल पर्यन्त उसकी सभी अवस्थाओं का भोग करता है वह परम महान् है॥४॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव प्रपञ्चयति-स इत्यादिना । सतः प्रपञ्चस्य परमाणुतां परमाण्ववस्थां यो भुङ्क्ते स कालः परमाणुः । तस्यैवाविशेषं साकल्यं यो भुङ्क्ते स परम महान् । अयमर्थः-ग्रहर्क्षताराचक्रस्थ इत्यादिना यत्सूर्यपर्यटनं वक्ष्यते, तत्र सूर्यो यावता परमाणुदेशमतिक्रामति तावान्कालः परमाणुः, यावता च द्वादशराश्यात्मकं सर्वं भुवनकोशमतिक्रामति स परममहान् संवत्सरात्मकः कालः, तस्यैवावृत्या युगमन्वन्तरादिक्रमेण द्विपरार्धान्तत्वमिति । तथा च पञ्चमे सूर्यगत्यैव कालादिविभागं वक्ष्यति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

सः कालः इत्यादि श्लोक के द्वारा काल की सूक्ष्मावस्था और स्थूलावस्था का विस्तार से वर्णन किया गया है । जगत् की अत्यन्त सूक्ष्म परमण्वावस्था का भोग करने वाला काल परमाणु कहलाता है और जो सम्पूर्ण प्रपञ्च में व्यापक रहता है । उसका सृष्टिकाल से लेकर प्रलय काल पर्यन्त भोग करने वाला काल परम महान् है । **अयमर्थः इत्यादि**- आगे चलकर ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः इत्यादि श्लोक के द्वारा सूर्य का पर्यटन बतलाया जायेगा। जितने समय में सूर्य परमाणु देश को पार करते हैं वह काल परमाणु काल कहलाता है और जितने समय में द्वदशराशि स्वरूप सम्पूर्ण भुवन को पार कर जाते हैं वह संवत्सर स्वरूप काल है । उसी की आवृत्ति करने से युग, मन्वन्तर आदि के क्रम से द्विपरार्ध प्रर्यन्त का काल होता है । पाञ्चवें स्कन्ध में सूर्य की गति से काल आदि विभाग का निरूपण करेंगे ॥४॥

अणुर्द्वौ परमाणू स्यात्त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः । जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात् ॥५॥

अन्वयः— द्वौ परमाणू अणुः स्यात् । त्रयः त्रसरेणु स्मृतः । जलाकिरश्म्यवगतः खमेव अनुपतन अगात् ॥५॥

अनुवाद— दो परमाणुओं का एक अणु होता है । तीन अणुओं के मिलने से एक त्रसरेणु होता है । जो खिड़की के जलरंध्र से आती हुयी सूर्य की रोशनी में आकाश में उड़ते हुए दिखायी देता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं द्व्यणुकादिलक्षणपूर्वकं मध्यमकालावस्थां कथयति । द्वौ परमाणू अणुः स्यात् । त्रयोऽणवस्त्रसरेणुः । स तु प्रत्यक्ष इत्याह-जालार्केति। गवाक्षप्रविष्टेष्वर्करश्मिष्ववगतः । कोऽसौ योऽतिलघुत्वेन खमेवानुपतन्नगाद्गतः । पाठान्तरे खमेवानुपतन्नवगतो नतु गां पृथ्वीम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अब द्वयणुक आदि के लक्षण पूर्वक काल की मध्यमावस्था का वर्णन करते हैं । दो परमाणुओं के मिलने से अणु (द्वयणुक) होता है । तीन अणुओं के मिलने से त्रसरेणु होता है । त्रसरेणु का प्रत्यक्ष होता है । इस बात को श्लोक के उत्तरार्द्ध द्वारा कहा गया है । गवाक्ष मार्ग से आयी हुयी सूर्य की किरणों के प्रकाश में त्रसरेणुओं का पता चलता है । वह अत्यन्त लघु होने के कारण आकाश में ही उड़ता हुआ प्रतीत होता है । अनुपतन इस पाठ के अनुसार अर्थ होगा कि त्रसरेणु आकाश में ही उड़ता हुआ ज्ञात होता है, पृथिवी पर नहीं ॥५॥

त्रसरेणुत्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटिः स्मृतः । शतभागस्तु वेधः स्यात्तैस्त्रिभिस्तु लवः स्मृतः ॥६॥

अन्वयः— यः कालः त्रसरेणु त्रिकं भुंक्ते सः त्रुटिः स्मृतः । शतभाग तु वेधः स्यात् तैः त्रिभिः तु लवः स्मृतः ॥६॥

अनुवाद— सूर्य के तीन त्रसरेणुओं को पार करने में जितना समय लगता है उसे त्रुटि कहते हैं । उसके सौ गुना काल को वेध कहते हैं और तीन वेध को लव कहते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

शतं भागाः त्रुटिरूपा यस्मिन्स वेधः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

सूर्य के तीन त्रसरेणुओं को पार करने में जो समय लगता है, उस काल को त्रुटि कहते हैं । त्रुटि के सौ गुना काल को वेध कहते है । और वेध के तीन गुना काल को लव कहते है ॥६॥

निमेषस्त्रिलवो ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः । क्षणान्पञ्च विदुः काष्ठां लघु ता दश पञ्च च ॥७॥

अन्वयः— त्रिलवः निमेषः ज्ञेयः ते त्रयः क्षण आम्नातः, पञ्च क्षणान् काष्ठां विदुः ताः दशपञ्च च लघु ॥७॥

अनुवाद— तीन लवों के काल को निमेष जानना चाहिए । तीन निमेषों का एक क्षण जानना चाहिए । पाच क्षणों के काल को काष्ठा कहा गया है । पन्द्रह काष्ठाओं के काल को लघु कहते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

ते निमेषास्त्रयः क्षण इत्याम्नाताः । काष्ठाः पञ्चदश एकं लघु ॥७॥

भाव प्रकाशिका

तीन लवों का एक निमेष जानना चाहिए, तीन निमेषों का एक क्षण होता है, पाँच क्षणों की एक काष्ठा होती है और पन्द्रह काष्ठाओं का एक लघु होता है ॥७॥

ते द्वे मुहूर्तः प्रहरः षड्याम सप्त वा नृणाम्
लघूनि वै समाम्नात दश पञ्च च नाडिका । ॥८॥

अन्वयः— दश पञ्च लघूनि नाडिका समाम्नाता, ते द्वे मुहूर्तः नृणाम् षट् सप्तवा नाडिकाः प्रहरः याम वा ॥८॥

अनुवाद— पन्द्रह लघुओं की एक नाड़िका (दण्ड) कही गयी है । दो नाड़िकाओं का एक मुहूर्त होता है । छह या सात मुहूर्तों का एक प्रहर या याम होता है । मनुष्यों के दिन या रात्रि के चौथाई भाग को प्रहर कहते हैं॥८॥

भावार्थ दीपिका

नाडिकाः षट् सप्त वा प्रहरः । स एव यामो दिनस्य रात्रेश्च चतुर्थो भागः । ह्रासे षट् वृद्धौ सप्त । सन्ध्यांशमुहूर्तद्वयं विनेति ज्ञातव्यम् । तत्राप्यनियमार्थो वा शब्दः । प्रत्यहं तद्भेदानां गणयितुमशक्यत्वात् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

छह या सात नाडिकाओं का एक याम या प्रहर होता है । दिन या रात्रि के घटने पर छह नाडिकाओं का प्रहर होता है, तथा बढ़ने पर सात नाडिकाओं का प्रहर होता है । यह दिन या रात्रि का चतुर्थ भाग होता है । यह गणना दिन एवं रात्रि की दोनों संधियों के दो मुहूर्तों को छोड़कर होती है । प्रहर छह नाडिकाओं का हो या सात नाडिकाओं का हो यह कोई नियम नहीं है, इस अर्थ को वा शब्द सूचित करता है । प्रतिदिन पल विपल इत्यादि के भेदों को गिनना अशक्य है ॥८॥

द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः । स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम् ॥९॥

अन्वयः— द्वादशार्धपलोन्मानं यावत्प्रस्थजलाप्लुतम् चतुरङ्गुलैः चतुर्भिः स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रम् ॥९॥

अनुवाद— छह पल ताम्बे का एक ऐसा बर्तन बनाये जिसमें एकप्रस्थ जल अँट सके और चार माशे सोने की चार अङ्गुल लम्बी सलाई बनवाकर उसके द्वारा उस वर्तन के पेंदे में छेद करके उसे जल में छोड़ दिया जाय जितने समय में एकप्रस्थ जल उसमें भर जाय और वह वर्तन पानी में डूब जाय उतने समय को एक नाडिका कहते हैं॥९॥

भावार्थ दीपिका

नाडिकाया उन्मानमाह । उन्मीयतेऽनेनेत्युन्मानं पात्रं षटपलताम्रविरचितम् । पञ्चगुञ्जो माषस्तैश्चतुर्भिश्चतुरङ्गुलायामशलाकारूपेण रचितैः कृतमूलच्छिद्रं तेन छिद्रेण यावत्प्रस्थपरिमितं जलं प्रविशति तेन च प्लुतं निमग्नं भवति तावान्कालो नाडिका अत्र पलच्छिद्रयोराधिक्ये शीघ्रं निमज्जेदल्पत्वे च विलम्बेनेति पलशलाकयोर्नियमः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उन्मान पात्र को कहते हैं । छह पल ताम्बे से निर्मित हो वह पात्र । पाञ्च गुञ्जों का एक माष होता है । चार माशे सुवर्ण की चार अङ्गुल लम्बी शलाका से उस पात्र के पेंदी में छिद्र करे । उस छिद्र से जितने समय में उस पात्र में एक प्रस्थ जल प्रवेश कर जाय और उस जल से भरा हुआ पात्र जल में डूब जाय उस समय को नाडिका कहते हैं । यदि पल और शलाका का नियम नहीं किया जाय तो छिद्र के बड़ा हो जाने पर पात्र शीघ्र भर जायेगा । और छिद्र के छोटा होने पर पात्र देर से भरेगा । इसीलिए पल और शलाका का नियम किया गया है कि पात्र छह पल ही ताम्बे का हो और शलाका चार माशे सुवर्ण की चार अङ्गुल लम्बी ही होनी चाहिए॥९॥

यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे । पक्षः पञ्चदशाहानि शुक्लः कृष्णश्च मानद ॥१०॥

अन्वयः— हे मानद ! चत्वारः चत्वारः यामाः मर्त्यानाम् उभे अहनी पञ्चदशाहानि पक्षः शुक्लः कृष्ण; च ॥१०॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! चार-चार प्रहरों के मनुष्यों के दिन और रात होते हैं । पन्द्रह दिनों का पक्ष होता है । पक्ष दो होते हैं शुक्ल और कृष्ण ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अहनी अहोरात्रम् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

दिन और रात दोनों ही चार-चार प्रहरों के होते हैं, पन्द्रह दिन और रात का एक पक्ष होता है ।।१०।।

तयोः समुच्चयो मासः पितॄणां तदहर्निशम् । द्वौ तावृतुः षडयनं दक्षिणं चोत्तरं दिवि ।।११।।

अन्वयः— तयोः समुच्चयो मासः तत् पितॄणाम् अहर्निशम् द्वौ तौ ऋतुः, षड्अयनं दिवि दक्षिणम् उत्तरं च ।।११।।

अनुवाद— दो पक्षों का एक मास होता है । मनुष्यों के एक मास का पितरों का एक दिन रात होता है। दो मासों का एक ऋतु होता है। छह मासों का एक अयन होता है और अयन दो होते है उत्तरायण और दक्षिणायन।।११।।

भावार्थ दीपिका

षण्मासा अयनम् । दिवीत्यस्योत्तरेणान्वयः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

छह मासों का एक अयन होता है। दिवि पद का अगले श्लोक के साथ अन्वय है ।।११।।

अयने चाहनी प्राहुर्वत्सरो द्वादश स्मृतः । संवत्सरशतं नृणां परमायुर्निरूपितम् ।।१२।।

अन्वयः— अयने च दिवि अहनी, वत्सरो द्वादशः स्मृतः । संवत्सरशतं नृणां परमायुः निरूपितम् ।।१२।।

अनुवाद— दो अयनों का देवताओं का एक दिन और एक रात होता है । मनुष्य लोक में इसे बारह मास अथवा संवत्सर कहा जाता है । सौ संवत्सरों की मनुष्यों की परमायु बतलायी गयी है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

दिवीति देवानामहोरात्रे प्राहुः । द्वादश मासाः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

दोनों अयनों का देवताओं के दिन और रात होते है । देवताओं के एक दिन रात में मनुष्यों के बारह महीने होते हैं ।।१२।।

ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः परमाण्वादिना जगत् । संवत्सरावसानेन पर्येत्यनिमिषो विभुः ।।१३।।

अन्वयः— ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः अनिमिषः विभुः परमाण्वादिना संवत्सरावसानेन पर्येति ।।१३।।

अनुवाद— ग्रहों, नक्षत्रों और तारा समूह में ही विद्यमान कालस्वरूप भगवान् सूर्य परमाणु से लेकर संवत्सर पर्यन्त काल में द्वादशराशि रूप सम्पूर्ण भुवन कोश की परिक्रमा किया करते हैं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अनेन क्रमेणासौ सूर्यो नित्यमायुः क्षपयतीत्याह । ग्रहाश्चन्द्रादयः, ऋक्षाण्यश्विन्यादीनि, तारा अन्यानि नक्षत्राणि, तदुपलक्षितं यत्कालचक्रं तत्र स्थितोऽनिमिषः कालात्मा विभुरीश्वरः सूर्यो जगद्द्वादशराश्यात्मकं भुवनकोशं पर्येति पर्यटति ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

इस क्रम से यह बतलाया गया कि सूर्य नित्य ही मनुष्यों की आयु के क्षीण करते हैं । चन्द्रमा आदि ग्रह अश्विनी आदि नक्षत्र, तथा दूसरे नक्षत्र इन सबों से उपलक्षित कालचक्र के भीतर रहने वाले कालस्वरूप सूर्य ही ग्रहादि के अधिष्ठाता हैं, और वे द्वादशात्मक भुवन कोश में पर्यटन करते रहते हैं ।।१३।।

संवत्सरः परिवत्सर इडावत्सर एव च । अनुवत्सरो वत्सरश्च विदुरैवं प्रभाष्यते ॥१४॥

अन्वयः— विदुर ! संवत्सरः परिवत्सरः इडावत्सरः, अनुवत्सरः वत्सरः च एवं प्रभाष्यते ॥१४॥

अनुवाद— हे विदुर ! सूर्य, बृहस्पति, सवन, चन्द्रमा और नक्षत्र सम्बन्धी महीनों के भेद से यह वर्ष ही संवत्सर परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर के नाम से अभिहित किया जाता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

संवत्सरादिभेदश्च सौरबार्हस्पत्यसावनचान्द्रनाक्षत्रमासभेदेन द्रष्टव्यः । केचित्पुनरेवमाहुः । यद शुक्लपक्षप्रतिपदि संक्रान्तिर्भवति सौरचान्द्रमासयोर्युगपदुपक्रमो भवति च संवत्सरः । ततः सौरमानेन वर्षे षट् दिनानि वर्धन्ते चान्द्रमानेन वर्षे षट् दिनानि ह्रसन्तीति द्वादशदिनव्यवधानादुभयोरग्रपश्चाद्भावो भवति । एवं व्यवधानतारतम्येन पञ्चवर्षाणि गच्छन्ति । तन्मध्ये द्वौ मलमासौ भवतः । पुनः षष्ठः संवत्सरो भवति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

संवत्सर आदि के भेद सूर्य, बृहस्पति, सावन, चन्द्र और नक्षत्र सम्बन्धी मासों के भेद से वर्ष को ही कहा जाता है । **केचित् पुनराहुः इत्यादि** कुछ लोगों का कहना है कि जब शुक्लपक्ष की प्रतिपत् तिथि को सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों की एक समय संक्रान्ति होती है । उस समय से प्रारम्भ होने वाला वर्ष संवत्सर कहलाता है । उसके कारण सूर्य के मान से वर्ष भर में छह दिन बढ जाते हैं और चन्द्रमा सम्बन्धी मान से छह दिन घट जाते हैं। इस तरह से बारह दिन का व्यवधान होने के कारण पाञ्च वर्ष के बाद छठे वर्ष में पुनः संवत्सर होता है । इन छह वर्षों में दो पुरुषोत्तम मास होते हैं । व्यवधान की दृष्टि से जिसका व्यवहार होता है वह तीस दिनों का सावन मास होता है । बारह सावन मासों का एक इडावत्सर होता है । आमावस्या पर्यन्त होने वाला मास चान्द्र मास कहलाता है । बारह चान्द्र मासों का एक अनुवत्सर होता है ॥१४॥

यः सृज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन्स्वशत्तया पुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति भूतभेदः।
कालाख्यया गुणमयं क्रतुभिर्वितन्वंस्तस्मै हरत वत्सरपञ्चकाय ॥१५॥

अन्वयः— यः भूतभेदः स्वशक्त्या कालख्यया सृज्यशक्तिम् उरुधा उच्छ्वसयन् पुंसः अभ्रमाय क्रतुभिः गुणमयं वितन्वन् दिवि धावति तस्मै वत्सरपञ्चकाय बलिं हरत ॥१५॥

अनुवाद— ये सूर्यदेव पञ्च भूतों में तेजः स्वरूप हैं अपनी काल नामक शक्ति के द्वारा सृज्य कार्य पदार्थों की अङ्कुर उत्पन्न करने की शक्ति को अनेक प्रकार से कार्योन्मुख करते हैं । पुरुषों की मोह निवृत्ति के लिए उनकी आयु का क्षय करते हुए आकाश में विचरण करते हैं । ये ही सकाम पुरुषों को यज्ञादि कर्मों से प्राप्त होने वाले स्वर्गादि फलों का विस्तार करते हैं, ऐसा पाँच प्रकार के वर्षों को प्रवृत्त करने वाले भगवान् सूर्य की तुम अनेक प्रकार के पूजोपहारों द्वारा पूजा करो ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतः कालात्मा नित्यमप्रमत्तैः पूजनीय इत्याह-य इति । सृज्यं कार्यमङ्कुरादि तद्विषयां बीजादीनां शक्तिं कालरूपया स्वशक्त्या बहुधोच्छ्वसयन्कार्याभिमुखीकुर्वन् दिव्यन्तरिक्षे धावति । कोऽसौ । भूतभेदो महाभूतविशेषस्तेजोमण्डलरूपी सूर्यः। किमर्थं धावति । पुरुषस्याभ्रमाय भ्रमो मोहस्तन्निवृत्तये । आयुरादिव्ययेन विषयासक्तिं निवर्तयन्नित्यर्थः । सकामानां तु गुणमयं स्वर्गादिफलं क्रतुभिर्विस्तारयन् । तस्मै संवत्सरपञ्चकप्रवर्तकाय पूजां कुरुत ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह कालस्वरूप भगवान् सूर्य की पूजा सदा सावधानी पूर्वक करनी चाहिए इस बात को **यः इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । इस तरह के भगवान् सूर्य सृज्य जो अङ्कुर आदि हैं उनके बीज आदि की शक्ति

को अपनी काल नामक शक्ति के द्वारा अनेक प्रकार से कार्योन्मुख बनाते हुए आकाश में विचरण करते हैं। अब प्रश्न है कि ये कौन हैं ? तो इसका उत्तर है कि वे महाभूतों के तेजः स्वरूप भगवान सूर्य हैं। वे क्यों आकाश में विचरण करते हैं तो इसका उत्तर है कि पुरुषों के मोह को दूर करने के लिए। आयु आदि को क्षीण करके मनुष्यों की विषयो में होने वाली आसक्ति को दूर करने के लिए। वे सकाम पुरुषों को गुणमय स्वर्गादि की प्राप्ति रूपी फल का विस्तार करते हुए विचरण करते हैं। इस तरह से पाञ्च प्रकार के संवत्सर को प्रवृत्त करने वाले भगवान् सूर्य की आप लोग पूजा करें ॥१५॥

विदुर उवाच

पितृदेवमनुष्याणामायुः परमिदं स्मृतम् । परेषां गतिमाचक्ष्व ये स्युः कल्पाद्बहिर्विदः ॥१६॥

अन्वयः— इदम् पितृदेवमनुष्याणाम् परम आयुः स्मृतम्। परेषां कल्पाद् बहिः विदः ये स्युः तेषां गतिम् आचक्ष्व॥१६॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— यह तो आपने पितरों, देवताओं और मनुष्यों की परम् आयु का निरूपण किया है, अब आप उन लोगों की आयु को बतलाएँ जो त्रिलोकी से बाहर है तथा कल्पों से भी बाहर ज्ञानी पुरुष हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

इदं स्वस्वमानेन वर्षशतं गणितमायुर्मानम्। प्रत्यहं कल्प्यते सृज्यते इति कल्पस्त्रैलोक्यं तस्माद्बाह्यतः। विदो ज्ञानिनः॥१६॥

भाव प्रकाशिका

आपने यह जो बतलाया है कि अपने अपने प्रमाणानुसार सौ वर्षों की आयु पितरों, देवताओं और मनुष्यों की परमायु होती है। जिसकी प्रतिदिन रचना ब्रह्माजी करते हैं यह तो उन त्रिलोकी के जीवों की बात हुयी। त्रिलोकी से बाहर तथा कल्प से भी बाहर रहने वाले जो ज्ञानी सनकादि महर्षि हैं उनकी आयु का आप निरूपण करें ॥१६॥

भगवान्वेद कालस्य गतिं भगवतो ननु । विश्वं विचक्षते धीरा योगाराद्धेन चक्षुषा ॥१७॥

अन्वयः— भगवान् ननु भगवतः कालस्य गतिं वेद। धीराः योगाराद्धेन चक्षुषा विश्वं विचक्षते ॥१७॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप भगवान् काल की गति को भलीभांति जानते हैं। ज्ञानी पुरुष अपनी योग सिद्ध दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व को देख लेते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

योगराद्धेन योगसिद्धेन ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

योगराद्धेन पद का अर्थ योगसिद्ध अपनी दिव्य दृष्टि से ॥१७॥

मैत्रेय उवाच

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् । दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥१८॥

अन्वयः— कृतं त्रेता द्वापरं च कलिः च इति चतुर्युगम् दिव्यैः द्वादशभिः वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥१८॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग ये चारो युग अपनी सन्ध्या एवं सन्ध्यांश के साथ देवताओं के बारह हाजर वर्षों के होते हैं, यह कहा गया है ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

ये चारो युग देवताओं के बारह हजार वर्ष पर्यन्त अपनी संध्या एवं संन्ध्यांश के साथ रहते हैं इस बात का अगले श्लोक के सामर्थ्य से ज्ञान होता है। **सावधानं** का विग्रह बतलाते हुए श्रीधर स्वामी कहते हैं— **अवधीयते इति अवधानम्** अर्थात् सन्ध्या और सन्ध्यांश तत्सहितम् अर्थात् संन्ध्या और सन्ध्यांश के साथ यह **सावधानम्** पद का अर्थ है ॥१८॥

चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम्। संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च ॥११॥

अन्वयः— कृतादिषु यथाक्रमम् चत्वारि, त्रीणि, द्वे, एकंच सहस्राणि संख्यातानि द्विगुणानि शतानि च ॥११॥

अनुवाद— सत्ययुग आदि चारो युगों में क्रमशः चार हजार, तीन हजार, दो हजार औरएक हजार दिव्य वर्ष होते हैं। और इन युगों की सन्ध्या और संध्यांश कृतयुग आठ सौ वर्ष, त्रेतायुग की सन्ध्या एवं संध्यांश छह सौ वर्ष, द्वापर युग की सुन्ध्या एवं संध्यांश चार सौ वर्षों की और कलियुग की संध्या एवं संध्यांश में दो सौ वर्षों की होते हैं। इस तरह चार युग अपनी संध्या संध्यांश के साथ बारह हजार दिव्य वर्षों पर्यन्त में होते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

कृतयुगे चत्वारि सहस्राणि सन्ध्यासन्ध्यांशयोश्चत्वारिचत्वारीत्यष्टौ शतानि च। एवं त्रेतादिष्वपि योज्यम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

सत्ययुग में चार हाजर दिव्य वर्ष होते हैं और उसकी संध्या चार सौ वर्ष की और संध्यांश चार सौ वर्ष का होता है। इसी तरह से त्रेता आदि युगों में उन युगों की संध्या और संध्यांश आदि को भी जोड़ना चाहिए॥११॥

सन्ध्यांशयोरन्तरेण यः कालः शतसंख्ययोः। तमेवाहुर्युगं तज्ज्ञा यत्र धर्मो विधीयते ॥२०॥

अन्वयः— संध्यांशयोः शतसंख्ययोः अन्तरेण यः कालः तमेव तज्ज्ञाः युगं आहुः यत्र धर्मोविधीयते ॥२०॥

अनुवाद— चूकि आदि में सन्ध्या होती है और अन्त में सन्ध्यांश होता है, इन दोनों की गणना सैकड़ों में बतलायी गयी है। इन दोनों के बीच का जो काल होता है उसी को कालवेत्ताओं ने युग कहा है। प्रत्येक युग मे एक-एक धर्म का विधान होता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

युगस्यादौ सन्ध्या अन्तेंऽशः सन्ध्यांशः। उक्तानि शतानि संख्या ययोस्तयोरन्तरेण मध्ये युगम्। तस्य विशेषमाह-यत्रेति। गवालम्भादिधर्मविशेषो यत्र विधीयत इत्यर्थः। साधारणधर्मस्तु सन्ध्यांशयोरप्यस्त्येव ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

युग के आदि में संध्या होती और अन्त में संध्याशं अंश होता है। दोनों मिलकर संध्यांश होते हैं। जिन संध्या और अंशों की संख्या सैकड़ों में बतलायी गयी है उन दोनों के बीच के काल को युग कहते हैं। उन युगों में ही गावालम्भन आदि कर्म किए जाते हैं। साधारण धर्म तो सन्ध्या और संध्याशं का भी होता ही है ॥२०॥

धर्मश्चतुष्पान्मनुजान्कृते समनुवर्तते। स एवान्येष्वधर्मेण व्येति पादेन वर्धता ॥२१॥

अन्वयः— कृते मनुजान् धर्मः चतुष्पात् अनुवर्तते स एव अन्येषु वर्धता अधर्मेण पादेन व्येति ॥२१॥

अनुवाद— सत्ययुग के मनुष्यों में धर्म चार पैरों वाला होकर रहता है। दूसरे युगों में अधर्म के बढने के कारण उस धर्म के क्रमशः एक-एक चरण क्षीण होते जाते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

चतुष्पात् संपूर्णः । त्रेतादिषु पादेन पादेन व्येति ह्रसति । पादेन पादेन वर्धमानेनाधर्मेण हेतुना । एतश्च स्वरूपकथनमात्रं वैराग्यार्थं न तु धर्मसंकोचनार्थम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

कृतयुग में धर्म सम्पूर्ण रहता है । त्रेता आदि युगों में धर्म का एक-एक चरण क्षीण होता जाता है । उसका कारण अधर्म की वृद्धि होती है । यह युगों का स्वरूप बतलाने के लिए कहा गया है जिससे कि मनुष्यों में संसार से वैराग्य उत्पन्न हो जाय । इस वर्णन का उद्देश्य धर्म का संकोच करना नहीं है ॥२१॥

त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिराब्रह्मणो दिनम् । तावत्येव निशा तात यन्निमीलति विश्वसृक् ॥२२॥

अन्वयः— हे तात ! त्रिलोक्याः बहिः युगसाहस्रं ब्रह्मणो दिनम् । तावती एव निशा यत् विश्वसृक् निमीलति ॥२२॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! त्रिलोकी से बाहर महर्लोक से लेकर सत्यलोक पर्यन्त त्रिलोकी के एक हजार चतुर्युग का ब्रह्माजी का एक दिन होता है और इतनी ही बड़ी रात भी होती है । इस रात में ब्रह्मा जी शयन करते हैं॥२२॥

भावार्थ दीपिका

त्रिलोक्या बहिर्महर्लोकप्रभृति ब्रह्मलोकमभिव्याप्य चतुर्युगसहस्रमेकं दिनम् । यत् यस्यां विश्वसृक् ब्रह्मा निमीलति स्वपिति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

त्रिलोकी से बाहर महर्लोक से लेकर ब्रह्माजी के लोक पर्यन्त चार लोक है । इन लोकों में एक हजार चतुर्युग का एक दिन होता है । यही ब्रह्माजी का दिन होता हैं और ब्रह्माजी की इतनी बड़ी रात भी होती है । रात में ब्रह्माजी शयन करते हैं ॥२२॥

निशावसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते । यावद्दिनं भगवतो मनून्भुञ्जंश्चतुर्दश ॥२३॥

अन्वयः— निशावसाने आरब्धः लोककल्पः अनुवर्तते । भगवतः यावद् दिनम् चतुर्दश मनून् भुञ्जन् ॥२३॥

अनुवाद— ब्रह्माजी की रात्रि के बीत जाने पर इस लोक का कल्प प्रारम्भ होता है । जब तक ब्रह्माजी का दिन रहता है तब तक उसका क्रम चलता रहता है । उस एक कल्प में चौदह मनु हो जाते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तत्र दिनस्थितिमाह-निशावसान इत्यादिसार्धैश्चतुर्भिः । चतुर्दशमनूनभुञ्जन्पालयन् । व्याप्नुवन्नित्यर्थः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

उसमें भी दिन की स्थिति को मैत्रेय जी साढे चार श्लोकों में बतलाते हैं । ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनु भोग करते हैं । भुञ्जन् को अर्थ पालन करते हैं भी होगा । अर्थात् चौदह मनुओं के भोग काल पर्यन्त ब्रह्माजी का एक दिन होता है ॥२३॥

स्वं स्वं कालं मनुर्भुङ्क्ते साधिकां ह्येकसप्ततिम् । मन्वन्तरेषु मनवस्तद्वंश्या ऋषयः सुराः ॥
भवन्ति चैव युगपत् सुरेशाश्चानु ये च तान् ॥२४॥

अन्वयः— मनुःहि स्वं एवं कालं एक सप्ततिम् साधिकां भुङ्क्ते । मन्वन्तरेषु मनवः तद्वंश्याः, ऋषयः सुराः युगपत् भवन्ति ये च सुरेशाशाश्च अनु तान् ॥२४॥

अनुवाद— प्रत्येक मनु इकहतर चतुर्युगों से कुछ अधिक चतुर्युगों का भोग करते हैं । प्रत्येक मन्वन्तर में

भिन्न-भिन्न मनुवंशी राजा लोग सप्तिर्षिगण देवगण, इन्द्र और उनके अनुयायी गन्धर्व आदि भी साथ ही साथ अपना अधिकार भोगते हैं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

किंचिदधिकां युगानामेकसप्ततिम् । मनुवंश्याः पृथ्वीपालकाः क्रमेण भवन्ति । सप्तर्षिप्रभृतयस्तु युगपत्समकालमेव भवन्ति । सुरेशा इन्द्राः ।ताननुवर्तन्ते ये गन्धर्वादयस्तेऽपि ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

प्रत्येक मनु एकहत्तर चतुर्युगी से कुछ अधिक काल तक अपने अधिकार का भोग करते हैं । इन मनुओं के काल में मनुवंशीय राजा लोग होते हैं । वे सब क्रमशः होते हैं । किन्तु सप्तर्षि आदि तो एक ही समय में होते हैं । सुरेशा शब्द से इन्द्रों को कहा गया है । और इन्द्र आदि के अनुयायी जो गन्धर्व आदि होते हैं वे भी समकाल में ही उत्पन्न होते हैं ।।२४।।

एष दैनंदिनः सर्गो ब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तनः । तिर्यङ्नृपितृदेवानां संभवो यत्र कर्मभिः ।।२५।।

अन्वयः— एषः त्रैलोक्यवर्तनः ब्राह्मः दैनन्दिनः सर्गः यत्र तिर्यङ्नृपितृदेवानां कमर्भिः संभवः ।।२५।।

अनुवाद— यह ब्रह्माजी की प्रतिदिन की सृष्टि है । इसमें त्रैलोक्य की रचना होती है । इसमें ही अपने-अपने कर्मानुसार पशु, पक्षी, मनुष्य, पितृगण और देवताओं की उत्पत्ति होती है ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

त्रैलोक्यं वर्तयतीति तथा ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की इस दैनन्दिनी सृष्टि में ही त्रैलोक्य की रचना होती है । इसी में अपने-अपने कर्मों के अनुसार पशु पक्षी, मनुष्य, पितृगण और देवताओं की उत्पत्ति होती है ।।२५।।

मन्वन्तरेषु भगवान्बिभ्रत्सत्त्वं स्वमूर्तिभिः । मन्वादिभिरिदं विश्वमवत्युदितपौरुषः ।।२६।।

अन्वयः— मन्वन्तरेषु भगवान् सत्त्वं विभ्रत् मन्वादिभिः स्वमूर्तिभिः उदितपौरुषः सन् विश्वमवति ।।२६।।

अनुवाद— इन मन्वन्तरों में भगवान् सत्त्वगुण का आश्रय लेकर अपनी मनु आदि मूर्तियों द्वारा अपने पौरुष को प्रकट करते हुए सम्पूर्ण विश्व की रक्षा करते हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

स्वमूर्तिभिर्मन्वन्तरावतारैर्मन्वादिभिर्द्वारभूतैराविष्कृतपुरुषाकारः सन्विश्वं रक्षति ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

मन्वन्तरों में अवतीर्ण होने वाले मनु आदि मूर्तियों के माध्यम से अपना पुरुषाकार प्रकट करके श्रीभगवान् जगत् की रक्षा करते हैं ।।२६।।

तमोमात्रामुपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः । कालेनानुगताशेष आस्ते तूष्णीं दिनात्यये ।।२७।

अन्वयः— कालेनानुगताशेष दिनात्यये तमोमात्राम् उपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः तुष्णीं अस्ते ।।२७।।

अनुवाद— कालक्रम से जब ब्रह्माजी का पूरा दिन बीत जाता है उस समय वे तमोगुण की मात्रा को स्वीका करके सृष्टि रचना रूप अपने पौरुष को स्थगित करके निश्चेष्ट रूप से स्थित हो जाते हैं ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

रात्रिगतां स्थितिमाह पञ्चभिः। तमसो मात्रां लेशम्। प्रतिसंरुद्धः प्रत्याहृतो विक्रमो येन। अनुगतमनुप्रविष्टमशेषं यस्मिन्।।२७।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की रात्रि में होने वाली स्थिति को मैत्रेयजी ने पाँच श्लोकों में वर्णित किया है। रात्रि के आ जाने और दिन के बीत जाने पर ब्रह्माजी तमोगुण की मात्रा को स्वीकार कर लेते हैं। और अपनी सृष्टि की रचना रूप प्रयास को स्थगित कर देते हैं। उस समय सम्पूर्ण जीव समुदाय काल में लीन हो जाता है ।।२७।।

तमेवान्वपिधीयन्ते लोका भूरादयस्त्रयः । निशायामनुवृत्तायां निर्मुक्तशशिभास्करम् ।।२८।।

अन्वयः— निशायामनुवृत्तायाम् भूरादयः त्रयः लोकाः निर्मुक्तशशिभास्करम् तमेवानु अपिधीयन्ते ।।२८।।

अनुवाद— ब्रह्माजी की रात्रि के आ जाने पर भूलोक आदि तीनों लोक सूर्य तथा चन्द्रमा से रहित होकर ब्रह्माजी में ही लीन हो जाते हैं ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

तदेव स्पष्टयति-तमेवेति। अन्वपिधीयन्त इति कर्मकर्तरिप्रयोगः। तिरोहिता भवन्तीत्यर्थः। कथम् निर्मुक्तो रहितः शशी भास्करश्च यथा भवति तथा ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

तमेव इत्यादि श्लोक के द्वारा ब्रह्माजी की रात्रिकाल की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। **अन्वपिधीयन्ते** यह कर्मकर्ता में प्रयोग है। अन्वपिधीयन्ते का अर्थ है कि लीन हो जाते हैं। अर्थात् उस समय त्रैलोक्य में सूर्य एवं चन्द्रमा नहीं रहते हैं और सम्पूर्ण त्रैलोक्य ब्रह्माजी में ही लीन हो जाता है ।।२८।।

त्रिलोक्यां दह्यमानायां शक्त्या संकर्षणाग्निना । यान्त्यूष्मणा महर्लोकाज्जनं भृग्वादयोऽर्दिताः ।।२९।।

अन्वयः— सङ्कर्षणाग्निना शक्त्या त्रिलोक्यां दह्यमानायां उष्मणा अर्दिताभृग्वादयः महर्लोकाज्जनलोकं यान्ति ।।२९।।

अनुवाद— उस समय शेषनाग के मुख से निकली हुयी अग्नि रूपी शक्ति से त्रैलोक्य जलने लगता है उस समय उसकी गर्मी से व्याकुल होकर भृगु आदि महर्षिगण महर्लोक से जनलोक में चले जाते हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

भगवच्छक्तिरूपो यः संङ्कर्षणमुखाग्निस्तेनोष्मणाऽर्दिताः सन्तो जनलोकं यान्ति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् की शक्ति रूपी जो सङ्कर्षण के मुख से निकली हुयी अग्नि उसकी गर्मी से सन्तप्त होकर भृगु आदि महर्षिगण महर्लोक से जनलोक में चले जाते हैं ।।२९।।

तावत्त्रिभुवनं सद्यःकल्पान्तैधितसिन्धवः । प्लावयन्त्युत्कटाटोपचण्डवातेरितोर्मयः ।।३०।।

अन्वयः— तावत् उत्कटाटोपचण्डऽवातेरितोर्मयः कल्पान्तैधितसिन्धवः सद्यः त्रिभुवनं प्लावयन्ति ।।३०।।

अनुवाद— उसी समय सातो समुद्र प्रलय कालीन प्रचण्ड वायु से उमड़कर अपनी विशाल तरङ्गों से शीघ्र ही त्रिभुवन को डुबा देते हैं ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

कल्पान्तेनैधिताः सिन्धवः समुद्राः । उत्कट आटोपः क्षेभो येषां ते च ते चण्डवातैरीरितोर्मयश्च ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् सङ्कर्षण के मुख की अग्नि से त्रिलोकी के जल जाने पर उसी समय प्रलय कालीन प्रचण्ड वायु चलने लगती है और उसके कारण सातों समुद्रों में अत्यन्त बड़ी-बड़ी लहरियाँ उठने लगती हैं और सारा त्रैलोक्य उन बढ़े समुद्र की लहरियों में डूब जाता है ।।३०।।

अन्तःस तस्मिन्सलिल आस्तेऽनन्तासनो हरिः । योगनिद्रानिमीलिताक्षः स्तूयमानो जनालयैः ।।३१।।

अन्वयः— तस्मिन् सलिले अन्तःसः अनन्तासनः हरिः योगनिद्रानिमीलिताक्षः जनालयैः स्तूयमानः आस्ते ।।३१।।

अनुवाद— उस जल के भीतर शेषशायी भगवान् योगनिद्रा के कारण अपनी आँखें बन्द करके शयन करते हैं और जनलोक निवासी मुनिगण उनकी स्तुति करते रहते हैं ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

जनलोक आलयो येषां महर्लोकगतानामन्येषां च तैः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

जिस समय एकार्णव के भीतर शेषशायी भगवान् योगनिद्रा के कारण अपनी आँखें बन्द करके शयन करते हैं, उस समय महर्लोक से जनलोक में गये हुए भृगु आदि महर्षिगण तथा दूसरे जनलोक में रहने वाले ऋषिगण उनकी स्तुति करते रहते हैं ।।३१।।

एवंविधैरहोरात्रैः कालगत्योपलक्षितैः । अपक्षितमिवास्यापि परमायुर्वयः शतम् ।।३२।।

अन्वयः— कालगत्योपलक्षितैः एवं विधैरहोरात्रैः अस्यापि परमायुः वयः शतम् अपक्षितमिव ।।३२।।

अनुवाद— इस प्रकार की काल की गति से एक एक हजार चतुर्युग के रूप में प्रतीत होने वाले बदलते रहने वाले दिनों और रातों के द्वारा ब्रह्माजी सौ वर्षों की आयु भी बिती हुयी सी प्रतीत होती है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

वैराग्यार्थमाह । एवंविधैरहोरात्रैर्वर्षशतं सर्वेषां प्राणिनामायुषः परमधिकमस्य ब्रह्मणो यदायुस्तदप्यपक्षितमिव क्षीणमिवेति लोकोक्तिः । गतप्रायमित्यर्थः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में बतलाया जा रहा है कि ब्रह्माजी की ही आयु सबसे बड़ी मानी जाती है एक-एक हजार चतुर्युगों की उनका दिन और रात होती है । उस गणना के अनुसार जब ब्रह्माजी की भी आयु बीत जाती है तो फिर मनुष्यादि की आयु की कौन सी बात है ? अतएव इस क्षणभङ्गुर संसार से सभी जीवों को विरक्त हो जाना चाहिए इस तरह से मनुष्यों के मन में वैराग्य उत्पन्न करने के लिए मैत्रेय महर्षिने इस श्लोक को कहा है । **एवं विधैरहोरात्रैः इत्यादि** इस प्रकार के दिनों एवं रात्रियों वाली ब्रह्माजी की सौ वर्ष की आयु भी जब बीत जाती है तो फिर मनुष्यों की आयु के विषय में क्या कहना है ।।३२।।

यदर्धमायुषस्तस्य परार्धमभिधीयते । पूर्वः परार्धोऽपक्रान्तो ह्यपरोऽद्य प्रवर्तते ।।३३।।

अन्वयः— तस्य आयुषः यद् अर्ध तत् परार्धम् अभिधीयते पूर्वः परार्धः अपक्रान्तः अद्य अपरः प्रवर्तते ।।३३।।

अनुवाद— ब्रह्माजी की आयु का जो आधा भाग होता है उसको परार्ध कहते हैं । ब्रह्माजी की आयु का प्रथम परार्ध बीत चुका है, उसका द्वितीय परार्ध इस समय चल रहा है ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-यदिति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की आयु बीत सी चुकी है इसी बात को **यदधर्म इत्यादि** इस श्लोक के द्वारा कहा जा रहा है। ब्रह्माजी की आयु के आधे भाग को परार्ध शब्द से कहा जाता है। ब्रह्माजी की आयु का प्रथम परार्ध बीत चुका है और इस समय उनकी आयु का दूसरा परार्ध चल रहा है ॥३३॥

पूर्वस्यादौ परार्धस्य ब्राह्मो नाम महानभूत् । कल्पो यत्राभवद्ब्रह्मा शब्दब्रह्मेति यं विदुः ॥३४॥

अन्वयः— पूर्वस्य परार्धस्य आदौ ब्राह्मः नाम महान् कल्पः अभूत् यत्र ब्रह्मा अभवत् यं शब्दब्रह्म इति विदुः ॥३४॥

अनुवाद— प्रथम परार्ध के अन्त में ब्राह्म नामक महान् कल्प हुआ था, उसी कल्प में ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुयी थी उसी को पण्डितजनों ने शब्दब्रह्म कहा है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वस्य परार्धस्यादविति त्रिभिर्वस्तु कथनम् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

पूर्वस्यादौ० इत्यादि तीन श्लोकों के द्वारा वस्तु का वर्णन किया गया है ॥३४॥

तस्यैव चान्ते कल्पोऽभूद्यं पाद्ममभिचक्षते । यद्धरेर्नाभिसरस आसील्लोकसरोरुहम् ॥३५॥

अन्वयः— तस्यैव च अन्ते यः कल्पः अभूत् यं पाद्मम् अभिचक्षते । यत् हरेः नाभिसरसः लोकसरोरुहम् आसीत्॥३५॥

अनुवाद— उस परार्द्ध के अन्त में जो कल्प हुआ था उसको पाद्मकल्प कहते हैं । इसी में श्रीहरि के नाभिसरोवर से सर्वलोकमय कमल प्रकट हुआ था ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

पाद्मत्वे हेतुः यदिति ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

पाद्मकल्प नाम का कारण **यद्हरेः इत्यादि** इस श्लोक के उत्तरार्द्ध के द्वारा बतलाया गया है । चूकि इसी कल्प में श्रीहरि के नाभि सरोवर से सर्वलोकमय कमल पैदा हुआ था इसी से इस कल्प को पाद्मकल्प कहते हैं॥३५॥

अयं तु कथितः कल्पो द्वितीयस्यापि भारत । वाराह इति विख्यातो यत्रासीत्सूकरो हरिः ॥३६॥

अन्वयः— हे भारत ! द्वितीयस्यापि आदौ अयं तु कल्पः वाराह इति ख्यातः यत्र हरिः सूकर आसीत् ॥३६॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! द्वितीय परार्ध के आदि में जो यह कल्प हुआ, उसको वाराह कल्प कहते हैं, इस कल्प में श्रीहरि ने सूकर का रूप धारण कर लिया था ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

अयं तु द्वितीयस्यादौ कथितः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

यह जो कल्प है वह द्वितीय परार्ध का प्रथम कल्प है । इसे वाराह कल्प कहते हैं क्योंकि इस कल्प मे श्रीभगवान् वाराह का रूप धारण कर लिए थे ॥३६॥

कालोऽयं द्विपरार्धाख्यो निमेष उपचर्यते । अव्याकृतस्यानन्तस्य अनादेर्जगदात्मनः ॥३७॥

अन्वयः— अयं द्विपरार्धाख्यः कालः अव्याकृतस्य अनन्तस्य अनादेः जगदात्मनः निमेष उपचर्यते ॥३७॥

अनुवाद— यह जो दो परार्धों का काल है, वह अव्यक्त, अनन्त तथा अनादि सम्पूर्ण जगत् की आत्मा श्रीभगवान् का निमेष माना जाता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं कालेन निमित्तेन सृज्यानामायुःपरिमाणमुक्त्वा कालपरिच्छेदरहितं तत्त्वमाह-कालोऽयमिति पञ्चभिः । उपचर्यते केवलं न त्वनेनापि क्रमेणायुर्गणनं तस्येत्याह। अव्याकृतस्य कार्योपाधिशून्यस्य अत एवानन्तस्यानादेश्च जगदात्मनो जगत्कारणस्य।।३७।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह कालरूपी साधन के द्वारा सृज्य जीवों की आयु के परिमाण को बतलाकर काल की सीमा से रहित परमात्मतत्त्व का वर्णन मैत्रेय महर्षि पाँच श्लोकों से करते हैं । द्विपरार्द्ध रूपी काल को निमेष के द्वारा उपचारित किया जाता है न कि उसके द्वारा परमात्मा की आयु की गणना की जाती है । परमात्मा तो कार्योपाधि से रहित हैं अतएव वे अनन्त और अनादि हैं । वे ही सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं ।।३७।।

कालोऽयं परमाण्वादिर्द्विपरार्धान्त ईश्वरः । नैवेशितुं प्रभुर्भूम्न ईश्वरो धाममानिनाम् ।।३८।।

अन्वयः— परमाण्वादिः द्विपरार्धान्तः अयं कालः ईश्वरः भूम्नः ईशितुं नैव प्रभुः अयं तु धाममानिनाम् प्रभुः ।।३८।।

अनुवाद— परमाणु से लेकर द्विपरार्ध पर्यन्त फैला हुआ यह काल सर्वसमर्थ है किन्तु वह सर्वात्मा श्रीहरि पर किसी भी प्रकार का अधिकार नहीं रखता है। वह तो देह गेह आदि में अभिमान रखने वाले जीवों का नियामक है।।३८।।

भावार्थ दीपिका

तत्परिच्छेदे कालस्यासामर्थ्यादित्याह । कालोऽयमीश्वरः समर्थोऽपि भूम्नः परिपूर्णस्येशितुं नैव प्रभुः समर्थः । यतो धाममानिनां देहगेहाभिमानिनामेवेश्वरः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा के परिसीमन में काल के असामर्थ्य को बतलाते हुए कहते हैं । यह काल नियामक है तथा सामर्थ्य सम्पन्न भी है, किन्तु श्रीभवान् तो परिपूर्ण हैं, वह उनके नियमन में समर्थ नहीं है । क्योंकि काल तो देह और गेह में अभिमान रखने वाले जीवों का ही नियामक है ।।३८।।

विकारैः सहितो युक्तैर्विशेषादिभिरावृतः । आण्डकोशो बहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः ।।३९।।

अन्वयः— विकारैः युक्तैः सहितः विशेषादिभिः आवृतः अयं अण्डकोशः पञ्चाशत् कोटिविस्तृतः ।।३९।।

अनुवाद— प्रकृति, महान् अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र इन आठ प्रकृतियों के साथ पाँच ज्ञानेन्द्रियों पञ्च कर्मेन्द्रियों मन तथा पञ्च महाभूतों के साथ सोलह विकार इन सबों के सम्मिश्रण से बना हुआ ब्रह्माण्ड भीतर से पच्चास करोड़ योजन विस्तृत है और बाहर से सात आवरणों से आवृत है ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

भूम्न इत्युक्त तत्प्रपञ्चयन्नाह । विकारैः षोडशभिर्युक्तैरष्टप्रकृतिसंयुतैः सहितस्तदारब्ध इत्यर्थः । अयमाण्डकोशो यत्र प्रविष्टः परमाणुवल्लक्ष्यते इत्युत्तरेणान्वयः । कीदृशः । अन्तः पञ्चाशत्कोटियोजनविस्तृतः, बहिश्च विशेषादिभिः पृथिव्यादिभिः सप्तभिरावृतः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

भूम्नः कहकर जिस परमात्मा का वर्णन किया जा चुका है उन्हीं का विस्तार से वर्णन करते है । सोलह विकारों तथा आठ प्रकृतियों के मिलने से बने ब्रह्माण्ड भीतर से पचास करोड़ विस्तृत है और बाहर पृथिवी आदि के सात आवरणों से आवृत है, यह ब्रह्माण्ड परमात्मा में परमाणु के समान प्रतीत होता है ।।३९।।

दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् । लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः ॥४०॥

अन्वयः— दशोत्तराधिकैः यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् लक्ष्यते । अन्ये च यत्रान्तर्गताः कोटिशः अण्डराशयः हि परमाणुवत् लक्ष्यन्ते ॥४०॥

अनुवाद— उत्तरोत्तर दसगुने परिमाण वाले सात आवरणों से युक्त ब्रह्माण्ड परमाणु के समान प्रतीत होता है और उनमें विद्यमान करोड़ों ब्रह्माण्ड परमाणुओं के समान प्रतीत होते हैं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

कीदृशैः । अण्डकोशप्रमाणाद्दशगुणमुत्तरोत्तरोऽधिको येषु तैः । न केवलमयमेक एव अपित्वन्येऽपि लक्ष्यन्ते ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माण्ड के परिमाण से दस गुना उत्तरोत्तर विस्तार वाले सात आवरणों से युक्त ब्रह्माण्ड जिस परमात्मा में परमाणु के समान प्रतीत होता है और दूसरे भी उनमें विद्यमान कराड़ों ब्रह्माण्ड परमाणुओं के ही समान प्रतीत होते हैं ॥४०॥

तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् । विष्णोर्धाम परं साक्षात्पुरुषस्य महात्मनः ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अन्वयः— तत् सर्वकारणकारणम् अक्षरं ब्रह्म आहुः, तत् साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः विष्णोर्धाम ॥४१॥

अनुवाद— वे इन समस्त कारणों के कारण अक्षर ब्रह्म हैं । यही पुराण पुरुष परमात्मा भगवान् विष्णु का परंधाम (सर्वश्रेष्ठ स्वरूप) है ॥४१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

भावार्थ दीपिका

सर्वेषां कारणानां कारणम् । धाम स्वरूपम् ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ही प्रधान आदि सभी कारणों के कारण अक्षर ब्रह्म तथा पुराणपुरुष परमात्मा भगवान् विष्णु का श्रेष्ठ स्वरूप है ॥४१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ॥११॥

◆

बारहवाँ अध्याय

सृष्टि का विस्तार

मैत्रेय उवाच

इति ते वर्णितः क्षत्तः कालाख्यः परमात्मनः । महिमा वेदगर्भोऽथ यथाऽस्त्राक्षीन्निबोध मे ॥१॥

अन्वयः— हे क्षत्तः इति परमात्मनः कालाख्यः महिमा ते कथितः अथ वेदगर्भः यथा अस्त्राक्षीत् तत् मे निबोध ॥१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— विदुरजी यहाँ तक मैंने आपको श्रीभगवान् की काल नामक महिमा को सुनाया अब मैं यह आपको बतला रहा हूँ कि ब्रह्माजी ने जगत् की रचना कैसे की उसे आप सुनें ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशे तु कुमारादिमनःसर्गाऽसमेधनात् । कायद्वैधेन यौनस्तु मनुसर्गोऽनुवर्ण्यते ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बारहवें अध्याय में कुमार आदि की मानसिक सृष्टि की समृद्धि होने के कारण दो शरीरों के सम्बन्ध से योनिज मानव सृष्टि का वर्णन किया गया है ॥१॥

ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत् । महामोहं च मोहं च तमश्चाज्ञानवृत्तयः ॥२॥

अन्वयः— अग्रे आदिकृत् अन्धतामिस्रम् तामिस्रम् महामोमहम् मोहम् तमः च अज्ञानवृत्तयः ससर्ज ॥२॥

अनुवाद— सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने अन्धतामिस्र तामिस्र, महामोह, मोह एवं तमस् नामक अज्ञान की पाँच वृत्तियों की सृष्टि की ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अग्र इति । ब्रह्मा स्वसृष्टौ प्रथममविद्यावृत्तीः ससर्ज । तत्र तमो नाम स्वरूपाप्रकाशः । मोहो देहाद्यहंबुद्धिः । महामोहो भोगेच्छा । तामिस्रं तत्प्रतिघाते क्रोधः । अन्धतामिस्रं तन्नाशेऽहमेव मृतोऽस्मीति बुद्धिः । तदेवोक्तं वैष्णवे-'**तमोविवेको मोहः स्यादन्तःकरणाविभ्रमः । महामोहस्तु विज्ञेयो ग्राम्यभोगसुखैषणा । मरणं ह्यन्धतामिस्रं तामिस्रः क्रोध उच्यते । अविद्या पञ्चपर्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः** । इति पातञ्जलेऽप्येत एवोक्ताः । **अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः** इति, श्रीविष्णुस्वामीप्रोक्ता वा अज्ञानविपर्यासभेदभयशोकाः । तदुक्तम् स्वादृगुत्थविपर्यास इत्यादि ॥२॥

भाव प्रकाशिका

सर्व प्रथम ब्रह्माजी ने अविद्या (अज्ञान) की पाँच वृत्तियों की सृष्टि की । स्वरूप का प्रकाश न होना ही तम कहलाता है । देह आदि में होने वाली आत्मत्व की बुद्धि को ही मोह कहते हैं । भोगों की इच्छा को महामोह कहते हैं । भोग की प्राप्ति में किसी के द्वारा बाधा डाले जाने पर जो क्रोध उत्पन्न होता है उसको तामिस्र कहते हैं । भोग का नाश हो जाने पर यह सोचना कि अरे मैं ही नष्ट हो गया इसी को अन्धतामिस्र कहते हैं । **तदेवोक्तम्० इत्यादि** इस बात को श्रीविष्णुपुराण में कहा गया है । विवेक के अभाव को ही तमस् कहते हैं । अन्तःकरण में होने वाले भ्रम को मोह कहते हैं । ग्राम्य सुखों तथा ग्राम्य भोगों को प्राप्त करने की इच्छा को महामोह कहते हैं । भोग के साधन के नष्ट हो जाने पर यह सोचना कि मैं ही मर गया इस तरह की बुद्धि को अन्धतामिस्र कहते हैं । भोग की प्राप्ति में बाधा उपस्थित होने पर होने वाले क्रोध को तामिस्र कहते हैं । इस तरह से ब्रह्माजी ने ही पाँच पर्वों वाली अविद्या की सृष्टि की है । पातञ्जलयोगदर्शन में भी कहा गया है— अविद्या, अस्मिता, राग,

द्वेष तथा अभिनिवेष ये पाँच प्रकार के क्लेश हैं । श्रीविष्णु स्वामी ने कहा है कि अज्ञान के विपर्यास, भय तथा शोक ये अज्ञान के भेद हैं । स्वरूपाज्ञान जन्य विपर्यास भ्रम को ही अज्ञान कहते है ।।२।।

दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत । भगवद्ध्यानपूतेन मनसाऽन्यां ततोऽसृजत् ।।३।।

अन्वयः— पापीपसीं सृष्टिं दृष्ट्वा आत्मनं बहु न अमन्यत । ततः भ्गवद्ध्यानपूतेन मनसा अन्यां असृजत् ।।३।।

अनुवाद— इस पापमयी सृष्टि को देखकर उनको प्रसन्नता नहीं हुयी । उसके पश्चात् श्रीभगवन् के ध्यान से पवित्र बने हुए मन से उन्होंने दूसरी सृष्टि की ।।३।।

भावार्थ दीपिका

न बह्वमन्यत नाभ्यनन्दत् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

पाञ्च वृत्तियों वाली अविद्या की सृष्टि पापमयी थी । उसको देखकर ब्रह्माजी को प्रसन्नता नहीं हुयी । उसके पश्चात् उन्होंने श्रीभगवान् का ध्यान किया और दूसरी सृष्टि की ।।३।।

सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः । सनत्कुमारं च मुनीन्निष्क्रियानूधर्वरेतसः ।।४।।

अन्वयः— अथ आत्मभूः सनकं, सनन्दनं, सनातनं सनत्कुमारं च निष्क्रियान्, ऊर्ध्वरेतसः मुनीन् असृजत् ।।४।।

अनुवाद— उसके पश्चात् ब्रह्माजी ने सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार इन निवृत्त परायण ऊर्ध्व रेता मुनियों की सृष्टि की ।।४।।

भावार्थ दीपिका

यद्यपि प्रतिकल्पं सनकादिसृष्टिर्नास्ति तथापि ब्राह्मसर्गत्वादिहोच्यते । वस्तुतस्तु मुख्यसर्गादय एव प्रतिकल्पं भवन्ति सनकादयस्तु ब्राह्मकल्पसृष्टा एवानुवर्तन्ते ।।४।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि प्रत्येक कल्पों में सनकादि की सृष्टि नहीं होती है फिर भी ब्राह्मसृष्टि का वर्णन होने के कारण उन लोगों की सृष्टि यहाँ बतलायी गयी है । वास्तविकता यह है कि प्रत्येक कल्प में मुख्य सृष्टि ही होती है । इन सनकादिकों की ब्राह्मकल्प में सृष्टि होती है, वे ही अन्य कल्पों में बने रहते हैं ।।४।।

तान्बभाषे स्वभूः पुत्रान् प्रजाः सृजत पुत्रकाः । तन्नैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः ।।५।।

अन्वयः— स्वभूःतान् पुत्रान् बभाषे पुत्रकाः प्रजाः सृज तत् मोक्षधर्माणः वासुदेव परायणाः न ऐच्छन् ।।५।।

अनुवाद— ब्रह्माजी ने अपने उन पुत्रों से कहा कि पुत्रों प्रजाओं की सृष्टि करो; किन्तु मोक्षमार्ग परायण तथा भगवान् वासुदेव का भक्त होने के कारण उन लोगों ने सृष्टि करना नहीं चाहा ।।५।।

भावार्थ दीपिका

स्वभूर्ब्रह्मा ।।५।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी को आत्मभू इसलिए कहा गया है कि वे श्रीभगवान् से उत्पन्न हुए हैं ।।५।।

सोऽवध्यातः सुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः । क्रोधं दुर्विषहं जातं नियन्तुमुपचक्रमे ।।६।।

अन्वयः— प्रत्याख्यातानुशासनैः एतैः एवं अवध्यातः सः जातं दुर्विषहं क्रोधम् नियन्तुम् उपचक्रमे ।।६।।

अनुवाद— आज्ञा का उल्लंघन करने वाले अपने पुत्रों से इस प्रकार से अपमानित ब्रह्माजी को असह्य क्रोध उत्पन्न हुआ, ब्रह्माजी ने उस क्रोध को रोकने का प्रयास किया ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अवध्यातोऽवज्ञातः । प्रत्याख्यातमनङ्गीकृतमनुशासनं यैः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के अवध्यात: पद का अर्थ है अपमानित और प्रत्याख्यातानुशासनै: का अर्थ है आज्ञा का पालन नहीं करने वालों से ॥६॥

धिया निगृह्यमाणोऽपि भ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः । सद्योऽजायत तन्मन्युः कुमारो नीललोहितः ॥७॥

अन्वयः— धिया निगृह्यमाणः अपि तन्मन्युः प्रजापते भ्रुवोः मध्यात् सद्यः नीललोहितः कुमारः अजायत ॥७॥

अनुवाद— बुद्धि के द्वारा रोके जाने पर भी वह क्रोध शीघ्र ही ब्रह्माजी की भौहों के बीच से नीललोहित (नीले और लाल रङ्ग के) बालक के रूप में उत्पन्न हो गया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

स चासौ मन्युश्च तन्मन्युः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

पहले जो क्रोध उत्पन्न हुआ था वह क्रोध ही नीललोहित कुमार के रूप में उत्पन्न हो गया ॥७॥

स वै रुरोद देवानां पूर्वजो भगवान्भवः । नामानि कुरु मे धातः स्थानानि च जगद्गुरो ॥८॥

अन्वयः— स वै देवानां पूर्वजः भगवान् भवः रुरोद, हे जगद्गुरो धातः मे नामानि स्थानानि च कुरु ॥८॥

अनुवाद— देवताओं के पूर्वज भगवान् शिव रोकर कहने लगे हे जगत् रचयिता ब्रह्माजी आप मेरा नाम और मेरे रहने के स्थान को बतलाइये ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥८॥

भाव प्रकाशिका

नीललोहित बालक भगवान् शिव ही थे । उन्होंने ब्रह्माजी से रोकर पूछा कि मेरा नाम क्या है ? और मेरे रहने का स्थान कौन सा है ?॥८॥

इति तस्य वचः पाद्मो भगवान्परिपालयन् । अभ्यधाद्भद्रया वाचा मारोदीस्तत्करोमि ते ॥९॥

अन्वयः— इति तस्य वचः परिपालयन् भगवान् पाद्मः भद्रया वाचा अभ्यधात् मा रोदीः ते तत् करोमि ॥९॥

अनुवाद— इस तरह की उस बालक की वाणी को सुनकर कमलयोनि भगवान् ब्रह्माजी ने कल्याणमयी मधुरवाणी से कहा; रोओ मत मैं तुम्हारे नाम और स्थान को बतलाता हूँ ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उस रोते हुए बालक की प्रार्थना को सुनकर ऐश्वर्य सम्पन्न ब्रह्माजी ने कहा कि रोओ मत मैं तुम्हारे नाम और स्थान का निरूपण करता हूँ ॥९॥

यदरोदीः सुरश्रेष्ठः सोद्वेग इव बालकः । ततस्त्वामभिधास्यन्ति नाम्ना रुद्र इति प्रजाः ॥१०॥

अन्वयः— हे सुरश्रेष्ठ ! यत् त्वम् बालक इव सोद्वेग अरोदीः ततः त्वाम् प्रजाः रुद्र इति नम्ना अभिधास्यन्ति ॥१०॥

अनुवाद— हे सुरश्रेष्ठ ! चूकि तुम जन्म लेते ही बालक के समान रोने लगे इसलिए तुमको सारी प्रजायें रुद्र इस नाम से अभिहित करेंगी ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

बालक इव ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

बालक इव कहकर ब्रह्माजी ने यह कहा कि तुम तो देवताओं में श्रेष्ठ हो ? फिर भी तुम बालक के समान जन्म लेते ही रोने लगे । तुम्हारे रोने के कारण तुम्हारा नाम रुद्र होगा ॥१०॥

हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुरग्निजलं मही । सूर्यश्चन्द्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रे कृतानि मे ॥११॥

अन्वयः— हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुः अग्निः जलम् मही, सूर्यः चन्द्रः तपश्चैव मे अग्रे स्थानानि कृतानि ॥११॥

अनुवाद— हृदय, इन्द्रियाँ, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, सूर्य, चन्द्रमा और तपस्या इन ग्यारह स्थानों को तुम्हारे रहने के लिए मैंने बना रखा है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अग्रे पूर्वमेव मे मया कृतानि ॥११॥

भाव प्रकाशिका

तुम्हारे जन्म से पहले ही तुम्हारे रहने के लिए मैंने इन ग्यारह स्थानों को बना रखा हैं ॥११॥

मन्युर्मनुर्महेशानो महान् शिव ऋतुध्वजः । उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः ॥१२॥

अन्वयः— मन्युः मनुः, महेशानः, महान्, शिवः, ऋतध्वजः, उग्ररेता, भवः, कालेः वामदेवो, धृतव्रतः ॥१२॥

अनुवाद— मन्यु, मनु, महेशान महान् शिव, ऋतुध्वज, उग्ररेता, भव, कालः, वामदेव, और धृतव्रत ये तुम्हारे ग्यारह नाम हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने शिवजी के ग्यारह नामों को बतलाया है ॥१२॥

धीर्वृत्तिरुशनोमा च नियुत्सर्पिरिलाम्बिका । इरावती सुधा दीक्षा रुद्राण्यो रुद्र ते स्त्रियः ॥१३॥

अन्वयः— हे रुद्रः ! धीः, वृत्तिः, उशना, उमा, नियुत् सर्पिः इला, इरावती, सुधा, दीक्षा, इति ते रुद्राण्यः स्त्रियः॥१३॥

अनुवाद— हे रुद्र, धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत् सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती सुधा और दीक्षा ये ग्यारह रुद्राणियाँ तुम्हारी पत्नियाँ होंगी ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने रुद्र की ग्यारह पत्नियों के नाम को बतलाया है ॥१३॥

गृहाणैतानि नामानि स्थानानि च सयोषणः । एभिः सृज प्रजा बह्वीः प्रजानामसि यत्पतिः ॥१४॥

अन्वयः— सयोषणः एतानि नामानि, स्थानानि च गृहाण, एभिः बह्वीः प्रजाः सृज, यत् प्रजानाम् पतिः असि ॥१४॥

अनुवाद— अपनी इन पत्नियों के साथ उपर्युक्त नामों और स्थानों को स्वीकार करो और इन सबों के द्वारा बहुत सी प्रजाओं को उत्पन्न करो क्योंकि तुम प्रजापति हो ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

सयोषणः सस्त्रीकः । एभिः स्थानैर्नामभिश्च युक्तः प्रजाः सृज ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने रुद्र से कहा कि इन अपनी पत्नियों के साथ उपर्युक्त नामों और स्थानों को स्वीकार करो और बहुत सी प्रजाओं की सृष्टि करो; क्योंकि तुम प्रजापति हो ।।१४।।

इत्यादिष्टः स गुरुणा भगवान्नीललोहितः । सत्त्वाकृतिस्वभावेन ससर्जात्मसमाः प्रजाः ।।१५।।

अन्वयः— इति गुरुणा आदिष्टः सः भगवान् नीललोहितः सत्त्वाकृतिः स्वभावेन आत्मसमाः प्रजाः ससर्ज ।।१५।।

अनुवाद— इस तरह लोकपितामह ब्रह्माजी के द्वारा आदेशित होकर भगवान् नीललोहित ने अपने बल, आकार तथा आकार के समान ही बल, आकार और स्वभाव वाली प्रजाओं की सृष्टि की ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

सत्त्वं बलम् । आकृतिर्नीललोहितता । स्वभावस्तीव्रता तेन ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी का आदेश प्राप्त करके भगवान् नीललोहित ने अपने ही समान बलवान, नीललोहित आकार वाली और तीव्र स्वभाव वाली प्रजाओं की सृष्टि की ।।१५।।

रुद्राणां रुद्रसृष्टानां समन्ताद्ग्रसतां जगत् । निशाम्यासंख्यशो यूथान् प्रजापतिरशङ्कत ।।१६।।

अन्वयः— रुद्रसृष्टानाम्, रुद्राणां समन्तात् जगत् ग्रसतां असंख्यशः यूथान् निशाम्य प्रजापतिः अशङ्कत ।।१६।।

अनुवाद— रुद्र के द्वारा सृष्ट उन रुद्रों को जो असंख्य यूथ बनाकर सम्पूर्ण संसार का भक्षण कर रहे थे, उसे देखकर ब्रह्माजी को बड़ी शङ्का हुयी ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

रुद्राणां यूथानि दृष्ट्वा ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

रुद्रों के समूहों को देखकर ब्रह्माजी को लगा कि ये सब तो संसार को ही खा जायेंगे ।।१६।।

अलं प्रजाभिः सृष्टाभिरीदृशीभिः सुरोत्तम । मया सह दहन्तीभिर्दिशश्चक्षुर्भिरुल्वणैः ।।१७।।

अन्वयः— हे सुरोत्तम ! ईदृशीभिः, सृष्टाभिः, उल्बणैः, चक्षुभिः मया सह दिशः दहन्तीभिः प्रजाभिः अलम् ।।१७।।

अनुवाद— ब्रह्माजी ने रुद्र से कहा सुरोत्तम ! तुम्हारे द्वारा रची गयी जो प्रजा है वह अपनी तीव्र दृष्टि से मेरे साथ ही सम्पूर्ण दिशाओं को जलाये जा रही हैं, अतएव इस प्रकार की सृष्टि बन्द करो ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने कहा सुरश्रेष्ठ ! तुमने जिन प्रजाओं की सृष्टि की है वे तो अपनी भयङ्कर दृष्टि से मुझको तथा सारी दिशाओं को जलाये जा रही हैं अतएव अब तुम अपनी सृष्टि बन्द करो ।।१७।।

तप आतिष्ठ भद्रं ते सर्वभूतसुखावहम् । तपसैव यथापूर्वं स्रष्टा विश्वमिदं भवान् ॥१८॥

अन्वयः— ते भद्रम् ! सर्वभूतसुखवहम् तप अतिष्ठ तपसैव भवान् यथापूर्वम् इदं विश्वं स्रष्टा ॥१८॥

अनुवाद— तुम्हारा कल्याण हो, तुम सम्पूर्ण जगत् को सुख देने वाली तपस्या करो। तपस्या के द्वारा ही तुम पहले के समान इस विश्व की सृष्टि कर सकोगे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

स्रष्टा स्रक्ष्यति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने रुद्र से कहा कि तुम तपस्या करो तपस्या के प्रभाव से ही तुम पूर्व कल्प के समान संसार की सृष्टि करोगे ॥१८॥

तपसैव परं ज्योतिर्भगवन्तमधोक्षजम् । सर्वभूतगुहावासमञ्जसा विन्दते पुमान् ॥१९॥

अन्वयः— पुमान् तपसा एव परं ज्योतिः सर्वभूतगुहावासम् भगवन्तम् अधोक्षजम् अञ्जसा विन्दते ॥१९॥

अनुवाद— पुरुष तपस्या के ही द्वारा परम प्रकाश स्वरूप सभी जीवों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से निवास करने वाले इन्द्रियातीत श्रीभगवान् को अनायास ही प्राप्त कर लेता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

तपस्या के प्रभाव से पुरुष परंप्रकाश स्वस्वरूप सर्वान्तर्यामी श्रीभगवान् को भी प्राप्त कर लेता है ॥१९॥

मैत्रेय उवाच

एवमात्मभुवादिष्टः परिक्रम्य गिरांपतिम् । बाढमित्यमुमामन्त्र्य विवेश तपसे वनम् ॥२०॥

अन्वयः— आत्मभुवा एवम् आदिष्टः अमुम् बाढम् इति आमन्त्र्य गिरां पतिम् परिक्रम्य तपसे वनं विवेश ॥२०॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— ब्रह्माजी का इस प्रकार का आदेश प्राप्त करके रुद्र ने कहा बहुत अच्छा; उसके पश्चात् उन्होंने ब्रह्माजी की परिक्रमा की और तपस्या करने के लिए वे वन में चले गये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

तपस्या करने के लिए ब्रह्मजी का आदेश प्राप्त करके रुद्र ने ब्रह्माजी की परिक्रमा की और तपस्या करने के लिए वन में चले गये ॥२०॥

अथाभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे । भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः ॥२१॥

अन्वयः— अथ लोकसन्तानहेतवे सर्गम् अभिध्यायतः भगवच्छक्तियुक्तस्य दश पुत्राः प्रजज्ञिरे ॥२१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् संसार की सृष्टि के लिए श्रीभगवान् की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्माजी ने सृष्टि का सङ्कल्प किया तो उनके दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

रुद्र के तपस्या करने के लिए वन में चले जाने के पश्चात् श्रीभगवान् की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्माजी ने सृष्टि करने का सङ्कल्प किया तो उससे उनके दस पुत्र उत्पन्न हुए ॥२१॥

मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥२२॥

अन्वयः— मरीचिः अत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहःक्रतुः भृगुःवसिष्ठः दक्षश्च दशमः तत्र नारदः ॥२२॥

अनुवाद— ब्रह्माजी के उन पुत्रों के नाम है मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और दशवें नारदजी ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्माजी ने अपने सङ्कल्प के द्वारा जिन दस पुत्रों को उत्पन्न किया उन सबों का नाम इस श्लोक में क्रमशः गिनाया गया है ॥२२॥

उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात्स्वयंभुवः । प्राणाद्वसिष्ठः संजातो भृगुस्त्वचि करात्क्रतुः ॥२३॥
पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोर्ऋषिः । अङ्गिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥२४॥

अन्वयः— स्वयम्भुवः उत्सङ्गात् नारदः जज्ञे, दक्षः अङ्गुष्ठात् वसिष्ठः प्राणात् सञ्जातः भृगु त्वचि, क्रतुः करात्, पुलहः नाभितः जज्ञे, ऋषिः पुलस्त्यः कर्णयोः, अङ्गिरा मुखतः, अत्रिः अक्षणोः, मरीचिः मनसः अभवत् ॥२३-२४॥

अनुवाद— ब्रह्माजी की गोद से नारदजी उत्पन्न हुए, दक्ष ब्रह्माजी के अङ्गूठे से पैदा हुए, वसिष्ठ महर्षि उनके प्राण से पैदा हुए, महर्षि भृगु ब्रह्माजी की त्वचा से उत्पन्न हुए, क्रतु महर्षि ब्रह्माजी के हाथ से पैदा हुए, पुलस्त्य महर्षि ब्रह्माजी के कानों से पैदा हुए, अङ्गिरा महर्षि ब्रह्माजी के मुख से पैदा हुए, अत्रि महर्षि उनके नेत्रों से पैदा हुए और मरीचि महर्षि ब्रह्माजी के मन से पैदा हुए ॥२३-२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥२३-२४॥

धर्मः स्तनाद्दक्षिणतो यत्र नारायणः स्वयम् । अधर्मः पृष्ठतो यस्मान्मृत्युर्लोकभयङ्करः ॥२५॥

अन्वयः— दक्षिणतः स्तनात् धर्मः यत्र नारायणः स्वयम् जज्ञे । अधर्मः पृष्ठतः यस्मात् मृत्युः लोकभयङ्करः जज्ञे॥२५॥

अनुवाद— ब्रह्माजी के दाहिने स्तन से धर्म उत्पन्न हुए जिनके पुत्र साक्षात् भगवान् नारायण हुए और ब्रह्माजी के पृष्ठ से अधर्म उत्पन्न हआ और उससे संसार को भयभीत करने वाला मृत्यु उत्पन्न हुआ ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

हृदि कामो भ्रुवः क्रोधो लोभश्चाधरदच्छदात् । आस्याद्वाक् सिन्धवो मेढ्रान्निर्ऋतिः पायोरघाश्रयः॥२६॥

अन्वयः— हृदि कामः भ्रुवोः क्रोधः अधरदच्छदात् लोभश्च, आस्याद् वाक्, सिन्धवो मेढ्रात पायोः अघाश्रयः निऋतिः ॥२६॥

अनुवाद— ब्रह्माजी के हृदय से काम, भौहों से क्रोध, अधरोष्ठ से लोभ, मुख से वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, लिङ्ग से समुद्र और गुदा से पाप के निवास स्थान (राक्षसों के स्वामी) निऋति पैदा हुए ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अधरदच्छदादधरोष्ठात् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अधरदच्छदात् शब्द का अर्थ है नीचे के ओठ से ॥२६॥

छायायाः कर्दमो जज्ञे देवहूत्या पतिः प्रभुः । मनसो देहतश्चेदं जज्ञे विश्वकृतो जगत् ॥२७॥

अन्वयः— छायायाः देवहुत्याः पतिः प्रभुः कर्दमः जज्ञे विश्वकृतः मनसः देहतः च इदं जगत् जज्ञे ॥२७॥

अनुवाद— ब्रह्माजी की छाया से देवहुती के पति महर्षि कर्दम उत्पन्न हुए, इस तरह ब्रह्माजी के मन और शरीर से यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हरतीं मनः । अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥२८॥

अन्वयः— हे क्षत्तः अकामां मनः हरतीं तन्वीं दुहितरं वाचं सकामः चकमे इति नः श्रुतम् ॥२८॥

अनुवाद— हे विदुरजी, ब्रह्माजी एक बार अपनी निष्काम, मनोहर, तथा सुकुमारी पुत्री वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को देखकर कामार्त हो गये और उसको प्राप्त करना चाहे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

देहान्तरेण कृतं सर्गं वक्तुं तद्देहत्यागे कारणमाह-वाचमित्यादिना ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने जिस शरीर से सृष्टि किया था उस शरीर का परित्याग करने का कारण बतलाने के लिए **वाचम् इत्यादि** श्लोक को कहा गया है ॥२८॥

तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः । मरीचिमुख्या मुनयो विश्रम्भात्प्रत्यबोधयन् ॥२९॥

अन्वयः— अधर्मे कृतमतिं तम् पितरं विलोक्य मरीचिमुख्याः मुनयः विश्रम्भात् प्रत्यबोधयन् ॥२९॥

अनुवाद— ब्रह्माजी की अधर्ममयी बुद्धि को देखकर मरीचि इत्यादि महर्षियों ने अपने उस पिता को विश्वास पूर्वक समझाया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्ये न करिष्यन्ति चापरे । यत्त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्याङ्गजं प्रभुः ॥३०॥

अन्वयः— यत् प्रभुः त्वम् अङ्गजम् अनिगृह्य दुहितरं गच्छेः एतत् त्वत् पूर्वैः न कृतम् ये त्वत् अपरे तेऽपि न करिष्यन्ति ॥३०॥

अनुवाद— आप समर्थ होकर भी इस मन से उत्पन्न होने वाले काम को अपने वश में न करके पुत्री गमन का जो सङ्कल्प करते हैं, यह आपसे पहले जो ब्रह्मा थे वे ऐसा नहीं किए और न तो आपके बाद होने वाले भी ब्रह्मा ऐसा काम करेंगे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

त्वत् त्वत्तो ये पूर्वे ब्रह्मादयोऽन्ये वा तैरेतेन्न कृतम् । अपरे त्वत्तोऽर्वाचीनास्तेऽपि न करिष्यन्ति । अङ्गजं कामम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

मन में उत्पन्न होने वाले काम को जीतकर अपने वश में न करके आप जो पुत्री गमन रूपी कार्य कर रहे हैं ऐसा कार्य आपसे पहले जो ब्रह्मा आदि थे उन लोगों ने नहीं किया और न तो आपके बाद जो ब्रह्मा होंगे वे ऐसा कार्य करेंगे ॥३०॥

तेजीयसामपि ह्येतन्न सुश्लोक्यं जगद्गुरो । यद्वृत्तमनुतिष्ठन्वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥३१॥

अन्वयः— जगद्गुरो तेजीयसामपि हि एतत् सुश्लोक्यं न यद् वृत्तम अनुतिष्ठन् वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥३१॥

अनुवाद— हे जगद्गुरो ! तेजस्वी पुरुषों का भी ऐसा कर्म करना सराहनीय नहीं होता है, क्योंकि आप जैसे तेजस्वी पुरुषों के ही आचरण का अनुसरण करने से जगत् का कल्याण होता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तेजीयसामपितेजस्विनामपि सुश्लोक्यं सत्कीर्तिदं न भवति । येषां तेजीयसाम् वृत्तम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त तेजस्वी भी आप जैसे महापुरुषों के द्वारा ऐसा पापमय कार्य का किया जाना सराहनीय नहीं होता है; क्योंकि जो तेजस्वी पुरुष होते हैं उन्हीं के आचरण का अनुसरण करने से जगत् का कल्याण होता है ॥३१॥

तस्मै नमो भगवते य इदं स्वेन रोचिषा । आत्मस्थं व्यञ्जयामास स धर्मं पातुमर्हति ॥३२॥

अन्वयः— तस्मै भगवते नमः यः आत्मस्थं इदं स्वेन रोचिषा व्यञ्जयामास सः धर्मं पातुमर्हति ॥३२॥

अनुवाद— उन श्रीभगवान् को नमस्कार है जिन्होंने अपने स्वरूप में स्थित इस जगत को अपने प्रकाश के द्वारा प्रकाशित किया, वे ही धर्म की रक्षा कर सकते हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

सृष्टि से पूर्व यह जगत् श्रीभगवान् के स्वरूप में स्थित होने के कारण अव्यक्त था । सृष्टि काल के आ जाने पर श्रीभगवान् ने अपने तेज के द्वारा इस जगत् को प्रकाशित किया । वे ही श्रीभगवान् धर्म की रक्षा करने में समर्थ हैं, अतएव उन्हीं श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥३२॥

स इत्थं गृणतः पुत्रान्पुरो दृष्ट्वा प्रजापतीन् । प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्याज व्रीडितस्तदा ॥
तां दिशो जगृहुर्घोरां नीहारं यद्विदुस्तमः ॥३३॥

अन्वयः— स इत्थं गृणतः प्रजापतीन् पुत्रान् पुरो दृष्ट्वा प्रजापति पतिः तदा व्रीडितः तन्वं तत्याज । तां घोरां दिशः जगृहुः यत् निहारं तमः विदुः ॥३३॥

अनुवाद— अपने पुत्र मरीचि आदि महर्षियों को अपने सामने इस प्रकार की बातों को कहते हुए देखकर प्रजापतियों के भी पति ब्रह्माजी लज्जित हो गये और अपने उस शरीर का उन्होंने त्याग कर दिया । उस घोर शरीर को दिशाओं ने ले लिया । वही कुहरा हो गया । उसे ही अन्धकार कहते हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तन्वं तनुम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

तन्व शब्द शरीर का वाचक है ॥३३॥

कदाचिद्ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा आसंश्चतुर्मुखात् । कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान्समवेतान्यथापुरा ॥३४॥

अन्वयः— कदाचित् समवेतान् लोकान् यथापुरा कथम् अहं स्रक्ष्यामि इति ध्यायतः स्रष्टुः चतुर्मुखात् वेदाः आसन् ॥३४॥

अनुवाद— एक बार जब ब्रह्माजी इस बात का विचार कर रहे थे कि मैं किस प्रकार पूर्वकल्प के ही समान सुव्यवस्थित रूप से लोकों की सृष्टि करूँ तो उनके चारो मुख से चारो वेद प्रकट हो गये ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

कथं स्रक्ष्यामीत्यभिध्यायतः स्रष्टुर्ब्रह्मणश्चतुःसंख्यायुक्तान्मुखात् । समवेतान्सुसङ्गतान् । यथापुरा प्राक्कल्पे ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी जब इस बात का चिन्तन कर रहे थे कि पूर्वकल्प के ही समान सुव्यवस्थित रूप से लोकों की रचना मैं कैसे करूँ ? उसी समय उनके मुख से चारो वेद प्रकट हो गये ॥३४॥

चातुर्होत्रं कर्मतन्त्रमुपवेदनयैः सह । धर्मस्य पादाश्चत्वारस्तथैवाश्रमवृत्तयः ॥३५॥

अन्वयः— चातुर्होन्त्रं कर्मतत्रं उपवेदनयैः सह धर्मस्य चत्वारः पादाः तथैव आश्रम वृत्तयः चतुर्मुखात् आसन्नित्यन्वयः॥३५॥

अनुवाद— साथ ही उपवेद तथा न्याय शास्त्र के साथ होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा इन चारो ऋत्विजों के कर्म, यज्ञों का विस्तार, धर्म के चार चरण और चारों आश्रम एवं उनकी वृत्तियाँ ये सब भी ब्रह्माजी के मुखों से ही प्रकट हुए ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

चातुर्होत्रं होत्रादीनां चतुर्णां कर्म । कर्मतन्त्रं यज्ञविस्तारः । उपवेदैर्न्यायैश्च सह । आश्रमाद्वृत्तयश्चासन् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

चातुर्होत्र शब्द से होता, उद्गाता, अध्वर्यु एवं ब्रह्मा इन चारो ऋत्विजों के कर्म कहे गये है । कर्म तनत्रम् पद से यज्ञों के विस्तार को कहा गया है । **उपवेदनयैः सह** का अर्थ है आयुर्वेद इत्यादि उपवेद तथा न्याय शास्त्र इन सबों के साथ धर्म के चारो पैर, चारो आश्रम और उनकी वृत्तियों की भी उत्पत्ति ब्रह्माजी के मुखों से ही हुयी है ॥३५॥

विदुर उवाच

स वै विश्वसृजामीशो वेदादीन्मुखतोऽसृजत् । यद्यद्येनासृजद्देवस्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥३६॥

अन्वयः— हे तपोधन ! सवै विश्वसृजामीशः देवः येन मुखतः यद् वेदादीन् असृजत् तन्मे ब्रूहि ॥३६॥

अनुवाद— हे तपोधन ! वे प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्माजी ने अपने जिस मुख से जिन वेदादि की सृष्टि की उसे आप मुझे बतलाइये ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

मुखतो मुखेभ्यः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने मैत्रेय जी से प्रार्थना की कि आप मुझे यह बतलाइये कि ब्रह्माजी ने अपने किन मुखों से किन वेदादिकों को उत्पन्न किया ॥३६॥

मैत्रेय उवाच

ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान् वेदान्पूर्वादिभिर्मुखैः । शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्क्रमात् ॥३७॥

अन्वयः— पूर्वादिभिमुखैः ऋग्यजुः सामाथर्वाख्यान् वेदान् शस्त्रम् इज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं क्रमात् व्यधात् ॥३७॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— ब्रह्माजी ने अपने पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर मुख से क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की रचना की और इसी क्रम से उन्होंने शस्त्र (होता के कर्म) इज्या (अध्वर्यु के कर्म) स्तुतिस्तोम (उद्गाता के कर्म) और प्रायश्चित्त (ब्रह्मा के कर्म) की भी रचना की ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

चातुर्होत्रसृष्टिक्रममाह । शस्त्रमप्रगीतमन्त्रस्तोत्रं होतुः कर्म । इज्यामध्वर्योः कर्म । स्तुतिस्तोमं स्तुतिः संगीतं, स्तोमं तदर्धमृक्समुदायं **'त्रिवृत्स्तोमो भवति'** इत्यादिविहितमुद्गातृप्रयोज्यम् । प्रायश्चित्तं ब्राह्मम् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में चातुर्होत्रसृष्टिक्रम का वर्णन मैत्रेय महर्षि ने किया है । शस्त्र अर्थात् अप्रगीतमन्त्रस्तोत्र होता के कर्म । स्वर तथा आनुपूर्वीरहित मन्त्रों के द्वारा जो स्तुति की जाती है उसे अप्रगीतमन्त्र स्तोत्र कहते हैं । इज्या अर्थात् देवता के लिए किए जाने वाले द्रव्य के त्याग रूप अध्वर्यु के कर्म को इज्या कहते हैं । स्तुति स्तोम, स्तुति संगीत को कहते है और संगीतोपयोगी ऋचाओं के समूह को स्तोम कहते है । त्रिवृत्स्तोमोभवति इत्यादि श्रुतियाँ उसका विधान करती हैं । यह उद्गाता नामक ऋत्विज का कर्म है । ब्राह्मकर्म को प्रायश्चित्त कहते हैं । इन सबों की सृष्टि ब्रह्माजी के पूर्वादि मुखों से हुयी हैं ।।३७।।

आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं वेदमात्मनः । स्थापत्यं चासृजद्वेदं क्रमात्पूर्वादिभिर्मुखैः ।।३८।।

अन्वयः— आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वं वेद स्थापत्यं च वेदम् च क्रमात् पूर्वादिभिः मुखैः असृजत् ।।३८।।

अनुवाद— ब्रह्माजी ने अपने पूर्वादि मुखों से क्रमशः आयुर्वेद (चिकित्साशास्त्र) धनुर्वेद (शस्त्र विद्या) गान्धर्ववेद (सङ्गीत शास्त्र) और स्थापत्य वेद (शिल्प विद्या) इन उपवेदों की सृष्टि की ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

उपवेदक्रममाह -आयुर्वेदमिति । आत्मनो मुखैः । स्थापत्यं विश्वकर्मशास्त्रम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में आयुर्वेद इत्यादि चार उपवेदों की सृष्टि का क्रम बतलाया गया है । **आत्मनोमुखैः** का अर्थ हैं अपने पूर्वादि मुखों से ही ब्रह्माजी ने आयुर्वेदादि उपवेदों की क्रमशः सृष्टि की स्थापत्य विश्वकर्मा की शिल्प विद्या को कहते हैं ।।३८।।

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः । सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ।।३९।।

अन्वयः— सर्वदर्शनः ईश्वरः सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदम् ससृजे ।।३९।।

अनुवाद— सर्वज्ञ भगवान् ब्रह्मजी ने अपने सभी मुखों से इतिहास एवं पुराण नामक पाञ्चवें वेद की रचना की ।।३९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

इतिहासों और पुराणों को पाञ्चवाँ वेद कहा गया है । इन सबों की रचना ब्रह्माजी ने अपने सभी मुखों से की है । पुराणों की संख्या अठारह है और रामायण और महाभारत ये दो इतिहास प्रख्यात हैं ।।३९।।

षोडश्युक्थौ पूर्ववक्त्रात्पुरीष्यग्निष्टुतावथ । आप्तोर्यामातिरात्रौ च वाजपेयं सगोसवम् ।।४०।।

अन्वयः— पूर्ववक्त्रात् षोडश्युक्थौ, अथ पुरीष्याग्निष्टुतौ, आप्तोर्यामातिरात्रौ च, वाजपेयं सगोसवम् ।।४०।।

अनुवाद— इसी तरह ब्रह्माजी के पूर्वमुख से षोडशी तथा उक्थ, दक्षिणमुख से पुरीषी (चयन) और (अग्निष्टोम) पश्चिम मुख से आप्तोर्याम और अतिरात्र तथा वाजपेय और गोसव ये दो याग उत्तर मुख से उत्पन्न हुए ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

कर्मतन्त्रक्रममाह-षोडश्युक्थाविति । पुरीषी चयनम् । अग्निष्टुदग्निष्टोम: ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में कर्म तन्त्र अर्थात् यज्ञ विस्तार की उत्पत्ति के क्रम को बतलाया गया है । षोडशी तथा उक्थ ये दो याग ब्रह्माजी के पूर्व मुख से उत्पन्न हुए । पुरीषी चयन याग को कहते हैं । अग्निष्टुत अग्निष्टोम याग को कहते हैं ॥४०॥

विद्या दानं तप: सत्यं धर्मस्येति पदानि च । आश्रमांश्च यथासंख्यमसृजत्सह वृत्तिभि: ॥४१॥

अन्वय:— विद्या, दानम् तप: सत्यं इति धर्मस्य पदानि, यथा संख्यम् आश्रमान् च वृत्तिभि: सह असृजत ॥४१॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने अपने चार मुखों से क्रमश: विद्या, दान, तप और सत्य इन धर्म के चार चरणों की और वृत्तियों के साथ चार आश्रमों की भी रचना अपने पूर्वादि मुखों से की ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

विद्येति शौचम् । '**क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धि: परमा मता**' इति स्मृते: । दानमिति दया । '**भूताभयप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्**' इति वचनात् । एवं च '**तप: शौचं दया सत्यमिति पादा: कृते कृता:**' इति प्रथमस्कन्धोक्तेरविरोध: ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानद्विशुद्धि: परमा मता अर्थात् जीव को ईश्वर के ज्ञान से सर्वश्रेष्ठ विशुद्धि मानी गयी है, इस स्मृति वाक्य में अनुसार शौच को ही यहाँ विद्या शब्द से अभिहित किया गया है । दान शब्द से यहाँ पर दया कही गयी है । स्मृति भी कहती है **भूताभयप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोढ्शीम्** जीवों को अभय प्रदान के सोहलवें भाग के भी बराबर सभी दान मिलकर भी नहीं हो सकते हैं । इस तरह से प्रथम स्कन्ध के **तप: शौचम् दया सत्यम् इत्यादि** जो श्लोक है उससे इस श्लोक का किसी प्रकार से विरोध नहीं है ॥४१॥

सावित्रं प्राजापत्यं च ब्राह्मं चाथ बृहत्तथा । वार्ता संचयशालीनशिलोञ्छ इति वै गृहे ॥४२॥
वैखानसा बालखिल्यौदुम्बरा: फेनपा वने । न्यासे कुटीचक: पूर्वं बह्वोदो हंसनिष्क्रियौ ॥४३॥

अन्वय:— अथ सावित्रं, प्राजापत्यं, ब्राह्मं तथा बृहत्, वार्ता, संचयशालीन, शिलोञ्छ इति वै गृहे । वैखानसा, बालखिल्योदुम्बरा: फेनपा वने, पूर्वं कुटीचक: बहवोद:, हंसनिष्क्रियौ न्यासे ॥४२-४३॥

अनुवाद— ब्रह्मचारियों के चार भेद हैं । सावित्र, प्राजापत्य, ब्राह्म तथा बृहत्; गृहस्थों की भी चार वृत्तियाँ हैं— वार्ता, संचय, शालीन और शिलोञ्छ, वानप्रस्थियों की चार वृत्तियाँ हैं- वैखानस, बालखिल्य, औदुम्बर और फेनप तथा संन्यासियों की भी चार वृत्तियाँ हैं कुटीचक, बहवोद, हंस और निष्क्रिय (परमहंस) ॥४२-४३॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मचर्याद्याश्रमेष्वेकैकस्य चातुर्विध्यमाह । सावित्रं ब्रह्मचर्यं, उपनयनादारभ्य गायत्रीमधीयानस्य त्रिरात्रम् । प्राजापत्यं व्रतान्याचरत: संवत्सरम् । ब्राह्मं वेदग्रहणान्तम् । बृहन्नैष्ठिकम् । वार्ता अनिषिद्धकृष्यादिवृत्ति: । संचयो याजनादिवृत्ति: । शालीनमयाचितवृत्ति: । शिलोञ्छ: पतितकणिशकणवृत्ति: । एकवचनमार्षम् । इत्येता गृहे वृत्तय इति । यद्वा शिलोञ्छ इति द्वन्द्वैक्ये सप्तमी । एवं वृत्तिभेदे सति गृहे स्थिता भवन्तीत्यर्थ: । वने थिताश्चत्वार: । तत्र वैखानसा अकृष्टपच्यवृत्तय: । बालखिल्या नवेऽन्ने लब्धे पूर्वसंचितान्नत्यागिन: । औदुम्बरा: प्रातरुत्थाय यां दिशं प्रथमं पश्यन्ति तत आहृतै: फलादिभिर्जीवन्त: । फेनपा: स्वयं पतितै: फलादिर्भिजीवन्त: । कुटीचक: स्वाश्रमकर्मप्रधान: । बह्वोद: कर्मोपसर्जनीकृत्य ज्ञानप्रधान: । हंसो ज्ञानाभ्यासनिष्ठ:, निष्क्रिय: प्राप्ततत्त्व: । एते च सर्वे यथोत्तरं श्रेष्ठा: ॥४२-४३॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मचारी आदि चारो आश्रमों के प्रत्येक आश्रमों के चार-चार भेद इन दोनों श्लोकों में बतलाये गये हैं। १. सावित्र ब्रह्मचर्य— उपनयन के पश्चात् गायत्री का अध्ययन करने के लिए धारण किया जाने वाला तीन दिन का ब्रह्मचर्य व्रत । २. प्राजापत्य ब्रह्मचर्य— एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना, ३. ब्राह्मब्रह्मचर्य— वेदाध्ययन की समाप्ति काल पर्यन्त धारण किया जाने वाला ब्रह्मचर्य व्रत और ४. बृहत् ब्रह्मचर्य— आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का धारण ये ब्रह्मचर्य के चार भेद है ।

गार्हस्थ्य के चार वृत्ति भेद इसप्रकार हैं **१. वार्तावृत्ति**— शास्त्र विहित कृषि आदि वृत्तियों को अपनाना, **२. संचयवृत्ति**— यज्ञादि कराना । **३. शालीनवृत्ति**— अयाचित वृत्ति (बिना माँगे जो कुछ भी मिल जाय उसी से निर्वाह करना) और **४. शिलोञ्छवृत्ति**— खेत कट जान पर पृथिवी पर पड़े हुए तथा अनाज की मण्डी में गिरे हुए अन्न के दानों को बीन कर निर्वाह करना । संचयशालीन शिलोञ्छ में एक वचनान्त प्रयोग आर्ष है। ये चारो गृहस्थों की वृत्तियाँ है । अथवा संचयशाली शिलोञ्छ में द्वन्द समास में सप्तमी एक वचनान्त है। इस तरह से भिन्न-भिन्न वृत्तियों वाले गृहस्थ होते हैं ।।४२।।

वनेस्थिताः इत्यादि- वन में रहने वाले वानप्रस्थों के भी चार भेद हैं— **१. वैखानसवृत्ति**— बिना जोती बोयी भूमि से उत्पन्न पदार्थों से निर्वाह करना । **२. बालखिल्यवृत्ति**— नवीन अन्न मिलने लगने पर संचित प्राचीन अन्न का दान कर देना । **औदुम्बुरवृत्ति**— प्रातःकाल उठने पर जिस दिशा की ओर मुख हो उसी दिशा से फलादि लाकर जीवन निर्वाह करना और **४. फेनपवृत्ति**— अपने आप पककर गिरे हुए फल आदि खाकर जीवन निर्वाह करना।

संन्यासियों की वृत्तियाँ— **१.कुटीचकवृत्ति**— कुटी बनाकर एक जगह रहना और अपने आश्रम के धर्म का पूर्ण रूप से पालन करना। **२. बह्वोदवृत्ति**— कर्म को गौण मानकर ज्ञान को ही प्रधान मानना। **३. हंसवृत्ति**— ज्ञान के ही अभ्यास में निरन्तर लगे रहना और **४. निष्क्रियपरमहंसवृत्ति**— ज्ञानी जीवनमुक्त । ये सभी जो गृहस्थ आदि हैं इनमें उत्तरोत्तर वृत्ति वाले श्रेष्ठ माने गये हैं ।।४३।।

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्तथैव च । एवं व्याहृतयश्चासन्प्रणवो ह्यस्य दह्रतः ।।४४।।

अन्वयः— आन्विक्षिकी, त्रयी, वार्ता, दण्डनीति तथैव च एवं व्याहृतयः च आसन् अस्य हि दह्रतः प्रभावः ।।४४।।

अनुवाद— ब्रह्माजी के पूर्वादिमुखों से ही अन्विक्षिकी त्रयी, वार्ता दण्डनीति ये चार विद्यायें और चार व्याहृतियाँ उत्पन्न हुयीं और ब्रह्माजी के हार्दाकाश से प्रणव की उत्पत्ति हुयी ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

न्यायादीनां पूर्वादिक्रमेणोत्पत्तिमाह-आन्वीक्षिकीति । आन्वीक्षिक्याद्या मोक्षधर्मकामार्थविद्याः । भूर्भुवःस्वरिति व्यस्तास्तिस्रः। समस्ता चतुर्थी । यथाहआश्वलायनः-**एवं व्याहृतयः प्रोक्ता व्यस्ताः समस्ताः**' इति । यद्वा मह इति चतुर्थी । तथा च श्रुतिः-**भूर्भुवःसुवरिति वा एतास्तिस्त्रो व्याहृतयः । तासामु ह स्मैतां चतुर्थी माहाचमस्यः प्रवेदयते मह इति**' इति । दह्रतो हृदयाकाशात् ।।४४।।

भूर्भुवःसुवरिति वा इत्यादि अर्थात् भूः भुवः स्वः ये तीन व्याहृतियाँ हैं । उनमें चौथी व्याहृति माहाचमस्य महर्षि महः इस व्याहृति को मानते हैं । श्लोक का दह्र शब्द हृदयाकाश का बोधक है ।।४४।।

तस्योष्णिगासील्लोमभ्यो गायत्री च त्वचो विभोः । त्रिष्टुम्मांसात्स्नुतोऽनुष्टुब्जगत्यस्थ्नः प्रजापतेः।।४५।।

अन्वयः— तस्य प्रजापतेः लोमभ्यः उष्णिक् त्वचःगायत्री, मांसात् त्रिष्टुप् स्नुतः अनुष्टुप् प्रजापतेः अस्थ्नः जगती आसीत् ।।४५।।

अनुवाद— प्रजापति ब्रह्माजी के रोमों से उष्णिक् छन्द, त्वचा से गायत्री छन्द, मासं से त्रिष्टुप् छन्द, स्नायु से अनुष्टुप् छन्द तथा अस्थियों से जगती छन्द की उत्पत्ति हुयी ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

स्नुतः स्नायुतः । अनुष्टुप् स्नावान् इति श्रुतेः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

स्नुतः पद का अर्थ स्नायुएँ से है । श्रुति भी कहती है अनुष्टुप् स्नावान् अर्थात् अनुष्टुप छन्द स्नायुओं वाला है ।।४५।।

मज्ञायाः पङ्क्तिरुत्पन्ना बृहती प्राणतोऽभवत् । स्पर्शस्तस्याभवज्जीवः स्वरो देह उदाहृतः ।।४६।।

अन्वयः— मज्जयाः पंक्ति उत्पन्ना प्राणतः बृहती अभवत् । तस्य जीवः स्पर्शः अभवत् देहः स्वर उदाहृतः ।।४६।।

अनुवाद— ब्रह्माजी की मज्जा से पंक्ति छन्द और प्राणों से बृहती छन्द उत्पन्न हुआ । उनका जीव ही स्पर्श वर्ण हुआ और देह स्वर वर्ण कहलाया ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

महाकल्पे ब्रह्मा शब्दब्रह्मरूपोऽभवदित्युक्तं तदेव दर्शयन्वर्णानामुत्पत्तिमाह-स्पर्श इति सार्धेन । स्पर्शः कादिवर्गपञ्चकम् स्वरोऽकारादिः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

पहले कहा जा चुका है कि महाकल्प में ब्रह्माजी शब्दब्रह्म स्वरूप थे । उसी को बतलाते हुए वर्णों की उत्पत्ति स्पर्श इत्यादि डेढ श्लोकों से कहते हैं । 'क' से लेकर 'म' तक पांचो (कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग) वर्गों के वर्णों को स्पर्श वर्ण कहते हैं । अकार आदि को स्वरवर्ण कहते हैं ।।४६।।

ऊष्माणमिन्द्रियाण्याहुरन्तस्था बलमात्मनः । स्वराः सप्त विहारेण भवन्ति स्म प्रजापतेः ।।४७।।

अन्वयः— इन्द्रियाणि उष्माणम् आहुः आत्मनः बलम् अन्तस्थाः । प्रजापतेः विहारेण सप्त स्वराः भवन्ति स्म ।।४७।।

अनुवाद— ब्रह्माजी की इन्द्रियों को ही उष्मा वर्ण (श, ष, स, ह) कहा गया है । बल को अन्तस्थ (य र ल और व) वर्ण कहा गया है । उनकी क्रीडा से सात स्वर (निषाद, ऋषभ, गान्धार, षडज, मध्यम, धैवत और पञ्चम) उत्पन्न हुए हैं ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

ऊष्माणं शषसह चतुष्कम् । अन्तस्था यरलवाः । सप्त स्वराः षड्जादयः । विहारेण क्रीडया ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

श, ष, स और ह ये चार वर्ण उष्मा वर्ण हैं । य, र, ल और व ये चार वर्ण अन्तस्थ वर्ण हैं । षड्ज आदि सात स्वर ब्रह्माजी की क्रीडा से उत्पन्न हैं ।।४७।।

शब्दब्रह्मात्मनस्तस्य व्यक्ताव्यक्तात्मनः परः । ब्रह्मावभाति विततो नानाशक्त्युपबृंहितः ॥४८॥

अन्वयः— शब्द ब्रह्मात्मनः व्यक्ताव्यक्तात्मनः परं ब्रह्म विततः अवभाति नाना शक्त्युपबृंहितः अवभाति ॥४८॥

अनुवाद— शब्द ब्रह्म स्वरूप ब्रह्माजी हैं । वे वैखरी रूप से व्यक्त हैं और ओङ्कार रूप से अव्यक्त है । उनसे परे जो परिपूर्ण ब्रह्म हैं वे अनेक प्रकार की शक्तियों से विकसित होकर इन्द्रादि रूप से प्रतीत होते हैं ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

अतएव शब्दतनुत्वाद्ब्रह्मणः परमेश्वरो नित्यं प्रकाशत इत्याह । व्यक्ता वैखरी अव्यक्तः प्रणवस्तदात्मनस्तस्य ब्रह्मणः परः परमेश्वरोऽवभाति । कीदृशः । ब्रह्म परिपूर्णः तत्राव्यक्तात्मनो ब्रह्मरूपो विततोऽवभाति व्यक्तात्मनो नानाभक्त्युपबृंहित इन्द्रादिरूपोऽवभाति ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

वर्णों को उत्पन्न करने वाला होने के कारण ही ब्रह्माजी शब्दशरीरक है । उनको नित्य ही परमेश्वर प्रकाशित होते हैं । वैखरी रूप से वे व्यक्त हैं और तथा प्रणाव रूप से वे अव्यक्त हैं । उनसे परे जो परमेश्वर हैं, वे उनको नित्य ही प्रकाशित होते हैं । वे ब्रह्म परिपूर्ण हैं । अव्यक्त रूप से जो ब्रह्माजी का रूप है वह विस्तृत प्रतीत होता है व्यक्त रूप से ब्रह्म अनेक प्रकार की शक्तियों से समृद्ध होकर इन्द्र आदि के रूप में प्रतीत होते हैं ॥४८॥

ततोऽपरामुपादाय स सर्गाय मनो दधे । ऋषीणां भूरिवीर्याणामपि सर्गमविस्तृतम् ॥४९॥

अन्वयः— ततः अपरम् उपादाय सः सर्गाय मनोदधे भूरिवीर्याणाम् अपि ऋषीणाम् सर्गम् अविस्तृतम् ॥४९॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने पहला कामशक्त शरीर जो कुहरा बन चुका था उस को त्याग कर दूसरा शरीर धारण करके विश्व की सृष्टि की विचार किये, क्योंकि अत्यधिक शक्ति सम्पन्न मरीचि आदि ऋषियों से भी सृष्टि का विस्तार नहीं हुआ था ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

यां पूर्वं विसृष्टा सती नीहारं तमोऽभवत् । ततोऽपरामनिषिद्धकामासक्तां तनुम् । शब्दब्रह्मतनुस्तु सदाऽस्त्येव । तन्वन्तरग्रहणे कारणमाह-ऋषीणामित्यादिना ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

जो पहला शरीर था उसको ब्रह्माजी ने त्याग दिया वही कुहरा हो गया । उसके पश्चात् जो निषिद्ध कामासक्त शरीर नहीं था उसको उन्होंने ग्रहण कर लिया उनका शब्द ह्म स्वरूप शरीर तो सदा रहता ही है । दूसरे शरीर को धारण करने का कारण यह था कि अत्यन्त पराक्रम सम्पन्न भी मरीचि आदि महर्षियों से सृष्टि का विस्तार नहीं हो सका था ॥४९॥

ज्ञात्वा तद्धृदये भूयश्चिन्तयामास कौरव । अहो अद्भुतमेतन्मे व्यापृतस्यापि नित्यदा ॥५०॥
न ह्येधन्ते प्रजा नूनं दैवमत्र विघातकम् । एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ॥५१॥

अन्वयः— हे कौरव ! तद् ज्ञात्वा हृदये चिन्तयामास, व्यापृतस्य अपि मे एतद् अद्भुतम् नित्यदा प्रजाः न एधन्ते अत्र नूनं दैवं विघातकम्, तदा एवं युक्तकृतः तस्य दैवं च अवेक्षतः ॥५०-५१॥

अनुवाद— हे विदुर ! उसको जानकर ब्रह्माजी अपने हृदय में चिन्तन करने लगे कि यद्यपि मैं निरन्तर प्रयास कर रहा हूँ फिर भी प्रजाओं की वृद्धि नहीं हो रही है, लग रहा है कि इस कार्य में दैव ही बाधा कर रहा है । ब्रह्माजी इस प्रकार से दैव के विषय में विचार कर रहे थे ॥५०-५१॥

भावार्थ दीपिका

चिन्तामेवाह-अहो इति । व्यापृतस्य व्यापारं कुर्वाणस्य । युक्तकृतो यथोचितं कुर्वतः ॥५०-५१॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी विचार कर रहे थे कि मैं सृष्टि का विस्तार करने का प्रयास भी कर रहा हूँ और उसके लिए उचित कार्य भी कर रहा हूँ फिर भी सृष्टि का विस्तार नहीं हो रहा है, इसका क्या कारण हो सकता है ? लग रहा है कि मेरे इस कार्य में दैव ही बाधा डाल रहा है ॥५०-५१॥

कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते । ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥५२॥

अन्वयः— कस्य रूपम् द्वेधा अभूत् यत् कायम् अभिचक्षते ताभ्यां रूपविभागाम्यां मिथुनम् समपद्यत ॥५२॥

अनुवाद— जिस समय ब्रह्माजी इस प्रकार से विचार कर रहे थे उसी समय उनका शरीर दो भागों में विभक्त हो गया । क ब्रह्माजी का नाम है । उनके शरीर का दो भाग होने के कारण उसे काय कहते हैं । शरीर के उन दोनों विभागों से स्त्री-पुरुष का जोड़ा हो गया ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

अतएव कस्य ब्रह्मणो रूपं द्विधा भूतमित्याश्चर्यात्कायमद्याप्यभिचक्षते ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

क ब्रह्माजी का ही नाम है उनका शरीर दो भागों में बँट गया इस आश्चर्य के कारण ही शरीर को आज भी काय शब्द से अभिहित किया जाता है ॥५२॥

यस्तु तत्र पुमान्योऽभून्मनुः स्वायंभुवः स्वराट् । स्त्री याऽऽसीच्छतरूपाख्यामहिष्यस्य महात्मनः ॥५३॥

अन्वयः— तत्र यस्तु पुमान् सः स्वराट् स्वायंभुवमनुः अभूत् या स्त्री सा महात्मनः शतरूपाख्या महिषी आसीत्॥५३॥

अनुवाद— उसमें जो पुरुष था वह सार्वभौम राजा स्वायम्भुवमनु हुए और जो स्त्री थी वह उनकी महारानी शतरूपा हुयी ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

या स्त्री सा अस्य महष्यासीत् ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी के शरीर का दोनों भाग स्त्री और पुरुष हो गया था उसमें जो पुरुष था वह महाराज स्वायम्भुव मनु हुए और जो स्त्री थी वह शतरूपा नाम की उनकी महारानी हो गयी ॥५३॥

तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधांबभूविरे । स चापि शतरूपायां पञ्चापत्यान्यजीजनत् ॥५४॥

अन्वयः— तदा मिथुन धर्मेण प्रजा हि एधाम्बृभूविरे स च अपि शतरूपायां पञ्च अपत्यानि, अजीजनत् ॥५४॥

अनुवाद— उसी समय स्त्री पुरुष सम्भोग रूप मिथुन धर्म से प्रजाओं की वृद्धि हुयी । महाराज मनु ने भी शतरूपा के गर्भ से पाँच सन्तानों को उत्पन्न किया ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

एधांबभूविरे वृद्धिं प्राप्ताः । तदेवाह-स चापीति ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

एवधाम्बभूविरे पद का अर्थ है बढी हुई प्रजाओं की समृद्धि को ही **स चापि इत्यादि** उत्तरार्द्ध के द्वारा कहा गया है । उन महाराज स्वयम्भुव मनु की पाञ्च सन्तानें हुयीं ॥५४॥

तेरहवाँ अध्याय

वाराहवतार की कथा

श्रीशुक उवाच

निशम्य वाचं वदतो मुनेः पुण्यतमां नृप । भूयः प्रपच्छ कौरव्यो वासुदेवकथादृतः ॥१॥

अन्वयः— नृप ! वदतः मुनेः पुण्यतमां वाचं विशम्य वासुदेवकथाहृतः कौरव्यः भूयः पृपच्छ ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् मैत्रेय महर्षि की पवित्रतम वाणी को सुनकर भगवान् वासुदेव की कथा में आदर रखने वाले कुरूवंशी विदुरजी ने पुनः उनसे पूछा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोदशे सिसृक्षायां मनोराकस्मिकाप्लुताम् । धरामुद्धर्तुमुद्भूतात्क्रोडाद्दैत्यानुसूदनम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

तेरहवें अध्याय में स्वायम्भुव मनु की अचानक सृष्टि करने की इच्छा होने पर जल में डूबी हुयी पृथिवी का उद्धार करने के लिए उत्पन्न वराह भगवान् के द्वारा हिरण्याक्ष नामक दैत्य के वध का वर्णन है ।।१।।

विदुर उवाच

स वै स्वयंभुवः सम्राट् प्रियः पुत्रः स्वयंभुवः । प्रतिलभ्य प्रियां पत्नीं किं चकार ततो मुने ।।२।।

अन्वयः— हे मुनेः ततः स वे स्वयम्भुवः प्रियः पुत्रः सम्राट् स्वायम्भुवः प्रियां पत्नीं प्रतिलभ्य किं चकार ।।२।।

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे मुने ! उसके पश्चात् ब्रह्माजी के प्रिय पुत्र सम्राट् स्वायम्भुव मनु ने अपनी प्रिय पत्नी को प्राप्त करके क्या किया ।।२।।

भावार्थ दीपिका

स्वयंभुवः पुत्रस्तद्देहांशत्वात् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी के देह के अंश ये स्वायम्भुव मनु उत्पन्न हुए इसी लिए उनको ब्रह्माजी का पुत्र कहा गया है ।।२।।

चरितं तस्य राजर्षेरादिराजस्य सत्तम । ब्रूहि मे श्रद्दधानाय विष्वक्सेनाश्रयो ह्यसौ ।।३।।

अन्वयः— हे सत्तम तस्य आदिराजस्य राजर्षेः चरितं श्रद्धानस्य मे ब्रूहि असौ हि विष्वक्सनाश्रयः ।।३।।

अनुवाद— हे साधु शिरोमणे । आप उन आदि राज का चरित मुझे सुनाइये वे भगवान् विष्णु के शरणागत हैं, अतएव मेरी उनमें श्रद्धा है ।।३।।

भावार्थ दीपिका

विष्वक्सेनो हरिरेवाश्रयो यस्य सः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

विष्वक्सेन भगवान् विष्णु का नाम है । उनके शरणापन्न हैं । आदिराज **स्वयम्भुवमनु** । इसीलिए मेरी उनमें श्रद्धा है । अतएव आप मुझे उनका चरित सुनाइये ।।३।।

श्रुतस्य पुंसां सुचिरश्रमस्य नन्वञ्जसा सूरिभिरीडितोऽर्थः ।
यत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्दपादारविन्दं हृदयेषु येषाम् ।।४।।

अन्वयः— येषां हृदयेषु मुकन्दपादारविन्दम् यत् तदगुणानुश्रवणं पुंसां श्रुतस्य सुचिरश्रमस्य ननु अञ्जसा सूरिभिः ईडितोऽर्थः ।।४।।

अनुवाद— जिन लोगों के हृदय में भगवान् मुकुन्द के चरणारविन्द विद्यमान हैं उन भक्तजनों के गुणों का श्रवण करना ही मनुष्यों को बहुत दिनों तक किए हुए शास्त्राभ्यास का मुख्य फल है, यह विज्ञपुरुषों का कहना है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

अतस्तस्य चरितं श्रोतव्यमित्याह । सुचिरं श्रमो यस्मिंस्तस्य पुंसां श्रुतस्याञ्जसा मुख्यत्वेनायमेवार्थ ईडितः स्तुतो ननु। मुकुन्दपादारविन्दं येषां हृदयेष्वस्ति तेषां भागवतानां गुणानुश्रवणमिति यत् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

वे आदिराज चूंकि भगवद्भक्त हैं अतएव उनके चरित का श्रवण करना चाहिए; इस बात को इस श्लोक में कहा गया है । मनुष्यों द्वारा दीर्घकाल पर्यन्त शास्त्रश्रवणजन्य श्रम का यही मुख्य फल है कि जिन भक्तों के हृदय में श्रीभगवान् के चरण कमल विराजमान है उन भक्तों के गुणों का श्रवण किया जाय ।।४।।

श्रीशुक उवाच

इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं सहस्रशीर्ष्णश्चरणोपधानम् ।
प्रहृष्टरोमा भगवत्कथायां प्रणीयमानो मुनिरभ्यचष्ट ।।५।।

अन्वयः— सहस्रशीर्ष्णः चरणोपधानम् विनीतं विदुरं इति ब्रुवाणम् प्रणीयमानः प्रहृष्टरोमा मुनि अभ्यचष्ट ।।५।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— सहस्रशीर्षा श्रीहरि के भक्त तथा नम्र विदुरजी के द्वारा इस तरह से प्रेरित किए जाने पर जिनके शरीर में रोमाञ्च हो आया था वे मैत्रेय मुनि कहना प्रारम्भ किए ।।५।।

भावार्थ दीपिका

सहस्रशीर्षा श्रीकृष्णस्तच्चरणावुपधीयेते यस्मिन्, श्रीकृष्णः प्रीत्या यस्योत्सङ्गे चरणौ प्रसारयतीत्यर्थः । तमभ्यचष्ट अभ्यभाषत । मुनिर्मैत्रेयः । प्रणीयमानस्तेन प्रवर्त्यमानः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण ही सहस्रशीर्षा हैं । भगवान् श्रीकृष्ण जिनकी गोद में अपने चरणों को फैलाते थे ऐसे विदुरजी ने विनम्रता पूर्वक महर्षि मैत्रेय को प्रेरित किया । उनके द्वारा प्रेरित होकर मैत्रेय महर्षि के शरीर में रोमाञ्च हो आया और उन्होंने कहना प्रारम्भ किया ।।५।।

मैत्रेय उवाच

यदा स्वभार्यया साकं जातः स्वायंभुवो मनुः । प्राञ्जलिः प्रणतश्चेदं वेदगर्भमभाषत ।।६।।

अन्वयः— यदा स्वभार्यया साकं स्वायम्भुवः मनुः जातः तदा प्राञ्जलिः प्रणतः च वेदगर्भम् इदम् अभाषत ।।६।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— जब स्वयम्भुव मनु का अपनी पत्नी शतरूपा के साथ जन्म हुआ उस समय उन्होंने हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक ब्रह्माजी से यह कहा ।।६।।

भावार्थ दीपिका

वेदगर्भं ब्रह्माणम् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में वेदगर्भ शब्द से ब्रह्माजी को कहा गया है ।।६।।

त्वमेकः सर्वभूतानां जन्मकृद्वृत्तिदः पिता । अथापि नः प्रजानां ते शुश्रूषा केन वा भवेत् ।।७।।

अन्वयः— एकः त्वम् सर्वभूतानां जन्मकृत् वृत्तिदः पिता अथापि नः प्रजानां केन वा ते शुश्रूषा भवेत् ।।७।।

अनुवाद— यद्यपि आप ही केवल सभी जीवों को जन्म देने वाले और जीविका प्रदान करने वाले पित हैं । हम आप की सन्तान हैं फिर भी हम ऐसा कौन सा कार्य करें जिससे आपकी सेवा हो ?।।७।।

भावार्थ दीपिका

त्वमेवैकः पिता सर्वेषाम् । यतो जन्मकृद्वृत्तिदः पोषकश्च त्वमेव । अतस्तव यद्यप्यन्यापेक्षा नास्त्यथाप्यस्माकं ते शूश्रूषा केन कर्मणा भवेत्तद्विधेहीत्युत्तरेणान्वयः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

आप ही सभी जीवों के पिता हैं; क्योंकि आप सबों को जन्म और जीविका प्रदान करते हैं तथा सबों को पोषते पालते हैं । अतएव आपको यद्यपि किसी की अपेक्षा नहीं है, फिर भी हमलोगों के किन कर्मों के द्वारा आपकी सेवा होगी उसे आप बतलायें ? इस तरह से अगले श्लोक से अन्वय है ।।७।।

तद्विधेहि नमस्तुभ्यं कर्मस्वीड्यात्मशक्तिषु । यत्कृत्वेह यशो विष्वगमुत्र च भवेद्गतिः ।।८।।

अन्वयः— हे ईड्य तुभ्यं नमः आत्मशक्तिषु कर्मसु यत् कृत्वा इह विष्वक् यशः अमुत्र गतिः च भवेत् तद् विधेहि।।८।।

अनुवाद— हे पूज्यपाद आपको नमस्कार है । हमलोगों द्वारा किया जाने योग्य कौन सा ऐसा कार्य है जिसके करने से सम्पूर्ण संसार में यश फैले और परलोक में सद्गति हो ।।८।।

भावार्थ दीपिका

हे ईड्य, आत्मशक्तिष्वस्मच्छक्येषु कर्मसु मध्ये केन कर्मणा भवेत्तद्विधेहि इदं कर्तव्यमिति कथय । यत्कृत्वा यस्मिन्कृते सति । विष्वक् सर्वतः । अमुत्र परलोके ।।८।।

भाव प्रकाशिका

हे पूज्यपाद हमलोगों द्वारा किए जाने योग्य कार्यों मे से कौन सा ऐसा काम हो सकता है जिससे कि आपकी सेवा बन सके, उसे आप बतलाइये ।।८।।

ब्रह्मोवाच

प्रीतस्तुभ्यमहं तात स्वस्ति स्ताद्वां क्षितीश्वर । यन्निर्व्यलीकेन हृदा शाधि मेत्यात्मनाऽर्पितम् ।।९।।

अन्वयः— हे क्षितीश्वर ! वां स्वस्ति स्तात् तात ! तुभ्यम् अहं प्रीतः यत् निर्व्यलीकेन हृदा मे शाधि इत्यात्मनाऽर्पितम्।।९।।

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— पृथिवीपते ! आप दोनों का कल्याण हो । मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ क्योंकि तुमने निष्कपटभाव से मुझे आज्ञा प्रदान करें इस तरह से अपने आपको समर्पित कर दिया है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

वां युवाभ्यां स्वस्ति भद्रं स्तात् भूयात् । यद्यतो मा मां शाध्यनुशिक्षयेत्यात्मना स्वयमेवर्पितं निवेदितमतः प्रीतोऽस्मि।।९।।

भाव प्रकाशिका

मैं तुम दोनों पर इसलिए प्रसन्न हूँ कि तुमने निष्कपट भाव से कहा है कि आप मेरा प्रशासन करें ।।९।।

एतावत्यात्मजैर्वीर कार्या ह्यपचितिर्गुरौ । शत्तयाऽप्रमत्तैर्गृह्येत सादरं गतमत्सरैः ।।१०।।

अन्वयः— हे वीर ! आत्मजैः गुरौ एतावती अपचिती कार्या । गतमत्सरैः अप्रमत्तैः शक्त्या सादरं गृह्येत ।।१०।।

अनुवाद— वीर पुत्रों को अपने पिता की इसी प्रकार से पूजा करनी चाहिए कि दूसरों के प्रति ईर्ष्या का भाव रखे बिना अपने पिता की आज्ञा का अपनी शक्ति के अनुसार पालन करें ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

अपचितिः पूजा। गृह्येत आज्ञेति शेषः । सनकादयो न कुर्वन्ति वयं किमिति करिष्याम इत्येवंभूतो गतो मत्सरो येभ्यः।।१०।।

भाव प्रकाशिका

अपचिति पूजा को कहते हैं । ब्रह्माजी ने कहा कि पुत्रों को अपने पिता की इतनी ही सेवा करनी चाहिए कि वे किसी द्वेष से इर्ष्या किए बिना ही अपनी शक्ति के अनुसार पिता की आज्ञा का पालन करें । तुम लोगों को इस प्रकार की ईर्ष्या नहीं होनी चाहिए कि सनकादि तो आपकी सेवा नहीं करते हैं, हमलोग क्यों करें ?॥१०॥

स त्वमस्यामपत्यानि सदृशान्यात्मनो गुणैः । उत्पाद्य शास धर्मेण गां यज्ञैः पुरुषं यज ॥११॥

अन्वयः— स त्वम् अस्याम् गुणैः आत्मनः सदृशानि अपत्यानि उत्पाद्य धर्मेण गां शास, यज्ञैः पुरुषं यज ॥११॥

अनुवाद— तुम अपनी इस पत्नी से अपने ही समान गुणवान् सन्तानों को उत्पन्न करके धर्मपूर्वक पृथिवी का प्रशासन करो और यज्ञों के द्वारा परम पुरुष परमात्मा की आराधना करो ॥११॥

भावार्थ दीपिका

गां शास शाधि । पालयेत्यर्थः । पुरुषं हरिम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने महाराज मनु को तीन आदेश दिया है । १. अपनी इस शतरूपा से अपने ही समान गुणवान् सन्तानों को उत्पन्न करो । २. धर्म पूर्वक पृथिवी का प्रशासन करो और ३. यज्ञों के द्वारा श्रीहरि की आराधना करो ॥११॥

परं शुश्रूषणं मह्यं स्यात्प्रजारक्षया नृप । भगवांस्ते प्रजाभर्तुर्हृषीकेशो नु तुष्यति ॥१२॥

अन्वयः— हे नृप प्रजारक्षया मह्यं परं शुश्रूषणं स्यात् ते प्रजाभर्तुः भगवान् हृषीकेशः नु तुष्यति ॥१२॥

अनुवाद— हे राजन् ! प्रजाओं की रक्षा करने से मेरी सबसे बड़ी सेवा होगी और तुमको प्रजाओं का पालन करते देखेकर भगवान् हृषीकेश को भी प्रसन्नता होगी ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

प्रजापालकस्य ते तुष्टो भविष्यति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

प्रजापालक तुमसे श्रीहरि भी प्रसन्न होंगे और प्रजाओं का पालन करने से मेरी सबसे बड़ी सेवा तो होगी ही ॥१२॥

येषां न तुष्टो भगवान्यज्ञलिङ्गो जनार्दनः । तेषां श्रमो ह्यपार्थाय यदात्मा नादृतः स्वयम् ॥१३॥

अन्वयः— येषां यज्ञलिङ्गो भगवान् जनार्दनः न तुष्टः तेषां श्रमो हि अपार्थाय यत् स्वयम् आत्मा नादृतः ॥१३॥

अनुवाद— जिन लोगों पर यज्ञपुरुष भगवान् जनार्दन नहीं प्रसन्न होते हैं उन लोगों का सारा श्रम व्यर्थ ही होता है, क्योंकि ऐसे लोगों ने अपनी आत्मा का ही अनादर किया है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

उदासीनस्य भगवतोऽतोषे मे को दोषस्तत्राह येषामिति । यज्ञलिङ्गो यज्ञमूर्तिः । अपगतोऽर्थो यस्मात्। केवलं श्रमायैवेत्यर्थः। यद्यस्मादात्मैव स्वयं नादृतः । तस्मिन्नतुष्टे स्वार्थस्यैवासिद्धेः सर्वात्मत्वाच्च तस्य ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि भगवान् तो उदासीन है । वे यदि मुझ पर नहीं प्रसन्न होते हैं तो इसमें मेरा क्या दोष है। तो इसके उत्तर में **येषाम् इत्यादि** श्लोक कहा गया है । अर्थात् जिस व्यक्ति पर श्रीभगवान् प्रसन्न नहीं होते हैं तो फिर उसके द्वारा किया जाने वाला सारा परिश्रम व्यर्थ है; क्योंकि उनके अप्रसन्न रहने पर उसके किसी भी अर्थ की सिद्धि नहीं हो सकती है । सबों की आत्मा श्रीभगवान हैं ॥१३॥

मनुरुवाच

आदेशेऽहं भगवतो वर्तेयामीवसूदन । स्थानं त्विहानुजानीहि प्रजानां मम च प्रभो ॥१४॥

अन्वयः— हे अमीवसूदन ! अहं भगवतः आदेशे अनुवर्तेय प्रभो मम, प्रजानां च इह तु स्थानम् अनुजानीहि ॥१४॥

मनु ने कहा

अनुवाद— हे पाप विनाशक ! मैं आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए उद्यत हूँ; किन्तु पहले आप मेरे तथा मेरी प्रजा के रहने का स्थान बतलायें ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

वर्तेय वर्तिष्ये । अमीवसूदन पापनाशन । अनुजानीह्यत्र स्थातव्यमित्यनुज्ञां देहि ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

महाराज मनु ने कहा भगवन् मैं आपकी आज्ञा का पालन करना चाहता हूँ । हे पापों के विनाशक पहले आप उस स्थान को बतलायें जहाँ मैं और मेरी प्रजाएँ रहेंगी ॥१४॥

यदोकः सर्वसत्त्वानां मही मग्ना महाम्भसि । अस्या उद्धरणे यत्नो देव देव्या विधीयताम् ॥१५॥

अन्वयः— देव ! यत् सर्वसत्त्वानाम् ओकः सा मही महाम्भसि मग्ना देव ! अस्या देव्याः उद्धरणे यत्नः विधीयताम्॥१५॥

अनुवाद— हे देव जो पृथिवी सभी जीवों का निवास स्थान है, वह पृथिवी महार्णव के जल में डूबी हुयी है । पहले आप इस भूदेवी के उद्धार का प्रयास कीजिये ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

महीति चेदत आह । यदोकः स्थानं सा मही । हे देव, अस्या देव्याः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तुम और तुम्हारी प्रजायें पृथिवी पर रहें, तो ऐसा नहीं कह सकते हैं, क्योंकि पृथिवी तो महार्णव के जल में डूबी हुयी हैं; अतएव सर्वप्रथम आप भूदेवी को इस महार्णव के जल से निकालने का प्रयास करें ॥१५॥

मैत्रेय उवाच

परमेष्ठी त्वपां मध्ये तथा सन्नामवेक्ष्य गाम् । कथमेनां समुन्नेष्य इति दध्यौ धिया चिरम् ॥१६॥

अन्वयः— परमेष्ठी तु अपां मध्ये तथा सन्नां गाम् अवेक्ष्य एनां कथम् समुन्नेष्ये इति धिया चिरं दध्यौ ॥१६॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— ब्रह्माजी जल के भीतर उस तरह से डूबी हुयी पृथ्वी को देखकर बहुत देर तक इस बात का विचार करते रहे कि मैं इस पृथिवी को ऊपर कैसे लाऊँ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वं पाने कृतेऽपि पुनरकाण्ड एवोद्भूतानामपां मध्ये सन्नामवसन्नां निमग्नाम् । समुन्नेष्ये उद्धरिष्यामि ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

पहले पान कर लिए जान पर भी बिना अवासर के ही उत्पन्न इस जल समूह में डूबी हुयी इस पृथिवी को मैं कैसे ऊपर लाऊँगा । इस बात का ब्रह्माजी ने देर तक चिन्तन किया ॥१६॥

सृजतो मे क्षितिर्वार्भिः प्लाव्यमाना रसां गता । अथात्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयाजितैः ॥
यस्याहं हृदयादासं स ईशो विदधातु मे ॥१७॥

अन्वयः— मे सृजतः क्षितिः वार्भिः प्लाव्यमना रसागता अथ अत्र सर्गयाजितैः अस्माभिः किम् अनुष्ठेयम् अहं यस्य हृदयादासम् स ईशः मे विदधातु ॥१७॥

अनुवाद— जिस समय मैं सृष्टि के कार्य में लगा था उस समय पृथिवी जल में डूबने जाने के कारण रसातल में चली गयी, इस समय हमलोग सृष्टि के कार्य में नियुक्त हैं । अतएव इसके लिए हमें क्या करना चाहिए ? मेरे इस कार्य को वे ही श्रीभगवान् करें जिनके सङ्कल्प मात्र से मैं उत्पन्न हुआ था ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

चिन्तामेवाह । सृजतः सतः । वार्भिरद्भिः । रसां रसातलम् । ईश्वरेण सर्गे नियुक्तैः मेऽनुष्ठेयं स एव विदधातु संपादयतु॥१७॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी की चिन्ता का ही वर्णन किया गया है । ब्रह्माजी सोच रहे थे कि जब मैं सृष्टि के कार्य में लगा हुआ था उसी समय पृथिवी पानी में डूबकर रसातल में चली गयी । इस समय मैं परमात्मा के द्वारा सृष्टि के कार्य में लगाया जा चुका हूँ । अतएव इसके लिए जो मेरे द्वारा किया जाना हो उस कार्य को श्रीभगवान् ही पूरा कर दें ॥१७॥

इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसाऽनघ । वराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः ॥१८॥

अन्वयः— हे अनघ ! इति अभिध्यायतः नासाविवरात् सहसा अङ्गुष्ठपरिमाणकः वाराहतोकः निरगात् ॥१८॥

अनुवाद— हे निष्पाप ! विदुरजी इस तरह से ब्रह्माजी जब विचार कर रहे थे उसी समय उनकी नाक के छिद्र से अङ्गुष्ठ परिमाण वाला एक छोटा सा वाराह निकला ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

वाराहतोकः सूक्ष्मो वराहः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

वराहतोक शब्द का अर्थ है छोटा सा वराह ॥१८॥

तस्याभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत । गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत् ॥१९॥

अन्वयः— हे भारत ! तस्य अभिपश्यतः किल खस्थः क्षणेन गजमात्रः प्रववृधे तत् महत् अद्भुतम् अभूत् ॥१९॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! ब्रह्माजी के देखते ही देखते आकाश में स्थित वह वराह क्षणभर में हाथी के बराबर हो गया यह बड़े ही आश्चर्य की बात हुयी ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

खस्थ आकाशे स्थितः सन् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

वह छोटा सा वराह आकाश में ही स्थित था और ब्रह्माजी की आँखों के सामने ही क्षणभर में बढ़कर हाथी के समान बड़े आकार का हो गया ॥१९॥

मरीचिप्रमुखैर्विप्रैः कुमारैर्मनुना सह । दृष्ट्वा तत्सौकरं रूपं तर्कयामास चित्रधा ॥२०॥

अन्वयः— मरीचि प्रमुखैः विप्रैः कुमारैः मनुनना च सह तत् सौकरं रूपं दृष्ट्वा चित्रधा तर्कयामास ॥२०॥

अनुवाद— मरीचि आदि ऋषियों, सनकादिकों तथा मनु के साथ ही वराह के उस रूप को देखकर ब्रह्माजी ने अनेक प्रकार से विचार किया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

चित्रधा अनेकधा ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के उस सूकर रूप को देखकर ब्रह्माजी अनेक प्रकार के विचार प्रकट करने लगे ॥२०॥

किमेतत्सौकरव्याजं सत्त्वं दिव्यमवस्थितम् । अहो बताश्चर्यमिदं नासाया मे विनिःसृतम् ॥२१॥

अन्वयः— सौकरव्याजं एतत् किं दिव्यं सत्त्वम् अवस्थितम् ? अहो बत आश्चर्यम् इदं मे नासायाः विनिःसृतम्॥२१॥

अनुवाद— हरे यह सूकर के रूप में यहाँ कौन सा दिव्यप्राणी प्रकट हो गया है । यह वड़े ही आश्चर्य की बात है कि यह अभी-अभी मेरी नाक से निकला है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी को आश्चर्य हो रहा था कि अभी-अभी यह मेरी नाक से छोटा सा वराह निकला था और क्षणभर में यह हाथी के बराबर हो गया ॥२१॥

दृष्टोऽङ्गुष्ठशिरोमात्रः क्षणाद्गण्डशिलासमः । अपिस्विद्भगवानेष यज्ञो मे खेदयन्मनः ॥२२॥

अन्वयः— अङ्गुष्ठशिरोमात्रः दृष्टः क्षणाद् गण्डशिलासमः, अपिस्वित् एष यज्ञो भगवान् मे मनः खेदयन् वर्तते॥२२॥

अनुवाद— इसको तो हमलोग अभी-अभी अङ्गूठे के ऊपरी भाग के समान परिमाण वाले के रूप में देखे थे और क्षण भर में यह बढ़कर विशाल शिला के समान आकार वाला हो गया है । कहीं ये यज्ञपुरुष भगवान् ही हमलोगों के मन को इस तरह से मोहित तो नहीं कर रहे हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वमङ्गुष्ठाग्रप्रमाणो दृष्टः । गण्डशिला स्थूलपाषाणस्तत्समः । यज्ञो विष्णुः । निजरूपतिरोधानेन मे मनः खेदयन्॥२२॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी आदि सोच रहे थे कि पहले तो अङ्गूठे के अग्रभाग के समान परिमाण वाले दिखे और क्षणभर में बहुत बड़ी पाषाण की शिला के आकार के समान आकार वाले दिख रहे हैं । कहीं भगवान् विष्णु ही अपने रूप को तिरोहित करके हमलोगों के मन को मोहित तो नहीं कर रहे हैं ॥२२॥

इति मीमांसतस्तस्य ब्रह्मणः सह सूनुभिः । भगवान्यज्ञपुरुषो जगर्जागेन्द्रसन्निभः ॥२३॥

अन्वयः— सूनूभिः सह इति मीमांसतः तस्य ब्रह्मणः अगेन्द्रसन्निभः यज्ञपुरुषो भगवान् जगर्ज ॥२३॥

अनुवाद— जब ब्रह्माजी अपने पुत्रों के साथ इस प्रकार से विचार कर ही रहे थे कि पर्वतराज के समान आकार वाले भगवान् यज्ञपुरुष गर्जना किए ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

इति मीमांसमानस्य सतः । जगर्जागर्जत् । गिरीन्द्रतुल्यः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

जब ब्रह्माजी अपने पुत्रों के साथ उपर्युक्त प्रकार से विचार कर रहे थे उसी समय पर्वतराज के समान आकार वाले भगवान् गर्जना किए ।।२३।।

ब्रह्माणं हर्षयामास हरिस्तांश्च द्विजोत्तमान् । स्वगर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुः ।।२४।।

अन्वयः— स्व गर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुःहरिः ब्रह्माणं तान् द्विजोत्तमान् च हर्षयामास ।।२४।।

अनुवाद— दिशाओं को प्रतिध्वनित करने वाली गर्जना के द्वारा व्यापक श्रीहरि ने ब्रह्माजी तथा उन सभी विप्रों को प्रहर्षित कर दिया ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

गर्जनप्रयोजनमाह- ब्रह्माणमिति ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की गर्जना का प्रयोजन **ब्रह्माणम् इत्यादि** श्लोक के उत्तरार्द्ध के द्वारा बतलाया गया है । उस गर्जना का प्रयोजन ब्रह्माजी और उनके पुत्रों को प्रहर्षित करना था ।।२४।।

निशम्य ते घर्घरितं स्वखेदक्षयिष्णु मायामयसूकरस्य ।
जनस्तपः सत्यनिवासिनस्ते त्रिभिः पवित्रैर्मुनयोऽगृणन्स्म ।।२५।।

अन्वयः— मायामयसूकरस्य स्वखेदक्षयिष्णु ते घर्घरितं निशम्य जनस्त सत्यनिवासिनः ते मुनयः त्रिभिः पवित्रैः अगृणन्स्म ।।२५।।

अनुवाद— मायामय वराह भगवान् की अपने खेद को दूर करने वाली घुर्घराहट को सुनकर जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक निवासी मुनियों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के पवित्र मन्त्रों से श्रीभगवान् की स्तुति की ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

घर्घरितं तज्जात्यनुकरणध्वनिम् । अनिश्चयेन यः स्वखेदस्तस्य क्षयिष्णु क्षपयिष्णु नाशकम् । ते इति पुनरुक्तिः प्रसिद्धिख्यापनार्था । त्रिभिः पवित्रैर्ऋग्यजुःसाममन्त्रैरगृणन्नस्तुवन् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

सूकर जाति का अनुकरण करने वाली ध्वनि निश्चय नहीं कर पाने के कारण जो खेद था उसको विनष्ट करने वाली उस ध्वनि को सुनकर जनलोक, तपोलोक एव सत्यलोक में रहने वाले जो मुनिजन थे वे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के पवित्र मन्त्रों से श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ।।२५।।

तेषां सतां वेदवितानमूर्तिर्ब्रह्मावधार्यात्मगुणानुवादम् ।
विनद्य भूयो विबुधोदयाय गजेन्द्रलीलो जलमाविवेश ।।२६।।

अन्वयः— तेषां सतां वेदवितानमूर्तिः आत्मगुणानुवादम् ब्रह्म अवधार्य विबुधोदयाय भूयः विनद्य गजेन्द्रलीलः जलम् अविवेश ।।२६।।

अनुवाद— उन मुनीश्वरों द्वारा की जाने वाली स्तुति को अपना गुणानुवाद रूप वेद मानकर वेदों में वर्णित देवताओं का कल्याण करने के लिए श्रीभगवान् एक बार फिर गरजकर गजेन्द्र के समान लीला करते हुए जल के भीतर प्रवेश कर गये ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

वेदैर्वितन्यते स्तूयत मूर्तिर्यस्य सः । अत एवात्मनो गुणाननुवदति तथा तत्तेषां ब्रह्म उच्चारितं वेदमवधार्य ज्ञात्वा ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

वेद श्रीभगवान् के दिव्य मङ्गल विग्रह की स्तुति करते हैं । वे वेद जिस तरह से श्रीभगवान् के गुणों का जैसा वर्णन करते हैं वैसा ही उन मुनियों के द्वारा उच्चरित वेद का निश्चय करके भगवान् ने देवताओं का कल्याण करने के लिए पुनः एक बार गर्जना किया ओर गजेन्द्र के समान लीला करते हुए वे जल में प्रवेश कर गये ।।२६।।

उत्क्षिप्तवालः खचरः कठोरः सटा विधुन्वन्खररोमशत्वक् ।
खुराहताभ्रः सितदंष्ट्र ईक्षाज्योतिर्बभासे भगवान्महीध्रः ।।२७।।

अन्वयः— उत्क्षिप्तबालः, खचरः कठोरः सटा विधून्वन् खररोमशत्वक्, खराहताभ्रः सितदंष्ट्रः ईक्षा ज्योतिः महीध्र भगवान् बभासे ।।२७।।

अनुवाद— सूकर रूपधारी भगवान् अपनी पूंछ उठाकर आकाश में उछले, उनका शरीर कठोर था, वे अपने कन्धे के आयालों को फड़फड़ा रहे थे, त्वचा पर कड़े-कड़े बाल थे तथा जो अपने खुरों से मेघों को तितर-वितर कर रहे थे, उनके दाँत सफेद थे तथा उनकी आँखे चमक रही थीं इस तरह से पृथिवी का उद्धार करने वाले भगवान् सुशोभित हुए ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

कथंभूतः सन्नाविवेशेत्यपेक्षायामाह द्वाभ्याम् । उच्चैः क्षिप्तो बालः पुच्छं येन । खचर आकाशचारी । कठोरः कठिनः। सटाः स्कन्धबालान् । खराणि तीक्ष्णानि रोमाणि यस्याः सा त्वग्यस्य । खुरैराहतान्यभ्राणि येन । सितदंष्ट्रोऽतिशुक्लदंष्ट्रः । ईक्षा निरीक्षणमेव ज्योतिरालोको यस्य । तदा प्रकाशान्तराभावात् । बभासेऽशोभत । महीध्रः पृथिव्या उद्धर्ता ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

किस प्रकार का अपना रूप बनाकर भगवान् जल में प्रवेश किए इस प्रकार की आकांक्षा होने पर उसका वर्णन महर्षि मैत्रेय ने दो श्लोकों में किया है । सर्वप्रथम वे अपनी पूंछ उठाकर आकाश में उछले वे अपनी गर्दन के बालों को फड़-फड़ाकर अपने खुरों के आघात से बादलों को तितर वितर करने लगे । उनका शरीर कठोर था । उनकी त्वचा पर कड़े-कड़े बाल थे, उनके दाँत श्वेत थे और आँखों से तेज निकल रहा था वही प्रकाश का काम करता था, क्योंकि उस समय दूसरा कोई प्रकाश था ही नहीं, इस तरह से वराह भगवान् सुशोभित हो रहे थें ।।२७।।

घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन्क्रोडापदेशः स्वयमध्वराङ्गः ।
करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्यामुद्वीक्ष्य विप्रान्गृणतोऽविशत्कम् ।।२८।।

अन्वयः— एवम् अध्वराङ्गः क्रोडापदेशः घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन् कराल दंष्ट्र अपि अकारालदृग्भ्यां गृणत विप्रान् उद्वीक्ष्य कम् आविवेश ।।२८।।

अनुवाद— भगवान् स्वयम् यज्ञ पुरुष होने पर भी सूकर का रूप बनाये रहने के कारण वे अपनी नाक से सूंधकर पृथिवी का पता लगा रहे थे । उनकी दाढें कठोर थीं अतएव देखने में भयङ्कर लगते थे फिर भी वे अपनी सौम्य दृष्टि से स्तुति करने वाले मुनियों को देखकर जल में प्रवेश किए ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

क्रोडापदेशो वराहच्छद्मा । अतः स्वयमध्वराङ्गोऽपि पशुरिव घ्राणेन विजिघ्रन् । गृणतः स्तोतृन्विप्रानुद्वीक्ष्योर्ध्वं वीक्ष्य कं जलमाविशत् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

वराह का रूप बनाये रखने के कारण भगवान् यज्ञपुरुष होने पर भी पशु के समान नाक से सूंघकर वे पृथिवी का पता लगा रहे थे। कठोर दाढों के कारण देखने में भयङ्कर लगने पर भी वे स्तुति करने वाले मुनियों को अत्यन्त सौम्य दृष्टि से देखकर जल में प्रवेश किए ॥२८॥

स वज्रकूटाङ्गनिपातवेगविशीर्णकुक्षिः स्तनयन्नुदन्वान् ।
उत्सृष्टदीर्घोर्मिभुजैरिवार्तश्चुक्रोश यज्ञेश्वर पाहि मेति ॥२९॥

अन्वयः— वज्रकूटाङ्गनिपातवेगःसः उदन्वान् विशीर्णकुक्षिः स्तनयन् उत्सृष्टदीर्घोर्मिभुजैः इव आर्तः सन् चुक्रोश यज्ञेश्वर ! मा पाहि इति ॥२९॥

अनुवाद— वज्र समूह के समान कठोर अङ्ग वाले श्रीभगवान् के गिरने के वेग के कारण समुद्र का पेट मानो फट गया गरजता हुआ वह अपनी ऊँची-ऊँची तरङ्ग रूपी भुजाओं को उठाकर चिल्ला पड़ा हे यज्ञेश्वर आप मेरी रक्षा करें ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तदानींतनसमुद्रध्वनिमुत्प्रेक्षते । सह उदन्वान्समुद्र आर्त इव स्तनयन् शब्दं कुर्वन् भो यज्ञेश्वर, मा मां पाहि माम् अव इत्येवं चुक्रोश । आर्तसादृश्यमाह ।। उत्सृष्टाः प्रसारिता दीर्घा ऊर्मय एव भुजास्तैर्विशिष्टः । आर्तत्वे हेतुः-वज्रकूटो वज्रमयः पर्वतस्तद्वदङ्गं यद्भगवततस्तस्य निपातवेगेन विशीर्णा कुक्षिर्यस्य ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

समुद्र के जल में प्रवेश करते समय समुद्र में जो ध्वनि हुई उसकी उत्प्रेक्षा करते हुए महर्षि मैत्रेय कहते हैं जिस समय वज्रसमूह के समान कठोर अङ्गों वाले श्रीभगवान् उस महार्णव के जल में कूदे उस समय समुद्र का पेट मानो फट गया। उस समय बड़ी-बड़ी लहरें समुद्र में उठने लगीं। वे ही जैसे समुद्र की भुजाएँ हों। उन तरङ्ग रूपी हाथों को ऊपर उठाकर जैसे समुद्र चिल्ला रहा हो कि हे यज्ञेश्वर आप मेरी रक्षा करें ॥२९॥

खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाप उत्पारपारं त्रिपरू रसायाम् ।
ददर्श गां तत्र सुषुप्सुरग्रे यां जीवधानीं स्वयमभ्यधत्त ॥३०॥

अन्वयः— क्षुरप्रैः खुरैः तदा आपः दारयन् त्रिपरू उत्पारपारं रसायां गां ददर्श तत्र सुषुप्सुः अग्रे यां जीवधानीम् स्वयमभ्यधत्त ॥३०॥

अनुवाद— उस समय बाण के समान तीक्ष्ण खुरों से जल को चिरते हुए यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् उस अपार जल राशि के उस पार पहुँच गये और रसातल में विद्यमान जीवों के आश्रयभूत पृथिवी को देखे, जिसको कल्प के अन्त में शयन करने के इच्छुक श्रीभगवान् अपने भीतर लीन कर लिए थे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तदा रसायां रसातले गां पृथ्वी ददर्श । कः । त्रिपरुः त्रीणि परूंषि सवनात्मकानि पर्वाणि यस्य । यज्ञमूर्तिरित्यर्थः । किं कुर्वन् । क्षुरप्रा आयताग्रगाः शरास्तत्सदृशैः खुरैरपो दरयन् । कथम् । उत्पारपारं उत्पाराणां पारशून्यानामप्यपां पारमवसानं यथा भवति तथा विदारयन् । कथंभूतः । अग्रे प्रलयसमये तत्र तास्वप्सु सुषुप्सुः शिशयिषुः सन् जीवा धीयन्ते यस्यां सर्वजीवाधारभूतां यां स्वयमभ्यधत्त आभिमुख्येन दधार । जठरे धृतवानित्यर्थः । अनेन तदुद्धररणेऽनायासं द्योतयति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

उस समय यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् जिनके अग्रभाग विस्तृत हों ऐसे क्षुरप्र बाणों के समान खुरों के द्वारा उस अपार जल राशि को चीरते हुए उसके पार पहुँच गये और वहाँ उन्होंने रसातल में विद्यमान पृथिवी को देखा। प्रलय काल की बेला में सोने के लिए उद्यत श्रीभगवान् सभी जीवों के आश्रय भूत पृथिवी को उदरस्थ कर लिए थे। भगवान् को **त्रिपरू** कहा गया है। उसका विग्रह है त्रीणि परूंषि अस्मिन्। अर्थात् जिसमें तीन परु अर्थात् सवन होते हों उसको त्रिपरू कहेंगे। यज्ञ में तीन सवन होते हैं। श्रीभगवान् यज्ञपुरुष हैं, अतएव उनको त्रिपरू कहा गया है। **उत्पारपारम्** का विग्रह है **उत्पाराणां पारशून्यानां पारम् उत्पारपारम्** अर्थात् अपार। इस श्लोक में यह बतलाया गया है कि पृथिवी का उद्धार करने में श्रीभगवान् को कोई प्रयास नहीं करना है। क्योंकि उस पृथिवी को भगवान् प्रलयकाल में जठरस्थ कर लिए थे ॥३०॥

स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां स उत्थितः संरुरुचे रसायाः।
तत्रापि दैत्यं गदयाऽऽपतन्तं सुनाभसंदीपिततीव्रमन्युः ॥३१॥
जघान रुन्धानमसह्यविक्रमं सलीलयेभं मृगराडिवाम्भसि।
तद्रक्तपङ्काङ्कितगण्डतुण्डो यथा गजेन्द्रो जगतीं विभिन्दन् ॥३२॥

अन्वयः— निमग्नां महीं स्वदंष्ट्रया उदधृत्य स उत्थितः रसाया संरुरुचे तत्रापि गदया आपतन्तं दैत्यं सुनाभसंदीपिततीव्र मन्युः असह्यविक्रमं रुन्धानं स लीलया इभं मृगराडिव अम्भसि जघान। तद्रक्त पंङ्कांकितगण्डतुण्डः जगतीं विभिन्दन् गजेन्द्रः यथा संकरूचे ॥३१-३२॥

अनुवाद— जल में डूबी हुयी पृथिवी को अपने दाँतों पर उठाकर वे रसातल से ऊपर आये। उस समय भी अपनी गदा लेकर पीछा करने वाले तथा असह्य पराक्रमी हिरण्याक्ष जो प्रहार कर रहा था उसके कारण उनका क्रोध चक्र के समान तीव्र हो गया और उसको वे जल में ही लीला पूर्वक वैसे ही मार डाले जैसे कोई सिंह किसी हाथी को लीला पूर्वक मार डालता है। उस समय उसके रक्त से सने हुए उनकी कनपटी और थुथुन उसी तरह से सुशोभित हो रहे थे जैसे कोई हाथी लाल मिट्टी वाली भूमि को खोदकर आया हो ॥३१-३२॥

भावार्थ दीपिका

रसायाः सकाशादुत्थितः संरुरुचे सम्यगशोभत। तत्राप्यम्भसि गदामुद्यम्यागच्छन्तं रुन्धानं प्रतिघ्नन्तं न सह्यः सहनानर्हो विक्रमो यस्य तं दैत्यं सुनाभं चक्रं तद्वत्संदीपितस्तीव्रो मन्युर्यस्य। यद्वा मयि विद्यमाने किमिति परिभवं सहस इति सुनाभेन संदीपितस्तीव्रमन्युः स भगवान्सिंहो जगर्जमिव लीलया जघानेत्युत्तरेणान्वयः। गजेन्द्रो जगतीं क्रीडया विदारयन् गैरिकया यथा अरुणगण्डतुण्डो भवति तथा तस्य रक्तमेव पङ्कस्तेनाङ्कितौ गण्डौ तुण्डं च यस्य सः ॥३१-३२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने जल में डूबी हुयी पृथिवी को अपने दाँतों पर उठा लिया और उसको लेकर वे रसातल से ऊपर निकले। उस समय पृथिवी को अपने दाँतों पर उठाये रखने के कारण श्रीभगवान् की अत्यधिक शोभा हो रही थी। वहाँ भी हिरण्याक्ष अपनी गदा लेकर उनका पीछा किया उसका पराक्रम असह्य था और वह श्रीभगवान् पर गदा से प्रहार कर रहा था। उसके कारण श्रीभगवान् का क्रोध चक्र के समान तीक्ष्ण हो गया। **सुनाभसंदीपित तीव्रमन्युः** यह भी अर्थ हो सकता है कि चक्र श्रीभगवान् के क्रोध को यह कहकर अत्यधिक बढ़ा दिया कि मेरे रहते हुए आप इतना परिभव क्यों सह रहे हैं? भगवान् बड़ी आसानी से उसको उसी तरह मार डाले जैसे कोई सिंह हाथी को मार डालता है। हिरण्याक्ष के खून से वराह भगवान् की कनपटी और थुथुन उसी तरह लाल हो गया था जिस तरह कोई हाथी गैरिक मिट्टी को लीलापूर्वक खोदकर आया हो ॥३१-३२॥

तमालनीलं सितदन्तकोट्या क्ष्मामुत्क्षिपन्तं गजलीलयाऽङ्ग ।
प्रज्ञाय बद्धाञ्जलयोऽनुवाकैर्विरिञ्चिमुख्या उपतस्थुरीशम् ॥३३॥

अन्वयः— अङ्ग तमालनीलम् सितदन्तकोट्या गजलीलयाक्ष्माम् उत्क्षिपन्तम् प्रज्ञाय बद्धञ्जलयः विरिञ्चिमुख्याः अनुवाकैः ईशम् उपतस्थुः ॥३३॥

अनुवाद— तमाल पत्र के समान श्याम वर्ण वाले, जिस तरह कोई हाथी अपने दाँतों पर तमाल पुष्प को धारण किए हो उस तरह से अपने श्वेत दाँतों पर पृथिवी को धारण किए हुए जल से बाहर निकले वराह भगवान् को जानकर ब्रह्मा आदि जितने भी ऋषिगण थे वे हाथ जोड़कर वैदिक अनुवाकों के समान वाक्यों के द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

प्रज्ञाय आलक्ष्य । अनुवाको वैदिकं सूक्तं तत्सदृशैर्वाक्यैस्तुष्टुवुः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् पृथिवी का उद्धार कर रहे हैं इस बात को जानकर ब्रह्मा आदि जितने भी ऋषिगण वहाँपर विद्यमान थे वे हाथ जोड़कर श्रीभगवान् की स्तुति वैदिक सूक्तों के समान वाक्यों से करने लगे ॥३३॥

ऋषय ऊचुः

जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ।
यद्रोमगर्तेषु निलील्युरध्वरास्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥३४॥

अन्वयः— हे यज्ञभावन, अजित ! जितं जितम्, स्वां त्रयी तनुं परिधुन्वते नमः, यद्रोमगर्तेषु अध्वराः निलिल्युः तस्मै कारण सूकराय ते नमः ॥३४॥

ऋषियों ने कहा

अनुवाद— हे यज्ञपते अजित भगवन् आपकी जय हो , जय हो, अपने त्रयीरूपी शरीर को फड़फड़ाने वाले आपको नमस्कार है । आपके रोमकूपों में सभी यज्ञ लीन हो गये ऐसे सम्पूर्ण जगत् के कारण स्वरूप सूकर रूप धारण करने वाले आपको नमस्कार हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

भो अजित, ते त्वया जितं जितमिति संभ्रमे वीप्सा । यज्ञैर्भाव्यते आक्रियत इति तथा । त्रयीं वेदमयीम् । निलिल्युर्लीनप्रायाः। कारणं पृथिाव्युद्धरणं तेन सूकराय ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

हे अजित आपकी जय हो ! जय हो ! यहाँ पर संभ्रम के अर्थ में वीप्सा है । हे यज्ञों के द्वारा अभिव्यक्त होने वाले भगवन् आप अपने वेदमय शरीर को फड़फड़ा रहे हैं । आपके रोमकूपों में ही सभी यज्ञ लीन हो गये। आप पृथिवी का उद्धार करने के ही लिए सूकर शरीर धारण किए हैं ऐसे आपको नमस्कार हैं ॥३४॥

रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ।
छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हिरोमस्वाज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥३५॥

अन्वयः— हे देव ! तव एतत् यत् अध्वरात्मकम् रूपं तत् दुष्कृतात्मनां ननु दुर्दर्शनं, यस्य ते त्वचि छन्दांसि रोमसु बर्हिः दृशि आज्यं त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥३५॥

अनुवाद— हे देव ! आपका यह जो यज्ञात्मक रूप है, इसका दर्शन प्राणियों को होना कठिन है । आपके त्वचा में छन्दों का, रोमों पंक्तियों में कुश, नत्रों में घृत तथा चरणों में होता, उध्वर्यु, उद्गता और ब्रह्मा इन चारो ऋत्विजों के कर्म विद्यमान हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञात्मतां प्रपञ्चयन्त· स्तुवन्ति-रूपमित्यादिचतुर्भिः । छन्दांसि गायत्र्यादीनि । यज्ञाङ्गभृतच्छन्दआद्युनवादेन भगवदवयवता विधीयते । बर्हिःशब्दे दीर्घाभाव आर्षः । दृशि चक्षुषि । चातुर्होत्रं होत्रादिकर्मचतुष्टयम् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

ऋषिगण भगवान के यज्ञात्मक रूप का विस्तार करते हुए चार श्लोकों से उनकी स्तुति करते हैं वे कहते हैं कि आपकी त्वचा में गायत्री आदि छन्दों का निवास है । यज्ञ के अङ्गभूत छन्द आदि का अनुवाद करके उनको श्रीभगवान् की अङ्गता का विधान किया गया है । बर्हिशब्द में आर्ष प्रयोग होने के कारण दीर्घ नहीं किया गया है । आपके नेत्रों में ज्योति का निवास और चरणों में चातुर्होत्र का निवास बतलाया गया है । होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा इन चारो प्रकार के ऋत्विजों के कर्म को चातुर्होत्र कहते हैं ॥३५॥

स्रुक् तुण्ड आसीत्स्रुव ईश नासयोरिडोदरे चमसाः कर्णरन्ध्रे ।
प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥३६॥

अन्वयः— हे ईश ! तुण्डे स्रुक् आसीत् नासयोः स्रुवः उदरे इडा, कर्णरन्ध्रे, चमसाः, आस्ये प्राशित्रम्, ते ग्रसने ग्रहाः, हे भगवन् यत् ते चर्वणभूतम् अग्निहोत्रम् ॥३६॥

अनुवाद— हे परमात्मन् आपके तुण्ड (थुथुन) में स्रुक् है, नाकों में स्रुवा है, उदर (पेट) में इडा (यज्ञीय भक्षण पात्र, कानों के छिद्र में चमस है) मुख में प्राशित्र (ब्रह्मभाग पात्र) है, कण्ठ के छिद्र में ग्रह (सोमपात्र) हैं। हे भगवन् आपका जो चबाना है वही अग्निहोत्र है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

स्रुक् जुहूस्तुण्डे मुखाग्रे । स्रुवो नासिकयोः । इडा भक्षणपात्री । चमसा ग्रहाश्च सोमपात्राणि । प्राशित्रं ब्रह्मभागपात्रम्। ग्रस्यतेऽनेनेति ग्रसनं मुखान्तर्वर्तिच्छिद्रम् । चर्वणं भक्षणम् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

ऋषियों ने कहा हे भगवन् आपके मुख के अग्रभाग में स्रुक है, नाकों में स्रुवा है, उदर में इडा (भक्षणपात्री) है, कानों के छिद्रों में चमसों का निवास है, मुख में प्राशित्र ब्रह्मभाग पात्र है । **ग्रसन** शब्द से **ग्रस्यते अनेन** इस व्युत्पत्ति के अनुसार कण्ठछिद्र को कहा गया है । चर्वण शब्द खाने का बोधक है ॥३६॥

दीक्षाऽनुजन्मोपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ।
जिह्वा प्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते ॥३७॥

अन्वयः— अनुजन्म दीक्षा, शिरोधरम् उपसदः, प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः, जिह्वा प्रवर्ग्यः, तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यावसथ्यं ते असवः चितयः ॥३७॥

अनुवाद— हे यज्ञ स्वरूप भगवन् बार-बार आपका अवतार ग्रहण करना ही आपकी दीक्षणीय इष्टि है, आपकी गरदन ही उपसद (तीन इष्टियाँ हैं), आपके दोनों दाढें प्रायणीय (दीक्षा के बाद की इष्टि) है और उदयनीय (यज्ञ की समाप्ति की इष्टि) हैं, जिह्वा ही प्रवर्ग्य प्रत्येक उपसद के पहले किया जाने वाला महावीर नामक कर्म है । आपका शिर सभ्य (होम रहित अग्नि) और अवसथ्य (औपासनाग्नि) हैं आपके प्राण ही चिति (इष्टिका चयन) है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

दीक्षा दीक्षणीयेष्टिः । अनुजन्म बारंबारमभिव्यक्तिः । उपसदस्तिस्त्रइष्टयः । शिरोधरं ग्रीवा । प्रायणीया दीक्षाऽनन्तरेष्टिः, उदयनीया समाप्तीष्टिः, ते एव दंष्ट्रे यस्य । प्रवर्ग्यो महावीरः प्रत्युपसदं पूर्वं क्रियते । सभ्यो होमरहितोऽग्निः आवसथ्यमौपासनाग्निः तयोर्द्वन्द्वैक्यम् । तत्तव क्रतुरूपस्य शीर्ष के शिरः । चितय इष्टिकाचयनानि पञ्चासवः प्राणाः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

दीक्षणीय इष्टि को ही दीक्षा कहते हैं । आपका बार-बार अवतार ग्रहण करना ही दीक्षा है । उपसद शब्द से तीन इष्टियाँ कहीं जाती हैं । गरदन को शिरोधर कहा गया है । आपके दोनों दाँत ही प्रायणीय (दीक्षा के बाद की इष्टि) और उदयनीय (यज्ञ की समाप्ति की इष्टि) हैं । आपकी जिह्वा ही प्रवर्ग्य (प्रत्येक उपसद से पूर्व किया जाने वाला महावीर कर्म) हैं । आपका शिर ही सभ्य (होम रहित अग्नि) है और अवसथ्य (औपासनाग्नि) है । आप स्वयं यज्ञस्वरूप हैं आपके पाँचो प्राण ही (इष्टिकाचयन) हैं ।।३७।।

सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ।
सत्राणि सर्वाणि शरीरसन्धिस्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ।।३८।।

अन्वयः— रेतः तु सोमः,अवस्थितिः सवनानि, हे देव तव धातवः संस्थाविभेदाः, शरीरसन्धिः सर्वाणि सत्राणि, त्वं सर्वयज्ञः क्रतुः, बन्धनः इष्टिः ।।३८।।

अनुवाद— हे भगवन् ! आपका वीर्य ही सोम है, आपका बैठना ही प्रातः सवन इत्यादि तीनों सवन हैं, आपकी सातो धातुएँ ही अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम ये सात संस्थाएँ हैं । आपके शरीर की सन्धियाँ ही सम्पूर्ण सत्र हैं । इस तरह आप सम्पूर्ण यज्ञ (सोम रहित याग और क्रतु) (सोम सहित याग) स्वरूप हैं आपके शरीर अंगों को मिलाये रखने वाली मांसपेशियाँ ही इष्टियाँ हैं ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

प्रातःसवनादीन्यवस्थितिरासनं बाल्याद्यवस्था वा । अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोडशी वाजपेयोऽतिरात्र आप्तोर्याम इति सप्तसंस्थादिभेदास्त्वङ्मासादि सप्तधातवः । सत्राणि द्वादशाहादीनि बहुयागसङ्घातरूपाणि । असोमा यज्ञाः, ससोमाः क्रतवः, तद्रूपस्त्वम् । इष्टिर्यजनमनुष्ठानं तदेव बन्धनं यस्य सः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

ऋषियों ने कहा भगवन् आपका बैठना अथवा आपकी बल्यावस्था इत्यादि अवस्थाएँ ही प्रातः सवन इत्यादि तीन सवन हैं । आपके त्वक् मांस, आदि सात धातुएँ ही अग्निवेश, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आतोर्याम ये सात संस्थाएँ हैं । आपके शरीर की सन्धियाँ ही द्वादशाह आदि अनेक यज्ञ समूह हैं। सोम रहित याग यज्ञ कहलाता है और सोम सहित याग क्रतु कहलाता है । ये सब आपके रूप हैं । और आपके अङ्गों को बाँधे रखने वाली मांसपेशियाँ इष्टि हैं । जो अनुष्ठान स्वरूप होती हैं ।।३८।।

नामो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवताद्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ।
वैराग्यभक्त्यात्मजयानुभावितज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ।।३९।।

अन्वयः— अखिल मन्त्र देवता द्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ते नमो नमः । वैराग्य भक्त्यात्मजयानु भावितज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ।।३९।।

अनुवाद— सम्पूर्ण मन्त्र देवता, द्रव्य, यज्ञ और कर्म आपके स्वरूप हैं । ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है । वैराग्य, भक्ति तथा मन की एकाग्रता से जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है वह ज्ञान आपका स्वरूप है । आप सबों के विद्यागुरु हैं आपको बारम्बार नमस्कार हैं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

पूर्वोक्तमेव सपरिकरं कीर्तयन्तः प्रणमन्ति नमो नम इति । अखिलमन्त्रादिरूपाय । क्रियात्मने सामान्यव्यापाररूपाय। किंच वैराग्ययुक्तकर्मसाध्या सत्त्व शुद्धिस्ततो भक्तिस्तत आत्मजयश्चित्तस्थैर्यं तेनानुभावितं साक्षात्कृतं यज्ज्ञानं तस्मै । एवं भूतज्ञानप्रदाय गुरवे च ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

पूर्वोक्त अर्थ का ही परिकर के साथ वर्णन करते हुए ऋषिगण श्रीभगवान् को प्रणाम करते हैं । श्रीभगवान् सम्पूर्ण मन्त्रादि रूप हैं तथा वे ही सम्पूर्ण व्यापार स्वरूप हैं । साथ ही वैराग्य पूर्वक किए जाने वाले कर्मों के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि होती है उसके कारण भक्ति उत्पन्न होती है, भक्ति के द्वारा उपासक का चित्त स्थिर हो जाता है । उसके द्वारा जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है, वह ज्ञान स्वरूप हैं श्रीभगवान् ऐसे आपको बार-बार नमस्कार है । इस प्रकार के ज्ञान को प्रदान करने वाले सबों के विद्यागुरु आप ही हैं, ऐसे आपको नमस्कार है ।।३९।।

दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता विराजते भूधर भूः सभूधरा ।
यथा वनान्निःसरतो दता धृता मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ।।४०।।

अन्वयः— हे भूधर भगवन् त्वया दंष्ट्राग्रकोटया धृता सभूधरा भूः वनात् निःसरतः मत्त गजेन्द्रस्य दता सपत्रापद्मिनी धृता यथा विराजते ।।४०।।

अनुवाद— हे पृथिवी को धारण करने वाले भगवन् आपके द्वारा अपने दाँत के अग्रभाग में धारण की गयी पर्वतों से युक्त पृथिवी उसी तरह (सुशोभित) हो रही है जैसे जल से बाहर निकलने वाला कोई मदमत्त गजेन्द्र अपने दाँतों पर पत्तों से युक्त किसी कमलिनी को धारण कर रखा हों ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

हे भूधर ! सभूधरा सपर्वता । वनादुदकान्निर्गच्छतो गजेन्द्रस्य । दत्ता दन्तेन ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ऋषियों ने श्रीभगवान् को भूधर पद से संबोधित करते हुए कहा है कि आपके अपने दाँतों के ऊपर पर्वतों से युक्त धारण की गयी पृथिवी उसी तरह से सुशोभित हो रही है जिस तरह से जल से निकलने वाला मदमत्त गजेन्द्र अपने दाँतों के ऊपर पत्तों से युक्त कमलिनी को धारण कर रखा हो ।।४०।।

त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमण्डलेनाथ दता धृतेन ते ।
चकास्ति श्रृङ्गोढघनेन भूयसा कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ।।४१।।

अन्वयः— अथ दत्ता धृतेन भूमण्डलेन ते इदं त्रयीमयं सौकरं रूपं भूयसा श्रृङ्गोढघनेन कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः चकास्ति ।।४१।।

अनुवाद— आपके दाँतों के ऊपर रखे हुए भूण्डल के साथ आपका यह वेदमय सूकर रूप इस तरह से सुशोभित हो रहा है जिस तरह शिखरों पर बहुत अधिक मेघसमूह से कुलाचल पर्वत की शोभा होती है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

त्वया धृता भूर्विराजत इत्युक्तम्, इदानीं भूमण्डलेन त्वद्रूपं विराजत इत्याहुः-त्रयीति । अथेत्यर्थान्तरे । ते इदं रूपं दन्तेन धृतं यद्भूमण्डलं तेन चकास्ति शोभते । श्रृङ्गेणोढो घृतो यो घनस्तेन । भूयसाऽतिमहता विभ्रमो विलासः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि आपके द्वारा धारण की गयी पृथिवी सुशोभित हो रही है । इस श्लोक में यह कहा जा रहा है कि भूमण्डल के द्वारा आपका श्रीविग्रह सुशोभित हो रहा है । इस श्लोक में श्रीभगवान् के दिव्य मङ्गल विग्रह के सुशोभित होने के अर्थ में अथ शब्द का प्रयोग किया गया है । आप अपने दाँतों के ऊपर भूमण्डल धारण कर रखे हैं, उससे आपका यह यज्ञवाराह रूप अत्यधिक सुशोभित हो रहा है । मेघमाला से युक्त शिखर वाले कुलाचल पर्वत की शोभा को बहुत अधिक धारण करता है आपका यह रूप ॥४१॥

संस्थाापयैनां जगतां सतस्थुषां लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ।
विधेम चास्यै नमसा सह त्वया यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥४२॥

अन्वयः— लोकाय ते पत्नीम् सतस्थुषां जगतां मातरम् संस्थापय यतः पिता असि । त्वया सह अस्यै नमसा विधेम यस्यां अरणौ अग्निम् इव स्वतेजः अधाः ॥४२॥

अनुवाद— हे नाथ ! चराचर जीवों के सुख पूर्वक रहने के लिए आप अपनी पत्नी तथा जगत् की माता पृथ्वी को आप जल पर स्थापित करें । आप जगत् के पिता हैं । अरणि में विद्यमान अग्नि के समान इसमें आपने धारण शक्ति रूपी तेज का आधान कर दिया है । हमलोग आपके साथ इस पृथिवी माता को नमस्कार करते हैं॥४२॥

भावार्थ दीपिका

लोकाय वासस्थानार्थम् । ते पत्नीम् । जगतां मातरम् । यतस्त्वं पितासि । एवं सति तत्र स्थिताः सन्तस्त्वया पित्रा सहास्यै मात्रे मनसा विधेम नमनं करिष्यामः, नमस्कारेण परिचरेमेति वा । स्वतेजोधारणशक्तिं याज्ञिका मन्त्रतोऽग्निमरणाविवाधाः निहितवानसि ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

सम्पूर्ण जीवों के निवास स्थान के लिए आप अपनी पत्नी तथा चराचर जगत् की माता भूदेवी को जल के ऊपर स्थापित कर दें । आप जगत् के पिता हैं । यहाँ पर विद्यमान हमलोग आपके साथ इस पृथिवी माता को नमस्कार करते हैं । अथवा नमस्कार के द्वारा इनकी सेवा करते हैं । जिस तरह याज्ञिकगण मन्त्र के द्वारा अरणि में अग्नि का आधान कर देते हैं उसी तरह आपने पृथिवी में धारण शक्ति रूपी अपने तेज का आधान कर दिया हैं ॥४२॥

कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ।
न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ॥४३॥

अन्वयः— प्रभो ! तव अन्यतमः रसां गतायाः भुवः उदविबर्हणम् कः श्रद्दधीत ? विश्व विस्मये त्वयि असौ विस्मयो न यः मायया अतिविस्मयं इदं ससृजे ॥४३॥

अनुवाद— प्रभो, रसातल में गयी हुयी इस पृथिवी का आपसे भिन्न कोई दूसरा उद्धार करना कौन चाहेगा? आप तो सम्पूर्ण आश्चर्यों के एकमात्र आश्रय हैं, अतएव आपके लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । आपने तो अपनी माया के द्वारा अत्यन्त आश्चर्यमय इस विश्व की रचना की है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

इदं च त्वयाऽतिदुष्करं कृतमित्याहुः-क इति । प्रभो, तव त्वया कृतं भुव उद्विबर्हणमुद्धरणं त्वदन्यः कः श्रद्दधीत स्पृहयेत् । अध्यवस्येदित्यर्थः । त्वयि पुनरसौ विस्मयो न भवति यतो विश्वे सर्वे विस्मया यस्मिन् । कुतः । यो भवान् । अतिविस्मयमत्यद्भुतमिदं विश्वम् । क्रियाविशेषणं वा । ससृजे सृष्टवान् ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ऋषियों ने कहा है कि आपने यह अत्यन्त कठिन कार्य किया है । हे प्रभो ! आपने जो पृथिवी का उद्धार किया है उसे आपसे भिन्न दूसरा कौन करने का साहस कर सकता है । किन्तु आप तो सम्पूर्ण आश्चर्यों के एक मात्र आश्रय हैं अतएव आपके लिए यह कोई आश्चर्य नहीं हैं । क्योंकि आपने अपनी माया के द्वारा अत्यन्त आश्चयर्मय विश्व की रचना की हैं ।।४३।।

विधुन्वता वेदमयं निजं वपुर्जनस्तपः सत्यनिवासिनो वयम् ।
सटाशिखोद्धूतशिवाम्बुबिन्दुभिर्विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ।।४४।।

अन्वयः— हे ईश ! वेदमयं निजं वपुः विधुन्वता सटाशिखोद्धूत शिवाम्बुविन्दुभिः जनस्तपः सत्यनिवासिनः वयम् विमृज्यमाना भृशं पाविताः ।।४४।।

अनुवाद— हे प्रभो ! जब आप अपने वेदमय शरीर को फड़फड़ाते हैं तो आपके गर्दन के बालों से निकली हुयी पवित्र जल की बुन्दों से जनलोक, तपोलाक तथा सत्यलोक निवासी हमलोग भींगकर अत्यन्त पवित्र हो जाते हैं।।४४।।

भावार्थ दीपिका

विस्मयं दर्शयन्तः प्रार्थयन्ते- विधुन्वतेति द्वाभ्याम् । सटानां शिखाभिरग्रैरुद्धूता उच्छलिता ये शिवा अम्बुबिन्दवस्तैः सिच्यमाना वयं पवित्रीकृताः ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

आश्चर्य को प्रदर्शित करते हुए ऋषिगण दो श्लोकां से प्रार्थना करते हैं । आपके कन्धे के बालों के अग्रभाग से निकले हुए पवित्र जल की बूंदों से सींचित होकर हमलोग पवित्र हो जाते हैं । इस प्रकार से इस श्लोक में ऋषिगण श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हैं ।।४४।।

स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैष ते यः कर्मणां पारमपारकर्मणः ।
यद्योगमायागुणयोगमोहितं विश्वं समस्तं भगवन्विधेहि शम् ।।४५।।

अन्वयः— यः अपारकर्मणः ते एष तव पारम् अवलोकयति स वै बत भ्रष्टमतिः । यत् योगमाया गुणयोगमोहितं समस्तं विश्वं भगवन् शं विधेहि ।।४५।।

अनुवाद— आपके कर्मों का कोई पार (अन्त) है ही नहीं ऐसे आपके कर्मों का जो पार जानना चाहता है वह अवश्य भ्रष्टबुद्धि वाला पुरुष है । आपकी योगमाया के सत्त्वादि गुणों से सम्पूर्ण विश्व मोहित है, अतएव आप इस विश्व का कल्याण करें ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

तव कर्मणां पारं य एष तेऽवलोकयति ज्ञातुमिच्छतीत्यर्थः । यस्य तव योगमायया यो गुणैः सह योगस्तेन मोहितम्। अतो विश्वस्य शं मङ्गलं विधेहि । यथा त्वामचिन्त्यानन्तशक्तिं ज्ञात्वा भजे तथाऽनुगृहाणेत्यर्थः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

ऋषिगण प्रार्थना करते हैं कि आपके कर्मों का कोई अन्त नहीं है, फिर भी जो व्यक्ति आपके कर्मों का अन्त जानना चाहता है, वह निश्चित रूप से भष्टबुद्धि वाला पुरुष है । यह सारा विश्व आपकी योगमाया के सत्त्वादि गुणों से मोहित है अतएव आप इस विश्व का कल्याण करें । अर्थात् आप ऐसी कृपा करें कि हमलोग अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न आपको जानकर आपका भजन करें ।।४५।।

मैत्रेय उवाच

इत्युपस्थीयमानस्तैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः । सलिले स्वखुराक्रान्त उपाधत्तावितावनिम् ॥४६॥

अन्वयः— ब्रह्मवादिभिः तै मुनिभिः इति उपस्थीयमानः अविता स्वखुराक्रान्ते सलिले अवनिम् उपाधत्त ॥४६॥

अनुवाद— हे विदुर ! उन ब्रह्मवादी मुनियों द्वारा इस प्रकार से स्तुति किए जाते हुए सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले श्रीभगवान् ने अपने खुरों से जल को स्तम्भित करके उसके ऊपर पृथिवी को रख दिया ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

उपस्थीयमानः स्तूयमानः । स्वखुराक्रान्त इति जलेऽपि धारणशत्तयाधानं दर्शयति । अविता रक्षकः ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् के रक्षक हैं । वे उन ब्रह्मवादी महर्षियों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर अपने खुरों से जल को स्तम्भित कर दिये और उसके ऊपर पृथिवी को स्थापित कर दिए । **स्वखुराक्रान्ते** इस पद के द्वारा इस अर्थ को सूचित किया गया है कि श्रीभगवान् ने जल में भी धारण शक्ति का आधान कर दिया ॥४६॥

स इत्थं भगवानुर्वी विष्वक्सेनः प्रजापतिः । रसाया लीलयोन्नीतामप्सु न्यस्य ययौ हरिः ॥४७॥

अन्वयः— इत्थं रसायाः लीलया उन्नीताम् उर्वी सः विष्वक्सेनः प्रजापतिः भगवान् अप्सुन्यस्य ययौ ॥४७॥

अनुवाद— इस प्रकार से लीला पूर्वक रसातल से लायी गयी पृथ्वी को प्रजाओं के स्वामी भगवान् श्रीहरि जल पर स्थापित करके अन्तर्धान हो गये ॥४७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४७॥

य एवमेतां हरिमेधसो हरेः कथां सुभद्रां कथनीयमायिनः ।
शृण्वीत भत्तया श्रवयेत वोशतीं जनार्दनोऽस्याशु हृदि प्रसीदति ॥४८॥

अन्वयः— यः हरिमेधसः एवम् एताम् कथनीय मयिनः सुभद्रां उशतीं कथां शृण्वीत श्रवयेत वा अस्य हृदि जनार्दनः आशु प्रसीदति ॥४८॥

अनुवाद— जो भगवद्भक्त इस प्रकार से मायापति श्रीहरि की कहने योग्य कमनीय मङ्गलमयी कथा को भक्तिपूर्वक सुनता अथवा सुनाता है, उसके हृदय में भगवान् जनार्दन शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

कथनीयानि मायीनि मायावन्ति चरित्राणि यस्य । श्रवयेत श्रावयेत । ह्रस्वत्वमार्षम् । उशतीं कमनीयाम् । हृदि प्रसीदति स्वमनसि संतुष्यतीत्यर्थः ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की ये मायामयी कथाएँ कहने योग्य हैं । इन कथाओं को जो भक्ति पूर्वक सुनता है अथवा सुनाता है । श्रवयेत में ह्रस्व आर्ष प्रयोग होने के कारण है । श्रीभगवान् की ये कथाायें कमनीय और मङ्गलमयी है । इनके सुनने और सुनाने वाले पर श्रीभगवान् अपने अन्तःकरण से प्रसन्न होते हैं ॥४८॥

तस्मिन्प्रसन्ने सकलाशिषां प्रभौ किं दुर्लभं ताभिरलं लवात्मभिः ।
अनन्यदृष्ट्या भजतां गुहाशयः स्वयं विधत्ते स्वगतिं परः पराम् ॥४९॥

अन्वयः— सकलाशिषाम् प्रभौ तस्मिन् प्रसन्ने किं दुर्लभम् लवात्मभिः ताभिः अलम् । अनन्यदृष्ट्या भजताम् गुहाशयः परः पराम् स्वगतिं स्वयं विधत्ते ॥४९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् सभी कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ हैं । उनके प्रसन्न हो जाने पर कुछ भी दुर्लभ

नहीं रह जाता है । तुच्छ कामनाओं को करने से कोई भी लाभ नहीं हैं । जो पुरुष श्रीभगवान् का अनन्या भक्ति से भजन करते हैं उनको तो अन्तर्यामी भगवान अपने आप अपना परम पद प्रदान कर देते हैं ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

आशिषो यद्यपि सुलभास्तथापि न प्रार्थनीय इत्याह । ताभिराशीर्भिरलम् । लवात्मभिस्तुच्छाभिः । न च तदा भजनस्य वैफल्यं शङ्कनीयमित्याह । भगवद्भजनव्यतिरेकेण फलान्तरदृष्टिं विना भजतां स्वपदप्राप्तिं स्वयमेव विधत्ते । गुहाशयत्वादहैतुकीं भक्तिं जानन् ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि श्रीभगवान् से मनोरथों की पूर्ति के लिए प्रार्थना करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है । क्योंकि वे तो कामनाएँ तुच्छ हैं । यदि कहें के तब तो भगवान् की भक्ति व्यर्थ है तो ऐसी बात नहीं है । श्रीभगवान् के भजन से भिन्न किसी दूसरे फल की प्राप्ति की कामना से रहित भक्तों को श्रीभगवान् अपने आप अपना पद प्रदान कर देते हैं । क्योंकि वे सबों के हृदय में निवास करते हैं ओर अपने भक्तों की अहैतुकी भक्ति को जानते हैं ।।४९।।

को नाम लोके पुरुषार्थसारवित्पुराकथानां भगवत्कथासुधाम् ।
आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहामहो विरज्येत विना नरेतरम् ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे वराहप्रादुर्भावानुवर्णने त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

अन्वयः— नरेतरम् बिना पुरुषार्थसारवित् को नाम लोक भवापहाम् पुराकथानां भगवत्कथासुधाम् कर्णाञ्जलिभिः आपीय अहो विरज्येत ।।५०।।

अनुवाद— पशुओं को छोड़कर अपने पुरुषार्थ के सार को जानने वाला संसार का कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो संसार के बन्धन से मुक्त कर देने वाली श्रीभगवान् की प्राचीन कथा सुधा को अपने कानों से सुनकर पुनः उससे विरक्त हो जाय ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के वराह प्रादुर्भावानुभाव वर्णन नामक तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अतः को नाम पुराकथानां पूर्ववृत्तानां मध्य कथंचिदापीय विरज्येत विरमेत् । नरेतरं पशुं बिना ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे भावार्थदीपिकाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

अतएव इस संसार में कौन ऐसा पुरुष होगा जो पुरुषार्थ के सार को जानता हो और श्रीभगवान् की प्राचीन कथाओं में से किसी कथा को एक बार भी किसी प्रकार से सुनकर पुनः उन सबों से विरक्त हो जाय । ऐसा तो कोई पशु ही हो सकता है मनुष्य नहीं है ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१३।।

चौदहवाँ अध्याय

दिति का गर्भ धारण

श्रीशुक उवाच

निशम्य कौषारविणोपवर्णितां हरेः कथां कारणसूकरात्मनः ।
पुनः स पप्रच्छ तमुद्यताञ्जलिर्न चातितृप्तो विदुरो धृतव्रतः ॥१॥

अन्वयः— कौषारविणा उपवर्णिता कारणसूकरात्मनः हरेः कथां निशम्य सः उद्यताञ्जलिः धृतव्रतः विदुरः न च अतितृप्तः पुनःपप्रच्छ ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— मैत्रेयजी के द्वारा वर्णित प्रयोजनवशात् सूकर बने हुए श्रीहरि की कथा को सुनकर हाथ जोड़े हुए तथा श्रीहरि की कथा सुनने का व्रत लिए हुए विदुरजी पूर्णरूप से तृप्त नहीं होने के कारण उनसे पुनः पूछे॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्दशे निदानं तु तद्वधे वक्तुमुच्यते । संध्यायां कश्यपाद्गर्भसंभवः कामतो दितेः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष के वध का कारणभूत सनकादिकों के शाप को बतलाने के लिए, संध्या की बेला में कामार्त दिति में कश्यप महर्षि के द्वारा गर्भाधान का वर्णन इस चौदहवें अध्याय में किया जा रहा है ॥१॥

विदुर उवाच

तेनैव तु मुनिश्रेष्ठ हरिण यज्ञमूर्तिना । आदिदैत्यो हिरण्याक्षो हत इत्यनुशुश्रुम ॥२॥

अन्वयः— हे मुनिश्रेष्ठ ! तेनैव यज्ञमूर्तिना हरिणा आदिदैत्यः हिरण्याक्षः हतः इत्यनुशुश्रुम ॥२॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे मुनियों में श्रेष्ठ उन्हीं यज्ञमूर्ति श्रीहरि ने आदिदैत्य हिरण्याक्ष को मारा ऐसा हमने सुना है॥२॥

भावार्थ दीपिका

तेनैव येन भूमिरुद्धृता ।अनुशुश्रुम त्वन्मुखात् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

विदूरजी ने कहा कि जिन श्रीभगवान् ने पृथिवी का उद्धार किया उन्हीं श्रीभगवान् ने हिरण्याक्ष का वध किया यह आपने अभी-अभी बतलाया है ॥२॥

तस्य चोद्धरतः क्षोणीं स्वदंष्ट्राग्रेण लीलया । दैत्यराजस्य च ब्रह्मन् कस्माद्धेतोरभून्मृधः ॥३॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् स्वदंष्ट्राग्रेण लीलया क्षोणी च उद्धरतः तस्य दैत्यराजस्य च कस्माद् हेतोः मृधः अभूत् ॥३॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! जिस समय श्रीभगवान् पृथिवी को अपने दाँतों पर रखकर उसका उद्धार कर रहे थे उस समय उस दैत्यराज और श्रीहरि का किस कारण से युद्ध हुआ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

मृधो युद्धम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

मृध शब्द युद्ध का बोधक है ॥३॥

मैत्रेय उवाच

साधु वीर त्वया पृष्टमवतारकथां हरेः । यत्त्वं पृच्छसि मर्त्यानां मृत्युपाशविशातनीम् ॥४॥

अन्वयः— हे वीर त्वया साधु पृष्टम् यत् त्वम् मर्त्यानां मृत्युपाशविशातनीम् हरेः अवतार कथां पृच्छसि ॥४॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे विदुरजी आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है। क्योंकि आपने मनुष्यों के मृत्यु के पाश को विनष्ट करने वाली श्रीहरि के अवतार विषयिणी कथा को पूछा है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

साधुत्वे हेतुः-यद्यस्मात्त्वं हरेरवतारकथां पृच्छसीति । मृत्योः पाशं विशातयति मोचयतीति तथा ॥४॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है क्योंकि आप मनुष्यों को मृत्यु के पाश से मुक्त करने वाली श्रीहरि के अवतार विषयिणी कथा को आप पूछ रहे हैं ॥४॥

ययोत्तानपदः पुत्रो मुनिना गीतयाऽर्भकः । मृत्योः कृत्वैव मूर्ध्न्यङ्घ्रिमारुरोह हरेः पदम् ॥५॥

अन्वयः— यया मुनिना गीतया उत्तानपदः अर्भक एव पुत्र मृत्योः मूर्ध्नि अङ्घ्रिम् कृत्वा हरेः पदम् आरुरोह ॥५॥

अनुवाद— श्रीनारदजी के द्वारा सुनायी गयी श्रीहरि की कथा के द्वारा उत्तानपाद का छोटा सा पुत्र ध्रुव मृत्यु के शिर पर पैर रखकर श्रीहरि के लोक में चला गया ॥५॥

भावार्थ दीपिका

तदेव दर्शयति । यया कथया उत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः । मुनिना नारदेन । अर्भक एव । यदा ध्रुवाय सुनन्दादिभिर्विमानमानीतं तदाऽस्य देहत्यागोऽपेक्षितः स्यादिति मत्वा मृत्यावासन्नेऽपि देहं न तत्याज किंतु सोपान इव तस्य मूर्ध्नि पदं दत्त्वा विमानमारुह्य विष्णुपदमारूढः । वक्ष्यति हि **'परीत्याभ्यर्च्य धिष्ण्याग्र्यं कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः। इत्येष तदधिष्ठातुं बिभ्रद्रूपं हिरण्ययम् ।'** इति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की कथा के मृत्युपाशमोचकत्व का वर्णन इस श्लोक के द्वारा किया जा रहा है। नारद मुनि के द्वारा वर्णित श्रीहरि की कथा के प्रभाव से ही बाल्यावस्थावस्थित उत्तानपाद का पुत्र मृत्यु के शिर पर अपना पैर रखकर श्रीहरि के पद को प्राप्त कर लिया। जब सुनन्द आदि ध्रुव के लिए विमान लेकर आये उस समय मृत्यु ने समझा कि ध्रुव को शरीर त्याग आवश्य करना होगा, किन्तु सन्निकट में मृत्यु के विद्यमान रहने पर ध्रुव ने अपने शरीर का परित्याग नहीं किया; अपितु सोपान के समान वह मृत्यु के शिर पर पैर रखकर विमान पर बैठ गया और श्रीभगवान् के लोक में चला गया। आगे चलकर ध्रुव की कथा के प्रसङ्ग में कहेंगे भी **परीत्य०** **इत्यादि** ध्रुव ने उस श्रेष्ठ विमान की परिक्रमा की, ब्राह्मणों ने उनका स्वस्तिवाचन पहले ही कर दिया था, अपने सुवर्णमय शरीर को धारण किए हुए ध्रुव ने उस विमान पर बैठने की इच्छा की ॥५॥

अथात्रापीतिहासोऽयं श्रुतो मे वर्णितः पुरा । ब्रह्मणा देवदेवेन देवानामनुपृच्छताम् ॥६॥

अन्वयः— अथ देवानाम् अनुपृच्छताम् अत्र देवदेवेन ब्रह्मणा पुरा वर्णितः अयम् इतिहासः मे श्रुतः ॥६॥

अनुवाद— एक बार भगवान् वाराह और हिरण्याक्ष के युद्ध के विषय में देवताओं द्वारा पूछे जाने पर देवताओं के आराध्य ब्रह्माजी के द्वारा प्राचीन काल में वर्णित इस इतिहास को मैंने सुना है ॥६॥

मैंने सुना है ॥६॥

दितिर्दाक्षायणी क्षत्तर्मारीचं कश्यपं पतिम् । अपत्यकामा चकमे सन्ध्यायां हृच्छयार्दिता ॥७॥

अन्वयः— हे क्षत: दाक्षायणी दिति: मारीचं कश्यपं पतिम् हृच्छयार्दिता अपत्यकामा संध्यायां चकमे ॥७॥

अनुवाद— हे विदुर दक्ष की पुत्री दिति मरीचि महर्षि के पुत्र अपने पति कश्यप महर्षि को कामार्त होकर पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से सन्ध्या की बेला में सङ्गम करने की कामना की ॥७॥

भावार्थ दीपिका

देवप्रश्नप्रस्तावाय प्रथमं हिरण्याक्षहिरण्यकशिपूत्पत्तिप्रसङ्गमाह– दितिरित्यादिना यावदध्यायपरिसमाप्ति । मरीचेः पुत्रं कश्यपम् । हृच्छयः कामस्तेनार्दिता । अतः सन्ध्यायामेव कामितवती ॥७॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं के प्रश्न को प्रस्तुत करने के लिए पहले हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु की उत्पत्ति का प्रसङ्ग **दितिःइत्यादि** श्लोक के द्वारा इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त बतलाते है । महर्षि मरीचि के पुत्र महर्षि कश्यप थे । वे दिति के पति थे । एक बार सायंकाल की बेला में दिति कामार्त हो गयी और महर्षि कश्यप से पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से उनसे सङ्गम करने की इच्छा की ॥७॥

इष्ट्वाग्निजिह्वं पयसा पुरुषं यजुषां पतिम् । निम्लोचत्यर्क आसीनामग्न्यगारे समाहितम् ॥८॥

अन्वयः— पयसा अग्निजिह्वं यजुषां पतिं पुरुषं इष्ट्वा निम्लोचति अर्के अग्न्यागारे समाहितम् आसीनम् ॥८॥

अनुवाद— महर्षि कश्यप भी हविष्य से अग्निजिह्व यज्ञपति भगवान् विष्णु की आराधना करके सूर्यास्त की बेला में अपनी यज्ञशाला में समाधिस्थ होकर बैठे थे ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तदप्याग्निहोत्रशालायाम् । तत्रापि समाहितम् । अग्निर्जिह्वा यस्य । यजुषां यज्ञानां पतिं पुरुषं श्रीविष्णुम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

सूर्यास्त की बेला थी । महर्षि कश्यप भी हविष्य के द्वारा यज्ञपति भगवान् की आराधना करके अपनी यज्ञशाला में समाधिस्थ होकर बैठे थे । अग्निजिह्व यज्ञ का नाम है ॥८॥

दितिरुवाच

एष मां त्वत्कृते विद्वन् काम आत्तशारासनः । दुनोति दीनां विक्रम्य रम्भामिव मतङ्गजः ॥९॥

अन्वयः— हे विद्वन् त्वत्कृते एषः कामः आत्तशरासनः विक्रम्य, दीनां मां रम्भाम् मतङ्गज इव दुनोति ॥९॥

दिति ने कहा

अनुवाद— हे विद्वन् ! आपके लिए यह कामदेव अपने हाथ में धनुष धारण करके अपना पराक्रम प्रकट करके मुझे उसी तरह बेचैन कर रहा है जैसे कोई मतवाला हाथी कदली स्तम्भ को मसल डालता है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

कृपणां बहुभाषिणीम् इति वक्ष्यति, तत्र एष मामिति द्वाभ्यां कार्पण्यं, भर्तरीति चतुर्भिश्च
पीडयति । विक्रम्य शौर्यमाविर्भाव्य रम्भांकदलीम् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

आगे चलकर दिति का वर्णन करते हुए कहेंगे भी कि कामार्त और बहुत बोल
काम इन दो श्लोकों के द्वारा उसके कार्पण्य को तथा **भर्तरि** इत्यादि चार श्लोकों द्वा
करेंगे ।।९।। दुनेति का अर्थ पीड़ित करता है । **विक्रम्य** पद का अर्थ अपना पराक्रम प्रव
से यहाँ केले का स्तम्भ कहा गया है ।।९।।

तद्भवान्दह्यमानायां सपत्नीनां समृद्धिभिः । प्रजावतीनां भद्रं ते मय्या

अन्वयः— तद् भवान् प्रजावतीनां सपत्नीनाम् समृद्धिभिः दह्यमानायां मयि अनुग्रहम् आ

अनुवाद— अपनी पुत्रवती सौतों की समृद्धि को देखकर मैं ईर्ष्या की आग में
आप मुझ पर कृपा कीजिए, आपका कल्याण हो ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

आयुङ्क्ष्वां सर्वतो युनुक्तु सम्यक्करोतु ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

आप मुझ पर अच्छी तरह पूर्ण रूप से कृपा करें ।।१०।।

भर्तर्याप्तोरुमानानां लोकानाविशते यशः । पतिर्भवद्विधो यासां प्रजया

अन्वयः— यासां ननु भवद्विधः पतिः प्रजया जायते तासां भर्तरि आप्तोरुमानानां यश

अनुवाद— जिन स्त्रियों के गर्भ से आप जैसे पति पुत्र रूप में उत्पन्न होते हैं
सम्मानित मानी जाती हैं और उन सबों का यश सम्पूर्ण लोकों में फैल जाता है ।।१

भावार्थ दीपिका

भर्तरि प्राप्तबहुमानानां स्त्रीणां यशो लोकानाविशते व्याप्नोति । प्रजया पुत्ररूपेण । **'तज्**
जायते पुनः' इति श्रुतेः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

जिन स्त्रियों को अपने पति से बहुत अधिक सम्मान प्राप्त होता है, उन स्त्रियों व
है । पति ही पत्नी के गर्भ से पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है । श्रुति भी कहती है- **तज्**
वही पत्नी वास्तविक रूप से पत्नी होती है जिसके गर्भ से उसका पति पुत्र रूप में

पुरा पिता नो भगवान् दक्षो दुहितृवत्सलः । कं वृणीत वरं वत्सा इत्यपृ

अन्वयः— पुरा नः दुहितृवत्सलः पिता भगवान् दक्षः पृथक्-पृथक् वत्सा कम् वरं

अनुवाद— पूर्वकाल में अपने पुत्रियों पर स्नेह युक्त हमारे पिता दक्ष प्रजापति
पूछे कि पुत्रि तुम किसे अपना पति बनाना चाहती हो ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

नोऽस्माकं पिता नोऽस्मान्पृथगपृच्छत्। अयं भावः-त्रयोदशानामप्यस्माकं त्वयि भावसाम्ये वैष

भाव प्रकाशिका

हमलोगों के पिता दक्ष प्रजापति ने हमलोगों से अलग-अलग बुलाकर पूछा कि तुम किसे अपना पति बनाना चाहती हो। हम तेरह पुत्रियों ने आपका वरण किया। हम सभी आपकी पत्नियाँ है। हम सबों का आपमें एक समान प्रेम है। ऐसी स्थिति में आपका वैषम्याचरण ठीक नहीं हैं ॥१२॥

स विदित्वात्मजानां नो भावं सन्तानभावनः। त्रयोदशाददात्तासां यास्ते शीलमनुव्रताः ॥१३॥

अन्वयः— सन्तानभावनः सः न आत्मजानां भावं विदित्वा तासां त्रयोदश अददात् याः ते शीलम् अनुव्रताः ॥१३॥

अनुवाद— अपनी सन्तानों से प्रेम करने वाले हमलोगों की भावना को जानकर पिता अपनी उन पुत्रियों में से तेरह पुत्रियों का विवाह आपसे कर दिया, क्योंकि हम तेरहों आपके शील और स्वभाव के अनुकूल थीं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

हम तेरहों पुत्रियों का शील और स्वभाव आपके अनुकूल था अतएव उन्होंने हम तेरहों का विवाह आप से कर दिया ॥१३॥

अथ मे कुरु कल्याण कामं कञ्जविलोचन। आर्तोपसर्पणं भूमन्नमोघं हि महीयसि ॥१४॥

अन्वयः— हे कल्याण ! कञ्जविलोचन मे कामं कुरु हे भूमन्, महीयसि आर्तोपसर्पणं मोघं न ॥१४॥

अनुवाद— हे मङ्गलकर्तः कमलनयन ! आप मेरी इच्छा पूर्ण करें। हे महापुरुष ! आप जैसे महान् पुरुषों के पास दीनजनों का आना विफल नहीं होता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

मोघं न भवति हि। महीयसि त्वादृशे महत्तमे ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

आप जैसे पुरुष के पास दीनजनों का आना विफल नहीं ही होता है, अतएव आप मेरी इच्छा पूरी करें॥१४॥

इति तां वीर मारीचः कृपणां बहुभाषिणीम्। प्रत्याहानुनयन्वाचा प्रवृद्धानङ्गकश्मलाम् ॥१५॥

अन्वयः— हे वीर अथ मारीचः तां कृपाणां बहुभाषिणीम् प्रवृद्धानङ्गकश्मलाम् वाचा अनुनयन् प्रत्याह ॥१५॥

अनुवाद— हे विदुरजी इसके पश्चात् महर्षि कश्यप ने दीन तथा बहुत अधिक बोलने वाली एवं काम के बढ जाने से अत्यधिक मोहित दिति को अपनी मधुर वाणी से समझाते हुए कहा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

प्रवृद्धानङ्गेन कश्मलं मोहो यस्यास्ताम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

काम के अत्यधिक बढ़ जाने के कारण मोहित उस दिति को मधुर वाणी से समझते हुए महर्षि कश्यप ने कहा ॥१५॥

एष तेऽहं विधास्यामि प्रियं भीरु यदिच्छसि। तस्याः कामं न कः कुर्यात्सिद्धिस्त्रैवर्गिकी यतः ॥१६॥

अन्वयः— हे भीरु! यत् इच्छसि एष अहं ते प्रियं विधस्यामि। यत् त्रैवर्गिकी सिद्धिः तस्याः कामं कः न कुर्यात्॥१६॥

अनुवाद— प्रिये ! तुम जो चाहती हो तुम्हारी उस इच्छा की पूर्ति मैं अभी-अभी करता हूँ। जिससे धर्म, अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों की सिद्धि होती है, भला उसकी इच्छा की पूर्ति कौन नहीं करेगा ?॥१६॥

भावार्थ दीपिका

सन्ध्याकालवञ्चनाय भार्याप्रशंसा एष इति पञ्चभिः । यतो यस्याः सकाशात् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप चाहते थे कि यह भयङ्कर संध्याकाल बीत जाय इसीलिए वे पाँच श्लोकों में अपनी पत्नी की प्रशंसा करते हैं । उन्हांने दिति से कहा कि मनुष्यों के धर्म अर्थ और काम इन तीनों पुरुषार्थों की प्राप्ति पत्नी से ही होती है । अतएव कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो अपनी पत्नी की इच्छा की पूर्ति न करे ॥१६॥

सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् । व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथार्णवम् ॥१७॥

अन्वयः— कलत्रवान् सर्वाश्रमान् उपादाय स्वाश्रमेण जलयानै अर्णवम् इव व्यसनार्णवम् अत्येति ॥१७॥

अनुवाद— गृहस्थाश्रमी सभी आश्रमों को आश्रय प्रदान करके अपने आश्रम के द्वारा इस दुःखपूर्ण संसार सागर को उसी तरह पार कर लेता है । जिस तरह जहाज पर सवार होकर मनुष्य समुद्र को पार कर लेता है॥१७॥

भावार्थ दीपिका

सर्वाश्रमानुपादायेति । तानप्यन्नादिदानेन कृच्छ्रतस्तारयन् स्वयं तरतीत्यर्थः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

गृहस्थ सभी आश्रमों को अन्न आदि प्रदान करके उनके भूखजन्य पीडा को दूर करके स्वयम् भी इस दुःखमय संसार से उसी तरह पार हो जाता है; जैसे कोई जलयान के द्वारा सागर को पार कर लेता है इसी अर्थ को उन्होंने इस श्लोक में कहा है ॥१७॥

यामाहुरात्मनो ह्यर्धं श्रेयस्कामस्य मानिनि । यस्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति विज्वरः ॥१८॥

अन्वयः— मानिनि याम् श्रेयस्कामस्य आत्मनः हि अर्धं आहुः यस्यां धुरम् अध्यस्य पुमान् विज्वरः चरति ॥१८॥

अनुवाद— मानिनि ! पत्नी को तो कल्याणकामी पुरुष के शरीर का आधा भाग कहा गया है । पत्नी पर ही गृहस्थी का सारा भार सौंप कर मनुष्य निश्चिन्त होकर विचरण करता है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनो देहस्यार्धम् । कर्मसु द्वयोः सहाधिकारात् । यच्छब्दानां तां त्वामिति तृतीयश्लोकेन सम्बन्धः । स्वधुरं दृष्टादृष्टकर्मभारम् । विज्वरो निश्चिन्तः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

शास्त्रों में बतलाया गया है कि पत्नी कल्याणकामी पुरुष के शरीर का आधा भाग होती है, क्योंकि कर्मों को करने में दोनों का साथ-साथ अधिकार है । इस श्लोक के यत् शब्दों का तीसरे श्लोक के साथ अन्वय है। गृहस्थ पत्नी पर ही दृष्ट तथा अदृष्ट कर्मों का भार सौंप कर निश्चिन्त होकर विचरण किया करता है ॥१८॥

यामाश्रित्येन्द्रियारातीन्दुर्जयानितराश्रमैः । वयं जयेम हेलाभिर्दस्यून्दुर्गपतिर्यथा ॥१९॥

अन्वयः— याम् आश्रित्य इतराश्रमैः दुर्जयान् इन्द्रियारातीन् वयम् दस्यून् दुर्गपतिः यथा हेलाभिः जयेम ॥१९॥

अनुवाद— इन्द्रिय रूपी शत्रु दूसरे आश्रम वालों के लिए अत्यन्त दुर्जय हैं । किन्तु जिस तरह किले का स्वामी लूटने वाले शत्रुओं को आसानी से अपने वश में कर लेता है, उसी तरह हमलोग अपनी पत्नी का आश्रय लेकर बड़ी आसानी से इन्द्रिय रूपी शत्रुओं को जित लेते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

हेलाभिर्लीलाभिः । जयेमेति । सभार्यस्येन्द्रियाणि प्रायेणेतस्ततो न सर्पन्तीति भावः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

हेलाभि का अर्थ है बड़ी आसानी से । जो गृहस्थ व्यक्ति होता है, उसकी इन्द्रियाँ प्रायः इधर-उधर नहीं जाती हैं ।।१९।।

न वयं प्रभवस्तां त्वामनुकर्तुं गृहेश्वरि । अप्यायुषा वा कार्त्स्न्येन ये चान्ये गुणगृध्नवः ।।२०।।

अन्वयः— हे गृहेश्वरि ! वयं ये च अन्ये गुणगृध्नवः ते आयुषा अपि वा कार्त्स्न्येन तां त्वाम् अनुकर्तुं न प्रभवः ।।२०।।

अनुवाद— हे गृहस्वामिनि ! तुम जैसी पत्नी के उपकारों का बदला मैं अथवा दूसरे जो गुणग्राही पुरुष हैं वे भी अपनी पूरी आयु भर में अथवा जन्मान्तर में भी पूर्णरूप से नहीं चुका सकते हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

तामनेकोपकारकर्त्रीं त्वां कार्त्स्न्येनानुकर्तुं प्रत्युपकारैस्त्वत्सदृशा भवितुं न प्रभवो न समर्थाः । ये चान्ये गुणगृध्नवो गुणप्रियास्तेऽपि न समर्थाः । संपूर्णेनाप्यायुषा । वाशब्दाज्जन्मान्तरैरपि न प्रभव इत्युक्तम् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह अनेक प्रकार का उपकार करने वाली तुम पत्नी का प्रत्युपकारों के द्वारा मैं अथवा दूसरे भी गुणग्राही पुरुष पूर्णरूप से जीवन भर में अथवा जन्मान्तरों में भी तुम्हारे जैसा होने में समर्थ नहीं है ।।२०।।

अथापि काममेतं ते प्रजात्यै करवाण्यलम् । यथा मां नातिवोचन्ति मुहूर्तं प्रतिपालय ।।२१।।

अन्वयः— अथापि ते प्रजात्यै एतत् अलम् करवाणि, यथा मां नातीवोचन्ति मुहूर्तं प्रतिपालय ।।२१।।

अनुवाद— फिर भी मैं तुम्हारी इस सन्तान प्राप्ति की इच्छा को यथाशक्ति पूर्ण करूँगा । किन्तु अभी एक मुहूर्त रुक जाओ जिससे कि लोग मेरी निन्दा न करें ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

यद्यपि त्वदनुकरणमशक्यम् । प्रजात्यै पुत्रोत्पत्त्यै नातिवोचन्ति न निन्दति । प्रतिपालय प्रतीक्षस्व ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि तुम्हारा अनुसरण करना तो असम्भव है फिर भी तुम्हारी सन्तानप्राप्ति की इच्छा को मैं अपनी शक्ति के अनुसार पूर्ण करूँगा, किन्तु इस समय तुम एक मुहुर्त तक प्रतीक्षा करो, जिससे कि लोग मेरी निन्दा न करें।।२१।।

एषा घोरतमा बेला घोराणां घोरदर्शना । चरन्ति यस्यां भूतानि भूतेशानुचराणि ह ।।२२।।

अन्वयः— एष घोराणां घोरतमा बेला घोरदर्शना यस्यां भूतेशानुचराणि भूतानि चरन्ति ह ।।२२।।

अनुवाद— यह अत्यन्त घोर बेला राक्षस आदि घोर जीवों की है और यह देखने में भी अत्यन्त भयानक है । इसमें भूतों के स्वामी शङ्करजी के अनुचर भूतप्रेत घूमा करते हैं ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

स्वनिन्दामगणयन्तीं भीषयन् श्रीरुद्रमनुवर्णयति-एषेति सप्तभिः । घोराणामेषा बेला । स्वयं च घोरदर्शना ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

अपनी निन्दा की परवाह नहीं करने वाली दिति को डराने के लिए कश्यप महर्षि श्रीरुद्र का वर्णन एष **इत्यादि** सात श्लोकों से करते हैं । यह भयङ्कर जीवों राक्षसों आदि की बेला है और स्वयम् भी देखने में भयङ्कर है । इस बेला में भगवान् शिव के गण भूत प्रेत आदि विचरण किया करते हैं ।।२२।।

एतस्यां साध्वि सन्ध्यायां भगवान्भूतभावनः । परीतो भूतपर्षद्भिर्वृषेणाटति भूतराट् ॥२३॥

अन्वयः— हे साध्वि ! एतस्यां सन्ध्यायां भूतराट् भगवान् भूतभावनः भूतपर्षद्भिः परीतः वृषेण अटति ॥२३॥

अनुवाद— हे साध्वि ! इस सन्ध्या की बेला में भूतभावन भूतों के स्वामी भगवान् शङ्कर भूत प्रेत आदि को साथ लेकर बैल पर सवार होकर विचरण किया करते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

भूतपर्षद्भिर्भूतगणैः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप ने बतलाया कि सायंकाल की बेला में भगवान् शङ्कर अपने भूत-प्रेत आदि पार्षदों को साथ लेकर विचरण किया करते हैं ॥२३॥

श्मशानचक्रानिलधूलिधूम्रविकीर्णविद्योतजटाकलापः ।
भस्मावगुण्ठामलरुक्मदेहो देवस्त्रिभिः पश्यति देवरस्ते ॥२४॥

अन्वयः— श्मशानचक्रा निलधूलि धूम्र विक्रीर्णविद्योतजटाकलापः । भस्मावगुण्ठामल रुक्मदेहः देवः ते देवरः त्रिभि पश्यति ॥२४॥

अनुवाद— श्मशान भूमि में उठे बवण्डर की धूलि से धूसरित होकर जिनका जटाजूट देदीप्यमान है तथा जिनके सुवर्णकान्तिमय शरीर में भस्म लगा हुआ है वे तुम्हारे देवर शङ्करजी अपने सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्नि रूप तीन नेत्रों से सबको देखते रहते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि तत्संमुखत्वमात्रं वर्जनीयमिति चेत्तत्राह । श्मशाने यश्चक्रानिलो वातमण्डली तस्मिन् या धूलिस्तया धूम्रो विकीर्णो विद्योतो द्युतिमाञ्जटाकलापो यस्य । भस्मनाऽवगुण्ठः प्रावृतोऽमलो रुक्मवद्देहो यस्य स देवस्त्रिभिः सोमार्काग्निनेत्रैः पश्यतीत्यस्योत्तमश्लोकत्रयेऽप्यनुषङ्गः । एकस्य जामातरः परस्परं भ्रातरो व्यवह्रियन्ते । अतो मम भ्राता असौ तव देवर इति लज्जार्थमुक्तम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

इस पर यदि दिति कहें कि ठीक है इस काम को उनके सामने नहीं करना चाहिए परोक्ष में कोई आपत्ति है नहीं । तो इस पर वे घूसरित जिनका जटा कलाप देदीप्यमान है । और इधर-उधर विखरा हुआ है तथा जिनके गौरवर्ण के शरीर में भस्म लगा है ऐसे भूतभावन भगवान् शङ्कर अपने सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि रूपी तीन नेत्रों से इस समय सबको देखते हैं वे तुम्हारे देवर हैं अतएव तुमको लज्जित होना चाहिए । किसी एक व्यक्ति के सभी दामाद परस्पर में भाई होते हैं । अतएव मेरे भाई शङ्करजी तुम्हारे देवर हैं ॥२४॥

न यस्य लोके स्वजनः परो वा नात्यादृतो नोत कश्चिद्विगर्ह्यः ।
वयं व्रतैर्यच्चरणापविद्धामाशास्महेऽजां बत भुक्तभोगाम् ॥२५॥

अन्वयः— लोके यस्य न स्वजनः न वा परः नात्यादृतः न उत कश्चित् विगर्ह्यः वयं व्रते यच्चरणापविद्धाम् भुक्ताभोगाम् अजां बत आशास्महे ॥२५॥

अनुवाद— संसार में उनका न तो कोई अपना है न पराया है । न तो उनका कोई अधिक आदरणीय है और न निन्दनीय है, हमलोग तो अनेक प्रकार के व्रतों का पालन करके उनकी माया को ही प्राप्त करना चाहते हैं जिस माया का उन्होंने भोगकर अपने से दूर कर दिया है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

ननु तथापि महत्त्वेनादरणीयस्य स्वजनस्य च तव स सर्वं क्षमेतैव तत्राह । यस्य स्वजनादिर्नास्ति समत्वादीश्वरस्य । ऐश्वर्यमेवाह । येन चरणेनापविद्धां निर्माल्यवद्दूरतस्त्यक्तां तेन भुक्तभोगामजां मायां तन्मयीं विभूतिं महाप्रसाद इत्याशास्महे । व्रतैस्तमाराध्य ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

यदि दिति कहें कि आप तो उनसे बड़े हैं अतएव उनके लिए आदरणीय हैं फलत: आपके सारे अपराधों को वे क्षमा ही कर देंगे । इस पर महर्षि कश्यप कहते हैं कि उनका न तो कोई अपना है न पराया हैं । वे ईश्वर हैं और वे सबों के प्रति एक समान दृष्टि रखते हैं । भगवान् शिव के ऐश्वर्य का वर्णन करते हुए वे कहते हैं । शङ्करजी ने जिस माया को भोगकर उसका परित्याग कर दिया है हमलोग अनेक प्रकार के व्रतों के द्वारा उनका महाप्रसाद समझकर उसी माया को प्राप्त करना चाहते हैं ।।२५।।

यस्यानवद्याचरितं मनीषिणो गृणन्त्यविद्यापटलं बिभित्सवः ।
निरस्तसाम्यातिशयोऽपि यत्स्वयं पिशाचचर्यामचरद्गतिः सताम् ॥२६॥

अन्वयः— अविद्यापटलं विभित्सवः मनीषिणः यस्य अनवद्याचरितं गृणन्ति निरस्तसाम्यतिशयोऽपि यत् स्वयम् गतिः पिशाचचर्याम् अचरत् ।।२६।।

अनुवाद— विवेकी पुरुष अपनी अविद्या के आवरण को दूर करने के लिए जिनके निर्मल चरित्र का गान किया करते हैं । जब कोई भी उनके सदृश ही नहीं है तो उनसे बढ़कर होने की कोई बात ही नहीं है । ऐसा होने पर भी वे सत्पुरुषों के आश्रय हैं ऐसे भगवान् शङ्कर स्वयं पिशाच जैसा आचरण करते हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

अनिषिद्धसुखत्यागादसौ पिशाच इत्युपहासो न कार्य इत्याह द्वाभ्याम् । यस्यानवद्यं विषयासक्तिशून्यमाचरितम् । विभित्सवो भेत्तुमिच्छवः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

अनिषिद्ध सुख का परित्याग कर देने के कारण के इनको पिशाच कहकर इनका उपहास नहीं करना चाहिए इस अर्थ का प्रतिपादन महर्षि कश्यप दो श्लोकों से करते हैं । अपने अज्ञान के आवरण को दूर करने के लिए मनीषीगण उनके निर्दोष तथा विषयासक्ति से रहित चरित का गायन किया करते हैं ।।२६।।

हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगाः स्वात्मव्रतस्याविदुषः समीहितम् ।
यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम् ॥२७॥

अन्वयः— स्वात्मन् रतस्य समीहितम् आचरितं त एव हसन्ति यैः श्वभोजनम वस्त्रमाल्याभरणानुलपनैःस्वात्मतया उपलालितम् ।।२७।।

अनुवाद— आत्माराम भगवान् शङ्कर के लोक शिक्षा रूप आचरण का वे ही लोग उपहास करते हैं जो अज्ञानी लोग कुत्तों के भोजन स्वरूप इस शरीर को वस्त्र माला तथा आभरण तथा चन्दनादि से सजाकर आत्मा के समान उसका पालन पोषण करते हैं । ऐसे लोग निश्चित रूप से अभागे हैं ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

समीहितमभिप्रेतं लोकशिक्षारूपम् । अविदुषोऽविद्वांसः । यद्वा न विद्वानन्यो यस्मादिति तस्य । सर्वज्ञस्येत्यर्थः । दुर्भगानेवाह-यैरिति । श्वभोजनं शुनां भोज्यं शरीरम् । स्वात्मतयाऽयमेवात्माति बुद्ध्या ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् शिव के चरित लोक शिक्षा रूप होने के कारण अभिप्रेत हैं। लेकिन अज्ञानी पुरुष उनके चरित का उपहास करते हैं। अथवा अविदुषः पद का अर्थ जिससे अधिकज्ञानी कोई है ही नहीं अर्थात् भगवान् शिव के आचरण का अभागे लोग ही उपहास करते हैं। उन अभागों का वर्णन करते हुए महर्षि कहते हैं- शरीर तो कुत्तों का भोजन हैं किन्तु उन अज्ञानियों की इस शरीर में ही आत्मबुद्धि हो जाती है। उसी को वे आत्मा के समान वस्त्र, माला, आभरण और चन्दन आदि से सजाते रहते हैं ॥२७॥

ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला यत्कारणं विश्वमिदं च माया।
आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥२८॥

अन्वयः— ब्रह्मादयः यत्कृतसेतुपालाः यत् कारणं विश्वमिदम् माया च तस्याज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या अहो विभूम्नः चरितं विडम्बनम् ॥२८॥

अनुवाद— जिन भगवान् शङ्कर के द्वारा की गयी धर्म की मर्यादा का पालन ब्रह्मा आदि देवगण किया करते हैं। इस सम्पूर्ण जगत् के जो कारण हैं। जिनकी आज्ञा का पालन यह माया किया करती है उनके द्वारा की जाने वाली यह पिशाच जैसा आचरण अत्यन्त आश्चर्य की बात है। उन जगद् व्यापक प्रभु की लीला कुछ समझ में नहीं आती है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अहो अतर्क्य। तस्याचरणमित्याह। ब्रह्मादयो येन कृतान्सेतून्स्वस्वाधिकारान्पालयन्ति यः कारणं यस्य। येन कृतमिदं विश्वम्। माया च यस्याज्ञाकरी। विभूम्नः परमेश्वरस्य विडम्बनमतर्क्यमित्यर्थः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप कहते हैं कि उनका आचरण कुछ समझ में नहीं आता है। ब्रह्मा आदि देवता उनके द्वारा निर्धारित मर्यादा का अपने-अपने अधिकार के अनुसार पालन करते हैं। जो इस जगत् के कारण हैं और यह विश्व जिनका कार्य है। माया जिनकी आज्ञा का पालन करती है। ऐसे परमेश्वर की लीला तर्क से परे हैं ॥२८॥

मैत्रेय उवाच

सैवं संविदिते भर्त्रा मन्मथोन्मथितेन्द्रिया। जग्राह वासो ब्रह्मर्षेर्वृषलीव गतत्रपा ॥२९॥

अन्वयः— भर्त्रा एवं संविदिते मन्मथोन्मथितेन्द्रिया सा गतत्रपा वृषलीव ब्रह्मर्षेः वासो जग्राह ॥२९॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— अपने पति महर्षि कश्यप के द्वारा इस प्रकार से समझाये जाने पर भी काम के द्वारा व्याकुल इन्द्रियों वाली दिति ने निर्लज्ज वेश्या के सामने महर्षि कश्यप के वस्त्र को पकड़ लिया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

भर्त्रा निरूपकेणैवं संविदिते ज्ञापितेऽपि सति। वृषलीव वेश्येव ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

समझाने वाले अपने पति के द्वारा इस प्रकार से समझायी जाने पर भी कामार्त होने के कारण दिति ने निर्लज्ज वेश्या के समान ब्रह्मर्षि कश्यप के वस्त्रों को पकड़ लिया ॥२९॥

स विदित्वाऽथ भार्यायास्तं निर्बन्धं विकर्मणि । नत्वा दिष्टाय रहसि तयाऽथोपविवेश ह ॥३०॥

अन्वयः— अथ सः भार्यायाः विकर्मणि निर्बन्धं विदित्वा दिष्टाय नत्वा तया सह रहसि उपविवेश ह ॥३०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् महर्षि कश्यप उन निन्दित कर्म में अपनी पत्नी का बहुत अधिक आग्रह जानकर दैव को नमस्कार करके उसके साथ एकान्त स्थान में चले गये और उसके साथ समागम किए ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

विकर्मणि निषिद्धे कर्मणि । दिष्टाय दैवरूपायेश्वराय । उपविवेशेति मैथुनं लक्ष्यते ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् महर्षि कश्यप ने उस निन्दित कर्म में अपनी पत्नी का बहुत अधिक आग्रह समझ लिया। उन्होंने दैवरूप ईश्वर को नमस्कार किया और एकान्त स्थान में जाकर उन्होंने उसके साथ समागम किया। **उपविवेश** इस पद के द्वारा मैथुन को लक्षित किया गया है ॥३०॥

अथोपस्पृश्य सलिलं प्राणानायम्य वाग्यतः । ध्यायन् जजाप विरजं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥३१॥

अन्वयः— अथ सलिलम् उपस्पृश्य प्राणानायम्य, वाग्यतः सनातनं ज्योतिः ध्यायन् विरजं ब्रह्म जजाप ॥३१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् महर्षि कश्यप जल में स्नान करके अपने प्राण एवं वाणी का संयम किए तदनन्तर विशुद्ध ज्योतिर्मय सनातन ब्रह्म का ध्यान करते हुए उसी का जप करने लगे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

उपस्पृश्य स्नात्वा भर्गशब्दवाच्यं विरजं ज्योतिर्ध्यानम् सनातनं ब्रह्म गायत्रीं प्रणवं वा जजाप ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप ने स्नान किया उसके पश्चात् प्राणायाम करके वे मौन हो गये तदनन्तर भर्ग शब्द वाच्य निर्मल ज्योति स्वरूप परब्रह्म का ध्यान करते हुए वे सनातन ब्रह्म गायत्री अथवा प्रणव का जप किए ॥३१॥

दितिस्तु व्रीडिता तेन कर्मावद्येन भारत । उपसंगम्य विप्रर्षिमधोमुख्यभ्यभाषत ॥३२॥

अन्वयः— हे भारत ! तेन कर्मावद्येन व्रीडिता दितिःतु विप्रर्षिम् उपसंगम्य अधोमुखी अभ्यभाषत ॥३२॥

अनुवाद— विदुरजी दिति को भी उस निन्दित कर्म को करने के कारण अत्यधिक लज्जा आयी वह ब्रह्मर्षि के पास जाकर नीचे मुख करके कहने लगी ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

कर्मावद्येन कर्मदोषेण ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

सायंकाल कि बेला में पति के साथ किया जाने वाला समागम निन्दित कर्म है, इसको सोचकर दिति अत्यधिक लज्जित थी । वह महर्षि कश्यप के पास गयी और अपना मुख नीचे करके उनसे कहने लगी ॥३२॥

दितिरुवाच

मा मे गर्भमिमं ब्रह्मन् भूतानामृषभोऽवधीत् । रुद्रः पतिर्हि भूतानां यस्याकरवमंहसम् ॥३३॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! मे इमं गर्भम् भूतानामृषभः भूतानां पतिः । हि ऋषभः रुद्रः मा अवधीत् यस्य अहम् अंहसम् अकरवम् ॥३३॥

दिति ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! मैंने रुद्र का अपराध किया है किन्तु भूतों के स्वामी विनष्ट न करें ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

माऽवधीन्मा हन्त्वित्यर्थः । वधशङ्काबीजमाह–रुद्र इति । अंहसमंहोऽपराधमकरवं कृतवत

भाव प्रकाशिका

माऽवधीत् का अर्थ है न मारें । उस गर्भ के मारे जाने की शङ्का का कारण बतल मैंने भूतों के स्वामी रुद्र का अपराध किया है, फिर भी वे मेरे इस गर्भ का वध न क

नमो रुद्राय महते देवायोग्राय मीढुषे । शिवाय न्यस्तदण्डाय धृतदण्ड

अन्वयः— महते, रुद्राय, उग्राय, देवाय, मीढुषे, शिवाय, न्यस्तदण्डाय, धृतदण्डाय,

अनुवाद— मैं भक्तों के दु:ख को दूर करने वाले महान् रुद्र को नमस्कार करती हूँ । नहीं कर सकता है । सकाम भक्तों की कामना को पूर्ण करने वाले कल्याणकारी दण्ड दुष्टों को दण्ड देने वाले हैं और प्रलय के बेला में क्रोध करने वाले रुद्र को मैं नमस्व

भावार्थ दीपिका

रुत दुःखं तद्द्रावयतीति रुद्रस्तस्मै । उग्रायानतिलङ्घ्याय मीढुषे सकामेषु फलसेचनकर्त्रे । न्यस्तदण्डाय । दुष्टेषु धृतदण्डाय संहारे मन्यवे ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

रुद्र अपने भक्तों के दु:खों को दूर करते हैं, इसलिए रुद्र कहलाते हैं, उनका कोई सकता है अतएव वे उग्र कहलाते हैं, कामना युक्त भक्तों की कामना को पूर्ण करते हैं निष्काम भक्तों का कल्याण करते हैं; अतएव शिव हैं । स्वाभाविक रूप से वे दण्ड देने अतएव न्यस्त दण्ड हैं और वे दुष्टों को दण्ड देते हैं अतएव वे धृतदण्ड है । प्रलय व जगत् का संहार करते हैं अतएव मन्यु शब्द वाच्य हैं । ऐसे शङ्करजी को मैं नमस्कार

स नः प्रसीदतां भामो भगवानुर्वनुग्रहः । व्याधस्याप्यनुकम्प्यानां स्त्रीणां दे

अन्वयः— स नः उर्वनुग्रहः भगवान् भामः व्याधस्य अपि अनुकम्प्यानां स्त्रीणाम् सतीपति

अनुवाद— भगवान् रुद्र अत्यधिक कृपा करने वाले हैं मेरी बहिन सती के पति ऐसे रुद्र व्याध जैसे क्रूर प्राणियों के भी कृपा का पात्र बनने वाली हम स्त्रियों पर प्र

भावार्थ दीपिका

भामो भगिनीभर्ता । उरुरनुग्रहो यस्य । व्याधस्य निर्दयस्यापि । सतीपतिरित्यनेन वेत्तीति सूचयति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

रुद्र हमारी छोटी बहिन सती के पति हैं अतएव वे मेरे भाम बहनोई है । वे हैं, हम स्त्रियाँ तो व्याध जैसे क्रूर प्राणी के भी कृपा का पात्र हैं अतएव वे मुझ पर कहकर दिति ने सूचित किया कि वे भी स्त्रियों के स्वभाव को जानते है अतएव वे मुझपर

मैत्रेय उवाच

स्वसर्गस्याशिषं लोक्यामाशासानां प्रवेपतीम् । निवृत्तसन्ध्यानियमो भार्यामाह प्रजापतिः ॥३६॥

अन्वयः— निवृत्तसन्ध्यानियमः प्रजापतिः स्वसर्गस्य लोक्यामाशिषं अशासानां प्रवेपतीम् भार्यामाह ॥३६॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— सन्ध्या के नियमों से निवृत्त होकर प्रजापति कश्यप महर्षि ने देखा की दिति अपने संतान के लौकिक और पारलौकिक अभ्युदय का आशीर्वाद माँगती हुयी काँप रही है तो उन्होंने अपनी पत्नी से कहा ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

स्वसर्गस्य स्वसन्तानस्स्याशिषं शुभम् । लोक्यां लोकद्वयार्हाम् । सन्ध्यायां यो नियमः स निवृत्तो यस्य ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

सन्ध्या का नियम समाप्त हो जाने के पश्चात् प्रजापति कश्यप महर्षि ने देखा कि उनकी पत्नी दिति काँप रही है और वह अपने संतान के लौकिक और पारलौकिक कल्याण का आशीर्वाद माँग रही है ॥३६॥

कश्यप उवाच

अप्रत्ययादात्मनस्ते दोषान्मौहूर्तिकादुत । मन्निदेशातिचारेण देवानां चातिहेलनात् ॥३७॥
भविष्यतस्तवाभद्रावभद्रे जाठराधमौ । लोकान्सपालांस्त्रींश्चण्डि मुहुराक्रन्दयिष्यतः ॥३८॥

अन्वयः— ते आत्मनः अप्रत्ययात् मौहूर्तिकात् दोषात् उत मन्निदेशातिचारेण देवानां च अतिहेलनात् हे अभद्रे चण्डि तव अभद्रौ जाठराधमौ भविष्यतः सपालान् लोकान् मुहुः आक्रन्दयिष्यतः च ॥३७-३८॥

महर्षि कश्यप ने कहा

अनुवाद— तुम्हारे चित्त के अशुद्ध होने के कारण और सन्ध्या रूपी मुहूर्त के दोष के कारण, मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण तथा रुद्रानुचरों की अवहेलना करने के कारण ऐ अमङ्गलमयी चण्डि तुम्हारे गर्भ से दो अधम पुत्र होंगे और वे लोकों तथा लोकपालों को बार-बार रुलायेंगे ॥३७-३८॥

भावार्थ दीपिका

ते आत्मनश्चित्तस्याप्रत्ययादशुचित्वात् । मौहूर्तिकात्सन्ध्यारूपात् । उत अपि मम निदेशस्याज्ञाया अतिचारेणातिक्रमेण। देवानां रुद्रानुचराणाम् । एतैश्चतुर्भिर्हेतुभिर्जाठराधमौ पुत्रापसदौ । हे चण्डि कोपने ॥३७-३८॥'

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में महर्षि कश्यप ने कहा है कि तुम्हारे गर्भ से दो अधम पुत्र उत्पन्न होंगे वे सम्पूर्ण लोकों और लोकपालों को रुलाने का काम करेंगें । तुम्हारे पुत्रों के ऐसा होने के चार कारण हैं— १. तुम्हारा चित्त शुद्ध नहीं हैं । २. तुमने जिस काल में संगम किया वह सन्ध्याकाल की भयङ्कर बेला थी और वह अनेक दोषों से युक्त थी । ३. तुमने मेरी भी आज्ञा का उल्लंघन किया है और ४. तुमने भगवान् रुद्र के अनुचरों का अपमान किया है ॥३७-३८॥

प्राणिनां हन्यमानानां दीनानामकृतागसाम् । स्त्रीणां निगृह्यमाणानां कोपितेषु महात्मसु ॥३९॥
तदा विश्वेश्वरः क्रुद्धो भगवाँल्लोकभावनः। हनिष्यत्यवतीर्यासौ यथाद्रीन् शतपर्वधृक् ॥४०॥

अन्वयः— दीनानाम् अकृतागसां प्राणिनां हन्यमानानाम्, स्त्रीणां निगृह्यमाणानां, महात्मसु कोपितेषु तदा विश्वेश्वरः लोकभावनः भगवान् क्रुद्धः अवतीर्य असौ अद्रीन् शतपर्वधृक् यथा हनिष्यति ॥३९-४०॥

अनुवाद— जब उन दोनों के द्वारा बहुत से दीन और निरपराध प्राणी मारे जाने लगेंगे, वे जब स्त्रियों पर अत्याचार करने लगेंगे, तथा अपने अत्याचारों से जब वे महात्माओं को क्रुद्ध बना देंगे उस समय सम्पूर्ण संसार के स्वामी तथा सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले श्रीभगवान् क्रुद्ध होकर अवतार ग्रहण करेंगे और उन दोनों का उसी तरह से वध कर देंगे जैसे वज्र धारण करने वाले इन्द्र पर्वतों का दमन कर दिये थे ॥३९-४०॥

भावार्थ दीपिका

हन्यमानानां सताम् । शतपर्वधृक् वज्रधर इन्द्रः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप ने कहा जब वे तुम्हारे दोनों पुत्र साधु सन्तों को मारने लग जायेंगे, उस समय श्रीभगवान् का क्रोध उदीर्ण हो जायेगा और वे अवतार ग्रहण करेगें तथा उन दोनों का वे उसी तरह से वध कर देंगे जैसे वज्रधारी इन्द्र पर्वतों का दमन कर दिए थे । शतपर्व वज्र का नाम हैं ॥३९-४०॥

दितिरुवाच

वधं भगवता साक्षात्सुनाभोदारबाहुना । आशासे पुत्रयोर्मह्यं मा क्रुद्धाद्ब्राह्मणाद्विभो ॥४१॥

अन्वयः— हे विभेकथं भगवता साक्षात् सुनाभोदारबाहुना मह्यं पुत्रयो: आशासे क्रुद्धात् ब्राह्मणात् मा ॥४१॥

दिति ने कहा

अनुवाद— हे विभो मैं भी यह चाहती हूँ कि मेरे पुत्रों का वध चक्रधारी भगवान् विष्णु ही करें । उनका वध क्रुद्ध हुए ब्राह्मणों के शाप से न हो ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

सुनाभेनोदारो बाहुर्यस्य । मह्यं मम कोपितेष्वित्युक्तत्वाच्छङ्कितचित्ता सती प्रार्थयते-ब्राह्मणान्मा भूदिति ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

सुनाभ चक्र का नाम है । चक्रधारी भगवान् ही मेरे पुत्रों का वध करें । महर्षि कश्यप पहले कह चुके हैं कि तुम्हारे पुत्र ब्राह्मणों को क्रुद्ध बना देंगे । इस भय से व्याकुल चित वाली दिति प्रार्थना करती हैं कि ब्राह्मणों के शाप से मेरे पुत्रों का वध न हो ॥४१॥

न ब्रह्मदण्डदग्धस्य न भूतभयदस्य च । नारकाश्चानुगृह्णन्ति यां यां योनिमसौ गतः ॥४२॥

अन्वयः— ब्रह्मदण्डदग्धस्य, भूतभयदस्य च असौ यां यां योनिं गतः नारकाः च न अनुगृह्णन्ति ॥४२॥

अनुवाद— ब्राह्मण के शाप से दग्ध हुआ तथा जीवों को जो भय प्रदान करता है, ऐसा जीव जिस-जिस योनि में जाता है वहाँ-वहाँ उस पर नारकीय जीव भी कृपा नहीं करते हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

नारका अपि तथा यां यां योनिमसौ गतो भवति तत्रस्थाश्च नानुगृह्णन्ति कृपां न कुर्वन्ति ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण के शाप से दग्ध और प्राणियों को भय प्रदान करने वाला जो होता है, इन दोनों प्रकार का जीव चाहे जिस योनि में जाय उस पर नारकीय जीव भी कृपा नहीं करते हैं दूसरों कि बात कौन करें ॥४२॥

कश्यप महर्षि ने कहा

अनुवाद— देवि ! तुने जो अपराध किया है उस अपने अपराध पर तुमने शोक और पश्चात्ताप किया है शीघ्र ही तुमने उचित और अनुचित का विचार भी किया है, भगवान् विष्णु, शिव और मेरे प्रति बहुत अधिक तुम्हारी समादर की भावना होने के कारण, इन, पाँच कारणों से तुम्हारे पुत्रों के पुत्रों में से एक ऐसा भी पुत्र होगा, जिसका सत्पुरुष भी सम्मान करेंगे उसके शुद्धयश का भक्तजन भगवान् के यश के समान लोग गायन करेंगें ॥४३-४४॥

भावार्थ दीपिका

कृतो योऽपराधस्तेन शोकस्ततोऽनुतापस्तेन । प्रत्यवमर्शनाद्युक्तायुक्तविचारात् । भगवति हरौ । भवे श्रीरुद्रे । एतैः पञ्चभिः कारणैः । पुत्रस्य हिरण्यकशिपोः पुत्राणां मध्ये एकः सतां मतो भविष्यति । तमेव वर्णयति-गास्यन्तीति सार्धैः पञ्चभिः । समं सह सदृक्षं वा ॥४३-४४॥

भाव प्रकाशिका

अपने किये अपराधों के कारण तुमने शोक किया और पश्चाताप भी किया है और शीघ्र ही तुमने उचित अनुचित का विचार किया है साथ ही तुम्हारा श्रीहरि, भगवान् शिव तथा मुझमें समादर भी है इन पाञ्च कारणों के कारण तुम्हारे पुत्र के पुत्रों में से एक पुत्र ऐसा भी होगा जिसका भक्तजन भी समादर करेंगे तथा उसके यश का श्रीभगवान् के यश के ही समान गायन करेंगे ॥४३-४४॥

योगैर्हेमेव दुर्वर्णं भावयिष्यन्ति साधवः । निर्वैरादिभिरात्मानं यच्छीलमनुवर्तितुम् ॥४५॥

अन्वयः— दुर्वर्णं हेमेव साधवः योगैः यत्शीलम् निर्वैरादिभिः अनुवर्तितुम् आत्मानं भावयिष्यन्ति ॥४५॥

अनुवाद— जिस तरह अशुद्ध सुवर्ण को शुद्ध बनाने के लिए उसको कई बार तपाया जाता है उसी तरह तुम्हारे पौत्र के शील का अनुवर्तन करने के लिए उसके निर्वैर आदि योगों के द्वारा साधु पुरुष अपने हृदय को शुद्ध बनायेंगे ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

हीनवर्णं हेम यथा योगैर्दाहादिभिरुपायैः शोध्यते तथा यस्य शीलं स्वभावमनुवर्तितुमनुगन्तुं प्राप्तुं निर्वैरादिभिर्योगैरात्मानं भावयिष्यन्ति शोधयिष्यन्ति ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह से हीन वर्ण (अशुद्ध) सोने को शुद्ध बनाने के लिए उसको बार-बार अग्नि में तपाया जाता है उसी तरह से तुम्हारे पौत्र के शील और निर्वैर आदि [illegible] तुम्हारे पौत्र

भावार्थ दीपिका

विश्वप्रसादे हेतुर्यदात्मकम् । स्वदृगात्मसाक्षी । यस्यानन्यया भगवानेव सत्य इत्येवंभूतया दृशा तोष्यते तोषं प्राप्स्यते।।४६।।

भाव प्रकाशिका

विश्व की प्रसन्नता का कारण यह है कि यह विश्व परमात्मात्मक है । श्रीभगवान् ही सबकी आत्मा के साक्षी हैं उस तुम्हारे पौत्र की अनन्या भक्ति से श्रीभगवान उस पर प्रसन्न हो जायेंगे ।।४६।।

स वै महाभागवतो महात्मा महानुभावो महतां महिष्ठः ।
प्रवृद्धभत्तया ह्यनुभाविताशये निवेश्य वैकुण्ठमिमं विहास्यति ।।४७।।

अन्वयः— स वै महाभागवतः महात्मा महानुभावः महतां महिष्ठः प्रवृद्धभक्त्या हि अनुभाविताशये वैकुण्ठं निवेश्य, इमम् विहास्यति ।।४७।।

अनुवाद— दिति ! वह बालक महान् भगवद्भक्त होगा, वह उदारहृदय अत्यन्तप्रभावशाली महानों का भी पूज्य होगा । अपनी समृद्धभक्ति के द्वारा अपने विशुद्धअन्तःकरण में श्रीभगवान् को स्थापित करके देहाभिमान का परित्याग कर देगा ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः- स वा इति । महात्माऽपरिच्छिन्नदृष्टिः महानुभावो महाप्रभावः । महतामपि मध्ये महिष्ठोऽतिशयेन महान्। प्रवृद्धया भक्त्याऽनुभाविते शोधिते चित्ते वैकुण्ठं हरिं निवेश्य देहाद्यभिमानं त्यक्ष्यति ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

स वै इत्यादि श्लोक में श्रीभगवान् के संतोष का कारण बतलाया गया है । महात्मा कहकर उसको उदार हृदय बतलाया गया । वह महाप्रभावशाली होगा, वह महानों में भी अत्यन्त महान् होगा । समृद्ध भक्ति के द्वारा शुद्ध बने अपने अन्तःकरण में श्रीभगवान् को स्थापित करके वह देहादि के अभिमान का परित्याग कर देगा ।।४७।।

अलम्पटः शीलधरो गुणाकरो हृष्टः परर्द्ध्या व्यथितो दुःखितेषु ।
अभूतशत्रुर्जगतः शोकहर्ता नैदाधिकं तापमिवोडुराजः ।।४८।।

अन्वयः— अलम्पटः शीलधरः गुणाकरः परर्द्धया हृष्टः, दुःखितेषु व्यथितः, अभूतशत्रुः, नैदाधिकं ताप उडुराज इव जग्रतः शोकहर्ता ।।४८।।

अनुवाद— वह विषयों की आसक्ति से रहित, शीलगुण सम्पन्न, गुणों का आकर, दूसरों की समृद्धि से प्रसन्न होने वाला और दूसरों के दुःखी रहने पर दुःखी होने वाला होगा । उसका कोई भी शत्रु नहीं होगा । जिस तरह चन्द्रमा ग्रीष्म के संताप को दूर कर देते हैं उसी तरह संसार के शोक को वह विनष्ट करने वाला होगा ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

महाभागवत्वमाह-अलम्पट इति । शीलधरः सुस्वभावः । गुणानां धैर्यादीनामाकरो जन्मभूमिः । परेषां समृदध्या हृष्टः। परेषु दुःखितेषु सत्सु । न भूतो जातः शत्रुर्यस्य । निदाधे भवं तापं चन्द्रो यथा हरत्येवं जगतः शोकहर्ता भविष्यति ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

दिति के पौत्र के महाभागवत्व का वर्णन करते हुए महर्षि कश्यप ने कहा कि वह विषयों से अनासक्त सुखस्वभाव वाला, धैर्य आदि गुणों का आश्रय, दूसरों की समृद्धि में प्रसन्न रहने वाला और दूसरों के दुःख में दुःखी रहने वाला होगा । वह अजातशत्रु होगा । जिस तरह गर्मी के दिनों के सन्ताप को चन्द्रमा दूर कर देते हैं उसी तरह तुम्हारा पौत्र संसार के कष्ट को दूर करेगा ।।४८।।

अन्तर्बहिश्चामलमब्जनेत्रं स्वपूरुषेच्छानुगृहीतरूपम् ।
पौत्रस्तव श्रीललनाललामं द्रष्टा स्फुरत्कुण्डलमण्डिताननम् ॥४९॥

अन्वयः— अन्तर्बहिश्चामलमब्ज नेत्रं स्वपूरुषेच्छानुगृहीत रूपम् श्रीललनाललामं, स्फुरत् कुण्डलमण्डिताननम् तव पौत्रः द्रष्टा ।।४९।।

अनुवाद— इस संसार के भीतर बाहर जो व्याप्त हैं, जिनके स्वच्छ नेत्र कमल के समान मनोहर हैं, वे अपने भक्तों की इच्छा के अनुसार शरीर धारण करते हैं, शोभा स्वरूपिणी लक्ष्मीजी की भी शोभा को जो बढ़ाते हैं, तथा जिनका मुख मण्डल चमकते हुए कुण्डलों से अलंकृत है, ऐसे श्रीभगवान् का तुम्हारा पौत्र साक्षात् दर्शन करेगा ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

अपरिच्छिन्नदृष्टित्वमाह-अन्तरिति । स्वपुरुषाणान्मिच्छया पुनः पुनर्गृहीतानि रूपाणि येन । श्रीरेव ललना सुन्दरी तस्या ललामं मण्डनम् । द्रष्टा द्रक्ष्यति ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

अन्तर्बहि० इत्यादि श्लोक से दिति के पौत्र की अव्याहत दृष्टि बतलायी गयी है । श्रीभगवान् अपने भक्तों की इच्छा से ही बार-बार विभिन्न रूपों को धारण करते हैं । श्रीदेवी साक्षात् सौन्दर्य मूर्ति हैं श्रीभगवान् उनको भी सुशोभित करते हैं । द्रष्टा पद का अर्थ है, दर्शन करेगा ।।४९।।

मैत्रय उवाच

श्रुत्वा भागवतं पौत्रममोदत दितिर्भृशम् । पुत्रयोश्च वधं कृष्णाद्विदित्वासीन्महामनाः ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे दितिकश्यप संवादे चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

अन्वयः— भागवतं पौत्रं श्रुत्वादितिः भृशम् अमोदत पुत्रयो च कृष्णात् वधं विदित्वा महामनाः आसीत् ।।५०।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— विदुरजी दिति को यह सुनकर प्रसन्नता हुयी कि उनका पुत्र भागवत (भगवद् भक्त) होगा । उन्हें यह सुनकर और अधिक उत्साह हुआ कि उनके पुत्र भगवान् के हाथों मारे जायेंगे ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

महामनाः सोत्साहचित्ता । हरिणा सह युद्धेन मरणे पुत्रयोः कीर्तिः सद्गतिश्च भवेदिति ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

महामना कहकर (दिति) को उत्साह युक्त चित्तवाली कहा गया है । वह जानती थी कि श्रीहरि के साथ युद्ध में मरने पर उन दोनों की कीर्ति तथा सद्गति भी होगी ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के चौदहवें अध्याय की भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१४।।

* * *

पन्द्रहवाँ अध्याय

जय विजय को सनकादिकों का शाप

मैत्रेय उवाच

प्राजापत्यं तु तत्तेजः परतेजोहनं दितिः । दधार वर्षाणि शतं शङ्कमाना सुरार्दनात् ॥१॥

अन्वयः— सुरार्दनात् शङ्कमाना दितिः तु परतेजोहनं प्राजापत्यं तत् तेजः शतं वर्षाणि दधार ॥१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— देवताओं द्वारा पीड़ित होने की शङ्का से दिति ने दूसरे के तेज को विनष्ट करने वाले प्रजापति कश्यप के तेज को सौ वर्षों तक धारण किए रही ॥१॥

भावार्थ दीपिका

हतप्रभैः सुरैः पृष्टः प्राह पञ्चदशे विधिः । तद्बीजं विप्रशापादि वैकुण्ठे विष्णुभृत्ययोः । तदेवं देवानां ब्रह्मणश्च संवादप्रस्तावमुक्त्वेदानीं तं संवादं वक्तुमाह । प्राजापत्यं काश्यपं तेजो वीर्यं परेषां तेजो हन्तीति तथा । आर्षः । स्वपुत्राभ्यां करिष्यते यत्सुराणामर्दनं पीडनं तस्माच्छङ्कमाना ॥१॥

भाव प्रकाशिका

निस्तेज बने हुए देवताओं द्वारा पूछे जाने पर ब्रह्माजी ने उस युद्ध का कारण बतलाया कि वैकुण्ठलोक में सनकादि ब्राह्मणों ने भगवान् विष्णु के भृत्यों को शाप दे दिया था । यही कथा इस पन्द्रहवें अध्याय में वर्णित है ॥१॥

तदेवंमित्यादि— इस तरह से देवताओं और ब्रह्माजी के संवाद की प्रस्तावना को बतलाकर इस अध्याय में उस संवाद को बतलाने के लिए मैत्रेयजी ने कहा कि प्रजापति कश्यप का वीर्य दूसरों के तेज को विनष्ट कर देने वाला है । देवतागण कहीं उसके पुत्रों को पीड़ित न करें इस शङ्का से दिति उस तेज को सौ वर्षों तक अपने गर्भ में धारण किए रही । **परतेजोहनम्** यह आर्ष प्रयोग है, अन्यथा यहाँ परतेजोघ्नं पाठ होना चाहिए ॥१॥

लोके तेन हतालोके लोकपाला हतौजसः । न्यवेदयन्विश्वसृजे ध्वान्तव्यतिकरं दिशाम् ॥२॥

अन्वयः— **तेन हतालोके लोके हतौजसः लोकपालाः दिशाम् ध्वान्तव्यतिकरं विश्वसृजे न्यवेदयन् ॥२॥**

अनुवाद— उस गर्भ के तेज के द्वारा संसार का प्रकाश जब क्षीण हो गया तब तेजोहीन होकर लोकपालों ने अन्धकार के कारण दिशाओं में होने वाली अव्यवस्था को ब्रह्माजी को बतलाया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तेन गर्भतेजसा हतालोके निरस्तसूर्यादिप्रकाशे हतौजसो हतप्रभावाः । ध्वान्तेन व्यतिकरं संकरम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उस गर्भ के तेज से संसार में सूर्य आदि का प्रकाश क्षीण हो गया, सभी लोकपालों का तेज क्षीण हो गया, दिशाओं में अन्धकार के फैल जाने से अव्यवस्थाएँ फैल गयीं । इस बात को लोकपालों ने जाकर ब्रह्माजी को बतलाया ॥२॥

देवा ऊचुः

तम एतद्विभो वेत्थ संविग्ना यद्वयं भृशम् । न ह्यव्यक्तं भगवतः कालेनास्पृष्टवर्त्मनः ॥३॥

अन्वयः— **विभो एतत् तमो वेत्थ, कालेन अस्पृष्टवर्त्मनः भगवतः किञ्चित् अव्यक्तं नहि यत् वयं भृशम् संविग्नाः ॥३॥**

देवताओं ने कहा

अनुवाद— आप इस अन्धकार को तो जानते ही हैं, क्योंकि काल आपकी ज्ञान शक्ति को कुण्ठित नहीं कर सकता है । हमलोग तो इससे बहुत अधिक भयभीत हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

वेत्थ जानासि किं विचारयसि । यद्यतो वयं संविग्ना भीताः । अव्यक्तमज्ञातम् । न स्पृष्टं वर्त्म ज्ञानप्रचारो यस्य ।।३।।

भाव प्रकाशिका

वेत्थ पद का अर्थ है आप जानते ही हैं । देवताओं ने कहा कि आप इस फैले हुए अन्धकार को जानते ही हैं । इसके विषय में आप क्या सोच रहे हैं ? इसके कारण हमलोग तो अत्यन्त भयभीत हैं । काल आपकी ज्ञान शक्ति को कुण्ठित नहीं कर सकता है, अतएव आपको कुछ भी अज्ञात नहीं है ।।३।।

देवदेव जगद्धातर्लोकनाथशिखामणे । परेषामपरेषां त्वं भूतानामसि भाववित् ।।४।।

अन्वयः— हे देवदेव ! हेजगद्धातः ! हे लेकनाथ शिखामणे ! त्वम् परेषाम् अपरेषां च भूतानाम् भाववित् असि।।४।।

अनुवाद— हे देवाधिदेव ! हे जगत् की रचना करने वाले, हे सभी लोकपालों के मुकुट मणि (श्रेष्ठ) ! आप छोटे बड़े सभी जीवों के भाव को जानते हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

ब्रह्माणं परमेश्वरत्वेन स्तुवन्तः प्रार्थयन्ते-देवदेवेति सप्तभिः लोकनाथानां शिखामणे । भावविदभिप्रायज्ञोऽसि । केनाभिप्रायेण दितेर्गर्भो वर्धत इति जानासीत्यर्थः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

देवगण ब्रह्माजी की परमेश्वर रूप से स्तुति करते हुए उनसे प्रार्थना सात श्लोकों में करते हैं- देवताओं ने कहा कि आप सभी लोकपालों में श्रेष्ठ हैं, आप सभी जीवों के अभिप्राय को जानते हैं । आप यह भी जानते हैं कि किस अभिप्राय से दिति का गर्भ बढ रहा है ।।४।।

नमो विज्ञानवीर्याय माययेदमुपेयुषे । गृहीतगुणभेदाय नमस्तेऽव्यक्तयोनये ।।५।।

अन्वयः— विज्ञानवीर्याय, मायया इदम् उपेयुषे गृहीतगुणभेदाय नमः अव्यक्तयोनये ते नमस्ते ।।५।।

अनुवाद— हे विज्ञान के बल से सम्पन्न ! माया के द्वारा इस चतुर्मुख रूप को धारण करने वाले तथा अपनी इच्छा से ही इस रजोगुण को धारण किए हैं अतएव आपको नमस्कार है । हे अव्यक्तयोनि आपको नमस्कार है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

विज्ञानं वीर्यं बलं यस्य । इदं ब्रह्मदेहमुपेयुषे प्राप्तवते । गृहीतो गुणभेदो रजोगुणो येन । व्यक्तस्य प्रपञ्चस्य योनये कारणाय । न व्यक्ता केनापि प्रमाणेन विज्ञाता योनिर्यस्येति वा ।।५।।

भाव प्रकाशिका

देवताओं ने कहा कि विज्ञान ही आपका बल है आपने अपनी माया से ही इस ब्रह्मा के शरीर को धारण किया है । आपने अपनी इच्छा से ही रजोगुण को धारण किया है । आप इस जगत् के कारण हैं । अथवा कोई भी आपके कारण को किसी प्रमाण के द्वारा नहीं जान सकता है । व्यक्तयोनये पाठ मानने पर जगत् के कारण अर्थ होगा और अव्यक्तयोनये पाठ मानने पर निष्कारण अर्थ होगा ।।५।।

भावयन्त्यात्मभावनम् । आत्मनि प्रोतभुवनं परं
जितश्वासेन्द्रियात्मनाम् । लब्धयुष्मत्प्रसादानां न

नन्यभावेन, आत्मभावनम् आत्मनि प्रोक्तभुवनं सदसदात्मकम् प
ष्मत् प्रसादानां तेषां कुतश्चित् परा भवो न ।।६–७।।

। अनन्य भाव से समस्त जीवों के उत्पत्ति स्थान जिनमें सम्पृ
। प्रपञ्च जिनका शरीर है, और वस्तुतः उन सबों से परे
जाता है, वे अपने श्वास इन्द्रिय और मन को अपने वश में
, ऐसे लोगों का कहीं भी पराभव नहीं होता है ।।६-७।।

भावार्थ दीपिका

दुःखमनुभवन्तो निष्कामभक्तान् स्तुवन्त आहुर्द्वाभ्याम् । ये त्वा
ीवान्भावयतीति तथा । स्वस्मिन्प्रोतानि ग्रथितानि भुवनानि येन । चे
कारणरूपं वस्तुतस्ताभ्यां परम् । जितः श्वास इन्द्रियाण्यात्मा मनः
ैस्तेषाम् ।।६–७।।

भाव प्रकाशिका

कारण दुःख का अनुभव नही करने वाले तथा निष्काम
यादि जो लोग निष्काम भाव से भक्ति पूर्वक आपका ध्यान
यह सारा भुवन ग्रथित (स्थित) है । चेतनाचेतनात्मक सम्पू
योंकि कार्यकारण रूप जगत् से आप वस्तुतः परे हैं । वे लो
लिए रहते हैं । अतएव उनका योग सुपक्व हो जाता है;
।६-७।।

गावस्तन्त्येव यन्त्रिताः । हरन्ति बलिमायत्तास्तस्मै

ाचा गावः तन्त्या इव सर्वा प्रजाः आयत्ताः बलिम् हरन्ति तस्मै

। वेदवाणी से सारी प्रजा उसी तरह से जकड़ी हुयी है,
रहने वाली सारी प्रजायें कर्मानुष्ठान के द्वारा आपको बलि
ापको नमस्कार है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

लेशिन इत्याहुः–यस्येति । तन्त्या दामन्या आयत्ता अधीनाः । मु
क्तन्तिर्नामानि दामानि' इत्यादिः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

वे तो कर्मों के चक्र में फँसे हुए सदैव कष्ट का अनुभव
श्लोक का तन्ती शब्द रस्सी का वाचक है । आयत्त शब्द
है । सकाम कर्म करने वाली प्रजा सदा आपके अधीन रह
तरह प्राण सभी प्राणों में मुख्य है, उसी तरह आप भी सब
ापको नमस्कार है । श्रुति भी कहती है- **तस्य वाक्तन्ति ना**
रस्सी है और नाम ही पगहा है ।।८।।

स त्वं विधत्स्व शं भूमंस्तमसा लुप्तकर्मणाम् । अदभ्रदयया दृष्टा आपन्नानर्हसभीक्षितुम् ॥९॥

अन्वयः— तमसा लुप्तकर्मणाम् हे भूमन् सत्वं शं विधत्स्व अदभ्रदयया दृष्ट्या आपन्नान् ईक्षितुम् अर्हसि ॥९॥

अनुवाद— इस अन्धकार के कारण दिन और रात का विभाग नहीं हो पाने के कारण कर्मों का लोप होता जा रहा है, इसके कारण वे सारी प्रजाएँ दुःखी हो रही हैं । आप उन सबों का कल्याण कीजिये और अपनी अपार दयादृष्टि से इन शरणागतों को देखिए ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तमसा अहोरात्रविभागाभावेन लुप्तानि कर्माणि येषाम् । आपन्नानापद्गतानस्मान् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं ने ब्रह्माजी से निवेदित किया कि अन्धकार के कारण यह पता ही नहीं चलता है कि कब दिन हुआ और कब रात हुयी । उसके कारण उन प्रजाओं के सारे कर्मों का लोप होता जा रहा है । उसके कारण हम सभी प्रजायें आपत्तिग्रस्त हो गयी हैं । आप हमलोगों का कल्याण कीजिये ॥९॥

एष देव दितेर्गर्भ ओजः काश्यपमर्पितम् । दिशस्तिमिरयन्सर्वा वर्धतेऽग्निरिवैधसि ॥१०॥

अन्वयः— हे देव ! काश्यपम् अर्पितम् ओजः एषः दितेः गर्भः सर्वाः दिशः तिमिरयन् एधसि अग्निरिव वर्धते॥१०॥

अनुवाद— महर्षि क़श्यप के द्वारा निक्षिप्त वीर्य ही यह दिति का गर्भ है वही सम्पूर्ण दिशाओं को अन्धकारमय बनाते हुए उसी तरह बढ रहा है जिस तरह इन्धन में पड़ी हुयी अग्नि बढ़ती रहती हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

आपत्कारणमाहुः । एष गर्भः तस्य विशेषणम् । अर्पितं निक्षिप्तं काश्यपमोजो वीर्यम् । दिशस्तिमिरयन् तमोव्याप्ताः कुर्वन् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

विपत्ति के कारण को बतलाते हुए देवताओं ने कहा— महर्षि कश्यप ने जो दिति के गर्भ में अपने वीर्य का आधान किया वह दिति का गर्भ बन गया है । वही सभी दिशाओं को अन्धकार व्याप्त सा बनाते हुए उसी तरह बढ़ रहा है जैसे इन्धन में पड़ी हुयी अग्नि बढ़ती रहती हैं ॥१०॥

मैत्रेय उवाच

स प्रहस्य महाबाहो भगवान् शब्दगोचरः । प्रत्याचष्टात्मभूर्देवान् प्रीणन् रुचिरया गिरा ॥११॥

अन्वयः— महाबाहो शब्दगोचरः स भगवान् आत्मभूः प्रहस्य देवान् रुचिरया गिरा प्रीणन् प्रत्याचष्ट ॥११॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे महाबाहो ! विदुरजी देवताओं की प्रार्थना को सुनकर आत्मभू ब्रह्माजी ने जोर से हंसकर अपनी मधुरवाणी से प्रसन्न करते हुए कहे ॥११॥

भावार्थ दीपिका

दितेः कुचेष्टितं ज्ञात्वा प्रहस्य देवानां ये शब्दा विज्ञप्तिवाक्यानि तेषां गोचरो विषयभूतः प्रत्यभाषत ॥११॥

भाव प्रकाशिका

दिति की निन्दित चेष्टाओं को जानकर ब्रह्माजी जोर से हँसे और देवताओं की प्रार्थना के विषयभूत ब्रह्माजी ने उनकी प्रार्थना को सुनकर कहा ॥११॥

ब्रह्मोवाच

मानसा मे सुता युष्मत्पूर्वजाः सनकादयः । चेरुर्विहायसा लोकाँल्लोकेषु विगतस्पृहाः ॥१२॥

अन्वयः— मे मानसाः सुताः सनकादयः युष्मत् पूर्वजाः लोकेषु विगतस्पृहाः विहायसा लोकान् चेरुः ॥१२॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— मेरे मानस पुत्र सनकादि (सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार) हैं । वे तुमलोगों से पहले ही उत्पन्न हुए थे । उन लोगों की लोक में किसी भी प्रकार की स्पृहा नहीं है । वे एक बार आकाश मार्ग से लोकों में विचरण कर रहे थे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

युष्मत्सकाशात्पूर्वं जाताः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

सनकादि महर्षिगण सभी देवताओं से पहले उत्पन्न हुए हैं । वे सदा निःस्पृह रहने वाले हैं किसी भी लोक को प्राप्त करने की इच्छा नहीं करते है । निवृत्तिमार्गी हैं । वे सभी एक बार आकाश मार्ग से तत्-तत् लोकों में अपनी इच्छानुसार विचरण कर रहे थे ॥१२॥

त एकदा भगवतो वैकुण्ठस्यामलात्मनः । ययुर्वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥१३॥

अन्वयः— वे एकदा अमलात्मनः भगवतः वैकुण्ठस्य सर्वलोकनमस्कृतम् वैकुण्ठनिलयं ययुः ॥१३॥

अनुवाद— वे एक बार भगवान् विष्णु के शुद्ध सत्त्वगुण मय समस्त लोकों द्वारा नमस्कृत वैकुण्ठ धाम में गये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

वैकुण्ठाख्यं लोकं ययुः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त चारो सनकादि महर्षिगण भगवान् विष्णु के वैकुण्ठ नामक नगर में गये ॥१३॥

वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठमूर्तयः । येऽनिमित्तनिमित्तेन धर्मेणाराधयन्हरिम् ॥१४॥

अन्वयः— यत्र सर्वे पुरुषाः वैकुण्ठमूर्तयः वसन्ति, ये अनिमित्त निमित्तेन धर्मेण हरिम् अराधयन् वर्तन्ते ॥१४॥

अनुवाद— वहाँ पर भगवान् विष्णु के ही समान शरीर वाले होकर सभी जीव रहते हैं तथा जो निष्काम धर्म के द्वारा श्रीहरि की आराधना करते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तं वर्णयति-वसन्तीत्यादिद्वादशभिः । वैकुण्ठस्य हरेरिव मूर्तिर्येषां ते । निमित्तं फलं न निमित्तं प्रवर्तकं यस्मिन् । निष्कामेन धर्मेणेत्यर्थः । आराधयन् आराधितवन्तः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

वसन्ति इत्यादि बारह श्लोकों के द्वारा श्रीवैकुण्ठ लोक का वर्णन किया गया है । वैकुण्ठ लोक में रहने वाले सभी जीवों का शरीर श्रीहरि के ही आकार का होता है । वे सभी जीव निष्काम धर्म के द्वारा श्रीहरि की आराधना करते रहते हैं अनिमित्तनिमित्त का विग्रह है । **न निमित्तं फलं निमित्तं प्रवर्तकं यस्मिन् तेन,** अर्थात् जिस धर्म को किसी फल की प्राप्ति की इच्छा से नहीं किया जाता है । अर्थात् निष्काम धर्म ॥१४॥

यत्र चाद्यः पुमानास्ते भगवान् शब्दगोचरः । सत्त्वं विष्टभ्य विरजं स्वानां नो मृडयन्वृषः ॥१५॥

अन्वयः— यत्र शब्दगोचरः आद्यः पुमान् भगवान् विष्णु सत्त्वंविष्टभ्य स्वानां वृषः मृडयन् आस्ते ॥१५॥

अनुवाद— वहाँ पर वेदान्त प्रतिपाद्य आद्य पुरुष धर्ममूर्ति भगवान् नारायण रजोगुण रहित शुद्धसत्त्वमय शरीर धारण करके अपने भक्तों को सुख देने के लिए सदा विराजमान रहते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

यत्रेति । शब्दगोचरो वेदान्तैकवेद्यः । विरजं सत्त्वमूर्तिं विष्टभ्य धृत्वा । वृषो धर्ममूर्तिः । स्वानां स्वान् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

उस लोक में आदि पुरुष भगवान् अपने भक्तों को सुख देने के लिए सदा विराजमान रहते हैं । वे भगवान् वेदान्तैकवेद्य हैं शुद्धसात्त्विक शरीर को धारण करके रहते हैं । वृष शब्द से श्रीभगवान् को धर्ममूर्ति बतलाया गया है ॥१५॥

यत्र नैःश्रेयसं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः । सर्वर्तुश्रीभिर्विभ्राजत्कैवल्यमिव मूर्तिमत् ॥१६॥

अन्वयः— यत्र कैवल्यम् इव मूर्तिम, सर्वकामदुघैः द्रुमैः सर्वर्तु श्रीभिः विभ्राजत् नैः श्रयेसं नाम वनम् ॥१६॥

अनुवाद— उस वैकुण्ठ लोक में मूर्तिमान कैवल्य के समान, सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले वृक्षों से युक्त तथा सभी ऋतुओं की शोभा से सुशोभित नैःश्रेयस् नामक वन है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तत्रत्यं वनं विशिनष्टि-यत्रेति चतुर्भिः । सर्वेष्वप्यृतुषु श्रीः पुष्पादिसंपद्येषां तैः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

यत्र इत्यादि चार श्लोकों के द्वारा वैकुण्ठ लोक में विद्यमान वन का वर्णन किया गया है । उस वन का नाम निःश्रेयस् है । उस वन में सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले वृक्ष विद्यमान है । वहाँ पर सभी ऋतुओं के पुष्पादि की शोभा सदा बनी रहती है । वह मूर्तिमान कैवल्य के समान है ॥१६॥

वैमानिकाः सललनाश्चरितानि यत्र गायन्ति लोकशमलक्षपणानि भर्तुः ।
अन्तर्जलेऽनुविकसन्मधुमाधवीनां गन्धेन खण्डितधियोऽप्यनिलं क्षिपन्तः ॥१७॥

अन्वयः— अन्तर्जले अनुविकसन् मधुमाधवीनां गन्धेन खण्डितधियः अपि अनिलं क्षिपन्तः सललनाः वैमानिकाः लोकशमलक्षपणानि भर्तुः चरितानि गायन्ति ॥१७॥

अनुवाद— उस वन में सरोवरों में खिली हुयी मकरन्दपूर्ण वासन्तिक माधवीलता की सुमुधर गन्ध जब चित्त को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहती है तो उस वायुका तिरस्कार करके अपनी पत्नियों के साथ गन्धर्वगण लोगों के सम्पूर्ण पापों को प्रणष्ट करने वाले श्रीभगवान् के चरित का ही गायन करते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

चरितानि चरित्राणि । भर्तुः प्रभोः । अनुविकसन्त्यो मधु मकरन्दस्तद्युक्ता माधव्यो वासन्त्यो लताः । यद्वा अनुविकसन्मधवः प्रसरन्मकरन्दा माधव्यो मधुकालीनाः सुमनसस्तासां गन्धेन खण्डिता विघ्निता धीर्येषां तेऽपि तद्गन्धप्रापकमनिलं क्षिपन्तस्तिरस्कुर्वन्तो गायन्ति । अनेन भगवत्पार्षदानां निरतिशयविषयसुखेऽपि भगवद्भजनानन्दासक्तिर्दर्शिता ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

चरित शब्द चरित्र का बोधक है । भर्तुः शब्द से श्रीभगवान् को कहा गया है । **अनुविकसन् इत्यादि** पद्यांश

का अर्थ है कि विकसित होने वाले मधु पराग से युक्त जो वासन्तिक लताएँ, अथवा फैलने वाले वसन्त कालीन पुष्पों के परागों की सुगन्धि से युक्त वायु के द्वारा उनके चित्त के विचलित किए जाने पर वायु की ओर ध्यान न देकर गन्धर्वगण अपनी पत्नियों के साथ लोकपापप्रणाशक चरितों का गान करते रहते हैं। इसके द्वारा यह बतलाया गया है कि निस्सीम विषय सुख के रहने पर भी भगवान के पार्षदों की श्रीभगवान् के भजन में आसक्ति बनी रहती है।।१७।।

पारावतान्यभृतसारसचक्रवाकदात्यूहहंसशुकतित्तिरिबर्हिणां यः ।
कोलाहलो विरमतेऽचिरमात्रमुच्चैर्भृङ्गाधिपे हरिकथामिव गायमाने ।।१८।।

अन्वयः— भृङ्गाधिपे उच्चैः हरिकथामिव गायमाने पारावत-अन्यभृत-सारस-चक्रवाक-दात्यूह-हंस-शुक-तित्तिर-बर्हिणाम् यः कोलाहलः अचिरमात्रम् विरमते ।।१८।।

अनुवाद— जिस समय भ्रमरराज ज़ोर से गुञ्जार करते हुए मानों श्रीहरि की कथा का गान करते हैं, उस समय थोड़ी देर के लिए कबूत्तर कोयल, सारस चकवा, पपीहा, हंस, शुकपक्षी, तित्तिर तथा मयूर आदि पक्षियों की ध्वनि रुक सी जाती है मानों वे भी उस कीर्तनानन्द में बेसुध हो जाते हैं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

अन्यभृताः कोकिलाः । दात्यूहचातकः । अचिरमात्रं क्षणमात्रं विरमति । अनेन तत्रत्यपक्षिणामपि हरिकथाश्रवणादिपरमानन्दो दर्शितः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

अन्यभृत कोयल को कहते हैं । दात्यूह का अर्थ चातक है । अचिरमात्रम् का अर्थ है क्षणभर के लिए । इसके द्वारा यह बतलाया गया है कि वहाँ के पक्षीगण को भी श्रीहरि की कथा सुनने में परमानन्द की प्राप्ति होती है ।।१८।।

मन्दारकुन्दकुरबोत्पलचम्पकार्णपुन्नागनागबकुलाम्बुजपारिजाताः ।
गन्धेऽर्चिते तुलसिकाभरणेन तस्या यस्मिंस्तपः सुमनसो बहु मानयन्ति ।।१९।।

अन्वयः— तुलसिकागन्धेन गन्धे अर्चिते सति यस्मिन् वने मन्दार-कुन्द-कुरब-उत्पल-चम्पक-अर्ण-पुन्नाग-बकुल अम्बुज-पारिजाता सुमनसः तस्याः तपः बहु मानयन्ति ।।१९।।

अनुवाद— जब श्रीभगवान् अपने को तुलसी के अलङ्कार से सजाते हैं और तुलसी की सुगन्धि का समादर करते हैं तो उस वन में विद्यमान मन्दार, कुन्द, कुरबक (तिलकवृक्ष) उत्पल (रात्रि में खिलने वाला कमल) कमल, चम्पक, अर्ण, पुन्नाग, नाग केसर बकुल, अम्बुज (दिन में खिलने वाला कमल) और पारिजात आदि पुष्प तुलसी के ही तप का अधिक महत्त्व मानते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

मन्दारपारिजातौ सुरतरुविशेषौ, कुरवस्तिलकवृक्षः, उत्पलं रात्रिविकासि, अम्बुजं दिनविकासि, नागो नागकेसरः, एताः सुमनसः पुष्पजातयः सुगन्धा अपि तुलसिकाभरणेन श्रीहरिणा तुलस्या गन्धेऽर्चिते सति यस्मिन्वने तस्यास्तपो बहु मानयन्ति। अनेन तत्रस्था गुणग्राहिण एव न मत्सरिण इत्युक्तम् । एवंभूतं वनं यत्र तद्वैकुण्ठं ययुरिति पूर्वेणान्वयः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

मन्दार और पारिजात ये दोनों वृक्ष विशेष हैं । तिलक वृक्ष को कुरव कहते हैं । रात्रि में विकसित होने वाले कमल को उत्पल कहते हैं । दिन में विकसित होने वाले कमल को अम्बुज कहते हैं । नाग केसर का ही

नाम नाग है । इन सभी पुष्पों की जातियाँ सुगन्धित हैं । फिर भी श्रीहरि तुलसी के आभरण से अपने को सजाते हैं और तुलसी के द्वारा ही उनकी अर्चना की जाती है । यह देखकर उस वन के पुष्प तुलसी की ही तपस्या को बहुत मानते हैं । इस कथन से उस वन के स्थावरों को भी गुणग्राही बतलाया गया है ईर्ष्यालु नहीं बतलाया गया है । इस प्रकार का जहाँ पर वन है उस वैकुण्ठ में सनकादि महर्षिगण गये यह पहले श्लोक से अन्वय है ॥१९॥

यत्संकुलं हरिपदानतिमात्रदृष्टैर्वैदूर्यमारकतहेममयैर्विमानैः ।
येषां बृहत्कटितटाः स्मितशोभिमुख्यः कृष्णात्मनां न रज आदधुरुत्स्मयाद्यैः ॥२०॥

अन्वयः— हरिपदानतिमात्रदृष्टैः वैदूर्यमारकतहेममयैः विमानैः यत् संकुलम् । येषां कृष्णात्मनां बृहत्कटितटाः स्मितशोभिमुख्यः उत्स्मयाद्यैः रजः न आदधुः ॥२०॥

अनुवाद— श्रीहरि के चरण कमलों में भक्ति पूर्वक नमस्कार करने मात्र से प्राप्त होने वाले, वैदूर्य, मरकतमणि तथा सुवर्णमय विमानों से जो वैकुण्ठ भरा हुआ है । श्रीभगवान् में ही जिनका मन सदा लगा रहता है, उन भगवद् भक्तों के मन में, बड़े-बड़े नितम्बों वाली तथा मुसकान से मानोहर मुखवाली सुन्दरियाँ अपने हास-परिहास के द्वारा काम के विकार को नहीं उत्पन्न कर पाती हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

पुनर्वैकुण्ठमेव विशिनष्टि । यत्संकुलं व्याप्तं भवति । कैः । हरिपदयोरानतिः प्रणामस्तावन्मात्रेण दृष्टैर्भक्तानां विमानैर्न कर्मादिप्राप्यैर्वैदूर्यमारकतैर्हेममयैश्च विमानैः । बृहन्ति कटितटानि यासाम् । स्मितशोभीनि मुखानि यासां ता अपि । कृष्णे आत्मा येषाम् रजःकाममुत्स्मयाद्यैः परिहासादिभिर्न आदधुर्न जनयामासुः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी पुनः वैकुण्ठ की ही विशेषता बतलाते हैं । श्रीभगवान् के चरण कमलों में प्रणाम करने मात्र से ही प्राप्त होने वाले कर्मादिकों से नहीं, वैदूर्य, मरकतमणि तथा सुवर्णमय भक्तों के विमानों से जो वैकुण्ठ लोक भरा हुआ है । उन विमानों में रहने वाले भगवत्प्राण भक्तों के मन में विशाल नितम्बों वाली तथा मुस्कान से मनोहर मुख वाली सुन्दरियाँ अपने हास-परिहास के द्वारा काम के विकार को नहीं उत्पन्न कर पाती हैं ऐसे वैकुण्ठ लोक में वे सनकादि महर्षिगण गयें ॥२०॥

श्रीरूपिणी क्वणयती चरणारविन्दं लीलाम्बुजेन हरिसद्मनि मुक्तदोषा ।
सँल्लक्ष्यते स्फटिककुड्य उपेतहेम्नि संमार्जतीव यदनुग्रहणेऽन्ययत्नः ॥२१॥

अन्वयः— यदनुग्रहणे अन्य यत्नः तादृशी श्री रूपिणी हरिसद्मानि मुक्तदोषा चरणारविन्दं क्वणयन्ती, लीलाम्बुजेन, स्फटिक कुडये उपेतहेम्नि सम्मार्जतीव ॥२१॥

अनुवाद— जिनकी कृपा प्राप्त करने के लिए देवगण प्रयत्नशील रहा करते हैं वे परम सौन्दर्य शालिनी श्रीलक्ष्मीजी श्रीहरि के गृह में अपनी चञ्चलता रूपी दोष को त्यागकर निवास करती हैं । वे अपने चरणों के नूपुर का झनकार करती हुए अपने लीला कमल को जब घुमाती हैं, उस समय सुवर्ण से युक्त स्फटिक मणि की दिवारों में प्रतिबिम्बित होती हुयी लगता है कि जैसे वे श्रीहरि कें गृह को झाड़ रही हों ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

श्रीर्लक्ष्मीः रूपिणी मनोहरमूर्तिधारिणी सती श्रीहरेः सद्मनि संमार्जनं कुर्वतीव यस्मिन् लोके सँल्लक्ष्यते । चरणारविन्दं क्वणयती नूपुरेण शब्दयन्ती । मुक्तो दोषश्चाञ्चल्यं यया । यद्वा मुक्तेन दोषा प्रसारितेन बाहुना । कीदृशे सद्मनि । स्फटिकमयानि कुड्यानि यस्मिन् । मध्ये मध्ये च शोभार्थमुपेतं संयुक्तं हेम यस्मिन् । यस्या अनुग्रहेण श्रीरनुग्रहं करोत्वित्येतदर्थमन्येषां

ब्रह्मादीनां यत्नः सा । अयं भावः-यद्यपि तत्र रजो नास्त्येव तथापि स्वर्णपट्टिकावच्छिन्नभित्तिभागेषु बहुधा प्रतिबिम्बिता सती लीलाम्बुजं भ्रामयन्ती विनयभक्तिभ्यां तथा लक्ष्यते इति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

जिस वैकुण्ठ लोक में मनोहर शरीर धारण की हुयी लक्ष्मीजी श्रीहरि के गृह में झाड़ू लगाती हुयी सी प्रतीत होती हैं। वे अपने पैरों के नूपुर की झनकार करती हुयी, तथा अपने चाञ्चल्य नामक दोष का परित्याग करके, अथवा मुक्तदोषा पद का यह अर्थ है कि वे अपनी फैलायी हुयी भुजाओं से जब अपने लीला कमल को घुमाती हैं। तब जिनके बीच-बीच में शोभा के लिए सुवर्ण जटित है, ऐसे स्फटिक मणि से निर्मित दिवालों में प्रतिबिम्बित होती हैं तो लगता है कि वे भक्तिपूर्वक श्रीहरि के गृह को झाड़ रही हैं। ये वे ही लक्ष्मीजी हैं जिनकी कृपा प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा आदि देवगण प्रयत्नशील रहा करते हैं। **अयंभावः**- कहने का अभिप्राय है कि यद्यपि वैकुण्ठ लोक में धूलि नामक वस्तु है ही नहीं फिर भी स्वर्ण पट्टिका से जटित दिवार के भागों में अनेक बार वे प्रतिबिम्बित जब होती हैं और लीला कमल को घुमाती हैं तो लगता है कि वे विनय और भक्ति से भरकर श्रीहरि के गृह को जैसे झाड़ रही हों ॥२१॥

वापीषु विद्रुमतटास्वमलामृताप्सु प्रेष्यान्विता निजवने तुलसीभिरीशम् ।
अभ्यर्चती स्वलकमुन्नसमीक्ष्य वक्त्रमुच्छेषितं भगवतेत्यमताङ्ग यच्छ्रीः ॥२२॥

अन्वयः— हे अङ्ग यत् श्री निजवने प्रेष्यान्विता तुलसीभिः ईशम् अभ्यर्चती विद्रुमतटासु अमलामृताप्सु स्वलकम् उन्नसम् वक्त्रम् ईक्ष्य भगवता ऊच्छेषितम् इति अमत ॥२२॥

अनुवाद— हे देवताओं, जिस लोक में, लक्ष्मीजी अपनी दासियों के साथ तुलसी दल से श्रीभगवान् की अर्चना करती हैं, जिनके घाट मूंगों से बने हैं तथा जिनमें अमृत के समान स्वच्छ जल भरा है। ऐसी वावलियों में प्रतिविम्बित सुन्दर केशों और ऊँची नाक से युक्त अपने मुख को जब वे देखती हैं तो इसका श्रीभगवान् ने चुम्बन किया है यह सोचकर उसका बहुत अधिक समादर करती हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अङ्ग हे देवाः, यद्यस्मिँल्लोके श्रीरेवं अमत अमंस्त मेने। किं कुर्वती। विद्रुममयानि तटानि यासाम्। अमला अमृततुल्या आपो यासां तासु वापीषु निजवने लक्ष्मीवने परिचारिकाभिरन्विता तुलसीभिः श्रीविष्णुं पूजयन्ती। तदोदके प्रतिबिम्बितं शोभनालकयुक्तमुत्कृष्टनासिकायुक्तं च स्ववक्त्रं वीक्ष्य भगवता उच्छेषितं चुम्बितमित्यमन्यत। अनेन लक्ष्म्या अपि सौभाग्यसुखं भगवदनुग्रहेणैवेति द्योतितम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे देवताओं जिस वैकुण्ठ लोक में दासियों के साथ अपने वन में लक्ष्मीजी तुलसीदल से श्रीभगवान् की अर्चना करती हुयी जिसके तट विद्रुमों से बने हैं तथा जिनमें अमृत के समान स्वच्छ जल भरा है ऐसी बावलियों में सुन्दरकेश कलाप तथा उन्नत नासिका से युक्त अपने मुख को प्रतिम्बित देखकर उसका इसलिए बहुत अधिक समादर करती हैं कि मेरे इस मुख का श्रीभगवान् ने चुम्बन किया है। इस कथन के द्वारा यह सूचित किया गया है कि श्रीलक्ष्मीजी का सौभाग्य सुख भी श्रीभगवान् की कृपा के ही कारण है ॥२२॥

यन्न व्रजन्त्यघभिदो रचनानुवादाच्छृण्वन्ति येऽन्यविषयाः कुकथा मतिघ्नीः ।
यास्तु श्रुता हतभगैर्नृभिरात्तसारास्तांस्तान्क्षिपन्त्यशरणेषु तमःसु हन्त ॥२३॥

अन्वयः— ये अघभिद रचनानुवादात् न व्रजन्ति, ये अन्यविषया मतिध्नीः कुकथाः शृण्वन्ति, या तु श्रुता हतभगैः नृभिः आत्तसाराः तान् अशरणेषु तमस्सु क्षिपन्ति ॥२३॥

अनुवाद— जो लोग श्रीभगवान् की पापविनाशिका सृष्ट्यादिविषयिणी कथाओं को नहीं सुनकर उनसे भिन्न अर्थ और काम विषयिणी कथाओं को, जो बुद्धि को विनष्ट करने वाली हैं उनको सुनते है वे वैकुण्ठ लोक में नहीं जाते हैं। वे कथायें; सुनने वालों के पुण्य को विनष्ट कर देती हैं और उन सबों को आश्रयहीन नरकों में डाल देती हैं यह शोक का विषय हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

पुनः कथंभूतं तत् । यद्वैकुण्ठं न व्रजन्ति । के ये कुकथाः शृण्वन्ति । कास्ताः । अघं भिनत्तीत्यघभित् तस्य हरेः रचना सृष्ट्यादिलीला तस्या अनुवादादन्यविषया अर्थकामादिवार्ता मतिभ्रंशिकाः । तेषामव्रजने हेतुः–यास्तु हतभाग्यैर्नरैः श्रुताः सत्यस्तांस्तान् श्रोतॄनशरणेषु निराश्रयेषु तमःसु नरकेषु क्षिपन्ति । हन्त खेदे । कथंभूताः । आत्तः सारः श्रोतॄणां पुण्यं याभिस्ताः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि वह वैकुण्ठ लोक कैसा है ? जिसमें लोग नहीं जा सकते हैं। जो लोग पापविनाशिका श्रीभगवान् की सृष्ट्यादि की लीलाओं से सम्बन्धित कथाओं को नहीं सुनकर उनसे भिन्न बुद्धि को विनष्ट करने वाली अर्थ और काम विषयिणी कथाओं को सुनते हैं। उन लोगों के वैकुण्ठलोक में नहीं जाने का कारण है कि वे अर्थ और काम सम्बन्धी कथाएँ वे उनको सुनने वाले लोगों के पुण्यों को ले लेती है और उन जीवों को आश्रय रहित घोर नरकों में डाल देती हैं ॥२३॥

येऽभ्यर्थितामपि च नो नृगतिं प्रपन्ना ज्ञानं च तत्त्वविषयं सहधर्म यत्र ।
नाराधनं भगवतो वितरन्त्यमुष्य संमोहिता विततया बत मायया ते ॥२४॥

अन्वयः— या नः अभ्यर्थिताम् अपि नृगतिं प्रपन्नाः यत्र च धर्म सह तत्त्वविषयं ज्ञानं ये तत्र अमुष्य भगवतः आराधनं न वितरन्ति ते बत विततया मायया मोहिताः ॥२४॥

अनुवाद— जिस मनुष्य योनि को हम देवलोग भी प्राप्त करना चाहते हैं, उस मनुष्य योनि को प्राप्त करके जो लोग श्रीभगवान् की आराधना नहीं करते हैं, क्योंकि मनुष्य योनि में ही धर्म के साथ-साथ तत्त्व की प्राप्ति होती है, वे लोग श्रीभगवान् की फैली हुयी माया के द्वारा मोहित हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गात्तान् शोचन्ति । नोऽस्माभिर्ब्रह्मादिभिरप्यभ्यर्थितां नृगतिं मनुष्यजातिं प्रपन्नाः प्राप्ताः सन्तोऽपि हरेराराधनं न कुर्वन्ति । कीदृशीं नृगतिम् । यत्र यस्यां धर्मसहितं तत्त्वज्ञानं भवति । तदुभयसाधकत्वात्तस्याः । तेऽमुष्य भगवतो विस्तृतया मायया ननु संमोहिताः । वतेति खेदे । यदि वैवं संबन्धः । केवलं त एव न व्रजन्ति, किंतु ये भगवदाराधनं न कुर्वन्ति तेऽपि तेषां मायामोहितत्वादिति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्गवशात् देवगण उन हतभाग मनुष्यों के विषय में खेद प्रकट करते हुए कहते हैं। जिस मनुष्य योनि

यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृषाभानुवृत्त्या दूरे मया ह्युपरि नः स्पृहण
भर्तुर्मिथः सुयशसः कथानानुरागवैक्लव्यबाष्पकलया पुलक

अन्वयः— यच्च नः उपरि हि अनिमिषाम् ऋषभानुवृत्त्या यमाः दूरे व्रजन्ति स्पृह कथनानुरागवैक्लव्य वाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः ते तत्र व्रजन्ति ।।१५।।

अनुवाद— हमलोगों से ऊपर वैकुण्ठ लोक में रहने वाले देवाग्रगण्य श्रीभगवा के कारण जिनसे यमराज दूर रहते हैं । ऐसे स्पृहणीय शील स्वभाव वाले महात्मग पर अनुराग वशात् जिनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती हैं और उनके शरीर परम भागवत ही श्रीभगवान् के उस वैकुण्ठ लोक में जाते हैं ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

पुनः कथंभूतम् । यच्च नः उपरि स्थितं व्रजन्ति । के । अनिमिषां देवानामृषभः श्रेष्ठो ह यद्वा दूरीकृतयमनियमाः । पाठान्तरे दूरीकृताहंकारा इत्यर्थः । स्पृहणीयं करुणादि शीलं येषाम मिथः कथने योऽनुरागस्तेन वैक्लव्यं वैवश्यं तेन वाष्पकला तया सह पुलकीकृतमङ्गं येष विशेषणम् । निरहंकारत्वादस्मत्तेऽपि येऽधिकास्ते यद्‍ब्रजन्तीत्यर्थः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

पुनः वह वैकुण्ठ लोक कैसा है ? जो हमलोगों से ऊपर स्थित है तथा जिसमें है कि कौन लोग जाते हैं ? तो इसका उत्तर है कि सभी देवताओं में श्रेष्ठ श्रीहरि कारण जिनसे यमराज सदा दूर रहा करते हैं । अथवा जिन लोगों ने यम नियम आ कर दिया हो । जहाँ **दूरेयमा उपरि** पाठ है वहाँ पर अर्थ होगा कि जिन लोगों ने अह तथा जिन लोगों का शील स्वभाव अत्यन्त स्पृहणीय है, तथा परस्पर में श्रीहरि की सु समय अनुरागातिरेक के कारण जिनकी आँखों से आँसू की धारा प्रवाहित होने लगती है शरीर में रोमाञ्च हो जाता है । वे महाभागवत अहङ्कार रहित होने के कारण हमलोगों से लोक में जाते हैं । यह अर्थ उपरिअव्ययव्रजता का विशेषण मानने पर होगा ।।२५।

तद्विश्वगुवधिकृतं भुवनैकवन्द्यं दिव्यं विचित्रविबुधाग्र्यविमानश
आपुः परां मुदमपूर्वमुपेत्य योगमायाबलेन मुनयस्तदथो विकु

अन्वयः— अथो मुनयः योगमायाबलेन विश्वगुर्वधिकृतम् भुवनैकवन्द्यम् दिव्यं विचि अपूर्वं विकुण्ठम् उपेत्य परां मुदम् आपुः ।।२६।।

अनुवाद— उसके पश्चात् वे सनाकादि मुनिगण अपने योग के बल से जगद्‌गुरु सम्पूर्ण लोकों के वन्दनीय दिव्य तथा विचित्र श्रेष्ठ देवताओं के विमानों से विभूषित जब पहुँचे तो उन्हें परमानन्द की प्राप्ति हुयी ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

तत्तदा तदपूर्वं विकुण्ठं अथो अनन्तरमुपेत्य मुनयः परामुत्कृष्टां मुदमापुः । हरिणाऽधिकृतमधिष्ठितम् । भुवनानामेकमेव वन्द्यम् । दिव्यमलौकिकम् । विचित्राणि विबुधाग्र्याणां वि योगमायाबलेनेति अष्टाङ्गयोगप्रभावेणोपेत्य परमेश्वरे तु योगमायेति चिच्छक्तिविलास इति द्रष्ट

भाव प्रकाशिका

उस समय उस अपूर्व वैकुण्ठ लोक में जाकर उन सनकादि महर्षियों को अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के आनन्द की प्राप्ति हुयी । इस श्लोक में वैकुण्ठ के अपूर्वत्व के प्रतिपादन में ये सब हेतु उपन्यस्त किए गये है । वह वैकुण्ठ श्रीहरि के द्वारा अधिष्ठित था, वह सभी लोकों के लिए परम वन्दनीय था, उसमें श्रेष्ठ देवताओं के विमानों की कान्ति फैल रही थी । उस लोक में सनकादि महर्षि अपने योगबल से पहुँच गये । परमेश्वर की योगमाया का अर्थ है उनकी चित् शक्ति का विलास ॥२६॥

तस्मिन्नतीत्य मुनयः षडसज्जमानाः कक्षाः समानवयसावथ सप्तमायाम् ।
देवावचक्षत गृहीतगदौ परार्घ्यकेयूरकुण्डलकिरीटविटङ्कवेषौ ॥२७॥

अन्वयः— तस्मिन् असज्जमानाः मुनयः षट्कक्षा अतीत्य अथ सप्तमायाम् समानवयसौ गृहीतगदौ परार्घ्य केयूर कुण्डल किरीट विटङ्कवेषौ देवौ अचक्षत ॥२७॥

अनुवाद— उस वैकुण्ठ की किसी भी वस्तु की दर्शन में आसक्ति नहीं होने के कारण वे मुनिगण छह कक्षाओं को पार करके सातवीं कक्षा में एक समान अवस्था वाले हाथ में गदा लिए हुए, महामूल्यवान् बाजूबन्द कुण्डल, किरीट से अलंकृत सुन्दर वेष वाले दो देवों को देखे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

तस्मिन्वैकुण्ठे षट् कक्षाः प्राकारद्वाराणि । असज्जमानाः भगवद्दर्शनोत्कण्ठया तत्तदद्भुतदर्शन आसक्तिमकुर्वाणाः । द्वारपालौ देवावपश्यन् । समानं वयो ययोः । गृहीते गदे याभ्याम् । परार्ध्यैः केयूरादिभिर्विटङ्कः सुन्दरो वेषो ययोः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

उन मुनियों को श्रीभगवान् के दर्शन की उत्कण्ठा बनी हुयी थी किसी भी अद्भुत वस्तु को देखने की उनमें आसक्ति नहीं थी; अतएव वे छह कक्षाओं के द्वारों को पार करके सातवीं कक्षा में पहुँचकर वहाँ पर उन लोगों ने दो द्वारपालों को देखा । उन दोनों की अवस्था एक समान थी वे अपने हाथ में गदा लिए थे तथा वे अत्यन्त मूल्यवान बाजूबन्द कुण्डल तथा किरीट धारण किए हुए सुन्दर वेष में थे ॥२७॥

मत्तद्विरेफवनमालिकया निवीतौ विन्यस्तयाऽसितचतुष्टयबाहुमध्ये ।
वक्त्रं भ्रुवा कुटिलया स्फुटनिर्गमाभ्यां रक्तेक्षणेन च मनाग्रभसं दधानौ ॥२८॥

अन्वयः— असित चतुष्टय बाहुमध्ये विन्यस्तया मत्तद्विरेफवनमालिकया निवीतौ कुटिलया भ्रुवा स्फुटिनिर्गमाभ्यां रक्तेक्षणेन च मनाग् रभसं वक्त्रं दधानौ अचक्षत ॥२८॥

अनुवाद— श्यामवर्ण की चार भुजाओं के बीच में धारण की गयी, मतवाले भ्रमरों से गुंजरित वनमाला से सुशोभित, टेढी भौंहे तथा फड़कती नासिका छिद्र में अरूण वर्ण के नेत्रों के द्वारा थोड़ी सी क्षोभ के चिह्न से युक्त मुख को धारण किए हुए उन दोनों द्वारपालों को मुनियों ने देखा ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

तावेव वर्णयति । मत्ता द्विरेफा यस्यां तया वनमालया निवीतौ कण्ठलम्बिन्या अलंकृतौ । असिता नीलाश्चतुष्टये चतुःसंख्याका बाहवस्तेषां मध्ये विन्यस्तया । वक्त्रं च मनाग्रभसं किंचित्क्षुब्धं दधानौ स्फुटावुल्फुल्लौ निर्गमौ श्वासमार्गौ नासापुटे ताभ्याम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में उन्हीं दोनों द्वारपालों का वर्णन किया जा रहा है। वे दोनों गले में लटकने वाली वनमाला से अलंकृत थे । और उन वनमालाओं पर मतवाले भौंरे गुनगुना रहे थे । वह वनमाला उन दोनों द्वारपालों की

चारो भुजाओं के बीच में विन्यस्त थी । उनका मुख कुछ क्षुब्ध सा था । उनकी नाकों के छिद्र फड़क रहे थे । ऐसे उन दोनों द्वारपालों को मुनियों ने देखा ।।२८।।

द्वार्येतयोर्निविविशुर्मिषतोरपृष्ट्वा पूर्वा यथा पुरटवज्रकपाटिकायाः ।
सर्वत्र तेऽविषमया मुनयः स्वदृष्ट्या ये संचरन्त्यविहता विगताभिशङ्काः ।।२९।।

अन्वयः— तयोः मिषतोः द्वारि पुरटवज्रकपाटिकायाः पूर्वाः यथा अपृष्ट्वा निविविशुः ते मुनयः अविषमया स्वदृष्ट्या विगताभिशङ्काः अविहता ये सर्वत्र संचरन्ति ।।२९।।

अनुवाद— उन दोनों की आँखों के सामने ही उस द्वार में उसी तरह प्रवेश किए जिस तरह इससे पहले के सुवर्ण और व्रजमय किवाड़ों से युक्त छह कक्षाओं को लाँघकर वे आये थे । उनकी दृष्टि सर्वत्र एक समान थी और वे निःशङ्का होकर सर्वत्र विचरते थे ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

एतयोर्मिषतोः पश्यतोस्तावनादृत्यापृष्ट्वैव याः पूर्वाः षट्-द्वारः । पुरटालंकृतवज्रमय्यः कवाटिका यासु ता यथा विविशुस्तथा सप्तमायामपि द्वारि ते निविविशुः । अप्रश्ने हेतुः-सर्वत्र ये अविहता अनिवारिताः संचरन्ति । निःशङ्कत्वे हेतुः-अविषमया स्वदृष्ट्येति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

वे सभी सनकादि महर्षिगण उन दोनों को देखते ही रहने पर दोनों से पूछे बिना ही जिस तरह से सुवर्णालकृंत वज्रमय किवाड़ों से युक्त छह कक्षाओं को पार करके आये थे उसी प्रकार इस सातवीं कक्षा में प्रवेश कर गये । क्योंकि वे मुनिगण तो समदृष्टि थे अतएव बिना शङ्का के वे सर्वत्र विचरते थे । उन लोगों को कोई भी रोकता नहीं था ।।२९।।

तान्वीक्ष्य वातरशनांश्चतुरः कुमारान्वृद्धान्दशार्धवयसो विदितात्मतत्त्वान् ।
वेत्रेण चास्खलयतामतदर्हणांस्तौ तेजो विहस्य भगवत्प्रतिकूलशीलौ ।।३०।।

अन्वयः— वातरशनान् वृद्धान् दशार्धवयसः विदितात्म तत्त्वान् तान् चतुरः कुमारान् वीक्ष्य अतदर्हणान् तेजोविहस्य भगवतः प्रतिकूलशीलौ तो वेत्रेण च आस्खलयताम् ।।३०।।

अनुवाद— दिगम्बर ब्रह्माजी की सृष्टि में सबसे वृद्ध किन्तु देखने में पाँच वर्ष की अवस्था वाले के समान लगने वाले, तथा तत्त्वज्ञ उन चारो कुमारों को देखकर उन मुनियों के तेज का उपहास करके श्रीभगवान् के प्रतिकूल स्वभाव वाले उन दोनों ने बेंत से रोक दिया यद्यपि वे उस व्यवहार के योग्य नहीं थे ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

वातरशनान्नग्नान्वृद्धानपि पञ्चवर्षबालकवत्प्रतीयमानान् । चकारादाज्ञया च । अस्खलयतां निवारितवन्तौ । न तत्स्खलनमर्हन्तीति तथा तान् । अहो अत्रापि धार्ष्ट्यमित्येवं तेषां तेजो विहस्य । भगवतो ब्रह्मण्यदेवस्य प्रतिकूलं शीलं ययोः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

वे चारो महर्षि नङ्गधडङ्ग थे । वे आयु में सबसे वृद्ध होने पर देखने में पाँच वर्ष के प्रतीत होते थे । उन चारो महर्षियों को उन दोनों द्वारपालों ने बेंत लगाकर रोक दिया और चकारात् उन लोगों को नहीं प्रवेश करने की आज्ञा भी दी । यद्यपि वे महर्षिगण द्वारपालों द्वारा किए जाने वाले इस तरह के व्यवहार के योग्य नहीं थे। उन महर्षियों के तेज का उपहास करते हुए उन दोनों ने कहा कि अरे यहाँ आकर भी इस तरह धृष्टताा करते हो । श्रीभगवान तो ब्रह्मण्यदेव हैं और उन दोनों का शील श्रीभगवान् के प्रतिकूल था ।।३०।।

स्वनिमिषेषु निषिध्यमानाः स्वर्हत्तमा ह्यपि हरेः प्रतिहार
मदिदृक्षितभङ्ग ईषत्कामानुजेन सहसा त उपप्ल्

यां हरेः प्रतिहाराभ्याम् मिषत्सु अनिमिषेषु निषिध्यमानाः स्वर्हत्तमा हि
ुताक्षाः ते ऊचुः ।।३१।।

रि के दोनों द्वारपालों द्वारा वहाँ के देवताओं के सामने ही पूजा
ने सुहृत्तम श्रीहरि के दर्शन में भङ्ग होने पर उन मुनियों को थो
गयीं । मुनियों ने कहा ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

ां देवेषु पश्यत्सु वार्यमाणास्ते मुनयः 'को वाम्' इत्यादिश्लोकत्रयं
ङ्गे सति कामस्यानुजः क्रोधस्तेन सहसाऽकस्मादेवोपप्लुतानि क्षुभिता
ानर्हत्वे वा हेतुः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

तों के स्वामियों द्वारा सभी देवताओं के सामने ही रोके जाते हुए
इत्यादि तीन श्लोकों को कहा । उन मुनियों के सुहृत् श्रीहरि हैं
को थोड़ा क्रोध हो आया, उनकी आँखें लाल हो गयीं और

मुनय ऊचुः

भगवत्परिचर्ययोच्चैस्तद्धर्मिणां निवसतां विषमः
ुरुषे गतविग्रहे वां को वात्मवत्कुहकयोः परि

भगवत् परिचर्यया इह एत्य निवसतां तद्धर्मिणां वाम् इह विषम
त् कुहकयोः वां कः परिशङ्कनीयः ।।३२।।

मुनियों ने कहा

वान् की अत्यधिक सेवा के द्वारा यहाँ इस वैकुण्ठ लोक में अ
विषम स्वभाव कैसे है ? तुम भी यहाँ निवास करने वालो
ाव कैसे हो गया ? इस लोक के स्वामी तो अत्यन्त शान्त
। फिर भी जिस तरह तुमलोग कपटी हो उस तरह से

भावार्थ दीपिका

रिचर्यया एत्य प्राप्य वैकुण्ठे निवसतां तद्धर्मिणां भगवद्धर्मिण
श्चित्प्रवेष्टव्यं कैश्चिन्नेत्येवंभूतः । ननु स्वामिनो रक्षार्थं द्वारपाल
कपटयोः । आत्मवत्स्वदृष्टान्तेन । यथा आवां कपटौ तथाऽन
त्कं बिना कश्चिदागच्छति । न चेश्वरे प्रशान्तत्वादविद्यमान

भाव प्रकाशिका

अधिक सेवा करके ही कोई जीव इस वैकुण्ठ में आकर

वाले सभी लोग समदर्शी हैं । उन समदर्शियों के बीच में तुम दोनों की यह विषम दृष्टि कैसे हो गयी ? कि तुमलोग यह समझते हो कि यहाँ कुछ लोगों को ही प्रवेश करने देना चाहिए कुछ लोगों को नहीं । **ननु० इत्यादि** यदि यह कहो कि अपने स्वामी की रक्षा करने के लिए इस तरह का स्वभाव होना रक्षकों का गुण ही है । तो इसका उत्तर इस श्लोक के उत्तरार्द्ध से दिया गया है । श्रीभगवान् तो प्रशान्त पुरुष हैं, अतएव उनका किसी से भी विरोध नहीं है । तुम दोनों ही कपटी हो अतएव यह समझते हो कि तुम दोनों के ही समान कोई कपटी यहाँ प्रवेश कर जा सकता है । कहने का अभिप्राय है कि भगवद्भक्त से भिन्न कोई दूसरा यहाँ आता ही नहीं है । जब श्रीभगवान् अत्यन्त शान्त स्वभाव वाले हैं तो उनका किसी से विरोध भी नहीं है । अतएव भय की यहाँ कोई शङ्का है ही नहीं । केवल तुम ही दोनों यहाँ धूर्त हों ॥३२॥

न ह्यन्तरं भगवतीह समस्तकुक्षावात्मानमात्मनि नभो नभसीव धीराः ।
पश्यन्ति यत्र युवयोः सुरलिङ्गिनोः किं व्युत्पादितं ह्युदरभेदि भयं यतोऽस्य ॥३३॥

अन्वयः— कुक्षौ धीराःनभसि नभ इव धीरा भगवति आत्मनि आत्मानं पश्यन्ति अन्तरं नहि पश्यन्ति युवयोः सुरलिङ्गिनोः उदरभेदिभयं किं व्युत्पादितं यतः अस्यभयम् ॥३३॥

अनुवाद— इस परमात्मा की कुक्षि में सारा विश्व है । उसमें ज्ञानीजन भेद नहीं देखते हैं वे परमात्मा में ही अपने को महाकाश में विद्यमान घटाकाश के समान देखते हैं । तुम दोनों देवरूपधारी हो तुम ऐसा क्या देखते हो ? जिससे तुमने भगवान् के साथ भेदभाव के कारण भय की कल्पना कर ली ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

भयशङ्काबीजं च भेदः स च कस्याप्यस्मिन्नास्तीत्याहुः-न हीति । समस्तं विश्वं कुक्षौ यस्य यत्र यदेह भगवति धीरा विद्वांस आत्मनोऽन्तरं भेदं न पश्यन्ति किंत्वस्मिन्परमात्मन्यात्मानमन्तर्भूतं पश्यन्ति महाकाशे घटाकाशमिव तदा यथान्यस्य राजादेरुदरभेद्युदरभेदयुक्तं भयं भवति तथास्य श्रीहरेस्तादृग्भयं यतो येन कारणेन सुरवेषधारिणोर्युवयोर्विशेषेणोत्पादितं तत्किम्, न किंचिदित्यर्थः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

मुनियों ने कहा भय की शङ्का का कारण भेद होता है । इस परमात्मा से किसी का भी भेद नहीं है । सारा विश्व श्रीभगवान् के उदर में है । उसमें थोड़ा सा भी भेद होने पर भय होता है । ज्ञानी पुरुष परमात्मा से आत्मा का अन्तर उसी तरह से नहीं देखते हैं जिस तरह महाकाश में घटाकाश होता है । जैसे किसी दूसरे राजा का दूसरे राजा आदि से थोड़ा सा भेद होता है, उस तरह से परमात्मा का कोई भेद नहीं हैं फिर भी देवरूप धारी तुम लोगों ने यह विशेष भेद कैसे उत्पन्न कर दिया ? जबकि वह भेद है ही नहीं ॥३३॥

तद्वाममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मन्दधीभ्याम् ।
लोकानितो व्रजतमन्तरभावदृष्ट्या पापीयसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र ॥३४॥

अन्वयः— अमुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः प्रकृष्टं कर्तुम् वाम् मन्दधीभ्याम् धीमहि । अन्तरभावदृष्ट्या इतो लोकान् व्रजतम् यत्र अस्य इमे त्रयः पापीयसः रिपवः ॥३४॥

अनुवाद— अतएव वैकुण्ठनाथ के पार्षद होने पर भी मन्दबुद्धि वाले तुम दोनों का कल्याण करने के लिए हम उचित दण्ड का विचार करते है । तुम दोनों अपने मन्द भेद बुद्धि के कारण इस लोक से निकलकर उन पापमय योनियों में जाओं जहाँ पापियों के काम, क्रोध और लोभ ये तीनों प्रबल शत्रु रहते हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मादमुष्य वैकुण्ठनाथस्य भृत्याभ्यां युवाभ्यां प्रकृष्टं भद्रमेव कर्तुमिहास्मिन्नपराधे यद्युक्तं तद्धीमहि चिन्तयेम ।

हुए मुनियों ने कहा भेद की सत्ता देखने के हो कारण तुम यहां से उन लोकों में जाओ जहां पर पापमय भेद की सत्ता देखने वाले गीतोक्त काम, क्रोध तथा लोभ ये तीन शत्रु हुआ करते हैं । वे लोक वैकुण्ठ लोक से अत्यधिक पापमय लोक हैं ।।३४।।

तेषामितीरितमुभाववधार्य घोरं तं ब्रह्मदण्डमनिवारणमस्त्रपूगैः ।
सद्यो हरेरनुचरावुरुबिभ्यतस्तत्पादग्रहावपततामतिकातरेण ।।३५।।

अन्वयः— तेषाम् इतीरितम् उभौ घोरम् अवधार्य, तं ब्रह्मदण्डम् अस्त्रपूगैः अनिवारणम् अवधार्य उरुविभ्यतः हरे अनुचरौ सद्यः अतिकातरेण पादग्रहौ अपतताम् ।।३५।।

अनुवाद— उन सनकादिकों के इस कठोर वचन को सुनकर और यह जानकर कि इस भयङ्कर ब्रह्मदण्ड को किसी दूसरे अस्त्र से नहीं रोका जा सकता है, श्रीहरि के वे दोनों अनुचर अत्यन्त भयभीत होकर अत्यन्त दीनता पूर्वक उनके चरण को पकड़कर लोट गये ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

इति तेषामीरितं भाषणं घोरमवधार्य, तं च ब्रह्मदण्डं ब्रह्मशापमवधार्य, तं चास्त्रसमूहैरप्यनिवार्यमवधार्य । हरेरनुचरावतिकातर्येण भयेन तत्पादग्रहणं कुर्वन्तौ सन्तौ दण्डवदपतताम् । कथंभूतस्य हरेः । एवंभूतेभ्यो मुनिभ्यस्ताभ्यामप्युरु अधिकं विभ्यतो भयं भावयतः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

उन मुनियों के इस वचन को अत्यन्त भयङ्कर निश्चय करके और उसको ब्रह्मशाप जानकर और यह भी जानकर कि इस ब्रह्मशाप को किसी दूसरे अस्त्र समूह से नहीं रोका जा सकता है इस तरह से निश्चय करके श्रीहरि के वे दोनों अनुचर अत्यन्त अधीर होकर भय के कारण उन ब्राह्मणों के चरण को पकड़कर पृथिवी पर गिर पड़े श्रीहरि की विशेषता को बतलाते हुए कहते हैं कि ऐसे मुनियों से तो वे दोनों जैसे डरे हुए थे उनसे भी अधिक भय का अनुभव श्रीहरि ब्राह्मणों से करते हैं ।।३५।।

भूयादघोनि भगवद्भिरकारि दण्डो यो नौ हरेत सुरहेलनमप्यशेषम् ।
मावोऽनुतापकलया भगवत्स्मृतिघ्नो मोहो भवेदिह तु नौ व्रजतोरधोधः ।।३६।।

अन्वयः— अघोनि भूयात् भगवद्भिः दण्डः अकारि यो नौ अशेषम् सुरहेलनम् हरेत, वः अनुतापकलया तु अधोऽधः व्रजतोः नौ भगवत स्मृतिघ्नः मोहः मा भवेत् ।।३६।।

अनुवाद— हम दोनों ने अपराध किया है और उसके लिए आपलोगों ने उचित ही दण्ड दिया है, इससे हमदोनों का सम्पूर्ण आपलोगों का अपमानजन्य पाप धुल जायेगा । यदि आपको थोड़ा सा भी अनुताप हो तो आप लोग इतनी ही कृपा करें कि मैं चाहे जिस योनि में जाऊँ, मुझे श्रीभगवान् की स्मृति बनी रहे, उसे हम न भूलें।।३६।।

भावार्थ दीपिका

अहो अपराद्धमस्माभिरित्यनुतप्यमानान्प्रत्यूचतुः । अघोन्यघवति य उचितो दण्डः सएव भगवद्भिरकारि । नात्र भवतामपराधः

कश्चित् । अतोऽसौ नौ आवयोर्भूयात् । योऽशेषमपि सुरहेलनमीश्वराज्ञातिक्रमरूपं पापं हरेत्, किंतु युष्माकं यः कृपानिमित्तोऽनुतपस्तस्य लेशेन नौ अधोऽधो मूढयोनीर्व्रजतोरपि भगवत्स्मृतिप्रतिघातको मोहो मा भवेत्, किंतु मोहोऽपि स्मृतिमेव प्रवहतादिति प्रार्थना।।३६।।

भाव प्रकाशिका

उन दोनों द्वारपालों को शाप देने के पश्चात् मुनिगण पश्चात्ताप कर रहे थे कि हमलोगों ने अपराध कर दिया है । ऐसा पश्चात्ताप करते हुए मुनियों से उन दोनों ने प्रार्थना किया कि हमलोगों ने जो अपराध किया है, उसके कारण आप लोगों ने जो शाप दिया है वह उचित ही है। उससे हमदोनों का अपराधजन्यपाप पूर्ण रूप से समाप्त हो जायेगा । इसमें आप लोगों का थोड़ा सा भी अपराध नहीं है । किन्तु आपलोगों को कृपा करने के कारण थोड़ा भी अनुताप हो तो इतना ही करें कि नीच से नीच योनियों में जाते हुए हमलोगों को कभी भी श्रीभगवान् की विस्मृतिकारक मोह न हो किन्तु मोह श्रीभगवान् स्मृति में ही प्रवाहित हो जाय ।।३६।।

एवं तदैव भगवानरविन्दनाभः स्वानां विबुध्य सदतिक्रममार्यहृद्यः ।
तस्मिन्ययौ परमहंसमहामुनीनामन्वेषणीयचरणौ चलयन्सहश्रीः ।।३७।।

अन्वयः— एवं तदैव आर्यहृदयः भगवान् अरविन्दनाभः स्वानां सदतिक्रमम् विबुध्य सह श्रीः परमहंसमहामुनीनाम् अन्वेषणीयचरणौ चलयन् तस्मिन् ययौ ।।३७।।

अनुवाद— साधु पुरुषों के परम प्रिय भगवान् पद्मनाभ अपने अनुचरों द्वारा सनकादि साधुपुरुषों का अनादर सुनकर श्रीलक्ष्मीजी के साथ अपने उन्हीं चरणों से चलकर उस स्थान पर आ गये जिन चरणों का ध्यान मुनिजन अपने हृदय में ही किया करते हैं और फिर भी श्रीभगवान् के चरणों का दर्शन नहीं कर पाते हैं ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

एवं स्वानां महत्स्वतिक्रममपराधं तत्क्षणमेव विबुध्य तस्मिन्यत्र ते रुद्धास्तं देशं ययौ । आर्याणां हृद्यो मनोज्ञः । चरणौ चलयन्निति । अयं भावः-मच्चरणदर्शनप्रतिघातजं क्रोधं तौ दर्शयन् शमयिष्यामीति त्वराव्याजेन पद्भ्यामेव ययौ । श्रीसाहित्यं च निष्कामानपि विभूतिभिः पूरयित्वा क्षमापयितुम् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को उसी समय पता चल गया कि मेरे अनुचरों ने सनकादिक सत्पुरुषों का अपमान किया है वे स्वयं उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ पर मुनिजन रुके हुए थे । वे श्रीभगवान् सत्पुरुषों के लिए मनोज्ञ हैं । वे अपने पैरों से चलकर वहाँ चले आये । श्रीभगवान् का ऐसा करने में अभिप्राय था कि मेरे चरणों के दर्शनमें जो बाधा हुयी है उसी के कारण मुनियों को क्रोध हुआ है । अतएव इन चरणों का दर्शन कराकर मैं उनके क्रोध को शान्त कर दूँगा । इस तरह से शीघ्रता करने के बहाने भगवान् अपने पैरों से चलकर आये । किञ्च ये मुनिजन तो यद्यपि निष्काम हैं फिर भी उन लोगों को विभूतियों से परिपूर्ण बनाकर मैं अपराध क्षमा कराऊँगा, इसी अभिप्राय से श्रीभगवान् लक्ष्मीजी के साथ वहाँ आये ।।३७।।

तं त्वागतं प्रतिहृतौपयिकं स्वपुंभिस्तेऽचक्षताक्षविषयं स्वसमाधिभाग्यम् ।
हंसश्रियोर्व्यजनयोः शिववायुलोलच्छुभ्रातपत्रशशिकेसरसीकाराम्बुम् ।।३८।।

अन्वयः— स्वपुंभिः प्रतिहृतौपयिकं स्वसमाधिभाग्यम् हंसश्रियोः व्यजनयोः शिववायु लोलत् शुभ्रातपत्र शशि केसर शीकराम्बुम् तंतु आगतम् अक्षविषयं ते अचक्षत ।।३८।।

अनुवाद—जिनके अनुचर गमनोपयोगी छत्र पादुका आदि शीघ्र ला दिए थे, तथा उन मुनिजनों की समाधि में भजन करने योग्य तथा हंसों के समान श्वेत वर्ण के दो चामरों की कल्याणमयी वायु से हिलते हुए श्वेत छत्र के केसर रूपी जल बूंदों से युक्त आये हुए श्रीभगवान् को जो उनके नेत्रों के सामने थे उनको उन मुनियों ने देखा।।३८।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तैर्दृष्टं देवमनुवर्णयति पञ्चभिः । तं त्वागतं तेऽचक्षत अपश्यन् । आपञ्चमादिदमेव क्रियापदम् । स्वपुंभिः शीघ्रं प्रतिहृतमानीतमौपयिकं गमनोचितं छत्रपादुकादि यस्य । कथंभूतम् । स्वसमाधिना भाग्यं भजनीयं फलं यद्ब्रह्म तदेवाक्षविषयम्। हंसवच्छ्रीर्ययोस्तयोरुभयतश्चलयोर्व्यजनयोर्यः शिवोऽनुकूलो वायुस्तेन लोलन्तश्चलन्तः शुभ्रातपत्रशशिकेसराः शुभ्रं यदातपत्रं तदेव शशिसादृश्याच्छशीतस्य केसरा मुक्ताहारविलम्बास्तेभ्यो गलन्ति सीकाराम्बूनि यस्मिंस्तम् । सीकरोऽम्बुकणः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

उन मुनियों द्वारा देखे जाते हुए तथा उस स्थान पर पधारे हुए श्रीहरि का वर्णन पाँच श्लोकों में किया जा रहा है । आये हुए श्रीभगवान् को उन मुनियों ने देखा इस श्लोक से पाँचवें श्लोक तक अचक्षत यह क्रिया अन्वित होगी । श्रीभगवान् के अनुचर शीघ्र ही गमनोपयोगी उनके छत्र पादुका आदि को ला दिये थे । ऐसे श्रीभगवान् को जो उन सनकादिकों की समाधि के फल स्वरूप थे उनका दर्शन वे अपनी आखों से कर रहे थे । हंसों के समान श्वेत शोभा सम्पन्न दो चामर उनके दोनों बगल में चलाये जा रहे थे उनकी शीतल वायु से जिनके श्वेत चमर में लगी हुयी मोतियों के झालर हिल रही थी और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे चन्द्रमा की किरणों से अमृत की बूंदें झर रही हों ।।३८।।

कृत्स्नप्रसादसुमुखं स्पृहणीयधाम स्नेहावलोककलया हृदि संस्पृशन्तम् ।
श्यामे पृथावुरसि शोभितया श्रिया स्वश्चूडामणिं सुभगयन्तमिवात्मधिष्ण्यम् ।।३९।।

अन्वयः— स्पृहणीयधाम, कृत्स्नप्रसादसुमुखम् स्नेहावलोककलया हृदि संस्पृशन्तम्, श्यामे पृथौ उरसि शोभितया श्रिया स्वश्चूडामणिमिव स्वधिष्ण्यम् सुभगयन्तमिव अचक्षत ।।३९।।

अनुवाद— सबों पर कृपा करने के कारण प्रसन्नता पूर्ण सुन्दर मुख वाले सम्पूर्ण स्पृहणीय गुणों के एक मात्र आश्रय, अपनी स्नेहमयी दृष्टि से मानो सबों के हृदय का स्पर्श कर रहे हों, श्याम वर्ण के विस्तृत वक्षःस्थल में सुशोभित होने वाली लक्ष्मीजी के द्वारा स्वर्गादि लोकों के चूड़ामणि अपने वैकुण्ठ धाम को सुशोभित करते हुए से श्रीभगवान् को उन मुनियों ने देखा ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

कृत्स्नस्य द्वारपालमुनिवृन्दस्य प्रसादे सुमुखम् । स्पृहणीयानां गुणानां धाम स्थानम् । स्नेहावलोककलया सप्रेमकटाक्षेण हृदि संस्पृशन्तं सुखयन्तम् । त्रैलोक्यविवक्षापक्षे सत्यलोकपर्यन्तः स्वर्गस्तस्य चूडामणिवत्स्थितं स्वधिष्ण्यं वैकुण्ठं सुभगयन्तं शोभयन्तम् ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

सभी द्वारपालों तथा मुनिजनों पर कृपा की वर्षा करने के कारण सुन्दर प्रसन्न मुख वाले समस्त स्पृहणीय गुणों के आश्रय स्वरूप, प्रेम पूर्वक सबों को देखने के कारण जैसे वे सबों के हृदय का स्पर्श कर रहे हों, और सबों को सुख प्रदान कर रहे हों त्रैलोक्य की विवक्षा मानने पर सत्यलोक पर्यन्त स्वर्ग के चूड़ामणि के समान स्थित अपने स्थान वैकुण्ठ धाम को वे जैसे सुशोभित कर रहे थे ।।३९।।

पीतांशुके पृथुनितम्बिनि विस्फुरन्त्या काञ्च्याऽलिभिर्विरुतया वनमालया च ।
वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम् ।।४०।।

अन्वयः— पीतांशुके पृथुनिताम्बिनी विस्फुरन्त्या, काञ्चया, विरूतया अलिभिः वनमालया च, वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे विन्यस्तहस्तम् इतरेण अब्जम् धुनानम् अचक्षत ।।४०।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के पीताम्बर मण्डित विस्तृत नितम्बों पर चमकती हुयी करधनी और गले में लटकती हुयी भ्रमरों से गुंजायमान वनमाला सुशोभित हो रही थी। वे अपनी कलाइयों में सुन्दर कङ्गन धारण किए थे। वे अपना एक हाथ गरुड़ के कंधे पर रखकर दूसरे हाथ से कमल को धुमा रहे थे ऐसे भगवान् को मुनियों ने देखा॥४०॥

भावार्थ दीपिका

पृथुर्नितम्ब आश्रयत्वेन विद्यते यस्य तस्मिन्पीतांशुके। अलिभिर्नादितया वनमालया च युक्तम्। सुभगयन्तमिति पूर्बेणैव वा सम्बन्धः। वल्गुषु प्रकोष्ठेषु वलयानि यस्य। गरुडस्य स्कन्धे विन्यस्त एको हस्तो येन। इतरेणान्येनाब्जं लीलाकमलं धुनानं भ्रामयन्तम्। विन्यस्येति पाठे च वल्गिवत्यादि हस्तस्य विशेषणम् ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

अर्थात् विस्तृत नितम्ब जिसका आश्रय है उस पीताम्बर पर चमकती हुई करधनी से तथा गुनगुनाते भौरों के गुञ्जन से युक्त, वनमाला से सुशोभित श्रीहरि अपनी कलाई में सुन्दर कङ्गन धारण किए थे, एक हाथ को वे गरुड के कन्धे पर रखे थे और दूसरे हाथ से वे कमल को घुमा रहे थे। जहाँ पर विन्यस्य पाठ होगा वहाँ बल्गु इत्यादि हाथ के विशेषण होंगे ॥४०॥

विद्युत्क्षिपन्मकरकुण्डलमण्डनार्हगण्डस्थलोन्नसमुखं मणिमत्किरीटम्।
दोर्दण्डषण्डविवरे हरता परार्ध्यहारेण कन्धरगतेन च कौस्तुभेन ॥४१॥

अन्वयः— विद्युत्क्षिपन् मकरकुण्डलमण्डनार्हगण्डस्थलोन्नसमुखं, मणिमत् किरीटम् दोर्दण्डषण्डविवरे हरता परार्ध्येण हारेण कौस्तुभेन च सुशोभितं भगवन्तम् अचक्षत ॥४१॥

अनुवाद— विद्युत् की कान्ति को भी तिरस्कृत करने वाले मकराकृति कुण्डल को भी अलंकृत करने वाले कपोलों; उठी हुयी नाक से युक्त मुख वाले, मणि जटित किरीट को धारण किए हुए भुज समूह के बीच में विराजमान बहुमूल्य हार तथा कन्धे पर लटकने वाली कौस्तुभमणि से सुशोभित श्रीभगवान् को मुनियों ने देखा ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

स्वकान्त्या विद्युतः क्षिपती ये मकराकारे कुण्डले तयोर्मण्डनस्यार्हे गण्डस्थले यस्मिंस्तच्च तदुन्नसं च मुखं यस्य। मणियुक्तं किरीटं यस्य। दोर्दण्डानां षण्डं समूहस्तस्य विवरे मध्ये स्थितेन हरता मनोहरेण विहरतेति वा परार्ध्यं उत्कृष्टस्तेन हारेण। कंधरायां स्थितेन ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

अपनी कान्ति से विद्युत् की कान्ति को तिरस्कृत करने वाले दोनों मकराकृतिकुण्डलों को अलंकृत करने योग्य दो कपोलों से तथा उठी हुई नासिकाओं से युक्त मुख वाले, मणिमय किरीट को धारण किए हुए, भुज समूह के बीच विद्यमान अत्यन्त मूल्यवान हार तथा कन्धे से लटकने वाले कौस्तुभमणि को धारण किए हुए श्रीहरि को मुनियों ने देखा ॥४१॥

अत्रोपसृष्टमिति चोत्स्मितमिन्दिरायाः स्वानां धिया विरचितं बहुसौष्ठवाढ्यम्।
मह्यं भवस्य भवतां च भजन्तमङ्गं नेमुर्निरीक्ष्य नवितृप्तदृशा मुदा कैः ॥४२॥

अन्वयः— इन्दिरायाः उत्स्मितम् अत्र उपसृष्टम् इति स्वानां धिया बहुसौष्ठवाढ्यं विरचितं मह्यम्, भवस्य भवतां च अङ्गम् भजन्तम् निरीक्ष्य मुदा कैः नेमुः न वितृप्तदृशः ॥४२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के सौन्दर्य के समक्ष मैं ही सर्वाधिक सुन्दर हूँ इस प्रकार लक्ष्मीजी का सौन्दर्याभिमान मानो विनष्ट हो गया, उनके अपने भक्तों द्वारा इस प्रकार से अपने मन में वितर्कित अत्यधिक सौन्दर्य सम्पन्न, मेरे

शिवजी के तथा आप सभी देवताओं के लिए शरीर धारण किए हुए, श्रीभगवान् को देखकर ब्रह्माजी के पुत्रों ने नमस्कार किया किन्तु श्रीभगवान् को देखने से उन मुनियों के नेत्र तृप्त नहीं हुए ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

किंबहुना । इन्दिराया उत्स्मितमहमेव सर्वसौन्दर्यनिधिरित्यहंकरणमत्र भगवत्सौन्दर्ये उपसृष्टमस्तंगतमिति स्वानां भक्तानां धिया विरचितम् । भृत्यैः स्वमनस्येवं वितर्कितमित्यर्थः । कुतः । बहुसौष्ठवेन सौन्दर्येणाढ्यं युक्तम् । किंच मह्यं मम भवस्येश्वरस्य भवतां च कृतेऽङ्गं भजन्तं मूर्तिं प्रकटयन्तमचक्षत । निरीक्ष्य च कैः शिरोभिर्मुदा नेमुर्नमश्चक्रुः । न विशेषेण तृप्ता दृशो नेत्राणि येषां ते ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

बहुत अधिक क्या कहा जाय, लक्ष्मीजी का यह जो अहङ्कार था कि मै ही सम्पूर्ण सौन्दर्यों का आकर हूँ; वह श्रीभगवान् के सौन्दर्य के सामने गलित हो गया । इस प्रकार के भगवद् भक्तों के मन में वितर्कित विचार था। क्योंकि भगवान् का वह रूप सौन्दर्य से समृद्ध था । ब्रह्माजी कहते हैं कि मेरे लिए, शिवजी के लिए तथा तुमलोगों के लिए ऐसा शरीर धारण किए श्रीभगवान् के रूप को देखकर सनकादिकों ने नमस्कार किया; किन्तु श्रीभगवान् को देखने से उनके नेत्र तृप्त नहीं हुए ।।४२।।

तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्दकिञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः ।
अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः ।।४३।।

अन्वयः— अरविन्दनयनस्य तस्य पदारविन्द किञ्जल्कमिश्रतुलसी मकरन्दवायुः स्वविवरेण अन्तर्गतः तेषां अक्षरजुषां चित्ततन्वो संक्षोभं चकार ।।४३।।

अनुवाद— कमल नयन भगवान् के चरणारविन्द के पराग मिश्रित तुलसी की सुगन्धि युक्त वायु ने उन सनकादियों की नासिका के छिद्र के माध्यम से भीतर प्रवेश करके अक्षर ब्रह्म में मग्न रहने वाले सनकादियों के मन में क्षोभ उत्पन्न कर दिया ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

स्वरूपानन्दादपि तेषां भजनानन्दाधिक्यमाह । तस्य पदारविन्दयोः किञ्जल्कैः केसरैर्मिश्रा या तुलसी तस्या मकरन्देन युक्तो वायुः स्वविवरेण नासाछिद्रेण । अक्षरजुषां ब्रह्मानन्दसेविनामपि । संक्षोभं चित्तेऽतिहर्षं तनौ रोमाञ्चम् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

उन सनकादिक महर्षियों में स्वरूपानन्द की अपेक्षा भजनानद अधिक था इस बात को इस श्लोक में कहा ाया है । श्रीभगवान् के चरण कमलों के पराग से युक्त तुलसी की सुगन्धि से युक्त वायु ने उनकी नाक के छिद्र े प्रवेश करके उनके चित्त और शरीर में क्षोभ उत्पन्न कर दिया ।।४३।।

ते वा अमुष्य वदनासितपद्मकोशमुद्वीक्ष्य सुन्दरतराधरकुन्दहासम् ।
लब्धाशिषः पुनरवेक्ष्य तदीयमङ्घ्रिद्वन्द्वं नखारुणमणिश्रयणं निदध्युः ।।४४।।

अन्वयः— ते वै अमुष्य असितपद्मकोशम् सुन्दरतराधर कुन्दहासम् उद्वीक्ष्य लब्धाशिषः पुनः तदीयमङ्घ्रि द्वन्द्वम् खारूणमणिश्रयणं अवेक्ष्य निदध्युः ।।४४।।

अनुवाद— वे मुनिगण कुन्दकली के समान मनोहर हँसी से युक्त नील कमल के कोश के समान मुख को व्रकर अपने मनोरथ को प्राप्त कर लिए, पुनः पद्मरागमणि के समान लाल-लाल नखों से युक्त श्रीभगवान् के ण युगल को देखकर वे उसका ध्यान करने लगे ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

हर्षकारितं संभ्रममाह द्वाभ्याम् । ते वै किलामुष्य वदनमेवासितपद्मस्य कोशोऽन्तर्भागस्तम् । असितपद्मकोशमित्यभूतोपमा। सुन्दरतरे अरुणे अधरोष्ठे कुन्दवद्धासो यस्मिंस्तम् । उत् ऊर्ध्वं वीक्ष्य लब्धमनोरथाः सन्तो नखा एवारुणमणयस्तेषां श्रयणमाश्रयभूतमङ्घ्रिद्वन्द्वं पुनरवेक्ष्याऽधोदृष्ट्या वीक्ष्य पुनःपुनरेवं निरीक्ष्य युगपत्सर्वाङ्गलावण्यग्रहणाशक्तेः पश्चान्निदध्युर्ध्यातवन्तः ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

अब दो श्लोकों से हर्ष जनित शीघ्रता का वर्णन करते हैं । श्रीभगवान् का मुख ही नील कमल के कोश के समान था । अर्थात् नील कमल का भीतरी भाग था, असितपद्म कोश में अभूतोपमा नामक अलङ्कार है । क्योंकि नील कमल का कोष पीला होता है नील नहीं, यदि नील कमल कोश भी नीला हो जाय तब जाकर उसके समान श्रीभगवान् का मुख हो, इसतरह इस पद में उपमित समास है । श्रीभगवान् के अत्यन्त सुन्दर लाल-लाल ओष्ठ थे । तथा उसमें कुन्द के समान श्वेत वर्ण की हंसी थी इस तरह के श्रीभगवान् के मुखमण्डल को देखकर उन मुनिजनों का मनोरथ पूर्ण हो गया । उसके पश्चात् वे पुनः पद्मरागमणि के समान लाल-लाल नखों से युक्त उनके दोनों चरणों को देखकर उसका ध्यान करने लगे ।।४४।।

पुंसां गतिं मृगयतामिह योगमार्गैर्ध्यानास्पदं बहुमतं नयनाभिरामम् ।
पौंस्नं वपुर्दर्शयानमनन्यसिद्धैरौत्पत्तिकैः समगृणन्युतमष्टभोगैः ॥४५॥

अन्वयः— योगमार्गैः गतिं मृगयताम् पुंसां ध्यानास्पदं बहुमतम् पौस्नं वपुः दर्शयानम् अनन्यसिद्धै औत्पत्तिकैः अष्टभोगैः युतम् समगृणन् ।।४५।।

अनुवाद— योग मार्ग के द्वारा मोक्षमार्ग का अन्वेषण करने वाले पुरुषों के ध्यान के विषयभूत अत्यन्त समादरणीय नयनानन्द को बढ़ाने वाले अपने पौरुष (पुरुष सम्बन्धी) रूप का दर्शन देने वाले स्वाभाविक अष्टसिद्धियों से युक्त श्रीहरि की वे स्तुति करने लगे ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

योगमार्गैर्गतिं मृगयतां पुंसां ध्यानस्य विषयभूतम् । बहुमतमत्यादरास्पदम्, बहूनां तत्त्वदृशां संमतमिति वा । पौंस्नं पौरुषं वपुर्दर्शयन्तम् । अन्येष्वसिद्धैरसाधारणैरौत्पत्तिकैर्नित्यैरणिमाद्यष्टैश्वर्यैर्युतम् । समगृणन् सम्यगस्तुवन् ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

जो लोग योगमार्ग के द्वारा मोक्ष को प्राप्त करना चाहते हैं, उनके ध्यान का विषय बनने वाले, देखने वालों के नेत्रानन्द को प्रदान करने वाले अत्यन्त आदरणीय, अपने सुन्दर पौरुष रूप का दर्शन देने वाले तथा स्वाभाविक रूप से नित्य अष्ट सिद्धियों से सम्पन्न श्रीहरि का वे मुनिगण स्तुति करने लगे ।।४५।।

कुमारा ऊचुः

योऽन्तर्हितो हृदि गतोऽपि दुरात्मनां त्वं सोऽद्यैव नो नयनमूलमनन्त राद्धः ।
यर्ह्येव कर्णविवरेण गुहां गतो नः पित्रानुवर्णितरहा भवदुद्भवेन ॥४६॥

अन्वयः— हे अनन्त यः त्वम् दुरात्मनां हृदि गतोऽपि अन्तर्हितः सः त्वम् अद्यैव नः नयनमूलराद्धः । भवदुद्भवेन पित्रा यर्ह्येव अनुवर्णितरहा कर्णविवरेण नः गुहां गतः ।।४६।।

कुमार ने कहा

अनुवाद— हे अनन्त आप सबों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहकर भी दुष्ट हृदय वालों की दृष्टि से दूर ही रहते हैं । वही आप आज हमारी आँखों के सामने साक्षात् विराजमान हैं । जिस समय आपसे

उत्पन्न हमारे पिता ब्रह्माजी ने आपके रहस्य का हमें उपदेश दिया उसी समय आप मेरे कर्ण विवरों के माध्यम से हृदय में तो आ गये थे किन्तु आपका दर्शन आज ही हमें मिला है ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

नित्यं ब्रह्मरूपेण प्रकाशसे, न तच्चित्रम् । इदानीं तु परममङ्गलविशुद्धसत्त्वश्रीमूर्त्या प्रत्यक्षोऽसि । अहो भाग्यमस्माकमित्याहुः हे अनन्त, यस्त्वं हृद्गतोऽपि दुरात्मनामन्तर्हितो न स्फुरसि स नोऽस्माकमन्तर्हितो न भवसि । नयनमूलं त्वद्यैव राद्धः प्राप्तोऽसि। अन्तर्धानाभावे हेतुः-भवतः सकाशादुद्भवो यस्य तेनास्मत्पित्रा यर्हि यदैवानुवर्णितरहा उपदिष्टरहस्यस्तदैव नः कर्णमार्गेण गुहां बुद्धिं गतः प्राप्तोऽसीति ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

आप ही नित्य ही ब्रह्मरूप से प्रकाशित होते है, किन्तु यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । इस समय परममङ्गल विशुद्धसत्त्व विग्रह के द्वारा आप हमारे नेत्रों के समक्ष हैं । अर्थात् आज आपके परम मङ्गलमय शुद्ध सत्त्वमय श्रीविग्रह का हमलोगों को दर्शन मिला है । यह हमलोगों का परम सौभाग्य है । इसी बात को इस श्लोक में कहा गया है । हे अनन्त यद्यपि आप सबों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहते हैं फिर भी आप दुष्टों को नहीं प्रकाशित होते हैं । किन्तु वही आप आज हमलोगों को प्रकाशित हो रहे हैं । श्रीभगवान् के प्रकाशित होने का कारण बतलाते हुए मुनियों ने कहा— आपसे ही उत्पन्न हमलोगों के पिता ब्रह्माजी ने जब हमलोगों को आपके रहस्य का उपदेश दिया उसी समय से आप हमलोगों के हृदय में आ गये थे; किन्तु आपका साक्षात् दर्शन तो आज ही मिला है ।।४६।।

तं त्वां विदाम भगवन्परमात्मतत्त्वं सत्त्वेन संप्रति रतिं रचयन्तमेषाम् ।
यत्तेऽनुतापविदितैर्दृढभक्तियोगैरुद्ग्रन्थयो हृदि विदुर्मुनयो विरागाः ।।४७।।

अन्वयः— हे भगवन् तं त्वाम् परमात्मतत्त्वं सम्प्रति सत्त्वेन एषाम् रतिं रचयन्तम्, यत् ते अनुतापविदितैः दृढभक्तियोगैः उद् ग्रन्थयः विरागाः मुनयः हृदि विदुः ।।४७।।

अनुवाद— हे भगवन् ! हम आपको साक्षात् परमात्म तत्त्व मानते हैं इस समय आप अपने विशुद्ध सत्त्वमय दिव्य विग्रह के द्वारा अपने भक्तों को आनन्दित कर रहे हैं । आपके इस सगुण और साकार मूर्ति को राग तथा अहङ्कार से रहित संसार से विरक्त मुनिजन आपकी ही कृपा से प्राप्त सुदृढ़ भक्तियोग के द्वारा अपने हृदय में प्राप्त करते हैं ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

ननु पित्रोपदिष्टं भवतामन्यादृशमदृश्यमात्मतत्त्वमहं त्वन्य एव स्यां दृश्यत्वात् । नैवम् । अस्मत्प्रत्यभिज्ञया भेदनिरासादित्याहुः- तमिति । हे भगवन्, आत्मतत्त्वमेव परं त्वां विदाम विद्मः प्रत्यभिजानीमः । ननु निरुपाधेरात्मतत्त्वस्य कथमीदृशमैश्वर्यं स्यादत आहुः । सत्त्वेन विशुद्धसत्त्वमूर्त्या । एषां भक्तानाम् । सम्यक् प्रतिक्षणं संप्रति रतिः प्रीतिस्तां रचयन्तम् । आत्मतत्त्वमेवाहुः। तेऽनुतापः कृपा तेन विदितैर्ज्ञातैर्दृढैर्भक्तियोगैः श्रवणादिभिर्मुनयो हृदि यद्विदुः । कीदृशाः । उद्ग्रन्थयः निरहंमाना अतएव विगतरागाः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि आपके पिता के द्वारा उपदिष्ट अदृश्य आत्मतत्त्व दूसरे प्रकार का है और मैं तो उससे भिन्न ही हूँ । क्योंकि मैं तो दृश्य हूँ आपके पिता के द्वारा उपदिष्ट आत्मतत्त्व अदृश्य हैं । तो ऐसी बात नहीं है। क्योंकि हमलोगों की प्रत्यभिज्ञा के द्वारा दोनों रूपों में कोई भेद नहीं प्रतीत होता है । इसी अर्थ का प्रतिपादन मुनियों ने **तंत्वा० इत्यादि** इस श्लोक में किया है । मुनियों ने कहा हे भगवन् हमलोग आपको परमात्म तत्त्व

ही जानते हैं । यदि कहें कि आत्मतत्त्व निरुपाधिक निर्विशेष है उसका ऐसा ऐश्वर्य कैर
मुनियों ने कहा आप अपने विशुद्ध सत्त्व के द्वारा अपने भक्तों के हृदय में प्रेम उत्पन्न
आत्म तत्त्व ही हैं । आपकी ही कृपा से जिन अहङ्कार और मान रहित तथा संसार से विरत
प्राप्त हो जाता है, वे अपने भक्तियोग के द्वारा अपने हृदय में आपके इस रूप का स

नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं किंत्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उ
येऽङ्ग त्वदङ्घ्रिशरणा भवतः कथायाः कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला

अन्वयः— अङ्ग ये भवदंघ्रिशरणाः कीर्तन्यतीर्थयशसः भवतः कथायाः कुशलाः र
आत्यन्तिकम् न विगणयन्ति किन्तु अन्यत् ते भ्रुवः उन्नयैः अर्पितभयम् ।।४८।।

अनुवाद— हे प्रभो जो भक्त एकमात्र आपके चरणों को ही अपना रक्षक मानते ह
पवित्र कथाओं के कुशल रसज्ञ हैं वे आपके द्वारा प्रदत्त मोक्ष नामक भी प्रसाद का बह
हैं तो फिर दूसरे इन्द्र आदि के पद की कामना वे कैसे कर सकते हैं । जिस इन्द्र पद
भौहों से ही भय उत्पन्न हो जाता है ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

स्वयमपि भक्तिं प्रार्थयितुं भक्तानां सुखातिशयमाहुः । आत्यन्तिकं मोक्षाख्यमपि तव प्रस
किंतु किमुतान्यदिन्द्रादिपदम् । ते भ्रुव उन्नयैरुज्जृम्भैरर्पितं निहितं भयं यस्मिंस्तत् । ते के । अङ्ग
रसज्ञाः । कथंभूतस्य । रमणीयत्वेन पावनत्वेन च कीर्तन्यं कीर्तनार्हं तीर्थं पवित्रं च यशो यस

भाव प्रकाशिका

सनकादि मुनिजन स्वयं भी भक्ति प्राप्ति की प्रार्थना करने के लिए भक्तों के स
हैं । वे कहते हैं कि हे प्रभो ! जो भक्तजन आपके चरणों को ही अपना एकमात्र र
मनोहर तथा पवित्र कथाओं के कुशल रसज्ञ हैं । वे आपके द्वारा दी जाने वाली मुक्ति
देते हैं । अतएव जिस इन्द्र इत्यादि के पद को केवल आपकी थोड़ी सी भौहों के टेढी
हो जाता है, उस इन्द्र आदि के पद को वे क्यों प्राप्त करना चाहेंगे ?।।४८।।

कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्ताच्चेतोऽलिवद्यदि नु ते पदयं
वाचश्च नस्तुलसिवद्यदि तेऽङ्घ्रिशोभाः पूर्येत ते गुणगणैर्यदि व

अन्वयः— नः चेतः अलिवत् यदि ते पदयोः रमेत नः वाचः च तुलसिवत् यदि ते
ते गुणगणैः पूर्येत तर्हि स्ववृजिनैः नः भवः निरयेषु कामं स्तात् ।।४९।।

अनुवाद— हे प्रभो ! यदि भौंरे के समान हमारा मन आपके चरणों में ही रमण
तुलसी के समान आपके चरणों को ही सुशोभित करती रहे और हमारे कर्णरन्ध्र यदि अ
होते रहें तो फिर अपने पापों के कारण हमारा जन्म यदि नारकीय योनियों में ही होता रहे त

भावार्थ दीपिका

इदानीं स्वीयापराधं द्योतयन्तो भक्तिं प्रार्थयन्ते–काममिति । हे भगवन्नितः पूर्वमस्माकं वृ
जातानि । यतस्त्वद्भक्तौ शप्तौ । अतस्तैः स्ववृजिनैर्निरयेषु कामं नोऽस्माकं भवो जन्म स्तात्स्या
पदयो रमेत अलिर्यथा कण्टकैराविध्यमानोऽपि पुष्पेषु रमते तद्वद्विघ्नानविगणय्य यदि रमेत । अ
च तुलसी गुणनैरपेक्ष्येण त्वदङ्घ्रिसंबन्धेनैव शोभते तथा यदि नो वाचः शोभेरन् । यदि च

इत्यल्पस्य पूरणमेव याचकरीत्या प्रार्थयन्ते । अयं तु गूढोऽभिप्रायः । कर्णरन्ध्रस्याकाशत्वाद्गुणगणानां चामूर्तत्वान्न कदाचित्पूरणम्। अतो नित्यमेव श्रवणं फलिष्यतीति ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

कामम् इत्यादि इस श्लोक में अपने अपराध को सूचित करते हुए सनकादि महर्षि श्रीभगवान् से भक्ति की प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे प्रभो ! इससे पहले हमलोगों ने कोई पाप नहीं किया है; किन्तु इस समय तो हमलोग सभी प्रकार के पापों को कर लिए हैं । क्योंकि हमलोगों ने आपके दोनों भक्तों को शाप दे दिया है। अतएव उन पापों के कारण हमलोगों का जन्म नरकों में हो जाय तो भी कोई बात नहीं है । किन्तु जिस तरह कांटों से विद्ध होकर भी भौंरा पुष्पों में ही रमण करता रहता है, उसी तरह से विघ्नों से बाधित होकर भी हमलोगों का मन आपके चरणों में रमण करता रहे, जिस तरह तुलसी श्रीभगवान के चरणों को ही सुशोभित करती हैं उसी तरह हमारी वाणी भी यदि आपके चरणों का ही गुणगान करती रहे और हमारे कानों के छिद्र यदि आपके कल्याणमय गुणगणों के श्रवण से परिपूर्ण होते रहें । कानों के छिद्र तो बहुत छोटे हैं; किन्तु उनकी पूर्ति वे उसी तरह से चाहते हैं जिस तरह छोटी सी भिक्षा से ही अपने अञ्जली की पूर्ति प्राप्त करना चाहता है । **अयं तु इत्यादि-** इस कथन का गूढ अभिप्राय है कि आकाश विशेष को ही कर्ण (श्रोत्रेन्द्रिय) कहते हैं और गुण समूह भी अमूर्त हैं । उनसे कभी भी उनकी पूर्ति नहीं हो सकती अतःएव हमलोग आपके गुण समूह का नित्य ही श्रवण करते रहें ।।४९।।

प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूत रूपं तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः ।
तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान्प्रतीतः ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

अन्वयः—हे ईश ! हे पुरुहूत ! यदिदं रूपं प्रादुश्चकर्थ तेन न दृशः अलं निवृर्तिं अवापुः यो भगवान् अनात्मनां दुरुदयः प्रतीतः तस्मै भगवते इत् नमः विधेम ।।५०।।

अनुवाद— हे परम यशस्वी प्रभो आपने हमारे सामने यह जो रूप प्रकट किया है उससे हमारे नेत्रों को वहुत सुख मिला है । अजितेन्द्रिय व्यक्ति के लिए आपका दर्शन मिलना कठिन है । आप साक्षात् भगवान् है हम आपको नमस्कार करते हैं ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अद्य वयं कृतार्थाः स्मेत्याहुः । हे पुरुहूत विपुलकीर्ते, यदिदं प्रादुश्चकर्थ प्रकटितवानसि । दृशो नेत्राणि अनात्मनामजितेन्द्रियाणां दुरुदयोऽप्रकटोऽपि इत् इत्थं यः प्रतीतोऽसि । तस्मै तुभ्यमिदं नमो विधेम ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

सनकादि मुनियों ने कहा कि हमलोग कृतार्थ हो गये हैं । हे परम यशस्वी प्रभो आपने यह जो रूप प्रकट किया है, इससे हमारे नेत्र अत्यन्त आनन्दित हुए हैं । आपके इस रूप का दर्शन अजितेन्द्रिय व्यक्ति के लिए असम्भव है । ऐसे आपको हमलोग नमस्कार करते हैं ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के पन्द्रहवे अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१५।।

सोलहवाँ अध्याय

जय विजय का वैकुण्ठ से पतन

ब्रह्मोवाच

इति तद्‌गृणतां तेषां मुनीनां योगधर्मिणाम् । प्रतिनन्द्य जगादेदं विकुण्ठनिलयो विभुः ॥१॥

अन्वयः— इति तद् गृणतां तेषां योगधर्मिणां मुनीनां प्रतिनन्द्य विकुण्ठनिलयो विभुः इदं जगाद ॥१॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— ब्रह्माजी ने कहा— हे देवगण ! जब योगनिष्ठ मुनियों ने इस प्रकार से श्रीभगवान् की स्तुति की उस समय वैकुण्ठ में निवास करने वाले श्रीहरि ने उनकी प्रशंसा की और यह कहा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

हरिणा सन्त्वितैर्विप्रैरनुतप्तैस्तु षोडशे । तयोरसुरभावेऽपि कृतोऽनुग्रह ईर्यते ॥१॥ इति गृणतां तेषां तद्वाक्यं प्रतिनन्द्येदं जगाद एतावित्येकादशभिः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि से सान्त्वना प्राप्त प्रभाव सम्पन्न उन मुनियों द्वारा उन दोनों द्वारपालों पर किये गये अनुग्रह का वर्णन सोलहवें अध्याय में वर्णित है ॥१॥

इस तरह से स्तुति करने वाले उन सनकादि महर्षियों की प्रशंसा करके श्रीभगवान् ने जो कहा उसको **एतौ० इत्यादि** ग्यारह श्लोकों में कहा गया है ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

एतौ तौ पार्षदौ मह्यं जयो विजय एव च । कदर्थीकृत्य मां यद्वो बह्वक्रातामतिक्रमम् ॥२॥

अन्वयः— एतौ जयविजयौ एव मह्यं पार्षदौ तौ माम् कदर्थीकृत्य बहु अतिक्रमम् अक्राताम् ॥२॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— ये जय वियज मेरे पार्षद हैं इन दोनों ने मेरी परवाह किए बिना ही आपलोगों का बहुत अधिक अपमान किया है ।

भावार्थ दीपिका

यद्यस्मान्मां कदर्थीकृत्य तुच्छीकृत्य बहु यथा भवति तथा अतिक्रमं वः कृतवन्तौ ॥२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने मुनियों से कहा कि ये मेरे दोनों पार्षद मेरी परवाह किए बिना ही आपलोगों का बहुत अधिक अपमान किए हैं ॥२॥

यस्त्वेतयोर्धृतो दण्डो भवद्भिर्मामनुव्रतैः । स एवानुमतोऽस्माभिर्मुनयो देवहेलनात् ॥३॥

अन्वयः— हे मुनयः मामनुव्रतैः भवद्भि यस्तु एतयोः दण्डो धृतः स एव अस्माभिः अनुमतः देवहेलनात् ॥३॥

अनुवाद— हे मुनिगण ! आपलोग हमारे अनुगत भक्त है । इस तरह से मेरी अवज्ञा करने के कारण आपलोगों ने इन दोनों को जो दण्ड दिया है; वह हमको भी अभिमत है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तस्मात्स एव दण्डोऽङ्गीकृतः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

इन दोनों ने आपलोगों की अवमानना करके मेरी ही अवमानना की है, अतएव इन दोनों को जो दण्ड मैं देना चाहता था उसी दण्ड को आपलोगों ने दिया है ।।३।।

तद्वः प्रसादयाम्यद्य ब्रह्म दैवं परं हि मे । तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये यत्स्वपुंभिरसत्कृताः ।।४।।

अन्वयः— ब्रह्म ही मे परं दैवं यत् स्वपुम्भिः असत्कृताः तत् हि आत्मकृतं मन्ये तद्वः अद्य प्रसादयामि ।।४।।

अनुवाद— ब्राह्मण ही मेरे परम आराध्य हैं, मेरे अनुचरों ने जो आपलोगों का अपराध किया है, उसे मैं अपना ही अपराध मानता हूँ । इसीलिए मैं आपलोगों से क्षमा माँगता हूँ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

हि यस्माद्ब्रह्म ब्राह्मणा एव मे परमं दैवं दैवतं तत्तस्मादद्य वः प्रसादयामि । तव कोऽपराध इति चेत्तत्राह- तद्धीति। मदीयैः पुंभिरसत्कृतास्तिस्कृता इति यत्तदात्मकृतमेव मन्ये ।।४।।

भाव प्रकाशिका

चूकि ब्राह्मण ही मेरे परमाराध्य है । अतएव आज मैं आपलोगों से क्षमा माँगता हूँ । यदि आपलोग कहें कि आपका कौन सा अपराध है ? तो इसका उत्तर है कि मेरे अनुचरों ने जो आपलोगों का तिरस्कार किया हैं, उसे मैं अपना ही अपराध मानता हूँ ।।४।।

यन्नामानि च गृह्णाति लोको भृत्ये कृतागसि । सोऽसाधुवादस्तत्कीर्तिं हन्ति त्वचमिवामयः ।।५।।

अन्वयः— भृत्ये आगसि कृते लोकः यत् नामानि गृह्णति, सः असाधुवादः तत्कीर्तिम् आमयः त्वचम् इव हन्ति।।५।।

अनुवाद— भृत्यों के अपराध करने पर संसार उनके स्वामी का ही नाम लेता है । वह अपयश उसकी कीर्ति को उसी तरह दूषित कर देता है जिस तरह श्वेतकुष्ठ त्वचा को दूषित कर देता है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

किंच ममैवेताभ्यामनिष्टं कृतमित्याह । यस्य स्वामिनो नामानि तस्य कीर्तिम् । आमयोऽत्र श्वेतकुण्ठम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा कि इन दोनों ने मेरा ही अनिष्ट किया है, क्योंकि जिसके अपराध करने पर अपराध करने वाले के जिस स्वामी का नाम होता है, उसकी कीर्ति दूषित होती है । यहाँ पर आमय शब्द से श्वेतकुष्ठ को कहा गया है ।।५।।

यस्यामृतामलयशः श्रवणावगाहः सद्यः पुनाति जगदाश्वपचाद्विकुण्ठः ।
सोऽहं भवद्भ्य उपलब्धसुतीर्थकीर्तिश्छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम् ।।६।।

अन्वयः— यस्य मे अमृतामलयशः श्रवणावगाहः आश्वपचात् जगत् सद्यः पुनाति सोऽहम् विकुण्ठः भवद्भ्यः उपलब्ध सुतीर्थकीर्तिः वः प्रतिकूलवृत्तिम् स्वबहुमपि छिन्द्याम् ।।६।।

अनुवाद— मेरे अमृत के समान निर्मल सुयश रूपी सरोवर में श्रवण के माध्यम से अवगहन (गोता) लगाने वाला चाण्डाल पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् शीघ्र ही पवित्र हो जाता है, इसीलिए मैं **विकुण्ठ** कहा जाता हूँ । वही मैं आपलोगों से प्राप्त कीर्ति वाला आपलोगों के विपरीत आचरण करने वाली यदि मेरी भुजा भी होगी तो उसे मैं काट डालूँगा ।।६।।

भावार्थ दीपिका

यस्य मेऽमृतरूपेऽमले यशसि श्रवणेनावगाहः प्रवेशः श्वपचमभिव्याप्य जगत्सद्यस्तत्क्षणमेव पुनाति सोऽहं विकुण्ठो भवद्भ्यो हेतुभूतेभ्य उपलब्धा प्राप्ता सु शोभना तीर्थभूता कीर्तिर्येन सः । स्वबाहुस्थानीयं लोकेश्वरमपि हन्यां, काऽन्यस्य कथेत्यर्थः । स्वगुणानुवर्णनं तु ब्राह्मणोत्कर्षार्थमेव ।।६।।

भाव प्रकाशिका

मेरे अमृत रूपी निर्मल यश में श्रवण के द्वारा अवगाहन करने वाला चाण्डाल पर्यन्त सम्पूर्ण जगत् शीघ्र ही पवित्र हो जाता है । इसीलिए मैं विकुण्ठ कहलाता हूँ । यह कीर्ति मुझे आप जैसे मुनियों से ही प्राप्त हुयी है । मेरी यह कीर्ति सुन्दर तथा पवित्रकारिणी है । अतएव आपलोगों के विपरीत आचरण करने वाली यदि कोई मेरे बाहुस्थनीय लोकेश्वर ही क्यों न हो उसे मैं शीघ्र ही मार डालूँगा । अतएव दूसरों की कौन सी बात है? मेरे गुणों का वर्णन तो ब्राह्मणों के उत्कर्ष के ही लिए है ।।६।।

यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं सद्यः क्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलम् ।
न श्रीर्विरक्तमपि मां विजहाति यस्याः प्रेक्षालवार्थ इतरे नियमान्वहन्ति ।।७।।

अन्वयः— यत् सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं सद्यः क्षताखिलमलम् प्रतिलब्ध शीलम् माम् विरक्तम् अपि श्रीः न विजहाति यस्याः प्रेक्षालवार्थे इतरे नियमान् वहन्ति ।।७।।

अनुवाद— आपलोगों की ही सेवा करने के कारण मेरे चरण कमलों की पवित्र धूलि को ऐसी पवित्र कीर्ति प्राप्त हुई है कि वह शीघ्र ही सम्पूर्ण पापों को विनष्ट कर देती है । और मुझे इस तरह का स्वभाव मिला है कि मेरे उदासीन रहने पर श्रीलक्ष्मीजी मेरा परित्याग नहीं करती हैं । उन्हीं लक्ष्मीजी के कृपा कटाक्ष को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा आदि देवगण नियमों का पालन करते हैं ।।७।।

भावार्थ दीपिका

चरणपद्मयोः स्थितः पवित्रो रेणुर्यस्य । अतएव क्षतो निरस्तोऽखिलस्य लोकस्य मलो येन । यद्वा चरणपद्माल्लग्नः पवित्रो रणुर्यस्मिन्निति, क्षतोऽखिलो मलो यस्येति च विग्रहः । प्रतिलब्धं प्राप्तं शीलं येन । येषां सेवया एते गुणा मम, अतएव श्रीर्मा न विजहाति प्रेक्षालवार्थेऽवलोकनलेशार्थम् । इतरे ब्रह्मादयः । तेषां वः प्रतिकूलवृत्तिं छिन्द्यामिति पूर्वेणैव संबन्धः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा कि यह आपलोगों की सेवा करने का ही फल है कि मेरे चरण कमलों में लगी हुयी पवित्र धूलि सम्पूर्ण लोकों के पापों को तत्काल विनष्ट कर देती है । अथवा आपलोगों के चरण कमलों में लगी हुयी पवित्र धूलि से मेरे सारे पाप विनष्ट हो गये हैं । और मुझे उसी के कारण ऐसा स्वभाव प्राप्त हो गया है। ऐसे आपलोगों की सेवा के द्वारा मुझको ये सारे गुण प्राप्त हुए है । इसीलिए श्रीदेवी मेरा कभी भी परित्याग नहीं करती हैं । उन्हीं श्रीदेवी की कृपादृष्टि प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा इत्यादि देवता विभिन्न नियमों का पालन करते हैं । इस प्रकार के आपलोगों के प्रातिकूल आचरण करने वाली अपनी भुजाओं को भी मैं काट दे सकता हूँ दूसरों की क्या बात है ।।७।।

नाहं तथाऽद्मि यजमानहविर्विताने श्च्योतद्घृतप्लुतमदन्हुतभुङ्मुखेन ।
यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ।।८।।

अन्वयः— मयि अवहितैः कर्मपाकैः तुष्टस्य यजमानस्य विताने श्चोतद्घृतप्लुतम् हुतभुङ्मुखेन अदन् अहं यजमान हविः तथा न अद्भि यद् ब्राह्मणस्य मुखतः अनुघासं चरतः अद्मि इति शेषः ।।८।।

अनुवाद— अपने सम्पूर्ण कर्मों के फल को समर्पित करके सन्तुष्ट रहने वाले निष्काम यजमान के यज्ञ में जिससे घी टपक रहा हो ऐसे पुरोडाश हविष्य इत्यादि को मैं अपने अग्नि रूपी मुख के द्वारा उस तरह से नही सन्तुष्ट होता हूँ जिस तरह धृतप्लुति से युक्त तरह-तरह के पकवानों का भोजन करने वाले ब्राह्मणों के प्रत्येक ग्रास से मैं सन्तुष्ट होता हूँ ॥८॥

भावार्थ दीपिका

किंच ब्राह्मणो ममैव श्रेष्ठं मुखम्, अतो युष्मदवज्ञया मन्मुखतिरस्कार एव कृत इत्याह–नाहमिति । विताने यज्ञे यजमानस्य हविश्चरुपुरोडाशादि हुतभुगग्निस्तेन मुखेन अदन्नश्नन्नपि तथा नाद्मि नाश्नामि । यद्यथा श्च्योतता क्षरता घृतेन प्लुतं विलोडितं पायसादि प्रतिग्रासं रसास्वादपूर्वकं चरतो भुञ्जानस्य ज्ञानिनो ब्राह्मणस्य मुखतोऽश्नामि । मयि समर्पितैः कर्मफलैस्तुष्टस्य निष्कामस्येत्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च ब्राह्मण मेरे श्रेष्ठ मुख हैं । अतएव आप सबों की अवमानना मेरे मुख का ही तिरस्कार है । इस बात को **नाहम्० इत्यादि** इस श्लोक में कहा गया है । यज्ञ में यजमानों के हविष्य पुरोडाश आदि को अपने अग्निमुख के द्वारा ग्रहण करके मैं उतना तृप्त नहीं होता हूँ जितना कि जिससे घी चू रहा हों, ऐसे घृतप्लुत पायस आदि को प्रत्येक ग्रास में रस आदि का अनुभव पूर्वक भोजन करने वाले ज्ञानी ब्राह्मण रूपी मुख से ग्रहण करके मैं तृप्त होता हूँ । ऐसे ब्राह्मण जो अपने सम्पूर्ण कर्मों के फल को मुझे समर्पित करके सन्तुष्ट हो जाते हैं । अर्थात् निष्काम ब्राह्मणों के ॥८॥

येषां बिभर्म्यहमखण्डविकुण्ठयोगमायाविभूतिरमलाङ्घ्रिरजः किरीटैः ।
विप्रांस्तु को न विषहेत यदर्हणाम्भः सद्यः पुनाति सहचन्द्रललामलोकान् ॥९॥

अन्वयः— अखण्ड विकुण्ठयोगमाया विभूतिः अहं विभर्मि, येषां विमलाङ्घ्रिरजः अहंकिरीटैः विभर्मि, यदर्हणाम्भः सहचन्द्रललामलोकाम् सद्यः पुनाति तान् विप्रान् को न विषहेत ॥९॥

अनुवाद— सम्पूर्ण योगमाया का अखण्ड और असीम ऐश्वर्य मेरे अधीन है, वह मैं जिन ब्राह्मणों के चरण रज को अपने मुकुट पर धारण करता हूँ तथा मेरे चरणोदक का गङ्गा रूपी जल को और चन्द्रमा को अपने शिर पर धारण करने वाले शिवजी सहित सम्पूर्ण लोकों को पवित्र करता है ऐसे ब्राह्मणों के कर्म को कौन नहीं सहन करेगा ॥९॥

भावार्थ दीपिका

किंच येषामलमङ्घ्रिरजोऽहं किरीटैर्बिभर्मि तान्विप्रानपकुर्वतोऽपि कोऽन्यो न विषहेत । कथंभूतोऽहम् । अखण्डाऽनवच्छिन्ना विकुण्ठाऽप्रतिहता च योगमायाविलासभूता विभूतिर्यस्य सः । तथा यस्य ममार्हणाम्भः पादोदकं चन्द्रललामेनेश्वरेण सहितान्लोकान् सद्यः पुनाति । एवं परमेश्वरः परमपावनोऽपि सन्नहं विभर्मीति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् कहते हैं कि जिन ब्राह्मणों के निर्मल चरणों की धूलि को मैं अपने मुकुट के ऊपर धारण करता हूँ, उन अपकार करने वाले भी ब्राह्मणों के कर्मों को कौन नहीं बर्दास्त करेगा ? भगवान् अपनी विशेषता बतलाते हुए कहते हैं कि अखण्ड अर्थात् देश की सीमा से रहित, विकुण्ठ अर्थात् काल की सीमा से रहित योग माया मेरी विलास अर्थात् विभूति है तथा मेरा चरणोदक (स्वरूप गङ्गा) चन्द्रमा की कला से सुशोभित श्रीशङ्करजी के साथ सभी लोकों को पवित्र बना देता है इस तरह का परमेश्वर अर्थात् अत्यन्त पवित्र होकर भी मैं ब्राह्मणों की चरण धूलि को अपने शिर पर धारण करता हूँ ॥९॥

ये मे तनूर्द्विजवरान्दुहतीर्मदीया भूतान्यलब्धशरणानि च भेदबुद्ध्या ।
द्रक्ष्यन्त्यघक्षतदृशो ह्यहिमन्यवस्तान्गृध्रा रुषा मम कुषन्त्यधिदण्डनेतुः ॥१०॥

अन्वयः— द्विजवरान् दुहतीः अलब्धशरणानि, भूतानि मे तनूः अधक्षतदृशः मदीया भेदबुद्ध्या द्रक्ष्यन्ति तान् अधिदण्डनेतुःममरुषा अधिदण्डनेतुः अहिमन्यवः गृध्राः कुषन्ति ॥१०॥

अनुवाद— ब्राह्मण; दूध देने वाली गायें तथा अनाथ जीव ये तीनों मेरे शरीर हैं, पापों के कारण जिनकी विवेकदृष्टि विनष्ट हो गयी है, वे लोग इन सबों को मुझसे भिन्न समझते हैं उनको मेरे द्वारा नियुक्त यमराज के सर्प के समान क्रोधी गृध्र के समान दूत क्रोध करके नोचते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

किंच मे तनूरधिष्ठानानि । कास्ताः । द्विजवरान्दुहतीर्दोग्ध्रीः गा इत्यर्थः । दुहितुरिति पाठेऽपि गा एव । विष्णुरूपात्सूर्यादुत्पन्नत्वात् । '**सूर्यसुताश्च गावः**' इति वचनात् । अलब्धशरणानि रक्षकहीनानि भेदबुद्ध्या मदधिष्ठानं न भवन्तीति पृथग्दृष्ट्या ये द्रक्ष्यन्ति । अघेन क्षता नष्टा दृष्टिर्येषां तान् । मदीयोऽधिकृतो दण्डनेता यो यमस्तस्य गृध्राकारा ये दूताः । अहिवन्मन्युर्येषाम्। रुषा क्रोधेन कुषन्ति चञ्चुभिश्छिन्दन्ति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् कहते हैं कि श्रेष्ठ ब्राह्मण, दूध देने वाली गायें और अनाथ प्राणी ये तीनों मेरे शरीर हैं गाँएँ विष्णु स्वरूप सूर्य से उत्पन्न हैं कहा भी गया है **सूर्यसुताश्च गावः** अर्थात् गौए सूर्य की पुत्रियाँ है । इन तीनों को जिनकी अज्ञान के कारण बुद्धि मारी गयी है, वे लोग मुझसे भिन्न मानते हैं, इनको मेरा शरीर नहीं मानते हैं । उनकी आँखों को मेरे द्वारा नियुक्त यमराज के गृध्र के समान आकार वाले तथा सर्पो के समान क्रोधी दूत अपनी चोंचों से नोचते हैं ॥१०॥

ये ब्राह्मणान्मयि धिया क्षिपतोऽर्चयन्तस्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ।
वाण्यानुरागकलयात्मजवद्गृणन्तः संबोधयन्त्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः ॥११॥

अन्वयः— क्षिपतो ब्राह्मणान् ये मयि धिया अर्चयन्तः, स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः तुष्यद्धृदः आत्मजवत् अनुरागकलया गृणन्तः अहमिव सम्बोधयन्ति तैः अहम् उपाहृतः ॥११॥

अनुवाद— ब्राह्मणों के कठोर वाणी बोलने पर भी जो लोग ब्राह्मणों में मेरी बुद्धि करके उनकी पूजा करते हैं एवं मुस्कान रूपी अमृत से मनोहर मुख कमल से प्रसन्नता पूर्वक उनकी उसी तरह से स्तुति करते हैं जिस तरह कोई पुत्र अपने नाराज पिता को उसी तरह से मनाता है जिस तरह से मैं आप लोगों को प्रसन्न कर रहा हूँ । वे लोग मुझको अपने वश में कर लेते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतास्तु मां वशीकुर्वन्तीत्याह । ये क्षिपतः परुषं भाषमाणानपि ब्राह्मणान्संबोधयन्ति । मयि या धीस्तया वासुदेवदृष्ट्याऽर्चयन्तः सन्तः तुष्यद्धृदः प्रीयमाणचित्ताः स्मितमेव सुधा तयोक्षितं सिक्तं पद्मतुल्यं वक्त्रं येषाम् । अनुरागकलया प्रेमशोभया वाचा गृणन्तः स्तुवन्तः । यथा कुपितमात्मजं स्निग्धः पिता सत्पुत्रो वा पितरम् । अहमिव भृगुं युष्मान्वा । तैरहमुपाहृतो वशीकृतः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

निम्नांकित प्रकार के मनुष्य मुझको अपने वश में कर लेते हैं । जो लोग कठोर वाणी बोलने वाले भी ब्राह्मणों को अच्छी तरह से सम्बोधित करते हैं । और उन ब्राह्मणों को मुझ वासुदेव के ही समान मानकर उनकी प्रसन्नता

पूर्वक पूजा करते हैं एवं मुसुकान रूपी अमृत से मनोहर बने अपने मुख कमल के द्वारा प्रेमभरी वाणी से उसी तरह उनकी स्तुति करते हैं जिस तरह कोई सत्पुत्र अपने क्रुद्ध पिता की स्तुति करता है। जैसे मैं महर्षि भृगु को तथा आपलोगों की स्तुति करता हूँ ऐसे लोग मुझको अपने वश में कर लेते हैं ॥११॥

तन्मे स्वभर्तुरवसायमलक्षमाणौ युष्मद्व्यतिक्रमगतिं प्रतिपद्य सद्यः ।
भूयो ममान्तिकमितां तदनुग्रहो मे यत्कल्पतामचिरतो भृतयोर्विवासः ॥१२॥

अन्वयः— तत् स्वभर्तुः मे अवसाय अलक्ष्मणो युष्मद् व्यतिक्रमगतिं प्रपद्य सद्यः मे भृतयोः विवासः अचिरतः भूयः मम अन्तिकम् इताम् तद् मे अनुग्रहः ॥१२॥

अनुवाद— अतएव इनके स्वामी मेरे अभिप्राय को नहीं समझने वाले इन दोनों ने आपलोगों का जो अपमान किया है उसके फल को प्राप्त करके इन दोनों का यहाँ से निर्वासन काल जल्दी ही समाप्त हो जाय और ये दोनों मेरे पास पुनः आ जायँ, यही आपलोगों का मुझपर अनुग्रह होगा ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मान्मेऽवसायमभिप्रायमलक्षमाणावजानन्तौ युष्मदपराधोचितां गतिं सद्यः प्राप्य मत्समीपं इतां प्राप्नुताम् । तदिति स मेऽनुग्रहः । तमेवाह । यत् भृतयोर्विवासोऽचिरतः शीघ्रं कल्पतां संपद्यतां समाप्यतामिति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

चूकि इन लोगों ने मेरे अभिप्राय का अपमान किया है, और आप लोगों का अपराध किया है। उसके फलस्वरूप अपराधानुरूप गति को शीघ्र प्राप्त करके ये दोनों मेरे पास पुनः आ जायँ यही आपलोगों की कृपा होगी। अतएव मेरे इन दोनों अनुचरों का निर्वासन काल शीघ्र ही समाप्त हो जाय ॥१२॥

ब्रह्मोवाच

अथ तस्योशतीं देवीमृषिकुल्यां सरस्वतीम् । नास्वाद्य मन्युदष्टानां तेषामात्माप्यतृप्यत ॥१३॥

अन्वयः— मन्यु दष्टानां तेषां अथ तस्य उशतीं ऋषिकुल्यां सरस्वतीम् देवी आस्वाद्य आत्मा अपि न अतृप्यत ॥१३॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— यद्यपि सनकादिक मुनिगण क्रोध रूपी सर्प के द्वारा दंश लिए गये थे फिर भी श्रीभगवान् की मनोहर मन्त्र स्वरूपिणी वाणी को सुनने से उन लोगों का अन्तःकरण तृप्त नहीं हुआ ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

उशतीं कमनीयां प्रियां देवीं द्योतमानामृषिकुल्यां ऋषयो मन्त्रास्तत्प्रवाहरूपाम्, ऋषिकुलयोग्यामिति वा । सरस्वतीं वाचमास्वाद्य तन्माधुर्यमनुभूय सर्पप्रायेण मन्युना दष्टानामपि । क्रोधाविषयव्याप्तानां हि मनो रसानुभवाभावात्प्रियभाषणमपि न सहते, तेषां त्वात्मा मनो नातृप्यत अलमिति नामन्यत ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की मनोहर वाणी अन्तःकरण को प्रकाशित करने वाली थी। वह मन्त्रों के प्रवाह स्वरूपिणी थी। अथवा ऋषियों के वंश के योग्य थी श्रीभगवान् की उस वाणी के माधुर्य का अनुभव करके सर्प के समान क्रोध के द्वारा दंश लिए गये लोगों का मन रस का अनुभव नहीं कर पाने के कारण उसको भी नहीं सह पाता है, किन्तु उन सनकादिक महर्षियों का मन उन बातों को सुनने से पूर्ण रूप से नहीं तृप्त हुआ। वे यह नहीं सोचे कि अब मन भर गया वे और श्रीभगवान् की बातों को सुनना चाहते थे ॥१३॥

सतीं व्यादाय शृण्वन्तो लघ्वीं गुर्वर्थगह्वराम् । विगाह्यागाधगम्भीरां न विदुस्तच्चिकीर्षितम् ।।१४।।

अन्वयः— सतीम् लघ्वीं, गुर्वर्थगह्वराम् विगाह्यागाध गम्भीराम् वाचम् व्यादाय शृण्वन्तः तच्चिकीर्षितम् न विदुः।।१४।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की वाणी अत्यन्त मनोहर थी, कम अक्षरों वाली अत्यधिक अर्थों से युक्त होने के कारण अत्यन्त गम्भीर थी । अर्थ गाम्भीर्य से परिपूर्ण उन बातों को अत्यन्त ध्यान पूर्वक सुनकर भी वे महर्षिगण इस बात को नहीं जान सके कि श्रीभगवान् क्या करना चाहते हैं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

सतीं श्रेष्ठाम् । व्यादाय प्रसार्य । कर्णं दत्त्वेत्यर्थः । लघ्वीं मिताक्षराम् । गुरुभिरर्थैर्गह्वरां दुष्प्रवेशाम् । अगाधामभिप्रायतः। गम्भीरामर्थतः । विगाह्य विचार्यापि किमस्मानभिनन्दति निन्दति वाऽस्मत्कृतं दण्डं वा संकोचयतीति न विदुः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भगवान् की वाणी की चार विशेषताएँ बतलायी गयीं है । सतीं, लध्वींम्, गुर्वर्धगह्वराम् और अगाधगम्भीराम् । सती शब्द के द्वारा उसकी श्रेष्ठता को बतलाया गया है, लघ्वीम् कहकर उसको कम अक्षरों वाली बतलाया गया, अर्थ गह्वराम् कहकर उस वाणी को महान अर्थों से युक्त होने के कारण उसके अभिप्राय को समझपाना कठिन बतलाया गया है । अगाधगम्भीराम् कहकर यह बतलाया गया है कि श्रीभगवान् की उस वाणी के वाच्यार्थ को भी समझना कठिन था । इसीलिए सनकादि मुनिजन ध्यान पूर्वक श्रीभगवान् की उस वाणी को सुनकर भी यह नहीं समझ पाये कि श्रीभगवान् अपनी इस वाणी से हमलोगों का अभिनन्दन कर रहे हैं अथवा हमलोगों ने इस जय और विजय को दण्ड दिया है, उसको कम कर रहे हैं ।।१४।।

ते योगमाययारब्धपारमेष्ठ्यमहोदयम् । प्रोचुः प्राञ्जलयो विप्राः प्रहृष्टाः क्षुभितत्वचः ।।१५।।

अन्वयः— योगमायया आरब्ध पारमेष्ठ्यमहोदयम् ज्ञात्वा ते विप्राः प्रकृष्टाः क्षुभितत्वचः प्राञ्जलयः प्रोचुः ।।१५।।

अनुवाद— योगमाया के प्रभाव से अपने परम ऐश्वर्य को प्रकट करने वाले श्रीभगवान् की इस अद्भुत उदारता को जानकर उन सनकादि महर्षियों का सारा अङ्ग पुलकित हो गया, वे अत्यन्त प्रसन्न थे और हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से कहने लगे ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

ततश्चाभिनन्दतीति ज्ञात्वा ते प्रहृष्टाः सन्तः प्रोचुः । क्षुभितया रोमाञ्चिता त्वक् येषाम् । कूषितेति पाठे संजातरोमकूपोक्त्या रोमाञ्चितत्वमेकोक्तम् । आरब्ध आविष्कृतः पारमेष्ठ्यस्य परमैश्वर्यस्य महोदयः परमोत्कर्षो येन तम् । अधिराजत्वमाविष्कृत्य राजशिक्षार्थं ब्राह्मणान्मानयतीति ज्ञात्वेत्यर्थः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् जब सनकादि महर्षियों ने यह जान लिया कि श्रीभगवान् हमलोगों का अभिनन्दन कर रहे हैं तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो गये, उन लोगों का शरीर रोमाञ्चित हो गया । **कुषितत्वचः** जहाँ पाठ है वहाँ भी रोमाञ्चित ही अर्थ होगा । और वे हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से कहने लगे । **योगमाययारब्धपारमेष्ठ्यमहोदयम्** का अर्थ है कि योगमाया के द्वारा अपने परम ऐश्वर्य को प्रकट करने वाले, अर्थात् राजाओं को शिक्षा देने के लिए श्रीभगवान् ब्राह्मणों को राजाओं का भी राजा बतलाकर ब्राह्मणों का सम्मान कर रहे हैं इस बात को जानकर वे मुनिजन अत्यन्त प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से कहे ।।१५।।

ऋषय ऊचुः

न वयं भगवन्विद्मस्तव देव चिकीर्षितम् । कृतो मेऽनुग्रहश्चेति यदध्यक्षः प्रभाषसे ॥१६॥

अन्वयः— हे भगवन् अध्यक्षः कृतोमेऽनुग्रहश्चेति, यत् प्रभापसे हे देव ! तव चिकीर्पितम् वयं न विद्मः ॥१६॥

ऋषियों ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! आप तो सम्पूर्ण जगत् के स्वामी है, फिर भी आप यह कह रहे हैं कि आप लोगों ने मुझ पर कृपा की है, यह कहकर आप क्या कहना चाहते हैं, इस बात को हमलोग नहीं समझ पाते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

अध्यक्षः सर्वेश्वरः सन् '**तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये**' इत्युक्त्या मयाऽपराधः कृत इति, '**तथा तदनुग्रहो मे**' इत्यादिवचनेन ममानुग्रहश्चेति यत्प्रभाषसे तेन तव यच्चिकीर्षितं तन्न विद्मः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

सनकादि महर्षियों ने कहा प्रभो आप सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं, फिर भी आप यह जो कह रहे हैं कि तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये, अर्थात् इन दोनों के द्वारा किए गये अपराध को मैं अपना अपराध मानता हूँ। **तथा तदनुग्रहोमे'** अर्थात् आपलोगों ने हमारे ऊपर कृपा की है, इस तरह की जो बातें आप कह रहे हैं इन बातों का क्या अभिप्राय है इस बात को हमलोग नहीं जान पा रहे हैं ॥१६॥

ब्रह्मण्यस्य परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते प्रभो । विप्राणां देवदेवानां भगवानात्मदैवतम् ॥१७॥

अन्वयः— हे प्रभो ब्रह्मण्यस्य परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते, विप्राणां देवदेवानां भगवानात्मदैवतम् ॥१७॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप ब्राह्मणों के परम हितकारी हैं और ब्राह्मण आपके परमाराध्य हैं। वास्तविकता यही है कि ब्राह्मणों और देवताओं के आराध्य ब्रह्मादि देवताओं के लिए आप ही देवता भी हैं और आत्मा भी हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

किलेति लोकशिक्षार्थं सूचितं परमार्थमाहुः-विप्राणामिति । देवदेवानां देवपूज्यानामपि भगवांस्त्वमात्मा च दैवतं च॥१७॥

भाव प्रकाशिका

किल इस अव्यय पद के द्वारा संसार के जीवों को शिक्षा देने के लिए सूचित परमार्थका निरूपण सनकादिक महर्षियों ने **विप्राणाम् इत्यादि** इस श्लोक के उत्तरार्द्ध से कहा है । वास्तविकता यही है कि आप (श्रीभगवान्) ही ब्राह्मणों के परं दैवत परमाध्य हैं । यह दूसरी बात है कि संसार को शिक्षा देने के लिए आप यह मानते हैं कि ब्राह्मण मेरे आराध्य है । ब्राह्मण तथा ब्रह्मा आदि देवताओं की आत्मा भी आप हैं और परमाराध्य भी हैं ॥१७॥

त्वत्तः सनातनो धर्मो रक्ष्यते तनुभिस्तव । धर्मस्य परमो गुह्यो निर्विकारो भवान्मतः ॥१८॥

अन्वयः— सनतनः धर्मः त्वत्तः (समुत्पन्नः) तव तनुभिः रक्ष्यते च निर्विकारो भवान् धर्मस्य परमः गुह्यः मतः॥१८॥

अनुवाद— सनातन धर्म आप से ही उत्पन्न है और समय-समय पर अवतारों को धारण करके आप धर्म की रक्षा करते हैं । निर्विकार स्वरूप आप ही धर्म के परम रहस्य हैं यही शास्त्रों का मत हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

लोकशिक्षार्थताप्रपञ्चः-त्वत्त इत्यष्टभिः । धर्मस्त्वत्त एव भवति रक्ष्यते च त्वदवतारैः । परमः फलरूपोऽत एव गुह गोप्यः । नच स्वर्गादिफलवद्विकारी भवान् किंतु निर्विकारो मतः । अत एवंभूतस्य तवेदं लोकशिक्षामात्रमिति भावः ॥१८

भाव प्रकाशिका

त्वत्तः इत्यादि आठ श्लोकों द्वारा सनकादि महर्षि लोक शिक्षार्थ ही श्रीभगवान् की उपर्युक्त बातें ये है इस बात का विस्तार से वर्णन करते हैं । सनातन धर्म आप से ही उत्पन्न होता है और उसकी रक्षा भी आप ही अवतारों को ग्रहण करके करते हैं । धर्म के फलस्वरूप होने के कारण आप ही अत्यन्त गोपनीय हैं । जिस तरह धर्म के फलस्वरूप स्वर्ग आदि विकृत होते रहते हैं, किन्तु आप तो निर्विकार हैं । अतएव आप उन सबों से भिन्न ही हैं । इस प्रकार से आप जो हैं आपकी उपर्युक्त सारी बाते लोक शिक्षार्थ ही हैं ।।१८।।

तरन्ति ह्यञ्जसा मृत्युं निवृत्ता यदनुग्रहात् । योगिनः स भवान्किंस्विदनुगृह्येत यत्परैः ।।१९।।

अन्वयः— यदनुगहात् निवृत्ता योगिनः अञ्जसा मृत्युं तरन्ति, स भवान् परैः किंस्वित् अनुगृह्यते ।।१९।।

अनुवाद— आपकी ही कृपा को प्राप्त करके योगिजन संसार से विरक्त होकर असार एवं मृत्युरूप संसार सागर को पार कर जाते हैं । ऐसे आप हैं । दूसरा कौन है जो आप पर कृपा करे ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

विपरीतं चेदमित्याहुः-तरन्तीति । यस्यानुग्रहादेव निवृत्ता विरक्ता योगिनश्च सन्तो मृत्युं तरन्ति स भवान्परैरनुगृह्येतेति किंस्वित् । न किंचिदित्यर्थः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

आपने यह जो कहा है कि आपलोगों ने मुझ पर कृपा की है यह वास्तविकता के विपरीत है । यह तो आप संसारी जीवों को शिक्षा देने के लिए कहें हैं । आपकी ही कृपा प्राप्त करके संसार से उदासीन रहने वाले योगिजन बड़ी आसानी से मृत्यु रूप संसार सागर को पार करते हैं । इस तरह के आप है । ऐसे आप पर दूसरा कौन हैं जो कृपा करें । ऐसा दूसरा कोई भी नहीं प्रतीत होता है ।।१९।।

यं वै विभूतिरुपयात्यनुवेलमन्यैरर्थार्थिभिः स्वशिरसा धृतपादरेणुः ।
धन्यार्पिताङ्घ्रितुलसीनवदामधाम्नो लोकं मधुव्रतपतेरिव कामयाना ।।२०।।

अन्वयः— अन्यैः अर्थार्थिभिः स्वशिरसा धृतपादरेणुः धन्यार्पिताङ्घ्रितुलसी नवदाम धाम्नः मधुपतेः लोकं कामयाना इव विभूतिः अनुबेलम् उपयाति ।।२०।।

अनुवाद— हे भगवन् दूसरे अर्थार्थी जन श्रीलक्ष्मीजी के चरणों की धूलि को अपने शिर पर धारण करते हैं। वे लक्ष्मीजी आपके चरणों की सेवा करती रहती हैं । लगता है कि आपके भाग्यवान भक्तजन आपके चरणों पर जो नवीन तुलसी की मालाओं को चढ़ाते हैं, उसको हीअपना धाम मानने वाले भ्रमर राज के समान वे भी आपके तुलसीमण्डित चरणों को ही अपना स्थान बनाना चाहती हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

यच्चोक्तं **'यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं सद्यः क्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलम्'** इत्यादि, तदत्यन्तमसंभावितमित्याहुर्द्वाभ्याम् । यं वै विभूतिर्लक्ष्मीरनुवेलमवसरेऽवसरे उपयाति सेवते । धृतः पादरेणुर्यस्याः । धन्यैः सुकृतिभिरर्पितमङ्घ्रौ यत्तुलस्या नवं दाम माला तद्धाम स्थानं यस्य तस्य । मधुव्रतपतेर्भ्रमरमुख्यस्य लोकं स्थानमङ्घ्रि कामयमानेव ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने पीछे के सातवें श्लोक में यह जो कहा कि **यत्सेवया चरणपद्मपवि० इत्यादि** अर्थात् जिन ब्राह्मणों के चरणों की सेवा करने के ही कारण मेरे चरणरज को ऐसी पवित्रता प्राप्त हुयी है कि वह शीघ्र ही पापों को शान्त कर देता है और उसी के ही कारण मुझे ऐसा स्वभाव प्राप्त हुआ । वह अत्यन्त असंभव है इस बात

को सनकादि महर्षियों ने दो श्लोकों से कहा है । तथाहि जिन लक्ष्मीजी के चरणरज को अर्थार्थी पुरुष आपने शिर पर धारण करते हैं, वे लक्ष्मीजी आप श्रीभगवान् के चरणों की सेवा सदैव करती रहती हैं । लगता है कि आप के भाग्यवान् भक्तजन आपके चरणों पर जो नवीन तुलसी की माला चढ़ाते हैं उन पर गुञ्जार करने वाले भ्रमर राज के समान वे लक्ष्मीजी भी आपके चरणों को ही अपना आश्रय स्थान बनाना चाहती हैं ।।२०।।

यस्तां विविक्तचरितैरनुवर्तमानां नात्याद्रियत्परमभागवतप्रसङ्गः ।
स त्वं द्विजानुपथपुण्यरजः पुनीतः श्रीवत्सलक्ष्म किमगा भगभाजनस्त्वम् ।।२१।।

अन्वयः— यः परमभागवतप्रसङ्ग त्वं विविक्तचरितैरनुवर्तमानां तां न अत्यद्रियत् । भगभाजनः त्वम् द्विजानुपथ पुण्यरजः श्रीवत्सलक्ष्म पुनीतः किमगाः ।।२१।।

अनुवाद— अपने पवित्र चरित्रों से आपकी सेवा करने वाली उन लक्ष्मीजी का भी आप अत्यधिक अनादर नहीं करते हैं, क्योंकि आप तो अपने भक्तों से ही अधिक प्रेम करते हैं । आप स्वयम् ही सम्पूर्ण भजनीय गुणों के आश्रय हैं । जहाँ-तहाँ विचरण करने वाले ब्राह्मणों के चरणों की धूलि अथवा श्रीवत्सचिह्न आपको पवित्र बना सकते हैं क्या ? उपर्युक्त सारी बातों को तो आपने लोकसंग्रह के ही लिए कहा है ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

विविक्तचरितैर्विशुद्धैः परिचरणैरनुवर्तमानां सेवमानामपि यो नात्याद्रियत् नातीवादृतवान्, स एवंभूतस्त्वम् । अयं भावः- इत्थं नामातिलम्पटतया लक्ष्मीस्त्वां सेवते । कथम् । एवं हि सा मेने । अयं हि सारग्राही मधुव्रतश्चञ्चलश्च स चाङ्घ्रिगतायां तुलस्यां सपरिवारो निश्चलः सन् रमते अतोऽङ्घ्रिलावण्यमत्यधिकं स्यात्ततोऽहं वक्षसि स्थितापि योगिजनादिबहुसेवक-संघर्षमङ्गीकृत्यापि तुलस्या सह सापत्न्येनापि चरणौ सेविष्यामीति तदेवमत्यौत्सुक्येनानुवर्तमानामपि तां त्वं नातीवाद्रियसे । यतः परमभागवतेष्वेव प्रकृष्टसङ्गवान् । स एवं परमसौभाग्यनिधिस्त्वम् । अतो ब्राह्मणप्रसादान्मां श्रीर्नविजहातीत्यलभ्यलाभत्वेन निर्देशो न समञ्जस इति । किंच स्वत एव त्वं भगभाजनो भजनीयानां गुणानामाश्रयः परमशुद्धश्च तं त्वां द्विजानामनुपथं पथि पथि लग्नं यत्पुण्यं रजस्तथा श्रीवत्सलक्ष्म्या च किं पुनीतः पवित्रीकुरुतः । किं किमर्थं च ते उभे अगाः प्राप्तो भूषणत्वेन स्वीकृतवानसि । अतो '**यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुम्**' इत्यादिवचनं लोकसंग्रहमात्रमित्यर्थः।।२१।।

भाव प्रकाशिका

अपने पवित्र चरित्रों के द्वारा जो लक्ष्मी आपकी सेवा किया करती हैं उनका भी आप बहुत अधिक आदर नहीं करते हैं । कहने का अभिप्राय है कि लक्ष्मीजी तो आपकी सेवा अत्यन्त प्रेमपूर्वक करती हैं । क्योंकि वे मानती हैं कि यह भ्रमर सारग्राही है अर्थात् पुष्पों के पराग का ही ग्रहण करता है तथा चञ्चल भी है, किन्तु वह अपने परिवार के साथ श्रीभगवान् के चरणों पर चढी हुयी तुलसी में रमता है । इसका अर्थ है कि श्रीभगवान् के चरणों का सौन्दर्य अधिक हो सकता है । अतएव श्रीभगवान् के वक्षः स्थल में रहकर तथा योगिजन इत्यादि अनेक सेवक समूह को स्वीकार करके भी तुलसी के साथ ही यद्यपि तुलसी तो मेरी सौत है फिर भी उसके ही साथ मैं श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करूँगी । इस तरह से अत्यन्त उत्सुकता पूर्वक आपकी सेवा करने वाली लक्ष्मीजी का आप अत्यधिक समादर नहीं करते हैं । इसका कारण है कि आप तो अपने भक्तों से ही अधिक प्रेम करते हैं । अतएव आप परम सौभाग्य सागर हैं । अतएव आपने यह जो कहा है कि ब्राह्मणों की कृपा से ही लक्ष्मी मेरा कभी परित्याग नहीं करती हैं, इस तरह से ब्राह्मणों की कृपा को अलभ्य लाभ रूप से आपका बतलाना समन्वित नहीं हो सकत है । किंच स्वभावतः ही आप भजनीय गुणों के आश्रय हैं तथा परम शुद्ध हैं । ऐसे आपको विभिन्न मार्गों पर सञ्चरण करने वाले ब्राह्मणों के चरणों की पवित्र धूलि तथा श्रीवत्सचिह्न क्या पवित्र करेंगे ? फिर भी आप इन दोनों ब्राह्मण की चरण धूलि और श्रीवत्सचिह्न को भूषणरूप से क्यों धारण किए है फलतः आपका यह कथन कि **यत्सेवर चरणपद्म पवित्ररेणुम्** केवल संसारी जीवों को शिक्षा देने के लिए है ।।२१।।

धर्मस्य ते भगवतस्त्रियुग त्रिभिः स्वैः पद्भिश्चराचरमिदं द्विजदेवतार्थम् ।
नूनं भृतं तदभिधाति रजस्तमश्च सत्त्वेन नो वरदया तनुवा निरस्य ॥२२॥

अन्वयः— हे त्रियुग धर्मस्य ते भगवतः त्रिभिः पद्भिः द्विजदेवतार्थम् नूनमिदं चराचरं भृतं वरदया सत्त्वेन तनुवा तदभिधात्ति रजस्तमश्च निरस्य ॥२२॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप साक्षात् धर्मस्वरूप हैं, आप सत्यादि तीनों युगों में प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान रहते हैं एवं ब्राह्मणों एवं देवताओं के लिए तप, शौच और दया अपने इन तीन चरणों से चराचर जगत् की रक्षा करते हैं । अब आप शुद्ध सत्त्व गुण सम्पन्न वरदान देने वाले शरीर से धर्म विरोधी हमारे रजोगुण एवं तमोगुण को विनष्ट कर दें ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

धर्ममूर्तेश्च तवेदमुचितमेवेत्याहुः-धर्मस्येति त्रिभिः । त्रिष्वेव युगेष्वाविर्भवतीति त्रियुगः । यद्वा त्रीणि युगानि युगलानि त्रियुगाः षड्गुणा भगशब्दवाच्याः सन्त्यस्येति त्रियुगः । हे त्रियुग, धर्मरूपस्य तव त्रिभिः पद्भिः स्वैरसाधारणैस्तपःशौचदयाभिः। सत्यस्य धर्मविप्लवेऽपि कलावनुवर्तमानत्वात्त्रिभिरित्युक्तम् । भृतं पालितम् । किं कृत्वा । नोऽस्माकं वरदया सत्त्वेन तनुवा तन्वा सत्त्वमूर्त्या तदभिघाति तेषां पादानामभिघातकं रजश्च तमश्च निरस्य निराकृत्य । द्विजानां देवतानां च प्रयोजनाय नूनं भृतम्। यद्वा हिलोपे रूपं निरस्येति । अस्माकं तन्निवर्तयेत्यर्थः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

धर्मस्य इत्यादि तीन श्लोकों के द्वारा सनकादि महर्षि कहते हैं कि आप तो धर्ममूर्ति हैं अतएव आप को इस तरह से कहना उचित ही है । श्रीभगवान् त्रियुग हैं क्योंकि वे तीनों युगों में आविभूर्त रहते हैं अथवा श्रीभगवान् को त्रियुग इसलिए कहा जाता है कि उनमें तीन युगल अर्थात् भग शब्द से अभिहित किए जाने वाले ऐश्वर्य, वीर्य, तेज, शक्ति, ज्ञान और बल विद्यमान हैं । सनकादि महर्षि कहते हैं हे त्रियुग ! आपके तीन तप, शौच और दया नामक असाधारण पैर हैं धर्म के कलियुग में उपद्रुत होने पर भी सत्य नामक चौथा धर्म का पैर बना रहता है, इसीलिए यहाँ धर्म के तीन ही पैर गिनाये गये हैं । आप अपने शुद्ध सत्त्व सम्पन्न वरदान देने वाले शरीर के द्वारा धर्म विरोधी हमारे रजोगुण एवं तमोगुण को दूर करके हमलोगों का पालन करें । आप अपने तीन चरणों से ही जगत् की रक्षा करते हैं । आप देवताओं और ब्राह्मणों का कल्याण करने के ही लिए उन चरणों को धारण किये है । अथवा हि का लोप करके निरस्य यह लोट् लकार के मध्यम पुरुष का रूप है । और उसका अर्थ है दूर करें ॥२२॥

न त्वं द्विजोत्तमकुलं यदि हात्मगोपं गोप्ता वृषः स्वर्हणेन ससूनृतेन ।
तर्ह्येव नङ्क्ष्यति शिवस्तव देव पन्था लोकोऽग्रहीष्यदृषभस्य हि तत्प्रमाणम् ॥२३॥

अन्वयः— द्विजोत्तमकुलम् आत्मगोपं यदि वृषः त्वं स्वर्हणेन ससूनृतेन न गोप्ता हे देव । तर्हि एव तव शिवः । पन्था नङ्क्ष्यति । लोको हि ऋषभस्य हि तत् प्रमाणम् अग्रहिष्यत् ॥२३॥

अनुवाद— हे देव ! यह ब्राह्मणों का उत्तम वंश आपके ही द्वारा रक्षा किए जाने योग्य है । यदि धर्मस्वरूप होकर भी आप इसकी रक्षा अपनी मधुरवाणी और पूजा इत्यादि के द्वारा न करें तो फिर आपके द्वारा निश्चित किया गया कल्याणमार्ग ही नष्ट हो जायेगा । क्योंकि लोक तो श्रेष्ठ पुरुषों के ही आचरण को प्रमाण रूप से मानता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

आत्मगोपं त्वयैव रक्षणीयं द्विजोत्तमानां कुलम् । यदि ह स्फुटं त्वं न गोप्ता न रक्षिता । तृन्प्रत्ययान्तत्वान्न षष्ठीप्रयोगः।

वृष: श्रेष्ठ: । हे देव, पन्था वेदमार्गो नङ्क्ष्यति नाशं गास्यति । ऋषभस्य श्रेष्ठस्य । हि यस्मात्तदनर्हणमसूनृतं चाग्रहीष्यत् । तदुक्तं गीतासु '**यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन: । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।**' इति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों के वंश की रक्षा आपको ही करनी चाहिए । यदि आप ब्राह्मणों के वंश की रक्षा नहीं करें तो हे धर्मस्वरूप भगवन् ! श्रेष्ठ वैदिक मार्ग नष्ट हो जायेगा । गोप्ता शब्द तृन् प्रत्ययान्त है इसीलिए यहां पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग नही हुआ है । आप यदि ब्राह्मण वंश की मधुरवाणी और पूजा के बिना ही अनुगृहीत न करें तो उससे कल्याणकारी वैदिक मार्ग, विनष्ट होगा ही । गीता में कहा भी गया है **यद्यद आचरति श्रेष्ठ: इत्यादि** श्रेष्ठ पुरुष जैसा भी आचरण करता है, दूसरे लोग भी उसी तरह का कार्य करते हैं । वह जिसको प्रमाणित करता है, उसी का लोग भी अनुसरण करते है । श्लोक का ऋषभ शब्द श्रेष्ठ का वाचक है ।।२३।।

तत्तेऽनभीष्टमिव सत्त्वनिधेर्विधित्सो: क्षेमं जनाय निजशक्तिभिरुद्धृतारे: ।
नैतावता त्र्यधिपतेर्बत विश्वभर्तुस्तेज: क्षतं त्ववनतस्य स ते विनोद: ।।२४।।

अन्वय:— निजशक्तिभि: उद्धृतारे: सत्त्वनिधे: जनाय क्षेमं विधित्सो: तत् ते अनभिष्टमिव । वत त्र्यधिपते: विश्वभर्तु: अवनतस्य तव एतावता तेज: क्षतं न यत: स ते विनोद: ।।२४।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप सत्त्वगुण के आकर हैं, और सदा सभी जीवों का कल्याण करने में लगे रहते हैं । इसीलिए आप राजा इत्यादि के द्वारा धर्म के शत्रुओं का विनाश किया करते हैं । क्योंकि धर्म का नाश होना आपको अभिप्रेत नहीं है । यद्यपि आप त्रैलोक्य के स्वामी है तथा सम्पूर्ण जगत् का पालन करते हैं । फिर भी आप ब्राह्मणों के प्रति इस तरह से नम्र बने रहते हैं यही कारण है कि आपका तेज कभी भी क्षीण नहीं होता है । यह आपकी लीलामात्र है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

नश्यत्विति चेत्तत्राहु: । तद्वेदमार्गनाशनम् । इति लोकोक्ति: । सत्त्वनिधित्वाज्जनाय क्षेमं शं विधातुमिच्छोरत एव निजशक्तिभी राजादिभिरुत्पाटितधर्मप्रतिपक्षस्य । अतस्तव ब्रह्मकुलेऽवनतिर्युक्तैव । ननु महतोऽन्येष्ववनतिस्तेजोहानिकरी तत्राहु:। एतावता तु धर्मत्राणप्रयोजनेनावनतस्य नमनं कृतवतस्तव तेज: प्रभावो न क्षतं न क्षीणम् । यत: स नमनादिस्ते विनोद: ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि वेदमार्ग विनष्ट हो जाय इससे क्या होगा ? तो इस पर मुनियों ने कहा कि आपको वेदमार्ग का नष्ट होना अभिप्रेत नहीं है । इव शब्द के द्वारा सूचित किया गया है कि यह सारा संसार जानता है। आप चूंकि सत्त्वगुण की खान हैं अतएव आप सम्पूर्ण जीवों का कल्याण करने के लिए उत्सुक बने रहते हैं इसीलिए आप राजा इत्यादि अपनी शक्तियों के द्वारा धर्म के शत्रुओं का नाश किया करते हैं । अतएव आपका ब्राह्मणवंश के प्रति नम्रतायुक्त रहना उचित ही है । **ननु० इत्यादि** यदि कहें कि महान् पुरुष का दूसरे लोगों के प्रति झुककर रहना उनके तेज को नष्ट कर देता है तो इस पर महर्षियों ने कहा धर्म की रक्षा करने के लिए आप ब्राह्मणों के प्रति नम्र बने रहते हैं इसीलिए आपका तेज कभी क्षीण नहीं होता है । क्योंकि वह ब्राह्मणों के प्रति नम्रता आपकी लीलामात्र है ।।२४।।

यं वाऽनयोर्दममधीश भवान्विधत्ते वृत्तिं नु वा तदनु मन्महि निर्व्यलीकम् ।
अस्मासु वा य उचितो ध्रियतां स दण्डो येऽनागसौ वयमयुङ्क्ष्महि किल्बिषेण ।।२५।।

अन्वय:— हे अधीश ! भवान् अनयो: यं वा दमम् विधत्ते वृत्तं नु वा तत् निर्व्यलीकम् अनुमन्महि, वा अस्मासु य: उचितो दण्ड: स ध्रियताम् ये वयम् अनागसौ किल्बिषेण अयुंक्ष्महि ।।२५।।

अनुवाद— हे स्वामिन् ! आप इन दोनों को जैसा चाहें वैसा दण्ड दें अथवा इन दोनों की वृत्ति को बढ़ा

दें हमलोग दोनों में निष्कपट भाव से सहमत हैं । अथवा आप के इन दोनों निरपराध अनुचरों को हमलोगों ने जो शाप दे दिया है उसके कारण आप हमलोगों को ही यदि दण्ड तो उसे भी हम निष्कपट भाव से स्वीकार करते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

शापाग्रहं परित्यज्य विज्ञापयन्ति । यं वाऽन्यं दण्डं विधास्यति भवान्, वृत्तिं नु अधिकजीविकां वा तत्सर्वमनुमन्यामहे। ये वयं निरपराधावेतौ किल्विषेण शापेनायुङ्क्ष्महि योजितवन्तः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

सनकादि महर्षियों ने शाप के आग्रह का परित्याग करके श्रीभगवान् से प्रार्थना किया कि आप चाहें तो इन दोनों को और अधिक दण्ड दें अथवा इन दोनों को और अधिक जीविका बढ़ा दें हमलोग दोनों में शुद्ध हृदय से सहमत हैं । हमलोगों ने चूकि आपके इन दोनों निरपराध अनुचरों को शाप दिया है । अतएव आप चाहें तो उसके लिए हमें दण्डित करें, उसमें भी हमलोग सहमत हैं ॥२५॥

श्रीभगवानुवाच

एतौ सुरेतरगतिं प्रतिपद्य सद्यः संरम्भसंभृतसमाध्यनुबद्धयोगौ ।
भूयः सकाशमुपयास्यत आशु यो वः शापो मयैव निमितस्तदवैत विप्राः ॥२६॥

अन्वयः— एतौ सद्यः सुरतेरगतिं प्रतिद्य, संरम्भ समाध्यनुबद्धयोगौ भूयः आशु सकाशम् उपयास्यतः वः यः शापः स मयैव निमितः, तदवैत ॥२६॥

श्रीभगवान ने कहा

अनुवाद— अब ये दोनों शीघ्र ही दैत्य योनि को प्राप्त करेंगे, वहाँ भी क्रोधावेश के कारण बढ़ी हुयी एकाग्रता के कारण सुदृढ योग सम्पन्न ये दोनों शीघ्र ही मेरे पास आ जायेगें । आपलोगों ने जो शाप दिया है, वह मेरे द्वारा ही निर्मित है, इस बात को आप लोग जानें ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

मत्कारितत्वाच्छापस्य युष्माकं नापराध इत्याश्वासयन्नाह । एतौ सद्य एवासुरयोनिं प्राप्य भूयोऽप्याशु मत्समीपमागमिष्यतः । संरम्भेण क्रोधावेशेन संभृतः संवृद्धो यः समाधिरेकाग्रता तेनानुबद्धो दृढीकृतो योगो ययोः । हे विप्राः, यो वः शापो युष्मत्कृतः शापस्तदिति स मयैव निमितो निर्मित इत्यवैत जानीत ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा ऋषियों आपलोगों के द्वारा शाप मैंने दिलवाया है, उसमें आप लोगों का कोई भी अपराध नहीं है । इस तरह से आश्वासन प्रदान करते हुए श्रीभगवान् ने कहा ये दोनों शीघ्र ही आसुरयोनि को प्राप्त करके पुनः शीघ्र ही मेरे पास लौट आयेगें । उस योनि में क्रोधावेश के कारण समृद्ध एकाग्रता के कारण सुदृढयोग सम्पन्न ये दोनों मेरे पास आयेंगे । इस बात को आपलोग जान लें ॥२६॥

ब्रह्मोवाच

वैकुण्ठं तदधिष्ठानं विकुण्ठं च स्वयंप्रभम्॥२७॥
अथ ते मुनयो दृष्ट्वा नयनानन्दभाजनम् । प्रतिजग्मुः प्रमुदिताः शंसन्तो वैष्णवीं श्रियम् ॥२८॥
भगवन्तं परिक्रम्य प्रणिपत्यानुमान्य च ।

अन्वयः— अथ ते मुनयः नयनाान्दभाजनम् वैकुण्ठं तदधिष्ठानं स्वयम्प्रभम् विकुण्ठं च दृष्ट्वा भगवन्तं परिक्रम्य, प्रणिपत्य, अनुमान्य च प्रमुदिताः वैष्णवीं श्रियम् शंसन्तः प्रतिजग्मुः ॥२७-२८॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् उन मुनियोंने नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाले श्रीभगवान् का और उनके निवास स्थान स्वयम्प्रकाश वैकुण्ठ धाम का दर्शन करके श्रीभगवान् की परिक्रमा करके उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और श्रीभगवान् की आज्ञा प्राप्त करके वे श्रीभगवान् के ऐश्वर्य की प्रशंसा करते हुए वहाँ से लौट आये ॥२७-२८॥

भावार्थ दीपिका

नेत्रोत्सवजनकं विकुण्ठं हरिं तन्निवासं च वैकुण्ठं लोकम् । स्वयंप्रकाशं प्रकाशान्तरानपेक्षम् । सत्त्वपरिणामत्वात् । अनुमान्यानुज्ञाप्य । परिक्रम्य प्रदक्षिणीकृत्य । वैष्णवीं श्रियं वैकुण्ठे वर्णितम् ॥२७-२८॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के द्वारा आश्वस्त होने के पश्चात् मुनियों ने नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाले श्रीहरि तथा उनके निवास स्थान स्वयंप्रकाश वैकुण्ठ का दर्शन किया तदनन्तर उन लोगों ने श्रीभगवान् की परिक्रमा करके उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उसके पश्चात् वे वैकुण्ठ वर्णन के प्रसङ्ग में जिसका वर्णन किया जा चुका है उस ऐश्वर्य की प्रशंसा करते हुए वे लोग वैकुण्ठ से लौट गये ॥२७-२८॥

भगवाननुगावाह यातं मा भैष्टमस्तु शम् । ब्रह्मतेजः समर्थोऽपि हन्तुं नेच्छे मतं तु मे ॥२९॥

अन्वयः— भगवाननुगावाह, यातम् मा भैष्ट, शम् अस्तु ब्रह्मतेजः हन्तुं समर्थः अपि हन्तुं नेच्छे तु मे मतम् ॥२९॥

अनुवाद— उसके पश्चात् भगवान ने अपने अनुचरों से कहा तुम दोनों डरो मत तुम दोनों का कल्याण होगा । ब्राह्मणों के शाप को विनष्ट करने में मैं समर्थ हूँ फिर भी उसका विनाश इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि ऐसा मुझको अभिमत है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

ममैव तु मतं संमतम् । इदमत्र तत्त्वम्-यद्यपि सनकादीनां क्रोधो न संभवति, न च भगवत्पार्षदयोर्ब्राह्मणप्रातिकूल्यम्, नच भगवतः स्वभक्तोपेक्षा, नच वैकुण्ठगतानां पुनर्जन्म, तथापि भगवतः सिसृक्षादिवत्कदाचिद्युयुत्सा समजनि तदाऽन्येषामल्पबलत्वात्स्वपार्षदानां तुलयबलत्वेऽपि प्रातिपक्ष्यानुपपत्तेरेतावेव ब्राह्मणनिवारणे प्रवर्त्य तेषु च क्रोधमुद्दीप्य तच्छापव्याजेन प्रतिपक्षौ विधाय युद्धकौतुकं संपादनीयमिति भगवतैव व्यवसितं, अतः सर्वं संगच्छते । तदिदमुक्तं शापो मयैव निमित इति, मा भैष्टमिति, अस्तु शमिति, हन्तुं नेच्छे मतं तु मे इत्यादि च ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने अपने अनुचरों से कहा कि यह शाप मुझे अभिमत है । उसका अभिप्राय है कि यद्यपि सनाकदियों को क्रोध नहीं होता है, और न तो श्रीभगवान के पार्षदों के वे ब्राह्मण कभी प्रतिकूल आचरण कर सकते हैं, भगवान् भी अपने भक्तों की कभी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं । वैकुण्ठ पहुँचे जीव का कभी जन्म भी नहीं होता है, फिर भी जिस तरह श्रीभगवान् की सृष्टि करने की इच्छा होती है, उसी तरह उनकी कभी युद्ध करने की भी इच्छा हो जाती है । **तदान्येषाम्० इत्यादि**- ऐसी स्थिति में दूसरे जीव तो अत्यन्त अल्प बल वाले हैं । उनके जो पार्षद हैं, उनका श्रीभगवान् के समान ही बल है । किन्तु वे भगवान् के प्रतिपक्षी नहीं हो सकते हैं । इसीलिए उन ब्राह्मणों को उन दोनों के द्वारा रोकवाकर तथा ब्राह्मणों में क्रोध को उत्पन्न करके ब्राह्मणों के शाप के व्याज से, उन दोनों को अपना प्रतिपक्षी बनाकर मुझे युद्ध के कुहूल को पूरा करना चाहिए, इसीलिए भगवान् ने ऐसा कराया । अतएव सबकुछ समन्वित हो गया । **तदिदमित्यादि**- इसीलिए श्रीभगवान् ने कहा कि मेरे द्वारा ही प्रेरित होकर आपलोगों ने शाप दिया है । अनुचरों को भगवान् ने कहा कि तुम दोनों डरो मत । तुम दोनों का कल्याण हो । मैं इस शाप को विनष्ट करना नहीं चाहता हूँ । यह ब्राह्मणों का शाप मुझे अभिमत है इत्यादि ॥२९॥

एतत्पुरैव निर्दिष्टं रमया क्रुद्धया यदा । पुराऽपवारिता द्वारि विशन्ती मय्युपारते ॥३०॥

अन्वयः— पुरा मयि उपारते द्वारि विशन्ती यदा अपवारिता क्रुद्धया रमया एतत निर्दिष्टम् ॥३०॥

अनुवाद— एक बार जब मैं योगनिद्रा में स्थित हो गया था उस समय द्वार में प्रवेश करती हुयी लक्ष्मीजी को तुम दोनों ने रोक दिया था उसके कारण क्रुद्ध होकर उन्होंने इस शाप को पहले ही दे दिया था ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

यदा मयि उपारते योगनिद्रां गतवति सति द्वारि । विशन्ती युवाभ्यां पुराऽपवारिता तदा क्रुद्धया रमया एतद्यद्ब्राह्मणैरिदानीमुक्तं तत्पुरैव निर्दिष्टम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

जब मैं योगनिद्रा में चला गया था उस समय मेरे द्वार में प्रवेश करती हुयी लक्ष्मीजी को तुम दोनों ने रोक दिया था उसके कारण वे क्रुद्ध हो गयीं और उन्होंने इस शाप को उसी समय दे दिया था जिस शाप का आज ब्राह्मणों ने उच्चारण किया है ॥३०॥

मयि संरम्भयोगेन निस्तीर्य ब्रह्महेलनम् । प्रत्येष्यतं निकाशं मे कालेनाल्पीयसा पुनः ॥३१॥

अन्वयः— मयि संरम्भयोगेन ब्रह्महेलनम् निस्तीर्य अल्पीयसा कालेन पुनः मे निकाशं एष्यतम् ॥३१॥

अनुवाद— इस दैत्य योनि में मेरे प्रति क्रोध स्वरूपिणी वृत्ति होने के कारण तुमलोगों की जो एकाग्रता प्राप्त होगी, उसके कारण तुमलोग ब्राह्मण के तिरस्कारजन्य पाप से मुक्त हो जाओगे और उसके पश्चात् थोड़े ही दिन में मेरे पास लौट आओगे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्येष्यतं प्रत्येष्यथः । निकाशं समीपम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

प्रत्येषतम् पद का अर्थ है तुम दोनों आओगे । निकाशम् अर्थात् समीप । भगवान् ने कहा कि तुम दोनों शीघ्र ही मेरे समीप आ जाओगे ॥३१॥

द्वास्थावादिश्य भगवान्विमानश्रेणिभूषणम् । सर्वातिशयया लक्ष्म्या जुष्टं स्वं धिष्ण्यमाविशत् ॥३२॥

अन्वयः— द्वास्थौ आदिश्य भगवान् विमानश्रेणिभूषणम् सर्वातिशया लक्ष्म्या जुष्टम् स्वधिष्ण्यम् आविशत् ॥३२॥

अनुवाद— अपने दोनों द्वारपालों को इस प्रकार की आज्ञा देकर श्रीभगवान् विमान समूह से विभूषित तथा सर्वाधिक शोभा सम्पन्न अपने धाम में प्रवेश कर गये ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥३२॥

तौ तु गीर्वाणऋषभौ दुस्तराद्धरिलोकतः । हतश्रियौ ब्रह्मशापादभूतां विगतस्मयौ ॥३३॥

अन्वयः— तौ तु गीर्वाणऋषभौ दुस्तराद् हरिलोकतः ब्रह्मशापात् हतश्रियौ विगतविस्मयौ अभूताम् ॥३३॥

अनुवाद— वे देवश्रेष्ठ, जय विजय ब्रह्मशाप के कारण उस अलंघनीय श्रीभगवान् के लोक में ही श्रीहीन हो गये और उनका गर्व गलित हो गया ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

दुस्तराद्ब्रह्मशापात् हरिलोकतः पतन्ताविति शेषः। हरिलोकत एव हतश्रियावभूतामिति वा। विगतस्मयौ नष्टगर्वौ च॥३३॥

भाव प्रकाशिका

सनकादि ब्राह्मणों का उपर्युक्त शाप अनुलघनीय था । इसलिए दोनों जय और विजय का उन लोक से पतन हो गया अथवा वे दोनों श्रीहरि के लोक में ही निःश्रीक हो गये और उनका गर्व नष्ट हो गया ॥३३॥

तदा विकुण्ठधिषणात्तयोर्निपतमानयोः । हाहाकारो महानासीद्विमानाग्र्येषु पुत्रकाः ॥३४॥

अन्वयः— हे पुत्रकाः तदा तयोः विकुण्ठधिषणात् निपतमानयोः विमानाग्र्येषु महान् हाहाकारः आसीत् ॥३४॥

अनुवाद— हे देवताओं ! जिस समय वैकुण्ठ लोक से उन दोनों का पतन हो रहा था उस समय श्रेष्ठ विमान पर बैठे हुए वैकुण्ठ वासियों में महान् हाहाकार मच गया ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

विकुण्ठस्य धिषणात्स्थानात् । पुत्रका हे देवाः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने यहाँ देवताओं को पुत्रक शब्द से सम्बोधित किया । उन्होंने कहा कि जब वे दोनों श्रीभगवान् के स्थान वैकुण्ठ लोक से पतित हो रहे थे, उस समय जो वैकुण्ठवासी श्रेष्ठ विमानों पर बैठकर देख रहे थे, उन लोगों में घोर हाहाकार मच गया ॥३४॥

तावेव ह्यधुना प्राप्तौ पार्षदप्रवरौ हरेः । दितेर्जठरनिर्विष्टं काश्यपं तेज उल्बणम् ॥३५॥

अन्वयः— तौ एव हरेः पार्षदप्रवरौ अधुना उल्बणम् काश्यपं तेज दितेः जठर निर्विष्टौ ॥३५॥

अनुवाद— श्रीहरि के वे ही दोनों श्रेष्ठ पार्षद इस समय उग्र कश्यप महर्षि के तेज के माध्यम से दिति के गर्भ में प्रवेश कर गये हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

काश्यपं तेजो वीर्यं प्राप्तौ ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप के वीर्य में प्रवेश करके दिति के गर्भ में प्रवेश कर गये हैं ॥३५॥

तयोरसुरयोरद्य तेजसा यमयोर्हि वः । आक्षिप्तं तेज एतर्हि भगवांस्तद्विधित्सति ॥३६॥

अन्वयः— तयो यमयोः असुरयोः तेजसा अद्य वः तेजः आक्षिप्तं एतर्हि भगवान् तद् विधित्सति ॥३६॥

अनुवाद— उन दोनों जुड़वे असुरों के ही तेज से आप देवताओं का तेज फीका पड़ गया है । इस समय भगवान् ऐसा ही करना चाहते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

सहैव गर्भे प्रविष्टौ यमौ तयोस्तेजसा वस्तेज आक्षिप्तं तिरस्कृतम् । नचात्र प्रतिविधिः शक्यः । यत एतर्हीदानीं भगवानेव तदेवं विधातुमिच्छति ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

वे दोनों एक साथ चूकि दिति के गर्भ में प्रवेश किए हैं अतएव यम अर्थात् जुड़वे हैं । उन दोनों के तेज के कारण आपलोगों का तेज तिरस्कृत है । इसका कोई प्रतिकार भी नहीं है । क्योंकि इस समय भगवान् ही ऐसा करना चाहते हैं ॥३६॥

विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो योगेश्वरैरपि दुरत्यययोगमायः ।
क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीशस्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अन्वयः— यः विश्वस्य आद्यः स्थितिलयोद्भवहेतुः, यः योगमायः योगेश्वरैरपि दुरत्ययः सः त्र्यधीशः भगवान् नः क्षेमं विधास्यति । इह अस्मदीयविमर्शेन कियान् अर्थः ॥३७॥

अनुवाद— जो श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय के प्रधान कारण है, जिनकी योगमाया को बड़े-बड़े योगीश्वर बड़ी कठिनाई से पार कर पाते है जो श्रीभगवान् सत्त्वादि तीनों गुणों के नियामक हैं, वे ही भगवान् हम सबों का कल्याण करेंगे । इस विषय में विचार करने से कोई भी लाभ नहीं होने वाला है ॥३७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

तथापि कोऽप्युपायो विचार्यतामिति चेत्तत्राह-विश्वस्येति त्रयाणां गुणानामीशः स एव सत्त्वोत्कर्षकाले नः क्षेमं विधास्यति। विमृशेन विमर्शनेन ।।३७।।

इति श्रीमद्भागवते तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायांटीकायां षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

यदि देवता कहें कि फिर भी आप कोई उपाय सोचिए । इस पर ब्रह्माजी ने कहा श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, रक्षा और लय का कार्य करते हैं । वे तीनों गुणों के नियामक है जब सत्त्वगुण का उत्कर्ष (उद्रेक) होगा उस समय श्रीभगवान् ही हमलोगों का कल्याण करेंगे । इस विषय में विचार करना व्यर्थ हैं ॥३७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के सोलहवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१६।।

सत्रहवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष का जन्म और हिरण्याक्ष की दिग्विजय यात्रा

मैत्रेय उवाच

निशम्यात्मभुवा गीतं कारणं शङ्कयोज्झिताः । ततः सर्वे न्यवर्तन्त त्रिदिवाय दिवौकसः ॥१॥

अन्वयः— ततः आत्मभुवागीतं कारणं निशम्य शङ्कयोज्झिताः सर्वे दिवौकसः त्रिदिवाय न्यवर्तन्त ॥१॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! उसके पश्चात् ब्रह्माजी द्वारा वर्णित अन्धकार के कारण को सुनकर शङ्का रहित सभी देवता स्वर्गलोक में लौट आये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततः सप्तदशे जन्म तयोर्लोकभयंकरम् । हिरण्याक्षप्रभावश्च वर्ण्यते दिग्जयेऽद्भुतः । क्षेमं विधास्यतीति ब्रह्मवचनानन्तरं शङ्कया त्यक्ताः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् उन दोनों का लोकों में भय उत्पन्न कर देने वाले जन्म का वर्णन तथा दिग्विजय के प्रसङ्ग में हिरण्याक्ष के प्रभाव का वर्णन इस सत्रहवें अध्याय में किया गया है ।।१।। जब देवताओं ने ब्रह्माजी के मुख से अन्धकार के कारण को सुन लिया तो उनकी शङ्का समाप्त हो गयी और वे स्वर्गलोक में लौट गये ।।१।।

दितिस्तु भर्तुरादेशादपत्यपरिशाङ्किनी । पूर्णे वर्षशते साध्वी पुत्रौ प्रसुषुवे यमौ ।।२।।

अन्वयः— अपत्य परिशङ्किनी साध्वी दिति तु वर्षशते पूर्णे भर्तुः आदेशात् यमौ पुत्रौ प्रसुपुवे ।।२।।

अनुवाद— अपने पुत्रों के विषय में देवताओं द्वारा भय की शङ्का करने वाली दिति ने सौ वर्ष पूरा हो जाने पर अपने पति के आदेश को पाकर जुड़वे दो पुत्रों को जन्म दिया ।।२।।

भावार्थ दीपिका

भर्तुरादेशात् **'लोकान्सपालांस्त्रींश्चण्डि मुहुराक्रन्दयिष्यतः'** इति वाक्यात् । अपत्याभ्यां परिशङ्किनी देवोपद्रवं शङ्कमाना ।।२।।'

भाव प्रकाशिका

पहले ही महर्षि कश्यपने कहा था कि हे चाण्डि वे दोनों सभी लोकों और लोकपालों को बार-बार रुलायेंगे। अपने पति के उसी आदेश के अनुसार सौ वर्ष पूर्ण हो जाने पर दिति ने अपने दोनों जुड़वे पुत्रों को उत्पन्न किया, क्योंकि दिति को भय था कि कहीं देवता हमारे दोनों पुत्रों को मार न दें ।।२।।

उत्पाता बहवस्तत्र निपेतुर्जायमानयोः । दिविभुव्यन्तरिक्षे च लोकस्योरुभयावहाः ।।३।।

अन्वयः— तत्र जायमानयोः दिवि, भुवि, अन्तरिक्षे च लोकस्य उरु भयावहाः बहवः उत्पाताः निपेतुः ।।३।।

अनुवाद— उन दोनों के जन्म के समय स्वर्ग में, भूलोक में तथा अन्तरिक्ष लोक में अत्यन्त भय उत्पन्न करने वाले बहुत से उत्पात हुए ।।३।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तदा निपेतुरुद्बभूवुः । उरु भयमासमन्ताद्वहन्तीति ।।३।।

भाव प्रकाशिका

उन दोनों दैत्यों के जन्म के समय लोकों में अत्यधिक भय उत्पन्न कर देने वाले उत्पात हुए ।।३।।

सहाचला भुवश्चेलुर्दिशः सर्वाः प्रजज्वलुः । सोल्काश्चाशनयः पेतुः केतवश्चार्तिहेतवः ।।४।।

अन्वयः— सहाचलाः भुवः चेलुः सर्वाः दिशः प्रजज्वलुः, सोल्काः अशनयः च पेतुः आर्तिहेतवः केतः च पेतुः ।।४।।

अनुवाद— पर्वतों के साथ पृथिवी काँपने लगी, सभी दिशाओं में दाह होने लगा, स्थान-स्थान पर उल्कापात होने लगा, विजलियाँ गिरने लगीं और आकाश में धूमकेतु (पुच्छल तारे) दिखने लगे ।।४।।

भावार्थ दीपिका

अचलैः सहिता भुवः प्रदेशाः । केतवश्चोदयं चक्रुरिति शेषः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

उस समय पर्वतों के साथ पृथिवी के प्रदेश काँपने लगे, आकाश में पुच्छल तारे उदित हो गये ।।४।।

ववौ वायुः सदुःस्पर्शः फूत्कारानीरयन्मुहुः । उन्मूलयन्नगपतीन्वात्यानीको रजोध्वजः ॥५॥

अन्वयः— फूत्कारान् ईरयन् इव नगपतीन् उन्मूलयन् सुदुःस्पर्शः वात्यानीकः रजोध्वजः वायुः ववौ ॥५॥

अनुवाद— उस समय सांय-सांय करती हुयी, महावृक्षों का उखाड़ती हुयी, विकट और असह्य वायु चलने लगी । उस समय आँधी ही उसकी सेना थी और उड़ती हुयी धूल उसकी ध्वजा प्रतीत होती थी ॥५॥

भावार्थ दीपिका

फूत्कारानिति तीव्रवायुशब्दानुकरणम् । नगपतीन् महावृक्षान् । वात्या एवानीकं यस्य । रज एव ध्वजो यस्य ॥५॥

भाव प्रकाशिका

तेज चलने वाली वायु के शब्द का अनुकरण ही **फूत्कारान् ईरयन् इव** के द्वारा वतलाया गया है । अर्थात् उस समय साँय-साँय करती हुयी हवा चल रही थी । वह अपने वेग के द्वारा बड़े-वड़े वृक्षों को उखाड़ दे रही थी । उस हवा की वात्या (चक्रवात) ही सेना थी और उड़ती हुयी धूल ही उसकी ध्वजा थी ॥५॥

उद्धसत्तडिदम्भोदघटया नष्टभागणे । व्योम्नि प्रविष्टतमसा न स्म व्यादृश्यते पदम् ॥६॥

अन्वयः— उद्धसत्तडि दम्भोदघटया नष्टभागणे, व्योम्नि प्रविष्टतमसा पदम् न व्यादृश्यते स्म ॥६॥

अनुवाद— जोर-जोर से चमकती हुयी बिजलीयों से युक्त मेघ की घटा के द्वारा सभी सूर्य चन्द्रमा तथा तारे आदि ग्रहों के लुप्त हो जाने पर आकाश में घोर अन्धकार छा गया तथा कहीं कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता था ॥६॥

भावार्थ दीपिका

उच्चैर्हसन्त्य इव तडितो येषु तेषामम्बुदानां घटया समूहेन नष्टो भागणः सूर्यादिप्रभासमूहो यस्मिन् । पदं स्थानं न व्यादृश्यते स्म ईषदपि नादृश्यत ॥६॥

भाव प्रकाशिका

जिनमें बिजलियाँ मानो जोर-जोर से चमककर, हँस रही थीं ऐसे मेघों के समूह से सभी प्रकाशक सूर्य चन्द्रमा तथा तारों आदि ग्रहों के लुप्त हो जाने पर आकाश में ऐसा अन्ध्कार छा गया कि कहीं कुछ भी नहीं दिखायी दे रहा था ॥६॥

चुक्रोश विमना वार्धिरुदूर्मिः क्षुभितोदरः । सोदपानाश्च सरितश्चुक्षुभुः शुष्कपङ्कजाः ॥७॥

अन्वयः— क्षुभितोदरः उदूर्मिः विमना वार्धिः चुकोश, शुष्कपङ्कजाः सोदपानश्च सरितः चुक्षुभुः ॥७॥

अनुवाद— जिसके भीतर विद्यमान जलचर व्याकुल हो गये थे ऊँची-ऊँची लहरियाँ उठ रही थीं और दुःखी मनुष्य के समान समुद्र चिल्ला रहा था, दूसरे जलाशय और नदियाँ क्षुब्ध हो गये और उनमें विद्यमान कमल सूख गये ॥७॥

भावार्थ दीपिका

वार्धिः समुद्रो विमना इव । उद्गता ऊर्मयो यस्मात् । क्षुभिता उदरस्था मकरादयो यस्मिन् । उदपानैर्वापीकूपादिभिः सहिताः । शुष्काणि पङ्कजानि यासु ॥७॥

भाव प्रकाशिका

वार्धि समुद्र को कहते हैं, उस समय समुद्र दुःखी मनुष्य के समान चिल्ला रहा था । उसमें बड़ी-बड़ी लहरें उठ रही थीं, उस समुद्र के भीतर रहने वाले घड़ियाल इत्यादि जीव भी क्षुब्ध हो गये थे, बावलियों तथा कूपों आदि के साथ नदियों में भी खलबली मची हुयी थी और उनमें विद्यमान कमल भी सूख गये ॥७॥

मुहुः परिधयोऽभूवन् सराह्वोः शशिसूर्ययोः । निर्घाता रथनिर्ह्रादा विवरेभ्यः प्रजज्ञिरे ॥८॥

अन्वयः— सराह्वोः शशिसूर्ययोः मुहुः परिधयः अभूवन् निर्घाताः विवरेभ्यः रथनिर्ह्रादाः प्रजज्ञिरे ॥८॥

अनुवाद— सूर्य और चन्द्रमा बार बार ग्रस्त होने लगे और उनके चारों ओर बार बार अमङ्गल सूचक मण्डल बैठने लगे, बिना मेघ के ही गरजने की ध्वनि होने लगी और गुफाओं से रथ की घरघराहट की ध्वनि होने लगी ॥८॥

भावार्थ दीपिका

परिधयः परिवेषाः । सराह्वोः राहुग्रस्तयोः । निर्घाता निरभ्रगर्जितानि । रथनिर्ह्रादतुल्या ध्वनयः । विवरेभ्यो गिरिगुहाभ्यः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अमङ्गल सूचक मण्डल को परिधि अर्थात् परिवेष कहते हैं । बार बार सूर्य और चन्द्रमा में ग्रहण लगना और उनके चारो ओर मण्डल का बैठना ये दोनों अमङ्गल सूचक हैं । बिना मेघ के ही गरजने की ध्वनि के होने को निर्घात कहते हैं । गुफाओं से रथ की घरघराहट की ध्वनि का होना ये सबके सब उत्पात सूचक हैं ॥८॥

अन्तर्ग्रामेषु मुखतो वमन्त्यो वह्निमुल्बणम् । सृगालोलूकटङ्कारैः प्रणेदुरशिवं शिवाः ॥९॥

अन्वयः— अन्तर्ग्रामेषु शृगालोलूकटङ्कारैः मुखतः उल्बणम् वह्निम् वमन्त्यः शिवाः अशिवं प्रणेदुः ॥९॥

अनुवाद— गावों के भीतर गीदड़ और उल्लुओं के भयानक ध्वनि के साथ ही अपने मुख से दहकती हुयी आग उगलती हुयी स्यारियाँ अमङ्गलमय शब्द करने लगीं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

सृगालानामुलूकानां च टङ्कारैर्ध्वनिभिः सह । शिवाः सृगाल्यः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उस समय गावों के भीतर ही गीदड़ों ओर उल्लुओं के शब्द के साथ अपने मुख से आग उगलती हुयी स्यारियाँ अत्यन्त अमङ्गलमय शब्द करने लगीं ॥९॥

सङ्गीतवद्रोदनवदुन्नमय्य शिरोधराम् । व्यमुञ्चन्विविधा वाचो ग्रामसिंहास्ततस्ततः ॥१०॥

अन्वयः— ततः ततः ग्रामसिंहाः शिरोधराम् उन्नमय्य संगीतवत् रोदनवत् विविधा वाचः व्यमुञ्चन् ॥१०॥

अनुवाद— स्थान-स्थान पर कुत्ते अपनी गरदन ऊपर की ओर उठाकर कभी गाने के समान और कभी रोने के समान अनेक प्रकार के शब्द करने लगे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ग्रामसिंहाः श्वानः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

ग्रामसिंह कुत्तों को कहते हैं । उन दोनों के जन्म के समय जहाँ-तहाँ अपनी गरदन ऊपर की ओर उठाकर कभी गीत के समान तथा कभी रोने के समान अनेक प्रकार की ध्वनि करने लगे । कुत्तों का ऊपर की ओर मुख उठाकर इस तरह की ध्वनि करना भी अमङ्गलकारक होता है ॥१०॥

खराश्च कर्कशैः क्षत्तः खुरैर्घ्नन्तो धरातलम् । खार्काररभसा मत्ताः पर्यधावन्वरूथशः ॥११॥

अन्वयः— हे क्षत्तः वरुथशः खरश्च कर्कशैः खुरैः धरातलम् ध्नन्तः खार्काररभसा मत्ताः पर्यधावन् ॥११॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! झूंड के झूंड गधे भी अपने खुरों से पृथिवी को खोदते हुए तथा रेंकने का शब्द करते हुए मदमत्त होकर दौड़ने लगे ॥११॥

भावार्थ दीपिका

कर्कशैस्तीक्ष्णैः । हे क्षत्तः खार्कारो गर्दभजातिशब्दस्तस्मिन् रभसः संभ्रमा येषाम् । वरूथशः सङ्घशः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

कर्कश अर्थात् तीक्ष्ण ध्वनि । जोर-जोर से गधों को रेकने की ध्वनि को खार्काररभस कहते हैं । उस समय झूण्ड के झूण्ड अपने तीक्ष्ण और कठोर खुरों से पृथिवी को खनते हुए तथा जोर-जोर से रेंकते हुए गधे मदमत्त से होकर चारो ओर दौड़ने लगे ॥११॥

रुदन्तो रासभत्रस्ता नीडादुदपतन्खगाः । घोषेऽरण्ये च पशवः शकृन्मूत्रमकुर्वत ॥१२॥

अन्वयः— रासभत्रस्ताः खगाः रुदन्तः नीडाद् उदपतन् पशवः घोषे अरण्ये च शकृन्मूत्रम् अकुर्वत ॥१२॥

अनुवाद— गधों क रेंकने की ध्वनि से डरकर पक्षीगण डरकर रोते चिल्लाते हुए अपनी घोसलों से उड़ गये तथा गोशालाओं में बँधे हुए और वनों में चरते हुए गौ आदि पशुगण डरकर मलमूत्र त्याग करने लगे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

रासभशब्दत्रस्ताः सर्वतः क्रोशन्तः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

गधों की लगातर जोर-जोर से रेंकने की ध्वनि को सुनकर पक्षीगण डर गये और आवाज करते हुए अपने घोसलों में से निकलकर उड़ने लगे । गौ बैल आदि पशु भी जो गोशालाओं में बंध थे और वनों में चर रहे थे वे सब भी डर गये और डर के कारण वे मलमूत्र का त्याग करने लगे ॥१२॥

गावोऽत्रसन्नसृग्दोहास्तोयदाः पूयवर्षिणः । व्यरुदन्देवलिङ्गानि द्रुमाः पेतुर्विनाऽनिलम् ॥१३॥

अन्वयः— गावः अत्रसन् असृग्दोहाः तोयदास्पूयवर्षिणः, देवलिङ्गानि व्यरुदन् द्रुमाः अनिलम् विना पेतुः ॥१३॥

अनुवाद— गायें इतना डर गयीं कि दूहने पर उनके स्तनों से खून निकलने लगा, मेघों से पीव की वर्षा होने लगी । देवताओं की मूर्तियों की आँखों से आँसू बहने लगा, विना हवा के ही वृक्ष गिर पड़े ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

गावोऽत्रसन् त्रस्ताः । असृग्दोहाश्च बभूवुः । देवलिङ्गानि व्यरुदन्, प्रतिमानामश्रुस्राव आसीदित्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

गधों के उन भयङ्कर रेंकने की ध्वनि को सुनकर गायें इतना डर गयीं कि उनके स्तनों से दूध के बदले खून निकलने लगा । मेधों से पीब की वर्षा होने लगी । देवमूर्तियों की आँखों से आंसू प्रवाहित होने लगा और बिना हवा के ही पेड़ गिरने लगे ॥१३॥

ग्रहान् पुण्यतमानन्ये भगणांश्चापि दीपिताः । अतिचेरुर्वक्रगत्या युयुधुश्च परस्परम् ॥१४॥

अन्वयः— पुण्यतमान् ग्रहान् भगणान् अपि च अन्ये दीपिताः वक्रगत्या अतिचेरुः परस्परम् युयुधुश्च ॥१४॥

अनुवाद— चन्द्रमा, बृहस्पति आदि सौम्य ग्रहों तथा दूसरे नक्षत्रों को शनि, राहु आदि क्रूर ग्रह वक्रगति से लाँघकर परस्पर में युद्ध करने लगे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

पुण्यतमान् गुरुबुधादीन्भगणान् । बहूनि नक्षत्राणि चान्ये क्रूरग्रहा मङ्गलादयोऽतिचेरुरतिक्रम्य जग्मुर्वक्रगत्या प्रत्यावृत्य ययुधुश्च ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त सौम्य बुध, बृहस्पति आदि ग्रहों तथा दूसरे नक्षत्रों को मङ्गल आदि अत्यन्त क्रूर ग्रह लाँघकर आगे निकल गये और पुन: लौटकर युद्ध करने लगे ॥१४॥

दृष्ट्वाऽन्यांश्च महोत्पातानृतत्तत्त्वविद: प्रजा: । ब्रह्मपुत्रानृते भीता मेनिरे विश्वसंप्लवम् ॥१५॥

अन्वय:— अन्यांश्च महोत्पातान् दृष्ट्वा अतत् तत्त्वविद: प्रजा: ब्रह्मपुत्रान् विना भीता विश्वसंप्लवम् मेनिरे ॥१५॥

अनुवाद— दूसरे भी महान् उत्पातों को देखकर सनकादिक महर्षियों को छोड़कर सारी प्रजायें भयभीत होकर सोचने लगीं कि अब संसार का प्रलय होने वाला है, क्योंकि उन उत्पातों का कारण उन सबों को ज्ञात नहीं था ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मपुत्रानृते बिना, तेषां स्वशापादिज्ञानात् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

सनकादिक महर्षियों को भय इसलिए नहीं हुआ कि वे लोग तो जानते ही थे कि उनलोगों के शाप के ही कारण जय और विजय के दैत्ययोनि में उत्पन्न होने के कारण ये सारे उत्पात हो रहे हैं ॥१५॥

तावादिदैत्यौ सहसा व्यज्यमानात्मपौरुषौ । ववृधातेऽश्मसारेण कायेनाद्रिपती इव ॥१६॥

अन्वय:— तौ आदिदैत्यौ सहसा व्यज्यमानात्मपौरुषौ अश्मसारेण कायेन ववृधाते ॥१५॥

अनुवाद— वे दोनों आदिदैत्य जन्म के पश्चात् शीघ्र ही अपने पौरुष को अभिव्यक्त करते हुए पत्थर के समान कठोर शरीर के द्वारा बढ़कर बड़े हो गये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

व्यज्यमानात्मपौरुषं पूर्वसिद्धं स्वपौरुषं ययो: ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनों का पूर्व पराक्रम भी अभिव्यक्त हो गया । उन दोनों का शरीर पत्थर के समान कठोर था और वे दोनों शीघ्र ही बढ़कर बड़े हो गये ॥१६॥

दिविस्पृशौ हेमकिरीटकोटिभिर्निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदङ्गदाभुजौ ।
गां कम्पयन्तौ चरणै: पदे पदे कट्या सुकाञ्च्याऽर्कमतीत्य तस्थतु: ॥१७॥

अन्वय:— हेमकिरीट कोटिभि: दिविस्पृशौ, निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदङ्गभुजौ पदे-पदे चरणै गांकम्पयन्तौ कट्या: सुकाञ्च्यग्अर्कमतीत्य तस्थतु: ॥१७॥

अनुवाद— वे दोनों इतने लम्बे थे कि उनके किरीट का अग्रभाग स्वर्ग को छू लेता था, उनके विशाल शरीर से दिशायें ढँक जाती थीं, उन दोनों की भुजाओं में बाजूबन्द चमकता था, वे जब चलते थे तो उनके पग-पग पर पृथिवी काँपने लगती थी, उनके कमर में लगी हुयी सुन्दर चमकती हुयी करधनी के समक्ष सूर्य का तेज फीका पड़ जाता था ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

निरुद्धा व्याप्ता: काष्ठा दिशो याभ्याम् । स्फुरन्त्यङ्गदानि येषु ते भुजा ययो: । अङ्गदेति टाबन्तत्वमार्षम् । शोभना काञ्ची यस्यां तया कट्या ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनों के विशाल शरीर से सारी दिशाएँ भर जाती थीं उन दोनों की भुजाओं में बाजूबन्द चमकते रहते थे । अङ्गदा में टाप प्रत्यष आर्ष है । उन दोनों के कमर मे सुन्दर करधनी चमकती थी उसके समक्ष सूर्य का भी प्रकाश फीका पड़ जाता था ॥१७॥

प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्यः प्राक्स्वदेहाद्यमयोरजायत ।
तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा यं तं हिरण्याक्षमसूत साग्रतः ॥१८॥

अन्वयः— प्रजापतिः तयोः यमयोः नाम अकर्षीत् यः स्वदेहात् प्राक् अजायत तं वै प्रजाः हिरण्यकशिपुं विदुः यं सा अग्रतः असूत तं प्रजाः हिरण्याक्षम् विदुः ॥१८॥

अनुवाद— वे दोनों जुड़वे थे । उन दोनों का प्रजापति कश्यप ने नामकरण किया । जो उनके वीर्य से दिति के गर्भ में पहले स्थापित हुआ उसको प्रजाएँ हिरण्यकशिपु के नाम से जानती थीं और जिसको दिति ने पहले जन्म दिया उसको प्रजा हिरण्याक्ष के नाम जानी ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

यमयोर्मध्ये यः स्वदेहात्प्रथममजायत तं प्रजाः हिरण्यकशिपुं विदुः । सा दितिः प्रथमं यमसूत तं हिरण्याक्षं यथा विदुस्तथा नाम कृतवानित्यर्थः । अयं भावः- यदा हि गर्भाधानसमये योनिपुष्पं विशद्वीर्यं द्विधा विभक्तं आदिपश्चाद्भावेन प्रविशति तदा यमौ भवतस्तयोश्च पितृतः प्रवेशक्रमविपर्ययेण मातृतः प्रसूतिः । **'यदा विशेदिद्विधा भूतं बीजं पुष्पं परिक्षरत्। द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिर्वेशविपर्ययात् ।'** इति पिण्डसिद्धिस्मरणात् । अतः स्वदेहात्पूर्वं यो जातस्तस्य हिरण्यकशिपुरिति दितिः प्रथमं यमसूत तस्य हिरण्याक्ष इति नाम कृतवानिति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनों जुड़वों में से महर्षि कश्यप के शरीर से जो पहले उत्पन्न हुआ उसको प्रजाओं ने हिरण्यकशिपु के नाम से जाना और दिति ने जिसको पहले जन्म दिया उसका नाम उन्होंने हिरण्याक्ष रखा और प्रजाओं ने उसको इसी नाम से जाना । **अयं भावः** कहने का अभिप्राय है कि जब गर्भाधान के समय योनि रूपी पुष्प में वीर्य दो भागों में विभक्त होकर प्रवेश करता है तब जुड़वे बच्चे होते हैं । पिता से निकलकर प्रवेश करने का जो क्रम होता है उसके उलटा माता के जन्म देने का क्रम होता है । पिण्डसिद्धि नामक ग्रन्थ में कहा गया है- **यदाविशेत इत्यादि** जब निकलने वाला वीर्य दो भागों में विभक्त होकर योनि रूपी पुष्प में प्रवेश करता है, उस समय प्रसूति के प्रकार के विपरीत दो गर्भ हो जाते हैं । **अतः स्वदेहात्० इत्यादि-** इसीलिए कहा गया है कि जो अपने शरीर से पहले उत्पन्न हुआ उसका नाम प्रजापति ने हिरण्यकशिपु रखा और जिसका दिति ने पहले पैदा किया उसका नाम हिरण्याक्ष रखा ॥१८॥

चक्रे हिरण्यकशिपुर्दोर्भ्यां ब्रह्मवरेण च । वशे सपालाँल्लोकांस्त्रीनकुतोमृत्युरुद्धतः ॥१९॥

अन्वयः— हिरण्यकशिपुः ब्रह्मवरेण अकुतोमृत्युः उद्धतः दोर्भ्यां सपालान् त्रीन् लोकान् वशे चक्रे ॥१९॥

अनुवाद— हिरण्यकशिपु ब्रह्माजी के वरदान के कारण मृत्यु के भय से मुक्त होकर अत्यन्त उद्धत हो गया था, उसने अपनी भुजाओं के बल पर लोकपालों सहित तीनों लोकों को अपने वश में कर लिया था ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

दोर्भ्यामुद्धतो ब्रह्मवरेणाकुतोमृत्युः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्यकशिपु अपनी भुजाओं के बल पर उद्धत हो गया और ब्रह्माजी के वरदान के कारण मृत्यु के भय से मुक्त हो गया था ॥१९॥

हिरण्याक्षाऽनुजस्तस्य प्रियः प्रीतिकृदन्वहम् । गदापाणिर्दिवं यातो युयुत्सुर्मृगयन्रणम् ॥२०॥

अन्वयः— तस्यप्रियः अनुजः हिरण्याक्षः अन्वहम् प्रियकृत् रणम मृगयन् युयुत्सुः गदापाणिः दिवं यातः ॥२०॥

अनुवाद— उसका छोटा भाई हिरण्याक्ष, सदैव अपने बड़े भाई को प्रिय लगने वाला काम करता था। एक बार वह गदा हाथ में लेकर युद्ध करने की इच्छा से स्वर्गलोक में गया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

रणं युद्धम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष युद्ध करना चाहता है अतएव युद्ध करने के लिए वह स्वर्ग में गया ॥२०॥

तं वीक्ष्य दुःसहजवं रणत्काञ्चननूपुरम् । वैजयन्त्या स्रजा जुष्टमंसन्यस्तमहागदम् ॥२१॥

अन्वयः— दुःसहजवं, रणत्काञ्चननूपुरम्, वैजयन्त्या स्रजा जुष्टं अंसन्यस्तमहागदम् तं वीक्ष्य ॥२१॥

अनुवाद— असह्य वेग सम्पन्न, तथा जिसके पैरों में सुवर्ण का नूपुर बज रहा था, और गले में विजय सूचक माला पड़ी थी तथा कन्धे पर विशाल गदा धारण किये हुए उस हिरण्याक्ष को देखकर ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

दुःसहो जवो वेगो यस्य । रणन्तौ काञ्चनमयौ नुपूरौ यस्य । अंसेन्यस्ता महती गदा येन ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष का वेग असह्य था, उसके पैरों में सुवर्ण के नूपुर झनकार कर रहे थे तथा वह अपने कन्धे पर विशाल गदा को धारण किए हुए था, इस प्रकार के हिरण्याक्ष को देवताओं ने देखा ॥२१॥

मनोवीर्यवरोत्सिक्तमसृण्यमकुतोभयम् । भीता निलिल्यिरे देवास्तार्क्ष्यत्रस्ता इवाहयः ॥२२॥

अन्वयः— मनोवीर्य वरोत्सिक्तम् असृणि, अकुतोभयम् (वीक्ष्य) भीताः देवाः तार्क्ष्यत्रस्ता अहय इव निलिल्यिरे ॥२२॥

अनुवाद— मनोबल, शारीरिक बल और ब्रह्माजी के वरदान से मदमत्त बने हुए निरङ्कुश तथा निर्भय हिरण्याक्ष को देखकर देवतागण भयभीत हो गये और डर के मारे जहाँ-तहाँ उसी तरह छिप गये जिस तरह गरुड़ को देखकर सर्प छिप जाते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

मनसा शौर्येण वीर्येण बलेन वरेण चोत्सिक्तं गर्वितम् । असृण्यं निरङ्कुशम् । निलिल्यिरे लीना बभूवुः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

शौर्य, वीर्य और ब्रह्माजी के वरदान के बल से हिरण्याक्ष मदमत्त और निरङ्कुश हो गया था। वह बिल्कुल निर्भय था। उसको देखकर सभी देवता भयभीत हो गये, और डर कर जहाँ तहाँ छिप गये ॥२२॥

स वै तिरोहितान्दृष्ट्वा महसा स्वेन दैत्यराट् । सेन्द्रान्देवगणान्क्षीबानपश्यन्व्यनदद्भृशम् ॥२३॥

अन्वयः— सः दैत्याराट् स्वेन महसा सेन्द्रान् देवगणान् क्षीवान् अपश्यन् भृशम् व्यनदत् ॥२३॥

अनुवाद— वह दैत्यराज हिरण्याक्ष अपने तेज के द्वारा इन्द्र इत्यादि बड़े गर्वीले देवताओं को अपने सामने नहीं देखकर भयङ्कर गर्जना किया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

स्वेन महसा तेजसा तिरोहितान्स दृष्ट्वा ज्ञात्वा क्षीबान्मत्तानपश्यन्स्वनन् । 'बलीबान्' इति पाठे पौरुषहीनान् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष ने देखा कि उसके तेज के कारण भयभीत होकर बड़े-बड़े गर्वीले देवता कहीं छिप गये हैं उन सबों को हिरण्याक्ष ने अपने सामने नहीं देखा तो उसने घोर गर्जना की । जहाँ बलीबान् पाठ है वहाँ पौरुषहीन अर्थ होगा ॥२३॥

ततो निवृत्तः क्रीडिष्यन् गम्भीरभीमनिःस्वनम् । विजगाहे महासत्त्वो वार्धिं मत्त इव द्विपः ॥२४॥

अन्वयः— ततः निवृत्त क्रीडिष्यन् गम्भीरं भीमनिःस्वनम् वार्धिं महासत्त्वः मत्तः द्विप इव विजगाहे ॥२४॥

अनुवाद— वहाँ से लौटकर वह क्रीडा करने की इच्छा से गहरे और बड़ी लहरों के कारण गरजने वाले समुद्र में मदमत्त हाथी के समान प्रवेश कर गया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥२४॥

तस्मिन्प्रविष्टे वरुणस्य सैनिका यादोगणाः सन्नधियः ससाध्वसाः ।
अहन्यमाना अपि तस्य वर्चसा प्रधर्षिता दूरतरं प्रदुद्रुवुः ॥२५॥

अन्वयः— तस्मिन् प्रविष्टे वरुणस्य सैनिका, यादोगणाः सन्नधियः ससाध्वसाः अहन्यमाना अपि तस्य वर्चसा प्रधर्षिताः दूरतरं प्रदुद्रुवः ॥२५॥

अनुवाद— उसके समुद्र में प्रवेश करते ही वरुण के सैनिक और जलचर जीव किं कर्तव्य विमूढ और भी भयभीत हो गये । उसके द्वारा नहीं भी मारे जाने पर वे उसके तेज से अभिभूत होकर उससे दूर चले गयें॥२५॥

भावार्थ दीपिका

सन्ना अवसन्ना धीर्येषाम् । वर्चसा तेजसा प्रधर्षिता अभिभूता सन्तः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

समुद्र में प्रवेश किए हुए हिरण्याक्ष को देखकर वरुण के सैनिक तथा सभी जलचर किं कर्तव्य विमूढ हो गये । यद्यपि हिरण्याक्ष ने किसी के साथ छेड़-छाड़ भी नहीं किया किन्तु वे सब उसके तेज से अभिभूत हो गये और उससे दूर चले गये ॥२५॥

स वर्षपूगानुदधौ महाबलश्चरन्महोर्मीन् श्वसनेरितान्मुहुः ।
मौर्व्याऽभिजघ्ने गदया विभावरीमासेदिवांस्तात पुरीं प्रचेतसः ॥२६॥

अन्वयः— हे तात ! सः महाबलः वर्षपूगान् उदधौ चरन् श्वसनेरितान् महोर्मीन मुहुः मौर्व्या गदया अभिजघ्ने प्रचेतसः पुरीं विभावरीम् आसेदिवान् ॥२६॥

अनुवाद— महाबलवान् वह हिरण्याक्ष अनेक वर्षो तक उस समुद्र में सञ्चरण करता हुआ, अपने किसी प्रतिपक्षी को न पाकर वायु के द्वारा प्रेरित समुद्र की लहरियो पर बार-बार अपनी लौहमयी गदा से प्रहार करता रहा, उसके पश्चात् वह घूमता हुआ वरुण की राजधानी विभावरी पुरी में पहुँच गया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

महोर्मीनभिजघ्ने । मौर्व्या मारयतीति मौर्वं कार्ष्णायसं तन्मय्या । यद्वा मूर्वा नाम तृणविशेषः, तन्मयरज्ज्वा दृढनिबद्धयेत्यर्थः। विभावरीसंज्ञां आसेदिवान् प्राप्तः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

समुद्र में जब उसका कोई प्रतिपक्षी नहीं मिला तो वह वायु से प्रेरित समुद्र की ऊँची-ऊँची लहरियों पर ही अपनी गदा से प्रहार करता रहा । काले लोहे को मर्वि कहते हैं । उससे निर्मित होने के कारण उसकी मौर्वी गदा थी । अथवा एक तृण का नाम मूर्वा है, उससे निर्मित रस्सी से अच्छी तरह बँधी होने के कारण उसकी गदा मौर्वी थी । उसके पश्चात् घूमता हुआ वह वरुण की विभावरी नामक नगरी में पहुँच गया ।।२६।।

तत्रोपलभ्यासुरलोकपालकं यादोगणानामृषभं प्रचेतसम् ।
स्मयन्प्रलब्धुं प्रणिपत्य नीचवज्जगाद मे देह्यधिराज संयुगम् ।।२७।।

अन्वयः— तत्र असुरलोकपालकम् यादोगणानाम् ऋषभं प्रचेतसम् उपलभ्य स्मयन् प्रलब्धुं नीचवत् प्रणिपत्य जगाद अधिराज मे संयुगं प्रदेहि ।।२७।।

अनुवाद— वहाँ पताल लोक के स्वामी और जलचरों के अधिपति वरुण देव को देखकर उनका उपहास करते हुए नीच मनुष्य के समान प्रणाम किया और कहा महराज मुझे युद्ध की भिक्षा दीजिये ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

असुराणां लोकः पातालं तत्पालकम् । प्रलब्धुमुपहसितुं प्रणिपत्य ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

असुरों का लोक पाताल है । उसके स्वामी वरुण देव हैं, उनका उपहास करने के लिए उसने प्रणाम करके कहा मुझे युद्ध की भिक्षा दीजिये ।।२७।।

त्वं लोकपालोऽधिपतिर्बृहच्छ्रवा वीर्यापहो दुर्मदवीरमानिनाम् ।
विजित्य लोकेऽखिलदैत्यदानवान्यद्राजसूयेन पुराऽयजत्प्रभो ।।२८।।

अन्वयः— प्रभो ! त्वं लोकपालः अधिपतिः बृहच्छ्रवा दुर्मदवीरमानिनाम् वीर्यावहः लोके अखिलान् दानवान् विजित्य यत् पुरा राजसूयेन अयजत् ।।२८।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप लोक का पालन करने वाले राजा और अयन्त यशस्वी हैं । जो लोग अपने को श्रेष्ठ वीर मानने वाले थे उनके पराक्रम के मद को आप विनष्ट कर चुके हैं । पहले आपने संसार के सभी दानवों को जीतकर राजसूय यज्ञ भी किया है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

यद्यस्माद्राजसूये भवानयजत् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष ने कहा आप लोकपाल है, राजा हैं और महायश्वी है । बड़े-बड़े वीरों के वीर्यमद को आप चूर कर चुके हैं । संसार के सभी दानवों को जीतकर आपने राजसूय यज्ञ भी किया है ।।२८।।

स एवमुत्सिक्तमदेन विद्विषा दृढं प्रलब्धो भगवानपांपतिः ।
रोषं समुत्थं शमयन्स्वया धिया व्यवोचदङ्गोपशमं गता वयम् ॥२९॥

अन्वयः— एवम् उत्सिक्तमदेन विद्विषा दृढं प्रलब्धः भगवान् अपां पतिः समुत्थं रोषं स्वया धिया शमयन् व्यवोचत् अङ्ग वयम् उपशमं गताः ॥२९॥

अनुवाद— इस प्रकार उस मदोन्मत्त शत्रु के द्वारा बहुत अधिक उपहास किये जाने पर वरुण देव को क्रोध तो उत्पन्न हुआ किन्तु उसको ने अपनी बुद्धि के बल से शान्त कर दिए और कहे हे भाई मैं तो युद्ध इत्यादि के कौतुक से रहित हो गया हूँ ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

उपशमं युद्धादिकौतुकादुपरमम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

वरुण देव ने कहा कि मैं युद्धादि की उत्कण्ठा से रहित हो गया हूँ ॥२९॥

पश्यामि नान्यं पुरुषात्पुरातनाद्यः संयुगे त्वां रणमार्गकोविदम् ।
आराधयिष्यत्यसुरर्षभेहितं मनस्विनो यं गृणते भवादृशाः ॥३०॥

अन्वयः— असुरर्षभ पुरातनात् पुरुषात् नान्यं पश्यामि यः त्वां रणमार्गकिविदम् उदितं आराधयिष्यति यं भवादृशाः मनस्विनः गृणते ॥३०॥

अनुवाद— हे असुरश्रेष्ठ ! पुराणपुरुष श्रीभगवान् को छोड़कर हमें कोई भी ऐसा नहीं दिखाई देता है जो तुम जैसे युद्ध कुशल वीर की कामना पूरी कर सके । वे ही तुम्हारी कामना पुरी करेंगे । उन्हीं के पास जाओ। तुम्हारे जैसे मनस्वी वीर उनकी ही स्तुति करते हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

युद्धमार्गनिपुणं त्वां यस्तोषयिष्यति तमिहि गच्छ । गृणते स्तुवन्ति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

तुम युद्धविद्या में निपुण हो अतएव ऐसे पुरुष के पास जाओ जो तुमको युद्ध की कला से सन्तुष्ट कर सके । तुम्हारे जैसे मनस्वी वीर पुराणपुरुष परमात्मा की ही स्तुति करते है, अतएव तुम उन्हीं के पास जाओ ॥३०॥

तं वीरमारादभिपद्य विस्मयः शयिष्यसे वीरशये श्वभिर्वृतः ।
यस्त्वद्विधानामसतां प्रशान्तये रूपाणि धत्ते सदनुग्रहेच्छया ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे हिरण्याक्ष दिग्विजये सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अन्वयः— तं वीरम् आरात् अभिपद्य विस्मयः वीरशये श्वभिर्वृतः शयिष्यसे । यः सदनुग्रहेच्छया त्वद्विधानाम् असतां प्रशान्तये रूपाणि धत्ते ॥३१॥

अनुवाद उन परम पुरुष नामक वीर के पास जाकर शीघ्र ही तुम्हारा गर्व विनष्ट हो जायेगा । और कुत्तों से घिरे हुए वीर शय्या पर सो जाओगे । वे श्रीभगवान् सत्पुरुषों पर कृपा करने की इच्छा से तथा तुम जैसे दुष्टों का वध करने के लिए अनेक रूपों को धारण करते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

आगच्छेरग्रम् । विस्मयो नष्टगर्वः । वीरशये रणाङ्गणे । रूपाणि वराहाद्यवतारान् ।।३१।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

वरुणदेव ने हिरण्याक्ष से कहा कि तुम उन आद्यपुरुष के पास जाओगे तो तुम्हारा गर्व शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा और रणाङ्गण में उनके द्वारा मारे जाकर वीरशय्या पर सो जाओगे । वे सत्पुरुषों पर कृपा करने के लिए तथा तुम्हारे जैसे दुष्टों का नाश करने के लिए वाराह इत्यादि अनेक रूपों को धारण करते हैं ।।३१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के हिरण्याक्षदिग्विजय के अन्तर्गत सत्रहवें अध्याय की भावर्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी।।१७।।

◆

अठारहवाँ अध्याय

हिरण्याक्ष और वाराह भगवान का युद्ध

मैत्रेय उवाच

तदेवमाकर्ण्य जलेशभाषितं महामनास्तद्विगणय्य दुर्मदः ।
हरेर्विदित्वा गतिमङ्ग नारदाद्रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ॥१॥

अन्वयः— तदेवम् जलेशभाषितम् आकर्ण्य, दुर्मदः महामनाः तद्विगमणय्य, नारदात् हरेः गतिं विदित्वा त्वरान्वितः रसातलं निर्विविशे ॥१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे विदुर जी ! वरुण देव की उस तरह की वाणी को सुनकर मदोन्मत्त वह दैत्य उसकी परवाह किए बिना ही नारदजी से श्रीहरि की गति को जानकर शीघ्रतापूर्वक रसातल में प्रवेश कर गया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टादशे हिरण्याक्षधरोद्धर्तृवराहयोः । निर्विशेषं महायुद्धं देवक्षोभि निरूप्यते । प्रतियोद्धारं श्रुत्वा महामनाः शयिष्यस इति युदक्तं तद्विगणय्यागणयित्वा । यतो दुर्मदः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

अठारहवें अध्याय में पृथिवी का उद्धार करने वाले श्रीहरि और हिरण्याक्ष का देवताओं को क्षुब्ध कर देने वाला सामान्य महायुद्ध वर्णित है ॥१॥ **प्रतियोद्धारं श्रुत्वा** वरुणदेव के मुख से अपने प्रतियोद्धा के विषय में सुनकर वरुणदेव ने जो यह कहा था कि तुम वीर शय्या पर सो जाओगें, उसकी परवाह किए बिना ही हिरण्याक्ष नारदजी से श्रीभगवान् का पता लगाकर शीघ्र ही रसातल में चला गया क्योंकि वह तो मदमत्त था ॥१॥

ददर्श तत्राभिजितं धराधरं प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया ।
मुष्णन्तमक्ष्णा स्वरूचोऽरुणश्रिया जहास चाहो वनगोचरो मृगः ॥२॥

अन्वयः— तत्र धराधरं अग्रदंष्ट्रया प्रोन्नीयमानावनिम् अरुणश्रिया अक्ष्णा स्वरुचो भुष्णन्तम् जहास च अहो वन गोचरो मृगः॥२॥

अनुवाद— वहाँ पर अपने दाँतों के अग्रभाग पर पृथिवी को धारण किए हुए और उसको ऊपर की ओर लाते हुए विश्वविजयी श्रीवराह भगवान् को उसने देखा । वे भगवान् अपनी लालरङ्ग की आखों से उसके तेज को हर ले रहे थे । ऐसे भगवान् को देखकर हिरण्याक्ष जोर से हँसकर कहा अरे यह तो बनैला पशु है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अभितो जयतीत्यभिजित्तं श्रीहरिम् । प्रकर्षेणोर्ध्वं नीयमानाऽवनिर्येन । अग्रदंष्ट्रया दंष्ट्राग्रेण स्वरुचो हिरण्याक्षतेजांस्यरुणश्रिया युक्तं यत्तेनाक्ष्णा नेत्रेण मुष्णन्तं तिरस्कुर्वन्तम् । अहो चित्रं वनगोचरो मृगो वारिचरो वराहः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् विश्वविजयी हैं अतएव वे अभिजित् कहे जाते हैं ऐसे श्रीहरि को उसने देखा कि वे पृथिवी को लिए अपने दाँतों के अग्रभाग में रखकर ऊपर की ओर उठाये ले जा रहे हैं और अपने लाल-लाल आँखों की कान्ति से हिरण्याक्ष के तेज को तिरस्कृत कर रहे हैं । उनको देखकर हिरण्याक्ष ने कहा यह तो अद्भुत जल में सञ्चरण करने वाला वराह है ॥२॥

आहैनमेह्यज्ञ मही विमुञ्च नो रसौकसां विश्व सृजेयमर्पिता ।
न स्वस्ति यास्यस्यनया ममेक्षतः सुराधमासादितसूकराकृते ॥३॥

अन्वयः— एनम् आह-अज्ञ एहि मही विमुञ्च, इयम् विश्वसृजा नः रसौकसाम् अर्पिता, हे सुराधम ! आसादितसूकराकृते, मम इक्षतः अनया स्वस्ति न यास्यसि ॥३॥

अनुवाद— उसने वराह भगवान् से कहा मूर्ख इधर आओ पृथिवी को छोड़ दो इसको ब्रह्माजी ने हम रसातल वासियों को प्रदान कर दिया है । हे सूकर का रूप धारण किए हुए सुराधम ! मेरे देखते-देखते इसको लेकर तुम कुशल पूर्वक नहीं जा सकते हो ॥३॥

भावार्थ दीपिका

एह्यागच्छ । रसौकसां पातालवासिनां नोऽस्माकं समर्पिता । अन्यथा पातालावतरणमस्या न घटत इति भावः । हिरण्याक्षेणाधिक्षेपार्थं प्रयुक्तापि भारती वस्तुतो भगवन्तं स्तौति । तथाहि वनगोचरो जले शयानः श्रीनारायणः स एव योगिभिर्मृग्यते, दुष्टान्वा हन्तुं मृगयत इति मृगः । अज्ञ नास्ति ज्ञो यस्मात् सर्वज्ञेत्यर्थः । सुरा अधमा यस्मात् हे सुरोत्तम ! ममेक्षमाणस्यापि सतो मामनादृत्यापि त्वमनया सह वर्तमानो नोऽस्मदीयं स्वस्ति समस्तं मङ्गलं राज्यं यास्यसि प्राप्स्यसि नात्र संदेहः । तथाप्यस्मत्कृपया विमुञ्चेत्यर्थः । आसादिता लीलया स्वीकृता सूकराकृतिर्येन ॥३॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष ने कहा अरे मूर्ख इधर आओ । इसको ब्रह्माजी ने हम पातालवासियों को ही प्रदान कर दिया है, अन्यथा यह पाताल में कैसे आती ? **हिरण्याक्षेण० इत्यादि** हिरण्याक्ष ने श्रीभगवान् पर अधिक्षेप के लिए इस वाणी का प्रयोग किया है । परन्तु इस श्लोक का वास्तविक अर्थ इस प्रकार है- **वनगोचरो मृगः** का अर्थ है जल में शयन करने वाले भगवान् नारायण हैं उनका ही योगिजन अन्वेषण किया करते हैं । भगवान् इसलिए भी मृग हैं कि वे दुष्टों को मारने के लिए उन सबों को खोजते हैं । **नास्तिज्ञो यस्मात्** जिससे बढ़कर कोई ज्ञानवान् नहीं है अर्थात् सर्वज्ञ । हे सुराधम का अर्थ है जिनकी अपेक्षा सभी देवता अधम है, अर्थात् देवताओं में श्रेष्ठ। **ममेक्षतः इत्यादि** वाक्य का अर्थ है कि मेरे देखते रहने पर भी मेरी अवहेलना करके भी तुम इसके साथ रहकर हमलोगों के समस्त मङ्गल और राज्य को भी प्राप्त कर लोगे इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है । फिर भी हमलोगों पर कृपा करके इसको छोड़ दो । तुमने लीला पूर्वक सूकर का आकार बना रखा है ॥३॥

त्वं नः सपत्नैरभवाय किं भृतो यो मायया हन्त्यसुरान्परोक्षजित् ।
त्वां योगमायाबलमल्पपौरुषं संस्थाप्य मूढप्रमृजे सुहृच्छुचः ॥४॥

अन्वयः— यः परोक्षजित् असुरान् मायया हन्ति त्वं सपत्नैः नः अभवाय भृतः किम् । मूढ योगमाया बलम् अल्प पौरुषं त्वां संस्थाप्य सुहृच्छुचः प्रमृजे ॥४॥

अनुवाद— तुम माया से छिप कर ही दैत्यों को मार देते है । हमारे शत्रुओं देवताओं द्वारा तुम हमलोगों के नाश के लिए ही पाले गये हो क्या ? मूढ ! तुम में तो योगमाया का ही बल है पुरुषार्थ तो बहुत कम है। तुमको मारकर मैं अपने बान्धवों का शोक दूर करता है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अभवाय नाशाय भृतः पुष्टः । वस्तुतस्तु मोक्षाय भृतो धृत आश्रित इत्यर्थः । यो भवान्परोक्षेण चौर्येण जयतीति तथा। वस्तुतस्तु दूरत एव स्थित्वा जयतीति । संस्थाप्य हत्वा । वस्तुतस्तु योगमायारूपमचिन्त्यं बलं यस्य । अल्पं पौरुषं यस्मात्। तं त्वां सम्यक् स्थापयित्वा । भक्त्या हृदि स्थिरीकृत्येत्यर्थः । हे मूढप्र, मूढान्प्रति आप्यायतीति तथा । प्रा पूर्ताविति धातुः। सुहृदां शुचः संसारदुःखानि मृजे नाशयामि । यतस्त्वं स्मर्तुर्बान्धिवानपि मोचयसीति भावः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यह भी श्लोक द्वयर्थक है । तुम हमलोगों के नाश के लिए पाले गये हो । इस श्लोक का वास्तविक अर्थ है कि अभवाय अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के लिए अपनाये गये हो । आप परोक्ष अर्थात् चोरी से जित लेते हैं । यह सामान्य अर्थ है। विशेष अर्थ है कि आप दूर से ही हमलोगों का जित लेते हैं । संस्थाप्य पद का अर्थ है मारकर। वास्तविकता यह है कि आपका योगमाया रूपी बल अचिन्त्य बल है । आपके समक्ष जीवों का बल अल्प है । ऐसे आपको अच्छी तरह से अपने हृदय में सुस्थिर करके । हे मूढप्र ! अर्थात् आप भक्ति विवश जीवों को मुक्ति प्रदान कर देते हैं । प्राधातु पूर्त्यर्थक है । ऐसे आपको अपने हृदय में रखकर अपने बान्धवों के शोक को मैं दूर कर देता हूँ । क्योंकि जो आपका स्मरण करता है उसके बान्धवों को भी आप मुक्ति प्रदान कर देते हैं ॥४॥

त्वयि संस्थिते गदयाऽशीर्णशीर्षण्यस्मद्भुजच्युतया ये च तुभ्यम् ।
बलिं हरन्त्यृषयो ये च देवाः स्वयं सर्वे न भविष्यन्त्यमूलाः ॥५॥

अन्वयः— अस्मद् भुजया च्युतया गदया शीर्णशीर्षणि संस्थिते त्वयि ये च ऋषयः देवाः तुभ्यं बलिं हरन्ति, अमूलाः सर्वे स्वयं न भविष्यन्ति ॥५॥

अनुवाद— हमारे हाथ से छुटी हुयी गदा के द्वारा शिर फूट जाने के कारण जब तुम मर जाओगे तो तुम्हारी आराधना करने वाले ऋषिगण और देवगण, कटे हुए मूल वाले वृक्ष के समान अपने आप विनष्ट हो जायेंगे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अस्मद्भुजच्युतयापि गदया अशीर्णं शीर्षं यस्य तथाभूते त्वयि सुखं स्थिते सति ये तुभ्यमधुना बलिं हरन्ति नवीना भक्ताः ये च पूर्वे भक्ता देवाश्च ते सर्वे स्वयमेवोद्यमं विनैवामूला न भविष्यन्ति किंतु दृढमूला एव भविष्यन्तीत्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

हमारे भुजा से छुटी हुयी गदा के द्वारा जब आपका शिर नहीं फूटेगा और आप सुख पूर्वक बने रहेंगे तो, जो आपकी इस समय आराधना करने वाले नवीन भक्त हैं और तथा जो आपके पुराने भक्त ऋषिगण और देवगण है वे सबके सब बिना प्रयास के ही मूलहीन न होकर सुदृढ मूल वाले हो जायेगें । उनकी जड़ मजबूत हो जायेगी॥५॥

स तुद्यमानोऽरिदुरुक्ततोमरैर्दंष्ट्राग्रगां गामुपलक्ष्य भीताम् ।
तोदं मृषान्निरगादम्बुमध्याद्ग्राहाहतः सकरेणुर्यथेभः ॥६॥

अन्वयः— अरिदुरुक्त तोमरैः तुद्यमानः सः दंष्ट्रग्रगां भीताम् गाम् उपलक्ष्य तोदं मृषन अम्बुमध्यात् ग्राहाहतः सकरेणुः इभः यथा निरगात् ॥६॥

अनुवाद— हिरण्याक्ष दुर्वचन रूपी बाणों से छेदे जा रहा था किन्तु श्रीभगवान् अपने दाँत के नोक पर स्थित पृथिवी को भयभीत देखकर उस चोट को बर्दास्त कर लिए और पृथिवी के साथ जल से ऊपर उसी तरह निकले जैसे ग्राह से आहत होकर हाथी हथिनी के साथ बाहर आ जाता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

स हरिररेर्दुरुक्तान्येव तोमराः शस्त्रविशेषास्तैस्तुद्यमानो व्यथ्यमानो दंष्ट्राग्रगतां पृथिवीं भीतामालक्ष्य तोदं दुरुक्तव्यथां मृषन्सहमान एव निर्गतः । करेणुर्हस्तिनी । वस्तुतस्त्वरिदुरुक्ततोमरैर्निमित्तभूतैस्तुद्यमानः । यथाश्रुतार्थग्राहिणां ब्रह्मादीनां व्यथां दृष्ट्वानुकम्पया पीड्यमान इत्यर्थः । तोदं मृषन्नित्यस्याप्ययमेवार्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

वे श्रीहरि शत्रु की दुरुक्ति रूपी तोमर अर्थात् शस्त्रविशेष के द्वारा दुःखी बनाये जा रहे थे, किन्तु अपने दाँतों के अग्रभाग में स्थित पृथिवी देवी को भयभीत देखकर उस दुरुक्तिजन्य व्यथा को वराह भगवान् सह लिए और जल से बाहर निकल आये । करेणु शब्द हस्तिनी का बोधक है । **वस्तुतस्तु० इत्यादि** इस श्लोक का वास्तविक अर्थ है कि वस्तुतः लज्जित होने पर भी जिनके कारण सन्त पुरुष दुःखी न रहें उन कृपालुओं के लिए कुछ भी निन्दित नहीं है । अतएव दयालु होने के कारण अपने दाँत पर स्थित भूदेवी की रक्षा के लिए कुछ पलायन करना भी निन्दत नहीं है । **यद्वा० इत्यादि-** अथवा संसार का उपकार करने के लिए पृथ्वी का उद्धार करने वाले श्रीभगवान् का पीछा करना अनुचित है यह मानने वाला वह दैत्य अपनी ही निन्दा करता है । हमलोग केवल स्वार्थ परायण होने के कारण निर्लज्ज पुरुष हैं । ऐसे हमलोगों द्वारा किए जाने वाले निन्दित कर्मों की कोई भी गणना नहीं है। अतएव हमलोगों को धिक्कार है ॥७॥

स गामुदस्तात्सलिलस्य गोचरे विन्यस्य तस्यामदधात्स्वसत्त्वम् ।
अभिष्टुतो विश्वसृजा प्रसूनैरापूर्यमाणो विबुधैः पश्यतोऽरेः ॥८॥

अन्वयः— स सलिलस्य उदस्तात् गाम् गोचरे विन्यस्य तस्याम् एव सत्त्वम् अदधात् अरेः पश्यतः विवुधै प्रसूनैः आपूर्यमाणः विश्वसृजा अभिष्टुतः ॥८॥

अनुवाद— वे भगवान् जल के ऊपर पृथिवी को स्थापित करके उसमे अपनी धारण शक्ति रूपी तेज का आधान कर दिये । उससमय हिरण्याक्ष की आँखों के सामने ही देवताओं ने श्रीभगवान् पर फूलों की वर्षा की और ब्रह्माजी ने उनकी स्तुति की ॥८॥

भावार्थ दीपिका

स भगवान्विश्वसृजाभिष्टुतो विबुधैश्च प्रसूनैरापूर्यमाणः । पाठान्तरे विश्वसृजां प्रसूनैर्विबुधैरभिष्टुत इति । सलिलस्योदस्तादुपरि व्यवहारगोचरे देशे गां पृथ्वीं विन्यस्य तस्यां स्वसत्त्वमाधारशक्तिं निहितवान् । अरेस्तस्य पश्यत एव ॥८॥

भाव प्रकाशिका

जब श्रीभगवान् ने जल के ऊपर व्यवहार योग्य स्थान में पृथिवी को स्थापित करके उसमें अपनी धारण शक्ति रूपी तेज का आधान कर दिया उस समय हिरण्याक्ष की परवाह किए बिना ही ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् क स्तुति की और देवताओं ने उन पर फूलों की वर्षा की । पाठान्तर होने पर तो विश्व की सृष्टि करने वाले प्रजापति की पुष्पों से पूजित श्रीभगवान् की स्तुति देवताओं ने की ॥८॥

परानुषक्तं तपनीयोपकल्पं महागदं काञ्चनचित्रदंशम् ।
मर्माण्यभीक्ष्णं प्रतुदन्तं दुरुक्तैः प्रचण्डमन्युः प्रहसंस्तं बभाषे ।।९।।

अन्वयः— परानुषक्तं तपनीयोपकल्पं महागदं काञ्चनचित्रदंशम् दुरुक्तैः अभीक्ष्णं मर्माणि तुदन्तं पञ्चण्डमन्युः प्रहसन् तं बभाषे ।।९।।

अनुवाद— अपने पीछे आते हुए सुवर्ण के आभूषणों से भूषित विशाल गदा को धारण किए हुए तथा सुवर्ण निर्मित अद्भुत कवच पहने हुए एवं अपनी दुरुक्तियों द्वारा निरन्तर व्यथित करने वाले उस हिरण्याक्ष को भयङ्कर क्रोध करने वाले श्रीभगवान् ने जोर से हँसते हुए कहा ।।९।।

भावार्थ दीपिका

परा पराक् पृष्ठतोऽनुषक्तं लग्नम् । तपनीयोपकल्पं सुवर्णाभरणम् । काञ्चनमयश्चित्रो दंशः कवचं यस्य तं दैत्यम्। प्रचण्डमन्युत्वमधिक्षेपादिकं चानुकरणमात्रं दैत्यवाक्यभीतानां देवानां भयनिवृत्तये । वस्तुतस्तेन तथाऽनुक्तत्वेन कोपादिहेत्व-भावात् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष श्रीभगवान् का पीछा कर रहा था, वह सुवर्णालङ्कारों से भूषित था, विशाल गदा लिए हुए तथा सुवर्णनिर्मित अद्भुत कवच को धारण किए था । उस पर भयङ्कर क्रोध करके भगवान् ने जोर से हँसते हुए कहा ।।९।।

श्रीभगवानुवाच

सत्यं वयं भो वनगोचरा मृगा युष्मद्विधान्मृगये ग्रामसिंहान् ।
न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीरा विकत्थनं तव गृह्णन्त्यभद्र ।।१०।।

अन्वयः— हे अभद्र ! सत्यं वयं वनगोचरा मृगा युष्मद्विधान् ग्रामसिंहान् मृगये मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य तव विकत्थनं न गृह्णन्ति ।।१०।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— तुम सत्य कहते हो; हम जङ्गली जीव हैं और तुम जैसे कुत्तों को खोजते रहते हैं । दुष्ट वीरपुरुष तुम जैसे मृत्यु के पाश में बँधे अभागे जीवों की आत्मश्लाघा पर हम ध्यान नहीं देते हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

ग्रामसिंहान् शुनः । प्रतिमुक्तस्य बद्धस्य । विकत्थनं श्लाघाम् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

ग्रामसिंह कुत्तों को कहते हैं प्रतिमुक्त अर्थात् बद्ध विकत्थन अर्थात् आत्मश्लाघा । श्रीभगवान् ने कहा कि तुम ठीक ही कहते हो कि मैं जङ्गली जीव हूँ और तुम जैसे कुत्तों को मैं खोजता रहता हूँ । तुम तो मृत्यु के पाश में बन्ध चुके हो; अतएव आत्मश्लाघा कर रहे हो । किन्तु वीरों का स्वभाव होता है कि वे मृत्यु के पाश में बंधे जीवों की आत्मश्लाघा पर ध्यान नहीं देते हैं ।।१०।।

एते वयं न्यासहरा रसौकसां गतह्रियो गदया द्राविवतास्ते ।
तिष्ठामहेऽथापि कथंचिदाजौ स्थेयं क्व यामो बलिनोत्पाद्य वैरम् ।।११।।

अन्वयः— एते वयं रसौकसांन्यासहराः गतह्रियः ते गदया द्राविताः अथापि कथंचिदाजौ तिष्ठमहे स्थेयम् बलिना वैरम् उत्पाद्य क्व यामः ।।११।।

अनुवाद— हाँ हम रसातल वासियों की धरोहर को चुराने वाले निर्लज्ज हैं। तुम्हारी गदा के भय से भागकर हम यहाँ आ गये हैं। मुझमें तुम्हारे साथ युद्ध करने का सामर्थ्य ही नहीं है। सामर्थ्य के नहीं होने पर भी किसी तरह युद्धभूमि में रुके हुए हैं। हम को तो युद्ध करना ही पड़ेगा तुम जैसे बलवान वीर से बैर करके हम जा भी कहाँ सकते हैं ?॥११॥

भावार्थ दीपिका

न्यासहारा निक्षेपहराः। द्राविताः पलायनं कारिताः। अथाप्यसमर्था अपि तिष्ठामः। तत्किम्। यतः स्थेयं स्थातव्यमेवास्माभिः। तत्किमित्यत आह। क्व यामः। गन्तव्यदेशाभावात्॥११॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा— हाँ हमलोग रसातल के धरोहर को चुराने वाले तथा निर्लज्ज हैं। तुम्हारी गदा के भय से भागकर हम यहाँ आ गये हैं। यद्यपि हम तुम्हारे साथ युद्ध करने में असमर्थ हैं फिर भी युद्ध करने के लिए यहाँ रुके भी हैं। यदि पूछो कि क्यों रुके हो तो उसका उत्तर है कि मुझको यहाँ रुकना ही होगा। तुम्हारे जैसे बलवान से वैर करके हम कहाँ जा सकते हैं ? कोई ऐसा स्थान भी तो नहीं है जहाँ कि हम जाकर रहें। जहाँ जायेंगे वही तुम आ जाओगे॥११॥

त्वं पद्रथानां किल यूथपाधिपो घटस्व नोऽस्वस्तय आश्वनूहः।
संस्थाप्य चास्मान्प्रमृजाश्रु स्वकानां यः स्वां प्रतिज्ञां नातिपिपर्त्यसभ्यः॥१२॥

अन्वयः— त्वं पद्रथानां किल यूथपाधिपः अनूहः आशु नः अस्वस्तये घटस्व अस्मान् संस्थाप्य च स्वकानां अश्रु प्रमृज, यः स्वप्रतिज्ञां नातिपिपर्ति स असभ्यः॥१२॥

अनुवाद— पैदल वीरों के जो यूथप (सेनापति) होते हैं उनका भी तुम स्वामी हो, अतएव बिना किसी सोच विचार किए शीघ्र ही हमारा अनिष्ट करने में लग जाओ। मुझको मारकर तुम अपने बान्धवों कीं आँसू को पोंछ डालो। इसमें अब देर न करो। जो अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं करता है वह असभ्य कहलाता है॥१२॥

भावार्थ दीपिका

पद्रथानां पदातीनां ये यूथपास्तेषामधिपः मुख्य इत्यर्थः। अस्वस्तये पराभवार्थमाशु घटस्व यतस्व। अनूहो निर्वितर्कः। यो नातिपिपर्ति न पूरयति पालयति वा असावसभ्यः सभायामनर्हः॥१२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा कि तुम पैदल सेनाओं के जो स्वामी हैं, उन सबों के तुम स्वामी हो अतएव तुम मुझको पराजित करने का प्रयास बिना सोचे विचारे करो। जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करता है, वह असभ्य होता है॥१२॥

मैत्रेय उवाच

सोऽधिक्षिप्तो भगवता प्रलब्धश्च रुषा भृशम्। आजहारोल्बणं क्रोधं क्रीड्यमानोऽहिराडिव॥१३॥

अन्वयः— सः भगवता रुषा भृशम् अधिक्षिप्तः प्रलब्धः च क्रीडमानः अहिराडिव उल्बणं क्रोधम् आजहार॥१३॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे विदुरजी ! जब भगवान् ने क्रोध करके इस तरह उसका खूब उपहास किया और तिरस्कार किया तो वह भी पकड़कर खेलाये जाते हुए सर्प के समान अत्यधिक क्रोध किया॥१३॥

भावार्थ दीपिका

सोऽधिक्षिप्तः सत्यं वयमिति श्लोकेन । रुषा प्रलब्ध उपहसितश्च एते वयमिति द्वाभ्याम् । क्रीडां कार्यमाणोऽहिराट् महासर्प इव ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने **सत्यंवयम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा हिरण्याक्ष का अत्यधिक उपहास किया तथा क्रोध पूर्वक **एतेवयम्० इत्यादि** दो श्लोकों से उसका खूब तिरस्कार भी किया, अतएव हिरण्याक्ष ने उसी तरह से अत्यधिक क्रोध किया जिस तरह पकड़कर खेलाया जाता हुआ महासर्प भयङ्कर क्रोध करता है ॥१३॥

सृजन्नमर्षितः श्वासान्मन्युप्रचलितेन्द्रियः । आसाद्य तरसा दैत्यो गदयाऽभ्यनद्धरिम् ॥१४॥

अन्वयः— अमर्षितः दैत्यः श्वसन् सृजन् मन्युप्रचलितेन्द्रियः । तरसा आसाद्य गदया हरिम् अहनत् ॥१४॥

अनुवाद— असहिष्णु वह दैत्य क्रोध से लम्बी श्वास लेने लगा, क्रोध के कारण उसकी सारी इन्द्रियाँ विकल हो गयीं । वह वेगपूर्वक गदा उठाकर श्रीहरि पर गदा से प्रहार किया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

मन्युना प्रचलितानि क्षुभितानीन्द्रियाणि यस्य ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के द्वारा उपहसित और तिरस्कृत होकर क्रोध के कारण उसकी सारी इन्द्रयाँ क्षुब्ध (व्याकुल) हो गयी थीं ॥१४॥

भगवांस्तु गदावेगं विसृष्टं रिपुणोरसि । अवञ्चयत्तिरश्चीना योगारुढ इवान्तकम् ॥१५॥

अन्वयः— भगवान् तु रिपुणा उरसि विसृष्टं गदावेगं तिरश्चिनः योगारूढः अन्तकम् इव अवञ्चयत् ॥१५॥

अनुवाद— किन्तु श्रीभगवान् ने कुछ टेढा होकर शत्रु के द्वारा उनकी छाती पर चलायी गयी गदा से प्रहार को उसी तरह बचा लिया जिस तरह योगारूढ योगी मृत्यु के आक्रमण से अपने को बचा लेता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अन्तकम् मृत्युम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

अन्तकम् पद मृत्यु का बोधक है ॥१५॥

पुनर्गदां स्वामादाय भ्रामयन्तमभीक्ष्णशः । अभ्यधावद्धरिः क्रुद्धः संरम्भाद्दष्टदच्छदम् ॥१६॥

अन्वयः— पुनः दष्टदच्छदम् स्वां गदाम् आदाय अभीक्ष्णशाः भ्रामयन्तम् क्रुद्ध हरिः संरम्भात् अभ्यधावत् ॥१६॥

अनुवाद— फिर अपने ओष्ठ को चबाता हुआ अपनी गदा को लेकर बार-बार घुमते हुए हिरण्याक्ष पर क्रोध करके श्रीहरि बड़े वेग से दौड़े ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

ततश्च गदयाऽरातिं दक्षिणस्यां भ्रुवि प्रभुः । आजघ्ने स तु तां सौम्य गदया कोविदोऽहनत् ॥१७॥

अन्वयः— हे सौम्य ! ततः प्रभुः गदया अरातिम् दक्षिणस्यां भ्रुवि, आजघ्ने स तु कोविदः तां गदया अहनत् ॥१७॥

अनुवाद— हे सौम्य ! स्वभाव वाले विदुरजी उसके पश्चात् श्रीभगवान् ने गदा के द्वारा अपने शत्रु की दाहिनी भौहें पर प्रहार किया किन्तु गदा युद्ध में निपुण हिरण्याक्ष ने उसे अपनी गदा से रोक लिया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

सौम्य विदुर, तां गदामप्राप्तामेवाहनत् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

हे विदुर जी ! किन्तु उस हिरण्याक्ष ने अपने तक पहुँचने से पहले ही उस गदा के प्रहार को रोक लिया ।।१७।।

एवं गदाभ्यां गुर्वीभ्यां हर्यक्षो हरिरेव च । जिगीषया सुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ।।१८।।

अन्वयः— एवं गुर्वीभ्यां गदाभ्यां हर्यक्षः हरिः एव च जिगीषया सुसंरब्धौ अन्योन्यम् अभिजघ्नतुः ।।१८।।

अनुवाद— इस प्रकार अपनी भारी गदाओं से हिरण्याक्ष और श्रीहरि एक दूसरे को जीत लेने की इच्छा से अत्यधिक क्रोध करके एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

हर्यक्षो हिरण्याक्षः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष को ही हर्यक्ष कहा गया है ।।१८।।

तयोः स्पृधोस्तिग्मगदाहताङ्गयोः क्षतास्रवघ्राणविवृद्धमन्य्वोः ।
विचित्रमार्गांश्चरतोर्जिगीषया व्यभादिलायामिव शुष्मिणोर्मृधः ।।१९।।

अन्वयः— तिग्मगदाहतांङ्गयोः तयोः स्पृधोः क्षतस्रवध्राण विवृद्धमन्यवोः जिगीषया विचित्रमार्गांन् चरतोः, इलयाम् शुष्मिणोः मृध इव व्यभात् ।।१९।।

अनुवाद— तीक्ष्ण गदा के प्रहार से उन दोनों के अङ्ग घायल हो गये थे, घावों से बहने वाले रक्त की गन्ध दोनों का क्रोध बढ़ रहा था । एक दूसरे को जीत लेने की इच्छा से वे तरह-तरह के पैंतरे चल रहे थे । उन दोनों की शोभा उसी तरह से हो रही थी जिस तरह एक ही गौ को प्राप्त करने के लिए दो सांड लड़ रहे हों ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

स्पृधोः स्पर्धमानयोः । तिग्माभ्यां गदाभ्यां आहतान्यङ्गानि ययोः । क्षतादास्रवतीति क्षतास्रवं रुधिरं तस्य घ्राणमवघ्राणं तेन विवृद्धो मन्युर्ययोः । विचित्रान्मार्गान् गदायुद्धभ्रमणभेदान् । इला गौस्तस्यां निमित्तभूतायां शुष्मिणोः मत्तयोर्वृषभयोः । प्रस्तुतेऽपि इला पृथ्वी तदर्थम् । वृषभौ हि खलु बहूनि दिनानि संग्रथितोतुङ्गशृङ्गसंघर्षविदीर्णाङ्गगलद्रुधिरौ परस्परोपमर्दव्यग्रोग्रसंरम्भौ चमत्कारितगजयूथपौ युध्यमानौ तिष्ठत इति प्रसिद्धम् ।।१९।।'

भाव प्रकाशिका

स्पृधोः का अर्थ है एक दूसरे से स्पर्धा करने वाले उन दोनों के अङ्ग तीक्ष्ण गदा के प्रहार से घायल हो गये थे । उन दोनों के घावों से रुधिर बहा जा रहा था और उस रक्त की गन्ध से उन दोनों का क्रोध बढ गया था। वे दोनों एक दूसरे को जीत लेने की इच्छा से गदायुद्ध के अनेक और अद्भुत पैंतरे चल रहे थे । लग रहा था की दो मदमत्त सांड एक ही गौ को प्राप्त करने के लिए युद्ध कर रहे हों । यहां पर इला पृथिवी है वही प्रस्तुत है, उसी के लिए वे दोनो युद्ध कर रहे थे । इला शब्द का अर्थ गौ भी होता है । **वृषभौ हि० इत्यादि**- यह प्रसिद्ध है कि अपने सिंगों को एक दूसरे के सिंग से सटाकर दो सांड बहुत दिनों तक युद्ध करते हैं, यद्यपि उन दोनों के अङ्ग विदीर्ण हो जाते हैं, और उससे रक्त बहता रहता है । किन्तु वे अपनी अभिप्रेत गौ को प्राप्त करने के लिए युद्ध करते रहते हैं । इसी तरह दो गज यूथाधिपति भी अपने अभिप्रेत हस्तिनी को प्राप्त करने के लिए युद्ध करते रहते हैं, यह भी प्रसिद्ध है ।।१९।।

दैत्यस्य यज्ञावयवस्य मायागृहीतवाराहतनोर्महात्मनः ।
कौरव्य मह्यां द्विषतोर्विमर्दनं दिदृक्षुरागादृषिभिर्वृतः स्वराट् ॥२०॥

अन्वयः— कौरव्य ! दैत्यस्य मायागृहीत वाराहतनोः यज्ञावयवस्य महात्मनः मह्यां द्विषतोः विमर्दनं दिदृक्षुः ऋषिभिः वृतः स्वराट् अगात् ॥२०॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! दैत्य हिरण्याक्ष और अपनी माया से वाराह शरीर को धारण करने वाले यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् दोनों एक ही पृथिवी को प्राप्त करने के लिए एक दूसरे से स्पर्धा कर रहे थे । उन दोनों के द्वारा किए जाने वाले युद्ध को देखने के लिए वहाँ पर ऋषियों के साथ ब्रह्माजी आ गये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञा एवावयवा यस्य च । मह्यां महीनिमित्तं द्विषतोः । एवंविधं विमर्दनं युद्धं दिदृक्षुः स्वराट् ब्रह्मा तत्रागात् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् यज्ञ शरीरक हैं वे तथा हिरण्याक्ष दोनों एक ही पृथिवी को प्राप्त करने के लिए युद्ध कर रहे थे । इस प्रकार के युद्ध को देखने के लिए ऋषियों के साथ वहाँ ब्रह्माजी आये ॥२०॥

आसन्नशौण्डीरमपेतसाध्वसं कृतप्रतीकारमहार्यविक्रमम् ।
विलक्ष्य दैत्यं भगवान्सहस्रणीर्जगाद नारायणमादि सूकरम् ॥२१॥

अन्वयः— आसन्न शौण्डीरम् अपेतसाध्वसम्, कृतप्रतिकारम्, अहार्य विक्रमम्, दैत्यं विलक्ष्य आदि सूकरम् नारायणम् जगाद ॥२१॥

अनुवाद— हजारों ऋषियों से घिरे हुए ऐश्वर्य सम्पन्न ब्रह्माजी ने शौर्य प्राप्त एवं मदमत्त, निर्भय श्रीभगवान् का प्रतिकार करने में समर्थ तथा जिसके पराक्रम को चूर्ण नहीं किया जा सकता है ऐसे उस दैत्य को देखकर आदि सूकर भगवान् नारायण से कहा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

आगत्य च नारायणमाह । किं कृत्वा । दैत्यं विलक्ष्य । कथंभूतम् आसन्नं प्राप्तं शौण्डीर्यं शौर्यं मदो वा येन । अपेतं साध्वसं यस्मात् । कृतः प्रतीकारो येन । अहार्योऽप्रतिकार्यो विक्रमो यस्य । सहस्रणीः सहस्राणामृषिसहस्राणां नेता ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी हजारों ऋषियों के नेता थे । उन्होंने जब देखा कि यह दैत्य शौर्य सम्पन्न और मदमत्त है, इसमें भय का लेश भी नही हैं, और यह श्रीभगवान् का प्रतिकार करने में समर्थ है इसके पराक्रम को विनष्ट करना कठिन है । यह देखकर वे आदि सूकर भगवान् नारायण से कहे ॥२१॥

ब्रह्मोवाच

एष ते देव देवानामङ्घ्रिमलमुपेयुषाम् । विप्राणां सौरभेयीणां भूतानामप्यनागसाम्॥२२॥
आगस्कृद्भयकृद्दुष्कृदस्मद्राद्धवरोऽसुरः । अन्वेषन्नप्रतिरथो लोकानटति कण्टकः॥२३॥

अन्वयः— हे देव अस्मद्राद्धवरः एषः ते अङ्घ्रिमूलम् उपेयुषाम् देवनाम् विप्राणाम् सौरभेयीणां अनागसाम् भूतानाम् अपि आगस्कृत् भयकृत्, दुष्कृत् अप्रतिरथः कण्टकः अन्वेषन् लोकान् अटति ॥२२-२३॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— हे देव ! मुझसे वरदान प्राप्त करके यह अत्यन्त प्रबल हो गया है । यह आपके चरणों की शरणागति करने वाले देवताओं, ब्राह्मणों गौओं तथा दूसरे निरपराध जीवों को बहुत हानि करने वाला दुःख देने

वाला और भयभीत करने वाला है । इसके समान कोई भी दूसरा योद्धा नहीं है । अतएव सम्पूर्ण जगत् का शत्रु अपने सदृश योद्धा की खोज करते हुए लोकों में घूम रहा है ।।२२-२३।।

भावार्थ दीपिका

हे देव, तेऽङ्घ्रिमूलं प्राप्तानां देवादीनाम् । एषोऽसुरः । आगस्कृद्वृथैवापराधारोपकः । तत्परिहाराय प्रवृत्तौ भयकृत् । भीतं ज्ञात्वा दुष्कृदर्थप्राणादिहर्ता अस्मत्तो राद्धो लब्धो वरो येन । अन्वेषन् प्रतिरथमवलोकयन् । अप्रतिरथः प्रतिपक्षशून्यः ।।२२-२३।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मजी ने कहा— हे भगवन् यह असुर मुझसे वरदान प्राप्त करके अत्यन्त प्रबल हो गया है । यह आपके चरणों की शरणागति करने वाले जीवों का व्यर्थ ही अपराध करता है । उसका प्रतिकार करने वालों में यह भय उत्पन्न कर देता है । उन सबों को जब यह भयभीत जान जाता है तों उन सबों को मार कर उनकी सम्पत्ति को ले लेता है । चूकि इसके सदृश कोई दूसरा वीर है नहीं इसलिए यह अपने समान प्रबल विरोधी की खोज करते हुए लोकों में धूम रहा है ।।२२-२३।।

मैनं मायाविनं दृप्तं निरङ्कुशमसत्तमम् । आक्रीड बालवद्देव यदाशीविषमुत्थितम् ।।२४।।

अन्वयः— हे देव ! मायाविनं दृप्तं निरङ्कुशम् असत्तमम् एनं बालवत् मा क्रीड यत् उत्थितम् आशीविषम् ।।२४।।

अनुवाद— हे देव ! यह मायवी, घमण्डी, निरङ्कुश और अत्यन्त दुष्ट है । इसके साथ आप सर्प के साथ खेलने वाले बालक के समान खेल न करें क्योंकि यह जगे हुए विषैले सर्प के समान भयङ्कर है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

यद्यस्मादेवंभूतोऽयं तस्मादेनं मा क्रीड मा क्रीडय । हे देव, यथोत्थितं क्षुभितमाशीविषं सर्पं बालः पुच्छाकर्षणादिना क्रीडयति तद्वत् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

चूकि यह मायावी घमण्डी और निरङ्कुश है अतएव इसके साथ आप उस तरह से खेल न करें जैसे कोई बालक क्रुद्ध विषैले सर्प की पूंछ पकड़कर उसको घसीटता है ।।२४।।

न यावदेष वर्धेत स्वां बेलां प्राप्य दारुणः । स्वां देव मायामास्थाय तावज्जह्यघमच्युत ।।२५।।

अन्वयः— हे अच्युत ! यावत् एषः दारुणः स्वां बेलां प्राप्य न वर्धेत तावत् स्वां देवमायाम् आस्थाय अघम् जहि ।।२५।।

अनुवाद— हे अच्युत ! जब तक यह भयङ्कर दैत्य आपनी बेला को प्राप्त न कर सके उससे पहले ही आप अपनी देवमाया को अपना कर इस पापी को मार डालिये ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

स्वामासुरीम् । हे देव, स्वां मायाम् । अघं पापरूपम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने कहा कि जब तक यह अपनी आसुरी बेला को प्राप्त करके प्रबल न हो जाय उससे पहले ही आप अपनी माया को अपनाकर इसका वध कर दें ।।२५।।

एषा घोरतमा संध्या लोकच्छम्बट्करी प्रभो । उपसर्पति सर्वात्मन् सुराणां जयमावह ।।२६।।

अन्वयः— प्रभो एषा संध्या घोरतमा लोकच्छम्बट्करी हे सर्वात्मन् उपसर्पति सुराणां जयम् आवह ।।२६।।

अनुवाद— हे प्रभो ! यह संध्या अत्यन्त भयङ्कर है । यह जगत् का विनाश करने वाली है । यह संध्या धीरे-धीरे आ रही है । आप देवताओं को विजय प्रदान करें ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

बेलामेवाह-एषेति । लोकानां छम्बट्करी विनाशकरी । छम्बडित्यव्ययं विनाशे वर्तते ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी आसुरी बेला को ही बतलाते हैं । उन्होंने कहा कि यह संध्या की बेला अत्यन्त भयङ्कर है । यह लोकों का विनाश करने वाली है और यह धीरे-धीरे आ भी रही है । अतएव आप देवताओं को विजय प्रदान करें । छम्बट् यह अव्यय विनाश के अर्थ का बोधक है ।।२६।।

अधुनैषोऽभिजिन्नाम योगो मौहूर्तिको ह्यगात् । शिवाय नस्त्वं सुहृदामाशु निस्तर दुस्तरम् ।।२७।।

अन्वयः— अधुना एषः अभिजित् नाम मौहूर्तिकः योगः ह्यगात् नः सुहृदां शिवाय त्वम् आशु दुस्तरम् निस्तर ।।२७।।

अनुवाद— इस समय यह अभिजित् नामक शुभ मुहूर्त का योग आ गया है । अतएव आप हमलोगों के कल्याण के लिए शीघ्र ही इस दुर्जय दैत्य को मार दें ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

अभिजिन्मध्याह्नः । स एव मौहूर्तिको योगः सन् । मुहूर्तः शुभदः कालः अगाद्गतप्राय । अतो यावन्मुहूर्तशेषोऽस्ति तावदेव सुदुस्तरमेनं निस्तर जहि ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने कहा कि इस समय मध्याह्न की बेला में आने वाला अभिजित् नामक शुभ मुहूर्त का योग आ गया है अतएव इस मुहूर्त के बितने से पहले ही इस दुर्जय दैत्य का आप वध कर दीजिये, जिससे कि आपके सुहृद् हम देवताओं का कल्याण हो ।।२७।।

दिष्ट्या त्वां विहितं मृत्युमयमासादितः स्वयम् । विक्रम्यैनं मृधे हत्वा लोकानाधेहि शर्मणि ।।२८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे हिरण्याक्षवधेऽष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

अन्वयः— दिष्ट्या विहितं मृत्युं त्वां अयं स्वयम् आसादितः । एनं विक्रम्य मृधे हत्वा लोकान् शर्मणि आधेहि ।।२८।।

अनुवाद— सौभाग्यवशात् इसकी मृत्यु आपसे ही होने वाली है । अतएव यह स्वयम् ही आपके पास आ गया है । अतएव इसको युद्ध में बलपूर्वक मारकर लोकों को आप सुखी बना दें ।।२८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुरण के तीसरे स्कन्ध के हिरण्याक्षवध नामक अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

त्वां मृत्युं त्वयैव शापानुग्रहकाले विहितं निर्मितम् । आसादितः प्राप्तः । शर्मणि सुखे आधेहि स्थापय ।।२८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

इसके शापानुग्रह के समय में आपने ही अपने को ही इसकी मृत्यु का कारण बना लिया था और सौभाग्यवशात् यह आपके पास आ भी गया है, अतएव इस दुर्जय दैत्य को मारकर आप संसार को सुखी बना दें ।।२८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के अठारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१८।।

* * *

उन्नीसवाँ अध्याय

हिरण्याक्ष का वध

मैत्रेय उवाच

अवधार्य विरिञ्चस्य निर्व्यलीकामृतं वचः । प्रहस्य प्रेमगर्भेण तदपाङ्गेन सोऽग्रहीत् ॥१॥

अन्वयः— विरिञ्चस्य निर्व्यलिकामृतं वचः अवधार्य प्रेमगर्भेण प्रहस्य तदपाङ्गेन सः अग्रहीत् ॥१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— विदुरजी ! ब्रह्माजी के उपर्युक्त वचन कपट रहित और अमृतमय थे, उनको सुनकर श्रीभगवान् प्रेमपूर्वक मुस्कुराये और कटाक्षपात के द्वारा उसे स्वीकार किए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ऊनविंशे विरिञ्च्यादिप्रार्थितेन महामृधे । वराहेण हिरण्याक्षवधः श्लाघ्योऽनुवर्ण्यते । निर्व्यलीकं च तदमृतं च । पाठान्तरे निष्कपटाभिप्रायं च तदृत च । कालात्मनोऽपि मम मुहूर्तबलमुपदिशतीति प्रहस्यापाङ्गालोकनेन स्वीकृतवान् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उन्नीसवें अध्याय में ब्रह्मा आदि के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर वराह भगवान् के द्वारा प्रशंसनीय हिरण्याक्ष के वध का वर्णन किया गया है । **निर्व्यलीकम्० इत्यादि**- ब्रह्माजी की उपर्युक्त **विक्रम्यैनं मृधे हत्वा'** वाणी कपट रहित तथा अमृतमय थी जहाँ **निर्व्यलीक ऋतेवचः** पाठान्तर है वहाँ अर्थ होगा निष्कपट और सत्य । उसको सुनकर भगवान् इसलिए मुसकुराये कि मैं तो स्वयं कालस्वरूप हूँ और ये ब्रह्मा मुझको शुभ मुहूर्त का उपदेश दे रहे हैं। इसलिए वे हँसकर कटाक्षपात के द्वारा उसे स्वीकार किए ॥१॥

ततः सपत्नं मुखतश्चरन्तमकुतोभयम् । जघानोत्पत्य गदया हनावसुरमक्षजः ॥२॥

अन्वयः— ततः मुखतः चरन्तम् अकुतोभयम् सपत्नं असुरम् अक्षजः उत्पत्य गदया हनौ जघान ॥२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् सामने विचरण करते हुए निर्भय अपने शत्रु हिरण्याक्ष की ठुड्ढी पर श्रीभगवान् ने गदा मारी ॥२॥

भावार्थ दीपिका

मुखतः अभिमुखे । हनौ कपोलस्याधोभागे । अक्षजो ब्रह्मणो घ्राणेन्द्रियादाविर्भूतः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

वराह भगवान् ब्रह्माजी की घ्राणेन्द्रिय से उत्पन्न हुए थे अतएव उनको अक्षज कहा गया है । उन्होंने देख कि उनका शत्रु असुर उनके सामने ही निर्भय विचरण कर रहा है अतएव उन्होने उछलकर उसकी ठूढी पर गदा से प्रहार किया ॥२॥

सा हता तेन गदया विहता भगवत्करात् । विघूर्णिताऽपतद्रेजे तदद्भुतमिवाभवत् ॥३॥

अन्वयः— तेन हतया गदया हता सा भगवत् करात् विहता विघूर्णिता अपतत् रेजे । तत् अद्भुतमिव अभवत् ॥३॥

अनुवाद— किन्तु हिरण्याक्ष के द्वारा प्रहार की गयी गदा से टकराकर भगवान की गदा उनके हाथ से छूटकर चक्कर काटती हुयी जमीन पर गिरकर सुशोभित हुयी । किन्तु यह अत्यनत अद्भुत सी घटना हुयी ॥३॥

भावार्थ दीपिका

सा स्वगदया तेन हता ततो विहता विच्युता सती विघूर्णिता भूत्वाऽपतद्रेजे च । तद्भगवत्करात्पतनम् । यद्वा तत्पदस्यावृत्त्या रेजे इत्यनेनापि संबन्धः तद्दैत्यपौरुषं रेजे इति ।।३।।

भाव प्रकाशिका

वह उस दैत्य के द्वारा किए गये प्रहार के कारण टकराकर श्रीभगवान् के हाथ से भगवान् की गदा छूट गयी और नाचकर पृथिवी पर गिर गयी । वह श्रीभगवान् के हाथ से गदा का गिरना अद्भुत सी घटना थी । अथवा तत् पद की दो बार आवृत्ति करने के कारण उसका रेजे पद से सम्बन्ध है । अर्थात् उससे उस दैत्य का पौरुष सुशोभित हुआ ।।३।।

स तदा लब्धतीर्थोऽपि न बबाधे निरायुधम् । मानयनस्य मृधे धर्मं विष्वक्सेनं प्रकोपयन् ।।४।।

अन्वयः— सः तदा लब्धतीर्थः अपि विष्वक्सेनं प्रकोपयन् मृधे धर्मं मानयनृ निरायुधम् न बबाधे ।।४।।

अनुवाद— उस समय अवसर प्राप्त करके भी वह दैत्य श्रीभगवान् के क्रोध को बढाते हुए तथा युद्ध के धर्म का पालन करते हुए निरायुध श्रीभगवान् पर प्रहार नहीं किया ।।४।।

भावार्थ दीपिका

लब्धतीर्थो लब्धावसरः स च न बबाधे न प्राहरत् । स मानयन्बभूवेति वाक्यभेदात्स इत्यस्यपौनरुक्त्यम् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

अवसर प्राप्त करके भी निरायुध श्रीभगवान् पर उसने प्रहार नहीं किया । उसने युद्ध धर्म का पालन किया। इस तरह से वाक्य की भिन्नता होने के कारण सः पद की पुनरुक्ति नहीं है ।।४।।

गदायामपविद्धायां हाहाकारे विनिर्गते । मानयामास तद्धर्मं सुनाभं चाऽस्मरद्विभुः ।।५।।

अन्वयः— गदायाम् अपविद्धायाम् हाहाकारे विनिर्गते, तद्धर्मं मानयामास सुनाभं च अस्मरत् ।।५।।

अनुवाद— श्रीभगवान के हाथ से गदा के गिर जाने पर हाहाकार मच गया । श्रीभगवान् ने हिरण्याक्ष की धर्म बुद्धि की प्रशंसा की और उन्होंने चक्र का स्मरण किया ।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५।।

तं व्यग्रचक्रं दितिपुत्राधमेन स्वपार्षदमुख्येन विषज्जमानम् ।
चित्रा वाचोऽतद्विदां खेचराणां तत्रास्मासन्स्वस्ति तेऽमुं जहीति ।।६।।

अन्वयः— दितिपुत्रधमेन स्वपार्षदमुख्येन विषज्जमानं व्यग्रचक्रं तं अतद्विदाम् खेचराणां तत्र ते स्वस्ति, अमुं जहि इति चित्रा वाचः आसन् ।।६।।

अनुवाद— दिति के अधम पुत्र तथा अपने मुख्य पार्षद के साथ क्रीडा करते हुए तथा चञ्चल चक्र को धारण किए हुए श्रीभगवान् से उनके प्रभाव को नहीं जानने वाले देवताओं की इस तरह की विचित्र बातें सुनायी पड़ी कि भगवन् आपका कल्याण हो; आप इसका शीघ्र वध कर दें । इसे अधिक न खेलाइये ।।६।।

भावार्थ दीपिका

व्यग्रं ससंभ्रमं चक्रं यस्य । विषज्जमानं विशेषेण सङ्गं प्राप्नुवन्तं प्रति । अतद्विदां तत्प्रभावमजानताम् । आसमन्तादासन् स्म ।।६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् अपने पार्षद मुख्य हिरण्याक्ष के साथ क्रीडा कर रहे थे और उनके हाथ में व्यग्र चक्र विद्यमान था । श्रीभगवान् के प्रभाव को नहीं जानने वाले देवताओं ने श्रीभगवान् से निवेदन किया कि आप इसका वध कर दें देर न करें ॥६॥

स तं निशाम्यात्तरथाङ्गमग्रतो व्यवस्थितं पद्मपलाशलोचनम् ।
विलोक्य चामर्षपरिप्लुतेन्द्रियो रुषा स्वदन्तच्छदमादशच्छ्वसन् ॥७॥

अन्वयः— अग्रतः आत्तरथाङ्गम् पद्मपलाशलोचनं तं व्यवस्थितं निशाम्यं विलोक्य च सः आमर्षपरिप्लुतेन्द्रियः रुषा श्वसन् स्वदन्तच्छदम् आदशत् ॥७॥

अनुवाद— अपने सामने चक्र धारण किए हुए कमलनयन श्रीभगवान् को तैयार देखकर हिरण्याक्ष ने उनको देखा और क्रोध के कारण उसकी सारी इन्द्रियाँ तिलमिला उठीं वह लम्बी श्वास लेकर अपने ओष्ठों को चबा लिया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

स दैत्यस्तमात्तचक्रं निशाम्य दृष्ट्वाऽग्रतो व्यवस्थितं च विलोक्यामर्षेण क्रोधेन परिप्लुतानि क्षुभितानीन्द्रियाणि यस्य सः । आदशत् दष्टवान् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

वह दैत्य हाथ में चक्र धारण किए हुए श्रीभगवान् को देखकर और युद्ध के लिए तैयार देखा और क्रोध के कारण उसकी सारी इन्द्रियाँ तिलमिला गयीं और लम्बी श्वास लेकर उसने अपने ओष्ठों को काट लिया ॥७॥

करालदंष्ट्रश्चक्षुर्भ्यां संचक्षाणो दहन्निव । अभिप्लुत्य स्वगदया हतोऽसीत्याहनद्धरिम् ॥८॥

अन्वयः— करालदंष्ट्रः चक्षुर्भ्यां दहन्निव संचक्षाणः अभिप्लुत्य स्वगदया हत असि इति हरिम् अहनत् ॥८॥

अनुवाद— भयङ्कर दाँतों वाला तथा अपने नेत्रों को जलते हुए के समान देखकर वह दैत्य उछलकर अब मरे कहकर अपनी गदा से श्रीहरि पर प्रहार किया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

चक्षुर्भ्यां दहन्निव संचक्षाणः पश्यन् । इवेति । वस्तुतः क्रोधभावमाह । हतोऽसि ज्ञातोऽसीति वास्तवोऽर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अपने नेत्रों से भस्म करते हुए के समान यहाँ इव शब्द के द्वारा वस्तुतः क्रोधाभाव को कहा गया है । हतोऽसि का वास्तविक अर्थ है ज्ञात हो गये ॥८॥

पदा सव्येन तां साधो भगवान्यज्ञसूकरः । लीलया मिषतः शत्रोः प्राहरद्वातरंहसम् ॥९॥

अन्वयः— साधो यज्ञसूकरः भगवान् शत्रोः मिषतः लीलया सव्येन पदा वातरंहसम् तम् प्राहरत्॥९॥

अनुवाद— हे साधु स्वभाव वाले विदुरजी यज्ञवराह भगवान् शत्रु की आँखों के सामने ही लीलापूर्वक अपने बायें पैर से उसकी वायु के समान वेग वाली गदा पर प्रहार करके गिरा दिए ॥९॥

भावार्थ दीपिका

वातरंहसं वायुवेगाम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

वायु के समान वेग वाली गदा पर प्रहार किये ॥९॥

आह चायुधमाधत्स्व घटस्व त्वं जिगीषसि । इत्युक्तः स तदा भूयस्ताडयन्व्यनदद्भृशम् ॥१०॥

अन्वयः— आह च आयुधम् आधत्स्व घटस्व त्वं जिगीषसि । इत्युक्तः सः तदा भूयः ताडयन् भृशम् व्यनदत् ॥१०॥

अनुवाद— भगवान् ने कहा अपना आयुध उठाओ और प्रयास करो क्योंकि तुम विजय प्राप्त करना चाहते हो । इस तरह से भगवान् के द्वारा कहे जाने पर उसने पुनः प्रहार किया और बहुत अधिक गर्जना किया ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

घटस्वोद्यमं कुरु । यतस्त्वं जेतुमिच्छसि ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् ने कहा पुनः प्रहार करो क्योंकि तुम विजय प्राप्त करना चाहते हो ॥१०॥

तां स आपततीं वीक्ष्य भगवान्समवस्थितः । जग्राह लीलया प्राप्तां गरुत्मानिव पन्नगीम् ॥११॥

अन्वयः— आपततीं तां वीक्ष्य स भगवान् समवस्थितः पन्नगीम् गरुत्मानिव लीलया जग्राह ॥११॥

अनुवाद— अपनी ओर आती हुयी उस गदा को देखकर अपनी जगह पर खड़े रहकर ही श्रीभगवान् उस गदा को बिना किसी प्रयास के उसी तरह पकड़ लिए जैसे गरुड़ किसी सर्पिणी को पकड़ लेते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥११॥

स्वपौरुषे प्रतिहते हतमानो महासुरः । नैच्छद्गदां दीयमानां हरिणा विगतप्रभः ॥१२॥

अन्वयः— स्व पौरुषे प्रतिहते हतमानो विगतप्रभः महासुरः हरिणा दीयमानां गदां नैच्छत् ॥१२॥

अनुवाद— अपने पौरुष को विफल हुए देखकर उस महान् असुर का गर्व विनष्ट हो गया उसकी कान्ति क्षीण हो गयी श्रीहरि के द्वारा दिए जाने पर भी वह उस गदा को नहीं लेना चाहा ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

हतोमानो गर्वो यस्य ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

उस असुर का गर्व विनष्ट हो गया ॥१२॥

जग्राह त्रिशिखं शूलं ज्वलज्ज्वलनलोलुपम् । यज्ञाय धृतरूपाय विप्रायाभिचरन्यथा ॥१३॥

अन्वयः— विप्राय अभिचरन् यथा धृतरूपाय यज्ञाय ज्वलज्ज्वलन् लोलुपम् त्रिशिखं शूलं जग्राह ॥१३॥

अनुवाद— जैसे कोई ब्राह्मण पर निष्फल मारण आदि अभिचार कर्म करे उसी तरह से सूकर का रूप धारण किए हुए श्रीभगवान् के लिए उसने अग्नि के समान लपलपाते हुए त्रिशूल उठाया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

ज्वलन्यो ज्वलनस्तद्वल्लोलुपं ग्रसनव्यग्रम् । यज्ञाय विष्णुमालक्ष्य । आकर्यकरत्वे दृष्टान्तः-विप्रमुद्दिश्याभिचारं कुर्वन्यथा ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

जलती हुयी अग्नि के समान दहकता हुआ वह त्रिशूल था वह मानो श्रीभगवान् को भस्म करने के लिए व्यग्र हो; किन्तु वह श्रीभगवान् के लिए उसी तरह से व्यर्थ था जैसे किसी तत्त्वज्ञ ब्राह्मण पर मारणादि अभिचार कर्म करता है तो वह व्यर्थ हो जाता है ॥१३॥

तदोजसा दैत्यमहाभटार्पितं चकासदन्तः ख उदीर्णदीधिति ।
चक्रेण चिच्छेद निशातनेमिना हरिर्यथा तार्क्ष्यपतत्रमुज्झितम् ॥१४॥

अन्वयः— तदोजसा दैत्यमहाभटार्पितं उदीर्णदीधितिः अन्त; खे चकासत तत् हरिः निशातनेमिना चक्रेण तार्क्ष्य पतत्रम् उज्झितं हरिः यथा चिच्छेद ॥१४॥

अनुवाद— महाबलवान् हिरण्याक्ष के द्वारा छोड़ा गया वह ओजस्वी त्रिशूल आकाश में जाकर चमकने लगा उसको श्रीहरि ने अपने तीक्ष्ण धार वाले चक्र के द्वारा उसी तरह से काट डाला जिस तरह गरुड़ के द्वारा परित्यक्त एक पङ्ख को इन्द्र ने अपने अमोध वज्र से काट डाला था ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अन्तः खे आकाशमध्ये चकासत्प्रकाशमानम् । उदीर्णोत्कटा दीधितिर्दीप्तिर्यस्य । निशातनेमिना शितधारेण । हरिरिन्द्रो यथा तार्क्ष्यस्य पतत्रमुज्झितं चिच्छेद । देवान्विनिर्जित्य अमृतकलशं नयता गरुडेनेन्द्रप्रयुक्तवज्रस्यामोधस्य मानं दातुं पिच्छमेकं त्यक्तं तद्यथेन्द्रश्चिच्छेद छिन्नं च तद्यथा खे प्रचकाशे तद्वत्प्रकाशमानमित्यभिसन्धिः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

महाबलवान् हिरण्याक्ष के द्वारा छोड़ा हुआ वह त्रिशूल आकाश में जाकर चमकने लगा । उस त्रिशूल को श्रीभगवान् ने अपने तीव्र धार वाले चक्र से उसी तरह से काट डाला जिस तरह गरुड़ के द्वारा छोड़े गये उनके पङ्ख को इन्द्र ने अपने वज्र से काटा डाला था । एक बार अपनी माता विनता को सर्पों की माता कद्रु के दासित्व से मुक्त करने के लिए अमृत कलश लाने के लिए गरुड स्वर्ग लोक में गये और वहाँ के देवताओं को परास्त करके जब वे अमृत कलश को ला रहे थे उस समय इन्द्र ने गरुड़जी पर अपने वज्र का प्रयोग किया । चूकि वज्र अमोघ है, वह कभी विफल नहीं होता है, इसलिए गरुडजी ने अपना एक पङ्ख छोड़ दिया और इन्द ने अपने वज्र से उसे काट डाला, उसी तरह श्रीभगवान् ने उस त्रिशूल को काट डाला ॥१४॥

वृक्णे स्वशूले बहुधाऽरिणा हरेः प्रत्येत्य विस्तीर्णमुरो विभूतिमत् ।
प्रवृद्धरोषः स कठोरमुष्टिना नदन्प्रहृत्यान्तरधीयतासुरः ॥१५॥

अन्वयः— अरिणा स्वशूले बहुधा वृक्णे प्रवृद्धरोषः सः प्रत्येत्य हरेः विभूतिमत् उरः कठोरमुष्टिना नदन् प्रहृत्य असुरः अन्तर्धीयत् ॥१५॥

अनुवाद— श्रीहरि के चक्र के द्वारा अनेक टुकड़े हुए अपने त्रिशूल को देखकर हिरण्याक्ष का क्रोध बढ गया वह भगवान् के सन्निकट आकर उनके विशाल वक्षस्थल जो श्रीवत्सचिह्न से विभूषित था उस पर अपनी कठोर मुट्ठी से प्रहार करके जोर से गर्जना करके अन्तर्धान हो गया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अराः सन्त्यस्येत्यरि चक्रं तेन बहुधा वृक्णे छिन्ने सति प्रत्येत्याभिमुखमागत्य हरेरुरो वक्षः प्रहृत्य ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

अराः सन्त्यस्य इस विग्रह के अनुसार अरि शब्द चक्र का वाचक है । अपने चक्र से श्रीभगवान् ने उस त्रिशूल को काटकर अनेक टुकड़ों में कर दिया । यह देखकर क्रुद्ध हुए हिरण्याक्ष श्रीहरि के समक्ष आकर उनके श्रीवत्सचिह्न से भूषित वक्षःस्थल पर अपनी कठोर मुट्ठी से प्रहार करके गर्जना किया और अन्तर्धान हो गया ॥१५॥

तेनेत्थमाहतः क्षत्तर्भगवानादिसूकरः । नाकम्पत मनाक् क्वापि स्रजा हत इव द्विपः ॥१६॥

अन्वयः— हे क्षत्तः तेन इत्थम् आहतः आदिसूकरः भगवान् स्रजा हतः द्विप इव क्वापि मनाक् न अकम्पत ॥१६॥

अनुवाद— हे विदुरजी हिरण्याक्ष के द्वारा इस तरह से प्रहार किए जाने पर आदि वराह भगवान् अपने स्थान से टस से मस उसी तरह नहीं हुए जिस तरह फूलों की माला से हाथी पर किए गये प्रहार का कोई असर नहीं होता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

मनागीषदपि । क्वाप्यंशे ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष के उस मुष्टिप्रहार से भगवान् आदि वराह बिल्कुल टस से मस नहीं हुए ॥१६॥

अथोरुधासृजन्मायां योगमायेश्वरे हरौ । यां विलोक्य प्रजास्त्रस्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम् ॥१७॥

अन्वयः— अथ योगमायेश्वरे हरौ उरुधा मायां असृजत् यां विलोक्य त्रस्ता प्रजाः अस्य उपसंयमम् मेनिरे ॥१७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् वह दैत्य मायापति श्रीभगवान् पर माया का प्रयोग करने लगा, उसको देखकर भयभीत प्रजाओं को लगा कि अब जगत् का प्रलय होने वाला है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अस्य जगतः । उपसंयमम् प्रलयम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

अस्य पद के द्वारा इस जगत् का परामर्श किया गया है, और **उपसंयमम्** पद से प्रलय का । अर्थात् हिरण्याक्ष की माया को देखकर सारी प्रजायें भयभीत हो गयीं और सोचने लगीं की प्रलय हाने वाला है क्या ?॥१७॥

प्रववुर्वायवश्चण्डास्तमः पांसवमैरयन् । दिग्भ्यो निपेतुर्ग्रावाणः क्षेपणैः प्रहिता इव ॥१८॥

अन्वयः— चण्डाः वायवः प्रववुः पांसवम् तमः ऐरयन् क्षेपणैः प्रहिता इव दिग्भ्यः ग्रावाणः निपेतुः ॥१८॥

अनुवाद— जोर से आँधी चलने लगी धूल के उड़ने से अन्धकार छा गया । क्षेपणी यन्त्र से फेंके गये के समान दिशाओं से पत्थर गिरने लगे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

पांसुकृतं तमश्च प्रेरितवन्तः क्षेपणैर्यन्त्रैः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

तेज आंधी के कारण धूलि के भर जाने से अन्धकार छा गया और लग रहा था जैसे क्षेपणी यन्त्र के द्वारा दिशाओं से पत्थर फेंके जा रहें हों ॥१८॥

द्यौर्नष्टभगणाद्यौः सविद्युत्स्तनयित्नुभिः । वर्षद्भिः पूयकेशासृग्विण्मूत्रास्थीनि चासकृत् ॥१९॥

अन्वयः— सविद्युत् स्तनयित्नुभिः पूयकेश-असृग्-विट-मूत्र-अस्थीनि-असकृत् वर्षद्भिः नष्टभगणा द्यौः जाता ॥१९॥

अनुवाद— बिजली की चमचमाहट और गर्जना से युक्त, बार-बार पीब, केश, रक्त, विष्टा, मूत्र तथा हड्डियों की वर्षा करने वाले मेघों से आकाश के सारे सूर्य, चन्द्रमा तथा तारे छिप गये ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

नष्टो भगणो नक्षत्रसमूहो यस्याम् । अनेन दैत्यबलातिरेकाद्ब्रह्मदत्तमुहूर्तातिक्रमो गम्यते । अह्नि नक्षत्राणामसंभवात् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

आकाश के तारे आदि छिप गये। इससे दैत्य के बल के अतिरेक के कारण ब्रह्माजी के द्वारा प्रदत्त मुहूर्त का अतिक्रमण प्रतीत होता है, क्योंकि दिन में तो तारे नहीं हो सकते हैं ॥१९॥

गिरयः प्रत्यदृश्यन्त नानायुधमुचोऽनघ । दिग्वाससो यातुधान्यः शूलिन्यो मुक्तमूर्धजाः ॥२०॥

अन्वयः— हे अनध ! नानायुधमुचः गिरयः प्रत्यदृश्यन्त दिग्वाससः मुक्तमूर्धजाः शूलिन्यः यातुधान्यः च प्रत्यदृश्यन्त ॥२०॥

अनुवाद— विदुरजी अनेक प्रकार के अस्त्रों की वर्षा करने वाले पर्वत दिखायी देने लगे तथा हाथ में त्रिशूल लिए खुले केशों वाली नङ्गी राक्षसियाँ दिखने लगीं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

नानायुधानि मुञ्चन्तीति तथा यातुधान्यश्च प्रत्यदृश्यन्त ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अनेक प्रकार के आयुधों की वर्षा करने वाले पर्वत तथा नङ्गी त्रिशूल लिए राक्षसियाँ दिखने लगीं ॥२०॥

बहुभिर्यक्षरक्षोभिः पत्त्यश्वरथकुञ्जरैः । आततायिभिरुत्सृष्टा हिंस्रा वाचोऽतिवैशसाः ॥२१॥

अन्वयः— बहुभिर्यक्षरक्षोभिः पत्त्यश्वरथकुञ्जरैः आततायिभिः, अतिवैशसाः हिंस्रा वाचः उत्सृष्टाः ॥२१॥

अनुवाद— पैदल घुड़सवार, रथी तथा हाथियों पर चढ़े हुए सैनिकों के साथ आततायी यक्षों एवं राक्षसों का काटो, मारो, इस प्रकार की क्रूर तथा हिंसामय शब्द सुनायी देने लगा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

हिंसाश्छिन्धिभिन्धीत्येवंभूता अतिवैशसा अत्युग्रा वाच उत्सृष्ट इत्यत्रैव वाक्यसमाप्तिः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

काटो, मारो इस तरह की हिंसा बहुल शब्द सुनायी देने लगा ॥२१॥

प्रादुष्कृतानां मायानामासुरीणां विनाशयत् । सुदर्शनास्त्रं भगवान् प्रायुङ्क्त दयितं त्रिपात् ॥२२॥

अन्वयः— प्रादुष्कृतानां आसुराणां मायानाम् विनाशयत् भगवान् त्रिपात् दयितम् सुदर्शनास्त्रं प्रायुंक्त ॥२३॥

अनुवाद— प्रकट हुयी उन आसुरी मायाओ को विनष्ट करने के लिए यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् ने अपने प्रिय सुदर्शनास्त्र का प्रयोग किया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

प्रादुष्कृतानामिति प्रकटिता माया विनाशयत्। **'विनाशनम्'** इति पाठे यथाश्रुतैव षष्ठी। त्रीणि सवनानि पादा यस्य। यज्ञमूर्तिरित्यर्थः। **'त्रयो अस्य पादाः'** इति श्रुतेः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्याक्ष ने जिन मायाओं को प्रकट किया था उन सबों को विनष्ट करने के लिए। जहाँ पर विनाशनम् यह पाठभेद है वहाँ पर भी षष्ठी विभक्ति का अर्थ सम्बन्ध सामान्य ही है। त्रीणि सवनानि पादा यस्य अर्थात् प्रातः मध्याह्न और सायं तीनों सवन ही जिनका चरण है। यज्ञों में ये तीनों सवन होते हैं। अतएव यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् को त्रिपात् कहते हैं। श्रुति भी कहती है त्रयः अस्य पादाः ॥२३॥

विनष्टासु स्वमायासु भूयश्चाव्रज्य केशवम् । रुषोपगूहमानोऽमुं ददृशेऽवस्थितं बहिः ॥२४॥

अन्वयः— स्वमायासु विनष्टासु केशवम् आव्रज्य रुषा उपगूहमानः अमूं बहि अवस्थितं ददृशे ॥२४॥

अनुवाद— अपनी मायाओं के विनष्ट हो जाने पर हिरण्याक्ष पुनः भगवान् केशव के पास आकर क्रोध पूर्वक अपनी दोनों भुजाओं के बीच दबाकर रगड़ते हुए श्रीभगवान् को उसने देखा कि भगवान् उसकी दोनों भुजाओं से बाहर खड़े हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

उपगूहमानो वाह्वोरन्तर्निधाय सङ्घट्टयन् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

उपगूहमानः पद का अर्थ है कि अपनी दोनों भुजाओं के बीच में रखकर उनको रगड़ते हुए । उसने देखा कि भगवान् जो उसकी दोनों भुजाओं से बाहर खड़े हैं ॥२४॥

तं मुष्टिभिर्विनिघ्नन्तं व्रजसारैरधोक्षजः । करेण कर्णमूलेऽहन्यथा त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः ॥२५॥

अन्वयः— वज्रसारैः मुष्टिभिः विनिघ्नन्तं तं अधोक्षजः त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः यथा करेण कर्णमूले अहन् ॥२५॥

अनुवाद— जब वह हिरण्याक्ष वज्र के समान मुक्कों से मार रहा था तो भगवान् ने उसकी कनपटी पर उस तरह से अपने थप्पड़ से प्रहार किया जिस तरह देवराज इन्द्र ने वृत्रासुर पर प्रहार किया था ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अहन् जघान । त्वाष्ट्रं वृत्रम् । मरुत्पतिरिन्द्रः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

अहन् का अर्थ है मारा । त्वाष्ट्र वृत्रासुर का नाम है । मरुत्पति इन्द्र का नाम है । हिरण्याक्ष तो श्रीभगवान् को अपने व्रज के समान मुक्कों से मार रहा था और भगवान् ने उसकी कनपटी पर थप्पड़ से मारा ॥२५॥

स आहतो विश्वजिता ह्यवज्ञया परिभ्रमद्गात्र उदस्तलोचनः ।
विशीर्णबाह्वङ्घ्रिशिरोरुहोऽपतद्यथा नगेन्द्रो लुलितो नभस्वता ॥२६॥

अन्वयः— विश्वजिता अवज्ञया आहतः परिभ्रमद् गात्रः उदस्तलोचनः विशीर्णबाह्वङ्घ्रिशिरोरुहः नभस्वता लुलितः नगेन्द्रो यथा अपतत् ॥२६॥

अनुवाद— यद्यपि श्रीभगवान् उसको उपेक्षा पूर्वक ही थप्पड़ से मारे किन्तु उसकी चोट से उसका शरीर घूमने लगा, उसके दोनों नेत्र बाहर निकल आये, उसके हाथ, पैर तथा केश विखर गये और वह निष्प्राण होकर पृथिवी पर उसी तरह गर पड़ा जिस तरह आँधी के द्वारा उखाड़ा गया महान् वृक्ष पृथिवी पर गिर पड़ता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

परितो भ्रमद्गात्रं शरीरं यस्य । उदस्ते बहिर्निर्गते लोचने यस्य । विशीर्णा बाह्वादयो यस्य । नगेन्द्रो महाद्रुमः । लुलित उन्मूलितः । नभस्वता वायुना ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् विश्वविजयी है । उन्होंने उपेक्षा पूर्वक ही हिरण्याक्ष को थप्पड़ से मारा किन्तु उसके चोट से हिरण्याक्ष का शरीर घूमने लगा, उसके दोनों नेत्र बाहर निकल आये । उसकी भुजा इत्यादि विशीर्ण हो गये और वह वायु के द्वारा उखाड़े गये महावृक्ष के समान निष्प्राण होकर पृथिवी पर गिर पड़ा । नभस्वत् वायु को कहते

हैं । लुलित का अर्थ है उखाड़ा गया । नगेन्द्र महावृक्ष का नाम है । उदस्तलोचनः का विग्रह है । उदस्ते बहिर्गते लोचने यस्य ॥२६॥

क्षितौ शयानं तमकुण्ठवर्चसं करालदंष्ट्रं परिदष्टदच्छदम् ।
अजादयो वीक्ष्य शशंसुरागता अहो इमां कोऽनुलभेत संस्थितिम् ॥२७॥

अन्वयः— क्षितौ शयानम् अकुण्ठवर्चसं करालदंष्ट्र परिदष्टदच्छदम् तम् वीक्ष्य आगता अजादयः शशंसुः अहो इमां संस्थितिम् को नु लभेत ॥२७॥

अनुवाद— पृथिवी पर पड़े हुए हिरण्याक्ष का तेज अब भी बना हुआ था । वह अपने भयङ्कर दाँतों से अपने ओष्ठों को चबाये हुए था । इस प्रकार के हिरण्याक्ष को देखकर आये हुए ब्रह्मा आदि ने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा— इस तरह की मृत्यु किसे प्राप्त हो सकती हैं ?॥२७॥

भावार्थ दीपिका

संस्थितिं मृत्युम् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

संस्थिति का अर्थ मृत्यु है ॥२७॥

यं योगिनो योगसमाधिना रहो ध्यायन्ति लिङ्गादसतो मुमुक्षया ।
तस्यैष दैत्यऋषभः पदा हतो मुखं प्रपश्यंस्तनुमुत्ससर्ज ह ॥२८॥

अन्वयः— योगिनः रहः असतः लिङ्गात् मुमुक्षया यं योगसमाधिना ध्यायन्ति, तस्य पदाहतः एष दैत्यऋषभः मुखं प्रपश्यन् तनुम् उत्ससर्ज ह ॥२८॥

अनुवाद— अपनी मिथ्या उपाधि से मुक्ति प्राप्त करने के लिए योगिजन जिनका समाधियोग के द्वारा ध्यान करते हैं, उन्हीं के चरण प्रहार से मारा गया यह दैत्य उन्हीं श्रीभगवान् के मुख को देखते हुए अपने शरीर का परित्याग किया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

असत आरोपिताल्लिङ्गाल्लिङ्गशरीरान्मोक्तुमिच्छया । वराहस्य पूर्वपादयोरेव करत्वात्करेणाहन्निति पदा हत इति चाविरुद्धम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

लिङ्ग शरीर चूकि आरोपित है अतएव मिथ्या है, उससे मुक्ति प्राप्त करने के लिए योगिजन श्रीभगवान् का ध्यान करते हैं । उन्हीं भगवान के चरणों के प्रहार से मरा था हिरण्याक्ष । यदि कोई कहे कि भगवान् ने तो अपने हाथ से हिरण्याक्ष को मारा था चरण से नहीं तो ऐसी बात नहीं है । श्रीभगवान् वाराहावतार में थे उनका पूर्वपद ही हाथ का काम करता था इसीलिए पीछे के पैरों से मारे गये हिरण्याक्ष को कराहत कहा गया है ॥२८॥

एतौ तौ पार्षदावस्य शापाद्यातावसद्गतिम् । पुनः कतिपयैः स्थानं प्रपत्स्येतेह जन्मभिः ॥२९॥

अन्वयः— एतौ तौ अस्य पार्षदौ शापात् सद्गति यातौ पुनः कतिपयैः जन्मभिः स्थानं प्रपत्स्येते ॥२९॥

अनुवाद— ये दोनों श्रीभगवान् के पार्षद हैं शाप के कारण इन दोनों को अधोगति की प्राप्ति हुयी । अब कुछ जन्मों में ये पुनः अपने स्थान को प्राप्त कर लेंगे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

देवा ऊचुः

नमो नमस्तेऽखिलयज्ञतन्तवे स्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये ।
दिष्ट्या हतोऽयं जगतामरुंतुदस्त्वत्पादभक्त्या वयमीश निर्वृताः ॥३०॥

अन्वयः— अखिलयज्ञतन्तवे ते नमो नमः स्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये । अयं जगताम् अरुन्तुदः दिष्ट्या हतः हे ईश त्वत्पादभक्त्या वयम् निर्वृताः ॥३०॥

देवताओं ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो सम्पूर्ण यज्ञों का विस्तार करने वाले आपको बारम्बार नमस्कार है । संसार की रक्षा करने के लिए आप शुद्ध सत्त्वमय मङ्गल विग्रह धारण करते है । भाग्यवशात् संसार को कष्ट देने वाला यह हिरण्याक्ष मारा गया । आपके चरणों की भक्ति करने के कारण ही हमलोगों को सुख शान्ति की प्राप्ति हुई है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

अखिलयज्ञानां तन्तवे विस्ताराय कारणायेति वा । अरुंतुदो मर्मभेत्ता ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

आप सम्पूर्ण यज्ञों का विस्तार करने वाले होने से उनके कारण स्वरूप है । अरुन्तुद का अर्थ मर्मस्थल का भेदन करने वाला ॥३०॥

मैत्रेय उवाच

एवं हिरण्याक्षमसह्यविक्रमं स सादयित्वा हरिरादिसूकरः ।
जगाम लोकं स्वमखण्डितोत्सवं समीडितः पुष्करविष्टरादिभिः ॥३१॥

अन्वयः— एवम् असह्यविक्रमं हिरण्याक्षं सादयित्वा आदिसूकरः हरिः पुष्करविष्टरादिभिः समीडितः अखण्डितोत्सवं लोकं जगाम ॥३१॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— विदुरजी महापराक्रमी हिरण्याक्ष का इस प्रकार से वध करके आदि वाराह श्रीहरि ब्रह्मादि देवताओं द्वारा स्तुति किए जाते हुए अपने उस लोक में चले गये जहाँ पर निरन्तर अखण्ड रूप से महोत्सव हुआ करता है॥३१॥

भावार्थ दीपिका

सादयित्वा हत्वेत्यर्थः । पुष्करविष्टरादिभिर्ब्रह्मादिभिः संस्तुतः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

मूल के सादयित्वा पद का अर्थ है मारकर पुष्करविष्टर ब्रह्माजी का नाम है । ब्रह्माजी के साथ जो देवता और देवगण थे वे श्रीभगवान् के अपने लोक में जाते समय उनकी स्तुति कर रहे थे ॥३१॥

मया यथाऽनूक्तमवादि ते हरेः कृतावतारस्य सुमित्र चेष्टितम् ।
यथा हिरण्याक्ष उदारविक्रमो महामृधे क्रीडनवन्निराकृतः ॥३२॥

अन्वयः— हे सुमित्र ! मया कृतावतारस्य हरेः चेष्टितम् यथा च उदार विक्रमः हिरयाक्ष महामृधे यथा क्रीडनवत् निराकृतः यथा अनूक्तम् त अवादि ॥३२॥

अनुवाद— हे मित्र विदुर ! वराहावतार धारण करके श्रीभगवान् ने जिन लीलाओं को किया तथा महापराक्रमी

हिरण्याक्ष को उन्होंने जैसे महासंग्राम में खिलौने के समान मार दिया उसे मैंने अपने गुरुजनों से जैसा सुना था उसी तरह से आपको सुना दिया ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

यथाऽनूक्तं गुरूक्तिमनतिक्रम्य मयाऽवादि तव कथितम् । हे सुमित्र । यथा येन प्रकारेण ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में मैत्रेयजी ने विदुरजी को सुमित्र शब्द से सम्बोधित किया है । उन्होंने कहा कि जैसा मैंने अपने गुरुजनों से सुना है वैसा आपको वराह भगवान् की चेष्टाओं को तथा हिरण्याक्ष वध को सुना दिया ।।३२।।

सूत उवाच

इति कौषारवाख्यातामाश्रुत्य भगवत्कथाम् । क्षत्तानन्दं परं लेभे महाभागवतो द्विज ।।३३।।

अन्वयः— हे द्विज ! इति कौषारवाख्यातां भगवत् कथां आश्रुत्य महाभागवतः क्षत्ता परं आनन्दं लेभे ।।३३।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— हे शौनकजी इस तरह से मैत्रेयजी द्वारा कही गयी वराह भगवान् की कथा को सुनकर महाभागवत विदुरजी को परम् आनन्द की प्राप्ति हुयी ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

हे द्विज शौनक ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में द्विज शब्द से महर्षि शौनक को सूतजी ने सम्बोधित किया है ।।३३।।

अन्येषां पुण्यश्लोकानामुद्दामयशसां सताम् । उपश्रुत्य भवेन्मोदः श्रीवत्साङ्कस्य किं पुनः ।।३४।।

अन्वयः— अन्येषां पुण्यश्लोकानाम् उद्दामयशसां सताम् उपश्रुत्य मोदो भवेत् किं पुनः श्रीवत्साङ्कस्य ।।३४।।

अनुवाद— जब दूसरे भी पवित्र कीर्ति वाले महापुरुषों की कथाओं को सुनकर आनन्द की प्राप्ति होती है। तो फिर श्रीवत्स चिह्न से मण्डित श्रीभगवान् की कथा को सुनकर होने वाले आनन्द के विषय में क्या कहना हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

कथामुपश्रुत्य ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

सूतजी ने कहा कि जब दूसरे भी पवित्र कीर्ति महापुरुषों की कथा को सुनकर आनन्द की प्राप्ति होती है तो फिर श्रीभगवान् की कथा को सुनकर होने वाले आनन्द की प्राप्ति के विषय में क्या कहना हैं ।।३४।।

यो गजेन्द्रं झषग्रस्तं ध्यायन्तं चरणाम्बुजम् । क्रोशन्तीनां करेणूनां कृच्छ्रतोऽमोचयद्द्रुतम् ।।३५।।

अन्वयः— यः झषग्रस्त— चरणाम्बुजम् ध्यायन्तं गजेन्द्रं क्रोशन्तीनां केरणूनाम् द्रुतम् कृच्छ्रतः अमोचयत् ।।३५।।

अनुवाद— घड़ियाल के द्वारा पकड़ लिए जाने पर गजेन्द्र श्रीभगवान् के चरण कमलों का ध्यान कर रहा था और हस्तिनियाँ दुःख से व्याकुल होकर चिग्घाड़ रही थी उस समय जो भगवान् शीघ्र ही गजेन्द्र के कष्ट से

भावार्थ दीपिका

भक्तिमात्रेण पशूनामपि सुलभोऽन्यथा देवानामपि दुर्लभ इति तत्कथाश्रवणे कस्यानन्दो न स्यादित्याह-य इति द्वाभ्याम्। झषो ग्राहः । क्रोशन्तीनां सतीनामिति कृपालुत्वमुक्तम् । सङ्कटादमोचयत् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् केवल भक्तिमात्र से पशुओं के लिए भी सुलभ हो जाते हैं अन्यथा देवताओं के भी लिए वे दुर्लभ है । ऐसे श्रीभगवान् की कथा सुनने से किसको आनन्द की प्राप्ति नहीं होगी ? इस बात को **यो गजेन्द इत्यादि** दो श्लोकों से कहते हैं । झष घड़ियाल को कहते हैं । गजेन्द्र को ग्राहग्रस्त देखमकर उसकी हस्तिनयाँ दुःखी होकर चिग्घाड़ रही थीं । उस गजेन्द्र पर श्रीभगवान् कृपा किए और उसको सङ्कट से मुक्त किए ॥३५॥

तं सुखाराध्यमृजुभिरनन्यशरणैर्नृभिः । कृतज्ञः को न सेवेत दुराराध्यमसाधुभिः ॥३६॥

अन्वयः— ऋजुभिः अनन्यशरणैः नृभिः सुखाराध्यम् असाधुभिः दुराराध्यम् कः कृतज्ञः न सेवेत ॥३६॥

अनुवाद— जो संसार के लोगों से निराश होकर एकमात्र श्रीभगवान् को ही अपना रक्षक मानकर उनकी शरणागति करते हैं ऐसे ऋजु बुद्धि वाले मनुष्यों से भगवान् आसानी से प्रसन्न हो जाते हैं और दुष्ट पुरुषों के लिए जो परमात्मा दुराराध्य हैं, ऐसे श्रीभगवान् की आराधना कौन कृतज्ञ पुरुष नहीं करेगा ?॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

यो वै हिरण्याक्षवधं महाद्भुतं विक्रीडितं कारणसूकरात्मनः ।
शृणोति गायत्यनुमोदतेऽञ्जसा विमुच्यते ब्रह्मवधादपि द्विजाः ॥३७॥

अन्वयः— हे द्विजाः ! यो वै कारणसूकरात्मनः हिरण्याक्षवधं महद्भुतं विक्रीडितम् शृणोति, गायति, अनुमोदते अञ्जसा ब्रह्मवधादपि विमुच्यते ॥३७॥

अनुवाद— हे महर्षियों ! जो मनुष्य आदिवाराह भगवान् के अत्यन्त अद्भुत हिरण्याक्षवध नामक क्रीडा को सुनता है, गायन करता है और उसका अनुमोदन करता है वह आसानी से ब्रह्महत्याजन्य दोष से भी मुक्त हो जाता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

कारणेन पृथिव्युद्धरणादिना सूकररूपस्य हरेः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी आदि का उद्धार करने के लिए वराहरूप धारण करने वाले श्रीभगवान् की यह हिरण्याक्ष वध एक अद्भुत क्रीडा थी । इसको सुनने वाला, कहने वाला तथा इसका समर्थन करने वाला मनुष्य ब्रह्महत्याजन्य दोष से भी मुक्त हो जाता है ॥३७॥

एतन्महापुण्यमलं पवित्रं धन्यं यशस्यं पदमायुराशिषाम् ।
प्राणेन्द्रियाणां युधि शौर्यवर्धनं नारायणोऽन्ते गतिरङ्ग शृण्वताम् ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीय स्कन्धे हिरण्याक्षवधो नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अन्वयः— हे अङ्ग एतत् महापुण्यम् अलं पवित्रम् धन्यं यशस्यम् आयुराशिषाम् पदम् युद्धिप्राणेन्द्रियाणां शौर्यवर्धनं शृण्वताम् अन्ते नारायणो गतिः ॥३८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का यह चरित्र अत्यन्त पुण्यमय पवित्र धन्य, यश तथा आयु को प्रदान करने वाला

युद्ध में प्राणों और इन्द्रियों के शौर्य को बढ़ाने वाला है । इसको सुनने वाले लोगों को अन्त में भगवान् नारायण की प्राप्ति होती है ॥३८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के हिरण्याक्षवध नामक उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

एतद्धरेर्विक्रीडितं शृण्वतामन्ते श्रीनारायणो गतिर्भवति । महापुण्यं स्वर्गादिप्रदम् । अलं पवित्रमतिशयेन शोधकम् । धन्यं धनावहम्। यशस्यं कीर्तिकरम्। आयुषश्चाशिषां च पदं स्थानं परित्राणं वा प्राणानामिन्द्रियाणां च पदम् । अङ्ग हे विदुर।।३८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की यह हिरण्याक्ष वध की जो लीला है, इसको सुनने वाले लोगों को अन्त में भगवान् नारायण की प्राप्ति होती है । यह आख्यान स्वर्गादि लोकों को प्रदान करने वाला है । यह अत्यन्त स्वच्छ बना देने वाला है । धन्य है अर्थात् धन प्रदान करने वाला है, यश प्रदान करने वाला है आयु को बढ़ाने वाला और आशिषाम् (कामनाओं) को पूर्ण करने वाला है । यह प्राणों तथा इन्द्रियों का पद स्थान है । इस श्लोक मे अङ्गशब्द से विदुरजी को सम्बोधित किया गया है ॥३८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका की उन्नीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१९।।

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजी द्वारा की गयी अनेक प्रकार की सृष्टियों का वर्णन

शौनक उवाच

महीं प्रतिष्ठामध्यस्य सौते स्वायंभुवो मनुः । कान्यन्वतिष्ठद्द्वाराणि मार्गायावरजन्मनाम् ॥१॥

अन्वयः— हे सौते ! महीं प्रतिष्ठाम् अध्यस्य स्वायम्भुवमनुः अवरजन्मनाम् मार्गाय कानि द्वाराणि अन्वतिष्ठत् ॥१॥

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे सूतजी ! पृथिवी रूपी आधार को प्राप्त करके स्वायम्भुव मनु ने अपने पश्चात् उत्पन्न होने वाली सन्तान को उत्पन्न करने के लिए किन उपायों को किया ?॥१॥

भावार्थ दीपिका

विंशे बराहजन्मदिव्यवधानादथादितः । सर्गोऽनुस्मार्यते वक्तुमन्वयं प्रस्तुतं मनोः ॥१॥ प्रतिष्ठां स्थानम् । अध्यस्य प्राप्य। सौते सूतस्य रोमहर्षणस्य पुत्र । अवरमर्वाचीनं जन्म येषां तेषां ईश्वरे लीनानां मार्गाय निर्गमाय कानि द्वाराणि कृतवान्। अर्वाचीनान्प्राणिनः कैरुपायैः सृष्टवानित्यर्थः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बीच में वराह जन्म आदि की कथा का व्यवधान आ जाने के कारण बीसवें अध्याय में प्रस्तुत मनु की सन्तान का वर्णन करने के लिए सृष्टि का स्मरण कराये हैं ॥१॥ **प्रतिष्ठा** का अर्थ आधार है, **अध्यस्य** अर्थात्

प्राप्त करके । **सौते** पद के द्वारा रोमहर्षण सूत के पुत्र उग्रश्रवा को सम्बोधित किया गया है । शौनक महर्षि ने सूतजी से पूछा कि पृथिवी रूपी आधार को प्राप्त करके, स्वायम्भुव मनु के पश्चात् जन्म लेने वाले जो प्रलय काल में परमात्मा में लीन हो गये थे, उन जीवों को उत्पन्न करने के लिए स्वायम्भुव मनु ने किन उपायों को किया॥१॥

क्षत्ता महाभागवतः कृष्णस्यैकान्तिकः सुहृत् । यस्तत्याजाग्रजं कृष्णे सापत्यमघवानिति ॥२॥

अन्वयः— क्षत्ता महाभागवतः कृष्णस्य ऐकान्तिकः सुहृत् यः कृष्णे अघवान् इति सापत्यम् अग्रजं तत्याज ॥२॥

अनुवाद— विदुरजी महान् भगवद्भक्त और उनके सुहृद् थे इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करने वाले अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र को उनके पुत्रों के साथ वे त्याग दिए ॥२॥

भावार्थ दीपिका

विदुरमैत्रेयसंवादेनैवैतज्ज्ञास्यत इति तमेव संवादं प्रष्टुमाह- क्षत्तेति पञ्चभिः । श्रीकृष्णसुहृत्त्वे हेतुः- य इति । दुर्योधनादिभिरपत्यैः सहितमग्रजं धृराष्ट्रमघवान्कृतापराध इति हेतोः श्रीकृष्णोक्तमन्नानादरात् यः तत्याज ॥२॥

भाव प्रकाशिका

चूकि इस बात को विदुर मैत्रेय संवाद के द्वारा ही जाना जा सकता है, अतएव उस संवाद को ही पूछने के लिए **क्षत्ता० इत्यादि** पाञ्च श्लोकों से कहते हैं । **श्रीकृष्णसुहृत्त्वे० इत्यादि**- विदुरजी भगवान् श्रीकृष्ण के सुहृद् थे उसका कारण बतलाते हुए वे कहते हैं कि धृतराष्ट्र भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करते थे अतएव विदुरजी ने धृतराष्ट्र को और उनके पुत्रों को भी त्याग दिया । क्योंकि धृतराष्ट्र ने भगवान् श्रीकृष्ण की बातों का अनादर कर दिया था ॥२॥

द्वैपायनादनवरो महित्वे तस्य देहजः । सर्वात्मना श्रितः कृष्णं तत्परांश्चाप्यनुव्रतः ॥३॥

अन्वयः— द्वैपायनात् अनवरः महित्वे तस्य देहजः सर्वात्मना कृष्णं श्रितः तत्परान् च अनुव्रतः ॥३॥

अनुवाद— वे कृष्ण द्वैपायन के पुत्र थे और महिमा में वे किसी भी प्रकार से कम नही थे । वे हर प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण के आश्रित थे और भगवान् कृष्ण के भक्तों के अनुगामी थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अनवरोऽन्यूनः । महित्वे महिम्नि ॥३॥

भाव प्रकाशिका

अनवर अर्थात् समान, महित्वे अर्थात् महिमा के विषय में । विदुरजी महर्षि द्वैपायन के ही पुत्र थे और उनकी महिमा भी उनके ही समान थी ॥३॥

किमन्वपृच्छन्मैत्रेयं विरजास्तीर्थसेवया । उपगम्य कुशावर्त आसीनं तत्त्ववित्तमम् ॥४॥

अन्वयः— तीर्थ सेवया विरजाः कुशावर्ते आसीनम् तत्त्ववित्तमम् मैत्रेयम् उपगम्य किम् अन्वपृच्छत् ॥४॥

अनुवाद— तीर्थों का सेवन करने के कारण उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया था, कुशावर्त (हरिद्वार) में बैठे हुए तत्त्वज्ञानियों में श्रेष्ठ मैत्रेयजी के पास जाकर उन्होंने क्या पूछा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

कुशावर्ते गङ्गाद्वारे ॥४॥

भाव प्रकाशिका

हरिद्वार का ही नाम कुशावर्त और गङ्गाद्वार है ॥४॥

तयोः संवदतोः सूत प्रवृत्ता ह्यमलाः कथाः । आपो गाङ्गा इवाघघ्नीर्हरेः पादाम्बुजाश्रयाः ॥५॥

अन्वयः— हे सूत ! तयोः संवदतोः गाङ्गाः आपः इव अघघ्नीः हरेः पादाम्बुजाश्रयाः अमलाः हि कथाः प्रवृत्ताः ॥५॥

अनुवाद— हे सूतजी उन दोनों के संवाद में पापों को विनष्ट करने वाली गङ्गाजी के जल के ही समान श्रीभगवान् के चरणों से सम्बन्ध रखने वाली निर्मल कथाएँ अवश्य हुयी होंगी ॥५॥

भावार्थ दीपिका

यत्किमपि पृच्छतु किं तवेति चेत्तत्राह-तयोरिति । अघघ्नीरघघ्नयोः नूनं कथाः प्रवृत्ताः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि वे चाहे जो कुछ भी पूछे हों उससे आपको क्या लेना-देना है, तो इसका उत्तर है कि उन दोनों के संवाद के समय श्रीगवान् के चरणों से सम्बन्ध रखने वाली पापों को विनष्ट करने वाली कथायें अवश्य हुयी होंगी जिस तरह भगवान् के चरणों से सम्वनध रखने वाली गङ्गाजी का जल पापों का विनाश करने वाला है, उसी तरह श्रीभगवान् के चरणों से सम्बन्ध रखने वाली कथाएँ भी पापों का विनाश करने वाली हैं ॥५॥

ता नः कीर्तय भद्रं ते कीर्तन्योदारकर्मणः । रसज्ञः को नु तृप्येत हरिलीलामृतं पिवन् ॥६॥

अन्वयः— ते भद्रं कीर्तन्योदारकर्मणः ताः कथाः नः वर्णय कः न रसज्ञः हरिलीलामृतं पिवन् तृप्येत् ॥६॥

अनुवाद— सूतजी आपका मङ्गल हो, उदार चरित्र वाले श्रीहरि के कर्मों से सम्बन्ध रखने वाली उन कथाओं को आप हमलोगों को सुनाइये । कौन ऐसा रसज्ञ होगा जो श्रीहरि के लीलामृत का पान करने से तृप्त हो जायेगा ॥६॥

भावार्थ दीपिका

कीर्तन्यानि कीर्तनार्हाण्युदाराणि कर्माणि यस्य हरेः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के जितने भी चरित हैं वे सबके सब कीर्तन करने योग्य और औदार्यगुण सम्पन्न हैं ॥६॥

एवमुग्रश्रवाः पृष्ट ऋषिभिर्नैमिषायनैः । भगवत्यर्पिताध्यात्मस्तानाह श्रूयतामिति ॥७॥

अन्वयः— एवम् नैमिषायनैः ऋषिभिः पृष्टः उग्रश्रवाः भगवति अर्पिताध्यात्मः श्रूयतामिति तान् आह ॥७॥

अनुवाद— इस तरह से नैमिषारण्य में रहने वाले ऋषियों के द्वारा पूछे जाने पर उग्रश्रवा सूत श्रीभगवान् ने अपने चित्त को लगाकर कहा कि आप लोग सुनें ॥७॥

भावार्थ दीपिका

एवमिति व्यासवाक्यम् । उग्रश्रवा रोमहर्षणपुत्र । नैमिषमयनमाश्रयो येषाम् अर्पितमध्यात्मं मनो येन ॥७॥

भाव प्रकाशिका

एवम् इत्यादि यह श्लोक व्यासजी का वाक्य है । रोमहर्षण सूत के पुत्र थे उग्रश्रवा सूत । नैमिषायनैः पद का अर्थ है नैमिषारण्य में रहने वाले, भगवत्यर्पिताध्यात्म श्रीभगवान् में अपने चित्त को लगाने वाले । अर्थात् व्यासजी ने बतलाया कि नैमिषारण्य में रहने वाले ऋषियों के द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर उग्रश्रवा सूत ने श्रीभगवान् में अपने मन को लगाकर कहा कि आपलोग सुनिये ॥७॥

सूत उवाच

हरेर्धृतक्रोडतनोः स्वमायया निशम्य गोरुद्धरणं रसातलात् ।
लीलां हिरण्याक्षमवज्ञया हतं संजातहर्षो मुनिमाह भारतः ॥८॥

अन्वयः— स्वमायया धृतक्रोडतनोः हरे रसातलात् गोरुद्धरणं अवज्ञया हिरण्याक्षहतं लीलां निशम्य संजातहर्षः भारतः मुनिमाह ॥८॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— अपनी माया के द्वारा सूकर शरीर धारण करने वाले श्रीहरि की रसातल से भूमि के उद्धार की तथा तिरस्कार पूर्वक हिरण्याक्ष के वध की लीला को सुनकर विदुरजी को बहुत अधिक प्रसन्नता हुयी और उन्होंने मैत्रेयजी से कहा ॥८॥

भावार्थ दीपिका

गोरुद्धरणं लीलां हिरण्याक्षं चावज्ञया हतं निशम्य । भारतो विदुरः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

वे जब मैत्रेय महर्षि के मुख से सुने कि श्रीगवान् ने अपनी माया से अपना सूकर का शरीर बना लिया और उन्होंने लीला करते हुए पृथिवी का रसातल से उद्धार किया और तिरस्कार पूर्वक हिरण्याक्ष का वध किया। यह सुनकर उनको बड़ी ही प्रसन्नता हुयी और उन्होंने पुनः महर्षि मैत्रेय से पूछा ॥८॥

विदुर उवाच

प्रजापतिपतिः सृष्टवा प्रजासर्गे प्रजापतीन् । किमारभत मे ब्रह्मन् प्रब्रूह्यव्यक्तमार्गवित् ॥९॥

अन्वयः— हे अव्यक्त मार्गवित् ब्रह्मन् प्रजासर्गे प्रजापतिपतिः प्रजापतीन् सृष्ट्वा किमारभत मे प्रब्रूहि ॥९॥

अनुवाद— हे परोक्ष विषयों को भी जानने वाले ब्रह्मन् प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्माजी ने मरीचि आदि प्रजापतियों की सृष्टि करके प्रजासर्ग में सृष्टि को बढ़ाने के लिए क्या किया ? यह मुझे आप बतलायें ॥९॥

भावार्थ दीपिका

यस्मात्त्वमव्यक्तमार्गवित् । ब्रह्मणो वा विशेषणम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने मैत्रेयजी को अव्यक्त मार्गवित् कहा है । अर्थात् आप श्रीभगवान् की प्राप्ति के मार्ग को जानते हैं । और हमलोगों को अज्ञात वस्तु को भी आप जानते हैं । यह अव्यक्त मार्गवित् ब्रह्माजी का विशेषण होगा तो अर्थ होगा कि ब्रह्मप्राप्ति के मार्ग को जानने वाले ॥९॥

ये मरीच्यादयो विप्रा यस्तु स्वायंभुवो मनुः । ते वै ब्रह्मण आदेशात्कथमेतदभावयन् ॥१०॥

अन्वयः— ये मरीच्यादयः विप्राः यः तु स्वायम्भुवः मनुः ते वै ब्रह्मणः आदेशात् कथम् एतद् अभावयन् ॥१०॥

अनुवाद— मरीचि आदि मुनीश्वरों ने तथा स्वायम्भुव मनु ने ब्रह्माजी का आदेश प्राप्त करके किस प्रकार से सृष्टि को बढ़ाने का काम किए ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

एतज्जगत् । अभावयन्नुत्पादयामासुः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

एतदभवायन् का अर्थ कि इस जगत् को उन लोगों ने कैसे उत्पन्न किया ?॥१०॥

सद्वितीयाः किमसृजन् स्वतन्त्रा उत कर्मसु । आहोस्वित्संहताः सर्व इदं स्म समकल्पयन् ॥११॥

अन्वयः— सद्वितीयाः किम् असृजन् ? उत कर्मसुस्वतंत्राः ? आहोस्वित् सर्वे संहताः इदं समकल्पयन् स्म ॥११॥

अनुवाद— क्या वे लोग पत्नियों का सहारा लेकर इस जगत् की सृष्टि किये अथवा अपने-अपने कर्म में स्वतंत्र रहकर अथवा सबों ने एक साथ मिलकर इस जगत् की सृष्टि की ?॥११॥

भावार्थ दीपिका

सद्वितीयाः सभार्याः । स्वतन्त्रा भार्यानपेक्षाः कर्मसु प्रजासर्गादिषु । संहताः परस्परापेक्षाः । इदं जगत् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

अपनी पत्नियों के साथ मिलकर इस जगत् की सृष्टि किये ? या पत्नी निरपेक्ष रहकर अपने-अपने कर्म में स्वतंत्र रहकर ? या सबों ने एक साथ मिलकर इस जगत् की सृष्टि की ?॥११॥

मैत्रेय उवाच

दैवेन दुर्वितर्क्येण परेणानिमिषेण च । जातक्षोभाद्भगवतो महानासीद्गुणत्रयात् ॥१२॥

अन्वयः— दुर्वितर्क्येण दैवेन परेण अनिमिषेण च जातक्षोभात् भगवतः गुणत्रयात् महान् आसीत् ॥१२॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— विदुरजी जिसकी गति को जानना अत्यन्त कठिन है उस दैव (जीवादृष्ट) प्रकृति के नियन्ता पुरुष तथा काल इन तीन हेतुओं से तथा श्रीभगवान् के सन्निधान से त्रिगुणात्मिका प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न हुआ और उससे महत् तत्त्व की उत्पत्ति हुयी ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मा किमारभतेति प्रश्नस्य यक्षादीन् सृष्टवानित्युत्तरं वक्तुं पूर्वोक्तां सृष्टिमनुस्तारयति-दैवेनेति सप्तभिः । मन्वादिप्रश्नानां तूत्तराध्यायमारभ्योत्तरं भविष्यति । दुर्वितर्क्येण दैवेन जीवादृष्टेन, परेण प्रकृत्यधिष्ठात्रा महापुरुषेणानिमिषेण कालेन च हेतुना भगवतो निर्विकाराज्जातक्षोभं यद्गुणत्रयं प्रधानं तस्मान्महानासीत् । तदुक्तं तन्त्रे **विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदुः । प्रथमं महतः स्रष्टृ द्वितीयं त्वण्डसंस्थितम् । तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा विमुच्यते ।'** इति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

विदुरजी ने यह जो पूछा है कि सृष्टि को बढाने के लिए ब्रह्माजी ने क्या किया ? इस प्रश्न का उत्तर है कि उन्होंने यक्ष इत्यादि की सृष्टि की, इस उत्तर को बतलाने के लिए वे पूर्ववर्णित सृष्टि को पुनः **दैवेन इत्यादि** सात श्लोकों से याद दिलाते हैं । मनु आदि के विषय में जो उन्होंने प्रश्न किया है उसका उत्तर तो इस अध्याय के पश्चात् वाले अध्याय से दिया जायेगा । जीवों का अदृष्ट दुर्वितक्य है, उसके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, प्रकृति के नियामक महापुरुष और काल इन तीन कारणों से निर्विकार श्रीभगवान् के सान्निधान से प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न हुआ और उससे त्रिगुणात्मिका प्रकृति से महान् की उत्पत्ति हुयी । इसी बात को विष्णुतन्त्र में कहा भी गया है **विष्णोस्तुत्रीणि० इत्यादि** अर्थात् भगवान् विष्णु के तीन रूप हैं । उन तीनों को पुरुष कहा गया है। पहला महत्तत्त्व की सृष्टि करने वाला है, दूसरा रूप ब्रह्माण्ड में स्थित है और तीसरा रूप सभी जीवों में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान है । उन तीनों रूपों को जानने वाला संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥१२॥

रजःप्रधानान्महतस्त्रिलिङ्गो दैवचोदितात् । जातः ससर्ज भूतादिर्वियदादीनि पञ्चशः ॥१३॥

अन्वयः— दैवचोदितात् रजः प्रधानात् महतः त्रिलिङ्गः, जातः भूतादिः वियदादीनि पञ्चशः ससर्ज ॥१३॥

अनुवाद— दैव की प्रेरणा से प्रेरित रजःप्रधान महत्तत्त्व से सात्त्विक, राजस एवं तामस ये तीन प्रकार के अहङ्कार उत्पन्न हुए और उसने पाँच तत्त्वों के पाँच वर्गों को उत्पन्न किया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

महतो जातो भूतादिरहंकारस्त्रिलिङ्गस्त्रिगुणः । रजःप्रधानादिति स्वतः सत्त्वप्रधानस्यापि महतोऽहंकारोत्पत्तिकाले कार्यानुरूपं रजःप्रधानत्वं भवतीति भावः । पञ्चशः तन्मात्राणि महाभूतानि ज्ञानेन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि तत्तद्देवताश्चेति पञ्च पञ्च ससर्जेत्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

उस महान् से उत्पन्न अहङ्कार त्रिगुणात्मक हुआ । सात्त्विक, राजस एवं तामस । यद्यपि महत्तत्त्व स्वाभाविक रूप से सत्त्व प्रधान है फिर भी अहङ्कार की उत्पत्ति के समय वह रजः प्रधान हो जाता है । उस अहङ्कार ने पाँच-पाँच के वर्गों की सृष्टि की । वे हैं पञ्चतन्मात्र, पञ्चमहाभूत, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ पञ्च कर्मेन्द्रियाँ और उनके पाँच अधिष्ठातृ देवता ॥१३॥

तानि चैकैकशः स्रष्टुमसमर्थानि भौतिकम् । संहत्य देवयोगेन हैममण्डमवासृजन् ॥१४॥

अन्वयः— तानि च एकैकशः भौतिकम् स्रष्टुम् असमर्थानि दैव योगेन संहत्य हैमम् अण्डम् अवासृजन् ॥१४॥

अनुवाद— वे प्रत्येक अलग-अलग रहकर ब्रह्माण्ड की रचना करने में असमर्थ थे दैवयोग से परमात्मा की शक्ति से एक साथ मिलकर वे सुवर्ण के समान वर्ण वाले ब्रह्माण्ड की रचना किए ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

भौतिकं हैममण्डमेकैकशः प्रत्येकं स्रष्टुमसमर्थानि सन्ति संहत्य ससृजुः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

वे प्रत्येक अलग-अलग रहकर बह्माण्ड की रचना करने में असमर्थ थे अतएव परमात्मा की शक्ति से प्रेरित होकर परस्पर में एक दूसरे से मिल गये और ब्रह्माण्ड की सृष्टि किए ॥१४॥

सोऽशयिष्टाब्धिसलिले आण्डकोशो निरात्मकः । साग्रं वै वर्षसाहस्रमन्ववात्सीत्तमीश्वरः ॥१५॥

अन्वयः— सः निरात्मकः आण्डकोशः अब्धिसलिले साग्रं वर्षसाहस्रम् अशयिष्टतम् ईश्वरः अवात्सीत् ॥१५॥

अनुवाद— वह चैतन्य रहित ब्रह्माण्ड एकार्णव के जल में हजार वर्ष से भी अधिक समय तक पड़ा रहा उसके पश्चात् उसमें श्रीभगवान् प्रवेश किए ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अन्ववात्सीदधिष्ठितवान् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

प्रवेश किए ॥१५॥

स्य नाभेरभूत्पद्मं सहस्रार्कोरुदीधिति । सर्वजीवनिकायैको यत्र स्वयमभूत्स्वराट् ॥१६॥

अन्वयः— तस्य नाभेः सहस्रार्कोरुदीधिति सर्वजीव निकायौकः पदम् अभूत् यत्र स्वयम् स्वराट् अभूत् ॥१६॥

अनुवाद— उन श्रीभगवान् की नाभि से हजारों सूर्यों के समान देदीप्यमान तथा सभी जीव समूह के आश्रय त एक कमल पैदा हुआ । उसी से स्वयं ब्रह्माजी का भी अविर्भाव हुआ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

सहस्रार्कार्णामिवोरुर्दीधितिर्यस्य तत् । सर्वजीवनिकायानामोकः स्थानं पद्मम् । स्वराट् बह्मा ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

उस कमल की कान्ति हजारों सूर्य के समान अत्यधिक थी वह सभी जीवों के समूह का एकमात्र आश्रय था । उसी कमल से ब्रह्माजी का अविर्भाव हुआ । ब्रह्माजी का ही नाम स्वराट् है ।।१६।।

सोऽनुविष्टो भगवता यः शेते सलिलाशये । लोकसंस्थां यथापूर्वं निर्ममे संस्थया स्वया ।।१७।।

अन्वयः— यः सलिलाशये शेते तेन भगवता अनुविष्टः सः स्वया संस्थया यथापूर्वं लोकसंस्थां निर्ममे ।।१७।।

अनुवाद—जो भगवान् जल के भीतर साते हैं वे भगवान् जब ब्रह्माजी के भीतर अन्तर्यामी रूप से प्रवेश किये तो वे पूर्वकल्प में अपने ही द्वारा निश्चित किए गये नाम रूप व्यवस्था के अनुसार लोकों की रचना करने लगे ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

यः सलिलाशये गर्भोदकस्यान्तः शेते तेन भगवताऽनुविष्टोऽधिष्ठितः सन् । स स्वराट् । स्वया संस्थया नामरूपादिक्रमेण ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

जो भगवान् गर्भोदक के भीतर शयन करते हैं उनके द्वारा अधिष्ठित होने पर ब्रह्माजी नाम रूप आदि के क्रम से अपने ही द्रा निश्चित की गयी व्यवस्था के क्रम से सृष्टि करने लगे ।।१७।।

ससर्ज छाययाऽविद्यं पञ्चपर्वाणमग्रतः । तामिस्रमन्धतामिस्रं तमो मोहो महातमः ।।१८।।

अन्वयः— अग्रतः छायया पञ्चपर्वाणम् ससर्ज । तामिस्रम्, अन्धतामिस्रं तमो मोहो महातमः ।।१८।।

अनुवाद—सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने अपनी छाया से तामिस्र अन्धतामिस्र, तम, महातम और मोह की सृष्टि की।।१८।।

भावार्थ दीपिका

छाया प्रभाप्रतियोगिनी तथा । अबुध्येत्यर्थः । '**यस्त्वबुद्धिकृतः प्रभोः**' इत्युक्तत्वात् । महातम इति महामोहः । स्वरूप निर्देशमात्रविवक्षया मोह इति प्रथमाप्रयोगः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

प्रकाश के अभाव को छाया कहते हैं । अर्थात् अज्ञान के द्वारा । कहा भी जा चुका है **यस्त्वबद्धि कृतः प्रभोः** । अर्थात् जो ब्रह्माजी के जो अज्ञान से उत्पन्न है । महातम शब्द से महामोह को कहा गया है । अब प्रश्न होता है कि यह सृष्टि का प्रकरण है अतएव मोह इत्यादि में द्वितीया विभक्ति होनी चाहिए किन्तु सर्वत्र प्रथमा विभक्ति क्यों है ? तो इसके उत्तर में श्रीधर स्वामी कहते है कि केवल स्वरूप का ही निर्देश करना विवक्षित होने के कारण प्रथमान्त निर्देश किया गया है ।।१८।।

विससर्जात्मनः कायं नाभिनन्दंस्तमोमयम् । जगृहुर्यक्षरक्षांसि रात्रिं क्षुत्तृट्समुद्भवाम् ।।१९।।

अन्वयः—तमोमयम् आत्मनः कायम् न अभिनन्दन् विससर्ज, क्षुत्त्विटसमुदभवाम् रात्रिं यक्षरक्षांसि जगृहुः ।।१९।।

अनुवाद—अन्धकार स्वरूप वह शरीर ब्रह्माजी को अच्छा नहीं लगा अतएव उन्होंने उस शरीर का परित्याग कर दिया । उसके बाद परित्यक्त रात्रि रूप शरीर जिससे भूख और प्यास की उत्पत्ति हुयी उसको यक्षों ओर राक्षसों ने स्वीकार कर लिया ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं प्रथमोक्तां साधारणां सृष्टिमनूद्य केनचिद्विशेषेणासाधारणां सृष्टिमाह- विससर्जेत्यादिना यावत्समाप्ति । तद्विसृष्टं कायं रात्रिरूपं तत एव जातानि यक्षरक्षांसि जगृहुः । क्षुतृषोः समुद्भवो यस्यां ताम् । अत्र च **'याऽस्य सा तनूरासीत् तामपाहत सा तमिस्त्राभवत'** इत्यादिश्रुतिरनुसन्धेया ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से जिसका पहले वर्णन किया जा चुका है उस साधारण सृष्टि का अनुवाद करके कुछ विशेषताओं से विशिष्ट आसाधारण सृष्टि का वर्णन **विससर्ज इत्यादि** श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त किया गया है । जिस शरीर का ब्रह्माजी ने परित्याग कर दिया वह रात्रि रूप शरीर था । उसी से उत्पन्न यक्ष और राक्षस उस शरीर को ग्रहण कर लिए । क्षुत्तृट्समुद्भवाम् का विग्रह है । जिसमें भूख और प्यास की उत्पत्ति होती है ऐसी रात्रि रूपी शरीर को । इस विषय में **यास्य तानूरासीत्** अर्थात् ब्रह्माजी का जो शरीर था उसको उन्होंने त्याग दिया वही रात्रि हो गयी। इस श्रुति का अनुसन्धान करना चाहिए ।।१९।।

क्षुत्तृडभ्यामुपसृष्टस्ते तं जग्धुमभिदुद्रुवुः । मा रक्षतैनं जक्षध्वमित्यूचुः क्षुत्तृडर्दिताः ।।२०।।

अन्वयः— क्षुततृड्भ्याम् उपसृष्टाः ते तं जाग्धुम् अभिदुद्रुवुः क्षातृडर्दिता ते एनं मा रक्षत जक्षध्वम् इत्युचुः ।।२०।।

अनुवाद— भूख तथा प्यास से युक्त वे ब्रह्माजी को खा जाने के लिए दौड़े । भूख तथा प्यास से व्याकुल उन सबों को राक्षसों ने कहा इसे बचाओ मत खाओ ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

उपसृष्टा अभिभूताः । जग्धुमत्तुं भक्षयितुम् । यतो वयं क्षुत्तृड्भ्यामर्दिता अत एनं पितेति कृपया मा रक्षतेत्येके । अन्ये तु जक्षध्वं भक्षयतेति ब्रुवन्तः । जक्ष भक्षहसनयोरिति धातुः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

उपसृष्टः पद का अर्थ है, अभिभूत, **जग्धुम्** का अर्थ है खा जाने के लिए । उन सबों ने कहा हमलोग चूकि भूख और प्यास से व्याकुल हैं अतएव ये हमारे पिता हैं यह सोचकर कृपा पूर्वक इनकी रक्षा मत करो इस तरह के एक प्रकार के राक्षसों जीवों ने कहा दूसरे तरह के जीवों ने कह खा जाओ जक्ष और भक्ष धातु खाने के अर्थ में होते हैं ।।२०।।

देवस्तानाह संविग्नो मा मां जक्षत रक्षत । अहो मे यक्षरक्षांसि प्रजा यूयं बभूविथ ।।२१।।

अन्वयः— संविग्नो देवः तान् आह मां मा जक्षत रक्षत । अहो यक्षरक्षांसि यूयं मे प्रजा बभूविथ ।।२१।।

अनुवाद— उन सबों से भयभीत होकर ब्रह्माजी ने कहा तुमलोग मुझको खाओ मत मेरी रक्षा करो । हे यक्ष राक्षसों तुम लेग मेरी सन्तान हो ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

देवो ब्रह्मा संविग्नो भीतः सन्मां मा जक्षत मा भक्षयत, किंतु रक्षत । अहो हे यक्षरक्षांसि, यूयं मे प्रजाः सुता बभूविथ जाताः स्थ एवमुग्रस्वभावा यक्षराक्षसा जाता इत्यर्थः । तत्र ये जक्षध्वमित्यूचुस्ते यक्षाः ये तु मा रक्षतेति ते राक्षसा इति ज्ञेयम्। एतच्च तिर्यगादितामससर्गस्याप्युपलक्षणम् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

उन सबों को देखकर ब्रह्माजी डर गये और उन्होंने कहा तुमलोग मुझको खाओ मत मेरी रक्षा करो । हे यक्षों और राक्षसों तुमलोग मेरी सन्तान हो । इस तरह से उग्र स्वभाव वाले यक्ष और राक्षस हो गये । जिन सबों

ने खा जाओ यह कहा वे यक्ष हो गये और जिन सबों ने कहा बचाओ मत खाओ वे राक्षस हो गये। यह तिर्यक् इत्यादि तामस सृष्टि का भी उपलक्षण है ॥२१॥

देवताः प्रभया या या दीव्यन्प्रमुखतोऽसृजत् । ते अहार्षुर्देवयन्तो विसृष्टां तां प्रभामहः ॥२२॥

अन्वयः— प्रभया दीव्यन् या या देवताः ताः प्रमुखतः असृजत् देवयन्तः ते विसृष्टां तां प्रभम् अहः अहार्षुः ॥२२॥

अनुवाद— पुनः ब्रह्माजी प्रभा से देदीप्यमान होकर जो मुख्य देवता थे उनकी सृष्टि किए। क्रीडा करते हुए उन सबों ने ब्रह्माजी के त्यागने पर दिन रूप प्रकाशमय उस शरीर को ग्रहण कर लिया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

प्रभया दीव्यन् द्योतमानो या या देवता द्युतिमत्यः सात्त्विक्यस्तास्ताः प्रमुखतः प्राधान्येनासृजत् । ते देवाः । देवता इति स्त्रीत्वेन निर्दिष्टानामप्यर्थमात्रविवक्षया त इति पुंस्त्वेन प्रतिनिर्देश । एवं यक्षरक्षांसीत्यत्रापि ज्ञेयम् । तेन विसृष्टां त्यक्तां प्रभामहः दिव्यरूपां सतीं देवयन्तः क्रीडयन्तोऽहार्षुर्जगृहुः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

सात्त्विक प्रभा से देदीप्यमान ब्रह्माजी ने जो-जो सात्त्विक देवता थे उन सबों की मुख्य रूप से सृष्टि की। देवों का यद्यपि देवता इस स्त्रीलिङ्ग शब्द से निर्देश किया जाता है फिर भी केवल अर्थ की विवक्षा से पुल्लिङ्ग पद से निर्देश किया गया है। इसी तरह से यक्षरक्षांसि में भी अर्थ मात्र की ही विवक्षा से प्रति निर्देश समझना चाहिए। ब्रह्माजी के द्वारा परित्यक्त दिन रूपी प्रभामय शरीर को देवताओं ने क्रीडा करते हुए ग्रहण कर लिया ॥२२॥

देवोऽदेवान् जघनतः सृजति स्मातिलोलुपान् । त एनं लोलुपतया मैथुनायाभिपेदिरे ॥२३॥

अन्वयः— देवः जघनतः अदेवान् अतिलोलुपान् सृजतिस्म ते लोलुपतया एनं मैथुनाय अभिपेदिरे ॥२३॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने अपने जघन प्रदेश से कामासक्त असुरों को उत्पन्न किया। अत्यन्त कामलोलुप होने के कारण उत्पन्न होते ही वे सब मैथुन करने के लिए ब्रह्माजी के पास आये ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

अदेवानितिच्छेदः । **'स जघनादसुरानसृजत'** इत श्रुतेः । अतिलोलुपान् स्त्रीलम्पटान् । अभिपेदिरे प्राप्ताः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

देवोऽदेवान् में अदेवान् यह पद विभाग करना चाहिए। ब्रह्माजी ने अपने जघनप्रदेश से असुरों की सृष्टि की। श्रुति भी कहती है **सजघनादसुरान् असृजत** । अर्थात् ब्रह्माजी ने अपने जघनप्रदेश से असुरों की सृष्टि की। वे स्त्री लम्पट थे और वे मैथुन के लिए ब्रह्माजी की ओर दौड़े ॥२३॥

ततो हसन्स भगवानसुरैर्निरपत्रपैः । अन्वीयमानस्तरसा क्रुद्धो भीतः परापतत् ॥२४॥

अन्वयः— ततः स भगवान् हसन् निरपत्रपैः असुरैः अन्वीयमानः भीतः परापतत् ॥२४॥

अनुवाद— यह देखकर ब्रह्माजी हँस पड़े और उसके पश्चात् वे निर्लज्ज असुरों के द्वारा पीछा किए जाते हुए डर कर भागे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

परापतदपलायत ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

परापतत् पद का अर्थ है भाग चले ॥२४॥

स उपव्रज्य वरदं प्रपन्नार्तिहरं हरिम् । अनुग्रहाय भक्तानामनुरूपात्मदर्शनम् ॥२५॥

अन्वयः— भक्तानाम् अनुग्रहाय अनुरूपारत्मदर्शनम् वरदं प्रपन्नार्तिहरं वरदं हरिम् उपव्रज्य प्राह ॥२५॥

अनुवाद— भक्तों पर कृपा करने के लिए उनकी भावना के अनुसार दर्शन देने वाले वरदान देने वाले तथा शरणागत जीवों के कष्ट को विनष्ट करने वाले श्रीहरि के पास जाकर कहें ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

भक्तेच्छानुरूपमात्मानं दर्शयतीति तथा तमुपव्रज्य ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

जो भगवान् भक्तों की इच्छा के अनुसार अपना दर्शन देते हैं, ऐसे भगवान् के पास जाकर ब्रह्माजी ने कहा ॥२५॥

पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनासृजं प्रजाः । ता इमा यभितुं पापा उपक्रामन्ति मां प्रभो ॥२६॥

अन्वयः— हे भगवन् मां पाहि ते प्रेषणेन प्रजाः असृजं हे प्रभो इमाः पापाः मां जभितुम् उपक्रामन्ति ॥२६॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप मेरी रक्षा करें आपकी ही आज्ञा से मैंने प्रजाओं की सृष्टि की । वे सब पाप में प्रवृत्त होकर मैथुन के द्वारा मेरा उपभोग करना चाहते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

पाहीति द्वाभ्यां प्रार्थितवान् । यभितुं मैथुनेन धर्षयितुम् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

पाहि० इत्यादि दो श्लोकों के द्वारा ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् की स्तुति की । **जभितुम्** का अर्थ है मैथुन के द्वारा अभिभूत करने के लिए ॥२६॥

त्वमेकः किल लोकानां क्लिष्टानां क्लेशनाशनः । त्वमेकः क्लेशदस्तेषामनासन्नपदां तव ॥२७॥

अन्वयः— त्वम् एकः किल क्लिष्टानां लोकानां क्लेश नाशानः अनासन्नपदां तव त्वमेकः क्लेशदः ॥२७॥

अनुवाद— एक मात्र आपही दुःखी जीवों के दुःख को दूर करने वाले हैं और जो लोग आपके चरणों के शरण में नहीं आते हैं ऐसे लोगो को केवल आप ही दुःख देने वाले हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

लोकानां जनानाम् । तव अनासन्नावनाश्रितौ पादौ यैस्तेषाम् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् से कहा कि एक मात्र आप ही दुःखी जीवों के कष्ट को दूर करते हैं और जो आपके चरणों को अपने रक्षक रूप से नहीं मानते हैं उन जीवों को आप ही कष्ट भी देते हैं ॥२७॥

सोऽवधार्यास्य कार्पण्यं विविक्ताध्यात्मदर्शनः । विमुञ्चात्मतनुं घोरामित्युक्तो विमुमोच ह ॥२८॥

अन्वयः— विविक्ताध्यात्मदर्शनः सः अस्य कार्पण्यमवधार्य धोराम् आत्मतनुं विमुञ्च, इत्युक्तः विमुमोच ह ॥२८॥

अनुवाद— श्रीहरि दूसरे के मन की बातों को ठीक-ठीक जानते हैं ब्रह्माजी की आतुरता को देखकर उन्होंने कहा इस कलुषित शरीर का परित्याग कर दो । इस तरह से कहने पर ब्रह्माजी ने अपने उस शरीर का परित्याग कर दिया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

विविक्तमसन्दिग्धमध्यात्मदर्शनं परचित्तज्ञानं यस्य हरेः । घोरां कामकश्मलां स्वतनुं विमुञ्चेति उक्तवानिति शेषः । इत्युक्तश्च ब्रह्मा तां तनुं विमुमोच । सर्वत्र तनुत्यागो नाम तत्तन्मनोभावत्यागो विवक्षितः । ग्रहणं च तत्तद्भावापत्तिरिति द्रष्टव्यम् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् दूसरे के मन की बात को असंदिग्ध रूप से जानते हैं । उन्होंने कहा कि तुम अपने इस कामकलुषित शरीर का त्याग कर दो । यह कहने पर ब्रह्माजी ने अपने उस शरीर का परित्याग कर दिया ।

सर्वत्रतनुत्यागोनाम० इत्यादि सर्वत्र जो शरीर त्यागने की बात कही गयी है उसका अभिप्राय है विभिन्न मनोभावों का परित्याग करना और शरीरों के ग्रहण का अर्थ है विभिन्न मनोभावों को स्वीकार करना ।।२८।।

तां क्वणच्चरणाम्भोजां मदविह्वललोचनाम् । काञ्चीकलापविलसद्दुकूलच्छन्नरोधसाम् ।।२९।।

अन्वयः— क्वणच्चरणाम्भोजां, मदविह्वललोचनाम् काञ्चीकलापविलसदुकूलच्छन्नदरोधसाम् ।।२९।।

अनुवाद— (ब्रह्माजी के द्वारा परित्यक्त वह शरीर सायं संध्या सुन्दरी के रूप में परिणत हो गया । उसी का वर्णन करते हैं) उसके चरणों के नूपुर बज रहे थे मद के कारण उसके नेत्र अलसाये से थे, करधनी से सुशोभित वस्त्र से उसकी कमर ढँकी हुयी थी ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

'साऽहोरात्रयोः सन्धिरभवत्' इति श्रुतेः । सा तेन विसृष्टा तनुः सायन्तनी सन्ध्या बभूव । सा च कामोद्रेकवेला । असुराश्च राजसत्वात्स्त्रीलम्पटाः । अतस्तां सन्ध्यामेव स्त्रियं कल्पयित्वा ते संमोहं प्राप्ता इत्याह- तामिति त्रिभिः । नूपुराभ्यां क्वणती चरणाम्भोजे यस्याः । मदेन विह्वले लोचने यस्याः । काञ्चीकलापेन विलसद्दुकूलं तेन छन्नं रोधः कटितटं यस्यास्ताम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

वह शरीर दिन तथा रात्रि की सन्धि संध्या हो गयी । इस श्रुति के अनुसार ब्रह्माजी के द्वारा परित्यक्त वह शरीर सायं सन्ध्या बन गया । सन्ध्या की बेला कामोद्रेक की बेला होती है । असुर भी राजस स्वभाव वाले होने के कारण स्त्रीलम्पट होते हैं । अतएव उस संध्या को ही स्त्री मानकर वे मोहित हो गये इसी अर्थ का प्रतिपादन **ताम्० इत्यादि** तीन श्लोकों में किया गया है । उसके दोनों चरण कमलों में नूपुर का झनकार हो रहा था, मद के कारण उसके नेत्र विह्वल थे । करधनी से सुशोभित साड़ी से उस सन्ध्या सुन्दरी के कमर ढँके थे ।।२९।।

अन्योन्यश्लेषयोत्तुङ्गीनिरन्तरपयोधराम् । सुनासां सुद्विजां स्निग्धहासलीलावलोकनाम् ।।३०।।

अन्वयः— अन्योन्यश्लेषयोत्तुङ्ग निरन्तरपयोधराम् सुनासां सुद्विजां स्निग्धहासलीलावलोकनाम् ।।३०।।

अनुवाद— उसके उन्नत स्तन एक दूसरे से ऐसे सटे थे कि दोनों के बीच में कोई अन्तराल ही नही था। उसकी नाक और दन्तपंक्तिं सुन्दर थी । वह मधुर-मधुर मुस्कुराती हुयी असुरों को देख रही थी ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

अन्योन्यं श्लेषयोपमर्देन हेतुनोत्तुङ्गौ निरन्तरौ पयोधरौ यस्याः । सुद्विजां सुदतीम् । स्निग्धो हासो लीलावलोकनं च यस्याः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

उसके उन्नत स्तन परस्पर में ऐसे सट गये थे कि उन दोनों के बीच में कोई अन्तराल ही नही था । उसकी दंतपंक्ति सुन्दर थी वह मधुर मुस्कान पूर्वक हावभाव से देखती थी ।।३०।।

गूहन्तीं व्रीडयात्मानं नीलालकवरूथिनीम् । उपलभ्यासुरा धर्म सर्वे संमुहुहुः स्त्रियम् ॥३१॥

अन्वयः— व्रीडया आत्मानं गूहन्तीम् नीलालकवरूथिनीम् स्त्रियम् उपलभ्य धर्म असुरा संमुमुहुः ॥३१॥

अनुवाद— कालेकेशों से सुशोभित वह लज्जा के कारण अपने आँचल में ही सीमटी सी जा रही थीं हे विदुरजी ! ऐसी स्त्री को प्राप्त करके वे सभी असुर अत्यन्त मोहित हो गये ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

गूहन्तीं वस्त्राञ्चलेनावृण्वानाम् । नीलानामलकानां वरूथः स्तोमो विद्यते यस्याः । हे धर्म विदुर, तां स्त्रियमुपलभ्य मत्वा॥३१॥

भाव प्रकाशिका

गूहन्ती अर्थात् वह अपने वस्त्र के आँचल से मानों अपने को ढँक लेना चाहती थी । उसके केश समूह काले-काले थे । उस सुन्दरी को ही असुरों ने स्त्री मान लिया और मोहित हो गये । धर्म शब्द से विदुरजी को सम्बोधित किया गया है । धर्म ही विदुर के रूप में जन्म लिए थे ॥३१॥

अहो रूपमहो धैर्यमहो अस्या नवं वयः । मध्ये कामयमानानामकामेव विसर्पति ॥३२॥

अन्वयः— अहो अस्याः रूपम्, अहो धैर्यम्, अहो अस्या नवं वयः कामयमानानाम् मध्ये अकामा इव विसर्पति ॥३२॥

अनुवाद— वे सब मन ही मन सोच रहे थे कि इसका कितना सुन्दर रूप है, इसका कितना अधिक धैर्य है और इसकी कैसी अच्छी जवानी है ? यह कामपीडित हमलोगों के बीच में काम रहित के समान विचर रही है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

संमूढानां विभावनाक्रममाह-अहो इति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

संध्या सुन्दरी को देखकर मोहित हुए उन असुरों की कल्पना के प्रकार को **अहोरूपम्० इत्यादि** वाक्य के द्वारा बतलाया गया है ॥३२॥

वितर्कयन्तो बहुधा तां सन्ध्यां प्रमदाकृतिम् । अभिसंभाव्यविश्रम्भात्पर्यपृच्छन्कुमेधसः ॥३३॥

अन्वयः— तां प्रमदाकृतिम् संध्यां बहुधा वितर्कयन्तः अभिसंभाव्य कुमेधसः विश्रम्भात् पर्यपृच्छन् ॥३३॥

अनुवाद— स्त्री रूपिणी संध्या के विषय में अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क करके उसका अत्यधिक समादर करते हुए उन कुबुद्धि असुरों ने उसके पास जाकर प्रेमपूर्वक पूछा ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अभिसंभाव्य सत्कृत्य । विश्रम्भात्प्रणयात् । कुबुद्धयस्ते तां पप्रच्छुः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

असुरों ने उस संध्या सुन्दरी का सत्कार करके प्रेमपूर्वक उससे पूछा ॥३३॥

कासि कस्यासि रम्भोरु को वार्थस्तेऽत्र भामिनि । रूपद्रविणपण्येन दुर्भगान्नो विबाधसे ॥३४॥

अन्वयः— हे रम्भोरु कासि, कस्यासि, हेभामिनि अत्रते कः अर्थः ? रुपद्रविणपण्येन नः दुर्भगान् विबाधसे ॥३४॥

अनुवाद— हे सुन्दरी ! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो ? हे भामिनि ! तुम्हारे यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ? तुम अपने इस अनर्घ्य रूप सम्पत्ति को दिखाकर और उसे नहीं देकर हम अभागों को तरसा रही हो ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

कासीति त्रिभिः । कासि जात्या । कस्य वा कन्या । हे भामिनि कोपने, रूपमेव द्रविणमनर्घ्यं वस्तु तदेव पण्यं क्रयार्हं तेन तदसमर्पणेन नो विबाधसे ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

कासि इत्यादि तीन श्लोकों द्वारा असुरों ने संध्या सुन्दरी से पूछा । तुम कौन हो ? अर्थात् तुम्हारी कौन सी जाति है ? किसकी पुत्री हो ? हे भामिनि ! तुम्हारा रूप ही अनमोल सम्पत्ति है । वह खरीदने योग्य हैं, किन्तु तुम उसे समर्पित न करके हमलोगों को तरसा रही हो ।।३४।।

या वा काचित्त्वमबले दिष्ट्या संदर्शनं तव । उत्सुनोषीक्षमाणानां कन्दुकक्रीडया मनः ।।३५।।

अन्वयः— हे अबले ! या वा काचित् त्वम् तव दर्शनं दिष्ट्या कन्दुकक्रीडया इक्षमाणानां मनः उत्सुनोषि ।।३५।।

अनुवाद— हे अबले तुम चाहे जो भी हो, हमलोगों को तुम्हारा दर्शन सौभाग्य की बात है । कन्दुक क्रीडा करती हुयी तुम हम देखने वालों के मन को मथ डाल रही हो ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

किं जातिकुलादिप्रश्नेन या वा काचिद्भव । दिष्ट्येदं तावद्भद्रं जातं यत्तव दर्शनम् । किंतु केवलं नो मन उत्सुनोषि विमथ्नासि ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

तुम्हारी जाति और कुल चाहे जो हो हमारे सौभाग्य से यह तुम्हारा कल्याणमय दर्शन हुआ है । किन्तु तुम केवल हमलोगों के मन को मथे जा रही हो ।।३५।।

नैकत्र ते जयति शालिनि पादपद्मं घ्नन्त्या मुहुः करतलेन पतत्पतङ्गम् ।
मध्यं विषीदति बृहत्स्तनभारभीतं शान्तेव दृष्टिरमला सुशिखासमूहः ।।३६।।

अन्वयः— हे शालिनि ! करतलेन पतत् प्रतङ्गं मुहुः घ्नन्त्या ते पादपद्मं नैकत्र जयति । बृहत् स्तनभारभीतं मध्यं विषीदति । ते अमला दृष्टिः शान्तेव सुशिखा समूहः ।।३६।।

अनुवाद— हे सुन्दरि ! जब तुम उच्छलते हुए गन्दे पर थपकी मारती हो उस समय तुम्हारे चरण कमल एक स्थान पर न ही ठहरते हैं । बड़े स्तनों के भार से तुम्हारा कटिप्रदेश थक सा जाता है । तुम्हारी निर्मलदृष्टि शान्त सी हो जाती है । तुम्हारे ये केशपाश अत्यन्त मनोहर हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

क्षुभितचित्तानां वाक्यं नैकत्रेति । हे शालिनि श्लाध्ये । एकत्र न जयति न स्थिरीभवति । यद्वा नैकत्रानेकगतिविलासेषु जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । पतत्पतङ्गमुच्छलन्तं कन्दुकम् । बृहतोः स्तनयोर्भाराद्भीतं तव कृशं मध्यं विषीदति श्राम्यति । शान्ता मन्थरेव प्रसरति । सुशिखासमूहः शोभनः केशकलापस्ते । पाठान्तरे सुशिखाः शोभनान्केशानवकीर्यमाणान्समूहः बधानेति । अत्र चास्तं गच्छन्सूर्य एव पतत्पतङ्गः, मेघविच्छेदो मध्यविषादः तारकारूपा दृष्टिः, तम एव केशा इत्याद्यूह्यम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

यह श्लोक क्षुभितमन वाले असुरों का है । **हे शलिनि** अर्थात् हे प्रशंसनीय सन्ध्ये, जिस समय तुम उछलते गेंद पर थपकी मारती हो उस समय तुम्हारे पैर एक स्थान पर नहीं रहते हैं । अथवा **नैकत्रजयति** का अर्थ है उस समय तुम्हारे पैरों में सर्वोत्कृष्ट गतिविलास होता है । पतत्पतङ्ग का अर्थ है उछलता हुआ गेन्द । विशाल

स्तनों के भार से तुम्हारी पतली कमर थक सी जाती है । तुम्हारी दृष्टि भी मन्दगति से प्रसृत होती है । तुम्हारे केशकलाप अत्यन्त सुन्दर हैं । जहाँ पर सुशिखसमूह यह पाठ है वहाँ पर अर्थ होगा । अपने सुन्दर तथा बिखरे हुए केशों को तुम समेट लो । यहाँ डूबते हुए सूर्य ही पतत्पतङ्ग हैं । मेघों का विच्छेद ही मध्य का विषाद है। दृष्टि ही तारा रूप है। और अन्धकार ही संध्या सुन्दरी के केश है । इसी तरह से कल्पना करनी चाहिए ।।३६।।

इति सायन्तनीं सन्ध्यामसुराः प्रमदायतीम् । प्रलोभयन्तीं जगृहुर्मत्वा मूढधियः स्त्रियम् ।।३७।।

अन्वयः— इति प्रमदायतीम् प्रलोभयन्तीं सायन्तनीं संध्याम् स्त्रियम् मूढधियः असुराः जगृहुः ।।३७।।

अनुवाद— इस प्रकार से स्त्री रूप से प्रकट हुयी तथा अत्यधिक अपनी ओर आकृष्ट करती हुयी सायं कालीन सन्ध्या को स्त्री मानकर असुरों ने उसको स्वीकार कर लिया ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

प्रमदेवाचरन्तीं स्त्रियं मत्वा जगृहुः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

स्त्री रत्न के समान आचरण करती हुयी सायं सन्ध्या को ही स्त्री जानकर असुरों ने ग्रहण कर लिया ।।३७।।

प्रहस्य भावगम्भीरं जिघ्रन्त्यात्मानमात्मना । कान्त्या ससर्ज भगवान्गन्धर्वाप्सरसां गणान् ।।३८।।

अन्वयः— भगवान् भावगम्भीरं प्रहस्य आत्मानम् आत्मना जिघ्रन्त्या कान्त्या गन्धर्वाप्सरसां गणान् ससर्ज ।।३८।।

अनुवाद— ब्रह्माजी गम्भीर भाव से हँसकर अपनी कान्तिमयी मूर्ति जो अपने से ही अपने सौन्दर्य का आस्वादन करती थी उससे गन्धर्वों एवं अप्सराओं के समूह की सृष्टि किए ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

प्रहस्यात्मानमात्मना जिघ्रन्त्या । कान्त्या सौन्दर्येण । प्रहसनमात्मावघ्राणं च सौन्दर्यानुभावचातुर्यविकारः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

हँसकर अपने सौन्दर्य का स्वयम् अनुभव करने वाली सौन्दर्य के द्वारा प्रहसन और अपने सौन्दर्य का स्वयम् अनुभव करना सौन्दर्यानुभव की चातुरी नामक विकार है ।।३८।।

विससर्ज तनुं तां वै ज्योत्स्नां कान्तिमतीं प्रियाम् । त एव चाददुः प्रीत्या विश्वावसुपुरोगमाः ।।३९।।

अन्वयः— ज्योत्स्नां कान्तिमतीं प्रियां तां वै तनुं विससर्ज । ते एव च विश्वावसु पुरोगमाः प्रीत्या आददुः ।।३९।।

अनुवाद— ब्रह्माजी ने ज्योत्स्ना रूपी कान्तिमयी तथा प्रिय शरीर का परित्याग कर दिया और उसको विश्वावसु आदि गन्धर्वों ने ग्रहण कर लिया ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

ज्योत्स्नां चन्द्रिकारूपाम् । त एव गन्धर्वादिगणाः । विश्वावसुः पुरोगमो मुख्यो येषु ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी का वह शरीर चन्द्रिका (चाँदनी) रूप था उसको उन्हीं गन्धर्वों ने ग्रहण किया जिनमें विश्वावसु प्रमुख थे ।।३९।।

सृष्ट्वा भूतपिशाचांश्च भगवानात्मतन्द्रिणा । दिग्वाससो मुक्तकेशान्वीक्ष्य चामीलयद्दृशौ ॥४०॥

अन्वयः— आत्मतान्द्रिणा भगवान् भूतपिशाचान् च सृष्ट्वा दिग्वाससः मुक्तकेशान् वीक्ष्य दृशौ आमीलयत् च ।।४०।।

अनुवाद— ब्रह्माजी ने अपने आलस्य से भूतों और पिशाचों की सृष्टि करके उन सबों को नग्न तथा खुले केश वाला देखकर अपने दोनों आँखों को मूंद लिए ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनस्तन्द्रिणा आलस्येन । तांश्च मुक्तकेशान्वीक्ष्य नेत्रे निमीलितवान् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

तन्द्रि आलस्य को कहते है । ब्रह्माजी ने अपने आलस्य से भूतों और पिशाचों की सृष्टि की । वे भूत पिशाच नङ्गे थे और उनके केश खुले हुए थे । उनको देखकर ब्रह्माजी ने अपनी दोनों आँखों को बन्द कर लिया ।।४०।।

जगृहुस्तद्विसृष्टां तां जृम्भणाख्यां तनुं प्रभोः। निद्रामिन्द्रियविक्लेदो यया भूतेषु दृश्यते ॥
येनोच्छिष्टान्धर्षयन्ति तमुन्मादं प्रचक्षते ॥४१॥

अन्वयः— प्रभोः विसृष्टां जृम्भणाख्यां तां तनुं तद् जगृहुः । निद्राम् यया भूतेषु इन्द्रियविक्लेदः दृश्यते । येनउच्छिष्टान् धर्षयन्ति तम् उन्मादं प्रचक्षते ।।४१।।

अनुवाद— ब्रह्माजी द्वारा परित्यक्त जम्भाई नामक उस शरीर को भूतों पिशाचों ने ले लिया । उसी को निद्रा कहा जाता है । जिसके द्वारा इन्द्रियों में शिथिलता आ जाती है । उसे निद्रा कहते हैं । यदि कोई जूठे मुँह सो जाता है तो उस पर भूत पिशाच आदि आक्रमण करते हैं, उसे ही उन्माद कहा जाता है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

इन्द्रियाणां विक्लेदः स्रावो यया तां निद्रां प्रचक्षते । येनेन्द्रियविक्लेदेन हेतुनोच्छिष्टांश्च सतो धर्षयन्ति भ्रान्तान्कुर्वन्ति तं भूतादिगणमुन्मादं प्रचक्षते । तन्द्राजृम्भिकानिद्रोन्मादहेतुत्वेन भूतादीनां तनूनां च चातुर्विध्यमुक्तम् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

जिसके द्वारा इन्द्रियों में शैथिल्य आ जाता है उसे निद्रा कहते हैं । उस इन्द्रिय शैथिल्य के ही कारण जूठे मुँह सोने वाले लोगों को भूतगण भ्रान्त बना देते हैं । उन भूतों आदि के गणों को उन्माद कहते हैं । तन्द्रा (अलास्य) जम्भाई, नींद, तथा उन्माद के कारण होने से भूतों के चार भेद बतलाये गये हैं ।।४१।।

ऊर्जस्वन्तं मन्यमान आत्मानं भगवानजः । साध्यान्गणान्पितृगणान्परोक्षेणासृजत्प्रभुः ॥४२॥

अन्वयः— भगवान् अजः आत्मानं ऊर्जस्वन्तं मन्यमानः प्रभुः साध्यान्गणान् पितृगणान् परोक्षेण असृजत् ।।४२।।

अनुवाद— अपने को बलवान मानने वाले ब्रह्माजी ने परोक्ष रूप से साध्यगणों और पितृगणों की सृष्टि की।।४२।।

भावार्थ दीपिका

ऊर्जस्वन्तं बलवन्तम् । परोक्षेणादृश्यरूपेण ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

ऊर्जस्वान् बलवान को कहते है । अपने को बलवान् मानते हुए ब्रह्माजी ने अदृश्य रूप से साध्यगणों और पितृगणों की सृष्टि की ।।४२।।

त आत्मसर्गं तं कायं पितरः प्रतिपेदिरे । साध्येभ्यश्च पितृभ्यश्च कवयो यद्वितन्वते ।।४३।।

अन्वयः— ते आत्मसर्गं तं कायं पितरः प्रतिपेदिरे । यत् कवयः साध्येभ्यः पितृभ्यः वितन्वते ।।४३।।

अनुवाद— अपनी उत्पत्ति स्थान उस शरीर को पितरों ने ग्रहण कर लिया, उसी को लक्ष्य करके पण्डित जन, साध्यगणों और पितृगणों को हव्य तथा कव्य प्रदान करते हैं ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनः सर्गो यस्मात्तम् । यद्येन कार्येण संप्रदानत्वनिमित्तेन । कवयः कर्मकोविदाः । साध्येभ्यः पितृभ्यश्च स्वपितृरूपेभ्यः। वितन्वते श्राद्धादिना हव्यं कव्यं च ददति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

अपनी उत्पत्ति स्थान स्वरूप उस शरीर को पितरों ने ग्रहण कर लिया । जिनको प्रसन्न करने के लिए कर्मों के ज्ञाता पण्डितजन श्राद्ध इत्यादि के द्वारा अपने पितरों को कव्य तथा साध्यगणों को हव्य प्रदान करते हैं ।।४३।।

सिद्धान्विद्याधरांश्चैच तिरोधानेन सोऽसृजत् । तेभ्योऽददात्तमात्मानमन्तर्धानाख्यमद्भुतम् ।।४४।।

अन्वयः— सः सिद्धान् विद्याधरान् चैव तिरोधानेन असृजत् । तेभ्यः तम् अन्तर्धानाख्यम् अद्भुतम् आत्मानम् अददात् ।।४४।।

अनुवाद— ब्रह्माजी ने सिद्धों और विद्याधरों की सृष्टि तिरोधान शक्ति से की और उन सबों को उन्होंने अद्भुत अन्तर्धान नामक शरीर प्रदान किया ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

तिरोधानेन दृश्यत्वे सत्यप्यन्तर्धानशक्त्या ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

तिरोधानेन पद का अर्थ है कि दृश्य होने पर भी अन्तर्धान होने की शक्ति के द्वारा ।।४४।।

सकिन्नरान्किम्पुरुषान् प्रत्यात्म्येनासृजत्प्रभुः । मानयन्नात्मनात्मानमात्माभासं विलोकयन् ।।४५।।

अन्वयः— आत्माभासं विलोकयन् प्रभुः आत्मना आत्मानं मानयन् सकिन्नरान् किंपुरुषान् प्रत्यात्म्येन असृजत् ।।४५।।

अनुवाद— अपने प्रतिविम्ब को देखकर ब्रह्माजी ने अपने को बहुत सुन्दर माना । अपने उस प्रतिबिम्ब से उन्होंने किन्नरों और किम्पुरुषों की सृष्टि की ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

प्रत्यात्म्येन प्रतिबिम्बेन । आत्माभासं प्रतिबिम्बमात्मनात्मनो मानः प्रतिबिम्बदर्शिनः सुन्दरस्य शिरः कम्पादिचेष्टा । अतएव तत्सृष्टानां मिथः संमाननेन नित्यं मिथुनीभावः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

प्रत्यात्म्य का अर्थ प्रतिबिम्ब है । आत्माभास भी प्रतिबिम्ब को कहते है । उन्होंने अपने विम्ब को देखकर अपने को बहुत सुन्दर माना । इसीलिए प्रतिबिम्ब के द्वारा जिनकी सृष्टि हुयी उनका सदैव मिथुनीभाव बना रहता है।।४५।।

ते तु तज्जगृहु रूपं त्यक्तं यत्परमेष्ठिना । मिथुनीभूय गायन्तस्तमेवोषसि कर्मभिः ।।४६।।

अन्वयः— यत् परमेष्ठिना व्यक्तं तत् रूपं ते जगृहुः । उषसि मिथुनीभूय गायन्त तमेव कर्मभिः ।।४६।।

अनुवाद— ब्रह्माजी के द्वारा परित्यक्त प्रतिबिम्ब शरीर को उन सबों ने ग्रहण कर लिए । इसीलिए उषः काल में वे अपनी पत्नी के साथ ब्रह्माजी के कर्मों का गायन करते हैं ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

तत् प्रतिबिम्बरूपम् । कर्मभिस्तत्पराक्रमानुवर्णनैः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

किन्नरों और किम्पुरुषों ने ब्रह्माजी के प्रतिबिम्ब शरीर को ग्रहण कर लिया । वे प्रातः काल में ब्रह्माजी के पराक्रम आदि का वर्णन करते हैं ।।४६।।

देहेन वै भोगवता शयानो बहुचिन्तया । सर्गेऽनुपचिते क्रोधादुत्ससर्ज ह तद्वपुः ।।४७।।

अन्वयः— सर्गे अनुपचिते बहुचिन्तया भोगवता देहेन शयानः क्रोधात् तद वपुः उत्ससर्ज ह ।।४७।।

अनुवाद— सृष्टि की वृद्धि नहीं होने के कारण बहुत चिन्तित ब्रह्माजी अपने शरीर के हाथ पैर आदि को फैलाकर सो गये और उसके पश्चात् क्रोध करके उस शरीर को वे त्याग दिए ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

भोग आभोगो विस्तारः पादादिप्रसरणं तद्वता देहेन । अनुपचिते वृद्धिमप्राप्ते । तत् भोगक्रोधादियुक्तम् ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

शरीर के विस्तृत करने को भोग कहते है । **भोगेन** का अर्थ है अपने हाथ पैर आदि को फैलाये हुए शरीर से सृष्टि की वृद्धि नहीं होने पर भोग अर्थात् क्रोध से युक्त होकर उस शरीर को ब्रह्माजी ने त्याग दिया ।।४७।।

येऽहीयन्तामुतः केशा अहयस्तेऽङ्ग जज्ञिरे । सर्पाः प्रसर्पतः क्रूरा नागा भोगोरुकन्धराः ।।४८।।

अन्वयः— हे अङ्ग अमुतः ये केशा अहीयन्त ते अहयः जज्ञिरे । प्रसर्पतः क्रूराः सर्पाः भोगोरुकन्धराः नागाः ।।४८।।

अनुवाद— उससे जो बाल झड़कर गिरे थे वे अहि हुए । पैर आदि सिकोड़ कर चलने से क्रूर स्वभाव वाले नाग हुए । जिनका शरीर फणरूप से कन्धे के पास बहुत फैला होता हैं वे नाग हुए ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

अमुतोऽमुष्माद्देहाद्ये केशा अहीयन्त प्रच्युतास्तेऽहयो जाताः । प्रसर्पतः पादाद्याकुञ्चनैः प्रचलतोऽमुष्मात्सर्पाः । अतएव अगा न भवन्तीति नागाः । अतिवेगवन्त इत्यर्थः । भोगवतो जातत्वाद्भोगेन फणेनोरुर्विस्तीर्णा कन्धरा येषाम् । सर्वे चैते तत्क्रोधयोगात्क्रूराः । तेषामवान्तरजातिभेदः सर्पसिद्धान्ते प्रसिद्ध ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

उस शरीर से जो केश गिरे वे अहि हो गये । हाथ पैर सिकोड़कर चलने से सर्प हो गये । अतएव स्थिर नहीं होने के कारण वे नाग कहलाये । वे अत्यन्त वेग सम्पन्न हुए । कन्धे के पास फणरूप से जिनका शरीर बहुत फैला होता है वे नाग हैं । ब्रह्माजी के क्रोध का सम्बन्ध होने के कारण ये सभी क्रूर स्वभाव के होते हैं। सर्पों की अवान्तर जातियाँ सर्पसिद्धान्त नामक ग्रन्थ में प्रसिद्ध हैं ।।४८।।

स आत्मानं मन्यमानः कृतकृत्यमिवात्मभूः । तदा मनून्ससर्जान्ते मनसा लोकभावनान् ।।४९।।

अन्वयः— स आत्मभूः आत्मानं कृतकृत्यम् इव मन्यमानः तदा मनसा लोकभावनान् मनून् ससर्ज ।।४९।।

अनुवाद— वे ब्रह्माजी अपने को कृतकृत्य अनुभव किये और अन्त में उन्होंने मन से मनुओं की सृष्टि की । वे सब प्रजाओं की वृद्धि करने वाले हुए ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

यदा मन्यमानोऽभूत्तदा मनून्ससर्ज ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

जब उन्होंने अपने को कृतकृत्य माना तो उन्होंने मनुओं की सृष्टि की ।।४९।।

तेभ्यः सोऽत्यसृजत्स्वीयं पुरं पुरुषमात्मवान् । तान्दृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः प्रशशंसुः प्रजापतिम् ॥५०॥

अन्वयः— आत्मवान् सः तेभ्यः स्वीयं पुरुषं पुरं अत्यसृजत् तान् दृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः ते प्रजापतिम् प्रशशंसुः ॥५०॥

अनुवाद— मनस्वी ब्रह्माजी ने उन मनुओं को अपना पुरुषाकार शरीर प्रदान किया । मनुओं को देखकर जिन गनधवों आदि की सृष्टि हुयी थी उन सबों ने ब्रह्माजी की प्रशंसा की ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

तेभ्यः स्वीयं पुरुषं पुरुषाकारं पुरं देहमत्यसृजद्ददौ । तान्मनून् ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने मनुओं को अपना पुरुषाकार शरीर प्रदान किया । मनुओं को देखकर गन्धर्वादिकों ने ब्रह्माजी की स्तुति की ॥५०॥

अहो एतज्जगत्स्रष्टः सुकृतं बत ते कृतम् । प्रतिष्ठिताः क्रिया यस्मिन्साकमन्नमदामहे ॥५१॥

अन्वयः— अहो जगत्स्रष्टः एतत् बत ते सुकृतम् कृतम् । यस्मिन् क्रियाः प्रतिष्ठिताः साकम् अन्नम् अदामहे ॥५१॥

अनुवाद— हे जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी ! यह अपने बड़ी अच्छी सृष्टि की है । इसमें सभी अग्निहोत्र आदि कर्म प्रतिष्ठित हैं । इससे ही हमलोग भी अपना भोग्य पदार्थ प्राप्त करेंगे ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

ते त्वया यत्कृतं तत्सुकृतम् । सुकृतत्वमाहुः । यस्मिन्मनुसर्गे । क्रिया अग्निहोत्राद्याः अतोऽस्मिन्सर्वे वयं साकं सहान्नं हविर्भागाद्यदाम भक्षयाम । हे ब्रह्मन् ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

हे ब्रह्माजी ! आपने यह जो मनुष्यों की सृष्टि की है वह बहुत अच्छी है । इसके अच्छेपन को बतलाते हुए देवों ने कहा— क्योंकि इस सृष्टि में अग्निहोत्र आदि सभी क्रियाएँ प्रतिष्ठित हैं । अतएव इसमें हम सभी एक साथ अपने हविर्भाग को प्राप्त करेंगे ॥५१॥

तपसा विद्यया युक्तो योगेन सुसमाधिना । ऋषीनृषिर्हृषीकेशः ससर्जाभिमताः प्रजाः ॥५२॥

अन्वयः— तपसा, विद्यया, योगेन, सुसमाधिना हृषीकेशः ऋषिः ऋषीन् प्रजाः ससर्ज ॥५२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् तप, विद्या (उपासना, योग तथा समाधि) के द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में किए हुए आदिऋषि ब्रह्मजी ने ऋषियों की सृष्टि की ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

कायसृष्टिमुक्त्वा सृष्टिमाह-तपसेति। विद्या उपासना । योगोऽत्रासनादिः । सुसमाधिर्वैराग्यैश्वर्यादियुक्तः समाधिः तेन च युक्तः । हृषीकेशः स्ववशेन्द्रियः सन् । ऋषिर्ब्रह्मा ऋषीन्प्रजाः ससर्ज ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

कायसृष्टि का वर्णन करने के बाद ऋषियों की सृष्टि का वर्णन करते हैं । तपस्या, उपासना (विद्या) योग किसी को भी भयभीत नहीं करना तथा वैराग्य ऐश्वर्य इत्यादि से युक्त समाधि के द्वारा अपनी इन्द्रियों को वश में करके ब्रह्माजी ने ऋषि नामक प्रजाओं की सृष्टि की ॥५२॥

तेभ्यश्चैकैकशः स्वस्य देहस्यांशमदादजः । यत्तत्समाधियोगर्द्धितपोविद्याविरक्तिमत् ॥५३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

अन्वयः— तेभ्यः अजः एकैकशः समाधियोगद्धि तपोविद्याविरक्तिमत् स्वस्य देहस्य अंशम् अददात् ॥५३॥

अनुवाद— उन ऋषियों को ब्रह्माजी ने प्रत्येक को समाधि योग, ऋद्धि, तप, विद्या तथा विरक्ति से युक्त अपने शरीर के अंश को प्रदान कर दिए ॥५३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीय स्कन्ध के बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

किं तद्देहं यस्यांशमदादित्यत आह-यदिति । समाधिश्च योगश्च ऋद्धिश्च ऐश्वर्यं च तपश्च विद्या च विरक्तिश्च विद्यन्ते यस्मिंस्तत् ॥५३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां विंशोऽध्यायः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न है कि ब्रह्माजी का वह कौन सा देह था जिसके अंशों को उन्होंने ऋषियों को प्रदान किया । तो इसका उत्तर है कि उसमें समाधि, योग, ऋद्धि, तप, विद्य और विरक्त विद्यमान थे ॥५३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिकानामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्यख्या सम्पूर्ण हुयी ॥२०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

महर्षि कर्दम की तपस्या और भगवान् का वरदान

विदुर उवाच

स्वायंभुवस्य च मनोर्वंशः परमसंमतः । कथ्यतां भगवन्यत्र मैथुनेनैधिरे प्रजाः ॥१॥

अन्वयः— हे भगवन् स्वायम्भुवस्य मनोः परमसम्मतः वंशः कथ्यताम् यत्र प्रजाः मैथुनेनैधिरे ॥१॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— भगवन् स्वायम्भुव मनु के अत्यन्त समादरणीय वंश का आप वर्णन करे । उसमें मैथुन धर्म के द्वारा प्रजा की वृद्धि हुयी ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकविंशे तपोविद्यातोषितेन तु विष्णुना । कर्दमस्य मनोः पुत्र्या विवाहघटनोच्यते ॥१॥ एधिरे एधांचक्रिरे ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इक्कीसवें अध्याय में कदर्म महर्षि के तप और विद्या से प्रसन्न भगवान् विष्णु ने उनका विवाह मनु की पुत्री देवहूति से करवाया । एधिरे पद का अर्थ है समृद्ध हुयी ॥१॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ स्वायंभुवस्य वै । यथा धर्मं जुगुपतुः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥२॥

अन्वयः— स्वायम्भुवस्यवै प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ सप्तद्वीपवतीं महीं यथा धर्मं जुगुपतुः ॥२॥

अनुवाद— स्वयम्भुव मनु के दो पुत्र थे प्रियव्रत और उत्तानपाद वे दोने धर्मानुसार सप्तद्वीपा पृथ्वी का प्रशासन करते थे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

धर्मं महीं च यथा जुगुपतुः ररक्षतुस्तन्मे वदेति तृतीयेनान्वयः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

वे धर्म तथा पृथिवी दोनों की जिस तरह से रक्षा करते थे उसे आप मुझे बतलायें, इस तरह से तीसरे श्लोक से इसका अव्वय है ॥३॥

तस्य वै दुहिता ब्रह्मन् देवहूतीति विश्रुता । पत्नी प्रजापतेरुक्ता कर्दमस्य त्वयानघ ॥३॥

अन्वयः— हे अनघ ! ब्रह्मन् तस्य देवहूति इति विश्रुता दुहिता कर्दमस्य प्रजापतेः पत्नी त्वया उक्ता ॥३॥

अनुवाद— हे निष्पाप ! ब्रह्मन् उन मनु की प्रख्यात पुत्री का नाम देवहूति था और वह कर्दम प्रजापति की पत्नी हुयी यह आपने कहा है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तस्य मनोः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उन स्वायम्भुव मनु की ॥३॥

तस्यां स वै महायोगी युक्तायां योगलक्षणैः । ससर्ज कतिधा वीर्यं तन्मे शुश्रूषवे वद ॥४॥

अन्वयः— तस्यां योगलक्षणैः युक्तायां महयोगी कतिधा वीर्यं ससर्ज तत् शुश्रूषवे मे वद ॥४॥

अनुवाद— योग के लक्षणों से युक्त उस देवहूति से महायोगी कर्दम महर्षि ने कितनी सन्तानों को उत्पन्न किया यह मुझे आप बतलायें, क्योंकि मैं उसे सुनना चाहता हूँ ॥४॥

भावार्थ दीपिका

योगलक्षणैर्यमादिभिर्युक्तायाम् । कतिधा वीर्यं ससर्ज । कति पुत्रानुत्पादयामासेत्यर्थः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यम नियम आदि योग के लक्षणां से युक्त थीं देवहूति । उनसे महर्षि कर्दम ने कितने पुत्रों को उत्पन्न किया ॥४॥

रुचिर्यो भगवान्ब्रह्मन् दक्षो वा ब्रह्मणः सुतः । यथा ससर्ज भूतानि लब्ध्वा भार्यां च मानवीम् ॥५॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! भगवान् रुचिः ब्रह्मणः सुतः दक्षोवा मानवीम् भार्यां लब्ध्वा यथा प्रजाः ससर्ज तन्मे वद ॥५॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! भगवान् रुचि ओर ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति मनु की पुत्रियों को पत्नी के रूप में प्राप्त करके जैसे प्रजाओं की सृष्टि की उसे भी आप मुझे बतलायें ॥५॥

भावार्थ दीपिका

मानवीं मनोः कन्यकाकूतिं च प्रसूतिं च भार्यां लब्ध्वा यथा भूतानि ससर्ज तच्च वदेति चकारस्यार्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

मनु की पुत्री आकूति को रुचि प्रजापति और प्रसूति को दक्ष प्रजापति ने प्राप्त करके जिस तरह से प्रजाओं की सृष्टि की उसे आप मुझे बतलायें ॥५॥

मैत्रेय उवाच

प्रजाः सृजेति भगवान् कर्दमो ब्रह्मणोदितः । सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दश ॥६॥

अन्वयः— प्रजाः सृज इति ब्रह्मणा उदितः भगवान् कर्दमः सरस्वत्यां सहस्राणां दश समाः तपः तेपे ॥६॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— ब्रह्माजी के यह कहने पर कि तुम प्रजाओं की सृष्टि करो तो महर्षि कर्दम ने सरस्वती नदी के तट पर दश हजार वर्षों तक तपस्या की ॥६॥

भावार्थ दीपिका

सहस्राणां समा दश । दशसहस्राणि संवत्सरानित्यर्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की आज्ञा प्राप्त करने के पश्चात् कर्दम महर्षिने सरस्वती नदी के तट पर दश हजार वर्षों तक तपस्या की ॥६॥

ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्दमः । संप्रपेदे हरिं भक्तया प्रपन्नवरदाशुषम् ॥७॥

अन्वयः— ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्दमः प्रपन्नवरदाशुषम् हरिं प्रपेदे ॥७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् एकाग्रचित्त से पूजा रूपी प्रकार के द्वारा महर्षि कदम शरणागत भक्तों को वरदान देने वाले श्रीहरि की शरणागति किए ॥७॥

भावार्थ दीपिका

ततस्तस्मिंस्तपसि । क्रियायोगेन पूजाप्रकारेण संप्रपेदे सिषेवे । प्रपन्नेभ्यो भक्तेभ्यो वरदातारम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

उस तपस्याकाल में श्रीभगवान् की विविधोपचार से पूजा के द्वारा महर्षि कर्दम श्रीभगवान् की शरणागति किए॥७॥

तावत्प्रसन्नो भगवान्पुष्कराक्षः कृते युगे । दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्म दधद्वपुः ॥८॥

अन्वयः— क्षत्तः तावत् प्रसन्नो भगवान् पुष्कराक्षः कुते युगे तं शाब्दं ब्रह्मदधद् वपुः दर्शयामास ॥८॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! उससे सत्ययुग में प्रसन्न होकर भगवान् कमलनयन ने शब्दब्रह्ममय रूप से मूर्तिमान होकर उनको दर्शन दिए ॥८॥

भावार्थ दीपिका

शब्दैकवेद्यं यद्ब्रह्म तन्मयं वपुर्दधत्तं प्रत्यात्मानं दर्शयामास ॥८॥

भाव प्रकाशिका

जिस ब्रह्म को केवल शब्द के ही द्वारा जाना जा सकता है ऐसे शरीर को धारण किए हुए श्रीभगवान् उनको दर्शन दिए ॥८॥

स तं विरजमर्काभं सितपद्मोत्पलस्रजम् । स्निग्धनीलालकव्रातवक्त्राब्जं विरजोऽम्बरम् ॥९॥
किरीटिनं कुण्डलिनं शङ्खचक्रगदाधरम् । श्वेतोत्पलक्रीडनकं मनःस्पर्शस्मितेक्षणम् ॥१०॥
विन्यस्तचरणाम्भोजमंसदेशे गरुत्मतः । दृष्ट्वा खेऽवस्थितं वक्षःश्रियं कौस्तुभकन्धरम् ॥११॥
जातहर्षोऽपतन्मूर्ध्ना क्षितौ लब्धमनोरथः । गीर्भिस्त्वभ्यगृणात्प्रीतिस्वभावात्मा कृताञ्जलिः ॥१२॥

अन्वयः— विरजमर्काभम्, सितपद्मोत्पलस्रजम्, स्निग्धनीलालक व्रातवक्त्राब्जं विरजोम्बरम्, किरीटिनं, कुण्डलिनं शङ्खचकगदाधरम्, श्वेतोत्पलक्रीडनकम्, मनःस्पर्शस्मितेक्षणम्, गरुत्मतः अंसदेशे, विन्यस्तचरणाम्भोजम्, वक्षःश्रियम्, कौस्तुभकन्धरम् खेऽवस्थितं दृष्ट्वा, लब्धमनोरथः सः जातहर्षः क्षितौ मूर्ध्ना अपतत् प्रीतिस्वभावात्मा कृताञ्जलिः गीर्भिः त्वभ्यगृणात् ॥९-१२॥

अनुवाद— देदीप्यमान सूर्य के समान कान्तिसम्पन्न, श्वेत कमल की माला धारण किए हुए, कोमल काले घुंघराले केशों से सुशोभित मुखकमल वाले, मुकुट और कुण्डल धारण किए हुए, तथा शङ्ख, चक्र और गदा धारण किए हुए, लीलाकमल के रूप में श्वेत कमल को धारण किए हुए, मधुरमुस्कानयुक्त चितवन से मन को आकृष्ट करने वाले, गरुड़जी के कन्धे पर चरणकमल को रखे हुए, श्रीदेवी से सुशोभित वक्षःस्थल वाले, गले में कौस्तुभमणि को धारण किए हुए, श्रीभगवान् को आकाश में स्थित देखकर महर्षि कर्दम को बड़ी ही प्रसन्नता हुयी मानो उनके सारे मनोरथ पूर्ण हो गये । उन्होंने पृथिवी पर शिर टेककर श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और प्रेम पूर्ण चित्त से उन्होंने श्रीभगवान् की स्तुति की ॥९-१२॥

भावार्थ दीपिका

स कर्दमस्तं खेऽवस्थितं दृष्ट्वा मूर्ध्ना क्षितावपतत् । गीर्भिश्चाभ्यगृणादिति चतुर्णामन्वयः । पद्मोत्पले दिनरात्रिविकासे। सितानां पद्मानामुत्पलानां च स्रक् यस्य तम् । स्निग्धानीलाश्च येऽलकास्तेषां व्रातो वक्त्राब्जे यस्य । श्वेतोत्पलं क्रीडनकं यस्य। मनः स्पर्शं मनस्यानन्दजनकं स्मितमीक्षणं च यस्य तम् । वक्षसि श्रीर्यस्य । कौस्तुभः कन्धारायां यस्य । प्रीतिरेव स्वभावः स्वतःसिद्धो धर्मो यस्य तथाविध आत्मा मनो यस्य ॥९-१२॥

भाव प्रकाशिका

वे महर्षि कर्दम आकाश में स्थित श्रीभगवान् को देखकर पृथिवी पर शिर सटा करके साष्टाङ्ग प्रणाम किए। उन्होंने अपनी मधुर वाणी से उनकी स्तुति भी की इस तरह से चौथे श्लोक के साथ इसका अन्वय है । पद्म दिन में विकसित होता है और उत्पल रात्रि में विकसित होता है । श्रीभगवान् की माला श्वेत कमलों की थी । उनके मुखकमल पर काले चिकने केश लहरा रहे थे । वे श्वेत कमल को लीला कमल के रूप में धारण किए हुए थे। मुस्कानमण्डित उनका चितवन भक्तों के मन में आनन्द को उत्पन्न कर देने वाला था । श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में श्रीलक्ष्मीजी विराजमान थीं उनके गले में कौस्तुभ मणि लटक रही थी । महर्षि कर्दम ने स्वभाविक प्रेमपूर्ण मन से श्रीभगवान् की स्तुति करते समय हाथ जोड़े हुए थे ॥९-१२॥

ऋषिरुवाच

जुष्टं बताद्याखिलसत्त्वराशेः सांसिध्यमक्ष्णोस्तव दर्शनान्नः ।
यद्दर्शनं जन्मभिरीड्य सद्भिराशासते योगिनो रूढयोगाः ॥१३॥

अन्वयः— हे इड्य अखिलसत्वराशेः तव दर्शनात् नः अद्य अक्ष्णोः सांसिध्यं जुष्टम् यद् दर्शनं सद्भिः जन्मभिः रूढयोगाः योगिनः आशासते ॥१३॥

अनुवाद— हे स्तुति करने योग्य प्रभो ! समस्त गुण के आधार गुण के आधार आपका दर्शन हो जाने

से आज मेरे नेत्रों ने साफल्य को प्राप्त कर लिया है । आपका यह दर्शन परंसिद्ध योगिजन भी अनेक योनियों में भी जन्म लेकर प्राप्त करना चाहते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

त्वामृते परमानन्द धिगन्यवरकामुकम् । अथापि कृपणं मानुगृहाण वरदानतः । वतेति हर्षे । हे ईड्य, नोऽस्माभिः समग्रसत्त्वनिधेस्तव दर्शनादद्याक्ष्णोः सांसिध्यं साफल्यं जुष्टं सेवितम् । त्वर्द्दर्शनमेव महाफलमित्युपपादयति । यस्य तव दर्शनं सद्भिरुत्तरोत्तरमापादितप्रकर्षैर्जन्मभी रूढा विरूढो योगो यैस्तेऽपि ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

परमानन्द स्वरूप आपको छोड़कर दूसरे वरदान को चाहने वाले मुझको धिक्कार है फिर भी मुझ कृपण को आप वरदान प्रदान करके अनुगृहीत करें । **बत** यह अव्यय हर्ष के अर्थ में प्रयुक्त है । कर्दम महर्षि ने कहा कि हे प्रभो ! आप हमलोगों के द्वारा स्तुति करने के योग्य है । आपका दर्शन प्राप्त करके हमारे नेत्र सफल हो गये हैं । इसके द्वारा उन्होंने कहा कि आपका दर्शन महान् फल है । आपका दर्शन उत्तरोत्तर उत्कृष्ट जन्मों के द्वारा जिनका योग परिपक्व हो गया है ऐसे योगिजन भी प्राप्त करना चाहते हैं ॥१३॥

ये मायया ते हतमेधसस्त्वत्पादारविन्दं भवसिन्धुपोतम् ।
उपासते कामलवाय तेषां रासीश कामान्निरयेऽपि ये स्युः ॥१४॥

अन्वयः— ते मायया हतमेधसः ये भवसिन्धुपोतम् त्वत्पदारविन्दम् कामलवाय उपासते ये निरयेऽपि स्युः, हे ईश तेषां कामान् रासि ॥१४॥

अनुवाद— आप की माया से जिनकी बुद्धि मारी गयी है ऐसे जो लोग संसार सागर को पार करने के लिए जहाज के समान आपके चरणारविन्दों की उपासना नहीं करके नरक में भी प्राप्त होने वाले किसी कामना विशेष की सिद्धि के लिए करते हैं, तो आप उनकी उस कामना की भी पूर्ति कर देते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

सकामभक्तान्विगर्हयन्नाह-य इति । हे ईश, ये निरयेऽपि स्युस्तेषां कामानां लवाय ये त्वन्मायया नष्टबुद्धयस्तवोपासते। त्वं तु तेषां तान्कामानपि रासि ददासि ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में सकाम भगवद्भक्ति करने वालों की निन्दा करते हुए महर्षि कर्दम कहते हैं । जिनकी प्राप्ति नरकों में भी सम्भव है ऐसे तुच्छ कामनाओं के लिए जो आपके चरणों की उपासना करने वाले लोगों की बुद्धि आपकी माया के द्वारा मारी जा चुकी है । किन्तु उन जीवों की उन कामनाओं को भी आप पूर्ण कर दिया करते हैं॥१४॥

तथा स चाहं परिवोढुकामः समानशीलां गृहमेधधेनुम् ।
उपेयिवान्मूलमशेषमूलं दुराशयः कामदुघाङ्घ्रिपस्य ॥१५॥

अन्वयः— स च अहं तथा दुराशयः समानशीलां गृहमेधधेनुम् परिबोढुकामः अशेषमूलम् कामदुघाङ्घ्रिपस्य मूलम् उपेयिवान् ॥१५॥

अनुवाद— मैं भी उन सकामभक्ति करने वालों में से ही हूँ । मेरा अन्तःकरण कामकलुषित है । मैंने अपने ही समान रहने वाली तथा गृहस्थ धर्म के पालन में सहायक किसी कन्या से विवाह करने की इच्छा से ही आपके चरणों की शरणागति की है । क्योंकि आपके चरण ही सम्पूर्ण पुरुषार्थों के मूल हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

यः सकामान्निन्दामि सोऽहमपि तादृश एवेत्याह-तथेति । गृहमेधो गृहाश्रमस्तत्र धेनुं त्रिवर्गदोग्ध्री भार्यां परिवोढुकामः परिणेतुमिच्छन्कामदुघाङ्घ्रिपस्य कल्पद्रुमस्य तव मूलमङ्घ्रिमुपेयिवानुपगतोऽस्मि । ननु कामाद्यर्थमन्यत्किमप्युपास्यताम् न। यतोऽशेषस्य पुरुषार्थस्य मूलमेतदेव ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

जो मैं सकाम भक्ति करने वालों की निन्दा कर रहा हूँ मैं भी सकामभक्तिवाला ही हूँ । इसी अर्थ का **तथा० इत्यादि** श्लोक से प्रतिपादन किया गया है । कर्दम महर्षि कहते है कि मैं गृहस्थाश्रम के त्रिवर्ग को प्रदान करने वाली पत्नी से विवाह करना चाहता हूँ । आप तो कल्प वृक्ष हैं, इसीलिए मैंने आपके चरणों की उपासना की है । यदि कहें कि काम इत्यादि की पूर्ति के लिए किसी दूसरी देवता की उपासना करें तो इसका उत्तर है कि आपके चरण ही सभी पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले हैं ।।१५।।

प्रजापतेस्ते वचसाधीश तन्त्या लोकः किलायं कामहतोऽनुबद्धः ।
अहं च लोकानुगतो वहामि बलिं च शुक्लाऽनिमिषाय तुभ्यम् ।।१६।।

अन्वयः— हे अधीश ! हे शुक्ल प्रजापतेः ते वचसा तन्त्याबद्धः अयं लोकः किल कामहतः अनुबद्ध, अहं च अनिमिषाय तुभ्यं बलिं वहामि ।।१६।।

अनुवाद— हे सर्वेश्वर ! हे शुद्ध आप सम्पूर्ण प्रजाओं के स्वामी है, आपकी वेदवाणी रूपी डोरी में बँधा हुआ यह सम्पूर्ण जगत् अनेक प्रकार की कामनाओं में फँसा है । हे धर्ममूर्ते उसी का अनुगमन करता हुआ मैं कालस्वरूप आपकी आज्ञा पालन रूप पूजोपहार आदि आपको समर्पित करता हूँ ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि मुक्त्यर्थमेव किं न भजसि, अनधिकारादित्याह । हे अधीश, यस्त्वं प्रजापतिस्तस्य तव वचसा तन्त्याऽहं कामहतो लोकः पशुवद्बद्धः हे शुक्ल शुद्धधर्ममूर्ते, अहं च किल लोकानुगतः । अतस्तुभ्यं बलिं वहामि कर्ममयीं त्वदाज्ञामनुवर्ते। अनिमिषाय कालात्मने । तदर्थं भार्यां चेच्छामीति चकारस्यार्थः । न केवलं लोकानुगतो बलिं बहामि किंतु ऋणत्रयापाकरणार्थमिति किलेत्युक्तम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तो तुम मुक्ति के ही लिए मेरा भजन क्यों नहीं करते हो ? तो इसका उत्तर है कि मैं मुक्ति का अधिकारी नहीं हूँ । क्योंकि आप तो सम्पूर्ण प्रजाओं के स्वामी हैं । ऐसे आपकी वेदवाणी रूपी आज्ञा से बँधा हुआ इस संसार पशु के समान बँधा हुआ हूँ । हे धर्ममूर्ते ! मैं भी लोक का अनुगमन करने वाला हूँ अतएव तीनों ऋणों को अपाकृत करने के लिए आपको पूजोपहारादिरूप बलि समर्पित कर रहा हूँ ।।१६।।

लोकांश्च लोकानुगतान्पशूंश्च हित्वा श्रितास्ते चरणातपत्रम् ।
परस्परं त्वद्गुणवादसीधुपीयूषनिर्यापितदेहधर्माः ।।१७।।

अन्वयः— लोकान् च लोकानुगतान् पशून् च हित्वा ये ते चरणातपत्रम् आश्रिताः ते परस्परम् त्वद्गुणानुवाद सीधुपीयूष निर्यापित देह धर्माः भवन्तीति शेषः ।।१७।।

अनुवाद— हे प्रभो ! विषयासक्त जीवों तथा उन्हीं के मार्ग का अनुसरण करने वाले मुझ जैसे कर्मजड पशुओं की परवाह न करके आपके चरण रूपी तापत्रय विनाशक छत्र की छाया को ही अपना आश्रय बनाते हैं वे परस्पर में आपके गुणों का वर्णन रूपी मादक अमृत का पान करके उसी से अपने भूख-प्यास रूपी देह के धर्मों को शान्त करते हैं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

अनिमिषायेत्यनेन कालात्मकात्त्वत्तो भीतः कर्म करोमीत्युक्तम् । एतत्तु भयं त्वद्भक्तानां नास्तीत्याह द्वाभ्याम् । लोकान्कामाभिभूतांस्ताननुसृतान्पशूंश्च । विवेके सत्यपि पुनः कर्मजडान्मादृशान्हित्वाऽनादृत्य ये तव चरणरूपमातपत्रं श्रिताः। तानेवाह । त्वद्गुणानां वादः कथा तदेव सीधु मदिरा संसारविस्मारकत्वात् । पीयूषं रुचिकरत्वात् । तेन निर्यापिता विलापिता देहधर्माः क्षुत्पिपासादयो यैः एषामित्युत्तरेणान्वयः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

ऊपर के श्लोक में महर्षि ने श्रीभगवान् को अनिमिषाय कहकर उनको काल स्वरूप बतलाया है । अतः वे कहते हैं कि मैं आप से भयभीत हूँ । अतएव कर्मपरायण रहकर कर्मों को करता रहता हूँ । किन्तु यह भय आपके भक्तों को नहीं है । इस बात को उन्होंने दो श्लोकों से कहा है । कर्म परायण तथा कामनाओं से सदा अभिभूत बने रहने वाले लोगों और उन्हीं का अनुसरण करने वाले विवेक के रहने पर भी कर्म परायण मुझ जैसे पशुओं की परवाह किए बिना जो आपके भक्त आपके चरणों रूपी तापत्रय विनाशक छत्र को ही अपना आश्रय बनाते हैं वे परस्पर में आपके गुणों का वर्णन रूपी मादक अमृत जो संसार को विस्मृत कर देने वाला है, उसी का पान करके उसी से वे अपने भूख, प्यास रूपी देह के धर्मों को दूर कर देते हैं । इसका आगे के श्लोक के एषाम् पद से अन्वय है ।।१७।।

न तेऽजराक्षभ्रमिरायुरेषां त्रयोदशारं त्रिशतं षष्टिपर्व ।
षण्नेम्यनन्तच्छदि यत्रिणाभि करालस्रोतो जगदाच्छिद्य धावत् ।।१८।।

अन्वयः— हे अजराक्षभ्रमिः, त्रयोदशारं, त्रिशतं षष्ठिपर्व, षण्नेभि, अनन्तछदि, यत् त्रिणाभि, करालस्रोतः ते यत् जगदाच्छिद्यधावत् एषाम् आयुः आच्छिद्यन भवति ।।१८।।

अनुवाद—हे प्रभो ! आपका यह काल चक्र जो है वह उसका ब्रह्म ही अक्ष (घूमने की धूरी) है, अधिकमास सहित तेरह मास ही उसके अर हैं, तीन सौ साठ दिन ही उस कालचक्र के पर्व (जोड़) हैं, छह ऋतुएँ उसकी नेमियाँ (हाल) हैं, अनन्त क्षण आदि उसके पत्राकार धारायें हैं, तीन चातुर्मास्य ही उसकी तीन आधारभूत बलयाकृति नाभियाँ हैं, तथा उसका अत्यन्त तीव्र वेग है । इस प्रकार का जो आपका कालचक्र है चराचरात्मक जगत् की आयु का छेदन करता हुआ घूमता रहता है, किन्तु वह भी आपके भक्तों की आयु का छेदन नहीं कर पाता है क्योंकि प्रत्येक पल आपका भजन करने के कारण उनका सारा समय सफल रहता है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

तव यत्रिणाभि कालचक्रं तज्जगदाच्छिद्याकृष्य धावदपि एषां त्वद्भक्तानामायुराच्छिद्य धावन्न भवति । कथंभूतम् । अजरं ब्रह्म तस्मिन्नक्षरूपे भ्रमिर्भ्रमणम् । भ्रमदिति वक्तव्येऽतिभ्रमणशीलत्वादुपचारेण भ्रमिरित्यभेदनिर्देशः । अधिकमासेन सह त्रयोदश मासा अरा यस्य । त्रिशतं षष्टिश्चाहोरात्राः पर्वाणि यस्य । शतशब्दे विभक्तेरलुगार्षः । षड् ऋतवो नेमयो यस्य । अनन्ताः क्षणालवादयश्छदाः पत्राणि पत्राकारा धाराः सन्ति यस्य । त्रीणि चातुर्मास्यानि नाभय आधारभूतानि बलयानि यस्य। करालस्रोतस्तीव्रवेगम् । एतैर्विशेषणैरेव संवत्सरात्मकं चक्रमुक्तमिति द्रष्टव्यम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि कहते हैं कि हे प्रभो ! आपका यह जो वलयाकृति तीन नाभियों वाला कालचक्र है, यह निरन्तर जगत् की आयु को काटते हुए वेग से चलता रहता है । वह भी आपके इन भक्तों की आयु को नहीं काट पाता है, क्योंकि उन भक्तों का तो सारा समय आपके भजन में ही व्यतीत होने के कारण सफल है । **कथं भूतम्** अब

प्रश्न है कि वह कालचक्र कैसा है ? तो इस पर कहते हैं वह अजर ब्रह्मरूपी अक्ष की (धूरी) पर घूमता रहता है । यद्यपि भ्रमत् कहना चाहिए था फिर भी अत्यन्त भ्रमणशील होने के कारण उपचार वशात् भ्रामि पद से उसका निर्देश किया गया है । अधिक मास को मिलाकर तेरह महीने ही उसके अर हैं । तीन सौ साठ दिन ही उसके पर्व (जोड़) हैं । **त्रिशतम्** मे शत् शब्द की विभक्ति के लुक् का अभाव आर्ष (वैदिक) है । छह ऋतुएँ ही उसकी नेमियाँ है । अनन्त क्षण, लव आदि ही उसकी पत्राकार धारायें हैं, तीन चातुर्मास्य ही उसकी आधारभूत वलयाकृति नाभियाँ हैं । उस कालचक्र का वेग अत्यन्त तीव्र है । इन विशेषणों से विशिष्ट ही कालचक्र को कहा गया है॥१८॥

एकः स्वयं सञ्जगतः सिसृक्षया द्वितीययात्मन्नधियोगमायया ।
सृजस्यदः पासि पुनर्ग्रसिष्यसे यथोर्णनाभिर्भगवन्स्वशक्तिभिः ॥१९॥

अन्वयः— त्वम् एकः सन् जगत् अद्वितीयया सिसृक्षया आत्मन् अधियोगमायया उर्णनाभिः यथा स्वशक्तिभिः अदः सृजसि पासि पुनः ग्रसिष्यसे च ॥१९॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप अकेले ही जगत् की सृष्टि करने की इच्छा से अपनी अद्वितीय योगमाया और उससे उत्पन्न अपनी सत्वादि शक्तियों के द्वारा मकड़ी के समान इस जगत् की सृष्टि करते है, रक्षा करते हैं और अन्त में उसका संहार कर देते हैं । मकड़ी भी अपने से ही जाल को बुनती हैं, उसकी रक्षा करती है और अन्त में उसे निगल जाती है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ननु निरुपाधिमुदासीनं मां किं याचसे तथापि मायया विश्वसृष्ट्यादिकर्तृत्वात्त्वमेव याच्य इत्याह । स्वयमेक एव सन्नप्यात्मन्यधिकृतया योगमायया हेतुभूतया याः स्वीकृताः शक्तयः सत्त्वाद्यास्ताभिः । अदो विश्वम् । स्वव्यतिरिक्तसाधनानपेक्षत्वे दृष्टान्तः यथेति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मैं तो सभी उपाधियों से रहित ज्ञानस्वरूप हूँ मुझसे क्यों प्रार्थना करते हो ? तो इस पर महर्षि ने कहा— फिर भी आप ही माया के द्वारा जगत् की सृष्टि पालन और संहार करते है; अतएव आप ही प्रार्थनीय हैं । आप अकेले रहकर अपने में अधिकृत माया के द्वारा जो सभी सत्त्वादि शक्तियों का कारण है। उसे स्वीकृत करके सत्त्वगुण आदि शक्तियों के द्वारा इस विश्व की सृष्टि करते हैं । इस कार्य में आपको किसी दूसरे साधन की उसी तरह अपेक्षा नहीं होती है जिस तरह मकड़ी साधनान्तर निरपेक्ष रहकर जाल को बनाती है, उसकी रक्षा करती है और अन्त में उसको निगल जाती है ॥१९॥

नैतद्वताधीश पदं तवेप्सितं यन्मायया नस्तनुषे भूतसूक्ष्मम् ।
अनुग्रहायास्त्वपि यर्हि मायया लसत्तुलस्या भगवान्विलक्षितः ॥२०॥

अन्वयः— हे अधीश नः भूतसूक्ष्मम् पदं मायया तनुषे, एतत् तवेप्सितं न तथापि अनुग्रहाय अपि अस्तु यर्हि यतः भगवान् लसत्तुलस्या मायया विलक्षितः ॥२०॥

अनुवाद— आप हम भक्तों को जो शब्दादि सुख प्रदान करते हैं उसके मायाजन्य होने के कारण वह आपको भी पसन्द नहीं है; फिर भी परिणामतः हमारा शुभ करने के लिए वे मुझे प्राप्त हो जायँ । क्योंकि इस समय आपने हमें तुलसी की माला से मण्डित माया से परिच्छिन्नसी दिखने वाली सगुणमूर्ति रूप दर्शन दिए हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

यद्यपि मायिकत्वाद्भक्तेभ्यो विषयसुखं दातुं नेच्छसि तथाप्यस्मदभिप्रायानुसारेण तत्संपादयेत्याह-नैतदिति । हे अधीश, नोऽस्माकं भजतां भूतसूक्ष्मरूपं पदं शब्दादिविषयसुखं मायया तनुषे विस्तारयसीति यदेतत्तव यद्यपीप्सितं न भवति तथाप्यस्मदनुग्रहायास्तु । ऋणत्रयापाकरणानन्तरमेवापवर्गाय भवत्वित्यर्थः । यर्हि यतो मायया परिच्छिन्न इव लसन्त्या तुलस्या युक्तस्त्वं विलक्षितोऽसि । एवंभूतस्य तव दर्शनं यतो भुक्तिमुक्तिप्रदमित्यर्थः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

माया जन्य होने के कारण आप अपने भक्तों को शब्दादि विषयों का सुख नहीं प्रदान करना चाहते है फिर भी हमलोगों के अभिप्राय के अनुसार आप उसे हमें प्रदान करें इस बात को कर्दम महर्षि ने **नैतत्० इत्यादि** श्लोक से कहा है । श्लोक का अर्थ है कि हे जगत् के स्वामिन् आपका भजन करने वाले हमलोगों को भूतसूक्ष्म रूप जिन शब्दादि विषयों का सुख आप प्रदान करते हैं, यद्यपि आपको भी अभिप्रेत नहीं है । फिर भी हमलोगों पर कृपा करने के लिए आप हमें प्रदान करें । तीनों (देव, पितृ और ऋषि) ऋणों को अपाकृत करने के पश्चात् ही हमें मुक्ति मिले । क्योंकि माया से परिच्छिन्न तुलसी की माला से मण्डित रूप से ही आपने हमें दर्शन दिया है । इस प्रकार का आपका दर्शन भोग तथा मोक्ष दोनों प्रदान करने वाला है ।।२०।।

तं त्वाऽनुभूत्योपरतक्रियार्थं स्वमाययावर्तितलोकतन्त्रम् ।
नमाम्यभीक्ष्णं नमनीयपादसरोजमल्पीयसि कामवर्षम् ।।२१।।

अन्वयः— तं अनुभूतोपरतक्रियार्थं, स्वमाययावर्तित लोकतन्त्रम् नमनीयपादसरोजम् अल्पीयसि कामवर्षं त्वाम् अभीक्ष्णं नमामि ।।२१।।

अनुवाद— ऐसे आप स्वरूपत: निष्क्रिय होने पर भी अपनी माया के द्वारा संसार के व्यवहार को चलाते रहते हैं । थोड़ी सी भी भक्ति करने पर आप अपने भक्तों की कामनाओं को पूर्ण कर दिया करते हैं । आपके चरण कमल वन्दनीय हैं, ऐसे आपको मैं निरन्तर बारम्बार प्रणाम करता हूँ ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

तं त्वा त्वां भुक्तिमुक्तिप्रदं नमामि । मुक्तिदत्वे हेतुः-अनुभूत्या ज्ञानेनोपरतः क्रियार्थः कर्मफलभोगो यस्मिन् । भोगदत्वे हेतुः-स्वमायया आवर्तितं लोकतन्त्रं विश्वोपकरणं येन । अतः सकामैर्निष्कामैश्च नमनीयं पादसरोजं यस्य तम् । तत्राल्पीयसि सकामे पुंसि भजने वा कामान्वर्षतीति तथा तम् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

आप चूकि भोग तथा मोक्ष दोनों प्रदान कर देते हैं ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूँ । श्रीभगवान् मुक्ति प्रदान करते हैं, इसके लिए महर्षि हेतु को उपन्यस्त करते हुए कहते हैं आपका ज्ञानमात्र हो जाने से समस्त कर्मो का फल समाप्त हो जाता है, अर्थात् जीव कर्मसम्बन्ध से रहित हो जाता है । भोगों के प्रदातृत्व में हेतु को उपन्यस्त करते हुए उन्होंने कहा अपनी माया के द्वारा सम्पूर्ण लोक व्यवहार को आप चलाते रहते हैं । अतएव आप के चरण कमल सकाम एवं निष्काम दोनों प्रकार के भक्तों द्वारा प्रणम्य है । सकाम मनुष्य के द्वारा थोड़ी सी भी आराधना किए जाने पर आप आराधकों की कामनाओं को पूर्ण कर देते हैं ।।२१।।

ऋषिरुवाच

इत्यव्यलीकं प्रणुतोऽब्जनाभस्तमाबभाषे वचसाऽमृतेन ।
सुपर्णपक्षोपरि रोचमानः प्रेमस्मितोद्वीक्षणविभ्रमद्भ्रूः ।।२२।।

अन्वयः— इत्यव्यलीकं प्रणुतः प्रेमस्मितोद्वीक्षणविभ्रमद्भ्रू सुपर्ण पक्षोपरि रोचमानः अब्जनाभः अमृतेन वचसा तम् आबभाषे।।२२।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— इस तरह से महर्षि कर्दम के द्वारा निष्कपट भाव से स्तुति किए गये भगवान् की प्रेमभरी मुस्कान से युक्त चितवन वाली भौहें चञ्चल हो गयी थीं । श्रीभगवान गरुड़ के कंधे पर विराजमान थे ऐसे भगवान् उनसे अमृतमयी वाणी से कहने लगे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अमृतेन सुखकरेण । प्रेमस्मिताभ्यामीक्षणेन विभ्रमन्ती भ्रूर्यस्य ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अमृतेन अर्थात् सुखप्रद प्रेम तथा मुस्कान पूर्ण चितवन से जिनकी भौहें चञ्चल हो गयी थीं ॥२२॥

श्रीभगवानुवाच

विदित्वा तव चैत्त्यं मे पुरैव समयोजि तत् । यदर्थमात्मनियमैस्त्वयैवाहं समर्चितः ॥२३॥

अन्वयः— त्वया यदर्थं आत्मनियमै अहं समर्चितः, तव चैत्यं विदित्वः मे पुरा एव तत् समयोजि ॥२३॥

अनुवाद— तुमने जिसके लिए आत्मसंयम आदि के द्वारा मेरी आराधना की है तुम्हारे उस चित्त के अभिप्राय को जानकर मैंने उसकी पहले ही व्यवस्था कर दी है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

चैत्त्यं हार्दं भावम् । मे मया समयोजि संघटितम् । यदर्थमेवाहं समर्चितस्तत् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

हार्दिक भाव को चैत्य कहा गया है । तुम्हारे द्वारा जिसके लिए आराधित हुआ हूँ उसकी व्यवस्था मैंने पहले ही कर दी है ॥२३॥

न वै जातु मृषैव सत्प्रजाध्यक्ष मदर्हणम् । भवद्विधेष्वतितरां मयि संगृभितात्मनाम् ॥२४॥

अन्वयः— हे प्रजाध्यक्ष मयि संगृभितात्मनाम् भवद्विधेषु अतितराम् मदर्हणम् न जातु मृषैव न स्यात् ॥२४॥

अनुवाद— हे प्रजापते ! जिन लोगों ने अपना मन मुझमे एकाग्र कर लिया है ऐसे लोगों के द्वारा की गयी मेरी आराधना व्यर्थ नहीं हो सकती है । विशेष रूप से आप जैसे लोगों की उपासना करने पर तो और अधिक फल होता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

मयि संगृभितः संगृहीत एकाग्रीकृत आत्मा चित्तं यैस्तेषां यन्मदर्हणम् । त्वादृशेष्वतितरां सर्वथा मृषा निष्फलं न स्यात् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों ने अपना चित्त मुझमें एकाग्र कर लिया है उन लोगों के द्वारा की गयी मेरी आराधना कभी निष्फल नहीं होती हैं, आप जैसे लोगों के द्वारा की गयी आराधना तो कभी भी निष्फल नहीं होती है ॥२४॥

प्रजापतिसुतः सम्राण्मनुर्विख्यातमङ्गलः । ब्रह्मावर्तं योऽधिवसञ्शास्ति सप्तार्णवां महीम् ॥२५॥

अन्वयः— विख्यातमङ्गलः प्रजापति सुतः यः ब्रह्मावर्तम् अधिवसन् सप्तार्णवां महीम् अधिशास्ति सम्राट् मनुः ॥२५॥

अनुवाद— प्रसिद्ध यशस्वी ब्रह्माजी के पुत्र जो ब्रह्मावर्त में रहकर सातो समुद्रों से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी का प्रशासन करते हैं ऐसे सम्राट् स्वायम्भुव मनु हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

विख्यात मङ्गलमभ्युदयः सदाचारादिलक्षणं यस्य ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

उन स्वम्भुव मनु का सादाचारादि स्वरूप यश प्रख्यात है ॥२५॥

स चेह विप्र राजर्षिर्महिष्या शतरूपया । आयास्यति दिदृक्षुस्त्वां परश्वो धर्मकोविदः ॥२६॥

अन्वयः— हे विप्र ! स च राजर्षिः शतरूपया महिष्या सह धर्मकोविद त्वाम् दिदृक्षुः इह परश्वः आयास्यति ॥२६॥

अनुवाद— हे विप्र ! वे धर्मज्ञ राजर्षि, अपनी रानी शतरूपा के साथ आपको देखने के लिए परसो यहाँ आयेंगे ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

हे विप्र ! महिष्या सह ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

हे विप्र अपनी महारानी के साथ यहाँ आयेंगे ॥२६॥

आत्मजामसितापाङ्गीं वयःशीलगुणान्विताम् । मृगयन्तीं पतिं दास्यत्यनुरूपाय ते प्रभो ॥२७॥

अन्वयः— हे प्रभो ! असितापाङ्गीम्, वयः शीलगुणान्विताम् पतिं मृगयन्ती अनुरूपाय ते दास्यति ॥२७॥

अनुवाद— हे प्रभो ! वे अपनी श्यामलोचना अवस्था तथा शील आदि गुणों से सम्पन्न अपनी पुत्री को उसके लिए सर्वथा अनुरूप पति आपको समर्पित करेंगे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

समाहितं ते हृदयं यत्रेमान्परिवत्सरान् । सा त्वां ब्रह्मन्नृपवधूः काममाशु भजिष्यति ॥२८॥

अन्वयः— इमान् परिवत्सरान् यत्रते हृदयं समाहितम् हे ब्रह्मन् ! सा नृपवधूः त्वां आशु कामम् भजिष्यति ॥२८॥

अनुवाद— इतने वर्षों (दश हजार वर्षों) तक आपका मन जैसी पत्नी में लगा था हे ब्रह्मन् ! वह राजकुमारी अब शीघ्र ही वैसी ही पत्नी बनकर तुम्हारी यथेष्ट सेवा करेगी ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

यत्र यस्यां भार्यायाम् । समाहितमभिसन्धानेन स्थितम् । नृपवधू राजकन्या ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

इतने वर्षों से तुम्हारा मन जैसी पत्नी में लगा था, वह राजकुमारी वैसी ही पत्नी बनकर तुम्हारी सेवा करेगी॥२८॥

या त आत्मभृतं वीर्यं नवधा प्रसविष्यति । वीर्ये त्वदीये ऋषय आधास्यन्त्यञ्जसात्मनः ॥२९।

अन्वयः— या ते आत्मभृतं ते वीर्यं नवधा प्रसविष्यति । त्वदीये वीर्ये ऋषयः आत्मनः अञ्जसा आधास्यन्ति ॥२९।

अनुवाद— वह तुम्हारे वीर्य को अपने गर्भ में धारण करके नव कन्याओं को उत्पन्न करेगी और तुम्हार उन कन्याओं से ऋषिगण पुत्रों को उत्पन्न करेंगे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

ते वीर्यमात्मनि भृतं धृतं या प्रसविष्यति सा भजिष्यति । वीर्ये वीर्यप्रसूतासु कन्यासु । अञ्जसा आत्म पुत्रानाधास्यन्ति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

वह आपकी पत्नी आपके वीर्य को धारण करके नव पुत्रियों को उत्पन्न करेगी और आपके वीर्य से उत्पन्न उन कन्याओं के गर्भ में मरीच्यादि ऋषिगण अपने पुत्रों का आधान करेंगे ॥२९॥

त्वं च सम्यगनुष्ठाय निदेशं म उशत्तमः । मयि तीर्थीकृताशेषक्रियार्थो मां प्रपत्स्यसे ॥३०॥

अन्वयः— त्वं च मे निदेशं सम्यगनुष्ठाय उशत्तमः मयि तीर्थीकृताशेष कृतार्थः मां प्रपत्स्यसे ॥३०॥

अनुवाद— तुम भी मेरी आज्ञा का अच्छी तरह से पालन करके शुद्ध चित्तवाले हो जाओगे और अपने सभी कर्मों का फल मुझको समर्पित करके मुझको प्राप्त कर लोगे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

निदेशमाज्ञाम् । उशत्तमः शुद्धसत्त्वः । तीर्थं पात्रं, तेन दानं लक्ष्यते । मयि समर्पितसर्वकर्मफल इत्यर्थः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

निदेश का अर्थ आज्ञा है उशत्तमः= शुद्ध अन्तःकरण वाला । तीर्थ अर्थात् योग्य पात्र । इस तरह तीर्थी कृत शब्द से दान की प्रतीति होती है । भगवान् ने कहा कि मेरी आज्ञा का अच्छी तरह से पालन के कारण तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध सत्त्वमय हो जायेगा । उसके फल स्वरूप अपने सभी कर्मों को तुम मुझको समर्पित कर दोगे और तुम मुझको प्राप्त कर लोगे ॥३०॥

कृत्वा दया च जीवेषु दत्त्वा चाभयमात्मवान् । मय्यात्मानं सह जगद्द्रक्ष्यस्यात्मनि चापि माम् ॥३१॥

अन्वयः— जीवेषु दयां कृत्वा अभयं च दत्वा आत्मवान् त्वम् मयि आत्मानं सह जगत् आत्मनि च अपि मां द्रक्ष्यसि ॥३१॥

अनुवाद— जीवों पर दया करके तुम जब संन्यास ग्रहण कर लोगे तो सभी जीवों को अभय प्रदान दोगे। उसके कारण तुम सम्पूर्ण जगत् के साथ अपने को भी मुझमें देखोगे ओर अपनी आत्मा में मुझको देखोगे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

गार्हस्थ्येन दयां कृत्वा संन्यासेनाभयं दत्त्वा मय्यात्मानं जगच्च सहैकीभूतं द्रक्ष्यसि ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

गार्हस्थ्य धर्म का पालन करते हुए जीवों पर दया करके और संन्यास आश्रम ग्रहण करके सभी जीवों को अभय प्रदान करके तुम, मुझमें अपने को तथा सम्पूर्ण जगत् को मुझमें देखोगे ॥३१॥

सहाहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने । तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम् ॥३२॥

अन्वयः— हे महामुने अहं च स्वांशकलया सह त्वद् वीर्येण तव क्षेत्रे देवहुत्यां तत्त्वसंहिताम् प्रणेष्ये ॥३२॥

अनुवाद— हे महामुने ! मैं भी अपने अंश कला के साथ आपके वीर्य से आपकी पत्नी देवहूति के गर्भ से अवतीर्ण होकर सांख्याशास्त्र का प्रणयन करूँगा ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

त्वद्वीर्येण सह देवहूत्यामवतीर्येति शेषः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा कि मैं भी आपके वीर्य से आपकी पत्नी देवहूती के गर्भ से अवतीर्ण होकर सांख्य शास्त्र का प्रणयन करूँगा ॥३२॥

मैत्रेय उवाच

एवं तमनुभाष्याथ भगवान्प्रत्यगक्षजः । जगाम बिन्दुसरसः सरस्वत्या परिश्रितात् ॥३३॥

अन्वयः— एवं प्रत्यक् अक्षजः भगवान् तम् एवम् अनुभाष्य अथ सरस्वत्या परिश्रितात् विन्दुसरसः जगाम ॥३३॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— अन्तर्मुखी इन्द्रियों के विषय बनने वाले श्रीभगवान् इस प्रकार से कर्दम महर्षि को कहकर सरस्वती नदी से घिरे हुए विन्दुसरोवर से अपने लोक में चले गये ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्यग्भूतष्वक्षेषु जायते आविर्भवतीति प्रत्यगक्षजः । सरस्वत्या नद्या परिश्रितात्परिवेष्टितात् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

जब योगी अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों की ओर से निरुद्ध करके उन सबों को अन्तर्मुखी बना लेता है तो उसी को श्रीभगवान् दर्शन देते हैं । वे भगवान् कर्दम महर्षि को इस तरह से आदेश देकर सरस्वती नदी से घिरा हुआ जो उनका आश्रम विन्दुसरोवर था उससे वे अपने लोक में चले गये ॥३३॥

निरीक्षतस्तस्य ययावशेषसिद्धेश्वराभिष्टुतसिद्धमार्गः ।
आकर्णयन्पत्ररथेन्द्रपक्षैरुच्चारितं स्तोममुदीर्णसाम् ॥३४॥

अन्वयः— तस्य निरीक्षतः अशेषसिद्धेश्वराभिष्टुतसिद्धमार्गः, पत्ररथेन्द्रपक्षैः उदीर्णम् साम आकर्णयन् उच्चरितं स्तोमं च शृण्वन् ययौ ॥३४॥

अनुवाद— महर्षि कर्दम के देखते ही देखते सभी सिद्धेश्वरों से प्रशंसित वैकुण्ठ मार्ग श्रीभगवान् गरुडजी के पङ्खों से अभिव्यक्त होने वाले साम तथा उच्चारण किए जाने वाले साम की आधारभूत ऋचाओं (स्तोम) को सुनते हुए अपने लोक में चले गये ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

अशेषैस्तपोमन्त्रादिसिद्धेश्वरैरभिष्टुतः सिद्धमार्गो वैकुण्ठमार्गो यस्य । यद्वा अशेषसिद्धेश्वराभिष्टुतश्चासो सिद्धैर्मृग्यत इति सिद्धमार्गश्च स ययौ । पत्ररथेन्द्रो गरुडस्तस्य पक्षैरुदीर्णमभिव्यक्तं साम आकर्णयन्, 'बृहद्रथन्तरे पक्षौ' इति श्रुतेः । उच्चारितं स्तोमं च सामाधारभूतानामृचां समुदायं शृण्वन् । **स्तोम आत्मा**' इति श्रुतेः । समासपाठे स्तोमः स्तोत्रीयसमुदायो यस्य साम्न इति ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

सभी तपस्याओं और मन्त्रों से तथा सिद्धेश्वरों से प्रशंसित है श्रीभगवान् का वैकुण्ठ मार्ग अथवा **अशेष सिद्धेश्वराभिष्टुत सिद्धमार्गः** पद का अर्थ है सभी सिद्धेश्वरों से प्रशंसित तथा जिनका सिद्धजन अन्वेषण किया करते है ऐसे श्रीभगवान् अपने लोक में चले गये । उनके जाने के प्रकार को बतलाते हुए कहते हैं— गरुडजी के पङ्खों से अभिव्यक्त होने वाले सामों का श्रवण करते हुए गये श्रुति भी कहती हैं- **बृहद्रथन्तरे पक्षौ** । गरुड़ के बृहत्साम और रथन्तर साम ये दोनों पङ्ख हैं । सामों के आधार भूत ऋचाओं का समुदाय ही उच्चरितस्तोम है । उसको सुनते हुए श्रीभगवान् अपने लोक में चले गये । श्रुति भी कहती है **स्तोम आत्मा** स्तोम ही सामों की आत्मा है । **उच्चरितस्तोम** यह पाठ होने पर अर्थ होगा स्तोत्रीय समुदाय जिस साम का उच्चरित है ॥३४॥

अथ संप्रस्थिते शुक्ले कर्दमो भगवानृषिः । आस्ते स्म बिन्दुसरसि तं कालं प्रतिपालयन् ॥३५॥

अन्वयः— अथ शुक्ले संप्रस्थिते भगवान् कर्दमः ऋषि तं कालं प्रतिपालयन् विन्दुसरसि आस्ते स्म ॥३५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के चले जाने पर भगवान् कर्दम ऋषि श्रीभगवान् के द्वारा निर्दिष्ट समय की प्रतीक्षा करते हुए विन्दु सरोवर पर ठहरे रहे ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

तं कालं परश्व इत्युक्तं प्रतीक्षमाणः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने जो कहा था कि परसों दिन वे अपनी पुत्री को लेकर आयेंगे उस काल की प्रतीक्षा कर्दम महर्षि करते रहे ॥३५॥

मनुः स्यन्दनमास्थाय शातकौम्भपरिच्छदम् । आरोप्य स्वां दुहितरं सभार्यः पर्यटन्महीम् ॥३६॥
तस्मिन्सुधन्वन्नहनि भगवान्यत्समादिशत् । उपायादाश्रमपदं मुनेः शान्तव्रतस्य तत् ॥३७॥

अन्वयः— हे सुधन्वन् मनुः शातकौम्भपरिच्छदम् स्यन्दनम् सभार्यः आस्थाय स्वां दुहितरं आरोप्य महीम् पर्यटन् भगवान् यत् समादिशत् तस्मिन् अहनि, शान्तव्रतस्य मुनेः तत् आश्रमपदम् उपायात् ॥३६-३७॥

अनुवाद— हे सुन्दरधनुष धारण करने वाले विदुरजी ! स्वायम्भुव मनु सुवर्णजटित रथ पर अपनी पत्नी के साथ बैठकर और उस पर अपनी पुत्री को बैठाकर वरका अन्वेषण करने के लिए पृथिवी पर भ्रमण करते हुए जो दिन भगवान् बतलाये थे उसीदिन शान्ति परायण महर्षि कर्दम के उस आश्रम में आये ॥३६-३७॥

भावार्थ दीपिका

शातकौम्भाः सौवर्णाः परिकरा यस्मिंस्तं रथमास्थाय दुहितरं चारोप्य वरान्वेषणार्थं पर्यटन् । हे सुधन्वन्विदुर । यदहः ॥३६-३७॥

भाव प्रकाशिका

हे विदुरजी सुवर्ण जटित रथ पर अपनी पत्नी के साथ अपनी पुत्री को बैठाकर वर का अन्वेषण करने के लिए पृथिवी पर पर्यटन करते हुए महाराज मनु जिस दिन को भगवान् बतलाये थे उसी दिन उन शान्ति परायण कर्दम महर्षि के आश्रम में प्रवेश किए ॥३६-३७॥

यस्मिन्भगवतो नेत्रान्न्यपतन्नश्रुबिन्दवः । कृपया संपरीतस्य प्रपन्नेऽर्पितया भृशम् ॥३८॥
तद्वै बिन्दुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतम् । पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् ॥३९॥

अन्वयः— यस्मिन् प्रपन्ने कृपया भृशम् सम्परीतस्य भगवतः नेत्रात् अश्रुबिन्दः न्यपतन् तद्वै सरस्वत्याः जलप्लुतम् पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् विन्दुसरो नाम ॥३८-३९॥

अनुवाद— जहाँ पर अपने शरणागत भक्त कर्दम महर्षि के प्रति उत्पन्न हुयी अत्यन्त करुणा के कारण श्रीभगवान् के नेत्रों से आँसुओं की बूँदें गिर पड़ी वह सरस्वती नदी के जल से भरा हुआ अत्यन्त पवित्र तथा कल्याणकारी जल वाला तथा महर्षियों के समूह से सेवित है वही विन्दु सरोवर है ॥३८-३९॥

भावार्थ दीपिका

तत्प्रवेशमात्रेण परमानन्दं प्राप्त इति दर्शयितुमाश्रमं वर्णयति-यस्मिन्नित्यादिभिः सप्तभिः श्लोकैः । प्रपन्ने कर्दमे । शिवमारोग्यममृतवत्स्वादु जलं यस्मिन् ॥३८-३९॥

भाव प्रकाशिका

उस आश्रम में प्रवेश करने मात्र से महाराज मनु को परमानन्द की प्राप्ति हुयी इस बात को बतलाने के लिए **यस्मिन् इत्यादि** सात श्लोकों के द्वारा पहले आश्रम का वर्णन करते हुए मैत्रेय महर्षि कहते हैं— प्रपन्न शब्द से शरणागत कर्दम महर्षि को कहा गया है । उस विन्दुसरोवर का जल आरोग्य प्रदान करने वाला तथा अमृत के समान स्वादिष्ट था ।।३८-३९।।

पुण्यद्रुमलताजालैः कूजत्पुण्यमृगद्विजैः । सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं वनराजिश्रियान्वितम् ।।४०।।

अन्वयः— कूजत्पुण्यमृगद्विजैः पुण्यद्रुमलताजालैःसर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं वनराजिश्रियान्वितम् ।।४०।।

अनुवाद— पवित्र मृगों और पक्षियों की ध्वनि से ध्वनित पवित्र वृक्षों और लताओं के समूह से युक्त सभी ऋतुओं के पुष्पों और फलों से सम्पन्न वह आश्रम वनपंक्ति की शोभा से समन्वित था ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

कूजन्तः पुण्या मृगा द्विजाश्च येषु तैः पुण्यद्रुमलतानां जालैः समूहैर्युक्तम् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

उस आश्रम में पवित्र पशु पक्षियों की ध्वनि सुनायी पड़ती थी । तथा वह आश्रम पवित्र वृक्षों और लताओं के समूह से युक्त था ।।४०।।

मत्तद्विजगणैर्घृष्टं मत्तभ्रमरविभ्रमम् । मत्तबर्हिनटाटोपमाह्वयन्मत्तकोकिलम् ।।४१।।

अन्वयः— मत्तद्विजगणैः धुष्टम् मत्तभ्रमरविभ्रमम्, मत्तबर्हिनटाटोपम् मत्तकोकिलम् आह्वयन् ।।४१।।

अनुवाद— उस आश्रम में मत्त पक्षियों का समूह बोल रहा था, मतवाले भँवरे मँडरा रहे थे, मदमत्त मयूर अपने पङ्खों को फैलाकर नट की भाँति नाच रहे थे और मतवाली कोयलें अपनी कुहू-कुहू की ध्वनि से एक दूसरे को बुला रही थीं ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

धुष्टं नादितम् । मत्तभ्रमराणां विभ्रमो विनोदो यस्मिन् । मत्ता बर्हिण एव नटास्तेषामाटोपो नृत्यसंभ्रमो यस्मिन् । आह्वयन्तो मिथो मत्ताः कोकिला यस्मिन् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

वह आश्रम मतवाले पक्षियों की ध्वनि से निनादित था, उसमें मतवाले भौंरें मंडरा रहे थे, मदमत्त मयूर नट के समान नृत्य कर रहे थे, कोयलें अपनी मधुर ध्वनि से एक दूसरे को मानों बुला रही थीं ।।४१।।

कदम्बचम्पकाशोककरञ्जबकुलासनैः । कुन्दमन्दारकुटजैश्चूतपोतैरलंकृतम् ।।४२।।

अन्वयः— कदम्बचम्पकाशोकः करञ्ज बकुल असनैः कुन्दमन्दारकुटजैः चूतपोतैः अलंकृतम् ।।४२।।

अनुवाद— वह आश्रम कदम्ब, चम्पा, अशोक, करञ्ज, बकुल, असन, कुन्द, मन्दार तथा कूट आदि फूलों के वृक्षों से तथा छोटे-छोटे आमों के पैधों से अलंकृत था ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

कदम्बादिभिर्वृक्षैरलंकृतम् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

वह आश्रम कदम्ब आदि पुष्पों के वृक्षों से सुशोभित था ।।४२।।

कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कुररैर्जलकुक्कुटैः । सारसैश्चक्रवाकैश्च चकोरैर्वल्गुकूजितम् ॥४३॥

अन्वयः— कारण्डवैः प्लवैः हंसैः कुररैः जलकुक्कुटैः, सारसैः चक्रवाकैः च चकोरैः वल्गुकूजितम् ॥४३॥

अनुवाद— वह आश्रम जलकाग, बत्तख, आदि जल पर तैरने वाले पक्षी, हंस, कुरर, जलमूर्ग सारस, चकवा, और चकोर नामक पक्षियों की मधुर ध्वनि से कूजित था ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

कारण्डवादिभिः पक्षिभिर्वल्गु यथा तथा कूजितम् ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

वह कारण्डव आदि पक्षियों की मधुर ध्वनि से कूजित था ॥४३॥

तथैव हरिणैः क्रोडैः श्वाविद्गवयकुञ्जरैः । गोपुच्छैर्हरिभिर्मर्कैर्नकुलैर्नाभिभिर्वृतम् ॥४४॥

अन्वयः— तथैव हरिणैः, क्रोडैः, श्वाविद्, गवयकुञ्जरैः, गोपुच्छैः, हरिभिः मर्कैः, नकुलैः नाभिभिः वृतम् ॥४४॥

अनुवाद— वह आश्रम, हरिण, सूकर, स्याही, नीलगाय, हाथी, लङ्गूर, सिंह, वानर, नेवले और कस्तूरी मृग आदि पशुओं से घिरा था ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

हरिणादिभिर्वृतम् । तत्र क्रोडः सूकरः । श्वाविच्छल्लकः । मर्को मर्कटः । तद्विशेषो गोपुच्छः । हरिर्वानरः सिंहो वा। नाभिः कस्तूरीमृगः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

वह आश्रम हरिण इत्यादि से घिरा था । क्रोड अर्थात् सूकर, श्वाविद् अर्थात् स्याही, मर्क यानी वन्दर । गोपुछ, लङ्गूर यह बन्दरों की एक जाति है, उसकी पूंछ लम्बी होती है । हरि शब्द वानर और सिंह दोनों का वाचक है । नाभि अर्थात् कस्तूरी मृग ॥४४॥

प्रविश्य तत्तीर्थवरमादिराजः सहात्मजः । ददर्श मुनिमासीनं तस्मिन्हुतहुताशनम् ॥४५॥

अन्वयः— आदिराजः सहात्मजः तत्तीर्थ वरम् प्रविश्य तस्मिन् हुतहुताशनम् आसीनम् मुनिम् ददर्श ॥४५॥

अनुवाद— आदिराज महाराज मनु उस श्रेष्ठ तीर्थ में अपनी पुत्री के साथ प्रवेश करके, अग्नि में होम करके बैठे हुए कर्दम मुनि को देखे ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

हुतो हुताशनो ब्रह्मचारियोग्यो येन ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मचारी के लिए जिस प्रकार का अग्निहोत्र विहित है उस प्रकार का अग्निहोत्र करके महर्षि कर्दम बैठे थे ॥४५॥

विद्योतमानं वपुषा तपस्युग्रयुजा चिरम् । नातिक्षामं भगवतः स्निग्धापाङ्गवलोकनात् ॥
तद्व्याहृतामृतकलापीयूषश्रवणेन च ॥४६॥

अन्वयः— चिरम् तपसि उग्रजा वपुषा विद्योतमानम्, भगवतः स्निग्धापांगावलोकनात् तद्व्याहृतामृत कलापीयूष श्रवणेन च नातिक्षामं (मुनिददर्श) ॥४६॥

अनुवाद— दीर्घकाल तक उग्र तपस्या करने के कारण वे अपने शरीर से तेजस्वी दिखायी पड़ते थे,

श्रीभगवान् के स्नेह पूर्ण अवलोकन के दर्शन तथा उनके द्वारा उच्चारण किए गये कर्णामृत रूप सुमधुर वचनों के सुनने से दीर्घकाल तक तपस्या करने पर भी उनका शरीर अधिक दुर्बल नहीं प्रतीत होता था ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

उग्रा युक् योगो यस्य तेन वपुषा विद्योतमानम् । तस्य भगवतो व्याहृतं भाषणमेवामृतकला अमृतमयस्य चन्द्रस्य कला तन्मयं पीयूषं तस्य श्रवणेन च नातिक्षामं तपसा कृशं सन्तमप्यकृशम् ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

बहुत दिनों तक उग्र तपस्या करने के कारण उनका शरीर देदीप्यमान (चमक रहा) था । श्रीभगवान् की वाणी ही अमृतकला अर्थात अमृतमय चन्द्रमा की कला हैं । उस अमृतमय श्रीभगवान की वाणी का श्रवण करने के कारण महर्षि का शरीर यद्यपि कृश हो गया था फिर भी वह कृश नहीं प्रतीत हो रहा था । ऐसे महर्षि कर्दम को स्वयम्भुव मनु ने देखा ।।४६।।

प्रांशुं पद्मपलाशाक्षं जटिलं चीरवाससम् । उपसंसृत्य मलिनं यथार्हणमसंस्कृतम् ।।४७।।

अन्वयः— प्रांशुं पद्मपलशाक्षम् जटिलं, चीरवाससम्, मलिनं यथार्हणम् असंस्कृतम् उपसंसृत्य ।।४७।।

अनुवाद— लम्बे शरीर वाले, कमल दल के समान मनोज्ञ नेत्रों वाले, जटा धारण किए हुए, चीर वस्त्र धारण किए हए तथा निकट में जाकर देखने से विना शाण पर चढी हुयी मणि के समान वे मलिन दिख रहे थे ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

प्रांशुमुन्नतम् । उपसंसृत्य समीपं गत्वा मलिनं ददर्शेति पूर्वैव क्रिया । अर्ह्यतेऽनेनेत्यर्हणं महारत्नं तदसंस्कृतमनिर्णिक्तं यथा मलिनं दृश्यते तद्वत् ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि का शरीर लम्बा था, उन महर्षि के सन्निकट में जाकर स्वायम्भुव मनु ने उनको मलिन देखा । जो संस्कार करने के योग्य हो ऐसे महारत्न संस्कार रहित तथा बिना शाण पर चढायी गयी मणि जिस तरह मलिन दिखती है, उसी तरह महर्षि कर्दम को महाराज मनु ने देखा ।।४७।।

अथोटजमुपायातं नृदेवं प्रणतं पुरः । सपर्यया पर्यगृह्णात्प्रतिनन्द्यानुरूपया ।।४८।।

अन्वयः— अथ उटजम् उपायातम् पुरः प्रणतं नृदेवं प्रतिनन्द्य, अनुरूपया सपर्यया पर्यगृह्णात् ।।४८।।

अनुवाद— उसके पश्चात् झोपड़ी में आकर सामने प्रणाम करते हुए राजा स्वायम्भुव मनु को महर्षि कर्दम ने आशीर्वाद से प्रसन्न करके उनका आतिथ्य विधि से यथोचित सत्कार किया ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

उटजं पर्णशालां प्राप्तं पुरः पादसमीपे प्रणतमाशीर्भिरभिनन्द्य सपर्यया पूजया प्रत्यगृह्णात्सत्कृतवान् ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

पर्णशाला में आकर पैरों के सामने प्रणाम करने वाले राजा स्वायम्भुव मनु को आशीर्वाद के द्वारा प्रसन्न करके महर्षि कर्दम ने उनकी अतिथि विधि से पूजा करके उनका सत्कार किया ।।४८।।

गृहीतार्हणमासीनं संयतं प्रीणयन्मुनिः । स्मरन्भगवदादेशमित्याह श्लक्ष्णया गिरा ॥४९॥

अन्वयः— गृहीतार्हणम् आसीनं भगवदादेशं स्मरन् मुनिः । संयतं तं श्लक्षणया गिरा प्रीणयन् इत्याह ॥४९॥

अनुवाद— पूजा ग्रहण करने के पश्चात् राजा के आसन पर बैठ जाने पर भी भगवान् के आदेश का स्मरण करते हुए मुनि राजा को प्रसन्न करते हुए इस तरह से कहे ॥४९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥४९॥

नूनं चंक्रमणं देव सतां संरक्षणाय ते । वधाय चासतां यस्त्वं हरेः शक्तिर्हि पालिनी ॥५०॥

अन्वयः— हे देव त्वं हरेः हि पालिनी शक्तिः । ते चंकमणम् सतां संरक्षणाय असतां बधाय च ॥५०॥

अनुवाद— हे महाराज ! आप श्रीहरि की पालन करने वाली शक्ति हैं । अतएव आपका पर्यटन सत्पुरुषों की संरक्षा के लिए और दुष्टों का वध करने के लिए होता है ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

ते चंक्रमणं पर्यटनम् । हि यस्मात् ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

आप पृथिवी पर पर्यटन दो कारणों से करते हैं- १. सत्पुरुषों की संरक्षा और दुष्टों का विनाश करने के लिए, क्योंकि आप भगवान् विष्णु की पालन करने वाली शक्ति स्वरूप हैं ॥५०॥

योऽर्केन्द्वग्नीन्द्रवायूनां यमधर्मप्रचेतसाम् । रूपाणि स्थान आधत्से तस्मै शुक्लाय ते नमः ॥५१॥

अन्वयः— अर्केन्द्वग्नीन्द्रवायूनां यमधर्मप्रचेतसाम् रूपाणि यः स्थाने आधत्से तस्मै शुक्लाय ते नमः ॥५१॥

अनुवाद— जो आप भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्र, वायु, यम, धर्म तथा वरुण आदि का रूप धारण करते हैं ऐसे साक्षात् विष्णु स्वरूप आप को नमस्कार है ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

मनुस्त विष्णुं प्रणमति-य इति । स्थाने तत्तत्कार्यावसरे शुक्लाय विष्णवे ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

महाराज मनु में विद्यमान भगवान् विष्णु को प्रणाम करते हुए महर्षि कर्दम कहते हैं । स्थाने कहने का अभिप्राय है कि विभिन्न कार्यों को करने के समय में आप ही सूर्य चन्द्रमा, अग्नि तथा इन्द्र आदि का रूप धारण करते हैं, शुक्ल शब्द का अर्थ भगवान् विष्णु है अर्थात् विष्णु स्वरूप आपको मेरा नमस्कार है ॥५१॥

न यदा रथमास्थाय जैत्रं मणिगणार्पितम् । विस्फूर्जच्चण्डकोदण्डो रथेन त्रासयन्नघान् ॥५२॥
स्वसैन्यचरणक्षुण्णं वेपयन्मण्डलं भुवः । विकर्षन्बृहतीं सेनां पर्यटस्यंशुमानिव ॥५३॥

अन्वयः— यदा मणिगणर्पितं जैत्रं रथम् आस्थाय विस्फूर्जच्चण्डकोदण्डः रथेन अधान् त्रासयन् स्वसैन्य चरण क्षुण्णं भुवः मण्डलं वेपयन् बृहतीं सेनां विकर्षयन् अंशुमान् इव न पर्यटसि ॥५२-५३॥

अनुवाद— हे राजन् यदि आप मणिगण जटित जैत्र (विजयप्रद) रथ पर बैठकर अपने प्रचण्ड धनुष का टङ्कार करते हुए तथा रथ की घर्घरध्वनि से पापियों को भयभीत करते हुए और अपनी सेना के पैरों से रौंदे हुए भूण्डल को कँपाते हुए, अपनी विशाल सेना के साथ सूर्य के समान नहीं विचरण करें तो यह लोक विनष्ट हो जायेगा ॥५२-५३॥

भावार्थ दीपिका

न यदेति पञ्चानामयमर्थः- यद्यपि धर्मरक्षार्थं सर्वतः पर्यटतस्तव प्रसङ्गादप्यागमनं संभवति तथापि विशेषकार्यं चेदस्ति तत्कथ्यतामिति । जैत्रं जयप्रदं मणिगणा अर्पिता यस्मिंस्तं रथमारुह्य त्वं यदा भुवो मण्डलं न पर्यटसि तदा सेतवो भिद्येरन्निति त्रयाणामन्वयः । विस्फूर्जन्नादं कुर्वच्चण्डं कोदण्डं धनुर्यस्य । स्वसैन्यस्य चरणैः क्षुण्णं सङ्घट्टितम् ।।५२-५३।।

भाव प्रकाशिका

न यदा इत्यादि पाँच श्लोकों का यह अर्थ है कि यद्यपि धर्म की रक्षा के प्रसङ्ग में सर्वत्र भ्रमण करने वाले आपका उसी प्रसङ्ग में आगमन सम्भव है, फिर भी यदि आपका कोई विशेष कार्य हो तो उसे आप बतलायें। श्लोकार्थ इस प्रकार है मणिसमूहजटित विजय प्रद रथ पर सवार होकर यदि आप भूमण्डल पर भ्रमण नहीं करें तो फिर अनेक प्रकार की मर्यादायें विनष्ट हो जायेंगी । इस तरह से तीनों श्लोकों का अन्वय है । टङ्कार करने वाला आपका धनुष प्रचण्ड है । अपनी सेना के चरणों से मर्दित पृथिवी को कँपाते हुए विशाल सेना के साथ आप यदि भ्रमण न करें तो अनेक मर्यादाएँ विनष्ट हो जायेंगी ।।५२-५३।।

तदैव सेतवः सर्वे वर्णाश्रमनिबन्धनाः । भगवद्रचिता राजन् भिद्येरन्बत दस्युभिः ।।५४।।
अधर्मश्च समेधेत लोलुपैर्व्यङ्कुशैर्नृभिः । शयाने त्वयि लोकोऽयं दस्युग्रस्तो विनंक्ष्यति ।।५५।।

अन्वयः— तदैव वर्णाश्रम निबन्धनाः सर्वे भगवद् रचिताः सेतवः बत दस्युभिः भिद्येरन् । लोलुपैः व्यङ्कुशैः नृभिः अधर्मश्च समेधेत । त्वयि शयाने दस्युग्रस्तः अयं लोकः विनंक्ष्यति ।।५४-५५।।

अनुवाद— यदि आप पृथिवी पर न भ्रमण करें तो उसी समय श्रीभगवान् के द्वारा निर्मित वर्णों एवं आश्रमों की मार्यादओं को चोर डाकू विनष्ट कर देंगे । लोलुप तथा निरङ्कुश मनुष्यों द्वारा अधर्म बढने लग जायेगा । यदि आप संसार की ओर से निश्चिन्त हो जायँ तो यह लोक विनष्ट हो जायेगा ।।५४-५५।।

भावार्थ दीपिका

वर्णाश्रमाणां निबन्धनं यैः । बत अहो । निरङ्कुशैर्नृभिर्निमित्तभूतैः । शयाने निश्चिन्ते ।।५४-५५।।

भाव प्रकाशिका

आपके पृथिवी पर नहीं भ्रमण करने पर सभी वर्णों एवं आश्रमों के जो नियम बने हैं वे भगवद्रचित मर्यादायें ही विनष्ट हो जायेंगी । जगत् की ओर से आपके निश्चिन्त हो जाने पर निरङ्कुश और लोलुप मनुष्यों के द्वारा अधर्म समृद्ध हो जायेगा ।।५४-५५।।

अथापि पृच्छे त्वां वीर यदर्थं त्वमिहागतः । तद्वयं निर्व्यलीकेन प्रतिपद्यामहे हृदा ।।५६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे एकविंशतितमोऽध्यायः ।।२१।।

अन्वयः— अथापि हे वीर त्वां पृच्छे यदर्थं त्वमिहागतः तद्वयं निर्व्यलीकेन हृदा प्रतिपद्यामहे ।।५६।।

अनुवाद— फिर भी हे वीर मैं आपसे यह पूछता हूँ कि इस समय आपका आगमन किस प्रयोजन से हुआ है । आपकी आज्ञा का पालन मैं निष्कपट भाव से करूँगा ।।५६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तृतीयस्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचर्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

निर्व्यलीकेन सहर्षेण । प्रतिपद्यामहे स्वीकुर्महे ।।५६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकविंशतितमोऽध्यायः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

निर्व्यलीकेन पद का अर्थ है हर्षपूर्वक प्रतिपद्यमहे अर्थात् हम स्वीकार करते हैं ।।५६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के इक्कीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।२१।।

बाइसवाँ अध्याय

देवहूति के साथ कर्दम प्रजापति का विवाह

मैत्रेय उवाच

एवमाविष्कृताशेषगुणकर्मोदयो मुनिम् । सव्रीड इव तं सम्राडुपारतमुवाच ह ॥१॥

अन्वयः— एवम् आविष्कृताशेष गुणकर्मोदयः सम्राट् सव्रीड इव उपारतं तं मुनिम् उवाच ॥१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— विदुरजी ! इस प्रकार से जब कर्दम महर्षि ने मनुजी के समस्त गुणों और कर्मों की प्रशंसा की तो सम्राट् कुछ लज्जित सा होते हुए निवृत्तिपरायण मुनि कर्दम से कहे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वाविंशे कर्दमायादाद्यथादिष्टं हि विष्णुना । मनुर्दुहितरं देवहूतिमित्युपवर्ण्यते ॥१॥ एवमाविष्कृतोऽभिष्टुताऽशेषाणां गुणानां कर्मणां चोदय उत्कर्षो यस्य स सम्राण्मनुः । सव्रीड इव स्वकीर्तिश्रवणात्, प्रत्याख्यानशङ्कया वा तं मुनिमुवाच । उपारतं निवृत्तिनिरतम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बाइसवें अध्याय में महर्षि कर्दम को भगवान् विष्णु के आदेशानुसार मनुजी ने अपनी पुत्री को प्रदान किया उसी का वर्णन किया गया है ॥१॥ **एवमविष्कृता० इत्यादि-** इस तरह जिन सम्राट के समस्त गुणों तथा कर्मों के उत्कर्ष का वर्णन किया जा चुका था वे सम्राट् मनु अपनी कीर्ति को सुनने के कारण कुछ लज्जित से होते हुए निवृत्तिपरायण मुनि कर्दम से कहे । लज्जित से इसलिए हुए कि निवृत्ति परायण मुनि कर्दम से कह रहे हैं। लज्जित से वे इसलिए हो रहे थे कि मुनि उनके आग्रह का कहीं प्रत्याख्यान न कर दें ॥१॥

मनुरुवाच

ब्रह्मासृजत्स्वमुखतो युष्मानात्मपरीप्सया । छन्दोमयस्तपोविद्यायोगयुक्तानलम्पटान् ॥२॥

अन्वयः— आत्मपरीप्सया, छन्दोमयः ब्रह्मा स्वमुखतः तपोविद्यायोगयुक्तान् अलम्पटान् युष्मान् असृजत् ॥२॥

मुनियों ने कहा

अनुवाद— हे मुने ! वेदमूर्ति ब्रह्माजी ने अपने वेदमय विग्रह की रक्षा के लिए तपस्या, क्रिया और योग से युक्त तथा विषयों से अनासक्त रहने वाले आप ब्राह्मणों की अपने मुख से सृष्टि की ॥२॥

भावार्थ दीपिका

मदीया कन्या त्वयापरिणेयेति विज्ञापयिष्यन् युष्मदस्मत्संबन्धस्तावदीश्वरेण पूर्वमेव घटित इत्याह-ब्रह्मेति सार्धाभ्याम्। आत्मनः परीप्सया पर्याप्तुमिच्छया । छन्दोमयस्यात्मनः पर्याप्तिः पालनं वेदप्रवर्तन तस्येच्छया । युष्मान् ब्राह्मणान् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

आप मेरी पुत्री के साथ विवाह करें इस बात को कहने की इच्छा से आपलोगों तथा हमलोगों के सम्बन्ध को परमात्मा ने पहले से ही बना रखा हैं इस बात को **ब्रह्मा० इत्यादि** डेढ श्लोकों से मनु ने कहा । **आत्म परीप्सया** का अर्थ है अपने शरीर की रक्षा की इच्छा से । छन्दोमय शरीर की रक्षा वेदों का प्रवर्तन है । उसकी इच्छा से ब्रह्माजी ने आप ब्राह्मणों को अपने मुख से प्रकट किया है ।।२।।

तत्त्राणायासृजच्चास्मान्दोःसहस्रात्सहस्रपात् । हृदयं तस्य हि ब्रह्म क्षत्रमङ्गं प्रचक्षते ।।३।।

अन्वयः— तत् त्राणाय च अस्मान् सहस्रपात् दोः सहस्रात् असृजत् । तस्य हि हृदयम् ब्रह्म, क्षत्रम् अङ्गं प्रचक्षते ।।३।।

अनुवाद— उस हजारों चरणों वाले विराट् पुरुष ने आपलोगों की ही रक्षा के लिए हम क्षत्रियों को अपनी हजारों भुजाओं से उत्पन्न किया । इसलिए ब्राह्मण को उनका हृदय और क्षत्रिय को विराट पुरुष का शरीर कहा जाता है ।।३।।

भावार्थ दीपिका

तत्त्राणाय ब्राह्मणपालनाय । ब्रह्म ब्राह्मणजातिः । क्षत्रं क्षत्रियजातिः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों की रक्षा करने के लिए विराट् पुरुष ने हम क्षत्रियों की सृष्टि की है । इसीलिए ब्राह्मण को विराट् पुरुष का हृदय और क्षत्रिय को उनका शरीर कहा जाता है । ब्रह्म शब्द ब्राह्मणजाति का और क्षत्र शब्द क्षत्रिय जति का वाचक है ।।३।।

अतो ह्यन्योन्यमात्मानं ब्रह्म क्षत्रं च रक्षतः । रक्षति स्माव्ययो देवः स यः सदसदात्मकः ।।४।।

अन्वयः— अतो हि ब्रह्म क्षत्रंच अन्योयं आत्मानं अव्ययो देवः रक्षतिस्म यः सदसदात्मकः ।।४।।

अनुवाद— एक ही शरीर से सम्बद्ध होने के कारण ब्राह्मण और क्षत्रिय और परस्पर में एक दूसरे की रक्षा करते हैं और उन दोनों की रक्षा निर्विकार ब्रह्म करते हैं जो सदसदात्मक अर्थात् कार्यकारण रूप हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

एवं स देव एव रक्षति स्म । कोऽसौ । यः सदसदात्मकः सर्वात्मकः । तथाप्यव्ययो निर्विकारः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह वे श्रीभगवान् ही रक्षा करते हैं जो कार्यकारण रूप तथा निर्विकार हैं ।।४।।

तव संदर्शनादेव च्छिन्ना मे सर्वसंशयाः । यत्स्वयं भगवान्प्रीत्या धर्ममाह रिरक्षिषोः ।।५।।

अन्वयः— तव दर्शनात् मे सर्वसंशयाः छिन्नाः यत् स्वयं भगवान् प्रीत्या रिरक्षिषोःधर्मम् आह ।।५।।

अनुवाद— आपके दर्शन से ही मेरे सारे संशय नष्ट हो गये क्योंकि आपने स्वयं रक्षा करने की इच्छा वाले मेरी प्रशंसा के माध्यम से धर्म का वर्णन किया है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तं विज्ञापयितुमेव तद्दर्शनादिकमभिनन्दति-तवेति त्रिभिः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

उसी को विज्ञापित करने के लिए महाराजमनु महर्षि कर्दम के दर्शन की प्रशंसा तीन श्लोकों से करते हैं ।।५।।

दिष्ट्या मे भगवान्दृष्टो दुर्दर्शो योऽकृतात्मनाम् । दिष्ट्या पादरजः स्पृष्टं शीर्ष्णा मे भवतः शिवम् ॥६॥

अन्वयः— अकृतात्मनाम् यो दुर्दर्शः भगवान् मे दिष्ट्या दृष्टः । दिष्ट्या मे भवतः शिवम् पादरजः शीर्ष्णा स्पृष्टम् ॥६॥

अनुवाद— जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं है ऐसे लोगों को आपका दर्शन नहीं होता है, मेरे सौभाग्यवशात् आपका दर्शन मुझे मिला है और भाग्य से ही मैं आपके चरणों की धूलि को अपने शिर पर चढा पाया हूँ ॥६॥

भावार्थ दीपिका

अकृतात्मनामवशीकृतचित्तानाम् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, यह अकृतात्मनाम् पद का अर्थ है ॥६॥

दिष्ट्या त्वयानुशिष्टोऽहं कृतश्चानुग्रहो महान् । अपावृतैः कर्णरन्ध्रैर्जुष्टा दिष्टयोशतीर्गिरः ॥७॥

अन्वयः— दिष्ट्या त्वया अहम् अनुशिष्टः महान् अनुग्रहः च कृतः दिष्ट्या अपावृतैः कर्णरन्ध्रैः उशतीः गिरः जुष्टाः॥७॥

अनुवाद— मेरे सौभाग्य से ही आपने मुझे राजधर्म का उपदेश दिया है, यह आपकी मुझ पर बहुत बड़ी कृपा है । अपने भाग्य के ही कारण मैंने आपकी कमनीय वाणी को अपना कान खोलकर सुना है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अनुग्रहोऽनुशासनादिरूप एव । उशतीरुशत्यः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

आपका यह अनुशासन (उपदेश स्वरूप) कृपा है । और मैंने भी आपके उपदेशों को कान खोलकर सुना है ॥७॥

स भवान्दुहितृस्नेहपरिक्लिष्टात्मनो मम । श्रोतुमर्हसि दीनस्य श्रावितं कृपया मुने ॥८॥

अन्वयः— हे मुने ! कृपया भवान् दुहितृस्नेहपरिक्लिष्टात्मनः मम दीनस्य श्रावितं श्रोतुमर्हसि ॥८॥

अनुवाद— हे मुने ! कृपा करके अपनी पुत्री के स्नेह के कारण चिन्ताग्रस्त मुझ दीन की बातों को आप सुनें ॥८॥

भावार्थ दीपिका

विज्ञापयति-स भवानिति सप्तभिः । दुहितुः स्नेहेन परिक्लिष्ट आत्मा यस्य । श्रावितं विज्ञापनम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

महाराज मनु **सभवान् इत्यादि** सात श्लोकों से अपनी बातों को बतलाते है । उन्होंने कहा कि पुत्री के प्रति स्नेह होने के कारण मेरा मन चिन्तित है । अतएव आप मेरी बातों को सुनें । श्रावितशब्द का अर्थ है विज्ञापन ॥८॥

प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसेयं दुहिता मम । अन्विच्छति पतिं युक्तं वयःशीलगुणादिभिः ॥९॥

अन्वयः— इयं मम दुहिता प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसा वयः शीलगुणादिभिः युक्तं पतिं अन्विच्छति ॥९॥

अनुवाद— यह मेरी कन्या प्रियव्रत और उत्तानपद की बहिन है, यह अवस्था गुण तथा शील आदि से युक्त पति को प्राप्त करना चाहती है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसेति पुत्रिकाकरणशङ्का निरस्ता । मम सुतेति क्षत्रकन्या तव योग्येति दर्शितम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

प्रियव्रत और उत्तानपाद की बहिन है यह कहकर मनुजी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इसको किसी से लेकर मैंने अपनी पुत्री नहीं बनाया है । मम सुता कहकर उन्होंने कहा कि यह क्षत्रिय जाति की मेरी पुत्री है अतएव यह आपके योग्य है ॥९॥

यदा तु भवतः शीलश्रुतरूपवयोगुणान् । अशृणोन्नारदादेषा त्वय्यासीत्कृतनिश्चया ॥१०॥

अन्वयः— यदा तु एषा नारदात् भवतः शीलश्रुतरूपवयोगुणान् अशृणोत् त्वयि कृत निश्चया आसीत् ॥१०॥

अनुवाद— जबसे इसने नारदजी के मुख से आपके शील, विद्या, रूप अवस्था आदि गुणों को सुना है तबसे इसने आपको ही अपना पति बनाने का निश्चय कर लिया है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

एषा देवहूतिः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

मूल के एषा पद के द्वारा दवहूति का निर्देश किया गया है ॥१०॥

तत्प्रतीच्छ द्विजाग्र्येमां श्रद्धयोपहृतां मया । सर्वात्मनाऽनुरूपां ते गृहमेधिषु कर्मसु ॥११॥

अन्वयः— हे द्विजाग्र्य मया श्रद्धया उपाहृताम् इमां ते गृहमेधिषु कर्मसु सर्वात्मनानुरूपां प्रतीच्छ ॥११॥

अनुवाद— हे ब्राह्मणवर्य ! मेरे द्वारा श्रद्धापूर्वक आपको समर्पित जो आपके सभी गृहस्थोचित कार्यों के लिए सर्वथा अनुकूल है, इसको आप स्वीकार करें ॥११॥

भावार्थ दीपिका

प्रतीच्छ स्वीकुरु ॥११॥

भाव प्रकाशिका

आप स्वीकार करें ॥११॥

उद्यतस्य हि कामस्य प्रतिवादो न शस्यते । अपि निर्मुक्तसङ्गस्य कामरक्तस्य किं पुनः ॥१२॥

अन्वयः— उद्यतस्य हि कामस्य निर्मुक्तसङ्गस्य अपि प्रतिवादः न शस्यते कामरक्तस्य पुनः किम् ?॥१२॥

अनुवाद— स्वतः प्राप्त भोग्य पदार्थ का परित्याग करना विरक्त पुरुष के लिए भी अच्छा नहीं माना जाता और जो विषयासक्त हो तो उसकी बात ही क्या है ?॥१२॥

भावार्थ दीपिका

उद्यतस्य स्वतःप्राप्तस्य विषयस्य । प्रतिवादः प्रत्याख्यानम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

स्वतः प्राप्त विषय का परित्याग करना विरक्त पुरुष के लिए भी अच्छा नहीं माना जाता है ॥१२॥

य उद्यतमनादृत्य कीनाशमभियाचते । क्षीयते तद्यशः स्फीतं मानश्चावज्ञया हतः ॥१३॥

अन्वयः— यः उद्यतम् अनादृत्य कीनाशम् अभिचायते तत् स्फीतं यश क्षीयते अवज्ञया मानश्च हतः ॥१३॥

अनुवाद— जो मनुष्य स्वतःप्राप्त भोग का निरादर करके किसी कृपण से उसकी याचना करता है, उसका फैला हुआ यश क्षीण हो जाता है और दूसरे के द्वारा किए गये अपमान के कारण उसका मान भङ्ग भी हो जाता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

कीनाशं कृपणम् । अवज्ञया परापमानेन ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

कीनाश शब्द कृपण का बोधक है और अवज्ञया पद का अर्थ हे दूसरे के द्वारा किए गये अपमान के द्वारा ।।१३।।

अहंत्वाऽश्रृणवं विद्वन्विवाहार्थं समुद्यतम् । अतस्त्वमुपकुर्वाणः प्रत्तां प्रति गृहाण मे ।।१४।।

अन्वयः— हे विद्वन् ! अहंत्वा विवाहार्थं समुद्यतं अश्रृण्वम् अतः त्वम् उपकुर्वाणः प्रतां मे प्रतिगृहाण ।।१४।।

अनुवाद— हे विद्वन् ! मैंने सुना है कि आप विवाह करने के लिए तैयार हैं अतएव उपकृत होने वाले आप मेरे द्वारा समर्पित की गयी इस कन्या को स्वीकार करें ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

यस्य सावधि ब्रह्मचर्य स उपकुर्वाणः । मे प्रत्तां मया दत्ताम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

जिसका ब्रह्मचर्य एक निश्चित समय तक के ही लिए होता है, वह उपकुर्वाण कहलाता है । मे प्रत्ताम् का अर्थ है मेरे द्वारा प्रदत्त । महाराज मनु ने कहा कि आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी नहीं है । एक समय सीमा तक ही आपको ब्रह्मचर्य का पालन करना है, अतएव आप उपकुर्वाण हैं । क्योंकि आप विवाह करने के लिए तैयार हैं, अतएव आप मेरे द्वारा समर्पित इस कन्या को स्वीकार करें ।।१४।।

ऋषिरुवाच

बाढमुद्वोढुकामोऽहमप्रत्ता च तवात्मजा । आवयोरनुरूपोऽसावाद्यो वैवाहिको विधिः ।।१५।।

अन्वयः— बाढम् अहम् उद्वोढुकामः तवात्मजा अप्रत्ता, असौ अनुरूपयोः आवयोः आद्यः वैवाहिकः विधिः ।।१५।।

कर्दम ऋषि ने कहा

अनुवाद— ठीक है, मैं विवाह करना चाहता हूँ और आपकी यह कन्या भी किसी को प्रदत्त नहीं है । अतएव यह हम एक दूसरे के अनुरूप हैं । हमदोनों का यह प्रथम वैवाहिक विधि हैं ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अप्रत्ता चेति मय्येव कृतनिश्चयत्वात्कस्मैचित्प्रति श्रुता च न भवतीत्यर्थः । आद्यः प्रथमः, ततः पूर्वं विवाहाभावात्। मुख्य इति वा ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

चूकि इसने पहले से ही मुझको अपना पति बना लिया था अतएव इसको अपने किसी दूसरे को प्रदान करने का वचन नहीं दिया है । अतएव यह हम दोनों का प्रथम वैवाहिक विधि है । क्योंकि इससे पहले विवाह होता ही नहीं था । अथवा यह हम दोनों का मुख्य विवाह है ।।१५।।

कामः स भूयान्नरदेव तेऽस्याः पुत्र्याः समाम्नायविधौ प्रतीतः ।
क एव ते तनयां नाद्रियेत स्वयैव कान्त्या क्षिपतीमिव श्रियम् ।।१६।।

अन्वयः— हे नरदेव सः समाम्नायविधौ प्रतीतः कामः अस्याःपुत्र्याः भूयात् स्वयैव कान्त्या श्रियम् क्षिपतीव ते तनयां क एव न आद्रियेत ।।१६।।

अनुवाद— हे राजन् ! वेदोक्त विवाह विधि में वर्णित जो काम है, वह सन्तनोत्पादन मनोरथ स्वरूप है। वह आपकी इस कन्या के साथ हमारा सम्बन्ध होने से सफल होगा। जो अपनी शरीर की कान्ति से भूषणों आदि की शोभा को तिरस्कृत करती है आपकी उस पुत्री का समादर कौन नहीं करेगा ?॥१६॥

भावार्थ दीपिका

भूयाद्भवेत् । प्रतीतः **'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या'** इत्यादिमन्त्रप्रसिद्धः । स्वयाङ्गकान्त्यैव । श्रियं भूषणादिशोभाम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

भूयात् का भवेत् के अर्थ में प्रयोग हुआ है । अर्थात् होना चाहिए । वेद के गृभ्णामि ते इत्यादि मन्त्र में जिस काम की प्रतीति होती है वह सन्तानोत्पादन मनोरथ स्वरूप है । आपकी पुत्री के साथ सम्बन्ध होने पर वह सफल होगा । आपकी पुत्री तो अपने अङ्गों की शोभा से भूषणों की भी कान्ति को तिरस्कृत करती है । इसका समादर कौन नहीं करेगा ?॥१६॥

या हर्म्यपृष्ठे क्वणदङ्घ्रिशोभां विक्रीडतीं कन्दुकविह्वलाक्षीम् ।
विश्वावसुर्न्यपतत्स्वाद्विमानाद्विलोक्य संमोहविमूढचेताः ॥१७॥

अन्वयः— हर्म्यपृष्ठे विक्रीडतीम् कन्दुकम् विह्वलाक्षीम्, क्वणदङ्घ्रिशोभां यां विलोक्य संमोहविमूढचेताः विश्वावसु स्वविमानात् न्यपतत् ॥१७॥

अनुवाद— अपने छत के ऊपर कन्दुक क्रीडा में संलग्न होने के कारण जिसके नेत्र चञ्चल हो गये थे और जिसके पैरों की पायल झनकार कर रहे थे, उसकी शोभा को देखकर मोहग्रस्त होकर विश्वावसु नामक गन्धर्व अपने विमान से गिर पड़ा था ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

यां विलोक्य न्यपतत् । संमोहेन विमूढं व्याकुलं चेतो यस्य । क्वणद्भ्यामङ्घ्रिभ्यां शोभा यस्याः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

आपकी पुत्री के पैरों में बजती हुयी पायल से भूषित पैरों की शोभा को देखकर विश्वावसु नामक गन्धर्व मोहग्रस्त होकर अपने विमान से गिर पड़ा । इसके शरीर की कान्ति भूषण की भी कान्ति को तिरस्कृत करने वाली है ॥१७॥

तां प्रार्थयन्तीं ललनाललाममसेवितश्रीचरणैरदृष्टाम् ।
वत्सां मनोरुच्चपदः स्वसारं को नानुमन्येत बुधोऽभियाताम् ॥१८॥

अन्वयः— तां प्रार्थयन्तीम् ललनाललामम् असेवितश्रीचरणैः अदृष्टाम् मनोः वत्सां उच्चपदः स्वसारम् अभियाताम् कः बुधः नानु मन्येत ॥१८॥

अनुवाद— उस चाहने वाली रमणिरत्न, जिसने श्रीदेवी के चरणों की सेवा नहीं की है, उनके लिए अदर्शनीय, आप महाराज मनु की पुत्री और उत्तानपाद की बहिन जो स्वयं यहाँ आयी हुयी है, ठसका कौन विज्ञ पुरुष समादर नहीं करेगा ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

तां ललनानां ललामं भूषणभूताम् । असेवितौ श्रियश्चरणौ यैस्तैरदृष्टां द्रष्टुमप्ययोग्याम् । उच्चपद उत्तानपादस्य । अभियातां स्वयं प्राप्ताम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

जो रमणियों को भी अलंकृत करने वाली है जिन लोगों ने श्रीदेवी के चरणों की सेवा नहीं की है वे लोग तो इसका दर्शन भी नहीं कर सकते है । जो आप की पुत्री है और उत्तानपाद की बहन है, साथ ही यहाँ स्वयम् आयी हुयी है, भला कौन ऐसा विज्ञ होगा जो उसका समादर न करे ॥१८॥

अतो भजिष्ये समयेन साध्वीं यावत्तेजो बिभृयादात्मनो मे ।
अतो धर्मान्पारमहंस्यमुख्यान् शुक्लप्रोक्तान्बहु मन्येऽविहिंस्रान् ॥१९॥

अन्वयः— अतः समयेन साध्वीं भजिष्ये । यावद् मे आत्मनो तेजः विभृयात् । अतः शुक्ल प्रोक्तान् अविहिंस्रान् पारमंहस्यमुख्यान् धर्मान् बहुमन्ये ॥१९॥

अनुवाद— मैं आपकी इस साध्वी पुत्री को अवश्य स्वीकार करूँगा, किन्तु एक शर्त के साथ । जब तक यह गर्भ धारण करेगी तब तक मैं इसके साथ गृहस्थधर्म के अनुसार रहूँगा । उसके पश्चात् स्वयं श्रीभगवान् से ही कहे गये हिंसारहित संन्यास प्रधान धर्मों का अधिक महत्व दूँगा ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

भजिष्ये स्वीकरिष्ये । यावदपत्योत्पत्तिस्तावद्गार्हस्थ्यं ततः परं संन्यासः इति भाषाबन्धः समयः । तमेवाह । यावदग्त्मनो मम तेजो गर्भं विभृयात् । यद्वा ममात्मनो देहाच्चयुतं तेजो वीर्यं बिभृयादिति । अतः परं पारमहंस्यं ज्ञानं तस्मिन्मुख्यान् शुक्लेन विष्णुना साक्षात्प्रकर्षेणोक्तानविहिंस्रान्हिंसारहितान् शमादीन्बहु यथाभवत्येवमनुष्ठेयान्मन्ये ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

कर्दम महर्षि ने महाराज मनु से कहा कि मैं आपकी पुत्री को स्वीकार करूँगा किन्तु एक शर्त के साथ । जब तक सन्तानोत्पत्ति होगी तब तक मैं गार्हस्थ्य का पालन करूँगा और उसके पश्चात् मैं संन्यास ग्रहण कर लूँगा। यही भाषाबन्ध शर्त है । उसी को महर्षि कर्दम ने कहा जब तक यह मेरे तेज को धारण करेगी । अथवा मेरे शरीर से निकले हुए वीर्य को गर्भ रूप में धारण करेगी तब तक मैं इसके साथ गार्हस्थ्य धर्म के अनुसार रहूँगा, उसके पश्चात् संन्यास प्रधान अर्थात् ज्ञान प्रधान तथा श्रीभगवान् के द्वारा उपदिष्ट हिंसा रहित शम दमादि आदि बहुत धर्म जिसमें अनुष्ठेय होते हैं उस संन्यास धर्म को मैं ग्रहण कर लूँगा ॥१९॥

यतोऽभवद्विश्वमिदं विचित्रं संस्थास्यते यत्र च वाव तिष्ठते ।
प्रजापतीनां पतिरेष मह्यं परं प्रमाणं भगवाननन्तः ॥२०॥

अन्वयः— यतः इदं विचित्रं विश्वम् अभवत् यत्र च संस्थास्यते यत्र च वाव तिष्ठते एष प्रजापतीनां पतिरेव च भगवान् अनन्त एव मह्यं परं प्रमाणम् ॥१९॥

अनुवाद— जिनसे यह विचित्र जगत् उत्पन्न हुआ है, जिनमें जाकर यह लीन हो जायेगा और जिनके आधार पर यह जगत् टिका है वे प्रजापतियों के भी पति श्रीभगवान् ही परम प्रमाण हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ननु तव पितुः प्रजापतेराज्ञा सृष्टावेव न संन्यासे तत्राह-यत इति । संस्थास्यते च लयं यास्यति । वावेति एवार्थे ऋणत्रयापाकरणानन्तरं संन्यास एव मादृशानां भगवतोक्त इत्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि आपके पिता प्रजापति की आज्ञा तो सृष्टि ही करने के लिए है संन्यास के लिए नहीं

यतोऽभवद० इत्यादि श्लोक से दिया गया है । यह विचित्र जगत् जिनके द्वारा सृष्ट है और

प्रलयकाल में यह जगत् जिनमें लीन हो जायेगा । वाव यह अव्यय निश्चयार्थक है । श्रीभगवान् ने हम जैसे जीवों को तीनों ऋणों का चुका लेने के पश्चात् संन्यास ही ग्रहण करने के लिए कहा है ।।२०।।

मैत्रेय उवाच

स उग्रधन्वन्नियदेवाबभाष आसीच्च तूष्णीमरविन्दनाभम् ।
धियोपगृह्णन्स्मितशोभितेन मुखेन चेतो लुलुभे देवहूत्याः ।।२१।।

अन्वयः— हे उग्रधन्वन् ! सः इयदेव आवभाषे धिया अरविन्दनाभम् उपगृह्णन् तुष्णीं च आसीत् । स्मितशोभितेन मुखेन द्वेवहुत्याः चेतो लुलुभे ।।२१।।

अनुवाद— हे प्रचण्ड धनुष धारण करने वाले विदुरजी ! महर्षि कर्दम केवल इतना ही कहे, फिर वे अपने हृदय में भगवान् पद्मनाभ का ध्यान करते हुए मौन हो गये । उनके मन्दमुस्कान युक्त मुख को देखकर देवहूति का मन लुभा गया ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

हे उग्रधन्वन्विदुर । लुलुभे मुनेर्मुखेन प्रलोभ्यते स्म । यद्वा मुखेन प्रलोभितवान् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

हे उग्रधनुषधारण करने वाले विदुरजी ! महर्षि कर्दम के मुख को देखकर देवहूति लुभा गयी । अथवा महर्षि ने अपने मुख से देवहूति को प्रलोभित किया ।।२१।।

सोऽनु ज्ञात्वा व्यवसितं महिष्या दुहितुः स्फुटम् । तस्मै गुणगणाढ्याय ददौ तुल्यां प्रहर्षितः ।।२२।।

अन्वयः— सः अनु महिष्याः दुहितुः च स्फुटम् व्यवसितं ज्ञात्वा, प्रहर्षितः तस्मै गुणगणाढ्याय तुल्यां प्रददौ ।।२२।।

अनुवाद— उसके पश्चात् वे महारानी और पुत्री दोनों की स्पष्ट अनुमति को जानकर अनेक गुण समूह से सम्पन्न महर्षि कर्दम को उन्होंन कर्दमजी के समान गुणों वाली प्रसन्नता पूर्वक कन्या का दान दे दिया ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

स मनुः । अन्वनन्तरम् । महिष्याश्च व्यवसितं निश्चयं ज्ञात्वा ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

वे मनु उसके पश्चात् महारानी के निश्चय को जानकर महर्षि को अपनी पुत्री का दान कर दिये ।।२२।।

शतरूपा महाराज्ञी पारिबर्हान्महाधनान् । दम्पत्योः पर्यदात्प्रीत्या भूषावासः परिच्छदान् ।।२३।।

अन्वयः— महाराज्ञी शतरूपा महाधनान् पारिवर्हान् भूषावासः परिच्छदान् दम्पत्योः प्रीत्या पर्यदात् ।।२३।।

अनुवाद— महारानी शतरूपा ने भी बहुमूल्य वस्त्र आभूषण तथा गृहस्थोचित गृह के उपकरणों को अपनी पुत्री तथा दामाद को प्रेमपूर्वक दहेज में दे दिया ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

परिबर्हान्विववाहकाले प्रदेयान् । भूषाः भूषणानि वासांसि परिच्छदान्गृहोपकरणानि च ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

महारानी शतरूपा ने विवाह के समय दिए जाने वाले वस्त्र, आभूषण तथा गृह के उपकरणों को अपनी पुत्री तथा दामाद को बड़े प्रेम से प्रदान किया ।।२३।।

प्रत्तां दुहितरं सम्राट् सदृक्षाय गतव्यथः । उपगुह्य च बाहुभ्यामौत्कण्ठ्योन्मथिताशयः ॥२४॥
अशक्नुवंस्तद्विरहं मुञ्चनबाष्पकलां मुहुः । आसिञ्चदम्ब वत्सेति नेत्रोदैर्दुहितुः शिखाः ॥२५॥

अन्वयः— सदृक्षाय प्रत्तां दुहितरं सम्राट् गतव्यथः औत्कण्ठयोन्मथिताशयः बाहुभ्याम् उपगुह्य तद् विरहम् अशक्नुवन् मुहुः वाष्पकलां मुंचन् अम्बवत्से इति नेत्रोदैः दुहितुः शिखाः असिंचत् ॥२४-२५॥

अनुवाद— योग्य वर को अपनी पुत्री को प्रदान करके महाराज मनु निश्चिन्त हो गये । चलते समय वियोग नहीं सह सकने के कारण उन्होंने पुत्री को अपनी छाती से लगा लिया, और हे अम्ब, हे वत्से इस तरह से कहकर बार-बार अपने आंसुओं को बहाते हुए आंसुओं से देवहूति के केशों का सींच दिये ॥२४-२५॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्तां दत्ताम् । सदृक्षाय सदृशाय । गता व्यथा चिन्ता यस्य । औत्कण्ठ्येनोन्मथितः क्षुभित आशयो यस्य । तस्या विरहं सोढुं हे अम्ब हे वत्से इति ब्रुवन् । सन्धिरार्षः । शिखाः केशानासिञ्चत् ॥२४-२५॥

भाव प्रकाशिका

योग्य वर को पुत्री को प्रदान करके महाराज मनु निश्चिन्त हो गये । वियोग के नही सकने के कारण व्याकुल चित्त वाले महाराज ने अपनी पुत्री को हृदय से लगा लिया और परस्पर में हे माँ, हे पुत्रि ! कहते हुए देवहूति के केशों को सींच दिये । वत्सेति में सन्धि आर्ष है ॥२४-२५॥

आमन्त्र्य तं मुनिवरमनुज्ञातः सहानुगः । प्रतस्थे रथमारुह्य सभार्यः स्वपुरं नृपः ॥२६॥
उभयोर्ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः सुरोधसोः । ऋषीणामुपशान्तानां पश्यन्नाश्रमसंपदः ॥२७॥

अन्वयः— तं मुनिवरम् आमन्त्र्य अनुज्ञातः सहानुगः समार्यः रथम् आरुह्य ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः उभयोः सुरोधसोः उपशान्तानां ऋषीणाम् आश्रमसम्पदः पश्यन् नृपः स्वपुरं प्रतस्थे ॥२६-२७॥

अनुवाद— मुनिश्रेष्ठ कर्दम महर्षि से पूछकर तथा उनसे आज्ञा प्राप्त करके अपने अनुचरों के साथ सपत्निक रथ पर बैठकर ऋषि कुल सेवित सरस्वती नदी के दोनों तटों पर विद्यमान शान्तिप्रधान ऋषियों के आश्रमों की शोभा को देखते हुए राजा अपने नगर के लिए प्रसथान किए ॥२६-२७॥

भावार्थ दीपिका

ऋषिकुलहितायाः उभयोः सुरोधसोः शोभनतटयो ॥२६-२७॥

भाव प्रकाशिका

ऋषिकुलों का कल्याण करने वाली सरस्वती नदी के सुन्दर तटों पर विद्यमान ऋषियों के आश्रमों की शोभा को देखते हुए अपने नगर के लिए प्रस्थान किए ॥२६-२७॥

तमायान्तमभिप्रेत्य ब्रह्मावर्तात्प्रजाः पतिम् । गीतसंस्तुतिवादित्रैः प्रत्युदीयुः प्रहर्षिताः ॥२८॥

अन्वयः— तमायान्तमभिप्रेत्य ब्रह्मावर्तात् प्रहर्षिताः प्रजाः पतिम् गीत संस्तुति वादित्रैः प्रत्युदीयुः ॥२८॥

अनुवाद— उनको आते हुए जानकर ब्रह्मावर्त की अत्यन्त प्रहर्षितप्रजा गीत स्तुति एवं वाद्यों के साथ आगे आकर उनकी अगवानी की ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अभिप्रेत्य ज्ञात्वा ब्रह्मावर्ताद्देशात्प्रजाः पतिं प्रत्युज्जग्मुः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

अपने आते हुए स्वामी को जानकर ब्रह्मावर्त की प्रजाओं ने उनकी अगवानी की ॥२८॥

बर्हिष्मती नाम पुरी सर्वसम्पत्समन्विता । न्यपतन्यत्र रोमाणि यज्ञस्याङ्गं विधुन्वतः ॥२९॥

अन्वयः— सर्वसम्पत् समन्विता बर्हिष्मती नाम पुरी अङ्गं विधून्वतः यज्ञस्य रोमाणि यत्र न्यपतन् ॥२९॥

अनुवाद— सभी प्रकार की सम्पदाओं से युक्त बहिर्ष्मती नाम की नगरी थी, जहाँ पर पृथिवी को रसातल से ले आने के पश्चात् वराह भगवान् जब अपने अङ्गों को फड़फडाए तो वहाँ पर उनके रोएँ गिर पड़े थे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

कोऽसौ ब्रह्मावर्त इत्यपेक्षायामाह-यत्र बर्हिष्मती नाम पुरीति । साऽपि कुत्र । यत्र यज्ञस्य यज्ञवराहस्य रोमाणि न्यपतन्निति यत्रेति सर्वत्र संबध्यते ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि वह ब्रह्मवर्त कौन है ? इस प्रकार की शङ्का होने पर कहा गया है **यत्र बर्हिष्मती इत्यादि** जहाँ पर बर्हिष्मती नाम की नगरी है । वह नगरी कहाँ पर है, तो इसका उत्तर है कि जहाँ पर यज्ञवराह के रोम गिर पड़े थे । सब जगह यत्र पद को जोड़ना चाहिए ॥२९॥

कुशाः काशास्त एवासन् शश्वद्धरितवर्चसः । ऋषयो यैः पराभाव्य यज्ञघ्नान्यज्ञमीजिरे ॥३०॥

अन्वयः— शश्वत् हरित वर्चसः त एव कुशाः काशा आसन् ऋषयः यैः यज्ञध्नान् पराभाव्य यज्ञम् ईजिरे ॥३०॥

अनुवाद— सदा हरे बने रहने वाले वे ही (रोम ही) कुश और काश हो गये, जिन सबों से ऋषियों ने यज्ञों को विनष्ट करने वाले दैत्यों का तिरस्कार यज्ञों के द्वारा करके श्रीभगवान् की आराधना की ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

बर्हिष्मतीनामनिरुक्तिं ब्रुवन्प्रसङ्गाद्देशस्य श्रैष्ठ्यमाह द्वाभ्याम् । कुशाः काशाश्चासन् । शश्वन्नित्यं हरितं वर्चो वर्णो येषाम्। यज्ञघ्नान् राक्षसादीन् । पराभावं नीत्वा यज्ञं विष्णुम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

बर्हिष्मती नाम की व्युत्पत्ति बतलाते हुए दो श्लोकों से प्रसङ्गवशात् देश की श्रेष्ठता को बतलाते हैं । वे वाराह भगवान् के रोम ही कुश और काश हो गये । जिन सबों का रूप सदा हरा ही बना रहता है वे ही कुश और काश कहलाते हैं । ऋषियों ने कुशों तथा काशों के द्वारा ही यज्ञों को विनष्ट करने वाले दैत्यों को परास्त करके भगवान् विष्णु की आराधना की ॥३०॥

कुशकाशमयं बर्हिरास्तीर्य भगावान्मनुः । अयजद्यज्ञपुरुषं लब्धा स्थानं यतो भुवम् ॥३१॥

अन्वयः— यतः भुवं स्थानं लब्धा भगवान् मनुः कुशकाशमयं बर्हिरास्तीर्य यज्ञपुरुषम् अयजत् ॥३१॥

अनुवाद— महाराज मनु भी वराह भगवान् से भूमि रूप निवास स्थान को प्राप्त करके कुश काश की चटाई बिछाकर यज्ञों से भगवान् विष्णु की आराधना किए ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञपुरुषं विष्णुं यत इति यत्रायजत् । भुवं स्थानम् । लब्धेति तृन्प्रत्ययान्तम् । लब्धवान्सन्नित्यर्थः । यतो लब्धवांस्तं यज्ञपुरुषमिति वा । एतेन स्वर्गादपि भूमिः श्रेष्ठा, तत्रापि तत्स्थानं श्रेष्ठमित्युक्तं भवति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

जहाँ पर भगवान् मनु ने यज्ञों द्वारा यज्ञ स्वरूप भगवान् विष्णु की आराधना की । वराह भगवान् से भूमि रूपी निवास स्थान को प्राप्त करके । तृन् प्रत्यान्त लब्धृ शब्द का रूप है लब्धा । अर्थात् प्राप्त किया । अथवा

मनुजी ने यज्ञ पुरुष भगवान् को प्राप्त किया । इससे यह सिद्ध हो गया कि पृथिवी स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है और उसमें भी वराह भगवान् के रोएँ जहाँ गिरे वह स्थान श्रेष्ठ है ॥३१॥

बर्हिष्मतीं नाम विभुर्यां निर्विश्य समावसत् । तस्यां प्रविष्टो भवनं तापत्रयविनाशनम् ॥३२॥

अन्वयः— विभुः यां बर्हिष्मतीं नाम निर्विश्य समावसत् तस्यां तापत्रयविनाशनं भवनं प्राविशत् ॥३२॥

अनुवाद— महाराज मनु जिस बर्हिष्मती नाम की नगरी को बसाकर उसमें निवास करते थे उस नगरी में तीनों तापों को विनष्ट करने वाले अपने भवन में प्रवेश किए ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमाह । यां बर्हिष्मतीं नाम पुरीं समावसत् । पूर्वं यस्यामुषितस्तस्यां निर्विश्य भवनं प्रविष्टः सन् भोगान्बुभुज इत्यन्वयः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

बीच में अनेक प्रकार के वर्णन आ जाने से प्रस्तुत प्रसङ्ग को बतलाते हुए कहते हैं कि जिस बर्हिष्मती नगरी में महाराज मनु रहते थे । अर्थात् पहले जिसमें निवास कर चुके थे उसी नगरी के तापत्रय विनाशक भवन में वे प्रवेश किए और भोगों को भोगे ॥३२॥

सभार्यः सप्रजः कामान्बुभुजेऽन्याविरोधतः । संगीयमानसत्कीर्तिः सस्त्रीभिः सुरगायकैः ॥
प्रत्यूषेष्वनुबद्धेन हृदा शृण्वन्हरेः कथाः ॥३३॥

अन्वयः— सभार्यः सप्रजः अन्याविरोधतः कामान् बुभुजे प्रत्यूषेषु सस्त्रीभिः सुरगायकैः संगीयमानसत्कीर्ति अनुबद्धेन हृदा हरेः कथाः शृण्वन् ॥३३॥

अनुवाद— अपनी पत्नी और सन्तान के साथ वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अविरोधी भोगों को भोगने लगे । प्रात:काल की बेला में अपनी पत्नियों के साथ गन्धर्वगण उनकी सत्कीर्ति का गान करते थे । किन्तु वे श्रीहरि की कथाओं को ही प्रेमपूर्वक सुनते थे ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अन्येषां धर्मादीनामविरोधेन । प्रत्यूषेषु उषःसु संगीयमाना सत्कीर्तिर्यस्य, तथापि स्वयं हरेरेव कथाः शृण्वन्भोगान्बुभुजे ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

वे धर्म, अर्थ एवं मोक्ष के अनुकूल ही भोगों को भोगते थे । प्रात:काल में गन्धर्वगण उनकी सत्कीर्ति का गान करते थे; किन्तु वे उसमें आसक्त नहीं होकर श्रीहरि की कथाओं को ही प्रेम पूर्वक सुनते थे ॥३३॥

निष्णातं योगमायासु मुनिं स्वायंभुवं मनुम् । यदाभ्रंशयितुं भोगा न शेकुर्भगवत्परम् ॥३४॥

अन्वयः— योगमायासु निष्णातम् भगवत् परम् यत् भोगाः मुनिम् स्वयाम्भुवम् मनुम् आभ्रंशयितुम् न शेकुः ॥३४॥

अनुवाद— अपनी इच्छा के अनुसार भोगों की रचना करने में समर्थ भगवत् परायण और मननशील स्वायम्भुव मनु को भोग विचलित नहीं कर सके ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

योगमायासु ऐच्छिकभोगरचनासु । यद्यतः आभ्रंशयितुं आ ईषदपि भ्रंशयितुमभिभवितुम् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

स्वायम्भुव मनु अपने मनोनुकूल भोगों की रचना में निष्णात थे भगवत्परायण थे और मननशील थे, इसीलिए भोग उनको थोड़ा सा भी विचलित करने में असमर्थ थे ॥३४॥

अयातयामास्तस्यासन्यामाः स्वान्तरयापनाः । शृण्वतो ध्यायतो विष्णोः कुर्वतो ब्रुवतः कथाः ॥३५॥

अन्वयः— विष्णोः कथाः ब्रुवतः शृण्वतः ध्यायतः कुर्वतः तस्य स्वान्तरयापनाः यामाः अयातयामाः आसन् ॥३५॥

अनुवाद— भगवान् विष्णु की कथा को कहते हुए सुनते हुए ध्यान करते हुए तथा उसकी रचना करते हुए उनके मन्वन्तर को व्यतीत करने वाले याम (प्रहर) कभी व्यर्थ नहीं वितते थे ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

अतो यातो यामो यस्य पक्वस्यान्नस्य तद्गतसारं भवति, अतोऽन्यदपि गतसारं यातयाममुच्यते । अयातयामा अगतसारा आसन् । स्वान्तरं तदीयं मन्वन्तरं यापयन्ति गमयन्ति ते यामाः कालावयवाः । कुर्वतः स्ववाक्यैरुपनिबध्नतः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

जिस पके हुए अन्न के एक प्रहर बीत जाते हैं वह पका हुआ अन्न निस्सार हो जाता है । इसी तरह से दूसरी भी वस्तुएँ जो सारहीन हो जाती है वे गतयाम कहलाती हैं । जिन सबों के द्वारा उनका मन्वन्तर बीत जाता है, वह इनके मन्वन्तर रूपी काल का भाग कभी इसलिए व्यर्थ नही बितता था कि वे सदा श्रीभगवान् की कथाओं का श्रवण करते थे, ध्यान करते थे, स्वयम् उसकी रचना करते थे और दूसरों को सुनाते थे ॥३५॥

स एवं स्वान्तरं निन्ये युगानामेकसप्ततिम् । वासुदेवप्रसङ्गेन परिभूतगतित्रयः ॥३६॥

अन्वयः— एवं वासुदेवप्रसङ्गेन परिभूतगतित्रयः स्वान्तरं युगानामेकसप्ततिम् निन्ये ॥३६॥

अनुवाद— इस तरह अपनी जाग्रत् आदि तीन अवस्थाओं अथवा सत्त्वादि तीन गुणों को अभिभूत करके मनु महाराज भगवान् वासुदेव की कथा के प्रसङ्ग में ही अपने मन्वन्तर के इकहत्तर हजार चतुर्युग बिता दिए ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

परिभूतं गतित्रयं जाग्रदादि सात्त्विकादि वा येन ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

निरन्तर भगवत कथा के प्रसङ्ग में लगे रहने के कारण मनुजी ने अपने सात्त्विकादि तीनों गुणों अथवा जाग्रदादि तीनों अवस्थाओं को अभिभूत कर दिया था ॥३६॥

शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः । भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधन्ते हरिसंश्रयम् ॥३७॥

अन्वयः— हे वैयासे हरिसंश्रयम्, शारीराः मानसाः दिव्याः मानुषाः भौतिकाश्च क्लेशाः कथं बाधन्ते ॥३७॥

अनुवाद— हे व्यासनन्दन ! श्रीहरि के ही आश्रय में रहने वाले पुरुष को शारीरिक, मानसिक, आकाश से होने वाले वज्रपात आदि, शत्रुओं से उत्पन्न होने वाले तथा हिंस्रादि जीवों से उत्पन्न होने वाले क्लेश कैसे बाधित कर सकते हैं ?॥३७॥

भावार्थ दीपिका

दिव्यास्त्वान्तरिक्षाः । मानुषाः शत्रुप्रभवाः । भौतिकाः शीतोष्णादिप्रभवाः । वैयासे हे विदुर ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

वैयासे पद से विदुरजी को सम्बोधित किया गया है । मैत्रेयजी कहते हैं कि जो मनुष्य श्रीभगवान् को ही अपना आश्रय मानता है, उसको शारीरक मानसिक, अन्तरिक्ष जन्य शत्रुजन्य, भूतजन्य, शीतउष्ण इत्यादि क्लेश नहीं बाधित कर सकते हैं । अन्तरिक्ष से होने वाले वज्रपात आदि मानुष अर्थात् शत्रुओं से कष्ट तथा शीतोष्णादिजन्य क्लेश भगवद् भक्त को नहीं होते हैं ॥३७॥

यः पृष्टो मुनिभिः प्राह धर्मान्नानाविधान् शुभान् । नृणां वर्णाश्रमाणां च सर्वभूतहितः सदा ॥३८॥

अन्वयः— यः मुनिभिः पृष्टः सर्वभूहितः सदा नृणां वर्णाश्रमाणां च नानाविधान् शुभान् धर्मान् प्राह ॥३८॥

अनुवाद— सभी जीवों के कल्याण में सदा लगे रहने वाले जो मनुजी मुनियों द्वारा पूछे जाने पर मनुष्यों तथा आश्रमों के लिए कल्याणकारी अनेक प्रकार के मङ्गलमय धर्मों का उपदेश दिए ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

तस्य ज्ञानातिशयमाह-य इति । नृणां साधारणधर्मान् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में मनुजी के ज्ञानातिरेक को बतलाया गया है, मुनियों के द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने मनुष्यों के साधारण धर्मों तथा भिन्न-भिन्न वर्णों एवं आश्रमों के विशेषधर्मों का वर्णन किया था । वही आज भी मनुस्मृति के रूप में संगृहीत है ॥३८॥

एतत्त आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतम् । वर्णितं वर्णनीयस्य तदपत्योदयं शृणु ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीयस्कन्धे द्वांविशतितमोऽध्यायः ॥२२॥

अन्वयः— एतत् वर्णनीयस्य आदिराजस्य मनोः अद्भुतं चरितम् ते वर्णितं तत् अपत्योदयं शृणु ॥३९॥

अनुवाद— यह मैंने वर्णन करने योग्य आदिराजा मनु जी के अद्भुत चरित को आपको सुनाया अब आप उनकी सन्तान देवहूति का प्रभाव सुनें ॥३९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तस्य यदपत्यं देवहूतिस्तस्योदयं प्रभावम् ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

मनुजी के चरित को सुनने के पश्चात् अब उनकी पुत्री देवहूति के प्रभाव को आप सुनें ॥३९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के बाइसवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२२॥

तेइसवाँ अध्याय

कर्दम और देवहूति का विहार

मैत्रेय उवाच

पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिङ्गितकोविदा । नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या भवानीव भवं प्रभुम् ॥१॥

अन्वयः— पितृभ्यां प्रस्थिते इंगितकोविदा साध्वी नित्यं भवं प्रभुम् भवानीव पतिं प्रीत्या पर्यचरत् ॥१॥

अनुवाद— हे विदुरजी माता-पिता के चले जाने पर अपने पति के अभिप्राय को जानने वाली देवहूति उसी तरह कर्दम महर्षि की सेवा करने लगी जिस तरह पार्वतीजी भगवान् शिव की सेवा करती हैं ॥१॥

पिता के चले जाने पर देवहूति प्रेम पूर्वक अपने पति कर्दम महर्षि की सेवा उसी तरह करने लगीं जिस तरह पार्वतीजी भगवान् शिव की सेवा करती हैं ॥१॥

विश्रम्भेणात्मशौचेन गौरवेण दमेन च । शुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भो ॥२॥

अन्वयः— भोः विश्रम्भेण, आत्मशौचेन, गौरवेण, दमेन, शुश्रूषया सौहृदेन मधुरया वाचा च ॥२॥

अनुवाद— हे विदुरजी वे महर्षि कर्दम के वाक्यों पर विश्वास पवित्रता, गौरव, संयम, शुश्रूषा, प्रेम तथा मधुरवाणी पूर्वक सेवा करती थीं ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

विसृज्य कामं दम्भं च द्वेषं लोभमघं मदम् । अप्रमत्तोद्यता नित्यं तेजीयांसमतोषयत् ॥३॥

अन्वयः— कामं, दम्भं, द्वेषं, लोभम्, अघम्, मदम् च विसृज्य नित्यं अप्रमत्ता उद्यता च तेजीयांसम् अतोषयत् ॥३॥

अनुवाद— देवहूति ने काम, दम्भ (कपट) द्वेष, लोभ, पाप और मद को त्यागकर सावधानी और सदा लगन के द्वारा अपने परम तेजस्वी पति महर्षि कर्दम् को प्रसन्न कर दिया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

दम्भं कपटम् । अघं निषिद्धाचरणम् । तेजीयांसमतितेजस्विनम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

दम्भ कपट को कहते हैं और अघ, पाप को शास्त्र निषिद्ध कार्यों को करने को पाप कहते हैं । इस तरह की सेवा के द्वारा देवहूति ने परमतेजस्वी महर्षि कर्दम को प्रसन्न कर दिया ॥३॥

स वै देवर्षिवर्यस्तां मानवीं समनुव्रताम् । दैवाद्गरीयसः पत्युराशासानां महाशिषः ॥४॥

अन्वयः— दैवात् गरीयसः पत्युः महाशिषः आशसानाम् ताम् समनुव्रताम् मानवीम् स वै देवर्षिवर्यः अब्रवीत् इतिशेषः ॥४॥

अनुवाद— देवताओं से भी महान् अर्थात् देवताओं का भी तिरस्कार करने में समर्थ अपने पति महर्षि कर्दम से बहुत अधिक आशाओं वाली उनका अनुवर्तन (सेवा) करने वाली उस महाराज मनु की पुत्री देवहूति को वे श्रेष्ठ देवर्षि कहे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

दैवाद्गरीयसो दैवादपि गुरुतरात् । दैवमप्यन्यथा कर्तुं समर्थादित्यर्थः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

देवहूति यह जानती थी कि उनके पति देवताओं से भी महान् हैं वे देवताओं का भी तिरस्कार करने में समर्थ है, अतएव वे उनसे बहुत अधिक आशाएँ रखकर उनकी सच्ची निष्ठा के साथ सेवा करती थीं । इस प्रकार की देवहूति से महर्षि प्रसन्न होकर कहे ॥४॥

कालेन भूयसा क्षामां कर्शितां व्रतचर्यया । प्रेमगद्गदया वाचा पीडितः कृपयाऽब्रवीत् ॥५॥

अन्वयः— भूयसा कालेन व्रतचर्यया कर्शितां क्षामां कृपया पीडितः प्रेमगद्गदया वाचा अब्रवीत् ॥५॥

अनुवाद— बहुत दिनों से व्रत करने के कारण कृश तथा दुर्बल हुयी देवहूति को देखकर दया पीडित महर्षि कृपा करके कहें ॥५॥

भावार्थ दीपिका

व्रतचर्यया कर्शितां तत्रापि भूयसा कालेनातिक्षामामित्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

बहुत समय से व्रत का पालन करने के कारण दुबली-पतली तथा कमजोर हुयी देवहूति से महर्षि कर्दम ने कृपा परतन्त्र होकर कहा ॥५॥

कर्दम उवाच

तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या ।
यो देहिनामयमतीव सुहृत्स्वदेहो नावेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे ॥६॥

अन्वयः— हे मानवि ! अद्य अहम् मानदायाः तव परमया शुश्रूषया, परया भक्त्या च तुष्टः यद् अयं स्वदेहः देहिनाम् अतीव सुहृत् तम्, मदर्थे समुचितः क्षपितुं न अवेक्षितः ॥६॥

कर्दम महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे मनुपुत्रि आज मैं तुम्हारी पराभक्ति तथा श्रेष्ठ सेवा के कारण प्रसन्न हो गया हूँ । सभी देहधारियों को यह अपना शरीर अत्यन्त प्रिय और आदर की वस्तु होता है । किन्तु तुमने मेरी अच्छी तरह से सेवा करने के लिए उसके भी क्षीण होने की कोई परवाह नहीं की ॥६॥

भावार्थ दीपिका

सुहृत्प्रियः । मदर्थे क्षपयितुं नावेक्षितो न गणितः । समुचितः श्लाघ्योऽपि मत्सेवासक्तयोपेक्षित इत्यर्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कर्दम ने देवहूति से कहा कि तुमने उत्तम भक्ति पूर्वक मेरी सेवा की है, अतएव आज मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । शरीर धारियों का यह अपना शरीर अत्यन्त प्रिय होता है किन्तु मेरी सेवा में लगी हुयी तुमने उसकी भी परवाह नहीं की ॥६॥

ये मे स्वधर्मनिरतस्य तपः समाधिविद्यात्मयोगविजिता भगवत्प्रसादाः ।
तानेव ते मदनुसेवनयाऽवरुद्धान् दृष्टिं प्रपश्य वितराम्यभयानशोकान् ॥७॥

अन्वयः— स्वधर्मनिरतस्य मे तपः समाधि विद्यात्मयोगविजिताः भगवत्प्रसादाः मदनुसेवनया अवरुद्धान् तान्एव अभयान् अशोकान् ते वितरामि ते दृष्टिं वितरामि प्रपश्य ॥७॥

अनुवाद— अपने धर्म का पालन करने वाले मेरी तपस्या समाधि उपासना और योग के द्वारा भय एवं शोक से रहित श्रीभगवान् की कृपा के फलस्वरूप जिन विभूतियों को मैंने प्राप्त किया है, उन सबों को तुमने भी मेरी सेवा के द्वारा प्राप्त कर लिया है, मैं तुमको दिव्यदृष्टि प्रदान करता हूँ उन सबों को तुम देखो ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तपश्च समाधिश्च विद्या च उपासना च तासु य आत्मयोगश्चित्तैकाग्र्यं तेन विजिताः प्राप्ता भगवत्प्रसादा दिव्यभोगास्तानेव तेऽवरुद्धास्त्वयाऽपि वशीकृतान्प्रपश्य । ते दिव्यां दृष्टिं वितरामि । यया दृष्टासि द्रक्ष्यसि ॥७॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कर्दम ने कहा कि तपस्या, समाधि उपासना, तथा चित्त की एकाग्रता रूप योग के द्वारा प्रसन्न हुए श्रीभगवान् ने मुझे जिन विभूतियों को प्रदान किया है, उन सबों को मेरी सेवा करके तुमने अपने वश में कर लिया है । मैं तुमको दृष्टि प्रदान करता हूँ उसके द्वारा तुम उन सबों को देख लोगी ॥७॥

अन्ये पुनर्भगवतो भ्रुव उद्विजृम्भविभ्रंशितार्थरचनाः किमुरुक्रमस्य ।
सिद्धासि भुंक्ष्व विभवान्निजधर्मदोहान्दिव्यान्नरैर्दुरधिगान्नृपविक्रियाभिः ॥८॥

अन्वयः— पुनः अन्ये उरुविक्रमस्य भगवतः भ्रुव उद्विजृम्भविभ्रंशितार्थरचनाः किम्, सिद्धासि नृप विक्रियाभिः दुरधिगमान् निज धर्मदोहान् विभवान् भुंक्ष्व ॥८॥

अनुवाद— दूसरे भोग तो अपरिमित शक्ति सम्पन्न श्रीभगवान् के भौहों के थोड़ी सी टेढ़ी हो जाने से विनष्ट हो जाने वाले हैं, अतएव उन भोगों का कुछ भी महत्त्व नहीं है । तुम तो पातिव्रत्य धर्म का पालन रूप मेरी सेवा से ही सिद्ध हो गयी हो । मैं राजा हूँ इस तरह से अभिमान करने वालों के लिए ये भोगदुष्प्राप्य हैं । अतएव अपने धर्म पालन से प्राप्त ऐश्वर्यों का तुम भोग करो ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अन्ये पुनर्भोगाः किं । न किमपि । अतितुच्छा इत्यर्थः । तत्र हेतुः- भगवत उरुक्रमस्य या भ्रूस्तस्या उद्विजृम्भो वक्रीभावस्तेन विभ्रंशिता अर्थरचना मनोरथा येषु । निजधर्मेण पातिव्रत्येन दुह्यन्त इति तथा तान् । दुरधिगान् दुष्प्रापान् । नृपा वयमिति या विक्रियास्तत्तद्भोगविकृतयस्ताभिः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

इन भोगों से जो भिन्न भोग हैं वे कुछ नहीं है । वे अत्यन्त तुच्छ है । क्योंकि अमित पराक्रम सम्पन्न श्रीभगवान् की भौहों के थोड़ी सी ढेढ़ी होने से वे सबके सब विनष्ट हो जाने वाले हैं । तुम्हारे पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव प्राप्त होने वाले इन ऐश्वर्यों का तुम उपभोग करो । मैं राजा हूँ इस प्रकार का जो अभिमान है, ऐसे अभिमान करने वाले राजाओं को ये भोगदुष्प्राप्य हैं ॥८॥

एवं ब्रुवाणमबलाखिलयोगमायाविद्याविचक्षणमवेक्ष्य गताधिरासीत् ।
संप्रश्रयप्रणयविह्वलया गिरेषद्व्रीडावलोकविलसद्धसिताननाह ॥९॥

अन्वयः— एवं ब्रुवाणम् अखिलयोगमायाविद्याविचक्षणम् अवेक्ष्य अबला गताधिः आसीत् । संप्रश्रयप्रणय विह्वलया गिरा ईषद् व्रीडावलोकविलसद् हसितानना आह ॥९॥

अनुवाद— इस प्रकार से कहने वाले अपने पति कर्दम महर्षि को सम्पूर्ण योगमाया और विद्यओं में कुशल देखकर उस देवहूति की सारी मनोव्यथा दूर हो गयी । और वे नम्रता और प्रेम से गद्गद वाणी से, किंचित् सङ्कोच पूर्ण चितवन और मुसकान युक्त मुख से कहने लगी ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अखिला योगमायाश्च विद्याश्च तत्तदुपासनास्तासु विचक्षणं निपुणमेवं ब्रुवाणं पतिमवेक्ष्य गताधिर्निश्चिन्ता जाता । संप्रश्रयो विनयः प्रणयः प्रेम ताभ्यां विह्वला गद्गदा तया गिरा ईषद्व्रीडासहितो योऽवलोकस्तेन विलसद्विकसितं हसितं जातहासं चाननं यस्याः सा । आह जगाद ॥९॥

भाव प्रकाशिका

देवहूति ने जान लिया कि हमारे पतिदेव सभी योगमायाओं तथा उपासनाओं में निपुण हैं, यह देखकर उनकी सारी मानसिक चिन्ता समाप्त हो गयी । और नम्रता तथा प्रेम से गद्गद बनी हुयी वाणी से तथा किञ्चित् लज्जा युक्त अवलोकन से युक्त मनोहर बने मधुर मुस्कान युक्त मुख से वे कहने लगीं ।।९।।

देवहूतिरुवाच

राद्धं बत द्विजवृषैतदमोघयोगमायाधिपे त्वयि विभो तदवैमि भर्तः ।
यस्तेऽभ्यधायि समयः सकृदङ्गसङ्गो भूयाद्गरीयसि गुणः प्रसवः सतीनाम् ।।१०।।

अन्वयः— हे द्विजवृषभ भर्तः विभो अमोघयोगमायाधिपे बत एतद राद्धम् तत् अवैमि । यः ते समयः अभ्यधायि सकृत् अङ्ग सङ्गो भूयात् । गरीयसि सतीनाम् प्रसवः गुणः ।।१०।।

देवहूति ने कहा

अनुवाद— हे द्विज श्रेष्ठ ! स्वामिन् हे विभो ! मैं यह जानती हूँ कि आप कभी भी विफल नहीं होने वाली योगमाया के स्वामी हैं और आपको यह सारा ऐश्वर्य प्राप्त है । आपने विवाह के समय में जो प्रतिज्ञा की थी कि गर्भ धारण करने तक मैं तुम्हारे साथ गृहस्थ सुख का उपभोग करूँगा उसकी भी पूर्ति अब होनी चाहिए, क्योंकि श्रेष्ठ पति के द्वारा संन्तान प्राप्त होना पतिव्रता स्त्रियों का सर्वश्रेष्ठ लाभ है ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

बतेति हर्षे । द्विजवृष द्विजश्रेष्ठ हे भर्तः, त्वय्येतत्सर्वं राद्धं सिद्धमेव । तदहमवैमि जानामि । किन्तु यस्ते त्वया समयोऽभिहितः स तावद्भूयात् । सकृदिति गर्भसंभवमात्रपर्यन्त इत्यर्थः । यस्माद्गरीयसि श्रेष्ठे भर्तरि हेतुभूते स्त्रीणां प्रसवो गुणो महान् लाभः । समासपाठे गरीयसि पत्यौ सति सतीनां यतो गुणप्रसवो गुणविस्तारो भवति । अतः पुत्रोत्पत्त्या मम गुणविस्तारे जाते पश्चात्त्वदुक्तं सर्वं भवत्विति भावः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

बत इस अव्यय का प्रयोग हर्ष के अर्थ में है । देवहूति ने कहा हे द्विजश्रेष्ठ ! यह जानती हूँ कि आपको ये सभी भोग प्राप्त है । किन्तु आपने जो प्रतिज्ञा की थी उसकी भी पूर्ति होनी चाहिए । आपने यह कहा था कि जब तक मेरे तेज को धारण करेगी तब तक मैं इसके साथ रहूँगा क्योंकि श्रेष्ठ पति के द्वारा सन्तान की प्राप्ति होना पतिव्रताओं का सबसे बड़ा लाभ है । समास युक्त पाठ होने पर अर्थ होगा कि श्रेष्ठ पति के होने पर प्रसव का होना सती नारियों का गुण विस्तार है । अतएव पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर जब मेरे गुण का विस्तार हो जाय तो उसके पश्चात् आपने जो कुछ कहा है वह होए ।।१०।।

तत्रेतिकृत्यमुपशिक्ष यथापदेशं येनैष मे कर्शितोऽतिरिरंसयात्मा ।
सिध्येत ते कृतमनोभवधर्षिताया दीनस्तदीश भवनं सदृशं विचक्ष्व ।।११।।

अन्वयः— हे ईश तत्र यथोपदेशम् इति कृत्यम् उपशिक्षा, येन मे एषः अतिरिरंसया ते मनोभवधर्षितायाः दीनः आत्मा सिद्धयेत तत् सदृशं भवनं विचक्ष्व ।।११।।

अनुवाद— हम दोनों के समागम के लिए शास्त्र के उपदेशानुसार जो कर्तव्य हो उसका आप उपदेश दें और उसके लिए उपयोगी वस्तुओं को एकत्रित कर दें, अतएव मिलन की इच्छा से अत्यन्त दीन बना हुआ मेरा यह शरीर आपके अङ्गसङ्ग के योग्य बन जाय । क्योंकि आपके ही द्वारा बढायी हुयी काम वेदना से मैं पीड़ित हूँ इसलिए एक उपयुक्त भवन की भी आप व्यवस्था करें ।।११।।

भावार्थ दीपिका

अङ्गसङ्गार्थं च प्रथममितिकर्तव्यतां संपादयेत्याह । हे ईश, तत्राङ्गसङ्गे इतिकृत्यं साधनं यथोपदेशं कामशास्त्रानुसारेणोपशिक्ष संजानीहि । उपकल्पयेत्यर्थः। येन साधनेनाभ्यङ्गभोजनपानादिनातीव रन्तुमिच्छया कर्शितो दीनश्च ममैष आत्मा देहः सिध्येत रतिसमर्थो भवेत् कथंभूतायाः ते त्वयैव कृतः क्षोभितो यो मनोभवस्तेन धर्षितायाः । तत्ततोऽनुरूपं भवनं विचक्ष्व वितर्कय। विचारयेति यावत् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

उस अङ्ग सङ्ग के लिए जो पहले करना चाहिए आप उसको करें । उस समय क्रिया करने के लिए आप मुझे कामशास्त्र के अनुसार उपदेश दें । उसके पश्चात् साधनभूत शरीर मर्दन, भोजन पेय पदार्थ इत्यादि के द्वारा आपके साथ अत्यधिक रमण करने की इच्छा से दीन बना हुआ मेरा यह शरीर रतिक्रिया के योग्य हो जाय । से मैं तो आपके द्वारा क्षुब्ध हुए काम स अभिभूत हो गयी हूँ । उसके अनुकूल भवन का भी आप विचार करें।।११।।

मैत्रेय उवच

प्रियायाः प्रियमन्विच्छन्कर्दमो योगामस्थितः । विमानं कामगं क्षत्तस्तर्ह्येवाविरचीकरत् ।।१२।।

अन्वयः— प्रियायाः प्रियमन्विच्छन् कर्दमः योगम् आस्थितः कामगम् तर्हि एव कागमं विमानम् अविरचीकरत् ।।१२।।

अनुवाद— हे विदुरजी ! अपनी प्रियतमा का प्रिय कार्य करने की इच्छा वाले महर्षि कर्दम उसी समय योग में स्थित होकर एक अपनी इच्छा के अनुसार चलने वाले विमान की रचना किए ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि तत्क्षणमेव आविरचीकरदाविर्भावयांबभूव ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि ने उसी क्षण एक कामग विमान को उत्पन्न कर दिया ।।१२।।

सर्वकामदुघं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् । सर्वर्द्ध्युपचयोदर्कं मणिस्तम्भैरुपस्कृतम् ।।१३।।

अन्वयः— सर्वकामदुघं दिव्यं, सर्वरत्नसमन्वितम् सर्वर्द्ध्युपचयोदर्कम् मणिस्तम्भैः उपस्कृतम् ।।१३।।

अनुवाद— वह विमान सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाला था, सुन्दर था, उसमें सभी प्रकार के रत्न भरे थे, वह सभी सम्पत्तियों की उत्तरोत्तर वृद्धि से युक्त तथा वह मणिमय स्तम्भों से युक्त था ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

तदेव विशिनष्ट- सर्वकमदुघमिति नवभिः । सर्वैश्च रत्नादिभिः समन्वितम् । सर्वर्द्धीनां सर्वसंपदां य उपचयस्तस्योदर्क उत्तरोत्तराभिवृद्धिर्यस्मिन् । उपस्कृत शोभितम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

उस विमान की ही विशेषता **सर्वकामदुधं० इत्यादि** नव श्लोकों से बतलायी जा रही है । वह विमान सभी रत्नों से युक्त था । सभी सम्पत्तियों की उत्तरोत्तर वृद्धि से समन्वित था ऐसा वह विमान उपस्कृत अर्थात् सुशोभित था।।१३।।

दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् । पट्टिकाभिः पतकाभिर्विचित्राभिरलंकृतम् ।।१४।।

अन्वयः— दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् विचित्राभिः पट्टिकाभिः पताकाभिः अलंकृतम् तत् आसीत् ।।१४।।

अनुवाद— वह विमान दिव्य सामग्रियों से युक्त था । वह सभी ऋतुओं में सुखपद था । वह अनेक प्रकार की पट्टिकाओं (झंडियों) और पताकाओं से सुसज्जित था ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

उपकरणं परिकरः । पट्टिका अल्पविस्तारपट्टवस्त्रविशेषाः, पताका विस्तृतास्ताभिः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

उपकरण सामग्रियों को कहते हैं । छोटी-छोटी वस्त्र की बनी हुयी झंडियों को पट्टिका कहते है और वस्त्र निर्मित बड़ी-बड़ी पताकाओं को पताका कहा जाता है । इन सबों से सुसज्जित था वह विमान ॥१४॥

स्त्रग्भिर्विचित्रमाल्याभिर्मञ्जुसिञ्जत्षडङ्घ्रिभिः । दुकूलक्षौमकौशेयैर्नानावस्त्रैर्विराजितम् ॥१५॥

अन्वयः— शिंजत्षडङ्घ्रिभिः विचित्रमाल्याभिः स्त्रग्भिः दुकूलक्षौमकोशेयैः नाना वस्त्रैर्विराजितम् तत् आसीत् ॥१५॥

अनुवाद— जिन पर भौंरे मधुर गुञ्जार कर रहे थे ऐसे रङ्ग-विरङ्गे पुष्पों की मालाओं तथा अनेक प्रकार के सूती और रेशमी वस्त्रों से वह विमान सुसज्जित था ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

विचित्राणि माल्यानि पुष्पाणि यासु । मञ्जु यथा भवत्येवं सिञ्जन्तः कूजन्तः षडङ्घ्रयो यासु ताभिः स्त्रग्भिः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

जिनमें अनेक प्रकार के पुष्प लगे थे ऐसी मालाओं से वह अलंकृत था । उन मालाओं पर भौंरे मधुर गुंजार कर रहे थे । वह विमान अनेक प्रकार के रेशमी तथा सूती वस्त्रों से अलंकृत था ॥१५॥

उपर्युपरि विन्यस्तनिलयेषु पृथक् पृथक् । क्षिप्तैः कशिपुभिः कान्तं पर्यङ्कव्यजनासनैः ॥१६॥

अन्वयः— उपर्युपरि विन्यस्त निलयेषु पृथक्-पृथक् क्षिप्तैः कशिपुभिः पर्यङ्कव्यजनासनैः कान्तं तत् विमानमासीत् ॥१६॥

अनुवाद— एक के ऊपर दूसरे बनाये गये कमरों में अलग-अलग रखे गये सुवर्णशय्या, चमर तथा आसनों से वह विमान बहुत ही सुन्दर दिखता था ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

उपर्युपरि विरचितगृहेषु । कशिपुभिः शय्याभिः कान्तं कमनीयम् । पर्यङ्कादिभिश्च कान्तम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

एक के ऊपर दूसरे बनाये गये गृहों में विद्यमान शय्याओं से मनोहर तथा पलङ्ग आदि से मनोहर था वह विमान ॥१६॥

तत्र तत्र विनिक्षिप्तनानाशिल्पोपशोभितम् । महामरकतस्थल्या जुष्टं विद्रुमवेदिभिः ॥१७॥

अन्वयः— तत्र-तत्र विनिक्षिप्त नानाशिल्पोपशोभितम् महामरकतस्थल्या विद्रुमवेदिभिः जुष्टम् ॥१७॥

अनुवाद— दिवारों में स्थान-स्थान पर की गयी शिल्प रचना से उस विमान की अत्यन्त शोभा हो रही थी, उसमें पन्ने का फर्श था और बैठने के लिए मूङ्गे की वेदी बनायी गयी थी ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

द्वार्स्सु विद्रुमदेहल्या भातं वज्रकपाटवत् । शिखरेष्विन्द्रनीलेषु हेमकुम्भरधिश्रितम् ॥१८॥

अन्वयः— द्वार्स्सु विद्रुमदेहल्या व्रजकपाटवत् जुष्टम्, शिखरेष्विन्द्रनीलेषु हेमकुम्भैः अधिश्रितम् तदासीत् ॥१८॥

अनुवाद— उस विमान के कमरों के द्वार पर मूंगे की देहली बनी थी, द्वारों के किवाड़ हीरों के थे तथा इन्द्र नीलमणि के शिखरों पर सुवर्ण के कलश रखे हुए थे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

द्वास्सु द्वारेषु विद्रुमनिर्मिता देहली उदुम्बरस्तया भातं शोभितम् । वज्रखचितकपाटयुक्तम् । इन्द्रनीलमयेषु शिखरेषु प्रासादाग्रभागेषु ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

उस विमान के कमरों के दरवाजों पर मूंगे की देहली (चौखट) लगे थे । चौखट को संस्कृत में उदुम्बर कहते हैं । ऐसी देहली से सुशोभित था वह विमान । उस विमान के कमरों की किवाड़ों में हीरे जड़े थे । उस महल के अग्रभाग में इन्द्र नीलमणि से बने शिखरों पर सुवर्ण कलश लगे थे ॥१८॥

चक्षुष्मत्पद्मरागाग्र्यैर्वज्रभित्तिषु निर्मितैः । जुष्टं विचित्रवैतानैर्महार्हैर्हेमतोरणैः ॥१९॥

अन्वयः— वज्रभीतिषु, पद्मरागाग्र्यैः निर्मितैः चक्षुष्मत् विचित्रैः वैतानैः महार्हैः हेमतोरणैः जुष्टं तद् विमानमासीत् ॥१९॥

अनुवाद— हीरों से निर्मित दिवारों में लगी श्रेष्ठ पद्मराग मणियाँ उस विमान की आँखों जैसी लगती थीं और वह विमान अत्यन्त मूल्यवान् वन्दनवारों से अलंकृत था ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

चक्षुष्मन्त इव ये पद्मरागाग्र्यास्तैः । यद्वा चक्षुष्मदिव । कैः पद्मरागाग्र्यैः विचित्रैर्वैतानैर्वितानसमूहैः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

जड़ी हुयी श्रेष्ठ पद्मरागमणियों से वह विमान आँखों से युक्त के समान प्रतीत होता था । अथवा श्रेष्ठ पद्मराग मणियों से वह नेत्र युक्त के समान प्रतीत होता था । तथा वह विमान विचित्र वितानों के समूह से सुशोभित था ॥१९॥

हंसपारावतव्रातैस्तत्र तत्र निकूजितम् । कृत्रिमान्मन्यमानैः स्वानधिरुह्याधिरुह्य च ॥२०॥

अन्वयः— कृत्रिमान् हंसपारावतान् स्वान् मन्यमानैः हंसपारावतैः तत्र तत्र अधिरुह्याधिरुह्य कूजितम् ॥२०॥

अनुवाद— स्थान-स्थान पर बनाये गये कृत्रिम हंसों तथा कबूतरों को अपना सजातीय मानने वाले हंस और कबूत्तर उन सबों के सन्निकट बैठकर उनसे अपनी बोली में बातें करते थे ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

कृत्रिमानपि हंसादीन्स्वान्सजातीयान्मन्यमानैस्तत्र तत्राधिरुह्याधिरुह्य निकूजितम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

स्थान-स्थान पर बनाये गये कृत्रिम हंसों तथा कबूतरों को अपना सजातीय मानकर हंस और कबूतर उनके सन्निकट में बैठकर उनके साथ अपनी बोली में बातें करते थे ॥२०॥

विहारस्थानविश्रामसंवेशप्राङ्गणाजिरैः । यथोपजोषं रचितैर्विस्मापनमिवात्मनः ॥२१॥

अन्वयः— यथोपजोषं रचितैः विहारस्थानविश्रामसंवेश प्राङ्गणाजिरैः आत्मनः विस्मापनम् इव ॥२१॥

अनुवाद— सुविधानुसार बनाये गये क्रीडास्थली, शयनगृह, बैठक आंगन और चौक के द्वारा वह स्वयम् उसको बनाने वाले महर्षि कर्दम को भी विस्मित सा कर रहा था ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

विहारस्थानं क्रीडाप्रदेशः, विश्रामः शयनगृहम्, संवेश उपभोगस्थानम्, प्राङ्गणं गृहाद्बहिः, अजिरं प्रकाराद्बहिः, यथोपजोषं यथासुखमात्मनः स्वस्य मायाविनोऽपि विस्मयजनकमिव ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

विहारस्थान अर्थात् क्रीडास्थल, विश्राम अर्थात् शयनगृह, संवेशः अर्थात् बैठक, प्राङ्गण अर्थात् आँगन और अजिर अर्थात् चाहारदिवारी के बाहर बनाये गये चौक, इन सबों को उस विमान में अपनी सुविधा के अनुसार बनाया गया था । इन सबों को देखकर मायावी स्वयं महर्षि कर्दम भी आश्चर्यित से हो जाते थे ॥२१॥

ईदृग्गृहं तत्पश्यन्तीं नातिप्रीतेन चेतसा । सर्वभूताशयाऽभिज्ञः प्रावोचत्कर्दमः स्वयम् ॥२२॥

अन्वयः— इदृग्तत् गृहं नातिप्रीतेन चेतसा पश्यन्तीम् सर्वभूताशयाभिज्ञः कर्दमः स्वयं प्रावोचत् ॥२२॥

अनुवाद— इस प्रकार के सुन्दर गृह को देवहूति ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक देखा तो सभी जीवों के अभिप्राय को जानने वाले महर्षि कर्दम ने स्वयम् कहा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

नातिप्रीतेन मलिनदेहत्वात्परिचारिकाभावाच्च ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इतने सुन्दर गृह को भी देवहूति बहुत प्रसन्नतापूर्वक इसलिए नहीं देख रही थीं कि उनका शरीर मालिन था और उनकी कोई परिचारिका नहीं थी । महर्षि कर्दम तो सभी जीवों के अभिप्राय को जानते थे अतएव उन्होंने देवहूति से कहा ॥२२॥

निमज्ज्यास्मिन्ह्रदे भीरु विमानमिदमारुह । इदं शुक्लकृतं तीर्थमाशिषां यापकं नृणाम् ॥२३॥

अन्वयः— हे भीरु अस्मिन् ह्रदे निमज्य इदं विमानम् आरुह । इदं नृणां आशिषां यापकं तीर्थं शुक्लकृतम् ॥२३॥

अनुवाद— हे भीरु ! सुन्दरि ! इस सरोवर में स्नान करके तुम इस विमान पर चढो । मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले इस तीर्थ को भगवान् विष्णु ने बनाया है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

अस्मिन्ह्रदे विन्दुसरसि । आरुहाधिरोह । शुक्लेन विष्णुना कृतमानन्दविन्दुनिपातनेन यापकं प्रापकम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कर्दम ने कहा कि तुम पहले इस विन्दुसरोवर में स्नान करो और उसके पश्चात् इस विमान पर चढो। इस सरोवर में भगवान् विष्णु ने आनन्द स्वरूप अपने आँसू को गिराया था । उसके कारण यह मनुष्यों की सारी कामनाओं को पूर्ण करने वाला तीर्थ बन गया है ॥२३॥

सा तद्भर्तुः समादाय वचः कुवलयेक्षणा । सरजं बिभ्रती वासो वेणीभूतांश्च मूर्धजान् ॥२४॥
अङ्गं च मलपङ्केन संछन्नं शबलस्तनम् । आविवेश सरस्वत्याः सरः शिवजलाशयम् ॥२५॥

अन्वयः— भर्तुः तद् वचः समादाय सरजः वासः वेणीभूतान् च मूर्धजान् मलपङ्केन संछन्नं अङ्गम् शबलस्तनम् च विभ्रती सा कुवलयेक्षणा सरस्वत्याः शिवजलाशयम् सरः प्रविवेश ॥२४-२५।

अनुवाद— अपने पति के उस वचन को मानकर, मैले कुचैले वस्त्र, जटा स्वरूप बने हुए केशों, मैल से भरे हुए शरीर और कान्तिहीन स्तनों वाली वह कमलनयनी सरस्वती नदी के पवित्र जल से भरे हुए सरोवर में प्रवेश कर गयी ॥२४-२५॥

भावार्थ दीपिका

समादायाहृत्य । सरजं मलिनम् । वेणीभूतान् जटिलान् । शबलौ विवर्णौ स्तनौ यस्मिंस्तत् । सरस्वत्याः शिवानि जलान्याशेरते यस्मिन्, शिवा जलाशया जलचरा यस्मिन्निति वा ॥२४-२५॥

भाव प्रकाशिका

अपने पति की उपर्युक्त वाणी को मानकर कमल के समान नेत्रों वाली देवहूति ने सरस्वती नदी के जल से भरे हुए कल्याणमय जल वाले सरोवर में प्रवेश किया। उस समय उसके वस्त्र मलीन थे, केश परस्पर में सट जाने के कारण जटा स्वरूप हो गये थे। सम्पूर्ण शरीर में मैल जम गयी थी तथा उनके दोनों स्तन कान्तिहीन हो गये थे। **सरस्वत्याः शिवजलाशयम्** का यह भी अर्थ है कि सरस्वती नदी के मङ्गलमय जलचर जीव जिसमें विद्यमान थे उस सरोवर में देवहूति ने प्रवेश किया ॥२४-२५॥

सान्तः सरसि वेश्मस्थाः शतानि दश कन्यकाः। सर्वाः किशोरवयसो ददर्शोत्पलगन्धयः ॥२६॥

अन्वयः— सा अन्तः सरसि वेश्मस्था दशशतानि कन्यकाः ददर्श सर्वास्ताः किशोरवयस उत्पलगन्धयः आसनिति शेषः ।।२६।।

अनुवाद— देवहूति ने सरोवर के भीतर गृह में विद्यमान एक हजार कन्यकाओं को देखा। वे सबके सब किशोरावस्था की थीं और सबों के शरीर से कमल की सुगन्धि निकलती थी ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

सा तत्र निमग्ना सती विस्मयं ददर्श। तमाह-सान्तःसरसीति दशभिः। उत्पलगन्धयः कमलागन्धीः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

उस जल में डुबकी लगाते ही देवहूति ने आश्चर्यकारी वस्तु को देखा। उस आश्चर्य को बतलाते हुए दस श्लोकों से कहते हैं। देवहूति ने जल के भीतर गृह में विद्यमान एक हजार कन्यकाओं को देखा। उन सबों की अवस्था किशोरावस्था थी और उन सबों के शरीर से कमल की सुगन्धि आती थी ॥२६॥

तां दृष्टवा सहसोत्थाय प्रोचुः प्राञ्जलयः स्त्रियः। वयं कर्मकरीस्तुभ्यं शाधि नः करवाम किम् ॥२७॥

अन्वयः— तां दृष्ट्वा स्त्रियः सहसा उत्थाय प्राञ्जलयः प्रोचुः वयं तुभ्यं कर्मकरीः नः शधि किम् करवाम ।।२७।।

अनुवाद— देवहूति को देखकर सभी स्त्रियाँ उठकर खड़ी हो गयीं उन सबों ने हाथ जोड़कर कहा, हम आपकी दासियाँ हैं आप आज्ञा करें हमलोग आपकी कौन सी सेवा करें ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

तुभ्यं तव कर्मकरीः परिचारिका वयमस्मानाज्ञापयेति स्त्रियः प्रोचुः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

देवहूति को देखकर वे सारी कन्याएँ अचानक उठकर खड़ी हो गयीं और उन सबों ने हाथ जोड़कर कहा हम सभी आपकी दासियाँ हैं, आप आज्ञा करें कि हमलोग आपकी कौन सी सेवा करें ॥२७॥

स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम्। दुकूले निर्मले नूत्ने ददुरस्यै च मानदाः ॥२८॥

अन्वयः— तां मनस्विनीम् महार्हेण स्नाने न स्नापयित्वा मानदाः ता नूत्ने निर्मले दुकूले अस्यैः दुदुः च ।।२८।।

अनुवाद— उस मनस्विनी देवहूति को उन सबों ने बहुमूल्य पदार्थों से स्नान कराके अपनी स्वामिनी का सत्कार करने वाली उन सबों ने देवहूति को पहनने के लिए दो नवीन वस्त्रों को प्रदान किया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम्। दूकूले निर्मले नूत्ने ददुरस्यै च मानदाः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् उन सबों ने बहुमूल्य स्नानीय पदार्थों तैल आदि के द्वारा देवहूति को स्नान कराया और देवहूतिको पहनने के लिए दो नवीन तथा स्वच्छ वस्त्रों को प्रदन किया ॥२८॥

भूषणानि परार्ध्यानि वरीयांसि द्युमन्ति च । अन्नं सर्वगुणोपेतं पानं चैवामृतासवम् ॥२९॥

अन्वयः— वरीयांसि, द्युमन्ति च परार्ध्यानिभूषणानि ददुः सर्वगुणापेतं अन्नं अमृतासवम् पानं च ददुः ॥२९॥

अनुवाद— उन सबों ने देवहूति को श्रेष्ठ तथा देदीप्यमान आभूषणों को सभी गुणों से सम्पन्न भोजन और पीने के लिए अमृत के समान आसव प्रदान किया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

परार्ध्यान्युत्कृष्टानि । वरीयांसि तत्प्रियाणि द्युमन्ति दीप्तिमन्ति च । पानं पेयम् । अमृतं स्वादु । आसवं मादकम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

उन सबों ने अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के भूषणों, देवहूति को प्रिय तथा दीप्तिमान आभूषणों को प्रदान किया, सभी गुणों से युक्त भोजन प्रदान किया और पीने के लिए अमृत के समान स्वादिष्ट आसव (मादकद्रव्य) प्रदान किया ॥२९॥

अथादर्शे स्वमात्मानं स्रग्विणं विरजाम्बरम् । विरजं कृतस्वस्त्ययनं कन्याभिर्बहुमानितम् ॥३०॥

अन्वयः— अथ स्रग्विणं विरजाम्बरम्, विरजं कृतस्वस्त्ययनं, कन्याभिः, बहुमानितम् आत्मानं आदर्शे ददर्श ॥३०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् देवहूति ने पुष्पों की माला से अलंकृत स्वच्छ वस्त्र धारण की हुयी, निर्मल तथा कान्तिमान शरीर वाली तथा कन्याओं द्वारा आदर पूर्वक माङ्गलिक शृङ्गार किए हुए अपने शरीर को दर्पण में देखा ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

आदर्शे स्वमात्मानं ददर्शेति शेषः । आत्मानं विशिनष्टि चतुर्भिः । कृतं स्वस्त्ययनं मङ्गलं यस्य । पुंस्त्वमात्मशब्दसामानाधिकरण्यात् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

देवहूति ने दर्पण में जब अपने प्रतिबिम्ब को देखा यहाँ **ददर्श** पद का अध्याहार करना चाहिए । उस शरीर के अनुकूल वर्णन चार श्लोकों में किया गया है । जिसका कन्याओं ने माङ्गलिक शृङ्गार किया था उस अपने शरीर को देवहूति ने दर्पण में देखा । शरीर के विशेषणीभूत सभी शब्दों का पुल्लिङ्ग में प्रयोग आत्मा शब्द के साथ सामानाधिकरण्य होने के कारण किया गया है ॥३०॥

स्नातं कृतशिरः स्नानं सर्वाभरणभूषितम् । निष्कग्रीवं वलयिनं कूजत्काञ्चननूपुरम् ॥३१॥

अन्वयः— कृतशिरः स्नानं स्नातं सर्वाभरणभूषितम् निष्कग्रीवं, बलयितं कूजत् काञ्जन नूपरम् आत्मानं ददर्श ॥३१॥

अनुवाद— शिर से स्नान कराये गये सभी आभूषणों से भूषित गले में निष्कहार धारण किए हुए हाथों में कङ्गन और पैरों में झनकार करने वाले सुवर्ण नूपुर से अलंकृत अपने शरीर के प्रतिबिम्ब को देवहूति ने देखा ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

विरजमित्यस्य प्रपञ्चः। स्नातमुद्वर्त्य क्षालितम्। कृतं शिरः स्नानमभ्यङ्गो येन। भूषितत्वमेवाह । निष्कं पदकं ग्रीवायां यस्य॥३१॥

भाव प्रकाशिका

विरजम् पद का विस्तार से वर्णन इस श्लोक में किय गया है । देवहूति को उबटन लगाकर स्नान कराया गया था । देवहूति को शिरः स्नान कराया गया था अर्थात् शिर में सुगन्धित तेल इत्यादि लगाकर संस्कार युक्त किया गया था । देवहूति के अलङ्कारों से अलंकृत होने का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वे गले में निष्कधारण की हुयी थीं, हाथों में कङ्गन और पैरों में झनकार करते हुए सुवर्ण रचित पायल धारण की थीं । ऐसे अपने प्रतिबिम्ब को उन्होंने दर्पण में देखा ॥३१॥

श्रोण्योरध्यस्तया काञ्च्या काञ्चयन्या बहुरत्न्या । हारेण च महार्हेण रुचकेन च भूषितम् ॥३२॥

अन्वयः— श्रोण्योरध्यस्तया बहुरत्न्या काञ्चन्या, महार्हेण हरेण, रुचकेन च भूषितम् आत्मानं ददर्श ॥३२॥

अनुवाद— कमर में धारण की गयी अनेक प्रकार के रत्नों से युक्त सुवर्ण की करधनी से, बहुमूल्य हार से तथा रुचक प्रत्येक अङ्ग में लगे हुए माङ्गलिक द्रव्य से सुशोभित अपने प्रतिबिम्ब को देवहूति ने देखा ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

बहूनि रत्नानि यस्यां तया । रुचकेन मङ्गलद्रव्येण कुङ्कुमादिना । तदुक्तं विश्वप्रकाशे 'रुचकं मङ्गलद्रव्ये ग्रीवाभरणदन्तयोः' इति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

जिस सुवर्ण की करधनी को देवहूति धारण की थीं उसमें अनेक रत्न लगे थे । उन्होंने अत्यन्त मूल्यवान् हार धारण कर रखा था तथा रुचक धारण किया था । रुचक शब्द के तीन अर्थ विश्वप्रकाश कोश में बतलाये गये है । मङ्गलद्रव्य, गले का आभूषण तथा दाँत । इन सबों से सुशोभित थी देवहूति । इसी प्रकार के अपने प्रतिबिम्ब को दर्पण में उन्होंने देखा ॥३२॥

सुदता सुभ्रुवा श्लक्ष्णस्निग्धापाङ्गेन चक्षुषा । पद्मकोशस्पृधा नीलैरलकैश्च लसन्मुखम् ॥३३॥

अन्वयः— सुदता, सुभ्रुवा, श्लक्ष्णं स्निग्धापाङ्गेन पद्मकोशस्पृधा चक्षुषा लसन् मुखम् आत्मानं ददर्श ॥३३॥

अनुवाद— सुन्दर दाँतों, सुन्दर भौहों, तथा प्रेम पूर्वक कटाक्षमय कमल कली से स्पर्धा करने वाले नेत्रों से सुशोभित मुख वाले अपने प्रतिबिम्ब को देवहुति ने दर्पण में देखा ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

सुदता सुभ्रुवा चक्षुषेति च जातावेकवचनानि । एतैर्लसच्छोभमानं मुखं यस्य । कथंभूतेन चक्षुषा । श्लक्ष्णो मनोहरः स्निग्धोऽपाङ्गो नेत्रप्रान्तो यस्य । पद्मकोशेन स्पर्धत इति पद्मकोशस्पृधेन ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

सुन्दर दाँतों, सुन्दर भौहों, तथा नेत्रों से सुशोभित उनका मुख था । सुदता इत्यादि जाति के अर्थ में एकवचनान्त प्रयोग है । नेत्र की विशेषता बतलाते हैं उनके नेत्रों का प्रान्तभाग मनोहर तथा कोमल कटाक्षों से युक्त था । वह मानो कमल की कलियों से स्पर्धा करता था । इन सबों से सुशोभित मुख वाले अपने प्रतिबिम्ब को देवहूति ने देखा ॥३३॥

यदा सस्मार ऋषभमृषीणां दयितं पतिम् । तत्र चास्ते सह स्त्रीभिर्यत्रास्ते स प्रजापतिः ॥३४॥

अन्वयः— यदा ऋषीणां ऋषभं दयितं पतिं सस्मार तदा स्त्रीभिः सह तत्र चास्ते यत्र स प्रजापतिः आस्ते ॥३४॥

अनुवाद— जब देवहूति ने ऋषियों में श्रेष्ठ अपने पति का स्मरण किया उसी समय वे स्त्रियों के साथ अपने को वहीं पाया जहाँ पर प्रजापति कर्दम महर्षि थे ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

दृष्ट्वा च यदा पतिं सस्मार तदा यत्रासौ तत्रैव स्वयमप्यास्ते ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

जब उन्होंने अपने पतिदेव का स्मरण किया तो उन्होंने देखा कि वे वहीं हैं जहाँ प्रजापति कर्दम महर्षि थे॥३४॥

भर्तुः पुरस्तादात्मानं स्त्रीसहस्रवृतं तदा । निशाम्य तद्योगगतिं संशयं प्रत्यपद्यत ॥३५॥

अन्वयः— तदा भर्तुः पुरस्तात् आत्मानं स्त्रीसहस्रावृतं निशाम्य तद्योगगतिं च निशाम्य संशयं प्रत्यपद्यत ॥३५॥

अनुवाद— उस समय अपने को पतिदेव के सामने हजारो स्त्रियों से घिरा देखकर देवहूति ने उनके योग गति के प्रभाव को समझा और उनको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

आत्मानं निशाम्य दृष्ट्वा । तां च तस्य योगगतिं योगप्रभावं दृष्ट्वा । संशयं किमिदमिति विस्मयम् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

अपने को अपने पतिदेव के समक्ष हजारों स्त्रियों से घिरा देखकर और महर्षि कर्दम के योगगति के प्रभाव को देखकर देवहूति को आश्चर्य हुआ कि यह सब क्या हो रहा है ॥३५॥

स तां कृतमलस्नानां विभ्राजन्तीमपूर्ववत्। आत्मनो बिभ्रतीं रूपं संवीतरुचिरस्तनीम् ॥३६॥
विद्याधरीसहस्रेण सेव्यमानां सुवाससम् । जातभावा विमानं तदारोहयदमित्रहन् ॥३७॥

अन्वयः— हे अमित्रहन् कृतमलस्नानां अपूर्ववत् विभ्राजन्तीम्, संवीतरवचिरस्तनीम्, आत्मनो रूपं विभ्रतीम्, विद्याधरीसहस्रेण सेव्यमानां, सुवाससम्, तां तदा जताभावः विमानम् आरोहयत् ॥३६-३७॥

अनुवाद— हे अपने शत्रुओं को मारने वाले विदुर ! जब कर्दम महर्षि ने देखा कि देवहूति का शरीर स्नान करने से स्वच्छ हो गया है, वे अपूर्व रूप से सुशोभित हो रही हैं, उनके मनोहर स्तन चोली से ढँके हैं, विवाह के पहले उनका जैसा रूप था वैसे ही रूप से वे सम्पन्न हैं, हजारों विद्याधारियाँ उनकी सेवा कर रही हैं वे सुन्दर वस्त्रों को धारण की हुयी हैं तब उन्होंने देवहूति को उस विमान पर चढ़ाया ॥३६-३७॥

भावार्थ दीपिका

स मुनिर्विवाहात्प्राग्यदात्मनो रूपं तदेव पुनर्विभ्रतीम् । संवीतौ प्रावृतौ रुचिरौ स्तनौ यस्याः । पाठान्तरे तु रूपविशेषम्। शोभने वाससी यस्याः जातो भावः प्रेम यस्य, हे अमित्रहन् जितकाम ॥३६-३७॥

भाव प्रकाशिका

मुनि ने देख कि देवहूति का विवाह से पहले जो रूप था उसी रूप को उन्होंने प्राप्त कर लिया है । उनके दोनों मनोहर स्तन ढँके हुए हैं, संवीत स्थिरस्तनम् यह जहाँ पाठ है वहाँ अर्थ रूप विशेष अर्थ होगा । वे सुन्दर वस्त्रों को धारण की हैं तो उस देवहूति को देखकर उनके मन में देवहूति के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया अमित्रहन् यह विदुर का सम्बोधन है और इसका अर्थ है, काम को जीत लेने वाले । महर्षि कर्दम ने प्रेम पूर्वक देवहूति के उस विमान पर चढ़ाया ॥३६-३७॥

तस्मिन्नलुप्तमहिमा प्रिययानुरक्तो विद्याधरीभिरुपचीर्णवपुर्विमाने ।
बभ्राज उत्कचकुमुद्गणवानपीच्यस्ताराभिरावृतइवोडुपतिर्नभःस्थः ॥३८॥

अन्वयः— तस्मिन् विमाने प्रिययानुरक्तः अलुप्तमहिमा विद्याधरीभिः उपचीर्णवपुः उत्कचकुमुदगणवान् अपीच्यः ाराभिः आवृतः नभस्थः उडुपतिः इव ब्रभाज ॥३८॥

अनुवाद— उस विमान में अपनी प्रियतमा में अनुरक्त रहने पर भी महर्षि कर्दम की महिमा लुप्त नहीं हुयी ो । अर्थात् मन और इन्द्रियों पर उनका प्रभुत्व बना हुआ था । विद्याधारियाँ उनके शरीर की सेवा कर रही थीं। कसित कुमुद के पुष्पों से शृङ्गार करके वे अत्यन्त सुन्दर बने हुए थे । वे विमान पर इस प्रकार सुशोभित हो थे जैसे ताराओं के बीच में आकाशस्थ चन्द्रमा सुशोभित होते हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

तस्मिन्विमाने मुनिर्विभ्राजे । न लुप्तो महिमा स्वातन्त्र्यं यस्य । उपचीर्णं शुश्रूषितं वपुर्यस्य । विकसितकुमुद्गणवान-पीच्योऽतिसुन्दरः । पूर्णचन्द्र इव मुनिः, नभ इव विमानम्, तारा इव ताः स्त्रियः, कुमुदानीव तासां नेत्राणीति ज्ञेयम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

उस विमान में वे मर्मज्ञ सुशोभित हो रहे थे । अपनी प्रियतमा में अनुरक्त होने पर भी उनकी महिमा कम नहीं हुयी थी । यहाँ महिमा शब्द स्वतन्त्र्य का बोधक है । महर्षि कर्दम के शरीर की सेवा विद्याधारियाँ करती थीं विकसित कुमुद पुष्पों के द्वारा अलंकृत वे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हो रहे थे । वे ताराओं से घिरे हुए आकाशस्थ चन्द्रमा के समान सुशोभित हो रहे थे । पूर्ण चन्द्रमा के समान महर्षि कर्दम थे, आकाश के समान वह विस्तृत विमान था । ताराओं के समान वे स्त्रियाँ थीं और कुमुदों के समान उनके स्वच्छ नेत्र थे ।।३८।।

तेनाष्टलोकपविहारकुलाचलेन्द्रद्रोणीष्वनङ्गसखमारुतसौभगासु ।
सिद्धैर्नुतो द्युधुनिपातशिवस्वनासु रेमे चिरं धनदवल्ललनावरूथी ।।३९।।

अन्वयः— तेन अष्टलोकपविहार कुलाचलेन्द्रद्रोणीषु अनङ्ग सख मारुतसौभगासु द्युधुनिपात शिवस्वनासु सिद्धैर्नुतः ललनावरूथी सः धनदवत् चिरं रेमे ।।३९।।

अनुवाद— उस विमान के द्वारा आठो लोकपालों की विहार भूमि कुलाचल सुमेरु पर्वत की घाटियों में कुबेर के समान दीर्घकाल तक स्त्रियों के समूह के साथ कर्दम प्रजापति ने विहार किया । उन घाटियों में कामदेव के वेग को बढ़ाने वाली शीतल मन्दसुगन्ध वायु चला करती है । और वहाँ पर आकाश से गिरने वाली गङ्गाजी की मङ्गलमयी ध्वनि सुनायी पड़ती रहती है । विद्याधिरयाँ उनकी सेवा में संलग्न रहती थीं और सिद्धगण उनकी स्तुति किया करते थे ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

तेन विमानेन । अष्टलोकपालानां विहारो यस्मिन्कुलाचलेन्द्रे मेरौ तस्य द्रोणीषु दरीषु । अनङ्गस्य सखा यो मारुतः शीतसुगन्धमन्दानिलस्तेन सौभगं सौन्दर्यं यासु । सिद्धैर्नुतः स्तुतः सन् । द्युधुनिर्गङ्गा तस्याः पातेन शिवः स्वनो यासु तासु रेमे ललनावरूथी स्त्रीरत्नसमूहवान् ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

उस विमान के द्वारा आठो लोगपालों की विहार भूमि कुलाचलेन्द्र सुमेरु पर्वत की गुफाओं में वे दीर्घकाल तक विहार किए । उन घाटियों में कामदेव के वेग को बढ़ाने वाली शीतल, मन्द सुगन्ध वायु सदा चला करती है ऐसे सौभाग्य सम्पन्न घटियों में वे विहार किए । वहाँ उनकी स्तुति सिद्धगण किया करते थे और वहाँ सदैव आकाश से गिरने वाली स्वर्गङ्गा की मङ्गलमयी ध्वनि सुनायी पड़ती रहती थी । उस समय भी उनके साथ स्त्रीरत्न का समूह विद्यमान था ।।३९।।

वैश्रम्भके सुरसने नन्दने पुष्पभद्रके । मानसे चैत्ररथ्ये च स रेमे रामया रतः ।।४०।।

अन्वयः— रामयारतः सः वैश्रम्भके सुरसने, नन्दने पुष्पभद्रके, मानसे, चैत्ररथे च रेमे ।।४०।।

अनुवाद— अपनी पत्नी में अनुरक्त बने हुए वे वैश्रम्भक, सुरसन, नन्दन पुष्पभद्रक तथा चैत्ररथ आदि देवोद्यानों में एवं मानसरोवर में अपनी पत्नी के साथ विहार किये ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

वैश्रम्भकादिषु देवोद्यानेषु । मानसे च सरसि । रतः प्रीतः सन् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

अपनी पत्नी में अनुरक्त रहने वाले कर्दम प्रजापति वैश्रम्भक आदि देवद्यानों तथा मान सरोवर में विहार किए।।४०।।

भ्राजिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा । वैमानिकानत्यशेत चरन् लोकान्यथाऽनिलः ॥४१॥

अन्वयः— भ्राजिष्णुना कामगेन महीयसा विमानेन लोकान् चरन् अनिलः यथा वैमानिकान् अतिशेत ॥४१॥

अनुवाद— देदीप्यमान, तथा अपनी इच्छा के अनुसार चलने वाले विमान के द्वारा विभिन्न लोकों में वायु के समन सञ्चरण करते हुए वे विमान सञ्चारी देवताओं से भी बढ गये ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

अत्यशेतातिक्रम्य स्थितः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं से भी अधिक बढ गये प्रजापति कर्दम ॥४१॥

किं दुरापादनं तेषां पुंसामुद्दामचेतसाम् । यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो व्यसनात्ययः ॥४२॥

अन्वयः— यैः तीर्थपदः व्यसनात्यः चरणः आश्रितः तेषाम् उद्दामचेतसाम् किं दुरापादनम् ?॥४२॥

अनुवाद— हे विदुरजी जिन लोगों ने श्रीगवान् के व्यसन विनाशक चरणों को अपने आश्रय रूप से अपना लिया है उन धीरपुरुषों के लिए कौन सी वस्तु दुर्लभ है ?॥४२॥

भावार्थ दीपिका

उद्दामचेतसां धीराणाम् । व्यसनं संसारस्तस्यात्ययो यस्मात् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

जो लोग श्रीभगवान् के चरणों को ही आश्रय रूप से अपनाते हैं उन धीर पुरुषों के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं है । श्रीभगवान् के चरण तो व्यसनात्यय है । व्यसन संसार को कहते हैं । उसके भय को विनष्ट करने के कारण भगवान् के चरण व्यसनात्यय हैं । भगवान् के चरण को आश्रय रूप से अपनाने वाले उद्दामचेता हैं । अर्थान्तर विषयान्तर की अपेक्षा नहीं होने के कारण उत्कृष्ट श्रीभगवान् में ही उनका चित्त लगा रहता है ॥४२॥

प्रेक्षयित्वा भुवो गोलं पत्न्यै यावान्स्वसंस्थया । बह्वाश्चर्यं महायोगी स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥४३॥

अन्वयः— महायोगी बहवाश्चर्यं भुवो गोलं स्वसंस्थया यावान् पत्न्यै प्रेक्षयित्वा स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥४३॥

अनुवाद— इस प्रकार महायोगी महर्षि कर्दम अनेक आश्चर्यों से युक्त भूमण्डल को उसके सम्पूर्ण संस्थानों के साथ अपनी पत्नी को दिखाकर अपने आश्रम पर लौट आये ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

प्रेक्षयित्वा दर्शयित्वा । गोलं मण्डलम् । स्वसंस्थया द्वीपवर्षादिरचनया यावांस्तावन्तम् । बहून्याश्चर्याणि यस्मिंस्तम् ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कर्दम अपनी पत्नी को सम्पूर्ण भूमण्डल और उसके द्वीप वर्ष आदि जितनी भी रचनाएँ जो अनेक प्रकार के आश्चर्यों से युक्त है उन सबों को दिखाकर पुनः अपने आश्रम में लौट आये ॥४३॥

विभज्य नवधात्मानं मानवीं सुरतोत्सुकाम् । रामां निरमयन् रेमे वर्षपूगान्मुहूर्तवत् ॥४४॥

अन्वयः— नवधा आत्मानं विभज्य रतोत्सुकाम् मानवीं रामां वर्षपूगान् मुहूर्तवत् निरमयन् रेमे ॥४४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् अपने को नव भागों में विभक्त कर रतिजन्य सुख के लिए सदा उत्सुक बनी रहने वाली अपनी पत्नी मनुपुत्री देवहुति के साथ उन्होंने बहुत वर्षों तक एक मुहूर्त के समान रमण किया ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

नवधा विभज्य नवप्रभेदमात्मानं कृत्वा ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

अपने को नवभागों में विभक्त करके कर्दम महर्षि ने देवहूति के साथ अनेक वर्षों तक रमण किया और उनका वह समय एक मुहूर्त के समान बीत गया ।।४४।।

तस्मिन्विमान उत्कृष्टां शय्यां रतिकरीं श्रिता । न चाबुध्यत तं कालं पत्याऽपीच्येन सङ्गता ।।४५।।

अन्वयः— तस्मिन् विमाने उत्कृष्टां रतिकरीं शय्यां श्रिता अपीच्येन पत्या संगता च तं कालं न अबुध्यत ।।४५।।

अनुवाद— उस विमान में उत्कृष्ट तथा रतिजन्य सुख को बढाने वाली शय्या का आश्रय लेकर अपने सुन्दर पति के साथ रहने वाली देवहूति को उतने समय का पता ही नहीं चला कि कब वह समय बीत गया ।।४५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४५।।

एवं योगानुभावेन दम्पत्यो रममाणयोः । शतं व्यतीयुः शरदः कामलालसयोर्मनाक् ।।४६।।

अन्वयः— एवं योगानुभावेन कामलालसयोः रममाणयोः दम्पत्योः मनाक् शतं शरदः व्यतीयुः ।।४६।।

अनुवाद— इस तरह से योग के प्रभाव के कारण, काम की लालसा से युक्त रमण करते हुए उन दोनों पति-पत्नी को सौ वर्षों का समय एक छोटे से समय के समान बीत गया ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

शरदः संवत्सराः । मानागीषदिव व्यतीयुः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

शरद् शब्द संवत्सर का बोधक है और मनाक् यह अव्यय बहुत थोड़े का बोधक है । इस तरह रमण करते हुए देवहूति तथा कर्दम महर्षि के सौ वर्ष बीत गये; किन्तु वह उनको बहुत छोटे समय के समान प्रतीत हुआ ।।४६।।

तस्यामाधत्त रेतस्तां भावयन्नात्मनात्मवित् । नोधा विधाय रूपं स्वं सर्वसङ्कल्पविद्विभुः ।।४७।।

अन्वयः— आत्मवित् सर्वसङ्कल्पवित् विभुः स्वरूपं नोधा विधाय आत्मना तां भगवान तस्यां रेतः आधत ।।४७।।

अनुवाद— आत्मज्ञ महर्षि कर्दम सबों के सङ्कल्प को जानने वाले थे, अतएव वे देवहूति को सन्तान प्राप्ति के लिए उत्सुक जानकर तथा श्रीभगवान् के आदेश को स्मरण करके महर्षि ने अपने स्वरूप को नव भागों में विभक्त करके एकाग्र मन से अपनी पत्नी के गर्भ में अपने वीर्य का आधान कर दिए ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

आत्मना स्वदेहार्धरूपेणातिप्रीत्या भावयन् । तथा सति सदपत्यं भवेदिति । नोधा नवधा । सर्वसङ्कल्पविदिति । तस्या बह्वपत्यसङ्कल्पं जानन्नित्यर्थः । विभुस्तथा कर्तुं समर्थश्च । आत्मविदिति च तामानासक्तत्वात्स्त्रियो जाता इति भावः । पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः इति स्मृते ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

उन्होंने स्वयं ही अपनी पत्नी की अर्धाङ्गरूप में अत्यन्त प्रेम पूर्वक भावना की इससे मेरी अच्छी सन्तान होए और देवहूति के गर्भ में अपने वीर्य का उन्होंने आधान कर दिया । नोधा पद का अर्थ नव प्रकार से है । सर्वसङ्कल्पवित् पद का अर्थ है कि वे जानते थे कि देवहूति चाहती हैं कि हमारी बहुत सी सन्तानें होएँ । चूकि उस तरह का कर्म करने में वे समर्थ थे अतएव उनको विभु कहा गया है । **आत्मवित्** कहने का अभिप्राय है

कि महर्षि देवहूति में आसक्त नहीं थे अतएव उनकी स्त्री सन्ताने हुयी । स्मृति भी कहती है जब पुरुष का शुक्र (वीर्य) अधिक होता है तो पुरुष सन्तान होती है और स्त्री का रज अधिक होता है तो स्त्री सन्तान होती है ।।४७।।

अतः सा सुषुवे सद्यो देवहूतिः स्त्रियः प्रजाः । सर्वास्ताश्चारुसर्वाङ्ग्यो लोहितोत्पलगन्धयः ।।४८।।

अन्वयः— अतः सा देवहूतिः सद्यः स्त्रियः प्रजाः सुषुवे । ताः सर्वाः चारुसर्वाङ्ग्यः लोहितोत्पलगन्धयः आसन् ।।४८।।

अनुवाद— उसके पश्चात् दवहूति ने शीघ्र ही स्त्री सन्तानों को जन्म दिया, वे सबके सब सर्वाङ्ग सुन्दरियाँ थीं और उन सबों के शरीर से लाल कमल की सुगन्धि निकलती थी ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

अतोऽनन्तरमेव । सद्य एकस्मिन्नेवाहनि । चारूणि सर्वाण्यङ्गानि यासाम् ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् देवहूति ने एक ही दिन में स्त्री सन्तानों को जन्म दिया । सबके सब सर्वाङ्ग सुन्दरी थीं और उन सबों के शरीर से लाल कमल की सुगन्धि निकलती थी ।।४८।।

पतिं सा प्रव्रजिष्यन्तं तदालक्ष्योशती सती । स्मयमाना विक्लवेन हृदयेन विदूयता ।।४९।।
लिखन्त्यधोमुखी भूमिं पदा नखमणिश्रिया । उवाच ललितां वाचं निरुध्याश्रुकलां शनैः ।।५०।।

अन्वयः— तदा उशती सती प्रव्रजिष्यन्तं पतिं आलक्ष्य विदूयता विक्लवेन हृदयेन अश्रुकलां निरूध्य अधोमुखी नखमणिश्रिया यदा भूमिं लिखन्ती स्मयमाना ललितां वाचम् उवाच ।।४९-५०।।

अनुवाद— उस समय शुद्ध स्वभाव वाली देवहूति ने देखा कि उनके पतिदेव संन्यास ग्रहण करके वन में जाना चाहते हैं तो उनका दुःखी हृदय व्याकुल हो गया, उन्होंने किसी तरह अपने आँसुओं को रोका और मुख नीचे करके नखरूपी मणि की शोभा से सम्पन्न भूमि को कुरेदती हुयी और मुस्कुराती हुयी सी मधुर वाणी में उन्होंने कहा ।।४९-५०।।

भावार्थ दीपिका

प्रव्रजिष्यन्तमालक्ष्य वितर्क्य स्मयमाना बहिः, अन्तस्तु विक्लवेन व्याकुलेन विदूयता संतप्यमानेन हृदा उवाचेत्युत्तरेणान्वयः। नखा एव मणयस्तैः श्रीः शोभा यस्य तेन पदा भुवं लिखन्तीमीति दुरन्तचिन्तालक्षणम् ।।४९-५०।।

भाव प्रकाशिका

देवहूति ने जान लिया कि पतिदेव संन्यास ग्रहण करके वन जाना चाहते है किन्तु ऊपर से मुस्कुराती हुयी और भीतर से उनका हृदय सन्तप्त ही हो रहा था । उन्होंने कहा यह आगे के श्लोक से अन्वय है । नखरूपी मणि से सुशाभित चरणों से भूमि को कुरेदती हुयी उन्होंने कहा । यह अत्यधिक चिन्ता का लक्षण है ।।४९-५०।।

देवहूतिरुवाच

सर्वं तद्भगवान्मह्यमुपोवाह प्रतिश्रुतम् । अथापि मे प्रपन्नाया अभयं दातुमर्हसि ।।५१।।

अन्वयः— भगवन् सर्वं प्रतिश्रुतम् मह्यम् उपोवाह अथापि प्रपन्नायाः मे अभयं दातुम् अर्हसि ।।५१।।

देवहूति ने कहा

अनुवाद— आपने जो विवाह के समय प्रतिज्ञा की थी उसका पूर्णरूप से निर्वाह किया है, फिर भी मैं आपकी शरणागता हूँ, आप मुझे अभय प्रदान करें ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

उपोवाह संपादितवान् । अभयमिति भाविनो दैन्यात्संसाराच्च यद्भयं तन्निवर्तयेत्यर्थः ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

आपने अपनी प्रतिज्ञा का पूर्ण रूप से निर्वाह किया है; किन्तु भविष्यत् काल में होने वाली अपने पुत्रियों के पतियों का अन्वेषण करने में सम्भावित दीनता से मुझे अभय प्रदान करें ॥५१॥

ब्रह्मन्दुहितृभिस्तुभ्यं विमृग्याः पतयः समाः । कश्चित्स्यान्मे विशोकाय त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥५२॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् तुभ्यं दुहितृभिः समाः पतयः विमृग्याः त्वयि वनम् प्रव्रजिते मे विशोकाय कश्चित स्यात् ॥५२॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! आपको अपनी पुत्रियों के लिए उन सबों के ही समान पतियों का अन्वेषण करना चाहिये और आपके वन में चले जाने पर मेरे लिए किसी को ऐसा होना चाहिए जो मुझे शोकरहित बना दे ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

तत्र दैन्यं निवेदयति । तुभ्यं तव दुहितृभिः स्वयमेवात्मनः समा योग्याः पतयो विमृग्या इति दैन्यं प्राप्तम् । संसारभयमुररीकृत्याह-कश्चिदिति । विशोकाय ज्ञानोपदेशाय । स्त्रीभिर्ऋणानपाकरणात्कंचित्कालं त्वदवस्थानेन ब्रह्मवित्पुत्रः कश्चित्किं स्यादित्यर्थः ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

अपनी दीनता का निवेदन करती हुयी देवहूति ने कहा आपको अपनी पुत्रियों के लिए योग्य वर का अन्वेषण करना चाहिए । यह मुझको दैन्य प्राप्त है । संसार के भय को हृदय में रखकर उन्होंने कहा **कश्चित् इत्यादि** अर्थात् आपके वन में चले जाने पर मुझको भी ज्ञानोपदेश करके शोकरहित बना देने वाला कोई पुत्र चाहिए । क्योंकि स्त्रियाँ तो ऋणत्रय का अपाकरण कर नहीं सकती हैं । अतएव कुछ समय तक यहाँ रहकर आप मुझे ब्रह्म ज्ञानी पुत्र प्रदान करें ॥५२॥

एतावताऽलं कालेन व्यतिक्रान्तेन मे प्रभो । इन्द्रियार्थप्रसङ्गेन परित्यक्तपरात्मनः ॥५३॥
इन्द्रियार्थेषु सज्जन्त्या प्रसङ्गस्त्वयि मे कृतः। अजानन्त्या परं भावं तथाऽप्यस्त्वभयाय मे ॥५४॥

अन्वयः— हे प्रभो ! परित्यक्तपरात्मनः, इन्द्रियार्थप्रसङ्गेन व्यतिक्रान्तेन एतावता कालेन मे अलम् । इन्द्रियार्थेषु सज्जन्त्या परं भावं अजानन्त्या त्वयि मे प्रसङ्गः कृतः तथापि मे अभयाय अस्तु ॥५३-५४॥

अनुवाद— हे प्रभो ! अब तक परमात्म पराङ्मुख रहकर मेरा जो इतना महान् काल इन्द्रिय सुख में ही बीत गया वह व्यर्थ ही चला गया । आपके प्रभाव को नहीं जानने के कारण ही मैने इन्द्रिय के विषयों में आसक्त रहकर आप से प्रेम किया फिर भी किसी को मेरे संसार के भय को दूर करने वाला होना चाहिए ॥५३-५४॥

भावार्थ दीपिका

विषयान्भुक्ष्व किं ब्रह्मविद्ययेति चेत्तत्राह । एतावताऽलं पूर्यताम् । परित्यक्तः पर आत्मा यया तस्या मम । स्वकृतमनुशोचन्त्याह इन्द्रियार्थेष्विति चतुर्भिः । मे मया । परं भावं त्वं ब्रह्मविदिति ॥५३-५४॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि विषयों का उपभोग करो ब्रह्मविद्या को प्राप्त करने से कौन सा लाभ होने वाला है ? तो इसका उत्तर है कि इतने समय तक विषयों का भोग भोगा है । वह पूरा हो गया अभी तक तो मैं परमात्म पराङ्मुख ही रही । अब तो मुझको कोई ज्ञानोपदेश करने वाला मिलना चाहिए ॥५३-५४॥

सङ्गो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया । स एव साधुषु कृतो निःसङ्गत्वाय कल्पते ॥५५॥

अन्वयः— अधिया असत्सु कृतः सङ्गो यः संसृतेः हेतुः स एव साधुषु कृतः निःसङ्गत्वाय कल्पते ॥५५॥

अनुवाद— अज्ञान के कारण सत्पुरुषों के साथ किया हुआ जो सङ्ग है वह संसारभय को प्रदान करने वाला होता है, वही सङ्ग यदि साधुपुरुष के साथ किया जाय तो वह अनासक्ति का कारण बन जाता है ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गः कथमभयायास्तु तत्राह-सङ्ग इति । अधियाऽज्ञनेन ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि सङ्ग किस प्रकार से अभय प्रदान का साधन हो सकता है तो इसका उत्तर इस श्लोक से दिया गया है । अज्ञान के कारण जो असत् पुरुषों के साथ सङ्ग किया जाता है वह तो संसार बन्ध का ही कारण होता है; किन्तु वही सङ्ग यदि सत्पुरुषों के साथ किया जाय तो वह संसार से अनासक्ति का साधन बन जाता है ॥५५॥

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते । न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥५६॥

अन्वयः— इह यत् कर्म न तु धर्माय, न विरागाय न तीर्थपद सेवायै सः जीवन् अपि मृतः हि ॥५६॥

अनुवाद— जिस पुरुष के द्वारा किया गया कर्म न तो धर्मकारक होता है, न तो वैराग्य उत्पन्न करने वाला होता और न तो श्रीभगवान् की सेवा का ही सम्पादक होता है, वह मनुष्य इस लोक में जीवित भी रहकर मरा हुआ ही है ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

स्वभावतः प्रवृत्तं यस्य कर्म धर्मार्थं न कल्पते धर्माभिमुखं न भवेत् तत्रापि निष्कामधर्मद्वारा विरागाय न कल्पते । तद्द्वारा च तीर्थपदस्य हरेः सेवार्थं न पर्यवस्येदित्यर्थः ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

स्वाभाविक रूप से किया जाने वाला जिस पुरुष का कर्म न तो धार्मिक होता है, और न तो वह निष्काम होने के कारण संसार से वैराग्य उत्पन्न करने वाला हो और न तो उसका पर्यवसान श्रीभगवान् की सेवा में ही होता हो ऐसा व्यक्ति इस संसार में जीवित भी रहकर मरा हुआ ही है ॥५६॥

साहं भगवतो नूनं वञ्चिता मायया दृढम् । यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात् ॥५७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे कपिलेयोपाख्याने त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥२३॥

अन्वयः— सा अहं यत् त्वां विमुक्तिदं प्राप्य बन्धनात् न मुमुक्षेय नूनम् भगवतः मायया अहं दृढं वञ्चिता ॥५७॥

अनुवाद— आप जैसे पतिदेव को प्राप्त करके भी मैंने जो संसार के बन्धन से मुक्त होने की इच्छा नहीं की वह निश्चित रूप से मैं भगवान् की माया से अत्यधिक ठगी गयी ॥५७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के कापिलेयोपाख्यान के अन्तर्गत तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

न मुमुक्षेय मोक्तुमिच्छां न कृतवत्यस्मि ।।५७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

मैंने मोक्ष प्राप्ति की इच्छा नहीं की, अतएव भगवान् की माया ने मुझको ठग लिया ।।५७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की तेइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२३।।

◆

चौबीसवाँ अध्याय

श्रीकपिलदेवजी का जन्म

मैत्रेय उवाच

निर्वेदवादिनीमेवं मनोर्दुहितरं मुनिः । दयालुः शालिनीमाह शुक्लाभिव्याहृतं स्मरन् ॥१॥

अन्वयः— शालिनीम्, एवं निर्वेदवादिनीम् मनोर्दुहितरं दयालुः मुनिः शुक्लाभि व्याहृतं स्मरन् आह ॥१॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— सद्गुणों से सुशोभित इस प्रकार से वैराग्य जनक बातों को कहने वाली महाराज मनु की पुत्री देवहूति को कृपा करने वाले दयालु मुनि ने श्रीभगवान् की बातों का स्मरण करते हुए कहा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्विंशे ततो जन्म कपिलस्याह तत्पितुः । प्रव्रज्यां तमनुज्ञाप्य ऋणत्रयविमोक्षतः ॥१॥ शालिनीं श्लाघ्याम् । शुक्लेनाभिव्याहृतं '**सहाहं स्वांशकलया**' इत्यादि ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौबीसवें अध्याय में कपिल महर्षि के जन्म का वर्णन, उनके पिता के संन्यास को जानकर ऋणत्रय से मुक्ति के लिए किया गया है ॥१॥ **शालिनीं श्लाघ्याम् इत्यादि**- सद्गुणों से सम्पन्न होने के कारण देवहूति प्रशंसनीय थी । उनकी दीनता भरी बात को सुनकर दयालु मुनि ने श्रीभगवान् के **सहाहं स्वांशकलया इत्यादि** वाक्य का स्मरण करते हुए कहा ॥१॥

ऋषिरुवाच

मा खिदो राजपुत्रीत्थमात्मानं प्रत्यनिन्दिते । भगवांस्तेऽक्षरो गर्भमदूरात्संप्रपत्स्यते ॥२॥

अन्वयः—हे अनिन्दिते राजपुत्रि इत्थम् आत्मानं प्रति मा खिदः, ते गर्भम् अक्षरो भगवान् अदूरात् सम्प्रपत्स्यते ॥२॥

कर्दम महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे दोषरहित राजकुमारी ! तुम अपने विषय में खेद न करो, तुम्हारे गर्भ में अविनाशी पुरुष परमात्मा शीघ्र ही आयेंगे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

इत्थं मा खिदः खेदं मा कार्षीः आत्मानं प्रति अहं भाग्यहीनेति । अदूराच्छीघ्रम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

कर्दम महर्षि ने कहा कि तुमको इस तरह अपने को भाग्यहीन समझकर खेद नहीं करना चाहिए; तुम्हारे गर्भ में शीघ्र ही अक्षर पुरुष परमात्मा आने वाले हैं ॥२॥

धृतव्रतासि भद्रं ते दमेन नियमेन च । तपोद्रविणदानैश्च श्रद्धया चेश्वरं भज ॥३॥

अन्वयः— धृतव्रतासि ते भद्रम् दमेन, नियमेन तपोद्रविणदानैश्च श्रद्धया च ईश्वरं भज ॥३॥

अनुवाद— तुमने व्रत का पालन किया है, तुम्हारा कल्याण होगा । अब तुम दम (इन्द्रियों को वश में रखना) नियम (अपने धर्म का पालन और पावित्र्य का पालन) तपस्या, धन का दान और श्रद्धा के द्वारा ईश्वर की आराधना करो ॥३॥

भावार्थ दीपिका

दमेनेन्द्रियसंयमेन । नियमेन स्वधर्मेण । तपांसि द्रविणदानानि च तैः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

अब तुमको इन्द्रियों को वश में रखना चाहिए, स्वधर्म का पालन तथा पावित्र्य पालन रूप नियम, तपस्या धन का दान तथा श्रद्धा के द्वारा परमात्मा की आराधना करनी चाहिए ॥३॥

स त्वयाराधितः शुक्लो वितन्वन्मामकं यशः । छेत्ता ते हृदयग्रन्थिमौदर्यो ब्रह्मभावनः ॥४॥

अन्वयः— त्वया आराधितः सः शुक्लः मामकं यशः वितन्वन् ब्रह्मभावनः औदर्यः सः ते हृदय ग्रन्थिम् छेत्ता ॥४॥

अनुवाद— तुम्हारे द्वारा आराधित होकर वे भगवान् मेरे यश का विस्तार करते हुए तुम्हारे औदर्य पुत्र बनकर ब्रह्मोपदेश द्वारा तुम्हारे हृदय की अहङ्कार ग्रन्थि को विनष्ट कर देंगे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

हृदयग्रन्थि चिज्जडात्मकमहंकारलक्षणं बन्धं छेत्ता छेत्स्यति । औदर्यः पुत्रः सन् । ब्रह्म भावयत्युपदिशतीति तथा ॥४॥

भाव प्रकाशिका

जड़ और चेतन की ग्रन्थि रूप जो अहङ्कार रूपी संसार का बन्धन है, उसको वे ब्रह्मोपदेश के द्वारा विनष्ट कर देंगे । वे तुम्हारे पुत्र रूप से अवतीर्ण होंगें ॥४॥

मैत्रेय उवाच

देवहूत्यपि संदेशं गौरवेण प्रजापतेः । सम्यक् श्रद्धाय पुरुषं कूटस्थमभजद्गुरुम् ॥५॥

अन्वयः— देवहूत्यपि प्रजापतेः संदेशं गौरवेण सम्यक् श्रद्धाय कूटस्थम्, गुरुम्, पुरुषं अभजत् ॥५॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे विदुरजी! प्रजापति कर्दम महर्षि आदेश एवं उनमें गौरव बुद्धि होने के कारण देवहूति ने भी उस पर पूर्ण रूप से विश्वास किया और वह कूटस्थ निर्विकार जगद्गुरु भगवान् पुरुषोत्तम की आराधना करने लगी ॥५॥

भावार्थ दीपिका

श्रद्धाय विश्वस्य ॥५॥

भाव प्रकाशिका

श्रद्धाय पद का अर्थ है विश्वास करके ॥५॥

तस्यां बहुतिथे काले भगवान्मधुसूदनः । कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव दारुणि ॥६॥

अन्वयः— बहुतिथे काले भगवान् मधुसूदनः कार्दमवीर्यम् आपन्नो तस्यां दारुणि अग्निरिव जज्ञे ॥६॥

अनुवाद— इस तरह बहुत दिन बीत जाने पर भगवान् मधुसूदन, महर्षि कर्दम के वीर्य का आश्रय लेकर देवहूति के गर्भ से उसी तरह प्रकट हुए जिस तरह अरणी से अग्नि प्रकट होती है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

बहुतिथे बहुतरे कालेऽतिक्रान्ते सति । कार्दमं कर्दमसंबन्धि ॥६॥

भाव प्रकाशिका

बहुत दिन बीत जाने के पश्चात् महर्षि कर्दम के वीर्य का सहारा लेकर श्रीभगवान् देवहूति के पुत्र के रूप से जन्म लिए ॥६॥

अवादयंस्तदा व्योम्नि वादित्राणि घनाघनाः । गायन्ति तं स्म गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसो मुदा ॥७॥

अन्वयः— तदा व्योम्नि घनाघनाः वादित्राणि अवादयन् । गन्धर्वां तं गायन्ति स्म, अप्सरसः मुदा नृत्यन्ति स्म ॥७॥

अनुवाद— उस समय आकाशा में मेघ समूह गरज कर बाजों को बजाने लगे । गन्धर्व गण भगवत् सम्बन्धी गीत गाने लगे और अप्सराएँ प्रसन्नता पूर्वक नृत्य करने लगीं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

घनाघना इत्येकं पदम् । वर्षन्तो मेघाः । गायन्ति स्म नृत्यन्ति स्म ॥७॥

भाव प्रकाशिका

घनाघनाः यह एक ही पद है और इसका अर्थ है कि धन सघन मेघ वर्षा करते हुए गरज-गरज कर वाद्य बजाने लगे, गन्धर्वगण गीत गाने लगे और आनन्दित होकर अप्सरायें नृत्य करने लगीं ॥७॥

पेतुः सुमनसो दिव्याः खेचरैरपवर्जिताः । प्रसेदुश्च दिशः सर्वा अम्भांसि च मानंसि च ॥८॥

अन्वयः— खेचरैः अपवर्जिता दिव्या सुमनसः पेतुः, सर्वाः दिशः अम्भांसि, मनांसि च प्रसेदुः ॥८॥

अनुवाद— देवताओं के द्वारा वर्षाये गये दिव्य पुष्पों की वर्षा हुयी । उस समय सभी दिशाएँ, सरोवरों आदि के जल और सभी जीवों के मन प्रसन्न हो गये ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अपवर्जिता मुक्ताः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अपवर्जिताः पद का अर्थ बरसाये गये हैं ॥८॥

तत्कर्दमाश्रमपदं सरस्वत्या परिश्रितम् । स्वयंभूः साकमृषिभिर्मरीच्यादिभिरभ्ययात् ॥९।

अन्वयः— सरस्वत्या परिश्रितम् तत् कर्दमाश्रमपदम् मरीच्यादिभिः ऋषिभिः साकम् स्वयम्भूः अभ्ययात् ॥९॥

अनुवाद— सरस्वती नदी के जल से घिरे हुए उस कर्दम महर्षि के आश्रम में मरीचि आदि ऋषियों साथ ब्रह्माजी आये ॥९॥

भावार्थ दीपिका

परिश्रितं परिवेष्टितम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

परिश्रितम् पद का अर्थ है घिरे हुए ॥९॥

भगवन्तं परं ब्रह्म सत्त्वेनांशेन शत्रुहन् । तत्त्वसंख्यानविज्ञप्त्यै जातं विद्वानजः स्वराट् ॥१०॥
सभाजयन्विशुद्धेन चेतसा तच्चिकीर्षितम् । प्रहृष्यमाणैरसुभि कर्दमं चेदमभ्यधात् ॥११॥

अन्वयः— हे शत्रुहन् ! विद्वान् अजः स्वराट् परंब्रह्म भगवन्तं सत्त्वेनांशेन तत्त्वसंख्यानविज्ञप्त्यै विशुद्धेन चेतसा तच्चिकीर्षितम् सभाजयन् प्रहृष्यमाणैः असुभिः कर्दमं च इदमभ्यधात् ॥१०-११॥

अनुवाद— हे शत्रुओं को मारने वाले विदुरजी ! स्वतः सिद्धज्ञान से सम्पन्न अजन्मा ब्रह्माजी यह जानते थे कि परंब्रह्म भगवान् विष्णु ही अपने अंश से सांख्य शास्त्र का उपदेश करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं, अतएव भगवान् जिस कार्य को करना चाहते थे । उसका विशुद्ध हृदय से अनुमोदन और आदर करके वे महर्षि कर्दम और देवहूति से कहे ॥१०-११॥

भावार्थ दीपिका

आगत्य किं कृतवांस्तदाह-भगवन्तमिति द्वाभ्याम् । तत्त्वानां संख्यानं यस्मिंस्तस्य सांख्यस्य विज्ञप्त्यै विशेषेण ज्ञापनाय भगवन्तं जातं विद्वानजो ब्रह्मा स्वराट् स्वतःसिद्धज्ञानस्तस्य चिकीर्षितं सभाजयन् पूजयन् प्रहृष्यमाणैरसुभिरिन्द्रियैरुपलक्षितः कर्दमं चेदमभ्यधादिति द्वयोरन्वयः । चकाराद्देवहूतिं च ॥१०-११॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी कर्दम महर्षि के आश्रम में आकर क्या किए ? इसको **भगवन्तमित्यादि** दो श्लोकों से कहते हैं। ब्रह्माजी स्वतः सिद्धज्ञान हैं इसलिए स्वराट् शब्द वाच्य हैं । वे जानते थे कि परंब्रह्म भगवान् विष्णु ही सांख्य शास्त्र का उपदेश करने के लिए कपिल के रूप में अवतीर्ण हुए है । श्रीभगवान् जिस कार्य को करना चाहते हैं उसका अपने शुद्ध अन्तःकरण से समर्थन करके वे उनका आदर किये । इस बात का पता उनके प्रसन्न प्राणों और इन्द्रियों को देखने से ही चल गया । उसके पश्चात् वे महर्षि कर्दम और देवहूति दोनों से कहें ॥१०-११॥

ब्रह्मोवाच

त्वया मेऽपचितिस्तात कल्पिता निर्व्यलीकतः । यन्मे संजगृहे वाक्यं भवान्मानद मानयन् ॥१२॥

अन्वयः— हे मानद ! भवान मां मानयन् यत् मे वाक्यं संजगृहे तत् त्वया मे निर्व्यलीकतः अपचितिः कल्पिता॥१२॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— हे दूसरों का सम्मान करने वाले कर्दम तुमने जो मेरा सम्मान करते हुए मेरे वाक्य को स्वीकार किया है, उसके द्वारा तुमने बिना किसी कपट के मेरी पूजा की है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तत्र-त्वयेति पञ्चभिः कर्दमं प्रत्याह । अपचितिः पूजा कृता । यत् यस्मात् । निर्व्यलीकतो निष्कपटं सम्यग्गृहीतवान् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

त्वया इत्यादि पाँच श्लोकों से उन्होंने महर्षि कर्दम से कहा तुमने मेरी पूर्ण रूप से पूजा की है, क्योंकि तुमने बिना किसी कपट के ही मेरे वाक्यों को स्वीकार किया है ॥१२॥

एतावत्येव शुश्रूषा कार्या पितरि पुत्रकैः । बाढमित्यनुमन्येत गौरवेण गुरोर्वचः ॥१३॥

अन्वयः— पुत्रकैः पितरि एतावत्येव शुश्रूषा कार्या यतः गौरवेण गुरोः वचः बाढम् इति अनुमन्यते ॥१३॥

अनुवाद— पुत्रों को पिता की सबसे बड़ी सेवा यही करनी चाहिए, कि वह **जो आज्ञा** यह कहकर अपने पिता के आदेश को आदर पूर्वक स्वीकार करें ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अनुमन्येतेति यदेतावत्येव ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

अर्थात् पिता की आज्ञा का अनुमोदन करके उसको स्वीकार करना ही पुत्रों की अपने पिता की सबसे बड़ी सेवा हैं ।।१३।।

इमा दुहितरः सभ्य तव वत्स सुमध्यमाः । सर्वमेतं प्रभावैः स्वैर्बृंहयिष्यन्त्यनेकधा ।।१४।।

अन्वयः— हे वत्स ! हे सभ्य इमा तव सुमध्यमाः दुहितरः स्वैः प्रभावैः एतं सर्गम् अनेकधा बृहयिष्यन्ति ।।१४।।

अनुवाद— हे वत्स ! तुम सम्य हो ये तुम्हारी सुन्दर पुत्रियाँ अपने वंशों के द्वारा इस सृष्टि को अनेक प्रकार से बढाने का कार्य करेंगी ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

अनेकधा प्रभाावैर्वंशर्बृंहयिष्यन्ति वर्धयिष्यन्ति ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने महर्षि कर्दम से कहा कि तुम्हारी ये सभी कन्याये सुन्दर हैं । ये अपने वंशों के द्वारा इस सृष्टि को अनेक प्रकार से बढाने का काम करेंगी ।।१४।।

अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथाशील यथारुचि । आत्मजाः परिदेह्यद्य विस्तृणीहि यशो भुवि ।।१५।।

अन्वयः— अतः त्वम् अद्य ऋषिमुख्येभ्यः यथाशीलम् यथारुचि आत्मजाः परिदेहि, भुवि यशः विस्तृणीहि ।।१५।।

अनुवाद— अतएव आज तुम इन मरीचि आदि ऋषियों को उनके शील और रुचि के अनुसरर अपनी पुत्रियों को समर्पित करके भूलोक में अपने यश का विस्तार करो ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

ऋषिमुख्येभ्यो मरीच्यादिभ्यः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

ऋषिमुख्य शब्द से ब्रह्माजी ने मरीचि आदि ऋषियों को कहा है ।।१५।।

वेदाहमाद्यं पुरुषमवतीर्णं स्वमायया । भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं मुने ।।१६।।

अन्वयः— हे मुने ! भूतानां शेवधिं स्वमायया अवतीर्णं आद्यं पुरुषं देहं विभागं कपिलम् अहं वेद ।।१६।।

अनुवाद— हे मुने ! मैं जानता हूँ कि सभी जीवों के निधि स्वरूप उनकी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले आदि पुरुष परमात्मा ही अपनी माया से शरीर को धारण करके कपिल के रूप में अवतीर्ण हुए हैं ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

पुत्रस्तु साक्षादीश्वर इत्याह-वेदाहमिति । शेवधिं निधिं सर्वाभीष्टदम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

वेदाहम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा उन्होंने महर्षि कर्दम को बतलाया कि तुम्हारे पुत्र ये कपिल तो साक्षात् परमात्मा के अवतार हैं । ये मनुष्यों की निधि है, क्योंकि ये सभी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं । ये साक्षात् आदि पुरुष परमात्मा हैं ये तो अपनी माया से मनुष्य का शरीर धारण किए हुए हैं ।।१६।।

ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणामुद्धरञ्जटाः । हिरण्यकेशः पद्माक्षः पद्ममुद्रापदाम्बुजः ॥१७॥
एष मानवि ते गर्भं प्रविष्टः कैटभार्दनः । अविद्यासंशयग्रन्थिं छित्त्वा गां विचरिष्यति ॥१८॥

अन्वयः— हे मानवि हिरण्यकेशः, पद्माक्षः पद्ममुद्रापदाम्बुजः एष ते गर्भं कैटभार्दनः प्रविष्टः, अविद्यासंशय ग्रन्थिं छित्वा गां विचरिष्यति ॥१७-१८॥

अनुवाद— हे मनुपुत्रि ये सुवर्ण के समान केश वाले, कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले, कमल के चिह्न से अंकित चरण कमल वाले ये कैटभ नामक राक्षस को मारने वाले श्रीभगवान् ही तुम्हारे गर्भ में प्रवेश किए थे। ये अज्ञान जन्य मोह की ग्रन्थियों को काटकर पृथिवी पर विचरण करेंगे ॥१७-१८॥

भावार्थ दीपिका

देवहूतिं प्रत्याह त्रिभिः । ज्ञानशास्त्रोक्तं विज्ञानमपरोक्षं च ते एव योग उपायस्तेन कर्मणां जटा मूलानि वासना उद्धरन्नुत्पाटयिष्यन्। पद्ममुद्रायुक्तं पदाम्बुजं यस्य । हे मानवि, अविद्या स्वरूपज्ञानं संशया मिथ्याज्ञानानि तन्मयं तव हृदयग्रन्थिम् ॥१७-१८॥

भाव प्रकाशिका

वे तीन श्लोकों से देवहूति को कहे शास्त्रजन्य ज्ञान को ज्ञान शब्द से अभिहित किया गया है, अपरोक्ष ज्ञान को विज्ञान शब्द से कहा गया है, इन दोनों उपायों से कर्मों की मूलभूत वासना को विनष्ट करके पृथिवी पर विचरण करेंगे । इनके पैर में पद्म का चिह्न । हे मानवि अविद्या अर्थात् स्वरूप विषयक अज्ञान तथा संशय अर्थात् मिथ्याज्ञान स्वरूप तुम्हारे हृदय की ग्रंथि को काटकर ये पृथिवी पर विचरण करेंगे ॥१७-१८॥

अयं सिद्धगणाधीशः सांख्याचार्यैः सुसंमतः । लोके कपिल इत्याख्यां गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ॥१९॥

अन्वयः— अयं सिद्धगणाधीशः सांख्याचार्यैः सुसंमतः लोके कपिल इति आख्यां गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ॥१९॥

अनुवाद— ये सिद्धजनों के स्वामी और सांख्याचार्यों के सम्माननीय होंगे । लोक में ये कपिल के नाम से प्रख्यात होंगे और तुम्हारी कीर्ति को बढायेंगे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

सुसंमतः सुपूजितः सन् । गन्ता प्राप्स्यति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

ये सांख्याचार्यों द्वारा सुपूजित होंगे ओर लोक में इनकी कपिल के नाम से प्रसिद्धि होगी ॥१९॥

मैत्रेय उवाच

तावाश्वास्य जगत्स्रष्टा कुमारैः सह नारदः । हंसो हंसेन यानेन त्रिधाम परमं ययौ ॥२०॥

अन्वयः— जगत् स्रष्टा तौ आश्वास्य कुमारैः सह नारदः हंसेन यानेन त्रिधाम परमं ययौ ॥२०॥

अनुवाद— जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी महर्षि कर्दम और देवहूति को आश्वासन देकर सनकादिक कुमारों तथा नारदजी के साथ हंसरूपी विमान पर चढकर सत्यलोक में चले गये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

कुमारैः सहेति शेषः । सहनारदो नारदसहितश्च । मीरच्यादीन्विवाहार्थमवस्थाप्य नैष्ठिकैरेतैः पञ्चभिः सहितो हंसो ब्रह्मा ययौ । त्रिधाम तृतीयं धाम स्वर्गस्तस्य परां काष्ठां सत्यलोकम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी नारदजी तथा चारो सनकादिकों ये पाँचों जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे उन सबों के साथ सत्यलोक में

चल गय । त्रिधाम शब्द से स्वर्ग लोक को कहा गया है, उनमें सबसे श्रेष्ठ स्वर्गलोक को चले गये । वे मरीरीचि आदि ऋषियों को विवाह के लिए वहीं पर छोड़ दिये ॥२०॥

गते शतधृतौ क्षत्तः कर्दमस्तेन चोदितः । यथोदितं स्वदुहितृः प्रादाद्विश्वसृजां ततः ॥२१॥

अन्वयः— हे क्षत्तः शतधृतौ गते तेन चोदितः प्रेरितः ततः यथोदितं स्वदुहितृः विश्वसृजां प्रादात् ॥२१॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! ब्रह्माजी के चले जाने पर उन्हीं की प्रेरणा के अनुसार प्रेरित महर्षि कर्दम ने अपनी पुत्रियों को प्रजापतियों को प्रदान किया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

शतधृतौ ब्रह्मणि ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

शतधृति ब्रह्माजी का नाम है । उनके चले जाने पर ॥२१॥

मरीचये कलां प्रादादनसूयामथात्रये । श्रद्धामङ्गिरसेऽयच्छत्पुलस्त्याय हविर्भुवम् ॥२२॥

अन्वयः— मरीचये कलां प्रादत् अथ अत्रये अनसूयाम् अङ्गिरसे श्रद्धाम् अयच्छत् पुलस्त्याय हविर्भुवम् प्रादात् ॥२२॥

अनुवाद— उन्होंने मरीचि महर्षि को कला नामक पुत्री को प्रदान कर दिया, अत्रि महर्षि का विवाह अनसूया से किया, अङ्गिरा महर्षि का श्रद्धा नामक पुत्री से विवाह कर दिया तथा पुलस्त्य महर्षि का विवाह हविर्भू नामक पुत्री से कर दिया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

पुलहाय गतिं युक्तां ऋतवे च क्रियां सतीम् । ख्यातिं च भृगवेऽयच्छद्वसिष्ठायाप्यरुन्धतीम् ॥२३॥

अन्वयः— पुलहाय युक्तां गतिं, क्रतवे च क्रियां सतीम् ख्यातिं च भृगवे अयच्छत् वसिष्ठाय अपि अरुन्धतीम् ॥२३॥

अनुवाद— पुलह महर्षि का विवाह उनके अनुसार गति से, क्रतु महर्षि का साध्वी क्रिया से, भृगु महर्षि का ख्याति नामक पुत्री से और वसिष्ठ महर्षि का विवाह भी अरुन्धती से उन्होंने कर दिया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

युक्तां योग्याम् । अयच्छत् अदात् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

युक्त शब्द का अर्थ योग्य है और अयच्छत् अर्थात् प्रदान किया ॥२३॥

अथर्वणेऽददाच्छान्तिं यया यज्ञो वितन्यते । विप्रर्षभान्कृतोद्वाहान् सदारान्समलालयत् ॥२४॥

अन्वयः— अथर्वणे शान्तिं प्रादात यया यज्ञः वितन्यते । कृतोद्वाहान् विप्रर्षभान् सदारान् समलालयत् ॥२४॥

अनुवाद— उन्होंने अथर्वा महर्षि को शान्ति नाम की कन्या प्रदान किया जिससे यज्ञ का विस्तार होता है। उन्होंने विवाह करके ऋषिवर्यों का उनकी पत्नियों के साथ सत्कार किया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

वितन्यते समृद्धः क्रियते । शान्त्यधिष्ठात्रीं देवतामित्यर्थः । समलालयत्संतोषितवान् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

वितन्यते अर्थात् समृद्ध किया जाता है शान्ति देवी शान्ति की अधिष्ठातृ देवता हैं । समलालयत् अर्थात् संतुष्ट किया ॥२४॥

ततस्त ऋषयः क्षत्तः कृतदारा निमन्त्र्य तम् । प्रातिष्ठन्नन्दितमापन्नाः स्वं स्वमाश्रममण्डलम् ॥२५॥

अन्वयः— क्षत्तः ततः ते ऋषय कृतदारा तम् निमन्त्र्य, आनन्दितम् आपन्ना, स्वं स्वम् आश्रममण्डलम् प्रातिष्ठन् ॥२५॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! उसके पश्चात् विवाह हो जाने पर वे ऋषिगण कर्दम महर्षि से आज्ञा लेकर आनन्दित हो गये और अपने-अपने आश्रम मण्डल के लिए प्रस्थान किये ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

निमत्र्य पृष्ट्वा । नन्दिं हर्षं प्राप्ताः सन्तः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

निमन्त्र्य अर्थात् पूछकर और नदिम् आनन्द पूर्वक ॥२५॥

स चावतीर्णं त्रियुगमाज्ञाय विबुधर्षभम् । विविक्त उपसंगम्य प्रणम्य समभाषत ॥२६॥

अन्वयः— स अवतीर्णं विवुधर्षम् त्रियुगम् आज्ञाय, विविक्ते उपसंगम्य, प्रणम्य समभाषत ॥२६॥

अनुवाद— महर्षि कर्दम भी देवताओं में श्रेष्ठ श्रीविष्णु भगवान् को अवतीर्ण हुए जानकर एकान्त में उनके पास जाकर प्रणाम किए और कहे ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

स च मुनिः । त्रियुगं विष्णुम् । विविक्ते रहसि ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

वे कर्दम महर्षि भी, त्रियुग अर्थात् भगवान् विष्णु को अवतीर्ण हुए जानकर एकान्त में उनके पास गये औरउनको प्रणाम करके कहे ॥२६॥

अहो पापच्यमानानां निरये स्वैरमङ्गलैः । कालेन भूयसा नूनं प्रसीदन्तीह देवताः ॥२७॥

अन्वयः— अहो स्वैः अमङ्गलैः निरये पापच्यमानानां देवताः नूनं इह भूयसा कालेन प्रसीदन्ति ॥२७॥

अनुवाद— अहो अपने पाप कर्मों के कारण इस दुःखमय संसार में अत्यधिक कष्टों को भोगेने वाले जीवों पर देवता बहुत दिनों के बाद प्रसन्न होते हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

पापच्यमानानां भृशं दह्यमानानाम् । निरये संसारे । स्वीयैरमङ्गलैः पापैः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

इस संसार में अपने पाप कर्मों के कारण अत्यधिक संतप्त होने वाले मनुष्यों पर देवता बहुत समय के पश्चात् प्रसन्न हो जाते हैं ॥२७॥

बहुजन्मविपक्वेन सम्यग्योगसमाधिना । द्रष्टुं यतन्ते यतयः शून्यागारेषु यत्पदम् ॥२८॥

अन्वयः— बहुजन्म विपाकेन, सम्यक् योग समाधिना, यतयः शून्यागारेषु यत् पदं द्रष्टुम् यतन्ते ॥२८॥

अनुवाद— अनेक जन्मों की साधना से परिपक्व हुयी समाधि के द्वारा योगिजन जिनके स्वरूप को एकान्त में देखने का प्रयास करते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

कुतः । सर्वा देवताः प्रसन्ना इति ज्ञातम्, अलभ्यलाभादित्याह द्वाभ्याम् । बहुषु जन्मसु विपक्वेन सुसिद्धेन । सम्यग्योगो भक्तियोगस्तस्मिन्समाधिरैकाग्र्यं तेन । शून्यागारेषु विविक्तस्थानेषु । यस्य तव पदम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

आप कैसे जानते हैं कि सभी देवता प्रसन्न हो गये हैं। तो इसका उत्तर है कि अलभ्यलाभ होने के कारण मैं जानता हूँ। इस बात को महर्षि दो श्लोकों से कहते हैं। अनेक जन्मों में सिद्ध हुयी समाधि में श्रेष्ठ भक्तियोग के द्वारा चित्त की एकाग्रता के द्वारा एकान्तस्थान में आपके चरणों का दर्शन प्राप्त करने का प्रयास करते हैं ॥२८॥

स एव भगवानद्य हेलनं न गणय्य नः । गृहेषु जातो ग्राम्याणां यः स्वानां पक्षपोषणः ॥२९॥

अन्वयः— स एव स्वानां पक्षपोषणः भगवान् नः ग्राम्याणां हेलनं नगणय्य अद्य नः गृहेषु जातः ॥२९॥

अनुवाद— वे ही अपने भक्तों की रक्षा करने वाले भगवान् आज हम विषय लोलुप जीवों के द्वारा की जाने वाली अवमानना की परवाह किए बिना ही हमारे घर में अवतीर्ण हो गये हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

हेलनमवज्ञां लाघवं नगणय्यागणयित्वा। उचितमेव तवैतदित्याह। यस्त्वं स्वानां भक्तानां पक्षं पुष्णासीति तथा सः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

हेलन अवमानना को कहते हैं। महर्षि कहते हैं कि हम कामी जीवों के द्वारा की जाने वाली अवमानना की परवाह किए बिना ही आप हमारे यहाँ अवतीर्ण हो गये हैं। आपका ऐसा करना उचित भी है, क्योंकि आप अपने भक्तों की रक्षा किया करते हैं ॥२९॥

स्वीयं वाक्यमृतं कर्तुमवतीर्णोऽसि मे गृहे । चिकीर्षुर्भगवान् ज्ञानं भक्तानां मानवर्धनः ॥३०॥

अन्वयः— भक्तानां मानवर्धनः भवान् स्वीयं वाक्यम् ऋतं कृर्तुम् ज्ञानं चिकीर्षुः भगवान् मे गृहे अवतीर्णः असि ॥३०॥

अनुवाद— आप अपने भक्तों का मान बढ़ाने का काम करते हैं। अपनी वाणी को सत्य करने के लिए तथा सांख्य योग का उपदेश देने के लिए आप मेरे गृह में अवतार ग्रहण किए हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति द्वाभ्याम्। स्वयमेवावतीर्णोऽसि स्ववाक्यं तव पुत्रो भविष्यामीति यत्तत्सत्यं कर्तुम्। ज्ञानं ज्ञानसाधनं सांख्यं च चिकीर्षुः सन् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

इसी अर्थ का विस्तार से दो श्लोकों द्वारा वर्णन करते हैं। आपने जो पहले कहा था कि मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा अपने इसी वाक्य को सत्य करने के लिए आप मेरे घर में अवतीर्ण हुए हैं। आपके इस अवतार का प्रयोजन ज्ञान के साधनभूत सांख्ययोग को प्रवर्तित करना है ॥३०॥

तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव । यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः ॥३१॥

अन्वयः— हे भगवन् तान्येव एव ते रूपाणि अभिरूपाणि सन्ति, यानि-यानि स्वजनानाम् रोचन्ति तानि अपि अरूपिणः तव अभिरूपाणि ॥३१॥

अनुवाद— हे भगवन्! आपके वे चतुर्भुज इत्यादि रूप ही आपके स्वरूपानुरूप हैं, और आपके भक्तों को जो रूप प्रिय लगते हैं वे भी आपके अनुरूप है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

यानि तवालौकिकानि चतुर्भुजादिरूपाणि तान्येव तेऽभिरूपाणि योग्यानि। यानि च स्वजनानां रोचन्ते मनुष्यसरूपाणि तान्यपि ते रोचन्त इत्यर्थः। अरूपिणः प्राकृतरूपहितस्य ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

प्रभो ! आप प्राकृत रूप से रहित हैं । आपके जो चतुर्भुज आदि दिव्य रूप हैं वे ही आपके योग्य हैं और आपके भक्तों को जो अच्छे लगते हैं वे भी रूप आपके योग्य ही हैं ॥३१॥

त्वां सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाऽद्धा सदाऽभिवादार्हणपादपीठम् ।
ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोधवीर्यश्रियां पूर्तमहं प्रपद्ये ॥३२॥

अन्वयः— अद्धा सूरिभिः तत्त्व बुभुत्सया सदाऽभिवादार्हणपादपीठम्, ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोधवीर्यश्रियाँ पूर्तं त्वाम् अहं प्रपद्ये ॥३२॥

अनुवाद— आपकी चरणचौकी तत्त्वज्ञान की इच्छा से विद्वानों द्वारा सदा वन्दनीय है । ऐश्वर्य वैराग्य, यश, ज्ञान पराक्रम और श्री इन सबों से परिपूर्ण आपकी मैं शरणागति करता हूँ ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अभिवादार्हं पादपीठं यस्य । ऐश्वर्यादिभिः पूर्तं पूर्णम् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कर्दम ने कहा कि तत्त्वज्ञान की इच्छा से आप की चरण चौकी विद्वानों द्वारा वन्दनीय है और ऐश्वर्यादि छहों ऐश्वर्यों से आप परिपूर्ण हैं, अतएव मैं आपकी शरणागति करता हूँ ॥३२॥

परं प्रधानं पुरुषं महान्तं कालं कविं त्रिवृतं लोकपालम् ।
आत्मानुभूत्याऽनुगतप्रपञ्चं स्वच्छन्दशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥३३॥

अन्वयः— परं, प्रधानं, पुरुषं, महान्तं कालं, कविं, त्रिवृतं, लोकपालं, आत्मानुभूत्यानुगतप्रपञ्चं स्वच्छन्दशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥३३॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप परमेश्वर हैं, सारी शक्तियाँ आपके अधीन हैं, प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, काल, अहङ्कार, समस्तलोक, और लोकपाल इन सबों के रूप में आप ही प्रकट होते हैं । आप सर्वज्ञ हैं और इस सम्पूर्ण प्रपञ्च को अपनी चेतना शक्ति के द्वारा अपने में लीन कर लेते हैं । ऐसे भगवान् कपिल की मैं शरणागति करता हूँ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

ऐश्वर्यादिकं विवृण्वन्नाह । परं परमेश्वरम् । तत्र हेतुः-स्वच्छन्दाः स्वाधीनाः शक्तयो यस्य । ता एवाह । प्रधानं प्रकृतिरूपं पुरुषं तदधिष्ठातारं महान्तं महत्तत्त्वरूपं कालं तेषां क्षोभकं त्रिवृतमहंकाररूपं लोकात्मकं तत्पालात्मकं च । तदेवं मायया प्रधानादिरूपतामुक्त्वा चिच्छक्त्या निष्प्रपञ्चतामाह । आत्मानुभूत्या चिच्छक्त्याऽनुगतः स्वस्मिन् लीनः प्रपञ्चो यस्य तम् । कविं सर्वज्ञम् । प्रधानाद्याविर्भावलयसाक्षिणमित्यर्थः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के ऐश्वर्य आदि का विस्तार करते हुए महर्षि ने कहा— आप ही परमेश्वर हैं, क्योंकि आपके ही अधीन सारी शक्तियाँ हैं । उन शक्तियों को बतलाते हुए वे कहते हैं- प्रकृतिस्वरूप, प्रधान, प्रकृति के अधिष्ठाता पुरुष, महान् इन सबों में क्षोभ उत्पन्न करने वाला काल, सात्त्विक राजस एवं तामस तीनों प्रकार का अहङ्कार, लोक एवं लोकपाल, इन सबों के रूप में आप ही प्रकट होते हैं । इस तरह से माया के द्वारा प्रधानादिरूपता को बतलाकर चित् शक्ति के द्वारा श्रीभगवान् की निष्प्रपञ्चता को बतलाते हुए उन्होंने कहा **अत्मानुभूत्या० इत्यादि** अर्थात् आप अपनी चित्शक्ति के द्वारा अनुगत होकर सम्पूर्ण प्रपञ्च को अपने में लीन कर लेते हैं । आप सर्वज्ञ हैं और प्रधान आदि के अविार्भाव और लय इत्यादि के आप साक्षी हैं । ऐसे आप कपिल भगवान् की मैं शरणागति करता हूँ ॥३३॥

आस्माभिपृच्छेऽद्य पतिं प्रजानां त्वयाऽवतीर्णार्ण उताप्तकामः ।
परिव्रजत्पदवीमास्थितोऽहं चरिष्ये त्वां हृदि युञ्जन्विशोकः ॥३४॥

अन्वयः— त्वया अवतीर्णाणे उत आप्तकामः परिव्रजत्पदवीम् आस्थितः अहम् त्वां हृदि युञ्जन् विशोकः चरिष्ये, प्रजानां पतिं अद्य अभिपृच्छेस्म ।।३४।।

अनुवाद— आपके द्वारा मैं अब सभी ऋणों को उतार चुका हूँ, मेरी सारी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी हैं, अब मैं संन्यास मार्ग पर स्थित होकर आपका अपने हृदय में स्मरण करते हुए शोक रहित होकर पृथिवी पर विचरण करूँगा, इसके लिए मैं आपसे आज्ञा माँगता हूँ ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

संन्यासानुज्ञां प्रार्थयते । आस्माभिपृच्छे यत्किंचिदभिपृच्छामीत्यर्थः । त्वया पुत्ररूपेणावतीर्णानि निवृत्तानि ऋणानि दैवादिरूपाणि यस्य स आप्तकामश्चाहं परिव्रजतां संन्यासिनां पदवीं मार्गमाश्रितः संस्त्वां युञ्जन् स्मरन्विचरिष्यामि ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में कर्दम महर्षि भगवान् कपिल से संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा के लिए प्रार्थना करते हैं । **आस्माभिपृच्छे** पद का अर्थ है कि मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ । आपके पुत्र रूप से उत्पन्न हो जाने के कारण मेरे देवऋण आदि तीनों ऋण समाप्त हो गये हैं । मेरी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो चुकी हैं । अब मैं सन्यास मार्ग को अपनाकर अपने हृदय में आपका स्मरण करते हुए सभी शोकों से रहित होकर विचरण करना चाहता हूँ ।।३४।।

श्रीभगवानुवाच

माया प्रोक्तं हि लोकस्य प्रमाणं सत्यलौकिके । अथाजनि मया तुभ्यं यदवोचमृतं मुने ॥३५॥

अन्वयः— मुने सत्यलौकिके लोकस्य मया प्रोक्तं प्रमाणं तुभ्यं यद् ऋतं अवोचम् अथ अजनि ।।३५।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे मुने संसार के लौकिक एवं वैदिक कर्मों में मेरा वचन ही प्रमाण है । मैंने जो आप से सत्य कहा था कि मैं तुम्हारे यहाँ जन्म लूँगा वह मैंने अवतार ग्रहण कर लिया ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

अहं तावज्ज्ञानोपदेशायैव त्वद्गृहेऽवतीर्णः अतस्तव गृहे वसतोऽपि मुक्तिः सुलभैव । यद्यवश्यं गन्तमव्यमेवाग्रहस्तथापि मामेवानुस्मरन् गच्छेत्याशयेनाह-मयेति षड्भिः । सत्यलौकिके वैदिके लौकिके च कृत्ये । स्वोक्तस्य प्रमाण्यमभिदर्शयति । यद्यस्मात्तुभ्यं तव पुत्रो भविष्यामीत्यवोचम् अथ अत एव तदृतं सत्यं यथा भवति तथा मयाऽजनि जन्म स्वीकृतम् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

मैं तो ज्ञानोपदेश करने के लिए आपके गृह में अवतीर्ण हुआ हूँ अतएव यदि आप अपने घर में ही निवास करते हैं तो भी आपको मुक्ति सुलभ ही है । यदि आपका यह आग्रह हो कि मुझे संन्यास अवश्य ग्रहण कर लेना चाहिए तो भी मेरा स्मरण करते हुए आप जायँ इसी अभिप्राय से भगवान् कपिल ने **मया इत्यादि** छह श्लोकों को कहा- लोक के लौकिक एवं वैदिक कर्मों में मेरा कथन ही प्रमाण है । अपने कथन की प्रमाणिकता को बताते हुए कपिल भगवान् ने कहा— चूकि मैंने आपसे कहा था कि मैं आपका पुत्र बनकर अवतार ग्रहण करूँगा इसलिए मैंने आपके यहाँ जन्म ले लिया और मेरी वह वाणी सत्य हो गयी ।।३५।।

एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन्मुमुक्षूणां दुराशयात् । प्रसंख्यानाय तत्त्वानां संमतायात्मदर्शने ॥३६॥

अन्वयः— अस्मिन् लोके मे एतत् जन्म मुमुक्षूणाम् दुराशयात् प्रसंख्यानाय आत्मदर्शने तत्त्वानां सम्मताय ।।३६।।

अनुवाद— इस लोक में यह मेरा जन्म मुमुक्षु जीवों के लिङ्गशरीर से मुक्त होने की इच्छा वाले जीवों के लिए आत्मदर्शन में उपयोगी और प्रकृति आदि का विवेक करने के लिए ही हुआ है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

दुराशयाल्लिङ्गान्मुमुक्षूणां मुनीनामात्मदर्शने संमताय तत्त्वानां प्रसंख्यानाय विद्धीत्युत्तरस्यानुषङ्गः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

संसार में मेरा यह जन्म लिङ्ग शरीर से मुक्त होने की इच्छा वाले मुमुक्षु जीवों के आत्म दर्शन में उपयोगी होगा । तत्त्वों का उपदेश करने के लिए ही मेरा अवतार है यह जानो ।।३६।।

एष आत्मपथोऽव्यक्तो नष्टः कालेन भूयसा । तं प्रवर्तयितुं देहमिमं विद्धि मया भृतम् ।।३७।।

अन्वयः— एष आत्मपथः भूयसा कालेन नष्टः अव्यक्तः । तं प्रवर्तयितुम् मया इमं देहं भृतम् विद्धि ।।३७।।

अनुवाद— आत्मज्ञान का यह मार्ग बहुत समयसे लुप्त हो गया है । इसको पुनः प्रवर्तित करने के लिए ही मैंने इस शरीर को धारण किया है । यह तुम जानो ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

नन्वयमात्मज्ञानमार्गः पूर्वसिद्ध एव नेदानीमपूर्ववत्प्रवर्तनीयस्तत्राह-एष इति । अव्यक्तः सूक्ष्मः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि यह ज्ञान मार्ग तो पहले से ही हैं, अतएव इसको अपूर्व के समान प्रवर्तित नहीं करना है, इस पर भगवान् ने कहा यह ज्ञान मार्ग अत्यन्त सूक्ष्म है, अतएव इसको प्रवर्तित करने के लिए मैंने इस शरीर को धारण किया है ।।३७।।

गच्छ कामं मया पृष्टो मयि संन्यस्तकर्मणा । जित्वा सुदुर्जयं मृत्युमतृतत्वाय मां भज ।।३८।।

अन्वयः— मया आपृष्टः कामं गच्छ मयि सन्यस्त कर्मणा दुर्जयं मृत्युं जित्वा अमृतत्वाय मां भज ।।३८।।

अनुवाद— आपने मेरी आज्ञा माँगी है आप अपनी इच्छानुसार जायँ, अपने समस्त कर्मो को मुझको ही समर्पित करके जिसको जीतना बड़ा कठिन है उस मृत्यु को जीतकर मुक्ति की प्राप्ति करने के लिए मेरा भजन करें ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

कामं यथेच्छम् । आपृष्टोऽनुज्ञातः । यद्वा यथा त्वं गन्तुं मां पृष्टवांस्तथात्रावस्थातुं मयापि त्वमापृष्ट इत्यर्थः । मयि संन्यस्तेन समर्पितेन कर्मणा **अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते**' इति श्रुतेः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

कामं पद का अर्थ अपनी इच्छा के अनुसार है । मया आपृष्टः अर्थात् मेरी आज्ञा है । आपृष्टः का अर्थ यह भी है कि जिस तरह से आपने जाने के लिए मुझसे आज्ञा माँगी है उसी तरह मैं भी यहाँ पर रहने के लिए आपसे आज्ञा माँगता हूँ । आप मुझे ही अपने कर्मो को समर्पित करके मृत्यु को जीतकर मुक्ति को प्राप्त कर लें। श्रुति भी कहती हैं **अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते** अर्थात् अविद्या के द्वारा मृत्यु को जीतकर जीव मुक्ति को प्राप्त कर लेता है । यहाँ श्रुति में अविद्या शब्द से कर्मो को कहा गया है ।।३८।।

मामात्मानं स्वयंज्योतिः सर्वभूतगुहाशयम् । आत्मन्येवात्मना वीक्ष्य विशोकोऽभयमृच्छसि ।।३९।।

अन्वयः— स्वयंज्योतिः आत्मानं सर्वभूतगुहाशयम् माम् आत्मना आत्मन्येव वीक्ष्य विशोकः अभयम् ऋच्छसि ।।३९।।

अनुवाद— मैं स्वयं प्रकाश और सभी जीवों की आत्मा हूँ, सबों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हूँ । आत्म विशुद्धि के द्वारा जब तुम मेरा अपने अन्तःकरण में साक्षात्कार कर लोगे तो तुम मुक्ति को प्राप्त कर लोगे ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

ततश्च मां परमं परमात्मानमात्मनि स्वस्मिन्नात्मना अन्वीक्षमाणोऽभयं मोक्षं प्राप्स्यसि ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

जब तुम अपनी शुद्ध बुद्धि से अपने अन्त:करण में मेरा साक्षात्कार कर लोगे तो तुम मुक्ति को प्राप्त कर लोगें।।३९।।

मात्रे आध्यात्मिकीं विद्यां शमनीं सर्वकर्मणाम् । वितरिष्ये यया चासौ भयं चातितरिष्यति ।।४०।।

अन्वयः— मात्रे सर्वकर्मशमनीम् आध्यात्मिकीं विद्यां वितरिष्ये यया च असौ भयं च अतितरिष्यति ।।४०।।

अनुवाद— अपनी माता देवहूति को सभी कर्मों को विनष्ट करने वाले आत्मज्ञान को प्रदान करूँगा । उसके द्वारा ये भी संसार रूपी भय से मुक्त हो जायेंगी ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

मात्रे देवहूत्यै । शमनीमुन्मूलनीम् । भयमतिशयेन तरिष्यति । परमानन्दं प्राप्स्यतीति चकारार्थः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

माता देवहूति को मैं आत्मज्ञान प्रदान करूँगा । वह कर्मों का विनाश करने वाला है । उससे ये संसार को पूर्णरूप से पार कर जायेंगी और परमानन्द को प्राप्त कर लेंगी यह चकार का अर्थ है ।।४०।।

मैत्रेय उवाच

एवं समुदितस्तेन कपिलेन प्रजापतिः । दक्षिणीकृत्य तं प्रीतो वनमेव जगाम ह ।।४१।।

अन्वयः— तेन कपिलेन एवं समुदितः प्रजापतिः प्रीतः तं दक्षिणीकृत्य वनमेव जगाम ह ।।४१।।

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् कपिल के द्वारा इस तरह कहने पर महर्षि कर्दम उनकी प्रदक्षिणा करके प्रसन्नता पूर्वक वन में चले गये ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

समुदितः सम्यगुक्तः सन् । तं प्रदक्षिणीकृत्य ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से भगवान् कपिल द्वारा अच्छी तरह से कहे जाने पर महर्षि कर्दम भगवान् कपिल की प्रदक्षिणा किए और वन में चले गये ।।४१।।

व्रतं स आस्थितो मौनमात्मैकशरणो मुनिः । निःसङ्गो व्यचरत्क्षोणीमनग्निरनिकेतनः ।।४२।।

अन्वयः— आत्मैकशरणः मौनव्रतम् आस्थितः स भगवान् मुनिः निःसङ्गः अनग्निः अनिकेतनः क्षोणीम् व्यचरत् ।।४२।।

अनुवाद— मुनियों के अहिंसा व्रत को अपनाकर केवल परमात्मा कोअपना शरण मानने वाले वे कर्दम महर्षि सबसे अनासक्त होकर अग्नि तथा आश्रय का परित्याग करके पृथिवी पर सञ्चरण करने लगे ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

मुनीनामिदं मौनम् व्रतमहिंसालक्षणम् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि अहिंसा प्रधान मौन व्रत को अपना लिए थे । मुनीनामिदम् यह मौन की व्युत्पत्ति है । उन्होंने अग्नि और निवास स्थान दोनों का परित्याग कर दिया ओर वे सबों से अनासक्त होकर पृथिवी पर विचरण करने लगे।।४२।।

मनो ब्रह्मणि युञ्जानो यत्तत्सदसतः परम् । गुणावभासे विगुण एकभक्त्यानुभाविते ॥४३॥

अन्वयः— यत् तत् सदसत परम् गुणावभासे विगुणो एकभक्त्यनुभाविते ब्रह्मणि मनोयुजानः ॥४३॥

अनुवाद— जो कार्य एवं कारण से परे हैं, सत्त्वादि गुणों का प्रकाशक एवं निर्गुण हैं तथा जिनका अनन्याभक्ति से प्रत्यक्ष होता है । ऐसे ब्रह्म में उन्होंने अपने मन को लगा दिया ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

सदसतः परं यत्तस्मिन् ब्रह्मणि । गुणावभासके निर्गुणे । एकभक्त्याव्यभिचारिण्या भक्त्यानुभाविते‍ऽपरोक्षीकृते ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

जो कार्य एवं कारण से परे हैं ऐसे ब्रह्म में उन्होंने अपने मन को लगा दिया । वे परब्रह्म सत्त्वादि गुणों के प्रकाशक हैं तथा निर्गुण हैं ऐसे परब्रह्म में महर्षि कर्दम ने अपने मन को लगा दिया ॥४३॥

निरहंकृतिर्निर्ममश्च निर्द्वन्द्वः समदृक् स्वदृक् । प्रत्यक् प्रशान्तधीर्धीरः प्रशान्तोर्मिरिवोदधिः ॥४४॥

अन्वयः— निरहंकृतिः निर्ममश्च निर्द्वन्द्वः समदृक् स्वदृक् प्रत्यक् प्रशान्तधीः धीरः प्रशान्तोर्मिः उदधिः इव ॥४४॥

अनुवाद— वे अहङ्कार ममकार तथा सुख दुःखादि द्वन्दों से रहित होकर भेददृष्टि से रहित हो गये, सबमें अपनी आत्मा को ही देखने लगे उनकी बुद्धि अन्तर्मुखी और शान्त हो गयी । उस समय महर्षि कर्दम शान्त लहरों वाले समुद्र के समान प्रतीत होते थे ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

अतो देहादिष्वहंकारादिरहितः । अतएव निर्द्वन्द्वः शीतोष्णाद्यनाकुलः । समदृग्भेदाग्राहकः किंतु स्वदृक् स्वमेव पश्यन्। प्रत्यक् प्रवणा शान्ता विक्षेपरहिता धीर्यस्य ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

उस समय उनकी देह आदि में अहङ्कार ममकार आदि की भावना नहीं रह गयी थी । वे शीत या उष्ण आदि द्वन्द्वों के कारण व्याकुल नहीं होते थे । वे भेदबुद्धि से रहित होने के कारण समदृक् हो गये थे । वे सबों में अपनी आत्मा को ही देखते थे । प्रत्यक् अर्थात् उनकी बुद्धि अन्तर्मुखी हो गयी थी, उनकी बुद्धि शान्त हो गयी थी अर्थात् विक्षेपरहित हो गयी थी । उस समय वे शान्त लहरियों वाले समुद्र के समान प्रतीत होते थे ॥४४॥

वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि । परेण भक्तिभावेन लब्धात्मा मुक्तबन्धनः ॥४५॥

अन्वयः— परेण भक्तिभावेन वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि लब्धात्मा मुक्तबन्धनः ॥४५॥

अनुवाद— परम भक्ति के द्वारा सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ भगवान् वासुदेव में चित्त के स्थिर हो जाने के कारण सभी बन्धनों से मुक्त हो गये थे ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

तदेवंविधकल्पितोपाधिनिवृत्तिमुक्त्वा परमेश्वरपदप्राप्तिमाह–वासुदेव इति त्रिभिः । प्रतीचो जीवस्यात्मनि लब्ध आत्मा चित्तं येन, यतो मुक्तं बन्धनमज्ञानं यस्य ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

कल्पितोपाधि की निवृत्ति को बतलाकर परमेश्वर के पद की प्राप्ति को **वासुदेवे इत्यादि** तीन श्लोकों से

बतलाते हैं । वे अपने चित्त को जीव की आत्मा में ही लगा दिए थे, अतएव अज्ञान के बन्धन से वे महर्षि मुक्त हो गये थे ।।४५।।

आत्मानं सर्वभूतेषु भगवन्तमवस्थितम् । अपश्यत्सर्वभूतानि भगवत्यपि चात्मनि ।।४६।।

अन्वयः— सर्वभूतेषु आत्मानं भगवन्तम् अवस्थितम्, भगवत्यपि आत्मनि च सर्वभूतानि अपश्यत ।।४६।।

अनुवाद— वे सभी भूतों में अपनी आत्मा परमात्मा की स्थिति तथा अपनी आत्मा और परमात्मा में सभी भूतों को अवस्थित रूप से देखने लगे ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

लब्धात्मानमेवाह-आत्मानमिति ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि कर्दम ने परमात्मा को प्राप्त कर लिया इस बात को इस श्लोक में कहा गया है । वे सभी भूतों में अपनी आत्मा परमात्मा को देखने लगे और सभी भूतों को अपनी आत्मा परमात्मा में देखने लगे ।।४६।।

इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्र समचेतसा । भगवद्भक्तियुक्तेन प्राप्ता भागवती गतिः ।।४७।।

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे तृतीय स्कन्धे कापिलेयोख्याने चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।।२४।।

अन्वयः— इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्र समचेतसा, भगवद्भक्ति युक्ते न भागवती गतिः प्राप्ता ।।४७।।

अनुवाद— इस तरह इच्छा और द्वेष से रहित होकर सर्वत्र समबुद्धि और भगवद्भक्ति से परिपूर्ण कर्दम महर्षि ने श्रीभगवान् के परमपद को प्राप्त कर लिया ।।४७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध के कपिलेयोपाख्यान के अन्तर्गत चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं तेन भागवती गतिः प्राप्ता । पाठान्तरे स एव तां गतिं प्राप्त इति ।।४७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह महर्षि कर्दम ने श्रीभगवान् के परम पद को प्राप्त कर लिया । जहाँ पर **प्राप्तो भागवतीं गतिम्** यह पाठ भेद है । वहाँ पर भी वही अर्थ होगा । उन्होंने उस गति को प्राप्त किया ।।४७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के तीसरे स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के अन्तर्गत अठारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२४।।

* * *

।। ओम नमो भगवते वासुदेवाय ।।

चतुर्थ स्कन्ध

प्रथम अध्याय

स्वायम्भुव मनु की कन्याओं के वंश का वर्णन

मैत्रेय उवाच

मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे । आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः ॥१॥

अन्वयः— मनोस्तु शतरूपायां विश्रुताः तिस्राः कन्याः च जज्ञिरे आकूतिः देवहूतिः प्रसूतिः इति ।।१।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे विदुर ! महाराज स्वायम्भुव मनु की महारानी शतरूपा के गर्भ से तीन कन्यायें भी उत्पन्न हुयी । आकूति, देवहूति और प्रसूति ॥१॥

भावार्थ दीपिका

श्री गणेशाय नमः । नमः श्रीपरमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय । अथैकत्रिंशताऽध्यायैर्विसर्गस्तुर्यईर्यते । विसर्गस्त्वीश्वराधीनैर्ब्रह्मन्वदिभिः कृतः ।।१।। तत्र तु प्रथमेऽध्याये मनुकन्यान्वयाः पृथक् । वर्ण्यन्ते यत्र यज्ञादिमूर्तिभिः प्रभवो हरेः ।।२।। मनुकन्यान्वयं विस्तरेण वक्तुमाह- मनोस्त्विति । चकाराद्द्वौ पुत्रौ च ।।१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीगणेशजी को नमस्कार है, जिनके चरण कमलों का ज्ञान रूपी पराग का पान परमहंस रूपी हंसों ने किया है ऐसे भक्तजनों के मन रूपी मानसरोवर में निवास करने वाले भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार है । अब इकतीस अध्यायों के द्वारा विसर्ग का वर्णन किया जाता है । चराचर की सृष्टि को विसर्ग कहते हैं । परमात्मा के अधीन रहने वाले ब्रह्माजी तथा मनु आदि ने विसर्ग (चराचर की सृष्टि) की ।।१।। उसमें पहले अध्याय में मनु की कन्याओं के वंशों का वर्णन पृथक्-पृथक् किया जाता है । जिसमें यज्ञादि मूर्ति के रूप में श्रीहरि की उत्पत्ति का वर्णन है ।।२।।

मनु की कन्याओं के वंश का विस्तार से वर्णन करने के लिए **मनोस्तु** इत्यादि श्लोक को कहा गया है। **कन्याश्च** के चकार के द्वारा दो पुत्रों का भी ग्रहण होता है ।।१।।

आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृपः । पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ।।२॥

अन्वयः— शतरूपानुमोदितः पुत्रिका धर्मम् आश्रित्य नृपः भातृमतीं रूचये प्रादात् ।।२।।

अनुवाद— महाराज मनु ने महारानी शतरूपा की अनुमति से पुत्रिका धर्म को अपनाकर आकूति का विवाह रुचि प्रजापति से किया । यद्यपि रुचि प्रजापति आकूति के भाई लगते थे ।।२।।

भावार्थ दीपिका

तुशब्दादन्यतोऽपि पुत्रलाभः सूचितस्तद्दर्शयितुमाह-पुत्रिकाधर्ममाश्रित्येति । 'अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम्। अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति' भाषाबन्धेन कन्यादानं पुत्रिकाधर्मः । स चाभ्रातृकायां कन्यायां पुत्रार्थिन एव प्रसिद्धस्तथापि पुत्रबाहुल्यकामस्तथा कृतवानित्याह-भ्रातृमतीमपीति ।।२।।

भाव प्रकाशिका

मनोस्तु के तु शब्द के द्वारा दूसरे से भी पुत्र लाभ को सूचित किया गया है । उसी को बतलाने के लिए पुत्रिका धर्ममाश्रित्य कहा गया है । **अभ्रातृकम्० इत्यादि** पुत्रिका धर्म के अनुसार कन्या का पिता यह शर्त करता है कि भाई से रहित अलङ्कारों से अलंकृत इस कन्या का विवाह तुम्हारे साथ इसलिए कर रहा हूँ कि इसका जो पहला पुत्र होगा उसको मैं ले लूँगा । इस शर्त के अनुसार किए जाने वाले कन्यादान को पुत्रिका धर्म कहते हैं। यह पुत्रिका धर्म भाई से रहित कन्या के विषय में प्रसिद्ध है फिर भी महाराज मनु ने बहुत अधिक पुत्रों की प्राप्ति की कामना से पुत्रिका धर्म के अनुसार आकूति का विवाह किया इसीलिए **भ्रातृमतीमपि** कहा गया है । अर्थात् यद्यपि आकूति के प्रियव्रत और उत्तानपाद दो भाई थे ही फिर भी उसका विवाह मनु ने पुत्रिका धर्म के अनुसार किया ।।२।।

प्रजापतिः स भगवान् रुचिस्तस्यामजीजनत् । मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ।।३।।
यस्तयोः पुरुषः साक्षाद्विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक् । या स्त्री सा दक्षिणा भूतेरंशभूताऽनपायिनी ।।४।।

अन्वयः— सः ब्रह्मवर्चस्वी भगवान् रुचिः प्रजापतिः परमेण समधिना तस्याम् मिथुनम् अजीजनत् तयोः यः पुरुषः सः यज्ञस्वरूपधृक् साक्षात् विष्णुः आसीत् या स्त्री सा भूतेः अंशभूता अनपायिनी दक्षिणा आसीत् ।।३-४।।

अनुवाद— ब्रह्मतेजः सम्पन्न वे भगवान् रुचि प्रजापति परमात्मा के निरन्तर चिन्तन करने वाले आकूति के गर्भ से मिथुन पुत्रो के जोड़े को पैदा किया उन दोनों में जो पुत्र था वह यज्ञ रूपधारी साक्षात् भगवान् विष्णु ही थे । जो स्त्री थी वह लक्ष्मीजी के अंश भूत तथा यज्ञ से कभी अलग नहीं रहने वाली दक्षिणा थी ।।३-४।।

भावार्थ दीपिका

मिथुनं पुरुषं स्त्रियं च । समाधिना ईश्वरध्यानेन । भूतेर्लक्ष्म्या अंशभूता, अतस्तयोर्विवाहो न विरुद्ध इति भावः।।३-४।।

भाव प्रकाशिका

मिथुन शब्द से पुरुष तथा स्त्री के जोड़े को कहा गया है । परमेण समाधिना का अर्थ है निरन्तर परमात्मा का ध्यान करने के कारण । भूतेः अर्थात् लक्ष्मी का, अंशभूत थी दक्षिणा । अर्थात् रुचि प्रजापति के वे दोनों जुड़वे सन्तान साक्षात् विष्णु और लक्ष्मी स्वरूप थे अतएव उन दोनों का परस्पर में विवाह होना शास्त्र विरुद्ध नहीं था ।।३-४।।

आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्याः पुत्रं विततरोचिषम् । स्वायंभुवो मुदा युक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणाम् ।।५।।

अन्वयः— मुदायुक्तः स्वायम्भुवः पुत्र्याः विततरोचिषम् पुत्रम् स्वगृहम् आनिन्ये । रुचिः दक्षिणाम् जग्राह ।।५।।

अनुवाद— स्वायम्भुव मनु प्रसन्नता पूर्वक अपनी पुत्री आकूति के पुत्र जो अत्यन्त तेजः सम्पन्न था उसको अपने घर लाये और रुचि प्रजापति ने दक्षिणा नामक पुत्री को ले लिया ।।५।।

भावार्थ दीपिका

पुत्र्या आकूतेः पुत्रं यज्ञम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

पुत्री के पुत्र अर्थात् आकूति के पुत्र यज्ञ को स्वाायम्भुव मनु अपने घर लाये तथा रुचि प्रजापति दक्षिणा को अपने यहाँ रखे ।।५।।

तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः । तुष्टायां तोषमापन्नोऽजनयद्द्वादशात्मजान् ॥६॥

अन्वयः— कामयानां ता यजुषां पतिः भगवान् उवाह । तुष्टायां तोषमापन्नः द्वादश आत्मजान् अजनयत् ॥६॥

अनुवाद— बड़ी होकर दक्षिणा ने भगवान् यज्ञ से ही विवाह करना चाही तो यज्ञ भगवान् ने दक्षिणा से विवाह किया उससे दक्षिणा अत्यधिक सन्तुष्ट हुयी और यज्ञ ने दक्षिणा के गर्भ से बारह पुत्रों को उत्पन्न किया॥६॥

भावार्थ दीपिका

यजुषां यज्ञानां मन्त्राणां वा पतिर्विष्णुः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यजुषांपतिः पद का अर्थ है यज्ञों अथवा मन्त्रों के स्वामी ॥६॥

तोषः प्रतोषः संतोषो भद्रः शान्तिरिडस्पतिः । इध्मः कविर्विभुः स्वह्नः सुदेवो रोचनो द्विषट् ॥७॥

अन्वयः— तोष, प्रतोषः सन्तोषः, भद्रः, शान्तिः इडस्पतिः इध्मः कविः विभुः स्वह्नः, सुदेव; द्विषट् रोचनः ॥७॥

अनुवाद— उनके नाम हैं तोष, प्रतोष, सन्तोष, भद्र, शान्ति, इडस्पति, इध्मः, कवि, विभु, स्वह्न, सुदेव और बारहवाँ रोचन ।

भावार्थ दीपिका

द्विषट् द्वादश ॥७॥

भाव प्रकाशिका

द्विषट् का अर्थ बारह है ॥७॥

तुषिता नाम ते देवा आसन्स्वायंभुवान्तरे । मरीचिमिश्रा ऋषयो यज्ञः सुरगणेश्वरः ॥८॥
प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ । तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणामनुवृत्तं तदन्तरम् ॥९॥

अन्वयः— ते स्वायम्भुवान्तरे तुषिता नाम देवा आसन् । मरीचिमिश्राः ऋषयः, यज्ञः सुरगणेश्वरः, महौजसौ, प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ, तदन्तरम् तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणाम् अनुवृत्तम् ॥८-९॥

अनुवाद— स्वायम्भुव मन्वन्तर में वे ही बारह तुषित नामक देवता थे, मरीचि प्रमुख सप्तर्षि थे, देवताओं के राजा इन्द्र स्वयं भगवान् यज्ञ थे, महाप्रभावशाली प्रियव्रत और उत्तानपाद ये दोनों मनु के पुत्र थे, वह मन्वन्तर उन दोनों के ही पुत्रों, पौत्रों, नातियों से व्याप्त था ॥८-९॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गात्स्वायंभुवमन्वन्तरगतं षट्कमाह- तुषिता इति द्वाभ्याम् । 'मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः । ऋषयोंऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ।' इति वक्ष्यति । तत्र स्वायंभुवो मनुः । तुषिता देवाः । मरीचिप्रमुखाः सप्तर्षयः । यज्ञो हरेरवतारः । स एव सुरगणेश्वर इन्द्रः । प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ पृथ्वीपालकौ । तदेवं यज्ञस्य द्वैरूप्येण षड्विधत्वम् । तयोः पुत्रपौत्रनप्तॄणां वंशैरनुवृत्तं व्याप्तं पालितं तन्मन्वन्तरम् ॥८-९॥

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्गवशात् स्वयम्भुव मन्वन्तर के छह तत्त्वों को **तुषिता० इत्यादि** दो श्लोकों से बतलाते हैं । मन्वन्तर, मनु, देवगण, मनुपुत्र, इन्द्र, ऋषिगण श्रीहरि के अंशावतार इन छह प्रकार के बातों को मन्वन्तर कहते हैं । यह आगे चलकर कहेंगे भी । उस मन्वन्तर के मनु स्वायं मनु थे, तुषित नामक देवता थे, मरीचि इत्यादि सप्तर्षि थे, यज्ञ ही श्रीहरि के अवतार थे। यज्ञ ही उस मन्वन्तर के इन्द्र थे ॥८॥

उस मन्वन्तर में प्रियव्रत और उत्तानपाद ये दोनों पृथिवी का पालन करने वाले मनु के पुत्र थे । इस तरह यज्ञ के दो रूप से षड्विधत्व का वर्णन किया गया है । यज्ञ एक रूप से श्रीहरि के अवतार थे और दूसरे रूप से वे देवताओं के राजा इन्द्र थे । यही उनका द्वैरूप्य है । उन प्रियव्रत और उत्तानपाद के ही, पुत्रों, पौत्रों और नातियों से वह मन्वन्तर व्याप्त था ।।९।।

देवहूतिमदात्तात कर्दमायात्मजां मनुः । तत्संबन्धि श्रुतप्रायं भवता गदतो मम ।।१०।।

अन्वयः— हे तात ! मनुः कर्दमाय देवहूति आत्मजाम् अदात् तत्संबन्धि मम गदतः भवताश्रुतप्रायम् तत्संबन्धि।।१०।।

अनुवाद— हे विदुर ! मनु ने देवहूति नामक अपनी पुत्री का विवाह कर्दम प्रजापति से किया । उनके विषय में सारी बातें मैनें तुमको प्रायः सुना ही दी है ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

श्रुतप्रायं बाहुल्येन श्रुतम् । तत्कन्यावंशानामश्रुतत्वात्प्रायग्रहणम् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

मैत्रेयजी ने विदुरजी से कहा कि आप देवहूति सम्बन्धी बहुत से बातें मुझसे सुन ही चुके हैं । चूकि देवहूति की कन्याओं के वंश के नहीं सुने हुए होने के कारण प्रायः शब्द का प्रयोग किया गया है ।।१०।।

दक्षाय ब्रह्मपुत्राय प्रसूतिं भगवान्मनुः । प्रायच्छद्यत्कृतः सर्गस्त्रिलोक्यां विततो महान् ।।११।।

अन्वयः— भगवान् मनुः ब्रह्मपुत्राय दक्षाय प्रसूतिं प्रायच्छत् । यत् कृतः महान् सर्गः त्रिलोक्यां विततः ।।११।।

अनुवाद— भगवान् मनु ने प्रसूति का विवाह ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति से किया । प्रसूति की ही विशाल वंश परम्परा सम्पूर्ण त्रिलोकी में फैली हुयी हैं ।।११।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।

याः कर्दमसुताः प्रोक्ता नव ब्रह्मर्षिपत्नयः । तासां प्रसूतिप्रसवं प्रोच्यमानं निबोध मे ।।१२।।

अन्वयः— याः कर्दम सुता नव ब्रह्मर्षि पत्न्यः प्रोक्ताः तासां प्रसूति प्रसवं प्रोच्यमानं मे निबोध ।।१२।।

अनुवाद— महर्षि कर्दम प्रजापति की जो नव ब्रह्मर्षियों की पत्नियाँ कही गयी हैं उन सबों की वंश परम्परा को मैं बतलाता हूँ उसे आप सुनें ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

प्रसूतिप्रसवं पुत्रपौत्रादिभिर्विस्तारम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

प्रसूतिप्रसवम् का अर्थ उनके पुत्र पौत्र की वंश परम्परा का विस्तार ।।१२।।

पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा । कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत् ।।१३।।

अन्वयः— मरीचेः पत्नी कर्दमात्मजा कला कश्यपं पूर्णिमानं च सुषुवे ययोः जगत् पूरितम् ।।१३।।

अनुवाद— महर्षि मरीचि की पत्नी और कर्दम प्रजापति की पुत्री कला ने कश्यप और पूर्णिमा नामक दो पुत्रों को जन्म दिया जिनकी वंश परम्परा से सम्पूर्ण जगत् भर गया ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ययोर्वंशेनापूरितम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

जिन दोनों के वंश परम्परा से यह सम्पूर्ण जगत् भरा हुआ है ।।१३।।

पूर्णिमाऽसूत विरजं विश्वगं च परंतप । देवकुल्यां हरेः पादशौचाद्याऽभूत्सरिद्दिवः ॥१४॥

अन्वयः— हे परंतप ! पूर्णिमा विरजं विश्वगंच देवकुल्या च असूत या हरेः पादशौचात् दिवःसरित् अभूत् ॥१४॥

अनुवाद— हे शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले विदुर पूर्णिमा ने विरज तथा विश्वग नामक दो पुत्रों और एक देवकुल्या नामक पुत्री को उत्पन्न किया वही दूसरे जन्म में श्रीहरि के चरणोदक से देवलोक की नदी गङ्गा बन गयी॥१४॥

भावार्थ दीपिका

कश्यपस्य वंशं षष्ठे वक्ष्यति । द्वितीयस्य वंशमाह-पूर्णिमेति । देवकुल्यां नाम कन्यां च । हरेः पादक्षालनाज्जन्मान्तरे या दिवः सरिद्गङ्गाऽभूत् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

कश्यप के वंश का वर्णन छठे अध्याय में करेंगे अतएव महर्षि मरीचि के दूसरे पुत्र पूर्णिमा के ही वंश का वर्णन करते हैं, पूर्णिमा की देवकुल्या नाम की कन्या भी थी । वही दूसरे जन्म में श्रीहरि के चरणों के धोवन के जल से देवलोक की नदी गङ्गा हुयी ॥१४॥

अत्रेः पत्न्यनसूया त्रीञ्जज्ञे सुयशसः सुतान् । दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसंभवान् ॥१५॥

अन्वयः— अत्रेः पत्नी अनसूया त्रीन् सुयशसः सूतान् जज्ञे दत्तं, दुर्वाससं सोमम् आत्मेश ब्रह्म संभवान् ॥१५॥

अनुवाद— अत्रि महर्षि की पत्नी अनसूया ने तीन पुत्रों को जन्म दिया दत्त (दत्तात्रेय), दुर्वासा, और सोम (चन्द्रमा) ये तीनों क्रमशः विष्णु, शङ्कर और ब्रह्माजी के अंश से उत्पन्न थे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

आत्मेशब्रह्मसंभवान्विष्णुरुद्रब्रह्मणामंशैः संभूतान् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

आत्मा शब्द से भगवान् विष्णु कहे गये हैं उनके अंश से दत्तात्रेय उत्पन्न हुए थे । ईश शब्द से रुद्र कहे गये हैं । रुद्र के अंश से दुर्वासा उत्पन्न हुए और ब्रह्माजी के अंश से सोम उत्पन्न हुए ॥१५॥

विदुर उवाच

अत्रेर्गृहे सुरश्रेष्ठाः स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः । किंचिच्चिकीर्षवो जाता एतदाख्याहि मे गुरो ॥१६॥

अन्वयः— हे गुरो ! अत्रे गृहे स्थित्युत्पत्ति हेतवः सुरश्रेष्ठाः किंचित् चिकीर्षवः जाताः एतद् मे आख्याहि ॥१६॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे गुरो ! आप मुझे यह बतलाइये कि, जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करने वाले ये तीनों श्रेष्ठ देवता अत्रि मुनि के यहाँ क्या करने की इच्छा से अवतार ग्रहण किए ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

किंचित्किंस्वित् । किं कर्तुमिच्छव इत्यर्थः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

क्या करने की इच्छा से अवतार लिए ?॥१६॥

मैत्रेय उवाच

ब्रह्मणा नोदितः सृष्टावत्रिर्ब्रह्मविदां वरः । सह पत्न्या ययावृक्षं कुलाद्रिं तपसि स्थितः ॥१७॥

अन्वयः— ब्रह्मणा सृष्टौ नोदितः ब्रह्मविदांवरः अत्रिः तपसि स्थितः ऋक्षं कुलाद्रिं ययौ ॥१७॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— ब्रह्माजी के द्वारा सृष्टि करने के लिए प्रेरित होने पर ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ अत्रि महर्षि तपस्या करने के लिए अपनी पत्नी के साथ ऋक्षनाम कुलाद्रि पर्वत पर गये ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ऋक्षं नाम कुलाद्रिम् । तपसि स्थितः सन् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

तपस्या में संलग्न महर्षि अत्रि ऋक्ष नामक कुलाद्रि पर चले गये ॥१७॥

तस्मिन्प्रसूनस्तबकपलाशाशोककानने । वार्भिः स्रवद्भिरुद्घुष्टे निर्विन्ध्यायाः समन्ततः ॥१८॥
प्राणायामेन संयम्य मनो वर्षशतं मुनिः । अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः ॥१९॥

अन्वयः— तस्मिन् प्रसूनस्तवक पलाशाशोककानने, वार्भिः स्रवद्भिः उद्घुष्टे निविन्ध्यायाः समन्ततः प्राणायामेन वर्षशतं मनः संयम्य मुनिः निर्द्वन्द्वः अनिलभोजनः एक पादेन अतिष्ठत् ॥१८-१९॥

अनुवाद— उस पलाश और अशोक के वृक्षों के वन में जिसमें वृक्ष पुष्पों के गुच्छों से सुशोभित थे, तथा उसमें निविन्ध्या नदी के जल की सब ओर से कलकल ध्वनि होती रहती थी, उस वन में वे मुनिश्रेष्ठ प्राणायाम के द्वारा चित्त को वश में करके सौ वर्षों तक केवल वायु पीकर द्वन्द्वों की परवाह किए बिना ही एक पैर पर खड़े रहे ॥१८-१९॥

भावार्थ दीपिका

तस्मिन्कुलाद्रौ । प्रसूनानां स्तबका येषु पलाशाशोकेषु तेषां कानने । निर्विन्ध्या नाम नदी तस्याः स्रवद्भिर्वार्भिरुद्घुष्टे नादिते ॥१८-१९॥

भाव प्रकाशिका

उस कुलाद्रि पर्वत पर पुष्पों के गुच्छों से सुशोभित पलाश एवं अशोक के वन में, जहाँ सब ओर से निर्विन्ध्या नदी की कलकल ध्वनि होती थी उस पर वे तपस्या किए ॥१८-१९॥

शरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगदीश्वरः । प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छत्विति चिन्तयन् ॥२०॥

अन्वयः— य एव जगदीश्वरः तम् अहं शरणं प्रपद्ये । अत्मसभां मह्यम् प्रजां प्रयच्छतु इति चिन्तयन् ॥२०॥

अनुवाद— जो जगदीश्वर हैं मैं उनकी शरणागति करता हूँ, वे मुझे अपने ही समान सन्तान करें इस तरह से विचार करते हुए वे तपस्या करते थे ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥२०॥

तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायामैधसाग्निना । निर्गतेन मुनेर्मूर्ध्नः समीक्ष्य प्रभवस्त्रयः ॥२१॥
अप्सरोमुनिगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगैः । वितायमानयशसस्तदाश्रमपदं ययुः ॥२२॥

अन्वयः— प्राणायामैधसाग्निना मुनेः मूर्ध्नः निर्गतेन त्रिभुवनं सिद्ध विद्याधरोरगैः वितायमान यशसः तदा आश्रमपदं ययुः ॥२१-२२॥

अनुवाद— प्राणायाम रूपी इन्धन से प्रज्ज्वलित हुआ अत्रिमुनि का तेज उनके मस्तक से निकलकर त्रैलोक्य को संतप्त कर रहा है, यह देखकर अप्सरा, मुनि, गन्धर्व, सिद्ध विद्याधर और नाग जिनके यश का गान कर रहे थे ऐसे उनके आश्रम में तीनों जगत् पति गये ॥२१-२२॥

भावार्थ दीपिका

प्राणायाम एव एधः संदीपको यस्य तेन मुनेर्मूर्ध्नो निर्गतेनाग्निना तप्यमानं समीक्ष्य तदाश्रमपदं ययुरित्युत्तरेणान्वयः । अप्सरःप्रमुखैर्वितायमानं विस्तार्यमाणं यशो येषां ते ।।२१-२२।।

भाव प्रकाशिका

अत्रिमुनि के जिस तेज से त्रैलोक्य संतप्त हो रहा था वह प्राणायाम रूपी इन्धन से प्रज्जवलित हुआ था तथा मुनि के शिरोभाग से निकल रहा था, उसे देखकर तीनों जगत् पति ब्रह्मा, विष्णु, और शङ्कर अत्रिमुनि के आश्रम में गये उस समय उन लोगों के यश का गायन कर रहे थे ।।२१-२२।।

तत्प्रादुर्भावसंयोगविद्योतितमना मुनिः । उत्तिष्ठन्नेकपादेन ददर्श विबुधर्षभान् ।।२३।।

अन्वयः— तत् प्रादुर्भावसंयोग विद्योतितमनाः मुनि एकपादेन उत्तिष्ठन् विवधुर्षभान् ददर्श ।।२३।।

अनुवाद— उन तीनों देवताओं का एक साथ प्राकट्य के संयोग से अत्रि मुनि का मनः प्रकाशित हो गया और एक ही पैर पर खड़े हुए उन्होंने तीनों देवताओं को देखकर कहा ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

तेषां प्रादुर्भावः प्राकट्यं तस्य संयोगः सन्निधिस्तेन विद्योतितं मनो यस्य उत्तिष्ठन्नुत्कर्षेण तिष्ठन् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

उन तीनों देवताओं के प्राकट्य के संयोग से अत्रि मुनि का मन प्रकाशित हो गया और एक ही पैर पर खड़े मुनि ने उन तीनों देव श्रेष्ठों को देखा ।।२३।।

प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपतस्थेऽर्हणाञ्जलिः । वृषहंससुपर्णस्थान्स्वैः स्वैश्चिह्नैश्चचिह्नितान् ।।२४।।

अन्वयः— दण्डवद् भूमौ प्रणम्य अर्हणाञ्जलिः वृषहंससुपर्णस्थान् स्वैः स्वै चिह्नैश्च च चिह्नितान् उपतस्थे ।।२४।।

अनुवाद— वे भूमि पर दण्ड के समान लोटकर उन लोगों को प्रणाम किए और हाथ में पुष्प आदि लेकर क्रमशः बैल, हंस तथा गरुड पर बैठे हुए तथा अपने-अपने चिह्न कमण्डलु त्रिशूल तथा चक्र हाथ में धारण किए हुए उन तीनों देवताओं का पूजन किए ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

अर्हणं पुष्पादिकमञ्जलौ यस्य । उपतस्थे पूजयामास । वृषाद्यारूढान् । स्वैः स्वैश्चिह्नैस्त्रिशूलकमण्डलुचक्रादिभिः।।२४।।

भाव प्रकाशिका

अत्रि मुनि पहले उन तीनों देवताओं को साष्टाङ्ग प्रणाम किए, फिर हाथ में पुष्प आदि पूजन की सामग्री लेकर उन तीनों देवताओं की पूजा किए । उस समय वे तीनों देवता बैल, हंस और गरुड नामक वाहनों पर बैठे थे और अपने हाथों में अपने-अपने चिह्न कमण्डलु, त्रिशूल और चक्र आदि धारण किए हुए थे ।।२४।।

कृपावलोकेन हसद्वदनेनोपलम्भितान् । तद्रोचिषा प्रतिहते निमील्य मुनिरक्षिणी ।।२५।।

अन्वयः— कृपावलोकेन हसद्वदनेन उपलम्भितान् तद्रोचिषा प्रतिहते अक्षिणी मुनिः निमील्य ।।२५।।

अनुवाद— तीनों मुनि महर्षि को कृपा पूर्वक देख रहे थे और उनके मुख पर मन्द मुस्कान की रेखा थी। उन देवताओं के तेज से मुनि की आँखे चौंधिया गयी और उन्होंने अपनी आँखें मूंद ली ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

कृपयाऽवलोको यस्मिन् । हसच्च तद्वदनं च तेनोपलम्भितान्प्रसन्नत्वेन ज्ञापितान् । तेषां रोचिषा दीप्त्या ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

हास्य की रेखा से युक्त मुख वाले वे देवता मुनि को कृपा पूर्वक देख रहे थे, उसके कारण उन तीनों देवताओं की प्रसन्नता प्रतीत हो रही थी । उन तीनों देवताओं के तेज से मुनि की आँखें चौंधिया गयी और उन्होंने अपनी आँखों को मूंद लिया ॥२५॥

चेतस्तत्प्रवणं युञ्जन्नस्तावीत्संहताञ्जलिः । श्लक्ष्णया सूक्तया वाचा सर्वलोकगरीयसः ॥२६॥

अन्वयः— चेतः तत्प्रवणं युञ्जान् संहताञ्जलिः सर्वलोकगरीयसः श्लक्षणया वाचा अस्तावीत् ॥२६॥

अनुवाद— अपने मन को उन तीनों देवताओं में लगाकर, तथा हाथ जोड़कर महर्षि ने हाथ जोड़कर सभी लोकों में श्रेष्ठ उन तीन देवताओं की मधुर एवं सुन्दर वाणी से स्तुति की ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

श्लक्ष्णया मधुरया । सूक्तया गम्भीरार्थया ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

मुनि ने मधुर तथा अर्थ गाम्भीर्य से युक्त वाणी से उन तीनों देवताओं की स्तुति की ॥२६॥

अत्रिरुवाच

विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानैर्मायागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः ।
ते बह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्म्यहं वस्तेभ्यः क एव भवतां म इहोपहूतः ॥२७॥

अन्वयः— अनुयुगं विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानैः मायागुणैः विगृहीतदेहाः ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः, वः अहं प्रणतः अस्मिन्, तेभ्यः भवतां मया उपहूतः कः ॥२७॥

अत्रि ऋषी ने कहा

अनुवाद— प्रत्येक कल्प के प्रारम्भ में जगत् की उत्पत्ति स्थिति, और संहार करने के लिए माया के सत्त्वगुण आदि का विभाग करके जो भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते हैं वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश आप लोग हैं । मैं आप सबलोगों को प्रणाम करता हूँ, मैंने जिसको बुलाया था वे आप तीनों में से कौन देवता हैं ?॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अनुयुगं कल्पे कल्पे विभज्य गृहीतो देहो यैस्ते प्रसिद्धा ब्रह्मविष्णुगिरिशा यूयम् । वो युष्मान्प्रणतोऽस्मि । तेभ्यः सकाशादेक एव मे मयोपहूतः । 'शरणं तं प्रपद्ये' इत्येकस्यैव निर्दिष्टत्वात् । स च युष्मासु क इति युष्माभिरेव कथ्यतामित्यर्थः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

प्रत्येक कल्प के प्रारम्भ में माया के तीनों गुणों का विभाग करके आप सभी ब्रह्मा विष्णु और महेश शरीर धारण करते हैं । मैं आप सबों को प्रणाम करता हूँ । इन तीनों में से मैने एक को आहूत किया था । क्योंकि शरणं तं प्रपद्ये इस वाक्य से एक का ही निर्देश किया था । वे देवता आप तीनों में से कौन हैं ? यह आप लोग ही बतलायें ॥२७॥

एको मयेह भगवान्विविधप्रधानैश्चित्तीकृतः प्रजननाय कथं नु यूयम् ।
अत्रागतास्तनुभृतां मनसोऽपि दूरा ब्रूत प्रसीदत महानिह विस्मयो मे ॥२८॥

अन्वयः— मया इह प्रजननाय एकः विबुधप्रधानः भगवान् चित्तीकृतः कथं नु यूयम् तनुभृतां मनसः अपि दूरा अत्र आगताः इह मे महान् विस्मयः प्रसीदत ब्रूत ॥२८॥

अनुवाद— मैंने तो सन्तान प्राप्ति की इच्छा से केवल प्रधान देवता भगवान् का ही चिन्तन किया था, फिर आप तीनों यहाँ पधारने की कृपा कैसे किए ? आप लोगों तक तो शरीरधारियों के मन की भी गति नहीं हो पाती है अतएव मुझको बड़ा ही आश्चर्य होता है अतएव आपलोग प्रसन्न होकर मुझे इसका कारण बतलायें ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अस्य प्रपञ्चः- एक इति । विविधैः प्रधानैरुपचारैः । विबुधप्रधान इति वा पाठः । प्रजननाय पुत्रोत्पत्त्यै । चित्तीकृतिश्चत्तेनैक्यं नीतः । मनसोऽपि दूरा अगोचराः सन्तः कथं तु त्रयोऽप्यत्रागताः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में पूर्वोक्त अर्थ का ही विस्तार किया गया है महर्षि अत्रि ने कहा— मैंने सन्तान की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के प्रधान उपचारों से एक ही भगवान् का चिन्तन किया था जहाँ **विबुध प्रधानः** यह पाठ हे वहाँ अर्थ होगा कि देवताओं में प्रधान भगवान् का मैंने चिन्तन किया था । आपलोग तो देहधारियों के मन के भी विषय नहीं बनने वाले हैं फिर आपलोग तीन प्रधान देवता यहाँ कैसे पधारे ? ॥२८॥

मैत्रेय उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयस्ते विबुधर्षभाः । प्रत्याहुः श्लक्ष्णया वाचा प्रहस्य तमृषिं प्रभो ॥२९॥

अन्वयः— प्रभो ! तस्य इति वचः श्रुत्वा ते त्रयः विवुधर्षभाः प्रहस्य श्लक्षणया वाचा तम् ऋषिं प्रति आहुः ॥२९॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे समर्थ विदुरजी ! अत्रि महर्षि की इस वाणी को सुनकर वे तीनों देवश्रेष्ठ जोर से हँसकर मधुर वाणी से उन ऋषि से कहे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

देवा ऊचुः

यथा कृतस्ते संकल्पो भाव्यं तेनैव नान्यथा । सत्सङ्कल्पस्य ते ब्रह्मन्यद्वै ध्यायति ते वयम् ॥३०॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! सत्सङ्कल्पस्य ते यथा सङ्कल्पः कृतः तेनैव भाव्यं अनयथा न यदवैध्यायाति ते वयम् ॥३०॥

देवताओं ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! आप सत्यसङ्कल्प हैं अतएव आपका जैसा सङ्कल्प है, वैसा ही होना चाहिए, उसके विपरीत नहीं हो सकता है । आप जिस जगदीश्वर का ध्यान करते थे वही हम तीनों हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

ते त्वया यथा कृतः सङ्कल्पस्तेन तथैव भाव्यं नान्यथा । यतः सत्सङ्कल्पस्य ते सङ्कल्पः । तर्हि कथमेकस्मिन् ध्यायमाने त्रयः प्रतीताः स्थ तत्राहुः। यदेकं जगदीश्वराख्यं तत्त्वं भवान् ध्यायति ते एते वयम्। त्रयोपि तदेवैकं तत्त्वं नास्माकं भेदोऽस्तीत्यर्थः॥३०॥

भाव प्रकाशिका

आपने जैसा सङ्कल्प किया उसको वैसा ही होना चाहिए उसके विपरीत नहीं हो सकता है, क्योंकि आप सत्यसङ्कल्प का सङ्कल्प है । तो फिर एक ही ध्यान करने पर आप तीन लोगों की प्रतीति कैसे हुयी । इस पर देवताओं ने कहा— आप जिस एक जगदीश्वर तत्त्व का ध्यान किए थे वह हमलोग तीनों है । हम तीनों एक ही तत्त्व है, हमलोगों में भेद नहीं है ॥३०॥

अथास्मदंशभूतास्ते आत्मजा लोकविश्रुताः । भवितारेऽङ्ग भद्रं ते विस्रप्स्यति च ते यशः ॥३१॥

अन्वयः— अथ अस्मदंश भूताः ते लोकविश्रुताः आत्मजाः भावितारः हे अङ्ग ते भद्रम् ते यशः विस्रप्स्यन्ति च ॥३१॥

अनुवाद— अतएव हम तीनों के अंशभूत आपके तीन लोक प्रख्यात पुत्र होंगे और वे आपके यश का विस्तार करेंगे । आप का मङ्गल हो ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

विस्रप्स्यन्ति विस्तारयिष्यिन्ति । अन्तर्भूतणिजर्थस्य सृष्ट गतावित्स्य रूपम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

विस्रप्स्यन्ति अर्थात् विस्तार करेंगे । सृष्टगतौ धातु का यह लृट् लकार में अन्तर्भूत णिजर्थ रूप है॥३१॥

एवं कामवरं दत्त्वा प्रतिजग्मुः सुरेश्वराः । सभाजितास्तयो सम्यग्दम्पत्योर्मिषतोस्ततः ॥३२॥

अन्वयः— एवं कामवरं दत्वा समाजिताः सुरेश्वराः दम्पत्योः मिषतेः ततः प्रतिजग्मुः ॥३२॥

अनुवाद— इस प्रकार से अभीष्ट वरादान देकर तथा पति-पत्नी से पूजित होकर उनके देखते ही देखते वे तीनो देवेश्वर वहाँ से अपने-अपने लोक में चले गये ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

ताभ्यां सम्यक् सभाजिताः पूजिताः सन्तः ततः स्थानात्प्रतिजग्मुः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनों पति-पत्नी के द्वारा पूजित होकर उस स्थान से वे तीनों देवेश्वर चले गये ॥३२॥

सोमोऽभूद्ब्रह्मणोंऽशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवित् । दुर्वासाः शङ्करस्यांशो निबोधाङ्गिरसः प्रजाः ॥३३॥

अन्वयः— ब्रह्मणः सोमः अभूत् ब्रह्मणोऽस्तु योगवित् दत्तः शङ्करस्यांशः दुर्वासाः अङ्गिरसः प्रजाः निबोध ॥३३॥

अनुवाद— ब्रह्माजी के अंश से सोम (चन्द्रमा) उत्पन्न हुए, भगवान् विष्णु के अंश से दत्त (दत्तात्रेय) उत्पन्न हुए, शङ्करजी के अंश से दुर्वासा महर्षि हुए अब आप अङ्गिरा महर्षि की सन्तानों को सुनें ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अङ्गिरसो ब्रह्मणस्तृतीयपुत्रस्य । निबोध बुध्यस्व ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

अङ्गिरसः पद का अर्थ है ब्रह्माजी के तृतीय पुत्र अङ्गिरा महर्षि की प्रजाओं को आप सुनें ॥३३॥

श्रद्धा त्वङ्गिरसः पत्नी चतस्रोऽसूत कन्यकाः । सिनीवाली कुहू राका चतुर्थ्यनुमतिस्तथा ॥३४॥

अन्वयः— अङ्गिरसः पत्नी श्रद्धा तु चतस्रः कन्यका असूत सिनीवाली, कुहू, राका तथा चतुर्थी अनुमतिः ॥३४॥

अनुवाद—अङ्गिरा महर्षि की पत्नी श्रद्धा ने चार कन्याओं को जन्म दिया सिनीवाली, कुहू, राका और चौथी अनुमति॥३४॥

भावार्थ दीपिका

ताः कन्या निर्दिशति- सिनीवालीति ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

सिनीवाली इत्यादि श्लोक के उत्तरार्द्ध से उन कन्यकाओं का नाम बतलाया गया है ॥३४॥

तत्पुत्रावपरावास्तां ख्यातौ स्वारोचिषेऽन्तरे । उतथ्यो भगवान्साक्षाद्ब्रह्मिष्ठश्च बृहस्पतिः ॥३५॥

अन्वयः— तत् अपरौ पुत्रौ आस्तां साक्षात् भगवान् उतथ्यः ब्रह्मिष्ठः बृहस्पतिः च स्वारोचिषेन्तरे ख्यातौ ॥३५॥

अनुवाद— उनके दो और पुत्र थे साक्षात् भगवान् उतथ्य और ब्रह्मनिष्ठ बृहस्पति जी । ये दोनों स्वारोचिष मन्वन्तर में विख्यात हुए ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥३५॥

पुलस्त्योऽजनयत्पत्न्यामगस्त्यं च हविर्भुवि । सोऽन्यजन्मनि दह्लाग्निर्विश्रवाश्च महातपाः ॥३६॥

अन्वयः— पुलस्त्यः हविर्भुवि पत्न्यां अगस्त्यं अजनयत् सः अन्यजन्मनि दह्नाग्निः महातपा; विश्रवाः च ॥३६॥

अनुवाद— पुलस्त्य महर्षि अपनी हविर्भूः नामक पत्नी के गर्भ से दो पुत्रों को उत्पन्न किए अगस्त्य को और महातपा विश्रवा को । पुलस्त्य महर्षि दूसरे जन्म में जाठराग्नि हुए ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

पुलस्त्यो हविर्भुवि पत्न्यामित्यन्वयः । सोऽगस्त्यः । दह्लाग्निर्जाठराग्निः । विश्रवाश्च पुलस्त्यस्य सुत इति शेषः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

पुलस्त्य मुनि ने अपनी पत्नी हविर्भूः के गर्भ से अगस्त्य तथा महातपस्वी विश्रवा को उत्पन्न किया । वे अगस्त्य ही दूसरे जन्म में जाठराग्नि हुए ॥३६॥

तस्य यक्षपतिर्देवः कुबेरस्त्विडविडासुतः । रावणः कुम्भकर्णश्च तथान्यस्यां विभीषणः ॥३७॥

अन्वयः— तस्य इडविडासुतः यक्षपतिः देवः कुबेरः, तथा अन्यस्यां रावणः, कुम्भकर्णः विभीषणश्च ॥३७॥

अनुवाद— विश्रवा के इडविडा नामक पत्नी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र यक्षों के स्वामी कुबेर नामक देवता थे और उनकी दूसरी पत्नी केशिनी के गर्भ से उत्पन्न रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण नामक पुत्र थे ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तस्य विश्रवस इडविडायां जातः सुतः कुबेरः । अन्यस्यां भार्यायां केशिन्यां रावणादयस्त्रयः सुताः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

विश्रवा की इडविडा नामक पत्नी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र कुबेर थे और विश्रवा की दूसरी कशिनी नामक पत्नी के गर्भ से उत्पन्न तीन पुत्र थे रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण ॥३७॥

पुलहस्य गतिर्भार्या त्रीनसूत सती सुतान् । कर्मश्रेष्ठं वरीयांसं सहिष्णुं च महामते ॥३८॥

अन्वयः— पुलहस्य भार्या सती गतिः त्रीन् सुतान् असूत, कर्मश्रेष्ठं, वरीयांसं, सहिष्णुं च ॥३८॥

अनुवाद— हे महाबुद्धिमान् विदुर ! पुलह, महर्षि की साध्वी पत्नी का नाम गति था उन्होंने तीन पुत्रों को जन्म दिया कर्मश्रेष्ठ, वरीयान् और सहिष्णु ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥३८॥

क्रतोरपि क्रिया भार्या बालखिल्यानसूयत । ऋषीन्षष्टिसहस्राणि ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥३९॥

अन्वयः— क्रतोः आपि भार्या क्रिया ब्रह्मतेजसा ज्वलतः षष्ठिसहस्राणि बालखिल्यान् ऋषीन् असूयता ॥३९॥

अनुवाद— महर्षि क्रतु की भी पत्नी क्रिया ने ब्रह्मतेज से देदीप्यमान साठ हजार बाल खिल्य ऋषियों को जन्म दिया ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

ज्वलतः प्रकाशमानान् ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

ज्वलतः पद का अर्थ हैं प्रकाशमान ।।३९।।

ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्रा वसिष्ठस्य परंतप । चित्रकेतुप्रधानास्ते सप्त ब्रह्मर्षयोऽमलाः ।।४०।।

अन्वयः— परंतप वसिष्ठस्य ऊजायाँ चित्रकेतु प्रधानाः पुत्राः जाज्ञिरे ते सप्त अमलाः ब्रह्मर्षयः अभवन् ।।४०।।

अनुवाद— हे परन्तप विदुर ! वसिष्ठ की पत्नी उर्जा (अरुन्धती) के गर्भ से चित्रकेतु आदि सात विशुद्ध चित्त वाले ब्रह्मर्षिगण पुत्र उत्पन्न हुए ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

चित्रकेतुप्रमुखा जज्ञिरे । ते च सप्तर्षयो जाताः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

चित्रकेतु आदि सात पुत्र हुए वे ही सप्तर्षि हो गये ।।४०।।

चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजा मित्र एव च । उल्बणो वसुभृद्यानो द्युमान् शक्त्यादयोऽपरे ।।४१।।

अन्वयः— चित्रकेतुः सुरोचिः, विरजाः, मित्र एवच, उल्बणः वसुभृद्यानः, द्युमान् शक्त्यादयः अपरे ।।४१।।

अनुवाद— महर्षि वसिष्ठ के पुत्रों के नाम हैं चित्रकेतु, सुरोचिः, विरजाः, मित्र, उल्बण, वसुभृद् यान और द्युमान् शक्ति इत्यादि उनकी दूसरी पत्नी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र थे ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

तानेवाह— चित्रकेतुरिति । वसुभृद्यानो नामैकः । शत्तयादयोऽपरेऽन्यस्याः पुत्राः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

चित्रकेतु इत्यादि श्लोक से महर्षि वसिष्ठ के सात पुत्रों के नाम बतलाये गये हैं । शक्ति इत्यादि वसिष्ठ महर्षि की दूसरी पत्नी में उत्पन्न पुत्र थे ।।४१।।

चित्तिस्त्वथर्वणः पत्नी लेभे पुत्रं धृतव्रतम् । दध्यञ्चमश्वशिरसं भृगोर्वंशं निबोध मे ।।४२।।

अन्वयः— अथर्वणः पत्नी चितिः तु धृतव्रतम् दध्यञ्चम् अश्वशिरसं पुत्रं लेभे मे भृगोर्वशं निबोध ।।४२।।

अनुवाद— महर्षि अथर्वा की पत्नी का नाम चिति था उन्होंने एक दध्यङ (दधीचि) नामक पुत्र को उत्पन्न किया उनका दूसरा नाम अश्वशिरा था अब आप मुझसे महर्षि भृग के वंश को सुनें ।।४२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं

भृगुः ख्यात्यां महाभागः पत्न्यां पुत्रानजीजनत् । धातारं च विधातारं श्रियं च भगवत्पराम् ।।४३।।

अन्वयः— महाभागः भृगुः ख्यात्यां पत्न्यां धातारं विधातारं पुत्रान् भगवत्पराम् श्रियं च अजीजनत् ।।४३।।

अनुवाद— महाभाग भृगु अपनी पत्नी ख्याति देवकी के गर्भ से धाता एवं विधाता नामक दो पुत्रों और भगवत परायण श्री नामक पुत्री को उत्पन्न किया ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

ख्यात्यां पत्न्याम् । पुत्रान्पुत्रौ पुत्रीं च । तानेवाह-धातारमिति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि भृगु ने ख्याति नामक पत्नी के गर्भ से धाता और विधाता नामक दो पुत्रों और श्रीभगवत् परायण श्री नामक पुत्री को उत्पन्न किया ॥४३॥

आयतिं नियतिं चैव सुते मरुस्तयोरदात् । ताभ्यां तयोरभवतां मृकण्डः प्राण एव च ॥४४॥

अन्वयः— मेरुः आयतिं नियतिं चैव सुते तयोः अदात् ताभ्यां तयोः मृकण्डः प्राण एव च अभवताम् ॥४४॥

अनुवाद— मेरु नामक ऋषि ने अपनी आयति एवं नियति नामक पुत्रियों का विवाह धाता और विधाता से कर दिया और धाता और विधाता के उन दोनों के गर्भ से मृकण्ड और प्राण नामक पुत्र उत्पन्न हुए ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

तयोर्धातृविधात्रोः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

तयोः शब्द से धाता और विधाता को कहा गया है ॥४४॥

मार्कण्डेयो मृकण्डस्य प्राणाद्वेदशिरा मुनिः । कविश्च भार्गवो यस्य भगवानुशना सुतः ॥४५॥

अन्वयः— मृकण्डस्य मार्कण्डेयः प्राणात् वेदशिरा मुनिः, भार्गवः कविश्च यस्य सुतः भगवान् उशना ॥४५॥

अनुवाद— मृकण्ड महर्षि के पुत्र मार्कण्डेय हुए और प्राण महर्षि के पुत्र वेदशिरा हुए। भृगु महर्षि के एक पुत्र का नाम कवि था उनके पुत्र उशाना शुक्राचार्य हुए ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

कविश्च भार्गवो भृगोः पुत्रः । यस्य कविः सुत उशना ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि भृगु के एक पुत्र का नाम कवि था उनके पुत्र उशना शुक्राचार्य हुए ॥४५॥

त एते मुनयः क्षत्तर्लोकान्सर्गैरभावयन् । एष कर्दमदौहित्रसन्तानः कथितस्तव ॥४६॥

अन्वयः— हे क्षत्तः । त एते मुनयः सर्गैः लोकान् अभावयन् एष कर्दमदौहित्र सन्तानः कथितः तव ॥४६॥

अनुवाद— हे विदुर ! उन सभी मुनियों ने अपनी सृष्टिओं के द्वारा सृष्टि का विस्तार किया। इस तरह से मैंने आपको महर्षि कर्दम की पुत्रियों के पुत्रों के सन्तान को सुनाया ॥४६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥४६॥

शृण्वतः श्रद्दधानस्य सद्यः पापहरः परः । प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः ॥४७॥

अन्वयः— शृण्वतः श्रद्दधानस्य सद्यः परः पापहरः । मानवीं प्रसूतिं हि अजात्मजः दक्षः उपयेमे ॥४७॥

अनुवाद— श्रद्धापूर्वक सुनने वालों के पापों के यह सद्यः विनष्ट कर देने वाला है। मनु की पुत्री प्रसूती के साथ ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष ने विवाह किया ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

अजात्मजो ब्रह्मपुत्रः नतु प्राचेतसः ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

दक्ष ब्रह्माजी के पुत्र थे प्रचेता के नहीं ॥४७॥

तस्यां ससर्ज दुहितॄः षोडशामललोचनाः । त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः ॥४८॥

अन्वयः— तस्यां अमललोचना षोडशदुहितॄः ससर्ज । त्रयोदश धर्माय अदात् तथा विभुः एकाम् अग्नये ॥४८॥

अनुवाद— दक्ष ने प्रसूति के गर्भ से सोलह सुन्दरी पुत्रियों को उत्पन्न किया । उनमें से तेरह पुत्रियों का विवाह उन्होंने धर्म से कर दिया और एक पुत्री का विवाह अग्नि से किया ॥४८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥४८॥

पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे । श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः॥
बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्तिर्धर्मस्य पत्नयः ॥४९॥

अन्वयः— एकां युक्तेभ्यः पितृभ्यः एकांभवच्छिदे भवाय च अदात् श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्तिः, तुष्टिः, पुष्टिः क्रिया, उन्नतिः बुद्धिः, मेधा, तितिक्षा, ह्रीः मूर्तिः धर्मस्य पत्नयः ॥४९॥

अनुवाद— दक्ष ने एक पुत्री का विवाह समस्त पितरों से किया और एक पुत्री का विवाह संसार के बन्धन काटने वाले शङ्करजी से किया । श्रद्धा मैत्री दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा तितिक्षा ह्री, और मूर्ति ये तेरह धर्म की पत्नियाँ हैं ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

युक्तेभ्यः संयतेभ्यो मिलितेभ्यो वा ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

युक्तेभ्यः पद का अर्थ संयत अथवा सम्मिलितों के लिए है ॥४९॥

श्रद्धाऽसूत शुभं मैत्री प्रसादमभयं दया । शान्तिः सुखं मुदं तुष्टिः स्मयं पुष्टिरसूयत ॥५०॥

अन्वयः— श्रद्धा शुभम्, मैत्री प्रसादम्, दया अभयम्, शन्तिः सुखम्, तुष्टिः मुदम्, पुष्टिः स्मयम् असूयत ॥५०॥

अनुवाद— धर्म की इन पत्नियों में से श्रद्धा ने शुभ को जन्म दिया, मैत्री ने प्रसाद को जन्म दिया, दया ने अभय को जन्म दिया, शान्ति ने सुख को जन्म दिया, तुष्टि ने मुद को जन्म दिया और पुष्टि ने स्मय को जन्म दिया ॥५०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥५०॥

योगं क्रियोन्नतिर्दर्पमर्थं बुद्धिरसूयत । मेधा स्मृतिं तितिक्षा तु क्षेमं ह्रीः प्रश्रयं सुतम् ॥५१॥

अन्वयः— क्रिया योगम्, उन्नतिः दर्पम्, बुद्धिः अर्थम्, मेधा स्मृतिम्, तितिक्षा तु क्षेमम्, ह्रीः प्रश्रयं सुतम् असूयत्॥५१॥

अनुवाद— क्रिया ने योग को, उन्नति ने दर्प को, बुद्धि ने अर्थ को, मेधा ने स्मृति को, तितिक्षा ने क्षेम को और ह्री ने प्रश्रय नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥५१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥५१॥

मूर्तिः सर्वगुणोत्पत्तिर्नरनारायणावृषी ॥५२॥

अन्वयः— सर्वगुणोत्पत्तिः मूर्ति नरनारायणौ ऋषी असूयता ॥५२॥

अनुवाद— सभी गुणों के उत्पत्ति स्थान मूर्ति देवी ने नर और नारायण इन दोनों ऋषियों को जन्म दिया॥५२॥

भावार्थ दीपिका

सर्वेषां गुणानामुत्पत्तिर्यस्यां सा ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

सर्वगुणोत्पत्ति का अर्थ: जिसमें सभी गुणों की उत्पत्ति होती है, ऐसी मूर्ति देवी ने नर और नारायण नामक दोनों ऋषियों को जन्म दिया ।।५२।।

ययोर्जन्मन्यदो विश्वमभ्यनन्दत्सुनिर्वृतम् । मनांसि ककुभो वाताः प्रसेदुः सरितोऽद्रयः।।५३।।
दिव्यवाद्यन्त तूर्याणि पेतुः कुसुमवृष्टयः । मुनयस्तुष्टुवुस्तुष्टा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः ।।५४।।
नृत्यन्ति स्म स्त्रियो देव्य आसीत्परममङ्गलम् । देवा ब्रह्मादयः सर्वे उपतस्थुरभिष्टवैः।।५५।।

अन्वयः— ययोः जन्मनि अदः विश्वम् सुनिर्वृतम् अभ्यनन्दत मनांसि, ककुभः, वाताः, सरितः अद्रयः प्रसेदुः, दिवि, तुर्याणि अवाद्यन्त, कुसुमवृष्टयः येतुः, तुष्टाः मुनयः तुष्टुवुः, गन्धर्व किन्नरा; जगुः, देव्यः स्त्रियः नृत्यन्तिस्म, परम मङ्गलम् आसीत्, ब्रह्मादयः सर्वे देवा; अभिष्टवैः उपतस्थुः ।।५३-५५।।

अनुवाद— उन दोनों ऋषियों के जन्म के समय सम्पूर्ण विश्व अत्यन्त सुख का अनुभव करते हुए प्रसन्न हो गया, भक्तों के मन, दिशाएँ, वायु, नदियाँ और पर्वत सबों में प्रसन्नता छा गयी । आकाश में मङ्गलमय वाद्य बजने लगे, आकाश से पुष्पों की वृष्टि भी इस समय हुयी, सन्तुष्ट हुए मुनिजन स्तुति करने लगे, गन्धर्व और किन्नरगण गीत गाने लगे, अप्सरायें नृत्य करने लगी, उस समय अत्यन्त मङ्गल हुआ तथा ब्रह्मा आदि सभी देवताओं ने भगवान् की स्तुति की ।।५३-५५।।

भावार्थ दीपिका

उपतस्थुर्भेजुः ।।५३-५५।।

भाव प्रकाशिका

उपतस्थु का अर्थ है स्तुति की ।।५३-५५।।

देवा ऊचुः

यो मायया विरचितं निजयात्मनीदं खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय ।
एतेन धर्मसदने ऋषिमूर्तिनाऽद्य प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ।।५६।।

अन्वयः— खे रूपभेदम् इव यः निजया मायया आत्मनि इदं विरचितं तत्प्रतिचक्षणाय धर्मसदने एतेन ऋषि मूर्तिना अद्य प्रादुश्चकार परस्मै पुरुषाय नमः ।।५६।।

देवताओं ने कहा

अनुवाद— जिस तरह नीरूप आकाश में गन्धर्व नगर आदि रूपों की कल्पना कर ली जाती है, उसी तरह जिन्होंने अपने स्वरूप के अन्दर ही इस जगत् की रचना अपनी माया के द्वारा कर ली है और अपने स्वरूप को प्रकाशित करने के लिए इस समय धर्म के गृह में ऋषि विग्रह के साथ अपने आपको प्रकट किया है, उन परम पुरुष को हमारा नमस्कार है ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

निजया मायया यस्मिन्नात्मनि । खे गगने रूपभेदं गन्धर्वनगरमिवेदं विश्वं विरचितम् । तस्यात्मनः प्रतिचक्षणाय प्रकाशनायात्मानं योऽद्य प्रादुश्चकार प्रकटितवान् तस्मै पुरुषाय नमः । केन रूपेण प्रादुश्चकार । ऋषेर्मूर्तिराकारो यस्मिंस्तेन रूपेण ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

जिन्होंने अपनी माया के ही द्वारा अपने जिस स्वरूप में, आकाश में कल्पित किए जाने वाले गन्धर्व नगर

आदि के समान इस सम्पूर्ण विश्व की रचना कर ली है । अपने उस स्वरूप को प्रकाशित करने के लिए जिन श्रीभगवान् ने अपने ऋषि आकार के साथ आज धर्म के गृह में प्रकट हुए हैं । उन परम पुरुष श्रीभगवान् को हमारा नमस्कार है ॥५६॥

सोऽयं स्थितिव्यतिकरोपशमाय सृष्टान्सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेयतत्त्वः ।
दृश्याददभ्रकरुणेन विलोकनेन यच्छ्रीनिकेतममलं क्षिपताऽरविन्दम् ॥५७॥

अन्वयः— स्थितिव्यतिकरोपशमाय सत्त्वेन सृष्टान् नः सुरगणान् अनुमेय तत्त्वः सः यत् श्रीनिकेतम् अरविन्दम् अलं क्षिपता अदभ्रकरुणेन विलोकनेन नः दृश्यात् ॥५७॥

अनुवाद— वे ही श्रीभगवान् जगत् की मर्यादा में किसी प्रकार की गड़बड़ी न हो इसलिए सत्त्वगुणों के द्वारा जिनकी सृष्टि की गयी है, ऐसे हम देवताओं के लिए शास्त्र के आधार पर केवल अनुमान किए जाते हैं । उनका प्रत्यक्ष हमलोग नहीं कर पाते हैं, ऐसे भगवान् सौन्दर्यातिरेक के कारण लक्ष्मीजी के निवास स्थान कमल को भी तिरस्कृत करने वाले तथा अत्यधिक दया से युक्त नेत्रों द्वारा हमलोगों को देखें ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

सोऽयं नोऽस्मान्सुरगणाननल्पकरुणायुक्तेन विलोकनेन विशिष्टनेत्रेण दृश्यात् पश्यतु । कथंभूतेन । यच्छ्रीनिकेतममलमरविन्दं तत्क्षिपता तिरस्कुर्वता । कथंभूतः । अनुमेयं शास्त्रतो विचार्यं, नत्वस्माकमपरोक्षं तत्त्वं यस्य । कथंभूतानस्मान् । स्थितेर्जगन्मर्यादाया व्यतिकरोऽन्यथात्वं तस्योपशमाय सत्त्वेन गुणेन सृष्टान् ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

वे ही भगवान् हम देव समूह को अत्यधिक करुणा से युक्त अपने नेत्रों से देखें । वे नेत्र कैसे हैं तो इसे बतलाते हैं— श्रीभगवान् के जो नेत्र लक्ष्मीजी के निवास स्थान कमल को भी अपने सौन्दर्यातिशय के द्वारा तिरस्कृत करते हैं । वे भगवान् कैसे हैं ? तो इसका उत्तर है कि हमलोगों के जिस शास्त्र के द्वारा विचार करने योग्य हैं उनके तत्त्व का हमलोगों ने प्रत्यक्ष नहीं किया है । हम देवगण कैसे हैं ? तो इसका उत्तर है कि जगत् की मर्यादा में सभाव्य गड़बड़ी को दूर करने के लिए सत्त्वगुण से सृष्ट हैं ॥५७॥

एवं सुरगणैस्तात भगवन्तावभिष्टुतौ । लब्धावलोकैर्ययतुरर्चितौ गन्धमादनम् ॥५८॥

अन्वयः— हे तात ! एवं लब्धावलोकैः सुरगणैः अभिष्टुतौ भगवन्तौ अर्चितौ गन्धमादनम् ययतुः ॥५८॥

अनुवाद— हे तात विदुर ! इस प्रकार से श्रीभगवान् की कृपा पूर्ण अवलोकन को प्राप्त किए हुए देवताओं के द्वारा स्तुति किए जाने के पश्चात् देवताओं द्वारा पूजित होकर गन्धमादन पर्वत पर चले गये ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

लब्धोऽवलोको यैः सुरगणैस्तैरभिष्टुतावर्चितौ सन्तौ ययतुः ॥५८॥

भाव प्रकाशिका

जिन देवताओं ने श्रीभगवान् की कृपा दृष्टि को प्राप्त कर लिया था उन देवताओं द्वारा स्तुति किए जाने के पश्चात् पूजित होकर वे दोनों नर और नारायण गन्धमादन पर्वत पर चले गये ॥५८॥

ताविमौ वै भगवतो हरेरंशाविहागतौ । भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहौ ॥५९॥

अन्वयः— तौ इमौ वो भगवतः हरेः अंशौ इह भुवः भाख्ययाय यदुकुरूद्वहौ कृष्णौ ॥५९॥

अनुवाद— नर-नारायण ये दोनों ही भगवान् श्रीहरि के अंश हैं और इस समय पृथिवी का भार दूर करने के लिए यदुकुल में श्रीकृष्ण के रूप में और कुरुवंश में अर्जुन के रूप में अवतीर्ण हुए हैं ॥५९॥

भावार्थ दीपिका

भुवो भारस्य व्ययाय नाशाय । चकार एकवाक्यत्वार्थः । तौ च सांप्रतमिहागताविल्यर्थः । तदुक्तं तन्त्रे 'अर्जुने तु नरावेशः कृष्णो नारायणः स्वयम्' इति । यदूद्वहः श्रीकृष्णः । कुरूद्वहोऽर्जुनः । उभावपि कृष्णनामानौ ।।५९।।

भाव प्रकाशिका

भुवः भारव्ययाय का अर्थ है, पृथिवी के भार का नाश करने के लिए । चकार का प्रयोग एक वाक्यता के लिए किया गया है । अर्थात् नर और नारायण ये दोनों भगवान् श्रीहरि के अंश हैं । ये नर और नारायण दोनों ही पृथिवी पर बढ़े हुए पापियों के भार को विनष्ट करने के लिए भगवान् कृष्ण और अर्जुन के रूप में अवतीर्ण हुए हैं । इन दोनों का ही नाम कृष्ण है । श्रीकृष्ण यदुवंश में अवतीर्ण हुए और अर्जुन कुरुवंश में अवतीर्ण हुए हैं । तन्त्र ग्रन्थ में कहा गया है— **अर्जुनेतुनरावेशः कृष्णो नारायणः स्नयम्** अर्थात् अर्जुन में तो नर का आवेश हैं स्वयम् भगवान् श्रीकृष्ण ही नारायण के वेश में विद्यमान हैं ।।५९।।

स्वाहाऽभिमानिनश्चाग्नेरात्मजांस्त्रीनजीजनत् । पावकं पवमानं च शुचिं च हुतभोजनम् ।।६०।।

अन्वयः— स्वाहा अग्नेः अभिमानिनः त्रीन् आत्मजान् अजीजनत् पावकं, पवमानं शुचिं च हुत भोजनम् ।।६०।।

अनुवाद— अग्नि देव की पत्नी स्वाहा ने अग्नि के ही अभिमानी तीन पुत्रों को उत्पन्न किया पावक, पवमान और शुचि को ये तीनों होम किए गये पदार्थों का भोजन करते हैं ।।६०।।

भावार्थ दीपिका

अग्न्यभिमानिनो देवान् । स्वाहा नाम तस्य भार्या । हुतभोजनमिति त्रयाणां विशेषणम् ।।६०।।

भाव प्रकाशिका

अग्नि देव की पत्नी का नाम स्वाहा है । उन्होंने तीन पुत्रों को जन्म दिया । वे तीनों ही अग्नि के अभिमानी हैं । हुतभोजनम् उन तीनों का विशेषण है । अर्थात् वे तीन होम किए गये पदार्थों का भोजन करते हैं ।।६०।।

तेभ्योऽग्नयः समभवंश्चत्वारिंशच्च पञ्च च । त एवैकोनपञ्चाशत्साकं पितृपितामहैः ।।६१।।

अन्वयः— तेभ्यः चत्वरिंशत् च पञ्च च अग्नयः समभवन्, ते एव पितृपितामहैः साकं एकोनपञ्चाशत् ६१।।

अनुवाद— उन तीनों से ही पैंतालिस अग्नियों की उत्पत्ति हुयी और वे अपने तीन पिता और एक पितामह के साथ मिलकर उनचास हो जाते हैं ।।६१।।

भावार्थ दीपिका

पितरस्त्रयः पितामह एकस्तैः साकं सह ।।६१।।

भाव प्रकाशिका

वे पैंतालिस जो अग्नि हुए वे अपने तीन पिता और एक पितामह के साथ मिलकर उनचास अग्नि हो गये ।।६१।।

वैतानिके कर्मणि यन्नामभिर्ब्रह्मवादिभिः । आग्नेय्य इष्टयो यज्ञे निरूप्यन्तेऽग्नयस्तु ते ।।६२।।

अन्वयः— वैतानिके कर्मणि ब्रह्मवादिभिः यन्नाभिः यज्ञे आग्नेय्यः इष्टयः निरूप्यन्ते ते तु अग्नयः ।।६२।।

अनुवाद— वैदिक यज्ञ कर्म में वेदज्ञ ब्राह्मण जिन उनचास अग्नियों के नाम से आग्नेय इष्टियाँ करते हैं वे अग्नि ये ही हैं ।।६२।।

भावार्थ दीपिका

वैतानिके वैदिके कर्मणि यज्ञे येषां नामभिरग्निदेवताका इष्टयो निरूप्यन्ते क्रियन्ते त एतेऽग्नयो न लौकिकाः । अतो बहूनां न वैयर्थ्यमिति भावः ।।६२।।

भाव प्रकाशिका

वैदिक यागों में वेदज्ञ ब्राह्मण इन्हीं उनचास अग्नियों के नाम से अग्नि देवताक इष्टियों को करते हैं वे ये ही अग्नियाँ हैं । ये लौकिक अग्नि नहीं है । अतएव बहुतों का होना व्यर्थ नहीं है ॥६२॥

अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोम्याः पितर आज्यपाः । साग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा ॥६३॥

अन्वयः— अग्निष्वात्ताः, बर्हिषदः सोम्याः आज्यपाः पितरः साग्नयः अनग्नयः, तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा ॥६३॥

अनुवाद— अग्निष्वाता, बर्हिषद्, सोमप (सोमरसपायी) आज्यप (घृतपायी) ये सभी पितृगण हैं । ये साग्निक भी हैं और निरग्निक भी है । इन सबों की पत्नी दक्षपुत्री स्वधा हैं ॥६३॥

भावार्थ दीपिका

सोम्याः सोमपाः येषामग्नौकरणमस्ति ते साग्नयः । तद्रहितास्त्वनग्नयः ॥६३॥

भाव प्रकाशिका

सोम्या: अर्थात् सोमपान करने वाले । जिन पितरों का अग्नौकरण होता है वे साग्नि पितृगण हैं और जिनका अग्नौकरण नहीं होता है वे निरग्निक पितृगण हैं ॥६३॥

तेभ्यो दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा । उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविज्ञानपारगे ॥६४॥

अन्वयः— स्वधा तेभ्यः द्वे कन्ये दधार वयुनां धारिणीं च । तेउभे ब्रह्मवादिन्य ज्ञान विज्ञान पारगे ॥६४॥

अनुवाद— स्वधाने पितरों से दो वयुना और धारिणी नामक दो पुत्रियों को जन्म दिया । वे दोनों ज्ञान विज्ञान में पारङ्गत तथा ब्रह्मविद्या का उपदेश करने वाली थीं ॥६४॥

भावार्थ दीपिका

तयोस्तु संततिर्नाभवज्जीवन्मुक्तत्वादित्याह— उभे त इति ॥६४॥

भाव प्रकाशिका

उभे ते इत्यादि उत्तरार्द्ध से बतलाया गया है कि वे दोनों जीवन मुक्त थीं अतएव उन दोनों की कोई सन्तान नहीं हुयीं ॥६४॥

भवस्य पत्नी तु सती भवं देवमनुव्रता । आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ॥६५॥

अन्वयः— भवस्य पत्नी तु सती भवं देवम् अनुव्रता । गुणशीलतः आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभी ॥६५॥

अनुवाद— महादेवजी की पत्नी सती थी वह हर प्रकार से शिवजी की सेवा में संलग्न रहती थी उनको अपने गुण और शील के अनुरूप कोई पुत्र नहीं हुआ ॥६५॥

भावार्थ दीपिका

गुणशीलत आत्मनः सदृशं देवमनुव्रतापि सती पुत्रं न लेभे ॥६५॥

भाव प्रकाशिका

शङ्करजी की पत्नी सती शङ्करजी की सेवा में संलग्न रहती थी फिर भी वह अपने गुण तथा शील के समान पुत्र को नहीं प्राप्त कर सकीं ॥६५॥

पितर्यप्रतिरूपे स्वे भवायानागसे रुषा । अप्रौढैवात्मनात्मानमजहाद्योगसंयुता ॥६६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे विदुरमैत्रेयसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अन्वयः— अनागसे भवाय स्वे पितरि अप्रतिरूपे रुषा अप्रौढैव योगसंयुता आत्मनात्मानम् अजहत् ॥६६॥

अनुवाद— निर्दोष शङ्करजी के विरुद्ध अपने पिता दक्ष के प्रतिकूल आचरण करने के कारण उन पर क्रोध करके युवावस्था में ही उन्होंने योग के द्वारा अपने शरीर का स्वयं त्याग कर दिया ॥६६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के विदुरमैत्रेय संवाद के अन्तर्गत प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः— स्वे पितरि दक्षेऽप्रतिरूपेऽसदृशे प्रतिकूले सतीत्यर्थः । आत्मना स्वयमेवात्मानं देहमजहात्त्यक्तवती । योगसंयुता योगामाश्रित्येति ।।६६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

पुत्र नहीं प्राप्त करने का कारण यह था कि उनके पिता दक्ष ने निरपराध शङ्करजी के प्रतिकूल आचरण किया था । उसके कारण युवावस्था में ही अपने पिता पर क्रोध करके उन्होंने योग को अपनाकर अपने से ही अपने शरीर को त्याग दिया ॥६६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के भावार्थदीपिका नामक टीका के प्रथम अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।१।।

* * *

द्वितीय अध्याय

शङ्करजी तथा दक्ष प्रजापति का परस्पर में मनोमालिन्य

विदुर उवाच

भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षो दुहितृवत्सलः । विद्वेषमकरोत्कस्मादनादृत्यात्मजां सतीम् ॥१॥

अन्वयः— दुहितृवत्सलः दक्षः आत्मजां सतीम् अनादृत्य, शीलवतां श्रेष्ठे भवे कस्मात् विद्वेषम् अकरोत् ॥१॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— दक्ष प्रजापति अपने पुत्रियों से बहुत प्रेम करते थे वे अपनी पुत्री सती का अनादर करके शील गुण वानों में श्रेष्ठ श्रीशङ्करजी के प्रति क्यों विद्वेष किए ?॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वितीये प्रथमाध्यायोपक्षिप्ते भवदक्षयोः । विद्वेषे वर्ण्यते हेतुर्विश्वसृड्यज्ञसंभवः ॥१॥ सतीं सतीनाम्नीम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे अध्याय में प्रथम अध्याय में चर्चित अपनी सती नाम की पुत्री का अनादर करके शङ्करजी तथा दक्ष में होने वाले विद्वेष का कारण वर्णित है ॥१॥

कस्तं चराचरगुरुं निर्वैरं शान्तविग्रहम् । आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतो दैवतं महत् ॥२॥

अन्वयः— चराचरगुरुं निर्वैरं, शान्तविग्रहं, आत्मारामं जगतः महत् दैवतम् तं कथं कः द्वेष्टि ॥२॥

अनुवाद— शङ्करजी चराचरात्मक जगत् के गुरु हैं, उनका किसी से भी वैर नहीं है, वे शान्त मूर्ति है, आत्माराम और सम्पूर्ण जगत् के महान् देव हैं, भला उनसे कोई क्यों द्वेष करेगा ?॥२॥

भावार्थ दीपिका

न चासौ कस्यचिद्वेषार्ह इत्याह-क इति। चराचरगुरुं जगतो दैवतं च तं को द्वेष्टि, कथं च निर्वैरं द्वेष्टि । निर्वैरत्वे हेतुः- शान्तं, भावे क्तः । शान्तिरेव विग्रहो यस्य । कुतः आत्मन्येवारामो रतिर्यस्य तम् । यद्वा कः प्रजापतिर्दक्षः कथं द्वेष्टि । एवंभूते तस्मिन्द्वेषोऽयुक्तोऽशक्यश्चेत्यर्थः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

शङ्करजी किसी के द्वारा द्वेष करने योग्य हैं ही नहीं इस बात को **कस्तम्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। शङ्करजी चराचरात्मक जगत् के गुरु हैं तथा जगत् के महान् देवता हैं । उनसे कौन द्वेष कर सकता है । कोई निर्वैर शङ्करजी से क्यों द्वेष कर सकता है । उनके निर्वैर होने का कारण बतलाते हुए कहा गया है कि वे शान्तमूर्ति शान्तम् पद में भाव में क्त प्रत्यय हुआ है । अर्थात् शान्ति ही उनका शरीर है । क्योंकि वे आत्मा में ही रमण करते हैं । अथवा कः अर्थात् प्रजापति दक्ष ने उनसे कैसे द्वेष किया ? इस प्रकार के शङ्करजी से द्वेष करना बिल्कुल अनुचित और अशक्य है ॥२॥

एतदाख्याहि मे ब्रह्मञ्जामातुः श्वशुरस्य च । विद्वेषस्तु यतः प्राणांस्तत्यजे दुस्त्यजान्सती ॥३॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! एतत् जामातुः श्वशुरस्य विद्वेषः मे आख्याहि यतः सती दुस्त्यजान् प्राणान तत्यजे ॥३॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! उन श्वशुर दामाद में इतना विद्वेष कैसे हो गया ? जिसके कारण सती ने अपने दुस्त्यज प्राणों का भी परित्याग कर दिया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

यतो हेतोर्विद्वेषः, यतो विद्वेषात्प्राणांस्तत्याज, एतदाख्याहि ॥३॥

भाव प्रकाशिका

जिसके कारण दोनों में परस्पर में विद्वेष हुआ । जिस विद्वेष के कारण सती ने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया । इसे आप मुझे सुनाइये ॥३॥

मैत्रेय उवाच

पुरा विश्वसृजां सत्रे समेताः परमर्षयः । तथाऽमरगणाः सर्वे सानुगा मुनयोऽग्नयः ॥४॥

अन्वयः— पुरा विश्वसृजां सत्रे परमर्षयः तथा अमरगणाः सर्वे मुनयः अग्नयः सानुगः समेताः ॥४॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— एक बार प्रजापतियों के यज्ञ में बड़े-बड़े महर्षिगण, देवगण, सभी मुनिगण और अग्निगण अपने-अपने अनुचरों के साथ एकत्रित हुए ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाख्यातुमितिहासं प्रस्तौति-पुरेति । समेता आसन् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

शङ्करजी और दक्ष प्रजापति में होने वाले विद्वेष को ही बतलाने के लिए यहाँ पर मैत्रेय जी इतिहास को **पुरा० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । समेताः अर्थात् एकत्रित हुए थे ॥४॥

तत्र प्रविष्टमृषयो दृष्ट्वाऽर्कमिव रोचिषा । भ्राजमानं वितिमिरं कुर्वन्तं तन्महत्सदः ॥५॥
उदतिष्ठन्सदस्यास्ते स्वधिष्ण्येभ्यः सहाग्नयः । ऋते विरिञ्चं शर्वं च तद्भासाक्षिप्तचेतसः ॥६॥

अन्वयः— रोचिषा अर्कमिव भ्राजमानं वितिमिरंतन्महतसरः कुर्बन्तं तदा प्रविष्टं दक्षं दृष्ट्वा, तद्भासा आक्षित्त चेतसः विरिञ्चं शर्वं च बिना ते सदस्याः सहाग्नयः स्वधिष्णेभ्यः उदतिष्ठन् ॥५-६॥

अनुवाद— सूर्य के समान देदीप्यमान कान्ति से सुशोभित, उस विशाल सभा को प्रकाशित करते हुए उसी समय उस सभा में आये हुए दक्ष प्रजापति को देखकर उनकी कान्ति से आकृष्ट बुद्धिवाले ब्रह्माजी और शङ्करजी को छोड़कर सभी सदस्य तथा ऋषिगण अपने आसन से उठकर खड़े हो गये ॥५-६॥

भावार्थ दीपिका

प्रविष्टं दक्षिमिति शेषः । महत्सदो महतीं सभाम् । स्वधिष्ण्येभ्यः स्वीयासनेभ्यः ॥५-६॥

भाव प्रकाशिका

दक्ष प्रजापति जब उस सभा में प्रवेश किए उस समय उनकी कान्ति से वह सभा मानो प्रकाशित हो गयी और ब्रह्माजी तथा शङ्करजी को छोड़कर उस सभा के सभी सदस्य तथा अग्निगण भी अपने आसन से उठकर खड़े हो गये ॥५-६॥

सदसस्पतिभिर्दक्षो भगवान्साधुसत्कृतः । अजं लोकगुरुं नत्वा निषसाद तदाज्ञया ॥७॥

अन्वयः— सदसस्पतिभिः साधुसत्कृतः भगवान् दक्षः लोकगुरुं अजं नत्वा तदाज्ञया निषसाद ॥७॥

अनुवाद— सभी सदस्यों के द्वारा अच्छी तरह से समादृत होकर तेजस्वी दक्ष प्रजापति लोकगुरु ब्रह्माजी को नमस्कार करके उनकी आज्ञा से अपने आसन पर बैठ गये ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥७॥

प्राङ्निषण्णं मृडं दृष्ट्वा नामृष्यत्तदनादृतः । उवाच वामं चक्षुर्भ्यामभिवीक्ष्य दहन्निव ॥८॥

अन्वयः— प्राक् निषण्णं मृडं दृष्ट्वा तदनादृतः न अमृष्यत् वाम चक्षुभ्याम् अभिवीक्ष्य दहन् इव उवाच ॥८॥

अनुवाद— अपने बैठने से पहले बैठे हुए शिवजी को देखकर तथा उनसे आदर नहीं प्राप्त करने के कारण दक्ष प्रजापति उसे बर्दास्त नहीं कर पाये और वे अपनी आँखें टेढ़ी करके देखकर जालाते हुए के समान कहने लगे॥८॥

भावार्थ दीपिका

प्राक् स्वोपवेशनात्पूर्वमेव निषण्णमुपविष्टं मृडं शिवम् । तदनादृतस्तेनाभ्युत्थानादिभिरकृतादरः । नामृष्यत् नासहत । वामं वक्रं यथा भवति तथाऽभिवीक्ष्य ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अपने बैठने से पहले बैठे हुए शिवजी को बैठे हुए देखकर दक्ष प्रजापति उसे बर्दास्त नहीं कर पाये कयोंकि वे शिवजी द्वारा समादृत नहीं हुए थे । उन्होंने अपनी आँखे टेढ़ी करके कहा ॥८॥

श्रूयतां ब्रह्मर्षयो मे सहदेवाः सहाग्नयः । साधूनां ब्रुवतो वृत्तं नाज्ञानान्न च मत्सरात् ॥९॥

अन्वयः— अज्ञानात् न न मत्सरात् च साधूनां वृत्तं ब्रवतो मे सहदेवा सहाग्नयः ब्रह्मर्षयः मे श्रूयताम् ॥९॥

अनुवाद— मैं न तो अज्ञान वशात् और न द्वेष वशात् अपितु मैं साधु पुरुषों के वृत्तान्त को कह रहा हूँ। अतएव सभी देवता और अग्नियों के साथ ब्रह्मर्षिगण मेरी बात सुनें ॥९॥

भावार्थ दीपिका

मे वचनं श्रूयताम् । अज्ञानान्मत्सराच्च न ब्रुवतः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

दक्ष प्रजापति ने कहा आपलोग मेरी बात सुनें मैं अज्ञान के कारण अथवा द्वेष के कारण यह नहीं कह रहा हूँ ॥९॥

अयं तु लोकपालानां यशोघ्नो निरपत्रपः । सद्भिराचरितः पन्था येन स्तब्धेन दूषितः ॥१०॥

अन्वयः— अयं तु लोकपालानां यशोघ्नः निरपत्रपः । स्तब्धेन येन सद्भिः आचरितः पन्थाः दूषितः ॥१०॥

अनुवाद— यह तो निर्लज्ज शङ्कर लोकपालों की पवित्र कीर्ति को विनष्ट किया है, क्योंकि इस घमण्डी ने सज्जनों के सन्मार्ग को दूषित किया है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

स्तब्धेनोचितक्रियाशून्येन । ध्वस्तेनेति पाठे भ्रष्टेन ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

स्तब्धेन का अर्थ है उचित कार्य ज्ञान से रहित । जहाँ पर ध्वस्तेन पाठ है, वहाँ पर अर्थ होगा भ्रष्ट ॥१०॥

एष मे शिष्यतां प्राप्तो यन्मे दुहितुरग्रहीत् । पाणिं विप्राग्निमुखतः सावित्र्या इव साधुवत्॥११॥
गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कटलोचनः । प्रत्युत्थानाभिवादार्हे वाचाप्यकृत नोचितम्॥१२॥

अन्वयः— एष मर्कटलोचनः यत विप्राग्नि मुखतः मे मृगशावाक्ष्याः सावित्र्याः इव मे दुहितुः पाणिं साधुवत् अग्रहीत् अतः एष मे शिष्यतां प्राप्तः । प्रत्युत्थानाभिवादार्हे मयि वाचा अपि नोचितम् अकृत ॥११-१२॥

अनुवाद— बन्दर जैसे नेत्र वाला यह शङ्कर चूकि ब्राह्मणों और अग्नि के समक्ष बालमृगनयनी मेरी पुत्री का सज्जन के समान पाणिग्रहण किया, अतएव यह एक तरह से मेरे पुत्र के समान है । इसके लिए तो यही उचित था यह उठकर मेरा सम्मान करके मुझे प्रणाम करता किन्तु इसने वाणी से भी मेरा उचित सम्मान नहीं किया॥११-१२॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-एष इति। यद्यस्माद्विप्राग्निसमक्षं सावित्रीतुल्याया मे दुहितुः पाणिमग्रहीत् । मृगशावस्य हरिणबालस्याक्षिणीवाक्षिणी यस्याः । प्रत्युत्थानाभिवादार्हे मय्युचितं सन्मानं वाचापि नाकरोत् ॥११-१२॥

भाव प्रकाशिका

शङ्करजी के उचित क्रिया शून्यत्व का वर्णन करते हुए दक्ष प्रजापति ने कहा चूकि इसने गायत्री भी के समान पवित्र मेरी पुत्री का ब्राह्मणों एवं अग्नियों के समक्ष पाणिग्रहण किया । वह मेरी पुत्री बालमृग के समान नेत्रों वाली थी । मैं तो इसके लिए खड़ा होकर सत्कार करने और प्रणाम करने के योग्य था किन्तु इसने वाणी से भी मेरा उचित सम्मान नहीं किया है ॥११-१२॥

लुप्तक्रियायाशुचयेऽमानिनेऽभिन्नसेतवे । अनिच्छन्नप्यदां बालां शूद्रायेवोशतीं गिरम् ॥१३।

अन्वयः— शूद्राय उशतीं गिरम् इव अनिच्छन्नपि लुप्त क्रियाय, अशुचये मानिने भिन्नसेतवे बालाम् अदाम् ॥१३॥

अनुवाद— शूद्र को वेदविद्या देने के समान इच्छा को नहीं रहने पर भी भावी वशात् इस सत्कर्म का परित्याग कर देने वाले, सदा अपवित्र रहने वाले, घमण्डी तथा मर्यादा का उल्लंघन करने वाले इसको मैंने अपनी पुत्री प्रदान कर दी ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अनर्हाय कन्या दत्तेत्यनुतप्यमान आह-लुप्तक्रियायेति सार्धैश्चतुर्भिः । उशतीं बेदलक्षणां गिरम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

मैंने अयोग्य शङ्कर को अपनी पुत्री प्रदान कर दी इस तरह से सन्ताप करते हुए दक्ष प्रजापति ने साढ़े चार

श्लोकों के द्वारा कहा जैसे शूद्र को वेद विद्या प्रदान करके सन्ताप होता है उसी तरह से इसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करने के कारण मुझको सन्ताप हो रहा है ॥१३॥

प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः । अटत्युन्मत्तवन्नग्नो व्युप्तकेशो हसन् रुदन् ॥१४॥

अन्वयः— अयं घोरेषु प्रेतावासेषु प्रेतैर्भूतगणैः वृतः नग्नः व्युप्तकेशः हसन् रुदन् उन्मत्त वत् अटति ॥१४॥

अनुवाद— यह भयङ्कर प्रेतों के निवास स्थान, श्मशानों में, प्रेतों और भूतगणों के साथ नङ्गे, विखरे हुए केशों वाला कभी हँसते हुए तथा कभी रोते हुए पागल के समान घूमता रहता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

प्रेतावासेषु श्मशानेषु । व्युप्ता विकीर्णाः केशा यस्य ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

प्रेतावास का अर्थ श्मशान है । **व्युप्तकेशः** का अर्थ है विखरे हुए केशों वाला ॥१४॥

चिताभस्मकृतस्नानः प्रेतस्रङ् न्रस्थिभूषणः। शिवापदेशो ह्यशिवोऽमत्तोमत्तजनप्रियः॥
पतिः प्रमथभूतानां तमोमात्रात्मकात्मनाम् ॥१५॥

अन्वयः— चिताभस्मकृतस्नानः प्रेतस्रक् नरस्थिभूषणः शिवापदेशः अशिवः मत्तः मत्तजनप्रियः, तमोमात्रात्मकानाम् प्रथमभूतानां पतिः ॥१५॥

अनुवाद— यह चिता के भस्म से स्नान करता है । नरमुण्डों की माला धारण करता है और अपने अङ्गों में मनुष्यों की हड्डियों का आभूषण धारण करता है । यह कहने के लिए अर्थात् मङ्गलमय है, किन्तु वस्तुतः अमङ्गलमय है, यह मदमत्त है और मत्त लोगों को ही प्रिय भी है । यह तमोगुणी स्वभाव वाले प्रमथों और भूतों का स्वामी है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

चिताभस्मना कृतं स्नानं येन । प्रेतानां स्रजो माल्यानि यस्य प्रेतस्रक् । नृणामस्थीनि भूषणानि यस्य । शिव इत्यपदेशो नाममात्रं यस्य । तमोमात्रात्मकः केवलतमोरूप आत्मा स्वभावो येषाम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

यह चिता के भस्म से स्नान करता है । मरे हुओं की ही माला धारण करता है । मनुष्यों के हड्डी के आभूषणों को धारण करता है । इसका केवल नाम शिव है । जिन जीवों का तमोगुणी स्वभाव है, उन प्रमथों और भूतों का यह स्वामी हैं ॥१५॥

तस्मा उन्मादनाथाय नष्टशौचाय दुर्हृदे । दत्ता बत मया साध्वी चोदिते परमेष्ठिना ॥१६॥

अन्वयः— परमेष्ठिनाचोदिते बत मया तस्मै उन्मादनाथाय नष्टशौचाय दुर्हृदे साध्वी दत्ता बत ॥१६॥

अनुवाद— ब्रह्माजी के ही कहने से मैने इस भूतों के स्वामी, सदा अपवित्र रहने वाले आचार हीन तथा दुष्ट स्वभाव वाले के साथ अपनी साध्वी पुत्री का विवाह कर दिया यह खेद की बात हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

उन्मादा भूतविशेषास्तेषां नाथाय । दुर्हृदे दुष्टचित्ताय । बतेति खेदे । वास्तवस्त्वयमर्थः-लुप्ताः क्रिया यस्मिन्, परब्रह्मरूपत्वात् । अतएव नास्ति शुचिर्यस्मात् । अमानिने अभिन्नसेतवे इति च छेदः । तस्य परमेश्वरस्य मदीया मानुषी कन्या कथं योग्या स्यादिति लज्जादिना दातुमनिच्छन्नपि तत्संबन्धलोभेन दत्तवान् । शूद्रायेत्यनर्हत्वमात्रे दृष्टान्तो न हीनत्वे ।

पूर्वापरस्ववचनविरोधापत्तेः । एतदुक्तं भवति-यथा कश्चिच्छूद्राय वेदमर्थलोभेन ददाति तद्वदिति । प्रेतावासेष्वित्यादि सर्वं विडम्बनमात्रमिति स्वयमेवाह- उन्मत्तवदिति । अन्यथोन्मत्त इत्येवावक्ष्यत् । अशिवो नास्ति शिवो यस्मात् । अमत्तोऽमत्तजनप्रिय इति छेदः । पतिः प्रमथभूतानामिति भक्तवात्सल्यमाह । तामसानपि दोषमपनीय पातीति नष्टानामपि शौचं शुद्धिर्यस्मात् । दुष्टेष्वप्येते मयानुकम्प्या इति हृन्मनो यस्य स दुर्हृत्तस्मै । बतेति हर्षे । ब्रह्मणो वाक्याल्लज्जाभयादिकं परित्यज्य दत्तेत्यर्थः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

उन्माद शब्द से भूत विशेषों को कहा गया है । उनके ही स्वामी ये शिव हैं । तथा दुष्ट हृदय वाला यह है, इस तरह के शिव को मैंने अपनी बालमृगनयनी तथा गायत्री के समान पवित्र पुत्री का विवाह कर दिया यह महान् खेद का विषय है वास्तविक अर्थ यह है वस्तुत: इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार से है । परंब्रह्म स्वरूप होने के कारण जिसकी क्रिया लुप्त हो गयी हैं, अतएव उनसे बढ़कर कोई भी पवित्र नहीं है अतएव ये शिव अशुचि हैं । अमानिने अभिन्न सेतवे इस तरह से पदच्छेद है । उन परमेश्वर को मैं अपनी मानुषी कन्या कैसे प्रदान करू ? इस तरह से लज्जा आदि के कारण नहीं देना चाहकर भी इन शङ्करजी से मेरा सम्बन्ध हो जाय इस लोभ से मैंने अपनी कन्या उनको प्रदान कर दी । शूद्राय इस पद के द्वारा अयोग्य मात्र रूप अर्थ में दृष्टान्त उपन्यस्त किया गया है हीन के अर्थ में नहीं क्योंकि हीनत्व के अर्थ में दृष्टान्त को मानने पर पूर्वापर वाक्य का विरोध होगा । **एतदुक्तं भवति** कहने का अभिप्राय है कि जैसे कोई धन इत्यादि के लोभ के कारण किसी शूद्र को वेदार्थ प्रदान कर देता है उसी तरह 'शूद्रायेवोशतीं गिरम्' का अर्थ समझना चाहिए । श्मशान इत्यादि में निवास करना आदि सारी बातें दिखावा मात्र है इस बात को दक्ष प्रजापति ने **उन्मत्तवत** इस पद के द्वारा कह दिया । यदि ऐसा अभिप्राय नहीं होता तो वे केवल उन्मत्त ही कहते । अशिव: पद का अर्थ है कि इन शिवजी से बढ़कर कोई भी दूसरा मङ्गलमय नहीं है । **अमत्तजनप्रियः** यह श्लोकांश का पदच्छेद है । पति: प्रमथभूतानाम् के द्वारा शङ्करजी के वात्सल्य को बतलाया गया है । भगवान् शङ्कर तामस प्रकृति के जीवों के भी दोषों को दूर कर देते हैं । भगवान् शिव के द्वारा तो नष्टों की भी शुद्धि हो जाती है । यह **नष्टशौचाय** पद का अर्थ है । जो शङ्करजी दुष्टों के भी विषय में यह सोचते हैं कि इन सबों पर मुझे कृपा करनी चाहिए अतएव वे दुर्हृत् हैं । इस प्रकार के शङ्करजी को मैंने पुत्री प्रदान की है । **बत** यह अव्यय खेद के अर्थ में नहीं अपितु हर्ष के अर्थ में प्रयुक्त है । **चोदिते परमेष्ठिना** का अर्थ है कि ब्रह्माजी के कहने से लज्जा तथा भय का परित्याग करके, अपनी पुत्री का विवाह शङ्करजी से कर दिया ।।१६।।

मैत्रेय उवाच

विनिन्द्यैवं स गिरिशमप्रतीपमवस्थितम् । दक्षोऽथाप उपस्पृश्य क्रुद्धः शप्तुं प्रचक्रमे ।।१७।।

अन्वयः— एवं अप्रतीपम् अवस्थितम् गिरिशम् विनिन्द्य, सः अथ क्रुद्धः दक्षः अपः उपस्पृश्य शप्तुं प्रचक्रमे ।।१७।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— इतना होने पर भी उसका प्रतिकार नहीं करने वाले तथा चुपचाप बैठे हुए शिवजी की उपर्युक्त प्रकार से निन्दा करने के पश्चात् क्रुद्ध दक्ष ने हाथ में जल लेकर शङ्करजी को शाप देना प्रारम्भ किया ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

अप्रतीपमप्रतिकूलं यथा भवत्येवमवस्थितमपि विनिन्द्य ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से दक्ष के द्वारा कहे जाने पर भी प्रतिकूल नहीं होने पर तथा चुपचाप बैठे रहने पर दक्ष ने शङ्करजी की निन्दा करके हाथ में जल लेकर उनको शाप देना प्रारम्भ कर दिया ।।१७।।

अयं तु देवयजन इन्द्रोपेन्द्रादिभिर्भवः । सह भागं न लभतां देवैर्देवगणाधमः ॥१८॥

अन्वयः— अयं तु भवः देवगणाधमः अतएव इन्द्रोपेन्द्रादिभिः देवैः सह देवयजने भागं न लभताम् ॥१८॥

अनुवाद— यह शङ्कर देव समूह में अधम देवता है । यह इन्द्र तथा उपेन्द्र (भगवान् विष्णु) आदि देवताओं के साथ यज्ञों में भाग न प्राप्त करें ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

देवानां यजनसमये देवैः सह भागं न लभतां किंतु तेभ्यः पूर्वमेव लभताम् । अग्रभोजित्वात् । यद्वा । तेषु भुक्तवत्सुलभताम्, सर्वपोषकत्वात् । तत्र हेतुः- देवगणोऽधमो यस्मात्सः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं के देव पूजन काल में देवताओं के साथ अपना भाग नहीं प्राप्त करे अपितु उन देवताओं से पहले ही अपना भाग प्राप्त करें । क्योंकि शङ्करजी सबसे पहले भोजन करने वाले हैं । अतएव ये सबों के भोजन कर लेने के पश्चात् ही प्राप्त करे क्योंकि ये सभी देवताओं का पोषण करने वाले हैं । क्योंकि ये देवगणाधम हैं, अर्थात् सभी देवता इनकी अपेक्षा अद्यम कोटि के हैं ॥१८॥

निषिध्यमानः स सदस्यमुख्यैर्दक्षो गिरित्राय विसृज्य शापम् ।
तस्माद्विनिष्क्रम्य विवृद्धमन्युर्जगाम कौरव्य निजं निकेतनम् ॥१९॥

अन्वयः— हे कौरव्य सदस्य मुख्यैः निषिध्यमानः स दक्षः गिरित्राय शापं विसृज्य विवृद्धमन्युः तस्मात् विनिष्क्रम्य निजं निकेतनम् जगाम ॥१९॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! मुख्य सदस्यों के द्वारा निषेध किए जाने पर भी क्रुद्ध दक्ष प्रजापति ने शङ्करजी को शाप दे ही दिया और उसके बाद वे उस सत्र से निकल कर अपने घर में चले गये ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

स दक्षस्तस्मात्स्थानाद्विनिष्क्रम्य जगाम । हे कौरव्य ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

हे विदुरजी ! वे दक्ष उस स्थान से निकल कर चले गये ॥१९॥

विज्ञाय शापं गिरिशानुगाग्रणीर्नन्दीश्वरो रोषकषायदूषितः ।
दक्षाय शापं विससर्ज दारुणं ये चान्वमोदंस्तदवाच्यतां द्विजाः ॥२०॥

अन्वयः— शापं विज्ञाय गिरिशानुगाग्रणीः नन्दीश्वरः रोषकषायदूषितः दक्षाय, ये च द्विजाः तदवाच्यताम् अन्वमोदन् तेभ्यः दारुणं शापं विससर्जः ॥२०॥

अनुवाद— जब शङ्करजी के अनुचरों में अग्रगण्य नन्दीश्वर ने उस शाप को जाना तो क्रोध के मारे उनकी आखें लाल हो गयीं और उन्होंने दक्ष को तथा जिन ब्राह्मणों ने शङ्करजी के प्रति उस शाप को अनुमोदन किया था उन ब्राह्मणों को भयङ्कर शाप दिया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

गिरिशस्यानुगानामग्रणीर्मुख्यः । रोष एव कषायस्तेन दूषितः, आरक्तनेत्र इत्यर्थः । तस्य गिरिशस्यावाच्यतां वचनानर्हताम्। निन्द्यतामित्यर्थः । तेभ्योऽपि शापं विससर्ज ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

शङ्करजी के अनुचरों में मुख्य नन्दीश्वर को उस शाप को जानकर उनकी आखें क्रोध के कारण लाल हो गयीं उन्होंने दक्ष को तथा शङ्करजी की निन्दा का समर्थन करने वाले ब्राह्मणों को भयङ्कर शाप प्रदान किया ।।२०।।

य एतन्मर्त्यमुद्दिश्य भगवत्यप्रतिद्रुहि । द्रुह्यत्यज्ञः पृथग्दृष्टिस्तत्त्वतो विमुखो भवेत् ।।२१।।

अन्वयः— यः एतत् मर्त्यम् उद्दिश्य अप्रतिद्रुहि भगवति द्रुह्यति, सः पृथक् दृष्टिः तत्त्वतः विमुखो भवेत् ।।२१।।

अनुवाद— इस मरण धर्माशरीर में ही श्रेष्ठता का अभिमान रखने वाला मूर्ख किसी से भी द्वेष नहीं करने वाले भगवान् शङ्कर से द्वेष करता है, उस भेद दृष्टि वाले को जीवन में कभी भी तत्त्वज्ञान न हो । वह जीवन भर अज्ञानी ही बना रहे ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

दक्षं शपति सार्धैस्त्रिभिः । एतन्मर्त्यं दक्षशरीरमुद्दिश्य श्रेष्ठं मत्वा । अप्रतिद्रुहि प्रतिद्रोहमकुर्वति पृथग्दृष्टिर्भेददर्शी तत्त्वतः परमार्थात् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

वे दक्ष को साढ़े तीन श्लोकों से शाप देते हैं । वे कहते हैं कि जो मूर्ख इस दक्ष शरीर को ही श्रेष्ठ मानकर किसी से भी द्रोह नहीं करने वाले भगवान् शङ्कर से द्रोह करता है, वह भेददृष्टि वाले को परमार्थ ज्ञान नहीं होए।।२१।।

गृहेषु कूटधर्मेषु सक्तो ग्राम्यसुखेच्छया । कर्मतन्त्रं वितनुते वेदवादविपन्नधीः ।।२२।।

अन्वयः— वेदवादविपन्नाधी यहः कर्म तन्त्रं वितनु ते ग्राम्यसुखेच्छया कूटधर्मेषु गृहेषु सक्तो भवेत् ।।२२।।

अनुवाद— चातुर्मास्य यज्ञ को करने वाले को अक्षय सुख की प्राप्ति होती है, इत्यादि वेदों के अर्थवाद वाक्यों के कारण जिसकी बुद्धि विनष्ट हो गयी है, वह केवल काम्ययज्ञों को करता है, इस तरह विवेक भ्रष्ट होकर विषय सुख को प्राप्त करने की इच्छा से कपटमय गृहस्थ धर्म में ही वह सदा आसक्त बना रहे ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

अज्ञत्वमेवाह— गृहेष्विति । कर्मतन्त्रं कर्मपरिकरम् । वेदे ये वादा अर्थवादाः 'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति' इत्यादयस्तैर्विपन्ना विनष्टा धीर्यस्य ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

अज्ञत्व का ही प्रतिपादन **गृहेषु इत्यादि** श्लोक से करते हैं । कर्मतंत्र का अर्थ है, कर्म काण्ड रूपी साधन से । वेद में अर्थवाद वाक्य हैं **'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्य याजिनः सुकृतं भवति ।'** अर्थात् चातुर्मास्य याग करने वालों को अक्षय फल की प्राप्ति होती है । उन अर्थवाद वाक्यों से जिनकी बुद्धि विनष्ट हो गयी है वे सदा गृहस्थ धर्म में ही आसक्त बने रहते हैं ।।२२।।

बुद्ध्या पराभिध्यायिन्या विस्मृतात्मगतिः पशुः ।
स्त्रीकामः सोऽस्त्वतितरां दक्षो बस्तमुखोऽचिरात् ।।२३।।

अन्वयः— पराभिध्यायिन्या बुद्ध्या विस्मृतात्मगतिः पशुः, अतितरां स्त्रीकामः सः दक्षः अचिरात् वस्तमुखः भवेत्।।२३।।

अनुवाद— जो देह आदि में ही आत्मत्व बुद्धि करता है, अपनी उस बुद्धि के द्वारा जिसने आत्मा के स्वरूप को भुला दिया है, अतएव पशु के समान बहुत अधिक स्त्री को प्राप्त करने की इच्छा वाला वह दक्ष शीघ्र ही बकरे के मुख वाला हो जाय ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

परो देहादिस्तमेवात्मत्वेनाभितो ध्यातुं शीलं यस्यास्तया बुद्ध्या विस्मृतात्मनो गतिस्तत्त्वं येन । अतः पशुतुल्यः । अतितरां स्त्रीकामोऽस्त्विति द्वितीयः शापः । बस्तस्य मुखमेव मुखं यस्येति तृतीयः शापः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

आत्मा से भिन्न देह आदि को आत्मा रूप से जिस बुद्धि के द्वारा आत्मा जानता है, उस बुद्धि से आत्मा के स्वरूप को भूल जाने के कारण पशु के समान दक्ष पशु के समान है, यह पहला शाप है, वह स्त्री को अत्यधिक चाहने वाला हो जाय, यह दूसरा शाप है तथा वह दक्ष शीघ्र ही बकरे के मुख वाला हो जाय यह तीसरा शाप हैं ॥२३॥

विद्याबुद्धिरविद्यायां कर्ममय्यामसौ जडः । संसरन्त्विह ये चामुमनु शर्वावमानिनम् ॥२४॥

अन्वयः— कर्ममय्याम् अविद्यायां विद्याबुद्धिः असौ जडः, ये च शर्वावमनिनम् अमुम् अनु इह संसरन्तु ॥२४॥

अनुवाद— कर्ममयी अविद्या को ही विद्या समझने वाला मूर्ख यह दक्ष और शङ्करजी के अपमान का समर्थम करने वाले उसके अनुयायी हैं, वे सदा संसार चक्र में ही पड़े रहें ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अयं च शापोऽस्यानुरूप एवेत्याह । विद्याबुद्धिः इयमेव तत्त्वविवधेति बुद्धिर्यस्य । अतोऽसौ जड एव । द्विजान् शपति— संसरन्त्विति सार्धद्वाभ्याम् । शर्वमवमन्यत इति तथा तममुं दक्षं ये चानुवर्तन्ते संसरन्तु जन्ममरणाद्यनुभवन्त्वित्येकः शापः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

यह जो मैंने शाप दिया है, वह इस दक्ष के अनुकूल ही है । वह कर्ममयी अविद्या को ही तत्त्वमयी विद्या समझता है; अतएव वह जड़ ही है । ब्राह्मणों को शाप देते हुए नन्दीश्वर ने ढाई श्लोकों में कहा । शङ्करजी का अपमान करने वाले इस दक्ष का जो लोग अनुवर्तन करते हैं, वे लोग इस संसार चक्र में ही पड़े रहकर सदा जन्ममरण आदि का अनुभव करते रहें इस तरह से एक शाप दिया ॥२४॥

गिरः श्रुतायाः पुष्पिण्या मधुगन्धेन भूरिणा । मथ्ना चोन्मथितात्मानः संमुह्यन्तु हरद्विषः ॥२५॥

अन्वयः— श्रुतायाः पुष्पिण्या गिरः भूरिणा मधुगन्धेण मथ्ना च उन्मथितात्मानः हरद्विषः मुह्यन्तु ॥२५॥

अनुवाद— वेदवाणी रूपी लता फलश्रुति रूपी पुष्पों से सुशोभित है, उसके कर्मफल रूपी मनमोहक गन्ध से जिनका चित्त क्षुब्ध हो गया वे शङ्करजी से द्वेष करने वाले कर्मों के ही जाल में फँसे रहें ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

श्रुताया वेदरूपायाः पुष्पिण्याः पुष्पाणीवार्थवादा मनःक्षोभकत्वात् । अर्थवादबहुलाया इत्यर्थः । मधुगन्धतुल्येन प्ररोचनेन मथ्ना मनः क्षोभकेणोन्मथित आत्मा येषां ते संमुह्यन्तु कर्मस्वासक्ता भवन्त्विति द्वितीयः शापः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

वेद स्वरूपिणी लता की फलश्रुति रूप पुष्प के समान अर्थवाद वाक्यों के मन को क्षुब्ध बना देने वाले मनमोहक गन्ध के समान प्ररोचना रूप रूपी मथानी से जिनका मन क्षुब्ध हो गया हैं वे सदा कर्मों में ही आसक्त बने रहें यह दूसरा शाप हैं ॥२५॥

सर्वभक्षा द्विजा वृत्त्यै धृतविद्यातपोव्रताः । वित्तदेहेन्द्रियारामा याचका विचरन्त्विह ॥२६॥

अन्वयः— सर्वभक्षाः द्विजा, वृत्यै धृतविद्यातपोव्रताः इन्द्रियारामाः याचका इह विचरन्तु ॥२६॥

अनुवाद— ब्राह्मण सर्वभक्षी हो जायँ, वे पेट पालने के ही लिए विद्या, तप और व्रत का पालन करें, वित्त, देह और इन्द्रियों के सुख के लिए याचना करते हुए इस लोक में विचरण करें ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

सर्वभक्षा भक्ष्याभक्ष्यविचारशून्याः । वृत्त्यै देहादिपोषणाय धृतानि विद्यातपोव्रतानि यैः । वित्तादिष्वेवारामो रतिर्येषां ते । याचकाः सन्तो विचरन्त्विति च शापचतुष्टयम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण गण भक्ष्याभक्ष्य के विचार से रहित हो जायँ अपने शरीर का पालन करने के लिए ही वे विद्या, तपस्या और व्रत को धारण करें । उन लोगों का धन, देह और इन्द्रियों में ही प्रेम बना रहे और वे भीख माँगते हुए पृथिवी पर विचरण करें । इस तरह से नन्दीश्वर ने ब्राह्मणों को चार शाप दिया ।।२६।।

तस्यैवं ददतः शापं श्रुत्वा द्विजकुलाय वै । भृगुः प्रत्यसृजच्छापं ब्रह्मदण्डं दुरत्ययम् ।।२७।।

अन्वयः— एवं द्विजकुलाय शापं ददतः तस्य श्रुत्वा भृगुः वै दुरत्ययम् ब्रह्मदण्डं शापं अत्यसृजत् ।।२७।।

अनुवाद— इस तरह से ब्राह्मण वंश के लिए शाप देने वाले नन्दीश्वर के शाप को सुनकर भृगु महर्षि ने ब्रह्मदण्ड के समान भयङ्कर शाप दिये ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

प्रत्यसृजत् प्रत्यदात् । शापरूपं ब्रह्मदण्डम् ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

जब महर्षि भृगु ब्राह्मण वंश के लिए नन्दीश्वर के द्वारा दिए जाने वाले शाप को सुने तो वे भी उसके बदले में ब्रह्मदण्ड के समान भयङ्कर शाप दिये ।।२७।।

भवव्रतधरा ये च ये च तान्समनुव्रताः । पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ।।२८।।

अन्वयः— ये च भवव्रतधराः ये च तान् समनुव्रताः ते सत्शास्त्र परिपन्थिनः पाखण्डिनः भवन्तु ।।२८।।

अनुवाद— जो लोग शिवजी के भक्त हैं, तथा जो लोग शिव भक्तों के भक्त हैं वे सत् शास्त्र विरोधी तथा पाखण्डी हो जायँ ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

सच्छास्त्रस्य परिपन्थिनः प्रतिकूलाः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

सत् शास्त्र के विरोधी हो जायँ ।।२८।।

नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः । विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम् ।।२९।।

अन्वयः— शिव दीक्षायां नष्टशौचाः मूढधियः जटाभस्मास्थिधारिणः विशन्तु यत्र सुरासवं दैवम् ।।२९।।

अनुवाद— शैव सम्प्रदाय की दीक्षा मे अपवित्र रहने वाले अज्ञानी, जटा, भस्म तथा हड्डी धारण करने वाले, ही प्रवेश करें । जिस सम्प्रदाय में सुरा और आसव है ही देवता के समान समादरणीय हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

सुरा गौडी पैष्टी माध्वी च। आसवस्तालादिसंभवं मद्यम्। द्वन्द्वैक्यात्षण्ढत्वम्। तद्यत्र दैवं पूज्यं देवतावदादरणीयमिति वा।।२९।।

भाव प्रकाशिका

सुरा तीन प्रकार की होती है गौडी, पौष्टी और माध्वी । ताड़ आदि से रस के रूप में उत्पन्न होने वाला आसव कहलाता है । **सुरासवम्** में समाहार द्वन्द्व के कारण नपुंसक लिङ्ग है । सुरा तथा आसव ही देवता के समान पूज्य अथवा आदरणीय है शैव दीक्षा में ।।२९।।

ब्रह्म च ब्राह्मणांश्चैव यद्यूयं परिनिन्दथ । सेतुं विधारणं पुंसामतः पाखण्डमाश्रिताः ॥३०॥

अन्वयः— यद् यूयं ब्रह्म च ब्राह्मणांश्च पुंसां । सेतुं विधारणम् परिनिन्दथ अतः पाखण्डमाश्रिताः ॥३०॥

अनुवाद— तुम लोग धर्ममर्यादा के संस्थापक और वर्णाश्रमियों के रक्षक वेद और ब्राह्मणों की निन्दा करते हो इसीसे स्पष्ट है कि तुमलोग पाखण्ड को अपना लिए हो ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्म वेदम् । कथंभूतम् । सेतुं मर्यादारूपम् । तदेवाह । पुंसां वर्णाश्रमाचारवतां विधारणं धारकम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्म शब्द यहाँ वेद का बोधक है । प्रश्न उठता है कैसा वेद तो इसका उत्तर है जो मर्यादा स्वरूप है । विधारण का अर्थ धारक है ॥३०॥

एष एव हि लोकानां शिवः पन्थाः सनातनः । यं पूर्वे चानुसंतस्थुर्यत्प्रमाणं जनार्दनः ॥३१॥

अन्वयः— एष एव लोकानां शिवः पन्थाः सनातनः यं च पूर्वे अनुसंतस्थुः यत् प्रमाणं जनार्दनः ॥३१॥

अनुवाद— यह वेद ही लोगों के लिए कल्याणकारी मार्ग है और यह सनातन मार्ग है । पूर्व पूर्व ऋषियों ने इसी को अपनाया और इसके मूल भगवान् जनार्दन हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

सेतुत्वं प्रपञ्चयति द्वाभ्याम् । एष वेदलक्षण एव शिवः पन्थाः । यं पूर्वे ऋषयोऽनुसंतस्थुराश्रितवन्तः । यद्यस्मिन् जनार्दनः प्रमाणं मूलम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

वेद के सेतुत्व का विस्तार करते हुए कहते हैं— यह वेद ही लोगों के लिए कल्याणकारी मार्ग है । उसी को प्राचीन ऋषियों ने अपनाया क्योंकि वेदों के मूल भगवान् नारायण हैं ॥३१॥

तद्ब्रह्म परमं शुद्धं सतां वर्त्म सनातनम् । विगर्ह्य यात पाषण्डं दैवं वो यत्र भूतराट् ॥३२॥

अन्वयः— ब्रह्म परमं शुद्धं सतां सनातनं वर्त्म तद् विगर्ह्य पाषण्डं यात यत्र वे दैवं भूतराट् ॥३२॥

अनुवाद— वेद परम पवित्र हैं, वे सज्जनों के सनातन मार्ग हैं, उसकी निन्दा करने वाले तुम लोग पाखण्डी हो जाओ जिसमें भूतों के स्वामी तुम्हारे आराध्यदेव का निवास है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

भूतराट् भूतानां तामसानां पतिः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

भूतराट् शब्द का अर्थ है तामसी भूतों के स्वामी ॥३२॥

मैत्रेय उवाच

तस्यैवं वदतः शापं भृगोः स भगवान् भवः । निश्चक्राम ततः किंचिद्विमना इव सानुगः ॥३३॥

अन्वयः— तस्य एवं शापं वदतः भृगोः स भगवान् भवः किञ्चिद् विमना इव सानुगः ततः निश्चक्राम ॥३३॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— जब महर्षि इस प्रकार से शाप दे रहे थे उस समय भगवान् शिव कुछ उदास से होकर अपने अनुचरों के साथ वहाँ से निकल गये ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अन्योन्यशापेनोभयोर्नाशाद्विमना इवेति । तथापि भगवदनुगृहीतानां नाशो न स्यादिति भावः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

परस्पर में एक दूसरे को शाप दिये जाने के कारण दोनों का नाश होने से कुछ उदास से होकर शिवजी वहाँ से निकल गये । किन्तु जिनपर श्रीभगवान् की कृपा है उनका नाश नहीं होता है ॥३३॥

तेऽपि विश्वसृजः सत्रं सहस्रपरिवत्सरान् । संविधाय महेष्वास यत्रेज्य ऋषभो हरिः ॥३४॥
आप्लुत्यावभृथं यत्र गङ्गा यमुनयान्विता । विरजेनात्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ययुस्ततः ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दक्षशापो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अन्वयः— हे महेष्वास ! तेऽपि विश्वसृजः सहस्रपरिवत्सरान् सत्रं यत्र इज्यः ऋषभः हरिः संविधाय यत्र गङ्गा यमुनया अन्विता तत्र अवभृथं अवप्लुत्य विरजेन आत्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ततः ययुः ॥३४-३५॥

अनुवाद— हे विशाल धनुष धारण करने वाले विदुर ! वे प्रजापतिगण भी जिसमें श्रीहरि ही पूज्य थे उस एक हजार वर्षों के सत्र को विधिपूर्वक सम्पन्न करके जहाँ गङ्गाजी यमुनाजी से मिलती हैं उस प्रयागतीर्थ में अवभृथ स्नान करके प्रसन्न मन से अपने-अपने स्थानों पर चले गये ।३४-३५॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के दक्षशाप वर्णन नामक दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

भावार्थ दीपिका

ऋषभः सर्वश्रेष्ठो हरिर्यत्र इज्यः पूज्यस्तत्सत्रं सम्यग्विधाय । हे महेष्वास विदुर । यत्र प्रयागेऽन्विता तत्रावभृथस्नानं कृत्वा ततः स्थानाद्ययुः ॥३४-३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थे स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

ऋषभ शब्द श्रेष्ठ का वाचक है । उस सत्र में भी श्रेष्ठ श्रीहरि ही पूज्य थे । उस सत्य को अच्छी तरह से पूरा करके हे विदुर जहाँ प्रयाग में गङ्गाजी यमुनाजी से मिली हैं वहीं पर अवभृथ स्नान करके सभी लोग उस स्थान से चले गये ॥३४-३५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के दूसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।२।।

◆

तीसरा अध्याय

सती का दक्ष के यज्ञ में जाने के लिए आग्रह

मैत्रेय उवाच

सदा विद्विषतोरेवं कालो वै ध्रियमाणयोः । जामातुः श्वशुरस्यापि सुमहानतिचक्रमे ॥१॥

अन्वयः— एवं जामातुः श्वशुरस्यापि ध्रियमाणयोः एवं विद्विषतोः सुमहान् काल अतिचक्रमे ॥१॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से श्वशुर और दामाद में परस्पर में वैर को धारण किए हुए और एक दूसरे से विद्वेष करते हुए बहुत अधिक समय बीत गया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तृतीये तु सती तातयज्ञोत्सवदिदृक्षया । गमिष्यन्ती महेशेन वारिता नीतिहेतुभिः ॥१॥ ध्रियमाणयोरवतिष्ठमानयोः । 'धृङ् अवस्थाने' इत्यस्मात् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तीसरे अध्याय में अपने पिता के यज्ञोत्सव को देखने की इच्छा से सती देवी जाना चाही किन्तु शङ्करजी ने नीतिपूर्ण हेतुओं के द्वारा उनको रोका ॥१॥ **ध्रियमाणयोः** पद का अर्थ है वेद को धारण किए रहने वाले है। धृङ् अवस्थाने धातु से यह रूप व्युत्पन्न है ॥१॥

यदाभिषिक्तो दक्षस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना । प्रजापतीनां सर्वेषामाधिपत्ये स्मयोऽभवत् ॥२॥

अन्वयः— यदा तु परमेष्ठिना ब्रह्मणा दक्षः सर्वेषां प्रजापतीनां आधिपत्ये अभिषिक्तः तदा स्मयः अभवत् ॥२॥

अनुवाद— जब परमेष्ठी ब्रह्माजी ने दक्षप्रजापति को सभी प्रजापतियों के आध्यक्ष्य पद पर अभिषिक्त किया उस समय दक्ष प्रजापति को गर्व हो गया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

यद्यपि रुद्रविहीनो यज्ञो नास्त्येव, तथापि दक्षस्य रुद्रपरित्यागो द्वेषाद्गर्वाच्च । तत्र द्वेषे हेतुरुक्तः । गर्वे हेतुमाह । यदा तु प्रजापतीनामाधिपत्येऽभिषिक्तस्तदा तस्य स्मयो गर्वोऽभवत् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि रुद्र के बिना कोई भी यज्ञ नहीं होता है फिर भी दक्ष ने रुद्र का परित्याग दो कारणों से किया द्वेष के कारण और गर्व के कारण । द्वेष का तो कारण पहले बतलाया जा चुका है । इस श्लोक में गर्व के हेतु को बतलाते हुए कहा गया है कि जब दक्ष प्रजापतियों के अधिपति के पद पर अभिषिक्त हुए तो उनको गर्व हो गया॥२॥

इष्ट्वा स वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठानभिभूय च । बृहस्पतिसवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम् ॥३॥

अन्वयः— सः वाजपेयेन इष्ट्वा ब्रह्मिष्ठान् अभिभूय च बृहस्पतिसवं नाम क्रतूत्तमम् समारेभे ॥३॥

अनुवाद— दक्ष ने वाजपेय नाम का यज्ञ करके तथा शङ्करजी आदि ब्रह्मनिष्ठों को यज्ञ भाग न देकर उनका तिरस्कार भी किया, उसके पश्चात् बृहस्पति सव नामक सर्वोत्तम महायज्ञ प्रारम्भ किया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

गर्वादेव ब्रह्मिष्ठान्सेश्वरानभिभूय तिरस्कृत्य । 'वाजपेयेनेष्ट्वा बृहस्पतिसवेन यजेत' इति श्रुतेर्वाजपेयेनेष्ट्वा समारेभे॥३॥

भाव प्रकाशिका

वाजपेय याग में गर्व के कारण ही शङ्करजी इत्यादि ब्रह्मनिष्ठों का तिरस्कार करके **'वाजपेयेनेष्ट्वा बृहस्पति सवेन यजेत'** इस श्रुति के अनुसार वाजपेय याग करने के पश्चात् बृहस्पतिसव के द्वारा यजन करना चाहिए । इस श्रुति के अनुसार दक्ष प्रजापति ने बृहस्पतिसवयाग करना प्रारम्भ किया ।।३।।

तस्मिन्ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षिपितृदेवताः । आसन्कृतस्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यश्च सभर्तृकाः ।।४।।

अन्वयः— तस्मिन् सर्वे ब्रह्मर्षयः, देवर्षिपितृदेवताः सभर्तृकाः तत्पत्न्यः च कृतस्वस्त्ययनाः आसन् ।।४।।

अनुवाद— उस यज्ञोत्सव में सभी ब्रह्मर्षि देवता, देवर्षि और पितर, आदि अपनी-अपनी पत्नियों के साथ आये, सबों ने वहाँ पर मिलकर माङ्गलिक कार्य किया और दक्ष ने उन सबों का सम्मान किया ।।४।।

भावार्थ दीपिका

कृतस्वस्त्ययनाः कृतमङ्गलाः । सभर्तृका इति दक्षिणादिभिः प्रथममर्हितानामपि पत्न्यर्हणे पुनरर्हणमुक्तम् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

कृतस्वस्त्ययनाः कहने का अर्थ है कि उन सबों ने वहाँ पर मङ्गलकार्य किया । सभर्तृकाः कहने का अभिप्राय है कि पहले दक्षिणा आदि के द्वारा जिनकी पूजा कर दी गयी थी फिर भी पत्नी की पूजा के समय वे पुनः पूजा के योग्य हो गये ।।४।।

तदुपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पताम् । सती दाक्षायणी देवी पितुर्यज्ञमहोत्सवम् ।।५।।
व्रजन्तीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेववरस्त्रियः । विमानयानाः सप्रेष्ठा निष्ककण्ठीः सुवाससः ।।६।।
दृष्ट्वा स्वनिलयाभ्याशे लोलाक्षीर्मृष्टकुण्डलाः । पतिं भूतपतिं देवमौत्सुक्यादभ्यभाषत ।।७।।

अन्वयः— नभसि प्रजल्पतां खेचराणा प्रजल्पतां दाक्षयणी सती देवी पितुः यज्ञ महोत्सवम् उपश्रुत्य सर्वतो दिग्भ्यः विमानयानाः सप्रेष्ठाः निष्ककण्ठीः सुवाससः स्वनिलयाभ्याशे, लोलाक्षीः मृगलोचनाः उपदेववरस्त्रिः दृष्ट्वा, औत्सुक्याद्, भूतपतिं पतिंदेवं अभ्यभाषत ।।५-७।।

अनुवाद— उस समय आकाश में आकाशचारियों की अपने पिता के यज्ञमहोत्सव सम्बन्धी बातों को सुनकर तथा अपने गृह के सन्निकट से सभी दिशाओं से अपने पतियों के साथ विमान पर बैठकर गले में निष्क धारण की हुयी एवं सुन्दर वस्त्र धारण की हुयी श्रेष्ठ उपदेवों की स्त्रियों जिनके नेत्र चञ्चल थे और उनके कानों के कुण्डल चमक रहे थे उन सबों को देखकर दक्षपुत्री सती देवी ने समस्त भूतों के स्वामी अपने पतिदेव शङ्करजी से उत्सुकता पूर्वक कहा ।।५-७।।

भावार्थ दीपिका

तत्तदा खेचराणां प्रजल्पतां सतां पितृयज्ञमहोत्सवं श्रुत्वा तत्र व्रजन्तीरुपदेवानां गन्धर्वादीनां वरस्त्रियश्च स्वस्य निलयस्याभ्याशे समीपे दृष्ट्वौत्सुक्यात्पतिमभ्यभाषतेति त्रयाणामन्वयः । कथंभूताः स्त्रियो दृष्ट्वा । विमानानि यानानि यासां ताः । प्रेष्ठैः सहिताः। निष्काणि पदकानि कण्ठेषु यासाम् । शोभमानानि वासांसि यासाम् । लोलानि चञ्चलान्यक्षीणि यासाम् । मृष्टान्युज्ज्वलानि कुण्डलानि यासां ताः ।।५-७।।

भाव प्रकाशिका

उस समय आकाश में चलने वाले तथा परस्पर में बातें करने वाले देवताओं से अपने पिता दक्ष के यज्ञमहोत्सव को सुनकर और अपने निवास स्थान के सन्निकट से गन्धर्वों आदि की श्रेष्ठ स्त्रियों को देखकर, सती देवी ने अपने पति से कहा इस तरह से तीनों श्लोकों का एक साथ अन्वय है । प्रश्न है, कि वे श्रेष्ठ स्त्रियाँ कैसी थीं तो इस पर कहते

हैं सब विमान की सवारी से जा रही थीं तथा अपने पतियों के साथ थीं । वे अपने गले में निष्क धारण की थीं तथा उनके वस्त्र सुन्दर थे एवं कानों के कुण्डल चमक रहे थे तथा नेत्र चञ्चल थे।।५-७।।

सत्युवाच

प्रजापतेस्ते श्वशुरस्य सांप्रतं निर्यापितो यज्ञमहोत्सवः किल ।
वयं च तत्राभिसराम वाम ते यद्यर्थिताऽमी विबुधा व्रजन्ति हि ।।८।।

अन्वयः— हे वाम ! ते प्रजापतेः श्वशुरस्य किल यज्ञमहोत्सवः निर्यापितः अमी हि विबुधाः व्रजन्ति । यदि ते अर्थिता वयं च तत्र अभिसराम ।।८।।

सतीदेवी ने कहा

अनुवाद— हे वामदेव शिवजी ! आपके प्रजापति श्वशुर के यहाँ यज्ञ महोत्सव हो रहा है, ये सभी देवता वहीं जा रहे हैं । यदि आपकी इच्छा हो तो हमलोग भी वहाँ चलें ।।८।।

भावार्थ दीपिका

निर्यापितः प्रवर्तितः । हे वाम शिव, ते यद्यर्थिता इच्छा तर्हि वयं च तत्राभिसराम गच्छामः । न चाद्यापि यागो निवृत्तः। यतोऽमी विबुधा व्रजन्ति ।।८।।

भाव प्रकाशिका

हे वामदेव शिवजी ! आपके श्वशुर प्रजापति दक्ष के यहाँ ऋषियों ने यज्ञ महोत्सव प्रारम्भ कर दिया है । यदि आपकी इच्छा हो तो हमलोग भी वहाँ चलें । अभी वह यज्ञ समाप्त नहीं हुआ हैं, क्योंकि ये सभी देवता उस यज्ञ में ही जा रहे हैं ।।८।।

तस्मिन्भगिन्यो मम भर्तृभिः स्वकैर्ध्रुवं गमिष्यन्ति सुहृद्दिदृक्षवः ।
अहं च तस्मिन्भवताभिकामये सहोपनीतं परिबर्हमर्हितुम् ।।९।।

अन्वयः— तस्मिन् मम सुहृद्दिदृक्षवः ध्रुवं स्वकैः भर्तृभिः गमिष्यन्ति अहं च तस्मिन् सह उपनीतं परिवर्हं अर्हितुम् कामये ।।९।।

अनुवाद— उस यज्ञ में अपने सुहृदों को देखने की इच्छा वाली मेरी बहनें भी अपने पतियों के साथ अवश्य आयेंगी । मैं भी चाहती हूँ कि आपके साथ वहाँ जाकर अपने माता-पिता से प्रदत्त उपहार को प्राप्त करूँ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

औत्सुक्यं प्रकटयन्त्याह-तस्मिन्निति षड्भिः । पितृभ्यामुपनीतं दत्तं परिबर्हमलंकारादिद्रव्यं भवता सहार्हितुं स्वीकर्तुमभिकामये। अर्हितमिति पाठे तत्कृतं परिबर्हमिच्छामीति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

अपनी उत्सुकता को ही प्रकट करती हुयी सती देवी ने **तस्मिन्० इत्यादि** छह श्लोकों से कहा— मैं भी अपने माता-पिता से प्रदत्त अलङ्कार आदि द्रव्यों को आपके साथ प्राप्त करना चाहती हूँ । जहाँ पर **अर्हितम्** पाठ हैं वहाँ पर उनके द्वारा प्रदत्त दहेज को प्राप्त करना चाहती हूँ । यह अर्थ होगा ।।९।।

तत्र स्वसॄर्मे ननु भर्तृसंमिता मातृष्वसॄः क्लिन्नधियं च मातरम् ।
द्रक्ष्ये चिरोत्कण्ठमना महर्षिभिरुन्नीयमानं च मृडाध्वरध्वजम् ।।१०।।

अन्वयः— हे मृड तत्र ननु मे भर्तृसंमिता स्वसृः, मातृस्वसृः, क्लिनधियं मातरम् च चिरोत्कण्ठमना द्रक्ष्ये महर्षिभिः उन्नीयमानं अध्वरध्वजं च द्रक्ष्ये ।।१०।।

अनुवाद— हे शिव ! वहाँ अपने पतियों के अनुकूल मेरी बहनें, मेरी मौसी, स्नेह से आर्द्र चित्त वाली अपनी माता को भी मैं दीर्घकाल से उत्कण्ठित मन वाली देखूंगी और उस श्रेष्ठ यज्ञ को भी देखूंगी ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

स्वसृर्भगिनीः । भर्तृभिः संमिताः सदृशीः । क्लिन्नधियं स्नेहार्द्रचित्ताम् । चिरमुत्कण्ठमुत्सुकं मनो यस्याः द्रक्ष्यामि । हे मृड, उन्नीयमानं प्रवर्त्यमानमध्वरेषु ध्वजमिव दृश्यं श्रेष्ठमध्वरम् । यद्वा । उत्क्षिप्यमाणं यज्ञे केतुं यूपं वा ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में सती देवी कह रही हैं कि वहाँ मुझे सदृश पतियों के साथ अपनी बहनों को देखने को मिलेगा। जो मेरी मौसियाँ आयेंगी उन सबों को मैं देखूंगी । दीर्घकाल से मेरा मन उत्कण्ठित है, ऐसी मैं स्नेह के कारण आर्द्रचित्त वाली अपनी माँ को देखूंगी इसके साथ ही यह जो यज्ञों में सबसे श्रेष्ठ यज्ञ है जिसको महर्षि गण कर रहे हैं उसको मैं देखूंगी अथवा यज्ञ की पताका या स्तम्भ को मैं देखूंगी ।।१०।।

त्वय्येतदाश्चर्यमजात्ममायया विनिर्मितं भाति गुणत्रयात्मकम् ।
तथाप्यहं योषिदतत्त्वविच्च ते दीना दिदृक्षे भव मे भवक्षितिम् ।।११।।

अन्वयः— हे अज ! एतद् आश्चर्यमयं गुणत्रयात्मकं विश्वम् आत्ममायया विनिर्मितम् त्वयिभाति । तथापि हे भव अहं योषित ते अतत्त्ववित् दीना च मे भवक्षितिं दिदृक्षे ।।११।।

अनुवाद— हे अजन्मा प्रभो ! यह आश्चर्यमय त्रिगुणात्मक सम्पूर्ण जगत् आपकी माया से विनिर्मित होने के कारण आप में ही प्रतीत हो रहा है । अतएव आपको यह आश्चर्यमय नहीं प्रतीत होता है । किन्तु मैं तो स्त्री हूँ आपके तत्त्व को नहीं जानती हूँ । अतएव मैं अपनी जन्मभूमि को देखना चाहती हूँ ।।११।।

भावार्थ दीपिका

अहो किं तत्राश्चर्यं येन तवैतदौत्सुक्यमिति चेदत आह-त्वयीति । हे अज, एतद्विश्वमाश्चर्यरूपं त्वय्येव त्वन्मायया रचितं विभाति । अतो यद्यपि तव नाश्चर्यबुद्धिः, तथाप्यहं योषिदुत्सुकस्वभावा तव तत्त्वं न जानामि । अतो दीना कृपणा सती हे भव, मे भवक्षितिं जन्मभूमिं दिदृक्षे द्रष्टुमिच्छामि ।।११।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि वहाँ पर कौन सा आश्चर्य है जिससे कि तुम्हारी इतनी उत्सुकता है ? तो इस पर सती देवी कहती हैं— हे अजन्मा शिवजी ! यह सम्पूर्ण विश्व आश्चर्यमय है । यह आपकी ही माया के द्वारा रचित होने के कारण आप में ही प्रतीत हो रहा है । इसीलिए यह आपको आश्चर्य रूप से नहीं प्रतीत होता है । फिर भी मैं तो स्त्री हूँ । उत्सुक होना मेरा स्वभाव है । मैं आपके तत्त्व को नहीं जानती हूँ । अतएव मैं दीन हूँ । हे शिव! मैं अपनी जन्मभूमि का दर्शन करना चाहती हूँ ।।११।।

पश्य प्रयान्तीरभवान्ययोषितोऽप्यलंकृताः कान्तसखा वरूथशः ।
यासां व्रजद्भिः शितिकण्ठ मण्डितं नभो विमानैः कलहंसपाण्डुभिः ।।१२।।

अन्वयः— हे अभव ! कान्तसखा, वरूथशः अन्ययेषितः अपि अलंकृताः प्रयान्तीः पश्य । हे शितिकण्ठ यासां व्रजद्भिः कलहंस पाण्डुभिः विमानैः नभ मण्डितम् ।।१२।।

अनुवाद— हे अजन्मा नीलकण्ठ जिनका दक्ष से कोई भी सम्बन्ध नहीं हैं । ऐसी इन बहुत सी स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ अलंकृत होकर जा रही हैं । उन सबों के राजहंस के समान श्वेत विमानों से आकाश अलंकृत सा दिखायी दे रहा है । इसे आप देखें ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

दिदृक्षामेव कैमुत्यन्यायेन व्यनक्ति-पश्येति द्वाभ्याम् । हे अभवेति । सुहृद्वियोगदुःखं त्वया नास्वादितमिति भावः । अन्या योषितः संबन्धरहिता अपि प्रयान्तीः पश्य । कान्तसखा भर्तृसहिताः । वरूथशः सङ्घशः । कथंभूताः । यासां विमानैर्नभो मण्डितं ताः । हे शितिकण्ठ नीलकण्ठेति परानुग्रहाय त्वया विषमपि भक्षितमिति सूचयति ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

प्रक्रान्त यज्ञ को देखने की अपनी इच्छा को ही सूचित करती हुयी सती देवी **पश्य० इत्यादि** दो श्लोकों से कहती हैं । हे अभव ! आप अपने सुहृदों के वियोग जन्य दु:ख नहीं सहे हैं अतएव आप अभव हैं । देखिये जिन स्त्रियों का दक्ष से कोई भी सम्बन्ध नहीं है वे भी स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ उस यज्ञ को देखने के लिए झूण्ड के झूण्ड जा रही हैं । उन सबों के विमानों से आकाश भी अलंकृत हो गया है । आप नील कण्ठ हैं, अर्थात् दूसरों पर कृपा करने के लिए आपने विष को भी खा गये ।।१२।।

कथं सुतायाः पितृगेहकौतुकं निशम्य देहः सुरवर्य नेङ्गते ।
अनाहुता अप्यभियन्ति सौहृदं भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम् ।।१३।।

अन्वयः— हे सुखर्य ! पितृगृह कौतुकं निशम्य सुतायाः देहः कथं न इङ्गते सौहृदं भर्तुः गुरो; देहकृतश्च केतनम् अनाहुआ अपि अभियन्ति ।।१३।।

अनुवाद— अतएव हे देव श्रेष्ठ: पिता के घर में होने वाले उत्सव को सुनकर पुत्री का शरीर उसको देखने के लिए क्यों नहीं छटपटायेगा । सुहृदों, पति, गुरु तथा पिता के घर तो बिना बुलाये भी लोग जाते हैं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

तदा हे सुरश्रेष्ठ, पितृगेहोत्सवं निशम्य सुताया देहः कथं नेङ्गते द्रष्टुं न प्रचलति । तथाप्यनाहुताः सन्तः कथं गच्छामस्तत्राह। सौहृदं सुहृत्संबन्धि केतनं गृहं तथा भर्त्रादीनां च गृहमनाहूतां अप्यभियन्ति सन्तः । ह्रस्वत्वमार्षम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

हे देवताओं में श्रेष्ठ ! पिता के घर में होने वाले उत्सव को सुनकर उसको देखने के लिए पुत्री का शरीर क्यों नही छटपटायेगा । यदि आप यह कहें कि हमलोगों को तो किसी ने बुलाया ही नहीं है अतएव हम वहाँ कैसे चलें । तो इसके उत्तर में सती देवी ने कहा अपने मित्रों के घर में पति, गुरु तथा पिता के घर में तो सज्जन पुरुष बिना बुलाये भी जाते हैं । अभियन्ति के यन्ति में आर्ष प्रयोग के कारण ह्रस्व हैं ।।१३।।

तन्मे प्रसीदेदममर्त्य वाञ्छित कर्तुं भवान्कारुणिके बतार्हति ।
त्वयात्मनोऽर्धेऽहमदभ्रचक्षुषा निरूपिता माऽनुगृहाण याचितः ।।१४।।

अन्वयः— हे अमर्त्य प्रसीद तन्मे वाञ्छितं कर्तुं अर्हति । भवान् बत कारुणिकः अदभ्रचक्षुषा त्वया आत्मनः अर्धे अहं निरूपिता अतः याचितः मा अनुगृहाण ।।१४।।

अनुवाद— हे देव ! आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइये, आप मेरी इस इच्छा को अवश्य पूरा करें । निश्चित रूप से आप करुणा करने वाले हैं, इसीलिए परमज्ञानी होने पर भी आपने मुझे अपने आधे शरीर में स्थान दिया है। आप मेरी इस याचना को स्वीकार करके मुझे अनुगृहीत करें ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

हे अमर्त्य, तत्तस्मात्प्रसीद । इदं मे वाञ्छितं कर्तुं भवानर्हति । कारुणिकत्वमेवाह । अदभ्रचक्षुषाऽनल्पज्ञानेनापि त्वयात्मनो देहस्यार्धेऽहं निरूपिता धृता । यतोऽर्धनारीश्वर इति ख्यातोऽसि, अतो मामनुग्रहाण । याचितः सन् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

हे देव ! आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइये । आप मेरी इस अभिलाषा को पूर्ण करें । आप कारुणिक हैं । शङ्करजी की कारुणिकता को ही बतलाती हुयी सती देवी कहती हैं आप महाज्ञानी हैं फिर भी आपने मुझे अपने आधे शरीर में स्थान प्रदान किया है । इसीलिए तो आप अर्धनारीश्वर कहलाते हैं । अतएव आप मुझे अनुगृहीत करें । यह मेरी आपसे प्रार्थना है ।।१४।।

ऋषिरुवाच

एवं गिरित्रः प्रिययाऽभिभाषितः प्रत्यभ्यधत्त प्रहसन्सुहृत्प्रियः ।
संस्मारितो मर्मभिदः कुवागिषून्यानाह को विश्वसृजां समक्षतः ।।१५।।

अन्वयः— एवं प्रियया अभिभाषितः सुहृत्प्रियः गिरित्रः मर्मभिदः कुवागिषून् संस्मारितः यान् विश्व सृजांसमक्षतः कः आह प्रहसन् अभ्यधत्त ।।१५।।

ऋषि ने कहा

अनुवाद— अपनी प्रियतमा सती के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर अपने सुहृदों के प्रिय शङ्करजी को उन मर्मभेदी वाणी रूपी बाणों की याद आ गयी जिन बातों को दक्ष प्रजापति ने सभी प्रजापतियों के सामने कहा था, और वे हँसते हुए कहने लगे ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अभिभाषितो याचितः । को दक्षो यानाह । मर्म भिन्दन्ति ये तान्कुवागिषून्दुरुक्तिबाणान्संस्मारितः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अभिभावितः पद का अर्थ याचना किए हुए । सती देवी ने जो शङ्करजी से उपर्युक्त प्रार्थना की थी उसको सुनकर शङ्करजी को उन मर्मभेदी बाणों के समान तीखी बातों की याद आ गयी जिन बातों को ब्रह्म सभा में दक्ष ने सभी प्रजापतियों के सामने कहा था । उसके पश्चात् वे सती देवी से हँसकर कहने लगे ।।१५।।

श्रीभगवानुवाच

त्वयोदितं शोभनमेव शोभने अनाहुता अप्यभियन्ति बन्धुषु ।
ते यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो बलीयसाऽनात्म्यमदेन मन्युना ।।१६।।

अन्वयः— हे शोभने त्वया शोभनमेव उदितं यत् बन्धुष अनाहुता अपि अभियन्ति ते यदि बलीयसा अनात्म्यमदेन मन्युना अनुत्पादितदोषदृष्टयः ।।१५।।

श्रीभगवान् शङ्कर ने कहा

अनुवाद— हे सुन्दरि ! तुमने यह जो कहा है कि अपने बान्धवों के घर तो लोग बिना बुलाये भी जाते हैं यह तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है, किन्तु ऐसा तब ही किया जा सकता है जब कि वे बान्धव अपने प्रबल देहाभिमान के कारण उत्पन्न मद और क्रोध के कारण द्वेष रूपी दोष वाली दृष्टि से युक्त न हों ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

नाहुता अपीति त्वया यदुदितमुक्तं तच्छोभनमेव किंत्वनात्म्यं देहादावहंकारस्तत्कृतेन मदेन मन्युना च ते बन्धवो यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो भवन्ति तर्हि । न उत्पादिते आरोपिते दोषे दृष्टिर्येषां ते ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

तुमने यह जो कहा है कि बिना बुलाये भी बान्धवों के घर जाना चाहिए, यह बहुत सुन्दर बात है, लेकिन यह तब ही उचित होता है, जबकि देहादि में आत्मा की बुद्धि होने से उत्पन्न अहङ्कार के कारण बान्धवों में दोष दृष्टि न हो तब ही । उनुत्पादित दोष दृष्टि का विग्रह है **न उत्पादिते दोषे दृष्टिर्येष ते** ॥१६॥

विद्यातपोवित्तवपुर्वय: कुलै: सतां गुणै: षड्भिरसत्तमेतरै: ।
स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृश: स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ॥१७॥

अन्वय:— विद्यातपोवित्तवपुर्वय: कुलै: सतां षड्भि: गुणै: असत्तमेतरै: स्मृतौ हतायां भृतमान दुर्दश: स्तब्धा: भूयसाम् हि धाम न पश्यन्ति ॥१७॥

अनुवाद— विद्या, तपस्या, धन, सुदृढ़ शरीर, युवावस्था और उच्चकुल सत् पुरुषों के ये छहो गुण हैं, किन्तु नीच पुरुषों में सभी दोष बन जाते हैं क्योंकि इन सबों के कारण उनकी बुद्धि मारी जाती है, अभिमान से युक्त उन पुरुषों की दृष्टि दोषमयी हो जाती है । इन सबों के कारण उनका अभिमान इतना बढ़ जाता है कि वे महापुरुषों के प्रभाव को देख ही नहीं पाते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ननु विद्यादिगुणयुक्तो दक्षस्त्वादृशेषु महत्सु कथं दोषदृष्टिर्भवेत्तत्राह । विद्यादिभिरेव स्मृतौ हतायां विवेकज्ञाने नष्टे सति भूयसां महत्तमानां धाम तेजो न पश्यन्ति हि । ननु गुणै: कथं विवेकनाशस्तत्राह । सतां गुणैर्विवेकहेतुभिरप्यसत्तमानामितरैर्दोषभूतै:। अतएव तैर्भृतो धृत: पुष्टो वाहं विद्वांस्तापस इत्यादिर्मानो गर्वस्तेन दुष्टा दृष्टिर्येषां ते ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि दक्ष तो विद्या इत्यादि गुणों से युक्त है, आप जैसे महापुरुषों के प्रति उनकी दोष दृष्टि कैसे हो सकती है ? तो इसका उत्तर है कि विद्या इत्यादि के ही कारण जब नीच पुरुषों की बुद्धि मारी जाती है तो महापुरुषों के प्रभाव को नहीं देख पाते हैं । यदि कहें कि गुणों के द्वारा विवेक का नाश कैसे हो सकता है, तो इसका उत्तर है कि जिन गुणों के कारण सत्पुरुषों का विवेक बढ़ता है, वे ही गुण नीच पुरुषों के लिए दोष बन जाते हैं । अतएव उन विद्या इत्यादि गुणों के द्वारा उनका अहङ्कार पुष्ट हो जाता है । वे सोचते हैं मैं विद्वान् हूँ, तपस्वी हूँ । इस प्रकार का उनको गर्व हो जाता है उसी के कारण उनकी दृष्टि भी दूषित हो जाती हैं ॥१७॥

नैतादृशानां स्वजनव्यपेक्षया गृहान्प्रतीयादनवस्थितात्मनाम् ।
येऽभ्यागतान्वक्रधियाऽभिचक्षते आरोपितभ्रूभिरमर्षणाक्षिभि: ॥१८॥

अन्वय:— एतादृशानाम् अनवस्थितात्मनाम् स्वजनव्यपेक्षया गृहान् प्रति न इयात् । ये आरोपित भ्रूभि: अमर्षणा क्षिभि: अभ्यागतान् वक्रधिया अभिचक्षते ॥१८॥

अनुवाद— इस प्रकार के अव्यवस्थित चित्त वाले लोगों के घर ये हमारे बान्धव हैं, यह सोचकर नहीं जाना चाहिए, क्योंकि ऐसे लोग आये हुए पुरुषों को भौहें चढ़ाकर रोषभरी दृष्टि से देखते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

स्वजनव्यपेक्षया बन्धुदृष्ट्या । गृहान्न प्रतीयान्नावलोकयेत् । अनवस्थितचित्तत्वमेवाह । ये वक्रधिया कुटिलया बुद्ध्या पश्यन्ति । आरोपिता उत्तम्भिता भ्रूर्येषु तान्यारोपितभ्रूणि तै: । आरोपिताभिर्भ्रूरिति वा । अमर्षणै: सक्रोधैरक्षिभि: ॥१८॥

तथारिभिर्न व्यथते शिलीमुखैः शेतेऽर्दिताङ्गो हृदयेन दूयता ।
स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभिर्दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः ॥१९॥

अन्वयः— अरिभिः शिलीमुखैः तथा न व्यथते यथा वक्रधियां स्वानां दुरुक्तिभिः अर्दिता दूयता हृदये शेते मर्मताडितः दिवानिशं तप्यति ।।१९।।

अनुवाद— देवि ! शत्रुओं के बाणों से उतनी पीड़ा नहीं होती है जितना कुटिल बुद्धि वाले स्वजनों की दुरुक्तियों से होती है । कटे-पिटे अङ्गों वाले व्यक्ति को तो किसी तरह नींद आ भी जाती हैं किन्तु दुरुक्तियों से विधेमर्मस्थल वाला पुरुष रात दिन संतप्त ही होता रहता हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

ननु स्वजनानां गृहं सुहृद्भिर्गन्तव्यं तेषां दुश्चेष्टितं च सोढव्यम्, न, तस्य दुःसहत्वादित्याह-तथेति । अरिभिः शिलीमुखैर्बाणैरर्दिताङ्गः खण्डितगात्रोऽपि तथा न व्यथते । यतः शेते स्वपिति । स्वानां दुरुक्तिभिर्मर्मसु ताडितो यथा दूयता व्यथमानेन हृदा दिवानिशं तप्यति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि अपने बान्धवों के घर जाना चाहिये किन्तु उनकी दुश्चेष्टाओं को नहीं सहना चाहिए क्योंकि उसको वर्दास्त करना कठिन होता है इस बात को शङ्करजी **तथारिभिः इत्यादि** श्लोक से कहते हैं शत्रुओं के बाणों से जिसके अङ्ग कट जाते हैं उस व्यक्ति को भी उतनी पीड़ा नहीं होती है, क्योंकि वह भी किसी प्रकार सो ही जाता है । किन्तु अपने लोगों की दुरुक्तियों से जिनका मर्मस्थल विद्ध हो जाता है, उसके कारण व्यथित हृदय वाला व्यक्ति तो रात-दिन संतप्त ही होता रहता है ।।१९।।

व्यक्तं त्वमुत्कृष्टगतेः प्रजापतेः प्रियात्मजानामसि सुभ्रु संमता ।
अथापि मानं न पितुः प्रपत्स्यसे मदाश्रयात्कः परितप्यते यतः ॥२०॥

अन्वयः— हे सुभ्रु त्वं उत्कृष्ट गतेः प्रजापतेः प्रियात्मजानां सम्मता असि इति व्यक्तं अथापि मदाश्रयात् पितुः मानं न प्रपत्स्यसे यतः कः परितप्यते ।।२०।।

अनुवाद— हे सुन्दरि ! तुम उत्कृष्टता प्राप्त दक्ष प्रजापति की पुत्रियों में उनको सबसे प्रिय हो यह निश्चित है, किन्तु तुम्हारा मुझसे सम्बन्ध है, अतएव तुम अपने पिता से सम्मान नहीं प्राप्त कर पाओगीं, क्योंकि दक्ष मुझसे जलते हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

मयि तत्र गतायां नेयं शङ्केति चेत्तत्राह । व्यक्तं निश्चितमुत्कृष्टा गतिः स्थितिर्यस्य तस्यात्मजानां कन्यानां मध्ये त्वं प्रियेति मे संमतासि, अथापि पितुः सकाशान्मानं न लप्स्यसे । मदाश्रयान्मत्संबन्धात् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

यदि यह कहो कि मेरे जाने पर तो इस प्रकार की कोई भी शङ्का नहीं हो सकती है, तो इस पर शङ्करजी ने कहा निश्चित रूप से तुम उत्कृष्टता प्राप्त दक्ष प्रजापति की कन्याओं में उनको सबसे प्रिय हो, यह मैं अच्छी तरह से जानता हूँ, फिर भी तुम अपने पिता से सम्मान नहीं प्राप्त कर पाओगी, क्योंकि तुम्हारा मुझसे सम्बन्ध हैं ।।२०।।

पापच्यमानेन हृदातुरेन्द्रियः समृद्धिभिः पूरुषबुद्धिसाक्षिणाम् ।
अकल्प एषामधिरोढुमञ्जसा पदं परं द्वेष्टि यथाऽसुरा हरिम् ॥२१॥

अन्वयः— पुरुषबुद्धिसाक्षिणाम् समृद्धिभिः पापच्यमानेन हृदा आतुरेन्द्रियः अञ्जसा एषां पदमधिरोढुम् अकल्पः परम्, असुरा हरिम् यथा द्वेष्टि ।।२१।।

अनुवाद— जीव की चित्त वृत्ति के साक्षी अहङ्कार शून्य महापुरुषों की समृद्धि को देखकर जिसके हृदय में सन्ताप और इन्द्रियों में व्यथा होती है, वह पुरुष उनके पद को तो आसानी से नहीं प्राप्त कर सकता है, किन्तु वह उनसे उसी तरह से द्वेष किया करता है, जिस तरह से असुरगण श्रीहरि से द्वेष किया करते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

ननु भगवंस्त्वया किमिति दक्षस्तिरस्कृतो यतोऽसौ त्वां द्वेष्टयत आह । पापच्यमानेनालं दह्यमानेन हृदा मनसा दुःखितेन्द्रियः काभिः, पूरुषो जीवस्तस्य बुद्धिश्चित्तं तत्साक्षिणां निरहंकाराणामित्यर्थः । समृद्धिभिः पुण्यकीर्त्यादिभिः । एषां पदं स्थानमैश्वर्यं प्राप्तुमकल्पोऽशक्तः सन्परं द्वेष्टि । असुरा यथा हरिं केवलं द्विषन्ति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

हे भगवन् ! आपने कभी दक्ष का तिरस्कार किया है क्योंकि उसके कारण वे आप से द्वेष करते हैं, इस पर शङ्करजी ने कहा जीव की बुद्धि और चित्तवृत्ति के साक्षी अहङ्कार रहित महापुरुषों की पुण्य कीर्ति आदि से संतप्त रहने वाले जिस पुरुष की इन्द्रियों में व्यथा होती है, वह उन महापुरुषों के ऐश्वर्य को प्राप्त करने में तो असमर्थ ही होता है, किन्तु वह उन महापुरुषों से उसी तरह से द्वेष करता है जिस तरह असुरगण केवल श्रीहरि से द्वेष करते हैं ॥२१॥

प्रत्युद्गमप्रश्रयणाभिवादनं विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे ।
प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा गुहाशयायैव न देहमानिने ॥२२॥

अन्वयः— सुमध्यमे प्रयुद्गम प्रश्रयणाभिवादनं मिथः साधु विधीयते, प्राज्ञै गुहाशयायैव परस्मै पुरुषाय एव चेतसा विधीयते देहमानिने न ॥२२॥

अनुवाद— हे सुमध्यमें सम्मुख जाना, नम्रता दिखाना और प्रणाम करना ये सब लोक व्यवहार में जो परस्पर में किए जाते हैं उन सबों को प्राज्ञ पुरुष बहुत अच्छी तरह से करते हैं, किन्तु वे इन सब व्यवहारों को हृदय गुफा में निवास करने वाले परम पुरुष परमात्मा को ही हृदय से किया करते हैं किसी देहाभिमानी के नहीं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

ननु त्वया प्रत्युत्थानविनयाद्यकरणादवज्ञात एवासौ तत्राह । हे सुमध्यमे, प्रत्युद्गमादिकं मिथो जनैर्यद्विधीयते तत्प्राज्ञैः साधु विधीयते । साधुत्वमेवाह । परस्मै श्रीवासुदेवाय । गुहाशयायान्तर्यामिण एवं । तच्च चेतसैव । परिपूर्णे तस्मिन्कायिकव्यापारायोगात् । अतोऽन्तर्यामिदृष्ट्या मनसा सर्वं कृतमिति भावः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

यदि तुम कहो कि आप उनको देखकर न तो खड़े हुए और न नम्रता प्रदर्शित किए इसीलिए उनका अपमान हुआ, उसी के कारण वे आपसे द्वेष करते हैं । इस पर शङ्करजी ने कहा सुमध्यमें लोक में लोग जो परस्पर में सामने जाना और नम्रता दिखाना आदि करते है, उसको प्राज्ञ पुरुष अच्छी तरह से करते हैं किन्तु वे यह सबकुछ अन्तर्यामी परंपुरुष परमात्मा के ही लिए यह सबकुछ करते हैं किसी देहाभिमानी को नहीं करते हैं ॥२२॥

सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः ।
सत्त्वे च तस्मिन्भगवान्वासुदेवो ह्यधोक्षजो मे नमसा विधीयते ॥२३॥

अन्वयः— विशुद्धं सत्त्वं वसुदेवशब्दितं यत् तत्र अपावृतः पुमान ईयते । तस्मिन् सत्त्वेच भगवान् वासुदेवः मे मनसा विधीयते ॥२३॥

अनुवाद— विशुद्ध अन्तःकरण का ही नाम वसुदेव है, क्योंकि उस अन्तःकरण में निरावृत परम पुरुष भगवान् का निवास होता है । उस शुद्ध अन्तःकरण में ही मैं अधोक्षज भगवान् वासुदेव को नमस्कार करता हूँ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

किंच न केवलमभ्यागतेष्वेव वासुदेवदृष्ट्या नमनं क्रियते किंतु नित्यमेव मनसि वासुदेवश्चिन्त्यत इत्याह । विशुद्धं सत्त्वमन्तःकरणं सत्त्वगुणो वा वसुदेवशब्दितं वसुदेवशब्देनोक्तम् । कुतः यद्यस्मात्तत्र सत्त्वे पुमान्वासुदेव ईयते प्रकाशते । अपगतमावृतमावरणं यस्मात्सः । अयमर्थः-वसुदेवे भवति प्रतीयत इति हि वासुदेवः परमेश्वरः प्रसिद्धः, स च विशुद्धे सत्त्वे प्रतीयते । अतः प्रत्ययार्थेन प्रसिद्धेन प्रकृत्यर्थो निर्धार्यते । ततश्च वासयति देवमिति व्युत्पत्त्या वसत्यस्मिन्निति वा वसुः । देवो दीव्यति द्योतत इति वा । वसुभिः पुण्यैर्दीव्यति प्रकाशत इति वा वसुदेवशब्दवाच्यं शुद्धं सत्त्वम् । ततः किमत आह । सत्त्वे च तस्मिन्मे मया नमसा नमस्कारेणानुविधीयते सेव्यत इत्यर्थः । मनसेति पाठे मनसा विशेषेण धीयते धार्यते चिन्त्यत इत्यर्थः। यतोऽधो भूतेषु प्रत्याहृतेष्वक्षेषु जायते प्रकाशते । इन्द्रियागोचर इत्यर्थः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

केवल अभ्यागतों को ही मैं वासुदेव की दृष्टि से नमस्कार करता होऊँ ऐसी बात नहीं है, अपितु मैं नित्य ही अपने मन में भगवान् वासुदेव का चिन्तन करता हूँ । विशुद्ध अन्तःकरण अथवा विशुद्ध सत्त्वगुण का ही नाम वसुदेव है क्योंकि विशुद्ध अन्तःकरण में ही भगवान् वासुदेव प्रकाशित होते हैं । उस समय वे माया के आवरण से रहित होते हैं । कहने का अभिप्राय है कि जो वसुदेव में प्रतीत होता है, उसे ही वासुदेव कहते हैं। वे ही भवान् वासुदेव परमेश्वर रूप से प्रतीत होते हैं । वे भगवान् विशुद्ध सत्त्व अन्तःकरण में ही प्रतीत होते हैं । अतएव प्रसिद्ध प्रत्ययार्थ के द्वारा प्रकृत्यर्थ का निर्धारण होता है । अतएव जो अपने में देवता को वसाये अथवा जिसमें देव का निवास हो उसे वसुदेव कहते हैं । जो प्रकाशित हो उसको देव कहते हैं । अथवा जो पुण्यों के द्वारा प्रकाशित होता है वह वसुदेव शब्द वाच्य शुद्ध सत्त्व है । उससे क्या हुआ ? तो इस पर कहते हैं । उस शुद्ध अन्तःकरण में ही मैं नमस्कार के द्वारा भगवान् वासुदेव की सेवा करता हूँ । मनसा पाठ होने पर अर्थ होगा कि जिनका मन से चिन्तन किया जाता हैं । क्योंकि प्रत्याहृत इन्द्रियों से वे प्रकाशित होते हैं । अर्थात् वे भगवान् इन्द्रियों के विषय नहीं है ।।२३।।

तत्ते निरीक्ष्यो न पितापि देहकृद्दक्षो मम द्विट् तदनुव्रताश्च ये ।
यो विश्वसृग्यज्ञगतं वरोरु मामनागसं दुर्वचसाऽकरोत्तिरः ।।२४।।

अन्वयः— हे वरोरु । यः विश्वसृग्यज्ञगतं अनागसं मां दुर्वचसातिरः अकरोत् तत् ते देहकृत् पिताअपिदक्षः ये चतदनुव्रताः ते निरीक्ष्यो न ।।२४।।

अनुवाद— हे सुन्दरि ! जिसने प्रजापतियों के यज्ञ में गये हुए निरपराध मेरा अपनी दुरुक्तियों से तिरस्कृत किया वह यद्यपि तुम्हें जन्म देने वाले पिता दक्ष है, उनको तथा उनके अनुयायियों को तुम्हें देखना भी नहीं चाहिए ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मात्त्वया न निरीक्ष्यः । देहकृदपीति पोषकत्वादिभिरौपचारिकपितृत्वव्यावृत्त्यर्थम् । द्विट् शत्रुः । तदेवाह । हे वरोरु, यो दक्षो विश्वसृजां यज्ञगतं मां निरपराधं तिरोऽकरोत्तिरस्कृतवान् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

शङ्करजी ने कहा कि हे सुन्दरि ! जिस दक्ष ने प्रजापतियों के यज्ञ में गये हुए निरपराध मेरा तिरस्कार किया, वे यद्यपि तुम्हारे पिता हैं फिर भी उनको देखने का विचार छोड़ देना चाहिए ।।२४।।

यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति ।
संभावितस्य स्वजनात्पराभवो यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे उमारुद्रसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अन्वयः— यदि मद्वचः अतिहाय व्रजिष्यसि ततः भवत्याः भद्रं न भविष्यति संभावितस्य यदा स्वजनात् पराभव स सद्यः मरणाय कल्पते ॥२५॥

अनुवाद— यदि तुम मेरी बात नहीं मानकर वहाँ जाओगी तो वह तुम्हारे लिए अच्छा नहीं होगा क्योंकि जब किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति का अपने लोगों से अपमान होता है वह उनके तत्काल मृत्यु का कारण बन जाता है ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के उमारुद्रसंवाद के अन्तर्गत तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

भावार्थ दीपिका

विपक्षे दोषमाह-यदीति । मद्वचोऽतिहायातिक्रम्य । यतः संभावितस्य सुप्रतिष्ठितस्य यदा पराभवो भवति तदा स पराभवस्तस्य मरणाय कल्पते ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

यदि तुम मेरी बात न मानो तो होने वाले दोष को शङ्करजी ने यदि इत्यादि श्लोक से कहा । यदि मेरी बातों को नहीं मानकर तुम जाती हो तो यह तुम्हारे लिए कल्याणकारी नहीं होगा, क्योंकि किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति का जब अपने आत्मीय जनों से ही अपमान होता है तो वह उसके सद्यः मृत्यु का कारण बन जाता है ॥२५॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के तृतीय अध्याय की भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुयी ।।३।।

* * *

चौथा अध्याय

सती देवी का योगाग्नि में प्रवेश

मैत्रेय उवाच

एतावदुक्त्वा विरराम शङ्करः पत्न्यङ्गनाशं ह्युभयत्र चिन्तयन् ।
सुहृद्दिदृक्षुः परिशङ्किता भवान्निष्क्रामती निर्विशती द्विधाऽऽस सा ॥१॥

अन्वयः— एतावदुक्त्वा शङ्करः उभयत्र पत्न्यङ्गनाशं चिन्तयन् विरराम । सुहृद् दिदृक्षुः निष्क्रामती भवात् परिशाङ्किता न्निविशती च सा द्विधा आस ॥१॥

अनुवाद— इतना ही कहकर भगवान् शङ्कर जाने से रोकने तथा जाने देने दोनों ही स्थितियों में अपनी पत्नी की मृत्यु का विचार करते हुए चुप हो गये और सतीजी भी अपने सुहृदों को देखने की इच्छा से कभी घर से बाहर निकलती थीं और फिर शङ्करजी कही रुष्ट न हो जायँ इस भय से पुनः घर में प्रवेश कर जाती थीं । इस तरह से द्विविधा की स्थिति में पड़ गयीं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्थे तु पतिं हित्वा गता पित्रावमानिता । रुषा निर्भर्त्स्य तं यज्ञे जहौ देहमितीर्यते ।।१।। उभयत्रानुज्ञाने बलान्निवारणे च । सुहृदिदक्षुर्निष्क्रामन्ती भवात्परिशङ्किता पुनर्निर्विशन्ती च तदा सा सती द्विधा आस बभूव । न गता न च स्थिता आन्दोलावद्गतिरभवत्।।१।।

भाव प्रकाशिका

चौथे अध्याय में तो अपने पति शिवजी की परित्याग करके गयी हुयी सती अपने पिता के द्वारा अपमानित होकर क्रोध पूर्वक अपने पिता की निन्दा की और यज्ञ में ही अपने शरीर का परित्याग कर दी, इसी घटना का वर्णन किया गया है ।

उभयत्र का अर्थ है कि सती को अपने पिता के घर जाने की आज्ञा देने और बल पूर्वक उनको नहीं जाने देने दोनों ही स्थिति में सती की भावित मृत्यु को सोचकर शङ्करजी चुप हो गये । सती भी अपने बान्धवों को देखने की इच्छा से कभी घर से निकलती और फिर शङ्करजी के रुष्ट हो जाने के भय से गृह में प्रवेश कर जाती थीं । इस तरह उनकी गति दोनों प्रकार की हो गयी । वे न तो जा सकीं और न रुक ही सकी । उनकी स्थिति आगे पीछे जाने वाले झूले के समान हो गयी ।।१।।

सुहृद्दिदृक्षाप्रतिघातदुर्मनाः स्नेहादुदत्यश्रुकलाऽतिविह्वला ।
भवं भवान्यप्रतिपूरुषं रुषा प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथुः ।।२।।

अन्वयः— सुहृद्दिदृक्षा प्रतिघात दुर्मनाः स्नेहाद्रुदत्यत्यश्रुकलातिविह्वला, जातवेपथुः भवानी अप्रतिपूरुषं भवं रुषा प्रधक्ष्यतीव ऐक्षत ।।२।।

अनुवाद— अपने बान्धवों को देखने की इच्छा में बाधा होने से सती अत्यन्त उदास हो गयीं, स्वजनों के प्रति स्नेह होने के कारण वे रोने लगीं, उनकी आँखों में आँसू भर गया और वे अत्यन्त व्याकुल हो गयीं । उनका शरीर काँपने लगा, इस प्रकार की सती देवी ने अप्रतिम पुरुष शङ्करजी को क्रोध पूर्वक ऐसे देखने लगीं जैसे वे उनको जला देना चाहती हों ।।२।।

भावार्थ दीपिका

सुहृदां दिदृक्षायाः प्रतिघातेन दुर्मनाः । अश्रूणां कलाभिर्लेशैरतिविह्वला व्याकुला । अप्रतिपूरुषं स्वसमानपुरुषान्तररहितम्। प्रधक्ष्यतीव भस्मीकरिष्यतीव रुषा जातो वेपथुः कम्पो यस्याः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

अपने बान्धवों को देखने की इच्छा में बाधा पड़ने के कारण वे दुःखी हो गयीं । आँखों में आँसू भर जाने के कारण अत्यन्त व्याकुल हो गयीं । उनका शरीर काँप रहा था । क्रोध के कारण अप्रतिम पुरुष भगवान् शिव को ऐसे देख रही थीं जैसे वे उनको जला देना चाहती हों ।।२।।

ततो विनिःश्वस्य सती विहाय तं शोकेन रोषेण च दूयता हृदा ।
पित्रोरगात्स्त्रैणविमूढधीर्गृहान्प्रेम्णात्मनो योऽर्धमदात्सतां प्रियः ।।३।।

अन्वयः— शोकेन रोषेण च दूयता हृदा स्त्रैणविमूढ धी, यः सतांप्रियः प्रेम्णा आत्मनोऽर्धमदात् तं विहाय सती विनिःश्वस्य पित्रोरगात् ।।३।।

अनुवाद— उसके पश्चात् शोक तथा क्रोध ने जिनके चित्त को व्याकुल बना दिया था अतएव वे दुःखी थी, स्त्री का स्वभाव होने के कारण उनकी बुद्धि मारी गयी थी, जो सज्जनों के प्रिय भगवान् शिव प्रेमातिशय्य

के कारण उनको अपना आधा शरीर प्रदान कर दिये थे, उन शङ्करजी को छोड़कर लम्बी श्वास लेती हुयी सती देवी अपने मातापिता के घर चल दीं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

ततस्तं विहाय पित्रोर्गृहानगात् । कथंभूतम् । यः प्रीत्या तस्यै आत्मनो देहस्यार्धमदात् । त्यागे हेतुः-स्त्रैणं स्त्रीस्वभावस्तेन विमूढा धीर्यस्याः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

जिन भगवान् शङ्कर ने प्रेमातिरेक के कारण उनको अपना आधा शरीर प्रदान कर दिया था उन शङ्करजी को छोड़कर सती देवी अपने माता-पिता के घर चल दीं । शङ्करजी को त्यागने का कारण यह था कि स्त्री का स्वभाव होने के कारण उनकी बुद्धि मारी गयी थीं ।।३।।

तामन्वगच्छन्द्रुतविक्रमां सतीमेकां त्रिनेत्रानुचराः सहस्रशः ।
सपार्षदयक्षा मणिमन्मदादयः पुरो वृषेन्द्रास्तरसा गतव्यथाः ।।४।।

अन्वयः— द्रुत विक्रमाम् ताम् एकां सतीं सहस्रशः त्रिनेत्रानुचरा; मणिमन् मदादयः सपार्षदयक्षाः तरसा पुरोवृषेन्द्राः गतव्यथाः ताम् अन्वगच्छन् ।।४।।

अनुवाद— बड़ी तेजी से अकेली जाती हुई सती देवी को देखकर शङ्करजी के मणिमान मद इत्यादि हजारो अनुचर शिवजी के वाहन वृषभराज को आगे करके अनेक पार्षदों और यक्षों को लेकर बड़ी तेजी से उनके पीछे निर्भयता पूर्वक हो लिए ।।४।।

भावार्थ दीपिका

द्रुतविक्रमां शीघ्रं गच्छतीम् । सह पार्षदैर्यक्षैश्च वर्तमानाः । मणिमान्मदश्चादिर्येषां ते । पुरः पुरतो वृषेन्द्रो येषां ते गतव्यथा निर्भयाः । रुद्रातिक्रमेण तस्यागमनादागतव्यथा इति वा ।।४।।

भाव प्रकाशिका

बड़ी तेजी से अकेली जाती हुयी सती को देखकर शङ्करजी के मणिमान् मद इत्यादि हजारो अनुचर शङ्करजी के बाहन वृषभराज को आगे करके हजारों पार्षदों और यक्षों को साथ लेकर निर्भयता पूर्वक उनके पीछे हो लिए। अथवा शङ्करजी की आज्ञा को मानकर उनको छोड़कर सती देवी के जाने के कारण जो दुःखी हो गये थे वे शङ्करजी के अनुचर उनके साथ हो लिए ।।४।।

तां सारिकाकन्दुकदर्पणाम्बुजश्वेतातपत्रव्यजनस्रगादिभिः ।
गीतायनैर्दुन्दुभिशङ्खवेणुभिर्वृषेन्द्रमारोप्य विटङ्किता ययुः ।।५।।

अन्वयः— तां वृषेन्द्रमारोप्य सारिका कन्दुक दर्पणाम्बुज श्वेतातपत्र व्यजनस्रगादिभिः गीतायनैः दुन्दुभिशङ्खवेणुभिः विटङ्किताः ययुः ।।५।।

अनुवाद— सतीजी को उस वृषभ राज पर बैठाकर मैना पक्षी गेंद, दर्पण और कमल आदि क्रीडा की सामग्री श्वेत छत्र-चमर तथा माला आदि राजचिह्न दुन्दुभि शङ्ख तथा वांसुरी आदि गाने बजाने के समानों से सुशोभित होकर वे उनके साथ चल दिए ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तां वृषेन्द्रमारोप्य सारिकादिभिः क्रीडोपकरणैः श्वेतातपत्रादिभिश्च महाराजविभूतिभिः सह विटङ्किताः शोभिताः ययुः । सारिका पठननिरूपिता पक्षिणी । गीतायनैर्गीताश्रयैः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

सतीजी को उस वृषराज पर बैठाकर सारिका क्रीडा के साधनों श्वेत छत्र आदि महाराज की विभूतियों के साथ सुशोभित होकर गये । पढ़ने वाली पक्षी को सारिका कहते हैं । गीतायनैः गीत के साधन ।।५।।

आब्रह्मघोषोर्जितयज्ञवैशसं विप्रर्षिजुष्टं विबुधैश्च सर्वशः ।
मृद्दार्वयःकाञ्चनदर्भचर्मभिर्निसृष्टभाण्डं यजनं समाविशत् ।।६।।

अन्वयः— आब्रह्मघोषोर्जित यज्ञ वैशसं सर्वशः विप्रर्षिजुष्टं विवुधैः च मृद्दार्वयः काञ्चन दर्भचर्मभिः निसृष्टभाण्डं यजनं समाविशत् ।।६।।

अनुवाद— चारो तरफ होने वाले वेद ध्वनि के कारण यज्ञ में होने वाली हिंसा सुशोभित थी अथवा वेद घोष के कारण ब्राह्मणों में वेद मन्त्रों को बोलने की होड़ लगी थी । जिसमें सब जगह ब्रह्मर्षि और देवता विद्यमान थे । इधर-उधर मिट्टी, काष्ठ, लोहा तथा सुवर्ण के पात्र कुश मृगचर्म तथा पात्र पड़े थे ऐसी दक्ष की यज्ञशाला में गयीं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

आसमन्ताद्यो वेदघोषस्तेनोर्जितं शोभमानं यज्ञसंबन्धि पशुविशसनं यस्मिन् । यद्वा तेनोर्जितमतिशयितं यज्ञवैशसं परस्परं स्पर्धा यस्मिन् । तद्यजनं यज्ञस्थानं समाविशद्देवी । विबुधैश्च जुष्टम् । मृदादिभिर्निसृष्टानि निर्मितानि भाण्डानि पात्राणि यस्मिन्।।६।।

भाव प्रकाशिका

सतीजी दक्ष की उस यज्ञशाला में गयीं जिसमें वेद ध्वनि के साथ होने वाली यज्ञीय पशुओं की हिंसा सुशोभित हो रही थी अथवा वेद ध्वनि करने वाले ब्राह्मणों की परस्पर में होड़ लगी थी कि कौन उच्च स्वर से वेद पाठ करता है । उस यज्ञशाला में सर्वत्र ब्रह्मर्षि और देवता विद्यमान थे । और उसमे मिट्टी इत्यादि से बने पात्र पड़े थे । ऐसी दक्ष की यज्ञशाला में सती देवी गयीं ।।६।।

तामागतां तत्र न कश्चनाद्रियद्विमानितां यज्ञकृतो भयाज्जनः ।
ऋते स्वसॄर्वै जननीं च सादराः प्रेमाश्रुकण्ठ्यः परिषस्वजुर्मुदा ।।७।।

अन्वयः— यज्ञकृतो भयात् तत्र आगातां तां ऋते स्वसॄः जननीं च विमानितां कश्चन जनः नाद्रियत् स्वसॄः जननीं च सादरा प्रेमाश्रुकण्ठ्यः मुदा परिषस्वजुः ।।७।।

अनुवाद— यज्ञकर्ता दक्ष के भय से आयी हुयी सती देवी का किसी भी व्यक्ति ने समादर नहीं किया केवल उनकी माता और बहनें उनको देखकर प्रसन्न हुयीं उनको गद्गद होकर गले लगाया ।।७।।

भावार्थ दीपिका

कश्चन नाद्रियत् नादृतवान् यज्ञकृतो दक्षाद्यद्भयं तस्मात् । तत्र हेतुः- तेन विमानिताम् । स्वसॄर्जननीं च ऋते बिना । तास्तु सादराः परिषस्वजुरालिङ्गितवत्यः । प्रेमाश्रुभिर्निरुद्धः कण्ठो यासाम् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

आयी हुयी सती देवी का किसी ने भी आदर नहीं किया क्योंकि सबों को दक्ष का भय था । अतएव वे दक्ष के द्वारा अपमानित हुयीं । केवल बहनों और माता ने आदर पूर्वक उनको गद्गद कण्ठ से गले लगाया ।।७।।

सौदर्यसंप्रश्नसमर्थवार्तया मात्रा च मातृष्वसृभिश्च सादरम् ।
दत्तां सपर्यां वरमासनं च सा नादत्त पित्राऽप्रतिनन्दिता सती ।।८।।

अन्वयः— सौदर्य सम्प्रश्न समर्थवार्तया मात्रा मातृस्वसृभिश्च सादरम् दत्तां सपर्यां वरम् आसनं सपर्यां च सा नादत्त।।८।।

अनुवाद— पिता के द्वारा अपमानित होने के कारण सतीजी ने, बहिनों के कुशल प्रश्नपूर्वक प्रेमपूर्ण वार्तालाप तथा माता एवं मौसियों के द्वारा सम्मानपूर्वक दिए हुए उपहार और सुन्दर आसन आदि को नहीं स्वीकार किया।।८।।

भावार्थ दीपिका

अप्रतिनन्दिताऽनादृता सती नादत्त गृहीतवती । कथम् । सौदर्येण सोदरत्वेन भगिनीनां यः संप्रश्नस्तत्र समर्था योग्या या वार्ता तया सह । तां च नादत्त नाशृणोदित्यर्थः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

पिता के द्वारा अनादृत होने के कारण सतीजी ने अपनी माता और मौसियों के द्वारा दिए गये उपहार श्रेष्ठ आसन को नहीं स्वीकार किया । अपनी सहोदर बहनों के द्वारा किये गये कुशल प्रश्न तथा की गयी उचित वार्ता को भी उन्होंने नहीं सुना ।।८।।

अरुद्रभागं तमवेक्ष्य चाध्वरं पित्रा च देवे कृतहेलनं विभौ ।
अनादृता यज्ञसदस्यधीश्वरी चुकोप लोकानिव धक्ष्यतीरुषा ।।९।।

अन्वयः— यज्ञसदसि अनादृता अधीश्वरी तं अध्वरं अरुद्रभागम् पित्रा च विभौ देवे कृत हेलनं अवेक्ष्य रुषा लोकान् धक्ष्यती इव चुकोप ।।९।।

अनुवाद— यज्ञ मण्डप में पिता के द्वारा अनादृत लोकेश्वरी सतीजी ने देखा कि इस यज्ञ में रुद्र को भाग नहीं दिया गया और उसके पिता भगवान् शङ्कर का अत्यधिक अपमान कर रहे हैं, इतना क्रुद्ध हो गयी कि मानों वे सम्पूर्ण लोकों को जला देना चाहती हों ।।९।।

भावार्थ दीपिका

न विद्यते रुद्रस्य भागो यस्मिंस्तभ् । देवे रुद्रे कृतं हेलनमवज्ञामाह्वानाद्यकरणात् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

जिस यज्ञ में रुद्र को भाग नहीं दिया गया था, उस यज्ञ को देखकर तथा भगवान् शिव के प्रति किये गये अपमान को तथा उसमें उनको नहीं बुलाया गया था उसको भी देखकर सतीजी कुपित हो गयीं ।।९।।

जगर्हसाऽमर्षविपन्नया गिरा शिवद्विषं धूमपथ श्रमस्मयम् ।
स्वतेजसा भूतगणान्समुत्थितान्निगृह्य देवी जगतोऽभिशृण्वतः ।।१०।।

अन्वयः— धूमपथ श्रमस्मयम् शिव द्विषं समुत्थितान् भूतगणान् स्वतेजसा निगृह्य देवी जगतः अभिशृण्वतः सामर्षविपन्नया गिरा जगर्ह ।।१०।।

अनुवाद— कर्मभाग में परिश्रम करने के कारण जिसका घमण्ड बढ़ गया था तथा शिवजी से द्वेष करने वाले दक्ष को जब सतीजी के साथ आये हुए भूतगण तैयार हो गये तो सतीजी ने उन सबों को अपने तेज से रोक दिया और क्रोध भरी अपनी लड़खड़ाती वाणी से उन्होंने दक्ष की निन्दा की ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

जगर्ह निन्दितवती । अमर्षेण कोपेन विपन्नाऽव्यक्ता तया । शिवं द्वेष्टीति शिवद्विट् तम् । धूमपथः कर्ममार्गस्तत्र श्रमोऽभ्यासस्तेन स्मयो गर्वो यस्य । दक्षवधाय समुत्थितान्स्वाज्ञया निगृह्य निवार्य ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

शिवजी की निन्दा करने वाले दक्ष को जानकर सती के साथ आये हुए भूत समूह जब दक्ष का वध कर देने के लिए उद्यत हो गये तो सतीजी ने उन सबों को अपनी आज्ञा से रोक दिया और क्रोध के कारण लड़खड़ाती हुयी वाणी से उन्होंने दक्ष की निन्दा की ॥१०॥

श्रीदेव्युवाच

न यस्य लोकेऽस्त्यतिशायनः प्रियस्तथाऽप्रियो देहभृतां प्रियात्मनः ।
तस्मिन्समस्तात्मनि मुक्तवैरके ऋते भवन्तं कतमः प्रतीपयेत् ॥११॥

अन्वयः— यस्य लोके अतिशायनः न अस्ति, देहभृतां प्रियात्मनः तथा प्रियः अप्रियः न तस्मिन् समस्तात्मनि मुक्तवैरके भवन्तं ऋते कतमः प्रतीपयेत् ॥११॥

श्रीदेवी ने कहा

अनुवाद— जिन भगवान् शङ्कर से संसार में कोई भी बड़ा नहीं है, वे सभी देहधारियों की प्रिय आत्मा हैं, उनका कोई भी प्रिय अथवा अप्रिय नहीं है, उनका किसी भी प्राणी से वैर नहीं है । वे सबों के कारण हैं, ऐसे भगवान् शिव से आपको छोड़कर दूसरा कौन वैर करेगा ॥११॥

भावार्थ दीपिका

निन्दामेवाह-न यस्येति त्रयोदशभिः । मुक्तवैरके त्वक्तविरोधे तस्मिन् शिवे भवन्तमृते बिना कतमः प्रतीपयेत्प्रतिकूलमाचरेत्। वैराभावे हेतवः-यस्य लोके अतिशायनोऽतिशयितो नास्ति । तथा प्रियश्चाप्रियश्च नास्ति । समासपाठेऽतिशयेन प्रियो नास्ति । देहभृतां प्रियोऽयमात्मा तस्य । समस्तस्यात्मनि कारणभूते समस्तरूप इति वा ॥११॥

भाव प्रकाशिका

सतीजी के द्वारा की जाने वाली निन्दा का ही वर्णन न यस्य इत्यादि तेरह श्लोकों में करते हैं । जिन्होंने विरोध करना ही त्याग दिया उन भगवान् शिव से आपको छोड़कर दूसरा कौन विरोध कर सकता है ? भगवान् शिव में वैर के अभाव का कारण बतलाते हुए उन्होंने कहा क्योंकि संसार में शिवजी से बड़ा कोई नहीं है तथा उनका कोई न तो प्रिय है और न अप्रिय है । वे देहधारियों की आत्मा हैं तथा सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं, या सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हैं ॥११॥

दोषान्परेषां हि गुणेषु साधवो गृह्णन्ति केचिन्न भवादृशाद्विज ।
गुणांश्च फल्गून्बहुलीकरिष्णवो महत्तमास्तेष्वविदद्भवानघम् ॥१२॥

अन्वयः— हे द्विज ! भवादृशा परेषा गुणेषु दोषान् एव गृह्णन्ति केचित् च परेषां फल्गून गुणान् बहुली करिष्णवः दोषान् न गृहणन्ति । ते महत्तमाः, भवान् तेषु अधमः अविदत् ॥१२॥

अनुवाद— हे द्विज ! आपके जैसे लोग दूसरों के गुणों में दोष का ही ग्रहण करते हैं, गुणों को नहीं, कुछ लोग तो दूसरों के छोटे से गुणों का बड़ा करने की इच्छा रखते हैं । ऐसे साधु पुरुष महान् हैं । आप तो ऐसे महापुरुषों पर दोषारोपण ही करते हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तस्य च प्रतिकूलकरणं द्वेधा । महत्तमद्रोहेण साक्षात्तद्द्रोहेण च । तत्र पुरुषाणां चातुर्विध्यं वदन्ती महत्तमद्रोहमाह-दोषानिति द्वाभ्याम् । हे द्विजेत्यधिक्षेपः । भवादृशास्त्वद्विधा असूयकाः परेषां गुणेषु दोषानेव गृह्णन्ति न तु गुणान् । केचिन्मध्यस्था

गुणेषु दोषान्न गृह्णन्ति किंतु यथास्थितान्गुणदोषान्विवेकेन गृह्णन्ति ते तु महान्त उच्यन्ते । साधवस्तु केवलं गुणानेव गृह्णन्ति न दोषांस्ते तु महत्तरा उच्यन्ते । महत्तमास्तु दोषान्न गृह्णन्त्येव ते च प्रत्युत फल्गूंस्तुच्छानपि गुणान्बहुलीकुर्वन्तीति करिष्णवो भवन्ति, तेषु भवानघमविदत् विदितवान्, कल्पितवानित्यर्थः । तच्च ब्रह्मिष्ठानभिभूयेत्यनेन सूचितम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

दक्ष ने शिवजी का दो प्रकार से द्रोह किया है, महापुरुष का द्रोह करके प्रतिकूल आचरण किया है और साक्षात् द्रोह करके प्रतिकूलाचरण किया है । पुरुषों के चार भेदों को बतलाती हुयी सती देवी ने महापुरुष के द्रोह को **दोषान् इत्यादि** दो श्लोकों से बतलाया । हे द्विज ! कहकर सतीजी ने दक्ष पर आक्षेप किया आप जैसे असूया करने वाले लोग दूसरों के दोषों का ही ग्रहण करते हैं गुणों को नहीं । कुछ मध्यस्थ पुरुष दूसरों के गुणों में दोष नहीं देखते हैं । अपितु वे विवेक के द्वारा गुणों और दोषों को ठीक-ठीक देखते हैं, ऐसे लोग महान् होते हैं । साधु पुरुष तो केवल दूसरों के गुणों को ही देखते हैं । दोषों को नहीं देखते । ऐसे लोग महत्तम है । जो महत्तम पुरुष होते हैं, वे दोषों को नहीं देखते हैं, अपितु दूसरों के छोटे से भी गुणों को महान बना देने की इच्छा रखते हैं आप तो उन महापुरुषों में केवल दोष ही देखते हैं और वह भी अपने ब्रह्मिष्ठों का अपमान करके देखा इस बात को सती देवी ने सूचित किया है ।।१२।।

नाश्चर्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा महद्विनिन्दाकुणपात्मवादिषु ।
सेर्ष्यं महापूरुषपादपांसुभिर्निरस्ततेजःसु तदेव शोभनम् ।।१३।।

अन्वयः— कुणपात्मवादिषु असत्सु यत् सर्वदा महद्विनिन्दा एतदाश्चर्यं न, महत्पादपांसुभिसेर्ष्यं निरस्त्तेजःसु असत्सु तदेव शोभनम् ।।१३।।

अनुवाद— जो दुष्ट पुरुष शवरूपी इस जड़ शरीर को ही आत्मा मानते हैं, उनके द्वारा जो महापुरुषों की निन्दा की जाती है, वह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । महापुरुष तो उन दुष्टों की चेष्टाओं पर ध्यान नहीं देते हैं, किन्तु महापुरुषों के चरणों की धूलि उनके इस अपराध को नहीं सहकर उन दुष्टों के तेज को विनष्ट कर देती है, अतएव महापुरुषों की निन्दा जैसा कार्य दुष्टों को ही शोभा देता है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

एतच्च दुर्जनेषु युक्तमेवेत्याह-नेति । कुणप जडं शरीरं तदेवात्मेति वदन्ति ये तेषु । ईर्ष्या अक्षान्तिः । सेर्ष्यं यथा भवत्येवं महतां विनिन्देति यदेतदाश्चर्यं न भवति सेर्ष्यं निरस्तं तेजः प्रभावो येषामिति वा । यद्यपि महापुरुषाः स्वनिन्दां सहन्ते तथापि तत्पादरेणवस्तदसहमानास्तेषां तेजो निरस्यन्ति । अतोऽशक्तेषु महन्निन्दनमेवोचितमित्यर्थः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

महापुरुषों की निन्दा करना दुष्टों के लिए उचित ही है । इस बात को सतीजी ने **नाश्चर्यमे० इत्यादि** श्लोक से कहा है । जो लोग जड़ शरीर को ही आत्मा मानते हैं उन लोगों में क्षमा का अभाव होता है तथा ईर्ष्या पूर्वक महापुरुषों की निन्दा करना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । यद्यपि महापुरुष अपनी निन्दा को सह लेते हैं किन्तु उनके चरणों की धूलि दुष्टों द्वारा की जाने वाले उनकी निन्दा को नहीं सह पाते हैं और उन दुष्टों के तेज को विनष्ट कर देती हैं । अतएव असमर्थ लोग होते हैं । उनके द्वारा की जाने वाली महापुरुषों की निन्दा ही उचित हैं ।।१३।।

यद्द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृत्प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत् ।
पवित्रकीर्तिं तमलङ्घ्यशासनं भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ।।१४।।

अन्वयः— यद् द्वयक्षरं शिवं नाम प्रसङ्गात् सकृत् गिरा ईरितं अथ आशु हन्ति तत् पवित्र कीर्तिं, अलङ्घ्यशासनं शिवेतरः भवान् अहो द्वेष्टि ।।१४।।

अनुवाद— जिनका दो अक्षरों वाला शिव नाम प्रसङ्गवशात् एक बार भी उच्चारण कर लेने पर वह मनुष्यों के समस्त पापों को शीघ्र ही विनष्ट कर देता है । उनकी आज्ञा का कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता है, उन पवित्र कीर्ति तथा मङ्गलमय शिवजी से अमङ्गलमय आप द्वेष करते हैं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं महत्तमद्रोहमुक्त्वा तस्मिन्नेव कृतं द्रोहमाह-यदिति द्वाभ्याम् । यद्यस्य द्व्यक्षरमात्रं शिव इति तत्प्रसिद्धं नाम नृणां सर्वेषामाश्वघं सर्वं हन्ति । केवलं गिरैवेरितमुच्चारितं नतु मनः पूर्वकम् । तत्तु सकृदपि प्रसङ्गादपि । तं शिवं द्वेष्टि । न लङ्घ्यं शासनमाज्ञा यस्य । अहो शिवेतरोऽमङ्गलरूपः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से महापुरुषों की निन्दा का वर्णन करके सतीजी महापुरुष शिवजी की निन्दा जो दक्ष द्वारा की गयी थी उसका **यदद्वय इत्यादि** दो श्लोकों से कहती हैं- जिन शिवजी के दो अक्षरों वाला शिव यह प्रसिद्ध नाम केवल वाणी के द्वारा ही उच्चारण कर लेने पर मन द्वारा नहीं वह भी किसी प्रसङ्ग वशात् ही, उच्चारण कर लेने पर पापों को विनष्ट कर देता है । उनकी आज्ञा का कोई भी उल्लंघन नहीं कर सकता हैं; उन शिवजी से आप द्वेष करते हैं, निश्चित रूप से आप अमङ्गलमय हैं ।।१४।।

यत्पादपद्मं महतां मनोलिभिर्निषेवितं ब्रह्मरसासवार्थिभिः ।
लोकस्य यद्वर्षति चाशिषोऽर्थिनस्तस्मै भवान्द्रुह्यति विश्वबन्धवे ।।१५।।

अन्वयः— महतां मनोऽलिभिः ब्रह्मरसासवार्थिभिः यत्पादपद्मं निषेवितं अर्थिनः लोकस्य च यद् आशिषः वर्षति विश्वबन्धवे तस्मै भवान् द्रुह्यति ।।१५।।

अनुवाद— महापुरुषों के मन रूपी भौंरे ब्रह्मानन्दमय रस का पान करने की इच्छा से जिनके चरण कमलों की सेवा किया करते हैं तथा सकाम पुरुषों को जिनके चरण कमल उनके अभिलषित भोगों को प्रदान किया करते हैं उन विश्वबन्धु शिवजी से आप द्रोह करते हैं ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

पापहरत्वमुक्त्वा भुक्तिमुक्तिप्रदत्वेन शिवं वर्णयन्त्याह । यस्य पादपद्मं मनांस्येवालयस्तैः । ब्रह्मरसो ब्रह्मानन्दः स एवासवो मकरन्दस्तदर्थिभिः । यच्चार्थिनः सकामस्य लोकस्य तास्ता आशिषो वर्षति ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

शिवजी के पाप विनाशकत्व को कहने के पश्चात् उनके भोग तथा मोक्ष प्रदत्व का प्रतिपादन करती हुयी सतीजी ने कहा— ब्रह्मानन्द रस रूपी मकरन्द को चाहने वाले महापुरुषों सत्पुरुषों के मन रूपी भौंरे जिनके चरण कमलों की सेवा किया करते हैं तथा जिनके चरण कमल सकाम जगत् की अभिलाषों को पूर्ण किया करते हैं ऐसे शङ्करजी से आप द्वेष करते हैं ।।१५।।

किं वा शिवाख्यमशिवं न विदुस्त्वदन्ये ब्रह्मादयस्तमवकीर्य जटाः श्मशाने ।
तन्माल्यभस्मनृकपाल्यवसत्पिशाचैर्ये मूर्धभिर्दधति तच्चरणावसृष्टम् ।।१६।।

अन्वयः— तम् शिवाख्यम् अशिवं त्वदन्ये नविदुः किंवा ? श्मशाने जटा अवकीर्य तन्माल्य भस्मं नृकपालवसत् पिशाचैः तच्चरणावसृष्टम् ब्रह्मादयः ये ब्रह्मादयः मूर्धभिः दधति ।।१६।।

अनुवाद— वे केवल नाम मात्र के शिव हैं उनका वेष अमङ्गलमय है, यह सम्भवतः आपसे भिन्न कोई दूसरा नहीं जानता है । जो शिव जी श्मशान भूमि में पड़े हुए मनुष्यों के मुण्डों की माला पहनते हैं चित्ता के

भस्म तथा हड्डियों को पहने हुए एवं जटा बिखेरे हुए पिशाचों के साथ निवास करते हैं उनके ही चरणों पर से गिरे निर्माल्य को ब्रह्मा आदि अपने शिर पर चढ़ाते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं शिवापदेशो ह्यशिव इति, यच्चोक्तं प्रेतावासेष्वित्यादि तदाक्षिपन्त्याह-किं वेति । यो जटा अवकीर्य श्मशानेऽवसद्वसति स्म । तस्य श्मशानस्य माल्यानि भस्मानि नृकपालानि च भूषणत्वेन सन्ति यस्य । तं त्वत्तोऽन्ये न विदुः किम्, विदन्त्येवेति चेन्न, तथा सति तेषां तद्दास्यानुपपत्तेरित्याह । तच्चरणादवसृष्टं गलितं निर्माल्यं मूर्धभिर्धारयन्ति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

दक्ष ने जो प्रजापतियों की सभा में शिवजी को नाममात्र के शिव वस्तुतः अमङ्गल रूप, तथा यह जो कहा था कि श्मशान भूमि में रहते हैं उसका आक्षेप करती हुयी सतीजी कहती हैं जो शिवजी अपनी जटा को विखेर कर श्मशान में रहते हैं, उस श्मशान की मालाओं, भस्म तथा नरमुण्डों को आभूषण के रूप में धारण करते हैं उसको आप जैसे भिन्न लोग नहीं जानते हैं क्या ? जानते ही हैं यह भी नहीं कह सकते क्योंकि ऐसा जानने पर वे उनकी दासता को कैसे स्वीकार करते हैं ? ब्रह्माजी इत्यादि देवता भी उनके चरणों पर से गिरे निर्माल्य को अपने शिर पर धारण करते हैं ॥१६॥

कर्णौ पिधाय निरयाद्यदकल्प ईशे धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने ।
छिन्द्यात्प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चेज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्स धर्मः ॥१७॥

अन्वयः— असृणिभिः नृभिः धर्मावितरि ईशे अस्यमाने, अकल्पः कर्णौ पिधाय निरयात्, प्रभुः चेत् उशतीम् असतीं जिह्वाम् प्रसह्य छिन्द्यात् ततः असूनपि विसृजेत स धर्मः ॥१७॥

अनुवाद— यदि निरङ्कुश लोग धर्म की मर्यादा की रक्षा करने वाले भगवान् शिव की निन्दा करें तो उनको दण्ड देने की शक्ति यदि न हो तो अपने कानों को बन्द करके वहाँ से चला जाना चाहिए । यदि सामर्थ्य हो तो बल पूर्वक पकड़कर उस अकल्याणोच्चारण करने वाले की जीभ को काट देना चाहिए । उस पाप को दूर करने के लिए स्वयम् अपने प्राणों को भी दे दे ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं देहं त्यक्तुकामा धर्मतत्त्वमाह । कर्णावाच्छाद्य निर्गच्छेत् । यद्यदि मर्तुं मारयितुं वा कल्पो न भवति । कदा। धर्मावितरि धर्मरक्षके ईशे स्वामिन्यसृणिभिर्निरङ्कुशैर्नृभिरस्यमानेऽक्षिप्यमाणे । प्रभुः शक्तश्चेत् । रुशतीमकल्याणवादिनीम् । प्रसह्य बलाच्छिन्द्यात् । ततोऽपि स्वयं प्राणान्विसृजेदिति यत्स धर्मः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

अब अपने शरीर का त्याग करने की इच्छा से सतीजी धर्म के तत्त्व का निरूपण करती हैं । जब निरङ्कुश लोग अपने स्वामी की निन्दा करें उस समय यदि मरने तथा मारने में असमर्थ हो तो अपने कानों को बन्द करके वहाँ से हट जाय । यदि समर्थ हो तो उस अकल्याणोच्चारण करने वाली जीभ को बलपूर्वक पकड़कर काट दे। जीभ काटने की अपेक्षा स्वयम् अपने प्राणों का परित्याग कर दे ॥१७॥

अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं न धारयिष्ये शितिकण्ठगर्हिणः ।
जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धिमन्धसो जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ॥१८॥

अन्वयः— अतः शितिकण्ठगर्हिणः तव उत्पन्नम् इदं कलेवरं न धारयिष्ये । मोहाद्धि जगुप्सितस्य अन्धसः जग्धस्य विशुद्धिं उद्धरणं प्रचक्षते ॥१८॥

अनुवाद— अतएव शङ्करजी की निन्दा करने वाले तुम से उत्पन्न इस शरीर को मैं धारण नहीं कर सकती हूँ । अज्ञानवशात् खाये हुए निन्दित अन्न का वमन कर देना ही उसकी विशुद्धि कही गयी हैं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

तव त्वत्त उत्पन्नम् । शितिकण्ठो नीलकण्ठस्तन्निन्दकात् । प्रमादादापन्नस्यापवित्रस्य त्यागं विना न शुद्धिरिति दृष्टान्तेनाह। जग्धस्य भक्षितस्यान्नस्योद्धरणं वमनमेव पुंसो विशुद्धिं प्रचक्षते ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

अतएव शङ्करजी की निन्दा करने वाले तुम से उत्पन्न इस शरीर को मैं धारण नहीं कर सकती हूँ प्रमादवशात् गृहीत अपवित्र वस्तु का त्याग कर देना चाहिए इस अर्थ को सतीजी दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहती हैं प्रमादवशात् खाये हुए निन्दित अन्न का वमन कर देना ही उसकी विशुद्धि बतलायी गयी हैं ।।१८।।

न वेदवादाननुवर्तते मतिः स्व एव लोके रमतो महामुनेः ।
यथा गतिर्देवमनुष्ययोः पृथक् स्व एव धर्मे न परं क्षिपेत्स्थितः ।।१९।।

अन्वयः— स्वे एवलोके रमतः महामुनेः मतिः वेदवादान् न अनुवर्तते। यथा देवमनुष्ययोःगतिः पृथक् स्वे एव धर्मे स्थितिः परं नक्षिपेत् ।।१९।।

अनुवाद— अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले महामुनि की बुद्धि विधि निषेधमय वेदवाक्यों का अनुसरण नहीं करती है । जिस तरह देवताओं और मनुष्यों की गति अलग-अलग है अतएव मनुष्य को अपने धर्म में स्थित रहकर दूसरे के धर्म की निन्दा नहीं करनी चाहिए ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं लुप्तक्रियायाशुचय इति तत्प्रत्याह–नेति । वेदवादान्विधिनिषेधरूपान्स्व एव लोके स्वात्मन्येव रममणस्य महतो मुनेः सम्यग्विरक्तस्य मतिर्नानुवर्तते, निवृत्ताधिकारत्वात् । अधिकारभेदे दृष्टान्तः– यथा देवानां गतिराकाश एव मनुष्याणां पृथिव्यामेव । अतः स्व एव धर्मे प्रवृत्तिलक्षणे निवृत्तिलक्षणे वा स्थितः सन् परमन्यं धर्मे पुरुषं वा न क्षिपेन्न निन्देत्, व्यवस्थिताधिकारत्वेनोभयोः सत्यत्वात् । न क्षिपेदेवेति वान्वयः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

दक्ष ने यह जो कहा था कि ये शङ्कर अपनी क्रियाओं का लोप कर चुके हैं अतएव अपवित्र हैं । उसका उत्तर देती हुयी सतीजी कहती हैं— जो महामुक्त अपनी आत्मा में ही रमण करते हैं । जो पूर्ण रूप से संसार से विरक्त हैं ऐसे महापुरुषों की बुद्धि विधिनिषेधामयं वेदवाक्यों का अनुवर्तन नहीं करती है । क्योंकि उनका कर्मों में अधिकार समाप्त हो चुका रहता है । अधिकारों की भिन्नता का उदाहरण वे दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कर देती हैं। यह उसी तरह होता है जैसे देवताओं की गति आकाश में ही होती हैं और मनुष्यों की गति पृथिवी पर ही होती है । अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह चाहे प्रवृत्ति धर्म में स्थित हो या निवृत्ति धर्म में स्थित हो वह दूसरे के धर्म की निन्दा न करे । क्योंकि अधिकार के व्यवस्थित होने के कारण दोनों धर्म सत्य हैं । अथवा उसकी निन्दा न करें ।।१९।।

कर्म प्रवृत्तं च निवृत्तमप्यृतं वेदे विविच्योभयलिङ्गमाश्रितम् ।
विरोधि तद्यौगपदैककर्तरि द्वयं तथा ब्रह्मणि कर्म नर्च्छति ।।२०।।

अन्वयः— प्रवृत्तं निवृत्तं च कर्म ऋतं वेदे विविच्य उभयालिङ्गम् आश्रितम् यौगपदैककर्तरि तत् द्वयं विरोधि तथा ब्रह्मणि कर्म नर्च्छति ।।२०।।

अनुवाद— प्रवृत्ति (यज्ञ आदि) तथा निवृत्ति (शम दमादि) दोनों प्रकार के कर्म सत्य हैं । वेद में इन दोनों प्रकार के कर्मों के अलग-अलग अधिकारी बतलाये गये हैं । इन दोनों प्रकार के कर्मों के परस्पर में विरोधी होने

के कारण उक्त दोनों प्रकार के कर्मों का एक साथ अनुष्ठान नहीं किया जा सकता है । भगवान् शङ्कर तो परमात्मा हैं इन दोनों में से किसी भी प्रकार के कर्म को करने की उनको आवश्यकता नहीं है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

एतदेवोपपादयन्त्याह । प्रवृत्तमग्निहोत्रादि, निवृत्तं शमदमादि, ऋतं सत्यमेव यतो वेदे आश्रितं विहितम् । तच्च विविच्य व्यवस्थयाश्रितं न त्वविशेषेण । व्यवस्थामेवाह । उभयं रागवैराग्यलक्षणं लिङ्गं चिह्नमधिकारिविशेषणं यस्मिंस्तत्। ननु 'यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति', 'शान्तो दान्तः' इत्यादिषु नैवं व्यवस्था प्रतीयते । सत्यम्, तथाप्युभयोरेकाधिकारविरोधात्तथा पर्यवस्यतीत्याह । युगपद्भावो यौगपदं यौगपदेनैकस्मिन्कर्तरि तत्कर्मद्वयं विरोधि । ननु तर्हि निवृत्तं कर्म शिवेनापि कर्तव्यमेव नेत्याह । ब्रह्मणि सदाशिवे किंचिदपि कर्म न ऋच्छति न प्राप्नोति । अतो यथा प्रवृत्तनिवृत्तयोः परस्परधर्माकरणेन दोषस्तथेश्वरे एतदुभयधर्मकरणेऽपीति भावः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इसी अर्थ का प्रतिपादन करती हुयी सती देवी कहती हैं । अग्निहोत्र आदि प्रवृत्त कर्म हैं, शम दमादि निवृत्तकर्म हैं । ये दोनों सत्य ही हैं । क्योंकि इन दोनों प्रकार के कर्मों का विधान किया गया है । वे दोनों प्रकार के कर्म भेदपूर्वक अलग-अलग व्यवस्थापित किए गये हैं । समान रूप से दोनों की व्यवस्था नहीं की गयी है । उस व्यवस्था को ही बतलाते हुए कहते हैं । उन दोनों प्रकार के कर्मों के अधिकारी के चिह्न राग एवं वैराग्य रूप हैं । **ननु० इत्यादि** अब प्रश्न होता है कि यावज्जीवमग्नि होत्रं जुहोति अर्थात् आजीवन अग्निहोत्र करे । **शान्तोदान्त इत्यादि** वाक्यों में इस प्रकार की कोई भी व्यवस्था नहीं दिखती है, तो ठीक है, फिर भी दोनों का एक ही अधिकारी होने पर विरोध होता है । एक ही समय में होने को यौगपद्य कहते है । एक ही कर्ता के उन दोनों का अनुष्ठान विरोधी है । यदि कहें कि तब तो शिवजी को भी निवृत्त कर्मों को करना चाहिए तो एसी बात नहीं है । शिवजी तो ब्रह्म हैं अतएव उनको दोनों में कोई भी कर्म करने की अपेक्षा नहीं है । जिस तरह परस्पर विरोधी धर्मों को नहीं करने से दोष है उसी तरह ईश्वर शिवजी को उन दोनों प्रकार के कर्मों को करने से दोष हैं ॥२०॥

मा वः पदव्यः पितरस्मदास्थिता या यज्ञशालासु न धूमवर्त्मभिः ।
तदन्नतृप्तैरसुभृद्भिरीडिता अव्यक्तलिङ्गा अवधूतसेविताः ॥२१॥

अन्वयः— पितः अस्मदास्थिताः पदव्यः वः मा, वः यज्ञशालासु धूमवर्त्मभिः तदन्नतृप्तैः असुभृद्भिः ईडिता अव्यक्तलिङ्गा, अवधूत सेविताः ॥२१॥

अनुवाद— पिताजी हमारा अणिमादि से समृद्ध जो ऐश्वर्य है, वह ऐश्वर्य आपके पास नहीं है । आपका ऐश्वर्य तो यज्ञशालाओं में ही है । वह ऐश्वर्य यज्ञ के अन्न से तृप्त धूमादिमार्ग वाले लोगों के द्वारा प्रशंसित है। हमलोगों का ऐश्वर्य ऐसा नहीं हैं । हमारा ऐश्वर्य अव्यक्त है । वह हमारी इच्छा मात्र से उत्पन्न हो जाने वाला है। उसका सेवन तो ब्रह्म ज्ञानी ही करते हैं अतएव आपको इस प्रकार का अभिमान नहीं होना चाहिए कि मैं धनवान् हूँ और रुद्रदरिद्र हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

चिताभस्मकृतस्नानस्तथा नग्न इत्यादिना यो भोगाद्यभाव उक्तस्तत्राह । हे पितः, अस्माभिरास्थिता आश्रिताः पदव्योऽणिमादिसमृद्धयो वो युष्माकं मा । न सन्तीत्यर्थः । यतो वः पदव्यो यज्ञशालास्वेव भवन्ति । ताश्च तदन्नेन यज्ञगतेनान्नेन तृप्तैः केवलमीडिता धूमवत्मभिश्च भुज्यते । या अस्मत्पदव्यस्तास्तु नैवं भूताः किंत्वव्यक्तलिङ्गाः न व्यक्तं लिङ्गं हेतुर्यासाम्, इच्छामात्रप्रभवत्वात् । अवधूतैर्ब्रह्मविद्भिः सेविताः । अतोऽहमाढ्यः, रुद्रो दरिद्र इति गर्वं मा कृथा इति भावः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

दक्ष ने यह जो कहा था कि ये शङ्करजी चिता के भस्म से स्नान किए रहते है तथा रङ्गे रहते हैं । अतएव इनके पास भोग आदि का अभाव है इसका उत्तर देते हुए सतीजी ने कहा पिताजी हमलोगों ने जिस ऐश्वर्य को अपनाया है, वह अणिमा आदि सिद्धियों से समृद्ध है । वह ऐश्वर्य आपके पास नहीं है । आप का ऐश्वर्य तो यज्ञशालाओं में उन सबों की प्रशंसा यज्ञ के अन्न को खाकर अपने प्राणों को धारण करने वाले धूमादि मार्गानुयायी ही करते हैं । हमारा ऐश्वर्य ऐसा नहीं है । अपितु हमारा ऐश्वर्य अव्यक्त लिङ्ग हैं । इसका कारणव्यक्त नहीं है । वे ऐश्वर्य हमारी इच्छा करने मात्र से ही उत्पन्न हो जाता है । उस ऐश्वर्य का सेवन तो ब्रह्मज्ञानी ही करते हैं अतएव मैं धनवान हूँ और रुद्र दरिद्र हैं, आपको इस प्रकार का अभिमान नहीं करना चाहिए ॥२१॥

नैतेन देहेन हरे कृतागसो देहोद्भवेनालमलं कुजन्मना ।
व्रीडा ममाभूत्कुजनप्रसङ्गतस्तज्जन्म धिग्यो महतामवद्यकृत् ॥२२॥

अन्वयः— हरे कृतागसः देहोद्भवेन एतेन देहेन अलम् अलम् । कुजन प्रसंगतः कुजन्मना मम व्रीडा अभूत् । तत् जन्मधिक् यः महतामवद्यकृत् ॥२२॥

अनुवाद— आपने महापुरुष शङ्कर का अपराध किया है । अतएव आपके शरीर से उत्पन्न इस शरीर से मेरा कोई मतलब नहीं है । आप जैसे दुर्जन से सम्बन्ध रखने वाले मुझे अपने इस निन्दित जन्म पर लज्जा होती है, उस जन्म को धिक्कार है, जिस जन्म से महापुरुषों का अपराध हुआ हो ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

किं बहुनोक्तेनेमं देहं त्यक्ष्याम्येवेत्याह द्वाभ्याम् । एतेन नालं न पूर्यते किम् । अपि त्वलमेव । कथंभूतेन । कुजन्मना। तदेवाह । हरे, कृतापराधस्य तव देहादुद्भूतेनोत्पन्नेन । ननु श्लाघ्योऽयं देहः कथं त्याज्यस्तत्राह । कुजनस्य तव प्रसङ्गतः संबन्धान्मम लज्जाऽभूत् । अतो यो महतामप्रियकर्ता तस्माद्यज्जन्म तद्धिक् । त्वत्संबन्धादश्लाघ्यमित्यर्थः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

बहुत अधिक कहने से कोई लाभ नहीं है, मैं इस देह को त्याग दूँगी इस बात को सतीजी ने दो श्लोकों से कहा है । इतने से ही पूरा नहीं हो गया है क्या अपितु पूरा ही हो गया है प्रश्न है किस प्रकार के कुजन्म से ? तो उसको बतलाती हुयी सती देवी ने कहा शङ्करजी का अपराध करने वाले तुम्हारे शरीर से उत्पन्न हुए इस जन्म से । यदि कहें कि आपका यह शरीर प्रशंसनीय है अतएव इसको क्यों त्यागना चाहती हैं तो इस पर सतीदेवी ने कहा तुम जैसे दुर्जन से सम्बन्ध होने के कारण मुझे इस जन्म से लज्जा हो रही है । अतएव जो महापुरुषों की अप्रिय कर्म करने वाला है, उससे होने वाले जन्म को धिक्कार है । अतएव तुम जैसे दुर्जन से सम्बन्ध होने के कारण मेरा यह जन्म प्रशंसनीय नहीं अपितु निन्दित हैं ॥२२॥

गोत्रं त्वदीयं भगवान्वृषध्वजो दाक्षायणीत्याह यदा सुदुर्मनाः ।
व्यपेतनर्म स्मितमाशु तद्ध्यहं व्युत्स्रक्ष्य एतत् कुणपं त्वदङ्गजम् ॥२३॥

अन्वयः— यदा भगवान् वृषध्वजः त्वदीयं गोत्रं दाक्षायणीत्याहतदा व्यपेत नर्मस्मितम् आशु सुदुर्मना तत् अहं एतत् त्वदङ्गजं कुपणं उत्स्रक्ष्ये ॥२३॥

अनुवाद— जिस समय परिहास में भी भगवान् शङ्कर तुम्हारा नाम लेकर मुझे दाक्षायणी इस नाम से पुकारेगें उस समय मुझे हंसी को भूलकर बड़ी लज्जा और खेद होगी, अतएव उससे पहले मैं तुम्हारे शरीर से उत्पन्न इस कुणप प्राय शरीर को त्याग देती हूँ ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

किंच परिहासादिषु विनोदेनापि दाक्षायणीति संबोधयंस्त्वदीयं त्वत्संबन्धवाचकं गोत्रं नाम यदा वृषध्वज आह गृह्णाति तदाहं व्यपेतनर्म स्मितं यथा भवत्येवं सुदुर्मना अतिदुःखितचित्ता भवामि । तत्तस्माद्धि निश्चितमेतत्कुणपप्रायं व्युत्स्रक्ष्ये त्यक्ष्यामि।।२३।।

भाव प्रकाशिका

जब कभी भी परिहास आदि में विनोद पूर्वक भी भगवान् शिव, तुम्हारे सम्बन्ध से मेरे दाक्षापणी इस नाम को लेकर मुझे भी पुकारेंगे तो मुझे हंसी तो भूल ही जायेगी, किन्तु बहुत अधिक लज्जा होगी और मैं बहुत अधिक दुःखी हो जाऊँगी । अतएव यह कुणप के समान मेरा जो शरीर है, इसको उससे पहले ही त्याग दूँगी ।।२३।।

मैत्रेय उवाच

इत्यध्वरे दक्षमनूद्य शत्रुहन् क्षितावुदीचीं निषसाद शान्तवाक् ।
स्पृष्ट्वा जलं पीतदुकूलसंवृता निमील्य दृग्योगपथं समाविशत् ।।२४।।

अन्वयः— हे शत्रुह्न ! अध्वरे इति दक्षम् अनुद्य जलं स्पृष्ट्वा पीतदुकूल संवृता दृक्निमील्य शान्तवाक् उदीचीं क्षितौ निषसाद योगपथं समाविशत् ।।२३।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे कामादि शत्रुओं को जीतने वाले विदुरजी ! उस यज्ञ मण्डप में इस प्रकार से दक्ष से कहकर सती देवी उत्तर दिशा में मौन होकर भूमि पर बैठ गयीं । उन्होंने आचमन करके पीला वस्त्र ओढ लिया और अपनी आँखें मूंद कर शरीर त्याग करने के लिए योगमार्ग में स्थित हो गयीं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

दक्षं प्रत्यनुवादं कृत्वा शत्रुहन् । क्रोधादिरिपुघातिन् । उदीचीमुदीच्यां दिशि । पाठान्तरे उदङ्मुखी । शान्तवाक् गृहीतमौना। जलं स्पृष्ट्वाचम्य । दृक् दृशम् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

हे शत्रुहन् विदुरजी ! इस तरह से दक्ष से कहकर सती देवी उत्तर दिशा में मौन धारण करके तथा आचमन करके एवं नेत्रों को बन्द करके भूमि पर बैठ गयीं और अपना शरीर परित्याग करने के लिए वे योगमार्ग में प्रवेश कर गयीं ।।२४।।

कृत्वा समानावनिलौ जितासना सोदनमुत्थाप्य च नाभिचक्रतः ।
शनैर्हृदि स्थाप्य धियोरसि स्थितं कण्ठाद्भ्रुवोर्मध्यमनिन्दिताऽनयत् ।।२५।।

अन्वयः— जितासना सा समानौ अनिलौ कृत्वा नाभिचक्रतः उदानमुत्थाप्य धियाशनैः हृदि स्थाप्य सा अनिन्दिताहृदिस्थितं कण्ठाद् भुर्व्रोर्मध्यम् अनयत् ।।२५।।

अनुवाद— अपने आसन को स्थिर करके उन्होंने प्राणायाम के द्वारा प्राण एवं अपान दोनों वायुओं को एक में मिला दिया । उसके पश्चात् नाभिचक्र से उदान वायु को उठाकर उन्होंने हृदय में स्थापित किया । तदनन्तर हृदय में स्थित वायु को अनिन्दिता सती देवी कण्ठ के मार्ग से भृकुटियों के बीच में ले गयीं ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

योगमार्गमेवाह-कृत्वेति । अनिलौ प्राणापानावूर्ध्वाधोवृत्तिकरौ निरोधेन समानावेकरूपौ नाँभिचक्रे कृत्वा तत उदानमुत्थाप्य धिया सह हृदि स्थापयित्वा कण्ठमार्गेण भ्रुवोर्मध्यमनयत् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

सती देवि जिस योगमार्ग में प्रवेश कर गयी थीं उस योगमार्ग का ही वर्णन इस श्लोक में किया गया है अनिलौ शब्द के द्वारा प्राणवायु और अपान वायु को कहा गया है । प्राणवायु ऊपर की ओर जाती है जब कि अपान वायु नीचे की ओर जाती है । इन दोनों वायुओं को सती देवी ने प्राणायाम के द्वारा मिलाकर नाभिचक्र में स्थापित कर दिया । उसके पश्चात् वे उदान वायु को बुद्धि पूर्वक ऊपर की ओर उठाकर हृदय में स्थापित की। तदनन्तर उन्होंने उस वायु को कण्ठ मार्ग से दोनों भौहों के बीच में स्थापित कर दिया ॥२५॥

एवं स्वदेहं महतां महीयसा मुहूः समारोपितमङ्कमादरात् ।
जिहासती दक्षरुषा मनस्विनी दधार गात्रेष्वनिलाग्निधारणाम् ॥२६॥

अन्वयः एवम् महताम् महीयसा आदरात् मुहुअङ्कम् समारोपितं स्वदेहं दक्षरूषा जिहासती मनस्विनी गत्रेषु अनिलाग्नि धारणाम् दधार ॥२६॥

अनुवाद पूजनीयों में श्रेष्ठ भगवान् शिव ने आदर पूर्वक जिसको बार-बार अपनी गोद में बैठाया था उस अपने शरीर को दक्ष पर क्रोध करने के कारण त्याग देने की इच्छा से मनस्विनी सतीदेवी ने अपने सम्पूर्ण अङ्गों में वायु अग्नि की धारणा की ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

महतां पूज्यतमेन श्रीरुद्रेण ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् शिव महापुरुषों में पूज्यतम हैं । उन्होंने सती देवी के शरीर को प्रेम पूर्वक बार-बार अपनी गोद में स्थापित किया था । दक्ष पर क्रोध करने के कारण सती देवी ने उसी शरीर को त्याग देने की इच्छा से अपने अङ्गों में वायु अग्नि की धारणा की ॥२६॥

ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम् ।
ददर्श देहो हतकल्मषा सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिनाग्निना ॥२७॥

अन्वयः— ततः स्वभर्तुः जगद्गुरोः चरणाम्बुजासवं चिन्तयन्ती अपरं न ददर्श हतकल्मषः देहः सती समाधिजाग्निना सद्यः प्रजज्वाल ॥२७॥

अनुवाद—उसके पश्चात् अपने पति जगद्गुरु भगवान् शङ्कर के चरणों का चिन्तन करते-करते उनको अपने पति के चरणों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखायी दिया । उनका शरीर निष्पाप हो गया । इस तरह की सती देवी का शरीर समाधि जन्य अग्नि से जल उठा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

चरणाम्बुजे आसवं भजनानन्दम् । भर्तुरपरं न ददर्श । देहश्च सद्यः प्रज्वलितोऽभूत् । समाधिना योऽग्निस्तेन ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् शिव के चरण रूप कमल मकरन्द का चिन्तन जन्य आनन्द के कारण वे अपने पति से भिन्न किसी भी वस्तु को नहीं देखी । उस समय उनका शरीर समाधिजन्य अग्नि से जल उठा ॥२७॥

तत्पश्यतां खे भुवि चाद्भुतं महद्धाहेति वादः सुमहानजायत ।
हन्त प्रिया दैवतमस्य देवी जहावसून्केन सती प्रकोपिता ॥२८॥

अन्वयः— तत् महत् अद्भुतं पश्यतां हाहा इति सुमहान् वादः खे भुवि च अजायत । हन्त ! दैवतमस्य प्रिया देवी सती केन प्रकोपिता असून् जहौ ॥२८॥

अनुवाद— उस महान् आश्चर्य को देखने वाले लोगों का हाय ! हाय इस प्रकार का कोलाहल पृथिवी से आकाश तक फैल गया । सभी यही कह रहे थे दक्ष के दुरव्यावहार से कुपित होकर भगवान् शङ्कर की प्रियतमा सती देवी ने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

खे भुवि च हाहेत्यादिवादः । तमेवाह । हन्तेति विषादे । दैवतमस्य प्रिया केन दक्षेण प्रकोपिता सती ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

हन्त यह अव्यय विषाद के अर्थ में प्रयुक्त है । भूलोक से आकाश तक लोगों का हाय ! हाय का कोलाहल फैल गया । सब लोग यही कह रहे थे कि दक्ष के दुर्व्यवहार के कारण कुपित होकर शङ्करजी की पत्नी सती ने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ॥२८॥

अहो अनात्म्यं महदस्य पश्यत प्रजापतेर्यस्य चराचरं प्रजाः ।
जहावसून्यद्विमतात्मजा सती मनस्विनी मानमभीक्ष्णमर्हति ॥२९॥

अन्वयः— अहो यस्य प्रजापतेः चराचरं प्रजाः अस्य महत् अनात्म्यं पश्यत, अभीक्ष्णम् मानम् अर्हती मनस्विनी सती, यद्विमता आत्मज असून जहौ ॥२९॥

अनुवाद— अरे ! जिस दक्ष प्रजापति की सन्तान ही चराचर जगत् है उसकी दुष्टता तो देखो । इनकी मनस्विनी पुत्री सती जो सम्मान का पात्र थीं वह इनके द्वारा अपमानित होकर अपने प्राणों का परित्याग कर दीं॥२९॥

भावार्थ दीपिका

महदनात्म्यं दौर्जन्यम् । अस्य सर्वत्र स्नेह एव न्याय्य इत्याहुः-यस्येति । येन विमताऽवज्ञाता ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

अनात्म्यम् दुर्जनता का बोधक है । सब लोग यही कहते थे कि यह दक्ष की बहुत बड़ी दुर्जनता है । इन्होंने सती का अपमान किया है । क्योंकि सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् इनकी सन्तान है । और इनके द्वारा अपमानित होकर देवी सती ने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया ॥२९॥

सोऽयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक् च लोकेऽपकीर्तिं महतीमवाप्स्यति ।
यदङ्गजां स्वां पुरुषद्विडुद्यतां न प्रत्यषेधन्मृतयेऽपराधतः ॥३०॥

अन्वयः— सोऽयं दुर्मर्षहृदयः ब्रह्मध्रुक् च लोके महतीम् । अपकीर्तिम् अवाप्स्यति पुरुषद्विट् अपराधतः मृतये उद्यतां स्वांगजाम् न प्रत्यषेधत् ॥३०॥

अनुवाद— वस्तुतः यह अत्यन्त असहिष्णु और ब्राह्मण द्रोही है, अब यह संसार में बहुत बड़े अपयश को प्राप्त करेगा । इस शिवद्रोही के अपराध से मरने के लिए उद्यत हुयी अपनी पुत्री को इसने रोका भी नहीं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

दुर्मर्षमत्यसहनं हृदयं यस्य । लोके जनमध्ये । चशब्दान्नरकं च । यद्यतः स्वीयामङ्गजां सुतामपराधतः स्वावज्ञया मृतये मरणायोद्यतां न निवारितवान् । पुरुषद्विट् शिवद्वेषी ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

दुर्मर्षम् अर्थात् अत्यन्त असहिष्णु । लोगों ने कहा कि यह अत्यन्त असहिष्णु हृदय वाला है । यह संसार में महान् अपयश को तथा नरक को प्राप्त करेगा क्योंकि इसी के अपराध के कारण मरने के लिए उद्यत हुयी सती को इसने रोका भी नहीं । यह शिव द्वेषी है ॥३०॥

वदत्येवं जने सत्या दृष्ट्वाऽसुत्यागमद्भुतम् । दक्षं तत्पार्षदा हन्तुमुदतिष्ठन्नुदायुधाः ॥३१॥

अन्वयः— एवं जने वदति, सत्याः अद्भुतम् असुत्यागं दृष्ट्वा दक्षं हन्तुम् तत् पार्षदाः उदायुधाः उदतिष्ठन् ॥३१॥

अनुवाद— जिस समय लोग इस प्रकार से कह रहे थे उस समय सती देवी के अद्भुत प्राण त्याग को देखकर शङ्करजी के पार्षद अपना आयुध लेकर दक्ष को मार देने के लिए तैयार हो गये ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

अद्भुतं दृष्ट्वा च ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

सती देवी के अद्भुत प्राणत्याग को देखकर ॥३१॥

तेषामापततां वेगं निशाम्य भगवान्भृगुः । यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहाव ह ॥३२॥

अन्वयः— तेषाम् आपततां वेगं निशाम्य भगवान् भृगु यज्ञघ्ननेन यजुषा दक्षिणाग्नौ ह जुहाव ॥३२॥

अनुवाद— उन आक्रमणकारियों के आक्रमण के वेग को देखकर ऐश्वर्य सम्पन्न महर्षि भृगु ने यज्ञों को विनष्ट करने वालों को विनष्ट करने वाले यजुर्वेद के मन्त्र से दक्षिणाग्नि में होम किया ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञघ्नान्हन्तीति यज्ञघ्नघ्नं तेनापहतं रक्ष इत्यादिना ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञों को विनष्ट करने वालों को विनष्ट करने वाले अपहतं रक्ष, इत्यादि मन्त्र से होम किया ॥३२॥

अध्वर्युणा हूयमाने देवा उत्पेतुरोजसा । ऋभवो नाम तपसा सोमं प्राप्ताः सहस्रशः ॥३३॥

अन्वयः— अध्वर्युणा हूयमाने तपसा सोमं प्राप्ताः ऋभवो नाम सहस्रशः देवाः ओजसा उत्पेतुः ॥३३॥

अनुवाद— यज्ञ के अध्वर्यु महर्षि भृगु ने ज्यों ही आहुति दी त्यों ही यज्ञ कुण्ड से ऋभु नामक हजारो देवता प्रकट हो गये । उन सबों ने अपनी तपस्या से चन्द्रलोक को प्राप्त किया था ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अध्वर्युणा भृगुणा । ये तपसा सोमं प्राप्तास्ते ऋभवो नाम देवा उत्थिताः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

अध्वर्यु भृगु महर्षि के द्वारा । जो लोग तपस्या से सोम को प्राप्त कर लिए थे वे सभी ऋभु नामक देवता उत्पन्न हो गये ॥३३॥

तैरलातायुधैः सर्वे प्रमथा सह गुह्यकाः । हन्यमाना दिशो भेजुरुशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे सतीदेहोत्सर्गो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अन्वयः— ब्रह्मतेजसा उशद्भि तैः आलातायुधैः गुह्यकाः सह हन्यमानाः सर्वेप्रमथाः दिशो भेजुः ॥३४॥

अनुवाद— ब्रह्मतेज से युक्त उन देवताओं द्वारा अलातरूपी आयुध से मारे जाते हुए सभी गुह्यक तथा प्रमथगण जिघस्तिधर भाग गये ॥३४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के सतीदेह त्याग वर्णन नामक चतुर्थ अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मतेजसोशद्भिर्देदीप्यमानैः ।।३४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

वे ऋभु नामक देवता ब्रह्मतेज से देदीप्यमान थे ।।३४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के चौथे अध्याय के शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

◆

पाँचवाँ अध्याय

वीरभद्र कृत दक्षयज्ञविध्वंस तथा दक्षवध

मैत्रेय उवाच

भवो भवान्या निधनं प्रजापतेरसत्कृताया अवगम्य नारदात् ।
स्वपार्षदसैन्यं च तदध्वरर्भुभिर्विद्रावितं क्रोधमपारमादधे ॥१॥

अन्वयः— नारदात् प्रजापतेः असत्कृतायाः भवान्याः निधनं तदध्वरर्मुभिः द्रावितं स्वपार्षद सैन्यं च अवगम्य भवः अपारं क्रोधम् आदधे ॥१॥

अनुवाद— नारदजी के मुख से प्रजापति दक्ष से अनादृत सती देवी की मृत्यु तथा उस यज्ञ के कुण्ड से उत्पन्न ऋभु नामक देवताओं के प्रहार से अपने पार्षदों की सेना का पलायन सुनकर शङ्करजी को अपार क्रोध हुआ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चमे तु सतीदेहत्यागमाकर्ण्य शङ्करः । वीरभद्रं रुषोत्पाद्य तेन दक्षमघातयत् ॥१॥ प्रजापतेर्हेतोर्निधनम् । कुतः तेनासत्कृतायाः । तस्याध्वरे ऋभवो देवास्तैः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सती के देह त्याग को सुनकर शङ्करजी ने क्रोध करके वीरभद्र को उत्पन्न करके उनके द्वारा दक्ष को मरवा दिया, इसी अर्थ का वर्णन पाँचवें अध्याय में किया गया है ॥१॥ प्रजापति के द्वारा अपमानित होने के कारण सती देवी द्वारा अपने शरीर का त्याग तथा ऋभु नामक देवताओं द्वारा अपने पार्षदों की सेना को भगाया जाना सुनकर शङ्करजी को अपार क्रोध उत्पन्न हुआ ॥१॥

क्रुद्धः सुदष्टोष्ठपुटः स धूर्जटिर्जटां तडिद्वह्निसटोग्ररोचिषम् ।
उत्कृत्य रुद्रः सहसोत्थितो हसन्गम्भीरनादो विससर्ज तां भुवि ॥२॥

अन्वयः— क्रुद्धः स धूर्जटि रुद्रः तडिद् बह्निसटोग्ररोचिषम् जटां उत्कृत्य सहसा हसन् उत्थितः गम्भीरनादः तां भुवि विससर्ज ॥२॥

अनुवाद— उग्ररूप धारण किए शङ्करजी ने क्रोध करके अपने ओठ को काट लिया और उन्होंने विद्युत् तथा अग्नि की ज्वाला के समान उग्र कान्ति वाली अपनी एक जटा को उखाड़ कर एक बार हँसते हुए खड़े हो गये तथा अट्टहास करते हुए वे उस जटा को पृथिवी पर पटक दिए ॥२॥

भावार्थ दीपिका

स धूर्जटिः रुद्रो घोरः सन् जटामुत्कृत्योत्पाट्योत्थितः संस्तां भुवि विससर्ज । सुदष्ट ओष्ठपुटो येन । तडितां वह्नीनां च सटा ज्वालास्तद्वदुग्रं रोचिर्यस्यास्ताम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

वे शङ्कर अपना उग्ररूप धारण कर लिए और अपनी एक जटा को उखाड़कर अचानक खड़े हो गये और उस जटा को पृथिवी पर पटक दिए । क्रोध के कारण उन्होंने अपने ओष्ट को काट लिया था । उनकी उस जटा की ज्वाला विद्युत् और अग्नि की कान्ति के समान उग्र थी ॥२॥

ततोऽतिकायस्तनुवा स्पृशन्दिवं सहस्रबाहुर्घनरुक् त्रिसूर्यदृक् ।
करालदंष्ट्रो ज्वलदग्निमूर्धजः कपालमाली विविधोद्यतायुधः ॥३॥

अन्वयः— ततः अतिकायः जातः तनुवा दिवं स्पृशन्, सहस्रबाहुः धनरुक् त्रिसूर्यदृक्, कराल दंष्ट्रः ज्वलदग्निमूर्धजः, कपालमाली विविधोद्यतायुधः ॥३॥

अनुवाद— उस जटा से विशालकाय वीरभद्र उत्पन्न हो गये, वे अपने शरीर की ऊँचाई से स्वर्ग का स्पर्श कर रहे थे, उनकी हजार भुजाएँ थीं, मेघ के समान उनका श्याम वर्ण का शरीर था, उनके तीन सूर्यों के समान चमकते हुए तीन नेत्र थे, उनके लम्बे और भयङ्कर दाँत थे, उनके केश जलती हुयी अग्नि के समान लाल-लाल थे वे नरमुण्डों की माला धारण किए थे तथा वे अपने हाथों में अनेक प्रकार के आयुधों को धारण किए थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

ततो जटायाः सकाशादतिकायो वीरभद्रो जात इति शेषः । तनुवा तन्वा देहेन दिवं स्पृशन् । अत्युच्च इत्यर्थः । घनरुक् कृष्णवर्णः । त्रयः सूर्या इव दृशो यस्य । करालास्तुङ्गा दंष्ट्रा यस्य । ज्वलदग्निरिव मूर्धजा यस्य । कपालमालायुक्तः । विविधान्युद्यतान्यायुधानि यस्य ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उस जटा से विशालकाय वीरभद्र उत्पन्न हो गये । उनका शरीर इतना ऊँचा था कि वे स्वर्ग स्पर्श कर रहे थे । उनका शरीर मेघ के समान काला था । उनके नेत्र तीन सूर्यों के समान चमक रहे थे । उनके दाँत भयङ्कर और ऊँचे थे । उनके केश जलती हुयी अग्नि के समान लाल थे । वे नरमुण्डों की माला धाराण किए थे । वे अनेक प्रकार के आयुधों को धारण किए हुए थे ॥३॥

तं किं करोमीति गृणन्तमाह वद्धाञ्जलिं भगवान्भूतनाथः ।
दक्षं सयज्ञं जहि मद्भटानां त्वमग्रणी रुद्रभटांशको मे ॥४॥

अन्वयः— किं करोमि इति गृणन्तं बद्धाञ्जलिम् तम् भगवान् भूतनाथः आह रुद्र भट मे त्वम् अंशकः मदभटानाम् अग्रणी सयज्ञं दक्षं जहि ॥४॥

अनुवाद— भगवन् मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ, इस तरह से हाथ जोड़कर उसके कहने पर भगवान् भूतनाथ शङ्करजी ने कहा । हे वीर रुद्र ! तुम मेरे अंश हो, मेरे वीरों के तुम अधिनायक हो जाओ तथा दक्ष एवं दक्ष के यज्ञ को विनष्ट कर दो ॥४॥

भावार्थ दीपिका

हे रुद्र, हे भट युद्धकुशल, मद्भटानां त्वमग्रणीः सन्सयज्ञं दक्षं जहि। ब्रह्मतेजो दुर्जयमिति मामंस्थाः। यतस्त्वं मेंऽशकः॥४॥

भाव प्रकाशिका

शङ्करजी ने कहा— हे रुद्र ! तुम युद्ध करने में कुशल हो, तुम मेरे बीरों के अधिनायक हो । जाओ दक्ष और उसके यज्ञ को विनष्ट कर दो । यह तुम मत समझना कि ब्रह्मतेज को जीतना कठिन है, क्योंकि तुम मेरा अंश हो ॥४॥

आज्ञप्त एवं कुपितेन मन्युना स देवदेवं परिचक्रमे विभुम् ।
मेने तदात्मानमसङ्गरंहसा महीयसां तात सहःसहिष्णुम् ॥५॥

अन्वयः— हे तात् ! कुपितेन मन्युना एवं आज्ञप्तः सः देवदेव विभुम् परिचक्रमे, तदा आत्मानम् असङ्गरंहसा महीयसां सहः सहिष्णुम् मेने ॥५॥

अनुवाद— कुपित हुए भगवान् शङ्कर के द्वारा क्रोध पूर्वक इस तरह से आदेश दिए जाने पर वीरभद्र ने देवाधिदेव व्यापक भगवान् शिव की परिक्रमा की, उसने अपने में अनुभव किया कि मेरे वेग को कोई भी बर्दास्त नहीं कर सकता है और मैं बड़े-से-बड़े वीर के भी वेग को वर्दास्त कर सकता हूँ ॥५॥

भावार्थ दीपिका

मन्युना रुद्रेण । परिचक्रमे प्रदक्षिणीचकार । असङ्गमप्रतिघातं यद्रंहो वेगस्तेन । भो तात, महीयसां बलीयसामपि सहः सहिष्णुं बलं सोढुं क्षमं मेने ॥५॥

भाव प्रकाशिका

क्रुद्ध हुए शङ्करजी के द्वारा आदेश दिए जाने के पश्चात् उसने शङ्करजी की परिक्रमा की । इस समय उसने अनुभव किया कि मेरे वेग को कोई रोक नहीं सकता है और बलवानों के भी वेग को सह सकने में अपने को समर्थ माना ॥५॥

अन्वीयमानः स तु रुद्रपार्षदैर्भृशं नदद्भिर्व्यनदत्सुभैरवम् ।
उद्यम्य शूलं जगदन्तकान्तकं स प्राद्रवद्घोषणभूषणाङ्घ्रिः ॥६॥

अन्वयः— स तु भृशं नदद्भिः रुद्रपार्षदैः अन्वीय मानः सुभैरवम् व्यनदत् जगदन्तकान्तकं शूलं उद्यम्य सः घोषणभूषणाङ्घ्रिः प्राद्रवत् ॥६॥

अनुवाद— वह वीरभद्र बहुत अधिक गर्जना करने वाले रुद्र के पार्षदों द्वारा उनका अनुगमन किए जाने पर वीरभद्र ने भयङ्कर गर्जना की । उसने संसार का अन्त करने वाले मृत्यु का भी विनाश कर देने वाले त्रिशूल को उठाकर दक्ष के यज्ञ मण्डप की ओर दौड़ पड़ा । उस समय वीरभद्र के पैरों का नूपूर ध्वनि कर रहा था ॥६॥

भावार्थ दीपिका

जगदन्तको मृत्युस्तस्याप्यन्तकं शूलम् । घोषयन्ति शब्दं कुर्वन्तीति घोषणानि नूपुरादीनि भूषणानि ययोस्तावङ्घ्री यस्य सः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

जगदन्तक मृत्यु को कहते हैं उस मृत्यु का भी विनाश कर देने वाले त्रिशूल को उठाकर वह दौड़ा । उस समय उसके दोनों पैरों के भूषण आवाज कर रहे थे ॥६॥

अथर्त्विजो यजमानः सदस्याः ककुभ्युदीच्यां प्रसमीक्ष्य रेणुम् ।
तमः किमेतत्कुत एतद्रजोऽभूदिति द्विजा द्विजपत्न्यश्च दध्युः ॥७॥

अन्वयः— अथ ऋत्विजः, यजमानः, सदस्याः, द्विजाः, द्विजपत्न्यः च उदीच्यां ककुभि रेणुम् प्रसमीक्ष्य एतत् तमः किम्, एतद्रजः कुतः अभूत् इति दध्युः ॥७॥

अनुवाद— इसके पश्चात् यज्ञशाला में बैठे हुए ऋत्विज, यजमान, सदस्यगण दूसरे ब्राह्मणगण और ब्राह्मणों की पत्नियाँ उत्तर दिशा में उठी हुयी धूल को देखकर सोचने लगे कि यह अन्धेरा सा कैसे छा रहा है, यह धूल कहाँ से उड़ रही हैं ?॥७॥

भावार्थ दीपिका

कुकुभि दिशि । तमो न भवति किंतु रज इति ज्ञात्वाहुः । रज एतत्कुतोऽभूत् । दध्युश्चिन्तयामासुः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

कुकुभि अर्थात् दिशा में उड़ती हुयी धूल को देखकर यह सोचने लगे कि यह अन्धकार तो नहीं है, किन्तु यह धूल कहाँ से आ रही हैं ॥७॥

वाता न वान्ति न हि सन्ति दस्यवः प्राचीनबर्हिर्जीवति होग्रदण्डः ।
गावो न काल्यन्त इदं कुतो रजो लोकोऽधुना किं प्रलयाय कल्पते ॥८॥

अन्वयः— वाता न वान्ति, दस्यवः न हि सन्ति, ह उग्रदण्डः प्राचीनबर्हि जीवति, गावो न काल्यन्ते इदं रजः कुतः अधुना लोकः प्रलयाय कल्पते किम् ॥८॥

अनुवाद— इस समय आंधी नहीं चल रही है, इस समय लुटेरे भी नहीं हैं, क्योंकि दुष्टों को कठोर दण्ड देने वाले राजा प्राचीनबर्हि जीवित हैं । तो फिर यह धूलि कहाँ से आ रही है, क्या इसी संसार का प्रलय होने वाला है ?॥८॥

भावार्थ दीपिका

हेत्वन्तरासंभवेनौत्पातिकं कल्पयन्ति-वाता इति । दस्यूनामभावे हेतुः- प्राचीनवर्हिस्तदा नीन्तनो राजा जीवतीति । न काल्यन्ते न शीघ्रं नीयन्ते ॥८॥

भाव प्रकाशिका

किसी दूसरे हेतु के न होने के कारण सबों ने माना कि लगता है कि यह कोई उत्पात होने वाला है । लुटेरों के अभाव का कारण यह है कि उस समय के राजा प्राचीनबर्हि जीवित हैं । यह गायों के लाने की बेला भी नहीं है कि गायें शीघ्रता से घर लायी जा रही हों ॥८॥

प्रसूतिमिश्राः स्त्रिय उद्विग्नचित्ता ऊचुर्विपाको वृजिनस्यैष तस्य ।
यत्पश्यन्तीनां दुहितॄणां प्रजेशः सुतां सतीमवदध्यावनागाम् ॥९॥

अन्वयः— उद्विग्नचित्ता प्रसूति मिश्राः स्त्रियः ऊचुः एष तस्य वृजिनस्य विपाकः यत् पश्यन्तीनां दुहितॄणां अनागाम् सुताम् सतीम् अवदध्यौ ॥९॥

अनुवाद— तब दक्षपत्नी प्रसूति तथा अन्य स्त्रियों ने व्याकुल होकर कहा यह उस पाप का परिणाम है कि अपनी सारी कन्याओं के सामने ही निरपराध पुत्री सती का तिरस्कार किया है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

प्रसूतिर्दक्षपत्नी सा मिश्रा मुख्या यासाम् । विपाकः फलम् । पश्यन्तीनामिति तस्याः दुःखाधिक्ये हेतुः- अवदध्याववज्ञातवान्। अनागामनागसाम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

जिनमें दक्ष की पत्नी प्रसूति प्रधान थी, उन स्त्रियों ने कहा कि यह उस पाप का परिणाम है, दक्ष ने दूसरी

सारी पुत्रियों के सामने ही निर्दोष सती का अपमान किया। सभी पुत्रियों के सामने ही अपमान करना सती के दु:खाधिक्य का कारण था ॥९॥

यस्त्वन्तकाले व्युप्तजटाकलापः स्वशूलसूच्यर्पितदिग्गजेन्द्रः ।
वितत्य नृत्यत्युदितास्त्रदोर्ध्वजानुच्चाट्टहासस्तनयित्नुभिन्नदिक् ॥१०॥

अन्वयः— यस्त्वन्त काले व्युप्तजटकलापः स्वशूल सूच्यर्पितदिगजेन्द्रः वितत्यनृत्यतास्त्रदोर्ध्वजान् उच्चादृहासः स्तनयित्नुभिन्नदिक् ॥१०॥

अनुवाद— प्रलय काल के उपस्थित होने पर जब वे अपने जटा-जूट को फैलाकर शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित अपनी भुजाओं को ध्वजाओं के समान फैलाकर ताण्डव नृत्य करते हैं उस समय उनके त्रिशूल के अग्रभाग से दिग्गज विंध जाते हैं और उनके मेघ के समान भयङ्कर अट्टहास से दिशाएँ विदीर्ण हो जाती हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

न चेदं सुतावज्ञामात्रं किंतु रुद्रावज्ञानं च, अतो नास्य भद्रं भविष्यतीत्याहुः- यस्त्विति द्वाभ्याम्। व्युप्तो विकीर्णो जटाकलापो यस्य। स्वशूलस्य सूच्यामग्रेऽर्पिताः प्रोता दिग्गजेन्द्रा येन। उदितान्युन्नमितान्यस्त्राणि यैस्ते। दोषो बाहव एव ध्वजास्तान्वितत्य हर्षेण नृत्यति। उच्चोऽट्टहासः कठोरो हास एव स्तनयित्नुर्गर्जितं तेन भिन्ना विदीर्णा दिशो येन सः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यह केवल पुत्री का ही अपमान नहीं है, अपितु यह रुद्र का भी अपमान है। अतएव इन दक्ष का कल्याण नहीं हो सकता है। इस बात को **यस्तु० इत्यादि** दो श्लोकों से कहा गया है। प्रलय काल के उपस्थित होने पर वे अपनी जटाओं को फैला देते हैं और ताण्डव नृत्य करते हैं तो उनके त्रिशूल के अग्रभाग से दिग्गज विंध जाते हैं। उस समय अपने हाथों में अस्त्रों को उठाकर भुजाओं को ध्वजा के समान फैलाकर हर्ष से नृत्य करते हैं। उस समय वे मेघ की गर्जना के समान जोर से अट्टहास करते हैं उसके कारण दिशाएँ भी विदीर्ण हो जाती हैं ॥१०॥

अमर्षयित्वा तमसह्यतेजसं मन्युप्लुतं दुर्विषहं भ्रुकुट्या ।
करालदंष्ट्राभिरुदस्तभागणं स्यात्स्वस्ति किं कोपयतो विधातुः ॥११॥

अन्वयः— असह्यतेजसं दुर्विषहं भ्रुकुट्या करालदंष्टाग्र रुदस्तभागणं तम् अमर्षयित्वा मन्युप्लुतं कोपयतः विधातुः स्वस्ति स्यात् किम् ॥११॥

अनुवाद— उस समय उनका तेज असह्य हो जाता है, भौहों के टेढ़ी होने के कारण दुर्धर्ष बने हुए जिनके भयङ्कर दाँतों के कारण तारागण अस्तव्यस्त हो जाते हैं, उन क्रोध में भरे हुए शिवजी को बार-बार क्रुद्ध करने वाले चाहे विधाता ही क्यों न हो वे कल्याण पूर्वक रह सकते हैं क्या ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अमर्षयित्वाऽसहनयुक्तं कृत्वा। मन्युप्लुतं क्रोधव्याप्तम्। उदस्तो विक्षिप्तो भगणो नक्षत्रसङ्घो येन। पुनश्च तं कोपयतो विधातुरपि किं स्वस्ति स्यान्न स्यादेव, काऽन्यस्य कथा ॥११॥

भाव प्रकाशिका

उनके नाराज हो जाने के कारण क्रोधाविष्ट हो जाने पर उनके भयङ्कर दाँतों से तारागण भी अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। उसके पश्चात् उनको कुपित बनाने वाले विधाता का भी कल्याण हो सकता है क्या ? नहीं हो सकता है। तो फिर दूसरों की कौन सी बात हैं ॥११॥

एवं बहूद्विग्रदृशोच्यमाने जनेन दक्षस्य मुहुर्महात्मनः ।
उत्पेतुरुत्पाततमाः सहस्रशो भयावहा दिवि भूमौ च पर्यक् ॥१२॥

अन्वयः— महात्मनः दक्षस्य जनेन एवम् बहु उद्विग्नदृशा उच्यमाने, दिवि भूमौ च सहस्रशः पर्यक् भयाबहाः उत्पाततमाः उत्पेतुः ॥१२॥

अनुवाद— महात्मा दक्ष के लोगों द्वारा अत्यन्त उद्विग्न नेत्रों से देखकर बार-बार कहे जाते रहने पर ही पृथिवी और आकाश में चारो ओर हजारो प्रकार के भयङ्कर उत्पात होने लगे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

उद्विग्रा प्रचलिता दृग्यस्य तेन जनेन बहु यथा भवत्येवमुच्यमाने सत्युत्पाततमा महोत्पाता उत्थिताः । पर्यक् सर्वतश्च। कथंभूताः । महात्मनोऽपि दक्षस्य भयावहाः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों के नेत्र उद्विग्न हो गये थे ऐसे दक्ष के लोग जब कह रहे थे उसी समय महात्मा दक्ष के लिए भयप्रद चारो ओर उत्पात होने लगे ॥१२॥

तावत्स रुद्रानुचरैर्मखो महान्नानायुधैर्वामनकैरुदायुधैः ।
पिङ्गैः पिशङ्गैर्मकरोदराननैः पर्याद्रवद्भिर्विदुरान्वरुध्यत ॥१३॥

अन्वयः— हे विदुर ! तावत् पर्याद्रवद्भिः नानायुधैः वामनकैः उदायुधैः पिङ्गैः पिशङ्गैः मकरोदराननैः रुद्रानुचरैः महान मखः अन्वरुध्यत ॥१३॥

अनुवाद— हे विदुर ! उसी समय दौड़कर आये हुए अनेक प्रकार के आयुधों को धारण किए हुए वामन, भूरे, पीले तथा मगर के समान पेट तथा मुख वाले रुद्र के अनुचरों ने चारो ओर से उस महान यज्ञशाला को चारो ओर से घेर लिया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

नानायुधानि येषाम् । वामनकैर्ह्रस्वैः । उद्यतायुधैः । पिङ्गैः कपिलैः पीतैः । मकरस्येवोदरमाननं च येषां तैः । परितो धावद्भिरवरुद्धः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

अनेक आयुधों वाले, छोटे आकार वाले, आयुधों को उठाये हुए जो पीले, भूरे मगर के समान मुख और पेट वाले थे ऐसे रुद्र के अनुचरों ने चारो ओर से यज्ञशाला को घेर लिया ॥१३॥

केचिद्बभञ्जुः प्राग्वंशं पत्नीशालां तथा परे । सद आग्नीध्रशालां च तद्विहारं महानसम् ॥१४॥

अन्वयः— केचित् प्राग्वंशं बभज्जुः तथा अपरे पत्नीशालाम्, केचित् सदः आग्नीध्रशालां केचित् तद्विहारम् महानसंच ॥१४॥

अनुवाद— किसी ने प्राग्वंश को तोड़ दिया, दूसरे पार्षदों ने पत्नीशाला को विनष्ट कर दिया, कुछ पार्षदों ने सभामण्डप और आग्नीध्रशाला को विनष्ट कर दिया तो कुछ पार्षदों ने दक्ष के निवास स्थान और महानस (पाकशाला) को ही विनष्ट कर दिया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञशालायाः पूर्वपश्चिमस्तम्भयोरर्पितं पूर्वपश्चिमायतं काष्ठं प्राग्वंशस्तम् । यज्ञशालायाः पश्चिमतः पत्नीशाला ताम्

यज्ञशालाया: पुरत: स्थितं सदोमण्डपम् । सदस: पुरो हविर्धानं तस्योत्तरत अग्नीध्रशालाम् । तद्विहारं यजमानगृहम् । महानसं पाकभोजनशालाम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

यज्ञशाला के पूर्व और पश्चिम स्तम्भों पर आड़े लगाये गये डण्डे (प्राग्वंश) को तोड़ दिया, दूसरे पार्षदों ने यज्ञशाला के पश्चिम दिशा में विद्यमान पत्नीशाला को तोड़ डाला, कुछ पार्षदों ने यज्ञमण्डप के सामने विद्यमान सभामण्डप और उस सभामण्डप के आगे विद्यमान हविर्धान और उसकी उत्तर दिशा में स्थित आग्नीध्रशाला को विनष्ट कर दिया । कुछ पार्षदों ने दक्ष के निवास स्थान को ही नष्ट भ्रष्ट कर दिया और कुछ पार्षदों ने पाकशाला भोजनालय को ही तोड़-फोड़ दिया ।।१४।।

रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तथैकेऽग्नीननाशयन् । कुण्डेष्वमूत्रयन्केचिद्विभिदुर्वेदिमेखला: ।।१५।।

अन्वय:— यज्ञपात्राणि रुरुजु: तथा एके अग्नीन् अनाशयन्, केचित् कुण्डेषु अमूत्रयन् वेदिमेखला: विभिदु: ।।१५।।

अनुवाद— कुछ लोगों ने यज्ञ पात्रों को तोड़ डाला, कुछ लोगों ने अग्नियों को बुझा दिया, कुछ पार्षदों ने कुण्डों में मूत्र त्याग कर दिया और कुछ लोगों ने यज्ञवेदी की मेखलाओं को ही तोड़ डाला ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

रुरुजुर्बभञ्जु: । उत्तरेवेद्या मेखला: सीमासूत्राणि। 'आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया' इति हेतोर्न ते दोषभाजिन इति भाव:।।१५।।

भाव प्रकाशिका

कुछ लोगों ने यज्ञ पात्रों को तोड़ दिया । रुरुजु: का अर्थ है तोड़ दिया । कुछ लोगों ने उत्तर वेदी की मेखलाओं के सीमा सूत्रों को ही तोड़ दिया । अब प्रश्न होता है कि तब तो वे दोष के भागी हो गये होंगे । तो इसका उत्तर है कि गुरुजनों की आज्ञा पर विचार नहीं करना चाहिए । शङ्करजी ने ही आज्ञा दी थी यज्ञ को विनष्ट कर देने की अतएव वे दोष के पात्र नहीं हुए ।।१५।।

अबाधन्त मुनीनन्य एके पत्नीरतर्जयन् । अपरे जगृहुर्देवान्प्रत्यासन्नान्पलायितान् ।।१६।।

अन्वय:— अन्ये मुनीन् अबाधन्त एके पत्नी: अतर्जयन्, अपरे प्रत्यासन्नान् पलायितान् देवान् जगृहु: ।।१६।।

अनुवाद— कुछ लोग मुनियों को तङ्ग करने लगे, कुछ लोग स्त्रियों को डराने, धमकाने लगे कुछ लोगों ने अपने सन्निकट भागते हुए देवताओं को पकड़ लिया ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

प्रत्यासन्नान्पलायितान्समीपस्थान्पलायितानपि जगृहु: ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

कुछ पार्षदों ने सन्निकट से भागते हुए देवताओं को तथा कुछ सन्निकट में विद्यमान और भागते हुए देवताओं को पकड़ लिया ।।१६।।

भृगुं बबन्ध मणिमान्वीरभद्र: प्रजापतिम् । चण्डीश: पूषणं देवं भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत् ।।१७।।

अन्वय:— मणिमान् भृगुं बबन्ध, वीरभद्र: प्रजापतिं बन्ध चण्डीश: पूषणं बबन्ध नन्दीश्वर: भगं देवं अग्रहीत् ।।१७।।

अनुवाद— मणिमान् ने महर्षि भृगु को बाँध दिया, वीरभद्र ने दक्ष प्रजापति को बाँध दिया, चण्डीश ने पूषा देवता को बाँध दिया और नन्दीश्वर ने भगदेवता को पकड़ लिया ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।१७।।

सर्व एवर्त्विजो दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः । तैरर्द्यमानाः सुभृशं ग्रावभिर्नैकधाऽद्रवन् ॥१८॥

अन्वयः— सर्वे एव ऋग्विजः सदिवौकसः सदस्या, दृष्ट्वा तैः ग्रावभिः स्त्रुभृशं अर्द्यमानाः नैकधा अद्रवन् ॥१८॥

अनुवाद— सभी ऋत्विज देवता और सदस्य सबके सब यह सब कुछ देखकर तथा शङ्करजी के पार्षदों द्वारा पत्थरों से बहुत अधिक मारे जाते हुए वहाँ से जिधर-तिधर भागने लगे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

ग्रावभिरर्द्यमानाः नैकधा अनेकधा दुद्रुवुः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

पत्थरों से मारे जाते हुए उस यज्ञ के ऋत्विज, देवता और सदस्य सबके सब जिधर-तिधर भाग गये ॥१८॥

जुह्वतः स्त्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान्भवः । भृगोर्लुलुञ्चे सदसि योऽहसच्छ्मश्रु दर्शयन् ॥१९॥

अन्वयः— जुहुवतः स्त्रुवहस्तस्य भृगोः श्मश्रूणि भगवान् भवः ललुञ्चे यः यः सदासि श्मश्रुदर्शयन अहसत् ॥१९॥

अनुवाद— हाथ में स्त्रुवा लेकर होम करने वाले महर्षि भृगु की दाढी मूंछ को वीर भ्रद ने नोच लिया, क्योंकि इन्होंने ब्रह्मसभा में अपनी दाढ़ी को दिखाते हुए शङ्करजी का उपहास किया था ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

स्त्रुवो हस्ते यस्य । भवो वीरभद्रः । लुलुञ्चे उत्पाटितवान् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

स्त्रुव हाथ में लिए हुए भृगु की दाढी वीरभद्र ने नोच ली ॥१९॥

भगस्य नेत्रे भगवान्यातितस्य रुषा भुवि । उज्जहार सदस्थोऽक्ष्णा यः शपन्तमसूसुचत् ॥२०॥

अन्वयः— रुषा भुवि पातितस्य भगस्य नेत्रे भगवान् उज्जहार सदस्थो यः शपन्तम् अक्ष्णा असूसुचत् ॥२०॥

अनुवाद— क्रोध करके भूमि पर पटके गये भग देवता के नेत्रों को वीरभद्र ने निकाल लिया, क्योंकि ब्रह्म सभा में बैठे हुए ये शङ्करजी को शाप देने वाले दक्ष को इन्होंने अपनी आँखों के इशारे से प्रेरित किया था ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

उज्जहारोद्धृतवान् । यः सदस्थः सभायां स्थितः सन् शपन्तं शिवनिन्दां कुर्वन्तं दक्षमक्ष्णाक्षिनिकोचेनासूसुचत्प्रेरितवान्॥२०॥

भाव प्रकाशिका

उज्जहार पद का अर्थ निकाल ली है । जो भृगु देवता सभा में बैठे हुए शिवजी की निन्दा करने वाले दक्ष को अपनी आँखों के ईशारे से दक्ष को निन्दा करने के लिए प्रेरित किए थे ॥२०॥

पूष्णश्चापातयद्दन्तान्कालिङ्गस्य यथा बलः । शप्यमाने गरिमणि योऽहसद्दर्शयन्दतः ॥२१॥

अन्वयः— कलिङ्गस्य बलो यथा पूष्णः च दन्तान् पातयत् यः शप्यमाने गरिमणि दतः दर्शयन् अहसत् ॥२१॥

अनुवाद— अनिरुद्ध के विवाह में जिस तरह से बलरामजी ने कलिङ्गराज के दाँतों को तोड़ दिया था उसी तरह से वीरभद्र ने पूषा देवता के दाँतों को तोड़ दिया था । क्योंकि जब शङ्करजी को दक्ष शाप दे रहे थे उस समय पूषा देव अपने दाँतों को दिखाते हुए हँस रहे थे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

कलिङ्गदेशराजस्यानिरुद्धोद्वाहे बलभद्रो यथा द्यूते दन्तान्पातितवान् । गरिमणि गुरुतरे रुद्रे निन्द्यमाने दतो दन्तान्दर्शयन्यो

जहास। पूष्णोरिति पाठे द्विवचनं 'ऐन्द्रापौष्णश्चरुर्भवति' इत्यत्रान्यसहितस्यापि पूष्णो दन्तपातप्राप्तयर्थं सूचितवान्। तथाहि 'पूषा प्रपिष्टभागोऽदन्तको हि तं देवा अब्रुवन्' इति विहितस्य पेषणस्य द्विदैवत्याभावात्तत्र, तस्य दन्ताः सन्तीति वक्तव्यं स्यात् नचैतत्सङ्गच्छत इत्याशङ्क्य तत्रापि तस्य दन्तपातोऽवस्थाभेदे प्रवृत्तेन द्विवचनेन प्राप्यते, अतएव पूष्णोऽनुग्रहं द्वेधा वक्ष्यति। 'पूषा तु यजमानस्य दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक्' इति। केवलश्चेत्प्रपिष्टभुग्भविष्यति। अन्यसहितश्चेद्यजमानस्य दद्भिर्भक्षयिष्यतीत्यर्थः।।२१।।

भाव प्रकाशिका

अनिरुद्ध के विवाह के अवसर पर द्यूतक्रीडा के अवसर पर बलभद्रजी ने कलिङ्गराज के दाँतों को तोड़ दिया था। उसी तरह जब शङ्करजी को ब्रह्मसभा में दक्ष शाप दे रहे थे उस समय पूषा अपने दाँतों को दिखाकर हँसे थे, उनके दाँतों को वीरभद्र ने तोड़ दिया था। जहाँ पर पूष्णोः पाठ है वहाँ पर द्विवचनान्त पाठ **'ऐन्द्रापौष्णश्चरुर्भवति'** इस श्रुति के अनुसार पूषा के साथ रहने वाले इन्द्र देवता के भी दन्त पात को सूचित किया गया है। उसी तरह से **पूषा प्रविष्ट भागोऽदन्तको हि तं देव अब्रुवन्** अर्थात् **पूषा देवता** दाँत से रहित होने के कारण अच्छी तरह से पीसे गये भाग को ग्रहण करने वाले हैं, उनको देवताओं ने कहा इस वाक्य में विहित पेषण का द्विवचन प्रयोग नहीं है, अतएव वहाँ पर इन्द्र के दाँत थे यह कहना चाहिए। **न चैतत्० इत्यादि** किन्तु इसका यहाँ पर समन्वय नहीं होता है। इस प्रकार की आशङ्का करके वहाँ पर भी उनकी अवस्था के भेद में द्विवचन की प्रवृत्ति हो जाती है। इसीलिए शङ्करजी ने पूषा देवता पर दो प्रकार से अनुग्रह किया है। **पूषा यजमानस्य दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक्** अर्थात् पिसे हुए अन्न को खाने वाले पूषा देवता यजमान के दाँतों से अपने भाग का भोग करें। अर्थात् यदि वे अकेले रहें तो वे पिष्ट पदार्थ का ही भोग करे। यदि वे इन्द्र के साथ रहें तब यजमान के दाँतों से भोग करें।।२१।।

आक्रम्योरसि दक्षस्य शितधारेण हेतिना। छिन्दन्नपि तदुद्धर्तुं नाशक्नोत्त्र्यम्बकस्तदा ।।२२।।

अन्वयः— दक्षस्य उरसि आक्रम्य शित धारेण हेतिना छिन्दन्नपि त्र्यम्बकः तदुद्धर्तुं नाशक्नोत् तदा ।।२२।।

अनुवाद— उसके पश्चात् जब दक्ष की छाती पर चढ़कर तीक्ष्ण धार वाले तलवार से उसका शिर काटने लगे किन्तु बहुत प्रयास करने पर भी धड़ से अलग नहीं कर सकें ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

छिन्दन्नपीत्यत्र शिर इत्युपरि व्यक्तीभविष्यति। त्र्यम्बको वीरभद्रः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

धिन्दन्नपि यहाँ पर यद्यपि शिर शब्द का प्रयोग नहीं है फिर भी आगे शिर को काटते हुए यह स्पष्ट हो जायेगा ।।२२।।

शस्त्रैरस्त्रान्वितैरेवमनिर्भिन्नत्वचं हरः। विस्मयं परमापन्नो दध्यौ पशुपतिश्चिरम् ।।२३।।

अन्वयः— अस्त्रान्वितैः शस्त्रैः एवमनिर्भिन्नत्वचं दृष्ट्वा परम विस्मयम् आपन्नौ हरः पशुपति चिरम् दध्यौ ।।२३।।

अनुवाद— शस्त्रों के द्वारा किसी भी प्रकार से उसकी त्वचा को नहीं काटते हुए देखकर वीरभद्र को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और वे दीर्घकाल तक विचार किए ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

अस्त्रान्वितैर्मन्त्रसहितैः। अनिर्भिन्ना त्वग्यस्य तथाभूतं द्रष्ट्वेति शेषः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

मन्त्रों से अभिमन्त्रित शस्त्रों से दक्ष की त्वचा नही कटते हुए देखकर वीरभद्र को बड़ा आश्चर्य हुआ ।।२३।।

दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं पशूनां स पतिर्मखे । यजमानपशोः कस्य कायात्तेनाहरच्छिरः ॥२४॥

अन्वयः— सः पशूनां पतिः मखे संज्ञपनं योगं दृष्ट्वा यजमानपशोः कस्य कायात् शिरः अहरत् ॥२४॥

अनुवाद— वीरभद्र तब यज्ञीय पशुओं के संज्ञपन प्रकार को देखकर उसी प्रकार से उस यजमान पशु के शिर को उसके धड़ से अलग कर दिए ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

स पशूनां पतिर्मखे संज्ञपनं योगं कण्ठनिष्पीडनादिरूपं मारणोपायं दृष्ट्वा तेनोपायेनाहरत् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

वीरभद्र यज्ञ में पशुओं के कण्ठ निष्पीडन इत्यादि उपायों को देखकर उसी उपाय से उस यजमान पशु के शिर को उसके धड़ से अलग कर दिए ॥२४॥

साधुवादस्तदा तेषां कर्म तत्तस्य शंसताम् । भूतप्रेतपिशाचानामन्येषां तद्विपर्ययः ॥२५॥

अन्वयः— तदा तस्य तत् कर्म शंसताम् भूतप्रेत पिशाचानाम् साधुवादः अन्येषां तद्विपर्ययः ॥२५॥

अनुवाद— वीरभद्र के उस काम को देखकर भूत प्रेत पिशाच आदि तो वीरभद्र को साधुवाद देने लगे किन्तु दक्ष के पक्ष वालों में हाहाकार मच गया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अन्येषां ब्राह्मणादीनां तद्विपर्ययोऽसाधुवादः अभूदिति शेषः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे जो ब्राह्मण इत्यादि थे वे वीरभद्र के कर्म की निन्दा करने लगे ॥२५॥

जुहावैतच्छिरस्तस्मिन्दक्षिणाग्नावमर्षितः । तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद्गुह्यकालयम् ॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञविध्वंसो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अन्वयः— अमर्षितः एतच्छिरः तस्मिन् दक्षिणाग्नौजुहाव, तद् देवयजनं दग्ध्वा गुह्यकालयम् प्रातिष्ठत् ॥२६॥

अनुवाद— अत्यन्त कुपित वीरभद्र ने दक्ष के शिर को उस यज्ञ की दक्षिणाग्नि में होम कर दिया और उस यज्ञशाला में आग लगाकर कैलास के लिए प्रस्थान किए ॥२६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

भावार्थ दीपिका

गुह्यकालयं कैलासम् ॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

गुह्यकालय कैलास को कहते हैं । वहीं वीरभद्र चले गये ॥२६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के पाञ्चवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥५॥

छठा अध्याय

ब्रह्मादि देवताओं का कैलास जाकर शङ्करजी को प्रसन्न करना

मैत्रेय उवाच

अथ देवगणाः सर्वे रुद्रानीकैः पराजिताः। शूलपट्टिशनिस्त्रिंशगदापरिघमुद्गरैः ॥१॥
संछिन्नभिन्नसर्वाङ्गाः सर्त्विक्सभ्या भयाकुलाः। स्वयंभुवे नमस्कृत्य कार्त्स्न्येनैतन्न्यवेदयन् ॥२॥

अन्वयः— अथ रुद्रानीकैः पराजिताः शूल पट्टिशनिस्त्रिंश गदापरिघमुद्गरैः संछिन्न-भिन्न सर्वाङ्गा सर्त्विक्सभ्याः भयाकुलाः सर्वे देवगणाः स्वयम्भुवे नमस्कृत्य एतत् कार्त्स्न्येन न्यवेदयन् ॥१-२॥

मैत्रेयजी महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे विदुरजी ! रुद्र के सेवकों के द्वारा पराजित, तथा रुद्रानुचरों के त्रिशूल, पट्टिश, खड्ग, गदा, परिघ और मुद्गर आदि आयुधों के प्रहार से जिनके सम्पूर्ण अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गये थे, इस प्रकार के उस यज्ञ के ऋत्विज, सभासद सदस्य, तथा सभी देवता गण अत्यन्त भयभीत हो गये थे । वे ब्रह्माजी के पास गये और उनको नमस्कार करके, उस यज्ञ में हुयी सारी घटना को पूर्ण रूप से सुनायें ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

षष्ठे तु देवसङ्घेन सह गत्वा भवं विधिः । सान्त्वयामास दक्षादि जीविताद्यर्थमादरात्॥१॥ अथ देवगणाः स्वयंभुवे न्यवेदयन्निति द्वितीयेनान्वयः ॥१॥ शूलादिभिः संछिन्नानि त्रुटितानि भिन्नानि विदीर्णान्यङ्गानि येषाम् । सह ऋत्विग्भिः सभ्यैश्च वर्तमानाः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

छठे अध्याय में देव समूह के साथ ब्रह्माजी शिवजी के पास जाकर दक्ष आदि के जीवन इत्यादि का वरदान देकर सबों का सान्त्वना प्रदान किए ॥१॥ उसके पश्चात् सभी देवताओं ने ब्रह्माजी से सारी बातें बतायी । इस पहले श्लोक का दूसरे श्लोक के न्यवेदयन् पद के साथ अन्वय है ॥१॥ त्रिशूल आदि के प्रहार से जिन सबों के अङ्ग कट गये थे । जो उस यज्ञ में ऋत्विक् और सभ्य (सदस्य) वर्तमान थे वे सब के सब घायल हो गये थें ॥१-२॥

उपलभ्य पुरैवैतद्भगवानब्जसंभवः । नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमीयतुः ॥३॥

अन्वयः— एतत् पुरैव उपलभ्य भगवान् अब्जसंभवः विश्वात्मा नारायणश्च कस्य अध्वरम् न ईयतुः ॥३॥

अनुवाद— इस होने वाले उत्पात् को पहले ही जान जाने के कारण दक्ष प्रजापति के यज्ञ में ब्रह्माजी तथा सम्पूर्ण जगत की आत्मा भगवान् नारायण ये दोनों नहीं आये थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

कस्य दक्षस्य यज्ञे ब्रह्मा विष्णुश्च नेयतुर्न जग्मतुः । यत्रारुद्रको यज्ञस्तत्र नारायणविरिञ्चावपि नागतौ ॥३॥

भाव प्रकाशिका

दक्ष प्रजापति के यज्ञ में ब्रह्माजी तथा भगवान् विष्णु भी नहीं गये थे । जिस यज्ञ में रुद्र का भाग नहीं होता है । उस यज्ञ में ब्रह्माजी और भगवान् नारायण भी नहीं जाते हैं ॥३॥

तदाकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृतागसि । क्षेमाय तत्र सा भूयान्न प्रायेण बुभूषताम् ॥४॥

अन्वयः— तत् आकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृतागसि,प्रायेण बुभुषताम् तत्र क्षेमाय न भूयात् ॥४॥

अनुवाद— देवताओं से सारी बातों को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा कि यदि किसी परम तेजस्वी पुरुष से कोई अपराध भी हो जाय तो उसके बदले में अपराध करने वालों का कल्याण नहीं होता हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

विभुर्ब्रह्मा । तेजीयस्यतितेजस्विनि पुरुषे कृतागसि सत्यपि स्वयं तत्र कृतागसा बुभूषतामपराधं कर्तुमिच्छतां सा तथा बुभूषा तेषां क्षेमाय न भूयात् । प्रायेणेति लोकोक्तिः । भवेदेवेत्यर्थः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा कि यदि किसी परम तेजस्वी पुरुष से कोई अपराध हो भी जाय तो उसके बदले में यदि दूसरा व्यक्ति भी अपराध करना चाहे तो उसके द्वारा वह किया गया अपराध कल्याणकारी नहीं होता है, यह लोकोक्ति है ।।४।।

अथापि यूयं कृतकिल्बिषा भवं ये बर्हिषो भागभाजं परादुः ।
प्रसादयध्वं परिशुद्धचेतसा क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीताङ्घ्रिपद्मम् ।।५।।

अन्वयः— अथापि यूयं भवं कृतक्ल्विषा ये बर्हिषदः भागभाजं परिशुद्धचेतसा क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीताङ्घ्रिपद्मम् प्रसादयघ्वम्।।५।।

अनुवाद— तुम लोगों ने शिव का अपराध किया है, क्योंकि यज्ञ में उनके भाग को नहीं प्रदान किया है। फिर भी शुद्ध अन्तःकरण से शीघ्र प्रसन्न होने वाले शङ्करजी के पैरों को पकड़कर उनको तुम लोग प्रसन्न करो।।५।।

भावार्थ दीपिका

अथापि प्रसादयध्वं क्षमापयत । ये भवन्तो बर्हिषो यज्ञस्य भागभाजं परादुर्दूरादेव खण्डितवन्तः । प्रगृहीताङ्घ्रिपद्मं पादौ प्रगृह्येत्यर्थः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

आपलोगों ने यज्ञ के भाग को उन्हें नही प्रदान किया है फिर भी उनके चरण कमलों को पकड़कर उनको प्रसन्न करो ।।५।।

आशासाना जीवितमध्वरस्य लोकः सपालः कुपितेन यस्मिन् ।
तमाशु देवं प्रियया विहीनं क्षमापयध्वं हृदि विद्धं दुरुक्तैः ।।६।।

अन्वयः— दुरुक्तै हृदिविद्धं, प्रियया विहीनं अध्वरस्य जीवितम् आशासान् तं देवम् आशुक्षमापयध्वं यस्मिन् कुपिते सपालः लोकः न ।।६।।

अनुवाद— दक्ष के दुर्वचनों के कारण उनका हृदय विद्ध हो गया है, साथ ही उनकी प्रियतमा पत्नी का वियोग भी हो गया है, यदि तुम लोग चाहते हो कि पुनः यज्ञ प्रारम्भ होकर पूरा हो जाय तो उन महादेव को जाकर शीघ्र प्रसन्न करो । अन्यथा उनके कुपित होने पर लोकपालों के साथ संसार नहीं बचेगा ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अध्वरस्य जीवितं पुनः संधानं प्रार्थयमानाः सन्तः । यस्मिन्कुपिते सति सपालो लोको न भवेन्नश्येदित्यर्थः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप लोग यज्ञ को पुनः प्रारम्भ होकर उसकी पूर्णता चाहते हैं तो तुम लोग उनको प्रसन्न करो । उनके क्रुद्ध हो जाने पर लोकपालों सहित सम्पूर्ण लोक का नाश हो जायेगा ।।६।।

नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम् ।
विदुः प्रमाणं बलवीर्ययोर्वा यस्यात्मतन्त्रस्य क उपायं विधित्सेत् ।।७।।

अन्वयः— यस्यात्मतन्त्रस्य बलवीर्ययोः प्रमाणं अहं न, यज्ञो न, यूयम् अन्ये च ये देहभाजः मुनयश्च तत्त्वं न विदुः कः उपायं विधित्सेत् ।।७।।

अनुवाद— जिस परम स्वतन्त्र भगवान् शङ्कर के बल एवं पराक्रम के प्रमाण को ठीक-ठीक न तो मै, न तो उस समय के इन्द्र यज्ञ, तुमलोग तथा दूसरा कोई शरीरधारी नहीं जानता है, तो फिर दूसरों की बात ही क्या है, उनको शान्त करने का दूसरा कौन सा उपाय किया जा सकता है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

वयं तु तत्र गन्तुं विभीमस्त्वमेव कंचिदुपायं विधत्स्वेति चेदत आह-नेति । यज्ञस्तदानींतन इन्द्रः । यस्य तत्त्वं बलवीर्ययोः प्रमाणमियत्तां च न विदुः । वीर्यं पराक्रमः । पापमिति पाठेऽपराधम् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

यदि देवता कहें कि हमलोग तो उनके पास जाने से डरते हैं, अतएव आप कोई उपाय करें तो इसके उत्तर में ब्रह्माजी ने कहा जिन शङ्करजी के बल और पराक्रम की सीमा को कोई नहीं जानता है, उनके क्रोध को शान्त करने का कौन सा उपाय हो सकता है । यज्ञ शब्द से तात्कालिक इन्द्र को कहा गया है । जहाँ पाप पाठ है, वहाँ अपराध अर्थ होगा ।।७।।

स इत्थमादिश्य सुरानजस्तैः समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः ।
ययौ स्वधिष्ण्यान्निलयं पुरद्विषः कैलासमद्रिप्रवरं प्रियं प्रभोः ।।८।।

अन्वयः— स अजः इत्थम् सुरान् आदिश्य तैः सप्रजेशैः पितृभिः समन्वितः स्वधिष्ण्यात् पुरद्विषः निलयं प्रभोः प्रियं अद्रि प्रवरं कैलासं ययौ ।।८।।

अनुवाद— वे ब्रह्माजी इस प्रकार से देवताओं को आदेश देकर उन देवताओं, प्रजापतियों तथा पितरों को साथ लेकर अपने लोक से भगवान् शङ्कर के प्रियधाम तथा पर्वतों में श्रेष्ठ कैलास पर्वत पर गये ।।८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।८।।

जन्मौषधितपोमन्त्रयोगसिद्धैर्नरेतरैः । जुष्टं किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा ।।९।।

अन्वयः— जन्मौषधितपो मन्त्रयोगसिद्धैः नरेतरैः किन्नर गन्धर्वैः अप्सरोभिः वृतं, सदा जुष्टं कैलासं ययौ ।।९।।

अनुवाद— जन्म से ही औषधितप, मन्त्र, योग आदि साधनों से ही सिद्ध देवताओं, किन्नर, गन्धर्व तथा अप्सराओं से घिरे हुए और उन सबों से सेवित पर्वत श्रेष्ठ कैलास पर्वत पर गये ।।९।।

भावार्थ दीपिका

कैलासं वर्णयति— जन्मौषधीत्यादिचतुर्दशभिः । नरेतरैः देवैर्जुष्टम् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

जन्मौषधि इत्यादि चौदह श्लोकों से कैलास पर्वत का वर्णन करते हैं । वह कैलास पर्वत देवताओं से सेवित हैं।।९।।

नानामणिमयैः शृङ्गैर्नानाधातुविचित्रितैः । नानाद्रुमलतागुल्मैर्नानामृगगणावृतैः ।।१०।।
नानाऽमलप्रस्रवणैर्नानाकंदरसानुभिः । रमणं विहरन्तीनां रमणैः सिद्धयोषिताम् ।।११।।

अन्वयः—नानाधातुविचित्रितैः नानामणिमयैः शृङ्गैः नानादुमलतागुल्मैः नानामृगगणावृतैः नानाऽमलप्रस्रवणैः नानाकन्दर सानुभिः रमणैः विहरन्तीनां सिद्धयोषिताम् रमणम् कैलासं ययौ ।।१०-११।।

अनुवाद— अनेक प्रकार के धातुओं से रङ्ग विरङ्ग प्रतीत होने वाले अनेक मणिमय शिखरों से, अनेक प्रकार के वृक्ष, लता एवं गुल्मों से तथा अनेक प्रकार के पशु समूहों से घिरे हुए, जल के अनेक निर्मल झरनों तथा अनेक कन्दराओं की शिखरों से तथा अपने प्रियतमों के साथ विहार करने वाली सिद्धों की पत्नियों से मनोहर बने कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गये ।।१०-११।।

भावार्थ दीपिका

शृङ्गै रमणं रतिप्रदमित्युत्तरेणान्वयः । कथंभूतैः । नानाधातुभिर्विचित्रितैः नानाद्रुमलतागुल्माश्च येषु । नाना अमलानि प्रस्रवणानि येषु । नाना कन्दराः सानवश्च येषु । रमणैः सह क्रीडन्तीनाम् ॥१०-११॥

भाव प्रकाशिका

इस दशवें श्लोक का अगले श्लोक के रमणं पद से अनवय है । अनेक प्रकार के धातुओं से रङ्ग-विरङ्ग प्रतीत होने वाले, शिखरों जिन पर अनेक प्रकार के वृक्ष, लता और गुल्म विद्यमान हैं । तथा अनेक स्वच्छ झरनों से युक्त, जिनमें अनेक कन्दराएँ और शिखर हैं तथा अपने पतियों को साथ क्रीड़ा करने वाली सिद्धों की पत्नियों से मनोहर लगने वाले कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गये ॥१०-११॥

मयूरकेकाभिरुतं मदान्धालिविमूर्च्छितम् । प्लाविते रक्तकण्ठानां कूजितैश्च पतत्रिणाम् ॥१२॥

अन्वयः— मयूरकेकाभिरुतं मदान्धालिविमूर्च्छितम् रक्तकण्ठानां पतत्रिणाम् प्लवितैः कूजितैश्च रमणं कैलासंययौ॥१२॥

अनुवाद— मोरों की ध्वनि से ध्वनित तथा भ्रमरों के गुंजार से गुंजित कोयलों तथा दूसरे पक्षियों की ध्वनि से गुंजित उस कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गये ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

मयूराणां केकाभिः स्वनैर्नादितम् । मदान्धैरलिभिर्विमूर्च्छितं मूर्च्छना रागगतिविशेषस्तवाप्तं कृतम् । रक्तकण्ठानां कोकिलानां प्लुवितैः प्लुतत्वं नीतैः स्वरैः अन्येषां च पतत्रिणां कूजितैः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

जहाँ मयूरों की ध्वनि होती रहती है, मदमत्त भौंरे गुंजार करते रहते हैं, कोयलों तथा दूसरे पक्षियों की ध्वनि जहाँ सुनायी देती है, ऐसे कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गये ॥१२॥

आह्वयन्तमिवोद्धस्तैर्द्विजान्कामदुघैर्द्रुमैः । व्रजन्तमिव मातङ्गैर्गृणन्तमिव निर्झरैः ॥१३॥

अन्वयः— उद्धस्तैः कामदुधैः द्रुमैः द्विजान् आह्वयन्तमिव, मातङ्गैः व्रजन्तमिव, निर्झरैः गृणन्तमिव कैलासं ययौ॥१३॥

अनुवाद— कल्प वृक्षों की उन्नत शाखाओं रूपी उठाये हुए हाथों से वह मानो पक्षियों को बुला रहा हो, चलते हुए हाथियों के द्वारा जैसे वह चल रहा हो, तथा झर-झर की ध्वनि करने वाले झरनों के द्वारा मानों वह बोल रहा हो ऐसे कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

उद्धस्तैरुन्नतशाखैर्द्रुमैर्द्विजान्पक्षिण आह्वयन्तमिव । लोके हि हस्तमुत्क्षिप्योच्चैःस्वरेणाऽऽह्वानमर्थिनां कुर्वन्ति । अद्रिश्चोत्क्षिप्तहस्ताकारैर्द्रुमैस्तत्रत्यपक्षिस्वनैश्च तथा लक्ष्यत इत्यर्थः । व्रजद्भिर्मातङ्गैर्व्रजन्तमिव निर्झरध्वनिभिर्गृणन्तं भाषमाणमिव॥१३॥

भाव प्रकाशिका

उस पर्वत के वृक्ष अपनी उन्नत शाखाओं रूपी हाथों को उठाकर जैसे पक्षियों को बुला रहे हों, लोक में भी देखा जाता है कि लोग अपने हाथों को उठाकर याचकों को बुलाते हैं । यह पर्वत भी अपने उठाये हुए हाथों के समान वृक्षों से तथा वहाँ के पक्षियों की ध्वनि से मालुम पड़ता है कि वह भी पक्षियों को बुलाता है । चलने वाले हाथियों के द्वारा लगता है कि वह पर्वत ही चल रहा है, उसके झरनों की ध्वनियों से मालुम पड़ता है कि वह बोल रहा है । इस प्रकार के कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गये ॥१३॥

मन्दारैः पारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम् । तमालैः शालतालैश्च कोविदारासनार्जुनैः ॥१४॥
चूतैः कदम्बैर्नीपैश्च नागपुन्नागचम्पकैः । पाटलाशोकबकुलैः कुन्दैः कुरबकैरपि ॥१५॥

अन्वयः— मन्दारै, पारिजातैः च, सरलैः, तमालै; शालतालैः कोविदारासनार्जुनैः चूतैः, कदम्बैः नीपैः च नाग, पुन्नाग, चम्पकैः, पाटलशोक बकुलैः कुन्दैः कुरबकैः अपि शोभितम् कैलासं पयौ ॥१४-१५॥

अनुवाद— मन्दार, पारिजात, सरल, तमाल, शाल, ताड़, कचनार, असन तथा अर्जुन के वृक्षों से आम, कदम्ब, नीप नाग, पुन्नाग, चम्पा, गुलाब, अशोक, मौलसिरी तथा कुन्द एवं कुरबक के वृक्षों से सुशोभित कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गये ॥१४-१५॥

भावार्थ दीपिका

चूताम्रयोर्नीपकम्बयोरवान्तरजातिभेदः । वेणुकीचकयोश्च नीरन्ध्रसरन्ध्रत्वेन भेदः ॥१४-१५॥

भाव प्रकाशिका

चूत तथा आम इन दोनों की जातियाँ अलग-अगल हैं इसी तरह नीप और कदम्ब की जातियाँ अलग-अलग है । वेणु छिद्र रहित होता है और कीचक बाँसों में छिद्र होते हैं, इस तरह इन दोनों में भेद हैं ॥१४-१५॥

स्वर्णार्णशतपत्रैश्च वररेणुकजातिभिः । कुब्जकैर्मल्लिकाभिश्च माधवीभिश्च मण्डितम् ॥१६॥

अन्वयः— स्वर्णशतपत्रैः च वररेणुक जातिभिः, कुब्जकैः, मल्लिकाभिश्च, माधवीभिश्च शोभितम् ययौ ॥१६॥

अनुवाद— सुनहरे शतपत्र कमल, इलायची, तथा मालती की मनोहर लताओं, कुब्जक, मोगरा तथा माधवी लता से भी सुशोभित कैलास पर ब्रह्माजी गये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

स्वर्णार्णैः स्वर्णवर्णैः शतपत्रैर्मण्डितम् । रेणुकजातिभिरित्यत्र रेणुका एला । जातिर्मालती ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

स्वर्णिम कमलों से समलंकृत इलायची तथा मालती से सुशोभित कैलास पर ब्रह्माजी गये ॥१६॥

पनसोदुम्बराश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधहिङ्गुभिः । भूर्जैरोषधिभिः पूगै राजपूगैश्च जम्बुभिः॥१७॥
खर्जूराम्रातकाम्राद्यैः प्रियालमधुकेङ्गुदैः । द्रुमजातिभिरन्यैश्च राजितं वेणुकीचकैः ॥१८॥

अन्वयः— पनसोदुम्बराश्वत्थप्लक्षन्यग्रोध हिंगुभिः, भूर्जैः, ओषधिभि पूगैः राजपूगैः जम्बुभिः, खर्जूराम्रतका म्राद्यैः प्रियालमधुकेङ्गुदैः, अन्यैः द्रुमजातिभिः, वेणुकीचकैः राजितम् ययौ ॥१७-१८॥

अनुवाद— कटहल, गूलर, पीपल, पाकड़, बड़, गूगल, भोजपत्र, ओषधि, जाति के पेड़, सुपारी, राजपूग, जामुन, खजूर, आमड़ा, आम, पिप्पल, महुआ, लिसोड़ा, आदि विभिन्न प्रकार के वृक्षों, वेणु तथा कीचक जाति के बाँसों से सुशोभित कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गयें ॥१७-१८॥

भावार्थ दीपिका

द्रुमजातिभिरित्यत्र जातिरवान्तरभेदसामान्यम् ॥१७-१८॥

भाव प्रकाशिका

दुमजातिभिः पद में जाति शब्द अवान्तरभेदसामान्य का बोधक है ॥१७-१८॥

कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रवनर्द्धिभिः । नलिनीषु कलं कूजत्खगवृन्दो पशोभितम् ॥१९॥

अन्वयः— कुमुदोत्पल कह्लार शतपत्रवर्द्धिभिः नलिनीषु कलंकूजत् खगवृन्दोप शोभितम् ॥१९॥

अनुवाद— वहाँ के सरोवरों में कुमुद, उत्पल, कह्लार तथा शपतत्र आदि अनेक प्रकार के कमल विकसित थे तथा कमलिनियों पर मनोहर कूजन करने वाले पक्षी वृन्द से वह पर्वत सुशोभित था ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

कुमुदादिसमृद्धिभिर्हेतुभिर्नलिनीषु सरस्सु कलं मधुरं यथा भवत्येवं कूजन्ति यानि पक्षिवृन्दानि तैरुपशोभितम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

कुमुद आदि पुष्पों की समृद्धि के कारण सरोवर में विद्यमान कमलिनियों पर मनोहर कलरव करने वाले पक्षियों से वह पर्वत सुशोभित था । ऐसे कैलास पर्वत पर ब्रह्माजी गये ॥१९॥

मृगैः शाखामृगैः क्रोडैर्मृगेन्द्रैर्ऋक्षशल्यकैः । गवयैः शरभैर्व्याघ्रै रुरुभिर्महिषादिभिः ॥२०॥
कर्णान्त्रैकपदाश्वास्यैर्निर्जुष्टं वृकनाभिभिः । कदलीषण्डसंरुद्धनलिनीपुलिनश्रियम् ॥२१॥
पर्यस्तं नन्दया सत्याः स्नानपुण्यतरोदया । विलोक्य भूतेशगिरिं विबुधा विस्मयं ययुः॥२२॥

अन्वयः— मृगैः शाखामृगैः क्रोडैः मृगेन्द्रैः ऋक्षशल्यकैः गवयैः शरभैः, व्याघ्रैः रुरुभिः महिषादिभिः कर्णान्त्रैक पदाश्वास्यैः वृकनभिभिः, जुष्टं कदलीखण्डसंरुद्धनलिनीपुलिनश्रियम्, सत्याः स्नानपुण्यदपतरोदया नन्द या पर्यस्तुं भूतेशगिरिं विलोक्य विवुधाः विस्मयं ययुः ॥२०-२२॥

अनुवाद— जहाँ-तहाँ हरिण, मृग, वानर, सूअर, सिंह, रीछ, साही, नीलगाय, शरभ, बाघ, कृष्णमृग भैंसे, कर्णान्त्र, एकपाद, अश्वमुख, भेंड़िये, और कस्तूरी मृगों से सुशोभित, कैलास पर्वत के सरोवरों के तट केलों की पंक्तियों से सुशोभित थे । उसके चारो ओर से सती देवी के स्नान करने से पवित्र जलवाली नन्दा नाम की नदी प्रवाहित होती थी । भूतनाथ के इस प्रकार के पर्वत को देखकर देवताओं को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥२०-२२॥

भावार्थ दीपिका

मृगादिभिर्निर्जुष्टं निषेवितम् । पूर्वं मृगगणाः शृङ्गविशेषणत्वेनोक्ता इदानीं स्वातअेणेत्यपौनरुत्तयम् । नाभिभिः कस्तूरीमृगैः कदलीषण्डैः संरुद्धान्यावृतानि नलिनीनां पुलिनानि तैः श्रीः शोभा यस्मिन् । नन्दया गङ्गया पर्यस्तं परिवेष्टितम् । सत्या भवान्याः स्नानेन पुण्यतरमतसुगन्धमुदकं यस्याम् ॥२०-२२॥

भाव प्रकाशिका

वह कैलास पर्वत मृग आदि से सुशोभित था । पहले मृगगणों का वर्णन श्रृंग विशेषण रूप से कहे गये हैं, और यहाँ पर उन सबों को स्वतन्त्र रूप से वर्णन किया गया है अतएव इसमें पुनरुक्ति दोष नहीं है । नाभि शब्द से कस्तूरी मृगों को कहा गया है केलों की पंक्तियों से जिनकी शोभा आवृत है इस तरह के सरोवरों के तटों से उस पर्वत की शोभा हो रही थी । वह पर्वत नन्दा नाम की गङ्गा से घिरा हुआ था । सती देवी के स्नान करने से नन्दा गङ्गा का जल अत्यन्त सुगन्धित हो गया था । भूतनाथ शङ्करजी के इस प्रकार के पर्वत को देखकर देवताओं को अत्यधिक आश्चर्य हुआ ॥२०-२२॥

ददृशुस्तत्र ते रम्यामलकां नाम वै पुरीम् । वनं सौगन्धिकं चापि यत्र तन्नाम पङ्कजम् ॥२३॥

अन्वयः— ते तत्र अलका नाम रम्यां पुरीम् यत्र तन्नाम पङ्कजंतत् सौगन्धिकं वनं ददृशु; ॥२३॥

अनुवाद— उन देवताओं ने वहाँ पर अलका नाम की नगरी तथा सौगन्धिक कमलों वाले सौगन्धिक नाम के वन को देखा ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तत्र गिरौ वनं च ददृशुः । यत्र वने तन्नाम सौगन्धिकं पङ्कजं भवति । जातावेकवचनम् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

देवताओं ने उस पर्वत पर सौगन्धिक नामक वन को देखा । उस वन में सौगन्धिक नामक कमल होता है पद्म यह एकवचनान्त प्रयोग जाति के अर्थ में किया गया है ।।२३।।

नन्दा चालकनन्दा च सरितौ बाह्यतः पुरः । तीर्थपादपदाम्भोजरजसाऽतीव पावने ।।२४।।

अन्वयः— तीर्थपादपदाम्भोजरससतीव शोभने पुरः वाह्यतः नन्दा च अलकनन्दा च सरितौ प्रवहतः ।।२४।।

अनुवाद— तीर्थपाद श्रीहरि के चरणों की धूलि से अत्यन्त पवित्र बनी हुयी नन्दा और अलकनन्दा पुरी के बाहर प्रवाहित होती हैं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

पुरीं वर्णयति-नन्दा चेति चतुर्भिः । सरितौ पुरः पुराद्‌बाह्यतो भवतः । तीर्थपादस्य हरेः पादाम्भोजरजसा ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

नन्दाच० इत्यादि चार श्लोकों के द्वारा पुरी का वर्णन किया गया है । पुरी से बाहर दो नदियाँ प्रवाहित होती हैं, नन्दा और अलकनन्दा वे दोनों तीर्थपाद श्रीहरि के चरणों के रज के कारण अत्यन्त पवित्र हैं ।।२४।।

ययोः सुरस्त्रियः क्षत्तरवरुह्य स्वधिष्ण्यतः । क्रीडन्ति पुंसः सिञ्चन्त्यो विगाह्य रतिकर्शिताः ।।२५।।

अन्वयः— हे क्षत्तः रतिकर्शिताः सुरस्त्रियः स्वधिष्ण्यतः अवरुध्य, ययोः विगाह्य पुंसः सिञ्चन्त्यः क्रीडन्ति ।।२५।।

अनुवाद— हे विदुरजी ! रतिक्रीडा से श्रान्त देवताओं की स्त्रियाँ अपने निवास स्थान से आकर उन नदियों में प्रवेश कर अपने पतियों पर जल उलीचती हुयी क्रीडा करती हैं ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

ययोर्विगाह्य प्रविश्य क्रीडन्ति ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

उन नदियों में प्रवेश करके क्रीड़ा करती हैं ।।२५।।

ययोस्तत्स्नानविभ्रष्टनवकुङ्कुमपिञ्जरम् । वितृषोऽपि पिबन्त्यम्भः पाययन्तो गजा गजीः ।।२६।।

अन्वयः— तत् स्नानविभ्रष्टनवकुंकुमपिञ्जरम् ययोः अम्भः वितृषोऽपि गजाः गजीः पाययन्तः पिबन्ति ।।२६।।

अनुवाद— देव स्त्रियों के स्तनों पर नवीन लगाये गये कुङ्कुम के उन नदियों में स्नान करने के कारण छूट जाने से पिले बने हुए जल को प्यास लगे बिना भी सुगन्धि के लोभ से हाथी अपनी हथिनियों को जल पिलाते हुए पीते हैं।।२६।।

भावार्थ दीपिका

ययोरम्भो विगततृषोऽपि गजाः पिबन्ति । तत्र हेतुः तासां सुरस्त्रीणां स्नानेन विभ्रष्टं गलितं यन्नवं कुङ्कुमं तेन पिञ्जरं पीतवर्णम् । गजीः करिणीः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

उन दोनों नदियों के जल को प्यास नहीं रहने पर भी हाथी अपने हथिनियों को पिलाते हुए पीते हैं । उसका कारण है कि देवस्त्रियों के स्नान करने से छूटे हुए नवीन कुङ्कुम के कारण वह जल पीला बन गया हैं ।।२६।।

तारहेममहारत्नविमानशतसङ्कुलम् । जुष्टां पुण्यजनस्त्रीभिर्यथा खं सतडिद्धनम् ॥२७॥
हित्वा यक्षेश्वरपुरीं वनं सौगन्धिकं च तत् । द्रुमैः कामदुघैर्हृद्यं चित्रमाल्यफलच्छदैः ॥२८॥

अन्वयः— तारहेमहारत्नविमानशत सङ्कुलम् सतडिद्धनम् एवं यथा पुण्यजनस्त्रीभिःजुष्टां यक्षेश्वरपुरीं, हित्वा कामदुधैः द्रुमैः चित्रमाल्यफलच्छदैः हृद्यं तत सौगन्धिकं वनं आययुरिति शेषः ॥२७-२८॥

अनुवाद— चाँदी, सुवर्ण तथा बहुमूल्य मणियों से निर्मित सैकड़ों विमान अलकापुरी के ऊपर विद्यमान थे जिनमें अनेक यक्ष पत्नियों का निवास था । उसके कारण वह नगरी बिजली से युक्त मेघों से आच्छन्न के समान प्रतीत होती थी । इस तरह से कुबेर की उस नगरी को त्यागकर वे देवगण उस सौगन्धिक वन मे गये । वह वन अनेक प्रकार के फलों, फूलों और पत्तों वाले कल्प वृक्षों से सुशोभित था ॥२७-२८॥

भावार्थ दीपिका

तारं रूप्यम् । तारादिमयविमानानां शतैः सङ्कुलाम् । तडिद्भिः स्त्रीणां, घनैर्विमानानां, खेन पुर्याः सादृश्यम् । यक्षेश्वरपुरीं हित्वाऽतिक्रम्य तद्वनं च दृष्ट्वा ते देवा आराद्दूराद्वटं ददृशुरिति चतुर्थेनान्वयः । कथंभूतं वनम् । चित्राणि माल्यानि फलानि छदाश्च पत्राणि येषु तैर्द्रुमैर्हृद्यं सुखकरम् ॥२७-२८॥

भाव प्रकाशिका

तार चाँदी को कहते हैं । चाँदी, सुवर्ण और रत्नों आदि से निर्मित सैकड़ों विमानों से भरी हुयी वह अलकापुरी विद्युत् से युक्त मेघों से छायी हुयी के समान प्रतीत होती है । यहाँ विद्युत् से स्त्रियों की, मेधों से विमानों की और आकाश से नगरी की समता बतायी गयी है । यक्षों के राजा कुबेर की नगरी को त्यागकर उस बन को देखकर देवगण सन्निकट में विद्यमान उस बट को देखे इस चौथे श्लोक के साथ अन्वयः है । इस वन की विशेषता यह थी कि रङ्गविरङ्गे मालाओं, फलों, छदों, तथा पत्तों के कारण अत्यन्त सुखद प्रतीत होता था ॥२७-२८॥

रक्तकण्ठखगानीकस्वरमण्डितषट्पदम् । कलहंसकुलप्रेष्ठं खरदण्डजलाशयम् ॥२९॥
वनकुञ्जरसंघृष्टहरिचन्दनवायुना । अधिपुण्यजनस्त्रीणां मुहुरुन्मथयन्मनः ॥३०॥
वैदूर्यकृतसोपाना वाप्य उत्पलमालिनीः । प्राप्तं किंपुरुषैर्दृष्टवा त आराद्ददृशुर्वटम् ॥३१॥

अन्वयः— रक्तकण्ठखगानीक स्वरमण्डित षटपदम् कलहंस कुलप्रेष्ठं, खरदण्डजलाशयं वनकुञ्जरसंघृष्ट हरिचन्दनवायुना, अधिपुण्यजनस्त्रीणाम् मनः मुहुरुन्मथयन्, वैदूर्यकृतसोपानाः, उत्पलमालिनीः, वाप्यः किम्पुरुषैः दृष्ट्वा आरात् प्राप्तं वटम् ददृशुः ॥२९-३१॥

अनुवाद— वह वन कोकिल आदि अनेक पक्षियों के कलरवो से और भ्रमरों के गुञ्जन के स्वर से अलंकृत था । उसमें राजहंसों के परम प्रिय कमल पुष्पों से सुशोभित अनेक सरोवर थे । वनैले हाथियों के रगड़ से धिसे हुए हरिचन्दन की सुगन्धि से युक्त वायु यक्षों की पत्नियों के मन को अत्यधिक मथ रहा था, उस वन की वावलियों की सीढ़ियाँ वैदूर्य मणि की बनी थीं, तथा उन वाबलियों में कमल विकसित थे किम्पुरुषों (किन्नरों) से युक्त उन बावलियों को देखकर वे देवगण सन्निकट में ही विद्यमान एक बटवृक्ष को देखे ॥२९-३१॥

भावार्थ दीपिका

रक्तकण्ठखगानामनीकस्य स्वरैर्मण्डिताः षट्पदाः षट्पदस्वरा यस्मिन् । कलहंसानां कुलस्य प्रेष्ठम् । खरदण्डानि पद्मानि तैर्युक्ता जलाशया यस्मिन् । वनकुञ्जरैः संघृष्टा ये हरिचन्दनद्रुमास्तत्संबन्धिना वायुना पुण्यजनस्त्रीणां मनः अधि अधिकमुन्मथयन्। यत्र चोत्पलमालिन्यो वाप्यस्तत्किंपुरुषैः प्राप्तं वनं दृष्ट्वा । पाठान्तरे किंपुरुषैः प्राप्ता वापीश्च दृष्ट्वेत्यर्थः ॥२९-३१॥

भाव प्रकाशिका

उस वन में कोकिलों की ध्वनि से अलंकृत भौंरे गूंजन करते थे । राजहंसों को अत्यन्त प्रिय कमलों से युक्त जलाशय उस वन में थे । वनैले हाथियों के रगड़ने से जिनका छिलका छिल गया था ऐसे हरिचन्दनों की सुगन्धि से युक्त वायु यक्षों की पत्नियों के मन को अत्यधिक मथ रहा था, कमलों से अलंकृत बावलियों तथा उसमे आये हुए किन्नरों से युक्त वन को देखकर उन देवताओं ने सन्निकट में विद्यमान वटवृक्ष को देखा ॥२९-३१॥

स योजनशतोत्सेधः पादोनविटपायतः । पर्यक्कृताचलच्छायो निर्नीडस्तापवर्जितः ॥३२॥

अन्वयः— सः योजनशत उत्सेधः पादोनविटपायतः पर्यक् कृता चलच्छायः निर्नीडः तापवर्जितः ॥३२॥

अनुवाद— वह वटवृक्ष सौ योजन ऊँचा था, पचहत्तर योजन में उसकी शाखाएँ फैली थी, उसके चारो ओर सदा छाया बनी रहती थी, उसमें कोई घोसला भी नहीं था और वह धूप के संताप से रहित था ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

योजनशतमुत्सेध उच्छ्रायो यस्य । पादोनैः सर्वतः पञ्चसप्ततियोजनप्रमाणैर्विटपैः शाखाभिरायतो विस्तृतः । पर्यक् सर्वतः कृता अचला छाया येन । निर्गतं नीडं यस्मात् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

उस वट वृक्ष की ऊँचाई सौ योजन थी वह अपनी शाखाओं से पचहत्तर योजन में चारो ओर फैला था। उसमें सर्वदा सब ओर से छाया बनी रहती थी तथा उस पर कोई भी घोंसला नहीं था ॥३२॥

तस्मिन्महायोगमये मुमुक्षुशरणे सुराः । ददृशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवान्तकम् ॥३३॥

अन्वयः— महायोगमये, मुमुक्षु शरणे तस्मिन् देवाः व्यक्तामर्षम् अन्तकम् इव आसीनं शिवं ददृशुः ॥३३॥

अनुवाद— भगवदुपासनारूपीमहायोगमय, मुमुक्षु जीवों के आश्रयभूत उस वट वृक्ष की छाया में क्रोध रहित काल के समान बैठे हुए शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

मुमुक्षूणां शरणे आश्रये । त्यक्तामर्षो योऽन्तकस्तत्तुल्यम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

वह वट वृक्ष मुमुक्षु जीवों के लिए आश्रय स्वरूप था, उस बट वृक्ष की छाया में बैठे हुए शिव जी क्रोध रहित काल के समान प्रतीत हो रहे थे ॥३३॥

सनन्दनाद्यैर्महासिद्धैः शान्तैः संशान्तविग्रहम् । उपास्यमानं सख्या च भर्त्रा गुह्यकरक्षसाम् ॥३४॥

अन्वयः— शान्तैः सन्दनाद्यै महासिद्धैः गुह्यकरक्षसाम् भर्त्रा सख्या च संशान्तविग्रहम्उपास्यमानं शिवं ददृशुः रितिशेषः॥३४॥

अनुवाद— शान्त स्वभाव वाले सनन्दन आदि महासिद्धों, तथा यक्षों एवं राक्षसों के स्वामी तथा मित्र कुबेर के द्वारा जिनकी सेवा की जा रही थी ऐसे शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

तं विशिनष्टि- सनन्दनाद्यैरिति पञ्चभिः । सख्या कुबेरेणोपास्यमानम् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

सनन्दनाद्यैः इत्यादि पाँच श्लोकों से मैत्रेयजी शिवजी की विशेषता बतलाते हैं शङ्करजी के मित्र कुबेर उनकी सेवा में तत्पर थे ऐसे शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३४॥

विद्यातपोयोगपथमास्थितं तमधीश्वरम् । चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमङ्गलम् ॥३५॥

अन्वयः— अधीश्वरम्, विश्वसुहृदं, वात्सल्याल्लोकमङ्गलम्, चरन्तम् विद्यातपो योगपथम् आस्थितं शिवं ददृशुः।।३५।।

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् के स्वामी शिवजी विश्व के बन्धु हैं, वे वात्सल्य के कारण संसार का मङ्गल करते रहते हैं। उपासना, तपस्या तथा मन की एकाग्रता रूपी योगमार्ग में स्थित शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

विद्या उपासना, तपश्चित्तैकाग्र्यं योगः समाधिस्तेषां पन्थानं प्रवर्तनद्वारा। लोकस्य मङ्गलं हितं तपोवात्सल्यात्स्नेहादाचरन्तम्।।३५।।

भाव प्रकाशिका

उपासना, तपस्या तथा चित्त की एकाग्रता रूपी योग का संसार का मङ्गल करने के लिए अनुष्ठान करने वाले शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३५॥

लिङ्गं च तापसाभीष्टं भस्मदण्डजटाजिनम् । अङ्गेन सन्ध्याभ्ररुचा चन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ॥३६॥

अन्वयः— सन्ध्यभ्ररुचा अङ्गेन तापसाभीष्टं लिङ्गं भस्म दण्डजटाजिनम् चन्द्रलेखां च विभ्रतम् शिवं ददृशुः ।।३६।।

अनुवाद— सन्ध्याकालीन मेघ के समान कान्ति वाले अपने शरीर पर तपस्वियों के लिए अभीष्ट चिह्न भस्म, दण्ड, जटा और मृगचर्म तथा चन्द्रमा की कला को धारण किए हुए शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

सन्ध्याभ्ररुचा रक्तवर्णेनाङ्गेन भस्मादिलिङ्गं चन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

सन्ध्याकालीन रक्तवर्ण के शरीर पर भस्म आदि चिह्नों को तथा चन्द्रमा की कला को धारण किए हुए शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३६॥

उपविष्टं दर्भमय्यां बृस्यां ब्रह्म सनातनम् । नारदाय प्रवोचन्तं पृच्छते शृण्वतां सताम् ॥३७॥

अन्वयः— दर्भमय्यां बृस्यां उपविष्टं शृण्वताम् सताम् पृच्छते नारदाय सनातनं ब्रह्म प्रवोचन्तम शिवं ददृशुः ।।३७।।

अनुवाद— कुश निर्मित आसन पर बैठे हुए तथा सुनने वाले सन्तों के बीच में पूछने वाले नारदजी को सनातन ब्रह्म (भगवत् तत्त्व) का उपदेश करते हुए शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

व्रतिनामासनं वृसी तस्याम् । ब्रह्म प्रवोचन्तम् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

व्रतियों का असनवृसी होता है, उस पर बैठकर सनातन ब्रह्म भगवत् तत्त्व का नारदजी को उपदेश करते हुए शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३७॥

कृत्वोरौ दक्षिणे सव्यं पादपद्मं च जानुनि । बाहुं प्रकोष्ठेऽक्षमालामासीनं तर्कमुद्रया ॥३८॥

अन्वयः— दक्षिणे उरौ सव्यं पादपद्मं कृत्वा बाहुंच जानुनि प्रकोष्ठे अक्षमालां कृत्वा तर्कमुद्रया आसीनं शिवं ददृशुः।।३८।।

अनुवाद— दाहिनी जङ्घा पर बायाँ चरण कमल रखकर बायाँ हाथ बायीं घुटना पर रखकर, कलायी में रुद्राक्ष माला पहने हुए तथा तर्क मुद्रा से बैठे हुए शिवजी को देवताओं ने देखा ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

सव्यं पादपद्मं दक्षिणे ऊरौ कृत्वा विन्यस्य जानुनि च सव्ये बाहु कृत्वा दक्षिणबाहुप्रकोष्ठे मणिबन्धस्थाने अक्षमालां च कृत्वा दक्षिणहस्तकृतया तर्कमुद्रयोपलक्षितमासीनमित्यर्थः । तदुक्तं योगशास्त्रे 'एकापादमथैकस्मिन्विन्यसेदूरुसंस्थितम् । इतरस्मिंस्तथा बाहुं वीरासनमिदं स्मृतम् । तर्कमुद्रा चोक्ता 'तर्जन्यङ्गुष्ठयोरग्रे मिथः संयोज्य चाङ्गुलीः । प्रसार्य बन्धनं प्राहुस्तर्कमुद्रेति मात्रिकाः ।' इति ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

बायां चरण कमल दाहिनी जङ्घा पर रखकर और घुटने पर बायाँ हाथ रखकर दाहिनी कलाई में रुद्राक्ष की माला डाले हुए तर्कमुद्रा से बैठे हुए शङ्करजी को देवताओं ने देखा । योगशास्त्र में कहा भी गया है— बायें पैर को दायें पैर की जङ्घा पर रखकर और दूसरे पर हाथ को रखकर बैठने को वीरासन कहते हैं । तर्कमुद्रा को बतलाते हुए कहा गया है— तर्जनी और अङ्गूठे के आगे की अङ्गुलियों को परस्पर में सटाकर फैलाये और तर्जनी और अङ्गूठे को एक में सटा दे तो उसीको मान्त्रिकों ने तर्क मुद्रा कहा है ।।३८।।

तं ब्रह्मनिर्वाणसमाधिमाश्रितं व्युपाश्रितं गिरिशं योगकक्षाम् ।
सलोकपाला मुनयो मनूनामाद्यं मनुं प्राञ्जलयः प्रणेमुः ।।३९।।

अन्वयः— योगकक्षां व्युपाश्रितं ब्रह्मनिर्वाण समाधिमाश्रितं तं गिरिशं मनूनाम् आद्यं मनुं तं गिरिशं प्राञ्जलयः सलोकपाला मुनयः प्रणेमुः ।।३९।।

अनुवाद— योगपट्ट का सहारा लिए एकाग्रचित्त से ब्रह्मानन्द का अनुभव करने वाले, मननशीलों में सर्वश्रेष्ठ मुनि शङ्करजी को हाथ जोड़े हुए लोकपालों सहित मुनियों ने प्रणाम किया ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मानन्दस्तत्र समाधिरैकाग्र्यं तमाश्रितम् । योगकक्षां योगपट्टं च वामजानुदृढीकरणार्थं विशेषेणोपाश्रितवन्तम्। मननशीला मनवस्तेषामाद्यं मुख्यम् ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मानन्द को ही ब्रह्म निर्वाण कहते हैं, उसी में चित्त को एकाग्र करके स्थित बायें घुटने को सुदृढ करने के लिए योग पट्ट का सहारा लिए हुए तथा मनन शीलों में प्रधान शङ्करजी को मुनियों ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया है ।।३९।।

स तूपलभ्यागतमात्मयोनिं सुरासुरेशैरभिवन्दिताङ्घ्रिः ।
उत्थाय चक्रे शिरसाभिवन्दनमर्हत्तमः कस्य यथैव विष्णुः ।।४०।।

अन्वयः— सुरासुरेशैरभिवन्दिताङ्घ्रिः स तु आगतम् आत्तमयोनिम् उपलभ्य यथा अर्हत्तमः विष्णुः कस्य तथैव उथाय शिरसा अभिवन्दनँ चक्रे ।।४०।।

अनुवाद— देवताओं और असुरों के स्वामी भी जिनके चरण कमलों की वन्दना करते हैं वे शङ्करजी आये हुए ब्रह्माजी को देखकर खड़ा होकर उसी तरह शिर झुकाकर प्रणाम किए जिस तरह परम पूज्य भगवान् वामन महर्षि कश्यप को प्रणाम किए ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

अर्हत्तमो विष्णुर्वामनमूर्तिर्यथा । कस्य कश्यपस्य ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

जिस तरह पूज्यों में श्रेष्ठ वामन मूर्ति भगवान् विष्णु महर्षि कश्यप को प्रणाम किए उसी तरह शङ्करजी ने ब्रह्माजी को प्रणाम किया ॥४०॥

तथा परे सिद्धगणा महर्षिभिर्ये वै समन्तादनु नीललोहितम् ।
नमस्कृतः प्राह शशाङ्कशेखरं कृतप्रणामं प्रहसन्निवात्मभूः ॥४१॥

अन्वयः— तथा परे सिद्धगणाः महर्षिभिः ये वै समन्तादनुनीललोहितम्, नमस्कृतः आत्मभूः कृतप्रणामं शशाङ्कशेखरं प्रहसन्निव आह ॥४१॥

अनुवाद— तथा दूसरे सिद्धगण और महर्षियों के साथ जो शङ्करजी के अनुयायी थे उन सबों के द्वारा प्रणाम कर लिए जाने पर प्रणाम किए हुए चन्द्रशेखर शङ्करजी से ब्रह्माजी ने हँसते हुए से कहा ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

महर्षिभिः सहिता ये नीललोहितमनुवर्तन्ते तेऽपि तस्मै वन्दनं चक्रुः । एवं सर्वैर्नमस्कृतः प्राह । कृतः प्रणामो देवैर्यस्मै तम् ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

महर्षियों के साथ जो शङ्करजी के अनुवर्ति थे उन लोगों ने भी ब्रह्माजी को नमस्कार किया । और देवताओं ने जिनको प्रणाम कर लिया था ऐसे शङ्करजी से हँसते हुए के समान ब्रह्माजी ने कहा ॥४१॥

ब्रह्मोवाच

जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः । शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरन्तरम् ॥४२॥

अन्वयः— त्वां विश्वस्य ईशं जाने जगतो योनिः शक्तिः बीजं च शिवः तयोः परं यत् तत् निरंन्तरम् ब्रह्म ॥४२॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— मैं आपको जानता हूँ कि आप सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं, क्योंकि विश्व की योनि शक्ति (प्रकृति) और बीज शिव (पुरुष) इन दोनों से परे जो एक रस ब्रह्म है, वह आप ही हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

यद्यपि त्वं नीचवन्मां नमस्करोषि तथापि तवैश्वर्यमहं वेद्मीत्याह-जान इति । त्वां विश्वस्येशं जाने । तत्र हेतुः-जगतो योनिर्या शक्तिः प्रकृतिर्बीजं च शिवः पुरुषस्तयोः कारणम् । तथापि निरन्तरं निर्भेदं यद्ब्रह्म निर्विकारं तदेव त्वमिति जाने।।४२॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि आप छोटे के समान मुझको नमस्कार करते हैं फिर भी मैं आपके ऐश्वर्य को जानता हूँ । आप विश्व के स्वामी हैं । उसका कारण यह है कि जगत् की योनि जो शक्ति (प्रकृति) है और वीज जो शिव पुरुष उन दोनों से परेभेद रहित जो निर्विकार ब्रह्म हैं वही आप हैं ॥४२॥

त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः सरूपयोः । विश्वं सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥४३॥

अन्वयः— हे भगवन् त्वमेव शिव शक्त्योः सरूपयो क्रीडन् एतत् विश्वं सृजसि यासि अत्सि क्रीडन् ऊर्णपटोयथा।।४३॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप ही मकड़ी के समान अपने स्वरूप भूत शिवशक्ति के रूप में क्रीड़ा करते हुए इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं, इसकी रक्षा करते हैं और अन्त में इसका संहार करते हैं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

ननु विरुद्धमेतत्तत्राह । त्वमेव सरूपयोरविभक्तयोः शिवशक्त्योः क्रीडन्विश्वसृष्ट्यादि करोषि । ऊर्णनाभिरिव । स्वरूपयोरिति पाठे स्वांशयोः । अतो न विरोधः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि यह तो विरुद्ध है तो ऐसी बात नहीं है आप ही अपने स्वरूपभूत शिव तथा शक्ति से क्रीड़ा करते हुए इस जगत् की सृष्टि आदि को करने का काम करते हैं । यह उसी तरह से होता है जिस तरह से मकड़ी अपने से जाल को प्रकट करती है, और अन्त में उसको निगल जाती है ।।४३।।

त्वमेव धर्मार्थदुघाभिपत्तये दक्षेण सूत्रेण ससर्जिथाध्वरम् ।
त्वयैव लोकेऽवसिताश्च सेतवो यान्ब्राह्मणाः श्रद्दधते धृतव्रताः ।।४४।।

अन्वयः— त्वमेव धर्माथदुघाभिपत्तये दक्षेण सूत्रेण अध्वरन् ससर्जिथाः त्वयैव च लोकेसेतवः अवसिताः यान् धृतव्रताः ब्राह्मणाः श्रद्धते ।।४४।।

अनुवाद— आपने ही धर्म और अर्थ की प्राप्ति कराने वाले वेद की रक्षा के लिए दक्ष को निमित्त बनाकर यज्ञ को प्रकट किया है । आपने ही धर्म की मर्यादाओं को निश्चित किया है, जिनका नियम निष्ठ ब्राह्मण श्रद्धा पूर्वक पालन करते हैं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

धर्ममर्थं च दोग्धि या त्रयी तस्या अभिपत्तये रक्षणायाध्वरं सृष्टवानसि । यद्वा हे धर्मार्थदुघ, धर्माद्यभिपत्तये तत्प्राप्तये। दक्षेण सूत्रेण निमित्तेन । सेतवो वर्णाश्च मर्यादाश्च अवसिता निबद्धा निर्णीता इति वा श्रद्दधते श्रद्धयाऽनुतिष्ठन्ति ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

जो त्रयी (ऋक्, यजुः और साम वे) धर्म और अर्थ प्रदान करती है उसकी रक्षा करने के लिए आपने यज्ञ की सृष्टि की है । अथवा धर्म और अर्थ प्रदान करने वाले धर्म और अर्थ आदि की प्राप्ति के लिए दक्ष रूपी निसित्त के द्वारा आपने यज्ञ की सृष्टि की है । आपने धर्म की मर्यादाओं को निश्चित किया है इस बात को जानकर धर्मनिष्ठ ब्राह्मण उसका अनुष्ठान श्रद्धा पूर्वक करते हैं ।।४४।।

त्वं कर्मणां मङ्गल मङ्गलानां कर्तुः स्म लोकं तनुषे स्वः परं वा ।
अमङ्गलानां च तमिस्रमुल्बणं विपर्ययः केन तदेव कस्यचित् ।।४५।।

अन्वयः— हे मङ्गलमङ्गलानां कर्मणां कर्तुः त्वं स्वः परं वा लोकं तनुषे अमङ्गलानां च उल्बणं तमिस्रं तनुये, तदेव कस्यचित् केन विपर्ययः ।।४५।।

अनुवाद— हे मङ्गल स्वरूप शङ्करजी ! आप ही मङ्गलमय कर्मों को करने वालों के लिए स्वर्ग लोक अथवा मोक्ष प्रदान करने का काम करते हैं और पाप कर्म करने वालों को आप घोर नरक में डालते रहते हैं । फिर भी किसी के लिए उसका उल्टा फल कैसे हो जाता है ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

सर्वकर्मफलदातापि त्वमेवेत्याह । हे मङ्गल, मङ्गलानां शुभानां कर्मणां कर्तुः स्वः स्वर्गं परं मोक्षं वा तनुषे । अमङ्गलानामशुभानां कर्मणां कर्तुश्च तमिस्रं नरकं तनुषे । तत्र केन हेतुना तदेव तस्मिन्नेव कस्यचिद्विपर्ययो भवति ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने कहा कि आप सभी कर्मों के फल को प्रदान करते हैं । हे मङ्गल स्वरूप शङ्करजी! आप ही मङ्गलमय शुभ कर्मों को करने वालों को स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले हैं और अशुभ कर्मों को करने वालों को आप ही नरक प्रदान करते हैं । फिर भी किस कारण से उसी व्यक्ति के लिए कर्मों का फल उलटा हो जाता है ।।४५।।

न वै सतां त्वच्चरणार्पितात्मनां भूतेषु सर्वेष्वभिपश्यतां तव ।
भूतानि चात्मन्यपृथग्दिदृक्षतां प्रायेण रोषोऽभिभवेद्यथा पशुम् ।।४६।।

अन्वयः— त्वच्चरणर्पितात्मनां सर्वेषु भूतेषु त्वाम् अभिपश्यतां भूतानि अपृथग्दिदृक्षतां च आत्मनि पश्यतां प्रयेण पशुं यथा रोषो वेन अभिभवेत् ।।४६।।

अनुवाद— जिन महापुरुषों ने अपने को आपके चरणों में अर्पित कर दिया है, जो समस्त प्राणियों में आपको ही देखते हैं, तथा अभेद दृष्टि होने के कारण जो आत्मा में ही समस्त जीवों को देखते हैं, उन महापुरुषों को प्राय: पशु के समान क्रोध अभिभूत नहीं कर पाता है ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

त्वत्कोपोऽत्र हेतुरित्यसंभावितमिति कैमुत्यन्यायेनाह । न वै सतां सतः रोषोऽभिभवेत् । तव त्वाम् । द्वितीयार्थे षष्ठ्यौ। पशुमज्ञं यथाऽभिभवति तद्वत् ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

इस विषय में आपका कोप कारण हो यह सम्भव नहीं है इस बात को प्रकारान्तर से ब्रह्माजी ने कहा— जिस तरह अज्ञानियों को क्रोध अभिभूत कर देता है, उस तरह से वह सत् पुरुषों को नहीं अभिभूत कर पाता है । **तव** में द्वितीया के अर्थ में षष्ठी विभक्ति हुयी हैं ।।४६।।

पृथग्धियः कर्मदृशो दुराशयाः परोदयेनार्पितहृद्रुजोऽनिशम् ।
परान्दुरुक्तैर्वितुदन्त्यरुन्तुदास्तान्मावधीद्दैववधान्भवद्विधः ।।४७।।

अन्वयः— पृथग्धियः, कर्मदृशः दुराशयाः अनिशम् परोदयेनार्पिताद्रुजः ते अरुन्तुदाः दुरुक्तैः परान् वितुदन्ति तान् दैववधान् भवद्विधाः मा वधीत् ।।४७।।

अनुवाद— जो लोग भेद बुद्धि से युक्त हैं, जो लोग कर्मों को ही करने में आसक्त रहा करते हैं, जिनका अन्त:करण दूषित है वे मर्म का भेदन करने वाले अपनी दुरुक्तियों के द्वारा दूसरों को दु:खी बनाने वाले तथा जो दूसरों का उत्कर्ष देखकर रातदिन जलते रहते हैं, उन भाग्य के मारे गये विचारों को आप जैसे महापुरुषों को मारना उचित नहीं है ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

अतो ये पृथग्धियो भेददृशोऽतः कर्मण्येव दृष्टिर्येषाम् । दुष्ट आशयो येषाम् । परेशामुदयेन सम्पदा अर्पिता हृदि रुग्येषाम्। अरुन्तुदा मर्मभेत्तारः । दैवेनैव बधो येषां तान्भवद्विधो निरूपमः साधुर्मावधीन्न हन्यात् ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

अतएव जो भेदबुद्धि वाले हैं उनकी बुद्धि सदा कर्मों में ही लगी रहती है, जिनका अन्त:करण दोषों से दूषित है, जो दूसरों की सम्पत्ति को देखकर सदा जलते हैं ऐसे मर्म का भेदन करने वाले लोग अपनी दुरुक्तियों

से ही दूसरों को असह्य कष्ट देते हैं । ऐसे लोगों को तो भाग्य ने ही मार दिया है, उन लोगों को आप जैसे महापुरुषों को मारना उचित नहीं है ॥४७॥

यस्मिन्यदा पुष्करनाभमायया दुरन्तया स्पृष्टधियः पृथग्दृशः ।
कुर्वन्ति तत्र ह्यनुकम्पया कृपां न साधवो दैवबलात्कृते क्रमम् ॥४८॥

अन्वयः— यस्मिन् यदा दुरन्तया पुष्कराभमायया स्पृष्टधियः पृथग्दृशः तत्र साधवः अनुकम्पया कृपा मेव कुर्वन्ति दैवबलात् कृते क्रमम् न ॥४८॥

अनुवाद— जिस देश और जिस काल में जिसका अतिक्रमण करना अत्यन्त कठिन है उन भगवान् विष्णु की माया से मोहित होने के कारण जो लोग भेद बुद्धि वाले हो जाते हैं उन लोगों पर साधुजन, अपनी परदुःखाऽसहिष्णु बुद्धि के कारण कृपा ही करते हैं, उन भाग्य के मारे लोगों को वे मारने का काम नहीं करते हैं ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्युत साधूनां वृत्तमालोक्यानुग्रहमेव कर्तुमर्हसीत्याह द्वाभ्याम् । यस्मिन्देशे । यदा काले । स्पृष्टधियो मोहितचित्ताः पृथग्दृशो भवन्ति । तत्रापराधे साधवो ह्यनुकम्पयाऽनन्तरमेव परदुःखासहिष्णुतया चित्तप्रकम्पेन कृपां कुर्वन्ति, नतु क्रमं पराक्रमम्। कुतः दैवबलात्कृतेऽर्थे ममैव दैवमेवंभूतं कोऽत्रापराधस्तेषामिति मत्वा तद्धननं न कुर्वत इत्यर्थः ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

बल्कि साधु पुरुषों द्वारा किए जाने वाले व्यवहार को देखकर आप इन पर कृपा ही करें । इस बात को दो श्लोकों से कहा गया है । जिस देश में तथा जिस काल में भगवान् विष्णु की अनतिक्रमणीय माया के द्वारा जिनकी बुद्धि मोहित हो गयी है और वे भेद बुद्धि वाले हैं ही । उनके द्वारा अपराध किए जाने पर ही साधु पुरुष उन पर कृपा ही करते हैं । भाग्य से आक्रान्त उन लोगों पर वे अपना पराक्रम नहीं प्रदर्शित करते हैं ॥४८॥

भवांस्तु पुंसः परमस्य मायया दुरन्तयाऽस्पृष्टमतिः समस्तदृक् ।
तया हतात्मस्वनुकर्मचेतःस्वनुग्रहं कर्तुमिहार्हसिप्रभो ॥४९॥

अन्वयः— प्रभो भवान् तु समस्तदृक् परमस्य पुंसः दुरत्यया मायया आस्पृष्टमतिः तया हतात्मसु अनुकर्मचेतस्सु अनुग्रहं इहकर्तुम् अर्हसि ॥४९॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप तो सर्वज्ञ हैं, सबकुछ जानते है, परम पुरुष परमात्मा की अनतिक्रमणीया माया आपकी बुद्धि को स्पर्श भी नहीं कर पायी है । अतएव उसके अधीन हो जाने के कारण जिनकी बुद्धि सदा कर्म मार्ग में ही लगी रहती है, ऐसे जीवों से कोई अपराध भी हो जाय तो आपको उन जीवों पर कृपा ही करनी चाहिए।॥४९॥

भावार्थ दीपिका

भवांस्त्वस्पृष्टमतिः । अतएव समस्तदृक् सर्वज्ञः । तया मायया हत आत्मा येषां तेष्वत एव कर्मानुगतचित्तेष्विहापराधेऽनुग्रहं कर्तुमर्हसि ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने कहा आपकी बुद्धि को तो माया छू भी नहीं पायी है, अतएव आप सर्वज्ञ हैं, जिन जीवों की आत्मा माया के द्वारा मारी गयी है, अर्थात् जो जीव माया के अधीन हैं, वे सदा कर्मों के ही करने में लगे रहते हैं । ऐसे लोगों के द्वारा अपराध हो जाने पर आपको उन जीवों पर कृपा ही करनी चाहिए ॥४९॥

कुर्वध्वरस्योद्धरणं हतस्य भोस्त्वयाऽसमाप्तस्य मनो प्रजापतेः ।
न यत्र भागं तव भागिनो ददुः कुयज्विनो येन मखो निनीयते ॥५०॥

अन्वयः— भो मनो ! त्वया हतस्य आसमाप्तस्य प्रजापतेः अध्वस्य उद्धरणं कुरु । यत्र कुयज्विनः येन मखो निनीयते भागिनः तव भागं न ददुः ॥५०॥

अनुवाद— हे मननशील भगवन् शङ्कर ! आपके द्वारा विनष्ट कर दिए जाने के कारण इस दक्ष प्रजापति के असमाप्त यज्ञ का आप उद्धार करें । उस यज्ञ में यज्ञ कराने वाले निन्दित याज्ञिकों ने जो आपको यज्ञ के फल को देने वाले हैं ऐसे भाग प्राप्ति के अधिकारी आपको भाग नहीं दिया ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

एवं सामान्येनोक्त्वा प्रस्तुतमाह-कुर्विति त्रिभिः । त्वया हतस्य, अत एवासमाप्तस्य प्रजापतेरध्वरस्य । हे मनो, यत्राध्वरे कुयाज्ञिका भागिनोऽपि तव भागं न ददुः । भागार्हत्वमाह । येन त्वया मखो निनीयते फलं प्राप्यते ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से ब्रह्माजी सामान्य रूप से सारी बातों को कहकर **कुरु० इत्यादि** तीन श्लोकों के द्वारा प्रस्तुत प्रसङ्ग को कहते हैं हे मनो शङ्कर ! जिस यज्ञ में निन्दित याज्ञिकों ने भाग प्राप्ति के अधिकारी आपको यज्ञ का भाग नहीं प्रदान किया जब कि आप ही यज्ञों के फल को प्रदान करते हैं । अतएव उस प्रजापति के असमाप्त यज्ञ का आप उद्धार कीजिये ॥५०॥

जीवताद्यजमानोऽयं प्रपद्येताक्षिणी भगः । भृगोः श्मश्रूणि रोहन्तु पूष्णो दन्ताश्च पूर्ववत् ॥५१॥

अन्वयः— अयं यजमानः जीवतात्, भगः अक्षिणी प्रपद्येत, भृगोः श्मश्रूणि रोहन्तु, पूष्णोः दन्ताश्च पूर्ववत् ॥५१॥

अनुवाद— इस यज्ञ का यजमान दक्ष जीवित हो जाय, भग देवता को आँखें मिल जायँ, भृगु महर्षि की दाढ़ी फिर जम जाय और पूषा देवता के दाँत पहले के ही समान हो जायँ ॥५१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥५१॥

देवानां भग्नगात्राणामृत्विजां चायुधाश्मभिः । भवतानुगृहीतानामाशु मन्योऽस्त्वनातुरम् ॥५२॥

अन्वयः— हे मन्यो आयुधाश्मभि भग्नगात्राणां, भवतानुगृहीतानाम् देवानाम् ऋत्विजाम् आशु अनातुरम् अस्तु॥५२॥

अनुवाद— हे शङ्कर ! आयुधों और पत्थरों के प्रहार से जिनके अङ्ग टूट फूट गये हैं, और इस समय जो आपकी कृपा के पात्र बने हुए हैं इन देवताओं तथा ऋत्विजों को शीघ्र ही नैरुज्य प्राप्त हो जाय ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

हे मन्यो, अनातुरमारोग्यमस्तु ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

मन्यु शङ्करजी का नाम है । उसी के सम्बोधन का रूप है मन्यो अर्थात् हे शङ्करजी ! इन सभी लोगों को आरोग्य प्राप्त हो जाय ॥५२॥

एष ते रुद्र भागोऽस्तु यदुच्छिष्टोऽध्वरस्य वै । यज्ञस्ते रुद्र भागेन कल्पतामद्य यज्ञहन् ॥५३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे रुद्रसान्त्वनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अन्वयः— हे यज्ञहन् रुद्र यद् वै अध्वरस्य उच्छिष्टम् ते भग अस्तु रुद्र अद्यते भागेन यज्ञः कल्पताम् ॥५३॥

अनुवाद— हे यज्ञ का विध्वंश करने वाले रुद्र ! यज्ञ का अवशिष्ट जो कुछ हो वह आपका वंश होए। आज आपके ही अंश से यज्ञ की पूर्ति हो ।।५३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

भावार्थ दीपिका

भागश्च तवास्त्वित्याह-एष इति । हे रुद्र । यावदित्यर्थे यदित्यव्ययम् । यज्ञे कृते यावानुच्छिष्टोऽवशिष्टोऽर्थस्तावानेष तव भागोऽस्तु । हे रुद्र, ते भागेनाद्य यज्ञः कल्पतां संपद्यताम् ।।५३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

एष इत्यादि श्लोक के द्वारा ब्रह्माजी शङ्करजी से कहते हैं कि हे रुद्र ! यज्ञ के करने पर जो कुछ भी बचा रहे वह सब आपका भाग हो । हे रुद्र ! आज आपके भाग से यज्ञ पूरा होय ।।५३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

सातवाँ अध्याय

दक्ष प्रजापति के यज्ञ की पूर्ति

मैत्रेय उवाच

इत्यिजेनानुनीतेन भवेन परितुष्यता । अभ्यधायि महाबाहो प्रहस्य श्रूयतामिति ॥१॥

अन्वयः— महाहाहो इति अनेन अनुनीतेन परितुष्येता भवेन प्रहस्य यद अभ्यधायि तत् श्रूयताम् इति ॥१॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— महाबाहो विदुरजी ! इस प्रकार से ब्रह्माजी से प्रार्थना किए जाने पर प्रसन्न हुए शङ्करजी ने हँसते हुए जो कहा उसे आप सुनें ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तमे विष्णुरुद्भूतः स्तुतो दक्षभवादिभिः । यज्ञं प्रवर्तयामास दक्षेणेति निरूप्यते ॥१॥ अजेन योऽनुनीतः प्रार्थितो भावस्तेनाभिहितम् । हे महाबाहो विदुर ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सातवें अध्याय में दक्ष तथा शङ्करजी आदि के द्वारा स्तुति किए जाने पर प्रकट होकर भगवान् विष्णु ने दक्ष प्रजापति के द्वारा यज्ञ को पुनः प्रारम्भ कराया ॥१॥

श्रीमहादेव उवाच

नाघं प्रजेश बालानां वर्णये नानुचिन्तये । देवमायाभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतो मया ॥२॥

अन्वयः— हे प्रजेश ! देवमायाभिभूतानां बालानां अद्यम् न तु वर्णयन् अनुचिन्तये तत्रमया दण्डः धृतः ॥२॥

श्रीमहादेवजी ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्माजी ! मैं दक्ष जैसे अज्ञानी जीव जो भगवान् की माया से मोहित हैं उनके द्वारा किए गये अपराधों की न तो मैं चर्चा करता हूँ और न उसको याद ही रखता हूँ, उनको तो मैंने थोड़ा सा दण्डित कर दिया है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अघमपराधम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

अघशब्द का अर्थ अपराध हैं ॥२॥

प्रजापतेर्दग्धशीर्ष्णो भवत्वजमुखं शिरः । मित्रस्य चक्षुषेक्षेत भागं स्वं बर्हिषो भगः ॥३॥

अन्वयः— दग्ध शीर्ष्णः प्रजापतेः शिरः अजमुखं भवतु । भगः बर्हिषः मित्रस्य चक्षुषा ईक्षेत् ॥३॥

अनुवाद— जिनका शिर जल गया है, ऐसे दक्ष प्रजापति का शिर बकरे के मुख वाला हो जाय, और भग देवता मित्र देवता के नेत्रों से देखें ॥३॥

भावार्थ दीपिका

स्वापराधमपहत्यानुगृह्णाति । दग्धं शीर्षं यस्य तस्य प्रजापतेरजस्य मुखं यस्मिंस्तत्तथाभूतं शिरोऽस्तु । वर्हिषः संबन्धिनं भागम् । मित्रनाम्नो देवस्य ॥३॥

भाव प्रकाशिका

अपने प्रति किए गये अपराधों को दूर करके शङ्करजी दक्ष को अनुगृहीत करते हुए कहते हैं- दक्ष प्रजापति का शिर जल गया है अतएव उनका शिर बकरे का हो जाय, भग देवता यज्ञ के भाग को मित्र देवता के नेत्रों से देखें ॥३॥

पूषा तु यजमानस्य दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक् । देवाः प्रकृतसर्वाङ्गा ये म उच्छेषणं ददुः ॥४॥

अन्वयः— पूषां तु यजमानस्य दद्भिः पिष्टं जक्षतु ये मे उच्छेषणं ददुः ते देवाः प्रकृत सर्वाङ्गाः भवन्तु इति शेषः।।४॥

अनुवाद— पूषा देवता पिसा हुआ पदार्थ खाते हैं, वे यजमान के दाँतों से खायँ और जिन देवताओं ने यज्ञ के शेष भाग को मुझे प्रदान किया हैं उनके भी अङ्गस्वस्थ हो जायँ ॥४॥

भावार्थ दीपिका

प्रकर्षेण कृतानि लग्नान्यङ्गानि येषां ते भवन्तु । उच्छेषणं यज्ञावशिष्टम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञ का अवशिष्ट भाग मुझको प्रदान करने वाले देव ग्रहों के अङ्ग पूर्णरूप से स्वस्थ हो जायँ ॥४॥

बाहुभ्यामश्विनोः पूष्णो हस्ताभ्यां कृतबाहवः । भवन्त्वध्वर्यवश्चान्ये बस्तश्मश्रुर्भृगुर्भवेत् ॥५॥

अन्वयः— अध्वर्यवः अन्ये च अश्विनोः पुष्णः बाहुभ्यां कृत बाहवः भवन्तु भृगुः वस्तश्मश्रुः भवेत् ॥५॥

अनुवाद— जिनके हाथ टूट गये हैं वे अध्वर्यु और दूसरे देवतागण अश्विनी कुमारों और पूषा देवता के हाथों से हाथ वाले बन जायँ और भृगु महर्षि की दाढ़ी बकरे की दाढ़ी बन जाय ॥५॥

भावार्थ दीपिका

येषां त्वङ्गानि नष्टानि ते त्वश्विनोर्बाहुभ्यां कृतबाहवः पूष्णोहस्ताभ्यां कृतहस्ताश्च भवन्तु । अध्वर्यवः अन्ये च ऋत्विजः। बस्तस्य श्मश्रूण्येव श्मश्रूणि यस्य ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अध्वर्यु तथा दूसरे ऋत्विज जिनके अङ्ग नष्ट हो गये हैं वे अश्विनी कुमारों की भुजाओं से भुजाओं वाले और पूषा देवता के हाथों में हाथों वाले जो जायँ । बकरे की दाढ़ी ही भृगु भी दाढ़ी बन जाय ।।५।।

मैत्रेय उवाच

तदा सर्वाणि भूतानि श्रुत्वा मीढुष्टमोदितम् । परितुष्टात्मभिस्तात साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ।।६।।

अन्वयः— हे तात तदा मीढुष्टम् उदितम् श्रुत्वा सर्वाणि भूतानि परितुष्टात्मभिः साधु-साधु इति अब्रुवन् ।।६।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद—हे विदुर ! उस समय शङ्करजी की बातों को सुनकर सब लोग प्रसन्न चित्त से बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहने लगे ।।६।।

भावार्थ दीपिका

मीढुष्टमः शिवस्तेनोक्तम् । परितुष्टैश्चित्तैः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

मीढुष्ट शङ्करजी का नाम है । उनके द्वारा कही गयी बातों को सुनकर सबों का मन प्रसन्न हो गया । उन लोगों ने प्रसन्न मन से साधु-साधु कहा ।।६।।

ततो मीढ्वांसमामन्त्र्य शुनासीराः सहर्षिभिः । भूयस्तद्देवयजनं समीढ्वद्वेधसो ययुः ।।७।।

अन्वयः— तदा ऋषिभिः सह शुनसीराः मीढ्वांसमामन्त्रय समीढ्वद्वेधसः तद देवयजनं ययुः ।।७।।

अनुवाद— उस समय ऋषिगण के साथ देवता शङ्करजी को आमन्त्रित करके शङ्करजी और ब्रह्माजी के साथ उस यज्ञशाला में गये ।।७।।

भावार्थ दीपिका

मीढ्वांसं शिवं त्वयागत्य सर्वं कार्यमित्यामत्र्य संप्रार्थ्य । शुनासीरा देवाः सहमीढुषा वेधसा च वर्तमानाः समीढ्वद्वेधसः।।७।।

भाव प्रकाशिका

उस समय ऋषियों के साथ देवताओं ने शिवजी को आहूत किया और शिवजी तथा ब्रह्माजी के साथ सभी उस यज्ञशाला में आये ।।७।।

विधाय कार्त्स्न्येन च तद्यदाह भगवान्भवः । संदधुः कस्य कायेन सवनीयपशोः शिरः ।।८।।

अन्वयः— यद् भगवान् भव आह तत् कार्त्स्न्येन विधाय कस्य कायेन सवनीयपशोः शिरः संदधुः ।।८।।

अनुवाद— भगवान् शिव ने जो जो कहा था उन सभी कार्यों को वैसे ही करके उन सबों ने दक्ष के शरीर से यज्ञ पशु के शिर को जोड़ दिया ।।८।।

भावार्थ दीपिका

कार्त्स्न्येन वक्रहस्तबाह्वा दिसाधारण्यं विधाय ।।८।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् शङ्कर ने सबों के हाथ तथा भुजा इत्यादि साधारण बना दिया उसके बाद दक्ष के शरीर से यज्ञीय पशु का शिर जोड़ा गया ।।८।।

संधीयमाने शिरसि दक्षो रुद्राभिवीक्षितः । सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ ददृशे चाग्रतो मृडम् ॥९॥

अन्वयः— संधीयमाने शिरसि रुद्राभिवीक्षितः दक्षः सद्यः सुप्तइव उत्तस्थौ अग्रतः मृडम् च ददृशे ॥९॥

अनुवाद— शिर के जोड़ दिए जाने पर शङ्करजी की दृष्टि पड़ते ही दक्ष शीघ्र ही सोये से जगते हुए के समान उठ गये और उन्होंने अपने सामने शङ्करजी को देखा ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥९॥

तदा वृषध्वजद्वेषकलिलात्मा प्रजापतिः । शिवावलोकादभवच्छरद्ध्रद इवामलः ॥१०॥

अन्वयः— तदा वृषध्वज द्वेष कलिलात्मा प्रजापतिः शिवावलोकाद् शरद् ह्रद इव अमलः अभवत् ॥१०॥

अनुवाद— उस समय शङ्करजी से द्वेष करने के कारण दूषित दक्ष प्रजापति का हृदय उनका दर्शन करने से शरत् कालीन सरोवर के समान निर्मल हो गया ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वं वृषध्वजद्वेषेण कलिलः कलुषीकृत आत्मा यस्य सः । तदा शरत्कालीनो ह्रद इवामलोऽभवत् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

पहले शङ्करजी से द्वेष करने के कारण दक्ष का हृदय दूषित हो गया था उस समय शङ्करजी का दर्शन करने के कारण उनका हृदय शरत् कालीन सरोवर के समान स्वच्छ हो गया ॥१०॥

भवस्तवाय कृतधीर्नाशक्नोदनुरागतः । औत्कण्ठ्याद्बाष्पकलया संपरेतां सुतां स्मरन् ॥११॥

अन्वयः— भवस्तवाय कृतधीः सम्परेतां सुतां स्मरन् अनुरागतः औत्कण्ठ्यात् वाष्पकलया न अशक्नोत् ॥११॥

अनुवाद— दक्ष प्रजापति शङ्करजी की स्तुति करना चाहते थे किन्तु मरी हुयी अपनी पुत्री सती की याद आ जाने के कारण उनकी आँखो में आँसू भर गया और स्नेह तथा उत्कण्ठा के कारण वे बोल नहीं सकें ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥११॥

कृच्छ्रात्संस्तभ्य च मनः प्रेमविह्वलितः सुधीः । शशंस निर्व्यलीकेन भावेनेशं प्रजापतिः ॥१२॥

अन्वयः— प्रेमविह्वालितः सुधी प्रजापति कृच्छ्रत् मनः संस्तभ्य, निर्व्यलीकेन भावेन ईशं शशंस ॥१२॥

अनुवाद— प्रेम से विह्वल बने हुए बुद्धिमान दक्ष प्रजापति ने बड़ी कठिनाई से अपने मन को स्थिर किया और निष्कपट भाव से उन्होंने शङ्करजी की स्तुति की ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥१२॥

दक्ष उवाच

भूयाननुग्रह अहो भवता कृतो मे दण्डस्त्वया मयि भृतो यदपि प्रलब्धः ।
न ब्रह्मबन्धुषु च वां भगवन्नवज्ञा तुभ्यं हरेश्च कुत एव धृतव्रतेषु ॥१३॥

अन्वयः— हे भगवन् यदपि प्रलब्धः तथापि त्वया दण्डः भृतः अहोभवता मयि भूयान् अनुग्रह; कृतः ब्रह्मबन्धुसु तुभ्यं हरेश्च वां अवज्ञा धृतव्रतेषु कुतः ॥१३॥

दक्षजी ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! यद्यपि मैंने आपका अपमान किया था किन्तु उसके बदले मुझे शिक्षा देने के लिए आपने मुझ पर दण्ड का विधान किया । इस तरह से आपने मुझ पर बहुत बड़ी कृपा की । आप तथा श्रीहरि दोनों ही आचार हीन भी ब्राह्मणों की उपेक्षा नहीं करते हैं तो फिर यज्ञादि कर्म करने वाले हमलोगों को कैसे भूलेंगे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

यद्यपि प्रलब्धः पराभूतो मया भवांस्तथापि त्वया दण्डो भृतः शिक्षा कृता, नतूपेक्षितोऽस्मि । युक्तमेवैतदित्याह। ब्रह्मबन्धुषु च ब्राह्मणाभासेष्वपि तुभ्यं तव हरेश्चेति वां युवयोरवज्ञोपक्षा नास्ति ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

दक्ष प्रजापति ने कहा यद्यपि मैंने आपका अपमान किया था, किन्तु आप उसके बदले में मुझे शिक्षा देने के लिए दण्ड का ही विधान किया आपने मेरी उपेक्षा नहीं की, यह आपके लिए उचित ही है । आप और श्रीहरि दोनों ब्रह्म बन्धुओं (अचार हीन ब्राह्मणों) की भी उपेक्षा नहीं करते हैं तो मुझ जैसे यागादि कर्म करने वालों को आप कैसे भूल सकते हैं ।।१३।।

विद्यातपोव्रतधरान्मुखतः स्म विप्रान्ब्रह्मात्मतत्त्वमवितुं प्रथमं त्वमस्राक् ।
तद्ब्राह्मणान्परम सर्वविपत्सु पासि पालः पशूनिव विभो प्रगृहीतदण्डः ।।१४।।

अन्वयः— विभो ब्रह्मात्म तत्त्वमवितुम् मुखतः त्वम् विद्यातपयोव्रत धरान्विप्रान् अस्राक् प्रगृहीत दण्डः पाल पशूनिव तत् परम् ब्राह्मणान् सर्वविपत्सु पासि ।।१४।।

अनुवाद— हे विभो ! पहले ब्रह्मा होकर सर्वप्रथम आत्म तत्त्व की रक्षा करने के लिए आपने अपने मुख से विद्या (उपासना) तपस्या और व्रत का पालन करने वाले ब्राह्मणों की सृष्टि की उसके पश्चात् हाथ में दण्ड धारण करने वाला पशु पालक जिस तरह से पशुओं की रक्षा करता है उसी प्रकार दण्ड धारण करने वाले आप ब्राह्मणों की सभी विपत्तियों में रक्षा करते हैं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुमाह-विद्येति । ब्रह्मा भूत्वा त्वमस्रागस्राक्षीः । किमर्थम् । आत्मतत्त्वमवितुम् । यद्वा ब्रह्म वेदमात्मतत्त्वं चावितुं संप्रदायप्रवर्तनेन ज्ञापयितुमित्यर्थः । तत्तस्मात् । हे परम् उत्कृष्ट ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

उसका कारण यह है कि आप पहले आप ब्रह्मा होकर आत्मतत्त्व की रक्षा करने के लिए अपने मुख से ही उपासना तपस्या एवं व्रत करने वाले ब्राह्मणों की सृष्टि की । इस तरह अथवा वेद तथा आत्म तत्त्व की रक्षा करने के लिए आपने सम्प्रदाय का प्रवर्तन करके ब्राह्मणों की सृष्टि की । अतएव हे उत्कृष्ट ! आप ब्राह्मणों की विपत्तियों से रक्षा करते हैं ।।१४।।

योऽसौ मयाऽविदिततत्त्वदृशा सभायां क्षिप्तो दुरुक्तिविशिखैरगणय्य तन्माम् ।
अर्वाक्पतन्तमर्हत्तमनिन्दयाऽपादृष्ट्यार्द्रया स भगवान्स्वकृतेन तुष्येत् ।।१५।।

अन्वयः— अविदित तत्त्व दृशा मया सभायां दुरुक्ति विशिखैः क्षिप्तः तन्माम अगणय्य अर्हत्तम निन्दया अर्वाक् पतन्तम् माम् योऽसौ भगवान् आर्द्रया दृष्टया आपात् सभगवान् स्वकृतेन तुष्येत् ।।१५।।

अनुवाद— मैं अज्ञानी होने के कारण आपके तत्त्व को नहीं जानता था । इसीलिए मैंने भरी सभा में आपको बाग्बाणों से बेधा था । किन्तु आपने मेरे उस अपराध पर विचार नहीं किया । आप जैसे पूज्यतम पुरुष की निन्दा करने के कारण नरकों में गिरने वाला था, किन्तु आपने अपनी कृपा दृष्टि से मुझको बचा लिया । आपको प्रसन्न करने योग्य मुझमें कोई गुण नहीं है अतएव आप अपने ही औदार्य पूर्ण वर्ताव से मुझ पर प्रसन्न हो जायँ ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अत्र च प्रत्युपकारो नास्तीत्याह योऽसाविति । अविदिततत्त्वदृशा अप्राप्ततत्त्वज्ञानेन । तदगणय्य विस्मृत्य । अर्हत्तमनिन्दयाऽर्वागधः पतन्तम् मामपाद्रक्षितवान् । स्वकृतेनैव परानुग्रहेणैव तुष्येत् । न मया तत्प्रतिकर्तुं शक्यमित्यर्थः।।१५।।

भाव प्रकाशिका

आपने जो किया है, उसका मैं किसी भी हालत में प्रत्युपकार नहीं कर सकता। इस बात को दक्ष प्रजापति ने योऽसौ इत्यादि श्लोक से कहा है। मुझे तत्त्वज्ञान नहीं था, इसीलिए मैंने आपको भरी सभा में वाग्बाणों से बेधने का काम किया है। लेकिन आप मेरे उस अपराध को भूलकर मेरे ऊपर कृपा दृष्टि की है। आप जैसे पूज्यतम पुरुष की निन्दा के कारण मैं तो नरक में गिरने वाला था किन्तु आपने मेरी रक्षा कर ली। आपके द्वारा किए गये इस उपकार का मैं प्रत्युपकार नहीं कर सकता अतएव आप अपने औदार्य पूर्ण व्यवहार के द्वारा ही मुझ पर प्रसन्न हो जायँ ॥१५॥

मैत्रेय उवाच

क्षमाप्यैवं स मीढ्वांसं ब्रह्मणा चानुमन्त्रितः। कर्म संतानयामास सोपाध्यायर्त्विगग्निभिः ॥१६॥

अन्वयः— एवं मीढ्वांसं क्षमाप्य सः ब्रह्मणा अनुमन्त्रितः सोपाध्यायत्विर्गग्निभिः कर्म सन्तान यामास ॥१६॥

अनुवाद— इस तरह से शङ्करजी से क्षमा प्रार्थना करके दक्ष प्रजापति ब्रह्माजी के कहने पर उपाध्याय, ऋत्विक् तथा अग्नि आदि के द्वारा यज्ञकार्य करना प्रारम्भ किये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

अनुमन्त्रितोऽनुज्ञातः। उपाध्यायसहितैर्ऋत्विगादिभिः अनुवर्तयामास ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की आज्ञा प्राप्त करके दक्ष प्रजापति ने उपाध्याय के साथ ऋत्विक् आदि के द्वारा पुनः यज्ञ कार्य आरम्भ किया ॥१६॥

वैष्णवं यज्ञसंतत्यै त्रिकपालं द्विजोत्तमाः। पुरोडाशं निरवपन्वीरसंसर्गशुद्धये ॥१७॥

अन्वयः— वीरसंसर्ग शुद्धये यज्ञसंतत्यै द्विजोत्तमाः वैष्णवं त्रिकपालं पुरोडाशं निरवपन् ॥१७॥

अनुवाद— भूत पिशाचों के संसर्ग से शुद्धि के लिए तथा यज्ञ को सम्पन्न करने के लिए श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने विष्णु देवताक तीन पात्रों में रखे गये पुरोडाश नामक चरु का होम किया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

वीराणां प्रमथादीनां संसर्गकृतदोषस्य शुद्धये निवृत्त्यर्थम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

प्रमथगणों के संसर्ग जन्य दोष की निवृत्ति के लिए ब्राह्मणों ने विष्णु देवताक तीन कपाल में रखे हुए पुरोडाश नामक चरु का होम किया ॥१७॥

अध्वर्युणाऽऽत्तहविषा यजमानो विशांपते। धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुरभूद्धरिः ॥१८॥

अन्वयः— हे विशाम्पते आत्तहविषा अध्वर्युणा यजमानः विशुद्धया धियादध्यौ तथा हरिः प्रादुरभूत् ॥१८॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! उस हविष्य को हाथ में लेकर खड़े हुए अध्वर्यु के साथ यजमान ने अपनी विशुद्ध बुद्धि के द्वारा ध्यान किया तो श्रीहरि प्रकट हो गये ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

उपात्तहविषाऽध्वर्युणा सह विशुद्धया बुद्ध्या दध्यौ। हे विशांपते विदुर ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

हाथ में उस हविष्य को हाथ में लेकर खड़े हुए अध्वर्यु के साथ यजमान अपनी विशुद्ध बुद्धि से ध्यान किये तो श्रीहरि प्रकट हो गये ।।१८।।

तदा स्वप्रभया तेषां द्योतयन्त्या दिशो दश । मुष्णंस्तेज उपानीतस्तार्क्ष्येण स्तोत्रवाजिना ।।१९।।

अन्वयः— तदा स्तोत्रवाजिना तार्क्ष्येण उपानीतः दिशो दश द्योतयन्त्या स्वप्रभयातेषां तेजः मुष्णन् ।।१९।।

अनुवाद— उस समय बृहद् एवं रथन्तर साम जिनके पङ्ख हैं, ऐसे गरुडजी के द्वारा लाये गये श्रीभगवान् दशो दिशाओं को प्रकाशित करने वाली अपनी कान्ति से यहाँ पर विद्यमान देवताओं की कान्ति फिकी पड़ गयी ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

स्वया प्रभया तेषां तेजो मुष्णंस्तिरस्कुर्वन् । उपानीतः समीपं प्रापितः । स्तोत्रे बृहद्रथन्तरे वाजौ पक्षौ । तद्वता । 'बृहद्रथन्तरे पक्षौ' इति श्रुतेः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

बृहद्रथरे पक्षौ अर्थात् बृहद साम और रथन्तर साम गरुड़जी के दोनों पङ्ख हैं, इस श्रुति के अनुसार बृहद एवं रथन्तर साम रूपी दोनों पङ्खों वाले गरुड़जी के द्वारा लाये गये भगवान् विष्णु ने अपने तेज से वहाँ पर विद्यमान लोगों की कान्ति को चुरा लिया अर्थात् उन लोगों की कान्ति भगवान् की कान्ति के समक्ष फिकी पड़ गयी ।।१९।।

श्यामो हिरण्यरशनोऽर्ककिरीटजुष्टो नीलालकभ्रमरमण्डितकुण्डलास्यः ।
कम्ब्वब्जचक्रशरचापगदासिचर्मव्यग्रैर्हिरणमयभुजैरिव कर्णिकारः ।।२०।।

अन्वयः— श्यामः हिरण्यरशनः अर्ककिरीट जुष्टः नीलालकभ्रमर मण्डित कुण्डलास्यः । कम्ब्वब्ज चक्रशर चापगदासिचमं व्यगैः हिरण्मय भुजैः कर्णिकारः इव ।।२०।।

अनुवाद— श्रीभगवान् का वर्ण श्याम था, उनके कमर में सुवर्ण की करधनी थी, पीताम्बर धारण किए थें, एवं सूर्य के समान चमकते हुए किरीट को वे अपने शिर पर धारण किए थे । उनका मुख कमल काले घुंघराले केश रूपी भ्रमर से मण्डित था और कुण्डलों से सुशोभित था । वे अपनी आठ भुजाओं में शंख, पद्म, चक्र, बाण धनुष गदा, कृपाण और ढाल धारण किए हुए थे । इन सभी आयुधों से वे विकसित कनेर के वृक्ष के समान सुशोभित हो रहे थे ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

तमेवानुवर्णयति-श्याम इति द्वाभ्याम् । हिरण्यवद्रशना यस्येति वस्त्रं लक्ष्यते । अर्कतुल्येन किरीटेन जुष्टः । नीललका एव भ्रमरास्तैर्मण्डितं कुण्डलयुक्तमास्यं यस्य । कम्ब्वादिभिरायुधैर्भृत्यरक्षार्थं व्यग्रैर्हिरण्मयैर्भुजैः पुष्पितः कर्णिकार इव शोभमानः। भुजानां हिरण्मयत्वं केयूरकङ्कणमुद्रिकाद्यलङ्कारैः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् विष्णु का ही वर्णन श्याम इत्यादि दो श्लोकों से करते हैं । श्रीभगवान् की करधनी और वस्त्र दोनों सुवर्ण के समान चमक रहे थे । वे सूर्य के समान चमकते हुए किरीट से मण्डित थे । काले घुंघराले केश रूपी भ्रमरों से उनका मुख कमल सुशोभित था । चमकतें कुण्डलों से भी उनका मुख सुशोभित था । शङ्ख आदि आयुधों से अपने भक्तों की रक्षा के लिए व्यग्र रहने वाले हाथों से वे विकसित कर्णिकार वृक्ष के समान सुशोभित होते थे । केयूर कङ्कण मुद्रिका आदि अलङ्कारों से अलंकृत उनकी भुजाए सुवर्णमय थीं ।।२०।।

वक्षस्यधिश्रितवधूर्वनमाल्युदारहासावलोककलया रमयंश्च विश्वम् ।
पार्श्वभ्रमद्व्यजनचामरराजहंसः श्वेतातपत्रशशिनोपरि रज्यमानः ॥२१॥

अन्वयः— वक्षस्याधिश्रितवधूः वनमाली, उदार हासावलोक कलया च विश्वं रमयन् पार्श्वभ्रमद्व्यजन चामरराज हंसः श्वेतापत्रशशिनापरि रज्यमानः ॥२१॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के वक्ष स्थल में लक्ष्मी का श्रीवत्स चिह्न विद्यमान था । वे वनमाला धारण किए हुए थे वे अपने उदार हास और लीलामय अवलोकन के द्वारा सम्पूर्ण जगत् को आनन्द मग्न कर रहे थे, उनके दोनों बगल में पार्षदगण राजहंस के समान श्वेतवर्ण के व्यजन और दो चामर डुला रहे थे । शिर के ऊपर विद्यमान श्वेत छत्र से वे सुशोभित थे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

वक्षस्यधिश्रिता बधूर्लक्ष्मीर्यस्य सः । उदारो हासोऽवलोकश्च तयोः कलया लेशेन । पार्श्वे उभयतो भ्रमती व्यजनचामरे एव राजहंसौ यस्मिन्सः । रज्यमानः शोभातिशयं नीयमानः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के वक्षस्थल में लक्ष्मीजी का निवास था, वे वनमाला धारण किए हुए थे । वे अपने मनोहर हँसी और लीलामय विलोकन की कला से सम्पूर्ण विश्व को आनन्द मग्न कर रहे थे । उनके दोनों बगल डुलाये जा रहे श्वेत वर्ण के दो चामर रजहंस के समान थे, और उनके शिर के ऊपर लगा हुआ श्वेत वर्ण का छत्र अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥२१॥

तमुपागतमालक्ष्य सर्वे सुरगणादयः । प्रणेमुः सहसोत्थाय ब्रह्मेन्द्रत्र्यक्षनायकाः ॥२२॥

अन्वयः— उपागतम् तम् अलक्ष्य ब्रह्मेन्द्रत्र्यक्षनायकाः सर्वे सुरगणादयः सहसा उत्थाय प्रणेमुः ॥२२॥

अनुवाद— आये हुए श्रीभगवान् को देखकर जिनमें, ब्रह्मा, इन्द्र तथा शङ्करजी प्रधान थे ऐसे सभी देवगण अचानक उठकर खड़े हो गये और श्रीभगवान् को प्रणाम किए ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मेन्द्रत्र्यक्षा नायका मुख्या येषां ते ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को प्रणाम करने वाले देवताओं में ब्रह्माजी, इन्द्र और शङ्करजी प्रधान थे ॥२२॥

तत्तेजसा हतरुचः सन्नजिह्वाः ससाध्वसाः । मूर्ध्ना धृताञ्जलिपुटा उपतस्थुरधोक्षजम् ॥२३॥

अन्वयः— तत् तेजसा हत रुचः, सन्न जिह्वाः, ससाध्वसः मूर्ध्ना धृताञ्जलिपुटाः अधेक्षजम् उपतस्थुः ॥२३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के तेज से सबों की कान्ति फीकी पड़ गयी, उनकी जीभ लड़खड़ाने लगी, उनका चित्त क्षुब्ध हो गया । वे सभी हाथ जोड़कर इसे अपने शिर से लगाकर श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

हतरुचस्तिरस्कृतप्रभाः । सन्नजिह्वा गद्गदवाचः । ससाध्वसास्तन्महिम्ना क्षुभितचित्ताः । उपतस्थुस्तुष्टुवुः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

सबों की कान्ति फिकी पड़ गयी । उनकी वाणी गद्गद हो गयी, तथा श्रीभगवान् की महिमा से क्षुब्ध चित्त वाले वे हो गये । हाथ जोड़कर और उसे अपने शिर से लगाकर श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ॥२३॥

अप्यर्वाग्वृत्तयो यस्य महि त्वात्मभुवादयः । यथामति गृणन्ति स्म कृतानुग्रहविग्रहम् ।।२४।।

अन्वयः— यस्य महितु आत्मभुवादय अपि अर्वाग् वृत्तयः कृतानुग्रहविग्रहम् तं यथा मति गृणन्तिस्म ।।२४।।

अनुवाद— जिस परमात्मा की महिमा पर्यन्त ब्रह्माजी इत्यादि की बुद्धि पहुँच भी नहीं पाती है, उन भक्तों पर कृपा करने के लिए प्रकट हुए श्रीभगवान् की वे लोग अपनी बुद्धि के अनुसार स्तुति करने लगे ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

यस्य महिमानं प्रति तु अर्वागेव वृत्तिर्येषां तेऽपि यथामति गृणन्ति स्म अस्तुवन् । कृतः प्रकटीकृतोऽनुग्रहार्थं विग्रहो येन तम् । यद्वा तेषामर्वाग्वृत्तित्वे हेतुः— ते तु यस्य महि महिमा । विभूतिमात्ररूपा इत्यर्थः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

जिन श्रीभगवान् की महिमा के प्रति ब्रह्मा इत्यादि की बुद्धि दूर ही रह जाती है वे लोग श्रीभगवान् की अपनी बुद्धि के अनुसार स्तुति करने लगे । क्योंकि श्रीभगवान् ने उन लोगों पर कृपा करने के लिए अपने दिव्य विग्रह को प्रकट किये थे । **यद्वा० इत्यादि अथवा** उन ब्रह्मादि की बुद्धि को दूर रह जाने का कारण है कि वे ब्रह्मादि तो श्रीभगवान् की महिमा मात्र हैं ।।२४।।

दक्षो गृहीतार्हणसादनोत्तमं यज्ञेश्वरं विश्वसृजां परं गुरुम् ।
सुनन्दनन्दाद्यनुगैर्वृतं मुदा गृणन्प्रपेदे प्रयतः कृताञ्जलिः ।।२५।।

अन्वयः— गृहीतार्हणसादनोत्तमं दक्षः सुनन्दनन्दाद्यनुगैः वृतम् विश्वसृजां परंगुरुं यज्ञेश्वरं प्रयतः कृताञ्जलिः गृणन् प्रपेदे।।२५।।

अनुवाद— उत्तम पात्र में पूजन की सारी सामग्रियों को सजाकर दक्ष सनन्द नन्द आदि पार्षदों से घिरे हुए प्रजापतियों के परम गुरु यज्ञेश्वर की अत्यन्त विनीत भाव से स्तुति करते हुए शरणागति किए ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तावद्दक्षस्तुतिप्रकारमाह– दक्ष इति । गृहीतमर्हणसादनोत्तमं येन तम् । उत्तमे पात्रे आसाद्यार्हणेषु समर्पितेषु प्रीत्या सार्हणपात्रं स्वयमेव येन गृहीतमित्यर्थः । यद्वा कथं प्रपेदे । गृहीतमर्हणसादनोत्तमं यथा भवति तद्गृहीत्वा प्रपेदे इत्यर्थः । गृहीत्वेति पाठस्तु सुगमः । गृणन्स्तुवन् प्रपेदे शरणं जगाम । 'दक्षऋत्विक्सदस्येशभृगुब्रह्मेन्द्रयोषितः । ऋषयश्च तथा सिद्धा यजमानी च लोकपाः । योगिब्रह्माग्निदेवाश्च स्तुवन्ति जगदीश्वरम् । तथा गन्धर्व विद्याध्राब्राह्मणाश्च पृथङ्मतैः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम दक्ष द्वारा की गयी श्रीभगवान् की स्तुति के प्रकार को दक्षः इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है। दक्ष ने पूजन सामग्री को रखने के लिए उत्तम पात्र को ले लिया था । उत्तम पात्र में प्रेम पूर्वक पूजन की सामग्री सजायी गयी थी उसको दक्ष ने स्वयम् ले लिया । अथवा दक्ष ने कैसे शरणागति की ? तो इसका उत्तर है कि जिसने उत्तम पात्र में पूजन सामग्री को ले ली थी । उसको लेकर श्रीभगवान् की शरणागति किए । गृहीत्वा पाठ सुगम हैं । और श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए शरणागति किए । दक्ष ऋत्विक् सदस्य शङ्करजी, भृगु, ब्रह्मा, इन्द्र, पत्नियों, ऋषिगण, सिद्धगण, यजमान पत्नी तथा लोकपाल योगीगण, ब्रह्माजी तथा अग्नि देव तथा गन्धर्व विद्याधर एवं ब्राह्मणों ने जगदीश्वर श्रीभगवान् की स्तुति अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार की ।।२५।।

दक्ष उवाच

शुद्धं स्वधाम्न्युपरताखिलबुद्ध्यवस्थं चिन्मात्रमेकमभयं प्रतिषिध्य मायाम् ।
तिष्ठंस्तयैव पुरुषत्वमुपेत्य तस्यामास्ते भवानपरिशुद्ध इवात्मतन्त्रः ।।२६।।

अन्वयः— एस्वधाम्नि, उपरताखिलबुद्ध्यवस्थं भवान् चिन्मात्रम् एकम् अभयम् मायाम् प्रतिषिध्य तिष्ठन् तयैव पुरुषत्वम् उपेत्य आत्मतन्त्रः तस्याम् अपरिशुद्ध इव आस्ते ।।२६।।

दक्ष जी ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् अपने स्वरूप में स्थित आप बुद्धि की जाग्रत इत्यादि सभी अवस्थाओं से रहित ज्ञान मात्र स्वरूप भेद रहित अतएव निर्भय हैं । आप माया को तिरस्कृत करके स्वतन्त्र रूप से स्थित हैं । फिर भी उस माया से ही जीवभाव को स्वीकार करके जब आप उस माया में ही अवस्थित हो जाते हैं तो अज्ञानी के समान प्रतीत होते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

ननु साक्षात्परमेश्वर एव रुद्रस्तस्य ब्रह्मपुत्रत्वेन जीवत्वमनुकारमात्रम् । हन्त किमिति त्वया भेददृष्ट्याऽसाववज्ञात इति मां भगवानाक्षेप्स्यतीत्याशङ्क्य, अप्रच्युतस्वरूपस्य जीवधर्मनाट्यं तवैव सङ्गच्छते नान्यस्येत्याह- शुद्धमिति । स्वधाम्नि स्वरूपे तिष्ठन्भवान् शुद्धं चिन्मात्रं चैतन्यघनः । शुद्धत्वे हेतुः— उपरता नित्य निवृत्ताऽखिला बुद्ध्यवस्था यस्मात् । अतः एकं भेदशून्यम् । अत एवाभयम् । 'द्वितीयाद्वै भयं भवति' इति श्रुतेः । जीवस्यापि वस्तुत एवंभूतत्वात्तद्वैलक्षण्यार्थमुक्तम् । मायां प्रतिषिध्याभिभूय स्वतन्त्र एव संस्तया मायया पुरुषत्वं मनुष्यनाट्यमुपेत्य तस्यां मायायां तिष्ठन्नपरिशुद्ध इव रागादिमानिवास्ते । रामकृष्णाद्यवतारे तथा प्रतीयते भवानित्यर्थः । अन्ये त्वविद्योपाधयो मायाभिभूताः संसरन्ति । अतस्त्वमेवेश्वरो न रुद्रादय इति भावः । अतएवेमां दृष्टिं भगवान्वारयिष्यति । 'अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्' इत्यादिना ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि रुद्र तो साक्षात् परमेश्वर ही हैं । ब्रह्माजी के पुत्र के रूप में जीवत्व तो उनका अनुकरण मात्र है । तो फिर तुम भेद दृष्टि से उनका अपमान क्यों किए, इस तरह से भगवान् मुझसे पूछ सकते हैं, इस तरह से आशङ्का करके दक्ष ने कहा कि आपके ही स्वभाव में कभी परिवर्तन नहीं आता है, अतएव जीव धर्म का नाटक आपमें ही सङ्गत होता है, किसी दूसरे में नहीं । इसी बात को दक्ष ने इस श्लोक में कहा है । अपने स्वरूप में स्थित रहते हुए आप शुद्ध, ज्ञानमात्र, तथा चैतन्मय हैं । आपकी शुद्धता का कारण है कि आपसे बुद्धि की सारी अवस्थाएँ निवृत्त हैं । अतएव आप एक अर्थात् भेदशून्य हैं । उसी के कारण आप अभय भी हैं। श्रुति भी कहती है— **द्वितीयाद्वै भयं भवति** दूसरे से ही भय होता है चूकि आप इस प्रकार के हैं अतएव आप जीव से भी भिन्न हैं । आप माया को तिरस्कृत करके स्वतंत्र रूप से स्थित रहते हैं । उसी माया के द्वारा आप मनुष्यत्व को स्वीकार करके मनुष्यत्व का नाटक करते हैं । उस माया में रहते हुए अपरिशुद्ध के समान हो जाते हैं । क्योंकि उस समय राग द्वेष इत्यादि से युक्त हो जाते हैं । श्रीराम कृष्ण आदि अवतारों मे आप इसी तरह के प्रतीत हाते हैं । आप से भिन्न जो जीव हैं वे अविद्या के द्वारा उपहित होकर संसार में संसरण करते हैं । अतएव आप ही ईश्वर हैं । रुद्र इत्यादि नहीं यह दक्ष का भाव । अतएव दक्ष की इस प्रकार की दृष्टि का श्रीभगवान् **अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ।** अर्थात् मैं ब्रह्माजी और शङ्करजी ये तीनो जगत् के सर्वश्रेष्ठ देवता है, इस वाक्य के द्वारा निरास करेंगे ॥२६॥

ऋत्विज ऊचुः

तत्त्वं न ते वयमनञ्जन रुद्रशापात्कर्मण्यवग्रहधियो भगवन्विदामः ।
धर्मोपलक्षणमिदं त्रिवृदध्वराख्यं ज्ञातं यदर्थमधिदैवमदोव्यवस्थाः ॥२७॥

अन्वयः— हे अनञ्जन रुद्रशापात् वयम् कर्मण्यवग्रहधियः ते तत्त्वं न विदामः यदर्थम् धर्मोपलक्षणमिदं त्रिवृदध्वराख्यं अधिदैवं अदो व्यवस्था ज्ञातम् ॥२७॥

ऋषियों ने कहा

अनुवाद— हे उपाधि रहित रुद्र के प्रधान अनुचर नन्दिकेश्वर के शाप के कारण हमारी बुद्धि केवल कर्मकाण्ड

में ही फँसी हुयी है अतएव हम आपके तत्त्व को नहीं जानते हैं । जिसके लिए इस कर्म की यही देवता है इस प्रकार की व्यवस्था की गयी है, उस धर्म प्रवृत्ति के प्रयोजक वेदत्रयी से प्रतिपादित यज्ञ को ही हम आपका स्वरूप समझते हैं ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

ऋत्विजोऽपि स्वस्यापराधं परिहरन्तः स्तुवन्ति । भो अनञ्जन उपाधिमलशून्य, यद्यपि त्वमेव रुद्रादिदेवतारूपस्तथापि नन्दीश्वरशापात्कर्मण्येव दुराग्रहधियः सन्तस्तव तत्त्वं न विद्मः किंतु धर्मस्यापूर्वस्योपलक्षणभूतं त्रिवृत् त्रयीप्रतिपाद्यमध्वराख्यं तव रूपमस्माभिर्ज्ञातम् । कीदृशम् । यदर्थं यस्य सिद्ध्येऽधिदैवं देवताऽधिकारेणादोव्यवस्थाः अमूर्व्यवस्थाः । अत्रेयमेव देवता नान्येत्येवंभूता नियमा इत्यर्थः । यद्वा व्यवस्था इत्याख्यातं । अडागमाद्यभाव आर्षः । यदर्थमद इदमिन्द्राद्यधिदैवं रूां विशेषेणास्थितवानसीत्यर्थः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

ऋत्विजों ने भी अपने अपराध का परिहार करते हुए श्रीभगवान् की स्तुति की । हे उपाधि रूपी मल से रहित प्रभो ! यद्यपि आप ही रुद्रादि देवता स्वरूप है फिर भी नन्दीश्वर के शाप के कारण हमारी बुद्धि कर्मों में ही फँसी रही अतएव हमलोग आपके तत्त्व को नहीं जानते हैं । हम धर्म के उपलक्षण स्वरूप त्रयीप्रति प्रतिपादित यज्ञ को ही हमलोग आपका रूप मानते हैं । जिसके लिए इस कर्म का देवता यही है, इस प्रकार की व्यवस्था की गयी है । अथवा व्यवस्था यह आख्यात (तिङन्त) है । यहाँ पर वैदिक प्रयोग होने के कारण अट् इत्यादि के आगम का अभाव है । जिसके लिए यह इन्द्रादि अधिदैव रूप है । आपने धारण किया हैं ।।२७।।

सदस्या ऊचुः

उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्रव्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्यात्मगेहोरुभारः ।
द्वन्द्वश्वभ्रे खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः पादौकस्ते शरणद कदा याति कामोपसृष्टः ॥२८॥

अन्वयः— हे शरणद ! उरुक्लेश दुर्गे, अन्तकोग्रव्यालविष्टे, द्वन्द्वश्वभ्रे, खलमृगभये, शोकदावे, उत्पत्त्यध्वनि अशरणे, अज्ञसार्थः कामोपसृष्टः विषयमृगतृष्यात्मगेहोरुभारः ते पादौकः कदायाति ।।२८।।

सदस्यों ने कहा

अनुवाद— हे जीवों को शरण देने वाले प्रभो, जो अनेक प्रकार के क्लेशों के कारण अत्यन्त दुर्गम है, जिसमें कालरूपी भयङ्कर सर्प घात लगाये बैठा है, और जिसमें द्वन्द्वरूपी अनेक गढ़े हैं एवं दुष्ट रूपी जङ्गली जीवों का भय बना रहता है तथा जिसमें शोक रूपी दवाग्नि जल रही हैं, ऐसे विश्रीमस्थल से रहित संसार मार्ग में जो अज्ञानी जीव कामनाओं से पीड़ित होकर विषय रूपी मृगतृष्णा के जल के लिए देहगेह का भारी बोझ अपने शिर पर लिए हुए जा रहे हैं वे आपके चरणों की शरण में कब आयेंगे ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

सदस्यास्तु निरीश्वरेऽपि दक्षाध्वरे धनलोभेन स्वप्रवृत्तिमनुचिन्त्यानुतप्ता विरक्तिमाशासानाः स्तुवन्ति । हे शरणद आश्रयप्रद, उत्पत्त्यध्वनि संसारमार्गे वर्तमानोऽज्ञानां सार्थः समूहस्ते पादौकः त्वत्पादरूपं निवासं कदा यास्यति । कथंभूते संसारमार्गे । अशरणे विश्रामस्थानशून्ये । उरुक्लेशा एव दुर्गमस्थानानि यस्मिन् । अन्तक एवोग्रो व्यालस्तेनान्विष्टे लक्षीकृते विषयरूपा मृगतृण्मृगतृष्णिका यस्मिन् । आत्माहंकारास्पदं शरीरं ममत्वास्पदं गेहं च स एवोरुर्भारो यस्य सः । द्वन्द्वानि सुखदुःखादीन्येव श्वभ्राणि गर्ता यस्मिन् । खला एव मृगा व्याघ्रादयस्तेभ्यो भयं यस्मिन् । शोक एव दावाग्निर्यस्मिन् । कामेनोपसृष्टः पीडितः।।२८।।

भाव प्रकाशिका

सदस्यों ने रुद्र से रहित भी दक्ष के यज्ञ में धन के लोभ से होने वाली अपनी प्रवृत्ति को सोचकर संतप्त होते हुए विरक्ति की प्राप्ति की कामना से श्रीभगवान् की स्तुति करते हैं। वे कहते हैं ये अभय प्रदान करने वाले प्रभो ! संसार मार्ग में विद्यमान अज्ञानी जीवों का समूह आपके चरणों की शरण में कब आयेगा ? यह संसार मार्ग कैसा है कि इस में विश्राम स्थल है ही नहीं इसमें अनेक दुर्गम स्थान हैं। इसमें कालरूपी भयङ्कर सर्प बैठा है। विषयरूपी मृगतृष्णा का जल है। जिसमें आत्माभिमान होता है ऐसे देह और गृह का भयङ्कर भार है, इस मार्ग के सुख दुःख इत्यादि द्वन्द्व ही गढे हैं तथा दुष्ट रूपी व्याघ्रादि जङ्गली जीव का भय बना रहता है। इस मार्ग की शोक ही दवाग्नि है। तथा उस मार्ग में चलने वाला जीव अनेक प्रकार की कामनाओं से पीड़ित है ॥२८॥

रुद्र उवाच

तव वरद वराङ्घ्रावाशिषेहाखिलार्थे ह्यपि मुनिभिरसक्तैरादरेणार्हणीये ।
यदि रचितधियं माविद्यलोकोपविद्धं जपति न गणये तत्त्वत्परानुग्रहेण ॥२९॥

अन्वयः— हे वरद ! तव वराङ्घ्रौ इहाखिलार्थे आशिषा, असक्तैः मुनिभिः अपि आदरेणार्हणीये, रचितधियं मा अविद्यलोकः अपविद्धं जपति तत् त्वत् परानुग्रहेण न गणये ॥२९॥

अनुवाद— हे वरद प्रभो ! आपके उत्तम चरण इस संसार से सकाम पुरुषों के सम्पूर्ण पुरुषार्थों की प्राप्ति कराने वाले हैं, सभी वस्तुओं से अनासक्त रहने वाले मुनिजन भी आपके इन चरणों की आराधना करते हैं। आपके उन्हीं चरणों में बुद्धि के लगे रहने के कारण अज्ञानी लोग यदि मुझे आचार भ्रष्ट कहते हैं तो आपकी कृपा के कारण मैं उसकी परवाह नहीं करता हूँ ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

श्रीरुद्रस्तु पूर्वं मम निन्दा दुःसहा आसीत्, इदानीं तु तां न गणयामीत्याह-तवेति । आशिषा कामेनासक्तैर्निष्कामै रचितधियमभिनिवेशितचित्तम् । मा कामविद्यो विद्याहीनो लोको यद्यपविद्धं जपत्याचारभ्रष्टं जल्पति तज्जल्पनमहं न गणये । तत्र हेतुः-तव यः परोऽनुग्रहस्तेन । त्वत्पराणां वा योऽनुग्रहस्तेन ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

शङ्करजी ने कहा कि पहले तो निन्दा मुझको दुःख ही प्रतीत होती थी किन्तु इस समय मैं उसकी परवाह नहीं करता हूँ। इस बात को उन्होंने **तव वरद इत्यादि** श्लोक से कहा— कामना से रहित होकर आप में निविष्ट बुद्धि वाले मुझको यदि संसार के लोग विद्याहीन और आचरण भ्रष्ट कहते हैं, तो संसार की उस निन्दा की मैं परवाह नहीं करता हूँ। उसका कारण है कि आपका मुझ पर अत्यधिक अनुग्रह है। अथवा आप अपने भक्तों पर अत्यधिक अनुग्रह करते हैं ॥२९॥

भृगुरुवाच

यन्मायया गहनयापहृतात्मबोधा ब्रह्मादयस्तनुभृतस्तमसि स्वपन्तः ।
नात्मन् श्रितं तव विदन्त्यधुनापि तत्त्वं सोऽयं प्रसीदतु भवान्प्रणतात्मबन्धुः ॥३०॥

अन्वयः— यत् गहनया मायया अपहृत आत्मबोधाः ब्रह्मादयः तनुभृतः तमसि स्वपन्तः हे आत्मन् अधुनापि तव तत्त्वं न विदन्ति सोऽयम् प्रणतात्मबन्धुः भवान् प्रसीदतु ॥३०॥

भृगुजी ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! आपकी गहन माया के कारण जिनका आत्मज्ञान लुप्त हो गया था, ऐसे ब्रह्मा आदि शरीरधारी अज्ञान निद्रा में सोए हुए हैं। आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए उपयोगी वे आज तक भी आपके

तत्त्व को नहीं जान सके हैं । ऐसे आप शरणागत भक्तों की आत्मा और बन्धु हैं । अतएव आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइये ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

भृगुस्तु स्वभावतस्तत्त्वज्ञानहीना जीवा अतोऽज्ञानकृतं मम दुश्चेष्टितं क्षमस्वेत्याह-यन्माययेति । आत्मन्नात्मनि श्रितमनुगतं तव तत्त्वं न विदन्ति । प्रणतानामात्मा बन्धुश्च ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

भृगु महर्षि ने कहा कि हे भगवन् ! जीव स्वभाव से ही तत्त्वज्ञान से रहित हैं अतएव अज्ञान वशात् मैंने जो दुश्चेष्टायें की उसको आप क्षमा कर दें वे कहते हैं कि आत्मा में आप विद्यमान है तथा आप सबों में अनुगत हैं इस बात को वे नहीं जानते हैं आप अपने शरणागत भक्तों को आत्मा और बन्धु हैं ।।३०।।

ब्रह्मोवाच

नैतत्स्वरूपं भवतोऽसौ पदार्थभेदग्रहैः पुरुषो यावदीक्षेत् ।
ज्ञानस्य चार्थस्य गुणस्य चाश्रयो मायामयाद्व्यतिरिक्तो यतस्त्वम् ।।३१।।

अन्वयः— पदार्थभेदग्रहैः असौ पुरुषः यावदिच्छेत् एतत् भवतः स्वरूपं न, ज्ञानस्य च अर्थस्य, गुणस्य च आश्रयः यतः त्वम् मायामयात् व्यतिरिक्तः ।।३१।।

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— प्रभो पृथक् पृथक् इन्द्रियों के द्वारा पुरुष जो पदार्थों को देखता है, वह आपका स्वरूप नहीं है आप तो ज्ञान तथा शब्दादि विषय तथा श्रोत्र आदि इन्द्रियों के अधिष्ठान हैं, ये सबके सब आप में अध्यस्त है, अतएव आप इस मायामय प्रपञ्च से भिन्न ही हैं ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मादयो न विदन्तीति भृगुणोक्ते तदसहमानो ब्रह्मा तत्त्वज्ञानमाविष्कुर्वन्निवाह-नैतदिति । पदार्थभेदग्राहकैरिन्द्रियैः गुणस्येन्द्रियस्य । यद्वा ज्ञानार्थयो; कारणस्य सत्त्वादेः । अत एवासतो मायामयाद्व्यतिरिक्तः भवान् ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि भृगु ने जो कहा था कि ब्रह्मा आदि आपके तत्त्व को नहीं जानते हैं उसे नहीं सह सकने के कारण ब्रह्माजी ने तत्त्व को अविष्कृत करते हुए कहा **नैतदित्यादि** अलग-अलग पदार्थों का ग्रहण करने वाली इन्द्रियों के द्वारा जिनको पुरुष देखता है वह आपका स्वरूप नहीं है । आप तो गुणों तथा इन्द्रियों के अथवा ज्ञान तथा ज्ञेय पदार्थों के कारणभूत जो सत्त्व आदि गुण हैं इन सबों के अधिष्ठान हैं । अतएव आप इस मिथ्यामायामय प्रपञ्च से पृथक् ही हैं ।।३१।।

इन्द्र उवाच

इदमप्यच्युत विश्वभावनं वपुरानन्दकरं मनोदृशाम् । सुरविद्विट्क्षपणैरुदायुधैर्भुजदण्डैरुपपन्नमष्टभिः ।।३२।।

अन्वयः— हे अच्युत ! इदम् अपि विश्वभावनम् सुरविद्विट् क्षपणैः उदायुधैः अष्टभिः भुजदण्डैः उपपन्नम् मनोदृशाम् आनन्दकरम् ।।३२।।

इन्द्र ने कहा

अनुवाद— हे अच्युत प्रभो ! आपका यह भी रूप जो जगत् को प्रकाशित करने वाला है, देव द्रोहियों का विनाश करने वाला, अनेक प्रकार के आयुधों से युक्त आठ भुजाओं वाला है, तथा मन तथा नेत्रों को आनन्द प्रदान करने वाला है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

इन्द्रस्त्विन्द्रियविषयः सर्वोऽपि मिथ्येति ब्रह्मणोक्तमसहमान आह । इदं तव वपुरप्युपपन्नमेव नतु प्रपञ्चवद-निर्वचनीयतयानुपपन्नम् । सुराणां विद्विषः क्षपयन्तीति तथा तैर्भुजदण्डैरुपलक्षितम् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने यह जो कहा था कि जिन विषयों का इन्द्रियों से ग्रहण होता है, वह सब मिथ्या है, उसको नहीं सह सकने के कारण कहते हैं। आपका यह शरीर भी उपपन्न ही है, यह अनिर्वचनीय प्रपञ्च के समान अनुपपन्न नहीं है। आप अपने इन आठो भुजाओं में अनेक प्रकार के आयुधों को धारण करके देवताओं के शत्रुओं का विनाश किया करते हैं। इस प्रकार के भुजदण्डों से उपलक्षित है आपका यह रूप ।।३२।।

पत्न्य ऊचुः

यज्ञोऽयं तव यजनाय केन सृष्टो विध्वस्तः पशुपतिनाऽद्य दक्षकोपात् ।
तं नस्त्वं शवशयनाभशान्तमेधं यज्ञात्मन्नलिनरुचा दृशा पुनीहि ।।३३।।

अन्वयः— केन तव यजनाय अयं यज्ञः सृष्टः दक्षकोपात् पशुपतिना अद्यनष्टः । हे यज्ञात्मन् शवशयनाभ शान्तमेधंनलिन रुचा दृशा त्वम् पुनीहि ।।३३।।

याज्ञिकों की पत्नियों ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! ब्रह्माजी ने इस यज्ञ की रचना आपकी आराधना के लिए की थी, किन्तु दक्ष पर क्रोध करने के कारण इस समय इस यज्ञ को ध्वस्त कर दिया है। हे यज्ञात्मन् ! श्मशान भूमि के समान उत्सव विहीन हमारे इस यज्ञ को आप नील कमल की कान्ति के समान कान्ति से सम्पन्न अपने इन नेत्रों से देखकर आप पवित्र बना दें ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

ऋत्विजां पत्न्यः स्तुवन्ति । यज्ञोऽयं तव यजनाय त्वां यष्टुं केन ब्रह्मणा पूर्वं सृष्टः । हे यज्ञात्मन्, तं नो यज्ञं नलिनकान्त्या दृशा नेत्रेण पुनीहि पवित्रं कुरु । कथंभूतं यज्ञम् । शवाः शेरते यस्मिन्निति शवशयनं श्मशानं तद्वदाभा प्रतीतिर्यस्य स चासौ शान्तमेधश्चोपरतोत्सवः । मेधशब्देन पशुहिंसाद्युत्सवो लक्ष्यते शवमुदकं तत्र शेते इति तथा पद्मं तन्नाभेति संबोधनं वा ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

ऋत्विजों की पत्नियों ने स्तुति करते हुए कहा— प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने आपकी आराधना के लिए यज्ञों की सृष्टि की। हे यज्ञात्मन् प्रभो हमारे इस यज्ञ को आप नीलकमल की कान्ति से युक्त अपने नेत्रों से देखकर पवित्र बना दें। प्रश्न है कि किस प्रकार के यज्ञ को तो इस पर वे कहती हैं। जहाँ पर मुर्दे सुलाये जाते हैं उस श्मशान भूमि के समान उत्सव रहित होने के कारण प्रतीत होने वाले। यहाँ पर मेध शब्द के द्वारा पशु हिंसा आदि उत्सवों को कहा गया है। अथवा शव शब्द जल का वाचक है। उस जल में शयन करने वाले हे पद्मनाभ भगवन्। यह शव शयनाभपद संबोध भी हो सकता है ।।३३।।

ऋषय ऊचुः

अनन्वितं ते भगवन्विचेष्टितं यदात्मनाऽऽचरसि हि कर्म नाज्यसे ।
विभूतये यत उपसेदुरीश्वरीं न मन्यते स्वयमनुवर्ततीं भवान् ।।३४।।

अन्वयः— हे भगवन् ! ते चेष्टितम् अनन्वितम् यद् हि आत्मना कर्म आचरसि नाज्यसे । यतः विभूतये, उपसेदुः, तां स्वयमनुवर्ततीम् ईश्वरीं भवान् न मन्यसे ।।३४।।

ऋषियों ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् आपकी लीलायें विचित्र हैं, क्योकि स्वयम् आप कर्मों को तो करते हैं किन्तु उन सबों से आप निर्लेप बने रहते हैं । दूसरे लोग वैभव को प्राप्त करने के लिए जिस लक्ष्मीजी की शरणागति करते हैं, वे लक्ष्मीजी स्वयम् आपकी सेवा में लगी रहती हैं फिर भी आप उनका बहुत अधिक सम्मान नहीं करते है, अपितु उनसे नि:स्पृह ही बने रहते हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

ऋषयस्तु कर्माण्यनुतिष्ठन्तस्तत्पुण्येन तत्फलेन च युज्यन्ते भगवति तु तदभावमालक्ष्य विस्मिताः स्तुवन्ति । अनन्वितमघटमानं यद्यस्मादात्मना स्वयं कर्माचरस्यनुतिष्ठसि न त्वज्यसे लिप्यसे । यतश्चान्ये विभूतये संपदे ईश्वरीं लक्ष्मीमुपसेदुर्भेजुः । यद्वा यत इति सार्वविभक्तिकस्तसिः । यामित्यर्थः । भवांस्तु स्वयमेवानुवर्तमानां तां न मन्यते नाद्रियते ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

ऋषिगण कर्मों को करते हैं और उन कर्मों से उत्पन्न होने वाले पुण्य और उनके फल को भी प्राप्त करते हैं । किन्तु श्रीभगवान् में उसका अभाव है, वे कर्मों से सम्पृक्त नहीं होते हैं, यह देखकर वे विस्मित होकर श्रीभगवान् की स्तुति करते हैं । हे भगवन् ! यह तो पूर्ण रूप से असंभव है कि आप स्वयं कर्मों को करते हैं किन्तु उन सबों से निर्लिप्त ही रहते हैं । किञ्च दूसरे लोग ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिए जिन लक्ष्मीजी की उपासना करते हैं अथवा यत: में सार्वविभक्तिक तसिल प्रत्यय हैं और यत: का अर्थ है याल अर्थात् जिस लक्ष्मीजी की जो आपकी सेवा में सदा लगी रहने वाली लक्ष्मीजी का बहुत अधिक आप समादर नहीं करते हैं ।।३४।।

सिद्धा ऊचुः

अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः ।
तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्मसंपन्नवन्नः ।।३५।।

अन्वयः— अयं न मनोवारणः क्लेश दावाग्निदग्धः तृषार्तः त्वत्कथामृष्ट पीयूषनद्यां अवगाढः ब्रह्मसम्पन्न वत् न दावं सस्मार न निष्क्रमति ।।३५।।

सिद्धों ने कहा

अनुवाद— यह हमारा मन रूपी हाथी अनेक प्रकार के क्लेश रूपी दावाग्नि से दग्ध और अत्यन्त तृषित होकर आपकी कथा रूपी विशुद्ध सारिता में गोता लगाये हुए बैठा हुआ है । ब्रह्मानन्द में लीन हो जाने के कारण उसको संसार रूपी दावानल की न तो याद आती है और न तो वहाँ से वह बाहर ही निकलना चाहता है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

सिद्धास्तु तत्कथासुखमभिनन्दन्तः स्तुवन्ति । अयं नो मनोगजस्त्वत्कथैव मृष्टं शुद्धं पीयूषं तन्मयी या नदी तस्यामवगाढः प्रविष्टो दावाग्नितुल्यं संसारतापं न संस्मरति स्म । नच ततो निर्गच्छति । ब्रह्मसंपन्नवद्ब्रह्मैक्यं प्राप्त इव ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

सिद्ध पुरुष श्रीभगवान् की कथा के श्रवण जन्य आनन्द की प्रशंसा करते हुए उनकी स्तुति करते हैं । हे भगवन् ! यह हमारा मन रूपी हाथी आपकी कथा रूपी शुद्ध अमृतमयी नदी में प्रवेश कर गया है । इसके कारण यह इस समय दावाग्नि के समान संसार में प्राप्त होने वाले संताप का स्मरण नहीं करता है । वह आपकी इस अमृतमयी कथा नदी से बाहर निकलना भी नहीं चाहता हैं । मानो उसने ब्रह्म से अभेद को प्राप्त कर लिया हैं।।३५।।

यजमान्युवाच

स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः ।
तवामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते शीर्षहीनः कबन्धो यथा पूरुषः ॥३६॥

अन्वयः— हे ईश ! तेस्वागतम्, तुभ्यं नमः । हे श्रीनिवास श्रिया कान्तया नः त्राहि । हे अधीश त्वामृते अङ्गैः मखः पुरुषः शीर्ष हीनः कबन्धो यथा न शोभते ॥३६॥

यजमान की पत्नि ने कहा

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् ! आपका स्वागत है । आपको मैं नमस्कार करती हूँ । आप मुझपर प्रसन्न हो जायँ । हे लक्ष्मीपते ! आप अपनी प्रियतमा पत्नी लक्ष्मीजी के साथ हमारी रक्षा करें । हे यज्ञों के स्वामिन्! आपके बिना अङ्गों से युक्त भी यह यज्ञ पुरुष उसी तरह सुशोभित नहीं होता है जिस तरह शिर से रहित केवल धड़ सुशोभित नहीं होता है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

यजमानी दक्षपत्नी स्तौति । ते स्वागतं भद्रमागमनं जातम् । हे अधीश, यथा शिरसा हीनः कबन्धमात्रः पुरुषोऽङ्गैः करचरणाद्यवयवैः शोभमानैरपि न शोभते तथा त्वां विना केवलं प्रयाजाद्यङ्गैर्मखो न शोभते । अतो नः श्रिया सह त्रायस्व त्वद्भक्तान्कुर्वित्यर्थः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

यजमानी दक्ष की पत्नी स्तुति करती हुई कहती है, हे प्रभो ! आपका मङ्गलमय आगमन हुआ है, आपका स्वागत है । हे यज्ञाधीश प्रभो ! आपके बिना यज्ञ उसी तरह सुशोभित नहीं होता है जिस तरह शिर के बिना हाथ पैर आदि अङ्गों से युक्त भी केवल धड़ मात्र नहीं सुशोभित होता है । अर्थात् आपके बिना केवल प्रयाज आदि अङ्गों से युक्त भी यज्ञ सुशोभित नहीं होता है । अतएव आप अपनी पत्नी लक्ष्मीजी के साथ अपने भक्त हमलोगों की रक्षा करें ॥३६॥

लोकपाला ऊचुः

दृष्टः किं नो दृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वं प्रत्यग्द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम् ।
माया ह्येषा भवदीया हि भूमन्यस्त्वं षष्ठः पञ्चभिर्भासि भूतैः ॥३७॥

अन्वयः— हे भूमन् त्वं नः अससद्ग्रहैः दृष्टः किम् ? प्रत्यक् द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम् । यस्त्वं षष्टः पञ्चभिः भूतैः षष्ठः भासि एषा भवदीया माया ॥३७॥

लोकपालों ने कहा

अनुवाद— हे अनन्त परमात्मन् ! आप समस्त अन्तःकरणों के साक्षी हैं । यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् आपके ही द्वारा देखा जाता है । आप हमारी इन मायिक पदार्थों का साक्षात्कार करने वाली इन्द्रियों के द्वारा कभी देखे जा सकते हैं क्या ? आप इन पाँच भूतों के साथ छठे के रूप में प्रतीत होते हैं, यह तो आप की माया है । आप इन सबों से पृथक् हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

लोकपालास्त्वीश्वरवाभिमानारूढा भगवतस्तत्त्वमपश्यन्त ऊचुः । दृष्टः किं, न दृष्ट इत्यर्थः । कुतः । असद्ग्रहैः । पुंस्त्वमाविष्टलिङ्गत्वात् । असत्प्रकाशरूपाभिर्दृग्भिरिन्द्रियैः । अयं भावः-शुद्धचित्तानां त्वं शुद्धसत्त्वमूर्तिर्भासि । अस्माकं तु बहिर्मुखेन्द्रियाणां पञ्चभूतोपलक्षितो जीवविशेष इवावभासि । अतस्त्वमस्मदिन्द्रियगोचरो न भवसि । धिगस्मज्जीवितमिति॥३७॥

भाव प्रकाशिका

लोकपाल ईश्वरत्वाभिमान से युक्त हैं । उनको परमात्म तत्त्व का ज्ञान नहीं है । इस प्रकार के लोकपालों ने कहा— आपको हमलोगों ने अपनी इन्द्रियों से कभी भी नहीं देखा है क्योंकि हमारी वे इन्द्रियाँ असत् (मिथ्या) पदार्थों का ग्रहण करने वाली हैं । यहाँ पर पुल्लिङ्ग प्रयोग अविष्टलिङ्ग (विशेष्य निघ्न) होने के कारण है । इन्द्रियों का स्वभाव है कि वे असत् पदार्थ का ही प्रकाश करती हैं । उन इन्द्रियों से आपका साक्षात्कार कैसे हो सकता है ? । **अयं भावः इत्यादि** कहने का अभिप्राय है कि जिन पुरुषों का मन शुद्ध होता है उन लोगों को आप शुद्ध सत्त्व रूप से प्रकाशित होते हैं । हमलोगों की इन्द्रियाँ तो बहिर्मुख हैं । अतएव उन सबों के द्वारा आप पञ्चभूतोंपलक्षित जीव विशेष के समान प्रतीत होते हैं । इसीलिए आप हमलोगों की इन्द्रियों के विषय नहीं बनाते हैं । हमलोगों के जीवन को धिक्कार है ।।३७।।

योगेश्वरा ऊचुः

प्रेयान्न तेऽन्योऽस्त्यमुतस्त्वयि प्रभो विश्वात्मनीक्षेन्न पृथग्य आत्मनः ।
अथापि भवन्त्येश तयोपधावतामनन्यवृत्त्याऽनुगृहाण वत्सल ।।३८।।

अन्वयः— हे विश्वात्मन् प्रभो ! यः आत्मनः य त्वयि पृथक् न ईक्षेत् अमुतः ते अन्यः प्रेयान् न अस्ति अथापि ईश तया अनन्यभक्त्या उपधवताम् हे वत्सल अनुगृहाण ।।३८।।

योगेश्वरों ने कहा

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् की आत्मा स्वरूप प्रभो ! जो उपासक आपको अपनी आत्मा से अभिन्न मानता है उससे अधिक आपको कोई भी प्रिय नहीं है । फिर भी हे भक्तवत्सल प्रभो जो लोग आपमें स्वामिभाव को रखकर अपनी अनन्या भक्ति के द्वारा आपकी सेवा करते हैं उन लोगों को भी आप अनुगृहीत करें ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

योगेश्वरास्तदभेदेन भजतामनुग्रहभाक्त्वं मन्यमानाः स्वामिभृत्यभावेन भजतामप्यनुग्रहं प्रार्थयमानाः स्तुवन्ति द्वाभ्याम् प्रेयानिति । विश्वात्मनि परब्रह्मणि त्वयि य आत्मनः पृथक्त्वं नेक्षेत अमुतोऽमुष्मादन्यस्ते प्रेष्ठो नास्ति आत्मनो जीवात्पृथङेक्षेतेति वा । हे वत्सल भक्तजनप्रिय, अनन्यवृत्त्याऽव्यभिचारिण्या भक्त्या भजतोऽनुगृहाणेत्यर्थः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

योगेश्वरों का यह मानना है कि जो लोग भगवान् की उपासना अपने से अभिन्न मानकर करते हैं वे ही श्रीभगवान् के अनुग्रह के पात्र हैं । वे श्रीभगवान् की प्रार्थना इसलिए करते हैं कि जो लोग श्रीभगवान् को अपना स्वामी मानकर स्वामिभृत्य भाव से उनकी उपासना करते हैं उन लोगों को वे अनुगृहीत करें । **प्रेयान् इत्यादि** सम्पूर्ण जगत् की आत्मा आपमें अपने से भिन्न नहीं मानता है, उन उपासकों से भिन्न कोई दूसरा आपको अधिक प्रिय नहीं है । अथवा जो लोग आत्मा से भिन्न जीवों को नहीं देखते हैं यह भी अर्थ हो सकता है । हे भक्तों के प्रिय भगवन् ! जो लोग स्वस्वामिभाव रूप सम्बन्ध मानकर आपकी सेवा अव्यभिचारिणी भक्ति आपकी करते हैं, उन लोगों को भी आप अनुगृहीत करें ।।३८।।

जगदुद्भवस्थितिलयेषु दैवतो बहुभिद्यमानगुणयात्ममायया ।
रचितात्मभेदमतये स्वसंस्थया विनिवर्तितभ्रमगुणात्मने नमः ।।३९।।

अन्वयः— दैवतः बहुभिद्यमानमानगुणया आत्ममायया जगदुद्भवस्थितिलयेषु रचितात्मभेदर्मतये स्वसंस्थया विनिवर्तित भ्रमगुणात्मने नमः ।।३९।।

अनुवाद— जीवों के अदृष्ट के कारण जिसके सत्त्वादि गुणों में बहुत अधिक भेद आ जाता है उसे अपनी माया के द्वारा जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय के लिए आप ब्रह्मा आदि विभिन्न रूपों को धारण करके भेद बुद्धि को उत्पन्न करने का काम करते हैं, किन्तु आप स्वरूपत: उस भेद ज्ञान और उसके कारण से बहुत दूर हैं । ऐसे आपको मेरा नमस्कार हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

अव्यभिचारिणी भक्तिः कथं स्याद्भजनीयानां बहुत्वादित्याशङ्क्याहुः । जगत उद्भवादिषु निमित्तेषु दैवतो जीवादृष्टाद्बहुधा भिद्यमाना गुणा यस्यास्तया स्वमाययात्मनि स्वरूपे रचिता ब्रह्मादिभेदमतिर्येन तस्मै । स्वसंस्थया केवलस्वरूपावस्थानेन च विनिवर्तितो भेदभ्रमो गुणाश्च तद्धेतव आत्मनि येन तस्मै ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि भजनीय तो अनेक हैं ऐसे स्थिति में अव्यभिचारिणी भक्ति कैसे हो सकती है ? इस प्रकार की आशंका करके योगेश्वरों ने कहा— जगत् की उत्पत्ति आदि कार्यों के लिए दैव वशात् जीवों के अदृष्ट के कारण जिसके सत्त्वादि गुणों में अनेक प्रकार के भेद हैं उस माया के ही कारण आप भी अपने में ब्रह्मादि भेदों को ब्रह्मा आदि के भेद से भेद उत्पन्न कर देते हैं और अपने स्वरूप से तो आप में भेद का भ्रम है ही नहीं । आप इन भेदों और माया के भेदों और गुणों से रहित ही हैं । ऐसे आपको नमस्कार हैं ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

नमस्ते श्रितसत्त्वाय धर्मादीनां च सूतये । निर्गुणाय च यत्काष्ठां नाहं वेदापरेऽपि च ॥४०॥

अन्वयः— धर्मादीनां च सूतये श्रित सत्त्वाय, निर्गुणाय ते नमः । यत् काष्ठां अहं वेद अपरे अपि च न ॥४०॥

शब्द ब्रह्म ने कहा

अनुवाद— धर्म आदि की उत्पत्ति के लिए शुद्ध सत्त्वगुण को धारण करने वाले तथा निर्गुण स्वरूप आपको मैं नमस्कार करता हूँ । आपके तत्त्व को न तो मैं जानता हूँ और न कोई दूसरा जानता है ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

शब्दब्रह्म स्तौति । नमस्त इति । श्रितं स्वीकृतं सत्त्वं येनातो धर्मादिफलप्रसवित्रे । ननु सत्त्वगुणत्वं निर्गुणत्वं चैकस्य कथमित्याशङ्क्याह । यस्य काष्ठां तत्त्वं नाहं वेद्मि, अपरे ब्रह्मादयश्च न विदुस्तस्मै ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए शब्द ब्रह्म कहता है **नमस्तेः इति** जो आप धर्म आदि की उत्पत्ति के लिए शुद्ध सत्त्वगुण को धारण करते हैं ऐसे आपको मेरा नमस्कार है किञ्च निर्गुण आपको मेरा नमस्कार है । अब प्रश्न है कि एक परमात्मा में सत्त्वगुणत्व और निर्गुणत्व दोनों कैसे रह सकते हैं ? इस प्रकार की आशङ्का करके वेद कहते हैं । जिस आपकी काष्ठा सीमा को न तो मैं जानता हूँ और न तो ये ब्रह्मा आदि देवता ही जानते हैं ॥४०॥

अग्निरुवाच

यत्तेजासाऽहं सुसमिद्धतेजा हव्यं वहे स्वध्वर आज्यसिक्तम् ।
तं यज्ञियं पञ्चविधं च पञ्चभिः स्विष्टं यजुर्भिः प्रणतोऽस्मि यज्ञम् ॥४१॥

अन्वयः— यत् तेजसा सुसमिद्ध तेजा अहं स्वध्वरे आज्यसिक्तम् हव्यं वहे पञ्चविधं यज्ञियं, पञ्चभिः यजुर्भिः स्विष्टं यज्ञम् अहम् प्रणतो अस्मि ॥४१॥

अग्नि ने कहा

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् के तेज से प्रज्वलित होकर मैं श्रेष्ठ यज्ञों में देवताओं तक घृत मिश्रित हविष्य को पहुँचाने का कार्य करता हूँ ऐसे आप स्वयम् यज्ञ स्वरूप हैं और यज्ञों की रक्षा करने वाले हैं। अग्निहोत्र दर्श, पौर्णमस चातुर्मास्य और पशुसोम ये पाँचो प्रकार के यज्ञ आपके स्वरूप है और 'आश्रावय' 'अस्तु' 'श्रोपट्' 'यजे' और 'यजामहे' इन पाँच प्रकार के यजु: मन्त्रों से आपकी ही आराधना होती है । ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूँ ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

अग्निस्तु यज्ञमूर्तिं प्रणमति । यस्य तेजसा सुष्ठु समिद्धं प्रदीप्तं तेजो यस्य सोऽहं प्रशस्तेऽध्वरे हविर्वहामि । तं यज्ञियं यज्ञाय हितं पालकम् । यज्ञं यज्ञमूर्तिम् । पञ्चविधत्वमैतरेयके उक्तम् । 'स एष यज्ञः पञ्चविधोऽग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यानि पशुः सोमः' इति । पञ्चभिर्यजुर्भिर्यज्ञमन्त्रैः स्विष्टं सुपूजितम् । तथा च श्रुतिः । 'आश्रावयेति चतुरक्षरं, अस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरं, यजेति द्वक्षरं ये यजामह इति पञ्चाक्षरं, द्वक्षरो वषट्कारः । स्मृतिश्च 'चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च । हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु ।।' इति ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

अग्नि तो यज्ञमूर्ति श्रीभगवान् की स्तुति करते हैं । वे कहते हैं जिस आपके तेज से मैं अच्छी तरह प्रज्वलित होता हूँ ऐसा मैं श्रेष्ठ यज्ञ में देवताओं तक हविष्य पहुँचाने का काम करता हूँ । उन यज्ञों के पालक तथा यज्ञ शरीरक आपको प्रणाम करता हूँ । यज्ञ के पञ्च विधत्व का प्रतिपादन करते हुए तैत्तिरेयारण्यक में कहा गया है **''एष यज्ञः पञ्चविधोऽग्निहोत्रं, दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यानि पशुःसोमः ।'' इति** । अर्थात् यह यज्ञ पाञ्च प्रकार का है। अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य और पशुसोम । इन यज्ञों में यज्ञ के पाँच यजुर्मन्त्रों से भगवान् सुपूजित होते हैं । श्रुति भी कहती है **आश्रवयेति चतुरक्षरम् अस्तु श्रोषडिति चतुरक्षरम् यजेति द्वयक्षरं, ये यजामह इति पञ्चाक्षरं, द्वयक्षरो वषट्कारः** अर्थात् **आश्रावय** यह चार अक्षरों वाला मन्त्र है । **अस्तु श्रौषट्** यह चार अक्षरों वाला मन्त्र है, **यज** यह दो अक्षरों वाला मन्त्र है **ये यजामहे** यह पाञ्च अक्षरों वाला मन्त्र तथा **वषट्** यह दो अक्षरों वाला मन्त्र हैं । स्मृति भी कहती है । **चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्यां पञ्चभिरेव च हूयते च पुनर्द्वाभ्यां स मे विष्णुः प्रसीदतु** । अर्थात् जिन भगवान् विष्णु की आश्रावय इस चार अक्षरों वाले मन्त्र से और अस्तुश्रौषट् इस चार अक्षरों वाले मन्त्र से उसके पश्चात् **यज** इस दो अक्षरों वाले मन्त्र से **ये यजामहे** इस पाँच अक्षरों वाले मन्त्र से तथा **वषट्** इस दो अक्षरों वाले मन्त्र से आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं, वे भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जायँ ।।४१।।

देवा ऊचुः

पुरा कल्पापाये स्वकृतमुदरीकृत्य विकृतं त्वमेवाद्यस्तस्मिन्सलिल उरगेन्द्राधिशयने ।
पुमान् शेषे सिद्धैर्हृदि विमृशिताध्यात्मपदविःस एवाद्याक्ष्णोर्यः पथि चरसि भृत्यानवसि नः ।।४२।।

अन्वयः— त्वमेवाद्यः पुमान्, पुरा कल्पापाये स्वकृतम्, विकृतम् उदरीकृत्य त्वमेव तस्मिन् सलिले उरगेन्द्राधिशयने शेषे, अहयात्मपदविः सिद्धे हृदि विमृशित यः स एव अद्य अक्ष्णोः पथि चरसि नः भृत्यान् अवसि ।।४२।।

देवताओं ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! आप ही आदि पुरुष हैं । पूर्व कल्प के समाप्त हो जाने पर अपने कार्यभूत इस सम्पूर्ण प्रपञ्च को आप अपने उदर में लीन करके आप ही उस प्रलय कालीन जल के भीतर शेष नाग की शय्या पर शयन करते हैं, आपके आध्यात्मिक स्वरूप का चिन्तन जन लोक निवासी सिद्धगण अपने हृदय में चिन्तन करते हैं । वही आप आज हमलोगों को दर्शन देकर अपने भृत्य हम देवताओं की रक्षा कर रहे हैं ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

देवास्तु सत्यं वयमपि देवास्तथापि जगदाद्यन्तयोस्त्वमेव नान्यः कश्चिदित्याहुः-पुरेति कल्पापाये प्रलये विकृतं

कार्यजातमुदरीकृत्य संहृत्य त्वमेवाद्यः पुमानुरगेन्द्र एवाधिकं शयनं शय्या तस्मिन् शेषे शयनं करोषि । सिद्धैर्जनलोकादिवासिभिर्विमृशिता विचिन्तिताऽध्यात्मपदवी ज्ञानमार्गो यस्य स एव त्वं य इदानीमक्ष्णोः पथि चरसि प्रत्यक्षोसि । अवसि रक्षसि ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

देवताओं ने कहा कि यह सत्य है कि हमलोग भी देव जाति के हैं, किन्तु जगत् के आदि में और अन्त में केवल आप ही रहते हैं, कोई भी दूसरा देव नहीं रहता है । इस अर्थ का प्रतिपादन **पुराकल्पापये इत्यादि** श्लोक से करते हैं । पूर्व कल्प के समाप्त हो जाने पर प्रलय काल की बेला मे अपने सम्पूर्ण कार्य समूह रूपी जगत् को अपने उदर में लीन करके आप शेष नाग की शय्या पर शयन करते हैं । अतएव आप ही आदि पुरुष हैं । जन लोक आदि लोकों में रहने वाले सिद्धगण आपके आध्यात्मिक ज्ञान मार्ग का अपने हृदय मे चिन्तन करते हैं । वही आप आज हमलोगों को दर्शन देकर आपके अनुचर हम देवताओं की रक्षा कर रहे हैं ।।४२।।

गन्धर्वा ऊचुः

अंशांशास्ते देव मरीच्यादय एते ब्रह्मेन्द्राद्या देवगणां रुद्रपुरोगाः ।
क्रीडाभाण्डं विश्वमिदं यस्य विभूमंस्तस्मै नित्यं नाथ नमस्ते करवाम ।।४३।।

अन्वयः— हे देव ! एते मरीच्यादयः एते रुद्रपुरोगाः ब्रह्मेन्द्राद्याः देवगणाः ते अंशांशाः हे विभूमन् इदं विश्वं यस्य क्रीडाभाण्डम् हे नाथ तस्मै ते नित्यं नमः करवामः ।।४३।।

गन्धर्वों ने कहा

अनुवाद— हे देव ! ये मरीचि आदि ऋषिगण और रुद्र प्रमुख ब्रह्मा इन्द्र आदि सभी देवगण आपके अंश के भी अंश हैं । हे जगद् व्यापक प्रभो ! यह सम्पूर्ण जगत् आपकी क्रीडा की सामग्री है । हे नाथ ! ऐसे आपको हम सदैव नमस्कार करते हैं ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

गन्धर्वाप्सरसस्तु वयं भिया केवलं सर्वानपि परमेश्वरत्वेनोपश्लोकयामस्त्वमेव तु परमेश्वरोऽन्ये तु त्वदंशा एवेत्याहुः- अंशांशा इति । हे विभूमन्महत्तम, क्रीडाभाण्डं क्रीडोपकरणं विश्वं ब्रह्माण्डं यस्य तस्मै ते नमनं कुर्मः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

गन्धर्वों और अप्सराओं ने कहा— हमलोग तो केवल भय के कारण सबों को परमेश्वर कहकर उन सबों की स्तुति किया करते हैं । किन्तु वास्तविकता यही है कि केवल आप ही परमेश्वर हैं, दूसरे देवता तो आपके अंश के भी अंश हैं । हे जगद्व्यापक ! महत्तम प्रभो ! यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आपकी क्रीड़ा का उपकरण है । ऐसे आपको हम सभी नमस्कार करते हैं ।।४३।।

विद्याधरा ऊचुः

त्वन्माययार्थमभिपद्य कलेवरेऽस्मिन्कृत्वा ममाहमिति दुर्मतिरुत्पथैः स्वैः ।
क्षिप्तोऽप्यसद्विषयलालस आत्ममोहं युष्मत्कथामृतनिषेवक उद्व्युदस्येत् ।।४४।।

अन्वयः— अर्थम् अस्मिन् कलेवरे अभिपद्य त्वन्मायया मम अहमिति कृत्वा दुर्मतिः स्वैः उत्पथैः क्षिप्तोऽपि असद्विषयलालसः युष्मत् कथा निषेवक आत्ममोहं उद्व्युदस्येत् ।।४४।।

विद्याधरों ने कहा

अनुवाद— परम पुरुषार्थ के साधन भूत इस मानव शरीर को प्राप्त करके जीव आपकी माया से मोहित होकर इस शरीर में ही अहन्त्व तथा ममत्व का अभिमान करता है । उसके पश्चात् वह दुर्बुद्धि अपने आत्मीयों

से तिरस्कृत होकर भी असत् विषयों को प्राप्त करने की लालसा करता है, किन्तु जो लोग आपकी कथा रूपी अमृत का सेवन करते हैं वे इस आत्मविषयक अज्ञान को पूर्ण रूप से त्याग देते हैं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

विद्याधरास्तु केवलं विद्याभिः संपदः प्राप्यन्ते अहंकारादिव्यामोहनिवृत्तिस्तु त्वत्कथाश्रवणं बिना नास्तीत्याहुः । अर्थं पुरुषार्थसाधनं कलेवरमभिपद्य प्राप्य त्वन्माययास्मिन्ममेत्यहमिति चाभिमानं कृत्वेममात्ममोहं युष्मत्कथामृतनिषेवक उदुच्चैर्व्युदस्येत् परित्यजेन्नान्यः । ननु स्वैः पुत्रादिभिरधिक्षिप्तो दुःखितः सन्परित्यजेदेव, नेत्याहुः । क्षिप्तोऽपि दुर्मतिः । असत्सु विषयेष्वेव लालसा तृष्णा यस्य सः ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

विद्याधर तो विद्याओं के ही द्वारा संपत्तियों को प्राप्त करते हैं । उन लोगों ने कहा कि हे भगवन् । आपके कथाओं का श्रवण किए बिना अहङ्कार की निवृत्ति नहीं होती है । श्लोक के अर्थ शब्द का अर्थ है पुरुषार्थ का साधन । यह मानव शरीर परम पुरुषार्थ का साधन है, इस शरीर को प्राप्त करके भी मनुष्य आपकी माया से मोहित होकर इस शरीर में ही अहन्त्व और ममत्व का अभिमान करता है । इस आत्म विषयक अज्ञान को तो आपकी कथा रूपी अमृत का सेवन करके ही मनुष्य पूर्ण रूप से त्याग सकता है । **ननु० इत्यादि** यदि कोई यह कहे कि मनुष्य जब अपने पुत्रों आदि से अपमानित होता है उसी से उसको अहंत्व ममत्व का परित्याग कर देना चाहिए। तो ऐसी बात नहीं है । उन सबों से अपमानित भी होकर वह अज्ञानी मनुष्य असत् पदार्थों को ही प्राप्त करने की इच्छा करता है ।।४४।।

ब्राह्मणा ऊचुः

त्वं क्रतुस्त्वं हविस्त्वं हुताशः स्वयं त्वं हि मन्त्रः समिद्दर्भपात्राणि च ।
त्वं सदस्यर्त्विजो दंपती देवता अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ।।४५।।

अन्वयः— त्वम् क्रतुः, त्वं हविः, त्वं हुताशः, स्वयं त्वं हि मन्त्रः, समिद्दर्भ पात्राणि च त्वं सदस्यर्त्विजः दम्पती, देवता, अग्निहोत्रं, स्वधा, सोमः आज्यं पशुः ।।४५।।

ब्राह्मण ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! आप ही यज्ञ हैं, आप ही हविष्य हैं, आप ही अग्नि हैं, स्वयम् आप ही मन्त्र हैं । आप ही समिधा, कुश, और यज्ञपात्र हैं । आप ही सदस्य, आप ही ऋत्विज्, आप ही यजमान और यजमान पत्नी हैं, आप ही देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, घृत तथा पशु आप ही हैं ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणाः स्तुवन्ति- त्वमिति त्रिभिः । सदस्याश्च ऋत्विजश्च ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों ने श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए कहा कि हे भगवन् ! यज्ञ तथा यज्ञ के सारी सामग्री आप ही हैं। यज्ञ के सदस्य तथा ऋत्विज भी आप ही हैं । इस तरह से ब्राह्मणों ने तीन श्लोकों से भगवान् की स्तुति की ।।४५।।

त्वं पुरा गां रसाया महासूकरो दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रो यथा ।
स्तूयमानो नदँल्लीलया योगिभिर्व्युज्जहर्थ त्रयीगात्र यज्ञक्रतुः ।।४६।।

अन्वयः— हे त्रयीगात्र यज्ञ क्रतुः पुरात्वं गां रसायाः महासूकरः वारणेन्द्रो द्रंष्ट्रया पद्मिमनीं यथा लीलया नदन् योगिभिः स्तूयमानः व्युज्जहर्थ ।।४६।।

अनुवाद— हे वेदमूर्ते भगवन् ! आप ही यज्ञ और यज्ञ के सङ्कल्प भी आप ही हैं । पूर्वकाल में रसातल में गयी पृथिवी का उद्धार करने वाले महावराह आप ही हैं । जिस तरह से कोई गजेन्द्र किसी कमलिनी को अपने दाँतों पर रख लेता है । उसी तरह से आप अपने दाँतों पर रखकर पृथिवी का उद्धार किए । उस समय आप धीरे-धीरे गर्जना कर रहे थे और योगिजन आपकी स्तुति कर रहे थे ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

गां पृथ्वीं रसाया सातलाद्दंष्ट्रया व्युज्जहर्थ विशेषेणोद्धृतवानसि योगिभिः स्तूयमानः । हे त्रयीगात्र वेदमूर्ते, यज्ञो यागः सयूपस्तद्विशेषः, क्रतुस्तद्रूपी यज्ञसंकल्परूप इति वा । यज्ञः क्रतुः कर्म यस्येति वा ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

रसातल में गयी हुयी पृथ्वी को आप रसातल में अपने दाँतों से उद्धार किए । अर्थात् आपने विशेष रूप से उद्धार किया यह **व्युज्जहर्थ** पद का अर्थ है । उस समय योगिजन आपकी स्तुति कर रहे थे । हे त्रयीगात्र अर्थात् वेदमूर्ते भगवन् ! यूप से युक्त यज्ञयाग कहलाता है । उस प्रकार के यज्ञ के सङ्कल्प विशेष भी आप हैं । अथवा यज्ञ क्रतुः शब्द का अर्थ है, यज्ञ ही जिस का काम है ।।४६।।

स प्रसीद त्वमस्माकमाकाङ्क्षतां दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ।
कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ।।४७।।

अन्वयः— हे यज्ञेश नृभिः ते नाम्नि कीर्त्यमाने यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति । परिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ते दर्शनमाकाङ्क्षतां स त्वं प्रसीद तस्मैनमः ।।४७।।

अनुवाद— हे यज्ञेश्वर ! लोग जब आपके नाम का उच्चारण करते हैं तो यज्ञों के विघ्न विनष्ट हो जाते हैं । हमलोगों का यह सत्कर्मरूपी यज्ञ नष्ट हो गया था, अतएव हमलोग आपका दर्शन प्राप्त करना चाहते थे। अब आप हम पर प्रसन्न हो जाइये आपको नमस्कार हैं ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

स त्वमस्माकं त्वद्दर्शनमाकाङ्क्षतां प्रसीद अस्मद्यज्ञमप्युद्धरेत्यर्थः । न चाशक्यं तवैतत् । यतस्तव नाम्नि कीर्त्यमान एव यज्ञविघ्ना; क्षयं यान्ति । एवंप्रभावो यस्तस्मै नमः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्राह्मण श्रीभगवान् से कह रहे हैं । कि हमलोग आपका दर्शन प्राप्त करना चाहते थे, अतएव आप हमलोगों पर प्रसन्न हो जाइये और हमारे यज्ञ का भी उद्धार कीजिये । आपके लिए यह अशक्य इसलिए नहीं है कि आपका नामोच्चारण करने मात्र से यज्ञों के विघ्न दूर हो जाते हैं । इस प्रकार के प्रभाव सम्पन्न आपको नमस्कार हैं ।।४७।।

मैत्रेय उवाच

इति दक्षः कविर्यज्ञं भद्र रुद्रावमर्शितम् । कीर्त्यमाने हृषीकेशे संनिन्ये यज्ञभावने ।।४८।।

अन्वयः— हे भद्र ! इति यज्ञभावने हृषीकेशे कीर्त्यमाने कविः दक्षः रुद्रावमर्शितम् यज्ञं सं निन्ये ।।४८।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे विदुर ! इस प्रकार से सब लोगों द्वारा यज्ञों के रक्षक श्रीभगवान् की स्तुति किए जाने पर चतुर दक्ष ने वीरभद्र के द्वारा ध्वंस किए हुए यज्ञ को पुनः प्रारम्भ कर दिया ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

इत्यनेन प्रकारेण सर्वैः कीर्त्यमाने । हे भद्र विदुर । संनिन्ये प्रवर्तयामास ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से सब लोगों द्वारा स्तुति किए जाते हुए देखकर चतुर दक्ष ने वीरभद्र के द्वारा ध्वस्त किए गये यज्ञ को फिर से करना प्रारम्भ कर दिया ॥४८॥

भगवान्स्वेन भागेन सर्वात्मा सर्वभागभुक् । दक्षं बभाष आभाष्य प्रीयमाण इवानघ ॥४९॥

अन्वयः— हे अनघ ! सर्वात्मा सर्वभागभुक् भगवान् स्वेन भागेन प्रियमाण इव दक्षं आभाष्य बभाषे ॥४९॥

अनुवाद— हे अनघ ! सर्वान्तर्यामी भगवान् सभी के भोगों के भोक्ता हैं । उन्होंने त्रिकपाल पुरोडाश रूप अपने भाग से और भी प्रसन्न होकर दक्ष को सम्बोधित करके कहा ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

सर्वात्मतया सर्वभागभोक्तापि भगवान्निजानन्दतृप्तोऽपि स्वेन भागेन त्रिकपालपुरोडाशेन प्रीयमाण इव दक्षमाभाष्य संबोध्य बभाषे ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् अन्तर्यामी रूप से सबों की आत्मा है । अतएव वे सबों के भागों के भोक्ता हैं । वे भगवान् अपने आनन्द मात्र से ही तृप्त हैं फिर भी अपने त्रिकपाल रूप पुरोडश से प्रसन्न होते हुए दक्ष को सम्बोधित करके कहे ॥४९॥

श्रीभगवानुवाच

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् । आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयंदृगविशेषणः ॥५०॥

अन्वयः— जगतः परमं कारणम् अहं, ब्रह्मा च शर्वश्च आत्मा ईश्वरः उपद्रष्टा स्वयंदृक् अविशेषणः ॥५०॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— जगत् का परम कारण मैं हूँ । मैं ही ब्रह्मा और शिव हूँ । मैं सबों की आत्मा, ईश्वर और साक्षी हूँ मैं स्वयं प्रकाश और उपाधि शून्य हूँ ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

योऽहं जगतः कारणं आत्मा चेश्वरश्च उपद्रष्टा साक्षी च स्वयंप्रकाशश्च निरूपाधिश्च स एव ब्रह्मा शर्वश्चेत्यन्वयः ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

जो मैं सम्पूर्ण जगत् का कारण आत्मा, ईश्वर (नियामक) साक्षी और स्वयं प्रकाश उपाधि रहित हूँ । वहीं मैं ब्रह्मा और शिव भी हूँ ॥५०॥

आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज । सृजन्रक्षन्हरन्विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥५१॥

अन्वयः— हे द्विज गुणमयी आत्ममायां समाविश्य सोऽहम् विश्वं सृजन् रक्षन् हरन क्रियेचितां संज्ञां दध्रे ॥५१॥

अनुवाद— हे द्विज ! अपनी त्रिगुणात्मिका माया को स्वीकार करके मैं ही जगत् की सृष्टि करता हूँ रक्षा करता हूँ और संहार करता हूँ । और मैं ही इन कर्मों के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन संज्ञाओं को धारण करता हूँ ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

कुत इत्यत आह । अहमेवात्ममायामधिष्ठाय जगत्सृष्ट्यादि कुर्वन्स च स च सन्सर्वशक्तिः क्रियोचितां संज्ञां धारयामि॥५१॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि यह कैसे ? तो इस पर श्रीभगवान् कहते हैं । मैं ही अपनी त्रिगुणात्मिका माया को स्वीकार करके जगत् की सृष्टि आदि करने का काम करता हूँ । इस तरह से सर्वशक्ति सम्पन्न मैं अपने कर्मों के अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र इन नामों को धारण करता हूँ ।।५१।।

तस्मिन्ब्रह्मण्यद्वितीये केवले परमात्मनि । ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनु पश्यति ।।५२।।

अन्वयः— तस्मिन् अद्वितीये केवले परमात्मनि ब्रह्मणि अज्ञः ब्रह्म रुद्रौ च भूतानि च भेदेन अनुपश्यति ।।५२।।

अनुवाद— उस अद्वितीय (भेद रहित) विशुद्ध, परमात्मा मुझ ब्रह्म में अज्ञानी पुरुष ब्रह्मा, रुद्र, और दूसरे जीवों रूपी भेदों को देखता है ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

तस्मिन्केवलेऽद्वितीये समानासमानजातीयभेदरहिते ब्रह्मणि मयि ब्रह्मरुद्रौ भूतानि च भेदेनाज्ञः पश्यतीत्यर्थः ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

उस भेद रहित आदित्य सजातीय और विसजातीय भेद रहित मुझ ब्रह्म में ही ब्रह्मा, रुद्र और दूसरे जीवों का भेद अज्ञानी पुरुष देखता है ।।५२।।

यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित् । पारक्यबुद्धिं कुरुते एवं भूतेषु मत्परः ।।५३।।

अन्वयः— यथा पुमान् शिरः पाणि आदि स्वाङ्गेषु क्वचित् पारक्यबुद्धिं न कुरुते एवं मत्परः भूतेषु ।।५३।।

अनुवाद— जिस तरह से विज्ञ पुरुष शिर हाथ आदि अपने अङ्गो में ये मुझसे भिन्न हैं ऐसी बुद्धि नहीं करता है उसी तरह से मेरा भक्त सभी प्राणियों को मुझसे भिन्न नहीं देखता है ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

विद्वांस्तु भेदं न पश्यतीति सदृष्टान्तमह-यथेति ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

यथा इत्यादि इस श्लोक के द्वारा भगवान् यह बतलाते हैं कि विद्वान् पुरुष जिस तरह से अपने अङ्गों को अपने से भिन्न नहीं जानता है उसी तरह से मेरा भक्त भी सभी प्राणियों को मुझसे भिन्न नहीं देखता है ।।५३।।

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् । सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन्स शान्तिमधिगच्छति ।।५४।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! यो वै एकभावानां त्रयाणां सर्वभूतात्मनाम् भिदाम् पश्यति सःशान्तिम् अधिगच्छति ।।५४।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! जो मेरा भक्त एक स्वरूप वाले, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र जो सबों की आत्मा स्वरूप हैं । हमलोगों में भेद नहीं देखता हैं वह शान्ति को प्राप्त करता है ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

तस्मादेवमैक्यं पश्यन्कृतार्थो भवतीत्याह । त्रयाणामेको भावः स्वरूपं येषाम् ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने दक्ष प्रजापति को बतलाया कि हम तीनों स्वरूपतः एक हैं । अतएव हम लोगों में अभेद को देखने वाला पुरुष कृतार्थ हो जाता है ।।५४।।

मैत्रेय उवाच

एवं भगवतादिष्टः प्रजापतिपतिर्हरिम् । अर्चित्वा क्रतुना स्वेन देवानुभयतोऽयजत् ॥५५॥

अन्वयः— एवं भगवता आदिष्टः प्रजापतिपतिः हरिम् अर्चित्वा स्वेन क्रतुना उभयतः अयजत् ॥५५॥

मैत्रेय जी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से श्रीभगवान् के आदेश को पाकर प्रजापतियों के पति दक्ष प्रजापति त्रिकपाल यज्ञ के द्वारा श्रीभगवान् की पूजा करके ब्रह्मा और रुद्र की भी पूजा प्रयाज आदि अङ्गों और दर्शपौर्णमास आदि प्रधानों से भी की ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

स्वेन क्रतुना त्रिकपालेष्ट्या । उभयतोऽङ्गैः प्रधानेन च ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

अपने त्रिकपाल नाम इष्टि के द्वारा दक्ष प्रजापति ने भगवान् श्रीहरि की पूजा करके प्रयाज आदि अङ्गों और दर्श पूर्णमास आदि अङ्गप्रधानों से ब्रह्मा रुद्र तथा दूसरे देवताओं की पूजा की ॥५५॥

रुद्रं च स्वेन भागेन ह्युपाधावत्समाहितः । कर्मणोदवसानेन सोमपानितरानपि ॥
उदवस्य सहर्त्विग्भिः सस्नाववभृथं ततः ॥५६॥

अन्वयः— समाहितः स्वेन भागेन हिरुद्रं च उपाधावात् उदवसानेन कर्मणा इतरान् सोमपान् ऋत्विग्भिः सह उदवस्य ततः अवमृथं सस्नौ ॥५६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उन्हाने एकाग्रचित्त होकर भगवान् शिव के यज्ञशेष रूप भाग से उन्होंने पूजा की, यज्ञ की समाप्ति में किए जाने वाले उदवसान नामक कर्म के द्वारा उन्होंने दूसरे सोमपान करने वालों की पूजा की उसके पश्चात् यज्ञ को समाप्त करके उन्होंने अवभृथ स्नान किया ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

स्वेन भागेन यज्ञावशिष्टेन । उदवस्यते समाप्यतेऽनेनेत्युदवसानं तेन कर्मणा । सोमपानितरानप्युपाधावदित्यनुषङ्गः । ततश्चोदवस्य कर्म समाप्यावभृथरूपं यथा भवति तथा स्नातवान् ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञ शेष नामक भाग से दक्ष प्रजापति ने शङ्करजी की पूजा की उदवसान नामक कर्म से यज्ञ को समाप्त करके दूसरे सोमपान करने वालों की पूजा की उदवस्यते समाप्यतेऽनेनेत्युदवसानम्, यह उदवसान शब्द की व्युत्पत्ति है । यज्ञ की समाप्ति हो जाने पर दक्ष प्रजापति ने अवभृथ स्नान किया ॥५६॥

तस्मा अप्यनुभावेन स्वेनैवावाप्तराधसे । धर्म एव मतिं दत्त्वा त्रिदशास्ते दिवं ययुः ॥५७॥

अन्वयः— स्वेनैव अनुभावेन प्राप्तराधसे अपि तस्मै ते त्रिदशाः धर्म एव मतिं दत्वा दिवं ययुः ॥५७॥

अनुवाद— अपने ही पुरुषार्थ से जिनको सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो गयी थी उन दक्ष प्रजापति तुम्हारी सदा धर्म में बुद्धि बनी रहे इसका आशीर्वाद देकर वे सभी देवता स्वर्गलोक चले गये ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

स्वेनैवानुभावेनाप्तराधसे प्राप्तसिद्धये तस्मा अपि ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि दक्ष प्रजापति को अपने पुरुषार्थ से ही सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो गयी थीं फिर भी उनको देवताओं ने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी धर्म में बुद्धि बनी रहे और उसके पश्चात् वे सब स्वर्ग लोक चले गये ।।५७।।

एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम् । जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुश्रुम ।।५८।।

अन्वयः— एवं दाक्षायणी सती पूर्वकलेवरम् हित्वा हिमवतः क्षेत्रे मेनायाम् जज्ञे इति शुश्रुम ।।५८।।

अनुवाद— इस तरह से दक्ष प्रजापति की पुत्री सती ने अपने पहले के शरीर को त्यागकर हिमालय की पत्नी मेना के गर्भ से जन्म लिया इस तरह से हमने सुना है ।।५८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५८।।

तमेव दयितं भूय आवृङ्क्ते पतिमम्बिका । अनन्यभावैकगतिं शक्तिः सुप्तेव पूरुषम् ।।५९।।

अन्वयः— सुप्ता शक्तिः अनन्यभावैकगतिम् पूरुषभ इव अम्बिका भूयः अनन्य भावैकगतिं दयितं तमेव पतिम्। आवृङ्क्ते ।।५९।।

अनुवाद— प्रलयकाल में लीन हुई प्रकृति जिस तरह अपने एक मात्र आश्रय परमात्मा का ही पुनः आश्रय लेती है, उसी तरह श्रीअम्बिकाजी ने भी इस जन्म में अपने एक मात्र प्राप्य प्रिय पति भगवान् शिव का ही वरण किया ।।५९।।

भावार्थ दीपिका

आवृङ्क्ते भजते स्म । अनन्यभावानामेकैव गतिर्यस्तम् । प्रलयकाले सुप्ता शक्तिरीश्वरमिव ।।५९।।

भाव प्रकाशिका

आवृङ्क्ते पद का अर्थ है वरण किया । जिस तरह प्रलय काल में लीन हुई प्रकृति अपने आश्रय रूप से ईश्वर को ही अपनाती है, उसी तरह अनन्यभाव से भजन करने वालों को एकमात्र प्राप्य तथा अपने प्रियपति शङ्करजी का ही अम्बिकाजी ने भी वरण किया ।।५९।।

एतद्भगवतः शंभोः कर्म दक्षाध्वरद्रुहः । श्रुतं भागवताच्छिष्यादुद्धवान्मे बृहस्पतेः ।।६०।।

अन्वयः— एततः दक्षाध्वरद्रुहः भगवतः शम्भोः कर्म मे भागवतात् बृहस्पतेः शिष्यात् उद्धवात् श्रुतम् ।।६०।।

अनुवाद— दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंस करने वाले भगवान् शिव का यह कर्म मैंने भगवद् भक्त तथा बृहस्पति के शिष्य उद्धवजी के मुख से सुना है ।।६०।।

भावार्थ दीपिका

बृहस्पतेः शिष्यान्मया श्रुतम् ।।६०।।

भाव प्रकाशिका

मैत्रेयजी ने कहा कि हे विदुर ! दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करने वाले भगवान् शिव के इस चरित्र को मैंने भगवद् भक्त तथा आचार्य बृहस्पति के शिष्य उद्धवजी से सुना है ।।६०।।

इदं पवित्रं परमीशचेष्टितं यशस्यमायुष्यमघौघमर्षणम् ।
यो नित्यदाकर्ण्य नरोऽनुकीर्तयेद्धुनोत्यघं कौरव भक्तिभावतः ।।६१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दक्षयज्ञसंधानं नाम सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

अन्वयः— हे कौरव ! इदं ईश चेष्टितं परमं पवित्रं यशस्यम् आयुष्यम् अघौघमर्षणम् यः नरः एतत् भक्तिभावतः नित्यदा आकर्ण्य अनुकीर्तयेत् अघं धुनोति ।।६१।।

अनुवाद—हे कुरुवंशीय विदुरजी ! भगवान् शिवजी का यह चरित अत्यन्त पवित्र, यश और आयु को प्रदान करने वाला तथा पापों का विनाश करने वाला है । जो नित्य ही भक्तिभाव से इसका श्रवण करके इसका कीर्तन करता है वह अपनी पापराशि का विनाश कर देता है ॥६१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थस्कन्ध के दक्ष यज्ञ का पुनः प्रवर्तन नामक सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

भावार्थ दीपिका

परं पवित्रं य आकर्ण्य तथानुकीर्तयेत्स आत्मनः परस्याप्यघं संसारव्यसनं सर्वदा धुनोति ।।६१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् शङ्कर का यह चरित परं पवित्र यश और आयु को बढ़ाने वाला तथा पापों का विनाश करने वाला है जो इसका भक्ति पूर्वक श्रवण करके इसका कीर्तन करता है, वह अपने पाप समूह को विनष्ट कर देता है॥६१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के भावार्थदीपिका नामक टीका के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका की व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।७।।

* * *

आठवाँ अध्याय

ध्रुव का वनगमन

मैत्रेय उवाच

सनकाद्या नारदश्च ऋभुर्हंसोऽरुणिर्यतिः । नैते गृहान्ब्रह्मसुता ह्यावसन्नूर्ध्वरेतसः ।।१।।

अन्वयः— सनकाद्याः नारदश्च, ऋभुः, हंसः, अरुणिः यतिश्च, एते बह्मसुताः ऊर्ध्वरेतसः, गृहान् नहिअवसन् ।।१।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— सनकादि महर्षि नारद, ऋभु, हंस, अरुणि और यति ये सभी ब्रह्माजी के पुत्र नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे, इन लोगों ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं किया ।।१।।

भावार्थ दीपिका

दक्षकन्यान्वये प्राप्ता दक्षयज्ञकथोदिता । मनुपुत्रान्वये प्राप्ता ध्रुवचर्याथ पञ्चभिः ।।१।। अष्टमे गुरुदारोक्तिरोषमत्सरतः पुरात् । निर्गतेन ध्रुवेणाह तपसा तोषणं हरेः ।।२।। एवं तावन्मनुकन्यान्वयोत्तयैव मरीच्यादीनां ब्रह्मपुत्राणां वंशा वर्णितास्तत्रावशिष्टं किंचिदाह–सनकाद्या इति । नावसन्नाश्रिताः ऊर्ध्वरेतसो नैष्ठिकाः । अतस्तेषां वंशो नास्ति ।।१।।

भाव प्रकाशिका

दक्ष की कन्या के वंशं से संबद्ध दक्ष के यज्ञ की कथा कही गयी । इसके पश्चात् मनु के वंश में उत्पन्न ध्रुव का चरित पाँच अध्यायों में वर्णित है । आठवें अध्याय में अपनी सौतेली माँ की बातों को सुनकर सेवा तथा मत्सर के कारण अपने नगर से निकले हुए ध्रुव के द्वारा की गयी तपस्या के द्वारा श्रीहरि की प्रसन्नता का वर्णन है । इस तरह से मनु की कन्या के वंश कथन से ही मरीचि आदि ब्रह्मा के पुत्रों का वंश का वर्णन कर दिया गया । उसमें कुछ बची हुई बातों को **सनकाद्याः इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । **नावसन्** अर्थात् उन लोगों ने नहीं स्वीकार किया । **ऊर्ध्वरेतसः** अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी अतएव उन सनकादिकों का वंश नहीं हैं ।।१।।

मृषाऽधर्मस्य भार्यासीद्दम्भं मायां च शत्रुहन् । असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिर्जगृहेऽप्रजः ॥२॥

अन्वयः— अधर्मस्य भार्या मृषा आसीत् हे शत्रुहन् सा दम्भं मायां च मिथुनं असूत, तत्तु अप्रजः निर्ऋतिः जगृहे॥२॥

अनुवाद— अधर्म की पत्नी मृषा थी उसने दम्भ और माया नामक दो जुड़वे बच्चों को जन्म दिया । उन दोनों को निःसन्तान निर्ऋति ने ले लिया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अधर्मोऽपि ब्रह्मपुत्रस्तस्य वंशमाह-मृषेति चतुर्भिः । दम्भः परप्रतारणम् । माया तदुचिता चेष्टा । तयोः सोदरयोरपि दाम्पत्यमधर्मांशतया । एवमुपर्यपि । अप्रजोऽपुत्रः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

अधर्म भी ब्रह्माजी का पुत्र था उसका वर्णन चार श्लोकों में किया गया है । दूसरे को धोखा देने को दम्भ कहते है । दम्भ के अनुकूल चेष्टा को माया कहते हैं । अधर्म का अंश होने के कारण वे दोनों दम्भ और माया परस्पर में पति-पत्नी थे । इसी तरह आगे भी समझना चाहिए । अप्रजः का अर्थ है पुत्रहीन ॥२॥

तयोः समभवल्लोभो निकृतिश्च महामते । ताभ्यां क्रोधश्च हिंसा च यद्दुरुक्तिः स्वसा कलिः ॥३॥

अन्वयः— हे महामते तयोः लोभः निकृतश्च ताभ्यां क्रोधश्च हिंसा च ताभ्यां कलिः स्वसा दुरुक्तिः ॥३॥

अनुवाद— हे महाबुद्धिमान् विदुर ! उन दोनों (दम्भ और माया) से लोभ तथा निकृति (शठता) का जन्म हुआ । उन दोनों से क्रोध और हिंसा का जन्म हुआ और उन दोनों से कलि और उसकी बहिन दुरुक्ति (गाली) का जन्म हुआ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

निकृतिः शठता । यत् याभ्यां कलिश्च तस्य स्वसा दुरुक्तिश्चेत्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

निकृति शठता को कहते हैं । लोभ और निकृति से कलि और उसकी बहिन दुरुक्ति की उत्पत्ति हुई ॥३॥

दुरुक्तौ कलिराधत्त भयं मृत्युं च सत्तम । तयोश्च मिथुनं जज्ञे यातना निरयस्तथा ॥४॥

अन्वयः— हे सत्तम ! कलिः दुरुक्तौ भयं मृत्युं च आधत्त तयोश्च यातना तथा निरयः मिथुनं जज्ञे ॥४॥

अनुवाद— हे श्रेष्ठ विदुर ! कलि ने दुरुक्ति के गर्भ में भय तथा मृत्यु का आधान किया और भय तथा मृत्यु से यातना तथा निरय (नरक) नामक जुड़वे बच्चे पैदा हुए ॥४॥

भावार्थ दीपिका

यातना तीव्रवेदना ॥४॥

भाव प्रकाशिका

तीव्र वेदना का नाम यातना हैं ॥४॥

संग्रहेण मयाख्यातः प्रतिसर्गस्तवानघ । त्रिः श्रुत्वैतत्पुमान्पुण्यं विधुनोत्यात्मनो मलम् ॥५॥

अन्वयः— हे अनघ ! मया संग्रहेण तव प्रतिसर्गः ख्यातः एतत् पुण्यं त्रिः श्रुत्वा पुमान् आत्मनो मलम् विधुनोति॥५॥

अनुवाद— हे निष्पाप विदुर ! मैंने तुम्हे संक्षेप में प्रलय के कारण रूप अधर्म के वंश का वर्णन सुनाया। इस पवित्र आख्यान को तीन बार सुनकर मनुष्य अपने पापों का विनाश कर देता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिसर्गोऽनुसर्ग एव । यद्वा प्रतिसर्गः प्रलयः । अधर्मस्य प्रलयहेतुत्वात्प्रतिसर्गत्वम् । एतदेतमधर्मवंशम् । पुण्यमिति वर्जनद्वारा पुण्यहेतुत्वात् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अनुसर्ग को ही यहाँ प्रतिसर्ग कहा गया है । अथवा प्रतिसर्ग का अर्थ प्रलय है । अधर्म प्रलय का कारण है, इसीलिए वह प्रतिसर्ग वाच्य है । **एतत्** शब्द का अर्थ है यह अधर्म का वंश । यह परित्याग के द्वारा पुण्य का कारण है ॥५॥

अथातः कीर्तये वंशं पुण्यकीर्तेः कुरूद्वह । स्वायंभुवस्यापि मनोर्हरेरंशांशजन्मनः ॥६॥

अन्वयः— हे कुरुद्वह अथातः हरेरंशांश जन्मनः पुण्यकीर्तेः स्वायम्भुवस्यापि मनोः वंशं कीर्तये ॥६॥

अनुवाद— हे कुरुनन्दन ! अब मैं श्रीहरि के अंश ब्रह्माजी के अंश से उत्पन्न पवित्र यश वाले स्वायम्भुव मनु के वंश का वर्णन करता हूँ ॥६॥

भावार्थ दीपिका

मनोः पुत्रवंशम् । हरेरंशो ब्रह्मा तस्यांशाद्देहार्धाज्जन्म यस्य ॥६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के अंश ब्रह्माजी के देहार्ध से उत्पन्न पुण्य कीर्ति स्वायम्भुव मनु के पुत्र के वंश का वर्णन करता हूँ ॥६॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ शतरूपापतेः सुतौ । वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतः स्थितौ ॥७॥

अन्वयः— शतरूपापतेः सुतौ प्रियव्रतोत्तनपादौ, वासुदेवस्य कलया जगतः रक्षायां स्थितौ ॥७॥

अनुवाद— शतरूपा के पति स्वायम्भुव मनु के प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दोनों पुत्र भगवान वासुदेव की कला से उत्पन्न होने के कारण जगत् की रक्षा में लगे रहते थे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

जगतो रक्षायां स्थितौ ॥७॥

भाव प्रकाशिका

जगत् की रक्षा करने में लगे रहते थे ॥७॥

जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिस्तयोः । सुरुचिः प्रेयसी पत्युर्नेतरा यत्सुतो ध्रुवः ॥८॥

अन्वयः— उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिः जाये । तयोः सुरुचिः पत्युः प्रेयसी इतरा यत् सुतः ध्रुवः न ॥८॥

अनुवाद—उत्तानपाद की दो पत्नियाँ थी सुनीति और सुरुचि । उन दोनों में से सुरुचिं अपने पति की प्रियतमा थी और दूसरी जिसका पुत्र ध्रुव था वह प्रिय नहीं थीं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

सुनीतिः सुरुचिश्च जाये । तयोर्मध्ये इतरा सुनीतिः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

राजा उत्तानपाद की सुनीति और सुरुचि दोनों पत्नियाँ थी । उन दोनों में से सुरुचि राजा को प्रिय थी और दूसरी सुनीति प्रिय नहीं थी ॥८॥

एकदा सुरुचेः पुत्रमङ्कमारोप्य लालयन् । उत्तमं नारुरुक्षन्तं ध्रुवं राजाऽभ्यनन्दत ॥९॥

अन्वयः— एकदा राजा सुरुचेः पुत्रम् उत्तमम् अङ्कम् आरोप्य लालयन् अरुरुक्षन्तम् ध्रुवम् न अभ्यनन्दत ॥९॥

अनुवाद— एक बार राजा उत्तानपाद सुरुचि के पुत्र उत्तम को अपनी गोद में बैठाकर प्यार कर रहे थे । उसी समय ध्रुव भी गोद में बैठना चाहा; किन्तु राजा ने उसका स्वागत नहीं किया ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तयोः प्रियाप्रियत्वे प्रपञ्चयन् ध्रुवचरित्रमाह पञ्चभिरध्यायैः । सुरुचेः पुत्रमुत्तमसंज्ञं लालयन् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनों पत्नियों के प्रियत्व और अप्रियत्व का वर्णन करते हुए पाँच अध्यायों में ध्रुव का चरित्र वर्णित है । राजा सुरुचि के पुत्र उत्तम को गोद में बैठाकर प्यार कर रहे थे ॥९॥

तथा चिकीर्षमाणं तं सपत्न्यास्तनयं ध्रुवम् । सुरुचिः शृण्वतो राज्ञः सेर्ष्यमाहातिगर्विता ॥१०॥

अन्वयः— तथा चिकीर्षमाणम् तम् सपत्न्याः तनयं ध्रुवम् राज्ञः शृण्वतः अतिगर्वितासुरुचिः सेर्ष्यम् आह ॥१०॥

अनुवाद— अपने पिता की गोद में बैठने का प्रयास करने वाले अपनी सौत के पुत्र धुव्र को देखकर राजा के सामने ही अत्यधिक गर्वीली सुरुचि ने ईर्ष्या पूर्वक ध्रुव से कहा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तथा अङ्कारोहणं चिकीर्षमाणम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

तथा शब्द से अपने पिता की गोद में बैठने के प्रयास को कहा गया है ॥१०॥

न वत्स नृपतेर्धिष्ण्यं भगवानारोढुमर्हति । न गृहीतो मया यत्त्वं कुक्षावपि नृपात्मजः ॥११॥

अन्वयः— वत्स ! भवान् नृपतेः धिष्ण्यम् आरोढं नार्हति, यत् त्वं नृपात्मजः अपि मया कुक्षौ न धृतः ॥११॥

अनुवाद— वत्स ! तुम अपने पिता की गोद में बैठने के अधिकारी नहीं हो । यद्यपि तुम भी राजा के पुत्र हो, फिर भी तुमको मैंने अपने गर्भ में धारण नहीं किया है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

गर्वोक्तिमेवाह त्रिभिः-नेति । नृपतेर्धिष्ण्यमासनं नृपात्मजोऽपि भवान्नारोढुमर्हति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

सुरुचि की गर्वोक्ति को ही **नेति इत्यादि** तीन श्लोकों में कहा गया है । यद्यपि तुम भी राजा-के पुत्र हो फिर भी राजा के आसन पर बैठने के अधिकारी नहीं हो ॥११॥

बालोऽसि बत नात्मानमन्यस्त्रीगर्भसंभृतम् । नूनं वेद भवान्यस्य दुर्लभेऽर्थे मनोरथः ॥१२॥

अन्वयः— बत बालोऽसि, नूनं भवान् अन्य स्त्री गर्भ संभृतम् आत्मानं न वेद । यस्य दुर्लभे अर्थे मनोरथः ॥१२॥

अनुवाद— अभी तुम बालक हो इसीलिए तुम यह नहीं जानते हो कि मैं दूसरी स्त्री के गर्भ से पैदा हुआ हूँ इसीलिए तुम इस प्रकार का दुर्लभ मनोरथ करते हो ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥१२॥

तपसाराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे । गर्भे त्वं साधयात्मानं यदीच्छसि नृपासनम् ॥१३॥

अन्वयः— यदि नृपासनम् इच्छसि तदा तपसा पुरुषं आराध्य तस्यैव अनुग्रहेण मे गर्भे आत्मानं साधय ॥१३॥

अनुवाद— यदि तुम राजा का सिंहासन प्राप्त करना चाहते हो तो तपस्या के द्वारा श्रीभगवान् की आराधना करके मेरे गर्भ में आओ तब राजसिंहासन प्राप्त कर सकोगे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

पुरुषमीश्वरम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

पुरुष शब्द से ईश्वर को कहा गया है ॥१३॥

मैत्रेय उवाच

मातुः सपत्न्याः सुदुरुक्तिविद्धः श्वसन् रुषा दण्डहतो यथाऽहिः ।
मिषन्तं पितरं सन्नवाचं जगाम मातुः प्ररुदन्सकाशम् ॥१४॥

अन्वयः— मातुः सपत्न्याः दुरुक्तिविद्ध दण्डहतः अहिः यथा रुषाश्वसनमिषन्तं सन्नवाचम् पितरं हित्वा प्ररुदन् मातुः सकाशम् जगाम ॥१४॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— अपनी माता की सौत (सौतेली माँ) के कठोर वचन को सुनकर जिस प्रकार डण्डे की चोट खाकर साँप फुफकारने लगता है, उसी तरह क्रोध के मारे ध्रुव लम्बी श्वास लेने लगा । यह सब कुछ देखने वाले तथा कुछ भी नहीं बोलने वाले अपने पिता को छोड़कर रोता हुआ अपनी माँ के पास आया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

मिषन्तं पश्यन्तम् । सन्नवाचं कुण्ठितवाचम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

यह सबकुछ देखकर भी कुछ भी नहीं बोलने वाले पिता को छोड़कर ध्रुव रोता हुआ अपनी माँ के पास आया ॥१४॥

तं निःश्वसन्तं स्फुरिताधरोष्ठं सुनीतिरुत्सङ्ग उदुह्य बालम् ।
निशम्य तत्पौरमुखान्नितान्तं सा विव्यथे यद्गदितं सपत्न्याः ॥१५॥

अन्वयः— सुनीतिः निःश्वसन्तं स्फुरिताधरोष्ठम् तं बालम् उत्सङ्गे उदुह्य, सपत्न्याः यद्गदितं तत् पौर मुखात् निशम्य सा नितान्तं विव्यथे ॥१५॥

अनुवाद— सुनीति लम्बी श्वासें लेने वाले तथा जिसके ओष्ठ फड़फड़ा रहे थे ऐसे उस बालक को अपनी गोद में बैठाकर तथा अपनी सौत की बातों को उस महल के लोगों से सुनकर अत्यन्त दुःखी हो गयी ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

उदुह्यारोप्य । अन्तःपुरजनमुखाच्छ्रुत्वा ॥१५॥

सोत्सृज्य धैर्यं विललाप शोकदावाग्निना दावलतेव बाला ।
वाक्यं सपत्न्याः स्मरती सरोजश्रिया दृशा बाष्पकलामुवाह ॥१६॥

अन्वयः— सा बाला धैर्यम् उत्सृज्य दावाग्निना दावलतेव सपत्न्याः वाक्यं स्मरती सरोजश्रिया दृशा वाष्पकलाम् उवाह विललाप ॥१६॥

अनुवाद— उस सुन्दरी सुनीति का धैर्य टूट गया, जिस तरह वनाग्नि से वन की लता मुरझा जाती है, उसी तरह वह शोकाग्नि के कारण मुरझा गयी अपनी सौत की बातों को स्मरण करके उसके कमल के समान सुन्दर नेत्रों में आँसू भर गये और वह विलाप करने लगी ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

शोक एव दावाग्निस्तेन । दावाग्निगता लतेव स्थिता सा बाला विलापं चकार ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

शोक ही दावाग्नि के समान था । जिस तरह दावाग्नि में विद्यमान लता मुरझा जाती है, उसी तरह से सुनीति शोकाग्नि से मुरझा गयी और वह विलाप करने लगी ॥१६॥

दीर्घं श्वसन्ती वृजिनस्य पारमपश्यती बालकमाह बाला ।
माऽमङ्गलं तात परेष्वमंस्था भुङ्क्ते जनो यत्परदुःखदस्तत् ॥१७॥

अन्वयः— दीर्घं श्वसन्ती वृजिनस्य पारम् अपश्यन्ती बाला बालकमाह तात परेषु अमङ्गलं मा मंस्थाः यत् पर दुःखदः तत् जनः भुंक्ते ॥१७॥

अनुवाद— उस समय सुनीति लम्बी श्वांस ले रही थी उसे उस समय दुखसागर का अन्त नहीं दिखायी देता था, इस प्रकार की वह अपने पुत्र ध्रुव से कही वत्स ! दूसरों के अमङ्गल की कामना मत करो । जो मनुष्य दूसरों को दुःख देता है उसका फल उसे स्वयं भोगना पड़ता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

वृजिनस्य दुःखस्य । अमङ्गलमपराधं परेषु मामंस्थाः । यद्यतः परेभ्यो दुःखं ददाति यः स स्वदत्तमेव दुःखं भुङ्क्ते॥१७॥

भाव प्रकाशिका

वृजिन शब्द दुःख का वाचक है । सुनीति ने ध्रुव से कहा— वत्स दूसरे के अमङ्गल की कामना मत करना। जो दूसरों को दुःख देता है, उसका फल उसको स्वयं भोगना पड़ता है ॥१७॥

सत्यं सुरुच्याऽभिहितं भवान्मे यद्दुर्भगाया उदरे गृहीतः ।
स्तन्येन वृद्धश्च विलज्जते यां भार्येति वा वोढुमिडस्पतिर्माम् ॥१८॥

अन्वयः— सुरुच्या सत्यमभिहितं यद् भवान् मे दुर्भगाया उदरे गृहीतः, स्तन्येन वृद्धश्च, यां माम् इडस्पति भार्या इति वा वोढुम् विलज्जते ॥१८॥

अनुवाद— सुरुचि ने जो कुछ कहा है, वह ठीक ही कहा है क्योंकि तुमको अभागिनी मैंने अपने उदर में धारण किया था, और मेरे ही दूध से तुम बढ़े भी हो, जिस मुझको पत्नी क्या दासी भी स्वीकार करने में महाराज के लज्जा आती है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

दुर्भगया मया उदरे गृहीतस्तस्या एव स्तन्येन वृद्धश्च । दुर्भगत्वमेवाह । यां मामिडस्पतिर्भूपतिर्भार्येति वोढुं स्वीकर्तुं विलज्जते । वाशब्दाद्दासीत्यपि ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

तुमको अभागिनी मैंने अपने उदर में धारण किया और मेरे ही दूध से तुम पले भी हो। अपने अभगिनित्व का वर्णन करती हुयी सुनीति कहती है कि मुझको तो महाराज अपनी पत्नी क्या अपनी दासी भी स्वीकार करने में लज्जा का अनुभव करते हैं। मूल के **वा** शब्द के द्वारा दासी भी अर्थ गृहीत होता है ॥१८॥

आतिष्ठ तत्तात विमत्सरस्त्वमुक्तं समात्रापि यदव्यलीकम् ।
आराधयाधोक्षजपादपद्मं यदीच्छसेऽध्यासनमुत्तमो यथा ॥१९॥

अन्वयः— हे तात् विमत्सरः त्वं यत् समात्राऽपि अव्यलीकम् यथा उक्तम् तत् आतिष्ठ, यदि उत्तमः यथा अध्यासनम् इच्छसे, तदा अधोक्षजपादपद्म आराधय ॥१९॥

अनुवाद— हे वत्स ! तुम द्वेष भाव को छोड़कर जो तुम्हारी सौतेली माँ ने कहा है कि ईश्वर की आराधना करो तो वह ठीक कही है। तुम उसका पालन करो। यदि तुम उत्तम के समान राजसिंहासन पर बैठना चाहते हो तो, श्रीभगवान् के चरण कमलों की आराधना में लग जाओ ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

पितृभार्यात्वेन मात्रा समा मातुः सपत्नी तयापि यदुक्तं 'तपसाराध्य पुरुषम्' इत्यादि तदातिष्ठ कुरु। अध्यासनं यदीच्छसि॥१९॥

भाव प्रकाशिका

तुमको अभागिनी मैंने अपने उदर में धारण किया और मेरे ही दूध से तुम पले भी हो। अपने अभागिनित्व का वर्णन करती हुई सुनीति कहती है कि मुझको तो महाराज अपनी पत्नी क्या अपनी दासी भी स्वीकार करने में लज्जा का अनुभव करते हैं। मूल के **वा** शब्द के द्वारा दासी भी अर्थ गृहीत होता है ॥१९॥

यस्याङ्घ्रिपद्मं परिचर्य विश्वविभावनायात्तगुणाभिपत्तेः ।
अजोऽध्यतिष्ठत्खलु पारमेष्ठ्यं पदं जितात्मश्वसनाभिवन्द्यम् ॥२०॥

अन्वयः— विश्वविभावनाय आत्तगुणभिपत्तेः यस्य अङ्घ्रिपद्मं परिचर्य जितात्मश्वसनाभिवन्द्यम् पारमेष्ठ्यं पदम् अजः खलु अध्यतिष्ठत् ॥२०॥

अनुवाद— संसार का पालन करने के लिए सत्त्वगुण को स्वीकार करने वाले उन श्रीहरि के चरणों की उपासना करने से ही श्रीब्रह्माजी को सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त हुआ है। जो मन और प्राण को जीतने वाले मुनियों के लिए वन्दनीय है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

परिचर्य निषेव्य। विश्वस्य विभावनाय पालनायात्ता स्वीकृता गुणाभिपत्तिः सत्त्वगुणाधिष्ठानं येन तस्य। जित आत्मा मनः श्वसनःप्राणश्च यैस्तैरभिवन्द्यम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

परिचर्यपद का अर्थ है सेवन करके। सम्पूर्ण जगत् का पालन करने के लिए सत्त्वगुण को स्वीकार करके ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करके ही प्राण और मन को जीतने वाले मुनियों के भी लिए वन्दनीय सर्वश्रेष्ठ पद को ब्रह्माजी ने प्राप्त किया है ॥२०॥

तथा मनुर्वो भगवान्पितामहो यमेकमत्या पुरुदक्षिणैर्मखैः ।
इष्ट्वाऽभिपेदे दुरवापमन्यतो भौमं सुखं दिव्यमथापवर्ग्यम् ॥२१॥

अन्वयः— तथा वः पितामहः भगवान् मनुः यम् एकमत्या पुरुदक्षिणैः मखैः इष्ट्वा अन्यतः दुखापम् भौमं दिव्यं सुखं अथ अपवर्ग्यम् अभिपेदे ॥२१॥

अनुवाद— इसीतरह तुम्हारे पितामह भगवान् स्वायम्भुव मनु भी जिन श्रीभगवान् की अनन्य भाव से बड़ी-बड़ी दक्षिणाओं वाले यज्ञों के द्वारा आराधना करके दूसरों के लिए दुर्लभ लौकिक तथा अलौकिक सुख को तथा मोक्ष को प्राप्त कर लिए ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

एकमत्या सर्वान्तर्यामिदृष्ट्या ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् मनु ने श्रीभगवान् की अन्तर्यामी दृष्टि से आराधना की थी ।।२१।।

तमेव वत्साश्रय भृत्यवत्सलं मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिम् ।
अनन्यभावे निजधमभाविते मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम् ।।२२।।

अन्वयः— हे वत्स ! तमेव पूरुषम् मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिम् भृत्यवत्सलम् आश्रय निजधर्मभाविते अनन्यभाव मनसि अवस्थाप्य भजस्व ।।२२।।

अनुवाद— हे वत्स ! उन्हीं परम पुरुष को संसार चक्र से मुक्ति चाहने वाले मुमुक्षु जीव जिनके चरण कमलों के मार्ग को खोजा करते है, उन भक्त वत्सल भगवान् को ही तुम अपना आश्रय बनाओ । अपने धर्म का पालन के कारण पवित्र हुए अपने चित्त में तुम भी भगवान् को बैठा लो और अन्य सारी बातों की चिन्ता का परित्याग करके केवल उनका ही भजन करो ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

मृग्या पदाब्जयोः पद्धतिर्मार्गो यस्य तमेवाश्रय शरणं व्रज । ततो भजस्व । नान्यस्मिन्भावो यस्य तस्मिन् । निजधर्मैर्भाविते शोधिते ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के चरण कमलों का मार्ग मुमुक्षु पुरुषों के लिए अन्वेषणीय है अतएव उन्हीं की तुम शरणागति करो और अनन्यभाव से उन्हीं श्रीभगवान् का भजन करो । अपने धर्म का पालन करने के कारण शुद्ध बने अपने हृदय में उन श्रीभगवान् को ही स्थापित कर लो ।।२२।।

नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनाद्दुःखच्छिदं ते मृगयामि कंचन ।
यो मृग्यते हस्तगृहीतपद्मया श्रियेतरैरङ्ग विमृग्यमाणया ।।२३।।

अन्वयः— हे अङ्ग ततः पद्मपलाश लोचनात् अन्यं ते दुःखच्छिदं कंचन मृगयामि यः इतरैः मृग्यमाणया हस्तगृहीत पद्मया श्रिया मृग्यते ।।२३।।

अनुवाद— हे वत्स ! उन कमल दल के समान सुन्दर नेत्रो वाले श्रीभगवान् से भिन्न किसी भी दूसरे को मैं तुम्हारे दुख को दूर करने वाला नहीं समझती हूँ । जिनको प्रसन्न करने के लिए सभी देवता उनका अन्वेषण किया करते हैं वे श्रीलक्ष्मीजी भी अपने हाथ में कमल लेकर उनका ही अन्वेषण करती हैं ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

तमेवेत्यनेन सूचितं सर्वोत्तमत्वं प्रपञ्चयति-नान्यमिति । हस्तेन गृहीतं दीपवत्पद्म यया । इतरैर्ब्रह्मादिभिः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

इससे पहले के श्लोक में तमेव पद के द्वारा जिनकी सर्वोत्तमता सूचित की गयी है, उसी का विस्तार इस श्लोक में किया गया है । सुनीति कहती है कि जिन लक्ष्मीजी को प्रसन्न करने के लिए सभी देवता उनका अन्वेषण

करते रहते हैं वे लक्ष्मीजी भी अपने हाथ में दीपक के समान कमल को लेकर जिन श्रीभगवान् का अन्वेषण करती हैं, वे ही श्रीभगवान् तुम्हारे दुःख को दूर करने वाले हैं, उनको छोड़कर कोई दूसरा तुम्हारे कष्ट को दूर नहीं कर सकता है ।।२३।।

मैत्रेय उवाच

एवं संजल्पितं मातुराकर्ण्यार्थागमं वचः । संनियम्यात्मनात्मानं निश्चक्राम पितुः पुरात् ।।२४।।

अन्वयः— एवं मातुः संजल्पितं अर्थागमं वचः आकर्ण्य आत्मना आत्मानं संनियम्य पितुः पुरात् निश्चक्राम ।।२४।।

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से माता के विलाप और सार्थक वातों को सुनकर ध्रुव ने अपनी बुद्धि के द्वारा चित्त को संयमित करके अपने पिता के नगर से निकल गया ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

संजल्पितं विलापम् । ततोऽर्थस्यागमो यस्मात्तथाभूतं वच आकर्ण्य ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

अपनी माता के विलाप और सार्थक वातों को सुनकर अपने पिता के नगर से निकल गया ।।२४।।

नारदस्तदुपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् । स्पृष्ट्वा मूर्धन्यघघ्नेन पाणिना प्राह विस्मितः ।।२५।।

अन्वयः— तदुपाकर्ण्य नारदः तस्य चिकीर्षितम् ज्ञात्वा अघघ्नेन पाणिना मूर्धनिस्पृष्ट्वा विस्मितः प्राह ।।२५।।

अनुवाद— इन सारी वातों को सुनकर तथा ध्रुव क्या करना चाहता है ? यह जानकर वहाँ नारदजी आये। ध्रुव के शिर पर अपना पाप विनाशक हाथ फेरकर वे विस्मित होकर कहे ।।२५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।२५।।

अहो तेजः क्षत्रियाणां मानभङ्गममृष्यताम् । बालोऽप्ययं हृदा धत्ते यत्समातुरसद्वचः ।।२६।।

अन्वयः— अहो तेजः क्षत्रियाणाम् मान भङ्गममृष्यताम् यत् बालोऽपि अयं मातुः असद् वचः हृदा धत्ते ।।२६।।

अनुवाद— अहो क्षत्रियों का तेज कितना अद्भुत है वे अपने मान भङ्ग को नहीं सह सकते हैं । क्योंकि बालक होकर भी अपनी सौतेली माता की कटु वाणी इसके हृदय में घर कर गयी है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

विस्मित इत्युक्तं तदेवाह । अहो तेजः प्रभावः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

विस्मितः जो कहा गया उसी को इस श्लोक में कहा गया है । क्षत्रियों का तेज अर्थात् प्रभाव अद्भुत है । वे अपना मान भङ्ग नहीं बर्दास्त कर सकते हैं । इसकी सौतेली माँ की कटु वाणी इसके हृदय में घर कर गयी है ।।२६।।

नारद उवाच

नाधुनाप्यवमानं ते संमानं वापि पुत्रक । लक्षयामः कुमारस्य सक्तस्य क्रीडनादिषु ।।२७।।

अन्वयः— पुत्रक क्रीडनादिषु सक्तस्य कुमारस्य ते अधुना नापि अवमानं संमानं वापि लक्षयामः ।।२७।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— पुत्र ! क्रीडा इत्यादि में ही लगे रहने वाले तुम्हारे मैं इस समय न तो कोई अपमान देखता हूँ और न तो संमान ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

विकल्पे विद्यमानेऽपि न ह्यसंतोषहेतवः । पुंसो मोहमृते भिन्ना यल्लोके निजकर्मभिः ॥२८॥

अन्वयः— विकल्पे विद्यमानेऽपि मोहम् ऋते पुंसः असंतोषहेतवः नहि लोके निजकर्मभिः भिन्नाः ॥२८॥

अनुवाद— यद्यपि मान और अपमान परस्पर में भिन्न नहीं है, मनुष्यों में होने वाले असन्तोष का कारण अज्ञान ही है, और कुछ नहीं । संसार में मनुष्य अपने कर्मों के ही अनुसार सुख और दुःख को भोगता है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

विकल्पे मानापमानविवेके सत्यपि भिन्न न सन्ति किंतु मोहकल्पिता एवेत्यर्थः । कुतः । यत्सुखं दुःखं वा तन्निजकर्मभिरेव भवति यतः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

विचार करने पर मान तथा अपमान ये अलग नहीं हैं । सभी असन्तोषों का कारण अज्ञान जन्य ही है । क्योंकि संसार में जो भी सुख अथवा दुःख मिलता है, वह अपने कर्मों के कारण ही मिलता है ॥२८॥

परितुष्येत्ततस्तात तावन्मात्रेण पूरुषः । दैवोपसादितं यावद्वीक्ष्येश्वरगतिं बुधः ॥२९॥

अन्वयः— तात ! दैवोपसादितं यावद् ईश्वर गति वीक्ष्य बुधः पुरुषः ततः तावन्मात्रेण परितुष्येत् ॥२९॥

अनुवाद— वत्स ! परमात्मा की गति विचित्र है अतएव उस पर विचार करके बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि दैववश उसको जैसी परिस्थिति का सामना करना पड़े उसी से सन्तुष्ट रहे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

उपशमोपदेशेन निवर्तयति-परितुष्येदिति षड्भिः । ईश्वरगतिं वीक्ष्येश्वरानुकूल्यं बिना नोद्यमाः फलहेतव इति ज्ञात्वा परितुष्येत् सन्तोषमेव कुर्यात् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

शान्ति का उपदेश देकर नारदजी उसे छह श्लोकों से रोकते हैं । ईश्वर की गति का विचार करके इस बात को जान लेना चाहिए कि जब तक ईश्वर प्रसन्न न हों तब तक किया जाने वाला प्रयास सफल नहीं होता है । अतएव सन्तोष ही करना चाहिए ॥२९॥

अथ मात्रोपदिष्टेन योगेनावरुरुत्ससि । यत्प्रसादं स वै पुंसां दुराराध्यो मतो मम ॥३०॥

अन्वयः— अथ मात्रा उपदिष्टेन योगेन यत् प्रसादं अवरुरुत्ससि सवै पुंसाम् दुराराध्य इति मम मतः ॥३०॥

अनुवाद— यदि अपनी माता के द्वारा उपदिष्ट योग के द्वारा जिस परमात्मा की कृपा को तुम प्राप्त करना चाहते हो वे परमात्मा मेरे विचारानुसार दुराराध्य हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

दुष्करश्च तावायमुद्यम इत्याह- अथेति द्वाभ्याम् । यस्य प्रसादमवरोद्धुं प्राप्तुमिच्छसि ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

नारदजी कहते हैं कि तुम्हारा यह प्रयास अत्यन्त कठिन है । इस बात को वे दो श्लोकों से कहते हैं । जिस परमात्मा की प्रसन्नता प्राप्त करना चाहते हो उनको प्रसन्न करना बड़ा ही कठिन है ॥३०॥

मुनयः पदवीं यस्य निःसङ्गेनोरुजन्मभिः । न विदुर्मृगयन्तोऽपि तीव्रयोगसमाधिना ॥३१॥

अन्वयः— मुनयः निःसङ्गेन तीव्र योग समाधिना उरुजन्मभिः यस्य पदवीं मृगयन्तः अपि न विदुः ॥३१॥

अनुवाद— मुनिगण अनासक्त रहकर अपने तीव्रयोग तथा समाधि के द्वारा अनेक जन्मों तक कठोर साधनायें करके भी उन परमात्मा के मार्ग का पता नहीं लगा सके ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

नि:सङ्गेन तीव्रयोगेन युक्तेन समाधिना मृगयन्तोऽपि यस्य पदवीं मार्गं न विदुः स देवो दुराराध्यः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

मुनिजन, आसक्ति का परित्याग करके अपने तीव्र योग से युक्त समाधि के द्वारा अनेक जन्मों तक कठोर साधना करके जिस परमात्मा के मार्ग का पता नहीं लगा सके वे परमात्मा दुराराध्य हैं ।।३१।।

अतो निवर्ततामेष निर्बन्धस्तव निष्फलः । यतिष्यति भवान्काले श्रेयसां समुपस्थिते ।।३२।।

अन्वयः— अतः निवर्तताम् एष तव निर्बन्ध निष्फलः श्रेयसां काले समुपस्थिते भवान् यतिष्यति ।।३२।।

अनुवाद— अतएव तुम अपने घर लौट जाओ, तुम्हारा यह हठ निष्फल है । बड़ा होने पर जब परमार्थ साधन का समय आये तो प्रयास करना ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

श्रेयसां काले बृद्धत्वे ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

बार्द्धक्य आने पर तुम प्रयास करना ।।३२।।

यस्य यद्दैवविहितं स तेन सुखदुःखयोः । आत्मानं तोषयन्देही तमसः पारमृच्छति ।।३३।।

अन्वयः— यस्य यद् दैव विहितं स देही तेन सुख दुःखयोः आत्मानं तोषयन्तमसः पारमृच्छति ।।३३।।

अनुवाद— विधाता के अनुसार जिस मनुष्य के जो भी सुख दुःख प्राप्त हो उसी से अपने मन को सन्तुष्ट रखे । ऐसा करने वाला शरीरधारी इस संसार सागर को पार का जाता है ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

सुखदुःखयोर्मध्ये । सुखे सति पुण्यं क्षीयत इति दुःखे सति पापं क्षीयत इत्यात्मानं तोषयंस्तमसः पारं मोक्षं प्राप्नोति।।३३।।

भाव प्रकाशिका

सुख और दुःख दोनों में पड़ा हुआ मनुष्य यह सोचकर कि सुख होने पर पुण्य का क्षय होता है और दुःख होने पर पाप का क्षय होता है इस तरह से अपनी आत्मा को सन्तुष्ट करने वाला मनुष्य संसार को पार कर जाता है ।।३३।।

गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात् । मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते ।।३४।।

अन्वयः— गुणाधिकात् मुदं लिप्सेत् गुणाधमात् अनुक्रोशं समानात् मैत्रीम् अन्विच्छन् तापैः नाभिभूयते ।।३४।।

अनुवाद— मनुष्य को चाहिए कि वह अपने से अधिक गुण वाले को देखकर प्रसन्नता का अनुभव करे कम गुण वाले को देखकर उस पर दया करे और अपने समान गुण वाले से मित्रता का भाव रखे ऐसा करने वाले मनुष्य को दुःख कभी भी अभिभूत नहीं कर पाते हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

किंच गुणैरधिकात्पुंस इति ल्यब्लोपे पञ्चमी । तं दृष्ट्वा प्रीतिं कुर्यात्, न त्वसूयामित्यर्थः । अनुक्रोशं कृपां लिप्सेत्, नतु तिरस्कारम् । समानान्मैत्रीं नतु स्पर्धाम् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने से अधिक गुण वाले को देखकर प्रेम करे असूया न करे । गुणाधिकात्

में ल्यप् का लोप होने के कारण पञ्चमी विभक्ति हुई है । कम गुण वाले को देखकर उस पर दया करे और समान गुण वाले से मित्रता का भाव रखे उससे स्पर्धा न करे । ऐसा करने वाला कभी दु:खी नहीं होता है ॥३४॥

ध्रुव उवाच

सोऽयं शमो भगवता सुखदु:खहतात्मनाम् । दर्शित: कृपया पुंसां दुर्दर्शोऽस्मद्विधैस्तु य: ॥३५॥

अन्वय:— भगवता सोऽयं शम: सुखदु:खहतात्मनाम् पुंसां कृपया प्रदर्शित: य: अस्मद्विधै: तु दुर्दर्श: ॥३५॥

ध्रुवजी ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! जिन लोगों का चित्त सुख और दु:ख में चञ्चल हो जाता है, उन लोगों के लिए आपने यह शान्ति का अच्छा उपाय बतलाया है किन्तु हम जैसे अज्ञानियो की दृष्टि वहाँ तक नहीं पहुँच पाती हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥३५॥

अथापि मेऽविनीतस्य क्षात्रं घोरमुपेयुष: । सुरुच्या दुर्वचोबाणैर्न भिन्ने श्रयते हृदि ॥३६॥

अन्वय:— अथापि घोरं क्षात्रं उपेयुष: अविनीतस्य मे सुरुच्या दुर्वचो बाणै: भिन्ने हृदि न श्रायते ॥३६॥

अनुवाद— फिर भी मुझको भयंकर क्षत्रिय का स्वभाव प्राप्त हुआ है, अतएवं मैं अविनीत हूँ सुरुचि की वाणी रूपी बाण से विदीर्ण मेरे हृदय में आपका यह उपदेश नहीं ठहर पा रहा है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

क्षात्रं स्वभावं प्राप्तवतोऽत एवाविनीतस्य दुर्वाक्यबाणैर्भिन्ने हृदि न श्रयते न तिष्ठति ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

मुझे भयङ्कर क्षत्रिय का स्वभाव प्राप्त है, अतएव मैं अविनीत हूँ । सुरुचि के दुर्वाक्य रूपी बाण से विदीर्ण मेरे हृदय में आपका उपदेश मेरे हृदय में नहीं टिक पाता है ॥३६॥

पदं त्रिभुवनोत्कृष्टं जिगीषो: साधु वर्त्म मे । ब्रूह्यस्मत्पितृभिर्ब्रह्मन्नन्यैरप्यनधिष्ठितम् ॥३७॥

अन्वय:— हे ब्रह्मन् ! त्रिभुवनोत्कृष्टं अस्मत् अनन्यै: पितृभि: अप्यनधिष्ठितम् पदं जिगीषो: मे साधु वर्त्म ब्रूहि॥३७॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! त्रैलोक्य में सर्वोत्कृष्ट जो हमारे पितृ पितामहों को भी नहीं प्राप्त हुआ हो ऐसे पद को मैं प्राप्त करना चाहता हूँ, उसके ही लिए आप कोई अच्छा मार्ग आप बतलायें ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

अन्यैरनधिष्ठितं त्रिभुवने उत्कृष्टं पदं जेतुमिच्छोर्मे साधु वर्त्म मार्गं ब्रूहि ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

जिसको किसी भी दूसरे व्यक्ति ने नहीं प्राप्त किया हो और जो त्रैलोक्य में सबसे श्रेष्ठ हो उस पद को मैं प्राप्त करना चाहता हूँ, उसी के लिए कोई अच्छा मार्ग आप बतलाएँ ॥३७॥

नूनं भवान्भगवतो योऽङ्गज: परमेष्ठिन: । वितुदन्नटते वीणां हितार्थं जगतोऽर्कवत् ॥३८॥

अन्वय:— यो भवान् भगवत: परमेष्ठिन: अङ्गज: नूनं जगत: हितार्थं वीणां वितुदन् अर्कवत् अटते ॥३८॥

अनुवाद— आप तो भगवान् ब्रह्माजी के पुत्र हैं निश्चित रूप से आप जगत् का कल्याण करने के लिए अपनी वीणा को बजाते हुए सूर्य के समान भ्रमण करते रहते हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

अङ्कज इति पाठे उत्सङ्गाज्जातो यो नारदः स भवान् । तत्र लिङ्गम् वीणां वितुदन्वादयन् हितायाटति ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

जहाँ अङ्गज के स्थान पर अङ्कजः पाठ है वहाँ भी ब्रह्माजी की गोद से उत्पन्न आप नारद है यही अर्थ होगा। उसमें प्रमाण यही है कि आप वीणा को बजाते हुए जगत् का कल्याण करने के लिए भ्रमण किया करते हैं ॥३८॥

मैत्रेय उवाच

इत्युदाहृतमाकर्ण्य भगवान्नारदस्तदा । प्रीतः प्रत्याह तं बालं सद्वाक्यमनुकम्पया ॥३९॥

अन्वयः— इति उदाहृतम् आकर्ण्य भगवान् नारदः प्रीतः तं बालं प्रति अनुकम्पया सद्वाक्यमाह ॥३९॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— ध्रुव की इस बात को सुनकर भगवान् नारदजी प्रसन्न हो गये और उस बालक पर कृपा करके उसे सदुपदेश दिए ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥३९॥

नारद उवाच

जनन्याऽभिहितः पन्थाः स वै निःश्रेयसस्य ते । भगवान्वासुदेवस्तं भज तत्प्रवणात्मना ॥४०॥

अन्वयः— जनन्या अभिहितः वै ते निःश्रेयसस्य पन्थाः, सः भगवान् वासुदेवः तं तत्प्रवणात्मना भज ॥४०॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— तुम्हारी माँ ने जो कहा है वही तुम्हारे परम कल्याण का मार्ग है । भगवान् वासुदेव ही वह उपाय हैं अतएव तुम अपना मन लगाकर उनका भजन करो ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

निःश्रेयसस्याभिप्रेतार्थस्य पन्थाः । कोऽसावित्यत आह । भगवान्वासुदेवोऽत एव तं भज ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

तुम्हारी माँ ने जो कुछ कहा है, वही तुम्हारा अभिप्रेत मार्ग है । वह कौन है ? तो इसका उत्तर है कि वे भगवान् वासुदेव हैं । अतएव तुम उनका ही भजन करो ॥४०॥

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः । एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥४१॥

अन्वयः— यः धर्मार्थकाममोक्षाख्यं आत्मनः श्रेयः इच्छेत् तत्र एकम् हरेः पादसेवनम् एव कारणम् ॥४१॥

अनुवाद— जो धर्म, अर्थ काम और मोक्ष नामक आत्मकल्याण प्राप्त करना चाहे तो उसका एक मात्र साधन श्रीहरि के चरणों की सेवा ही है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४१॥

तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि । पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥४२॥

अन्वयः— हे तात ! ते भद्रं, यमुनायाः शुचितटं गच्छ यत्र हरेः नित्यदाः सानिध्यम् ॥४२॥

अनुवाद— हे वत्स ! तुम्हारा कल्याण होगा । यमुना नदी के उस पवित्र तट पर तुम मधुवन में चले जाओ, वहाँ श्रीहरि का नित्य ही निवास होता है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

मधुवनाख्यं यमुनायास्तटं गच्छ । यत्र मधुवने ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने कहा कि तुम मधुवन नामक यमुना के तट पर चले जाओ जहाँ श्रीहरि का नित्य ही निवास होता है ॥४२॥

स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्कालिन्द्याः सलिले शिवे ।
कृत्वोचितानि निवसन्नात्मनः कल्पितासनः ॥४३॥
प्राणायामेन त्रिवृता प्राणेन्द्रियमनोमलम् । शनैर्व्युदस्याभिध्यायेन्मनसा गुरुणा गुरुम् ॥४४॥

अन्वयः— कालिन्द्याः तस्मिन् शिवे सलिले अनुसवनं स्नात्वा उचितानि कृत्वा निवसन् आत्मनः कल्पितासनः त्रिवृता प्राणायामेन प्राणेन्द्रियमनोमलम् शनैः व्युदस्य मनसा गुरूणां गुरुम् अभिध्यायेत् ॥४३-४४॥

अनुवाद— श्रीयमुनाजी के उस पवित्र जल में तीनों कालों (प्रातः मध्याह्न और सायं) में स्नान करके, नित्य कर्मों को करके अपना आसन बिछाकर बैठे, फिर पूरक, कुम्भक और रेचक तीन प्रकार के प्राणायाम के द्वारा धीरे-धीरे प्राण, मन और इन्द्रियों के दोषों को दूर करके धैर्य पूर्वक मन से परमगुरु श्रीभगवान् का ध्यान करे ॥४३-४४॥

भावार्थ दीपिका

अध्ययनाद्यभावेऽप्यात्मन उचितानि योग्यानि देवतानमस्कारादीनि कृत्वेति यमनियमा उक्ताः । आसनकल्पनं च कुशादिभिः स्वस्तिकादिभिश्च । प्राणेन्द्रियमनसां मलं चाञ्चल्यं व्युदस्येति प्राणायामप्रत्याहारौ । धारणामाह अभिध्यायेदित्यादिषड्भिः । गुरुणा धीरेण मनसा । गुरुं श्रीहरिम् ॥४३-४४॥

भाव प्रकाशिका

अध्ययन इत्यादि नहीं करने पर भी अपने लिए उचित देवता को नमस्कार आदि कर्मों को करके यम तथा नियमों को बतलाया जा चुका है । उसके पश्चात् कुश आदि का आसन बिछाकर उस पर स्वस्ति आदि आसनों से बैठना चाहिए । उसके पश्चात प्राण, इन्द्रिय और मन के मलों को दूर करके प्राणायाम और प्रत्याहार को कहा गया है । धारणा को **अभिध्यायेत् इत्यादि** छह श्लोकों से कहा गया है । धैर्य सम्पन्न मन से परम गुरु श्रीहरि का ध्यान करो ॥४३-४४॥

प्रसादाभिमुखं शश्वत्प्रसन्नवदनेक्षणम् । सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुन्दरम् ॥४५॥
तरुणं रमणीयाङ्गमरुणोष्ठेक्षणाधरम् । प्रणताश्रयणं नृम्णं शरण्यं करुणार्णवम् ॥४६॥
श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम् । शङ्खचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम् ॥४७॥
किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलयान्वितम् । कौस्तुभाभरणग्रीवं पीतकौशेयवाससम् ॥४८॥
काञ्चीकलापपर्यस्तं लसत्काञ्चननूपुरम् । दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥४९॥
पद्भ्यां नखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यां समर्चताम्। हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यमाक्रम्यात्मन्यवस्थितम् ॥५०॥

अन्वयः— प्रसादाभिमुखं, शश्वत् प्रसन्न वदनेक्षणम् सुनासं, सुभ्रुवं, चारुकपोलम् सुन्दरम्, तरुणं रमणीयाङ्गम्, अरुणोष्ठेक्षणाधरम् प्रणताश्रयणं नृम्णं, शरण्यं करुणार्णवम्, श्रीवत्साङ्कम्, घनश्यामं पुरुषं, वनमालिनम्, शङ्खचक्रगदापद्मैः अभिव्यक्तचतुर्भुजम् किरीटिनं कुण्डलिनं, केयूर वलयान्वितम्, कौस्तुभाभरणग्रीवम् पीतकौशेय वाससम्, काञ्चीकलापपर्यस्तम्, लसत्काञ्चननूपुरम्, दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम्, नखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यां पद्भ्यां हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यम् आक्रम्य आत्मनि अवस्थितम् समर्चताम् ॥४५-५०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के नेत्र और मुख सदा प्रसन्न रहते हैं, लगता है कि वे अपने भक्तों को वरदान देने के लिए उद्यत हैं । उनकी नासिका, भौहें और कपल अत्यन्त सुन्दर है, वे सभी देवताओं में सुन्दर हैं, उनकी तरुणावस्था है, उनके सभी अङ्ग अत्यन्त मनोहर हैं, उनके ओष्ठ और अरुण वर्ण के हैं । अपने शरणागत जीवों को आश्रय प्रदान करने वाले हैं, अपार सुखप्रद, सबों के रक्षक, शरणागत वत्सल, और दया के सागर है । उनके वक्ष: स्थल में श्रीवत्सचिह्न विद्यमान है, उनका श्रीविग्रह जलभरे मेघ के समान श्याम वर्ण का है । वे परम पुरुष वनमाला धारण किए हुए हैं । उनकी चारो भुजाओं में शङ्ख,चक्र, गदा, और पद्म सुशोभित होते हैं, वे किरीट, कुण्डल, केयूर (अङ्गद) और कङ्कन धारण किए हुए है । उनके गले में कौस्तुभमणि लटक रही है । वे पीला रेशमी वस्त्र (पीताम्बर) धारण किए हैं । उनके कमर में सुवर्ण की करधनी और पैरों में सुवर्णमय नूपुर सुशोभित हो रहे हैं । उनका स्वरूप देखने में अत्यन्त मनोहर है । वह शान्त, मन तथा नेत्रों को आनन्दित करने वाला है । ऐसे श्रीभगवान् की जो मानसिक पूजा करते हैं उनके हृदय कमल की कर्णिका पर वे अपने नखमणि से मण्डित मनोहर चरणाविन्द को स्थापित करके विराजते हैं ॥४५-५०॥

भावार्थ दीपिका

सुरेषु सुन्दरम् । रमणीयान्यङ्गानि यस्य । ओष्ठश्च ईक्षणा ईक्षणं च ओष्ठेक्षणे अरुणे ओष्ठेक्षणे धारयतीति तथा तम् । अरुणमोष्ठमीक्षणं च धारयतीति वा । नृम्णं सुखकरम् । यद्वा नृम्णं धनम्, सर्वपुरुषार्थनिधिमित्यर्थः । पुरुषं पुरुषलक्षणयुक्तम्। कौस्तुभस्याभरणं ग्रीवा यस्य । काञ्चीकलापेन पर्यस्तं परिवेष्टितम् । मनोनयनयोर्वर्धनं हर्षकरम् । हृत्पद्मकर्णिकाया धिष्ण्यं मध्यस्थानं तदाक्रम्य समर्चतामात्मनि मनसि स्थितम् ॥४५-५०॥

भाव प्रकाशिका

सुरसुन्दरम् पद का अर्थ है सभी देवताओं में सुन्दर । रमणीयाङ्गम् का विग्रह है । **रमणीयानि अङ्गानि यस्य** अर्थात् सर्वाङ्ग सुन्दर **अरुणोष्ठेक्षणाधरम्** अर्थात् उनके ओष्ठ, और नेत्र लाल वर्ण के हैं । ओण्ठेक्षणाधरम् का विग्रह है— **ओण्ठश्च, ईक्षणं च ओष्ठेक्षणे अरूणे । ओष्ठे क्षणे धारयतीति आरुणैष्ठेक्षणधरः तम् । नृम्णाम् सुखप्रदा** । अथवा सभी पुरुषार्थों के आकर । **पुरुषम्** परम पुरुष के लक्षण से युक्त । उनके गले में कौस्तुभमणि लटक रही है । उनका कमर सुवर्ण निर्मित करधनी से वेष्टित है ।मनोनयन वर्धनम् अर्थात् हर्षपद। मानसिक पूजा करने वालों के हृदय कमल की कर्णिका के बीच में विराजमान रहते हैं श्रीभगवान् ॥४५-५०॥

स्मयमानमभिध्यायेत्सानुरागावलोकनम् । नियतेनैकभूतेन मनसा वरदर्षभम् ॥५१॥

अन्वयः— नियतेन एकभूतेन मनसा वरदर्षभम् स्यममानम् सानुरागावलोकनम् अभिध्यायेत् ॥५१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् एकाग्र हुए मन से वरदान देने वालों में अग्रगण्य श्रीभगवान् का ध्यान करे कि वे हमारी ओर मुस्कुराते हुए प्रेम पूर्वक देख रहे हैं ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

ध्यानमाह स्मयमानमिति । नियतेन प्रागुक्तया धारणया सुस्थिरेणात एवैकभूतेनैकाग्रेण । धारणोक्तानि । विशेषणानि ध्यानेऽपि द्रष्टव्यानि । यद्वा यथोक्त मात्रमेव । तदुक्तमेकादशस्कन्धे नान्यानि चिन्तयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम्' इति ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

स्मयमानम्० इत्यादि श्लोक से नारदजी ध्यान का वर्णन करते हैं । पूर्वाक्त धारण के द्वारा मन के अच्छी तरह से स्थिर हो जाने पर एकाग्रमन से ध्यान करे कि वरदान देने वालों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् मुस्कुराते हुए प्रेम पूर्वक हमारी ओर देख रहे हैं । धारणा में बतलाई गयी सभी विशेषताओं का ध्यान में भी चिन्तन करना चाहिए। अथवा श्लोक में जैसा बतलाया गया है उसी प्रकार का ध्यान करें । ग्यारहवें स्कन्ध में कहा भी गया है ।

नान्यानि० इत्यादि ध्यान में सुन्दर मुस्कान से युक्त श्रीभगवान् के मुख का ध्यान करें। उसके अतिरिक्त दूसरी बातों का ध्यान न करे ।।५१।।

एवं भगवतो रूपं सुभद्रं ध्यायतो मनः । निवृत्त्या परया तूर्णं संपन्नं न निवर्तते ।।५२।।

अन्वयः— एवं भगवतः सुभद्रं रूपं ध्यायतः परया निवृत्या तूर्णं सम्पन्नं मनः न निवर्तते ।।५२।।

अनुवाद— श्रीभगवान् का इस प्रकार से मङ्गलमय रूप का ध्यान करने से आनन्दमग्न मन उसी से तल्लीन हो जाता है और फिर उससे नहीं लौटता है ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

समाधिमाह-एवमिति । तूर्णं शीघ्रं संपन्नं सत् ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में समाधि का वर्णन किया गया है। नारदजी ने बतलाया कि इसप्रकार से भगवान् के मङ्गलमय रूप का ध्यान करने से मन शीघ्र ही आनन्द मग्न होकर लीन हो जाता है और फिर वह नहीं लौटता है ।।५२।।

जप्यश्च परमो गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज । यं सप्तरात्रं प्रपठन्पुमान्पश्यति खेचरान् ।।५३।।

अन्वयः— हे नृपात्मज ! परमो गुह्यः जप्यश्च मे श्रूयताम् । यं सप्तरात्रं प्रपठन् पुमान् खेचरान् पश्यति ।।५३।।

अनुवाद— हे राजकुमार ! अत्यन्त रहस्य मय मन्त्र मैं तुमको बतलाता हूँ। उसका सात रात तक जप करने वाला मनुष्य आकाश में विचरण करने वाले सिद्धों को देखने लगता है ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

जप्यः मन्त्रः ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

जप्य शब्द से मन्त्र को कहा गया है ।।५३।।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।
मन्त्रेणानेन देवस्य कुर्याद्द्रव्यमयीं बुधः । सपर्यां विविधैर्द्रव्यैर्देशकालविभागवित् ।।५४।।

अन्वयः— अनेन मन्त्रेण देश काल विभागवित् बुधः विविधै द्रव्यैः देवस्य द्रव्यभयीं सपर्यां कुर्यात् ।।५४।।

अनुवाद— वह मन्त्र हैं— **ओम् नमो भगवते वासुदेवाय ।** देश और काल के विभाग को जानने वाले विद्वान् को इस मन्त्र के द्वारा अनेक प्रकार के द्रव्यों से श्रीभगवान् की द्रव्यमयी आराधना करनी चाहिए ।।५४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५४।।

सलिलैः शुचिभिर्माल्यैर्वन्यैर्मूलफलादिभिः । शस्ताङ्कुरांशुकैश्चार्चेत्तुलस्या प्रियया प्रभुम् ।।५५।।

अन्वयः— शुचिभिः सलिलैः माल्यैः, वन्यै; मूल फलदिभिः शस्ताङ्कुरांशुकैः प्रियया तुलस्या च प्रभुम् अर्चयेत्।।५५।।

अनुवाद— शुद्ध जल पुष्प माला वन में उत्पन्न होने वाले मूल फल तथापूजा मे विहित दुर्वाङ्कुर आदि वन में प्राप्त होने वाले वल्कल वस्त्र उनकी प्रेयसी तुलसी से श्रीभगवान् की पूजा करनी चाहिए ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

द्रव्याण्येवाह-सलिलैरिति । शस्तैर्दूर्वाङ्कुरैर्वन्यैरेवांशुकैर्भूर्जत्वगादिभिः ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

श्रेष्ठ दुर्वाङ्करों वन के भोजपत्रों से श्रीभगवान् की पूजा करे ।।५५।।

लब्ध्वा द्रव्यमयीमर्चां क्षित्यम्ब्वादिषु वाऽर्चयेत् ।
आभृतात्मा मुनिः शान्तो यतवाङ्मितवन्यभुक् ॥५६॥

अन्वयः— द्रव्यमयीम् अर्चां वा क्षित्यम्ब्वादि अर्चयेत् आभृतात्मा, मुनि शान्तः यत् वाक् मितवन्यभुक् ॥५६॥

अनुवाद— यदि शिला आदि की मूर्ति मिल जाय तो उसमें अथवा पृथिवी या जल आदि में परमात्मा की पूजा करे । उसको सदा संयतचित, मननशील, शान्त और मौन रहना चाहिए और जङ्गली फल मूल का परिमित आहार करना चाहिए ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

पूजाया अधिष्ठानमाह । लब्ध्वा संपाद्य । द्रव्यमयीं शिलादिनिर्मिताम् । अर्चां गतिंमाम् । पूजासाद्गुण्यहेतूनाह सार्धाभ्याम्। आभृतात्मा धृतचित्तः । मितं वन्यं भुङ्क्ते इति तथा ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में पूजा के अधिष्ठान को बतलाया गया है । शिला आदि से निर्मित प्रतिमा प्राप्त हो जाय तो उसमें पूजा करे या पृथिवी अथवा जल में परमात्मा की पूजा करे । पूजा के साद्गुण्य के कारणों को डेढ श्लोक में बतलाया गया है । उस उपासक को संयतचित्त, मननशील, शान्त और मौन रहना चाहिए । वह वनैले मूल फलों का सीमित मात्रा में अहार करे ॥५६॥

स्वेच्छावतारचरितैरचिन्त्यनिजमायया । करिष्यत्युत्तमश्लोकस्तद्ध्यायेद्धृदयंगमम् ॥५७॥

अन्वयः— अचिन्त्य निजमायया स्वेच्छावतार चरितैः उत्तमश्लोकः करिष्यति तत् हृदयंगमम् ध्यायेत् ॥५७॥

अनुवाद— परमात्मा अपनी अनिर्वचनीय माया के द्वारा अपनी इच्छा के अनुसार अवतार ग्रहण करके जिन चरित्रों को करने वाले हैं उन सबों का अपने हृदय में ध्यान करना चाहिए ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

यत्करिष्यतीति तदानीमवतारप्राचुर्याभावात् ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

यत् करिष्यति यह जो भविष्यत्निर्देश है वह उस समय अवतार की प्रचुरता के अभाव के कारण किया गया हैं ॥५७॥

परिचर्या भगवतो यावत्यः पूर्वसेविताः । ता मन्त्रहृदयेनैव प्रयुञ्ज्यान्मन्त्रमूर्तये ॥५८॥

अन्वयः— भगवतः पूर्व सेविताः यावत्यः परिचर्या ता मन्त्रहृदये नैव मन्त्रमूर्तये प्रयुञ्ज्यात् ॥५८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की पूजा के लिए जितने उपचारों का विधान किया गया है उन सबों को मन्त्रमूर्ति श्रीहरि को द्वादशाक्षर मन्त्र से ही अर्पित करें ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वसेविताः सेवनं कारिताः कार्यत्वेन विहिता इत्यर्थः । मन्त्रहृदयेन द्वादशाक्षरेण ॥५८॥

भाव प्रकाशिका

जिनका पहले सेवन किया जा चुका है । उन उपचारों को मन्त्रमूर्ति श्रीभगवान् को द्वादशाक्षर मन्त्र से ही समर्पित करें ॥५८॥

एवं कायेन मनसा वचसा च मनोगतम् । परिचर्यमाणो भगवान्भक्तिमत्परिचर्यया ॥५९॥
पुंसाममायिनां सम्यग्भजतां भाववर्धनः । श्रेयो दिशत्यभिमतं यद्धर्मादिषु देहिनाम्॥६०॥

अन्वयः— एवं मनोगतम् कायेन, मनसा वचसा च परिचर्यमाणः भगवान् भक्तिमत् परिचर्यया सम्यग् भजताम् अमायिनाम् देहिनाम् धर्मादिषु भाववर्धनः अमिमतं श्रेयः दिशति ॥५९-६०॥

अनुवाद— इस प्रकार जब हृदय में स्थित श्रीहरि का मन, वाणी और शरीर से भक्ति पूर्वक पूजन किया जाता है तब वे निश्चल भाव से अच्छी तरह पूजन करने वाले अपने भक्तों के भाव को धर्म आदि में बढ़ा देते हैं, और उन सबों को उनकी इच्छा के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी पुरुषार्थ को प्रदान करते हैं ॥५९-६०॥

भावार्थ दीपिका

एवमुक्तरीत्या मनोगतं यथा भवति तथा कायादिभिर्भक्तिमत्या परिचर्यया परिचर्यमाणो धर्मार्थकामेषु यदभिमतं तच्छ्रेयो दिशतीति द्वयोरन्वयः ॥५९-६०॥

भाव प्रकाशिका

हृदय स्थित परमात्मा का उपासक द्वारा शरीर आदि से भक्ति पूर्वक उपासना किए जाने पर धर्म अर्थ काम एवं मोक्ष उनमें से जो अभिप्रेत होता है उसे भगवान् प्रदान कर देते हैं ॥५९-६०॥

विरक्तश्चेन्द्रियरतौ भक्तियोगेन भूयसा । तं निरन्तरभावेन भजेताद्धा विमुक्तये ॥६१॥

अन्वयः— इन्द्रियरतौ विरक्तश्च भूयसा भक्ति योगेन तं विमुक्तये निरन्तर भावेन भजेत अद्धा ॥६१॥

अनुवाद— यदि उपासक को ऐन्द्रियिक भोगों से वैराग्य हो गया हो तो वह निरन्तर निरन्तराय मुक्ति की प्राप्ति के लिए भगवान् का भक्ति पूर्वक भजन करें ॥६१॥

भावार्थ दीपिका

विरक्तः सम्भजेत् । किमर्थम् । मुक्तये ॥६१॥

भाव प्रकाशिका

विरक्त पुरुष को मुक्ति प्राप्ति के लिए भगवान् का भजन करना चाहिए ॥६१॥

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृपार्भकः । ययौ मधुवनं पुण्यं हरेश्चरणचर्चितम् ॥६२॥

अन्वयः— इत्युक्तः नृपार्भकः तं परिक्रम्य प्रणम्य च हरेश्चरर्णचर्चितम् पुण्यं मधुवनं ययौ ॥६२॥

अनुवाद— इस प्रकार से नारदजी के द्वारा कहे जाने के पश्चात् राजकुमार ध्रुव ने उनकी परिक्रमा करके उनको प्रणाम किया और श्रीहरि के चरण चिह्नों से अङ्कित पवित्र मधुवन के लिए चल दिये ॥६२॥

भावार्थ दीपिका

हरेश्चरणाभ्यां चर्चितं मण्डितम् ॥६२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के चरण चिह्नों से अलंकृत मधुवन में ध्रुव चले गये ॥६२॥

तपोवनं गते तस्मिन्प्रविष्टोऽन्तःपुरं मुनिः । अर्हितार्हणको राज्ञा सुखासीन उवाच तम् ॥६३॥

अन्वयः— तस्मिन् तपोवनं गते मुनिः अन्तःपुरं प्रविष्टः राज्ञा अर्हितार्हणकः सुखासीनः तम् उवाच ॥६३॥

अनुवाद— ध्रुव के तपोवन में चले जाने पर नारदजी राजा के महल में गये और राजा के द्वारा पूजित होने के पश्चात् सुख पूर्वक बैठे हुए राजा से कहे ॥६३॥

भावार्थ दीपिका

अर्हितं सत्कृत्य समर्पितमर्हणमर्घ्यादिकं यस्मै ।।६३।।

भाव प्रकाशिका

अर्हितार्हणकः का अर्थ है कि जिन नारदजी का सत्कार करके उनको अर्ध आदि राजा ने समर्पित कर दिया था ऐसे नारदजी ।।६३।।

नारद उवाच

राजन्किं ध्यायसे दीर्घं मुखेन परिशुष्यता । किंवा न रिष्यते कामो धर्मो वाऽर्थेन संयुतः ।।६४।।

अन्वयः— राजन् परिशुष्यता मुखेन दीर्घं किं ध्यायसे ? धर्मः कामः अर्थेन वा संयुतः रिष्यते ।।६४।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— राजन् आपका मुख सुखा हुआ है देर से आप क्या सोच रहे हैं ? आपके धर्म, अर्थ और काम में से किसी में कोई कमी तो नहीं आ गयी है ?।।६४।।

भावार्थ दीपिका

किं वा न रिष्यते न नश्यतीति सवितर्कः प्रश्नः ।।६४।।

भाव प्रकाशिका

धर्म, अर्थ और काम से आपके किसी में कोई विनष्ट तो नहीं हो गया हैं ?।।६४।।

राजोवाच

सुतो मे बालको ब्रह्मन् स्त्रैणेनाकरुणात्मना । निर्वासितः पञ्चवर्षः सह मात्रा महान्कविः ।।६५।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! स्त्रैणेन अकरुणात्मना में महान् कविः पञ्चवर्ष बालकः मे सुतः मात्रा सह निर्वसितः ।।६५।।

राजा ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! मैं स्त्री परायण और निर्दय हूँ । मैंने अपने पाँच वर्ष के अत्यन्त बुद्धिमान बालक पुत्र को उसकी माता के साथ निकाल दिया है ।।६५।।

भावार्थ दीपिका

मात्रा सह निर्वासित इति तस्या अप्यनादृतत्वात् ।।६५।।

भाव प्रकाशिका

राजा के मात्रा सहनिर्वासितः कहने का अर्थ है कि मैंने उसका भी अनादर किया है ।।६५।।

अप्यनाथं वने ब्रह्मन् मास्मादन्त्यर्भकं वृकाः । श्रान्तं शयानं क्षुधितं परिम्लानमुखाम्बुजम् ।।६६।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! क्षुधितं परिम्लानमुखम्बुजं, श्रान्तं शयानं अनाथं अर्भकं वृकाः मास्म अदन्ति ।।६६।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! भूखे, जिसका मुख कुम्हला गया होगा ऐसे थककर सोये हुए तथा अनाथ उस बालक को वन में भेंड़िये कही खा न जायँ ।।६६।।

भावार्थ दीपिका

मा स्मादन्ति किंस्विन्न खादन्तीत्यर्थः ।।६६।।

भाव प्रकाशिका

कहीं खा न जायँ ।।६६।।

अहो मे बत दौरात्म्यं स्त्रीजितस्योपधारय । योऽङ्कं प्रेम्णारुरुक्षन्तं नाभ्यनन्दमसत्तमः ॥६७॥

अन्वयः— अहो स्त्रीजितस्य मे दौरात्म्यं उपधारय यः प्रेम्णा अङ्कम् आरुरुक्षन्तं असत्तमः नाभ्यनन्दम् ॥६७॥

अनुवाद— अहो ! मैं स्त्री के वश में रहने वाला हूँ । मेरी दुष्टता तो देखो । जो मैंने प्रेमवश मेरी गोद में चढ़ने की इच्छा वाले उसका मैंने स्वागत नहीं किया ॥६७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६७॥

नारद उवाच

मा माशुचः स्वतनयं देवगुप्तं विशांपते । तत्प्रभावमविज्ञाय प्रावृङ्क्ते यद्यशो जगत् ॥६८॥

अन्वयः— विशाम्पते ! देवगुप्तं स्वतनयं तत् प्रभावम् अविज्ञाय मा मा शुचः तद्यशः जगत् प्रावृङ्क्ते ॥६८॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— राजन, परमात्मा के द्वारा रक्षित उस बालक की चिन्ता न करें, क्योंकि आप उसके प्रभाव को नहीं जानते हैं । उसका यश सम्पूर्ण जगत् में फैल रहा है ॥६८॥

भावार्थ दीपिका

देवेन श्रीहरिणा गुप्तमात्मसात्कृत्वा रक्षितम् । यस्य यशो जगत्प्रावृङ्क्ते व्याप्नोति ॥६८॥

भाव प्रकाशिका

उसको श्रीहरि ने आत्मसात् करके रक्षा की है, उसका यश जगत् में व्याप्त हो रहा है ॥६८॥

सुदुष्करं कर्म कृत्वा लोकपालैरपि प्रभुः । एष्यत्य चिरतो राजन्यशो विपुलयंस्तव ॥६९॥

अन्वयः— राजन् प्रभुः लोकपालैः अपि सुदुष्करं कर्म कृत्वा अचिरतः तव यशः विपुलयन् अचिरतः एष्यति ॥६९॥

अनुवाद— राजन् वह बालक अत्यन्त समर्थ है । जिस कार्य को लोकपाल गण नहीं कर सके ऐसे कार्य को करके वह आपके यश को बढ़ाते हुए शीघ्र ही आयेगा ॥६९॥

भावार्थ दीपिका

विपुलयन्विस्तारयन् ॥६९॥

भाव प्रकाशिका

विपुलयन् का अर्थ बढ़ाते हुए है । अर्थात् वह बालक आपके यश को बढायेगा ॥६९॥

मैत्रेय उवाच

इति देवर्षिणा प्रोक्तं विश्रुत्य जगतीपतिः । राजलक्ष्मीमनादृत्य पुत्रमेवान्वचिन्तयत् ॥७०॥

अन्वयः— जगती पतिः एवं देवर्षिणा प्रोक्तं विश्रुत्य राजलक्ष्मीम् अनादृत्य पुत्रम् एव अन्वचिन्तयत् ॥७०॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— राजा देवर्षि नारदजी के द्वारा कही गयी इस बात को सुनकर अपनी राज्य लक्ष्मी की ओर से उदासीन हो गये और सदैव अपने पुत्र के ही विषय मे सोचने लगे ॥७०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७०॥

तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीम् । समाहितः पर्यचरदृष्यादेशेन पूरुषम् ॥७१॥

अन्वयः— तत्र अभिषिक्तः प्रयतः ताम् विभावरीम् उपोष्य समाहितः पूरुषम् ऋष्यादेशेन पर्यचरत् ॥७१॥

अनुवाद— ध्रुवजी मधुवन में जाकर यमुनाजी में स्नान किए और उस रात को पवित्रता पूर्वक उपवास करके श्रीनारदजी के उपदेश के अनुसार एकाग्रचित्त होकर परम पुरुष भगवान् नारायण की पूजा प्रारम्भ कर दिए ।।७१।।

भावार्थ दीपिका

ध्रुवो मधुवने किमकरोदित्यपेक्षायामाह तत्रेत्यादिना । अभिषिक्तः स्नातः । यस्यां प्राप्तस्ताम् ।।७१।।

भाव प्रकाशिका

ध्रुवजी मधुवन में पहुँचकर क्या किए इस प्रकार की अपेक्षा होने पर मैत्रेयजी ने कहा— वहाँ जाकर ध्रुवजी यमुना में स्नान किये और उस रात को पवित्रता पूर्वक उपवास किए । इसके बाद वे एकाग्रमना होकर श्रीनारदजी के द्वारा उपदिष्ट प्रकार से वे भगवान् नारायण की पूजा करना प्रारम्भ कर दिए ।।७१।।

त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते कपित्थबदराशनः । आत्मवृत्त्यनुसारेण मासं निन्येऽर्चयन्हरिम् ।।७२।।

अन्वयः— त्रिरात्रान्ते त्रिरत्रान्ते, आत्मवृत्यनुसारेण कपित्थबदराशनः हरिम् अर्चयन् मासं निन्ये ।।७२।।

अनुवाद— वे तीन-तीन रात्रि के अनन्तर शरीर निर्वाह के लिए कैंथ और बैर के फल को खाकर श्रीहरि की अर्चना करते हुए एक महीना व्यतीत किये ।।७२।।

भावार्थ दीपिका

कपित्थानि बदराणि चाशनं यस्य । आत्मवृत्तिर्देहस्थितिस्तदनुसारेण ।।७२।।

भाव प्रकाशिका

पहले महीने में शरीर का निर्वाह करने के लिए वे तीन-तीन रात के अन्तराल पर कैंथ और बैर के फल को खा लेते थे ।।७२।।

द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने । तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम् ।।७३।।

अन्वयः— तथा द्वितीयं मासं षष्ठे-षष्ठे दिने अर्भकः शीर्णैः तृण पर्णादिभिः कृतान्नः विभुम् अभ्यर्चयत् ।।७३।।

अनुवाद— उसी तरह दूसरे महीने में छह-छह दिन के अन्तराल पर सूखे तृण और पत्तों को खाकर श्रीहरि की अर्चना करते थे ।।७३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७३।।

तृतीयं चानयन्मासं नवमे नवमेऽहनि । अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत्समाधिना ।।७४।।

अन्वयः— तृतीयं च मासम् नवमे नवमे चा हनि अब्भक्षः समाधिना उत्तमश्लोकम् समाधिना उपाधावत् ।।७४।।

अनुवाद— तीसरा महीना नवें नवें दिन के अन्तराल पर केवल जल पीकर समाधि के द्वारा श्रीहरि की आराधना करते हुए उन्होंने बिताया ।।७४।।

भावार्थ दीपिका

तृतीयं च आनयन् ईषदिव नयन्नुपाधावदित्यन्वयः। प्रतिमासमाहार सङ्कोचं तपोऽतिरेकं च कृतवानिरत्यर्थः ।।७४।।

भाव प्रकाशिका

तीसरा महीना उन्होंने थोड़ा सा जल लेकर श्रीहरि की आराधना करते हुए बिताया । प्रत्येक महीने में वे आहार का सङ्कोच करते थे और तपस्या को बढ़ाते थे ।।७४।।

चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहनि । वायुभक्षो जितश्वासो ध्यायन्देवमधारयत् ॥७५॥

अन्वयः— चतुर्थम् अपि मासं जितश्वासः द्वादशे द्वादशेऽहनि, वायुभक्षः देवम् ध्यायन् अधारयत् ॥७५॥

अनुवाद— चौथे महीने में उनहोंने श्वास को जीत लिया था वे बारहवें बारहवें दिन के अन्तराल पर वायु पी लेते थे और श्रीभगवान् का ध्यान करते हुए बिताया ॥७५॥

भावार्थ दीपिका नहीं हैं ॥७५॥

पञ्चमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः । ध्यायन्ब्रह्म पदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥७६॥

अन्वयः— पञ्चमे मासि अनुप्राप्ते नृपात्मजः नितश्वासः ब्रह्म ध्यायन् एकेनपदा स्थाणुरिव अचलः तस्थौ न ॥७६॥

अनुवाद— पाँचवाँ महीना आने पर राजकुमार ध्रुव अपने श्वास को जीत कर ब्रह्म का ध्यान करते हुए एक पैर पर खड़ा होकर स्तम्भ के समान अविचल बने रहे ॥७६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥७६॥

सर्वतो मन आकृष्य हृदि भूतेन्द्रियाशयम् । ध्यायन्भगवतो रूपं नाद्राक्षीत्किंचनापरम् ॥७७॥

अन्वयः— सर्वतः भूतेन्द्रियाशयम् मनः सर्वतः आकृष्य हृदि भगवतो रूपं ध्यायन् किंचन अपरं न अद्राक्षीत् ॥७७॥

अनुवाद— उस समय वे विषयों की ओर से अपने मन को पूर्णतः खींचकर हृदय में श्रीभगवान् के रूप का ध्यान करते हुए दूसरी कोई भी वस्तु नहीं देखते थे ॥७७॥

भावार्थ दीपिका

भूतानि शब्दादीनि इन्द्रियाणि च आशेरते यस्मिंस्तन्मन आकृष्य ब्रह्म ध्यायन् ॥७७॥

भाव प्रकाशिका

विषयों और इन्द्रियों के आश्रय मन को सब ओर से हटाकर केवल ब्रह्म का ही ध्यान करते थे ॥७७॥

आधारं महदादीनां प्रधानपुरुषेश्वरम् । ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोकाश्चकम्पिरे ॥७८॥

अन्वयः— महदादीनाम् आधारम् प्रधानपुरुषेश्वरम् ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोकः चकम्पिरे ॥७८॥

अनुवाद— महदादिकों के आधार तथा प्रधान एवं पुरुष के नियामक ब्रह्म की धारणा उनके द्वारा कर लिए जाने पर त्रैलोक्य काँपने लगा ॥७८॥

भावार्थ दीपिका

धारयमाणस्य सतस्तस्य तेजः सोढुमशक्नुवन्तः कम्पिताः ॥७८॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्म की धारणा करने वाले ध्रुव के तेज को नहीं सह सकने के कारण तीनों लोक काँपने लगे ॥७८॥

यदैकपादेन स पार्थिवार्भकस्तस्थौ तदङ्गुष्ठनिपीडिता मही ।
ननाम तत्रार्धमिभेन्द्रधिष्ठिता तरीव सव्येतरतः पदे पदे ॥७९॥

अन्वयः— सः पार्थिवार्भकः यदा एकपादेन तस्थौ तदङ्गुष्ठनिपीडिता मही, तत्रार्धम् इभेन्द्राधिष्ठितां तरीव पदे पदे सव्येत तरतः ननाम ॥७९॥

अनुवाद— जब वे राजकुमार एक पैर से जब खड़ा हुए उस समय उनके अङ्गूठे से दबी हुई पृथिवी इस प्रकार झुक गयी जैसे किसी गजराज के चढ जाने पर नौका बायें-दायें पद-पद पर डगमगाने लग जाती हैं ॥७९॥

भावार्थ दीपिका

तस्याङ्गुष्ठेन निपीडिता आक्रान्ता सती मही तत्र तदा अर्धं ननाम् । समेंऽशके अर्धशब्दस्य नपुंसकत्वा दंशांशिनोरभेदाच्चैवं सामानाधिकरण्यम् । इभेन्द्रेणाधिष्ठिता तरी नौर्यथा पदे पदे सव्यतो दक्षिणतश्च नमति तद्वत् ।।७९।।

भाव प्रकाशिका

ध्रुव के अङ्गूठे से दबी हुई पृथिवी का आधा भाग झुक गया । यहाँ पर अर्ध शब्द समांश का बोधक है। वह नपुंसक लिङ्ग वाला होने के कारण तथा अंश और अंशी में अभेद होने के भी कारण यहाँ समानाधिकरण्य है । गजराज के चढ जाने पर जैसे पद-पद पर नौका डगमगाने लगती है उसी तरह पृथिवी डगमगाने लगी ।।७९।।

तस्मिन्नभिध्यायति विश्वमात्मनो द्वारं निरुध्यासुमनन्यया धिया ।
लोका निरुच्छ्वासनिपीडिता भृशं सलोकपालाः शरणं ययुर्हरिम् ।।८०।।

अन्वयः— तस्मिन् असुं द्वारं निरुध्य अनन्यया धिया विश्वमात्मनः अभिध्यायति निरुच्छवासा भृशं निपीडितः सलोकपाला लोकाः हरिंशरणं ययुः ।।८०।।

अनुवाद— जब ध्रुव अपने प्राणों तथा इन्द्रियद्वारों को रोककर विश्वात्मा श्रीहरि का अनन्य बुद्धि से ध्यान करने लगेगे उनकी समष्टि प्राण से अभिन्नता हो जाने के कारण सभी जीवों का श्वास आना जाना बन्द हो गया । उससे सभी लोकों और लोकपालों को अत्यन्त कष्ट हुआ और वें सब घबराकर श्रीहरि के शरण में गये ।।८०।।

भावार्थ दीपिका

अन्यदप्याश्चर्यमाह । तस्मिन् ध्रुवे विश्वं विश्वात्मकं विष्णुमात्मनः सकाशादन्यया धियात्माभेददृष्ट्याऽभिध्यायति सति। किं कृत्वा । अंसु प्राणं तद्वारं च निरुध्य । विश्वमात्मन्येकीकृत्य स्वप्राणनिरोधे कृते विश्वस्य प्राणनिरोधो जात इति भावः।।८०।।

भाव प्रकाशिका

दूसरे भी आश्चर्य का वर्णन करते हैं जब ध्रुव विश्वात्मक भगवान् विष्णु की अनन्य बुद्धि से ध्यान करते थे । क्या करके करते थे ? इसका उत्तर हैं कि प्राण और इन्द्रियों के द्वार को रोककर विश्व को आत्मा से एकीकृत करके अपने प्राणों का निरोध करने पर सम्पूर्ण जगत् के प्राण का निरोध हो गया ।।८०।।

देवा ऊचुः

नैवं विदामो भगवन्प्राणरोधं चराचरस्याखिलसत्त्वधाम्नः ।
विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यम् ।।८१।।

अन्वयः— भगवन् चराचरस्य अखिल सत्त्वधाम्नः एवं प्राणनिरोधः न विदामः । शरण्यं त्वम् शरणं वयं प्राप्तः तत् नोवृजिनाद् मोक्षं विधेहि ।।८१।।

देवताओं ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! सम्पूर्ण चराचर जीवों का इस प्रकार का प्राण निरोध हमलोगों ने देखा ही नहीं है । इसीलिए हमलोग सम्पूर्ण जगत् के रक्षक आपके शरण में आये हैं । अतएव आप हमलोगों को इस कष्ट से आप मुक्ति प्रदान करें ।।८१।।

भावार्थ दीपिका

एवं प्राणनिरोधं कदाचिदपि न विद्मः । अखिलसत्त्वधाम्नः सर्वप्राणिशरीरस्य तस्मादृजिनात् क्लेशात् ।।८१।।

भाव प्रकाशिका

देवताओं ने श्रीभगवान् से कहा कि भगवान् इस प्रकार का प्राणों का निरोध हमलोगों ने कभी देखा ही नहीं है, कि इससे सभी शरीरधारियों का प्राण निरोध हो गया है । हम शरणागतों को इस कष्ट से आप मुक्ति दिलायें ।।८१।।

श्रीभगवानुवाच

मा भैष्ट बालं तपसो दुरत्ययान्निवर्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम ।
यतो हि वः प्राणनिरोध आसीदौत्तानपादिर्मयि सङ्गतात्मा ॥८२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचरिते अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अन्वयः— मा भैष्ट, बालं दुरत्ययात् तपसो निवर्तयिष्ये, स्वधाम प्रतियात मयि सङ्गतात्मा औतानपादिः यतोवः प्राण निरोधः ॥८२॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— तुमलोग डरो मत ध्रुव को इस कठोर तपस्या से मैं निवृत्त कर दूँगा । अपने स्थान पर तुमलोग लौट जाओ । उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने अपने चित्त को मुझमें लीन कर दिया है । इस समय उसकी अभेद धारणा हो गयी है, उसी के कारण तुम सबों का प्राण निरोध हो गया है ॥८२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के ध्रुवचरित के अन्तर्गत आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥

भावार्थ दीपिका

यतो बालात् । कोऽसौ बालः कथं च तस्मात्प्राणनिरोध इत्यत आह । उत्तानपादस्य पुत्रो मयि विश्वरूपे सङ्गतात्मा ऐक्यं प्राप्तो वर्तत इति ॥८२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टमोऽध्यायः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

जिसके चलते यह प्राण निरोध हुआ है वह कौन बालक है और उससे सबों का प्राण निरोध कैसे हो गया है । इस पर श्रीभगवान् ने कहा कि उत्तानपाद का पुत्र विश्वात्मा मुझसे अभेद को प्राप्त कर लिया है ॥८२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथेस्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के आठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥८॥

नवाँ अध्याय

ध्रुव का वरदान प्राप्त करके घर लौटना

मैत्रेय उवाच

त एवमुत्सन्नभया उरुक्रमे कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम् ।
सहस्रशीर्षापि ततो गरुत्मता मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः ॥१॥

अन्वयः— एवम् उत्सन्नभयाः ते उरुक्रमे कृतावनामाः त्रिविष्टपम् प्रययुः । ततः सहस्रशीर्षाऽपि गरुत्मता भृत्यदिदृक्षया मधोर्वनं ययौ ॥१॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से श्रीभगवान् के आश्वासन देने से देवताओं का भय समाप्त हो गया, वे श्रीभगवान् को प्रणाम करके स्वर्गलोक चले गये । उसके पश्चात् श्रीभगवान् भी गरुड़ पर चढ़कर अपने भक्त ध्रुव को देखने के लिए गये॥१॥

भावार्थ दीपिका

नवमे तु हरिं स्तुत्वा लब्ध्वा तस्माद्वरान्ध्रुवः । प्रत्यागत्याकरोद्राज्यं पित्रा दत्तमितीर्यते ।।१।। एवं भगवद्वाक्येन गतभयाः।।१।।

भाव प्रकाशिका

नवें अध्याय में श्रीहरि की स्तुति करके और श्रीभगवान् से वरदान प्राप्त करके ध्रुव अपने घर आकर पिता के द्वारा प्रदत्त राज्य को प्राप्त करके राज्य करने लगे इस बात का वर्णन हैं ।।१।। श्रीभगवान् के आश्वासन से देवताओं का भय दूर हो गया हैं ।।१।।

स वै धिया योगविपाकतीव्रया हृत्पद्मकोशे स्फुरितं तडित्प्रभम् ।
तिरोहितं सहसैवोपलक्ष्य बहिः स्थितं तदवस्थं ददर्श ।।२।।

अन्वयः— स वै योगविपाकतीव्रया धिया हृत्पद्मकोशे तडित्प्रभम् स्फुरितम् सहसैव तिरोहितम् उपलक्ष्य तदवस्थं बहिः स्थितं ददर्श ।।२।।

अनुवाद— उस समय ध्रुवजी तीव्र योगाभ्यास के कारण एकाग्र बुद्धि द्वारा श्रीभगवान् की बिजली के समान देदीप्यमान जिस मूर्ति का अपने हृदय में ध्यान कर रहे थे, वह अचानक विलीन हो गयी । उससे घबराकर जब वे अपनी आँख खोले तो उन्होंने भगवान् को उसी रूप में अपने सामने खड़े देखा ।।२।।

भावार्थ दीपिका

स वै ध्रुवो योगस्य विपाकेन दाढर्येन तीव्रया निश्चलया । गरुडाधिरूढं पुरतः स्थितमपि यदान्तर्दृष्टित्वादसौ नापश्यत्तदा भगवतैवान्तःस्थं रूपमाकृष्टमतस्तिरोहितमुपलक्ष्य व्युत्थितः सन् तदवस्थं यादृगन्तः स्फुरितस्तादृशम् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

योग के परिपक्व हो जाने के कारण अपनी सुदृढ बुद्धि के द्वारा, गरुड पर बैठे हुए सामने विद्यमान भी भगवान् को अन्तर्दृष्टि होने के कारण नहीं देखे तब श्रीभगवान् ही अपने रूप को खींच लिए श्रीभगवान् के तिरोहित हुए देखकर ध्रुवजी का ध्यान टूट गया और उन्होंने देखा कि जिस प्रकार से भगवान् हृदय में प्रकाशित हो रहे थे उसी तरह वे बाहर भी स्थित हैं ।।२।।

तद्दर्शनेनागतसाध्वसः क्षिताववन्दताङ्गं विनमय्य दण्डवत् ।
दृग्भ्यां प्रपश्यन्प्रपिबन्निवार्भकश्चुम्बन्निवास्येन भुजैरिवाश्लिषन् ।।३।।

अन्वयः— तद् दर्शनेन आगत साध्वसः अङ्गं क्षितौ दण्डवत् विनमय्य अवन्दत । प्रपश्यन् अर्भकदृग्भ्यां पिवन्निव आस्येन चुम्बन्निव भुजै आश्लिषन् इव स्थितः ।।३।।

अनुवाद— श्रीभगवान् को देखकर ध्रुवजी के मन में कुतूहल पैदा हो गया, पृथिवी पर लोटकर श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किये और उसके पश्चात् श्रीभगवान् को देखने लगे जैसे वे अपने नेत्रों से उन्हें पी लेना चाहते हों, मुख से चूम लेना चाहते हों और अपनी भुजाओं से उनका आलिङ्गन कर लेना चाहते हों ।।३।।

भावार्थ दीपिका

आगतसाध्वसो जातसंभ्रमः । विनमय्य आनतं कृत्वा । संभ्रममेवाह । दृग्भ्यां प्रपिबन्निव पश्यन्नवन्दत । आस्येन चुम्बन्निवावन्दत । भुजाभ्यामाश्लिषन्निवावन्दतेत्यर्थः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को देखकर ध्रुवजी के मन में कुतूहल पैदा हो गया और वे पृथिवी पर गिरकर श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किए । ध्रुवजी के कूतुहल की वर्णन मैत्रेयजी करते हैं अपने नेत्रों से मानो पीते हुए उनकी वन्दना

किए, मुख से चुम्बन करते हुए के समान वन्दना किए और भुजाओं से आलिङ्गन करते हुए के समान श्रीभगवान् की वन्दना किए ॥३॥

स तं विवक्षन्तमतद्विदं हरिर्ज्ञात्वास्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितः ।
कृताञ्जलिं ब्रह्ममयेन कम्बुना पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥४॥

अन्वयः— कृताञ्जलिमा विवक्षन्तम् अतद्विदं ज्ञात्वा अस्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितः स हरिः कृताञ्जलिं बालं ब्रह्ममयेन कम्बुना कृपया कपाले पस्पर्श ॥४॥

अनुवाद— हाथ जोड़कर खड़े हुए तथा श्रीभगवान् की स्तुति करना चाहकर भी स्तुति करना नहीं जानने वाले ध्रुव को जानकर ध्रुव के तथा सबों के हृदय में निवास करने वाले श्रीहरि उस बालक के कपोल में वेदमय शंख का स्पर्श करा दिए ॥४॥

भावार्थ दीपिका

विवक्षन्तं तद्गुणान्वक्तुमिच्छन्तम् । अतद्विदं स्तुत्यादिकर्तुमजानन्तम् । अस्य ध्रुवस्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितत्वात् ज्ञात्वा। ब्रह्ममयेन वेदात्मकेन शङ्खेन ॥४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सबों के हृदय में निवास करने वाले हैं अतएव वे जान लिए कि ध्रुव स्तुति करना चाहते हैं किन्तु स्तुति कैसे की जाती है, इस बात को नहीं जानते हैं । इसीलिए उन्होंने अपने वेदमय शङ्ख का ध्रुवजी के कपोल से स्पर्श करा दिए ॥४॥

स वै तदैव प्रतिपादितां गिरं दैवीं परिज्ञातपरात्मनिर्णयः ।
तं भक्तिभावोऽभ्यगृणादसत्वरं परिश्रुतोरुश्रवसं ध्रुवक्षितिः ॥५॥

अन्वयः— वै तदैव प्रतिपादितां दैवीं गिरं परिज्ञातपरात्मनिर्णयः ध्रुवक्षितिः सः असत्वरं परिश्रुतोरुश्रवसं भक्तिभावाभ्यगृणात् ॥५॥

अनुवाद— ध्रुवजी को उस शंख का स्पर्श होते ही वेदमयी दिव्य वाणी प्राप्त हो गयी । उनको आत्मतत्त्व एवं परमात्मतत्त्व का ज्ञान हो गया । इस प्राकर के अविचल स्थान प्राप्त करने वाले ध्रुवजी विख्यात कीर्ति सम्पन्न श्रीभगवान् की भक्तिभाव से परिपूर्ण होकर धैर्यपूर्वक स्तुति किए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

भगवता प्रतिपादितां गिरं प्रतिपद्येति शेषः । प्रतिपद्यतामिति पाठे तां वेदात्मिकाम् । परिज्ञातः परात्मनोरीश्वरजीवयोर्निणयो येन सः । अतएव भक्त्या भावः प्रेम यस्य । असत्वरं स्थैर्येण । परितः श्रुतं विख्यातमुरुश्रवः कीर्तिर्यस्य तम् । ध्रुवा क्षितिः स्थानं यस्येति भाविनिर्देशः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

ध्रुवजी की श्रीभगवान् के द्वारा प्रतिपादित दिव्य वेदमयी वाणी को उसी समय प्राप्त कर लिए जिस समय श्रीभगवान् ने अपने शङ्ख का उनके कपोल से स्पर्श करा दिया । जहाँ प्रतिपद्यताम् पाठ है वहाँ पर वेदात्मिका वाणी को प्राप्त कर लिया यह अर्थ होगा । उनको जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप का निर्णय हो गया । इसीलिए वे धैर्य पूर्वक भक्ति से भरकर प्रेम पूर्वक प्रख्यात कीर्ति वाले श्रीभगवान् की उन्होंने स्तुति की । ध्रुवक्षितिः कहकर यह बतलाया गया है कि ध्रुवजी को भविष्यत् काल में निश्चल स्थान प्राप्त होने वाला है ॥५॥

ध्रुव उवाच

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥६॥

अन्वयः— अखिल शक्तिधरः यः मम अन्तः प्रविश्य स्वधाम्ना इमां प्रसुप्तां वाचं संजीवयति अन्यान् हस्तचरण श्रवणत्वगादीन् प्राणान् च संजीवयति तुभ्यं पुरुषाय भगवते नमः ॥६॥

ध्रुवजी ने कहा

अनुवाद— सर्वशक्तिमान जो परमात्मा मेरे अन्तःकरण में अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करके अपने तेज से मेरी इस सोची वाणी को सजीव बना देते हैं तथा दूसरे हाथ पैर श्रोत्र तथा त्वक् आदि इन्द्रियों एवं प्राणों को संजीवित करने का काम करते हैं, ऐसे अन्तर्यामी परमात्मा आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥६॥

भावार्थ दीपिका

ईशानुग्रहसंप्राप्तवागाद्यद्भुतवृत्तिभिः । द्वादशादित्यसंकाशैः श्लोकैरस्तौद्धरिं ध्रुवः ॥१॥ यो मे प्रसुप्तां लीनां वाचमन्यांश्च प्राणानिन्द्रियाणि स्वधाम्ना चिच्छक्तया संजीवयति । यतः, अखिलाश्चक्षुरादिज्ञानक्रियाशक्तीर्धारयतीति तथा । पुरुषायान्तर्यामिणे॥६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की कृपा से वाणी आदि की अद्भुत वृत्तियों को प्राप्त करने वाले ध्रुवजी ने द्वादशादित्य के समान वारह श्लोकों द्वारा श्रीहरि की स्तुति की ॥१॥ जो परमात्मा लीन हुई मेरी वाणी को तथा दूसरे प्राणों एवं इन्द्रियों को अपनी चित् शक्ति रूपी तेज के द्वारा अच्छी तरह से जीवित कर देते हैं । क्योंकि वे सम्पूर्ण चक्षुरादि को ज्ञान और क्रिया से सम्पन्न बना देते हैं ऐसे अन्तर्यामी पुरुष आप श्रीभगवान् को मेरा नमस्कार है ॥६॥

एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम् ।
सृष्ट्वाऽनुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु नानेव दारुषु विभावसुवद्विभासि ॥७॥

अन्वयः— भगवन् त्वम् एक एव मायाख्यया उरुगुणया आत्मशक्त्या इदम् महदाद्यशेषम् सृष्ट्वा अनुविश्य एकः त्वमेव पुरुषः तदसदगुणेषु दारुषु विभावसुवत् नानेव विभासि ॥७॥

अनुवाद— आप एक ही हैं, अपनी माया नामक अनन्तगुणमयी शक्ति से इस महदादि सम्पूर्ण प्रपञ्च की सृष्टि करके उसमें अन्तर्यामी रूप से प्रवेश कर जाते हैं फिर इसके इन्द्रिय आदि असत् गुणों में अधिष्ठातृ देवताओं के रूप में अनेक रूप से उसी तरह प्रतीत होते हैं, जैसे एक ही अग्नि विभिन्न लकड़ियों में प्रकट होकर अपनी उपाधियों के कारण भिन्न-भिन्न रूपों में प्रतीत होती है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

ननु वागादीन्द्रियशक्तिधरा वह्न्यादयः प्रसिद्धा नाहमित्यतआह- एक इति । अनुविश्य पुरुषोऽन्तर्यामी त्वमेक एव । तस्या मायाया असत्सु गुणेष्विन्द्रियादिषु स्थितः संस्तत्तद्देवतारूपो नानेव भासि नतु त्वद्व्यतिरेकेण ज्ञानक्रियाशक्तिधरः कश्चिदस्तीत्यर्थः॥७॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि वागादि इन्द्रियों की शक्ति को धारण करने वाले अग्नि आदि देवता हैं । वे देवता ही वागादि इन्द्रियों के अधिष्ठाता हैं मैं नहीं हूँ इसके उत्तर में ध्रुवजी कहते हैं— **एकः इत्यादि** अर्थात् उन सबों के भीतर आप ही अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हैं । उस माया के मिथ्या गुणों व इन्द्रियों आदि में स्थित रहकर आप ही अग्नि आदि देवताओं के रूप में प्रतीत होते हैं । आपसे भिन्न कोई दूसरा ज्ञान शक्ति तथा क्रिया को धारण करने वाला नहीं हैं॥७॥

त्वद्दत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं सुप्तप्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः ।
तस्यापवर्ग्यशरणं तव पादमूलं विस्मर्यते कृतविदा कथमार्तबन्धो ॥८॥

अन्वयः— हे नाथ त्वद्दत्तया वयुनया भवत् प्रपन्नः सुप्तप्रबुद्ध इव इदम् विश्वम् अचष्ट, तस्या अपवर्ग्य शरणं तव इदंमूलम् हे आर्तबन्धो कृतविदा कथम् विस्मर्यते ॥८॥

अनुवाद— हे नाथ ! आपके ही द्वारा प्रदत्त ज्ञान से आपके शरणागत ब्रह्माजी भी इस जगत् को सोकर उठे हुए के ही समान देखे । वे मुक्त जीव भी आपके ही चरणों के तलवे का आश्रय लेते हैं । हे आर्तबन्धो ! आपके उन चरणों को कोई भी कृतज्ञ पुरुष कैसे भूल सकता है ?॥८॥

भावार्थ दीपिका

अपि च किं वक्तव्यं वह्न्यादयो ज्ञानादिशक्तिधरा न भवन्तीति, यस्माद्ब्रह्मणोऽपि ज्ञानं त्वदधीनमेवेत्याह । त्वद्दत्तया वयुनया ज्ञानेन भवन्तं शरणं प्रपन्नो ब्रह्मा इदं विश्वमचष्टापश्यत् । कथम् । सुप्तः पुरुषः प्रबुद्धः सन्यथा पश्यति तद्वत् । अतआपवर्ग्या मुक्तास्तेषामपि शरणम् । कृतविदा सर्वेन्द्रियजीवनेन त्वत्कृतमुपकारं जानता कथं विस्मर्यते । एवंभूतं त्वामभजन्तः कृतघ्ना इत्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च यह क्या कहना है कि अग्नि इत्यादि ज्ञानादि शक्ति को धारण करने वाले नहीं है, क्योंकि ब्रह्माजी का भी ज्ञान आपके अधीन ही है । आपके ही द्वारा प्रदत्त ज्ञान से ही आपके शरणागत ब्रह्माजी भी इस विश्व को सोकर जगे हुए पुरुष के समान देखे । अतएव अपवर्ग्यो (मुक्तों) के भी आश्रय आप ही हैं । आपने जो जीवों को सर्वेन्द्रिय जीवन प्रदान करके उन सबों का उपकार किया है, उसको कोई भी कृतज्ञ पुरुष कैसे भूल सकता है । इस प्रकार के आपका जो लोग भजन नहीं करते हैं वे कृतघ्न हैं ॥८॥

नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः ।
अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्यमिच्छन्ति यत्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम् ॥९॥

अन्वयः— नूनं ते तवमायया विमुष्टमतः ये भवाप्यय विमोक्षणम् कल्पकरुम् त्वाम् अन्य हेतीः अर्चन्ति कुणपोपभोग्यम् इच्छन्ति । यत् स्पर्शजं नृणाम् निरयेऽपि ॥९॥

अनुवाद— निश्चित रूप से उन लोगों की बुद्धि को माया ने हर लिया है जो जन्म मरण से मुक्ति दिलाने वाले तथा कल्पतरु के समान सारे मनोरथों को पूर्ण करने वाले आपका भजन विषय जन्य सुख की प्राप्ति के लिए किया करते हैं । वह स्पर्श जन्य तो सुख नरक में भी मनुष्यों को प्राप्त हो सकता है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

ये च मादृशाः कामाद्यर्थं भजन्ति तेऽतिमूढा इत्याह-नूनमिति । भवाप्ययौ जन्मरणे तद्विमोक्षे हेतुं त्वामन्यहेतोः कामाद्यर्थं ये भजन्ति ते नूनं विमुष्टमतयो वञ्चितचित्ताः । यतस्ते कल्पतरुं त्वामर्चन्ति । ततः कुणपतुल्येन देहेनोपभोग्यं सुखमिच्छन्ति। नचेच्छायोग्यं तदित्याह । यत्स्पर्शजं विषयसंबन्ध जन्यं सुखं तन्नरकेऽपि भवति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

जो मुझ जैसे लोग कामादि की प्राप्ति के लिए आपका भजन करते हैं वे अत्यन्त अज्ञानी हैं । जन्म और मरण से मुक्ति प्रदान करने वाले आपका जो लोग दूसरे कामादि की प्राप्ति के लिए आपका भजन करते हैं निश्चित रूप से उन लोगों की बुद्धि मारी गयी है । क्योंकि वे भजन तो कल्पतरु के समान सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने वाले आपका करते हैं, और उसके बदले में शव के समान शरीर के द्वारा भोगे जाने वाले सुख को चाहते हैं । वह सुख तो चाहने योग्य भी नहीं है । वह विषयों का स्पर्श जन्य सुख तो नरक में भी प्राप्त होता है ॥९॥

या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ।
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत्किंत्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात् ॥१०॥

अन्वयः— हे नाथ तव पादपद्म ध्यानात्, भवज्जन कथा श्रवणेन वा तनुभृतां या निर्वृतिः स्यात् सा स्वमहिमनि अपि मा भूत्, अन्तकासि लुलितात् विमानात् किन्तु ॥१०॥

अनुवाद— हे नाथ ! आपके चरण कमलों का ध्यान करने से अथवा आपके भक्तों के पवित्र चरित्र को सुनने से जिस सुख की प्राप्ति होती है वह सुख निजानन्द स्वरूप ब्रह्म में भी नहीं मिल सकता है । और जिन लोगों को काल का कृपाण काटता रहता है, उन स्वर्भीय विमानों से गिरने वाले पुरुषों को कैसे प्राप्त हो सकता है ?॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ननु स्वर्गादिसुखं सकामैः प्राप्यते निष्कामभजने तन्न स्यादित्यत आह-येति । स्वमहिमनि निजानन्दरूपेऽपि मा भूत्। न भवतीत्यर्थः । अन्तकस्यासिना कालेन लुलितात् खण्डिताद्विमानात् पततां सा नास्तीति किमु वक्तव्यम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि स्वर्ग में प्राप्त होने वाले सुख की प्राप्ति तो सकाम भजन करने से ही प्राप्त होते हैं निष्काम भजन करने वाले को तो वह सुख नहीं प्राप्त हो सकता हैं ? इस पर ध्रुवजी कहते हैं **या निवृति० इत्यादि** जो सुख आपके चरण कमलों का ध्यान करने से प्राप्त होता हैं अथवा आपके भक्तों का चरित्र सुनने से प्राप्त हो उस सुख की प्राप्ति उन स्वर्ग में गये जीवों को जिनको काल की तलवार काटते जा रही है और अन्त से विमान से जो गिर जाते हैं उन जीवों को कैसे प्राप्त हो सकती है ? वह सुख तो निजानन्द स्वरूप ब्रह्म में भी नहीं मिलता है ॥१०॥

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो भूयादनन्त महताममलाशयानाम् ।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥११॥

अन्वयः— हे अनन्त त्वयि भक्तिं प्रवहताम् महताम् अमलाशयानाम् मे प्रसङ्गः मुहुः भूयात् येन अञ्जसा उल्बणम् उरुव्यसनम् भवाब्धिम् भवद्गुणकथामृतपानमत्तः नेष्ये ॥११॥

अनुवाद— हे अनन्त भगवन् ! मुझे आप उन विशुद्ध हृदय वाले महापुरुषों की सङ्गति बार-बार आप प्रदान करें जो आपकी निरन्तर भक्ति किया करते हैं । जिससे कि मैं अनेक प्रकार के दुःखों से परिपूर्ण इस भयङ्कर भवसागर को आपकी कथा रूपी अमृत का पान करने से मत्त बना हुआ आसानी से पार कर जाऊँगा ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अतस्ते कथाश्रवणाय सत्सङ्गतिं देहीत्याह । भक्तिं त्वयि प्रवहतां सातत्येन कुर्वताम् । ननु मोक्षं किं न याचसेऽत आह। येन महत्प्रसङ्गेनाञ्जसा अयत्नत एवोरूणि व्यसनानि यस्मिंस्तम् नेष्ये पारं गमिष्यामि । भवद्गुणकथैवामृतं तस्य पानेन मत्तः सन् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

अतएव आप मुझे अपने भक्तों की सङ्गति प्रदान करें जिससें मैं आपकी कथाओं का श्रवण कर सकूं । ऐसे भक्त जो आपकी निरनतर भक्ति किया करते हैं । यदि आप कहें कि तुम मुझसे मोक्ष की याचना नहीं करते हो? तो इस पर ध्रुवजी कहते हैं कि— जिन महापुरुषों की सङ्गति से बहुत अधिक दुःखों से भरे हुए इस संसार रूपी सागर को आपकी कथा रूपी अमृत का पान करने से मत्त बना हुआ मैं बड़ी आसानी से पार कर जाऊँगा ॥११॥

ते न स्मरन्त्यतितरां प्रियमीश मर्त्यं ये चान्वदः सुतसुहृद्गृहवित्तदाराः ।
ये त्वब्जनाभ भवदीयपदारविन्दसौगन्ध्यलुब्धहृदयेषु कृतप्रसङ्गाः ॥१२॥

अन्वयः— हे अब्जनाभ ! ये तु भवदीयपदारविन्दसौगन्ध्यलुब्ध हृदयेषु कतप्रसङ्गाः ते हे ईश अतितरां मर्त्यम् ये च अन्वदः सुतसृहृद्गृहवित्तदाराः न स्मरन्ति ॥१२॥

अनुवाद— हे कमलनाभ भगवान् ! जो लोग आपके चरणारविन्द की सुगन्धि में लुभाये हृदय वाले आपके भक्तों की सत्सङ्गति करते हैं वे अपने इस इस अत्यन्त प्रिय शरीर को तथा इसके सम्बन्धी पुत्र मित्र, गृह, धन तथा पत्नी का भी स्मरण नहीं करते हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

कथामृतपानस्य मादकत्वमाह । तेऽतितरां प्रियमपि मर्त्यं देहं न स्मरन्ति नानुसंदधते । ये च सुतादयः अदः मर्त्यमनुसंबद्धास्तानपि । के ते न स्मरन्ति । ये कृतप्रसङ्गाः । केषु । भवदीयपदारविन्दसौगन्ध्ये लुब्धं हृदयं येषां तेषु । तुशब्देनान्येषां केवलयोगादिनिष्ठानां देहाद्यभिमानानिवृत्तिं दर्शयति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भी ध्रुवजी कथामृत की मादकता का वर्णन करते हैं जो लोग कथामृत का पान करते हैं वे अपने अत्यन्त प्रिय शरीर की भी परवाह नहीं करते है । यही नहीं वे इस मर्त्यशरीर से संबन्ध रखने वाले पुत्र, मित्र, कलत्र आदि को भी नहीं याद करते हैं । यदि कोई कहे कि ऐसे लोग कौन हैं ? तो इसका उत्तर है कि जिन लोगों का हृदय आपके चरण कमल की सुगन्धि का लोभी है, उन भगवद् भक्तों की सत्सङ्गति करने वाले । **ये तु० का** तु शब्द यह बतलाता है कि जो लोग केवल योग आदि में निष्ठा रखने वाले हैं उनकी देहाभिमान की निवृत्ति नहीं होती है ॥१२॥

तिर्यङ्नगद्विजसरीसृपदेवदैत्यमर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम् ।
रूपं स्थविष्ठमज ते महदाद्यनेकं नातः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥१३॥

अन्वयः— हे अज ! तिर्यङ्ङ्नगाद्विज सरीसृप देवदैत्य मर्त्यादिभिः महदाद्यनेकं सदसद् विशेषं ते स्थविष्ठ रूपं परिचितम् । अतः परं न वेद्मि यत्र वादो न ॥१३॥

अनुवाद— हे अजन्मा प्रभो मैं तो पशु, वृक्ष, पर्वत, पक्षी, सरीसृप देवता दैत्य तथा मनुष्यों आदि परिपूर्ण तथा महदादि अनेक कारणों से सम्पन्न आपके अत्यन्त स्थूल रूप से ही परिचित हूँ । इससे परे जो आपका परम स्वरूप है, जिसके विषय में वाणी की भी गति नहीं होती है उसे मैं नहीं जानता हूँ ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं विद्वानपित्वं किमित्यभिमानं वहस्यत आह-तिर्यगिति । तिर्यङ्गादिभिः परिचितं व्याप्तम् । सन्तोऽसन्तश्च विशेषा यस्य । महदादीन्यनेकानि कारणानि यस्य । हे परम अज, ते इदं स्थविष्ठं विराड्रूपं केवलं वेद्मि । अतः परमीश्वरस्वरूपं न वेद्मि । यत्रः वादः शब्दव्यापारो नास्ति तद्ब्रह्मरूपं च न वेह्मि अतोऽभिमानो न निवर्तत इति भावः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि इस तरह ज्ञानी होकर भी तुम देहाभिमान क्यों करते हों ? इस पर ध्रुवजी ने कहा— आपका जो यह अत्यन्त स्थूल रूप जो पशु, पर्वत आदि से व्याप्त है । इसमें सत् एवं असत् पदार्थ विशेष रूप से विद्यमान हैं । जिसके महत् तत्त्व इत्यादि अनेक कारण हैं । हे अजन्मा परमेश्वर ! आप का जो यह स्थूलतम विराट् रूप है मैं केवल इसी को जानता हूँ । इससे श्रेष्ठ जो आपका ईश्वर रूप है, जिसके विषय में शब्द की भी गति नहीं होती है आपके उस रूप को मैं नहीं जानता हूँ अतएव मेरे अभिमान की निवृत्ति नहीं होती है ॥१३॥

कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णन् शेते पुमान्स्वदृगनन्तसखस्तदङ्के ।
यन्नाभिसिन्धुरुहकाञ्चनलोकपद्मगर्भे द्युमान् भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥१४॥

अन्वयः— कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णन् यः पुमान् स्वदृगनन्तसखः तदङ्के शेते, यन्नाभिसिन्धुरुहकाञ्चन लोकपद्मगर्भे द्युमान् तस्मै भगवते प्रणतोऽस्मि ॥१४॥

अनुवाद— हे भगवन् कल्प का अन्त होने पर योगनिद्रा में स्थित जो परमपुरुष इस सम्पूर्ण विश्व को अपने उदर में लीन करके शेषजी के साथ उनकी ही गोद में शयन करते हैं तथा जिनके नाभिसमुद्र में उत्पन्न सर्वलोकमय स्वर्णिम कमल से परम तेजस्वी ब्रह्माजी उत्पन्न हुए वे भगवान् आप ही हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं भगवदनुकम्पया तद्रूपद्वयं ज्ञात्वेश्वररूपमनुवर्णयन्नमस्करोति-कल्पान्त एतदिति । एतत्त्रैलोक्यं यः पुमान् शेते । स्वस्मिन्नेव दृक् न बहिर्यस्य योगनिद्रारूढत्वात् । अनन्तसखः शेषसहायः । तदङ्के शेषोत्सङ्गे । यस्य नाभिरेव सिन्धुः समुद्रस्तस्मिन् रोहतीति तथ तस्मिन्काञ्चनलोकपद्मस्य गर्भे कर्णिकायां द्युमांस्तेजस्वी ब्रह्मा भवति । तं प्रणतोऽस्मीत्यर्थः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीभगवान् की कृपा से उनके दो रूप को जानकर उनके ईश्वर रूप को नमस्कार करते हुए ध्रुवजी **कल्पान्त एतदित्यादि** श्लोक को कहते हैं । जो परमात्मा कल्प के अन्त में इस त्रैलोक्य को उदरस्थ करके योगनिन्द्रा में साते हैं । उस समय उनकी दृष्टि अपने में रहती है बाहर नहीं रहती है । अनन्त ही उनके साथ रहते हैं और वे परमपुरुष शेषजी की गोद में ही सोते हैं । श्रीभगवान् की नाभि ही समुद्र हैं । उसमें उत्पन्न होने वाले स्वर्णिम कमल की कर्णिका पर द्युमान् अर्थात् महातेजस्वी ब्रह्माजी उत्पन्न होते हैं ऐसे श्रीभगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१४॥

त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्ध आत्मा कूटस्थ आदिपुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः ।
यद्बुद्ध्यवस्थितिमखण्डितया स्वदृष्ट्या द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्से ॥१५॥

अन्वयः— त्वम् यद् बुद्ध्यवसीतिमखण्डितया स्वदृष्टया, द्रष्टा, नित्यमुक्तपरिशुद्ध विवुद्धः आत्मा, कूटस्थ आदिपुरुषः भगवान् त्र्यधीशः व्यतिरिक्तः स्थितौ अधिमखः आस्से ॥१५॥

अनुवाद— हे भगवन् आप अपनी अखण्ड चिन्मयी दृष्टि से बुद्धि की सभी अवस्थाओं के साक्षी हैं । आप नित्यमुक्त शुद्ध सत्त्वमय सर्वज्ञ परमात्मा स्वरूप निर्विकार आदि पुरुष, षडैश्वर्य सम्पन्न एवं तीनों गुणों के स्वामी हैं। इस संसार की स्थिति के लिए यज्ञधिष्ठाता विष्णु रूप स विराजमान रहते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

ननु ममापि स्वापाद्यवस्थावत्त्वे को जीवाद्विशेष इत्यत आह त्वं तु व्यतिरिक्तो जीवविलक्षण आस्से तिष्ठसि । वैलक्षण्यमेवाह त्वं तु नित्यमुक्तो जीवस्तु त्वत्प्रसादान्मुच्यते । त्वं परिशुद्धः स तु मलिनः । त्वं तु विबुद्धः स त्वज्ञः । त्वमात्मा स तु जडः। त्वं कूटस्थः स तु विकारी । त्वमादिपुरुषः स त्वादिमान् । त्वं तु भगवान्स तु भगहीनः । त्वं त्रयाणां गुणानामधीशः स तु परतन्त्रः । कुत एतद्वैलक्षण्यम् । यद्यतो बुद्ध्यवस्थितिं बुद्धेस्तां तामवस्थामखण्डितया स्वदृष्ट्या चिच्छत्तया द्रष्टा पश्यसि । द्रष्टेति तृन्प्रत्ययान्तः । अतो बुद्ध्यवस्थितिमित्यत्र षष्ठ्यभावः तथाभूत एव त्वं स्थितौ पालनेऽधिमखो यज्ञाधिष्ठाता श्रीविष्णुः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मेरी भी स्वप्नादि अवस्थाएँ होती हैं अतएव मुझमें जीव की अपेक्षा कौन सी विशेषता है? इस पर ध्रुवजी कहते हैं कि आप तो जीव से भिन्न रूप से ही स्थित है । उस विलक्षणता (भिन्नता) को बतलाते हुए वे कहते हैं— आप ता नित्यमुक्त हैं और जीव तो आप की कृपा से मुक्त होता है, आप परिशुद्ध हैं, आप में कोई

दोष नहीं और जीव मलिन है । आप विबुद्ध (सर्वज्ञ) हैं और जीव अज्ञ है । आप आत्मा हैं और जीव जड़ है, आप कूटस्थ हैं और जीव विकारवान है, आप आदि पुरुष हैं और जीव आदिमान् है । आप भगवान् अर्थात् षड्विध ऐश्वर्य सम्पन्न हैं और जीव भगहीन अर्थात् ऐश्वर्य रहित हैं । आप तीनों गुणों के स्वामी हैं और जीव गुण परतन्त्र है। यदि कहें कि यह विलक्षणता कैसे हो गयी ? तो इसका उत्तर है कि बुद्धि की जितनी भी अवस्थाएँ हैं, उस अवस्था को आप अपनी अखण्ड बुद्धि से द्रष्टा हैं । द्रष्टा पदतृन् प्रत्ययान्त है, इसीलिए **बुद्ध्यवस्थितिम्** में षष्ठी विभक्ति का अभाव है । इस प्रकार के आप संसार की स्थिति के लिए यज्ञाधिष्ठाता विष्णु हैं ।।१५।।

यस्मिन्निरुद्धगतयो ह्यनिशं पतन्ति विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात् ।
तद्ब्रह्म विश्वभवमेकमनन्तमाद्यमानन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये ।।१६।।

अन्वयः— यस्मिन् विरुद्धगतयः विद्यादयः विविध शक्तयः आनुपूर्व्यात् अनिशं पतन्ति, विश्वभवम्, एकम्, अनन्तम् आद्यम्, आनन्दमात्रम्, अविकारम् तद् ब्रह्म अहं प्रपद्ये ।।१६।।

अनुवाद— आपसे ही विद्या अविद्या आदि विरुद्ध गति वाली अनेक शक्तियाँ निरन्तर धारावाहिक रूप से प्रकट होती रहती हैं । आप जगत् के कारण, अखण्ड, अनादि, अनन्त, आनन्दमय निर्विकार ब्रह्म स्वरूप है । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

तमेव ब्रह्मरूपेण ज्ञातं नमस्करोति-यस्मिन्निति । पतन्त्यकस्मादुद्भवन्ति । विश्वस्य भवो यस्मात् । एकमखण्डम् । आद्यमनादितम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्म रूप से ज्ञात उन्हीं श्रीभगवान् को नमस्कार ध्रुवजी इस श्लोक के द्वारा कहते हैं । आपसे ही विरुद्ध मतिवाली विद्या अविद्या आदि अनेक शक्तियाँ, अकस्मात्, उत्पन्न होती रहती हैं । आप सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं, अखण्ड हैं तथा अनादि हैं ।।१६।।

सत्याशिषो हि भगवंस्तव पादपद्ममाशी स्तथाऽनुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः ।
अप्येवमार्य भगवान्परिपाति दीनान्वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ।।१७।।

अन्वयः— हे भगवन् ! पुरुषार्थमूर्ते तव आशिषः पाद पद्मम् सत्या आशीः तथानुभजतः । अप्येवमार्यदीनान् अस्मान् अनुग्रहकातरो भगवान् वाश्रा वत्सकमिव परिपाति ।।१७।।

अनुवाद— हे भगवन् ! जो लोग आपको परमानन्द मूर्ति समझकर आपका भजन करते हैं उनके लिए राज्य आदि की प्राप्ति की अपेक्षा आपके चरण कमलों की प्राप्ति ही सच्चा फल है । हे भगवन् यद्यपि ऐसी स्थिति है, फिर भी जिस तरह गौ अपने तुंरत के जन्मे बछड़े की दूध पिलाती है और उसकी वृक आदिसे रक्षा भी करती है उसी तरह अपने भक्तों पर कृपा करने के लिए सदा व्याकुल रहने वाले आप मुझ जैसे सकाम जीवों की भी कामना पूर्ण करने के लिए आप उनकी संसार भय से रक्षा करते हैं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

सकामभजनादपि मोक्षमाशासान आह । हे भगवन्, पुरुषार्थः परमानन्दः स एव मूर्तिर्यस्य तस्य तव पादपद्माशिषो राज्यादेः सकाशात्सत्या आशी; परमार्थफलं हि निश्चितम् । कस्य । तथा तेन प्रकारेण त्वमेव पुरुषार्थ इत्येवं निष्कामतया अन्वनुभजतः । यद्यप्येवं तथापि हे आर्य स्वामिन्, दीनान्सकामानप्यस्मान्भगवान्भवान्परिपाति संसारभयाद्रक्षत्येव । यतः, अनुग्रहे हिताचरणे कातरः परवशः । यथा नवप्रसूता वाश्रा धेनुर्वत्सं क्षीरं पाययति वृकादिभ्यो रक्षति च तद्वत् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

सकाम भजन से मोक्ष की प्राप्ति होती है इस बात को कहते हुए ध्रुव जी कहते हैं— हे भगवन् आप परमानन्द मूर्ति हैं ऐसे आप से प्राप्त होने वाले राज्यादि की अपेक्षा आपके चरण कमलों की प्राप्ति ही सत्य आशीर्वाद है। अर्थात् वही परमार्थ फल है । यह उन लोगों के लिए है जो आपको परमानन्द स्वरूप मानकर निष्काम रूप से आपका भजन करते हैं । यद्यपि ऐसी ही बात है फिर भी हे स्वामिन् ! कामना पूर्वक आपका भजन करने वाले हमलोगों की भी आप संसार भय से रक्षा करते हैं, अर्थात् मुक्ति प्रदान करते हैं । क्योंकि आप अपने भक्तों का कल्याण करने के लिए सदा व्याकुल रहते हैं । यह उसी तरह से होता है जिस तरह शीघ्र जिसने बच्चा दिया है, ऐसी गौ आपने उस बछड़े को दूध भी पिलाती है और उसकी वृक इत्यादि से रक्षा भी करती हैं ।।१७।।

मैत्रेय उवाच

अथाभिष्टुत एवं वै सत्संकल्पेन धीमता । भृत्यानुरक्तो भगवान्प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ।।१८।।

अन्वयः— अथ एवम्, सत्सङ्कल्पेन, धीमता अभिष्टुतः भृत्यानुरक्तो भगवान् प्रतिनन्द्य इदमब्रवीत् ।।१८।।

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— हे विदुरजी ! जब शुभ सङ्कल्प वाले बुद्धिमान ध्रुवजी ने श्रीभगवान् को इस प्रकार से स्तुति की तब भक्त वत्सल भगवान् उनकी प्रशंसा करके उनसे कहें ।।१८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१८।।

श्रीभगवानुवाच

वेदाहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यबालक । तत्प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ।।१९।।

अन्वयः— हे सुव्रत राजन्य बालक ते हृदि व्यवसितम् अहं वेद । ते भद्रम् । दुरापमपि तत् प्रच्छामि ।।१९।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे सुन्दर व्रत का पालन करने वाले राजकुमार ! मैं तुम्हारे हृदय के सङ्कल्प को जानता हूँ, यद्यपि उस पद का प्राप्त होना बहुत कठिन है फिर भी मैं तुम्हें वह प्रदान करता हूँ । तुम्हारा कल्याण हो ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

व्यवसितं सङ्कल्पितम् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

व्यवसितम् पद का अर्थ है सङ्कल्पित ।।१९।।

नान्यैरधिष्ठितं भद्र यद्भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति। यत्र ग्रहर्क्षताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम् ।।२०।।
मेढ्यां गोचक्रवत्स्थास्नु परस्तात्कल्पवासिनाम्। धर्मोऽग्निः कश्यपः शुक्रो मुनयो ये वनौकसः ।।२१।।

अन्वयः— भद्र ! यद् भ्राजिष्णु ध्रुवक्षितिः अन्यैः न अधिष्ठितं यत्र ग्रहर्क्षताराणां ज्योतिषां चक्रमाहितम् मेढ्यां गोचक्रवत् स्थास्नु परस्तात् कल्पवासिनाम् धर्मः अग्निः कश्यपः शुक्रः ये वनौकसः मुनयः सतारकाः यत् दक्षिणी कृत्य भ्रमन्तः चरन्ति ।।२०-२१।।

अनुवाद— हे भद्र ! जिस तेजोमय अविनाशी लोक को आज तक कोई भी नहीं प्राप्त कर सका, जिसके चारो ओर ग्रह नक्षत्र और तारागण रूपी ज्योतिश्चक्र उसी तरह धूमता रहता है, जिस तरह मेढी के चारो ओर दँवरी के बैल घूमते रहते हैं । दूसरे कल्प पर्यन्त रहने वाले अन्य लोकों का नाश हो जाने पर भी जो स्थिर बना रहता

है और तारागण के साथ धर्म, अग्नि, कश्यप और शुक्र आदि नक्षत्र तथा वन में रहने वाले सप्तर्षिगण जिसकी प्रदक्षिणा किया करते हैं, उस ध्रुव लोक को मैं तुम्हें प्रदान करता हूँ ॥२०-२१॥

भावार्थ दीपिका

तत्प्रयच्छामीत्युक्तं किं तदित्यपेक्षायामाह- नान्यैरिति सार्धद्वाभ्याम् । हे भद्र, ध्रुवा क्षितिर्निवासो यस्मिन् । यत्र यस्मिन्। आहितमर्पितम् । धान्याक्रमणाय भ्राम्यमाणानां पशूनां बन्धनस्तम्भो मेढी तस्यां बलीवर्दसमूहवत् । अवान्तरकल्पवासिनां परस्तादपि स्थास्नु लोकत्रयनाशेऽप्यनश्वरम् । धर्माग्न्यादयो नक्षत्ररूपाः । वनौकसः सप्तर्षयो यत्प्रदक्षिणीकृत्य भ्रमन्तश्चरन्ति ॥२०-२१॥

भाव प्रकाशिका

हे ध्रुव ! मैं उसे प्रदान कर रहा हूँ अब प्रश्न होता है कि क्या प्रदान कर रहे हैं ? उसका **नान्यैः इत्यादि** ढाई श्लोकों से बतलाते हैं । जिस पृथिवी पर निवास करना जिस पर रखा गया । उस धान के पैरा पर धूमने वाले दँवरी के बैलों के समान दूसरे कल्प में भी रहने वाले उसके बाद भी जीवित रहने वाले, त्रैलोक्य का नाश हो जाने पर भी जीवित रहने वाले उस स्थान की सप्तर्षिगण परिक्रमा करते है, उस स्थान को तुम्हें प्रदान करता हूँ ॥२०-२१॥

प्रस्थिते तु वनं पित्रा दत्त्वा गां धर्मसंश्रयः । षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं रक्षिताऽव्याहतेन्द्रियः ॥२२॥

अन्वयः— गां दत्त्वा पित्रा तु वनं प्रसथिते षट्त्रिंशद् वर्ष साहस्रं धर्मसंश्रयः अव्याहतेन्द्रियः गां रक्षिता ॥२२॥

अनुवाद— तुम्हे राजसिंहासन प्रदान करके जब तुम्हारे पिता वन में चले जायेंगे तब तुम छत्तीस हजार वर्षों तक पृथिवी का पालन धर्म पूर्वक करोगे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

एतच्च राज्यानन्तरं भविष्यतीत्याह-प्रस्थित इति । तुभ्यं पृथ्वीं दत्त्वा वनं प्रस्थिते । भावे क्तः । वनं प्रति दीर्घगमने कृते सति । रक्षिता रक्षिष्यसि ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

तुमको ध्रुवलोक की प्राप्ति राज्य भोगने के पश्चात् होगी इस बात को श्रीभगवान् ने **प्रस्थिते तु० इत्यादि** श्लोक से कहा है तुमको पृथिवी का राज्य प्रदान करके पिता के वन में चले जाने पर प्रस्थिते में भाव के अर्थ में **क्त** प्रत्यय हुआ है । अर्थात् वन में दीर्घकाल के लिए चले जाने पर तुम पृथिवी की धर्म पूर्वक रक्षा करोगे॥२२॥

त्वद्भ्रातर्युत्तमे नष्टे मृगयायां तु तन्मनाः । अन्वेषन्ती वनं माता दवाग्निं सा प्रवेक्ष्यति ॥२३॥

अन्वयः— त्वद्भ्रातरि उत्तमे मृगयायां नष्टे तन्मनाः माता अन्वेषन्ती दावाग्नि प्रवेक्ष्यति ॥२३॥

अनुवाद— तुम्हारा भाई उत्तम आखेट करता हुआ मारा जायेगा । तब उसकी माता उसकी याद में पागल बनी हुई उसे वन में खोजती हुई दावानल में प्रवेश कर जायेगी ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

त्वया असंकल्पितमपि मद्भक्तस्य तव द्रोहादेवं भविष्यतीत्याह-त्वद्भ्रातरीति । सा सुरुचिर्दावाग्निं प्रवेक्ष्यति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि तुमने ऐसा सङ्कल्प नहीं किया है फिर भी मेरे भक्त से द्रोह करने के कारण ऐसी घटना होगी । तुम्हारे भाई के मृगया में मारे जाने के कारण उसकी ही याद में पागल होकर उसे वन में खोजती हुई उसकी माँ दावाग्नि में प्रवेश कर जायेगी ॥२३॥

इष्ट्वा मां यज्ञहृदयं यज्ञैः पुष्कलदक्षिणैः । भुक्त्वा चेहाशिषः सत्या अन्ते मा संस्मरिष्यसि ॥२४॥

अन्वयः— पुष्कलदक्षिणैः यज्ञैः यज्ञहृदयं माम् इष्ट्वा इह च सत्या आशिषः भुक्त्वा अन्ते मां संस्मरिष्यसि ॥२४॥

अनुवाद— तुम अनेक बड़ी-बड़ी दक्षिणाओं वाले यज्ञों द्वारा यज्ञ हृदय मेरी आराधना करके तथा इस लोक में उत्तम भोगों को भोगकर तुम मेरा स्मरण करोगे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

किंच इष्ट्वा माम् । यज्ञो हृदयं प्रिया मूर्तिर्यस्य तम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च यज्ञ ही जिनकी प्रिय मूर्ति है ऐसे मेरी तुम अनेक यज्ञों के द्वारा आराधना करके ॥२४॥

ततो गन्तासि मत्स्थानं सर्वलोकनमस्कृतम् । उपरिष्टादृषिभ्यस्त्वं यतो नावर्तते गतः ॥२५॥

अन्वयः— तत त्वम् ऋषिभ्यः उपरिष्टात् सर्वलोक नमस्कृतम् मत्स्थानं गन्तासि यतो गतः नावर्तते ॥२५॥

अनुवाद— उसके पश्चात् तुम सप्तर्षियों से ऊपर विद्यमान, सम्पूर्ण लोकों का वन्दनीय मेरे धाम में आओगे जहाँ गया हुआ जीव पुनः संसार में नहीं आता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

यतः स्थानात् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

जिस स्थान से ॥२५॥

मैत्रेय उवाच

इयर्चितः स भगवानतिदिश्यात्मनः पदम् । बालस्य पश्यतो धाम स्वमगाद्गरुडध्वजः ॥२६॥

अन्वयः— इत्यर्चितः स भगवान्, आत्मनः पदम् अतिदिश्य बालस्य पश्यतः गरुडध्वजः स्वं धाम अगात् ॥२६॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— बालक ध्रुव से पूजित होकर श्रीभगवान् और उसे अपना लोक प्रदान करके उनके देखते ही देखते अपने लोक में चले गये ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अतिदिश्य दत्त्वा ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अतिदिश्य पद का अर्थ है देकर ॥२६॥

सोऽपि सङ्कल्पजं विष्णोः पादसेवोपसादितम् । प्राप्य सङ्कल्पनिर्वाणं नातिप्रीतोऽभ्यगात्पुरम् ॥२७॥

अन्वयः— विष्णोः पादसेवोपसादितम् सङ्कल्पजं सङ्कल्प निर्वाणं प्राप्त नातिप्रीतः पुरमभ्यगात् ॥२७॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के चरणों की सेवा से सङ्कल्पित वस्तु के प्राप्त हो जाने के कारण यद्यपि ध्रुवजी का सङ्कल्प तो पूरा हो गया किन्तु उनका मन विशेष प्रसन्न नहीं हुआ । उसके पश्चात् वे अपने नगर को लौट गये ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

सङ्कल्पजं मनोरथम् । पादसेवया प्रापितम् । संकल्पस्य निर्वाणं समाप्तिर्यस्मात् ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की सेवा से ध्रुवजी का मनोरथ प्राप्त हो गया । उससे उनके सङ्कल्प की पूर्ति भी हो गयी ।।२७।।

विदुर उवाच

सुदुर्लभं यत्परमं पदं हरेर्मायाविनस्तच्चरणार्चनार्जितम् ।
लब्ध्वाप्यसिद्धार्थमिवैकजन्मना कथं स्वमात्मानममन्यतार्थवित् ।।२८।।

अन्वयः— मायाविनः हरेः यत् सुदुर्लभं परमं पदम् तच्चरणार्चनार्जितम् एक जन्मना लब्ध्वा, अर्थवित् कथम् असिद्धार्थमिव आत्मानम् अमन्यत ?।।२८।।

अनुवाद— मायापति श्रीभगवान् का अत्यन्त दुर्लभ परम पद है, जो श्रीभगवान् के चरणों की अर्चना से ही प्राप्त हुआ था उसको एक ही जन्म में प्राप्त करके सारा सार विवेक सम्पन्न ध्रुवजी अपने को अकृतार्थ क्यो समझें।।२८।।

भावार्थ दीपिका

मायाविनः सकामस्य यत्सुदुर्लभं हरेः पदं तदेकेनैव जन्मना लब्ध्वापि स्वमात्मानं मनोऽसिद्धार्थमप्राप्तमनोरथमिव कथममन्यत । पुरुषार्थविदपि ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

कामना युक्त तथा मायावी को श्रीहरि कापद जो सुदुर्लभ है उसे एक ही जन्म में प्राप्त करके भी अपने मनोरथ के समान पुरुषार्थ के ज्ञाता ध्रुव क्यों मानें ?।।२८।।

मैत्रेय उवाच

मातुः सपत्न्या वाग्बाणैर्हृदि विद्धस्तु तान्स्मरन् । नैच्छन्मुक्तिपतेर्मुक्तिं तस्मात्तापमुपेयिवान् ।।२९।।

अन्वयः— मातुः सपत्या वाग्बाणैः हृदि विद्धस्तुः तान् स्मरन् मुक्तिपतेः मुक्तिम ऐच्छत् तस्मात् तापम् उपेयिवान्।।२९।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— अपने सौतेली माँ के दुरुक्ति रूपी वाग्बाणों से विद्ध हृदय वाले ध्रुवजी उन बातों का स्मरण करते रहने के कारण श्रीभगवान् से मुक्ति नहीं माँगे जब भगवान् के दर्शन से उनका मनो मालिन्य दूर हो गया तो उन्हें इस भूल के लिए पश्चाताप हुआ ।।२९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।२९।।

ध्रुव उवाच

समाधिना नैकभवेन यत्पदं विदुः सुनन्दादय ऊर्ध्वरेतसः ।
मासैरहं षड्भिरमुष्य पादयोश्छायामुपेत्यापगतः पृथङ्मतिः ।।३०।।

अन्वयः— सनन्दादयः ऊर्ध्वरेतसः अनेक भवेन समाधिना यत् पदं विदुः, तत् षड्भिः मासैः अहं अमुष्यपादयोः छायाम् उपेत्य पृथङ्मतिः अपगतः ।

ध्रुवजी ने कहा

अनुवाद— सनन्द आदि ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक, ब्रह्मचारी) सिद्ध भी अनेक जन्मों की समाधि के द्वारा जिसको प्राप्त कर सके मैंने श्रीभगवान् के चरणों की छत्रछाया को छह मासों में ही प्राप्त कर लिया फिर भी चित्त की दूसरी वासना के कारण मैं उनसे दूर हो गया ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

तापमेवाह-समाधिनेति सार्धैः षड्भिः । नैके अनेके भवा यस्मिन् । बहुजन्माभ्यस्तेनेत्यर्थः । प्रणामस्तुत्यादिसमये गरुडाधिरूढस्य हरेः । पादच्छायायां स्थित मात्मानं ह्मरन्नाह-छायामुपेत्येति । पृथङ्भतिर्भेददृष्टिः सन् । हा कष्टमिति भावः।।३०।।

भाव प्रकाशिका

अपने मन के संताप का ही साढे छह श्लोकों में वर्णन करते हैं । अनेक जन्मों तक समाधि का अभ्यास करके सनन्दन आदि नैष्ठिक ब्रह्मचारीगण जिसे प्राप्त किए उस श्रीभगवान् के चरणों की छाया को मैंने छह मासों में ही प्राप्त कर लिया । प्रणाम करते समय तथा स्तुति करते समय गरुड़ पर बैठे हुए श्रीभगवान् के चरणों की छाया ध्रुव जी पर पड़ती थी । फिर भी भेद दृष्टि के कारण मैं उनसे अलग हो गया यह बड़े ही कष्ट की बात है ।।३०।।

अहो बत ममानात्म्यं मन्दभाग्यस्य पश्यत । भवच्छिदः पादमूलं नत्वाऽयाचे यदन्तवत् ।।३१।।

अन्वयः— अहोमम मन्दभाग्यस्य अनात्म्यं पश्यत यत् भवच्छिदः पादमूलं नत्वा अन्तवत् ययाचे ।।३१।।

अनुवाद— मन्दभाग्य मेरी मूर्खता को तो देखो कि मुक्ति को प्रदान करने वाले श्रीभगवान् के चरणों में प्रणाम करके भी मैंने विनाश शील पदार्थ को माँगा ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

अनात्म्यमात्मशून्यत्वमज्ञत्वम् । भवच्छेत्तुर्यदन्तवत्तत् अयाचे याचितवानस्मि ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

अनात्म्य अज्ञता को कहते हैं संसार के बन्धन को कटाने वाले श्रीभगवान् से मैंने विनाशशील पदार्थ को माँगा ।।३१।।

मतिर्विदूषिता देवैः पतद्भिरसहिष्णुभिः । यो नारदवचस्तथ्यं नाग्राहिषमसत्तमः ।।३२।।

अन्वयः— पतद्भिः असहिष्णुभिः देवैः मतिः विदूषिता यः असत्तमः नारदवचः तथ्यं न अग्राहिषम् ।।३२।।

अनुवाद— देवताओं का पुण्य जब समाप्त हो जाता है तो उनका भी स्वर्ग से पतन हो जाता है, अतएव वे अहिष्णु हैं मेरी भगवत्प्राप्ति रूपी उच्च स्थिति को वे नहीं प्राप्त कर सके, इसीलिए उन देवताओं ने मेरी बुद्धि को दूषित कर दिया और उसके फलस्वरूप श्रीनारदजी की यथार्थ बात को दुष्ट मैं समझ नहीं सका ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

अज्ञत्वे कारणं संभावयति-मतिरिति । पतद्भिर्मदपेक्षयाधः प्राप्नुवद्भिरत एवासहनशीलैः । 'नाधुनाप्यवमानं ते' इत्यादि सत्यमपि नारदस्य वचो यो न गृहीतवानस्मि तस्य मे मतिर्विदूषिता ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

अपने अज्ञत्व में कारण की कल्पना **मतिः इत्यादि** श्लोक के द्वारा करते हैं ये देवता मेरी अपेक्षा नीचे ही रहते है, अतएव वे असहिष्णु हैं । श्रीनारदजी ने कहा था कि **नाधुनाप्यवमानं ते** अर्थात् इस बाल्यावस्था में तुम्हारा कोई भी अपमान नहीं है । यह उनकी बात सत्य थी फिर मैंने नारदजी की बात को नही ग्रहण किया क्योंकि देवताओं ने मेरी बुद्धि को दूषित कर दिया ।।३२।।

दैवीं मायामुपाश्रित्य प्रसुप्त इव भिन्नदृक् । तप्ये द्वितीयेऽप्यसति भ्रातृभ्रातृव्यहृद्रुजा ।।३३।।

अन्वयः— द्वितीये असति अपि प्रसुप्त इव भिन्नदृक् दैवीं मायाम् उपाश्रित्य भ्रातृभ्रातृव्यहृद्रुजा अहं तप्ये ।।३३।।

अनुवाद— इस संसार में आत्मा के अतिरिक्त कुछ नहीं है, फिर भी जिस तरह सोया हुआ मनुष्य अपने

से ही कल्पित सिंह आदि से डरता है, उसी तरह श्रीभगवान् की माया से मोहित होने के कारण अपने भाई उत्तम को ही अपना शत्रु समझकर उससे जलने लगा ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

किंच-देवीमिति । प्रसुप्तः स्वप्नानिव पश्यन् द्वितीयेऽसत्यपि भ्रातैव भ्रातृव्यः शत्रुरिति दृष्ट्या हृद्रुजा हृदयशोकेन तप्ये तापमनुभवामि ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह स्वप्न देखने वाला व्यक्ति अपनी ही अविद्या से कल्पित स्वाप्न सिंहदिकों से डरता है उसी तरह परमात्मा की माया से मोहित होकर अपने भाई उत्तम को ही अपना शत्रु समझकर उससे जलने लगा ॥३३॥

मयैतत्प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सेव गतायुषि । प्रसाद्य जगदात्मानं तपसा दुष्प्रसादनम् ॥
भवच्छिदमयाचेऽहं भवं भाग्यविवर्जितः ॥३४॥

अन्वयः— दुष्प्र सादनम् जगदात्मानं तपसा प्रसाद्य गतायुषि चिकित्सेव व्यर्थं एते माया प्रार्थितम् । भायविवर्जितः अहं भवच्छिदः भवं याचे ॥३४॥

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् को प्रसन्न करना बड़ा ही कठिन है । वे सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं, उनको भी मैंने तपस्या के द्वारा प्रसन्न किया किन्तु जिस तरह जिसकी आयु समाप्त हो जाने पर चिकित्सा करना व्यर्थ हो जाता है, उसी तरह मैंने श्रीभगवान् से जो कुछ भी मांगा वह व्यर्थ है । मैं भाग्यहीन हूँ, इसीलिए मुक्ति प्रदान करने वाले श्रीभगवान् से मैंने संसार ही माँगा ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

किंच मया प्रसाद्य यत्प्रार्थितं व्यर्थमित्याह-भवच्छिदमिति ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

भवच्छिदम् इत्यादि वाक्य से ध्रुवजी यह कह रहे हैं कि श्रीभगवान् से मैंने जो कुछ भी माँगा वह व्यर्थ ही है॥३४॥

स्वाराज्यं यच्छतो मौढ्यान्मानो मे भिक्षितो बत । ईश्वरात्क्षीणपुण्येन फलीकारानिवाधनः ॥३५॥

अन्वयः— स्वाराज्यं प्रयच्छत क्षीणपुण्येन बत ईश्वरात् फलीकारान् अधनः इव मानो भिक्षितः ॥३५॥

अनुवाद— निजानन्द प्रदान करने वाले परमात्मा से मैंने उसी तरह से मान की याचना की जिस तरह कोई निर्धन प्रसन्न हुए किसी चक्रवर्ती से भूसी सहित चावल के कणों की मांग करे ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव सदृष्टान्तमाह । स्वाराज्यं निजानन्दं प्रयच्छतः सकाशादभिमानः क्षीणपुण्येन मया भिक्षितो याचितः । क्षीणेन पुण्येनेति वा दृष्टान्त एव संबन्धः । यथाऽधन ईश्वराच्चक्रवर्तिनः फलीकारान् सतुषतण्डुलकणान् याचते तद्वत् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बात को ही दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहते हैं निजानन्द प्रदान करने वाले परमात्मा से मैं मान की भिक्षा उसी तरह से माँगी जिस तरह कोई दरिद्र व्यक्ति किसी प्रसन्न हुए चक्रवर्ती राजा से भूसी रहित अन्न की मांग करें ॥३५॥

मैत्रेय उवाच

न वै मुकुन्दस्य पदारविन्दयो रजोजुषस्तात भवादृशा जनाः ।
वाञ्छन्ति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो यदृच्छया लब्धमनः समृद्धयः ॥३६॥

अन्वयः— हे तात भवादृशाजनाः मुकुन्दस्य पादारविन्दयोः रजोजुषः यदृच्छया लब्धमनः समृद्धयः तद् दास्यम् ऋते आत्मनोऽर्थम् न वाञ्छन्ति ॥३६॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे तात ! आप जैसे लोग जो श्रीभगवान् के चरण कमल के पराग के ही मधुकर हैं, अर्थात् श्रीभगवान् के चरण रज का ही सेवन करते हैं । उनका मन, अपने आप प्राप्त सभी परिस्थितियों में सन्तुष्ट रहता है और व भगवान् की दासता के अतिरिक्त अपने लिए कुछ भी नहीं प्राप्त करना चाहते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

एवं निस्पृहत्वं तस्य युक्तमित्याह । तस्य दास्यं विनाऽन्यमर्थमात्मनो नैव वाञ्छन्ति । यदृच्छयैव लब्धेन मनसः समृद्धिर्येषां ते ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार की निस्पृहता का होना ध्रुवजी के लिए उचित ही है, इस बात को बतलाते हुए मैत्रेयजी ने कहा भगवद् भक्त उनकी दासता के अतिरिक्त अपने लिए श्रीभगवान् से कुछ भी नहीं चाहते हैं । अपने आप प्राप्त वस्तुओं से ही उनका मन सदा प्रसन्न बना रहता है ॥३६॥

आकर्ण्यात्मजमायान्तं संपरेत्य यथागतम् । राजा न श्रद्दधे भद्रमभद्रस्य कुतो मम ॥३७॥

अन्वयः— आयान्तम् आत्मजम् आकर्ण्य राजा सम्परेत्य आगतम् यथा न श्रद्दधे, अभद्रस्य मम भद्रम् कुतः ॥३७॥

अनुवाद— राजा उत्तानपद ने जब यह सुना कि उनका पुत्र ध्रुव आ रहा है तो उनको इस बात पर उसी तरह विश्वास नहीं हुआ जैसे कोई किसी के यमलोक से लौटने की बात कहे । उन्होंने सोचा मुझ जैसे अभागे का इस प्रकार का भोग्य कहाँ से होगा ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमाह-आकर्ण्येति । संपरेत्य मृत्वा आगतमाकर्ण्य यथा तथा न श्रद्दधे विश्वासं न चकार । अभद्रस्य मम भद्रं कुत इति मत्वा ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में प्रस्तुत प्रसङ्ग को बतलाते हुए मैत्रेयजी ने कहा राजा ने जब यह सुना कि उनका पुत्र लौट कर आ रहा है तो उनको उस बात पर उसी तरह विश्वास नहीं हुआ जिस तरह कोई किसी के यमलोक से लौटकर आने की बात पर विश्वास नहीं करता है । वे सोच रहे थे कि मुझ अभागे का ऐसा भाग्य कैसे हो सकता है ?॥३७॥

श्रद्धाय वाक्यं देवर्षेर्हर्षवेगेन धर्षितः । वार्ताहर्तुरतिप्रीतो हारं प्रादान्महाधनम् ॥३८॥

अन्वयः— देवर्षेः वाक्यं श्रद्धाय हर्षवेगेन न धर्षित वार्ता हर्तुः महाप्रीतः महाधनम् हारम् ददौ ॥३८॥

अनुवाद— नारदजी की बातों पर विश्वास करके वे आनन्द के वेग से अधीर हो गये और इस समाचार को सुनाने वाले पर अत्यन्त प्रसन्न होकर उसको अत्यन्त मूल्यवान हार प्रदान कर दिया ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

एष्यत्यचिरत इति देवर्षेर्वाक्यं श्रद्धाय ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

किन्तु देवर्षि ने कहा था कि ध्रुव शीघ्र ही लौटकर आ जायेंगे, इस बात को याद करके उनको उक्त समाचार पर विश्वास हो गया ॥३८॥

सदश्वं रथमारुह्य कार्तस्वरपरिष्कृतम् । ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च पर्यस्तोऽमात्यबन्धुभिः ॥३९॥
शङ्खदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः । निश्चक्राम पुरात्तूर्णमात्मजाभीक्षणोत्सुकः ॥४०॥

अन्वयः— कार्तस्वर परिष्कृतम् सदश्वं रथम् आरुह्य ब्राह्मणैः कुलवृद्धै च आमात्य बन्धुभिः सह शङ्खदुन्दुभिनादेन, ब्रह्मघोषेण, वेणुभिः आत्मना भीक्षणोत्सुकः तूर्णम् पुरात् निश्चक्राम ॥३९-४०॥

अनुवाद— राजा उत्तानपाद सुवर्ण जटित और अच्छे घोड़े से युक्त रथ पर बैठकर, ब्राह्मणैं, कुल के वृद्ध पुरुषों, अपने मन्त्रियों, बान्धवों के साथ शङ्ख और दुन्दुभी का घोष वेद घोष तथा वीणा के घोष के साथ अपने पुत्र को देखने के लिए उत्सुक होकर शीघ्र ही अपने नगर से बाहर आ गये ॥३९-४०॥

भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणादिभिः पर्यस्तः परिवृतः ॥३९-४०॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों आदि से घिरे हुए राजानगर से बाहर आये ॥३९-४०॥

सुनीतिः सुरुचिश्चास्य महिष्यौ रुक्मभूषिते । आरुह्य शिबिकां सार्धमुत्तमेनाभिजग्मतुः ॥४१॥

अन्वयः— अस्य सुनीतिः सुरुचिः च महिष्यौ रुक्भूषिते शिविकाम् आरुह्य उत्तमेन सार्धम् अभिजग्मतुः ॥४१॥

अनुवाद— राजा की सुनीति और सुरुचि दोनों रानियाँ बीच में उत्तम को बैठाकर उसके साथ एक ही पालकी पर बैठकर गयीं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

अस्य राज्ञो महिष्यौ मध्ये उत्तमं निधाय । एकामेव शिबिकां नरविमानमारुह्य ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

राजा उत्तानपाद की दोनों रानियाँ बीच में उत्तम को बैठाकर एक ही पालकी पर बैठकर गयीं ॥४१॥

तं दृष्टोपवनाभ्याश आयान्तं तरसा रथात् । अवरुह्य नृपस्तूर्णमासाद्य प्रेमविह्वलः ॥४२॥
परिरेभेऽङ्गजं दोर्भ्यां दीर्घोत्कण्ठमनाः श्वसन् । विष्वक्सेनाङ्घ्रिसंस्पर्शहताशेषाघबन्धनम् ॥४३॥

अन्वयः— उपवनाभ्याशे आयान्तंतं दृष्ट्वा नृपः तरसा रथात् अवरुह्य प्रेमविह्वलः तूर्णम् आसाद्य, दीर्घोत्कण्ठमनाः श्वसन् विष्वक्सेनाङ्घ्रिसंस्पर्शहताशेषाघबन्धनम् अङ्गजम् दोर्भ्याम् परिरेभे ॥४२-४३॥

अनुवाद— उपवन के सन्निकट में ध्रुवजी को आते हुए देखकर राजा शीघ्रतस से अपने रथ से उत्तर कर प्रेम से विह्वल बने हुए शीघ्र ही आगे बढ़कर दीर्घ काल से उत्कण्ठित मन वाले राजा लम्बी श्वास लेते हुए श्रीभगवान् के चरणों के संस्पर्श से जिनके सारे पाप रूपी बन्धन विनष्ट हो गये थे ऐसे अपने पुत्र ध्रुवजी को उन्होने अपनी दोनों भुजाओं में भरकर अपने हृदय से लगा लिया ॥४२-४३॥

भावार्थ दीपिका

उप वनस्याभ्याशे समीपे । विष्वक्सेनाङ्घ्रिसंस्पर्शेन हृतमशेषमघं बन्धनं च यस्य ॥४२-४३॥

भाव प्रकाशिका

उपवनाभ्याशे का अर्थ है उपवन के सन्निकट में **हताशेषाघबन्धनम्** का अर्थ है जिनके सारे पाप और बन्धन विनष्ट हो गये थे ॥४२-४३॥

अथाजिघ्रन्मुहुर्मूर्ध्नि शीतैर्नयनवारिभिः । स्नापयामास तनयं जातोद्दाममनोरथः ॥४४॥

अन्वयः— अथ ज़ातोद्दाममनोरथः मुहुःमूर्ध्नि आजिघ्रन् शीतैः नयन कारिभिः, तनयं स्नापयामास ॥४४॥

अनुवाद— राजा उत्तानपाद का बहुत बड़ा मनोरथ पूरा हो गया था, उन्होंने अपने पुत्र का शिर सूंघा और प्रेम जन्य शीतल आसुओं के जल से उन्होंने ध्रुव को नहला दिया ॥४४॥।

भावार्थ दीपिका

जात उद्दामो महान्मनोरथो यस्य ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

राजा उत्तानपाद का बहुत बड़ा मनोरथ पूर्ण हो गया ॥४४॥

अभिवन्द्य पितुः पादावाशीर्भिश्चाभिमन्त्रितः । ननाम मातरौ शीर्ष्णा सत्कृतः सज्जनाग्रणीः ॥४५॥

अन्वयः— सज्जनाग्रणीः पितुः पादौ अभिवद्य आशीर्भिश्चाभि मन्त्रितः सत्कृतः शीर्ष्णा मातरौ ननाम ॥४५॥

अनुवाद— सज्जनों में अग्रगण्य ध्रुवजी ने अपने पिता के चरणों में नमस्कार किया और उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर कुशल प्रश्न से समादृत उन्होंने अपनी दोनों माताओं को प्रणाम किया ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

अभिमत्रितः पितुराशीर्भिः सह तेन कृतसंभाषणः ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

अभिमन्त्रितः का अर्थ है, पिता के आशीर्वाद के साथ-साथ उनके साथ वर्तालाप करके ॥४५॥

सुरुचिस्तं समुत्थाप्य पादावनतमर्भकम् । परिष्वज्याह जीवेति वाष्पगद्गदयागिरा ॥४६॥

अन्वयः— सुरुचिः पादावनतमर्भकम् तम् समुत्थाप्य परिष्वज्य वाष्पगद्गदया गिरा जीवेति आह ॥४६॥

अनुवाद— अपने चरणों पर झुके हुए उस बालक ध्रुवजी को उठाकर सुरुचि ने उनका आलिङ्गन किया और गद्गद वाणी से कहा चिरंजीवी होओ ॥४६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४६॥

यस्य प्रसन्नो भगवान्गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः । तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम् ॥४७॥

अन्वयः— यस्य मैत्र्यादिभिः गुणैः भगवान् हरिः प्रसन्नः तस्मै, निम्नम् आप इव भूतानि स्वयं नमन्ति ॥४७॥

अनुवाद— जिसके मैत्री आदि गुणों के कारण ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं, उसके समक्ष सभी जीव उसी तरह से झुक जाते हैं जैसे— जल स्वयं नीचे की ओर प्रवाहित होने लगता है ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

सुरुच्याः प्रीतिनीसंभावितेत्याह-यस्येति । नमन्त्यनुसरन्ति । आपो यथा स्वयमेव निम्नं देशमवतरन्ति ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में यह बतलाया गया है कि सुरुचि का ध्रुवजी पर प्रेम आसंभावित नहीं है । नमन्ति पद का का अर्थ है अनुसरण करते हैं जैसे जल स्वाभाविक रूप से नीचे की ओर प्रवाहित होता हैं ।।४७।।

उत्तमश्च ध्रुवश्चोभावन्योन्यं प्रेमविह्वलौ । अङ्गसङ्गादुत्पुलकावस्रौघं मुहुरूहतुः ।।४८।।

अन्वयः— प्रेम विह्वलौ उत्तमः च ध्रुवश्च उभौ अङ्गसङ्गात् उत्पुलकौ मुहुः अस्रौघं ऊहतुः ।।४८।।

अनुवाद— प्रेम में विह्वल हुए उत्तम और ध्रुव दोनों एक दूसरे से मिले । उसके कारण उन दोनों के शरीर में रोमाञ्च हो आया और दोनों ने बार-बार प्रेमाश्रु बहाया ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

ऊहतुर्दधतुः ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

ऊहतुः का अर्थ है धारण किया ।।४८।।

सुनीतिरस्य जननी प्राणेभ्योऽपि प्रियं सुतम् । उपगुह्य जहावाधिं तदङ्गस्पर्शनिर्वृता ।।४९।।

अन्वयः— अस्य जननी सुनीतिः प्राणेभ्य अपिप्रियं सुतम् उपगुह्य, तदङ्गस्पर्शनिवृता आधिं जहौ ।।४९।।

अनुवाद— ध्रुव की माता सुनीति प्राणों से भी प्रिय अपने पुत्र को अपने गले से लगाकर अपनी सारी मनोव्यथा को भूल गयीं और ध्रुवजी के अङ्गों के संस्पर्श से उन्हें बहुत आनन्द की प्राप्ति हुई ।।४९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।४९।।

पयः स्तनाभ्यां सुस्राव नेत्रजैः सलिलैः शिवैः । तदाभिषिच्यमानाभ्यां वीर वीरसुवो मुहुः ।।५०।।

अन्वयः— हे वीर ! वीरसुवः नैत्रजैः सलिलैः शिवः अभिषिच्यमानाभ्यां स्तनाभ्यां पयः सुस्राव ।।५०।।

अनुवाद— हे वीर विदुरजी वीर माता सुनीति के नेत्रों से बहने वाले मङ्गलमय जल से भिंगे हुए स्तनों से दूध प्रवाहित होने लगा ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

हे वीर, वीरसुवो ध्रुवमातुः । अभिषिच्यमानाभ्यां पयस्तदा सुस्राव ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

हे वीर विदुर ! वीर माता सुनीति के आँसुओं से भिंगे हुए स्तनों से उस समय दुग्ध प्रवाहित होने लगा।।५०।।

तां शशंसुर्जना राज्ञीं दिष्ट्या ते पुत्र आर्तिहा । प्रतिलब्धश्चिरं नष्टो रक्षिता मण्डलं भुवः ।।५१।।

अन्वयः— जनाः तां राज्ञीं शशंसुः दिष्ट्याते चिरं नष्टः ते पुत्रः प्रतिलब्धः आर्तिहा भुवः मण्डलं रक्षिता ।।५१।।

अनुवाद— सुनीति की प्रशंसा करते हुए लोगों ने कहा महारानीजी आपका यह पुत्र बहुत दिनों से खोया हुआ था । भाग्यवशात् लौट आया है । यह सबों का कष्ट दूर करने वाला यह भूमण्डल की रक्षा करेगा ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

चिरं नष्टो दर्शनमप्राप्तः । रक्षिता रक्षिष्यति ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

चिरंनष्टः अर्थात् बहुत दिनों से गायब हो गया था । यह पृथिवी की रक्षा करेगा ।।५१।।

अभ्यर्चितस्त्वया नूनं भगवान्प्रणतार्तिहा । यदनुध्यायिनो वीरा मृत्युं जिग्युः सुदुर्जयम् ॥५२॥

अन्वयः— नूनं त्वया प्रणतार्तिहा भगवान् अभ्यर्चितः यदनुध्यायिन धीराः सुदुर्जयम् मृत्युं जिग्युः ॥५२॥

अनुवाद— आपने निश्चित रूप से शरणागत जीवों के कष्ट विनाशक श्रीभगवान् की पूजा की है। उनका ही निरन्तर ध्यान करने वाले वीर पुरुष दुर्जय मृत्यु को भी जीत लेते हैं ॥५२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥५२॥

लाल्यमानं जनैरेवं ध्रुवं सभ्रातरं नृपः । आरोप्य करिणीं हृष्टः स्तूयमानोऽविशत्पुरम् ॥५३॥

अन्वयः— एवं जनै लाल्यमानं ध्रुवं सभ्रातरं करिणीम् आरोप्य स्तूयमानः हृष्टःनृपः पुरम् आविशत् ॥५३॥

अनुवाद— इस प्रकार से जब लोग ध्रुव के प्रति स्नेह प्रकट कर रहे थे उसी समय राजा उनके भाई उत्तम के साथ ध्रुवजी को हथिनी पर बैठाकर प्रसन्नता पूर्वक अपने नगर में प्रवेश किए ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

एवमिति व्यवहितं पित्राद्युपलालनं परामृश्यते ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

एवम्इस पद के द्वारा यह सूचित किया गया है कि ध्रुवजी दूर थे और उनके पिता इत्यादि उनके प्रति प्रेमाभिव्यक्ति कर रहे थे ॥५३॥

तत्र तत्रोपसंक्लृप्तैर्लसन्मकरतोरणैः । सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैश्च तद्विधैः ॥५४॥
चूतपल्लववासःस्रङ्भुक्तादामविलम्बिभिः । उपस्कृतं प्रतिद्वारमपां कुम्भैः सदीपकैः ॥५५॥

अन्वयः— तत्र तत्र उपसंक्लृप्तैः लसन् मकर तोरणै सवृन्दैः कदली स्तम्भैः पूगोपेतैश्च तद्विधै चूतपल्लववासः स्रङ्मुक्तादाम विलम्बिभिः प्रतिद्वारम् सदीपकैः अपरं कुम्भैः उपस्कृतम् पुरम् अविशत् ॥५४-५५॥

अनुवाद— उसनगर में स्थान-स्थान पर मगर के आकार के दरवाजे बनाये गये थे फल-फूल के गुच्छो के साथ केले के स्तम्भ लगाये गये थे और सुपारी के पौधे लगाये गये थे। प्रत्येक द्वार पर जल भरे कलश दीपक के साथ रखे गये थे, जो आम के पत्तो, वस्त्रों पुष्प मालाओं तथा मोती की लड़ियों से सजाये गये थे, ऐसे नगर में राजा प्रवेश किए ॥५४-५५॥

भावार्थ दीपिका

पुरं वर्णयति-तत्र तत्रेति चतुर्भिः । सवृन्दैः फलमञ्जरीयुक्तैः । पूगानां पोतैर्बालवृक्षैस्तद्विधैः । सवृन्दैरूपस्कृतं प्रतिद्वारमित्युत्तरेणान्वयः । चूतपल्लवाश्च वासांसिच स्रजश्च मुक्तादामानि च तेषां विशिष्टं लम्बनमस्ति येषु कुम्भेषु ॥५४-५५॥

भाव प्रकाशिका

तत्र तत्र इत्यादि चार श्लोकों से नगर का वर्णन किया गया है। सवृन्दैः अर्थात् फल एवं मञ्जरी के साथ उसी के समान सुपारी के पौधों से फलमञ्जरी से अलंकृत प्रत्येक द्वार वाले नगर में। इसका आगे के श्लोक से अन्वय है। आम के पत्ते, वस्त्र, मालाएँ मोती की लड़ियाँ ये उन कुम्भों पर विशेष रूप से लटके थे॥५४-५५॥

प्राकारैर्गोपुरागारैः शातकुम्भपरिच्छदैः । सर्वतोऽलंकृतं श्रीमद्विमानशिखरद्युभिः ॥५६॥

अन्वयः— शातकुम्भ परिच्छदै प्राकारैः गोपुरागारैः श्रीमद्विमानद्युभिः सर्वतोऽलङ्कृतम् पुरम् आविशत् ।

अनुवाद— जिन परकोटों, फाटकों और महलों से नगर सुशोभित था उन सबों को सुवर्ण की सामग्रियों से सजाया गया था। उनके कंगूरे विमानों के समान चमक रहे थे ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

गोपुरैरगारैश्च । शातकुम्भाः परिच्छन्दाः परिकरा येषु । विमानानामिव शिखरैर्द्युतिर्येषाम् ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

गोपुरों और महलों से सुसजित था वह नगर और वे सुवर्ण की सामग्रियों से सजाये गये थे । उन सबों के कंगूरे विमानों के समान चगकते थे ।।५६।।

मृष्टचत्वररथ्याट्टमार्गं चन्दनचर्चितम् । लाजाक्षतैः पुष्पफलैस्तण्डुलैर्बलिभिर्युतम् ।।५७।।

अन्वयः— मृष्टचत्वररथ्याट्टमार्गं चन्दनचर्चितम् लाजाक्षतैः पुष्पफलैः, तण्डुलैः बलिभि युतम् पुरमाविशत् ।।५७।।

अनुवाद— साफ किए गये चौक, गलियों, अटारियों और मार्गों पर चन्दन का छिड़काव किया गया था और स्थान-स्थान पर लावा चावल पुष्प, फल यव एवं दूसरी माङ्गलिक उपहार सामग्रियाँ रखी गयी थीं ।।५७।।

भावार्थ दीपिका

चत्वरमङ्गनम् । रथ्या महामार्गः । अट्ट उच्चस्योपरि निर्मिता भूमिका । मार्गोऽवान्तरः । मृष्टाः संमार्जिताश्चत्वरादयो यस्मिन् ।।५७।।

भाव प्रकाशिका

चत्वर अर्थात् चौक, रथ्या अर्थात् सड़क, अट्ट-परकोटे पर बनी हुई भूमिका, मार्ग-गलियाँ, मृष्ट अर्थात् साफ किये गये ।।५७।।

ध्रुवाय पथि दृष्टाय तत्र तत्र पुरस्त्रियः। सिद्धार्थाक्षतदध्यम्बुदूर्वापुष्पफलानि च ।।५८।।
उपजह्रुः प्रयुञ्जाना वात्सल्यादाशिषः सतीः। शृण्वंस्तद्वल्गुगीतानि प्राविशद्भवनं पितुः।।५९।।

अन्वयः— ध्रुवाय दृष्टायपथि तत्र-तत्र पुरस्त्रियः सिद्धार्थाक्षतदध्यम्बुदूर्वापुष्पफलानि च उपजह्रुः वात्सल्यात् अशिषः प्रयुञ्जानाः सतीः तद्वल्गुगीतानि शृण्वन् पितुः भवनं प्राविशत् ।।५८-५९।।

अनुवाद— राज मार्ग से जाते हुए ध्रुवजी को देखने के लिए जहाँ-तहाँ नगर की नारियाँ एकत्रित होकर वत्सल्य भाव से उनको आशीर्वाद देती थीं ओर उन पर सफेद सरसो, अक्षत, दही, जल, दूर्वा, पुष्प और फलों की वर्ष कर रही थीं, उन सबों के मनोहरगीत को सुनते हुए ध्रुवजी अपने पिता के भवन में प्रवेश किए ।।५८-५९।।

भावार्थ दीपिका

सिद्धार्थः श्वेतसर्षपः । अक्षता यवाः । उपजह्रुर्व्यकिरन् सतीः सत्यः ।।५८-५९।।

भाव प्रकाशिका

सिद्धार्थ शब्द श्वेत सरसो का नाम हैं । अक्षत शब्द से यव को कहा गया है । उपजह्रुः का अर्थ है गिरायी सतीः पद का अर्थ शीलवती ।।५८-५९।।

महामणिव्रातमये स तस्मिनन्भवनोत्तमे । लालितो नितरां पित्रा न्यवसद्दिवि देववत् ।।६०।।

अन्वयः— महामणि व्रातमये तस्मिन् उत्तमे भवने पित्रा नितराम् लालितः दिवि देववत न्यवसत् ।।६०।।

अनुवाद— महामूल्यवान मणियों से सुसज्जित उत्तम भवन में ध्रुव अपने पिता के स्नेह का अनुभव करते हुए उसी तरह रहने लगे जिस तरह स्वर्ग में देवता रहते हैं ।।६०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६०।।

दान्ता रुक्मपरिच्छदाः । आसनानि महार्हाणि यत्र रौक्मा उपस्कराः ॥६१॥

नः फेननिभाः शय्याः दान्ताः रुक्मपरिच्छदाः महार्हाणि आसनानि रौक्माः उपस्कराः ॥६१॥

ावन में दूध के फेन के समान श्वेत शय्यायें, हाथी दाँत के बने पलङ्ग, सुनहरे परदा, और सुवर्ण की समग्री थी ॥६१॥

भावार्थ दीपिका

१॥

भाव प्रकाशिका

में ॥६१॥

महामारकतेषु च । मणिप्रदीपा आभान्ति ललनारत्नसंयुताः ॥६२॥

टिककूडयेषु महाभारकतेषु च ललनारत्न संयुताः मणिप्रदीपाः आभान्ति ॥६२॥

त्तम भवन में स्फुटिक मणि तथा महामरकत मणि की दिवारों में रत्नों की बनी हुई नारियों रहे थे ॥६२॥

– नहीं हैं ॥६२॥

णि विचित्रैरमरद्रुमैः । कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥६३॥

अमरद्रुमै; कूजद् विहंग मिथुनैः गायन् मधुव्रतैः रम्याणि उद्यानानि आसनानितिशेषः ॥६३॥

त्तम भवन में अद्भुत देववृक्षों, नर एवं मादा पक्षियों के कलरव और भ्रमरों के गुञ्जन क उद्यान थे ॥६३॥

– नहीं है ॥६३॥

पद्मोत्पलकुमुद्वतीः । हंसकारण्डवकुलैर्जुष्टाश्चक्राह्वसारसैः ॥६४॥

न कुमुद्वतीः हंसकारण्डवकुलैः चक्राह्वसारसैः वैडूर्यसोपानाः वाप्यः आसन् ॥६४॥

नीलकमल और कुमुदनी से युक्त, जिसमें वावलियाँ थीं । उनके घाट वैदूर्यमणि के बने , चक्रवाकों तथा सारसों का समूह क्रीड़ा करता था ॥६४॥

भावार्थ दीपिका

ादिमत्यो वाप्यः ॥६४॥

भाव प्रकाशिका

का नाम है । कमल आदि से सुशोभित वावलियाँ उस भवन में थीं ॥६४॥

भावं तनयस्य तम् । श्रुत्वा दृष्ट्वाऽद्भुततमं प्रपेदे विस्मयं परम् ॥६५॥

उत्तानपादः तनयस्य तम् अद्भुततमं प्रभावं दृष्ट्वा श्रुत्वा परमं विस्मयं प्रपेदे ॥६५॥

त्तानपाद अपने पुत्र के अद्भुत प्रभाव को देखकर तथा सुनकर अत्यन्त आश्चर्यित हुए॥६५॥

नहीं है ॥६५॥

वीक्ष्योढवयसं तं च प्रकृतीनां च संमतम् । अनुरक्तप्रजं राजा ध्रुवं चक्रे भुवः पतिम् ॥६६॥

अन्वयः— तं ऊढवयसं प्रकृतीनां संमतम्, अनुरक्तप्रजम्, वीक्ष्य राजा ध्रुवम् भुवः पतिम् चक्रे ॥६६॥

अनुवाद— ध्रुव को युवावस्था प्राप्त, आमात्य वर्ग को सम्मत तथा प्रजाओं के अनुराग के पात्र देखकर राजा ने ध्रुव को सम्पूर्ण भूण्डल के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया ॥६६॥

भावार्थ दीपिका

ऊढवयसं प्राप्तयौवनम् । अनुरक्ताः प्रजा यस्मिन् ॥६६॥

भाव प्रकाशिका

ऊढवयस शब्द का अर्थ युवावस्था प्राप्त है । अनुरक्त प्रजम् का अर्थ है, जिन पर प्रजाओं का अनुराग था॥६६॥

आत्मनं च प्रवयसमाकलय्य विशांपतिः । वनं विरक्तः प्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनो गतिम् ॥६७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

अन्वयः— विशाम्पतिः आत्मानं प्रवयसं आकलय्य आत्मनः गतिम् विमृशन् विरक्तः वनं प्रातिष्ठत् ॥६७॥

अनुवाद— राजा अपनी वृद्धावस्था आयी हुई जानकर आत्मस्वरूप का चिन्तन करते हुए संसार से विरक्त होकर वन में चले गये ॥६७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के नवें अध्याय की भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥

भावार्थ दीपिका

प्रवयसं वृद्धम् ॥६७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां नवमोऽध्यायः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

प्रवयस शब्द का अर्थ वृद्ध है ॥६७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के नवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥९॥

दसवाँ अध्याय

उत्तम का मारा जाना और ध्रुव का यक्षों के साथ युद्ध

मैत्रेय उवाच

प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः । उपयेमेभ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥१॥

अन्वयः— ध्रुवो वैशिशुमारस्य प्रजापतेः भ्रमिं नाम दुहितरं उपयेमे, तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥१॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— ध्रुवजी ने शिशुमार प्रजापति की भ्रमि नामक पुत्री के साथ विवाह किया और उसके दो पुत्र हुए कल्प और वत्सर ॥१॥

भावार्थ दीपिका

दशमे भ्रातृहन्तृणां यक्षाणामकरोद्बधम् । एक एवालकां गत्वेत्यस्य विक्रम उच्यते ।।१।।

भाव प्रकाशिका

दशवें अध्याय में अपने भाई उत्तम को मारने वाले यक्षों का वध ध्रुवजी ने अकेले अलकापुरी में जाकर किया इस तरह से ध्रुवजी के पराक्रम का वर्णन है ।।१।।

इलायामपि भार्यायां वायोः पुत्र्यां महाबलः । पुत्रमुत्कलनामानं योषिद्रत्नमजीजनत् ।।२।।

अन्वयः— महाबलः वायोः पुत्र्याम् इलायाम् अपि उत्कलनामानंपुत्रम् योषिद्रत्नम् अजीजनत् ।।२।।

अनुवाद— महाबलवान् ध्रुवजी की दूसरी पत्नी वायु की पुत्री इला थी उसके गर्भ से उन्होंने उल्कल नामक पुत्र और एक पुत्री रत्न को उत्पन्न किया ।।२।।

भावार्थ दीपिका

योषितां रत्नमिवातिमनोहरम् । कन्यारत्नं चेति वा ।।२।।

भाव प्रकाशिका

योषिद्रत्नम् पदका अर्थ स्त्रियों में रत्न के समान सुन्दर अथवा कन्या रत्न को उत्पन्न किया ।।२।।

उत्तमस्त्वकृतोद्वाहो मृगयायां बलीयसा । हतः पुण्यजनेनाद्रौ तन्माताऽस्य गतिं गता ।।३।।

अन्वयः— अकृतोदवाहः उत्तमः मृगयायां वलीयसा पुण्यजनेन अद्रौ हतः तन्माता अस्यगतिं गता ।।३।।

अनुवाद— उत्तम विना व्याह किए ही आखेट के प्रसङ्ग में बलवान् यक्ष के द्वारा पर्वत पर मारा गया उसके साथ ही उत्तम की माता भी स्वर्ग चली गयी ।।३।।

भावार्थ दीपिका

यक्षेणाद्रौ हिमवति हतः । आजाविति पाठे युद्धे । अस्य गतिं गता मृतेत्यर्थः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

उत्तम को मृगया के प्रसङ्ग में किसी बलवान यक्ष ने हिमालय पर्वत पर मार दिया और उसकी माता भी मर गयी । जहाँ आजौ पाठ है वहाँ पर अर्थ युद्ध में होगा ।।३।।

ध्रुवो भ्रातृवधं श्रुत्वा कोपामर्षशुचार्पितः । जैत्रं स्यन्दनमास्थाय गतः पुण्यजनालयम् ।।४।।

अन्वयः— भ्रातृवधं श्रुत्वाध्रुवः कोपामर्ष शुचार्पितः जैत्रं स्यन्दनम् आस्थाय पुण्य जनालयम् गतः ।।४।।

अनुवाद— ध्रुवजी ने जब अपने भाई के मारे जाने का समाचार सुना तो वे क्रोध शोक और उद्वेग से भरकर अपने विजय रथ पर बैठकर वे यक्षों के नगर में पहुँच गये ।।४।।

भावार्थ दीपिका

कोपामर्षशुचां द्वन्द्वैक्यम् । तेनार्पितो व्याप्तः । जैत्रं जयहेतुम् । पुण्यजनालयमलकाम् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

कोप, आमर्ष और शोक इनमें द्वन्द समास होने के कारण एकवद्भाव हुआ है । वे इन तीनो से व्याप्त हो गये । जैत्र शब्द का अर्थ है विजयप्राप्ति के साधन भूत । पुण्यजनालयम् अर्थात् अलकापुरी ।।४।।

रुद्रा रुद्रानुचरसेविताम् । ददर्श हिमवद्द्रोण्यां पुरीं गुह्यकसंकुलाम् ॥५॥

दिशं गत्वा राजा हिमवद् द्रोण्यां रुद्रानुचर सेविताम् गुह्यक संकुलाम् पुरीं ददर्श ॥५॥

देशा में जाकर राजा ध्रुव ने हिमालय पर्वत की घाटी में यक्षों से भरी हुई तथा रुद्र के को देखा ॥५॥

भावार्थ दीपिका

॥५॥

भाव प्रकाशिका

भूतों प्रेतों पिशाचों आदि को कहा गया है ॥५॥

खं दिशश्चानुनादयन् । येनोद्विग्नदृशः क्षत्तरुपदेव्योऽत्रसन्भृशम् ॥६॥

हुः खं दिशः च अनुनादयन् शङ्खं दध्मौ । हे क्षत; येन उद्विग्नदृशः देव्यः भृशम् अत्रसन् ॥६॥

ु ध्रुव ने आकाश तथा दिशाओं को ध्वनित करते हुए अपने शङ्ख को बजाया । उसके ी पत्नियाँ अत्यन्त भयभीत हो गयीं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

येन शङ्खवादनेन । हे क्षत्तः । उपदेव्यो यक्षस्त्रियः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

ं है बजाया । हे विदुर उस शङ्खध्वनि से यक्षों की पत्नियाँ अत्यधिक डर गयीं ॥६॥

नन उपदेवमहाभटाः । असहन्तस्तन्निनादमभिपेतुरुदायुधाः ॥७॥

लिनः महाभटाः उपदेवाः निष्क्रम्य तन्निनादम् असहन्तः उदायुधः अभिपेतुः ॥७॥

पश्चात् महाबलवान् यक्ष वीर का वह शङ्ख ध्वनि सहन नहीं हुई और आयुध धारण किए आये और ध्रुवजी पर टूट पड़े ॥७॥

– नहीं हैं ॥७॥

उग्रधन्वा महारथः । एकैकं युगपत्सर्वानहन्बाणैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥८॥

धन्वा महारथः वीरः तान् आपततो युगपत् एकैकं सर्वान् त्रिभिः त्रिभिः बाणैः अहन् ॥८॥

ा वीर ध्रुवजी प्रचण्ड धनुर्धर थे, उन्होंने एक ही साथ सबों में से प्रत्येक को तीन-तीन

भावार्थ दीपिका

त्येवं सर्वास्त्रयोदशायुतानि यक्षान्युगपदहन् जघान ॥८॥

भाव प्रकाशिका

न बाण मारे । सभी तेरह अयुत (१३,००००) यक्षवीरों को एक ही समय में मारे ॥८॥

षुभिः सर्व एव हि । मत्वा निरस्तमात्मानमाशंसन्कर्म तस्य तत् ॥९॥

एव हि ललाटलग्नैस्तै इषुभिः आत्मानं निरस्तं मत्त्वा तस्य तत् कर्म आशंसन् ॥९॥

ों ने जब अपने-अपने मस्तक में लगे हुए तीन-तीन बाणों को देखा तो उन सबों ने की पराजय निश्चित है । वे ध्रुवजी के इस अद्भुत कर्म की प्रशंसा करने लगे ॥९॥

भावार्थ दीपिका

निरस्तं पराजितम् । तस्य ध्रुवस्य तत्कर्माशंसन् तुष्टुवुः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

निरस्त अर्थात् पराजित उन सबों ने ध्रुव के इस अद्भुत कर्म की प्रशंसा की ।।९।।

तेऽपि चामुममृष्यन्तः पादस्पर्शमिवोरगाः । शरैरविध्यन्युगपद्द्विगुणं प्रचिकीर्षव; ।।१०।।

अन्वयः— पादस्पर्श उरगाः इव तेऽपि अमुम् अमृष्यन्तः प्रचिकीर्षवः द्विगुणं शरैः अविध्यन् ।।१०।।

अनुवाद— जिस तरह कोई सर्प पैरों के आघात नहीं वर्दास्त करता है, उसी तरह उन सबों ने भी एक ही समय में ध्रुवजी को छह-छह बाणों से मारा ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

तेऽपि तत्कर्मासहमाना अमुमविध्यन् । द्विगुणं यथा भवत्येवं षड्भिः षड्भिः । प्रतिकर्तुमिच्छन्तः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

वे भी ध्रुवजी के उस कर्म को नही वर्दास्त करके उनका प्रतिकार करने के लिए एक ही समय में ध्रुवजी को छह-छह बाणों से मारा ।।१०।।

ततः परिघनिस्त्रिंशैः प्रासशूलपरश्वधैः । शक्त्यृष्टिभिर्भुशुण्डीभिश्चित्रवाजैः शरैरपि ।।११।।
अभ्यवर्षन्प्रकुपिताः सरथं सहसारथिम् । इच्छन्तस्तत्प्रतीकर्तुमयुतानि त्रयोदश ।।१२।।

अन्वयः— ततः प्रकुपिता परिघनिस्त्रिंशैः प्रासशूलपरश्वधैः शक्त्यृष्टिभिः भुशुण्डिभिः चित्रवाजैः शरैरपि तत्प्रतिकर्तुम् इच्छन्तः अयुतानि त्रयोदश, सरथं सहसारथिम् अभ्यवर्षन् ।।११-१२।।

अनुवाद— यक्षों की संख्या तेरह अपुत थी (१३,००००) ध्रुवजी का बदला लेने के लिए अत्यन्त कुपित होकर रथ और सरथि के साथ उन पर परिघ खड्ग, प्रास, त्रिशूल, फरसा शक्ति ऋष्टि, भुशुण्डि तथा चित्रविचित्र पङ्खो से युक्त बाणों की वर्णा की ।।११-१२।।

भावार्थ दीपिका

चित्रवाजैर्विचित्रपक्षैः ।।११-१२।।

भाव प्रकाशिका

चित्रवाजैः का अर्थ है चित्र विचित्र पङ्खो वाले बाणों से ।।११-१२।।

औत्तानपादिः स तदा शस्त्रवर्षेण भूरिणा । न उपादृश्यत च्छन्नआसारेण यथा गिरिः ।।१३।।

अन्वयः— तदा भूरिणा शस्त्रवर्षेण औतानपादिः आसारेण छन्नः गिरिः यथा न उपादृश्यत ।।१३।।

अनुवाद— उस समय बहुत अधिक शस्त्रों की वर्षा के कारण ढँके हुए ध्रुवजी उसी तरह नहीं दिखाई देते थे जैसे— वर्षा के कारण पर्वत नहीं दिखता है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

धारासंपातेन छन्नो गिरिरिव नैवादृश्यत ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

वर्षा की धारा के गिरने स ढँका हुआ जिस तरह पर्वत नहीं दिखाई देता है ।।१३।।

हाहाकारस्तदैवासीत्सिद्धानां दिवि पश्यताम् । हतोऽयं मानवः सूर्यो मग्नः पुण्यजनार्णवे ॥१४॥

अन्वयः— तदैव दिवि पश्यताम् सिद्धानां हाहाकारः आसीत् पुण्यजनार्णवे मग्नः हतोऽयं मानवः सूर्यः ॥१४॥

अनुवाद— उस समय आकाश में स्थित होकर जो सिद्धगण इस दृश्य को देख रहे थे आज इस यक्ष सेना रूप सागर में डूबकर यह मानव सूर्य अस्त हो गया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

सूर्यतुल्यः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

यह मानव सूर्य के समान है ॥१४॥

नदत्सु यातुधानेषु जयकाशिष्वथो मृधे । उदतिष्ठद्रथस्तस्य नीहारादिव भास्करः ॥१५॥

अन्वयः— अथ मृधे जयकाशिषु यातुधनेषु नदत्सु नीहारात् भास्कर इव तस्य रथः उदतिष्ठत् ॥१५॥

अनुवाद— जिस समय यक्षवीर युद्ध में विजय का उत्सव मना रहे थे उसी समय ध्रुवजी का रथ उसी तरह प्रकट हो गया जिस तरह कुहरे से सूर्य प्रकट होते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

यातुधानेषु राक्षसेषु जयकाशिषु जितं जितमिति जयप्रकाशकेषु सत्सु ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

जिस समय सभी यक्ष यह कह रहे थे कि हमलोग जित गये, जित गये उसी समय ध्रुवजी का रथ प्रकट हो गया ॥१५॥

धनुर्विस्फूर्जयन्दिव्यं द्विषतां खेदमुद्वहन् । अस्त्रौघं व्यधमद्बाणैर्घनानीकमिवानिलः ॥१६॥

अन्वयः— दिव्यं धनुःविस्फूर्जयन् द्विषतां खेदम् उद्वहन्, अनिलः घनानीकम् इव अस्त्रौधं बाणैः व्यधमत् ॥१६॥

अनुवाद— अपने दिव्य धनुष का टङ्कार करते हुए तथा शत्रुओं को खिन्न बनाते हुए ध्रुवजी ने अपने बाणों से उसी तरह से शस्त्र समूह को काट दिया जिस तरह आँधी मेघ समूह को तितर-वितर कर देती हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

व्यधमत्संचूर्णयामास ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

शत्रुओं के अस्त्रों को चूर-चूर कर दिया ॥१६॥

तस्य ते चापनिर्मुक्ता भित्त्वा वर्माणि रक्षसाम् । कायानाविविशुस्तिग्मा गिरीनशनयो यथा ॥१७॥

अन्वयः— तस्य चापनिर्मुक्ताः तिग्माः ते रक्षसाम् वर्माणि भित्त्वा शरीर अशन योयथाकायान् विविशुः ॥१७॥

अनुवाद— ध्रुवजी के धनुष से छूटे हुए वे तीक्ष्ण बाण राक्षसों के कवच को भेदकर उनके शरीर में उसीतरह से प्रवेश कर रहे थे जिसतरह वज्र पर्वतों में प्रवेश कर जाते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

वर्माणि कवचानि ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

वर्माणि अर्थात् कवचों को ॥१७॥

भल्लैः संछिद्यमानानां शिरोभिश्चारुकुण्डलैः । ऊरुभिर्हेमतालाभैर्दोर्भिर्वलयवल्गुभिः ॥१८॥
हारकेयूरमुकुटैरुष्णीषैश्च महाधनैः। आस्तृतास्ता रणभुवो रेजुर्वीरमनोहराः ॥१९॥

अन्वयः— भल्लैः संछिद्यमानानां चारुकुण्डलै शिरोभिः, हेमतालाभैऊरुभिः वलयवल्गुभिः दोर्भिः महाधनैः हारकेयूर मुकुटैष्णीशै वीरमनोहराः आस्तृताः ताः रणभुवः रेजुः ॥१८-१९॥

अनुवाद— भल्ल बाणों से कटे हुए मनोहर कुण्डल मण्डित शिरों से, तालवृक्ष के समान वीरों की जङ्घाओं से, कङ्कण मण्डित भुजाओं से, अत्यन्तमूल्यवान् हार, केयूर, मुकुट तथा पगड़ी से पटी हुई वीरों के मन को आकृष्ट करने वाली रणभूमि सुशोभित हो रही थी ॥१८-१९॥

भावार्थ दीपिका

शिरःप्रमुखैरास्तृताः प्रकीर्णा रेजुरिति द्वयोरन्वयः ॥१८-१९॥

भाव प्रकाशिका

शिरों आदि से पटी हुई रणभूमि सुशोभित हो रही थी, इसका इन दोनों श्लोकों से अन्वय है ॥१८-१९॥

हतावशिष्टा इतरे रणाजिराद्रक्षोगणाः क्षत्रियवर्यसायकैः ।
प्रायो विवृक्णावयवा विदुद्रुवुर्मृगेन्द्रविक्रीडितयूथपा इव ॥२०॥

अन्वयः— हताव शिष्टाः इतरे रक्षोगणाः क्षत्रियवर्य सायकैः प्रायो विवृक्णावयवाः रणाजिरात् मृगेन्द्रविक्रीडित यूथपा इव विदुद्रुवुः ॥२०॥

अनुवाद— जो यक्ष किसी प्रकार जीवित बचे थे वे क्षत्रिय प्रवर ध्रुवजी के बाणों से प्रायः छिन्न भिन्न अङ्गो वाले होने के कारण युद्ध कीडा में सिंह से परास्त हुए गजराज के समान परास्त हुए के समान रणभूमि को छोड़कर भाग गये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

प्रायो बाहुल्येन विवृक्णाः संछिन्ना अवयवा येषाम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

प्रायो विवृक्णावयव का अर्थ है जिनके बहुत अङ्ग छिन्न भिन्न हो गये थे ॥२०॥

अपश्यमानः स तदाऽऽततायिनं महामृधे कंचन मानवोत्तमः ।
पुरीं दिदृक्षन्नपि नाविशद्द्विषां न मायिनां वेद चिकीर्षितं जनः ॥२१॥

अन्वयः— तदामहामृधे कंचन आततायिनमअपश्यमानः स मानवोत्तमः पुरीम् दिदृक्षन्नपि ना विशत् मायिनां चिकीर्षितं जनः न वेद ॥२१॥

अनुवाद— नरश्रेष्ठ ध्रुवजी ने देखा कि उस विस्तृत रणभूमि में अब कोई भी शत्रु उनके सामने नही विद्यमान है, इसके पश्चात् उनकी इच्छा अलकापुरी देखने की हुई, किन्तु वे नगरी में इसलिए नहीं प्रवेश कि वे मायावी राक्षस क्या करना चाहते हैं इस बात को मनुष्य नहीं जानता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

आततायिनं शस्त्रपाणिम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

आततायी शब्द से हाथ में शस्त्र लिए हुए को कहा गया है ॥२१॥

इति ब्रुवंश्चित्ररथः स्वसारथिं यत्तः परेषां प्रतियोगशङ्कितः ।
शुश्राव शब्दं जलधेरिवेरितं नभस्वतो दिक्षु रजोऽन्वदृश्यत ॥२२॥

अन्वयः— इति स्वसारथिं ब्रुवन् चित्ररथः परेषां प्रतियोग शङ्कितः जलधेः ईरितं इव नभस्वतः शब्दं शुश्राव दिक्षु रजः अन्वदृश्यत ॥२२॥

अनुवाद— इस तरह से विचित्र रथ में बैठे हुए ध्रुवजी अपने सारथि से कह ही रहे थे और शत्रुओं द्वारा नवीन आक्रमण की शङ्का से सावधान थे उसी समय उनको समुद्र की गर्जना के समान आंधी का शब्द सुनाई दिया और उन्होंने दिशाओं में उठी हुई धूलि को देखा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

इति ब्रुवन्नित्यत्रापि न मायिनामित्यादेरनुषङ्गः । चित्ररथो ध्रुवः । यत्तो यत्नवान् । प्रतियोगः पुनरुद्योगस्तस्माच्छङ्कितः। नभस्वतो वायोर्हेतोः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

मायावी क्या करना चाहते हैं इसतरह से जब ध्रुवजी अपने सारथि से कहकर सावधान थे । प्रतियोग शंकितः का अर्थ है पुनः प्रयास की आशङ्का से युक्त थे । नभस्वतः अर्थात् वायु का ॥२२॥

क्षणेनाच्छादितं व्योम घनानीकेन सर्वतः । विस्फुरत्तडिता दिक्षुत्रासयत्स्तनयित्नुना ॥२३॥

अन्वयः— क्षणेन धनानीकेन व्योम सर्वतः आच्छादितं दिक्षु विस्फुरत् तडिता स्तनयित्नुना त्रासयत् ॥२३॥

अनुवाद— क्षणभर में ही मेघ समूह सम्पूर्ण आकाश में छा गया और हर दिशाओं में गड़गड़ाहट के साथ बिजली चमकने लगी ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

विस्फुरन्त्यस्तडितो यस्मिंस्तेन त्रासयन्तः स्तनयित्नवोऽशनयो यस्मिन् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

उन मेघों में बिजलियाँ चमक रही थी और भयङ्कर गड़गड़ाहट की ध्वनि हो रही थी ॥२३॥

ववृषू रुधिरौघासृकपूयविण्मूत्रमेदसः । निपेतुर्गगनादस्य कबन्धान्यग्रतोऽनघ ॥२४॥

अन्वयः— हे अनघ ! रधिरौघासृक्यूयविण्मूत्र मेदसः ववृषु, अस्य अग्रतः गगनात् कबन्धानि निपेतुः ॥२४॥

अनुवाद— हे निष्पाप विदुरजी ! मेघों से रक्त, कफ, पीब, विष्ठा, मूत्र, चर्बी आदि की वर्षा होने लगी और ध्रुवजी के सामने ही आकाश से बहुत से धड़ गिरने लगे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

ववृषुर्निपेतुरित्यर्थः । न सृजति शरीरमित्यसृगिह श्लेष्मादि । मेदसः पुंस्त्वमार्षम् । मेदांसि अस्याग्रतो निपेतुः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

ववृषुः का अर्थ है मेघों ने वर्षा की जिससे शरीर की सृष्टि नहीं होती है, इस व्युत्पत्ति के अनुसार असृक शब्द कफ का वाचक है । मेदसः यह पुल्लिङ्ग प्रयोग आर्ष है । अन्यथा मेदांसि रूप होना चाहिए । ध्रुवजी के सामने ही धड़ गिरे ॥२४॥

ततः खेऽदृश्यत गिरिर्निपेतुः सर्वतोदिशम् । गदापरिघनिस्त्रिंशमुसलाः साश्मवर्षिणः ॥२५॥

अन्वयः— ततः खे गिरिः अदृश्यत सर्वतो दिशम् साश्मवर्षिणः गदा परिनिस्त्रिंशमुसलाः ॥२५॥

अनुवाद— फिर आकाश में एक पर्वत दिखायी दिया और सभी दिशाओं में पत्थर की वर्षा के साथ गदा, पारिध, तलवार और मूसल गिरने लगे ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

साश्मवर्षिणः अश्म सहितं तद्वन्त्‌ः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

साश्मवर्षिणः पद का अर्थ है पत्थर की वर्षा से युक्त ॥२५॥

अहयोऽशनिनिःश्वासा वमन्तोऽग्निं रुषाऽक्षिभिः । अभ्यधावन्गजा मत्ताः सिंहव्याघ्राश्च यूथशः ॥२६॥

अन्वयः— अशनि निःश्वासा रुषा अक्षिभिः अग्निं वमन्तः, मत्ताः गजाः यूथशः सिंहव्याघ्राश्च अभ्यधावन् ॥२६॥

अनुवाद— ध्रुवजी ने देखा कि बहुत से सर्प वज्र की तरह फुफकार मारते हुए और नेत्रों से आग उगलते हुए आ रहे हैं, झुण्ड के झुण्ड मतवाले सिंह और बाघ दौड़ रहे हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अशनिवन्निःश्वासो येषाम् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

जिन सबों का वज्र के समान निःश्वास था यह अशनिबन्निःश्वासः पद का अर्थ है ॥२६॥

समुद्र ऊर्मिभिर्भीमः प्लावयन्सर्वतो भुवम् । आससाद महाह्लादः कल्पान्त इव भीषणः ॥२७॥

अन्वयः— ऊर्मिर्भिः भीमः समुद्रः सर्वतो भुवम् प्लावयन् कल्पान्ते महाह्लाद इव भीषण आससाद ॥२७॥

अनुवाद— प्रलय काल के समान भयङ्कर समुद्र अपनी लहरियों से सब ओर से पथिवी को डुबता हुआ और गरजता हुआ आते दिखा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

एवंविधान्यनेकानि त्रासनान्यमनस्विनाम् । ससृजुस्तिग्मगतय आसुर्या माययाऽसुराः ॥२८॥

अन्वयः— तिग्मगतयः असुराः एवं विधानि अनेकनिअन्यमनस्विनां त्रासनानि आसुर्या मायया ससृजुः ॥२८॥

अनुवाद— क्रूर असुरों ने इस प्रकारी की बहुत सी अपनी आसुरी माया से बहुत सी कौतुकों को दिखाया जिससे कायरों का मन काँप सकता है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

त्रासनानि भयङ्कराणि । तिग्मा क्रूरा गतिः प्रवृत्तिर्येषाम् । असुरराक्षसा दिशब्दैरदूरान्तरत्वेन यक्षा एवोच्यन्ते ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

भासनानि अर्थात् भयङ्कर तिग्मगतयः अर्थात् क्रूरगति वाले, असुर एवं राक्षस आदि शब्दों के पर्याय होने के कारण उन शब्दों से यहाँ यक्ष ही कहे गये हैं ॥२८॥

ध्रुवे प्रयुक्तामसुरैस्तां मायामतिदुस्तराम् । निशाम्य तस्य मुनयः शमाशंसन्समागताः ॥२९॥

अन्वयः— असुरैः ध्रुवेप्रयुक्ताम् ताम् आतिदुस्तराम् मायां निशाम्य तस्य शमाशंसन् मुनयः समागताः ॥२९॥

अनुवाद— यक्षों द्वारा ध्रुव पर प्रयोग की गयी अत्यन्त भयङ्कर माया को देखकर ध्रुवजी के कल्याण की कामना करते हुए मुनिगण आये ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तस्य शं कल्याणमाशंसन्प्रार्थितवन्तः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

मुनियों ने ध्रुवजी के कल्याण की प्रार्थना की ॥२९॥

मुनय ऊचुः

औत्तानपादे भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा देवः क्षिणोत्ववनतार्तिहरो विपक्षान् ।
यन्नामधेयमभिधाय निशम्य चाद्धा लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमङ्ग मृत्युम् ॥३०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अन्वयः— हे अङ्ग औतानपदे ! अवनतार्तिहरः देवः शार्ङ्गधन्वा भगवान् तव विपक्षान् क्षिणोतु यन्नामधेयम् अद्धा अभिधाय निशम्य च लोकः अञ्जसा मृत्युं तरति ॥३०॥

मुनियों ने कहा

अनुवाद— उत्तानपाद नन्दन ध्रुव ! शरणागतों के कष्ट को दूर करने वाले शाङ्ग धनुर्धारी श्रीभगवान् नारायण तुम्हारे शत्रुओं का संहार करें । उनके नाम का उच्चारण करने अथवा सुनने मात्र से ही संसार अत्यन्त भयङ्कर मृत्यु को भी पार कर जाता है ॥३०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

तव विपक्षान् शत्रून्नाशयतु । अद्धा साक्षात् । अञ्जसा सुखेनैव मृत्युं तरति ॥३०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकाटीकायां दशमोऽध्यायः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

मुनियों ने कहा वत्स ध्रुव भगवान् नारायण तुम्हारे शत्रुओं का नाश करें । अद्धा का अर्थ है साक्षात् । अञ्जसा अर्थात् अनायास । मृत्यु को पार कर जाता है ॥३०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थस्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के दशवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१०।।

* * *

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वायम्भुव मनु का ध्रुव को युद्ध बन्द करने के लिए समझाना

मैत्रेय उवाच

निशम्य गदतामेवमृषीणां धनुषि ध्रुवः । संदधेऽस्त्रमुपस्पृश्य यन्नारायणनिर्मितम् ॥१॥

अन्वयः— एव गदताम् ऋषीणाम् निशम्य ध्रुवः उपस्पृश्य यत् नारायण निर्मितम् अस्त्रम् धनुषि संदधे ॥१॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— विदुरजी ऋषियों की इस वाणी को सुनकर ध्रुवजी ने आचमन करके भगवान् नारायण के द्वारा निर्मित अस्त्र का अपने धनुष पर संधान किया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकादशे तु यक्षाणां क्षयं दृष्ट्वा मनुः स्वयम् । आगत्य वारयामास ध्रुवं तत्त्वोपदेशतः ॥१॥ एवं गदतां वचनमुपदेशमिव निशम्य । उपस्पृश्याचम्य यन्नारायणनिर्मितं नारायणास्त्रं तत्संदधे ॥१॥

भाव प्रकाशिका

यक्षों का नाश देखकर मनु स्वयं आकर तत्त्वोपदेश करके ध्रुव को युद्ध करने से रोका इस अर्थ का वर्णन ग्यारहवें अध्याय में किया गया है ॥१॥ इस तरह से कहने वाले ऋषियों के उपदेश को सुनकर आचमन करके, भगवान् नारायण द्वारा निर्मित अस्त्र का संधान किया ॥१॥

संधीयमान एतस्मिन्माया गुह्यकनिर्मिताः । क्षिप्रं विनेशुर्विदुर क्लेशा ज्ञानोदये यथा ॥२॥

अन्वयः— विदुर एतस्मिन् संधीयमाने गुह्यकनिर्मितः मायाः ज्ञानोदये क्लेशाः यथा क्षिप्रं विनेशुः ॥२॥

अनुवाद— इस नारायणास्त्र का अनुसंधान करते ही यक्षों द्वारा रचित माया शीघ्र ही उसी तरह विनष्ट हो गयी जिस तरह ज्ञान के उत्पन्न होते ही सारे क्लेश विनष्ट हो जाते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

क्लेशा रागादयो यथा ॥२॥

भाव प्रकाशिका

यक्षों की माया उसी तरह से नष्ट हो गयी जैसे ज्ञान के उत्पन्न होते ही अविद्या, अस्मिता, क्लेश तथा राग आदि विनष्ट हो जाते हैं ॥२॥

तस्यार्षास्त्रं धनुषि प्रयुञ्जतः सुवर्णपुखः कलहंसवाससः ।
विनिःसृता आविविशुद्विषद्बलं यथा वनं भीमरवाः शिखण्डिनः ॥३॥

अन्वयः— आर्षस्त्रं धनुषि प्रयुञ्जतः तस्य सुवर्ण पुङ्खः । कलहंस वाससः विनिसृताः द्विषद्बलं आविविशुः वनं यथा भीमरवाः शिखण्डिनः ॥३॥

अनुवाद— जब ध्रुवजी ने अपने धनुष पर ऋषि प्रवर नारायण के द्वारा निर्मित नारायणास्त्र का संधान किया तो उससे राजहंस के समान पक्ष वाले और सुवर्ण के समान फल वाला बाण निकले और वे शत्रुओं की सेना में उसी तरह प्रवेश कर गये जैसे केकारव करते हुए मयूर वन में प्रवेश कर जाते हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

किंच तस्यार्षास्त्रमृषेर्नारायणादुद्भूतमस्त्रं प्रयुञ्जतः संदधतः सतः । सुवर्णमयाः पुङ्खा
वासांसि पक्षा येषाम् । शरा विनिःसृता इति द्रष्टव्यम् । उपरिष्टच्छिलीमुखग्रहणात् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

ध्रुव के द्वारा नारायण ऋषि से उद्भूत अद्भुत उस नारायणास्त्र का संधान करते
मूलभाग सुवर्ण मय थे तथा राजहंसों के समान जिनके पक्ष थे । ऊपर से तो वे

तैस्तिग्मधारैः प्रधने शिलीमुखैरितस्ततः पुण्यजना उप
तमभ्यधावन्कुपिता उदायुधाः सुपर्णमुन्नद्धफणा इवा

अन्वयः— प्रधने तैः तिग्मधारैः शिलीमुखैः उपद्रुताः पुण्यजनाः कुपिताः इतस्ततः उ
अहयः इव ।।४।।

अनुवाद— ध्रुवजी के उन तीखी धारवाले बाणों ने शत्रुओं को वेचैन बना दि
यक्ष वीरों ने आयुध धारण करके ध्रुवजी पर उसी तरह टूट पड़े जिस तरह गरुड़
बड़े सर्प उनकी ओर फण उठाकर दौड़ पड़ते हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

प्रधने युद्धे उन्नद्धा उच्छ्रिताः फणा येषां ते सर्पाः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

प्रधन शब्द युद्ध का वाचक है । **उन्नद्धफणाः अहयः इव** फन उठाये हुए

स तान्पृषत्कैरभिधावतो मृधे निकृत्तबाहूरुशिरोधरोदरा
निनाय लोकं परमर्कमण्डलं व्रजन्ति निर्भिद्य यमूर्ध्वरेत

अन्वयः— मृधे अभिधावतः पृषत्कैः । निकृत वाहूरु शिरोधरोदरान् तान् परम् लोकम् नि
भित्वा व्रजन्ति ।।५।।

अनुवाद— युद्ध में सामने दौड़कर आने वाले उन यक्षों के अपने बाणों से
को छिन्न-भिन्न करके ध्रुवजी ने उनको श्रेष्ठ सत्यलोक में भेज दिया जिस लोक में नैष्टि
का भेदन करके जाते हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

पृषत्कैर्बाणैर्निकृत्ता वाह्वादयो येषां तान् । परं लोकं निनाय । कथंभूतम् । ऊर्ध्वरेतसः
यं व्रजन्ति तम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

बाणों से जिनके हाथ इत्यादि कट गये थे उन यक्षों को ध्रुवजी ने उस सर्व
जिससें सूर्यमण्डल का भेदन करके ऊर्ध्वरेतस् गण जाते हैं ।।५।।

तान्हन्यमानानभिवीक्ष्य गुह्यकाननागसांश्चित्ररथेन भूरि
औत्तनपादिं कृपया पितामहो मनुर्जगादोपगतः सहर्षि

अन्वयः— चित्ररथेन अनगसः गुह्यकान् भूरिशः हन्यमानान् अभिवीक्ष्य पितामहः मनु
औत्तनपादिं जगाद ।।६।।

अनुवाद— ध्रुवजी के द्वारा निरपराध यक्षों को बहुत मारे जाते हुए देखकर उनके पितामह मनु ऋषियों के साथ करुणाक्रान्त होकर ध्रुवजी से कहे ।।६।।

भावार्थ दीपिका

तानानागसो निरपराधान् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

उन निरपराध बहुत से मारे जाते हुए यक्षों को देखकर ध्रुवजी के पितामह मनुजी करुणाक्रान्त हो गये। वे ऋषियों के साथ आकर ध्रुवजी से कहें ।।६।।

मनुरुवाच

अलं वत्सातिरोषेण तमोद्वारेण पाप्मना । येन पुण्यजनानेतानवधीस्त्वमनागसः ।।७।।

अन्वयः— हे वत्स ! तमोद्वारेण, पाप्मना अतिरोषेण अलम्, येन त्वम् अनागसः एतान् पुण्य जनान् अवधीः ।।७।।

मुनियों ने कहा

अनुवाद— हे वत्स ! बहुत अधिक क्रोध करना ठीक नहीं, यह पाप नरक का द्वार है । इसके ही कारण तुमने इन निरपराध यक्षों को मारा है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तमसो नरकस्य द्वारेण । येन रोषेण ।।७।।

भाव प्रकाशिका

नरक के द्वार भूत इस क्रोध के ही कारण तुमने निरपराध यक्षों को मारा हैं ।।७।।

नास्मत्कुलोचितं तात कर्मैतत्सद्विगर्हितम् । वधो यदुपदेवानामारब्धस्तेऽकृतैनसाम् ।।८।।

अन्वयः— तात ते यदुपदेवानामारब्धः अकृतैनसाम्, एतत्कर्म सद्विगर्हितम् अस्मत् कुलोचितम् न ।।८।।

अनुवाद— हे तात ! जो तुमने निरपराध यक्षों को मारने का काम किया है इस कर्म की सज्जन पुरुष निन्दा करते हैं । यह हमारे वंश के लिए उचित नहीं है ।।८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।८।।

नन्वेकस्यापराधेन प्रसङ्गाद्बहवो हताः । भ्रातुर्वधाभितप्तेन त्वयाङ्ग भ्रातृवत्सल ।।९।।

अन्वयः— ननु एकस्य अपराधेन हे भ्रातृवत्सल भातृवधाभितप्तेन त्वया प्रसङ्गात् बहवः हताः ।।९।।

अनुवाद— निश्चित रूप से तुमने एक यक्ष के द्वारा किए गये अपराध के कारण, अपने भाई के प्रति अत्यधिक अनुराग के कारण तुमने प्रसङ्गवशात् अनेक यक्षों की हत्या कर दी है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

ननु मद्भ्रातृहन्तारः कथमकृतैनसोऽत आह-नन्विति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि ये सब मेरे भाई को मारने वाले हैं निरपराध कैसे है ? तो इस पर मनुजी ने कहा तुम्हारा अपने भाई में अत्यधिक अनुराग था । किन्तु उसको मारने वाला तो एक ही यक्ष था और क्रोधाविष्ट होकर तुमने इतने यक्षों की हत्या कर दी ।।९।।

नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम् । यदात्मानं पराग्गृह्य पशुवद्भूतवैशसम् ॥१०॥

अन्वयः— पराक् आत्मानं गृह्य यत् पशुवद् भूत वैशसम् अयं हृषीकेशानुवर्तिनाम् साधूनाम् मार्गो न ॥१०॥

अनुवाद— जड़ शरीर को ही आत्मा मानकर इसके लिए पशु के समान प्राणियों का बध करना यह भगवान् हृषीकेश के भक्त साधुजनों का मार्ग नहीं है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

सत्यप्यपराधे तवैतदुचितं न भवतीत्याह-नायमिति । पराग्गृह्य पराग्भूतं देहमात्मानं गृहीत्वा पशवो यथा देहाभिमानादन्योन्यं घ्नन्ति तथा भूतानां वैशसं हिंसेति यत् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इन सबों का यदि अपराध हो तो भी तुम्हारे लिए यह कर्म उचित नहीं है । इस बात को **नायमित्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । बाह्य इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य देह को ही आत्मा मानकर पशुओं के ही समान देहाभिमान के कारण जैसे पशु परस्पर में एक दूसरे को मार डालते हैं उसी तरह जीवों की हिंसा साधुजनों का मार्ग नहीं हैं ॥१०॥

सर्वभूतात्मभावेन भूतावासं हरिं भवान् । आराध्याप दुराराध्यं विष्णो स्तत्परमं पदम् ॥११॥

अन्वयः— भवान् सर्वभातमभावेन भूतवास दुराराध्यं हरिं आराध्य विष्णोःतत् परमं पदम् आप ॥११॥

अनुवाद— आपने सभी भूतों की आत्मा रूप से सभी भूतों में निवास करने वाले दुराराध्य श्रीहरि की आराधना करके भगवान् विष्णु के परम पद को प्राप्त किया है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

त्वं च बाल्ये साधुः सन्निदानीं कथमन्यथा कृतवानित्याह-सर्वभूतात्मभावेनेति द्वाभ्याम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

तुम तो बाल्यावस्था में साधु प्रकृति के थे, इस समय तुम उसके विपरीतकार्य कैसे किए ? इस बात को मनुजी ने सर्वभूतात्मभावेन इत्यादि दो श्लोकों से कहा है ॥११॥

स त्वं हरेरनुध्यातस्तत्पुंसामपि संमतः । कथं त्ववद्यं कृतवाननुशिक्षन्सतां व्रतम् ॥१२॥

अन्वयः— स त्वं हरेः अनुध्यातः तत्पुंसामपि संमतः, सतां व्रतम् अनुशिक्षन् कथं तु अवद्यं कृतवान् ॥१२॥

अनुवाद— तुमको तो श्रीभगवान् भी अपना प्रिय भक्त मानते हैं । और भगवद्भक्त भी तुम्हारा आदर करते है, तुम साधुजनों के पथ-पदर्शक हो फिर भी तुमने यह निन्दनीय कर्म कैसे किया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अनुध्यातो हरेर्हृदि स्थितो वा तत्पुंसां हरिदासानामपि साधुत्वेन मतः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

तुम भगवान् श्रीहरि के हृदय में स्थित रहते हो और भगवद् भक्तों को भी तुम सम्मत हो फिर भी तुमने यह निन्दित कर्म न जाने कैसे किया ॥१२॥

तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु । समत्वेन च सर्वात्मा भगवान्संप्रसीदति ॥१३॥

अन्वयः— अखिल जन्तुषु च तितिक्षया, करुणया, मैत्र्या समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति ॥१३॥

अनुवाद— सर्वात्मा श्रीहरि अपने से बड़े पुरुषों के प्रति सहनशीलता, अपने से छोटे पुरुषों के प्रति दया, अपने समान पुरुषों के प्रति मित्रता तथा समस्त जीवों के प्रति समता के भाव से प्रसन्न होते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

सतां व्रतमेवाह । महत्सु तितिक्षया, नीचेषु करुणया, समेषु मैत्र्या, अखिलेषु जन्तुषु समत्वेन च ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में मनुजी ने सत् पुरुषों के व्रत को बतलाया है । अपने से बड़े पुरुषों के प्रति सहनशीलता, छोटों के प्रति करुणा, समानों के प्रति मित्रता और सभी जीवों के प्रति समता के व्यवहार से प्रसन्न होते हैं ।।१३।।

संप्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः । विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्म निर्वाणमृच्छति ।।१४।।

अन्वयः— संप्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैः गुणैः विमुक्तः जीव निर्मुक्तः ब्रह्मनिर्वाणम् ऋच्छति ।।१४।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के प्रसन्न हो जाने पर जीव प्रकृति के गुणों उसके कार्यभूतलिङ्ग शरीर से छूटकर ब्रह्मपद को प्राप्त कर लेता है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

ततः कृतार्थो भवतीत्याह । संप्रसन्ने सति गुणैर्विमुक्तोऽत एव तत्कार्येण जीवने लिङ्गशरीरेण निर्मुक्त सन्निर्वाणं सुखात्मकं ब्रह्म प्राप्नोति ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

सत् पुरुषों के व्रत का पालन करने से जब श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं तो जीव प्राकृत गुणों से मुक्त हो जाता है और उसके कार्यभूत जीव (लिङ्ग) शरीर से छूट जाता है ओर सुख स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।।१४।।

भूतैः पञ्चभिरारब्धैर्योषित्पुरुष एव हि । तयोर्व्यवायात्संभूतिर्योषित्पुरुषयोरिह ।।१५।।

अन्वयः— पञ्चभिः भूतैः आरब्धे योषित् पुरुष एवहि, इह तयोः व्यवायात् योषित् पुरुषयोः संभूतिः ।।१५।।

अनुवाद— देह के रूप में परिणत हुए पञ्च महाभूतों से ही स्त्री और पुरुष का आविर्भाव होता है और इस लोक में में स्त्री पुरुष के समागम से ही दूसरे स्त्री पुरुष उत्पन्न होते हैं ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

भ्रातृहन्तृत्वमङ्गीकृत्योक्तम्, इदानीं तु नात्मनो भ्रातृपुत्रादिसंबन्धो न चान्योन्यं हन्तृत्वादिकमपीत्याह- भूतैरिति दशभिः। भूतैः पञ्चभिरारब्धैर्देहाद्याकारेण परिणतैर्योषित्पुरुषश्चेति प्रसिद्धिः तयोर्व्यवायान्मैथुनात् संभूतिरन्ययोर्योषित्पुरुषयोरिह संसारे भवति ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

यदि तुम कहो कि इसने मेरे भाई को मारा है तो उसके विषय में मनु जी कहते हैं । इस समय आत्मा का भाई और पुत्र आदि से सम्बन्ध नहीं है । और न उनमें परस्पर में हन्तृत्व इत्यादि है । इस बात को भूतैः इत्यादि दश श्लोकों से बतलाते हैं । पञ्चभत ही देह आदि के रूप में परिणत हो जाते हैं । उस देह की ही स्त्री

भावार्थ दीपिका

एवं तावत्सर्गः प्रवर्तते । एवं पालकाकारेण परिणतैर्भूतैरेव स्थितिः । हन्तृदेहाकारपरिणतैः संयमः संहारः, स च परमात्मनो मायया गुणानां व्यतिकरात्, नतु स्वतः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

इसी प्रकार से सृष्टि होती है, इसी तरह पालरूप से परिणत भूतों के द्वारा स्थिति होती है और मारने वाले देह के आकार से परिणत भूतों के द्वारा ही संहार होता है । यह सबकुछ श्रीभगवान् की माया के गुणों में होने वाले व्यतिकर न्यूनाधिक भाव के कारण होता है, स्वतः नहीं होता है ।।१६।।

निमित्तमात्रं तत्रासीन्निर्गुणः पुरुषर्षभः । व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत् ।।१७।।

अन्वयः— तत्रपुरुषर्षभः निर्गुण निमित्तमात्रम्, यत्र इदं व्यक्ता व्यक्तं विश्वं लोहवत् भ्रमति ।।१७।।

अनुवाद— इन सबों में पुरुषों में श्रेष्ठ निर्गुण परमात्मा तो निमित्त मात्र है जिस परमात्मा में यह कार्य कारणरूप जगता उसी तरह घूमता रहता है जिस तरह चुम्बक के आश्रय से लोहा घूमता है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

ननु जडानां देहानां गुणानां वा कथं सर्गादिहेतुत्वं तत्राह । निमित्तमात्रं पुरुषर्षभ ईश्वरः । यत्र यस्मिन्निमित्ते सति कार्यकारणात्मकं विश्वं भ्रमति परिवर्तते । यथाऽयस्कान्ते निमित्ते सत्ति लोहं प्रवर्तते तद्वत् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि शरीर और गुण दोनों जड़ है वे कैसे सृष्टि आदि के कारण हो सकते हैं ? तो इस पर कहते हैं— ईश्वर तो निमित्त मात्र हैं, जिस निमित्त भूत ईश्वर के ही अधीन यह कार्यकारणात्मक जगत् घूम रहा है । जिस तरह अयस्कान्त मणि रूपी निमित्त के कारण लोहा घूमा करता है उसीतरह ।।१७।।

स खल्विदं भगवान्कालशत्तया गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ।
करोत्यकर्तैव निहन्त्यहन्ता चेष्टा विभूम्नः खलु दुर्विभाव्या ।।१८।।

अन्वयः— कालशक्त्या क्रमेण गुणानां प्रवाहेण स भगवान् खलु विभक्तवीर्य; अकतैव करोति अहन्ता निहन्ति विभूम्नः चेष्टा खलु दुर्विभाव्या ।।१८।।

अनुवाद— कालशक्ति के द्वारा क्रमश; सत्त्वादि गुणों में क्षोभ होने के कारण श्रीभगवान् की लीलामय शक्ति भी सृष्टि आदि के रूप में विभक्त हो जाती है । अतएव भगवान् अकर्ता होकर भी जगत् की रचना करते हैं और संहारक नहीं होकर भी संहार करते है । श्रीभगवान् की लीलाशक्ति अचिन्त्य है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

ननु स चेन्निमित्तं तर्हि तस्याविशेषाद्युगपदेव सर्गादित्रयं भवेदत आह-स खल्विति । कालशत्तया क्रमेण गुणानां प्रवाहः क्षोभस्तेन विभक्तं सृष्ट्या दिविषयं वीर्यं शक्तिर्यस्य । ननु कालोऽपि गुणान्युगपदेव क्षोभयतु तत्राह । चेष्टा कालशक्ति-दुर्विभाव्या अचिन्त्या ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि यदि परमात्मा ही निमित्तकारण हैं तो फिर परमात्मा के एक ही होने के कारण सृष्टि आदि को भी एक ही समय में हो जाना चाहिए, तो इस पर खलु इत्यादि श्लोक कहते हैं । काल शक्ति के द्वारा क्रमश: सत्त्वादि गुणों में क्षोभ उत्पन्न होने के कारण परमात्मा का सृष्टि आदि विषयक वीर्य भी विभक्त हो जाता है । यदि कहें कि काल भी सत्त्वादि गुणों में एक ही समय में क्षोभ उत्पन्न करे; तो इसके उत्तर में कहते हैं परमात्मा की कालशक्ति अचिन्त्य है ।।१८।।

सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः । जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥१९॥

अन्वयः— सः कालः अव्ययः अनन्तः अन्तकृत् अनादिः आदिकृत् । जनेन जनं जनयन् मृत्युना अन्तकम् मारयन्॥१९॥

अनुवाद— वे परमात्मा काल स्वरूप और निर्विकार है । स्वयं वे अनन्त होकर भी जगत् का अन्त करते हैं । तथा स्वयम् अनादि भी होकर जगत् की सृष्टि करते हैं । वे एक जीव से दूसरे जीव को उत्पन्न करते हैं और मारने वाले को भी मृत्यु के द्वारा मरवाकर उसका संहार कर देते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ननु पित्रादिः सृजति पालयति राजादिर्निहन्ति च चोरादिः, न त्वीश्वरस्तत्राह-स इति । जनेन पित्रादिना जनं पुत्रादिं जनयन्नादिकृत् । अन्तकं चोरादिकं तन्मृत्युहेतुना मारयन्नन्तकरः । स्वयं त्वनन्तोऽनादिश्च । अब्ययोऽक्षीणशक्तिश्च । अयं भावः- पित्रादयोऽन्यत उत्पत्त्यादिमन्तो न स्वातत्र्येण कारणं, किंत्वीश्वर एव तन्नियन्ता स सर्वकारणमिति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे सृष्टि करने का तथा पालन करने का काम तो माता-पिता करते हैं और मारने का काम राजा आदि तथा चोर आदि करते हैं न कि यह सब ईश्वर करते हैं । इस पर मनु जी कहते हैं **सोऽनन्तः इत्यादि** अर्थात् परमात्मा ही पिता इत्यादि के द्वारा पुत्र आदि के उत्पन्न कराकर सृष्टि करने का काम करते हैं और मारने वाले चोर आदि को मृत्यु के द्वारा मरवाकर परमात्मा उनका संहार आदि करते हैं । परमात्मा स्वयम् अनन्त और अनादि हैं । उनकी शक्ति कभी क्षीण नहीं होती है अतएव वे अव्यय हैं । **अयं भावः इत्यादि** पिता इत्यादि स्वयं दूसरे से उत्पन्न है अतएव वे पुत्रादि की उत्पत्ति में स्वतंत्र कारण नहीं है अपितु पिता इत्यादि का भी नियमन ईश्वर ही करते हैं वे सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं ॥१९॥

न वै स्वपक्षोऽस्य विपक्ष एव वापरस्य मृत्योर्विशतः समं प्रजाः ।
तं धावमानमनुधावन्त्यनीशा यथा रजांस्यनिलं भूतसङ्घाः ॥२०॥

अन्वयः— परस्य मृत्यो प्रजाः समं विशतः अस्य नवै स्वपक्षः विपक्ष एव वा, तं धावमानं अनीशाः भूतसङ्घाः धावन्ति यथा रजांसि अनिलम् ॥२०॥

अनुवाद— काल स्वरूप परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि में समान रूप से प्रविष्ट हैं । उनका न तो कोई अपना पक्ष है और न कोई विपक्ष है । सभी जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार काल की गति का अनुसरण करते हैं और अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुख दुःख आदि कर्म के फलों को भोगते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

नचैवं कुर्वतोऽपि वैषम्यप्रसक्तिः, पक्षपाताभावादित्याह द्वाभ्याम्- न वा इति । मृत्युरूपस्य समं यथा भवति तथा प्रजाः कर्मभूता विशतः तस्य साम्येऽपि भूतेषु फलवैषम्यं, तत्कर्मवशादिति सदृष्टान्तमाह । तं धावन्तमन्वनीशाः कर्माधीना भूतसङ्घा धावन्ति। अनिलं धावन्तमनु रजांसीव तत्र यथा रजसां तमःप्रकाशजलाग्न्यादिप्रवेशेऽपि नानिलस्य वैषम्यम्, एवमीश्वरस्यापीति भावः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह करने वाले परमात्मा में विषमभाव की भी सम्भावना नहीं की जा सकती है क्योंकि उनमें पक्षपात का अभाव है । इस बात को नवा० इत्यादि दो श्लोकों में मनुजी ने कहा है । परमात्मा स्वयं काल स्वरूप है, और सम्पूर्ण सृष्टि में समान रूप से प्रविष्ट हैं । काल भगवान् में समता रहने पर भी उसकी विषमता जीवों द्वारा पूर्वकृत कर्मवशात् होती है । इस बात को मनुजी दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहते हैं । कर्मों के परतन्त्र रहने वाले सभी जीव काल की गति का अनुसरण करते हैं । यह उसी तरह से होता है जिस प्रकार आँधी के चलने पर धूल वायु

की गति का अनुसरण करती है। उसमें जैसे धूल के अन्धकार प्रकाश, जल, अग्नि आदि में प्रवेश करने में वायु में कोई विषमता नहीं होती हैं इसी प्रकार के सुख दुःखोपभोग में विषमता के होने पर भी परमात्मा में किसी भी प्रकार की विषमता नहीं होती है ॥२०॥

आयुषोऽपचयं जन्तोस्तथैवोपचयं विभुः । उभाभ्यां रहितः स्वस्थो दुःस्थस्य विदधात्यसौ ॥२१॥

अन्वयः— तथैव असौ विभुः दुःस्थस्य जन्तोः आयुषः उपचयं अपचयं च विदधाति स्वस्थः उभाभ्यां रहितः ॥२१॥

अनुवाद— उसी तरह वे परमात्मा कर्माधीन जीव की आयु का उपचय और अपचय (वृद्धि और क्षय) का विधान स्वयं करते हैं, और अपने स्वरूप में स्थित रहने वाले परमात्मा स्वयं वृद्धि और क्षय से रहित हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अपचयमकालमृत्युम्। उपचयं कालमृत्योरपि रक्षाम्। यद्वा अपचयं मशकादावुपचयं देवादौ। स्वस्थत्वादुपचयापचयाभ्यां रहितोऽसौ विभुर्दुःस्थस्य कर्माधीनस्य विदधाति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

जीव कर्म के अधीन है, अतएव उसकी आयु में अपचय अर्थात् अकाल मृत्यु को तथा उपचय अर्थात् कालमृत्यु से भी रक्षा करने का काम परमात्मा ही करते है। अथवा मच्छर आदि के शरीर में सङ्कोच और देवता आदि के शरीर में विस्तार करने का काम करते हैं। परमात्मा अपने स्वरूप में स्थित रहते हैं अतएव स्वयम वे वृद्धि और ह्रास से रहित है ॥२१॥

केचित्कर्म वदन्त्येनं स्वभावमपरे नृप । एके कालं परे दैवं पुंसः काममुतापरे ॥२२॥

अन्वयः— हे नृप ! केचित् एनं कर्म वदन्ति, अपरे स्वभावम्, एके कालम्, परे दैवं अपरे पुंसः कामम् ॥२२॥

अनुवाद— हे राजन् ! इस परमात्मा को ही मीमांसक कर्म कहते हैं, चार्वाक स्वभाव कहते हैं, वैशेषिक काल कहते हैं, ज्योतिषी दैव कहते हैं और कामशास्त्री काम कहते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

एवं भूतेश्वरः सर्ववादिसंमतः, विवादस्तु नाममात्र इत्याह-केचिदिति। पुंसः कामं वात्स्यायनादयः। श्रुतिश्च 'कामोऽकार्षीत्कामः करोति कामः कर्ता काम; कारयिता' इत्यादि ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के ईश्वर को सभी विचारक स्वीकार करते हैं विवाद तो केवल नाम के विषय में है। वात्स्यायन इत्यादि ईश्वर को पुरुष का काम कहते हैं ॥२२॥ श्रुति भी कहती हैं— **कामोऽकार्षीत्० इत्यादि** काम ने ही किया, काम ही करता है, काम ही कर्ता हैं तथा काम ही करवाने वाला है ॥२२॥

अव्यक्तस्याप्रमेयस्य नानाशक्त्युदयस्य च । न वै चिकीर्षितं तात को वेदाथ स्वसंभवम् ॥२३॥

अन्वयः— हे तात् ! अव्यक्तस्य अप्रेमयस्य नाना शक्त्युदयस्य च अथ स्वसंभवम् चिकीर्षितम् नवै को वेद ॥२३॥

अनुवाद— हे तात ! वे ईश्वर इन्द्रियों के अथवा प्रमाण के विषय नहीं है। उनसे ही महदादि अनेक शक्तियों की उत्पत्ति भी होती है। उन अपनी उत्पत्ति स्थान स्वरूप ईश्वर को कोई भी नहीं जानता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

ननु कर्मादीनां जडत्वादिना स्वरूपतोऽपि भिन्नत्वात्कथमैकमत्यं तत्राह। अव्यक्तस्यातएवाप्रमेयस्य। तथापि सत्त्वे हेतुः— नानाशक्तीनां महदादीनामुदयो यस्मात्। चिकीर्षितमेव तावत्कोऽपि न वेद। अथ स्वस्य संभवो यस्मात्तमीश्वरं को

साक्षात् अतस्तत्त्वज्ञानाभावाद्विशेषांशे विवाद इत्यर्थः । तथा च श्रुतिः-'को अद्धा वेद क इह विसृष्टिः । अर्वाग्देवा अस्य विएर्जनेनाथा को वेद यत आवभूव' इत्यादिः॥२३॥

भाव प्रकाशिका

कर्म इत्यादि तो स्वरूपतः जड है अतएव उनमें तो स्वरूपतः भी भिन्नता है अतएव कि परमात्मा को सबलोग स्वीकार करते हैं इस पर मनुजी कहते हैं परमात्मा अव्यक्त न तो किसी इन्द्रिय के विषय बनते हैं, इसीलिए वे अप्रमेय भी हैं अर्थात् किसी प्रमाण र भी उनकी सत्ता है, क्योंकि उनसे ही महदादि अनेक शक्तियों का उदय होता है । उत्पत्ति स्थान स्वरूप हैं, उन परमात्मा की चिकीर्षा को कोई भी नहीं जानता है। अद्धा ोगा साक्षात् कोई नहीं जानता है । अतएव तत्त्व का ज्ञान नहीं होने के कारण ईश्वर विवाद है । श्रुति भी कहती है— **का अद्धावेद० इत्यादि** अर्थात् उस परमात्मा को सने उस परमात्मा का उपदेश दिया, किससे यह सृष्टि होती है, प्राचीन देवता इसका हैं और कौन जानता है कि ये परमात्मा किससे उत्पन्न हुए ॥२३॥

तारो धनदानुगाः । विसर्गादानयोस्तात पुंसो दैवं हि कारणम् ॥२४॥

एते धनदानुगाः ते भ्रातुः हन्तारः न हे तात पुंसः विसर्गादानयोः दैवंहि कारणम् ॥२४॥

! ये कुबेर के अनुचर तुम्हारे भाई को मारने वाले नहीं हैं मनुष्य के जन्म और मरण ४॥

भावार्थ दीपिका

ोगमाह न चैते भ्रातुर्हन्तारः । उक्तमेव हेतुमनुवदति । विसर्गादानयोर्मृत्युजन्मनोः । यद्वा विसर्गः मीश्वर एव हि कारणम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्ग में उपयोग बतलाते हैं तुम्हारे भाई को मारने वाले ये नहीं हैं । उपर्युक्त कारण ौर जन्म के कारण तो ईश्वर है । यहाँ पर विसर्ग शब्द मृत्यु का और आदान शब्द ा विसर्ग शब्द सृष्टि का और आदान शब्द संहार का वाचक है । दैव शब्द ईश्वर का

स एवावति हन्ति च । अथापि ह्यनहंकारान्नाज्यते गुणकर्मभिः ॥२५॥

वेश्वं सृजति स एव अवति हन्ति च अथापि हि अनहंकारात् गुण कर्मभिः न अज्यते ॥२५॥

ही जगत् की सृष्टि करते हैं, उसकी रक्षा करते हैं और उसका संहार करते हैं फिर के कारण वे उसके गुणों और कर्मों से लिप्त नहीं होते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

स एवेति ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

ो निर्लेपता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि परमात्मा ही जगत् की सृष्टि आदि कर्मों से रहित होने के कारण जगत् के गुणों और कर्मों में लिप्त नहीं होते हैं ॥२५॥

एष भूतानि भूतात्मा भूतेशो भूतभावनः । स्वशत्तया मायया युक्तः सृजत्यत्ति च पाति च ॥२६॥

अन्वयः— भूतात्मा भूतेश; भूतभावनः एष स्वशक्त्या मायया युक्त; भूतानि सृजति, अत्ति च पाति च ॥२६॥

अनुवाद— परमात्मा ही सम्पूर्ण जगत् की अन्तरात्मा, नियन्ता और जगत् की रक्षा करने वाले हैं ये ही अपनी माया शक्ति के द्वारा सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि संहार और रक्षा करते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अनहङ्कारत्वे हेतुमाह-एष इति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मा के अहङ्कार रहित होने का कारण बतलाते हुए कहते हैं कि परमात्मा ही सबों की अन्तरात्मा, नियामक और जगत् की रक्षा करने वाले हैं और अपनी माया शक्ति के द्वारा जगत् की सृष्टि आदि करते हैं ॥२६॥

तमेव मृत्युममृतं तात दैवं सर्वात्मनोपेहि जगत्परायणम् ।
यस्मै बलिं विश्वसृजो हरन्ति गावो यथा वै नसि दामयन्त्रिताः ॥२७॥

अन्वयः— हे तात तमेव, मृत्युम् अमृतं, दैवं जगत् परायणम्, सर्वात्मना उपेहि, यस्मै नासि दाम यन्त्रितः गावो यथा विश्वसृजः बलिं हरन्ति ॥२७॥

अनुवाद— हे तात तुम उन्हीं परमात्मा के शरण में जाओ वे मृत्यु स्वरूप, अमृत स्वरूप तथा जगत् के एक मात्र आश्रय हैं । नकेल की रस्सी से बँधे हुए बैल के समान उन परमात्मा की आज्ञा कापालन ब्रह्मादि देवता किया करते हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

सत्यमीश्वर एव कर्ता तथाप्यहंकारादि मया न त्यक्तुं शक्यमिति चेतद आह– तमेवेति चतुर्भिः । मृत्युमभक्तानां, भक्तानां त्वमृतम् । उपेहि शरणं गच्छ । तमेवेत्यवधारणे हेतुः-यस्मै नसि नासिकायां दामभिर्वद्धा गाव इव विश्वसृजोऽपि दामभिर्यन्त्रिता वद्धाः सन्तो बलिं हरन्ति । तत्कारितं कर्म कुर्वन्तीत्यर्थः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि ठीक है, परमात्मा ही कर्ता हैं फिर भी मैं अहङ्कार आदि का त्याग नहीं कर सकता तो इस पर मनुजी चार श्लोकों में कहते हैं परमात्मा अभक्तों के लिए मृत्यु स्वरूप हैं भक्तों के लिए अमृत स्वरूप हैं। तुम उन परमात्मा की शरणागति करो । तमेव में एवकार निर्धारणार्थक है । नकेल में बंधे हुए बैल के समान विश्वस्रष्टा ब्रह्मादि देवता भी परमात्मा की आज्ञा रूपी यन्त्र में बद्ध हैं और वे उन्हीं की आराधना करते हैं । परमात्मा जो करवाना चाहते हैं उसी कर्म को वे सब भी करते रहते हैं ॥२७॥

यः पञ्चवर्षो जननीं त्वं विहाय मातुः सपत्न्या वचसा भिन्नमर्मा ।
वनं गतस्तपसा प्रत्यगक्षमाराध्य लेभे मूर्ध्नि पदं त्रिलोक्याः ॥२८॥
तमेनमङ्गात्मनि मुक्तविग्रहे व्यपाश्रितं निर्गुणमेकमक्षरम् ।
आत्मानमन्विच्छ विमुक्तमात्मदृग्यस्मिन्निदंभेदमसत्प्रतीतये ॥२९॥

अन्वयः— मातुः सपत्न्याः वचसा भिन्न मर्मा यः पञ्चवर्ष त्वम् जननीं विहाय वनं गतः तपसा प्रत्यगक्षम् आराध्य त्रिलोक्याः मूर्ध्नि पदं लेभे, मुक्तविग्रहे आत्मनि व्यपाश्रितं हे अङ्ग ! एनं निर्गुणम्, एकम् अक्षरम् तम् विमुक्तम् आत्मदृक् आत्मानम् अन्विच्छ यस्मिन् इदम् असत् भेदम् प्रतीयते ॥२८-२९॥

अनुवाद— अपनी सौतेली माँ के वाग्बाणों से विद्ध हृदय वाला होकर तुम पाँच वर्ष की ही अवस्था में अपनी माँ को छोड़कर वन में चले गये थे और वहाँ पर तपस्या के द्वारा जिन हृषीकेश परमात्मा की आराधना करके त्रिलोकी में सबसे ऊपर ध्रुवप्रद को प्राप्त किए जो तुम्हारे वैर भाव से रहित हृदय में वात्सल्यवश विशेष रूप से निवास किए उन निर्गुण, अद्वित्य अविनाशी और नित्यमुक्त परमात्मा का अध्यात्म दृष्टि से अन्वेषण करो। उनमें ही यह भेदमय प्रपञ्च नहीं होने पर भी प्रतीत होता है ॥२८-२९॥

भावार्थ दीपिका

तदाराधनं च तव सुशकमेवेत्याह । यः पञ्चवर्षः स त्वं यमाराध्य त्रिलोक्या मूर्ध्नि पदं स्थानं लेभे लबधवानसि । इदानीं तमेवान्विच्छावलोकयेत्युत्तरेणान्वयः । प्रत्यञ्चि अक्षाणि यस्मिन् । क्रियाविशेषणं वा । हरिं ध्यायन्तं प्रत्याह । हे अङ्ग ध्रुव । मुक्तविरोधे आत्मनि मनसि व्यपाश्रितमवस्थितमात्मदृक् प्रत्यग्दृष्टिः सन् । अयं भेदो यस्मिंस्तदिदंभेदमसदेव विश्वं यस्मिन्प्रतीयते ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

उन परमात्मा की आराधना भी तुम्हारे लिए आसान है । पाँच वर्ष की ही अवस्था में जिस परमात्मा की आराधना करके तुमने त्रिलोकी में सबसे ऊपर ध्रुव पद को प्राप्त किए, इस समय उन्ही परमात्मा का अपने में अवलोकन करो इसका उनतीसवें श्लोक से अन्वय है । जिस परमात्मा के विषय में इन्द्रियाँ प्रत्यक् हैं । अर्थात् विषयों से विमुख होकर परमात्मा को अपना विषय वनाती हैं । अथवा यह क्रिया विशेषण है । श्रीहरि का ध्यान करने वाले ध्रुव से मनुजी ने कहा— हे ध्रुव ! वैर रहित आत्मा (हृदय) में अवस्थित परमात्मा का तुम अन्वेषण करो। उस परमात्मा में ही असत् भेद प्रतीत होता हैं ॥२८-२९॥

त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनन्त आनन्दमात्र उपपन्नसमस्तशक्तौ ।
भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्याग्रन्थिं विभेत्स्यसि ममाहमिति प्ररूढम् ॥३०॥

अन्वयः— त्वं तदा उपपन्न समस्त शक्तौ प्रत्यगात्मनि आनन्दमात्रे प्रत्यगात्मनि भगवति अनन्ते परमां भक्तिं विधाय शनकैः ममाहमिति प्ररूढम् अविद्या गन्थिं विभेत्स्यसि ॥३०॥

अनुवाद— उस अन्वेषण काल में ही सर्वशक्तिमान अन्तर्यामी, परमानन्दस्वरूप भगवान् अनन्त में तुम्हारी सुदृढ भक्ति हो जायेगी और उसके कारण ही अहन्त्व ममत्व रूपी दृढ अविद्या की गन्थि की गांठ को काट डालोगे॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तदन्वेषणफलमाह । त्वं तदाऽन्वेषणकाल एव ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अपने हृदय में परमात्मा के अन्वेषण का फल बतलाते हुए मनुजी ने कहा कि अन्वेषण काल में ही तुम्हारी सर्वशक्तिमान परमात्मा में सुदृढ भक्ति हो जायेगी । और तुम अहन्त्व एवं ममत्व रूपी अविद्या की ग्रन्थि को काट दोगे ॥३०॥

संयच्छ रोषं भद्रं ते प्रतीपं श्रेयसां परम् । श्रुतेन भूयसा राजन्नगदेन यथामयम् ॥३१॥

अन्वयः— राजन् अगदेन आभयं यथा भूयसा श्रुतेन शेषं संयच्छ श्रेयसां परं प्रतीपं ते भद्रम् ॥३१॥

अनुवाद— राजन् जिस प्रकार औषधि के सेवन से रोग को शान्त किया जाता है उसी तरह मेरे विस्तृत उपदेश रूपी औषधि से अपने इस क्रोध रूपी रोग को समाप्त करो । यह कल्याण का अत्यन्त विरोधी है । भगवान् तुम्हारा मङ्गल करें ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

उपदेशसारमाह-संयच्छेति द्वाभ्याम् । प्रतीपं प्रतिकूलम् । अगदेनौषधेन यथा रोगं नियच्छति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

अपने उपदेश का सार बतलाते हुए मनुजी ने **संयच्छ इत्यादि** दो श्लोकों में कहा है प्रतीप अर्थात् विरोधी। जिस तरह से औषधि के सेवन से रोग को दूर किया जाता है उसी तरह से मेरे उपदेश का विचार करके क्रोध का परित्याग कर दो ॥३१॥

येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम् । न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्नभयमात्मनः ॥३२॥

अन्वयः— येनोप सृष्टात् पुरुषात् लोकः भृशम् उद्विजते आत्मनः अभयम् इच्छन् बुधः तद्वशं नगच्छेत् ॥३२॥

अनुवाद— जिस क्रोध से युक्त पुरुष से लोग अत्यधिक उद्विग्न होते हैं आत्म कल्याण चाहने वाले विज्ञ पुरुष को उस क्रोध का वशवर्ती नहीं होना चाहिए ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

येन रोषेणोपसृष्टाद्व्याप्तात् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

जिस रोष से व्याप्त पुरुष से लोग अत्यन्त उद्विग्न होते हैं विज्ञ पुरुष को उस क्रोध का वशवर्ती नहीं होना चाहिए॥३२॥

हेलनं गिरिशभ्रातुर्धनदस्य त्वया कृतम् । यज्जघ्निवान्पुण्यजनान्भ्रातृघ्नानित्यमर्षितः ॥३३॥

अन्वयः— भ्रातृघ्नान् इति अमर्षित यत्पुण्यजनान जघ्निवान् त्वया गिरिशभ्रातुः धनदस्य हेलनं कृतम् ॥३३॥

अनुवाद— ये मेरे भाई को मारने वाले हैं, यह सोचकर क्रोध करके तुमने जो यक्षों को मारा यह भगवान् शङ्कर के सखा कुबेर का तुम्हारे द्वारा अपराध हुआ है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अन्यच्च त्वया कार्यमित्याह-हेलनमिति द्वाभ्याम् । यद्यतः । जघ्निवान्घातितवान् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी बात यह कि तुमने यह निषिद्ध कार्य किया है कि तुमने यक्षों को मारकर शङ्करजी के सखा कुबेर का अपराध किया है ॥३३॥

तं प्रसादय वत्साशु सन्नत्या प्रश्रयोक्तिभिः । न यावन्महतां तेजः कुलं नोऽभिभविष्यति ॥३४॥

अन्वयः— हे वत्स ! आशु तं सन्नत्या प्रश्रयोक्तिभिः प्रसादय, यावत् महतांतेजः नः कुलं नो अभिभविष्यति ॥३४॥

अनुवाद— हे वत्स ! जब तक महापुरुषों का तेज हमारे वंश को आक्रान्त नहीं करता है, उससे पहले ही तुम विनम्र भाषण और विनय के द्वारा उनको प्रसन्न कर लो ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥३४॥

एवं स्वायंभुवः पौत्रमनुशास्य मनुर्ध्रुवम् । तेनाभिवन्दितः साकमृषिभिः स्वपुरं ययौ ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अन्वयः— एवं स्वयम्भुवः मनुः पौत्रम् ध्रुवम् अनुशास्य तेनाभिवन्दितः ऋषिभिः साकं स्वपुरं ययौ ॥३५॥

अनुवाद— इस तरह स्वायम्भुव मनु अपने पौत्र ध्रुव को उपदेश देकर ऋषियों के साथ अपने लोक में चले गये ।।३५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।३५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावप्रकाशिका टीका के ग्यारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।११।।

* * *

बारहवाँ अध्याय

ध्रुवजी को कुबेर का वरदान और विष्णु लोक की प्राप्ति

मैत्रेय उवाच

ध्रुवं निवृत्तं प्रतिबुध्य वैशसादपेतमन्युं भगवान्धनेश्वरः ।
तत्रागतश्चारणयक्षकिन्नरैः संस्तूयमानोऽभ्यवदत्कृताञ्जलिम् ॥१॥

अन्वयः— अपेतमन्युं ध्रुवं वैशसात् निवृत्तं प्रतिबुद्ध्य भगवान् धनेश्वरः तत्रागतः चारणयक्ष किन्नरैः संस्तूयमानः कृताञ्जलिम् अभ्यवदत् ॥१॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— ध्रुव का क्रोध शान्त हो गया है और वे यक्षों का वध करना छोड़ दिए हैं इस बात को जानकर भगवान् कुबेर वहाँ आये । उस समय चारण, यक्ष तथा किन्नर उनकी स्तुति कर रहे थे । ऐसे कुबेरजी हाथ जोड़े हुए ध्रुवजी से कहे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशे धनदेनाभिनन्दितः पुरमागतः यज्ञैरिष्ट्वा हरेः स्थानमारुरोहेति कीर्त्यते ॥१॥ वैशसाद्वधान्निवृत्तं ज्ञात्वा ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बारहवें अध्याय में कुबेरजी के द्वारा प्रशंसित ध्रुवजी अपनी नगरी में आये । यज्ञों के द्वारा श्रीहरि की अराधना करके वे श्रीहरि के लोक में चले गये इस बात का वर्णन इस बारहवें अध्याय में किया गया हैं ॥१॥ यक्षों के वध से निवृत्त हुए ध्रुवजी को जानकर ध्रुवजी के पास कुबेर भगवान् आये और हाथ जोड़े हुए ध्रुवजी से कहें॥१॥

धनद उवाच

भो भो क्षत्रियदायाद परितुष्टोऽस्मि तेऽनघ । यस्त्वं पितामहादेशाद्वैरं दुस्त्यजमत्यजः ॥२॥

अन्वयः— भो-भो क्षत्रिय दायाद हे अनघ ते तुष्टोऽस्मि यः त्वम् पितामहादेशात् सुदुस्त्यजं वैरमत्यजः ॥२॥

कुबेरजी ने कहा

अनुवाद— हे निष्पाप क्षत्रिय कुमार मैं तुमसे संतुष्ट हूँ। क्योंकि तुमने अपने पितामह के आदेश से दुस्त्यज वैर को त्याग दिया है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

हे क्षत्रियदायाद क्षत्रियपुत्र। अत्यजः। त्यक्तवानसि ॥२॥

भाव प्रकाशिका

हे क्षत्रिय राजकुमार मैं तुम पर प्रसन्न हूँ क्योंकि तुमने अपने पितामह के कहने से दुस्त्यज वैर का परित्याग कर दिया हैं ॥२॥

न भवानवधीद्यक्षान्न यक्षा भ्रातरं तव। काल एव हि भूतानां प्रभुरप्ययभावयोः ॥३॥

अन्वयः— भवान् यक्षान् न अवधीत् न यक्षाः तव भ्रातरम् भूतानां अप्यय भावयोः प्रभुः कालएव ॥३॥

अनुवाद— न तो आपने यक्षों को मारा है और न यक्षों ने आपके भाई को मारा है। जीवों के जन्म और मरण का स्वामी तो काल ही है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

नच वैरस्य कारणमस्तीत्याह-न भवानिति। अप्ययभावयोर्मृत्युजन्मनोः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

वैर का कोई भी कारण नहीं है इस बात को कुबेरजी ने नभवान् इस श्लोक से कहा है। जीवो के जन्म और मरण का नियामक तो काल है ॥३॥

अहं त्वमित्यपार्था धीरज्ञानात्पुरुषस्य हि। स्वाप्नीवाभात्यतद्ध्यानाद्यया बन्धविपर्ययौ ॥४॥

अन्वयः— पुरुषस्य हि अहंत्वमिति धीः अपार्था अज्ञानात् स्वाप्नीना आभाति अतद्ध्यानात् यया बन्धविपर्ययौ ॥४॥

अनुवाद— मनुष्य की मैं, तुम इस प्रकार की बुद्धि तो मिथ्या है, वह अज्ञानवशात् देहात्मानुसंधान के कारण स्वप्न में होने वाले ज्ञान के समान है। इसी के कारण जीव को बन्ध और विपरीत दुःख इत्यादि अवस्थाओं की प्राप्ति होती है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

कथं तर्ह्यहं हन्तेत्यादिबुद्धिस्तत्राह-अहमिति। आभाति प्रकाशते। जायत इत्यर्थः। अतस्तद्ध्यानाद्देहानुसंधानात् यया धिया बन्धः। विपर्ययो दुःखादिः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि तब मैं मारने वाला हूँ इस प्रकार की बुद्धि कैसे होती है तो इसके उत्तर में कुबेरजी **अहम्** यह श्लोक कहते हैं। मैं और तू इस प्रकार की मिथ्या बुद्धि तो देहात्मानुसंधान के कारण होती है। यह अज्ञान जन्य है इसी के कारण संसार का बन्ध और दुःख आदि की प्राप्ति होती हैं ॥४॥

तद्गच्छ ध्रुव भद्रं ते भगवन्तमधोक्षजम्। सर्वभूतात्मभावेन सर्वभूतात्मविग्रहम् ॥५॥
भजस्व भजनीयाङ्घ्रिमभवाय भवच्छिदम्। युक्तं विरहितं शत्तया गुणमय्यात्ममायया॥६॥

अन्वयः— तत् हे ध्रुव गच्छ, ते भद्रम्, सर्वभूतात्मविग्रहम् भजनीयाङ्घ्रिम् भवच्छिदम्, अधोक्षजम् गुणमय्या आत्ममायया शक्त्या युक्तम् विरहितं भगवन्तम् अभवाय भजस्व ॥५-६॥

अनुवाद— अतएव हे ध्रुव तुम जाओ, तुम्हारा मङ्गल हो, सम्पूर्ण जीवो में आत्मा रूप से विद्यमान रहने वाले, जिनके चरण कमल सेवनीय हैं, तथा जो संसार रूपी बन्धन को काटने वाले हैं । ऐसे कमल नयन भगवान, इस जगत की सृष्टि आदि के लिए त्रिगुणात्मिका माया से युक्त होकर भी उससे रहित रहते हैं मुक्ति प्राप्त करने के लिए उन्हीं श्रीभगवान् की आराधना करो ।।५-६।।

भावार्थ दीपिका

तत्तस्माद्गच्छ गत्वा च भगवन्तं भजस्वेत्युत्तरेणान्वयः । सर्वभूतात्मको विग्रहो यस्य । भजनीयावङ्घ्री यस्य तम् । गुणमय्या शक्तया युक्तम् । किं तत्त्वतः । न आत्ममायया । अतस्तत्त्वतस्तया विरहितम् । यद्वा शक्तया त्ममायया युक्तं विरहितं च सगुणनिर्गुणभेदेन ।।५-६।।

भाव प्रकाशिका

अतएव तुम जाओ और जाकर श्रीभगवान का भजन करो इस तरह से अगले छठे श्लोक से अन्वय है। उन श्रीभगवान् का दिव्य विग्रह सर्वभूतात्मक है । उनके दोनो चरण सेवनीय हैं । वे त्रिगुणात्मिका शक्ति से युक्त है । वह भी तत्त्वतः नहीं अपितु माया के द्वारा ही, क्योंकि वस्तुतः तो वे माया से रहित है । अथवा शक्ति के द्वारा अपनी माया से युक्त और रहित दोनों है । सगुण और निगुर्ण के भेद से हैं ।।५-६।।

वृणीहि कामं नृप यन्मनोगतं मत्तस्त्वमौत्तानपदेऽविशङ्कितः ।
वरं वरार्होऽम्बुजनाभपादयोरनन्तरं त्वां वयमङ्गशुश्रुम् ।।७।।

अन्वयः— अङ्ग वयं अम्बुजनाभ पादयोः अनन्तरं त्वां वयं शुश्रुम् । अतएव वरार्हः हे औत्तानपादे नृप यन् मनोगतं कामं मत्ताः अविशङ्कितः । वरं वृणीहि ।।७।।

अनुवाद— हे ध्रुव ! हमने सुना है कि भगवान् पद्मनाभ के चरणों के सन्निकट तुम रहते हो अतएव तुम वरदान प्राप्त करने के योग्य हो । तुम्हारे मन में जो कामना हो वह निःशङ्क होकर मुझसे वरदान के रूप में माँगो।।७।।

भावार्थ दीपिका

काममसंकोचेन । अविशङ्कितो निर्भयः । अनन्तरमतिनिकटम् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

कामम् पद का अर्थ है बिना किसी सङ्कोच के । अविशङ्कितः अर्थात् निर्भय होकर, अनन्तरम् अर्थात् अत्यन्त सन्निकट ।।७।।

मैत्रेय उवाच

स राजराजेन वराय चोदितो ध्रुवो महाभागवतो महामतिः ।
हरौ स वव्रेऽचलितां स्मृतिं यया तरत्ययत्नेन दुरत्ययं तमः ।।८।।

अन्वयः— राजराजेन वराय चोदितः । महाभागवतः महामतिः ध्रुवः हरौ अचलितां स्मृतिं वव्रे यया अयत्नेन दुरत्यं तमः तरिति ।।८।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— राजाओं के भी राजा कुबेर के द्वारा वरदान माँगने के लिए आग्रह किए जाने पर महाभागवत महाबुद्धिमान ध्रुवजी ने श्रीभगवान् की निश्चल स्मृति का वरदान माँगा, जिस स्मृति के द्वारा मनुष्य बिना किसी प्रयास के दुस्तर संसार सागर को पार कर जाता है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

स वराय चोदित इत्यनुवादरूपं पृथग्वाक्यम् । अतः स वव्र इति तच्छब्दस्यापौनरुक्त्यम् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

वरदान माँगने के लिए प्रेरित यह अनुवाद रूप से अलग वाक्य है, अतएव तत् में पुनरुक्ति नहीं है ।।८।।

तस्य प्रीतेन मनसा तां दत्त्वैडविडस्ततः । पश्यतोऽन्तर्दधे सोऽपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ।।९।।

अन्वयः— ऐडविडः प्रीतेन मनसा तस्मतां दत्त्व ततः पश्यतः अन्तर्दधे, सोऽपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ।।९।।

अनुवाद— इडविडा के पुत्र कुबेरजी ने प्रसन्न मन से ध्रुव को भगवत स्मृति का वरदान दिया और उनकी आँखों के सामने से वे अन्तर्धान हो गये और ध्रुवजी अपने नगर में आ गये ।।९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।९।।

अथायजत यज्ञेशं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः । द्रव्यक्रियादेवतानां कर्म कर्मफलप्रदम् ।।१०।।

अन्वयः— अथ भूरिदक्षिणौः क्रतुभिः यज्ञ क्रिया देवतानाम् कर्म कर्म फलप्रदम् यज्ञेशं अयजत ।।१०।।

अनुवाद— उसके पश्चात् ध्रुवजी ने बड़ी-बड़ी दक्षिणाओं वाले यज्ञों के द्वारा द्रव्य किया, देवता सम्बन्धी कर्म, फल और फल प्रदाता यज्ञ के स्वामी श्रीभगवान् की आराधना की ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

द्रव्यक्रियादेवतानां कर्मसाध्यं फलरूपं कर्मफलप्रदं चेत्यर्थः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ही द्रव्य, क्रिया औरदेवता के कर्म कर्मों के फल तथा फल प्रदाता भी है ।।१०।।

सर्वात्मन्यच्युतेऽसर्वेतीवैघां भक्तिमुद्वहन् । ददर्शात्मनि भूतेषु तमेवावस्थितं विभुम् ।।११।।

अन्वयः— असर्वे सर्वात्मनि अच्युते तीवौघां भक्तिम् उद्वहन् तमेव विभुम् आत्मनि भूतेषु च अवस्थितं ददर्श ।।११।।

अनुवाद— सर्वोपधि शून्य सर्वात्मा भगवान् अच्युत में प्रवल वेग सम्पन्न भक्ति से युक्त होने के कारण उन्हीं व्यापक् श्रीभगवान् को वे अपनी आत्मा में और सबों के भीतर अन्तर्यामी रूप से देखने लगे ।।११।।

भावार्थ दीपिका

सर्वस्यात्मनि । असर्वे सर्वोपाधिविवर्जिते ।।११।।

भाव प्रकाशिका

सर्वास्यात्मनि सबों की आत्मा स्वरूप, **असर्वे सर्वोपधि** रहित परमात्मा में ।।११।।

तमेवं शीलसंपन्नं ब्रह्मण्यं दीनवत्सलम् । गोप्तारं धर्मसेतूनां मेनिरे पितरं प्रजाः ।।१२।।

अन्वयः— एवं शील सम्पन्नं ब्रह्मण्यम् दीन वत्सलम् धर्मसेतूनां गोप्तातारम् प्रजाः पितरं मेनिरे ।।१२।।

अनुवाद— इस प्रकार से शील गुण सम्पन्न, ब्राह्मण भक्त, दीनवत्सल धर्म की मर्यादाओं की रक्षा करने वाले उन ध्रुवजी को प्रजा अपने पिता के समान मानती थी ।।१२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१२।।

षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं शशास क्षितिमण्डलम् । भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन्नभोगैरशुभक्षयम् ॥१३॥

अन्वयः— भोगै पुण्यक्षय अभोगैः अशुभ क्षयम् कुर्वन्, षट्त्रिंशद् वर्षसाहस्रं क्षितिमण्डलं शशास ॥१३॥

अनुवाद— ऐश्वर्यो के भोग के द्वारा पुण्यों का और भोगों के त्याग पूर्वक यज्ञादि कर्मो के अनुष्ठान के द्वारा पाप का विनाश करते हुए ध्रुवजी छत्तीस हजार वर्षों तक भूण्डल का प्रशासन किए ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

भोगैरैश्वर्यादिभिः । अभोगैर्यज्ञाद्यनुष्ठानैः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

भोगैं अर्थात् इस तरह के ऐश्वर्यों के भोग आदि के द्वारा और अभोगैः यज्ञों के अनुष्ठान आदि के द्वारा॥१३॥

एवं बहुसवं कालं महात्माऽविचलेन्द्रियः । त्रिवर्गौपयिकं नीत्वा पुत्रायादान्नृपासनम् ॥१४॥

अन्वयः— एवं महात्मा अविचलेन्द्रियः त्रिवर्गौपयिकं बहुसवं नीत्वा पुत्राय नृपासनं अदात् ॥१४॥

अनुवाद— इस प्रकार से महात्मा जितेन्द्रिय ध्रुवजी अर्थ, धर्म और काम के सम्पादन में बहुत से वर्षो को बिताकर अपने पुत्र उत्कल को राजसिंहासन सौप दिये ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

बहवः सवा यागाः संवत्सरा वा यस्मिंस्तं कालं त्रिवर्गसाधकं नीत्वा । अविचलानि संयतानीन्द्रियाणि यस्य ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

जिसमें बहुत से सव अर्थात् याग अथवा संवत्सर विद्यमान हो ऐसे त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) के साधक समय को बिताकर जितेन्द्रिय ध्रुवजी ने राजसिंहासन अपने पुत्र उत्कल को समर्पित कर दिया ॥१४॥

मन्यमान इदं विश्वं मायारचितमात्मनि । अविद्यारचितस्वप्नगन्धर्वनगरोपमम् ॥१५॥

अन्वयः— इदं विश्वम् आत्मनि रचितम् माया रचितम् अविद्यारचित स्वप्न गन्धर्वनग रोपमम् मन्यमानः ॥१५॥

अनुवाद— इस सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च को अविद्यारचित स्वप्न तथा गन्धर्व नगर के समान माया से अपने में रचित मानने लगे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

इदं देहादि भगवन्माययात्मनि स्वस्मिन् रचितं मन्यमानः । अत्राविद्यासृष्टिं दृष्टान्तयति । अविद्यारचितेति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

इस देह आदि श्रीभगवान् को श्रीभगवान् की माया के द्वारा अपने में ही मानने लगे, अविद्या सृष्टि का दृष्टान्ता **अविद्या रचित इत्यादि** श्लोकांश से दिया गया है ॥१५॥

आत्मस्त्र्यपत्यसुहृदो बलमृद्धकोशमन्तःपुरं परिविहारभुवश्च रम्याः ।
भूमण्डलं जलधिमेखलमाकलय्य कालोपसृष्टमिति स प्रययौ विशालाम् ॥१६॥

अन्वयः— आत्मस्त्र्यपत्य सुहृदः बलम् ऋद्धकोशम् अन्तःपुरम् परिविहारभुवः च रम्याः जलधि मेखलम् भूण्डलम् कालोपसृष्टम् इति आकलय्य विशालाम् प्रययौ ॥१६॥

अनुवाद— शरीर, स्त्री, पुत्र, मित्र, सेना, समृद्ध, खजाना, अन्तःपुर, सुन्दर विहार भूमि, समुद्र पर्यन्त भूण्डल का राज्य, ये सभी विनाशशील हैं, यह जानकर वे बदरिकाश्रम चले गये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

आत्मा देहः । आत्मादि मायिकमपि पुनः कालेनोपसृष्टमनित्यमाकलय्य विचिन्त्य विशालां बदरिकाश्रमम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

यहाँ आत्मा शब्द शरीर का वाचक है । शरीर आदि सबके सब माया जन्य होकर भी विनाश शील हैं, इस बात का मन में विचार करके ध्रुवजी बदरिकाश्रम चले गये ।।१६।।

तस्यां विशुद्धकरणः शिववार्विगाह्य बद्धासनं जितमरुन्मनसाहृताक्षः ।
स्थूले दधार भगवत्प्रतिरूप एतद्ध्यायंस्तदव्यवहितो व्यसृजत्समाधौ ।।१७।।

अन्वयः— तस्यां शिवावार्विगाह्य, विशुद्ध करण; बद्धवासनम् जितमरुत् मनसा हृताक्षः स्थूले भगवत्मप्रतिरूपे दधार, एतत् ध्यायन् तदव्य व्यहितः समाधौ व्यसृजत् ।।१७।।

अनुवाद— उस विशाला में पवित्र जल में स्नान करके शुद्ध इन्द्रियों वाले हो गये । तदनन्तर स्थिर आसन पर बैठकर, प्राणायाम के द्वारा वायु को वश में कर के मन के द्वारा इन्द्रियों को विषय पराङ्मुख उन्होंने बनाया। पत्पश्चात् उन्होंनेमन को श्रीभगवान् के विराट् रूप में लगा दिया । श्रीभगवान् की इसी रूप का ध्यान करते करते वे ध्याता धेय आदि भेद से रहित होकर वे निर्विकल्प समाधि में लीन होकर उस विराट रूप का भी परित्याग कर दिए ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तत्कृतमष्टाङ्गयोगमाह । तस्यां शिवं वाः उदकं विगाह्य प्रविश्येति स्नानादिनियमा उक्ताः । विशुद्धकरण इति शमादयो यमाः । आसनादीनि स्फुटमेवोक्तानि । जितो मरुत्प्राणो येन । आहृतान्यक्षाणि येन । भगवतः प्रतिनिधिभूते स्थूले विराड्रूपे एतन्मनो दधार । ध्यायन्नव्यवहितो ध्यातृध्येयभेदशून्य; सन्समाधौ स्थितस्तत्स्थूलं व्यसृजत् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

बदरिकाश्रम में उनके द्वारा किए गये अष्टाङ्ग योग का वर्णन करते हैं । वहाँ पवित्र जल में स्नान करके ध्रुवजी विशुद्ध अन्त:करण वाले हो गये इस तरह शम दम इत्यादि का वर्णन किया गया है । आसनों आदि का तो इस श्लोक में स्पष्ट रूप से वर्णन है । उसके पश्चात् उन्होंने प्राणायाम के द्वारा प्राण वायु को वश में किया । तदनन्तर उन्होंने इन्द्रियों को विषय पराङ्मुख बनाया । उसके पश्चात् उन्होंने श्रीभगवान् के स्थूल विराट् रूप में अपने मन को लगा दिया । श्रीभगवान् के उस रूप का ध्यान करते हुए वे ध्याता ध्येय आदि भेद से रहित निर्विकल्प समाधि में उस विराट् रूप को भी त्याग दिये ।।१७।।

भक्ति हरौ भगवति प्रवहन्नजस्त्रमानन्दबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानः ।
विक्लिद्यमानहृदयः पुलकाचिताङ्गो नात्मानमस्मरदसाविति मुक्तलिङ्गः ।।१८।।

अन्वयः— हरौ भगवति भक्तिं अजस्रं भक्तिं प्रवह्न मुहुः आनन्दवाष्प कलया मुहुरर्द्यमानः विक्लिद्यमान हृदयः पुलकाचिताङ्गः असौ आत्मनं न अस्मरत इति मुक्तलिङ्गः ।।१८।।

अनुवाद— श्रीहरि के प्रति निरन्तर भक्ति का प्रवाह होते रहने के कारण उनके नेत्रों में बार-बार आनन्दाश्रु भर जाते थे । उसके कारण उनका हृदय द्रवित हो जाता था । शरीर में रोमाञ्च हो जाता था । तदनन्तर देहाभिमान के भी विनष्ट हो जाने के कारण उनको इस बात का भी पता नहीं चलता था कि मैं ध्रुव हूँ ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

एवमजस्त्रं नित्यं हरौ भक्तिं प्रकर्षेण बहन्नसौ ध्रुवोऽहमित्यात्मानं न सस्मार । यतो मुक्तलिङ्गस्त्यक्तशरीराभिमानः । तत्र हेतवः-आनन्दवाष्पस्य कलया विन्दुप्रवाहेणाभिभूयमानः । विक्लिद्यमानं द्रवद्धृदयं यस्य । पुलकैर्व्याप्ताङ्गः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से सदैव ही श्रीहरि की भक्ति करने वाले ध्रुव को इस बात की भी यादगारी नहीं रहती थी कि मैं यह ध्रुव हूँ, क्योंकि वे शरीरात्माभिमान से रहित हो गये थे। उसके कारण ये थे कि वह आनन्दाश्रु की बून्दों के प्रवाह होते रहने के कारण वे अभिभूत हो जाते थे। वे उसी आनन्दाश्रु में ही भींग जाते थे। उनका हृदय द्रवित हो जाता था। और उनका सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो जाता था ॥१८॥

स ददर्श विमानाग्र्यं नभसोऽवतरद्ध्रुवः। विभ्राजयद्दश दिशो राकापतिमिवोदितम् ॥१९॥

अन्वयः— स ध्रुवः नभस अवतरद् विमानाग्र्यं अवतरत् उदितं राकापतिमिव दश दिशः विभ्राजयत् ददर्श ॥१९॥

अनुवाद— वे ध्रुव आकाश से उत्तरते हुए एक श्रेष्ठ विमान को देखे जो पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान दशो दिशाओं को प्रकाशित कर रहा था ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥१९॥

तत्रानु देवप्रवरौ चतुर्भुजौ श्यामौ किशोरावरुणाम्बुजेक्षणौ।
स्थिताववष्टभ्य गदां सुवाससौ किरीटहाराङ्गदचारुकुण्डलौ ॥२०॥

अन्वयः— तत्रानु चतुर्भुजौ श्यामौ किशोरौ अरुणाम्बुजेक्षणौ गदाम् अवष्टभ्य स्थितौ सुवाससो किरीटहाराङ्गद चारुकुण्लौ ददर्श ॥२०॥

अनुवाद— उन्होंने उसमें चार भुजाओं वाले, श्याम वर्ण के किशोरावस्था वाले जिनके नेत्र लाल कमल के समान लाल थे तथा गदा धारण किए हुए उसमें स्थित थे, उनके वस्त्र सुन्दर थे तथा वे सुन्दर किरीट हार, अङ्गद और कुण्डल धारण किए हुए थे ऐसे दो श्रेष्ठ देवताओं को देखा ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अन्वनन्तरं देवप्रवरौ ददर्शेत्यनुषङ्गः। गदामवष्टभ्य स्थितौ। किरीटादिभिः सहिते चारुणी कुण्डले ययोः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् ध्रुवजी ने उस विमान में विद्यमान दो श्रेष्ठ देवताओं को देखा जो गदा धारण किए हुए थे तथा किरीट आदि के साथ जिनके दोनों कुण्डल सुन्दर थें ॥२०॥

विज्ञाय तावुत्तमगायकिंकरावभ्युत्थितः साध्वसविस्मृतक्रमः।
ननाम नामानि गृणन्मधुद्विषः पार्षत्प्रधानाविति संहताञ्जलिः ॥२१॥

अन्वयः— तौ उत्तमगायकिङ्करौ पार्षद प्रवरौ विज्ञाय साध्वस विस्मृतक्रमः अभ्युत्थितः मधुद्विषः नामानि गृणन् संहताजलिः ननाम ॥२१॥

अनुवाद— वे दोनों श्रीभगवान् के किङ्कर और प्रधान पार्षद हैं यह जानकर शीघ्रता करने में पूजा के क्रम को भूल गये और खड़े हे गये, ध्रुवजी भगवान् मधुसूदन के नामों का उच्चारण करते हुए हाथ जोड़कर उन दोनों को प्रणाम किए ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

उत्तमगायः पुण्यश्लोकस्तस्य किंकरौ तौ विज्ञाय मधुद्विषः पार्षत्प्रधानाविति हेतोः। साध्वसेन संभ्रमेण विस्मृतपूजाक्रमः केवलं तस्य नामानि गृणन्ननाम ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उत्तमगाय श्रीभगवान् का नाम है उन दोनों को श्रीभगवान् का किङ्कर जानकर चूंकि वे दोनों भगवान् मधुसूदन का नामोच्चारण करते हुए ध्रुवजी शीघ्रता में भगवान् के पूजा का क्रम भूल गये और केवल भगवान् के ही नाम का उच्चारण करते हुए उन दोनों देव श्रेष्ठों को प्रणाम किए ।।२१।।

तं कृष्णपादाभिनिविष्टचेतसं बद्धाञ्जलिं प्रश्रयनम्रकन्धरम् ।
सुनन्दनन्दावुपसृत्य सस्मितं प्रत्यूचतुः पुष्करनाभसंमतौ ।।२२।।

अन्वयः— कृष्णपादाभिनिष्टचेतसं, बद्धाञ्जलिं प्रश्रयनम्रकन्धरं तं पुष्करनाभसंमतौ सुनन्दनन्दौतं उपसृत्य सस्मितं प्रत्युचतुः ।।२२।।

अनुवाद— जिनका मन श्रीभगवान् के चरणों में लगा था ऐसे ध्रुवजी हाथ जोड़े खड़े थे तथा नम्रता के कारण शिर नीचे किए थे, उनके पास श्रीहरि के प्रिय पार्षद आकर मुस्कुराते हुए कहे ।।२२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।२२।।

सुनन्दनन्दावूचतुः

भो भो राजन्सुभद्रं ते वाचं नोऽवहितः शृणु । यः पञ्चवर्षस्तपसा भवान्देवमतीतृपत् ।।२३।।

अन्वयः— भो भो राजन् ते सुभद्रं नः अवहितं वाचं शृणु यः पञ्चवर्षः भवान् तपसा देवमतीतृपत् ।।२३।।

सुनन्द और नन्द ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! आपका मङ्गल हो । आप सावधानी पूर्वक हमारी बातों को सुनें आपने पाँच वर्ष की अवस्था में तपस्या के द्वारा श्रीभगवान् को संतुष्ट कर दिया था ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

सुभद्रमिति सशरीरस्यैव विष्णुपदारोहाभिप्रायम् । अतीतृपत्तर्पितवान् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

सभद्रम् कहने का अभिप्राय है कि आपको सशरीर भगवान् के लोक में चलना है, आपने पाँच वर्ष की अवस्था में ही भगवान् को अपनी तपस्या के द्वारा तृप्त कर दिया था ।।२३।।

तस्याखिलजगद्धातुरावां देवस्य शार्ङ्गिणः । पार्षदाविह संप्राप्तौ नेतुं त्वां भगवत्पदम् ।।२४।।

अन्वयः— तस्य अखिलजगद्धातुः शार्ङ्गिणः देवस्य आवाम् पार्षदौ त्वाम् भगवत् पदम् नेतुम् इह सम्प्राप्तौ ।।२४।।

अनुवाद— उन सम्पूर्ण जगत् के नियामक श्रीभगवान् के हम दोनों पार्षद है आपको श्रीभगवान् के लोक में ले जाने के लिए आये हैं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

आवां तस्य पार्षदौ ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

हम दोनों श्रीभगवान् के पार्षद हैं ।।२४।।

सुदुर्जयं विष्णुपदं जितं त्वया यत्सूरयोऽप्राप्य विचक्षते परम् ।
आतिष्ठ तच्चन्द्रदिवाकरादयो ग्रहर्क्षतारा: परियन्ति दक्षिणाम् ।।२५।।

अन्वयः— त्वया सुदुर्जयं विष्णुपदं जितं सूरयः अप्राप्य परम् विचक्षते । चन्द्रदिवाकरादयः ग्रहर्क्षताराः यत् दक्षिणाम् परियन्ति तत् आतिष्ठ ।।२५।।

अनुवाद— जिसको प्राप्त करना अत्यन्त कठिन उस विष्णुपद को आपने अपनी भक्ति के प्रभाव से प्राप्त किया है । परमज्ञानी सप्तर्षिगण भी उसे नहीं प्राप्त कर सके वे भी उसे नीचे ही देखते हैं । चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारागण उसकी प्रदक्षिणा किया करते हैं आप चलकर उसी धाम में निवास करें ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

सुदुर्जयत्वे हेतुः-सूरयः सप्तर्षयोऽपि यदप्राप्य केवलमधः स्थिताः पश्यन्ति, यच्चन्द्रादयः प्रदक्षिणं यथा भवत्येवं परिक्रामन्ति तदातिष्ठाधितिष्ठ ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

विष्णु पद के दुर्जयत्व के कारण ये सप्तषिगण मे भी उस पद को नीचे से ही रहकर उसे देखते हैं । और सूर्य चन्द्रमा आदि भी उसकी प्रदक्षिणा करते हैं । उस पद को आप प्राप्त करें ।।२५।।

अनास्थितं ते पितृभिरन्यैरप्यङ्ग कर्हिचित् । आतिष्ठ जगतां वन्द्यं तद्विष्णो परम पदम् ।।२६।।

अन्वयः— हे अङ्ग ते पितृभिः अन्यैः अपि कर्हिचित् अनास्थितं जगतां वन्द्यम् विष्णोः तत् परमं पदम् आतिष्ठ ।।२६।।

अनुवाद— हे वत्स तुम्हारे पितृगणों तथा दूसरों के द्वारा वह पद कभी भी अधिष्ठित नहीं हुआ उस जगत् वन्द्य भगवान् विष्णु के सर्वश्रेष्ठ पद को आप अधिष्ठित करें ।।२६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।२६।।

एतद्विमानप्रवरमुत्तमश्लोकमौलिना । उपस्थापितमायुष्मन्नधिरोढुं त्वमर्हसि ।।२७।।

अन्वयः— आयुष्मन् एतत् विमानप्रवरम् उत्तमश्लोकमौलिना उपस्थापितम् आरोढुं त्वम् अर्हसि ।।२७।।

अनुवाद— हे आयुष्मन् इस श्रेष्ठ विमान को पुण्यश्लोक शिरोमणि भगवान् विष्णु ने भेजा है आप इस पर चढ़ें ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

आयुष्मन्नित्यपि सशरीरयानाभिप्रायमेव ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

आयुष्मन् ! यह संबोधन भी सशरीर विमान पर बैठने के अभिप्राय से प्रयुक्त है ।।२७।।

मैत्रेय उवाच

निशम्य वैकुण्ठनियोज्यमुख्ययोर्मधुच्युतं वाचमुरुक्रमप्रियः ।
कृताभिषेकः कृतनित्यमङ्गलो मुनीन्प्रणम्याशिषमभ्यवादयत् ।।२८।।

अन्वयः— वैकुण्ठनि योज्यमुख्ययोः मधुच्युतं वाचं निशम्य उरुक्रमाप्रियः कृताभिषेकः कृतनित्यमङ्गलः मुनीम् प्रणम्य आशिषम् अभ्यवादयत् ।।२८।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवान् के पार्षद मुख्यों की अमृत स्राविणी वाणी को सुनकर श्रीभगवान् के प्रिय ध्रुवजी ने स्नान करके नित्य कर्मों से निवृत्त हुए फिर मङ्गल अलङ्कार को धारण करके मुनियों को प्रणाम किए और उन लोगों से आर्शीवाद के रूप में स्वस्ति वाचन कराये ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

मधु च्यवते स्रवतीति मधुच्युत् ताम् । पाठान्तरे मधु च्युतं यस्यां ताम् । अमृतस्राविणीमित्यर्थः कृतं नित्यं कर्म मङ्गलं चालंकरणं येन । अभ्यवादयद्वादयामास ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

जिससे मधु (अमृत) चूता है इस अर्थ में मधुच्युतम् पदव्युत्पन्न है । मधुच्युताम् पाठ होने पर अर्थ होगा जिसमें मधु गिरा है ऐसा अर्थ होगा । अर्थात् अमृतस्राविणी कृतं नित्यं कर्म मङ्गालं चालङ्कारणं येन यह कृत नित्यमङ्गलः पद का विग्रहः अर्थात् नित्यकर्म और मङ्गलालङ्कार को धारण किए हुए । अभ्यवादयत् अर्थात् स्वस्ति वाचन कराये ।।२८।।

परीत्याभ्यर्च्य धिष्ण्याग्र्यं पार्षदावभिवन्द्य च । इयेष तदधिष्ठातुं बिभ्रद्रूपं हिरणमयम् ।।२९।।

अन्वयः— धिष्ण्याग्रं परित्य अभ्यर्च्य पार्षदौ च अभिवन्द्य निरामयं रूपं विभ्रत् तदधिष्ठातुम् इयेष ।।२९।।

अनुवाद— उस श्रेष्ठ विमान की परिक्रमा करके और उसकी पूजा करके उन्होंने उन दोनों पार्षदों को प्रणाम किया उसके पश्चात् अपने सुवर्णमय शरीर को धारण किए हुए विमान पर चढना चाहे ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

तदेव रूपं हिरण्मयं प्रकाशबहुलं विभ्रत्सन्नियेष ऐच्छत् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

ध्रुवजी का शरीर वही था किन्तु वह शुद्ध सत्त्व के तेजोविशेष से युक्त था ऐसे शरीर को धारण किए हुए वे विमान पर चढना चाहे ।।२९।।

तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शान्तकमागतम् । मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम् ।।३०।।

अन्वयः— तदा उत्तानपदः पुत्र आगतम् अन्तकम् ददर्श मृत्योः मूर्ध्नि पदं दत्त्वा अद्भुतं गृहम् आरुरोह ।।३०।।

अनुवाद— उस समय ध्रुवजी ने देखा कि काल मूर्तिमान रूप से खड़े है । वे काल के शिर पर पैर रखकर उस अद्भुत विमान में बैठ गये ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

गृहं विमानम् । अयं भावः-यदा ध्रुवो विमानमारोढुमैच्छत्तदा मृत्युरागत्य प्रणम्योवाच । हे महाराज, मामङ्गीकुरु । उवाच ध्रुवः, स्वागतं ते, क्षणं तावदुपविश । एवमुक्त्वा ध्रुवो विष्णोः स्मरणं कृत्वा मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा विमानाग्र्यमारुरोह।।३०।।

भाव प्रकाशिका

विमान को ही गृह शब्द से कहा गया है । श्लोक का अभिप्राय है कि जब ध्रुव विमान पर चढना चाहे उस समय मृत्यु आकर उनको प्रणाम करके कहा— हे महाराज मुझको स्वीकार कीजिये । ध्रुवजी ने कहा क्षणभर के लिए बैठ जाओ । इस तरह से कहकर ध्रुवजी भगवान् विष्णु का स्मरण करके मृत्यु के शिर पर पैर रखकर उस श्रेष्ठ विमान पर बैठ गये ।।३०।।

तदा दुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवादयः । गन्धर्वमुख्याः प्रजगुः पेतुः कुसुमवृष्टयः ।।३१।।

अन्वयः— तदा दुन्दुभयः मृदङ्गपणवादयः नेदुः, गन्धर्व मुख्याः प्रजगुः कुसुमवृष्टयः पेतुः ।।३१।।

अनुवाद— उस समय आकाश में दुन्दुभि, मृदङ्ग तथा पणव आदि बजने लगे, मुख्य गन्धर्वो ने गीत गाया और फूलों की वर्षा हुई ।।३१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३१।।

स च स्वर्लोकमारोक्ष्यन्सुनीतिं जननीं ध्रुवः । अन्वस्मरदगं हित्वा दीनां यास्ये त्रिविष्टपम् ॥३२॥

अन्वयः— स्वलोकम् आरोक्ष्यन् सः ध्रुवः जननी सुनीतिं दीनां हित्वा कथम् अङ्ग त्रिविष्टपम् यस्यामि ॥३२॥

अनुवाद— विमान पर चढकर श्रीभगवान् के लोक में जाने के लिए उत्सुक ध्रुवजी को अपनी माता सुनीति की याद आयी वे सोचे उस बेचारी को छोड़कर मैं अकेले दुर्लभ वैकुण्ठ लोक में कैसे जाऊँ? ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

दीनां हित्वा कथमगं दुर्गमं त्रिविष्टपं यास्यामीत्यन्वस्मरत् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

अपनी माता बेचारी सुनीति को छोड़कर मैं कैसे दुर्लभ वैकुण्ठ में जाऊँ ॥३२॥

इति व्यवसितं तस्य व्यवसाय सुरोत्तमौ । दर्शयामासतुर्देवीं पुरो यानेन गच्छतीम् ॥३३॥

अन्वयः— इति तस्य व्यवस्थितं व्यवसाय सुरोत्तमौ पुरो यानेन गच्छतीम् देवीं दर्शयामासतुः ॥३३॥

अनुवाद— ध्रुव के इस प्रकार के अभिप्राय को जानकर वे दोनों देवश्रेष्ठ नन्द और सुनन्द उनके विमान से आगे जाती हुई सुनीति को दिखाये ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

व्यवसितमभिप्रायम् । व्यवसाय ज्ञात्वा ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

व्यवस्थितम् अर्थात् अभिप्राय । व्यवसाय अर्थात् जानकर ॥३३॥

तत्र तत्र प्रशंसद्भिः पथि वैमानिकैः सुरैः । अवकीर्यमाणो ददृशे कुसुमैः क्रमशो ग्रहान् ॥३४॥

अन्वयः— तत्र-तत्र पथि प्रशंसद्भिः वैमानिकैः सुरैः कुसुमैः अवकीर्यमाणः क्रमशो ग्रहान् ददृशे ॥३४॥

अनुवाद— मार्ग में स्थान-स्थान पर प्रशंसा करने वाले देवों के द्वारा पुष्पों की वृष्टि किए जाते हुए वे क्रमशः ग्रहों को देखे ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

त्रिलोकीं देवयानेन सोऽतिव्रज्य मुनीनपि । परस्ताद्यद्ध्रुवगतिर्विष्णोः पदमथाभ्यगात् ॥३५॥

अन्वयः— स; देवयानेन त्रिलोकीम् अतिव्रज्य मुनीन् अपि परस्तात् अथ ध्रुवगतिः विष्णोः पदम अभ्यगात् ॥३५॥

अनुवाद— वे ध्रुवजी विमान के द्वारा देवमार्ग से त्रिलोकी को पार करके सप्तर्षियो को भी पार करके ऊपर की ओर भगवान् विष्णके लोक में ध्रुवगति प्राप्त कर लिए ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

देवयानेन देवमार्गेण विमानेनेति वा। मुनीन्सप्तर्षीनपि । ततः परस्ताद्यद्विष्णोः पदं तदभ्यगात् । ध्रुवा गतिर्यस्य सः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

देवयाने का अर्थ देवमार्ग से है या विमान से है । ये दोनों अर्थ देवयानेन के हो सकते हैं । मुनियों अर्थात् सप्तर्षियों को भी पार करके वे उसके ऊपर भगवान् विष्णु के लोक में गये इस प्रकार उन्होंने ध्रुवगति को प्राप्त कर लिया ॥३५॥

यद्भ्राजमानं स्वरूचैव सर्वतो लोकास्त्रयो ह्यनुविभ्राजन्त एते ।
यन्नाव्रजञ्जन्तुषु येऽननुग्रहा व्रजन्ति भद्राणि चरन्ति येऽनिशम् ॥३६॥

अन्वयः— यत् स्वरूचैव सर्वत भ्राजमानम् एतेहि त्रयो लोका अनु विभ्राजन्ते ये जन्तुषु अननुग्रहा ते नाव्रजन् ये अनिशम् भद्राणि चरन्ति ते व्रजन्ति ॥३६॥

अनुवाद— यह लोक अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होता रहता है । इसके प्रकाश से सभी लोक प्रकाशित होते रहते है । जो लोग दूसरे जीवों पर दया नही करते हैं, वे इस लोक में नहीं जाते हैं और जो लोग सदा दूसरों का कल्याण करते है वे ही इस लोक में जाते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

यद्भ्राजमानमनु यस्य रुचा लोका विभ्राजन्ते । येऽननुग्रहा निष्कृपास्ते यन्नाव्रजन्न गतवन्तः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

जिसके प्रकाश से ही सभी लोक प्रकाशित होते हैं । जो लोग दूसरे जीवों पर कृपा नहीं करते हैं, वे इस लोक में नहीं आते हैं ॥३६॥

शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूतानुरञ्जनाः । यान्त्यञ्जसाऽच्युतपदमच्युतप्रियबान्धवाः ॥३७॥

अन्वयः— शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूतानुरञ्जनाः अच्युतप्रिय बान्धवाः अञ्जसा अच्युतम् अच्युत पदम् यान्ति॥३७॥

अनुवाद— जो शान्त, समदर्शी शुद्ध और सब प्राणियों को प्रसन्न रखने वाले तथा भगवान् और भक्तों को ही अपना बान्धव मानते हैं वे ही लोग सुगमता से श्रीभगवान् के कभी भी विनष्ट नहीं होने वाले इस लोक में जाते हैं॥३७॥

भावार्थ दीपिका

अच्युतः प्रियो बान्धवो येषाम् ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

अच्युत प्रिय बान्धवाः का विग्रह है अच्युत ही जिनके प्रिय बन्धु हैं ॥३७॥

इम्युत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः कृष्णपरायणः । अभूत्रयाणां लोकानां चूडामणिरिवामलः ॥३८॥

अन्वयः— इति कृष्णपरायणः, उत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः त्रयाणां लोकानाम् अमलः चूडामणिः इव अभूत् ॥३८॥

अनुवाद— इस तरह से श्रीभगवान् के भक्त महाराज उत्तानपद के पुत्र ध्रुव तीनों लोकों के ऊपर निर्मल चूड़ामणि के समान विराजमान हुए ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३८॥

गम्भीरवेगो निमिषं ज्योतिषां चक्रमाहितम् । यस्मिन्भ्रमति कौरव्य मेढ्यामिव गवां गणः ॥३९॥

अन्वयः— हे कौरव्य मेढ्यां गवां गण इव यस्मिन् गम्भीर वेगः ज्योतिषं चक्रम् आहितं भ्रमति ॥३९॥

अनुवाद— हे कुरुनन्दन ! जिस तरह दँवरी के सभी बैल मेढी के खम्भे के चारो ओर घूमते हैं, उसी तरह गम्भीर वेग वाला यह ज्योतिष चक्र उस अविनाशी लोक के आधार पर ही निरन्तर घूमता रहता है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

अनिमिषमनलसं ज्योतिषां चक्रं यस्मिन्नाहितमर्पितं सद्भ्रमति । मेढ्यामाहितो गम्भीरवेगो गवां गण इव ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

आलस्य रहित ज्योतिष चक्र जिसमें ही स्थित रहकर सदा उसी तरह घूमता रहता है जिस तरह खम्भे से बन्धे हुए दँवरी के बैल उसके चारो ओर घूमते हैं ।।३९।।

महिमानं विलोक्यास्य नारदो भगवानृषिः । आतोद्यं वितुदन् श्लोकान् सत्रेऽगायत्मचेतसाम् ।।४०।।

अन्वयः— अस्य महिमानं विलोक्य भगवान् ऋषिः नारदः आतोद्यं वितुदन् प्रचेतसाम् सत्रे श्लोकान् अगायत्।।४०।।

अनुवाद— ध्रुवजी की महिमा को ही देखकर देवर्षि नारदजी ने प्राचेतसों के सत्र में अपनी वीणा बजाकर इन तीन श्लोकों को गाया था ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

आतोद्यं वीणां वितुदन्वादयन्प्रचेतसां ब्रह्मसत्रे भगवन्माहात्म्यप्रसङ्गेन ध्रुवमहिमप्रतिपादनपरांस्त्रीन् श्लोकानगायत् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

अतोद्य शब्द से यहाँ वीणा को कहा गया है । प्राचेतसों के ब्रह्मसत्र में नारदजी वीणा बजाकर श्रीभगवान् की महिमा के प्रसङ्ग में ध्रुवजी की महिमा के प्रतिपादन में तीन श्लोकों को गाये थे ।।४०।।

नारद उवाच

नूनं सुनीतेः पतिदेवतायास्तपःप्रभावस्य सुतस्य तां गतिम् ।
दृष्ट्वाऽभ्युपायानपि वेदवादिनो नैवाधिगन्तुं प्रभवन्ति किं नृपाः ।।४१।।

अन्वयः— नूनं पतिदेवतायाः सुनीतेः सुतस्य तपः प्रभावस्य तां गतिम् । अभ्युपायान् दृष्ट्वा अपि वेदवादिनः अधिगन्तुं न प्रभवन्ति किं नृपाः ।।४१।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— निश्चित रूप से पति परायण सुनीति के पुत्र ध्रुवजी की तपस्या के प्रभाव से प्राप्त हुई उस गति को ब्रह्मर्षिगण भी प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते तो राजाओं की कौन सी बात है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

नूनमिति । पतिरेव देवता यस्यास्तस्याः सुतस्य यस्तपः प्रभावस्तस्य तां गतिं फलमधिगन्तुं वेदवादशीला ब्रह्मर्षयोऽपि नैव प्रभवन्ति । अभ्युपायान्भगवद्धर्मान दृष्ट्वापि । किं पुनर्नृपाः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

निश्चित रूप से पति को ही देवता रूप से आराधना करने वाली सुनीति के पुत्र की तपस्या के प्रभाव से प्राप्त होने वाले गति रूपी फल को ब्रह्मर्षिगण भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं तो फिर राजाओं की कौन सी बात हैं ।।४१।।

यः पञ्चवर्षो गुरुदारवाक्शरैर्भिन्नेन यातो हृदयेन दूयता ।
वनं मदादेशकरोऽजितं प्रभुं जिगाय तद्भक्तगुणैः पराजितम् ।।४२।।

अन्वयः— यः पञ्चवर्षः गुरुदारवाक्शरैः भिन्नेन हृदयेन दूयता वनं यातः मदादेशकरः तद्भक्तगुणैः पराजितम् अजितं प्रभुं जिगाय ।।४२।।

अनुवाद— जो ध्रुव पाञ्च वर्ष की ही अवस्था में अपनी सौतेली माता के वाग्बाणों से मर्माहत होकर दुःखी हृदय से वन में चले गये और मेरे उपदेश के अनुसार ही आचरण करके अपने भक्तों के गुणों से ही पराजित होने वाले अर्थात् भक्तों के वश में हो जाने वाले और कभी भी पराजित नहीं होने वाले श्रीहरि को जीत लिए।।४२।।

भावार्थ दीपिका

तपःप्रभावं गतिं च विशिनष्टि द्वाभ्याम् । गुरुदाराः पितृपत्नी सुरुचिस्तस्या वाक्शरैर्भिन्नेनात एव दूयता हृदयेन वनं यातः सन्नजितमपि यो जिगाय वशीकृतवान् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

तपस्या के प्रभाव और उससे प्राप होने वाली गति का वर्णन दो श्लोकों से करते हैं अपनी सौतेली माता के वाग्वाणों से मर्माहत एवं दुःखी हृदय से ध्रुव वन में चले गये और अपनी तपस्या के प्रभाव से कभी भी परास्त नहीं होने वाले श्रीभगवान् को जीत लिए अर्थात् अपने वश में कर लिए ।।४२।।

यः क्षत्रबन्धुर्भुवि तस्याधिरूढमन्वारुरुक्षेदपि वर्षपूगैः ।
षट्पञ्चवर्षो यदहोभिरल्पैः प्रसाद्य वैकुण्ठमवाप तत्पदम् ।।४३।।

अन्वयः— यः षट्पञ्चवर्षः यदहोभि अल्पैः वैकुण्ठं प्रसाद्य तत्पदम् अवाप तस्याधिरूढम् क्षत्रबन्धु तमनु भवेत् भुवि यः वर्षपूगैः आरुरुक्षेदपि ।।४३।।

अनुवाद— पाँच या छह वर्ष के ध्रुव ने बहुत कम दिनों में श्रीभगवान् को प्रसन्न करके उनके पद को प्राप्त कर लिया, पृथिवी पर ऐसा कोई दूसरा क्षत्रिय है जो अनेक वर्षों तक तपस्या करके उस पद को प्राप्त कर सके।।४३।।

भावार्थ दीपिका

तस्याधिरूढं तेन प्राप्तं पदं यो भुवि क्षत्रबन्धुः क्षत्रियो भवेत्स तमनु वर्षसमूहैरप्यारोढुमित्त्छेदपि किम् । तत्सङ्कल्पोऽप्यशक्यो दूरत आरोहणमित्यर्थः । कथंभूतं पदम् । षड्वा पञ्च वा वर्षाणि यस्य सः । अल्पैरेवाहोभिर्वैकुण्ठं प्रसाद्य यत्तस्य पदमवाप तत् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

ध्रुव के द्वारा प्राप्त पद को पृथिवी पर कोई दूसरा क्षत्रिय हो सकता है क्या जो अनेक वर्षों में भी उस पद को प्राप्त करने की इच्छा कर सके ? उसका कोई सङ्कल्प भी नहीं कर सकता है उस पद को प्राप्त करना तो बहुत दूर है यदि कोई कहे कैसा है वह पद ? तो इसका उत्तर है कि पाँच या छह वर्षों की अवस्था वाले उसने कुछ ही दिनों में श्रीभगवान् को प्रसन्न करके उनके पद को प्राप्त कर लिया । वैकुण्ठ भगवान् का एक नाम है ।।४३।।

मैत्रेय उवाच

एतत्तेऽभिहितं सर्वं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया । ध्रुवस्योद्दामयशसश्चरितं संमतं सताम् ।।४४।।

अन्वयः— त्वया इह यत् उद्दामयशसः ध्रुवस्य सतां सम्मतं चरितं पृष्टं एतत् ते सर्वम् अभिहितम् ।।४४।।

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— विदुरजी आपने जो उदार कीर्ति वाले ध्रुव के सन्तजनों के सम्मत चरित्र के पूछा था वह मैंने आपको पूर्ण रूप से सुना दिया ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

उद्दाममुत्कृष्टं यशो यस्य ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

उत्कृष्ट यश वाले ध्रुवजी के चरित को मैंने सुनाया है ।।४४।।

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वस्त्ययनं महत् । स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं प्रशस्यमघमर्षणम् ॥४५॥
श्रुत्वैतच्छ्रद्धयाभीक्ष्णमच्युतप्रियचेष्टितम् । भवेद्भक्तिर्भगवति यया स्यात्क्लेशसंक्षयः ॥४६॥

अन्वयः— एतत् धन्यं, यशस्यम्, आयुष्यम्, पुण्यं महत् स्वस्त्ययनम् स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं, प्रशस्यम्, अधमर्षणम्, श्रद्धया अच्युतप्रिय चेष्टितं अभीक्ष्णं श्रुत्वा भगवति भक्ति र्भवेत् यया क्लेशसंक्षयः स्यात् ॥४५-४६॥

अनुवाद— यह धन, यश और आयु की वृद्धि करने वाले परम पवित्र और अत्यन्त मङ्गलमय स्वर्ग तथा अविनाशी पद को प्रदान करने वाले देवत्व को प्रदान करने वाले, प्रशंसनीय तथा पापविनाशक भगवद्भक्त ध्रुव के चरित को श्रद्धा पूर्वक बार-बार सुनने से मनुष्य की श्रीभगवान् में भक्ति होती है और उससे सम्पूर्ण क्लेशों का नाश हो जाता है ॥४५-४६॥

भावार्थ दीपिका

धनादेर्निमित्तम् । ध्रौव्यं ध्रुवस्थानप्रापकम् । प्रशस्यं प्रशंसार्हम् अधमर्षणं पापनाशनम् । अच्युतप्रियस्य ध्रुवस्य चेष्टितं श्रुत्वा यो वर्तते तस्य भक्तिर्भवेत् ॥४५-४६॥

भाव प्रकाशिका

धन्यम् अर्थात् धन आदि के प्रदान करने वाले, ध्रौव्यम अर्थात् ध्रुव स्थान को प्रदान करने वाले, प्रशस्यम् अर्थात् प्रशंसनीय अधमर्षणम् यानी पाप विनाशक श्रीभगवान् के प्रिय ध्रुव के चरित को सुनने से मनुष्य की श्रीभगवान् में भक्ति होती है और उससे क्लेशों का नाश होता है ॥४५-४६॥

महत्त्वमिच्छतां तीर्थं श्रोतुः शीलादयो गुणाः । यत्र तेजस्तदिच्छूनां मानो यत्र मनस्विनाम् ॥४७॥

अन्वयः— महत्त्वमिच्छतां तीर्थम् श्रोतुः शील गुणादयः यत्र तेजस्तदिच्छूनाम् मनस्विनाम् यत्र मानम् ॥४७॥

अनुवाद— महत्त्व चाहने वालों को यह महत्त्व प्रदान करने वाला है, श्रवण करने वाले को यह शील आदि गुणों को प्रदान करता है । तेज चाहने वाले को यह ऐसा स्थान प्रदान करता है जहाँ उसका तेज बढता है, और मनस्वी पुरुषों को ऐसा स्थान प्राप्त होता है, जिससे उनको सम्मान प्राप्त होता है ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

तीर्थं महत्त्वावाप्तिस्थानम् । गुणा यत्र भवन्ति ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

तीर्थ शब्द से उस स्थान को बतलाया गया है जहाँ महत्त्व चाहने वाले को महत्त्व की प्राप्ति होती है । **शीलादयो गुणाः** के द्वारा बतलाया गया है कि ध्रुव चरित को सुनने वाले को ऐसा स्थान मिलता है जिससे उसके शील आदि गुण प्राप्त होते हैं ॥४७॥

प्रयतः कीर्तयेत्प्रातः समवाये द्विजन्मनाम् । सायं च पुण्यश्लोकस्य ध्रुवस्य चरितं महत् ॥४८॥

अन्वयः— पुण्यश्लोकस्य ध्रुवस्य महत् चरितं सायं प्रातः प्रयतः द्विजन्मनां समवाये कीर्तयेत् ॥४८॥

अनुवाद— पुण्यकीर्ति ध्रुवजी के इस चरित का सायंकाल और प्रातःकाल ब्रह्मण आदि द्विजातियों के समूह में एकाग्र चित्त से कीर्तन करे ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

समवाये सभायाम् ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

समवाये पद का अर्थ है सभा में ॥४८॥

पौर्णमास्यां सिनीवाल्यां द्वादश्यां श्रवणेऽथ वा । दिनक्षये व्यतीपाते संक्रमेऽर्कदिनेऽपि वा ॥४९॥
श्रावयेच्छ्रद्दधानानां तीर्थपादपदाश्रयः । नेच्छंस्तत्रात्मनात्मानं संतुष्ट इति सिध्यति॥५०॥

अन्वयः— तीर्थपादपदाश्रयः न इच्छन् पौणमास्यां सिनीवाल्यां, द्वादश्यां अथवा श्रवणे, दिनक्षये व्यतीपाते सङ्क्रमे अर्कदिने अपिवा श्रावयेत् श्रद्धानानां तत्र आत्मना आत्मानं संतुष्टः इति सिध्यति ॥४९-५०॥

अनुवाद— परम पवित्र चरण वाले श्रीभगवान् के चरणों की शरण में रहने वाला पुरुष निष्काम भाव से इस ध्रुव जी के चरित को पूर्णिमा के दिन या आमावस्या के दिन या द्वादशी के दिन या श्रवण नक्षत्र में या तिथि का क्षय होने पर या व्यतीपात योग में या संक्रान्ति के दिन या रविवार के दिन श्रद्धालु पुरुषां को सुनता है वह अपने आपमें स्वयं सन्तुष्ट रहने लगता है ॥४९-५०॥

भावार्थ दीपिका

नेच्छन्निष्कामतत्र श्रवणे आत्मनैवात्मानं प्रति संतुष्टो भवतीति हेतोः सिद्धिं प्राप्नोति ॥४९-५०॥

भाव प्रकाशिका

नेच्छन् का अर्थ है निष्काम भाव से सुनाने के कारण अपने आप में संतुष्ट हो जाता है, यह सिद्धि की प्राप्ति का कारण है ॥४९-५०॥

ज्ञानमज्ञाततत्त्वाय यो दद्यात्सत्पथेऽमृतम् । कृपालोर्दीननाथस्य देवास्तस्यानुगृह्णते ॥५१॥

अन्वयः— अज्ञाततत्त्वाय सत्पथेऽमृतम् ज्ञानम् यो दद्यात् तस्य कृपालोः दीननाथस्य देवा अनुगृह्णते ॥५१॥

अनुवाद— जो लोग तत्त्वज्ञान से रहित हैं, उनके लिए यह साक्षात् भगवद् विषयक अमृत मयज्ञान है, उन लोगों को जो इसका ज्ञान प्रदान करता है उस कृपाल दीननाथ पुरुष पर देवगण कृपा करते हैं ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

किंच सत्पथे भगवन्मार्गेऽमृतरूपं ज्ञानं यो दद्यात् ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

जो व्यक्ति भगवद् विषयक इस अमृतमय ज्ञान को तत्त्वानभिज्ञ लोगों को प्रदान करता हैं उन लोगों पर देवगण कृपा करते हैं ॥५१॥

इदं मया तेऽभिहितं कुरूद्वह ध्रुवस्य विख्यातविशुद्धकर्मणः ।
हित्वार्भकः क्रीडनकानि मातुर्गृहं च विष्णुं शरणं यो जगाम ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचरित नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अन्वयः— हे कुरुद्वह यः अर्मकः क्रीडनकानि मातुः गृहंच त्यक्त्वा विष्णुं शरणं जगाम विख्यात विशुद्ध कर्मणः ध्रुवस्य इदं मया ते अभिहितम् ॥५२॥

अनुवाद— हे विदुरजी ! जो बाल्यावस्था में खिलौनों और अपनी माता के गृह को त्यागकर भगवान् विष्णु के शरण में चले गये वे ध्रुवजी विख्यात और विशुद्ध चरित वाले हैं। यह मैंने आपको उनका चरित सुना दिया ॥५२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थस्कन्ध के ध्रुवचरित नामक बारहवें अध्याय का शिवाप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

ध्रुवस्य चरितं मया तेऽभिहितम् । मातुर्गृहं च हित्वा ।।५२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

मैत्रेयजी ने कहा कि विदुरजी मैंने यह आपको ध्रुव के चरित को सुना दिया । जो ध्रुवष्वाल्यावस्था में ही खिलौनों और अपनी माता के गृह को त्यागकर भगवान् विष्णु के शरण में चले गये थे ।।५२।।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थस्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के बारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१२।।

* * *

तेरहवाँ अध्याय

प्रचेतोपाख्यान

सूत उवाच

निशम्य कौषारविणोपवर्णितं ध्रुवस्य वैकुण्ठपदाधिरोहणम् ।
प्ररूढभावो भगवत्यधोक्षजे प्रष्टुं पुनस्तं विदुरः प्रचक्रमे ॥१॥

अन्वयः— कौषारविणा उपवर्णितं ध्रुवस्य वैकुण्ठपदाधिरोहणं निशम्य भगवति अधोक्षजे प्ररूढभावः विदुरः तं पुनः प्रष्टुम् प्रचक्रमे ॥१॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— शौनकजी श्रीमैत्रेय महर्षि के द्वारा ध्रुवजी के विष्णुपद पर आरूढ होने के वृत्तान्त को सुनकर विदुरजी के हृदय में भगवान् विष्णु के प्रति भक्ति का उद्रेक हो गया और उन्होंने पुनः मैत्रेयजी से पूछना प्रारम्भ किया॥१॥

भावार्थ दीपिका

एवं पञ्चभिरध्यायैर्ध्रुवचर्याऽनुवर्णिता । अथैकादशभिश्चित्रं पृथुचारित्रमुच्यते ॥१॥ तत्र त्रयोदशे वक्तुं पृथोर्जन्म ध्रुवान्वये। अङ्गो वेनपिता पुत्रक्रौर्याद्गत इतीर्यते ॥२॥ प्ररूढो भावो भक्तिर्यस्य ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से पाँच अध्यायों में ध्रुव के चरित का वर्णन किया गया, ग्यारह अध्याय में महाराज पृथु के अद्भुत चरित का वर्णन किया जा रहा है ॥१॥ उसमें भी ध्रुव के वंश में पृथु के जन्म का वर्णन करने के लिए वेन के पिता अङ्ग अपने पुत्र की क्रूरता के कारण वन में चले गयेइस बात का वर्णन तेरहवें अध्याय में किया जा रहा है ॥२॥ ध्रुव के चरित को सुनने के लिए विदुरजी के हृदय में भक्ति का उद्रेक हो गया था ॥१॥

विदुर उवाच

के ते प्रचेतसो नाम कस्यापत्यानि सुव्रत । कस्यान्ववाये प्रख्याताः कुत्र वा सत्रमासते ॥२॥

अन्वयः— हे सुव्रत ! ते प्रचेतसः नाम के ? कस्यापत्यानि ? कस्यान्ववाये प्रख्याताः कुत्रा वा सत्रमासत ॥२॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे सुन्दर व्रत वाले मैत्रेयजी ! प्रचेतस कौन थे ? वे किसके पुत्र थे ? किसके वंश में प्रख्यात थे ? और वे कहाँ पर यज्ञ किए ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अन्ववाये वंशे ।।२।।

भाव प्रकाशिका

अन्ववाये पद का अर्थ वंश में है ।।२।।

मन्ये महाभागवतं नारदं देवदर्शनम् । येन प्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्याविधिर्हरेः ।।३।।

अन्वयः— देवदर्शनं नारदं महाभागवतं मन्ये येन हरेः परिचर्याविधि क्रियायोगः प्रोक्तः ।।३।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के दर्शन से कृतकृत्य बने नारदजी को मैं महाभागवत मानता हूँ । उन्होंने पाञ्चरात्र का निर्माण करके श्रीहरि की पूजा विधि रूप क्रिया योग का उपदेश दिया ।।३।।

भावार्थ दीपिका

नारदेन प्रचेतसां सत्रे वर्णिताः कथाः प्रष्टुं तन्महिमानमाह-मन्य इति । देवस्य दर्शनं यस्य । हरेः परिचर्याप्रकारः क्रियायोगः पञ्चरात्रे येन प्रोक्तः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी के द्वारा प्रचेतसों के सत्र में वर्णित कथा को पूछने के लिए विदुरजी नारदजी की महिमा का वर्णन करते हैं । श्रीभगवान् का दर्शन करने के कारण कृतकृत्य वने नारदजी पञ्चरात्रागम का निर्माण करके श्रीभगवान् की पूजा विधि रूप क्रियायोग का उपदेश दिये ।।३।।

स्वधर्मशीलैः पुरुषैर्भगवान्यज्ञपूरूषः । इज्यमानो भक्तिमता नारदेनेरितः किल ।।४।।

अन्वयः— स्वधर्मशीलैः पुरुषैः इज्यमानो यज्ञ पुरुषो भगवान् भक्तिमता नारदेन किल ईरितः ।।४।।

अनुवाद— जिस समय अपने धर्म का पालन करने वाले प्रचेतसों के द्वारा यज्ञ पुरुष भगवान् पूजित किए जा रहे थे उसी समय भक्ति सम्पन्न नारदजी ने ध्रुव का गुणगान किया था ।।४।।

भावार्थ दीपिका

स्वधर्मशीलैः पुरुषैः प्रचेतोभिः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

स्वधर्मशीलैः पुरुषैः शब्द के द्वारा प्रचेताओं को कहा गया है । वे प्रचेतागण भगवान् की जब आराधना कर रहे थे उसी समय नारदजी ने उन लोगों को ध्रुवजी का चरित सुनाया था ।।४।।

यास्ता देवर्षिणा तत्र वर्णिता भगवत्कथाः । मह्यं शुश्रूषवे ब्रह्मन्कार्त्स्न्येनाचष्टुमर्हसि ।।५।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! तत्र याः भगवत् कथाः देवर्षिणा वर्णिताः ताः शुश्रुषवे मह्यं कार्त्स्न्येन आचष्टुम् अर्हसि ।।५।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! उस सत्र में देवर्षि ने भगवत सम्बन्धी जिन कथाओं कावर्णन किया था उन सबों को आप मुझे पूर्ण रूप से सुनायें मैं उसे सुनना चाहता हूँ ।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५।।

मैत्रेय उवाच

ध्रुवस्य चोत्कलः पुत्रः पितरि प्रस्थिते वनम् । सार्वभौमश्रियं नैच्छदधिराजासनं पितुः ।।६।।

अन्वयः— पितरि वनेप्रस्थिते ध्रुवस्य पुत्रः उत्कलः सार्वभौमश्रियं पितुः अधिराजासनं न ऐच्छत् ।।६।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— अपने पिता ध्रुव के वन में चले जाने पर ध्रुवजी के पुत्र उत्कल अपने पिता के सार्वभौम श्री से सम्पन्न राजसिंहासन को नहीं प्राप्त करना चाहे ।।६।।

भावार्थ दीपिका

ध्रुवस्य वंशे ते जाता इति वक्तुं ध्रुवस्य वंशमनुक्रामति-ध्रुवस्येत्यादिना। पितुः सार्वभौमश्रियं नैच्छदधिराजासनं च।।६।।

भाव प्रकाशिका

वे प्रचेतस ध्रुव के वंश में उत्पन्न हुए थे इस बात को बतलाने के लिए ध्रुव के वंश के क्रम का वर्णन मैत्रेयजी इस श्लोक से करते हैं ध्रुव के पुत्र उत्कल थे । वे अपने पिता के वन में चले जाने पर पिता के सार्वभौम श्रीसम्पन्न राजसिंहासन को नहीं प्राप्त करना चाहे ।।६।।

स जन्मनोपशान्तात्मा निःसङ्ग समदर्शनः । ददर्श लोके विततमात्मानं लोकमात्मनि ।।७।।

अन्वयः— जन्मना उपशान्तात्मा निःसङ्गः समदर्शनःसः लोके विततम् आत्मानं आत्मनि च लोकं ददर्श ।।७।।

अनुवाद— जन्म से वह शान्तचित, आसक्ति रहित, समदर्शी वह पूरे संसार में व्यापक अपनी आत्मा को तथा आत्मा में पूरे संसार को देखता था ।।७।।

भावार्थ दीपिका

अनिच्छायां हेतुमाह-स इति चतुर्भिः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

राजसिंहासन नहीं चाहने के कारण को स इत्यादि चार श्लोकों से मैत्रेयजी बतलाते हैं ।।७।।

आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं प्रत्यस्तमितविग्रहम् । अवबोधरसैकात्म्यमानन्दमनुसंततम् ।।८।।
अव्यवच्छिन्नयोगाग्निदग्धकर्ममलाशयः । स्वरूपमवरुन्धानो नात्मनोऽन्यं तदैक्षत ।।९।।

अन्वयः— अव्यवच्छिन्न योगाग्नि दग्धकर्ममलाशयः अवबोधरसैकात्म्यम् आनन्दम् अनुसन्ततम् प्रत्यस्तमित विग्रहम्, ब्रह्मनिर्वाणम् आत्मानं स्वरूपमरुन्धानो आत्मनोऽन्यं न तदैक्षत ।।८-९।।

अनुवाद— उसके अन्तःकरण का वासना रूप मल अखण्डयोगाग्नि से भस्म हो चुका था अतएव वह अपनी आत्मा को विशुद्ध बोध रस के साथ अभिन्न और सर्वत्र व्यापक देखता था । सभी प्रकार के भेदों से रहित प्रशान्त ब्रह्म को ही अपना स्वरूप मानता था । वह अपनी आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं देखता था ।।८-९।।

भावार्थ दीपिका

आत्मानं स्वरूपभूतं ब्रह्मावरुन्धान आप्नुवन् जानन्नात्मनो नान्यं तदैक्षत । स्वयं तु सर्वस्मादन्यः सन् । कथंभूतं ब्रह्म। निर्वाणं शान्तम् । प्रत्यस्तमितः शान्तो विग्रहो भेदो यस्मिन् । अवबोधरसेनैकात्म्यं यस्य । कथंभूतः अव्यवच्छिन्नो यो योगः स एवाग्निस्तेन दग्धः कर्ममल आशयो वासना च यस्य ।।८-९।।

भाव प्रकाशिका

वह स्वरूप भूत आत्मा को ब्रह्म स्वरूप जानता था । अपनी आत्मा से भिन्न कुछ भी नहीं देखता था और स्वयं वह सबों से भिन्न था । प्रश्न है कि वह किस प्रकार के ब्रह्म का आत्मा समझता था ? तो इसका उत्तर है कि शान्त सभी भेदों से रहित ब्रह्म को । उसका ज्ञान स्वरूप ब्रह्म से अभेद हो गया था । वह कैसा था ? तो इसका उत्तर है कि अखण्डयोगाग्नि से उसके अन्तःकरण की वासना रूपी मल भस्म हो गया था ।।८-९।।

जडान्धबधिरोन्मत्तमूकाकृतिरतन्मतिः । लक्षितः पथि बालानां प्रशान्तार्चिरिवानलः ॥१०॥

अन्वयः— बालानां पथि प्रशान्तार्चिः अनल इव जडान्धवधिरोन्मत्तकृतिः लक्षितः अतन्मतिः ॥१०॥

अनुवाद— जिसकी ज्वालाशान्त हो गयी हो ऐसी अग्नि के समान वह अज्ञानियों को जड़, अन्धा, बहरा, पागल तथा गूङ्गे के समान दिखाई पड़ता था, वस्तुतः वह वैसा था नहीं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

जडादीनामिवाकृतिर्यस्य तथाभूतो लक्षितः । अतन्मतिः न तेषामिव मतिर्यस्य सर्वज्ञत्वात् । प्रशान्तान्यर्चीषि ज्वाला यस्यानलस्य तद्वत् स्थितः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उसकी आकृति जड़ इत्यादि के समान थी अतएव अज्ञानी जीव उसे वैसा देखकर समझते थे वस्तुत: उसकी बुद्धि वैसी नहीं थी अपितु वह सर्वज्ञ था । जिसकी ज्वाला समाप्त हो गयी हो ऐसी अग्नि के समान वह रहता था॥१०॥

मत्वा तं जडमुन्मत्तं कुलवृद्धाः समन्त्रिणः । वत्सरं भूपतिं चक्रुर्यवीयांसं भ्रमेः सुतम् ॥११॥

अन्वयः— समन्त्रिणः कुलवृद्धा तं जडम् उन्मतं मत्त्वा भ्रमेः यवीयांसम् सुतम् वत्सरं भूपतिं चक्रुः ॥११॥

अनुवाद— मन्त्रियों तथा कुल के वृद्ध पुरुषों ने उसे जड तथा उन्मत्त (पागल) मानकर भ्रमि के छोटे पुत्र वत्सर को राजा बनाया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

यवीयांसमुत्कलात्कनिष्ठम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

उत्कल से छोटे वत्सर को राजा बनाया ॥११॥

स्वर्वीथिर्वत्सरस्येष्टा भार्याऽसूत षडात्मजान् । पुष्पार्णं तिग्मकेतुं च इषमूर्जं वसुं जयम् ॥१२॥

अन्वयः— स्वर्वीर्थिः वत्सरस्य इष्टा भार्या, पुष्पार्णं, तिग्मकेतुं, इषम, ऊर्जं, वसुं जयम् च पट् आत्मजान् असूत॥१२॥

अनुवाद— स्वर्वीथि वत्सर की प्रियतमा पत्नी थी उसने छह पुत्रों को जन्म दिया पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, उर्ज, वसु और जय को ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

इष्टा प्रिया भार्या ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

स्वर्वीथि वत्सर की प्रिया पत्नी थी ॥१२॥

पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः । प्रातर्मध्यन्दिनं सायमिति ह्यासन्प्रभासुताः ॥१३॥

अन्वयः— पुष्पार्णस्य भार्याप्रभा दोषा च द्वे बभूवतुः प्रातः, मध्यंन्दिनं सायम् इति प्रभासुताः आसन् ॥१३॥

अनुवाद— पुष्पार्ण की दो पत्नियाँ थीं प्रभा और दोषा। प्रभा के तीन पुत्र थे प्रातः, मध्यन्दिन और सायम्॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

प्रदोषो निशिथो व्युष्ट इति दोषासुतास्त्रयः । व्युष्टः सुतं पुष्करिण्यां सर्वतेजसमादधे ॥१४॥

अन्वयः— प्रदेषो, निशिथः व्युष्ट इति त्रयः दोषा सुताः । व्युष्टः पुष्करिण्यां सर्वतेजसं सुतमादधे ॥१४॥

अनुवाद— दोषा के तीन पुत्र थे प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट व्युष्ट ने अपनी पत्नी पुष्करिणी से सर्वतेज नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

निशिथो निशीथः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

निशीथ का ही नाम निशिथ है ।।१४।।

स चक्षुः सुतमाकूत्यां पत्न्यां मनुमवाप ह । मनोरसूत महिषी विरजान्नड्वला सुतान् ।।१५।।
पुरुं कुत्सं त्रितं द्युम्नं सत्यवन्तमृतं व्रतम् । अग्निष्टोममतीरात्रं प्रद्युम्नं शिबिमुल्मुकम् ।।१६।।

अन्वयः— स ह आकूत्यां पत्न्यां चक्षु मनुम् सुतम् अवाप । मनोः महिषी, नड्वला विरजान् सुतान, पुरुं, कुत्सं, त्रितं द्युम्नम् सत्यवन्तम् ऋतम्, व्रतम्, अग्निष्टोमम् अतिरात्रं, प्रद्युम्नं शिविम्, उल्मुकम् इति द्वादश सुतान् असूत् ।।१५-१६।।

अनुवाद— सर्वतेजा ने अपनी आकूति नामक पत्नी के गर्भ से चक्षुःमनु नामक पुत्र को उत्पन्न किया । चक्षुः मनु की पत्नी का नाम नड्वला था उसने बारह पुत्रों को जन्म दिया । वे थे पुरु, कुत्स, त्रित, द्युम्न, सत्यवान्, ऋत, व्रत, अग्निष्टोम अतिरात्र, प्रद्युम्न, शिवि और उल्मुक ।।१५-१६।।

भावार्थ दीपिका

स सर्वतेजाः चक्षुः संज्ञः मनु सुतं पुत्रमवाप। मनोर्महिषी नड्वला विरजान् शुद्धान्पुरुषप्रमुखान्द्वादश सुतानसूत।।१५-१६।।

भाव प्रकाशिका

सभी प्रकार के तेजों से सम्पन्न चक्षु मनु नामक पुत्र को प्राप्त किए । मनु की रानी नड्वला निष्पाप शुद्ध स्वभाव वाले पुरु आदि बारह पुत्रों को जन्म दी ।।१५-१६।।

उल्मुकोऽजनयत्पुत्रान्पुष्करिण्यां षडुत्तमान् । अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम् ।।१७।।

अन्वयः— उल्मुकः पुष्करिण्यां षट् उत्तमान् पुत्रान् अजनयत् अङ्गं, सुमनसं, ख्यातिं, क्रतुम्, अङ्गिरसं गयम् ।।१७।।

अनुवाद— उल्मुक ने अपनी पुष्करिणी नामक पत्नी के गर्भ से छह उत्तम पुत्रों को उत्पन्न किया अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अङिरा, और गय को ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

सुनीथाऽङ्गस्य या पत्नी सुषुवे वेनमुल्बणम् । यद्दौःशील्यात्स राजर्षिर्निर्विण्णो निरगात्पुरात् ।।१८।।

अन्वयः— अङ्गस्य या पत्नी सुनीथा सा उल्बणम् वेनम् सुषुवे यद्दौः शील्यात् स राजर्षिः निर्विष्णः पुरात् निरगात्।।१८।।

अनुवाद— अङ्ग की पत्नी सुनीथा थी, उसने, क्रूरकर्मा वेन को जन्म दिया, उसकी दुष्टता से उद्विग्न होकर राजर्षि नगर छोड़कर चले गये ।।१८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१८।।

यमङ्ग शेपुः कुपिता वाग्वज्रा मुनयः किल । गतासोस्तस्य भूयस्ते ममन्थुर्दक्षिणं करम् ।।१९।।

अन्वयः— हे अङ्ग यम् कुपिताः वाग्वज्राः मुनय; किल शेपुः भूयः गतासोः तस्य ते दक्षिणं करं ममन्थुः ।।१९।।

अनुवाद— हे अङ्ग विदुर, उस वेन को वाणी ही जिनकी वज्र के समान हैं ऐसे मुनिगण कुपित होकर शाप दे दिए । पुनः मृत वेन के दाहिने हाथ का मुनियों ने मन्थन किया ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

अङ्ग हे विदुर । वागेव वज्रं येषाम् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

हे विदुर । जिनकी वाणी ही वज्र का काम करती है उन मुनियों ने वेन को शाप दे दिया और मरे हुए वेन के दाहिने हाथ का मन्थन मुनियों ने किया ।।१९।।

अराजके तदा लोके दस्युभिः पीडिताः प्रजाः । जातो नारायणांशेन पृथुराद्यः क्षितीश्वरः ।।२०।।

अन्वयः— तदा अराजके लोके दस्युभिः प्रजाः परिपीडिताः तदा नारायणंशेन आद्यः क्षितीश्वरः पृथु जातः ।।२०।।

अनुवाद— उस समय संसार के राजा से रहित हो जाने के कारण लुटेरों ने प्रजाओं को पीड़ित किया तो भगवान् नारायण के अंश से सर्वप्रथम पृथिवी पति महाराज पृथु हुए ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

मथने हेतुः— अराजक इति । आद्यः पुरग्रामादीनां तेन रचितत्वात् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

वेन के शरीर के मंथन का कारण था कि लोग राजाविहीन हो गये । लुटेरों का प्रभाव बढ गया, प्रजा पीडित हो गयी तथा मुनियों ने पृथु के शरीर का मंथन किया वे ही नगरों और ग्रामों की रचना किए । अतएव वे आद्य राजा थे ।।२०।।

विदुर उवाच

तस्य शीलनिधेः साधोर्ब्रह्मण्यस्य महात्मनः । राज्ञः कथमभूद्दुष्टा प्रजा यद्विमना ययौ ।।२१।।

अन्वयः— तस्य शीलब्निधे साधोः ब्रह्मण्यस्य महात्मनः राज्ञः प्रजा दुष्टा कथमभूत् यद्विमना ययौ ।।२१।।

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— महाराज अङ्ग तो शील गुण के खजाना थे, वे साधु स्वभाव, ब्राह्मण भक्त और महात्मा थे । उनका वेन जैसा दुष्ट पुत्र कैसे हो गया? कि उसके कारण दु:खी होकर महराज अङ्ग अपने नगर से निकल गये।।२१।।

भावार्थ दीपिका

यद्यस्याः प्रजाया हेतोर्विमनाः सन्ययौ ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

जिस प्रजा के कारण उदास होकर के महाराज अङ्ग नगर से निकल गये ।।२१।।

किंवांऽहो वेन उद्दिश्य ब्रह्मदण्डमयूयुजन् । दण्डव्रतधरे राज्ञि मुनयो धर्मकोविदाः ।।२२।।

अन्वयः—वेने कि वा अहं उद्दिश्य धर्मकोविदाः मुनयः दण्डव्रतधरे धर्म कोविदा मुनयः राज्ञि ब्रह्मदण्डम यूयुञ्जन्।।२२।।

अनुवाद—अथवा वेन के किस दोष के कारण धर्म के जानकार मुनियों ने राजा के ऊपर शाप रूप ब्रह्मदण्ड का प्रयोग किया ? क्योंकि दण्डव्रत तो राजा धारण करता है ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

किंवा अंहः अपराधं वेने उद्दिश्य आलक्ष्य ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

अथवा वेन में कौन सा अपराध को देखकर ।।२२।।

नावध्येयः प्रजापालः प्रजाभिरघवानपि । यदसौ लोकपालानां बिभर्त्योजः स्वतेजसा ॥२३॥

अन्वयः— प्रजभिः अधवान् अपि प्रजापालः न अवध्येयः यद् असौ स्वतेजसा लोकपालानां ओजो विभर्ति ॥२३॥

अनुवाद— प्रजाओं को चाहिए कि राजा से कोई पाप हो जाय तो वे सब उसका तिरस्कार न करें क्योंकि राजा अपने तेज से लोकपालों के तेज को धारण करता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यतोऽयमधर्म इत्याह । नावध्येयोऽवज्ञेयोऽपि न भवति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

राजा का अपमान अधर्म अतएव उसका अपमान नहीं करना चाहिए ॥२३॥

एतदाख्याहि मे ब्रह्मन्सुनीथात्मजचेष्टितम् । श्रद्दधानाय भक्ताय त्वं परावरवित्तमः ॥२४॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् सुनीथात्मज चेष्टितम् श्रद्दधानाय भक्ताय मे एतद् आख्याहि, त्वं परावर वित्तमः ॥२४॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! आप परावर तत्त्व के सर्व श्रेष्ठ ज्ञाता हैं आप इस सुनीथा के पुत्र वेन के चरिथ को श्रद्धा सम्पन्न तथा सुनने की इच्छा वाले मुझको सुनायें । मैं आपका भक्त हूँ ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

परावरविदां मध्येऽतिश्रेष्ठः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

तत्त्वज्ञों में श्रेष्ठ ॥२४॥

मैत्रेय उवाच

अङ्गोऽश्वमेधं राजर्षिराजहार महाक्रतुम् । नाजग्मुर्देवतास्तस्मिन्नाहूता ब्रह्मवादिभिः ॥२५॥

अन्वयः— राजर्षिः अङ्गः महाक्रतुम् आजहार ? तस्मिन् ब्रह्मवादिभिः आहूतः देवताः न आजग्मुः ॥२५॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— राजर्षि अङ्ग एक बार अश्वमेध नामक महायग किए किन्तु ब्रह्मवादियों के द्वारा आवाहन किए जाने पर भी देवता नहीं आये ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अभावी पुत्रः काम्यकर्मणा बलादापादितो न सुखाय भवेदिति द्योतयन्नङ्गस्य पुत्रोत्पत्तिक्रममाह अङ्ग इत्यादिना ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

अङ्ग इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है कि नहीं होने वाला पुत्र यदि काम्य कर्म के प्रभाव से हो भी जाय तो वह सुखप्रद नहीं होता है । इस अर्थ को सूचित करते हुए अङ्ग के पुत्र की उत्पत्ति का क्रम बतलाया गया है ॥२५॥

तमूचुर्विस्मतास्तत्र यजमानमथर्त्विजः । हवींषि हूयमानानि न ते गृह्णन्ति देवताः ॥२६॥

अन्वयः— तत्र विस्मिताः ऋत्विजः यजमानम् ऊचुः । ते हूयमानानि हवींषि देवताः नहिगृह्णन्ति ॥२६॥

अनुवाद— यह देखकर आश्चर्यचकित ऋत्विजों ने यजमान से कहा आपके हविष्य से किए जाने वाले होम को देवतागण नहीं स्वीकार कर रहे हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

राजन्हवींष्यदुष्टानि श्रद्धयासादितानि ते । छन्दांस्ययातयामानि योजितानि धृतव्रतैः ॥२७॥
न विदामेह देवानां हेलनं वयमण्वपि । यन्न गृह्णन्ति भागान्स्वान्ये देवाः कर्मसाक्षिणः॥२८॥

अन्वयः— राजन् ते हवींषि अदुष्टानि, श्रद्धया आसादितानि, छन्दांसि धृतव्रतैः अयातयामानि योजितानि— वयं देवानां अण्वपि हेलनं न विदामहे यत् ये कर्मसाक्षिणः देवाः स्वान् भागान् न गृहणन्ति ॥२७-२८॥

अनुवाद— राजन् आपके हविष्य दूषित नहीं हैं, वे श्रद्धापूर्वक निर्माण किए गये हैं, वेदमन्त्र भी किसी प्रकार बलहीन नहीं है । उनका प्रयोग करने वाले याजक पूर्ण रूप से नियमों का पालन करने वाले हैं । हमें यहाँ कोई भी ऐसी बात नहीं दिखती है जिससे कि इस यज्ञ में थोड़ा सा भी देवताओं का तिरस्कार हुआ हो, फिर भी कर्माध्यक्ष देवता न जाने किस कारण से अपने भाग को नहीं ग्रहण करते है ॥२७-२८॥

भावार्थ दीपिका

अयातयामान्यगतवीर्याणि ॥२७-२८॥

भाव प्रकाशिका

प्रबल ॥२७-२८॥

मैत्रेय उवाच

अङ्गो द्विजवचः श्रुत्वा यजमानः सुदुर्मनाः । तत्प्रष्टुं व्यसृजद्वाचं सदस्यांस्तदनुज्ञया ॥२९॥

अन्वयः— द्विजवचः श्रुत्वा सुदुर्मना यजमान अङ्गः तदनुज्ञया सदस्यान् तत् प्रष्टुं वाचं व्यसृजत् ॥२९॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— ब्राह्मणों की वाणी को सुनकर अत्यन्त दुःखी यजमान अङ्ग उनसबों की अनुमति प्राप्त करके सदस्यों से पूछने के लिए मौन तोड़ दिए ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञे गृहीतमौनोऽपि वाचं व्यसृजत् प्रायुंक्त ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञ में मौन धारण किए हुए राजा ने मौन तोड़ दिया ॥२९॥

नागच्छन्त्याहुता देवा न गृह्णन्ति ग्रहानिह । सदसस्पतयो ब्रूत किमवद्यं मया कृतम् ॥३०॥

अन्वयः— हे सदसस्पतयः आहूता देवा न आगच्छन्ति इह ग्रहान् नगृह्णन्ति, ब्रूत मया किम् अवद्यम् कृतम् ॥३०॥

अनुवाद— सदस्यों, आवाहन करने पर भी देवता नहीं आ रहे हैं और सोम पात्र को ग्रहण भी नहीं कर रहे हैं बतलाइये मैंने कौन सा अपराध किया है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

आहुता आहूताः । ग्रहान्सोमपात्राणि । इह यज्ञे न गृह्णन्ति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

आहुताः अर्थात् बुलाये गये । ग्रहान् अर्थात् सोम पात्रों को यज्ञ में ग्रहण नहीं करते हैं ॥३०॥

सदसस्पतय ऊचुः

नरदेवेह भवतो नाघं तावन्मनाक् स्थितम् । अस्त्येकं प्राक्तनमघं यदिहेदृक् त्वमप्रजः ॥३१॥

अन्वयः— नरदेव इह भवतः तावत् मनाक् अघो न एकं प्राक्तनम् अघम् अस्ति येन त्वम् इह इदृक् अप्रजः॥३१॥

सदस्यों ने कहा

अनुवाद— राजन इस विषय में आपका थोड़ा सा भी अपराध नहीं है एक प्राचीन पाप है जिसके कारण आप इस तरह से निःसन्तान हैं ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

इह जन्मनि न तावन्मनागीषदप्यघं स्थितम् । कथंचिज्जातस्य अघस्य सद्य एव प्रायश्चित्तैः क्षालनात् । किंतु प्राक्तनमेकमघमस्ति । यद्यस्मादीदृक् गुणाधिकोऽपि त्वं प्रजारहितः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

इस जन्म में आपका कोई भी पाप नहीं है क्योंकि यदि कोई पाप हो जाने पर उसका प्रायश्चित कर लेने से वह शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है । किन्तू पूर्वजन्म का एक पाप है जिसके कारण इस तरह अत्यधिक गुणों से युक्त भी आप प्रजाहीन हैं ।।३१।।

तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रजं नृप । इष्टस्ते पुत्रकामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ।।३२।।

अन्वयः— नृप ते भद्रं, तथा आत्मानं साधय पुत्रकामस्य ते इष्टः यज्ञभुक् ते पुत्रं दास्यति ।।३२।।

अनुवाद— राजन् आपका कल्याण हो । पहले आप सुपुत्र प्राप्त करने का कोई उपाय कीजिए । यदि आप पुत्र की कामना से यज्ञ करेंगे तो भगवान् यज्ञेश्वर आपको पुत्र प्रदान करेंगे ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

अतो यथा देवा हविर्गृह्णन्ति तथात्मानं सुप्रजं साधय । कथं साधनीयं तदाहुः-इष्ट इति ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

अतएव देवता जैसे हविष्य ग्रहण करें वैसा आप उपाय करें । यदि कहें कि वह कैसे करना चाहिए तो सदस्यों ने **इष्टः इत्यादि** श्लोक कहा ।।३२।।

तथा स्वभागधेयानि ग्रहीष्यन्ति दिवौकसः । यद्यज्ञपुरुषः साक्षादपत्याय हरिर्वृतः ।।३३।।

अन्वयः— यदि अपत्याय साक्षात् यज्ञ पुरुष; हरिः वृतः तथा दिवौकसः स्वभागधेयानि ग्रहिष्यन्ति ।।३३।।

अनुवाद— यदि सन्तान की प्राप्ति के लिए साक्षात् यज्ञ पुरुष श्रीहरि का आवाहन किया जायेगा तो देवतागण अपने आप अपने भाग को ग्रहण करेंगे ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

तथा सति स्वभागान् ग्रहीष्यन्ति । यद्यतो हरिः साक्षादाहूतः स्यात् । अतस्तेन सह सर्वे देवा आगमिष्यन्तीत्यर्थः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

वैसा करने पर देवता अपने भाग का ग्रहण करेगें क्योंकि साक्षात् श्रीहरि आहूत होंगे तो उनके साथ वे सभी देवता आयेंगे ही ।।३३।।

तांस्तान्कामान्हरिर्दद्याद्यान्यान्कामयते जनः । आराधितो यथैवैष तथा पुंसां फलोदयः ।।३४।।

अन्वयः— जनः यान् यान् कामयते तान् तान् कामान् हरिः दद्यात् । एष यथैव आराधितः तथा पुंसां फलोदयः ।।३४।।

अनुवाद— भक्त जिन-जिन वस्तुओं की कामना करता है श्रीहरि उन सभी काम्यपदार्थों को उसे प्रदान करते हैं, श्रीहरि की जैसी आराधना की जाती है, वे उसी के अनुसार उसे फल प्रदान करते हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

नन्वतितुच्छान्कामान्हरिः कथं दद्यात्तत्राह— तांस्तानिति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि अत्यन्त तुच्छ कामनाओं को श्रीहरि कैसे पूर्ण कर सकते हैं तो इस पर तांस्तान् यह श्लोक कहते हैं ।।३४।।

इति व्यवसिता विप्रास्तस्य राज्ञः प्रजातये । पुरोडाशं निरवपन् शिपिविष्टाय विष्णवे ।।३५।।

अन्वयः— इति व्यवसिता विप्राः तस्य राज्ञः प्रजापते शिपिविष्टाय विष्ण्वे पुराडाशं निरवपन् ।।३५।।

अनुवाद— इस प्रकार से राजा को पुत्र प्राप्त करने का निश्चय करने के पश्चात् ऋत्विजों ने पशुमय यज्ञ रूप से रहने वाले श्रीविष्णु भगवान् की पूजन के लिए पुरोडश नामक चरु को समर्पित किया ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

प्रजातये पुत्रोत्पत्तये । शिपिविष्टाय शिपिषु पशुषु यज्ञरूपेण प्रविष्टाय । तथा च श्रुतिः 'यज्ञे वै विष्णुः पशवः शिपिर्यज्ञ एव पशुषु प्रतितिष्ठति' इति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

प्रजात्ये अर्थात् पुत्रोत्पत्ति के लिए **शिपिविष्टाय** शिपि अर्थाति् पशुओं में प्रविष्टाय अर्थात् यज्ञ रूप से प्रविष्ट भगवान् विष्णु के लिए पुरोडाश नामक चरु का निर्वाप किया । श्रुति भी कहती है- यज्ञो वै विष्णु: शिपि यज्ञ स्य पशुषु प्रतितिष्ठति ।' अर्थात् यज्ञ ही विष्णु है । पशुओं में यज्ञ ही प्रतिष्ठित हैं ।।३५।।

तस्मात्पुरुष उत्तस्थौ हेममाल्यमलाम्बरः । हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धमादाय पायसम् ।।३६।।

अन्वयः— तस्मात् हेममाल्यमलाम्बरः पुरुष; हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धम् पायसम् आदाय उत्तस्थौ ।।३६।।

अनुवाद— उस अग्नि कुण्ड से सुवर्ण की माला और स्वच्छ वस्त्र धारण किए एक पुरुष सुवर्ण के पात्र में सिद्ध पायस को लेकर प्रकट हुआ ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

तस्मादिति योग्यतयाऽग्नेः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

योग्य अग्नि से एक पुरुष अपने हाथ में सुवर्ण के पात्र में सिद्ध पापस को लेकर प्रकट हुआ ।।३६।।

स विप्रानुमतो राज्ञा गृहीत्वाऽञ्जलिनौदनम् । अवघ्राय मुदा युक्तः प्रादात्पत्न्या उदारधीः ।।३७।।

अन्वयः— विप्रानुमतः स उदारधीः राजा अञ्जलिना ओदनम् गृहित्वा अवघ्रायमुदा युक्तः पत्न्यै प्रादात् ।।३७।।

अनुवाद— ब्राह्मणों की अनुमति प्राप्त राजा अपनी अञ्जलि में उस पायस को लेकर तथा उसे सूंघकर प्रसन्नता पूर्वक अपनी पत्नी को दे दिए ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

पत्न्यै प्रादात् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

अपनी पत्नी को उस पायस को दे दिए ।।३७।।

सा तत्पुंसवनं राज्ञी प्राश्य वै पत्युरादधे । गर्भं काल उपावृत्ते कुमारं सुषुवेऽप्रजा ॥३८॥

अन्वयः— सा अप्रजा राज्ञी तत्पुंसवनं प्राश्य वै प्रत्युरादधे, गर्भ काले उपावृत्ते कुमारं सुषुवे ॥३८॥

अनुवाद— वह पुत्र हीन रानी उस पुत्र प्रदान करने वाले खीर को खाकर पति के सहवास से गर्भ धारण की और उससे समयानुसार पुत्र को उसने जन्म दिया ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

पुमांसं सूतेऽनेनेति तथा तत्प्राश्य पत्युः सकाशाद्गर्भमादधे । अप्रजा सती ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

पुत्र प्रदान करने वाले उस खीर को खाकर सुनीथा ने अपने पति के सहावास से गर्भ धारण की । अभी तक वह पुत्रहीन थी ॥३८॥

स बाल एव पुरुषो मातामहमनुव्रतः । अधर्मांशोद्भवं मृत्युं तेनाभवदधार्मिकः ॥३९॥

अन्वयः— स बालः एव पुरुषः अधर्मांशोद्भवं मातामहम् मृत्युम् अनुव्रतः तेन अधार्मिकः अभवद् ॥३९॥

अनुवाद— वह बालक बाल्यावस्था से ही अधर्म के वंश में उत्पन्न अपने नाना मृत्यु का अनुगामी था । इसलिए वह भी अधार्मिक ही हुआ ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

मातामहं मृत्युम् । मृत्योर्हि पुत्री सुनीथा ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

उस बाल के नाना मृत्यु थे । मृत्यु की ही पुत्री सुनीथा थी ॥३९॥

स शरासनमुद्यम्य मृगयुर्वनगोचरः । हन्त्यसाधुर्मृगान्दीनान्वेनोऽसावित्यरौज्जनः ॥४०॥

अन्वयः— असाधुः शरासनमुद्यम्य मृगयुः वनगोचरः दीनान् मृगान् हन्ति, जनः असौ वेन इति अरौत् ॥४०॥

अनुवाद— वह दुष्ट धनुष बाण लेकर वन में जाता था और दीन मृगों को मारने का काम करता था । लोग उसको देखते ही कहने लगते थे, वेन आया वेन आया ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

मृगयुर्लब्धकः सन् तं दृष्ट्वा वेनोऽसावागच्छतीति जनः सर्वोऽप्यरौत् चुक्रोश ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

व्याधे के समान वह मृगों को मारता था । उसको देखकर लोग कहने लगते थे कि वेन आया वेन आया॥४०॥

आक्रीडे क्रीडतो बालान्वयस्यानतिदारुणः । प्रसह्य निरनुक्रोशः पशुमारममारयत् ॥४१॥

अन्वयः— अति दारुणः निरनुक्रोशः सः आक्रीडे क्रीडतः वयस्यान् बालान् प्रसह्य सः पशुमारम् अमारयत् ॥४१॥

अनुवाद— वह क्रूर और निर्दयी था वह क्रीड़ा के मैदान में खेलने वाले मित्र बालकों को पशुओं के समान पीटने के काम करता था ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

आक्रीडे क्रीडास्थाने बालान्पशूनिवामारयत् ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

क्रीडा स्थान में खेलने वाले अपने मित्र बालकों को वह पशु की तरह पीटता था ॥४१॥

तं विचक्ष्य खलं पुत्रं शासनैर्विविधैर्नृपः । यदा न शासितुं कल्पो भृशमासीत्सुदुर्मनाः ।।४२।

अन्वयः— तं खलं पुत्रं विचक्ष्य नृपः यदा विविधै; शासनैः शासितुं कल्पः न भृशम् दुर्मना आसीत् ।।४२।।

अनुवाद— उस वेन को दुष्ट प्रकति का देखकर महाराज अङ्ग उसे तरह-तरह से शासनों द्वारा सुधारने की कोशिश किए, किन्तु उसको सन्मार्ग पर लाने में वे समर्थ नहीं हो सके तो उनको बड़ा दुःख हुआ ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

विचक्ष्य दृष्ट्वा ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

विचक्ष्य पद का अर्थ देखकर है ।।४२।।

प्रायेणाभ्यर्चितो देवो येऽप्रजा गृहमेधिनः । कदपत्यभृतं दुःखं ये न विन्दन्ति दुर्भरम् ।।४३।।

अन्वयः— ये अप्रजाः गृहमेधिनः तैः प्रायेण देवः अभ्यर्चितः ये कदपत्यभृतं दुर्भरं दुःखम् न विन्दन्ति ।।४३।।

अनुवाद— (महाराज अङ्ग मन ही मन सोच रहे थे) जिन गृहस्थों के पुत्र नहीं हैं वे लोग अवश्य ही पूर्वजन्म में श्रीहरि की आराधना किए होंगे, इसीलिए उनको कुपुत्र के द्वारा होने वाले असह्य क्लेशों को नहीं भोगना पड़ता है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

दुर्मनसास्स्य कुपुत्रनिन्दावाक्यान्याह-प्राायेणेति त्रिभिः । अप्रजा ये तैरभ्यर्चितः । तत्र हेतुः-कुत्सितैरपत्यैः संभृतं दुर्भरं धारयितुमशक्यं दुःखं ये न विन्दन्ति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

प्रायेण इत्यादि तीन श्लोकों से दुःखी राजा के कुपुत्र की निन्दा वाक्यों का वर्णन किया गया है । जो पुत्रहीन गृहस्थ हैं उन सबों के द्वारा श्रीभगवान् की पूजा की गयी होगी । उसका कारण बतलाते हैं कुपुत्रों के द्वारा होने वाले क्लेश को उन लोगों को नहीं सहना पड़ता है ।।४३।।

यतः पापीयसी कीर्तिरधर्मश्च महान्नृणाम् । यतो विरोधः सर्वेषां यत आधिरनन्तकः ।।४४।।
कस्तं प्रजापदेशं वै मोहबन्धनमात्मनः। पण्डितो बहु मन्येत यदर्थाः क्लेशदा गृहाः।।४५।।

अन्वयः— यतः नृणाम् पापीयसी कीर्तिः, महान् अधर्मश्च, यतः सर्वेषां विरोधः यतः अनन्तकः आधिः यदर्थाः क्लेशदाः गृहा कः पण्डितः तं प्रजापदेशम् बहुमन्येत आत्मनः मोहबन्धनम् ।।४४-४५।।

अनुवाद— जिसके द्वारा अपयश ही फैले, महान् अधर्म हो, जिससे सबों का विरोध भी होए, और जिससे कभी भी समाप्त नहीं होने वाली चिन्ता होए, जिसके चलते गृह भी दुखदायी हो जाय ऐसी नाम मात्र के सन्तान का कौन विज्ञ पुरुष बहुत अधिक महत्त्व देगा, वह तो मोह का बन्धन ही है ।।४४-४५।।

भावार्थ दीपिका

सर्वेषां सर्वैः सह । आधिर्मानसीव्यथा । तं प्रजापदेशं पुत्रनाममात्रमप्यात्मनो मोहेन बन्धनम् । यदर्था यन्निमित्ताः क्लेशदा गृहा भवन्ति ।।४४-४५।।

भाव प्रकाशिका

सर्वेषां का अर्थ है, सबों के साथ, मानसिक व्यथा को अधि कहते हैं । उस नाम मात्र का पुत्र तो आत्मा के लिए मोह का बन्धन है । जिस कुपुत्र के कारण गृह भी दुखद हो जाता है ।।४४-४५।।

कदपत्यं वरं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात् । निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत्क्लेशनिवहा गृहाः ॥४६॥

अन्वयः— शुचां पदात् सदपत्यात् कदपत्यं वरं मन्ये, मर्त्यः, यत् क्लेश निवहाः गृहाः अतः मर्त्यः गृहात् निर्विद्येत्।।४६।।

अनुवाद— शोक प्रदान करने वाले सत्पुत्र की अपेक्षा कुपुत्र को ही अच्छा समझता हूँ, क्योंकि कुपुत्र के द्वारा गृह क्लेप्रद हो जाता है और मनुष्य उस गृह का आसानी से परित्याग कर देता है ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं निर्वेदहेतुत्वेन कुत्सितमेवापत्यमभिनन्दति-कदपत्यमिति । शुचां पदाच्छोकानां स्थानात् । वरत्वे हेतुः-निर्विद्येतेति। तत्कुतः । यद्यतः कदपत्यात् । गृहाः क्लेशनिवहा भवन्ति ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में महाराज अङ्ग कुपुत्र की प्रशंसा इसलिए करते हैं कि वह गृह से विरक्ति का कारण होता है । वे कहते हैं कि सत्पुत्र को छोड़ने में तो दुःख होता है उससे अच्छा कुपुत्र ही है जिसके कारण घर क्लेश मय हो जाता है और मनुष्य उस घर से विरक्त होकर उसका परित्याग कर देता है ।।४६।।

एवं स निर्विण्णमना नृपो गृहान्निशीथ उत्थाय महोदयोदयात् ।
अलब्धनिद्रोऽनुपलक्षितो नृभिर्हित्वा गतो वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥४७॥

अन्वयः— एवं निर्विणमना सः नृपः अलब्धनिद्रः महोदयात् गृहात् निशीथे उत्थाय नृभिः अनुपलक्षितः प्रसुप्तां वेन सुवं हित्वा गतः ।।४७।।

अनुवाद— इस तरह से उद्विग्नमन वाले राजा को रात में नींद नहीं आयी वे ऐश्वर्यो से भरे हुए अपने गृह से आधी रात की बेला में उठे, उससमय उनको कोई भी नहीं देख पाया और वेन की माता सुनीथा निद्रा में वे सुध सोई थी उसकों भी त्यागकर वन में चले गये ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

महतामुदयानां विभूतीनामुदयो यस्मिंस्तस्माद्गृहाद्गतः । या वेनं सूते स्म ताम् ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

जो गृह महान् विभूतियों से भरा हुआ था उस गृह से राज निकलकर वन में चले गये । वे सुध सोई वेन की माता को भी छोड़कर वे चले गये ।।४७।।

विज्ञाय निर्विद्य गतं पतिं प्रजाः पुरोहितामात्यसुहृद्गणादयः ।
विचिक्युरुर्व्यामतिशोककातरा यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः ॥४८॥

अन्वयः— निर्विद्य गतं पतिं विज्ञाय प्रजाः पुरोहितामात्यसुहृद गणादयः, अतिशोककातराः उर्व्याम् विचिक्युः यथा निगूढं पुरुपं कुयोगिनः ।।४८।।

अनुवाद— महाराज विरक्त होकर घर से निकल गये हैं, यह जानकर शोकाकुल प्रजाएँ, पुरोहित, आमात्य तथा मित्रगण आदि उनकी खोज पृथिवी पर किए किन्तु वे उनको उसी तरह नहीं देख पाए जैसे अपरिपक्व योग वाला योगी अपने हृदय में विद्यमान परमात्मा को बाहर खोजता है ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

प्रजाः पुरोहितादयश्च विचिक्युरन्वेषितवन्तः । तं तत्रैव सन्तमपि नापश्यन्निति दृष्टान्तेनाह-यथेति ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

प्रजाओं और पुरोहितों आदि ने राजा को खोजा किन्तु उन लोगों को उनका पता नहीं चला। राजा यद्यपि वहीं थे फिर भी वे नहीं देख पाये। दृष्टान्त के रूप में कहा गया है कि जैसे कुयोगी अपने हृदय में विद्यमान परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर पाता है ॥४८॥

अलक्षयन्तः पदवीं प्रजापतेर्हतोद्यमाः प्रत्युपसृत्य ते पुरीम्।
ऋषीन्समेतानभिवन्द्य साश्रवो न्यवेदयन्पौरव भर्तृविप्लवम् ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे त्रयोदशोऽध्याय; ॥१३॥

अन्वयः— प्रजापतेः पदवीम् अलक्षयन्तः हतोद्यमः ते पुरीम् मृत्युपसृप्य, हे पौरव ! समेतान् ऋषीन् अभिवन्द्य साश्रवः भर्तृ विप्लवम् न्यवेदयन् ॥४९॥

अनुवाद— प्रजाओं के स्वामी का पता न लगा सकने के कारण उन लोगों का प्रयास व्यर्थ हो गया, वे नगर में आकर एकत्रित हुए ऋषियों को प्रणाम करके आँखों से आँसू बहाते हुए महाराज के नहीं मिलने का समाचार सुनाये ॥४९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

साश्रवो रुदन्तः। भर्तुर्विप्लवं नाशमदर्शनमित्यर्थः ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

रोते हुए अपने स्वामी के नही मिलने का समाचार सुनाया ॥४९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१३॥

चौदहवाँ अध्याय

राजा वेन की कथा

मैत्रेय उवाच

भृग्वादयस्ते मुनयो लोकानां क्षेमदर्शिनः। गोप्तर्यसति वै नृणां पश्यन्तः पशुसाम्यताम् ॥१॥
वीरमातरमाहूय सुनीथां ब्रह्मवादिनः। प्रकृत्यसंमतं वेनमभ्यषिञ्चन्पतिं भुवः ॥२॥

अन्वयः— लोकानां क्षेम दर्शिनः ते भृग्वादय ब्रह्मवादिनः मुनयः असति गोप्तरि नृणां पशु साम्यताम् पश्यन्तः मातरं सुनीथाम् आहूय प्रकृति असम्मतम् वेनं भुवः पतिम् अभ्यषिञ्चन् ॥१-२॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे वीर ! विदुर लोक का कल्याण चाहने वाले प्रख्यात भृगु आदि मुनियो ने देखा कि राजा के नहीं रहने पर तो सभी लोग पशुओं के समान उच्छंखल होते जा रहे हैं। उन लोगों ने वेन की माता सुनीथा को बुलाकर प्रजाओं के सम्मत नहीं होने पर भी वेन को पृथिवी पति के पद पद अभिषिक्त कर दिया ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्दशे तु दुष्पुत्रभयादङ्गे गते द्विजैः । अभिषिक्तस्य वेनस्य रोषात्तैर्वध उच्यते ॥१॥ क्षेमदर्शिनः क्षेमचिन्तकाः । पशुसमानरूपतां पश्यन्तः । अमात्यादीनां प्रकृतीनामसंमतम् । पाठान्तरे प्रकृत्या स्वभावेनासंमतम् ॥१-२॥

भाव प्रकाशिका

दुष्ट पुत्र वेन के भय से जब राजर्षि अङ्ग वन में चले गये उस समय पृथिवी पति के रूप में अभिषिक्त वेन का क्रुद्ध मुनियों के द्वारा वध इस चौदहवें अध्याय में किया गया है । **क्षेमदर्शिनः** का अर्थ हैं कल्याण की चिन्ता करने वाले पशु साम्यताम् का अर्थ पशु के समान उच्छृखल रूप वाले लोगों को देखते हुए **प्रकृत्यसम्मतम्** का अर्थ है, प्रजाओं तथा मन्त्रियों को अनभिप्रेत **प्रकृत्याऽसंमतम्** पाठ होने पर अर्थ होगा स्वभाव से अनभिप्रेत ॥१-२॥

श्रुत्वा नृपासनगतं वेनमत्युग्रशासनम् । निलिल्युर्दस्यवः सद्य सर्पत्रस्ता इवाखवः ॥३॥

अन्वयः— अत्युग्रशासनं वेनं नृपासन गतं श्रुत्वा दस्यवः सर्पत्रस्ता आखवः इव निलिल्युः ॥३॥

अनुवाद— कठोर शासन करने वाले वेन को राजा वने हुए सुनकर सभी लुटेरे उसी तरह छिप गये जिस तरह सर्प के भय से चूहे छिप जाते हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

चोराः सर्वे लीना बभूवुः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

सभी चोर छिप गये ॥३॥

स आरूढनृपस्थान उन्नद्धोऽष्टविभूतिभिः । अवमेने महाभागांस्तब्ध संभावितः स्वतः ॥४॥

अन्वयः— आरूढनृपस्थाने सः अष्टविभूतिभिः उन्नद्धः स्तब्धः सम् स्वतः आत्म संभावितः महाभागान् अवमेने॥४॥

अनुवाद— राज सिंहासन पर बैठने के पश्चात् आठो लोक पालों की एश्वर्य, कला के कारण वह अभिमानवशात् अपने को ही सबसे बड़ा मानकर महापुरुषों का अपमान करने लगा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

आरूढं नृपस्थानं राजासनं येन । अष्टविभूतिभिर्लोकपालैश्वर्यैः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

राजसिंहासन पर बैठने के पश्चात् लोकपालों के ऐश्वर्य कला के कारण वह महापुरुषों का अपमान करने लगा॥४॥

एवं मदान्ध उत्सिक्तो निरङ्कुश इव द्विपः । पर्यटन् रथमास्थाय कम्पयन्निव रोदसी ॥५॥

अन्वयः— एवं मदान्धः उत्सिक्तः द्विप; इवनिरङ्कुशः रथमास्थाय रोदसी कम्पयन्निव पर्यटन् ॥५॥

अनुवाद— ऐश्वये के मद से अन्धा वना हुआ वह रथ पर चढ़कर पृथिवी और आकाश को कँपाता हुआ घूमने लगा ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् । इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥६॥

अन्वयः— द्विजाः क्वचित् न यष्टव्यं नदातव्यं इति भेरीघोपेण धर्मं सर्वशः न्यवारयत् ॥६॥

अनुवाद— उसने अपने-अपने राज्य यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई भी और कहीं भी ब्राह्मण न यज्ञ करे, न दान दें, न होम करे, इस तरह से उसने पूर्ण रूप से धर्म कर्म को रोकवा दिया ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

वेनस्यावेक्ष्य मुनयो दुर्वृत्तस्य विचेष्टितम् । विमृश्य लोकव्यसनं कृपयोचुः स्म सत्रिणः ॥७॥

अन्वयः— दुवृत्तस्य वेनस्य विचेष्टितम् अवेक्ष्य सत्रिणः मुनयः लोकव्यसनं विमृश्य कृपया ऊचुः ॥७॥

अनुवाद— दुष्ट वेन के इस प्रकार के अत्याचार को देखकर सभी मुनि एकत्रित होकर विचार किए संसार पर सङ्कट आया है । अतएव आपस में कहने लगे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

सत्रिणो मिलिताः सन्तः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

एकत्रित होकर ॥७॥

अहो उभयतः प्राप्तं लोकस्य व्यसनं महत् । दारुण्युभयतो दीप्त इव तस्करपालयोः ॥८॥

अन्वयः— अहो लोकस्य उभयतः व्यसनं प्राप्तः दारुणि उभयतः दीप्त इव तस्कर पालयः ॥८॥

अनुवाद— अरे यह संसार के ऊपर दोनों ओर से बहुत बड़ी विपत्ति आई है । दोनों ओर से जलने वाली लकड़ी आदि के बीच में पड़े चींटी आदि के समान प्रजाएँ एक ओर राजा के अत्याचार और दूसरी ओर चोर डाकुओं के अत्याचार से विपत्ति ग्रस्त हो गयी हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

मूलतश्चाग्रतश्च दीप्ते ज्वलिते काष्ठे तन्मध्यवर्तिनां पिपीलिकादीनां यथोभयतो व्यसनम्, एवं तस्करेभ्यः पालकाच्च दुःखं प्राप्तमित्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह नीचे और ऊपर दोनों ओर से जलने वाली लकड़ी के बीच में पडे हुए चींटी इत्यादि जीव जिस तरह आपदग्रस्त हो जाते है उसी तरह एक ओर राजा के अत्याचार से तथा दूसरी ओर चोरों के अत्याचार से प्रजा पर सङ्कट उत्पन्न है ॥८॥

अराजकभयादेष कृतो राजाऽतदर्हणः । ततोऽप्यासीद्भयं त्वद्य कथं स्यात्स्वस्ति देहिनाम् ॥९॥

अन्वयः— अराजकभयात् एष अतदर्हणः राजाकृतः अद्यतु ततः अपि भयं आसीत् देहिनाम् स्वस्ति कथं स्यात् ॥९॥

अनुवाद— अराजकता फैलने के भय से हमलोगों ने इस अयोग्य वेन के राजा बना दिया फिर भी आज उससे भी अधिक भय उत्पन्न हो गया शरीरधारियों का कल्याण कैसे होगा ?॥९॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाहुः-अराजकभयादिति । अतदर्हणो राज्यानर्हः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उसी बात को ऋषियों ने इस श्लोक में कहा है । **अतदर्हणः** पद का अर्थ है । राज्य के लिए अयोग्य॥९॥

अहेरिव पयःपोषः पोषकस्याप्यनर्थभृत् । वेनः प्रकृत्यैव खलः सुनीथागर्भसंभवः ॥१०॥

अन्वयः— पोषकस्याप्यनर्थभृत् अहेः पयः पोष इव सुनीथागर्भ संभवः वेनः प्रकृत्या एवखलः ॥१०॥

अनुवाद— पोषने वाले के लिए भी अनर्थकारी सर्प को दूध पिलाकर पोषने के समान यह सुनीथा के गर्भ से उत्पन्न वेन स्वभाव से ही दुष्ट है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अस्माकमप्यनिष्टं जातमित्याहुः । अहेर्यथापयःपोषः क्षीरेण पोषणं पोषकस्याप्यनर्थं विभर्ति पुष्णाति । तदेवाहुः- वेन इति ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

ऋषियों ने कहा इससे तो हमलोगों का भी अनिष्ट हो गया । जिस तरह से सर्प को दूध पिलाकर पोषना पोषने वाले के भी लिए अनर्थकारी होता है उसी तरह से यह सुनीथा के गर्भ से उत्पन्न होने वाल यह वेन स्वभाव से ही दुष्ट है ।।१०।।

निरूपितः प्रजापालः स जिघांसति वै प्रजाः । तथापि सान्त्वयेमामुं नास्मांस्तत्पातकं स्पृशेत् ।।११।।

अन्वयः— एषः प्रजापालो निरूपितः स वै प्रजाजिघांसन्ति तथापि सान्त्वयेम् अनुम् नास्मान् तत् पातकं स्पृशेत्।।११।।

अनुवाद— इसको हमलोगों ने प्रजा का पालन करने वाला बनाया था और यह प्रजाओं को ही मार डालना चाहता है, फिर भी हमलोग इसको समझाएँ जिससे इसका पाप हमलोगों को न लगे ।।११।।

भावार्थ दीपिका

निरूपितो नियुक्तोऽस्माभिः । सान्त्वयेमोपपत्तिभिः प्रार्थयिष्यामः । तस्य पातकम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

निरूपितः का अर्थ है हमलोगों ने नियुक्त किया है अतएव हमलोग इसको समझायें उसी युक्तियुक्त रूपसे प्रार्थना करेंगे ऐसा करने से हमलोगों को पाप नहीं लगेगा ।।११।।

तद्विद्वद्भिरसद्वृत्तो वेनोऽस्माभिः कृतो नृपः । सान्त्विता यदि नो वाचं न ग्रहीष्यत्यधर्मकृत् ।।१२।।

अन्वयः— तत् असद्वृत्तः वेनः विद्वद्भिः अस्माभिः नृपः कृतः सान्त्वितो यदि नो वाचं न ग्रहिष्यति अधर्मकृत्।।१२।।

अनुवाद— हमलोगों ने जानकर भी इस दुराचारी वेन को राजा बनाया है । समझाने पर भी यदि यह पापी बात नही मानेगा तो ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

स्वस्य तत्पातकस्पर्शे हेतुः— तत्पातकित्वं विद्वद्भिः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

अपने को उसका पाप लगने का कारण यह कि हमलोग उसके पापी होने को जानते थे । अतएव यदि हमलोगों की बात नहीं सुनेगा तो ।।१२।।

लोकधिक्कारसंदगधं हरिष्यामः स्वतेजसा । एवमध्यवसायैनं मुनयो गूढमन्यवः ।।
उपव्रज्याब्रुवन्वेनं सान्त्वयित्वा च सामभिः ।।१३।।

अन्वयः— लोकधिक्कार संदग्धं स्वतेजसा दहिष्यामः एवम् अध्यवसाय गूढमन्यवः मुनयः एनं उपव्रज्य, समाभिः वेनं सान्त्वयित्वा अब्रुवन् ।।१३।।

अनुवाद— लोक के धिक्कार से ही दग्ध हुए वेन को हमलोग अपने तेज से दग्ध कर देंगे, ऐसा विचार कर मुनिगण अपने क्रोध को छिपाकर वेन के पास गये और उसको प्रिय वचनों से समझते हुए इस प्रकार से कहने लगे ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

गूढो मन्युर्येषाम् । सामभिः प्रियोक्तिभिः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

जिन मुनियों का क्रोध छिपा था, वे प्रिय वाणियों से उसे समझाने लगे ।।१३।।

मुनय ऊचुः

नृपवर्य निबोधैतद्यत्ते विज्ञापयाम भोः । आयुः श्रीबलकीर्तीनां तव तात विवर्धनम् ।।१४।।

अन्वयः— भो नृपवर्य यत्ते आयु, श्रीः, बल, कीर्ति वर्धनम् विज्ञापयाम एतत् निबोध ।।१४।।

मुनियों ने कहा

अनुवाद— हे राजश्रेष्ठ हमलोग आपकी आयु, श्री, बल तथा यश को बढाने वाली जिन बातों को कह रहे हैं उस पर आप ध्यान दें ।।१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४।।

धर्म आचरितः पुंसां वाङमनः कायबुद्धिभिः । लोकान्विशोकान्वितरत्यथानन्त्यमसङ्गिनाम् ।।१५।।

अन्वयः— पुंसां वाङ्मनः कायकर्मभिः आचरितः धर्मः विशोकान् लोकान् वितरित, अथ असङ्गिनाम् आनन्त्यम्।।१५।।

अनुवाद— मनुष्यों की वाणी, मन तथा शरीर द्वारा किए गया धर्म कर्म उसके स्वर्गादि शोक रहित लोको को प्रदान करता है और यदि उसका आचरण निष्काम भाव से किया गया तो वह मुक्ति को प्रदान करता है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

निष्कामानामानन्त्यम् मोक्षमपि ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

जो निष्काम भाव से धर्म को करता है उसको वह धर्ममुक्ति प्रदान करता है ।।१५।।

स ते मा विनशेद्वीर प्रजानां क्षेमलक्षणः । यस्मिन्विनष्टे नृपतिश्च र्यादवरोहति ।।१६।।

अन्वयः— हे वीरसः ते प्रजानां क्षेमलक्षणः मा विनशेत् यस्मिन् विनष्टे नृपतिः ऐश्वर्याद् अवरोहति ।।१६।।

अनुवाद— हे वीर वह आपका प्रजाओं का कल्याण करना रूप धर्म विनष्ट न हों, क्योंकि धर्म के नष्ट हो जाने पर राजा भी ऐश्वर्य से च्युत हो जाता है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

मा विनशेन्मा विनश्यतु ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

वह आपका प्रजाओं का कल्याण करना रूप धर्म विनष्ट न हो ।।१६।।

राजन्नसाध्वमात्येभ्यचोरादिभ्यः प्रजा नृपः । रक्षन्यथा बलिं गृह्णन्निह प्रेत्य च मोदते ।।१७।।

अन्वयः— राजन् असाध्वमात्येभ्यः चोरादिभ्य प्रजाः रक्षन् नृपः यथा बलिं गृह्णन् इह प्रेत्य च मोदते ।।१७।।

अनुवाद— हे राजन् ! जो राजा अपने दुष्ट मन्त्रियों से तथा चोरों आदि से प्रजा की रक्षा करते हुए उनसे न्यायानुकूल कर प्राप्त करता है, वह इस लोक में और परलोक में सुख प्राप्त करता है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

असाधवो ये अमात्यास्तेभ्यः । यथा यथाशास्त्रम् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

दुष्ट मन्त्रियों से प्रजा की रक्षा करने वाला और शास्त्र विहित मात्रा में प्रजाओं से कर लेने वाला राजा लोक और परलोक में सुख प्राप्त करता है ।।१७।।

यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान्यज्ञपूरुषः । इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितैः ।।१८।।
तस्य राज्ञो महाभाग भगवान्भूतभावनः । परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने ।।१९।।

अन्वयः— यस्य राष्ट्रे पुरे चैव यज्ञपुरुषः भगवान् स्वेन धर्मेण वर्णाश्रमान्वितैः जनैः इज्यते हे महाभाग तस्य निजशासने तिष्ठतः राजः भूतभावनः भगवान् प्रसीदति ।।१८-१९।।

अनुवाद— जिस राजा के राज्य अथवा नगर में यज्ञ पुरुष भगवान् अपने वर्णाश्रम धर्म कापालन करने वाले लोगों को अपने धर्म के द्वारा पूजित होते हैं उस अपनी आज्ञा का पालन करने वाले राजा पर भगवान श्रीहरि प्रसन्न होते हैं ।।१८-१९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१८-१९।।

तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे । लोकाः सपाला ह्येतस्मै हरन्ति बलिमादृताः ।।२०।।

अन्वयः— तस्मिन् जगतामीश्वरेश्वरे तुष्टे किम् अप्राप्यम् तस्मै हि सपालाः लोकाः बलिम् आदृताः हरन्ति ।।२०।।

अनुवाद— उन संसार के स्वामियों के स्वामी श्रीभगवान् के प्रसन्न हो जाने पर कुछ भी अप्राप्य नहीं रह जाता है । इसीलिए उन श्रीभगवान् को इन्द्रादि दिक्पाल आदर पूर्वक पूजोपहार समर्पित किया करते है ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

तं सर्वलोकामरयज्ञसंग्रहं त्रयीमयं द्रव्यमयं तपोमयम् ।
यज्ञैर्विचित्रैर्यजतो भवाय ते राजन्स्वदेशाननुरोद्धुमर्हसि ।।२१।।

अन्वयः— राजन् सर्वलोकाम् यज्ञ संग्रहं, त्रयीमयं, द्रव्यमयं, तपोमयम् तं ते भवाय विचित्रैः यज्ञैः यजतः स्वदेशान् अनुरोद्धुमर्हसि ।।२१।।

अनुवाद— जो भगवान् समस्त लोकों लोकपालों देवताओं और यज्ञों के भोक्ता हैं, वेद त्रयी रूप, द्रवरूप और तपोरूप हैं उनकी आराधना आपके जो देशवासी आपके कल्याण के लिए करते हैं, आपको उन लोगो के अनुकूल ही रहना चाहिए ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

सर्वान् लोकांश्च तत्पालानमरांश्च तत्प्रापकान्यज्ञांश्च संगृह्णाति नियच्छतीति तथा तम् । विचित्रैर्द्रव्ययज्ञादिभिः । भवाय समृद्धये । स्वदेशास्तद्वासिनो जनान् अनुरोद्धुमनुवर्तितुम् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

जो श्रीभगवान् सभी लोकों, उन लोके के पालक देवता तथा स्वर्गादि प्राप्ति के साधन भूत यज्ञों के नियन्ता है, उनकी विविध द्रव्यादि यज्ञों से आपकी समृद्धि के लिए आपके जो देशवासी आराधना करते हैं, आपको इन देशवासियों के अनुकूल ही रहना चाहिए ।।२१।।

यज्ञेन युष्मद्विषये द्विजातिभिर्वितायमानेन सुराः कला हरेः ।
स्विष्टाः सुतुष्टाः प्रदिशन्ति वाञ्छितं तद्धेलनं नार्हसि वीर चेष्टितुम् ।।२२।।

अन्वयः— हे वीर ! युष्मद् विषये द्विजातिभिः वितायमाने यज्ञेन हरेः कलाः सुराः स्विष्टाः सुतुष्टाः वाञ्छितं प्रदिशन्ति तद् हेलनं चेष्टितुम् नर्हसि ।।२२।।

अनुवाद— हे वीर आपके राज्य में जब ब्राह्मण लोग यज्ञों का अनुष्टान करेंगे उनकी आराधना से प्रसन्न होकर श्रीहरि के अंशभूत देवगण प्रसन्न होकर आपको अभिप्रेत फल प्रदान करेंगे अतएव आप यज्ञादि धर्मानुकूल को बन्द करके आप देवताओं का तिरस्कार न करें ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

युष्मद्विषये त्वद्देशे । हरेः कला अंशाः सुराः । तेषां सुराणां हेलनमवज्ञाम् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

युष्मद् विषये का अर्थ है आपके देश में देवता श्रीहरि के अंश है। उन देवताओं का आप तिरस्कार न करें।।२२।।

वेन उवाच

बालिशा बत यूयं वा अधर्मे धर्ममानिनः । ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते ।।२३।।

अन्वयः— यूयं बत बालिशाः वा अधर्मे धर्ममानिनः, ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारम् पतिम् उपासते ।।२३।।

वेन ने कहा

अनुवाद— निश्चित रूप से तुमलोग मूर्ख हो, अधर्म को धर्म मान बैठे हो, इसीलिए वृत्ति प्रदान करने वाले पति मुझको छोड़कर जार पति की उपासना करते हो ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

बालिशा अज्ञाः । वृत्तिदमन्नादिप्रदं मां हित्वा ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

बालिश शब्द मूर्ख का वाचक है । वेन ने कहा कि तुमलोग मूर्ख हो इसीलिए अन्नादि प्रदान करने वाले मुझको छोड़कर परमात्मा की आराधना करते हो ।।२३।।

अवजानन्त्यमी मूढा नृपरूपिणमीश्वरम् । नानुविन्दन्ति ते भद्रमिह लोके परत्र च ।।२४।।

अन्वयः— अमी मूढा नृपरूपिणम् ईश्वरम् अवजानन्ति ते इह लोके परत्र च भद्रम न अनुविन्दन्ति ।।२४।।

अनुवाद— जो अज्ञानी राजा रूपी ईश्वर का अपमान करते हैं वे इस लोक और परलोक में कल्याण नहीं प्राप्त करते हैं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२४।।

को यज्ञपुरुषो नाम यत्र वो भक्तिरीदृशी । भर्तृस्नेहविदूराणां यथा जारे कुयोषिताम् ।।२५।।

अन्वयः— यत्र वो इदृशी भक्तिः को यज्ञपुरुषो नाम भर्तृस्नेहविदूराणां कुपोषिताम् यथा जारे ।।२५।।

अनुवाद— जिसमें तुमलोगों की इतनी भक्ति है वह यज्ञ पुरुष कौन है ? यह तो वैसी बात जैसे कुलटा स्त्रियाँ अपने पति को छोड़कर किसी जार पुरुष में आसक्त हो जाती हैं ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

भर्तृस्नेहो विदूरो येषाम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

पति भक्ति जिनमें होती ही नहीं है ।।२५।।

विष्णुर्विरिञ्चो गिरिश इन्द्रो वायुर्यमो रविः । पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्निरपांपतिः ।।२६।।
एते चान्ये च विबुधाः प्रभवो वरशापयोः । देहे भवन्ति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः ।।२७।।

अन्वयः— विष्णुः विरिञ्चोः गिरिशः इन्द्रो वायु र्यमः । रविः पर्जन्यः धनदः सोमः क्षितिः अग्निः अपांपतिः, एते च अन्ये च वरशापयोः प्रभवः विवुधाः नृपतेः देहे भवन्तिः नृपः सर्वदेवमयः ।।२६-२७।।

अनुवाद— विष्णु, ब्रह्म, शिव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, पर्जन्य, कुबेर, सोम, पृथिवी, अग्नि और वरुण ये सभी देवता और दूसरे भी देवता जो वरदान देने में अथवा शाप देने में समर्थ है, वे राजा के शरीर में निवास करते हैं अतएव राजा सर्वदेवमय होत है ।।२६-२७।।

भावार्थ दीपिका

देहे भवन्ति नृपतेरतो नृपतिरेवेश्वर इतरे तदंशा इति भावः ।।२६-२७।।

भाव प्रकाशिका

ये सभी देवता चूकि राजा के शरीर में निवास करते हैं, अतएव राजा ही ईश्वर है दूसरे देवता उसके अंश हैं ।।२६-२७।।

तस्मान्मां कर्मभिर्विप्रा यजध्वं गतमत्सराः । बलिं च मह्यं हरत मत्तोऽन्यः कोऽग्रभुक् पुमान्।।२८।।

अन्वयः— हे विप्राः ! तस्मान्मां कर्मभिः गतमत्सराः यजध्वं मह्यम् च बलिं हरत अग्रभुक् पुमान् कः ।।२८।।

अनुवाद— हे ब्राह्मणों तुम लोग द्वेष रहित होकर अपने कर्मो के द्वारा मेरी ही आराधना करो और मुझको ही बलि समर्पित करो; मुझसे भिन्न कौन अग्र पूजा का अधिकारी है ?।।२८।।

भावार्थ दीपिका

बलिं च करादिकम् । अग्रभुगाराध्यः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

बलि शब्द से कर आदि को कहा गया, अग्रभुक् अर्थात् आराध्य ।।२८।।

मैत्रेय उवाच

इत्थं विपर्ययमतिः पापीयानुत्पथं गतः । अनुनीयमानस्तद्याच्ञां न चक्रे भ्रष्टमङ्गलः ।।२९।।

अन्वयः— इत्थं विपर्यमतिः, पापीयान् उत्पथं गतः भ्रष्टमङ्गलः अनुनीयमानः तद्याच्ञां न चक्रे ।।२९।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से विपरीत बुद्धि वाला, महापापी, कुमार्गगामी जिसका पुण्य नष्ट हो गया था ऐसा वेन, मुनियों के बहुत प्रार्थना करने पर भी उनकी बातों को नहीं माना ।।२९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

तेनासत्कृताः । भग्नायां याञ्चायां चुक्रुधुः क्रोधं चक्रुः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

वेन के द्वारा अनादृत मुनिगण अपनी याचना के भङ्ग हो जाने पर वेन पर क्रोध किए ।।३०।।

हन्यतां हन्यतामेष पापः प्रकृतिदारुणः । जीवञ्जगदसावाशु कुरुते भस्मसाद्ध्रुवम् ।।३१।।

अन्वयः— हन्यताम् हन्यताम् एषः पापः प्रकृति दारुणः जीवन् असौ आशु जगद् ध्रुवम् भस्मसात् कुरुते ।।३१।।

अनुवाद— इसको मार डालो मार डालो यह स्वभाव से ही भयङ्कर पापी है । यह जीवित रहेगा तो शीघ्र ही जगत् को भस्म कर देगा ।।३१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।३१।।

नायमर्हत्यसद्वृत्तो नरदेववरासनम् । योऽधियज्ञपतिं विष्णुं विनिन्दत्यनपत्रपः ।।३२।।

अन्वयः— अयम् नरदेव वरासनम् न अर्हति यः अनपत्रपः अधियज्ञ पतिं विष्णुं विनिन्दति ।।३२।।

अनुवाद— यह राजा के श्रेष्ठ आसन के योग्य नहीं है । यह निर्लज्ज यज्ञों के अधिपति भगवान् विष्णु की निन्दा करता है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।३२।।

को वैनं परिचक्षीत वेनमेकमृतेऽशुभम् । प्राप्तईदृशमैश्वर्यं यदनुग्रहभाजनः ।।३३।।

अन्वयः— यदनुग्रहभाजनः इदृशम् ऐश्वर्य प्राप्तःएकम् अशुभम् वेनम् ऋते को वा एवं परिचक्षीत् ।।३३।

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् की कृपा का पात्र बन करके इस प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त किया उन श्रीभगवान् की निन्दा इस अमङ्गलमय वेन को छोड़कर कौन कर सकता है ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

परिचक्षीत निन्देत । अशुभं वेनं बिना । कृतघ्नतामाहुः । यदनुग्रहविषयः सन्नीदृशमैश्वर्यं यः प्राप्तः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

अमङ्गलमय इस वेन को छोड़कर भगवान् विष्णु की निन्दा कौन कर सकता है ? वेन की कृतघ्नता को बतलाते हुए कहते हैं उन्हीं भगवान् की कृपा से इसने इस प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त किया है, उनकी ही यह निन्दा करता है ।।३३।।

इत्थं व्यवसिता हन्तुमृषयो रूढमन्यवः । निजघ्नुर्हुंकृतैर्वेनं हतमच्युतनिन्दया ।।३४।।

अन्वयः— रूढमन्यवः ऋषयः इत्थं हन्तुम् व्यवसिताः अच्युतनिन्दयाहतम् वेनम् हुङ्कृतै निजध्नुः ।।३४।।

अनुवाद— जिन सबों का छिपा हुआ क्रोध अत्यन्त प्रबल हो गया था ऐसे ऋषिगण उसको मारने का निश्चय कर लिए और श्रीभगवान् की निन्दा करने के ही कारण मरे हुए वेन को उन लोगों ने हुङ्कार मात्र से ही मार दिया ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

पूर्वं गूढमन्यव इदानीं रूढमन्यवः प्रकटकोपाः । हुंकृतैर्हुंकारैः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

पहले ऋषियों का क्रोध छिपा था किन्तु उस समय उनका क्रोध प्रबल हो गया उन ऋषियों ने हुङ्कार मात्र से वेन को मार दिया ॥३४॥

ऋषिभिः स्वाश्रमपदं गते पुत्रकलेवरम् । सुनीथा पालयामास विद्यायोगेन शोचती ॥३५॥

अन्वयः— ऋषिभिस्वाश्रमपदं गते शोचती सुनीथा विद्यायोगेन पुत्र कलेवरम् पालयामास ॥३५॥

अनुवाद— ऋषियों के अपने आश्रमों में चले जाने पर शोक करती हुई सुनीथा अपने पुत्र के शरीर को मन्त्रविद्या तथा युक्तियों के द्वारा रक्षा करने लगी ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

स्वाश्रमपदं प्रति ऋषिभिर्गते गमने कृते सति विद्यायोगेन मन्त्रसहितया युक्त्या पालयामास ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

जब ऋषिगण अपने आश्रमों में लौट गये तो सुनीथ वेन के शरीर को मन्त्र तथा औषधि युक्त तेल आदि के लेप आदि से रक्षा करने लगी ॥३५॥

एकदा मुनयस्ते तु सरस्वत्सलिलाप्लुताः । हुत्वाग्नीन्सत्कथाश्चक्रुरुपविष्टाः सरित्तटे ॥३६॥

अन्वयः— एकदा ते मुनयः तु सरस्वत्सलिलप्लुताः अग्नीन् हुत्वा सरित् तटे उपविष्टाः सत्कथा चक्रुः ॥३६॥

अनुवाद— एक दिन वे मुनिगण सरस्वती नदी के जल में स्नान करके तथा अग्निहोत्र करके नदी के तट पर वैठे हुए हरिचर्चा कर रहे थे ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

पुंवद्भाव आर्षः । सरस्वत्याः सलिले आप्लुताः कृतस्नानाः । विष्णुकथाश्चक्रुः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

सरस्वत में पुंवद्भाव आर्ष प्रयोग होने के कारण है । सरस्वती नदी के जल में स्नान करके तथा अग्निहोत्र करके नदी के तट पर बैठकर श्रीभगवान् विष्णु की कथा कर रहे थे ॥३६॥

वीक्ष्योत्थितान्महोत्पातानाहुर्लोकभयङ्करान् । अप्यभद्रमनाथाय दस्युभ्यो न भवेद्भुवः ॥३७॥

अन्वयः— लोक भयङ्करान् उत्थितान् महोत्पातान् वीक्ष्य आहुः, अनाथायाः भुवः अभद्रम् अपि न भवेत् ॥३७॥

अनुवाद— संसार में भय उत्पन्न करने वाले उठे हुए महान् उत्पातों को देखकर कहने लगे कि राजा से रहित इस पृथिवी की चोरों आदि से कहीं अमङ्गल न होए ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तदा तूत्पातान्वीक्ष्य भुवोऽभद्रं न भवेत्किमित्याहुश्च ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

उस समय होने वाले उत्पातों को देखकर ऋषियों ने कहा इस समय पृथिवी अनाथ है, इसका चोर आदि कहीं अमङ्गल न करें ॥३७॥

एवं मृशन्त ऋषयो धावतां सर्वतोदिशम् । पांसुः समुत्थितो भूरिश्चोराणामभिलुम्पताम् ॥३८॥

अन्वयः— एवं मृशन्त ऋषयः सर्वतोदिशम् धावताम् अभिलुम्पताम् चोराणाम् भूरिपांसुः समुत्थितः ॥३८॥

अनुवाद— ऋषिगण इस प्रकार से विचार ही कर रहे थे कि उसी समय धावा बोलने वाले चोरों और लुटेरों से उड़ी हुई धूल अत्यधिक मात्रा में दिखाई पड़ी ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

एवं मृशन्तस्तर्कयन्त ऋषयः स्थिताः । तदा धावतां चोराणां भूरिः पांसुःसमुत्थितः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से विचार करते हुए ऋषिगण बैठे ही हुए थे कि उसी समय सब ओर धावा बोलने वाले चोरों और डाकुओं से बहुत अधिक धूल उड़ी ॥३८॥

तदुपद्रवमाज्ञाय लोकस्य वसु लुम्पताम् । भर्तर्युपरते तस्मिन्नन्योन्यं च जिघांसताम् ॥३९॥
चोरप्रायं जनपदं हीनसत्त्वमराजकम् । लोकान्नावारयन् शक्ता अपि तद्दोषदर्शिनः ॥४०॥

अन्वयः— लोकस्य वसुलुम्पताम् तदुपद्रवमाज्ञाय, तस्मिन् भर्तरि उपरते अन्योन्यं च जिघांसताम् चोरप्रायं जनपदं हीन सत्त्वं अराजकम् शक्ता अपि तददोषदर्शिनः लोकान् न अवारयन् ॥३९-४०॥

अनुवाद— देखकर वे ऋषिगण जान गये यह उपद्रव लोगों की सम्पत्ति लूटने वाले चोरों और डकैतों का है । राजा वेन के मर जाने के कारण जो लोग एक दूसरे को मार डालना चाहते हैं उन लोगों का यह उपद्रव है । इस समय राज्य के कमजोर हो जाने के कारण देश में चोरों की भरमार हो गयी है । देश राजा से हीन हो गया है । इन सारी बातों को जानकर वे लोग इसे रोकने में समर्थ थे फिर भी इसलिए नहीं रोके कि उसमें अनेक प्रकार के हिंसा आदि दोष होते ॥३९-४०॥

भावार्थ दीपिका

तत् तदा तेषां लोकस्य धनं लुम्पतां जिघांसतां चोपद्रवमाज्ञाय । तथा चोरप्रायमराजकं हीनसत्त्वं च जनपदमाज्ञाय । शक्ता अप्यवारणे दोषदर्शिनोऽपि जना लुम्पतो लोकान्नावारयन्नित्यन्वयः ॥३९-४०॥

भाव प्रकाशिका

वे जाने गये कि लोगों की धन सम्पत्ति लूटने वाले और एक दूसरे को मार डालने वाले चोरों और डकैतों का यह उपद्रव हैं । वे यह जान गये कि राज्य चोर प्राय और कमजोर हो गये हैं । वे यद्यपि इस उपद्रव को रोकने में समर्थ थे फिर भी यह देखकर कि इस कार्य में हिंसा आदि दोष हैं उसे नहीं रोके ॥३९-४०॥

ब्राह्मणः समदृक् शान्तो दीनानां समुपेक्षकः । स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिन्नभाण्डात्पयो यथा ॥४१॥

अन्वयः— दीनानां समुपेक्षक समदृक् शान्तः ब्राह्मणः भिन्न भण्डात् पयः यथा तस्यापि ब्रह्म स्रवते ॥४१॥

अनुवाद— उन ऋषियों ने सोचा दीन जनों की उपेक्षा करने वाले समदर्शी तथा शान्त स्वभाव ब्राह्मण की भी तपस्या उसी प्रकार नष्ट हो जाती है जिस तरह फूटे घड़े से जल बह जाता है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

शक्तानां क्षत्रियाणामवारणे दोष इति किं वक्तव्यम् । समदृगपि शान्तोऽपि ब्राह्मणोऽपि यदि दीनानां समुपेक्षको भवेत्तर्हि तस्यापि ब्रह्म तपः स्रवति ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

समर्थ होकर भी क्षत्रियों को नहीं रोकने से कौन सा दोष होता है इसे बतलाना चाहिए, समदर्शी भी, शान्त स्वभाव भी ब्राह्मण भी यदि दीनों की उपेक्षा करता है तो उसकी तपस्या उसी तरह नष्ट हो जाती है जिस तरह से फूटे घड़े से पानी बह जाता है ॥४१॥

नाङ्गस्य वंशो राजर्षेरेष संस्थातुमर्हति । अमोघवीर्या हि नृपा वंशेऽस्मिन्केशवाश्रयाः ॥४२॥

अन्वयः— राजर्षे अङ्गस्य एष वंशः संस्थातु नार्हति । अस्मिन वंशे अमोधवीर्याःकेशवाश्रयाः नृपाः हि जाताः ॥४२॥

अनुवाद— राजर्षि अङ्ग का वंश भी विनष्ट नहीं होना चाहिए क्योंकि इस वंश में अनेक अमोध शक्ति समपन्न और भगवान् परायण हो चुके हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

अत उपेक्षादोषपरिहाराय नाङ्गस्येत्यादि विनिश्चित्य महीपतेरूरूं तरसा ममन्थुरित्यन्वयः । संस्थातुं नाशं गन्तुम् । यद्वा ऋषय एव लुम्पतो लोकान्नावारयन् । कथंभूताः । हुंकारेणैव वेनं निवारयितुं शक्ता अपि । तत्किम् । तस्मिन्निवारणे तन्मरणादिदोषदर्शिनः। न चोदासत । चोरोपद्रुते दीनोपेक्षायां तपोहानिप्रसङ्गात् । न चान्यं तन्निवारकं राजानमकुर्वन् । अङ्गवंशोच्छेदस्यानर्हत्वात् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

अतएव उपेक्षा जन्य दोष को दूर करने के लिए कहते है नाङ्गस्य इत्यादि श्लोक । अर्थात् राजर्षि अङ्ग का वंश नष्ट होने योग्य नहीं है । यह निश्चय करके ऋषियों ने वेन की जङ्घे को वेग से मथे । संस्थातुम् का अर्थ है नष्ट होने योग्य नहीं है । अथवा ऋषियों ने ही लोगों को लुटने वालों को नहीं रोका । प्रश्न है कि वे ऋषिगण कैसे थे तो इसका उत्तर है कि, वे हुङ्कार मात्र से वेन को मारने में समर्थ भी थे । ऋषियों ने ऐसा क्यों किया तो इसका उत्तर है कि उन सबों को मारने में वे लोग हिसादि दोष का अनुभव करते थे । वे यह देखकर भी उदासीन नहीं हुए क्योंकि चोरों से उपद्रुत दीनों की उपेक्षा करने से तपस्या की हानि का प्रसङ्ग था । वे ऋषिगण की दूसरे निवारक को राजा भी नहीं बनाये । चूकि अङ्ग का वंश विनष्ट होने के योग्य नहीं था । इसीलिए उन लोगों ने वेन के शरीर का मन्थन किया इस तरह से योजना करनी चाहिए ॥४२॥

विनिश्चित्यैवभृषयो विपन्नस्य महीपतेः । ममन्थुरूरुं तरसा तत्रासीद्बाहुको नरः ॥४३॥

अन्वयः— एवम् विनिश्चित्य ऋषयः विपन्नस्य महीपतेः ऊरूं तरसा ममन्थुः तत्र बाहुकः नरः आसीत् ॥४३॥

अनुवाद— इस तरह से विचार करके ऋषियों ने मरे हुए राजा की जेघे को वेग से मथा तो उससे एक वामन पुरुष निकला ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

बाहुको वामनः ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

बाहुकः शब्द का अर्थ है बौना ॥४३॥

काककृष्णोऽतिह्रस्वाङ्गो ह्रस्वबाहुर्महाहनुः । ह्रस्वपन्निम्ननासाग्रो रक्ताक्षस्ताम्रमूर्धजः ॥४४॥

अन्वयः— काक कृष्णः, अति ह्रस्वाङ्गः ह्रस्वबाहुः महाहनुः ह्रस्वपात् निम्ननासाग्रः रक्ताक्षः ताम्मूर्धजः ॥४४॥

अनुवाद— वह कौए के समान काला था, उसके सभी अङ्ग छोटे थे और उसकी भुजा भी छोटी थी । उसकी ठूढी बड़ी थी । उसके पैर भी छोटे थे, उसकी नाक चिपटी थी आँखे लाल थी और केश भी लाल थे॥४४॥

भावार्थ दीपिका

तमेवाह । काक इव कृष्णः । महत्यौ हनू कपोलप्रान्तौ यस्य । ह्रस्वौ पादौ यस्य ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

उस वामन पुरुष का ही वर्णन करते हैं । वह कौए के समान काला था उसकी दोनों गालों का प्रान्त भाग बड़ें थें तथा उसके पैर छोटे थे ॥४४॥

तं तु तेऽवनतं दीनं किं करोमीति वादिनम् । निषीदेत्यब्रुवंस्तात स निषादस्ततोऽभवत् ॥४५॥

अन्वयः— तं अवनतं दीनं कि करोमिति वादिनम ते निषीद इति अब्रुवन्, हे तात स निषादः तत अभवत् ॥४५॥

अनुवाद— नम्रता और दीनता पूर्वक उसके मैं क्या करूँ इस तरह से पूछने पर उसको ऋषियों ने कहा तुम बैठो उसी से निषाद उत्पन्न हुआ ॥४५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४५॥

तस्य वंश्यास्तु नैषादा गिरिकाननगोचराः । येनाहरञ्जायमानो वेनकल्मषमुल्बणम् ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते निषादोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अन्वयः— तस्य वंशाः तु नैषादाः गिरिकाननगोचरः येन जायमानः उल्बणम् वेन कश्मलम् अहरत ॥४६॥

अनुवाद— उसके वंश वाले नैषाद कहलाये ये पर्वतों और वनों में रहने वाले हैं । वह निषाद वेन के शरीर से जन्म लेते ही वेन के सारे पाप को अपने ऊपर ले लिया ।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध पृथुत्पत्ति के अन्तर्गत निषाद की उत्पत्ति वर्णन नामक चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

गिरिः काननं च गोचर आश्रयो नतु परादिप्रवेशो येषाम् । तत्र हेतुः- येन कारणेन असावहरत्ततस्तस्य वंश्यास्तथाभूताः ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

चूकि उसने वेन के शरीर से जन्म लेते समय उनके समस्त पापों का हरण कर लिया इसीलिए उसके वश वाले चोरी, लूट पाट करने वाले हो गये ॥४६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१४॥

* * *

पन्द्रहवाँ अध्याय

महाराज पृथु का अविर्भाव ओर उनका राज्याभिषेक

मैत्रेय उवाच

अथ तस्य पुनर्विप्रैरपुत्रस्य महीपतेः । बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥१॥

अन्वयः— अथ तस्य अपुत्रस्य महीपते पुनः विप्रैः मथ्यमानाभ्यां भुजाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— इसके पश्चात् उस पुत्रहीन राजा के पुनः मथे जाने वाली दोनों भुजाओं से स्त्री और पुरुष का जन्म हुआ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततः पञ्चदशे विप्रैर्मथनाद्वेनबाहुतः । जातस्य तु पृथोरुक्तमभिषेकार्हणादिकम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् पन्द्रहवें अध्याय में ब्राह्मणों द्वारा मथे जाने वाले वेन की भुजाओं से उत्पन्न हुए पृथु के अभिषेक और पूजन आदि का वर्णन किया गया है ॥१॥

तद्दृष्ट्वा मिथुनं जातमृषयो ब्रह्मवादिनः । ऊचुः परमसंतुष्टा विदित्वा भगवत्कलाम् ॥२॥

अन्वयः— तत् मिथुनं जातं दृष्ट्वा ब्रह्मवादिनः ऋषयः भगवत्कलाम् विदित्वा परमसंतुष्टा ऊचुः ॥२॥

अनुवाद— उस उत्पन्न हुए स्त्री पुरुष के जोड़े को देखकर ब्रह्मवादी ऋषिगण उसे श्रीभगवान् का अंश जानकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

ऋषयः ऊचुः

एष विष्णोर्भगवतः कला भुवनपालनी । इयं च लक्ष्म्याः संभूतिः पुरुषस्यानपायिनी ॥३॥

अन्वयः— एषः भगवतः विष्णोः भुवन पालिनी कला इयं च पुरुषस्य अनपायिनी लक्ष्म्याः सम्भूतिः ॥३॥

ऋषियों ने कहा

अनुवाद— यह पुरुष भगवान् विष्णु की विश्व पालिनी कला है और यह स्त्री परम पुरुष की अनपायिनी उनसे कभी अलग नहीं होने वाली के लक्ष्मी का अवतार है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

किमूचुरित्यत आह- एष इति चतुर्भिः । लक्ष्म्याः संभूतिः कला ॥३॥

भाव प्रकाशिका

लोग आपस में क्या कह रहे थे ? इसे **एष इत्यादि** चार श्लोकों से बतलाते हैं । **लक्ष्म्याः सम्भूतिः** अर्थात् लक्ष्मी की कला ॥३॥

अत्र तु प्रथमो राज्ञां पुमान् प्रथयिता यशः । पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः ॥४॥

अन्वयः— अत्र तु राज्ञां प्रथमः पुमान् यशः प्रथयिता पृथुश्रवाः पृथुः नाम महाराजो भविष्यति ॥४॥

अनुवाद— इसमें से जो पुरुष है वह अपने सुयश का विस्तार करने के कारण परम यशस्वी पृथु नामक सम्राट होगा । यही राजाओं में सबसे प्रथम राजा होगा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अत्र यः पुमान्स तु महाराजो भविष्यति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

इसमें से जो पुरुष है वह महाराज होगा ।।४।।

इयं च सुदती देवी गुणभूषणभूषणा । अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेवावरुन्धती ।।५।।

अन्वयः— इयं च सुदती देवी गुणभूषण भूषणा अर्चिःनाम वरारोहा पृथुमेवावरून्धती ।।५।।

अनुवाद— यह जो सुन्दर दाँतों वाली गुणों तथा आभूषणों को भी भूषित करने वाली पृथु को ही अपना पति बनायेगी और इनका अर्चि होगा ।।५।।

भावार्थ दीपिका

सुदती शोभनदन्तवती । गुणानां भूषणानां च भूषणरूपा । अवरुन्धती भर्तृत्वेन भजन्ती भविष्यति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

यह सुन्दर दाँतों वाली देवी गुणों और भूषणों को भी भूषित करने वाली पृथु को ही पति रूप से वरण करेगी।।५।।

एष साक्षाद्धरेरंशो जातो लोकरिरक्षया । इयं च तत्परा हि श्रीरनुजज्ञेऽनपायिनी ।।६।।

अन्वयः— एषः साक्षात् हरेः अंशः लोकरिरक्षयिषया जातः इयं च तत्परा अनपायिनीश्रीः अनुजज्ञे ।।६।।

अनुवाद— यह पृथु के रूप में साक्षात् श्रीहरि का अंश ही अवतीर्ण हुआ है और यह अर्चि के रूप में निरन्तर भगवान् की सेवा में तत्पर रहने वाली उनकी नित्य सहचरी श्रीदेवी ही प्रकट हुई हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अत्र हेतुः- एष इति । लोकस्य रिरक्षया रिरक्षयिषया ।।६।।

भाव प्रकाशिका

इसका कारण है कि यह पुरुष संसार की रक्षा करने के लिए अवतीर्ण हुआ है ।।६।।

मैत्रेय उवाच

प्रशंसन्ति स्म तं विप्रा गन्धर्वप्रवरा जगुः । मुमुचुः सुमनोधाराः सिद्धा नृत्यन्ति स्वःस्त्रियः ।।७।।

अन्वयः— तं विप्राः प्रशंसन्तिस्म गन्धर्व प्रवराः जगुः सिद्धाः सुमनोधाराः मुमुचु स्वः स्त्रियः चनृत्यन्ति स्म ।।७।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— उस समय ब्राह्मणों ने पृथु की प्रशंसा की, श्रेष्ठ गन्धर्वों ने उनका गुणगान किया और अप्सराओं ने नृत्य किया ।।७।।

भावार्थ दीपिका

स्वःस्त्रियः अप्सरसो नृत्यन्ति सम ।।७।।

भाव प्रकाशिका

अप्सराओं का ही नाम स्वस्त्रो है । उन सबों ने पृथु महाराज के अवतार काल में नृत्य किया ।।७।।

शङ्खतूर्यमृदङ्गाद्या नेदुर्दुन्दुभयो दिवि । तत्र सर्व उपाजग्मुर्देवर्षिपितॄणां गणाः ॥८॥

अन्वयः— दिवि शङ्खतूर्यमृदङ्गाद्याः दुन्दुभयो नेदुः तत्र सर्वे देवर्षि पितॄणां गणाः उपाजग्मुः ॥८॥

अनुवाद— आकाश में शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग आदि तथा दुन्दुभियाँ बजने लगी उस समय वहाँ पर सभी देवता और पितृगण आये ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

ब्रह्माजगद्गुरुर्देवैः सहासृत्य सुरेश्वरैः । वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिह्नं गदाभृतः ॥९॥
पादयोररविन्दं च तं वै मेने हरेः कलाम् । यस्याप्रतिहतं चक्रमंशः स परमेष्ठिनः ॥१०॥

अन्वयः— जगद्गुरुब्रह्मा सुरेश्वरै सहउपसृत्य वैन्यस्य दक्षिण हस्ते गदाभृतः चिह्नं दृष्ट्वा पादयोः अरविन्दं च दृष्ट्वा तं वै हरेः कलाम् मेने, यस्य अप्रतिहतं अंशः चक्रम् सः परमेष्ठिनः ॥९-१०॥

अनुवाद— जगद्गुरु ब्रह्माजी देवों और देवेश्वरों के साथ पधारे; उन्होंने वेन पुत्र पृथु के दाहिने हाथ में भगवान् विष्णु के चिह्न और पैर में कमल के चिह्न को देखकर उन्हें श्रीहरि का ही अंश माना क्योंकि जिसके हाथ में दूसरी रेखाओं से बिना कटा हुआ चक्र का चिह्न होता है वह श्रीभगवान् का ही अंश होता है ॥९-१०॥

भावार्थ दीपिका

देवैः सहासृत्यागत्य । वैन्यस्य पृथोः । चिह्नं रेखात्मकं चक्रम् । अप्रतिहतं रेखान्तरैभिन्नं चक्रं यस्य चिह्नं स परमेश्वरस्यांशः ॥९-१०॥

भाव प्रकाशिका

जगद्गुरु ब्रह्माजी देवेश्वरों के साथ आकर उनके हाथ में रेखात्मक चक्र को देखे । जिसके हाथ में दूसरे चिह्नों बिना कटे हुए चक्र का चिह्न होता है, वह परमेश्वर का अंश होता है ॥९-१०॥

तस्याभिषेक आरब्धो ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः । आभिषेचनिकान्यस्मा आजह्रुः सर्वतो जनाः ॥११॥

अन्वयः— ब्रह्मवादिभिः ब्राह्मणैः तस्य अभिषेक आरब्धः सर्वतो जनाः अस्मै आभिषेचनिकानि आजह्रुः ॥११॥

अनुवाद— वेदवादी ब्राह्मणों ने महाराज पृथु के अभिषेक का आयोजन किया तथा सबलोग उसकी सामग्री जुटाने लगे ॥११॥

भावार्थ दीपिका

आभिषेचनिकान्यभिषेकसाधनानि ॥११॥

भाव प्रकाशिका

आभिषेचनिकानि का अर्थ है अभिषेक की सामग्री ॥११॥

सरित्समुद्रा गिरयो नागा गावः खगा मृगाः । द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजह्रुरुपायनम् ॥१२॥

अन्वयः— सरित् समुद्राः, गिरयो, नागा, गावः खगा, मृगाः द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजहुः उपायनम् ॥१२॥

अनुवाद— नदियाँ, समुद्र, पर्वत, नाग, गौए, पक्षी, मृग, स्वर्ग पृथिवी, सभी जीव ये सब के सब उस समय उनको उपहार प्रदान किए ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

सोऽभिषिक्तो महाराजः सुवासाः साध्वलंकृतः । पत्न्याऽर्चिषाऽलंकृतया विरेजेऽग्निरिवापरः ॥१३॥

अन्वयः— सुवासाः साध्वलंकृतः सः अभिषिक्तः अर्चिषा पत्न्या अलंकृतया अपर अग्निः इव विरेजे ॥१३॥

अनुवाद— सुन्दर वस्त्र एवं अलङ्कारों स अलंकृत महाराज पृथु का विधि पूर्वक अषिभेक हुआ अपनी समलंकृत पत्नी अर्चि के साथ वे दूसरे अग्निदेव के समान सुशोभित होते थे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

तस्मै जहार धनदो हैमं वीर वरासनम् । वरुणः सलिलस्रावमातपत्रं शशिप्रभम् ॥१४॥

अन्वयः— वीर ! तस्मै धनदः हैमं वरासनं जहार, वरुणः सलिलस्रावम् शशिप्रभम् आतपत्रं जहार ॥१४॥

अनुवाद— हे वीर विदुरजी ! उनको कुबेर न सुवर्ण रचित राजसिंहासन प्रदान किया और वरुण ने उनको चन्द्रमा के समान कान्ति मान तथा सलिल भावी छत्र प्रदान किया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

हे वीर ! वरासनमुत्तमासनम् । सलिलस्य स्रावो यस्मात् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

हे विदुर ! कुबेर ने महाराज पृथु को सुवर्ण निमित उत्तम राजसिंहासन प्रदान किया और वरुण ने उनको ऐसा छत्र प्रदान किया जिससे सदैव जल चूता था ॥१४॥

वायुश्च वालव्यजने धर्मः कीर्तिमयीं स्त्रजम् । इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दण्डं संयमनं यमः ॥१५॥
ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म भारती हारमुत्तमम् । हरिः सुदर्शनं चक्रं तत्पत्न्यव्याहतां श्रियम् ॥१६॥
दशचन्द्रमसिं रुद्रः शतचन्द्रं तथाम्बिका । सोमोऽमृतमयानश्वांस्त्वष्टा रूपाश्रयं रथम् ॥१७॥
अग्निराजगवं चापं सूर्यो रश्मिमयानिषून् । भूः पादुके योगमय्यौ द्यौः पुष्पावलिमन्वहम् ॥१८॥
नाट्यं सुगीतं वादित्रमन्तर्धानं च खेचराः । ऋषयश्चाशिषः सत्याः समुद्रः शङ्खमात्मजम् ॥१९॥
सिन्धवः पर्वता नद्यो रथवीथीर्महात्मनः । सूतोऽथ मागधो बन्दी तं स्तोतुमुपतस्थिरे ॥२०॥

अन्वयः— वायुश्च, बालव्यजने, धर्मः कीर्तिमयीं स्त्रजम्, इन्द्रः उत्कृष्टं किरीटम् यमः संयमनं दण्डम्, ब्रह्मा ब्राह्ममयं वर्म, भारती उत्तमम् हारम्, हरिः सुदर्शनं चक्रम्, तत्पत्न्यव्याहताम् श्रियम्, रुद्रः दशचन्द्रम् असिम्, तथा अम्बिका शतचन्द्रम् असिम्, सोमः अमृतमयानश्वान्, त्वष्टा रूपाश्रयम् रथम्, अग्नि आजगवमृ चापम्, सूर्यः रश्मिमयान् इषून् भूः पादुके योगमययौ, द्यौः पुष्पावलिम् अन्वहम्, खेचराः नाट्यं सुगीतम्, वादित्रम्, अन्तर्धानं च, ऋषयः सत्याः आशिषः, समुद्रः आत्मजं शंखम्, सिन्धवः, पर्वताः नद्यः महात्मनः रथवीथीः अथसूतो मागधः वन्दी च तं स्तोतुमुपतस्थिरे ॥१५-२०॥

अनुवाद— वायु ने चँवर, धर्म ने कीर्ति माला, इन्द्र ने सर्वोत्कृष्ट किरीट, यम ने संयमन दण्ड, ब्रह्माजी ने ब्रह्मतेजोमय कवच, सरस्वती देवी ने उत्तम हार, श्रीहरि ने सुदर्शन चक्र, उनकी पत्नी श्रीदेवी ने अविचल सम्पत्ति, रुद्र ने दश चन्द्रमा के आकार वाले चिह्नों से युक्त तथा कोश से युक्त तलवार, अम्बिका देवी ने सौ चन्द्रमा के आकारों चिह्नों से युक्त खड्ग को, चन्द्रमा ने अमृतमय अश्वोंको, त्वष्टा ने सुन्दर रथ, अग्नि ने बकरे और गौ के सींग से बने धनुष को, सूर्य ने किरणमय बाणों को, पृथिवी ने चरण स्पर्श मात्र से अभीष्ट स्थान पर पहुँचा देने वाली दो पादुकाएँ, आकाश के अभिमानी द्यौ देवता ने, नित्य नूतन पुष्पों की माला को, आकाश मे संचरण करने वाले सिद्धों तथा गन्धवों आदि ने नाचने, गाने बजाने और अन्तर्धान हे जाने की शक्ति को, ऋषियों ने अमोघ आशीर्वाद को समुद्र ने अपने में उत्पन्न हुए शङ्ख को तथा सभी समुद्रों पर्वतों एवं नदियों ने उनके रथ के लिए अव्याहत मार्ग को प्रदान किया । तदनन्र सूत, मागध और वन्दी जन उनकी स्तुति करने के लिए उपस्थित हुए ॥१५-२०॥

भावार्थ दीपिका

द्वे बालव्यजने । ब्रह्ममयं वेदमयं वर्म कवचम् । तत्पत्नी श्रीः । श्रियं संपदम् । दशचन्द्राकाराणि बिम्बानि कोशे यस्य तम् । असिं खड्गम् । शतचन्द्रं चर्म रूपाश्रयमतिसुन्दरम् । अजस्य गोश्च शृङ्गाभ्यां निर्मित्तं चापम् । योगमय्यौ पादस्पर्शमात्रेणाभीष्टदेशप्रापिके । नाट्यादिकौशलं खेचराः । आत्मजं स्वप्रभवम् । तं स्तोतुमुपस्थिताः ।।१५-२०।।

भाव प्रकाशिका

द्वेबालव्यजने अर्थात् दोचँवर, ब्रह्ममयं वर्म अर्थात् वेदमय कवच, तत्पत्नी अर्थात् भगवान् विष्णु की पत्नी, अविचल सम्पत्ति को, दश चन्द्रमसिम् अर्थात् जिसके कोश पर दश चन्द्रमा के आकार के मण्डल बने थे ऐसे खड्ग को, शतचन्द्रं यानी सौ चन्द्रमा के चिह्न वाले ढाल को रूपाश्रयम् अर्थात् अत्यन्त सुन्दर, **अजगवं धनुः** अर्थात् बकरे और गौ के सींग से बने अत्यन्त सुदृढ धनुष को योगमय्यौ अर्थात् चरण के स्पर्श मात्र से अभीष्ट स्थान पर पहुँचा देने वले दो खडाऊँ, नाट्यादि की कुशलता को आकाशचारी सिद्धों आदि ने प्रदान किया, आत्मजम् अर्थात् अपने में उत्पन्न, मागध सूत आदि उनकी स्तुति करने के लिए उपस्थित हुए ।।१५-२०।।

स्तावकांस्तानभिप्रेत्य पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् । मेघनिर्ह्लादया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ।।२१।।

अन्वयः— तान् स्तावकान् अभिप्रेत्य प्रतापवान् वैन्यः पृथुः मेघनिर्ह्लादया वाचा प्रहसन् इदम् अब्रवीत् ।।२१।।

अनुवाद— उन सबों को स्तुति कर्ता के रूप में जानकर प्रतापी वेन कुमार पृथु मेघ की गर्जना के समान जोर से हँसते हुए कहे ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

स्तावकान् स्तोतुमुद्यतान् । अभिप्रेत्य ज्ञात्वा ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

स्तावकान् अर्थात् स्तुति करने के लिए तैयार, अभिप्रेत्य अर्थात् जानकर ।।२१।।

पृथुरुवाच

भो सूत हे मागध सौम्य बन्दिँल्लोकेऽधुना स्पष्टगुणस्य मे स्यात् ।
किमाश्रयोऽमे स्तव एष योज्यतां मा मय्यभूवन्वितथा गिरो वः ।।२२।।

अन्वयः— हे सौम्य सूत ! हे मागध हे वन्दिन् लोके अधुनाअस्पष्ट गुणस्य मे एषः स्तवः किमाश्रयः योज्यताम्? मयि वो गिरः वितथा मा भुवन् ।।२२।।

पृथु महाराज ने कहा

अनुवाद— हे सौम्य सूत ! हे मागध हे बन्दिजन अभी लोक में मेरे गुण प्रकट नहीं है ऐसी स्थिति में मेरे किन गुणों को लेकर स्तुति करोगे ? मेरे विषय में तुमलोगों की वाणी मिथ्या नहीं होनी चाहिए ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

लोके स्पष्टगुणस्य सतो मे स्तुतिः स्यात् । अधुना तु किमाश्रयो मे स्तवो योज्यताम् । अतो वो गिरोऽधुना मयि वितथा माभूवन् । यद्वा लोकेऽधुना स्पष्टगुणस्य मे किमाश्रयः स्तवः स्यात् । अतएव क्रियमाणः स्तवोऽमे मदन्यस्य योज्यतां, नतु मे वितथाभिधानापत्तेरित्यर्थः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

लोक में यदि मेरे गुण स्पष्ट होते तब तो मेरी स्तुति होती इस समय मेरे किन गुणों को लेकर स्तुति हो

सकती है ? अतएव मेरे विषय में आपलोगों की वाणी मिथ्या नहीं होनी चाहिए अथवा लोक में अस्पष्ट गुण वा मेरे किन गुणों को लेकर स्तुति हो सकती है ? अतएव यह किया जाने वाले मुझसे किसी भिन्न की होनी चाहिए। मेरी इसलिए नहीं कि वह स्तुति मिथ्या होगी ॥२२॥

तस्मात्परोक्षेऽस्मदुपश्रुतान्यलं करिष्यथ स्तोत्रमपीच्यवाचः ।
सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे जगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः ॥२३॥

अन्वयः— हे अपीच्यवाचः तस्मात् परोक्षे अस्मदुपश्रुतानि अलं स्तोत्रं करिष्यथ उत्तम श्लोकगुणनुवादे सति सभ्याः जुगुप्सितं न स्तवयन्ति ॥२३॥

अनुवाद— हे मधुरभाषियों इसीलिए कालान्तर में जब मेरे गुण प्रकट हो जायँ तो तुमलोग खूब मेरी स्तति कर लेना पवित्र कीर्ति श्रीहरि के गुणानुवाद के रहते हुए सभ्य पुरुष तुच्छ मनुष्यों की स्तुति नहीं करते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तस्मात् परोक्षे कालान्तरे स्पष्टेषु गुणेषु सत्स्वस्माकमुपश्रुतानि यशांसि प्रतिस्तोत्रमलमत्यर्थं करिष्यथ । हे अपीच्यवाचो मधुरगिरः। सभ्यैः प्रेरिता वयं त्वामेव स्तुम इति चेत्तत्राह । उत्तमश्लोकस्य गुणानुवादे कार्ये सति जुगुप्सितमर्वाचीनं न स्तावयन्ति।।२३॥

भाव प्रकाशिका

अतएव हे मधुरभाषियों कालान्तर में जब मेरे यश प्रकाशित हो जायँ तो फिर तुम लोग अपनी इच्छा के अनुसार मेरी स्तुति कर लेना । यदि कहो कि सम्य पुरुषों के द्वारा ही प्रेरित होकर हमलोग आपकी स्तुति करते हैं तो इस पर पृथु महाराज ने कहा— पवित्र कीर्ति श्रीभगवान् के गुणानुवाद के रहने पर सम्य पुरुष तुच्छ मनुष्यों की स्तुति नहीं करते हैं ॥२३॥

महद्गुणानात्मनि कर्तुमीशः क स्तावकैः स्तावयतेऽसतोपि ।
तेऽस्या भविष्यन्निति विप्रलब्धो जनावहासं कुमतिर्न वेद ॥२४॥

अन्वयः— महद् गुणान् आत्मनि कर्तुमीशः कः असतः अपि स्तावकैः स्तावयेत् ते अस्य अभविष्यन् इति विप्रलब्धः जनावहासं कुमतिः न वेद ॥२४॥

अनुवाद— महान् गुणों को धारण करने में समर्थ कौन बुद्धिमान मनुष्य होगा जो अपने में अविद्यमान गुणों की स्तुति करायेगा ? यह यदि शास्त्राभ्यास किए रहता तो इसमें ये गुण होते ? इस तरह की स्तुति से तो मनुष्य की वंचना ही की जाती है, किन्तु मन्दमति पुरुष यह नहीं समझता है कि इस प्रकार से लोग उसका उपहास ही करते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

ननु संभावितैरेव गुणैरात्मानं जनः स्तावयतीति चेत्तत्राह । महतां गुणानात्मनि संपादयितुं शक्तोऽप्यसतो गुणान्संभावनामात्रेण कः स्तावयते । यद्वा आदावेव सतोऽपि कः स्तावयते स्वत एव प्रख्यातिसिद्धेः । अन्यस्तु मिथ्यागुणस्तुतिश्लाघी मन्द इत्याह- त इति । यद्ययं शास्त्राभ्यासादिकमकरिष्यत्तर्ह्यस्य ते विद्यादयो गुणा अभविष्यन्निति क्रियातिपत्त्या विप्रलब्धो जानानामवहासं न वेद ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि जो गुण संभावित होते हैं उन्हीं गुणों के द्वारा लोग अपनी स्तुति करवाते हैं, तो इस पर महाराज पृथु ने कहा— जो व्यक्ति महापुरुषों के गुणों को धारण में समर्थ होता है, वह कौन ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति होगा जो अपने में विद्यमान न होने पर भी उनकी संभावना मात्र से अपनी स्तुति करायेगा । **यद्वा इत्यादि** अथवा

प्रारम्भ में ही उन गुणों के रहने पर भी उनकी स्तुति कौन करवायेगा क्योंकि उन गुणों की प्रख्याति के कारण उनकी अपने आप प्रसिद्धि हो जाती है । और जो मिथ्यागुणों की प्रशंसा करने वाला तो मन्द बुद्धि होता है । इस बात को श्लोक के उत्तरार्द्ध के द्वारा कहा गया है । जैसे कोई यह कहे कि यदि यह शास्त्र इत्यादि का अभ्यास किए होता तो यह भी विद्वान् होता । तो इस तरह का कहना तो क्रियातिपत्ति के कारण (स्तुति के समय विविध विद्या के अभ्यास आदि क्रिया की निष्पत्ति के न होने के कारण) पुरुष की प्रवंचना मात्र है । किन्तु इस तरह से अपनी स्तुति कराने वाला लोगों के द्वारा किए जाने उपहास को नहीं समझता है ।।२४।।

प्रभवो ह्यात्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्त्यपि विश्रुताः । ह्रीमन्तः परमोदाराः पौरुषं वा विगर्हितम् ।।२५।।

अन्वयः— ह्रीमन्तः परमोदाराः विगर्हितं वा पौरुषं जुगुप्सन्ति विश्रुताः प्रभवो हि आत्मनः स्तोत्रं अपि जुगुप्सन्ति।।२५।।

अनुवाद— जिस तरह लज्जाशील परमोदार पुरुष अपने निन्दित पौरुष की चर्चा को अच्छा नहीं समझते है, उसी तरह लोक विख्यात समर्थ पुरुष भी अपनी स्तुति को अच्छा नहीं समझते ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

किंच प्रभवोऽपि विश्रुता अपि ह्रीमन्तोऽपि जुगुप्सन्ति । वेति दृष्टान्ते । यथाऽतिस्तुतौ क्रियमाणायां विगर्हितं ब्राह्मणवधादिपौरुषं निन्दति तथोचितामपि स्तुतिं न सहन्त इत्यर्थः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

जिस तरह समर्थ, प्रख्यात तथा लज्जाशील भी पुरुष जिस तरह स्तुति किए जाने पर निन्दित ब्राह्मण का वध आदि की निन्दा करते है, उसी तरह वे अपनी उचित भी स्तुति को अच्छा नहीं मानते ।।२५।।

वयं त्वविदिता लोके सूताद्यापि वरीमभिः । कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत् ।।२६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

अन्वयः— सुत वयं तु अद्यापि वरीमभिः, कर्मभिः लोके अविदिता कथम् बालवत् आत्मानं गापयिष्यामि ।।२६।।

अनुवाद— सूत मैं तो अभी अपने श्रेष्ठ कर्मो के द्वारा लोक में विख्यात भी नही हूँ अतएव बच्चों की तरह कैसे अपनी प्रशंसा तुम लोगों से कराऊँ ।।२६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पृथु चरित के अन्तर्गत पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

वरीमभिरिति दीर्घत्वमार्षम् । भवितृप्रधानोऽयं निर्देशः । वरिष्ठैः कर्मभिरविदिता इत्यर्थः ।।२६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

वरीमभिः में दीर्घ आर्ष प्रयोग होने के कारण हे अन्यथा वरिभिः होना चाहिए यह भविष्यत् कालिक प्रधान यह निर्देश है । पृथु महाराज ने कहा कि मैं अपने श्रेष्ठ कर्मो के द्वारा प्रख्यात नहीं हुआ हूँ ।।२६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के पन्द्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

सोलहवाँ अध्याय

बन्दीजनों द्वारा महाराज पृथु की स्तुति

मैत्रेय उवाच

इति ब्रुवाणं नृपतिं गायका मुनिचोदिताः । तुष्टुवुस्तुष्टमनसस्तद्वागमृतसेवया ।।१।।

अन्वयः— इति ब्रुवाणं नृपतिं मुनिचोदिताः । गायकाः तद्वागमृतसेवया तुष्टमनसः तुष्टुःवुः ।।१।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से महाराज पृथु के कहने पर मुनियों के द्वारा प्रेरित होकर गायक सूत आदि महाराज की वाणी रूपी अमृत का सेवन करने के कारण सन्तुष्ट मना होकर उनकी स्तुति करने लगे ।।१।।

भावार्थ दीपिका

षोडशे सर्वलोकेशैः सत्कृतं भार्यया युतम् । मुनिप्रयुक्ताः सूताद्याः स्तुवन्ति स्मेति वर्ण्यते ।।१।। गायकाः सूतादयः।।१।।

भाव प्रकाशिका

सोलहवें अध्याय में सभी लोकपालों के द्वारा अपनी पत्नी की साथ समादृत महाराज पृथु की मुनियों के द्वारा प्रेरित सूतों ने स्तुति की ।।१।। **गायका** अर्थात् सूत मागध इत्यादि ।।१।।

नालं वयं ते महिमानुवर्णने यो देववर्योऽवततार मायया ।
वेनाङ्गजातस्य च पौरुषाणि ते वाचस्पतीनामपि बभ्रमुर्धियः ।।२।।

अन्वयः— यो देववर्यः मायया अवततार, वयं ते महिमावर्णने अलं न, वेनाङ्गजातस्यते पौरुषाणि वाचस्पतीनाम् अपि धियः बभ्रमुः ।।२।।

अनुवाद— आप साक्षात् देवताओं में श्रेष्ठ नारायण ही है ओर अपनी माया से अवतीर्ण हुए हैं । आप वेन के मृत शरीर से अवतीर्ण हुए है । आपके पौरुष का वर्णन करने में ब्रह्मा आदि देवताओं की भी बुद्धि भ्रमित हो जाती हैं ।।२।।

भावार्थ दीपिका

नालं न समर्थाः । यो भवान् । अवतारेष्वप्यस्याधिक्यमाहुः । वेनस्याङ्गाज्जातस्य ते पौरुषाणि प्रत्यवितर्क्यतया ब्रह्मादीनामपि धियो बभ्रमुः । कुतः पुनर्वयं तद्वर्णने समर्था भवेम ।।२।।

भाव प्रकाशिका

सूतादिकों ने कहा हमलोग अपकी महिमा का वर्णन करने में समर्थ नही है । जो आप अपनी माया के द्वारा अवतीर्ण हुए हैं । यह कहकर उन सबों ने महाराज पृथु की अन्य अवतारों की अपेक्षा श्रेष्ठ बलताया है । वेन के शरीर से उत्पन्न होने के कारण तर्क का विषय नहीं होने से आपकी महिमा का वर्णन करने में ब्रह्माजी आदि की भी बुद्धि भ्रमित हो जाती है ।।२।।

अथाप्युदारश्रवसः पृथोर्हरेः कलावतारस्य कथामृतादृताः ।
यथोपदेशं मुनिभिः प्रचोदिताः श्लाध्यानि कर्माणि वयं वितन्महि ।।३।।

अन्वयः— अथापि, उदारश्रवसः हरेः कलावतारस्य पृथोः कथामृतादृताः मुनिभिः प्रचोदिताः यथोपदेशं श्लाध्यानि कर्माणि वितन्महि ।।३।।

अनुवाद— फिर भी उदार कीर्ति वाले श्रीहरि के कलावतार आप महाराज पृथु की कथा रूपी अमृत के आस्वाद में आदर होने के कारण, मुनियों के द्वारा प्रेरित होकर उन्हीं के उपदेशें के अनुसार आपके प्रशंसनीय गुणों का हम विस्तार कर रहे हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अथापि यथावद्वर्णयितुमशक्ता अपि कथामृते सादराः । मुनिभिः कृत उपदेशो योगबलेन हृदि प्रकाशनं तदनतिक्रम्य। वितन्महि विस्तारयामः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

फिर भी आपकी महिमा का यथायथ वर्णन करने में असमर्थ होकर भी आपकी कथा के आस्वादन में आदर होने के कारण मुनियों के द्वारा किए गये उपदेश के योग के बल से प्रकाशित हो जाने के कारण उसी के अनुसार हमलोग आपकी महिमा का विस्तार करते हैं ॥३॥

एष धर्मभृतां श्रेष्ठो लोकं धर्मेऽनुवर्तयन् । गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता तत्परिपन्थिनाम् ॥४॥
एष वै लोकपालानां बिभर्त्येकस्तनौ तनूः । काले काले यथाभागं लोकयोरुभयोर्हितम् ॥५॥

अन्वयः— एष धर्मभृतां श्रेष्ठ लोकं धर्मेऽनुवर्तयन्, धर्मसेतूनाम् गोप्ता तत्परिपन्थिनाम् शास्ता एष एकः काले काले यथाभागं स्वतनौ लोकपालानां उभयोर्लोकयोः हितम् तनूः विभर्ति ॥४-५॥

अनुवाद— धर्म धारियों में श्रेष्ठ ये महाराज पृथु, जगत् को धर्म में प्रवृत्त करके, धर्म की मर्यादाओं की रक्षा करेंगे और धर्म के विरोधियों का प्रशासन करेंगे, ये अकेले ही समय-समय पर प्रजाओं के पालन, पोषण ओर अनुरंजन रूपी कार्य के अनुसार अपने शरीर में ही लोकपालों की मूर्ति को धारण करेंगे । लोक और परलोक का हित साधन करेंगे ॥४-५॥

भावार्थ दीपिका

तनौ स्वदेहे लोकपालानां तनूर्मूर्तीः काले काले विभर्ति । यथाभागं पालनपोषणानुरञ्जनादिकार्यानुसारेण यज्ञादिप्रवर्तनेन स्वर्गस्य हितं वृष्ट्यादिना च भूर्लोकस्य हितं यथा भवति तथा ॥४-५॥

भाव प्रकाशिका

ये प्रजाओं के पालन, पोषण तथा अनुरञ्जन रूपी कार्य के अनुसार अपने शरीर में लोकपालों की मूर्ति को धारण करेंगे ये यज्ञादि का प्रचार के द्वारा स्वर्ग का और वृष्टि आदि के द्वारा भूलोक का कल्याण करेंगे ॥४-५॥

वसु काल उपादत्ते काले चायं विमुञ्चति । समः सर्वेषु भूतेषु प्रतपन्सूर्यवद्विभुः ॥६॥

अन्वयः— सूर्यवत् प्रतपन् अयं विभुः सर्वेषु भूतेषु समः काले वसु आदत्त काले च विमुञ्चति ॥६॥

अनुवाद— सूर्य के समान प्रताप सम्पन्न ये सभी जीवों के प्रति समदर्शी होंगे । जिस प्रकार सूर्य आठ महीने तपते हुए जल को खींचते है और वर्षा के दिन में उसे वृष्टि के रूप में बरसा देते हैं, उसी तरह ये कर आदि के रूप में धन संचय करेंगे और दुर्भिक्ष आदि के समय उसका व्यय कर देंगे ॥६॥

भावार्थ दीपिका

सूर्यादितनुधारणमेवाहाष्टभिः । वसु धनं करादानकाले आदत्ते, दुर्भिक्षादिकाले विमुञ्चति च । अष्टौ मासान्सूर्यो यथा वसु जलमादत्ते वर्षासु विमुञ्चति तद्वत् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

अब आठ श्लोकों में इनके सूर्य आदि के शरीर धारकत्व का वर्णन करते हैं । ये कर लेने के समय धन का ग्रहण करेंगे और दुर्भिक्ष आदि के समय उसका व्यय कर देंगे । यह उसी तरह से करेंगे जिस तरह आठ महीने तक तपते हुए सूर्य जल को खींचते हैं और बरसात के समय उसको पृथिवी पर उड़ेल देते है ॥६॥

तितिक्षत्यक्रमं वैन्य उपर्याक्रमतामपि । भूतानां करुणः शश्वदार्तानां क्षितिवृत्तिमान् ॥७॥

अन्वयः— आर्तानां भूतानां उपरि आक्रमताम् अपि अक्रमताम् शाश्वत करुणः वैन्यः क्षितिवृत्तिमान् तितिक्षति ॥७॥

अनुवाद— यदि कोई आर्त जीव इनके शिर पर पैर भी रख देगा तो सदा दयालु बने रहने वाले महाराज पृथु उसको पृथिवी के समान बर्दास्त कर लेंगे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

मस्तके पादेनाक्रमतामप्यार्तानां भूतानामतिक्रमं सहिष्यते, क्षितेर्वृत्तिः सर्वसहनं सा वृत्तिर्यस्यास्ति स तथा ॥७॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई दीन जीव इनके शिर पर अपना पैर भी रख देगा तो ये उसको पृथिवी के समान वृत्ति को अपनाने वाले होने के कारण तथा सदा करुण बने रहने के कारण ये उसको वर्दास्त कर लेंगे ॥७॥

देवेऽवर्षत्यसौ देवो नरदेववपुर्हरिः । कृच्छ्रप्राणाः प्रजा ह्येष रक्षिष्यत्यञ्जसेन्द्रवत् ॥८॥

अन्वयः— देवे अवर्षतिअसौ देवः नरदेव वपुः हरिः एष हि कृच्छ्रप्राणाः प्रजाः इन्द्रवत् अञ्जसा रक्षिष्यति ॥८॥

अनुवाद— वर्षा के नहीं होने पर राजा का शरीर धारण करने वाले श्रीहरि रूपी महाराज पृथु प्राण सङ्कटापन्न प्रजाओं की रक्षा स्वयं जल बरसाकर इन्द्र के ही समान उन सबों की रक्षा करेंगे ॥८॥

भावार्थ दीपिका

देवेऽवर्षति एष कृच्छ्रं गताः प्राणा यासां ताः प्रजाः स्वयं वृष्टिं कृत्वा रक्षिष्यति । अत्र हेतुः- असौ नरदेववपुर्हरिरिति॥८॥

भाव प्रकाशिका

वर्षा के नहीं होने पर जिन सबों के प्राण सङ्कटापन्न हो जायेंगे उन प्रजाओं की रक्षा स्वयं वृष्टि करके कर लेंगे। इसका कारण यह है कि राजा का शरीर धारण किए हुए ये श्रीहरि ही हैं ॥८॥

आप्यायत्यसौ लोकं वदनामृतमूर्तिना । सानुरागावलोकेन विशदस्मितचारुणा ॥९॥

अन्वयः— वदनामृमूर्तिना विशदस्मित चारुणा सानुरागावलोकेन असौ लोक आप्यायति ॥९॥

अनुवाद— ये अपने मुख चन्द्र की मनोहर मुस्कान और प्रेम भरी चितवन के द्वारा सम्पूर्ण लोकों को आनन्द मग्न कर देंगे ॥९॥

भावार्थ दीपिका

वदनमेवामृतमूर्तिश्चन्द्रस्तेन । सानुरागोऽवलोको यस्मिन् । विशदं यत्स्मितं तेन चारुणा । अत्र च क्वचिद्वर्तमाननिर्देशो 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' इति भूतनिर्देशश्च 'आशंसायां भूतवच्च' इति द्रष्टव्यः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इनका मुख ही स्वयं चन्द्रमा के समान आह्लादक है उसके द्वारा तथा प्रेम पूर्ण चितवन के द्वारा, तथा मनोहर मुस्कान के द्वारा ये लोकों को आप्यायित आह्लादित करके परिपुष्ट बनाने का काम करेंगे । इस श्लोक में कहीं पर वर्तमान निर्देश किया गया है । **'वर्तमान सामीप्ये भूतवद्वा'** इस सूत्र से भूत निर्देश भी किया गया है । आशंसा के भी अर्थ में भूतवत् निर्देश होता है ॥९॥

अव्यक्तवर्त्मैष निगूढकार्यो गम्भीरवेधा उपगुप्तवित्तः ।
अनन्तमाहात्म्यगुणैकधामा पृथुः प्रचेता इव संवृतात्मा ॥१०॥

अन्वयः— एष पृथुः अव्यक्तवर्त्मा, निगूढकार्यः, गम्भीरवेधा, उपगुप्तवित्तः, अनन्त माहात्म्य गुणैक धामा प्रचेता इव संवृतात्मा ॥१०॥

अनुवाद— महाराज पृथु की गति को कोई जान नहीं पायेगा, इनके सारे कार्य गुप्त होंगे, उन कार्यों को करने का प्रकार भी गम्भीर होगा इनका धन सुरक्षित रहेगा, ये अनन्त माहात्म्य और गुणों के एक मात्र आश्रय होंगे, इस तरह मनस्वी पृथु वरुण के समान होंगे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

न व्यक्तं वर्त्म प्रवेशनिर्गममार्गो यस्य । निगूढं निष्पत्तेः पूर्वमविज्ञातं कार्यं यस्य । तच्च कार्यं गम्भीरं किमर्थमेतत्कृतमित्यन्यैरज्ञाताभिप्रायं विधत्त इति तथा । उपगुप्तं सुरक्षितं वित्तं यस्य । अनन्तमाहात्म्यश्चासौ गुणानामेकं धाम विष्णुर्यस्मिन् । अनन्तमाहात्म्योपेता गुणा एवैकं धाम स्थानं यस्येति वा । संवृतात्मा संयतमूर्तिः । समुद्रचरत्वेन वरुणस्याप्येते गुणा द्रष्टव्याः॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इनके प्रवेश करने और निकलने का मार्ग व्यक्त नहीं रहेगा । पूरा होने से पहले इनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों को कोई जान नहीं सकेगा, उस कार्य को ये किसलिए कर रहे है, इस तरह से इनके अभिप्राय को कोई नहीं जान पायेगा, इनका धन भी सुरक्षित रहेगा । अनन्तमाहात्म्य तथा गुणों के एकमात्र आश्रय भगवान् विष्णु का इनमें निवास होगा । ये संयत मूर्ति होंगे । समुद्र में रहने वाले वरुण में भी ये सभी गुण विद्यमान रहते हैं॥१०॥

दुरासदो दुर्विषह आसन्नोऽपि विदूरवत् । नैवाभिभवितुं शक्यो वेनारण्युत्थितोऽनलः ॥११॥

अन्वयः— वेनारण्युत्थितोऽनलः दुरासदः दुर्विषहः आसन्नोऽपि विदूरवत् अभिभवितुं नैवशक्यः ॥११॥

अनुवाद— महाराज पृथु वेन रूपी अरणि से प्रकट हुए अग्नि के समान हैं ये शत्रुओं के लिए दुर्घर्ष और असह्य होंगे, इनको कोई भी शत्रु अभिभूत नहीं कर पायेगा ॥११॥

भावार्थ दीपिका

दुरासदः शत्रोर्मनसापि प्राप्तुमशक्यः । दुर्विषहः शत्रुभिः सोढुमशक्यः । विदूरवत्पौरुषेणाभिभवितुमशक्यः । वेन एवारणिस्तस्मादुत्थितः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

शत्रु इनको अपने मन से भी नहीं प्राप्त कर सकता है अतएव ये दुरासद अर्थात् दुर्धर्ष हैं । शत्रु इनके पराक्रम को वर्दास्त नहीं कर पायेंगे कोई इनको अपने पौरुष से भी अभिभूत नहीं कर सकता है । ये वेन रूपी अरणि से प्रकट हुए अग्नि के समान हैं ॥११॥

अन्तर्बहिश्च भूतानां पश्यन्कर्माणि चारणैः । उदासीन इवाध्यक्षो वायुरात्मेव देहिनाम् ॥१२॥

अन्वयः— देहिनाम् अध्यक्षो वायुः रात्मेव चारणैः भूतानां अन्तर्बाहिश्च कर्माणि पश्यन् उदासीन इव ॥१२॥

अनुवाद— जिस तरह शरीरधारियों के भीतर रहने वाला प्राण रूप सूत्रात्मा भीतर बाहर के समस्त व्यापारों को देखकर भी उसके प्रति उदासीन रहता है उसी तरह ये भी गुप्तचरों के द्वारा प्राणियों के गुप्त तथा प्रकट समस्त व्यापारों को देखते हुए भी अपनी निन्दा तथा स्तुति के प्रति उदासीन के समान बने रहेंगे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

चारणैर्गुप्तभृत्यैः पश्यन्नपि स्वस्तुतिनिन्दादावुदासीन इव वर्तिष्यते यथा देहिनामध्यक्षोऽविकृत आत्मभूतो वायुः सूत्रात्मा तद्वत् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

ये चारणों (गुप्तचरों द्वारा) प्रजाओं द्वारा की जाने वाली निन्दा तथा स्तुति के प्रति उसी प्रकार उदासीन रहेंगे जैसे शरीर धारियों के अध्यक्ष अर्थात् अविकृत आत्मभूत वायु सूत्रात्मा शरीर के समस्त व्यापारों के प्रति उदासीन रहता है ।।१२।।

नादण्ड्यं दण्डयत्येष सुतमात्मद्विषामपि । दण्डयत्यात्मजमपि दण्ड्यं धर्मपथे स्थितः ।।१३।।

अन्वयः— धर्मपथे स्थितः एष अदण्ड्यं सुतम् आत्मद्विषाम् अपि न दण्डयति दण्ड्य आत्मजम् अपि दण्डयति।।१३।।

अनुवाद— धर्म के मार्ग पर स्थित रहकर अदण्ड्य अपने पुत्र अथवा शत्रु को भी दण्डित नहीं करेंगे और दण्डनीय अपने पुत्र को भी दण्ड देंगे ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

आत्मद्विषां सुतमिति सुतग्रहणं स्वात्मजसाम्यार्थम् । धर्मपथे यमस्य वृत्ते स्थितः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

धर्म के मार्ग में रहकर ये अदण्डनीय अपने शत्रुओं के पुत्र को भी नहीं दण्डित करेंगे । अपने पुत्र की समता व्यक्त करने के लिए सुत का ग्रहण किया गया है । धर्मपथे स्थितः का अर्थ है कि यमराज के वृत्तान्त को अपनाने वाले ।।१३।।

अस्याप्रतिहतं चक्रं पृथोरामानसाचलात् । वर्तते भगवानर्को यावत्तपति गोगणैः ।।१४।।

अन्वयः— भगवानर्कों यावत् गोगणैः आमानसाचलात पति अस्य पृथोः अप्रतिहतं रथचक्रम् ।।१४।।

अनुवाद— भगवान् सूर्य मानसरोवर पर्वत तक जितने प्रदेश को अपनी किरणों से प्रकाशित करते हैं, वहाँ तक इनका राज्य रहेगा ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

चक्रमाज्ञा सेना वा रथस्य वा चक्रं मानसाचलमभिव्याप्य प्रवर्तते । किंपर्यन्तमित्यत आह । अर्को रश्मिगणैर्यावत्तपति तावत् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

चक्र शब्द के द्वारा आज्ञा या सेना या रथ के बतलाया गया है । मानसाचल पर्वत पर्यन्त इनका राज्य होगा, कहाँ तक वह राज्य होगा ? इसकी आकांक्षा होने पर कहते है कि भगवान् सूर्य जितने प्रदेश तक अपने किरणों से प्रकाशित करते है, उतने प्रदेश तक इनका राज्य होगा ।।१४।।

रञ्जयिष्यति यल्लोकमयमात्मविचेष्टितैः । अथामुमाहू राजानं मनोरञ्जनकैः प्रजाः ।।१५।।

अन्वयः— यदयम् आत्मविचेष्टितैः लोकम् राञ्जयिष्यति अथ मनोरञ्जनकैः अमुम् प्रजाः राजानं आहुः ।।१५।।

अनुवाद— ये अपने कर्मों से सभी लोगों को सुखी बनायेंगे । उनका रंजन करेंगे उन रञ्जनात्मक व्यापारों के कारण प्रजा इनको राजा कहेगी ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

यद्यस्माद्रञ्जयिष्यत्यथ तस्मान्मनोरञ्जनैर्हेतुभिरमुं राजानमाहुः । मनोरञ्जनकैरिति चेष्टितविशेषणं वा ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

चूकि ये अपनी प्रजा को रजित करेगे, इसीलिए इनकी रञ्जनात्मक क्रियों के कारण प्रजा इनको राजा कहेगी। मनोरञ्जनकै: यह इनके कर्मों का विशेषण है ॥१५॥

दृढव्रतः सत्यसन्धो ब्रह्मण्यो वृद्धसेवकः । शरण्यः सर्वभूतानां मानदो दीनवत्सलः ॥१६॥

अन्वयः— दृढव्रतः सत्य सन्धः ब्रह्मण्यः वृद्धसेवकः, सर्वभूतानां शरण्यः मानदः दीनवत्सलः ॥१६॥

अनुवाद— ये दृढसङ्कल्प वाले, सत्यप्रतिज्ञ, ब्राह्मणों के भक्त, वृद्ध पुरुषों की सेवा करने वाले, सभी जीवों के रक्षक, सभी प्राणियों का सम्मान करने वाले और दीनों पर दया करने वाले होंगे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।

मातृभक्तिः परस्त्रीषु पत्न्यामर्ध इवात्मनः । प्रजासु पितृवत्स्निग्धः किङ्करो ब्रह्मवादिनाम् ॥१७॥

अन्वयः— परस्त्रीषु मातृभक्तिः पत्न्याम् आत्मनः अर्ध इव, प्रजासु पितृवत् स्निग्धः ब्रह्मवादिनाम् किङ्करः ॥१७॥

अनुवाद— दूसरे की स्त्री में माता के समान भक्ति रखने वाले, पत्नी से अपने आधे अङ्ग के समान प्रेम करने वाले, प्रजाओं पर पिता के समान प्रेम रखने वाले और ब्रह्मवादियों के सेवक होंगे ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

मातरीव भक्तिर्भजनं यस्य । आत्मनो देहस्यार्ध इव पत्न्यां प्रीतिमान् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

पर स्त्री में ये माता के समान भक्ति रखेंगे अपनी पत्नी से ये अपने आधे शरीर के समान प्रेम करेंगे ॥१७॥

देहिनामात्मवत्प्रेष्ठः सुहृदां नन्दिवर्धनः । मुक्तसङ्गप्रसङ्गोऽयं दण्डपाणिरसाधुषु ॥१८॥

अन्वयः— देहिनाम् आत्मवत् प्रेष्ठः सुहृदां नन्दिवर्धनः, अयं मुक्तसङ्ग प्रसङ्गः असाधुषु दण्डपाणिः ॥१८॥

अनुवाद— ये दूसरे प्राणियों को उतना ही प्रिय होंगे जितना अपना शरीर प्रिय होता है । ये अपने सुहृदों के आनन्द को बढ़ायेंगे, वैराग्य सम्पन्न पुरुषों से ये अधिक प्रेम करेंगे और दुष्टों को ये राजा के समान सदा दण्ड देने के लिए उद्यत रहेंगे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

नन्दि सुखं वर्धयतीति तथा । मुक्तसङ्गेषु प्रकृष्टः सङ्गो यस्य । दण्डपाणिरिवेत्यपराधानुपेक्षणमुच्यते । नादण्ड्यमित्यत्र पक्षपाताभावः उक्तः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

नन्दि सुख को कहते हैं । नन्दिवर्धन का अर्थ है सुख देने वाले वैराग्यवान् पुरुषों से प्रेम करने वाले महाराज पृथु को दण्डपाणिरिव कहकर यह बतलाया गया है कि वे अपराधियों के अपराध की उपेक्षा नहीं करेंगे । नादण्ड्यम् इत्यादि श्लोक में उनमें पक्षपात का अभाव बतलाया जा चुका है ॥१८॥

अयं तु साक्षाद्भगवांस्त्र्यधीशः कूटस्थ आत्मा कलयावतीर्णः ।
यस्मिन्नविद्यारचितं निरर्थकं पश्यन्ति नानात्वमपि प्रतीतम् ॥१९॥

अन्वयः— अयं तु साक्षात् नयधीशोभगवान् कूटस्थ, आत्मा कलया अवतीर्णः यस्मिन् अविद्या रचितं प्रतीतम् अपि नानात्वम् निरर्थकं पश्यन्ति ॥१९॥

अनुवाद— ये तो साक्षात् त्रिलोकाधिपति कूटस्थ, सर्वात्मा भगवान् नारायण हैं और इस रूप में अपने अंश से अवतीर्ण हैं । इनमें पण्डित जन अविद्या रचित तथा प्रतीत होने वाले इस नानात्व को मिथ्या ही मानते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

अयं त्विति तुशब्देन निरुपमत्वं दर्शयति । कोऽसावात्मा तमाह । यस्मिन्प्रतीतमपि नानात्वमर्थशून्यं पश्यन्ति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

अयं तु के तु शब्द के द्वारा महाराज पृथु को निरूपम बतलाया गया है । ऐसा कौन है इस प्रकार की आकांक्षा होने पर कहते हैं— कि जिनमें पण्डित जन प्रतीत होने वाले नानात्व को मिथ्या जानते हैं ।।१९।।

अयं भुवो मण्डलमोदयाद्रेर्गोप्तैकवीरो नरदेवनाथः ।
आस्थाय जैत्रं रथमात्तचापः पर्यस्यते दक्षिणतो यथार्कः ।।२०।।

अन्वयः— अयं आ उदयाद्रेः भुवो मण्डलम् गोप्ता, एकवीरः नरदेवनाथः, जैत्रं रथम् आस्थाय आत्तचापः अर्कः यथा दक्षिणतः पर्यस्यते ।।२०।।

अनुवाद— ये उदयाचल पर्यन्त भूमण्डल के रक्षक अद्वितीय वीर राजाधिराज, अपने जैत्र रथ पर बैठकर हाथ में धनुष धारण किए हुए सूर्य के समान सर्वत्र प्रदक्षिणा करेंगे ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

आ उदयाद्रेस्तत्पर्यन्तं गोप्ता गोपायिष्यति तदर्थं पर्यस्यत पर्यटिष्यति । प्रदक्षिणीकरिष्यतीत्यर्थः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

ये उदयाचल पर्यन्त पृथिवी की रक्षा करेंगे और उसके लिए पर्यटन करेंगे । अर्थात् प्रदक्षिणा करेंगे ।।२०।।

अस्मै नृपालाः किल तत्र तत्र बलिं हरिष्यन्ति सलोकपालाः ।
मंस्यंत एषां स्त्रिय आदिराजं चक्रायुधं तद्यश उद्धरन्त्यः ।।२१।।

अन्वयः— अस्मै तत्र तत्र नृपालाः सलोकपालाः बलिं हरिष्यन्ति एषां स्त्रिय तद्यशाः उद्धरन्त्यः चक्रायुधं मंस्यन्ते।।२१।।

अनुवाद— इनको स्थान स्थान पर राजागण तथा लोकपालगण उपहार प्रदान करेंगे । उन सबों की स्त्रियाँ इनके यश का गायन करेंगी और इनको आदिराज भगवान् विष्णु मानेंगी ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

अस्मै तथा प्रदक्षिणं कुर्वते । मंस्यन्ते ज्ञास्यन्ति । तस्य यश उद्धरन्त्य उदाहरन्त्यः कीर्तयन्त्यः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह प्रदक्षिणा करने वाले राजाओं और लोकपालों की पत्नियाँ इनके यश का गायन करेंगी ।।२१।।

अयं महीं गां दुदुहेऽधिराजः प्रजापतिर्वृत्तिकरः प्रजानाम् ।
यो लीलयाऽद्रीन्स्वशरासकोट्या भिन्दन्समां गामकरोद्यथेन्द्रः ।।२२।।

अन्वयः— अयं अधिराजः गां महीम् दुदुहे, प्रजानाम् वृत्तकरः प्रजापतिः, यः लीलया शरास कोट्या अद्रीन् निभन्दन् इन्द्रो यथा गाम् समां अकरोत् ।।२२।।

अनुवाद— ये राजाधिराज गोरूपधारिणी पृथिवी का दोहन करेंगे, प्रजाओं को वृत्ति प्रदान करके उन सबों का पालन करेंगे, ये बिना किसी प्रयास के ही अपने धनुष के कोने से पर्वतों को इन्द्र के समान तोड़कर समतल बना देंगे ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

इन्द्र इवाद्रीन्विभिन्दन् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र के समान पर्वतों के तोड़फोड़ कर पृथिवी को समतल कर देंगे ॥२२॥

विस्फूर्जयन्नाजगवं धनुः स्वयं यदाऽचरत्क्ष्मामविषह्यमाजौ ।
तदा निलिल्युर्दिशि दिश्यसन्तो लाङ्गूलमुद्यम्य यथा मृगेन्द्रः ॥२३॥

अन्वयः— आजौ अविषह्यम् यदा लाङ्गूलम् उद्यम्य मृगेन्द्रो यदा आजगवं धनुः विस्फूर्जयन् स्वयम् क्ष्माम् अचरत् तदा असन्तः दिशि दिशि निलिल्युः ॥२३॥

अनुवाद— युद्ध में कोई भी इनके वेग को नहीं सह सकेगा जिस समय ये अपनी पूंछ को उठाकर विचरण करने वाले मृगेन्द्र के समान अपने धनुष का टङ्कार करते हुए स्वयं पृथिवी पर सञ्चरण करेंगे उस समय सभी दुष्ट इधर-उधर छिप जायेंगे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

लाङ्गूलमुन्नमय्य यथा मृगेन्द्रश्चरति तथा धनुर्विस्फूर्जयन्यदा क्ष्मामचरत् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह अपनी पूंछ उठाकर सिंह विचरता है उसी तरह जब ये धनुष का टङ्कार करते हुए पृथिवी पर विचरण करेंगे उस समय सभी दुष्ट जिधर-तिधर छिप जायेंगे ॥२३॥

एषोऽश्वमेधान् शतमाजहार सरस्वती प्रादुरभावि यत्र ।
अहारषीद्यस्य हयं पुरन्दरः शतक्रतुश्चरमे वर्तमाने ॥२४॥

अन्वयः— एष शतम् अश्वमेधान् आजहार यत्र सरस्वती प्रादुरभवि, चरमे वर्तमाने शतक्रतुः पुरन्दरः यस्य अश्वम् अहार्षीत् ॥२४॥

अनुवाद— ये सरस्वती नदी के उद्गम स्थान पर सौ अश्वमेध यज्ञ करेंगे उस समय अन्तिम यज्ञ के अवसर पर इनके अश्व को इन्द्र चुरा लेंगे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

सरस्वती यत्र प्रादुरभावि प्रादुरभूत् । कर्मकर्तरि चिण् । तत्राहार्षीत् । हरणं करिष्यतीत्यर्थः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

जहाँ से सरस्वती नदी उद्भूत हुई है । प्रादुरभावि में कर्म कर्ता के अर्थ में चिण् प्रत्यय हुआ है । इनके अन्तिम अश्वमेध के अश्व को इन्द्र चुरा लेंगे ॥२४॥

एष स्वसद्मोपवने समेत्य सनत्कुमारं भगवन्तमेकम् ।
आराध्य भक्त्यालभतामलं तज्ज्ञानं यतो ब्रह्म परं विदन्ति ॥२५॥

अन्वयः— एष स्वसद्मो पवने भगवन्तंसनत्कुमारम् समेत्य एकम् भक्त्या आराध्य तत् अमलं ज्ञानम् अलमताम् यतो परं ब्रह्म विदन्ति ॥२५॥

अनुवाद— ये अपने महल के उपवन में भगवान् सनत्कुमार को प्राप्त करके भक्ति पूर्वक उनकी सेवा करके उस निर्मल ज्ञान को प्राप्त करेंगे जिससे कि परंब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

तत्र तत्र गिरस्तास्ता इति विश्रुतविक्रमः । श्रोष्यत्यात्माश्रिता गाथाः पृथुः पृथुपराक्रमः ॥२६॥

अन्वयः— इति विश्रुत विक्रमः पृथु पराक्रमः पृथुः तत्र तत्र ताः ताः गिरः आत्मश्रिताः गाथाः श्रोष्यति ॥२६॥

अनुवाद— इस तरह पराक्रम जब विख्यात हो जायेगा तो महापराक्रमी पृथु महाराज सर्वत्र अपने ही चरित्र की चर्चा सुनेंगे ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

विश्रुता विक्रमा यस्य । गाथाः प्रबन्धान् । आत्माश्रिता विष्ण्वाश्रिताः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

जिनका पराक्रम विख्यात है इस प्रकार के महाराज पृथु सर्वत्र भगवान् विष्णु की ही चर्चा सुनेंगे ॥२६॥

दिशो विजित्याप्रतिरुद्धचक्रः स्वतेजसोत्पाटितलोकशल्यः ।
सुरासुरेन्द्रैरुपगीयमानमहानुभावो भविता पतिर्भुवः ॥२७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अन्वयः— अप्रतिरुद्धचक्रः स्वतेजसोत्पाटित लोकशल्यः सुरासुरेन्द्रैरुपगीयमान महानुभावः दिशो विजित्य भुवः पतिर्भविता ॥२७॥

अनुवाद— इनकी आज्ञा का विरोध कोई भी नहीं कर सकेगा, अपने तेज के द्वारा प्रजाओं के कष्ट को दूर करके तथा देवताओं एवं असुरों के स्वामियों द्वारा प्रशंसा किए जाने वाले ये सारी दिशाओं को जीतकर पृथिवी के स्वामी होएँगे ॥२७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

उपगीयमानो महानुभावो यस्य ॥२७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

जिनका महान् प्रभाव का वर्णन देवताओं और असुरों के स्वामी करेंगे ॥२७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के सोलहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१६॥

* * *

सत्रहवाँ अध्याय

महाराज पृथु का पृथिवी पर कोप और पृथिवी द्वारा उनकी स्तुति

मैत्रेय उवाच

एवं स भगवान्वैन्यः ख्यापितो गुणकर्मभिः । छन्दयामास तान्कामैः प्रतिपूज्याभिनन्द्य च ॥१॥

अन्वयः— एवं सः भगवान् वैन्यः गुण कर्मभिः ख्यापितः तान् प्रतिपूज्य अभिनन्द्य च कामैः छन्दयामास ।।१।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से बन्दीजनों के द्वारा महाराज पृथु के गुणों और कर्मों का वर्णन किए जाने पर उन्होंने उन सबों की प्रशंसा की और उनकी अभिलषित वस्तुओं को प्रदान करके सन्तुष्ट किया ।।१।।

भावार्थ दीपिका

ततः सप्तदशे लोकक्षुधाः प्रशमयन्पृथुः ग्रस्तबीजां महीं हन्तुं यत्तो भीत्या तथा स्तुतः ।।१।। छन्दयामास तोषितवान्।।१।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् लोगों की भूख को मिटाने के लिए बीजों को निगल लेने वाली पृथिवी को मारने के लिए उद्यत महाराज पृथु के भय से इस सत्रहवें अध्याय में पृथिवी ने स्तुति की । **छन्दयामास** का अर्थ है सन्तुष्ट किया।।१।।

ब्राह्मणप्रमुखान्वर्णान्भृत्यामात्यपुरोधसः । पौराञ्जानपदान् श्रेणीः प्रकृतीः समपूजयत् ॥२॥

अन्वयः— ब्राह्मण प्रमुखान् वर्णान् भृत्यामात्यपुरोधसः, पौरान् जानपदान् श्रेणीः प्रकृतीः समपूजयत् ।।२।।

अनुवाद— उन्होंने ब्राह्मण आदि चारो वर्णों, भृत्यों, मन्त्रियों, पुरोहितों, नागरिकों, देशवासियों भिन्न-भिन्न व्यवसायियों, तथा प्रजाओं का सत्कार किया ।।२।।

भावार्थ दीपिका

भृत्यानमात्यान् पुरोधसः पुरोहितांश्च । श्रेणीस्तैलिकताम्बूलिकादीन्पौरविशेषान् । प्रकृतीर्नियोगिनः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

भृत्यों, मन्त्रियों, पुरोहितो, तेली, तमोली आदि नागरिकों तथा प्रजाओं का सत्कार किया ।।२।।

विदुर उवाच

कस्माद्दधार गोरूपं धरित्री बहुरूपिणी । यां दुदोह पृथुस्तत्र को वत्सो दोहनं च किम् ॥३॥

अन्वयः— बहुरूपिणी धरित्री कस्माद्गोरूपं दधार ? यां पृथु दुदोह, तत्र को वत्सः दोहनं च किम् ? ।।३।।

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— अनेक रूपों को धारण करने वाली पृथिवी ने किसलिए गौ का रूप धारण किया । जब पृथु पृथिवी का दोहन किया तो उस समय बछड़ा कौन बना और दोहन पात्र क्या हुआ ?।।३।।

भावार्थ दीपिका

दोहनं पात्रम् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

दोहन अर्थात् दूध दुहने का पात्र ।।३।।

प्रकृत्या विषमा देवी कृता तेन समा कथम् । तस्य मेध्यं हयं देवः कस्य हेतोरपाहरत् ॥४॥

अन्वयः— प्रकृत्या विषमा देवी तेन समा कथम् कृता ? तस्य मेध्यं हयं देवः कस्य हेतोरपाहरत् ॥४॥

अनुवाद— पृथिवी देवी स्वभाव से ही ऊँची नीची थी उनको महाराज पृथु ने समतल किसलिए बनाया। और महाराज पृथु के अवश्वमेध के घोड़े का इन्द्र ने क्यों हरण किया ?॥४॥

भावार्थ दीपिका

मेध्यं यज्ञार्हम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

मेध्य का अर्थ है यज्ञ के योग्य ॥४॥

सनत्कुमाराद्भगवतो ब्रह्मन्ब्रह्मविदुत्तमात् । लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं राजर्षिः कां गतिं गतः ॥५॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! सनत्कुमारात् भगवतः सविज्ञानं ज्ञानं लब्ध्वा राजर्षिः कां गतिं गतः ॥५॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! भगवान् सनत्कुमार से ज्ञान तथा विज्ञान को प्राप्त करके राजर्षि महाराज पृथु किस गति को प्राप्त किए ?॥५॥

भावार्थ दीपिका

सविज्ञानमपरोक्षज्ञानसहितम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

स विज्ञान का अर्थ है अपरोक्ष ज्ञान के साथ ज्ञान को प्राप्त करके ॥५॥

यच्चान्यदपि कृष्णस्य भवान्भगवतः प्रभोः। श्रवः सुश्रवसः पुण्यं पूर्वदेहकथाश्रयम् ॥६॥
भक्ताय मेऽनुरक्ताय तव चाधोक्षजस्य च। वक्तुमर्हसि योऽदुह्यद्वैन्यरूपेण गामिमाम् ॥७॥

अन्वयः— प्रभोः भगवतः कृष्णस्य पूर्वदेहकथाश्रयम् पुण्यम् यच्चान्यत् सुश्रवसः श्रवः तव यः वैन्यरूपेण गां अदुह्यत् अधोक्षजस्य अनुरक्ताय भक्ताय मे वक्तुमर्हसि ॥६-७॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण ही पृथु रूप से अवतीर्ण हुए थे अतएव पुण्य कीर्ति श्रीभगवान् के उस पृथु अवतार से संबद्ध जो दूसरे भी पवित्र चरित्र हों, उन सबों को आप मुझे सुनायें, मैं आपका तथा भगवान् का अनुरक्त भक्त हूँ ॥६-७॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वदेहः पृथ्ववतारस्तत्कथाश्रयम् । श्रवो यशः । सुष्ठु श्रवो यस्य । अदुह्यद्दुग्धवान् ॥६-७॥

भाव प्रकाशिका

आधुह्यत् का अर्थ है दूहा ॥६-७॥

सूत उवाच

चोदितो विदुरेणैवं वासुदेवकथां प्रति । प्रशस्य तं प्रीतमना मैत्रेयः प्रत्यभाषत ॥८॥

अन्वयः— वासुदेव कथां प्रति विदुरेण एवं चोदितः प्रीतमना मैत्रेयः तं प्रशस्य प्रत्यभाषत ॥८॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् वासुदेव की कथा कहने के लिए विदुरजी के द्वारा इस प्रकार से प्रेरित होकर प्रसन्नमना मैत्रेयजी ने उनकी प्रशंसा करके कहना प्रारम्भ किया ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

मैत्रेय उवाच

यदाऽभिषिक्तः पृथुरङ्ग विप्रैरामन्त्रितो जनतायाश्च पालः ।
प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन् ॥९॥

अन्वयः— यदा विप्रैः अभिषिक्तः पृथुः जनतायाः च पालः आमन्त्रितः निरन्ने क्षितिपृष्ठे क्षुत्क्षामदेहाप्रजाः एत्य पतिम् अभ्यवोचन् ॥९॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे विदुर ! जब ब्राह्मणों ने महाराज पृथु का अभिषेक किया और उनको प्रजाओं का पालक उद्घोषित किया उस समय अन्न रहित पृथिवी पर भूख से व्याकुल प्रजा आकर प्रजा ने अपने स्वामी से कहा ॥९॥

भावार्थ दीपिका

जनतायास्त्वं पाल इत्यामिन्त्रितो नियुक्तः । तदा निरन्ने क्षितितले सति । क्षुधाक्षामाः क्षीणा देहा यासां ताः प्रजा एत्य पतिं पृथुमब्रुवन् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों ने पृथु को कहा कि आप प्रजा के रक्षक रूप से नियुक्त हैं, उस समय पृथिवी अन्न से रहित हो गयी थी अतएव भूख के कारण दुर्बल प्रजाओं ने आकर महाराज पृथु से कहा ॥९॥

वयं राजन् जाठरेणाभितप्ता यथाऽग्निना कोटरस्थेन वृक्षाः ।
त्वामद्य याताः शरणं शरण्यं यः साधितो वृत्तिकरः पतिर्नः ॥१०॥

अन्वयः— कोटर स्थेन अग्निना वृक्षाः यथा वयं जाठरेण अभितप्ताः स्मः, त्वाम् शरण्यं शरणम् अद्ययाताः यः न वृत्तिकरः पतिः साधितः ॥१०॥

अनुवाद— महाराज जैसे वृक्ष के कोटर में स्थित अग्नि से वृक्ष जल जाता है, उसी तरह से हमलोग भूख की अग्नि से जले जा रहे है । आप शरणागतों के रक्षक हैं और हमलोगों को वृत्ति प्रदानकरके रक्षा करने वाले पति के रूप में नियुक्त किए गये है । आज हमलोग आपकी शरण में आये हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

जाठरेणाग्निनाभितप्ताः । यः साधितो विप्रैर्मन्थनेन संपादितस्तं त्वां शरणं याताः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

हमलोग भूख से संतप्त हैं । आपको इन विप्रों ने मंथन के द्वारा प्रकट है । हमलोग आपके शरणागत हैं॥१०॥

तन्नो भवानीहतु रातवेऽन्नं क्षुधार्दितानां नरदेवदेव ।
यावन्न नङ्क्ष्यामह उज्झितोर्जा वार्तापतिस्त्वत् किल लोकपालः ॥११॥

अन्वयः— हे नरदेव देव त्वं किल लोकपालः वार्तापतिः तत् भवान् यावत् उज्झितोजा न नङ्क्ष्यामहेतत् भवान् नः अन्नं रातवे ईहतु ॥११॥

अनुवाद— हे राजाधिराज ! आप ही जगत् की रक्षा करने वाले तथा हमलोगों की जीविका के भी स्वामी हैं । जब तक हमलोग अन्न का परित्याग करने के कारण मर नहीं जाते हैं उससे पहले ही आप हमलोगों को अन्न प्रदान करने का प्रबन्ध कीजिये ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मान्नोऽस्माकमन्नं रातवे रातुं दातुमीहतु ईहतां यत्नं करोतु । उज्झितोर्जास्त्यक्तान्नाः सत्यः । वार्ताया जीविकायाः पतिः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

इसलिए आप हमलोगों को अन्न प्रदान करने का प्रबन्ध करें । **उज्झितोर्जाः** का अर्थ है कि अन्न का परित्याग किए हुए **वार्तायाः पतिः** जीविका के स्वामी ।।११।।

मैत्रेय उवाच

पृथुः प्रजानां करुणं निशम्य परिदेवितम् । दीर्घं दध्यौ कुरुश्रेष्ठ निमित्तं सोऽन्वपद्यत ।।१२।।

अन्वयः— हे कुरुश्रेष्ठ ! प्रजानां करुणं परिदेवितं निशम्य पृथुः दीर्घं दध्यौ सः निमित्तं अन्वपद्यत ।।१२।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे कुरुश्रेष्ठ विदुर ! प्रजाओं के करुण क्रन्दन को सुनकर महाराज पृथु देर तक विचार करते रहे और अन्त में उन्हें अन्नाभाव का कारण ज्ञात हो गया ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

परिदेवितं विलापम्। निमित्तं हेतुमन्वपद्यत ज्ञातवान् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

परिदेवित अर्थात् रुदन निमित्त यानीकारण, अन्वपद्यत अर्थात् जान गये ।।१२।।

इति व्यवसितो बुद्ध्या प्रगृहीतशरासनः । संदधे विशिखं भूमेः क्रुद्धस्त्रिपुरहा यथा ।।१३।।

अन्वयः— इति बुद्ध्या व्यवसितः प्रगृहीत शरासनः क्रुद्धः त्रिपुरहा यथा भूमेः विशिखं संदधे ।।१३।।

अनुवाद— इस तरह से अपनी बुद्धि से निश्चय करके क्रुद्ध होकर वे धनुष उठा लिए और त्रिपुर विनाशक भगवान् शङ्कर के समान पृथिवी को लक्ष्य बनाकर धनुष पर बाण चढाये ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

पृथिव्या ओषधिवीजानि ग्रस्तानीति व्यवसितो निश्चितवान्सन् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी ने अन्न के बीजों को निगल लिया है इस तरह से उन्होंने अपनी बुद्धि से निश्चय किया ।।१३।।

प्रवेपमाना धरणी निशाम्योदायुधं च तम् । गौः सत्यपाद्रवद्भीता मृगीव मृगयुद्रुता ।।१४।।

अन्वयः— उदायुधं च तं निशाम्य प्रवेपमानां धरणी भीता मृगयुद्रुता मृगीव गौः सति अपाद्रवत् ।।१४।।

अनुवाद— धनुष धारण किए हुए महाराज पृथु को देखकर पृथिवी काँप गयी और गौ का रूप धारण करके जिस तरह व्याधे के द्वारा पीछा किए जाने पर मृगी भागती है उसी तरह भागने लगी ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

मृगयुना द्रुताऽनुगता मृगीव ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

व्याधे के द्वारा पीछा की जाती हुई मृगी के समान ।।१४।।

तामन्वधावत्तद्वैन्यः कुपितोऽत्यरुणेक्षणः । शरं धनुषि सन्धाय यत्र यत्र पलायते ।।१५।।

अन्वयः— कुपितः अत्यरूणेक्षणः वैन्यः शरं धनुषि सन्धाय यत्र-यत्र पलायते ताम् अन्वधावत् ।।१५।।

अनुवाद— क्रोध के कारण आँखें लाल किए हुए महाराज पृथु धनुष पर बाण चढाये हुए पृथिवी जहाँ-जहाँ भागी उसका वे पीछा करते रहे ।।१५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१५।।

सा दिशो विदिशो देवी रोदसी चान्तरं तयोः । धावन्ती तत्र तत्रैनं ददर्शानूद्यतायुधम् ।।१६।।

अन्वयः— दिशः विदिशः सा देवी रोदसीतयोः अन्तरं धावन्ती तत्र तत्र एवं अनुउदायुधम् एवं ददर्श ।।१६।।

अनुवाद— दिशाओं, विदिशाओं, स्वर्गलोक और पृथिवी पर वह भूदेवी जहाँ-जहाँ भागकर जाती थी वहीं अपने पीछे धनुष चढाये हुए महाराज पृथु को देखती थी ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

रोदसी द्यावापृथिव्यौ तयोरन्तरमन्तरिक्षं च । अनु पृष्ठतः उद्यतमायुधं येन ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

रोदसी अन्तरम् अर्थात् द्युलोक भूलोक और उन दोनों के बीच में विद्यमान अन्तरिक्ष लोक में भी वह अपने पीछे धनुष धारण किए महाराज पृथु को देखी ।।१६।।

लोके नाविन्दत त्राणं वैन्यान्मृत्योरिव प्रजाः । त्रस्ता तदा निववृते हृदयेन विदूयता ।।१७।।

अन्वयः— मृत्योः प्रजा इव लोके वैन्यात् त्राणं न अविन्दत तदा त्रस्ता विदूयता हृदयेन निववृते ।।१७।।

अनुवाद— जिस तरह मनुष्य को कोई नहीं बचा सकता उसी तरह त्रिलोकी में वेन पुत्र पृथिवी को बचाने वाला कोई नहीं मिला तब वह भयभीत होकर दुःखी हृदय से लौट आयी ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

उवाच च महाभागं धर्मज्ञापन्नवत्सल । त्राहि मामपि भूतानां पालनेऽवस्थितो भवान् ।।१८।।

अन्वयः— महाभागं च उवाच— हे धर्मज्ञ! हे आपन्न वत्सल! भूतानां पालने अवस्थितो भवान् माम् अपि त्राहि।।१८।।

अनुवाद— उसने महाभाग पृथु से कहा— हे धर्मज्ञ ! हे शरणागत वत्सल ! जीवों की रक्षा में आप तत्पर मेरी भी रक्षा कीजिये ।।१८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१८।।

स त्वं जिघांससे कस्माद्दीनामकृतकिल्बिषाम् । अहनिष्यत्कथं योषां धर्मज्ञ इति यो मतः ।।१९।।

अन्वयः— यः धर्मज्ञ इति मतः स त्वं दीनाम् अकृत किल्विषाम् योषां मां कथं अहनिष्यत् कथं मां जिघांससे ।।१९।।

अनुवाद— आप धर्मज्ञ रूप से प्रख्यात है ऐसे आप दीन और निरपराध मुझ स्त्री को कैसे मारेगें, और आप मुझको क्यों मारना चाहते हैं ?।।१९।।

भावार्थ दीपिका

यो धर्मज्ञ इति मतः स भवान् योषां मां कथमहनिष्यद्धनिष्यति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

जो आप धर्मज्ञ रूप से प्रख्यात हैं वे आप मुझ को कैसे मारेंगे ।।१९।।

प्रहरन्ति न वै स्त्रीषु कृतागस्स्वपि जन्तवः । किमुत त्वद्विधा राजन्करुणा दीनवत्सलाः ॥२०॥

अन्वयः— राजन् ! जन्तवः कृतागस्स्वपि स्त्रीषु वै न प्रहरन्ति त्वद् विधाः करुणा दीनवत्सलाः किमुत ॥२०॥

अनुवाद— राजन् ! स्त्रियों के अपराध करने पर भी साधारण जीव उन पर हाथ नहीं उठाते हैं, फिर आप जैसे दयालु और दीन वत्सल के विषय में क्या कहना है ?॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

मां विपाट्याजरां नावं यत्र विश्वं प्रतिष्ठितम् । आत्मानं च प्रजाश्चेमाः कथमम्भसि धास्यसि ॥२१॥

अन्वयः— अजरां नावं मां विपाट्य यत्र विश्वं प्रतिष्ठितम् आत्मानं इमां प्रजाश्च अम्भसि कथं धास्यसि ॥२१॥

अनुवाद— जिसके ऊपर सम्पूर्ण विश्व स्थित है, उस सुदृढ नौका के समान मुझको विनष्ट करके आप अपने को तथा इन सारी प्रजाओं को जल के ऊपर कैसे रखेंगें ?॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अजरां दृढाम् । धास्यसि धारयिष्यसि ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

अजराम् अर्थात् सुदृढ, धास्यसि अर्थात् धारण करेंगे ॥२१॥

पृथुरुवाच

वसुधे त्वां वधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीम् ।भागं बर्हिषि या वृङ्क्ते न तनोति च नो वसु ॥२२॥

अन्वयः— वसुधे मत् शासन पराङ्मुखीं त्वाम् वधिष्यामि या बर्हिषि भागं वृङ्क्ते नो वसुं न तनोति ॥२२॥

महाराज पृथु ने कहा

अनुवाद— पृथिवी ! तुम मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने वाली हो अतएव मैं तुम्हारा वध करूँगा । तुम यज्ञों में भाग तो ग्रहण करती हो किन्तु उसके बदले में अन्न नहीं देती हो ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

बर्हिषि यज्ञे या भवती देवतारूपेण भागं वृङ्क्ते भजते । वसु धान्यादिकम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

तुम यज्ञ में देवता रूप से भाग तो ग्रहण करती हो किन्तु उसके बदले में अन्न नहीं प्रदान करती हो ॥२२॥

यवसं जग्ध्यनुदिनं नैव दोग्ध्यौधसं पयः । तस्यामेवं हि दुष्टायां दण्डो नात्र न शस्यते ॥२३॥

अन्वयः— अनुदिनं यवसं जग्धि औधसं पयः नैव दोग्धि, तस्यां एवं दुष्टायां दण्डं न शस्यते न ॥२३॥

अनुवाद— जो प्रतिदिन हरी-हरी घास खाती है किन्तु थन का दूध नहीं देती है, ऐसी दुष्टता करने वाली गौ को दण्ड देना अनुचित नहीं होता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

गोरूपेण तु यवसं तृणं जग्धि अत्तीत्यर्थः । पयस्तु नैव दोग्धि दुग्धं न स्रवति । अत्रास्मिन्नपराधे ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

गौ का रूप धारण करके घास खाती हो किन्तु दूध नहीं देती हो इस अपराध में तुमको दण्ड देना उचित हैं ॥२३॥

त्वं खल्वोषधिबीजानि प्राक्सृष्टानि स्वयंभुवा । न मुञ्चस्यात्मनिरुद्धानि मामवज्ञाय मन्दधीः ॥२४॥

अन्वयः— मन्दधीः त्वं माम् अवज्ञाय स्वयम्भुवा प्राक्सृष्टानि बीजानि, आत्मरुद्धानि न मुञ्चसि ॥२४॥

अनुवाद— तुम मूर्ख हो मेरी अवहेलना करनके ब्रह्माजी के द्वारा रचित बीजों को अपने मे छिपाकर उसे उगने नहीं देती हो ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनि देहे रुद्धानि ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

अपने में छिपाये हुए ॥२४॥

अमूषां क्षुत्परीतानामार्तानां परिदेवितम् । शमयिष्यामि मद्बाणैर्भिन्नायास्तव मेदसा ॥२५॥

अन्वयः— मद्‌बाणैः भिन्नायाः तव मेदसा क्षुत्परीतानां आर्तानां अमूषां परिदेवितम् शमयिष्यामि ॥२५॥

अनुवाद— मेरे बाणों से छिन्न भिन्न हुई तुम्हारे मेदे से मैं इन आर्त एवं भूखे लोगों की रुदन को शान्त करूँगा ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

मद्वधे सर्वथा अन्नं न स्यादिति चेदत आह । अमूषां प्रजानाम् । मेदसा मांसेन ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि मेरा वध करने पर तो अन्न बिल्कुल नहीं होगा तो इस पर महाराज पृथु ने कहा तुम्हारे मांस से इन सबों की भूख मिटाऊँगा ॥२५॥

पुमान्योषिदुत क्लीब आत्मसंभावनोऽधमः । भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽवधः ॥२६॥

अन्वयः— आत्म सम्भावनः भूतेषु निरनुक्रोशः अधमः पुमान् योषित् उत क्लीबः नृपाणां तद्‌वधः अवधः ॥२६॥

अनुवाद— जो अधम अपना ही पोषण करता है और दूसरों के प्रतिक्रूर हो वह चाहे पुरुष हो, स्त्री हो, नपुंसक हो राजा के द्वारा उसका किया जाने वाला वध; वध नहीं कहलाता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं योषां कथं हनिष्यतीति तत्राह- पुमानिति । तस्य वधोऽवध एव ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी ने यह जो कहा था कि आप स्त्री का वध कैसे करेंगे । उसके उत्तर में महाराज पृथु ने कहा कि तुम्हारा वध; वध है ही नहीं ॥२६॥

त्वां स्तब्धां दुर्मदां नीत्वा मायागां तिलशः शरैः । आत्मयोगबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥२७॥

अन्वयः— त्वां स्तब्धां, दुर्मदां मायागां शरैः तिलश नीत्वा आत्मयोग बलेन, इमां प्रजां धारयिष्यामि ॥२७॥

अनुवाद— गर्वीली, मदोन्दत्त और माया से ही गौ का रूप बनाये हुई तुमको मैं अपने बाणों से टुकड़े-टुकड़े करके अपने योग बल से प्रजाओं को धारण करूँगा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

यच्चोक्तं कथमम्भसि धास्यसीति तत्राह- त्वामिति । तिलशस्तिलप्रमाणानि खण्डानि इत्येवंभूतामवस्थां नीत्वा ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी ने यह जो कहा था कि जल के ऊपर प्रजाओं को कैसे धारण करेंगे उसके उत्तर में महाराज पृथु ने कहा— कि मैं तुमको तिल जैसे टुकड़े-टुकड़े करके प्रजाओं को अपने योग के बल पर धारण करूँगा ॥२७॥

एवं मन्युमयीं मूर्तिं कृतान्तमिव बिभ्रतम् । प्रणता प्राञ्जलिः प्राह मही संजातवेपथुः ॥२८॥

अन्वयः— एवं मन्युमयी कृतान्तम् इव विभ्रतम् प्रणता प्राञ्जलिः मही संजात वेपथुः प्राह ॥२८॥

अनुवाद— इस तरह से यमराज के समान क्रोध मय शरीर को धारण करने वाले महाराज पृथु से पृथिवी ने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनीत भाव से काँपती हुई कहा ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

मन्युमयीं मूर्तिं विभ्रतः कृतान्ततुल्यत्वमुच्यते, नतु कृतान्तस्य मन्युमयी मूर्तिरिति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

क्रोधमयी शरीर को धारण करने वाले राजा की यमराज की सदृशता बतलायी गयी है यमराज के क्रोध मयी मूर्ति को नहीं ॥२८॥

पृथिव्युवाच

नमः परस्मै पुरुषाय मायया विन्यस्तनानातनवे गुणात्मने ।
नमः स्वरूपानुभवेन निर्धुतद्रव्य क्रियाकारकविभ्रमोर्मये ॥२९॥

अन्वयः— परस्मै पुरुषाय नमः, मायया विन्यस्तनानातनवे गुणात्मने नमः, स्वरूपानुभवेन । निर्धूत द्रव्य क्रियाकारक विभ्रमोर्मये ॥२९॥

पृथिवी ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! आप साक्षात् परम पुरुष हैं तथा अपनी माया से अनेक प्रकार के शरीरों को धारण करके गुणमय प्रतीत होते हैं, आत्मानुभव के द्वारा आप अधिभूत, अध्यात्म तथा अधिदैव सम्बन्धी अभिमान और उससे उत्पन्न रागद्वेष आदि से सर्वथा रहित हैं ऐसे आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

शुद्धसत्त्वतनुं देवमकस्मादतिदारुणम् । वीक्षमाणां पृथुं पृथ्वी तुष्टाव करुणोक्तिभिः ॥१॥ मायया विन्यस्ता रचिता नाना घोरादितनवो येन । गुणात्मने गुणमयत्वेन प्रतीयमानाय । वस्तुतस्तु निर्धूता निरस्ता द्रव्यक्रियाकारकेष्वधिभूताध्यात्माधिदैवेषु विभ्रमोऽहङ्कारस्तन्निमित्ता ऊर्मयो रागद्वेषादयश्च यस्मिंस्तस्मै ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

शुद्ध सत्त्व शरीरक श्रीभगवान् को आकस्मात् अत्यन्त भयङ्कर देखती हुई पृथिवी कारुण्ययुक्त वचनों से स्तुति की । जो भगवान् माया के द्वारा अनेक भयङ्कर शरीर को धारण कर लेते हैं । तथा त्रिगुणात्मक रूप से प्रतीत होने वाले वस्तुत अधिभूत अध्यात्म तथा अधिदैव में होने वाले अहङ्कार जन्य राग द्वेष आदि से पूर्णतः रहित आप भगवान् को मैं नमस्कार करती हूँ ॥२९॥

येनाहमात्मायतनं विनिर्मिता धात्रा यतोऽयं गुणसर्गसंग्रहः ।
स एव मां हन्तुमुदायुधः स्वराडुपस्थितोऽन्यं शरणं कमाश्रये ॥३०॥

अन्वयः— येन धात्रा अहं आत्मायतनं विनिर्मिता, यतोऽयं गुणसर्गसंग्रहः स एव स्वाराट् मां हन्तुम् उदायुधः अन्यं कं शरणं आश्रये ॥३०॥

अनुवाद— जिस परमात्मा ने मुझे सभी जीवों का आश्रय बनाया हैं, जिन्होंने इस त्रिगुणात्मक जगत् की सृष्टि की है, स्वतन्त्र वे ही परमात्मा यदि आयुध लेकर मुझे मारने के लिए तैयार हैं तो अब मैं किस दूसरे पुरूष के शरण में जाऊँ ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

अहो सर्वजीवाश्रयत्वेन सृष्टां मां कथं हन्तुं प्रवर्तत इत्याह । येन विधात्रात्मनां जीवानामायतनमहं निर्मिता । यतो यस्यां मयि गुणसर्गस्य चतुर्विधभूतग्रामस्य संग्रहो धारणम् । स्वराट् स्वतन्त्रः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

आश्चर्य है कि सभी जीवों के आश्रय रूप से निर्मित मुझको मारने के लिए आप कैसे उद्यत हैं ? इस बात को कहती हुई पृथिवी कहती हैं— जिन परमात्मा ने मुझे जीवों के आश्रय रूप से बनाया, तथा जिन परमात्मा ने मेरे ऊपर देव, मनुष्य, तिर्यक् और स्थावर इन चार प्रकार के जीवों की रचना की, वे स्वतंत्र हैं ।।३०।।

य एतदादावसृजच्चराचरं स्वमाययात्माश्रययाऽवितर्क्यया ।
तयैव सोऽयं किल गोप्तुमुद्यतः कथं नु मां धर्मपरो जिघांसति ।।३१।।

अन्वयः— स्व आत्माश्रयया अवितर्कया मायया आदौ एतत् चराचरं असृजत्, तयैव किल गोप्तुम् उद्यतः सोऽयं धर्मपर मां कथं न जिघांसति ।।३१।।

अनुवाद— जो आप सृष्टि के प्रारम्भ में अपने आश्रित रहने वाली अचिन्त्य माया के द्वारा इस चराचर जगत् की सृष्टि किए और उसी मायां के द्वारा इस जगत् की रक्षा करने के लिए उद्यत है, वे ही धर्म परायण परमात्मा आप मुझे क्यों मारना चाहते हैं ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

सृष्टिसंहारकारकोऽहमेवेति चेत्तथापि प्रजापालने प्रवृत्तस्य मद्वधोऽनुचित एवेत्याह-य एतदिति । आत्माश्रयया जीवविषयिण्या।।३१।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि जगत् सृष्टि और संहार करने वाला मैं ही हूँ, तो फिर प्रजाओं का पालन करने में आपका मुझे मारना उचित नहीं है, इस बात को पृथिवी ने **य एतद् इत्यादि** श्लोक से कहा है । आत्माश्रयया का अर्थ है जीव को अपना विषय बनाने वाली माया के द्वारा ।।३१।।

नूनं बतेशस्य समीहितं जनैस्तन्मायया दुर्जययाऽकृतात्मभिः ।
न लक्ष्यते यस्त्वकरोदकारयद्योऽनेक एकः परतश्च ईश्वरः ।।३२।।

अन्वयः— नूनं बत तत् दुर्जयया मायया अकृतात्मभिः जनैः ईशस्य समीहितं न लक्ष्यते, यस्तु अकरोत् अकारयत्, परतः ईश्वर च यः एक अनेकः ।।३२।।

अनुवाद— यह निश्चित है कि परमात्मा की जो दुर्जयमाया है, उसके कारण विक्षिप्त बने रहने वाले जीव परमात्म के अभीप्सित को नहीं जान सकते हैं । वे ही परमात्मा ब्रह्माजी की रचना किए और ब्रह्माजी के द्वारा जगत् की सृष्टि कराये । वे अपने आप साक्षात् परमेश्वर हैं और एक होकर भी अनेक प्रतीत होते हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

अतो दुर्ज्ञेयमीश्वरचेष्टितमित्याह-नूनमिति । अकृतात्मभिर्विक्षिप्तचित्तैः । य ईश्वरः स्वतन्त्रः । अकरोद्ब्रह्माणम् । परत इति तेन ब्रह्मणा चराचरमकारयत् । यश्च स्वत एकः परतो माययाऽनेकः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी ने **नूनम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा— परमात्मा की लीलाएँ दुर्ज्ञेय हैं । जीव तो परमात्मा की माया से मोहित होने के कारण विक्षिप्त चित्त वाले हैं । ईश्वर स्वतंत्र हैं । उन्होंने ब्रह्माजी की रचना की उसके पश्चात् उन्होंने ब्रह्माजी से चराचर जगत् की रचना करवाई । वे स्वयं तो एक हैं किन्तु माया के कारण अनेक प्रतीत होते हैं ।।३२।।

सर्गादि योऽस्यानुरुणद्धि शक्तिभिर्द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मभिः ।
तस्मै समुन्नद्धनिरुद्धशक्तये नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ।।३३।।

अन्वयः— यः द्रव्य क्रिया कारक चेतनात्मभिः शक्तिभिः अस्य सर्गादि अनुरुणद्धि, तस्मै समुनद्धशक्तये वेधसे परस्मै पुरुषाय नमः ।।३३।।

अनुवाद— जो परमात्मा द्रव्य (पञ्चमहाभूत) क्रिया (इन्द्रियाँ) कारक (देवता) चेतना (बुद्धि) आत्मा (अहङ्कार) इन शक्तियों के द्वारा इस जगत् की सृष्टि आदि कर्मों को करते हैं, उन सबों के द्वारा आपकी यदि विषयिणी शक्तियाँ स्वाधीन होती हैं । ऐसे परम पुरुष जगद्विधाता को मेरा नमस्कार हैं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

तस्मादचिन्त्यशक्तये केवलं नम इत्याह । सर्गादिजन्मस्थितिभङ्गमस्य जगतोऽनुरुणद्यनुवर्तते करोति । द्रव्याणि महाभूतानि। क्रिया इन्द्रियाणि । कारका देवाः । चेतना बुद्धिः । आत्माऽहंकारः । तैः स्वशक्तिरूपैः समुन्नद्धाः समुत्कटा निरुद्धाः शक्तयो यस्य ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

अतएव अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न परमात्मा को केवल नमस्कार है । इस बात को पृथिवी ने इस श्लोक में कहा है । इस जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार करने का काम परमात्मा आप ही करते हैं । महाभूत, इन्द्रियाँ, प्रकृति प्रवर्तक देवता, बुद्धि, अहङ्कार इन सबों के द्वारा परमात्मा की सृष्टि यदि विषयिणी शक्तियाँ उत्कट होती हैं । और परमात्मा के अधीन रहती है । ऐसे परम पुरुष जगत् के विधाता अपको नमस्कार है ।।३३।।

स वै भवानात्मविनिर्मितं जगद्भूतेन्द्रियान्तःकरणात्मकं विभो ।
संस्थापयिष्यन्नज मां रसातलादभ्युज्जहाराम्भस आदिसूकरः ।।३४।।

अन्वयः— हे अज ! सवै भवान् आत्मविनिर्मितं, भूतेन्द्रियान्तःकरणात्मकं जगत् संस्थापयिष्यन् आदि सूकरः सन् रसातलात् मां अम्भसः उज्जहार ।।३४।।

अनुवाद— हे अजन्मा प्रभो ! वे ही आप अपने द्वारा निर्मित भूत, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण रूपी जगत् को स्थापित करने के लिए आदि वराह रूप धारण करके रसातल से मुझको जल से बाहर लाए ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

प्राणिनां धारणार्थं मां रसातलादुद्धृत्येदानीं प्रजारक्षणे प्रवृत्तस्य मद्वधो न युक्त इति सकरुणमाह द्वाभ्याम् । हे अज, यः सृष्टवान्स एव भवान्स्वनिर्मितं चराचरं जगत्सम्यक् स्थापयितुमादिसूकरः सन् मामभ्युज्जहार ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

प्राणियों को जीवित रखने के लिए मुझको रसातल से यहाँ लाकर इस समय मेरा वध करना उचित नहीं है आप तो प्रजाओं की रक्षा करने में प्रवृत्त है, इस बात को पृथिवी ने करुणा पूर्वक दो श्लोकों में कहा हैं—

हे अजन्मा प्रभो ! आपने ही जगत् की सृष्टि की वे ही आप चराचर जगत् की अच्छी तरह से स्थापित करने के लिए आदिवराह का रूप धारण करके मेरा उद्धार किए ।।३४।।

अपामुपस्थे मयि नाव्यवस्थिताः प्रजा भवानद्य रिरक्षिषुः किल ।
स वीरमूर्तिः समभूद्धराधरो यो मां पयस्युग्रशरो जिघांससि ।।३५।।

अन्वयः— यः माम् धराधरः समभूत् सवीरमूर्ति अपामुपस्थे मयि नावि अवस्थिताः प्रजाः रक्षितुं मां पयसि उग्रशरः जिघांससि ।।३५।।

अनुवाद— जो आप मेरा उद्धार करके धराधर कहलाये वही आप आज जल के उपर नौका के समान मुझ पर विद्यमान प्रजाओं की रक्षा करने के लिए वीरमूर्ति पृथु बने हुए आप दूध नहीं देने के अपराध में मुझे मारना चाहते हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

स एव धराधरो वराहोऽद्य अपामुपस्थे उपरि मयि नावि आधारभूतायामवस्थिताः प्रजा रक्षितुमिच्छुवीरमूर्तिः पृथुरूपः समभूत् । एवंभूतो यः स त्वं पयसि निमित्ते मां जिघांससीति चित्रमित्यर्थः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

वे ही धराधर नामक वराह रूपधारी आप जल के ऊपर स्थित नौका के सामन मेरे ऊपर स्थित प्रजाओं की रक्षा करने की इच्छा से पृथु रूप वाले हो गये हैं । इस प्रकार के जो आप है मुझे दूध नहीं देने के अपराध में मारना चाहते हैं । यह बड़े ही आश्चर्य की बात है ।।३५।।

नूनं जनैरीहितमीश्वराणामास्मद्विधैस्तद्गुणसर्गमायया ।
न ज्ञायते मोहितचित्तवर्त्मभिस्तेभ्यो नमो वीरयशस्करेभ्यः ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुविजये धरित्रीनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

अन्वयः— नूनंतद्गुण सर्गमायया अस्मद् विधैः मोंहितचित्त वर्त्मभिः ईश्वराणां जनैः ईहितं न ज्ञायते तेभ्यः वीर यशस्कारेभ्यो नमः ।।३६।।

अनुवाद— निश्चित रूप से परमात्मा की त्रिगुणात्मिका सृष्टि करने वाली माया के द्वारा हमलोगों की चित्त वृत्ति मोहित है अतएव हमलोग तो परमात्मा के भक्त है । उन लोगों की ही सभीहित को हम नहीं जानते है, ऐसी स्थिति में यदि हम आपकी किसी क्रिया विशेष का उद्देश्य न समझें तो इसमें कौन सा आश्चर्य है । अतएव जो इन्द्रियों के संयम द्वारा वीरोचित यज्ञ का विस्तार करते हैं ऐसे आपको नमस्कार है ।।३६।।

इस तरह श्रीमद्भागतव महापुराण के चौथे स्कन्ध के पृथु विजय के प्रसङ्ग में पृथिवी का निग्रह नामक सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

तस्मादीश्वरचेष्टितं दुर्ज्ञेयमिति कैमुत्यन्यायेनोपसंहरति-नूनमिति । तस्येश्वरस्य गुणसर्गरूपया मायया मोहितं चित्तमेव वर्त्म येषाम् । मोहितानि चित्तवर्त्मानि येषामिति वा तैर्जनैरीश्वराणां हरिभक्तानामेव तावदीहितं न ज्ञायते, किं पुनस्तस्य परमेश्वरस्य। अतएव परमेश्वरवत्तेभ्योऽपि नम एव केवलम् । वीराणां जितेन्द्रियाणां यशः कुर्वन्ति ये तेभ्यः यशावीराणां यशो वर्धेत तथा चेष्टतां न तु यथेष्टमिति भावः ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।'

भाव प्रकाशिका

अतएव ईश्वर की लीला दुर्ज्ञेय है इस बात को पृथिवी कैमुत्य न्याय से उपसंहार करती हुई नूनम् इत्यादि श्लोक को कहती है। उस ईश्वर की त्रिगुणात्मिका सृष्टि रूपी माया के द्वारा जिनका चित्त मोहित है, वे जीव ईश्वर के भक्तों के ही सभीहित को नहीं जान पाते हैं तो फिर वे परमेश्वर के सभीहित को कैसे जान पायेंगे। अतएव परमेश्वर के ही समान भगवद् भक्तोंको केवल नमस्कार ही करती हूँ। जो लोग जितेन्द्रियों के यश क़ो बढाते है उन सबों को भी केवल नमस्कार है। जैसे वीरों का यश बढ़े उस तरह की चेष्टा को ही नहीं जान पाते हैं उनके समीहित की कौन सी बात हैं ?॥३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के भावार्थ दीपिका टीका के सत्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१७।।

* * *

अठारहवाँ अध्याय

पृथ्वी का दोहन

मैत्रेय उवाच

इत्थं पृथुमभिष्टूय रुषा प्रस्फुरिताधरम् । पुनराहावनिर्भीता संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥१॥

अन्वयः— इत्थं रुषा प्रस्फुरिताधरम् पृथुम् अभिष्टूय अवनिः भीताः पुनः आत्मना आत्मानं संस्तभ्य पुनराह ॥१॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह क्रोध के कारण जिनके ओष्ठ फड़फड़ा रहे थे ऐसे महाराज पृथु की स्तुति करके पृथिवी अपने हृदय को विचार पूर्वक समाहित करके पुनः उनसे कहीं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टादशे महीवाक्याद्वत्सपात्रादिभेदतः । पृथ्वादिभिस्तु सा दुग्धा स्वं स्वं दुग्धमितीर्यते ॥१॥

भाव प्रकाशिका

अठारहवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि पृथ्वी के कहने पर वत्स और पात्र की भिन्नता से पृथु आदि ने अपने-अपने अभिप्रेत दूध को पृथिवी से दूहा ॥१॥

संनियच्छाभिभो मन्युं निबोध श्रावितं च मे । सर्वतः सारमादत्ते यथा मधुकरो बुधः ॥२॥

अन्वयः— भो मन्युं अभिसंनियच्छ मे श्रावितं च निबोध बुधः मधुकरो यथा सर्वतः सारम् आदत्ते ॥२॥

अनुवाद— प्रभो अपने क्रोध को आप नियन्त्रित करे और मेरी प्रार्थना को सुनिए । विद्वान् पुरुष भ्रमर के समान हर ओर से सार का ग्रहण करते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

हे अभिभो प्रभो, यद्वा भो देव, अभि अभयं यथा भवत्येवं मन्युं संनियच्छ । श्रावितं विज्ञापितम् । न मद्वाक्येऽनादरः कर्तव्य इत्याह । बुधो हि सर्वतः सारमादत्ते ॥२॥

भाव प्रकाशिका

हे प्रभो ! जैसे मुझको अभय प्राप्त हो उस तरह से आप अपने क्रोध को नियन्त्रित करे । मैं जो प्रार्थना करती हूँ उसे आप सुनें । मेरे वाक्य का अनादर न करें । विद्वान् पुरुष हर ओर से सार का ही ग्रहण करते हैं॥२॥

अस्मिँल्लोकेऽथवामुष्मिन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । दृष्टा योगाः प्रयुक्ताश्च पुंसां श्रेयः प्रसिद्धये ॥३॥

अन्वयः— तत्त्वदर्शिभिः मुनिभिः अस्मिन् अथवा अमुष्मिन् पुंसां श्रेय प्रसिद्धये योगाः दृष्टाः प्रयुक्ताश्च ॥३॥

अनुवाद— तत्त्वज्ञ मुनियों ने इस लोक और परलोक में मनुष्यों के कल्याण के लिए अनेक योगों (उपायों) का साक्षात्कार भी किया है और उनका प्रयोग भी किया है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

मयि जीर्णाश्चौषधीरुपायेन गृहाणेति वक्तुमुपायेन सर्वं सिध्यति नान्यथेत्याह-अस्मिन्निति त्रिभिः । पुंसां श्रेयसः पुरुषार्थस्य प्रसिद्धयेऽस्मिन् लोके कृष्यादयोऽमुष्मिंश्च लोकेऽग्निहोत्रादयो योगा उपाया दृष्टाः प्रयुक्ता अनुष्ठितश्च ॥३॥

भाव प्रकाशिका

मुझमें जो ओषधियों के बीज जीर्ण हो गये हैं उन सबों को योग के द्वारा आप ग्रहण कर लें उपाय के बिना कुछ भी नहीं होता है, उपाय से ही सबकुछ सिद्ध होता है इस बात को पृथिवी ने तीन श्लोकों में कहा है । मनुष्यों का इस लोक में और लोक में कल्याण की प्राप्ति के लिए मुनियों ने इस लोक में कृषि आदि और परलोक में अग्निहोत्र आदि उपायों का साक्षात्कार करके उनका उपयोग भी किया है ॥३॥

तानातिष्ठति यः सम्यगुपायान्पूर्वदर्शितान् । अवरः श्रद्धयोपेत उपेयान्विन्दतेऽञ्जसा ॥४॥

अन्वयः— तान् पूर्वदर्शितान् उपायान् यः अवरः श्रद्धयोपेतः यः अतिष्ठति अञ्जसा उपेयान् विन्दते ॥४॥

अनुवाद— उन प्राचीन ऋषियों द्वारा दृष्ट उपायों का जो अर्वाचीन पुरुष श्रद्धा पूर्वक अच्छी तरह से अनुष्ठान करता है, वह अपने उपेय (प्राप्य) अर्थ को आसानी से प्राप्त कर लेता है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वैर्दर्शितान् । अवरोऽर्वाचीनः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

पूर्वदर्शितान् का अर्थ है प्राचीनों द्वारा बतलाये गयें । **अवरः अवरः** वर्तमान कालिक पुरुष ॥४॥

ताननादृत्य योऽविद्वानर्थानारभते स्वयम् । तस्य व्यभिचरन्त्यर्था आरब्धाश्च पुनः पुनः ॥५॥

अन्वयः— तान् अनादृत्य य अविद्वान् स्वयम् अर्थान् अरभते तस्य अर्थाः पुनः पुनः व्यभिचरन्ति ॥५॥

अनुवाद— उन सबों का अनादर करके जो अज्ञानी अपने मन: कल्पित उपायों को अपनाता है, उसके सभी उपाय और प्रयत्न बार-बार विफल होते हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अविद्वान्विद्वानपीति वा । व्यभिचरन्ति न सिध्यन्ति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अपने मन: कल्पित उपायों का प्रयोग करने वाला चाहे अज्ञानी हो या ज्ञानी उसके उपाय और प्रयत्न दोनों बार-बार विफल होते हैं ॥५॥

पुरा सृष्टा ह्योषधयो ब्रह्मणा या विशांपते । भुज्यमाना मया दृष्टा असद्भिरधृतव्रतैः ॥६॥

अन्वयः— हे विशाम्पते पुरा ब्रह्मणा सृष्टा या ओषधयो मया असद्भिः अधृतव्रतैः भुज्यमाना दृष्टाः ॥६॥

अनुवाद— हे राजन् ! प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने जिन ओषधियों की सृष्टि की थी, मैंने देखा कि यम नियम आदि का पालन नहीं करने वाले, दुराचारी लोग ही उसे खाये जा रहे हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

सहेतुकमुपायमाह-पुरेति षड्भिः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

पुरा इत्यादि छह श्लोकों में हेतु प्रदर्शन पूर्वक उपाय को पृथिवी ने बतलाया है ॥६॥

अपालिताऽनादृता च भवद्भिर्लोकपालकैः । चोरीभूतेऽथ लोकेऽहं यज्ञार्थेऽग्रसमोषधीः ॥७॥

अन्वयः— लोक पालकैः भवद्भिः अपालिता अनादृता अथ चोरी भूते लोके अहं यज्ञार्थे ओषधीः अग्रसम् ॥७॥

अनुवाद— लोक की रक्षा करने वाले आप राजा लोगों के द्वारा पालन नहीं किए जाने तथा अनादर किए जाने के कारण जब सारा संसार चोरों के समान हो गया तो मैंने भी यज्ञ के लिए उन ओषधियों को छिपा लिया॥७॥

भावार्थ दीपिका

भवद्भिरिति राजसामान्याभिप्रायेण, वेनादिभिरिति वा । अपालिता चोराद्यनिवारणात् । अनादृता च यज्ञादिप्रवर्तनाभावात्। यज्ञार्थे अग्रसं गिलितवती । अन्यथाऽधृतव्रतैर्भुक्ता न प्रसोष्यन्ते ततश्च यज्ञादयो न सिध्येरन्निति भावः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

भवद्भिः पद का प्रयोग सामान्यतः सभी राजाओं के अभिप्राय से अथवा वेन आदि राजाओं के अभिप्राय से किया गया है । इन राजाओं ने चोरों आदि को दण्डित नहीं करके मेरा पालन नहीं किया । यज्ञ इत्यादि का प्रवर्तन नहीं करने के कारण मेरा अनादर भी किया मैंने यज्ञ के लिए ओषधियों को निगल लिया । यदि शमादि नियमों का पालन नहीं करने वाले उन सबों के खा लेने पर वे पुनः उत्पन्न नहीं होते और इसके कारण यज्ञ इत्यादि भी नहीं हो पाते । यही पृथिवी का भाव है ॥७॥

नूनं ता वीरुधः क्षीणा मयि कालेन भूयसा । तत्र योगेन दृष्टेन भवानादातुमर्हति ॥८॥

अन्वयः— नूनं ता विरुधः मयि भूयसा कालेन क्षीणाः तत्र दृष्टेन योगेन भवान् आदातुमर्हति ॥८॥

अनुवाद— अधिक समय बीत जाने के कारण वे धान्य मेरे उदर में जीर्ण हो गये होंगे । आप उन सबों को पूर्वाचार्यों द्वारा बतलाये गये उपायों से निकाल ले सकते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

क्षीणा जीर्णाः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

क्षीण का अर्थ है पच गये होंगे ॥८॥

वत्सं कल्पय मे वीर येनाहं वत्सला तव । धोक्ष्ये क्षीरमयान्कामाननुरूपं च दोहनम् ॥९॥

अन्वयः— वीर मे अनुरूपं वत्सं दोहनं च कल्पय येन वत्सला अहं क्षीरमयान् तव कामान् धोक्ष्ये ॥९॥

अनुवाद— हे लोकपालक ! आप मेरे अनुरूप वत्स और दोहन पात्र की व्यवस्था कीजिए जिससे अपने वत्स के प्रति वत्सला मैं अपकी इक्षित सभी वस्तुओं को दुग्ध के रूप में क्षरण कर दूँगी ॥९॥

भावार्थ दीपिका

दोहनं दोहपात्रम् । दोग्धारं चोपकल्पय । धोक्ष्ये प्रपूरयिष्यामि ॥९॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी ने कहा कि आप मेरे अनुरूप वत्स, दोहन पात्र तथा दोहन करने वाले की व्यवस्था करें तो मैं आपके सभी काम्य पदार्थों को दुग्ध के रूप में क्षरण कर दूँगी ॥९॥

दोग्धारं च महाबाहो भूतानां भूतभावन । अन्नमीप्सितमूर्जस्वद्भगवान्वाञ्छते यदि ॥१०॥

अन्वयः— हे भूतभावन महाबाहो यदि भगवान् भूतानाम् ईप्सितम् ऊर्जस्वद् अन्नम् वाञ्छते दोग्धारं च कल्पय॥१०॥

अनुवाद— हे लोकों के रक्षक महाबाहो, यदि आप जीवों को अभिप्रेत तथा बल को बढ़ाने वाले अन्न को चाहते हैं तो आप योग्य दोहन कर्ता की भी कल्पना करें ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

भूतानामभीप्सितमन्नम् । ऊर्जस्वद्बलप्रदम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

जीवों को अभिप्रेत अन्न तथा बलप्रद अन्न चाहते हों तो योग्य दोग्धा की भी व्यवस्था करें ॥१०॥

समां च कुरु मां राजन् देववृष्टं यथा पयः । अपर्तावपि भद्रं ते उपावर्तेत मे बिभो ॥११॥

अन्वयः— हे राजन् ! मां समां कुरु यथा देववृष्टं पयः अपर्तावपि मे उपावर्तेत विभोते भद्रम् ॥११॥

अनुवाद— राजन्, मुझको आप समतल बना दें जिससे इन्द्र के द्वारा वरसाया हुआ जल वर्षा ऋतु के बीत जाने पर भी मुझ पर रहे इससे अपका मङ्गल होगा ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अपगतेऽपि वर्षर्तौ देववृष्टमुदकं यथा मे मयि सर्वतो वर्तेत ॥११॥

भाव प्रकाशिका

वर्षा ऋतु के बीत जाने पर भी इन्द्र के द्वारा बरसाया हुआ जल मुझ पर सर्वत्र बना रहे ॥११॥

इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः । वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत्सकलौषधीः ॥१२॥

अन्वयः— इति भुवः प्रियं हितं वाक्यं आदाय भूपतिः मनुं वत्सं कृत्वा पाणौ सकलौषधीः अदुहत् ॥१२॥

अनुवाद— इस तरह से पृथिवी प्रिय और कल्याणकारी बातों को सुनकर महाराज पृथु ने मनु को वत्स बनाकर अपने हाथ पर ही सम्पूर्ण अन्नों का दोहन किया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

मनुं स्वायंभुवम् । ओषधीर्व्रीह्यादीः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

मनु शब्द से स्वयम्भुव मनु को और ओषधि शब्द से धान इत्यादि अन्नों को कहा गया है ॥१२॥

तथापरे च सर्वत्र सारमाददते बुधाः । ततोऽन्ये च यथाकामं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥१३॥

अन्वयः— तथा परे च बुधा सर्वत्र सारम् आददते । ततः अन्ये च पृथुभविताम् यथा कामं दुदुहु ॥१३॥

अनुवाद— उसी तरह दूसरे भी विज्ञजन सर्वत्र सार वस्तु का ग्रहण करते । पृथु महाराज के पश्चात् पृथु महाराज के द्वारा वश में की गयी पृथिवी से अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार दूसरे लोगों ने भी पृथिवी से अभीष्ट वस्तुओं का दोहन किया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गादर्थान्तरमाह-तथेति । यथा पृथुरेवं सर्वत्र वाक्ये परेऽपि सारमाददते । प्रस्तुतमनुवर्तयति । ततोऽन्ये च ऋष्यादयः पञ्चदश दुदुहुः । पृथुना भावितां वशीकृताम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्गवशात् तथा इत्यादि श्लोक से दूसरी भी बातों को बतलाते हैं । पृथु महाराज के ही समान सभी वाक्यों में दूसरे विज्ञों ने भी अपने अभिप्रेत सार वस्तु का ग्रहण करते हैं । प्रस्तुत बात को बतलाने के पश्चात् ऋषियों आदि पन्द्रह लोगों ने भी पृथु के द्वारा वशीकृत पृथ्वी से अपनी अभिप्रेत वस्तुओं को दूहा ॥१३॥

ऋषयो दुदुहुर्देवीमिन्द्रियेष्वथ सत्तम । वत्सं बृहस्पतिं कृत्वा पयश्छन्दोमयं शुचि ॥१४॥

अन्वयः— सत्तम अथ ऋषयः बृहस्पतिं वत्सं कृत्वा इन्द्रियेषु छन्दोमयं शुचि पयः देवीं दुदुहुः ॥१४॥

अनुवाद— हे साधुवर्य ! विदुर ! ऋषियों ने बृहस्पति को बछड़ा बनाकर इन्द्रिय रूपी दोहन पात्र में वेद मन्त्र रूपी पवित्र दूध को पृथिवी से दूहा ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

देवीं पृथ्वीम् । वाङ्मनःश्रवणैर्वेदग्रहणादिन्द्रयाणां पात्रत्वम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

देवी अर्थात् ! पृथिवी को वाणी, मन तथा श्रोत्र आदि के द्वारा वेद के ग्रहण किए जाने के कारण इन्द्रियों का पात्रत्व है ॥१४॥

कृत्वा वत्सं सुरगणा इन्द्रं सोममदूदुहन् । हिरण्मयेन पात्रेण वीर्यमोजो बलं पयः ॥१५॥

अन्वयः— सुरगणाः इन्द्रं वत्सं कृत्वा हिरण्मयेन पात्रेण वीर्यम् ओजो बलं सोमं पयः अदूदुहन् ॥१५॥

अनुवाद— देवताओं ने इन्द्र को बछड़ा बनाकर सुवर्णमय पात्र में अमृत, वीर्य मनोबल ओज (इन्द्रिय बल) और शरीरिक बल रूप दूध को दूहा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

सोमममृतम् । वीर्यं मनःशक्तिम्, ओज इन्द्रियशक्तिम्, बलं देहशक्तिं च तदेव पयः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

सोम अर्थात् अमृत, वीर्य मनोबल, ओज (इन्द्रिय बल) और शारीरिक बल रूपी दूध को दूहा ॥१५॥

दैतेया दानवा वत्सं प्रह्लादमसुरर्षभम् । विधायादूदुहन्क्षीरमयः पात्रे सुरासवम् ॥१६॥

अन्वयः— दैतेयाः दानवाः असुरर्षभम् प्रहूलादम् वत्सं विधाय अयः पात्रे सुरासवम् अदूदुहन् ॥१६॥

अनुवाद— दैत्यों और दानवों ने असुरों में अग्रगण्य प्रह्लादजी को बछड़ा बनाकर लौहपात्र में मदिरा और आसव रूप दूध को दूहा ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

सुरामासवं च तालादिमद्यम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

मदिरा और ताड़ी आदि को दूहा ॥१६॥

गन्धर्वाप्सरसोऽधुक्षन्पात्रे पद्ममये पयः । वत्सं विश्वावसुं कृत्वा गान्धर्वं मधु सौभगम् ॥१७॥

अन्वयः— गन्धर्वाप्सरसा विश्वावसुवत्सं कृत्वा पद्ममये पात्रे गान्धर्वं सौभगं मधु अधुक्षन् ॥१७॥

अनुवाद— गन्धर्वों और अप्सराओं ने विश्वावसु को बछड़ा बनाकर कमलमय पात्र में संगीत माधुर्य और सौन्दर्य रूप दूध को दूहा ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

मधु वाङ्माधुर्यं सौभगं सौन्दर्यं तत्सहितम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

मधु अर्थात् वाणी के माधुर्य को तथा सौभगम् सौन्दयमाधुर्य को ॥१७॥

वत्सेन पितरोऽर्यम्णा कव्यं क्षीरमधुक्षत । आमपात्रे महाभागाः श्रद्धया श्राद्धदेवताः ॥१८॥

अन्वयः— श्राद्ध देवताः पितरः महाभागाः अर्यम्णा वत्सेन श्रद्धया आमपात्रे कव्यं क्षीरम् अधुक्षत ॥१८॥

अनुवाद— श्राद्ध के देवता महाभाग पितृगण पितरों के स्वामी अर्यमा को बछड़ा बनाकर मिट्टी के कच्चे पात्र में श्रद्धा पूर्वक कव्य रूप दूध का दोहन किया ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

कव्यं पितॄणामन्नम् । आमपात्रे अपक्वे मृण्मये । अधुक्षत दुदुहुः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

कव्य अर्थात् पितरों को समर्पित किया जाने वाला अन्न, आमपात्रे कच्चे मिट्टी के पात्र में, अधुक्षत दूहा॥१८॥

प्रकल्प्य वत्सं कपिलं सिद्धाः संकल्पनामयीम् ।
सिद्धिं नभसि विद्यां च ये च विद्याधरादयः ॥१९॥

अन्वयः— सिद्धाः कपिलं वत्सं प्रकल्प्य, सङ्कल्पनामयीं सिद्धिम् ये च विद्याधरादयः नभसि विद्यां च दुदुहुः ॥१९॥

अनुवाद— सिद्धों ने कपिल महर्षि को बछड़ा बनाकर सङ्कल्पमयी अणिमा आदि सिद्धियों को तथा विद्याधर आदि वे वे आकाश में चलाने की विद्या रूपी सिद्धि को दूहा ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

सङ्कल्पनामयीमणिमादिसिद्धिम् । ये विद्याधरादयस्ते च तमेव वत्सं प्रकल्प्य नभस्येव पात्रे खेचरत्वादिरूपां विद्यां दुदुहुः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

सिद्धों ने कपिल महर्षि को वत्स बनाकर सङ्कल्प स्वरूपा अणिमा आदि सिद्धियों को तथा विद्याधरों ने कपिल महर्षि के ही वत्स बनाकर आकाश में चलने की विद्या का दोहन किया ॥१९॥

अन्ये च मायिनो मायामन्तर्धानाद्भुतात्मनाम् । मयं प्रकल्प्य वत्सं ते दुदुहुर्धारणामयीम् ॥२०॥

अन्वयः— अन्ये च मयिनः अन्तर्धानादभुतात्मनाम् मयं वत्सं प्रकल्प्य धारणामयीं मायां दुदुहुः ॥२०॥

अनुवाद— जो किम्पुरुष आदि मायावी थे वे मय दानव को बछड़ा बनाकर अन्तर्धान होना विचित्र रूप धारण करना आदि सङ्कल्पमयी मायाओं को दुग्ध रूप से दूहा ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अन्ये च किंपुरुषादयोऽन्तर्धानेनाद्भुतात्मनां संबन्धिनीं मायाम् । धारणामयीं सङ्कल्पमात्रप्रभवाम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे जो किम्पुरुष आदि मायावी थे वे अन्तर्धान होना तथा विचित्र रूप बनाने वाली सङ्कल्प करने मात्र से उत्पन्न हो जाने वाली माया रूपी दूध को दूहा ॥२०॥

यक्षरक्षांसि भूतानि पिशाचाः पिशिताशनाः । भूतेशवत्सा दुदुहुः कपाले क्षतजासवम् ॥२१॥

अन्वयः— पिशिताशना यक्ष, रक्षांसि भूतानि भूतेशवत्साः कपाले क्षतजासवं दुदुहुः ॥२१॥

अनुवाद— मांसभक्षी यक्ष, राक्षस, भूत तथा पिशाचों ने शङ्करजी को ही वत्स बनाकर कपाल रूपी पात्र में रक्तरूप आसव को दूहा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

भूतेशो रुद्रः स एव वत्सो येषाम् । क्षतजं रुधिरं तदेवासवम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

भूतेश शब्द से शङ्करजी को कहा गया है । उनको ही बछड़ा बनाकर भूत आदि ने कपाल पात्र में रक्त रूपी मदिरा को दूहा ॥२१॥

तथाऽहयो दन्दशूकाः सर्पा नागाश्च तक्षकम् । विधाय वत्सं दुदुहुर्बिलपात्रे विषं पयः ॥२२॥

अन्वयः— तथा अहयः दन्दशूकाः, सर्पाः नागाः तक्षकं वत्सं विधाय बिलपात्रे विषंपयः दुदुहुः ॥२२॥

अनुवाद— उसी तरह अहि, सर्प तथा नागों ने तक्षक को बछड़ा बनाकर बिल रूपी पात्र में विष रूप दूध को दूहा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अहयो निष्फणाः । दन्दशूका वृश्चिकादयः । सर्पाः सफणास्त एव कद्रुसन्ततिजा नागाः । बिलपात्रे मुखे ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

जिन सर्पों का फन नहीं होता है वे अहि कहलाते । बिच्छी इत्यादि को दन्दशूक कहते है । जिनका फण होता है वे सर्प हैं । फण वाले ही जो सर्प कद्रू के पुत्र हैं वे नाग कहे जाते हैं । बिलपात्र शब्द से मुख को कहा गया है ॥२२॥

पशवो यवसं क्षीरं वत्सं कृत्वा च गोवृषम् । अरण्यपात्रे चाधुक्षन्मृगेन्द्रेण च दंष्ट्रिणः ॥२३॥
क्रव्यादाः प्राणिनः क्रव्यं दुदुहुः स्वे कलेवरे । सुपर्णवत्सा विहगाश्चरं चाचरमेव च ॥२४॥

अन्वयः— गोवृष वत्सं कृत्वा अरण्यपात्रे यवसं क्षीरम् अधुक्षन् दंष्ट्रिणः क्रव्यादाः प्राणिनः मृगेन्द्रण स्वेकलेवरे क्रव्यं दुदुहुः विहगाः सुपर्णवत्सांचरं अचरं एव च ॥२३-२४॥

अनुवाद— शङ्करजी के वाहन बैल को वत्स बनाकर पशुओं ने बन रूपी पात्र में घास रूप दुग्ध को दूहा। बड़े-बड़े दाँत वाले प्राणियों ने सिंह को ही वत्स बनाकर अपने शरीर रूपी पात्र में कच्चा मांस रूप दूध दूहा, पक्षियों ने गरुड़ को वत्स बनाकर कीट पतङ्ग आदि चर और फल आदि अचर पदार्थ रूपी दूध को दूहा ॥२३-२४॥

भावार्थ दीपिका

यवसं तृणम्। गोवृषं रुद्रवाहं वृषभम्। मृगेन्द्रेणेत्युत्तरेण अन्वयः। क्रव्यं मांसम्। चरं कीटादि अचरं फलादि ॥२३-२४॥

भाव प्रकाशिका

यवस अर्थात् घास, गोवृष अर्थात् शङ्करजी के वाहन बैल, मृगेन्द्र पद का आगे के श्लोक से अन्वय है। क्रव्य अर्थात् कच्चा मांस, चर अर्थात् कीड़े मकोड़े, अचर अर्थात् फल आदि ॥२३-२४॥

वटवत्सा वनस्पतयः पृथग्रसमयं पयः । गिरयो हिमवद्वत्सा नानाधातून्स्वसानुषु ॥२५॥

अन्वयः— बटवत्साः वनस्पतयः पृथक् रसमयं पयः हिमवद्वत्साः गिरयः स्वसानुषु नानाधातून् ॥२५॥

अनुवाद— वनस्पतियों ने बट वृक्ष को ही बछड़ा बनाकर अलग-अलग रस रूप दूध को दूहा और पर्वतों ने हिमालय को बछड़ा बनाकर अपने शिखरों पर अनेक धातु रूप दूध को दूहा ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

सर्वे स्वमुख्यवत्सेन स्वे स्वे पात्रे पृथक् पयः । सर्वकामदुघां पृथ्वीं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥२६॥

अन्वयः— सर्वे पृथुभाविताम् सर्वकामदुघां पृथ्वीं स्वमुख्य वत्सेन स्वे स्वे पात्रे पृथक् पभः दुदुहुः ॥२६॥

अनुवाद— पृथु महाराज के द्वारावशवर्तिनी बनायी गयी सभी अभीष्ट वस्तुओं को पदान करने वाली पृथिवी को सबों ने अपनी-अपनी जाति के मुख्य व्यक्ति को वत्स बनाकर अपने-अपने पात्र से अलग-अलग दूध को दूहा ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अनुक्तसर्वसंग्रहार्थमाह-सर्वे इति । सर्वे स्वजातौ यो मुख्यस्तेन वत्सेन ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

जिन सबों का अभी वर्णन नहीं किया गया है उन सबों का संग्रह करने के लिए सर्वे इत्यादि श्लोक को कहा गया है । शेष जितने थे वे सबके सब अपनी जाति के मुख्य व्यक्ति को बछड़ा बनाकर अपने अभिलाषित पदार्थ रूप दूध को दूहा ॥२६॥

एवं पृथ्वादयः पृथ्वीमन्नादाः स्वन्नमात्मनः । दोहवत्सादिभेदेन क्षीरभेदं कुरूद्वह ॥२७॥

अन्वयः— हे कुरुद्वह ! एवं पृथ्वादयः सर्वे अन्नादाः दोहवत्सादिभेदेन आत्मनः स्वन्नम् क्षीरभेदं दुदुहुरितिशेषः॥२७॥

अनुवाद— हे कुरुश्रेष्ठ विदुरजी इस तरह से पृथु आदि सभी अन्य भोगी अपने अभिप्रेत अन्न का दोहन पात्र और बछड़े के भेद से भिन्न-भिन्न दूधों को दूहा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-एवमिति । स्वन्नमभीष्टमन्नम् । तमेव क्षीरभेदं दुदुहुः । दोहः पात्रम् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

एवमित्यादि श्लोक से दोहन का वर्णन का उपसंहार किया गया है । स्वन्न शब्द से अभीष्ट अन्न को कहा गया है । उसी को भिन्न-भिन्न प्रकार के दूधों को दूहा कहा गया है । दोह शब्द से पात्र को कहा गया है ॥२७॥

ततो महीपतिः प्रीतः सर्वकामदुधां पृथुः । दुहितृत्वे चकारेमां प्रेम्णा दुहितृवत्सलः ॥२८॥

अन्वयः— ततः दुहितृवत्सलः महीपतिः पृथुः सर्वकाम दुधां इमाम् प्रेम्णा दुहितृत्वे चकार ॥२८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् पुत्री के प्रति वात्सल्य गुण सम्पन्न महाराज पृथु सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली इस पृथ्वी को अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी पुत्री बना लिए ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

इमां पृथ्वीम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

इमाम् शब्द से पृथिवी को कहा गया है ॥२८॥

चूर्णयन्स्वधनुष्कोट्या गिरिकूटानि राजराट् । भूमण्डलमिदं वैन्यः प्रायश्चक्रे समं विभुः ॥२९॥

अन्वयः— राजराट् विभुः वैन्यः स्वधनुष्कोट्या गिरिकूटानि चूर्णयन् इदं भूमण्डलं प्रायः समं चक्रे ॥२९॥

अनुवाद— राजाधिराज महाराज पृथु ने अपने धनुष के अग्रभाग से पर्वत शिखर को चूर-चूर करके इस भूमण्डल को उन्होंने प्रायः समतल बना दिया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

धनुषोऽग्रेण गिरिशृङ्गाणि चूर्णयन् । राजराट् राज्ञां राजा । सर्वेषामाजीविकादानात् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

अपने धनुष के अग्रभाग से पर्वत के शिखरों को चूर-चूर कर दिया सभी राजाओं को भी जीविका प्रदान करने के कारण वे राजराट् थे ॥२९॥

अथास्मिन्भगवान्वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता । निवासान्कल्पयांचक्रे तत्र तत्र यथार्हतः ॥३०॥

अन्वयः— अथा प्रजानां वृत्तिदः पिता भगवान् वैन्यः अस्मिन् तत्र तत्र यथार्हतः निवासान् कल्पयाञ्चक्रे ॥३०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् प्रजाओं को वृत्ति प्रदान करने वाले सबों के रक्षक भगवान् पृथु इस पृथिवी पर स्थान-स्थान पर सबों के लिए यथायोग्य का निवास स्थान बनाये ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

ग्रामान्पुरः पत्तनानि दुर्गाणि विविधानि च । घोषान्व्रजान्सशिबिरानाकरान् खेटखर्वटान् ॥३१॥

अन्वयः— ग्रामान् पुरः पत्तनानि विविधानि दुर्गाणि च, घोषान् व्रजाने सशिविरान् आकरान् खेट खर्वटान् ॥३१॥

अनुवाद— अनेक गाँव, कस्बे, नगर, दुर्ग, छावनियाँ, खान, किसानों के गांव और पहाड़ों की तलहटी के गाँव इन सबों को महाराज पृथु ने बसाया ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

ग्रामा हट्टादिशून्याः । पुरो हट्टादिमत्यः । ता एव महत्यः पत्तनानि । दुर्गाणि विविधानि । यथाह बृहस्पतिः— 'औदकं पार्वतं वार्क्षमैरिणं धान्वनं तथा' इति । घोषान् आभीराणां निवासान् । व्रजान् गवां निवासान् । शिबिरं सेनानिवासस्थानं तत्सहितानाकरान्स्वर्णादिस्थानानि । खेटाः कर्षकग्रामाः खर्वटाः पर्वतप्रान्तग्रामास्तांश्च ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

जहाँ बाजार नहीं होता है वह गाँव है । जहाँ बाजार आदि हों वह पुर शब्द वाच्य है । बड़े बाजारों को पत्तन कहते हैं । अनेक प्रकार के किले । बृहस्पति ने कहा है **औदकम्० इत्यादि** जल में पर्वत के ऊपर, वृक्षों से युक्त, ऐरी, तथा मरु स्थल में किला बनाये अभीरों के निवास स्थान को घोष कहते हैं, गौओं के निवास स्थान व्रज कहते हैं। सेना के निवास स्थान को शिविर कहते है, किसानों के गाँव को खेट कहते हैं और पर्वत की तलहटी में बसे गाँवों को खर्वट कहते हैं ॥३१॥

प्राक्पृथोरिह नैवैषा पुरग्रामादिकल्पना । यथासुखं वसन्ति स्म तत्र तत्राकुतोभयाः ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे पृथुविजयेऽष्टादशोऽध्याय: ॥१८॥

अन्वयः— पृथोः प्राक् एषा पुरग्रामादि कल्पना नैव, तत्र तत्र अकुतोभयाः जना यथासुखं निवसन्ति स्म ॥३२॥

अनुवाद— महाराज पृथु से पहले गाँवों नगरों आदि की कल्पना नहीं थी लोग जहाँ कहीं भी सुख पूर्वक निवास करते थे ॥३२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पृथु विजय नामक अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते चतुर्थ स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के अठारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१८॥

* * *

उन्नीसवाँ अध्याय

महाराज पृथु के सौ अश्वमेघ यज्ञ

मैत्रेय उवाच

अथादीक्षत राजा तु हयमेधशतेन सः । ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥१॥

अन्वयः— अथ ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती स तु राजा हयमेधशतेन अदीक्षत ॥१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् ब्रह्मावर्त नामक महाराज मनु के क्षेत्र में जहाँ सरस्वती नदी पूर्वाभिमुख बहती है वहाँ पर सौ अश्वमेघ यज्ञ करने के लिए महाराज पृथु ने दीक्षा ग्रहण की ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ऊनविंशेऽश्वमेधाङ्गहयापहरणात्पृथोः । इन्द्रं हन्तुं प्रवृत्तस्य धात्रा बारणमुच्यते ॥१॥ हयमेधशतेन निमित्तेनादीक्षत दीक्षितोऽभूत् शताश्वमेधसङ्कल्पमकरोदित्यर्थः । ब्रह्मावर्ते 'सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते' ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उन्नीसवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि महाराज पृथु के अश्वमेघ यज्ञ के अङ्गभूत अश्व का अपहरण कर लेने के कारण क्रुद्ध महाराज पृथु इन्द्र को मारने के लिए तैयार हो गये तो ब्रह्माजी ने उनको ऐसा करने से रोक दिया ॥१॥ महाराज पृथु ने सौ अश्वमेध यज्ञ करने का सङ्कल्प किया ब्रह्मवर्त का निर्देश करते हुए कहा गया है कि सरस्वती तथा दृषद्वती इन दोनों देव नदियो के बीच का जो स्थान है उसे ब्रह्मावर्त कहा जाता है ॥१॥

तदभिप्रेत्य भगवान्कर्मातिशयमात्मनः । शतक्रतुर्न ममृषे पृथोर्यज्ञमहोत्सवम् ॥२॥

अन्वयः— भगवान् शतक्रतु आत्मनः कर्मातिशयम् अभिप्रेत्य पृथोः यज्ञमहोत्सवं न ममृषे ॥२॥

अनुवाद— भगवान् इन्द्र उसको अपने कर्मों से भी अधिक मानकर महाराज पृथु के उस यज्ञ महोत्सव को नहीं वर्दास्त कर सके ॥२॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनः स्वस्य कर्मातिशेत इत्यतिशयमभिप्रेत्य ज्ञात्वा । तदिति तं पृथोर्यज्ञमहोत्सवं न ममृषे न सेहे ।।२।।

भाव प्रकाशिका

ये तो हमसे भी अधिक कर्म करने वाले हो जायेंगे इस तरह से विचार करके इन्द्र महाराज पृथु के उस यज्ञ महोत्सव को वर्दास्त नहीं कर सके ।।२।।

यत्र यज्ञपतिः साक्षाद्भगवान्हरिरीश्वरः । अन्वभूयत सर्वात्मा सर्वलोकगुरुः प्रभुः ।।३।।

अन्वयः— यत्र यज्ञपतिः सर्वलोकगुरु, प्रभुः भगवान् हरिः ईश्वर साक्षात् अन्वभूयत ।।३।।

अनुवाद— उस यज्ञ में यज्ञों के स्वामी सर्वात्मा, सभी लोकों के गुरु तथा नियामक भगवान् श्रीहरि साक्षात् दर्शन दिए थे ।।३।।

भावार्थ दीपिका

अतिशयमेव दर्शयति-यत्रेति सप्तभिः । साक्षादन्वभूयत प्रत्यक्षेणादृश्यत ।।३।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्र के कर्म से अतिशय को **यत्र० इत्यादि** सात श्लोकों से बतलाते हैं । भगवान् इस यज्ञ में साक्षात् दर्शन दिए थे ।।३।।

अन्वितो ब्रह्मशर्वाभ्यां लोकपालैः सहानुगैः । उपगीयमानो गन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ।।४।।

अन्वयः— सहानुगैः लोकपालै ब्रह्मशर्वाभ्यां अन्वितः गन्धर्वैः मुनिभिः अप्सरोगणैः उपगीयमानः अन्वभूयत ।।४।।

अनुवाद— अनुचरों से युक्त लोकपालों तथा ब्रह्माजी एवं शङ्करजी के साथ श्रीभगवान् दर्शन दिए थे । उस समय गन्धर्व, मुनिजन तथा अप्सराएँ उनकी स्तुति कर रही थीं ।।४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४।।

सिद्धविद्याधरा दैत्या दानवा गुह्यकादयः । सुनन्दनन्दप्रमुखाः पार्षदप्रवरा हरेः ।।५।।
कपिलो नारदो दत्तो योगेशाः सनकादयः । तमन्वीयुर्भागवता ये च तत्सेवनोत्सुकाः ।।६।।

अन्वयः— सिद्ध विद्याधराः दैत्याः दानवाः गुह्यकादयः सुनन्दनन्द प्रमुखा हरेः पार्षदप्रवराः कपिल नारद दत्तः सनकादयः योगेश्वरः ये च तत्सेवनोत्सुकाः भागवताः तमन्वीयुः ।।५-६।।

अनुवाद— सिद्ध, विद्याधर, दैत्य, दानव, यक्ष नन्द सुनन्द आदि श्रीभगवान् के प्रमुख पार्षदगण तथा जो सदा श्रीभगवान् की सेवा के लिए उत्सुक रहते हैं वे कपिल, नारद, दत्तात्रेय सनकादि योगेश्वर भी उनके साथ आये थे ।।५-६।।

भावार्थ दीपिका

सिद्धादयश्च तं हरिमन्वीयुरित्युत्तरेणान्वयः ।।५-६।।

भाव प्रकाशिका

सिद्ध इत्यादि उनके अनुगमन किए थे अर्थात् उनके साथ आये थे इसका छठे श्लोक के साथ अन्वय है ।।५-६।।

यत्र धर्मदुधा भूमिः सर्वकामदुघा सती । दोग्धि स्माभीप्सितानर्थान्यजमानस्य भारत ॥७॥

अन्वयः— हे भारत ! यत्र धर्मदुघाभूमि सर्वकामदुघासती यजमानस्य अभीप्सितान् अर्थान् दोग्धिस्म ॥७॥

अनुवाद— हे भरतवंशीय विदुर उस यज्ञ में यज्ञ की सामग्रियों को प्रदान करने वाली भूमि, कामधेनु रूप होकर यजमान की सभी कामनाओं को पूर्ण करती थी ॥७॥

भावार्थ दीपिका

धर्मदुघा हविर्दोग्ध्री । धेनुः सती ॥७॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञ की सामग्री प्रदान करने वाली ॥७॥

ऊहुः सर्वरसान्नद्यः क्षीरदध्यन्नगोरसान् । तरवो भूरिवर्ष्माणः प्रासूयन्त मधुच्युतः ॥८॥

अन्वयः— नद्यः सर्वरसान् ऊहुःभूरिवर्ष्माणः मधुच्युतः तरवः क्षीरदध्यन्नगोरसान् प्रासूयन्त ॥८॥

अनुवाद— उस यज्ञ में नदियाँ ईख तथा राख इत्यादि सभी रसों को तथा दूध, दही, घी तथा तक्र आदि प्रवाहित करती थीं तथा विशालकाय वृक्ष जिनसे मधु चूता रहता था वे फल प्रदान करते थे ॥८॥

भावार्थ दीपिका

ऊहुर्वहन्ति स्म । सर्वरसानिक्षुद्राक्षादिरसान् । क्षीरं च दधि च अन्नं च पानकादि गोरसो घृतं तक्रं च तांश्च । भूरीणि विस्तृतानि वर्ष्माणि शरीराणि येषां ते, फलादि प्रासूयन्त । मधुच्युतो मधुस्राविणः सन्तः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

नदियाँ ईख इत्यादि के रसो तथा दूध, दही अन्न पानक आदि गोरस घृत तथा तत्र आदि को प्रवाहित करती थीं और विशालकाय मधुस्रावी वृक्ष फलों को उत्पन्न करते थे ॥८॥

सिन्धवो रत्ननिकरान्गिरयोऽन्नं चतुर्विधम् । उपायनमुपाजह्रुः सर्वे लोकाः सपालकाः ॥९॥

अन्वयः— सिन्धव रत्ननिकरान् गिरयःचतुर्विधमन्नम्, सपालकाः सर्वे लोकाः उपायनम् आजह्रुः ॥९॥

अनुवाद— समुद्र रत्नों के समूहों का पर्वत भक्ष्य भोज, लेह्य और चोष्य चारो प्रकार के अन्नों को तथा लोकपालों के साथ सभी लोक उनको उपहार प्रदान करते थे ॥९॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्विधं भक्ष्यं भोज्यं चोष्यं लेह्यं च ॥९॥

भाव प्रकाशिका

चार प्रकार के अन्न ये हैं भक्ष्य, भोज्य, चोष्य एवं लेह्य ॥९॥

इति चाधोक्षजेशस्य पृथोस्तु परमोदयम् । असूयन्भगवानिन्द्रः प्रतिघातमचीकरत् ॥१०॥

अन्वयः— अधोक्षजेशस्य पृथोस्तु इति परमोदयम् भगवान् इन्द्र असूयत, प्रतिघातम् अचीकरत् ॥१०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् को ही अपना स्वामी मानने वाले पृथु के इस अत्यन्त उत्कर्ष के भगवान् इन्द्र नहीं सह सके और उन्होंने उसमें विघ्न किया ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अधोक्षज ईशो नाथो यस्य । परम उदयोऽभिवृद्धिर्यस्मिंस्तत् कर्म असूयन्नसहमानः प्रतिघातं विघ्नं चकारेत्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ही जिनके स्वामी हैं ऐसे पृथु के अत्यन्त उत्कर्ष को नहीं सहने के कारण इन्द्र ने विघ्न किया॥१०॥

चरमेणाश्वमेधेन यजमाने यजुष्पतिम् । वैन्ये यज्ञपशुं स्पर्धन्नपोवाह तिरोहितः ॥११॥

अन्वयः— चरमेण अश्वमेधेन वैन्ये यजुष्पतिम यजमाने स्पर्धन् यज्ञपशुम् तिरोहितः अपोवाह ॥११॥

अनुवाद— जब महाराज पृथु अपने अन्तिम अश्वमेध के द्वारा यज्ञपति भगवान् विष्णु की आराधना कर रहे थे उसी समय इर्ष्यावश इन्द्र तिरोहित होकर यज्ञ के अश्व का अपहरण कर लिए ॥११॥

भावार्थ दीपिका

वैन्ये यजुष्पतिं विष्णुं यजमाने सति स्पर्धमान इन्द्रस्तिरोहितः सन्नश्वमपहृतवान् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

जब महाराज पृथु यज्ञ के स्वामी भगवान् विष्णु की आराधना कर रहे थे उस समय पृथु से ईर्ष्या करने वाले इन्द्र तिरोहित होकर यज्ञ के अश्व का अपहरण कर लिए ॥११॥

तमत्रिर्भगवानैक्षत्त्वरमाणं विहायसा । आमुक्तमिव पाखण्डं योऽधर्मे धर्मविभ्रमः ॥१२॥

अन्वयः— विहायसा त्वरमाणं पाखण्डे याः अधर्मे धर्म विभ्रमः आमुक्तमिव तं भगवान् अत्रिः ऐक्षत् ॥१२॥

अनुवाद— आकाश मार्ग से बड़ी तेजी से जाते हुए तथा पाखण्ड को ही जिसके कारण अधर्म में ही धर्म की बुद्धि हो जाती है, अपने कवच के रूप में अपनाए हुए इन्द्र को महर्षि अत्रि ने देख लिया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

त्वरमाणं धानन्तम् । 'आमुक्तः प्रतिमुक्तश्च पिनद्धश्चापिनद्धवत् । सन्नद्धो वर्मितः सज्जः' इत्यमरसिंहः । पाखण्डं वेषं कवचमिव गृहीतवन्तमित्यर्थः । अधर्मे धर्मविभ्रमो धर्मोऽयमिति भ्रान्तिकरो यस्तम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

आकाश मार्ग पर तेजी से जाते हुए अत्रि महर्षि ने देख लिया । उससमय इन्द्र पाखण्ड को ही अपने कवच रूप से धारण किए थे । आमुक्तः शब्द कवच का वाचक है । **अमरकोशकार** कहते हैं— **आमुक्तः प्रतिमुक्तश्च पिनद्धयापिनद्धवत् । सन्नद्धः वर्मितः सज्जः** अर्थात्, अमुक्त, प्रतिमुक्त, पिनद्ध, अपिन्द्धवत्, सन्नद्ध, वर्मितः सज्जः ये सभी कवच के नाम है । उस अधर्म रूप पाखण्ड में धर्म का भ्रम हो जाता है ॥१२॥

अत्रिणा चोदितो हन्तुं पृथु पुत्रो महारथः । अन्वधावत संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥१३॥

अन्वयः— अत्रिणा हन्तुं चोदितः महारथः पृथु पुत्रः संक्रुद्धः अनवधावत् तिष्ठ तिष्ठेति च अब्रवीत् ॥१३॥

अनुवाद— महर्षि अत्रि के द्वारा मारने के लिए प्रेरित महाराज पृथु का महारथी पुत्र इन्द्र के पीछे क्रोध करके दौड़ा और कहा ठहरो ! ठहरो !!!॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥१३॥

तं तादृशाकृतिं वीक्ष्य मेने धर्मशरीरिणम् । जटिलं भस्मनाच्छन्नं तस्मै बाणं न मुञ्चति ॥१४॥

अन्वयः— तं तादृशाकृतिं जटिलं भस्मना छन्नं धर्मशरीरिणं मेने, तस्मै बाणं न मुञ्चति ॥१४॥

अनुवाद— इन्द्र को जटा धारण किए हुए तथा शरीर में भस्म धारण किए हुए देखकर वह उसे धार्मिक मानकर इन्द्र पर बाण नहीं चलाया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

न मुञ्चति स्म ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

बाण नहीं चलाया ॥१४॥

वधान्निवृत्तं तं भूयो हन्तवेऽत्रिरचोदयत् । जहि यज्ञहनं तात महेन्द्र विबुधाधमम् ॥१५॥

अन्वयः— वधात् निवृत्तं तं भूयः अत्रिः हन्तवे अचोदयत् । तात यज्ञहनं विवुधाधमम् महेन्द्रं जहि ॥१५॥

अनुवाद— जब वह इन्द्र पर वार किए बिना लौट आया तो अत्रि महर्षि उसको पुनः इन्द्र को मारने के लिए प्रेरित करते हुए कहा वत्स यह यज्ञों को विनष्ट करने वाला देवाधम इन्द्र है इसे मार डालो ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

हन्तवे हन्तुम् । यज्ञहनं यज्ञं हतवन्तम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

हन्तवे का अर्थ मारने के लिए । यज्ञ हनम् का अर्थ है यज्ञ को विनष्ट करने वाला ॥१५॥

एवं वैन्यसुतः प्रोक्तस्त्वरमाणं विहायसा । अन्वद्रवदभिक्रुद्धो रावणं गृध्रराडिव ॥१६॥

अन्वयः— एवं प्रोक्तः वैन्यसुतः क्रुद्धः त्वरमाणं रावणं गृध्रराडिव अन्वद्रवत् ॥१६॥

अनुवाद— इस तरह से महर्षि अत्रि के द्वारा कहे जाने पर महाराज पृथु का पुत्र शीघ्रता से जाते हुए इन्द्र के पीछे क्रुद्ध होकर उसी तरह दौड़े जिस तरह रावण के ऊपर गृध्रराज जटायु टूट पड़े थे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

गृध्रराट् जटायुः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

गृध्रराट् शब्द से यहाँ जटायु को कहा गया है ॥१६॥

सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्मा अन्तर्हितः स्वराट् । वीरः स्वपशुमादाय पितुर्यज्ञमुपेयिवान् ॥१७॥

अन्वयः— सः स्वराट, तत् रूपं अश्वं च हित्वा तस्मै अन्त अन्तर्हितः वीरः स्वपशुमादाय पितुर्यज्ञम् उपेयिवान्॥१७॥

अनुवाद— स्वर्ग पति इन्द्र उसे पीछे आते देखकर उस रूप तथा अश्व को छोड़कर अन्तर्धान हो गये और हाराज पृथु के पुत्र अपने अश्व को लेकर अपने पिता के यज्ञ में आ गये ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तस्मै हित्वा तदर्थमुत्सृज्य ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

पृथु पुत्र के लिए त्यागकर ॥१७॥

स्य चाद्भुतं कर्म विचक्ष्य परमर्षयः । नामधेयं ददुस्तस्मै विजिताश्व इति प्रभो ॥१८॥

अन्वयः— हे प्रभो ! तस्य तत् अद्भुतं कर्मवीक्ष्य परमर्षयः । तस्मै विजिताश्व इति नाम धेयं ददुः ॥१८॥

अनुवाद— पृथु पुत्र के उस अद्भुत कर्म को देखकर महर्षियों ने उसका नाम विजिताश्व रखा ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

विचक्ष्य दृष्ट्वा ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

विचक्ष्य का अर्थ देखकर हैं ॥१८॥

उपसृज्य तमस्तीव्रं जहाराश्वं पुनर्हरिः । चषालयूपतश्छन्नो हिरण्यरशनं विभुः ॥१९॥

अन्वयः— हरिः तीव्रं तमः उपसृज्य पुनः विभुः चषाल यूपतः हिरण्यरशनम् अश्वं जहार ॥१९॥

अनुवाद— इन्द्र फिर घोर अन्धकार उत्पन्न करके अन्धकार में छिपे हुए चषाल स्तम्भ से सुवर्ण के जंजीर सहित अश्व का हरण कर लिए ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

उपसृज्य सृष्ट्वा तेन च्छन्नः सन् । चषालो यूपाग्रे निक्षिप्तः काष्ठकटकस्तद्युक्ताद्यूपात् । हिरण्यनिर्मिता रशना यस्य तम्। रशनाया दृढत्वेन च्छेदाशक्त्या रशनासहितमेवोद्धृत्य यूपाग्रान्नीतवानित्यर्थः । विभुः समर्थः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

उपसृज्य अर्थात् उत्पन्न करके । उस अन्धकार में छिपकर स्तम्भ के आगे वाले भाग में रखे हुए बलयाकार काष्ठ को चषाल कहते है । उसमें सुवर्ण की जंजीर में बँधे हुए अश्व को समर्थ इन्द्र जंजीर के साथ अपहरण कर लिए । जंजीर मजबूत था इसलिए वे उसको काट नहीं सके ॥१९॥

अत्रिः संदर्शयामास त्वरमाणं विहायसा । कपालखट्वाङ्गधरं वीरो नैनमबाधत ॥२०॥

अन्वयः— विहायसा त्वरमाणं कपाल इन्द्रं दर्शयामास वीरः कपाल खट्वाङ्गधरं एनम् न अबाधत ॥२०॥

अनुवाद— महर्षि अत्रि आकाश मार्ग से शीघ्रता पूर्वक जाते हुए इन्द्र को दिखा दिए किन्तु कपाल और खट्वाङ्ग धारण किए हुए इन्द्र पर पृथु पुत्र बाण नहीं चलाये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

अत्रिणा चोदितस्तस्मै संदधे विशिखं रुषा । सोऽश्वं रूपवं च तद्धित्वा तस्थावन्तर्हितः स्वराट्॥२१॥

अन्वयः— अत्रिणा चोदितः एष तस्मै विशिखं संदधे स च स्वराट् तदरूपं अश्वं चहित्वा अन्तर्हितः तस्थौ ॥२१॥

अनुवाद— महर्षि अत्रि के द्वारा प्रेरित होकर वीर ने क्रोध करके तीब्र बाण का संधान किया किन्तु स्वर्गपति इन्द्र अश्व और रूप को त्यागकर अन्तर्धान हो गये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

वीरश्चाश्वमुपादाय पितृयज्ञमथाव्रजत् । तदवद्यं हरे रूपं जगृहुर्ज्ञानदुर्बलाः ॥२२॥

अन्वयः— अथ वीरः अश्वम् उपादाय पितुर्यज्ञम् उपाव्रजत् । हरेः तत् अवद्यं रूपं ज्ञानदुर्बलाः जगृहुः ॥२२॥

अनुवाद— वीर उस अश्व के लेकर अपने पिता के यज्ञ में आ गये । इन्द्र के उस निन्दित वेष को अज्ञानियों ने धारण कर लिया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अवद्यं निन्दितं रूपं मन्दप्रज्ञा जगृहुः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र के उस निन्दित रूप को अज्ञानियों ने ग्रहण कर लिया ॥२२॥

यानि रूपाणि जगृहे इन्द्रो हयजिहीर्षया । तानि पापस्य खण्डानि लिङ्गं खण्डमिहोच्यते ॥२३॥

अन्वयः— हय जिहीर्षया इन्द्रः यानि रूपाणिजगृहे तानि पापस्य खण्डानि खण्डं लिङ्ग मिहोच्यते ॥२३॥

अनुवाद— अश्व का अपहरण करने के लिए इन्द्र ने जिन रूपों को धारण किया था वे पाप के खण्ड हैं । खण्ड शब्द से चिह्न को कहा गया है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तदेव पाखण्डानामनिरुक्त्या दर्शयति-यानीति । बहुवचनेन चान्यान्यपि गृहीतानीत्युक्तम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

पाखण्ड नाम की निरुक्ति के द्वारा बतलाते हैं **खण्डानि** इस बहुवचनात प्रयोग से अन्य रूपों को जिनको इन्द्र ने ग्रहण किया था उसको सूचित किया गया है ॥२३॥

एवमिन्द्रे हरत्यश्वं वैन्ययज्ञजिघांसया । तद्गृहीतविसृष्टेषु पाखण्डेषु मतिर्नृणाम् ॥२४॥

अन्वयः— वैन्ययज्ञजिघांसया इन्द्रे अश्वं हरति तद्गृहीत विसृष्टेषु पाखण्डेषु नृणां धर्म मति भवति ॥२४॥

अनुवाद— महाराज पृथु के यज्ञ को विनष्ट करने की इच्छा से अश्व को चुराते समय इन्द्र ने जिन रूपों को धारण किया वे पाखण्ड हैं किन्तु उन सबों को धर्म समझकर लोगों की बुद्धि मोहित हो जाती है, और वे उसे ही धर्म समझने लगते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तत्प्रभृति पाखण्डमार्गाः प्रवृत्ता इत्याह-एवमिति तेन गृहीतेषु पुनर्विसृष्टेषु नग्ना जैनाः । रक्तपटा बौद्धाः । आदिशब्देन कापालिकादयस्तेषूपधर्मेषु धर्मोपमेषु धर्म एवायमिति मतिः सज्जत इति द्वयोरन्वयः । पेशलेषु आपाततो रम्येषु । वाग्मिषु हेतूक्तिचतुरेषु ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

एवम् इत्यादि श्लोक के द्वारा यह बतलाया गया है कि उसी समय से पाप मार्ग प्रारम्भ हुए हैं । इन्द्र के द्वारा धारण करके छोड़ दिए धर्म हैं नग्नजैन, लाल वस्त्रधारी बौद्ध इत्यादि । आदि शब्द से कापालिक आदि के धर्म के समान प्रतीत होने वाले उपधर्मों में लोगों की धर्म बुद्धि हो जाती है । इन दोनों श्लोकों का एक साथ अन्वय है । ये देखने में सुन्दर हैं । बोलने में चतुर लोगों ने इन सबों का प्रचार किया है ॥२४॥

धर्म इत्युपधर्मेषु नग्नरक्तपटादिषु । प्रायेण सज्जते भ्रान्त्या पेशलेषु च वाग्मिषु ॥२५॥

अन्वयः— नग्न रक्त पटादिषु पेशलेषु वाग्मिषु उपधर्मेषु प्रायेण धर्म इति बुद्धि उपसृजते ॥२५॥

अनुवाद— जैन, बौद्ध इत्यादि जो देखने में सुन्दर और बोलने में चतुर लोगों के द्वारा गृहीत उपधर्म हैं, इनमें ही लोग की भ्रम वशात् धर्म बुद्ध हो जाती है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

तदभिज्ञाय भगवान्पृथुः पृथुपराक्रमः । इन्द्राय कुपितो बाणमादत्तोद्यतकार्मुकः ॥२६॥

अन्वयः— तदभिज्ञाय पृथुपराक्रमः भगवान् पृथुः इन्द्राय कुपितः उद्यत कार्मुकः बाणम् आदत्त॥२६॥

अनुवाद— इन्द्र की उस दुष्टता को जानकर प्रबल पराक्रमी भगवान् पृथु अपना धनुष उठाकर उस पर बाण चढाये ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

तमृत्विजः शक्रवधाभिसंधितं विचक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमसह्यरंहसम् ।
निवारयामासुरहो महामते न युज्यतेऽत्रान्यवधः प्रचोदितात् ॥२७॥

अन्वयः— शक्रवधाभिसंधितम् असह्य रंहसम् दुष्प्रेक्ष्यम् तम् विचक्ष्य ऋत्विजः अहोमहामते ! अत्र प्रचोदितात् अन्यवधः न युज्यते इति निवारयामासुः ॥२७॥

अनुवाद— इन्द्र का वध करने के लिए उद्यत, जिनके वेग को कोई वर्दास्त नहीं कर सकता है, और क्रोध के कारण तमतमाये होने के कारण दुष्प्रेक्ष्य उन महाराज पृथु को देखकर ऋत्विजों ने हे महामते ! इस समय आप यज्ञ की दीक्षा ले चुके हैं अतएव शास्त्र विहित वध के अतिरिक्त दूसरे का वध करना उचित नहीं है, यह कहकर उन्हे रोका ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

शक्रवधेऽभिसंधितं कृताभिप्रायम् । प्रचोदितात्पशोर्वधादन्यस्य वधस्तव न युज्यते ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र के वध का उनका अभिप्राय देखकर ऋत्विजों ने कहा कि इस समय शास्त्र विहित पशु के वध से भिन्न किसी दूसरे किसी का वध करना आपके लिए उचित नहीं है ॥२७॥

वयं मरुत्वन्तमिहार्थनाशनं ह्वयामहे त्वच्छ्रवसा हतत्विषम् ।
अयातयामोपहवैरनन्तरं प्रसह्य राजन् जुहवाम तेऽहितम् ॥२८॥

अन्वयः— इहार्थनाशनम्त्वछ्रबसाहतत्विषम् आयातयामोपहवैः अनन्तरं ते अहितम् मरुत्वन्तम् वयं जुहवाम्॥२८॥

अनुवाद— इस यज्ञ कार्य में विघ्न डालने वाले, आपके यश के द्वारा ही जिसका तेज विनष्ट हो गया है, उस आपके शत्रु इन्द्र को अमोघ मन्त्रों द्वारा आवाहित करके हमलोग उसकी आहुति दे देते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

तद्वधं तु वयं करिष्याम इत्याहुः । वयमिह यज्ञनाशकं त्वत्कीर्त्यैव हतप्रभमिन्द्रमाह्वयामहे । कैः । अयातयामैरगतवीर्यैराह्वानमन्त्रैः । अनन्तरं च ते तवाहितं जुहवाम होष्यामः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

ऋत्विजों ने कहा उस इन्द्र का वध तो हमलोग करेंगे । आपके यज्ञ को विनष्ट करने वाले आपकी कीर्ति के द्वारा ही उसका तेज विनष्ट हो गया है । उस इन्द्र को अपने प्रबल मन्त्रों द्वारा आवाहित करके उसके पश्चात् हमलोग उसकी आहुति दे देंगे ॥२८॥

इत्यामन्त्र्य क्रतुपतिं विदुरास्यर्त्विजो रुषा । स्रुग्घस्तान् जुह्वतोऽभ्येत्य स्वयंभूः प्रत्यषेधत ॥२९॥

अन्वयः— विदुर ! इति अस्य ऋत्विजः रुषा क्रतुपतिम् आमन्त्र्य स्रुग्धस्तान जुह्वतः स्वयम्भुः अभ्येत्य न्यवारयत्॥२९॥

अनुवाद— हे विदुर ! इस तरह से महाराज पृथु के ऋत्विजों ने क्रोध पूर्वक इन्द्र को आवाहित करके स्रुक हाथ में लिए हुए होम करने वाले ऋत्विजों को ब्रह्माजी आकर रोके ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अस्य पृथोः । स्रुक् हस्ते येषां तान् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

हाथ में स्रुक लिए हुए महाराज पृथु के ऋत्विजों को ब्रह्माजी ने आकर रोका ॥२९॥

न वध्यो भवतामिन्द्रो यद्यज्ञो भगवत्तनुः । यं जिघांसथ यज्ञेन यस्येष्टास्तनवः सुराः ॥३०॥

अन्वयः— इन्द्रः भवताम् वध्योन यद् यज्ञो भगवत् तनुः । यं यज्ञेन जिघांसथ यस्य इष्टतनवः सुराः ॥३०॥

अनुवाद— याग को तुमलोगों को इन्द्र का वध नहीं करना चाहिए । यह इन्द्र संज्ञक यज्ञ श्रीभगवान् का शरीर है । यज्ञ द्वारा जिन देवताओं की आराधना आप लोग कर रहे हैं, वे इन्द्र के प्रिय शरीर हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

यमिन्द्रं यज्ञेन जिघांसथ । यज्ञेनेष्टाः सर्वे सुरा यस्य तनवः स इन्द्रो भवतां वधार्हो न भवति । यद्यस्माद्यज्ञो नामाऽयमिन्द्रो भगवतस्तनुरवतारः । 'ततः सप्तम आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत । स यमाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायंभुवान्तरं' इत्युक्तत्वात् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

जिस इन्द्र को यज्ञ के द्वारा तुमलोग मारना चाहते हो आपलोग यज्ञ के द्वारा जिन देवताओं की आराधना करते है वे देवता इन्द्र के शरीर हैं । अतएव वे इन्द्र आपलोग द्वारा वध के योग्य नहीं है । क्योंकि यज्ञ नामक इन्द्र श्रीभगवान् का शरीरावतार है । कहा जा चुका है कि सातवें अवतार में भगवान रुचि देवी के गर्भ से यज्ञ रूप से अवतीर्ण हुए । उन्होंने याम संज्ञक देवों से स्वायम्भुव मन्वन्तर की रक्षा की ।।३०।।

तदिदं पश्यत महद्धर्मव्यतिकरं द्विजाः । इन्द्रेणानुष्ठितं राज्ञः कर्मैतद्विजिघांसता ।।३१।।

अन्वयः— हे द्विजाः ! तदिदं महद्धर्म व्यतिकरं पश्यत राज्ञः कर्मैत द्विजिघांसता इन्द्रेण अनुष्ठितः ।।३१।।

अनुवाद— हे ब्राह्मण ! यह धर्म के महती पंक्ति को आपलोग देखें, महाराज पृथु के यज्ञ को विनष्ट करने के लिए इन्द्र ने ही इन सबों का प्रचार किया है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

अतो बलीयसाऽनेन सख्यमेव कर्तव्यम्, अन्यथा भूयः पाखण्डं स्रक्ष्यतीत्याशयेनाह । तदिदमिन्द्रेणानुष्ठितं महदन्याय्यं पश्यत। किमित्यपेक्षायामाह । धर्मस्य व्यतिकरं विपर्ययं पाखण्डपथम् ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

अतएव इस बलवान् इन्द्र से मित्रता ही कर लेनी चाहिए । नहीं तो यह और अधिक पाखण्ड की सृष्टि करेगा । इन्द्र के द्वारा धारण किए गये महान अन्याय को तुम लोग देखों इसके चलते धर्म का पाखण्ड मार्ग ।।३१।।

पृथुकीर्तेः पृथोर्भूयात्तर्ह्येकोनशतक्रतुः । अलं ते क्रतुभिः स्विष्टैर्यद्भवान्मोक्षधर्मवित् ।।३२।।

अन्वयः— तर्हि पृथुकीर्तेः पृथोः एकोन शतक्रतुः भूयात् । ते स्विष्टै क्रतुभिः अलम् यद् भवान् मोक्ष धर्मवित् ।।३२।।

अनुवाद— अतएव महान् यशस्वी पृथु के निन्यानबे ही यज्ञ रहें । राजन् आप तो मोक्ष धर्म के ज्ञाता है आपको इन यज्ञों के अनुष्ठान से क्या लाभ है ?।।३२।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि किमत्र युक्तमित्यत-आह पृथुकीर्तेरिति । एकेनोनं शतं यस्मिंस्तादृशः क्रतुः क्रतुप्रयोगः पृथोर्भूयात् । पृथुरिति पाठे एकोनशतं क्रतवो यस्य तादृशोऽपि महेन्द्रात्पृथुकीर्तिः भूयादित्यर्थः । तदेवमृत्विजः प्रत्युक्त्वा पृथुं प्रत्येवाह-अलमिति ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

तो फिर इस विषय में क्या करना उचित है तो इस पर ब्रह्माजी ने कहा पृथु महायशस्वी हैं, अतएव इनके निन्नानबे ही याग रहें । इनका इन्द्र से अधिक यश हो । इस तरह से ऋत्विजों से कहकर ब्रह्माजी पृथु से कहा अब आप यज्ञ करना बन्द करें । आप तो मोक्ष धर्म के ज्ञाता हैं ।।३२।।

नैवात्मने महेन्द्राय रोषमाहर्तुमर्हसि । उभावपि हि भद्रं त उत्तमश्लोकविग्रहौ ।।३३।।

अन्वयः— उभौ अपि हि उत्तमश्लोकविग्रहौ ते हि भद्रम् आत्मने महेन्द्राय शेषमनैव आहर्तुम् अर्हसि ।।३३।।

अनुवाद— इन्द्र और आप दोनों पवित्र कीर्ति श्रीभगवान् के शरीर हैं । आपका मङ्गल हो आप अपने स्वरूप इन्द्र पर क्रोध न करें ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनैवात्मने महेन्द्राय रोषं कर्तुं नार्हसि । तत्र हेतुः-उभावपीति ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

आप अपने स्वरूप भूत इन्द्र पर क्रोध नहीं करें । आप दोनों ही पवित्र कीर्ति श्रीभगवान् के शरीर हैं ॥३३॥

मास्मिन्महाराज कृथाः स्म चिन्तां निशामयास्मद्वच आदृतात्मा ।
यद्ध्यायतो दैवहतं नु कर्तुं मनोऽतिरुष्टं विशते तमोऽन्धम् ॥३४॥

अन्वयः— महाराज ! अस्मिन् चिन्ता मास्म कृथाः अस्मद्वच आदृतात्मा निशामय यद् दैवहतं कर्तुं नु ध्यायतः अतिरुष्टं मनः तमोन्धम् विशते ॥३४॥

अनुवाद— हे महाराज ! मेरा यह यज्ञ विध्नित हो गया यह सोचकर आप चिन्ता न करें, मेरी बात आप आदर पूर्वक स्वीकार करें । जो मनुष्य विधाता के बिगाड़े हुए काम को बनाने का प्रयत्न करता है, उसका मन अत्यन्त क्रोध में भरकर भयङ्कर मोह में फँस जाता है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

तथापि क्रतुसमाप्तिमेव ध्यायन्तं प्रत्याह । अस्मिन्यज्ञविघ्ने चिन्तां मा स्म कृथाः । यद्यस्माद्दैवहतं कार्यं कर्तुं ध्यायतो मनो तु निश्चितमतिरुष्टं सदन्धं तमो मोहं विशति नतु शान्तिं लभते ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

फिर भी क्रतु की समाप्ति के विषय में चिन्ता करने वाले राजा के प्रति ब्रह्माजी ने कहा— आप इस यज्ञ के विघ्न के विषय में चिन्ता न करें, क्योंकि विधाता के बिगाड़े हुए कार्य को करने के लिए विचार करने वाले का मन अत्यन्त रुष्ट होकर मोह में फँस जाता है ॥३४॥

क्रतुर्विरमतामेष देवेषु दुरवग्रहः । धर्मव्यतिकरो यत्र पाखण्डैरिन्द्रनिर्मितैः ॥३५॥

अन्वयः— एष क्रतुः विरमताम् देवेषु दुरवग्रहः । यत्र इन्द्रनिर्मितैः पाखण्डैः धर्म व्यतिकरः ॥३५॥

अनुवाद— अतएव आप इस यज्ञ को बन्द कर दीजिये । यदि कहें कि आप इन्द्र को क्यों नहीं रोकते हैं तो इसका उत्तर है कि देवताओं में बड़ा ही दुराग्रह होता है । इस यज्ञ के ही कारण इन्द्र के द्वारा निर्मित पाखण्ड से धर्म का नाश होता है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

अतएव तव क्रतुर्विरमतु । नन्विन्द्रः किं न निवार्यतेऽत आह । यतो देवेषु दुराग्रहो भवतीति । यत्र क्रतौ ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

आप इस यज्ञ को बन्द कर दें । यदि कहें कि आप इन्द्र को क्यों नहीं रोकते हैं, तो इसका उत्तर है कि देवता दुराग्रही होते हैं । इस यज्ञ के ही कारण इन्द्र के द्वारा निर्मित पाखण्ड से धर्म का नाश हो रहा है ॥३५॥

एभिरिन्द्रोपसंसृष्टैः पाखण्डैर्हारिभिर्जनम् । ह्रियमाणं विचक्ष्वैनं यस्ते यज्ञध्रुगश्वमुट् ॥३६॥

अन्वयः— यस्ते यज्ञध्रुक् अश्वमुट् इन्द्रोपसंसृष्टै एभिः हरिभिः पाखण्डैः एनं ह्रियमाणं जनम् विचक्ष्व ॥३६॥

अनुवाद— जो आपके यज्ञ से द्रोह करने वाला अश्व को चुराने वाला है, उसके द्वारा रचित मनोहर पाखण्डों के द्वारा सारी जनता उसी ओर खिचीं जा रही हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्रदुराग्रहकृतमनर्थं पश्येत्याह । एभिरिन्द्रेणोपसंसृष्टैरधिष्ठितैर्हारिभिश्चित्ताकर्षकैः । य इन्द्रस्तेऽश्वं मुष्णातीति तथा यज्ञाय दुह्यति तथा । तेन सृष्टैः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्र के दुराग्रह के कारण हुए अनर्थ को आप देखें । इन्द्र के द्वारा रचित इन चित्ता का पाखण्डों के द्वारा जनता इस पाखण्ड की ही और आकृष्ट हो रही है । यह इन्द्र जो आपके यज्ञश्च को चुराने वाला है और आपके यज्ञ से द्रोह करता है । उसी ने इन मायाओं की सृष्टि की हैं ।।३६।।

भवान्परित्रातुमिहावतीर्णो धर्मं जनानां समयानुरूपम् ।
वेनापचारादवलुप्तमद्य तद्देहतो विष्णुकलासि वैन्य ।।३७।।

अन्वयः— हे वैन्य ! विष्णुकला असि वेनापचाराप्त अवलुप्तम् समयानुरूपम् जनानां धर्मं परित्रातुम् भवान् इह अद्य तद् देहतः अवतीर्णः ।।३७।।

अनुवाद— आप साक्षात् भगवान् विष्णु के अंश है, वेन के द्वारा किए गये अपचार के कारण जब धर्म लुप्त हो रहा था उस समय समयोचित धर्म की रक्षा करने के लिए वेन के ही शरीर से अवतीर्ण हुए हैं ।

भावार्थ दीपिका

ततो मम किमिति चेत्तत्राह- भवानिति द्वाभ्याम् । सांख्ययोगादिनानासिद्धान्तानुरूपं धर्मं वेनस्यान्यायालुप्तं परित्रातुं तद्देहाद्विष्णोः कलैव त्वमवतीर्णोऽसि ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि इससे मेरा क्या अपराध है तो इस पर ब्रह्माजी ने **भवान् इत्यादि** दो श्लोकों से कहा सांख्ययोग इत्यादि अनेक सिद्धान्तों के अनुरूप धर्म वेन के दुराचार के कारण लुप्त हो रहा था, उस धर्म की रक्षा करने के लिए आप वेन के ही शरीर से अवतीर्ण हुए हैं । आप भगवान् विष्णु के अंश हैं ।।३७।।

सत्त्वं विमृश्यास्य भवं प्रजापते संकल्पनं विश्वसृजां पिपीपृही ।
ऐन्द्रीं च मायामुपधर्ममातरं प्रचण्डपाखण्डपथं प्रभो जहि ।।३८।।

अन्वयः— प्रजापते सत्त्वं अस्य भवं विमृश्य विश्व सृजां सङ्कल्पनं पिपीपृहि हे प्रभो ! प्रचण्ड पाखण्ड पथं उपधर्म मातरं ऐन्द्री मायां जहि ।।३८।।

अनुवाद— हे प्रजाओं का पालन करने वाले राजन् आप इस विश्व की उत्पत्ति का विचार करके, भृगु आदि प्रजापतियों के सङ्कल्प को पूरा कीजिए । हे प्रभो ! यह प्रचण्ड पाखण्ड का मार्ग उप धर्म की जननी इस इन्द्र की माया को आप विनष्ट कर दें ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

हे प्रजापते, अस्य विश्वस्योद्भवं विचार्य यैरुत्पादितोऽसि तेषां विश्वसृजां संकल्पं पिपीपृहि, आर्षः प्रयोगः, पूरयेत्यर्थः। प्रचण्डो यः पाखण्डमार्गः सैवैन्द्री मायोपधर्मजननी तां जहि ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

हे प्रजाओं का पालन करने वाले, इस विश्व की उत्पत्ति का विचार करके जिन प्रजापतियों के द्वारा आप उत्पन्न किए गये हैं, उन भृगु आदि के सङ्कल्प को ही आप पूरा करें । पिपीपृहि यह आर्ष प्रयोग है । प्रचण्ड जो

पाखण्ड मार्ग है, वही इन्द्र की माया जैन, बौद्ध आदि उपधर्मो को उत्पन्न करने वाली है। हे प्रभो आप उसको विनष्ट कर दें ॥३८॥

मैत्रेय उवाच

इत्थं स लोकगुरुणा समादिष्टो विशांपतिः। तथा च कृत्वा वात्सल्यं मघोनापि च संदधे ॥३९॥

अन्वयः— लोकगुरुणां इत्थं समादिष्टः स विशाम्पतिः तथा च कृत्वा वात्सल्यं कृत्वा मघोना अपि संदधे ॥३९॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— लोक गुरु ब्रह्माजी के द्वारा इस प्रकार से समझाये जाने पर महाराज पृथु यज्ञ के दुराग्रह को त्यागकर और वात्सल्य को अपनाकर इन्द्र के साथ भी सन्धि कर लिए ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

तथा च कृत्वा यज्ञाग्रहं हित्वा वात्सल्यं स्नेहं कृत्वेन्द्रेण सह संधानं च कृतवान् ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञ के प्रति दुराग्रह को त्यागकर और स्नेह को अपनाकर राजा ने इन्द्र के साथ सन्धि भी कर ली ॥३९॥

कृतावभृथस्नानाय पृथवे भूरिकर्मणे। वरान्ददुस्ते वरदा ये तद्बर्हिषि तर्पिताः ॥४०॥

अन्वयः— भूरि कर्मणे कृतावभृथस्नानाय पृथवे ये वरदाः तद् वर्हिषि तर्पिता ते वरान् ददुः ॥४०॥

अनुवाद— बहुत अधिक कर्मो को करने वाले महाराज पृथु के अवभृथ स्नान कर लेने पर वरदान देने वाले जो देवता उस यज्ञ में पूजित हुए थे वे महाराज पृथु को वरदान दिए ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

कृतमवभृथसंबन्धि स्नानं येन स तस्मै ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

अवभृथ स्नान करने वाले राजा को ॥४०॥

विप्राः सत्याशिषस्तुष्टाः श्रद्धया लब्धदक्षिणाः। आशिषो युयुजुः क्षत्तरादिराजाय सत्कृताः ॥४१॥

अन्वयः— हे क्षतः श्रद्धया लब्धदक्षिणा सत्कृता तुष्टाः सत्याशिषः, विप्राः, आदिराजाय आशिषः युयुजुः ॥४१॥

अनुवाद— हे विदुर, महाराज पृथु द्वारा श्रद्धा पूर्वक दक्षिणा दिए जाने के कारण समादृत तथा सन्तुष्ट जिनके आशीर्वाद सत्य ही होते हैं उन ब्राह्मणों ने महाराज पृथु को आशीर्वाद प्रदान किया ॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४१॥

त्वयाहूता महाबाहो सर्व एव समागताः। पूजिता दानमानाभ्यां पितृदेवर्षिमानवाः ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुविजये एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अन्वयः— हे महाबाहो ! त्वयाहूताः सर्वएव समागताः पितुदेवर्षि मानवाः दानमानाभ्यां पूजिताः ॥४२॥

अनुवाद— सन्तुष्ट ब्राह्मणों ने कहा हे महाबाहो आपके द्वारा आहूत जो पितर देवता, ऋषि, और मनुष्य यहाँ आये थे वे ही सबके सब आपके द्वारा दान और सम्मान पूर्वक पूजित हुए हैं ॥४२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तुष्टानां वाक्यं त्वयेति ।।४२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकोन विंशोऽध्यायः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

सन्तुष्ट ब्राह्मणों का यह **त्वया इत्यादि** श्लोक वाक्य हैं ।।४२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के उन्नीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१९।।

* * *

बीसवाँ अध्याय

महाराज विष्णु की यज्ञशाला में भगवान् विष्णु का प्राकट्य

मैत्रेय उवाच

भगवानपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः । यज्ञैर्यज्ञपतिस्तुष्टो यज्ञभुक् तमभाषत ॥१॥

अन्वयः— यज्ञैः तुष्टा यज्ञभुक् यज्ञपतिः भगवान् वैकुण्ठ अपि मघवता साकं तमभाषत् ॥१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— महाराज पृथु के उन यज्ञों के द्वारा सन्तुष्ट हुए यज्ञों के भोक्ता तथा यज्ञ के स्वामी भगवान् विष्णु इन्द्र के साथ आकर महाराज पृथु से कहे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

विंशे तु विष्णुना साक्षात्पृथोर्यज्ञेऽनुशासनम् । वरदानप्रसङ्गेन प्रीतिश्चान्योन्यमीर्यते ॥१॥ मघवता साकमिन्द्रेण सह वर्तमानः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

पृथु के यज्ञ में साक्षात् भगवान् विष्णु के द्वारा वरदान के प्रसङ्ग में उपदेश तथा इन्द्र और पृथु में परस्पर में प्रेम का वर्णन बीसवें अध्याय में किया गया है ॥१॥ मधवता साकम् का अर्थ है इन्द्र के साथ रहकर ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

एष तेऽकारषीद्भङ्गं हयमेधशतस्य ह । क्षमापयत आत्मानममुष्य क्षन्तुमर्हसि ॥२॥

अन्वयः— एष ते हयमेधशतस्य भङ्गम् अकार्षीत् अमुष्य आत्मानं क्षमापयते क्षन्तुम् अर्हसि ॥२॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— राजन् इस इन्द्र ने तुम्हारे सौ अश्वमेध यज्ञ के सङ्कल्प को भङ्ग किया है, यह आपसे क्षमा माँगता है इसे आप क्षमा कर दें ॥२॥

भावार्थ दीपिका

आत्मानं त्वां क्षमां कारयतोऽमुष्य त्वमपि क्षन्तुमर्हसि ॥२॥

भाव प्रकाशिका

अपने को क्षमा करवाना चाहने वाले इसको आप क्षमा कर दें ॥२॥

सुधियः साधवो लोके नरदेव नरोत्तमाः । नाभिद्रुह्यन्ति भूतेभ्यो यर्हि नात्मा कलेवरम् ॥३॥

अन्वयः— हे नरदेव ! लोके सुधियः साधवः नरोत्तमा भूतेभ्यः न अभिद्रुह्यन्ति, यर्हि आत्मा कलेवरम् न ॥३॥

अनुवाद— हे राजन् ! सद्बुद्धि सम्पन्न सज्जन तथा श्रेष्ठ पुरुष दूसरों के प्रति द्रोह नहीं करते हैं क्योंकि देह आत्मा नहीं है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

यर्हि यस्मात्कलेवरमात्मा न भवत्यतस्तदभिमानेन भूतानि नाभिद्रुह्यन्ति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

चूकि शरीर आत्मा नहीं है, अतएव श्रेष्ठ पुरुष शरीराभिमान के कारण दूसरे जीवों से द्रोह नहीं करते हैं॥३॥

पुरुषा यदि मुह्यन्ति त्वादृशा देवमायया । श्रम एव परं जातो दीर्घया वृद्धसेवया ॥४॥

अन्वयः— यदि त्वादृशाः पुरुषादेवमायया मुह्यन्ति तदा तु दीर्घया वृद्धसेवया परं श्रम एव ही जातः ॥४॥

अनुवाद— यदि देवताओं की माया से आप जैसे जीव मोहित हो जाते है तब तो दीर्घकाल तक की गयी वृद्धों की सेवा से केवल श्रम ही मिला ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

अतः कायमिमं विद्वानविद्याकामकर्मभिः । आरब्ध इति नैवास्मिन्प्रतिबुद्धोऽनुषज्जते ॥५॥

अन्वयः— अविद्याकामकर्मभिः आरब्ध अतः विद्वान् इमं कायम् इति अस्मिन् प्रतिबुद्धः न अनुषज्जते ॥५॥

अनुवाद— यह शरीर अविद्या (अज्ञान) काम (वासना) और कर्मभिः कर्मों के द्वारा निर्मित यह शरीर है, इस तरह से इस शरीर को मानकर इसमें आसक्त नहीं होते हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अविद्यास्वरूपाज्ञानं ततःकामस्ततः कर्म तैरारब्ध इति विद्वानत एव प्रतिबुद्ध आत्मज्ञोऽस्मिन्नैवानुषज्जते ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अविद्या अर्थात् स्वरूपाज्ञाना काम अर्थात् वासना तथा उसके कारण उत्पन्न होने वाले कर्मों के द्वारा उत्पन्न यह शरीर है अतएव ज्ञानी व्यक्ति इस शरीर में आसक्त नहीं होते हैं ॥५॥

असंसक्तः शरीरेऽस्मिन्नमुनोत्पादिते गृहे । अपत्ये द्रविणे वापि कः कुर्यान्ममतां बुधः ॥६॥

अन्वयः— अस्मिन् शरीरे असंसक्तः कः बुध, अमुना उत्पादिते गृहे, अपत्ये, द्रविणे वापि ममतां कुर्यात् ॥६॥

अनुवाद— जो इस शरीर में आसक्त नहीं होता है वह कौन विज्ञपुरुष होगा ? जो इस शरीर से उत्पन्न होने वाले गृह, सन्तान अथवा धन में ममता करेगा ॥६॥

भावार्थ दीपिका

तथापि पुत्रादिममत्वेन भूतद्रोहेण च सङ्गो भवेत्तत्राह- असंसक्त इति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

शरीर में आसक्ति नहीं होने पर भी पुत्रों आदि की ममता के कारण और जीवों से द्रोह के कारण आसक्ति तो हो ही सकती है, इस पर भगवान् ने **असंसक्तः इत्यादि** श्लोक को कहा है ॥६॥

एकः शुद्धः स्वयंज्योतिर्निर्गुणोऽसौ गुणाश्रयः । सर्वगोऽनावृतः साक्षी निरात्मात्मात्मनः परः ॥७॥

अन्वयः— असौ एकः, शुद्धः, स्वयंज्योतिः निर्गुणः गुणाश्रयः सर्वज्ञः, अनावृत्तः साक्षी निरात्मा आत्मनः परः ॥७॥

अनुवाद— आत्मा एक शुद्ध, स्वयम्प्रकाश, निगुर्ण, गुणाश्रय, सर्वत्र व्यापक, आवरण शून्य, सबका साक्षी और शरीर से भिन्न हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिबोधक्रमं विवृण्वन् देहेऽनुषङ्गाभावमाह-एक इति द्वाभ्याम् । असावात्मा आत्मनो देहात्परो भिन्नः । तत्र नवधा वैलक्षण्येन भेदं साधयति-एक इति नवभिः पदैः । देहो हि बालयुवादिभेदादनेको मलिनश्च जडश्च सगुणश्च स्वकारणभूतगुणाश्रितश्च परिच्छिन्नश्च गृहादिभिरावृतश्च दृश्यश्च सात्मा च । आत्मा तु नैवमतो भिन्नः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

ज्ञान की उत्पत्ति के क्रम की व्याख्या करते हुए भगवान् देह में होने वाली आसक्ति के अभाव को एकः इत्यादि दो श्लोकों से बतलाते हैं । यह आत्मा देह से पर अर्थात् भिन्न है देह में होने वाले आत्मा से नव प्रकार की भिन्नता को बतलाते हुए कहते हैं देह बाल युवत्व इत्यादि के भेद से अनेक है । वह मलिन जड, सगुण, अपने कारण भूत गुणों के अधीन, सीमित, गृह इत्यादि से आवृत, दृश्य और आत्मा से युक्त होता है । किन्तु आत्मा ऐसा नहीं है, अतएव शरीर आत्मा से भिन्न है ॥७॥

य एवं सन्तमात्मानमात्मस्थं वेद पूरुषः । नाज्यते प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः स मयि स्थितः ॥८॥

अन्वयः— यः पुरुषः एवं सन्तमात्मानम् आत्मस्थं वेद स मयि स्थितः, प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः नाज्यते ॥८॥

अनुवाद— जो पुरुष इस देह स्थित आत्मा को इस प्रकार से जानता है, उसकी स्थिति मुझमें होती है, अतएव प्रकृति में रहकर भी वह प्रकृति के गुणों से लिप्त नहीं होता है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

आत्मस्थं स्वस्मिन् स्थितम् । प्रकृतिस्थोऽपि देहस्थोऽपि तद्विकारैर्न लिप्यते । यतः स मयि ब्रह्मणि स्थितः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अपने शरीर में विद्यमान आत्मा को इस प्रकार से जानने वाला पुरुष परमात्मा में स्थित रहने के कारण प्रकृति के गुणों से लिप्त नहीं होता है ॥८॥

यः स्वधर्मेण मां नित्यं निराशीः श्रद्धयान्वितः । भजते शनकैस्तस्य मनो राजन्प्रसीदति ॥९॥

अन्वयः— राजन् यः स्वधर्मेण निराशीः मां नित्यं श्रद्धया भजते तस्य मनः शनकैः प्रसीदति ॥९॥

अनुवाद— हे राजन् ! जो अपने धर्म के द्वारा निष्काम भाव से श्रद्धा पूर्वक मेरी आराधना करता है, उसका मन धीरे-धीरे शुद्ध हो जाता है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

इयमवस्था कस्योत्पद्यत इत्यपेक्षायामाह- यः स्वधर्मेणेति चतुर्भिः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

यह अवस्था किसकी उत्पन्न होती है ? इसका उत्तर भगवान् ने **यः इत्यादि** चार श्लोकों से दिया है ॥९॥

परित्यक्तगुणः सम्यग्दर्शनो विशदाशयः । शान्तिं मे समवस्थानं ब्रह्म कैवल्यमश्नुते ॥१०॥

अन्वयः— विशदाशयः परित्यक्तगुणः सम्यग्दर्शनः शान्तिम् अश्नुते मे समवस्थानम् ब्रह्मकैवल्यमश्नुते ॥१०॥

अनुवाद— अन्तःकरण के शुद्ध हो जाने पर मनुष्य का गुणों से सम्बन्ध समाप्त हो जाता है । ऐसा होने पर उसको सम्यग्दर्शन रूप तत्त्वज्ञान हो जाता है, उसके पश्चात् वह शान्ति को प्राप्त कर लेता है । मुझमें और औदासीन्य पूर्वक अवस्था ही कैवल्य है, उसे वह प्राप्त कर लेता है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

भवतु मनः प्रसन्नं, ततः किं तत्राह । यर्हि विशदाशयः प्रसन्नमनास्तदा परित्यक्तगुणः सन् सम्यग्दर्शनो भूत्वा शान्तिमश्नुते। शान्तिमेवाह । मम सम्यगौदासीन्येनावस्थानमेव ब्रह्म तदेव कैवल्यमश्नुते ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि मन के प्रसन्न हो जाने से कौन सा लाभ है ? तो इस पर भगवान् कहते हैं- जब अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है तब उसका गुणों से सम्बन्ध समाप्त हो जाता है । ऐसा होकर मनुष्य तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेता है । वह तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् शान्ति प्राप्त कर लेता है । अच्छी तरह से मुझमें उदासीन भाव से स्थित रहने को ही ब्रह्म कैवल्य कहते हैं ॥१०॥

उदासीनमिवाध्यक्षं द्रव्यज्ञानक्रियात्मनाम् । कूटस्थमिममात्मानं यो वेदाप्नोति शोभनम् ॥११॥

अन्वयः— उदासीनमेव अध्यक्षं द्रव्यज्ञानक्रियात्मनाम् कूटस्थम् इमम् आत्मानं वेद सः शोभनम् आप्नोति ॥११॥

अनुवाद— देह, ज्ञानं, कर्मेन्द्रियों तथा मन का अध्यक्ष इस आत्मा को जो कूटस्थ जानता है वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

सम्यग्दर्शनमेवाह । उदासीनमेवात्मानं द्रव्यज्ञानक्रियात्मनां देहज्ञानकर्मेन्द्रियमनसामध्यक्षमिव स्थितमात्मानं यो वेद॥११॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में सम्यग्दर्शन का ही वर्णन करते हैं । उदासीन ही आत्मा को द्रव्य (देह) ज्ञान क्रिया (इन्द्रियाँ) और आत्मा (मन) अध्यक्ष के स्थान स्थित इस कूटस्थ आत्मा को जो जानता है, वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥११॥

भिन्नस्य लिङ्गस्य गुणप्रवाहो द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मनः ।
दृष्टासु सम्पत्सु विपत्सु सूरयो न विक्रियन्ते मयि बद्धसौहृदाः ॥१२॥

अन्वयः— गुणप्रवाहः भिन्नस्य लिङ्गस्य द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मनः मयि बद्धसौहृदाः सूरयः दृष्टासु विपत्सु न विक्रियन्ते ॥१२॥

अनुवाद— गुण प्रवाहरूप आवागमन तो आत्मा से भिन्न लिङ्ग शरीर का होता है, वह भूत, इन्द्रिय, इन्द्रियाभिमानी देवता और चिदाभास की समष्टि रूप और परिच्छिन्न इसका आत्मा से कोई भी सबन्ध नहीं होता हैं । जिस ज्ञानी पुरुष का मुझमें सुदृढ अनुराग होता है वह सम्पत्ति अथवा विपत्ति को प्राप्त करके विकृत नहीं होता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

संसारिणः कथं कूटस्थत्वमत आह । भिन्नस्य लिङ्गस्य देहस्य गुणप्रवाहः संसारः । भिन्नत्वे हेतुः- द्रव्याद्यात्मकस्य। तत्र चेतना चिदाभासः । अतो दृष्टासु प्राप्तासु । हर्षशोकादिभिर्न विक्रियन्ते ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि संसारी जीव कूटस्थ कैसे हो सकता है ? तो इसके उत्तर में भगवान् कहते हैं— गुण प्रवाह रूप संसार तो आत्मा से भिन्न लिङ्ग शरीर का होता है । वह द्रव्य (भूत), क्रिया (इन्द्रियाँ), ज्ञान तथा आत्मा (मन) और चिदाभास की समष्टि रूप है । जिन ज्ञानी पुरुषों का मुझमें सुदृढ अनुराग होता है, वे सम्पत्ति अथवा विपत्ति को प्राप्त करके हर्ष एवं शोक रूप विकारों से विकृत नहीं होते हैं ।।१२।।

समः समानोत्तममध्यमाधमः सुखे च दुःखे च जितेन्द्रियाशयः ।
मयोपक्लृप्ताखिललोकसंयुतो विधत्स्व वीराखिललोकरक्षणम् ।।१३।।

अन्वयः— वीर ! समः समान्नोत्तममध्यमाधमः सुखे च दुःखेच जितेन्द्रियाशयः मयोपक्लृप्ताखिल लोक संयुतः अखिललोकरक्षणं विधत्स्व ।।१३।।

अनुवाद— हे वीर ! तुम उत्तम, मध्यम तथा अधम सबों में एक समान दृष्टि रखकर सुख तथा दुःख में भी एक समान रहें मन एवं इन्द्रियों को अपने वश में करके मुझे ईश्वर के ही द्वारा सम्पादित सभी लोकों और मन्त्रियों आदि से युक्त रहकर तुम सम्पूर्ण लोगों की रक्षा करो ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

त्वं च सूरिरतः सुखे दुःखे च समः सन् समाना उत्तममध्यमाधमा यस्य । जितानीन्द्रियाण्याशयश्च येन । स त्वमखिललोकरक्षणं विधत्स्व । कथमेकेन मया रक्षणं कर्तुं शक्यं तत्राह । मयेश्वरेणोपक्लृप्ताः संपादिता येऽखिला लोका अमात्यादयस्तैः संयुतः।।१३।।

भाव प्रकाशिका

तुम तो ज्ञानी हो अतएव सुख तथा दुःख दोनों में एक समान रहते हुए उत्तम मध्यम तथा अधम सबों को एक समान समझो । ऐसे तुम सभी लोकों की रक्षा करो । यदि कहो कि मैं अकेले कैसे रक्षा कर सकता हूँ तो इसका उत्तर है कि मेरे ही द्वारा सम्पादित सभी लोकों तथा मन्त्रियों को साथ लेकर रक्षा करने का काम करो।।१३।।

श्रेयः प्रजापालनमेव राज्ञो यत्सांपराये सुकृतात्षष्ठमंशम् ।
हर्ताऽन्यथा हृतपुण्यः प्रजानामरक्षिता करहारोऽघमत्ति ।।१४।।

अन्वयः— राज्ञः श्रेयः प्रजापालनम् एव, यत् सुकृतात् साम्पराये षष्ठमंशम् हर्ता, अन्यथा प्रजानामरक्षिता करहार हृतपुण्यः अघमत्तिः ।।१४।।

अनुवाद— राजा का प्रजाओं का पालन करने में ही कल्याण हैं, इससे परलोक में वह प्रजाओं के पुण्य का छठा भाग प्राप्त करता है । जो प्राजाओं का पालन किए बिना ही प्रजाओं से कर वसूलता रहता है, तो उस राजा के सम्पूर्ण पुण्य का प्रजा हरण कर लेती है और वह राजा प्रजाओं के पाप को ही खाता है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

ननु रक्षणं दण्डादिसापेक्षम्, अतस्तपोऽन्यद्वा पुण्यं करिष्यामीति चेदत आह-श्रेय इति । यद्यस्मात् सांपराये परलोके प्रजाभिः कृतात्सुकृतात्षष्ठमंशं हर्ता हरति । अरक्षणे दोषमाह । अन्यथा प्रजाभिर्हृतं पुण्यं यस्य स प्रजानामघमत्ति पापं भुङ्क्ते। अन्यथेत्यस्य विवरणम् करहारः सन्नरक्षिता चेत् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि प्रजा की रक्षा करने में दण्ड आदि देना पड़ता है । अतएव मैं तपस्या अथवा दूसरा पुण्य कार्य करूँगा तो इस पर श्रीभगवान् कहते हैं **श्रेयः इत्यादि** प्रजाओं की रक्षा करने वाले राजा को प्रजाओं के द्वारा

किए गये पुण्यों का छठा भाग स्वर्ग लोक में प्राप्त होता है । प्रजाओं की रक्षा नहीं करने पर होने वाले पाप को बतलाते हैं प्रजा की रक्षा नहीं करने वाले राजा के सारे पुण्यों को उसकी प्रजा ले लेती हैं और वह राजा प्रजाओं के पापों को ही खाता है ॥१४॥

एवं द्विजाग्र्यानुमतानुवृत्तधर्मप्रधानोऽन्यतमोऽविताऽस्याः ।
ह्रस्वेन कालेन गृहोपयातान् द्रष्टासि सिद्धाननुरक्तलोकः ॥१५॥

अन्वयः— एवं द्विजाग्र्यानुमतानुवृत्तधर्मप्रधानः, अस्याः अन्यतमः अविता, अनुरक्तलोकः त्वम् ह्रस्वेन कालेन गृरोपयातान् सिद्धान् द्रष्टाऽसि ॥१५॥

अनुवाद— इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मणों की अनुमति प्राप्त करके परम्परा प्राप्त इस धर्म का मुख्य रूप से पालन करो और इस पृथिवी के पालक बन जाओ । ऐसा करने से सारी प्रजा तुमसे प्रेम करेगी और थोड़े ही समय बाद तुम अपने घर पर आये हुए सनकादि सिद्धों का दर्शन प्राप्त करोगे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

एवं च मोक्षोऽप्यनायासेन भविष्यतीत्याह । द्विजाग्र्याणामनुमतश्चासावनुवृत्तश्च परम्पराप्राप्तो यो धर्मः स एव प्रधानमर्थकामौ तु प्रासङ्गिकौ यस्य । अन्यतमोऽतिशयेनान्यः । धर्मादिष्वनासक्त इत्यर्थः । ऐकपद्यपाठे धर्मप्रधानावन्यतमावर्थकामौ यस्येत्यर्थः अस्याः पृथिव्या अविता सन् अल्पेन कालेन गृहागतान्सनकादीन् द्रक्ष्यसि । अनुरक्तो लोको यस्मिन् सः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से प्रजा पालन करने से तुम्हें अनायास ही मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगीं । श्रेष्ठ ब्राह्मणों की अनुमत्ति प्राप्त करके परम्परातः प्राप्त यह प्रजा पालन का काम ही तुम्हारा प्रधान धर्म है । अर्थ और काम तो प्रसङ्गत प्राप्त होंगे ही । तुम आदि में अनासक्त रहकर इस पृथिवी का सर्वश्रेष्ठ रक्षक बन जाओ । **धर्म प्रधानाविता** इस तरह एक पद के रहने पर अर्थ होगा जिसके अर्थ और काम धर्म प्रधान हैं ऐसे इस पृथिवी के रक्षक तुम, थोड़े ही दिनों में अपने घर आये हुए सनकादि सिद्धों का दर्शन प्राप्त करोंगे ॥१५॥

वरं च मत्कंचन मानवेन्द्र वृणीष्व तेऽहं गुणशीलयन्त्रितः ।
नाहं मखैर्वै सुलभस्तपोभिर्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती ॥१६॥

अन्वयः—हे मानवेन्द्र अहं ते गुणशीलयन्त्रितः, मत्तः कंचन वरं वृणीष्व । अहं वै मखैः, तपोभिः योगेन वान सुलभः यः समवर्ती ॥१६॥

अनुवाद—हे राजवर्य ! मैं आपके शम दमादिगुणो तथा मात्सर्य रहितता रूप शील गुणों से तुम्हारा वशवर्ती हो गया हूँ । तुम मुझसे कोई वरदान माँगो । मैं यज्ञों, तपस्याओं अथवा योग के द्वारा सुलभ नहीं हूँ, क्योंकि मैं तो समदर्शी पुरुषों के चित्त में निवास करता हूँ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

मत् मत्तः सकाशात्किंचिद्वरं वृणीष्व । गुणाः शमादयः, शीलं निर्मत्सरत्वादिस्वभावः, तैरहं यन्त्रितो वशीकृत । तद्रहितैस्तु मखादिभिर्नाहं सुलभः । यतः समं चित्तं येषां तेष्वेव वर्तितुं शीलं यस्य सोऽहम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

तुम मुझसे कोई वरदान माँग लो । मैं तुम्हारे शमादि गुणों तथा मात्सर्यादि रहित रहने के स्वाभाव रूप शील गुण के अधीन हूँ । इन गुणों से रहित व्यक्ति के द्वारा अनुष्ठित यज्ञ, तपस्या और योग के द्वारा सुलभ नहीं हूँ । मैं तो समदर्शी जीवों के चित्त में निवास करता हूँ ॥१६॥

मैत्रेय उवाच

स इत्थं लोकगुरुणा विष्वक्सेनेन विश्वजित् । अनुशासित आदेशं शिरसा जगृहे हरेः ॥१७॥

अन्वयः— लोकगुरुणा विष्वक्सेनेन इत्थम् अनुशासितः सः विश्वजित् हरेः आदेशं शिरसा जगृहे ॥१७॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— सर्वलोक गुरु श्रीभगवान् के द्वारा इस प्रकार से उपदिष्ट विश्व विजयी महाराज पृथु ने भगवान् श्रीहरि के आदेश को शिरोधार्य किया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

स्पृशन्तं पादयोः प्रेम्णा व्रीडितं स्वेन कर्मणा । शतक्रतुं परिष्वज्य विद्वेषं विससर्ज ह ॥१८॥

अन्वयः— प्रेम्णा पादयोः स्पृशन्तं स्वकर्मणा व्रीडितं शतक्रतु परिष्वज्य विद्वेषं विससर्ज ॥१८॥

अनुवाद— देवराज इन्द्र महाराज पृथु के चरणों को प्रेम पूर्वक स्पर्श कर रहे थे और वे अपने कर्म पर लजित थे उस समय महाराज पृथु ने इन्द्र को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और उनके प्रति विद्वेष की भावना को त्याग दिया॥१८॥

भावार्थ दीपिका

क्षमापयितुं पादयोः स्पृशन्तम् । स्वेन कर्मणाऽश्वापहरणेन व्रीडितम् । प्रेम्णा परिष्वज्य ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

देवराज अपने अश्वापहार रूप अपराध को क्षमा करने के लिए महाराज पृथु के चरणों का स्पर्श कर रहे थे, वे अपने पर लज्जित भी थे ऐसे इन्द्र को महाराज पृथु ने उठाकर अपने हृदय से लगा लिया और विद्वेष की भावना को त्याग दिया ॥१८॥

भगवानथ विश्वात्मा पृथुनोपहृतार्हणः । समुज्जिहानया भक्त्या गृहीतचरणाम्बुजः ॥१९॥
प्रस्थानाभिमुखोऽप्येनमनुग्रहविलम्बितः । पश्यन्पद्मपलाशाक्षो न प्रतस्थे सुहृत्सताम् ॥२०॥

अन्वयः— अथ विश्वात्मा भगवान् पृथुना उपहृतार्हणः समुज्जिहानया भक्त्या गृहीत चरणाम्बुजः प्रस्थानाभिमुखोऽपि अनुग्रहविलम्बितः सताम् सुहृत् पद्मपलाशाक्षः एनम् पश्यन् न प्रतस्थे ॥१९-२०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् सम्पूर्ण जगत् की आत्मा श्रीभगवान् की पूजा महाराज पृथु ने की और अपनी उमड़ती हुई भक्ति के कारण उन्होंने श्रीभगवान् के पैरों को पकड़ लिया । यद्यपि भगवान् जाना चाहते थे फिर भी महाराज पृथु पर अनुग्रह बुद्धि के कारण वे विलम्ब करते रहे और महाराज पृथु को अपने कमल दल के समान सुन्दर नेत्रों से देखते हुए प्रस्थान नहीं किए ॥१९-२०॥

भावार्थ दीपिका

भगवान् प्रस्थानाभिमुखोऽप्यनुग्रहेण विलम्बितः सन्न प्रतस्थे प्रयाणं न कृतवानिति द्वयोरन्वयः । कथंभूतः । उपहृतमर्पितमर्हणं यस्मै । समुज्जिहानया समुद्गच्छन्त्या वर्धमानया भत्तया गृहीते चरणाम्बुजे यस्य । पद्मपलाशवदक्षिणी यस्य तथाभूतः सन् । एनं पृथुं पश्यन् ॥१९-२०॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् यद्यपि प्रस्थान करने के ही लिए तैयार थे फिर भी अपनी कृपा के परतन्त्र होने के कारण विलम्ब कर दिए और प्रस्थान नहीं किए । प्रश्न है कि कैसे भगवान् तो इस पर कहते हैं- महाराज पृथु ने उनकी पूजा कर ली थी और अपनी बढ़ती हुई भक्ति के कारण उन्होंने भगवान् के पैरों को पकड़ लिया था । वे अपने कमल दल के समान मनोज्ञ नेत्रों से पृथु को देखते रहे ॥१९-२०॥

स आदिराजो रचिताञ्जलिर्हरिं विलोकितुं नाशकदश्रुलोचनः ।
न किंचनोवाच स वाष्पविक्लवो हृदोपगुह्यामुमधादवस्थितः ॥२१॥

अन्वयः— आदिराजः अश्रुलोचनः हरिं विलोकिंतुंन अशकत, वाष्पविक्लवः स किञ्चन न उवाच रचितञ्जलिः सः अमुम् हृदा उपगुह्य आधाद अवस्थितः ॥२१॥

अनुवाद— आदि राज पृथु आखों में आसू भर जाने के कारण श्रीभगवान् को नहीं देख पा रहे थे, वाणी के गद्गद हो जाने के कारण वे कुछ बोल भी नहीं पा रहे थे । वे हाथ जोड़े हुए श्रीभगवान् को अपने हृदय में स्थापित करके खड़े रहे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

भगवतस्तत्कृपातिरेकमुक्त्वा तस्य भत्तयुद्रेकमाह-स इति द्वाभ्याम् । वाष्पविक्लवत्वेन तूष्णीमवस्थितः सन्नमुं हरिं हृदोपगुह्य अधाद्धतवान् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की कृपा का अतिरेक वर्णन करने के पश्चात् महाराज पृथु के भक्ति के उद्रेक का वर्णन इस **स आदिराज० इत्यादि** दो श्लोकों से करते हैं । वाणी के गद्गद हो जाने के कारण महाराज मौन खड़े रहे ओर वे श्रीहरि को अपने हृदय में स्थापित कर लिया ॥२१॥

अथावमृज्याश्रुकला विलोकयन्नतृप्तदृग्गोचरमाह पूरुषम् ।
पदा स्पृशन्तं क्षितिमंस उन्नते विन्यस्तहस्ताग्रमुरङ्गविद्विषः ॥२२॥

अन्वयः— अथ अश्रुकला अवमृज्य अतृप्तदृग्गोचरं पदा क्षितिम् स्पृशन्तम् उरङ्ग विद्विषः उन्नते अंसे विन्यस्तहस्ताग्रम् पूरुषम् आह ॥२२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् आंसुओं को पोंछकर अतृप्त नेत्रों के विषयभूत पैरों से पृथिवी का स्पर्श करने वाले और गरुड़ के ऊँचे कन्धे पर हाथ रखे हुए परम पुरुष भगवान् श्रीविष्णु से उन्होंने कहा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अतृप्तयोर्दृशोर्गोचरं विषयभूतम् । पदा क्षितिं स्पृशन्तमिति । अयं भावः-न खलु देवाः पदा भुवं स्पृशन्ति, अतः कृपापरवशो नूनं हरिरात्मानं विस्मृतवानिवेति । अतएव स्खलनपरिहारायैव गरुडस्योन्नते स्कन्धे विन्यस्तं हस्ताग्रं येन तम्॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अपने अतृप्त नेत्र से पृथु ने देखा कि भगवान् अपने पैरों से पृथिवी का स्पर्श किए हुए हैं, **अयं भावः** कहने का भाव है कि देवता अपने पैरों से पृथिवी का स्पर्श नहीं करते हैं । लगता है कि कृपा परतन्त्र श्रीभगवान् अपने को भूल गये । अतएव इस गल्ती को दूर करने के लिए गरुड़ के उन्नत कन्धे पर हाथ रखे हुए श्रीभगवान् से महाराज पृथु ने कहा ॥२२॥

पृथुरुवाच

वरान्विभो त्वद्वरदेवश्वराद्बुधः कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम् ।
ये नारकाणामपि सन्ति देहिनां तानीश कैवल्यपते वृणे न च ॥२३॥

अन्वयः— हे कैवल्यपते ! त्वद् वरदेश्वरात् बुधः येगुणविक्रियात्मनाम् नारकाणामपि देहिनां सन्ति हे ईश ! तान् वरान् कथं वृणृते । न च वृणे ॥२३॥

महाराज पृथु ने कहा

अनुवाद— हे मोक्षपते प्रभो ! आप वरदान देने वाले ब्रह्मादि को भी वर देने में समर्थ हैं । कोई भी बुद्धिमान पुरुष आप से देहाभिमानि यो नारकीय जीवों को भोगने योग्य विषयों को कैसे माँग सकता है ? वे नारकीय जीवों को भी मिलते है अतएव मैं उन विषयों को नहीं माँगता हूँ ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

वरं वृणीष्वेति यदुक्तं तदसहमान आह । हे विभो, वरदानां ब्रह्मादीनामीश्वराद्वरप्रदात्त्वत्त्वत्तः सकाशादबुधः कथं वरान्वृणीते। कीदृशान् । गुणैर्विक्रियत इति गुणविक्रियोऽहंकारः स एवात्मा येषां तेषां ब्रह्मादीनां संबन्धिनः । देहाभिमानिनां भोग्यानिति वा। तथा चेद्बुध एव न भवतीत्यर्थः । जुगुप्सितत्वादपीत्याह-ये इति । बुध एवाहमपि न वृणे इति समुच्चयाय चकारः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् ने यह जो कहा है कि तुम वरदान माँगो उसको नहीं सह सकने के कारण पृथु महाराज ने कहा हे विभो ! ब्रह्मा आदि देवताओं को भी वरदान देने में समर्थ आप से कोई बुद्धिमान वरदान कैसे मागेगा ? कैसे वरदान ? तो इस पर कहते हैं अहङ्कार प्रधान ब्रह्मा आदि देहाभिमानियों के भोग्य भूत है । यदि कोई ऐसे वरदान को माँगता है वह बुद्धिमान है ही नहीं । श्लोक के चकार का अभिप्राय है कि मैं बुद्धिमान हूँ अतएव आपसे मैं वरदान नहीं माँगता हूँ । चकार समुच्चयार्थक है ।।२३।।

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ।।२४।।

अन्वयः— हे नाथ ! अहम् क्वचित् तदपि न कामये यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः न महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतः कर्णायुतं विधत्स्व म एष वरः ।।२४।।

अनुवाद— हे नाथ ! मैं तो कहीं भी कभी भी उस मोक्षप्रद को भी नहीं चाहता हूँ । जहाँ पर महापुरुषों के हृदय से उनके मुख द्वारा निकला हुआ अपके चरण कमलों के मकरन्द नहीं है । अतएव मैं आपसे यहीं वरदान माँगता हूँ कि आप मुझे दश हजार कान प्रदान कर दें, जिनसे मैं आपके लीलामृत का श्रवण करता रहूँ ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

कैवल्यपत इति संबोधनात्कैवल्यं वरिष्यतीति माशङ्कीरित्याह-नेति । महत्तमानामन्तर्हृदयान्मुखद्वारेण निर्गतो भवत्पदाम्भोजमकरन्दो यशः श्रवणादिसुखं यत्र नास्ति तादृशं चेत्कैवल्यं तर्हि तत्क्वचित्कदाचिदपि न कामये । तर्हि किं कामयसे तदाह । यशः श्रवणाय कर्णानामयुतं विधत्स्व । ननु कोऽप्येवं न वृतवान् । किमन्यचिन्तयेत्याह । मम तु एष एव वरः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

कैवल्यपत्ते इस सम्बोधन के द्वारा यह नहीं समझें कि कैवल्य माँगेगा । महापुरुषों के हृदय से उनके मुख द्वारा निकले हुए आपके चरण कमलों का मकरन्द अर्थात् यश जहाँ सुनने के लिए नहीं मिलता है ऐसे कैवल्य को मैं नहीं चाहता हूँ । यदि आप पूछें कि क्या चाहते हो ? तो इस पर महाराज पृथु कहते हैं कि आपके यश को सुनने के लिए आप मुझे दश हजार कान दे दें, यही वरदान मैं माँगता हूँ ।।२४।।

स उत्तमश्लोकमहन्मुखच्युतो भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः ।
स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ।।२५।।

अन्वयः— हे उत्तम श्लोक महन्मुखच्युतः भवत्पदाम्भोज सुधाकणानिलः विस्मृततत्त्ववर्त्मनां नः कुयोगिनां स्मृति अलं वरैः वितरति ।।२५।।

अनुवाद— हे पुण्य कीर्ते प्रभो ! आपके चरण कमल मकरन्द रूपी कणों को महापुरुषों के मुख से लेकर निकली हुई वायु में इतनी शक्ति होती है कि वह तत्त्व को भूले हुए हम कुयोगियों को पुनः तत्त्वज्ञान को याद दिला देती है, अतएव मुझे दूसरे वरों की कोई भी आवश्यकता नहीं है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि कैवल्याभावे रागद्वेषाद्याकुलानां भक्तिसुखमपि न स्यादित्याशङ्क्याह-स इति । भवत्पदाम्भोजसुधायाः कणो लेशस्तत्संबन्धी योऽनिलः स एव । दूरादपि किंचिद्यशः श्रवणमात्रमित्यर्थः । विस्मृतं तत्त्ववर्त्म यैः कुयोगिभिस्तेषामपि पुनः स्मृतिमात्मज्ञानं वितरति । अतो न खलु भक्तानां रागादिसंभवः, अतो नोऽस्माकं सारग्राहिणामन्यैर्वरैरलम् । भक्तावेव मोक्षादिसर्वसुखान्तर्भावादिति भावः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि मोक्ष के अभाव में राग तथा द्वेष इत्यादि के कारण व्याकुल जीवों को भक्तिजन्य सुख की भी प्राप्ति नहीं हो सकती है इस प्रकार की शङ्का करके **स उत्तमश्लोक० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । अर्थात् आपके चरण कमल में मकरन्द रूपी अमृत के फण से युक्त जो वायु ही अर्थात् दूर से भी आपके कुछ यश का केवल श्रवण ही हम जैसे कुयोगी जो तत्त्वों के मार्ग को भूल चुके हैं, उनके भी वह तत्त्वज्ञान प्रदान करती है । अर्थात् उन सबों को पुनः आत्मज्ञान करता है । क्योंकि जो भक्त होते हैं उनका किसी से भी राग या द्वेष होता ही नहीं है। अतएव सार वस्तु का ही ग्रहण करने वाले हमलोगों को किसी दूसरे ज्ञान से कौन सा लाभ है ? भक्ति में ही मोक्ष आदि सभी सुखों का अन्तर्भाव हो जाता है ॥२५॥

यशः शिवं सुश्रव आर्यसंगमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत् ।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥२६॥

अन्वयः— आर्य संगमे ते सुश्रवः शिवं यशः यदृच्छया सकृत् च उप शृणोति पशुं विना गुणज्ञः कथं विरमेत यत् गुण संग्रहेच्छया श्रीः प्रवव्रे ॥२६॥

अनुवाद— हे प्रभो ! सत्सङ्ग में भाग्यवशात् यदि आपका मङ्गलमय सुन्दर यश कोई एक बार भी सुन लेता है तो पशु के समान बुद्धि वाले को छोड़कर दूसरा कोई भी गुणज्ञ पुरुष उसे कैसे छोड़ सकता है । सभी प्रकार की सिद्धियों को प्राप्त करने की इच्छा वाली श्रीलक्ष्मीजी भी उसे सुनना चाहती हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

ननु भक्तिर्मुक्तिफलैव, अतः फलं विहाय साधने भवतः कोऽयमाग्रह इत्याशङ्क्याह । हे सुश्रवः मङ्गलकीर्ते, ते शिवं यशः सतां सङ्गमे यः सकृदपि यदृच्छयाप्युपशृणोति गुणज्ञश्चस पशुं विनाऽन्यः कथं विरमेत् । गुणातिशयं सूचयति । श्रीर्यद्यश एव प्रकर्षेण वृतवती । गुणानां सर्वपुरुषार्थानां संग्रहः स्वस्मिन्समाहारस्तदिच्छया ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि भक्ति तो साधन है और मुक्ति उसका फल है अतएव फल को छोड़कर इस भक्ति रूपी साधन में आपका आग्रह क्यों है ? इस प्रकार की आशङ्का करके कहते हैं हे सुश्रवः ! अर्थात् हे मङ्गलमय कीर्ति वाले प्रभो ! आपके मङ्गलमय यश को सत्सङ्ग में दैववशात् एक बार भी यदि सुनने को मिल जाता है तो उसे सुनकर गुणज्ञ व्यक्ति यदि वह पशुबुद्धि नहीं है तो कैसे उसे त्याग सकता है ? भक्ति के गुणातिशय को बतलाते हैं । श्रीदेवी अपने में सभी गुणों का संग्रह करने के लिए आपके यश को ही सुनना चाहती है ॥२६॥

अथाभजे त्वाऽखिलपूरुषोत्तमं गुणालयं पद्मकरेव लालसः ।
अप्यावयोरेकपतिस्पृधोः कलिर्न स्यात्कृतत्वच्चरणैकतानयोः ॥२७॥

अन्वयः— अथ पद्मकरेव लालसः अखिलगुणालयं पुरुषोत्तमं त्वा आभजे । एकपतिस्पृधोः कृतत्वच्चरणैकतानयों आवयोः कलिः अपि न स्यात् ।।२७।।

अनुवाद— अब लक्ष्मीजी के ही समान ही मैं भी अत्यन्त उत्सुकता पूर्वक सम्पूर्ण गुणों के एकमात्र आश्रय पुरुषोत्तम आपकी सेवा करना चाहता हूँ । एक ही पति की सेवा करने की स्पर्धा में तथा आपके चरणों में ही जिन का मन लगा हुआ है, ऐसे हम दोनों का ही कलह न हो जाय ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

अतो लक्ष्मीरिवान्यवरत्यागेन त्वामेवाहं भज इत्याह-अथेति । लालस उत्सुकः सन् । कर्मणि क्रियमाणे यथेन्द्रेण सह कलिरेवं भक्तावपि किं लक्ष्म्या सह कलिः स्यादिति वितर्कयति । एकस्मिन्पत्यौ स्पर्धमानयोरावयोरपि किं कलिर्न स्यादिति काका वितर्कः । ननु पर्यायेण सेवायां न स्यात्, नैवम् । कृतस्त्वच्चरणयोरेवैकस्तानो मनोविस्तारो याभ्यां तयोः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

अतएव लक्ष्मीजी के ही समान दूसरे वरदान का त्याग करके आपकी ही सेवा मैं भी करना चाहता हूँ इस बात को **अथाभजे० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । उत्सुकता पूर्वक कर्म को करने पर जैसे इन्द्र और मुझमें कलह होने लगा उसी तरह क्या लक्ष्मीजी तथा हममें कलह हो सकता है क्या ? इस प्रकार से महाराज पृथु तर्क करते हैं । एक ही पति की सेवा करने की स्पर्धा से युक्त हमदोनों में कहीं कलह न हो जाय इस तरह से काकु के द्वारा तर्क करते है ।

ननु० इत्यादि- यदि आपके कहें कि बारी-बारी से सेवा करने पर कलह नहीं हो सकता है तो ऐसा इसलिए नहीं सम्भव है कि आपके चरणों में ही हम दोनों का समान रूप से लगाव हुआ है ।।२७।।

जगज्जनन्यां जगदीश वैशसं स्यादेव यत्कर्मणि नः समीहितम् ।
करोति फल्ग्वप्युरु दीनवत्सलः स्व एव धिष्ण्येऽभिरतस्य किं तया ॥२८॥

अन्वयः— हे जगदीश जगज्जनन्यां वैशसं स्यादेव यत् कर्मणि नः समीहितम् । दीनवत्सल फल्गु अपि उरु स्वे एवधिष्ण्ये अभिरतस्य तया किं प्रयोजनम् ।।२८।।

अनुवाद— हे जगदीश ! लोकमाता श्रीलक्ष्मीजी से विरोध तो होगा ही क्योंकि जिस कर्म को वे करना चहती हैं उसी कर्म का मैं भी करना चाहता हूँ किन्तु आप दीन वत्सल है उनके थोड़े से भी कर्म को आप बहुत अधिक महत्त्व देते है । अपने स्वरूप में ही स्थित रहने वाले आपको उनसे क्या प्रयोजन है ?।।२८।।

भावार्थ दीपिका

भवतु वा कलिस्तथापि भजेयमेवेत्याह । जगज्जनन्यां वैशसं विरोधः स्यादेव । तत्र हेतुः-यस्याः कर्मणि नः समीहितमिच्छा भवति । तथापीन्द्रविरोधे मत्पक्षपातवदत्रापितव पक्षपात एव स्यादित्याह । फल्गु तुच्छमप्युरु बहु करोषि । यतो दीनेषु वत्सलो दयावान् । स्वे स्वरूप एव रतस्य तया किं प्रयोजनम् । तां नाद्रियसे इत्यर्थः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

अथवा कलह होने पर भी मैं आपकी सेवा करूँगा ही इसी बात को वे इस श्लोक में कहते हैं । जगन्माता से विरोध तो होगा ही उसका कारण यह है कि वे जिस कर्म को करती हैं, उसी को मैं भी करना चाहता हूँ । फिर भी जैसे इन्द्र और मुझमें विरोध होने पर आपने मेरा ही पक्ष लिया उसी तरह आप इस विषय में भी मेरा

पक्ष लेंगे । क्योंकि आपका दीनजनों पर वात्सल्य बना रहता है और दीनजनों द्वारा की जाने वाली छोटी सी सेवा का भी आप बहुत अधिक महत्त्व देते हैं । अथवा अपने स्वरूप में ही स्थित रहने वाले आपको लक्ष्मी से क्या प्रयोजन है ? ॥२८॥

भजन्त्यथ त्वामत एव साधवो व्युदस्तमायागुणविभ्रमोदयम् ।
भवत्पदानुस्मरणादृते सतां निमित्तमन्यद्भगवन्न विद्महे ॥२९॥

अन्वयः— अतएव साधवः अथ व्युदस्तमायागुण विभ्रमोदयम् त्वां भजन्ति । भवत् पदानुस्मरणादृते सताम् अन्यत् निमित्तं न विद्महे ॥२९॥

अनुवाद— चूंकि आप दीन वत्सल हैं, इसलिए निष्काम महात्मा जन ज्ञान हो जाने के पश्चात् भी आपका भजन करते हैं क्योंकि आपमें माया के गुणों के कार्य अहङ्कार आदि का अभाव है मुझे तो लगता है कि आपके चरण कमलों का निरन्तर चिन्तन को छोड़कर उन साधु पुरुषों का कोई भी दूसरा प्रयोजन नहीं हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

यतस्त्वं दीनवत्सलोऽत एव साधवो निष्कामा अथ ज्ञानानन्तरमपि त्वां भजन्ति । कथंभूतम् । मायागुणानां विभ्रमो विलासस्तस्योदयः कार्यं स निरस्तो यस्मिंस्तम् । ते किमर्थं भजन्ति तत्राह । भवत्पदानुस्मरणाद्विनाऽन्यत्तेषां निमित्तं फलं न विद्मः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

चूकि आप दीन वत्सल हैं अतएव ही निष्काम भक्त जन ज्ञान की प्राप्ति हो जाने पर भी आपका भजन करते हैं आप कैसे है ? तो इसका उत्तर है कि आप में माया के गुणों के काम अहङ्कार आदिका अभाव है । अब प्रश्न होता है कि साधुजन किसलिए भजन करते हैं । तो इसका उत्तर है कि क्योंकि आपके चरणों के निरन्तर चिन्तन को छोड़कर उनका दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है ॥२९॥

मन्ये गिरं ते जगतां विमोहिनीं वरं वृणीष्वेति भजन्तमात्थ यत् ।
वाचा तु तन्त्या यदि ते जनोऽसितः कथं पुनः कर्म करोति मोहितः ॥३०॥

अन्वयः— वरं वृणीष्व इति यत् भजन्तम् आत्थ ते गिरं जगतां विमोहिनीं मन्ये । यदि ते वाचा तन्त्या जनः असितः पुनः कथं मोहितः कर्म करोति ॥३०॥

अनुवाद— आपने जो यह जो कहा कि तुम वरदान माँगो, इस तरह की आपकी वाणी आपका भजन करने वाले मुझको मोहित ही करने वाली प्रतीत होती है । आश्चर्य हैं कि आपकी वेद रूपी वाणी से यह जगत् यदि बँधा नहीं होता तो यह बार-बार सकाम कर्मों को क्यों करता ? वेदवाणी में बँधकर ही संसार, फल की प्राप्ति की इच्छा से सकाम कर्मो को करता हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

वरैः प्रलोभनं च कृपालोस्तवानुचितमित्याशयेनाह-मन्य इति । नु अहो ते वाचातन्त्या यदि जनोऽयमसितोऽबद्धः स्यात्तर्हि पुनः पुनः फलैर्मोहितः सन्कथं कर्म करोति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

प्रभो आप परम दयालु हैं, अतएव वरों के द्वारा लुभाना आपका अनुचित है । इसी अभिप्राय से उन्होंने **मन्ये० इत्यादि** श्लोक को कहा है । यह जगत् यदि आपकी वेद वाणी रूपी रस्सी से बँधा नहीं होता तो फिर

फल की प्राप्ति की इच्छा से बार-बार सकाम कर्मों को क्यों करता है ? वेदवाणी से बँधे होने के ही कारण ही बार-बार मनुष्य फलों को प्राप्त करने के लिए सकाम कर्मों को करता है ।।३०।।

त्वन्माययाऽद्धा जन ईश खण्डितो यदन्यदाशास्त ऋतात्मनो बुधः ।
यथा चरेद्बालहितं पिता स्वयं तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितुम् ।।३१।।

अन्वयः— हे ईश ! त्वन्मायया अद्धाखण्डितः अबुधः ऋतात्मनः अन्यदाशास्ते । यथापिता स्वयम् बालहितं चरेत् तथा त्वमेव न समीहितुम् ।।३१।।

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् के नियामक प्रभो ! निश्चत रूप से आपकी माया ने मनुष्यों को मोहित कर रखा है उसी के कारण अज्ञानीवह अपने वास्तविक स्वरूप आपसे पराङ्मुख होकर आपसे भिन्न स्त्री पुत्र इत्यादि को प्राप्त करना चाहता है फिर भी जिस तरह पिता अपने पुत्र की प्रार्थना की अपेक्षा किए बिना उसका कल्याण करता है उसी तरह आप भी हम सभी जीवों का कल्याण करें ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

त्वन्मायया खण्डितस्य त्वया पुनः खण्डनं न कर्तव्यं, किंतु हितं चेष्टितव्यमित्याह । त्वन्मायया ऋतादात्मनस्त्वत्तः खण्डितः पृथक्कृतो यद्यतोऽन्यत्पुत्रादिकमाशास्ते । अतः स्वयमविज्ञापित एवं हितं चेष्टितुमर्हसि ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

हे प्रभो ! आपकी माया ने ही जीवों को मोहित करके आपसे पृथक् कर दिया है । अतएव उन पृथक् कृत जीवों को आप पुनः पृथक नहीं करें । आपको तो उन जीवों का कल्याण ही करना चाहिए इस बात को बतलाते हुए महाराज पृथु ने कहा— आपकी माया ने जीव को आत्म स्वरूप आप से पृथक् कर दिया है । उसी के कारण जीव आपको नहीं चाहकर आप से भिन्न स्त्री पुत्रादि को ही प्राप्त करना चाहता है । जिस तरह लोक में पिता अपने पुत्र की प्रार्थना की अपेक्षा न करके अपने आप उसका कल्याण करते हैं, उसी तरह आप भी स्वयं जीवों का कल्याण करें ।।३१।।

मैत्रेय उवाच

इत्यादिराजेन नुतः स विश्वदृक् तमाह राजन्मयि भक्तिरस्तु ते ।
दिष्टोदृशी धीर्मयि ते कृता यया मायां मदीयां तरति स्म दुस्त्यजाम् ।।३२।।

अन्वयः— आदिराजेन इति नुतः स विश्वदृक् तमाह राजन् ते मयि भक्तिरस्तु दिष्ट्या ते मयि इदृशी धी कृता यया मदीयां दुस्त्यजाम् मायां तरतिस्म ।।३२।।

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— आदि राज महाराज पृथु के द्वारा इस प्रकार से स्तुति किए जाने पर सर्वसाक्षी श्रीहरि ने उनसे कहा राजन् तुम्हारी भक्ति मुझमें बनी रहे उस भक्ति के ही द्वारा जीव मेरी दुस्त्यजा माया को आसानी से पार कर जाता है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३२।।

तत्त्वं कुरु मयादिष्टमप्रमत्तः प्रजापते । मदादेशकरो लोकः सर्वत्राप्नोति शोभनम् ।।३३।।

अन्वयः— हे प्रजापते अप्रमत्तः मया यत् आदिष्टम् तत् कुरु मदादेशकरो लोकं सर्वत्र शोभनम् आप्नोति ।।३३।।

अनुवाद— हे प्रजाओं का पालन करने वाले राजन्, मैने जो आपको आदेश दिया है, उसे सावधानी पूर्वक आप करें, मेरी आज्ञा का पालन करने वाला मनुष्य सर्वत्र कल्याण प्राप्त करता है ।।३३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३३।।

मैत्रेय उवाच

इति वैन्यस्य राजर्षेः प्रतिनन्द्यार्थवद्वचः । पूजितोऽनुगृहीत्वैनं गन्तुं चक्रेऽच्युतो मतिम् ॥३४॥

अन्वयः— इति राजर्षेः वैन्यस्य अर्थवद्वचः प्रतिनन्द्य पूजितः एनं अनुगृहीत्वा अच्युतः गन्तुम् मतिं चक्रे ॥३४॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— इस तरह से राजर्षि महाराज पृथु की सार्थक वाणी का समर्थन करके तथा पूजित होकर भगवान् अच्युत महाराज पृथु को अनुगृहीत करके वहाँ से जाने की बुद्धि बनायें ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

देवर्षिपितृगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगाः । किन्नराप्सरसो मर्त्याः खगा भूतान्यनेकशः॥३५॥
यज्ञेश्वरधिया राज्ञा वाग्वित्ताञ्जलिभक्तितः । सभाजिता ययुः सर्वे वैकुण्ठानुगतास्ततः ॥३६॥

अन्वयः— राज्ञा देवर्षिपितृगन्धर्व सिद्धचारणपन्नगाः किन्नराप्सरसः मर्त्याः खगा अनेकशः भूतानि यज्ञेश्वरधिया वाग्विताञ्जलि भक्तितः समाजिताः, सर्वे वैकुण्ठानु ततः गताः ॥३५-३६॥

अनुवाद— महाराज पृथु ने वहाँ पर आये हुए देवता, ऋषि, पितर, गन्धर्व, सिद्ध चारण, नाग, किन्नर, अप्सरायें, मनुष्य और पक्षी आदि अनेक प्राणी तथा श्रीभगवान् के पार्षदों की भगवद् बुद्धि से भक्ति पूर्वक वाणी और धन से हाथ जोड़कर पूजन किया उसके पश्चात् वे सब अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥३५-३६॥

भावार्थ दीपिका

वाग्वित्ताञ्जलिभिर्भक्तितः पूजिताः सन्तः । वैकुण्ठानुगताः पार्षदाश्च ॥३५-३६॥

भाव प्रकाशिका

वाणी, धन और प्राणामाञ्जलि के द्वारा पूजित होकर भगवान् के पार्षद भी चले गये ॥३५-३६॥

भगवानपि राजर्षेः सोपाध्यायस्य चाच्युतः । हरन्निव मनोऽमुष्य स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥३७॥

अन्वयः— भगवान् अच्युतः अपि सोपाध्यायस्य अमुष्य राजर्षेः मनः हरन्निव स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥३७॥

अनुवाद— भगवान् अच्युत भी पुरोहितों सहित इन राजर्षि के मन का हरण करके अपने धाम में चले गये॥३७॥

भावार्थ दीपिका

अमुष्य राज्ञः । हरन्निवेति लोकोक्तिः । वस्तुतस्तस्य मनः सर्वदैव तदधीनमस्त्येव । स्वधाम राज्ञो हृदयम् ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

राजा के मन का हरण करते हुए के समान । यह लोकोक्ति है । वास्तविकता है कि राजा का मन तो सर्वदा परमात्मा के ही अधीन है । स्वधाम का अर्थ है कि राजा का हृदय ही भगवान् का धाम है । उसी में भगवान् प्रवेश कर गये ॥३७॥

अदृष्टाय नमस्कृत्य नृपः संदर्शितात्मने । अव्यक्ताय च देवानां देवाय स्वपुरं ययौ ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

अन्वयः— संदर्शितात्मने अदृष्टाय, अव्यक्ताय देवानां देवाय नमस्कृत्य नृपः स्वपुरं ययौ ॥३८॥

अनुवाद— अपना स्वरूप दिखाकर अन्तर्धान हुए अव्यक्त स्वरूप देवताओं के भी आराध्य श्रीभगवान् को नमस्कार करके राजा पृथु भी अपनी राजधानी में चले गये ॥३८॥

इस तरह श्रीमद्भागवतम महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के बीसवें अध्याय का शिवप्रकसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३६

भावार्थ दीपिका

अदृष्टाय लोचनपथमतिक्रान्ताय । संदर्शित आत्मा येन तस्मै । वस्तुतोऽव्यक्ताय ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां विंशोऽध्यायः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

जिन्होंने अपने स्वरूप का दर्शन करा दिया था ऐसे अन्र्धान हुए वास्तविक रूप से अव्यक्त रूप श्रीभगवान् को नमकार करके राजा भी अपनी राजधनी में चले गये ॥३८॥

इसतरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के बीसवें अध्यायय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२०॥

इक्कीसवा अध्याय

महाराज पृथु का अपनी प्रजा को उपदेश

मैत्रेय उवाच

मौक्तिकैः कुसुमस्त्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्णतोरणैः। महासुरभिभिर्धूपैर्मण्डितं तत्र तत्र वै ॥१॥
चन्दनागुरुतोयार्द्ररथ्याचत्वरमार्गवत् । पुष्पाक्षतफलैस्तोक्मैर्लाजैरर्चिर्भिरर्चितम् ॥२॥
सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैः परिष्कृतम् । तरुपल्लवमालाभिः सर्वतः समलंकृतम् ॥३॥
प्रजास्तं दीपबलिभिः संभृताशेषमङ्गलैः। अभीयुर्मृष्टकन्याश्च मृष्टकुण्डलमण्डिताः॥४॥

अन्वयः— मौक्तिकैः कुसुमस्त्रग्भिः दुकूलैः स्वर्णतोरणैः महासुरभिभिः धूपैः तत्र-तत्र मण्डितम्, चन्दना गुरुतोयार्द्ररथ्या-चत्वरमार्गवत् पुष्पाक्षतफलैःस्तोक्मैः लाजैः अर्चिभिः अर्चितम्, सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूग पोतैः परिष्कृतम्, तरुपल्लवमालाभिः सर्वतः समलङ्कृतम् दीपबलिभिः सम्भृताशेषमङ्गलैः प्रजाः मृष्टकुण्डलमण्डिताः मृष्टकन्याश्च तं अभीयुः ॥१-४॥

अनुवाद— मोतियों की लड़ियों, पुष्पों की माला, रङ्ग विरङ्गे वस्त्रों सोने के दरवाजे तथा स्थान-स्थान पर अत्यन्त सुगन्धित धूपों से अलंकृत, चन्दन और अगुरु के जल से सींची गयी गलियों चौक, सड़कों से युक्त, पुष्प, अक्षत, फल यवांकुर लावा तथा दीपक आदि माङ्गलिक द्रव्यों से वह नगर सजाया गया था। वह नगर स्थान-स्थान पर फल-फूल के गुच्छों तथा केले के छोटें पौधों से सुसज्जित था। सर्वत्र वह वृक्षों के पल्लव तथा मालाओं से समलंकृत था, दीपक, उपहार और अनेक प्रकार के माङ्गलिक सामग्री लिए हुए प्रजाओं तथा मनोहर कुण्डलों से मण्डित कयाओं ने राजा पृथु की अगवानी की ॥१-४॥

भावार्थ दीपिका

एकविंशे तु पृथुना प्रजानामनुशासनम् । महासत्रे सुरादीनां महासदसि वर्ण्यते । पुरं ययावित्युक्तं तत्पुरमनुवर्णयति-मौक्तिकैरिति त्रिभिः । चन्दनागुरुयुक्तैस्तोयैरार्द्रा रथ्यादयस्तद्युक्तम् । तोक्मैर्हरितयवैरङ्कुरैरिति वा । अर्चिर्भिर्दीपैः । सवृन्दैः पुष्पफलयुक्तैः कदलीस्तम्भैः पूगैर्वृक्षैस्तथाविधैः सर्वतः समलंकृतं शोभितम् । संभृतान्यशेषाणि मङ्गलानि दध्यादीनि तैः सहाभिजग्मुः । मृष्टाः उज्ज्वलाः कन्याश्च ॥१-४॥

भाव प्रकाशिका

इक्कीसवें अध्याय में महासत्र के अवसर पर देवताओं आदि की महासभा में महाराज पृथु द्वारा प्रजाओं

को उपेदश का वर्णन है। इससे पहले के अध्याय में कहा गया है कि राजा अपने नगर में चले गये। उस नगर का **भौक्तिकैः इत्यादि** तीन श्लोकों में वर्णन किया गया है। जहाँ की गलियाँ आदि चन्दन तथा अगुरु के जल से सीचं दी गयी थीं ऐसे नगर में महाराज ने प्रवेश किया। तोक्म शब्द से हरे यव के अङ्कुरों को कहा गया है। अचिः शब्द से दीपों को कहा गया है। पुष्पों तथा फलों से युक्त केले के स्तम्भों तथा सुपारी के वृक्षों से व नगर पूर्ण रूप से समलंकृत था। समस्त मङ्गल द्रव्य को ली हुई प्रजाओं तथा सुन्दर कन्याओं ने महाराज पृथु की आगवानी की ॥१-४॥

शङ्खदुन्दुभिघोषेण ब्रह्मघोषेण चर्त्विजाम् । विवेश भवनं वीरः स्तूयमानो गतस्मयः ॥५॥

अन्वयः— शङ्ख दुन्दुभिघोषेण, ऋत्विजाम् ब्रह्मघोषेण स्तूयमानः गतस्मयः वीरः भवनं विवेशा ॥५॥

अनुवाद— महाराज शङ्ख दुन्दुभि इत्यादि की ध्वनि तथा ऋत्विजों द्वारा की जा रही वेदध्वनि पूर्वक अपने भवन में प्रवेश किए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

गतस्मयो निरहंकारः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

इन सबों को देखकर महाराज को किसी प्रकार का अहङ्कार नहीं हुआ ॥५॥

पूजितः पूजयामास तत्र तत्र महायशाः । पौरान् जानपदांस्तांस्तान्प्रीतः प्रियवरप्रदः ॥६॥

अन्वयः— तत्र-तत्र पूजितः महायशाः पौरान् जानपदान् तान् तान् प्रीतः पियवरप्रदः पूजयामास ॥६॥

अनुवाद— महायशस्वी महाराज पृथु नागरिकों तथा देशवासियों से स्थान-स्थान पर पूजित होकर उन सबों को प्रसन्नता पूर्वक अभीष्ट वर प्रदान कर सन्तुष्ट किए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

प्रियान्वरान्प्रददातीति तथा ॥६॥

भाव प्रकाशिका

महाराज प्रिय वरदान प्रदान करने वाले थे ॥६॥

स एवमादीन्यनवद्यचेष्टितः कर्माणि भूयांसि महान्महत्तमः ।
कुर्वन् शशासावनिमण्डलं यशः स्फीतं निधायारुरुहे परं पदम् ॥७॥

अन्वयः— महान् महत्तमः अनवद्यचेष्टितः सः एवमादीनिभूयांसि कर्माणि कुर्वन् अवनिमण्डलं शशास स्फीतं यशः निधाय परं पदम् आरुरुहे ॥७॥

अनुवाद— महाराज पृथु महापुरुष तथा सबों के पूजनीय थे, उन्होंने इसी प्रकार के अनेक उदार कर्मों को करते हुए पृथिवी का प्रशासन किया और अन्त में अपने विपुल यश का विस्तार करके श्रीभगवान् के परमपद को उन्होंनें प्राप्त किया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

गुणैर्महानत एव महत्तमः पूज्यतमः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

महाराज पथु के गुण महान् थे अतएव वे पूज्यतम थे ॥७॥

सूत उवाच

तदादिराजस्य यशो विजृम्भितं गुणैरशेषैर्गुणवत्सभाजितम् ।
क्षत्ता महाभागवतः सदस्पते कौषारविं प्राह गृणन्तमर्चयन् ॥८॥

अन्वयः— आदिराजस्य अशेषैः गुणैः विजृम्भितं गुणवत्सभाजितम् यशः गृणन्तम् कौषारविम् अर्चयन् हे सदस्पते महाभागवतः क्षत्ता प्राह ॥८॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— आदिराज महाराज पृथु के सभी गुणों से सम्पन्न तथा गुणवानों द्वारा समादृत यश को मैत्रेय महर्षि के मुख से सुनकर उनकी अर्चना करते हुए हे शौनक महाभावत विदुरजी ने कहा ॥८॥

भावार्थ दीपिका

गुणैर्विजृम्भितमूर्जितं गुणवद्भिः सभाजितं सत्कृतं यशो गृणन्तमर्चयन्प्राह । सदसस्पते शौनक ॥८॥

भाव प्रकाशिका

सूतजी ने कहा है शौनकजी ! गुणों से सम्पन्न तथा गुणवानों के द्वारा समादृत यश को कहने वाले मैत्रेय महर्षि का अभिनन्दन करते हुए महाभागवत विदुरजी ने कहा ॥८॥

विदुर उवाच

सोऽभिषिक्तः पृथुर्विप्रैर्लब्धाशेषसुरार्हणः । बिभ्रत्स वैष्णवं तेजो बाह्वोर्याभ्यां दुदोह गाम् ॥९॥

अन्वयः— विप्रैः अभिषिक्तः सः पृथुः लब्धाशेषसुरार्हणः सः बाहवोः वैष्णवं तेजः बिभ्रत् याभ्यां गाम् दुदोह ॥९॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— ब्राह्मणों के द्वारा अभिषिक्त हुए वे पृथु सभी देवताओं से उपहार प्राप्त किये । उन्होंने अपनी भुजाओं में वैष्णव तेज को धारण किया जिन भुजाओं से उन्होंने गोरूप धारिणी पृथ्वी का दोहन किया था ॥९॥

भावार्थ दीपिका

लब्धान्यशेषसुराणामर्हणानि येन सः । किमकरोदिति शेषः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

सभी देवताओं से उपहार प्राप्त करने वाले महाराज पृथु ने क्या किया ?॥९॥

को न्वस्य कीर्तिं न शृणोत्यभिज्ञो यद्विक्रमोच्छिष्टमशेषभूपाः ।
लोकाः सपाला उपजीवन्ति काममद्यापि तन्मे वद कर्म शुद्धम् ॥१०॥

अन्वयः— यद्विक्रमोच्छिष्टमशेष भूपाः सपालाः लोकाः अद्यापि कामम् अपजीवन्ति कोनु अभिज्ञः अस्य कीर्तिं न शृणोति तन्मे शुद्धम् कर्म वद ॥१०॥

अनुवाद— जिनके पराक्रम से उच्छिष्ट रूप विषय भोगो से आज भी राजागण और लोकपालों सहित सभी लोग अपनी इच्छानुसार जीवन निर्वाह करते हैं कौन ऐसा विज्ञ पुरुष होगा जो उनकी कीर्ति को नहीं सुनना चाहेगा अतएव आप मुझे उनके पवित्र चरित्र को सुनाइये ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

श्रवणौत्सुक्यमाविष्कुर्वन्प्रार्थयते- कोन्विति । यस्य विक्रमः पृथ्वीदोहनं तस्योच्छिष्टतुल्यं कामम् । तत्तस्य कर्म वद॥१०॥

भाव प्रकाशिका

सुनने की उत्सुकता को ही आविष्कृत करते हुए विदुरजी प्रार्थना करते हैं पृथिवी का दोहन जिनका विक्रम है, उन महाराज पृथु के उच्छिष्ट के ही समान काम है, उनके कर्मों का आप वर्णन करें ।।१०।।

मैत्रये उवाच

गङ्गायमुनयोर्नद्योरन्तरा क्षेत्रमावसन् । आरब्धानेव बुभुजे भोगान्पुण्यजिहासया ।।११।।

अन्वयः— गङ्गा यमुनयोः नद्योः अन्तराक्षेत्रम् आवसन् पुण्य जिहासया आरब्धानेव भोपान् बुभुजे ।।११।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— गङ्गा और यमुना इन दो नदियों के बीच में निवास करते हुए पृथु जी अपने पुण्य कर्मों के क्षय की इच्छा से प्रारब्धवश प्राप्त भोगों को भोगते थे ।।११।।

भावार्थ दीपिका

प्राचीनकर्मभिः प्रारब्धानेव बुभुजे, नतु भोगान्तरार्थं कर्माणि करोति, तदपि भोगेन पुण्यक्षपणेच्छया, नतु सुखासक्त्येत्यर्थः।।११।।

भाव प्रकाशिका

अपने प्राचीन कर्मों के द्वारा प्रारब्ध कर्मों के द्वारा प्राप्त भोगों को ही भोगते, वे भोगान्तर की प्राप्ति के लिए कर्मों को नहीं करते थे। भोगों को भोगकर वे अपने पुण्यों का नाश कर देना चाहते थे। उनमें सुख में आसक्ति नहीं थी ।।११।।

सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक् । अन्यत्र ब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः ।।१२।।

अन्वयः— अन्यत्र ब्राह्मणकुलात् अन्यत्राच्युतगोत्रत्तः सर्वत्रस्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्ड धृक् ।।१२।।

अनुवाद— ब्राह्मण वंश और भगवद् भक्तों को छोड़कर उनका सातो द्वीपों के सभी पुरुषों पर अबाध प्रशासन चलता था ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

अस्खलितोऽप्रतिहत आदेश आज्ञा यस्य । सप्तसु दीपेष्वेक एव दण्डं धारयतीति तथा । किं सर्वत्र, नेत्याह । ब्राह्मणकुलव्यतिरेकेण । अच्युतो गोत्रप्रवर्तकतुल्यो येषां वैष्णवानां तद्व्यतिरेकेण च ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

उनकी आज्ञा का पालन सबलोग करते थे कोई भी उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता था। सातो द्वीपों का वे अकेले ही प्रशासन करते थे। प्रश्न होता है कि वे सबका प्रशासन करते थे तो ऐसी बात नहीं है। ब्राह्मणों और भगवद् भक्तों को छोड़कर **अच्युतः गोत्रप्रवर्तक तुल्योयेषाम् ते अच्युत्तगोत्र** । अर्थात् जिनके गोत्र के प्रवर्तक भगवान् अच्युत ही हैं ।।१२।।

एकदासीन्महासत्रदीक्षा तत्र दिवौकसाम् । समाजो ब्रह्मर्षीणां च राजर्षीणां च सत्तम ।।१३।।

अन्वयः— हे सत्तम ! एकदा महासत्र दीक्षा असीत्, तत्रदिवौकसाम् ब्रह्मर्षीणां राजर्षीणां च समाज आसीत् ।।१३।।

अनुवाद— एक बार उन्होंने महासत्र की दीक्षा ली, उस समय वहाँ देवताओं, देवर्षियों और राजर्षियों का समाज उपस्थित था ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

एकदा तस्य महासत्रदीक्षा आसीत्तत्र सत्रे देवादीनां समाज आसीदित्यर्थः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

एक बार महाराज पृथु ने महासत्र की दीक्षा ली उस समय वहाँ देवताओं आदि का समाज था ।।१३।।

तस्मिन्नर्हत्सु सर्वेषु स्वर्चितेषु यथार्हतः । उत्थितः सदसो मध्ये ताराणामुडुराडिव ॥१४॥

अन्वयः— तस्मिन् अर्हत्सु सर्वेषु यथार्हतः अर्चितेषु सदसः मध्ये ताराणाम् उडुराडिव उत्थितः ॥१४॥

अनुवाद— उस सत्र में पूजनयी सभी अतिथियों की यथायोग्य पूजा कर लेने के पश्चात् वे उसी तरह खड़ा हुए जैसे ताराओं के बीच में चन्द्रमा हों ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तस्मिन्पूज्येष्वर्चितेषु सत्सु सदसो मध्ये उत्थितः सन् समन्ततः समैक्षतेति षष्ठेनान्वयः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

उस सत्र में पूंज्य अतिथियों की पूजा हो जाने पर सभा के बीच में खड़ा होकर उन्होंने चारो ओर देखा यह आगे के छठे श्लोक से अन्वय है ॥१४॥

प्रांशुः पीनायतभुजो गौरः कञ्जारुणेक्षणः । सुनासः सुमुखः सौम्यः पीनांसः सुद्विजस्मितः ॥१५॥

अन्वयः— प्रांशु पीनायत भुजः गौरः कञ्जारुणेक्षणः सुनाशः सुमुखः सौम्य पीनांसः सुद्विजस्मितः ॥१५॥

अनुवाद— उनका शरीर ऊँचा था, भुजाएँ मोटी तथा लम्बी थी, शरीर गोरा था उनके नेत्र कमल दल के समान लाल थे, नाक सुन्दर थी, मुख भी सुन्दर था, शरीर सुन्दर था कन्धे ऊँठे हुए थे, और मुस्कान से मनोहर उनकी दाँत पंक्ति थी ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

प्रांशुरुन्नतः । पीनावायतौ भुजौ यस्य, कञ्जवदरूणे ईक्षणे यस्य, शोभना द्विजाः स्मितं च यस्य ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

उनका शरीर ऊँचा था, भुजाएँ मोटी और लम्बी थी, कमल दल के समान उनके नेत्र लाल थे, उनकी दन्तपंक्ति और मुस्कान मनोहर थे ॥१५॥

व्यूढवक्षा बृहच्छ्रोणिर्वलिवल्गुदलोदरः । आवर्तनाभिरोजस्वी काञ्चनोरुरुदग्रपात् ॥१६॥

अन्वयः— व्यूढवक्षाः बृहच्छ्रोणिः वलिवल्गुददलोदरः आवर्तनाभिः ओजस्वी, काञ्चनोरुः उदग्रपात् ॥१६॥

अनुवाद— उनकी छात्री चौड़ी थी, कमर का पिछला भाग सुडौल था, उनका पेट त्रिवलि से सुशोभित था, नाभि भँवर के समान गहरी थी, शरीर ओजस्वी था, जंघाएँ सुवर्ण के समान देदीप्यमान थीं, और पैरों के पंजे ऊपर की ओर उठे थे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

व्यूढं विस्तीर्णं वक्षो यस्य, बलिभिस्तिसृभिर्वल्गु सुन्दरं दलवदधोग्रमश्वत्थपत्रमिव उपरि विस्तृतमधस्तात्संकुचितमुदरं यस्य, आवर्तवन्निम्ना नाभिर्यस्य, काञ्चनवदुज्जवलावूरू यस्य, उदग्रावुन्नताग्रौ पादौ यस्य ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

उनकी छाती विस्तीर्ण थी त्रिबली के द्वारा उनका पेट मनोहर था । पिप्पल के पत्ते के समान ऊपर की ओर विस्तृत था और नीचे की ओर सङ्कुचित था, भँवर के समान उनकी नाभि गहरी थी, सुवर्ण रचित के समान उनकी जंघाएं देदीप्यमान थीं, उनके पैरों के पंजे ऊपर की ओर उठे थे ॥१६॥

सूक्ष्मवक्रासितस्निगधमूर्धजः कम्बुकन्धरः । महाधने दुकूलाग्र्ये परिधायोपवीय च ॥१७॥

अन्वयः— सूक्ष्मवक्रासितस्निधमूर्धजः कम्बुकन्धरः, महाधने दुकूलग्रथे परिधाय उपवीय च ॥१७॥

अनुवाद— वारीक धुंधराले काले केश उनकी गर्दन शङ्ख के समान मनोहर थे, उत्तम बहुमूल्य धोती पहने थे और वैसी ही चादर ओढे थे ॥१७॥

भावार्थ_दीपिका

सूक्ष्माश्च ते वक्राश्चासिताश्च स्निग्धाश्च मूर्धजा यस्य, कम्बुवत्त्रिरेखाङ्किता कन्धरा यस्य । परिधाय वसित्वा । उपवीयोत्तरीयं कृत्वा ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

उनके घुघराले सूक्ष्म और काले केश थे, शङ्ख के समान तीन रेखाओं से युक्त उनकी गर्दन थी । परिधाय का अर्थ धारण करके, उपवीय का अर्थ है, चादर ओढ़कर ॥१७॥

व्यञ्जिताशेषगात्रश्रीर्नियमेन्यस्तभूषणः । कृष्णाजिनधरः श्रीमान्कुशपाणिः कृतोचितः ॥१८॥

अन्वयः— नियमेन्यस्त भूषणे व्यञ्जिताशेषगात्रश्रीः कृष्णाजिनधरः, श्रीमान् कुशपाणिः कृतोचितः ॥१८॥

अनुवाद— नियम ग्रहण करने के कारण उन्होंने सारे आभूषणों को उतार दिया था, अतएव उनके शरीर की शोभा स्पष्ट प्रतीत हो रही थी, वे कालामृगचर्म धारण किए थे, एश्वर्य सम्पन्न, हाथ में कुश धारण किए हुए वे अपना सारा नित्यकृत्य सम्पन्न कर चुके थे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

नियमे निमित्ते न्यस्तानि त्यक्तानि भूषणानि येन सः । अतएव तैरनावृतत्वाद्व्यञ्जिताशेषगात्रेषु श्रीः स्वाभाविकी शोभा येन । कृतान्युचितानि कर्माणि येन ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

नियम के कारण उन्होंने सारे आभूषणों को उतार दिया था, आभूषणों से ढँके नहीं होने के कारण उनके सम्पूर्ण शरीर की शोभा अभिव्यक्त हो रही थी उन्होंने समस्त नित्य कृत्यों को सम्पन्न कर लिया था ॥१८॥

शिशिरस्निग्धताराक्षः समैक्षत समन्ततः । ऊचिवानिदमुर्वीशः सदः संहर्षयन्निव ॥१९॥

अन्वयः— शिशिरस्निग्ध ताशक्षः, समन्ततः समैक्षत उवीर्शः सदः संदर्शयनिव इदम् उचिवान् ॥१९॥

अनुवाद— शीतल एवं स्नेहपूर्ण नेत्रों से चारो ओर देखा उसके पश्चात् पृथिवी पति ने संम्पूर्ण सभा को प्रहर्षित करते हुए कहा ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

शिशिरे संतापहरे स्निग्धे च तारे ययोस्ते अक्षिणी यस्य, इदं वक्ष्यमाणं वाक्यमुक्तवांश्च ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

उनके नेत्र संताप विनाशक प्रेममय थे उन्होंने चारो ओर देखकर कहना प्रारम्भ किया ॥१९॥

चारु चित्रपदं श्लक्ष्णं मृष्टं गूढमविक्लवम् । सर्वेषामुपकारार्थं तदा अनुवदन्निव ॥२०॥

अन्वयः— चारु, चित्रपदं, श्लक्ष्णं मृष्टं, गूढम् अविक्लवम् सर्वेषाम् उपकारार्थं तदा अनुवदन् इव ऊचिवान्॥२०॥

अनुवाद— मनोहर, विचित्र पदों से युक्त, स्पष्ट, मधुर, गम्भीर एवं निःशङ्क उनका भाषण था । जैसे सबों का उपकार करने के लिए अपने अनुभवों का अनुवाद कर रहे हों ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

चारु श्रोत्रप्रियम्, चित्राणि पदानि यस्मिन्, श्लक्ष्णं प्रशस्तम्, मृष्टं शुद्धम्, गूढं गम्भीरार्थम्, अविक्लवमव्याकुलम् । उत्प्रेक्षते स्वयमनुभूतमनुवदन्निव ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

उनका प्रवचन सुनने में मनोहर, विचित्र पदों से युक्त, श्रेष्ठ, शुद्ध, गम्भीर अर्थों से युक्त और निःशङ्क था मानो वे अपने अनुभवों का अनुवाद कर रहे थे ।।२०।।

राजोवाच

सभ्याः श्रृणुत भद्रं वः साधवो य इहागताः । सत्सु जिज्ञासुभिर्धर्ममावेद्यं स्वमनीषितम् ।।२१।।

अन्वयः— हे सभ्याः व भद्रम्, ये साधवः इहागताः श्रृणुत, जिज्ञासुभिः सत्सु स्वमनीषितं धर्मम् आवेद्यं ।।२१।।

राजा ने कहा

अनुवाद— हे सज्जनों, आपलोगों का कल्याण हो । जो सज्जन यहाँ आये हैं, वे मेरी प्रार्थना को सुनें। जिज्ञासुओं को चाहिए कि वे सन्तों की सभा में अपने निश्चय को निवेदित करें ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

भाषणे हेतुः- धर्म जिज्ञासुभिः पुम्भिः सत्सु स्वमनीषितमावेद्यं वक्तव्यम् । अतः प्रजानुशासनमिषेण जिज्ञासैव क्रियते न युष्मान्प्रति धर्मप्रवचनमिति भावः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

महाराज पृथु किए जाने वाले प्रवचन के कारण को बतलाते हुए कहते हैं जो जिज्ञासु पुरुष धर्म को जानना चाहते हों । उनको चाहिए कि वे सत्पुरुषों के समाज में अपने निश्चय को बतलायें । अतएव मैं प्रजाओं का अनुशासन के बहाने मैं जिज्ञासा ही कर रहा हूँ आपलोगों के समक्ष मैं धर्म का प्रवचन नहीं कर रहा हूँ ।।२१।।

अहं दण्डधरो राजा प्रजानामिह योजितः । रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु स्थापिता पृथक् ।।२२।।

अन्वयः— अहं प्रजानां दण्डधरः रक्षिता, वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु पृथक् स्थापिता राजायोजितः ।।२२।।

अनुवाद— मैं इस लोक में प्रजाओं का प्रशासक, रक्षा करने वाला, उनकी जीविका का प्रबन्ध करने वाला, उनको अपने धर्म की मर्यादा में अलग-अलग रखने के लिए राजा बनाया गया हूँ ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं प्रजाः शिक्षयिष्यन्प्रजाशिक्षणादिकं, ममावश्यकमित्याह-अहमिति त्रिभिः । पृथक् सेतुषु स्थापिता स्थापयिता।।२२।।

भाव प्रकाशिका

अपनी प्रजाओं को शिक्षा देना मेरे लिए आवश्यक है । इस बात को महाराज पृथु **अहम्० इत्यादि** तीन श्लोकों से कहते हैं । प्रजाओं को अलग-अलग उनके धर्म की मर्यादा में स्थापित करने वाला नियुक्त किया गया हूँ ।।२२।।

तस्य मे तदनुष्ठानाद्यानाहुर्ब्रह्मवादिनः । लोकाः स्युः कामसंदोहा यस्य तुष्यति दिष्टदृक् ।।२३।।

अन्वयः— दिष्टदृक् यस्य तुष्यति तस्य यान् लोकान् ब्रह्मवादिनः आहुः तदनुष्ठानात् मे कामसन्दोहाः लोकाः स्युः।।२३।।

अनुवाद— पूर्व जन्म के कर्मों को जानने वाले ईश्वर जिस पर प्रसन्न होते हैं उस व्यक्ति को प्राप्त होने वाले जिन लोकों को ब्रह्मवादियों ने बतलाया है प्रजाओं की रक्षा आदि के कारण मुझे भी मनोरथों को पूर्ण करने वाले उन लोकों की प्राप्ति होनी चाहिए ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

दिष्टदृक् प्राक्कर्मसाक्षीश्वरो यस्य तुष्यति तस्य ब्रह्मवादिनो यान् लोकानाहुः प्रजारक्षणाद्यनुष्ठानात्ते लोका मे स्युः । कथंभूताः । कामानां सम्यक् दोहः प्रपूरणं येषु ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

दिष्टदृक् अर्थात् पूर्वजन्म के कृत्यों को जानने वाले ईश्वर जिस पर प्रसन्न होते हैं, उस पुरुष को जिस लोक की प्राप्ति को ब्रह्मवादियों ने बतलाया है, इस प्रजा रक्षण आदि कार्यों को करने से कामनाओं को पूर्ण करने वाले उन्हीं लोकों की प्राप्ति मुझे होनी चाहिए ।।२३।।

य उद्धरेत्करं राजा प्रजा धर्मेष्वशिक्षयन् । प्रजानां शमलं भुङ्क्ते भगं च स्वं जहाति सः ।।२४।।

अन्वयः— य राजा प्रजाः धर्मेष्वशिक्षयन् करं उद्धरेत् प्रजानां शमलं भुङ्क्ते स्वम् भगं च जहाति ।।२४।।

अनुवाद— जो राजा प्रजाओं को धर्म की शिक्षा दिए बिना प्रजाओं से केवल कर वसूलता है, वह प्रजाओं के पाप का ही भागी होता है और उसका ऐश्वर्य भी विनष्ट हो जाता है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

अन्यथा त्वनिष्टं स्यादित्याह-य इति । शमलं पापम् । भगमैश्वर्यम् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

प्रजाओं को धर्म की शिक्षा नहीं देने वाले राजा का अनिष्ट होता है, इस बात को वे इस श्लोक में बतलातें हैं अर्थात् पाप भग शब्द ऐश्वर्य का वाचक हीं है ।।२५।।

यूयं तदनुमोदध्वं पितृदेवर्षयाऽमलाः । कर्तुः शास्तुरनुज्ञातुस्तुल्यं यत्प्रेत्यतत्फलम् ।।२६।।

अन्वयः— हे अमलाः पितृदेवर्षयः यूयं तदनुमोदध्वं, यत् कर्तुः शास्तु, अनुज्ञातुः तुल्यं फलं भवति ।।२६।।

अनुवाद— हे विशुद्ध चित्त वाले ! पितरों, देवताओं और ऋषियों आप लोग भी मेरी इस प्रार्थना का अनुमोदन करें, क्योंकि परलोक में कर्ता, उपदेष्टा, और अनुज्ञाता इन तीनों को एक समान फल की प्राप्ति होती हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

शास्तुः शिक्षयितुरनुज्ञातुरनुमोदितुश्च प्रेत्य परलोके यत्फलं तत्तुल्यम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

मृत्यु के पश्चात् परलोक में प्राप्त होने वाला जो फल होता है, वह उपदेष्टा अनुष्ठाता और अनुमोदिता इन तीनों को एक समान होता है ।।२६।।

अस्ति यज्ञपतिर्नाम केषांचिदर्हसत्तमाः । इहामुत्र च लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नावत्यः क्वचिद्भुवः ।।२७।।

अन्वयः— हे अर्हसत्तमाः केषांचित् मते यज्ञपतिः नाम अस्ति, इहामुत्रचक्वचित् ज्योत्स्नावत्यः भुवः लक्ष्यन्ते।।२७।।

अनुवाद— हे समादरणीय सज्जनों ! कुछ श्रेष्ठ महापुरुषों के मतानुसार यज्ञों के स्वामी परमात्मा है, क्योंकि लोक में तथा परलोक में भी कई भोग भूमियाँ तथा शरीर तेजः सम्पन्न पायी जाती हैं ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

कर्म कर्तव्यमित्यनुमोदामहे, न तु वासुदेवेऽर्पणीयमिति वेनादिभिस्तदनङ्गीकारादित्येवंवादिनः शनैः संबोधयन्नाह । हे अर्हसत्तमाः, यज्ञपतिर्नाम परमेश्वरः केषांचिन्मते तावदस्ति, तथापि विप्रतिपत्तेर्नतत्सिद्धिरित्याशङ्क्य जगद्वैचित्र्यान्यथानुपपत्ति प्रमाणयति । इहामुत्र च ज्योत्स्नावत्यः कान्तिमत्यो भुवो भोगभूमयः शरीराणि च ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

कर्म करना चाहिए इस बात का तो हमलोग समर्थ न करते हैं किन्तु उन कर्मों को भगवान् वासुदेव को समर्पण करना चाहिए इस बात का हम समर्थन नहीं करते हैं, क्योंकि वेन इत्यादि इस बात को नहीं स्वीकारते हैं, इस तरह से धीरे से कहने वालों के प्रति कहते हैं । हे विशुद्धचित्त वाले पितृ देवों आदि कुछ श्रेष्ठ महापुरुषों के अनुसार यज्ञपति परमात्मा हैं, फिर भी इस विषय में लोगों का मत वैभिन्य है अतएव उसकी सिद्धि नहीं होती इस प्रकार की आशङ्का करके उन्होंने परमात्मा की सिद्धि का समर्थन अन्यथा अनुपपत्ति के द्वारा करते हुए कहा है इस लोक में तथा परलोक में कहीं-कहीं पर अत्यन्त तेजस्वी भोगभूमियाँ और शरीर पाये जाते हैं ॥२७॥

मनोरुत्तानपादस्य ध्रुवस्यापि महीपतेः । प्रियव्रतस्य राजर्षेरङ्गस्यास्मत्पितुः पितुः ॥२८॥
ईदृशानामथान्येषामजस्य च भवस्य च । प्रह्लादस्य बलेश्चापि कृत्यमस्ति गदाभृता ॥२९॥
दौहित्रादीनृते मृत्योः शोच्यान्धर्मविमोहितान् । वर्गस्वर्गापवर्गाणां प्रायेणैकात्म्यहेतुना ॥३०॥

अन्वयः— मनोः उत्तानपादस्य महीपतेः ध्रुवस्य, राजर्षेः प्रियव्रतस्य, अस्मत्पितुः पितु अङ्गस्य अजस्य, भवस्य, प्रहलादस्य, बलेः चापि, इदृशानाम् अथ अन्येषामपि गदाभृता कृत्यमस्ति, मृत्योः दौहित्रादीन् धर्मविमोहितान् शोच्यान् ऋते, वर्ग स्वर्गाप वग्रणाम् प्रायेण ऐकात्म्य हेतुना गदाभृता कृत्यमस्ति ॥२८-३०॥

अनुवाद— मनु, उत्तानपाद, पृथिवीपति ध्रुव, राजर्षि प्रियव्रत हमारे पितामह अङ्ग ब्रह्माजी, शिवजी, प्रह्लाद, बलि और इसी तरह के दूसरे महानुभावों के मतानुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इस चतुवर्ग एवं मोक्ष के स्वाधीन नियामक तथा कर्मों के फल प्रदाता गदाधर भगवान् की आवश्यकता है ही । इस विषय में मृत्यु के दौहित्र वेन आदि कुछ धर्मविमूढ शोचनीय लोगों का मतभेद है किन्तु उन लोगों के मतभेद का कोई विशेष महत्त्व नहीं है ॥२८-३०॥

भावार्थ दीपिका

नन्विदं कर्मवैचित्र्यादेव सेत्स्यति तथापि विद्वदनुभवेनेश्वरसिद्धिरित्याह-मनोरिति त्रिभिः । अस्मत्पितामहस्याङ्गस्य । कृत्यमस्ति । अवश्यं कर्म फलदात्रा भाव्यमिति तेषां मतमित्यर्थः । मृत्योर्दौहित्रान्वेनादीन्विना । धर्मे विमोहितान् । अतः शोच्यान् । ननु कर्मैव फलं दास्यति विध्युद्देशगता वा देवताः किं परमेश्वरेण तत्राह- वर्गेति । वर्गोऽत्र त्रिवर्गः स्वर्गो धर्मस्य फलमपवर्गो मोक्षस्तेषामैकात्म्येनैकरूप्येण सर्वानुगतेन हेतुना तत्रापि प्रायेण हेतुना । अयं भावः- न तावज्जडस्य कर्मणः फलदातृत्वं घटते, नचार्वाग्देवतानां स्वातन्त्र्यम्, अन्तर्यामिश्रुतेः । नच तदा कर्मसाम्ये फलतारतम्यं क्वचित्तदसिद्धिश्च संभवति, अतः स्वातन्त्र्येण कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थेन परमेश्वरेण भाव्यमिति ॥२८-३०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि तेजस्वी शरीरों की सिद्धि तो कर्मों की विचित्रता के कारण भी हो सकती है फिर भी विद्वानों के मतानुसार ईश्वर की सिद्धि होती है इस अर्थ का प्रतिपादन करते हुए तीन श्लोकों से कहते हैं पितुः पितः शब्द से महाराज अङ्ग को कहा गया है । कृत्यमस्ति का अर्थ है कि कर्म अवश्य फलप्रद है यह उन लोगों का मत है। धर्म के विषय में अज्ञानी एवं शोचनीय, वेन आदि को छोड़कर अन्य लोगों के मतानुसार ईश्वर को स्वीकार करना आवश्यक है ही । **ननु कर्मैव० इत्यादि-** यदि कहे कि कर्म ही फल प्रदान करने वाला है अथवा विधि वाक्यों में उद्दिष्ट देवता ही फलप्रद हैं ईश्वर को स्वीकारने की क्या आवश्यकता हैं ? इसके उत्तर में **वर्गापवर्ग० इत्यादि** श्लोक कहा गया है । वर्ग शब्द से त्रिवर्ग, धर्म, अर्थ और काम को धर्म का फल है स्वर्ग । अपवर्ग मोक्ष को कहते हैं प्रायः इन सबों के एकमात्र हेतु भगवान् गदाधर ही हैं । **अयंभावः** कहने का अभिप्राय है कि जड कर्म फल प्रदाता नहीं हो सकता है इस बात का प्रतिपादन अन्तर्यामी श्रुतियाँ करती हैं । यहाँ पर यह नहीं कहा जा सकता है कि तब तो फिर एक कर्म की समानता होने पर भी फल में भिन्नता की सिद्धि नहीं हो सकती है । अतएव सबकुछ करने में समर्थ स्वतन्त्र परमात्मा को ही स्वीकार करना चाहिए ॥२८-३०॥

यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विनामशेजन्षमोपचितं मलं धियः ।
सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथा पदाङ्गुष्ठविनिः सृता सरित् ॥३१॥

अन्वयः— अन्वहम् एधती सती यत्पाद सेवाभिरुचिः तपस्विानाम् अशेष जन्मोपचितं धियः मालम् पदाङ्गुष्ठ विनिः सृतासरित् यथा सद्यः क्षिणोति ॥३१॥

अनुवाद— प्रतिदिन बदलने वाली श्रीभगवान् के चरणों की सेवा की रुचि तपस्वियों के अनेक जन्मों के मल को श्रीभगवान् के चरणाङ्गुष्ठ से निकली हुई गङ्गा नदी के समान शीघ्र ही विनष्ट कर देती है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

किंच जीवानां मोक्षदः परमेश्वर एव नार्वाग्देवतास्तासामपि जीवत्वाविशेषादित्याशयेनाह त्रिभिः । यस्य पादयोः सेवायामभिरुचिस्तपस्विनां संसारतप्तानामशेशैर्जन्मभिः समृद्धं धियो मलं सद्यः क्षपयति तमेव भजतेति तृतीयेनान्वयः । कथंभूता, अहन्यहनि वर्धमाना सती सात्त्विकी तत्पादसंबन्धस्यैवैष महिमेति दृष्टान्तेनाह-यथेति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

जीवों को मोक्ष प्रदान करने वाले परमेश्वर ही हैं अर्वाचीन देवता नहीं, क्योंकि देवता भी तो जीव ही हैं। इस बात को महाराज पृथु तीन श्लोकों द्वारा कहते हैं । जिन श्रीभगवान् के चरणों की सेवा में बढ़ने वाली तपस्वियों के अनेक जन्मों के मनोमल को शीघ्र ही उसी प्रकार विनष्ट कर देती है उन्हीं श्रीभगवान् के चरणों की सेवा आपलोग करें यह आगे के तीसरे श्लोक से अन्वय है । अब प्रश्न होता है कि कैसी अभिरुचि तो इसे बतलाते हैं प्रतिदिन बढ़ने वाली सात्त्विकी अभिरुचि । यह श्रीभगवान् के चरणों के सबन्ध की महिमा है । इस बात को उन्होंने गङ्गाजी के दृष्टान्त के माध्यम से कहा गया है ॥३१॥

विनिर्धुताशेषमनोमलः पुमानसङ्गविज्ञानविशेषवीर्यवान् ।
यदङ्घ्रिमूले कृतकेतनः पुनर्न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते ॥३२॥

अन्वयः— यदङ्घ्रिमूले कृतकेतनः विनिर्धुताशेषमनोमलः, असङ्ग विज्ञानविशेष वीर्यवान् पुनः क्लेशवहां संसृतिं न प्रपद्यते ॥३२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के चरण कमल को ही अपना आश्रय बनाने वाला मनुष्य अन्तःकरण के सारे मलों (दोषों) के विनष्ट हो जाने के कारण अनासक्ति के कारण अपरोक्ष ज्ञान रूपी विशेष विज्ञान के बल से पुनः इस दुखप्रद संसार चक्र में नहीं पड़ता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

विनिर्धुता अशेषा मनोमला यस्य । असङ्गो वैराग्यं तेन विज्ञानस्य विशेषः साक्षात्कारस्तदेव वीर्यं यस्य । यस्याङ्घ्रिमूले कृताश्रयः सन् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

जिनके सम्पूर्ण मन के मैल विनष्ट हो गये हैं और अनासक्ति रूप वैराग्य जन्य विज्ञान विशेष (अपरोक्ष ज्ञान) रूप बल से युक्त मनुष्य श्रीभगवान् के चरणों को ही अपना आश्रय बना लेता है ॥३२॥

तमेव यूयं भजतात्मवृत्तिभिर्मनोवचःकायगुणैः स्वकर्मभिः ।
अमायिनः कामदुघाङ्घ्रिपङ्कजं यथाधिकारावसितार्थसद्धयः ॥३३॥

अन्वयः— यूयम् आत्म वृत्तिभिः मनो वचः कायगुणैः स्वकर्मभि अमायिनः यथाधिकारावसितार्थसिद्धय तमेव कामदुघाङ्घ्रि पङ्कजं भजत ॥३३॥

अनुवाद— आपलोग अपनी-अपनी आजीवका के लिए उपयोगी वर्णाश्रमोचित मन, वाणी और शरीर के द्वारा किए जाने वाले कर्मों के द्वारा निष्कपट भाव से यह सोचकर कि हमें अपने अधिकार के अनुसार इसका फल अवश्य मिलेगा, सारी कामनाओं को पूर्ण करने वाले उन्हीं श्रीभगवान् के चरण कमलों की सेवा करें ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

आत्मवृत्तिभिरध्यापनादिभिः । मनोवचःकायानां गुणैर्ध्यानस्तुतिसपर्याभिः । अमायिनो निष्कपटाः सन्तः । ननु ब्रह्मादिभिः सेव्ये किमस्मद्भत्तया भविष्यति तत्राह । यथाधिकारमेवावसिता निश्चिता समाप्ता वाऽथसिद्धिर्येषाम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

अध्यापनादि कर्मों से मन वाणी शरीर के कर्मों का ध्यान स्तुति एवं पूजादि के द्वारा निष्कपट भाव से उन का भजन करें । यदि कहें कि ब्रह्मा आदि के द्वारा सेवित श्रीभगवान् को हमलोगों की सेवा से क्या होगा तो इस पर कहते है— कि अधिकार के अनुसार सबों को फल की प्राप्ति होती है ॥३३॥

असाविहानेकगुणोऽगुणोऽध्वरः पृथग्विधद्रव्यगुणक्रियोक्तिभिः ।
संपद्यतेऽर्थाशयलिङ्गनामभिर्विशुद्धविज्ञानघनः स्वरूपतः ॥३४॥

अन्वयः— **स्वरूपतः विशुद्धविज्ञानघनः अगुणः असौ इह अनेकगुणः पृथग्द्रव्यगुण क्रियोक्तिभिः अर्थाश्रय लिङ्गनामभिः अध्वरः सम्पद्यते ।**

अनुवाद— वे श्रीभगवान् स्वरूपत, विशुद्ध विज्ञानधन और सभी विशेषणों से रहित हैं, किन्तु इस कर्म मार्ग में यव, चावल आदि अनेक द्रव्यों, शुक्लादि गुण, अवधात आदि क्रियाओं एवं मन्त्रों द्वारा अर्थ, आशय (सङ्कल्प) लिङ्ग (पदार्थ शक्ति) तथा ज्योतिष्टोम आदि नामों से होने वाले अनेक विशेषणों से युक्त यज्ञ के रूप में प्रकाशित होते हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

स्वकर्मभिर्यागादिभिर्भजतेत्युक्तं तत्र 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविः' इति न्यायेन सर्वेषु यागतदङ्गतत्फलेषु भगवदृष्ट्या कर्म कर्तव्यं न भिन्नदृष्ट्येति वक्तुं तेषां भगवद्रूपतामाह द्वाभ्याम् । असौ भगवानेव स्वरूपतो विशुद्धविज्ञानघनोऽप्यगुणो निर्विशेषणोऽपि सन्निह कर्ममार्गेऽनेकगुणो नानाविशेषणवान् अध्वरो यज्ञः संपद्यते । 'यज्ञो वै विष्णुः' इति श्रुतेः । अनेकगुणत्वमेवाह । पृथग्विधानि यानि द्रव्यादीनि तैः । तत्र द्रव्याणि व्रीह्यादीनि, गुणाः शुक्लादयः, क्रिया अवघातादयः, उक्तयो मन्त्राः । अर्थोऽङ्गसाध्य उपकारः, आशयः सङ्कल्पः, लिङ्गं पदार्थानां शक्तिः, नाम ज्योतिष्टोमादि, तैश्चाध्वरः संपद्यते ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

इससे पहले महाराज पृथु कह चुके है कि अपने यागादि रूप कर्मों से आपलोग श्रीभगवान् की आराधना करें । गीतोक्त **ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः** न्याय से याग, यागाङ्ग और यज्ञ के फल में भगवद् दृष्टि से ही कर्म करना चाहिए इस बात को बतलाने के लिए उन सबों की भगवतस्वरूपता को दो श्लोकों से बतलाते हैं । वे भगवान् ही स्वरूपतः विशुद्ध, ज्ञान रूप तथा सभी विशेषणों से रहित होकर भी कर्म मार्ग में अनेक विशेषणों से युक्त यज्ञ के रूप में प्रकट होते हैं । श्रुति भी कहती है— **'यज्ञो वै विष्णुः'** अर्थात् भगवान् विष्णु ही यज्ञ हैं । उनके अनेक गुणत्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं— अनेक प्रकार के द्रव्य इत्यादि के द्वारा वे विशेषण विशिष्ट प्रतीत होते हैं । धान इत्यादि द्रव्यों, शुक्ल इत्यादि गुणों, अवघात आदि क्रियाओं मन्त्र रूप उक्तियों, अङ्ग साध्य उपकारों, आशय सङ्कल्प, पदार्थों की शक्ति रूप लिङ्ग ज्योतिष्टोम आदि नामों से यज्ञ के रूप में प्रकट होते हैं ॥३४॥

प्रधानकालाशयधर्मसंग्रहे शरीर एष प्रतिपद्य चेतनाम् ।
क्रियाफलत्वेन विभुर्विभाव्यते यथाऽनलो दारुषु तद्गुणात्मकः ॥३५॥

अन्वयः— यथा अनलः तदगुणात्मकेषु दारुषु विभाव्यते तथा विभु प्रधानकालाशय धर्मसंग्रहे शरीरे चेतनाम् प्रतिपद्य क्रिया फलत्वेन विभाव्यते ॥३५॥

अनुवाद— जिस प्रकार एक ही अग्नि अनेक आकार वाली लकड़ियों में अनेक अकार वाली प्रतीत होती है उसी तरह सर्व व्यापक परमात्मा परमानन्द स्वरूप होकर भी प्रकृति उसमें क्षोभ उत्पन्न करने वाले काल, वासना और धर्म (अदृष्ट) से उत्पन्न होने वाले शरीर में विषयाकार बुद्धि में स्थित होकर उन यज्ञ आदि क्रियाओं के फल रूप से अनेक प्रकार के प्रतीत होते हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

यागतदङ्गानां भगवद्रूपत्वमुक्त्वा यागफलस्यापि भगवद्रूपतामाह-प्रधानेति । एष विभुः परमानन्दोऽपि शरीरे चेतनां विषयाकारां बुद्धिं प्रतिपद्य तदभिव्यङ्ग्यानन्दरूपः सन् क्रियाफलत्वेन प्रतीयते । 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' इति श्रुतेः । यथाऽनलो दारुषु स्थितस्तद्गुणात्मको दारुधर्मदैर्ध्यवक्रत्वादिमांस्तद्वत् । कथंभूते शरीरे । प्रधानमव्यक्तम्, कालस्तत्क्षोभकः, आाशयो वासना, धर्मोऽदृष्टं, तैः संगृह्यते जन्यत इति तथा तस्मिन् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

यागों तथा यागाङ्गों को भगवद्रूपता का प्रतिपादन इसके पहले वाले श्लोक में किया जा चुका है । अब इस श्लोक में याग के फल की भी भगवद्रूपता का प्रतिपादन करते हुए प्रधान इत्यादि कहते हैं । परमात्मा सर्वव्यापक तथा परमानन्द स्वरूप हैं फिर भी वे शरीर में विषय रूप से प्रतीत होने वाली बुद्धि में प्रवेश करके उसके द्वारा अभिव्यक्त होने वाले आनन्द स्वरूप रहते हुए यागादि क्रिया के फल रूप से प्रतीत होते है । श्रुति भी कहती है एतस्यैवानन्दस्य अन्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति अर्थात् इस आनन्द स्वरूप परमात्मा के ही सूक्ष्मतम अंश को प्राप्त करके दूसरे जीव आनन्दोपभोग का अनुभव करते है । जिस तरह अग्नि लकड़ों में स्थित रहकर लकड़ियों में रहने वाले लम्बापन टेढापन इत्यादि से युक्त प्रतीत होती हैं प्रकृति, उसके क्षोभक काल, आशय (वासना) तथा अदृष्ट से उत्पन्न शरीर में स्थित बुद्धि में स्थित होकर उसके द्वारा अभिव्यङ्ग्य आनन्द स्वरूप रहते हुए यागादि क्रियाओं के फलरूप से प्रतीत होते हैं ॥३५॥

अहो ममामी वितरन्त्यनुग्रहं हरिं गुरुं यज्ञ भुजामधीश्वरम् ।
स्वधर्मयोगेन यजन्ति मामका निरन्तरं क्षोणितले दृढव्रताः ॥३६॥

अन्वयः— अहो अमी मामकाः ये दृढव्रता स्वधर्मयोगेन यज्ञभुजाम् अधीश्वरम् हरिं गुरुम् क्षोणितले निरन्तरं 'यजन्ति ते मयि अनुग्रहं वितरन्ति ।'

अनुवाद— अरे ये मेरे जो दृढव्रत प्रजाजन अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुकूल धर्म के द्वारा यज्ञभोक्ताओं के स्वामी श्रीहरि की आराधन इस पृथिवी पर निरन्तर किया करते है, वे हम पर बहुत कृपा करते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

तदेवमप्रवृत्तान्भगवद्भजने प्रवर्त्य स्वतः प्रवृत्तानां प्रवृत्तिमभिनन्दनेन द्रढयति अहो इति । वितरन्ति कुर्वन्ति ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार जो लोग भगवद् भजन में नहीं प्रवृत्त होते हैं उन लोगों को प्रवृत्त करके जो लोग अपने आप भगवद् भजन में प्रवृत्त हैं, उन लोगों की प्रवृत्ति की सराहना करके महाराज उनकी प्रवृत्ति को सुदृढ बनाते हुए **अहो अभी० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । वितरन्ति पद का अर्थ है करते हैं ॥३६॥

मा जातु तेजः प्रभवेन्महर्द्धिभिस्तितिक्षया तपसा विद्यया च ।
देदीप्यमानेऽजितदेवतानां कुले स्वयं राजकुलाद्द्विजानाम् ॥३७॥

अन्वयः— तितिक्षिया, तपसा विद्यया च द्विजानाम् अजितदेवतानां च स्वयं देदीप्यमाने कुले महर्द्धिभिः राजकुलात् तेजः जातु मा प्रभवेत् ॥३७॥

अनुवाद— सहनशीलता, तपस्या और विद्यया के कारण स्वभावतः तेजः सम्पन्न ब्राह्मणों एवं भगवद् भक्तों (वैष्णवों) के वंश पर राजकुल का तेज धन एवं ऐश्वर्य आदि समृद्धियों के कारण अपना प्रभाव कभी भी न डाले॥३७॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं हरिभक्तिदार्ढ्याय ब्राह्मणभक्तिं विधत्ते— मा जात्वित्यष्टभिः । महत्यश्च ता ऋद्धयश्च ताभिर्यद्राजकुलस्य तेजस्तत्तस्मात्सकाशाद्द्विजानां कुलेऽजितो देवता येषां वैष्णवानां तेषां च कुले मा जातु प्रभवेत्कदाचिदपि प्रभावं न करोतु । कथंभूते समृद्धिभिर्विनापि स्वयमेव तितिक्षादिभिर्देदीप्यमाने ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

अब **माजातु० इत्यादि** आठ श्लोकों से महाराज पृथु श्रीहरि की भक्ति को सुदृढ बनाने के लिए ब्राह्मणों की भक्ति का विधान करते हुए कहते हैं— धन-धान्य की समृद्धि के कारण राजकुलों (क्षत्रियों) का तेज कभी भी ब्राह्मणों एवं श्रीवैष्णवों के वंश पर कभी भी अपना प्रभाव न डाले । प्रश्न है कि किस प्रकार के ब्राह्मणों के वंश पर तो इसका उत्तर है कि समृद्धि के नहीं रहने पर भी तितिक्षा (सहिष्णुता) तपस्या और विद्या के कारण स्वभावतः तेजः सम्पन्न ब्राह्मणों एवं वैष्णवों के वंश पर प्रभाव न डाले ॥३७॥

ब्रह्मण्यदेवः पुरुषः पुरातनो नित्यं हरिर्यच्चरणाभिवन्दनात् ।
अवाप लक्ष्मीमनपायिनीं यशो जगत्पवित्रं च महत्तमाग्रणीः ॥३८॥

अन्वयः— महत्तमाग्रणीः ब्रह्मण्य देवः पुरातनः पुरुषः हरिः नित्यं यच्चरणाभिबन्दनात् अनपायिनीं लक्ष्मीम् जगत् पवित्रं च यशः अवाप ॥३८॥

अनुवाद— ब्रह्मा आदि समस्त महापुरुषों में अग्रगण्य, ब्राह्मणों के भक्त तथा पुराण पुरुष श्रीहरि भी उन ब्राह्मणों के ही चरणों की नित्य वन्दना करने के कारण अविचल लक्ष्मी और संसार को पवित्र बना देने वाली कीर्ति को प्राप्त किए हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणांस्तुवन्नाह । यच्चरणाभिवन्दनाद्धरिर्लक्ष्मीं यशश्चावाप । यत्सेवया चेश्वरस्तुष्यति तदेव ब्रह्मकुलं निषेव्यतामिति द्वयोरन्वयः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों की प्रशंसा करते हुए महाराज पृथु कहते हैं जिन ब्राह्मणों के चरणों की वन्दना करने के कारण श्रीहरि ने लक्ष्मीजी को तथा यश को प्राप्त किया जिन ब्राह्मणों की सेवा करने से श्रीहरि सन्तुष्ट होते हैं । उन ब्राह्मणों के वंश की सेवा करनी चाहिए । इस तरह दोनों श्लोकों का अन्वय हैं ॥३८॥

यत्सेवयाशेषगुहाशयः स्वराड्विप्रप्रियस्तुष्यति काममीश्वरः ।
तदेव तद्धर्मपरैर्विनीतैः सर्वात्मना ब्रह्मकुलं निषेव्यताम् ॥३९॥

अन्वयः— यत्सेवया अशेषगुहाशयः स्वराड् विप्रप्रियः ईश्वरः कामम् तुष्यति तदेव ब्रह्म कुलम् तद् धर्म परैः विनीतैः सर्वात्मना निषेव्यताम् ॥३९॥

अनुवाद— जिन ब्राह्मण कुलों की सेवा करने से, सम्पूर्ण जीवों के भीतर अन्तर्यामी रूप से रहने वाले, स्वतंत्र ब्राह्मणों के भक्त सम्पूर्ण जगत् के नियामक श्रीहरि अत्यन्त प्रसन्न होते हैं उसी ब्राह्मण वंश की श्रीभगवान् के लोक संग्रह रूप धर्म का पालन करने वाले आप लोग सेवा करें ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

तस्य हरेर्लोकसंग्रहरूपो यो धर्मस्तत्परैः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

उन श्रीहरि के लोक संग्रह रूपी धर्म का पालन करने वाले आपलोग ब्राह्मण वंश की सेवा करें ।।३९।।

पुमाँल्लभेतानतिवेलमात्मनः प्रसीदतोऽत्यन्तशमं स्वतः स्वयम् ।
यं नित्यसंबन्धनिषेवया ततः परं किमत्रास्ति मुखं हविर्भुजाम् ।।४०।।

अन्वयः— यन्नित्यसंबन्धनिषेवया स्वतः स्वयम् प्रसीदतः पुमान् अतिवेलम् आत्मनः शमं लभेत ततः परम अत्र हविर्भुजाम् मुखम् किमस्ति ।।४०।।

अनुवाद— जिनकी नित्य सेवा करने से चित्त के शीघ्र ही अपने आप शुद्ध हो जाने के कारण मनुष्य स्वयं हि परम शान्ति रूप मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, उन ब्राह्मणों से बढ़कर इस संसार में दूसरा कौन हविष्य भोजी देवताओं का मुख है ?।।४०।।

भावार्थ दीपिका

ननु ब्रह्मकुल एव नित्यं सेव्यमाने सर्वदेवतामुखभूतेऽग्नौ यज्ञाद्यनुष्ठानं न स्यात्, नच तेन बिना चित्तशुद्धिः, नच तया बिना मोक्षः स्यादित्याशङ्क्याह- पुमानिति द्वाभ्याम् । यस्य ब्रह्मकुलस्य नित्यं संबन्धेन निषेवया पुमान्स्वयमेव ज्ञानाभ्यासादिकं विनाप्यत्युत्तमं शमं मोक्षं लभेत । कुतः यत्सेवया स्वत एवानतिवेलं शीघ्रं प्रसीदतः शुध्यत आत्मनश्चित्तात् । ततः परं श्रेष्ठं देवानां किं मुखमस्ति । ब्राह्मणसेवयैव यज्ञादिफलं ज्ञानफलं तत्सर्वं भवतीत्यर्थः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि सदैव ब्राह्मण वंश की सेवा करते रहने पर सभी देवताओं के मुख स्वरूप अग्नि में यज्ञ आदि का अनुष्ठान नहीं होंगे, और यज्ञादि के बिना चित्त की शुद्धि नहीं होगी और चित्त की शुद्धि के बिना मोक्ष भी नहीं हो सकता है इस तरह की आशङ्का करके **पुमान्० इत्यादि** दो श्लोकों को कहते हैं— जिस ब्राह्मण कुल का नित्य संबन्ध रूप सेवा के द्वारा मनुष्य स्वयम् हि ज्ञान तथा अभ्यास आदि के बिना भी मोक्ष को प्राप्त कर लेता है । यदि कोई पूछे कि यह कैसे तो इसका उत्तर है कि जिन ब्राह्मणों की सेवा से अन्तःकरण शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है, उन ब्राह्मणों से श्रेष्ठ हविष्य भोजी देवताओं का मुख रूप कौन सी अग्नि हैं ?।।४०।।

अश्नात्यनन्तः खलु तत्त्वकोविदैः श्रद्धाहुतं यन्मुख इज्यनामभिः ।
न वै तथा चेतनया बहिष्कृते हुताशने पारमहंस्यपर्यगुः ।।४१।।

अन्वयः— पारमहंस्य पर्यगुः अनन्तः खलु तत्त्वकोविदैः इज्यनामभिः यन्मुखे श्रद्धाहुतं यथा अश्नाति तथा चेतनपा बहिष्कृते हुताशने वै न ।।४१।।

अनुवाद— उपनिषदों के ज्ञान परक वाक्य जिनमें ही केवल गतार्थ होते हैं, वे भगवान् अनन्त तत्त्वज्ञ पुरुषों के द्वारा जिन ब्राह्मणों के मुख में हवन किए गए पदार्थों का जितने चाव से ग्रहण करते हैं उतने चाव से वे चेतना से रहित अग्नि में हवन किये गये द्रव्यों को नहीं ग्रहण करते हैं ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

हरेरपि तदेव परं मुखमित्याह-अश्नातीति । इज्यानां पूज्यानामिन्द्रादीनां नामभिर्यस्य मुखे श्रद्धया हुतं हविरनन्तो यथाश्नाति तथा चेतनया रहिते हुताशने हुतं नाश्नाति । कैर्हुतमश्नाति । तत्त्वकोविदैः सर्वदेवमयश्चैतन्यमूर्तिरनन्त इति तत्त्वं विद्वद्भिः । कुतः एवंभूतोऽसौ तत्राह । पारमहंस्यं ज्ञानं तत्परानर्हन्त्यधिकुर्वन्तीति पारमहंस्यपर्यास्ता गावो वाचो यस्मिन् । उपनिषद्भिर्ज्ञानघनत्वेनोक्त इत्यर्थः । यद्वा परमहंसानां ज्ञाननिष्ठानां गम्यः पारमहंस्यः । परितो न गच्छन्ति गावो वाचो यस्मात्स पयगुरिन्द्रियनियन्ता स चासौ स च पारमहंस्यपर्यगुर्ज्ञानरूपः सर्वान्तर्यामीत्यर्थः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों का ही मुख श्रीहरि का भी श्रेष्ठ मुख है इस बात को **अश्नाति० इत्यादि** श्लोक से महाराज पृथु कहते हैं । पूज्य इन्द्रादि देवताओं के नाम से जिन ब्राह्मणों के मुख में श्रद्धा पूर्वक किए गये होम के हविष्य को श्रीभगवान् जितने प्रेम से ग्रहण करते हैं चेतना से रहित अग्नि में होम किए गये हविष्य को वे उतने प्रेम से नहीं ग्रहण करते हैं । प्रश्न होता है कि किन लोगों के द्वारा होम किए गये को ग्रहण करते हैं तो इसका उत्तर है, कि ज्ञान स्वरूप परमात्मा सर्वदेवमय है, इस तरह तत्त्व के ज्ञाताओं द्वारा होम किए गये को । प्रश्न है कि परमात्मा इस प्रकार के कैसे है ? तो इसका उत्तर है कि वे **पारमहंस्यपर्यगुः** है । पारमहंस्यज्ञान परायणों को ही जो अपना विषय बनाती है वे उपनिषदों की वाणियाँ जिनमें समन्वित हो जाती हैं । अर्थात् उपनिषद् वाणी जिनको ज्ञान घन रूप से बतलाती हैं, वे अनन्त परमात्मा है । अथवा ज्ञाननिष्ठ परमहंस जन ही जिनको जान पाते हैं, वे भगवान् पारमहंस्य है । उनको छोड़कर उपनिषदों के वाक्य दूसरे का प्रतिपादन नहीं करते हैं, वे इन्द्रियों के नियन्ता ज्ञान स्वरूप सर्वान्तर्यामी परमात्मा है ।।४१।।

यद्ब्रह्म नित्यं विरजं सनातनं श्रद्धातपोमङ्गलमौनसंयमैः ।
समाधिना बिभ्रति हार्थदृष्टये यत्रेदमादर्श इवावभासते ।।४२।।
तेषामहं पादसरोजरेणुमार्या वहेयाधिकिरीटमायुः ।
यं नित्यदा विभ्रत आशु पापं नश्यत्यमुं सर्वगुणा भजन्ति ।।४३।।

अन्वयः— यत् नित्यं विरजं सनातनं ब्रह्म श्रद्धातपोमङ्गल मौन संयमैः समाधिना हि अर्थ दृष्टये विभ्रति यत्र इदम् उपदर्शे इवाव भासते, हे आर्याः तेषां पादसरोज रेणुम् अहं आ आयुः अधिकिरीटम् वहेय यं नित्यदा विभ्रतः पापं आशु नश्यति, अमुं सर्वगुणाः भजन्ति ।।४२-४३।।

अनुवाद— जो ब्राह्मण सदैव निर्दोष तथा सनातन वेद को श्रद्धा तप और नित्य ही सदाचार का पालन करते हुए पापादि का परित्याग रूप तत्त्वदर्शी ऋषियों से प्रोक्त मङ्गल अध्ययन विरोधी वार्तालाप के परित्याग रूप मौन, तथा चित्त की स्थिरता रूप समाधि के द्वारा वेदार्थ के विचार रूप ज्ञान की प्राप्ति के लिए धारण करते हैं, जिन दर्पण के समान वेदों में यह सम्पूर्ण विश्व प्रतिविम्बित होता है, हे पूज्य पुरुषों ! उन ब्राह्मणों के चरण कमलों की धूल को अपने जीवन पर्यन्त अपने किरिट के ऊपर धारण करना चाहता हूँ क्योंकि उन धूलों को सदैव धारण करने वाले के पाप शीघ्र ही विनष्ट हो जाते हैं और उनमें सभी सद्गुणों का निवास हो जाता हैं ।।४२-४३।।

भावार्थ दीपिका

न केवलं चेतनत्वेन हुताशनाद्विशेषः किंतु वेदज्ञानादपीत्याह । यदित्यव्ययम् । ये ब्रह्म वेदं नित्यं बिभ्रति तेषामित्युत्तरेणान्वयः। मङ्गलं नाम 'प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तस्य वर्जनम् । एतद्धि मङ्गलं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।' मौनमध्ययनविरोधिवार्तात्यागः। समाधिना चित्तस्थैर्येण। अर्थदृष्टये वेदार्थमपि विचारयन्तीत्यर्थः । यत्र वेदे इदं विश्वमवभासते यथा आदर्शे मुखम् । हे आर्याः, आ आयर्यावज्जीवमधिकिरीटं मुकुटस्योपरि वहेयेति प्रार्थनायां लिङ् । यं रेणुम् ।।४२-४३।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण केवल इसीलिए अग्नि से श्रेष्ठ नहीं हैं कि वे चेतन हैं अपितु वेदज्ञ होने के कारण भी वे अग्नि से श्रेष्ठ हैं । **यद् ब्रह्म** का यत् शब्द अव्यय है । जो ब्राह्मण वेद को नित्य ही धारण करते हैं उन सबों के चरणों की धूल को मैं अपने किरीट पर धारण करूँ । यह अगले श्लोक के साथ अन्वय है । निन्दित कर्मों के परित्याग पूर्वक प्रशस्त कर्मों का अनुष्ठान करना यही मङ्गल है तत्त्वज्ञ ऋषियों ने कहा है । अध्ययन के विरोधी वार्तालाप के त्याग को मौन कहते हैं । चित्त की एकाग्रता को ही समाधि कहते हैं । तथा जो ब्राह्मण वेद के अर्थ का विचार भी करते हैं । उस वेद में यह सम्पूर्ण विश्व उसी तरह प्रतिबिम्बित होता है जिस तरह दर्पण में मुख प्रतिबिम्बित होता है । हे आर्या: ! अर्थात् हे पूज्य पुरुषों ऐसे ब्राह्मणों के चरणों की धूलि को मैं आजीवन अपने किरीट पर धारण करना चाहता हूँ । यहाँ **वहेयम्** में प्रार्थना के अर्थ में लिङ् लकार हैं ॥४२-४३॥

गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं वृद्धाश्रयं संवृणतेऽनु संपदः ।
प्रसीदतां ब्रह्मकुलं गवां च जनार्दनः सानुचरश्च मह्यम् ॥४४॥

अन्वयः— गुणायनं शीलधनं, कृतज्ञं वृद्धाश्रयं सम्पदः अनु संवृणते, मह्यम् ब्रह्मकुलं, गवां च सानुचरः जनार्दनः च प्रसीदताम् ॥४४॥

अनुवाद— गुण सम्पन्न शील गुणवान् कृतज्ञ तथा वृद्धों की सेवा करने वाले मनुष्य को सम्पत्तियाँ अपने आप प्राप्त हो जाती हैं । अतएव मेरी यही अभिलाषा है कि मुझ पर ब्राह्मण वंश, गोवंश, तथा अपने अनुचरों के साथ भगवान् जनार्दन प्रसन्न हो जायँ ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

गुणभजनस्य फलमाह । गुणायनमन्वनु संपदः संवृणते सम्यग्भजन्ति । तस्मात्प्रसीदतां प्रसीदतु । गवां च कुलम्॥४४॥

भाव प्रकाशिका

गुणों की प्राप्ति का फल इस श्लोक में महाराज पृथु ने कहा गुणों की प्राप्ति के पश्चाचात् सम्पत्तियाँ अपने आप प्राप्त हो जाती हैं । अतएव ब्राह्मण वंश और गोवंश मुझ पर प्रसन्न हो जायँ ॥४४॥

मैत्रेय उवाच

इति ब्रुवाणं नृपतिं पितृदेवद्विजातयः । तुष्टुवुर्हृष्टमनसः साधुवादेन साधवः ॥४५॥

अन्वयः— इति ब्रुवाणं नृपतिं पितृदेवद्विजातय साधवः हृष्टमनसः साधुवादेन तुष्टुवुः ॥४५॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से कहने वाले महाराज पृथु की बातों को सुनकर पितृगण, देवगण और ब्राह्मणगण प्रसन्न मन से साधुवाद करते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे ॥४५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४५॥

पुत्रेण जयते लोकानिति सत्यवती श्रुतिः । ब्रह्मदण्डहतः पापो यद्वेनोऽत्यतरत्तमः ॥४६॥

अन्वयः— पुत्रेण लोकान् जयते इति सत्यवती श्रुतिः यत ब्राह्मणदण्डहतः पापो वेनः तमः अतरत् ॥४६॥

अनुवाद— पिता पुत्र के द्वारा ही पुण्यवानों के लोकों को प्राप्त कर लेता यह श्रुति सत्य है । इसीलिए ब्राह्मण के शाप से मरा हुआ पापी वेन इनके पुण्य से नरक को पार कर गया ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

साधुवादमाह- पुत्रेणेति षड्भिः । यद्यतो वेनोऽपि तमो नरकमत्यतरत् अतिततार ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों द्वारा प्रदत्त साधुवाद का वर्णन मैत्रेयजी छह श्लोकों में करते हैं । इनके पुण्य के ही कारण पापी वेन नरक को पार कर गया ।।४६।।

हिरण्यकशिपुश्चापि भगवन्निन्दया तमः । विविक्षुरत्यगात्सूनोः प्रह्लादस्यानुभावतः ।।४७।।

अन्वयः— भगवन्निन्दया तमः विविक्षु हिरण्यकशिपुः चापि सुनोः प्रह्लादस्य अनुभावतः तमः अत्यगात् ।।४७।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की निन्दा करने के कारण हिरण्यकशिपु भी नरक में ही जाने वाला था, किन्तु अपने पुत्र प्रह्लाद के प्रभाव से उसने नरकों को पार कर लिया ।।४७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४७।।

वीरवर्य पितः पृथ्व्याः समाः संजीव शाश्वतीः । यस्येदृश्यच्युते भक्तिः सर्वलोकैकभर्तरि ।।४८।।

अन्वयः— हे वीरवर्य, पृथ्व्याः पितः शाश्वतीः समाः संजीव, यस्यते सर्वलोकैकभर्तरि अच्युते इदृशी भक्तिः ।।४८।।

अनुवाद— हे वीरवर्य, हे पृथिवी देवी के पितः आप शाश्वत काल पर्यन्त जीवित रहें । क्योंकि आपकी सम्पूर्ण लोकों के एकमात्र स्वामी भगवान् अच्युत में इस प्रकार की भक्ति हैं ।।४८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४८।।

अहो वयं ह्यद्य पवित्रकीर्ते त्वयैव नाथेन मुकुन्दनाथाः ।
य उत्तमश्लोकतमस्य विष्णोर्ब्रह्मण्यदेवस्य कथां व्यनक्ति ।।४९।।

अन्वयः— हे पवित्र कीर्ते यः उत्तमश्लोकतमस्य ब्रह्मण्यदेवस्य कथां व्यनक्ति। अद्यहि वयं त्वयैव नाथेन मुकुन्दनाथाः।।४९।।

अनुवाद— हे महाराज आपका यशपवित्र है क्योंकि आप उदारकीर्ति वालों में सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणों के भक्त श्रीहरि की कथा का प्रचार करते हैं । हमारा यही परम सौभाग्य है कि आपको अपने स्वामी के रूप में प्राप्त करके हमलोग अपने को श्रीभगवान् के राज्य में मानते हैं ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

मुकुन्दनाथाः स्म । त्वन्नाथत्वमेव मुकुन्दनाथत्वे पर्यवसितमित्यर्थः । तत्र हेतुः-य इति ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

हमलोगों के स्वामी श्रीभगवान् ही हो गये है । आपका ही स्वामित्व भगवत् स्वामित्व के रूप में पर्यवसन्न हो गया है । उसका कारण **य उत्तमश्लोकतमस्य० इत्यादि** उत्तरार्द्ध के द्वारा बतलाया गया है ।।४९।।

नात्यद्भुतमिदं नाथ तवाजीव्यानुशासनम् । प्रजानुरागो महतां प्रकृतिः करुणात्मनाम् ।।५०।।

अन्वयः— हे नाथ ! तव इदं आजीव्यानुशासनम् अत्यद्भुतं न महताम् करुणात्मनाम् प्रजानुरागः प्रकृतिः ।।५०।।

अनुवाद— हे नाथ ! आपका अपने आश्रितों को इस प्रकार का श्रेष्ठ उपदेश देना कोई अत्यन्त आश्चर्य की बात नहीं हैं, करुणा सम्पन्न महापुरुषों का अपनी प्रजा के प्रति अनुराग तो स्वभाव ही होता है ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

आजीविनां सेवकानां आ सम्यगनुशासनम् । प्रजास्वनुरागः । प्रकृतिः स्वभावः ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

आजीविनाम् आनुशासनम् यह आजीव्यानुशासनम् का विग्रह है । अर्थात् अपने सेवकों को इस तरह का श्रेष्ठ उपदेश देना । प्रजानुरागः अर्थात् प्रजाओं के प्रति प्रेम । प्रकृतिः अर्थात् स्वभाव ।।५०।।

अद्य नस्तमसः पारस्त्वयोपासादितः प्रभो । भ्राम्यतां नष्टदृष्टीनां कर्मभिर्दैवसंज्ञितैः ।।५१।।

अन्वयः— हे प्रभो ! दैव संज्ञितैः कर्मभिः नष्ट दृष्टीनां भ्राम्यतांनः अद्य तमसः पारः त्वया उपासादितः ।।५१।।

अनुवाद— हे प्रभो ! दैव संज्ञक कर्मों के द्वारा, विवेक हीन हुए तथा संसार में भटकने वाले हमलोगों को आज आपने अज्ञानान्धकार के पार पहुँचा दिया है ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

उपासादितः प्रापितः । कर्मभिर्भ्राम्यताम् ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

उपासादितः पद का अर्थ है प्राप्त करा दिया है । **कर्मभिः भ्राम्यताम्** अर्थात् कर्माधीन होकर संसार में भटकने वालों को ।।५१।।

नमो विवृद्धसत्त्वाय पुरुषाय महीयसे । यो ब्रह्म क्षत्रमाविश्य बिभर्तीदं स्वतेजसा ।।५२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

अन्वयः— विवृद्धसत्त्वाय महीयसे पुरुषाय नमः । यः ब्रह्मक्षत्रम् आविश्य इदं स्वतेजासा विभर्ति ।।५२।।

अनुवाद— आपमें सत्त्वगुण विशेष रूप से समृद्ध हो गया है, ऐसे महान् पुरुष आपको नमस्कार है । जो आप ब्राह्मण जाति में आविष्ट होकर क्षत्रियों की और क्षत्रिय जाति में प्रविष्ट होकर ब्राह्मणों की तथा दोनों में प्रविष्ट होकर सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करते हैं ।।५२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत इक्कीसवें अध्याय का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

ईश्वरदृष्ट्या विप्रादयोऽपि प्रणमन्ति-नम इति । ब्रह्माविश्य ब्राह्मणजातिमधिष्ठाय क्षत्रं क्षत्रियं विभर्ति । क्षत्रं चाविश्य ब्रह्म विभर्ति । तदुभवं चाविश्येदं विश्वं विभर्ति ।।५२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

महाराज पृथु में परमात्म दृष्टि होने के कारण ब्रह्म आदि भी उनको प्रणाम करते हुए **नमः इत्यादि** श्लोक कहते हैं । ब्राह्मण जाति में प्रवेश करके क्षत्रियों की और क्षत्रिय जाति में प्रवेश करके ब्राह्मणों की और दोनों में प्रवेश करके सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करते हैं ।।५२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका के इक्कीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२१।।

बाइसवाँ अध्याय

महाराज पृथु को सनकादि का उपदेश

मैत्रेय उवाच

जनेषु प्रगृणत्स्वेवं पृथु पृथुलविक्रमम् । तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारः सूर्यवर्चसः ॥१॥

अन्वयः— पृथुलविक्रमम् पृथुम् एवं गृणत्सुजनेषु तत्र सूर्यवर्चसः चत्वारः मुनयः उपजग्मुः ॥१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— जिस समय परम पराक्रमी महाराज पृथु की प्रार्थना प्रजायें कर रही थी उसी समय वहाँ पर सूर्य के समान तेजस्वी चार मुनिगण आये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वाविंशे तु परं ज्ञानं पृथवे हरिशासनात् । सनत्कुमारो भगवानुपादिशदितीर्यते ॥१॥ मुनयः सनकादयः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि की आज्ञा से भगवान् सनत्कुमार ने महाराज पृथु को सवोत्तम ज्ञान का उपदेश दिया इस बात का वर्णन बाइसवें अध्याय में किया गया है । मुनयः पद से सनकादिकों को कहा गया है ॥१॥

तांस्तु सिद्धेश्वरान् राजा व्योम्नोऽवतरतोऽर्चिषा । लोकानपापान्कुर्वत्या सानुगोऽचष्ट लक्षितान् ॥२॥

अन्वयः— सानुगो राजा लक्षितान् तान् सिद्धेश्वरान् तु लोकान् अपापान् कुर्वन्त्या अर्चिषा व्योम्नः अवतरतः अचष्ट॥२॥

अनुवाद— अपने अनुचरों के साथ राजा ने दिखाई पड़ने वाले उन सिद्धेश्वरों को जगत् के निष्पाप बनाने वाली अपनी कान्ति से युक्त आकाश से उतरते हुए देखा ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अर्चिषा लक्षितान् सनकादय इति ज्ञापितान् । अचष्टापश्यत् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

कान्ति के द्वारा ही ये सनकादिक है इस तरह से ज्ञात, उन सबों को देखा ॥२॥

तद्दर्शनोद्गतान्प्राणान्प्रत्यादित्सुरिवोत्थितः । ससदस्यानुगो वैन्य इन्द्रियेशो गुणानिव ॥३॥

अन्वयः— इन्द्रियेशः गुणान् इव तददर्शनोद्गतान् प्राणान् प्रतयादित्सुः इव ससदस्यानुगो वैन्यः उत्थितः ॥३॥

अनुवाद— जिस तरह इन्द्रियों का स्वामी जीव जैसे विषयों की ओर दौड़ता है उसी तरह उन सिद्धेश्वरों को देखकर उत्कण्ठा वशात् ऊपर की ओर उठतेहुए प्राणों को मानो लौटाने के महाराज पृथु अपने सदस्यों और अनुचरों के साथ उठकर खड़े हो गये ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तेषां दर्शनेनोद्गतान्प्राणान्प्राप्तुमिच्छुरिव । अयं भावः- 'ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति । प्रतयुत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यते- इति स्मृते । प्राणास्तावत्तत्तेजसाक्षिप्तास्तान्प्रत्युद्गच्छन्ति, अतः स्वयमनुद्गच्छतः प्राणहानिः स्यादिति भयादिव ससंभ्रमं प्रत्युद्गमं चकारेति । सह सदस्यैरनुगैश्च वर्तमानः । इन्द्रियेशो जीवो गुणानान्धादीन्प्रति यथोद्गच्छतीत्यौत्सुक्ये दृष्टान्तः॥३॥

भाव प्रकाशिका

उन सिद्धेश्वरों के देखने से ऊपर की ओर उठते हुए प्राणों को प्राप्त करने के इच्छुक के समान् । यह **तददर्शनोद्गतान्प्राणान् प्रतयादित्सुखि** का अर्थ है । **अयंभावः** कहने का अभिप्राय है कि मनुस्मृतिकार ने कहा

है कि अपने से वृद्ध पुरुष के आने पर युवक पुरुष के प्राण ऊपर की ओर उठने लगते हैं। जब वह युवक उठकर उस वृद्ध को नमस्कार कर लेता है तो उसके प्राण पहले के ही समान स्थिर हो जाते हैं। महाराज ने सोचा कि उन सिद्धेश्वरों के तेज से प्राण उन लोगों के पास जा रहे हैं, यदि स्वयम् मैं उन लोगां के पास न जाऊँ तो प्राणों की हानि हो सकती है, मानो इसी भय से राजा उठकर खड़े हो गयें। उस सयम राजा सदस्यों और अनुचरों के साथ विद्यमान थे। इन्द्रिय शव्द से जीव को कहा गया है। जिस तरह से जीव गन्ध आदि विषयों के पास जाता है उसी तरह से उत्कण्ठावशात् प्राणों के उद्गमन का दृष्टान्त हैं ॥३॥

गौरवाद्यन्त्रितः सभ्यः प्रश्रयानतकन्धरः । विधिवत्पूजयांचक्रे गृहीताध्यर्हणासनान् ॥४॥

अन्वयः— गौरवाद्यन्त्रितः सभ्यः प्रश्रयानत कन्धरः गृहीताध्यर्हणासनान् विधिवत् पूजयां चक्रे ॥४॥

अनुवाद— उन मुनियों के गौरव से वशीकृत शिष्टाग्रगण्य राजा नम्रता के कारण अपनी गर्दन को झुकाये हुए अर्ध्य आदि पूजा को स्वीकार करके बैठे हुए उन लोगों की विधिपूर्वक पूजा की ॥४॥

भावार्थ दीपिका

यन्त्रितो वशीकृतः। गृहीतमध्यर्हणमर्ध्यमासनं च यैस्तान् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

मुनियों के गौरव से प्रभावित राजा ने अर्ध्य आदि से पूजन के बाद आसन पर बैठे हुए उन लोगों की सविधि पूजा की ॥४॥

तत्पादशौचसलिलैर्मार्जितालकबन्धनः । तत्र शीलवतां वृत्तमाचरन्मानयन्निव ॥५॥

अन्वयः— तत्पादशौचसलिलैः मार्जितालकबन्धनः तत्र शीलवतां वृत्तम् आचरन् मानयन्निव ॥५॥

अनुवाद— उन महर्षियों के चरणोंदक को अपने सिर पर छिड़ककर शिष्टजनों के आचरण का पालन तथा समादर करके मानों उन्होंने यह शिक्ष दी कि सभी सत्पुरुषों को ऐसा ही आचरण करना चाहिए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

मार्जितं क्षालितमलकबन्धनं यस्य। मानयन्निव स्वयं चचार ॥५॥

भाव प्रकाशिका

महाराज पृथु ने उन मुनियों के चरणोदक से अपने केशों को पोंछते हुए के समान शिष्ट पुरुषों के आचरण का मानो स्वयं पालन किया ॥५॥

हाटकासन आसीनान्स्वधिष्ण्येष्विव पावकान् । श्रद्धासंयमसंयुक्तः प्रीतः प्राह भवाग्रजान् ॥६॥

अन्वयः— स्वाधिष्ण्येषुपावकान् इव हाटकासने आसीनान् भवाग्रजान् श्रद्धा संयम संयुक्त प्रीतः सन् प्राह ॥६॥

अनुवाद— सुवर्ण के आसन पर बैठे हुए अपने आसनों पर विद्यमान अग्नि के समान अपने बड़े भाइयों से शङ्करजी ने श्रद्धा एवं संयम् पूर्वक कहा ॥६॥

भावार्थ दीपिका

भवस्याप्यग्रजत्वेन मान्यान् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

अपने-अपने स्थान पर अग्नियों के समान सुवर्ण के आसन पर बैठे हुए शङ्करजी के बड़े भाई उन ऋषियों से श्रद्धा एवं संयम पूर्वक राजा ने प्रेम पूर्वक कहा ॥६॥

पृथुरुवाच

अहो आचरितं किं मे मङ्गलं मङ्गलायनाः । यस्य वो दर्शनं ह्यासीद्दुर्दर्शानां च योगिभिः ॥७॥

अन्वयः— अहो मङ्गलायनाः किं मे मङ्गलमचरितम् यस्य मे योगिभिः च दुर्दशानां वः दर्शनम् आसीत् ॥७॥

पृथुजी ने कहा

अनुवाद— हे मङ्गलमूर्ति मुनीश्वरों मैंने ऐसा कौन सा पुण्य किया है जिसके कारण योगियों के लिए भी जिनका दर्शन कठिन है ऐसे आपलोगों का दर्शन मुझे मिला है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

प्रीतः प्राहेत्युक्तं तदेव प्रीतिपूर्वकं वचनमाह-अहो इति दशभिः । हे मङ्गलायनाः मङ्गलमयनं येषाम् । मया किं मङ्गलमाचरितम् । यस्य मे योगिभिरपि दुर्दर्शानां वो दर्शनमासीत् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

इससे पहले के श्लोक में कहा गया है कि महाराज मनु ने प्रसन्नता पूर्वक कहा उस प्रीति पूर्वक वचन का वर्णन इसमें दश श्लोकों से किया गया है । हे मङ्गलाश्रय मुनीश्वरों मैंने कौन सा पुण्य किया है कि मुझे आपलोगों का दर्शन प्राप्त हुआ ? आप लोगों का दर्शन तो योगियों के भी लिए दुर्लभ है ॥७॥

किं तस्य दुर्लभतरमिह लोके परत्र च । यस्य विप्राः प्रसीदन्ति शिवो विष्णुश्च सानुगः ॥८॥

अन्वयः— यस्य विप्राः सानुगः शिवः विष्णुः च प्रसीदन्ति तस्य इहलोके परत्र च किं दुर्लभतरम् ॥८॥

अनुवाद— जिस पर ब्राह्मण, अनुचरों सहित शिवजी या भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं उसके लिए इस लोक में अथवा परलोक में क्या दुर्लभ हैं ?॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

नैव लक्षयते लोको लोकान्पर्यटतोऽपि यान् । यथा सर्वदृशं सर्व आत्मानं येऽस्य हेतवः ॥९॥

अन्वयः— सर्व लोकान् पर्यटतः अपि यान् लोकः नैव लक्षयते यथा अस्य ये हेतवः सर्वदृशं आत्मानम् ॥९॥

अनुवाद— आपलोग सभी लोकों में पर्यटन करते रहते हैं फिर भी अनधिकारी मनुष्य आपलोगों का दर्शन नहीं कर पाते हैं । यह उसी तरह से है जैसे इस दृश्य प्रञ्च के कारणभूत महत् तत्व आदि सर्वसाक्षी आत्मा को नहीं देख पाते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

दुर्दर्शत्वमेवाह-नैवेति । सर्वदृशमात्मान यथा सर्वे दृश्या न लक्षयन्ते । येऽस्य विश्वस्य हेतवो महदादयो मन्वादयो वा। यद्वा कथंभूतान् । येऽस्य सर्वदृगात्मदर्शनस्य हेतवस्तान् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उन मुनीश्वरों के दुर्दशत्व का वर्णन करते हुए पृथु महाराज कहते हैं जिस तरह सर्वसाक्षी आत्मा को ये सभी दृश्य पदार्थ नहीं देख पाते हैं । जो इस विश्व के कारणभूत महदादि अथवा मनु आदि हैं वे भी अथवा कैसे आपलोगों का दर्शन मनुष्य नहीं कर पाते हैं । तो इसका उत्तर है कि जो आपलोग आत्मज्ञान के कारण हैं अर्थात् आत्मज्ञान प्रदान करने वाले हैं ॥९॥

अधना अपि ते धन्याः साधवो गृहमेधिनः । यद्गृहा ह्यर्हवर्याम्बुतृणभूमीश्वरावरा; ॥१०॥

अन्वयः— यद्गृहा हि साधवः अर्हवर्याम्बुतृण भूमीश्वरावराः ते अधना अपि गृहमेधिनःधन्याः ॥१०॥

अनुवाद— जिनके घरों में आप लोगों जैसे पुण्य पुरुष उनके जल, तृण, भूमि, गृहस्वामी अथवा सेवक आदि किसी भी पदार्थ को स्वीकार कर लेते हैं वे निर्धन भी गृहस्थ धन्य हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

येषां साधूनां गृहा अर्हाणां पूज्यानां वर्या वरणीयाः स्वीकारार्हा अम्ब्वादयो येषु तादृशाः । अम्बु च तृणं च भूमिश्च ईश्वरो गृहस्वामी चावरा भृत्यादयश्च ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

जिन साधु पुरुषों के गृह में पूज्य पुरुषों के लिए स्वीकार करने योग्य जल आदि हैं । अम्बुतृण भूमीश्वरावरा: का विग्रह है अम्बु च तृणं च, भमिश्च, ईश्वर: च अवरश्च ते अर्थात् जल, तृण, भूमि, गृहस्वामी अथवा भृत्यआदि कोई भी पदार्थ पूज्य पुरुषों के द्वारा स्वीकार करने योग्य हैं ॥१०॥

व्यालालयद्रुमा वै तेऽप्यरिक्ताखिलसंपदः । यद्गृहास्तीर्थपादीयपादतीर्थविवर्जिताः ॥११॥

अन्वयः— यद्गृहाः तीर्थपादीय पादतीर्थविवर्जिताः ते अरिक्ताखिलसंपदः अपिगृहाः व्यालालयद्रुमा वै ॥११॥

अनुवाद— जिन लोगों के घर में भगवद् भक्तों के चरणोदक के छीटे नहीं पड़ते हों वे सभी प्रकार की सम्पत्तियों से परिपूर्ण भी गृह ऐसे वृक्षों के समान हैं जिसमें सर्पों का निवास होता है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

व्यालानामालया द्रुमा एव ते । अरिक्ताः पूर्णा अखिलाः सम्पदो येषु तादृशा अपि यद्गृहा ये गृहास्तीर्थपादीया वैष्णवास्तेषां पादतीर्थेन विवर्जिताः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

वे गृह सर्पों के निवास स्थान भूत वृक्ष के ही समान है जो सभी प्रकार की सम्पत्तियों से परिपूर्ण हैं किन्तु वे गृह भगवद् भक्त वैष्णवों के चरणोदक से रहित हैं ॥११॥

स्वागतं वो द्विजश्रेष्ठा यद्व्रतानि मुमुक्षवः । चरन्ति श्रद्धया धीरा बाला एव बृहन्ति च ॥१२॥

अन्वयः— हे द्विजश्रेष्ठाः वः स्वागतम् यद्बाला एव मुमुक्षवः, धीराः बृहन्ति व्रतानि श्रद्धया चरन्ति ॥१२॥

अनुवाद— हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! आपलोगों का स्वागत है क्योंकि आपलोग तो बाल्यावस्था से मुमुक्षु पुरुषों के महान् व्रतों ब्रह्मचर्य आदि का धैर्य पूर्वक पालन करते हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

स्वागतं भद्रमागमनं जातम् । यद्यस्माद्बाला एव भवन्तो बृहन्ति व्रतानि चरन्ति । यद्वा येषां वो व्रतान्यन्ये बालाश्चरन्ति॥१२॥

भाव प्रकाशिका

आपलोगों के मङ्गलमय आगमन का स्वागत है । क्योंकि आपलोग तो बाल्यावस्था से ही मुमुक्षु पुरुषों के द्वारा महान् व्रतों का पालन करते हैं । अथवा आपलोगों के व्रत को दूसरे बालक पालन करते हैं ॥१२॥

कच्चिन्नः कुशलं नाथा इन्द्रियार्थार्थवेदिनाम् । व्यसनावाप एतस्मिन्पतितानां स्वकर्मभिः ॥१३॥

अन्वयः— हे नाथाः स्वकर्मभिः एतस्मिन् व्यसनावाप पतितानाम् इन्द्रियार्थार्थवेदिनाम् कच्चित् नः कुशलम् ॥१३॥

अनुवाद— हे स्वामियों, अपने कर्मों के परतन्त्र होकर इस दु:खमय संसार में पड़े हुए तथा इन्द्रियों के विषयों को ही पुरुषार्थ मानने वाले हमलोगों के भी इस संसार से उद्धार का कोई साधन है क्या ?॥१३॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्रियार्था विषयास्तानेवार्थं पुरुषार्थं ये विदन्ति तेषां नः व्यसनान्युप्यन्ते यस्मिंस्तस्मिन्संसारे ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्रियों के विषयभूत रूप, रस, गन्ध और स्पर्श को ही पुरुषार्थ मानने वाले तथा जहाँ केवल कष्ट ही बोए जाते हैं, ऐसे कष्टों के क्षेत्र स्वरूप इस संसार में पड़े हुए हमलोगों के भी उद्धार का कोई साधन है क्या ?।।१३।।

भवत्सु कुशलप्रश्न आत्मारामेषु नेष्यते । कुशलाकुशला यत्र न सन्ति मतिवृत्तयः ।।१४।।

अन्वयः— आत्मारामेषु भवत्सुकुशल प्रश्नः न ईष्यते यत्र कुशलाकुशलाः मतिवृत्तयः न सन्ति ।।१४।।

अनुवाद— आपलोग तो अपनी आत्मा में ही रमण करने वाले हैं अतएव आपलोगों से कुशल पूछना उचित नहीं प्रतीत होता है । आपलोगों में कुशल तथा अकुशल विषयिणी बुद्धि की वृत्ति है ही नहीं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

नन्वभ्यागतानां कुशलं पृच्छ्यते लोके, नत्वात्मनस्तत्राह-भवत्स्विति ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि आये हुए व्यक्ति का ही कुशल पूछना चाहिए न कि अपने कुशल के विषय में पूछना चाहिए । इसके उत्तर में महाराज पृथु भवत्सु इस श्लोक को कहते हैं ।।१४।।

तदहं कृतविश्रम्भः सुहृदो वस्तपस्विनाम् । सपृच्छे भव एतस्मिन्क्षेमः केनाञ्जसा भवेत् ।।१५।।

अन्वयः— तत् कृतविषम्भः अहं तपस्विनाम् सुहृदः वः पृच्छे एतस्मिन् भवे केन अञ्जसा क्षेमः भवेत् ।।१५।।

अनुवाद— अतएव आपलोगों में विश्वास करने वाला मैं, संसार जल से संतप्त जीवों के सुहृद आपलोगों से मैं पूछता हूँ कि इस संसार में किस साधन के द्वारा जीवों का कल्याण हो सकता हैं ?।।१५।।

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मात्कृतविश्वासः संस्तपस्विनां संतप्तानां सुहृदो वः युष्मान्पृच्छामि ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अतएव आपलोगों में विश्वास करने वाला मैं तपस्विनाम् अर्थात् संसाराग्नि से संतप्त जीवों के सुहृद आपलोगों से मैं पूछता हूँ संसार से पार होने का सुगम उपाय क्या हैं ?।।१५।।

व्यक्तमात्मवतामात्मा भगवानात्मभावनः । स्वानामनुग्रहायेमां सिद्धरूपी चरत्यजः ।।१६।।

अन्वयः— व्यक्तम् आत्मवतां आत्मा आत्म भावनः अजः सिद्धरूपीभगवान् इमां चरति ।।१६।।

अनुवाद— निश्चित रूप से धैर्य सम्पन्न पुरुषों में आत्मा रूप से प्रकाशित होने वाले और उपासकों के हृदय में अपने स्वरूप को प्रकट करने वाले अजन्मा भगवान् आप सिद्धों के रूप में इस पृथिवी पर संञ्चरण किया करते हैं ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

न खल्वन्यगोगितुल्या यूयं किंतु साक्षाद्भगवानेवेत्याह । व्यक्तं निश्चितमात्मवतां धीराणामात्मा तेष्वात्मत्वेन प्रकाशमानः। आत्मानं भावयति प्रकाशयतीति तथा । अजः श्रीनारायणः इमां पृथ्वीं चरति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

आपलोग दूसरे योगियों के समान नहीं है अपितु आपलोग साक्षात् भगवान है, इस बात को महाराज पृथु इस श्लोक में कहते हैं। निश्चित रूप से धीर पुरुषों की जो आत्मा इसमें आत्मा रूप से प्रकाशित होने वाले तथा उपासकों के हृदय में आत्मा रूप से अपने स्वरूप को प्रकट करने वाले तथा अजन्मा भगवान् नारायण ही आप सिद्धों का रूप धारण करके इस पृथिवी पर सञ्चरण किया करते हैं ॥१६॥

मैत्रेय उवाच

पृथोस्तत्सूक्तामाकर्ण्य सारं सुष्ठु मितं मधु । स्मयमान इव प्रीत्या कुमारः प्रत्युवाच ह ॥१७॥

अन्वयः— पृथोः तत्सूक्तम् आकर्ण्यं सार षुष्ठु मित मधुकुमारः स्मयमान इव प्रत्युवाच ॥१७॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— निश्चित रूप से महाराज पृथु के सारगर्भित, गम्भीर, परिमित और मधुर वचन सुनकर श्रीसनत् कुमार महर्षि प्रसन्नता पूर्वक मुस्कुराते हुए के समान उनसे कहने लगे ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

सूक्तं शोभनवचनम् । सारं न्याय्यम् । सुष्ठु गम्भीरार्थम् । मितमल्पाक्षरम् । मधु श्रोत्रप्रियम् । मुखप्रसत्त्या स्मयमान इव प्रतीयमानः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

सूक्तम् अर्थात् सुन्दर वचन, सारम् अर्थात् युक्ति युक्त, सुष्ठु अर्थात् अर्थ गाम्भीर्य से युक्त, मितम् अर्थात् कम अक्षरों वाले मधु अर्थात् सुनने में प्रिय लगने वाले मुख की प्रसन्नता के कारण मुस्कुराते हुए के समान प्रतीत होते हुए ॥१७॥

सनत्कुमार उवाच

साधु पृष्टं महाराज सर्वभूतहितात्मना । भवता विदुषा चापि साधूनां मतिरीदृशी ॥१८॥

अन्वयः— हे महाराज ! सर्वभूताहितात्मना विदुषा भवता साधु पृष्टम्, साधूनां चापि ईदृशी मति ॥१८॥

सनत्कुमार महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे महाराज ! सभी जीवों का कल्याण करने वाले विज्ञ पुरुष आपने ठीक ही कहा है कि साधु पुरुषों की बुद्धि इसी प्रकार की होती है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

विदुषा जानतापि । ईदृशी परार्थैकपरा ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

विदुषा अर्थात् सबकुछ जानने वाले भी आपने ठीक ही कहा है कि सज्जनों बुद्धि ईदृशी दूसरों का कल्याण करने में ही लगी रहने वाली होती हैं ॥१८॥

सङ्गमः खलु साधूनामुभयेषां च संमतः । यत्संभाषणसंप्रश्नः सर्वेषां वितनोति शम् ॥१९॥

अन्वयः— साधूनाम् सङ्गमः खलु उभयेषाम् च सम्मतः । यत् सम्भाषण संप्रश्नः सर्वेषां शं वितनोति ॥१९॥

अनुवाद— सत्पुरुषों का सङ्गम् श्रोता और वक्ता दोनों को ही अभिमत होता है क्योंकि उनका सम्भाषण और प्रश्न सबों का कल्याणकारी होता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

स्वयमपि पृथोः सङ्गममभिनन्दति–सङ्गम इति । उभयेषां वक्तॄणां श्रोतॄणां च । येषां संभाषणसहितः संप्रश्नः सर्वेषां शं सुखं विस्तारयति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

सङ्गमः खलु इत्यादि श्लोक के द्वारा महर्षि सनत्कुमार पृथु के सङ्गम की प्रशंसा करते हैं । **उभयेषाम्** अर्थात् श्रोत्राओं और वक्ताओं दोनों को सत्पुरुष का सम्भाषण और प्रश्न सबों के कल्याण का विस्तार करते हैं ॥१९॥

अस्त्येव राजन्भवतो मधुद्विषः पादारविन्दस्य गुणानुवादने ।
रतिर्दुरापा विधुनोति नैष्ठिकी कामं कषायं मलमन्तरात्मनः ॥२०॥

अन्वयः— राजन् भवतः मधुद्विषः पादारविन्दस्य गुणानुवादने दुरापा नौष्ठिकी रति अस्ति । या अन्तरात्मनः कषायं मलं कामं विधुनोति ॥२०॥

अनुवाद— राजन् ! आपकी भगवान् मधुसूदन के चरण कमल के गुणों का श्रवण करने में स्वाभाविक प्रेम हैं वह प्रेम दूसरों को बड़ी कठिनाई से प्राप्त होता है । वह अन्तरात्मा की वासना रूपी मल को पूर्ण रूप से विनष्ट कर देता हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं सङ्गमं प्रश्नं चाभिनन्द्यानुवादमुखेनैव मोक्षसाधनमुपदिशति–अस्त्येवेति । गुणानामनुवादने प्रश्नद्वारेणानुवादप्रवर्तने श्रवण इत्यर्थ; । आत्मनो मनसोऽन्तरन्तस्थं कामात्मकं मलं विधुनोति । कषायं धातुरागवदनिवर्त्यम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से सत्सङ्ग तथा प्रश्न की प्रशंसा करके उसका अनुवाद करते हुए उसको सङ्गम और प्रश्न को मोक्ष का साधन बतलाते हुए महर्षि सनत्कुमार **अस्त्येव० इत्यादि** श्लोक कंहते हैं । गुणानुवादने अर्थात् प्रश्न के द्वारा श्रीभगवान् के गुणों का प्रवर्तन करने अर्थात् श्रवण करने में आपकी नैष्ठिकी रति है । वह मन के भीतर विद्यमान वासना रूपी मल को उसी तरह से विनष्ट कर देती है जिस तरह खटाई धातु के मल को विनष्ट कर देती हैं ॥२०॥

शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणां क्षेमस्य सधयग्विमृशेषु हेतुः ।
असङ्ग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि दृढा रतिर्ब्रह्मणि निर्गुणे च या ॥२१॥

अन्वयः— सधयग्विमृशेषु शास्त्रेषु नृणां क्षेमस्य इयानेव सुनिश्चितः हेतुः आत्मव्यतिरिक्ते असङ्गः, आत्मनि निर्गुणे ब्रह्मणि दृढा च या रतिः ॥२१॥

अनुवाद— जीवों के कल्याण का अच्छी तरह से विचार करने वाले शास्त्रों में जीवों के कल्याण के दो साधनों को ही निश्चित किया गया है । आत्मा से भिन्न देह आदि के विषय में वैराग्य और आत्म स्वरूप निर्गुण ब्रह्म में सुदृढ प्रेम ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

चित्तशुद्धैव बहिर्वैराग्यमात्मरतिश्च भवति, नच ततोऽधिकं साधनमस्ति, शास्त्रेषु तयोरेव मोक्षहेतुत्वनिश्चयादित्याह–शास्त्रेष्विति । सध्र्यग्विमृशेषु सम्यग्विचारवत्सु शास्त्रेषु क्षेमस्य हतुरेतावानेव सुनिश्चितः कोऽसौ । आत्मव्यतिरिक्ते देहादावसङ्गो वैराग्यमात्मनि च दृढा रतिः प्रीतिः । आत्मनो विशेषणं निर्गुणे ब्रह्मणीति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

अन्त:करण की शुद्धि हो जाने पर ही आत्म व्यतिरिक्त विषयों में वैरागय और आत्म विषयक प्रेम होता है । उससे बढ़कर दूसरा कोई भी मुक्ति का साधन नहीं है, क्योंकि शास्त्रों में इन दोनों को ही मोक्ष के साधन रूपसे निश्चित किया गया है । इस बात को **शास्त्रेषु० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । सध्र्यग्विमृशेषु अच्छी तरह से विचार करने वाले शास्त्रों में कल्याण के साधन से इन्हीं दोनों को निश्चित किया गया है । वे दोनों साधन कौन है ? तो इसका उत्तर है कि आत्मा से भिन्न देह आदि में वैराग्य और आत्मा के विषय में सुदृढ प्रेम निगुण ब्रह्म यह आत्मा का विशेषण है ।।२१।।

सा श्रद्धया भगवद्धर्मचर्यया जिज्ञासयाध्यात्मिकयोगनिष्ठया ।
योगेश्वरोपासनया च नित्यं पुण्यश्रव: कथया पुण्य या च ।।२२।।
अर्थेन्द्रियारामसगोष्ठ्यतृष्णाया तत्संमतानामपरिग्रहेण च ।
विविक्तरुच्या परितोष आत्मन्विना हरेर्गुणपीयूषपानात् ।।२३।।
अहिंसया पारमहंस्यचर्यया स्मृत्या मुकुन्दाचरिताग्र्यसीधुना ।
यमैरकामैर्नियमैश्चाप्यनिन्दया निरीहया द्वन्द्वतितिक्षया च ।।२४।।
हरेर्मुहूस्तत्परकर्णपूरगुणाभिधानेन विजृम्भमाणया ।
भत्तया ह्यसङ्ग: सदसत्यनात्मनि स्यान्निर्गुणे ब्रह्मणि चाञ्जसा रति: ।।२५।।

अन्वय:— सा रति: श्रद्धया, भगवद्धर्मचर्यया, जिज्ञासया, आध्यात्मिकयोगनिष्ठया, योगेश्वरोपासनया नित्यं पुण्यश्रव पुण्यया कथयाच, अर्थेन्द्रियारामसगोष्ठ्यतृष्णया, तत्संमतानामपरिग्रहेण, विविक्तरूच्या, आत्मन्विना परितोष:, हरेगुणपीयूषपानात्, अहिंसया, पारमहंस्य चर्यया, स्मृत्या, मुकुन्दाचरिताग्र्यसीधुना, अकामै: यमै: नियमै: च, अनिन्दया अपि, निरीहया, द्वन्द्वतितिक्षया, हरेमुहुस्तत्पर कर्णपूरणागुणाभिधानेन, विजृम्भमाण्या भक्त्या सदसति अनात्मनि असङ्ग निर्गुणे ब्रह्मणि च अञ्जसा रति: स्यात् ।।२२-२५।।

अनुवाद— शास्त्र यह भी बतलाते हैं कि गुरु और शास्त्रों के वचनों में विश्वास करना रूप श्रद्धा के द्वारा, भागवत धर्म का अनुष्ठान (पालन) करने से, तत्त्वों के विषय में जिज्ञासा करने से, ज्ञानयोग में निष्ठा रखने से, योगेश्वर श्रीहरि की उपासना करने से, प्रतिदिन पुण्य कीर्ति श्रीभगवान् की कथा का श्रवण करने से,धन तथा इन्द्रियों भोगों में ही आसक्त रहने वाले लोगों की गोष्ठी में प्रेम नहीं रखने से, उन लोगों को प्रिय लगने वाले पदार्थों का आसक्ति पूर्वक संग्रह नहीं करने से, भगवद् गुणामृत का पान करने के अतिरिक्त समय में आत्मा में ही सन्तुष्ट रहते हुए एकान्त सेवन की रुचि के द्वारा किसी भी जीव को कष्ट नहीं देना रूप अहिंसा के द्वारा पारमहंस्य धर्म का पालन करने से, आत्मकल्याण के साधनों का चिन्तन करने से, श्रीभगवान् के पवित्र चरित्र रूप श्रेष्ठ अमृत का पान करने से, निष्काम भाव से यम नियमों का पालन करने से, किसी दूसरे मार्ग की निन्दा नहीं करने से, योग क्षेम के लिए प्रयास नहीं करने से, शीत-उष्ण द्वन्द्वों को सहन करने से, भक्तजनों के कानों को सुख देने वाले श्रीभगवान् के गुणों का बार-बार कीर्तन करने से, क्षण-क्षण बढ़ती हुई भक्ति की भावना से मनुष्य का कार्य कारण रूप सम्पूर्ण जड़ प्रपञ्च से वैराग्य हो जाता है और निर्गुण परब्रह्म में उसकी अनायास ही प्रीति हो जाती है ।।२२-२५।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेतदेवातिदुर्लभमित्याशङ्क्योत्तमाधिकारिण: श्रवणमात्रेण भवति, अन्यस्य तु चित्तशुद्ध्यनुसारेण साधनतारतम्यतो वर्धमानया भक्त्येत्यभिप्रेत्याह-सेति चतुर्भि: । सा ब्रह्मणि रतिरसङ्गश्च श्रद्धादिभि: स्यादिति चतुर्थेनान्वय; । जिज्ञासया

तत्तद्विशेषबुभुत्सया पुण्यं श्रवो यशो यस्य तस्य हरेः पुण्यया कथया च । अर्थारामा अर्थनिष्ठास्तामसाः, इन्द्रियारामा; कामनिष्ठा राजसास्तैः सह या गोष्ठी तस्यामतृष्णया । तेषां च ये संमता अर्थाः कामाश्च तेषामपरिग्रहेणानासक्तया । विविक्ते विजने या रुचिस्तया । सा चात्मन्येव परितोषे सति स्यात्किंतु हरेगुणपीयूषपानाद्विना । तस्मिन्सति विविक्ते रूचिर्न कार्या, न चात्मनि परितोषः कार्य इत्यर्थः । पारमहंस्यचर्यया उपशमादिप्रधानया वृत्त्या । स्मृत्यात्महितानुसंधानेन मुकुन्दाचरितमेवाग्र्यं सीधु श्रेष्ठममृतं तच्चरितस्मृतिसुखेनेत्यर्थः । मार्गान्तरस्यानिन्दया । निरीहया योगक्षेमार्थक्रियाराहित्येन । शीतोष्णादिद्वन्द्वसहनेन कथयेत्यत्रोक्तमपि कथनं भक्तावन्तरङ्गत्वेन पुनरुच्यते । तत्परा हरिभक्तास्तेषां कर्णपूराः कर्णालङ्कारभूता ये हरेर्गुणास्तेषामभिधानेन। सदसति कार्यकारणरूपे ।।२२-२५।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता हैकि इतना ही होना अत्यन्त दुर्लभ है इस प्रकार की आशङ्का करके कहते हैं कि उत्तमधिकारियों को तो केवल सुनने मात्र से ही मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है । और दूसरे प्रकार के जो अधिकारी हैं उन लोगों को चित्त की शुद्धि के अनुसार साधनों के तारतम्य से बढ़ने वाली भक्ति के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है इस अर्थ का प्रतिपादन महर्षि **सा श्रद्धया० इत्यादि** चार श्लोकों से कहते है । यहाँ सा शब्द के द्वारा परंब्रह्म में प्रेम और आत्म व्यतिरिक्त में अनासक्ति श्रद्धा आदि के द्वारा ही होता है । इस तरह से श्रद्धा आदि का चौथे श्लोक से अन्वय है । **जिज्ञासया** अर्थात् भिन्न-भिन्न तत्त्वों के विषय में ज्ञान की इच्छा से **पुण्यश्रवः पुण्यया कथया** अर्थात् पवित्र कीति श्रीहरि की पुण्यमयी कथा के श्रवण से, **अर्थारामेन्द्रियारामसगोष्ठ्यतृष्णया अर्थाराम** अर्थात् धन में ही निष्ठा रखने वाले तामसी लोगों तथा इन्द्रियाराम अर्थात् इन्द्रियों के भोगों में ही आसक्त रहने वाले राजसी प्रवृत्ति के लोगों की जो गोष्ठी उसमें किसी भी प्रकार की तृष्णा नहीं रखने से, **तत्संमतानामपरिग्रहेण च** उन दोनों प्रकार के लोगों के अभिप्रेत जो अर्थ और काम उनमें आसक्ति के नहीं रखने से **विविक्तरुच्या** एकान्त सेवन करने की अभिरुचि के द्वारा वह रूचि श्रीहरि के गुण रूपी अमृत का पान करने से बचे समय में और अपने आप में संतुष्ट रहने से ही होती है । श्रीहरि की कथा सुनने के समय में एकान्त सेवन में रुचि नहीं होनी चाहिए और न तो उस आत्म परितोष ही करना चाहिए । **पारमहंस्य चर्यया** अर्थात् निवृत्ति निष्ठा के द्वारा, **स्मृत्या** अर्थात् आत्म कल्याण के साधनों का अनुसंधान करने से, **मुकुन्दाचरितग्र्यसीधुना** श्रीभगवान् के आचरण रूपी श्रेष्ठ अमृत के स्मरण जन्य सुख के द्वारा **अनिन्दया** दूसरे मार्ग की निन्दा नहीं करने से, **निरीहया** अपने योग क्षेम के लिए प्रयासरत नहीं रहने से, **द्वन्द्वतितिक्षया** शीत उष्ण आदि द्वन्द्वों को सहने से, पहले कथा को साधन बतलाया जा चुका है, उसका पुनः कथन इसलिए किया गया है कि वह भक्ति का अन्तरङ्ग साधन है । **हरेर्मुहुस्तत्परकर्णपूरगुणाभिधानेन** श्रीहरि के भक्तों के कानों के अलङ्कार भूत जो श्रीहरि के गुण हैं, उन सबों का वर्णन करने से और कार्यकारण रूप आत्मव्यतिरिक्त वस्तुओं में अनासक्त रहने से आत्म स्वरूप निर्गुण ब्रह्म में अनयास ही प्रेम हो जाता है ।

यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमानाचार्यवान् ज्ञानविरागरंहसा ।
दहत्यवीर्यं हृदयं जीवकोशं पञ्चात्मकं योनिमिवोत्थितोऽग्निः ।।२६।।

अन्वयः— यदा ब्रह्मणि नैष्ठिकीरतिः पुमान् आचार्यवान् ज्ञानविरागरंहसा अवीर्यं पञ्चात्मकं जीवकोश हृदयं च उत्थितोग्निः योनि रिव दहति ।।२६।।

अनुवाद— जब निर्गुण ब्रह्म में नैष्ठिक प्रेम हो जाता है तो मनुष्य आचार्य के शरण में जाता है उसके पश्चात् ज्ञान तथा वैराग्य के प्रबल वेग के द्वारा वासना शून्य अविद्या आदि पाञ्च प्रकार के क्लेशों से युक्त अहङ्कार स्वरूप अपने लिङ्ग शरीर को उसी तरह भस्म कर देता है जिस तरह काष्ठ से उत्पन्न अग्नि अपने कारणभूत काष्ठ का जलाकर भस्म कर देती हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

भवत्वन्यत्रासङ्ग आत्मरतिश्च ततः किमत आह । यदा निष्ठां प्राप्ता रतिर्भवति तदाचार्यवान्सन् ज्ञानवैराग्ययोर्वेगेनावीर्यं निर्वासनं सज्जीवस्य कोशमावरकं हृदयं पुमान् दहति । कथंभूतम् । पञ्चमहाभूतप्रधानम् । यद्वा अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च तदात्मकम् । उत्थितः प्रज्वलितोऽग्निर्योनिमरणिमिव । यद्वा यदा रतिराचार्यानुग्रहश्च तदा ज्ञानविरागयोर्वेगेनोत्थितः साक्षात्कारोऽवीर्यं पुनः प्ररोहक्षमं यथा न भवत्येवं हृदयं दहति । शेषं समानम् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

आत्मव्यतिरिक्त वस्तुओं अनासक्ति और आत्मा में प्रेम हो जाने से क्या होगा ? तो इस पर महर्षि कहते हैं जब निष्ठा प्राप्त प्रेम आत्म स्वरूप ब्रह्म में होता है तब मनुष्य आचार्य की शरण लेता हैं । और आचार्योपदेश प्राप्त ज्ञान और वैराग्य के प्रबल वेग से वह निवीर्य (वासना रहित) जीव कोश को तथा उसके आवरक हृदय को मनुष्य भस्म कर देता है । यदि कहें कि कैसे कोश को तो उसका उत्तर है पञ्च महाभूत प्रधान जीव को अथवा अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश रूप पञ्च क्लेशों से युक्त जीव कोश लिङ्ग शरीर को भस्म कर देता है । यह उसी तरह होता है जैसे अरणि से निकली हुई अग्नि अपने कारण भूत अरणि को जलाकर भस्म कर देती है । **यद्वा इत्यादि** अथवा आत्मरति और आचार्यानुग्रह प्राप्त होता है तब ज्ञान और वैराग्य इन दोनों के वेग से उत्पन्न साक्षात्कार अवीर्यं वासना रहित हृदय पुनः उत्पन्न होने के योग्य न रहे इस प्रकार से हृदय को जला देता है ॥२६॥

दग्धाशयो मुक्तासमस्ततद्गुणो नैवात्मनो बहिरन्तर्विचष्टे ।
परात्मनोर्यद्व्यवधानं पुरस्तात्स्वप्ने यथा पुरुषस्तद्विनाशे ॥२७॥

अन्वयः— दग्धाशयः मुक्तसमस्त तद्गुणः यथा स्वप्ने तद् विनाशे पुरुषः नैवात्मनं बहिरन्तः विचष्टे यत् पुरस्तात् परात्मनोः व्यवधानम् ॥२७॥

अनुवाद— लिङ्ग शरीर का नाश हो जाने पर वह उसके (लिङ्ग शरीर के) कर्तृत्व आदि समस्त गुणों से मुक्त हो जाता है । उसके पश्चात् जिस तरह स्वप्नावस्था में दिखाई देने वाले तरह-तरह के पदार्थ जग जाने पर उनमें से कोई भी नहीं दिखता है उसी तरह वह पुरुष शरीर के बाहर दिखाई देने वाले घट-पट आदि और शरीर के भीतर अनुभूत होने वाले सुख-दुःख आदि को नहीं देखता है । इस स्थिति के प्राप्त होने से पहले के पदार्थ ही जीवात्मा और परमात्मा के बीच में रहकर उनका भेद कर रहे थे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह । दग्ध आशयो हृदयमुपाधिर्यस्य । अतएव मुक्ताः समस्तास्तद्गुणाः कर्तृत्वादयो येन आत्मनः सकाशाद्बहिर्घटाद्यन्तः सुखदुःखादिनैव विचष्टे न पश्यत्येव । कुत इत्यपेक्षायां द्रष्टृदृश्यप्रतीतेरन्तःकरणहेतुत्वादित्याह । परो दृश्यः आत्मा द्रष्टा तयोर्यद्व्यवधानं भेदकं पूर्वमासीत्तस्य विनाशे सति । यथा स्वप्ने राजाऽहमित्यारोपितं सैन्यादिद्रष्टारं दृश्यं सैन्यं च स्वप्नावस्थानाशे न पश्यति तद्वत् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि उससे क्या हुआ तो इस पर महर्षि ने कहा जिसका हृदय रूपी उपाधि दग्ध हो जाता है, वह शरीर के सभी कर्तृत्व आदि गुणों से मुक्त हो जाता है । उसके फलस्वरूप वह पुरुष बाहर के घटादि पदार्थों और शरीर के भीतर होने वाले सुखादि को नहीं देखता है । क्योंकि द्रष्टा और दृश्य की प्रतीति का कारण अन्तःकरण ही है । इस स्थिति में पहले दृश्य और द्रष्टा आत्मा दोनों के बीच में रहकर भेद की प्रतीति कराता है । उसका

विनाश हो जाने पर जिस तरह कोई स्वप्न में अपने को राजा रूप से द्रष्टा बनकर दृश्य अपने सेना आदि को देखता है किन्तु जगने पर वह उन सबों को नहीं देखता है उसी तरह वह दृश्य प्रपञ्च को नहीं देखता है ॥२७॥

आत्मानमिन्द्रियार्थं च परं यदुभयोरपि । सत्याशय उपाधौ वै पुमान्पश्यति नान्यदा ॥२८॥

अन्वयः— अशये उपाधौ सति पुमान् आत्मानम् इन्द्रियार्थं च उभयो अपि यत् परं पश्यति नान्यदा ॥२८॥

अनुवाद— जब तक अन्त:करण रूपी उपाधि रहती हैं तब तक ही पुरुष को जीवात्मा इन्द्रियों के विषय और इन दोनों का सम्बन्ध कराने वाले अहङ्कार का अनुभव होता है उसके पश्चात् नहीं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

द्रष्टृदश्यभेदप्रतीतेरन्तः करणहेतुत्वमन्वयव्यतिरेकाभ्यामुपपादयति- आत्मानमिति । आत्मानं द्रष्टारमिन्द्रियार्थं दृश्यमुभयोस्तयोः परं संबन्धहेतुमहंकारं चाशयेऽन्तःकरणे सत्येव जाग्रत्स्वप्रयोः पश्यत्यन्यदा सुषुप्तौ न, तदुक्तम् 'दृश्यानुरञ्जितं द्रष्टृ दृश्यं द्रष्ट्रनुरञ्जितम् । अहंकृत्योभयं रक्तं तन्नाशेऽद्वैततात्मनः ।' इति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

द्रष्टृ और दृश्य के भेद की प्रतीति का कारण अन्त:करण ही है, इस अर्थ का प्रतिपादन अन्वय और व्यतिरेक के द्वारा **आत्मानम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा करते हैं । द्रष्टा आत्मा दृश्य इन्द्रियों के विषय, उन दोनों के सम्बन्ध का कारण भूत अहङ्कार की प्रतीति अन्त:करण के रहने पर जाग्रदावस्था और स्वप्नावस्था में होती है, उससे भिन्न सुषुप्तावस्था में नही होती है । कहा भी गया है दृश्यानुरञ्जितम्० इत्यादि दृश्य के अनुसारञ्जित द्रष्टा है और द्रष्टा से अनुरञ्जित दृश्य अहङ्कार उन दोनों से संबद्ध होता है । उसका नाश हो जाने पर आत्मा का अभेद हो जाता है ॥२८॥

निमित्ते सति सर्वत्र जलादावपि पूरुषः । आत्मनश्च परस्यापि भिदां पश्यति नान्यदा ॥२९॥

अन्वयः— पुरुष निमित्ते सति सर्वत्र जलादौ अपि आत्मनः च परस्यापि भिदां पश्यति अन्यदान ॥२९॥

अनुवाद— पुरुष जल, दर्पण आदि निमित्त के रहने पर ही बिम्बरूप आत्मा और प्रतिबिम्ब रूप दृश्य पदार्थों के भेद को देखता है अन्य समय में नहीं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

एकस्मिन्नात्मनि दृश्यादिभेदप्रतीतिरौपाधिकीति दृष्टान्तेन स्पष्टयति-निमित्त इति । लोकेऽपि च सर्वत्र जलदर्पणादौ भेदनिमित्ते सत्येवात्मनो बिम्बभूतस्य परस्य प्रतिबिम्बस्य च भेदं पश्यति, नतु जलाद्यभावे ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

आत्मा एक है उसमें होने वाली दृश्य पदार्थों की प्रतीति उपाधि के कारण होती है इस अर्थ को दृष्टान्त के द्वारा स्पष्ट **निमित्ते० इत्यादि** श्लोक के द्वारा करते हैं । लोक में भी देखा जाता है कि जल दर्पण आदि कारणों के रहने पर बिम्बभूत आत्मा और प्रतिबिम्भभूत दृश्य पदार्थों की प्रतीति होती है । जल आदि के अभाव में बिम्ब और प्रतिबिम्ब की प्रतीति नहीं होती है ॥२९॥

इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः । चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्बस्तोयमिव ह्रदात् ॥३०॥

अन्वयः— ध्यायतां विषयाकृष्टैः इन्द्रियैः आक्षिप्तं मनः बुद्धेः चेतनां स्तम्बतोयाम् ह्रादात् इव ॥३०॥

अनुवाद— विषयों के ही चिन्तन में लगे रहने वाले लोगों की इन्द्रियाँ विषयों में ही फँस जाती हैं और वे मन को भी अपनी ओर उसी तरह खींच लेती है जिस तरह जलाशय में जमें हुए तृण अपनी जड़ से जलाशय के जल को खीचते हैं उसी तरह इन्द्रियासक्त मन बुद्धि की विचार शक्ति को हर लेता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं चतुर्भिरसङ्गात्मरत्योर्मोक्षहेतुत्वमुक्तं, इदानीमनात्मरतेः संसारहेतुत्वमाह–इन्द्रियैरिति चतुर्भिः । ध्यायतां गुणारोपेण स्मरतां पुंसामिन्द्रियाणि स्मृतैर्विषयैराकृष्यन्ते । तैश्च मन आकृष्यते विषयासक्तिं प्राप्यते । तच्च बुद्धेः सकाशात्तद्धर्मं चेतनां विचारसामर्थ्यं हरति । एतच्चाविवेकिना न लक्ष्यत इति दृष्टान्तेनाह । तीरजः कुशादिस्तम्बो यथा मूलैस्तोयं ह्रदादपहरति तद्वत्।।३०।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से चार श्लोकों द्वारा यह बतलाया गया है कि अनासक्ति तथा आत्मरति के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है अब **इन्द्रियैः इत्यादि** चार श्लोकों द्वारा यह बतलाते हैं कि आत्म व्यतिरिक्त विषयों में आसक्ति होने पर संसार की प्राप्ति होती है । विषयों में गुणों का आरोप करके विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुषों की इन्द्रियों को स्मरण किए जाने वाले विषय अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं । विषयाकृष्ट इन्द्रियाँ मन को अपनी ओर आकृष्ट करके उसको विषयासक्त बना देती हैं । वह विषयासक्त मन बुद्धि की विचार शक्ति का हरण कर लेता है । इस बात का पता अविवेकी मनुष्यों को नहीं लगता है । इस बात को दृष्टान्तोपन्यास के द्वारा बतलाते हैं । जिस तरह से जलाशय के तट पर उत्पन्न कुश आदि घास अपनी जड़ों से जलाशय के जलको खींचते रहते हैं उसी तरह।।३०।।

भ्रश्यत्यनुस्मृतिश्चित्तं ज्ञानभ्रंशः स्मृतिक्षये । तद्रोधं कवयः प्राहुरात्मापह्नवमात्मनः ।।३१।।

अन्वयः— चित्तम् अनुस्मृतिः स्मृतिः भ्रश्यति, स्मृतिक्षये ज्ञानभ्रंशः कवयः तद्रोधं आत्मनः आत्मापह्नवं प्राहुः ।।३१।।

अनुवाद— विचारशक्ति के नष्ट हो जाने पर उसके पश्चात् पूर्वापर की स्मृति नष्ट हो जाती हैं, स्मृति का नाश होने पर ज्ञान का नाश हो जाता है, इस ज्ञान के नाश को ही पण्डितजन अपने ही अपना नाश करना कहते हैं ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

चित्तं चेतनामनु तस्यामपहृतायां स्मृतिः पूर्वापरानुसन्धानं भ्रश्यति । एवं तद्रोधं ज्ञानभ्रंशमात्मन एव हेतोरात्मनोऽपह्नवं नाशं प्राहुः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

विचार शक्ति के नष्ट हो जाने पर उसके पश्चात् पूर्वापर की स्मृति नष्ट हो जाती है । स्मृति का नाश हो जाने पर ज्ञान का नाश हो जाता है । ज्ञान के नाश को ही पण्डित जनों ने आत्मनाश कहा है ।।३१।।

नातः परतरो लोके पुंसः स्वार्थव्यतिक्रमः । यदध्यन्यस्य प्रेयस्त्वमात्मनः स्वव्यतिक्रमात् ।।३२।।

अन्वयः— यदधि आत्मनः प्रेमस्त्वम् आत्मनः स्वार्थव्यतिक्रमः पुंसः लोके अतः परतरः स्वार्थव्यतिक्रमः न ।।३२।।

अनुवाद— जिस आत्मा के ही उद्देश्य से अन्य वस्तुएँ प्रिय प्रतीत होती हैं उस आत्मा का अपने ही द्वारा जो नाश होता है, उसे बढकर संसारी जीव की कोई दूसरी हानि नहीं हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

एवंभूतो नाशो भवतु, ततश्च किमित्यत आह । यदधि यमधिकृत्यान्यस्य विषयस्य प्रियतमत्वम् । 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति' इति श्रुतेः । तस्यात्मनः स्वेनैव यो व्यतिक्रमोऽपह्नवस्तस्माद्यः स्वार्थनाशोऽतः परतरः स्वार्थनाशो नास्ति।।३२।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि इस प्रकार का नाश हो जाने से क्या हुआ ? तो इस पर महर्षि सनत्कुमार ने कहा जिस आत्मा को ही लेकर दूसरी वस्तुएँ प्रिय प्रतीत होती है श्रुति भी कहती है आत्मा के ही लिए सभी वस्तुएँ प्रिय होती हैं । उस आत्मा का अपने से ही नाश का होना इससे बढ़कर जीव का इस लोक में कोई भी दूसरी हानि नहीं हैं ।।३२।।

अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम् । भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम् ॥३३॥

अन्वयः— अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं नृणाम् सर्वार्थपह्नवः येन ज्ञानविज्ञानात् भ्रंशितः मुख्यताम् विशति ॥३३॥

अनुवाद— धन तथा विषयों का चिन्तन करना मनुष्यों के सभी पुरुषार्थों का नाश करने वाला है । उनकी चिन्ता करने वाला मनुष्य ज्ञान और विज्ञान से भ्रष्ट होकर स्थावर योनियों में प्रवेश कर जाता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

कुत इत्यत आह । अर्थस्याभिध्यानमिन्द्रियस्यार्थः कामस्तस्याभिध्यानं सर्वार्थनाशः । ज्ञानं विज्ञानं च परोक्षापरोक्षम्। येन ध्यानेन मुख्यतां स्थावरताम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि कैसे इससे बढ़कर दूसरी हानि नहीं है ? इसका उत्तर है कि धन और इन्द्रियों के विषय काम का चिन्तन करना सभी पुरुषार्थों का नाश ही है । इन सबों के ही चिन्तन से जीव स्थावर योनियों में चला जाता है ॥३३॥

न कुर्यात्कर्हिचित्सङ्गं तमस्तीव्रं तितीरिषुः । धर्मार्थकाममोक्षाणां यदत्यन्तविघातकम् ॥३४॥

अन्वयः— तीव्रं तमः तितीरिषुः कर्हिचित् सङ्गं न कुर्यात् यत् धर्मार्थकाममोक्षणाम् अत्यन्तविधातकम् ॥३४॥

अनुवाद— घोर अन्धकार स्वरूप संसार से पार होना चाहने वाले पुरुष को चाहिए कि वह इन धन और विषयों में आसक्त न हो, क्योंकि यह धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इन चारों का सबसे बड़ा बाधक है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

अनात्मरतेरनर्थहेतुत्वमुक्तं सङ्गस्याप्याह-नेति । यद्वस्तु धर्मादीनां विघातकं तस्मिन्सङ्गम् । तमः संसारम् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

आत्मव्यतिरिक्त वस्तुओं में होने वाले सारे प्रेम को अनर्थ का कारण कहा जा चुका है, उसमें होने वाली आसक्ति को भी धर्मादि का विघातक इस श्लोक में कहा गया है ॥३४॥

तत्रापि मोक्ष एवार्थ आत्यन्तिकतयेष्यते । त्रैवर्ग्योऽर्थो यतो नित्यं कृतान्तभयसंयुतः ॥३५॥

अन्वयः— तत्रापि मोक्ष एवं आत्यन्तिकतया अर्थ ईष्यते । यतः त्रैवर्ग्योऽर्थ नित्यं कृतान्तभय संयुतः ॥३५॥

अनुवाद— उन चारो पुरुषार्थों में मोक्ष ही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ माना जाता है । क्योंकि त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) तो सदा यमराज के भय से युक्त होता है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

तुल्यवन्निर्देशात्पुरुषार्थसाम्यभ्रान्तिं वारयति-तत्रापीति । कृतान्तः कालः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

पिछले श्लोक में **धर्मार्थ काम मोक्षाणाम्** इस पद के द्वारा चारो पुरुषार्थों का समान रूप से निर्देश किए जाने के कारण सभी पुरुषार्थों के एक समान होने का भ्रम हो सकती है । उस भ्रम को दूर **तत्रापि० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया गया है । कृतान्त शब्द काल का वाचक है ॥३५॥

परेऽवरे च ये भावा गुणव्यतिकरादनु । न तेषां विद्यते क्षेममीशविध्वंसिताशिषाम् ॥३६॥

अन्वयः— गुणव्यतिकरादनु परे अवरे च ये भावाः ईश विध्वंसितासिषाम् तेषाम् क्षेमम् न विद्यते ॥३६॥

अनुवाद— प्रकृति में गुण क्षोभ होने के बाद छोटे बड़े जितने भी भाव पदार्थ हैं, उनमें रहने वाला कोई भी ऐसा नहीं है जो कुशल पूर्वक रह सके क्योंकि उन सबों को काल ने विध्वस्त कर दिया ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

भयसंयुतत्वमेवाह । परे ब्रह्मादयोऽवरेऽस्मदादयो गुणक्षोभादनु पश्चाद्भवन्ति । ईश: कालस्तेन विध्वंसिता आशिषो येषाम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भय युक्तत्व का ही प्रतिपादन करते हुए कहते हैं— बड़े जो ब्रह्मा आदि हैं और छोटे जो हमलोग संसारी जीव हैं प्रकृति में होने वाले क्षोभ के पश्चात् होने वाला कोई भी ऐसा नहीं है जो कुशल पूर्वक रहे। क्योंकि काल ने उन सबों की कुशलता को विध्वस्त कर दिया है ।।३६।।

तत्त्वं नरेन्द्र जगतामथ तस्थुषां च देहेन्द्रियासुधिषणात्मभिरावृतानाम् ।
यः क्षेत्रवित्तपतया हृदि विष्वगाविः प्रत्यक्चकास्ति भगवांस्तमवेहि सोऽस्मि ।।३७।।

अन्वयः— नरेन्द्र यः भगवान् देहेन्द्रियासुधिषणात्मभिरावृतानाम् जगताम् अथ तस्थुषां च हृदि क्षेत्रवित्तपतया विष्वक् आविः प्रत्यक् चकास्ति तमेव सोऽस्मि अवेहि ।।३७।।

अनुवाद— हे राजन् ! जो भगवान् देह, इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि और अहङ्कार से आवृत समस्त जङ्गम और स्थावर प्राणियों के हृदय में सर्वत्र साक्षात् जीव के नियामक अन्तर्यामी रूप से प्रकाशित हो रहे हैं उन्हें तुम **'वह मैं ही'** हूँ इस से जानो ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

यस्मादनात्मरतिरनर्थहेतुस्तत्तस्माज्जगतां जङ्गमानां तस्थुषां स्थावराणां च देहादिभरात्मनाहंकारेण चावृतानां हृदि यश्चकास्ति प्रकाशते तमेवहि । कथम् । सोऽस्मीति । सोऽस्तीति पाठे स एवैकोऽस्ति ततोऽन्यदसदित्यर्थः । ननु जीवो हृदि चकास्ति नान्यस्तत्राह। क्षेत्रविदं जीवं तपति नियमयतीति क्षेत्रवित्तपस्तस्य भावस्तत्ता तयान्तर्यामिरूपेण । यद्वा क्षेत्रवित्ते अहंममतास्पदे पातीति क्षेत्रवित्तपस्तेन रूपेण। जीवस्तु पारतन्त्र्यान्न पाति । ननु कर्म जीवं नियच्छति, न, आविः प्रत्यक्षः तर्हि बुद्धिः, न प्रत्यक्प्रतिलोंम चकास्ति । बुद्धिस्तु पराग्विषयाकारेण । तर्ह्यहंकारः, न विष्वग्व्याप्तत्वेन । स तु परिच्छिन्नः, एवंभूतो यो भगवांस्तमवेहीति ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

चूकि आत्मव्यतिरिक्त पदार्थों में होने वाला प्रेम अनर्थ का कारण है इसीलिए जगताम् (जङ्गम्) और तस्थुषाम् (स्थवर) प्राणियों के जो देह आदि और आत्मा (अहङ्कार) से आवृत (आच्छन्न) हैं उनके हृदय में जो परमात्मा प्रकाशित होते हैं उनको तुम जानो । कैसे जानो तो इस पर कहते हैं, **सोऽस्मि** अर्थात् मैं वही हूँ इस रूप से जानो। जहाँ **सोऽस्ति** यह पाठ है वहाँ अर्थ होगा केवल वे ही है उनसे भिन्न सब मिथ्या है । **ननु० इत्यादि** यदि कहें कि हृदय में जीव प्रकाशित होता है दूसरा कोई नहीं तो इस पर कहते हैं— क्षेत्रवित्तस्तस्य जीव के नियामक अन्तर्यामी रूप से जो प्रकाशित होता है । 'क्षेत्रविदं जीवं तपति नियमयतीति क्षेत्रवित्तपः तस्य भावस्तत्ता क्षेत्रवित्तपता तया क्षेत्र वित्तपतया' यह क्षेत्र वित्तपतया की व्युत्पत्ति है । अथवा क्षेत्र वित्ते अहंममतास्पदे पातीति क्षेत्रवित्तपः तेन रूपेण क्षेत्रवित्तपतया अर्थात अहङ्कार और ममकार के विषय भूत शरीर और सम्पत्ति के नियामक रूप से यह क्षेत्रवित्तपतया की व्युत्पत्ति है । जीव तो परतन्त्र है अतएव वह शरीर और सम्पत्ति का नियामक नहीं हो सकता है । यदि कहें कि कर्म ही जीव का नियामक है तो ऐसी बात नहीं है, आविः अर्थात् जो प्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र प्रकाशित होता है । यदि कहें कि वह बुद्धि हो सकती है, तो वह भी नहीं हो सकती है क्योंकि बुद्धि तो पराक् (जड़) होने के कारण विषय रूप से प्रकाशित होती है । यदि कहें कि वह अहङ्कार हो सकता है तो वह भी नहीं हो सकता है, क्योंकि अहङ्कार तो सीमित है और हृदय में प्रकाशित होने वाले परमात्मा सर्वत्र व्यापक रूप से प्रकाशित होते हैं । इस प्रकार के जो परमात्मात्मा हैं उनको ही तुम **'मैं हू वही हूँ'** इस रूप से जाने ।।३७।।

यस्मिन्निदं सदसदात्मतया विभाति माया विवेकविधुति स्त्रजि वाऽहिबुद्धिः ।
तं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्धतत्त्वं प्रत्यूढकर्मकलिलप्रकृतिं प्रपद्ये ।।३८।।

अन्वयः— यस्मिन् इदं सदसदात्मतया विवेक विधुतिः माया विभति वा स्त्रजि विवेक विधुति अहिबुद्धिः विभाति नित्य मुक्तपरिशुद्ध विबुद्ध तत्त्वं प्रत्यूढकर्मकलिलं तं प्रपद्ये ।।३८।।

अनुवाद— जिन परंब्रह्म में यह सम्पूर्ण मायामय जगत् कार्य कारण रूप से प्रतीत होता है और विवेक हो जाने पर यह उसी तरह विनष्ट हो जाता है जिस तरह माला में होने वाली सर्प बुद्धि माला का ज्ञान हो जाने पर विनष्ट हो जाती है उन नित्य मुक्त निर्मल तथा ज्ञानस्वरूप परमात्मा जो स्वयं कर्मफल से कलुषित प्रकृति से परे हैं, उनकी मैं शरणागति करता हूँ ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

स्थावरजङ्गमादीनां हृदि चकास्तीत्युक्ते तेषां सत्त्वं तत्संबन्धादीश्वरस्य मालिन्यं च प्रसक्तं निराकुर्वन्नुद्रिक्तमत्तया तं प्राणमति । यस्मिन्निदं विश्वं सदसदात्मतयोत्कृष्टनिकृष्टभावेन कार्यकारणभावेन वा मायैव विभाति तं प्रपद्ये । मायात्वे हेतुः विवेकेन विधुतिर्निराकृतिर्यस्य तत् । स्त्रजि वेति वाशब्दो दृष्टान्ते । नित्यमुक्तम् । यतः परिशुद्धम् । तत्कुतः । विबुद्धं तत्त्वं सत्यमत एव प्रत्यूढाऽभिभूता कर्मभिः कलिला मलिना प्रकृतिर्येन तम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा के स्थवरों एवं जङ्गमों के हृदय में प्रकाशित होने वाला कहने पर उन सबों की सत्ता और उन सबों के सम्बन्ध से परमात्मा में मालिन्य के प्रसङ्ग को निराकृत करते हुए भक्ति के उद्रिक्त हो जाने के कारण परमात्मा को इस श्लोक में प्रणाम करते हैं । जिस परमात्मा में यह सम्पूर्ण जगत् सदसदात्मक रूप से अर्थात् उत्कृष्ट निकृष्ट रूप से अथवा कार्य कारण रूप से माया ही प्रतीत होती है उन परमात्मा की मै शरणागति करता हूँ । जगत् के मायात्व का कारण यह है कि यह विवेक के द्वारा विनष्ट हो जाता है । **स्त्रजि वेति** में वा शब्द दृष्टान्त के रूप में प्रयुक्त है । वे परमात्मा नित्य मुक्त होने के कारण निर्मल है, यदि कहें कि वह कैसे तो इसका उत्तर है कि वे ज्ञान स्वरूप हैं । इसीलिए उन्होंने कर्म कलुषित प्रकृति को अभिभूत कर दिया है ।।३८।।

यत्पादपङ्कजपलाशविलासभक्त्या कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः ।
तद्वन्नरिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्धस्त्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम् ।।३९।।

अन्वयः— सन्तः यत्पादपङ्कज पलाशविलास भक्त्या ग्रथितं कर्माशयं, उद् ग्रथयन्ति, तद्वत् रुद्धस्त्रोतोगणाः रिक्तमतयः यतयोऽपिन तम अरणं वासुदेवं भज ।।३९।।

अनुवाद— सन्त महात्मागण जिन श्रीभगवान् के चरण कमल के अङ्गलि रूप दल की फैलने वाली प्रभा में होने वाली भक्ति के द्वारा कर्मों से ग्रथित अहङ्कार रूपी ग्रन्थि को इस प्रकार से विदीर्ण कर डालते हैं कि उनके समान समस्त इन्द्रियों का प्रत्याहरण करके अपने अन्तःकरण को निर्विषय बनाने वाले संन्यासी गण भी वैसा नहीं कर पाते हैं । सबों के आश्रय उन्हीं परमात्मा का तुम भजन करो ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

तमवेहीति ज्ञानमुपदिष्टं तस्य दुष्करत्वेन भक्तिमुपदिशति द्वाभ्याम् । यस्य पादपङ्कजयोः पलाशान्यङ्गुलयस्तेषां विलासः कान्तिस्तस्य भत्तया स्मृत्या कर्माशयमहङ्काररूपं हृदयग्रन्थिम् । कर्मभिरेव ग्रथितम् । रिक्ता निर्विषया मतिर्येषाम् । रुद्धः प्रत्याहृतः स्त्रोतोगण इन्द्रियवर्गो यैः । अरणं शरणम् ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि यह उपदेश दे चुके हैं कि उन्हीं परमात्मा को तुम जानो किन्तु उस ज्ञान का होना कठिन है अतएव दो श्लोकों से वे भक्ति का उपदेश देते हैं । जिनके चरण कमल के पलाश रूपी अङ्गुलियों के विलास अर्थात् कान्ति की स्मृति रूप भक्ति के द्वारा कर्मों के द्वारा ग्रथित अहङ्कार रूप ग्रन्थि को छिन्न भिन्न ऐसा कर देते हैं कि उस प्रकार से अपने इन्द्रियों के प्रत्याहार के द्वारा अपनी बुद्धि को निर्विषय बनाने वाले यतिगण भी उस प्रकार से उसको नहीं विदीर्ण कर पाते हैं, उन सम्पूर्ण जगत् के शरण भगवान् वासुदेव का तुम भजन करो ।।३९।।

कृच्छ्रो महानिह भवार्णवमपल्वेशां षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीरषन्ति ।
तत्त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं कृत्वोडुपं व्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम् ।।४०।।

अन्वयः— षडवर्गनक्रम भवार्णवम् असुखेन तितीरषन्ति अप्लवेशां इह महान् कृच्छ्रः तत् त्वं हरेः भगवतः भजनीयम् अङ्घ्रिं उडुपं कृत्वा दुस्तरार्णम् व्यसनं उत्तर ।।४०।।

अनुवाद— मन और इन्द्रियँ रूपी मगर से भरे हुए इस संसार सागर के कष्टमय योगादि दुष्कर साधनों से पार करना चाहते हैं उनको उसे पार करना अत्यन्त कठिन है अतएव तुम भगवान् श्रीहरि के सेवनीय चरणों को ही नौका बनाकर इस दुस्तर सागर को पार कर लो ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

'ननु ब्रह्मविदाप्राति परं' इति श्रुतेः । कथं यतयो नोद्ग्रथयन्तीत्युच्यते तत्राह- कृच्छ्र इति । अप्लवेशां न प्लवस्तरणहेतुरीट् ईशो येषां तेषां महानिह तरणे कृच्छ्र क्लेशः । ते ह्यसुखेन योगादिनेन्द्रियषड्वर्गग्राहं भवार्णवं तितीर्षन्ति । तत्तस्मात् । उडुपं प्लवम् । दुस्तरार्णवमित्यर्थः । अर्णशब्दे वकाराभाव आर्षः यद्वा दुस्तरोदकरूपं व्यसनमित्यर्थः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि ब्रह्मविदाप्नोति परम् यह श्रुति कहती है कि ब्रह्मवेत्ता पुरुष मुक्ति को प्राप्त कर लेता है अतएव यह कैसे कहा जा सकता है कि यतिजन भी अहङ्कार रूपी ग्रन्थि के नहीं उद्ग्रथित कर पाते हैं तो इस पर कृच्छ्र इत्यादि श्लोक को कहते हैं । जिन सबों को पार करने में नौकाएँ समर्थ नहीं हैं, उन योगादि साधनों को पार करने में महान् कष्ट होता है । वे योगिजन दुःखद योगादि साधनों के द्वारा मन तथा इन्द्रिय रूपी मगरों से भरे संसार-सागर को पार करना चाहते हैं, उनको इसे पार करना बहुत कठिन है । अतएव तुम भगवान् श्रीहरि के भजनीय चरण कमल रूपी नौका के द्वारा इस दुस्तर जल रूपी संसार सागर को पार कर लो । अर्ण शब्द में वकार का लोप छान्दस है ।।४०।।

मैत्रेय उवाच

स एव ब्रह्मपुत्रेण कुमारेणात्ममेधसा । दर्शितात्मगतिः सम्यक्प्रशस्योवाच तं नृपः ।।४१।।

अन्वयः— एवं आत्ममेधसा ब्रह्मपुत्रेण कुमारेण दर्शितात्मगति : सः नृपः तं सम्यक्प्रशस्य उवाच ।।४१।।

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से आत्मज्ञानी, ब्रह्माजी के पुत्र महर्षि सनत्कुमार के द्वारा आत्मतत्त्व के ज्ञान को प्राप्त करके महाराज पृथु उनकी प्रशंसा करके कहे ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

आत्ममेधसा ब्रह्मविदा दर्शिता आत्मनो गतिस्तत्त्वं यस्मै सः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मज्ञानी सनत् कुमार ने जिनको आत्म तत्त्व का उपदेश कर दिया था वे राजा पृथु थे ।।४१।।

राजोवाच

कृतो मेऽनुग्रहः पूर्वं हरिणार्तानुकम्पिना । तमापादयितुं ब्रह्मन्भगवन् यूयमागताः ॥४२॥

अन्वयः— आर्तानुकम्पिना हरिणा मे पूर्वं अनुग्रहः कृतः हे ब्रह्मन् भगवान् तमेवापादयितुम्, यूयम् आगताः ॥४२॥

राजा ने कहा

अनुवाद— आर्त जीवों पर कृपा करने वाले श्रीहरि ने मुझ पर की थी । उसी को पूर्ण करने के लिए आपलोग यहाँ पधारे हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मन्निति संवोधनं प्राधान्यादेकस्य । यूयमित्युक्तिः सर्वान्प्रति ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

केवल सनत्कुमार की प्रधानता के कारण ब्रह्मन् यह एक वचनान्त संबोधन है सबों के लिए यूयम् पद का प्रयोग किया गया है ॥४२॥

निष्पादितश्च कात्स्न्र्येन भगवद्भिर्घृणालुभिः । साधूच्छिष्टं हि मे सर्वमात्मना सह किं ददे ॥४३॥

अन्वयः— घृणालुभिः भगवद्भिः कात्स्न्र्येन निष्पादितः मे आत्मना सहसर्वं साधूच्छिष्टं किं ददे ॥४३॥

अनुवाद— आपलोग दयालु हैं आपलोग जिस कार्य के लिए आये उसे अच्छी तरह से सम्पन्न किए, अब इसके बदले में मैं आपलोगों को क्या दूँ । मेरे पास तो शरीर और इसके साथ जो कुछ भी है वह सबकुछ महापुरुषों का प्रसाद हैं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

आत्मना देहेन सह सर्वं राज्यादिकं मदीयं साधूच्छिष्टं साधुभिः स्वीयं सन्मह्यं प्रसादरूपेण दत्तम्, अतस्तत्र मम स्वत्वाभावाद्गुरुदक्षिणार्थं किं ददे । नहि पित्रा दत्तं मोदकादि तस्मै दानरूपेण प्रत्यर्प्यते ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

शरीर के साथ मेरा जो कुछ भी राज्यादिक है उन सबों को सत्पुरुषों ने मुझे प्रसाद रूप से प्रदान किया है । मेरे पास गुरु दक्षिणा देने के लिए अपना कुछ भी नहीं है । मेरे पिता ने तो मुझे मिठाई भी नहीं दी थी कि उसे मैं समर्पण कर देता ॥४३॥

प्राणा दाराः सुता ब्रह्मन् गृहाश्च सपरिच्छदाः । राज्यं बलं मही कोश इति सर्वं निवेदितम् ॥४४॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् प्राणाः, दाराः सुताः, सपरिच्छदाः गृहाश्च राज्यं, बलं, मही, कोशः इति सर्वं निवेदितम् ॥४४॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् प्राण, पत्नी, पुत्र सभी प्रकार की सामग्रियों से भरा हुआ भवन राज्य, सेना, पृथिवी और कोश ये सबके सब आपके चरणों में निवेदित हैं ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

निवेदनं तु तदीयस्यैव समर्पणं यथा भृत्यो राज्ञे सेवादिरूपेण ताम्बूलादिकमर्पयति तथा मयापि सर्वं निवेदितं स्वीकुरुतेत्याह-प्राणा इति ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

जिसकी वस्तु हो उसी को उसे समर्पण करना ही निवेदन कहलाता है जैसे भृत्य सेवा रूप राजा को पान समर्पित करता है । उसी तरह से मैंने भी सबकुछ आपको निवेदित कर दिया आपलोग उसे स्वीकार करें, इस बात को उन्होंने प्राणा इत्यादि श्लोक से कहा है ॥४४॥

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च । सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥४५॥

अन्वयः— सैनापत्यं च, राज्यं च दण्डनेतृत्वम् एव च, सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रवित् अर्हति ॥४५॥

अनुवाद— सेनापतित्व, राज्य, दण्ड विधान और सम्पूर्ण लोकों के प्रशासन का अधिकार तो वेद शास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मण को ही है ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनः स्वत्वाभावं प्रपञ्चयति-सैनापत्यं चेति द्वाभ्याम् ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

अपने स्वत्व के अभाव का विस्तार **सैनापत्यम्० इत्यादि** दो श्लोकों से करते हैं ॥४५॥

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च । तस्यैवानुग्रहेणान्नं भुञ्जते क्षत्रियादयः ॥४६॥

अन्वयः— ब्राह्मण स्वम् एवं भुक्ते, स्वमेव वस्ते, स्वम् एव ददाति । तस्यैवानुग्रहेण क्षत्रियादयः अन्नं भुञ्जते ॥४६॥

अनुवाद— ब्राह्मण अपना ही खाता है, अपना ही पहनता है और अपना ही दान देता है क्षत्रिय आदि तो उसी की कृपा से अन्न आदि खाने के लिए पाते हैं ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

वस्ते परिघत्ते । अन्नमात्रं केवलं भुञ्जते नतु दाने स्वतन्त्राः ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

वस्ते पद का अर्थ है पहनता है । क्षत्रिय तो ब्राह्मण की कृपा से केवल अन्न खाते हैं, वे दान करने में स्वतंत्र नहीं हैं ॥४६॥

यैरीदृशी भगवतो गतिरात्मवाद एकान्ततो निगमिभिः प्रतिपादिता नः ।
तुष्यन्त्वदभ्रकरुणाः स्वकृतेन नित्यं को नाम तत्प्रतिकरोति विनोदपात्रम् ॥४७॥

अन्वयः— यै एकान्ततः निगमिभिः भगवतः ईदृशीगतिः आत्मवादः नः प्रतिपादिताः अदभ्रकरुणाः ते स्वकृतेन नित्यं तुष्यन्तु को नाम विनोद पात्रम् तत्प्रतिकरोति न ॥४७॥

अनुवाद— वेदों में पारङ्गत आपलोगों ने अध्यात्म तत्त्व का विचार करके हमें समझा दिया है परमात्मा के प्रति इस प्रकार अभेद भक्ति से ही उनकी प्राप्ति का साधन है । आपलोग परम कृपालु है । अतएव आपलोग अपने इस दीन जनोद्धार रूप कर्म से ही सर्वदा सन्तुष्ट रहें कौन ऐसा हँसी का पात्र मनुष्य होगा जो आपलोगों द्वारा किए गये उपकार का प्रत्युपकार करने का प्रयास करेगा ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

सत्यपि स्वत्वे सर्वस्वेनापि न गुरोः प्रत्युपकर्तुं शक्यमित्याह-यैरिति । आत्मवादेऽध्यात्मविचारे । एकान्ततो निश्चयेन। निगमिभिर्वेदविद्भिः । ते नित्यमनल्पकरुणाः स्वकृतेनैव दीनोंद्धरणकर्मणा तुष्यन्तु । को नाम तत्कृतमुपकारं प्रति स्वयमुपकरोति उदपात्रमञ्जलिं विना । मयाञ्जलिरेव तेभ्यो बद्ध इत्यर्थः । यद्वा विनोदपात्रमुपहासास्पदम् । प्रत्युपकारे प्रवृत्तौ जनानामुपहासास्पदं भवेदित्यर्थः ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

स्वत्व के रहने पर भी अपना सबकुछ देकर भी गुरु का प्रत्युपकार नहीं किया जा सकता है । इस बात को **यैरिदृशी इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहते हैं । आत्मवादे अर्थात् आत्म विचार के विषय में, **एकान्ततः** अर्थात्

निश्चय के द्वारा **निगमिभिः** वेदज्ञों के द्वारा **अदभ्रकरुणाः** अर्थात् परम कृपालु, स्वकृतेन तुष्यन्तु अपनी दीन जनोद्धार रूप कर्म से ही सन्तुष्ट हो जायँ । कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो गुरुओं के द्वारा किए गये उपकार का, हाथ जोड़ने के अतिरिक्त दूसरे साधन से प्रत्युपकार कर पायेगा । विनोदपात्रम् प्रतिकरोति का अर्थ है । अथवा विनोदपत्रम् का अर्थ उपहास्तस्पद है । अर्थात् गुरुओं का प्रत्युपकार करने में प्रवृत्त मनुष्य उपहासास्पद ही होगा ।।४७।।

मैत्रेय उवाच

त आत्मयोगपतय आदिराजेन पूजिताः । शीलं तदीयं शंसन्तः खेऽभूवन्मिषतां नृणाम् ।।४८।।

अन्वयः— आदिराजेन पूजिताः ते आत्मयोगपतयः तदीयं शीलं शंसन्तः नृणां मिषतां खे अभूवन् ।।४८।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— आदिराज महाराज पृथु के द्वारा पूजित होकर आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ वे सनकादिक महाराज पृथु के शील गुण की प्रशंसा करते हुए सबलोगों के सामने ही आकाश मार्ग से चले गये ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

खेऽभूवन् आकाशमार्गेणोद्गताः ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

खेअभूवन् अर्थात् आकाश मार्ग से चले गये ।।४८।।

वैन्यस्तु धुर्यो महतां संस्थित्याध्यात्मशिक्षया । आप्तकाममिवात्मानं मेन आत्मन्यवस्थितः ।।४९।।

अन्वयः— महतां धुर्यो वैन्यः अध्यात्मशिक्षया संस्थित्या आत्मन्यवस्थितः आप्तकामम् इव आत्मानं मेने ।।४९।।

अनुवाद— महापुरुषों में अग्रग्रण्य महाराज पृथु उनसे आत्मोपदेश पाकर चित्त की एकाग्रता से आत्मा में ही स्थित रहने के कारण अपने को कृतकृत्य सा मानने लगे ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

धुर्यो मुख्यः । अध्यात्मशिक्षया संस्थितिरेकाग्रता तयात्मन्यवस्थितः सन्मेने ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

धुर्य अर्थात् मुख्य । चित्त की एकाग्रता के कारण अपनी आत्मा में ही अवस्थित रहकर अपने को कृतकृत्य मानने लगे ।।४९।।

कर्माणि च यथाकालं यथादेशं यथाबलम् । यथोचितं यथावित्तमकरोद्ब्रह्मसात्कृतम् ।।५०।।

अन्वयः— कर्माणि च यथा कालं, यथादेशं, यथा बलम्, यथोचितम् यथा वित्तम् ब्रह्मसात्कृतम् अकरोत् ।।५०।।

अनुवाद— महाराज पृथु, कर्मों को काल, देश, बल, औचित्य तथा धन के अनुसार ब्रह्म समर्पण बुद्धि से किया करते थे ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मसात्कृतं ब्रह्मण्यर्पितं यथा भवति तथा ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मसात्कृतम् का अर्थ है ब्रह्म को समर्पण की बुद्धि से ।।५०।।

फलं ब्रह्मणि विन्यस्य निर्विषङ्गः समाहितः । कर्माध्यक्षं च मन्वान आत्मानं प्रकृतेः परम् ॥५१॥

अन्वयः— ब्रह्मणि फलं विन्यस्य, निर्विषङ्ग समाहितः आत्मनं कर्माध्यक्षं प्रकृतेः परम् च मन्वान्ः ॥५१॥

अनुवाद— महाराज पृथु कर्मों का फल परं ब्रह्म को समर्पित करके अनासक्त, एकाग्रचित्त से अपनी आत्मा को कर्मों का साक्षी और प्रकृति से परे मानकर सर्वथा निर्लिप्त रहते हैं ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

निर्विषङ्गः कर्मस्वनासक्तः कर्माध्यक्षं कर्मसाक्षिणमुदासीनं मन्वानोऽकरोदिति पूर्वेणैवान्वयः । नासज्जतेत्युत्तरेण वा॥५१॥

भाव प्रकाशिका

निर्विर्षङ्ग अर्थात् कर्मों में अनासक्त, वे अपनी आत्मा को कर्मों का साक्षी अर्थात् उदासीन रहते हुए कर्मों को करते थे, यह पूर्व मन्त्र से अन्वय है, अथवा आगे के नासज्जत पद से अन्वय है ॥५१॥

गृहेषु वर्तमानोऽपि स साम्राज्यश्रियान्वितः । नासज्जतेन्द्रियार्थेषु निरहंमतिरर्कवत् ॥५२॥

अन्वयः— साम्राज्यश्रियान्वितः सः गृहेषु वर्तमानोऽपि निरहंमतिः सः अर्कवत् इन्द्रियार्थेषु न असज्जत ॥५२॥

अनुवाद— साम्राज्य लक्ष्मी से सम्पन्न भी वे गृहस्थाश्रम में रहकर भी अहङ्कार रहित होने के कारण वे इन्द्रियों के विषयों में उसी तरह आसक्त नहीं हुए जिस तरह सूर्य सर्वत्र प्रकाश करते हुए भी वस्तुओं के गुण दोष से निर्लिप्त रहा करते हैं ॥५२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५२॥

एवमध्यात्मयोगेन कर्माण्यनुसमाचरन् । पुत्रानुत्पादयामास पञ्चार्चिष्यात्मसंमतान् ॥५३॥

अन्वयः— एवम् अध्यात्मयोगेन कर्माणि अनुसंचरन् अर्चिषि आत्म संम्मतान् पञ्चपुत्रान् उत्पादयामास ॥५३॥

अनुवाद— इस तरह आत्मनिष्ठा में स्थित रहकर सभी कर्मों का यथोचित रीति से अनुष्ठान करते हुए अपनी पत्नी अर्चिदेवी के गर्भ से उन्होंने अपने ही समान पाञ्च पुत्रों को उत्पन्न किया ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

अर्चिषि भार्यायाम् ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

अपनी पत्नी अर्चि देवी के गर्भ से ॥५३॥

विजिताश्वं धूम्रकेशं हर्यक्षं द्रविणं वृकम् । सर्वेषां लोकपालानां दधारैकः पृथुर्गुणान् ॥५४॥

अन्वयः— विजिताश्वं धूम्रकेशं, हर्यक्षं, द्रविण वृकम् । एकः पृथु सर्वेषां लोकपालानां गुणान् दधार ॥५४॥

अनुवाद— विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, दविणा और वृक नामक पुत्रों को उत्पन्न किया । अकेले महाराज पृथु सभी लोकपालों के गुणों को धारण किये थे ॥५४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५४॥

गोपीथाय जगत्सृष्टेः काले स्वे स्वेऽच्युतात्मकः। मनोवाग्वृत्तिभिः सौम्यैर्गुणैः संरञ्जयन्प्रजाः ॥५५॥
राजेत्यधान्नामधेयं सोमराज इवापरः । सूर्यवद्विसृजन्गृह्णन्प्रतपंश्च भुवो वसु ॥५६॥

अन्वयः— अच्युतात्मकः जगत् सृष्टेः गोपीथाय स्वे-स्वे काले मनोवागवृत्तिभिः सौम्यैः गुणैः प्रजाः संरञ्जयन् सोमराज इव राजा इत्यपरं नामधेथं दधार, भुवः वसु विसृजन् गृह्णन् प्रतपंश्च सूर्यवत् ॥५५-५६॥

अनुवाद— भगवान् अच्युत के अंश से उत्पन्न महाराज पृथु जगत् की रक्षा करने के लिए अपने-अपने समय पर, उदार मन, प्रिय वाणी तथा मनोहर शरीर रूप गुणों से प्रजाओं का अनुरञ्जन करते हुए वे चन्द्रमा के समान राजा इस नाम को सार्थक किए जिस तरह सूर्य गर्मी के दिनों में पृथिवी के जल को खींचते है और बरसात के दिन में उसको वर्षा के रूप में पृथिवी पर उड़ेल देते हैं, उसी तरह महाराज पृथु भी करके रूप में प्रजाओं का धन लेकर दुष्काल के दिनों में उसको प्रजाओं के हित में लगा देने का काम करते थे ॥५५-५६॥

भावार्थ दीपिका

सोमश्चासौ राजा च स इव । भुवो वसु धनं गृहन्विसृजंश्चासौ सूर्यवत् । राज्ञः प्रतपनमाज्ञाकरणम् ॥५५-५६॥

भाव प्रकाशिका

सोमश्चाऽसौ राजा च स इव यह सोम राज इव का विग्रह है । पृथिवी के धन को करके रूप में लेकर और दुष्काल के समय उसे प्रजाओं को देकर सूर्य के समान वे महाराज पृथु । सूर्य भी गर्मी के दिनों में पृथिवी के जल को खींचते और बरसात में उसे पृथिवी पर उड़ेल देते हैं । प्रजाओं को आज्ञा देकर महाराज पृथु सूर्य के समान चमकते थे ॥५५-५६॥

दुर्धर्षस्तेजसेवाग्निर्महेन्द्र इव दुर्जयः । तितिक्षया धरित्रीव द्यौरिवाभीष्टदो नृणाम् ॥५७॥

अन्वयः— तेजसा अग्निः इव दुर्धर्षः महेन्द्र इव दुर्जयः । तितिक्षया धरित्रीव, द्यौः इव नृणाम् अभीष्टदः ॥५७॥

अनुवाद— वे अपने तेज के द्वारा अग्नि के समान दुधर्ष इन्द्र के समान अजेय, पृथिवी के समान क्षमाशील और स्वर्ग के समान मनुष्यों की सारी कामनाएँ पूर्ण करने वाले थे ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

अग्निरिव दुर्धर्षः । द्यौः स्वर्ग इव ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

महाराज पृथु अग्नि के समान दुर्धर्ष अनभिभवनीय थे और स्वर्ग के समान सभी मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले थे ॥५७॥

वर्षति स्म यथाकामं पर्जन्य इव तर्पयन् । समुद्र इव दुर्बोधः सत्त्वेनाचलराडिव ॥५८॥

अन्वयः— पर्जन्य इवतर्पयन् यथाकामं वर्षतिस्म, समुद्र इव दुर्बोधः, सत्त्वेन अचलराट् इव ॥५८॥

अनुवाद— वे मेघ के समान प्रजाओं को अभीष्ट पदार्थों को देकर उन्हें तृप्त करते थे, वे समुद्र के समान गम्भीर थे और पर्वराज सुमेरु के समान धैर्य सम्पन्न थे ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

समुद्रो यथा गाम्भीर्येणैतावानिति न बुध्यते तथासावभिप्रायतो दुर्बोधः । अचलराट् मेरुरिव ॥५८॥

भाव प्रकाशिका

गाम्भीर्य के कारण यह पता नहीं चलता है कि समुद्र में इतना ही जल है, उसी तरह महाराज गम्भीर थे और पर्वतराज सुमेरु के समान धैर्य सम्पन्न थे ॥५८॥

धर्मराडिव शिक्षायामाश्चर्ये हिमवानिव । कुबेर इव कोशाढ्यो गुप्तार्थो वरुणो यथा ॥५९॥

अन्वयः— शिक्षायाम् धमराट् इव आश्चर्ये हिमवान् इव, कुबेर इव कोशाढ्यः गुप्तार्थे वरुणः इव ॥५९॥

अनुवाद— वे यमराज के समान दुष्टों का दमन करते थे आश्चर्यमय पदार्थों के संग्रह में हिमालय के समान थे कोश की समृद्धि करने में वे कुबेर के समान थे और धन को छिपाये रखने में वरुण के समान थे ॥५९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५९॥

मतारिश्वेव सर्वात्मा बलेन सहसौजसा । अविषह्यतया देवो भगवान्भूतराडिव ॥६०॥

अन्वयः— बलेन सहसा ओजसा मातरिश्वा इव सर्वात्मा, अविषह्यतया देवो भगवान् भूतराट् इव ॥६०॥

अनुवाद— वे शारीरिक बल, इन्द्रियों की पटुता और पराक्रम में सर्वत्र संञ्चरण करने वाले वायु के समान थे और तेज की सत्यता के कारण वे भगवान् शङ्कर के समान थे ॥६०॥

भावार्थ दीपिका

सर्वात्मा सर्वत्र संचारशक्तिः । बलादिभिर्मातरिश्वेव । भूतराट् श्रीरुद्रः ॥६०॥

भाव प्रकाशिका

सर्वात्मा अर्थात् सर्वत्र संचरण करने की शक्ति से सम्पन्न वे बल आदि के द्वारा वायु देव के समान थे । वे असह्य तेज के कारण भगवान् रुद्र के समान थे ॥६०॥

कन्दर्प इव सौन्दर्ये मनस्वी मृगराडिव । वात्सल्ये मनुवन्नृणां प्रभुत्वे भगवानजः ॥६१॥

अन्वयः— सौन्दर्ये कन्दर्प इव मृगराट् इव मनस्वी, वात्सल्ये मनुवत् नृणां प्रभुत्वे भगवान् अज इव ॥६१॥

अनुवाद— सौन्दर्य में कामदेव के समान, साहस में सिंह के समान, वात्सल्य में मनु के समान और मनुष्यों के अधिपत्य में ब्रह्माजी के समान थे ॥६१॥

भावार्थ दीपिका

अजो ब्रह्मेव ॥६१॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी के समान ॥६१॥

बृहस्पतिर्ब्रह्मवादे आत्मवत्त्वे स्वयं हरिः । भक्त्या गोगुरुविप्रेषु विष्वक्सेनानुवर्तिषु ॥
ह्रिया प्रश्रयशीलाभ्यामात्मतुल्यः परोद्यमे ॥६२॥

अन्वयः— ब्रह्मवादे बृहस्पतिः आत्मवत्त्वे स्वयं हरिः, गोगुरुविप्रेषु विष्वक्सेनाऽनुवर्तिषु भक्त्या, हिया प्रश्रयशीलाभ्याम् परोद्यमें आत्मतुल्यः ॥६२॥

अनुवाद— वे ब्रह्म विचार में बृहस्पति, जितेन्द्रियत्व में साक्षात् श्रीहरि के समान थे । गौ, गुरु ब्राह्मण और भगवद भक्तों के विषय में भक्ति के द्वारा और लज्जा, विनय और शील के द्वारा परोपकार आदि गुणों में अपने ही समान अनुपमेय थे ॥६२॥

भावार्थ दीपिका

आत्मवत्त्वे जितेन्द्रियत्वे । भक्त्यादिभिः परार्थोद्यमे चात्मनैव तुल्यो निरूपमः ॥६२॥

भाव प्रकाशिका

आत्मत्वे अर्थात् जितेन्द्रियत्व के विषय में भक्ति आदि के द्वारा परोपकार के विषय में वे अपने ही समान अर्थात् अनुपम थे ॥६२॥

कीर्त्योर्ध्वगीतया पुम्भिस्त्रैलोक्ये तत्र तत्र ह । प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेषु स्त्रीणां रामः सतामिव ॥६३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते द्वाविंशतितमोऽध्याय; ॥२२॥

अन्वयः— पुम्भिः त्रैलोक्ये तत्र उर्ध्वगीतया कीर्त्या स्त्रीणाम् अपि कर्णरन्ध्रेषु रामः सतामिव प्रविष्टः ॥६३॥

अनुवाद— लोग त्रिलोकी में सर्वत्र उनकी कीर्ति का जोर-जोर से गान करते इसके कारण वे स्त्रियों के भी कानों में उसी तरह प्रविष्ट कर गये थे जिस तरह सत्पुरुषों के हृदय में श्रीराम ।।६३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पृथुचरित के अन्तर्गत बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

पुम्भिः सत्पुरुषैः । रामः सीतापतिर्यथा सतां कर्णरन्ध्रेषु प्रविष्टः ।।६३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां द्वांविशतितमोऽध्यायः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

सत्पुरुष महाराज पृथु के यश का त्रिलोकी में सर्वत्र जोर-जोर से गान करते थे इससे वे स्त्रियों के भी काम में उसी तरह प्रवेश कर गये थे जिस तरह सीतापति श्रीराम सत्पुरुषों के कानों में प्रवेश कर गये थे ।।६३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के बाइसवें अध्यय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२२।।

तेइसवाँ अध्याय

महराज पृथु की तपस्या और परलोक गमन

मैत्रेय उवाच

दृष्ट्वात्मानं प्रवयसमेकदा वैन्य आत्मवान्। आत्मना वर्धिताशेषस्वानुसर्गः प्रजापतिः ॥१॥
जगतस्तस्थुषश्चापि वृत्तिदो धर्मभृत्सताम्। निष्पादितेश्वरादेशो यदर्थमिह जज्ञिवान् ॥२॥
आत्मजेष्वात्मजां न्यस्य विरहाद्रुदतीमिव। प्रजासु विमनस्स्वेकः सदारोऽगात्तपोवनम् ॥३॥

अन्वयः— एकदा आत्मवान् आत्मना वर्धिताशेष स्वानुसर्गः जगतः तस्थुषः चापि वृत्तिदः सताम् धर्मभृत् निष्पादितेश्वरादेशः यदर्थम् इह जज्ञिवान् विरहाद् रुदतीमिव, आत्मजां आत्मजेषु न्यस्य प्रजासु विमानासु एकः आत्मवान् प्रजापतिः वैन्यः आत्मानं प्रवयसं दृष्ट्वा सदारः तपोवनम् अगात् ॥१-३॥

अनुवाद— एक बार स्वयमेव अन्न आदि तथा नगर ग्राम आदि की व्यवस्था करके जिन्होंने स्थावरों एवं जङ्गमों की आजीवका की सुविधा कर दी थी तथा साधुजनोंचित धर्मों का पालन करने वाले मैं जिस कार्य के लिए संसार में जन्म लिया था ईश्वर के उन सभी आदेशों का मैंने पालन कर दिया है यह सोचकर विरह के कारण रोती हुई अपनी पुत्री पृथिवी को अपने पुत्रों को सौंपकर जब सारी प्रजा उदास थी उसी समय महामनस्वी प्रजापति महाराज पृथु अपनी वृद्धावस्था को देखकर पत्नी के साथ अकेले तपोवन में चले गये ॥१-३॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोविंशे सभार्यस्य वने नित्यसमधितः। विमानमधिरुह्याथ वैकुण्ङ्गतिरीर्यते ॥१॥ प्रवयसं वृद्धं दृष्ट्वा तपोवनमगादिति तृतीयेनान्वयः। स्वकृतोऽनुसर्गोऽन्नादिसर्गः पुरग्रामादिसर्गश्च। वर्धितोऽशेषः स्वानुसर्गो येन। निष्पादित ईश्वरादेशः प्रजापालनादिर्येन जज्ञिवान् जातः। आत्मजां पृथ्वीम्। विमनस्सु चिन्तातुरासु। सदारः सभार्यः ॥१-३॥

भाव प्रकाशिका

तेइसवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि अपनी पत्नी के साथ वन में सदैव समाधिस्थ रहने वाले महाराज पृथु विमान पर बैठकर वैकुण्ठ में चले गये । अपने को प्रवयस (वृद्ध) देखकर वन में चले गये इस तरह से तीसरे श्लोक के साथ अन्वय है । अपने द्वारा अन्न आदि की सृष्टि और नगर ग्रामादि की सृष्टि को तथा अपनी सृष्टि को उन्होंने अच्छी तरह से बढ़ाया था । जिस कार्य के लिए वे जन्म लिए उस प्रजापालन आदि रूप ईश्वर के आदेश का जिन्होंने पालन किया था वे महाराज पृथु पृथिवी को अपने पुत्रों को सौंपकर जबकि प्रजाएँ चन्तितातुरथीं अपनी पत्नी के साथ तपोवन में अकेले चले गये ॥१-३॥

तत्राप्यदाभ्यनियमो वैखानससुसंमते । आरब्ध उग्रतपसि यथा स्वविजये पुरा ॥४॥

अन्वयः— तत्रापि यथा पुरा स्वविजये वैखानससुसंमते, उग्रतपसि आरब्धे अदाभ्य नियमः ॥४॥

अनुवाद— वहाँ भी जैसे पहले अखण्ड व्रत पूर्वक पृथ्वी पर विजय प्राप्त किए उसी तरह वैखानस (वानप्रस्थ) आश्रम के अनुसार वे उग्र तपस्या आरम्भ कर दिये । विघ्नों के द्वारा उनके नियम नष्ट नहीं हो सकते थे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अदाभ्या विघ्नैर्नाशयितुमशक्या नियमा यस्य । वानप्रस्थानां सुसंमते उग्रे तपस्यारब्धः प्रवृत्तः । कर्तरि क्तः । यथा स्वस्य धरामण्डलस्य विजये पूर्वं महता यत्नेन प्रवृत्तस्तथेति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

अदाभ्यनियमः का अर्थ है कि उनके नियमों को विघ्न विनष्ट नहीं कर सकते थे । वे वन में वानप्रस्थ आश्रम के नियमानुसार कठोर तपस्या उसी तरह करने लगे जिस तरह भूमण्डल विजय के कार्य में वे अत्यधिक प्रयास पूर्वक लगे थे । **आरब्धे** में कर्ता के अर्थ में क्त प्रत्यय हुआ है ॥४॥

कन्दमूलफलाहारः शुष्कपर्णाशनः क्वचित् । अब्भक्षः कतिचित्पक्षान्वायुभक्षस्ततः परम् ॥५॥

अन्वयः— कन्दमूल फलाहार शुष्कपर्णाशन क्वचित्, अत्मभक्षः कचित् पक्षान् ततः परम् वायुभक्षः ॥५॥

अनुवाद— पहले कुछ दिन वे कन्द, मूल और फल का आहार किए, उसके बाद कुछ समय तक सूखे पत्ते चबा कर रहे । तदनन्तर कुछ पक्षों तक जल पीकर ही रहते थे और उसके पश्चात् वे वायु पीकर रहने लगे॥५॥

भावार्थ दीपिका

उग्रं तपो दर्शयति-कन्दमूलेति त्रिभिः । क्वचित्कदाचित् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

महाराज पृथु के उग्रतप का वर्णन तीन श्लोकों से करते हैं क्वचित् पद का अर्थ कदाचित् है ॥५॥

ग्रीष्मे पञ्चतपा वीरो वर्षास्वासारषाण्मुनिः । आकण्ठमग्नः शिशिर उदके स्थण्डिलेशयः ॥६॥

अन्वयः— वीरः मुनिः ग्रीष्मे पञ्चतपा, वर्षासु आसारषाट् शिशिरे आकण्ठमग्नः उदके, स्थण्डिलेशयः ॥६॥

अनुवाद— वीरवर्य महाराज पृथु मुनि वृत्ति से रहते थे । वे ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि तापते थे, वर्षा ऋतु में वर्षा की धारा को अपने शरीर पर सहते थे । शिशिर ऋतु में आकण्ठ जल में खड़े रहते थे । वे सदा मिट्टी की वेदी पर ही सोते थे ॥६॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्दिक्षु चत्वारोऽग्नय उपरि सूर्य इति पञ्चानां तपः संतापो यस्य स पञ्चतपाः । आसारं सहत इत्यासारषाट् । शिशिरर्तौ स्थण्डिलेशयो भूमिशयनः सर्वदा ॥६॥

भाव प्रकाशिका

चारो दिशाओं में चार अग्नियाँ और ऊपर से सूर्य इन पाञ्चों के संताप को सहने वाले को पंचतपा कहते हैं। वर्षा की धारा को सहने वाले को आसारषाट् कहते हैं । शिशिर ऋतु में आकण्ठ जल में खड़े रहते थे और सर्वदा वे भूमि पर सोते थे ॥६॥

तितिक्षुर्यतवाग्दान्त ऊर्ध्वरेता जितानिलः । आरिराधयिषुः कृष्णमचरत्तप उत्तमम् ॥७॥

अन्वयः— तितिक्षुः, यतवाक्, दान्तः ऊर्ध्वरेता, जितानिलः कृष्णम् आरिराधयिषुः उत्तमम् तप अचरत् ॥७॥

अनुवाद— वे शीत उष्ण आदि सभी प्रकार के द्वन्दों को सहे, वे वाणी और मन को संयमित रखते थे ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वे अपने प्राणों को अधीनकर लिए । भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करने की इच्छा से उन्होंने उत्तम तप किया ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

तेन क्रमानुसिद्धेन ध्वस्तकर्ममलाशयः । प्राणायामैः संनिरुद्धषड्वर्गश्छिन्नबन्धनः ॥८॥

अन्वयः— तेन क्रमानुसिद्धेन ध्वस्तकर्ममलाशयः प्राणायामैः संनिरुद्धषड्वर्गः छिन्नबन्धनः ॥८॥

अनुवाद— उसी क्रम से उनकी तपस्या जब परिपुष्ट हो गयी तो उसके प्रभाव से उनका कर्म मल नष्ट हो गया फलतः उनका चित्त शुद्ध हो गया । प्राणायामों के द्वारा उन्होंने षड्वर्ग (मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) को अपने वश में कर लिया । फलतः उनका वासना जन्य बन्धन कट गया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तेन तपसा । क्रमानुसिद्धेन शनैः प्राप्तेन । ध्वस्तानि कर्माणि यस्यातोऽमल आशयो यस्य । छिन्नानि बन्धनानि वासना यस्य ॥८॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार की तपस्या के द्वारा धीरे-धीरे सिद्धि प्राप्त हो जाने के कारण उनके कर्म और मल नष्ट हो गये उनके वासना जन्य बन्धन भी कट गये ॥८॥

सनत्कुमारो भगवान्यदाहाध्यात्मिकं परम् । योगं तेनैव पुरुषमभजत्पुरुषर्षभः ॥९॥

अन्वयः— भगवान् सनत्कुमार यद् आध्यात्मिकं परमं योगम् आह तेनैव पुरुषर्षभः पुरुषम् अभजत् ॥९॥

अनुवाद— भगवान् सनत्कुमार ने जिस श्रेष्ठ आध्यात्मिक योग का उपदेश दिया था उसी के द्वारा पुरुषों में श्रेष्ठ महाराज पृथु श्रीभगवान् की आराधना करते थे ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

भगवद्धर्मिणः साधोः श्रद्धया यततः सदा । भक्तिर्भगवति ब्रह्मण्यनन्यविषयाऽभवत् ॥१०॥

अन्वयः— भगवद् धर्मिणः साधो सदा श्रद्धया यततः भगवति ब्रह्मणि अनन्याभक्तिः अभवत् ॥१०॥

अनुवाद— भगवत् परायण होकर साधुवर्य महाराज पृथु के निरन्तर श्रद्धा पूर्वक प्रयास करते रहने के कारण परब्रह्म परमात्मा में उनकी अनन्याभक्ति हो गयी ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

तस्यानया भगवतः परिकर्मशुद्धसत्त्वात्मनस्तदनु संस्मरणानुपूर्त्या ।
ज्ञानं विरक्तिमदभून्निशितेन येन चिच्छेद संशयपदं निजजीवकोशम् ॥११॥

अन्वयः— अनया भगवतः परिकर्मशुद्धसत्वात्मनः तदनु संस्मरणनुपूर्त्या तस्य विरक्तिमद्ज्ञानम् अभूत येन निशितेन संशयास्पदम् निज जीवकोशम् चिच्छेद ॥११॥

अनुवाद— भगवत उपासना से शुद्ध सत्त्वमय अन्तःकरण के हो जाने पर निरन्तर भगवच्चिन्तन से प्राप्त हुई इस अनन्या भक्ति से उनको वैराग्य युक्त ज्ञान की प्राप्ति हुई । उस तीव्र ज्ञान के द्वारा उन्होंने जीव के उपाधिभूत अहङ्कार को नष्ट कर दिया जो सभी प्रकार के संशय और विपर्यय का आश्रय है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

परिकर्मणा परिचर्यया शुद्धत्व आत्मामनो यस्य तस्य ज्ञानमभूत् । कीदृशम् । येन निजमुपाधिं जीवकोशं हृदयग्रन्थिं संशयानामसंभावनादीनां पदमाश्रयं चिच्छेद । कीदृशेन । अनन्या भक्त्या निशितेन तीक्ष्णेन । कथंभूतया । तस्य भगवतोऽनुसंस्मरणेनानुपूर्तिः संपूर्तियस्यास्तया निशितेन ॥११॥

भाव प्रकाशिका

उस उपासना के द्वारा जिनका अन्तःकरण शुद्ध सत्त्वमय हो गया था, इस प्रकार के महाराज पृथु को ज्ञान उत्पन्न हो गया । यदि कहें कि वह कैसा ज्ञान था ? तो इसका उत्तर है कि जिस ज्ञान के द्वारा उन्होंने अपनी उपाधि रूपी जीवकोश अहङ्कार रूपी हृदयग्रन्थि जो संशय और विपर्यय का आश्रय है उसको काट दिया । वह कैसा ज्ञान था ? तो इसका उत्तर है कि इस भक्ति के द्वारा वह तीक्ष्ण बन गया था । कैसी भक्ति के द्वारा वह तीक्ष्ण हुआ था ? तो इसका उत्तर है कि परमात्मा का निरन्तर चिन्तन करने से जिसकी पूर्ति हो गयी थी । उसी से तीक्ष्ण बने ज्ञान के द्वारा उन्होंने अहङ्कार रूपी जीव कोश को काट दिया ॥११॥

छिन्नान्यधीरधिगतात्मगतिर्निरीहस्तत्तत्यजेऽच्छिनदिदं वयुनेन येन ।
तावन्न योगगतिभिर्यतिरप्रमत्तो यावद्गदाग्रजकथासु रतिं न कुर्यात् ॥१२॥

अन्वयः— छिन्नान्यधीः अधिगतात्मगतिः निरीहः येन वयुनेन इदं अच्छिनत् तत् तत्यजे, यावद् योगगतिभिः गदाग्रज कथासु रतिं न कुर्यात् तावत् यतिः अप्रमत्तोन ॥१२॥

अनुवाद— तदनन्तर देहात्म बुद्धि की निवृत्ति और परमात्म स्वरूप की अनुभूति हो जाने पर अन्य हर प्रकार की सिद्धियों से भी उदासीन हो जाने से उन्होंने उस तत्त्व ज्ञान के भी लिए प्रयत्न करना छोड़ दिया, जिस ज्ञान के द्वारा उन्होंने अहङ्कार को विनष्ट कर दिया था । क्योंकि जब तक साधक को योगमार्ग के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के कथामृत में प्रेम न उत्पन्न हो जाय तब तक केवल योग की साधना के द्वारा साधक का मोह जन्य प्रामाद दूर नहीं होता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

किंच छिन्ना अन्यधीर्देहात्मबुद्धिर्यस्य । यतोऽधिगतात्मगतिरत एव निरीहः प्राप्तासु सिद्धिषु निस्पृहः । येन वयुनेन ज्ञानेनेदं संशयपदं चिच्छेद तत्तत्यजे त्यक्तवान् । तत्प्रयत्नादप्युपररामेत्यर्थः । तस्य योगसिद्धिष्वपि निस्पृहत्वं युक्तमेवेत्याह। तावन्नाप्रमतः किंतु प्रमत्तो भवति । तस्य श्रीकृष्णकथारतत्वान्न तासु लोभो जात इत्यर्थः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

जिनकी देहात्म बुद्धि विनष्ट हो गयी थी तथा परमात्म स्वरूप की अनुभूति प्राप्त हो गयी थी, अतए वे प्राप्त हुई सिद्धियों से निःस्पृह हो गये थे । फलतः उन्होंने उस तत्त्वज्ञान के लिए प्रयास भी त्याग दिये जिस ज्ञान

के द्वारा उन्होंने अहङ्कार की ग्रन्थि को काट दिया था । जो अहङ्कार सभी संशयो का आश्रय है । महाराज पृथु का योग जन्य सिद्धियों से निस्पृह हो जाना भी उचित ही था इस बात को मैत्रेयजी बतलाते हुए कहते हैं कि साधक तब तक अप्रमत्त नहीं अपितु प्रमत्त ही बना रहता है जब तक कि भगवान् श्रीकृष्ण की कथा रूपी अमृत में प्रेम न हो जाय ।।१२।।

एवं स वीरप्रवरः संयोज्यात्मानमात्मनि । ब्रह्मभूतो दृढं काले तत्याज स्वं कालेवरम् ।।१३।।

अन्वयः— एवं स वीर प्रवरः काले दृढं आत्मानम् आत्मनि संयोज्य बह्मभूतः स्वं कलेवरं तत्याज ।।१३।।

अनुवाद— इस तरह वे वीर प्रवर अन्तकाल के उपस्थित होने पर अपने चित्त को दृढता पूर्वक परमात्मा में स्थिर करके अपने शरीर का परित्याग कर दिए ।।१३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१३।।

संपीड्य पायुं पार्ष्णिभ्यां वायुमुत्सारयन् शनैः । नाभ्यां कोष्ठेष्ववस्थाप्य हृदुरः कण्ठशीर्षणि ।।१४।।

अन्वयः— पार्ष्णिभ्यां पायुं सम्पीड्य शनैः वायुम् उत्सारयन् नाभ्यां कोष्ठेषु हृद्उरः कण्ठशीर्षणि अवस्थाप्य ।।१४।।

अनुवाद— दोनों एंडियों से पायुमार्ग को रोककर प्राण वायु को धीरे-धीरे मूलाधार चक्र से ऊपर की ओर उठाते हुए उसे क्रमशः नाभि, हृदय, वक्षःस्थल, कण्ठ और मस्तक में स्थापित किया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

देहत्यागप्रकारमाह-संपीड्येति पञ्चभिः । पायुं गुदं संपीड्येति मुक्तासनं सूचितम् । 'संपीड्य सीवनीं सूक्ष्मां गुल्फेनैव तु मध्यतः सव्ये दक्षिणगुल्फेन मुक्तासनमितीरितम् ।' मूलाधाराद्वायुमुत्सारयन्नूर्ध्वं नयन्नाभ्यामवस्थाप्य ततः कोष्ठेष्ववस्थाप्य अयूयुजदित्युत्तरेणान्वयः । हृदादीनां द्वन्द्वैक्यम् । शीर्षं भ्रूमध्यं तस्मिन् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

सम्पीड्य इत्यादि पाञ्च श्लोकों से देहत्याग के प्रकार को बतलाते हैं पायु गुदा द्वार को कहते है उसको सम्पीड्य कहकर उन्होंन मुक्तासन को सूचित किया है । कहा भी गया है— **सम्पीड्य सीवनीं० इत्यादि** गुल्फ के द्वारा बीच में सूक्ष्म सीवनी को बीच में दबाकर दाहिने गुल्फ से बायें भाग को दबाने मुक्तासन कहा गया है। मूलाधार चक्र से वायु को ऊपर की ओर उठाकर उसे नाभि में स्थापित करके, उसके पश्चात् कोष्ठों में स्थापित करके पन्द्रहवें श्लोक से आयूयुजत् पद से इसका अन्वय है । हृदुरःकण्ठशीर्षणि में द्वन्द्व समास होने के कारण एकवद्भाव हो गया है । शीर्ष शब्द से भौहों के मध्य भाग को कहा गया है । उसमें ही उन्होंने प्राणों को स्थापित किया ।।१४।।

उत्सर्पयंस्तु तं मूर्ध्नि क्रमेणावेश्य निस्पृहः । वायुं वायौ क्षितौ कायं तेजस्तेजस्ययूयुजत् ।।१५।।

अन्वयः— निःस्पृहः उत्सर्पयन् मूर्ध्निं क्रमेण आवेश्य वायुं वायौ, कायं क्षितौ, तेजः तेजसि अयुयुजत् ।।१५।।

अनुवाद— निःस्पृह होकर राजा ने प्राण वायु को शिरोभाग में प्रवेश कराकर वायु को वायु में, शरीर को पृथिवी में और तेज को तेज में मिला दिया ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

तं वायुम् । पाठान्तरे एवमसून्प्राणानुत्सर्पयन् क्रमेण मूर्ध्नि ब्रह्मरन्ध्रे आवेश्य ततो देहारम्भकपञ्चभूतानि समष्टिभूतेषु विलापितवांस्तदाह । वायुं वायावयूयूजदेकीकृतवान् । कायं देहगतं कठिनांशं क्षितौ ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

तम् पद से प्राण वायु को कहा गया है । जहाँ पर **समष्टिवायौ०** यह पाठ भेद है, वहाँ अर्थ होगा इस प्रकार से प्राणों को ऊपर की ओर ले जाते हुए क्रमश:-क्रमश: ब्रह्मरन्ध में प्रवेश कराकर उसके पश्चात् जिन पञ्चमहाभूतों से शरीर बना उन पञ्चभूतों को उनकी समष्टिभूत महाभूतों में उन्होंने मिला दिया । उसी को कहा गया है । वायु को वायु में एकीकृत कर दिया और शरीरस्थ कठिन अंश को पृथिवी में उन्होंने मिला दिया ॥१५॥

खान्याकाशे द्रवं तोये यथास्थानं विभागशः । क्षितिमम्भसि तत्तेजस्यदो वायौ नभस्यमुम् ॥१६॥

अन्वयः— खानि आकाशे, द्रवं तोये यथास्थानं विभागशः क्षितिम् अम्भसि तत् तेजसि, अदो वायौ, अमुम् नभसि॥१६॥

अनुवाद— शरीरस्थ हृदयाकाश आदि को आकाश में और रुधिर आदि को जल में उसके पश्चात् इसी तरह पृथिवी को जल में, जल को तेज में, तेज को वायु में और उसको आकाश में विभागानुसार उन्होंने लीन कर दिया ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

खानीन्द्रियच्छिद्राणि । द्रवांशं तोये । तदेवं देहं प्रविलाप्याद्वितीयात्मप्रतिपत्त्यर्थं महाभूतानामपि लयमाह । क्षितिमम्भस्येकीकृतवान् । तदम्भस्तेजसि । अदस्तेजो वायौ । अमुं वायुं नभसि ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्रियों के छिद्र रूप आकाश को आकाश में, द्रवांश को जल में इस तरह से देह को विलीन करके अद्वितीय आत्मज्ञान के लिए महाभूतों का भी लय बतलाते हुए कहा— पृथिवी को जल में, उन्होंन एकीकृत किया, जल को तेज में तेज को वायु में, और वायु को आकाश में एकीकृत किया ॥१६॥

इन्द्रियेषु मनस्तानि तन्मात्रेषु यथोद्भवम् । भूतादिनाऽमून्युत्क्षिप्य महत्यात्मनि संदधे ॥१७॥

अन्वयः— इन्द्रियेषु मनः, तानि यथोद्भवम् तन्मात्रेषु, भूतादिना अमूनि उत्क्षिप्य महति आत्मनि संदधे ॥१७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् मन का इन्द्रियों में (सविकल्पज्ञान में मन जिन इन्द्रियां के अधीन रहता है उनमें) इन्द्रियों को उनके कारणभूत तन्मात्राओं में सूक्ष्मभूतों के कारणभूत अहङ्कार के द्वारा आकाश, इन्द्रिय और तन्मात्राओं को अहङ्कार में लीन करके अहङ्कार को महत् तत्त्व में उन्होंने लीन कर दिया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं तामसाहंकारकार्यस्याकाशपर्यन्तस्य लयमुक्त्वा सात्त्विकराजसाहंकारकार्याणां लयमाह- इन्द्रियेष्विति । इन्द्रियेषु मन इति देवानामप्युपलक्षणम् । सविकल्पकज्ञाने मनस इन्द्रियैराकर्षणात्तेषु लयाभिधानं न तु कार्यत्वात् । यदुक्तं गतासु 'इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते' इति । अत्र च 'इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः' इति । इन्द्रियेषु नभ इति पाठेऽप्ययमर्थः । भट्टादीनां मते नभश्चाक्षुष केषांचिन्मानसम् । आनुमानिकत्वमतेऽपीन्द्रियव्यापारोऽस्त्येव । नभोगुणश्च शब्दः श्रोत्रग्राह्योऽत इन्द्रियग्राह्यत्वादिन्द्रियेषु नभो विलापितमिति । तानीन्द्रियाणि यथोद्भवम् । उद्भवोऽत्र वृत्तिलाभः, स च विषयाधीन इति श्रोत्रादीनां विषयेषु शब्दादिषु लयः । यद्वा तन्मात्रकार्याण्येवेन्द्रियाणि मनोऽप्यपञ्चीकृततन्मात्रकार्यम् । आहंकारिकत्वाभिधानंतदधीनत्वविवक्षयेत्यविरोधः । भूतादिनाहंकारेण प्रागवशिष्टनभः सहितानीन्द्रियाण्युत्कृष्य परतो नीत्वा भूतादौ क्षिप्त्वा तेन सह महत्तत्त्वे संदध इत्यर्थः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार तामसाहङ्कार के कार्य आकाश पर्यन्त के लय का वर्णन करके सात्त्विक एवं राजस अहङ्कार के लय का वर्णन **इन्द्रियेषु इत्यादि** श्लोक के द्वारा करते हैं । इन्द्रियेषु मनः इत्यादि देवताओं का भी उपलक्षण है।

अर्थात् मन आदि के जो अधिष्ठातृ देवता हैं उनके भी लय का वर्णन किया गया है । सविकल्प ज्ञान में इन्द्रियाँ चूकि मन को आकृष्ट करती हैं इसीलिए मन का इन्द्रियों में लय बतलाया गया है, इन्द्रियों का कार्य होने के कारण नहीं क्योंकि मन इन्द्रियों का कार्य नहीं है । गीता में यह जो कहा गया है कि **इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते** यहाँ पर विषयों द्वारा आकृष्ट इन्द्रियों के द्वारा चिन्तन करने वाले मनुष्यों का मन आकृष्ट कर लिया जाता है, यह अभिप्राय है । **इन्द्रियेषु नभः** यह जो पाठभेद है उसका भी यही अर्थ है । भाट्टमीमांसक आदि आकाश को चाक्षुष (चक्षुरिन्द्रिय ग्राह्य) मानते हैं । कुछ विचारक आकाश को मनो ग्राह्य मानते हैं । जो लोग आकाश को अनुमेय मानते हैं, उनके भी मत में इन्द्रियों का व्यापार होता ही है । **नभोगुणश्च० इत्यादि** आकाश का गुण शब्द है वह श्रोत्रेन्द्रिय ग्राह्य है । अतएव आकाश के इन्द्रिय ग्राह्य होने के कारण इन्द्रियों में आकाश का लय पृथु महराज ने किया । उन इन्द्रियों का लय उनके कारणभूत तन्मात्राओं में होता है । उद्भव शब्द यहाँपर वृत्ति के लाभ का बोधक है । और इन्द्रियों को वृत्ति का लाभ विषयों (रूप रसादि) के अधीन होता है । इसलिए इन्द्रियों का लय शब्दादि विषयों में उन्होंने किया । **यद्वा० इत्यादि** अथवा इन्द्रियाँ तन्मात्राओं के ही कार्य है । अपञ्चीकृत मन भी तन्मात्र का कार्य है । मन को अहङ्काराधीनत्व की विवक्षा से ही मन को आहङ्कारिक कहा गया है । भूतादि अहङ्कार के द्वारा पहले से अवशिष्ट आकाश के साथ इन्द्रियों और तन्मात्राओं को भी आकृष्ट करके दूसरी ओर करके भूतादि अहङ्कार में लीन करके उसी के साथ उन्होंने महत् तत्त्व में लीन किया ॥१७॥

तं सर्वगुणविन्यासं जीवे मायामये न्यधात् । तं चानुशयमात्मस्थमसावनुशयी पुमान् ॥
ज्ञानवैराग्यवीर्येण स्वरूपस्थोऽजहात्प्रभुः ॥१८॥

अन्वयः— सर्वगुण विन्यासं तं मायामये जीवे न्यधात्, तंच असावनुशायी पुमान् आत्मस्थमनुशयं स्वरूपस्थः ज्ञानवैराग्यवीर्येण अजहात् ।

अनुवाद— सभी कार्यों की स्थिति जिसमें होती है उस महान् को महाराज पृथु ने मायोपाधिक जीव में लीन किया, उसके पश्चात् जीव में विद्यमान मायारूप उपाधि को, मायोपहित जीव पृथु ने ज्ञान और वैराग्य के द्वारा शुद्ध ब्रह्म में स्थित होकर त्याग दिया ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

सर्वेषां गुणानां कार्याणां विन्यासः स्थितिर्यस्मिंस्तं महान्तं मायामये मायोपाधिप्रधाने जीवे । तं चानुशयमुपाधिं यः पूर्वमनुशयी पुमान् जीवोऽसौ पृथुर्ब्रह्मणि स्थितः सन्नजहादित्यर्थः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

सभी कार्यों की जिसमें स्थिति होती है उस महत् तत्त्व को उन्होंने मायारूपी उपाधि प्रधान जीव में लीन किया उस माया रूपी उपाधि को जो पहले मायिक जीव थे वे महाराज पृथु शुद्ध ब्रह्म में स्थित होकर ज्ञान और वैराग्य के प्रभाव से त्याग दिए ॥१८॥

अर्चिर्नाम महाराज्ञी तत्पत्न्यनुगता वनम् । सुकुमार्यतदर्हा च यत्पद्भ्यां स्पर्शनं भुवः ॥१९॥

अन्वयः— तत्पत्नी अर्चिनाम महाराज्ञी वनम् अनुगता । सुकुमारी च पद्भ्यां यत् भुवः स्पर्शनं अतदर्हा ॥१९॥

अनुवाद— महाराज पृथु की पत्नी महारानी अर्चि भी अपने पति के साथ वन में चली गयी थीं । वे इतनी सुकुमारी थीं कि अपने पैरों से पृथिवी का स्पर्श करने के भी योग्य नहीं थीं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

वनप्रवेशमारभ्य राज्ञीकथामाह-अर्चिर्नामेति चतुर्भिः । अनुगतानुजगाम । अतदर्हा तदपि नार्हति या । किं पद्भ्यां भुवः स्पर्श नमिति यत् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

वन में जाने से प्रारम्भ करके रानी की कथा **अर्चिनाम इत्यादि** चार श्लोकां में कहते हैं । **अनुगता** अर्थात् महाराज पृथु के साथ गयी **अतदर्हा** उसके भी योग्य नहीं थीं । प्रश्न होता है कि किसके तो इसका उत्तर है **यद्धयां भुवः स्पर्शने** पैरों से पृथिवी को स्पर्श करने में ।।१९।।

अतीव भर्तुर्व्रतधर्मनिष्ठया शुश्रूषया चारषदेहयात्रया ।
नाविन्दतार्तिं परिकर्शितापि सा प्रेयस्करस्पर्शनमाननिर्वृतिः ।।२०।।

अन्वयः— भर्तुव्रत धर्मनिष्ठया अतीव शुश्रूषया आरषदेहयात्रया च परिकर्शितापिसा प्रेयस्करस्पर्शनमानमिर्वृत्तिः सा अर्तिं न अविन्दत ।।२०।।

अनुवाद— अपने पति के वृत और धर्म में निष्ठा होने के कारण ऋषियों के समान कन्दमूल आदि से देह यात्रा के चलाने के कारण तथा अपने पति की अत्यन्त सेवा करने के कारण दुर्बल भी हुई अर्चि देवी प्रियतम के कर स्पर्श से सम्मानित होकर, उसी में आनन्द का अनुभव करने के कारण किसी भी प्रकार के कष्ट का अनुभव नहीं कीं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

भर्तुर्व्रतं यद्भूमिशयनादि तस्मिन् धर्मे या निष्ठा तया । ऋषीणामियमार्षी देहयात्रा कन्दमूलादिवृत्तिस्तया चार्तिं दुःखं न प्राप । तत्र हेतुः । प्रेयसः करेण स्पर्शन मानश्च ताभ्यां निर्वृतिर्यस्याः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

अपने पति के भूमिशयन आदिव्रत रूपी धर्म में निष्ठा होने के कारण, कन्दमूल इत्यादि से शरीर यात्रा चलाना यह ऋषियों की वृत्ति है । उसके कारण उनको कष्ट का अनुभव नहीं हुआ । उसका कारण यह था कि पति के कर का स्पर्श और उसके द्वारा सम्मान, इन दोनों में ही वे आनन्द का अनुभव करती थीं ।।२०।।

देहं विपन्नाखिलचेतनादिकं पत्युः पृथिव्या दयितस्य चात्मनः ।
आलक्ष्य किंचिच्च विलप्य सासती चितामथारोपयदद्रिसानुनि ।।२१।।

अन्वयः— अथ पृथिव्याः पत्युः आत्मनः दयितस्य च विपन्नाखिलचेतनादिकं देहं आलक्ष्य सा सती किञ्चि द्विलप्य सानुनि चिताम् आरोपयत् ।।२१।।

अनुवाद— उसके पश्चात् पृथिवी के पति और अपने प्रियतम के देह को जीवन के चेतना आदि सभी धर्मों से रहित देखकर उस सती ने कुछ देर तक विलाप किया और पर्वत के शिखर पर चिता बनाकर उस पर महाराज पृथु के शरीर को रख दिया ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

पृथिव्याः पत्युः । दुहितृत्वं तु तस्या देवतारूपेण । विपन्नं नष्टमखिलं चेतनादिकं यस्मिंस्तथाभूतं देहमालक्ष्य तं देहं चितामारोपयत् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी के स्वामी महाराज पृथु के शरीर को जीव के चेतना आदि सभी धर्मों से रहित देखकर पृथिवी देवता रूप से महाराज पृथु की पुत्री थी । उस देह को उन्होंने चिता पर रख दिया ।।२१।।

विधाय कृत्यं ह्रदिनीजलाप्लुता दत्त्वोदकं भर्तुरुदारकर्मणः ।
नत्वा दिविस्थांस्त्रिदशांस्त्रिः परीत्य विवेशवह्निं ध्यायती भर्तृपादौ ॥२२॥

अन्वयः— कृत्यं विधाय ह्रदिनी जलाप्लुता उदार कर्मणः उदकं दत्त्वा दिविस्थान् त्रिदशान् नत्वा, त्रिःपरीत्य भर्तृपादौ ध्यायन्तीं बह्निं विवेश ॥२२॥

अनुवाद— उस समय के सारे कृत्यों को करके उन्होंने नदी में स्नान किया, परं पराक्रमी महाराज पृथु को जलाञ्जलि देकर उन्होंने आकाश स्थित देवताओं को नमस्कार किया फिर तीन परिक्रमा करके वे अपने पति के चरणों का ध्यान करती हुई उस अग्नि में प्रवेश किया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

कृत्यं तत्कालोचितं विधाय ह्रदिन्या जले आप्लुता स्नाता सती भर्तुरुदकं दत्त्वा दिव्यन्तरिक्षे स्थितान्देवान्नत्वा वह्निं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

उस समय के सारे कृत्यों को करके नदी के जल में स्नान करके अपने पति को जलदान करके वे आकाश स्थित देवताओं को नमस्कार की और अग्नि की तीन बार परिक्रमा करके वे अग्नि में प्रवेश कर गयीं ॥२२॥

विलोक्यानुगतां साध्वीं पृथुं वीरवरं पतिम् । तुष्टुवुर्वरदा देवैर्देवपत्न्यः सहस्रशः ॥२३॥

अन्वयः— वीरवरं पतिं पृथुम् अनुगतां साध्वीं विलोक्य सहस्रशः वरदाः देवपत्न्यः देवैः सहतुष्टुवुः ॥२३॥

अनुवाद— अपने वीरों में श्रेष्ठ पति पृथु का अनुगमन करने वाली उस सतीं को देखकर हजारो वरदान देने वाली देव पत्नियों ने देवताओं के साथ उनकी स्तुति की ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

देवैः सहिताः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं के साथ देवपत्नियों ने उनकी स्तुति की ॥२३॥

कुर्वत्यः कुसुमासारं तस्मिन्मन्दरसानुनि । नदत्स्वमरतूर्येषु गृणन्ति स्म परस्परम् ॥२४॥

अन्वयः— तस्मिन् मन्दरसानुनि अमर तूर्येषु नदत्सु कुसुमासारं कुर्वत्यः, परस्परम् गृणन्तिस्म ॥२४॥

अनुवाद— उस मन्दराचल के शिखर पर देवगण अपने वाद्यों को बजा रहे थे उस समय पुष्पों की वर्षा करती हुई वे देव पत्नियाँ आपस में कहने लगीं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

गृणन्ति स्म अभाषन्त ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

गृणन्तिस्म पद का अर्थ है कहने लगीं ॥२४॥

देव्य ऊचु:

अहो इयं वधूर्धन्या या चैवं भूभुजां पतिम् । सर्वात्मना पतिं भेजे यज्ञेशं श्रीर्वधूरिव ॥२५॥

अन्वयः— अहो इयं वधूः धन्या या च एवं सर्वात्मना भूभुजां पतिं पतिं यज्ञेशं श्रीः बधूः इव भेजे ॥२५॥

देवों ने कहा

अनुवाद— अरे यह नारी धन्य है जिसने अपने राजराजेश्वर पति पृथु की वैसे ही सेवा की है जैसे लक्ष्मीजी यज्ञेश्वर भगवान् विष्णु की सेवा करती हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

सैषा नूनं व्रजत्यूर्ध्वमनु वैन्यं पतिं सती । पश्यतास्मानतीत्यार्चिर्दुर्विभाव्येन कर्मणा ॥२६॥

अन्वयः— नूनं सैषा सती अर्चिः दुर्विभाव्येन कर्मणा वैन्यं पतिम् अनु अस्मान् अतीत्य ऊर्ध्वं व्रजति पश्यत ॥२६॥

अनुवाद— देखो निश्चित रूप से वह सती अर्चि देवी अपने अचिन्त्य कर्मों के प्रभाव से अपने पति महाराज पृथु के साथ हमलोगों को लांघकर ऊपर के लोक में जा रही है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

असतीनां दुर्विभाव्येन कर्तुमशक्येन कर्मणा ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

जिसको असती स्त्रियाँ नहीं कर सकती हैं यह **दुर्विभाव्येन कर्मणा** का अर्थ हैं ॥२६॥

तेषां दुरापं किं त्वन्यन्मर्त्यानां भगवत्पदम् । भुवि लोलायुषो ये वै नैष्कर्म्यं साधयन्त्युत ॥२७॥

अन्वयः— ये वै लोलायुषः नैष्कर्म्यं भगवत्पदं साधयन्ति, तेषाम् उत भुवि किम् अन्यत् दुरापम् ॥२७॥

अनुवाद— इस लोक में कुछ ही दिनों का जीवन होने पर भी जो लोग भगवान् के परमपद को प्राप्त करने वाले आत्मज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं, उनके लिए संसार में कौन सा पदार्थ दुर्लभ हैं ?॥२७॥

भावार्थ दीपिका

भगवान् पद्यते गम्यतेऽनेनेति तथा तन्नैष्कर्म्यं ज्ञानं ये चञ्चलायुषोऽपि साधयन्ति तेषामन्यद्देवादिपदं किमु दुर्लभम् । न किंचिदित्यर्थः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

जिसके द्वारा श्रीभगवान् की प्राप्ति होती है उस तत्त्व ज्ञान का चञ्चल आयु वाले भी जो लोग प्राप्त कर लेते है उन लोगों के लिए दूसरे देवता आदि का पद दुर्लभ है क्या ? कुछ भी नहीं दुर्लभ हैं ॥२७॥

स वञ्चितो बतात्मध्रुक् कृच्छ्रेण महता भुवि । लब्ध्वापवर्ग्य मानुष्यं विषयेषु विषज्जते ॥२८॥

अन्वयः— महता कृच्छ्रेण भुवि आपवर्ग्यं मानुष्यं लब्ध्वा विषयेषु विषज्जते स आत्मध्रुक् वञ्चितः ॥२८॥

अनुवाद— जो पुरुष अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होने वाले मोक्षप्रद संसार में मनुष्यत्व को प्राप्त करके भी विषयों में आसक्त रहता है वह आत्मद्रोही है और निश्चित रूप से वह ठगा गया है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अभक्तं शोचन्ति–स वञ्चित इति । यत आत्मने द्रुह्यति योऽपवर्गसाधनं मानुष्यं लब्ध्वापि विषयेष्वासक्तिं याति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

जो भक्त नहीं है उन सबों के प्रति शोक करती हुई वे सब वञ्चितः इत्यादि श्लोक कहती हैं । चूकि वह मुक्ति के साधन भूत मनुष्यत्व को प्राप्त करके भी, विषयों में आसक्त रहता है अतएव वह आत्म द्रोही है ॥२८॥

मैत्रेय उवाच

स्तुवतीष्वमरस्त्रीषु पतिलोकं गता वधूः । यं वा आत्मविदां धुर्यो वैन्यः प्रापाच्युताशयः ॥२९॥

अन्वयः— स्तुवतीषु अमरस्त्रीषु आत्मविदां धुर्यः अच्युताशयः वैन्यः यं वा प्राप सा वधू पतिलोकं गता ॥२९॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— जिस समय देवताओं की स्त्रियाँ स्तुति कर रही थीं उसी समय महारानी अर्चि भी अपने पति के उसी लोक में गयीं जिस लोक को आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ तथा भगवद्भक्त महराज पृथु गये थे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

इत्थंभूतानुभावोऽसौ पृथुः स भगवत्तमः । कीर्तितं तस्य चरितमुद्दामचरितस्य ते ॥३०॥

अन्वयः— भगवत्तमः इत्थं भूताऽनुभावोऽसौ सः पृथुः तस्य उद्दाम चरितस्य चरितं ते कीर्तितम् ॥३०॥

अनुवाद— भगवद् भक्तों में श्रेष्ठ महाराज पृथु इस प्रकार के प्रभाव से सम्पन्न थे । उन उदार चरित पृथुजी के चरित को मैंने तुम्हें सुनाया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

य इदं सुमहत्पुण्यं श्रद्धयाऽवहितः पठेत् । श्रावयेच्छृणुयाद्वापि स पृथोः पदवीमियात् ॥३१॥

अन्वयः— यः इदं सुमहत् पुण्यं श्रद्धया अवहितं पठेत्, श्रावयेत् शृणुयाद् वा स अपि पृथोः पदवीमियात् ॥३१॥

अनुवाद— जो मनुष्य इस पवित्र चरित्र को श्रद्धा एवं सावधानी पूर्वक पढ़ता है, सुनता है या सुनाता है वही पृथु के पद अर्थात् परमात्मा के लोक में जाता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः । वैश्यः पठन्विट्पतिः स्याच्छूद्रः सत्तमतामियात् ॥३२॥

अन्वयः— पठन् ब्राह्मणः ब्रह्मवर्चस्वी, राजन्यः जगती पतिः, वैश्यः विट्पतिः स्यात् शूद्रः सत्तमता मियात् ॥३२॥

अनुवाद— इसको पढ़ने वाला ब्राह्मण ब्रह्मवर्चस्वी हो जाता है, क्षत्रिय पृथिवी पति हो जाता है, वैश्य पशुओं अथवा वैश्यों का स्वामी हो जाता है और पठनाधिकार से रहित होने के कारण सुनने मात्र से साधुता सम्पन्न हो जाता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

विशां पश्वादीनां वैश्यादीनां वा पतिः स्यात् । शूद्रः शृण्वन्निति शेषः । तस्य पाठानधिकारात् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

वैश्य पशुओं आदि का अथवा वैश्यों आदि का स्वामी हो जाता है चूकि शूद्र को पढ़ने का अधिकार नहीं है अतएव सुनने मात्र से वह साधु पुरुष हो जाता है ॥३२॥

त्रिःकृत्व इदमाकर्ण्य नरो नार्यथवादृता । अप्रजः सुप्रजतमो निर्धनो धनवत्तमः ॥
अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः ॥३३॥

अन्वयः— नरः अथवा नारी इदम् आदृता त्रिकृत्वः आकर्ण्य अप्रजः सुप्रजतमः, निर्धनः धनवत्तमः अस्पष्ट कीर्तिः सुयशा मूर्खः पण्डितो भवति ॥३३॥

अनुवाद— कोई भी पुरुष अथवा स्त्री आदर पूर्वक इसको तीन बार सुनकर सन्तान हीन सुन्दर सन्तान वाला निर्धन धनवान्, कीर्ति हीन यशस्वी और मूर्ख पण्डित हो जाता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

इदं स्वस्त्ययनं पुंसाममङ्गल्यनिवारणम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं कलिमलापहम् ॥३४॥

अन्वयः— इदं पुंसां स्वस्त्ययनं अमङ्गल्यं निवारणम्, धन्यं, यशस्यम् आयुष्यं, स्वर्ग्यं, कलिमलापहम् ॥३४॥

अनुवाद— यह मनुष्यों का कल्याण करने वाला अमङ्गल को दूर करने वाला यह धन, यश और आयु को प्रदान करने वाला स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाला और कलियुग के दोषों को दूर करने वाला है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां सम्यक्सिद्धिमभीप्सुभिः । श्रद्धयैतदनुश्राव्यं चतुर्णां कारणं परम् ॥३५॥

अन्वयः— धर्मार्थकाममोक्षाणां सम्यक् सिद्धिम् अभीप्सुभिः चतुर्णां परम् कारणं एतत् श्रद्धया अनुश्राव्यं ॥३५॥

अनुवाद— जो लोग धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष को अच्छी तरह सिद्धि प्राप्त करना चाहते हों इन चारों के सर्वश्रेष्ठ कारण उनको इसे श्रद्धा पूर्वक सुनना चाहिए ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नही है ॥३५॥

विजयाभिमुखो राजा श्रुत्वैतदभियाति यान् । बलिं तस्मै हरन्त्यग्रे राजानः पृथवे यथा ॥३६॥

अन्वयः— विजयाभिमुखः राजा एतत् श्रुत्वा यान् अभियाति तस्मै राजानः पृथवे यथा अग्रे बलिं हरन्ति ॥३६॥

अनुवाद— जो राजा विजय के प्रस्थान करते समय इस पृथु चरित का श्रवण करके प्रस्थान करता है उसके आगे आकर राजागण उसी प्रकार उसे उपहार प्रदन करते हैं जिस तरह महाराज पृथु को राजागण भूमण्डल विजय के समय उपहार प्रदान करते थे ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

मुक्तान्यसङ्गो भगवत्यमलां भक्तिमुद्वहन् । वैन्यस्य चरितं पुण्यं शृणुयाच्छ्रावयेत्पठेत् ॥३७॥

अन्वयः— मुक्तान्यसङ्गः भगवति अमलां भक्तिमुद्वहन् वैन्यस्य पुण्यं चरितं शृणुयात् श्रावयेत् पठेत् ॥३७॥

अनुवाद— अन्य सभी प्रकार की आसक्तियों को त्यागकर तथा श्रीभगवान् में निर्मल भक्ति भाव से युक्त हो महाराज पृथु के इस पवित्र चरित्र को सुने, सुनाये और पढ़े ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

यद्यपि बहूनि फलानि भवन्ति तथापि मुक्तान्यसङ्ग एव श्रवणादि कुर्यात् ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि इस पृथु चरित के अनेक प्रकार के फल हैं फिर भी अन्य सभी प्रकार की आसक्तियों का परित्याग करके ही इसका श्रवण आदि करना चाहिए ॥३७॥

वैचित्रवीर्याभिहितं महन्माहात्म्यसूचकम् । अस्मिन्कृतमतिर्मर्त्यः पार्थवीं गतिमाप्नुयात् ॥३८॥

अन्वयः— महन्माहात्म्य सूचकम् विचित्रवीर्याभिहितम् अस्मिन् कृतमतिः मर्त्यः पार्थवीं गतिम् आप्नुयात् ॥३८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के माहात्म्य के सूचक अद्भुत पराक्रम सम्पन्न इस पृथु चरित को मैंने आपको (विदुरजी को) सुना दिया, इसमें श्रद्धा रखने वाला मनुष्य उसी गति को प्राप्त करता है जिस गति को महाराज पृथु ने प्राप्त किया ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

महतो भगवतो माहात्म्यस्य सूचकम् । पार्थवीं पृथुसंबन्धिनीम् । पार्थिवीमिति वा पाठः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

महन्माहात्म्य सूचकम् इस पद का महत् शब्द श्रीभगवान् का परामर्शक है । अर्थात् श्रीभगवान् के माहात्म्य का सूचक है यह पृथुचरित । पार्थवी महाराज पृथु की । पार्थिवीम् भी पाठभेद है ।।३८।।

अनुदिनमिदमादरेण शृण्वन्पृथुचरितं प्रथयन्विमुक्तसङ्गः ।
भगवति भवसिन्धुपोतपादे स च निपुणां लभते रतिं मनुष्यः ।।३९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

अन्वयः— विमुक्तसङ्गः मनुष्यः इदं पृथु चरितम् आदरेण अनुदिनम शृण्वन प्रथयन् सच भवसिन्धुपोतपादे भगवति निपुणां भक्तिं लभते ।।३९।।

अनुवाद— सभी प्रकार की आसक्तियों से रहित जो मनुष्य इस पृथु चरित को आदर पूर्वक सुनता है और इसका प्रचार प्रसार करता है वह संसार रूपी सागर में नौका के समान चरणों वाले श्रीभगवान् में सुदृढ भक्ति को प्राप्त करता है ।।३९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

प्रथयन्कीर्तयन् । भवसिन्धौ पोतः पादो यस्य ।।३९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

प्रथयन् का अर्थ है कीर्तन करने वाला, **भवसिन्धुपोतपादे** संसार सागर को पार करने के लिए जिनके चरण नौका के समान हैं, ऐसे श्रीभगवान् में ।।३९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के तेइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।

* * *

चौबीसवाँ अध्याय

पृथु की वंश परम्परा और प्रचेताओं को रुद्र का उपदेश

मैत्रेय उवाच

विजिताश्वोऽधिराजासीत्पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः । यवीयोभ्योऽददात्काष्ठा भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सलः ॥१॥

अन्वयः– पृथु पुत्रः पृथुश्रवाः विजिताश्वः अधिराजः आसीत् । भ्रातृवत्सलः यवीयेभ्यः भ्रातृभ्यः काष्ठाः अददात्॥१॥

अनुवाद महाराज पृथु के पश्चात् उनके परम यशस्वी पुत्र विजिताश्व राजा हुए । भाइयों पर प्रेम होने के कारण उन्होंने अपने छोटे भाइयों को एक-एक दिशा का अधिकर दे दिया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकादशभिरध्यायैः पृथोश्चरितमीरितम् । प्रचेतसामथाष्टाभिस्तन्मध्ये पञ्चभिः पितुः ।।१।। चतुर्विंशे प्रपौत्रात्तु पृथोः प्राचीनबर्हिषः । प्रचेतसां जनिस्तेभ्यो रुद्रगीतं च वर्ण्यते।।२।। अधिराज आसीदित्यर्थः। यवीयोभ्यः कनिष्ठेभ्यः। काष्ठा दिशः।।१।।

भाव प्रकाशिका

ग्यारह अध्यायों में महराज पृथु के चरित का वर्णन किया गया । अब आठ अध्यायों में प्रचेताओं का चरित वर्णन किया गया है । उसके बीच में पाँच अध्यायों में प्रचेताओं के पिता प्राचीन बर्हि का चरित वर्णित है । इस चौबीसवें अध्याय में महाराज पृथु के प्रपौत्र प्राचीन बर्हि के पुत्र प्रचेताओं का जन्म वर्णित है और रुद्रगीत का वर्णन है । विश्वजित अधिराज हुए और उन्होंने अपने छोटे भाइयों को दिशओं का अधिकार दे दिया ।।१।।

हर्यक्षायादिशत्प्राचीं धूम्रकेशाय दक्षिणाम् । प्रतीचीं वृकसंज्ञाय तुर्यां द्रविणसे विभुः ।।२।।

अन्वयः— विभुः हर्यक्षाय प्राचीम् आदिशत् धूम्रकेशाय दक्षिणाम्, वृक संज्ञाय प्रतीचीम् द्रविण से तुर्यां आदिशत्।।२।।

अनुवाद— राजा विजिताश्व ने हर्यक्ष को पूर्व दिशा दे दिया, धूम्रकेश को दक्षिण दिशा का अधिकार दे दिया, वृक को पश्चिम दिशा का और द्रविड को उत्तर दिशा का अधिकार दे दिया ।।२।।

भावार्थ दीपिका

तुर्या चतुर्थीमुत्तरां दिशम् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

चौथी उत्तर दिशा को द्रविड़ को दे दिया ।।२।।

अन्तर्धानगतिं शक्राल्लब्ध्वान्तर्धानसंज्ञितः । अपत्यत्रयमाधत्त शिखण्डिन्यां सुसंमतम् ।।३।।

अन्वयः— शक्रात् अन्तर्धान गतिं लब्ध्वा अन्तर्धान संज्ञितः शिखण्डिन्यां सुसम्मतम् अपत्यत्रयम् आधत्त ।।३।।

अनुवाद— उन्होंने इन्द्र से अन्तर्धान होने की शक्ति प्राप्त की थी अतएव उनका नाम अन्तर्धान भी था। उन्होंने अपनी शिखण्डिनी नाम की पत्नी के गर्भ से अपने अभिमत तीन पुत्रों को उत्पन्न किया ।।३।।

भावार्थ दीपिका

शक्राल्लब्ध्वा पृथोरश्वमेधेऽश्वविजयावसरे ।।३।।

भाव प्रकाशिका

महाराज पृथु के अश्वमेध यज्ञ के समय यज्ञाश्व को जीतने के समय इन्द्र से अन्तर्धान होने की शक्ति प्राप्त की थी।।३।।

पावकः पवमानश्च शुचिरित्यग्नयः पुरा । वसिष्ठशापादुत्पन्नाः पुनर्योगगतिं गताः ।।४।।

अन्वयः— पावकः पवमानः शचिः य इत्यग्नः पुरा वसिष्ठशापात् उत्पन्नः पुनः योगगतिंगताः ।।४।।

अनुवाद— पावक, पवमान और शुचि वसिष्ठ महर्षि के शाप के कारण ये तीनों अग्नियाँ उनके पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए थे और फिर वे योगमार्ग से अग्नि हो गये ।।४।।

भावार्थ दीपिका

अपत्यत्रयमेवाह-पावक इति । पुरा यः शापस्तस्मान्मनुष्येषूत्पन्नाः सन्तो योगगतिमग्नित्वं प्राप्ताः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

पावक इत्यादि श्लोक से विजिताश्व के तीनों पुत्रों को कहा गया है । पूर्वकाल में हुए महर्षि वसिष्ठ के शाप के कारण वे मनुष्य रूप से उत्पन्न हुए थे फिर वे योगगति के द्वारा अग्नि हो गये ।।४।।

अन्तर्धानो नभास्वत्यां हविर्धानमविन्दत । य इन्द्रमश्वहर्तारं विद्वानपि न जघ्निवान् ॥५॥

अन्वयः— अन्तर्धानः नभस्वत्यां हविर्धानमविन्दत यः अश्वहर्तारं इन्द्रं विद्वानपि न जघ्निवान् ॥५॥

अनुवाद— अन्तर्धाने न नभस्वती नामकी पत्नी के गर्भ से हविर्धान नामक पुत्र को उत्पन्न किया उसने अश्व का हरण करने वाले इन्द्र को जानकर भी इन्द्र को नहीं मारा ॥५॥

भावार्थ दीपिका

नभस्वत्यामन्यस्यां भार्यायाम् । अन्तर्धानस्य विशेषणं य इति । एतेन शक्रादन्तर्धानगतिलाभे कारणमुक्तम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

नभस्वती अन्तर्धान की दूसरी पत्नी का नाम था। उसके गर्भ से हविर्धान का जन्म हुआ था। य इत्यादि अन्तर्धान का विशेषण है। इस उत्तरार्द्ध के द्वारा इन्द्र से अन्तर्धान होने की शक्ति के लाभ का कारण बतलाया गया है ॥५॥

राज्ञां वृत्तिं करादानदण्डशुल्कादिदारुणाम् । मन्यमानो दीर्घसत्रव्याजेन विससर्ज ह ॥६॥

अन्वयः— कारादान, दण्डशुल्कादि राज्ञां वृत्ति दारुणम् मन्यमानः दीघसत्र व्याजेन विससर्ज ॥६॥

अनुवाद— कर लेना, दण्ड देना, जुर्माना वसूलना राजाओं की इस वृत्ति को कठोर मानने वाले राजा अन्तर्धान ने एक दीर्घ सत्र के बहाने राजा का काम त्याग दिया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

स चान्तर्धानो राज्ञा वृत्तिं करादानादिभिर्दारुणां परपीडात्मिकां मन्यमानो विससर्ज ह ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यह आश्चर्य की बात है कि राजा अन्तर्धान कर वसूलना आदि कर्मों को पर पीडात्मक मानते हुए राज कार्य को त्याग दिए ॥६॥

तत्रापि हंसं पुरुषं परमात्मानमात्मदृक् । यजंस्तल्लोकतामाप कुशलेन समाधिना ॥७॥

अन्वयः— तत्रापि आत्मदृक् हंसं पुरुषं परमात्मानम् यजनम् कुशलेन समधिना तल्लोकतामाप ॥७॥

अनुवाद— यज्ञ कार्य में लगे रहने पर भी आत्मज्ञानी अन्तर्धान राजा ने भक्तजन क्लेश नाशक श्रीभगवान् की आराधना करते हुए श्रीभगवान् के लोक को प्राप्त किए ॥७॥

भावार्थ दीपिका

हन्ति स्वानां क्लेशमिति हंसस्तं पुरुषं पूर्णम् । कुशलं पुण्यं तद्रूपेण समाधिना ॥७॥

भाव प्रकाशिका

भक्तों के क्लेश को विनष्ट करने वाले पूर्ण पुरुष परमात्मा की सुदृढ समाधि के द्वारा प्रजापति का पद प्राप्त किया ॥७॥

हविर्धानाद्धविर्धानी विदुरासूत षट् सुतान् । बर्हिषदं गयं शुक्लं कृष्णं सत्यं जितव्रतम् ॥८॥

अन्वयः— हे विदुर ! हविर्धानात् हविर्धानी बर्हिषदं, गयं, शुक्लं, कृष्णं सत्यं जितव्रतमिति षट् सुतान् असूत ॥८॥

अनुवाद— हे विदुर ! हविर्धान की पत्नी हविर्धानी ने बर्हिषद्, गय, शुक्ल, कृष्ण सत्य और जितव्रत इन छह पुत्रों को जन्म दिया ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नही है ॥८॥

बर्हिषत्सुमहाभागो हाविर्धानिः प्रजापतिः । क्रियाकाण्डेषु निष्णातो योगेषु च कुरुद्वह ॥९॥

अन्वयः हे कुरुद्वह ! हविर्धानिः महाभागः प्रजापतिः बर्हिषत् क्रियाकाण्डेषु योगेषु च निष्णात आसीत् ॥९॥

अनुवाद हे विदुर ! हविर्धान के पुत्र महाभाग, बर्हिषत् कर्म काण्ड और योगाभ्यास में कुशल थे और उन्होंने प्रजापति का पद प्राप्त किया ॥९॥

भावार्थ दीपिका

हाविर्धानिर्हविर्धानस्य पुत्रः । योगेषु च प्राणायामादिषु ॥९॥

भाव प्रकाशिका

हविर्धान के पुत्र यह हविर्धानिः का अर्थ है वे प्राणायाम आदि योग में निपुण थे ॥९॥

यस्येदं देवयजनमनुयज्ञं वितन्वतः । प्राचीनाग्रैः कुशैरासीदास्तृतं वसुधातलम् ॥१०॥

अन्वयः— यस्य देव यजनम् यज्ञं वितन्वतः इदं वासुधातलम् प्राचीनाग्रैः कुशैः आसादितम् आसीत् ॥१०॥

अनुवाद— उनके एक के बाद दूसरा यज्ञ करते रहने से यह सारी पृथिवी पूर्व की ओर आगे के भाग को करके बिछाये गये कुशों से पट गयी थी ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

क्रियाकाण्डनिष्णातत्वमाह-यस्येति । इदं वसुधातलं देवयजनं यज्ञवाटं वितन्वतः । यत्रैको यज्ञः कृतस्तत्समीप एव यज्ञान्तरं कुर्वतः सतः । अतएव प्राचीनवर्हिरित्युच्यते ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उनके कर्मकाण्ड में निपुणात्मक वर्णन इस श्लोक में किया गया है । उनके एक स्थान से सटे हुए दूसरे स्थान पर यज्ञ करने से यह सारी पृथिवी यज्ञशाला बन गयी थी । अतएव वे आगे चलकर प्राचीन बर्हि के नाम से विख्यात हुए ॥१०॥

सामुद्रीं देवदेवोक्तामुपयेमे शतद्रुतिम् । यां वीक्ष्य चारुसर्वाङ्गीं किशोरीं सुष्ठ्वलंकृताम् ॥
परिक्रमन्तीमुद्वाहे चकमेऽग्निः शुकीमिव ॥११॥

अन्वयः— देव देवात्काम् सामुद्री शतद्रुतिम् उपयेमे उदवाहे, सुष्ठु अलंकृताम् चारुसर्वाङ्गीम् परिक्रामन्तीं किशोरीम् अग्निः शुकीमिव चकमे ॥११॥

अनुवाद— ब्रह्माजी के कहने से प्राचीन बर्हिने सुमुद्र की पुत्री शतद्रुती से विवाह किया । विवाह के अवसर पर अच्छी तरह से अलंकृत, सर्वाङ्ग सुन्दरी किशोरी शतद्रुति जब अग्नि की परिक्रमा कर रही थी उस समय अग्नि उसे उसी तरह से चाहे जैसे उन्होंने शुकी को चाहा था ॥११॥

भावार्थ दीपिका

समुद्रस्य कन्यां देवदेवेन ब्रह्मणोपदिष्टां शतद्रुतिं नाम किशोरीं बालां परिक्रमन्ती प्रदक्षिणं गच्छन्तीम् । शुकीमिवेति । एवं ह्याख्याते । सप्तर्षीणां सत्रे तद्भार्यादर्शनेनाग्निः कामसंतप्तोऽभूत् । तं च तद्भार्या स्वाहा नाम सप्तर्षिभार्यारूपधारिणी सती रमयामास । रमयित्वा च तद्रेतः शुकीरूपेण शरस्तम्बे निधायागच्छत् । तां यथा सप्तर्षिभार्याभ्रान्त्या अग्निः कामितवांस्तद्वदिति। स्तुकीमिवेति पाठे स्तोकघृतधारामिवेत्यर्थः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

प्राचीन बर्हि ने ब्रह्माजी के कहने से समुद्र की पुत्री शतद्रुति नाम की किशोरी बाला के साथ विवाह किया।

किशोरी शतद्रुति को प्रदक्षिणा के समय देख अग्नि उसे शुकी के समान चाहे । इसके विषय में इस तरह से कहा जाता है— सप्तर्षियों के यज्ञ में उनक ीपत्नी को देखकर अग्निदेव कामार्त हो गये । यह देखकर अग्नि की पत्नी स्वाहा ने सप्तर्षि की पत्नी का रूप धरकर अग्नि के साथ रमण किया । रमण करने के पश्चात् अग्नि के रेतस् (वीर्य) को शरपत पर छोड़कर चली गयी । जहाँ स्तुकीमिव पाठ है वहाँ पर घृत की धारा के समान यह अर्थ होगा ॥११॥

विबुधासुरगन्धर्वमुनिसिद्धनरोरगाः । विजिताः सूर्यया दिक्षु क्वणयन्त्यैव नूपुरैः ॥१२॥

अन्वयः— सूर्यया दिक्षु नूपुरैः क्वणयन्त्या एवं विवुधासुरगन्धर्वमुनिसिद्धनरोरगाः विजिताः ॥१२॥

अनुवाद— नबोढा शतद्रुति ने अपने नूपुरों के झनकार मात्र से ही दिशाओं में विद्यमान देवता, असुर, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, मनुष्य और सर्पों को अपने वश में कर लिया था ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

सूर्यया नवोढयैव विबुधादयो विजिता अभिभूतास्तच्च नूपुरैः पादौ कणयन्त्यैव । तद्ध्वनिमात्रेणेत्यर्थः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

नवोढा शतद्रुति के द्वारा देवता आदि उसके नूपुरों की ध्वनी मात्र से ही वशीकृत हो गये थे ॥१२॥

प्राचीनबर्हिषः पुत्राः शतद्रुत्यां दशाभवन् । तुल्यनामव्रताः सर्वे धर्मस्नाताः प्रचेतसः ॥१३॥

अन्वयः— शतद्रुत्यां प्राचीन बर्हिषः दशपुत्राः अभवन् । सर्वे प्रचेतसः तुल्यनाम व्रताः धर्मस्नाताः ॥१३॥

अनुवाद— प्राचीन बर्हि के शतद्रुति में दश पुत्र प्रचेता नाम से हुए उन सबों के नाम और व्रत एक समान था और सबके सब धार्मिक थे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

तुल्यं नाम व्रतमाचारश्च येषाम् । धर्मस्नाता धर्मपारगाः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

उन सबों के नाम और आचरण एक समान था । वे सबके सब धर्मपारङ्गत थे ॥१३॥

पित्रादिष्टाः प्रजासर्गे तपसेऽर्णवमाविशन् । दशवर्षसहस्राणि तपसाऽर्चंस्तपस्पतिम् ॥१४॥

अन्वयः— पित्रा प्रजासर्गे आदिष्टाः तपसे अर्णवम् आविशन् तपसा दशवर्ष सहस्राणि तपसा अर्चन् ॥१४॥

अनुवाद— पिता प्राचीन बर्हि से सन्तानों को उत्पन्न करने के लिए आदेश पाकर वे तपस्या करने के लिए समुद्र में प्रवेश कर गये अर दश हजार वर्षों तक श्रीभगवान् की अर्चना करते रहे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तपसा पतिं हरिमर्चन्नर्चयामासुः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

तपस्या के द्वारा तपस्या के स्वामी श्रीहरि की अर्चना करते रहे ॥१४॥

यदुक्तं पथि दृष्टेन गिरिशेन प्रसीदता । तद्ध्यायन्तो जपन्तश्च पूजयन्तश्च संयताः ॥१५॥

अन्वयः— पथि दृष्टेन प्रसीदता गिरिशेन यदुक्तं तद्ध्यायन्तः जपन्तश्च पूजयन्तश्च संयताः ॥१५॥

अनुवाद— तपस्या करने के लिए जाते समय मार्ग में दर्शन देकर प्रसन्न हुए शङ्करजी ने उन प्रचेताओं को जिस तत्त्व का उपदेश दिया उसी को ध्यान, जप और पूजन करते रहे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

विदुर उवाच

प्रचेतसां गिरित्रेण यथासीत्पथि सङ्गमः । यदुताह हरः प्रीतस्तन्नो ब्रह्मन्वदार्थवत् ॥१६॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! प्रचेतसां गिरित्रेण पथि यथा सङ्गम आसीत् यद् उत प्रीतः हरः आह तत् अर्थवत् न वद ॥१६॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! मार्ग प्रचेताओं का शङ्करजी के साथ समागम कैसे हुआ ? उन पर प्रसन्न होकर शङ्करजी ने क्या कहा ? उसके सारांश को आप मुझे बतलाये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

सङ्गमः खलु विप्रर्षे शिवेनेह शरीरिणाम् । दुर्लभो मुनयो दध्युरसङ्गाद्यमभीप्सितम् ॥१७॥

अन्वयः— हे विप्रर्षे इह शरीरिणाम् शिवेन सह सङ्गमः दुर्लभः अभीप्सितम् यम् मुनयः असङ्गात् दध्युः ॥१७॥

अनुवाद— हे विप्रर्षे इस संसार में शिवजी के साथ समागम होना अत्यन्त कठिन है, मुनिजन भी सभी प्रकार की आसक्तियों को त्याग करके उनका प्रेमपूर्वक ध्यान करते हैं, फिर भी वे नहीं मिल पाते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

मुनयोऽपि सङ्गत्यागेनामुमिष्टं यं दध्युरेव केवलं, नतु प्रापुः । तेन शिवेन ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

मुनिजन भी जिनका अनासक्ति पूर्वक जिनका ध्यान नहीं करते है । वे उनको प्राप्त नहीं कर पाते उन्हीं शिवजी का मिलना अत्यन्त कठिन हैं ॥१७॥

आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य लोककल्पस्य राधसे । शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान्भवः ॥१८॥

अन्वयः— आत्मारामोऽपि भगवान् भवः लोककल्पस्य राधसे घोरयाशक्त्या राधसे ॥१८॥

अनुवाद— भगवान् शिव आत्माराम है फिर भी वे लोक की रचना करने के लिए अपनी घोर शक्ति शिवा के साथ वे विचरण किया करते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

ननु मुनीनां किं तद्ध्यानेन घोरत्वादित्याशङ्क्याह । आत्मारामोऽपि लोकरचनायाः पालनाय ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि शिवजी तो भयङ्कर रूप धारण किए रहते हैं मुनियों का उनका ध्यान करने से क्या लाभ है ? तो इसका उत्तर है कि वे आत्माराम हैं फिर भी संसार का पालन करने के लिए वे अपनी घोर शक्ति शिवा के साथ इस संसार में विचरण किया करते हैं ॥१८॥

मैत्रेय उवाच

प्रचेतसः पितुर्वाक्यं शिरसादाय साधवः । दिशं प्रतीचीं प्रययुस्तपस्यादृतचेतसः ॥१९॥

अन्वयः— साधवः प्रचेतसः पितुर्वाक्यम् शिरसा आदाय तपसि आदृतचेतसः प्रतीचीं दिशं प्रययुः ॥१९॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— विदुर ! साधु स्वभाव वाले प्रचेतागण अपने पिता के वाक्य को शिरोधार्य करके तपस्या करने में चित्त लगाकर पश्चिम दिशा में चल दिए ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

गुर्वाज्ञाकारिणां शिवदर्शनं स्वत एव भवतीत्याशयेनाह-प्रचेतस इति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अपने गुरुजनों की आज्ञा का पालन करने वालों का शिवजी का दर्शन अपने आप हो जाता है, इसी अभिप्राय से मैत्रेयजी ने इस श्लोक को कहा है ॥१९॥

समुद्रमुप विस्तीर्णमपश्यन्सुमहत्सरः । महन्मन इव स्वच्छं प्रसन्नसलिलाशयम् ॥२०॥

अन्वयः— समुद्रमुप विस्तीर्णम् महन् मन इव स्वच्छम् प्रसन्न सलिलाशयम् सुमहत्सरः अपश्यन् ॥२०॥

अनुवाद— समुद्र के समान विस्तृत महापुरुषों के मन के समान स्वच्छ जिनके जल में रहने वाले जीव प्रसन्न थे ऐसे एक विस्तृत सरोवर को उन लोगों ने देखा ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

समुद्रमुप समुद्रात्किंचिन्न्यूनम् 'उपोधिके च' इति कर्मप्रवचनीयः प्रसन्नाः सलिलाशया मत्स्यादयो यस्मिन् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

समुद्र से कुछ छोटा यह समुद्र मुप का अर्थ है । **'उपोधिकेच'** सूत्र के समुद्रम् की कर्म प्रवचनीय संज्ञा हुई है । उस सरोवर में रहने वाले मत्स्य आदि प्रसन्न थे ॥२०॥

नीलरक्तोत्पलाम्भोजकह्लारेन्दीवराकरम् । हंससारसचक्राह्वकारण्डवनिकूजितम् ॥२१॥

अन्वयः— नीलरक्तोत्पलाम्भोज कह्लारेन्दीवराकरम्, हंससारसचक्राह्व कारण्डव निकूजितम् ॥२१॥

अनुवाद— उसमें नील कमल, लाल कमल दिन में, रात में और सायंकाल में विकसित होने वाले कमल तथा इन्हीं वर आदि कई प्रकार के कमल विद्यमान थे । उसमें हंस, सारस चकवा, कारण्डव आदि पक्षी चहक रहे थे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

नीलोत्पलादीनामाकरं जन्मस्थानम् । उत्पलाम्भोजकह्लाराणि रात्रिदिनसन्ध्याविकासीनि । इन्दीवरं नीलोत्पलम् । तस्य पुनरूक्तिः प्राचुर्यज्ञापनार्थम् । हंसादिभिर्निकूजितम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उस सरोवर में नील कमल आदि उत्पन्न होते थे । नील कमल लाल कमल और अम्भोज कमल जो क्रमशः रात, दिन और सायंकाल विकसित होते थे इन्दीवर नील कमल को कहते है । नील कमल की प्रचुरता ज्ञापित करने के लिए उसको दो बार कहा गया है । हंस आदि जल के पक्षी उसमें बोलते रहते थे ॥२१॥

मत्तभ्रमरसौस्वर्यहृष्टरोमलताङ्घ्रिपम् । पद्मकोशरजो दिक्षु विक्षिपत्पवनोत्सवम् ॥२२॥

अन्वयः— मत्तभ्रमरसौस्वर्य दृष्टरोमलताङ्घ्रिपम्, पद्म कोश रजः दिक्षु विक्षिपत् पवनोत्सवम् ॥२२॥

अनुवाद— उसके तट पर विद्यमान वृक्षों और लताओं पर मतवाले भौंरे गूंज रहे थे । उनकी ध्वनि को सुनकर रोमाञ्च हो रहा था, वायु के झोंके से कमल के पराग चारो दिशाओं में ऐसे उड़ रहा था मानो वहाँ उत्सव हो रहा हो ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

मत्तानां भ्रमराणां सौस्वर्येण हृष्टरोमाणो लताङ्घ्रिपा यस्मिन्, पद्मकोशरजो दिक्षु विक्षिपता पवनेनोत्सवो यस्मिन् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

मदत्तमत्त भ्रमरों के सुन्दर गुञ्जन स्वर से उस सरोवर की लताएँ और वृक्ष मानो रोमाञ्चित हो रहे थे और वायु कमलों के पराग को दिशाओं और विदिशाओं में विखेर कर मानो उत्सव मना रहा था ॥२२॥

तत्र गान्धर्वमाकर्ण्य दिव्यमार्गमनोहरम् । विसिस्म्यू राजपुत्रास्ते मृदङ्गपणवाद्यनु ॥२३॥

अन्वयः— तत्र मृदङ्गपणवाद्यनु दिव्यमार्गमनोहरम् गान्धर्वम् आकर्ण्य ते राजपुत्राः विसिस्म्युः ॥२३॥

अनुवाद— वहाँ मृदङ्ग तथा पणव की ध्वनि से युक्त दिव्य रागादिकों से मनोहर सङ्गीत की ध्वनि को सुनकर उन राजकुमारों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तत्र मृदङ्गपणवादिवाद्यमनु पश्चाद्दिव्यैर्मार्गभेदैर्मनोहरं गान्धर्वं गानमाकर्ण्य विस्मयं प्राप्ताः । पाठान्तरे मृदङ्गपणवादि अवत् रक्षत् । तेषां ध्वनिमतिरस्कुर्वदित्यर्थः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

वहाँ मृदङ्ग और पणव की ध्वनि से युक्त दिव्य रागादि से युक्त मनोहर सङ्गीत को सुनकर वे सभी राजकुमार आश्चर्यित हो गये । जहाँ पर पणवाद्यवत् यह पाठान्तर है वहाँ अर्थ होगा उन सबों की ध्वनि का तिरस्कार किए बिना ही आश्चर्यित हुए ॥२३॥

तर्ह्येव सरसस्तस्मान्निष्क्रामन्तं सहानुगम् । उपगीयमानममरप्रवरं विबुधानुगैः ॥२४॥
तप्तहेमनिकायाभं शितिकण्ठं त्रिलोचनम् । प्रसादसुमुखं वीक्ष्य प्रणेमुर्जातकौतुकाः ॥२५॥

अन्वयः— तर्ह्येव तस्मात् सरसः निष्क्रामन्तम् हेमतप्तनिकायाभं अमरप्रवरं विवुधानुगै उपगीयमानम् सहानुगम् प्रसादसुमुखं एवं त्रिलोचनं शितिकण्ठं विलोक्य वीक्ष्य जातकोतुकाः प्रणेमुः ॥२४-२५॥

अनुवाद— उसी समय वे सभी उस सरोवर से निकलते हुए, सुवर्ण राशि के समान शरीर वाले देवताओं में श्रेष्ठ प्रसन्न मुख वाले शङ्करजी को देखा उनके तीन नेत्र थे और कण्ठ नील वर्ण का था, और अनेक गन्धर्व उनके यश का गान कर रहे थे । इस प्रकार के शङ्करजी को देखकर प्रचेताओं को बड़ी ही उत्कण्ठा हुई और उन सबों ने उनको प्रणाम किया ॥२४-२५॥

भावार्थ दीपिका

ते च त्रिलोचनं वीक्ष्य जाताश्चर्याः प्राणेमुरित्युत्तरेणान्वयः । तप्तहेमराशिसदृशकान्तिम् । शितिर्नीलः कण्ठो यस्य तम् ॥२४-२५॥

भाव प्रकाशिका

वे सब शङ्करजी को देखकर बड़े ही आश्चर्यित हुए और उनको प्रणाम किए । उनका शरीर तप्त सुवर्ण राशि के समान कान्तिमान था और उनका कण्ठ नील वर्ण का था ॥२४-२५॥

स तान्प्रपन्नार्तिहरो भगवान्धर्मवत्सलः । धर्मज्ञाञ्शीलसंपन्नान्प्रीतः प्रीतानुवाच ह ॥२६॥

अन्वयः— प्रपन्नार्तिहरः धर्मवत्सलः स भगवान् प्रीतः सन् प्रीतान् धर्मज्ञान् शीलसम्पन्नान् उवाच ॥२६॥

अनुवाद— शरणागत जीवों के कष्ट को दूर करने वाले धर्म वत्सल भगवान् शङ्कर ने अपने दर्शन से प्रसन्न हुए प्रचेताओं को जो धर्म को जानने वाले और शीलगुण सम्पन्न थे उनसे कहे ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

श्रीरुद्र उवाच

यूयं वेदिषदः पुत्रा विदितं वश्चिकीर्षितम् । अनुग्रहाय भद्रं व एवं मे दर्शनं कृतम् ॥२७॥

अन्वयः— यूयं वेदिषदः पुत्राः, वः भद्रं वः चिकीर्षितं विदितं वः अनुग्रहाय मे दर्शनं कृतम् ॥२७॥

श्रीरुद्र ने कहा

अनुवाद— तुम सभी महाराज वर्हिषद के पुत्र हो तुम लोगों का कल्याण हो, तुम जो करना चाहते हो वह मुझे ज्ञात है, तुमलोगों पर कृपा करने के ही लिए मैंने तुमलोगों को दर्शन दिया है ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

वेदिषदो बर्हिषदः । चिकीर्षितं भगवदाराधनं विदितम् ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

तुमलोग बर्हिषद के पुत्र हो मैं जानता हूँ कि तुमलोग भगवदाराधन करने के लिए जा रहे हो ।।२७।।

यः परं रंहसः साक्षात्रिगुणाज्ञीवसंज्ञितात् । भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्नः स प्रियो हि मे ।।२८।।

अन्वयः— यः रंहसः त्रिगुणात् जीव सज्ञितात् परं साक्षात् भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्नः सहि मे प्रियः ।।२८।।

अनुवाद— जो सूक्ष्म प्रकृति तथा जीव से भी श्रेष्ठ तत्त्व साक्षात् भगवान् वासुदेव की शरणागति करता है वह मेरा प्रिय है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

अनुग्रहकारणमाह । यः साक्षाद्वासुदेवं प्रपन्नः स हि मे प्रियः । कथंभूतम् । रंहसः सूक्ष्मात्रिगुणात्प्रधानाज्जीवसंज्ञितात्पुरुषाच्च परम् । प्रकृतिपुरुषयोर्नियन्तारमित्यर्थः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

अनुग्रह करने के कारण बतलाते हुए शङ्करजी ने कहा जो साक्षात् भगवान् वासुदेव का भक्त होता है, वह मेरा प्रिय है कैसे वासुदेव का ? तो इसका उत्तर कहते हैं- जो सूक्ष्म प्रकृति और जीव दोनों से श्रेष्ठ हैं अर्थात् प्रकृति और पुरुष दोनों के नियामक हैं ।।२८।।

स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः पुमान्विरिञ्चतामेति ततः परं हि माम् ।
अव्याकृतं भागवतोऽथ वैष्णवं पदं यथाहं विबुधाः कलात्यये ।।२९।।

अन्वयः— स्वधर्मनिष्ठः पुमान् शतजन्मभिः विरिञ्चतामेति, ततः परं हि माम् एति, अथ भागवतः अव्याकृतं वैष्णवं पदं यथा अहं विवुधाः कलात्यये ।।२९।।

अनुवाद— अपने वर्णाश्रम धर्म का अच्छी तरह से पालन करने वाला मनुष्य ब्रह्माजी के पद को प्राप्त करता है । उससे अधिक पुण्य होने पर वह मुझको प्राप्त करता है । किन्तु जो भगवद् भक्त होता है वह मृत्यु के पश्चात् प्रपञ्च से परे श्रीभगवान् के लोक को प्राप्त करता है जिस मैं तथा दूसरे अधिकारिक देवता अपने अधिकार की समाप्ति के पश्चात् प्राप्त करते हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

तत्किं तस्य महत्तमत्वादित्याह । स्वधर्मनिष्ठः पुमान्बहुभिर्जन्मभिर्विरिञ्चतां प्राप्नोति । ततोऽपि पुण्यातिशयेन मामेति । भागवतस्त्वथ देहान्तेऽव्याकृतं प्रपञ्चातीतं वैष्णवं पदमेति । यथाहं रुद्रो भूत्वाधिकारिकवद्वर्तमानो विबुधा देवाश्चाधिकारिकाः कलात्ययेऽधिकारान्ते लिङ्गभङ्गे सत्येष्यन्ति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि उन भगवान् वासुदेव की क्या महिमा है ? तो इस पर कहते हैं अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाला मनुष्य अनेक जन्मों के पश्चात् ब्रह्माजी के पद को प्राप्त करता हैं । उससे भी जब अधिक पुण्य होता

है तो वह मुझको प्राप्त करता है, किन्तु जो भगवान् का भक्त होता है वह शरीर त्याग के पश्चात् ही प्रपञ्चातीत वैष्णव पद को प्राप्त करता है जिस तरह मै रुद्र होकर अधिकारिक पद पर वर्तमान हूँ उसी तरह दूसरे देवता भी जो अधिकारिक पद पर वर्तमान् है, ये सब के सब अधिकार काल के समाप्त हो जाने पर जब लिङ्ग शरीर का नाश हो जाता है तब वैष्णव पद को प्राप्त करते हैं ॥२९॥

अथ भागवता यूयं प्रिया: स्थ भगवान्यथा । न मद्भागवतानां च प्रेयानन्योऽस्ति कर्हिचित् ॥३०॥

अन्वयः— अथ भागवतां यूयं प्रिया: स्था भगवान् यथा भागवतानां च मत्तः अन्यः प्रेयान् कर्हिचत् नास्ति ॥३०॥

अनुवाद— तुमलोग भगवद् भक्त हो इसलिए मेरे प्रिय हो, भागवतों को भी मुझसे अधिक प्रिय कोई दूसरा नहीं होता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

अथ भागवतत्वाद्यूयं मे प्रिया: स्थ । भवद्भिरपि मयि प्रीतिः कार्येत्याशयेनाह । मदन्यो भागवतानां च प्रेयान्नास्ति॥३०॥

भाव प्रकाशिका

आपलोग भगवद् भक्त हैं, अतएव आपलोग मेरे प्रिय हैं । आपलोगों को भी मुझसे प्रेम करना चाहिए इसी अभिप्रय से शङ्करजी ने कहा भागवतों को भी मुझसे बढ़कर कोई अधिक प्रिय नहीं होता है ॥३०॥

इदं विविक्तं जप्तव्यं पवित्रं मङ्गलं परम् । निःश्रेयसकरं चापि श्रूयतां तद्वदामि वः ॥३१॥

अन्वयः— निःश्रेयस्करं चापि श्रूयताम् तत् वः वदामि । इदं परं पवित्रम् मङ्गलं विविक्तं जप्तव्यम् ॥३१॥

अनुवाद— अब तुम लोगों को मैं कल्याणकारी स्तोत्र बतलाता हूँ उसे तुमलोग सुनो; यह अत्यन्त पवित्र और मङ्गलमय है, इसे तुमलोग शुद्धभाव से जपना ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

अत इदं जप्तव्यं श्रूयतामिति । विविक्तमसंकीर्णं यथा भवति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

अतएव जपने योग्य स्तोत्र को तुमलोग सुनो । इसे शुद्ध भाव से जपना ॥३१॥

मैत्रेय उवाच

इत्यनुक्रोशहृदयो भगवानाह तान् शिवः । बद्धाञ्जलीन् राजपुत्रान्नारायणपरो वचः ॥३२॥

अन्वयः— इत्यनुक्रोश हृदयः नारायणपरः भगवान् शिव बद्धाञ्जलीन् तान् राजपुत्रान् वचः आह ॥३२॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह करुणार्द्रहृदय वाले भगवान् नारायण के भक्त भगवान् शिव हाथ जोड़े हुए उन राजकुमारों से कहे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

सृष्ट्यादौ ब्रह्मणा सृष्ट्वा पुत्रेभ्यः प्रोक्तमिष्टदम् । स्तोत्रं प्राह प्रचेतोभ्यः कृपया भगवान् शिवः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी इस स्तोत्र की रचना करके इस अभीष्ट पद स्तोत्र को अपने पुत्रों को सुनाया उसी स्तोत्र को कृपाक्रान्त भगवान् शिव ने प्रचेताओं को सुनाया ॥३२॥

श्रीरुद्र उवाच

जितं त आत्मविद्धुर्य स्वस्तये स्वस्तिरस्तु मे । भवता राधसा राद्धं सर्वस्मा आत्मने नमः ॥३३॥

अन्वयः— हे आत्मविद्धूर्य स्वस्वतये ते जितं मे स्वस्ति रस्तु भवताराधसा राद्धं सर्वस्मै आत्मने नमः ॥३३॥

रुद्र ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! आपका उत्कर्ष आत्मज्ञानियों के कल्याण के लिए है उससे मेरा भी कल्याण हो, आप सदैव अपने निरतिशय परमानन्द स्वरूप में स्थित रहते हैं ऐसे सर्वस्वरूप आत्म स्वरूप आपको मेरा नमस्कार है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

ते जितं तवोत्कर्षः । आत्मविद्धुर्याणां स्वस्तये शोभनसत्तायै स्वानन्दलाभायेत्यर्थः । अतो मे स्वस्तिः स्वानन्दसत्ताऽस्तु। ननु ममोत्कर्षो मदर्थ एव किं न स्यात्तत्राह । भवता राधसा स्वानन्दरूपेण राद्धं सिद्धम् । त्वं परमानन्दस्वरूपेणैव नित्यं स्थित इत्यर्थः । अत एवंभूतायात्मने तुभ्यं नमः । सर्वस्मै सर्वरूपाय च ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

हे भगवन् ! आपका उत्कर्ष श्रेष्ठ आत्मज्ञानियों के सुन्दर, सत्ता स्वरूप आत्मलाभ के लिए है, अतएव उससे मेरा सुन्दर सत्ता रूप स्वानन्द सत्ता हो जाय । **ननु० इत्यादि** यदि आप कहें कि मेरा उत्कर्ष मेरे लिए ही क्यों न हो ? तो इस पर कहते हैं कि आपका आत्मानन्दतो अपने आप सिद्ध है । आप तो परमानन्द रूप से सदैव बने रहते हैं, इस प्रकार के आत्म स्वरूप आपको नमस्कार है, सर्वस्वरूप आपको नमस्कार हैं ॥३३॥

नमः पङ्कजनाभाय भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने । वासुदेवाय शान्ताय कूटस्थाय स्वरोचिषे ॥३४॥

अन्वयः— पङ्कज नाभाय भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने वासुदेवाय, शान्ताय, कूटस्थाय, स्वरोचिषे नमः ॥३४॥

अनुवाद— आप पङ्कजनाभ (अर्थात् सम्पूर्ण लोकात्मक कमल जिनकी नाभि में है ऐसे जगत् के आदि कारण स्वरूप) भूत सूक्ष्म (तन्मात्र) तथा इन्द्रियों के नियामक वासुदेव (सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र आश्रय) शान्त स्वरूप निर्विकार और स्वयम्प्रकाश आप को नमस्कार है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

सर्वरूपत्वं प्रपञ्चयन् प्रणमति सार्धैर्दशभिः । पङ्कजं लोकात्मकं नाभौ यस्य तस्मै कारणात्मने नमः । कारणत्वादेव सृज्यानां प्राणिनां ये उपाधयो भूतानि सूक्ष्माणि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च तेषामात्मने नियन्त्रे । अन्तःकरणचतुष्टयाधिष्ठातृत्वेन प्रणमति चतुर्भिः श्लोकार्धैः । वासुदेवाय चित्ताधिष्ठात्रे । कूटस्थाय निर्विकाराय, चित्तस्यैकरूपत्वात् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् स्वरूप रूपता का विस्तार से वर्णन साढे दश श्लोकों में करते हैं, लोकात्मक कमल जिनकी नाभि में हैं ऐसे आदि कारण स्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार है । सम्पूर्ण जगत् का कारण ही होने के कारण सृज्य सभी प्राणियों की जो उपाधियाँ तन्मात्रगण और इन्द्रियाँ उन सबों के नियामक आपको नमस्कार है । चार जो अन्तःकरण हैं उनके अधिष्ठाता रूप से विद्यमान श्रीभगवान् की स्तुति चार श्लोकार्धो के द्वारा करते हैं । चित्त के अधिष्ठाता भगवान् वासुदेव जो चित्त के सदा एक रूप रहने से निर्विकार बने रहते हैं, उनको नमस्कार है ॥३४॥

सङ्कर्षणाय सूक्ष्माय दुरन्तायान्तकाय च । नमो विश्वप्रबोधाय प्रद्युम्नायान्तरात्मने ॥३५॥

अन्वयः— सूक्ष्माय, दुरन्ताय अन्तकाम सङ्कर्षणाय च नमः । विश्वप्रबोधाय अन्तरात्मने प्रद्युम्नाय नमः ॥३५॥

अनुवाद— आप ही सूक्ष्म (अव्यक्त) अनन्त तथा अपनी मुखाग्नि के द्वारा सम्पूर्ण जगत् का संहार करने वाले, सङ्कर्षण है, एवं विश्व के प्रकृष्ट ज्ञान के उद्गम स्थान बुद्धि के अधिष्ठाता प्रद्युम्न को नमस्कार है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

सङ्कर्षणायाहंकाराधिष्ठात्रे । सूक्ष्मायाव्यक्ताय । दुरन्तायानन्ताय । अन्तकाय मुखाग्निना लोकदाहकाय । विश्वस्य प्रकृष्टो बोधो यस्मात् । अन्तरात्मने बुद्ध्यधिष्ठात्रे ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

आप ही सूक्ष्म (अव्यक्त), अनन्त स्वरूप तथा प्रलय काल में अपनी मुखाग्नि से सम्पूर्ण लोकों को भस्म कर देने वाले सङ्कर्षण स्वरूप आपको नमस्कार है तथा सम्पूर्ण विश्व का प्रकृष्ट ज्ञान जहाँ से उत्पन्न होता है, सबों की अन्तरात्मा एवं बुद्धि के अधिष्ठाता प्रद्युम्न स्वरूप आपको नमस्कार है ।।३५।।

नमो नमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेन्द्रियात्मने । नमः परमहंसाय पूर्णाय निभृतात्मने ।।३६।।

अन्वयः— हृषीकेशेन्द्रियात्मने अनिरुद्धाय नमो नमः । पूर्णाय निभृतात्मने परम हंसाय नमः ।।३६।।

अनुवाद— आप ही इन्द्रियों के स्वामी एवं मनस्तत्व के अधिष्ठाता भगवान् अनिरुद्ध स्वरूप आपको बारम्बार नमस्कार है, पूर्ण होने के कारण वृद्धि और क्षय से रहित आप ही सूर्य स्वरूप हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

हृषीकाणामीशा यदिन्द्रियं मनस्तदात्मने । सूर्यरूपेण प्रणमति । परमहंसाय सूर्याय । पूर्णाय तेजसा विश्वव्यापिने । निभृतात्मने क्षयवृद्धिशून्याय ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्रियों के नियामक इन्द्रिय जो मन उसके अधिष्ठान अनिरुद्ध स्वरूप आप ही हैं । सूर्य रूप से श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं— अपने तेज से सम्पूर्ण विश्व में व्यापक अतएव क्षय एवं वृद्धि से रहित सूर्य स्वरूप आपको नमस्कार है ।।३६।।

स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्यं शुचिषदे नमः । नमो हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे ।।३७।।

अन्वयः— स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्यं सुचिषदे नमः हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे नमः ।।३७।।

अनुवाद— स्वर्ग एवं अपवर्ग के द्वारा स्वरूप तथा सदा पवित्र हृदय में निवास करने वाले आपको नमस्कार है । आप ही सुवर्ण रूप वीर्य से युक्त, चातुर्होत्र कर्म के साधन और विस्तार करने वाले अग्नि देव हैं । ऐसे आपको नमस्कार है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

स्वर्गापवर्गयोर्द्वाराय । शुचिन्यन्तःकरणे निषीदतीति शुचिषत्तस्मै । 'हंसः शुचिषत्' इति श्रुतेः हिरण्यं वीर्यं यस्य तस्मै अग्नि रूपाय । चातुर्होत्र कर्म तस्मै तत्साधनायेत्यर्थः । कुतस्तन्तवे तद्विस्तारकाय ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

हे भगवन् ! आप ही स्वर्ग एवं मोक्ष के द्वार स्वरूप हैं । आप शुद्ध अन्तःकरण में निवास करते हैं । श्रुति भी कहती हैं हंसः शुचिषत् । अर्थात् परमात्मा शुद्ध अन्तःकरण में निवास करते हैं, आप सुवर्ण रूप वीर्य से युक्त चातुर्होत्र कर्म के साधन स्वरूप, तथा उसका विस्तार करने वाले अग्निदेव स्वरूप हैं ।।३७।।

नम ऊर्ज इषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे । तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरसात्मने ।।३८।।

अन्वयः— ऊर्जे, इषे, यज्ञरेतसे त्रय्याः पतये, नमः जीवानां तृप्तिदाय सर्वरसात्मने च नमः ।।३८।।

अनुवाद— पितरों एवं देवताओं के पोष आप सोम स्वरूप हैं आप तीनों वेदों के अधिष्ठाता हैं, सभी प्राणियों को तृप्त करने वाले जल स्वरूप भी आप हैं ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

सोमत्वमाह । उर्जे पितॄणामन्नाय । इषे देवानामन्नाय । यज्ञरेतसे सोमाय । स हि पितॄणां देवानां चान्नम् । एवंरूपाय त्रय्याः पतये हरये नमः । सूर्याग्निसोमत्वेनैव तेजस्त्वमुक्तम् । जलत्वमाह । सर्वरसात्मने जलरूपाय ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

ऊर्जे पितरों के पोषक **ईषे** देवताओं के भोग्य रूप से पोषक, **यज्ञरेतसे** अर्थात् सोम स्वरूप, सोम ही देवता और पितरों का अन्न है । इस प्रकार के आप ऋग्यजु: साम इन तीनों वेदों के स्वामी श्रीहरि आपको नमस्कार है । सूर्य, अग्नि वं सोम रूप से श्रीभगवान् के तेजस्त्व को बतलाया गया है । वे भगवान् ही जल रूप से सबों को तृप्ति प्रदान करते हैं ।।३८।।

सर्वसत्त्वात्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे । नमस्त्रैलोक्यपालाय सहओजोबलायच ।।३९।।

अन्वयः— सर्वसत्त्वात्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे त्रैलोक्य पालाय सहओजोपालाय चनमः ।।३९।।

अनुवाद— सभी जीवों की आत्माएँ ही आपका शरीर हैं, पृथिवी स्वरूप, विराट शरीरक, त्रैलोक्य का पालन करने वाले वायु शरीरक सह (आदित्य स्वरूप) मानसिक, ऐन्द्रियक और शारीरिक शक्ति रूप से त्रैलोक्य की रक्षा करने वाले वायु आप ही हैं । आपको नमस्कार है ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

विशेषाय पृथ्वीरूपाय । सर्वेषां सत्त्वानां प्राणिनां ये आत्मानस्तेषां देहाय स्थवीयसे विराट्देहाय च । त्रैलोक्यपालाय वायवे । सहआदिरूपाय । स हि प्राणरूपेण त्रैलोक्यं पालयति सहआदिधर्मा च ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी स्वरूप आपको नमस्कार है । सभी जीवों की आत्माएँ ही आपके शरीर हैं, ऐसे आपको नमस्कार है । स्थवीयसे अर्थात् विराट् रूप आपको नमस्कार है । त्रैलोक्य की रक्षा करने वाले वायु स्वरूप आपको नमस्कार है । मन: शक्ति, इन्द्रिय शक्ति और शारीरिक शक्ति से विशिष्ट आप वायु रूप से त्रैलोक्य की रक्षा करते हैं और मन: शक्ति आदि आपके धर्म हैं ।।३९।।

अर्थलिङ्गाय नभसे नमोऽन्तर्बहिरात्मने । नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे ।।४०।।

अन्वयः— अर्थलिङ्गाय अन्तबर्हिरात्मने नभसेनमः, पुण्याय, आमुष्मै भूरिवर्चसे लोकाय नमः ।।४०।।

अनुवाद— आप ही अपने शब्द नामक गुण के द्वारा समस्त पदार्थों का ज्ञान करने वाले और बाहर भीतर का भेद करने वाले आकाश हैं, आप हीं पुण्यों के द्वारा प्राप्त होने वाले परमतेजोमय स्वर्गादि लोक और वैकुण्ठ लोक स्वरूप हैं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

नभसे आकाशायार्थानां लिङ्गाय ज्ञापकाय, शब्दगुणत्वात् । अन्तर्बहिरात्मनेऽन्तर्बहिर्व्यवहारालम्बनाय । एवं महाभूतरूपत्वमुक्तम् । अमुष्मै स्वर्गाय भूरिवर्चसे । 'एष वै ज्योतिष्मन्तं पुण्यं लोकं याति' इति श्रुतेः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

शब्द नामक गुण के द्वारा सभी पदार्थों का बोध कराने वाले आकाश स्वरूप आपको नमस्कार है । भीतर तथा बाहर रूपी व्यवहारों के आधार भी आप ही हैं । इस प्रकार से परमात्मा को महाभूत स्वरूप कहा गया । स्वंग आदि महतेज: सम्पन्न स्वर्ग स्वरूप आपको नमस्कार है । श्रुति भी कहती है **एष वै ज्योतिष्मन्तं पुण्यं लोकं याति ।**' अर्थात् परमात्मा ही प्रकाश स्वरूप पुण्य लोक में निवास करते हैं ।।४०।।

प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे । नमोऽधर्मविपाकाय मृत्यवे दुःखदाय च ॥४१॥

अन्वयः— प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवयाय कर्मणे अधर्मविपाकाय दुःखदाय मृत्यवे च नमः ॥४१॥

अनुवाद— पितृलोक को प्राप्ति कराने वाले कर्म स्वरूप और देवलोक की प्राप्ति कराने वाले कर्म स्वरूप आपको नमस्कार है । अधर्म के परिणाम स्वरूप दुःखद मृत्यु रूप आपको नमस्कार है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

प्रवृत्ताय च निवृत्ताय कर्मणे । पितृदेवाय यथाक्रमं पितृदेवप्राप्तिफलाय । अधर्मफलरूपाय च मृत्यवे ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

पितृलोक की प्राप्ति कराने वाले प्रवृत्ति कर्म स्वरूप और देवलोक की प्राप्ति कराने वाले निवृत्ति कर्म स्वरूप आपको नमस्कार है । अधर्म के फलस्वरूप दुःखद मृत्यु रूप आपको नमस्कार हैं ॥४१॥

नमस्त आशिषामीश मनवे कारणात्मने । नमो धर्माय बृहते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥
पुरुषाय पुराणाय सांख्ययोगेश्वराय च ॥४२॥

अन्वयः— पुराणाय पुरुषाय सांख्ययोगेश्वराय अकुण्ठमेधसे कृष्णाय, हे ईश आशिषां कारणात्मने मनवेकारणात्मने बृहते धर्माय चनमेः ॥४२॥

अनुवाद— पुराण पुरुष स्वरूप आपको नमस्कार है, सांख्य एवं योग के अधीश्वर सर्वज्ञ श्रीकृष्ण रूप श्रीभगवान को नमस्कार है । सभी प्रकार की कामनाओं की पूर्ति के कारण रूप आपको नमस्कार है मन्त्र मूर्ति महान् धर्म स्वरूप आपको नमस्कार है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

हे ईश, आशिषां कारणात्मने सर्वकर्मफलदात्रे । मनवे सर्वज्ञाय मन्त्रात्मकायेति वा । विष्णुत्वेन प्रणमति । बृहते धर्माय परमधर्मात्मने कृष्णाय ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

हे जगन्नियामक प्रभो, सभी कामनाओं की पूर्ति के कारण रूप आपको नमस्कार है । अर्थात् सभी कर्मों का फल देने वाले आपको नमस्कार है । मन अर्थात् सर्वज्ञ अथवा मन्त्र स्वरूप आपको नमस्कार है । विष्णु रूप से प्रणाम करते हुए कहते हैं परम धर्मात्मा श्रीकृष्ण स्वरूप आपको नमस्कार है ॥४२॥

शक्तित्रयसमेताय मीढुषेऽहंकृतात्मने । चेतआकूतिरूपाय नमो वाचोविभूतये ॥४३॥

अन्वयः— शक्तित्रयसमेताय अहंकृतात्मने मीढुषे चेत आकूति रूपाय वाचो विभूतये नमः ॥४३॥

अनुवाद— कर्ता, करण तथा कर्म इन तीनों शक्तियों से सम्पन्न आपको नमस्कार है, अहङ्कार के अधिष्ठाता रुद्र स्वरूप आपको नमस्कार है ज्ञान तथा क्रिया स्वरूप आपको नमस्कार है और परा, पश्यन्ती मध्यमा, और वैखरी इन चारो प्रकार की वाणी रूपी ऐश्वर्य से सम्पन्न आपको नमस्कार है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

रुद्ररूपेण प्रणमति । मीढुषे रुद्राय । अहंकृतमहंकारस्वदात्मने । स च कर्तृकरणकर्मशक्तित्रयसमेतस्तस्मै । ब्रह्मत्वेन प्रणमति । चेतो ज्ञानमाकूतिः क्रिया तद्रूपाय । वाचो विविधा भूतिः सृष्टिर्यस्मात्तस्मै ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

स्वरूप से श्रीभगवान् को प्रणाम करते हुए कहते हैं— अहङ्कार के अधिष्ठाता रुद्र को नमस्कार है । वे

कर्त्ता कर्म और करण इन तीनों शक्तियों से सम्पन्न है । वे ज्ञान स्वरूप और क्रिया स्वरूप हैं, तथा वाणी की जो परा, पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी रूप वाणी की सृष्टि करते हैं ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है ।।४३।।

दर्शन नो दिदृक्षूणां देहि भागवतार्चितम् । रूपं प्रियतमं स्वानां सर्वेन्द्रियगुणाञ्जनम् ।।४४।।

अन्वयः— हे प्रभो ! भागवतार्पितम् स्वानां प्रियतमं सर्वेन्द्रियगुणाञ्जनम् रूपं दिदृक्षूणां नः दर्शनं देहि ।।४४।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप अपने उस रूप का दर्शन हमे दें, आपके जिस रूप का पूजन भगवद् भक्त किया करते हैं, तथा जो अपने जनों को अत्यन्त प्रिय है साथ ही आपका जो रूप इन्द्रियों को तृप्त करने वाला हो हमलोग आपके उस रूप का दर्शन करना चाहते हैं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

नमस्कृत्य दर्शनं प्रार्थयते-दर्शनमिति नवभिः । भागवतैः सत्कृतं दर्शनं देहीत्यस्य विवरणं रूपमित्यादि प्रदर्शयेत्यतम् । स्वानां भक्तानां प्रियतमं रूपं प्रदर्शय नवमेनान्वयः । सर्वेषामिन्द्रियाणां ये गुणा विषयास्तेषामञ्जनं व्यञ्जकम् । सर्वेन्द्रियविषयविषयिरूपमित्यर्थः । सर्वेन्द्रियाणि स्वगुणैरनक्ति रञ्जयतीति वा ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को नमस्कार करने के पश्चात् उनसे दर्शन देने के लिए नव श्लोकों में प्रार्थना करते हैं । आप अपने उस रूप का दर्शन दें जो भगवद् भक्तों के द्वारा समादृत हो । इसी का विवरण इस श्लोक के रूपम् पद से लेकर बावनवें श्लोक के प्रदर्शय पर्यन्त हैं । अपने भक्तों का जो प्रियतम रूप है उसे आप दिखायें इस नवें श्लोक के अंश के साथ इसका अन्वय है । सभी इन्द्रियों के विषय भूत जो गुण हैं उन सबों को अभिव्यक्त करने वाले रूप को आप दिखायें । अर्थात् सभी इन्द्रियों के विषय को विषय बनाने वाले रूप को आप दिखायें । सर्वेन्द्रियाणि स्वगुणैः अनक्ति रञ्जयतीति वा । अर्थात् सभी इन्द्रियों को तृप्त करने वाला, यही **सर्वेन्द्रिय गुणाञ्जनम्** का विग्रह हैं ।।४४।।

स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं सर्वसौन्दर्यसंग्रहम् । चार्वायतचतुर्बाहुं सुजातरुचिराननम् ।।४५।।

अन्वयः— स्निग्धप्रावृड्घनश्यामम् सर्वसौन्दर्यसंग्रहम्, चार्वायय चतुर्बाहुम् सुजातरुचिराननम् ।।४५।।

अनुवाद— वर्षा कालीन मेघ के समान स्निग्ध श्याम्, सम्पूर्ण सौन्दर्य के सार सार्वस्व स्वरूप सुन्दर चार विशाल भुजाएँ तथा मनोहर मुखारविन्द से युक्त रूप का दर्शन दें ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

स्निग्धः प्रावृषि यो घनस्तद्वच्छ्यामम् । सर्वेषां सौन्दर्याणां संग्रहो यस्मिन् । चारव आयताश्चत्वारो बाहवो यस्मिन् । सुजातं यथोचितं सर्वावयवरुचिरमाननं यस्मिन् ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

वर्षाकाल का जो स्निग्ध मेध उसके समान श्याम वर्ण वाले, सभी सौन्दयों का जिसमें संग्रह हो ऐसे रूप का, मनोहर लम्बी चार भुजाओं से युक्त तथा अत्यन्त मनोहर समस्त अवयबों से युक्त होने के कारण रुचिकर मुखमण्डल वाले रूप का दर्शन आप दें ।।४५।।

पद्मकोशपलाशाक्षं सुन्दरभ्रु सुनासिकम् । सुद्विजं सुकपोलास्यं समकर्णविभूषणम् ।।४६।।

अन्वयः— पद्मकोशपलाशाक्षं, सुन्दरभ्रु, सुनासिकम्, सुद्विजं सुकपोलास्यं समकर्ण विभूषणम् ।।४६।।

अनुवाद— कमल दल के समान सुन्दर नेत्रों, सुन्दर भौहों, सुन्दर नासिका, मानो दन्त पंक्ति से मनोहर कपोलों से युक्त मुखमण्डल तथा सुन्दर कर्ण रूपी भूषण से युक्त रूप का दर्शन दें ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

पद्मस्य कोशे मध्ये यानि पलाशानि तद्वदक्षिणी यस्मिन् । सुकपोलमास्यं यस्मिन् । समौ कर्णौ विभूषणं यस्य । कुण्डलयोरग्रे वक्ष्यमाणत्वात् ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

कमल के मध्य में विद्यमान जो दल उन सबों के समान मनोहर नेत्रों वाले, सुन्दर कपोल एवं मुख मण्डल से युक्त तथा सुन्दर कान रूपी भूषणों से युक्त रूप का दर्शन दें । कर्ण विभूषणम् का अर्थ कुण्डल इसलिए नहीं किया गया है कि आगे कुण्डलों का वर्णन है ।।४६।।

प्रीतिप्रहसितापाङ्गमलकैरूपशोभितम् । लसत्पङ्कजकिञ्जल्कदुकूलं मृष्टकुण्डलम् ।।४७।।
स्फुरत्किरीटवलयहारनूपुरमेखलम् । शङ्खचक्रगदापद्ममालामण्युत्तमर्द्धिमत् ।।४८।।

अन्वयः— प्रीतिप्रहसितापाङ्गम् अलकैरुपशोभितम्, लसत्त्पङ्कजकिञ्जल्कदुकूलम् मृष्टकुण्डलम्, स्फुरत्किरीट बलयहार नूपुरमेहखलम्, शङ्खचक्रगदा पद्ममालामण्युत्तमर्द्धिमत् ।।४७-४८।।

अनुवाद— प्रीतिपूर्ण उन्मुक्त हँसी तिरछी चितवन, काले घुंघराले केश, पद्म पुण्य पराग के समान पीताम्बर झिलमिलाते कुण्डल चमचमाते हुए किरीट, कङ्कण, हार, नूपुर और करधनी आदि आभूषणों से युक्त, शङ्ख, चक्र, गदा, वनमाला और कौस्तुभ मणि से समृद्धि सम्पन्न रूप का दर्शन हमें आप दें ।।४७-४८।।

भावार्थ दीपिका

प्रीत्या प्रहसिताविवापाङ्गौ यस्मिन् । स्फुरन्ति किरीटादीनि यस्मिन् । शङ्खादिमत् । उत्तमर्द्धिः लक्ष्मीः । यद्वा एतैरुत्तमा ऋद्धिरुत्कर्षो यस्यास्ति तत् ।।४७-४८।।

भाव प्रकाशिका

जिस रूप में प्रेम के कारण दोनों नेत्र जैसे हंस रहे हों । किरीट आदि जिसमें चमचमाते हों, शङ्ख आदि से युक्त, लक्ष्मीजी से विशिष्ट अथवा उक्त अलङ्कारों से अत्युत्तम समृद्धि से सम्पन्न रूप का दर्शन हमें दें ।।४७-४८।।

सिंहस्कन्धत्विषो बिभ्रत्सौभगग्रीवकौस्तुभम् । श्रियानपायिन्याक्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत् ।।४९।।

अन्वयः— सिंह स्कन्धत्विष विभ्रत् सौभगग्रीव कौस्तुभम् श्रियानपायिन्याक्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत् ।।४९।।

अनुवाद— सिंह के समान कन्धों पर फैलने वाले आयाल रूपी कान्ति के समान कान्ति से सुशोभित गरदन में लटकने वाली कौस्तुभ मणि से युक्त श्याम वर्ण के वक्ष:स्थल में श्रीवत्स चिह्न के रूप में सदा विराजमान रहने वाली लक्ष्मी की शोभा से कसौटी की शोभा को भी तिरस्कृत करने वाले रूप का दर्शन दीजिए ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

सौभगयुक्ता ग्रीवा येन । सिंहस्य स्कन्धे परितः प्रसरन्तः केसरा एव त्विषस्तादृशीः सर्वतस्त्विषो विभ्रच्चासौ सौभगग्रीवः कौस्तुभो यस्मिन् । यद्वा । सिंहस्येव स्कन्धौ तयोस्त्विषः कुण्डलहारादिदीप्तीर्बिभ्रदिति पृथग्विशेषणम् । सौभगयुक्ता ग्रीवा येन स कौस्तुभो यस्मिन् । श्रिया हेतुभूतया क्षिप्तस्तिरस्कृतो निकषाश्मा स्वर्णरेखाङ्कितो निकषणपाषाणो येन तादृशेनोरसा उल्लसच्छोभमानम् ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

सुन्दर ग्रीवा के द्वारा सिंह के कन्धे के चारो ओर फैलने वाले आयाल रूपी कान्ति के समान कान्ति से सम्पन्न गरदन में लटकने वाली कौस्तुभ मणि से युक्त रूप का दर्शन दें । अथवा सिंह के समान जिनके दोनों कन्धें कुण्डल तथा हार आदि की कान्ति से सुशोभित हैं । यह अलग विशेषण है रूप का । तथा कौस्तुभमणि

से युक्त सुन्दर गरदन वाले रूप का दर्शन दें। लक्ष्मी से युक्त वक्ष:स्थल के द्वारा सुवर्ण की रेखा से युक्त निकषोपल की शोभा को तिरस्कृत करने वाले वक्षः स्थल से युक्त रूप का हमें दर्शन दें ।।४९।।

पूररेचकसंविग्नवलिवल्गुदलोदरम् । प्रतिसंक्रामयद्विश्वं नाभ्यावर्तगभीरया ।।५०।।

अन्वयः— पूर रेचक-संविग्न-वलि-वल्गुदलोदरम्, आवर्त गभीरया, नाभ्या विश्वं संक्रामयदिव ।।५०।।

अनुवाद— त्रिवली से सुशोभित पिप्पल के पत्ते के समान सुन्दर श्वास प्रश्वास के आने जाने से मनोहर प्रतीत होनें वाले चकोह के समान गहरी नाभि में मानो सम्पूर्णविश्व को प्रविष्ट करा रहा हो ऐसे रूप का दर्शन आप हमें दें ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

श्वासोच्छ्वासाभ्यां संविग्नाश्चञ्चला बलयस्ताभिर्वल्गु सुन्दरं दलवदश्वत्थपत्रसदृशमुदरं यस्मिन्। प्रतिसंक्रामयद्यतो निर्गतं तेनैव द्वारेण पुनः प्रवेशयदिव ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

श्वास प्रश्वास के द्वारा चञ्चल जो त्रिबली उसके कारण मनोहर अश्वत्थ पत्र के समान उदर से युक्त तथा अपनी गहरी नाभि के जिस द्वार से यह विश्व निकला है, उसी द्वार से प्रवेश कराते हुए के समान सुन्दर रूप का दर्शन आप हमें दें ।।५०।।

श्यामश्रोण्यधिरोचिष्णुदुकूलस्वर्णमेखलम् । समचार्वङ्घ्रिजङ्घोरुनिम्नजानुसुदर्शनम् ।।५१।।

अन्वयः— श्याम श्रोण्यधिरोचिष्णुः दुकूल स्वर्ण मेखलम्, समचार्वङ्घ्रिनिम्नजानुसुदर्शनम् ।।५१।।

अनुवाद— श्याम वर्ण के कटिभाग में चमकदार पीताम्बर और सुवर्ण की करधनी से सुशोभित रूप का दर्शन कराये, एक समान सुन्दर चरण, पिण्डली, जाङ्घों और घुटनों के कारण देखने में मनोहर अपने रूप का दर्शन आप करायें ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

श्यामश्रोण्याधिकं रोचिष्णु यत्पीतं दुकूलं तत्र स्वर्णमयी मेखला यस्मिन्। अङ्घ्री च जङ्घे च ऊरू च निम्ने अनुन्नते जानुनी च। समैश्चारुभिरेतैः शोभनं दर्शनं यस्य। समाश्चारवोऽङ्घ्र्यादयो यस्मिन्। निम्ने जानुनी यस्मिन्। शोभनं दर्शनं यस्येति पदत्रयं वा ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

श्याम वर्ण के कटि भाग में अधिक चमकने वाले पीताम्बर और उसके ऊपर विद्यमान सुवर्ण रचित करधनी से सुशोभित तथा एक समान सुन्दर दोनों पैर दोनों जङ्घे पिण्डली और घुटनों से मनोहर लगने वाले अपने रूप का आप दर्शन करायें। अथवा श्लोक के उत्तरार्द्ध में तीन पद है समचार्वजङ्घोरु, अर्थात् एक समान सुन्दर चरणों एवं जङ्घों से युक्त, निम्नजानु अर्थात उन उठे घुटनों से युक्त तथा सुदर्शनम् अर्थात् सुन्दर दर्शन से युक्त रूप का आप दर्शन कराएँ ।।५१।।

पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा नखद्युभिर्नोऽन्तरघं विधुन्वता ।
प्रदर्शय स्वीयमपास्तसाध्वसं पदं गुरो मार्गगुरुस्तमोजुषाम् ।।५२।।

अन्वयः— शरत् पद्मपलाशरोचिषा नखद्युभिः तमोजुषाम् नोन्तरघं विधुन्वता पदा, स्वीयमपास्तसाध्वसंपदं दर्शय, यतः हे गुरो त्वमेषेव मार्ग गुरुः ।।५२।।

अनुवाद— शरत कालीन कमलदल की कान्ति से सम्पन्न तथा नखों की कान्ति से हम अज्ञानी जीवों के अज्ञानन्धकार को दूर करने वाले अपने चरणों से सुशोभित अपने उस रूप का दर्शन कराइये आपका जो रूप भक्तों के भय को दूर करने वाला है क्योंकि आप ही हमारे मार्ग दर्शक गुरु हैं ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

पदा दीपस्थानीयेन । यद्वा एवंभूतेन पदोपलक्षितं रूपं पदं शरणं प्रदर्शयेत्यर्थः । शरदि यत्पद्मं तस्य पलाशं तद्वद्रोचिर्यस्य तेन । नख दीप्तिभिरन्तर्भवमघमज्ञानं विधुन्वता स्वीयं रूपं पदं शरणं प्रदर्शय अपास्तं प्रह्लादादीनां साध्वसं येन तत् । हे गुरो, यतस्त्वमेव तमोजुषामज्ञानामस्माकं मार्गप्रदर्शको गुरुः ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

दीप स्थानीय अपने चरण के द्वारा, अथवा इस प्रकार के चरण के द्वारा उपलक्षित अपने रूप का शरण रूप से दर्शन करायें । शरत् कालीन कमल दल की कान्ति के समान कान्ति से सम्पन्न चरण के द्वारा और अपने नखों की कान्तियों से अन्तःकरण के अज्ञानान्धकार को दूर करने वाले चरणों से युक्त अपने रूप का आप दर्शन करायें । किञ्च प्रह्लाद आदि भक्तों के भय को दूर करने वाले रूप का दर्शन करायें । क्योंकि हे जगद्गुरो आप ही अज्ञानान्धकार से युक्त हम अज्ञानियों को मार्ग दिखाने वाले गुरु हैं ॥५२॥

एतद्रूपमनुध्येयमात्मशुद्धिमभीप्सताम् । यद्भक्तियोगोऽभयदः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥५३॥

अन्वयः— आत्मशुद्धिमभीप्सिताम् एतद् रूपम् अनुध्येयम् यद्भक्तियेगः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् अभयदः ॥५३॥

अनुवाद— अपने अन्तःकरण की शुद्धि चाहने वाले पुरुषों को आपका यही रूप ध्यान करने योग्य है । इसकी भक्ति अपने धर्म का पालन करने वाले लोगों को अभय प्रदान करने वाली हैं ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

अतिदुर्लभमिदं मया प्रार्थितमिति स्तोतैवाह । एतद्रूपमनुध्येयं ध्यानार्हमेव । नतु प्रत्यक्षतः प्राप्यमित्यर्थः ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

स्तुति करने वाला ही कहता है कि मैंने यह अत्यन्त दुर्लभ वस्तु माँगा है आपका यह रूप केवल ध्यान करने योग्य ही है, इसका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है ॥५३॥

भवान्भक्तिमता लभ्यो दुर्लभः सर्वदेहिनाम् । स्वाराज्यस्याप्यभिमत एकान्तेनात्मविद्गतिः ॥५४॥

अन्वयः— स्वाराज्यस्याभिमतः एकान्तेनात्मविद्गतिः भवान् भक्तिमता लभ्यः सर्वदेहिनाम् दुर्लभः ॥५४॥

अनुवाद— स्वर्ग के स्वामी इन्द्र आपको ही प्राप्त करना चाहते है एकान्तिक आत्मज्ञानियों की भी गति (प्राप्य) आप ही हैं । आप भक्ति युक्तों के ही द्वारा प्राप्त किए जा सकते हैं सभी शरीरधारियों के लिए आप दुर्लभ हैं ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि किं केनापि न प्राप्यते तत्राह-भवानिति । दुर्लभत्वमेवाह । स्वर्गे राज्यं यस्य तस्याप्यभिमतः स्पृहणीयः । किंच एकान्तेन य आत्मवित्तस्यापि गतिर्गम्यः ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ प्रश्न होता है कि क्या श्रीभगवान् किसी को भी नहीं प्राप्त होते हैं क्या ? तो इस पर कहते है । भवान् इत्यादि श्लोक के द्वारा परमात्मा को दुर्लभ ही बतलाया गया है । जिन इन्द्र का स्वर्ग में राज्य है उन इन्द्र को भी आप ही स्पृहणीय हैं । तथा जो एकान्तिक आत्मज्ञ पुरुष हैं उनके भी प्राप्य आप ही हैं ॥५४॥

तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया । एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत्पादमूलं विना बहिः ॥५५॥

अन्वयः— सतामपि दुरापया एकान्तभक्त्या दुराराध्यं तम आराध्य पादमूलं बिना वहिः को वाञ्छेत् ॥५५॥

अनुवाद— सत्पुरुषों को भी दुर्लभ ऐकान्तिक (अनन्या) भक्ति के द्वारा दुराराध्य परमात्मा की आराधना करके कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो आपके चरणों को छोड़कर किसी दूसरी वस्तु को प्राप्त करना चाहेगा ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

अतस्त्वद्व्यतिरेकेण न किंचिद्वाञ्छामीत्याह । तं त्वामेकान्तभक्त्याराध्य । वहिः स्वर्गादिसुखम् ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

अतएव मैं आपसे भिन्न किसी दूसरी वस्तु को नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ । उपर्युक्त प्रकार के आपकी ऐकान्तिक (अनन्या) भक्ति के द्वारा आराधना करके मैं स्वर्गादि को नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ ॥५५॥

यत्र निर्विष्टमरणं कृतान्तो नाभिमन्यते । विश्वं विध्वंसयन्वीर्यशौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा ॥५६॥

अन्वयः— शौर्यवीर्यविस्फूर्जितभ्रुवा विश्वं विध्वंसयन् कृतान्तः यत्र करणं निर्विष्टं नाभि मन्यते ॥५६॥

अनुवाद— जो काल अपने अदम्य उत्साह और पराक्रम से फड़कती हुई भौंहों के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को विनष्ट कर देता है, वह भी आपके चरणों के शरण में प्रविष्ट प्राणिपर अपना प्रभाव नहीं दिखा पाता है ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः यत्र पादमूले शरणं प्रविष्टं कृतान्तः कालो ममायं वश्य इति नाभिमानं करोति । किं कुर्वन् । वीर्यं प्रभावः, शौर्यं उत्साहः, ताभ्यां विस्फूर्जितया क्षुभितया भ्रुवा विश्वं विध्वंसयन्नपि ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

भगवद् व्यतिरिक्त वस्तु से भिन्न वस्तु को नहीं चाहने का कारण बतलाते हुए बतलाते है । जिस चरण के शरण में गये हुए प्राणी पर काल यह मेरा वश्य है, इस प्रकार से अभिमान नहीं करता है । कैसा काल तो उसे बतलाते हैं **वीर्य** अर्थात् प्रभाव **शौर्य** तथा उत्साह इन दोनों के द्वारा क्षुब्ध भौंहों के इशारे पर सम्पूर्ण विश्व का विध्वंश करने वाला काल ॥५६॥

क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम् । भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥५७॥

अन्वयः— भगवतसाङ्गिसङ्गस्य क्षणार्धेन अपि न स्वर्गं तुलये न अपुनर्भवं तुलये किमुत मर्त्यानाम् आशिषः ॥५७॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के भक्तों के होने वाले आधेक्षण की सङ्गति के समान न तो मैं स्वर्ग को मानता हूँ और न तो मोक्ष को मानता हूँ, तो फिर मनुष्यों को भोग के रूप में प्राप्त होने वाले राज्यादि की कौन सी बात है ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

त्वत्पादमूले प्रविष्टस्य कृतान्तभयाभावः कियानयं लाभो यतस्त्वद्भक्तसङ्ग एव सकलपुरुषार्थश्रेणिशिरसि नरीनर्तीत्याह। भगवतस्तव सङ्गिनां सङ्गस्य क्षणार्धेनापि स्वर्गं न तुलये समं न गणयामि । न चापुनर्भवं मोक्षम् । मर्त्यानामाशिषो राज्याद्याः किमुत ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

हे प्रभो ! आपके चरणों में प्रविष्ट मनुष्य को मृत्यु के भय का अभाव हो जाता है, यह कितना बड़ा लाभ है क्योंकि आपके भक्तों की सङ्गति सभी पुरुषार्थों से श्रेष्ठ है इसी अर्थ का प्रतिपादन करते हुए इस श्लोक में कहा

गया है कि हे प्रभो भक्तों की आधे क्षण की भी सङ्गति के समान न तो मैं स्वर्ग को मानता हूँ और न तो मोक्ष को मानता हूँ। तो फिर मनुष्यों को भोग्य के रूप में प्राप्त होने वाले राज्य आदि की कौन सी बात है ।।५७।।

अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्तितीर्थयोरन्तर्बहिः स्नानविधूतपाप्मनाम् ।
भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां स्यात्सङ्गमोऽनुग्रह एष नस्त्व ।।५८।।

अन्वयः— अथ अनघाङ्घे तव कीर्तितीर्थयोः अन्तर्बहिः स्नान विधूत पाप्मनाम् भूतेष्वनुकोशसुसत्त्वशीलिनम्सङ्गमः स्यात् एष नः तवानुग्रहः ।।५८।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आपके चरण सम्पूर्ण पाप राशि को हर लेने वाले हैं। हम चाहते हैं कि जिन लोगों ने आपकी कीर्ति रूपी गङ्गा और तीर्थ (गङ्गा) में आन्तरिक और बाह्य स्नान करके आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार के पापों को धो डाला है और उसके कारण जीवों पर कृपा रागादि से रहित चित्त शील एवं ऋजुता आदि गुणों से सम्पन्न हैं, ऐसा लोगों की सङ्गति मुझे मिलती रहे। यह आपका हमलोगों पर अनुग्रह होगा ।।५८।।

भावार्थ दीपिका

अथ अतो हेतोरनघावघहरावङ्घ्री यस्य तस्य तव कीर्तिर्यशस्तीर्थं गङ्गा तयोः क्रमेणान्तर्बहिः स्नानाभ्यां विधूतः पाप्मा येषाम्। अतएव भूतेष्वनुक्रोशः कृपा सुसत्त्वं च रागादिरहितं चित्तं शीलं चार्जवादि विद्यते येषां तेषां सङ्गमोऽस्माकं स्यात्। एष एव नस्तवानुग्रहः ।।५८।।

भाव प्रकाशिका

आपके भक्तों की सङ्गति के सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ होने के कारण आपके चरण सम्पूर्ण पाप राशि को विनष्ट कर देने वाले हैं। इस प्रकार की आपकी कीर्ति गङ्गा और श्रीगङ्गाजी में स्नान करने के कारण जिन लोगों ने अपने आभ्यन्तर और बाह्य पापों को विनष्ट कर दिया तथा जिनके चित्त में जीवों पर कृपा राग द्वेष आदि से रहित अन्तःकरण शील तथा आर्जव आदि का निवास हो गया है ऐसे सत्पुरुषों की सङ्गति मिलती रहे, यही आपका हमलोगों पर महान् अनुग्रह होगा ।।५८।।

न यस्य चित्तं बहिरर्थविभ्रमं तमोगुहायां च विशुद्धमाविशत् ।
यद्भक्तियोगानुगृहीतमञ्जसा मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिम् ।।५९।।

अन्वयः— यस्य चित्तं भक्तियोगानु गृहीतम् विशुद्धम् बहिरर्थ विभ्रमं, तमो गुहायां च न आविशत् स मुनिः ननु तत्र ते गतिम् विचष्टे ।।५९।।

अनुवाद— जिस साधक का चित्त भक्तियोग के द्वारा अनुगृहीत होने के कारण शुद्ध हो गया है और न तो वह बाह्य विषयों में भटकता है और न तो प्रकृति रूपी गुफा में लीन होता है, वह साधक अनायास ही आपके स्वरूप का दर्शन कर लेता है ।।५९।।

भावार्थ दीपिका

तत्त्वज्ञानं च त्वद्भक्तसङ्गादेव भवतीत्याह–न यस्येति। येषां सतां भक्तियोगेनानुगृहीतं शुद्धं सद्यस्य चित्तं बाह्यार्थविक्षिप्तं न भवति तमोरूपायां गुहायां च नाविशल्लयं न प्राप। तत्र तदा मुनिस्तव गतिं तत्त्वं पश्यति ।।५९।।

भाव प्रकाशिका

हे भगवन् ! तत्त्व का ज्ञान भी आपके भक्तों की सङ्गति से ही होता है इसी अर्थ का प्रतिपादन इस श्लोक में किया गया है। जिन सत्पुरुषों का भक्तियोग से अनुगृहीत होने के कारण चित्त शुद्ध हो गया है और वह न तो बाह्य विषयों में भटकता है औन न तो अज्ञान स्वरूपिणी प्रकृति गुफा में लीन होता है। उस स्थिति को प्राप्त मुनि बिना किसी प्रयास के ही आपके तत्त्व का साक्षात्कार कर लेता है ।।५९।।

यत्रेदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन्नवभाति यत् । तत्त्वं ब्रह्म परंज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ॥६०॥

अन्वयः— यत्र इदं विश्वं व्यज्यते यच्च विश्वस्मिन् अवभाति, तत् आकाशमिव विस्तृतम् परं ज्योति तत्त्वं ब्रह्म।।६०।।

अनुवाद— जिसमें यह सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है तथा जो इस सम्पूर्ण जगत् में भास रहा है, वह आकाश के समान व्यापक और परम प्रकाशमय ब्रह्म तत्त्व आप ही है ।।६०।।

भावार्थ दीपिका

कीदृशं तत्त्वं तदाह- यत्रेति ।।६०।।

भाव प्रकाशिका

जिस तत्त्व के साधक सत्पुरुष प्राप्त कैसा है तो इसी का उत्तर यत्र० इत्यादि इस श्लोक के द्वारा दिया गया है ।।६०।।

यो माययेदं पुरुरूपयासृजद्बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः ।
यद्भेदबुद्धि; सदिवात्मदुःस्थया तमात्मतन्त्रं भगवन्प्रतीमहि ॥६१॥

अन्वयः— यः इदं सदिव पुरुरूपया मायया आसृजत् विभर्ति, क्षिपति अथापि अविक्रियः, यद् भेद बुद्धि आत्मदुःस्था हे भगवन् तम् आत्मतन्त्रं प्रतीमहि ।।६१।।

अनुवाद— जो आप अपनी अनेक रूपों वाली माया के द्वारा स्वयम् अविकृत रहते हुए इस सम्पूर्ण जगत् की सत्पदार्थ के समान रचना करते है, पालन करते हैं और अन्त में इसका संहार कर देते हैं । यह दूसरों में भेद बुद्धि को उत्पन्न करती है किन्तु यह आप पर अपना प्रभाव डालने में असमर्थ है, ऐसे आपको हम परम स्वतन्त्र मानते हैं ।।६१।।

भावार्थ दीपिका

जगत उपादानत्वेन तत्त्वं लक्षितं निमित्तत्वेनापि तदेव लक्षयन्नाह । य इदं विश्वं सदिव परमार्थमिव माययासृजत् । कथं भूतया । यया भेदबुद्धिरन्येषां भवति तथा । आत्मनि त्वयि दुःस्थया स्वकार्यं कर्तुमसमर्थया । तं त्वां निरस्तभेदं प्रतीमहि जानीमः ।।६१।।

भाव प्रकाशिका

जगत् के उपादान कारण रूप से जिसको बतलाया जा चुका है उसी परमात्म तत्त्व को निमित्त कारण रूप से लक्षित करते हुए कहते हैं । जिस आपने अपनी माया के द्वारा इस जगत् की परमार्थ के ही समान रचना की। जो माया दूसरों में भेद बुद्धि उत्पन्न करती है किन्तु आपमें यह अपना कार्य करने में असमर्थ है । ऐसे भेद रहित आपको हम परम स्वतंत्र मानते हैं ।।६१।।

क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः श्रद्धान्विताः साधु यजन्ति सिद्धये ।
भूतेन्द्रियान्तःकरणोपलक्षितं वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः ॥६२॥

अन्वयः— भूतेन्द्रियान्तकरणोपलक्षितं श्रद्धान्विताः योगिनः सिद्धये इदमेव क्रियाकलापैः साधु यजन्ति त एव वेदे तन्त्रे च कोविदाः ।।६२।।

अनुवाद— हे भगवन् ! आपका स्वरूप पञ्च महाभूत, इन्द्रियाँ और अन्तःकरण के प्रेरक रूप से उपलक्षित होता है । श्रद्धा सम्पन्न योगिजन आपके इसी रूप का पूजन अच्छी तरह से सिद्धि प्राप्त करने के लिए करते हैं। ऐसा करने वाले ही उपासक वेद और शास्त्रों के ज्ञाता हैं ।।६२।।

भावार्थ दीपिका

यद्यपि त्वमेव निर्भेदं ब्रह्म तथापि प्रागुक्तं साकारमिदं तव रूपं ये यजन्ति त एव वेदागमतत्त्वज्ञा इत्याह । क्रियाकलापैर्ये कर्मयोगिनः पूजयन्ति त एव कोविदा न त्वेतदनादृत्य केवलज्ञाने प्रवृत्ताः । तन्त्रे आगमे । कथंभूतमिदम् । भूतेन्द्रियान्तःकरणैरस्वतन्त्रैर्यदुपलक्ष्यते नियन्तृरूपं तत् ।।६२।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि आप ही भेद रहित ब्रह्म हैं, फिर भी पूर्व वर्णित आपके इस सकार रूप का जो लोग अपने क्रिया कलाप के द्वारा पूजन करते हैं वे ही मर्मज्ञ पुरुष हैं । वे आगम और वेद दोनो में निपुण हैं । यदि कोई कहे कैसे रूप का तो इसका उत्तर है कि आपका जो रूप पञ्चमहाभूत इन्द्रियां और इन्द्रियों के प्रेरक रूप से उपलक्षित होता है । आपके इसी नियामक रूप का ।।६२।।

त्वमेक आद्यः पुरुषः सुप्तशक्तिस्तया रजःसत्त्वतमो विभिद्यते ।
महानहं खं मरुदग्निवार्धराः सुरर्षयो भूतगणा इदं यतः ।।६३।।

अन्वयः— त्वम् एकः आद्यः पुरुषः सुप्तशक्तिः तया रजः सत्वतमो विभिद्यते । यतः महान् अहं, खं, मरुत्, अग्नि, जल पृथिवी, देवता, ऋषि, भूतगणा इदं च ।।६३।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप ही अद्वितीय आदि पुरुष हैं । सृष्टि से पूर्व आपकी माया शक्ति सोयी रहती है । फिर उससे, रजोगुण, सत्त्वगुण एवं तमोगुण का भेद होता है । फिर उन्हीं गुणों से महान् अहङ्कार आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, देवता ऋषि और समस्त प्राणियों से युक्त इस जगत् की उत्पत्ति होती है ।।६३।।

भावार्थ दीपिका

नन्वभिन्ने मयि भेदं कुर्वन्तः सन्तः कथं ते कोविदाः, नहि तैर्भेदः क्रियते, त्वयैव क्रीडार्थं चेतनाचेतनात्मको भेदः कृत इत्याह–त्वमिति । आद्यस्त्वमेक एव सुप्ता मायाख्या शक्तिर्यस्य । पश्चात्तया शत्तया । रजःसत्त्वतमसां द्वन्द्वैक्यम् । यतो रजआदेः महानहंकारः खं च मरुदग्निर्वार्धराश्च । वाः उदकम् । सुराश्चर्षयश्च भूतगणाश्चैवमिदं जगद्यतो भवति तद्विभिद्यते इत्यन्वयः ।।६३।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि मैं निर्भेद हूँ और मुझमें भेद करने वाले कैसे सन्त हो सकते हैं ? कैसे वे मर्मज्ञ हो सकते हैं ? तो इसका उत्तर है कि वे आपमें भेद नहीं करते हैं अपितु आप ही क्रीडा करने के लिए चेतना चेतनात्मक भेद को करने वाले है । इसी अर्थ को **त्वमेव० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । सृष्टि से पूर्व आप एक ही थे । आपकी माया शक्ति सोयी हुई थी । उसके पश्चात् उस शक्ति से रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण इन तीनों गुणों का भेद होता है । उसके पश्चात् उन गुणों से ही महान्, अहङ्कार, आकाश, वायु, तेज जल और पृथिवी देवता ऋषि इत्यादि सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं । इस तरह यह जगत् उत्पन्न होता है ।।६३।।

सृष्टं स्वशक्त्येदमनुप्रविष्टश्चतुर्विधं पुरमात्मांशकेन ।
अथो विदुस्तं पुरुषं सन्तमन्तर्भुङ्क्ते हृषीकैर्मधु सारघं यः ।।६४।।

अन्वयः— स्वशक्त्या इदं चतुर्विधं सृष्टं पुरम् आत्मांशकेन अनुप्रविष्टः यः सारधं हृषीकैः अन्तः मधुभुक्तं तं सन्तम् पुरुषं विदुः ।

अनुवाद—अपनी माया शक्ति से ही सृष्टि जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज इन चार प्रकार के शरीरों के भीतर अपनी आत्मा के एक अंश से प्रवेश करके जिस तरह मधुमखियाँ अपने से ही सृष्टि मधु का पान करती

उसी तरह आप भी अपनी इन्द्रियों के द्वारा विषयों का भोग करते हैं। आपके उसी अंश को विज्ञ पुरुष जीव शब्द से अभिहित करते हैं ॥६४॥

भावार्थ दीपिका

एतदुपपादयति सृष्टमिति। जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जरूपेण चतुर्विधं स्वांशेन प्रविष्टः। अथो इति हेतोः परस्यान्तः सन्तमंशं चिदाभासं पुरि शयनात्पुरुषं विदुः। तर्हि किमीश्वरमेव संसारिणं विदुर्नेत्याह। सरघा मधुमक्षिकास्ताभिः सृष्टं मध्विव क्षुल्लकं विषयसुखमविद्यावृतः सन् यो भुङ्क्ते तं जीवं विदुः। तथाच श्रुतिः 'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति'। निर्णीतं च 'गुहाप्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्' इत्यत्र ॥६४॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही उपपादन **सृष्टम्० इत्यादि** श्लोक से करते हैं। आपने ही जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज, इन चार प्रकार के शरीरों की सृष्टि की है और आप उसमें अपने एक अंश से प्रविष्ट हैं इसीलिए उन शरीरों के भीतर विद्यमान अंश चूकि शरीर में निवास करते हैं। फलतः उस अंश को पुरुष शब्द से अभिहित किया जाता है। तो फिर ईश्वर को ही संसारी कहा जाता है क्या ? तो ऐसी बात नहीं हैं ? जिस तरह मधुमखियाँ अपने से ही सृष्ट मधु का भोग करती हैं उसी तरह क्षुद्र विषयों का भोग करने वाला अविद्या से आवृत होकर जो भोग करता है उसको जीव कहते हैं श्रुति भी कहती है **तयोरन्यः पिप्पलं स्वदवत्ति अनश्नन्नयो अभिचाकशीति** अर्थात् उन दोनों जीवात्मा और परमात्मा से एक जीव विषयों का भोग करता है और दूसरा ईश्वर उससे असंपृक्त रहकर प्रकाशित होता है। इसी अर्थ का निर्णय **गुहां प्रविष्टावात्मानौ तद् दर्शनात्** सूत्र के शाङ्कर भाष्य में निर्णय किया गया है ॥६४॥

स एष लोकानतिचण्डवेगो विकर्षसि त्वं खलु कालयानः ।
भूतानि भूतैरनुमेयतत्त्वो घनावलीर्वायुरिवाविषह्यः ॥६५॥

अन्वयः— अनुमेय तत्त्वः स एष त्वं अविषह्यवेगः वायुः घनावलिः इव भूतानि भूतैः कालयानः अतिचण्डवेगः सन् विकर्षसिः ॥६५॥

अनुवाद— आपका ज्ञान अनुमान से ही होता है प्रत्यक्ष से नहीं। इस प्रकार के आप जिस प्रकार प्रचण्ड वेग सम्पन्न वायु मेघ समूह को तितर वितर करके विनष्ट कर देती है उसी तरह प्रचण्ड वेग सम्पन्न आप एक भूत से दूसरे भूत को विलग करके इस संसार का संहार कर देते हैं ॥६५॥

भावार्थ दीपिका

तव तु सर्वनियन्तुः कुतः संसार इत्याह। यः स्वशक्त्येदं सृष्टवान्स एष त्वं खलु भूतैरेव भूतानि मेघपङ्क्तीर्वायुरिव कालयन्विचालयन्। लोकान्विकर्षसि संहरति। अनुमेयतत्त्वोऽलक्ष्यस्वरूपः ॥६५॥

भाव प्रकाशिका

आप तो सम्पूर्ण जगत् का नियमन करने वाले हैं आप संसार में कैसे संसरण कर सकते हैं ? इस बात को कहते हैं। आपने ही अपनी शक्ति से इस जगत् की सृष्टि की है। जिस तरह असह्य वेग सम्पन्न वायु मेघ समूह को तितर वितर कर देती है उसी तरह से आप भी एक भूत से दूसरे भूत को अलग करके उसका संहार कर देते हैं। आप तो अनुमेय तत्त्व हैं आपका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है ॥६५॥

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानाऽहिरिवाखुमन्तकः ॥६६॥

अन्वयः— प्रमत्तम् उच्चै इति कृत्य चिन्तया प्रवृद्धलोभम् विषयेषुलालसम् अप्रमतः अन्तकः अप्रमतः त्वम् आखुम् क्षुल्लेलिहनः अहिरिव सहसा अभिपद्यसे ॥६६॥

अनुवाद— हे प्रभो ! यह मोहग्रस्त जीव प्रमादवशात् हर समय इसी चिन्ता में पड़ा रहता है कि मुझे अमुक कार्य करना है । उसका लोभ बढ़ गया है और विषयों की ही लालसा उसमें बनी रहती है । किन्तु आप सदैव सावधान रहते हैं, भूख से जीभ लपलपाने वाला सर्प जैसे चूहे का निगल जाता है उसी तरह से आप उसे अपने कालस्वरूप से निगल जाते हैं ॥६६॥

भावार्थ दीपिका

विकर्षणप्रकारमाह-प्रमत्तमिति । इतिकृत्यमेवमेवमिदं कर्तव्यमिति चिन्तयोच्चैः प्रमत्तम् । तत्र हेतुः- विषयेषु लालसमतिकामुकम् । प्राप्तेऽपि विषये प्रवृद्धलोभम् । अन्तकस्त्वमभिपद्यसे आक्रमसि क्षुधा लेलिहानौ जिह्वयौष्ठप्रान्तौ स्पृशन्सर्पो मूषकमिव ॥६६॥

भाव प्रकाशिका

जगत् के संहार प्रकार को बतलाते हुए **प्रमत्तम् इत्यादि** श्लोक को कहते हैं इस प्रकार से इस कार्य को करना है इस प्रकार की चिन्ता के कारण अत्यधिक असावधान जीव, की विषयों की प्राप्ति की कामना बनी रहती हैं, और विषयों की प्राप्ति हो जाने पर भी और अधिक विषयों की प्राप्ति का उसको लोभ होता है । और काल स्वरूप आप उसको, भूख से अपने ओष्ठों को चाटने वाला सर्प जैसे चूहे को निगल जाता है उसी तरह उसको निगल जाते हैं ॥६६॥

कस्त्वत्पदाब्जं विजहाति पण्डितो यस्तेऽवमानव्ययमानकेतनः ।
विशङ्कयास्मद्गुरुरर्चति स्म यद्विनोपपत्तिं मनवश्चतुर्दश ॥६७॥

अन्वयः— यः ते अवमान व्ययमानकेतनः कः पण्डितः त्वत्पादाब्जं विजहाति । यदस्माकं गुरुः यत् अर्चति स्म, विशङ्कया विनोपपत्तिं चतुर्दशमनवः ॥६७॥

अनुवाद— जो अपका अनादर के कारण आयु को व्यर्थ मानता हो ऐसा कौन सा पण्डित होगा जो आपके चरणों को भूल जायेगा ? इसकी पूजा काल की ही आशङ्का से हमारे पिता ब्रह्माजी और स्वायम्भुव मनु भी बिना किसी प्रकार का विचार किए ही करते रहे ॥६७॥

भावार्थ दीपिका

अतः कस्तव पदाब्जं त्यजेत्पण्डितश्चेत् । कथंभूतः । यस्तवावमानोऽनादरस्तेन व्ययमानं केतनं शरीरं यस्य सः । यदस्माकं गुरुर्ब्रह्मर्चति स्मेति सर्वेषां स्तोतृणां वाक्यम् । विशङ्कया नाशशङ्कया । विनोपपत्तिमिति दृढविश्वासेन । मनवश्चतुर्दशार्चन्ति स्म ॥६७॥

भाव प्रकाशिका

अतएव कोई भी पण्डित आपके चरण कमलों को कैसे भूल सकता है ? यदि कहें कि कैसा पण्डित ? तो इस पर कहते हैं जे आपके अनादर के कारण अपने शरीर को व्यर्थ ही मानता है । हमारे पिता ब्रह्माजी और चौदह मनु भी नाश की ही आशङ्का से बिना किसी प्रकार का विचार किए ही आपके जिन चरणों की पूजा करते रहते हैं ॥६७॥

अथ त्वमसि नो ब्रह्मन्परमात्मन्विपश्चिताम् । विश्वं रुद्रभयध्वस्तमकुतश्चिद्भया गतिः ॥६८॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् विश्वं रुद्रभयध्वस्तम् अथ विपश्चिताम् नः हे परमात्मन् त्वम् अकुतश्चिदभयागतिः असि॥६८॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! यह सारा जगत् रुद्र रूप काल के भय से व्याकुल है अतएव हे परमात्मन् ! इस तत्त्व को जानने वाले हमलोगों के लिए तो आप ही भय रहित आश्रय हैं ॥६८॥

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-अथेति । रुद्रभयेन ध्वस्तम् । अतो न कुतश्चिद्भयं यस्यां तादृशी गतिरसि ॥६८॥

भाव प्रकाशिका

स्तोत्र का उपसंहार **अथ० इत्यादि** श्लोक से करते हैं । रुद्रभयेन ध्वस्तम् का अर्थ है काल स्वरूप रुद्र के भय से व्याकुल जिसमे कहीं से भी कोई भय नहीं है ऐसा आश्रय आप हैं ॥६८॥

इदं जपत भद्रं वो विशुद्धा नृपनन्दनाः । स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो भगवत्यर्पिताशयाः ॥६९॥

अन्वयः— भो नृपनन्दनाः विशुद्धा स्वधर्मम् अनुतिष्ठन्तः भगवति अर्पिताशयाः इदं जपत, वः भद्रम् ॥६९॥

अनुवाद— हे राजकुमारों तुम लोग विशुद्ध मन से अपने धर्म का पालन करते हुए, श्रीभगवान् में ही अपने मन को लगाये रहकर इस स्तोत्र का जप करो, तुमलोगों का मङ्गल होगा ॥६९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६९॥

तमेवात्मानमात्मस्थं सर्वभूतेष्ववस्थितम् । पूजयध्वं गृणन्तश्च ध्यायन्तश्चासकृद्धरिम् ॥७०॥

अन्वयः— तमेव आत्मस्थम् सर्वभूतेषु अवस्थितम् गृणन्तश्च असकृद्ध्यायन्तश्च आत्मानम् हरिम् पूजयध्वम् ॥७०॥

अनुवाद— उन्हीं, अपने अन्तःकरण में अवस्थित तथा सभी भूतों में अन्तर्यामी रूप से अवस्थित सबों की आत्मा श्रीहरि की स्तुति करते हुए तथा बार-बार ध्यान करते हुए पूजा करो ॥७०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७०॥

योगादेशमुपासाद्य धारयन्तो मुनिव्रताः । समाहितधियः सर्व एतदभ्यसतादृताः ॥७१॥

अन्वयः— योगादेशम् उपासाद्य धारयन्तः मुनिव्रताः समाहितधियः सर्वे एतद् आदृताः अभ्यसत ॥७१॥

अनुवाद— इस योगादेश नामक स्तोत्र को प्राप्त करके उसको मन से धारण किए हुए मुनिव्रत को अपनाकर सावधानी पूर्वक तुम सब लोग आदर पूर्वक इसका पाठ करो ॥७१॥

भावार्थ दीपिका

योगादेशं नामैतत्स्तोत्रमुपासाद्य पाठतः प्राप्य मनसा धारयन्तोऽभ्यासेन जपत ॥७१॥

भाव प्रकाशिका

योगादेश नामक इस स्तोत्र को प्राप्त पाठ के द्वारा प्राप्त करके अपने मन में इसको धारण किए हुए बार-बार इसका जप करो ॥७१॥

इदमाह पुरास्माकं भगवान्विश्वसृक्पतिः । भृग्वादीनामात्मजानां सिसृक्षुः संसिसृक्षताम् ॥७२॥

अन्वयः— पुरा इदम् सिसृक्षः भगवान् विश्वसृक्पतिः संसृक्षताम् अस्माकं भृग्वादीनाम् आत्मजानां आह ॥७२॥

अनुवाद— इस स्तोत्र को प्राचीन काल में सृष्टि करने के इच्छुक विश्व की सृष्टि करने वाले भगवान् प्रजापति ने सृष्टि का कार्य करने वाले हम भृगु आदि अपने पुत्रों को सुनया था ॥७२॥

भावार्थ दीपिका

विश्वसृजां पतिर्ब्रह्मा ।।७२।।

भाव प्रकाशिका

विश्वसृक् पति: पद का अर्थ ब्रह्माजी है ।।७२।।

ते वयं नोदिताः सर्वे प्रजासर्गे प्रजेश्वराः । अनेन ध्वस्ततमसः सिसृक्ष्मो विविधाः प्रजाः ।।७३।।

अन्वयः— ते वयं सर्वे प्रजेश्वराः प्रजासर्गे नोदिता: अनेन ध्वस्ततमसः विविधाः प्रजाः सिसृक्ष्मः ।।७३।।

अनुवाद— प्रजाओं की सृष्टि करने के लिए ब्रह्माजी के द्वारा आदिष्ट हम सबों ने इस स्तोत्र के ही द्वारा अपने अज्ञान को नष्ट करके अनेक प्रकार की सृष्टि की ।।७३।।

भावार्थ दीपिका

सिसृक्ष्मः सृष्टवन्तः ।।७३।।

भाव प्रकाशिका

सिसृक्ष्म: पद का अर्थ है सृष्टि किए ।।७३।।

अथेदं नित्यदा युक्तो जपन्नवहितः पुमान् । अचिराच्छ्रेय आप्नोति वासुदेवपरायणः ।।७४।।

अन्वयः— अथ नित्यदा इदं युक्तः अवहितः जपन् पुमान् अचिरात् वासुदेव परायणः अचिरात् श्रेयः आप्नोति।।७४।।

अनुवाद— अब भी प्रतिदिन इस स्तोत्र को एकाग्रचित्त होकर जो पुरुष सावधानी पूर्वक जपेगा वह भी भगवान् वासुदेव की भक्ति करता हुआ शीघ्र ही कल्याण प्राप्त करेगा ।।७४।।

भावार्थ दीपिका

युक्त एकाग्रचित्तः ।।७४।।

भाव प्रकाशिका

युक्त: पद का अर्थ है एकाग्रचित्त होकर ।।७४।।

श्रेयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयसं परम् । सुखं तरति दुष्पारं ज्ञाननौर्व्यसनार्णवम् ।।७५।।

अन्वयः— इह सर्वेषां श्रेयसां ज्ञानं परम निःश्रेयसम् ज्ञाननौः दुष्पारं व्यसनार्णवं सुखं तरति ।।७५।।

अनुवाद— इस संसार में समस्त कल्याण के साधनों में ज्ञान सबसे श्रेष्ठ कल्याण का साधन है ज्ञान रूपी नौका को अपनाने वाला बड़ी आसानी से इस दुस्तर संसार सागर को पार कर जाता है ।।७५।।

भावार्थ दीपिका

ज्ञानमेव नौर्यस्य ।।७५।।

भाव प्रकाशिका

ज्ञान को ही नौका बनाने वाला यह ज्ञाननौ: पद का अर्थ है ।।७५।।

य इमं श्रद्धया युक्तो मद्गीतं भगवत्स्तवम् । अधीयानो दुराराध्यं हरिमाराधयत्यसौ ।।७६।।

अन्वयः— य इमं, मद्गीतं भगवत्स्तवम् श्रद्धया युक्तः अधीयानो भवति असौ दुराराध्यं हरिम् आराधयति ।।७६।।

अनुवाद— जो मेरे द्वारा कहे गये इस श्रीभगवान् को स्तोत्र का श्रद्धा पूर्वक पाठ करेगा वह दुराराध्य भी श्रीहरि को प्रसन्न करेगा ।।७६।।

भावार्थ दीपिका

योऽधीयानो भवत्यसौ हरिमाराधयति ।।७६।।

भाव प्रकाशिका

जो इसका पाठ करेगा वह श्रीहरि को प्रसन्न कर लेगा ।।७६।।

विन्दते पुरुषोऽमुष्माद्यद्यदिच्छेत्त्वरन् । मद्गीतगीतात्सुप्रीताच्छ्रेयसामेकवल्लभात् ।।७७।।

अन्वयः— यः पुरुषः मद्गीतगीतान् सुप्रीतात् श्रेयसाम् एकबल्लभात् अमुष्मात् असत्वरन् यद् यदिच्छति विन्दते।।७७।।

अनुवाद— जो पुरुष मेरे द्वारा गाये गये इस स्तोत्र से प्रसन्न हुए समस्त कल्याणों के एकमात्र आश्रय श्रीभगवान् से स्थिर चित्त से जो-जो प्राप्त करना चाहेगा वह उसे प्राप्त कर लेगा ।।७७।।

भावार्थ दीपिका

अमुष्माद्धरेः । असत्वरन् स्थिरः सन् । मद्गीतं स्तोत्र तेन गीतात्स्तुतात् यद्यदिच्छति तत्तद्विन्दते । एक एव वल्लभः प्रिय आश्रयस्तस्मात् ।।७७।।

भाव प्रकाशिका

अमुष्मात् का अर्थ है श्रीहरि से, **असत्वरन्** का अर्थ है स्थिर चित्त से, मेरे द्वारा गाये गये स्तोत्र से प्रसन्न हुए श्रीहरि से मनुष्य जो-जो चाहता है वह-वह प्राप्त करता है । **एकबल्लभात्** का अर्थ है एक मात्र प्रिय आश्रय।।७७।।

इदं यः कल्य उत्थाय प्राञ्जलिः श्रद्धयान्वितः । शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो मुच्यते कर्मबन्धनैः ।।७८।।

अन्वयः— कल्ये उत्थाय प्राञ्जलिः श्रद्धयान्वितः इदम् यः मर्त्यः शृणुयात् श्रावयेत् सः कर्मबन्धनैः मुच्यते ।।७८।।

अनुवाद— प्रात:काल उठकर हाथ जोड़े हुए श्रद्धा पूर्वक जो मनुष्य इसको सुनेगा अथवा सुनायेगा वह कर्म के बन्धनों से मुक्त हो जायेगा ।।७८।।

भावार्थ दीपिका

कल्ये उषसि ।।७८।।

भाव प्रकाशिका

कल्ये अर्थात् उषः काल में ।।७८।।

गीतं मयेदं नरदेवनन्दनाः परस्य पुंसः परमात्मनः स्तवम् ।
जपन्त एकाग्रधियस्तपो महच्चरध्वमन्ते तत आप्स्यथेप्सितम् ।।७९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे रुद्रगीतं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

अन्वयः— हे नरदेवनन्दनाः मया इदं परस्य पुंसः स्तवम् गीतम् एकाग्रधियः जपन्तः महत् तपः चरध्वम् अथ ततः अन्ते इप्सितम् आप्स्यथ ।।७९।।

अनुवाद— हे राजकुमारों मैंने यह परम पुरुष परमात्मा के स्तोत्र का गान किया है । इसका एकाग्रबुद्धि से जप करते हुए तुमलोग महान् तप करो उसके अन्त में तुमलोग अपने अभिप्रेत अर्थ को प्राप्त कर लोगे ।।७९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के रुद्रगीत नामक चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

तपश्चरत तपसोऽन्ते ईप्सितं प्राप्स्यथ ।।७९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

तुम लोग तप करो तप के अन्त में अभिप्रेत अर्थ को प्राप्त करोगे ।।७९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के चौबीसबें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२४।।

पच्चीसवाँ अध्याय

पुरञ्जनोपाख्यान का प्रारम्भ

मैत्रेय उवाच

इति संदिश्य भगवान्बार्हिषदैरभिपूजितः । पश्यतां राजपुत्राणां तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥१॥

अन्वयः— भगवान् हरः इति सन्दिश्य बार्हिषदैरभिपूजितः सन् राजपुत्राणां पश्यतां तत्रैव अन्तर्दधे ॥१॥

मैत्रेय जी ने कहा

अनुवाद— हे विदुर भगवान् शिव इस प्रकार से प्रचेताओं को उपदेश देकर तथा प्रचेताओं के द्वारा पूजित होकर उन सबों के देखते ही देखत अन्तर्धान हो गये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

प्रचेतस्सु तपस्यत्सु तत्पित्रे नारदो घृणी । प्राचीनबर्हिषेऽध्यात्मं पारोक्ष्येणाह पञ्चभिः । पुरंजनकथाव्याजात्पञ्चविंशे तु नारदः । आत्मनो बुद्धिसङ्गेन विविधामाह संसृतिम् । प्रचेतस्सु तपस्तीव्रं तप्यमानेषु नारदः । पुरंजनकथाकूटं प्राह प्राचीनबर्हिषे।।१।।

भाव प्रकाशिका

जब प्रचेतागण तपस्या कर रहे थे उस समय दयालु नारदजी ने उन सबों के पिता प्राचीन बर्हि को परोक्ष ही रहकर आत्मज्ञान का उपदेश दिया । इस पचीसवें अध्याय में नारदजी ने पुरञ्जन कथा के व्याज से यह बतलाया कि आत्मा का जब बुद्धि के साथ सम्बन्ध होता है तो अनेक प्रकार की सृष्टियाँ होती हैं । जब प्रचेता गण तीव्र तपस्या कर रहे थे उस समय नारदजी ने प्राचीन बर्हि को पुरञ्जन कथाकूट को सुनाया ॥१॥

रुद्रगीतं भगवतः स्तोत्रं सर्वे प्रचेतसः । जपन्तास्ते तपस्तेपुर्वर्षाणामयुतं जले ॥२॥

अन्वयः— ते सर्वे प्रचेतसः जले रुद्रगीतं भगवतः स्तोत्रं जपन्तः वर्षाणामयुतं तपस्तेपुः ॥२॥

अनुवाद— वे सभी प्रचेतागण जल के भीतर रुद्र गीत नामक श्रीभगवान् के स्तोत्र का पाठ करते हुए दश हजार वर्षों तक तपस्या करते रहे ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

प्राचीनबर्हिषं क्षत्तः कर्मस्वासक्तमानसम् । नारदोऽध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयन् ॥३॥

अन्वयः— क्षत्तः कर्मसु आसक्तमानसम् प्राचीनबर्हिष अध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः नारदः प्रत्यबोधयन् ॥३॥

अनुवाद— हे विदुर ! कर्मों में ही जिनका मन लगा था उन महाराज प्राचीन बर्हि को अध्यात्म तत्त्ववेत्ता दयालु नारदजी ने बतलाया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

प्रचेतस्सु तपश्चरत्सु नारदः प्राचीनबर्हिषं बोधितवान् । अतः प्रचेतसां कथामसमाप्यैव तत्पितुर्वृत्तमाह-प्राचीनबर्हिषमिति।।३।।

भाव प्रकाशिका

प्रचेतागण जब तपस्या कर रहे थे उस समय ही नारदजी महाराज प्राचीन बर्हि को उपदेश दिया इसीलिए प्रचेताओं की कथा समाप्त किए बिना ही मैत्रेयजी ने उन सबों के पिता प्राचीन बर्हि के वृत्तान्त को **प्राचीन वर्हिषम्० इत्यादि** श्लोक से कहा ।।३।।

श्रेयस्त्वं कतमद्राजन्कर्मणात्मन ईहसे । दुःखहानिः सुखावाप्तिः श्रेयस्तन्नेह चेष्यते ।।४।।

अन्वयः— हे राजन् ! कर्मणा आत्मनः कतमत् श्रेयः ईहसे । दुःखहानिः सुखावाप्तिः श्रेयः तत् इह च न ईष्यते।।४।।

अनुवाद— राजन् ! आप इस कर्म के द्वारा आत्मा का कौन सा कल्याण करना चाहते हैं ? दु:ख का आत्यन्तिक नाश और सुख की प्राप्ति को ही कल्याण कहते है, कर्म के द्वारा इन दोनों में से कोई भी सम्भव नहीं है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

श्रेयः फलमीहसे इच्छसि । इह कर्मणि तदुभयं नेष्यते विचारकैः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

श्रेय ईहसे का अर्थ है कि फल प्राप्त करना चाहते हो । कर्म के द्वारा न तो दु:ख का आत्यन्तिक विनाश सम्भव है और न शाश्वत सुख की प्राप्ति ही सम्भव है । यह विचारकों का मानना हैं ।।४।।

राजोवाच

न जानामि महाभाग परं कर्मापविद्धधीः । ब्रूहि मे विमलं ज्ञानं येन मुच्येय कर्मभिः ।।५।।

अन्वयः— हे महाभाग ! कर्मापविद्धधीः परं न जानामि मे विमलं ज्ञानं ब्रूहि येन कर्मभिः मुच्येय ।।५।।

राजा ने कहा

अनुवाद— महाभाग नारदजी मेरी बुद्धि कर्मों में फँसी हुई है अतएव मुझे परम कल्याण का पता नही हैं। आप मुझे विशुद्ध ज्ञान का उपदेश दें जिससे कि मैं कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाऊँ ।।५।।

भावार्थ दीपिका

परंश्रेयो मोक्षम् । कर्मभिरपविद्धाविक्षिप्ता ।।५।।

भाव प्रकाशिका

परंश्रेयमोक्ष को कहते है । कर्मापविद्धधीः अर्थात् कर्मों में लगी हुई बुद्धि ।।५।।

गृहेषु कूटधर्मेषु पुत्रदाराधनार्थधीः । न परं विन्दते मूढो भ्राम्यन्संसारवर्त्मसु ।।६।।

अन्वयः— कूटधर्मेषु गृहेषु पुत्रदाराधनार्थ घीः मूढः संसारवर्त्मसु भाम्यन् परं न विन्दते ।।६।।

अनुवाद— कपट धर्ममय गृहस्थाश्रम में ही लगा रहने वाला मूर्ख मनुष्य पुत्र, पत्नी और धन को ही परम पुरुषार्थ मानने के कारण संसार मार्ग में ही भटकता हुआ परम कल्याण को नहीं प्राप्त कर सकता है ।।६।।

भावार्थ दीपिका

किञ्च गृहेषु स्थितः । पुत्रादिष्वेव पुरुषार्थधीर्यस्य ।।६।।

भाव प्रकाशिका

और जो गृहस्थाश्रम में रहकर पुत्र आदि को ही पुरुषार्थ मानता है ।।६।।

नारद उवाच

भो भो प्रजापते राजन्पशून्पश्य त्वयाऽध्वरे । संज्ञापितान् जीवसंघान्निर्घृणेन सहस्रशः ॥७॥

अन्वयः— भो भो प्रजापते ! निर्घृणेन त्वया अध्वरे संज्ञपितान् सहस्रशः जीव संघान पश्य ॥७॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! तुमने निर्दयता पूर्वक यज्ञों में जिन हजारों पशुओं का वध किया है उन हजारों जीव समूहों को आकाश मे देखो ॥७॥

भावार्थ दीपिका

कर्मफलेषु वैराग्यमुत्पाद्य ब्रह्मविद्यामुपदेष्टुं योगानुभावेन यज्ञपशून्प्रत्यक्षं प्रदर्श्याह-भो भो इति । संज्ञापितान्मारितान्॥७॥

भाव प्रकाशिका

कर्म फलों में वैराग्य को उत्पन्न करके ब्रह्मविद्या का उपदेश देने के लिए अपने योग के प्रभाव से यज्ञ में मारे गये पशुओं को प्रत्यक्ष दिखाकर नारदजी ने भो भो इत्यादि श्लोक को कहा । संज्ञापितान् अर्थात् मारे गये॥७॥

एते त्वां संप्रतीक्षन्ते स्मरतो वैशसं तव । संपरेतमयःकूटैश्छिन्दन्त्युत्थितमन्यवः ॥८॥

अन्वयः— एते तव वैशसं स्मरन्तः त्वां संप्रतीक्षन्ते, उत्थित मन्यवः एते संपरेतम् अयः कूटैः छिन्दन्ति ॥८॥

अनुवाद— ये सब तुम्हारे द्वारा प्राप्त हुई पीडाओं को याद करते हुए तुमसे बदला लेने के लिए तुम्हारी राह देख रहे है । जब तुम मरकर जाओगे तो ये सब अपने लोहे के सींगों से तुमको छेदेंगे ॥८॥

भावार्थ दीपिका

एते त्वां संपरेतं मृतं संप्रतीक्षन्ते । वैशसं त्वत्कृतां पीडां स्मरन्तः ततश्चायः कूटैर्लोहयन्त्रमयैः शृङ्गैश्छिन्दन्ति छेत्स्यन्ति॥८॥

भाव प्रकाशिका

ये सब मरकर स्वर्ग में आने की तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं । ये तुम्हारे द्वारा प्राप्त हुई पीडा का स्मरण करते हुए वहाँ अपने लोहे से निर्मित सींग के द्वारा तुमको छेदेंगे ॥८॥

अत्र ते कथयिष्येऽमुमितिहासं पुरातनम् । पुरंजनस्य चरितं निबोध गदतो मम ॥९॥

अन्वयः— अत्र ते अमुम् पुरातनम् इतिहासं कथयिष्ये गदतो मम पुरञ्जनस्य चरितं निबोध ॥९॥

अनुवाद— इस विषय में मैं आपको एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ । वह राजा पुरञ्जन का इतिहास उसे तुम मुझसे सुनो ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अत्रास्मिन्संकटे निस्तारकममुमितिहासं कथयिष्यामि ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इस सङ्कट से पार करने वाला मैं एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ ॥९॥

आसीत्पुरंजनो नाम राजा राजन्बृहच्छ्रवाः । तस्याविज्ञातनामासीत्सखाऽविज्ञातचेष्टितः ॥१०॥

अन्वयः— राजन् बृहच्छ्रवा पुरञ्जनो नाम राजा आसीत्, तस्य अविज्ञात नामा अविज्ञातचेष्टितः सखा आसीत् ॥१०॥

अनुवाद— राजन् प्राचीन काल में एक अत्यन्त यशस्वी पुरञ्जन नामक राजा थाउसका अविज्ञात नामक एक मित्र था उसकी चेष्टाओं को कोई भी नहीं जान पाता था ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तत्र जीवस्य विषयासक्त्या संसारः स चेश्वरानुग्रहेण निवर्तत इति वक्तुं विपर्ययगृहीतस्य साक्षाद्बोधयितुमशक्ते राजवृत्तान्तमिवाह-आसीदिति । पुरंजनादीन्स्वयमेवेतः पञ्चमेऽध्याये व्याख्यास्यति, तथापि सुखग्रहणाय यथोपयोगं किंचित्किंचिद्व्याख्यास्यामः । तत्र स्वकर्मभिः पुरं शरीरं जनयतीति पुरंजनो जीवः न विज्ञातं नाम यस्य । न च विज्ञातं चेष्टितं यस्य स ईश्वरस्तस्य सखा । यद्वा विज्ञातं चेष्टितं जीवप्रेरणादिलक्षणं यस्य । जीवपारतंत्र्यस्यानुभवसिद्धत्वात् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

विषयों में ही लगे रहने वाले जीव को संसार में भटकते रहना पड़ता है । जब उस पर ईश्वर की कृपा होती है तब वह कर्मों में होने वाली आसक्ति को त्याग देता है । इस अर्थ को बतलाने के लिए ठीक इसके विपरीत कर्मों में लगे राजा को साक्षात् समझना कठिन होने के कारण यहाँ पर राजा के वृत्तान्त के समान इस उपाख्यान को कहा गया है । इस अध्याय के बाद में आने वाले पाँचवें अध्याय मे पुरञ्जन आदि की व्याख्या नारदजी स्वयम् करेंगे । फिर भी आसानी से बोध कराने के लिए मैं (श्रीधरस्वामी) उपयोगानुसार थोड़ी-थोड़ी व्याख्या करूँगा । अपने कर्मों के द्वारा शरीर को उत्पन्न करने वाले जीव को पुरञ्जन कहा गया है । जिनका नाम और कर्म विज्ञात नहीं है, वे ईश्वर ही अविज्ञात शब्द से कहे गये हैं । अथवा जीव को प्रेरित करना आदि जिनकी चेष्टायें अज्ञात हैं वे ईश्वर हैं । जीवात्मा परमात्म परतन्त्र है यह अनुभव सिद्ध है ।।१०।।

सोऽन्वेषमाणः शरणं बभ्राम पृथिवीं प्रभुः । नानुरूपं यदाऽविन्ददभूत्स विमना इव ।।११।।

अन्वयः— सः प्रभुः शरणम् अन्वेषमाणः पृथिवीं बभ्राम । यदा सः अनुरूपं न अन्वविन्दत स विमना इव बभूव।।११।।

अनुवाद— वह राजा पुरञ्जन अपने रहने योग्य स्थान को खोजता हुआ सम्पूर्ण पृथिवी पर घूमता रहा किन्तु जब उसको अपनें रहने योग्य स्थान नहीं मिला तो वह उदास सा हो गया ।।११।।

भावार्थ दीपिका

शरणं भोगायतनं देहम् । पृथिवीं तदुपलक्षितं ब्रह्माण्डम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

शरण शब्द से जहाँ पर रहकर भोगों को जीव भोग भोग सके उस देह को कहा गया है । पृथिवी शब्द से पृथिवी के द्वारा उपलक्षित ब्रह्माण्ड को कहा गया है ।।११।।

न साधु मेने ताः सर्वा भूतले यावतीः पुरः । कामान्कामयमानोऽसौ तस्य तस्योपपत्तये ।।१२।।

अन्वयः— कामान् कामयमानोऽसौ तस्य तस्य उपपतये भूतले यावत्यः पुरः ताः सर्वाः साधु न मेने ।।१२।।

अनुवाद— अनेक प्रकार के भोगों को भोगों को भोगने की इच्छा वाले पुरञ्जन ने इस पर विद्यमान जितनी नगरियों को देखा उनमें से उसने किसी भी नगरी को अच्छा नहीं समझा ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

यावत्यः पुरस्तास्तस्य तस्य कामस्योपपत्तये प्राप्त्यै असौ साधु न मेने । गवादिदेहानामैहिकपारलौकिकभोगभोग्यत्वाभावात्। तथा च श्रुतिः 'ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्नवैनोऽयमलमिति ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्नवै नोऽयमलमिति' इति ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

जितनी भी नगररियाँ इस भूमण्डल पर थी उन सबों में से किसी को भी उसने विभिन्न भोगों की प्राप्ति के योग्य उचित नहीं समझा । गौ इत्यादि का शरीर ऐसा नहीं है कि उसके द्वारा लौकिक तथा पारलौकि सभी भोगों को भोगा जा सके । श्रुति भी कहती है ब्रह्माजी उन सबों को गौलाये तो उन सब इन्द्रियों ने कहा यह हमलोगों

के लिए पर्याप्त नहीं है, उसके पश्चात् वे उन सबो के लिए अश्व का शरीर लाए तो उन सबों न कहा यह हमारे समस्त भोगों को भोगने के लिए पर्याप्त नहीं है ॥१२॥

स एकदा हिमवतो दक्षिणेष्वथ सानुषु । ददर्श नवभिर्द्वार्भिः पुरं लक्षितलक्षणाम् ॥१३॥

अन्वयः— अथः सः एकदा हिमवतः दक्षिणेषु सानुषु नवभिर्द्वार्भिः लक्षित लक्षणम् पुरं ददर्श ॥१३॥

अनुवाद— उसने एक दिन हिमालय के दक्षिण शिखरों पर एक नगर को देखा वह नव द्वारों वाला था, वह नगर के सभी लक्षणों से युक्त था ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

हिमवतो दक्षिणेषु सानुषु । कर्मक्षेत्रे भारतवर्षे । पुरं मनुष्यशरीरम् । लक्षितानि दृष्टानि सर्वाणि लक्षणानि यस्याम् । अन्धपङ्गुत्वादिदोषरहितामित्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

हिमालय के दक्षिण शिखरो पर कर्म क्षेत्र भारत वर्ष में पुरम् अर्थात् मनुष्य शरीर को देखा वह सभी लक्षणों से युक्त था । अर्थात् अन्ध पङ्गु आदि दोषों से रहित था ॥१३॥

प्राकारोपवनाट्टालपरिखैरक्षतोरणैः । स्वर्णरौप्यायसैः शृङ्गैः संकुलां सर्वतो गृहैः ॥१४॥

अन्वयः— सर्वतः प्राकारोप वनाट्टालपरिरवैः अक्षतोरणैः स्वर्णप्यायसैः शृङ्गैः गृहैः सङ्कुलाम् ॥१४॥

अनुवाद— सब ओर से परकोटों, बगीचों, अटारियों, खाइयों, झरोखों और राजद्वारों से वह नगर सुशोभित था । वह सोने, चाँदी और लोहों के शिखरों वाले गृहों से भरा था ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तामनुवर्णयति त्रिभिः । अत्र किंचित्किंचित्सादृश्यमवलम्ब्य कथासौन्दर्याय प्राकारादीनि वर्ण्यन्ते । परिखैरिति पुंस्त्वमार्षम्। अक्षाणीन्द्रियाणि गवाक्षाः । त्वगादयः शरीरावयवाः प्राकारादिपुरावयवत्वेन निरूप्यन्ते । स्वर्णादिशृङ्गैः शिखरैर्युक्ता ये गृहास्तैः सङ्कुलामिति । आधारादिचक्राणि गृहाः शृङ्गाणि च राजसादिस्वभावा विवक्षिताः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

उस नगरी का वर्णन तीन श्लोकों से थोड़ी समता को लेकर वर्णन करते हैं जिससे कि कथा का सौन्दर्य बढ जाय । परिखैः यह पुल्लिङ्ग प्रयोग आर्ष है, अन्यथा परिखाभिः होना चाहिए । अक्ष शब्द इन्द्रियों और गवाक्षों का बोधक शरीर रूपी नगरी के गवाक्ष का काम इन्द्रियाँ ही करती हैं । त्वक् इत्यादि शरीर के अवयवों का वर्णन प्रकार आदि नगरी के अवयवों के रूप में किया गया है । सुवर्ण आदि के शिखरों से युक्त गृहों से वह नगरी भरी हुई थी । यहाँ आधार चक्र आदि को गृह कहा गया है और राजस आदि स्वभाव शृङ्गों के द्वारा विवक्षित हैं ॥१४॥

नीलस्फटिकवैदूर्यमुक्तामरकतारुणैः । क्लृप्तहर्म्यस्थलीं दीप्तां श्रिया भोगवतीमिव ॥१५॥

अन्वयः— नीलस्फटिकवैदूर्य मुक्तामरकतारुणैः क्लृप्रहर्म्यस्थलीं भोगवतीमिव श्रियादीप्ताम् ॥१५॥

अनुवाद— इसके महलों की फर्शें नीलम, स्फटिक, वैदूर्य, मोती, पन्ना और लाल के बनी थीं । अपनी कान्ति के कारण वह नागों की नगरी भोगवती के समान प्रतीत होती थी ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

नीलादिभिः क्लृप्ता हर्म्यस्थली यस्याम् । अरुणं माणिक्यम् । स्थलं हृदयम् । नाडयो नीलादिभावेन निरूप्यन्ते तत्तद्विषयवासना वा । भोगवतीं नागानां पुरीमिव ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

उस नगरी की फर्शें नीलम आदि से बनी थी। हृदय को फर्श कहा गया है। नाड़ियों को नीलम इत्यादि रूप से निरूपित किया गया है। अथवा विभिन्न विषयों की वासनाओं को नीलम इत्यादि·रूप से निरूपित किया गया है। नागों की नगरी भोगवती के समान थी वह नगरी ॥१५॥

सभाचत्वररथ्याभिराक्रीडायतनापणैः। चैत्यध्वजपताकाभिर्युक्तां विद्रुमवेदिभिः ॥१६॥

अन्वयः— सभाचत्वररथ्याभिः आक्रीडायतनापणै चैत्यध्वज पताकाभिः विद्रुमवेदिभिः च युक्ताम् ॥१६॥

अनुवाद— उसमें जहाँ-तहाँ अनेक सभाभवन चौराहे, सड़क क्रीडा भवन, बाजार, विश्रामस्थान ध्वजा पताकाएँ और मूङ्गे क चबूतरे बने थे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

सभा समाजस्थानम्, चत्वरं चतुष्पथः, रथ्या राजमार्गः, आक्रीडायतनं द्यूतादिस्थानम्, आपणो हट्टः, तैः। चैत्यं जनानां विश्रामस्थानम्, ध्वजेषु पताकाः ताभिश्च युक्ताम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

सभा जहाँ पर समाज के लोग एकत्रित होते हों, चौराहे, राजमार्ग, जूआ आदि खेलने के स्थान, बाजार इन सबों से युक्त थी वह नगरी। लोगों के विश्राम स्थान को चैत्य कहा जाता है तथा ध्वजा पताका आदि से युक्त थी वह नगरी ॥१६॥

पुर्यास्तु बाह्योपवने दिव्यद्रुमलताकुले। नदद्विहङ्गालिकुलकोलाहलजलाशये ॥१७॥

अन्वयः— पुर्याबाह्योपवने तु दिव्यद्रुमलताकुले, नदद्विहंगा कुलकोलाहल जलाशये ॥१७॥

अनुवाद— उस नगरी के बाहर का उपवन दिव्य वृक्षों और लताओं से भरा था। उस उपवन के जलाशय में अनेक प्रकार के पक्षियों के बोलने की ध्वनि होती रहती थी ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अत्र च विषयनिष्ठबुद्धियोगेन जीवस्य देहसंबन्ध इति विवक्षया विषयवर्गं बाह्योपवनत्वेन निरूपयति। तद्विशेषान् स्रक्चन्दनादीन् दिव्यद्रुमलतादिभावेन। शेषः कथालङ्कारः। बाह्योपवने प्रमदां ददर्शेति चतुर्थेनान्वयः। नदतां विहङ्गालिकुलानां कोलाहलो येषु ते जलाशया यस्मिन् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

विषयनिष्ठ बुद्धि के योग के कारण ही जीव का शरीर से सम्बन्ध होता हैं इसी अभिप्राय से विषयों का निरूपण नगर के बाहरी उपवन के रूप में किया गया है। विषयों के विशेष भूत स्रक् (माला) चन्दन आदि को दिव्य वृक्ष तथा लता आदि के रूप में निरूपित किया गया है। शेषसारी बातें कथा के अलङ्कार मात्र हैं। उस उपवन में राजा पुरञ्जन एक युवती को देखा यह इस श्लोक के चौथे श्लोक से अन्वय हैं ॥१७॥

हिमनिर्झरविप्रुष्मत्कुसुमाकरवायुना। चलत्प्रवालविटपनलिनीतटसंपदि ॥१८॥

अन्वयः— हिमनिर्झर विप्रुष्मत् कुसुमाकारवायुना चलत् प्रवाल विटपनलिनी तट संपदि ॥१८॥

अनुवाद— सरोवर के तट पर विद्यमान वृक्षों के पत्ते शीतल झरनों के जल कणों से युक्त वासन्ती वायु के झोकों से हिलते हुए तट भूमि को सुशोभित कर रहे थे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

हिमनिर्झराणां विप्रुषो विन्दवस्तद्वता कुसुमाकरसंबन्धिना वायुना चलन्तः प्रवाला विटपाः शाखाश्च येषां तैर्वृक्षैर्नलिनीनां सरसीनां तटेषु सम्पत्समृद्धिर्यस्मिन् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

शीतल झरनों के जल कण से युक्त वासन्ती वायु के हिलते हुए वृक्षों की शाखाएँ और पत्ते उस सरोवर की तट भूमि की शोभा को बढा रहे थे ।।१८।।

नानारण्यमृगव्रातैरनाबाधे मुनिव्रतैः । आहूतं मन्यते पान्थो यत्र कोकिलकूजितैः ।।१९।।

अन्वयः— मुनिव्रतैः नानारण्यमृगव्रातैः अनाबाधे, कोकिलकूजितैः यत्र पान्थः आहूतं मन्यते ।।१९।।

अनुवाद— मुनियों के अहिसा आदि व्रतों का पालन करने वाले वहाँ के अनेक प्रकार के पशुओं से किसी को कोई भी कष्ट नहीं होता था । वहाँ की कोकिलों की मधुर ध्वनि को सुनकर मार्ग में चलने वाले पथिकों को लगता था कि वह उपवन उनको विश्राम करने के लिए जैसे बुला रहा है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

अनाबाधे तत्कृतबाधारहिते । मुनिव्रतैरहिंस्रैः । आत्मानमाहूतं मन्यते यत्र ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

अनाबाधे उन पशुओं द्वारा की जाने वाली बाधाओं से रहित उस उपवन में मुनिव्रतै मुनियों के अहिंसा आदिव्रतों का पालन करने वालों से पथिकों को लगता था कि वह उपवन उन्हें आहूत कर रहा है ।।१९।।

यदृच्छयागतां तत्र ददर्श प्रमदोत्तमाम् । भृत्यैर्दशभिरायान्तीमेकैकशतनायकैः ।।२०।।

अन्वयः— तत्र यदृच्छयागतां एकैक शतनायकैः दशभिःभृत्यैः आयान्तीं प्रमदोत्तमाम् ददर्श ।।२०।।

अनुवाद— राजा पुरञ्जन ने वहाँ पर अचानक आयी हुई एक सुन्दरी को देखा जो अपने दश भृत्यों के साथ आ रही थी । उसके प्रत्येक भृत्य सैकड़ों नायिकाओं के पति थे ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रमदोत्तमां विषयविवेकवर्तीं बुद्धिं ददर्श । यदृच्छयागतामिति तयोः संबन्धस्य दुर्निरूप्यत्वं दर्शयति । तामनुवर्णयति सार्धैश्चतुर्भिः । दशभिर्ज्ञानकर्मेन्द्रियैः । एकैकं प्रत्येकं शतमनन्ता वृत्तयस्तासां नायकैः पतिभिः सह । पाठान्तरे नायिकाः स्त्रियो येषां तैः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

वहाँ पर सुन्दरी अर्थात् विषयों के विवेक से सम्पन्न बुद्धि रूपी सुन्दरी को राजा पुरञ्जन (जीव) ने देखा । जो वहाँ अचानक आयी थी, अतएव उन दोनों का कोई सम्बन्ध नहीं था । उस बुद्धि सुन्दरी का वर्णन साढे चार श्लोकों में करते हैं । पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ ये उसके दश भृत्य थे । एकैकशतनायकै । अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय रूपी भृत्यों के **शतम्** अर्थात् अनन्त वृत्तियाँ ही पत्नियाँ थीं । उन वृत्ति रूप नायिकाओं के वे इन्द्रिय रूपी भृत्य नायक (स्वामी) थे । जहाँ **शतनायिकैः** पाठ भेद है वहाँ पर अर्थ होगा सैकड़ों नायिका ही जिनकी पत्नियाँ थीं ।।२०।।

पञ्चशीर्षाहिना गुप्तां प्रतीहारेण सर्वतः । अन्वेषमाणामृषभमप्रौढां कामरूपिणीम् ।।२१।।

अन्वयः— पञ्चशीर्षाहिना प्रतिहारेण सर्वतः गुप्ताम् अप्रौढां कामरूपिणीम् ऋषभम् अन्वेषमाणम् ददर्शेतिशेषः ।।२१।।

अनुवाद— एका पाँच फनों वाले सर्प रूपी द्वार पाल के द्वारा सब ओर से वह सुरक्षित थी वह अत्यन्त सुन्दरी सोलह वर्ष की थी प्रौढा नहीं थी । वह विवाह करने के लिए अपने पति का अन्वेषण कर रही थीं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

पञ्चशीर्षाणि वृत्तयो यस्य तेनाहिना प्राणेन प्रतीहारेण पालकेन गुप्ताम् । ऋषभं भर्तारम् । अप्रौढां षोडशवार्षिकीम्।।२१।।

भाव प्रकाशिका

प्राण अपान आदि पाञ्च वृत्तियों वाला प्राण रूपी सर्प उसका द्वारपाल था वही उसका संरक्षक था । वह अपने योग्य पति का अन्वेषण कर रही थी । उसकी अवस्था सोलह वर्ष की थी ।।२१।।

सुनासां सुदतीं बालां सुकपोलां वराननाम् । समविन्यस्तकर्णाभ्यां बिभ्रतीं कुण्डलश्रियम् ।।२२।।

अन्वयः— सुनासां, सुदतीं, सुकपोलां वराननाम्, समविन्यस्तकणीभ्याम् कुण्डलश्रियम् विभ्रतीं ददर्श ।।२२।।

अनुवाद— उसकी नाक, दन्त पक्ति, कपोल तथा मुख सुन्दर थे । उसके एक बराबर कानों में वह कुण्डल धारण किए हुई थी ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

गन्धज्ञानादिभिर्बुद्ध्यवयवैः सुनासत्वादि निरूप्यते । समं विन्यस्तौ रचितौ कर्णौ ताभ्यां कुण्डलशोभां दधतीम् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

गन्ध आदि के ज्ञान आदि बुद्धि के अवयवों के द्वारा उसको सुन्दर नासिका वाली इत्यादि के रूप में निरूपण किया गया है । उसके दोनों कान एक समान थे और उन कानों में वह कुण्डल की शोभा को धारण किए हुई थी।।२२।।

पिशङ्गनीवीं सुश्रोणीं श्यामां कनकमेखलाम् । पद्भ्यां क्वणभ्यां चलतीं नूपुरैर्देवतामिव ।।२३।।

अन्वयः— श्यामां, सुश्रोणीम्, पिशङ्गनीवीम्, कनक मेखलाम् नूपुरैः, क्वणद्भ्यां पद्भ्यां देवतामिव चलतीम्।।२३।।

अनुवाद— उसका वर्ण श्याम था, कमर सुन्दर था वह पीली साड़ी पहनी थी चलते समय उसके पैरों के पायल बजा करते थे । देखने में देवता के समान सुन्दर थी ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

'अन्नमयं हि सौम्य मनः' इति 'यत्कृष्णं तदन्नस्य' इत्यादिश्रुत्यनुसारेण श्यामामित्युक्तम् । नूपुरैः क्वणद्भ्यां । नूपुरेण पादाङ्गुलीयकानामप्युपलक्षणाद्बहुवचनम् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

श्रुति कहती है कि अन्नमयं हि सोम्य मनः । हे सोमरसपानार्हसच्छिस्य यह मन पार्थिव है । तथा **'यत् कृष्णं तदन्नस्य'** जो काला रूप है वह पृथिवी का रूप है । शरीर भी पार्थिव है इसीलिए उसको श्याम वर्ण का कहा गया है । नूपुर के द्वारा अङ्गुलियों के भी उपलक्षित होने के कारण नूपुरैः में बहुवचन है । अर्थात् उसके पैरों के नूपुर चलते समय बजा करते है । चलते समय वह देखने में देवता के समान सुन्दर प्रतीत होती थी ।।२३।।

स्तनौ व्यञ्जितकैशोरौ समवृत्तौ निरन्तरौ । वस्त्रान्तेन निगूहन्तीं व्रीडया गजगामिनीम् ।।२४।।

अन्वयः— स्तनौ व्यञ्जित कैशोरौ, समानवृत्तौ, निरन्तरौ व्रीडया वस्त्रान्तेन निगूहन्तीम् गजगामिनीम् ।।२४।।

अनुवाद— एक समान गोल तथा परस्पर में सटे हुए उसके दोनों स्तन उसकी किशोरावस्था को अभिव्यक्त कर रहे थे, वह लज्जा के कारण अपने आँचल से उन दोनों स्तनों को ढंके हुई थी और मन्दगति से चल रही थी।।२४।।

भावार्थ दीपिका

व्यञ्जितं कैशोरं यौवनोपक्रमो याभ्याम् । समौ च वृत्तौ च ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

व्यञ्जितकैशोरो का विग्रह है, व्यञ्जितं कैशोरं याभ्यां तौ। अर्थात् किशोरावस्था (जवानी की शुरुआत) को उसके दोनों स्तन अभिव्यक्त कर रहे थे। वे समान रूप से गोल थे ॥२४॥

तामाह ललितं वीरः सव्रीडस्मितशोभनाम् । स्निग्धेनापाङ्गपुङ्खेन स्पृष्टः प्रेमोद्भ्रमद्भ्रुवा ॥२५॥

अन्वयः— स्निग्धेन अपाङ्गपुङ्खेन, प्रेमोद्भ्रमद्भ्रुवा स्पृष्टः वीरः सव्रीडस्मितशोभनाम् ललितम् आह ॥२५॥

अनुवाद— प्रेम के कारण ऊपर की ओर चढ़ी हुई भौओं रूप धनुष से छूटे हुए प्रेम पूर्ण कटाक्षपात रूपी बाण से विद्ध राजा पुरञ्जन ने लज्जासंवलित मुसुकान से और अधिक सुन्दर लगने वाली उस सुन्दरी से मधुर शब्दों में कहा ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तामाहेति तयोः संवादोक्तिः संबन्धदार्ढ्याय। अपाङ्ग एव पुङ्खो मूलप्रान्तो यस्य कटाक्षस्य बाणस्य तेन स्पृष्टो विद्धः। प्रेम्णा उच्चैर्भ्रमन्ती भ्रूर्धनुस्थानीया यस्मिंस्तेन ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

सम्बन्ध को सुदृढ बनाने के लिए तामाह इत्यादि पद के द्वारा उन दोनों के संवाद को बतलाया गया है। कटाक्ष ही जिसका पिछला भाग था उस कटाक्ष रूपी बाण से वह राजा घायल हो गया था। कटाक्ष रूपी बाण के धनुष प्रेम के कारण ऊपर की ओर उठे हुए उसकी दोनों भौहें थीं ॥२५॥

का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कस्यासीह कुतः सति । इमामुपपुरीं भीरु किं चिकीर्षसि शंस मे ॥२६॥

अन्वयः— हे कञ्जपलाशाक्षि ! त्वं शंस, त्वं का कस्यासि ? इह कुतः ? भीरु ! इमाम् उपपुरीं किं चिकीर्षसि ॥२६॥

अनुवाद— हे कमलदल के समान नेत्रों वाली मुझे बतलाओ कि तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? यहाँ कहाँ से आयी हो ? हे सुन्दरि ! इस नगरी के सन्निकट में तुम क्या करना चाहती हों ? ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

कुतः स्थानादिहागताऽसि। हे सति, पुर्याः समीपस्था उपपुरी भूस्तामालक्ष्य किं कर्तुमिच्छसीत्यर्थः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

तुम किस स्थान से यहाँ आयी हो ? इस नगरी के सन्निकट में तुम क्या करना चाहती हो ?॥२६॥

क एतेऽनुपथा ये त एकादश महाभटाः । एता वा ललनाः सुभ्रूः कोऽयं तेऽहिः पुरःसरः ॥२७॥

अन्वयः— एते अनुपथा के? ये ते एकादशमहाभटाः के सुभ्रु एताः ललनाः वा काः? अयंते पुरः सरः अहिः कः?॥२७॥

अनुवाद— ग्यारह महावीरों से संचालित ये तुम्हारे अनुगमन करने वाले कौन हैं ? हे सुन्दरि ! ये सुन्दरियाँ कौन हैं ? यह तुम्हारे आगे चलने वाला सर्प कौन है ?॥२७॥

भावार्थ दीपिका

ते तव येऽनुपथा अनुवर्तिन एते के। एकादशो महान्भटो बृहद्बलत्वेन वक्ष्यमाणो येषु दशसु ते। बुद्धेर्मनसः पृथगुपादानं बुद्धिपरिचारकेन्द्रियसहायतया तत्परिचारकत्वविवक्षया ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

तुम्हारे पीछे चलने वाले ये सब कौन है ? ग्यारहवाँ जो इन दशों का संचालक महान् बलवान् कौन है? बुद्धि से अलग मन को अलग ग्रहण इसलिए किया गया है कि वह बुद्धि के परिचारक इन्द्रियों का सहायक है॥२७॥

त्वं ह्रीर्भवान्यस्यथ वाग्रमा पतिं विचिन्वती किं मुनिवद्रहो वने ।
त्वदङ्घ्रिकामाप्तसमस्तकामं क्व पद्मकोशः पतितः कराग्रात् ॥२८॥

अन्वयः— त्वम् ह्रीर्वा, भवानीवा, अथवाक्, वा रमा ? मुनिवद् रहः वने त्वदङ्घ्रिकामाप्तसमस्तकामं पतिं विचिन्वती असिकिम् ? कराग्रात् पद्मकोशः क्वपतितः ॥२८॥

अनुवाद— तुम लज्जा देवी, भवानी, सरस्वती और लक्ष्मी देवी इनमें से कौन हो ? यहाँ एकान्त में मुनिजनों के समान वन में अपने पति देव का अन्वेषण कर रही हो का । तुम्हारे हाथों का कमल पुष्प कहाँ गिर गया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

त्वं ह्रीं किं पतिं धर्म विचिन्वती, अथवा भवानी पतिं शिवं विचिन्वती, अथवा किं वाक् सरस्वती पतिं ब्रह्माणम्, रमा पतिं विष्णुम् । मुनिरिव संयता सती । कथंभूतं पतिम् । त्वदङ्घ्रिकामेनैव त्वत्कृतया त्वदङ्घ्रिकामनयैव प्राप्ताः समस्ताः कामा येन तम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

तुम लज्जा देवी हो क्या ? और अपने पति देव को खोज रही हो ? अथवा अपने पतिदेव शिवजी को खोजन वाली भवानी हो ? अथवा अपने पति देव भगवान् विष्णु को खोजने वाली लक्ष्मी देवी हो ? या अपने पति देव ब्रह्माजी को खोजने वाली सरस्वती देवी हो ? यहाँ पर मुनियों के समान नियमित होकर अपने पति को खोज रही हो क्या ? यदि कहो कि कैसे पति ? तो इसका उत्तर है कि उनके चरणों को तुम प्राप्त करना चाहती इतने ही मात्र से तुम्हारे पतिदेव की सारी कामनाएँ पूर्ण हो जायेंगी ?॥२८॥

नासां वरोर्वन्यतमा भुविस्पृक्पुरीमिमां वीरवरेण साकम् ।
अर्हस्यलंकर्तुमदभ्रकर्मणा लोकं परं श्रीरिव यज्ञपुंसा ॥२९॥

अन्वयः— हे वरोरु ! त्वं आसाम् अन्यतमान ? यतः भुवि स्पृक् । अदभ्र कर्मण वीरवरेण साकम् इमां पुरीम् परं लोकं यज्ञ पुंसा श्रीरिव अलंकर्तुम् अर्हसि ॥२९॥

अनुवाद— हे सुन्दरि ! हे तुम इन सबों में से कोई भी नहीं हो क्योंकि तुम अपने चरणों से पृथिवी का स्पर्श कर रही हो देवता अपने चरणों से पृथिवी का स्पर्श नहीं करते हैं । यदि तुम मानवी हो तो जिस तरह श्रीदेवी अपने पति भगवान् विष्णु के साथ वैकुण्ठ की शोभा बढाती हैं उसी तरह तुम श्रेष्ठ वीर और अत्यन्त पराक्रमी मेरे साथ इस पुरी को अलंकृत करो ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

हे वरोरु, आसां मध्ये त्वमन्यतमापि न संभवसि । यतो भुविस्पृक् । नहि देवता भुवं स्पृशन्ति । वीरवरेण मया । ननु त्वमकर्मा कथं त्वया सहालंकरोमीति चेत्तत्राह । अद्भ्रमनल्पं कर्म त्वत्सङ्गाद्यस्य मम तेन स्वतोऽकर्मत्वेन त्वत्सङ्गात्सकर्मा भवामीत्यर्थः । परं वैकुण्ठम् ॥२९॥

यदेष माऽपाङ्गविखण्डितेन्द्रियं सव्रीडभावस्मितविभ्रमद्भ्रुवा ।
त्वयोपसृष्टो भगवान्मनोभवः प्रबाधतेऽथानुगृहाण शोभने ॥३०॥

अन्वयः— यत् अपाङ्ग विखण्डितेन्द्रियं सव्रीडभावस्मित विभ्रमद्भ्रुवा त्वया उपसृष्टः एष भगवान् मनोभवः मा बाधते अथ शोभने अनुगृहाण ॥३०॥

अनुवाद— चूकि तुम्हारे कटाक्षों ने मेरी इन्द्रियों को व्याकुल बना दिया है, तुम्हारे लज्जायुक्त रतिभाव से मुझे पीड़ित कर रहा है अतएव हे सुन्दरि ! तुम मुझको अनुगृहीत करो ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

यद्यस्मात्त्वापाङ्गेन विखण्डितमिन्द्रियं मनो यस्य त्तं मां मनोभवो बाधते । अथ तस्मादनुगृहाण । सव्रीडं यद्भावेन प्रेम्णा स्मितं विभ्रमन्ती या भ्रूस्तयोपसृष्टः प्रेरितः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

चूकि तुम्हारे कटाक्षों ने मेरी इन्द्रियों और मन को व्याकुल बना दिया है, अतएव काम मुझे पीड़ित कर रहा है अतएव तुम मुझको अनुगृहीत करो । वह कामदेव लज्जा युक्त रतिभाव से पूर्ण मुस्कान से मनोहर बनी भौहों से प्रेरित है ॥३०॥

तदाननं सुभ्रु सुतारलोचनं व्यालम्बिनीलालकवृन्दसंवृतम् ।
उन्नीय मे दर्शय वल्गुवाचकं यद्व्रीडया नाभिमुखं शुचिस्मिते ॥३१॥

अन्वयः— हे शुचिस्मिते सुभ्रु, सुतारलोचनं व्यालम्बिनीलालक वृन्द संवृतम्, यद्व्रीडया अभिमुखेन तत् बल्गुवाचकं मुखम् उन्नीय मे दर्शय ॥३१॥

अनुवाद— हे पवित्र मुस्कान वाली सुन्दरि ! सुन्दर भौहों, सुन्दर नेत्रों, लटके हुए काले घुंघराले केशों से घिरे जो लज्जा के मारे मेरे सामने होता ही नहीं है अपने उस मीठी बोली से युक्त मुख को उठाकर मुझे दिखाओ तो ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

यद्व्रीडया सन्मुखं न भवति तदाननमुन्नीय मे दर्शय । शोभने भ्रुवौ यस्मिन् । सुतारे शोभनकनीनिके लोचने यस्मिन्। व्यालम्बिनो दीर्घा ये अलकास्तेषां वृन्देन संवृतम् । वल्गूनि वाचकानि वाक्यानि यस्मिन् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

जो लज्जा के कारण मेरे सामने नहीं होता है अपने उस मुख को उठाकर मुझे दिखाओ । जो मुख सुन्दर भौहों, सुन्दर नेत्रों, एवं सुन्दर वाक्यों से युक्त हैं तथा लटकने वाले काले घुघराले केशों से घिरा हुआ है ॥३१॥

नारद उवाच

इत्थं पुरंजनं नारी याचमानमधीरवत् । अभ्यनन्दत तं वीरं हसन्ती वीरं मोहिता ॥३२॥

अन्वयः— हे वीर ! इत्थम् अधीरवत् याचमानम् पुरञ्जनं मोहिता सा नारी तं वीरं हसन्ती अभ्यनन्दत ॥३२॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— हे वीर ! इस प्रकार से जब राजा पुरञ्जन उससे अधीर होकर याचना कर रहे थे उस समय मोहित उस नारी ने भी उस वीर को हँसते हुए उसका अनुमोदन किया ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

हे वीर, सापि तं दृष्ट्वा मोहिता सती तमाह ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

हे वीरवर्य राजन् ! वह नारी भी उस राजा को देखकर मोहित हो गयी और उसने हँसकर उसको कहा।।३२।।

न विदाम वयं सम्यक्कर्तारं पुरुषर्षभ । आत्मनश्च परस्यापि गोत्रं नाम च यत्कृतम् ।।३३।।

अन्वयः— हे पुरुषर्षभ ! वयं कर्तारम् आत्मनः परस्यापि नाम यत् कृतमृ न विदाम ।।३३।।

अनुवाद— हे पुरुष श्रेष्ठ ! मैं अपने कर्ता या अपने या दूसरे के नाम को रखने वाले को या अपने गोत्र को नहीं जानती हूँ ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

यत्पृष्टं कस्यासीत्यनेन कस्य पुत्री गोत्रजेति का त्वमिति च किं नामासीति तत्राह । आत्मनो मम परस्य तवापि कर्तारं सम्यङ्न विद्मः । गोत्रं नाम च यत्कृतं भवति तं च न विद्मः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

आपने यह जो पूछा है कि तुम किसकी पुत्री हो तुम्हारा गोत्र क्या है ? तुम्हारा नाम क्या है ? इत्यादि मैं न तो अपना नाम जानती हूँ और न आपके कर्ता को अच्छी तरह से जानती हूँ । और गोत्र तथा नाम को भी नहीं जानता हूँ ।।३३।।

इहाद्य सन्तमात्मानं विदाम न ततः परम् । येनेयं निर्मिता वीर पुरी शरणमात्मनः ।।३४।।

अन्वयः— हे वीर इह अद्य सन्तम् आत्मानं विदामः ततः परम् न, येन इयम् आत्मनः शरणम् पुरी निर्मिता तमपिन विदामः ।।३४।।

अनुवाद— हे वीर ! मैं केवल इतना ही जानती हूँ कि हम यहाँ पर है इससे अधिक मैं नहीं जानती, हमलोगों को रहने के लिए जिसने इस पुरी को बनाया है, उसे भी मैं नहीं जानती हूँ ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनो मम शरणमियं पुरी येन निर्मिता तं च न विद्मः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

हमारे रहने के लिए इस पुरी का जिसने निर्माण किया है उसको भी मैं नहीं जानती हूँ ।।३४।।

एते सखायः सख्यो मे नरा नार्यश्च मानद । सुप्तायां मयि जागर्ति नागोऽयं पालयन्पुरीम् ।।३५।।

अन्वयः— हे मानद ! एते नराः नार्यश्च में सखायः सख्यश्च मयि सुप्तायां अयं नागः पुरीं पालयन् जागर्ति ।।३५।।

अनुवाद— हे प्रियतम ! ये पुरुष और स्त्रियाँ मेरी मित्र और सहेलियाँ हैं । मेरे सो जाने पर यह नाग इस नगरी की रक्षा करते हुए जगता रहता है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

यत्पृष्टं क एते अनुपथा इति तत्राह-एत इति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

पुरञ्जन ने यह जो पूछा था कि ये तुम्हारे अनुवर्ती कौन हैं, उसी का उत्तर **एते० इत्यादि** श्लोक से दिया गया हैं ।।३५।।

दिष्ट्यागतोऽसि भद्रं ते ग्राम्यान्कामानभीप्ससे । उद्वहिष्यामि तांस्तेऽहं स्वबन्धुभिररिन्दम ॥३६॥

अन्वयः— अरिन्दम् ! दिष्ट्या आगतोऽसि ते भद्रम् ग्राम्यान् कामान् अभीप्ससेतान् ते अहं स्वबन्धुभि उद्वहिष्यामि॥३६॥

अनुवाद— हे अपने शत्रुओं का दमन करने वाले सौभाग्य वशात् आप यहाँ पधारे हैं, आपका मङ्गल हो! आप को विषय भोगों की इच्छा अपने इन बन्धुओं के साथ मैं उसकी पूर्ति करती रहूँगी ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

आस्तां नामगोत्रादि, यदत्रागतोऽसि एतद्दिष्ट्या भद्रं तावत् । ग्राम्यानिन्द्रियग्रामार्हान् । उद्वहिष्यामि संपादयिष्यामि स्वबन्धुभिः सखिभिः सखीभिश्च ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

नाम और गोत्र आदि की बातों को छोड़िए । आप मेरे सौभाग्यवशात् यहाँ पधारे हैं, आपका मङ्गल हो। आपको मैं इन्द्रिय समूह के योग्य विषयों का सम्पादन अपने इन मित्रों और सखियों के द्वारा करती रहूँगी ॥३६॥

इमां त्वमधितिष्ठस्व पुरीं नवमुखीं विभो । मयोपनीतान्गृह्णानः कामभोगान् शतं समाः ॥३७॥

अन्वयः— विभो इमां पुरीं नवमुखीं पुरीं त्वम् मयोपनीतान् कामभोगान् गृह्णानः शतं समाः अधितिष्ठस्व ॥३७॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप इस नव द्वारों वाली नगरी में मेरे द्वारा उपस्थापित अभिप्रेत भोगों को भोगते हुए सैकड़ों वर्षों तक निवास करें ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

समाः संवत्सरान् । मनुष्यदेहप्रवेशाच्छतमित्युक्तम् ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

सम शब्द संवत्सर का वाचक है । मनुष्य देह में प्रवेश करने के कारण सौ वर्ष कहा गया है ॥३७॥

कं नु त्वदन्यं रमये ह्यरतिज्ञमकोविदम् । असंपरायाभिमुखमश्वस्तनविदं पशुम् ॥३८॥

अन्वयः— त्वदन्यं अरतिज्ञम्, अकोविदम्, असम्परायाभिमुखम्, अश्वस्तनविदं कं पशुम् रमये ॥३८॥

अनुवाद— आपको छोड़कर, रतिजन्य सुख से अनभिज्ञ, अनैष्ठिक, अनिषिद्ध सुख का भी परित्याग करने वाले, परलोक चिन्ता से रहित, कल मुझे यह करना है इस प्रकार की चिन्ता से रहित अतएव पशु के समान रहने वाले किसी दूसरे के साथ मैं कैसे रमण करूँगी ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

प्रवृत्तिस्वभावत्वान्निवृत्तिनिन्दापूर्वकं तत्सङ्गमभिनन्दति कमिति पञ्चभिः । त्वत्तोऽन्यं कं नु रमये । अरतिज्ञं नैष्ठिकम्। अकोविदमनिषिद्धसुखत्यागिनम् । संपरायो मृत्युस्तदनभिमुखं परलोकचिन्ताशून्यम् । अश्वस्तनविदं श्व इदं कर्तव्यमितीह लोकचिन्ताशून्यम् । अतएव पशुतुल्यम् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

प्रवृत्ति स्वभाव वाली होने के कारण वह सुन्दरी निवृत्ति मार्ग की निन्दा करती हुई पुरञ्जन के सङ्गम का अभिनन्दन पाँच श्लोकों में करती है । वह कहती है कि आपको छोड़कर मैं किसी दूसरी के साथ कैसे रमण करूँगी? वह तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी होने के कारण रति जन्य सुख को जानेगा ही नहीं, वह अनिषिद्ध सुख का भी त्याग करने वाला होगा, वह परलोक के विचार से रहित होगा और कल मुझ यह काम करना है इस बात को भी ध्यान नहीं रखने वाला पुरुष तो पशु के समान है । उसके साथ मैं कैसे रमण करूँगी ?॥३८॥

धर्मो ह्यत्रार्थकामौ च प्रजानन्दोऽमृतं यशः । लोका विशोका विरजा यान्न केवलिनो विदुः ॥३९॥

अन्वयः— अत्र हि धर्मः अर्थकामौ, प्रजानन्दः अमृतं यशः, विशोका विरजाः लोकाः यान् केवलिनः न विदुः ॥३९॥

अनुवाद— इस गृहस्थाश्रम मे ही धर्म, अर्थ, काम, प्रजाजन्य सुख, मोक्ष, यश तथा दिव्य लोकों की प्राप्ति हो सकती, निवृत्तिमार्गानुयायी यतिजन उसको नहीं जानते हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

अत्र गार्हस्थ्ये । प्रजानन्दः पुत्रसुखम् । अमृतं मोक्षः । केवलिनो यतयः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

इस गृहस्थाश्रम में ही पुत्र जन्य सुख मिलता हैं और मोक्ष की प्राप्ति होती है । यति जनों को गार्हस्थ्य में प्राप्त होने वाले सुख का पता ही नहीं होता है ॥३९॥

पितृदेवर्षिमर्त्यानां भूतानामात्मनश्च ह । क्षेम्यं वदन्ति शरणं भवेऽस्मिन्यद्गृहाश्रमः ॥४०॥

अन्वयः— पितृदेवर्षिमर्त्यानां भूतानाम् आत्मनः यः अस्मिन् भवे यद् गृहाश्रमः तत् क्षेम्यं शरणं वदन्ति ॥४०॥

अनुवाद— महापुरुषों का कहना है कि पितरों देवताओं और ऋषियों का मनुष्यों का और सभी प्राणियों का और अपना भी कल्याण गृहस्थाश्रम में ही है ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

गृहाश्रम इति यदेतत्क्षेमार्हं शरणमाश्रयं वदन्ति ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

गृहास्थाश्रम को ही कल्याण के योग्य आश्रम कहते हैं ॥४०॥

का नाम वीर विख्यातं वदान्यं प्रियदर्शनम् । न वृणीत प्रियं प्राप्तं मादृशी त्वादृशं पतिम् ॥४१॥

अन्वयः— हे वीर का नाम विख्यातं वदान्यं प्रियदर्शनम् प्राप्तं प्रियं पतिम् मादृशी त्वादृशं न वृणीत ॥४१॥

अनुवाद— हे वीर कौन मुझ जैसी नारी होगी जो विख्यात उदार, देखने में सुन्दर प्राप्त हुए तुम जैसे पति का वरण नहीं करेगी ॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४१॥

कस्या मनस्ते भुवि भोगिभोगयोः स्त्रिया न सज्जेद्भुजयोर्महाभुज ।
योऽनाथवर्गाधिमल घृणोद्धतस्मितावलोकेन चरत्यपोहितुम् ॥४२॥

अन्वयः— हे महाभुज ! ते भुवि भोगिभोगयोः भुजयो कस्याः स्त्रियः मनः न सज्जेत । यः घृणोद्धतस्मितावलोकेन अनाथवर्गाधिमलं अपोहितुम् चरति ॥४२॥

अनुवाद— महाबाहो ! इस पृथिवी पर आपकी सर्प जैसी गोल तथा कोमल भुजाओं में स्थान प्राप्त करने के लिए किस रमणी का मन नहीं ललचायेगा ? आप तो मुस्कान मिश्रित करुणापूर्ण दृष्टि से मुझ जैसी अनाथाओं के मानसिक संताप को दूर करने के लिए पृथिवी पर विचरा करते हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

भोगिभोगयोः सर्पदेहाकारयोस्तव भुजयोर्यन्न सज्जेदेवंभूतं कस्याः स्त्रिया मनः स्यान्न कस्या अपि । यो भवाननाथवर्गा दीनस्तोमास्तेषामाधिमलमत्यर्थपमोहितुं सर्वत्र चरति । केनापोहितुम् । घृणयोऽतोद्धतिशयितो यः स्मितपूर्वकोऽवलोकस्तेन॥४२॥

भाव प्रकाशिका

सर्प के देह के आकार वाले भुजाओं में स्थान प्राप्त करने के लिए किस स्त्री का मन नहीं ललचायेगा ? जो आप मुस्कान निर्मित कृपापूर्ण अवलोकन के द्वारा मुझ जैसी अनाथ स्त्रियों के मानसिक संताप को दूर करने के ही लिए इस पृथिवी पर विचरण करते हैं ।।४२।।

नारद उवाच

इति तौ दम्पती तत्र समुद्य समयं मिथः । तां प्रविश्य पुरीं राजन्मुमुदाते शतं समाः ।।४३।।

अन्वयः— राजन् इति द्वौ दम्पती मिथः समयं समुद्य तां पुरीं प्रविश्य शतं समाः मुमुदाते ।।४३।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! इस तरह से वे दोनों पति पत्नी परस्पर में एक दूसरे की बात का समर्थन करके उस नगरी में प्रवेश करके सौ वर्षों तक भोगों को भोगे ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

समुद्य समुदीर्य । समाः संवत्सरान् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

समुद्य पद का अर्थ है कहकर और समा: का अर्थ है संवत्सरों तक ।।४३।।

उपगीयमानो ललितं तत्र तत्र च गायकैः । क्रीडन्परिवृतः स्त्रीभिर्हृदिनीमाविशच्छुचौ ।।४४।।

अन्वयः— तत्र तत्र च गायकैः ललितं गीयमानः शुचौ स्त्रीभिः परिवृतः क्रीडन् हृदिनीम् आविशत् ।।४४।।

अनुवाद— गायक गण स्थान-स्थान पर उस राजा पुरञ्जन की स्तुति करते थे और ग्रीष्म ऋतु में वह स्त्रियों से घिरा हुआ सरोवर में प्रवेश करके जल क्रीडा करता था ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

तत्र जाग्रदवस्थां संक्षेपेणाह–उपगीयमान इति । सुषुप्तावस्थामाह । हृदिनीं हृदयाकाशं स्वापस्थानम् । शुचौ निदाघे।।४४।।

भाव प्रकाशिका

उप गीयमान: इत्यादि के द्वारा जीव की जाग्रदावस्था का वर्णन किया गया है । हृदिनीम् इत्यादि के द्वारा उसकी सुषुप्तावस्था का वर्णन किया गया है । हार्दाकाश ही स्वापस्थान है । शुचौ पद का अर्थ ऋष्म काल में है ।।४४।।

सप्तोपरिकृता द्वारः पुरस्तस्यास्तु द्वे अधः । पृथग्विषयगत्यर्थं तस्यां यः कश्चनेश्वरः ।।४५।।

अन्वयः— तस्याः पुरः उपरिसप्त द्वारः कृता अधस्तु द्वे । तस्यां यः कश्चनेश्वरः तस्य पृथक् विषय गत्यर्थम् ।।४५।।

अनुवाद— उस पुरी के ऊपर की ओर सात द्वार बनाये गये थे और नीचे की ओर दो द्वार बनाये गये थे । उस पुरी में जो कोई राजा होता था उसके अलग-अलग देशों में जाने के लिए ये द्वारा बनाये गये थे ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं नवद्वारप्रदर्शनपूर्वकं जाग्रदवस्थां प्रपञ्चयति–सप्तेति यावदध्यायसमाप्ति । तस्याः पुरः उपरि कृता द्वारः सप्त। वृता इति पाठे संवृताः। नेत्रे नासिके श्रोत्रे मुखं चेति सप्त। अधो द्वे द्वारौ गुदलिङ्गे। यः कश्चनेति आत्मनः सम्यगविज्ञानादनियतत्वाच्च।।४५।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में नव द्वारों के निरूपण पूर्वक जीव के जाग्रदावस्था का वर्णन इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त

करते हैं । उस पुरी के ऊपर वाले भाग में सात द्वार बनाये गये हैं— कृता के स्थान में वृतापाठ होने पर अर्थ संवृता होगा । दो नेत्र, दो नाक, दो श्रोत्र और मुख ये ऊपर के सात द्वार हैं । गुदा और लिङ्ग ये दो नीचे के मार्ग हैं । आत्मा का अच्छी तरह से ज्ञान नहीं होने के कारण और अनिश्चित होने के कारण यः कश्चन कहा गया है ॥४५॥

पञ्चद्वारस्तु पौरस्त्या दक्षिणैका तथोत्तरा । पश्चिमे द्वे अमूषां ते नामानि नृप वर्णये ॥४६॥

अन्वयः— पञ्च द्वारः पौरस्त्याः एका दक्षिणा, तथा च उत्तरा, द्वे पश्चिमे च हे नृप एषां नामानि वर्णये ॥४६॥

अनुवाद— उनमें पाँच द्वार पूर्वाभिमुख थे एक दक्षिणाभिमुख और एक उत्तराभिमुख तथा दो पश्चिमाभिमुख राजन् मैं उन सबों के नामों का मैं वर्णन करता हूँ ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

तासु सप्तसु पञ्चद्वारः पौरस्त्याः पूर्वदिग्भवाः ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

उन सात द्वारों में पाञ्चद्वार पूर्वदिशा में थे ॥४६॥

खद्योताविर्मुखी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते । विभ्राजितं जनपदं याति ताभ्यां द्युमत्सखः ॥४७॥

अन्वयः— खद्योताविर्मुखीच प्राग्द्वारौ एकत्र निर्मिते । ताभ्यां द्युमत्सखः विभ्राजितं जनपदं याति ॥४७॥

अनुवाद— खद्योता और आविर्मुखी नामक दो पूर्व के द्वारा एक ही स्थान पर निर्मित थे । उन द्वारो से पुरञ्जन अपने मित्र द्युमान् के साथ विभ्राजित नामक जनपद में जाता था ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

खद्योतवदल्पप्रकाशा वामनेत्ररूपा । आविः प्रकटं मुखं यस्याः सा बहुप्रकाशा दक्षिणनेत्रलक्षणा 'तस्माद्दक्षिणेर्ध आत्मनो वीर्यवत्तरः' इति श्रुतेः स्वानुभवाच्च तत्र प्रकाशाधिक्यम् । एकत्र संलग्ने । विभ्राजितं रूपम् । द्युमत्सखश्चक्षुःसहितः ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

जुगुनु के समान अल्प प्रकाशवान् होने के कारण वामनेत्र रूपी द्वार को खद्योता कहा गया है । अर्थात् जिसका मुख प्रकट है वह बहुत प्रकाश वाले दाहिने नेत्र को अविमुखी कहा गया है । श्रुति भी कहती है— **तस्माद् दक्षिणार्ध आत्मनो वीर्यवत्तरः** अर्थात् शरीर का दाहिना भाग अधिक बलवान् होता है । अपने प्रभाव के कारणभी दाहिने नेत्र में अधिक प्रकाश होता है । एकत्र निर्मित का अर्थ एक ही जगह संलग्न । विभ्राजितं जनपदं का अर्थ है रूप नामक विषय को, याति अर्थात् ग्रहण करता है । **द्युमत्सखः** का अर्थ है नेत्रों के साथ ॥४७॥

नलिनी नालिनी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते । अवधूतसखस्ताभ्यां विषयं याति सौरभम् ॥४८॥

अन्वयः— नलिनी नालिनी च प्राग्द्वारौ एकत्र निर्मिते ताभ्यां अवधूतसखः सौरभम् विषयं याति ॥४८॥

अनुवाद— पूर्व के नलिनी और नालिनी नामक दो द्वार एक ही स्थान पर निर्मित हैं उन दोनों से अवधूत नामक मित्र के साथ सौरभ नामक प्रदेश में जाता था ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

नलनालशब्दौ छिद्रवचनौ । तद्वती नलिनी नालिनी च वामदक्षिणनासिके । अत्रापि संज्ञाभेदादेव कार्ये न्यूनाधिक्यं पूर्ववज्ज्ञेयम् । अवधूतो वाय्वधिष्ठितो घ्राणः सौरभं गन्धम् ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

नाल शब्द और नल शब्द दोनों छिद्र के वाचक है। छिद्र से युक्त होने के कारण वायीं और दाहिनी नाक को क्रमशः नलिनी और नालिनी कहा गया है नाम के भेद के कारण इन दोनों के कार्य में भी नेत्र के ही समान न्यूनाधिक्य समझना चाहिए। वायु नामक देवता से अधिष्ठित होने के कारण घ्राण को अवधूत सख कहा गया है। उस घ्राण के मार्ग से पुरञ्जन सौरभ प्रदेश में जाता था और गन्ध को ग्रहण करता था ॥४८॥

मुख्या नाम पुरस्ताद्वास्तयापणबहूदनौ । विषयौ याति पुरराड्रसज्ञविपणान्वितः ॥४९॥

अन्वयः— मुख्या नाम पुरस्तात द्वाः तयापुरराड् रसज्ञविपणान्वितः आपण बहूदन विषयौ याति ॥४९॥

अनुवाद— पूर्व की ओर मुख नामक जो द्वार है उससे राजा पुरञ्जन रसज्ञ और विपण के साथ आपण और बहूदन नामक प्रदेशों में जाता था ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

मुख्या प्रधाना आस्यम्। आपणो भाषणम्। बहूदनश्चित्रमन्नम्। बह्वोदन इत्यनुक्तिः परोक्षवादत्वाय। रसज्ञं रसनेन्द्रियः विषणो वागिन्द्रियं ताभ्यामन्वितः ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

पूर्व की ओर जो मुख नामक प्रधान द्वार है उससे वह आपण अर्थात् भाषण और बहुदन अनेक प्रकार के अन्न खाने का काम करता था। इस कार्य में रसज्ञ अर्थात् जिह्वा और विपण अर्थात् वागिन्द्रिय उसके साथ रहते थे ॥४९॥

पितृहूर्नृप पुर्या द्वार्दक्षिणेन पुरंजनः । राष्ट्रं दक्षिणपञ्चालं याति श्रुतधरान्वितः ॥५०॥

अन्वयः— हे नृप ! पूर्याः दक्षिणेन द्वाः पितूहू पुरञ्जनः श्रुतधरान्वितः दक्षिण पाञ्चालं राष्ट्रं याति ॥५०॥

अनुवाद— हे राजन नगर का जो दक्षिण ओर का पितृहू नामक द्वार था उसमें से वह श्रुतधर के साथ दक्षिण पञ्चाल नामक राष्ट्र में जाता था ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

दक्षिणेनेति न तृतीया, किंतु दक्षिणस्यां दिशीत्यस्मिन्नर्थे तद्धितोऽयमनप्प्रत्ययोऽव्ययसंज्ञः। एवमुत्तरेणेति। अयमर्थः। पञ्चानां विषयाणामन्यतोऽनवगतानां प्रकाशायालमिति पञ्चालं शास्त्रम्। श्रवणकाले च बलाधिक्याद्दक्षिणकर्णः प्रथमं प्रवर्तते। शास्त्रे च प्रथमं श्रोतव्य कर्मकाण्डमित्येतावता साम्येन प्रवृत्तसंज्ञस्य कर्मकाण्डस्य दक्षिणकर्णेन श्रवणमिष्यते। अतस्तदर्थमनुष्ठाय पितृभिराहूतः पितृलोकप्रापकं पितृयानं प्रपद्यते तदनेन प्रकारेण पितॄणामाह्वानमनेन भवतीति पितृहूर्दक्षिणः कर्णः। एवं तद्वैपरीरत्येनोत्तरः कर्णो देवहूः। तथाच व्याख्यास्यति-'पितृहूर्दक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः। प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पञ्चालसंज्ञितम्। पितृयानं देवयानं श्रोत्राच्छ्रुतधराद्व्रजेत्' इति ॥५०॥'

भाव प्रकाशिका

दक्षिणेन में तृतीया विभक्ति नहीं है, अपितु दक्षिण दिशा में इस अर्थ में दक्षिण शब्द से एनप ह्द्धित प्रतयय करके यह अव्यय संज्ञक शब्द है। इसीतरह से उत्तरेण को भी एनप् प्रत्ययान्त समझना चाहिए। कहने का अभिप्राय है कि दूसरे माध्यम से जो नहीं जाने गये हैं उन पाञ्चों विषयों का प्रकाशन करने में समर्थ इस अर्थ में व्युत्पन्न पञ्चाल शब्द शास्त्र का बोधक है। श्रवण काल भी अधिक बलवान् होने के कारण दाहिना कान पहले प्रवृत्त होता है। पहले शास्त्र को सुनना चाहिए। कर्म काण्ड के साथ समता होने के कारण कर्मकाण्ड को दाहिने कान से सुनना चाहिए। अतएव कर्मकाण्ड के अर्थों का अनुष्ठान करके पितरों के लोक को प्रदान करने वाले जीव पितृयान

को प्राप्त करता है । इस तरह से पितरों का आह्वान चूकि दाहिने कान से होता है । इसको पितृहू कहते हैं । इसीतरह उसके विपरीत उत्तर कान को देवहू कहते हैं । इसीतरह से व्याख्या भी करेगे । दाहिने कान को पितृहू कहते हैं और उत्तर (वाम) कान को देवहू कहते हैं । प्रवृत्त और निवृत्त दोनों प्रकार के शास्त्र पञ्चाल संज्ञक है। श्रुतधर श्रोत्र के द्वारा जीव पितृयान और देवयान को प्राप्त करता है ।।५०।।

देवहूर्नाम पुर्याद्वा उत्तरेण पुरंजनः । राष्ट्रमुत्तारपञ्चालं याति श्रुतधरान्वितः ।।५१।।

अन्वयः— पूर्याः उत्तरेणद्वाः देवहूः नाम पुरञ्जनः श्रुतधरान्वितः उत्तर पञ्चालं राष्टं श्रुतधरान्वितः याति ।।५१।।

अनुवाद— पुरी के उत्तर द्वार का नाम देवहूः था, उससे पुरञ्जन उत्तर पञ्चाल नामक राष्ट्र में जाता था ।।५१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५१।।

आसुरी नाम पश्चाद्वास्तया याति पुरंजनः । ग्रामकं नाम विषयं दुर्मदेन समन्वितः ।।५२।।

अन्वयः— पश्चाद् द्वाः आसुरी नाम तया पुरञ्जनः दुर्मदेन समन्वितः ग्रामकं नाम विषयं याति ।।५२।।

अनुवाद— पुरी के पश्चिम द्वारा नाम आसुरी था उससे पुरञ्जन दुर्मद के साथ ग्रामक नामक राष्ट्र में जाता था।।५२।।

भावार्थ दीपिका

असुरा इन्द्रियारामास्तेषामियमासुरी शिश्नदाः । ग्रामकं ग्रामस्थजनानां कं सुखं व्यवायम् । दुर्मदेन गृह्येन्द्रियेण ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

आसुरी इन्द्रियों में ही रमण करने वाले होते हैं । असुरो की इस अर्थ में आसुरी रूप बनता है । अर्थात् लिङ्ग द्वार उस द्वार से वह ग्राम में रहने वाले लोगों को प्राप्त होने वाले सुख (व्यवाय) मैथुन अपनी गुप्तेन्द्रिय द्वारा करता था ।।५२।।

निर्ऋतिर्नाम पश्चाद्वास्तया याति पुरंजनः । वैशसं नाम विषयं लुब्धकेन समन्वितः ।।५३।।

अन्वयः— निऋतिः नाम पश्चात् द्वाः पुरञ्जनःतया लुब्धकेन समन्वितः वैशसं नाम विषयं याति ।।५३।।

अनुवाद— पश्चिम का जो दूसरे दरवाजे का नाम निऋति था उससे वह लुब्धक के साथ वैशस नामक राष्ट्र को जाता था ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

निर्ऋतिर्नाम गुदो मृत्युद्वारत्वात् । वैशसं मलविसर्गम् । लुब्धकेन पायुना । तेनोऽक्रान्तस्य दुःखप्राप्तेर्लुब्धकसाम्यम्।।५३।।

भाव प्रकाशिका

मृत्यु के द्वारा होने के कारण गुद को निऋति कहते है । मल त्याग को वैशस कहते हैं । लुब्धक पायु को कहते हैं । इसलिए मरे हुए दुःख प्राप्ति के कारण लुवधक के समान हो जाता है ।।५३।।

अन्धावमीषां पौराणां निर्वाक्पेशस्कृतावुभौ । अक्षण्वतामधिपतिस्ताभ्यां याति करोति च ।।५४।।

अन्वयः— अमीषां पौराणां निवाक् पेशस्कृतौ अन्धौ, अक्षणवताम् अधिपति ताभ्यां याति करोति च ।।५४।।

अनुवाद— इस पुरी के सभी नागरिकों में दो व्यक्ति अन्धे थे, निर्वाक् और पेशस्कृत् । नेत्र वालों का स्वामी पुरञ्जन इन्हीं दोनों की सहायता से जहाँ कहीं भी जाता था और सभी कार्यों को करता था ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

अमीषां मध्ये । निर्वाक् पादः, पेशस्कृत् हस्तः, तावुभावन्धौ, छिद्राभावात्, स्वतो ज्ञानक्रियाशक्त्यभावाच्च । अक्षण्वतामिन्द्रियवतां देहानामधिपतिः पुरंजनः । त्वगिन्द्रियस्यानुक्तिः सर्वेष्वन्तर्भावात् ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

उस पुरी के सभी नागरिकों में निर्वाक् अर्थात् पैर और पेशस्कृत अर्थात् हाथ ये दोनों अन्धे थे क्योंकि इनमें कोई छिद्र नहीं था। स्वतः इनमें ज्ञान क्रिया करने, की शक्ति नहीं थी। पुरञ्जन इन्द्रियों वाले शरीरों का स्वामी या सबों में अन्तर्भाव हो जाने के कारण त्वगिन्द्रिय का वर्णन नहीं किया गया है ॥५४॥

स यर्ह्यन्तःपुरगतो विषूचीनसमन्वितः। मोहं प्रसादं हर्षं वा याति जायात्मजोद्भवम् ॥५५॥

अन्वयः— स यर्हि विषूचीनसमन्वितः अन्तःपुरगतः जायात्मजोद्भवम् मोहं प्रसादं, हर्षं वायाति ॥५५॥

अनुवाद— वह जब कभी अपने सेवक विषूचीन के साथ अन्तःपुर में जाता था तो उसे पत्नी और पुत्रों के कारण हर्ष प्रसन्नता और मोह आदि विकारों का अनुभव करना पड़ता था ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

अन्तःपुरं हृदयं गतः। विषूचीनं सर्वतोमुखं मनः। मोहप्रसादहर्षास्तमःसत्त्वरजः कार्याणि। जाया बुद्धिः आत्मजा इन्द्रियपरिणामास्तदुद्भवम् ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

अन्तःपुर शब्द से हृदय को कहा गया है। विषूचीनम् अर्थात् मन को मोह तमोगुण का कार्य है, प्रसाद सत्त्व गुण का कार्य है और हर्ष रजोगुण का कार्य है। जाया शब्द से बुद्धि को और आत्मज शब्द से इन्द्रियों के परिणामों को कहा गया है ॥५५॥

एवं कर्मसु संसक्तः कामात्मा वञ्चितोऽबुधः। महिषी यद्यदीहेत तत्तदेवान्ववर्तत ॥५६॥

अन्वयः— एवं कर्मसु संसक्तः कामात्मा, वञ्चितः अबुधः महिषी यत् यत् ईहेत तत् तत् एव अन्ववर्तत ॥५६॥

अनुवाद— इस प्रकार से उसका चित्त अनेक प्रकार के कर्मों को करने में लगा रहता था, काम परायण होने के कारण वह अज्ञानी अपनी पत्नी के द्वारा ठगा गया था ॥५६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५६॥

क्वचित्पिबन्त्यां पिबति मदिरां मदविह्वलः। अश्नन्त्यां क्वचिदश्नाति जक्षत्यां सह जक्षति ॥५७॥

अन्वयः— क्वचित् पिबन्त्यां मदबिह्वलः सः मदिरां पिबति अश्नत्यां क्वचित् अश्नाति, जक्षत्यां सह जक्षति ॥५७॥

अनुवाद— जब कभी भी वह मदिरा पीती थी तो वह भी मदमत्त होकर मदिरा पान करता था, जब वह भोजन करती थी तो वह भी भोजन करने लग जाता था और वह जब कुछ चबाती थी तो वह भी उसके साथ उसी वस्तु को चबाने लग जाता था ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

जक्षत्यां भक्षयन्त्याम् ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

जक्षत्याम् पद का अर्थ है भक्षण करने पर ॥५७॥

क्वचिद्गायति गायन्त्यां रुदत्यां रुदति क्वचित्। क्वचिद्धसन्त्यां हसति जल्पन्त्यामनुजल्पति ॥५८॥

अन्वयः— क्वचिद् गायन्त्याम् गायति, रुदत्या रुदति, क्वचित् हसन्त्याम् हसति जल्पन्त्यांच अनुजल्पति ॥५८॥

अनुवाद— उसके कही गाने पर गाने लगता था, रोने पर रोने लगता था हँसने पर ॥५८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५८॥

क्वचिद्धावति धावन्त्यां तिष्ठन्त्यामनुतिष्ठति । अनुशेते शयानायामन्वास्ते क्वचिदासतीम् ।।५९।।

अन्वयः— क्वचिद् धावन्त्याम् धावति, तिष्ठन्त्याम् अनुतिष्ठति, शयानायाम् अनुशेते क्वचित् आसतीम् आस्ते ।।५९।।

अनुवाद— कभी उसके दौड़ने पर दौड़ने लगता था, खड़ा होने पर खड़ा होता था सोने पर उसके पीछे सो जाता था और बैठने पर बैठ जाता था ।।५९।।

भावार्थ दीपिका

आसतीमासीनाम् ।।५९।।

भाव प्रकाशिका

आसतीम् अर्थात् बैठ जाने पर ।।५९।।

क्वचिच्छृणोति शृण्वत्यां पश्यन्त्यामनुपश्यति । क्वचिज्जिघ्रति जिघ्रन्त्यां स्पृशन्त्यां स्पृशति क्वचित्।।६०।।

अन्वयः— क्वचित् शृण्वन्त्यां शृणोति, पश्यन्तीम् अनुपश्यति, क्वचित् जिघ्रन्त्याम् अनु जिघ्रति क्वचित् स्पृशत्यास्पृशति ।।६०।।

अनुवाद— कभी उसके सुनने पर सुनने लगता था, कभी उसके देखने पर देखने लगता था, कभी सूंघने पर सूंघने लगता था और कभी उसके स्पर्श करने पर स्पर्श करने लगता था ।।६०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६०।।

क्वचिच्च शोचतीं जायामनुशोचति दीनवत् । अनुहृष्यति हृष्यन्त्यां मुदिताभनुमोदते ।।६१।।

अन्वयः— क्वचित् जायां शोचतीं दीनवत् अनुशोचति हृष्यन्त्याम् अनहृष्यति, मुदिताम् अनुमोदते ।।६१।।

अनुवाद— जब कभी उसकी प्रिया शोकाकुल होती तो वह भी अत्यन्त दीन के समान शोक करने लगता था, जब वह प्रसन्न होती थी तो वह भी प्रसन्न हो जाता था और उसके आनन्दित होने पर वह भी आनन्दित हो जाता था ।।६१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६१।।

विप्रलब्धो महिष्यैवं सर्वप्रकृतिवञ्चितः । नेच्छन्ननुकरोत्यज्ञः क्लैब्यात्क्रीडामृगो यथा ।।६२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पुरंजनोपाख्याने पञ्चविंशोऽध्यायः ।।२५।।

अन्वयः— एवं महिष्या विप्रलब्ध सर्वप्रकृति वञ्चितः अज्ञः न इच्छन् क्लैब्यात् क्रीडामृगः यथा अनुकरोति ।।६२।।

अनुवाद— इस तरह अपनी पत्नी से ठगे गये उस अज्ञ को सारी प्रजा ही ठगने लगी । वह अपनी नपुंसकता के कारण नहीं चाहकर भी अपनी पत्नी का अनुकरण करने के लिए क्रीडामृग के समान विवश बन गया ।।६२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पुरञ्जनोपाख्यान के पचीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

सर्वासङ्गत्वादिलक्षणा प्रकृतिः स्वभावो वञ्चितो यस्य । सर्वथा प्रकृत्या वञ्चित इति वा । नेच्छन् अनिच्छन् । क्लैब्यत् पारवश्यात् ।।६२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थ दीपिका टीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह सबों से सङ्ग राहित्य रूप स्वभाव वाला वह ठगा गया। अथवा पूर्ण रूप से वह प्रकृति से वञ्चित गया। नेच्छन् अर्थात् नही चाह कर भी अपनी परवशता के कारण स्त्री का वह क्रीडा मृग बना था॥६२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराणके चतुर्थ स्कन्धकी भावार्थदीपिका नाम की टीका के पच्चीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूण हुई ।।२५।।

छब्बीसवाँ अध्याय

राजा पुरञ्जन का आखेट के लिए वन में जाना और रानी का क्रुद्ध होना

नारद उवाच

स एकदा महेष्वासो रथं पञ्चाश्वमाशुगम्। द्वीषं द्विचक्रमेकाक्षं त्रिवेणुं पञ्चबन्धुरम् ॥१॥
एकरश्म्येकदमनमेकनीडं द्विकूबरम्। पञ्चप्रहरणं सप्तवरूथं पञ्चविक्रमम् ॥२॥
हैमोपस्करमारुह्य स्वर्णवर्माऽक्षयेषुधिः। एकादशचमूनाथः पञ्चप्रस्थमगाद्वनम् ॥३॥

अन्वयः— स एकदा महेष्वासः सः आशुगम पञ्चाश्वं, द्वीषं, द्विचकम्, एकाक्ष त्रिवेणुम्, पञ्च बन्धुरम् एकरश्मि, एकदमनम् एकनीडम् द्विकूबरम्, पञ्च प्रहरणम् सप्तवरूथम् पञ्चविक्रमम, हैमोपस्करम् स्वर्ण वर्मा, अक्षयेषुधीः एकादशचमूनाथः पञ्चप्रस्थम् वनम् अगात् ॥१-३॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! एक दिन वह राजा पुरञ्जन अपने विशाल धनुष लेकर शीघ्रगामी जिसमें पाञ्च अश्व जुते थे ऐसे दो ईषा, दण्ड वाले, दो चक्को वाले, दो कूबर घोड़ों को बांधने के स्थान, तीन ध्वज दण्ड, पाँच डोरी, एक लगाम, एक सारथि, एक बैठने के स्थान, दो जूए, पाँच आयुध, सात आवरण से युक्त सुवर्णालङ्कारों से अलंकृत रथ पर चढ़कर सुवर्ण का कवच धारण किए अक्षय तुणीर (तरकस) को लेकर ग्यारहवें सेनापति के साथ पञ्चप्रस्थ वन में गया ॥१-३॥

भावार्थ दीपिका

षड्विंशे मृगयाव्याजात्स्वप्रजागरणोक्तिः। सद्बुद्धित्यागयोगाभ्यां संसृतिः सा प्रपञ्च्यते। तदेवमात्मन उपाधिकृतां सुषुप्तावस्थां जाग्रदवस्थां चोक्त्वेदानीं स्वप्नावस्थामाह- स एकदेति दशभिः। महानिष्वासो धनुः कर्तृत्वभोक्तृत्वाद्यभिनिवेशो यस्य स रथमारुह्य पञ्चप्रस्थं वनगमादिति तृतीयेनान्वयः। रथं तदानीमेव विधृतं स्वप्नदेहम्, जाग्रद्देहस्य शतसंवत्सरोपभोग्यपुरत्वेनोक्तत्वात्। पञ्च ज्ञानेन्द्रियाण्यश्वा यस्य। आशुगं शीघ्रगतिम्। द्वे अहंताममते ईषे दण्डिके यस्य। द्वे पुण्यपापे चक्रे यस्य। एकं प्रधानमक्षो यस्य। त्रयो गुणा वेणवो ध्वजा यस्य। पञ्च प्राणा बन्धुराणि बन्धनानि यस्य। एकं मनो रश्मिः प्रग्रहो यस्य, एका बुद्धिर्दमनः सूतो यस्य तं च तं च। एकं हृदयं नीडं रथिन उपवेशस्थानं यस्मिन्। द्वौ शोकमोहौ कूबरौ युगबन्धनस्थानं यस्य। पञ्च शब्दादयो विषयाः प्रह्रियन्ते प्रक्षिप्यन्ते यस्मिन्। अस्य व्याख्यानं भविष्यति पञ्चेन्द्रियार्थप्रक्षेप इति। सप्त धातवो वरूथा रक्षार्थं चर्माद्यावरणानि यस्य। पञ्च कर्मेन्द्रियाणि विक्रमा गतिप्रकारा यस्य। हैमोपस्करं सौवर्णाभरणम्। स्वर्णवर्मा, वर्म कवचम्, रजोगुणावृतः। अक्षयेषुधिः, इषुधिर्निषङ्गः, अनन्तवासनाहंकारोपाधिः। एकादशो मनोरूपश्चमूनाथः सेनापतिर्यस्य। वासनामयस्य मनसः प्रग्रहत्वं संकल्पविकल्पात्मकस्य बृहद्बलत्वेन वक्ष्यमाणस्य चमूनाथत्वमिति विभागः। पञ्च शब्दादयो विषयाः प्रस्थाः सावनो यस्मिंस्तद्वनं भजनीयं देशमगात् ॥१-३॥

भाव प्रकाशिका

छब्बीसवें अध्याय में आखेट के व्याज से स्वाप्नावस्था और जागरावस्था का वर्णन किया गया है। सद्बुद्धि के त्याग और योग के द्वारा होने वाली सृष्टि का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस तरह से उपाधिवशात् आत्मा की होने वाली सुषुप्तावस्था और जग्रदावस्था का वर्णन करके अब स्वप्नावस्था का वर्णन **स एकदा० इत्यादि** दश श्लोकों द्वारा नारदजी करते हैं। कर्तृत्व भोक्तृत्व इत्यादि के अभिनिवेश रूपी महान् धनुष से युक्त राजा पुरञ्जन रथ पर चढ़कर पञ्चप्रस्थ वन में गया। इस तरह से तीसरे श्लोक से अन्वय है। यहाँ पर स्वाप काल में धारण किए जाने वाले देह को हीरथ कहा गया है। क्योंकि जाग्रदावस्था में रहने वाले देह को त्रो सौ वर्षों तक भोगे जोने वाले पुरी के रूप में वर्णन किया जा चुका है। स्वापकालिक शरीर रथ के पाञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ ही अश्व हैं। वह रथ शीघ्रगामी है। अहङ्कार और ममङ्कार ये ही दोनों इस रथ के ईषादण्ड हैं। पाप और पुण्य ही उस रथ के दोनों चक्के हैं। केवल प्रधान (प्रकृति) ही उसके अक्ष हैं। सत्त्वादि तीनों गुण ही उसके ध्वजा के दण्ड हैं। उस रथ के पाञ्चो प्राण ही बन्धन हैं। एक मन ही उस रथ का लगाम है। और एक बुद्धि उस रथ का सारथि है। एक ही हृदय रूपी नीड उस रथ में बैठने का स्थान है। शोक और मोह ये दोनों कूबर अर्थात् घोड़ों के बाँधने के स्थान हैं। रूप रसादि पाँचों विषय ही उसमें आयुध हैं जिनका प्रहार होता हैं। इसकी व्याख्या आगे चलकर पञ्चेन्द्रियों के विषयों का प्रक्षेप कहकर की जायेगी। शरीर में होने वाली सात प्रकार कीजो घातुएँ हैं वे ही उसकी रक्षा के लिए वर्म इत्यादि आवरण हैं। पाञ्च कर्मेन्द्रियाँ उस रथ के गति के प्रकार है। वह रथ सुवर्णालङ्कारों से अलंकृत था। राजा पुरञ्जन सुवर्ण का कवच धारण किए था। अनन्त वासनाएँ और अहङ्कार रूपी उपाधिया उसके अक्षय तुणीर था। उस राजा की सेना का सेनापति मन था। वासना मय मन को प्रग्रह लगाम कहा गया है और सङ्कल्प विकल्पात्मक मन जिसका वर्णन बृहदबल रूप से किया जाना है वही सेनापति है। जिस पञ्चप्रस्थ वन में वह गया उसके शब्दआदि पाञ्चो विषय ही शिखर हैं ॥१-३॥

चचार मृगयां तत्र दृप्त आत्तेषुकार्मुकः। विहाय जायामतदर्हां मृगव्यसनलालसः ॥४॥

अन्वयः— अतदर्हाम् जायाम् विहाय मृगव्यसनलालसस दृप्तः सन् आतेषु कामुर्कः तत्र मृगयां चचार ॥४॥

अनुवाद— नहीं छोड़ने योग्य भी अपनी पत्नी को छोड़कर आखेट के व्यसन की लालसा से दृप्त बना हुआ पुरञ्जन उस वन में आखेट करने लगा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

आत्ता गृहीता इषवो रागादिरूपाः कार्मुकं च भोगाद्यभिनिवेषरूपं येन। जायां विवेकवतीं बुद्धिं विहाय। अतदर्हां त्यागानर्हाम्। त्यागे हेतुः-मृग्यन्त इति मृगा विषयास्तेषु व्यसनं भोगासक्तिस्तेन लालसाऽतिस्पृहा यस्य ॥४॥

भाव प्रकाशिका

उसने रागादि रूपी बाणों और भागादि के अभिनिवेश रूपी धनुष को धारण कर लिया था, वह पुरञ्जन अपनी विवेक युक्त बुद्धि रूपी पत्नी को छोड़ दिया था, जबकी वह त्यागने योग्य नहीं थी, त्याग का कारण यह था कि विषयों के भोग की आसक्ति रूपी मृगया के व्यसन की बहुत अधिक लालसा थी ॥४॥

आसुरीं वृत्तिमाश्रित्य घोरात्मा निरनुग्रहः। न्यहनन्निशितैर्बाणैर्वनेषु वनगोचरान् ॥५॥

अन्वयः— आसुरीं वृत्तिम् आश्रित्य घोरात्मा निरनुग्रहः वनेषु निशितैः बाणैः वनगोचरान् न्यहनत् ॥५॥

अनुवाद— आसुरी वृत्ति को अपनाकर वह अत्यन्त निर्दय हो गया था और वन में अपने तीक्ष्ण बाणों से वन पशुओं को मारा ॥५॥

भावार्थ दीपिका

बाणै रागादिभिः । वनेषु भजनीयदेशेषु । वनगोचरान्भजनीयविषयान् । न्यहनत् आत्मसात्कृतवान् । कथापक्षे तु स्पष्टमेव ।।५।।

भाव प्रकाशिका

रागादि रूप बाणों से जहाँ पर भजन करना चाहिए उन प्रदेशों में भजन करने योग्य विषयों को आत्मसात् कर लिया । कथा पक्ष में इसका अर्थ स्पष्ट ही है । वह है कि आसुरी वृत्ति को अपनाकर निर्दय बने हुए राजा ने तीक्ष्ण बाणों से वन के पशुओं को मारा ।।५।।

तीर्थेषु प्रतिदृष्टेषु राजा मेध्यान्पशून्वने । यावदर्थमलं लुब्धो हन्यादिति नियम्यते ।।६।।

अन्वयः— यावत् अलम् लुब्धः राजा प्रतिदृष्टेषु तीर्थेषु यावदर्थम् वनेमेध्यान् पशून वने हन्यात् इति नियम्यते ।।६।।

अनुवाद— यदि बहुत अधिक मांस में आसक्ति हो तो विख्यात श्राद्धादि काल में ही राजा वन में जाकर आवश्यकता से अधिक नहीं मेध्य पशुओं का वध करे ।।६।।

भावार्थ दीपिका

नन्वासुरीं वृत्तिमाश्रित्येति किमिति मृगया निन्द्यते, कथापक्षे तावद्राज्ञो विहितैव सा, अध्यात्मपक्षेऽपि जीवस्य विषयभोगो विहित एवेत्याशङ्क्याह- तीर्थेष्विति त्रिभि । अयं भव- नहि मृगया विधीयते राग प्राप्त त्वात्किंतु नियम्यते प्रवृति सङ्कोच्यते। नियममेव षडिविधं दर्शयति । अद्यलमत्यर्थ लुब्धो रागी सन् हत्यात्तर्हि तीर्थेषु श्राद्धदिष्वेव । तत्रापि प्रतिदृष्टेषु प्रख्यातेषु न नित्यश्राद्धादिषु । तत्रापि राजैव मेध्यानेव वन एवं यावदुपयोगमेवेति । एवं जीवस्य विषयसेवापि यावदुपयोगं न यथेष्टमति नियम एवेत्यर्थः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि आसुरी वृत्ति को अपनाकर यह कहकर आप आखेट की निन्दा क्यों करते है ? कथा पक्ष में तो राजाओं के लिए आखेट का विधान है ही और अध्यात्म पक्ष में भी जीव के लिए विषयों का भोग विहित ही है । इस तरह से आशङ्का करके तीन श्लोकों द्वारा कहते हैं कहने का अभिप्राय है कि आखेट राग प्राप्त है अतएव शास्त्र आखेट का विधान नहीं करता है अपितु शास्त्र आखेट की वृत्ति को नियमित (सङ्कुचित) करता है। छह प्रकार के नियमनों का प्रतिपादन किया जा रहा है यदि मास में अत्यधिक आसक्ति हो तो श्राद्ध इत्यादि के समय में ही पशुओं को मारे । उसमें भी प्रख्यात श्राद्धादि के ही समय में मारे नित्यश्राद्ध आदि के समयमें नहीं। उसमें भी राजा ही वध करे सभी लोग नहीं । उसमें भी मेध्य पशुओं का ही सभी पशुओं का नहीं, वह भी वन में ही जाकर मारे सर्वत्र नहीं । उसमें भी जितने जीवों का वध आवश्यक हो उतने का ही वध करे उससे अधिक जीवों का नहीं । इसी तरह जीव को विषयों का सेवन भी यथोचित्त मात्रा में ही करना चाहिए यथेष्ट मात्रा में नहीं।।६।।

य एवं कर्म नियतं विद्वान् कुर्वीत मानवः । कर्मणा तेन राजेन्द्र ज्ञानेन न स लिप्यते ।।७।।

अन्वयः— राजेन्द्र ! यः विद्वान् एवं नियतं कर्म कुर्वीत तेन कर्मणा ज्ञानेन स न लिप्यते ।।७।।

अनुवाद— राजवर्य जो इस प्रकार से शास्त्र नियत कर्मों को करता है वह ज्ञान जनक उस कर्म के द्वारा कर्मों में आसक्त नहीं होता है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

अतो नावश्यकत्वमित्याह- य इति । एवं नियतं कर्म विद्वान् । तेनेत्युपलक्षणम् । तेनान्येन वा कर्मणैवमनुष्ठितेन यज्ज्ञानं भवति तेन ज्ञानेन हेतुना सोऽनुष्ठाता न लिप्यते ।।७।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त छह प्रकार के नियमों के कारण प्रतीत होता है कि हिंसा करना आवश्यक नहीं है। शास्त्र नियत कर्मों को करने वाला विद्वान् तेन यह उपलक्षण है। अर्थात् उस शास्त्र नियत कर्म के अथवा दूसरे कर्म को करके वह कर्मों के बन्धन में इसलिए नहीं बँधता है कि शास्त्र विहित कर्मों को करने से ज्ञान उत्पन्न होता है और उस ज्ञान के कारण वह कर्म के बन्धनों में नहीं बँधता है ॥७॥

अन्यथा कर्म कुर्वाणो मानारूढो निबध्यते । गुणप्रवाहपतितो नष्टप्रज्ञो व्रजत्यधः ॥८॥

अन्वयः— अन्यथा कर्म कुर्वाणः मानारूढ निबध्यते गुण प्रवाहपतितः अधः पतति ॥८॥

अनुवाद— मनमाना कर्मों को करने वाला मनुष्य कर्तृत्वाभिमान के कारण कर्मों के बन्धन में बँध जाता है। फलतः गुण प्रवाह रूप संसार चक्र में फँसकर अधम योनियों में जन्म लेता है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अन्यथा नियमोल्लङ्घनेनान्तःकरणशुद्धभावात्। कर्तृत्वाभिमानमारूढः कर्मभिरनुबध्यते, ततश्च गुणप्रवाहे पतितोऽधो व्रजति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

शास्त्रीय नियमों का उल्लंघन करने से तो अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होने के कारण मनुष्य में कर्तृत्वाभिमान सुदृढ हो जाता है, उसके फलस्वरूप वह गुण प्रवाह रूपी संसार चक्र में फँसकर पतित हो जाता है, उसका अधम योनियों में जन्म होता है ॥८॥

तत्र निर्भिन्नगात्राणां चित्रवाजैः शिलीमुखैः । विप्लवोऽभूद्दुःखितानां दुःसहः करुणात्मनाम् ॥९॥

अन्वयः— चित्रवाजैः शिलीमुखैः निर्भिन्नगात्राणां दुःखितानां विप्लवः करुणात्मनाम् दुःसहः ॥९॥

अनुवाद— राजा पुरञ्जन के चित्र विचित्र पंखों वाले बाणों से जिनका शरीर छिन्न भिन्न हो गया था उन दुःखी जीवों का नाश देखकर सभी दयालु पुरुष दुःखी हो गये और वे उसे नहीं सह सके ॥९॥

भावार्थ दीपिका

प्रासङ्गिकं परिसमाप्य पुनर्मृगयामेवानुवर्णयति-तत्रेति। चित्रा वाजाः पक्ष येषां तैः। विप्लवो नाशः करुणात्मनां कृपालूनां दुःसहः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

प्रासङ्गिक बातों को समाप्त करके पुनः आखेट का वर्णन करते हुए नारदजी ने कहा। अनेक प्रकार के पङ्खों से युक्त बाणों से विप्लव अर्थात् नाश, करुणात्मनाम्, अर्थात् कृपालु पुरुषों के लिए असह्य ॥९॥

शशान् वराहान् महिषान् गवयान् रुरुशल्यकान्। मेध्यानन्यांश्च विविधान् विनिघ्नन् श्रममध्यगात्॥१०॥

अन्वयः— शशान् वराहान् महिषान् गवयान् रुरुशल्यकान् अन्यान् विविधान् मेध्यांश्च विनिघ्नन् श्रमम् अध्यगात्॥१०॥

अनुवाद— इस तरह खरगोश, सूअर, भैंसे, नीलगाय, कृष्णमृग, साही, तथा दूसरे भी बहुत से मेध्य पशुओं का वध करते-करते राजा थक गया ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥१०॥

ततः क्षुत्तृटपरिश्रान्तो निवृत्तो गृहमेयिवान् । कृतस्नानोचिताहारः संविवेश गतक्लमः ॥११॥

अन्वयः— ततः क्षुत्तृट परिश्रान्तः निवृत्तः गृहम् एयिवान् कृत स्नानोचिताहारः संविवेश गतक्लमः ॥११॥

अनुवाद— उसके पश्चात् भूख प्यास के कारण थका हुआ वह वन से लौटकर घर आया, स्नान करके तथा उचित आहार लेकर उसने विश्राम किया और उसकी थकान मिट गयी ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं स्वप्नावस्था दर्शिता, इदानीं पुनरपि विवेकवत्या बुद्ध्या रममाणस्य पुत्रादिसंततिं प्रपञ्चयिष्यन् कथासौन्दर्याय तस्याः प्रणयकुपिताया अनुनयं प्रस्तावसहितमाह-तत् इत्यारभ्य यावदध्यायसमाप्ति । एयिवान् आगतः । कृतं स्नानमुचित आहारश्च येन । संविवेश शय्यामाश्रितः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से स्वप्नावस्था का वर्णन किया गया । अब फिर विवेक सम्पन्न बुद्धि के साथ रमण करने वाले राजा पुरञ्जन की पुत्रादि की प्राप्ति विस्तार से वर्णन करने की इच्छा से कथा के सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए प्रणय कुपित पुरञ्जनी के अनुनय का वर्णन प्रस्ताव पूर्वक ततः इत्यादि श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त करते हैं । एयिवान् अर्थात् आया । वह स्नान और उचित आहार को करके शय्या पर सो गया ।।११।।

आत्मानमर्हयांचक्रे धूपालेपस्त्रगादिभिः । साध्वलंकृतसर्वाङ्गो महिष्यामादधे मनः ।।१२।।

अन्वयः— धूपालेपस्त्रगादिभिः आत्मानम् अर्हयाञ्चके । साध्वलङ्कृतसर्वाङ्ग महिष्याम् मन आदधे ।।१२।।

अनुवाद— गन्ध, चन्दन और माला आदि से सुसज्जित होकर उसने अच्छे-अच्छे आभूषणों को धारण किया इसके बाद उसे अपनी रानी की याद आयी ।।१२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१२।।

तृप्तो हृष्टः सुदृप्तश्च कन्दर्पाकृष्टमानसः । न व्याचष्ट वरारोहां गृहिणीं गृहमेधिनीम् ।।१३।।

अन्वयः— तृप्तो हृष्टः सुदृप्तश्च कन्दर्पाकृष्टमानसः वरारोहां, गृहमेधिनीम् गृहिणीम् न व्याचष्ट ।।१३।।

अनुवाद— भोजनदि से तृप्त प्रसन्न, मदोन्मत्त तथा कामार्त बना हुआ राजा पुरञ्जन अपनी सुन्दरी तथा सात्त्विकी बुद्धि रूपी पत्नी को राजसी बुद्धि से युक्त होने के कारण नहीं देख पाया ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

गृहमेधिनीं सात्त्विकीं बुद्धिं, राजस्यां बुद्ध्यां वर्तमानो नापश्यत् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

सात्त्विकी बुद्धि रूपी पत्नी को राजसी बुद्धि से युक्त होने के कारण नहीं देख पाया ।।१३।।

अन्तःपुरस्त्रियोऽपृच्छद्विमना इव वेदिषत् । अपि वः कुशलं रामाः सेश्वरीणां यथा पुरा ।।१४।।

अन्वयः— हे वेदिषत् ! विमना इव सः अन्तःपुर स्त्रियः अपृच्छत् हे रामाः यथापुरा वः सेश्वरीणां अपिकुशलम्।।१४।।

अनुवाद— हे प्राचीन वर्हिष वह उदास सा होकर अन्तःपुर की स्त्रियों से पूछा सुन्दरियों पहले के ही समान अपनी स्वामिनी के साथ आपलोगों का कुशल तो है न ?।।१४।।

भावार्थ दीपिका

वेदिषत् हे प्राचीनबर्हिः । अन्तःपुरस्त्रियस्तत्सखीः । सेश्वरीणां स्वामिनीसहितानाम् । यथा पुरेत्यादि पृथग्वाक्यम्।।१४।।

भाव प्रकाशिका

हे प्राचीनबर्हि ! अन्तःपुर में रहने वाली उसकी सखियों से पूछा, अपनी स्वामिनी के साथ आपलोगों का कुशल है न । पहले के समान । पहले के समान यह अलग वाक्य है ।।१४।।

न तथैतर्हि रोचन्ते गृहेषु गृहसंपदः। यदि न स्याद्गृहे माता पत्नी वा पतिदेवता ॥
व्यङ्गे रथ इव प्राज्ञः के नामासीत् दीनवत् ॥१५॥

अन्वयः— एतर्हि, गृहेषु गृहसम्पदः तथा नरोचन्ते। यदि गृहे, माता पतिदेवता पत्नी वा न स्यात् व्यङ्गे रथे इय कोनाम प्राज्ञः दीनवत् आसीत् ॥१५॥

अनुवाद— इस समय घर की सम्पत्तियाँ पहले के समान नहीं सुशोभित होती हैं। घर में यदि माता अथवा पति परायण पत्नी न रहे तो वह गृह टूटे हुए रथ की समान प्रतीत होता है। कौन बुद्धिमान व्यक्ति उसमें दीन के समान रहना चाहेगा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

व्यङ्गे चक्रादिहीने ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

व्यङ्गे अर्थात् पहिए आदि से रहित ॥१५॥

क्व वर्तते सा ललना मज्जन्तं व्यसनार्णवे। या मामुद्धरते प्रज्ञां दीपयन्ती पदे पदे ॥१६॥

अन्वयः— सा लालना क्व वर्तते या व्यसनार्णवे मज्जन्तं माम् पदे-पदे प्रज्ञा दीपयन्ती उद्धरते ॥१६॥

अनुवाद— वह सुन्दरी कहाँ है जो दुःख सागर में डूबने पर मेरी बुद्धि को प्रकाशित कर मुझे बचा लेती हैं॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

रामा ऊचुः

नरनाथ न जानीमस्त्वत्प्रिया यद्व्यवस्यति। भूतले निरवस्तारे शयानां पश्य शत्रुहन् ॥१७॥

अन्वयः— हे नरनाथ, यद् त्वत् प्रियाव्यवस्यति न जानीमः, हे शत्रुहन् निरवस्तरे भूतले शयानां पश्य ॥१७॥

स्त्रियो ने कहा

अनुवाद— महाराज ! आपकी प्रिया न जाने क्या सोचती हैं, विस्तर के बिना ही भूमि पर सोयी हुई उनको आप देखें ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

निरवस्तारे आस्तरणरहिते ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

निरवस्तरे अर्थात् विस्तर से रहित ॥१७॥

नारद उवाच

पुरंजनः स्वमहिषीं निरीक्ष्यावधुतां भुवि। तत्सङ्गोन्मथितज्ञानो वैक्लव्यं परमं ययौ ॥१८॥

अन्वयः— पुरञ्जनः स्वमहिषी भूवि अवधूतां निरीक्ष्य, तत्सङ्गोन्मथितज्ञानं परमं वैकलब्यं ययौ ॥१८॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— पुरञ्जनी के सङ्ग से जिसका ज्ञान विनष्ट हो गया था वह पुरञ्जन अपनी पत्नी को पृथिवी पर पड़े हुए देखकर अत्यन्त व्याकुल हो गया ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अवधुतां त्यक्तदेहादराम् । तत्सङ्गेनोन्मथितं व्याकुलं ज्ञानं यस्य ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

अवधुताम् अर्थात् जिसने अपने देह का आदर छोड़ दिया था उस पुरञ्जनी के सङ्गत के कारण पुरञ्जन का ज्ञान नष्ट हो गया था ।।१८।।

सान्त्वयन् श्लक्ष्णया वाचा हृदयेन विदूयता । प्रेयस्याः स्नेहसंरम्भलिङ्गमात्मनि नाभ्यगात् ।।१९।।

अन्वयः— विदूयता हृदयेन श्लक्ष्ण्य वाचा सान्त्वयन् प्रेयस्याः आत्मनि स्नेह संरम्भलिङ्गं नाभ्यगात् ।।१९।।

अनुवाद— दुःखी हृदय और कोमल वचनों से पत्नी को उसने बहुत सान्त्वना प्रदान की, किन्तु अपनी प्रिया के हृदय में अपने प्रति प्रेम का कोई भी चिह्न नहीं दिखा ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

स्नेहसंरम्भः प्रणयकोपस्तस्य लिङ्गं कुटिलदृष्ट्यादि स्वस्मिन्न लब्धवान् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

उसने अपने पत्नी में प्रणय कोप की कुटिल दृष्टि आदि कोई भी चिह्न नहीं देखा ।।१९।।

अनुनिन्येऽथ शनकैर्वीरोऽनुनयकोविदः । पस्पर्श पादयुगलमाह चोत्सङ्गलालिताम् ।।२०।।

अन्वयः— अथ अनुनय कोविदः वीरः शनकैः अनुनिन्ये । पादयुगलं पस्पर्श उत्सङ्गलालितम् च आह ।।२०।।

अनुवाद— मनाने में कुशल उस राजा ने उसके बाद धीरे-धीरे उसे मनाना प्रारम्भ किया । पहले उसने उसके दोनों पैरों को छूआ । फिर उसको अपनी गोद में बैठाकर कहा ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

उत्सङ्गमारोप्य लालिताम् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

गोद में बैठाकर प्रेम करते हुए कहा ।।२०।।

पुरञ्जन उवाच

नूनं त्वकृतपुण्यास्ते भृत्या येष्वीश्वराः शुभे । कृतागःस्वात्मसात्कृत्वा शिक्षादण्डं न युञ्जते ।।२१।।

अन्वयः— शुभे ! नूनं ते भृत्याः अकृतपुण्याः येषु कृतागस्सु ईश्वरः आत्मसात् कृत्वा शिक्षादण्डंन युंजते ।।२१।।

पुरञ्जन ने कहा

अनुवाद— सुन्दरी निश्चय रूप से उन भृत्यों ने पुण्य नहीं किया जिन सबों के अपराध करने पर उनके स्वामीगण उन्हें अपनाकर उन सबों को शिक्षा दण्ड नहीं देते हैं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

कृतमागोऽपराधो यैस्तेषु । आत्मसात्कृत्वा अस्मदधीनोऽयमिति मत्त्वा शिक्षार्थं दण्डं न कुर्वन्ति ते भृत्या मन्दभाग्याः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

जिनसबों के अपराध करने पर उनके स्वामीगण यह सोचकर कि यह मेरे अधीन है उनको शिक्षा देने के लिए दण्ड नहीं देते हैं वे भृत्य मन्दभाग्य हैं ।।२१।।

परमोऽनुग्रहो दण्डो भृत्येषु प्रभुणार्पितः । बालो न वेद तत्तन्वि बन्धु कृत्यममर्षणः ॥२२॥

अन्वयः— हेतन्वि ! प्रभुणा भृत्येषु अर्पितः दण्डः परमः अनुग्रहः तत् बन्धुकृत्यम् अमर्षणः बालो न वेद ॥२२॥

अनुवाद— हे सुन्दरि ! स्वामी के द्वारा भृत्यों को दिया गया दण्ड उस पर उनका परम अनुग्रह होता है वह क्रोधी मूर्ख है जो स्वामी के द्वारा किए गये उपकार को नहीं समझ पाता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

यतः परमोऽनुग्रहो दण्डः, यस्तु दण्डतो विषीदति सोऽज्ञ इत्याह–बाल इति। बन्धुकृत्यं शिक्षाकरणम्। अमर्षणः क्रोधी॥२२॥

भाव प्रकाशिका

चूकि स्वामी के द्वारा दिया गया दण्ड तो उनकी बड़ी कृपा है । दण्ड के कारण जो दुःखी होता है वह मूर्ख है । बन्धुकृत्यम् अर्थात् शिक्षा देना । अमर्षण अर्थात् क्रोधी ॥२२॥

सा त्वं सुखं सुदति सुभ्र्वनुरागभारव्रीडाविलम्बविलसद्धसितावलोकम् ।
नीलालकालिभिरुपस्कृतमुन्नसं नः स्वानां प्रदर्शय मनस्विनि वल्गुवाक्यम् ॥२३॥

अन्वयः— हे सुदति हे सुभ्र हे मनस्विनि सा त्वं सुभुअनुरागभार व्रीडाविलम्ब विलसद्धसितावलोकम् नीलालकालिभिरूपस्कृतमुन्नसं वल्गुवाक्यं मुखम् स्वानां नः प्रदर्शय ॥२३॥

अनुवाद— हे सुन्दर दाँतों वाली हे सुन्दर भौहों वाली ! हे मनस्विनि ! प्रणय तथा लज्जा के भार से झुके हुए तथा मधुर मुस्कान मयी चितवन से सुशोभित तथा भ्रमर पंक्ति के समान नीली अलकावली उठी हुई नासिका से युक्त तो मनोहर वाणी से अपने मनोमोहक मुखड़े को हमे अपने भृत्यों को दिखाओं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

हे सुदति हे सुभ्रु हे मनस्विनि, सा त्वमस्माकं स्वामिनी, अतः स्वानां मुखं प्रदर्शय । कीदृशम् । अनुरागभारेण ब्रीडया यो विलम्बो मन्थरता तेन विलसद्न्हसितावलोको यस्मिन् । नीला अलका एवालयस्तैरुपस्कृतं भूषितम् । उन्नतनासिकम् । वल्गु वाक्यं यस्मिंस्तत् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

राजा पुरञ्जन कहते हैं हे सुन्दर दन्त पंक्ति से युक्त सुन्दर भौहों वाली मनस्विनि ! तुम हमारी स्वामिनी हो। मैं तो तुम्हारा भृत्य हूँ मुझे तुम अपना मुख दिखाओ । यदि कहो कि कैसा मुख तो इस पर कहते हैं प्रेमभरी लज्जा से झुके हुए माधुर्य पूर्ण मुस्कान से मनोहर अवलोकन से युक्त मुख को । काले घुंघराले केश रूपी भ्रमरों से सुशोभित उठी नासिका तथा मनोज्ञ वाक्य से युक्त मुख को दिखाओ ॥२३॥

तस्मिन्दधे दममहं तव वीरपत्नि योऽन्यत्र भूसुरकुलात्कृतकिल्बिषस्तम् ।
पश्ये न वीतभयमुन्मुदितं त्रिलोक्यामन्यत्र वै मुररिपोरितरत्र दासात् ॥२४॥

अन्वयः— वीरपत्नि ! भूसुर कुलाद् अन्यत्र मुररिपोः दासात् इतरत्र यः तव कृतकिल्विषः तस्मिन् अहं दण्डं दधे। तम् अहम् त्रिलोक्याम् अन्यत्र वै वीतभयम् अनुदितं न पश्ये ॥२४॥

अनुवाद— हे वीर पत्नि ! ब्राह्मण वंश और भगवान् के भक्तों से भिन्न यदि किसी दूसरे ने तुम्हारा अपकार किया है तो उसे तुम मुझे बतलाओ मुझे तो इन दोनों से भिन्न त्रिलोकी में अथवा त्रिलोकी के बाहर कोई भी ऐसा नहीं दिखाई देता है जो तुम्हारा अपराध करके कुशल पूर्वक रह सके ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

हे वीरपत्नि वीरस्य मम भार्ये, यस्ते कृतापराधस्तस्मिन्नहं ब्राह्मणकुलादन्यत्रान्यस्मिन्मुररिपुदासादितरत्र च दमं दधे दण्डं करोमि। किंतु तं विगतभयमुच्चैर्मुदितं त्रिलोक्यामन्यत्र वै लोकत्रयाद्बहिरपि न पश्यामि। मद्भयादेवासौ मरिष्यतीत्यर्थः।।२४।।

भाव प्रकाशिका

मैं वीर हूँ और तुम मेरी पत्नी हो। ब्राह्मण वंश और तथा श्रीहरि के भक्त हो छोड़कर यदि किसी ने तुम्हारा अपराध किया है उसे बतलाओ मैं उसको दण्ड दूँगा। किन्तु ऐसे व्यक्ति को तो मैं न तो त्रिलोकी में और न त्रिलोकी से बाहर ही देखता हूँ जो तुम्हारा अपराध करके प्रसन्न रहे। वह तो मेरे भय से ही मर जायेगा ।।२४।।

वक्रं न ते वितिलकं मलिनं विहर्षं संरम्भभीममविमृष्टमपेतरागम् ।
पश्ये स्तनावपि शुचोपहतौ सुजातौ बिम्बाधरं विगतकुङ्कुमपङ्करागम् ।।२५।।

अन्वयः— वितिलकं मलिनं विहर्षं संरम्भभीमम् अविमृष्टम् अपेतरागम् ते वक्त्रम् न पश्ये सुजातौ शुचोपहतौ स्तनौ अपि विगतकुङ्कुमपङ्करागम् विम्बाधरम् न पश्ये ।।२५।।

अनुवाद— आज तक कभी तुम्हारा तिलक से रहित, उदास, मुरझाया हुआ, क्रोध के कारण भयानक, कान्ति हीन और स्नेह शून्य मुख नहीं देखा, तुम्हारें सुन्दर स्तनों को भी मैंने कभी शोकाश्रुओं से भिंगा हुआ नहीं देखा है, तथा विम्बाफल के समान तुम्हारे अधरों को भी मैंने कभी केसर की लाली से रहित नहीं देखा है ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

ते वक्त्रमितः पूर्वं कदाचिदपि वितिलकं न पश्यामि। संरम्भेण कोपावेशेन भीमं भयङ्करम्। अविमृष्टमनुज्जवलम्। अपेतरागं स्नेहशून्यम्। तथा ते सुजातौ शोभनौ स्तनावपि शोकाश्रुभिरुपहतौ न पश्यामि। तथा बिम्बफलाकारमधरं च विगतः कुङ्कुमपङ्कतुल्यस्ताम्बूलरागो यस्मात्तादृशं न पश्यामि। इदानीं कुत एवं जातमिति शेषः। पाठान्तरे एवंभूतं मुखं स्तनौ च पश्यन् शं न विन्दामीत्यन्वयः। विगतः कुङ्कुमपङ्करागो याम्यामिति स्तनयोर्विशेषणम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

आज से पहले कभी मैंने तुम्हारे मुख को तिलक से रहित नहीं देखा है, क्रोध के कारण भयानक मुरझाये हुए स्नेह शून्य भी तुम्हारे मुख को मैंने कभी नहीं देखा है। साथ ही तुम्हारे सुन्दर स्तनों को भी कभी शोकाश्रु से भिंगे हुए नहीं देखा है। तथा विम्बाफल के समान तुम्हारे अधरों को भी मैंने कभी केसर के समान पान की लालिमा से रहित नहीं देखा है। इस समय यह सब कैसे हो गया है ?

जहाँ पर **पश्यं स्तनावपि शुचोपहतौ सजातौ विन्दामिशं विगत कुङ्कुमपङ्करागौ** इस प्रकार का पाठ भेद है, वहाँ पर अर्थ होगा कि इस प्रकार के तुम्हारे मुख एवं स्तनों को देखकर मुझे कष्ट हो रहा है। कुङ्कुम के पराग से रहित यह दोनों स्तनों का विशेषण होगा ।।२५।।

तन्मे प्रसीद सुहृदः कृतकिल्बिषस्य स्वैरं गतस्य मृगयां व्यसनातुरस्य ।
का देवरं वशगतं कुसुमास्त्रवेगविस्त्रस्तपौंस्नमुशती न भजेत कृत्ये ।।२६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पुरंजनोपाख्याने षड्विंशोऽध्यायः ।।२६।।

अन्वयः— तत् व्यसनातुरस्य स्वैरं मृगयां गतस्य कृतकिल्वषस्य सुहृदः मे प्रसीद, कुसुमास्त्रवेगस्त्रिस्पौंस्नम् वशगतं देवरं का उशती कृत्ये न भजेत ।।२६।।

अनुवाद— व्यसन के कारण तुमसे पूछे बिना आखेट करने के लिए गया हुआ मैं तुम्हारा अपराधी हूँ फिर

भी सुहृद होने के कारण तुम मुझ पर प्रसन्न हो जाओ । कामदेव के बाणों के वेग के कारण जिसका धैर्य टूट गया हो ऐसे अपने पति पर कौन कामिनी होगी जो उसका उचित कार्य के लिए प्रसन्न हो जायें ?॥२६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पुरञ्जनोपाख्यान के अन्तर्गत छबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मात्कृतं किल्बिषमपराधं येन तस्य । किल्बिषमेवाह । स्वैर स्वातन्त्र्येण त्वामपृष्ट्वा मृगयां गतस्य । देवो देवनं क्रीडा तां राति ददातीति देवर कान्तस्तम् । कामवेगेन विस्रस्तं गतं । पौस्नं पौरुषं धैर्यं यस्य तम् । उशती कामयमाना कृत्ये कर्तुं योग्येऽर्थे का न भजेत ॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां षड्विंशोऽध्यायः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

इसलिए अपराध करने वाला मैं हूँ, क्योंकि तुमसे पूछे बिना ही मैं शिकार करने चला गया । यही मेरा अपराध है । काम के वेग से जिसका धैर्य टूट गया हो उस अपने पति को कौन सी ऐसी कामिनी होगी जो उचित कृत्य के लिए स्वीकार न करे । **देवो देवनं क्रीडतां राति ददाति इति देवरः** । इस व्युत्पत्ति के अनुसार देवर शब्द पति का वाचक है ॥२६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के छब्बीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२६।।

सताइसवाँ अध्याय

पुरञ्जनपुरी पर चण्डवेग का आक्रमण और कालकन्या का चरित्र

नारद उवाच

इत्थं पुरंजनं सम्यग्वशमानीय विभ्रमैः । पुरंजनी महाराज रेमे रमयती पतिम् ॥१॥

अन्वयः— हे महाराज ! इत्थम् विभ्रमैः पुरञ्जनं सम्यग् वशमानीय पुरञ्जनी पतिम् रमयती रेमे ॥१॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— हे महाराज ! इस तरह अपने अनेक प्रकार के विलासों से पुरञ्जन को अपने वश में करके पुरञ्जनी अपने पति को आनन्दित करती हुई उसके साथ रमण करने लगी ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तविंशे प्रियापुत्राद्यासत्तया विस्मृतात्मनः । कालकन्याद्युपाख्यानैर्जरारोगाद्युदीर्यते । तदेवं जीवस्यानुनयादिकथासौन्दर्येणात्यन्तमुपाधिवश्यत्वमुक्त्वा तन्निमित्तां संसारपरम्परां निरूपयितुमाह-इत्थमिति । अत्र च प्रतिपदं कथंचिदध्यात्मपक्षेऽपि योजयितुं शक्यमेव । श्रीनारदेन तु जीवस्य स्त्रीपुरुषवासनादाढर्येन विचित्रा संसृतिर्भवतीत्येतावदेव कथातात्पर्यं दर्शितम् । 'क्वचित्पुमान् क्वचिच्च स्त्री क्वचिन्नोभयमन्धधीः । देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथाकर्मगुणं भवः इति वदता। तत्रादौ पुंस्त्वेन संसृतिरध्यायत्रयेणोक्ता । ततश्चैकेनाध्यायेन स्त्रीत्वेन संसृतिं प्रदर्श्येश्वरप्रसादलब्धज्ञानेन मोक्ष इत्युक्तम् । ततस्तदेव यथोपयोगं व्याख्यातमिति पञ्चाध्याय्यारम्भः प्रतीयते । प्रतिपदमध्यात्मयोजना तु दुर्घटा निष्प्रयोजना चेति स्वप्रौढिख्यापनमनादृत्य यथोपयोगमेव व्याख्यास्यामः । सध्र्यक् सम्यक् । विभ्रमैर्विलासैः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सताइसवें अध्याय में पत्नी तथा पुत्र में होने वाली आसक्ति के कारण राजा पुरञ्जन अपनी आत्मा को भी भूल गये । कालकन्या आदि के उपाख्यान के द्वारा राजा के बुढापा तथा रोग आदि का वर्णन किया जा रहा है। इस तरह जीव के अनुनय आदि कथा के सौन्दर्य के द्वारा अत्यन्त उपाधि का होना आवश्यक है इस बात को बतलाकर उसी के द्वारा संसार की परम्परा का निरूपण करने के लिए **इत्थम् इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । इस अध्याय में प्रत्येक पद को अध्यात्म पक्ष से जोड़ा ही जा सकता है । श्रीनारदजी ने स्त्री पुरुष की वासना की दृढता के द्वारा विचित्र संसार होता है इतना ही मात्र कथा का तात्पर्य बतलाया है । यह अज्ञानी जीव अपने कर्मों के अनुसार कभी पुरुष होता है कभी स्त्री होता है, कभी न स्त्री होता है न पुरुष होता अपितु नपुंसक होता । वह अपने कर्मों के ही अनुसार देवता, मनुष्य अथवा तिर्यक् योनि का जीव होता है । इस तरह से नारदजी ने कहा है । इस तरह सर्वप्रथम उन्होंने तीन अध्यायों के माध्यम से कहा है कि पुंस्त्व के ही द्वारा संसार होता है । उसके पश्चात् एक अध्याय में स्त्रीत्व के द्वारा संसार का वर्णन करके यह कहा है कि परमात्मा की कृपा से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है उसके पश्चात् उन्हीं बातों की उपयोगानुसार व्याख्या के लिए पाँच अध्यायों की रचना की गयी है, यह प्रतीत होता है। प्रत्येक पदों के साथ अध्यात्म को जोड़ना कठिन ही नहीं निष्प्रयोजन भी है, इसीलिए अपनी प्रौढिका समादर न करके उपयोगानुकूल ही व्याख्या मैं करूँगा अच्छी तरह से विभ्र मैं का अर्थ है विलासों द्वारा॥१॥

स राजा महिषीं राजन्सुस्नातां रुचिराननाम् । कृतस्वस्त्ययनां तृप्तामभ्यनन्ददुपागताम् ॥२॥

अन्वयः— स राजा सुस्नातां कृत स्वस्त्ययनां तृप्ताम् रूचिराननाम् उपागताम् महिषीम् अभ्यनन्दत् ॥२॥

अनुवाद— राजा अच्छी तरह से स्नान करके तथा मङ्गलमय शृङ्गार करके भोजनादि से तृप्त होकर पास आयी हुई रानी का राजा ने अभिनन्दन किया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

कृतं स्वस्त्ययनं मङ्गलं कुङ्कुमसिन्दूरादिभिर्यस्यास्ताम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

सिन्दूर तथा कुङ्कुम आदि से मङ्गलिक शृङ्गार करके आई हुई रानी का अभिनन्दन किया ॥२॥

तयोपगूढः परिरब्धकन्धरो रहोऽनुमन्त्रैरपकृष्टचेतनः ।
न कालरंहो बुबुधे दुरत्ययं दिवा निशेति प्रमदापरिग्रहः ॥३॥

अन्वयः— तया उपगूढः परिब्धकन्धरः रहः अनुमन्त्रैः अपकृष्ठचेतनः, प्रमदापरिग्रहः दिवानिशेति कालरंहः न बुबुधे॥३॥

अनुवाद— पुरञ्जनी के द्वारा आलिंगित राजा ने उसको गले से लगाया उसके पश्चात् एकान्त में मनोनुकूल रहस्य की बातों में जिसका ज्ञान समाप्त हो गया था और उस नारी को ही अपने हुए उसको दिन-रात के भेद से वितते हुए काल के वेग का पता ही नहीं चला ॥३॥

भावार्थ दीपिका

उपगूढः परिरब्धः । परिब्धा कन्धरा तस्या येन । रह एकान्ते । अनुमन्त्रैरनुकूलैर्गुह्यभाषणैः । अपकृष्टा चेतना विवेको यस्य । कालरंहः आयुर्व्ययम् । प्रमदैव परिग्रहो न ज्ञानसाधनं यस्य ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उपगूढ अर्थात् अलिङ्गित । अर्थात् रानी के द्वारा आलिङ्गित राजा ने उसको गले से लगाया । एकान्त में रहस्यमय बातों में जिसका विवेक नष्ट हो गया था । उस राजा ने प्रमदा को ही अपनाया था ज्ञान के साधन को नहीं यह प्रमदा परिग्रह का अभिप्राय है ॥३॥

शयान उन्नद्धमदो महामना महार्हतल्पे महिषीभुजोपधिः ।
तामेव वीरो मनुते परं यतस्तमोभिभूतो न निजं परं च यत् ॥४॥

अन्वयः— उन्नद्धमदः महामनाः महाहतल्पे महिषी भुजोपधिः शयानः वीरः यतः तामेव परं मनुते तमोऽभिभूतः निजं परं च न ॥४॥

अनुवाद— मदमत्त बना हुआ वह महामना महामूल्यवान् शय्या पर रानी की भुजाओं पर शिर रखकर सोया हुआ राजा अज्ञान से आवृत्त होने के कारण आत्मा और परमात्मा को भी भूल गया था ॥४॥

भावार्थ दीपिका

महार्हतल्पे उत्कृष्टशय्यायां शयानः । महिष्या भुज उपधिरुपधानमुच्छीर्षकं यस्य । अविसर्गपाठे शयनक्रियाविशेषणम्। तां महिषीमेव परं पुरुषार्थममन्यत नतु यन्निजं रूपं ब्रह्म तत् । तमसाऽज्ञानेनाभिभूतो यतः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

महामूल्यवान् शय्या पर अपनी रानी की ही भुजा को उपधान बनाये हुए सोया रहता था । विसर्ग रहित पाठ होने पर महिषी भुजोपधि शयनक्रिया का विशेषण होगा । वह राजा रानी को ही अपना सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ मानता था अपने ब्रह्म स्वरूप को नहीं; क्योंकि वह सदा अज्ञान से आवृत रहता था ॥४॥

तयैवं रममाणस्य कामकश्मलचेतसः । क्षणार्धमिव राजेन्द्र व्यतिक्रान्तं नवं वयः ॥५॥

अन्वयः— हे राजेन्द्र ! तया एवं रममामाणस्य, कामकश्मल चेतसः, नवं वयः, क्षणार्धम् इव व्यतिकान्तम् ॥५॥

अनुवाद— इस तरह से उसके साथ रमण करते हुए कामातुर राजा की नई जवानी मानो आधे क्षण में ही बीत गयी ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

तस्यामजनयत्पुत्रान्पुरंजन्यां पुरंजनः । शतान्येकादश विराडायुषोऽर्धमथात्यगात् ॥६॥
दुहितृर्दशोत्तरशतं पितृमातृयशस्करीः । शीलौदार्यगुणोपेताः पौरंजन्यः प्रजापते ॥७॥

अन्वयः— प्रजापते ! विराट् पुरञ्जनः तस्याम् पुरञ्जन्याम् एकादशशतानि पुत्रान् पितृमातृयशस्करीः दशेत्तरशतं दुहितृः च अजनयत् । पौरञ्जन्यः शीलौदार्य गुणोपेताः । अथ आयुषोऽर्धम् अत्यगात् ॥६-७॥

अनुवाद— हे प्रजापते सम्राट् पुरञ्जन ने पुरञ्जनी के गर्भ से ग्यारह सौ पुत्रों को उत्पन्न किया और एक सौ दश पुत्रियों को भी उत्पन्न किया । वे सभी पुरञ्जन की पुत्रियाँ पिता माता के यश को बढ़ाने वाली थीं तथा शील एवं और औदार्य गुण सम्पन्न थीं । इस तरह पुरञ्जन की आधी आयु बीत गयी ॥६-७॥

भावार्थ दीपिका

पुत्रानिन्द्रियपरिणामान् । दुहितृस्तदनन्तरं बुद्धिवृत्तीः । पुत्रसंख्या च बाहुल्यमात्रविवक्षया । दुहितृसंख्या तु पुत्रेभ्यो न्यूनत्वेन गार्हस्थ्यसौन्दर्यार्थमेव विराट् सम्राट् । आयुषोऽर्धमित्याद्यपि कथासौन्दर्यार्थमेव । पुरंजनकन्यात्वात्पौरंजन्यः । हे प्रजापते ॥६-७॥

भाव प्रकाशिका

हे प्रजापते ! पुत्रों की संख्या इन्द्रियों की संख्या के बराबर थी । पुत्रियाँ उसके पश्चात् हुई वे बुद्धि की वृत्ति स्वरूपिणी थीं । यहाँ पर पुत्रों की संख्या की बहुलता मात्र विवक्षित है । पुत्रियों की संख्या पुत्रों की संख्या से कम गार्हस्थ्य के सौन्दर्य के लिए वर्णित है । विराट् पद का अर्थ सम्राट् है आधी आयु का भी वर्णन कथा के सौन्दर्य के लिए किया गया है । पुरञ्जन की कन्या होने के कारण उन सबों को पौरञ्जनी कहा गया है ॥६-७॥

स पञ्चालपतिः पुत्रान्पितृवंशविवर्धनान् । दारैः संयोजयामास दुहितृः सदृशैर्वरैः ॥८॥

अन्वयः— पञ्चालपतिः स पितृवंशविवर्धनान् पुत्रान् दारैः संयोज्यामास दुहितृः सदृशैः वरैः संयोजयामास ॥८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् पञ्चालराज ने पिता के वंश को बढाने वाले पुत्रों का विवाह कर दिया । और पुत्रियों का भी उन सबों के अनुकूल पतियों से विवाह कर दिया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

दारैः परिणामानन्तरं हिताहितचिन्ताभिः । वरैरुचितविषयभोगैः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

पुत्रों का विवाह करने के पश्चात् हित एवं अहित की चिन्ताओं से युक्त उचित एवं श्रेष्ठ विषयभोगों के साथ विवाह कर दिया ॥८॥

पुत्राणां चाभवन्पुत्रा एकैकस्य शतं शतम् । यैर्वै पौरंजनो वंशः पञ्चालेषु समेधितः ॥९॥

अन्वयः— पुत्राणां च एकैकस्य शतम्, शतम्, पुत्रा अभवन् यैः वै पौरञ्जनो वंशः पञ्चालेषु समेधितः ॥९॥

अनुवाद— प्रत्येक पुत्रों के सौ-सौ पुत्र हुए उनसे वृद्धि प्राप्त पुरञ्जन का वंश सम्पूर्ण पञ्चाल देश में फैल गया॥९॥

भावार्थ दीपिका

पुत्राणां पुत्राः कर्माणि । पञ्चालेषु शब्दादिविषयेषु ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्रिय रूपी पुत्रों के पुत्र कर्म हुए पञ्चालेषु का अर्थ है शब्दादि विषयों में ॥९॥

तेषु तद्रिक्थहारेषु गृहकोशानुजीविषु । निरूढेन ममत्वेन विषयेष्वन्वबध्यत ॥१०॥

अन्वयः— तेषु तद्रिक्थाहारेषु गृहकोशानुजीविषु, निरूढेन ममत्वेन विषयेषु अन्वबध्यत ॥१०॥

अनुवाद— उन पुत्रों पौत्रों, गृहकोश तथा अनुजीवियों में ममता के बढ़ जाने के कारण वह राजा पुरञ्जन विषयों में ही बँधता गया ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तेषु पुत्रादिषु तेषामपि ये रिक्थहाराः पुत्रास्तेषु च ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

पुत्रों तथा उनके भी पुत्रों में यह तेषु तद्रिक्थ हारेषु का अर्थ है ॥१०॥

ईजे च क्रतुभिर्घोरैर्दीक्षितः पशुमारकैः । देवान्पितॄन्भूतपतीन्नानाकामो यथा भवान् ॥११॥

अन्वयः— दीक्षितः पशुमारकैः घोरैः कतुभिः नानाकामः भवान् यथा देवान् पितृन् भूतपतीन् ईजे ॥११॥

अनुवाद— उसके पश्चात् यज्ञ की दीक्षा ग्रहण करके उस राजा ने जिनमें पशुओं को मारा जाता है ऐसे भयङ्कर क्रतुओं के द्वारा अनेक प्रकार की कामनाओं से युक्त होकर देवताओं पितरों और भूतपतियों की उसने आपके ही समान आराधना की ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

युक्तेष्वेवं प्रमत्तस्य कुटुम्बासक्तचेतसः । आससाद स वै कालो योऽप्रियः प्रिययोषिताम् ॥१२॥

अन्वयः— एवं युक्तेपु प्रमत्तस्य कुटुम्बासक्तचेतसः स वै कालः आससाद यः प्रिययोषिताम् अप्रियः ॥१२॥

अनुवाद— इस तरह आत्मकल्याणकारी कर्मों के विषय में आसावधान तथा परिवार में ही आसक्त चित्त रहने वाले उसके लिए भी वही काल आ गया जो स्त्रीलम्पट पुरुषों के लिए अप्रिय होता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

युक्तेष्वात्महितेपु कर्मस्वनवहितस्य । स वै कालो जरासमयः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

आत्मकल्याण के विषय में असावधान रहने वाले पुरञ्जन का भी वही वृद्धापा का समय आ गया जो स्त्री लम्पटों को अत्यन्त अप्रिय होता है ॥१२॥

चण्डवेग इति ख्यातो गन्धर्वाधिपतिर्नृप । गन्धर्वास्तस्य बलिनः षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥१३॥

अन्वयः— नृप चण्डवेग इति ख्यातः गघर्वाधिपतिः तस्य षष्ठयुत्तरशतत्रयम् बलिनः गन्धर्वाः सन्ति ॥१३॥

अनुवाद— चण्डवेग नामक एक गन्धर्वों का राजा है, उसके अधीन तीन सौ साठ अत्यन्त बलवान् गन्धर्व रहते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

चण्डवेगः संवत्सरेणावर्तमानेनोपलक्षितः । गन्धर्वा दिवसाः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

चण्डवेग शब्द के द्वारा हमेशा आते रहने वाले को उपलक्षित किया गया है । गन्धर्व शब्द दिनों का उपलक्षक हैं॥१३॥

गन्धर्व्यस्तादृशीरस्य मैथुन्यश्च सितासिताः । परिवृत्त्या विलुम्पन्ति सर्वकामविनिर्मिताम् ॥१४॥

अन्वयः— अस्य मैथुन्य सितासिताः गन्धर्व्यः तादृशीः सर्वकाम विनिर्मिताम् परिलुम्पन्ति ॥१४॥

अनुवाद— उसकी मिथुन भाव से रहने वाली श्वेत तथा कृष्ण वर्ण की गन्धर्वियाँ भी उतनी ही है, वे बारी-बारी से चक्कर लगाकर भोग विलास की सामग्रियों से परिपूर्ण उस नगरी को लूटने का काम करती थीं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

गन्धर्व्यो रात्र्यः । तादृशीस्तादृश्यः । मैथुन्यो दिवसैर्मिथुनीभूय स्थिताः । सिताश्चासिताश्च शुक्लकृष्णपक्षीयाः परिभ्रमणेन सर्वैः कामैः सह विनिर्मितां पुरीमपहरन्ति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

गन्धर्व्यः पद से रात्रियों को कहा गया है । तादशीः अर्थात् दिन रूपी गन्धर्वों के ही बराबर मैथुन्यः अर्थात् दिनों के साथ जोड़ै रूप में रहने वाली, सिताश्चासिश्च कहकर शुक्लपक्षीय एवं कृष्णपक्षीय रात्रियों को बतलाया गया है । परिवृत्या अर्थात् बारी-बारी से सभी काम्य पदार्थों के साथ निर्मित शरीर रूपी नगरी को लूटने का काम करती थीं ॥१४॥

ते चण्डवेगानुचराः पुरंजनपुरं यदा । हर्तुमारेभिरे तत्र प्रत्यषेधत्प्रजागरः ॥१५॥

अन्वयः— ते चण्डवेगानुचरा यदा पुरञ्जनपुरं हर्तुमारेभिरे तत्र प्रजागरः प्रत्यषेधत् ॥१५॥

अनुवाद— चण्डवेग के वे अनुचर जब पुरञ्जन पुरी को लूटना प्रारम्भ किए तो उस समय प्रजागर रूपी प्राण ने उन सबों को रोका ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

प्रजागरः प्राणः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

प्रजागर अर्थात् प्राण ॥१५॥

स सप्तभिः शतैरेको विंशत्या च शतं समाः । पुरंजनपुराध्यक्षो गन्धर्वैर्युयुधे बली ॥१६॥

अन्वयः पुरञ्जन पुराध्यक्षः बली सः एकः शतं समाः सप्तभिः शतैः विंशत्याच गन्धर्वैः सह युयुधे ॥१६॥

अनुवाद- पुरञ्जन पुरी की देखरेख रखने वाला वह महाबलवान् प्रजागर अकेले सौ वर्षों तक सात सौ बीस गन्धर्वों के साथ युद्ध करता रहा ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

विंशत्या च सह ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

विंशत्या च के साथ सह पद का अध्याहार कर लेना चाहिए ॥१६॥

क्षीयमाणे स्वसंबन्धे एकस्मिन्बहुभिर्युधा । चिन्तां परां जगामार्तः सराष्ट्रपुरबान्धवः ॥१७॥

अन्वयः— एकस्मिन् स्वसंबन्धे बहुभिः युधाक्षीयमाणे सराष्ट्रपुरबान्धवः आर्तः सन परांचिन्तां जगाम ॥१७॥

अनुवाद— अपने एक मात्र संबन्धी के अनेक गन्धवों के साथ युद्ध करने के कारण प्रजागर को बलहीन होते देखकर पुरञ्जन को अपने राष्ट्र तथा नगर में रहने वाले बान्धवों के साथ अत्यधिक चिन्ता हुई ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

स्वसंबन्धे स्वसंबन्धिनि प्राणे ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

अपने प्राण के ॥१७॥

स एव पुर्यां मधुभुक्पञ्चालेषु स्वपार्षदैः । उपनीतं बलिं गृह्णन्स्त्रीजितौ नाविदद्भयम् ॥१८॥

अन्वयः— स एव पंचालेषु पुर्यां स्नपार्षदैः उपनीतं बलिं गृह्णन् मधुभुक् स्त्रीजितः भयम् न अविदत् ॥१८॥

अनुवाद— वह पञ्चाल देश के इस नगर में अपने पार्षदों द्वारा लाये गये कट को लेकर विषयभोगों को भोगता था । स्त्री के वशीभूत होने के कारण उसे इस भय का पता ही नहीं चला ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

स एव मधुभुक् क्षुद्रसुखभोक्ता । स्वपार्षदैरिन्द्रियैः । नाविदन्नालोचितवान् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

वह अब तक क्षुद्रविषयजन्य ही सुखों को भोगने में लगा रहा । पार्षद शब्द से इन्द्रियों को कहा गया है। नाविदत् अर्थात् विचार ही नहीं किया ॥१८॥

कालस्य दुहिता काचित्त्रिलोकीं वरमिच्छती । पर्यटन्ती न बर्हिष्मन्प्रत्यनन्दत कश्चन ॥१९॥

अन्वयः— हे बर्हिष्मन् काचित् कालस्य दुहिता वरम् इच्छन्ती त्रिलोकीम् पर्यटन्ती कश्चन न प्रत्यनन्दत् ॥१९॥

अनुवाद— हे बर्हिष्मन् काल की एक कन्या (जरा) थी वह अपने पति की खोज में त्रिलोकी में घूम रही थी, किन्तु किसी ने भी उसको स्वीकार नहीं किया ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

कालस्य दुहिता जरास्ति तां न प्रत्यनन्दत नैच्छत् । वर्हिष्मन् हे प्राचीनवर्हिः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

हे प्राचीन वर्हि काल की पुत्री का नाम जरा था उसको किसी ने नहीं चाहा ।।१९।।

दौर्भाग्येनात्मनो लोके विश्रुता दुर्भगेति सा । या तुष्टा राजर्षये तु वृत्ताऽदात्पूरवे वरम् ।।२०।।

अन्वयः— आत्मनो दौर्भाग्यात् लोके सा दुर्भगा इति विश्रुता या वृतातुष्टासति राजर्षये पूरवे वरम् अदात् ।।२०।।

अनुवाद— अपने दुर्भाग्य के कारण वह लोक में दुर्भगा के नाम से विख्यात थी । उसका एक बार राजर्षि पुरु ने स्वीकार किया तो वह प्रसन्न होकर उनको राज्य का वरदान दी ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

पूरवे ययातिपुत्राय । तेन वृता सती वरमदात् । ययातिः शुक्रशापाज्जरां प्राप्य पुत्रानुवाच इमां गृह्णीतेति, तां ज्येष्ठाश्चत्वारो न जगृहुः पूरुस्तु जगृहे, ततो ययातिस्तस्मै राज्यं ददाविति जरैवादादित्युक्तम् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

ययाति के पुत्र पुरु ने उसे स्वीकार किया तो उसने उनको राज्य का वरदान दिया । ययाति शुक्राचार्य के शाप से जरा बुढ़ापा को प्राप्त कर लिए । उन्होंने अपने पुत्रों से कहा कि तुमलोग मेरी इस बुढापा को स्वीकार कर लो । पुरु से बड़े ययाति के जो चार पुत्र थे वे उस जरा को नहीं स्वीकार किए । किन्तु पुरु ने उसको स्वीकार कर लिया । उसके कारण ययाति ने पुरु को राज्य प्रदान कर दिया । इसी को यहाँ पर कहा गया है कि जरा ने ही पुरु को राज्य प्रदान किया ।।२०।।

कदाचिदटमाना सा ब्रह्मलोकान्महीं गतम् । वव्रे बृहद्व्रतं मां तु जानती काममोहिता ।।२१।।

अन्वयः— कदाचित् अटमाना काममोहिता सा ब्रह्मलोकात् महीं गतम् बृहद् व्रतं जानती मां जानती तु वव्रे ।।२१।।

अनुवाद— एक वार घूमती हुइ वह ब्रह्मलोक से भूलोक में आये हुए मुझको देखकर मुझको नैष्ठिक ब्रह्मचारी जानकर भी उसने मेरा पति के रूप में वरण कर लिया ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

सा जरा । बृहद्व्रतं नैष्ठिकम् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

सा शब्द से यहाँ पर जरा का परामर्श किया गया है । बृहदव्रत अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी ।।२१।।

मयि संरभ्य विपुलमदाच्छापं सुदुःसहम् । स्थातुमर्हसि नैकत्र मद्याच्ञाविमुखो मुने ।।२२।।

अन्वयः— मयि संरभ्य विपुलं सुदुःसहम् शापम् अदात् मद् याच्ञा विमुखः मुने एकत्र स्थातुं न अर्हसि ।।२२।।

अनुवाद— मेरे द्वारा नहीं स्वीकार नहीं किए जाने पर मुझ पर क्रोध करके उसने मुझको भयङ्कर असह्य शाप दिया कि मेरी प्रार्थना को नहीं स्वीकार करने वाले मुने तुम एक स्थान पर कहीं नहीं रह पाओगें ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

प्रत्याख्यातवति मयि संरभ्य क्रोधं कृत्वा नैकत्र स्थातुमर्हसीति शपमदात् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

मेरे द्वारा नहीं स्वीकार किए जाने पर क्रोध करके उसने मुझे शाप दे दिया कि तुम कहीं एक स्थान पर नहीं रह पाओगें ।।२२।।

ततो विहतसंकल्पा कन्यका यवनेश्वरम् । मयोपदिष्टमासाद्य वव्रे नाम्ना भयं पतिम् ॥२३॥

अन्वयः— ततः विहत सङ्कल्पा कन्यका मया उपदिष्टम् यवनेश्वरम् भयम् पतिं वव्रे ॥२३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् मुझसे निराश होकर वह कन्या मेरे द्वारा कहे जाने पर यवनराज भय को ही अपना पति बना ली ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

आधयो व्याधयश्च यवनास्तेषामीश्वरं भयनामानं वव्रे ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

आधियाँ (मानसिक कष्ट) व्याधियाँ (रोग) ये ही यवन हैं । इन सबों का स्वामी भय हैं । उसी का उसने पति के रूप में वरण कर लिया ॥२३॥

ऋषभं यवनानां त्वां वृणे वीरेप्सितं पतिम् । सङ्कल्पस्त्वयि भूतानां कृतः किल न रिष्यति ॥२४॥

अन्वयः— हे वीर ! यवनानां ऋषभं त्वां ईप्सितं पतिं वृणे त्वमपि किल भूतानां कृतः सङ्कल्पः न रिष्यति ॥२४॥

अनुवाद— हे वीर ! आप यवनों के राजा हैं मैं आपका अपने प्रिय पति के रूप में वरण करती हूँ । आपके विषय में जीवों द्वारा किया गया सङ्कल्प कभी विफल नहीं होगा ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

हे वीर, त्वामीप्सितं पतिं वृणे । न रिष्यति न नश्यति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

जराने भय से कहा कि मैं तुमको अपने प्रिय पति के रूप में वरण करती हूँ । न रिष्यति का अर्थ है कभी विफल नहीं होगा ॥२४॥

द्वाविमावनुशोचन्ति बालावसदवग्रहौ । यल्लोकशास्त्रोपनतं न राति न तदिच्छति ॥२५॥

अन्वयः— यत् लोक शास्त्रोपनतं न राति न तदिच्छति इमौ द्वौ आसदव ग्रहौ अनुशोचन्ति ॥२५॥

अनुवाद— जो मनुष्य लोक अथवा शास्त्र के अनुसार देने योग्य वस्तु का दान नहीं देते हैं और जो लोग अधिकारी होकर भी उसको नहीं स्वीकार करते हैं वे दोनों प्रकार के लोग दुराग्रही है अतएव शोचनीय हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

लोकतो वेदतश्च यद्देयत्वेन ग्राह्यत्वेन चोपनतं प्राप्तं तद्याच्यमानं यो न ददाति यश्च दीयमानं नेच्छति न गृह्णाति इमौ द्वौ कर्मभूतावनुशोचन्ति सन्तः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

लोक तथा वेदानुसार देने योग्य वस्तु का दान नहीं करते हैं तथा जो लोग उसके अधिकारी भी होकर उसे नहीं स्वीकार करते हैं वे दोनों प्रकार के लोग, असदाग्रही हैं । अतएव सन्त महापुरुष उन लोगों के विषय में शोक करते हैं ॥२५॥

अथो भजस्व मां भद्र भजतीं मे दया कुरु । एतावान्पौरुषो धर्मो यदार्ताननुकम्पते ॥२६॥

अन्वयः— अतः हे भद्र माम् भजस्व भजतीं मे दयां कुरु । पौरुष धर्मः एतावान् यत् आर्तान् अनुकम्पते ॥२६॥

अनुवाद— हे भद्र ! आप मुझे स्वीकार करें, मैं आपकी सेवा करना चाहती हूँ पुरुष को सर्वोत्कृष्ट धर्म यही है कि वे दीनों पर दया करें ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

पुरुषेण कर्तव्यो धर्मः पौरुषः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

पुरुष के द्वारा करने योग्य धर्म को पौरुष कहते हैं ॥२६॥

कालकन्योदितवचो निशम्य यवनेश्वरः । चिकीर्षुर्देवगुह्यं स सस्मितं तामभाषत ॥२७॥

अन्वयः— यवनेश्वरः कालकन्योदित वचः निशम्य सः देवगुह्यं चिकीर्षुः सस्मितं तामभाषत ॥२७॥

अनुवाद— यवनेश्वर भय ने कालकन्या की वाणी को सुना और मृत्यु रूप देवगुह्य कार्य को करने की इच्छा से मुस्कुराते हुए उसने कहा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

देवगुह्य मरणम् । तद्धि प्राणिनां वैराग्यानुदयाय देवैर्गोप्यते ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

देवगुह्यमृत्यु है लोगों को कहीं वैराग्य उत्पन्न न हो जाय इसीलिए देवगण उसको छिपाये रहते है ॥२७॥

मया निरूपितस्तुभ्यं पतिरात्मसमाधिना । नाभिनन्दति लोकोऽयं त्वामभद्रामसंमताम् ॥२८॥

अन्वयः— योगसमाधिना मया तुभ्यं पतिः निरूपितः, अभद्राम्, असम्मतां त्वाम् अयं लोकः नाभिनन्दति ॥२८॥

अनुवाद— मैंने अपनी योग दृष्टि के द्वारा तुम्हारे लिए एक पति को निश्चय किया है । तुम सबका अनिष्ट करने वाली हो अतएव तुमको कोई भी नहीं चाहता है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

तुभ्यं तव । आत्मसमाधिना ज्ञानदृष्ट्या । याच्यमानोऽयं लोकस्त्वां नेच्छति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

तुभ्यं का अर्थ तुम्हारे है । भय ने जरा से कहा कि मैंने अपनी ज्ञान दृष्टि से देखकर तुम्हारे लिए एक व्यक्ति को तुम्हारे पति के रूप में निश्चय किया है । तुम सबों का अनिष्ट करने वाली हो अतएव प्रार्थना करने पर भी कोई तुमको स्वीकार नहीं करता है ॥२८॥

त्वमव्यक्तगतिर्भुङ्क्ष्व लोकं कर्मविनिर्मितम् । या हि मे पृतनायुक्ता प्रजानाशं प्रणेष्यसि ॥२९॥

अन्वयः— कर्म विनिर्मित लोकं त्वम् अव्यक्त गतिः भुंक्ष्वः यां हित्वम् मे पृतना युक्ता प्रजानाशं प्रणेष्यसि ॥२९॥

अनुवाद— यह संसार कर्म विनिर्मित है इसका भोग तुम अलक्षित गति होकर बल पूर्वक करो । तुम मेरी सेना को लेकर सम्पूर्ण प्रजाओं का विनाश करो ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अतोऽव्यक्तगतिः कुतः प्राप्तेत्यलक्षितगतिः सती लोकमाक्रम्य भुङ्क्ष्व । एवं सर्वोऽपि लोकस्तव पतिः स्यादित्यर्थः। नचैवं त्वया शङ्कनीयं प्रतिकूलां मां लोको हनिष्यतीति । यस्मात्त्वमेव प्रजानाशं करिष्यसीत्याह- या हीति । या मदीया यवनपृतना तया युक्ता ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

अतएव तुम अव्यक्त गति हो जाओ । जिससे किसी को यह पता नहीं चल सके कि मुझको बुढ़ापा कैसे आ गयी । उस तरह संसार पर आक्रमण करके तुम उसका बल पूर्वक भोग करो इस तरह सारा संसार तुम्हारा

पति बन जायेगा । तुमको इस बात की शङ्का नहीं होनी चाहिए कि मैं तो सबों के प्रतिकूल रहने वाली हूँ, अतएव संसार मुझे मार डालेगा । क्योंकि तुम ही सारी प्रजाओं का नाश करोगी । **याहि०** कहकर यह यवनराज ने कहा कि तुम्हारे साथ मेरी सेना रहेगी । अतएव तुमको कोई भी नहीं मार सकता है ।।२९।।

प्रज्वारोऽयं मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव । चराम्युभाभ्यां लोकेऽस्मिन्नव्यक्तो भीमसैनिकः।।३०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पुरंजनोपाख्याने सप्तविंशोऽध्यायः ।।२७।।

अन्वयः— अयं प्रज्वारः मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव । भीम सैनिकः अव्यक्तः अहम् उभाभ्यां लोके चरामि।।३०।।

अनुवाद— यह प्रज्वार मेरा भाई है तुम मेरी बहन बन जाओ । अव्यक्त रूप से मैं अपनी भयङ्कर सेना लेकर तुमदोनों के साथ संसार में सञ्चरण करूँगा ।।३०।।

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पुरञ्जनोपाख्यान के अन्तर्गत सताइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

किंच । प्रज्वार इति । मारको वैष्णवो ज्वरः माहेश्वरस्य व्याध्यन्तः पातित्वात् । भीमा घोराः सैनिका यस्य ।।३०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

मार डालने वाला यह जो प्रज्वार नामक वैष्णव ज्वर हैं, इसने माहेश्वर ज्वर को व्याधियों में डाल दिया था, वह मेरा भाई है और तुम मेरी बहिन बन जाओ तुम दोनों को अपने साथ लेकर अलक्षितगति होकर अपने भयङ्कर सैनिकों के साथ मैं संसार में संचरण करूँगा ।।३०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपका नामक टीका के सताइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२७।।

* * *

अठाइसवाँ अध्याय

पुरञ्जन को स्त्री योनि की प्राप्ति और अविज्ञान के उपदेश से उसकी मुक्ति

नारद उवाच

सैनिका भयनाम्नो ये बर्हिष्मन् दिष्टकारिणः । प्रज्वारकालकन्यायां विचेरुरवनीमिमाम् ॥१॥

अन्वयः— हे बर्हिष्मन् ! भय नाम्नः ये दिष्कारिणः सैनिकाः प्रज्वार काल कन्याभ्यां इमाम् अवनीम् विचेरुः ॥१॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! भय नामक यवनराज की आज्ञा का पालन करने वाले जो सैनिक थे वे प्रज्वार एवं कालकन्या के साथ इस पृथिवी पर विचरण करने लगे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टाविंशे तु वैदर्भ्याख्यानेन स्त्रीविचिन्तया। स्त्रीत्वं प्राप्तस्य दैवेन कदाचिन्मुक्तिरुच्यते। इदानीं तु पुरंजनस्य पुंदेहत्यागपूर्वकं स्त्रीत्वप्रकारमाह सैनिका इत्यादि राजसिंहस्य वेशमनीत्यन्तेन। दिष्टं दैवं कुर्वन्त्यधिकुर्वन्तीति तथा। मृत्योरादेशकारिण इति वा॥१॥

भाव प्रकाशिका

अटाइवें अध्याय में स्त्री की चिन्ता करने के कारण स्त्रीत्व योनि में गये हुए पुरञ्जन की दैववशात् वैदर्भी के आख्यान के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति का वर्णन किया गया है। इस पुरञ्जन के पुरुष शरीर त्याग पूर्वक मोक्ष की प्राप्ति के प्रकार का वर्णन नारदजी ने किया है। इस पहले श्लोक से लेकर अटाइसवें श्लोक पर्यन्त मोक्ष प्राप्ति का प्रकार वर्णित है। दिष्टकारिणः अर्थात् मृत्यु के आदेश का पालन करने वाले ॥१॥

त एकदा तु रभसा पुरंजनपुरीं नृप । रुरुधुर्भौमभोगाढ्यां जरत्पन्नगपालिताम् ॥२॥

अन्वयः— एकदा तु ते रभसा भौमभोगाढ्यां जरतपन्नगपालिताम् पुरञ्जन पुरीं रुरुधुः ॥२॥

अनुवाद— एक बार वे सब अत्यन्त वेग पूर्वक संसार की समस्त सुख सामग्री से सम्पन्न तथा वृद्ध सर्प के द्वारा संरक्षित पुरञ्जन की नगरी को घेर लिया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

जरत्पन्नगेन जीर्णप्राणेन पालिताम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

जरत् पन्नगपालिताम् अर्थात् सौ वर्ष के बूढे प्राण के द्वारा संरक्षित ॥२॥

कालकन्यापि बुभुजे पुरं जनपुरं बलात् । ययाभिभूतः पुरुषः सद्यो निःसारतामियात् ॥३॥

अन्वयः— ययाभिभूतः पुरुषः सद्यः निसारतामियात् सा कालकन्यापि वलात् पुरञ्जनपुरं वुभुजे ॥३॥

अनुवाद— जिसके द्वारा भोगा जाता हुआ पुरुष शीघ्र ही निस्सार हो जाता है वह कालकन्या भी पुरञ्जन की नगरी का वल पूर्वक भोग कर रही थी ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

तयोपभुज्यमानां वै यवनाः सर्वतोदिशम् । द्वार्भिः प्रविश्य सुभृशं प्रार्दयन्सकलां पुरीम् ॥४॥

अन्वयः— तया उपभुज्यमानां वै यवना सर्वतो दिशम् द्वार्भिः प्रविश्य सकलां पुरीं सुभृशं प्रमर्दयन् ॥४॥

अनुवाद— काल कन्या के द्वारा भोगी जाती हुई उस नगरी के सभी द्वारों से प्रवेश यवन सैनिक उस पुरी को अत्यधिक विध्वस्त करने लगे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

द्वार्भिश्चक्षुरादिभिः रोगरूपेण प्रविश्य ॥४॥

भाव प्रकाशिका

द्वार्भिः प्रविश्य चक्षुरादि इन्द्रियों के रास्ते रोग रूप से प्रवेश करके ॥४॥

तस्यां प्रपीड्यमानायामभिमानी पुरंजनः । अवापोरुविधांस्तापान्कुटुम्बी ममताकुलः ॥५॥

अन्वयः— तस्यां प्रपीड्यमानायां अभिमानी कुटुम्बी ममताकुलः पुरञ्जनः विविधान् तापान् अवाप ॥५॥

अनुवाद— उस नगरी के पीड़ित होने पर उसके स्वामित्व का अभिमानी तथा ममता ग्रस्त वहुकुटम्वी राजा पुररुञ्जन को अत्यधिक कष्ट हुआ ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

कन्योपगूढो नष्टश्रीः कृपणो विषयात्मकः । नष्टप्रज्ञो हृतैश्वर्यो गन्धर्वयवनैर्बलात् ॥६॥

अन्वयः— कन्यागूढः नष्टश्रीः विषयात्मकः कृपणः नष्टप्रज्ञः गन्धर्वयवनै बलात् हतैश्वर्यः ॥६॥

अनुवाद— काल कन्या (जरा) के द्वारा आलिङ्गित होने के कारण उसकी सारी श्री नष्ट हो गयी थी तथा अत्यन्त विषयासक्त होने के कारण वह दीन हो गया । उसकी विवेक शक्ति नष्ट हो गयी गन्धर्वों और यवनों ने उसके सम्पूर्ण ऐश्वर्य को लूट लिया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

कन्यया जरयोपगूढः संस्तत्प्रतिक्रिया न लेभे इति तृतीयेनान्वयः । हृतैश्वर्य उत्थानादिष्वशक्तः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

जरा के द्वारा आलिङ्गित वह उसका प्रतिकार के साधन को नहीं प्राप्त कर सका इस तरह से आठवें अध्याय के साथ इस श्लोक का अन्वय है । हतैश्वर्यः अर्थात् पाने में भी असमर्थ ॥६॥

विशीर्णां स्वपुरीं वीक्ष्य प्रतिकूलाननादृतान् । पुत्रान्पौत्रानुगामात्यान् जायां च गतसौहृदाम् ॥७॥
आत्मानं कन्यया ग्रस्तं पञ्चालानरिदूषितान् । दुरन्तचिन्तामापन्नो न लेभे तत्प्रतिक्रियाम् ॥८॥

अन्वयः— स्वपुरीं विशीर्णाम् पुत्रान्पौत्रानुगामात्यान् प्रतिकूलाननादृतान् जायां च गतसौहृदाम् आत्मानं कन्यया ग्रस्तान् अरिदूषितान् पञ्चालान् वीक्ष्य दुरन्तचिन्ताम् आपन्नः तत्प्रतिक्रियाम् न लेभे ॥७-८॥

अनुवाद— नष्ट-भ्रष्ट हुई अपनी नगरी को, प्रतिकूल हुए पुत्रों, पौत्रों, भृत्यों तथ आमात्यों के द्वारा किए जाने वाले अनादर को सौहार्द रहित पत्नी को, काल कन्या जरा के द्वारा ग्रस्त शरीर को तथा शत्रुओं के द्वारा नष्ट भ्रष्ट किए गये पञ्चाल देश को देखकर राजा पुरञ्जन अत्यधिक चिन्ताग्रस्त हो गया ॥७-८॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिकूलाननपेक्षितविषयप्रापणान् अनादृतानादरमकुर्वाणान्, स्वाधीनत्वाभावात् । अनुगा इन्द्रियाणि । अमात्या इन्द्रियदेवाः । गतसौहृदामध्यवसायाभावात् । कन्यया जरया ग्रस्तम् । पञ्चालान्विषयान् । अरिभिर्व्याध्यादिभिर्दूषितान् ॥७-८॥

भाव प्रकाशिका

प्रतिकूल अर्थात् अनपेक्षित विषयों को प्राप्त करने वाले । अनादृतान अर्थात् अनादर करने वाले, क्योंकि राजा स्वाधीन नहीं रह गया था । अनुग शब्द से इन्द्रियों, आमात्य अर्थात् इन्द्रियाधिष्ठातृ देवताओं को निश्चय नहीं कर सकने के कारण बुद्धिरूपी पत्नी भी सौहार्द रहित हो गयी । राजा का शरीर जरा ग्रस्त हो गया था, और व्याधि आदि शत्रुओं के द्वारा शब्दादि विषय भी दूषित हो गये थे ॥७-८॥

कामानभिलषन्दीनो यातयामांश्च कन्यया । विगतात्मगतिस्नेहः पुत्रदारांश्च लालयन् ॥९॥

अन्वयः— कन्यया यातयामान् कामानभिलषन् दीनः विगतात्मगतिस्नेहः पुत्रादारांश्च लालयन् ॥९॥

अनुवाद— कालकन्या के द्वारा निःसार बनाये गये भोगों की लालसा से दीन बना हुआ वह अपने परलोक की गति और बान्धवों के स्नेह से वंचित उसका मन अपनी पत्नी और पुत्रों में लगा था ॥९॥

भावार्थ दीपिका

कालकन्यया हेतुभूतया । यातयामान्निः सारानपि कामानभिलषन् । विगता आत्मनो गतिः पारलौकिकी ऐहिकः पुत्रादिस्नेहश्च यस्य सः । गतिः स्नेहादिति वा पाठः । स राजा पुरंजनो हातुं प्रचक्रमे उपक्रान्तवानिति द्वयोरन्वयः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

काल कन्या ने उसके भोगों को निस्सार बना दिया था उन्हीं भोगों को प्राप्त करने की उसे लालसा बनी थी । वह पारलौकिक गति तथा लौकिक पुत्रादि के स्नेह से वंचित था गतिः स्नेहात् भी पाठ हो सकता है । वह राजा पुरञ्जन त्याग देने का उपक्रम किया यह दशवें श्लोक के साथ अन्वय हैं ।।९।।

गन्धर्वयवनाक्रान्तां कालकन्योपमर्दिताम् । हातुं प्रचक्रमे राजा तां पुरीमनिकामतः ।।१०।।

अन्वयः— गन्धर्व यवनाक्रान्तां, काल कन्योपमर्दिताम् तां पुरीम् राजा अनिकामतः हातुं प्रचक्रमे ।।१०।।

अनुवाद— गन्धर्वों तथा यवनों के द्वारा आक्रान्त तथा काल कन्या के द्वारा मर्दित उस नगरी को नहीं चाहकर भी राजा पुरञ्जन छोड़ने के लिए विवश हो गया ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

अनिकामतोऽनिच्छयापि ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

अनिकामतः अर्थात् नहीं चाहकर भी ।।१०।।

भयनाम्नोऽग्रजो भ्राता प्रज्वारः प्रत्युपस्थितः । ददाह तां पुरीं कृत्स्नां भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ।।११।।

अन्वयः— भयनाम्नः अग्रजः भ्राता प्रज्वारः प्रत्युपस्थितः भ्रातुः प्रियचिकीर्वया तां कृत्स्नांपुरीं ददाह ।।११।।

अनुवाद— भय नामक यवन राज के बड़े भाई प्रज्वार उपस्थित होकर अपने भाई की प्रसन्नता के लिए उस सम्पूर्ण पुरी में आग लगाकर जला दिया ।।११।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।११।।

तस्यां संदह्यमानायां सपौरः सपरिच्छदः । कौटुम्बिकः कुटुम्बिन्या उपातप्यत सान्वयः ।।१२।।

अन्वयः— तस्यां संदह्यमानायां सपौरः सपरिच्छदः कौटुम्बिकः कुटुम्बिन्या सान्वयः उपातपत।।१२।।

अनुवाद— जब वह नगरी जलने लगी उस समय राजा पुरञ्जन नागरिक, सेवक वर्ग, सन्तान वर्ग तथा कुम्ब की स्वामिनी के साथ कुटुम्ब तथा पुरञ्जन को बड़ा ही कष्ट हुआ ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

सपरिच्छदो भृत्यवर्गसहितः । कुटुम्बेन दीव्यतीति कौटुम्बिकः । कुटुम्बिन्या । सन्धिर्नात्र विवक्षितः । सान्वयः पुत्रादिसहितः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

सपरिच्छदः अर्थात् भृत्य वर्ग के साथ कुटुम्ब (परिवार) के साथ क्रीडा करने वाले को कुटुम्बिक कहते हैं कुटुम्बिनी के साथ तथा अपने पुत्रादि के साथ अत्यधिक क्लेश का अनुभव किया ।।१२।।

यवनोपरुद्धायतनो ग्रस्तायां कालकन्यया । पुर्यां प्रज्वारसंसृष्टः पुरपालोऽन्वतप्यत ।।१३।।

अन्वयः— कालकन्यया पुर्यां ग्रस्तायाम् भवनोपरुद्धायतनः प्रज्वार संसृष्टः पुरपालोऽन्वतप्यत ।।१३।।

अनुवाद— नगर को काल कन्या के द्वारा ग्रस्त हो जाने पर प्रजागर बड़ा कष्ट इसलिए हुआ कि उसके निवास स्थान को यवनों ने घेर रखा था और प्रज्वर उस पर भी आक्रमण कर रहा था ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

यवनैरुपरुद्धान्यायतनानि यस्य स पुरपालः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

जिसके निवास स्थान को यवनों ने घेर लिया था वह प्रजागर नामक नगर का रक्षक ।।१३।।

न शेके सोऽवितुं तत्र पुरुकृच्छ्रोरूवेपथुः । गन्तुमैच्छत्ततो वृक्षकोटरादिव सानलात् ।।१४।।

अन्वयः— सः तत्र अवितुं न शेके पुरुकृच्छ्रोरुवेपथुः सः सानलात् वृक्षकोटरात् इव ततो गन्तुमैच्छत् ।।१४।।

अनुवाद— जब वह उस वृक्ष की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ हो गया तब जिस प्रकार जलते हुए वृक्ष की कोटर में रहने वाला सर्प उससे निकल जाना चाहता है उसी तरह वह भी अत्यन्त कष्ट पूर्वक काँपते हुए उस पुरी से निकल जाना चाहा ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

पुरु बहु कृच्छ्रं तेन उरुर्वेपथुर्यस्य । वृक्षकोटरादिव सर्पः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

अत्यधिक कष्ट के कारण वह काँपने लगा था और जिस तरह वृक्ष में आग लग जाने पर उसके कोटर में रहने वाला सर्प उससे बाहर निकल कर भाग जाना चाहता है उसी तरह वह प्रजागर भी उस पुरी से निकलकर भाग जाना चाहा ।।१४।।

शिथिलावयवो यर्हि गन्धर्वैर्हृतपौरुषः । यवनैररिभी राजन्नुपरुद्धो रुरोद ह ।।१५।।

अन्वयः— हे राजन् ! शिथिलावयवः गन्धर्वैर्हृत पौरुषः यवनैः यर्हि अरिभिः उपरुद्धः रुरोद ह ।।१५।।

अनुवाद— राजन् ! उसके सारे अङ्ग शिथिल हो गये थे गन्धर्वों ने उसकी सम्पूर्ण शक्ति को विनष्ट कर दिया था यवन सैनिकों ने जब उसके गले को बाँध दिया तो वह रोने लगा ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

कण्ठे उपरुद्धो रुरोद घुरघुरध्वनिं चकार ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

जब उस सर्प के गले को बाँध दिया वह घुरघुर ध्वनि करने लगा ।।१५।।

दुहितॄः पुत्रपौत्रांश्च जामिजामातृपार्षदान् । स्वत्वावशिष्टं यत्किंचिद्गृहकोशपरिच्छदम् ।।१६।।
अहंममाति स्वीकृत्य गृहेषु कुमतिर्गृही । दध्यौ प्रमदया दीनो विप्रयोग उपस्थिते ।।१७।।

अन्वयः— कुमतिः गृही गृहेषु अहं ममति स्वीकृत्य प्रमदया विप्रयोगे उपस्थिते दीनः दुहितॄः पुत्र पौत्रान् च जामि जामातृ पार्षदान् गृहकोश परिच्छदम् स्वत्वाषशिष्टम् यत् किञ्चदध्यौ ।।१६-१७।।

अनुवाद— गृही पुरञ्जन देह गेह में अहन्त्व ममत्व के कारण अत्यन्त बुद्धि हीन हो गया था । वह स्त्री का वियोग उपस्थित होने पर बहुत दीन हो गया और वह अपनी पुत्री, पुत्र, पौत्र, पुत्रबधू एव जामाता भृत्य वर्ग, गृह ओर कोश आदि जिनमें केवल स्वत्वमात्र अवशिष्ट था उन सबों के विषय में चिन्ता करने लगा ।।१६-१७।।

भावार्थ दीपिका

दुहित्रादीन्दध्यावित्युत्तरेणान्वयः । जामयोऽत्र स्नुषाः । स्वत्वमात्रेणावशिष्टम् । भोगस्तु प्रागेव क्षीणः ।।१६-१७।।

भाव प्रकाशिका

पुरञ्जन अपने पुत्रियों आदि के विषय में चिन्ता करने लगा इस तरह से सत्रहवें श्लोक के साथ सोलहवें श्लोक का अन्वय है । यहाँ पर जामि शब्द से पुत्र बधुओं को कहा गया है । भोग तो पहले ही नष्ट हो चुका था केवल स्वत्वमात्र अवशिष्ट था । उन सबों के विषय में चिन्ता करने लगा ।।१६-१७।।

लोकान्तरं गतवति मय्यनाथा कुटुम्बिनी । वर्तिष्यते कथं त्वेषां बालकाननु शोचती ।।१८।।

अन्वयः— मयि लोकान्तं गतवति एषा अनाथा कुटुम्बिनी बालकान् अनुशोचती कथं वर्तिष्यते ।।१८।।

अनुवाद— मेरी मृत्यु हो जाने पर अनाथ बनी हुई मेरी यह पत्नी अपने बालकों की चिन्ता करती हुई किस प्रकार निर्वाह करेगी ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

ध्यानमेवाह-लोकान्तरमिति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में पुरञ्जन की चिन्ता का ही वर्णन किया गया है ।।१८।।

न मय्यनाशिते भुङ्क्ते नास्नाते स्नाति मत्परा । मयि रुष्टे सुसंत्रस्ता भर्त्सिते यतवाग्भयात् ।।१९।।

अन्वयः— मयि अनाशिते न भुङ्क्ते अस्नाते मत्परान् स्नाति । मयि रुष्टे सुसंत्रस्ता भर्त्सिते भयात् यतवाक् ।।१९।।

अनुवाद— मेरे भोजन किए बिना भोजन नहीं करती थी । मेरी ही सेवा में लगी रहने के कारण मेरे स्नान किए बिना स्नान नहीं करती थी मेरे रुष्ट हो जाने पर यह भयभीत हो जाती थी और मेरे द्वारा डाँटे जाने पर चुप लगा जाती थी ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

अनाशितेऽभोजिते । भर्त्सिते भर्त्सने कृते यतवाग्भवति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

अनाशिते अर्थात् भोजन किए बिना, भर्तिसिते अर्थात् डाँटने पर चुप लगा जाती थी ।।१९।।

प्रबोधयति माऽविज्ञं व्युषिते शोककर्शिता । वर्त्मैतद्गृहमेधीयं वीरसूरपि नेष्यति ।।२०।।

अन्वयः— अविज्ञं मा प्रबोधयति व्युषिते शोककर्शिता, वीरसूरपि एतद् गृहमेधीयं वर्त्म नेष्यति ?।।२०।।

अनुवाद— अविवेकी मुझको यह सचेत करती रहती थी, मेरे परदेश चले जाने में मेरे वियोगव्यथा में दूर्बल हो जाती थी यद्यपि यह वीर माता है, किन्तु मेरे नहीं रहने पर भी यह इस गृहस्थी के भार को चला सकेगी क्या ?।।२०।।

भावार्थ दीपिका

अविज्ञमविवेकिनं माम् । व्युषिते देशान्तरं गते । गृहमेधीयं वर्त्म गृहधर्ममपि किं नेष्यत्यनुवर्तयिष्यति । युक्तमेतत्। यतो वीरसूः पुत्रवती । किंवा मद्विरहमसहमाना मरिष्यत्येवेत्यर्थः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

अविवेकी मुझको यह सचेत करने का काम करती रहती थी । मेरे देशान्तर में चले जाने पर विरह से कृश हो जाती थी । मेरे अभाव में यह गार्हस्थ्य धर्म को चला पायेगी क्या ? अथवा मर जायेगी ?।।२०।।

कथं नु दारका दीना दारकीर्वाऽपरायणाः । वर्तिष्यन्ते मयि गते भिन्ननाव इवोदधौ ॥२१॥

अन्वयः— मयि गते दीनाः द्वारकाः परायणः दारकीः वा उदधौ भिन्ननावे कथं नु वर्तिष्यन्ते ॥२१॥

अनुवाद— मेरे चले जाने पर ये दीन बने हुए मेरे ही सहारे रहने वाले मेरे पुत्र पुत्रियाँ कैसे जीवित रहेंगी? बीच समुद्र में नाव के टूट जाने पर व्याकुल हुए यात्रियों के समान अत्यन्त दु:खी हो जायेंगे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

न विद्यते परमयनमाश्रयो येषां तेऽपरायणाः पुत्राः कन्याश्च । यद्वा पराश्रयाः कन्याः । भिन्न नौर्येषाम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

जिन सबों का कोई आश्रय नहीं है ऐसे मेरे पुत्र और पुत्रियाँ अथवा पराश्रित मेरे पुत्र और पुत्रियाँ जिन सबों की नाव बीच सागर में टूट गयी हो ॥२१॥

एवं कृपणया बुद्ध्या शोचन्तमतदर्हणम् । ग्रहीतुं कृतधीरेनं भयनामाऽभ्यपद्यत ॥२२॥

अन्वयः— एवं कृपणया बुद्ध्याशोचन्तम् अतदर्हणम् एनं गृहीतुं कृतधीः भयनामा अभ्यपद्यत ॥२२॥

अनुवाद— इस प्रकार से दीन बुद्धि के कारण शोक करने वाले, यद्यपि यह शोक करने योग्य नहीं था, क्योंकि वह ब्रह्म स्वरूप ही था उसी समय उसको पकड़ने का निश्चय किए हुए वहाँ भय नामक यवनराज आ गया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अतदर्हणं वस्तुतस्तस्य ब्रह्मत्वात् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

वास्तविकता यही है कि वह पुरञ्जन ब्रह्म ही था अतएव वह शोक करने योग्य नहीं था । फिर भी वह शोक कर रहा था ॥२२॥

पशुवद्यवनैरेष नीयमानः स्वकं क्षयम् । अन्वद्रवन्ननुपथाः शोचन्तो भृशमातुराः ॥२३॥

अन्वयः— यवनैः एषः स्वकंक्षयं पशुवद् नीयमानः एषः भृशम् आतुराः शोचन्तः अनुपथाः एनम् अनुद्रवन् ॥२३॥

अनुवाद— जब यवन गण पुरञ्जन को पशु के समान बाँधकर अपने स्थान पर ले जा रहा थे, उस समय अत्यन्त आतुर बने हुए तथा शोक संतप्त अनुचरगण उसके पीछे चल दिए ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

एष यदा क्षयं स्थानं नीयमानस्तदा अनुपथाः प्राणा इन्द्रियाणि च । तथाच श्रुतिः 'तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति प्राणमनूत्क्रामन्तं सर्वे प्राणा अनूत्क्रामन्ति इति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

जब यह पशु के समान बाँध कर यवनों द्वारा अपने स्थान पर ले जाया जा रहा था उस समय उसके प्राण और इन्द्रियाँ भी उसके पीछे चल दी । श्रुति भी कहती है **तमुत्कामन्तम्०** इत्यादि इस शरीर से आत्मा के उत्क्रमण करने पर उसकी सभी इन्द्रियाँ उसके पीछे शरीर से निकल कर चली जाती हैं ॥२३॥

पुरी विहायोपगत उपरुद्धो भुजङ्गमः । यदा तमेवानु पुरी विशीर्णा प्रकृतिं गता ॥२४॥

अन्वयः— यदा उपरुद्ध भुजङ्गमः तमेवानु पुरीं विहाय उपगतः विशीर्णापुरी प्रकृतिं गता ॥२४॥

अनुवाद— यवनों द्वारा उपरुद्ध सर्प उसी के पीछे-पीछे नगरी को छोड़कर चला गया उसी समय नगरी भी शीर्ण होकर अपनी प्रकृति महाभूतों में मिल गयी ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

प्रकृतिं महाभूतात्मताम् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

प्रकृति अर्थात् महाभूत स्वरूप हो गयी ।।२४।।

विकृष्यमाणः प्रसभं यवनेन बलीयसा । नाविन्दत्तमसाविष्टः सखायं सुहृदं पुरः ।।२५।।

अन्वयः— बलीयसा यवनेन प्रसभं विकृष्यमाणः तमसाविष्टः सखायं सुहृदं पुरंः न अविन्दत ।।२५।।

अनुवाद— महाबलवान यवनराज के द्वारा बल पूर्वक खींचने पर राजा पुरञ्जन ने अपने मित्र तथ हितैषी अविज्ञात का स्मरण नहीं किया ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

नाविन्दन्न सस्मार । पुरः पूर्वं सखायं सन्तमीश्वरम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

अपने पुराने मित्र ईश्वर का स्मरण नहीं किया ।।२५।।

तं यज्ञपशवोऽनेन संज्ञप्ता येऽदयालुना । कुठारैश्छिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरन्तोऽमीवमस्य तत् ।।२६।।

अन्वयः— अदयालुना अनेन ये पशवः सज्ञप्ताः क्रुद्धा ते तस्य तत् अमीवम् संस्मरन्तः ।।२६।।

अनुवाद— उस निर्दय राजा ने जिन यज्ञ पशुओं को यज्ञों में बलि दी थी क्रुद्ध हुए उसके द्वारा दी गयी पीड़ा का स्मरण करते हुए उसको कुल्हाड़ी से काटने लगे ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

अदयालुना काम्यकर्मसु ये संज्ञप्ता हताः । अमीवं पापं क्रौर्यं वा ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

निर्दय राजा ने काम्य कर्मों में जिन पशुओं को मारा था वे उसके पाप अथवा क्रौर्य का स्मरण करते हुए, उस राजा को कुल्हाड़ी से काटने लगे ।।२६।।

अनन्तपारे तमसि मग्नो नष्टस्मृतिः समाः । शाश्वतीरनुभूयार्तिं प्रमदासङ्गदूषितः ।।२७।।

अन्वयः— अनन्तपारे तमसि मग्नः नष्ट स्मृतिः शाश्वतीः समाः आर्तिम् अनुभूय प्रमदासङ्ग दूषितः ।।२७।।

अनुवाद— घोर अज्ञानान्धकार में पड़े रहने के कारण उसकी स्मृति नष्ट हो गयी थी वह वर्षों तक कष्ट का अनुभव करता रहा । उसकी यह दुर्गति नारी में आसक्ति के कारण हुई थी ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

शाश्वतीः समा आर्तिमनुभूय ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

अनन्त वर्षों तक कष्ट का अनुभव किया ।।२७।।

तामेव मनसा गृह्णन्बभूव प्रमदोत्तमा । अनन्तरं विदर्भस्य राजसिंहस्य वेश्मनि ।।२८।।

अन्वयः— तामेव मनसा गृह्णन् अनन्तरं राजसिंहम्य विदर्भस्य वेश्मनि प्रमदोत्तमा बभूव ।।२८।।

अनुवाद— उस नारी का ही अन्त समय में भी स्मरण करने के कारण दूसरे जन्म में पुरञ्जन का जन्म राजाओं में श्रेष्ठ विदर्भराज की सुन्दरी पुत्री के रूप में हुआ ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

अन्तकाले तां भार्यामेव मनसा गृह्णन्स्मरन्ननन्तरं विदर्भस्य वेश्मनि प्रमदोत्तमा बभूव । अत:परमस्मिन्प्रकरणे एतावदेव प्रकृतोपयोगि विवक्षितम् । स्त्रीध्यानेन स्त्रीत्वप्राप्तावपि पतिव्रताध्यानेन पूर्वादृष्टेन च धार्मिकाद्विदर्भाज्जन्माभूत् । धार्मिकसङ्गेन च विशुद्धस्य भागवतेन मलयध्वजेन सङ्गोऽभूत् । ततो विष्णुभक्तिस्ततो वैराग्यं ततस्तमेव भर्तृरूपं गुरुं पातिव्रत्यधर्मेण भजतो भगवत्प्रसादलब्धज्ञानेन मोक्ष इति । अन्यत्तु कथालङ्कारमात्रं तथापि किंचिद्वृत्तिसामान्येनेह योजयिष्यामः । विदर्भस्य विशिष्टदर्भोपलक्षितस्य कर्मठस्य राजसिंहस्य । धर्मेण हि प्रजापालनेन यज्ञादिना च क्षत्रिया राजन्ते तेषु श्रेष्ठस्य वेश्मनि ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

मृत्यु के समय भी उस पत्नी का ही स्मरण करते हुए मरने के कारण दूसरे जन्म में वह विदर्भ राज के गृह में श्रेष्ठ कन्या के रूप में उत्पन्न हुआ । इसके बाद वाले प्रकरण में इतना ही प्रकृतोपयोगी रूप से विवक्षित है । स्त्री का ध्यान करने के कारण उसको स्त्रीत्व की प्राप्ति होने पर भी पतिव्रता का ध्यान करने के कारण उत्पन्न पूर्वा दृष्टावशात् धार्मिक विदर्भ राज की पुत्री के रूप में जन्म हुआ । और उसका विवाह भी धार्मिक परम भागवत मलयध्वज के साथ हुआ । उसके कारण उसमें भगवान् विष्णु की भक्ति उत्पन्न हुई, उसके कारण उसका संसार से वैरागय उत्पन्न हुआ । पतिव्रता होने के कारण वह अपने पति की ही सेवा करती हुई श्रीभगवान् की कृपा प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त की । अन्य सारी बातें तो कथा के अलङ्कार मात्र हैं । फिर भी कुछ वृत्ति की समता के कारण योजना करेगे । विदर्भ अर्थात् विशिष्ट दर्भ से उपलक्षित राजसिंह है । धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करके तथा यज्ञ आदि के द्वारा ही क्षत्रियों की शोभा होती है । ऐसे राजाओं में श्रेष्ठ विदर्भ राज के गृह में उसने कन्या रूप से जन्म लिया ।।२८।।

उपयेमे वीर्यपणां वैदर्भीं मलयध्वजः । युधि निर्जित्य राजन्यान्पाण्ड्यः परपुरंजयः ।।२९।।

अन्वयः— युधि राजन्यान् निर्जित्य परपुरञ्जयः पाण्ड्य मलयध्वजः वीर्यपणां वैदर्भी उपयेमे ।।२९।।

अनुवाद— जब वह राजकुमारी विवाह के योग्य हुई तो विदर्भ राज ने घोषित किया कि इसका विवाह सर्वश्रेष्ठ पराक्रमी राजा के ही साथ होगा । शत्रुओं के नगरों को जीतने वाले पाण्डय देश के राजा मलयध्वज ने युद्ध में राजाओं को परास्त करके उसके साथ विवाह किया ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

मलयोपलक्षिते दक्षिणदेशे ध्वज इव दर्शनीयः । स हि श्रीविष्णुभक्तप्रधानो देशः । तत्र मुख्यो महाभागवत इत्यर्थः। पण्डा निश्चयबुद्धिस्तामर्हतीति पाण्ड्यः स उपयेमे । पुरंजनो भागवतसङ्गं प्राप्त इत्यर्थः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

मलयाचल से युक्त दक्षिण भारत के प्रदेश विशेष में ध्वज के समान देखने योग्य । यह मलयध्वज का विग्रह है । उस प्रदेश में विष्णु भक्तों की प्रधानता है । उन सबों में मुख्य महाभागवत थे मलयध्वज पण्डा अर्थात् निश्चय बुद्धि युक्त होने योग्य को पाण्ड्य कहते हैं । उसने उस विदर्भ राज की पुत्री से विवाह किया । अर्थात् पुरञ्जन ने भगवद् भक्त की सङ्गति प्राप्त कर ली ।।२९।।

तस्यां स जनयांचक्रे आत्मजामसितेक्षणाम् । यवीयसः सप्त सुतान्सप्त द्रविडभूभृतः ।।३०।।

अन्वयः— सः तस्यां असितेक्षणाम् आत्मजां यवीयसः सप्त सुतान् सप्त द्रविडभूभृतः जनयाञ्चक्रे ।।३०।।

अनुवाद— उसके गर्भ से महाराज मलय ध्वज ने एक श्यामलोचना कन्या को तथा उससे छोटे सात पुत्रों को उत्पन्न किया वे सब द्रविड देश के सात राजा हुए ।।३।।

भावार्थ दीपिका

आत्मजां श्रीकृष्णसेवारुचिम् । तत्सङ्गेन भगवद्धर्मे रुचिरभूदित्यर्थः । असितस्य श्रीकृष्णस्येक्षणं यया ताम् । यवीयसः सप्त सुतान् । 'श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं' इति भक्तिप्रकारान् । सख्यात्मनिवेदनयोस्त्वंपदार्थज्ञानोत्तरकालत्वात्तस्य च भगवतैवोत्तरत्रोपदेक्ष्यमाणत्वादिदानीमनुत्पत्तेः सप्तेत्युक्तम् । भगवद्धर्मरुच्या तच्छ्रवणकीर्तनादिकं जातमित्यर्थः । द्रविडभूमिपालकान् । द्रविडभूमिर्हि श्रवणादिभक्तिभिरेव सुरक्षितास्तीति प्रसिद्धम् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा की रुचि ही आत्मजा है । अर्थात् उनकी सङ्गति से भगवद् धर्म में रुचि उत्पन्न हुई असित अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा कटाक्ष होता है ऐसी श्रीकृष्ण सेवा रुचि को उत्पन्न किया । श्रवणं, कीर्तनं विष्णोः स्मरणाम् पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यम् इस सूक्ति में वर्णित सात प्रकार की भक्ति ही छोटे पुत्र हैं । सख्य तथा आत्म निवेदन चूंकि त्वम् पदार्थ के ज्ञान के पश्चात् ही होते हैं, त्वं पदार्थ का उपदेश आगे चलकर स्वयं श्रीभगवान् करने वाले हैं, अतएव इस समय उनकी उत्पत्ति नहीं होने के कारण सात ही भक्ति के प्रकारों को कहा गया है । कहने का अभिप्राय है कि भगवद् धर्म में रुचि होने के कारण श्रवण कीर्तन आदि भक्ति के प्रकार हो गये । **द्रविड भूभृतः** अर्थात् द्रविड देश के राजा हुए । द्रविड देश की भूमि श्रवणादि भक्ति के द्वारा ही सुरक्षित है ऐसी प्रसिद्धि है ।।३०।।

एकैकस्याभवत्तेषां राजन्नर्बुदमर्बुदम् । भोक्ष्यते यद्वंशधरैर्मही मन्वन्तरं परम् ।।३१।।

अन्वयः— राजन् तेषाम् एकैकस्य अर्बुदम् अर्बुदम् अभवत् यद्वंश धरैः मन्वन्तरं परं मही भोक्ष्यते ।।३१।।

अनुवाद— राजन् ! उन सबों में से प्रत्येक के बहुत-बहुत पुत्र हुए, उन सबों के ही वंशधर इस पृथिवी का भोग इस मन्वन्तर के अन्त तक और उसके पश्चात् भी करेंगे ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

अर्बुदमिति । श्रवणादीनां प्रत्येकमनेके प्रकारा अभवन्नित्यर्थः । तदुक्तम् 'भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते' इति । येषां वंशधरैर्यतः प्रवृत्तैः संप्रदायभेदैः कृत्स्ना मही मन्वन्तरं ततः परं च भोक्ष्यते । विद्याकामकर्मभ्योऽपि रक्षिष्यते।।३१।।

भाव प्रकाशिका

उन श्रवण आदि प्रत्येक भक्तियाँ के अनेक प्रकार हो गये । कहा भी गया है । भक्तियोगो बहुविधो मार्गैभामिनि भाव्यते । भगवान् कपिल ने कहा हे माँ भक्ति के अनेक प्रकार के मार्ग हैं । उन सबों से उत्पन्न हुए भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के द्वारा यह सम्पूर्ण पृथिवी मन्वन्तर तथा उसके पश्चात् भी भोगी जायेगी अर्थात् विद्या काम कर्मों के द्वारा संरक्षित रहेगी ।।३१।।

अगस्त्यः प्राग्दुहितरमुपयेमे धृतव्रताम् । यस्यां दृढच्युतो जात इध्मवाहात्मजो मुनिः ।।३२।।

अन्वयः— प्राक् धृतव्रताम् दुहितरं अगस्त्यः उपयेमे यस्यां दृढच्युतः मुनिः इध्मवाहात्मजः जातः ।।३२।।

अनुवाद— मलयध्वज की पुत्री व्रत को धारण करने वाली थी । उसका विवाह अगस्त्य मुनि से हुआ उससे उनका दृढच्युत नामक पुत्र हुआ और दृढच्युत के पुत्र मुनि इध्मवाह हुए ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

अगस्त्यः अगानि निष्क्रियानि गात्राणि स्त्यायति संघातयतीत्यगस्त्यो मनः । स प्राक्प्रथमजातां दुहितरं कृष्णसेवारुचिमुपयेमे, तस्य मनः कृष्णे दृढां रतिं बबन्धेत्यर्थः । धृतानि शमदमादीनि व्रतानि यया तां रतिम् । दृढेभ्यः सत्यलोकादिभोगेभ्योऽपि च्युतस्तद्रहितः, कृष्णरताविहामुत्रभोगविरागो जात इत्यर्थः । स एवोपशमात्मकत्वान्मुनिः । कथंभूतः । इध्मवाह आत्मजो यस्य

सः । 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेसभित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धा समिद्वहनोपलक्षिता गुरूपसत्तिर्वैराग्यादभूदित्यर्थः । नह्यविरक्तस्य गुरूपसत्तिः संभवति । कथापक्षे यथाश्रुतमेव ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

निष्क्रिय अङ्गों को भी संहत करने वाला मन ही अगस्त्य है । उस मन ने पहले उत्पन्न हुई श्रीकृष्ण सेवा रुचि के साथ विवाह किया । अर्थात् उसके मन से भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में प्रेम हो गया । शम दम इत्यादि रूपी व्रतों को धारण करने वाली वह रति थी । दृढव्रत अर्थात् दृढ सत्यलोक आदि भोगों से भी रहित भगवान् श्रीकृष्ण में प्रेम हो जाने पर लौकिक तथा पारलौकिक विषयों से वैरागय उत्पन्न हो गया । इसी को दृढच्युत की उत्पत्ति कहा गया है । वही शान्ति स्वरूप रूप होने के कारण मुनि है । वह कैसा है ? तो इस पर कहते हैं- **इध्मवाह है इध्मवाह** शब्द के द्वारा **'तद्विज्ञानार्थ स गुरुमेवाभिगच्छेत श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'** इस श्रुति के द्वारा प्रोक्त समिधावहन के द्वारा आचार्य की शरणागति को उपलक्षित किया गया है । जो विरक्त नहीं होगा वह गुरु प्रसत्ति नहीं कर सकता है । कथा पक्ष में तो अनुवाद में कहा गया ही अर्थ हैं ।।३२।।

विभज्य तनयेभ्यः क्ष्मां राजर्षिर्मलयध्वजः । आरिराधयिषुः कृष्णं स जगाम कुलाचलम् ।।३३।।

अन्वयः— राजर्षिः मलयध्वजः कृष्णं आरिराधयिषुः कर्मातनयेभ्यः विभज्य कुलाचलंजगाम ।।३३।।

अनुवाद— राजर्षि मलयध्वज भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करने के लिए पृथिवी को अपने पुत्रों में बाँटकर कुलचल नामक पर्वत पर तपस्या करने के लिए चले गये ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

क्ष्मां विभज्य तत्र श्रवणादिभक्तिभेदं व्यवस्थाप्य ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

क्ष्मां विभज्य का अर्थ है श्रवण आदि भक्ति के भेदों को व्यवस्थापित करके ।।३३।।

हित्वा गृहान्सुतान्भोगान्वैदर्भी मदिरेक्षणा । अन्वधावत पाण्ड्येशं ज्योत्स्नेव रजनीकरम् ।।३४।।

अन्वयः— मदिरेक्षणा वैदर्भी गृहान् सुतान् भोगान् हित्वा रजनिकरम् ज्योत्स्नेव पाण्डेयशं अन्वधावत ।।३४।।

अनुवाद— मत्तलोचना वैदर्भी अपने गृह पुत्र और समस्त भोगों को त्यागकर जिस तरह चन्द्रिका चन्द्रमा का अनुसरण करती है, उसी तरह पाण्डय नरेश का अनुगमन की ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं पुरंजनस्य स्त्रीभावं प्राप्तस्य सर्वतो विरक्तस्य 'पतिरेव गुरुः स्त्रीणां' इति वचनात्पतिसेवया गुरुशुश्रूषाप्रकारं दर्शयितुमाह-हित्वेत्यादिना मनो दध इत्यन्तेन ग्रन्थेन । मदयतीति मदिरमीक्षणं यस्याः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

अब स्त्रीत्व को प्राप्त पुरञ्जन हर प्रकार से विरक्त हो गया था उसके **पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्'** इस सूक्ति के अनुसार पति की सेवा के ही द्वारा गुरु की सेवा के प्रकार को बतलाने के लिए **हित्वागृहान इत्यादि** श्लोक से लेकर पचासवें श्लोक मनोदधे पर्यन्त इस अर्थ का प्रतिपादन नारदजी ने किया है । उसके नेत्र मदमत्त बना देने वाले थे इसलिए उसे मदिरेक्षण कहा गया है ।।३४।।

तत्र चन्द्रवसा नाम ताम्रपर्णी वटोदका । तत्पुण्यसलिलैर्नित्यमुभयत्रात्मनो मृजन् ॥३५॥

अन्वयः— तत्र चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, बटोदका नाम तत्पुण्यसलिलैः नित्यम् उभयत्र आत्मनो मृजन् ॥३५॥

अनुवाद— वहाँ चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, और बटोदका नाम की तीन नदियाँ थी उनके पवित्र जल में स्नान करके वे प्रतिदिन शरीर और मन को पवित्र करते थे ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

तत्र चन्द्रवसाद्या नद्यस्तासां पुण्यैः सलिलैरुभयत्रान्तर्बहिश्चात्मनो मलं क्षालयंस्तप आस्थित इत्युत्तरेणान्वयः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

चन्द्रवसा आदि नदियों के पवित्र जल से आभ्यन्तर एवं बाह्य दोनों प्रकार के मलों को दूर करते हुए वे तपस्या करने लगे इस तरह से आगे वाले श्लोक से अन्वय है ॥३५॥

कन्दाष्टिभिर्मूलफलैः पुष्पपर्णैस्तृणोदकैः । वर्तमानः शनैर्गात्रकर्षणं तप आस्थितः ॥३६॥

अन्वयः— कन्दाष्टिभिः मूलफलैः पुष्पपर्णै तृणोदकैः वर्तमानः शनैः गात्रकर्शनं तप आस्थितः ॥३६॥

अनुवाद— वहाँ पर वे कन्द, बीज, मूल, फल, पुष्प, पत्ते, तृण तथा जल को खाकर निर्वाह करते हुए कठोर तप करते रहे और उनका शरीर धीरे-धीरे सूख गया ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

अस्यते भूमौ क्षिप्यत इत्यष्टिर्बीजम् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

अष्टि शब्द बीज का वाचक है । अस्यते भूमौ क्षिप्यते यह अष्टि शब्द की व्युत्पत्ति है ॥३६॥

शीतोष्णवातवर्षाणि क्षुत्पिपासे प्रियाप्रिये । सुखदुःखे इति द्वन्द्वान्यजयत्समदर्शनः ॥३७॥

अन्वयः— समदर्शनः सः शीतोष्णवातवर्षाणि, क्षुत्पिपासे, प्रियाप्रिये, सुख दुःखे इति द्वन्द्वानि अजयत् ॥३७॥

अनुवाद— सबों में समान दृष्टि रखने वाले महाराज मलयध्वज ने शीत जल, वायु, वर्षा, भूख, प्यास, प्रिय, अप्रिय, सुख तथा दुःख इत्यादि सभी द्वन्द्वों को जीत लिया ॥३७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

तपसा विद्यया पक्वकषायो नियमैर्यमैः । युयुजे ब्रह्मण्यात्मानं विजिताक्षानिलाशयः ॥३८॥

अन्वयः— तपसा, विद्यया, पक्वकषायः नियमैर्यमैः विजितानिलाशयः ब्रह्मणि आत्मानं युयुजे ॥३८॥

अनुवाद— तपस्या और उपासना से उनकी सारी वासनाएँ निर्मूल हो गयी थीं यम और नियम के पालन द्वारा इन्द्रिय, प्राण और चित्त इन सबों को अपने वश में करके अपनी आत्मा परब्रह्म में ही मन को लगा दिए॥३८॥

भावार्थ दीपिका

विद्ययोपासनया पक्वकषायो दग्धकामादिवासनः युयुजे आत्मनो ब्रह्मतां भावयामास । अक्षाणीन्द्रियाणि । अनिलः प्राणः । आशयश्चित्तम् । विजिता अक्षादयो येन ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

विद्यया अर्थात् उपासना के द्वारा उन्होंने काम आदि वासनों को विनष्ट कर दिया था, यह **पक्वकषायः** का अर्थ है । अक्ष अर्थात् इन्द्रियाँ, अनिल अर्थात् प्राण, आशय अर्थात् चित्त यम नियम के पालन से वे इन सबों को अपने वश में कर लिए थे ॥३८॥

आस्ते स्थाणुरिवैकत्र दिव्यं वर्षशतं स्थिरः । वासुदेवे भगवति नान्यद्वेदोद्वहन्रतिम् ॥३९॥

अन्वयः— दिव्यं वर्षशतं स्थाणुः इव एकत्र स्थिरः आस्ते, वासुदेवे, भगवति, रतिम् उद्वहन् नान्यद् वेद ॥३९॥

अनुवाद— वे दिव्य सौ वर्षों तक एक ही स्थान में स्थाणु के समान एक ही स्थान पर बैठे रहे । श्रीभगवान् वासुदेव में प्रेम के कारण उन्हें अपने शरीर आदि का भी ध्यान नहीं हुआ ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

अस्ते स्म वर्षशतमिति ज्ञानस्य दुःसाधनतां दर्शयति । अतएव हरौ भक्तिं कृतवानित्याह वासुदेवे रतिमुद्वहन्नन्यद्देहादिकं न वेद ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

वे सौ वर्षो तक एक ही स्थान में बने रहे इस कथन के द्वारा यह बलाया गया है कि ज्ञान की प्राप्ति बड़ी ही कठिन है । इसीलिए महाराज मलयध्वज ने श्रीहरि की भक्ति की । भगवान् वासुदेव में प्रेमतिरेक के कारण उनको अपने शरीर आदि का भी पता नहीं चला ॥३९॥

स व्यापकतयात्मानं व्यतिरिक्ततयात्मनि । विद्वान्स्वप्न इवामर्शसाक्षिणं विरराम ह ॥४०॥
साक्षाद्भगवतोक्तेन गुरुणा हरिणा नृप । विशुद्धज्ञानदीपेन स्फुरता विश्वतोमुखम् ॥४१॥

अन्वयः— नृप साक्षात् हरिणा गुरुणा, उक्तेन विशुद्ध ज्ञानदीपेन विश्वतोमुखम् स्फुरता, आत्मानं स्वप्ने अमर्श साक्षिणेआत्मनि व्यतिरिक्ततया व्यापकतया विरराम ॥४०-४१॥

अनुवाद— हे राजन् ! गुरु स्वरूप साक्षात् श्रीहरि के द्वारा उपदिष्ट तथा अपने अन्तःकरण में सभी ओर से प्रकाशित होने वाले विशुद्ध ज्ञान रूपी दीपक द्वारा उन्होंने अनुभव किया कि अन्तःकरण की वृत्ति के प्रकाशक आत्मा स्वप्नावस्था के समान देह आदि सारी उपाधियों में तथा उनसे पृथक् भी है । इस तरह से अनुभव करके वे सब ओर से विरक्त हो गये ॥४०-४१॥

भावार्थ दीपिका

स एवं वर्तमान आत्मन्यात्मानं विद्वानन्यस्मादुपरराम । कथं विद्वान् । व्यतिरिक्ततया देहादिव्यतिरिक्तत्वेन । कुतः व्यापकतया देहादिप्रकाशकत्वेन । ननु देहाद्याकारो विमर्श एतत्प्रकाशति नतु निराकार आत्माऽत आह । आमर्शस्यापि साक्षिणम्। अयं भावः- आमर्शो नामान्तःकरणवृत्तिः सा च जडत्वादात्मप्रकाश्यैवेति । यथा स्वप्ने ममेदं शिरश्छिन्नमित्यादिप्रतीतौ तद्व्यतिरिक्तमात्मानं वेत्ति तद्वत् । केन विद्वांस्तत्राह । साक्षाद्धरिरेव यो गुरुस्तेनोक्तेन सर्वतोमुखं यथा तथा स्फुरताऽनवच्छिन्नेन ज्ञानेन ॥४०-४१॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से रहने वाला अपने भी भीतर ही परमात्मा को जानने वाले वे महाराज मलयध्वज इस संसार से विरक्त हो गये है । वे शरीरादि से भिन्न ही आत्मा को जानते थे । क्योंकि आत्मा शरीर में व्यापक तथा शरीरादि का प्रकाशक है । **ननु० इत्यादि** यदि कहें कि विचार करने से तो यही पता चलता है कि देहादि आकार वाला ही इन सभी वस्तुओं को प्रकाशित करता है निराकार नहीं इस पर नारदजी कहते हैं **आमर्शस्यापि सक्षिणम्** वह स्वापावस्था का भी साक्षी है । कहने का अभिप्राय है कि अन्तःकरण की वृत्ति को ही आमर्श कहते हैं । वह जड़ा है अतएव आत्मा का प्रकाश्य है । जैसे स्वप्न में यह मेरा शिर कट गया है, इत्यादि रूप से होने वाली प्रतीति में जैसे जीव उससे भिन्न ही आत्मा को जानता है, उसी तरह से प्रश्न है कि वह कैसे जाना तो इस पर नारदजी कहते हैं साक्षात् श्रीहरि ही गुरु हैं उनके द्वारा उक्त सब ओर प्रकाशित होने वाले ज्ञान के द्वारा ॥४०-४१॥

परे ब्रह्मणि चात्मानं परं ब्रह्म तथात्मनि । वीक्षमाणो विहायेक्षामस्मादुपरराम ह ॥४२॥

अन्वयः— परे ब्रह्मणि आत्मानं तथा आत्मनि परं ब्रह्म वीक्षमाणः ईक्षाम् विहाय अस्मात् उपरराम् ।।४२।।

अनुवाद— परं ब्रह्म में आत्मा को तथा आत्मा में परं ब्रह्म को देखते हुए वे इस अभेद दर्शन को भी त्याग दिए और पूर्ण रूप से शान्त हो गये ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-पर इति । ब्रह्मैवाहं न संसारीति ब्रह्मण्यात्मन ईक्षणे शोकादिनिवृत्तिः । अहमेव ब्रह्मेत्यात्मनि ब्रह्मण ईक्षणे ब्रह्मपारोक्ष्यनिवृत्तिः । अतो व्यतिहारेणेक्षमाणोऽस्मात्संसारादुपरराम । नन्वेवमपि जीवस्य कुतो ब्रह्मत्वापत्तिः । ईक्षणस्यैव व्यवधायकत्वादित्याशङ्क्याह । ईक्षां विहाय दग्धेन्धनानलवत्तस्याः स्वयमेवोपशान्तेरिति भावः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही प्रतिपादन करते हुए कहते हैं मैं ब्रह्म ही हूँ संसारी नहीं इस तरह से ब्रह्म में ही आत्मा को देखने से शोकादि की निवृत्ति हो गयी मैं ही ब्रह्म हूँ इस प्रकार से आत्मा में ही ब्रह्म का अनुभव करने से ब्रह्म के पारोक्ष्य की निवृत्ति हो गयी । इस तरह से परस्पर में एक दूसरे को एक दूसरे में अनुभव करने के कारण वह इस संसार से उपरत हो गया । यदि कहें कि ऐसा होने पर जीव ब्रह्म कैसे हो सकता है तो इस पर कहते हैं, क्योंकि अनुभव ही उन दोनों का भेदक है तो इस पर कहते हैं कि उसने अवलोकन का ही परित्याग कर दिया । जैसे अग्नि सम्पूर्ण इन्धन को जलाकर अपने आप शान्त हो जाती है, उसी तरह से राजा ईक्षण का भी परित्याग कर शान्त हो गये ।।४२।।

पतिं परमधर्मज्ञं वैदर्भी मलयध्वजम् । प्रेम्णा पर्यचरद्धित्वा भोगान्सा पतिदेवता ।।४३।।

अन्वयः— पति देवता वैदर्भी भोगान् हित्वा परम धर्मज्ञं मलयध्वजम् पतिम् प्रेम्णा पर्यचरत् ।।४३।।

अनुवाद— पति को ही देवता मानने वाली वैदर्भी ने सभी भोगों का परित्याग करके परम धार्मिक अपने पति मलय ध्वज की प्रेम पूर्वक सेवा करती थी ।।४३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४३।।

चीरवासा व्रतक्षामा वेणीभूतशिरोरुहा । बभावुपपतिं शान्ता शिखा शान्तमिवानलम् ।।४४।।

अन्वयः— चीरवासा, व्रतक्षामा वेणीभूताशिरोरुहा उपपतिम् शाता शिखा, शान्तम् अनलमिव बभौ ।।४४।।

अनुवाद— चीर वस्त्र धारण की हुई, व्रत करने के कारण कृश शरीर वाली, उस वैदभी के केश जटा बन गये थे । वह अपने पति के पास अङ्गारावस्थावस्थित अग्नि के पास शुद्ध ज्वाला के समान सुशोभित होती थी ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

उपपतिं पत्युः समीपे । यद्वा पत्युः किंचिन्मात्रं न्यूना । तत्समाना सती बभावित्यर्थः । 'उपोऽधिके च' इति कर्मप्रवचनीयस्तद्योगे च द्वितीया । शान्तमङ्गारावस्थमनलमुपशान्ता शुद्धा ज्वाला यथा भवति तद्वत् ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

उपपतिम् का अर्थ है पति के सन्निकट में अथवा पति से कुछ कम पति के ही समान वह सुशोभित होती थी **'उपोधिके च'** सूत्र से कर्म प्रवचनीय संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई है । अङ्गारावस्थावस्थित अग्नि जैसे शुद्ध ज्वाला होती है उसी तरह वह सुशोभित होती थी ।।४४।।

अजानती प्रियतमं यदोपरतमङ्गना । सुस्थिरासनमासाद्य यथापूर्वमुपाचरम् ॥४५॥

अन्वयः— सुस्थिरमासनमासाद्य यदा उपरतम् प्रियतमम् अजानती सा यथा पूर्वम् उपाचरत् ॥४५॥

अनुवाद— स्थिर आसन से बैठकर शरीर त्यागे हुए राजा के विषय में जब तक उसको इस बात का ज्ञान नहीं था कि उसके प्रियतम शरीर त्याग चुके हैं, तब तक वह पहले के ही समान अपने पति की सेवा करती थी ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

तदानीमपि सुस्थिरमासनं यस्य । अत एवाजानती यदा तदा यथापूर्वमसेवत ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

उस समय भी सुस्थिर आसन से बैठे हुए राजा की वह पहले के ही समान सेवा करती थी ॥४५॥

यदा नोपालभेताङ्घ्रावूष्माणं पत्युरर्चती । आसीत्संविग्नहृदया यूथभ्रष्टा मृगी यथा ॥४६॥

अन्वयः— पत्युरर्चती अङ्घ्रौ उष्माणं न उपालभेत तदा सा यूथभ्रष्टा मृगी यथा संविग्न हृदया आसीत् ॥४६॥

अनुवाद— पति की सेवा करती हुई उनके चरणों में विल्कूल गर्मी नही देखी तो वह उसी तरह व्याकुल हो गयी जिस तरह अपने समूह से विछुड़ी हुई मृगी व्याकुल हो जाती है ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

पत्युरङ्घ्रिमर्चयन्ती यदा तस्मिन्नङ्घ्रावूष्माणं नापश्यत् ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

अपने पति के चरणों की सेवा करती हुई गर्मी नहीं देखी तब वह व्याकुल हो गयी ॥४६॥

आत्मानं शोचती दीनमबन्धुं विक्लवाश्रुभिः । स्तनावासिच्य विपिने सुस्वरं प्ररुरोद सा ॥४७॥

अन्वयः— विपिने दीनम् अबन्धुम आत्मानं शोचती विक्लवा सा अश्रुभिः स्तनौ आसिच्य सुस्वरं रुरोद ॥४७॥

अनुवाद— उस वन में अपने को पति से रहित तथा दीन जानकर शोक करती हुई तथा व्याकुल वह आंसुओं से अपने स्तनों को भिगोती हुई जोर-जोर से रोने लगी ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

अबन्धुं पतिरहितम् । अश्रुभिरासिच्य ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

अबन्धुम् अर्थात् पति से रहित अपने को जानकर वह आँसुओं से अपने स्तनों को भिंगोती हुई रोने लगी॥४७॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजर्षे इमामुदधिमेखलाम् । दस्युभ्यः क्षत्रबन्धुभ्यो बिभ्यतीं पातुमर्हसि ॥४८॥

अन्वयः— हे राजर्षे उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ, दस्युभ्यः क्षत्रबन्धुभ्यः विभ्यतीम् इमाम् उदधिमेखलाम् पातुमर्हसि ॥४८॥

अनुवाद— हे राजर्षि महाराज आप उठिये-उठिये लुटेरों और अधार्मिक राजाओं से भयभीत बनी हुई इस पृथिवी की रक्षा आप करें ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

क्षत्रबन्धुभ्योऽधार्मिकक्षत्रियेभ्योऽपि ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

क्षत्रबन्धुभ्यः अर्थात् अधार्मिक राजाओं से ॥४८॥

एवं विल्पती बाला विपिनेऽनुगता पतिम् । पतिता पादयोर्भर्तू रुदत्यश्रूण्यवर्तयत् ॥४९॥

अन्वयः— विपिने पतिम् अनुगता बाला एवं विलपती पत्युःपादयोः पतिता रुदती अश्रूणि अवर्तयत् ॥४९॥

अनुवाद— वन में पति के साथ गयी हुई वह अबला इस प्रकार से विलाप करती हुई पति के चरणों पर गिर पड़ी और रोती हुई आँसू बहाने लगी ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

अवर्तयत्प्रवर्तयामास ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

अवर्वयत् आंसू बहा रही थी ॥४९॥

चितिं दारुमयीं चित्वा तस्यां पत्युः कलेवरम् । आदीप्य चानुमरणे विलपन्ती मनो दधे ॥५०॥

अन्वयः— विलापन्ती दारुमयीं चितिं चित्वा तस्यां पत्युः कलेवरं आदीप्य अनुमरणे च मनोदधे ॥५०॥

अनुवाद— विलाप करती हुई वह लकड़ियों की चिता बनाकर उसने उस पर पति के शव को रखा और उसमें अग्नि लगाकर स्वयं सती होने का मन बना लिया ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

तस्यां निधायाग्निदानेनादीप्य च ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

चिता पर शव को रखकर उसमें आग लगाकर स्वयं सती होने का उसने मन बना लिया ॥५०॥

तत्र पूर्वतरः कश्चित्सखा ब्राह्मण आत्मवान् । सान्त्वयन्वल्गुना साम्ना तामाह रुदतीं प्रभो ॥५१॥

अन्वयः— हे प्रभो ! तत्र कश्चित् पूर्वतरः सखा आत्मवान् ब्राह्मणः रुदतीम् ताम् वल्गुना साम्नासान्त्वयन् आह ॥५१॥

अनुवाद— राजन् ! उस समय उसका कोई पुराना मित्र आत्मज्ञानी ब्राह्मण आकर उसे मधुर वाणी से सान्त्वना प्रदान करते हुए कहा ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वतरोऽनादिरीश्वरः सखा । 'द्वा सुपर्णा', इति श्रुतेः । साम्रा प्रियवाक्येन बोधयन् ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ अनादि ईश्वर को ही पूर्वतर सखा कहा गया है । 'द्वा सुपर्णा' श्रुति भी ईश्वर को सखा बतलाती है। उस ब्राह्मण ने प्रिय वाक्यों के द्वारा उस वैदर्भी को समझाते हुए कहा ॥५१॥

ब्राह्मण उवाच

का त्वं कस्यासि को वाऽयं शयानो यस्य शोचसि ।
जनासि किं सखायं मां येनाग्रे विचचर्थ ह ॥५२॥

अन्वयः— त्वं का? कस्य असि? यस्य शोचसि अयं शयानो वा कः अग्रे येन विचचर्थ ह सखायं मां जनासि किम्॥५२॥

ब्राह्मण ने कहा

अनुवाद— तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? जिसके विषय में तुम शोचती हो यह सोया हुआ कौन ? जिसके साथ तुम पहले विचरण किया करती थी अपने इस पुराने मित्र मुझको भी तुम जानती हो क्या ?॥५२॥

भावार्थ दीपिका

यस्य यं शोचसि । अग्रे सृष्टेः पूर्वम् । विचचर्थ ह मयि स्थितत्वेन सख्यसुखमनुभूतवानसि ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

उस ब्राह्मण ने वैदर्भी से पूछा कि तुम्हे इस बात का पता है क्या कि तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो? जिसके विषय में तुम शोक करती हो यह कौन है ? सृष्टि से पूर्व तुम जिसके साथ विचरण करते हुए मैत्री के भाव का अनुभव किया था तुम्हारा पुराना मित्र मैं हूँ मुझे पहचानती हो क्या ?।।५२।।

अपि स्मरसि चात्मानमविज्ञातसखं सखे । हित्वा मां पदमन्विच्छन्भौमभोगरतो गतः ।।५३।।

अन्वयः— सखे ! अविज्ञातसखम् आत्मानम् स्मरसि? माम् हित्वा भौम भोगरतः पदम् अन्विछन् गतः स्मरसि किम्।।५३।।

अनुवाद— तुम अपने अविज्ञात नामक मित्र का स्मरण करते हो क्या ? मुझको छोड़कर तुम भूलोक के भोगों को भोगने के लिए अपने निवास स्थान की खोज में चले गये थे यह तुमको याद है क्या ?।।५३।।

भावार्थ दीपिका

ननु नाहमावयोः सख्यं सहचरत्वं च जानामीति चेत्तत्राह । यद्यपि मां न जानासि तथप्यात्मानं त्वामविज्ञातसखमविज्ञातः कश्चिन्मे सखा आसीदित्येवं किं स्मरसि । सख इति पुंस्त्वनिर्देशः प्राक्तनपुंस्त्वस्मरणाय । सख्यं स्मारयन्स्ववियोगकृतमनर्थमाह- हित्वेति सार्धैः षड्भिः । पदं स्थानम् ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

यदि यह कहो कि मुझे हम दोनों की मित्रता और सहचारित्व का कोई स्मरण नहीं है । इस पर ब्राह्मण ने कहा यद्यपि तुम मुझको नहीं जानती हो फिर भी तुमको इस बात की यादगारी है कि मेरा कोई अविज्ञात नामक मित्र था । सखः यह पुल्लिङ्ग प्रयोग पूर्वजन्म के पुरुषत्व की यादगारी के लिए किया गया है, अपनी मित्रता का स्मरण दिलाते हुए ब्राह्मण ने अपने से होने वाले विलगाव जन्य अनर्थ को हित्वा इत्यादि साढे छह श्लोकों में कहा पदम् पद स्थान का वाचक है ।।५३।।

हंसावहं च त्वं चार्य सखायौ मानसायनौ । अभूतामन्तरा वौकः सहस्रपरिवत्सरान् ।।५४।।

अन्वयः— आर्य अहं च त्वं च मानसायनौ सखायौ हंसौ सहस्रपारिवत्सरान् ओकः अन्तरा सखायौ अभूताम्।।५४।।

अनुवाद— आर्य ! मैं और तुम दोनो मानसरोवर वासी हंस थे और हजारों वर्षों तक बिना किसी निवास स्थान के मित्रभाव से एक साथ रहे ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

हंसा शुद्धौ मानसं हृदयमयनं ययोः । कथापक्षे मानससरसि स्थितौ पक्षिणावभूतां जातौ । ओको गृहम् । अन्तरा विनैव। वाशब्द एवार्थे । सहस्रपरिवत्सरान् महाप्रलयो यावत् ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

हंसौ अर्थात् शुद्ध स्वरूप वाले मानसायनौ अर्थात् हृदय रूपी मानसरोवर में रहने वाले । कथा के पक्ष में तो अर्थ होगा कि मान सरोवर में रहने वाले हम दोनों हंस पक्षी थे । ओकः शब्दगृह का वाचक है । अन्तर अथवा बिना ही वा शब्द निश्चयार्थक है सहस्रपरिवत्सरान् महाप्रलय काल पर्यन्त ।।५४।।

स त्वं विहाय मां बन्धो गतो ग्राम्यमतिर्महीम् । विचरन्पदमद्राक्षीः कयाचिन्निर्मितं स्त्रिया ।।५५।।

अन्वयः— बन्धो ! स त्वं ग्राम्यमतिः सन् मां विहाय महीं गतः विचरन् कयाचित् स्त्रिया निर्मितं पद्म अद्राक्षीः ।।५५।।

अनुवाद— मित्र ! तुम विषय भोगों की इच्छा से मुझको छोड़कर पृथिवी पर चले आये और घूमते हुए तुमने किसी स्त्री के द्वारा निर्मित स्थान को देखा ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

हे बन्धो, ग्राम्ये सुखे मतिर्यस्य । स्त्रिया मायया ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण ने कहा मित्र तुम्हारी विषय भोगों को प्राप्त करने की इच्छा हो गयी थी और पृथिवी पर घूमते हुए तुमने माया रचित नगरी को देखे ।।५५।।

पञ्चारामं नवद्वारमेकपालं त्रिकोष्ठकम् । षट्कुलं पञ्चविपणं पञ्चप्रकृति स्त्रीधवम् ।।५६।।

अन्वयः— पञ्चाराम नवद्वारम् एकपालं, त्रिकोष्ठकम् षट्कुलं, पञ्चविपणं पञ्च प्रकृति स्त्रीधवम् ।।५६।।

अनुवाद— उस स्थान में पाँच वगीचे, नव दरवाजे, एक द्वारपाल, तीन परकोटे, छह, व्यापारी और पाँच बाजार और उसकी स्वामिनी एक स्त्री थी ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

पञ्च शब्दादय आरामा उपवनानि यस्मिन् । नव द्वाराणि प्राणच्छिद्राणि यस्मिन् । एकः प्राणः पालो यस्मिन् । त्रीणि पृथिव्यप्तेजांसि कोष्ठानि प्राकारा यस्मिन् । षट् ज्ञानेन्द्रियमनांसि कुलान्यभीष्टविषयसमर्पका वणिजो यस्मिन् । पञ्च विपणा हट्टाः कर्मेन्द्रियाणि यस्मिन् । पञ्चभूतानि प्रकृतिरुपादानकारणं यस्य । स्त्री बुद्धिरेव धव; पतिः स्वामिनी यस्मिन् ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

उसमें शब्दादि पाञ्च विषय रूपी बगीचे थे, नव इन्द्रियों के द्वाराभूत दरवाजे थे । अकेला प्राण रूपी द्वारपाल था, उसके पृथिवी, जल और तेज रूपी तीन परकोटे थे, ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन कुल छह अभीष्ट वस्तु को प्रदान करने वाले व्यापारी थे, पाँच कर्मेन्द्रियाँ रूपी बजार थे, पाँच महाभूत है उसके उपादान कारण थे । तथा उस स्थान की स्वामिनी बुद्धि रूपी स्त्री थी ।।५६।।

विपणस्तु क्रियाशक्तिर्भूतप्रकृतिरव्यया । शत्तयधीशः पुमांस्त्वत्र प्रविष्टो नावबुध्यते ।।५८।।

अन्वयः— विपणस्तु क्रिया शक्तिः भूत प्रकृतिख्यया, शक्त्यधीशः अत्र प्रविष्टः पुमान् नावबुध्यते ।।५८।।

अनुवाद— क्रिया शक्ति रूप पाँच कर्मेन्द्रियाँ बाँच बाजार थे कभी भी क्षीण नहीं होने वाले पाँच महाभूत ही उसके उपादान कारण थे । बुद्धि शक्ति ही उसकी स्वामिनी थी । उस पुरी में प्रवेश करने वाला पुरुष ज्ञान शून्य हो जाता है उसको अपने स्वरूप का ज्ञान रही रह जाता है ।।५८।।

भावार्थ दीपिका

भूतान्येवाव्यया प्रकृतिरुपादानं यस्य । स्त्रीधवमित्यस्य व्याख्यानम् । शक्तिरधीशा यस्य । तद्वशः सन्नित्यर्थः ।।५८।।

भाव प्रकाशिका

प्रकृति ही जिसका उपादान कारण है यह स्त्रीधवम् की व्याख्या है । शक्ति ही जिसका स्वामी है । उसके अधीन रहने वाला ।।५८।।

तस्मिंस्त्वं रामया स्पृष्टो रममाणोऽश्रुतस्मृतिः । तत्सङ्गादीदृशीं प्राप्तो दशां पापीयसीं प्रभो ।।५९।।

अन्वयः— तस्मिन् रामया स्पृष्टः त्वं रममाणः अश्रुत स्मृतिः हे प्रभो! तत्सङ्गात् त्वम् इदृशीं पापी यसीं दशा प्राप्तः।।५९।।

अनुवाद— उस नगरी में उस नगरी की स्वामिनी के द्वारा अभिभूत होकर उसके साथ रमण करते हुए तुम अपने स्वरूप (ब्रह्मत्व) को भूल गये । हे प्रभो ! उसकी सङ्गति से तुम्हारी यह दुर्दशा हुई है ।।५९।।

भावार्थ दीपिका

स्पृष्टोऽभिभूतः । अतो न विद्यते श्रुते ब्रह्मत्वे स्मृतिर्यस्य ।।५९।।

भाव प्रकाशिका

स्पृष्टः पद का अर्थ अभिभूत होना है। अतएव तुम अपने श्रुति प्रतिपादित ब्रह्म स्वरूपता को भी भूल गये।।५९।।

न त्वं विदर्भदुहिता नायं वीरः सुहृत्तव । न पतिस्त्वं पुरंजन्या रुद्धो नवमुखे यया ।।६०।।

अन्वयः— त्वं विदर्भ दुहिता न अयं वीरः तव सुहृत् न, यया नवमुखेरुद्धः पुरञ्जन्याः पतिः त्वं न ।।६०।।

अनुवाद— तुम न तो विदर्भ राज की पुत्री हो और न यह वीर तुम्हारा सुहृत् है, जिसने तुमको नवद्वार के नगर में बन्द किया था उस पुरञ्जनी के भी पति तुम नहीं हो ।।६०।।

भावार्थ दीपिका

तत्त्वमुपदिशति-न त्वमिति चतुर्भिः । सुहृत्पतिः । नवद्वारे पुरे यया रुद्धोऽसि तस्याः ।।६०।।

भाव प्रकाशिका

वे तत्त्वज्ञानी ब्राह्मण चार श्लोकों में तत्त्वोपदेश करते हैं । सुहृत् शब्द का अर्थ पति हैं । जिसके द्वारा तुम नव द्वारों वाले नगर में रुद्ध किये गये थे, उस पुरञ्जनी के तुम पति नहीं हो ।।६०।।

माया ह्येषा मया सृष्टा यत्पुमांसं स्त्रियं सतीम् । मन्यसे नोभयं यद्वै हंसौ पश्यावयोर्गतिम् ।।६१।।

अन्वयः— एषा माया मया सृष्टा यत् पुंमांसं सतीं स्त्रियं मन्यसे, नोभयम् यद्ववै हंसौ आवयोः गतिम् पश्य ।।६१।।

अनुवाद— इस माया की सृष्टि मैंने की है, उसी के द्वारा मोहित होकर पहले तुम अपने को पुरुष मानते थे और अब अपने को प्रज्ञ पतिव्रता स्त्री मानते हो । तुम न तो पुरुष हो न स्त्री हो, हम दोनों हंस हैं, हम राजा वास्तविक स्वरूप है उसका तुम अनुभव करो ।।६१।।

भावार्थ दीपिका

पुमांसं पूर्वजन्मनि यदमन्यथा इदानीं च सतीं श्रेष्ठं स्त्रियं यन्मन्यसे एषा माया । यत उभयमपि वस्तुतो नास्ति । यस्मादावां हंसौ शुद्धौ । नौ आवयोर्वक्ष्यमाणां गतिं स्वरूपं पश्य ।।६१।।

भाव प्रकाशिका

पूर्व जन्म में जो तुम अपने को पुरुष मानते थे और इस जन्म में अपने को श्रेष्ठ मानते हो यह माया है। तुम इन दोनों मे से कोई भी नहीं हों क्योंकि हम दोनों शुद्ध हंस है । हम दोनों का जो स्वरूप है, उसे तुम स्मरण करो, उसे मैं बतलाने वाला हूँ ।।६१।।

अहं भवान्न चान्यस्त्वं त्वमेवाहं विचक्ष्व भो । न नौ पश्यन्ति कवयश्छिद्रं जातु मनागपि ।।६२।।

अन्वयः— अहं भवान् त्वं च अन्यः न भो त्वमेव अहं विचक्ष्व, कवयः नौ जातु मनागपि छिद्रं न पश्यन्ति ।।६२।।

अनुवाद— मित्र जो मैं हूँ वहीं तुम हो, तुम मुझसे भिन्न नहीं हो तुम विचार पूर्वक देखो ज्ञानी पुरुष हम दोनों में थोड़ा सा भी अन्तर नहीं देखते हैं ।।६२।।

भावार्थ दीपिका

तत्त्वंपदार्थयोश्चिदंशेनैक्यमाह । अहमेव भगवान् । उपचारं वारयति-न चान्य इति । व्यतिहारोपदेश उक्ताभिप्रायः छिद्रमन्तरम् ।।६२।।

भाव प्रकाशिका

तत् पदार्थ एवं त्वं पदार्थ दोनों चिदंश होने के कारण अभिन्न है इस बात का प्रतिपादन इस श्लोक में करते हैं। दोनों में होने वाले भेदो चार का वरण इस श्लोक में किया गया है। इस श्लोक का अभिप्राय व्यतिहारोपदेश में है। अर्थात् कहीं ही जीव को कहकर उसका तत् पदार्थ से अभेद किया गया है, और कहीं तत् पदार्थ को कहकर उसका त्वं पदार्थ से अभेद बतलाया गया है। छिद्र पद का अर्थ है भेद ॥६२॥

यथा पुरुष आत्मानमेकमादर्शचक्षुषोः । द्विधाभूतमवेक्षेत तथैवान्तरमावयोः ॥६३॥

अन्वयः— यथा पुरुष एकम् आत्मानम् आदर्श चक्षुषोः द्विधाभूतम् अवेक्षेत तथैव आवयोः अन्तरम् ॥६३॥

अनुवाद— जैसे कोई पुरुष अपनी एक ही आत्मा को आदर्श (दर्पण) और नेत्र में देखकर भिन्न-भिन्न मानता है उसी तरह एक ही आत्मा विद्या तथा अविद्या रूपी उपाधि के कारण ईश्वर और जीव के रूप में भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है ॥६३॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि कथमावयोरज्ञत्वसर्वज्ञत्वादिधर्मभेदस्तत्राह-यथेति । आत्मानं देहमादर्शे निर्मलं महान्तं स्थिरं चावेक्षेत । परस्य चक्षुषि च तद्विपरीतम् । विद्याविद्योपाधिकृतो धर्मभेद इत्यर्थः ॥६३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि तो फिर हम दोनों में अज्ञत्व और सर्वज्ञत्व रूप धर्म भेद कैसे है ? तो इसके उत्तर में **यथा पुरुष इत्यादि** श्लोक कहते हैं। आत्मा शब्द यहाँ देह का बोधक है। जैसे कोई स्वच्छ दर्पण में अपने शरीर को स्वच्छ महान् और स्थिर देखता है। किन्तु वही दूसरे के नेत्र में प्रतिविम्बित होने वाले अपने शरीर उसके ठीक विपरीत देखता है। उसी तरह से विद्या रूपी उपाधि में ईश्वर रूप से प्रतिबिम्बत होता है और अविद्या में जीव रूप से प्रतिविम्बित होता है। अतएव होने वाली भेद प्रतीति का कारण उपाधियाँ हैं ॥६३॥

एवं स मानसो हंसो हंसेन प्रतिबोधितः । स्वस्थस्तद्व्यभिचारेण नष्टामाप पुनः स्मृतिम् ॥६४॥

अन्वयः— एवं स मानसः हंसः हंसेन प्रतिबोधितः स्वस्थः तद्व्यभिचारेण नष्टाम् मतिम् पुनः आप ॥६४॥

अनुवाद— इस प्रकार से वह मानसरोवर का हंस उस हंस के द्वारा उपदिष्ट होकर अपने स्वरूप में स्थित हो गया और ईश्वर के वियोग के कारण विषयाभिलाष के कारण नष्ट हुई अपनी बुद्धि को पुनः प्राप्त कर लिया। उसे पुनः ज्ञान हो गया कि मैं ब्रह्म हूँ ॥६४॥

भावार्थ दीपिका

एवममुना प्रकारेण स मानसो हंसः क्षेत्रज्ञो हंसेन परमात्मना बोधितः सन्स्वस्थं आत्मनि स्थितः संश्चिरं ध्यात्वा तद्व्यभिचारेणेवरवियोगेन विषयाभिलाषबुद्ध्या नष्टां स्मृतिमहं ब्रह्मास्मीति ज्ञानं पुनः प्राप्तवान् ॥६४॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से वह मानस हंस जीव परमात्मा के द्वारा उपदिष्ट होकर अपनी आत्मा में स्थित हो गया और दीर्घ काल तक ध्यान करके परमात्मा से वियुक्त होने के कारण तथा विषय भोग की इच्छा के कारण उसकी मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार का ज्ञान जो भूल गया था उसे पुनः प्राप्त कर लिया ॥६४॥

बर्हिष्मन्नेतदध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितम् । यत्परोक्षप्रियो देवो भगवान्विश्वभावनः ॥६५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे पुरंजनोपाख्यानेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥२८॥

अन्वयः— हे बर्हिष्मन् एतदध्यात्मं परोक्ष्येण प्रदर्शितम् यत् देवः विश्वभावनः भगवान् परोक्षप्रियः ॥६५॥

अनुवाद— हे प्राचीन बर्हि मैंने परोक्ष रूप से आत्मज्ञान का उपदेश दिया है क्योंकि दिव्य गुण सम्पन्न जगत् कर्ता श्रीभगवान् को परोक्ष वर्णन प्रिय हैं ॥६५॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के पुरञ्जनोपाख्यान के प्रकरण में अठाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६५।।

भावार्थ दीपिका

कथामात्रमिति बुद्धिं वारयति-बर्हिष्मन्निति । पारोक्ष्येण राजकथामिषेण । तत्र हेतुः यद्यस्मात् हे बर्हिष्मन्प्राचीनबर्हिः एतद्राजकथामिषेणात्मकथा प्रदर्शिता । यस्मादेवः श्रीनारायणः परोक्षप्रियः । साक्षादात्मज्ञानकथनेन तव चेतसि कथा नायातीति भावः ॥६५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्ठाविंशतितमोऽध्यायः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

बर्हिष्मान् इस श्लोक के द्वारा यह केवल कथा है, इस प्रकार की होने वाली बुद्धि का वारण किए हैं । परोक्ष्येण का अर्थ है कि राजा के कथा सुनाने के व्याज से । उसका कारण बतलाते हुए कहते हैं राजन् प्राचीन बर्हि इस राज कथा के बहाने मैंने आत्मा की कथा कही है क्योंकि भगवान् नारायण परोक्ष प्रिय हैं । यदि साक्षात् आत्म कथा कहने पर तुम्हारे समझ में बात नहीं आ सकती थी ॥६५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भवार्थ दीपिका नामक टीका के अठाइसवें अध्याय की शिवप्राद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।६५।।

* * *

उनतीसवाँ अध्याय

पुरञ्जनोपाख्यान का तात्पर्य

प्राचीनबर्हिरुवाच

भगवंस्ते वचोऽस्माभिर्न सम्यगवगम्यते । कवयस्तद्विजानन्ति न वयं कर्ममोहिताः ।।१।।

अन्वयः— भगवन्ते वचः अस्माभिः सम्यङ्न अवगम्यते । तत् कवयः विजानन्ति, कर्ममोहिताः वयं न ।।१।।

प्राचीनबर्हि ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! आपकी वाणी का अभिप्राय हम पूर्ण रूप से नहीं जान पाये । उसे तो विवेकी पुरुष जान सकते हैं कर्म मोहित हमलोग उसे नहीं समझ सकते हैं ।।१।।

भावार्थ दीपिका

ऊनत्रिंशे परोक्षार्थव्याख्यानेनोपसंहृतम् । स्त्रीसङ्गतो भवस्त्वीशसङ्गान्मुक्तिरिति स्फुटम् । कवयोऽध्यात्मविदः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

उनतीसवें अध्याय में परोक्षार्थ की व्याख्या के द्वारा इस प्रकरण का उपसंहार किया गया है । इसमें बतलाया गया है कि स्त्री के सङ्ग से संसार होता है और ईश्वर के सङ्ग से मुक्ति होती है । कवयः पद का अर्थ है अध्यात्म वेत्ता ।।१।।

नारद उवाच

पुरुषं पुरंजनं विद्याद् यद्व्यनक्त्यात्मनः पुरम् । एकद्वित्रिचतुष्पादं बहुपादमपादकम् ।।२।।

अन्वयः— पुरुषं पुरञ्जनं विद्यात् यत् यवनतया आत्मनः पुरम् एकद्वित्रि चतुष्पादं बहुपादं अपादकं पुरं व्यनक्ति ।।२।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— पुरुष को ही पुरञ्जन जो अपने लिए एक पैर वाले, दो पैर वाले, तीन पैर वाले, चार पैर वाले, अनेक पैर वाले अथवा पैर से रहित शरीर रूपी नगर को बना लेता है ।।२।।

भावार्थ दीपिका

व्यनक्ति लिम्पति । चेतनीकरोतीत्यर्थः । यद्वा व्यनक्ति प्रकटयति । ततश्च स्वकर्मणा पुरं जनयतीति पुरंजनपदं व्याख्यातं भवति । एकद्यादयः पादा यस्य ।।२।।

भाव प्रकाशिका

व्यनक्ति बाँधता है । अर्थात् अचेतन शरीर को चेतन बना देता है । अथवा व्यनक्ति अर्थात् प्रकट कर देता है । अतएव अपने कर्मों के द्वारा शरीर रूपी नगर को उत्पन्न कर देता है । इस शरीर के एक, दो, तीन, चार, अनेक अथवा पैर जिसके होते हैं ऐसे शरीर को उत्पन्न कर देता है ।।२।।

योऽविज्ञाताहृतस्तस्य पुरुषस्य सखेश्वरः । यन्न विज्ञायते पुंभिर्नामभिर्वा क्रियागुणैः ।।३।।

अन्वयः— तस्य पुरुषस्य यः अविज्ञाता हृतः सखा ईश्वरः यत् पुम्भिः नामभिः वा क्रियागुणैः न विज्ञायते ।।३।।

अनुवाद— उस पुरुष का जो अविज्ञात शब्द से कहा जाने वाला सखा है वह ईश्वर है, वह जीवों के द्वारा किसी भी प्रकार के नाम गुण अथवा क्रिया के द्वारा नहीं जाना जा सकता है ।।३।।

भावार्थ दीपिका

अविज्ञातशब्देनाहृतो व्याहृत उक्तो यः स ईश्वरः । अविज्ञातनामनिरुक्तिः यद्यस्मात्पुम्भिर्नामादियोगेन न विज्ञायते ।।३।।

भाव प्रकाशिका

जिसे अविज्ञात शब्द से पुरुष (जीव) का सखा कहा गया है । वह ईश्वर है अविज्ञात नाम की निरुक्ति यह है कि वह जीवों के द्वारा नामादि युक्त रूप से नहीं जाना जाता है ।।३।।

यदा जिघृक्षन्पुरुषः कार्त्स्न्येन प्रकृतेर्गुणान् । नवद्वारं द्विहस्ताङ्घ्रि तत्रामनुत साध्विति ।।४।।

अन्वयः— यदा पुरुषः कार्त्स्न्येन प्रकृतेः गुणान् जिघृक्षन् तत्र नवद्वारं द्विहस्ताङ्घ्रि साधु इति अमनुत ।।४।।

अनुवाद— जीव ने जब प्रकृति के सुख दु:ख आदि सभी विषयों को भोगने की इच्छा की तो वह सभी शरीरों में उसने दो हाथ तथा दो पैर वाले तथा नव द्वार वाले मनुष्य के ही शरीर को सबसे अच्छा समझा ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तेषु पुरेषु मध्ये ।।४।।

भाव प्रकाशिका

सभी शरीरों में यह तत्र पद का अर्थ है ।।४।।

बुद्धिं तु प्रमदां विद्यान्ममाहमिति यत्कृतम् । यामधिष्ठाय देहेऽस्मिन्पुमान्भुङ्क्तेऽक्षभिर्गुणान् ।।५।।

अन्वयः— बुद्धिम् तु प्रमदां विद्यात् याम् अधिष्ठाय पुमान् अस्मिन् देहे ममाहमिति यत् कृतम् अक्षभिः गुणान् भुङ्क्ते।।५।।

अनुवाद— बुद्धि को ही पुरञ्जनी नामक स्त्री समझना चाहिए, इसी को आलम्बन बनाकर जीव शरीर में अहन्त्व एवं ममत्व की बुद्धि करता है तथा इन्द्रियों द्वारा विषयों को भोगता है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

अक्षभिरिन्द्रियैः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

अक्षभिः अर्थात् इन्द्रियों द्वारा ।।५।।

सखाय इन्द्रियगणा ज्ञानं कर्म च यत्कृतम् । सख्यस्तदृत्तयः प्राणः पञ्चवृत्तिर्यथोरगः ।।६।।

अन्वयः— सखायः इन्द्रियगणा यत् कृतम् ज्ञानं कर्म च तद्वृत्तयः सख्यः उरगो यथा पञ्चवृत्तिः प्राणः ।।६।।

अनुवाद— दस इन्द्रियाँ उसके मित्र है और इन्द्रियों की वृत्तियाँ ही सखियाँ है । इन्द्रियों के द्वारा ही ज्ञान और कर्म होते हैं । सर्प के समान पाञ्च प्रकार की वृत्तियों वाला प्राण ही शरीर रूपी नगर का रक्षक है ।।६।।

भावार्थ दीपिका

पञ्चवृत्तित्वात्पञ्चशिराः सर्व इव प्राणः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

प्राण अपान आदि पाञ्चवृत्तियों वाला प्राण ही पाञ्चशिरों वाले सर्प के समान है ।।६।।

बृहद्बलं मनो विद्यादुभयेन्द्रियनायकम् । पञ्चालाः पञ्चविषया यन्मध्ये नवखं पुरम् ।।७।।

अन्वयः— उभयेन्द्रियनायकम् मनः बृहद्बलम् पञ्चविषयाः पञ्चालाः यन्मध्ये नवखं पुरम् ।।७।।

अनुवाद— ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का नियामक मन ही बृहद् बल नामक सेनापति है । शब्दादि पञ्च विषय ही पञ्चाल है जिन सबों के बीच में नव द्वारों वाला नगर बसा है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

एकादशमहाभट इत्यनेन एकादशो महाभटो नायक इत्युक्तस्तं दर्शयति बृहद्बलं यस्य तन्मनः। नव खानि द्वाराणि यस्य।।७।।

भाव प्रकाशिका

ग्यारह इन्द्रियाँ ही बड़े वीर हैं ग्यारहवाँ मन ही इन्द्रियों का नायक है उसी को बृहद् बल कहा गया है। नव द्वारों वाला शरीर है ।।७।।

अक्षिणी नासिके कर्णौ मुखं शिश्नगुदाविति । द्वे द्वे द्वारौ बहिर्याति यस्तदिन्द्रियसंयुतः ।।८।।

अन्वयः— द्वे द्वे द्वारौ अक्षिणी, नासिके कर्णौ मुखं शिश्नगुदौ इति यः तदिन्द्रिय संयुतः बहिः याति ।।८।।

अनुवाद— दो-दो द्वार जो एक साथ है, वे हैं दोनों नेत्र व, दोनों नासिका के छिद्र, दोनों कान, मुख, शिश्न और गुदा इन सबों से ही होकर वह जीव बाहर के विषयों में जाता है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

द्युमत्सख इत्यादेरर्थं संक्षेपेणाह । यस्तदिन्द्रियसंयुतः स आत्मा ताभिर्द्वार्भिर्वहिर्यातीति ।।८।।

भाव प्रकाशिका

द्युमत्सखः इत्यादि श्लोक का अर्थ इस श्लोक में संक्षेप में कहा गया है । जो पुरुष इन्द्रिय रूपी द्वारों से होकर वह तत्-तत् विषय देशों में जाता है ।।८।।

अक्षिणी नासिके आस्यमिति पञ्च पुरः कृताः । दक्षिणा दक्षिणः कर्ण उत्तरा चोत्तरः स्मृतः ॥९॥

अन्वयः— अक्षिणी नासिके आस्यम् इति पञ्च पुरः कृताः दक्षिणा दक्षिणः कर्णः उत्तरा च उत्तरः स्मृतः ॥९॥

अनुवाद— दोनों नेत्र गोलक, नाक के दोनों छिद्र और मुख ये पाँच पूर्व के द्वार हैं । दाहिना कान दक्षिण द्वार और बायाँ कान उतर का द्वार कहा गया है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

पुरः पूर्वभागे कृताः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

पूर्वभाग के द्वार हैं ॥९॥

पश्चिमे इत्यधोद्वारौ गुदं शिश्नमिहोच्यते । खद्योताविर्मुखी चात्र नेत्रे एकत्र निर्मिते ॥
रूपं विभ्राजितं ताभ्यां विचष्टे चक्षुषेश्वरः ॥१०॥

अन्वयः— पश्चिमे अद्योद्वारौ गुदं शिश्नम् इहोच्यते । खद्योतर्विमुखी च अत्र एकत्र निर्मिते नेत्रे ताभ्यां रूपं विभाजितं चक्षुषेश्वरः विचष्टे ॥१०॥

अनुवाद— पश्चिम दिशा के दो द्वार गुदा और लिङ्ग को कहा गया है । एक ही स्थान पर निर्मित खद्योत तथा आविर्मुखी नामक दो द्वार दोनों नेत्र गोलक हैं । उन दोनों द्वार से वह नेत्रों का स्वामी रूप विभ्राजित नामक देश में जाता था ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

नेत्रे इति रूपमिति चक्षुषेति खद्योतादीनां व्याख्यानम् । शेषोऽनुवादः । ईश्वरः पुरंजनः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

नेत्रे रूपम्, चक्षुषा ये तीनो पद खद्योत आदि आविर्मुखी इत्यादि पदों की व्याख्या है । अवशिष्ट तो अनुवाद मात्र है । ईश्वर शब्द से पुरञ्जन को कहा गया है ॥१०॥

नलिनी नालिनी नासे गन्धः सौरभ उच्यते । घ्राणोऽवधूतो मुख्यास्यं विपणो वाग्रसविद्रसः ॥११॥

अन्वयः— नलिनी नालिनी नासे गन्धः सौरभ उच्यते । ध्राणः अवधूतम् मुख्यास्यं वाक् रसवित् रसः ॥११॥

अनुवाद— नलिनी और नालिनी ये दोनों द्वार नाक के दोनों छिद्र हैं । नासिका का विषय ही सौरभ देश है । घ्राणेन्द्रिय ही अवधूत नामक मित्र है । मुख ही मुख्य नामक द्वार है । उसमें रहने वाली वागिन्द्रिय ही विपण है और रसनेन्द्रिय रसवित् नामक मित्र हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

नासे इति व्याख्या । अवधुनोतीत्यवधूतो वायुस्तदात्मकेनोच्छ्वासेन सहैकस्थानत्वात् घ्राणोऽवधूतः । आस्यमिति व्याख्या । रसज्ञविपणान्वित इत्यत्र रसज्ञशब्दनिर्दिष्टस्य रसविदित्यनुवादः रस इति व्याख्या । रसनेन्द्रियमित्यर्थः । विपणो वाग्रसविद्रस इत्येव पाठः । आर्षत्वान्न दोषः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

नासे पद के द्वारा नलिनी और नलिनी की व्याख्या की गयी । कँपाने वाले को अवधूत कहते हैं । अर्थात् वायु । वाय्वात्मक उच्छ्वास के साथ एकत्र रहने से प्राण को अवधूत कहा गया है । मुख्य द्वार की व्याख्या है आस्यम् रसज्ञविपणान्वितः पद के रसज्ञ शब्द से निर्दिष्ट का ही व्याख्या अनुवाद रसवित् शब्द से किया गया है और रसः पद के द्वारा व्याख्या की गयी हैं ॥११॥

आपणो व्यवहारोऽत्र चित्रमन्धो बहूदनम् । पितृहूर्दक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः ॥१२॥

अन्वयः— अत्र व्यवहारः आपणः चित्रमन्धो बहूदनम् । दक्षिणः कर्ण पितृहूः उत्तरः कर्णः देवहूः स्मृतः ॥१२॥

अनुवाद— यहाँ पर वाणी के व्यवहार को ही बाजार कहा गया है तरह-तरह के अन्न को बहूदन कहा गया है । दाहिने कान को पितृहूः कहा गया है और बायें कान को देवहू कहा गया है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अन्धोऽन्नम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अन्धः शब्द से अन्न को कहा गया है ॥१२॥

प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पञ्चालसंज्ञितम् । पितृयानं देवयानं श्रोत्राच्छ्रुतधराद्व्रजेत् ॥१३॥

अन्वयः— प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पञ्चाल संज्ञितम् । श्रुतधरात् श्रोत्रात् पितृपानं देवयानं व्रजेत् ॥१३॥

अनुवाद— प्रवृति शास्त्र और निवृत्ति शास्त्र को ही पञ्चाल नामक देश कहा गया है । कानों से सुनकर वह पुरञ्जन पितृहू और देवहू नामक देशों को जाता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

आसुरी मेढ्रमर्वाग्द्वार्व्यवायो ग्रामिणां रतिः । उपस्थो दुर्मदः प्रोक्तो निर्ऋतिर्गुद उच्यते ॥१४॥

अन्वयः— मेढ्रम् आसुरी अर्वाक् द्वाः व्यवायः ग्रामियाम् रतिः उपस्थः दुर्मदः प्रोक्तः निर्ऋतिः गुद उच्यते ॥१४॥

अनुवाद— लिङ्ग ही आसुरी नामक पश्चिम द्वार है स्त्री प्रसङ्ग ग्रामक नामक देश है । लिङ्ग में रहने वाला उपस्थेन्द्रिय ही दुर्मद नामक मित्र है और गुदा ही निर्ऋति नाम का पश्चिम द्वार है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

ग्रामकमित्यस्यानुवादो ग्रामिणां रतिरिति । तस्य व्याख्या-व्यवाय इति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

ग्राम का ही अनुवाद ग्रामिणां रति है और उसकी व्याख्या स्त्री प्रसङ्ग है ॥१४॥

वैशसं नरकं पायुर्लुब्धकोऽन्धौ तु मे शृणु । हस्तपादौ पुमांस्ताभ्यां युक्तो याति करोति च ॥१५॥

अन्वयः— नरकं वैशसम् पायुः लुब्धकः अन्धकौ तु मे शृणु । हस्तपादौ ताभ्यां पुमान् याति करोति च ॥१५॥

अनुवाद— नरक ही वैशस नामक देश है । गुदा में रहने वाली पायु इति लुब्धक नामक मित्र है । अब मैं दोनों अन्धों को बतलाता हूँ हाथ और पैर ही अन्धे है । उन दोनों के ही द्वारा पुरुष जाता है और कार्यो को करता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नही है ॥१५॥

अन्तःपुरं च हृदय विषूचिर्मन उच्यते । तत्र मोहं प्रसादं वा हर्षं प्राप्नोति तद्गुणैः ॥१६॥

अन्वयः— हृदयम् अन्तःपुरम् मनः विषूचिः उच्यते तत्र मोहं प्रसादं, हर्षंवा तद्गुणैः प्राप्नोति ॥१६॥

अनुवाद— हृदय ही अन्तःपुर है मन ही विषूचि नाम का मित्र है । मन के सत्त्वादि गुणों के ही कारण जीव मोह नामक विकार को या प्रसन्नता नामक विकार को अथवा हर्ष नामक विकार को प्राप्त करता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

विषूचीनपदार्थानुवादो विषूचिरिति । तद्गुणैर्मनोगुणैस्तमःसत्त्वरजोभिः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

विषूचीन पदार्थ का अनुवाद है विषूचि: । मन ही विषूचि है । मन के सत्त्वादि गुणों के कारण ही जीव मोह, प्रसन्नता अथवा हर्ष नामक विकार को प्राप्त करता है ॥१६॥

यथा यथा विक्रियते गुणाक्तो विकरोति वा । तथा तथोपद्रष्टात्मा तद्वृत्तीरनुकार्यते ॥१७॥

अन्वयः— यया यथा विक्रियते वा विकरोति तथा तथा गुणाक्तः उपद्रष्टा आत्मा तद्वृत्तीः अनुकरोति च ॥१७॥

अनुवाद— स्वप्नावस्था में राज महिषी बुद्धि जिस-जिस प्रकार से विकृत होती है तथा जागरावस्था में जैसे विकृत करती है, बुद्धि के उन गुणों से लिप्त होने वाला जीव उसकी वृत्तियों का वैसे ही अनुकरण करता है । यद्यपि यह जीव उन सबों का निर्विकार उपद्रष्टा (साक्षी मात्र) हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

महिषी यद्यदीहेतेत्यादेरर्थं संगृह्याह । यथा यथा बुद्धिः स्वप्ने विक्रियते जाग्रति विकरोति वा इन्द्रियाणि परिणमयति । तस्या गुणैरक्तो लिप्त आत्मा तथा तथा तस्या वृत्तीर्दर्शनस्पर्शनाद्याः । केवलमुपद्रष्टैव सन्बलादनुकार्यते ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

महिषी जो चाहती है, इत्यादि का संक्षेप में वर्णन करते है । स्वापावस्था में बुद्धि जैसे-जैसे विकृत होती है तथा जगरावस्था में जैसे-जैसे विकृत करती है अथवा इन्द्रियों को परिणत करती है ? उस बुद्धि के गुणों से लिप्त आत्मा उसी प्रकार से उसके दर्शन स्पर्श आदि कार्यों को करता है । यह यद्यपि साक्षी मात्र हैं फिर भी वह विवश होता है अनुकरण करने के लिए ॥१७॥

देहो रथस्त्विन्द्रियाश्वः संवत्सररयोऽगतिः । द्विकर्मचक्रस्त्रिगुणध्वजः पञ्चासुबन्धुरः ॥१८॥

अन्वयः— देहः रथः, इन्द्रियश्वः संवत्सररयः अगतिः द्विकर्मचक्रः त्रिगुणध्वजः पञ्चसुबन्धरः ॥१८॥

अनुवाद— देह ही रथ है, इन्द्रियाँ ही घोड़े हैं, संवत्सर ही उसका वेग है, वस्तुतः वह आत्मा गति हीन है । पाप पुण्य रूप दो प्रकार के कर्म ही उस रथ के पहिए है सत्त्वादि तीन गुण ही ध्वजा है और पाँच प्रकार के प्राण ही उसकी डोरियाँ हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

आशुगमित्येतद्व्याचष्टे । संवत्सरस्येवाप्रतिहतो रयो वेगः प्रतीतितो यस्य स संवत्सररयः । वस्तुतस्त्वगतिः । स्वप्नशरीराद्बुद्धावेव विवृतत्वेन देशान्तरगत्यभावात् । पाठान्तरे संवत्सरश्च तत्कृतं वयश्च ताभ्यां गतिर्यस्येति । द्वीपमित्यस्य व्याख्या नारदेन न कृता । द्विचक्रमित्यस्य व्याख्या द्विकर्मचक्र इति । त्रिगुणध्वज इति त्रिवेणुपदव्याख्या ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

आशुगम् पद की व्याख्या करते हुए नारदजी कहते हैं संवत्सर के ही समान जिसका वेग प्रतीत होता है वह संवत्सर रयः शब्द वाच्य है । किन्तु वास्तविकता है कि वह गति शून्य है । स्वकालिक शरीर इत्यादि केवल बुद्धि में ही विकृत होते हैं वे किसी दूसरे स्थान पर नहीं जाते है । जहाँ **सवत्सरवयोगतिः** पाठान्तर है वहाँ पर अर्थ होगा कि संवत्सर जन्य वय (अवस्था) इन दोनों के द्वारा जिसकी गति होती है । द्वीपम् की व्याख्या नारदजी ने नहीं की है । द्विचक्रम की व्याख्या है द्विकर्मचक्रः । त्रिवेणुपद की व्याख्या त्रिगुण ध्वज ॥१८॥

मनोरश्मिर्बुद्धिसूतो हृन्नीडो द्वन्द्वकूबरः । पञ्चेन्द्रियार्थप्रक्षेपः सप्तधातुवरुथकः ॥१९॥

अन्वयः— मनः रश्मिः, बुद्धिः सूतः, हृत नीडः, द्वन्द्व कूबरः, पञ्चेन्द्रिया प्रक्षेपः सप्तधातु बरूथकः ॥१९॥

अनुवाद— मन ही उस रथ के लगाम है बुद्धि ही सारथि है, हृदय ही बैठने का स्थान है । इन्द्रियों के पाँच शब्दादि विषय ही उसके आयुध है और सात धातुएँ ही उसके आवरण हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चप्रहरणमित्येतद्व्याचष्टे पञ्चेन्द्रियार्थप्रक्षेप इति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

पञ्चप्रहरणम् पद की व्याख्या करते हुए कहते है कि इन्द्रियों के जो शब्दादि पाँच विषय हैं वे ही उस रथ में रखे हुए आयुध हैं ॥१९॥

आकूतिर्विक्रमो बाह्यो मृगतृष्णां प्रधावति । एकादशेन्द्रियचमूः पञ्चसूनाविनोदकृत् ॥
संवत्सरश्चण्डवेगः कालो येनोपलक्षितः ॥२०॥

अन्वयः— आकूतिः बाध्यो विक्रमः मृगतृष्णां प्रधावति एकादशेन्द्रियचमूः पञ्चसूनाविनोदकृत् ॥२०॥

अनुवाद— पाँच कर्मेन्द्रियाँ ही उसकी पाँच प्रकार की बाह्य गतियाँ है इस शरीर रूप रथ पर चढ़कर रथी जीवात्मा मृगतृष्णा के समान मिथ्या विषयों की ओर दौड़ता है । ग्यारह इन्द्रियाँ ही उसकी सेना हैं । पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा इन्द्रियों के विभिन्न विषयों का अन्याय पूर्वक ग्रहण करना ही उसका आखेट करना है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चेन्द्रियैः सूनाविनोदमिवान्यायेन विषयसेवां करोतीति पञ्चसूनाविनोदकृत् । अनेन चचार मृगयां तत्रेत्यादि व्याख्यातम्॥२०॥

भाव प्रकाशिका

पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा आखेट विनोद के समान विषयों का अन्याय पूर्वक सेवन करना ही पञ्चसूना विनोद कृत् है । इस श्लोक के द्वारा पिछले अध्याय के **चचार मृगयां तत्र इत्यादि** श्लोक की व्याख्या की गयी है ॥२०॥

तस्याहानीह गन्धर्वा गन्धर्व्यो रात्रयः स्मृताः । हरन्त्यायुः परिक्रान्त्या षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥२१॥

अन्वयः— संवत्सरः चण्डवेगः येन काल उपलक्षितः तस्य अहानि इह गन्धर्वाः, गन्धर्व्यः रात्रयः स्मृताः षष्ठयुत्तरशतत्रयम् परिक्रान्त्या अयुः हरन्ति ॥२१॥

अनुवाद— संवत्सर ही चण्डवेग नामक गन्धर्व राज है उसी के द्वारा काल का ज्ञान होता है । उसके अधीन रहने वाले दिन ही गन्धर्व गण हैं, और रात्रियाँ गन्धर्वियाँ हैं । इन सबों की संख्या तीन सौ साठ तीन सौ साठ हैं । ये बारी-बारी से चक्कर लगाकर मनुष्य की आयु का हरण करने का काम करते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

परिक्रान्त्या परिभ्रमणेन ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

परिक्रान्त्या अर्थात् चक्कर लगा-लगाकर ॥२१॥

कालकन्या जरा साक्षाल्लोकस्तां नाभिनन्दति । स्वसारं जगृहे मृत्युः क्षयाय यवनेश्वरः ॥२२॥

अन्वयः— साक्षात् जरा कालकन्या, लोकः ताम् न अभिनन्दति। यवनेश्वरः मृत्युः ताम् क्षयाय ताम् स्वसारम् जगृहे॥२२॥

अनुवाद— साक्षात् बुढापा ही काल कन्या है । उसको संसार में कोई भी पसंद नहीं करता है । यवनराज मृत्यु ने संसार का क्षय करने के लिए उसको अपना बहिन बना लिया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

भगिनीत्वेन जगृहे । लोकानां क्षयाय ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

मृत्यु ने जरा को अपना बहिन संसार का विनाश करने के लिए बना लिया ॥२२॥

आधयो व्याधयस्तस्य सैनिका यवनाश्चराः । भूतोपसर्गाशुरयः प्रज्वारो द्विविधो ज्वरः ॥२३॥

अन्वयः— आधयः व्याधयः तस्य चराः यवनाः सैनिकाः, भूतोपसर्गाशुरयः ज्वारः द्विविधः ज्वरः ॥२३॥

अनुवाद— आधियाँ (मानसिक क्लेश) व्याधियाँ (शारीरिक रोग) उस यवनराज के पैदल चलने वाले सौनिक है । प्राणियों को पीड़ित करके शीघ्र ही मृत्यु के मुख में पहुँचाने वाले शीत एवं उष्ण दो प्रकार का ज्वर ही प्रज्वार नाम का उसका भाई है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

चराः संचारिणः । भूतानामुपसर्गे पीडायामाशु शीघ्रो मृत्युहेतू रयो वेगो यस्य प्रज्वारस्येति प्रशब्दव्याख्या । पाठान्तरे भूतकृता अरयः । अनेन चारिभिरुपरुद्ध इत्यरिपदं व्याख्यातम् । द्विविधः शीतोष्णरूपेण प्रवेशनिर्गमभेदात् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

चराः का अर्थ है पैदल चलने वाले, प्रज्वार शब्द के प्र शब्द की व्याख्या है कि जीवों के पीड़ित होने पर शीघ्र मृत्यु का कारण है प्रज्वार । जहाँ **भूतोपसर्गाह्यरयः** यह पाठ भेद है वहाँ अर्थ होगा कि भूत जन्य शत्रु। इसके द्वारा अरिभिः उपरुद्धः के अरि पद की व्याख्या की गयी है । प्रवेश करने और निकलने के भेद से शीत और उष्ण दो प्रकार के ज्वर बतलाये गये हैं ॥२३॥

एवं बहुविधैर्दुःखैर्दैवभूतात्मसंभवैः । क्लिश्यमानः शतं वर्षं देहे देही तमोवृतः ॥२४॥

अन्वयः— एवं तमोवृतः देही दैवभूतात्मसंभवैः बहुविधैः दुःखैः क्लिश्यमानः शतं वर्षं देहे तिष्ठति ॥२४॥

अनुवाद— इस तरह से देहाभिमानी जीव अज्ञान से आच्छन्न होकर दैविक, भौतिक तथा आध्यात्मिक अनेक प्रकार के क्लेशों को भोगते हुए सौ वर्षों तक शरीर में पड़ा रहता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

एवं परोक्षत्वेनोक्तमर्थं व्याख्याय सर्वकथातात्पर्यमाह-एवमित्यादिविरमक्रमेणेत्यन्तेन । आधिदैविकादिभिर्दुःखैः क्लिश्यमानो ममाहमिति देहे शतं वर्षाणि शेते वर्तत इति द्वयोरन्वयः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से परोक्ष रूप से वर्णित अर्थ की व्याख्या करके कथा के सम्पूर्ण तात्पर्य को नारदजी **एवम् इत्यादि** श्लोक से लेकर **विरमक्रमेण० इत्यादि** श्लोक पर्यन्त कहते हैं । आधिदैविक इत्यादि दुःखों से क्लेश का अनुभव ममकार और अहङ्कार से युक्त होकर सैकड़ों वर्षों तक पड़ा रहता है ॥२४॥

प्राणेन्द्रियमनोधर्मानात्मन्यध्यस्य निर्गुणः । शेते कामलवान्ध्यायन्ममाहमिति कर्मकृत् ॥२५॥

अन्वयः— निर्गुणः सन् प्राणेन्द्रियमनोधर्मान् आत्मनि अध्यस्य ममाहमिति कामलवान् ध्यायन् कर्मकृत् शेते ॥२५॥

अनुवाद— जीव यद्यपि निगुण है किन्तु वह प्राण, इन्द्रियों और मन के धर्मों का आत्मा में अध्यास करके ममकार और अहङ्कार के कारण क्षुद्र विषयों का चिन्तन करता हुआ अनेक प्रकार के कर्मों को करता रहता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अशनायापिपासादीन्प्राणधर्मान् अन्धत्वादीनिन्द्रियधर्मान् कामादीन्मनोधर्मांश्च निर्गुणोप्यात्मन्यध्यस्य कामलवान्विषयसुखलेशान्ध्यायन्कर्मकृत् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

भूख-प्यास आदि प्राण के धर्मों का अन्धत्व बधिरत्व आदि इन्द्रियों के धर्मों का तथा काम आदि मन के धर्मों का अपने निगुर्ण आत्मा में अध्यास करके क्षुद्र विषय सुख प्राप्त करने के लिए कर्मों को करता रहता है॥२५॥

यदात्मानमविज्ञाय भगवन्तं परं गुरुम् । पुरुषस्तु विषज्जेत गुणेषु प्रकृतेः स्वदृक् ॥२६॥

अन्वयः— स्वदृक् यदात्मानम् परं गुरुं भगवन्तम् अविज्ञाय पुरुषः तु प्रवृतेः गुणेषु विषज्जेत् ॥२६॥

अनुवाद— आत्मा स्वप्रकाश है, किन्तु जब तब वह सबों के परम गुरु श्रीभगवान् को नहीं जानता है तब तक वह प्रकृति के ही गुणों में फँसा रहता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह-यदेति द्वाभ्याम् । स्वदृक् स्वप्रकाशस्वभावोऽपि ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि वह कर्मों को करता रहता है तो उससे क्या हुआ ? तो इस पर **यदा० इत्यादि** दो श्लोकों को कहते हैं— स्वदृक अर्थात् स्वप्रकाश स्वभाव वाला होकर भी ॥२६॥

गुणाभिमानी स तदा कर्माणि कुरुतेऽवशः । शुक्लं कृष्णं लोहितं वा यथाकर्माभिजायते ॥२७॥

अन्वयः— गुणाभिमानी स तदा अवशः शुक्लं, कृष्णं लोहितं वा कर्माणि कुरुते यथा कर्माभिजायते ॥२७॥

अनुवाद— सात्त्विकादि गुणों का अभिमानी होने के कारण विवश होकर सात्त्विक, राजस और तामस कर्मों को करता रहता है और अपने कर्मों के ही अनुसार वह विभिन्न योनियों में जन्म लेता है ।

भावार्थ दीपिका

शुक्लं सात्त्विकम् । कृष्णं तामसम् । लोहितं राजसम् । यथा कर्म तथा जायते ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

शुक्ल अर्थात् सात्त्विक कृष्णम् अर्थात् तामस लोहितम् अर्थात् राजस इन तीनों प्रकार के कर्मों को करता रहता है और अपने कर्मों के ही अनुसार विभिन्न योनियों में जन्म लेता है ॥२७॥

शुक्लात्प्रकाशभूयिष्ठाँल्लोकानाप्नोति कर्हिचित् । दुःखोदर्कान् क्रियायासांस्तमःशोकोत्कटान्क्वचित्॥२८॥

अन्वयः— कर्हिचित् शुक्लात् प्रकाशभूयिष्ठान् लोकान् आप्नोति, कर्हिचित् दुःखोदर्कान् क्रियायासान् क्वचित् तमः शोकोत्कटान् लोकानाप्नोति ॥२८॥

अनुवाद— कभी सात्त्विक कर्मों के करने के कारण प्रकाश बहुल स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है, कभी राजसी कर्मों के कारण दुःखमय रजोगुणी लोकों में जाता है और कभी तमोगुणी कर्मों के कारण शोक बहुल तमोमयी योनियों में जाता हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-शुक्लादिति द्वाभ्याम् । प्रकाशो भूयिष्ठो येषु । दुःखमुदर्क उत्तरफलं येषु । क्रियया आयासो येषु तान् लोहितान्। तमःशोकावुत्कटौ येषु तान् कृष्णादिति ज्ञेयम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

कर्मों के अनुसार फल की प्राप्ति का वर्णन **शुक्लात्० इत्यादि** दो श्लोकों से करते है । सात्त्विक कर्मों को करने के कारण प्रकाश बहुल स्वार्गादि लोकों को प्राप्त करता है । राजसी कर्म के कारण दुखमय तथा प्रयास बह्हुल कर्मों को करता है तथा तामसी कर्मों के कारण तमोगुण बहुल तथा शोक बहुल लोकों को प्राप्त करते हैं।।२८।।

क्वचित्पुमान् क्वचिच्च स्त्री क्वचिन्नोभयमन्धधीः । देवो मनुष्यस्तिर्यग्वा यथाकर्मगुणं भवः ।।२९।।

अन्वयः— यथा कर्मगुणं देवः मनुष्यः तिर्यग् वा अन्धधीः क्वचित् पुमान्, क्वचित् स्त्री, क्वच्चिनोभयं भवः ।।२९।।

अनुवाद— अपने कर्म तथा गुण के अनुसार मनुष्य, देवता, मनुष्य तथा तिर्यक् योनि में जन्म लेकर कहीं पुरुष, कहीं स्त्री तथा कहीं नपुंसक होता है ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

नोभयं नपुंसकम् । यथाकर्मगुणं कर्मगुणावनतिक्रम्य ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

नोभयम् का अर्थ नपुंसक है । अपने कर्म और गुण के अनुसार यह यथाकर्म गुणम् का अर्थ है ।।२९।।

क्षुत्परीतो यथा दीनः सारमेयो गृहं गृहम् । चरन्विन्दति यद्दिष्टं दण्डमोदनमेव वा ।।३०।।
तथा कामाशयो जीव उच्चावचपथा भ्रमन् । उपर्यधो वा मध्ये वा याति दिष्टं प्रियाप्रियम्।।३१।।

अन्वयः— यथा क्षुत्परीतः दीनः सारमेयः गृहम् गृहम् चरन् यथा दिष्टं दण्डम्ओदनं वा विन्दति तथा कर्माशयः जीवः उच्चावच्च पथा भ्रमन् उपरि अधो वा मध्येवा यथा दिष्टं प्रियाप्रियम् याति ।।३०-३१।।

अनुवाद— जिस तरह भूख से व्याकुल होकर दीन बना हुआ कुत्ता, धर, धर में जाता है और अपने भाग्य के अनुसार दण्डा खाता है और कहीं भात खाता है, इसी प्रकार यह जीव भी अपने चित्त में अनेक प्रकार वासनाओं के कारण ऊपर नीचे अथवा बीच के लोक में जाता है और अपने कर्मों के अनुसार तथा दुःख को प्राप्त करता है ।।३०-३१।।

भावार्थ दीपिका

तेषु दैववशेन सुखदुःखे प्राप्नोतीति सदृष्टान्तमाह द्वाभ्याम् । क्षुधा परीतो व्याप्तः सारमेयः श्वा । दण्डं दण्डेन ताडनम्। कामव्याप्त आशयो यस्य ।।३०-३१।।

भाव प्रकाशिका

उन लोकों में जीव अपने प्रारब्धानुसार सुखों तथा दुःखों को प्राप्त करता है, इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक दो श्लोकों में कहते हैं । जैसे भूख से व्याकुल कुत्ता धर-घर में जाता है और प्रारबधानुसार दण्डा अथवा भात खाता है, उसी तरह जीव भी कामनाओं अन्तःकरण में व्याप्त होने के कारण सुख और दुःख को प्राप्त करता है ।।३०-३१।।

दुःखेष्वेकतरेणापि दैवभूतात्महेतुषु । जीवस्य न व्यवच्छेदः स्याच्चेत्तत्तत्प्रतिक्रिया ।।३२।।

अन्वयः— दैवभूतात्म हेतुषुएकतरेणापि जीवस्य व्यवच्छेदः न, स्यात् चेत् तत्-तत् प्रतिक्रिया ।।३२।।

अनुवाद— आधि दैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक इन तीनों दुःखों में किसी एक दुःख से भी किसी एकान्तिक मुक्ति नहीं होती है । यदि हो भी जाती है तो उसकी प्रतिक्रिया होती है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि सुखस्य संभवाद्दुःखस्य च प्रतीकारसंभवान्नैकान्ततो हेयत्वं तत्राह–दुःखेष्विति । दुःखस्य प्रतीकारस्तावन्नास्ति। स्याच्चेतसः तस्य प्रतिक्रिया तथापि त्रिविधेषु दुःखेषु मध्ये एकतरेणापि दुःखेन व्यवच्छेदो वियोगो नास्ति ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि यहाँ भी सुख का होना सम्भव है, और उत्पन्न दुःख का प्रतिकार भी किया जा सकता है अतएव यह एकान्ततः त्याज्य ही हो ऐसी बात नहीं है । इस पर नारदजी दुःखेषु इत्यादि श्लोक कहते हैं । दुःखों का प्रतिकार किया जाना सम्भव है ही नहीं यदिकार किया भी जाय तो उसकी प्रतिक्रिया होगी । फिर भी तीन प्रकार के जो आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक जो दुःख हैं उनमें से एक भी दुःख को समाप्त नहीं किया जा सकता है ।।३२।।

यथा हि पुरुषो भारं शिरसा गुरुमुद्वहन् । तं स्कन्धेन स आधत्ते तथा सर्वाः प्रतिक्रियाः।।३३।।

अन्वयः— यथा हि पुरुषः गुरुम् भारम् शिरसा उद्वहन् तं स्कन्धेन आधते तथा सर्वाः प्रतिक्रिया ।।३३।।

अनुवाद— जैसे कोई शिर पर भारी बोझ ढो रहा है और उसको कन्धे पर रख ले उसी तरह सारी प्रतिक्रियाएँ (दुःखों की निवृत्ति) है । यदि मनुष्य किसी प्रकार से एक प्रकार के दुःख से मुक्ति पाता है तो दूसरा दुःख आकर उसे घेर लेता है ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

प्रतिक्रियाणामपि दुःखरूपत्वादिति सदृष्टान्तमाह–यथा हीति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

प्रतिक्रियाएँ भी दुःख रूप हैं इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक नारदजी ने **यथा हि० इत्यादि** श्लोक से कहा है ।।३३।।

नैकान्ततः प्रतीकारः कर्मणां कर्म केवलम् । द्वयं ह्यविद्योपसृतं स्वप्ने स्वप्न इवानघ ।।३४।।

अन्वयः— अनघ ! कर्मणाम् एकान्ततः प्रतिकारः केवलं कर्म न द्वयं हि अविद्योपसृतं स्वप्ने स्वप्न इव ।।३४।।

अनुवाद— शुद्ध हृदय राजन् कर्मों का सदा-सदा के लिए केवल कर्म प्रतिकार है नहीं है क्यों दोनों उसी तरह अविद्यात्मक हैं जिस तरह स्वप्न में होने वाला स्वप्न भी अविद्यात्मक ही होता है ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

दुःखस्य मूलभूतानि कर्माणि प्रतिक्रियादिकर्मभिर्नैव निवर्तन्त इत्याह । नैकान्ततोऽत्यन्तं सवासनम् । कवेलं ज्ञानरहितम्। अविद्ययोपसृतं प्राप्तम् । अतोऽविरोधान्न निवर्तकत्वमिति भावः । अत्र दृष्टान्तः । स्वप्ने दृष्टः स्वप्नः प्रबोधं विना यथा तं स्वप्नमत्यन्तं न प्रतिकरोतीत्यर्थः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

दुःखों के मूल कारण कर्म हैं, उनकी निवृत्ति प्रतिक्रिया रूप कर्मो के द्वारा नहीं हो सकती है । केवलम् कर्म का अर्थ है ज्ञान रहित कर्म । अविद्योपसृतम् का अर्थ है अविद्या से प्राप्त है । अतएव वह केवल कर्म पूर्व कर्म का विरोधी नहीं है, अतएव वह पूर्व कर्म का निवर्तक नहीं है । उदाहरणार्थ स्वप्न में देखा जाने वाला स्वप्न पूर्व स्वप्न का निवर्तन नहीं है । जब तक मनुष्य जगता नहीं है तब तक वह पूर्व स्वप्न का आत्यन्तिक नाश नहीं कर सकता है ।।३४।।

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते । मनसा लिङ्गरूपेण स्वप्ने विचरतो यथा ॥३५॥

अन्वयः— लिङ्गरूपेण मनसा स्वप्ने विचरतः यथा अविद्यमानेऽपि अर्थे संसृतिः न निवर्तते ॥३५॥

अनुवाद— जिस तरह स्वप्नावस्था में मनोमय लिङ्ग शरीर से विचरण करने वाले प्राणी को अविद्यमान भी विषय की प्रतीति होती ही रहती है उसी तरह जब तक अज्ञान रूपी निद्रा नहीं समाप्त होती है तब तक ये दृश्य पदार्थ नहीं होने पर भी बने रहते ही हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्ह्यज्ञानविलसितत्वेन संसृतिहेतोर्देहादेरप्यसत्त्वात्किं तन्निवर्तनप्रयासेन तत्राह–अर्थे हीति । लिङ्गरूपेणोपाधिभूतेन॥३५॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो की संसार के कारण भूत देह इत्यादि भी अज्ञान जन्य होने के कारण मिथ्या हैं । उनकी निवृत्ति का प्रयास करने से कौन सा लाभ है ? इस पर नारदजी **अर्थे हि० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । लिङ्गरूपेण का अर्थ है उपाधि भूत लिङ्ग शरीर के द्वारा ॥३५॥

अथात्मनोऽर्थभूतस्य यतोऽनर्थपरम्परा । संसृतिस्तद्व्यवच्छेदो भक्तया परमया गुरौ ॥३६॥

अन्वयः— अथ अर्थभूतस्य आत्मनः यतः अनर्थ परम्परा संसृतिः तद् व्यवच्छेदः गुरौ परमया भक्त्या ॥३६॥

अनुवाद— जिस सत्य स्वरूप आत्मा की अनर्थ परम्परा अविद्या की निवृत्ति परम गुरु श्रीभगवान् में परमा भक्ति के द्वारा ही होती है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं संसृतिप्रकारमुक्त्वा तन्निवृत्तिप्रकारमाह । अथ तस्मात्पुरुषार्थभूतस्यैवात्मनो यतोऽज्ञानान्मनसो वाऽनर्थपरम्परारूपा संसृतिर्भवति तस्य व्यवच्छेदो गुरुरूपे वासुदेव भक्त्यैव ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से अविद्या जन्य संसार प्राप्ति का वर्णन करके उसकी निवृत्ति का प्रकार बतलाते हुए नारदजी कहते हैं । पुरुषार्थ भूत आत्मा की चूकि अज्ञान से अथवा मन से अनर्थ की परम्परा रूप संसृति होती है उसका नाश गुरु स्वरूप भगवान् वासुदेव में भक्ति के द्वारा ही होती है ॥३६॥

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः । सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ॥३७॥

अन्वयः— वासुदेवे भगवति समाहितः भक्तियोगः सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ॥३७॥

अनुवाद— भगवान् वासुदेव में एकाग्रमना होकर की गयी भक्ति अच्छी तरह वैराग्य और ज्ञान को उत्पन्न करता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

ननु संसृतिनिवृत्तिर्वैराग्यपूर्वकाज्ज्ञानादेव नतु भक्त्या 'तरति शोकमात्मवित्' इत्यादिश्रुतेस्तत्राह– वासुदेव इति । सध्नीचीनेन समीचीनेन प्रकारेण ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि संसार चक्र रूपी अनर्थ की निवृत्ति तो वैराग्य एवं ज्ञान के द्वारा होती है भक्ति से क्या लाभ है ? श्रुति भी कहती है **तरति शोकम् आत्मवित्** अर्थात् आत्मज्ञ पुरुष इस संसार चक्र को पार कर जाता है तो इस पर नारदजी वासुदेवे इत्यादि श्लोक को कहते हैं । अर्थात् एकाग्रमना होकर भगवान् वासुदेव की की गयी भक्ति से वैराग्य तथा ज्ञान अच्छी तरह से उत्पन्न होते हैं ॥३७॥

सोऽचिरादेव राजर्षे स्यादच्युतकथाश्रयः । शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदा स्यादधीयतः ॥३८॥

अन्वयः— राजर्षे सः अच्युतकथाश्रय शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदा अधीयतः अचिरादेव स्यात् ॥३८॥

अनुवाद— राजर्षे ! वह भक्तियोग श्रीभगवान् की कथा के अधीन है, जो उसे नित्य ही श्रद्धा पूर्वक सुनता है अथवा अध्ययन करता है, उसे शीघ्र ही भक्तिभाव उत्पन्न हो जाता है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

नन्वसौ महाफलो भक्तियोगः कथं स्यादत आह । स त्वच्युतस्य कथामाश्रित्य वर्तमानोऽचिरात्स्यात् । कस्य स्यात्तदाह। शृण्वतोऽधीयानस्य च ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

यह भक्तियोग महान् फलवान है, उसकी प्राप्ति कैसे सम्भव है तो इस पर नारदजी कहते हैं वह भक्तियोग तो भगवान् अच्युत की कथा के अधीन वर्तमान होने के कारण शीघ्र ही हो सकता है । प्रश्न है कि किसको प्राप्त होता है तो इसका उत्तर है कि जो श्रद्धा पूर्वक उसको सुनता है अथवा पढ़ता है, उसको होता है ॥३८॥

यत्र भागवता राजन् साधवो विशदाशयाः । भगवद्गुणानुकथनश्रवणव्यग्रचेतसः ॥३९॥

अन्वयः— हे राजन् ! यत्र भगवद् गुणानुकथन श्रवण व्यग्रचेतसः विशदाशयाः साधवः ॥३९॥

अनुवाद— राजन् ! जहाँ पर श्रीभगवान् के गुणों को कहने और सुनने में तत्पर रहने वाले विशुद्ध चित्त भक्त जन रहा करते हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

कुत्र स्यात्तदाह-यत्रेति । भगवतो गुणानुकथने श्रवणे च व्यग्रं सत्वरं चेतो येषां ते ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि भगवद् भक्ति की प्राप्ति कहाँ पर शीघ्र प्राप्त होती है तो इसका उत्तर नारदजी **यत्र० इत्यादि** श्लोक के द्वारा देते हैं श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन करने और सुनने में जिन भागवतों का मन सदैव तत्पर रहता है, वे भगवद् भक्त जन जहाँ पर रहा करते हैं ॥३९॥

तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्रपीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति ।
ता ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढकर्णैस्तान्न स्पृशन्त्यशनतृड्भयशोकमोहाः ॥४०॥

अन्वयः— नृप तस्मिन् महन् मुखरिता मधुभित् चरित्र पीयूष शेष सरितः परितः स्रवन्ति ता ये अवितृषः गाढ कर्णैः पिबन्ति तान्अशनतृड्भयशोक मोहाः न स्पृशन्ति ॥४०॥

अनुवाद— उस समाज में महापुरुषों के मुख से निकली हुई भगवान् मधुसूदन के चरित्र रूप शुद्ध अमृत की सब ओर से अनेकों नदियाँ प्रवाहित होती रहती हैं । जो लोग अतृप्त चित्त से अपने कर्ण कुहरों द्वारा उस अमृत का पान करते हैं उनको भूख, प्यास, शोक, मोह आदि कोई भी बाधित नहीं कर सकते हैं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

ननु साधुसङ्गं बिना स्वयमेव हरिकथाचिन्तनादिना भक्तिर्भवेदेवेत्याशङ्क्याह द्वाभ्याम् । तस्मिन्स्थाने महद्भिर्मुखरिताः कीर्तिताः । मधुभिदश्चरित्रमेव पीयूषः तदेव शिष्यत इति शेषो यासु । आसाराशरहितशुद्धाभृतवाहिन्य इत्यर्थः । अवितृषोऽलंकृद्विशून्याः सन्तो गाढैः सावधानैः कर्णैर्ये ताः सरितः पिबन्ति सेवन्ते । अशनशब्देन क्षुल्लक्ष्यते । अशनादयस्तान्न स्पृशान्ति । भक्तिरसिकान्न बाधन्त इत्यर्थ ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि सन्तों की सङ्गति के बिना भी स्वयम् ही श्रीहरि की कथा का चिन्तन करने से भक्ति उत्पन्न हो ही सकती है, इस तरह की शङ्का करके दो श्लोकों द्वारा कहते हैं। सज्जनों के समाज में महापुरुषों के मुख से निकली हुई भगवान् मधुसूदन का चरित्र रूपी अमृत से परिपूर्ण वर्षा की आशा से रहित शुद्ध सरिताएँ प्रवाहित होती है। जो लोग अतृप्त चित्त से तथा सावधान कानों से उन सबों का पान करते है। उन भक्ति रसिकों को भूख, प्यास, शोक तथा मोह आदि कभी बाधित नहीं कर पाते हैं ॥४०॥

एतैरुपद्रुतो नित्यं जीवलोकः स्वभावजैः । न करोति हरेर्नूनं कथामृतनिधौ रतिम् ॥४१॥

अन्वयः— एतै स्वभावजैः नित्यम् उपद्रुतोजीवलोकः नूनम् हरिकथनिधौ रतिम् न करोति ॥४१॥

अनुवाद— इन स्वभावतः प्राप्त भूख प्यास आदि उपद्रवों से सदैव उपद्रुत रहने वाला जीव समुदाय निश्चित रूप से श्रीहरि के कथामृत सिन्धु से प्रेम नहीं कर पाता है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

सत्सङ्गमन्तरेण स्वयमेव कथाचिन्तनादावालस्यादिना रसावेशाभावाच्च क्षुत्पिपासाद्यभिभूतस्य भक्तिर्न संभवतीत्याहएतैरिति ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

एतैः इत्यादि श्लोक के द्वारा नारदजी ने बतलाया कि सत्सङ्ग के बिना स्वयम् ही कथा के चिन्तन आदि में आलस्य आदि, रसावेश के अभाव के कारण तथा भूख प्यास आदि से अभिभूत होने के कारण भक्ति नहीं हो सकती हैं ॥४१॥

प्रजापतिपतिः साक्षाद्भगवान्गिरिशो मनुः । दक्षादयः प्रजाध्यक्षा नैष्ठिकाः सनकादयः॥४२॥
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । भृगुर्वसिष्ठ इत्येते मदन्ता ब्रह्मवादिनः ॥४३॥
अद्यापि वाचस्पतयस्तपोविद्यासमाधिभिः । पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति पश्यन्तं परमेश्वरम्॥४४॥

अन्वयः— साक्षात् प्रजापति पति, भगवान् गिरिशः मनुः दक्षादयः प्रजाध्यक्षाः, सनकादयः नैष्ठिकाः, मरीचिरङ्गिरसौ, पुलस्त्य, पुलहः क्रतुः, भृगुः वसिष्ठः इत्येते मदन्ताः ब्रह्मवादिनः वाचस्पतयः तपोविद्यासमाधिभिः पश्यन्तः आपि पश्यन्तं परमेश्वरम् अद्यापि न पश्यन्ति ॥४२-४४॥

अनुवाद— साक्षात् प्रजापतियों के भी पति ब्रह्माजी, भगवान् शङ्कर स्वायम्भुव मनु, दक्ष आदि प्रजापति गण, सनकादि नैष्ठिक, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ और मैं ये जितने ब्रह्मवादी गण हैं, समस्त वाङ्मय के अधिपति होकर भी, तपस्या उपासना और समाधि के द्वारा ढूँढ ढूँढकर हार गये फिर भी उन सर्वज्ञ परमात्मा को आज तक नहीं जान पाये ॥४२-४४॥

भावार्थ दीपिका

भगवदनुग्रहमन्तरेण तु न कस्यापि ज्ञानसंभव इति कैमुत्यन्यायेनाह चतुर्भि; । प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा । मदन्ताः अहं नारदोऽन्ते येषाम् । वाचां पतयोऽपि तपोविद्यासमाधिभिरुपायैः पश्यन्तो विचिन्वन्तोऽपि पश्यन्तं सर्वसाक्षिणं न पश्यन्ति ॥४२-४४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की कृपा के बिना किसी को भी ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता है इस बात को नारदजी कैमुत्य न्याय के द्वारा चार श्लोकों में कहते हैं। प्रजापति पति अर्थात् ब्रह्माजी। **मदन्तः** अर्थात् मैं (नारद) जिनके अन्त में

हूँ, ये सभी समस्त वाङ्मय के ज्ञाता होने पर भी तपस्या, उपासना और समाधि रूप उपायों के द्वारा अन्वेषण करते हुए सबों के साक्षी परमेश्वर को नहीं जान सके ॥४२-४४॥

शब्दब्रह्मणि दुष्पारे चरन्त उरुविस्तरे । मन्त्रलिङ्गैर्व्यवच्छिन्नं भजन्तो न विदुः परम् ॥४५॥

अन्वयः— उरुविस्तरे दुष्पारे शब्द ब्रह्मणि चरन्तः मन्त्र लिङ्गैः व्यवच्छिनं भजन्तः परम न विदुः ॥४५॥

अनुवाद— अत्यन्त विस्तृत जिसकोपार करना अत्यन्त कठिन है, इस प्रकार के वेदों का जो सदा चिन्तन किया करते हैं। अनेक महानुभाव उन वेदों का विचार करके मन्त्रों में वर्णित वज्रहस्त त्वादि इन्द्रिादि देवताओं के रूप में विद्यमान परमेश्वर का यजन करते हैं किन्तु उनको नहीं जानते हैं ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

कुत इत्यत आह । शब्दब्रह्मणि वेदे उरुर्विस्तरो यस्य । अर्थतोऽपि पारशून्ये तस्मिन्वर्तमानाः । मन्त्राणां लिङ्गैर्वज्रहस्तत्वादिगुणयुक्तविविधदेवताभिधानसामर्थ्यैः परिच्छिन्नमेवेन्द्रादिरूपं तत्तत्कर्माग्रहेण भजन्तः परं परमेश्वरं न विदुः॥४५॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि क्यों नहीं जानते हैं ? तो इसके उत्तर में नारदजी **शब्दब्रह्मणि० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। अत्यन्त विस्तृत वेदों को अर्थ को भी समझना अत्यन्त कठिन है, किन्तु उस वेद का ही चिन्तन करते रहने वाले अनेक महानुभाव, मन्त्रों के वज्रहस्तत्व आदि अनेक इन्द्रादि देवताओं के नाम के सामर्थ्य से इन्द्रादि देवताओं के नाम से परमात्मा की आराधना तो करते हैं किन्तु वे उन परमात्मा को नहीं जान पाते हैं ॥४५॥

यदा यमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः । स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ॥४६॥

अन्वयः— आत्मभावितः भगवान् यदा यमनु गृह्णाति स लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् बुद्धिं जहाति ॥४६॥

अनुवाद— हृदय में बार-बार चिन्तन किए जाने पर श्रीभगवान् जिस समय जिस जीव को अनुगृहीत करते है, उस समय वह मनुष्य लौकिक व्यवहार और वैदिक कर्म मार्ग में बद्धमूल आस्था का परित्याग कर देते हैं ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

तर्ह्यन्यः को नाम कर्माद्याग्रहं हित्वा परमेश्वरमेव भजेदित्यत आह । यदा यमनुगृह्णाति । अनुग्रहे हेतुः-आत्मनि भावितः सन् । स तदा लोके लोकव्यवहारे वेदे च कर्ममार्गे परिनिष्ठितां मतिं त्यजति ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

तो प्रश्न होता है कि कौन पुरुष कर्मों आदि के आग्रह को छोड़कर श्रीभगवान् का ही भजन करता है। तो इस पर नारदजी कहते हैं जिस समय परमात्मा जिसको अपनी कृपा का पात्र बना लेते हैं वही व्यक्ति उसी समय लोक व्यवहार और वैदिक कर्मों रूढमूल बुद्धि का परित्याग करके भगवान् का भजन ही करते है। भगवान् की कृपा का कारण उन्होंने बतलाया मन में बार-बार चिन्तन करना ॥४६॥

तस्मात्कर्मसु बर्हिष्मन्नज्ञानादर्थकाशिषु । मार्थदृष्टिं कृथाः श्रोत्रस्पर्शिष्वस्पृष्टवस्तुषु ॥४७॥

अन्वयः— तस्मात् हे बर्हिष्मन् अज्ञानादर्थकाशिषु कर्मसु श्रोत्रस्पर्शिषु अस्पृष्ट वस्तुषु अर्थदृष्टिं मा कृथाः ॥४७॥

अनुवाद— अतएव हे प्राचीनबर्हि अज्ञान के कारण परमार्थ के समान प्रतीत होने वाले सुनने में प्रिय प्रतीत होने वाले किन्तु पारमार्थ्य से रहित इन कर्मों में परमार्थ बुद्धि का परित्याग कर दो ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

अर्थकाशिषु परमार्थत्वेन प्रकाशमानेषु पुरुषार्थबुद्धिं मा कृथाः । प्ररोचनाय केवलं श्रोत्रप्रियेषु । न स्पृष्टं वस्तु यैः॥४७॥

भाव प्रकाशिका

परमार्थ के समान प्रतीत होने वाले इन कर्मों में परमार्थ वुद्धि मत करो । ये प्रशंसा मात्र होने के कारण केवल सुनने में परमार्थ प्रतीत होते हैं, किन्तु ये परमार्थ नहीं हैं ।।४७।।

स्वं लोकं न विदुस्ते वै यत्र देवो जनार्दनः । आहुर्धूम्रधियो वेदं सकर्मकमतद्विदः ।।४८।।

अन्वयः— धूम्रधियं वेदं सकर्मकम् आहुः किन्तु अतद्विदः ते स्वंलोकं न विदुः यत्र देवो जनार्दनः ।।४८।।

अनुवाद— जिन लोगों की बुद्धि मलिन है वे वेदों को कर्म परक कहते हैं । वे वेदों के तात्पर्य को नहीं जानते हैं । वे लोग अपने स्वरूपानुरूप उस लोक को नहीं जानते हैं, जहाँ पर भगवान् जनार्दन रहते हैं ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

ननु वेदेन स्वर्गादिसाधनत्वेनोक्तानि कर्माणीति वेदवादिनो वदन्ति कथमस्पृष्टवस्तुष्वित्युच्यते तत्राह । ये धूम्रधियो मलिनवुद्धयः सकर्मकं कर्मपरं वेदमाहुस्ते अतद्विदोऽवेदज्ञाः । यतस्ते स्वं स्वरूपभूतं लोकमात्मतत्त्वं वेदतात्पर्यगोचरं न विदुः। यत्र देवोऽस्ति ।।४८।।'

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि वेद तो कर्मों को स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति के साधन रूप से बतलाता है इस प्रकार से वैदिक पुरुष कहते हैं अतएव आप उन सवों को अपरमार्थ कैसे कहते हैं ? तो इस पर नारदजी ने कहा कि जिन लोगें की बुद्धि मलिन है वे कहते हैं कि वेद कर्म परक हैं । वे वेदों के मर्म को नहीं जानते हैं क्योंकि वे स्वरूप भूत उस आत्मतत्व को नहीं जानते जो जिसके प्रतिपादन में वेदों का तात्पर्य हैं, जहाँ पर श्रीभगवान् का निवास है।।४८।।

आस्तीर्य दर्भैः प्रागग्रैः कात्स्न्र्येन क्षितिमण्डलम् । स्तब्धो बृहद्वधान्मानी कर्म नावैषि यत्परम् ॥
तत्कर्म हरितोषां यत्सा विद्या तन्मतिर्यया ।।४९।।

अन्वयः— प्रागग्रैः दर्भै कात्स्न्र्येन क्षितिमण्डलम् आस्तीर्य स्तब्धः बृहद् वधान् मानी यत्परं कर्म तत्नावैर्षि तत् कर्म हरितोषं यत् सा विद्या या विमुक्तये ।।४९।।

अनुवाद— पूर्व की ओर अग्रभाग करके कुशों से समस्त क्षितिमण्डल को आच्छादित करके अनेक पशुओं का वध करने वाले तुम अपने को धार्मिक समझते हो अतएव अभिमान युक्त हो गये हो । कर्मों के तात्पर्य को तुम नहीं जानते हो । कर्म वही है जिससे श्रीहरि को प्रसन्न किया जा सके तथा विद्या वहीं है जिसके द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

त्वं तु महामूर्ख इत्याह-आस्तीर्येति । बृहद्वधात् बहुपशुवधात् । मानी यज्वाहमित्यहंकारी । अतः स्तब्धोऽविनीतः सन्कर्म नावैषि। परं विद्यास्वरूपं तच्च न वेत्सि । नारदः स्वयं कृपया तद्वयं निरूपयति । हरिं तोषयतीति हरितोषं यत्तदेव कर्म । यया तस्मिन्हरौ मतिर्भवति सैव विद्या । महाफलत्वात् ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

तुम तो महामूर्ख हो इस बात को नारदजी ने **आस्तीर्य० इत्यादि** श्लोक से कहा है । अनेक पशुओं का वध करने से तुम मानते हो कि मैं यज्ञ करने वाला हूँ यह तुमको अहङ्कार हो गया है । अतएव तुम उद्धत हो गये हो और कर्म के स्वरूप को नहीं जानते हो । और उपासना का स्वरूप क्या है ? इस बात को भी नहीं जानते हो कृपा परतन्त्र होकर नारदजी स्वयं कर्म और उपासना दोनों के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहते हैं । जिसके द्वारा श्रीहरि को प्रसन्नता होती है, वही कर्म है तथा जिसके द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है, वही विद्या (उपासना) है ।।४९।।

हरिर्देहभृतामात्मा स्वयं प्रकृतिरीश्वरः । तत्पादमूल शरणं यतः क्षेमो नृणामिह ॥५०॥

अन्वयः— हरिः देहभृताम् आत्मा स्वयं प्रकृति ईश्वरः तत्पादमूलं शरणम् यतः इह नृणाम् क्षेमः ॥५०॥

अनुवाद— श्रीहरि देहधारियों की आत्मा हैं, नियामक और स्वतंत्र कारण हैं। श्रीभगवान् के चरणों के तलवे ही एकमात्र शरण (रक्षक) है, उनसे ही संसारी जीवों का कल्याण होता है ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

कुत इत्यपेक्षायां हरेः परमफलत्वं दर्शयन्नाह द्वाभ्याम्। हरिर्देहभृतामात्मा ईश्वरश्च। तत्र हेतुः- स्वयं स्वातंत्र्येण प्रकृतिः कारणमतस्तेषां तत्पादमूलमेव शरणमाश्रयः। यतो यस्मिन् ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

यदि पूछें कि यह कैसे तो इस पर नारदजी श्रीहरि को महान् फलरूप से बतलाते हुए दो श्लोकों को कहते हैं— श्रीहरि सभी शरीरधारियों की आत्मा और नियामक हैं। उसका कारण यह है कि वे जगत् के स्वतंत्र कारण हैं। अतएव उन जीवों का एकमात्र आश्रय श्रीभगवान् के चरणों के तलवे ही हैं। उन चरणों से ही जीवों का कल्याण सम्भव हैं ॥५०॥

स वै प्रियतमश्चात्मा यतो न भयमण्वपि । इति वेद स वै विद्वान्यो विद्वान्स गुरुर्हरिः ॥५१॥

अन्वयः— यतः अण्वपि भयं न सवै प्रियतमः आत्मा इति य वेद स वै विद्वान् यः विद्वान् सगुरुः हरिः ॥५१॥

अनुवाद— जिससे थोड़ा सा भी भय न हो वह प्रियतम आत्मा है। इस प्रकार से जानने वाला ही विद्वान् है, जो विद्वान् है वही गुरु है तथा वही साक्षात् श्रीहरि है ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

नच तद्भजनेऽन्यभजन इव दुःखं भयं चेत्याह-स वा इति। इति यो वेद स एव विद्वान्स गुरुः स एव हरिश्च ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

उन श्रीहरि के भजन में दूसरों के भजन के समान दुःख तथा भय नहीं होता है। इस बात को नारदजी ने **सवै० इत्यादि** श्लोक से कहा है जिससे थोड़ा सा भी भय नहीं होता वही प्रियतम आत्मा है, इस प्रकार से जानने वाला ही विद्वान् है, वही गुरु तथा साक्षात् श्रीहरि है ॥५१॥

नारद उवाच

प्रश्न एवं हि संछिन्नो भवतः पुरुषर्षभ । अत्र मे वदतो गुह्यं निशामय सुनिश्चितम् ॥५२॥

अन्वयः— हे पुरुषर्षभ ! एवं हि तव प्रश्नः संछिन्नः अत्र सुनिश्चित तं गुह्यं वदतः निशामय ॥५२॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— हे पुरुष श्रेष्ठ ! राजन् इस तरह से मैंने आपके प्रश्न का उत्तर दे दिया, अब मैं तुम्हे एक सुनिश्चित तथा गोपनीय साधन बतला रहा हूँ उसे तुम ध्यान पूर्वक सुनो ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

उक्तमुपसंहरति-प्रश्न इति। एवं भवतः प्रश्नः संछिन्नः परिहृतः। तदेवमात्मनो बन्धमोक्षप्रकारे कथारूपेण कथितेऽपि नातिनिर्विण्णचित्तं पुत्रागमनं प्रतीक्षमाणं सन्तं तत्क्षणमेव महाभयकम्पितसकलगात्रं गृहान्निर्वासयितुं हरिणरूपकमाह-अत्रेति। वदतो मे वचः शृणु ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

अपने कथन का उपसंहार करते हुए नारदजी **प्रश्न इत्यादि** श्लोक कहते हैं इस तरह से आपके प्रश्न का उत्तर मैंने दे दिया । इस तरह से आत्मा के बन्धन और मोक्ष के प्रकार के कथा के रूप में कहने पर भी राजा का चित्त अत्यधिक विरक्त नहीं हुआ था, वे अपने पुत्रों (प्रचेताओं) के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे उसी समय राजा को भयभीत करके गृह से निकालने के लिए नारदजी ने हरिण रूपक के माध्यम से **अत्र० इत्यादि** श्लोकार्द्ध से कहा । मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसे तुम सुनो ॥५२॥

क्षुद्रंचरं सुमनसां शरणे मिथित्वा रक्तं षडङ्घ्रिगणसामसु लुब्धकर्णम् ।
अग्रे वृकानसुतृपोऽविगणय्य यान्तं पृष्ठे मृगं मृगय लुब्धकबाणभिन्नम् ॥५३॥

अन्वयः— क्षुद्रं चरं सुमनसां शरणे मिथित्वा रक्तं षडङ्घ्रिगणसामसुलुब्ध कर्णम् । अग्रे असुतृपः वृकान् अविगणय्य यान्तं मृगं लुब्धक बाण भिन्नम् ॥५३॥

अनुवाद— पुष्प वाटिका में अपनी हरिणी के साथ विहार करने वाला एक हरिन मस्ती से घूम रहा है और छोटे-छोटे घासों के अङ्कुर की चर रहा है । उसके कान भौंरों के गुञ्जार में लगे हैं । उसके सामने ही दूसरे जीवों को मारकर अपने पेट भरने वाले वृकों की परवाह किए बिना घूमने वाले और पीछे से व्याध के बाण से विधे हुए उस हिरण की दशा पर विचार तो करो ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

क्षुद्रमल्पं चरतीति तथा तम् । अलुक् । सुमनसां पुष्पाणां शरणे आश्रमे वाटिकायां मिथित्वा मिथः परस्परं स्त्रिया सह मिलित्वा तत्रैव रक्तमासक्तम् । षडङ्घ्रयो भ्रमरास्तेषां गणास्तेषां सामसु गीतेषु लुब्धः कर्णो यस्य तम् । परेषामसुभिर्हृतैः स्वीयानसूंस्तर्पयन्तीत्यसुतृपः तानविगणय्यागणयित्वा । लुब्धकस्य बाणेन भिन्नं मृगं मृगय अन्वेषय ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

छोटे-छोटे घासों को चरने वाले यह क्षुद्रंचरम् का अर्थ है । क्षुद्रं चरं मे अलुक् समास है यह सुमनसां शरणे अर्थात् पुष्प वाटिका में, मिथित्वा अर्थात् अपनी हरिणी के साथ मिलकर विहार करने वाले पुष्पों के मधुर और सुगन्धि के ही समान अत्यल्प काम्य कर्मो के परिणाम स्वरूप जिह्वा और उपस्थेन्द्रियों का अल्प सुख को भोगने वाले जिसके कान भौंरों के गुञ्जार को सुनने में लगे हैं । अपने सामने दूसरे जीवों को मारकर अपने पेट को भरने वाले वृकों की परवाह नहीं करने वाले तथा बहेलिए के बाण से घायल उस मृग की दशा पर विचार करों ॥५३॥

सुमनःसमधर्मणां स्त्रीणां शरण आश्रमे पुष्पमधुगन्धवत्क्षुद्रतम् काम्यकर्मविपाकजं कामसुखलवं जैह्व्यौपस्थ्यादिविचिन्वन्तं मिथुनीभूय तदभिनिवेशितमनसं षडङ्घ्रिगणसामगीतवदतिमनोहरवनितादिजनालापेष्वतितरामतिप्रलोभितकर्णमग्रे वृकयूथवदात्मन आयुर्हरतोऽहोरात्रान्तान्काललवविशेषानविगणय्य गृहेषु विहरन्तं पृष्ठत एव परोक्षमनुप्रवृत्तो लुब्धकः कृतान्तोऽन्तःशरेण यमिह पराविध्यति तमिममात्मानमहो राजन्भिन्नहृदयं द्रष्टुमर्हसीति ॥५४॥

अनुवाद— उपर्युक्त श्लोक का अभिप्राय इस प्रकार का है पुष्पों के समान देखने में सुन्दर लगने वाली का शरण (गृह) ही पुष्पवाटिका है । पुष्पों के पराग और सुगन्धि के समान अल्प काम्य कर्मों के परिणाम स्वरूप

जिह्वा और उपस्थेन्द्रिय के विषयभूत काम सुख के लेश को तुम ढूंढ रहे हो । स्त्रियों से घिरे हुए तुम्हारे मन उन सबो में ही लगा हुआ है । स्त्रियों तथा पुत्रों आदि की मधुर भौरों का मधुर गुञ्जन है और वह सामगीत के समान अत्यन्त मनोहर है उनमें ही तुम्हारा मन आसक्त हैं, सामने ही वृकों (भेड़ियों) के समूह के समान काल के अंश के समान दिन और रात तुम्हारी आयु काहरण कर रहे हैं, किन्तु तुम उन सबों की परवाह किए बिना ही अपनी गृहस्थी में लगे हुए हो । तुम्हारे पीछे लगा हुआ काल ही बहेलिया है अपने बाणों से तुम्हारे हृदय को बेंध दिया है। राजन् ! इस प्रकार की अपनी आत्मा को देखो ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

श्लोकं प्रस्तुते योजयन्व्याचष्टे । सुमनोभिः समानो धर्मः परिणामविरसत्वं यासां स्त्रीणाम् । मिथित्वेत्यस्य व्याख्या-मिथुनीभूय । स्त्रीभिः सहेति शेषः । रक्तमित्यस्य व्याख्या-तास्वभिनिवेशितं मनो येन । असुतृप इत्यस्य व्याख्या-आयुर्हरत इति । यान्तमित्यस्य व्याख्या-विहरन्तमिति । अन्तर्नलिकायां गूढेन शरेण पराविध्यति दूरादेव ताडयति ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

नारदजी उपर्युक्त श्लोक को राजा प्रचीन बर्हि के साथ अन्वित करते हुए कहते हैं । पुष्पों के समान धर्म वाली स्त्रियाँ हैं जिन सबों का परिणाम विरसत्व में होता है । मिथित्वा की व्याख्या है कि स्त्रियों के साथ रहकर। उन स्त्रियों में ही अभिनिष्ट मन वाले यह मूल के रक्तम् पद की व्याख्या है । आयु का हरण करने वाले यह असुतृप् की व्याख्या है । यान्तम् पद की व्याख्या विहार करने वाले है । तुणीर में स्थित बाण के द्वारा जो दूर से ही मारने का काम करता है काल ॥५४॥

स त्वं विचक्ष्य मृगचेष्टितमात्मनोऽन्तश्चित्तं नियच्छ हृदि कर्णधुनीं च चित्ते ।
जह्यङ्गनाश्रममसत्तमयूथगाथं प्रीणीहि हंसशरणं विरम क्रमेण ॥५५॥

अन्वयः— स त्वम् मृगचेष्टितम् विचक्ष्य आत्मनोऽन्तः चित्तं हृदि नियच्छ, कर्णधुनीं च चित्ते, असत्तमयूथगाथं जहि परमहंस शरणं प्रणीहि क्रमेण विरम् ॥५५॥

अनुवाद— इस प्रकार के तुम अपने को मृग की स्थिति में देखकर अपने चित्त को हृदय में निरुद्ध करो। और कर्णाधुनी अर्थात् नदी के समान विषय पर्यन्त प्रवाहित होने वाली अपनी श्रवणेन्द्रिय बाह्यवृत्ति को अपने चित्त में स्थापित करो, जहाँ कामी पुरुषों की चर्चा होती रहती है । उस गृहस्थाश्रम का परित्याग करों परम हंसों के आश्रय श्रीभगवान् को प्रसन्न करो और क्रमशः सभी विषयों से विरक्त हो जाओ ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

उपदेशसारमाह-स इति । विचक्ष्य विचार्य । अन्तर्हृदि चित्तं कर्णयोर्धुनीं नदीमिव बहिर्वृत्तिं चित्ते नियच्छ । एतश्च सर्वेन्द्रियोपलक्षणार्थम् । अङ्गनाश्रमं गृहाश्रमं च जहि । कीदृशम् । असत्तमानामतिकामुकानां यानि यूथानि तेषां गाथा वार्ता यस्मिन् । हंसानां जीवानां शरणमीश्वरम् । एवं क्रमेण सर्वतो विरम ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में नारदजी अपने उपदेश का सारांश बतलाये हैं । **विचक्ष्य** अर्थात् विचार करके । चित्त को हृदय में निरुद्ध करो । कर्णयो र्धुनीम् अर्थात् बाहय विषयों में जिसकी वृत्ति होती है उस श्रोत्र नदी को अपने चित्त में नियन्त्रित करो । श्रोत्रेन्द्रिय सभी इन्द्रियों का उपलक्षण है । गृहस्थाश्रम का परित्याग कर दो । गृहस्थाश्रम में

तो अत्यन्त कामुकों की ही चर्चा होती रहती है। **हंसशरणं प्रीणीहि** अर्थात् हंसों (जीवों) के शरण (स्वामी) ईश्वर को प्रसन्न करो। इस तरह से तुम सबों से विरम अर्थात् विरक्त हो जाओ ॥५५॥

राजोवाच

श्रुतमन्वीक्षितं ब्रह्मन्भगवान्यदभाषत्। नैतज्जानन्त्युपाध्यायाः किं न ब्रूयुर्विदुर्यदि ॥५६॥

अन्वयः— ब्रह्मन् भगवान् यद्आभाषत, उपाध्याया एतत नहि जानन्ति, यदि विदुः किं न ब्रूयुः ॥५६॥

राजा ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन्! आपने जो कहा है, उसे मैंने ध्यान पूर्वक सुना है और उस पर विचार भी किया है। मुझको कर्मों का उपदेश देने वाले आचार्यगण इसको नहीं जानते हैं यदि वे जानते तो हमको इसका उपदेश क्यों नहीं देते ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

अर्थान्तरं प्रष्टुं पूर्वोक्तमर्थमनुवदति। श्रुतमन्वीक्षितं विचारितं च। ब्रह्मन् हे नारद, एतत्त्वदुक्तमात्मत्वमुपाध्याया ये मम कर्मोपदेष्टार आचार्यास्ते न जानन्ति ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी बात को पूछने के लिए राजा प्राचीन बर्हि पहले के अर्थ का अनुवाद करके कहते हैं। नारदजी मैंने आपके इस उपदेश को सुना है और विचार भी किया है। इस आत्मतत्त्व को मेरे जो कर्मों का उपदेश करने वाले आचार्य हैं, वे इस आत्मतत्त्व को नहीं जानते हैं यदि वे जानते तो उसका उपदेश क्यों नहीं देतें ॥५६॥

संशयोऽत्र तु मे विप्र संछिन्नस्तत्कृतो महान्। ऋषयोऽपि हि मुह्यन्ति यत्र नेन्द्रियवृत्तयः ॥५७॥

अन्वयः— हे विप्र! तत्कृतः अत्र मे महान् संशयः संछिन्नः यत्रनेन्द्रिय वृत्तयः हि ऋषयः अपि मुह्ययन्ति ॥५७॥

अनुवाद— हे विप्रवर मेरे उपाध्यायों ने आत्मतत्त्व के विषय में महान् संशय उत्पन्न कर दिया था उस संशय को आपने पूर्ण रूप से दूर कर दिया है। इस आत्म तत्त्व के विषय में इन्द्रियों की गति नहीं होने के कारण ऋषियों को भी मोह हो जाता है ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

अतस्तत्कृत उपाध्यायकृतस्तद्वाक्यविरोधेनात्मतत्त्वेऽसंभावनारूपो महान् संशयः संछिन्नस्त्वया। अत्र तु कश्चित्संशयो वर्तते, यत्रेन्द्रियवृत्तीनामप्रवृत्तेर्मुह्यन्ति ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

प्राचीन वर्हि ने कहा है कि हे विप्रवर्य! मेरे उपाध्यायों के वाक्यों के विरोध के कारण इस आत्मतत्त्व के विषय में अस भावना रूप महान् संशय को उत्पन्न कर दिया था। उसको आपने अपने इस उपदेश के द्वारा पूर्ण रूप से दूर कर दिया। इस विषय में मुझको एक संशय है इस आत्मा के विषय में इन्द्रियों की गति नहीं होने के कारण इसके विषय में ऋषियों को भी मोह हो जाता है ॥५७॥

कर्माण्यारभते येन पुमानिह विहाय तम्। अमुत्रान्येन देहेन जुष्टानि स यदश्नुते ॥५८॥
इति वेदविदां वादः श्रूयते तत्र तत्र ह। कर्म यत्क्रियते प्रोक्तं परोक्षं न प्रकाशते ॥५९॥

अन्वयः— येन देहन पुमान् इह कर्माण्यारभते तम् विहाय अमुत्र अन्येन देहेन स जुष्टानि अश्नुते इति यद् वेदविदां वादः तत्र तत्र श्रूयते प्रोक्तं कर्म यत् क्रियते परोक्षं न प्रकाशते ॥५८-५९॥

अनुवाद— पुरुष इस लोक में जिस शरीर से कर्मों को करता है उस स्थूल शरीर को (यहीं) छोड़कर परलोक में कर्मों से ही बने हुए दूसरे शरीर से उसका फल भोगता है, यह वेद वादियों का जो कथन सर्वत्र सुना जाता है उसका होना कैसे सम्भव है, क्योंकि उन कर्मों को करने वाला जो स्थूल शरीर होता है वह यहीं नष्ट हो जाता है तथा जो कर्म किए जाते हैं वे दूसरे ही क्षण में विनष्ट हो जाते हैं, ऐसी स्थिति में वे फल देने के लिए परलोक में कैसे प्रकट हो सकते हैं ॥५८-५९॥

भावार्थ दीपिका

संशयमाह द्वाभ्याम् । कर्माणि येन देहेन करोति तमत्रैव विहायामुत्र लोकान्तरे कर्मोपस्थापितेनान्येन देहेन जुष्टान्युपभुक्तानि जीवोऽश्नुते प्राप्नोति । इतिवादः श्रूयते 'प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकान्' इति । 'शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः' इति । त्वया चोक्तं 'शाश्वतीरनुभूयार्तिम्' इति । एतच्च कर्तृभोक्तृदेहभेदेन कृतनाशाकृताभ्यागमप्रसङ्गान्न संगच्छत इति भावः । संशयान्तरमाह। प्रोक्तं वेदोक्तं कर्म यत्क्रियते जनैस्तच्चानन्तरक्षण एव परोक्षमदृश्यं सन्न प्रकाशते । अतः कर्मणो नष्टत्वात्तद्भोगोऽपि दुर्घट इति भावः ॥५८-५९॥

भाव प्रकाशिका

दो श्लोकों में प्राचीन बर्हि अपने संदेह को बतलाते है । पुरुष जिस शरीर से कर्मों को करता है, उस शरीर को तो वह इस लोक में छोड़कर परलोक में चले जाने पर उन कर्मों के द्वारा उत्पन्न दूसरे शरीर से किए कर्मों के फल को भोगता है, यह वैदिकों का वाद सर्वत्र सुना जाता है । श्रुति भी कहती हैं— **प्राप्यपुण्य कृतां लोकान्** अर्थात् वह पुरुष पुण्यवानो लोंको को प्राप्त होने वाले लोकों को प्राप्त करके कर्म जन्य फलों को भोगता है । स्मृति भी कहती है शरीरजैः कर्मदोषैः याति स्थावतां नरः शरीर के द्वारा किए गये कर्म जन्य दोषों के द्वारा पुरुष स्थावरों की योनियों में चला जाता है । आपने भी कहा है कि **शाश्वतीरनुभूयार्तिम्** अर्थात् दीर्घकाल पर्यन्त पापी जीव कष्टों का अनुभव करते हैं । इससे स्पष्ट है कि करने वाला शरीर दूसरा है और फल भोगने वाला शरीर दूसरा है । इसके कारण कृतनाश और अकृताभ्यागम नामक दोष का प्रसङ्ग होगा । क्योंकि जिस शरीर ने पुण्य पाप कर्मों को किया वह तो विनष्ट हो गया और उन कर्मों का फल सुख अथवा दु:ख भोगने वाला शरीर दूसरा होगा । अतएव वेदवादियों का उपर्युक्त कथन युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता है । **संशयान्तरमाह० इत्यादि** दूसरे संदेह को राजा कहते हैं कि वेदों में बतलाये गये जो कर्म किए जाते हैं वे तो दूसरे ही क्षण में अदृश्य हो जाते हैं, वे पुन: प्रकाशित नहीं होते हैं । अतएव उन कर्मों के नष्ट हो जाने के कारण उनके फल का भी भोगा जाना सम्भव नहीं है ॥५८-५९॥

नारद उवाच

येनैवारभते कर्म तेनैवामुत्र तत्पुमान् । भुङ्क्ते ह्यव्यवधानेन लिङ्गेन मनसा स्वयम् ॥६०॥

अन्वयः— येन मनसा लिङ्गेन् पुमान् स्वयं कर्म आरभते तेनैव अव्यवधनेन लिङ्गेन अमुत्र भुङ्क्ते ।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— राजन् चूकि स्थूल शरीर लिङ्ग शरीर के अधीन है अतएव कर्मों का उत्तरदायित्व लिङ्ग शरीर पर ही होता है । पुरुष जिस मन: प्रधान लिङ्ग शरीर से कर्मों को करता है वह मरने के पश्चात् भी उस जीव के साथ रहता है, अतएव वह परलोक में साक्षात् उसी शरीर के द्वारा कर्मों के फलों को भोगता है ॥६०॥

भावार्थ दीपिका

प्रथमस्योत्तरम्-येनैवेति । अव्यवधानेन कर्तृभोक्तृदेहविच्छेदं बिना । स्थूलदेहनाशेऽपि मनःप्रधानस्य लिङ्गदेहस्यानाशान्नोक्तदोषप्रसङ्ग इत्यर्थः ॥६०॥

भाव प्रकाशिका

प्रथम संदेह का उत्तर देते हुए नारदजी ने **येनैव० इत्यादि** श्लोक को कहा है । अव्यवधानेन पद का अर्थ है कि जो शरीर कर्ता और भोक्ता है उसका विच्छेद हुए बिना । स्थूल शरीर का नाश हो जाने पर भी चूकि मनः प्रधान लिङ्ग शरीर के नष्ट नहीं होने के कारण उपर्युक्त अकृताभ्यागम कृत विप्रणाश दोष का प्रसङ्ग नहीं होगा ॥६०॥

शयानमिममुत्सृज्य श्वसन्तं पुरुषो यथा । कर्मात्मन्याहितं भुङ्क्ते तादृशेनेतरेण वा ॥६१॥

अन्वयः— पुरुषोयथा शयानम् श्वसन्तम् इमम् उत्सृज्य तादृशेन इतरेण वा आत्मनि कर्माहितं भुङ्क्ते ॥६१॥

अनुवाद— स्वाप काल में मनुष्य इस जीवित शरीर का अभिमन तो त्याग देता है किन्तु इसी के समान अथवा इससे भिन्न पशुपक्षी आदि शरीर से मन में संस्कार रूप से स्थित कर्मों का फल भोगता रहता है ॥६१॥

भावार्थ दीपिका

लिङ्गदेहविशिष्टस्य भोक्तृत्वं स्वप्नदृष्टान्तेन स्पष्टयति । शयानमिमं जाग्रदेहं श्वसन्तं जीवन्तमुत्सृज्य तदभिमानं त्यक्त्वात्मनि मनसिसस्काररूपेणाहितं कर्म यथा भुङ्क्ते तादृशेन शयानदेहसदृशेन कर्मोपस्थापितेन देहेनान्येन वा पश्वादिदेहेन तथा लोकान्तरेऽपीति भावः ॥६१॥

भाव प्रकाशिका

लिङ्ग देह से विशिष्ट जीव कर्म फलों को भोगता है, इस बात को नारदजी स्वप्न के दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं । सोए हुए जाग्रद् देह जो जीवित है उसके अभिमान को छोड़कर मन में संस्कार रूप से आहित कर्म को जैसे भोगता है उसी तरह सोये हुए देह के समान ही देह के द्वारा जो कर्मों के द्वारा उपस्थपित होता है अथवा दूसरे प्रकार के पशु आदि के देह परलोक में भी जीव कर्म फलों को भोगता है ॥६१॥

ममैते मनसा यद्यदसावहमिति ब्रुवन् । गृह्णीयात्तत्पुमान् राद्धं कर्म येन पुनर्भवः ॥६२॥

अन्वयः— मनसा यत् एते मम असौ अहम् इति ब्रुवन् पुमान् राद्धंकर्म गृहणीयात् येन पुनर्भवः ॥६२॥

अनुवाद— इस मन के द्वारा जीव जिन पुत्र इत्यादि को ये मेरे हैं और तथा जिस ब्राह्मणादि शरीर को मैं यह हूँ ऐसा कहकर मानता है, वह उनके द्वारा किए गये पाप-पुण्य आदि रूप कर्मों को भी अपने ऊपर ले लेता है, जिसके कारण उसका पुनर्जन्म होता है ॥६२॥

भावार्थ दीपिका

ननु भवतु नाम लिङ्गविशिष्टस्यानेन दृष्टान्तेन भोक्तृत्वं, कर्तृत्व तु दानप्रतिग्रहादिषु स्थूलदेहविशिष्टस्यैव दृश्यते तत्राह। ममैते पुत्रादयोऽसावहं ब्राह्मण इति ब्रुवन्मनसा यद्यद्देहं गृह्णीयात्ततो देहाद्राद्धं सिद्धं कर्म पुमान् गृह्णीयात् । येन कर्मणाहङ्कारगृहीतेन पुनर्भवो भवति। अन्यथा जन्मानुपपत्तेः । अतोऽभिमन्तुर्मनोविशिष्टस्यैव कर्तृत्वमभिमानविषयस्य तु देहस्य पुत्रादिदेहवद्वारमात्रत्वमिति भावः॥६२॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि लिङ्ग शरीर विशिष्ट जीव का इस दृष्टान्त से भोक्तृत्व तो सिद्ध हो जाता है, किन्तु दान देने और दान लेने आदि में तो स्थूल देह विशिष्ट का ही कर्तृत्व देखा जाता है । इस पर नारदजी ने कहा। जीव जो यह कहता है कि ये मेरे पुत्र पत्नी इत्यादि हैं और मैं ब्राह्मण हूँ, इत्यादि कहकर जिन-जिन शरीरों को मानता हैं, उन शरीरों द्वारा किए गये पुण्य पाप इत्यादि कर्मों को भी अपने ऊपर ले लेता है । उन अहङ्कार इत्यादि के द्वारा गृहीत उस कर्म के द्वारा उसका पुनर्जन्म होता है, अन्यथा जन्म नहीं होता । अतएव अहंत्व ममत्व आदि के अभिमान से विशिष्ट ही जीव का कर्तृत्व भोक्तृत्व होता है, और जिस देह से कर्तृत्वाभिमान होता है, वह देह तो पुत्र पत्नी इत्यादि के देह के समान पुनर्जन्म का द्वार (साधन) मात्र है ॥६२॥

यथानुमीयते चित्तमुभयैरिन्द्रियेहितैः । एवं प्राग्देहजं कर्म लक्ष्यते चित्तवृत्तिभिः ॥६३॥

अन्वयः— यथा उभयैः इन्द्रियेहितैः चितम् अनुमीयते, एवं चित्तवृत्तिभिः प्राग्देहजं कर्म लक्ष्यते ।।६३।।

अनुवाद— जिस तरह कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों दोनों प्रकार की इन्द्रियों की चेष्टाओं से उनके प्रेरक चिद का अनुमान किया जाता है, उसी तरह चित्त की भिन्न-भिन्न वृत्तियों के द्वारा पूर्वजन्म के कर्मों का अनुमान किया जाता है । अतएव कर्ता अदृष्टरूप से फल देने के लिए कालान्तर में विद्यमान रहते हैं ।।६३।।

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं कर्मणो नष्टत्वान्नमुत्र भोग इति तत्राह– यथेति उभयैर्ज्ञानकर्मरूपैरिन्द्रियाणामीहितैः कदाचित्कर्मप्रवृत्तिभिश्चित्तमनुमीयते। सत्यपि सर्वेन्द्रियविषय संबन्धे युगपज्ज्ञानानुत्पत्तेः । तदुक्तमक्षपादेन 'युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गं' इति । एवं चित्तवृत्तिभिरपि पूर्वदेहजं कर्म लक्ष्यते । तासामपि युगपदनुत्पत्तेः ।।६३।।

भाव प्रकाशिका

राजा प्राचीन बर्हि ने यह जो कहा था कि कर्म तो दूसरे ही क्षण में नष्ट हो जाते है अतएव उन कर्मो का फल परलोक में प्राप्त होना कैसे सम्भव हैं ? उसके उत्तर में नारदजी ने कहा जिस तरह ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की चेष्टाओं के द्वारा उनके प्रेरक चित्त का अनुमान किया जाता है । उसके अनुमान का रूप है कि सभी इन्द्रियों के विषयों के रहने पर भी एक ही समय में सभी विषयों का ज्ञान नहीं होता है, एक समय में एक ही विषय का ज्ञान होता है, इसलिए पता चलता है कि कोई-न-कोई ऐसा कारण अवश्य है जिसके द्वारा प्रेरित होकर इन्द्रियाँ विषयों का ग्रहण करती है । जिस समय में वह साधन जिस इन्द्रिय को प्रेरित करता है, वही इन्द्रिय अपने विषय को ग्रहण करती है, अन्य इन्द्रियाँ उस समय अपने विषय का ग्रहण नहीं करती है । वह जो इन्द्रियों का नियामक है वही चित्त है । महर्षि गौतम ने भी कहा है **'युगपज्ज्ञानानुपपत्ति र्मनसो लिङ्गम्'** अर्थात् चूकि एक ही समय में अनेक ज्ञानों की उत्पत्ति नहीं होती है, यही इन्द्रियों के नियामक मन के सद्भाव में प्रमाण है । इसी तरह चित्त की वृत्तियों के द्वारा भी पूर्वदेह के द्वारा किए गये कर्मो का अनुमान होता है । क्योंकि देखा जाता है कि एक समय में एक ही प्रकार की चित्त वृत्ति होती है ।।६३।।

नानुभूतं क्व चानेन देहेनादृष्टमश्रुतम् । कदाचिदुपलभ्येत यद्रूपं यादृगात्मनि ॥६४॥

अन्वयः— अनेन देहेन अदृष्टम् अश्रुतम्, क्वच न अनुभूतम् कदाचित् यादृग् यद्रूपं आत्मनि उपलभ्यते ।।६४।।

अनुवाद— कभी-कभी यह भी देखा जाता हैं कि जिस वस्तु को इस शरीर से न तो देखा गया है न सुना गया और न तो कहीं अनुभव ही किया गया है, उस वस्तु का स्वप्न में वह वस्तु जैसी रहती है तथा उसका जैसा रूप होता है, वैसा ही अनुभव होता है ।।६४।।

भावार्थ दीपिका

इतोऽपि कर्म लक्ष्यत इत्याह–नानुभूतमिति द्वाभ्याम् । अनेन वर्तमानेन देहेन क्व च कुत्रचिदपि यन्नानुभूतं अननुभूतं अनुपभुक्तमदृष्टं चाश्रुतं च यद्रूपं यदात्मकं यादृक् यत्प्रकारं च तत्कदाचित्स्वप्नमनोरथादिष्वात्मनि मनस्युपलभ्येत ।।६४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से भी पूर्वजन्म के कर्मों के सद्भाव का अनुमान होता है । इस बात को दो श्लोकों द्वारा कहते हैं । इस शरीर से जिसका कहीं भी अनुभव नहीं किया गया है, उसको न तो कभी सुना गया है और न देखा ही गया है । कभी स्वप्न में मनोरथादि में वह वस्तु जैसी होती है तथा जैसा उसका रूप होता है, उसका अनुभव मन में होता है ।।६४।।

तेनास्य तादृशं राजन् लिङ्गिनो देहसंभवम् । श्रद्धत्स्वाननुभूतोऽर्थो न मनःस्प्रष्टुमर्हति ॥६५॥

अन्वयः— राजन् ! श्रद्धत्स्वतेन अस्य लिङ्गिनः तादृशं देह सम्भवम् अननुभूतोऽर्थः मनः स्प्रष्टुम् न अर्हति ।।६५।।

अनुवाद— राजन आप इस बात में विश्वास करे कि लिङ्ग देह के अभिमनी इस जीव को पूर्वजन्म में उस वस्तु का अनुभव हो चुका है जिस वस्तु का कभी भी अनुभव नहीं किया गया है, उस वस्तु की मन में वासना भी नहीं हो सकती है ।।६५।।

भावार्थ दीपिका

तेन हेतुनास्य लिङ्गिनो वासनाश्रयस्य जीवस्य तादृशं तदनुभवादियुक्तं पूर्वदेहसंभवं श्रद्धत्स्व निश्चयेन मन्यस्व । नह्यननुभूतोऽर्थो मनःस्प्रष्टुं मनसि स्फुरितुमर्हति ।।६५।।

भाव प्रकाशिका

अतएव आप यह निश्चित रूप से जान लें कि यह जो लिङ्ग शरीर वाला जीव है वह अपने पूर्वजन्म में उस प्रकार की तथा उस रूप वाली वस्तु का अनुभव कर चुका है । जिस वस्तु का कभी अनुभव नहीं किया गया है, उस वस्तु की कभी मन में स्फूर्ति भी नहीं हो सकती है ।।६५।।

मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति । भविष्यतश्च भद्रं ते तथैव नभविष्यतः ॥६६॥

अन्वयः— ते भद्रम् मनएव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि भविष्यतः च नभविष्यतः तथैव शंसति ।।६६।।

अनुवाद— राजन् ! आपका कल्याण हो मन ही मनुष्य के पूर्व रूपों तथा भावी शरीरादि को बतला देता हैं । उसी प्रकार से जिसका भावी जन्म नहीं होने वाला होता है उन तत्त्ववेताओं को विदेह मुक्ति का भी पता मन से ही चल जाता है ।।६६।।

भावार्थ दीपिका

किंच । मनोवृत्त्यैव पराणि शुभाशुभनिमित्तानि शरीराणि ज्ञायन्त इत्याह-मन एवेति । भद्रं त इति सम्यगवधानार्थमाशिषाभिनन्दति । भविष्यत उद्भवं प्राप्स्यतो नभविष्यतो नीचत्वं प्राप्स्यतोऽपि भावीनि रूपाणि शंसति । मन एवौदार्यकार्पण्यादिवृत्तिभिः पूर्वमप्येवमेवासीत्, पश्चादप्येवमेव भविष्यतीति ज्ञापयतीत्यर्थः ।।६६।।

भाव प्रकाशिका

किञ्च मनोवृत्ति के द्वारा ही दूसरे शुभ एवं अशुभ कर्म निमित्तक शरीरों का पता चल जाता है । इस बात को नारदजी ने **मन एव० इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया है । नारदजी ने भद्रं ते कहकर राजा प्राचीनबर्हि को आर्शीवाद दिया ताकि राजा को सावधान किया है मन के ही द्वारा भविष्यत् कालिक अथवा नीच योनियों में चला जायेगा इस बात का पता चलता है । औदार्य तथा कार्पण्य वृत्तियों के द्वारा मन ही इस बात को बोधित कर देता है कि यह पहले भी ऐसा था और भविष्यत् काल में यह जीव इस प्रकार का होगा ।।६६।।

अदृष्टमश्रुतं चात्र क्वचिन्मनसि दृश्यते । यथा तथानुमन्तव्यं देशकालक्रियाश्रयम् ॥६७॥

अन्वयः— अत्र अदृष्टम् अश्रुतम् क्वचित् यथा दृश्यते तथा देशकाल क्रिया श्रयम् अनुमनतव्यम् ।।६७।।

अनुवाद— कभी-कभी स्वप्न में देश काल क्रिया सम्बन्धी ऐसी बातें देखी जाती हैं जिनको कभी न तो देखा गया है और न सुना गया ऐसी वस्तु के देखने में निद्रादोष को कारण मानना चाहिए ।।६७।।

भावार्थ दीपिका

ननु कदाचिद्दर्शनानर्हमपि स्वप्ने प्रतीयते यथा पर्वताग्रे समुद्रो दिवा नक्षत्राणि स्वशिरश्छेद इत्यादि तत्राह-अदृष्टमिति।

अन्यदेशाश्रयं समुद्रादिकं पर्वताग्रे निशाश्रयं नक्षत्रादिकं दिवा अभ्यङ्गादिक्रियाश्रयं स्वशिरश्छेदनाश्रयम् । निद्रादिदोषेण हि तथा प्रतीयत इत्यनुमन्तव्यम् । परस्यापि तदनुपपत्तेस्तुल्यत्वादिति भावः ।।६७।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि कभी-कभी स्वप्न में ऐसी वस्तुएँ भी दिखाई देती हैं, जैसे पर्वत के ऊपर समुद्र, दिन में ही तारे, अपने शिर को कटा हुआ देखना, इत्यादि यह कैसे होता है । इसके उत्तर में नारदजी ने कहा— दूसरे स्थान में होने वाले समुद्र को पर्वत के ऊपर दिखना रात्रि में दिखने वाले तारों को दिन में दिखना, जिस शिर में तेल इत्यादि लगाया जाता है उसको कटा हुआ दिखाई देना, इन सबों का कारण निद्रा दोष ही प्रतीत होता है, क्योंकि इस तरह का अनुभव भी नहीं हो सकता है ।।६७।।

सर्वे क्रमानुरोधेन मनसीन्द्रियगोचराः । आयान्ति वर्गशो यान्ति सर्वे समनसो जनाः ।।६८।।

अन्वयः— सर्वे इन्द्रिय गोचराः मनसि वर्गशः आयान्ति यान्ति च तस्मात् सर्वे जनाः समनसाः ।।६८।।

अनुवाद— इन्द्रियों से जिनका अनुभव किया जा सकता है । ऐसे ही पदार्थ मन में भोग रूप में आते हैं और भोग के समाप्त हो जाने पर चले जाते हैं ऐसे कोई पदार्थ नहीं आता है जिसका इन्द्रियों से अनुभव नहीं किया जा सके । इसका कारण यही है कि सभी जीव मन से युक्त हैं ।।६८।।

भावार्थ दीपिका

ननु दरिद्रः क्वचिदात्मानं महाराजं पश्यति, राजा च रङ्कमात्मानं पश्यति तत्कथमसंभावितं सङ्गच्छेत तत्राह-सर्व इति। आयान्ति भोग्यत्वेन प्राप्नुवन्ति । यान्ति च भोगानन्तरम् । यदि च कश्चिदमना भवेत्तर्ह्येवं न स्यान्न त्वेतदस्तीत्याह-सर्वे समनस इति । अतः सर्वेषां समनस्कत्वान्मनसि च सर्वार्थानां क्रमेण प्रवेशान्नात्यन्तादृष्टचरः कस्यापि कश्चिदर्थोऽस्तीत्यर्थः ।।६८।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि कभी दरिद्र भी स्वप्न में अपने को महाराज देखता है और राजा भी अपने को रङ्क (दरिद्र) देखता है, यह बिल्कुल असंभवित होता है, इसकी अन्वितता कैसे हो सकती है ? इसके उत्तर में नारदजी कहते हैं जितने भी इन्द्रियों के विषय मन में भोग्य रूप से आते जाते रहते हैं, सबों के साथ मन लगा हुआ रहता है। यदि कोई मन रहित होता तो ऐसा नहीं होता किन्तु कोई ऐसा नहीं है । फलतः सबों के एक होने के कारण सबों के मन में सभी विषयों का प्रवेश होता रहता है । कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसक किसी ने नहीं देखा हो। अतएव राजा का अपने को रङ्क रूप में देखने में कोई भी अनुपपत्ति नहीं है ।।६८।।

सत्त्वैकनिष्ठे मनसि भगवत्पार्श्ववर्तिनि । तमश्चन्द्रमसीवेदमुपरज्यावभासते ।।६९।।

अन्वयः— सत्त्वैकनिष्ठे मनसि भगवत् पार्श्व वर्तिनि तमः चन्द्रमसि इव इदम् उपरज्य अवभासते ।।६९।।

अनुवाद— समान्यतः सभी विषयों का क्रमशः ही भान होता है किन्तु यदि भगवच्चिन्तन में लगा हुआ मन विशुद्ध सत्त्व में स्थित हो जाय तो उसमें संबन्ध को प्राप्त करके सम्पूर्ण विषय उसी तरह प्रकाशित होने लगता है जिस तरह नहीं दिखने वाला राहू चन्द्रमा में प्रवेश करके दिखने लगता है ।।६९।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं सर्वैरपि सर्वेऽर्थाः क्रमेण दृश्यन्त इत्युक्तम्, इदानीं युगपदपि सर्वदर्शनं कदाचिद्भवतीत्याह । सत्त्वैकनिष्ठे भगवत्पार्श्ववर्तिनि भगवद्ध्यानपरे मनसीदं विश्वमुपरज्य संयोगमिव प्राप्यावभासते । प्रतीत्यनर्हस्यापि कदाचित्प्रतीतौ दृष्टान्तः- चन्द्रमस्युपरज्य तमो राहुरिव । तदिदं शुद्ध मनसि सर्वविषयस्फुरणं योगिप्रत्यक्षमिति प्रसिद्धम् ।।६९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से कहा जा चुका है कि सभी लोग सभी विषयों को क्रमशः ही देखते हैं, इस श्लोक में यह बतलाया जा रहा है कि कभी एक ही समय में सभी विषयों का साक्षात्कार कर लेते हैं । जब कभी श्रीभगवान् के ध्यान में लगा हुआ मन जब शुद्धसत्त्व सम्पन्न हो जाता है, उस समय उस मन से संयोग को प्राप्त करके सम्पूर्ण विश्व उसमें प्रकाशित होने लगता है । जिसकी प्रतीति नहीं होती है उसकी भी प्रतीति में दृष्टान्त उपन्यस्त करते हुए नारदजी ने कहा कि यद्यपि राहु का प्रत्यक्ष नहीं होता है कि फिर भी जब राहु प्रकाशमय चन्द्रमा में प्रवेश करता है तो वह दिखने लग जाता है शुद्ध मन में सभी विषयों के स्फुरण को ही योगि प्रत्यक्ष कहा जाता है ॥६९॥

नाहंममेति भावोऽयं पुरुषे व्यवधीयते । यावद्बुद्धिमनोक्षार्थगुणव्यूहो ह्यनादिमान् ॥७०॥

अन्वयः— यावत् बुद्धि, मनः अक्षार्थ गुणव्यूहः अनादिमान् तावत् पुरुषे अहं मम इत्ययं भावः नव्यवधीयते ॥७०॥

अनुवाद— जब तक बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ, उनके विषयों के संघात तथा गुणों के परिणाम रूप तथा अनादि लिङ्ग शरीर बना हुआ है, तब तक जीव के भीतर इस स्थूल शरीर के प्रति अहंत्व और ममत्व का अभाव नहीं हो सकता है ॥७०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं स्थूलदेहनाशेऽपि लिङ्गदेहस्यानाशादन्यः कर्ता भोक्तेति दोषो नास्तीत्युक्तम् । तत्रैवं शङ्कते-ननु लिङ्गदेहस्य स्थूलदेहद्वारेणैव कर्तृत्वभोक्तृत्वे न तु केवलस्य । तत्र कदाचित्स्थूलदेहाभावे जीवस्य कर्तृत्वभोक्तृत्वाभावान्मुक्तिः प्रसज्येत तत्राह । अहंममेति भावः स्थूलदेहसंबन्धः पुरुषे जीवे न व्यवधीयते न विच्छिन्नो भवति । किंपर्यन्तम् । बुद्ध्यादीनां व्यूहः परिणामो लिङ्गं यावदस्ति । अनादिमान् अनादिः सन् ॥७०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से स्थूल शरीर का नाश हो जाने पर भी चूकि लिङ्ग शरीर का भी नाश नहीं होता है । अतएव कर्ता भोक्ता दूसरे हैं इस बात को कहा जा चुका है । उसके विषय में यह शङ्का होती है कि लिङ्ग शरीर तो स्थूल देह के माध्यम से ही कर्ता भोक्ता होता है । केवल लिङ्ग शरीर कर्ता भोक्ता नहीं होता है । ऐसी स्थिति में स्थूल देह जब नहीं रहता है, उस स्थिति में उस जीव की मुक्ति होने का प्रसङ्ग होता है, इसके उत्तर में कहते हैं । जब तक बुद्धिमान इन्द्रिय और उनके विषयों का समूह अनादि लिङ्ग शरीर तथा स्थूल देह का सम्बन्ध होता है तब तक शरीर में होने वाले अहन्त्व और ममत्व का सम्बन्ध नहीं समाप्त होता है ॥७०॥

सुप्तिमूर्च्छोपतापेषु प्राणायनविघाततः । नेहतेऽहमिति ज्ञानं मृत्युप्रज्वारयोरपि ॥७१॥

अन्वयः— सुप्तिः मूर्धा, उपपत्तिषु प्राणायनविघात मृत्यु प्रज्वरयोः अपि अहमिति ज्ञानं नेङ्गते ॥७१॥

अनुवाद— सुषुप्ति मूर्छा इष्टवियोगादि जन्य दुःख, मृत्यु तथा ज्वर के समय यद्यपि इन्द्रियों की व्याकुलता के कारण अहन्त्व इत्यादि स्पष्ट प्रतीति नहीं होती है फिर भी उस समय भी उनका अभिमान बना ही रहता है॥७१॥

भावार्थ दीपिका

स्वापादावहंकाराद्यभावात्तद्विच्छेदमाशङ्क्याह द्वाभ्याम् । सुप्त्यादिषु उपताप इष्टवियोगादिदुःखम् । तेष्वहमिति ज्ञानमहङ्कारो नेहते न प्रकाशते । प्राणायनानामिन्द्रियाणां विघातात् । इन्द्रियैरिदंकारास्पदवस्तुग्रहणे ह्यहंकारः स्फुरति नान्यथेत्यर्थः ॥७१॥

भाव प्रकाशिका

स्वापादि काल में अहङ्कार आदि का अभाव होने के कारण अहंत्व आदि का अभाव हो जाना चाहिए, इस प्रकार की शङ्का करके दो श्लोकों द्वारा कहते हैं स्वापादि काल में इष्ट व्यक्ति के वियोग जन्य दुःख इत्यादि के

समय यद्यपि अहङ्कार ममकार की स्पष्ट प्रतीति नहीं होती है। इसी तरह इन्द्रियों के विनष्ट हो जाने पर भी वास्तविकता है कि जब इन्द्रियाँ अपने विषयों का ग्रहण करती हैं, उसी समय अहङ्कार को प्रतीति होती है ॥७१॥

गर्भे बाल्येऽप्यपौष्कल्यादेकादशविधं तदा । लिङ्गं न दृश्यते यूनः कुह्वां चन्द्रमसो यथा ॥७२॥

अन्वयः— कुह्वा चन्द्रमसो यथा गर्भे बाल्ये अपि तदा एकादशविधं अपौष्कल्याद् यूनः लिङ्गंन दृश्यते ॥७२॥

अनुवाद— जिस तरह अभावस्या के दिन यद्यपि चन्द्रमा रहते हैं फिर भी नहीं दिखते हैं उसी तरह गर्भावथा और वाल्यावस्था में एकादश इन्द्रियों की पुष्पकलता नहीं होने के कारण युवकों में स्पष्ट रूप से प्रतीत होने वाला लिङ्ग शरीर नहीं प्रतीत होता है ॥७२॥

भावार्थ दीपिका

अपौष्कल्यादसंपूर्णत्वात्प्राणायनानामिति शेषः। यूनस्तरुणस्य यदेकादशविधमेकादशेन्द्रियैः स्फुटं लिङ्गमहंकरणं तत्र दृश्यते गर्भादाविति। सतोऽप्यनभिव्यक्तौ दृष्टान्तः-कुह्वाममावास्यायां चन्द्रमसो लिङ्ग रूपमिव ॥७२॥

भाव प्रकाशिका

अपौकल्यात् का अर्थ है परिपूर्ण नहीं होने के कारण प्राणायनौके अर्थात् इन्द्रियों को अर्थात् युवक की ग्यारह इन्द्रियों के द्वारा उसके अहङ्कार की स्पष्ट रूप से प्रतीति होती है। किन्तु वह गर्भावस्था में अथवा बाल्यावस्था में इसलिए नहीं प्रतीत होता है कि उसकी ग्यारहों इन्द्रियाँ परिपूर्ण नहीं रहती हैं। किन्तु उस अवस्था में लिङ्ग शरीर रहता है। विद्यमान वस्तु की अभिव्यक्ति नहीं होने का दृष्टान्त यही है कि अमावस्या के दिन भी चन्द्रमा रहते हैं किन्तु उनकी अभिव्यक्ति उस दिन नहीं होती है। चन्द्रमा का लिङ्ग चन्द्रमा का रूप ही है ॥७२॥

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते । ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥७३॥

अन्वयः— विषयान् ध्यायतः अस्य यथा स्वप्ने अनर्थागमः तथैव अर्थे अविद्यमानेऽपि संसृतिः नोनिवर्तते ॥७३॥

अनुवाद— जिस तरह स्वप्न में किसी वस्तु के नहीं रहने पर स्वप्न जन्य अनर्थ की तब तक निवृत्ति नहीं होती है जब तक कि स्वन द्रष्टा जग नहीं जाता है। इसी तरह यद्यपि संसारि वस्तुए असत् हैं फिर भी अविद्या के कारण मनुष्य उनका चिन्तन करता रहता है इसीलिए उसको जन्म मरण रूप संसार से छूटकारा नहीं प्राप्त होता है ॥७३॥

भावार्थ दीपिका

तस्मादहंकारास्पदस्य स्थूलदेहस्याविच्छेदाद्वस्तुभूतार्थाभावेऽपि संसृतिनिवृत्तिर्नास्तीत्याह-अर्थे हीति ॥७३॥

भाव प्रकाशिका

अतएव अहङ्कारास्पद स्थूल शरीर की निवृत्ति नहीं होने के कारण असत् होने पर भी संसार की निवृत्ति नहीं होती है, इस अर्थ का प्रतिपादन अर्थे हि इत्यादि श्लोक में किया गया है ॥७३॥

एवं पञ्चविधं लिङ्गं त्रिवृत्षोडशविस्तृतम् । एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते ॥७४॥

अन्वयः— एवं पञ्चविधं त्रिवृत् षोडशविस्तृतम् लिङ्गम् एष चेतनया युक्तः जीव इत्यभिधीयते ॥७४॥

अनुवाद— इस तरह से पञ्च तन्मात्राओं से निर्मित तथा सोलह तत्त्वों के रूप में विकसित त्रिगुण के संघात रूप ही लिङ्ग शरीर है। यही चेतनाशक्ति से युक्त होकर जीव कहलाता है ॥७४॥

भावार्थ दीपिका

यावल्लिङ्गं स्थूलदेहाविच्छेदात्संसारान्निवृत्तिरित्येतत्प्रपञ्चयति-एवमिति सार्धैस्त्रिभिः। पञ्चविधं पञ्चतन्मात्रात्मकम्। त्रिवृत् त्रिगुणम्। षोडशविकारात्मना विस्तृतम् ॥७४॥

भाव प्रकाशिका

जब तक लिङ्ग शरीर का स्थूल शरीर से विच्छेद नहीं होता है तब तक संसार की निवृत्ति नहीं होती है इसी अर्थ का विस्तार से वर्णन **एवम्० इत्यादि** साढे तीन श्लोकों से करते हैं । यह लिङ्ग शरीर पञ्चतन्मात्रात्मक है एवं त्रिगुणमय है । यह सोलह विकारों के रूप में विकसित है ॥७४॥

अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुञ्चति । हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विन्दति ॥७५॥

अन्वयः— पुरुषः अनेन देहान् उपादत्ते, विमुञ्चिति । हर्षं शोकं भयं दुःखं च अनेन विन्दति ॥७५॥

अनुवाद— इस लिङ्ग शरीर के द्वारा ही पुरुष विभिन्न शरीरों को धारण करता है और त्यागता है । इसी के ही द्वारा हर्ष, शोक, भय, दुःख और सुख का अनुभव करता है ॥७५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७५॥

यथा तृणजलूकेयं नापयात्यपयाति च । न त्यजेन्म्रियमाणोऽपि प्राग्देहाभिमतिं जनः॥७६॥
यावदन्य न विन्देत व्यवधानेन कर्मणाम् । मन एव मनुष्येन्द्र भूतानां भवभावनम्॥७७॥

अन्वयः— यथा इयं तृणजलूका न अपयाति अपय याति च । तथा म्रियमाणः अपि जनः कर्मणाम् व्यवधानेन यावत् अन्यं न विन्देत् तावत् प्राग्देहाभिमतिंनं त्यजेत् । राजेन्द्र मन एवं भूतानाम् भवभावनम् ॥७६-७७॥

अनुवाद— जिस तरह जोंक जब तक दूसरे तृण को नहीं पकड़ लेती है तब तक पहले तृण को नहीं छोड़ती है, उसी तरह जीव भी मरण काल के उपस्थित होने पर तथा देहारम्भक कर्मों की समाप्ति हो जाने पर भी दूसरा शरीर नहीं प्राप्त कर लेता है तब तक पहले शरीर के अभिमान को नहीं त्यागता है । राजेन्द्र यह मनः प्रधान लिङ्ग शरीर ही जीव के जन्म आदि का कारण हैं ॥७६-७७॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेकं देहं विसृज्य देहान्तरप्रवेशात्पूर्वं विदेहता स्यादेवेत्यत आह-यथेति । नापयाति पूर्वतृणस्यात्यागात् । अपयाति च तृणान्तरधारणात् । तथा प्राग्देहाभिमतिं न त्यजेन्म्रियमाणोऽपि । अन्यं देहम् । कर्मणां प्राग्देहारम्भकाणां व्यवधानेन विच्छेदेन समाप्त्या । प्रकरणार्थमुपसंहरति मन एवेति भवभावनं संसारहेतुः ॥७६-७७॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि जीव जब एक शरीर को छोड़ता है उसके पश्चात् जब तक वह दूसरे शरीर को ग्रहण नहीं कर लेता है, तब तक वह विदेह रहेगा ही ऐसी स्थिति में उसकी मुक्ति हो जानी चाहिए । इस पर नारदजी **यथा इत्यादि** श्लोक कहते हैं । जैसे जोंक अपने पहले के तृण्र को तब तक नहीं त्यागती है जब तक कि वह दूसरे तृण को पकड़ न ले । उसी तरह से मरने के भी समय पूर्व देह के आरम्भक कर्मों के समाप्त हो जाने पर भी मनुष्य अपने पूर्व देह के अभिमान को नहीं त्यागता है जब तक कि वह दूसरे शरीर को प्राप्त न कर ले। इस प्रकरण का उपसंहार करते हुए नारदजी कहते हैं कि राजेन्द्र मनः प्रधान लिङ्ग शरीर ही जन्म मरण का कारण है ॥७६-७७॥

यदाक्षैश्चरितान्ध्यायन्कर्माण्याचिनुतेऽसकृत् । सति कर्मण्यविद्यायां बन्धः कर्मण्यनात्मनः ॥७८॥

अन्वयः— यदा अक्षैः चरितान् ध्यायनअसकृत् कर्माणि आचिनुते कर्माणि अविद्यायां सत्यां अनात्मनः कर्माणि बन्धः ॥७८॥

अनुवाद— जब जीव इन्द्रियों के द्वारा भोगे गये कर्मों का ध्यान करता रहता है और उसी के लिए बार-बार कर्मों को करता रहता है, तो उन कर्मों के होते रहने के कारण वह जीव अविद्यावशात् देहादि के बन्धन मे पड़ जाता है ॥७८॥

भावार्थ दीपिका

कथं सति तदाह-यदेति । चरितानुपभुक्तान् । यतः कर्मणि सति । नन्वसङ्गस्य कुतः कर्म तत्राह । अविद्यायां सत्यामनात्मनो देहादेः कर्मणि बन्धो भवति ।।७८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि कैसे होने पर ? तो इसका उत्तर **यदा० इत्यादि** श्लोक से देते हैं चरितान् का अर्थ है उपभोग किए गये । अर्थात् जब जीव अपने द्वारा भोगे गये विषयों का चिन्तन करके उसके लिए ही बार-बार कर्मों को करता है यदि कहें कि उस समय जीव सबों से अनासक्त रहता है तो फिर वह कर्मों को कैसे करेगा ? तो इस पर कहते है जब तक अविद्या रहेगी तब तक अनात्मा देहादि को बाँधेगा ही ।।७८।।

अतस्तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिम् । पश्यंस्तदात्मनं विश्वं स्थित्युत्पत्त्यप्यया यतः ।।७९।।

अन्वयः— अतः तद् अपवादार्थं यतः उत्पत्ति स्थित्यप्ययाः तदात्मकं विश्वं पश्यन् हरिं भज ।।७९।।

अनुवाद— अतएव उससे छुटकारा प्राप्त करने के लिए तुम जिनसे जगत् की उत्पत्ति स्थिति और लय होते हैं उन श्रीहरि का तुम भगवदात्मक जगत् को देखते हुए भजन करो ।।७९।।

भावार्थ दीपिका

विश्वस्थित्यादयो यतो हरेर्भवन्ति ।।७९।।

भाव प्रकाशिका

जिन श्रीहरि से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि स्थिति आदि होते हैं ।।७९।।

मैत्रेय उवाच

भागवतमुख्यो भगवान्नारदो हंसयोर्गतिम् । प्रदर्श्य ह्यमुमामन्त्र्य सिद्धलोकं ततोऽगमत् ।।८०।।

अन्वयः— भागवतमुख्यः भगवान् नारदः हंसयोः गतिम् प्रदर्श्य अमुम् आमन्त्र्य सिद्धलोकम् अगमत् ।।८०।।

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् भगवद् भक्तों में प्रधान भगवान् नारदजी जीवात्मा और परमात्मा की गति का उपदेश करके तथा राजा से विदा लेकर सिद्धों के लोक में चले गये ।।८०।।

भावार्थ दीपिका

हंसयोर्जीवेश्वरयोः ।।८०।।

भाव प्रकाशिका

हंसयोः पद का अर्थ है, जीव तथा ईश्वर के ।।८०।।

प्राचीनबर्ही राजर्षिः प्रजासर्गाभिरक्षणे । आदिश्य पुत्रानगमत्तपसे कपिलाश्रमम् ।।८१।।

अन्वयः— राजर्षिः प्राचीनबर्ही प्रजासर्गरक्षणे पुत्रान् आदिश्य तपसे कपिलाश्रमम् अगमत् ।।८१।।

अनुवाद— राजर्षिः प्राचीन बर्ही प्रजाओं की रक्षा का भार अपने पुत्रों को सौंपकर तपस्या करने के लिए कपिलाश्रम में चले गये ।।८१।।

भावार्थ दीपिका

पुत्रानादिश्येति पुत्राणामादेशं मन्त्रिणामग्रे कथयित्वा (कपिलाश्रमं गङ्गासागरसङ्गमम्) ।।८१।।

भाव प्रकाशिका

पुत्रानादिश्य का अर्थ है, मन्त्रियों के सामने पुत्रों को आदेश देकर, कपिलश्रम अर्थात् गङ्गासागर संगम पर चले गये ॥८१॥

तत्रैकाग्रमना वीरो गोविन्दचरणाम्बुजम् । विमुक्तसङ्गोऽनुभजन्क्त्या तत्साम्यतामगात् ॥८२॥

अन्वयः— तत्र वीरः विमुक्तसङ्ग एकाग्रमना गोविन्दचरणाम्बुजम् भक्त्या अनुभजन् तत्साम्यताम् अगात् ॥८२॥

अनुवाद— वहाँ पर वीरवर प्राचीन बर्हीं सभी प्रकार की आसक्तियों का परित्याग करके एकाग्रमन से भक्ति पूर्वक श्रीहरि के चरणों का चिन्तन करते हुए सारूप्यपद को प्राप्त किए ॥८२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८२॥

एतदध्यात्मपारोक्ष्यं गीतं देवर्षिणाऽनघ । यः श्रावयेद्यः शृणुयात्स लिङ्गेन विमुच्यते ॥८३॥

अन्वयः— हे अनघ ! एतद् देवर्षिणा गीतं पारोक्ष्यं अध्यात्म यः श्रावयेत् यः शृणुयात् लिङ्गेन विमुच्यते ॥८३॥

अनुवाद— हे निष्पाप विदुरजी देवर्षि नारदजी के द्वारा वर्णित हुए परोक्ष आत्मज्ञान को जो सुनेगा अथवा सुनायेगा वह लिङ्ग शरीर से मुक्त हो जायेगा ॥८३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८३॥

एतन्मुकुन्दयशसा भुवनं पुनानं देवर्षिवर्यमुखनिःसृतमात्मशौचम् ।
यः कीर्त्यमानमधिगच्छति पारमेष्ठ्यं नास्मिन्भवे भ्रमति मुक्तसमस्तबन्धः ॥८४॥

अन्वयः— देवर्षिवर्यमुखनि स्सृतम् आत्मशौचम् मुकुन्दयशसाभुवनं पुनानम् यः कीर्त्यमानम् पारमेष्ठयं पदम् आधिगच्छति मुक्तसमस्तबन्धः अस्मिन् भवे न भ्रमति ॥८४॥

अनुवाद— देवर्षिवर्य नारदजी के मुख से निकला हुआ यह आत्मज्ञान भगवान् मुकुन्द के यश से संबद्धहोने के कारण त्रैलोक्य को पवित्र करने वाला है तथा अन्तःकरण को पवित्र बनाने वाला है । जो पुरुष इसकी कथा का श्रवण करेगा वह संसार के समस्त बन्धनों से मुक्त होकर परम पद को प्राप्त करेगा । उसको इस संसार में नहीं भटकना पड़ेगा ॥८४॥

भावार्थ दीपिका

आत्मशौचं मनःशोधकम् । पारमेष्ठ्यं सर्वोत्कृष्टफलदम् ॥८४॥

भाव प्रकाशिका

आत्मशौचम् पद का अर्थ है मन को पवित्र बनाने वाला, **पारमेष्ठयम्** अर्थात् सर्वोत्कृष्ट फल प्रदान करने वाला ॥८४॥

अध्यात्मपारोक्ष्यमिदं मयाऽधिगतमद्भुतम् । एवं स्त्रियाश्रमः पुंसश्छिन्नोऽमुत्र च संशयः ॥८५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे विदुरमैत्रेयसंवादे प्राचीनबर्ही नारद संवादो नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

अन्वयः— इदम् अद्भुतम् पारोक्ष्यम् मया अधिगतम् एवम् स्त्रियाश्रमः पुंसः अमुत्र छिन्न संशयः भवतीति शेषः॥८५॥

अनुवाद— इस अद्भुत परोक्ष आत्मज्ञान को मैंने अपने आचार्य की कृपा से प्राप्त किया इसको सुनने वाला गृहस्थाश्रमी भी सभी संशयों के समाप्त हो जाने के कारण मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥८५॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के विदुर मैत्रेय संवाद के अन्तर्गत प्राचीनवर्ही नारद संवाद नामक उनतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ।।५९।।

भावार्थ दीपिका

स्त्री बुद्धिस्तत्सहितस्याश्रमोऽहंकारश्छिन्नो भवति । अमुत्र कर्मफलभोगः कथमिति संशयश्छिन्नः ॥८५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

स्त्रियाश्रमः का अर्थ है स्त्री शब्द वाच्य बुद्धि के साथ जो आश्रम अहङ्कार वह विनष्ट हो जाता है अर्थात् इसको सुनने वाले का अहङ्कार विनष्ट हो जाता है । उसका यह संशय भी विनष्ट हो जाता है कि कर्म का फल कैसा होता है ॥८५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के उनतीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२९॥

* * *

तीसवाँ अध्याय

प्रचेताओं को भगवान् विष्णु का वरदान

विदुर उवाच

ये त्वयाभिहता ब्रह्मन्सुताः प्राचीनबर्हिषः । ते रुद्रगीतेन हरिं सिद्धिमापुः प्रतोष्यकाम् ॥१॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! त्वया ये प्राचीन वर्हिषः सुताः अभिहिताः ते रुद्रगीतेन हरिं प्रतोष्य काम् सिद्धिम् आपुः ॥१॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— ब्रह्मन् अपने जिन राजा प्राचीन वर्हीं के पुत्रों का वर्णन किया है उन सबों ने रुद्रगीत के द्वारा श्रीहरि की स्तुति करके किस सिद्धि को प्राप्त किया ?॥१॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गात्पञ्चभिः प्रोक्तं वृत्तं प्राचीनबर्हिषः । वर्ण्यते च पुनर्द्वाभ्यां प्रस्तुतं तत्प्रचेतसाम् ॥१॥ तत्र त्रिंशे तपस्तुष्टादीशालुब्धवरास्ततः । आगत्य वार्क्षीमुद्वाह्य राज्यं चक्रुरितीर्यते ॥२॥ हरिं प्रतोष्य कां सिद्धिमापुः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्गवशात् पाञ्च अध्यायों के द्वारा मैत्रेयजी ने राजा प्राचीन वर्हीं के चरित का वर्णन किया पुनः वे दो अध्यायों द्वारा प्रस्तुत प्रचेताओं के चरित का वर्णन करते हैं । उसमें भी तीसवें अध्याय में तपस्या से प्रसन्न हुए श्रीहरि से वरदान प्राप्त करके, वहाँ से आकर वृक्षों की पुत्री वार्क्षी से विवाह करके उन सबों ने राज्य किया इस बात का वर्णन है । श्रीहरि को प्रसन्न करके प्रचेताओं ने कौन सी सिद्धि प्राप्त की ॥१॥

किं बार्हस्पत्येह परत्र वाथ कैवल्यनाथप्रियपार्श्ववर्तिनः ।
आसाद्य देवं गिरिशं यदृच्छया प्रापुः परं नूनमथ प्रचेतसः ॥२॥

अन्वयः— हे बार्हस्पत्य ! कैवल्य नाथ प्रिय पर्श्ववर्तिनः यदृच्छया देवं गिरिशं आसाद्य अथ प्रचेतसः नूनं परं प्रापु अथ इह परत्र वा किम् प्रापुः ॥२॥

अनुवाद— हे बार्हस्पत्य मैत्रेयजी मोक्षाधिपति श्रीभगवान् के परं प्रिय भगवान् शङ्कर का अचानक सान्निध्य प्राप्त करके प्रचेताओं ने उसके पश्चात् निश्चित रूप से मुक्ति प्राप्त कर ली होगी किन्तु उन सबों ने इस लोक में अथवा परलोक में किस सिद्धि को प्राप्त किया इस बात को आप मुझे बतलायें ॥२॥

भावार्थ दीपिका

हे वार्हस्पत्य, कस्यांचिद्विद्यायां बृहस्पतेर्मैत्रेयः शिष्य इति ज्ञातव्यम् । ते यदृच्छया गिरिशं प्राप्य तस्यैव कैवल्यनाथप्रियस्य गिरिशस्य पार्श्ववर्तिनस्तदनुगृहीताः सन्तो नूनं परं मोक्षं प्रापुरेव । ततः पूर्वं त्विहथवा परत्र किं प्रापुः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

हे बृहस्पति के शिष्य ! इस संबोधन से पता चलता है कि मैत्रेयजी देवगुरु बृहस्पति से किसी विद्या को प्राप्त करने के लिए उनकी शिष्यता स्वीकार किए होंगे । उन प्रचेताओं ने अकस्मात् भगवान् शिव से मिलकर, मोक्षाधिपति श्रीहरि के प्रिय शङ्करजी के सन्निकट रहने वाले श्रीहरि की कृपा प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त किया यह तो निश्चित है किन्तु उससे पहले इस लोक में अथवा परलोक में उन सबों ने क्या किया यह मुझे आप बतलाएँ ॥२॥

मैत्रेय उवाच

प्रचेतसोऽन्तरुदधौ पितुरादेशकारिणः । जपयज्ञेन तपसा पुरंजनमतोषयन् ॥३॥

अन्वयः— पितुरादेशकारिणः प्रचेतस अन्तरुदधौ जपयज्ञेन तपसा पुरञ्जनमतोषयन् ॥३॥

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— अपने पिता के आदेश का पालन करने वाले प्रचेताओं ने समुद्र के भीतर खड़े रहकर जप यज्ञरूपी तपस्या के द्वारा समस्त शरीरों को उत्पन्न करने वाले श्रीहरि को प्रसन्न किया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

रुद्रगीतजपरूपेण यज्ञेन तपसा च । पुरंजनं हरिम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

प्रचेताओं ने रुद्रगीत के जप यज्ञ रूपी तपस्या के द्वारा पुरञ्जन (समस्त शरीरों को उत्पन्न करने वाले) श्रीहरि को प्रसन्न किया ॥३॥

दशवर्षसहस्रान्ते पुरुषस्तु सनातनः । तेषामाविरभूत्कृच्छ्रं शान्तेन शमयन् रुचा ॥४॥

अन्वयः— दशवर्ष सहस्रान्ते तु सनातनः पुरुषः तेषां कृच्छ्रं शान्तेन रुचा शमयन् आविरभूत् ॥४॥

अनुवाद— उन सबों की तपस्या करते हुए दश हजार वर्ष बीत जाने के पश्चात् सनातन पुरुष भगवान् नारायण अपनी मनोहर कान्ति के द्वारा तपस्या जन्य क्लेश को शान्त करते हुए उन सबों के समक्ष प्रकट हो गये ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तेषां कृच्छ्रं तपःक्लेशं रुचा कान्त्या शमयन् शान्तेन शुद्धसत्त्वेन वपुषा आविर्भूतः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

उन सबों के तपस्या जन्य क्लेश को शुद्ध सत्त्वमय अपने दिव्य विग्रह की कान्ति के द्वारा शान्त करते हुए आविर्भूत हो गये ॥४॥

सुपर्णस्कन्धमारूढो मेरुशृङ्गमिवाम्बुदः । पीतवासा मणिग्रीवः कुर्वन्वितिमिरा दिशः ॥५॥

अन्वयः— सुपर्णस्कन्धम् आरूढः मेरु शृङ्गमिवाम्बुदः, पीतवासा, मणिग्रीवः दिशः वितिमिराः कुर्वन् ॥५॥

अनुवाद— गरुड़जी के कन्धे पर बैठे हुए श्रीभगवान् ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे सुमेरु पर्वत के शिखर पर कोई श्याम वट विद्यमान हो । वे पीताम्बर धारण किए हुए थे, उनकी गले में कौस्तुभमणि सुशोभित हो रही थी । अपनी कन्ति के द्वारा वे सभी दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

सुपर्णस्कन्धमारूढ इत्यादीनां बर्हिष्मतः सुतानाहेति तृतीयेनान्वयः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

गरुड़जी के कन्धे पर बैठे हुए इत्यादि विशेषणों का इस श्लोक से तीसरे सातवें श्लोक के बर्हिष्मतः सुतान् आह अर्थात् प्राचीनबर्हीं के पुत्रों से कहा, इन पदों के साथ अन्वय है ॥५॥

काशिष्णुना कनकवर्णविभूषणेन भ्राजत्कपोलवदनो विलसत्किरीटः ।
अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभिः सुरेन्द्रैरासेवितो गरुडकिन्नरगीतकीर्तिः ॥६॥
पीनायताष्टभुजमण्डलमध्यलक्ष्म्यास्पर्धच्छ्रिया परिवृतो वनमालयाद्यः ।
बर्हिष्मतः पुरुष आह सुतान्प्रपन्नान्पर्जन्यनादरुतया सघृणावलोकः ॥७॥

अन्वयः— काशिष्णुना कनकवर्ण विभूषणेन भ्राजत्कपोलवदनः विलसत् किरीटः अष्टायुधै रनुचरैः मुनिभिः सुरेन्द्रैः आसेवितः, गरुड किन्नर गीतकीर्तिः पीनायताष्टभुजमण्डलमध्यलक्ष्म्या, स्पर्धच्छ्रिया वनमालया परिवृतः सघृणावलोकः, आद्यपुरुषः, प्रपन्नान् बर्हिष्मतः पुत्रान् पर्जन्य रूतया आह ॥६-७॥

अनुवाद— चमकने वाले सुवर्णमय आभूषणों से युक्त श्रीभगवान् के कमनीय कपोल और मनोहर मुख मण्डल से सुशोभित हो रहे थे । उनके मस्तक पर मुकुट सुशोभित हो रहा था । श्रीभगवान् की आठ भुजाओं में आठ आयुध विद्यमान थे । देवगण, मुनिगण, पार्षदगण उनकी सेवा में उपस्थित थे तथा गरुडजी किन्नर के समान अपने पङ्खों की साममय ध्वनि से श्रीभगवान् की कीर्ति का गान कर रहे थे । उनकी लम्बी आठ भुजाओं के बीच में लक्ष्मीजी से स्पर्धा करने वाली वनमाला विराजमान थी आदि पुरुष भगवान् नारायण इस प्रकार पधार कर अपने शरणागत प्रचेताओं को दयादृष्टि से देखते हुए मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहे ॥६-७॥

भावार्थ दीपिका

कनकमयेन वर्णवता विभूषणेन भ्राजमानं कपोलं वदनं च यस्य । अष्टभिरायुधैः । गरुड एव किन्नरस्तेन पक्षस्वनैर्गीता कीर्तिर्यस्य । पीनाश्च ते आयता अष्टौ भुजास्तेषां मण्डलं समूहस्तन्मध्ये स्थितया लक्ष्म्या स्पर्धमाना श्रीः शोभा यस्यास्तया वनमालया परिवृत आद्यः पुरुष आह । पर्जन्य नाद इव रुतं नादो यस्यास्तया वाचा । सघृणोऽवलोको यस्य ॥६-७॥

भाव प्रकाशिका

सुवर्णमय तथा अनेक रत्नों के जटित होने के कारण अनेक वर्णों वाले आभूषणों से जिनके कपोल और मुखमण्डल सुशोभित हो रहे थे ऐसे श्रीभगवान् की आठ भुजाएँ थीं । गरुड़जी किन्नर के समान अपने साममय पङ्खों की ध्वनि से श्रीभगवान् की कीर्ति का गायन कर रहे थे । श्रीभगवान् की मांसल तथा लम्बी भुजा समूह के बीच में विद्यमान श्रीलक्ष्मीजी से स्पर्धा करने वाली लक्ष्मीजी के ही समान शोभा सम्पन्न वनमाला के द्वारा परिवृत अपनी दया दृष्टि से शरणागत प्रचेताओं को देखते हुए उन सबों से मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहे॥६-७॥

श्रीभगवानुवाच

वरं वृणीध्वं भद्रं वो यूयं मे नृपनन्दनाः । सौहार्देनापृथग्धर्मास्तुष्टोऽहं सौहृदेन वः ॥८॥

अन्वयः— हे नृपनंदना वो भद्रं सौहार्देन यूयं अपृथग् धर्माः, वः सौहृदेन अहं तुष्टः यूयं वरं वृणीध्वम् ॥८॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— राजपुत्रों ! आपलोगों का कल्याण हो । तुमलोगों में परस्पर में प्रेम होने के कारण तथा सौहार्द के कारण तुम लोग एक ही धर्म को अपनाये हो । इससे मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ । तुमलोग वरदान माँगो ॥८॥

भावार्थ दीपिका

यूयं मे मत्तो वृणीध्वम् । सौहार्देन हेतुनाऽपृथग्धर्मौं येषां तेषां संबोधनम् । वः परस्परं सौहृदेन तुष्टोऽहम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

तुम लोग मुझसे वरदान माँगो । सौहार्द के कारण एक ही धर्म को तुम लोग अपनाये हों । तुमलोगों के परस्पर में प्रेम होने के कारण मैं संतुष्ट (प्रसन्न) हूँ ॥८॥

योऽनुस्मरति संध्यायां युष्माननुदिनं नरः । तस्य भ्रातृष्वात्मसाम्यं तथा भूतेषु सौहृदम् ॥९॥

अन्वयः— यः नरः संध्यायां युष्मान् स्मरति तस्य भातृषुआत्मसाम्यं तथाभूतेषु सौहृदम् ॥९॥

अनुवाद— जो मनुष्य संध्याकाल के समय तुमलोगों का प्रतिदिन स्मरण करेगा उसका अपने भाइयों में अपने ही समान प्रेम होगा तथा समस्त जीवों के प्रति मित्रता का भाव हो जायेगा ॥९॥

भावार्थ दीपिका

भूतेषु सौहृदं च भविष्यति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उस मनुष्य का सभी प्राणियों के प्रति मित्रता का भाव हो जायेगा ॥९॥

ये तु मां रुद्रगीतेन सायं प्रातः समाहिताः । स्तुवन्त्यहं कामवरान्दास्ये प्रज्ञां च शोभनाम् ॥१०॥

अन्वयः— ये तु सायं प्रातः समाहिताः । मां रुद्रगीतेन स्तुवन्ति तान् अहं कामवरान् शोभनां प्रज्ञां च दास्ये ॥१०॥

अनुवाद— जो लोग सायंकाल और प्रातःकाल एकाग्रमना होकर इस रुद्रगीत के द्वारा मेरी स्तुति करेंगे मैं उन लोगों को अभीष्ट वरदान प्रदान करूँगा और उन लोगों को मैं शुद्ध बुद्धि प्रदान करूँगा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तेभ्यो दास्ये, किं पुनर्युष्मभ्यमिति शेषः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उन स्तुति करने वालों को भी मैं प्रदान करूँगा फिर आपलोगों के विषय में क्या कहना हैं ॥१०॥

यद्यूयं पितुरादेशमग्रहीष्ट मुदान्विताः । अथो व उशती कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥११॥

अन्वयः— यूयं यद पितुः आदेशम् मुदाऽन्विताः अग्रहीष्ट अथोवः उशती कीर्तिः लोकान् अनुभविष्यति ॥११॥

अनुवाद— तुम लोगों ने अपने पिता के आदेश के जो प्रसन्नमन से स्वीकार किया इससे तुमलोगों की कीर्ति समस्त लोकों में फैल जायेगी ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अग्रहीष्ट गृहीतवन्तः । अथो इति हेतोः । लोकाननु लोकेषु भविष्यति । यद्वा लोकाननु भविष्यति द्रक्ष्यति व्याप्स्यतीत्यर्थः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

अग्रहीष्ट का अर्थ है स्वीकार किया । अथो पद हेतु का वाचक है । अर्थात् तुमलोगों ने जो अपने पिता की आज्ञा को प्रसन्नता से स्वीकार किया उसके कारण तुमलोगों का यश लोकों को देखेगा । अर्थात् लोकों में व्याप्त हो जायेगा ।।११।।

भविता विश्रुतः पुत्रोऽनवमो ब्रह्मणो गुणैः । य एतामात्मवीर्येण त्रिलोकीं पूरयिष्यति ।।१२।।

अन्वयः— विश्रुतः पुत्रः गुणैः ब्रह्मणः अनवमः भविता, यः आत्मावीर्येण एताम् त्रिलोकीम् पूरयिष्यति ।।१२।।

अनुवाद— तुमलोगों का एक विख्यात पुत्र होगा जो ब्रह्माजी के समान गुणों वाला होगा और वह अपनी सन्तानों से इस त्रिलोकी को भर देगा ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनो वीर्येण संतानेन ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

आत्मवीर्येण का अर्थ है अपनी सन्तान से ।।१२।।

कण्डोः प्रम्लोचया लब्धा कन्या कामललोचना । तां चापविद्धां जगृहुर्भूरुहा नृपनन्दनाः ।।१३।।

अन्वयः— हे नृपनन्दनाः, कण्डोः प्रम्लोचया कमललोचना कन्या लब्धा अवविद्धां च तां भूरुहाः जगृहुः ।।१३।।

अनुवाद— हे राजकुमारों कण्डुमुनि के वीर्य से प्रम्लोचना नाम की अप्सरा ने एक कमल नयनी कन्या को जन्म दिया । उस परित्यक्त कन्या को वृक्षों ने ले लिया ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

पुत्रार्थमादौ भार्यां संपादयति भगवान् कण्डोरिति त्रिभिः । तपोनाशार्थमिन्द्रप्रेषितया प्रम्लोचनया कण्डुर्नाम ऋषिर्बहुकालं रेमे । सा च ततः स्वर्गं गच्छन्ती कण्डोर्जातं गर्भं वृक्षेषु त्यक्त्वा जगाम तदेतदुक्तम् । अपविद्धां त्यक्ताम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् पुत्र की प्राप्ति के लिए पहले प्रचेताओं की पत्नी को कण्डो इत्यादि तीन श्लोकों से बतलाते हैं । कण्डु महर्षि की तपस्या को नष्ट करने के लिए इन्द्र ने प्रम्लेचा नाम की अप्सरा को उनके पास भेजा । ऋषि ने उसके साथ बहुत समय तक रमण किया । जब वह अप्सरा स्वर्ग जाने लगी तो कण्डु महर्षि से हुए गर्भ को उसने वृक्षों पर त्याग दिया और स्वर्ग चली गयी । उसी को श्रीभगवान् ने अपविद्धाम् अर्थात् परित्यक्त शब्द से कहा है ।।१३।।

क्षुत्क्षामाया मुखे राजा सोमः पीयूषवर्षिणीम् । देशिनीं रोदमानाया निदधे स दयान्वितः ।।१४।।

अन्वयः— क्षुतक्षामायाः रोदमानायाः मुखे सः दयान्वितः राजा सोमः पूयूषवर्षिणी देशिनीं निदधे ।।१४।।

अनुवाद— भूख से व्याकुल रोती हुई उस कन्या के मुख में ओषधियों के प्रख्यात राजा सोम ने दया करके अपनी अमृत वर्षिणी तर्जनी अङ्गुलि को उसके मुख में डाल दिया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

स प्रसिद्धो वनस्पतीनां राजा सोमोऽमृतस्राविणीं देशिनीं तर्जनीं रुदत्यास्तस्या मुखे निदधे । अनेनाप्सरोगर्भसंभवे वामृताहारेण च तस्या लावण्यं क्लमस्वेददौर्गन्ध्यादिराहित्यं चोक्तम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

वनस्पतियों के प्रख्यात राजा चन्द्रमा ने रोती हुई उस कन्या के मुख में अपनी अमृत वर्षिणी तर्जनी अङ्गुलि

को डाल दिया । इसके कारण अथवा अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण तथा अमृत आहार के कारण उसका सौन्दर्य थकान पसीना तथा दुर्गन्धि से रहित हो गया यह कहा जा चुका है ॥१४॥

प्रजाविसर्ग आदिष्टाः पित्रा मामनुवर्तता । तत्र कन्यां वरारोहां तामुद्वहत माचिरम् ॥१५॥

अन्वयः— माम् अनुवर्तता पित्रा प्रजाविसर्गे आदिष्टाः तत्र मा चिरम् वरारोहां तां कन्याम् उद्वहत ॥१५॥

अनुवाद— मेरी सेवा में लगे हुए तुमलोगों को सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा दी है, अतएव तुमलोग शीघ्र ही उस देवोपम सुन्दरी से विवाह कर लो ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

मामनुवर्तमानेन पित्रा नियुक्ताः सन्तस्तत्र प्रजाविसर्गे निमित्ते तामुद्वहत ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

मेरी सेवा करने वाले तुम्हारे पिता ने तुमलोगों को सन्तान उत्पन्न करने का आदेश दिया है अतएव सन्तान उत्पन्न करने के लिए तुमलोग उस कन्या से विवाह कर लो ॥१५॥

अपृथग्धर्मशीलानां सर्वेषां वः सुमध्यमा । अपृथग्धर्मशीलेयं भूयात्पत्न्यर्पिताशया ॥१६॥

अन्वयः— अपृथग्धर्मशीलानां वः सर्वेषां अपृथग्धर्मशीला इयं सुमध्यमा अर्पिताशया पत्नी भूयात् ॥१६॥

अनुवाद— तुम लोग एक ही धर्म में तत्पर हो और तुमलोगों का स्वभाव भी एक समान है अतएव तुमलोगों के ही समान धर्म और स्वभाव वाली वह सुन्दरी तुम सबों की पत्नी होगी तथा तुम सबों में उसका एक समान प्रेम होगा ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

ननु बहूनां कथमेका भार्या स्यात्तत्राह । अपृथग्धर्मः शीलं येषां तेषां वः पत्नी भूयात् । अर्पितो भवत्सु आशयो यया धर्मशीलयोरैक्यान्मद्वाक्याच्च न दृष्टादृष्टविरोध इति भावः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि अनेक पुरुषों की एक ही पत्नी कैसे हो सकती है ? इस प्र श्रीभगवान् ने कहा तुम सबों का शील एक समान है, ऐसे तुमलोगों की वह पत्नी होगी । तुमलोगों के ही समान शील वाली उसका तुम सबों में एक ही समान अनुराग होगा और मेरी आज्ञा होने के कारण भी दृष्टादृष्ट का विरोध नहीं होगा ॥१६॥

दिव्यवर्षसहस्राणां सहस्रमहतौजसः । भौमान्भोक्ष्यथ भोगान्वै दिव्यांश्चानुग्रहान्मम ॥१७॥

अन्वयः— मम अनुग्रहात् वै अहतौजसः दिव्यवर्षसहस्राणां सहसं दिव्यान् भौमान् भोगान् भोक्ष्यथ ॥१७॥

अनुवाद— मेरी कृपा से तुमलोग दस लाख दिव्य वर्षों तक पूर्ण बलवान् रहकर पार्थिव और दिव्य भोगों को भोगोगे ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अहतौजसोऽप्रतिहतवलाः सन्तः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

पूर्ण रूप से बलवान् रहकर तुमलोग दस लाख वर्षों तक दिव्य तथा भौम भोगों को भोगोगे ॥१७॥

अथ मय्यनपायिन्या भक्त्या पक्वगुणाशयाः । उपयास्यथ मद्धाम् निर्विद्य निरयादतः ॥१८॥

अन्वयः— अथ मयि अनपायिन्या भक्त्या पक्वगुणशयाः अतः निरयात् निर्विद्य मद्धाम उपयास्यथ ॥१८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् मुझमें अविचल भक्ति के कारण लोक तथा परलोक के नरकतुल्य भोगों से विरक्त होकर मेरे परम धाम को तुमलोग जाओगे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

पक्वगुणो दग्धकामादिमल आशयो येषाम् । अतो लोकद्वयभोगान्निरयप्रायान्निर्विद्य मत्स्थानं प्राप्स्यथ ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

अन्तःकरण के समस्त कामादि मलों के भस्म हो जान के कारण लोक और परलोक के नरक के समान भोगों से विरक्त होकर मेरे धाम में जाओगे ॥१८॥

गृहेष्वाविशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम् । मद्वार्तायातयामानां न बन्धाय गृहा मताः ॥१९॥

अन्वयः— कुशलकर्मणाम् मद्वार्तयायातयामानाम् गृहेषु आविशतां चापि पुंसा गृहाः बन्धाय न मताः ॥१९॥

अनुवाद— जो लोग भगवदाराधनैक वेश कर्मों को करते है तथा जिनका समय मेरी कथा सम्बन्धी वार्ता में ही बितता है, उन गृहों में रहने वाले भी लोगों के लिए गृह बन्धन कारक नहीं होता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ननु गृहेषु प्रविष्टानामस्माकं तदासक्त्या बन्ध एव स्यात्कुतस्त्वद्भक्तिर्निर्वेदो वा तत्राह–गृहेष्विति । कुशलं मय्यर्पितं कर्म येषाम् । मद्वार्तया यातो यामः कालो येषाम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

यदि प्रचेतागण कहें कि हमलोग तो घरों में रहने वाले हैं, गृहों में आसक्ति होने के कारण हमलोगों को संसार बन्ध ही होगा । कहाँ से आपकी भक्ति और संसार से निर्वेद होगा ? इसके उत्तर में श्रीभगवान् ने गृहेषु इत्यादि श्लोक को कहा जो लोग अपने सभी कर्मों को मुझे ही समर्पित करते हैं तथा जिन लोगों का समय मेरी कथा समबन्धी वार्ता में ही वितता है, उन लोगों के लिए गृह बन्धन कारक नहीं होते हैं ॥१९॥

नव्यवद्धृदये यज्ज्ञो ब्रह्मैतद्ब्रह्मवादिभिः । न मुह्यन्ति न शोचन्ति न हृष्यन्ति यतो गताः ॥२०॥

अन्वयः— यत् ज्ञः ब्रह्म एतद् ब्रह्म वादिभिः हृत नव्यवत् अये, यतो गताः न मुहयन्ति, न हृष्यन्ति न शोचन्ति ॥२०॥

अनुवाद— चूकि वे नित्य प्रति मेरी कथा सुनते हैं । अतएव ब्रह्मवादी वक्ताओं के द्वारा ज्ञान स्वरूप परंब्रह्म मैं उनके हृदय में नित्य नया-नया सा प्रतीत होता हूँ । जो जीव मुझको प्राप्त कर लेते हैं उन सबों को न तो मोह होता है, न शोक होता है और न हर्ष ही होता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

त्वद्वार्ताश्रोतॄणां गृहैर्न बन्ध इति कुतस्तत्राह–नव्यवदिति । यद्यस्मात्कथाश्रवणात् ज्ञः सर्वज्ञोऽहमीश्वरो ब्रह्मवादिभिः प्रवक्तृभिर्निमित्तभूतैः श्रोतॄणां हृत् हृदयं नव्यवत्प्रतिपदं नूतनवत् अये प्राप्नोति । ब्रह्मसाक्षात्कारो भवतीत्यर्थः । ननु त्वत्कथाश्रवणे कथं ब्रह्मसाक्षात्कारस्तत्राह । योऽहमेतदेव ब्रह्म । तत्र हेतुः यतो एताः यं मां प्राप्ताः सन्तो मोहशोकहर्षान्न प्राप्नुवन्ति, अतो मत्कथाश्रवणेन नव्यवन्मम हृद्याविर्भावादस्यैव ब्रह्मसाक्षात्कारत्वाद्गृहेषु वसतामपि न बन्ध इत्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

यदि प्रचेतागण कहे कि आपकी कथा सुनने वालों के लिए घर बन्धन कारक नहीं होता है यह कैसे कहा

जा सकता है ? इस पर श्रीभगवान् कहते हैं **नव्यवत्० इत्यादि** चूकि मेरी कथा सुनने के कारण सर्वज्ञ ईश्वर मैं ब्रह्मवादी प्रवचन कर्ताओं के द्वारा कही गयी कथा सुनने वालों के हृदय में मैं नित्य ही नवीन सा प्रतीत होता हूँ । अर्थात् उन कथा श्रोताओं को ब्रह्म साक्षात्कार होता है । प्रश्न होता है कि आपकी कथा को सुनने से ब्रह्म साक्षात्कार कैसे होता है ? क्योंकि मैं ही स्वयं ब्रह्म हूँ और मुझको जो जीव प्राप्त कर लेते हैं उनको मोह शोक और हर्ष नहीं होता है । अतएव मेरी कथा सुनने के कारण हृदय में नवीन सा मेरा आविर्भाव होने के कारण और इसी के ब्रह्म साक्षात्कार होने के कारण गृहों में रहने वाले लोगों को संसारबन्ध नहीं होता है ॥२०॥

मैत्रेय उवाच

एवं ब्रुवाणं पुरुषार्थभाजनं जनार्दनं प्राञ्जलयः प्रचेतसः ।
तद्दर्शनध्वस्ततमोरजोमला गिराऽगृणन्गद्गदया सुहृत्तमम् ॥२१॥

अन्वयः— एवं ब्रुवाणं पुरुषार्था भाजनं सुहृतज्ञानम् जनार्दनं तद्दर्शन ध्वस्ततमोरजोमलाप्रचेतसः प्राञ्जलयः गद्गदयागिरा अगृणन् ॥२१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से कहने वाले सभी पुरुषार्थों के आश्रय तथा सबों के सुहृद भगवान् जनार्दन की, श्रीभगवान् के दर्शन से जिनके तमोगुण और रजोगुण रूपी मल समाप्त हो गये थे ऐसे प्रचेतागण हाथ जोड़कर अपनी गद्गदवाणी से स्तुति करने लगे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

पुरुषार्थं भाजयति प्रापयतीति तथा तम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले श्रीभगवान् को यह पुरुषार्थ भाजनं पद का अर्थ है ॥२१॥

प्रचेतस ऊचुः

नमो नमः क्लेशविनाशनाय निरूपितोदारगुणाह्वयाय ।
मनोवचोवेगपुरोजवाय सर्वाक्षमार्गैरगताध्वने नमः ॥२२॥

अन्वयः— क्लेशविनाशनाय निरूपितम् दारगुणं ह्वयाय, मनोवचो वेगपुरोजयाय, सर्वाक्षमार्गै अगताध्वने नमः॥२२॥

प्रचेताओं ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! आप अपने भक्तों के क्लेश को दूर करने वाले है; वेद आपके उदार गुणों और नामों का निरूपण करते है । आपका वेग वाणी और मन के भी वेग से अधिक है, तथा आपका स्वरूप सभी इन्द्रियों से परे हैं । ऐसे आपको हम नमस्कार करते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

वेदैः सकलश्रेयः साधनत्वेन निरूपिता उदारगुणा आह्वया नामानि च यस्य । मनोवचसोर्वेगादपि पुरोऽग्रतो जवो वेगोऽस्य । मनोवचसोरगोचरायेत्यर्थ; । अतएव सर्वेषामक्षाणां मार्गैरगतोऽनवगतोऽध्वा यस्य तस्मै ते नमः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

वेद श्रीभगवान् के उदार गुणों और नामों को समस्त कल्याणों के साधन रूप से बतलाते हैं । श्रीभगवान् का वेग मन और वाणी के भी वेग से अधिक है, तथा श्रीभगवान् का स्वरूप सभी इन्द्रियों से परे है ऐसे आप श्रीभगवान् को हम सभी नमस्कार करते हैं ॥२२॥

शुद्धाय शान्ताय नमः स्वनिष्ठया मनस्यपार्थं विलसद्द्वयाय ।
नमो जगत्स्थानलयोदयेषु गृहीतमायागुणविग्रहाय ॥२३॥

अन्वयः— स्वनिष्ठया, शुद्धाय, शान्ताय, मनसि अपार्थविलसद्द्वयाय, जगत्स्थान लयोदयेषु गृहीतमायागुणविग्रहाय नमो नमः ॥२३॥

अनुवाद— अपने स्वरूप में स्थित रहने के कारण नित्य शुद्ध और शान्त आपको बार-बार नमस्कार है। मन रूपी निमित्त के कारण हमें आपमें यह मिथ्याद्वैत भास रहा है, जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय के लिए आप माया के गुणों को अपनाकर ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप को धारण करते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

स्वनिष्ठया स्वरूपस्थित्या शुद्धाय । अतः शान्ताय । मनसि निमित्ते सत्यपार्थं व्यर्थमेव विलसद्विस्फुरितं द्वयं यस्मिन्। गृहीता मायागुणैर्विग्रहा ब्रह्मादिमूर्तयो येन ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

अपने स्वरूप में स्थित रहने के कारण शुद्ध अतएव शान्त, मन रूपी निमित्त के कारण मिथ्या हमें आपमें मिथ्या द्वैत भास रहा है, आप संसार की उत्पत्ति स्थिति और लय के लिए माया के गुणों को अपनाकर ब्रह्म, विष्णु और रुद्र का रूप धारण करते हैं ॥२३॥

नमो विशुद्धसत्त्वाय हरये हरिमेधसे । वासुदेवाय कृष्णाय प्रभवे सर्वसात्वताम् ॥२४॥

अन्वयः— विशुद्ध सत्वाय, हरये, हरिमेधसे वासुदेवाय, कृष्णाय सर्वसात्त्वताम् प्रभवे नमः ॥२४॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप विशुद्ध सत्त्व स्वरूप है, आपका ज्ञान संसार के बन्धन को दूर कर देता है, आप ही, वासुदेव, कृष्ण है, आप समस्त भक्तों के प्रभु हैं आपको हमलोगों का नमस्कार हो ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

स्वतस्तु विशुद्धसत्त्वरूपाय । संसारं हरति मेधा ज्ञानं यस्य तस्मै ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

आप स्वभावतः विशुद्ध सत्व स्वरूप है । आपका ज्ञान संसार के बन्धन को दूर करता है ॥२४॥

नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने । नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण ॥२५॥

अन्वयः— कमलनाभाय नमः, कमलमालिने नमः, कमलपादाय नमः, हे कमलेक्षण ते नमः ॥२५॥

अनुवाद— आपकी ही नाभि से ब्रह्माण्ड स्वरूप कमल पैदा हुआ था ऐसे आपको नमस्कार है । आप अपने गले में कमल की माला धारण करते हैं ऐसे आपको नमस्कार है । आपके चरण कमल के समान कोमल हैं ऐसे आप को नमस्कार है । हे कमल के समान नेत्र वाले प्रभो आपको नमस्कार है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

नमः कमलकिंजल्कपिशङ्गामलवाससे । सर्वभूतनिवासाय नमोऽयुङ्क्ष्महि साक्षिणे ॥२६॥

अन्वयः— कमलकिञ्जल्कपिशङ्गामलवाससे नमः, सर्वभूतनिवासाय साक्षिणे नमः आयुङ्क्ष्महि ॥२६॥

अनुवाद— कमल पुष्प के केसर के समान निर्मल पीताम्बर धारण करने वाले आपको नमस्कार है, हमलोग सभी भूतों के आश्रयभूत तथा साक्षी आपको नमस्कार करते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अयुङ्क्ष्महि कृतवन्तो वयम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

हमलोग नमस्कार करते हैं ।।२६।।

रूपं भगवता त्वेतदशेषक्लेशसंक्षयम् । आविष्कृतं नः क्लिष्टानां किमन्यदनुकम्पितम् ।।२७।।

अन्वयः— भगवता तुएतदशोषक्लेश संक्षयम् रूपं अविष्कृतम् क्लिष्टनां नः अन्यद् अनुकम्पितं किम् ।।२७।।

अनुवाद— प्रभो ! यह आपने सम्पूर्ण क्लेशों को विनष्ट करने वाले इस रूप को आविष्कृत किया है, अविद्यादि दोषों से क्लेशित हमलोगों पर इससे बढ़कर और दूसरी कौन सी कृपा होगी ?।।२७।।

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं वरं वृणीध्वमिति तन्मनसि निधायाहुः- रूपमिति । समस्तानां क्लेशानां संक्षयो यस्मात् । नः आविष्कृतं प्रकटितम् । अतोऽन्यत्किमनुकम्पितमनुकम्पा । इयमेवास्माकं परमानुकम्पेत्यर्थः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा है कि तुमलोग मुझसे वरदान माँगो इसी बात को मन में रखकर प्रचेताओं ने **रूपम० इत्यादि** कहा हैं । अर्थात् जिसके द्वारा समस्त क्लेशों का नाश हो जाता है उस रूप को आपने हमलोगों के समक्ष प्रकट किया है । इससे भिन्न कौन सी अनुकम्पा हो सकती है । हमलोगों पर आपकी यही सबसे बड़ी अनुकम्पा है ।।२७।।

एतावत्त्वं हि विभुभिर्भाव्यं दीनेषु वत्सलैः । यदनुस्मर्यते काले स्वबुद्ध्याऽभद्ररन्धन ।।२८।।

अन्वयः— हे अभद्र रन्धन ! दीनवत्सलैः हिविभुभिः एतावत्वंहि भाव्यं काले स्वबुद्धया यत् अनुस्मर्यते ।।२८।।

अनुवाद— हे अमङ्गल का नाश करने वाले प्रभो, दीनों पर दया करने वाले समर्थ पुरुषों को इतनी ही कृपा करनी चाहिए कि समय-समय पर उन दीन जनों को ये हमारे हैं, इस प्रकार से स्मरण कर लिया करें ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

कुत इत्यत आह । हे अभद्ररन्धन अमङ्गलनाशन त्वप्रत्ययोऽत्र न विवक्षितः । एतावदेव दीनेषु वत्सलैः प्रभुभिर्भाव्यं कार्यम्। किं तत्तदाह-यदिति । अस्मदीया एत इति । बुद्धाया उचिते कालेऽनुस्मर्यत इति यत् । त्वया तु रूपमपि दर्शितमिति भावः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

ऐसा क्यों इस पर प्रचेताओं ने कहा हे अमङ्गल का नाश करने वाले प्रभो ! **एतावत्त्वम्** में त्वप्रत्यय विवक्षित नहीं है । दोनों पर कृपा करने वाले समर्थ पुरुषों को इतनी ही कृपा करनी चाहिए । यदि कहें कि वह क्या है? तो इसका उत्तर है कि उचित समय पर ये हमारे हैं इस प्रकार की बुद्धि के द्वारा वे दीन जनों को स्मरण कर लिया करें । और आप ने तो अपने रूप का दर्शन भी करा दिया ।।२८।।

येनोपशान्तिर्भूतानां क्षुल्लकानामपीहताम् । अन्तर्हितोऽन्तर्हृदये कसमान्नो वेद नाशिषः ।।२९।।

अन्वयः— येन भूतानाम् उपशान्तिः भवति, क्षुल्लकानाम् अपि भूतानाम् अन्तर्हृदये भवान् अन्तर्हितः नः आशिषः कस्मात् नो वेद ।।२९।।

अनुवाद— इतने ही मात्र से आश्रितों का चित्त शान्त हो जाता है । आप तो क्षुद्र से क्षुद्र प्राणियों के भी हृदय में अन्तर्यामी रूप से विराजमान हैं, अतएव आपके उपासक हमलोगों की कामनाओं को आप क्यों नहीं जान लेंगे ?।।२९।।

भावार्थ दीपिका

येनानुस्मरणेन स्मृतानां तेषामुपशान्तिः सुखं भवति । किंच क्षुल्लकानामपि भूतानामन्तर्हृदयेऽन्तर्हितोऽन्तर्यामित्वेन स्थितो भवानीहतामिच्छतां त्वदुपासकानां नोऽस्माकमाशिषः कस्माद्धेतोर्न वेद । जानात्येवेत्यर्थः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

उस अनुस्मरण के ही द्वारा स्मरण किए जाने वाले उन आश्रितों का चित्त शान्त हो जाता है । आप तो क्षुद्र जीवों के भी हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान हैं अतएव आप अपने उपासकों की कामनाओं को क्यों नहीं जान लेंगें जान ही लेंगे ।।२९।।

असावेव वरोऽस्माकमीप्सितो जगतः पते । प्रसन्नो भगवान्येषामपवर्गगुरुर्गति ।।३०।।

अन्वयः— हे जगतः पते ! अस्माकम् असौ एव वरः इप्सितः येषाम् अपवर्ग गुरुः जतिः भगवान् प्रसन्नः ।।३०।।

अनुवाद— हे जगत् के स्वामिन् ! हमलोगों को तो इतना ही वरदान अभिप्रेत है कि मोक्षमार्ग का उपदेश करने वाले तथा स्वयं पुरुषार्थ स्वरूप आप हमलोगों पर प्रसन्न हैं ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

तथापि वक्तव्यं चेत्तर्हि येषामस्माकं भगवान्प्रसन्नोऽसावेव वरः । भगवत्प्रसाद एवास्माकमीप्सितो वर इत्यर्थः । अपवर्गगुरुः मोक्षमार्गप्रदर्शकः । गतिः स्वतश्च पुरुषार्थभूतः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि फिर भी अपना इप्सित वरदान माँगो तो हे जगत् के स्वामिन् । हमलोगों पर आप प्रसन्न हैं बस हमलोग यह अभिप्रेत वरदान हैं आप तो मोक्षमार्ग के उपदेशक और स्वयं पुरुषार्थ स्वरूप है । केवल आपकी कृपा बनी रहे ।।३०।।

वरं वृणीमहेऽथापि नाथ त्वत्परतः परात् । नह्यन्तस्त्वद्विभूतीनां सोऽनन्त इति गीयसे ।।३१।।

अन्वयः— हे नाथ ! अथापि त्वत् परतः परात् वरं वृणीमहे । त्वद्विभूतीनाम् अन्तः न सः अनन्त इति गीयसे ।।३१।।

अनुवाद— हे नाथ ! फिर भी हम आपसे यह वरदान माँगते हैं कि आप प्रकृति आदि से परे हैं । आपकी विभूति का कोई अन्त नहीं है, इसलिए आप अनन्त कहे जाते हैं ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

यद्यप्येवं तथापि हे नाथ, त्वत्तो वरमेकं वृणीमहे । कथंभूतात् । परतः कारणादपि परात् । 'अक्षरात्परतः परः' इति श्रुतेः । अतो यद्यपि त्वं दातुं समर्थो न च देयानां त्वद्विभूतीनामन्तोऽस्ति यतोऽनन्तविभूतित्वादनन्त इति गीयसे ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

हे नाथ ! यद्यपि ऐसी बात है फिर भी हम आपसे एक वरदान माँगते हैं । कैसे आपसे माँगते हैं ? तो इसका उत्तर है कि आप प्रकृति आदि कारणों से भी परे हैं ऐसे आप से वरदान माँगते हैं । श्रुति भी कहती है- **अक्षरात् परतः परः** अर्थात् सर्वश्रेष्ठ कारण प्रकृति से परमात्मा परे (श्रेष्ठ) हैं । यद्यपि आप देने में समर्थ हैं, आप की प्रदेय विभूतियों का कोई अन्त नहीं है, इसी से आप अनन्त कहे जाते हैं ।।३१।।

पारिजातेऽञ्जसालब्धे सारङ्गोऽन्यन्न सेवते । त्वदङ्घ्रिमूलमासाद्य साक्षात्किं किं वृणीमहि ।।३२।।

अन्वयः— अस्ञ्जसा पारिजाते लब्धे सारङ्गः अन्यत् न सेवते । साक्षात् त्वदङ्घ्रिमूलम् आसाद्य किं किं वृणीमहि।।३२।।

अनुवाद— जिस तरह अनायास पारिजात वृक्ष मिल जाय तो भ्रमर दूसरे वृक्ष का सेवन नहीं करता है उसी तरह साक्षात् आपके चरणों के शरण में आकर हम आप से क्या क्या माँगें ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

तथापि यथा सारङ्गो भ्रमरः पारिजाते सुखेन लब्धे सति सुलभमप्यन्यद्वृक्षान्तरं न सेवते तथा वयमपि साक्षात्त्वदङ्घ्रिमूलं प्राप्य किं किं वृणीमहि । न किंचिदित्यर्थः । यद्वा किमप्यन्यत्तुच्छं किमर्थं वृणीमहि । यद्वा यदि वृणीमहि तर्हि किं किं वृणीमहि। अनन्तत्वेन मनोरथानामनवस्थानादित्यर्थः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

फिर भी जिस तरह अनायास पारिजात वृक्ष के मिल जाने पर भ्रमर दूसरे वृक्ष का सेवन नहीं करता है, उसी तरह हमलोग भी आपके चरणों का शरण मिल जाने पर हमलोग क्या-क्या माँगे, अन्य कोई दूसरी वस्तु नहीं । अथवा दूसरी कौन सी तुच्छ वस्तु माँगे । अथवा यदि माँगे तो क्या-क्या माँगे, मनोरथतो अनन्त और अस्थिर हैं ।।३२।।

यावत्ते मायया स्पृष्टा भ्रमाम इह कर्मभिः । तावद्भवत्प्रसङ्गानां सङ्गः स्यान्नो भवे भवे ।।३३।।

अन्वयः— यावत् ते मायया स्पृष्टाः इह कर्मभिः भ्रमामः तावत् भवत् प्रसङ्गानां ,नः भवे भवे सङ्गः स्यात् ।।३३।।

अनुवाद— हम यही माँगते हैं कि जब तक आपकी माया से मोहित होकर इस संसार में अपने कर्मों के अनुसार भ्रमण करते रहें तब तक प्रत्येक जन्म में आपके भक्तों की सङ्गति हमें प्राप्त होती रहे ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

अत एतावदेव प्रार्थयाम इत्याहुः-यावदिति । स्पृष्टा व्याप्ताः । भवति प्रकृष्टः सङ्गो येषां तेषां सङ्गोऽस्माकं स्यात्।।३३।।

भाव प्रकाशिका

अतएव हम यही माँगते हैं कि जब तक आपकी माया से व्याप्त होकर प्रत्येक जन्म में आपके भक्तों की सङ्गति हमें प्राप्त होती रहे ।।३३।।

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् । भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ।।३४।।

अन्वयः— भगवत्सङ्गिसङ्गस्य लवेनापि न स्वर्गं तुलयामः न अपुनर्भवम् आशिषः किमुत ।।३४।।

अनुवाद— हमलोग भगवद् भक्तों की एक क्षण की भी सङ्गति से न तो स्वर्ग की तुलना करते हैं और न मोक्ष की तो फिर मानवीय भोगों की कौन सी बात हैं ?।।३४।।

भावार्थ दीपिका

ननु राज्यभोगान्स्वर्गापवर्गौ च विहाय किमिदं प्रार्थ्यते तत्राहुः- तुलयामेति । भगवत्सङ्गिनां सङ्गस्य लवेनापि ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि यह क्या माँग रहो हो ? राज्य का भोग माँगो, स्वर्ग अथवा मोक्ष की प्राप्ति माँगो, तो इस पर प्रचेताओं ने कहा भगवद् भक्तों की क्षणभर की भी सङ्गति से भी हम राज्यादि की तुलना नहीं करते ।।३४।।

यत्रेड्यन्ते कथामृष्टास्तृष्णायाः प्रशमो यतः । निर्वैरं यत्र भूतेषु नोद्वेगो यत्र कश्चन ।।३५।।

अन्वयः— यत्र मृष्टाः कथाः इड्यन्ते, यतः तृष्णायाः प्रशमः यत्र भूतेषु निर्वैरं, यत्र कश्चन उद्वेग न ।।३५।।

अनुवाद— जहाँ श्रीभगवान् की मधुर कथाएँ होती है, जहाँ भोगों की तृष्णा समाप्त हो जाती हैं, जहाँ प्राणियों में परस्पर में कोई वैर नहीं होता और न तो किसी प्रकार का उद्वेग होता है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

सत्सङ्गस्य श्रैष्ठ्यं प्रपञ्चयति-यत्रेति त्रिभिः । यत्र येषु । यतो याभ्यः कथाभ्यः । निर्वैरं वैराभावः । उद्वेगो भयम् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

सत्सङ्ग की श्रेष्ठता का प्रतिपादन तीन श्लोक में प्रचेतागण करते हैं। जहाँ जिन सत्सङ्गों में श्रीभगवान् की मधुर कथाएँ होती हैं, जिन कथाओं को सुनकर किसी के प्रति वैर की भावना नहीं होती है, तथा जहाँ किसी प्रकार का उद्वेग अर्थात् भय नहीं होता है ॥३५॥

यत्र नारायणः साक्षाद्भगवान्न्यासिनां गतिः। संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसङ्गैः पुनः पुनः ॥३६॥

अन्वयः— यत्र सत्कथासु मुक्तसङ्गैः न्यासिनां गतिः साक्षात् नारायणः पुनः पुनः संस्तूयते ॥३६॥

अनुवाद— जिन कथाओं में अच्छी-अच्छी कथाओं के द्वारा अनासक्त पुरुष निष्काम भाव से संन्यासियों के एकमात्र साक्षात् भगवान् नारायण का गुणगान किया जाता है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया। भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः ॥३७॥

अन्वयः— तावकानाम् तेषां तीर्थानां पावनेच्छया पद्भ्यां भूमौविचरताम् समागमः भीतस्य किंन रोचते ॥३७॥

अनुवाद— आपके वे भक्त तीर्थों को पवित्र करने की इच्छा से पृथिवी पर पैदल चला करते हैं। उन भक्तों का समागम जो संसार के भय से भयभीत है उसको क्यों नहीं अच्छा लगेगा ?॥३७॥

भावार्थ दीपिका

पद्भ्यां पावनेच्छया। संसाराद्भीतस्य ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

भगवद् भक्त तीर्थों को भी पवित्र बनाने की इच्छा से पृथिवी पर पैदल चला करते हैं। जो मुमुक्षु पुरुष संसार के भय से भयभीत हैं, उन सबों को उन भगवद् भक्तों का सामागम अच्छा लगेगा ही ॥३७॥

वयं तु साक्षाद्भगवन्भवस्य प्रियस्य सख्युः क्षणसङ्गमेन।
सुदुश्चिकित्सस्य भवस्य मृत्योर्भिषक्तमं त्वाऽद्य गतिं गताः स्म ॥३८॥

अन्वयः— हे भगवन् वयं तु साक्षात् तव प्रियस्य सख्युः भवस्य क्षणसङ्गमेनअद्य सुदुश्चि कित्सस्य भवस्य मृत्योः भिषकतमं त्वा गतिं गताः स्म ॥३८॥

अनुवाद— हे भगवन् ! हमलोग तो आपके प्रिय सखा शङ्करजी के क्षणभर के सङ्गम के कारण आज आपका साक्षात् दर्शन प्राप्त किए है। जो आप इस संसार के जन्म-मरण रूप दुःसाध्य मृत्यु रोग के सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

सत्सङ्गफलमस्माभिरेवानुभूतमित्याहुः-वयं त्विति। तव यः प्रियः सखा तस्य भवस्य। अत्यन्तमचिकित्सस्य भवस्य जन्मनो मृत्योश्च भिषक्तमं सद्वैद्यं त्वां गतिं प्राप्ताः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

प्रचेताओं ने कहा भगवन् वस्तुतः हमलोगों ने ही सत्सङ्ग का फल प्राप्त किया है। आपके जो प्रिय सखा शङ्करजी है। उन शङ्करजी का क्षणभर के लिए उनका सत्सङ्ग प्राप्त किया और उसके फलस्वरूप संसार को दुःसाध्य जन्म मरण रूप रोग के सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक आपका दर्शन हमलोगों ने प्राप्त कर लिया है ॥३८॥

यन्नः स्वधीतं गुरवः प्रसादिता विप्राश्च वृद्धाश्च सदानुवृत्त्या ।
आर्या नताः सुहृदो भ्रातरश्च सर्वाणि भूतान्यनसूययैव ॥३९॥
यन्नः सुतप्तं तप एतदीश निरन्धसां कालमदभ्रमप्सु ।
सर्वं तदेतत्पुरुषस्य भूम्नो वृणीमहे ते परितोषणाय ॥४०॥

अन्वयः— यत् नः स्वधीतं, सदानुवृत्त्या गुरवः विप्राश्च, बृद्धाश्च प्रसादिताः आर्या सुहृदः भ्रातरश्च अनसूयया एवं बुद्धया नताः । हे ईश ! यत् निरन्धसां नः अदभ्रम् कलम् अप्सु तपः सुतप्तं तदेतत् सर्वं भूम्नः पुरुषस्य ते परितोषणाय भवतु इति वृणीम् हे ॥३९-४०॥

अनुवाद— हे प्रभो ! हमलोगों ने समाहित चित्त होकर जो अध्ययन किया है, निरन्तर सेवा शुश्रुषा करके गुरुओं, ब्राह्मणों एवं वृद्ध पुरुषों को प्रसन्न किया है, तथा दोष बुद्धि का परित्याग करके श्रेष्ठ पुरुष, सुहृद्गण, बन्धुवर्ग तथा समस्त प्राणियों की बन्दना की है तथा अन्न आदि का त्याग करके जल में खड़े रहकर दीर्घकाल पर्यन्त तप किया है वह सबकुछ आपका सन्तोषकारक बने यह हमलोग दूसरा वरदान माँगते हैं ॥३९-४०॥

भावार्थ दीपिका

वरान्तरं वृणते-यन्न इति द्वाभ्याम् । नताः नमस्कृताः । निरन्धसां निरन्नानाम् । अदभ्रं बहुकालम् । ते परितोषणाय भवत्विति वृणीमहे ॥३९-४०॥

भाव प्रकाशिका

यन्नः इत्यादि दो श्लोकों से प्रचेतागण दूसरा वरदान श्रीभगवान् से माँगते हैं । नताः का अर्थ हमने जो नमस्कार किया है । निरन्धसाम् पद का अर्थ है, अन्न इत्यादि का परित्याग करके । अदभ्र कालम् का अर्थ है दीर्घकाल पर्यन्त । हमलोगों द्वारा किया गया यह सबकुछ आपका संतोष कारक बने यही हम वरदान माँगते हैं ॥३९-४०॥

मनुः स्वयंभूर्भगवान्भवश्च येऽन्ये तपोज्ञानविशुद्धसत्त्वाः ।
अदृष्टपारा अपि यन्महिम्नः स्तुवन्त्यथो त्वात्मसमं गृणीमः ॥४१॥

अन्वयः— मनुः स्वयम्भुः भगवान् भवश्च येन्ये तपोज्ञानविशुद्धसत्त्वाः अदृष्टपाराः अपि यत् महिम्नः स्तुवन्ति अथो त्वा आत्मसमम् गणीमः वयमितिशेषः ॥४१॥

अनुवाद— हे प्रभो ! स्वायम्भुवमनु, ब्रह्माजी, स्वयम् भगवान् शङ्कर तथा तप एवं ज्ञान से शुद्ध चित्त वाले अन्य पुरुष आपकी महिमा का पार पाये बिना ही आपकी स्तुति करते रहते हैं । हमलोग भी अपनी बुद्धि के अनुसार आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

अज्ञानामप्यस्माकं त्वत्स्तुतिर्नायुक्तेत्याहुः- मनुरिति । यस्य तव महिम्नो न दृष्टं पारं यैस्तेऽपि त्वामात्मसमं स्वमत्यनुरूपं यथा स्तुवन्ति अथो अतो वयमपि गृणीमः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में प्रचेतागण कहते हैं कि हम अज्ञानियों का भी स्तुति करना अनुचित नहीं है । मनु, ब्रह्माजी और भगवान् शिव भी आपकी महिमा का पार नहीं पा सके, फिर भी वे आपकी स्तुति करते रहते हैं, तो हमलोग तो अज्ञानी जीव हैं, अतएव हम भी अपनी बुद्धि के अनुसार आपकी स्तुति कर रहे हैं ॥४१॥

नमः समाय शुद्धाय पुरुषाय पराय च । वासुदेवाय सत्त्वाय तुभ्यं भगवते नमः ॥४२॥

अन्वयः— समाय शुद्धाय पराय पुरुषाय च नमः सत्त्वाय, वासुदेवाय तुभ्यं भगवते नमः ॥४२॥

अनुवाद— आप सर्वत्र समान, शुद्ध स्वरूप और परम पुरुष हैं । आप सत्त्वमूर्ति भगवान् वासुदेव को हम नमस्कार करते हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

सत्त्वमूर्तये वासुदेवाय ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

सत्त्वमूर्ति भगवान् वासुदेव को नमस्कार है ॥४२॥

मैत्रेय उवाच

इति प्रचेतोभिरभिष्टुतो हरिः प्रीतस्तथेत्याह शरण्यवत्सलः ।
अनिच्छतां यानमतृप्तचक्षुषां ययौ स्वधामानपवर्गवीर्यः ॥४३॥

अन्वयः— इति प्रचेतोभिः अभिष्टुतः शरण्यवत्सलः प्रीतः हरिः तथा इत्याह । अतृप्तचक्षुषां यानम् अनिच्छतां अनपवर्ग वीर्यः स्वधाम ययौ ॥४३॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— इस तरह से प्रचेताओं द्वारा स्तुति किए जाने पर शरणागत वत्सल श्रीभगवान् ने प्रसन्न होकर कहा तथास्तु । अप्रतिहत प्रभाव वाले श्रीहरि के दर्शन से प्रचेताओं की आँखें तृप्त नहीं हुई थीं । वे श्रीहरि को जाने देना नहीं चाहते थे किन्तु श्रीभगवान् अपने लोक में चले गये ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

यानं स्वप्रयाणमनिच्छतामपि सतां स्वधाय ययौ भक्तहृदयं विवेश । अनपवर्गवीर्योऽकुण्ठितप्रभावः ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

प्रचेतागण श्रीभगवान् को जाने देना नहीं चाहते थे किन्तु श्रीभगवान् चले गये भक्तों के हृदय में प्रवेश कर गये । अनय वर्गवीयः पद का अर्थ है अकुण्ठित प्रभाव वाले ॥४३॥

अथ निर्याय सलिलात्प्रचेतस उदन्वतः । वीक्ष्याकुप्यन्द्रुमैश्छन्नां गां गां रोद्धुमिवोच्छ्रितैः ॥४४॥

अन्वयः— अथ उदन्वतः सलिलात् निर्याय प्रचेतसः गां रोद्धमिव उच्छ्रितैः द्रुमैः छन्नां गां वीक्ष्य अकुप्यन् ॥४४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् समुद्र के जल से निकलकर प्रचेताओं ने देखा कि ऊँचे-ऊँचे वृक्षों ने सारी पृथिवी को ही ढक लिया है जैसे वे स्वर्ग का मार्ग रोकने के लिए इतने बढ गये हों । यह देखकर प्रचेताओं को बड़ा क्रोध हुआ ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

उदन्वतः सिन्धोः सलिलान्निर्याय निर्गत्य गां स्वर्गं रोद्धुमिवोच्छ्रितैर्द्रुमैर्गां महीं छन्नां वीक्ष्य द्रुमेभ्योऽकुप्यन् । तदा हि प्राचीनवर्हिषः प्रव्रजितत्वादराजके कर्षणाद्यभावाद्द्रुमैर्भूमिश्छन्नाभूत् ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् वे प्रचेतागण समुद्र के जल से बाहर निकले और देखे कि मानो स्वर्ग के मार्ग को ही रोकने

के लिए वृक्ष इतने बड़े हो गये हैं । और उन वृक्षों से सारी पृथिवी ढंक गयी थी । यह देखकर प्रचेताओं ने वृक्षों पर क्रोध किया । उस समय राजा प्राचीनबर्हीं संन्यास ले लिए थे । भूमि के नहीं जोते जाने के कारण वृक्षों से पृथिवी ढंक गयी थी ।।४४।।

ततोऽग्निमारुतौ राजन्नमुञ्चन्मुखतो रूषा । महीं निर्वीरुधं कर्तुं संवर्तक इवात्यये ।।४५।।

अन्वयः— हे राजन् ! ततः महीं निर्विरुधं कर्तुं अत्यये संवर्तक इव रुषा मुखतः अग्निमरुतौ अमुञ्चन् ।।४५।।

अनुवाद— हे विदुर ! उसके पश्चात् इस पृथिवी को वृक्षों और लताओं से रहित बना देने के लिए जिस तरह प्रलयकाल में कालाग्नि रुद्र संवर्तकाग्नि को प्रकट करते हैं उसी तरह क्रोध से उन सबों ने अपने मुख से अग्नि और वायु को प्रकट किया ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

निरस्ता वीरुधोऽपि यस्यास्तथाभूतां कर्तुम् । संवर्तकः कालाग्निरुद्रः । अत्यये प्रलये ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

वृक्षों से रहित पृथिवी को बना देने के लिए । संवर्तक अर्थात् कालाग्निरुद्र, अत्यये अर्थात् प्रलय काल में।।४५।।

भस्मसात्क्रियमाणांस्तान्द्रुमान्वीक्ष्य पितामहः । आगतः शमयामास पुत्रान्बर्हिष्मतो नयैः ।।४६।।

अन्वयः— तानद्रुमान् भस्मसात् क्रियमाणाम् वीक्ष्य पितामहः आगतः, बहिष्मतः पुत्रान् नयैः शमयामास ।।४६।।

अनुवाद— उन वृक्षों के भस्म होते देखकर ब्रह्माजी आये और प्राचीन बर्हीं के पुत्रों को युक्तियों के माध्यम से शान्त किए ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

नयैर्युक्तिभिः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

युक्तियों द्वारा ।।४६।।

तत्रावशिष्टा ये वृक्षा भीता दुहितरं तदा । उज्जहुस्ते प्रचेतोभ्य उपदिष्टाः स्वयंभुवा ।।४७।।

अन्वयः— तत्र अवशिष्टा ये वृक्षाः ते तदाभीता स्वयम्भुवा उपदिष्टाः दुहितरं प्रचेतोभ्यः उज्जहुः ।।४७।।

अनुवाद— तो जो वृक्ष बच गये थे वे उस समय भयभीत हो गये थे । वे ब्रह्माजी का आदेश पाकर अपनी पुत्री मारिषा को प्रचेताओं को समर्पित कर दिए ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

उज्जहुः समर्पयामासुः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

उज्जहुः पद का अर्थ है समर्पित कर दिए ।।४७।।

ते च ब्रह्मण आदेशान्मारिषामुपयेमिरे । यस्यां महदवज्ञानादजन्यजनयोनिजः ।।४८।।

अन्वयः— ते च ब्रह्मण आदेशात् मारिषाम् उपयेमिरे महदवज्ञानात् अजनयोनिजः यस्यां अजनि ।।४८।।

अनुवाद— ब्रह्माजी का आदेश प्राप्त करके वे मारिषा के साथ विवाह कर लिए । ब्रह्माजी के पुत्र दश महादेव जी का अपमान करने के कारण उस मारिषा के गर्भ से उत्पन्न हुए ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

मारिषां वार्क्षीम् । अजनयोनिर्ब्रह्मा तस्माज्जातो दक्षः महतः श्रीमहादेवस्यावज्ञानात् पूर्वमजनयोनिजो ब्रह्मपुत्रोऽपि सन् क्षत्रियजातौ यस्यामजनि जातः ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

वृक्षों की पुत्री थी मारिषा । दक्ष, ब्रह्माजी के पुत्र थे किन्तु महापुरुष महादेवजी का अपमान करने के कारण वे ब्रह्माजी के पुत्र होने पर मारिषा के गर्भ से क्षत्रिय योनि में जन्म लिए ॥४८॥

चाक्षुषे त्वन्तरे प्राप्ते प्राक्सर्गे कालविद्रुते । यः ससर्ज प्रजा इष्टाः स दक्षो दैवचोदितः ॥४९॥

अन्वयः— चाक्षुषेतु अन्तरे प्राप्ते प्राक्सर्गे कालविद्रुते यः दैवचोदितः दक्षः इष्टाः प्रजाः ससर्ज ॥४९॥

अनुवाद— चाक्षुष मन्वन्तर के आने पर जब कालक्रम से पहले का देह नष्ट हो गया उस समय भगवान् की प्रेरणा से वे दक्ष अपनी इच्छा के अनुसार नवीन प्रजा को उत्पन्न किए ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

प्राक्सर्गे पूर्वदेहे कालेन विद्रुते गते दैवेनेश्वरेण चोदितः सन्निष्टाः प्रजाः ससर्ज स दक्ष इति प्रसिद्धः ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

पहले के शरीर के कालक्रम से नष्ट हो जाने पर परमात्मा के द्वारा प्रेरित होकर जिसने अभिप्रेत प्रजा को उत्पन्न किया वही दक्ष के नाम से प्रसिद्ध है ॥४९॥

यो जायमानः सर्वेषां तेजस्तेजस्विनां रुचा । स्वयोपादत्त दाक्ष्याच्च कर्मणां दक्षमब्रुवन् ॥५०॥

अन्वयः— यः जायमानः सर्वेषां तेजस्विनां तेजः स्वया रुचा उपादत्त, कर्मणां दक्ष्याच्चदक्षमबुवन् ॥५०॥

अनुवाद— जो उत्पन्न होते ही सभी तेजस्वियों के तेज को ले लिया तथा जो कर्मों को करने में निपुण था उसे लोगों ने दक्ष शब्द से अभिहित किया ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

स्वया रुचा प्रभया तेज उपादत्ताच्छादितवान् यं च कर्मदाक्ष्याद्दक्षमब्रुवन् ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

जिसने अपनी कान्ति से तेजस्वियों के तेज को आच्छादित कर दिया और कर्मों को करने में निपुण होने के कारण लोगों ने उसे दक्ष कहा ॥५०॥

तं प्रजासर्गरक्षायामनादिरभिषिच्य च । युयोज युयुजेऽन्यांश्च स वै सर्वप्रजापतीन् ॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

अन्वयः— अनादिः तं अभिषिच्य प्रजासर्गरक्षायां युयोज स वै अन्यान् च सर्वप्रजापतीन् युयुजे ॥५१॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने उस दक्ष को प्रजापति के नायक पद पर अभिषिक्त करके प्रजाओं की रक्षा करने में नियुक्त किया और उसने ही दूसरे सभी प्रजापतियों की नियुक्ति किया ॥५१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ स्कन्ध के तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तमभिषिच्यानादिर्ब्रह्मा प्रजासर्गरक्षायां युयोज । स च दक्षोऽन्यान्मरीच्यादींस्तत्तद्व्यापारेषु नियुक्तवान् ।।५१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे चतुर्थ स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायाम् त्रिंशोऽध्यायः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

उस दक्ष को ब्रह्माजी ने प्रजापति के पद पर अभिषिक्त करके प्रजा सर्ग की रक्षा के कार्य में नियुक्त किया और उस दक्ष ने अन्य मरीचि आदि दूसरे प्रजापतियों को भिन्न-भिन्न कार्य में नियुक्त किया ।।५१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चतुर्थ सकन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के तीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३०।।

एकतीसवाँ अध्याय

प्रचेताओं को नारदजी का उपदेश और उनका परमपद लाभ

मैत्रेय उवाच

तत उत्पन्नविज्ञानां आश्वधोक्षजभाषितम् । स्मरन्त आत्मजे भार्यां विसृज्य प्राव्रजन् गृहात् ॥१॥

अन्वयः— ततः उत्पन्न विज्ञानाः अधोक्षज भाषितम् स्मरन्तः आत्मजे भार्यां विसृज्य आशुप्राव्रजन् गृहात् ॥१॥

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— दस लाख वर्ष बीत जाने पर जब प्रचेताओं को विंवेक प्राप्त हुआ तब वे **उपायास्यथ मदधाम निर्विद्य निरयादतः** अर्थात् नरक के समान लौकिक एवं पारलौकिक भोगों से उदासीन होकर तुमलोग मेरे धाम में जाओगे श्रीभगवान् के इस वाक्य का स्मरण करके अपनी पत्नी का भार अपने पुत्र पर सौंप कर वे प्रचेतागण शीघ्र ही अपने गृह का परित्याग कर दिए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकत्रिंशो सुते दक्षे धुरं न्यस्य वने सताम् । नारदोक्तेन मार्गेण मुक्तिरूक्ता प्रचेतसाम् । ततो दिव्यवर्षसहस्राणां सहस्रस्यान्ते उत्पन्नविवेकज्ञानास्त 'उपयास्यथ मद्धाम् निर्विद्य निरयादतः' इत्यधोक्षजभाषितं स्मरन्त आशु प्राव्रजन् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

एकतीसवें अध्याय मे इस बात का वर्णन किया गया है कि अपने पुत्र दक्ष पर राज्य का भार सौंपकर विवेक प्राप्त प्रचेतोगण नारदजी के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से मुक्ति को प्राप्त कर लिए । उसके पश्चात् देवताओं के दस लाख वर्ष बीत जाने पर जिनको विवेक ज्ञान उत्पन्न हो गया था वे प्रचेतोगण श्रीभगवान् के 'उपयास्यथ मद्धाम निर्विद्य निरयादतः' इस वाक्य का स्मरण करते हुए शीघ्र ही गृह का परित्याग कर दिए ॥१॥

दीक्षिता ब्रह्मसत्रेण सर्वभूतात्ममेधसा । प्रतीच्यां दिशि वेलायां सिद्धोऽभूद्यत्र जाजलिः ॥२॥

अन्वयः— प्रतीच्यांदिशि वेलायां यत्र जाजलिः सिद्ध अभूत् तत्र सर्वभूतात्ममेधसा ब्रह्म सत्रेण दीक्षिताः ॥२॥

अनुवाद— वे पश्चिम दिशा में समुद्र के तट पर जहाँ जाजलि ऋषि सिद्ध हो गये थे वहाँ जिसमें सभी भूतों में एक ही आत्मतत्त्व व्याप्त है, इस प्रकार का ज्ञान होता है, उस ब्रह्म सत्र का सङ्कल्प करके वे बैठ गये॥२॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मसत्रेणात्मविमर्शेन दीक्षिताः कृतसंकल्पा बभूवुः । सर्वेषु भूतेष्वात्मेति मेधा ज्ञानं यस्मिंस्तेन । क्व । बेलायां समुद्रतटे । जाजलिर्नाम ऋषिः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

वे सभी आत्म विमर्श रूपी ब्रह्म सत्ता का सङ्कल्प करके 'जिस ब्रह्म सत्र में' इस बात का ज्ञान होता है कि सभी भूतों में एक ही आत्मा व्याप्त है । पश्चिम समुद्र के तट पर जहाँ जाजलि ऋषि सिद्ध हुए थे वहीं बैठ गये ।।२।।

तान्निर्जितप्राणमनोवचोदृशो जितासनान् शान्तसमानविग्रहान् ।
परेऽमले ब्रह्मणि योजितात्मनः सुरासुरेड्यो ददृशे स्म नारदः ।।३।।

अन्वयः— निर्जित प्राणमनोवचो दृशः, जितासनान्, शान्तसमानविग्रहान्, परे अमले ब्रह्मणि योजितात्मनः तान् सुरासुरेड्यः नारदः ददृशे स्म ।।३।।

अनुवाद— प्राण, मन, वाणी तथा दृष्टि को अपने वश में किए हुए शरीर को निश्चेष्ट सीधा रखते हुए आसन को जीत कर अपने चित्त को विशुद्ध परंब्रह्म में लीन किए हुए उन प्रचेताओं को देवता तथा असुर सबों के समान रूप से बंदनीय नारदजी ने देखा ।।३।।

भावार्थ दीपिका

निर्जिताः प्राणमनोवचोदृशो यैस्तान् । शान्ता उपरताः समाना मूलाधारादारभ्य ऋजवो विग्रहा येषाम् । ब्रह्मणि योजित आत्मा यैः । सुरासुरैरीड्यो दृष्टवान् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

जिन सबों ने प्राण, मन,वाणी और दृष्टि को अपने वश में कर लिया था, शान्त निश्चेष्ट मूलाधार चक्र से लेकर जिनका सारा शरीर सीधा था तथा जिन सबों ने अपने मन को विशुद्ध ब्रह्म में लगा दिया था, ऐसे प्रचेताओं को देवताओं तथा असुरों के समान रूप से वन्दनीय नारदजी ने देखा ।।३।।

तमागतं त उत्थाय प्रणिपत्याभिनन्द्य च । पूजयित्वा यथादेशं सुखासीनमथाब्रुवन् ।।४।।

अन्वयः— आगतं तम् ते उत्थाय प्रणिपत्य अभिनन्द्य च यथादेशं पूजयित्वा अथ सुखासीनम् अब्रुवन् ।।४।।

अनुवाद— आये हुए नारदजी को देखकर वे सब खड़े होकर तथा साष्टाङ्ग प्रणाम के आदर सत्कार पूर्वक देश कालानुसार उनकी पूजा करके जब नारदजी सुख पूर्वक बैठ गये तो उन सबों ने नारदजी से कहा ।।४।।

भावार्थ दीपिका

उत्थाय प्रणिपत्य यथादेशं यथाविधि पूजयित्वा ।।४।।

भाव प्रकाशिका

खड़ा होकर तथा साष्टाङ्ग प्रणाम करके देश कालानुसार विधि पूर्वक पूजा करके नारदजी से उन सबों ने कहा।।४।।

प्रचेतस ऊचुः

स्वागतं ते सुरर्षेऽद्य दिष्टया नो दर्शनं गतः । तव चंक्रमणं ब्रह्मन्नभयाय यथा रवेः ।।५।।

अन्वयः— हे सुरर्षे ! ते स्वागतम् दिष्ट्या अद्यनो दर्शनं गतः ब्रह्मन् ते चंक्रमणं रवेः यथा अभयाय ।।५।।

प्रचेताओं ने कहा

अनुवाद— देवर्षे आपका स्वागत है, आज आपका दर्शन बड़े भाग्य से हुआ । सूर्य के समान आपका भ्रमण अपने ज्ञान के आलोक से जीवों का कल्याण करने के ही लिए होता है ।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५।।

यदादिष्ट भगवता शिवेनाधोक्षजेन च । तद्गृहेषु प्रसक्तानां प्रायशः क्षपितं प्रभो ।।६।।

अन्वयः— प्रभो यद् भगवता शिनेन, अधोक्षजेन आदिष्टं तत् गृहेषु प्रसक्तानां प्रायशः क्षपितम् ।।६।।

अनुवाद— हे प्रभो ! भगवान् शिव ने तथा भगवान् विष्णु ने जो हम सबों को उपदेश दिया था वह गृहस्थी में आसक्त रहने के कारण प्राय: भूल सा गया है ।।६।।

भावार्थ दीपिका

आदिष्टमुपदिष्टं यदात्मतत्त्वम् । क्षपितं विस्मृतम् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

शिवजी ने तथा भगवान् ने जो आत्मतत्त्व का उपदेश हम सबों को दिया वह भूल गया है ।।६।।

तन्नः प्रद्योतयाध्यात्मज्ञानं तत्त्वार्थदर्शनम् । येनाञ्जसा तरिष्यामो दुस्तरं भवसागरम् ।।७।।

अन्वयः— तत् नः आत्मदर्शनम् अध्यात्मज्ञानं प्रद्योतय येन अञ्जसा दुस्तरं भवसागरं तरिष्यामः ।।७।।

अनुवाद— अतएव आप हमारे हृदय में परमार्थ तत्त्व का साक्षात्कार करने वाले अध्यात्मज्ञान को पुन: प्रकाशित कर दें जिससे कि हमलोग आसानी से इस दुस्तर संसार सागर को पार कर जायँ ।।७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७।।

मैत्रेय उवाच

इति प्रचेतसां पृष्टो भगवान्नारदो मुनिः । भगवत्युत्तमश्लोक आविष्टात्माऽब्रवीन्नृपान् ।।८।।

अन्वयः— इति प्रचेतसां पृष्टः भगवति उत्तम श्लोके आविष्टात्मा मुनिः नारदः नृपान् अब्रवीत् ।।८।।

मैत्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— इस तरह से प्रचेताओं द्वारा पूछे जाने पर जिनका मन सदैव उत्तम श्लोक श्रीभगवान् में लगा ही रहता हैं ऐसे मुनि नारदजी उन प्रचेताओं से कहे ।।८।।

भावार्थ दीपिका

इति प्रचेतोभिः पृष्टः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से प्रचेताओं के द्वारा पूछे जाने पर ।।८।।

नारद उवाच

तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः । नृणां येनेह विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरः ।।९।।

अन्वयः— नृणां तत् जन्म, तानि कर्माणि, तद आयु तत् मनः वचः येन इह विश्वात्मा हरिः ईश्वरः सेव्यते ।।९।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— प्रचेताओं इस लोक में वही जन्म, वही कर्म, वही आयु, वही मन और वही वाणी सफल है, जिसके द्वारा जगदात्मा सर्वेश्वर श्रीहरि का सेवन किया जाता है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

अहो गृहप्रसत्तया हरिसेवां विना सर्वं जन्मकर्मादिकं व्यर्थीकृतमिति तान् शोचन्नाह–तज्जन्मेति चतुर्भिः । यतो जन्मादेर्हरिसेवैव फलमतस्तद्विहीनं सर्वं व्यर्थमित्यर्थः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

तज्जन्मा० इत्यादि चार श्लोकों के द्वारा नारदजी बतलाते हैं कि अरे गृह में आसंक्ति होने के कारण श्रीहरि की सेवा के बिना ही सम्पूर्ण जन्म कर्म इत्यादि को करने में तुमलोगों ने व्यर्थ बना दिया, यह शोक का विषय है। क्योंकि जन्म इत्यादि का फल तो श्रीहरि की सेवा है। अब फल हीन होने के कारण सबकुछ व्यर्थ ही हैं॥९॥

किं जन्मभिस्त्रिभिर्वेह शौक्लसावित्रयाज्ञिकैः। कर्मभिर्वा त्रयीप्रोक्तैः पुंसोऽपि विबुधायुषा॥१०॥

अन्वयः— शौक्लसावित्रयाज्ञिकैः इहत्रिभिः जन्मभिः त्रयीप्रोक्तैः कर्मभिः विबुधायुषा पुंसोऽपि किम ?॥१०॥

अनुवाद— माता-पिता की पवित्रता से, यज्ञोपवीत संस्कार से, एवं यज्ञ की दीक्षा से प्राप्त होने वाले तीन प्रकार के जन्मों से वेदोक्त कर्मों से देवताओं के समान दीर्घ आयु से पुरुष को कौन सा लाभ हुआ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

शुक्लसंबन्धि जन्म विशुद्धमातापितृभ्यामुत्पत्तिः। सावित्रमुपनयनेन। याज्ञिकं दीक्षया। विबुधानामिव दीर्घायुषापि॥१०॥

भाव प्रकाशिका

विशुद्ध माता-पिता से प्राप्त जन्म, यज्ञोपवीत संस्कार, यज्ञ की दीक्षा तथा देवताओं के समान दीर्घ आयु से भी पुरुष का कोई लाभ नहीं है॥१०॥

श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिश्चित्तवृत्तिभिः। बुद्ध्या वा किं निपुणया बलेनेन्द्रियराधसा॥११॥
किं वा योगेन सांख्येन न्यासस्वाध्याययोरपि। किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न यत्रात्मप्रदो हरिः॥१२॥

अन्वयः— श्रुतेन, तपसा वाकिं वचोभिः चित्तवृत्तिर्भिः निपुण बुद्ध्याइन्द्रियराधासा बलेन वा किम्, योगेन, सांख्येन न्यास स्वाध्यायोः अपि किम् वा अन्यैः श्रेयोऽभिः किम् यत्र आत्मप्रदो हरिः न॥११-१२॥

अनुवाद— शास्त्र ज्ञान से, तपस्या से, वाणी की चतुराई से, अनेक प्रकार की बातें याद रखने की क्षमता से, तीव्र बुद्धि से, बल से, इन्द्रियों की पटुता से योग से, सांख्य से संन्यास और वेदाध्ययन से तथा व्रत वैराग्यादि अन्य कल्याणकारी साधनों से पुरुष का क्या लाभ हुआ, जिनके द्वारा स्वरूप अपने स्वरूप ज्ञान कराने वाले श्रीहरि को नहीं प्राप्त किया॥११-१२॥

भावार्थ दीपिका

वचोभिर्वाग्विलासैः चित्तवृत्तिभिर्नानावधानसामर्थ्यैः। इन्द्रियाणां राधसा पाटवेन। योगेन प्राणायामादिना। सांख्येन देहादिव्यतिरिक्तात्मज्ञानमात्रेण। संन्यासवेदाध्ययनाभ्यामपि। अन्यैरपि व्रतवैराग्यादिभि श्रेयः साधनैः॥११-१२॥

भाव प्रकाशिका

वाणी के चातुर्य से अनेक प्रकार की बातें याद रखने की शक्ति से, इन्द्रियों की पटुता से प्राणायाम इत्यादि योग से, देहादि व्यतिरिक्त आत्म ज्ञान से, संन्यास से तथा वेदाध्ययन से भी, व्रत वैराग्य आदि दूसरे कल्याण के साधनों से क्या लाभ ? यदि उससे श्रीहरि की प्राप्ति नहीं की जाय॥११-१२॥

श्रेयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः। सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मात्मदः प्रियः॥१३॥

अन्वयः— सर्वेषामपि श्रेयसाम् अर्थतः आत्मा हि अवधिः सर्वेषाम् अपि भूतानाम् आत्मप्रदः हरिः प्रियः॥१३॥

अनुवाद— सभी कल्याणों की सीमा आत्मा ही है और आत्मज्ञान प्रदान करने वाले श्रीहरि ही सम्पूर्ण प्राणियों की प्रिय आत्मा हैं॥१३॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेषां नानाफलसाधनानां हरिसेवाभावमात्रेण कुतो वैयर्थ्य तत्राह। श्रेयसां फलानामात्मैवावधिः परा काष्ठा। अर्थतः

परमार्थतः आत्मार्थत्वेनैवान्येषां प्रियत्वादित्यर्थः । भवत्वात्मावधिर्हरेः किमायातं तत्राह–सर्वेषामपीति । आत्मा आत्मदश्चाविद्यानिरासेन स्वरूपाभिव्यञ्जकः । ऐश्वरेणापि रूपेण बलिप्रभृतिभ्य इवात्मप्रदः प्रियश्च । परमानन्दरूपत्वात् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि अनेक प्रकार के फलों के साधन भूत इन सभी कर्मों की केवल श्रीहरि की सेवा का अभाव होने से वैयर्थ्यता कैसे है, तो इसका उत्तर है कि सभी फलों की पराकाष्ठा आत्मा ही है, वास्तविकता यह है कि आत्म कल्याणार्थ ही इन साधनों की प्रियता है, यदि कोई यह कहे कि आत्मा ही सीमा भले ही हो, किन्तु इससेश्रीहरि के विषय में क्या हुआ ? तो इस पर कहते हैं— आत्मा अविद्या के निरास पूर्वक आत्मज्ञान प्रदान करने वाले और स्वरूप को अभिव्यक्त करने वाले श्रीहरि ही हैं । श्रीहरि अपने ऐश्वर रूप से भी बलि आदि को आत्मज्ञान प्रदान प्रिय हैं, क्योंकि वे परमानन्द स्वरूप हैं ।।१३।।

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ।।१४।।

अन्वयः— यथा तरोः मूल निषेचनेन तत्स्कन्धभुजोप शाखाः तृप्यन्ति, प्राणोपहारात् च यथेन्द्रियाणां तथैव अच्युतेज्यया सर्वार्हणम् ।।१४।।

अनुवाद— जिस तरह वृक्ष की जड़ को सींचने से उसकी तना, शाखा, उपशाखा, आदि सबों का पोषण होता है, तथा जैसे भोजन द्वारा प्राणों को तृप्त करने से सभी इन्द्रियाँ पुष्ट होती है, उसी तरह श्रीभगवान् की आराधना करने से सबों की पूजा हो जाती हैं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

किंच नानाकर्मभिस्तत्तद्देवताप्रीतिनिमित्तान्यपि फलानि हरिप्रीत्या भवन्ति केवलं तत्तद्देवताराधनेन तु न किंचिदिति सदृष्टान्तमाह–यथेति । मूलात्प्रथमविभागाः स्कन्धाः । तद्विभागा भुजाः । तेषामप्युपशाखा; । उपलक्षं पत्रपुष्पादयोऽपि तृप्यन्ति, नतु मूलसेकं विना ताः स्वस्वनिषेचनेन । प्राणस्योपहारो भोजनं तस्मादेवेन्द्रियाणां तृप्तिः, नतु तत्तदिन्द्रियेषु पृथक्पृथगन्नलेपनेन। तथाच्युताराधनमेव सर्वदेवताराधनं न पृथगित्यर्थः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

अनेक कर्मों के करने से विभिन्न देवताओं की प्रसन्नता के कारण प्राप्त होने वाले फल परमात्मा की प्रसन्नता से ही होती है, केवल देवता की आराधना से किसी भी फल की प्राप्ति नहीं होती है इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहते है । जड़ से पहला विभाग स्कन्धों का होता है उसके विभाग भुजाएँ होती हैं, उन सबों की भी उप शाखाएँ विभक्त होती है । उसके द्वारा उपलक्षित पत्र-पुष्प इत्यादि वे सब भी जड़ को सिंचने से तृप्त होते हैं। जड़ कों सींचे बिना शाखाओं, आदि को सींचने से वे तृप्त नहीं होती हैं । प्राण का उपहार भोजन है उसी के द्वारा इन्द्रियों की तृप्ति होती है । भिन्न-भिन्न इन्द्रियों में अन्न इत्यादि का लेप करने से वे इन्द्रियाँ तृप्त नहीं होती हैं । उसी तरह श्रीभगवान् की आराधना करने से ही सभी देवताओं की आराधना हो जाती है, उनकी पृथक्-पृथक् आराधना करने से नहीं ।।१४।।

यथैव सूर्यात्प्रभवन्ति वारः पुनश्च तस्मिन्प्रविशन्ति काले ।
भूतानि भूमौ स्थिरजङ्गमानि तथा हरावेव गुणप्रवाहः ।।१५।।

अन्वयः— यथैव सूर्यात् वारः प्रभवन्ति पुनश्च तस्मिन् प्रविशन्ति भूमौ स्थिर जङ्गमानि भूतानि तथा हरौ एव गुण प्रवाहः ।।१५।।

अनुवाद— जिस तरह वर्षा काल में सूर्य के ताप से जल निकलता है और गीष्म काल में सूर्य में ही प्रवेश कर जाते हैं, उसी तरह चेतना चेतनात्मक सम्पूर्ण जगत् श्रीभगवान् से ही उत्पन्न होता है लयकाल में उनमें ही प्रवेश कर जाता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

कुतः सर्वमूलत्वादिति सदृष्टान्तन्तरमाह । यथैव वारो जलानि वर्षाकाले सूर्यादुद्भवन्ति ग्रीष्मे तस्मिन्नेव प्रविशन्ति । अस्याप्रसिद्धत्वेन दृष्टान्तान्तरमाह-यथा भूतानि भूमाविति । गुणप्रवाहश्चेतनाचेतनात्मकः प्रपञ्चः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि श्रीभगवान् सबों के मूल कैसे हैं, तो इस पर दूसरा दृष्टान्त उपन्यस्त करते हैं । जिस तरह वर्षा काल में सूर्य के ताप से ही जल निकलता है और ग्रीष्म काल में उनमें ही प्रवेश कर जाता है । इस दृष्टान्त के अप्रसिद्ध होने के कारण दूसरा दृष्टान्त कहते हैं । उसी तरह सृष्टि काल में यह चेतना चेतनात्मक जगत् श्रीहरि से उत्पन्न होता है प्रलय काल में उन्हीं में लीन हो जाता है ॥१५॥

एतत्पदं तज्जगदात्मनः परं सकृद्विभातं सवितुर्यथा प्रभा ।
यथाऽसवो जाग्रति सुप्तशक्तयो द्रव्यक्रियाज्ञानभिदाभ्रमात्ययः ॥१६॥

अन्वयः— तदेतत् जगदात्मनः परं पदं यथा सकृद् विभातम्, यथा सवितुः प्रभा यथा जाग्रति असवः सुप्तशक्तयः द्रव्यक्रियाज्ञानभिदाभ्रमात्ययः ॥१६॥

अनुवाद— वस्तुतः यह विश्वात्मा श्रीभगवान् का वह शास्त्र प्रसिद्ध सर्वोपाधि विनिर्मुक्त स्वरूप ही है । जैसे सूर्य की प्रभा उससे भिन्न नहीं होती है, तथा कभी-कभी दिखने वाले गन्धर्व नगर के समान स्फुरित होने वाला यह जगत् भगवान् से भिन्न नहीं है । जैसे जाग्रदावस्था में इन्द्रियाँ क्रियाशील रहती हैं किन्तु सुषुप्तावस्था में उनकी शक्तियाँ लीन हो जाती है । उसी प्रकार यह जगत् सर्गकाल में भगवान् से प्रकट होता है और कल्पान्त में उन्हीं में लीन हो जाता है । स्वरूपतः तो भगवान् में द्रव्य क्रिया और ज्ञान रूपी त्रिविध अहङ्कार के कार्यों की और उनके निमित्त से होने वाले भेदभ्रम की सत्ता है ही नहीं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

ननु हरावेव गुणप्रवाह इत्युक्ते तदाधारत्वेन सोपाधिकत्वं हरेः स्यादित्याशङ्क्याह एतदिति । एतद्विश्वं विष्णो स्तत्सर्वशास्त्रप्रसिद्धं पदं परं सर्वोपाधिरहितम् । तदुत्पन्नत्वान्न ततः पृथगित्यर्थः । तर्हि कथमन्यथा भाति तत्राह-सकृदिति । सकृत्कदाचिद्विभातं स्फुरितं गन्धर्वनगरवत् । यथा सवितुः प्रभा न ततो भिन्ना, यथाच जाग्रत्यसव इन्द्रियाणि स्फुरन्ति सुषुप्तौ तु सुप्तशक्तयो भवन्तीत्यर्थः । कथंभूतोऽसौ हरिः । द्रव्यादीनां त्रिविधाहंकारकार्याणां तन्निमित्तस्य भेदभ्रमस्य चात्ययो यस्मात्सः । यद्वा अजाग्रति सुषुप्तावसवः सुप्ता शक्तयो येषां ते भवन्ति द्रव्यादेरप्यत्ययो भवति । सवितुः प्रभेत्युद्गतौ दृष्टान्त इति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

यह जो कहा गया है कि श्रीहरि में ही यह गुणों का प्रवाह होता है, इसका अर्थ तो यह हुआ कि श्रीहरि सोपाधिक हैं । इस प्रकार की शङ्का करके नारदजी कहते हैं- **एतदित्यादि** यह सम्पूर्ण जगद् भगवान् विष्णु का वह शास्त्र प्रसिद्ध परंपद है और सभी उपाधियों से रहित हैं । यह उनसे उत्पन्न होने के कारण उनसे भिन्न नहीं है । तो फिर इस जगत् की उनसे भिन्न रूप से कैसे प्रतीति होती है तो इस पर कहते हैं **सकृत् इत्यादि** अर्थात् कभी-कभी प्रतीत होने वाले गन्धर्व नगर के समान यह मिथ्या है । जैसे सूर्य की प्रभा सूर्य से भिन्न नहीं होती है । उसी तरह अथवा जिस तरह जाग्रतावस्था में इन्द्रियाँ क्रियाशील रहती है, और सुषुप्तिकाल में उन सबों की क्रिया शक्ति लीन हो जाती

है उसी तरह प्रश्न है कि श्रीहरि कैसे है तो इसका उत्तर है कि द्रव्य आदि जो तीनों प्रकार के अहङ्कार के कार्य तथा उनके कारण भेद प्रतीति का वहाँ अभाव है । अथवा जिस तरह सुषुप्ति में इन्द्रियाँ सुप्तशक्ति वाली होती है उस समय द्रव्य आदि का भी नाश होता है । सवितु: प्रभा यह श्रीहरि से संसार की उत्पत्ति का दृष्टानत हैं ।।१६।।

यथा नभस्यभ्रतम:प्रकाशा भवन्ति भूषा न भवन्त्यनुक्रमात् ।
एवं परे ब्रह्मणि शक्तयस्त्वमू रजस्तमः सत्त्वमिति प्रवाहः ।।१७।।

अन्वयः— हे भूपाः यथा नसि अभ्रतमः प्रकाशाः भवन्ति अनुक्रमात् न भवन्ति, एवं परे ब्रह्मणि सत्त्व रजस्तमः अमूशक्तयः एवं प्रवाहः प्रचलति ।।१७।।

अनुवाद— हे प्रचेताओं जैसे आकाश से मेघ अन्धकार और प्रकाश ये क्रमशः प्रकट होते हैं और फिर उसी आकाश में लीन हो जाते है, किन्तु आकाश इन सबों से लिप्त नहीं होता है, उसी तरह ये सत्त्वरजस एवं तमस मयी शक्तिया कभी परब्रह्म से उद्भूत होती हैं और फिर उन परब्रह्म में ही लीन हो जाती हैं । इसी तरह इन गुणों का प्रवाह चला करता है । किन्तु आकाश के समान असङ्ग परमात्मा में कोई भी विकार नहीं होता है।।१७।।

भावार्थ दीपिका

नन्वसङ्गे हरौ कथं प्रपञ्चोत्पत्तिलयौ तत्राह- यथेति । अभ्रतम:प्रकाशा आगमापायिनो रजस्तम:सत्त्वस्थानीयाः । हे भूपाः प्रचेतसः, अमूः शक्तय उद्भवन्ति न भवन्ति लीयन्ते इत्येवमयं जगत्प्रवाहः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि श्रीहरि तो असङ्ग है, उनमें इस प्रपञ्च की उत्पत्ति और लय कैसे होते हैं ? तो इसके उत्तर में नारदजी ने **यथा शब्दादि** श्लोक कहा है । जैसे आकाश से मेघ अन्धकार और प्रकाश उत्पन्न होते हैं, ये क्रमशः रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण के स्थानी हैं । ये आकाश में उत्पन्न होकर आकाश में ही जैसे लीन हो जाते हैं । हे प्रचेताओ ! उसी प्रकार सत्त्व, रजस एवं तमोमयी शक्तियाँ श्रीहरि से उत्पन्न होती हैं और उनमें ही लीन हो जाती है, किन्तु इन सबों से आकाश के ही समान असङ्ग श्रीहरि में कोई भी विकार नहीं होता है। इसी तरह यह जगत् का प्रवाह चला करता है ।।१७।।

तेनैकमात्मानमशेषदेहिनां कालं प्रधानं पुरुषं परेशम् ।
स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहमात्मैकभावेन भजध्वमद्धा ।।१८।।

अन्वयः— अशेष देहिनाम् एकम् आत्मनम् कालं, प्रधानं, पुरुषम्, परेशम् स्व तेजसा ध्वस्त गुण प्रहवाहम् आत्मैकभावेन भजध्वम् अद्धा ।।१८।।

अनुवाद— अतएव तुमलोग सम्पूर्ण शरीरधारियों के एक मात्र आत्मा, जगत् के निमित्त कारण काल, उपादान कारण प्रधान, और सम्पूर्ण जगत् के एक मात्र नियामक परमपुरुष अपनी तेजोमयी काल शक्ति के द्वारा गुणों के प्रवाह रूप प्रपञ्च संहार करने वाले श्रीहरि को अपने से अभिन्न मानते हुए उनका भजन करो ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

तेन सर्वकारणत्वेन हेतुना । कालो निमित्तम् । प्रधानमुपादानम् । पुरुषः कर्ता । एतत्रि तयात्मकत्वात्सर्वकारणं परमेश्वरमद्धा साक्षाद्भजध्वम् । कथम् । आत्मन एकभावेनाभिन्नत्वेन ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

चूकि श्रीहरि सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र कारण है । वे काल रूप से जगत् के निमित्त कारण हैं, प्रधान रूप से जगत् के उपादान कारण हैं, तथा वे सम्पूर्ण जगत् के कर्ता पुरुष है । इस तरह से त्रितयात्मक होने के कारण सम्पूर्ण जगत् के कारण परमात्मा को अपने से अभिन्न मानकर उनका भजन करो ।।१८।।

दयया सर्वभूतेषु संतुष्ट्या येनकेन वा । सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जनार्दनः ॥१९॥

अन्वयः— जनार्दनः सर्वभूतेषु दयया, येन केन वा सन्तुष्ट्या, सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च आशु तुष्यति ॥१९॥

अनुवाद— भगवान् जनार्दन, सभी जीवों पर दया करने से, जिस किसी भी वस्तु से सन्तुष्ट रहने से और सभी इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर उनको वश में करने से शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

साधनमाह । दयादिभिः शीघ्रं तुष्यति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को शीघ्र प्रसन्न करने के साधनों को बतलाते हुए नारदजी ने कहा कि दया आदि रूपी साधनों से श्रीभगवान् शीघ्र प्रसन्न होते हैं ॥१९॥

अपहतसकलैषणामलात्मन्यविरतमेधितभावनोपहूतः ।
निजजनवशगत्वमात्मनोऽयन्न सरति छिद्रवदक्षरः सतां हि ॥२०॥

अन्वयः— अपहत सकलैषणा मलात्मनि, अविरतम्, एधितभावनोपहूतः, निजजनवशगत्वम् आत्मनः अयन् न सरतिछिद्रवदक्षरः सतां हि ॥२०॥

अनुवाद— पुत्रैषणा वित्तैषणा आदि समस्त वासनाओं के निकल जाने के कारण जिनका अन्तःकरण शुद्ध भगवच्चित हो गया है उन सन्तों के हृदय में निरन्तर बढ़ते हुए भगवच्चिन्तन के द्वारा खिंचकर अविनाशी श्रीहरि आ जाते हैं अपनी भक्त पराधीनता के स्वभाव के चरितार्थ करते हुए हृदयाकाश की भांति वहाँ से नहीं निकलते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

ततो न कदाचित्त्यजतीत्याह । अपहता निरस्ताः सकला एषणाः कामा यस्मात्स चासावमल आत्मा मनस्तस्मिन्सतां मनिस निरन्तरं समेधितया भावनयोपहूतः सन्निधापितः सन्नक्षरो हरिश्छिद्रवत्तत्रत्याकाशवत्ततो न सरति नापयाति हि । किं कुर्वन् । आत्मनो निजजनवशगत्वं स्वभक्ताधीनत्वं अयन्नवगच्छन् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् अपने भक्तों का कभी भी परित्याग नहीं करते हैं इस बात को बतलाते हुए नारदजी ने कहा सम्पूर्ण एषणाओं की वासना के निकल जाने के कारण अन्तःकरण में जब सन्तों का निरन्तर परमात्म का चिन्तन बढ़ते रहने के कारण उससे खिंचकर अविनाशी श्रीहरि उनके हृदय में आ जाते हैं, और अपनी भक्तपराधीनता को याद करते हुए वे उनके हृदय से उसी तरह नहीं निकलते हैं जिस तरह हृदय में विद्यमान आकाश वहाँ से नहीं निकलता है ॥२०॥

न भजति कुमनीषिणां स इज्यां हरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः ।
श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्ये विदधति पापमकिंचनेषु सत्सु ॥२१॥

अन्वयः— अधनात्मधनप्रियो रसज्ञः हरिः श्रुतधनकुलकर्मणां मदैः ये अकिञ्चनेषु सत्सु पापम् विदधति कुमनीषिणां इज्यां स न भजति ॥२१॥

अनुवाद— श्रीभगवान् अपने (श्रीभगवान्) को ही सर्वस्व मानने वाले निर्धन पुरुषों से ही प्रेम करते हैं, क्योंकि वे परमरसज्ञ हैं। वे अनन्याश्रया भक्ति में कितना रस है इस बात को जानते हैं। जो लोग अपने शास्त्रज्ञान, धन, कुल एवं कर्मों के मद से मत्त होकर अकिञ्चन साधु पुरुषों का तिरस्कार करते हैं, उन दुर्बुद्धियों की पूजा को श्रीभगवान् स्वीकार नहीं करते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

सतामेव वश्योऽसावसतां तु पूजामपि न गृह्णातीत्याह-नेति । कुमनीषिणां कुत्सितमतीनाम् । अधनाश्च ते आत्मधनाश्च भगवद्धनास्ते प्रिया यस्य । रसज्ञो भक्तिसुखज्ञः । के कुमनीषिणस्तानाह । श्रुतादिनिमित्तैर्मदैः ये सत्सु पापं तिरस्कारं कुर्वन्ति।।२१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सत्पुरुषों के ही अधीन रहते हैं असत् पुरुषों की तो पूजा को भी वे नहीं स्वीकार करते हैं । इस बात को नारदजी ने **नभजति० इत्यादि** श्लोक से कहा है । कुमनीषिणां पद का अर्थ है दुर्बुद्धियों की जो लोग निर्धन भी होकर श्रीभगवान् को ही अपना धन मानते हैं, वे ही भगवान् के प्रिय हैं । रसज्ञः का अर्थ है भक्ति जन्य सुख को जानने वाले दुर्बुद्धि कौन लोग हैं इसको बतलाते हुए नारदजी ने कहा अपने शास्त्र ज्ञान आदि के मद से मत्त बने हुए जो लोग सत्पुरुषों का तिरस्कार करते हैं वे दुर्बुद्धि शब्द वाच्य हैं ।।२१।।

श्रियमनुचरतीं तदर्थिनश्च द्विपदपतीन् विबुधांश्च यत्स्वपूर्णः ।
न भजति निजभृत्यवर्गतन्त्रः कथममुमुद्विसृजेत्पुमान्कृतज्ञः ।।२२।।

अन्वयः— यत्स्वपूर्णः अनुचरतीं श्रियम् तदर्थिनश्च द्विपदपतीन् विबुधान् च न भजति, निजभृत्यवर्गतन्त्रः, कृतज्ञः पुमान् कथम् अमुम् उद्विसृजेत् ।।२२।।

अनुवाद— श्रीभगवान् स्वरूपानन्द से ही परिपूर्ण हैं, वे सदैव अपनी सेवा करने वाली लक्ष्मीजी राजाओं, तथा देवों की भी परवाह नहीं करते हैं वे तो अपने भक्तों के परतन्त्र रहा करते हैं । ऐसे श्रीभगवान् को कौन ऐसा कृतज्ञ पुरा होगा जो थोड़ी सी देर के लिए छोड़ दें ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

भक्ताधीनत्वं प्रपञ्चयन्नाह । अनुवर्तमानामपश्रियं तदर्थिनः सकामान् द्विपदपतीन्नरेन्द्रान्विबुधान् देवानपि यो नानुवर्तते। यतः स्वेनैव पूर्णोऽतः स्वभृत्यवर्गानुरक्त एव । एवंभूतममुमुत् ईषदपि कथं परित्यजेत् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के भक्तपारतन्त्र्य का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं । वे अपनी सेवा में लगी रहने वाली लक्ष्मीजी की, लक्ष्मीजी को चाहने वाले नरपतियों की तथा देवताओं की भी परवाह नहीं करते हैं । क्योंकि वे अपने आप में परिपूर्ण हैं अतएव वे अपने भक्तों में ही अनुरक्त रहते हैं । इस प्रकार के श्रीभगवान् को कोई भी कृतज्ञ कैसे थोड़ी भी देर के लिए कैसे त्याग सकता है ?।।२२।।

मैत्रेय उवाच

इति प्रचेतसो राजन्नन्याश्च भगवत्कथाः । श्रावयित्वा ब्रह्मलोकं ययौ स्वायंभुवो मुनिः ।।२३।।

अन्वयः— हे राजन् ! इति प्रचेतसः अन्याश्च भगवत् कथाः श्रावयित्वा स्वायंभुवो मुनिः ब्रह्मलोकं ययौ ।।२३।।

मैत्रेयजी ने कहा

अनुवाद— हे विदुरजी ! इस प्रकार से प्रचेताओं को और भी भगवत सम्बन्धी कथाओं को सुनाकर ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी ब्रह्मलोक में चले गये ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

प्रचेतसः कर्मभूतान् । अन्याश्च नूनं सुनीतेरित्यादिध्रुवचरिताद्याः। सत्रेऽगायत्प्रचेतसामित्युक्तत्वात् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

प्रचेताओं को निश्चित रूप से सुनीति की ध्रुव चरित इत्यादि की कथाओं का श्रीनारदजी ने प्रचेताओं के सत्र में गान किया ॥२३॥

तेऽपि तन्मुखनिर्यातं यशो लोकमलापहम् । हरेर्निशम्य तत्पादं ध्यायन्तस्तद्गतिं ययुः ॥२४॥

अन्वयः— ते अपि तन्मुखनिर्यातं हरेः लोकमलापहम् यशो निशम्य तत्पदं ध्यायन्तः तद्गतिं ययुः ॥२४॥

अनुवाद— वे प्रचेतागण भी श्रीनारदजी के मुख से सम्पूर्ण जगत् के मल को दूर करने वाले श्रीहरि के यश को सुनकर श्रीभगवान् के चरणों का ध्यान करते हुए अन्त में श्रीभगवान् के लोक में चले गये ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तेऽपि प्रचेतसः । तद्गतिं विष्णुलोकम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

वे प्रचेतागण भी विष्णु लोक में चले गये ॥२४॥

एतत्तेऽभिहितं क्षत्तर्यन्मा त्वं परिपृष्टवान् । प्रचेतसां नारदस्य संवादं हरिकीर्तनम् ॥२५॥

अन्वयः— हे क्षत्तः यत् त्वं मां प्रचेतसां हरिकीर्तनम् नारद संवादं ते एतत् अभिहितम् ॥२५॥

अनुवाद— हे विदुरजी आपने जो मुझसे प्रचेताओं और श्रीहरि के यश से संबन्धित नारदजी के संवाद को पूछा था उसे मैंने आपको सुना दिया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

प्रचेतसां नारदस्य संवादरूपमेतदाख्यानं तेऽभिहितम् । हरेः कीर्तनं यस्मिंस्तत् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

जिसमें श्रीहरि का यश वर्णित है ऐसे प्रचेताओं और नारदजी के संवाद रूपी आख्यान को मैंने तुम्हें सुना दिया ॥२५॥

श्रीशुक उवाच

य एष उत्तानपदो मानवस्यानुवर्णितः । वंशः प्रियव्रतस्यापि निबोध नृपसत्तम ॥२६॥

अन्वयः— एष मानवस्य उत्तानपदः य एषः वंशः अनुवर्णितः, नृपसत्तम प्रियव्रतस्यापि निबोध ॥२६॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजवर्य ! यहाँ तक स्वायम्भुव मनु के वंश का मैंने वर्णन किया, अब आप प्रियव्रत के भी वंश का वर्णन सुनें ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

य एष वंशः सोऽनुवर्णितः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

उत्तानपाद को जो यह वंश है उसका मैंने वर्णन किया ॥२६॥

यो नारदादात्मविद्यामधिगम्य पुनर्महीम् । भुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्य ऐश्वरं समगात्पदम् ॥२७॥

अन्वयः— यः नारदात् आत्मविद्याम् अधिगम्य पुनः महीं भुक्त्वा पुत्रेभ्यः विभज्य ऐश्वरं पदं समगात् ॥२७॥

अनुवाद— जो राजा प्रियव्रत नारदजी से आत्मज्ञान का उपदेश प्राप्त करके राज्य का भोग किए और अन्त में इस सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने पुत्रों में बाँटकर श्रीभगवान् के परमधाम को चले गये ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

यः प्रियव्रतः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

जो राजा प्रियव्रत ॥२७॥

इमां तु कौषारविणोपवर्णितां क्षत्ता निशम्याजितवादसत्कथाम् ।
प्रवृद्धभावोऽश्रुकलाकुलो मुनेर्दधार मूर्ध्ना चरणं हृदा हरेः ॥२८॥

अन्वयः— कौषारविणा उपवर्णिताम् इमां अजितवाद सत्कथाम् निशम्य क्षत्ता तु प्रवृद्धभावः अश्रुकलाकुलः मुनेः मूर्ध्ना हरेः हृदा चरणं दधार ॥२८॥

अनुवाद— श्रीमैत्रेय जी से वर्णित श्रीभगवान् के गुणानुवाद से युक्त इस कथा को सुनकर भक्ति के भाव का उद्रेक हो जाने के कारण विदुरजी की आँखों से आँसू प्रवाहित होने लगा उन्होंने मैत्रेयजी के चरणों पर अपना शिर रख दिया और श्रीभगवान् के चरणों को हृदय में धारण किया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

विदुर उवाच

सोऽयमद्य महायोगिन्भवता करुणात्मना । दर्शितस्तमसः पारो यत्राकिंचनगो हरिः ॥२९॥

अन्वयः— हे महायोगिन् करुणात्मना भवता सोऽयम् अद्य तमसः पारो दर्शितः यत्र अकिञ्चनगः हरिः ॥२९॥

विदुरजी ने कहा

अनुवाद— हे महायोगिन् करुणामय आपने आज मुझको अज्ञान के पार पहुँचा दिया जहाँ अकिञ्चनों के सर्वस्व श्रीहरि विराजते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

श्रीशुक उवाच

इत्यानम्य तमामन्त्र्य विदुरो गजसाह्वयम् । स्वानां दिदृक्षुः प्रययौ ज्ञातीनां निर्वृताशयः ॥३०॥

अन्वयः— इति आनम्यतम् आमन्त्र्य निर्वृताशयः विदुरः स्वानां दिदृक्षुः गजसह्वयम् प्रययौ ॥३०॥

शुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से मैत्रेयजी की बातों को सुनकर विदुरजी ने मैत्रेयजी को प्रणाम किया और उनसे आज्ञा लेकर शान्त चित्त वे अपने बन्धुओं को देखने के लिए हस्तिनापुर चले गये ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

स्वान् ज्ञातीन् दिदृक्षुः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अपने बान्धवों को देखने के इच्छक ॥३०॥

एतद्यः शृणुयाद्राजन् राज्ञां हर्यर्पितात्मनाम् । आयुर्धनं यशः स्वस्ति गतिमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे प्राचेतसोपाख्यानं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥
समाप्तोऽयं चतुर्थस्कन्धः ॥४॥

अन्वयः— राजन् हर्यर्पितात्मनां राज्ञां एतत् यः शृणुयात् आयुः धनम् गतिम् स्वस्ति ऐश्वर्यम् आप्नुयात् ॥३१॥

अनुवाद— राजन् ! जो पुरुष श्रीभगवान् के शरणागत इन राजाओं के इस चरित्र को सुनेगा वह आयु, धन, सद्गति तथा ऐश्वर्य को प्राप्त करेगा ॥३१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण जो अठारह हजार श्लोकों वाली संहिता है । उसके चतुर्थ स्कन्ध के प्रचेतोपाख्यान के अन्तर्गत एकतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३१॥

इस तरह चतुर्थ स्कन्ध भी सम्पूर्ण हुआ ॥४॥

भावार्थ दीपिका

राज्ञां चरितमिति शेषः ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां वैयासिक्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥
समाप्तोऽयं चतुर्थः स्कन्धः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

राजाओं के चरित को ॥३१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के चौथे स्कन्ध के एकतिसवें अध्याय की भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥३१॥
यह चौथा स्कन्ध सम्पूर्ण हो गया ॥४॥

।। ओम नमो भगवते वासुदेवाय ।।

पाँचवाँ स्कन्ध

प्रथम अध्याय

प्रियव्रत चरित्र

राजोवाच

प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने । गृहेऽरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः ।।१।।

अन्वयः— मुने भागवतः प्रियवतः आत्मारामः कथं गृहे अरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः ।।१।।

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— हे मुने ! महाराज प्रियव्रत तो भगवद् भक्त और आत्माराम थे उनकी गृहस्थाश्रम में रुचि कैसे हुई ? जो कर्मों के बन्धन का मूल और पराभव का स्थान है ।।१।।

भावार्थ दीपिका

नमः श्रीमत्परमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय । अथातः पञ्चमस्कन्धव्याख्यानेकविशेषवान् । प्रियव्रतान्वयो यत्र सप्रपञ्चः प्रपञ्च्यते ।।१।। षड्विंशत्याधुनाध्यायैः पञ्चमे स्थानमीर्यते। लोकद्वीपादिमर्यादापालनाख्यमनेकधा ।।२।। पृथिव्युिपर्यधोलोकैर्मर्यादा त्रिविधा मता । पुनश्चैकैकशस्तेषु मर्यादा बहुधा मता।।३।। भुवि द्वीपादिमर्यादाः पाल्यन्ते राजभिः पृथक् । भूमेरुपरि देवाद्यैस्ततश्चाधोऽसुरादिभिः ।।४।। तत्राध्यायैस्तु विंशत्या प्रियव्रतपुरःसरैः। भुवि द्वीपादिमर्यादाः पालिता इति वर्ण्यते ।।५।। त्रिभिः सूर्यादिभिर्ज्योतिश्चक्रादिष्विति कीर्त्यते । अलतादिषु दैत्याद्यैः पालनं च ततस्त्रिभिः ।।६।। तत्र तु प्रथमेऽध्याये ज्ञानिनो राज्यनिर्वृतिः । पुनश्च ज्ञाननिष्ठेति प्रियव्रतकथाद्भुता ।।७।। 'वंशः प्रियव्रतस्यापि निबोध नृपसत्तम । यो नारदादात्मविद्यामधिगम्य पुनर्महीम् । भुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्य ऐश्वरं समगात्पदम् ।' इति पूर्वस्कन्धान्ते प्रियव्रतस्य प्रथममात्मविद्या, ततो गृहाश्रमः, ततः सर्वसङ्गत्यागेन मोक्ष इत्युक्तम्, तत्र विस्मितः पृच्छति । प्रियव्रतो भागवतोऽतएवात्मारामो गृहे कथमरमत । ननु रमतां को दोष इति चेदत आह । कर्मणां बन्धः पराभवश्च स्वरूपतिरस्कारो यन्मूलो भवति, यद्गृहं मूलं कारणं यस्य ।।१।।

भाव प्रकाशिका

जिनके चरण कमलों के ज्ञान मय पराग का परमहंस जन आस्वादन किया करते हैं, तथा जो अपने भक्तों के मन रूपी मानसरोवर में निवास करते हैं ऐसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार है । अब यहाँ से पाञ्चवें स्कन्ध की अनेक विशेषणताओं से विशिष्ट व्याख्यान किया जा रहा है । इस स्कन्ध में महाराज प्रियव्रत के वंश का विस्तृत वर्णन है ।।१।। इस पाँचवें स्कन्ध में छब्बीस अध्यायों को स्थान दिया गया हैं । इसमें लोकों द्वीपों आदि की मर्यादा और पालन आदि का अनेक प्रकार का वर्णन है ।।२।। पृथिवी उसके ऊपर तथा पृथिवी के नीचे के लोक इस तरह से तीन प्रकार की मर्यादा की गयी है । उसके पश्चात् प्रत्येक की अनेक प्रकार की मर्यादा बतलायी गयी है।।३।।

पृथिवी पर के द्वीपों आदि की मार्यादा राजाओं द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से की गयी है और पृथिवी के ऊपर के लोकों की मर्यादा देवताओं द्वारा और पृथिवी के नीचे के लोकों की मर्यादा असुरों द्वारा की जाती है ।।४।। बीस अध्यायों में प्रियव्रत आदि राजाओं के द्वारा पृथिवी के द्वीपों की मर्यादा का पालन किया गया इस बात का वर्णन किया गया है ।।५।। तीन अध्यायों में सूर्य आदि ज्योतिश्चक्र आदि का वर्णन है । उसके बाद तीन अध्यायों में अतल आदि लोकों का पालन दैत्यों आदि के द्वारा किया जाता है, इस बात का वर्णन है ।।६।। उसमें से इस स्कन्ध के प्रथम अध्याय में ज्ञानी राजा प्रियव्रत की राज्य से उदासीनता और उसके पश्चात् उनकी ज्ञाननिष्ठा आदि से संबन्धित अद्भुत कथा का वर्णन है ।।७।। चतुर्थ स्कन्ध के अन्तिम अध्याय के अन्त में श्रीशुकदेवजी ने कहा है कि— हे राजन् ! आप प्रियव्रत के भी वंश का वर्णन सुनें । जो प्रियव्रत देवर्षि नारदजी आत्मविद्या का ज्ञान प्राप्त करके उसके पश्चात् पृथिवी का भोग प्राप्त किए और अन्त में अपने पुत्रों में पृथिवी को बाँटकर भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त किए । इस तरह से चतुर्थ स्कन्ध के अन्त में बतलाया गया है कि महाराज प्रियवत पहले आत्म विद्या को प्राप्त किए, उसके पश्चात् गृहस्थाश्रम को स्वीकार किए, उसके पश्चात् सभी प्रकार की आसक्तियों का परित्याग करके मोक्ष प्राप्त किए । यह सुनकर आश्चर्य चकित राजा परीक्षित पूछते हैं कि महाराज प्रियव्रत तो भगवद् भक्त होने के कारण आत्माराम थे फिर भी वे गृहस्थाश्रम को कैसे स्वीकार किए ? यदि कोई कहे कि गृहस्थाश्रम में रमण करने में क्या दोष है ? तो इस पर राजा ने कहा ग्रहस्थाश्रम में मनुष्य कर्मों के बन्धन में बँध जाता है उसके कारण स्वरूप का तिरस्कार होता है । और इन सबों का कारण गृहस्थाश्रम ही हैं ।।१।।

न नूनं मुक्तसङ्गानां तादृशानां द्विजर्षभ । गृहेष्वभिनिवेशोऽयं पुंसां भवितुमर्हति ।।२।।

अन्वयः— हे द्विजर्षभ नूनं तादृशानां मुक्तसङ्गानाम् अयं गृहेषु अभिनिवेशः न भवितुमर्हति ।।२।।

अनुवाद— हे विप्रवर्य ! निश्चय ही ऐसे निःसङ्ग महापुरुषों का गृहाश्रम मे इस प्रकार से अभिनिवेश होना उचित नहीं हैं ।।२।।

भावार्थ दीपिका

गृहेषु रतिश्च तत्राभिनिवेशात्स्यात्, स च भागवतानामात्मारामाणां न संभवतीत्याह-न नूनमिति ।।२।।

भाव प्रकाशिका

गृहों में प्रेम तो गृहों में अभिनिवेश के कारण होता है । और गृहों में अभिनिवेश आत्माराम भागवतों को नहीं होता है । इसी बात को न नूनम् इत्यादि श्लोकों के द्वारा कहा गया है ।।२।।

महतां खलु विप्रर्षे उत्तमश्लोकपादयोः । छायानिर्वृतचित्तानां न कुटुम्बे स्पृहामतिः ।।३।।

अन्वयः— हे विप्रर्षे उत्तमश्लोक पादयोः छाया निवृत्ति चित्तानां महतां कुटुम्बे खलु स्पृहामतिः न ।।३।।

अनुवाद— जिन लोगों के चित्त पुण्य कीर्ति श्रीहरि के चरणों की शीतल छाया को अपनाकर शान्त हो गया है उन लोगों की बुद्धि कभी भी कुटुम्ब में नहीं लग सकती है ।।३।।

भावार्थ दीपिका

गृहासक्तिर्हि कुटुम्बादिस्पृहया भवति, सा च तेषां नास्तीत्याह-महतामिति । उत्तमश्लोकपादयोश्छाया कामादिसंतापहारिणी तया निर्वृतं चित्तं येषां तेषां स्पृहायुक्ता मतिर्नास्ति ।।३।।

भाव प्रकाशिका

महापुरुषों का गृहों में अभिनिवेश नहीं होता है । इस बात को इस **महताम्० इत्यादि** श्लोक में कहा गया है । पुण्यकीर्ति श्रीभगवान् के चरणों की छाया कामादि जन्य संताप को विनष्ट करने वाली है । उसके द्वारा जिनका चित्त शान्त हो गया है उनकी स्पृहा गृहों में नहीं हो सकती है ।।३।।

संशयोऽयं महान्ब्रह्मन् दारागारसुतादिषु । सक्तस्य यत्सिद्धिरभूत्कृष्णे च मतिरच्युता ॥४॥

अन्वयः— ब्रह्मन् अयं महासंशयः यत् दारागारसुतादिषु सक्तस्य श्रीकृष्णः अच्युतामतिसिद्धि अभूत् ॥४॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! मुझे इस बात का बहुत बड़ा संदेह है महाराज प्रियवत ने स्त्री घर और पुत्रादि में आसक्त रहकर भी किस प्रकार सिद्धि प्राप्त की और उनकी भगवान् श्रीकृष्ण में कैसे अविचल भक्ति हुई ॥४॥

भावार्थ दीपिका

दाराद्यासक्तस्य तु मोक्षः श्रीकृष्णेऽखलिता मतिश्चाभूदिति यदयं च महान्संशय इत्याह-संशय इति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

पत्नी आदि में आसक्त को मोक्ष की प्राप्ति तथा भगवान् श्रीकृष्ण में अविचल बुद्धि हो गयी यह बहुत बड़े संशय का विषय है । इस बात को ही इस श्लोक में कहा गया है ॥४॥

श्रीशुक उवाच

बाढमुक्तं भगवत उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविन्दमकरन्दरस आवेशितचेतसो । भागवतपरमहंसदयितकथां किंचिदन्तरायविहतां स्वां शिवतमां पदवीं न प्रायेण हिन्वन्ति ॥५॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! तुमने ठीक कहा है कि जिन लोगों का चित्त प्रवित्र कीर्ति श्रीहरि के परम मधुर चरण कमल के मकरन्द के रस में सराबोर हो जाता है, वे किसी विघ्न वाधा के कारण रुकावट आ जाने पर भी भगवद् भक्त परमहंसों के प्रिय वासुदेव भगवान् की कथा श्रवण रूपी परम कल्याणमय भाग को प्रायः नहीं छोड़ते हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अङ्गीकृत्य परिहरति । बाढमभिनिवेशादिकं नास्तीति सत्यमेव । तथापि विघ्नवशेन तेषां प्रवृत्तिः पूर्वाभ्यासबलेन पुनर्निवृत्तिश्च संगच्छत इत्याह । भगवतः श्रीमच्चरणारविन्दमकरन्दरूपो यो रसस्तस्मिन्नावेशितं चेतो यैस्तेऽपि केनचिदन्तरायेण विघ्नेन विहतामपि स्वां शिवतमां पदवीं मार्गं न हिन्वन्ति न त्यजन्ति । काम् । भागवता एव परमहंसास्तेषां दयितस्य प्रियस्य श्रीवासुदेवस्य कथाम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

पहले राजा परीक्षित् की बातों को स्वीकार करके पुनः उसका परिहार करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि यह ठीक है कि मुक्तसङ्ग महापुरुषों का गृहादि में अभिनिवेश नहीं होता है । फिर भी विघ्न के कारण उनकी प्रवृत्ति हो जाती है । और पहले के अभ्यास के कारण उनकी पुनः गृहादि से निवृत्ति भी हो जाती है । भगवान् के ऐश्वर्य सम्पन्न चरणारबिन्दों के मकरन्द रूप जो रस उसी में जिन लोगों ने अपने चित्त को आविष्ट कर लिया है, वे भी किसी विघ्न के द्वारा रुकावट आ जाने पर भी श्रीभगवान् की कथा श्रवण रूपी अपने परम कल्याणमय मार्ग को नहीं त्यागते हैं । प्रश्न होता है कि वे किसको नहीं छोड़ते है ? तो इसका उत्तर है भगवद् भक्त ही परम हंस हैं उनको परम प्रिय श्रीभगवान् की कथा को नहीं त्यागते हैं ॥५॥

यर्हि वाव ह राजन्स राजपुत्रः प्रियव्रतः परमभागवतो नारदस्य चरणोपसेवयाञ्जसावगतपरमार्थसतत्त्वो ब्रह्मसत्रेण दीक्षिष्यमाणोऽवनितलपरिपालनायाम्नातप्रवरगुणगणैकान्तभाजनतया स्वपित्रोपामन्त्रितो भगवति वासुदेव एवाव्यवधानसमाधियोगेन समावेशितसकलकारकक्रियाकलापो नैवाभ्यनन्दद्यद्यपि तदप्रत्याम्नातव्यं तदधिकरण आत्मनोऽन्यस्मादसतोऽपि पराभवमन्वीक्षमाणः ॥६॥

अनुवाद— राजन् राजकुमार प्रियव्रत बहुत बड़े भगवद् भक्त थे, नारदजी के चरणों की सेवा करने के कारण उनको अनायास ही परमार्थ तत्त्व का बोध हो गया । वे ब्रह्मसत्र की दीक्षा (निरन्तर ब्रह्माभ्यास में जीवन बिताने का नियम) लेने वाले थे उसी समय उनके पिता स्वयम्भुव मुन उनको पृथिवी पालन के लिए शास्त्रोक्त समस्त श्रेष्ठ गुणों से परिपूर्ण देखकर उनको राज्य का शासन करने की आज्ञा दिये, किन्तु प्रियव्रत अखण्ड समाधियोग के द्वारा अपनी समस्त इन्द्रियों और क्रियाओं को भगवान् वासुदेव में समर्पित कर चुके थे । अतएव पिता की आज्ञा अनुल्लंघनीय होने पर भी वे उसे इसलिए नहीं स्वीकार किए कि उसे स्वीकार करने पर तो मेरा आत्म स्वरूप स्त्री पुत्रादि असत् प्रपञ्च से आच्छादित हो जायेगा ।।६।।

भावार्थ दीपिका

प्रियव्रतस्य ब्रह्माज्ञैवान्तरायरूपं बभूवेति सप्रसङ्गमाह-यर्हीत्यादिना विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्वेत्यन्तेन । यर्हि वाव ह यदा हि । वावेति प्रसिद्धौ ह इति च । स स्वपित्रा मनुनाऽवनितलपरिपालनायोपामन्त्रितो नियुक्तो नैवाभ्यनन्दन्नैच्छत् । अथ ह तदैव भगवानादिदेवो ब्रह्मा स्वभवनादवततारेत्यन्वयः । उपामन्त्रणे हेतुः-आम्नाता राज्ञां शास्त्रेणोक्ता ये प्रवराः श्रेष्ठा गुणास्तेषां गणस्यैकान्तभाजनतया नियताश्रयत्वेन । अनिच्छायां हेतुः-परमार्थसतत्त्वमात्मयाथात्म्यमवगतं तद्येन स तथा । अतो ब्रह्मसत्रेणात्मध्यानेन कार्येण दीक्षिष्यमाणो नियमं ग्रहीष्यन् । प्रागपि वासुदेव एव निरन्तरसमाधियोगेन चित्तैकाग्र्येण समावेशितःसमर्पितः सकलकारकाणामिन्द्रियाणां याः क्रियास्तासां कलापो येन सः । यद्यपि तत्पित्रोक्तं न प्रत्याख्येयं तथापि तदधिकरणे राज्याधिकारेऽसतोऽपि मिथ्याभूतादपि राज्यप्रपञ्चादात्मनः पराभवमालोचयन्नाभ्यनन्दत् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी की आज्ञ ही प्रियव्रत के लिए विघ्न स्वरूपिणी हो गयी बस बात को शुकदेवजी प्रसङ्ग निर्देश पूर्वक **यर्हि से** लेकर **विमुक्त सङ्गः प्रकृतिं भजस्व** (१९ वें श्लोक तक) ब्रह्मा जी की आज्ञा है । और बवाव ये अव्यय प्रसिद्धार्थक हैं । जब राजकुमार प्रियव्रत अपने पिता मनु के द्वारा पृथिवी का परिपालन करने के लिए आदिष्ट हुए तो वे राज्य का प्रशासन करना नहीं चाहे । उसी समय आदि देव ब्रह्माजी अपने लोक से भूलोक में आये । पिता ने उनको राज्य प्रशासन का आदेश इसलिए दिया कि राजाओं के जो श्रेष्ठ गुण बतलाये गयें वे सब गुण उनमें विद्यमान थे । प्रियव्रत के राज्य करने की अनिच्छा का कारण था कि वे परमार्थ तत्त्व के ज्ञाता थे । अतएव वे ब्रह्मसत्र की दीक्षा ग्रहण करना चहते थे । उससे पहले भी वे निरन्तर समाधि योग के द्वारा भगवान् वासुदेव में ही अपनी इन्द्रियों और क्रियाओं को समर्पित कर चुके थे । यद्यपि उनके पिता की आज्ञा अनुल्लंघनीय थी फिर भी उसको स्वीकार करने पर असत् राज्य के प्रपञ्च से आत्मा के तिरस्कार का विचार करते हुए नहीं स्वीकार करना चाहे ।।६।।

अथ ह भगवानादिदेव एतस्य गुणसर्गस्य परिबृंहणानुध्यानव्यवसितसकलजगदभिप्राय आत्मयोनिरखिलनिगमनिजगणपरिवेष्टितः स्वभवनादवततार ।।७।।

अनुवाद— आदि देव भगवान् ब्रह्माजी यह चाहते है कि इस त्रिगुणात्मक प्रपञ्च की वृद्धि होती रहे । वे संसार के समस्त प्राणियों के अभिप्राय को भी जानते हैं । प्रियव्रत की इस प्रकार की प्रवृत्ति को देखकर वे मूर्तिमान चारो वेदों और मरीचि आदि पार्षदों के साथ अपने लोक से इस लोक में आये ।।७।।

भावार्थ दीपिका

गुणविसर्गस्य गुणसृष्टेः परिबृंहणं समृद्धिस्तदनुचिन्तया व्यवसितः सकलजगतामभिप्रायो येन सः । यथा राज्ञा चारैर्मण्डलेश्वराणामभिप्रायो निश्चीयते तद्वत् । अखिलैर्निगमैर्मूर्तिमद्भिर्वेदैर्निजगणैश्च मरीच्यादिभिः परिवृतः सत्यलोकादवतीर्णः।।७।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी को इस त्रिगुणात्मिक सृष्टि की समृद्धि की चिन्ता बनी रहती है । वे संसार के सभी प्राणियों के अभिप्राय को भी जानते हैं । यह ठीक उसी तरह से वे जानते है जैसे राजा अपने गुप्तचरों द्वारा मण्डलेश्वरों के अभिप्राय को जानते रहते हैं । ब्रह्माजी सम्पूर्ण मूर्तिमान वेदों तथा मरीचि आदि अपने गणों के साथ सत्यलोक से आ गये ॥७॥

स तत्र तत्र गगनतल उडुपतिरिव विमानावलिभिरनुपथममरपरिवृढैरभिपूज्यमानः पथि पथि च वरूथशः सिद्धगन्धर्वसाध्यचारणमुनिगणैरुपगीयमानो गन्धमादनद्रोणीमवभासयन्नुपससर्प ॥८॥

अनुवाद— आकाश में स्थान-स्थान पर विमानों पर विद्यमान इन्द्रादि प्रधान देवताओं ने उनका पूजन किया, मार्ग में भी समुदित सिद्ध गन्धर्व, साध्य, चारण तथा मुनियों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए वे गन्धमादन पर्वत की घाटी को प्रकाशित करते हुए नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा के समान प्रियव्रत के पास आये ॥८॥

भावार्थ दीपिका

स च ब्रह्मा तत्र तत्रोडुपतिश्चन्द्र इव प्रकाशमानो गन्धमादनस्य द्रोणीं दरीमवभासयन्नुपससर्पेत्यन्वयः । अमरपरिवृढै; देवेन्द्रादिभिः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

वे ब्रह्माजी नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा के समान गन्धमादन पर्वत की घाटी को प्रकाशित सा करते हुए प्रियव्रत के पास आये । ब्रह्माजी के साथ इन्द्रादि प्रधान-प्रधान देवता भी थे ॥८॥

तत्र ह वा एवं देवर्षिर्हंसयानेन पितरं भगवन्तं हिरण्यगर्भमुपलभमानः सहसैवोत्थायार्हणेन सह पितापुत्राभ्यामवहिताञ्जलिरुपतस्थे ॥९॥

अनुवाद— वहाँपर देवर्षि ने हंस विमान से आये हुए अपने पिता ब्रह्माजी को देखकर अचानक स्वायम्भुव मनु और प्रियव्रत के साथ खड़े हो गये और सबों ने हाथ जोड़कर उनको प्रणाम किया ॥९॥

भावार्थ दीपिका

हंसयानेनोपलक्षणेनैनं पितरमुपलभमानो मत्पिताऽयमिति लक्षयन् पितापुत्राभ्यां मनुप्रियव्रताभ्यां सह नारदः कृताञ्जलिः सन्सहसैवाभ्युत्थायार्हणेन पूजया सहोपतस्थे तुष्टाव । प्रियव्रतं तदा मन्दरद्रोण्यां नारद उपदिशति मनुश्च तं नेतुमागतोऽस्तीति ज्ञातव्यम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

हंस विमान रूपी उपलक्षण के द्वारा ये मेरे पिता ब्रह्माजी आये हैं इस प्रकार से जानकर मनु और प्रियव्रत के साथ नारदजी अचानक खड़ा होकर उनकी पूजा करके उनकी स्तुति किए । नारदजी मन्दराचल की घाटी में प्रियव्रत को आत्मज्ञान का उदेश देंगे यह जानकर स्वायम्भुव मनु भी प्रियव्रत को लेने के लिए आये हुए थे यह जानना चाहिए ॥९॥

भगवानपि भारत तदुपनीतार्हणः सूक्तवाकेनातितरामुदितगुणगणावतारसुजयः प्रियव्रतमादिपुरुषस्तं सदयहासावलोक इति होवाच ॥१०॥

अनुवाद— परीक्षित् ! नारदजी ने ब्रह्माजी की अनेक प्रकार से पूजा की तथा सुन्दर वचनों के द्वारा उनके गुणों और अवतार का वर्णन किया । उसके पश्चात् ब्रह्माजी ने प्रियव्रत की ओर मन्द मुस्कान युक्त दयादृष्टि से देखते हुए कहा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

हे भारत ! भगवानादिपुरुषो ब्रह्मापि तं प्रियव्रतमिति होवाचेत्यन्वयः । तेन नारदेनोपनीतमर्हणं यस्य सः । सूक्तवाकेन यथोचितवाक्येन । अतिशयेनोदता वर्णिता गुणगणा अवताराः सुजयाः सर्वोत्कर्षाश्च यस्य ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

इस वाक्य का अन्वय इस प्रकार है हे परीक्षित् ! भगवान् आदि पुरुष ब्रह्मजी ने प्रियव्रत को इस प्रकार से कहा । नारदजी उनकी पूजा कर ली थी और सुन्दर वचनों के द्वारा उन्होंने ब्रह्माजी के गुण समूह, अवतार और सर्वोत्कृष्टता का भी वर्णन किया ।।१०।।

श्रीभगवानुवाच

निबोध तातेदमृतं ब्रवीमि माऽसूयितुं देवमर्हस्यप्रमेयम् ।
वयं भवस्ते तत एष महर्षिर्वहाम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ।।११।।

अन्वयः— हे तात ! इदम् ऋतं ब्रवीमिति निबोध, अप्रमेयं देवम् असूयितम् मा अर्हसि । वयं, भव, ते तत, एष महर्षिः, सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् वहामः ।।१।।

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— हे वत्स मै तुमसे सत्य सिद्धान्त की बात कहता हूँ इसे तुम ध्यान पूर्वक सुनो । तुम्हें श्रीभगवान् के प्रति किसी प्रकार की दोष दृष्टि नहीं रखनी चाहिए । मैं शङ्करजी तुम्हारे पिता मनु तथा ये तुम्हारे गुरु महर्षि नारद भी विवश होकर उन्हीं की आज्ञा का पालन करते हैं ।।११।।

भावार्थ दीपिका

प्रवृत्तिनिष्ठं मद्वाक्यं प्रतिकूलं मत्वा मय्यसूया करिष्यतीति शङ्कमानो नाहमेवं वदामि किंतु मन्मुखेन हरिरेव त्वामाज्ञापयतीति वदन् प्रवृत्तिनिवृत्तिरहस्यमाह-निबोधेति नवभिः । ऋतं सत्यम् । अप्रमेयं देवमसूयितुं दोषारोपेण द्रष्टुं नार्हसि । ते तव ततस्तात एष त्वद्गुरुश्च महर्षिः । दिष्टमादिष्टमाज्ञां विवशा अस्वतन्त्राः सन्तो वहामः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

मेरे वाक्य को प्रवृत्ति परक मानकर प्रियव्रत मेरे प्रति दोष दृष्टि कर सकते हैं, इस शङ्का से ब्रह्माजी ने कहा मैं ऐसी बात नहीं कह रहा हूँ अपितु मेरे मुख से श्रीहरि ही इस बात को कहवा रहे हैं इस तरह से ब्रह्माजी ने नव श्लोकों में प्रवृत्ति और निवृत्ति के रहस्य को बतलाया । ब्रह्माजी ने कहा मैं ऋत अर्थात् सत्य कह रहा हूँ। अप्रमेय, श्रीभगवान् के प्रति दोष दृष्टि नहीं करनी चाहिए । दिष्ट शब्द आज्ञा का वाचक है । तत शब्द से पिता मनु को कहा गया है । मैं ब्रह्माजी शङ्करजी तुम्हारे पिता और तुम्हारे गुरु नारदजी ये सभी विवश होकर उनकी ही आज्ञा का पालन करते हैं ।।११।।

न तस्य कश्चित्तपसा विद्यया वा न योगवीर्येण मनीषया वा ।
नैवार्थधर्मैः परतः स्वतो वा कृतं विहन्तु तनुभृद्विभूयात् ।।१२।।

अन्वयः— तस्य कृतं कश्चित् तनुभृत तपसा, विद्यया वान योगवीर्येण, मनीषया वान अर्थधर्मैः परतः स्वतः वा विहन्तुं न विभूयात् ।।१२।।

अनुवाद— उनके विधान को कोई भी शरीरधारी तपस्या या विद्या के द्वारा या योग के बल से, या बुद्धि के बल से, या धन से या अर्थ से या अपने या दूसरे की सहायता से, विघटित नहीं कर सकता है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

विवशत्वमेवाह चतुर्भिः-नेति । तस्य कृतं तेन निर्मितं तनुभृज्जीवस्तपआदिभिर्विहन्तुमन्यथाकर्तुं न विभूयात्प्रभुर्न भवेत्। मनीषया सामादिबुद्धिबलेन । परतो बलवदाश्रयात् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

विवशता को ही चार श्लोकों में बतलाते है । श्रीहरि के द्वारा किए गये विधान को कोई भी शरीरधारी तपस्या आदि के द्वारा मनीषा साम आदि बुद्धि बल के द्वारा तथा दूसरे की सहायता से भी विघटित करने में समर्थ नहीं हो सकता है ।।१२।।

भवाय नाशाय च कर्म कर्तुं शोकाय मोहाय सदा भयाय ।
सुखाय दुःखाय च देहयोगमव्यक्तदिष्टं जनताऽङ्ग धत्ते ।।१३।।

अन्वयः— हे अङ्ग ! अव्यक्त दिष्टं जनता देहयोगम् भवाय, नाशाय शोकाय, मोहाय, भयाय सुखाय, दुखाय च कर्म कर्तुं सदा धत्ते ।।१३।।

अनुवाद— हे वत्स ! उसी अव्यक्त ईश्वर के दिए हुए शरीर को सभी जीव जन्म, मरण, शोक, मोह, भय और सुख दुःख का भोग करने के लिए तथा कर्मों को करने के लिए धारण करते हैं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

तत्र देहयोगे तावत्पारतन्त्र्यं प्रसिद्धमित्याह-भवायेति । भवो जन्म । भवाद्यर्थमव्यक्तेनेश्वरेण दिष्टं दत्तं देहयोगं जनता जीवसमूहः सदा धत्ते, नत्वन्यथाकर्तुं शक्नोति । अङ्ग हे प्रियव्रत ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

सर्व प्रथम देह धारण करने में जीव की परतन्त्रता को बतलाते हैं । भव शब्द जन्म का वाचक है । हे प्रियव्रत ! उन परमेश्वर के ही द्वारा प्रदत्त शरीर को जीव समूह जन्मादि के लिए ही धारण करता है, उसको कोई अन्यथा नहीं कर सकता है ।।१३।।

यद्वाचि तन्त्यां गुणकर्मदामभिः सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः ।
सर्वे वहामो बलिमीश्वराय प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ।।१४।।

अन्वयः— वत्स नसि प्रोताः द्विपदे चतुष्पदः इव वयं सर्वे यदवाचितन्त्यां गुणकर्म सुदुस्तरैः दामभिः सुयोजिताः ईश्वराय बलिम् वहामः ।।१४।।

अनुवाद— हे वत्स ! जिस तरह नथा हुआ पशु मनुष्यों का बोझ ढोता है उसी तरह से हम सभी लोग ईश्वर की वेदवाणी रूपी रस्सी में सत्त्वादि गुण सात्विक आदि कर्म और उनके ब्राह्मणादि वाक्यों की मजबूत डोरी में जकड़े हुए है । हमलोग उन्हीं की इच्छा के अनुसार कर्मो को करते हैं और उसके द्वारा उनकी पूजा करते हैं।।१४।।

भावार्थ दीपिका

कर्मकरणेऽपि पारतन्त्र्यमाह-यद्वाचीति । यस्य वाचि वेदलक्षणायां तन्त्यां दामन्यां गुणाः सत्त्वादयस्तत्पूर्वकाणि च यानि कर्माणि तन्निबन्धनैर्दामभिर्ब्राह्मणादिशब्दैः सुदुस्तरैः सुदृढैर्हे वत्स, वयं सर्वे सुयोजिता निबद्धाः सन्तस्तस्मै ईश्वराय बलिं वाहामस्तदिच्छया कर्म कुर्मः । नसि नासिकायां प्रोता बद्धाः सन्तश्चतुष्पदो बलीवर्दा यथा द्विपदे पुरुषाय ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

कर्मों के भी करने में होने वाली परतन्त्रता को ब्रह्माजी बतलाते हैं वत्स नाक में नाथ से नथा हुआ पशु जिस तरह मनुष्यों का बोझ ढोने के लिए बाध्य है उसी तरह हम सभी लोग परमात्मा की वेदवाणी रूपी सत्त्वादि

गुण पूर्वक किए जाने वाले वास्तविक कर्मों तथा उसके ब्राह्मण वाक्यों की मजबूत डोरी में हम सभी बँधे हुए हैं और ईश्वर की इच्छा के अनुसार कर्मों को करते हुए उनकी आराधना करते हैं ।।१४।।

ईशाभिसृष्टं ह्यवरुन्ध्महेऽङ्ग दुःखं सुखं वा गुणकर्मसङ्गात् ।
आस्थाय तत्तद्यदयुङ्क्त नाथश्चक्षुष्मताऽन्धा इव नीयमानाः ।।१५।।

अन्वयः— हे अङ्ग ! गुणकर्मसङ्गात् ईशाभिसृष्टं दुःखं सुखं वा अवरुन्ध्महे, नाथः यदयुङ्क्त तत् तत् आस्थाय चक्षुष्मतानीयमान्नः अन्धा इव ।।१५।।

अनुवाद— हे प्रियव्रत हमारे गुणों एवं कर्मों के अनुसार परमात्मा ने हमें जिस जिस योनि के जो-जो शरीर प्रदान किया हैं हम उसी-उसी का अनुसरण करते हैं और उस शरीर से होने वाले सुखों और दुःखों को उसी तरह से स्वीकार करके सहने के लिए बाध्य हैं । जिस तरह अन्धों को ले चलने वाला जहाँ-जहाँ चाहता है वहाँ-वहाँ जाने के लिए वे अन्धे बाध्य होते हैं ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

भोगेषु पारतन्त्रयमाह । ईशा ईश्वरेणाभिसृष्टं दत्तमेवाङ्ग हे प्रियव्रत, अवरुन्ध्महे स्वीकुर्मः । यथा स्वामिना दत्तमेव कणिशादि बलीवर्दा भक्षयन्ति न स्वेच्छया तद्वत् । न चैवं वैषम्यमीश्वरस्य । यतो गुणकर्मसङ्गान्नाथो यद्यद्देवतिर्यगादिलक्षणं देहमयुङ्क्त योजितवांस्तत्तदास्थाय स्वीकृत्य । यथाऽन्धाश्चक्षुष्मता छायामातपं वा नीयमानाः सन्तस्तत्रैव गच्छन्ति तद्वत् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

भोग के भी विषय में जीवों की परतंत्रता को बतलाते हुए ब्रह्माजी ने कहा हे प्रियव्रत ! परमात्मा के द्वारा प्रदत्त सुख दुःख आदि भोगों को सहने के लिए सभी जीव बाध्य है । जैसे स्वामी के द्वारा प्रदत्त भक्ष्य पदार्थों को ही बैल खाते हैं वे अपनी इच्छानुसार वस्तुओं को नहीं खाते हैं । इन सभी कार्यों में ईश्वर का वैषम्य भी नहीं होता है । हमारे जैसे गुण कर्म वे हैं उसी के अनुसार परमात्मा हमलोगों के देव, मनुष्य अथवा तिर्यग्योनि का शरीर प्रदान करते हैं और हम सभी जीव उसी को स्वीकार करके उनकी इच्छा का उसी तरह से अनुसरण करते हैं जिस तरह कोई नेत्रों वाला पुरुष अन्धों को जहाँ और जैसे ले जाना चाहता है, उन अन्धों को भी उस पुरुष की इच्छा के अनुसार ही जाना पड़ता है ।।१५।।

मुक्तोऽपि तावद्बिभृयात्स्वदेहमारब्धमश्नन्नभिमानशून्यः ।
यथानुभूतं प्रतियातनिद्रः किं त्वन्यदेहाय गुणान्न वृङ्क्ते ।।१६।।

अन्वयः— अभिमानशून्यः मुक्तः अपि आरबधम् अश्नन् स्वदेहं विभृयात् । यथा अनिद्रः यथानुभूतं प्रतियात किन्तु अन्यदेहाय गुणान् न वृङ्क्ते ।।१६।।

अनुवाद— अभिमान से रहित मुक्त पुरुष भी प्रारब्ध का भोग करते हुए श्रीभगवान् की इच्छा का अनुसरण करते हुए अपने शरीर को धारण करता ही है । यह वैसे ही होता है जैसे मनुष्य निद्रा के टूट जाने पर भी स्वप्न काल में अनुभव किए हुए पदार्थों का स्मरण करता ही है । इस अवस्था में भी उसको अभिमान नहीं होता है । तथा विषय वासना के जिन संस्कारों के कारण दूसरा जन्म होता है उन सबों को भी वह स्वीकार नहीं करता है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेतत्सर्वमविदुष एव न त्वात्मविद इत्याशङ्क्याह-मुक्तोऽपीति । यावत्प्रारब्धं कर्म तावत् । यथा स्वप्नेऽनुभूतं प्रतियातनिद्रो गतनिद्रोऽभिमानशून्य एवानुस्मरति तर्हि भोगवासनया पुनर्जन्म भवेत्तत्राह । किंतु देहान्तरारम्भकान्गुणान्कर्माणि वासनाश्च न वृङ्क्ते न संभजते ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

यदि यह कहे कि ये सारी बातें केवल अज्ञानी पुरुषों के लिए होती है आत्मज्ञ पुरुष के लिए ऐसी बात नहीं है तो ब्रह्माजी इस पर **मुक्तोऽपि० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। जब तक प्रारब्ध कर्म बना रहता है तब तक मुक्त जीव को भी शरीर धारण किए रहना पड़ता है। जैसे जिसकी नींद टूट गयी है वह व्यक्ति स्वप्न में अनुभव किए हुए पदार्थों का स्मरण करता है, किन्तु उसका वह अभिमान नहीं करता है। यदि कहें कि तब तो भोग की वासना के कारण पुनर्जन्म भी होगा तो इस पर कहते हैं कि वह मुक्त देहान्तर को उत्पन्न करने वाले गुणों, कर्मों और वासनाओं को स्मरण नहीं करता है ॥१६॥

भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद्यतः स आस्ते सहषट्सपत्नः ।
जितेन्द्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम् ॥१७॥

अन्वयः— प्रमत्तस्य वनेषु अपि भयं स्यात् यतः सः सषटसपत्नः आस्ते जितेन्द्रियस्य आत्मरतस्य गृहाश्रमः किं नु अवद्यं करोति ॥१७॥

अनुवाद— जो पुरुष इन्द्रियों के वशीभूत है वह यदि वनों में भी विचरण करता रहे तो भी उसे जन्म-मरण का भय बना रहेगा क्योंकि बिना जिते हुए उसके मन और पाँच इन्द्रिय रूपी शत्रु उसका साथ नहीं छोड़ते है। जो बुद्धिमान् पुरुष अपनी इन्द्रियों को जीतकर अपनी आत्मा में रमण करते है उनका गृहस्थाश्रम कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ननु गृहे वर्तमानस्य भोगान्भुञ्जानस्य कुतोऽभिमानाभावो मोक्षो वा। अतस्तत्त्यागेन वनवास एव युक्तस्तत्राह। भयं संसारः स्यादेव। प्रमत्तस्य अजितेन्द्रियस्य। वनेष्विति सङ्गभिया वनाद्वनान्तरं गच्छतोऽपीत्यर्थः। सहैव षट् सपत्नाः शत्रवो मनोबुद्धीन्द्रियाणि च यस्य स तथाभूत एव वनेष्वपि यत आस्ते बुधत्वेन जितेन्द्रियत्वादात्मरतेरात्मारामस्यावद्यं रागादिदोषं किं नु करोति न करोत्येव ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि जो गृहस्थाश्रम में रहकर भोगों को भोगता है। उसको अभिमान का अभाव अथवा मोक्ष कैसे हो सकता है ? अतएव गृह का त्याग करके वन में ही रहना चाहिए। इस पर ब्रह्मा जी कहते है। भय संसार को कहते हैं। जिस व्यक्ति की इन्द्रियाँ वश में नहीं है, उस व्यक्ति को वन में भी जाने पर संसार का भय रहता ही है। क्योंकि साथ में मन तथा पाँच इन्द्रियाँ ये छह शत्रु बने ही रहते हैं। जो ज्ञानी व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को वश में कर लेता है उसका गृहस्थाश्रम कुछ भी नहीं विगाड़ सकता है ॥१७॥

यः षट्सपत्नान्विजिगीषमाणो गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वम् ।
अत्येति दुर्गाश्रित ऊर्जितारीन्क्षीणेषु कामं विचरेद्विपश्चित् ॥१८॥

अन्वयः— यः षट्सपत्नान् गिजिगीषमाणो गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वम्। दुर्गाश्रितः ऊर्जितारीन् अत्येति। क्षीणेषु विपश्चित् कामं विचरेत् ॥१८॥

अनुवाद— जो पुरुष इन छहो शत्रुओं को जीतना चाहता है उसे गृहस्थाश्रम में ही रहकर उनको जीतने का प्रयास करना चाहिए। किले के भीतर रहकर लड़ने वाला राजा अपने प्रबल शत्रुओं को जीत लेता है। उसी तरह इन्द्रिय रूपी शत्रुओं के वश में हो जाने पर आत्मज्ञ पुरुष अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

ननु गृहे वसत: पुरुषस्य रागादय; संभवन्ति, नतु वन इत्याशङ्क्याह य इति । य: षट् वैरिण: षडिन्द्रियाणि विजिगीषमाण: स पूर्वं गृहेषु स्थित्वा तेषामत्यन्तं निरोधमकुर्वन् जेतुं यतेत । क्षीणेष्वरिषु कामं गृहेऽन्यत्र वा विचरेत् । यतो लोके ऊर्जितारीन् दुर्गाश्रित एवात्येति जयति । पश्चाद्दुर्गे वान्यत्र वा वर्तेत । युध्येतेति पाठे प्रहरेदित्यर्थ: ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि गृहस्थाश्रम में रहने वाले पुरुष की तो स्त्रियाँ होती है, वन में रहने वाले की स्त्रियाँ नहीं होती हैं । इसके उत्तर में ब्रह्माजी ने कहा जो पुरुष शत्रु रूपी छहो इन्द्रियों को वश में करना चाहता है उसे घर में ही रहकर इन्द्रियों का अत्यन्त निरोध नहीं करके उनको अपने वश में करने का प्रयास करना चाहिए । जब इन्द्रिया रूपी शत्रु क्षीण हो जायँ (वश में) हो जायँ तो वह आत्मज्ञ पुरुष घर में रहे अथवा वन में रहें लोक में भी देखा जाता है कि किले के भीतर रहकर युद्ध करने वाला राजा अपने बलवान् शत्रुओं को भी जीत लेता है । शत्रुओं को जीत लेने के बाद वह चाहे घर में रहे या वन में रहे । जहाँ **युध्येत्** पाठ हैं वह मारे यह अर्थ होगा ।।१८।।

त्वं त्वब्जनाभाङ्घ्रिसरोजकोशदुर्गाश्रितो निर्जितषट्सपत्न: ।
भुङ्क्ष्वेह भोगान्पुरुषातिदिष्टान्विमुक्तसङ्ग: प्रकृतिं भजस्व ।।१९।।

अन्वय:— त्वं तु अब्जनाभाङ्घ्रि सरोज कोशदुर्गाश्रित: निर्जितषट्सपत्न: पुरुषातिदिष्टान भोगान इह भुंक्ष्व विमुक्तसंग: प्रकृतिम् भजस्व ।।१९।।

अनुवाद— तुम यद्यपि पद्मनाभ भगवान् के चरण कमल के कोश रूपी किले में रहकर अपनी इन्द्रियों को वश में कर चुके हो फिर भी परम पुरुष के द्वारा प्रदत्त भोगों को भोगो उसके पश्चात् तुम अनासक्त होकर अपने आत्म स्वरूप में स्थित हो जाना ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

इदं च गृहदुर्गाश्रयणं प्राकृतानां, त्वं त्वब्जनाभस्याङ्घ्रिसरोजकोश एवं दुर्गं तदाश्रितोऽत एवं निर्जितषट्सपत्नश्च तथापि पुरुषेणेश्वरेणातिदिष्टान्दत्तान्भोगांस्तावद्भुंक्ष्व । पश्चाद्विमुक्तसङ्ग: सन्प्रकृतिं स्वरूपं भजस्व । आत्मनिष्ठो भवेत्यर्थ: ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इस गृह रूपी दुर्ग का आश्रयण करना तो प्रकृत पुरुषों के लिए है, तुम तो श्रीभगवान् के चरण कमल के कोश रूपी किले के भीतर रहकर अपनी इन्द्रियों को वश में कर चुके हो फिर भी परमात्मा के द्वारा प्रदत्त भोगों को पहले भोगो । उसके पश्चात् अनासक्त होकर तुम अपने स्वरूप में स्थित हो जाना ।।१९।।

श्रीशुक उवाच

इति समभिहितो महाभागवतो भगवतस्त्रिभुवनगुरोरनुशासनमात्मनो लघुतयावनतशिरोधरो बाढमिति सबहुमानमुवाह ।।२०।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से त्रिलोकी के गुरु श्रीब्रह्माजी के द्वारा कहे जाने पर महाभागवत प्रियव्रत स्वयं छोटे होने के कारण शिर झुकाकर कहे बहुत अच्छा, इस तरह से ब्रह्माजी के आदेश को बहुमान पूर्वक शिरोधार्य किया।।२०।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनस्ततो लघुतयाऽल्पतया तच्छासनमङ्गीचकार । यद्वा आत्मनो यदनुशासनं तदलघुतया गौरवेण बाढं तथा करिष्यामीत्यवनतकन्धर: सन् जग्राह ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

स्वयं ब्रह्माजी से छोटे होने के कारण ब्रह्माजी की आज्ञा को स्वीकार किए अथवा आत्मा के अनुशासन के छोटा नहीं होने के कारण उसके गौरव के कारण ठीक है ऐसा ही करूँगा यह अपने कन्धे को झुकाकर कहे।।२०।।

भगवानपि मनुना यथावदुपकल्पितापचितिः प्रियव्रतनारदयोरविषममभिसमीक्षमाणयोरात्मसमवस्थानमवाङ्मनसं क्षयमव्यवहृतं प्रवर्तयन्नगमत् ।।२१।।

अनुवाद— उस समय प्रसन्न होकर मनु ने ब्रह्माजी की पूजा की इसके पश्चात् जब प्रियव्रत और नारदजी उनको सरल भाव से देख रहे थे उसी समय ब्रह्माजी वाणी और मन के अविषय भूत सर्व व्यवहारातीत परं ब्रह्म का चिन्तन करते हुए अपने लोक में चले गये ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

मनुना संतुष्टेनोपकल्पिता पूजा यस्य । प्रियव्रतस्य योगभ्रंशान्नारदस्य च शिष्यनाशात्कुटिलमीक्षणं संभवति, तत्तु नास्तीत्याह। अविषमं यथा तथा तयोरभिसमीक्षमाणयोः सतोरात्मनः सम्यगवस्थानमवाङ्मनसं वाङ्भनसयोरविषयं क्षयं निवासं जगाम। पाठान्तरे अवाग्वाचामगोचरं कथंचिन्मनसः क्षयं विषयमतोऽव्यवहृतं व्यवहारशून्यं ब्रह्मनिवृत्तं प्रवर्तयन् । व्यवहाराद्विषण्णः सन् व्यवहारातीतं स्वरूपं चिन्तयन्नन्तर्हित इत्यर्थः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

उस समय संतुष्ट होकर मनु ने ब्रह्माजी की पूजा की, प्रियव्रत के योगभंश होने तथा नारदजी के शिष्य नाश होने के कारण उन दोनों को ब्रह्माजी को कुटिल दृष्टि से देखना चाहिए था, किन्तु वे दोनों ऐसा न करके ब्रह्माजी को सरल दृष्टि से देख रहे थे, वे मन और वाणी के अविषय भूत अपने निवास स्थान में चले गये । जहाँ पर पाठान्तर है वहाँ पर तो अर्थ होगा कि किसी प्रकार मन के विषयभूत व्यवहारशून्य परंब्रह्म के व्यवहारातीत स्वरूप का चिन्तन करते हुए अपने लोक में चले गये ।।२१।।

मनुरपि परेणैवं प्रतिसन्धितमनोरथः सुरर्षिवरानुमतेनात्मजमखिलधरामण्डलस्थितिगुप्तय आस्थाप्य स्वयमतिविषमविषयविषजलाशयाशया उपरराम ।।२२।।

अनुवाद— मनुजी भी ब्रह्माजी के ही द्वारा अपने मनोरथ के पूर्ण हो जाने पर नारदजी की अनुमति प्राप्त करके अपने पुत्र प्रिय व्रत को सम्पूर्ण भूमण्डल की रक्षा का भार सौप कर स्वयम् अत्यनत विषम विषय रूपी विषैले जल से भरे हुए जलाशय भोग की इच्छा से निवृत्त हो गये ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

पुत्रं राज्येऽभिषिच्य वनं यास्यामीत्येवं यो मनोरथः स परेण ब्रह्मणैव प्रतिसन्धितः संपादितो यस्य सः । नारदस्यानुमतेन राज्ये स्थापयित्वाऽतिविषमो दुस्तरो यो विषयविषजलाशयो गृहं तस्याशा दिक् प्रवृत्तिवासना भोगेच्छा वा तस्या उपरतोऽभूत्।।२२।।

भाव प्रकाशिका

पुत्र को राज्य समर्पित करके मैं वन में चला जाऊँगा अपने इस मनोरथ की पूर्ति से ब्रह्माजी के ही द्वारा सम्पादित हुए देखकर प्रियव्रत को राज्य समर्पित करके अत्यनत विषम विषय रूपी जल से परिपूर्ण गृहस्थाश्रम के भोग की इच्छा से निवृत्त हो गये ।।२२।।

इति ह वाव स जगतीपतिरीश्वरेच्छयाधिनिवेशितकर्माधिकारोऽखिलजगद्बन्धध्वंसनापरानुभावस्य भगवत आदिपुरुषस्याङ्घ्रियुगलानवरतध्यानानुभावेन परिरन्धितकषायाशयोऽवदातोऽपि मानवर्धनो महतां महीतलमनुशशास ।।२३।।

अनुवाद— इस तरह पृथिवी पति महाराज प्रियव्रत परमात्मा की ही इच्छा से राज्य प्रशासन के कार्य में नियुक्त हो गये और जो परमात्मा सम्पूर्ण जगत् के बन्धन से मुक्त करने में समर्थ हैं उन आदि पुरुष के ही चरण युगल का ध्यान करते रहने से महाराज प्रियव्रत के हृदय के रागादि सभी बल विनष्ट हो चुके थे । और उनका हृदय भी शुद्ध था फिर भी बड़े का मान रखने के लिए वे पृथिवी का प्रशासन करने लगे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यत्पृष्टं गृहे कथमरमत तत्रोक्तमुत्तरमुपसंहरति । इति ह वाव इत्थमेव हि अधिनिवेशितः प्रापितः कर्माधिकारो यस्य। अखिलस्य जगतो बन्धध्वंसनः परोऽनुभावो यस्य तस्य यदङ्घ्रियुगलं तस्यानवरतं ध्यानं तदनुभावेन परिरन्धितकषायो दग्धरागादिमल आशयो यस्य । अतोऽवदातः शुद्धोऽपि महतां ब्रह्मादीनामाज्ञापालनेन मानवर्धनः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

महाराज परीक्षित् ने यह जो पूछा था कि वे किस प्रकार गृह में रत रहे इस प्रश्न के उत्तर का उपसंहार करते हुए श्रीशुकदेवजी इस दण्डक से कहते हैं कि इस प्रकार से राज्य प्रशासन के कार्य में नियुक्त महाराज प्रियव्रत सम्पूर्ण जगत् के बन्धन के विनष्ट करने के प्रभाव वाले श्रीभगवान् के चरण युगल का निरन्तर ध्यान करते रहने से, उनके मन का रागादि विनष्ट हो गया था अतएव शुद्ध हृदय वाले वे वृद्ध ब्रह्माजी आदि की आज्ञा का पालन के द्वारा उनका सम्मान बढ़ाये ॥२३॥

अथ च दुहितरं प्रजापतेर्विश्वकर्मण उपयेमे बर्हिष्मतीं नाम तस्यामु ह वाव आत्मजानात्मसमानशील-गुणकर्मरूपवीर्योदारान्दश भावयांबभूव कन्यां च यवीयसीमूर्जस्वतीं नाम ॥२४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उन्होंने प्रजापति विश्वकर्मा की पुत्री वर्हिष्मती से विवाह किया । उससे उनके दश पुत्र हुए वे सब उन्हीं के समान शीलवान् गुणी, कर्मनिष्ठ, रूपवान और पराक्रमी थे । उन सबों से छोटी ऊर्जस्वती नाम की एक कन्या भी हुई ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

उ इति विस्मये । ह इति प्रसिद्धौ । वावेति निश्चये । आत्मनः समानैः शीलादिभिरुदारान्महतो दश पुत्रान् जनयामास॥२४॥

भाव प्रकाशिका

मूल में प्रयुक्त उ यह अव्यय विस्मयार्थक है और यह प्रसिद्धार्थक है । वाव यह निश्चियार्थक अव्यय है। उन्होंने अपने ही समान शील आदि के द्वारा उदार और महान् दश पुत्रों को उत्पन्न किया ॥२४॥

आग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुमहावीरहिरण्यरेतोघृतपृष्ठसवनमेधातिथिवीतिहोत्रकवय इति सर्व एवाग्निनामानः॥२५॥

अनुवाद— उन सबों के नाम थे- आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि । उन सबों के नाम अग्नि के ही थे ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तानाह । आग्नीध्र इध्मजिह्वो यज्ञबाहुर्महावीरो हिरण्यरेता घृतपृष्ठः सवनो मेधातिथिर्वीतिहोत्रः कविश्चेत्यग्नीनां नामानि येषां ते ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

शुकदेवजी ने उन सबों का नाम बतलाया आग्नीध्र इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेघातिथि वीतहोत्र तथा कवि । इस तरह सबों के अग्नि के ही नाम थे ॥२५॥

एतेषां कविर्महावीरः सवन इति त्रय आसन्नूर्ध्वरेतसस्त आत्मविद्यायामर्भभावादारभ्य कृतपरिचयाः पारमहंस्यमेवाश्रममभजन् ॥२६॥

अनुवाद— इन दशों में कवि, महावीर औरसवन ये तीन नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए । ये सब बाल्यकाल से ही आत्मविद्या का अभ्यास करते हुए अन्त में संन्यासाश्रम को ही स्वीकार किये ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अर्भभावात् बाल्यादारभ्य ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

बाल्यकाल से ही ॥२६॥

तस्मिन्नु ह वा उपशमशीलाः परमर्षयः सकलजीवनिकायावासस्य भगवतो वासुदेवस्य भीतानां शरणभूतस्य श्रीमच्चरणारविन्दाविरतस्मरणाविगलितपरमभक्तियोगानुभावेन परिभावितान्तर्हृदयाधिगते भगवति सर्वेषां भूतानामात्मभूते प्रत्यगात्मन्येवात्मनस्तादात्म्यमविशेषेण समीयुः ॥२७॥

अनुवाद— इन निवृत्ति परायण महर्षियों ने संन्यासाश्रम में ही रहते हुए, सभी जीवों के अधिष्ठान भूत और संसार के बन्धन से भयभीत लोगों को आश्रय प्रदान करने वाले श्रीभगवान् वासुदेव के अत्यन्त मनोहर चरण कमलों का निरन्तर चिन्तन किया । उससे प्राप्त अखण्ड और श्रेष्ठ भक्तियोग से उनका अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध हो गया और उनमें श्रीभगवान् का आविर्भाव हुआ । तब देहादि उपाधि की निवृत्ति हो जाने से उनकी आत्मा की सम्पूर्ण जीवों के आत्मभूत प्रत्यगात्मा में एकीभावसे स्थिति हो गयी ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

तस्मिन्पारमहंस्याश्रमे श्रीमच्चरणारविन्दयोरविरतस्मरणेनाविगलितोऽखण्डितो यः परमो भक्तियोगस्तस्यानुभावेन विशोधितान्तः करणे प्रतीतो यो भगवांस्तस्मिन्नात्मनस्त्वंपदार्थस्य तादात्म्यमविशेषेण विशेषो देहाद्युपाधिस्तदपोहेन प्रापुः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

उस पारमहंस्याश्रम (संन्यासाश्रम) में ही श्रीभगवान् के अत्यन्त मनोहर चरण कमलों का निरन्तर चिन्तन करने के कारण अखण्ड भक्ति योग के प्रभाव से अन्तःकरण के शुद्ध हो जाने के कारण उसमें आविर्भूत श्रीभगवान् उसमें आत्मा के तादात्म्य के सामान्यतः देहादि उपाधियों के दूर हो जाने से प्राप्त किया ॥२७॥

अन्यस्यामपि जायायां त्रयः पुत्रा आसन्नुत्तमस्तामसो रैवत इति मन्वन्तराधिपतयः ॥२८॥

अनुवाद— महाराज प्रियव्रत की दूसरी पत्नी से उत्तम, तामस और (रैवत) ये तीन पुत्र हुए जो अपने नाम वाले मन्वन्तरों के अधिपति हुए ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

एवमुपशमायनेषु स्वतनयेष्वथ जगतीपतिर्जगतीमर्बुदान्येकादश परिवत्सराणामव्याहताखिलपुरुषकारसारसंभृतदोर्दण्डयुगलापीडितमौर्वीगुणस्तनितविरमितधर्मप्रतिपक्षो बर्हिष्मत्याश्चानुदिनमेधमानप्रमोदप्रसरणयौषिण्यव्रीडाप्रमुषितहासावलोकरुचिरक्ष्वेल्यादिभिः पराभूयमानविवेक इवानवबुध्यमान इव महामना बुभुजे ॥२९॥

अनुवाद— इस प्रकार कवि आदि अपने तीन पुत्रों के निवृत्ति परायण हो जाने पर राजा प्रियव्रत ने ग्यारह अरब वर्षों तक पृथिवी का प्रशासन किया । जब कभी भी वे अखण्ड पुरुषार्थमयी तथा पराक्रम सम्पन्न अपनी भुजाओं

से धनुष की डोरी खींचकर टङ्कार करते थे, उस समय सभी धर्मद्रोही छिप जाते थे, प्रिय पत्नी बर्हिष्मति के अनुदिन समृद्ध होने वाले आमोद प्रमोद औरप्रसरण (अभ्युत्थान) आदि क्रीडाओं और स्त्रीजनोचित शृङ्गारानुकूल हाव-भावों लज्जा से सङ्कुचित मन्दमुस्कान युक्त चितवन और मन को लुभाने वाले विनोद आदि से महामना प्रियव्रत विवेकहीन पुरुष के समान आत्म विस्मृत होकर समस्त भोगों को भोग रहे थे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

उपशमाश्रयेषु सत्सु । दशकोटिभिरेकमर्बुदम् । एतादृशानि वर्षाणामेकादशार्बुदानि जगतीं बुभुज इत्यन्वयः । राज्ञो धर्मपालनविषयभोगप्रभावैर्भाव्यम् । तत्रानायासेनैव धर्मपालनमाह । अव्याहता अखिलाः पुरुषकाराः पौरुषाणि यस्मात्तेन सारेण बलेन संभृतौ पूर्णौ दोर्दण्डौ तयोर्युगलं तेनापीडित आकृष्टो मौर्वीगुणस्तस्य स्तनितं टङ्कारस्तेनैव युद्धं बिना विरमिता निरस्ता धर्मप्रतिपक्ष येन । भोगातिशयमाह । बर्हिष्मत्याः स्वभार्याया अनुदिनमेधमानैः प्रमोदादिभिः परायभूयमानविवेक इवात एव विषयासत्तयात्मानमनवबुध्यमान इव बुभुजे । तत्र प्रमोद आयान्तं पतिं दृष्ट्वा हर्षस्ततः प्रसरणमभ्युत्थानादिलीला ततो यौषिण्यं योषित्स्वभावकृतशृङ्गारानुभावप्रकाशनं ततो व्रीडया प्रमुषिताः सङ्कुचिता हासावलोकास्ततो रुचिरक्ष्वेल्यादयः परिहासवाक्यादीनि तैः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

जब महाराज प्रियव्रत के तीन पुत्र निवृत्ति परायण हो गये । उसके पश्चात् वे ग्यारह अरब वर्षो तक पृथिवी का प्रशासन किए राजा को चूकि धर्म पालन तथा विषय भोग के प्रभाव से युक्त होना चाहिए, अतएव राजा प्रियव्रत अनायास धर्म का पालन करते थे । अखण्ड पुरुषार्थ एवं पराक्रम सम्पन्न अपनी भुजाओं से पकड़कर जब वे धनुष की प्रत्यंचा खींचकर धनुष का टङ्कार करते थे तो युद्ध के बिना ही सभी धर्म विरोधी कहीं छिप जाते थे । राजा प्रियव्रत के भोगातिशय्य का वर्णन करते हुए शुकदवजी कहते है । उनकी प्रियतमा पत्नी वहीष्मिती के प्रतिदिन बढ़ने वाले आमोद प्रमोद आदि से मानो उनका विवेक अभिभूत सा हो गया था । विषयों में होने वाली आसक्ति के कारण जैसे वे आत्मतत्त्व को भूल से गये हों । आते हुए पति को देखकर होने वाले हर्ष को प्रमोद कहते हैं । पति को देखकर खड़ा हो जाने को प्रसरण (अभ्युत्थान) कहते हैं इस तरह के हाव-भाव तथा स्त्री स्वभावानुकूल श्रैङ्गारिक अनुभवों के प्रकाशन को यौषिण्य कहते हैं । मन्दमुस्कान से सङ्कुचित हंसी पुस्कृत देखने की कला तथा मनोहर परिहास वाक्यों से महाराज का आत्मज्ञान जैसे अभिभूत हो गया था ॥२९॥

यावदवभासयति सुरगिरिमनु परिक्रमन्भगवानादित्यो वसुधातलमर्धेनैव प्रतपत्यर्धेनावच्छादयति तदा हि भगवदुपासनोपचितातिपुरुषप्रभावस्तदनभिनन्दन्समजनेव रथेन ज्योतिर्मयेन रजनीमपि दिनं करिष्यामीति सप्तकृत्वस्तरणिमनु पर्यक्रामाद्द्वितीय इव पतङ्गः ॥३०॥

अनुवाद— एक बार उन्होंने जब यह देखा कि भगवान् सूर्य सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करते हुए लोकालोक पर्वत पर्यन्त पृथिवी के जितने भाग को प्रकाशित करते हैं, उसमें से आधा ही भाग प्रकाश में रहता है और आधा भाग अन्धकार से ही आच्छन्न रहता है । उस समय श्रीभगवान् की आराधना से महाराज प्रियव्रत का अलौकिक प्रभाव अत्यधिक बढ गया था । उन्हें पृथिवी के आधे भाग को अन्धकार में रहना पसन्द नहीं हुआ । उन्होंने सोचा कि मैं रात्रि को भी दिन बना दूँगा, यह सोचकर सूर्य के ही समान वेग सम्पन्न एक ज्योतिर्मय रथ पर बैठकर दूसरे सूर्य के ही समान सूर्य के पीछे पृथिवी की सात परिक्रमा कर डाले ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

प्रभावातिशयमाह । यावद्वसुधातलं लोकालोकपर्यन्तमवभासयति मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन्नादित्यस्तस्मिन्नर्धेनैवोपलक्षितं प्रतपति

प्रकाशयत्यर्धेन चावच्छादयति तमसावृणोति तदा द्वितीयः पतङ्गः सूर्य इव पर्यक्रामत् । न चेदमसंभावितम् । यतो भगवदुपासनेनोपचितोऽतिपुरुषः पुरुषानतिक्रान्तः प्रभावो यस्य ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

महाराज प्रियव्रत के प्रभावातिशय का वर्णन करते हुए शुकदेवजी कहते हैं— सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करते हुए भगवान् सूर्य लोकालोक पर्वत पर्यन्त जितनी पृथिवी का प्रकाशन करते हैं उसका आधा भाग ही वे प्रकाशित करते हैं और आधाभाग अन्धकार से आच्छन्न रहता है, इसलिए महाराज प्रियव्रत दूसरे सूर्य के समान वे पृथिवी की परिक्रमा किए । यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसा होना तो असंभव है, क्योंकि श्रीभगवान् की उपासना करने के कारण उनका अतिमानुष प्रभाव बहुत बढ़ गया था ।।३०।।

ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्त सिन्धव आसन्यत एव कृताः सप्तभुवो द्वीपाः।।३१।।

अनुवाद— उस समय उनके रथ के पहिए से जो लीक बनीं वे ही सात समुद्र बन गये और उन सबों के कारण पृथिवी में सात द्वीप हो गये ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

ये वै उ ह अतिप्रसिद्धास्तस्य रथचक्राग्रकृताः परिखाता गर्ताः यतो यैरेव कृताः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

उस समय उनके रथ के अग्रभाग से पृथिवी पर खाई बनी वे ही अत्यन्त प्रसिद्ध सात समुद्र बन गये और उसके चलते पृथिवी पर सात द्वीप हो गये ।।३१।।

जम्बूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौञ्चशाकपुष्करसंज्ञास्तेषां परिमाणं पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो यथासंख्यं द्विगुणमानेन बहिः समन्तत उपक्लृप्ताः ।।३२।।

अनुवाद— उन द्वीपों के नाम हैं— जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर । इनमें से पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर द्वीप का परिमाण दूना है ये समुद्र के बाहरी भाग में चारो ओर फैले हुए हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

तानाह-जम्ब्विति । तेषां परिमाणं शृण्विति शेषः । पूर्वस्य यद्विस्तारमानं उत्तरस्ततो द्विगुणेन विस्तारमानेनेत्येवं सिन्धुभ्यो बहिः समन्तत उपक्लृप्ता रचिताः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

जम्बू इत्यादि के द्वारा उन द्वीपों के नाम बतलाये गये है । राजन् आप उन सबों का परिणाम सुनें । पूर्व-पूर्व द्वीपों का जो परिणाम है, उत्तरोत्तर द्वीपों का उसके दो गुना पमिाण है और ये द्वीप समुद्र के बाहरी भाग में चार ओर फैले हुए हैं ।।३२।।

क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमण्डोदशुद्धोदाः सप्त जलधयः सप्तद्वीपपरिखा इवाभ्यन्तरद्वीपसमाना एवैकश्येन यथानुपूर्वं सप्तस्वपि बहिर्द्वीपेषु पृथक्परित उपकल्पितास्तेषु जम्ब्वादिषु बर्हिष्मतीपतिरनुव्रतानात्मजानाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान्यथासंख्येनैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिंविदधे ।।३३।।

अनुवाद— सातो समुद्र क्रमशः क्षारोद (खारेजलवाला) इक्षुरसोद (ईख के रस का जल वाला) सुरोद (मदिरा के जलवाला) घृतोद (घृत का समुद्र) क्षीरोद (दुग्ध समुद्र) मण्डोद (मट्ठा का समुद्र) और शुद्धोद (शुद्ध जल का

समुद्र) ये सातो द्वीपों की खाइयों के सामन हैं। और परिमाण में अपनी भीतर वाले द्वीप के समान हैं। ये प्रत्येक समुद्र एक-एक द्वीप को बाहर से घेरकर स्थित हैं। बर्हिष्मति के प्रति महाराज प्रियव्रत अपने अनुगामी पुत्र आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेघातिथि और वीतिहोत्र को इनमें से प्रत्येक को जम्बू आदि एक-एक द्वीप का स्वामी बना दिया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

यथा सिन्धुभ्यो बहिरेकैकशो द्वीपा एवं द्वीपानामपि बहिः सिन्धव इत्याह- क्षारोदेति। दधिमण्डो मथितं दधि। एते सप्त जलधयः सप्तद्वीपानां परिखा इवाभ्यन्तरे तैः संवेष्टिता ये द्वीपास्तैः समाना विस्तारतः। बहिर्नान्तः पृथगसंकीर्णतया॥३३॥

भाव प्रकाशिका

जैसे समुद्रों से बाहर एक-एक द्वीप और द्वीपों के बाहर समुद्र थे इस बात को **क्षारोद० इत्यादि** के द्वारा कहा गया है। दधि मण्डः अर्थात् मही गयी दही अर्थात् मट्ठा। ये सात समुद्र सातो द्वीपों की खाई के समान थे। उन समुद्रों के भीतर विद्यमान तथा उन समुद्रों से घिरे हुए जो द्वीप थे उनके ही समान विस्तार वाले हैं। वे उन सबों के बाहर हैं भीतर नहीं और सब एक दूसरे से अलग हैं ॥३३॥

दुहितरं चोर्जस्वतीं नामोशनसे प्रायच्छद्यस्यामासीद्देवयानी नाम काव्यसुता ॥३४॥

अनुवाद— उन्होंने अपनी पुत्री ऊर्ज स्वती का विवाह शुक्राचार्य से कर दिया। उसी के गर्भ से शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का जन्म हुआ ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

नैवंविधः पुरुषकार उरुक्रमस्य पुंसां तदङ्घ्रिरजसा जितषड्गुणानाम्।
चित्रं विदूरविगतः सकृदाददीत यन्नामधेयमधुना स जहाति बन्धम् ॥३५॥

अन्वयः— उरुकमस्य तदङ्घ्रि रजसा जितषडगुणानाम् पुंसाम्, एवं विधः पुरुषकारः चित्रं न विदूर विगतः यन्नमधेयम् अधुना सकृत् आददीत सजहाति बन्धम् ॥३५॥

अनुवाद— राजन्! जिन्होंने श्रीभगवान् के चरणारविन्द के रज के प्रभाव से शरीर के भूख प्यास शोक. मोह, जरा, मृत्यु इन छह गुणों को अथवा मन के साथ पाँच इन्द्रियों को जीत लिया है, उन भगवद् भक्तों का इस प्रकार का पुरुषार्थ होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि वर्ण बहिष्कृत चाण्डाल आदिनीच योनि का भी पुरुष भगवान् के नाम का एक बार भी उच्चारण करके उसी समय संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

अहो आश्चर्यं राज्ञः सामर्थ्यमिति परीक्षिदभिप्रायज्ञो भगवान्बादरायणिराह-नैवमिति। जिताः षड्गुणा इन्द्रियाणि षडूर्मयो वा यैस्तेषामेवंविधः पुरुषकार इति न चित्रं नासंभावितम्। यतो विदूरविगतोऽन्त्यजोऽपि यस्योरुक्रमस्य नाम सकृदुच्चारयेद्यः सोऽधुना तत्क्षणमेव बन्धं संसारम्। तन्वमिति पाठेऽप्ययमेवार्थः। पाठान्तरे तत्त्वं चाण्डालत्वं जहाति। शुद्धो भवतीत्यर्थः॥३५॥

भाव प्रकाशिका

अरे राजा का इस प्रकार का सामर्थ्य अत्यन्त आश्चर्यमय है इस तरह से परिक्षित् के अभिप्राय को जानने वाले श्रीशुकदेवजी ने कहा **नैवम्० इत्यादि** जिन लोगों ने छइ इन्द्रियों को अथवा शरीर में होने वाला षडूर्मियों को जीत लिया हैं उन लोगों का इस प्रकार का ऐश्वर्य होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि वर्ण बहिष्कृत चाण्डाल भी यदि भगवान् का नाम एक बार भी ले लेता है, वह तत्क्षण ही संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है। जहाँ **तन्वम्** पाठ है वहाँ भी अर्थ होगा। जहाँ **तत्त्वं जहाति** पाठान्तर है वहाँ अर्थ चाण्डाल को त्याग देता है होगा ॥३५॥

स एवमपरिमितबलपराक्रम एकदा तु देवर्षिचरणानुशयनानुपतितगुणविसर्गसंसर्गेणानिर्वृतमिवात्मानं मन्यमान आत्मनिर्वेद इदमाह ॥३६॥

अनुवाद— इस प्रकार अतुलनीय बल, पराक्रम से युक्त महाराज प्रियव्रत अपने को देवर्षि नारदजी के चरणों के शरण में जाकर भी पुन: दैववश प्राप्त हुए प्रपंच में फँस जाने से अशान्त के समान देखकर मन-ही-मन विरक्त होकर कहने लगे ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

तस्य पराक्रममुपसंहरन्निवृत्तिक्रममाह-स एवमिति । देवर्षिचरणयोरनुशयनमुपसत्तिस्तदनुपतितो यो गुणविसर्गो राज्यादिप्रपञ्चस्तत्संसर्गेण । आत्मनि मनसि निर्वेदो यस्य ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

महाराज प्रियव्रत के पराक्रम का उपसंहार करते हुए कहते है देवर्षि नारदजी के चरणों की शरणागति से उत्पन्न जो राज्य आदि प्रपञ्च के सम्बन्ध से राजा के मन में विराग उत्पन्न हो गया ॥३६॥

अहो असाध्वनुष्ठितं यदभिनिवेशितोऽहमिन्द्रियैरविद्यारचितविषमविषयान्धकूपे तदलमलममुष्या वनिताया विनोदमृगं मां धिग्धिगिति गर्हयांचकार ॥३७॥

अनुवाद— अरे ! मैंने बहुत बुरा किया । मेरी इन्द्रियों ने अविद्याकृत विषमय विषय के अन्धकूप में ढकेल दिया । बस-बस बहुत हो गया मैं तो इस स्त्री के द्वारा क्रीडा मृग ही बना दिया गया हूँ । धिक्कार है मुझको इस तरह से उन्होंने अपने को बहुत कोसा ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तमाह । मयाऽसाध्वनुष्ठितम् । यद्यतोऽभिनिवेशित;, तत्ततः अलमलं विषयैः । विनोदमृगं मर्कटम् ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

वैराग्य प्राप्त राजामन ही मन कह रहे थे मैंने बहुत बुरा काम किया क्योंकि मैं इन विषयोपभोग में अभिनिविष्ट हो गया था । अतएव बहुत विषयोपभोग हो गया । इस स्त्री ने तो मुझे बन्दर ही बना दिया ॥३७॥

परदेवताप्रसादाधिगतात्मप्रत्यवमर्शेनानुप्रवृत्तेभ्यः पुत्रेभ्य इमां यथादायं विभज्य भुक्तभोगां च महिषीं मृतकमिव सह महाविभूतिमपहाय स्वयं निहित निर्वेदो हृदि गृहीतहरिविहारानुभावो भगवतो नारदस्य पदवीं पुनरेवानुससार ॥३८॥

अनुवाद— परम आराध्य श्रीभगवान् की कृपा से उनकी विवेक वृत्ति जागृत हो गयी । उन्होंने इस सम्पूर्ण पृथिवीं को अपने अनुयायी पुत्रों में बाँट दिया और अपनी पत्नी को साम्राज्य लक्ष्मी के साथ मरे हुए शरीर के समान त्याग दिया एवं हृदय में वैरागय धारण करके वे श्रीहरि की लीलाओं का चिन्तन करते हुए उसके प्रभाव से देवर्षि नारदजी द्वारा उपदिष्ट मार्ग का पुन: अनुसरण करने लगे ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

परदेवताया हरेः प्रसादेनाधिगतः प्राप्तो य आत्मप्रत्यवमर्शो विवेकस्तेन नारदस्य पदवीं तदुपदिष्टमार्गमेव पुनरनुससारेत्यन्वयः। किं कृत्वा । अनुगतेभ्यः पुत्रेभ्य इमां पृथ्वीं विभज्य । भुक्तो भोगो यस्तास्तां भार्यां महाविभूतिः साम्राज्यसंपत्तत्सहितां महिषीं मृतशरीरमिव परित्यज्य । तत्र हेतुः-हृदि निहितो निर्वेदो येन । हृदीत्यस्योत्तर'त्राप्यन्वयः । हृदि गृहीतो निश्चितो हरिविहारस्तेनानुभावस्त्यागसामर्थ्यं यस्य ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

परा देवता श्रीहरि की कृपा से प्राप्त विवेक के द्वारा महाराज प्रियव्रत नारदजी के उपदिष्ट मार्ग का ही अनुसरण किए गए इस दण्डक में कहा गया है । प्रश्न होता है कि क्या करके उन्होंने उस मार्ग का अनुसरण किया उसे बतलाते हैं. पुत्रों में इस पृथिवी का विभाग करके बाँटकर तथा भुक्त भोगा भार्या तथा साम्राज्य लक्ष्मी का परित्याग करके क्योंकि उनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया था । किञ्च हृदय में श्रीहरि की लीलाओं का चिन्तन के प्रभाव से त्याग का सामर्थ्य उत्पन्न हो गया था ॥३८॥

तस्य ह वा एते श्लोकाः ।

अनुवाद— महाराज प्रियव्रत के विषय में ये श्लोक हैं—

प्रियव्रतकृतं कर्म को नु कुर्याद्विनेश्वरम् । यो नेमिनिम्नैरकरोच्छायां घ्नन्सप्तवारिधीन् ॥३९॥

अन्वयः— ईश्वरं बिना प्रियव्रत कृतं कर्म कः नु कुर्यात् । यः छायां घ्नन् नेमिनिम्नैः सप्त वारिधीन् अकरोत् ॥३९॥

अनुवाद— ईश्वर को छोड़कर प्रियव्रत के द्वारा किए गये कर्मों को दूसरा कौन कर सकता है जिन्होंने रात्रि के अन्धकार को मिटाने का प्रयत्न करते हुए रथ की पहिया से बनी लीक के द्वारा सात समुद्रों को बना दिया॥३९॥

भावार्थ दीपिका

तस्य महिमोपनिबन्धनश्लोकाः पूर्वसिद्धाः कथ्यन्ते । यथा वेदे 'तदप्येष श्लोको भवति' इति । को नु को नाम कुर्यात्। छायां घ्नन् तमो निरस्यन् ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

महाराज प्रियव्रत की महिमा से संबद्ध ये प्राचीन श्लोक है । महाराज प्रियव्रत ने जिन कर्मों को किया उसे ईश्वर को छोड़कर दूसरा कोई नहीं कर सकता । उन्होंने रात्रि को मिटाने के प्रयास में अपने रथ की पहिया के लीक से सात समुद्रों को बना दिया ॥३९॥

भूसंस्थानं कृतं येन सरिद्गिरिवनादिभिः । सीमा च भूतनिर्वृत्त्यै द्वीपे द्वीपे विभागशः ॥४०॥

अन्वयः— येन भूतनिर्वृत्यै द्वीपे द्वीपे विभागशः सरिद्गिरिवनादिभिः भू संस्थानं सीमा च कृता ॥४०॥

अनुवाद— उन्होंने प्राणियों के सौविध्य के लिए द्वीपों द्वारा पृथिवी का विभाग किया और प्रत्येक द्वीप में नदी पर्वत और वन के द्वारा उनकी सीमा भी निश्चित कर दी ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

भूसंस्थानं द्वीपैः कृतम् । सरिद्गिरिवनादिभिः सीमा च येन कृता । भूतानां निर्वृत्त्यै सुखायाविवादाय ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

उन्होंने द्वीपों के द्वारा पृथिवी का विभाग प्राणियों के सौविध्य इसलिए कर दिया कि लोगों में विवाद न हो ओर उन्होंने नदी. पर्वत और वन के द्वारा सीमा का भी निर्धारण कर दिया ॥४०॥

भौमं दिव्यं मानुषं च महित्वं कर्मयोगजम् । यश्चक्रे निरयौपम्यं पुरुषानुजनप्रियः ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे प्रियव्रत विजये प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अन्वयः— पुरुषानुजन यः भौमं, दिव्यं, मानुषं च त्वं कर्मयोगजम् महित्वं निरयौयम्यं चक्रे ॥४१॥

अनुवाद— जिनके भगवद् भक्त ही प्रिय थे उन महाराज प्रियव्रत ने पृथिवी के देवलोक के, मर्त्यलोक के, कर्म और योगजन्य भी ऐश्वर्य को नरक के तुल्य समझा ॥४१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

भौमं पातालजं दिव्यं स्वर्गजं मानुषं मर्त्यलोकजं महित्वं वैभवं यो निरयतुल्यं मेने । पुरुषानुजना विष्णुभक्तस्त एव प्रिया यस्येति ।।४१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे भावार्थ दीपिका टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी के पाताल के देवलोक के मर्त्यलोक के और काम तथा योगजन्यऐश्वर्य को नरक तुल्य समझा क्योंकि उनको केवल भगवद् भक्त ही प्रिय थे ।।१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय की भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१।।

द्वितीय अध्याय

आग्नीध्र चरित्र

श्रीशुक उवाच

एवं पितरि संप्रवृत्ते तदनुशासने वर्तमान आग्नीध्रो जम्बूद्वीपौकसः प्रजा औरसवद्धर्मविक्षमाणः पर्यगोपायत्॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— पिता प्रियव्रत के इस तरह से तपस्या में संलग्न हो जाने पर राजा आग्नीध्र उनकी आज्ञा का पालन करते हुए जम्बूद्वीप की प्रजा का धर्मानुसार पुत्र के समान पालन करने लगे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वितीये प्रोक्तमाग्नीध्रचरित्रं स्त्रैणसंमतम् । पत्न्यां हि पूर्वचित्त्यां यो नाभिमुख्यानजीजनत् ॥१॥ अस्मिन्वंशे प्रसिद्धोऽयमाग्नीध्रः स्त्रैणपुङ्गवः । विहसन्निव तस्येदं चरितं मुनिरब्रवीत् ॥२॥ जम्बूद्वीपमोको यासां ताः प्रजाः पुत्रवत्पालयामास । धर्मावेक्षमाणः धर्ममवेक्षणो धर्मेणेत्यर्थः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे अध्याय में राजा आग्नीध्र का स्त्री परायण चरित्र वर्णित है । उन्होंने पूर्वचिती नामक पत्नी के गर्भ से नाभि इत्यादि पुत्रों को उत्पन्न किया ॥१॥ इस प्रियव्रत के वंश में आग्नीध्र स्त्री परायणपुरुष के रूप में प्रख्यात है । श्रीशुकदेवजी ने इनके चरित का वर्णन उपहास करते हुए से किए ॥२॥ जम्बूद्वीप में रहने वाली प्रजाओं का राजा आग्नीध्र ने धर्मानुसार पुत्र के समान पालन किया ॥१॥

स च कदाचित्पितृलोककामः सुरवरवनिताक्रीडाचलद्रोण्यां भगवन्तं विश्वसृजां पतिमाभृतपरिचर्योपकरण आत्मैकाग्र्येण तपस्व्याराधयांबभूव ॥२॥

अनुवाद— एक बार वे पितृलोक की कामना से सत्पुत्र की प्राप्ति के लिए पूजा की सारी सामग्री जुटाकर सुर सुन्दरियों के क्रीडा स्थल मन्दराचल की घाटी में गये और तपस्या में तत्पर होकर प्रजापतियों के पति ब्रह्माजी की आराधना करने लगे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

पितृलोककामः पुत्रकामः सुरवराणां वनितास्तासामाक्रीडाचलो मन्दरस्तस्य द्रोण्याम् । आभृतानि संपादितानि परिचर्योपकरणानि पुष्पादीनि येन ।।२।।

भाव प्रकाशिका

पुत्र प्राप्ति की कामना से श्रेष्ठ सुन्दरियों के क्रीडा स्थल मन्दराचल की घाटी में पूजन की सारी सामग्री पुष्प आदि लेकर गये और ब्रह्माजी की पूजा किए ।।२।।

तदुपलभ्य भगवानादिपुरुषः सदसि गायन्तीं पूर्वचित्तिं नामाप्सरसमभियापयामास ।।३।।

अनुवाद— आदि देव भगवान् ब्रह्माजी आग्नीध्र की अभिलाषा को जान लिए और उन्होंने अपनी सभी प्रधान गायिका पूर्वचिती को उनके पास भेज दिया ।।३।।

भावार्थ दीपिका

तदुपलभ्य ज्ञात्वा ब्रह्माऽभियापयामास संभोगार्थं प्रस्थापयामास ।।३।।

भाव प्रकाशिका

अग्नीध्र की अभिलाषा को जानकर ब्रह्माजी ने अपनी सभा की प्रधान गायिका पूर्वचिती को सम्भोग के लिए भेज दिए ।।३।।

सा च तदाश्रमोपवनमतिरमणीयं विविधनिबिडविटपिविटपनिकरसंश्लिष्टपुरटलतारूढस्थलविहङ्गममिथुनैः प्रोच्यमानश्रुतिभिः प्रतिबोध्यमानसलिलकुक्कुटकारण्डवकलहंसादिभिर्विचित्रमुपकूजितामलजलाशयकमलाकरमुपबभ्राम ।।४।।

अनुवाद— आग्नीध्र के आश्रम के सन्निकट एक अत्यन्त मनोहर उपवन था उसी में वह अप्सरा भ्रमण करने लगी । उस उपवन में विभिन्न प्रकार के साधन वृक्षों पर स्वर्णलता फैली हुई थीं । उन वृक्षों पर बैठे हुए अनेक प्रकार के स्थल पर विचरण करने वाले मयूर आदि पक्षियों के जोड़े मधुर बोली बोल रहे थे । उनकी सुन्दर ध्वनि सुनकर सचेत जलकुक्कुट, कारण्डव एवं कलहंस आदि जलपक्षी अनेक प्रकार से कूजन करने लगते थे। उससे वहाँ के कमलवन से सुशोभित स्वच्छ सरोवर ध्वनित होने लगता था ।।४।।

भावार्थ दीपिका

सा च तदाश्रमोपवनमुपवभ्रामेत्यन्वयः । रमणीयत्वमेवाह । विविधाश्च निविडाश्च ये विटपिनस्तेषां विटपाः शाखास्तेषां निकरास्तैः संश्लिष्टाः पुरटलताः स्वर्णवल्लयस्तास्वारूढाः स्थलविहङ्गमा मयूरादयस्तेषां मिथुनैः प्रोच्यमानाभिः श्रुतिभिरुच्चार्यमाणैः षड्जादिस्वरैः प्रतिबोध्यमाना ये सलिलकुक्कुटादयस्तैर्विचित्रं यथा तथोपकूजिता नादिता अमला जलाशयास्तेषु कमलानि तेषामाकरमुपवनम् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

वह पूर्वचिती उस आश्रम के उपवन में भ्रमण करने लगी । उपवन की रमणीयता का वर्णन करते हुए कहते हैं अनेक प्रकार के सघन वृक्षों की शाखाओं पर छायी हुई स्वर्ण लता पर बैठे हुए स्थलचारी पक्षियों के जोड़ों की विविध बोलियों से सावधान जलकुक्कुरों की ध्वनि से ध्वनित निर्मल जलाशय का कमल वन गुंजित होने लगता था ।।४।।

तस्याः सुललितगमनपदविन्यासगतिविलासायाश्चानुपदं खणखणायमानरुचिरचरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधियोगेनामीलितनयननलिनमुकुलयुगलमीषद्विकचय्य व्यचष्ट ।।५।।

अनुवाद— पूर्वचित्ती की विलासपूर्ण मनोज्ञ गतिविधि और पादविन्यास की प्रश्न शैली से पग-पग पर उनके

पैरों के नूपुरों की झनकार होती थी । उसको सुनकर राजकुमार आग्नीध्र मे समाधि योग द्वारा मुकुलित कमल मुकुल युगल के समान दोनों नेत्रों को खोल कर देखा ॥५॥

भावार्थ दीपिका

सुललिते गमने ये पदविन्यासास्तैर्गतौ विलासो यस्याः । चकारस्तस्याश्चेत्येकवाक्यत्वाय । अनुपदं प्रतिपदम् । खणखणेति ध्वनिं कुर्वतो रुचिरस्य चरणाभरणस्य स्वनम् । आमीलिते नयने एव नलिनमुकुले तयोर्युगलमीषद्विकचय्य किंचिदुन्मील्य व्यचष्ट ददर्श ॥५॥

भाव प्रकाशिका

पूर्वचित्ती के मनोज्ञ गमन में किए जाने वाले पदविन्यास के विलास के पद-पद पर उसके चरणों के नूपुर झनकार करते थे । उसकी ध्वनि को सुनकर समाधि योग के कारण वन्द कमल कलि के समान नेत्रों को थोड़ा खोलकर देखा ॥५॥

तामेवाविदूरे मधुकरीमिव सुमनस उपजिघ्रन्तीं दिविजमनुजमनोनयनाह्लाददुघैर्गतिविहारब्रीडाविनयावलोकसुस्वराक्षरावयवैर्मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं विवरं निजमुखविगलितामृतासवसहासभाषणामोदमदान्धमधुकरनिकरोपरोधेन द्रुतपदविन्यासेन वल्गुस्पन्दनस्तनकलशकबरभाररशनां देवीं तदवलोकनेन विवृतावसरस्य भगवतो मकरध्वजस्य वशमुपनीतो जडवदिति होवाच ॥६॥

अनुवाद— तो आग्नीध्र को अपने पास ही वह अप्सरा दिखायी दी । वह मधुकरी के समान प्रत्येक पुष्प को जाकर उसे सूघंती थी । देवताओं और मनुष्यों के मन और नेत्रों को आह्लादित करने वाली अपनी विलासपूर्ण गति क्रीडा चपलता लज्जा एवं विनय युक्त देखने की कला, मधुर स्वर सम्पन्न वाणी एवं मनोहर अङ्गों के द्वारा पुरुषों के हृदय में कामदेव के प्रवेश के लिए द्वार सा बना देती थी । जब कभी वह हँसकर बोलती थी तो ऐसा लगता था कि उसके मुख से अमृतमय मादक मधु झर रहा है । उसके निःश्वास की गन्ध से मदमत्त बने भौंरे उसके मुखकमल को घेर लेते थे । उन भौंरों से बचने के लिए जब वह शीघ्रता से पैरों को उठाकर चलती थी तो उसके स्तन कलश वेणी और करधनीहिलने के कारण अत्यन्त मनोहर प्रतीत होते थे । इस तरह की उस देवी को देखने से आग्नीध्र के हृदय में कामदेव को प्रवेश करने का अवसर प्राप्त हो गयीं । वे कामदेव के अधीन होकर जड़ के समान कहने लगे ॥६॥

भावार्थ दीपिका

तामेव देवी मकरध्वज वशमुपनीतः सन् जडवदिति ह वक्ष्यमाणान्दश श्लोकानुवाच । जाड्यानुकरणं च वैदग्ध्यन तद्वशीकारार्थम् । दिविजानां देवानां मनुजानां च यानि मनांसि नयनानि च तेषामाह्लाददुघैर्गत्यादिभिर्नृणां मनसि कामस्य विवरं प्रवेशद्वारं विदधतीम् । गतिश्च विहारश्च ब्रीडा विनययुक्तोऽवलोकश्च सुस्वराण्यक्षराणि चावयवाश्च नेत्रादयस्तैः । निजमुखाद्विगलितममृतमिव स्वादु आसव इव मादकं च यत्सहासं भाषणं तस्मिन्नामोदो निःश्वासगन्धस्तेन मदान्धा ये मधुकरनिकरास्तैरुपरोध आवरणं तेन भयाद्द्रुतः शीघ्रो यः पदविन्यासस्तेन वल्गु स्पन्दनं किंचिच्चलनं स्तनकलशयोः कवरभारे रशनायां च यस्यास्ताम् । तस्या अवलोकनेन विवृतावसरस्य दत्तावकाशस्य ॥६॥

भाव प्रकाशिका

उस देवी को देखकर कामार्त बने आग्नीध्र जड़ के समान कहने लगे उनकी बातों का वर्णन दश श्लोकों में किया गया है । नैपुण्य के द्वारा उस सुन्दरी को वशमें करने के लिए जड़ के समान वे अनुकरण कर रहे थे। देवताओं और मनुष्यों के मन और नेत्रों को आह्लादित करने वाली तथा गमनादि के द्वारा मनुष्यों के मन में कामदेव

के प्रवेश द्वार को बनाने वाली उस सुन्दरी की, गति, क्रीडा, लज्जा तथा विनय युक्त देखने की कला से तथा मनोहर माधुर्य पूर्ण वचनों से नेत्र आदि अङ्गों की शोभा से, उसके मुख से निकले हुए अमृतमय स्वादिष्ट मधु के समान मादक, हास युक्त बोली के निःश्वास के गन्ध से मदान्ध बने भौंरे उसके मुख को घेर लेते थे । उन भौरों के भय से जब वह शीघ्रता से पाद विन्यासकरती थी तो उसके स्तन कलश, कबरी और काञ्ची चञ्चल हो जाती थीं और वह देखने में सुन्दर लगती थीं उसको देखने से अग्नीध्र के हृदय में प्रवेश करने का अवसर कामदेव को मिल गया और आग्नीध्र जड़ के समान कहने लगे ॥६॥

का त्वं चिकीर्षसि च किं मुनिवर्य शैले मायाऽसि कापि भगवत्परदेवतायाः विज्ये बिभर्षि धनुषी सुहृदात्मनोऽर्थे किं वा मृगान्मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥७॥

अन्वयः— त्वं का, मुनिवर्य ! शैले किं चिकीर्षसि ? भगवत्परदेवतायाः कापि मायासि किम् ? सुहृत् ! विज्ये धनुषि कि विभर्षि, आत्मनोऽर्थे ? किं वा विपिने प्रमत्तान् मृगान् मृगयसे ? ॥७॥

अनुवाद— तुम कौन हो ? मुनिवर्य इस पर्वत पर क्या करना चाहते हो ? तुम परम पुरुष भगवान् नारायण की कोई माया हो क्या ? (उसकी भौहों की ओर सङ्केत करके) तुम बिना प्रत्यञ्चा के दो धनुषों को क्यों धारण किए हो ? इनसे तुम्हारा कोई अपना प्रयोजन है क्या ? अथवा इस संसारारण्य में मुझ जैसे मतवाले मृग का शिकार करना चाहते हो ॥७॥

भावार्थ दीपिका

का त्वं शैले गिरावस्मिन्किं चिकीर्षसि । मुनिवर्येत्यादिपुंस्त्वेन संबोधनादि जाड्यानुकरणार्थम् । हे मुनिवर्य, नूनं भगवतः, परदेवताभूतस्य मायाऽसि । भ्रुवावालक्ष्याह । हे सुहृत् सखे, विज्ये निर्गुणे धनुषी विभर्षि किमात्मनोऽर्थे तवैव, आभ्यां किं कार्यमस्ति । किं वा प्रमत्तानजितेन्द्रियान्मृगतुल्यानस्मदादीन्मृगयसे । तान्वशीकर्तुं धनुषी धारयसीत्यर्थः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

आग्नीध्र ने कहा तुम कौन हो ? इस पर्वत पर क्या करना चाहते हो ? जड़ता का अनुकरण करने के लिए आग्नीध्र मनुवर्य इत्यादि पुल्लिङ्ग संबोधन आदि करते है । हे मुनिवर्य निश्चित रूप से तुम पर देवता भगवान् नारायण की कोई माया हो ? उस की भौहों को लक्षित करके कहते है, मित्र तुम प्रत्यञ्चा रहित इन दो धनुषों को धारण करते हो, इन धनुषों से तुम्हारा क्या प्रयोजन है ? अथवा जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं ऐसे मृगों के तुल्य हमलोगों को अपने वश में करने के लिए इन धनुषों को धारण करते हो ॥७॥

बाणाविमौ भगवतः शतपत्रपत्रौ शान्तावपुङ्खरुचिरावतितिग्मदन्तौ । कस्मै युयुङ्क्षसि वने विचरन्न विद्मः क्षेमाय नो जडधियां तव विक्रमोऽस्तु ॥८॥

अन्वयः— भगवतः इमौ बाणौ शतपत्रपत्रौ शान्तौ अपुङ्खरुचिरौ अतितिग्मदन्तौ, वने विचरन् कस्मै युयुङ्क्षसि इति न विद्मः नः जड़ धियां तव विक्रमः क्षेमाय अस्तु ॥८॥

अनुवाद— कटाक्षों को लक्ष्य करके हे भगवान् आपके ये दोनों बाण बहुत सुन्दर और तीक्ष्ण हैं इनके कमल दल के पङ्ख हैं, देखने में शान्त और पङ्ख हीन हैं । इस वन में विचरण करते हुए तुम किस पर इसका प्रयोग करना चाहते हो इस बात का हमें पता नहीं है । तुम्हारा यह पराक्रम मुझ जैसे जड़ बुद्धियों के लिए कल्याणकारी हो ॥८॥

भावार्थ दीपिका

कटाक्षावालक्ष्याह । बाणाविमौ शतपत्रे नेत्रकमले ते एव पत्राणि पिच्छानि ययोः । शान्तौ विभ्रमेण मन्थरौ । पुङ्खाभ्यां विनापि रुचिरौ । पत्रतया कल्पितनेत्राभ्यां परभागस्य पुङ्खस्थानीयस्याभावात् । अतितिग्मौ तीक्ष्णौ दन्तावग्रभागौ ययोस्तौ कस्मै प्रयोक्तुमिच्छसीति न विद्मः । अतो भयादेतावत्प्रार्थयामहे-तवायं विक्रमोऽस्माकं क्षेमायास्तु ॥८॥

भाव प्रकाशिका

कटाक्षों को देखकर कहते हैं— ये दोनों बाण तो अत्यन्त सुन्दर हैं, इनके कमल दल के पङ्ख हैं। ये देखने में शान्त तथा मन्थर हैं। ये पङ्खहीन होकर भी मनोज्ञ हैं। पत्र रूप रूप से कल्पित नेत्रों से परभाग पुङ्ख स्थानीय नहीं होने के कारण इनके अग्रभाग अत्यन्त तीक्ष्ण है। इन दोनों का आप किस पर प्रयोग करना चाहते हैं इस बात को हम नहीं समझ पा रहे हैं। अतएव भयभीत मैं भी प्रार्थना करता हूँ आपका यह पराक्रम हमारा कल्याणकारी होए ॥८॥

शिष्या इमे भगवतः परितः पठन्ति गायन्ति साम सरहस्यमजस्रमीशम् । युष्मच्छिखाविलुलिताः सुमनोभिवृष्टीः सर्वे भजन्त्यृषिगणा इव वेदशाखाः ॥९॥

अन्वयः— हे भगवन् ! भगवतः परितः इमे शिष्याः पठन्ति सरहस्यं साम अज्ञस्रम्ईशाम् गायन्ति । वेदशाखाः ऋषिगणा इव युष्मच्छिखाविलुलिताः सुमनोभिवृष्टीः सर्वे भजन्ति ॥९॥

अनुवाद— उसके शरीर की सुगन्धि के लोलुप उसका अनुसरण करने वाले भौरों को लक्षित करके— हे भगवन् ! आपके ये शिष्यगण आपके चारो ओर अध्ययन कर रहे है लगता है कि निरन्तर सामगान करते हुए ईश्वर की स्तुति कर रहे हैं। ऋषिगण जैसे वेद की शाखाओं का अनुसरण करते हैं उसी तरह से आपकी चोटी से गिरे पुष्पों का सेवन करते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तदङ्गपरिमललोभेनानुगच्छतो भ्रमरानालक्ष्याह-शिष्या इति । अजस्रं सन्ततं युष्मच्छिखातो विलुलिता विगलिताः सुमनसामभितो वृष्टीगलितानि कुसुमानि भजन्तीत्यर्थः । शुद्धत्वेनोपामा-वेदशाखा इवेति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उसके अङ्गों की सुगन्धि के लोभी उसका अनुसरण करने वाले भ्रमरों को देखकर शिष्य इत्यादि श्लोक के अजस्र का अर्थ निरन्तर आपकी चोटी से गिरे पुष्पों का ये सभी सेवन करते हैं। उन पुष्पों के शुद्ध होने के कारण उसकी उपमा वेदशाखा से दी गयी है ॥९॥

वाचं परं चरणपञ्जरतित्तिरीणां ब्रह्मन्नरूपमुखरां शृणवाम तुभ्यम् । लब्धा कदम्बरुचिरङ्कविटङ्कबिम्बे यस्यामलातपरिधिः क्व च बल्कलं ते ॥१०॥

अन्वयः— ब्रह्मन् तुभ्यम् चरण पञ्जर तित्तिरीणां वाचं मुखरां शृणवाम परं रूपं न पश्यामः, अङ्कविटङ्कविम्बे कदम्बरुचिः लब्धा यस्याम् अलातपरिधिः ते वल्कलं च क्व ॥१०॥

अनुवाद— (नूपुरों की ओर सङ्केत करके) हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे चरण रूपी पिंजड़ों में विद्यमान तितरों का शब्द तो सुनायी देता है किन्तु उनका रूप नहीं दिखायी देता। करधनी युक्त पीली साड़ी अङ्ग की कान्ति की उत्प्रेक्षा करके तुम्हारे नितम्ब पर कदम्ब कुसुमों की सी आभा कहाँ से आ गयी इनके ऊपर तो अङ्गारों का मण्डल सा भी दिख रहा है किन्तु आपका बल्कल कहाँ है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

नूपुरस्वनमाकर्ण्याह-वाचमिति । तुभ्यं तव चरणगतपञ्जरयोर्नूपुरयोस्तित्तिरीणामन्तर्गतरत्नानां परं केवलं वाचं शृणुमः। कथंभूताम् । अरूपा अदृष्टवक्तृका मुखरा अतिप्रकटा च तां च तां च । पीतं परिधानवस्त्रं नितम्बकान्तित्वेन प्रकल्प्याह । कदम्बकुसुमस्य रुचिर्दीप्तिरङ्कविटङ्कबिम्बे नितम्बस्य सुन्दरमण्डले क्व लब्धा । पाठान्तरे अङ्गेति संबोधनम् । मेखलामालक्ष्याह। यस्यामलातपरिधिर्वर्तते । वस्त्रं नितम्बकान्तित्वेन प्रकल्प्य वस्त्रमदृष्टैव पृच्छति । क्व च ते बल्कलमिति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उसकी नूपुर की ध्वनि को सुनकर कहते हैं तुम्हारे चरण रूप पिजड़े में विद्यमान तितिरों की आवाज तो सुनायी देती है पर इनका रूप नहीं दिखता है । ये तित्तिर कैसे हैं इसे बतलाते है, इनका रूप नहीं दिखता है और आवाज सुनायी देती है । पीली साड़ी को नितम्बकी कान्ति रूप से कल्पना करके कहते हैं- तुम्हारे नितम्ब पर कदम्ब कुसुम कान्ति कहाँ से आ गयी है पाठान्तर होने पर अङ्ग यह सम्बुद्धि पद होगा । करधनी को देखकर कहते हैं— जिसके चारो ओर अङ्गार दिखता है । वस्त्र को नितम्ब की कान्ति रूप से कल्याण करके कहते हैं आपका बल्कल कहाँ है ?॥१०॥

किं संभृतं रुचिरयोर्द्विज शृङ्गयोस्ते मध्ये कृशो वहसि यत्र दृशिः श्रिता मे । पङ्कोऽरूणः सुरभिरात्मविषाण ईदृग्येनाश्रमं सुभग मे सुरभीकरोषि ॥११॥

अन्वयः— हे द्विज ! रुचिरयोः शृङ्गयों कि भृतम् मध्ये कृशः वहसि । यत्र मे दृशिः श्रिता । आत्मा मिषेण इदृग् सुरभिः अरुणः पङ्कः हे सुभग ! यन् मे आश्रमं सुरभी करोषि ॥११॥

अनुवाद— कुङ्कुम मण्डित स्तनों की ओर लक्षित करके कहते हैं— हे द्विज ! आप अपने इन मनोहर शृङ्गों में क्या भर रखे हैं, अवश्य ही इनमें रत्न भरे होंगे इसीलिए आपका मध्यभाग पतला होने पर उसका बोझ ढो रहे हैं । आप अपने इन शृङ्गों पर इस तरह का सुगन्धित लाल लेप क्या लगा रखे हैं ? जिससे आप मेरे आश्रम को सुगन्धित बना रहे हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

स्तनावालक्ष्याह । शृङ्गयोः स्तनयोः किं संभृतं किं पूर्णमस्ति । मनोहरं किंचिदस्तीत्येतावत्तु जानामि । यतो मध्ये कृशोऽपि त्वं कृच्छ्रेण वहसि धारयसि । यत्र च मे दृशिर्द्दष्टिः श्रिता संलग्नास्ति । अन्यथेदं द्वयं न घटत इति भावः । स्तनगतं कुङ्कुममालक्ष्याह । पङ्कोऽरुण आत्मनस्तव विषाणे शृङ्गे ईदृगत्यपूर्वः कुत इत्यत आह । येन पङ्केनाश्रमं सुरभीकरोषि सुगन्धयुक्तं करोषीति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

स्तनों को देखकर कहते हैं आपके इन दोनों शृङ्गों में क्या भरा है ? उसमें कोई अच्छी वस्तु होगी इतना तो मैं जानता हूँ; जिसके कारण शरीर के मध्य भाग के दुर्बल होने पर भी आप उसका वहन कर रहे हैं । उसमें लगी हुई दृष्टि हटना भी नहीं चाहती है । यदि ऐसा नहीं होता तो ये दोनों बातें सम्भव नहीं होती । स्तन में लगे कुङ्कुम को देखकर कहते हैं आपके इन दोनों शृङ्गों पर अपूर्व सुगन्धित यह लाल लेप क्या लगा है ? उस लेप के द्वारा आप मेरे इस आश्रम को सुगन्धित बना रहे हैं ॥११॥

लोकं प्रदर्शय सुहृत्तम तावकं मे यत्रत्य इत्थमुरसाऽवयवावपूर्वौ । अस्मद्विधस्य मनउन्नयनौ बिभर्ति बह्वद्भुतं सरसराससुधादि वक्त्रे ॥१२॥

अन्वयः— हे सुहत्तम तावकं लोकं में प्रदर्शय यत्रत्य यत्रत्यइत्थम् उरसा अपूर्वौ अवयवौ, अस्मद् विधस्य मन उन्नयनौ बहुअद्भुतं सरसराजसुधादि वक्त्रे वहति ॥१२॥

अनुवाद— मित्रवर्य ! तुम मुझे उस अपने देश को दिखा दो जहाँ के निवासी अपने वक्ष स्थल पर ऐसे अद्भुत अवयवों को धारण करते हैं जिन्होंने हमारे जैसे प्राणियों को क्षुब्ध बना दिया है तथा मुख में विचित्र हाव भाव सरस भाषण और अधरामृत जैसे अद्भुत वस्तुओं को धारण करते हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

लोकं स्थानम् । यत्रत्यो जन उरसा इत्थमपूर्वावयवौ विभर्ति । मनस उन्नयनौ क्षोभकौ । पाठान्तरे इत्थंभूतलक्षणे तृतीया। वक्रे च वह्वद्भुतं बिभर्ति । किं तदाह । रसो मधुरालापः रासो विलासस्ताभ्यां सहिता सुधा अधरामृतम् । आदिशब्दात् स्मितनर्मादि ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में अग्नीध्र कहते हैं कि हे मित्रवर तुम मुझे अपना लोक दिखा दो । लोक निवास स्थान का बोधक है । जहाँ के लोग इस तरह की अपूर्व अवयवों को अपने वक्षः स्थल पर धारण करते हैं । जो हमारे जैसे जीवों को क्षुब्ध करने वाले हैं । मनसोन्नयनौ पाठ के होने पर मनसा में **इत्थभूतलक्षणे** सूत्र से तृतीय विभक्ति मानना चाहिए और अपने-अपने मुख में मधुरालय (मधुर भाषण) और रास (विलास) इन दोनों से युक्त अधरामृत तथा स्मित नर्मादि को धारण करते हैं ।।१२।।

का वात्मवृन्तिर दनाद्धविरङ्ग वाति विष्णोः कलास्यनिमिषोन्मकरौ च कर्णौ ।
उद्विग्नमीनयुगलं द्विजपङ्क्तिशोचिरासन्नभृङ्गनिकरं सरइन्मुखं ते ।।१३।।

अन्वयः— हे अङ्ग ! का वा आत्मवृत्तिः अदनात् हविः वातिः विष्णोः कला असि अनिमिषोनमकरौ च कर्णौ । ते मुखं इन सरः यत्र उद्विग्न मीन युगंल द्विजपंक्तिरोचिः आसन्नभृङ्गनिकरम् च ।

अनुवाद— प्रियवर तुम्हारा भोजन क्या है ? जिसके खाने से हविष्य के समान सुगन्धि निकलती है । निश्चय ही तुम भगवान् विष्णु की कला हो इसीलिए तुम्हारे कानों में कभी पलक नहीं मारने वाले मकराकृति दो कुण्डल हैं। तुम्हारा मुख एक सरोवर के समान है, उसमें तुम्हारे दोनों चञ्चल नेत्र भय से काँपती हुई दो मछलियों के समान है, दन्तपंक्ति हंसों के समान और घुंघराली काली अलकें भ्रमर के समान सुशोभित होते हैं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

का वा तव लोके आत्मनो देहस्य वृत्तिराहारः । अङ्ग हे सखे, अदनाच्चर्वणाद्धविरिति तत्संबन्धी गन्धो वात्यागच्छति। इति ताम्बूलाभिप्रायम् । अदनाद्वहिरङ्ग भातीति पाठे मम तावद्भोजनाद्वहिर्भूतैव वृत्तिर्भातीत्यर्थः । यतस्त्वं विष्णोः कलाऽसि। विष्णुश्च नाश्नाति । 'अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति' इति श्रुतेः । विष्णोः कलाऽसीत्यत्र हेतुः- तव च कर्णो विष्णोरिवानिमिषोन्मकरौ। अनिमिषौ रत्नेत्रत्वेन निमेषशून्यावुल्लसन्तौ मकरौ तदाकारे कुण्डले ययोस्तौ । किंच तव मुखं सरइत् सर इव । तदेवाह । उद्विग्नं चञ्चलं मीनयुगलमिव नेत्रद्वयं यस्मिन् । द्विजा दन्तास्तेषां पङ्क्या शेचिः शोभा यस्मिन् । सरसि तु द्विजा राजहंसाः । आसन्नो भृङ्गनिकर इव केशस्तोमः परिमललुब्धभृङ्गस्तोमो वा यस्मिन् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

हे प्रियवर ! तुम्हारा संसार में आहार क्या है जिसके चबाने से हविष्य के समान सुगन्धि आती हैं, यह अग्नीध्र ने ताम्बूल के अभिप्राय से कहा है । **अदनाद् बहिरङ्ग** पाठ होने पर अर्थ होगा कि मेरे भोजन से भिन्न ही वृत्ति प्रतीत होती है । चूकि तुम भगवान् विष्णु की कला हो भगवान् विष्णु भी नहीं खाते हैं । श्रुति भी कहती हैं 'अनश्ननन्योऽभिचाकशीति' तुम्हारे कानों में रत्न रूपी नेत्र वाले कभी भी पलक नहीं मारने वाले दो मकराकृति कुण्डल हैं, साथ ही तुम्हारा मुख सरोवर के समान है जिसमें भयभीत चञ्चल मछलियों के समान तुम्हारे दो नेत्र हैं, हंसों के समान दन्तपंक्ति हैं । सरोवर में तो राजहंस रूपी द्विज पक्षी रहा करते हैं । इस मुख के सन्निकट में काली घुंघराली अलकें भ्रमर के समान सुशोभित होती हैं ।।१३।।

योऽसौ त्वया करसरोजहतः पतङ्गो दिक्षु भ्रमन्भ्रमत एजयतेऽक्षिणी मे ।
मुक्तं न ते स्मरसि वक्रजटावरूथं कष्टोऽनिलो हरति लम्पट एष नीवीम् ॥१४॥

अन्वयः— योऽसौ त्वया कर हतः दिक्षु भ्रमन् पतङ्गः मे भ्रमतः अक्षिणी एजयते मुक्तं ते वक्रजटावरूथं न स्मरसि एष लम्पटः अनिलः नीविम्हरतीति कष्टः ॥१४॥

अनुवाद— तुम जो अपने करकमलों से मारकर इस गेंद को उछालते हो तब यह दिशाओं और विदिशाओं में जाती हुई मेरे नेत्रों को तो चञ्चल बना ही देती है । साथ ही साथ मेरे मन में भी सावधानी पैदा कर देती है। तुम्हारा यह बाँका जटाजूट खुल गया तुम इसे सम्भालते नहीं ? यह लम्पट वायु महादुष्ट है जो तुम्हारे नीवी वस्त्र को उड़ा देता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

पतङ्गः कन्दुको भ्रमतो भ्रमच्चित्तस्य मेऽक्षिणी एजयते चञ्चलता नयति । वक्रकेशसमूहं मुक्तबन्धनं न स्मरसि न संभावयसि किम् । कष्टो धूर्तोऽनिलो नीवीं हरत्येतत्र स्मरसि किम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

पतङ्ग शब्द से गेन्द को कहा गया है । इधर-उधर जाती हुई यह गेन्द मुझे चञ्चल चित्त बनाकर मेरे नेत्रों को भी चञ्चल बना देती है । तुम अपने इस घुंघराले केश समूह को याद नहीं करते हो क्या ? यह कष्ट की बात है कि यह धूर्त वायु तुम्हारे नीवी वस्त्र को उड़ा दिया करता है ॥१४॥

रूपं तपोधन तपश्चरतां तपोघ्नं ह्येतत्तु केन तपसा भवतोपलब्धम् ।
चर्तुं तपोऽर्हसि मया सह मित्र मह्यं किं वा प्रसीदति स वै भवभावनो मे ॥१५॥

अन्वयः— तपोधन ! तपश्चरतां तपोघ्नं एतत् हि रूपं भवता केन तपसा लब्धम् ? मित्र ! मया सहतप चर्तुम् अर्हसि ! किञ्च वैभवभावनः ब्रह्मा मह्यं किं वा प्रसीदति ॥१५॥

अनुवाद— हे तपोधन ! तुमने तपस्वियों को तप से भ्रष्ट करने वाले इस रूप को किस तपस्या से प्राप्त किया है । आओ मेरे साथ ही तपस्या करो । अथवा कहीं ब्रह्माजी ने विश्व के विस्तार की इच्छा से मेरे ही ऊपर कृपा तो नहीं की हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

उपलब्धं प्राप्तम् । मह्यं मम, हे मम मित्र, मया सह तपश्चर्तुमर्हसि । किंच स वै भवभावनः संसृतिविस्तारको ब्रह्मा मे प्रसीदति, त्वां भार्यां कल्पयतीत्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

उपलब्धम् का अर्थ है प्राप्त किया है, मह्यम् अर्थात् मेरे मित्र हे मेरे मित्र ! तुम मेरे साथ ही तपस्या करो। किञ्च विश्व का विस्तार करने वाले ब्रह्माजी तुमको मेरी ही पत्नी तो नहीं बनाये हैं ?॥१५॥

न त्वां त्यजामि दयितं द्विजदेवदत्तं यस्मिन्मनो दृगपि नो न वियाति लग्नम् ।
मां चारुशृङ्ग्यर्हसि नेतुमनुव्रतं ते चित्तं यतः प्रतिसरन्तु शिवाः सचिव्यः ॥१६॥

अन्वयः— द्विजदेवदत्तं दयितं त्वां न त्यजामि, यस्मिन् विलग्नम् नो मनः दृगपि न याति । हे चारुशृङ्गि ते अनुव्रतं मां नेतुम् अर्हसि, यतः शिवाः सचिव्यः प्रतिसरन्तु ॥१६॥

अनुवाद— तुम तो ब्रह्मा की प्यारी देन हो अतएव मैं तुमको नहीं छोड़ सकता हूँ । तुममें तो मेरा मन

और मेरे नेत्र ऐसे लग गये हैं कि कहीं जाते ही नहीं। सुन्दर सीगों वाली ! तुम्हारा जहाँ मन हे मुझे वहीं ले चलो, मैं तो तुम्हारा अनुचर हूँ, तुम्हारी मङ्गलमयी ये सखियाँ मेरे ही साथ रहें ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

द्विजदेवेन ब्रह्मणा दत्तम् । दृक् मनश्च लग्नं सन्नापयाति । हे चारुशृङ्गि, यतस्ते चित्तं तत्र मां त्वदधीनं नेतुमर्हसि । सचिव्यस्तव सख्योऽपि शिवा अनुकूलाः सत्यो मां प्रतिसरन्त्वनुवर्तन्ताम् । यद्वा एतावत्पर्यन्तं मे याः सचिव्यः सख्यः शिवाः फेरवस्ताः प्रतिसरन्तु नियन्तु, यद्वा वनवासे सहचर्यो हरिण्यः शिवाः प्रतिसरन्तु प्रदक्षिणं गच्छन्तु ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी द्वारा मेरे लिए प्रदत्त तुमको मैं नहीं छोड़ सकता हूँ। तुममें लगा हुआ मेरा मन और नेत्र कही अन्यत्र जाना ही नहीं चाहते हैं। अथवा अब तक जो स्यारिनियाँ वे दूर जायँ और वनवास में सहचरी बनी हुई हरिणियाँ प्रदक्षिणा क्रम से चली जायँ ॥१६॥

श्रीशुक उवाच

इति ललनानुनयातिविशारदो ग्राम्यवैदग्ध्यया परिभाषया तां विबुधवधूं विबुधमतिरधि सभाजयामास॥१७॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! आग्नीध्र देवताओं के समान बुद्धिमान और स्त्रियों को प्रसन्न करने में अतिचतुर थे। उन्होंने इस प्रकार की रतिचातुर्यमयी मधुर वाणी से उस अप्सरा को प्रसन्न कर लिया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ग्राम्येषु वैदग्ध्यं यस्यास्तया परिभाषया वाचा । सभाजयामास पूजयामास । संमुखीचकारेत्यर्थः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

रचितचातुर्यमयी वाणी के द्वारा उस अप्सरा को आग्नीध्र ने प्रसन्न कर लिया ॥१७॥

सा च ततस्तस्य वीरयूथपतेर्बुद्धिशीलरूपवयः श्रियौदार्येण पराक्षिप्तमनास्तेन सहायुतायुतपरिवत्सरोपलक्षणं कालं जम्बूद्वीपपतिना भौमस्वर्गभोगान्बुभुजे ॥१८॥

अनुवाद— वीरों में अग्रगण्य आग्नीध्र की बुद्धि, शील, रूप, अवस्था लक्ष्मी और औदार्य से आकर्षित होकर उन जम्बूद्वीप के स्वामी के साथ कई हजार वर्षों तक पृथिवी और स्वर्ग के भोगों को भोगती रही ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

बुद्ध्यादीनां द्वन्दैक्यम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

बुद्धिशील रूपवयःश्रियौदार्येण में द्वन्द्व समास होने के कारण एकवचनान्त प्रयोग हैं ॥१८॥

तस्यामु ह वा आत्मजान्सराजवर आग्नीध्रो नाभिकिंपुरुषहरिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालसंज्ञान्नव पुत्रानजनयत् ॥१९॥

अनुवाद— उसके पश्चात् राजाओं में श्रेष्ठ आग्नीध्र उसके गर्भ से नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्यमय, कुरु, भद्राश्व, और केतुमाल नामक नव पुत्रों को उत्पन्न किए ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

सा सूत्वाऽथ सुतान्नवानुवत्सरं गृह एवापहाय पूर्वचित्तिर्भूय एवाजं देवमुपतस्थे ॥२०॥

अनुवाद— इस प्रकार नव वर्षों में प्रतिवर्ष एक-एक पुत्र के क्रम से उत्पन्न करके वह पूर्वचीती उन्हें राज भवन में ही छोड़कर ब्रह्माजी की सेवा में उपस्थित हो गयी ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

सूत्वा प्रसूय । उपतस्थेऽभजत् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

सूत्वा अर्थात् जन्म देकर **उपतस्थे** अर्थात् सेवा में उपस्थित हो गयी ॥२०॥

आग्नीध्रसुतास्ते मातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैव संहननबलोपेताः पित्रा विभक्ता आत्मतुल्यनामानि यथाभागं जम्बूद्वीपवर्षाणि बुभुजुः ॥२१॥

अनुवाद— आग्नीध्र के पुत्र अपनी माता के ही अनुग्रह से जन्म काल से ही स्वभाव से ही सुडौल और सबल शरीर वाले थे। राजा आग्नीध्र जम्बूद्वीप का विभाग करके, उन सबों के ही समान नाम वाले नौ वर्ष (भूखण्ड) बनाये और उन्हें एक एक पुत्र को सौंप दिए। इस तरह वे सब अपने-अपने वर्ष का राज्य भोगने लगे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

औत्पत्तिकेनैव स्वभावेन । संहननं दृढाङ्गत्वम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

औत्पत्तिकेन अर्थात् स्वभाव से ही, संहाननम् सुदृढ अङ्गों वाले ॥२१॥

आग्नीध्रो राजाऽतृप्तः कामानामप्सरसमेवानुदिनमधिमन्यमानस्तस्याः सलोकतां श्रुतिभिरवारुन्ध यत्र पितरो मादयन्ते ॥२२॥

अनुवाद— राजा आग्नीध्रयद्यपि प्रतिदिन काम सुख का अनुभव करते रहे फिर भी उनकी उससे तृप्ति नहीं हुई, वे उस अप्सरा को ही परम पुरुषार्थ मानते रहे। अतएव उन्होंने वैदिक कर्मों के द्वारा उसी लोक को प्राप्त किया जहाँ पितृगण अपने सुकृतों के अनुसार विभिन्न प्रकार के भोगों को भोगते हुए मस्त रहते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

कामानां भोगैः । अध्यधिकं मन्यमानः । श्रुतिभिर्वेदोक्तैः कर्मभिः । अवारुन्ध प्राप । मादयन्ते मोदन्ते ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

राजा आग्नेध्र प्रतिदिन काम सुख का अनुभव करते रहने पर भी उससे तृप्त नहीं हुए थे उसी को ही श्रेष्ठ पुरुषार्थ मानते रहे। और वैदिक कर्मों के अनुष्ठान से वे पितरों के लोक को प्राप्त किए जहाँ पितृगण अपने पुण्य कर्मों के अनुसार विभिन्न भोगों को भोगने में मस्त रहते हैं ॥२२॥

संपरेते पितरि नव भ्रातरो मेरुदुहितॄर्मेरुदेवीं प्रतिरूपामुग्रदंष्ट्रीं लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां देववीतिमिति संज्ञा नवोदवहन् ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे आग्नीध्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अनुवाद— पिता के परलोक चले जाने पर नाभि आदि नौ भाइयों ने मेरुकी मेरु देवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा और देववीति नाम की नव कन्याओं से विवाह किया ॥२३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पञ्चम स्कन्ध के आग्नीध्र वर्णन नामक दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

भावार्थ दीपिका

इत्येवंभूताः संज्ञा यासां ताः परिणीतवन्तः ।।२३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

मेरु देवी इत्यादि नाम वाली मेरु की पुत्रियों के साथ विवाह किया ।।२३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध की भावार्थदीपिकाटीका के दूसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२।।

◆

तृतीय अध्याय

राजा नाभि का चरित्र

श्रीशुक उचाच

नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदेव्या भगवन्तं यज्ञपुरुषमवहितात्माऽयजत ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् अग्निध्र के पुत्र नाभि की कोई सन्तान नही थीं । अतएव उन्होंने अपनी पत्नी मेरु देवी के साथ एकाग्रमना होकर पुत्री की प्राप्ति की कामना से भगवान् यज्ञ पुरुष की आराधना की ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तृतीये चरितं नाभेः परं मङ्गलमीर्यते । यस्य यज्ञे प्रतीतः सन्पुत्रोऽभूदृषभो हरिः ॥१॥ नाभिराग्नीध्रसुतः । अपुत्रया मेरुदेव्या भार्यया सह ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तीसरे अध्याय में नाभि के परम मङ्गलमय चरित्र कावर्णन किया जाता है । उनके यज्ञ में प्रकट होकर श्रीहरि उनके पुत्र ऋषभ के रूप में अवतीर्ण हुए । आग्नीध्र के पुत्र नाभि थे पुत्र हीन अपनी पत्नी मेरुदेवी के साथ उन्होंने यज्ञ पुरुष की आराधना की ॥१॥

तस्य ह वाव श्रद्धया विशुद्धभावेन यजतः प्रवर्ग्येषु प्रचरत्सु द्रव्यदेशकालमन्त्रर्त्विग्दक्षिणाविधानयोगोपपत्त्या दुरधिगमोऽपि भगवान् भागवतवात्सल्यतया सुप्रतीक आत्मानमपराजितं निजजनाभिप्रेतार्थविधित्सया गृहीतहृदयो हृदयंगमं मनोनयनानन्दनावयवाभिराममाविश्चकार ॥२॥

अनुवाद— यद्यपि मनोहर अङ्गों वाले श्रीभगवान् द्रव्य, देश, काल मन्त्र, ऋत्विज, दक्षिणा और विधि इन यज्ञ के साधनों से आसानी से नहीं प्राप्त होते हैं, फिर भी वे अपने भक्तों पर कृपा करते ही हैं, अतएव जब महाराज नाभि ने विशुद्ध भाव से उनका यजन किया तो उनका चित्त अपने भक्त का अभीष्ट कार्य करने के लिए उत्सुक हो गया । यद्यपि उनका स्वरूप सर्वथा स्वतंत्र है फिर भी प्रवर्ग्य कर्म का अनुष्ठान करते समय मन और नेत्रों को आनन्दित करने वाले अङ्गों से युक्त अपने मनोहर रूप में प्रकट हो गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

प्रवर्ग्यसंज्ञकेषु कर्मसु क्रियमाणेषु द्रव्यादयः सप्त ये योगा उपायास्तेषामुपपत्त्या संपत्त्यादुरधिगमो दुष्प्रापोऽपि भागवतेषु कृपालुतया सुप्रतीकः शोभनावयवः सन्नात्मानमाविश्चकार । अपराजितं स्वतन्त्रम् । निजभक्तानां येऽभिप्रेतार्थास्तेषां विधित्सया गृहीतमाकृष्टं हृदयं चित्तं यस्य । हृदयंगमं सुखकरम् । यतो मनोनयनान्यानन्दयन्ति येऽवयवास्तैरभिरामं सुन्दरम् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

द्रव्य आदि सात जो उपाय हैं उन सबों के द्वारा श्रीभगवान् दुष्प्राप्य हैं फिर भी जब प्रवर्ग्य कर्म का अनुष्ठान हो रहा था उस समय अपने भक्तों पर कृपा करने का स्वभाव होने के कारण वे अपने सुन्दर अवयवों से युक्त रूप को उन्होंने प्रकट कर दिया । वे यद्यपि स्वतंत्र हैं, फिर भी अपने भक्तों अभीष्ट कार्यों को करने की इच्छा से वे हृदयङ्गम मन तथा नेत्रों को आनन्दित करने वाले अवयवों से सुन्दर रूप में प्रकट हुए ।।२।।

अथ ह तमाविष्कृतभुजयुगलद्वयं हिरणमयं पुरुषविशेषं कपिशकौशेयाम्बरधरमुरसि विलसच्छ्रीवत्सललामं दरवरवनरुहवनमालाच्छूर्यमृतमणिगदादिभिरुपलक्षितं स्फुटकिरणप्रवरमुकुटकुण्डलकटककटिसूत्रहारकेयूरनूपुराद्यङ्गभूषणविभूषितमृत्विक्सदस्यगृहपतयोऽधना इवोत्तमधनमुपलभ्य सबहुमानमर्हणेनावनतशीर्षाण उपतस्थुः ।।३।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के श्री अङ्ग में रेशमी पीताम्बर था, वक्षस्थल पर सुन्दर श्रीवत्स चिह्न सुशोभित था, उनकी चारो भुजाओं में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म था, गले में वनमाला और कौस्तुभमणि लटक रही थी, प्रत्येक अङ्गों की कान्ति को बढ़ाने वाले किरण समूह से मण्डित मणिमय मुकुट, कुण्डल, कङ्कण, करधनी, हार, बाजूबन्द और नूपुर आदि से समलंकृत उनका सम्पूर्ण शरीर था । इस तरह के परम तेजस्वी चतुर्भुज मूर्ति पुरुष विशेष श्रीभगवान् को प्रकट देखकर ऋत्विज सदस्य और यजमान आदि सभी लोग इस तरह से आनन्दित हुए जैसे निर्धन पुरुष अपार सम्पत्ति को प्राप्त करके हर्ष प्रकर्ष का अनुभव करता है । तदनन्तर सबों ने शिर झुकाकर श्रीभगवान् की अत्यन्त आदर पूर्वक अर्ध्य द्वारा पूजा की और ऋत्विजों ने उनकी स्तुति की ।।३।।

भावार्थ दीपिका

अथ हेत्यादिनिपातबाहुल्यं वाक्यालंकाराय । आविष्कृतं भुजानां युगलद्वयं चतुष्टयं येन । हिरण्मयं तेजोमयम् । पुरुषेषु विशिष्यत इति तथा पुरुषोत्तममित्यर्थः । अर्हणेनार्घ्येण सहोपतस्थुरभजन्नित्यन्वयः । विलसन् श्रीवत्स एव ललामं चिह्नं यस्य। दरवरः शङ्खश्रेष्ठः, वनरुहं पद्मम्, अच्छूरि चक्रम्, अमृतमणिः कौस्तुभः एवमादिभिरुपलक्षितम् । स्फुटकिरणा ये प्रवरा मणयस्तन्मयानि यानि मुकुटादीन्यङ्गानां भूषणानि तैर्विभूषितम् । बहुमाने दृष्टान्तः— अधना इवोत्तमधनं निधिम् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

इस वाक्य में अथ ह इत्यादि निपातों का बाहुल्य वाक्यालङ्कार के रूप में प्रयुक्त है । प्रकट हुए श्रीभगवान् की चार भुजाएँ थीं । तेजोमय भगवान् पुरुषोत्तम की यजमान आदि ने अर्घ्यादि प्रदान पूर्वक पूजा की । उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिह्न विद्यमान था । हाथ में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म विद्यमान थे । वे कौस्तुभमणि आदि से सुशोभित थे उनके मुकुट, कुण्डल, कङ्कण कटिसूत्र, हार, आदि में लगी मणियों की किरणों से सारा शरीर अलंकृत था यजमानों आदि के द्वारा किए जाने वाले बहुमान में दृष्टान्त है जैसे कोई निर्धन निधि को प्राप्त कर लिया हो ।।३।।

ऋत्विज ऊचुः

अर्हसि मुहुरर्हत्तमार्हणमस्माकमनुपथानां नमो नम इत्येतावत्सदुपशिक्षितं कोऽर्हति पुमान्प्रकृतिगुणव्यतिकरमतिरनीश ईश्वरस्य परस्य प्रकृति पुरुषयोरर्वाक्तनाभिर्नामरूपाकृतिभी रूपनिरूपणम् ।।४।।

ऋत्विजों ने कहा

अनुवाद— हे पूज्यतम ! हमलोग आपके अनुगत भक्त हैं, आप हमारे बार-बार पूजनीय हैं । किन्तु हम आपकी पूजा करना नहीं जानते हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं । हमें महापुरुषों ने इतना ही सिखाय है। आप प्रकृति और पुरुष से परे हैं । प्राकृत गुणों के कार्यभूत इस प्रपंच में फँस जाने के कारण आपका गुणगान करने में असमर्थ हैं ऐसा कौन पुरुष है जो प्राकृत, नाम, रूप एवं आकृति के द्वारा आपके स्वरूप का निरूपण कर सके । आप साक्षात् परमेश्वर हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

अर्हसीत्यादिना निगदेन स्तुवन्ति । हे अर्हत्तम, परिपूर्णोऽपि त्वमनुपथानां भृत्यानामस्माकमर्हणं मुहुः स्वयमेव स्वीकर्तुमर्हसि न तु वयं स्तोतुं शक्ता इत्याहुः । नमो नम इत्येतावदेवास्माकं सद्भिरुपशिक्षितम् । त्वद्रूपस्य दुर्ज्ञेयत्वात् । तदेवाहुः- कोऽर्हतीति। प्रकृतिगुणानां व्यतिकरः प्रपञ्चस्तस्मिन्नेव मतिर्यस्यात एवानीशः । प्रकृतिपुरुषयोः परस्यात एवेश्वरस्यार्वाक्तनाभिस्त्वामस्पृशन्तीभिः प्रपञ्चान्तर्गताभिर्नाम च रूपं चाकृतिश्चाकारस्ताभिस्तव रूपनिरूपणं कंर्तुं को नाम पुमानर्हति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

अर्हसि इत्यादि वाक्य के द्वारा वे भगवान् की स्पष्ट रूप से स्तुति करते हैं । हे पूज्यतम यद्यपि आप परिपूर्ण हैं फिर भी आपके अनुयायी हम भृत्यों की बार-बार प्रार्थना आप स्वयं स्वीकार करें । हम आपकी स्तुति करने में समर्थ नहीं हैं । हमारे महापुरुषों ने आपको केवल बार-बार नमस्कार ही करना सिखाया है, क्योंकि आपका रूप दुर्ज्ञेय है । इसी बात को वे **कोऽर्हति इत्यादि** से कहते हैं । प्रकृति के गुणों में ही बुद्धि के लगे रहने के कारण हम असमर्थ हैं । आप प्रकृति एवं पुरुष से परे (श्रेष्ठ) हैं अतएव सर्वेश्वर हैं । अत्यन्त अर्वाचीन होने के कारण जो आपका स्पर्श नहीं कर सकते हैं ऐसे नाम, रूप एवं आकृति के द्वारा आपके स्वरूप का निरूपण कौन कर सकता है ?।।४।।

सकलजननिकायवृजिननिरसनशिवतमप्रवरगुणगणैकदेशकथनादृते ।।५।।

अनुवाद— आपके परम मङ्गलमय गुण सम्पूर्ण जनता के दु:खों को दूर करने में समर्थ हैं । यदि कोई उनका वर्णन भी करना चाहेगा तो उनके एक अंश का ही वर्णन कर पायेगा ।।५।।

भावार्थ दीपिका

स ह्येतन्मात्रमेवार्हति नाधिकमित्याहुः । सकलजननिकायस्य वृजिनं निरस्यन्तीति तथा शिवतमाः प्रवराश्च ये गुणगणास्तेषामेकदेशस्तस्य कथनाद्विनाधिकं नार्हति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

ऋत्विजगण कहते हैं— सम्पूर्ण जन समूह के कष्टों को दूर करने में आपके परम मङ्गलमय श्रेष्ठ गुणों का यदि कोई वर्णन भी करना चाहे तो वह उन गुणों के एक अंश मात्र का ही वर्णन कर पायेगा इससे अधिक कोई नहीं कर पायेगा ।।५।।

परिजनानुरागविरचितशबलसंशब्दसलिलसितकिसलयतुलसिकादूर्वाङ्कुरैरपि संभृतया सपर्यया किल परम परितुष्यसि ।।६।।

अनुवाद— किन्तु प्रभो ! यदि आपके भक्त प्रेमागद्गद वाणी से स्तुति करते हुए सामान्य जल, विशुद्ध पल्लव, तुलसी, और दूर्वा के अङ्कुर से आपकी पूजा करते हैं तो भी आप हर प्रकार से संतुष्ट हो जाते हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

वाङ्मनसाऽगोचरोऽपि त्वं भक्तानां सुखाराध्य एवेत्याहुः । हे परम, परिजनैरनुरागेण विरचिता ये शबलसंशब्दा गद्गदाक्षरस्तुतयः सलिलं च सितकिसलयाश्च शुद्धपल्लवाः । शिलेति पाठे शिलं कुशादिमञ्जरी । एवमादिभिः संभृतया संपादितया पूजया परितुष्यसि ॥६॥

भाव प्रकाशिका

वाणी तथा मन के अविषयभूत भी आप अपने भक्तों के द्वारा सुखपूर्वक आराधना करने योग्य हैं । हे परमात्मन आप अपने भक्तों द्वारा प्रेम पूर्वक की जाने वाली गद्गद वाणी से स्तुति जल, शुद्ध पल्लव, जहाँ शिल पाठ है तो शिल कुश आदि की मञ्जरी को कहते हैं । इन सबों से की गयी पूजा से भी आप संतुष्ट हो जाते हैं ॥६॥

अथानयापि न भवत इज्ययोरुभारभरया समुचितमर्थमिहोपलभामहे ॥७॥

अनुवाद— हमें तो अनुराग से भिन्न द्रव्य कलादि अनेक अङ्गों वाले यज्ञ से भी आपका कोई प्रयोजन नहीं दिखाई देता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अथेति प्रकारान्तरे । अन्यथा त्वनयेज्यया यागेनाप्युरुभारभरयानेकाङ्गसमृद्धयापि भवतः समुचितमपेक्षितं प्रयोजनं नैव पश्यामः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

अनुराग से रहित अनेक अङ्गों वाले इस यज्ञ से भी आपका कोई प्रयोजन नहीं है ऐसा हमें प्रतीत होता है ॥७॥

आत्मन एवानुसवनमञ्जसाऽव्यतिरेकेण बोभूयमानाशेषपुरुषार्थस्वरूपस्य किंतु नाथाशिष आशासानानामेतदभिसंराधनमात्रं भवितुमर्हति ॥८॥

अनुवाद— आप को तो अपने आप प्रत्येक क्षण में स्वतः समस्त पुरुषार्थों के फल स्वरूप निरन्तर परमानन्द की प्राप्ति होती रहती है । आप साक्षात् आनन्द स्वरूप हैं । अतएव आपको इन यज्ञादि से कोई प्रयोजन नहीं है फिर भी अनेक प्रकार की कामनाओं की सिद्धि चाहने वाले हम लोगों के लिए मनोरथ सिद्धि का साधन यही है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अत्र हेतुः— आत्मनः स्वत एवानुसवनं सर्वदाऽञ्जसा साक्षादव्यतिरेकेण समन्वयेन वोभूयमाना अतिशयेन भवन्तो येऽशेषाः पुरुषार्थास्ते स्वरूपं यस्य परमानन्दस्य । नचैवं सत्यपि यागानर्थक्यमित्याहुः- किंत्विति । सकामानामस्माकमेवैतदुपपद्यते। न तवेत्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

उसका कारण यह है कि आपको तो अपने आप प्रत्येक क्षण स्वतः सभी पुरुषार्थों के फलरूप परमानन्द की प्राप्ति होती रहती है आप परमानन्द स्वरूप ही हैं । ऐसा होने पर भी याग व्यर्थ इसलिए नहीं हैं कि अनेक कामनाओं वाले हमलोगों की कामना की सिद्धि का साधन यही है आपका नहीं ॥८॥

तद्यथा बालिशानां स्वयमात्मनः श्रेयः परमविदुषां परम परमपुरुष प्रकर्षकरुणया स्वमहिमानं चापवर्गाख्यमुपकल्पयिष्यन्स्वयं नापचित एवतेतरवदिहोपलक्षितः ॥९॥

अनुवाद— आप ब्रह्मा आदि देवों से भी श्रेष्ठ है । हम तो यह भी नहीं जानते हैं कि हमारा कल्याण किस में हैं, और न तो हम आपकी यथोचित पूजा ही कर पाये हैं फिर भी जिस तरह तत्त्वज्ञ पुरुष बिना बुलाये ही

केवल करुणावशात् अज्ञानी पुरुषों के पास चले जाते हैं, उसी तरह आप भी हम अपना मोक्ष संज्ञक परमपद और हमें हमारी अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करने के लिए अन्यसाधरण दर्शकों के समान यहाँ प्रकट हुए हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

स्वोपयोगमेव प्रदर्शयन्ति- तद्यथेति । परमेभ्योऽपि हे परमपुरुष, प्रकर्षयुक्तया करुणया । उपकल्पयिष्यन् संपादयिष्यन्। चकारात् कामितं च । नापचितोऽनपचितोऽपूजित एव पूजानपेक्षत्वात्स्वयपेवोपलक्षितो दृष्टोऽसि । इतरवत् सापेक्षवत् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

ऋत्विजगण अपने उपयोग को ही प्रदर्शित करते हैं— हे श्रेष्ठातिश्रेष्ठ परमपुरुष ! अपनी श्रेष्ठ करुणा के द्वारा यद्यपि आपकी यथोचित पूजा यहाँ नहीं हुई है फिर भी पूजा की अपेक्षा किए बिना भी आप दर्शन दिए हैं। दूसरे दर्शकों के समान ॥९॥

अथायमेव वरो ह्यर्हत्तम यर्हि बर्हिषि राजर्षेर्वरदर्षभो भवान्निजपुरुषेक्षणविषय आसीत् ॥१०॥

अनुवाद— हे पूज्यतम ! आपने हमे सबसे बड़ा वरदान यही दे दिया है कि ब्रह्मादि वरदायकों में श्रेष्ठ होकर भी आप राजर्षि नाभि की यज्ञशाला में साक्षात् हमारे नेत्रों के समक्ष प्रकट हो गये ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

यद्यपि त्वं वरान्दातुमाविर्भूतोऽसि तथापि हे अर्हत्तम, राजर्षेर्बर्हिषि यज्ञे निजपुरुषाणां त्वद्भक्तानामस्माकमीक्षणविषयो भवान् । यर्हि यदा आसीत्तदा ह्ययमेव वरः संजातः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि आप वरों को देने के लिए प्रकट हुए हैं फिर भी हे पूज्यतम राजर्षि के यज्ञ में अपने भक्तजनों हमलोगों के नेत्रों के सामने प्रकट हुए हैं । यही आपके द्वारा प्रदत्त सबसे बड़ा वरदान है ॥१०॥

असङ्गनिशितज्ञानानलविधूताशेषमलानां भवत्स्वभावानामात्मारामाणां मुनीनामनवरतपरिगुणितगुणगणपरम-मङ्गलायनगुणगणकथनोऽसि ॥११॥

अनुवाद— प्रभो ! आपके गुणगणों का गान परम मङ्गलमय है । जिन लोगों ने वैराग्य से प्रज्वलित हुई ज्ञानाग्नि के द्वारा अपने अन्तःकरण के रागद्वेष आदि समस्त मलों को भस्म कर दिया है, जिसका स्वभाव आपके ही समान शान्त है, वे आत्माराम मुनिगण भी सदा आपके गुणों का गान ही करते रहते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

दर्शनस्य दुर्लभतामाहुः । असङ्गेन वैराग्येण निशितं यज्ज्ञानं स एवानयस्तेन विधूता अशेषा मला येषाम् । अतो भवत इव स्वभावो येषाम् । तानेवाहुः । आत्मारामाणामेवंभूतानां मुनीनामपि परममङ्गलायनं गुणगणकथनमेव नतु दर्शनं यस्य । अतस्तैरनवरतं परिगुणिता अभ्यस्ता गुणगणा यस्येति संबोधनम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के दर्शन की दुर्लभता का वर्णन करते हैं । वैराग्य से उत्पन्न तीक्ष्ण ज्ञान रूपी अग्नि के द्वारा जिन लोगों ने अपने रागद्वेष आदिसमस्त मलों को भस्म कर दिया है । उनका स्वभाव आपके ही समान शान्त है । वे आत्माराम मुनिजन भी सदा आपके गुणों का ही वर्णन करते हैं, अतएव आप निरन्तर जपे जाने वाले गुणों वाले भगवान् ॥११॥

अथ कथंचित्स्खलनक्षुत्पतनजृम्भणदुरवस्थानादिषु विवशानां नः स्मरणाय ज्वरमरणदशायामपि सकलकश्मलनिरसनानि तव गुणकृतनामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु ॥१२॥

अनुवाद— अतएव हम आपसे यही वरदान माँगते हैं कि गिरने, ठोकर खाने, छीकने अथवा जम्भाई लेने और सङ्कट आदि के समय ज्वर मरणादि की अवस्थाओं में भी किसी प्रकार आपके सकल कलिमल विनाशक, भक्तवत्सल आदि गुण द्योतक नामों का उच्चारण हम करें ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

दर्शनेनैव कृतार्था अपि वरमेकं प्रार्थयन्ते-अथेति । स्मरणाय विवशानां त्वां स्मर्तुमशक्तानां नः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के दर्शन से ही कृतार्थ बने ऋत्विज गण एक वरदान माँगते हैं आपका स्मरण करने के लिए विवश होने पर आपका स्मरण करने में असमर्थ हमलोग हर अवस्थाओं में आपका स्मरण करते रहें ॥१२॥

किं चायं राजर्षिरपत्यकामः प्रजां भवादृशीमाशासान ईश्वरमाशिषां स्वर्गापवर्गयोरपि भवन्तमुपधावति प्रजायामर्थप्रत्ययो धनदमिवाधनः फलीकरणम् ॥१३॥

अनुवाद— किञ्च कहने योग्य नहीं होने पर भी एक प्रार्थना और है, आप परमेश्वर हैं । स्वर्ग तथा अपवर्ग आदि कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसे आप नहीं दे सके । किन्तु जैसे कोई कङ्गाल किसी उदार और धन लुटाने वाले व्यक्ति के पास जाकर भी उसे भूसा ही मांगे उसी प्रकार हमारे यजमान ये राजर्षि नाभि सन्तान को ही परम पुरुषार्थ मानकर आपके ही समान पुत्र प्राप्त करने के लिए आपकी अराधना कर रहें हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अन्यच्च प्रार्थनीयमस्तीत्याहुः- किं चेति । आशिषामैहिकानां स्वर्गापवर्गयोरपीश्वरं त्वामुपधावति । प्रजायामेव पुरुषार्थ इति प्रत्ययो यस्य । अधनो यथा फलीकरणं तुषकणादिकमाशासानो धनदमुपधावति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

ऋत्विजों ने कहा अन्य भी प्रार्थना है, इस बात को किञ्च इत्यादि वाक्य से कहते हैं— यद्यपि आप स्वर्ग तथा अपवर्ग भी दे सकते हैं फिर भी लौकिक वस्तु के लिए आपकी आराधना कर रहे हैं । इनकी प्रजा (सन्तान) में ही पुरुषार्थ की भावना है । जैसे— कोई निर्धन कुबेर के पास जाकर भूसा माँगे उसी तरह इनकी यह सन्तान प्राप्ति के लिए आपकी आराधना है ॥१३॥

को वा इह तेऽपराजितोऽपराजितया माययाऽनवसितपदव्याऽनावृतमतिर्विषयविषरयानावृतप्रकृतिरनुपासितमहच्चरणः ॥१४॥

अनुवाद— इस संसार में ऐसा कौन व्यक्ति है जो आपकी अपराजिता माया के वश में नहीं हुआ हो । उसके मार्ग को कोई नहीं जान सकता है । इस संसार में कोई भी ऐसा नहीं है जिसने महापुरुषों के चरणों की उपासना नहीं किया हो और जिसकी बुद्धि को माया आच्छन्न नहीं कर दे और विषय रूपी विष उसका वेग उसके स्वभाव को दूषित नहीं कर दे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

इदं च नातिचित्रमित्याहुः । इह संसारे तेऽपराजितया माययाऽनवसितपदव्याऽलक्षितमार्गयाऽपराजितः को वै । न कोऽपि । अतस्तयाऽनावृतमतिः कः । अतएव विषय एवं विषं तस्य रया वेगास्तैरनावृता प्रकृतिर्यस्य स कः । यद्यनुपासितमहच्चरणः। अतस्त्वन्मायया मोहितस्यैवमाशंसा घटत इत्यर्थः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । इस संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो आपकी अपराजिता माया जिसके मार्ग को कोई भी नहीं जान सकता उसके द्वारा पराजित नहीं हुआ हो । यदि किसी ने महापुरुषों के चरणों की उपासना नहीं की हो और विषय रूपी विष के वेग से उसकी बुद्धि आवृत नहीं हुई हो । अतएव आपकी माया से मोहित व्यक्ति इस प्रकार की प्रार्थना होना उचित ही है ॥१४॥

यदुह वाव तव पुनरदभ्रकर्तरिह समाहूतस्तत्रार्थधियां मन्दानां नस्तद्यद्देवहेलनं देवदेवार्हसि साम्येन सर्वान्प्रतिवोढुमविदुषाम् ॥१५॥

अनुवाद— हे देवदेव आप भक्तों के बड़े-बड़े कामों को करते हैं । हम मन्दमति हैं कि कामना वशात् आपको यहाँ तुच्छ कार्य के लिए आहुत किए हैं । यद्यपि यह आपका अनादर ही है फिर भी आप समदर्शी हैं, अतएव हम अज्ञानियों की इस घृष्टता के लिए आप क्षमा करें ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अदभ्रकर्तः हे बहुकार्यकारिन्, अल्पीयसे कार्याय त्वं यद्यस्मादिह समाहूतोऽसि । त्र प्रजायामर्थे धीर्येषां मन्दानां तेषां नो यद्देवहेलनमवज्ञानं तत्सर्वान्प्रति तव साम्येन हेतुना प्रतिवोढुं सोढुमर्हसि ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

हे बड़े-बड़े कायों को करने वाले प्रभो ! अत्यन्त छोटे कार्य के लिए हमलोगों ने आपको समाहूत किया हैं । हमलोग सन्तान की प्राप्ति चाहते हैं । अतएव हम मन्दबुद्धियों ने आपका अनादर किया है फिर भी आप समदर्शी होने के कारण हमारे इस अपराध के लिए आप क्षमा करें ॥१५॥

श्रीशुक उवाच

इति निगदेनाभिष्टूयमानो भगवाननिमिषर्षभो वर्षधराभिवादिताभिवन्दितचरणः सदयमिदमाह ॥१६॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से गद्यात्मक स्तुति के द्वारा स्तुति किए जाते हुए भारतवर्ष के अधिपति महाराज नाभि के द्वारा अभिवादित और अभिनन्दित श्रीचरण वाले देवताओं में अग्रगण्य श्रीभगवान् दया पूर्वक कहें ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

इति निगदेन गद्यात्मकस्तोत्रेण वर्षधरो भारतवर्षपतिर्नाभिस्तेनाभिवादिता ये ऋत्विजस्तैरभिवन्दितौ चरणौ यस्य ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह कण्टतः गद्यात्मक स्तोत्रेण के द्वारा वर्षाधिपति महाराज नाभि से अभिवादित जो ऋत्विजों के द्वारा श्रीभगवान् के चरण कमल अभिवन्दित है ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच

अहो बताहमृषयो भवद्भिरवितथगीर्भिर्वरमसुलभमभियाचितो तदमुष्यात्मजो मया सदृशो भूयादिति ममाहमेवाभिरूपः कैवल्यादथापि ब्रह्मवादो न मृषा भवितुमर्हति ममैव हि मखं यद्विजदेवकुलम्॥१७॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— ऋषियों आपलोगों ने मेरी स्तुति की है और आप सभी सत्यवादी महात्मा है । आपलोगों ने मुझसे

अत्यन्त दुर्लभ वरदान माँगा है कि राजर्षि नाभि का पुत्र मेरे ही सदृश हो। किन्तु अपने सदृश तो मैं ही हूँ क्योंकि मैं अद्वितीय हूँ। किन्तु ब्राह्मणों की वाणी मिथ्या नहीं होनी चाहिए। ब्राह्मणों का कुल तो मेरा ही मुख है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

असुलभत्वे हेतुः- ममाहमेवाभिरूपः सदृशः। कैवल्याद्द्वितीयत्वात्। द्विजेषु देवा इव ये ब्राह्मणास्तेषां कुलम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों द्वारा मागे गये वरदान के दुर्लभ होने का कारण है कि मेरे सदृश तो मैं ही हूँ। क्योंकि मैं अद्वितीय हूँ। ब्राह्मणें में देवता के समान जो ब्राह्मण हैं, उनका वंश तो मेरा मुख ही है ॥१७॥

तत आग्नीध्रीयेंऽशकलयाऽवतरिष्याम्यात्मतुल्यमनुपलभमानः ॥१८॥

अनुवाद— इसलिए आग्नीध्र के पुत्र नाभि के पुत्र के रूप में स्वयम् अपने अंश कला से अवतीर्ण होऊँगा क्योंकि मेरे सदृश दूसरा कोइ उपलब्ध नहीं है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

आग्नीध्रीये नाभौ ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने ब्राह्मणों से कहा कि चूकि मेरे सदृश दूसरा कोई उपलब्ध नहीं है, अतएव अपने अंश कला से मैं आग्नीध्र के पुत्र नाभि के पुत्र के रूप में स्वयम् अवतीर्ण होऊँगा ॥१८॥

श्रीशुक उवाच

इति निशामयन्त्या मेरुदेव्याः पतिमभिधायान्तर्दधे भगवान् ॥१९॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— मेरु देवी के सुनते हुए उनके पति महाराज नाभि को इस प्रकार कहकर श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

पतिं नाभिम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

मेरु देवी के पति महाराज नाभि को कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये ॥१९॥

बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान्परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान्दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनुवाऽवततार ॥२०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे नाभिचरित्र तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अनुवाद— हे विष्णुदत्त (परीक्षित्) उस यज्ञ में महर्षियों द्वारा प्रसन्न किए जाने पर श्रीभगवान् राजर्षि नाभि का प्रिय कार्य करने के लिए, उनके रनिवास में मेरुदेवी के गर्भ से दिगम्बर संन्यासी और ऊर्ध्वरेता मुनियों का धर्म प्रकट करने के लिए शुद्ध सत्त्वमय शरीर से प्रकट हुए ॥२०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के नाभि चरित के अन्तर्गत तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

हे विष्णुदत्त, तस्यावरोधायनेऽन्तःपुरे मेरुदेव्यां शुक्लया शुद्धसत्त्वरूपया मूर्त्याऽवततार । केषां धर्मान् । वातरशनानां दिग्वाससाम् पाषण्डिव्यावृत्त्यर्थमाह । श्रमणानां तपस्विनाम् । ऋषीणां ज्ञानिनाम् । उर्ध्वमन्थिनाम् नैष्ठिकब्रह्मचारिणाम् ॥२०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चस्न्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

हे विष्णुदत्त परिक्षित् महाराज नाभि के रनिवास में मेरुदेवी के गर्भ से श्रीभगवान् शुद्धसत्त्वमय शरीर से अवतीर्ण हुए । उनके अवतार का प्रयोजन दिगम्बर तपस्वियों के पाखण्डियों का वारण करने के लिए श्रमणानाम अर्थात् तपस्वियों को कहा गया है । ऋषियों (ज्ञानियों) तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारियों के धर्म को प्रकट करना ॥२०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पञ्चम स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के तीसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥३॥

चौथा अध्याय

ऋषभदेवजी का राज्य शासन

श्रीशुक उवाच

अथ ह तमुत्पत्त्यैवाभिव्यज्यमानभगवल्लक्षणं साम्योपशमवैराग्यैश्वर्यमहाविभूतिभिरनुदिनमेधमानानुभाव प्रकृतयः प्रजा ब्राह्मणा देवताश्चावनितलसमवनायातितरा जगृधुः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! जन्म से ही ऋषभदेव जी के अङ्ग जन्म से ही भगवान् के वज्र अङ्कुश आदि चिह्नों से युक्त थे । समता, शान्ति, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि महाविभूतियों के कारण उनका प्रभाव अनुदिन बढता जाता था । यह देखकर मन्त्री आदि प्रकृतिवर्ग, प्रजा, ब्राह्मण और देवताओं की यह अत्यधिक इच्छा थी कि ये ही पृथिवी का प्रशासन करें ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्थादित्रिभिः प्रोक्तमृषभस्येहितं महत् । लोकार्थं येन सत्कर्म नैष्कर्म्यं च निदर्शितम् ॥१॥ चतुर्थे शतपुत्रस्य राज्यं तस्योपवर्ण्यते । यस्य राज्ये जनः सर्वः संतोषामृतनिर्वृतः ॥२॥ अभिव्यज्यमानानि भगवल्लक्षणानि पादतलादिषु वज्राङ्कुशादीनि यस्य । महाविभूतिः सर्वसंपत्तिः । साम्यादिभिः । सह वर्धमानप्रभावम् । प्रकृतयोऽमात्यादयः । जगृधुरभिकाङ्क्षन्ति स्म ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौथे, पाँचवें और छठे इन तीन अध्यायों में ऋषभदेव जी का चरित वर्णित है । उन्होंने संसार का कल्याण करने के लिए सत्कर्म का उपदेश दिया । चौथे अध्याय में सौ पुत्रों वाले ऋषभदेवजी के राज्य का वर्णन किया गया है । उनके पैरों के तलवों में भगवान् विष्णु के वज्र अङ्कुश आदि चिह्न विद्यमान थे । महाविभूतियों के साथ उनका प्रभाव अनुदिन बढ़ता जाता था । प्रकृति शब्द से मन्त्री आदि प्रजाओं को कहा गया है । वे उन सबों की उत्कट इच्छा थी कि ऋषभ देवजी ही राज्य का प्रशासन करें ॥१॥

तस्य ह वा इत्थं वर्ष्मणा वरीयसा बृहच्छ्लोकेन चौजसा बलेन श्रिया यशसा वीर्यशौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इतीदं नाम चकार ॥२॥

अनुवाद— उनके सुन्दर शरीर, विपुल कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम और शूरवीरता, आदि गुणों के कारण महाराज नाभि ने उनका नाम ऋषभ (श्रेष्ठ) रखा ॥२॥

भावार्थ दीपिका

वर्ष्मणा देहेन । तस्य विशेषणद्वयम् । वरीयसा श्रेष्ठतमेन । बृहन्तः श्लोकाः पद्यानि कवीनां यस्मिंस्तेन च । ओजस्तेजः। वीर्यं प्रभावः । शौर्यमुत्साहः । एतैर्गुणैरतिश्रेष्ठत्वादृषभः श्रेष्ठ इति नाम चकार ॥२॥

भाव प्रकाशिका

वर्ष्म शब्द शरीर का वाचक है । इस तरह से ऋषभदेव के दो विशेषण हैं । श्रेष्ठतम शरीर और तथा विपुलकीर्ति ओज अर्थात् तेज, पराक्रम धैर्य अर्थात् उत्साह इन सभी गुणों के द्वारा अत्यन्त श्रेष्ठ होने के कारण पिता ने इनका नाम ऋषभ रखा ॥२॥

तस्य हींद्रः स्पर्धमानो भगवान्वर्षे न ववर्ष तदवधार्य भगवानृषभदेवो योगेश्वरः प्रहस्यात्मयोगमायया स्ववर्षमजनाभं नामाभ्यवर्षत् ॥३॥

अनुवाद— एक बार इन्द्र ने इनसे स्पर्धा करते हुए इनके राज्य में वर्षा नहीं की, तब इन्द्र की मूर्खता पर हँसते हुए इन्होंने अपनी योग माया के बल से अजनाभ खण्ड में खूब वर्षा की ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तस्य वर्षे मण्डले ॥३॥

भाव प्रकाशिका

ऋषभदेव के राज्य में ॥३॥

नाभिस्तु यथाभिलषितं सुप्रजास्त्वमवरुध्यातिप्रमोदभरविह्वलो गद्गदाक्षरया गिरा स्वैरं गृहीतनरलोकसधर्मं भगवन्तं पुराणपुरुषं मायाविलसितमतिर्वत्स तातेति सानुरागमुपलालयन्परां निर्वृतिमुपगतः ॥४॥

अनुवाद— महाराज नाभि अपनी इच्छा के अनुसार श्रेष्ठ पुत्र को प्राप्त करके आनन्दमग्न हो गये और अपनी इच्छानुसार मनुष्य शरीर को धारण करने वाले पुराण पुरुष श्रीहरि का सप्रेम लालन करते हुए उनकी लीला के विलास से मुग्ध होकर वत्स, तात ऐसी गद्गद वाणी से उनको अभिहित करते हुए अत्यन्त आनन्दित होते थे॥४॥

भावार्थ दीपिका

अवरुध्य प्राप्य । स्वैरमिच्छया गृहीतो नरलोकसमानधर्मो मनुष्याकारो येन तम् । अतएव मायया स्वपुत्र इति विलसिता मतिर्यस्य ॥४॥

भाव प्रकाशिका

अवरुध्य अर्थात् अपनी इच्छानुसार मनुष्य के समान आकार को धारण करने वाले । अतएव माया के कारण उनकी अपने पुत्र में ही बुद्धि लगी रहती थीं ॥४॥

विदितानुरागमापौरप्रकृति जनपदो राजा नाभिरात्मजं समयसेतुरक्षायामभिषिच्य ब्राह्मणेषूपनिधाय सह मेरुदेव्या विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्यं भगवन्तं वासुदेवमुपासीनः कालेन तन्महिमानमवाप ॥५॥

अनुवाद— जब उन्होंने देखा कि मन्त्रिवर्ग, जनता नागरिक सबके सब ऋषभ देव से बहुत प्रेम करते हैं, तो उन्होंने ऋषभदेव को धर्म मर्यादा की रक्षा करने के लिए उनको राज्याभिषिवत कर दिया और स्वयं वे मेरु देवी के साथ बदरिकाश्रम में चले गये। वहाँ पर अहिंसा वृत्ति से जिससे किसी को उद्वेग नहीं इस तरह कौशल पूर्ण तपस्या से तथा समाधि योग के द्वारा भगवान् वासुदेव की मूर्ति नर नारायण की आराधना करते हुए समयानुसार काल आने पर उनमें ही लीन हो गये ॥५॥

भावार्थ दीपिका

आपौरप्रकृति पौरान्प्रकृतींश्चाभिव्याप्य। विदितोऽनुरागो यस्मिन्। कथंभूतो नाभिः। जनपदः जनाः पौरादय; पदं प्रमाणं यस्य सः। आत्मजं धर्ममर्यादारक्षणार्थमभिपिच्च। ब्राह्मणानामुत्सङ्गे निधाय। विशालायां बदरिकाश्रमे। प्रसन्नं परानुद्वेजकं निपुणं च तीव्रं तेन। उपासीनः सेवमानः कालेन तन्महिमानं जीवन्मुक्तिमवाप ॥५॥

भाव प्रकाशिका

ऋषभ देव में ही नागरिकों तथा राष्ट्र के प्रजाओं का प्रेम जानकर कैसे महाराज नाभि ? तो इसका उत्तर है नागरिक आदि ही जिनमें प्रमाण है ऐसे पुत्र को धर्म की मर्यादा की रक्षा करने के लिए उनको अभिषिक्त करके तथा ब्राह्मणों के ऊपर उनका भार छोड़कर अपनी पत्नी मेरुदेवी के साथ बदरिकाश्रम में अहिंसा वृत्ति से तथा दूसरों के अनुद्वेजक तप करते हुए वासुदेव भगवान् नारायण की आराधना करते हुए समयानुसार जीवन्मुक्ति को प्राप्त कर लिए ॥५॥

यस्य ह पाण्डवेय श्लोकावुदाहरन्ति।

अनुवाद— उनके विषय में लोग दो श्लोकों को उद्धृत करते हैं।

को नु तत्कर्म राजर्षेर्नाभेरन्वाचरेत्पुमान्। अपत्यतामगाद्यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ॥६॥

अन्वयः— राजर्षेर्नाभेः तत् कर्म को नु अन्वाचरेत् यस्य शुद्धेन् कर्मणा हरिः अपत्यताम् अगात् ॥६॥

अनुवाद— महाराज नाभि के उदार कर्मों का आचरण कौन पुरुष कर सकता है ? जिनके शुद्ध कर्मों से सन्तुष्ट होकर श्रीहरि उनके पुत्र बन गये ॥६॥

भावार्थ दीपिका

नाभेस्तत्प्रसिद्धं कर्म। अनु तदनन्तरं को नु पुमानाचरेत्। न कोऽपीत्यर्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

महाराज नाभि के प्रसिद्ध कर्मों का उनके पश्चात् कौन मनुष्य कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥६॥

ब्रह्मण्योऽन्यः कुतो नाभेर्विप्रा मङ्गलपूजिताः। यस्य बर्हिषि यज्ञेशं दर्शयामासुरोजसा ॥७॥

अन्वयः— नाभेः अन्यः ब्रह्मण्यः कुतः यस्य मङ्गलपूजिताः विप्राः यस्य बर्हिषि विप्राः ओजसा यज्ञेशं दर्शयामासुः ॥७॥

अनुवाद— महाराज नभि से भिन्न दूसरा कौन ब्राह्मण भक्त हो सकता है ? जिनकी दक्षिणा से संतुष्ट होकर ब्राह्मणों ने उनके यज्ञ में उनको यज्ञेश भगवान् विष्णु का दर्शन करा दिया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

मङ्गलैर्दक्षिणाभिः पूजिताः सन्तः। ओजसा मन्त्रबलेन ॥७॥

भाव प्रकाशिका

मङ्गलपूजितः अर्थात् दक्षिणा से प्रसन्न होकर ओजसा अर्थात् अपने मन्त्र के बल से ॥७॥

अथ ह भगवानृषभदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रमनुमन्यमानः प्रदर्शितगुरुकुलवासो लब्धवरैर्गुरुभिरनुज्ञातो गृहमेधिनां धर्माननुशिक्षमाणो जयन्त्यामिन्द्रदत्तायामुभयलक्षणं कर्मसमाम्नायाम्नातमभियुञ्जन्नात्मजानामात्मसमानानां शतं जनयामास ॥८॥

अनुवाद उसके पश्चात भगवान ऋषभदेव अजनाभ खण्ड को अपना कर्मक्षेत्र मानकर कुछ समय तक गुरुकुल में वास किए। गुरुदेव को उचित दक्षिणा देकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश के लिए उनकी आज्ञा लिए। फिर गृहस्थों के धर्म की शिक्षा देने के लिए इन्द्र के द्वारा प्रदत्त उनकी पुत्री जयन्ती से उन्होंने विवाह किया। श्रौत एवं स्मार्त दोनों प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान करते हुए उससे अपने ही समान गुण वाले सौ पुत्रों को उन्होंने उत्पन्न किया॥८॥

भावार्थ दीपिका

अन्येषां ग्रहणाय प्रदर्शितो गुरुकुलवासो येन। अनुशिक्षमाणोऽनुशिक्षयन्। उभयविधं श्रुतिस्मृतिलक्षणं कर्मविधिमभियुञ्जन्ननुतिष्ठन् जयन्त्यां भार्यायामात्मजानां शतं जनयामास ॥८॥

भाव प्रकाशिका

दूसरों को शिक्षा देने के लिए गुरुकुल में निवास किए। पुनः गृहस्थाश्रम की शिक्षा देते हुए श्रौत एवं स्मार्त दोनों प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान करते हुए अपनी पत्नी जयन्ती के गर्भ से सौ पुत्रों को उत्पन्न किए ॥८॥

येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति ॥९॥

अनुवाद— उन पुत्रों में महायोगी भरत सबसे बड़े और सबसे अधिक गुणवान् थे। उन्हीं के नाम से लोग इस अजनाभ खण्ड को लोग भारत वर्ष कहने लगे ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

तमनु कुशावर्त इलावर्तो ब्रह्मावर्तो मलयः केतुर्भद्रसेन इन्द्रस्पृग्विदर्भः कीकट इति नव नवतिप्रधानाः॥१०॥

अनुवाद— उनसे छोटे कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक् विदर्भ और कीकट ये नव राजकुमार और नबे पुत्रों से प्रधान थे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तं भरतमनु कुशावर्तादयो नव पुत्रा नवतेः प्रधाना ज्येष्ठाः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

भरत से छोटे कुशावर्त इत्यादि नव पुत्र नब्बे पुत्रों से ज्येष्ठ थे ॥१०॥

कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः। आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥११॥

अन्वयः— कविः हरिः अन्तरिक्षः, प्रबुद्धः पिप्पलायन आविर्होत्रः, द्रुमिलः चमसः करभाजनश्च ॥११॥

अनुवाद—उनसे छोटे कवि हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल चमस और पिप्पलायन॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

इति भागवतधर्मदर्शना नव महाभागवतास्तेषां सुचरितं भगवन्महिमोपबृंहितं वसुदेवनारदसंवादमुपशमायनमुपरिष्टाद्वर्णयिष्यामः ॥१२॥

अनुवाद— ये नवों भागवत धर्म के ज्ञाता थे महाभागवत थे। इन सबों के सुन्दर चरित्र का वर्णन नारद

वासुदेव संवाद के प्रसङ्ग में आगे एकादश स्कन्ध में करेंगे। इन सबों का चरित्र श्रीभगवान् की महिमा से महिमामण्डित और परम शान्तिपूर्ण है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तदनन्तरं कविप्रमुखा नव भागवतधर्मप्रदर्शकाः वसुदेवनारदयोः संवादो यस्मिन् । उपरिष्टादेकादशस्कन्धे ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

इन नवों से छोटे कवि आदि हैं। ये भागवत धर्म के प्रचारक हैं। आगे ग्यारहवें स्कन्ध के वसुदेव नारद के संवाद के प्रसङ्ग में इन सबों के सुन्दर चरित्र का वर्णन किया जायेगा ॥१२॥

यवीयांस एकाशीतिर्जायन्तेयाः पितुरादेशकरा महाशालीना महाश्रोत्रिया यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा बभूवुः ॥१३॥

अनुवाद— इनसे छोटे जयन्ती के इक्यासी पुत्र अपने पिता की आज्ञा का पालन करने वाले, अति विनीत महान् वेदज्ञ और निरन्तर यज्ञ करने वाले थे। वे पुण्यों का अनुष्ठान करने वाले होने के कारण ब्राह्मण हो गये॥१३॥

भावार्थ दीपिका

महाशालीना अतिविनीताः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त विनीत थे ॥१३॥

भगवानृषभसंज्ञ आत्मतन्त्रः स्वयं नित्यनिवृत्तानर्थपरम्परः केवलानन्दानुभव ईश्वर एव विपरीतवत्कर्माण्यारभमाणः कालेनानुगतं धर्ममाचरणेनोपशिक्षयन्नतद्विदां सम उपशान्तो मैत्रः कारुणिको धर्मार्थयशःप्रजानन्दामृतावरोधेन गृहेषु लोकं निशमयत् ॥१४॥

अनुवाद— भगवान् ऋषभदेव यद्यपि परम स्वतन्त्र होने के कारण स्वयं सर्वदा सब प्रकार की अनर्थ परम्परा से रहित, केवल अनन्दानुभव स्वरूप, और साक्षात् ईश्वर थे, फिर अज्ञानियों के समान कर्म करते हुए उन्होंने काल के अनुसार प्राप्त धर्म का आचरण करके, उसका तत्त्व नहीं जानने वाले लोगों को उन्होंने शिक्षा दी। इसके अतिरिक्त वे सम, शान्त, सुहृत तथा कारुणिक रहकर, धर्म, अर्थ, यश, सन्तान भोग-सुख और मोक्ष का संग्रह करते हुए गृहस्थाश्रम में नियमित किए ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

केवलः शुद्धः विपरीतवत् अनीश्वरवत्कर्माणि कुर्वन् । नियमयत् नियमितवान् । पाठान्तरे नितरामरमयत् । कर्मकरणे हेतुः-अनुगतमुत्सन्नं धर्मं स्वयमाचरणेनातद्विदामुपशिक्षयन् । कथम् । धर्मादीनामवरोधेन संग्रहेण । आनन्दो भोगः । अमृतं मोक्षः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

शुद्ध होते हुए भी भगवान् ऋषभदेव अज्ञानी के समान कर्म करते रहे। उन्होंने लोगों को गृहस्थाश्रम में नियमित किया। जहाँ दूसरा पाठ है, वहाँ अर्थ होगा कि उसमें रमण किए। कर्म करने का कारण था कि वे विनष्ट धर्म का स्वयम् आचरण करके लोगों को उसकी शिक्षा दिए। धर्म आदि के अवरोध (संग्रह) के द्वारा आनन्द शब्द से भोग को अमृत शब्द से मोक्ष को कहा गया है ॥१४॥

यद्यच्छीर्षण्याचरितं तत्तदनुवर्तते लोकः ॥१५॥

अनुवाद— महापुरुष जैसा-जैसा आचरण करते हैं दूसरे लोग उसी का अनुसरण करते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

शीर्षण्यः श्रेष्ठस्तेनाचरितम् । तत्तदनुवर्तते यतः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, अन्य लोग उसी का आचरण करते हैं ॥१५॥

यद्यपि स्वविदितं सकलधर्मं ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैर्दर्शितमार्गेण सामादिभिरुपायैर्जनतामनुशशास ॥१६॥

अनुवाद— यद्यपि वे स्वयं सभी वेदों के सार स्वरूप वेदों के स्वयं ज्ञाता थे फिर भी ब्राह्मणों के द्वारा बतायी गयी विधि से ही वे साम तथा दान आदि विधि से ही प्रजाओं का पालन करते थे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

सकलो धर्मो यस्मिंस्तद्ब्राह्मं गुह्यं वेदरहस्यं यद्यपि स्वेनैव विदितं तथापि ब्राह्मणान् पृष्ट्वैव करोतीत्यर्थः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

जिसमें सभी धर्मों का वर्णन है उस वेद के रहस्य को वे स्वयं जानते थे फिर भी वे ब्राह्मणों से पूछ कर ही साम दान आदि उपायों से प्रजाओं का पालन करने का काम किया करते थे ॥१६॥

द्रव्यदेशकालवयः श्रद्धर्त्विग्विविधोद्देशोपचितै सर्वैरपि ऋतुभिर्यथोपदेशं शतकृत्व इयाज ॥१७॥

अनुवाद— द्रव्य, देश, काल, आयु, श्रद्धा तथा ऋत्विज आदि से सम्पन्न सभी प्रकार के यज्ञों को शास्त्र एवं ब्राह्मणों के उपदेशानुसार ही सौ-सौ बार किया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

द्रव्यादिभिरुपचितैर्यज्ञैरिष्टवान् । तत्र वयो यौवनम् । 'युवैव धर्ममन्विच्छेत्' इति वचानत् । विविधोद्देशा नानादेवतोद्देशाः । यथोपदेशं यथाविधि ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् ऋषभदेव ने द्रव्य आदि से सम्पन्न यज्ञों से यजन किया । युवा अवस्था में ही धर्म करने की इच्छा करनी चाहिए 'युवैव धर्ममन्विच्छेत्' इस श्रुति के अनुसार अनेक देवताओं के लिए शास्त्र और ब्राह्मणों के उपदेशानुसार उन्होंने सौ-सौ बार यज्ञ किया ॥१७॥

भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन्वर्षे न कश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथंचन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसवनं विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण ॥१८॥

अनुवाद— भगवान् ऋषभदेव के प्रशासन काल में इस देश में कोई भी पुरुष अपने लिए किसी से भी अपने प्रभु के प्रेम के प्रति प्रतिदिन बढ़ने वाले प्रेम के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा भी नहीं करता था । अविद्यमान के समान कोई भी किसी भी वस्तु की ओर दृष्टिपात भी नहीं करता था ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अन्यस्मात्कस्माच्चिदात्मनः कश्चिदपि किमपि कथंचनापि न वाञ्छति । इच्छानुदये दृष्टान्तः-अविद्यमानं खपुष्पादिकमिव । न चान्यदीयमवेक्षतेऽपीत्यर्थः । भर्तरि ऋषभदेवे प्रतिक्षणमुल्लसितस्नेहोद्रेकं विनाऽन्यत्र वाञ्छति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् ऋषभदेव के प्रशान काल में कोई भी व्यक्ति किसी से अपने लिए किसी भी वस्तु को नहीं चाहता था। किसी वस्तु की इच्छा का उदय नहीं होने का दृष्टान्त यह है कि अविद्यमान आकाश पुष्प के समान कोई किसी की भी वस्तु की ओर देखता भी नहीं था। भगवान् ऋषभदेव में प्रतिक्षण बढ़ने वाले प्रेम की उद्रिक्तता के अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु चाहता भी नहीं था ॥१८॥

स कदाचिदटमानो भगवानृषभो ब्रह्मावर्तगतो ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां प्रजानां निशामयन्तीनामात्मजानवहितात्मनः प्रश्रयप्रणयभरसुयन्त्रितानप्युपशिक्षयन्निति होवाच ॥१९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अनुवाद— एक बार घूमते हुए भगवान् ऋषभदेव ब्रह्मावर्त देश में पहुँच गये। वहाँ बड़े-बड़े ब्रह्मर्षियों की सभा में प्रजाओं के सामने ही अपने समाहित और विनय तथा प्रेम के भार से सुसंयत् पुत्रों को शिक्षा देने के लिए उन्होंने इस प्रकार कहा ॥१९॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के ऋषभदेव चरित के प्रसङ्ग में चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

अवहितात्मनः संयतचित्तानपि प्रजानुशासनार्थमुपशिक्षयन्निति ह वक्ष्यमाणमुवाच ।।१९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

संयत चित्त वाले भी पुत्रों को प्रजाओं का प्रशासन करने के लिए शिक्षा देते हुए अगले अध्याय में कही जाने वाली बातों को कहा ॥१९॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के चौथे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।४।।

* * *

पाँचवाँ अध्याय

ऋषभदेवजी का अपने पुत्रों को उपदेश और स्वयं अवधूत वृत्ति का ग्रहण

ऋषभ उवाच

नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान्कामानर्हते विड्भुजां ये ।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुद्ध्येद्यस्माद्ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥१॥

अन्वयः— हे पुत्रका नृलोके अयं देहः देहभाजं, कष्टान्, कामान् न अर्हते ये विडभुजां दिव्यं तप अर्हते येन यस्मात् तु अनन्तं ब्रह्मसौख्यम् ॥१॥

ऋषभदेवजी ने कहा

अनुवाद— पुत्रों ! इस मनुष्य लोक में शरीर धारियों को यह मानव शरीर दुःखमय विषय भोगों को

करने के लिए नहीं है । ये विषय भोग तो सूकर कूकर आदि को भी प्राप्त होते हैं । यह शरीर दिव्य तप करने के लिए प्राप्त है । तप करने से अन्त: करण शुद्ध होता है और उसी से अनन्त सानन्द की प्राप्ति होती है ।।१।।

भावार्थ दीपिका

पञ्चमे मोक्षधर्मोपदेशैः पुत्रानुशासनम् । उक्तं पारमहंस्यं च तस्य द्वन्द्वतितिक्षया ।।१।। विड्भुजामपि ये सन्ति तान्कष्टादुःखदान्कामान्विषयान्नार्हति तद्योग्योऽयं मनुष्यदेहो न भवति । दिव्यमुत्कृष्टम् । येन तपसा । यस्माच्छुद्धात्सत्त्वादनन्तं ब्रह्मसुखं भवति ।।१।।

भाव प्रकाशिका

पाँचवे अध्याय में धर्मोपदेश के द्वारा ऋषभदेव जी ने अपने पुत्रों को उपदेश दिया है । उन्होंने पारमहंस्य धर्म का वर्णन किया है और उसके शीत उष्ण आदि द्वन्दों को सहने के लिए कहा है । यह मानव देह कूकरों सूकरों को भी प्राप्त होने वाले कष्टमय विषयोपभोग के लिए नहीं प्राप्त हुआ है अपितु उत्कृष्ट तपस्या करने के लिए प्राप्त है जिससे अन्त:करण शुद्ध होता है और उससे अनन्त ब्रह्म सुख की प्राप्ति होती है ।।१।।

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम् । महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ।।२।।

अन्वयः— महत् सेवां विमुक्ते द्वारम् आहुः योषितां सङ्गसङ्गम् तमोद्वारम् ये समचित्ताः प्रशान्ताः विमन्यवः सुहृदः साधवः तेमाहान्तः ।।२।।

अनुवाद— महापुरुषों की सेवा को मुक्ति का द्वार कहा गया हैं और स्त्रियों के सङ्गी (कामी) पुरुषों के सङ्ग को नरक का द्वार कहा गया है । जो लोग समान चित्त वाले, परमशान्त, क्रोध रहित, और सबके हित चिन्तक हैं ऐसे साधु पुरुष ही महान हैं ।।२।।

भावार्थ दीपिका

मोक्षबन्धयोर्निदानमाह-महत्सेवामिति । तमसः संसारस्य द्वारं योषितां ये सङ्गिनस्तेषां सङ्गम् । महतां लक्षणमाह सार्धेन महान्त इति साधवः सदाचाराः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

मोक्ष और बन्ध दोनों का कारण बतलाते हैं **महत् सेवम्० इत्यादि** इस श्लोक के द्वारा कहते हैं कि महापुरुषों की सेवा ही मुक्ति का द्वार है और स्त्रियों के सङ्ग रहने वाले जो हैं उन कामी पुरुषों का सङ्ग नरक का द्वार है। डेढ श्लोको में महत्पुरुषों का लक्षण बतलाते है । साधवः शब्द से सदाचार परायण पुरुषों को कहा गया है ।।२।।

ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था जनेषु देहंभरवार्तिकेषु ।
गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु न प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके ।।३।।

अन्वयः— येवा मयि ईशे कृतसौहृदार्थाः देहं भरवर्तिकेषु जायात्मजरातिमत्सु गृहेषु **यावदर्थाश्च** लोके न प्रीतियुक्ता साधव इति द्वितीयेनान्वयः ।।२।।

अनुवाद— अथवा जो लोग एक मात्र परमात्मा में प्रेम को ही पुरुषार्थ मानते हों, केवल विषयों की ही चर्चा करने वाले, लोगों में तथा स्त्री पुत्र और धन आदि सामग्रियों से सम्पन्न गृहों में जिनकी रुचि न हो, तथा संसार की सभी वस्तुओं में जिनका प्रेम नहीं है ऐसे साधुजन ही महापुरुष हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

मयि ईशे कृतं सौहृदमेवार्थ; पुरुषार्थो येषाम् । वाशब्देनान्यनिरपेक्षस्यैवास्य लक्षणत्वं दर्शयति । देहं विभर्तीति देहंभरा विषयवार्तैव न धर्मविषया येषु तेषु जनेषु जायादियुक्तेषु गृहेषु च । रतिर्मित्रं धनं वा । पाठान्तरे जायादिप्रदेषु । यावदर्थाश्च यावदर्थमेवार्थो येषामिति मध्यमपदलोपी समासः । देहनिर्वाहाधिकस्पृह्यशून्या इत्यर्थः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

मुझ परमात्मा में प्रेम करने को ही जो अपना पुरुषार्थ मानते हों, वा शब्द के द्वारा अन्य निरपेक्षता को ही साधु का लक्षण बतलाया गया है । केवल विषयों की ही चर्चा करने वाले और धर्म की चर्चा नहीं करने वाले लोगों में तथा पत्नी आदि युक्त गृहों में तथा धन में तथा देह निर्वाह के लिए अपेक्षित से अधिक धन में जिसका प्रेम नहीं है ऐसे साधुजन ही महान है । जो पाठान्तरनायात्मजरातिषु पाठ है वहाँ अर्थ होगा पत्नी आदि प्रद गृहों में जिनकी रुचि नहीं है । यावदर्थाश्च में यावदर्थमेवार्थो येषां ते इस तरह से मध्यमपदलोपी समास है । अर्थात् देह निर्वाह के लिए अपेक्षित धन से अधिक धन में जिनकी स्पृहा नही है ऐसे ही लोग महापुरुष है ।।३।।

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ।
न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयमसन्नपि क्लेशद आस देहः ।।४।।

अन्वयः— यत् इन्द्रिय प्रीतये आपृणोति नूनं प्रमत्तः विकर्म कुरुते । साधु न मन्ये, यज आत्मनोऽयम् असत् अपि क्लेशदः देहः आस ।।४।।

अनुवाद— मनुष्य जब इन्द्रियों की प्रीति के लिए कार्यों में व्यापृत होता है तो निश्चित रूप से वह प्रमादवशात् पाप कर्मो को करता है । मैं इसे अच्छा नहीं समझता हूँ, क्योंकि इसी के कारण आत्मा को यह असत् और क्लेशप्रद शरीर प्राप्त होता है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

कामान्नार्हतीति यदुक्तं तदुपपादयति-नूनमिति । यद्यदा इन्द्रियप्रीतये आपृणोति व्याप्रियते तदा प्रमत्तः सन्विकर्म पापं नूनं कुरुते । यतो विकर्मणः प्राचीनादयं क्लेशदो देहो जातस्तस्यैव पुनः करणं साधु न मन्ये ।।४।।

भाव प्रकाशिका

प्रथम श्लोक में यह जो कहा गया है कि भोगों को भोगने के लिए यह शरीर नहीं मिला है, उसी का प्रतिपादन **नूनम्० इत्यादि** श्लोक में किया गया है । जब मनुष्य अपनी इन्द्रियों की प्रीति के लिए कर्मों को करता है तो निश्चित रूप से प्रमादवशात् यह पाप कर्मो को करता है । क्योंकि पूर्वजन्म के पाप कर्मों के ही करण आत्मा को इस क्लेशप्रद शरीर की प्राप्ति हुई है । फिर उसी पाप कर्म को करना मैं अच्छा नहीं मानता हूँ ।।४।।

पराभवस्तावदबोधजातो यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम् ।
यावत्क्रियास्तावदिदं मनो वै कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः ।।५।।

अन्वयः— अबोधजातः तावत् पराभवः यावत् आत्मतत्त्वं न जिज्ञासते, यावत् क्रियाः तावत् इदं कर्मात्मकं मनः येन शरीर बन्धः ।।५।।

अनुवाद— अज्ञानवशात् जीव का स्वरूप तब तक छिपा रहता है जब तक कि मनुष्य आत्मज्ञान की जिज्ञासा नहीं करता है । जब तक वह लौकिक वैदिक क्रियाओं में फँसा रहता है तब तक मन में कर्म की वासनाएँ बनी ही रहती हैं और इनसे ही देह का बन्धन प्राप्त होता है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

देहादेर्नश्वरत्वात्कियानयमनर्थ इत्याशङ्क्याह । पराभवो देहादिना स्वरूपाभिभवोऽज्ञानकृतस्तावद्भवति । तत्र हेतुः- यावत्क्रिया; स्युस्तावदिदं मनो हि कर्मस्वभावमेव स्यात् । येन कर्मात्मकेन मनसा ।।५।।

भाव प्रकाशिका

शरीर आदि के नश्वर होने के कारण यह अनर्थ कब तक होता रहता है ? इस प्रकार की शङ्का करके कहते हैं— देह आदि के द्वारा अज्ञान वशात् शरीर का अभिभव तब तक होता है । उसका कारण है कि जब तक मनुष्य लौकिक वैदिक क्रियाओं में फँसा रहता है तब तक यह मन बना रहता है । मन का स्वभाव ही है कर्म करना। वह कर्मात्मक मन जब तक बना रहता है तब तक शरीर का बन्धन होता ही रहता है ।।५।।

एवं मनः कर्मवशं प्रयुङ्क्ते अविद्ययात्मन्युपधीयमाने ।
प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत् ।।६।।

अन्वयः— एवं अविद्यया आत्मनि उपधीयमाने मनः कर्मवशं प्रयुंक्ते । यावन् मयि वासुदेवे न प्रीतिः तावत् देह योगेन न मुच्यते ।।६।।

अनुवाद— इस प्रकार से अविद्या के द्वारा आत्मा के स्वरूप के उपहित (ढँक) जाने से कर्म वासनाओं के वशीभूत हुआ मन मनुष्य को पुनः कर्म में ही लगाता है । अतएव मनुष्य को मुझ वासुदेव में प्रीति नहीं होती है तब तक वह देह के बन्धन से नहीं छूट पाता है ।।६।।

भावार्थ दीपिका

उक्तमुपसंहरति । एवं पूर्वकृतं कर्म कर्तृभूतं, मनः कर्मभूतं, वशं प्रयुङ्क्ते पुनः कर्मनिष्ठं करोतीति । जीवन्मुक्तकर्मव्यावृत्त्यर्थमाह- अविद्ययेति । अविद्यया आत्मनि उपधीयमाने आच्छाद्यमाने सति एवं मनः कर्तृ, पुरुषं कर्मवशं प्रयुङ्क्ते इति वा ।।६।।

भाव प्रकाशिका

पूर्वोक्त अर्थ का उपसंहार करते हुए कहते हैं । इस तरह पूर्वजन्म में किया गया कर्म ही कर्ता बन जाता है । और वह कर्म बने हुए को अपने वश में करके कर्मनिष्ठ बना देता है । जीवमुक्त से भिन्नता बतलाने के लिए **अविद्यया इत्यादि** कहते हैं । अर्थात् अविद्या के कारण आत्मा के ढँक जाने पर इस प्रकार का मन कर्ता बनकर पुरुष को कर्माधीन (कर्मनिष्ठ) बना देता है । और इसके कारण देह का बन्धन तब तक नहीं छूटता है जब तक कि मुझ वासुदेव में मनुष्य का प्रेम नहीं होता हैं ।।६।।

यदा न पश्यत्ययथा गुणेहां स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् ।
गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापानासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञः ।।७।।

अन्वयः— सहसा स्वार्थे प्रमत्तः विपश्चित् यदा गुणेहां अयथा न पश्यति गतस्मृतिः विन्दत तत्र तापान् आसद्य मैथुन्यमगारम् अज्ञः ।।७।।

अनुवाद— स्वार्थ में पागल बना हुआ जीव जब तक विवेक दृष्टि को अपनाकर इन्द्रियों की चेष्टाओं को मिथ्या नहीं मानता है तब तक आत्मस्मृति की विस्मृति हो जाने के कारण वह अज्ञानवशात् विषय प्रधान गृही आदि में आसक्त रहता है और तरह-तरह के क्लेशों को प्राप्त करता रहता हैं ।।७।।

भावार्थ दीपिका

न केवलं देहयोगमात्रम्, अनर्थान्तरं चेत्याह । यदा गुणानामिन्द्रियाणामीहां चेष्टामयथा मिथ्या आत्मीया न भवतीति विपश्चिद्विवेकी सन्न पश्यति । नु पश्यतीति पाठे अयथा आत्मीयत्वेनेत्यर्थः । तत्र तदा सहसा गतस्मृतिः स्वरूपस्मृतिशून्यः सन्नज्ञो मूढो मैथुनसुखप्रधानं गृहं प्राप्य तापान्विन्दति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

केवल देह बन्ध मात्र की ही बात नहीं है अपितु दूसरे अनर्थ भी होते हैं। जब तक इन्द्रियों की चेष्टाएँ मिथ्या हैं इस प्रकार की विवेक दृष्टि अपनाकर मनुष्य नहीं मानता है तब तक स्वरूप स्मृति से रहित होने के कारण वह अज्ञानी जहाँ प्रधान रूप से मैथुनजन्य सुख की प्रधानता है उस गृह को ही प्राप्त करके वह क्लेशों का अनुभव करता रहता है ॥७॥

पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः ।
अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहंममेति ॥८॥

अन्वयः— पुंसः स्त्रिया मिथुनी भावम् एतं तयोः हृदयग्रन्थिम् आहुः । अतो गृहक्षेत्रसुताप्त वित्तैः जनस्य अयं मोहः अहंमम इति ॥८॥

अनुवाद— स्त्री और पुरुष दोनों का जो आपस में दाम्पत्य भाव हैं इसको ही पण्डितजन उनके हृदय की दूसरी दुर्मोच और स्थूल ग्रन्थि मानते हैं। देहाभिमान रूपी एक-एक सूक्ष्मग्रन्थि तो उनके हृदय में पहले से ही रहती है। इसी के कारण जीव को गृह, खेत, पुत्र, और वित्त आदि में अहन्त्व तथा ममत्व का मोह हो जाता है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

ननु यथोपयोगं स्त्रिया मिथुनीभूय सुखमात्रमनुभवतः कुतस्तापाः स्युस्तत्राह- पुंस इति । प्रत्येकं तयोरेकैको हृदयग्रंथिरस्त्येव। एतं मिथः परस्परं स्थूलमन्यं हृदययोर्ग्रन्थि दुर्भेदं वदन्ति । कुत इत्यत आह । अतोऽस्मान्मिथुनीभावात् । प्रत्येकं हृदयग्रन्थिना तु देहेन्द्रियमात्रेऽहंममेति मोहोऽस्मात्तु गृहादिभिर्विषयभूतैर्महान्मोहो भवेदित्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि उपयोगानुसार स्त्री के साथ जोड़े बनकर सुरत मात्र का अनुभव करने वाले को कष्ट होना कैसे सम्भव है ? तो इसके उत्त में कहते हैं, स्त्री पुरुष का यह दाम्पत्य भाव दोनों के हृदय में होने वाली दूसरी स्थूल और दुर्भेद ग्रन्थि पण्डित जन मनते हैं। अतएव इस दाम्पत्य भव के कारण प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में देह तथा इन्द्रिय आदि अहंत्व और ममत्व की ग्रन्थि पहले से रहती ही है। इसके द्वारा तो विषयभूत गृह आदि के साथ भी अहन्त्व ममत्व का मोह बन जाता है ॥८॥

यदा मनोहृदयग्रन्थिरस्य कर्मानुबद्धो दृढ आश्लथेत ।
तदा जनः संपरिवर्ततेऽस्मान्मुक्तः परं यात्यतिहाय हेतुम् ॥९॥

अन्वयः— यदा अयं कर्मानुबद्धः मनोहृदयग्रन्थिः आश्लथेत तदाजनः संपरिवर्तते आस्मात् मुक्तः हेतुम् अतिहाय परं याति ॥९॥

अनुवाद— जिस समय कर्मवासनाओं के कारण पड़ी हुई इसकी यह दृढ मन और हृदय की ग्रन्थि शिथिल हो जाती है, उस समय मानव दाम्पत्य भाव से निवृत्त हो जाता है और संसार के हेतुभूत अहङ्कार को त्यागकर सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है और परम पद को प्राप्त कर लेता है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

कदा तर्हि तस्य निवृत्तिरत आह । यदाऽस्य जनस्य कर्मभिरनुबद्धो दृढो मनोरूपो हृदयग्रन्थिः शिथिलो भवेत्तदाऽस्मान्मिथुनीभावान्निवर्तते । ततश्च हेतुमहङ्कारं त्यक्त्वा मुक्तः सन्परं पदं याति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि इस दाम्पत्य भाव की निवृत्ति कब होती है ? इस पर कहते हैं जब इस मनुष्य का कर्मों से संबद्ध मन रूपी हृदय ग्रन्थि शिथिल पड़ जाती है तब मनुष्य इस मिथुनी भाव (दाम्पत्य भाव) से निवृत्त हो जाता है। उसके पश्चात् संसार के कारणभूत अहङ्कार का परित्याग करके जीव परमपद को प्राप्त कर लेता है ॥९॥

हंसे गुरौ मयि भक्त्याऽनुवृत्त्या वितृष्णया द्वन्द्वतितिक्षया च ।
सर्वत्र जन्तोर्व्यसनावगत्या जिज्ञासया तपसेहानिवृत्त्या ॥१०॥
मत्कर्मभिर्मत्कथया च नित्यं मद्देवसङ्गाद्गुणकीर्तनान्मे ।
निर्वैरसाम्योपशमेन पुत्रा जिहासया देहगेहात्मबुद्धेः ॥११॥
अध्यात्मयोगेन विविक्तसेवया प्राणेन्द्रियात्माभिजयेन सध्यक् ।
सच्छ्रद्धया ब्रह्मचर्येण शश्वदसंप्रमादेन यमेन वाचाम् ॥१२॥
सर्वत्र मद्भावविचक्षणेन ज्ञानेन विज्ञानविराजितेन ।
योगेन धृत्युद्यमसत्त्वयुक्तो लिङ्गं व्यपोहेत्कुशलोऽहमाख्यम् ॥१३॥

अन्वयः— हे पुत्राः ! कुशलः धृत्युत्तम युक्तः हंसे गुरौ मयि भक्त्या, अनुवृत्त्या, वितृष्णया, द्वन्दतितिक्षया, च सर्वत्र जन्तोर्व्यसनावगत्या, जिज्ञासया, तपसा, इहमनिवृत्तक्त्या, मत्कर्मभिः मत्कथया च नित्यं, मद्देव सङ्गात् में गुणकीर्तनात्, निर्वैरसाम्योपशमेन, देहगेहात्मबुद्धेः जिहासया, अध्यात्मयोगेन, विविक्तसेवया प्रणेन्द्रियात्मानिजयेन सध्यक्, सच्छ्रद्धया, शश्वत् ब्रह्मचर्येण, असम्प्रमादेन, वाचांयमेन, सर्वत्रमद्भावविचक्षणेन, विज्ञान विराजितेन ज्ञानेन, योगेन अहमाख्यं लिङ्गं, व्यपोहेत् ॥१०-१३॥

अनुवाद— पुत्रों ! संसार सागर से पार होने में कुशल तथा धैर्य, उद्यम और एवं सत्त्वगुण विशिष्ट पुरुष को चाहिए कि सबों की आत्मा और गुरुस्वरूप मुझ भगवान् में भक्तिभाव रखने से, मेरे परायण रहने से, तृष्णा के त्याग से, सुख दुःख आदि द्वन्दों के सहने से जीव को सभी योनियों में, दुःख ही उठाना पड़ता है इस तरह के विचार से, तत्त्व विषयक जिज्ञासा से, तप से सकाम कर्म के त्याग से, मेरी प्रसन्नता के ही लिए कर्मों को करने से, मेरी कथा को प्रतिदिन सुनने से, मेरे भक्तों के साथ मेरे ही गुणों का कीर्तन करने से, वैर त्याग से, समता से, शन्ति से, शरीर तथा गृह आदि में होने वाले ममत्व के त्याग की इच्छा से, अध्यात्म शास्त्र के अनुशीलन से, एकान्त सेवन से प्राण, इन्द्रिय और मन के संयम से, शास्त्र और सत्पुरुषों के वचन में यथार्थ बुद्धि करने से, पूर्णब्रह्मचर्य से, कर्तव्याकर्तव्यों के विषय में सावधान रहने से, वाणी के संयम से, सर्वत्र मेरी ही सत्ता देखने से, अनुभव ज्ञान सहित तत्त्व विचार तथा योग साधन से, अहङ्कार रूप अपने लिङ्ग शरीर को लीन कर दें ॥१०-१३॥

भावार्थ दीपिका

हेतुमतिहायेत्युक्तं तत्र पञ्चविंशतिसाधनान्याह चतुर्भिः । हंसे मयि गुरौ भक्तिः सेवा । अनुवृत्तिस्तत्परता । विगततृष्णया। सर्वत्र लोकान्तरेऽपि व्यसनावगत्या दुःखानुसंधानेन । ईहानिवृत्त्या काम्यकर्मत्यागेन । मदर्थैः कर्मभिः । अहमेव देवो येषां तैः सङ्गात् । हे पुत्राः, देहगेहयोरात्मबुद्धेरहंममेति बुद्धेः । अध्यात्मयशोगेनाध्यात्मशास्त्राभ्यासेन । सध्र्यक् सम्यगिति सर्वत्र संबन्धः । असंप्रमादेन कर्तव्यस्यापरित्यागेन । सर्वत्र मद्भावो मद्भावना तत्र विचक्षणेन निपुणेन विज्ञानविराजितेनानुभवपर्यन्तेन ज्ञानेन योगेन समाधिना धृत्युद्यमसत्त्वयुक्तो धैर्यप्रयत्नविवेकैर्युक्तः सन्नहंकाराख्यमुपाधिं व्यपोहेन्निरस्येत् ॥१०-१३॥

भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि संसार के हेतु अहङ्कार का त्याग करके जीव परम पद को प्राप्त कर लेता है। इसके लिए चार श्लोकों में ऋषभदेव ने पच्चीस साधनों को कहा है सबों की आत्मा रूप और गुरु मेरी भक्ति

और सेवा करने से, मेरा अनुसरण और मेरे परायण होने से, तृष्णा का त्याग हो जाने से, परलोक में दुःख की प्राप्ति होती है इस प्रकार के ज्ञान से, इच्छाओं का त्याग करने से, काम्य कर्मों का परित्याग करने से, मेरे लिए कर्मों को करने से, मेरे भक्तों की सङ्गति करने से, हे पुत्रों शरीर और गृह में आत्मबुद्धि तथा ममत्त्व का परित्याग करने से, अध्यात्म योग के द्वारा अध्यात्मशास्त्र का अनुशीलन करने से, सम्यक् असंप्रामाद के द्वारा, सम्यक् कर्तव्य कर्मों का परित्याग नहीं करने से, सर्वत्र मेरी विद्यमानता की भावना करने से, निपुणता तथा वैराग्य की विराज मानता से अनुभव पर्यन्त ज्ञान से योग से तथा समाधि से, धैर्य, उद्यम और सात्त्विक भावना से युक्त पुरुष की अहङ्कार की उपाधि रूप लिङ्ग शरीर को लीन कर देना चाहिए ॥१०-१३॥

कर्माशयं हृदयग्रन्थिबन्धमविद्ययासादितमप्रमत्तः। अनेन योगेन यथोपदेशं सम्यग्व्यपोह्योपरमेत यागात्॥१४॥

अन्वयः— अप्रमत्तः पुरुषः हृदयग्रन्थि बन्धम् अनेन योगेन यथोपदेशं सम्यग् व्यपोहय योगात् उपरमेत ॥१४॥

अनुवाद— मनुष्य को चाहिए कि वह सावधान रहकर अविद्या से प्राप्त इस हृदय बन्धन रूप ग्रन्थि को शास्त्रोक्त रीति से इस साधनों के द्वारा अच्छी तरह से विनष्ट कर दे । क्योंकि यह कर्म संस्कार के रहने के स्थान हैं उसके पश्चात् साधन का भी परित्याग कर दे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

ततः साधनादुपरमेदित्याह । कर्माण्याशेरते यस्मिन् । योगेनोपयेन । यद्यपि फले सिद्धे साधनोपरमः सिद्ध एव, तथापि यावद्देहपातं तदभ्यासशङ्कावारणायोक्तम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि लिङ्ग शरीर को लीन करने के पश्चात् साधनों का भी परित्याग कर दे । जिसमें कर्मों का निवास होता है उस अविद्या से प्राप्त हृदय ग्रन्थि के बन्धन को इस योग के द्वारा शास्त्रोक्त विधि से विनष्ट करके इन साधनों का भी परित्याग कर दे ॥१४॥

पुत्रांश्च शिष्यांश्च नृपो गुरुर्वा मल्लोककामो मदनुग्रहार्थः ।
इत्थं विमन्युरनुशिष्यादतज्ज्ञान्न योजयेत्कर्मसु कर्ममूढान् ॥
कं योजयन्मनुजोऽर्थं लभेत निपातयन्नष्टदृशं हि गर्ते ॥१५॥

अन्वयः— मत् लोककामः मदनुग्रहार्थः नृपः गुरुः व पुत्रान् च शिष्यान् च इत्थम् विमन्युः अनुशिष्यात्, अतज्ज्ञान् कर्ममूढान् कर्मसु न योजयेत् योजयन् मनुजः कं कम् अर्थंलभेत ? नष्टदृशां गर्ते निपातयन्हि ॥१५॥

अनुवाद— जो मेरे लोक को प्राप्त करना चाहे अथवा मेरा अनुग्रह प्राप्त करना चाहे और उसी को परम पुरुषार्थ माने तो यदि वह राजा हो तो अपने अबोध पुत्रो को और यदि गुरुहो तो अपने शिष्यों को ऐसी शिक्षा दे । अज्ञान के कारण यदि वे वैसा नहीं करके चलकर कर्म को ही परम पुरुषार्थ मानते रहें तो भी उन पर क्रोध न करके उन्हें शिक्षा दे और उनको कर्मों में प्रवृत्त न होने दे । उनको विषयासक्ति युक्त काम्य कर्मों में लगाना तो वैसे ही है जैसे किसी अन्धे आदमी को गढ़े में ढकेल देना है । इससे किस पुरुषार्थ की सिद्धि हो सकती हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

किंच पुत्रान्पिता शिष्यान्वा गुरुर्नृपश्च प्रजा एवमनुशिक्षयेत् । मम लोकं यः कामयते । यद्वा मदनुग्रह एवार्थो यस्य । विमन्युः शिक्षितस्याकरणेऽपि कोपशून्यः । अतज्ज्ञांस्तत्त्वमविदुषः । श्रेयोबुद्ध्या कर्मसु मूढान् । अन्यथोपदेशे प्रत्यवायमाह। मनुजः काम्यकर्मसु पुरुषं योजयन् गर्ते संसारकूपे तं पातयति स मनुजः कमर्थं पुरुषार्थं लभेत् । न कमपीत्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

पिता अपने पुत्र को, गुरु अपने शिष्य को तथा राजा अपनी प्रजा को चाहिए कि वह अपने पुत्रों या शिष्यों या प्रजाओं को इस प्रकार की ही शिक्षा दे। यदि वह मेरे लोक को अथवा मेरे अनुग्रह को प्राप्त करना चाहता है तो शिक्षा देने में क्रोध न करे। इस तरह से शिक्षा देने पर भी यदि वे अज्ञानवशात् ऐसा न करें तत्त्व का ज्ञान नहीं होने पर उनका कल्याण करने की इच्छा से उन कर्म मूढों पर कोप न करे अपितु समझाए। इसके विपरीत उन सबों को कर्मोपदेन करे, क्योंकि काम्य कर्म में उन सबों को लगाने वाला मनुष्य उन सबों को संसार कूप में ही उन सबों को ढकेलता है। ऐसा करने वाले मनुष्य को किस अर्थ की प्राप्ति होगी ? किसी भी अर्थ की नहीं ॥१५॥

लोकः स्वयं श्रेयसि नष्टदृष्टिर्योऽर्थान्समीहेत निकामकामः ।
अन्योन्यवैरः सुखलेशहेतोरनन्तदुःखं च न वेद मूढः ॥१६॥

अन्वयः— स्वयं श्रेयसि नष्ट दृष्टिः निकाम कामः यो लोकः अर्थान् समीहेत, सुखलेश हेतोः अनन्तदुःख च मूढः न वेद ॥१६॥

अनुवाद— अपना वास्तविक कल्याण किससे हैं इस बात को कोई नहीं जानता है, इसी कारण वे विभिन्न प्रकार की भोग कामनाओं में फँसकर क्षणिक सुख के लिए आपस में वैर कर लेते हैं। और सदैव विषयभोग के लिए ही प्रयास करते रहते है। वे मूर्ख इस पर थोड़ा सा भी विचार नहीं करते हैं कि इस वैर विरोध के कारण नरक आदि अनन्त घोर दुःखों की प्राप्ति होगी ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

न योजयेदित्येतदुपपादयति-लोक इति त्रिभिः। नष्टदृष्टित्वे हेतुः- य इति। निकाममतिशयेन कामो यस्य ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

ऊपर कहा जा चुका है कि काम्य कर्मो में पुत्रों शिष्यों अथवा प्रजाओं को न लगाये। उसी का प्रतिपादन **लोकः इत्यादि** तीन श्लोकों से करते हैं। उनके अज्ञानी होने का कारण है कि वे निरन्तर भोगों की प्राप्ति के लिए ही प्रयासरत रहते हैं ॥१६॥

कस्तं स्वयं तदभिज्ञो विपश्चिदविद्यायामन्तरे वर्तमानम् ।
दृष्ट्वा पुनस्तं सघृणः कुबुद्धिं प्रयोजयेदुत्पथगं यथाऽन्धम् ॥१७॥

अन्वयः— स्वयं तत् अभिज्ञाः क साध्रणः विपश्चित् अविद्यायाम् अन्तरे वर्तमान कुबुद्धिं तं उत्पथगं अन्धम् यथा प्रयोजयेत् ॥१७॥

अनुवाद— गढे में गिरने के लिए गल्त रास्ते से जाते हुए अन्धे मनुष्य को जैसे कोई दयालु और आख वाला पुरुष उस रास्ते से नहीं जाने देता है उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य को जो अविद्या में फँसकर दुःखों की ओर जाते देखकर कौन ऐसा ज्ञानी पुरुष होगा जो जानकर भी उसे उस रास्ते पर जाने के लिए प्रेरणा देगा ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तमीदृशं कुबुद्धिं दृष्ट्वा तत्रैव कस्तं प्रवर्तयेन्न कोपि। उत्पथेन गच्छन्तमन्धं यथा तेनैव गच्छेति को ब्रूयात् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

अज्ञानी पुरुष को उन मार्ग से जाते देख कौन ऐसा ज्ञानी दयालु पुरुष होगा जो उसको उसी रास्ते पर जाने के लिए कहेगा कि इसी रास्ते से जाओ। यह तो उसी तरह से होगा जैसे किसी अन्धे को उल्टा रास्ते से जाता देखकर कहे कि हाँ उसी रास्ते जाओ ॥१७॥

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥१८॥

अन्वयः— यः समुपेत् मृत्युम् न मोचयेत् सः गुरुः न स्यात् । स्वजनोन स्यात् पिता न स्यात् सा जननी न स्यात्, सः पतिश्च न स्यात् ॥१८॥

अनुवाद— जो अपने प्रिय संबन्धी को भगवद् भक्ति का उपदेश देकर मृत्यु के मुख से नहीं बचाये वह न तो गुरु हो सकता है, न अपना बान्धव हो सकता है, वह पिता भी नहीं हो सकता है और न तो ऐसी माता ही हो सकती है, वह पति भी नहीं हो सकता है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

समुपेतः संप्राप्तो मृत्युः संसारो येन तम् । ततो भक्तिमार्गोपदेशेन यो न मोचयेत्स गुर्वादिर्न भवतीत्यर्थः । यद्वा यस्तं मोचयितुं न शक्नुयात्स तस्य गुर्वादिर्न स्यादिति निषेधः । ततश्च पिता न स्यादिति, पुत्रोत्पत्तौ यत्नो न कार्य इत्यर्थः । दैवं देवता न स्यादिति, पूजा न ग्राह्येत्यर्थः ।एवमन्यदपि द्रष्टव्यम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

जो मृत्यु रूपी संसार को प्राप्त मनुष्य है उसको भगवद् भक्ति का उपदेश देकर जो उससे नही बचाता है वह गुरु आदि नहीं हो सकता है । अथवा जो उसको मुक्त कराने में समर्थ नहीं हो वह गुरु आदि नहीं हो सकता है, इस तरह से उसका निषेध किया गया है । पिता भी नहीं हो सकता है अर्थात् उसको पुत्र प्राप्त करने का प्रयास नहीं करना चाहिए । वह देवता भी नहीं हो सकता है, अर्थात् उसको पूजा भी ग्रहण नहीं करना चाहिए, इसी तरह दूसरों को भी समझना चाहिए ॥१८॥

इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं सत्त्वं हि मे हृदयं यत्र धर्मः ।
पृष्ठे कृतो मे यदधर्म आरादतो हि मामृषभं प्राहुरार्याः ॥१९॥

अन्वयः— मम इदं शरीरं दुर्विभाव्यं हि सत्त्वं में हृदयं यत्र धर्मः यत् अधर्मः मे आरात् पृष्ठे कृतः अतोहि आर्याः माम् ऋषभं आहुः ॥१९॥

अनुवाद— मेरा यह अवतार शरीर साधरण जनों की बुद्धि का विषय नहीं है । क्योंकि सत्त्वगुण ही मेरा हृदय है, जिसमें धर्म का निवास होता है । अधर्म को मैंने दूर पीछे ढकेल दिया है, इसलिए सत्पुरुषों ने मुझे ऋषभ कहा है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

एवं मोक्षधर्मानुपदिश्य भ्रातृशुश्रूषणलक्षणं धर्मं स्पर्धादिनिवृत्तये तेषां जन्मकथनपूर्वकमाह द्वाभ्याम् । इदं मनुष्याकारं शरीरं मम दुर्विभाव्यमवितर्क्य मदिच्छाविलसितम् । नत्वहं प्राकृतो मनुष्य इत्यर्थः मे हृदयं तु सत्त्वम् । किं तद्धृदयम् । यत्र धर्मस्तत् शुद्धं सत्त्वमित्यर्थः । कुतः । यद्यस्मान्मयाऽत्रधर्मों दूरादेव पृष्ठे कृत उत्सारितः । अतएव मामृषभं श्रेष्ठाः प्राहुः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से मोक्ष धर्म का उपदेश करके ऋषभ देव भाई की सेवा रूप धर्म का निरूपण स्पर्धा की निवृत्ति के लिए उन सबों के जन्म के वर्णन पूर्वक दो श्लोकों से कहते हैं । मेरा यह मनुष्याकृति शरीर सामान्य लोगों की बुद्धि का विषय नहीं है मैंने इसे अपनी इच्छा से धारण किया है । मैं प्राकृत मनुष्य नहीं हूँ । सत्त्व गुण ही मेरा हृदय है । यदि पूछो कि सत्त्वगुण होने से क्या हुआ तो इस पर कहते हैं— सत्त्वगुण में ही धर्म का निवास होता है । अर्थात् मेरा हृदय शुद्ध सत्त्व स्वरूप है । क्योंकि मैने अधर्म को दूर पीछ ढकेल दिया है। इसलिए सत्पुरुष मुझे ऋषभ (श्रेष्ठ) कहते हैं ॥१९॥

तस्माद्भवन्तो हृदयेन जाताः सर्वे महीयांसममुं सनाभम् ।
अक्लिष्टबुद्ध्या भरतं भजध्वं शुश्रूषणं तद्भरणं प्रजानाम् ॥२०॥

अन्वयः— तस्मात् भवन्तः हृदयेन जाताः सर्वे अमुम् महीयांसम् सनाभम् अक्लिष्ट बुद्ध्या, भरतं भजध्वम् तत् शुश्रूषणं प्रजानाम् भरणं च ॥२०॥

अनुवाद— तुम सभी मेरे शुद्ध सत्त्वमय हृदय से उत्पन्न हुए हो, तुम सभी अपने बड़े भाई भरत की मत्सर का परित्याग करके सेवा करो । भरत की सेवा ही मेरी सेवा है और वही प्रजाओं का पालन है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

भवन्तश्च हृदयेन शुद्धसत्त्वमयेन जातास्तस्मान्मत्सरं हित्वा महत्तमं सनाभं सोदरं भजध्वम् । ननु त्वत्पुत्रत्वात्त्वां वयं भजेम राजपुत्रत्वात्प्रजाश्च पालयामेति चेदत आह । तदेव मे शुश्रूषणं प्रजानां च पालनम् । भरतानुवृत्त्यैव सर्वं कृतं स्यादिति भावः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

ऋषभदेवजी अपने पुत्रों से कहते हैं कि तुमलोग मेरे शुद्ध सत्त्वमय हृदय से उत्पन्न हुए हो, अतएव तुम सभी मत्सर का परित्याग करके अपने बड़े सहोदर भाई भरत की सेवा करो । यदि कहो कि हमलोग आपके पुत्र हैं अतएव आपकी सेवा करते हैं और राजा का पुत्र होने के कारण प्रजा का पालन भी करेंगे । तो यह कहना ठीक नहीं भरत की सेवा ही मेरी सेवा है और वही प्रजाओं का पालन है । भरत का अनुगमन करने से ही सबकुछ हो जायेगा ॥२०॥

भूतेषु वीरुद्भ्यः उदुत्तमा ये सरीसृपास्तेषु सबोधनिष्ठाः ।
ततो मनुष्याः प्रमथास्ततोऽपि गन्धर्वसिद्धा विबुधानुगा ये ॥२१॥

अन्वयः— भूतेष वीरूद्भ्यः ये सरीसृपाः उदुत्तमाः तेषु सबोधनिष्ठाः, ततो मनुष्याः प्रमधाः ततोसि, ये विवुधानुगाः गन्धर्व सिद्धाः ॥२१॥

अनुवाद— अन्य जीवों की अपेक्षा वृक्ष श्रेष्ठ है, उनसे चलने वाले जीव श्रेष्ठ हैं, उनसे मनुष्य श्रेष्ठ हैं, उनसे भी प्रमथ गण श्रेष्ठ है, और उनसे श्रेष्ठ देवताओं के अनुगामी गन्धर्व और सिद्ध श्रेष्ठ हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं ब्राह्मणाश्च सेव्या इत्याशयेन तेषां सर्वेभ्यः श्रैष्ठ्यमाह पञ्चभिः । भूतेषु चेतनाचेतनेषु । विरोहन्तीति वीरुधः स्थावरा उदुच्चैरतिशयेनोत्तमाः । तेभ्योऽपि ये सरीसृपाः सर्पन्तीति जङ्गमास्ते उदुत्तमा इति सर्वत्रानुषङ्गः । तेष्वपि सबोध निष्ठा स्थितिर्येषां पश्वादीनां ते कीटकादिभ्यः । ततस्तेष्वपि मनुष्याः । ततोऽपि प्रमथा भूतप्रेतादयः । ततोऽपि गन्धर्वाः । ततः सिद्धाः। ततोऽन्ये विबुधानुगाः किंनरादयः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

अब ब्राह्मणों की सेवा करना चाहिए इस आशय से पाञ्च श्लाकों द्वारा ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करना चाहिए । चेतन और अचेतन भूतों में बढ़ने वाले स्थावर उनसे अत्यन्त श्रेष्ठ हैं । उन सबों से चलने वाले जीव श्रेष्ठ । उनसे भी ज्ञानवान पशु आदि श्रेष्ठ हैं । उन सबों में भी मनुष्य श्रेष्ठ है । उन सबों भी प्रमथगण भूत प्रेत श्रेष्ठ हैं । उन सबों से गन्धर्व श्रेष्ठ हैं उनसे सिद्ध श्रेष्ठ है और उनसे भी देवताओं के अनुयायी किन्नर आदि श्रेष्ठ हैं ॥२१॥

देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना दक्षादयो ब्रह्मसुतास्तु तेषाम् ।
भवः परः सोऽथ विरिञ्चवीर्यः स मत्परोऽहं द्विजदेवदेवः ॥२२॥

अन्वयः— तेभ्यः असुराः असुरेभ्यः देवाः मघवत् प्रधानाः तेभ्यः दक्षादयः ब्रह्मसुताः तेषाम् तु भवः अथ सःविरिञ्चवीर्यः, स मत्परः द्विजदेव देवः अहम् ।।२२।।

अनुवाद— उन किन्नरादिकों से श्रेष्ठ असुर हैं, उनसे श्रेष्ठ देवगण श्रेष्ठ हैं, देवताओं में भी इन्द्र प्रधान हैं, उनसे श्रेष्ठ ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति इत्यादि श्रेष्ठ है । उनसे श्रेष्ठ शङ्करजी है । उनसे श्रेष्ठ ब्रह्माजी है और ब्रह्माजी भी मुझसे उत्पन्न हैं और मेरी उपासना करते हैं अतएव मैं उनसे प्रधान हूँ किन्तु ब्राह्मण मुझसे श्रेष्ठ है क्योंकि मैं उन्हें पूज्य मानता हूँ ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

तेभ्योऽसुराः । देवा असुरेभ्यः । संधिरार्षः । देवाश्च मघवत्प्रधानाः, देवेभ्य इन्द्रः श्रेष्ठ इत्यर्थः । ततोऽपि बह्मसुता दक्षादयः। तेषां मध्ये भवः परः श्रेष्ठः । स भवो विरिञ्चवीर्यो विरिञ्चो वीर्यशक्तिः कारणं यस्य स विरिञ्चवीर्यः, अतस्तज्जनकत्वाद्विरिञ्चस्ततः पर इत्यर्थः। स विरिञ्चो मत्परः अहं परो यस्य। द्विजदेवा ब्राह्मणा एव देवाः पूज्या यस्य सोऽहम् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

उन किन्नरों आदि से असुर श्रेष्ठ हैं, असुरों से देवता श्रेष्ठ हैं देवासुरेभ्यः में सन्धि आर्ष है । देवता में भी इन्द्र प्रधान है । अर्थात् देवताओं से इन्द्र श्रेष्ठ हैं । इन्द्र से ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष प्रजापति इत्यादि प्रधान है। उन सबों में भी शङ्करजी श्रेष्ठ है वे शङ्करजी के पुत्र हैं, अतएव उनसे ब्रह्माजी श्रेष्ठ हैं । उन ब्रह्माजी से मैं श्रेष्ठ हूँ । ब्राह्मण मुझसे भी श्रेष्ठ हैं क्योंकि मैं ब्राह्मणों को पूज्य मानता हूँ ।।२२।।

न ब्राह्मणैस्तुलये भूतमन्यत्पश्यामि विप्राः किमतः परं तु ।
यस्मिन्नृभिः प्रहुतं श्रद्धयाहमश्नामि कामं न तथाग्निहोत्रे ॥२३॥

अन्वयः— हे विप्राः ! ब्राह्मणैः अन्यत् भूतम् न तुलये अतः परं तु किम् यस्मिन् नृभिः श्रद्धया प्रहुतं अहं कामं अश्नामि तथा अग्निहोत्रे न ।।२३।।

अनुवाद— हे ब्राह्मणों मैं ब्राह्मणों के समान किसी भी जीव को नहीं मानता हूँ फिर ब्राह्मणों से श्रेष्ठ कैसे मान सकता हूँ ब्राह्मणों के मुख में मनुष्यों द्वारा श्रद्धा पूर्वक होम की गयी वस्तु को जितने चाव से ग्रहण करता हूँ उतना अग्निहोत्र को चाव से नहीं ग्रहण करता हूँ ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणैरन्यद्भूतं न तुलये समं न पश्यामि । अतो ब्राह्मणात्परं तु भूतं किं पश्यामि न किंचित् । विप्रा इति तत्रत्यानां ब्राह्मणानां संबोधनम् । समस्यैवाभावादधिकं कुतस्त्यमित्यर्थः तत्र हेतूनाह सार्धाभ्याम् । यस्मिन् ब्राह्मणे श्रद्धया प्रकर्षेण हुतमन्नादि कामं यथेच्छमहमश्नामि ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

विप्रों मैं ब्राह्मणों से किसी दूसरे जीव की तुलना नहीं करता हूँ अर्थात् ब्राह्मणों के समान मैं किसी दूसरे का नहीं मानता हूँ । अतएव ब्राह्मणों से श्रेष्ठ किसी को कैसे मान सकता हूँ । ब्राह्मणों को मनुष्यों द्वारा जो अन्नों का भोजन कराया जाता है, उसको, जितना प्रेम से खाता हूँ उतने प्रेम से अग्निहोत्र में हवन करने से मैं नहीं प्रसन्न होता हूँ ।।२३।।

धृता तनूरुशती मे पुराणी येनेह सत्त्वं परमं पवित्रम् ।
शमो दमः सत्यमनुग्रहश्च तपस्तितिक्षानुभवश्च यत्र ॥२४॥

अन्वयः— येन इह परमं पवित्रं सत्त्वं मे पुराणी उशती तनूः धृता शमः दमः तपः सत्यम् अनुग्रहः तपः तितिक्षा अनुभवः च यत्र ॥२४॥

अनुवाद— जिन लोगों ने अध्ययनादि के द्वारा मेरी वेद स्वरूपिणी अत्यन्त सुन्दर मूर्ति को धारण किया है तथा जिनमें, शम, दम, तपस्या, सत्य, दया, तप तितिक्षा और ज्ञान ये आठ गुण विद्यमान हैं, उन ब्राह्मणों से बढ़कर कौन हो सकता है ?॥२४॥

भावार्थ दीपिका

मे तनूर्मूर्तिर्वेदाख्या येन ब्राह्मणेनेह लोके धृता। यत्र च ब्राह्मणे सत्त्वादयोऽष्टौ गुणाः सन्ति, ततः परं किं पश्यामीत्यन्वयः॥२४॥

भाव प्रकाशिका

मेंरी वेद रूपी मूर्ति को जिन ब्राह्मणों ने इस संसार में धारण किया है तथा जिन ब्राह्मणों में सत्य आदि आठ गुण विद्यमान हैं, उन ब्राह्मणों से श्रेष्ठ मैं किसको मानूं ॥२४॥

मत्तोऽप्यनन्तात्परतः परस्मात्स्वर्गापवर्गाधिपतेर्न किंचित् ।
येषां किमु स्यादितरेण तेषामकिंचनानां मयि भक्तिभाजाम् ॥२५॥

अन्वयः— स्वर्गापवर्गाधिपतेः मत्तः अनन्तात् परतः परस्तात् मयिभक्तिभाजाम् अकिञ्चनानां येषां किञ्चित् न तेषाम् इतरेण किमु स्यात् ॥२५॥

अनुवाद— स्वर्गलोक एवं मोक्ष के स्वामी अनन्त स्वरूप ब्रह्मादि देवताओं से श्रेष्ठ मुझ में भक्ति रखने वाले मेरे अकिञ्चन भक्त इतना निःस्पृह होते हैं कि वे मुझसे भी कुछ नहीं चाहते हैं तो वे दूसरे से कुछ भी क्यों चाहेंगे ?॥२५॥

भावार्थ दीपिका

निःस्पृहत्वमाह । मत्तोऽपि येषां नकिंचित्प्रार्थनीयमस्ति तेषामितरेण राज्यादिना किमु स्यान्न किमपि ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों की निःस्पृहता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो ब्राह्मण मुझसे भी कुछ नहीं चाहते हैं वे उनको राज्य आदि से क्या मतलब हैं ?॥२५॥

सर्वाणि मद्धिष्ण्यतया भवद्भिश्चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि ।
संभावितव्यानि पदे पदे वो विविक्तदृग्भिस्तदुहार्हणं मे ॥२६॥

अन्वयः— हे सुताः सर्वाणि चराणि भूतानि ध्रुवाणि भवद्धि मदधिष्ण्यतया पदे-पदे वः विविक्तदृग्भि; संभावितव्यानि तत् इहमे अर्हणम् ॥२६॥

अनुवाद— हे पुत्रों सम्पूर्ण चराचर भूतों को तुमलोग मेरा शरीर समझकर शुद्ध बुद्धि से प्रत्येक क्षण उनकी शुद्ध बुद्धि से सेवा करो, यही मेरी सच्ची सेवा हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं ब्राह्मणसंमानं विधायेदानीं सर्वभूतसंमान विधत्ते । हे सुताः, सर्वाणि जङ्गमानि स्थावराणि च भूतानि मदधिष्ठानतया वो युष्माभिः संमाननीयानि । पदे पदे क्षणे क्षणे । विविक्ता पूता मत्सरादिरहिता दृष्टिर्येषां तैः । तदेव ममार्हणम् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से ब्राह्मणों के सम्मान का विधान करके अब सभी जीवों के सम्मान का विधान करते हैं। हे पुत्रों ! समस्त स्थावर जङ्गम भूतों की तुम लोग मेरा शरीर के समान मानकर प्रतिक्षण मात्सर्य इत्यादि का परित्याग करके सेवा करो यही मेरी वास्तविक सेवा है ॥२६॥

मनोवचोदृक्करणेहितस्य साक्षात्कृतं मे परिबर्हणं हि ।
विना पुमान्येन महाविमोहात्कृतान्तपाशान्न विमोक्तुमीशेत् ॥२७॥

अन्वयः— मनो वचोदृक्करणेहितस्य साक्षात्कृतहिपरिबर्हणं में येन बिना पुमान् महाविमोहात् कृतान्त पाशात् विमोक्तुं न ईशेत् ॥२७॥

अनुवाद— मन, वचन, दृष्टि तथा अन्य इन्द्रियों की चेष्टाओं का साक्षात् फल मेरी इस प्रकार की पूजा ही हैं। इसके विना मनुष्य अपने को महामोहमय काल पाश से नहीं छुड़ा सकता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

सर्वकर्मणामीश्वरार्पणं विधत्ते। मनोवचोदृशामन्येषां च करणानामीहितस्य व्यापारस्य मे परिब्रर्हणमाराधनमेव साक्षात्कृतं फलम्। येन परिवर्हणेन विना कालपाशाद्विमोक्तुं न ईशेन्न समर्थो भवेत् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक से ऋषभदेव वतलाते हैं, अपने समस्त कर्मों को ईश्वर को समर्पित कर देना चाहिये। ये मन, वाणी तथा दृष्टि एवं अन्य इन्द्रियों के व्यापरों का साक्षात् फल मेरी पूजा ही हैं। उस प्रकार के पूजन के बिना मनुष्य महामोहमय काल पाश से अपने को छुड़ा नहीं पाता है ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

एवमनुशास्यात्मजान्स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः परमसुहृद्भगवानृषभापदेश उपशमशीलानामुपरतकर्मणां महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरित-शरीरमात्रपरिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकिश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज॥२८॥

अनुवाद— राजन्, ऋषभदेव जी के पुत्र यद्यपि स्वयं हि हर प्रकार से सुनिश्चित थे फिर भी लोगों को शिक्षा देने के लिए अत्यन्त प्रभाव सम्पन्न परमसुहत भगवान् ऋषभदेवजी ने उन सबों को इस प्रकार से उपदेश दिया। ऋषभदेवजी के सौ पुत्रों में भरतजी सबसे बड़े थे वे श्रीभगवान् के भक्त तथा भगवदभक्त परायण थे। ऋषभदेवजी ने पृथ्वी का पालन करने के लिए उनको गद्दी पर बैठा दिया। वे स्वयं निवृत्ति परायण महामुनियों के भक्ति ज्ञान और वैरागय रूप परमहंसोचित धर्मो की शिक्षा देने के लिए विल्कुल विरक्त हो गये। उन्होंने केवल शरीर मात्र का परिग्रह रखा और सबकुछ घर ही रहते छोड़ दिया। वे वस्त्रों का भी परित्याग करके दिगम्बर हो गये विखरे हुए केश तथा उन्मत्त वेष में वे आहवनीय अग्नियों को अपने में लीन करके संन्यासी हो गये। और ब्रह्मावर्त से वाहर चले गये ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

स्वत एव सुशिक्षितानपि लोकानुशासनार्थमनुशास्य मुनीनां पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षयिष्यन्भरतमभिषिच्य ऋषभ इत्यपदेशो नाम यस्य स भगवान् ब्रह्मावर्तात्स्वदेशात्प्रवव्राजेत्यन्वयः। उर्वरितोऽवशिष्टः शरीरमात्रपरिग्रहो यस्य ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

ऋषभदेवजी के पुत्र अपने आप सुशिक्षित थे किन्त सबों को उपदेश देने के लिए उन्होंने उन सबों को उपदेश दिया, पारमहंस्य धर्म की शिक्षा देने के लिए उन्होंने भरत को राजगद्दी प्रदान करके ऋषभ इस नामानुसार वे भगवान् अपने ब्रह्मावर्त नामक देश से बाहर चले गये। वे केवल शरीर मात्र का परिग्रह किए थे ॥२८॥

जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णीं बभूव॥२९॥

अनुवाद— पूर्ण रूप से मौन धारण कर लिए थे कोई बात भी करना चाहता था तो बात नहीं करते थे। जड़, अन्धे, बहरे, गूङ्गे, पिशाच एवं बहरों के समान चेष्टा करते हुए अवधूत बन कर जहाँ तहाँ विचरण करने लगें ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अभिभाष्यमाणोऽपि जनानां मध्ये जडादिवद्वर्तमानस्तूष्णीं बभूव। अवधूतस्येव वेषा यस्य ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

लोगों के द्वारा पूछे जाने पर भी लोगों के बीच में वे जड़ आदि के समान रहकर मौन हो गये ॥२९॥

तत्र तत्र पुरग्रामाकरखेटवाटखर्वटशिबिरव्रजघोषसार्थगिरिवनाश्रमादिष्वनुपथमवनिचरापसदैः परिभूयमानो मक्षिकाभिरिव वनगजस्तर्जनताडनावमेहनष्ठीवनग्रावशकृद्रजः प्रक्षेपपूतिवातदुरुक्तैस्तदविगणयन्नेवासत्संस्थान एतस्मिन्देहोपलक्षणे सदुपदेश उभयानुभवस्वरूपेण स्वमहिमावस्थानेनासमारोपिताहंममाभिमानत्वादविखण्डितमनाः पृथिवीमेकचरः परिबभ्राम ॥३०॥

अनुवाद— कभी-कभी नगरों, ग्रामों में चले जाते थे कभी खदानों, किसानों की बस्तियों, बागों, सेना की शिविरों, पहाड़ी गावों, गोशालाओं, अहीरों की बस्तियों, यात्रियों के रुकने के स्थानों में चले जाते थे। कभी पहाड़ों, जङ्गलों, और आश्रम आदि में विचरते थे। कभी भी वे किसी रास्ते निकलते थे तो जैसे हाथी को मखियाँ सताती हैं उसी प्रकार मूर्ख और दुष्ट लोग उनके पीछे हो लेते थे, और उनको तङ्ग करते थे। कोई उनको धमकी देता था तो कोई मारता था कोई उन पर पेशाब कर देता था, कोई थूक देता था, कोई ढेला मारता था, कोई उन पर विष्ठा फेंकता था और धूल फेंक देता था। कोई अधो वायु छोड़ता तो कोई उनको खरी खोटी सुनाता और उनका तिरस्कार करता था, किन्तु वे इन सभी किसी बात पर ध्यान नहीं देते थे। इसका कारण यह था कि भ्रम से सत्य कहे जाने वाले इस मिथ्या शरीर में उनका अहन्त्व ममत्व बिल्कुल नहीं था। वे कार्य-कारण रूप सम्पूर्ण प्रपञ्च के साक्षी होकर अपने परमात्म स्वरूप में स्थित हो गये थे। इसीलिए अखण्ड चित्तवृत्ति से अकेले ही पृथिवी पर विचरण किया करते थे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तत्र पुरादिष्वनुपथं मार्गे मार्गेऽवनिचरापसदैर्दुर्जनैस्तर्जनादिभिः परिभूयमानोऽपि तदविगणयन्नेवैकचर एकाकी पृथिवीं परिबभ्रामेत्यन्वयः। तत्र पुरं पुत्तनम्। ग्रामा हट्टहीनाः। आकरः खनिः। खेटः कृषीवलग्रामः। वाटः पुष्पादिवाटिका। खर्वटः पर्वतप्रान्तग्रामः। शिविरं सेनाया वासस्थानम्। व्रजो गवां स्थानम्। घोषो गोपानां स्थानम्। सार्थो यात्रिकजनसंघातः। आश्रमा ऋषीणाम्। तर्जनं भयजननम्। ताडनं प्रहारः। अवमेहनमुपरिमूत्रणम्। ष्ठीवनं फूत्कृत्य श्लेष्मप्रक्षेपः। ग्राव्णां शकृतो रजसश्च प्रक्षेपः। पूतिवातोऽधोवायुः। दुरुक्तं शापः। एतैः अगणने दृष्टान्तः-मक्षिकाभिरिवेति। तत्र हेतुः- असति मिथ्याभूते संनिवेशे। देह इत्युपलक्षणमाकारो यस्य। सदित्यपदेशमात्रं यस्य तस्मिन्निरभिमानत्वात्। केन हेतुना। उभयोः सदसतोर्योऽनुभवस्तत्स्वरूपेणयत्स्वमहिम्न्यवस्थानं तेन। अत एवाखण्डितं मनो यस्य स परिबभ्राम ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

नगरों एवं गावों के प्रत्येक मार्गों पृथिवी पर रहने वाले नीचों और दुष्टों द्वारा तिरस्कृत किए जाने पर भी उसकी परवाह नहीं करते हुए वे अकेले पृथिवी पर घूमते रहे । पुरम् अर्थात् नगर ग्राम, गाँव, खेट अर्थात् किसानों का गाँव, बाट यानी बगीचा, खर्वट अर्थात् पर्वतों के गाँव, शिवर सेना के निवास स्थान, व्रजः गोशाला, घोषः अर्थात् अहीरों का गाँव, सार्थः यानी यात्रियों के रुकने के स्थान, आश्रम अर्थात् ऋषियों का आश्रम तर्जनम् अर्थात् धमकाना, ताडनम् यानी मारना, ष्ठीवनम् अर्थात् थूकना, पत्थर, विष्ठा, तथा धूल का फेंकना, पूतिवातः अर्थात् अपान वायु, दुरुक्तम् यानी गाली देना, इन सबों के परवाह नहीं करने का उदाहरण है जैसे हाथी को मखियाँ तङ्ग करती हैं । उसका कारण है मिथ्या भूत संनिवेश पर देह के आकार वाले जिसमें सत्यत्व का अभिमान होता है, उस शरीर में अभिमान रहित सत् एवं असत् के अनुभव स्वरूप के कारण अपनी ही महिमा में अवस्थित उनका मन अखण्ड था इसी प्रकार वे घूम रहे थे ॥३०॥

अतिसुकुमारकरचरणोरः स्थलविपुलबाह्वंसगलवदनाद्यवयवविन्यासः प्रकृतिसुन्दरस्वभावहाससुमुखो नवनलिनदलायमानशिशिरतारारुणायतनयनरुचिरः सदृशसुभगकपोलकर्णकण्ठनासोविगूढस्मितवदनमहोत्सवेन पुरवनितानां मनसि कुसुमशरासनमुपदधानः परागवलम्बमानकुटिलजटिलकपिशकेशभूरिभारोऽवधूतमलिननिजशरीरेण ग्रहगृहीत इवादृश्यत ॥३१॥

अनुवाद— उनके हाथ, पैर, छाती, लम्बी भुजाएँ, कन्धे, गले और मुख आदि अङ्गों की बनावट बड़ी ही सुकुमार थी । स्वभावतः सुन्दर उनका मुख स्वाभाविक मन्द मुस्कान से अत्यधिक मनोहर लगता था । उनके नेत्र नवीन कमलदल के समान मनोज्ञ बड़े-बड़े और कुछ ललिमा लिए हुए थे उनकी आँखों की पुतलियाँ शीतल और संताप हारिणी थीं । उन नेत्रों के कारण वे अत्यन्त सुन्दर लगते थे । कपोल कान और नाक छोटे बड़े न होकर समान और सुन्दर थे । उनके अस्फुट हास्य युक्त मनोज्ञ मुखारविन्द की शोभा को देखकर नगर की नारियों के चित्त में काम का संचार हो जाता था फिर भी उनके मुख के आगे जो भूरे रङ्ग लम्बे कुञ्चित केश लटके रहते थे । उनके महान् भार और अवधूत के समान धूलि धूसरित देह के कारण वे ग्रह ग्रस्त से प्रतीत होते थे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

स च तदा ग्रहगृहीत इवादृश्यत । तत्र हेतुः— पराक् पुरतोऽवलम्बमानाश्च ते कुटिलाश्च ते जटिलाश्च कपिशाश्च केशास्तेषां भूरिभारो यस्य सः । अवधूतमनादृतमत एव मलिनं निजशरीरं तेन । कथंभूतोऽप्येवमदृश्यत । अतिसुकुमाराणि करचरणोरः स्थलानि तथा विपुला वाह्वादयस्त एवावयवास्तेषां विशिष्टो न्यासः संनिवेशो यस्य सः । तथा प्रकृत्यैव सुन्दरः स्वभावसिद्धो हासस्तेन शोभनं मुखं यस्य । तथा नवनलिनदलवदाचरती ये शिशिरतारे तापहारिकनीनिके अरुणे आयते नयने ताभ्यां रुचिरः । तथा सदृशा अन्यूनाधिकाः सुभगाश्च कपोलकर्णकण्ठनासिका यस्य । तथा विगूढस्मितं यद्वदनं तस्य महोत्सवेन विभ्रमेण पुराङ्गनानां मनसि काममुद्दीपयन् । एवंभूतोऽपि तथादृश्यतेत्यन्वयः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

वे उस समय ग्रह से ग्रस्त के समान दिखायी पड़ते थे । उनके मुख के सामने घुघराले, उलझे हुए भूरे केशों का समूह लटका रहता था । अवधूत वेश में रहने के कारण उनका अनादृत शरीर मलिन हो गया था । हाथ, पैर विस्तृत छाती लम्बी भुजाओं वाले वे थे । वे स्वभावतः सुन्दर थे स्वाभाविक हँसी से उनका मुख मनोहर लगता था । नवीन कमल दल के समान शीत तथा संताप हारिणी पुतलियों से युक्त उनके अरुण वर्ण के विस्तृत नेत्र मनोहर थे । उनके नाक, कान और कपोल छोटे बड़े नहीं अपितु एक समान थे । मन्दमुसकान से

मनोहर उनके मुख को देखकर नगर की नारियों के चित्त में काम का संचार हो जाता था । इसी प्रकार के वे दिखाई पड़ते थे ।।३१।।

यर्हि वाव स भगवाँल्लोकमिमंयोगस्याद्धा प्रतीपमिवाचक्षाणस्तत्प्रतिक्रियाकर्मबीभत्सितमिति व्रतमाजगरमास्थितः शयान एवाश्नाति पिबति खादत्यवमेहति हदति स्म चेष्टमान उच्चरित आदिग्धोद्देशः।।३२।।

अनुवाद— जब भगवान् ऋषभदेव ने देखा कि यह जनता योग साधन में विघ्न रूप है और इससे बचने का उपाय बीभत्स रूप से रहना ही है तब उन्होंने अजगर वृत्ति धारण कर ली । वे लेटे ही लेटे खाने पीने चबाने और मल-मूत्र त्यागने लगे वे अपने त्यागे हुए मलमें लोट लोटकर शरीर को उससे सान लेते थे ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

यर्दि यदा लोकं जनं योगस्य प्रतिपक्षमाचक्षाणः पश्यन्बभूव । तस्य प्रतिक्रियाकरणं कर्म च निन्दितमित्याचक्षाणस्तदाजगरं व्रतमास्थितः सन् शयान् एवाश्नाति स्मेत्यन्वयः । आजगरं व्रतं नामैकत्रैव स्थित्वा प्रारब्धकर्मोपभोगः । अवमेहति मूत्रयति हदति पुरीषमुत्सृजति । उच्चरिते पुरीषे चेष्टमानो विलुण्ठन् तेनैवादिग्धा आलिप्ता उद्देशा देहप्रदेशा यस्य सः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

जब उन्होंने देखा कि लोग योग में विघ्न स्वरूप है तब वे इससे बचने के लिए उन्होंने बीभत्स अजगर व्रत को अपना लिया । वे लेटे-ही-लेटे खाने-पीने लगे । एक स्थान पर ही रहकर प्रारब्ध क्रम का उपभोग करना ही अजगर व्रत है । वे लेटे-ही-लेटे मल-मूत्र भी त्याग करते थे । परित्यक्त मल में लोटते हुए मल से उनका शरीर सन जाता था ।।३२।।

तस्य ह यः पुरीषसुरभिसौगन्ध्यवायुस्तं देशं दशयोजनं समन्तात्सुरभिं चकार ।।३३।।

अनुवाद— उनके मल में दुर्गन्धि नहीं सुगन्धि थी । उनके मल की सुगन्धि को लेकर वायु उनके चारो ओर दश योजन तक सुगन्धित कर देती थी ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

बीभत्समिवाशङ्क्याह तस्येति । पुरीषस्य सुरभिणा गन्धेन सौगन्ध्येन सौगन्ध्यं यस्य व वायुः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

वीभत्स की आशङ्का करके कहते हैं उनके पुरीष की सुगन्धि से सुगन्धित वायु दश योजन पर्यन्त के प्रदेश को सुगन्धित करती थी ।।३३।।

एवं गोमृगकाकचर्यया व्रजंस्तिष्ठन्नासीनः शयानः काकमृगगोचरितः पिबति खादत्यवमेहति स्म।।३४।।

अनुवाद— इसी तरह गौ मृग तथा काक वृत्ति को अपना कर वे उन्हीं के समान कभी चलते हुए कभी खड़े-खड़े, कभी बैठे हुए और कभी लेटे ही लेटे खाने, पीने और मलमूत्र के त्यागने लगते थे ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

एवं गवादिचर्यया पानादिकरोति स्म् । तदेवाह-व्रजन्नित्यादिना । काकमृगगवामिवान्यदपि चरितं वृत्तिर्यस्य ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

इसी तरह गौ आदि की वृत्ति से वे खाने-पीने का काम करने लगे थे । कौआ, मृग तथा गौ आदि के समान वे वृत्ति अपना लेते थे ।।३४।।

इति नानायोगचर्याचरणो भगवान्कैवल्यपतिर्ऋषभोऽविरतपरममहानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनोऽव्यवधानानन्तरोदरभावेन सिद्धसमस्तार्थपरिपूर्णो योगैश्वर्याणि वैहायसमनोजवान्तर्धानपरकायपवेशदूरग्रहणादीनि यदृच्छयोपगतानि नाञ्जसा नृप हृदयेनाभ्यनन्दत् ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते पञ्चमोऽध्याय: ॥५॥

अनुवाद—इस प्रकार से अनेक प्रकार की योग चर्चा का आचरण करते हुए निरन्तर सर्वश्रेष्ठ महान् आनन्द का अनुभव करते रहते। उनकी दृष्टि में निरूपाधिक रूप से सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा अपने आत्म स्वरूप भगवान् वासुदेव से किसी प्रकार का भेद नहीं था। इसलिए उनके सभी पुरुषार्थ पूर्ण हो चुके थे। उनके पास गमन मनोजवित्स अन्तर्धान परकाय प्रवेश दूर की बातें सुन लेना और दूर के दृश्य को देख लेना इत्यादि सभी प्रकार की सिद्धियाँ उनके पास आयीं किन्तु उन्होंने उन सबों को नहीं स्वीकार किया ॥३२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के ऋभभेदव चरित वर्णन के अन्तर्गत पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

भावार्थ दीपिका

नानायोगचर्या आचरतीति तथा। लोकयात्रापरिहाराय योगिभिरेवं वर्तितव्यमिति प्रदर्शनाय तथा कृतवान्। वस्तुतस्तु भगवान्यतोऽविरत: परममहानुत्तरोत्तरशतगुणत्वेनोक्तो आनन्दस्तदनुभवस्वरूप:। किंच वासुदेवे आत्मनोऽव्यवधानेनाभेदेन न विद्यतेऽन्येषामिवान्तरा मध्ये उदरस्य देहोपाधेर्भावस्तेन। नित्यनिवृत्तोपाधित्वेनेत्यर्थ:। स्वत एव सिद्धै: समस्तैरर्थै: फलै: परिपूर्णत्वाद्योगैश्वर्याणि नाभ्यनन्दत्। वैहायसं खेचरत्वम्। मनोजवं मनस इव देहस्य वेगम्। दूरग्रहणं दूरदर्शनम्। हे नृप। हृदयेन मनसा ।।३५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे भावार्थ दीपिका टीकायां पञ्चमोऽध्याय: ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

लोक यात्रा का परित्याग करने के लिए योगियों का इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए इस बात को बतलाने के लिए उन्होंने अनेक प्रकार की योगचर्या की वस्तुत: भगवान् निरन्तर उत्तरोत्तर शतगुणित रूप से वर्णित जो आनन्द हे उससे अनुभव स्वरूप है। वे भगवान् वासुदेव से देह रूपी उपाधि को लेकर भेद नहीं मानते थे। उनकी उपाधि सदैव निवृत्त थी। स्वाभाविक रूप से सिद्ध सभी फलों से युक्त होने के कारण उन्होंने न तो योग के ऐश्वर्यों का अभिनन्दन किया आकाश मार्ग से गमन, मन के समान देह का वेग सम्पन्न हो जाना, दूर की वस्तुओं को देख लेना इत्यादि इन सभी सिद्धियों को हृदय से नहीं स्वीकारे ॥३५॥

इस तरत श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के पाञ्चवें अध्याय की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।५।।

छठा अध्याय

ऋषभदेव का देहत्याग करना

राजोवाच

न नूनं भगव आत्मारामाणां योगसमीरितज्ञानावभर्जितकर्मबीजानामैश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितुमर्हन्ति यदृच्छयोपगतानि ॥१॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— भगवान् योग रूप से प्रज्जवलित हुई । अग्नि से जिनके रागादि कर्म बीज दग्ध हो चुके हैं । आत्माराम मुनियों को दैववश यदि स्वयं ही अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त हो जाय तो वे उनके राग द्वेषादि क्लेशों का कारण तो किसी प्रकार नहीं हो सकती हैं । तो फिर भगवान् ऋषभदेव ने उन सबों को क्यों नहीं स्वीकार किया ?॥१॥

भावार्थ दीपिका

षष्ठे लीनाभिमानस्य देहत्यागक्रमाभिध । प्रदहनतं दवाग्निं यः पश्यन्नपि न पश्यति । योगैश्वर्याणि नाभ्यनन्ददित्युक्तं तत्र पृच्छति-नेति । भगवः हे भगवन्, योगेन समीरितमुद्दीपितं यज्ज्ञानं तेनावभर्जिततानि दग्धानि कर्मबीजानि रागादीनि यैस्तेषां यदृच्छया प्राप्तानि योगैश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितु नार्हन्ति । अतः किमिति नाभ्यनन्ददित्यर्थः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

छठे अध्याय में जिन्होंने अपने अभिमान को लीन कर दिया था उन ऋषभदेवजी के देहत्याग का वर्णन किया गया है। उन्होंने जलती हुई दवाग्नि को देखते हुए भी नहीं देखा । पीछे के अध्याय में शुकदेवजी ने कहा है कि ऋषभदेवजी ने योग के ऐश्वर्यों को नहीं स्वीकार किया । उसके विषय में महाराज परीक्षित् पूछते हैं कि— हे भगवन् योग की महिमा से प्रज्ज्वलित जिनके कर्मों के कारणभूत राग इत्यादि विनष्ट हो गये हैं उनको अपने आप प्राप्त होने वाले योगों के एश्वर्य पुनः क्लेश नहीं दे सकते हैं, फिर उन्होंने उन ऐश्वर्यों को क्यों नहीं स्वीरकार किया ॥१॥

ऋषिरुवाच

सत्यमुक्त किं त्विह वा एकेन मनसोऽद्धा विश्रम्भमनवस्थानस्य शठकिरात इव संगच्छन्ते ॥२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— तुम ठीक कहते हो, किन्तु जैसे दुष्टकिरात (व्याध) अपने पकड़े हुए मृग का जैसे विश्वास नहीं करता है उसी तरह बुद्धिमान पुरुष इस चंञ्चल चित्त का विश्वास नहीं करते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अङ्गीकृत्य परिहरति सत्यमिति । एके बुद्धिमन्तोऽनवस्थानस्य चञ्चलस्य मनसो विश्वासं न संगच्छन्ते न सम्यक् प्राप्नुवन्ति। शठः किरातो यथा धृतेष्वपि मृगेषु । शठे किराते यथा मृगा इति सप्तम्यन्तं वा । पाठान्तरे शठो वञ्चकः किरातो वणिग्व्यवहर्तरि यथा । तस्मिन्वा व्यवहर्ता विश्वासं न यातीत्यर्थः । पाक्षिकोपि दोषो वर्जनीय इत्युपदेष्टुं नाभ्यनन्ददिति भावः॥२॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् की बात को स्वीकार करके उसका खण्डन करते हैं— जो बुद्धिमान पुरुष होते हैं वे इस चञ्चल मन का विश्वास नहीं करते हैं । जैसे शठ किरात पकड़े हुए मृगों पर भी विश्वास नहीं करता है । अथवा **शठकिरात** पद में शठे किराते इस तरह का विग्रह करने पर अर्थ होगा कि जिस तरह शठ किरात पर मृग विश्वास

नहीं करते हैं । जहाँ दूसरा पाठ है वहाँ अर्थ होगा कि प्रवञ्चक किरात जिस तरह व्यापारी पर विश्वास नहीं करते हैं । अथवा जिस तरह व्यापारी शठ किरात पर विश्वास नहीं करता है । दूसरे पक्ष में होने वाले दोष का भी वर्जन करना चाहिए इस तरह उपदेश देने के लिए उन्होंने उन सिद्धियों को नहीं स्वीकार किया ।।२।।

तथा चोक्तम् ।

अनुवाद— कहा भी गया है ।

न कुर्यात्कर्हिचित्सख्यं मनसि ह्यनवस्थिते । यद्विश्रम्भाच्चिराच्चीर्णं चस्कन्द तप ऐश्वरम् ।।३।।

अन्वयः— अनवस्थिते हि मनसि कर्हिचित सख्यं न कुर्यात् यद विश्रम्भात् चिरात् चिर्णं ऐश्वरं तप चस्कन्द ।।३।।

अनुवाद— इस चञ्चल चित्त से कभी भी मित्रता नहीं करनी चाहिए इस पर विश्वास करने के कारण मोहिनी के रूप में फँसकर दीर्घकाल से सञ्चित तप को क्षीण कर दिया ।।३।।

भावार्थ दीपिका

यद्विश्रम्भाद्यस्य मनसो विश्वासाच्चिराच्चीर्णं बहुकालसंचितं तपश्चस्कन्द सुस्राव । ऐश्वरं विष्णोर्मोहिनीरूपदर्शनेन । यद्वा ईश्वराणां समर्थानामपि सौभरिप्रभृतीनां तपः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

उस चञ्चल पर विश्वास करने के कारण ही दीर्घ काल से सञ्चित शङ्करजी का तप परमात्मा के मोहिनी रूप को देखने से क्षीण हो गया । अथवा समर्थ भी सौभरि आदि महर्षियों का भी तप क्षीण हो गया ।।३।।

नित्यं ददाति कामस्य छिद्रं तमनु येऽरयः । योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली ।।४।।

अन्वयः— कृत मैत्रस्य योनिः निमनः पुश्चली जाया इव नित्यं कामस्य तदनु ये अरयः तेषां छिद्रं ददाति ।।४।।

अनुवाद— जो योगी अपने इस चञ्चल मन पर विश्वास करते हैं उनका मन काम और इसके साथी क्रोधादि शत्रुओं को आक्रमण करने का उसी तरह से अवकाश प्रदानकर देता है जिस तरह व्यभिचारिणी स्त्री जार पुरुषों को अवकाश प्रदान करके उस पर विश्वास करने वाले पति को मरवा देती है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः- नित्यमिति । कृतविश्वासो यो योगी तदीयं मनः कामस्य तमनु येऽरयस्तेषां च छिद्रमवकाशं ददाति । यथा कृतविश्वासस्य पत्युः पुंश्चली जाया जाराणामवकाशं दत्त्वा पतिं घातयति तथा मनोऽपि कामादिभिर्योगिनं भ्रंशयतीत्यर्थः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

मन पर विश्वास नहीं करना चाहिए इसका कारण इस श्लोक में कहा गया है कि जो योगी अपने मन पर विश्वास करता है उसका मन काम तथा उस योगी के शत्रु क्रोध आदि को अवसर प्रदान उसी तरह करता है जिस तरह व्यभिचारिणी नारी अपने जार पुरुष को अवसर प्रदान करके उस पर विश्वास करने वाले पति का बध करा देती है । उसी तरह मन भी काम इत्यादि के द्वारा योगी पुरुष को भ्रष्ट कर देने का काम करता है ।।४।।

कामो मन्युर्मदो लोभः शोकमोहभयादयः । कर्मबन्धश्च यन्मूलः स्वीकुर्यात्को नु तद्बुधः ।।५।।

अन्वयः— कामः मन्युः, मदः, लोभः, शोकमोहभयादयः तथा कर्मबन्धः यन्मूलः स्वीकुर्यात् को न तद् बुधः ।।५।।

अनुवाद— काम, क्रोध, मद, लोभ, शोक, मोह तथा भय आदि एवं कर्मों के बन्धन का मूल मन ही है, उस पर कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति कैसे विश्वास कर सकता है ?।।५।।

भावार्थ दीपिका

अरीन्कथयन्नुपसंहरति-काम इति । यन्मूलो बन्धागमो भवति तन्मनः को नु बुधः स्वीकुर्यात्स्वाधीनमिति मन्येत ॥५॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में योगी के शत्रुओं का वर्णन करते हुए राजा के प्रश्न के उत्तर का उपसंहार इस श्लोक के द्वारा करते हैं जिसके कारण संसार का बन्धन होता है उस मन को कोई भी योगी कैसे अपने वशवर्ती मान सकता है नहीं मान सकता ॥५॥

अथैवमखिललोकपाललललामोऽपि विलक्षणैर्जडवदवधूतवेषभाषाचरितैरविलक्षितभगवत्प्रभावो योगिनां सांपरायविधिमनुशिक्षयन्स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमनर्थान्तरभावेनान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम ॥६॥

अनुवाद— इसीलिए यद्यपि भगवान् ऋषभदेव इन्द्रादि लोकपालों के भी भूषण थे फिर भी वे जड़ पुरुषों के समान अवधूतों के जैसे विधि वेष भाषा और आचरण से अपने ऐश्वर प्रभाव को छिपाये रहते थे । अन्त में वे योगियों को देहत्याग की विधि को बतलाने के लिए अपना शरीर त्याग करना चाहे । अपने अन्तःकरण से अभिन्न रूप से स्थित परमात्मा को अभिन्न रूप से देखते हुए वासनाओं की अनुवृत्ति से रहित होकर और लिङ्ग देह के भी अभिमान से रहित होकर उपरत हो गये ॥६॥

भावार्थ दीपिका

प्रासङ्गिकं समाप्य प्रस्तुतमाह-अथेति । अखिलानां लोकपालानां ललामो मण्डनभूतोऽप्युपरता बाधितानुवृत्तिर्यस्मात्स उपरराम देहाभिमानं जहौ । विलक्षणैरनेकप्रकारैरवधूतवेषादिभिः न विलक्षितो भगवत्प्रभावो यस्मिन् । सांपरायविधिं देहत्यागप्रकारम्। आधाराधेयभावव्यावृत्त्यर्थमाह, अनर्थान्तरभावेनाभेदेन । उपासनाव्यावृत्त्यर्थमाह, असंव्यवहितम् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्ग प्राप्त बात को समाप्त करके शुकदेवजी प्रस्तुत बात बतलाते हुए कहते हैं । समस्त लोकपालों के अलङ्कार स्वरूप भी होकर उनकी बाधितानुवृत्ति के समाप्त हो जाने के कारण उन्होंने अपने शरीर का परित्याग कर दिया । अनेक प्रकार के विलक्षण अनेक प्रकार के अवधूत वेषों आदि के द्वारा उनके ईश्वरीय प्रभाव प्रतीत नहीं होता था । वे योगियों को देहत्याग की विधि सिखाने के लिए अभिन्न रूप से प्रतीत होने वाले परमात्मा को देखते हुए उन्होने अपना शरीर त्याग कर दिये ॥६॥

तस्य ह वा एंव मुक्तलिङ्गस्य भगवत ऋषभस्य योगमायावासनया देह इमां जगतीमभिमानाभासेन संक्रममाणः कोङ्कवेङ्ककुटकान् दक्षिणकर्नाटकान् देशान्यदृच्छयोपगतः कुटकाचलोपवन आस्यकृताश्मकवल उन्माद इव मुक्तमूर्धजोऽसंवीतएव विचचार ॥७॥

अनुवाद— इस तरह लिङ्ग शरीर के अभिमान से रहित भगवान् ऋषभदेवजी का शरीर योगमाया की वासना से इस पृथिवी पर अभिमानाभास के आश्रय से ही विचरण करता रहा । दैववशात् वह दक्षिण भारत के कोंक बेंक कुटकतथा कर्णाटक आदि देशों में भी गये । वे मुँह में पत्थर का टुकड़ा डाले हुए दिगम्बर रूप से कुटकाचल वन में विचरण करने लगे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

मनसा स्वयं त्यक्तेऽप्यभिमाने केनापि संस्कारेण देहः प्रचलति यथा कुलालचक्रं सोऽयमभिमानाभासस्तेन । स च

जीवन्मुक्तानामविद्यावासनया भवतीति ततो विशेषमाह-योगमायावासनयेति । कोङ्कादीन् देशान्गतः सन्कयापि वासनयास्ये कृतोऽश्मकवलो येन । असंवीतो नग्नः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

मन से अभिमान का त्याग कर देने पर भी किसी संस्कार विशेष के कारण उनका शरीर अभिमानाभास के कारण कुलाल चक्र के समान चलता रहा जीव मुक्तों को अविद्या के कारण होता है उसी को विशेष रूप से शुकदेवजी ने योगमाया की वासना कहा है । कोंक आदि देशों में पहुच कर मुख में पत्थर के टुकड़े का ग्रास डाले हुए नग्न घूम रहे थे ॥७॥

अथ समीरवेगविधूतवेणुविकर्षणजातोग्रदावानलस्तद्वनभाले लिहानः सह तेन ददाह ॥८॥

अनुवाद— उसी समय वायु के द्वारा झकझोरे गये बांसों की रगड़ से प्रवल दावाग्नि धधक उठी और सम्पूर्ण वन को अपनी लपटों में लेकर ऋषभदेवजी के शरीर को उसने भस्म कर दिया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

समीरवेगेन विधूतानां कम्पितानां वेणूनां संघर्षणेन जात उग्रो दावानलः। आलेलिहानः सर्वतो ग्रसन् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

वायु के वेग से झकझोरे गये बाँसों की रगड़ से दावाग्नि उग्र हो गयी और उसने वन के साथ ऋषभदेवजी के शरीर को भी जला दिया ॥८॥

यस्य किलानुचरितमुपाकर्ण्य कोङ्कवेङ्ककुटकानां राजाऽर्हन्नामोपशिक्ष्य कलावधर्म उत्कृष्यमाणे भवितव्येन विमोहितः स्वधर्मपथमकुतोभयमपहाय कुपथपाषण्डमसमञ्जसं निजमनीषया मन्दः संप्रवर्तयिष्यते॥९॥

अनुवाद— राजन् जिस समय कलियुग में अधर्म बढ़ जायेगा उस समय कोंक बेंक ओर कुटक देश के राजा अर्हत् वहाँ के लोगों से ऋषभदेवजी के आश्रमातीत आचरण को सुनकर स्वयं उसे अपनाकर लोगों के पूर्व संचित पाप के फलस्वरूप दैववशात् भय रहित अपने धर्मपथ का परित्याग करके अपनी मन्द बुद्धि के कारण अनुचित पाखण्ड मार्ग का प्रचार करेगा ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अवधूतवेषेण ऋषभदेवस्तत्र गत इत्येतस्य सूचकमाह । यस्य किलाश्रमातीतमनुचरितं तद्देशवासिभ्य उपाकर्ण्य अर्हन्निति नाम यस्य स राजा स्वयं तदुपशिक्ष्य शिक्षित्वा कुपथश्चासौ पाषण्डश्च तं निजमनीषया संप्रवर्तयिष्यत इत्यन्वयः । तत्र हेतुः- कलावित्यादि । भवितव्येन प्राणिपूर्वसंचितपापफलेन ॥९॥

भाव प्रकाशिका

अवधूत वेष में ऋषभदेव वहाँ गये इसके सूचक को बतलाते है, जिनके आश्रमातीत आचरण को उस देश के लोगों से सुनकर अर्हत् नाम का राजा उसको अपनाकर पाषण्ड मार्ग को अपनी बुद्धि के अनुसार प्रवर्तित करेगा। यह पापियों के पूर्व संचित पाप का फल स्वरूप होगा ॥९॥

येन ह वाव कलौ मनुजापसदा देवमायामोहिताः स्वविधिनियोगशौचचारित्रविहीना देवहेलनान्यपव्रतानि निजनिजेच्छया गृह्णाना असन्नानानाचमनाशौचकेशोल्लुञ्चनादीनि कलियाऽधर्मबहुलेनोपहतधियो ब्रह्मब्राह्मणयज्ञपुरुषलोकविदूषकाः प्रायेण भविष्यन्ति ॥१०॥

अनुवाद— उसके कारण कलियुग में परमात्मा की माया से मोहित अनेक अधम मनुष्य आपने शास्त्रोक्त

शौचाचार का परित्याग कर देंगे, अधर्म प्रधान कलियुग के प्रभाव के कारण वे बुद्धि हीन मनुष्य स्नान न करना, आचमन नहीं करना, अशुद्ध रहना केश नोचवाना प्रभृति ईश्वर का तिरस्कार करने वाले पाखण्ड धर्म को मन: कल्पित रूप से अपना लेंगे । और वे प्राय: वेद, ब्राह्मण, एवं भगवान् यज्ञ पुरुष की निन्दा करने लगेंगे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

येन प्रवर्तकेन मनुजेष्वपसदा निकृष्टाः स्वविधिना नियोगो यस्मिन् शौचचारित्रे तद्विहीना देवावज्ञारूपाण्यस्नानादीनि कुव्रतानि गृह्णाना वेदादीनां विदूषका भविष्यन्ति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उसके द्वारा प्रवर्तित होने के कारण नीच मनुष्य अपने मन माने ढ़ग से पावित्र्य तथा चरित्र हीन होकर, देवताओं की अवहेलनादि रूप स्नान नहीं करना आदि निन्दित व्रतों को स्वीकार करके वेद आदि की निन्दा करने वाले हो जायेंगे ॥१०॥

ते च ह्यर्वाक्तनया निजलोकयात्रयान्धपरम्परयाश्वस्तास्तमस्यन्धे स्वयमेव प्रपतिष्यन्ति ॥११॥

अनुवाद— वे अपनी इस नवीन का अवैदिक स्वेच्छा कृत प्रवृत्ति में अन्ध परम्परा से विश्वास करके मदमत्त रहने के कारण स्वयं ही नरक में गिरेंगे ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तत्फलं चान्धं तमः प्राप्स्यन्तीत्याह-ते चेति । अर्वाक्तनया अवेदमूलया । निजलोकयात्रया स्वेच्छाकृतप्रवृत्त्या आश्वस्ता: कृतविश्वासा: ॥११॥

भाव प्रकाशिका

उसके फलस्वरूप वे धोर नरक में जायें इस बात को बतलाते हुए शुकदेवजी ने कहा अवैदिक अपने मन: कल्पित प्रवृत्ति में विश्वास रखने वाले वे लोग घोर नरक में जायेंगे ॥११॥

अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योपशिक्षणार्थः ॥१२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का यह अवतार रजोगुण से परिपूर्ण मनुष्यों को मुक्तिमार्ग का उपदेश देने के लिए हुआ था॥१२॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्ह्यनर्थकारी किमर्थोऽयमृषभावतारस्तत्राह-अयमिति । रजोव्याप्तानां जनानां मोक्षमार्गोपशिक्षणार्थः । तस्य कैवल्योपशिक्षणस्यानुरूपान् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

तो फिर भगवान् का यह अनर्थकारी ऋषभावतार क्यों हुआ तो इसका उत्तर है कि श्रीभगवान् का यह अवतार रजोगुणी मनुष्यों को मुक्ति का मार्ग सिखलाने के ही लिए हुआ था ॥१२॥

तस्यानुगुणान् श्लोकान्गायन्ति ।

अनुवाद— उसके गुणों का वर्णन करते हुए गायन सत्पुरुष करते हैं ।

अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत् ।
गायन्ति यत्रत्यजना मुरारेः कर्माणि भद्राण्यवतारवन्ति ॥१३॥

अन्वयः— अहो सप्तसमुद्रवत्याः भुवः द्वीपेषु वर्षेषु एतत् अधिपुण्यम् । यत्र त्यजनः मुरारे अवतारवन्ति भद्राणिकर्माणि गायन्ति ॥१३॥

अनुवाद— अहो सात समुद्रों वाली पृथिवी के द्वीपों और वर्षों में यह भारत वर्ष सर्वाधिक पुण्यमय है, जहाँ के लोग श्रीभगवान् के अवतारों के मङ्गलमय चरित्रों का गायन करते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अधि अधिकं पुण्यं यस्मिन् । एतद्भारतं वर्षम् । ऋषभाद्यवतारयुक्तानि कर्माणि ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी के सभी द्वीपों और वर्षो मे यह भारत वर्ष अधिक पुण्यमय है । यहाँ के लोग श्रीहरि के अवतारों के मङ्गलमयी चरित्रों का गायन करते हैं ।।१३।।

अहो नु वंशो यशसावदातः प्रैयव्रतो यत्र पुमान्पुराणः ।
कृतावतारः पुरुषः स आद्यश्चचार धर्मं यदकर्महेतुम् ।।१४।।

अन्वयः— अहो यशसावदातः पैयव्रतो वंशः यत्र आद्यः पुराण पुरुषः कृतावतारः यद, अकर्महुतम् धर्मं चचार।।१४।।

अनुवाद— महाराज, प्रियव्रत का वंश बड़ा उज्ज्वल और यशोमय है, इस वंश में पुराण पुरुष आदि नारायण ने ऋषभदेव के रूप में अवतार ग्रहण किया और मोक्ष की प्राप्ति करने वाले पारमहंस्य धर्म का आचरण किया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

प्रियव्रतस्य वंशः । अवदातः शुद्धः । यत्र वंशे । यद्यस्मात् । अकर्म मोक्षस्तस्य हेतुं धर्म चचार ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

महाराज प्रियव्रत का वंश शुद्ध है । इसी वंश में आदि पुरुष भगवान् नारायण ने अवतार लेकर मोक्ष की प्राप्ति कराने वाले धर्म का आचरण किया ।।१४।।

को न्वस्य काष्ठामपरोऽनुगच्छेन्मनोरथेनाप्यभवस्य योगी ।
यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ता ह्यसत्तया येन कृतप्रयत्नाः ।।१५।।

अन्वयः— अस्य अभवस्य काष्ठाम् कोनु अपर योगी मनोरथेनापि अनुगच्छेत् । येन उसत्तया कृतप्रयत्नाः योगमायाः निरस्ताः योगी तत्र कृतप्रयत्नः ।।१५।।

अनुवाद— इन भगवान् ऋषभ के मार्ग का कोई भी योगी मन से भी अनुसरण कैसे कर सकता है ? क्योंकि ये अपने आप प्राप्त जिन सिद्धियों को मिथ्या समझकर त्याग दिया उन्हीं सिद्धियों के लिए निरन्तर प्रयास करते रहते हैं ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अपरः को नु योगी अस्य काष्ठां दिशमप्यनुगच्छेत् । यो योगी येन ऋषभेणाऽसत्तयाऽवस्तुत्वेनोदस्ता निरस्ता योगमायाः सिद्धीर्वाञ्छति । कथंभूताः । कृतः प्रयत्नत्रो यासु । तदर्थं प्रयत्नं च करोतीत्यर्थः । यद्वा कथंभूताः । उदस्ताः कृतप्रयत्नाः सेवितुमुद्यता अपीत्यर्थः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

दूसरा कोई भी योगी भगवान् ऋषभदेव के मार्ग का मन से भी कैसे अनुसरण कर सकता है ? क्योंकि अपने आप प्राप्त जिन सिद्धियों को मिथ्या समझकर उनहोनें त्याग दिया उन्हीं सिद्धियों के लिएदूसरे योगिजन सदा प्रयासरत रहते हैं अथवा कैसी सिद्धियों की ओर से उदास हो गये ? तो इसका उत्तर है कि जो सिद्धियाँ स्वयं भगवान् ऋषभदेव का सेवन करना चाहती थी ।।१५।।

इति ह स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां परमगुरोर्भगवत ऋषभाख्यस्य विशुद्धाचरितमीरितं पुंसां समस्तदुश्चरिताभिहरणम् परममहामङ्गलायनमिदमनुश्रद्धयोपचितयानुशृणोत्याश्रावयति वावहितो भगवति तस्मिन्वासुदेव एकान्ततो भक्तिरनयोरपि समनुवर्तते ।।१६।।

अनुवाद— राजन् ! मैं सम्पूर्ण वेद, लोक, देवता, ब्राह्मण, तथा गौओं के परम गुरु भगवान् ऋषभदेव का चरित्र मैंने आपको सुनाया । यह मनुष्यों के समस्त पापों को विनष्ट कर देने वाला है । जो लोग इस अत्यन्त पवित्र तथा मङ्गलमय चरित्र को एकाग्रमना होकर श्रद्धा पूर्वक सुनते हैं अथवा सुनाते हैं उन दोनों ही प्रकार के लोगों की श्रीभगवान् में अनन्या भक्ति होती है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

विशुद्धाचरितं यदीरितं कथितं तत्समस्तं दुश्चरितमभितो हरतीति तथा । परममहामङ्गलानामयनं च । अवहितः सन् । अनयोरपि श्रोतृश्रावयित्रोरविशेषेण भक्तिः सम्यगनुवृत्ता भवतीत्यर्थः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् ऋषभदेव का जो शुद्ध चरित मैंने आपको सुनाया है वह समस्त पापों को विनष्ट कर देने वाला है । यह चरित महामङ्गलमय है । जो सावधान होकर इसे सुनता और सुनाता है उन दोनों श्रोता और श्रावयिताओं की समान रूप से भगवान् में अनन्या भक्ति हो जाती है ।।१६।।

यस्यामेव कवय आत्मानमविरतं विविधवृजिनसंसारपरितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नापयन्तस्तयैव परया निर्वृत्त्या ह्यपवर्गमात्यन्तिकं परमपुरुषार्थमपि स्वयमासादितं नो एवाद्रियन्ते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः ।।१७।।

अनुवाद— विभिन्न प्रकार के पापों से परिपूर्ण सांसारिक संतापों से संतप्त अपने अन्तःकरण को पण्डित जन इस भक्ति सरिता में निरन्तर स्नान करते रहते हैं । इससे उन लोगों को जो अत्यन्त शान्ति मिलती है वह इतनी आनन्दपूर्ण होती है कि वे लोग उसके सामने स्वयं प्राप्त भी मोक्ष का महत्त्व नहीं देते हैं । श्रीभगवान् का भक्त हो जाने मात्र से ही उनके समस्त पुरुषार्थों की आनयास ही प्राप्ति हो जाती हैं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

भक्तेः परमपुरुषार्थत्वमाह । यस्यां भक्तावेव, न तु योगादिषु । अनुसवनमविरतमात्मानं स्नापयन्तः । स्वयमासादितमप्रार्थितं भगवता स्वयमेव दीयमानमपि । अनादरे हेतुः– भगवदीयत्वेनैव परितः समाप्ताः सम्यक् प्राप्ताः सर्वे पुरुषार्था यैस्ते ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

इस दण्डक में श्रीशुकदेवजी भक्ति के ही परम पुरुषार्थत्व का प्रतिपादन करते हैं । उस भक्ति सरिता में ही योगादि में नहीं निरन्तर स्नान करते रहते है । और श्रीभगवान् के द्वारा दिए जाने वाले मोक्ष नामक पुरुषार्थ का भी अनादर कर देते हैं । अनादर का कारण यह है कि भगवदीय हो जाने के ही कारण उनके सार पुरुषार्थ उन्हें प्राप्त हो जाते हैं ।।१७।।

राजन्पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किंकरो वः ।
अस्त्वेवमङ्ग भगवान्भजतां मुकुन्दो मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् ।।१८।।

अन्वयः— राजन् ! भगवान् मुकुन्दः भवतां यदूनां पतिः गुरुः दैवं प्रियः कुलपतिः क्वच किङ्कर वः । अङ्ग भजताम् एवं अस्तु सः कर्हिचित् मुक्ति ददतिस्म भक्तियोगम् न ।।१८।।

अनुवाद— हे राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं पाण्डवों के और यदुवंशियों के रक्षक, गुरु, इष्टदेव, सुहृद् और कुलपति थे । वे कभी-कभी तो अज्ञाकारी सेवक भी बन जाते थे । इसी तरह भगवान् दूसरे भक्तों के भी अनेक कार्यों को कर सकते हैं और उन सबों को मुक्ति भी प्रदान कर सकते हैं किन्तु वे भक्तियोग को नहीं प्रदान करते हैं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

ननु भगवतोऽतिसुलभत्वदर्शनान्मोक्षस्य चातिदुर्लभत्वादियमतिस्तुतिरेवेत्याशङ्क्याह । हे राजन् ! भवतां पाण्डवानां यदूनां च पतिः पालकः । गुरुरुपदेष्टा । दैवमुपास्यः । प्रियः सुहृत् । कुलस्य पतिर्नियन्ता । किं बहुना । क्व च कदाचिद्दौत्यादिषु वः पाण्डवानां किंकरोऽप्याज्ञानुवर्ती। अस्तु नामैवं तथाप्यन्येषां नित्यं भजतामपि मुक्तिं ददाति, नतु कदाचिदपि सप्रेमभक्तियोगम्।।१८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि श्रीभगवान् के अत्यन्त सुलभ होने के कारण तथा मोक्ष के अत्यन्त दुर्लभ होने के कारण यह अत्यन्त स्तुति ही करनी चाहिए, इस प्रकार की शङ्का करके शुकदेवजी कहते हैं— हे राजन् ! आप पाण्डव लोगों के तथा यदुवंशियों के रक्षक, गुरु, उपास्य देव, प्रिय मित्र, वंश के नियन्ता, अधिक क्या कहना है, वे कभी-कभी तो वे दैत्य आदि कार्यों को करने के लिए पाण्डवों के आज्ञाकारी सेवक भी बन जाते थे । और इसी तरह दूसरे निरन्तर भजन करने वाले लोगों के वे रक्षक आदि हो सकते है और उन भजन करने वाले लोगों को मुक्ति भी प्रदान कर सकते हैं किन्तु वे अनायास अपनी प्रेमाभक्ति को नहीं प्रदान करते हैं ।।१८।।

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः ।
लोकस्य यः करुणयाऽभयमात्मलोकमाख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ।।१९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

अन्वयः— नित्यानुभूत निजलाभनिवृत्ततृष्णः अतदरचनया श्रेयसि चिर सुप्त बुद्धेः यः करुणया अभयम् आत्मलोकम् अख्यात् तस्मै ऋषभाय नमः ।।१९।।

अनुवाद— निरन्तर विषयभोगों की अभिलाषा करने के कारण अपने वास्तविक श्रेय के विषय में जिन लोगों की बुद्धि चिरकाल से बेसुध लोगों को जिन्होंने करुणावशात् निर्भय आत्मलोक का उपदेश दिया और जो स्वयं निरन्तर अनुभव होने वाले आत्मस्वरुप की प्राप्ति के कारण हर प्रकार की तृष्णाओं से मुक्त थे उन भगवान् ऋषभदेव को नमस्कार हैं ।।१९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के ऋषभदेव चरितं के अन्तर्गत छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

भावार्थ दीपिका

वर्णितमृषभावतारं नमस्करोति । नित्यमनुभूतं यन्निजं रूपं स एव लाभस्तेन निवृत्ता तृष्णा यस्य सः । अतद्रचनया देहाद्यर्थमनोरथेन श्रेयसि विषये चिरं सुप्ता बुद्धिर्यस्य तस्य जनस्य करुणया निर्भयमात्मस्वरूपं य आख्यातवांस्तस्मै नमः।।१९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

इन अध्यायों में वर्णित ऋषभावतार को नमस्कार करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं- जो स्वयं निरन्तर अनुभव होने वाले आत्मा के स्वरूप की प्राप्ति से हर प्रकार की तृष्णाओं से मुक्त थे देह आदि के विषय में भोगों की प्राप्ति की अभिलाषा से सदैव उनकी अभिलाषा करने वाले तथा वास्तविक श्रेय के विषय में बेसुध लोगों को कारुणावशात् जिन्होंने अपने निर्भय आत्मलोक का उपदेश दिया उन भगवान् ऋषभ देव को नमस्कार हैं ।।१९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।६।।

सातवाँ अध्याय

भरत चरित्र

श्रीशुक उवाच

भरतस्तु महाभागवतो यदा भगवताऽवनितलपरिपालनाय संचिन्तितस्तदनुशासनपरः पञ्चजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे ॥१॥

अनुवाद— राजन् महाराज भरत महाभागवत थे । भगवान् ऋषभदेव अपने सङ्कल्प मात्र से उनको पृथिवी की रक्षा में नियुक्त कर दिये थे । उनकी आज्ञा का पालन करते हुए महाराज भरत विश्वरूप की पुत्री पंचजनी से विवाह किये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अध्यायानां त्रयेणैवमृषभाख्यानमीरितम् । अष्टभिर्भरताख्यानमतः प्रस्तूयतेऽमृतम् । सप्तमे भरतो राज्ये चिरं यज्ञैर्हरिं यजन् । आरब्धकर्मनिर्वाणे हरिक्षेत्रेऽभजद्धरिम् । संचिन्तितः सङ्कल्पेनैव राज्यादौ नियुक्तः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तीन अध्यायों में ऋषभदेव के वृत्तान्त का वर्णन किया जा चुका है । अब आठ अध्यायों में अमृत स्वरूप महाराज भरत का वृत्तान्त वर्णन किया जा रहा है । सातवें अध्याय में यह बतलाया कि महाराज भरत अपने राज्य में यज्ञों के द्वारा श्रीहरि का चिरकाल तक यजन करने के पश्चात् प्रारब्ध कर्म को समाप्त करने के लिए श्रीहरि क्षेत्र में जाकर श्रीहरि का भजन करने लगे । ऋषभ देव ने अपने सङ्कल्प मात्र से भरत को राजगद्दी पर बैठा दिया॥१॥

तस्यामु ह वा आत्मजान्कात्स्र्न्येनानुरूपानात्मनः पञ्च जनयामास भूतादिरिव भूतसूक्ष्माणि । सुमतिं राष्ट्रभृतं सुदर्शनमावरणं धूम्रकेतुमिति । अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति ॥२-३॥

अनुवाद— जिस तरह भूतादि अहङ्कार से पञ्चतन्माय की उत्पत्ति होती है, उसी तरह पञ्चजनी के गर्भ से उनके सुमति राष्ट्रभृत, सुदर्शन आवरण और धूम्रकेतु नामक पाँच पुत्र हुए । वे सब पूर्णरूप से उनके ही समान थे । पहले इस वर्ष का नाम अजनाम वर्ष था किन्तु महाराज भरत के ही समय से यह भारत वर्ष कहलाने लगा ॥२-३॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनोऽनुरूपान् । भूतादिरहंकार इव भूतसूक्ष्माणीति संततिवृद्धौ दृष्टान्तः । भारतमिति स्वनाम्ना ख्यापकत्वेन धर्माद्यतिशयः सूचितः ॥२-३॥

भाव प्रकाशिका

महाराज भरत के सभी पुत्र उनके ही समान थे । उन्होंने पञ्चजनी के गर्भ से उसी प्रकार से पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया जिस तरह भूतादि (तामस) अहङ्कार से पाँच तन्मात्रों की उत्पत्ति होती है यह सन्तान की वृद्धि में दृष्टान्त हैं । भारत वर्ष यह अपने नाम से विख्यात करना अत्यधिक धर्मादि को सूचित करने के लिए हैं ॥२-३॥

स बहुविन्महीपतिः पितृपितामहवदुरुवत्सलतया स्वे स्वे कर्मणि वर्तमानाः प्रजाः स्वधर्ममनुवर्तमानः पर्यपालयत् ॥४॥

अनुवाद— वे महाराज भरत बहुज्ञ थे । अपने-अपने धर्म का पालन करने वाली प्रजाओं का पालन अपने माता-पिता महादि के समान अत्यन्त वात्सल्य पूर्वक करते थे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

बहुवित्सर्वज्ञः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

मूल के बहुवित् शब्द का अर्थ है सबकुछ जानने वाले ।।४।।

ईजे च भगवन्तं यज्ञक्रतुरूपं क्रतुभिरुच्चावचैः श्रद्धयाहृताग्निहोत्रदर्शपूर्णमासचातुर्मास्यपशुसोमानां प्रकृतिविकृतिभिरनुसवनं चातुर्होत्रविधिना ।।५।।

अनुवाद— उन्होंने श्रद्धा पूर्वक होता, अध्वर्यु उद्गाता और ब्रह्मा द्वारा कराये जाने वाले प्रकृति और विकृति दोनों प्रकार के अग्नि होत्र, दर्श, पूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु और सोम इत्यादि छोटे बड़े क्रतुओं के द्वारा समयानुसार यज्ञ एवंक्रतु रूप श्रीभगवान् का यजन किया ।।५।।

भावार्थ दीपिका

यज्ञा अयूपाः क्रतवः सयूपास्तद्रूपम् । उच्चावचैर्महद्भिरल्पैश्च क्रतुभिः कर्मभिः श्रद्धया ईजे च । तानेवाह । आहृताः स्वाधिकारेणात्मसात्कृता येऽग्निहोत्रादयस्तेषां प्रकृतिविकृतिभिः । अग्निहोत्रादयो द्विविधाः । सकलाङ्गयुक्ताः प्रकृतयः विकलाङ्गा विकृतया इति । तैर्विविधैरपीष्टवानित्यर्थः। अनुसवनमित्यन्तं वा चातुर्होत्रविधिनेत्यन्तं वा गद्यम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

यज्ञ वे हैं जिनमें यूप (स्तम्भ) नहीं होते हैं और क्रतु यूप से युक्त होते हैं । उच्चावच्च का अर्थ है छोटे बड़े क्रतुओं से श्रद्धा पूर्वक उन्होंने श्रीभगवान् का भजन किया । आहृता: का अर्थ है अपने अधिकारानुसार अपनाये गये जो अग्नि होत्र आदि कर्म उनके प्रकृति यागों और विकृति यागों के द्वारा उन्होंने भजन किया । अग्निहोत्र इत्यादि दो प्रकार के होते हैं प्रकृति अर्थात् सभी अङ्गों से परिपूर्ण और विकृति जिनमें किसी अङ्ग की कमी होती है । इस तरह के अनेक यागों से भी उन्होंने भगवान् का भजन किया । यह दण्डक अनुसवनं पर्यन्त अथवा चातुर्होत्र विधिना पर्यन्त है ।।५।।

संप्रचरत्सु नानायागेषु विरचिताङ्गक्रियेष्वपूर्व यत्तक्रियाफलं धर्माख्यं परे ब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्वदेवतालिङ्गानां मन्त्राणामर्थनियामकतया साक्षात्कर्तरि परदेवतायां भगवति वासुदेव एव भावयमान आत्मनैपुण्य-मृदितकषायो हविःष्वध्वर्युभिर्गृह्यमाणेषु स यजमानो यज्ञभाजो देवास्तान्पुरुषावयवेष्वभ्यध्यायत् ।।६।।

अनुवाद— इस तरह अङ्ग और क्रियाओं के साथ भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञानुष्ठान के समय जब अध्वर्युग अपने हाथ में हविष्य को लेते थे उस समय महाराज भरत उस यज्ञ कर्म से होने वाले अदृष्ट (यज्ञ के फल को) यज्ञ पुरुष भगवान् वासुदेव को ही अर्पित कर देते थे । वस्तुत: परंब्रह्म भगवान् वासुदेव ही सभी देवताओं के प्रकाशक तथा मन्त्रों के प्रतिपाद्य तथा देवताओं भी नियामक मुख्र कर्ता और परा देवता हैं । इस तरह भगवदर्पण रूप बुद्धि के नैपुण्य के द्वारा अपने हृदय में विद्यमान राग-द्वेष आदि मलों को दूर करते हुए वे सूर्य इस यज्ञ भोक्ता देवताओं श्रीभगवान् के अङ्गों के रूप में ध्यान किया करते थे ।।६।।

भावार्थ दीपिका

किंच संप्रचरत्सु प्रवर्तमानेषु नानायागेषु विरचितानुष्ठिताङ्गक्रिया येषां तेषु यदपूर्वं तद्वासुदेव एव भावयमानश्चिन्तयन्स यजमानो यज्ञभाजो ये देवाः सूर्यादयस्तान्पुरुषस्य वासुदेवस्यावयवेषु चक्षुरादिष्वभ्यध्यायत् नतु पृथक्त्वेनेत्यन्वयः । अपूर्वे पक्षद्वयं मीमांसकानाम् । तदानीमेव सूक्ष्मत्वेनोत्पन्नं फलमेवापूर्वं कालान्तरफलोत्पादिका कर्मशक्तिर्वेति । तदुक्तम्- 'यागादेवं

फलं तद्धि शक्तिद्वारेण सिध्यति। सूक्ष्मं शत्तयात्मकं वापि फलमेवोपजायते ।।" इति । तदेवाह- क्रियाफलं धर्माख्यमिति च। ननु यद्यङ्ग देवताः कर्मप्रधानमिति मतं तर्हि कर्तृनिष्ठमपूर्वं स्यात् । तदुक्तम् 'कर्मभ्यः प्रागयोग्यस्य कर्मणः पुरुषस्य वा । योग्यता शास्त्रगम्या या परा साऽपूर्वमिष्यते ।।" इति । अथ देवताप्रधानं कर्म तु देवताराधनार्थंतदा देवताप्रसादरूपत्वादपूर्वस्य देवताश्रयत्वमेव युक्तम् । प्रोक्षणाद्यपूर्वस्येव व्रीह्याद्याश्रयत्वम् । कुतो वा वासुदेवाश्रयमपूर्वम् भावयति । उच्यते-यदि कर्तृनिष्ठमपूर्वं तर्हि वासुदेवस्यान्तर्यामिणः प्रवर्तकत्वेन मुख्यकर्तृत्वात्तदाश्रयमेवापूर्व, नतु तत्प्रयोज्ययजमानाश्रयम् । शास्त्रफलं प्रयोक्तरीति न्यायात् । अन्यथा ऋत्विजामप्यपूर्वाश्रयत्वप्रसङ्गात् । तदेवाह- साक्षात्कर्तरीति । देवताश्रयत्वेऽपि वासुदेवाश्रयत्वमेवेत्याह- परदेवतायामिति । परदेवतात्वे हेतुः- सर्वदेवतालिङ्गानां तत्तद्देवताप्रकाशकानां मन्त्राणां येऽर्था इन्द्रादिदेवतास्तेषां नियामकतया तस्यैव प्रसादनीयत्वात्फलदातृत्वाच्च युक्तमेवापूर्वाश्रयत्वमित्यर्थः । एवं भावनमेवात्मनो नैपुण्यं कौशलं तेन मृदिताः क्षीणाः कषाया रागादयो यस्य । अध्वर्युभिरिति बहुवचनं नानाकर्माभिप्रायेण ।।६।।

भाव प्रकाशिका

अङ्गों और क्रियाओं के साथ अनुष्ठान किए जाने वाले अनेक प्रकार के यागों के अनुष्ठान के द्वारा जिस अपूर्व रूप पुण्य की प्राप्ति होती है उसको महाराज भरत यज्ञ पुरुष भगवान् वासुदेव का ही चिन्तन करते हुए उनको समर्पित करते थे और यज्ञभोक्ता सूर्यादि देवताओं का वे श्रीभगवान् के नेत्र आदि के रूप में ध्यान करते थे । श्रीभगवान् से पृथक् नहीं । अपूर्व (पुण्य) के विषय में मीमांसकों का दो प्रकार का मत है— याग के समय में ही सूक्ष्म रूप से उत्पन्न होने वाला फल ही अपूर्व कहलाता है अथवा यज्ञ के पश्चात् फल को उत्पन्न करने वाली कर्म की शक्ति ही अपूर्व कहलाती है । मीमांसकों ने कहा भी है । **यागादेवम्० इत्यादि** अर्थात् इस प्रकार से याग के द्वारा प्राप्त होने वाला सूक्ष्म पुण्य ही शक्ति के द्वारा सिद्ध होता है । अथवा सूक्ष्म फल ही कालान्तर से कर्म की शक्ति रूप अपूर्व होता है । उसी के मूल में क्रिया फलं धर्माख्यम् कहा गया है । अर्थात् क्रियाफल यानी याग से सूक्ष्म रूप में उत्पन्न होने वाला ही अपूर्व है अथवा धर्माख्यम् यानी कालान्तर में फल देने वाला कर्म की शक्ति रूप अपूर्व है । प्रश्न होता है कि यदि अङ्ग देवता कर्म प्रधान माना जाय तब तो अपूर्व कर्तृनिष्ठ होगा । कहा भी गया है **कर्मभ्यः प्राग० इत्यादि** अर्थात् कर्मों से पहले आयोग्य कर्म या पुरुष का फल होता है । शास्त्र के द्वारा जानने योग्य जो परायोग्यता है वही अपूर्व शब्द वाच्य है । यदि कर्म को देवताराधन रूप कर्म है तो अपूर्व देवता की कृपा रूप होगा । अतएव उसको देवताधीन ही मानना उचित है । जैसे ब्रीहि के प्रोक्षण आदि रूप अपूर्व ब्रीहि आदि के अधीन होंगे अतएव महाराज भरत उसे वासुदेवाश्रय रूप से कैसे ध्यान करते थे ? इस पर उत्तर **उच्यते० इत्यादि** से दिया जाता । यदि अपूर्व को कर्ता के होने वाला माना जाय तब तो उसके प्रवर्तक अन्तर्यामी भगवान् वासुदेव के होने से वे ही मुख्य कर्ता होंगे फलतः अपूर्व भगवान् वासुदेवाश्रित होगा श्रीभगवान् के प्रयोज्य यजमानाश्रित नहीं होगा । कहा भी गया है **शास्त्रफलं प्रयोक्तरि** अर्थात् शास्त्र का फल प्रवर्तक को प्राप्त होता है । यदि ऐसा नहीं माना जाय तब तो याग संपादक ऋत्विजों को भी अपूर्वाश्रय मानने का प्रसङ्ग होगा । इसीलिए कहा गया कि जो साक्षात् कर्ता होता है वही अपूर्वाश्रय होता है । यदि अपूर्व को देवताश्रित माना जाय तो भी अपूर्व वासुदेवाश्रय ही होगा । इस बात को **परदेवताम्** शब्द से कहा गया । भगवान् के पर देवता होने का कारण है कि विभिन्न देवताओं के प्रकाशक मन्त्रों के अर्थभूत इन्द्रादि देवताओं के नियामक है भगवान् वासुदेव है अतएव वे ही यागादि के द्वारा प्रसादनीय हैं तथा फल प्रदाता भी हैं । अतएव उनको ही अपूर्वाश्रय रूप से ध्यान करना उचित ही है । इस तरह से भावना करना ही आत्मा की कुशलता है । उसके द्वारा उन्होंने अपने अन्तःकरण के राग एवं द्वेष आदि मन्त्रों को दूर किया । मूल का अध्वर्युभिः इस प्रकार का बहुवचनान्त प्रयोग कर्मों की अनेकता के अभिप्राय से किया गया है ।।६।।

एवं कर्मविशुद्ध्या विशुद्धसत्त्वस्यान्तर्हृदयाकाशशरीरे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूपोपलक्षणे श्रीवत्सकौस्तुभवनमालाऽरिदरगदादिभिरुपलक्षिते निजपुरुषहृल्लिखितेनात्मनि पुरुषरूपेण विरोचमान उच्चैस्तरां भक्तिरनुदिनमेधमानरयाऽजायत ॥७॥

अनुवाद— इस तरह कर्मों की शुद्धि के कारण जब उनका अन्त:करण शुद्ध हो गया तब उनके अपने हृदयाकाश में अन्तर्यामी रूप से अभिव्यक्त होने वाले ब्रह्म स्वरूप महापुरुष के लक्षणों से उपलक्षित भगवान् वासुदेव में जो श्रीभगवान् श्रीवत्स चिह्न, कौस्तुभमणि वनमाला चक्र, शङ्ख तथ गदा आदि से सुशोभित अपने भक्तों के हृदय में चित्र लिखित पुरुष के समान सुशोभित होने वाले श्रीभगवान् में अनुदित बढ़ने वाली भक्ति प्राप्त हो गयी ॥७॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतया कर्मविशुद्ध्या विशुद्धसत्त्वस्य भक्तिरजायतेत्यन्वय: । क्व । अन्तर्हृदये य आकाश: स एव शरीरमभिव्यक्तिस्थानं यस्य तस्मिन्ब्रह्मणि । कीदृशे । महापुरुषरूपस्योपलक्षणमाकारो यस्य तस्मिन् । किंच श्रीवत्सादिभिरुपलक्षिते । निजपुरुषाणां नारदादीनां हृदि लिखितवन्निश्चलतयान्वितेनोक्तेन पुरुषरूपेणात्मनि स्वमनसि विरोचमाने । कीदृशी भक्ति: । अत्यन्तातिशयेनैधमानो रयो वेग: प्रकर्षो यस्या: ॥७॥

भाव प्रकाशिका

इस दण्डक का मुख्य वाक्य है इस प्रकार से किए जाने वाले कर्मों की शुद्धि के कारण उनका अन्त:करण जब शुद्ध हो गया तब उनके हृदय में भक्ति उत्पन्न हो गयी । उनके हार्दाकाश में अभिव्यक्त होने वाले तथा महापुरुष के लक्षण से उपलक्षित तथा श्रीवत्सचिह्न इत्यादि से सुशोभित तथा नारदादि अपने भक्तों के हृदय में चित्रलिखित के समान सदैव स्थित रहने वाले तथा पुरुष रूप से अपने अन्त:करण में सुशोभित होने वाले परब्रह्म भगवान् वासुदेव में अत्यधिक वेग से बढ़ने वाली भक्ति उनको प्राप्त हुई ॥७॥

एवं वर्षायुतसहस्रपर्यन्तावसितकर्मनिर्वाणावसरोऽधिभुज्यमानं स्वतनयेभ्यो रिक्थं पितृपैतामहं यथादायं विभज्य स्वयं सकलसंपन्निकेतात्स्वनिकेतात्पुलहाश्रमं प्रवव्राज ॥८॥

अनुवाद— इस प्रकार एक करोड़ वर्ष बीत जाने पर वे अपना राज्यभोग का प्रारब्ध क्षीण हुआ जानकर अपनी भोगी हुई वंश परम्परागत सम्पत्ति का यथायोग्य अपने पुत्रों में बाँट दिया । उसके पश्चात् वे सभी प्रकार की सम्पत्तियों से सम्पन्न अपने राजमहल से निकलकर पुलहाश्रम में चले गये ॥८॥

भावार्थ दीपिका

एवमनुवृत्या वर्षाणामयुतानि तेषां सहस्रं तत्पर्यन्तकालेऽवसितो निश्चित: कर्मनिर्वाणावसरो राज्यभोगादृष्टसमाप्तिसमयो येन स: । अधिकृत्य भुज्यमानं रिक्थं धनं यथाविभागं विभज्य सकलसंपदां निकेतादाश्रयात्स्वगृहात् पुलहाश्रमं हरिक्षेत्रं प्रवव्राज ॥८॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार महाराज भरत को राज्य भोग करते एक करोड़ वर्ष के बीत जाने पर उन्होंने जान लिया कि अब राज्यभोग का प्रारब्ध समाप्त हो गया । अतएव अपने द्वारा भोगी गयी पिता पितामह परम्परा से प्राप्त सम्पत्ति को यथा योग्य विभाग करके अपने पुत्रों में उन्होंने बाँट दिया और सम्पूर्ण सम्पत्तियों से परिपूर्ण अपने राजमहल से निकलकर वे श्रीहरि के क्षेत्र पुलहाश्रम में चले गये ॥८॥

यत्र ह वाव भगवान्हरिरद्यापि तत्रत्यानां निजजनानां वात्सल्येन संनिधाप्यत इच्छारूपेण ॥९॥

अनुवाद— उस पुलहाश्रम में रहने वाले अपने भक्तों पर श्रीभगवान् का अत्यन्त वात्सल्य है वे आज भी उनसे इष्ट रूप से मिलते रहते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

यत्र क्षेत्रे विद्याधरकुण्डे । वात्सल्यं कर्तृ, तेन संनिहितः क्रियते । भक्तानामपेक्षितेन रूपेण संनिहितो भवतीत्यर्थः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उस हरि क्षेत्र के विद्याधर कुण्ड पर रहने वाले भक्तों पर वात्सल्य गुण सम्पन्न श्रीभगवान् भक्तों के अपेक्षित रूप से उनके सन्निकट बने रहते हैं ॥९॥

यत्राश्रमपदान्युभयतोनाभिभिर्दृषच्चक्रैश्चक्रनदी नाम सरित्प्रवरा सर्वतः पवित्रीकरोति ॥१०॥

अनुवाद— वहाँ पर चक्रनदी (गण्डकी) नाम से प्रख्यात नदी चक्राकृति शालग्राम शिलाओं जिनके ऊपर नीचे दोनों ओर नाभि के आकार वाले चिह्न होता है शिलाओं से ऋषियों के आश्रम को सब ओर से पवित्र करती हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

आश्रमस्थानान्युभयत उपर्यधश्च नाभिर्येषां तैर्दृषच्चक्रैः शिलामध्यगतैश्चक्रैश्चक्रनदी गण्डकी सरितां श्रेष्ठा पवित्रीकरोति॥१०॥

भाव प्रकाशिका

आश्रम स्थानों को गण्डकी नदी जिनके ऊपर नीचे नाभि के समान चिह्न दिखाई देते है ऐसी चक्राकार शिलाओं से सभी ओर से पवित्र करने का काम करती है ॥१०॥

तस्मिन्वाव किल स एकलः पुलहाश्रमोपवने विविधकुसुमकिसलयतुलसिकाम्बुभिः कन्दमूलफलोपहारैश्च समीहमानो भगवत आराधनं विविक्त उपरतविषयाभिलाष उपभृतोपशमः परां निर्वृतिमवाप ॥११॥

अनुवाद— उस पुलहाश्रम के उपवन में एकान्त स्थान में अकेले ही रहकर वे अनेक प्रकार के जल मूल कन्द फलादि उपहारों से श्रीभगवान् की आराधना करने लगे । उसके द्वारा उनका अन्तःकरण समस्तविषयभिलाषों से निवृत्त होकर शान्त हो गया और उनको परमानन्द की प्राप्ति हुयी ॥११॥

भावार्थ दीपिका

एकल एकः आराधनं समीहमानः कुर्वाणः । विविक्तः शुद्ध अतएवोपरतो विषयाभिलाषो यस्य । उपभृतः संवृद्ध उपशमो यस्य ॥११॥

भाव प्रकाशिका

एकलः अर्थात् अकेले श्रीभगवान् की आराधना करते हुए उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया और उनकी शान्ति और बढ़ गयी ॥११॥

तयेत्थमविरतपुरुषपरिचर्यया भगवति प्रवर्धमानानुरागभरद्रुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्षवेगेनात्मन्युद्भिद्यमानरोमपुलककुलक औत्कण्ठ्यप्रवृत्तप्रणयबाष्पनिरुद्धावलोकनयन एवं निजरमणारुणचरणारविन्दानुध्यानपरिचितभक्तियोगेन परिप्लुतपरमाह्लादगम्भीरहृदयह्रदावगाढधिषणस्तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न सस्मार ॥१२॥

अनुवाद— इस प्रकार निरन्तर की जाने वाली परमात्म परिचर्या के कारण उनके प्रेम का वेग बढ़ता गया उसके फल स्वरूप उनका हृदय द्रवित होकर शान्त हो गया । आनन्द के प्रबल वेग से शरीर में रोमाञ्च होने लगा। और औत्कण्ठयातिरेक के कारण नेत्रों में प्रेमाश्रु भर गये उससे उनकी दृष्टि रुक गयी । उसके पश्चात् अपने प्रियतम के लाल-लाल चरण कमल का ध्यान करने से उनमें भक्तियोग का आविर्भाव हो गया । परमानन्द से परिपूर्ण हृदय रूपी सरोवर में बुद्धि के डूब जाने के कारण वे नियम पूर्वक की जाने वाली श्रीभगवान् की आराधना को भी भूल गये ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

प्रवर्धमानानुरागस्य भरेण यद्द्रुतं द्रवीभूतं हृदयं तस्मिन् शैथिल्यमनुद्यमो यस्य आत्मनि देहे उद्भिद्यमानं रोमपुलककुलं रोमाञ्चवृन्दं यस्य । ककारः समासान्तः । औत्कण्ठ्यात्प्रवृत्तेन प्रणयवाष्पेण निरुद्धोऽवलोको ययोस्ते नयने यस्य सः । एवं वर्तमानस्तामपि भगवत्सपर्यां न सस्मारेत्यन्वयः । तत्र हेतुः- निजरमणस्य स्वप्रीतिदातुर्ये अरुणे चरणारविन्दे तयोरनुध्यानेन परिचितः समृद्धो भक्तियोगस्तेन परिप्लुतः सर्वतोव्याप्तः परम आह्लादः परमानन्दो यस्मिन्गम्भीरहृदयहृदे तस्मिन्नवगाढा निमग्ना धिषणा यस्य ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

प्रतिदिन बढ़ने वाले प्रेम के वेग से उनका द्रवित हृदय शान्त हो गया और सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया । प्रहर्षवेगेनात्मन्युदभिद्यमानशोभापुलककुलकः में ककार समासान्त है । उत्कण्ठा के अतिरेक के वेग से उनकी आँखों में प्रेमाश्रु भर गया और उनका दृष्टि अवरुद्ध हो गयी । इस तरह की स्थिति में वर्तमान वे नियम पूर्वक की जाने वाली श्रीभगवान् की आराधना को भी भूल गये । उसका कारण यह था कि अपने प्रियतम परमात्मा के लाल-लाल चरण का ध्यान करने से उनके हृदय में भक्ति का आविर्भाव हो गया और उससे व्याप्त हृदय रूपी सरोवर में गम्भीर सरोवर में उनकी बुद्धि डूब गयी थी ॥१२॥

इत्थं धृतभगवद्व्रत ऐणेयाजिनवाससाऽनुसवनाभिषेकार्द्रकपिशकुटिलजटाकलापेन च विरोचमानः सूर्यर्चा भगवन्तं हिरण्मयं पुरुषमुज्जिहाने सूर्यमण्डलेऽभ्युपतिष्ठन्नेतदु होवाच ॥१३॥

अनुवाद— इस प्रकार वे भगवत् सेवा के नियम में ही सदा लगे रहते थे । वे शरीर पर काला मृगचर्म धारण करते थे । त्रिकाल स्नान के कारण भूरे धुघराले कुन्तल लट के रूप में परिणत हो गये थे । जिसके कारण वे देखने में अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होते थे । वे उदित हुए सूर्य मण्डल में सूर्य विषयक ऋचाओं के द्वारा हिरण्मय परम पुरुष परमात्मा की आराधना करते हुए कहते थे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

धृतानि भगवद्व्रतानि येन स भगवन्तं सूर्यमण्डलेऽभ्युपतिष्ठन्नेतदुहोवाचेत्यन्वयः । कीदृशः । एण्या हरिण्या अजिनमैणेयं तदेव वासस्तेनानुसवनाभिषेकेणार्द्राः कपिशाश्च याः कुटिला जटास्तासां कलापेन च विरोचमानः । सूर्यप्रकाशिकया ऋचा हिरण्मयं 'ध्येयं सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती' इत्यादिनोक्तम् । उजिहाने उद्गच्छति सति । सकारान्तपाठे सनन्तात्पचाद्यचू । अर्थस्तु स एव ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

इस दण्डक का मुख्य वाक्य है भगवद् व्रत धारण वे सूर्य मण्डल भगवान् का उपस्थापन करते हुए यह कहते थे । भरतजी कैसे थे ? इस पर कहते है वे शरीर पर काला मृगचर्म धारण करते थे चिरकाल स्नान करने से भिंगे हुए उनके घुंघराले भूरे केश जटा बन गये थे और उससे वे और सुन्दर लगते थे । सूर्य विषयिणी 'ध्येयः

सदासवितृमण्डलमध्यवर्ती इत्यादि ऋचाओं से वे उदय कालीन सूर्यमण्डल में तेजोमय परमपुरुष भगवान् नारायण की आराधना करते थे । उज्जिहासे इस सकारान्त पाठ भेद होने पर सनन्त पचादि अच प्रत्यय हुआ है । किन्तु अर्थ वही है ॥१३॥

परोरजः सवितुर्जातवेदो देवस्य भर्गो मनसेदं जजान ।
सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे हंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिरामिमः ॥१४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भरतचरित्रे भगवत्परिचर्यायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अन्वयः— सवितुर्जातवेदः परोरजः, देवस्य भर्गः मनसा इदं जजान पुनः आविश्य सुरेतसा अदः चष्टे, गृध्राणं हंसं नृषद्रिङ्गिराम् इमः ॥१४॥

अनुवाद— भगवान् सूर्य का कर्म फलप्रद तेज प्रकृति से परे हैं । उसी ने सङ्कल्प द्वारा इस जगत् की सृष्टि की है । पुनः वही अन्तर्यामी रूप से इसमें प्रवेश करके अपनी चित् शक्ति द्वारा विषय लोलुप जीव की रक्षा करता है उसी बुद्धि प्रवर्तक तेज की शरणागति करते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

परोरजः रसजः प्रकृतेः परं शुद्धसत्त्वात्मकं सवितुर्देवस्य सूर्यस्य भर्गः स्वरूपभूतं तेजः । जातं वेदो धनं कर्मफलं यस्मात्तत्कर्मफलदमित्यर्थः । अत्र हेतुः- यन्मनसैवेदं विश्वं जजान ससर्ज । पुनश्च अदः सृष्टं विश्वमन्तर्यामिरूपेण प्रविश्य गृध्राणं काङ्क्षन्तं हंसं जीवं सुरेतसा चिच्छक्त्या विचष्टे पश्यति । पालयतीत्यर्थः । नृषु सीदत्युपाधितया तिष्ठतीति नृषद्बुद्धिस्तस्यां रिङ्गिं रिङ्गणं गतिं राति ददातीति नृषद्रिङ्गिराम् । 'वा छन्दसि' इत्यमि पूर्वरूपत्वाभावः । तद्भर्गः इमः शरणं व्रजामः ॥१४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमकन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

सूर्यदेव का स्वरूपभूत तेज प्रकृति से परे अर्थात् शुद्ध सत्त्वात्मक है । वही कर्मों का फल प्रदान करने वाला है । उसका कारण है कि उसने अपने मनसे ही जगत् की सृष्टि कर दी पुनः इस सृष्ट विश्व में अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करके विषयोपभोग की इच्छा करने वाले जीव को अपनी चित् शक्ति के द्वारा देखता है । अर्थात् पालन करता है । मनुष्यों के भीतर उपाधि रूपसे रहने वाली बुद्धि में प्रवृत्ति पैदा करता है वह तेज उस तेज की हम शरणागति करते है । **नृषद्रिङ्गिराम्** में वा छन्दसि सूत्र से पूर्व रूप का अभाव है । नृषद्रिङ्गिराम् का विग्रह इस प्रकार है— नृषु सीदत्युपाधितया तिष्ठतीति नृषद बुद्धिः तस्यां रिङ्ग, रिङ्गणम् राति ददातीति नृषद्रिङ्गिराम् इमः अर्थात् शरणागति करते हैं ॥१४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के सातवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥७॥

* * *

आठवाँ अध्याय

भरतजी का मृग के मोह में पड़कर मृग की योनि में जन्म लेना

श्रीशुक उवाच

एकदा तु महानद्यां कृताभिषेकनैयमिकावश्यको ब्रह्माक्षरमभिगृणानो मुहूर्तत्रयमुदकान्त उपविवेश॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— एक बार भरतजी गण्डकी नदी में स्नान करके अपने नित्य नैमितिक कृत्यों से निवृत्त होकर प्रणव का जप करते हुए तीन मुहूर्त तक नदी की धारा के पास बैठे रहे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टमे भजतो विष्णुं तस्य कर्मान्तरायतः । एणरक्षाप्रसक्तस्य जातमेणत्वमीर्यते । कृपयापि कृतः सङ्गः पतनायैव योगिनः । इति प्रदर्शयन्नाह भरतस्यैणपोषणम् । नैयमिकं नित्यनैमित्तिकविधिप्राप्तम् । आवश्यकमर्थप्राप्तं मूत्रोत्सर्गादि । कृतमभिषेकादिकं येन । ब्रह्माक्षरं प्रणवं जपन् । उदकान्ते नद्यास्तीरे ॥१॥

भाव प्रकाशिका

आठवे अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि भगवान् विष्णु का भजन करने वाले भरतजी को जन्मान्तर के कर्म रूपी विघ्न के कारण मृग की रक्षा में सलंग्न हो जाने के कारण मृगयोनि की प्राति हुई इस बात का वर्णन किया गया है । यदि योगी का दयालुता के कारण भी कहीं आसक्ति हो जाती है तो वह उसके पतन का कारण हो जाती है, इस अर्थ वाली भरतजी के मृग पोषण की कथा उपन्यस्त की गयी है । नैयमिकम् अर्थात् नित्य नैमित्तिक विधि तथा आवश्यक मर्थप्राप्तम् मलमूत्रादि त्याग करके भरतजी गण्डकी नदी में स्नान करके प्रणव का जप करते हुए नदी के तट पर बैठे थे ॥१॥

तत्र तदा राजन्हरिणी पिपासया जलाशयाभ्याशमेकैवोपजगाम ॥२॥

अनुवाद— राजन् उस समय वहाँ एक हरिणी प्यास से व्याकुल होकर जल पीने के लिए नदी के तट पर अकेले आयी ॥२॥

भावार्थ दीपिका

जलाशयाभ्याशं नद्याः समीपे ॥२॥

भाव प्रकाशिका

जलाशयाभ्यासम् अर्थात् नदी के समीप ॥२॥

तया पेपीयमान उदके तावदेवाविदूरेण नदतो मृगपतेरुन्नादो लोकभयङ्कर उदपतत् ॥३॥

अनुवाद— जिस समय वह जल पी रही थी उसी समय सन्निकट में गरजते हुए सिह की लोक भयङ्कर आवाज सुनाई पड़ी ॥३॥

भावार्थ दीपिका

पेपीयमाने अत्यासत्तया पीयमाने सति। तावदेव तत्क्षणमेव। अविदूरेण सन्निधौ। मृगपतेः सिंहस्य। उन्नादो महान्नाद उद्गतः।।३।।

भाव प्रकाशिका

जिस समय वह अत्यन्त चाव से जल पी रही थी उसी समय सन्निकट में ही सिंह के गरजने की भयङ्कर आवाज सुनायी दी ॥३॥

तमुपश्रुत्य सा मृगवधूः प्रकृतिविक्लवा चकितनिरीक्षणा सुतरामपि हरिभयाभिनिवेशव्यग्रहृदया पारिप्लवदृष्टिरगततृषा भयात्सहसैवोच्चक्राम ॥४॥

अनुवाद— उस आवाज को सुनकर स्वभाव से ही डरपोक जो चौकन्ना होकर इधर-उधर देखती जाती थी अचानक सिंह की आवाज से उसका कलेजा डर के मारे काँपने लगा उस चञ्चल नेत्रों वाली की यद्यपि प्यास भी नही बुझी थी उसने भयभीत होकर नदी को पार करने के लिए छलांग लगा दी ॥४॥

भावार्थ दीपिका

प्रकृत्या स्वभावत एव विक्लवा व्याकुला सुतरां तु हरिभयस्याभिनिवेशेन व्यग्रं व्याकुलं हृदयं यस्याः । पारिप्लवदृष्टिः परिभ्रान्तनेत्रा न गता तृषा तृट् यस्याः । उच्चक्राम नदीमुल्लङ्घितवती ॥४॥

भाव प्रकाशिका

स्वभाव से ही डरपोक उस आवाज को सुनकर सिंह के भय से जिसका हृदय काँप रहा था उस चञ्चल नेत्रों वाली हरिणी ने प्यास बुझाए बिना ही छलांग लगाकर नदी पार कर ली ॥४॥

तस्या उत्पतन्त्या अन्तर्वत्न्या उरुभयावगलितो योनिनिर्गतो गर्भः स्त्रोतसि निपपात ॥५॥

अनुवाद— वह गर्भवती थी । उछलते समय अत्यन्त भय के कारण उसका गर्भ अपने स्थान से हटकर योनिद्वार से निकलकर नदी के प्रवाह में गिर गया ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अन्तर्वत्न्या गर्भिण्याः । उरुभयेन स्थानाद्विचलितो योनेर्निर्गतः सन् स्त्रोतसि प्रवाहे निपतितः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

गर्भिणी उस हरिणी का गर्भ अत्यन्त भय के कारण अपने स्थान से हटकर योनिद्वार से निकलकर नदी के प्रवाह में गिर पड़ा ॥५॥

तत्प्रसवोत्सर्पणभयखेदातुरा स्वगणेन वियुज्यमाना कस्यांचिद्दर्यां कृष्णसारसती निपपाताथ च ममार॥६॥

अनुवाद— वह कृष्ण सारमृग की पत्नी अकस्मात् गर्भ के गिर जाने से तथा लम्बी छलांग लगाने एवं सिंह से भयभीत होने के कारण बहुत पीड़ित थी । वह अपने झुण्ड से भी विछुड़ गयी थी अत: वही गुफा में जाकर गिर पड़ी और मर गयी ॥६॥

भावार्थ दीपिका

तत्प्रसवो गर्भपातः उत्सर्पणमुल्लङ्घनं भयं च एतैः खेदेनातुरा पीडिता । दर्यां गिरिगुहायाम् । हरिणवधूर्निपपात । अथानन्तरं मृता च ॥६॥

भाव प्रकाशिका

गर्भपात उछलना तथा भय इन सबों से पीड़ित वह हरिणी किसी गुफा में जाकर गिर पड़ी और मर गयी॥६॥

तं त्वेणकुणकं कृपणं स्त्रोतसाऽनूह्यमानमभिवीक्ष्यापविद्धं बन्धुरिवानुकम्पया राजर्षिर्भरत आदाय मृतमातरमित्याश्रमपदमनयत् ॥७॥

अनुवाद— राजर्षि भरत उस बेचारे हरिणी के बच्चे को अपने बन्धुओं से विछुड़ कर नदी के प्रवाह में बहते हुए देखकर दयापूर्वक आत्मीय के सदृश उस मातृहीन बच्चे को अपने आश्रम में ले आये ॥७॥

भावार्थ दीपिका

एणकुणकं हरिणबालकम् । अपविद्धं बन्धुभिस्त्यक्तम् । इत्येतैः कृपणत्वादिहेतुभिर्याऽनुकम्पा तया अनयत् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

अपने बान्धवों से परित्यक्त बेचारे उस हरिण के बच्चे को दया वश अपने आश्रम में लाये ।।७।।

तस्य ह वा एणकुणक उच्चैरेतस्मिन्कृतनिजाभिमानस्याहरहरस्तत्पोषणपालनलालनप्रीणनानुध्यानेनात्मनियमाःसहयमाः पुरुषपरिचर्यादय एकैकशः कतिपयेनाहर्गणेन वियुज्यमानाः किल सर्व एवोदवसन् ।।८।।

अनुवाद— उस मृग शावक के प्रति भरतजी की ममता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी, प्रतिदिन उसके पोषण पालन प्रेम करने और उसको खुजलाने आदि की चिन्ता में ही लगे रहते थे । कुछ ही दिनों में उनके यम नियम और भगवदाराधन आदि आवश्यक कार्य एक-एक करके छूटने लगे और अन्त में सब छूट गये ।।८।।

भावार्थ दीपिका

कृतो निजः स्वीय इत्यभिमानो येन । पोषणं तृणादिना । पालनं वृकादिभ्यो रक्षणम् । लालनं चुम्बनादिना । प्रीणनं कण्डूयनादिना । एतैर्यदनुध्यानमासक्तिस्तेनात्मनो नियमाः स्नानादयो यमा अहिंसादयस्तत्सहिता ईश्वरपरिचर्यादयश्च प्रत्यहमेकैकशो वियुज्यमानाः सन्तः कतिपयेनाहर्गणेन सर्वे उत्सन्ना बभूवुः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

उस मृग शावक में ही स्वीयत्वाभिमान के कारण उसको तृण आदि के द्वारा पोषण वृकों आदि से रक्षा, चुम्बनादि रूप प्रेम, उसके शरीर को खुजलाना आदि के द्वारा प्रीणन आदि के कारण उनकी उस मृग के बच्चे में आसक्ति बढ़ती गयी । उसके कारण उनके स्नानादि के नियम, अहिंसा आदि यम तथा भगवदाराधन आदि कार्य, प्रतिदिन एक-एक करके छूटते गये ओर कुछ ही दिनों में सब छूट गये ।।८।।

अहो बतायं हरिणकुणकः कृपण ईश्वररथचरणपरिभ्रमणरयेण स्वगणसुहृद्बन्धुभ्यः परिवर्जितः शरणं च मोपसादितो मामेव मातापितरौ भ्रातृज्ञातीन्यौथिकांश्चैवोपेयाय नान्यं कंचन वेद मय्यतिविस्रब्धश्चात एव मया मत्परायणस्य पोषणपालनप्रीणनलालनमनसूयुनाऽनुष्ठेयं शरण्योपेक्षादोषविदुषा ।।९।।

अनुवाद— अब वे सोचने लगे थे अरे इस दीन मृगशावक का कालचक्र के वेग ने अपने गणों सुहृदौ तथा बन्धुओं से अलग करके मेरी शरण में पहुँचा दिया है । यह मुझको ही अपनी माता-पिता, भाई बन्धु और यूथ का सङ्गी समझता है, मुझसे भिन्न किसी दूसरे को नहीं जानता है । मुझमें इसका अत्यधिक विश्वास भी है। अतएव मेरे परायण इसका मुझे भी पोषण, पालन, प्रीणन, लालन आदि बिना किसी दोष बुद्धि के करना चाहिए। शरणागत के परित्याग होने वाले दोष को भी मैं जानता हूँ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

आसक्तिं प्रपञ्चयति-अहो इत्यादिना इति कृपानुषङ्ग इत्येतत्पर्यन्तेन । ईश्वररथचरणः कालचक्रं तस्य परिभ्रमणवेगेन स्वगणादिभ्यो विभ्रंशितः मा इति मां च शरणं प्रापितः मामेव मातापित्रादिबुद्धोपेयाय प्राप्तः । यौथिकान्यूथसंघातिनः । अनसूयुना एतन्निमित्तं मम स्वार्थो भ्रश्यतीति दोषदृष्टिमकुर्वता ।।९।।

भाव प्रकाशिका

राजर्षि भरत की उस मृग छौने में होने वाले आसक्ति का विस्तार से वर्णन कृपानुषङ्ग पर्यन्त करते हैं ।

कालचक्र के वेग से इसको अपने गण से पृथक् करके मेरी शरण में पहुँचा दिया है । और यह आकर मुझको ही अपना माता-पिता मानता है । अपने यूथ का साथी भी मुझको ही मानता है । अतएव मुझको भी दोष बुद्धि से रहित होकर इसका पालन-पोषण करना चाहिए ।।९।।

नूनं ह्यार्याः साधव उपशमशीलाः कृपणसुहृद एवंविधार्थे स्वार्थानपि गुरुतरानुपेक्षन्ते ।।१०।।

अनुवाद— निश्चय ही शान्त स्वभाव और दीनों की रक्षा करने वाले आर्य पुरुष इस तरह के शरणागत की रक्षा के लिए अपने बड़े-से-बड़े स्वार्थ की भी उपेक्षा कर देते हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

तदेवाह नूनं हीति ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बात का ही प्रतिपादन नूनं हि इत्यादि दण्डक से कहा गया है ।।१०।।

इति कृतानुषङ्ग आसनशयनाटनस्थानाशनादिषु सह मृगजहुना स्नेहानुबद्धहृदय आसीत् ।।११।।

अनुवाद— इस तरह उस मृग शावक में आसक्ति बढ़ जाने के कारण सोते, बैठते, घूमते, ठहरते और भोजन करते समय भी उनका मन उस हरिण के बच्चे में ही लगा रहता था ।।११।।

भावार्थ दीपिका

इत्येवं कृतोऽनुषङ्ग आसक्तिर्येन । मृगजहुना मृगापत्येन सह । स्नेहेनानुबद्धं हृदयं येन ।।११।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से भरतजी की मृग छौने में ही आसक्ति हो गयी थी स्नेह के कारण उनका हृदय उसी में लगा रहता था ।।११।।

कुशकुसुमसमित्पलाशफलमूलोदकान्याहरिष्यमाणो वृकसालावृकादिभ्यो भयमाशंसमानो यदा सह हरिणकुणकेन वनं समाविशति ।।१२।।

अनुवाद— जब वे कुश, पुष्प एवं समिधा लेने जाते थे उसको भेड़िये और कुत्तों से बचाने के लिए अपने साथ लेकर वन में जाते थे ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

स्नेहानुबन्धमेव प्रपञ्चयति कुशकुसुमेत्यादिना स्वधयतीत्यन्तेन । सालावृकाः श्वानः । यदा भयं शङ्कमानो भवति तदा तेन सह वनं समाविशति ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

कुश कुसुम इत्यादि से स्वधपति पर्यन्त उसमें हार्दानुराग का ही वर्णन करते हैं । सालावृक कुतों को कहते हैं । कुत्तों आदि से उसके भय की शङ्का से उसको अपने साथ लेकर वन में जाते थे ।।१२।।

पथिषु च मुग्धभावेन तत्र तत्र विषक्तमतिप्रणयभरहृदयः कार्पण्यात्स्कन्धेनोद्वहति एवमुत्सङ्ग उरसि चाधायोपलालयन्मुदं परमामवाप ।।१३।।

अनुवाद— रास्ते में जब कभी भी वह रुक जाता था तो अत्यन्त प्रेम पूर्ण हृदय से कृपावशात् उसको अपने कन्धे पर रख लेते थे और कभी गोद में लेकर और छाती से उसको लगाकर उसको स्नेह करने में उनको बड़ी प्रसन्नता होती थी ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अतिशयितः प्रणयभरो यस्य तद्धृदयं यस्य सः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त प्रेम पूर्ण हृदय से वे उसे हृदय से लगाकर स्नेह करते थे ।।१३।।

क्रियायां निर्वर्त्यमानायामन्तरालेऽप्युत्थायोत्थाय यदैनमभिचक्षीत तर्हि वाव स वर्षपतिः प्रकृतिस्थेन मनसा तस्मा आशिष आशास्ते स्वस्ति स्ताद्वत्स ते सर्वत इति ।।१४।।

अनुवाद— नित्य नैमित्तिक कर्मों को करते समय भी वे बीच-बीच में उठकर उसे देखते थे । भारतवर्षाधिपति जब उसको देख लेते थे तब ही उनके मन को शान्ति मिलती थी । वे शान्तमना होकर उसके लिए मङ्गल कामना करते हुए कहते थे वत्स ! तुम्हारा हर प्रकार से कल्याण हो ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

क्रियायां देवपूजादिलक्षणायाम् । वर्षपतिभरतः । प्रकृतिस्थेन स्वस्थेन । स्यात् भूयात् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

भारतवर्षाधिपति महाराज भरत देव पूजा आदि भी करते समय बीच-बीच में उठकर उसे देख लेते थे और शान्त होकर कहते थे वत्स तुम्हारा कल्याण हो ।।१४।।

अन्यदा भृशमुद्विग्नमना नष्टद्रविण इव कृपणः सकरुणमतितर्षेण हरिणकुणकविरहविह्वलहृदयसंतापस्तमेवानुशोचन्किल कश्मलं महदभिरम्भित इति होवाच ।।१५।।

अनुवाद— यदि वह कभी नहीं दिखायी देता था तो जिसका धन लुट गया हो उस दीन मनुष्य के समान उनका मन उद्विग्न हो जाता था । वे उस मृग के बच्चे के लिए व्याकुल हो जाते थे । और करुणवश अत्यन्त उत्कण्ठित और मोहाविष्ट हो जाते थे और शोक मग्न होकर कहने लगते थे ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अन्यदाऽदर्शने सकरुणं यथा भवत्येवमनुशोचन्निति होवाचेत्यन्वयः । अतितर्षेणात्यौत्सुक्येन । हरिणकुणकविरहेण विह्वले हृदये संतापो यस्य । कश्मलं मोहं प्रापितः सन् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

उस हरिणी के बच्चे के नही दिखायी देने पर और करुणाक्रान्त होकर शोक करने लगते थे । उत्सुकतावश उनका हृदय सन्तप्त हो जाता था और वे मोहग्रस्त हो जाते थे ।।१५।।

अपि बत स वै कृपण एणबालको मृतहरिणीसुतोऽहो ममानार्यस्य शठकिरातमतेरकृतसुकृतस्य कृतविस्रम्भ आत्मप्रत्ययेन तदविगणयन्सुजन इवागमिष्यति ।।१६।।

अनुवाद— क्या वह मातृविहीन दीन मृग शावक दुष्ट बहेलिए के समान बुद्धि वाले मुझ पुण्यहीन अनार्य का विश्वास करके मुझे अपना मानकर मेरे किए हुए अपराधों को सत्पुरुषों के समान भूलकर फिर लौट आयेगा।।१६।।

भावार्थ दीपिका

अपीति संभावनायाम् । बतेत्यनुकम्पायाम् । अहो इति खेदे । शठकिरातयोरिव वञ्चनपरा क्रूरा च मतिर्यस्याकृतसुकृतस्य निर्भाग्यस्य मम तच्छाठ्यादिकमगणयन्नचिन्तयन्नागमिष्यति किम् । अपराधाचिन्तने हेतुः– आत्मप्रत्ययेन स्वचित्तशुद्धा कृतविश्वासः सन् सुजनो न यथा गणयति तद्वत् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

अपि संभावना के अर्थ में प्रयुक्त हैं । बत का प्रयोग अनुकम्पार्थक है । अहो यह अव्यय खेद के अर्थ में प्रयुक्त है । शठ एवं बहेलिए के समान वञ्चन परायण और क्रूर मतिवाले पुण्य हीन तथा भाग्यहीन मेरी शठता का विचार किए बिना लौट आयेगा क्या ? अपराध के न सोचने का कारण है अपने चित्त की शुद्धि के कारण विश्वास प्राप्त जैसे सज्जन के समान भूलकर आयेगा क्या ?॥१६॥

अपि क्षेमेणास्मिन्नाश्रमोपवने शष्पाणि चरन्तं देवगुप्तं द्रक्ष्यामि ॥१७॥

अनुवाद— क्या मैं उसे इस आश्रम के उपवन में भगवान् की कृपा से हरी-हरी घासों को चरते देखूँगा॥१७॥

भावार्थ दीपिका

शष्पाणि कोमलतृणानि ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

शष्प शब्द कोमल तृणों का वाचक हैं ॥१७॥

अपि च न वृकः सालावृकोऽन्यतमो वा नैकचर एकचरो वा भक्षयति ॥१८॥

अनुवाद— कहीं ऐसा न हो की उसको कोई वृक या कुत्ता या समूह के साथ विचरने वाले सूकर आदि या अकेले रहने वाले व्याघ्र आदि में से कोई उसको खा लें ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

नैकचरो यूथचरः सूकरादिः । यद्वा एक एव चरति यः क्रूरस्वभावो व्याघ्रादिर्न भक्षयति किम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

नैकचरः अर्थात् झूण्ड में रहने वाले सूकर आदि अथवा एकचरः अकेले रहने वाले व्याघ्र आदि उसको कहीं खा न लें ॥१८॥

निम्लोचति ह भगवान्सकलजगत्क्षेमोदयस्त्रय्यात्माऽद्यापि मम न मृगवधून्यास आगच्छति ॥१९॥

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करने के लिए उदित होने वाले भगवान् वेदत्रयी स्वरूप सूर्य अस्त होने वाले है किन्तु वह मृगी का धरोहर लौटकर नहीं आया ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

सकललोकस्य क्षेमो यस्मात्स उदयो यस्य । वेदत्रयी आत्मा स्वरूपं यस्य स सूर्यो निम्लोचत्यस्तं याति । मृगवध्वा न्यासो निक्षेपभूतः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करने के लिए उदित होन वाले तथा वेदत्रयी स्वरूप सूर्य निम्लोचति अर्थात् अस्त होने वाले हैं किन्तु अब तक मृगी का धरोहर वह मृगशावक लौटकर नहीं आया ॥१९॥

अपिस्विदकृतसुकृतमागत्य मां सुखयिष्यति हरिणराजकुमारो विविधरुचिरदर्शनीयनिजमृगदारकविनोदैरसंतोषं स्वानामपनुदनम् ॥२०॥

अनुवाद— क्या वह हरिणराज कुमार पुण्य हीन मेरे पास आकर विभिन्न प्रकार की मृगशावकोचित मनोज्ञ एवं अवलोकनीय क्रीडाओं से मुझे प्रसन्न करेगा ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

हरिण एव राजकुमार आगत्य मामपिस्वित्सुखयिष्यतीत्यन्वयः । किं कुर्वन् । विविधै रुचिरैर्दर्शनीयैर्निजैर्मृगदारकविनोदैः स्वीयानां खेदमपनुदन् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

वह हरिण राजकुमार आकर मुझे भी आनन्दित करेगा क्या ? क्या करके ? तो इसका उत्तर है अनेक प्रकार के मनोहर और अवलोकनीय मृगशावकोचित क्रीडाओं से अपने लोगों को प्रसन्न करते हुए ।।२०।।

क्ष्वेलिकायां मां मृषासमाधिनामीलितदृशं प्रेमसंरम्भेण चकितचकित आगत्य पृषदपरुषविषाणाग्रेण लुठति ।।२१।।

अनुवाद— खेल-खेल में मिथ्या समाधि के बहाने जब मैं अपनी आँखे बन्द कर लेता हूँ तो वह आश्चर्जित सा होकर मेरे पास आता है और जल की बून्द के समान अपन सींग के प्रण्य कोप से अग्रभाग से मुझे खुजलाता है ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

संभवति चैतदित्याह । क्ष्वेलिकायां क्रीडायां मृषा यः समाधिस्तेनामीलिते दृशौ येन तं मां प्रेमसंरम्भेण प्रणयकोपेन पृषज्जलबिन्दुस्तद्वदपरुषेण मृदुना विषाणाग्रेण लुठति संघट्टयति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

ऐसा भी होता है कि खेल-खेल में जब मैं मिथ्या समाधि के बहाने आँखें बन्द कर लेता हूँ तो वह आकर प्रणय कोप से जल बून्द के समान अपनी छोटी-छोटी सींगों के अग्रभाग से मुझे खुजलाता है ।।२१।।

आसादितहविषि बर्हिषि दूषिते मयोपालब्धो भीतभीतः सपद्युपरतरास ऋषिकुमारवदवहितकरणकलाप आस्ते ।।२२।।

अनुवाद— जब मैं कुशों पर होम सामग्री रख देता हूँ तो वह जब कभी उसे दूषित कर देता है और जब मैं से डाँट देता हूँ तो शीघ्र ही वह भयभीत होकर ऋषिकुमार के समान अपनी इन्द्रियों को रोक कर चुपचाप जाकर बैठ जाता है ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

आसादितं हविर्यस्मिन्बर्हिषि दर्भे दन्ताकर्षणादिना चापलेन दूषिते सति । दूषित्वेति पाठे बर्हिषि विषये दूषणं कृत्वेत्यर्थः। मयाऽधिक्षिप्तः संस्तत्क्षणमेवोपरतक्रीडो निश्चल आस्ते ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

वह मेरे द्वारा कुशों पर हविष्य रख दिए जाने पर वह अपने दाँतों से खींचकर उसे दूषित कर देता है और जब मैं उसे डाँट देता हूँ तो वह शीघ्र ही ऋषिकुमार के समान चुपचाप जाकर बैठ जाता है ।।२२।।

किं वा अरे आचरितं तपस्तपस्विन्यानया यदियमवनिः सविनयकृष्णसारतनयतनुतरसुभगशिवतमाखरखुरपदपङ्क्तिभिर्द्रविणविधुरातुरस्य कृपणस्य मम द्रविणपदवीं सूचयन्त्यात्मानं च सर्वतः कृतकौतुकं द्विजानां स्वर्गापवर्गकामानां देवयजनं करोति ।।२३।।

अनुवाद—(राजर्षि भरत उस मृगशावक के खुरका चिह्न देखकर कहने लगते थे ।) इस तपस्विनी धरती

ने न जाने कौन सा तप किया था कि जो उस अत्यन्त विनीत कृष्ण सारमृग के बच्चे के छोटे-छोटे सुन्दर सुखकारी और मङ्गलमय खुरों वाले पैरों के चिह्नों से मुझको जो मैं अपने मृगधनं के लुट जाने से अत्यन्त व्याकुल और दीन हो रहा हूँ उस धन की प्राप्ति का मार्ग दिखा रही है और स्वयं अपने शरीर को भी सर्वत्र उन चिह्नों से विभूषित करके स्वर्ग एवं अपवर्ग के इच्छुक द्विजों के लिए यज्ञस्थल बन रही है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

इति बहुधा प्रलप्योत्थाय बहिर्निर्गत्य तत्खुरखातभूभागोपलम्मसंभ्रान्तहृदय आह— किं वेति । अरे अहो अनया क्षित्या किं वा तप आचरितम् । तपस्विन्या सभाग्यया । यद्यस्मादियं सविनयस्य कृष्णसारतनयस्य तनुतराः सुभगाश्च शिवतमाश्च खराश्च खुरा येषु तेषां पदानां तत्र तत्राङ्कितानां पङ्क्तिभिर्द्रविणं मृगस्तेन रहितस्यात एवातुरस्य दुःखितस्य मम द्रविणमार्गं सूचयन्ती सती स्वात्मानं च ताभिः कृतमण्डनं द्विजानां देवयजनं यज्ञभूमिं करोति । 'यस्मिन्देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन्धर्मान्निबोधत' इति स्मृतेः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से बहुत अधिक विलाप करके बाहर निकलकर उस मृग के खुर के चिह्नों से चिह्नित पृथिवी को देखकर प्रसन्न हृदय से उन्होंने कहा— इस भाग्यवती पृथिवी ने न जाने कौन सा तप किया है कि उस कृष्णसारमृग शावक छोटे-छोटे सुन्दर और मङ्गलमय तथा रुखड़े खुरों वाले चरणों के चिह्न से चिह्नित पंक्तियों से मेरे मृग धन से रहित होने के कारण दुःखी मुझको मेरे धन की प्राप्ति का मार्ग सूचित करती हुई अपने शरीर को भी उन खुर पंक्तियों में मण्डित होकर स्वर्ग और मुक्ति को चाहने वाले ब्राह्मणों के लिए यज्ञस्थल बना रहा है । स्मृति भी कहती है जिस देश में कृष्णसार मृग रहते है उसी देश में धर्मों को जानो ॥२३॥

अपिस्विदसौ भगवानुडुपतिरेनं मृगपतिभयान्मृतमातरं मृगबालकं स्वाश्रमपरिभ्रष्टमनुकम्पया कृपणजनवत्सलः परिपाति ॥२४॥

अनुवाद— चन्द्रमा में मृग जैसे श्याम चिह्न को देखकर कहते हैं जिसकी माँ सिंह के भय से मर गयी थी आज वही मृग शावक अपने आश्रम से विछुड़ गया है । अतएव उसे अनाथ देखकर ये दीन वत्सल भगवान् चन्द्रमा दयावश उसकी रक्षा करते हैं क्या ?॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तावदुदिते चन्द्रे मृगं दृष्ट्वा स्वमृगत्वं संभावयन्नाह-अपिस्विदिति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

उदित हुए चन्द्रमा में विद्यमान मृग का चिह्न देखकर और उसको अपना मृग मानकर अपिस्वित् इत्यादि वाक्य को कहते हैं ॥२४॥

किं वात्मजविश्लेषज्वरदवदहनशिखाभिरुपतप्यमानहृदयस्थलनलिनीकं मामुपसृतमृगीतनयं शिशिरशान्तानुरागगुणितनिजवदनसलिलामृतमयगभस्तिभिः स्वधयतीति च ॥२५॥

अनुवाद— (चन्द्रमा की शीतल किरणों से आह्लादित होकर) कहते हैं- क्या अपने पुत्रों के वियोग रूप दावाग्नि की अग्नि से हृदय कमल के दग्ध हो जाने के कारण मैंने एक मृग शावक का सहारा लिया था । अब उसके चले जाने से पुनः मेरा हृदय जलने लगा है, इसीलिए ये अपनी शीतल शान्त और स्नेह पूर्ण और वदन सलिल रूप अमृतमयी किरणों से मुझे शान्त कर रहे हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

चन्द्ररश्मिस्पर्शसुखं प्राप्याह । किं वेति संभावनायाम् । आत्मविश्लेषेण ज्वरस्तापः स एव दवदहनस्तस्य ज्वालाभिरुपतप्यमाना हृदयरूपा स्थलनलिनी यस्य । जलस्थं पद्मं तापं सोढुं क्षममिति स्थलग्रहणम् । उपसृतोऽनुगतो मृगीतनयो येन तं मां चन्द्रः स्वधयति शान्तिं गमयति । कैः शिशिरं च तच्छान्तं च मय्यनुरागेण गुणितं चावर्तितं पुनः पुनः स्त्रवद्यद्वदनसलिलं तदेवामृतमया गभस्तयस्तैः । लोके हि मन्त्रवादिनो वदनसलिलैस्तापं शमयन्तीति प्रसिद्धम् । उपसृत्य मृगीतनय इति पाठे मनोरथान्तरमेतत् । उपसृत्य मृगीतनयः किं वा मां स्वधयिष्यतीति । शेषं समानम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श जन्य सुख का अनुभव करके कहते हैं- किं वा यह संभवाना के अर्थ में प्रयुक्त है पुत्रों के विश्लेष जन्य संताप रूपी दावाग्नि उसी ज्वाला से संतप्त हृदय कमल वाले मुझको मृगीतनय रूपी पुत्र मिल गया था उसके मुझको चन्द्रमा शीतल अपने शीतल शान्त और बार-बार अपने मुख से चूने वाले अमृतमय किरणों से शीतल बना रहे हैं । उपसृत्य मृगीतनय इस पाठ के होने पर क्या वह मृगीपुत्र आकर मुझको शीतल बनायेगा ? उनका यह दूसरा मनोरथ हैं ।।२५।।

एवमघटमानमनोरथाकुलहृदयो मृगदारकाभासेन स्वारब्धकर्मणा योगारम्भणतो विभ्रंशितः स योगतापसो भगवदाराधनलक्षणाच्च कथमितरथा जात्यन्तर एणकुणक आसङ्गः साक्षान्निः श्रेयसप्रतिपक्षतया प्राक्परित्यक्तदुस्त्यजहृदयाभिजातस्य तस्यैवमन्तरायविहतयोगारम्भणस्य राजर्षेर्भरतस्य तावन्मृगार्भकपोषणपालनप्रीणनलालनानुषङ्गेणाविगणयत आत्मानमहिरिवाखुबिलं दुरतिक्रमः कालः करालरभस आपद्यत।।२६।।

अनुवाद— राजन् जिन मनोरथों को पूरा होना असम्भव था, इस प्रकार के विविध मनोरथों वाले भरत का चित्त व्याकुल रहने लगा । अपने मृगछौने के रूप में प्रतीत होने वाले प्रारब्ध कर्म के कारण भरतजी भगवदाराधन रूप कर्म और योगानुष्ठान से च्युत हो गये । अन्यथा जो भरतजी मोक्षमार्ग में विघ्न समझकर अपने हृदय से उत्पन्न दुस्त्यज पुत्रादिकों को भी त्याग दिये, उनकी वही विसजातीय मृगशावक में ऐसी आसक्ति कैसे हो जाती ? इस तरह विघ्नों के वशीभूत होकर राजर्षि भरत योगभ्रष्ट हो गये । उस मृग शावक के ही पालन पोषण तथा प्रेम में लगे रहकर अत्मस्वरूप को भूल गये । इसी समय दुरतिक्रम भयङ्करकाल अत्यन्त वेग पूर्वक उसी तरह उनके शिर पर आ गया जैसे चूहे के बिल में सर्प घुस जाय ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

मृगदारकवदाभासमानेन भगवदाराधनलक्षणात्कर्मणश्च विभ्रंशितः । प्रारब्धकर्मत्वे हेतुः- कथमितरथेति । साक्षात्स्वपुत्रवत्कथमासङ्गः स्यात् । पूर्वं परित्यक्ता दुस्त्यजा औरसा येन । अन्तरायेण विहतं योगारम्भणं यस्य । आत्मानमवगणयत आत्मचिन्तामकुर्वतः । तावदेव तीव्रवेगः कालो मृत्युसमयश्चापद्यत ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

भरतजी का प्रारब्ध ही मृग शावक के समान उन्हें प्रतीत होता था मृग में आसक्ति के कारण वे भगवदाराधन रूप कर्म से भी भ्रष्ट हो गये । प्रारब्ध कर्म होने में हेतु प्रदर्शित करते हुए शुकदेवजी कहते हैं— अन्यथा उनको मृगशावक में अपने पुत्र के समान आसक्ति कैसे होती ? उन्होंने पहल अपने औरस पुत्रों का भी परित्याग कर दिया था । विघ्न ने ही उनके योग मार्ग को विनष्ट कर दिया । उसके कारण वे अपने आत्मा के स्वरूप को भी भूल गये थे । उस समय तीव्र वेग वाला काल भी आ गया ।।२६।।

तदानीमपि पार्श्ववर्तिनमात्मजमिवानुशोचन्तमभिवीक्षमाणो मृग एवाभिनिवेशितमना विसृज्य लोकमिमं सह मृगेण कलेवरं मृतमनु न मृतजन्मानुस्मृतिरितरवन्मृगशरीरमवाप ॥२७॥

अनुवाद— मृत्यु की बेला में भी वह मृग शावक उनके पास बैठा हुआ पुत्र के समान शोकातुर हो रहा था और भरतजी उसको उस स्थिति में देख रहे थे और उनका चित्त उस मृग शावक में ही लगा था। इस प्रकार की आसक्ति में ही मृग के साथ उनका शरीर भी छूट गया। अन्तकाल की भावना के अनुसार अन्य साधारण पुरुषों के समान उनको मृग का ही शरीर मिला ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

लोकं देहं मृगेण सहितं विसृज्य प्राकृत इव मृगशरीरमवाप। कथंभूतः। कलेवरं मृतमनु न मृता न विनष्टा पूर्वजन्मानुस्मृतिर्यस्य।।२७।।

भाव प्रकाशिका

मृग के साथ ही उनका यह लोक और शरीर भी छूट गया शरीर तो मर गया किन्तु उनकी पूर्वजन्म की स्मृति नहीं समाप्त हुई ॥२७॥

तत्रापि ह वा आत्मनो मृगत्वकारणं भगवदाराधनसमीहानुभावेनानुस्मृत्य भृशमनुतप्यमान आह ॥२८॥

अनुवाद— उस मृगयोनि में भी पूर्वजन्म की भगवदाराधना के प्रभाव से अपने मृग रूप होने का कारण जानकर वे अत्यन्त पश्चात्ताप करते हुए कहने लगे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

आह स्वे चित्ते ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

आगे के दण्डक में कही जाने वाली बात को वे अपने मन में कहते थे ॥२८॥

अहो कष्टं भ्रष्टोऽहमात्मवतामनुपथाद्यद्विमुक्तसमस्तसङ्गस्य विविक्तपुण्यारण्यशरणस्यात्मवत आत्मनि सर्वेषामात्मनां भगवति वासुदेवे तदनुश्रवणमननसंकीर्तनाराधनानुस्मरणाभियोगेनाशून्यसकलयामेन कालेन समावेशितं समाहितं कार्त्स्न्येन मनस्तत्तु पुनर्ममाबुधस्यारान्मृगसुतमनु परिसुस्राव ॥२९॥

अनुवाद— अरे यह अत्यन्त खेद का विषय है कि मैं संयमशील महानुभावों के मार्ग से पतित हो गया। सभी प्रकार की आसक्तियों का परित्याग करके मैने धैर्यपूर्वक एकान्त और पवित्र वन का आश्रय लिया था। वहाँ पर मैंने सर्वात्मा भगवान् वासुदेव में अपने मन को लगा दिया था और सदैव उनके ही गुणों का श्रवण, मनन, संकीर्तन, आराधन और ध्यान करके प्रतिपल को श्रीभगवान् की ही आराधना और स्मरण आदि से सफल बनाया करता था। मुझ अज्ञानी का वही मन मृग शावक के पीछे अपने लक्ष्य से च्युत हो गया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अहो कष्टं धीराणां मार्गाद्भ्रष्टोऽहम्। भ्रंशमेवाह। यद्यतो विमुक्ताः समस्ताः सङ्गा येन। विविक्तं पुण्यारण्यं शरणं यस्य आत्मवतो धीरस्य मम मनः सर्वेषां भूतानामात्मनि वासुदेवे समावेशितं समाहितं च निश्चलं सदाराद्दूरादेव सुस्राव गलितं निःसृतम्। केन समावशितम्। तस्यानुश्रवणादिष्वभियोगेनाभिनिवेशेनाशून्याः सकला यामा यस्मिंस्तेन कालेन ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

अरे यह बड़े ही कष्ट की बात है कि मैं धैर्य सम्पन्न पुरुषों के मार्ग से भ्रष्ट हो गया। मैंने तो पहले सारी

आसक्ति का परित्याग कर दिया था और एकान्त पवित्र वन में अपना आश्रम बनाया था । धैर्य सम्पन्न मेरा मन सर्वात्मा भगवान् वासुदेव में आविष्ट भी हो गया था । मेरा सारा समय श्रीभगवान् के गुणों का श्रवणादि में ही लगे रहने के कारण कभी खाली नहीं रहता था वही मेरा मन मृग शावक के पीछे भगवदाराधन से च्युत हो गया॥२९॥

इत्येवं निगूढनिर्वेदो विसृज्य मृगीं मातरं पुनर्भगवत्क्षेत्रमुपशमशीलमुनिगणदयितं शालग्रामं पुलस्त्यपुलहाश्रमं कालञ्जरात्प्रत्याजगाम ॥३०॥

अनुवाद— इस प्रकार मृग शरीर धारण किए राजर्षि भरत के हृदय में जो वैराग्य की भावना उत्पन्न हो गयी थी उसके कारण वे अपनी माता मृगी का परित्याग करके कालञ्जर पर्वत से फिर शान्त स्वभाव मुनियों के प्रियक्षेत्र शालग्राम तीर्थ में आ गये जो भगवान का प्रिय क्षेत्र है उस पुलस्त्य और पुलह ऋषि के आश्रम पर चले आये ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

निगूढोऽनाविष्कृतो निर्वेदो येन । शालवृक्षोपलक्षितं ग्रामम् । कालञ्जराद्यत्र हरिणो जातस्तस्मात्पर्वतात् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

मृग शरीर में भी विद्यमान भरतजी अपने वैरागय को छिपाये हुए अपने जन्मस्थान कालञ्जर पर्वत से शालग्राम तीर्थ में चले आयें ॥३०॥

तस्मिन्नपि कालं प्रतीक्षमाणः सङ्गाच्च भृशमुद्विग्न आत्मसहचरः शुष्कपर्णतृणवीरुधावर्तमानो मृगत्वनिमित्तावसानमेव गणयन्मृगशरीरं तीर्थोदकक्लिन्नमुत्ससर्ज ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे पञ्चम स्कन्धे भरत चरितेऽष्टमोऽध्याय: ॥८॥

अनुवाद— वहाँ रहकर भी वे काल की प्रतीक्षा करते रहे, वे आसक्ति से अत्यन्त भयभीत थे । अकेले रहकर वे सुखे पत्ते, घास और झड़ियों द्वारा निर्वाह करते हुए मृग योनि को प्राप्त कराने वाले प्रारब्ध नाश की प्रतीक्षा करते रहे, प्रारब्ध क्षय के अन्त में वे अपने मृग शरीर का आधा भाग गण्डकी नदी में डुबाये रखकर शरीर त्याग कर दिया ॥३१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के भरतचरित के प्रसङ्ग में आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥

भावार्थ दीपिका

आत्मैव सहचरो यस्य एकाकी । प्रतीक्षमाणस्यैव प्रपञ्चः मृगत्वनिमित्तेति । तीर्थोदकेन क्लिन्नमार्द्रमर्धोदकस्थमित्यर्थः॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टमोऽ्यायः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

आत्मसहचर: अकेले रहने वाले भरतजी उस शालग्राम क्षेत्र में भी मृगत्व की प्राप्ति कराने वाले प्रारब्धक्षय की प्रतीक्षा करते रहे । मृत्यु के समय उनका आधा शरीर तीर्थ के शरीर से भिंगा हुआ था ॥३१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के आठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥८॥

नवाँ अध्याय

भरतजी का ब्राह्मण वंश में जन्म

श्रीशुक उवाच

अथ कस्यचिद्द्विजवरस्याङ्गिरः प्रवरस्य शमदमतपःस्वाध्यायाध्ययनत्यागसंतोषतितिक्षाप्रश्रय-विद्यानसूयात्मज्ञानानन्दयुक्तस्यात्मसदृशश्रुतशीलाचाररूपौदार्यगुणा नव सोदर्या अङ्गजा बभूवुर्मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायाम् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! आङ्गिरस गोत्र में उत्पन्न शम, दम, तप, स्वाध्याय, वेदाध्ययन, त्याग, सन्तोष, तितिक्षा, विनय, विद्या, अनसूया, आत्मज्ञान, एवं आनन्द आदि समस्त गुणों से सम्पन्न एवं ब्राह्मण थे । उनकी बड़ी पत्नी से उन्हीं के समान विद्या, शील, आचार, रूप एवं औदार्य आदि गुणों से युक्त नव पुत्र हुए और छोटी स्त्री से एक ही साथ एक पुत्र और एक पुत्री का जन्म हुआ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

नवमे जडविप्रत्वे तस्य रागाद्यभावतः । यद्रकालीपशुत्वेऽपि निर्विकारत्वमीर्यते । पितुः प्राप्तात्मविज्ञानो भरतो मृगतां गतः । प्रारब्धकर्मवेगेन तदन्ते जडविप्रताम् । आङ्गिरसगोत्रजानां प्रवरस्य श्रेष्ठस्य शमादियुक्तस्य । त्यागोऽत्रातिथ्यादिभ्योऽन्नदानादि। विद्या कर्मविद्या । आत्मज्ञानं देहादिव्यतिरिक्तभोक्त्रात्मज्ञानम् । आनन्दो धर्मसंपत्तिजः आत्मना सादृशाः श्रुतादयो गुणा येषां ते समानोदरा नव पुत्रा बभूवुः । यवीयस्यां कनिष्ठायां च मिथुनं स्त्रीपुरुषयुग्मम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

नवें अध्याय में श्रीभरतजी के जड़ ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होने के कारण भद्रकाली का बलि पशु बनने पर भी वे निर्विकार बने रहे । अपने पिता ऋषभदेव से आत्मविज्ञान को प्राप्त करके भरतजी मृगयोनि को प्राप्त कर लिए। प्रारब्ध कर्म के वेग के कारण वे उसके पश्चात् जड़ ब्राह्मण हो गये । आङ्गिरस गोत्र में उत्पन्न होने वाले ब्राह्मणों में श्रेष्ठ शमादि गुण सम्पन्न, अतिथि इत्यादि को अन्न देने के त्याग को कहा गया है, विद्या शब्द कर्म विद्या का वाचक है । आत्मज्ञान देहादि से भिन्न आत्मा ही भोक्ता है उस प्रकार का ज्ञान । धर्म जन्य आनन्द, अपने ही सदृश सहोदर नव पुत्र हुए । छोटी पत्नी के गर्भ से एक कन्या और एक पुरुष दोनों जुड़वे सन्तान थे ॥१॥

यस्तु तत्र पुमांस्तं परमभागवतं राजर्षिप्रवरं भरतमुत्सृष्टमृगशरीरं चरमशरीरेण विप्रत्वं गतमाहुः॥२॥

अनुवाद— उन दोनों में जो पुरुष था वह परम भागवत राजर्षि भरत ही थे । वे मृग शरीर का परित्याग करके अपने अन्तिम शरीर से ब्राह्मणत्व को प्राप्त किए इस प्रकार से महापुरुषों का कहना है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

उत्सृष्टं मृगशरीरं येन तम् । 'शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते' इति स्मृतेः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

योगभ्रष्ट पुरुष पवित्र ऐश्वर्य सम्पन्न पुरुषो के यहाँ जन्म लेता है इस स्मृति के अनुसार मृग शरीर का परित्याग करके पवित्र ब्राह्मण के वंश में जन्म लिए ॥२॥

तत्रापि स्वजनसङ्गाच्च भृशमुद्विजमानो भगवतः कर्मबन्धविध्वंसनश्रवणस्मरणगुणविवरणचरणारविन्दयुगलं मनसा विदधदात्मनः प्रतिघातमाशङ्कमानो भगवदनुग्रहेणानुस्मृतस्वपूर्वजन्मावलिरात्मानमुन्मत्तजडान्धबधिरस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य ॥३॥

अनुवाद— उस जन्म में भी श्रीभगवान् की कृपा से उनके अपने पूर्व जन्म परम्परा के स्मरण रहने के कारण, इस आशंका से कि फिर न कहीं कोई विघ्न उपस्थित हो जाय वे अपने स्वजनों तथा दूसरे लोगों के सङ्ग से भयभीत रहते थे। निरन्तर जिनका श्रवण, स्मरण, और गुण कीर्तन सभी प्रकार के कर्मों के बन्धन को काट देता है श्रीभगवान् के दोनों चरण कमलों को ही अपने मन से स्मरण किया करते थे और दूसरों की दृष्टि में अपने को उन्मत्त जड, अन्ध, बधिर रूप से दिखाते थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्रापि चान्यसङ्गादात्मनो भ्रंशमाशङ्कमानश्चात्मानमुन्मत्तादि रूपेण दर्शयामासेत्यन्वयः। किं कुर्वन् कर्मबन्धविध्वंसनं श्रवणं स्मरणं गुणानां विवरणं कथनं च यस्य तद्भगवतश्चरणारविन्दयुगलं मनसा विशेषेण धारयन्। प्रतिघातशङ्कायां हेतुः- अनुस्मृता स्वीयपूर्वजन्मनामावलिः परम्परा येन सः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

इस जन्म में भी दूसरों के सङ्ग से आत्मभ्रंश की आशङ्का से अपने को उन्मत्त आदि के रूप में दिखाते थे। प्रश्न होता है कि वे क्या करते थे तो इसका उत्तर है कर्मों के बन्धन को विध्वस्त कर देने वाले श्रीभगवान् के दोनों चरणों के गुणों का श्रवण, स्मरण तथा गुणों की विवरण में ही मन को विशेष रूप से लगाये रखते थे। विघ्न की आशङ्का का कारण यह था कि उनको अपने पूर्व जन्मों की परम्परा की याद बनी रहती थीं ॥३॥

तस्यापि ह वा आत्मजस्य विप्रः पुत्रस्नेहानुबद्धमना आसमावर्तनात्संस्कारान्यथोपदेशं विदधान उपनीतस्य च पुनः शौचाचमनादीन्कर्मनियमाननभिप्रेतानपि समशिक्षयत् अनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः पुत्रेणेति॥४॥

अनुवाद— उनके पिता का उनमें अपने अन्य पुत्रों के ही समान स्नेह होने के कारण अतएव उन्होंने अपने पागल पुत्र के भी शास्त्रानुसार समावर्तन संस्कार पर्यन्त विवाह से पूर्व के सभी संस्कारों को सम्पन्न करने की इच्छा से उनका उपनयन संस्कार किया ? उनके नहीं चाहने पर भी पुत्र को शिक्षा देना पिता का कर्तव्य होने के कारण शास्त्रोक्त विधि से उनको शौच आचमन आदि की शिक्षा पिता ने उनको भी दी ॥४॥

भावार्थ दीपिका

पुत्रस्नेहेऽनुबद्धं मनोयस्य। जडस्य गार्हस्थ्यानधिकारात्समावर्तनान्तान्संस्कारान्विदधानस्तमुपनीयोपनीतस्य पुनः शौचादींस्तस्यानभिप्रेतानपि शिक्षितवान्। तत्र हेतुः अनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः सकाशात्पुत्रेणेति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

पिता का पुत्र के स्नेह में मन अवद्ध था। चूकि जड़ का गार्हस्थ्य में अधिकार नहीं होता है अतएव समावर्तन संस्कार पर्यन्त संस्कारों को करने की इच्छा से उन्होंने जड़ पुत्र का यज्ञोपवीत संस्कार करके उनके लिए अभिप्रेत नहीं होने पर भी पावित्र्य पालन की शिक्षा दी। क्योंकि नियम है कि पिता को अपने पुत्रों को सुशिक्षित करना चाहिए ॥४॥

स चापि तदुह पितृसन्निधावेवासध्रीचीनमिव स्म करोति छन्दांस्यध्यापयिष्यन्सह व्याहृतिभिः सप्रणवशिरस्त्रिपदीं सावित्रीं ग्रैष्मवासन्तिकान्मासानधीयानमप्यसमवेत रूपं ग्राहयामास ॥५॥

अनुवाद— भरतजी अपने पिता के समक्ष ही उनके विरुद्ध अनाचरण करने लगते थे। पिता उनको वर्षा

काल में वेदाध्ययन प्रारम्भ करा देना चाहते थे । किन्तु वसन्त और ग्रीष्म ॠतु के चार महीनों में भी वे व्याहृतियों सहित शिरोमन्त्र प्रणव के साथ त्रिपदा गायत्री को भी वे याद नहीं कर सके ।।५।।

भावार्थ दीपिका

सोऽपि च पितुः शिक्षानिर्बन्धनिवृत्तये असध्रीचीनमसमीचीनमिव करोति स्म उपाकरणवेदव्रताद्यनन्तरं श्रावणादिमासेषु वेदानध्यापयिष्यन्नादौ तावद्व्याहृतिभिः सह प्रणवशिरः सहितां त्रिपदीं चैत्रादिचतुरो मासानधीयानमप्यसमवेतरूपं यथा भवत्येवं ग्राहयामास । तावतापि कालेन स्वरानुपूर्व्यादियुक्तं व्याहृत्यादि तस्य नागतमित्यर्थः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

अपने पिता के शिक्षा रूपी बन्धन को दूर करने के लिए उनके साथ ही विरुद्ध आचरण करने लगे । उपाकर्म के पश्चात् वेद व्रत के अनन्तर श्रावण आदि मासों में वेदों को पढ़ाना प्रारम्भ कर देने की इच्छा से सर्वप्रथम व्याहृतियों और शिरोमन्त्र प्रणव पूर्वक त्रिपदा गायत्री को वसन्त और ग्रीष्म के चार महीनों में अच्छी तरह से याद नहीं कर सके ।।५।।

एवं स्वतनुज आत्मन्यनुरागावेशितचित्तः शौचाध्ययनव्रतनियमगुर्वनलशुश्रूषणाद्यौपकुर्वाणककर्माण्यनभियुक्तान्यपि समनुशिष्टेन भाव्यमित्यसदाग्रहः पुत्रमनुशास्य स्वयं तावदनधिगतमनोरथः कालेनाप्रमत्तेन स्वयं गृह एव प्रमत्त उपसंहृतः ।।६।।

अनुवाद— ऐसा होने पर भी अपने इस पुत्र में पिता का आत्मा के समान अनुराग था । अतएव उनकी प्रवृत्ति नहीं होने पर भी पुत्र को अच्छी तरह से शिक्षा देनी चाहिए इस प्रकार के आग्रहवशात् पिता अपने उस पुत्र को शौच, वेदाध्ययन, व्रत, नियम एवं गुरु तथा अग्नि की सेवा आदि ब्रह्मचर्य के नियमों की शिक्षा देते रहे। ऐसा करके भी पुत्र का सुशिक्षित देखने का उनका मनोरथ पूर्ण नहीं हो सका । और स्वयं भी गृहकार्यों में व्यस्त बने रहे किन्तु सर्वदा सावधान रहने वाला काल आ गया और उनकी मृत्यु हो गयी ।।६।।

भावार्थ दीपिका

आत्मभूते स्वतनुजेऽनुरागेणावेशितं चित्तं येन । शौचादीनि यान्यौपकुर्वाणकस्य सावधिब्रह्मचर्यवतः कर्माणि तेनानभियुक्तान्यनादृतान्यपि तं पुत्रं प्रत्यनुशास्याप्यप्राप्तपुत्रपाण्डित्यमनोरथः स्वयं कालेनोपसंहृतो मृत इत्यर्थः । अनुशासननिर्बन्धे पुनस्तमेव हेतुमाह । अनुशिष्टेन भाव्यमित्यसन्नयोग्य आग्रहो यस्य ।।६।।

भाव प्रकाशिका

आत्म स्वरूप अपने पुत्र में जिनका मन लगा रहता था वे पिता औपकारक (ब्रह्मचर्याश्रम) के लिए अपेक्षित शौच आदि कर्म जो भरतजी को अभिप्रेत नही थे उनकी भी उन्होंने शिक्षा दी फिर भी पुत्र के पाण्डित्य के मनोरथ के पूर्ण हुए बिना ही काल से आक्रान्त होकर मर गये । उनको पुत्र को शिक्षा देने का कारण यह था कि पुत्र को सुशिक्षित होना चाहिए ।।६।।

अथ यवीयसी द्विजसती स्वगर्भजातं मिथुनं सपत्न्या उपन्यस्य स्वयमनुसंस्थया पतिलोकमगात् ।।७।।

अनुवाद— उनकी छोटी पत्नी अपने दोनों सन्तानों को अपने सौत को समर्पित करके स्वयं सती होकर पतिलोक को चली गयी ।।७।।

भावार्थ दीपिका

सपत्न्यै समर्प्य । अनुसंस्थयाऽनुमरणेन । सप्तम्यन्तपाठेऽप्ययमेवार्थः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

छोटी पत्नी अपनी दोनों सन्तानों को सौत को समर्पित करके सती होकर पति के लोक में चली गयी । सप्तम्यन्त पाठ होने पर भी यही अर्थ होगा ।।७।।

पितर्युपरते भ्रातर एनमतत्प्रभावविदस्त्रय्यां विद्यायामेव पर्यवसितमतयो न परविद्यायां जडमतिरिति भ्रातुरनुशासननिर्बन्धान्न्यवृत्सन्त ॥८॥

अनुवाद— पिता की मृत्यु के पश्चात् भरतजी के भाई जो कर्मकाण्ड को ही सर्वश्रेष्ठ जानते थे ब्रह्मज्ञान से सर्वथा अनभिज्ञ थे उन्हें भरतजी का प्रभाव ज्ञात नहीं था वे उनको मूर्ख समझते थे अतएव उनको पढ़ाने का अग्रह उन सबों ने छोड़ दिया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

न्यवृत्सन्त निवर्तितुमैच्छन् । निवृत्ता इत्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

व्यवृत्सन्त का अर्थ है त्याग दिया ॥८॥

स च प्राकृतैर्द्विपदपशुभिरुन्मत्तजडबधिरेत्यभिभाष्यमाणो यदा तदनुरूपाणि प्रभाषते कर्माणि च स कार्यमाणः परेच्छया करोति विष्टितो वेतनतो वा याच्ञया यदृच्छया वोपसादितमल्पं बहु मिष्टं कदन्नं वाऽभ्यवहरति परं नेन्द्रियप्रीतिनिमित्तं नित्यनिवृत्तनिमित्तस्वसिद्धविशुद्धानुभवानन्दस्वात्मलाभाधिगमः सुखदुःखयोर्द्वन्द्वनिमित्तयोरसंभावितदेहाभिमानः ॥९॥

अनुवाद— भरतजी को मानापमान का कोई परवाह न था । जब साधारण नर पशु उनको पागल, मूर्ख अथवा बहरा कहकर पुकारते थे तो वे उन सबों के समक्ष वैसा ही बोलने लगते थे । यदि कोई उनसे कोई काम कराना चाहता था तो उसकी वे उसकी इच्छा के अनुसार काम कर देते थे । वेगार के रूप में अथवा मजदूरी के रूप में माँगने पर अथवा बिना माँगे उनको जो भी थोड़ा बहुत, अच्छा अथवा बुरा अन्न मिलता था वे उसी को खा लेते थे । वे जीभ का थोड़ा सा भी स्वाद नहीं लेते थे । किसी कारण से नहीं उत्पन्न होने वाला स्वतः सिद्ध केवल ज्ञानानन्द स्वरूप आत्मज्ञान उनको प्राप्त हो गया था । सुख दुःखादि में उनको देहाभिमान की स्फूर्ति नहीं होती थी ॥९॥

भावार्थ दीपिका

यदाऽभिभाष्यमाणस्तदा तदनुरूपाणि प्रभाषते । मूल्यमन्तरेण बलाद्यत्कर्म कार्यते सा विष्टिः । वेतनं मूल्यम् । विष्टयादिभिरुपसादितमन्नमभ्यवहरति उपभुङ्क्ते केवलं, न त्विन्द्रियप्रीतये । अत्र हेतुद्वयमाह । नित्यं सदा निवृत्तं निमित्तं यस्मात्स उत्पादकशून्यः स्वसिद्धोऽभिव्यञ्जकशून्यो विशुद्धः केवलो योऽनुभवः स एवानन्दरूपः स्वात्मा तस्य लाभ एवंभूतोऽहमिति ज्ञानं तस्याधिगमः प्राप्तिरस्ति यस्य । द्वन्द्वानि सन्मानावमानादीनि तद्धेतुकयोः सुखदुःखयोरकृतदेहाभिमानः । तस्मान्नेन्द्रियप्रीतिनिमित्तमभ्यवहरतीत्यन्वयः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उनको सामान्य मनुष्य जैसा कहते थे वे उसी के अनुसार बोलने लगते थे । वेगार में किए जाने वाले कर्म को विष्टि कहते है । वेतन पर किए गये कर्म के मूल्य कहते है । वे बेगार आदि से जो कुछ और जैसा भी अन्न उनको मिल जाता था उसी को वे खा लेते थे । जीभ का स्वाद वे बिल्कुल नहीं लेते थे । इसके दो कारण थे १. उनको उत्पादक शून्य स्वतः सिद्ध अभिव्यञ्जक शून्य आनन्द स्वरूप आत्मज्ञान प्राप्त हो गया था । २. मानपमान जन्य सुख दुःख के द्वारा उनको देहाभिमान की स्फूर्ति होती ही नहीं थी यही कारण था कि वे जिह्वा के स्वाद के लिए भोजन नहीं करते थे ॥९॥

शीतोष्णवातवर्षेषु वृष इवानावृताङ्गः पीनः संहननाङ्गः स्थण्डिलसंवेशनानुन्मर्दनामज्जनरजसा महामणिरिवानभिव्यक्तब्रह्मवर्चसः कुपटावृतकटिरुपवीतेनोरुमषिणा द्विजातिरिति ब्रह्मबन्धुरिति संज्ञयाऽतज्ज्ञजनावमतो विचचार ॥१०॥

अनुवाद— वे सर्दी गर्मी, आँधी और वर्षा के भी समय सांड़ के समान नङ्गे वदन पड़े रहते थे। उनके सभी अङ्ग हृष्ट पुष्ट थे। वे पृथिवी पर ही पड़े रहते थे। कभी तेल आदि नहीं लगाते थे और स्नान भी नहीं करते थे। शरीर पर मैल जम गयी थी। धूल से ढँके हुए महामूल्यवान मणि के समान उनका ब्रह्मतेज छिप गया था। वे कमर में मैला वस्त्र लपेटे रहते थे। यज्ञोपवीत भी मैला हो गया था। अतएव अज्ञानी लोग उनको कोई द्विज कहते थे तो कोई अधम ब्राह्मण। किन्तु वे इन सबों को सोचे बिना धूमते रहते थे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अतएव शीतोष्णादिष्वनावृताङ्गो विचचारेत्यन्वयः। कीदृशः। पीनः पुष्टः। संहननाङ्गः संहन्यन्ते निबिडीभवन्ति स्माङ्गानि यस्य। कठिनावयव इत्यर्थः। स्थण्डिलसंवेशनं भूमिशयनम्, अनुन्मर्दनं मर्दनाभावः, अमज्जनं स्नानाभावः, तैर्यद्रजस्तेनाप्रकटं ब्रह्मवर्चसं ब्राह्मं तेजो यस्य। यथा महामणिरनभिव्यक्ततेजा भवति। कुत्सितेन पटेना वृता कटिर्यस्य। उरुमषिणाऽतिमलिनेन। तत्त्वतस्तं न जानन्ति ये तैर्जनैरवमतः सन् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

भरतजी सर्दी गर्मी में सदा खुले वदन घुमा करते थे। उनके अङ्ग हृष्ट पुष्ट और गठीले थे। वे पृथिवी पर सोते थे। वे न तो तैल आदि लगाते थे और न तो स्नान करते थे। उसके कारण उनका ब्रह्मतेज छिप गया था। वे कमर में मैला कपड़ा लपेटे रहते थे और उनका यज्ञोपवीत अत्यन्त मैला था। उनके तत्त्व को नहीं जानने वाले लोग उनका अपमान करते थे ॥१०॥

यदा तु परत आहारं कर्मवेतनत ईहमानः स्वभ्रातृभिरपि केदारकर्मणि निरूपितस्तदपि करोति किंतु न समविषमन्यूनमधिकमिति वेद कणपिण्याकफलीकरणकुल्माषस्थालीपुरीषादीन्यप्यमृतवदभ्यवहरति॥११॥

अनुवाद— दूसरे की मजदूरी करते देखकर उनके भाइयों ने उन्हें खेत की क्यारियाँ ठीक करने में लगा दिया तो वे उस कार्य को करने लगे। उनको इस बात का ध्यान नहीं रहता था कि उन क्यारियों की भूमि समतल है कि ऊँची नीची या क्यारी छोटी है या बड़ी। उनके भाई उन्हें चावल की कनी खली भूसी, धुने उदड या बरतन में सटे हुए जले अन्न का खुरचन जो भी दे देते थे उसी को वे अमृत के समान खा लेते थे ॥११॥

भावार्थ दीपिका

यदा तु परेभ्यः कर्ममूल्येनाहारमपेक्षमाणो भवति तदा केदारकर्मणि शालिक्षेत्रे कर्द्दमविलोडनादावाहारप्रलोभनेन नियुक्तः सन् करोति। किंत्वत्र कर्दमस्य प्रक्षेपे क्षेत्रं समं भवेदित उद्धरणे विषमं स्यादित्यादि न वेद। भ्रातृभिर्दत्तान्कणादीनप्यमृतवद्भुङ्क्ते। कणाश्चूर्णतण्डुलाः। पिण्याकं तैलयन्त्रोद्धृतं तिलकिट्टम्। फलीकरणं तुषाः। कुल्माषाः कीटदष्टा माषाः। स्थाली पुरीषं स्थालीलग्नं दग्धान्नम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

दूसरों की मजदूरी से उनको पेट पालते देखकर उनके भाइयों ने उनको खेत की क्यारियों को ठीक करने के काम में भोजन की लालच देकर लगा दिया। किन्तु कीचड़ के निकलने से खेत समतल होगा या विषम इस बात का पता उनको नहीं था उनके भाई उन्हें खाने के लिए कन आदि को देते और वे उसे अमृत के समान खा लेते थे। चावल के कण, खली, भूसी, घुने उड़द वर्तनों में सटकर जले हुए अन्न को भी वे खा लेते थे॥११॥

अथ कदाचित्कश्चिद्वृषलपतिर्भद्रकाल्यै पुरुषपशुमालभतापत्यकामः ॥१२॥

अनुवाद— एक बार चोरों के सरदार ने जिसके सामन्त शूद्र जाति के थे पुत्र की कामना से भद्रकाली को मनुष्य की बलि देने का सङ्कल्प किया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तस्य रागादिराहित्यमलौल्यं चैवमीरितम् । अथान्यच्चरितं प्राह चित्रं मृत्यावसंभ्रमम् । वृषलपतिः शूद्रसामन्तश्चोरराजः आलभत अलब्धुं प्रवृत्तः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से यहाँ तक उनके रागादि राहित्य एवं लालच राहित्य का वर्णन किया गया । अब उनके दूसरे चरित का वर्णन करते हैं कि वे मृत्यु के डर से भी भयभीत नहीं थे चोरों के राजा को वृषलपति कहते हैं अलभत अर्थात् बलि देने में प्रवृत्त हुआ ॥१२॥

तस्य ह दैवमुक्तस्य पशोः पदवीं तदनुचराः परिधावन्तो निशि निशीथसमये तमसावृतायामनधिगतपशव आकस्मिकेन विधिना केदारान् वीरासनेन मृगवराहादिभ्यः संरक्षमाणमङ्गिरः प्रवरसुतमपश्यन् ॥१३॥

अनुवाद— वह जिस पुरुष को बलि देने के लिए मगाया था वह दैववशात् उसके फंदे से निकलकर भाग गया । उसको ढूँढने के लिए उसके अनुचर चारो ओर निकले किन्तु अन्धेरी रात में आधी रात में उसका किसी तरह पता नहीं चला । उसी समय उन सबों की आकस्मात् उस आङ्गिरस गोत्रीय ब्राह्मण कुमार पर नजर पड़ी जो वीरासन से बैठकर मृगों तथा वराह इत्यादि से खेतों की रक्षा कर रहे थे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

दैवाद्बन्धनविमुक्तस्य पशोः । तमसा व्याप्तायां निशि । तत्रापि निशीथसमयेऽर्धरात्रावसरे । आकस्मिको दैवनिर्मितो विधिः प्रकारस्तेन । वीरासनेनोर्ध्वावस्थानेन ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

दैववशात् उसका नर पशु बन्धन से छूट गया, उसके उसे अँधेरी रात में आधी रात को उसको खोजने निकले किन्तु वह नहीं मिला । दैव वशात् उन सबों ने भरतजी को देखा जो वीरासन से खेत की रखवाली कर रहे थे ॥१३॥

अथ त एनमनवद्यलक्षणमवमृश्य भर्तृकर्मनिष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वा रशनया चण्डिकागृहमुपनिन्युर्मुदा विकसितवदनाः ॥१४॥

अनुवाद— उन सबों ने इनको निर्दोष पशु जानकर उनसे ही अपने स्वामी के कार्य की पूर्ति मानते हुए उनको रस्सी में बाँधकर चण्डिका के मन्दिर में ले आये ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अवमृश्य ज्ञात्वा ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अवमृश्य अर्थात् जानकर ॥१४॥

अथ पणयस्तं स्वविधिनाभिषिच्याहतेन वाससाच्छाद्य भूषणालेपस्रक्तिलकादिभिरुपस्कृतं भुक्तवन्तं धूपदीपमाल्यलाजकिसलयाङ्कुरफलोपहारोपेतया वैशससंस्थया महता गीतस्तुतिमृदङ्गपणवघोषेण च पुरुषपशुं भद्रकाल्याः पुरत उपवेशयामासुः ॥१५॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उन चोरों ने अपनी विधि के अनुसार उनका अभिषेक करके कोरे वस्त्र पहनाया, अनेक प्रकार के आभूषण, चन्दन, माला और तिलक आदि से भूषित करके अच्छी तरह से भोजन कराया। फिर धूप, दीप, माला, लावा, पत्ते, अङ्कुर तथा फल आदि उपहार की सामग्री के साथ बलिदान विधि से गायन, स्तुति मृदङ्ग तथा ढोल आदि का अत्यधिक शब्द करके उस पुरुष पशु को भद्रकाली के सामने शिर नीचा करके बैठा दिया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

पणयश्चोराः। अहतेन नूतनेन। उपस्कृतमलंकृतम्। वैशससंस्थया हिंसाविधानेन। गीतादिघोषेण सह ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

पणयः अर्थात् चोरगण, अहत अर्थात् नवीन, वैशससंस्थ्या हिंसा विधि से, गीत आदि के अधिक ध्वनि के साथ ॥१५॥

अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोरसृगासवेन देवीं भद्रकालीं यक्ष्यमाणस्तदभिमन्त्रितमसिमतिकरालनिशितमुपाददे ॥१६॥

अनुवाद— तदन्तर चोरराज के पुरोहित चोर उस नर पशु के रक्त से देवी को तृप्त करने के लिए देवी के मन्त्र से अभिमन्त्रित एक तीक्ष्ण खड्ग को अपने हाथ में ले लिया ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

वृषलराजस्य पणिःपुरोहितत्वेन वर्तमानश्चोरः। तदभिमन्त्रितं भद्रकालीमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

वृषल राजस्य पणिः अर्थात् चोर राज को पुरोहित चोर, भद्रकाली के मन्त्र से अभिन्त्रित एक तीक्ष्ण खड्ग को अपने हाथ में उठाया ॥१६॥

इति तेषां वृषलानां रजस्तमः प्रकृतीनां धनमदरजउत्सिक्तमनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पथेन स्वैरं विहरतां हिंसाविहाराणां कर्मातिदारुणं यद्ब्रह्मभूतस्य साक्षाद्ब्रह्मर्षिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृदः सूनायामप्यन नुमतमालम्भनं तदुपलभ्य ब्रह्मतेजसातिदुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसोच्चचाट सैव देवी भद्रकाली ॥१७॥

अनुवाद— स्वभावतः रजोगुणी तमोगुणी प्रकृति वाले चोरों का चित्त धन के मद से मत्त हो गया था। हिंसा में उन सबों की स्वभावतः रुचि थी। इस समय वे भगवान् के अंश स्वरूप ब्राह्मण वंश का तिरस्कार करके स्वच्छन्दता पूर्वक उन्मार्ग की ओर बढ़ रहे थे। जिस हिंसा का अनुमोदन नहीं किया गया है, उसमें भी ब्राह्मण वध का सर्वथा निषेध है। भरतजी तो निर्वैर साक्षात् ब्रह्मभाव को प्राप्त सभी प्राणियों के सुहृद तथा ब्रह्मर्षि कुमार थे। उनकी वे बलि देना चाहते थे। इस भयङ्कर कुकर्म को देखकर देवी भद्रकाली के शरीर अति दुःसह ब्रह्मतेज से दाह होने लगा। अचानक वे मूर्ति को फोड़कर प्रकट हो गयीं ॥१७॥

अथ पणयस्तं स्वविधिनाभिषिच्याहतेन वाससाच्छाद्य भूषणालेपस्रक्तिलकादिभिरुपस्कृतं भुक्तवन्तं धूपदीपमाल्यलाजकिसलयाङ्कुरफलोपहारोपेतया वैशससंस्थया महता गीतस्तुतिमृदङ्गपणवघोषेण च पुरुषपशुं भद्रकाल्याः पुरत उपवेशयामासुः ॥१५॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उन चोरों ने अपनी विधि के अनुसार उनका अभिषेक करके कोरे वस्त्र पहनाया, अनेक प्रकार के आभूषण, चन्दन, माला और तिलक आदि से भूषित करके अच्छी तरह से भोजन कराया। फिर धूप, दीप, माला, लावा, पत्ते, अङ्कुर तथा फल आदि उपहार की सामग्री के साथ बलिदान विधि से गायन, स्तुति मृदङ्ग तथा ढोल आदि का अत्यधिक शब्द करके उस पुरुष पशु को भद्रकाली के सामने शिर नीचा करके बैठा दिया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

पणयश्चोराः । अहतेन नूतनेन । उपस्कृतमलंकृतम् । वैशससंस्थया हिंसाविधानेन । गीतादिघोषेण सह ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

पणयः अर्थात् चोरगण, अहत अर्थात् नवीन, वैशससंस्थया हिंसा विधि से, गीत आदि के अधिक ध्वनि के साथ ॥१५॥

अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोरसृगासवेन देवीं भद्रकालीं यक्ष्यमाणस्तदभिमन्त्रितमसिमतिकरालनिशितमुपाददे ॥१६॥

अनुवाद— तदन्तर चोरराज के पुरोहित चोर उस नर पशु के रक्त से देवी को तृप्त करने के लिए देवी के मन्त्र से अभिमन्त्रित एक तीक्ष्ण खड्ग को अपने हाथ में ले लिया ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

वृषलराजस्य पणिःपुरोहितत्वेन वर्तमानश्चोरः । तदभिमन्त्रितं भद्रकालीमन्त्राभिमन्त्रितम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

वृषल राजस्य पणिः अर्थात् चोर राज को पुरोहित चोर, भद्रकाली के मन्त्र से अभिन्त्रित एक तीक्ष्ण खड्ग को अपने हाथ में उठाया ॥१६॥

इति तेषां वृषलानां रजस्तमः प्रकृतीनां धनमदरजउत्सिक्तमनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पथेन स्वैरं विहरतां हिंसाविहाराणां कर्मातिदारुणं यद्ब्रह्मभूतस्य साक्षाद्ब्रह्मर्षिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृदः सूनायामप्यन नुमतमालम्भनं तदुपलभ्य ब्रह्मतेजसातिदुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसोच्चचाट सैव देवी भद्रकाली ॥१७॥

अनुवाद— स्वभावतः रजोगुणी तमोगुणी प्रकृति वाले चोरों का चित्त धन के मद से मत्त हो गया था। हिंसा में उन सबों की स्वभावतः रुचि थी। इस समय वे भगवान् के अंश स्वरूप ब्राह्मण वंश का तिरस्कार करके स्वच्छन्दता पूर्वक उन्मार्ग की ओर बढ़ रहे थे। जिस हिंसा का अनुमोदन नहीं किया गया है, उसमें भी ब्राह्मण वध का सर्वथा निषेध है। भरतजी तो निर्वैर साक्षात् ब्रह्मभाव को प्राप्त सभी प्राणियों के सुहृद तथा ब्रह्मर्षि कुमार थे। उनकी वे बलि देना चाहते थे। इस भयङ्कर कुकर्म को देखकर देवी भद्रकाली के शरीर अति दुःसह ब्रह्मतेज से दाह होने लगा। अचानक वे मूर्ति को फोड़कर प्रकट हो गयीं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

धनमद एव रजस्तेनोत्सिक्तं त्यक्तमर्यादं मनो येपाम् । भगवत्कलायुक्तं वीराणां ब्राह्मणानां कुलं तुच्छीकृत्य यथेच्छं वर्तमानानां यत्कर्म तदुपलभ्य देवी उच्चचाट प्रतिमां त्यक्त्वा वहिर्निर्गता । कथंभूतमालम्भनम् । सूनायामप्यापत्कालेऽनुज्ञातायामपि हिंसायामननुज्ञातम् । भद्रकालीत्यन्तं गद्यम् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

धन का मद ही रजोगुण है उसके कारण उन सवों का मन मर्यादाहीन हो गया था । श्रीभगवान् की कला से युक्त ब्राह्मणों के वंश का तिरस्कार करके स्वच्छन्दाचार करने वाले उन सवों के कर्म से देवी प्रतिमा को फोड़कर प्रकट हो गयीं । उस हिंसा का वर्णन सूनायाम से लेकर भद्रकाली पर्यन्त गद्य से वर्णित है ।।१७।।

भृशममर्षरोशावेशरभसविलसितभ्रुकुटिविटपकुटिलदंष्ट्रारुणेक्षणाटोपातिभयानकवदना हन्तुकामेवेदं महाट्टहासमतिसंरम्भेण विमुञ्चन्ती तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेनैवासिना विवृक्णशीर्ष्णांगलात्स्रवन्तमसृगासवमत्युष्णं सह गणेन निपीयातिपानमदविह्वलोच्चैस्तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त च विजहार च शिरःकन्दुकलीलया ।।१८।।

अनुवाद— अत्यन्त असहनशीलता और क्रोध के कारण उनकी भौंहें चढ़ी हुई थीं । भयङ्कर दाँतों और चढ़ी हुई लाल आँखों से उनका मुख अत्यन्त भयानक हो गया था । मारने की इच्छा के समान वे अत्यन्त जोर से अट्टहास करती हुई उछल कर उसी खड्ग से उन पापियों, दुष्टों के शिर को काटकर उन सवों के गले से गर्म-गर्म रक्त रूपी आसव को पीकर अपने गण के साथ उन्मत्त होकर नृत्य की और गीत गायी ओर उन शिरों को ही गेंद बनाकर खेलने लगीं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

अमर्षोऽपराधासहनं रोषश्च वपुषो दाहनं तयोरावेशस्तस्य रभसेन वेगेन विलसित उत्तम्भितो भ्रुकुटिलक्षणो विटपः शाखाकुटिला दंष्ट्राश्चारुणानीक्षणानि च तेषामाटोपः संभ्रमस्तेनातिभयानकं वदनं यस्याः । इदं जगद्धन्तुमुद्यतेव । महान्तमट्टहासं सनादं हासम् । ततः स्थानादुत्पत्य विवृक्णानि छिन्नानि शीर्षाणि येषाम् । गणेन परिवारेण सह । शिरांस्येव कन्दुकानि तेषां लीलया चिक्रीड च ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

रोष और आमर्ष के आवेश के वेग से जिनकी भौंहों रूपी वृक्ष की शाखा उनके टेढे दाँत थे और नेत्रों के चढ जाने से उनका मुख भयङ्कर हो गया था । मानो वे इस जगत् का विनाश कर देना चाहती हों । जोर से अट्टहास करती हुई अपने स्थान से उछल कर उन सबों के शिर को काट दीं अपने परिवार के साथ वे उन शिरों का गेंद खेलीं । अपराध को नहीं सहने के आमर्ष कहते हैं । रोष अर्थात् क्रोध ।।१८।।

एवमेव खलु महदभिचारातिक्रमः कार्त्स्न्येनात्मने फलति ।।१९।।

अनुवाद— सत्य है कि महापुरुषों के प्रति किया गया अत्याचार रूप अपराध उसी तरह अपने ऊपर पड़ता है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

ननु कथं देव्याराधकानामेवं विपरीतं फलं तत्राह- एवमेवेति । महत्स्वभिचाररूपोऽतिक्रमोऽपराधः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि देवी की आराधना करने वालों का कारण क्या है ? तो इसका उत्तर स्वयम् इत्यादि के द्वारा दिया गया है । महापुरुषों के प्रति अभिचारता अपराध ही उसका कारण है ॥१९॥

न वा एतद्विष्णुदत्त महदद्भुतं यदसंभ्रमः स्वशिरश्छेदन आपतितेऽपि विमुक्तदेहाद्यात्मभावसुदृढहृदयग्रन्थीनां सर्वसत्त्वसुहृदात्मनां निर्वैराणां साक्षाद्भगवताऽनिमिषारिवरायुधेनाप्रमत्तेन तैस्तैर्भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलमकुतश्चिद्भयमुपसृतानां भागवतपरमहंसानाम् ॥२०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चस्कन्धे जडभरतचरितं नाम नवमोऽध्याय: ॥९॥

अनुवाद— परिक्षित् जिनकी देहाभिमान रूपी हृदय ग्रन्थि छूट गयी है, जो समस्त प्राणियों के सुहृद और आत्मा और निर्वैर हैं, साक्षात् श्रीभगवान् के द्वारा तथा कभी नहीं चुकने वाले चक्रादि श्रेष्ठ तथा सर्वदा सावधान आयुध के द्वारा जिनकी भिन्न-भिन्न रूपों से रक्षा की जाती है, श्रीभगवान् के चरणों की आराधना करने वाले भागवत परमहंसों का किसी प्रकार का भय नहीं होता है ॥२०॥

इस तरह श्रीमद्भागवतम महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के जड़भरतचरित नामक नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

नन्वसंभावितमिदमेवं यन्मरणेऽप्यव्याकुलत्वं मारकेषु च क्रोधाभाव इत्यादि तत्राह– न वा इति । विमुक्तो देहाद्यात्मभावलक्षण: सुदृढो हृदयग्रन्थिर्यैः सर्वसत्त्वानां सुहृद आत्मानश्च ये तेषाम् । न च तेषां देहाद्यभिमानसद्भावेऽपि मरणादिभयमस्तीत्याह । साक्षाद्भगवताऽभितो रक्ष्यमाणानाम् । केन । अनिमिषः कालः स एवाऽरिचक्रं तेन वरायुधेन तैस्तैर्भावैश्चान्तर्यामितया प्रवर्त्यमानैर्भद्रकाल्यादिरूपैः । न कुतश्चिदपि भयं यस्मिन् । भागवतानां भगवदुपासकानां परमहंसानाम् ॥२०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां नवमोऽध्याय: ।।९।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि यही असम्भव है कि मृत्यु के समय भी व्याकुलता का अभाव होना । मारने वालों पर क्रोध का अभाव होना इत्यादि । तो इस पर कहते हैं **नवा० इत्यादि** जिनकी देहाभिमान रूपी ग्रन्थी खुल गयी है जो सभी जीवों के सुहृद एवं आत्मा हैं ऐसे महापुरुषों को यदि देहाभिमान हो तो भी मरणादि का भय नहीं होता इस बात को बतलाते हुए कहते हैं कि उनकी रक्षा स्वयं भगवान् अपने काल रूपी श्रेष्ठ आयुध के द्वारा श्रीभगवान् अन्तर्यामी रूप से भद्रकाली आदि रूपों का प्रवर्तित करने का काम करते हैं । महाभागवत परमहंसों को कहीं से कोई भी भय नहीं होता है ॥२०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पञ्चम स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के नवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।९।।

दसवाँ अध्याय

जड भरत और रहूगण की भेंट

श्रीशुक उवाच

अथ सिन्धुसौवीरपते रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्यास्तटे तत्कुलपतिना शिबिकावाहपुरुषान्वेषणसमये दैवेनोपसादितः स द्विजवर उपलब्ध एष पीवा युवा संहननाङ्गो गोखरवद्धुरं बोढुमलमिति पूर्वविष्टिगृहीतैः सह गृहीतः प्रसभमतदर्ह उवाह शिबिकां स महानुभावः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् एक बार सिन्धु सौ वीर देश का राजा रहूगण पालकी पर चढकर जा रहा था । जब वह इक्षुमती नदी के किनारे पहुँचा तो उसकी पालकी उठाने वाले कहारों के जमादार पालकी ढोने वाले कहार को खोज रहा था दैववशात् ये द्विज श्रेष्ठ मिल गये । उसने सोचा यह मोटा युवक और गठीले शरीर वाला हैं बैल तथा गधे के समान बोझ ढो सकता है । पहले से ही बेगार में पकड़ गयें के साथ उनको भी उसने लगा दिया। यद्यपि भरतजी किसी भी प्रकार उस कार्य के योग्य नहीं थे फिर भी वे महानुभाव पालकी ढोने लगे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

दशमे क्षिपता राजा शिबिकां स्वां बहन्मुनिः । स्वदुर्वादानुवादेन विज्ञायाशु प्रसादितः । एवंभूताविकारित्वमज्ञसर्वज्ञयोः समम् । इति सर्वज्ञतासिद्धयै रहूगणकथेरणम् । रहूगणो नाम सिन्धुसौवीरदेशयो राजा तत्त्वजिज्ञासुः कपिलाश्रमं यदा गच्छति स्म तदा यद्वृतं तदाह- अथेति । इक्षुमत्या नद्यास्तीरे । तेषां शिबिकावाहानां कुलस्य नाथेन एष गौरिव खर इव च भारं वोढुं समर्थ इति धिया पूर्वं ये केचन विष्ट्या बलाद्गृहीतास्तैः सह प्रसभं बलाद्गृहीतः सन्नतदर्होऽपि स महानुभावः शिबिकामुवाहेत्यन्वयः॥१॥

भाव प्रकाशिका

दशवें अध्याय में राजा की पालकी ढोने वाले मुनि को जब राजा डाँटा तो उसके दुर्वाद का अनुवाद करने से उनको जानकर राजा ने जड़ भरतजी की प्रार्थना की । अज्ञानी और सर्वज्ञ दोनों के प्रति एक समान रहने वाले जड़ भरतजी ने ऐसा करने पर भी कोई विकार नहीं आया इस प्रकार की सर्वज्ञता का प्रतिपादन करने के लिए रहूगण की कथा यहाँ वर्णित है । सिन्धु तथा सौवीर इन दोनों देशों का स्वामी रहूगण नामक राजा तत्त्व की जिज्ञासा से जब कपिलाश्रम जा रहा था उस समय जो घटना हुई उसे बतलाते हैं । इक्षुमती नदी के तीर पर शिबिका वाहकों के जमादार ने भरतजी को देखकर सोचा कि यह बैल तथा गधे के समान बोझ ढो सकता है । उसने जिन सबों को बेगार में पकड़ रखा था उन सबों के साथ उसने इनको भी लगा दिया । यद्यपि ये उस कार्य के बिल्कुल अयोग्य थे वे महानुभाव शिविका ढोने लगे ॥१॥

यदा हि द्विजवरस्येषुमात्रावलोकानुगतेर्न समाहिता पुरुषगतिस्तदा विषमगतां स्वशिबिकां रहूगण उपधार्य पुरुषानधिवहत आह हे वोढरः साध्वतिक्रमत किमिति विषममुह्यते यानमिति ॥२॥

अनुवाद— कोई जीव पैरों तले दबकर मर न जाय इसलिए आगे की एक बाण पृथिवी देखकर चलने के कारण दूसरे कँहारों के साथ उनकी चाल का मेल नहीं खाता था । अतएव पालकी जब टेढ़ी सीधी होने लगी तो राजा रहूगण ने कहारों से कहा अरे कँहारों अच्छी तरह पालकी ले चलो को इस तरह उची-नीची क्यों करके चलते हों ?॥२॥

भावार्थ दीपिका

हिंसापरिहारार्थमिषुमात्रप्रदेशावलोकस्यानु पश्चाद्या गतिस्तस्या हेतुभूतायाः पुरुषाणां गतिर्न सम्यगाहिता एकरूपा नाभूत॥२॥

भाव प्रकाशिका

कहीं किसी जीव की हिंसा न हो जाय एतदर्थ वे बाण मात्र पृथिवी को देखकर ही चलते थे। उसके कारण उन सबों की गति मिलती नहीं थी अतएव गति एक समान नहीं होती थी ॥२॥

अथ त ईश्वरवचः सोपालम्भमुपाकर्ण्योपायतुरीयाच्छङ्कितमनसस्तं विज्ञापयांबभूवुः ॥३॥

अनुवाद— स्वामी के इस आक्षेप युक्त वाणी को सुनकर उन सबों को लगा कि राजा हमलोगों को दण्ड न दे अतएव डरकर उन सबों ने कहा ॥३॥

भावार्थ दीपिका

सोपालम्भं साक्षेपम्। सामदानभेददण्डेषूपायेषु चतुर्थाच्छङ्कितचित्ताः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

सोपालम्भ अर्थात् आक्षेप युक्त वाणी सुनकर कहारों को लगा कि राजा सामदान भेद तथा दण्ड चारों में से हम लोगों को दण्ड न दें ॥३॥

न वयं नरदेव प्रमत्ता भवन्नियमानुपथाः साध्वेव वहामः अयमधुनैव नियुक्तोऽपि न द्रुतं व्रजति नानेन सह वोढुमु ह वयं पारयाम इति ॥४॥

अनुवाद— महाराज हमलोगों का प्रमाद नहीं है, हमलोग तो आपके नियमानुसार अच्छी तरह ही ढोने का काम करते हैं। यह नया कहार जो अभी-अभी पालकी में लगाया गया है, फिर भी जल्दी नहीं चलता है हमलोग इसके साथ पालकी नहीं ले जा सकते ॥४॥

भावार्थ दीपिका

भवन्नियमानुपथास्त्वदाज्ञानुवर्तिनः। न पारयामो न शक्नुमः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

हमलोग आपके नियम के अनुसार चलते, इसक साथ हमलोग नहीं चल पा रहे हैं ॥४॥

सांसर्गिको दोष एव नूनमेकस्यापि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुमर्हतीति निश्चित्य निशम्य कृपणवचो राजा रहूगण उपासितवृद्धोऽपि निसर्गेण बलात्कृत ईषदुत्थितमन्युरविस्पष्टब्रह्मतेजसं जातवेदसमिव रजसावृततिराह ॥५॥

अनुवाद— कहारों के इस दीन वचन को सुनकर राजा रहूगण ने सोचा संसर्ग से सम्बन्ध रखने वाला दोष यद्यपि एक ही व्यक्ति मे होता है फिर भी उससे सम्बन्ध रखने वालों में भी आ सकता है। अतएव यदि इसका प्रतिकार नही किया गया तो धीर-धीर सब अपना चाल विगाड़ लेंगे। इस तरह से सोचकर राजा रहूगण को कुछ क्रोध हो गया। यद्यपि उसने महापुरुषों का सेवन किया था फिर भी क्षत्रिय स्वभाव के कारण उसकी बुद्धि रजोगुण से व्याप्त हो गयी, और जिनका ब्रह्मतेज भस्म से ढँकी हुई अग्नि के समान नहीं था उन द्विजश्रेष्ठ से उसने कहा॥५॥

भावार्थ दीपिका

कृपणानां वचो निशम्य सांसर्गिकः संसर्गनिमित्त एकस्यापि दोषः सर्वेषामेव भवितुमर्हतीति निश्चित्य रहूगण आहेत्यन्वयः

कथंभूतः । उपासिता वृद्धा येन सोऽपि स्वभावेन बलात्परवशः कृतः सन् । कथंभूतं प्रत्याह । न विस्पष्टं ब्रह्मतेजो यस्मिन्। भस्मना छन्नमग्निमिव स्थितम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

उन दीन कहरों की वाणी को सुनकर राजा रहूगण ने इस बात का निश्चय कर लिया संसर्ग जन्य दोष एक में ही रहने पर भी सभी सांसर्गिकों में हो सकता है । इस तरह से सोचकर यद्यपि राजा वृद्धों का सेवन किया था फिर भी क्षत्रिय स्वभाव के कारण जिनका ब्रह्म भस्म से ढँकी अग्नि के समान स्पष्ट नहीं था उन भरतजी से कहा ।।५।।

अहो कष्टं भ्रातर्व्यक्तमुरुपरिश्रान्तो दीर्घमध्वानमेक एव ऊहिवान्सुचिरं नातिपीवा न संहननाङ्गो जरसा चोपद्रुतो भवान्सखे नो एवापर एते सङ्घट्टिन इति बहुविप्रलबधोऽप्यविद्यया विहितद्रव्यगुणकर्माशयस्वचरमकलेवरेऽवस्तुनि संस्थानविशेषेऽहंममेत्यनध्यारोपितमिथ्याप्रत्ययो ब्रह्म भूतस्तूष्णीं शिबिकां पूर्ववदुवाह।।६।।

अनुवाद— अरे भाई यह बड़े कष्ट की बात है, तुम अवश्य बहुत थक गये हो, तुम्हारे साथियों ने लगता है कि तुमको थोड़ा भी सहारा नहीं दिया है । तुम अकेले ही इतनी दूरी से पालकी ढो रहे हो, तुम्हारा शरीर न तो मोटा ताजा है और न गठीला है, मित्र ! बुढापे ने तुम्हे अलग से दबा रखा है, इस तरह से बहुत अधिक आक्षिप्त होने पर भी वे पहले के ही समान चुपचाप पालकी ढोते रहे, वे इसको बुरा नहीं माने । उनकी दृष्टि में तो पञ्चभूत इन्द्रिय और अन्तःकरण का सङ्घात यह अन्तिम शरीर अविद्या का कार्य था । उनके अङ्गों से युक्त दिखायी देने पर भी वह अस्तित्व हीन था । अतएव उनका इस शरीर में मैं मेरेपन का मिथ्या अध्यास सर्वथा निवृत्त हो गया था वे ब्रह्म स्वरूप हो गये थे ।।६।।

भावार्थ दीपिका

भ्रातरिति संबोधनमाक्षेपाभिप्रायम् । व्यक्तं निश्चितमुरु अधिकं परिश्रान्तोऽसीत्यादीनि विपरीतार्थानि षड्वाक्यानि । ऊहिवान् प्रापितवान् । तत्रापि सुचिरम् । जरसा च वृद्धत्वेन । सङ्घट्टिनः सहचराः । बहु यथा भवत्येवं विप्रलब्धोऽपि वक्रोक्त्योपहसितोऽपि तूष्णीमुवाहेत्यन्वयः । तूष्णींभावे हेतुः-अविद्यया रचिता द्रव्यादयो यस्मिंस्तस्मिन्स्वचरमकलेवरे नाध्यारोपितो मित्याप्रत्ययो येन । तत्र द्रव्याणि महाभूतानि । गुणा इन्द्रियाणि । कर्माणि पुण्यपापानि । आशयोऽन्तःकरणम् । यतो ब्रह्मभूतः।।६।।

भाव प्रकाशिका

भ्रातः यह आक्षेप के अभिप्राय से किया गया संबोधन है । **व्यक्तम् इत्यादि** छह वाक्य विपरीतार्थक हैं । ऊहिवान् अर्थात् ढोया सुचिरम् अर्थात् बहुत देर से । जरसा अर्थात् बुढापे से **संघट्टिनः** अर्थात् सहचर । इस तरह से वक्रोक्तियों के द्वारा बहुत अधिक उपहास किए जाने पर भी, वे चुपचाप पालकी ढोते रहे । चुपचाप रहने का कारण यह था कि वे जानते थे कि अविद्या जन्य ये द्रव्य आदि इस अन्तिम शरीर में अध्यारोपित होने के कारण मिथ्या है । इस शरीर में द्रव्य महाभूत इन्द्रियां पुण्य पाप रूपी कर्म और अन्तःकरण आदि हैं । इस तरह वे ब्रह्मरूप हो गये थे ।।६।।

अथ पुनः स्वशिबिकायां विषमगतायां प्रकुपित उवाच रहूगणः किमिदमरे त्वं जीवन्मृतो मां कदर्थीकृत्य भर्तृशासनमतिचरसि प्रमत्तस्य च ते करोमि चिकित्सां दण्डपाणिरिव जनताया यथा प्रकृतिं स्वां भजिष्यस इति ।।७।।

अनुवाद— फिर अपनी शिविका को सीधी चलते नहीं देखकर राजा रहूगण क्रुद्ध होकर कहे अरे यह क्या हो रहा है, तुम जीवित ही मर गये हो, मेरा तिरस्कार करके अपने स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन करते हो तुम

प्रमादी की मैं चिकित्सा करता हूँ। जैसे दण्पाणि यमराज जन समूह को उसके अपराधों के लिए दण्ड देते हैं उसी तरह दण्डित होने पर तुम्हारी बुद्धि ठीक हो जायेगी ॥७॥

भावार्थ दीपिका

मामनादृत्य भर्तुः स्वामिनो मम शासनमाज्ञामतिक्रामसि। चिकित्सां शास्तिम्। दण्डपाणिर्यमो यथा जनसमूहस्य शास्तिं करोति तथा। स्वां प्रकृतिमप्रमत्तताम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

राहूगण ने कहा मेरा अनादर करके मुझ स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन करते हो। अभी मैं तुझे दण्ड देता हूँ। उसी तरह जिस तरह यमराज अपराधी जनसमूह को दण्ड देते हैं। फिर तुम ठीक हो जाओगें ॥७॥

एवं बह्वबद्धमपि भाषमाणं नरदेवाभिमानं रजसा तमसानुविद्धेन मदेन तिरस्कृताशेषभगवत्प्रियनिकेतं पण्डितमानिनं स भगवान्ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः सर्वभूतसुहृदात्मा योगेश्वरचर्यायां नातिव्युत्पन्नमतिं स्मयमान इव विगतस्मय इदमाह ॥८॥

अनुवाद— बहुत सी अबद्ध (अनाप-सनाप) बातें बोलने वाले राजा रहूगण को राजा होने का अभिमन था। वे अपने को पण्डित मानते थे, इसीलिए रजोगुण एवं तमोगुण युक्त अभिमान के वशीभूत होकर वे भगवान् के प्रीतिपात्र भक्त श्रेष्ठ भरतजी का अपमान कर डाले। योगेश्वरों के आचार का उनको कुछ पता नहीं था। राजा की इस प्रकार की बुद्धि को देखकर समस्त प्राणियों के सुहृद एवं आत्मा ब्रह्म स्वरूप मुस्कुराते हुए से बिना किसी प्रकार का अभिमान किए ही कहने लगे ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अबद्धमनन्वितम्। नरदेवोऽहमित्यभिमानो यस्य तम्। अनुविद्धेन संगुणितेन तिरस्कृतोऽशेषः संपूर्णो भगवतः प्रियो निकेत आश्रयो येन तम्। यद्वा शेषाणां भगवत्प्रियाणां निकेतः सर्वेषां भूतानां सुहृच्च आत्मा च योगेश्वराणां चर्या जडादिवदाचरणं तस्यां नात्यन्तं व्युत्पन्ना परिचिता मतिर्यस्य स तम्। स्मयमानो हसन्निवेति मुखप्रसत्तिर्द्योत्यते। विगतस्मयो गतगर्वः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अबद्ध अर्थात् असम्बद्ध रहूगण को राजा होने का अभिमान था उसके कारण उसमें रजोगुण और तमोगुण बढ गये थे इसके कारण उसने श्रीभगवान् के प्रिय आश्रय भरतजी का तिरस्कार कर दिया था। अथवा भगवान् के प्रिय भक्तों के आश्रय भूत सबों के सुहृद और आत्मा भरतजी का उसने अपमान किया था। योगेश्वरों की जड़ के समान आचरण के विषय में उसको ज्ञान नहीं था। इस प्रकार के राजा को वे मुस्कुराते हुए से कहने लगे॥८॥

ब्राह्मण उवाच

त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं भर्तुः स मे स्याद्यदि वीर भारः।
गन्तुर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा पीवेति राशौ न विदां प्रवादः ॥९॥

अन्वयः— त्वयोदितं व्यक्तम् अविप्रलब्धम् वीर ! यदि भारः स्यात् स भर्तुः यदि अध्वास्यात् गतुः अधिगम्यम्, यदि पिवा इति तर्हि राशौ न मे, इति विदां प्रवादः नः ॥९॥

ब्राह्मण भरतजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! आपने जो कुछ भी कहा है वह ठीक है, उसके विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है। यदि भार नामक पदार्थ होता तो वो बोझ ढोने वाले के लिए होता, यदि मार्ग होता तो वह चलने वाले के लिए

होता, यदि मोटापन होतो वह भी शरीर वाले के लिए होता मेरे लिए नहीं होता। ज्ञानी जन इस तरह की बातें नहीं करते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तत्र वक्रोत्तया यदुक्तं त्वं न श्रान्तो न च दीर्घमध्वानमागत इति तत्रोत्तरमाह। त्वया यदुदितमुक्तं श्रमादि नास्तीति तद्यक्तं स्फुटं तत्तथैव। अविप्रलब्धं विप्रलम्भो न भवति। तदेवाह। हे वीर, यदि भारो नाम कश्चित्स्यात्स च भर्तुर्वोढुर्देहस्य यदि स्यात्स च मे यदि प्रसक्तः स्यात्तर्हीदानीं भाराभावाद्विप्रलम्भः स्यान्न त्वेतदस्ति। भारस्य बोढुश्चानिरूप्यत्वान्मम च तत्संबन्धाभावात्। तथा गन्तुरधिगम्यं प्राप्यमध्वा वा यदि स्यात्। अद्धेति पाठे साक्षात्परमार्थतः। तच्च मे यदि स्यादित्यादि योज्यम्। यत्त्वयोक्तं नातिपीवेति तत्राह। चेतनमुद्दिश्य त्वं पीवेति प्रवादो विदां विदुषां न भवति, किंतु मूर्खाणाम्। यतोऽयं प्रवादो राशौ भूतसङ्घे देहे एव, न त्वात्मनि। देह एव पीनो नाहमित्यर्थः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

भरतजी ने कहा राजन्! तुमने जो वक्रोक्ति के द्वारा कहा है कि तुम थके नहीं हो, न तो दूर तक रास्ता चले हो, उसका उत्तर है कि आपने जो कुछ कहा है, वह वैसा ही है, उसमें कोई भी विप्रलम्भ नहीं है। राजन् यदि भार नाम की कोई वस्तु होती तो वह ढोने वाले देह के लिए होती उसका मुझसे तो कोई संबन्ध नहीं होता भार नामक पदार्थ है ही नहीं। भार तथा वहन करने वाले दोनों का ही निरूपण नहीं किया जा सकता है। मेरा उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि मार्ग होता तो वह चलने वाले देह के लिए होता। जहाँ अद्धत पाठ हैं अर्थ होगा परमार्थ रूप से। तुमने यह जो कहा है तुम अत्यन्त मोटे नहीं हो। तो आत्मा का उदेश्य करके उसे मोटा विद्वज्जन नहीं कहते ऐसा तो कोई मूर्ख ही कह सकता है क्योंकि मोटा तो देह होता है आत्मा नहीं। देह ही मोटा है मैं नहीं ॥९॥

स्थौल्यं कार्श्यं व्याधय आधयश्च क्षुत्तृड्भयं कलिरिच्छा जरा च।
निद्रा रतिर्मन्युरहंमदः शुचो देहेन जातस्य हि मे न सन्ति ॥१०॥

अन्वयः— स्थौल्यं, कार्श्यं, व्याधयः, आधयः, क्षुत् तृट् भयम्, कलिः इच्छा, जरा, निद्रा, रतिः, मन्युः, अहं, मदः शुचः, च देहेनजास्य म न सन्ति ॥१०॥

अनुवाद— स्थूलता, कृशता, अधि, व्याधि, भूख, प्यास, भय, कलह, इच्छा, बुढ़ापा, निद्रा, प्रेम, क्रोध, अभिमान और शोक ये सभी देहाभिमान को लेकर उत्पन्न होने वाले जीवों में रहते हैं, मुझमें नहीं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति-स्थौल्यमिति। कलिः कलहः। अहङ्कारेण मदश्च। देहेन सह तदभिमानेन जातस्य हि भवन्ति, मम तु निरभिमानस्य न सन्ति। यद्वा देहे जाते यो जातस्तस्यैव तानि, मम तु तत्र न जातस्य न सन्ति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही विस्तार **स्थौल्यम्० इत्यादि** से करते हैं। कलिः कलह को कहते है। मद अहङ्कार के कारण होता है। देहाभिमान के साथ उत्पन्न होने वाले जीवों में पाये जाते है। मैं तो निरभिमान हूँ। अथवा देह के उत्पन्न होने पर जो उत्पन्न होता है, उसके ये धर्म है। मैं देह के साथ उत्पन्न नहीं हूँ अतएव ये सब मुझ में नहीं हैं ॥१०॥

जीवन्मृतत्वं नियमेन राजन्नाद्यन्तवद्यद्विकृतस्य दृष्टम्।
स्वस्वाम्यभावो ध्रुव ईड्य यत्र तर्ह्युच्यतेऽसौ विधिकृत्ययोगः ॥११॥

अन्वयः— राजन्! आद्यन्तवद्यद् विकृतस्य जीवन्मृतत्वं नियमेन दृष्टम्, इड्य! यत्र यत्र स्वस्वाभीभावः ध्रुवः तर्हिअसौ विधि कृत्य योगः उच्यते ॥११॥

अनुवाद— आपने जो जीवित ही मरने की बात कही है, वह जितने भी विकारी पदार्थ है, उन सबों में नियमित रूप से पायी जाती है । यशस्वी राजन् ! जहाँ स्वामी सेवक भाव स्थिर हो वहीं पर आज्ञा पालन आदि का नियम लागू होता है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

यच्चोक्तं जीवन्मृतोऽसीति तत्राप्याह । जीवन्मृतत्वं न केवलं मम, किंतु विकृतस्य सर्वस्यापि परिणामिनो दृष्टम् । यद्यस्याद्विकृतं प्रतिक्षणमाद्यन्तवत् । यदुक्तं भर्तृशासनमतिचरसीति तत्राह । स्वं च स्वाम्यं च तयोर्भावः सत्ता । हे ईड्य, यत्र पक्षे ध्रुवो यदि व्यवस्थितः स्यादित्यर्थः । तर्हि विधिर्नियोगः कृत्यं कर्म तयोर्योगो ध्रुव उच्यते उचितो भवति । उच समवाये इति धातुः । यदि तु तव राज्यभ्रंशो मम च राज्यं स्यात्तदा सर्वमेतद्विपरीतं स्यादित्यर्थः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

राजन् ! आपने यह जो कहा है कि तुम जीते ही मरे हो क्या तो इस उत्तर है कि केवल मैं ही जीवित मृत नहीं हूँ किन्तु जितने भी विकृत पदार्थ हैं उन सभी परिणामियों में देखा जाता है क्योंकि जो विकृत होता है वह प्रत्येक क्षण आदि और अन्तवान् होता है । आपने जो कहा कि अपने स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन करते हो तो इस पर उन्होंने कहा जहाँ पर स्वस्वामी भाव निश्चित होता है वहीं पर विधि और निषेध होता है । कृत्य और कर्म दोनों का योग उचित होता है । उच समवाये धातु से उच्यते पद निष्पन्न है । यदि तुम्हारा राज्य भ्रंश हो जाय और मेरा राज्य हो जाय तो यह सब विपरीत हो जाय ॥११॥

विशेषबुद्धेर्विवरं मनाक् च पश्याम यन्न व्यवहारतोऽन्यत् ।
क ईश्वरस्तत्र किमीशितव्यं तथापि राजन्करवाम किं ते ॥१२॥

अन्वयः— यत् विशेष बुद्धेः व्यवहारतः अन्यत् विवरं न पश्यामः । राजन् कः ईश्वरः किम् ईशितव्यम् तथापि ते किं करवाम् ॥१२॥

अनुवाद— आप राजा हैं और मैं प्रजा हूँ इस प्रकार की भेद बुद्धि के लिए मुझको व्यवहार से भिन्न तनिक भी अवकाश नहीं प्रतीत होता है, परमार्थ दृष्टि से देखने पर किसे स्वामी और किसे नियाम्य कहा जाय फिर भी कहिए मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ?॥१२॥

भावार्थ दीपिका

ननु यावत्प्रजाहं तावत्तव स्वामी भवाम्येवेति चेत्तत्राह । विशेषो राजभृत्यादिभेदस्तद्बुर्विवरमवकाशं व्यवहारादन्यत्र पश्याम् । मनाक् च ईषदपि । अथापि तवायमभिमानश्चेत्तर्हि ब्रूहि किं ते करवामेति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि जब तक तुम प्रजा हो तब तक तुम्हारा स्वामी हूँ ही तो इसपर कहते हैं राजा और भृत्य की जो भेद बुद्धि है वह केवल व्यवहार मात्र है, उससे अतिरिक्त थोड़ा सा भी कुछ नहीं है । फिर भी यदि आपको राजा होने का अभिमान है तो बतलाइये मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ॥१२॥

उन्मत्तमतजडवत्स्वसंस्थां गतस्य मे वीर चिकित्सितेन ।
अर्थः कियान्भवता शिक्षितेन स्तब्धप्रमत्तस्य च पिष्टपेषः ॥१३॥

अन्वयः— वीर उन्मत्तमत्त जडवत् स्वसंस्थां गतस्य मे चिकित्सितेन किम् स्तब्ध प्रमत्तस्य च शिक्षितेन भवता किया न अर्थः स च पिष्टपेशः ॥१३॥

अनुवाद— राजन् मैं मत्त उन्नमत्त और जड़ के समान अपनी ही स्थिति में रहता हूँ । यदि मैं वस्तुतः जड तथा प्रमत्त हूँ तो मुझे शिक्षा देना पिष्ट-पेषण मात्र होगा ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

यत्तूक्तं प्रमत्तस्य ते चिकित्सां करोमि यथा स्वां प्रकृतिं भजिष्यस इति तत्राह । उन्मत्तादिवद्वर्तमानस्य वस्तुतः स्वसंस्थां ब्रह्मभावं गतस्य भवता कृतेन चिकित्सितमेन दण्डेन शिक्षितेन वा कियानर्थः । मुक्तस्यार्थानर्थयोरसंभवात् । यदि पुनरहं न मुक्तः किंतु प्रमत्तः स्तब्ध एव तथापि मम शिक्षादिकं पिष्टपेषणवद्व्यर्थमित्यर्थः । नहि जडस्वभावः शिक्षयापि पटूकर्तुं शक्यत इति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

आपने यह जो कहा है कि तुम प्रमादी हो तुम्हारी चिकित्सा करता हूँ जिससे की तुम्हारी बुद्धि ठीक हो जायेगी? इस पर कहते है— उन्मत्त के समान रहने वाला वस्तुतः ब्रह्मभाव को प्राप्त मैं आपके द्वारा दिए जाने वाले दण्ड से कौन सा लाभ होन वाला है ? मुक्त जीव का न तो कोई अर्थ होता है और न अनर्थ होता है। यदि मैं मुक्त न होकर प्रमत्त हूँ तो भी शिक्षा देना व्यर्थ ही है । शिक्षा के द्वारा जड स्वभाव वाले को चतुर नहीं बनाया जा सकता है ॥१३॥

श्रीशुक उवाच

एतावदनुवादपरिभाषया प्रत्युदीर्य मुनिवर उपशमशील उपरतानात्म्यनिमित्त उपभोगेन कर्मारब्धं व्यपनयन् राजयानमपि तथोवाह ॥१४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् इतना ही अनुवाद रूपी भाषण के द्वारा मुनिवर भरतजी राजा को तत्त्वोपदेश करके मौन हो गये । उनका देहात्मबुद्धि का कारणभूत अज्ञान निवृत्त हो गया था अतएव वे परम शान्त थे । उपभोग द्वारा प्रारब्ध क्षय करने के लिए पुनः राजा की पालकी ढोने लगे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अनुवादरूपया परिभाषया भाषणेन तं प्रत्युत्तरं दत्त्वा । उपरतमनात्म्ये देहात्मत्वे निमित्तमविद्या यस्य । आरब्धफलं कर्म क्षपयन् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

राजा के कथन के अनुवाद रूप भाषण के द्वारा राजा को उत्तर देकर वे मौन हो गये । उनका देहात्मभाव (कारण भूत अज्ञान) निवृत्त हो चुका था अतएव वे परम शान्त थे । अपने प्रारब्ध कर्म का क्षय करने के लिए पुनः राजा की पालकी ढोने लगे ॥१४॥

स चापि पाण्डवेय सिन्धुसौवीरपतिस्तत्त्वजिज्ञासायां सम्यक् श्रद्धयाधिकृताधिकारस्तद्धृदयग्रन्थिमोचनं द्विजवच आश्रुत्य बहुयोगग्रन्थसंमतं त्वरयावरुह्य शिरसा पादमूलमुपसृतः क्षमापयन्विगतनृपदेवस्मय उवाच ॥१५॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! वह सिन्धु एवं सौवीर देश का स्वामी रहूगण अपनी उत्तम श्रद्धा के कारण तत्त्व जिज्ञासा का पूर्ण रूप से अधिकारी था । जब उसने उनके अनेक योग ग्रन्थ सम्मत और हृदय की ग्रन्थि का छेदन करने वाले वाक्यों को सुना तो वह पालकी से शीघ्र उतरकर उनके चरणों में शिर रखकर अपना अपराध क्षमा कराते हुए कहने लगा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

हे पाण्डवेय, सम्यग्या श्रद्धा तयैव तत्त्वजिज्ञासायां प्राप्तोऽधिकारो येन । यथा दर्शपूर्णमासाधिकृतस्यैव गोदोहनेन

पशुकामस्याप: प्रणयेदिति गुणफलसंबन्धेऽप्यधिकार: एवं सात्त्विकश्रद्धायामधिकृतस्यैवास्यामधिकार इत्यर्थ: । बहुयोगग्रन्थसंमतं द्विजस्य तद्वच: श्रुत्वा विगतो नृपदेवोऽधिराज इति गर्वो यस्य ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

हे परीक्षित् ! अपनी उत्तम श्रद्धा के कारण वह राजा तत्त्वजिज्ञासा का अधिकारी था जैसे जिस का दर्शन एवं पूर्णमास याग में जिसका अधिकार होता है उसी के लिए गोदोहन के लिए पशु चाहने वाले के लिए जल का प्रणयन करे इस तरह गुण के सम्बन्ध में अधिकार होता है उसी तरह सात्त्विक श्रद्धा में अधिकृत व्यक्ति का ही तत्त्व जिज्ञासा में अधिकार होता है अनेक योग ग्रन्थ सम्मत ब्राह्मण की वाणी को सुनकर राजा होने का गर्व समाप्त हो गया ॥१५॥

कस्त्वं निगूढश्चरसि द्विजानां बिभर्षि सूत्रं कतमोऽवधूत: ।
कस्यासि कुत्रत्य इहापि कस्मात्क्षेमाय नश्चेदसि नोत शुक्ल: ॥१६॥

अन्वय:— द्विजानां सूत्र विभर्षि क: त्वं निगूढश्चरसि ? कतम: अवधूत: ? कस्य असि ? कुत्रत्य: ? इह अपि कस्मात्? न: क्षेभाय चेत् न उत शुक्ल: असि ॥१६॥

अनुवाद— आप ब्राह्मणों में कौन हैं ? क्योंकि आप ब्राह्मणों के चिह्न यज्ञोपवित धारण किए हैं । इस तरह से प्रच्छन्न रूप से विचरने वाले आप कौन हैं ? क्या आप दत्तात्रेय आदि अवधूतों में से कोई हैं । आप किसके पुत्र हैं ? आपका जन्म कहाँ हुआ है ? यहाँ आपका आना कैसे हुआ ? यदि आप हमारा कल्याण करने पधारे हैं तो क्या आप साक्षात् सत्त्वमूर्ति कपिलजी तो नहीं हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

द्विजानां मध्ये कतमं: । य: सूत्रमुपवीतं विभर्षि । यद्वा दत्तात्रेयादीनां मध्ये कतमोऽवधूत: । इहापि कस्माद्धेतो: प्राप्त:। नोऽस्माकं क्षेमाय चेत्प्राप्तस्तर्हि शुक्ल: कपिलो मुनिर्न भवसि किम् । उतेति वितर्के ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

आप बाह्मणों में कौन है ? क्योंकि आप यज्ञोपवीत धारण किए हैं । अथवा आप दत्तात्रेय आदि में से कोई अवधूत हैं ? यहाँ पर आप कैसे पधारे हैं ? यदि आप हमारा कल्याण करने के लिए पधारे हैं तो साक्षात् सत्त्वमूर्ति कपिल जी तो आप नहीं है । उत्त यह अव्यय वितर्क के अर्थ में प्रयुक्त हैं ॥१६॥

नाहं विशङ्के सुरराजवज्रान्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात् ।
नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्राच्छङ्के भृशं ब्रह्मकुलावमानात् ॥१७॥

अन्वय:— अहं सुरराजवज्रात् न विशङ्के, त्र्यक्षशूलात् न, यमस्य दण्डात् न अग्न्यर्कसोमाननिल वित्तपास्त्रात् नं, अहं ब्रह्मकुलावमानात् भृशं शङ्के ॥१७॥

अनुवाद— मैं देवराज इन्द्र के व्रज से नहीं डरता हूँ और न तो मैं शङ्करजी के त्रिशूल से डरता हूँ और न यम के दण्ड से डरता हूँ, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु और कुबेर के अस्त्र शास्त्रों से भी मुझे भय नहीं है किन्तु मैं ब्राह्मण वंश के अपमान से बहुत डरता हूँ ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

किमनया चिन्तया शिबिकां तावद्वहामीति चेदत आह-नाहमिति । वित्तप: कुबेर: ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि इस चिन्ता से आप को क्या लाभ है मैं शिविका को ढो ही रहा हूँ तो इस पर नाहम् इत्यादि श्लोक से चिन्ता का कारण राजा बतलाते हैं । वित्तप शब्द से कुबेर को कहा गया है ॥१७॥

तद्ब्रूह्यसङ्गो जडवन्निगूढविज्ञानवीर्यो विचरस्यपारः ।
वचांसि योगग्रथितानि साधो न नः क्षमन्ते मनसापि भेत्तुम् ॥१८॥

अन्वयः— तद्ब्रूहि, जडवत् निगूढः असङ्गः अपारःको विचरसि ? साधो ! योगग्रथितानि वचांसि नः मनसाअपि भेत्तुम् न क्षमन्ते ॥१८॥

अनुवाद— अतएव बतलाइये कि जड के समान आये ज्ञान के प्रभाव को छिपाए हुए तथा अनासक्त रहकर इस प्रकार से विचरण करने वाले आप कौन हैं ? आपकी महिमा अपार है । आपके योग सम्मत बातों की बुद्धि पूर्वक आलोचना करने पर भी हमारी शङ्का दूर नहीं होती है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

यस्माद्भृशं शङ्के तत्तस्मात् कस्त्वमित्यादिप्रश्नानामुत्तरं ब्रूहि । निगूढं पिहितं विज्ञानरूपं वीर्यं प्रभावो येन । अपारोऽनन्तमहिमा। तत्र हेतुः- नो मनसापि भेत्तुं न क्षमं न शक्यम् । किं भेत्तुमित्यपेक्षायामाह-ते वचांसीति । यद्वा मनसा युक्ताः सूक्ष्मदृष्टयोऽपि भेत्तुं न शक्नुवन्तीत्यर्थः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

चूकि मैं अत्यन्त भयभीत हूँ अतएव आप मेरे कस्त्वम् इत्यादि प्रश्नों का उत्तर दें । आप अपने विज्ञान रूपी प्रभाव को छिपाये हुए हैं, आपकी महिमा अपार है । उसका कारण यह है कि आपकी बातों का भेदन पूर्वक भी नहीं जाना जा सकता है । यदि कहें कि जानने की क्या आवश्यकता है ? तो इस पर राजा ने कहा **ते वचांसि** आपके वचनों को नहीं जाना जा सकता है । अथवा बुद्धिमान पुरुष भी आपकी बातों को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से भी उन सबों को नहीं जान सकते हैं ॥१८॥

अहं च योगेश्वरमात्मतत्त्वविदां मुनीनां परमं गुरुं वै ।
प्रष्टुं प्रवृत्तः किमिहारणं तत्साक्षाद्धरिं ज्ञानकलावतीर्णम् ॥१९॥

अन्वयः— अहं च आत्मतत्त्व विदां परमं गुरुम् वै योगेश्वरम् साक्षात् ज्ञानकलावतीर्णम् इह अरणं किम् तत् प्रष्टुं प्रवृत्तः ॥१९॥

अनुवाद— मैं तो आत्मज्ञानियों के परम गुरु योगेश्वर साक्षात् श्रीहरि की ज्ञान कला से अवतीर्ण भगवान् कपिलमुनि से यह पूछने के लिए जा रहा था कि इस संसार में एक मात्र शरण लेने योग्य कौन है ?॥१९॥

भावार्थ दीपिका

स्वस्य ज्ञानार्थितां दर्शयति- अहं चेति । इह संसारे यदरणं शरणं तत्किमिति प्रष्टुं प्रवृत्तोऽस्मि । ज्ञानशक्त्यावतीर्णं कपिलम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अहं च इस श्लोक से बतलाते हैं कि मैं ज्ञानार्थी हूँ । श्रीभगवान् की ज्ञान शक्ति से अवतीर्ण महर्षि कपिल से यह पूछने जा रहा था कि इस संसार में एक मात्र शरण कौन है ?॥१९॥

स वै भवाँल्लोकनिरीक्षणार्थमव्यक्तलिङ्गो विचरत्यपिस्वित् ।
योगेश्वरणां गतिमन्धबुद्धिः कथं विचक्षीत गृहानुबन्धः ॥२०॥

अन्वयः— स वै भवांल्लोक निरीक्षणार्थम् अव्यक्त लिङ्गः अपिस्वित् विचरति । अन्ध बुद्धिः गृहानुबन्धः योगेश्वराणां गतिम् कथं विचक्षीत् ॥२०॥

अनुवाद— क्या आप वह कपिल मुनि है ? जो लोकों की दशा देखने के लिए इस तरह से अपना रूप छिपाकर विचरण कर रहे हैं, घर में आसक्त रहने वाला विवेक हीन पुरुष योगेश्वरों की गति कैसे जान सकता है ?॥२०॥

भावार्थ दीपिका

स एव भवान्किंस्विदेवं विचरति । गृहाविष्टः कथं विचक्षीत पश्येत् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

तो क्या आप वही कपिल मुनि है इस प्रकार से विचरण कर रहे हैं । गृह में आसक्त पुरुष योगेश्वरों की गति को कैसे जान सकता है ?॥२०॥

दृष्टः श्रमः कर्मत आत्मनो वै भर्तुर्गन्तुर्भवतश्चानुमन्ये ।
यथाऽसतोदानयनाद्यभावात्समूल इष्टो व्यवहारमार्गः ॥२१॥

अन्वयः— दृष्टः श्रमः कर्मत आत्मनो वैभर्तुर्गन्तु भवतः चा नु मन्ये समूल इष्टः व्यवहारमार्गः यथा असतः उदानयनाद्यभावात् ॥२१॥

अनुवाद— मैने युद्धादि कर्मों के करते समय अपने को श्रान्त होते देखा है इसी से मैं अनुमान करता हूँ कि रास्ता चलने और बोझ ढोने से आपको भी श्रम अवश्य होता होगा । मैं तो व्यवहार मार्ग को भी सत्य मानता हूँ मिथ्या घड़े से जलाहरण नहीं किया जा सकता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

एवं तत्स्वरूपं पृष्ट्वा तदुक्तोत्तराण्याक्षिपति । तत्र यदुक्तं मम श्रमो नास्तीति तत्राह-इष्ट इति । आत्मनो मे । अनुमन्ये अनुमिमे, अनुमानं चैवम्- भवान्भारवाहनादिना श्रान्तः, कर्तृत्वात्, यः कर्ता स श्राम्यति, यथाहं युद्धादिकर्तेति । नन्विदं व्यवहारमात्रं नतु सत्यम्, यदुक्तं व्यवहारतोऽन्यन्न पश्यामीति-तत्राह-यथेति । व्यवहारमार्गः प्रपञ्चः समूलः सप्रमाणक एव इष्टः यथा यथावत् । असता घटादिनोदकानयनादेरभावात् । एवं प्रयोगः-प्रपञ्चः सत्यः, अर्थक्रियाकारित्वात्, यः पुनरसत्यः नासावर्थक्रियाकारी, यथा मिथ्या घटादिरिति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से उनके स्वरूप को पूछकर उनके द्वारा किए गये उत्तरों के विषय में राजा आक्षेप करते हैं । यह जो कहा गया है कि मुझको श्रम नहीं है उस पर राजा कहते हैं अर्थात् मैंने कर्मों से होने वाले श्रम का अनुभव किया है इसीलिए मैं अनुमान करता हूँ कि आप भी भार वहन आदि के कारण श्रान्त हो गये होंगे क्योंकि आप भारवहन करने वाले है, जो जो भार वहन करता है अव श्रान्त होता है, जैसे युद्ध इत्यादि कर्मों को करने वाला मैं । यदि कहें कि यह तो व्यवहार मात्र है, सत्य नहीं है, इसी बात को आपने कहा है कि इसे मैं व्यवहार से भिन्न नहीं हूँ इस पर राजा कहते है समूल व्यवहार मार्ग मुझको प्रामाणिक प्रतीत होता है । जैसे असत्य घट इत्यादि के द्वारा उदकाहरणादि कार्य नहीं किया जा सकता है । यहाँ अनुमान का प्रकार इस तरह है, प्रपञ्च सत्य है, क्योंकि उससे सार्थक कियाएँ की जाती है, जो असत्य होता है उससे सार्थक क्रियाएँ नहीं की जा सकती हैं । जैसे मिथ्या घट आदि ॥२१॥

स्थाल्यग्नितापात्पयसोऽभितापस्तत्तापतस्तण्डुलगर्भरन्धिः ।
देहेन्द्रियास्वाशयसंनिकर्षात्तत्संसृतिः पुरुषस्यानुरोधात् ॥२२॥

अन्वयः— स्थाल्यग्नितापात् पयसोऽभितापः तत् तापतःतण्डुलगर्भरन्धिः देहेन्द्रियास्वाशयसन्निकर्षात् तत् संसृतिः पुरुष स्यानुरोधात् ॥२२॥

अनुवाद— देखा जाता है कि चूल्हे पर चढ़ी हुई बटलोई अग्नि के ताप से जब गर्म होने लगती है तो उसके भीतर का पानी भी खौलने लगता है और उस जल से चावल का भीतरी भाग भी पक जाता है उसी

प्रकार अपनी उपाधि के धर्मों का अनुवर्तन करने के कारण देह, इन्द्रिय प्राण और मन के सन्निधान आत्मा को भी उनके धर्म श्रम आदि अनुभव होता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

यदुक्तमुपाधिधर्माः स्थाल्यादयो मे न वस्तुतः सन्तीति तत्रौपाधिकत्वेपि सत्यत्वं किं न स्यादित्याह । स्थाल्या अग्निना तापात्तन्मध्यवर्तिनः क्षीरस्य तापः तस्य तापात्तण्डुलानां बहिर्भागस्य ततस्तद्गर्भस्य च रन्धिः पाकः । न चात्र किंचिन्मिथ्या । एवं देहादिभिः संनिकर्षात्संबन्धात्तन्निमित्ता संसृतिः पुरुषस्य भवति । असवः प्राणाः । आशयो मनः । अनुरोधादुपाधिधर्मानुवृत्तेः। तथाहि निदाघादिना देहे तप्ते इन्द्रियाणां तापस्ततः प्राणस्य ततो मनस इत्येवं यथायथमूह्यम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

आपने यह जो कहा है कि उपाधि के धर्म स्थौल्य आदि मेरे नहीं हैं फिर भी उपाधि होने पर भी उनका सत्यत्व क्यों नहीं होगा ? अग्नि के ताप से बटलोई के गर्मी से उसमें रखा गया दूध गर्भ हो जाता है, और उस दूध की गर्मी से उसमें डाले गये चावल का पहले ऊपर का भाग फिर भीतर का भाग पक जाता है । इसमें कोई भी मिथ्या नहीं है इस तरह से देह इत्यादि के सनिकर्ष से पुरुष की संसृति (संसरण) होती है । असु शब्द से कण को, और आशय शब्द से मन को एवं अनुरोधात् पद से औपाधिक धर्म की अनुवृत्ति को कहा गया है। लोक में देखा जाता है धूप से देह के संतप्त होने पर इन्द्रियाँ संतन्तप्त हो जाती है उसके पश्चात् प्राण संतप्त हो जाते है और तदनन्तर मन संतप्त हो जाता है । इसी तरह सर्वत्र उचित ढंग से तर्क करना चाहिए ॥२२॥

शास्ताभिगोप्ता नृपतिः प्रजानां यः किङ्करो वै न पिनष्टि पिष्टम् ।
स्वधर्ममाराधनमच्युतस्य यदीहमानो विजहात्यघौघम् ॥२३॥

अन्वयः— प्रजानां शास्ता अभिगोप्ता यः नृपतिः वै किङ्करः पिनष्टम् न पिनष्टि स्वधर्मम् अच्युतस्य आराधनम् यदीहमानः अघौघम् विजहाति ॥२३॥

अनुवाद— अपने जो दण्ड को व्यर्थ बतलाया है वैसा भी नही है । राजा प्रजाओं का पालन और प्रशासन करने के लिए नियुक्त उसका भृत्य है अतएव प्रमादी इत्यादि को दण्ड देना पिष्टपेषण नहीं है । वह उसका धर्म है अपने धर्म कापालन करना ही श्रीभगवान् की आराधना है । उसका पालन करने वाला व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण पापराशि को विनष्ट कर देता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं स्वस्वाम्यभावो ध्रुव इति तत्राह-शास्तेति । अध्रुवत्वेऽपि यदा यो नृपतिः स प्रजानां शास्ता गोप्ता च । यच्चोक्तं स्तब्धादेः शिक्षा पिष्टपेष इति तत्राह- योऽच्युतस्य किङ्करः स पिष्टं न पिनष्टि निष्फलं न करोति । स्तब्धत्वाद्यनपगमेऽपि शास्तुरीश्वराज्ञासंपादनेनैव सफलत्वात्तदाह । स्वधर्मरूपमच्युतस्याराधनं कुर्वन्यस्मादघौघं विजहाति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

स्वस्वामी भाव के निश्चित होने पर ही विधि निषेध होता है यह जो भरतजी ने कहा है उसके उत्तर में राजा ने **शास्ता० इत्यादि** श्लोक कहा है अनियत होने पर भी जब जो राजा होता है, वह प्रजा का पालक और प्रशासक होता है । यह जो भरतजी ने कहा है कि जड़ आदि को शिक्षा पिष्ट पोषण है, उस पर राजा ने कहा कि प्रशासन राजा का धर्म है । स्वधर्म पालन परमात्माराधन है । वही ईश्वर की आज्ञा का पालन करना है अतएव प्रमत्तों का प्रशासन सफल है । अपने धर्म के पालन से राजा अपने पाप समूह को विनष्ट कर देता है ॥२३॥

तन्मे भवान्नरदेवाभिमानमदेन तुच्छीकृतसत्तमस्य । कृषीष्ट मैत्रीदृशमार्तबन्धो यथा तरे सदवध्यानमंहः॥२४॥

अन्वयः— हे आर्तबन्धो ! नर देवाभिमानमदेन तुच्छी कृत सत्तमस्य मे तत् मैत्रीदृशं भवान् कृषीष्ट यथा सद् अवधानम् अंहःतरे ॥२४॥

अनुवाद— हे आर्त बन्धो प्रभो ! राजत्व के अभिमान जन्य मद के कारण मैंने आप जैसे साधु पुरुष का अपमान किया है । अब आप अपनी मैत्रीपूर्ण ऐसी दृष्टि करें कि मेरा वह पाप विनष्ट हो जाय और मैं साधु अवज्ञा रूप पाप से मुक्त हो जाऊँ ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

यस्मादेवं मम त्वदुक्तं विपरीतं प्रतिभाति तत्तस्मान्नरदेवाभिमानमदेन तुच्छीकृतास्तिरस्कृताः सत्तमा भवादृशा येन तस्य मे मैत्रीदृशं स्नेहयुक्तां दृष्टिं कृषीष्ट करोतु । सतामवज्ञारूपं पापं यथा तरिष्यामि ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

चूंकि इस प्रकार से मुझको आप की बातें विपरीत ही प्रतीत होती हैं इसीलिए राजत्व के अभिमान से आप जैसे सत्पुरुष का अपमान किया है । इस प्रकार के मुझ पर आप मैत्री युक्त दृष्टि करें जिससे कि मैं सत्पुरुष अवज्ञा रूप पाप से मुक्त हो जाऊँ ॥२४॥

न विक्रिया विश्वसुहृत्सखस्य साम्येन वीताभिमतेस्तवापि ।
महद्विमानात्स्वकृताद्धि मादृङ्नङ्क्ष्यत्यदूरादपि शूलपाणिः ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अन्वयः— विश्व सुहृत सखस्य वीताभिमत्तेः साम्येन तवापिविक्रियान महद्विमानात् स्वकृतात् हि मादृक अदूरात् शूलपाणिः अपि मादृक नक्ष्यति ॥२५॥

अनुवाद— आप देहाभिमान से रहित और विश्वबन्धु श्रीहरि के अनन्य भक्त हैं, अतएव सबों में समान दृष्टि होने के कारण आपमें मनापमान जन्य कोई भी विकार नहीं हो सकता है किन्तु महापुरुष का अपमान करने के कारण मेरे जैसा पुरुष यदि साक्षात् शङ्करजी के समान प्रभावशाली क्यों न हो विनष्ट हो जायगा ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पञ्चम स्कन्ध के दशवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ननु ममावज्ञाकृतविकाराभावात्कुतः पापं तत्राह–नेति । यद्यपि तव विक्रिया नास्ति । विश्वस्य सुहृच्चासौ सखा च तस्य। अतः सर्वत्र साम्येन स्वदेहे विगताभिमानस्य । तथापि महतामवमानान्मादृशो विनङ्क्ष्यति । अदूरात्क्षिप्रम् । शूलपाणिरिवाति–समर्थोऽपीत्यर्थः ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां दशमोऽध्यायः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि अपमान के कारण मुझमें कोई भी विकार नहीं आया है अतएव कैसे पाप लगेगा उसके उत्तर में राजा ने कहा नहीं यद्यपि आप में विकार नहीं आया है । आप तो विश्व बन्धु तथा सबों के मित्र हैं । अतएवसबों में समान दृष्टि होने के कारण आपको देहाभिमान नहीं है । किन्तु महापुरुषों के अपमान करने से मेरे जैसा पापी यदि साक्षात् शङ्करजी के समान प्रभावशाली हो तो भी शीघ्र ही विनष्ट हो जायेगा ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के दसवें अध्याय की भावार्थदीपिका टीका भी शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२५॥

* * *

ग्यारहवाँ अध्याय

राजा रहूगण को भरतजी का उपदेश

ब्राह्मण उवाच

अकोविदः कोविदवादवादान्वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः ।
न सूरयो हि व्यवहारमेनं तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति ॥१॥

अन्वयः— अकोविदः कोविदवाद वारान् वदसि, अथो अतिविदां वरिष्ठः न सूरयः एनं व्यवहारं तत्त्वावमर्शेन सह न आमनन्ति ॥१॥

भरतजी ने कहा

अनुवाद— राजन् तुम अज्ञानी होकर भी ज्ञानियों के समान तर्क विर्तक की बातें करते हो । अतएव तुम्हारी गणना श्रेष्ठ ज्ञानियों में नहीं हो सकती है । क्योंकि ज्ञानी पुरुष इस व्यवहार को तत्त्व विचार के समय सत्य नहीं मानते हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकादशे तु संपृष्टो रहूगणमहीभृता । उपादिशत्परं ज्ञानं स योगीति निगद्यते । अकोविदोऽविद्वानपि त्वं कोविदानां वादा उद्ग्रहणिकास्तत्तुल्यान्वादानेव वदसि । अथो अतः अत्यन्तं विदुषां मध्ये श्रेष्ठो न भवसि । कुतः । हि यस्मात् यं स्वामिभृत्यादिलौकिकव्यवहारं त्वं सत्यमात्थ । एनं सूरयस्तत्त्वविचारेण सह न वदन्ति किंत्वविचारसुन्दरं वदन्ति । अतो न सत्यः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इस ग्यारहवें अध्याय में राजा रहूगण के द्वारा पूछे जाने पर सिद्धयोगी भरतजी ने परज्ञान का उपेदश दिया। भरतजी ने कहा राजन् ! तुम अज्ञानी होकर भी ज्ञानियो के समान (तर्किकों के समान) बातें करते हो । अतएव श्रेष्ठ विद्वानों में तुम नहीं गिने जा सकते हो । क्योंकि तुमने जिस स्वामी भृत्य आदि लौकिक व्यवहार को सत्य कहा है, इसको तत्त्वज्ञ पुरुष सत्य नहीं मानते हैं । अपितु उसको वे अविचार सुन्दर कहते हैं । अतएव व्यवहार सत्य नहीं हैं ॥१॥

तथैव राजन्नुरुगार्हमेधवितानविद्योरुविजृम्भितेषु ।
न वेदवादेषु हि तत्त्ववादः प्रायेण शुद्धो नु चकास्ति साधुः ॥२॥

अन्वयः— राजन् ! तथैव उरुगार्हमेध वितान विद्यासु उरुविजृम्भितेषु वेद वादेषु हि तत्त्ववादः नु शुद्धो न चकास्ति॥२॥

अनुवाद— हे राजन् ! लौकिक व्यवहार के ही समान वैदिक व्यवहार भी सत्य नहीं है क्योंकि वेद वाक्य भी अधिक गृहस्थ जनोचित यज्ञ विधि के विस्तार में ही व्यस्त है । राग द्वेष आदि दोषों से रहित विशुद्ध तत्त्वज्ञान की पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति उनमें नहीं हुई है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

वैदिकोऽपि कर्मव्यवहारो न सत्य इत्याह-तथैवेति । उरवो गार्हा गृहसंबन्धिनो मेधा यज्ञास्तेषां वितानो विस्तारस्तद्विषयासु विद्यासु उरु अधिकं विजृम्भितेषु विलसितेषु वेदवादेषु तत्त्ववादो नु निश्चितं न चकास्ति न प्रकाशते । तथाच श्रुतिः 'नेह नानास्ति किंचन' इत्यादि । शुद्धो हिंसादिशून्यः । साधू रागादिशून्यश्च प्रायेणेतीश्वरार्पितकर्मणां परमार्थफलत्वाभिप्रायेणोक्तम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

वैदिक भी कर्म व्यवहार सत्य नहीं है इस बात को तथैव इत्यादि श्लोक से कहा गया है । वेदों में गार्हस्थ्य

सम्बन्धी यज्ञों का ही विस्तार से वर्णन किया गया है । उन यज्ञ विषयक विद्याओं में अधिक वर्णित वेदवादों में तत्त्व विचार निश्चित रूप से नहीं प्रकाशित होता है । श्रुति भी कहती है— **"नेह नानास्ति किञ्चन"** ब्रह्मव्यतिरिक्त प्रतीत होने वाला कोई भी भेद व्यवहार सत्य नहीं है । हिंसा आदि से रहित ही कर्म शुद्ध है और राग द्वेष आदि से रहित ही कर्म साधु है । इस तरह से प्राय: जिनका फल परमात्मा को ही समर्पित कर दिया जाता है वही कर्म शुद्ध और साधु है ॥२॥

न तस्य तत्त्वग्रहणाय साक्षाद्वरीयसीरपि वाचः समासन् ।
स्वप्ने निरुक्तया गृहमेधिसौख्यं न यस्य हेयानुमितं स्वयं स्यात् ॥३॥

अन्वयः— साक्षात् तत्त्वग्रहणाय तस्य वरीयसीः अपि वाचः न समासन् गृहमेधिसौख्यम् स्वप्ने निरुक्त्या यस्य हेयानुमितं स्वयं न स्यात् ॥३॥

अनुवाद— तत्त्वज्ञान का साक्षात् बोध कराने में उपनिषदों के वाक्य भी समर्थ नहीं है । उस तत्त्वज्ञान के द्वारा गृहस्थ जनोचित यज्ञादि कर्मों के फल को स्वप्न के समान मिथ्या कहा गया है । उस तत्त्वज्ञान का अनुमान भी नहीं किया जा सकता है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

ननु श्रुतवेदान्तस्यापि पुंसः कर्मसु प्रवृत्तेः कथमसत्यता तत्राह–नेति । साक्षाद्यथावत्तत्त्वज्ञानाय वरीयस्योऽपि वेदान्तवाचस्तस्य न सम्यगासन्बभूवुः । स्वप्ने या निरुक्तिस्तस्या स्वप्नदृष्टान्तेन दृश्यत्वादिहेतुना । स्वयमेव हेयत्वेनानुमितं यस्य न स्यात् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि जिन लोगों ने वेदान्तों का श्रवण कर लिया है, उन लोगों की भी प्रवृत्ति कर्मों में देखी जाती है, अतएव उसको असत्य कैसे कहा जा सकता है ? इसके उत्तर में **न तस्य० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । तत्त्व ज्ञान का साक्षात् बोध कराने में उपनिषदों के भी वाक्य समर्थ नहीं हैं । क्योंकि यज्ञादि फलों के दृश्य होने के कारण उनको भी स्वप्न काल में प्रतीत होने वाले पदार्थों के समान मिथ्या कहा गया है । उस तत्त्वज्ञान का अनुमान भी नहीं किया जा सकता है ॥३॥

यावन्मनो रजसा पूरुषस्य सत्त्वेन वा तमसा वानुरुद्धम् ।
चेतोभिराकूतिभिरातनोति निरङ्कुशं कुशलं चेतरं वा ॥४॥

अन्वयः— पुरुषस्य मन; यावत्, रजसा, तमसा, सत्त्वेन वा अनुरुद्धम् तावत् चेतोभिः आकूतिभिः वा निरङ्कुशं कुशलम् इतरं च आतनोति ॥४॥

अनुवाद— जब तक पुरुष का मन सत्त्वगुण, रजोगुण या तमोगुण के अधीन बना रहता है तब तक वह पुरुष की ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों द्वारा निरङ्कुशरूप से शुभाशुभ (पुण्य पाप) कर्मों को करवाता रहता है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

एवं प्रपञ्चस्य सत्यत्वं तदुक्तं निराकृत्य संसारस्यापि तदुक्तां सत्यतां निराकर्तुं तस्य मनोनिमित्ततामाह–यावदित्यादिना यावत्समाप्ति । मनो यावद्रजआदिभिर्गुणैरनुरुद्धं वशीकृतं भवति तावत्तन्मनो निरङ्कुशं सत् पुरुषस्य कुशलं धर्ममितरमधर्मं वा आतनोति । कैः । चेतोभिर्ज्ञानेन्द्रियैः । आकूतिभिः कर्मेन्द्रियैश्च ॥४॥

भाव प्रकाशिका

राजा के द्वारा प्रतिपादित प्रपञ्च की सत्यता का खण्डन करके उसके द्वारा उक्त संसार की भी सत्यता का निराकरण करने के लिए उसका कारण मन को **यावत् इत्यादि** से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त बतलाते

हैं जब तक मन सत्वादि गुणों के अधीन रहता है तब तक वह निरङ्कुश रूप से ज्ञानेन्द्रियों और कमेन्द्रियों से शुभाशुभ कर्मों को करवाता रहता है ॥४॥

स वासनात्मा विषयोपरक्तो गुणप्रवाहो विकृतः षोडशात्मा ।
बिभ्रत्पृथङ्नामभि रूपभेदमन्तर्बहिष्ट्वं च पुरैस्तनोति ॥५॥

अन्वयः— सः वासनात्मा, विषयोपरक्तः गुणप्रवाहः विकृतः षोडशात्मा विभ्रत्पृथङ्नामभिः रूपभेदम् अन्तर्बहिष्ट्वं च पुरैस्तनोति ॥५॥

अनुवाद— वह मन वासनामय, विषयासक्त, गुणों से प्रेरित, विकार युक्त और भूत इन्द्रियों रूप सोलह कलाओं से मुख्य है । यही भिन्न-भिन्न नामों से देवता तथा मनुष्य आदि रूप धारण करके, शरीर रूप उपाधियों के भेद से जीव की उत्तमता और निकृष्टता का कारण बनता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च धर्माधर्मवासनायुक्तं तदेवानेकदेहादिवैचित्र्यं करोतीत्याह-स इति । पुंस्त्वमात्मशब्दविशेषणत्वेन । तन्मन इत्यर्थः। वासनायुक्त आत्मोपाधित्वादात्मा । अतो विषयैरुपरक्तोऽनुविद्धः अतो गुणप्रवाहो गुणैरितस्ततश्चाल्यमानः । अत एव विकृतः कामादिपरिणामवान् । षोडशात्मा षोडशकलासु भूतेन्द्रियरूपासु मुख्यः । पृथङ्नामभिः सह पृथग्रूपभेदं देवतिर्यगादिरूपं विभ्रत्। अन्तर्बहिष्ट्वमुत्कृष्टत्वं निकृष्टत्वं च पुरैस्तैरेव देहैर्हेतुभूतैस्तनोति । नामभिरित्यत्र रेफलोपे दीर्घाभाव आर्षः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अतएव धर्म एवं अधर्म की वासना से युक्त वह मन ही अनेक देह आदि की विचित्रता को उत्पन्न करता है । सः यह पुल्लिङ्ग प्रयोग आत्मा शब्द का विशेषण होने के कारण है । सः अर्थात् वह मन । वासना से युक्त और आत्मा रूपी उपाधि से युक्त होने के कारण आत्मा है । इसीलिए विषयों की आसक्ति से युक्त हैं । इसीलिए यह सत्वादि गुणों के द्वारा इधर-उधर चलता रहता है । इसीलिए वह विकृत अर्थात् कामादि परिणामों वाला है। यह भूतों तथा इन्द्रियों रूपी सोलह कलाओं में प्रधान है । यह भिन्न-भिन्न नामों से भिन्न-भिन्न देव मनुष्य रूपों को धारण करता है । मन ही भिन्न-भिन्न शरीरों के द्वारा जीव में उत्कृष्टता और निकृष्टता का आधान करता है। नाम्र्भिः में र का लोप होने पर दीर्घत्व का अभाव आर्ष है ॥५॥

दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च तीव्रं कालोपपन्नं फलमाव्यनक्ति ।
आलिङ्ग्य मायारचितान्तरात्मा स्वदेहिनं संसृतिचक्रकूटः ॥६॥

अन्वयः— मायारचितान्तरात्मा संसृति चक्रकूटः स्वदेहिनं आलिङ्ग्य कालोपपन्न सुखं दुःखं व्यतिरिक्तं तीव्रं च फलम् आव्यनक्ति ॥६॥

अनुवाद— यह माया रचित मन संसार चक्र में छलने वाला है । यह मन ही अपने देह के अभिमानी जीव से मिलकर उसे काल क्रम से प्राप्त होने वाले सुख-दुःख और इन दोनों से भिन्न तीव्र मोह रूपी फल की अभिव्यक्ति करता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

फलं च तदनुरूपं करोतीत्याह । दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च मोहं तीव्रं दुर्निवारं कालप्राप्तं फलं सर्वतोऽभिव्यनक्ति सृजति। ननु जडः कथं सृजति तत्राह । स्वदेहिनमालिङ्ग्य । आलिङ्गने कारणमाह । मायया रचितोऽन्तरात्मा जीवोपाधिः । उपाधितामाह। संसृतिश्चक्रे कूटयति छलयतीति तथा । यथा ग्रामकूटक इति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यह मन ही उसके अनुरूप फल भी प्रदान करता है । यह सुख, दु:ख इन दोनों से भिन्न मोह रूपी दुर्निवार कालक्रम से प्राप्त होने वाले फल को भी पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने का काम करता है । प्रश्न है कि जड मन सृजन करने का काम कैसे करता है ? तो इसके उत्तर में कहते है अपने शरीरी जीव से मिलकर जीव का आलिङ्गन करने के कारण बतलाते हैं । यह माया से रचित अतरात्मा जीवोपाधि है । इसकी उपाधिता को बतलाते हैं । यह संसार चक्र में छलने का काम ग्राम में रहने वाले कूटक छली पुरुष के समान छलने का काम करता है ।।६।।

तावानयं व्यवहारः सदाविः क्षेत्रज्ञसाक्ष्यो भवति स्थूलसूक्ष्मः ।
तस्मान्मनो लिङ्गमदो वदन्ति गुणागुणत्वस्य परावरस्य ।।७।।

अन्वयः— तावान् अयं क्षेत्रज्ञ साक्ष्य स्थूल सूक्ष्म व्यवहारा सदा आविः भवति, तस्मान् मनः परावरस्य गुणागुणत्वस्य अदः लिङ्गं वदन्ति ।।७।।

अनुवाद— जब तक मन रहता है तब तक ही यह क्षेत्रज्ञ साक्ष्य स्थूल एवं सूक्ष्म (जगत् एवं स्वप्नावस्था का) व्यवहार सदा प्रकाशित होता रहता है । इसलिए विज्ञजन मन को ही त्रिगुणात्मक संसार का और गुणातीत परमोत्कृष्ट मोक्ष का कारण कहते हैं ।।७।।

भावार्थ दीपिका

एवमयं मनोनिबन्धनः संसारो जीवे फलतीत्याह- तावानिति । आविः प्रकाशमानः । तदा क्षेत्रज्ञस्य साक्ष्यो दृश्यो भवति। स्थूलसूक्ष्मो जाग्रत्स्वप्नस्वरूपः मनसः संसारहेतुत्वमुपसंहरन्मोक्षस्यापि तदेव कारणमित्याह-तस्मादिति । अदो मनः। लिङ्गं कारणम् । गुणत्वं गुणाभिमानित्वम्, अगुणत्वं तद्राहित्यं तदेव परमवरं च यस्य ।।७।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार मन के ही कारण यह संसार जीव को प्राप्त होता है । इस बात का **तावान्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । अर्थात् यह प्रकाशमान स्थूल एवं सूक्ष्म (जाग्रत एवं स्वप्न रूप) संसार जीव को प्राप्त होता है जब तक मन रहता है । यहाँ मन के संसार हेतुत्व का उपसंहार करते हुए उसको मोक्ष का भी कारण **तस्मात्० इत्यादि** से बतलाते हैं । इसीलिए पण्डित जन इस मन को गुणाभिमानी और गुण से रहित बतलाते हुए सर्वोत्कृष्ट मोक्ष का भी कारण बतलाते हैं ।।७।।

गुणानुरक्तं व्यसनाय जन्तोः क्षेमाय नैर्गुण्यमथो मनः स्यात् ।
यथा प्रदीपो घृतवर्तिमश्नन् शिखाः सधूमा भजति ह्यन्यदा स्वम् ।।
पदं तथा गुणकर्मानुबुद्धं वृत्तीर्मनः श्रयतेऽन्यत्र तत्त्वम् ।।८।।

अन्वयः— गुणानुरक्तं मनः जन्तोः व्यसनाय, अथो नैर्गुण्यम् क्षेमाय स्यात् यथा प्रदीपः घृतवर्तिम् अश्नन् सधूमाः शिखाः भजति अन्यदा स्वंपदं भजित । तथा गुणकर्मानुबद्धं मनः वृतीः श्रयते अन्यत्र तत्त्वम् श्रयते ।।८।।

अनुवाद— विषयासक्त मन जीव को संसार सङ्कट में डाल देता है किन्तु जब वह विषयहीन हो जाता है तब वह जीव को शान्तिमय मोक्ष प्राप्त करा देता है । यह उसी तरह होता है जिस तरह घी से भींगी हुई बत्ती का खाने वाला दीपक धूम युक्त लौ को पैदा करता है और घी के समाप्त होने पर अपनी प्रकृति में लीन हो जाता है । इसी तरह विषय एवं कर्मों में आसक्त मन भिन्न प्रकार की वृत्तियों का आश्रय लिए रहता है और विषय एवं कर्म की आसक्ति से रहित मन अपने तत्त्व में लीन हो जाता है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

कथमेकमेव विलक्षणयोः कारणमवस्थाभेदादित्याह–गुणेति । नैगुण्यं निर्गुणम् । अथो इति कात्स्न्र्येन दृष्टान्तेन स्फुटयति-यथेति । अन्यदा तु घृतक्षये । स्वं पदं शुक्लभास्वररूपं महाभूतात्मत्वं वा । अन्यत्रान्यदा ।।८।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि एक हीमन परस्पर में विलक्षण संसार एवं मोक्ष का कारण कैसे होता है ? तो इसका उत्तर है कि रूप भेद के कारण । नैगुण्यम् निर्गुण । मूल के अथो इत्यादि के द्वारा पूर्ण रूप से इस बात का दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट किया गया है । यथा प्रदीपः इत्यादि के द्वारा दृष्टान्त को उपन्यस्त किया गया है । अन्दा पद का अर्थ है जब घी समाप्त हो जाता है तो वही दीपक अपने शुक्ल भास्वर रूप तेज नामक महाभूत में जाकर मिल जाता है।।८।।

एकादशासन्मनसो हि वृत्तय आकूतयः पञ्च धियोऽभिमानः ।
मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां वदन्ति हैकादश वीर भूमीः ।।९।।

अन्वयः— हे वीर मनसः वृत्तयः एकादश आसन् । पञ्च आकूतयः पञ्च धियः अभिमानः । तासां भूमीः मात्राणि कर्माणि पुरंच एकादश वदन्ति ।।९।।

अनुवाद— हे वीर ! मन की ग्यारह वृत्तियाँ है पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और अहङ्कार । उनके आधारभूत विषय भी ग्यारह हैं पाँच तन्मात्र, पाँच प्रकार के कर्म और एक शरीर ।।९।।

भावार्थ दीपिका

वृत्तीर्दर्शयति । एकादशवृत्तय आसन् । आकूतयः क्रियाकाराः पञ्च । धियश्च ज्ञानाकाराः पञ्च अभिमानश्चेति । हे वीर। भूमिर्विषयान् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में मन की वृत्तियों को बतलाते हुए कहते हैं कि मन की ग्यारह वृत्तिया हैं, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ औरएक अहङ्कार । आकूतयः पद से कर्मेन्द्रियों को कहा गया है । धियः शब्द से ज्ञानकार ज्ञानेन्द्रियों को कहा गया है । अभिमान शब्द से अहङ्कार को कहा गया है । भूमि शब्द से विषयों को कहा गया है । पञ्च तन्मात्र, पाँच कर्म और एक शरीर ये वृत्तियों के ग्यारह आधरभूत विषय हैं ।।९।।

गन्धाकृतिस्पर्शरसश्रवांसि विसर्गरत्यर्त्यभिजल्पशिल्पाः ।
एकादशं स्वीकरणं ममेति शय्यामहं द्वादशमेक आहुः ।।१०।।

अन्वयः— गन्धाकृतिस्पर्श रस श्रवांसि निसर्ग रत्यर्त्यभिजल्प शिल्पाः एकादशं स्वीकरणं ममेति, एके शय्याम् अहं द्वादशम् आहुः ।।१०।।

अनुवाद— गन्ध, स्पर्श, रूप, रस और शब्द ये ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं मलत्याग, सम्भोग, गमन, भाषण और आदन-प्रदान ये पाँच कर्मेन्द्रियों के विषय है । शरीर को 'यह मेरा है' इस प्रकार स्वीकार करना अहङ्कार का विषय है । कुछ लोग अहङ्कार को बारहवीं वृत्ति तथा उसके आश्रय शरीर को बारहवाँ विषय मानते हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

विषयानेवाह । गन्धादयः पञ्च ज्ञानेन्द्रियद्वारा धीवृत्तीनां विषयाः । आकृतिः रूपम् । श्रवः शब्दः । विसर्गादयः पञ्च कर्मेन्द्रियद्वारा कर्माकारवृत्तीनां विषयाः । रतिः संभोगः । अर्तिर्गतिः । पुरस्याभिमानविषयत्वप्रकारमाह । एकादशं पुरम् । स्वीक्रियत इति स्वीकरणम् । अयमर्थः-शरीरमभिमानस्य न ज्ञेयतया गन्धादिवद्विषयः । नापि कार्यतया विसर्गादिवत् । किंतु ममेति भोगायतनत्वेन स्वीकार्यतया विषय इति । एके तु विवेकिनामेव पुरं ममत्वाभिमानविषयो नतु मूढानां, अतो मूढदृष्ट्या

अहमहंकारं द्वादशं वृत्त्यन्तरमाहुः । तस्य च पुरमेव शय्यासंज्ञं द्वादशं विषयमाहुः । तत्र हि जीवोऽहंकारणे सह शेते । यतः पुरि शयनात्पुरुष इत्युच्यते ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में विषयों का वर्णन किया गया है । गन्ध आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा ज्ञान वृत्ति के विषय है । आकृति रूप का वाचक है । श्रवः शब्द से शब्द को कहा गया है । विसर्ग आदि पाँच कर्मेन्द्रिय द्वारा कर्माकार वृत्तियों के विषय है । रति शब्द संभोग का वाचक है । अर्तिः अर्थात् गति (गमन) जिस प्रकार से शरीर अभिमान का विषय होता है उसको बतलाते हैं । ग्यारहवाँ विषय शरीर को स्वीकार किया जाता है । **अयमर्थः इत्यादि** कहने का अभिप्राय है कि शरीर गन्ध आदि के समान अभिमान (अहङ्कार) का विषय नहीं होता हैं और न तो मल त्याग आदि के समान कार्य रूप से भी अभिमान का विषय नहीं होता है । अपितु यह मेरे भोग का आश्रय है शरीर इस प्रकार से स्वीकार्य रूप से अभिमान का विषय बनता है । कुछ लोगों का कहना है कि विवेकी पुरुषों का ही शरीर मेरा है इस तरह से अभिमान का विषय बनता है अज्ञानियों का शरीर नहीं । अतएव उन लोगों ने अज्ञानी की दृष्टि से अहङ्कार ही बारहवाँ विषय है । उसके शरीर को ही शय्या संज्ञक बारहवाँ विषय विज्ञों ने कहा है । उस शरीर में जीव अहङ्कार के साथ सोता है । शरीर में सोने के कारण ही जीव को पुरुष शब्द से अभिहित किया जाता है ॥१०॥

द्रव्यस्वभावाशयकर्मकालैरेकादशामी मनसो विकाराः ।
सहस्रशः शतशः कोटिशश्च क्षेत्रज्ञतो न मिथो न स्वतः स्युः ॥११॥

अन्वयः— द्रव्यस्वभावाशयकर्मकालैः अमी एकादश मनसः विकाराः सहस्रशः शतशः कोटिशश्च क्षेत्रज्ञतः मिथः स्वतः न स्युः ॥११॥

अनुवाद— मन की ये ग्यारह वृत्तियाँ द्रव्य, (विषय) स्वभाव, आशय (संस्कार) कर्म एव काल के भेद से हजारों, सैकड़ों और करोड़ों प्रकार की हो जाती हैं, किन्तु इन सबों की सत्ता क्षेत्रज्ञ (जीव) के कारण हैं परस्पर में मिलकर अथवा स्वतः नहीं है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तासां वृत्तीनामवान्तरभेदैरानन्त्यमाह । द्रव्याणि विषयाः, स्वभावः परिणामहेतुः आशयः संस्कारः, कर्म अदृष्टम्, कालः क्षोभकः, तैर्निमित्तभूतैः प्रथमं शतशस्ततः सहस्रश ततः कोटिशः स्युर्नतु मिथः स्युर्नच स्वतः, किंतु क्षेत्रज्ञतः परमेश्वरात्। तस्य चानन्तशक्तित्वादनन्ताः स्युरित्यर्थः । यद्वा तासां मिथ्यात्वमनेनोच्यते । कोटिशो भवन्त्यतस्ताः क्षेत्रज्ञत एव स्युस्तत्सत्तयैव सत्तां लभेरन्नतु मिथो नच स्वत इति । यद्वा क्षेत्रज्ञो जीवस्तस्मान्न स्युः, तस्याविकारित्वात् । न मिथः, इतरेतराश्रयत्वापत्तेः। न स्वतः, आत्माश्रयत्वापत्तेः । अतो मिथ्याभूता एव ॥११॥

भाव प्रकाशिका

उन वृत्तियों के आनन्त्य का प्रतिपादन आवान्तर भेद के द्वारा इस श्लोक में किया गया है । द्रव्य शब्द से विषयों को कहा गया है, परिणाम का कारण स्वभाव है । आशय अर्थात् संस्कार कर्म अर्थात् अदृष्ट क्षोभ उत्पन्न करने वाली अदृष्ट, इन सबों के कारण मन की वृत्तियों के सैकड़ों, हजारों, फिर करोड़ों भेद हो जाते हैं । ये सभी भेद स्वतः अथवा परम्परातः न होकर परमेश्वर के कारण होते हैं । क्योंकि परमेश्वर की अनन्त शक्ति है । अथवा इस तरह से वृत्तियों का मिथ्यात्व बतलाया गया है ये अनन्त परमात्मा की सत्ता से ही सत्ता सम्पन्न है परस्पर भेद के कारण नहीं। और न तो स्वतः अथवा क्षेत्रज्ञ शब्द से जीव को कहा गया है । उसके कारण नहीं हो सकती क्योंकि जीव तो निर्विकार है । परस्पर मानने पर अन्योन्याश्रय दोष का प्रसङ्ग होगा । अतएव मिथ्या ही हैं ॥११॥

क्षेत्रज्ञ एता मनसो विभूतीर्जीवस्य मायारचितस्य नित्याः ।
आविर्हिताः क्वापि तिरोहिताश्च शुद्धो विचष्टे ह्यविशुद्धकर्तुः ॥१२॥

अन्वयः— माया रचितस्य जीवस्य एताः अविशुद्धकर्तुः मनसः एताः नित्याः क्वापि आविर्हिताः तिरोहिताश्च विभूतिः शुद्धः क्षेत्रज्ञ विचष्टे ॥१२॥

अनुवाद— मन माया रचित जीव की उपाधि है । यह प्रायः संसार के बन्धन में डालने वाले अविशुद्ध कर्मों में प्रवृत्त करते रहता है । इस मन की उपर्युक्त वृत्तियाँ प्रवाह रूप से नित्य ही रहती हैं । जागत और स्वप्न के समय में वे प्रकट हो जाती है और सुषुप्ति काल में तिरोहित हो जाती हैं । इन दोनों ही अवस्थाओं में विशुद्ध चिन्मात्र क्षेत्रज्ञ मन की इन वृत्तियों को साक्षी रूप से देखता रहता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं श्लोकत्रयेण गुणकर्मानुबद्धं मनो वृत्तीः श्रयत इति यदुक्तं तत्प्रपञ्चितम्, अन्यदा तत्त्वं श्रयत इति यदुक्तं तदेव तत्त्वमाह-क्षेत्रज्ञ इति । जीवस्य जीवोपाधेः अविशुद्धकर्तुर्मनसः नित्याः प्रवाहरूपेणाविच्छिन्ना जाग्रत्स्वप्नयोराविर्भूताः पश्यति। क्वापि सुषुप्तौ तिरोभूताः पश्यति । अवस्थात्रयसाक्षी क्षेत्रज्ञ आत्मा तत्त्वमित्यर्थः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकारसे तीन श्लोकों के द्वारा यह जो कहा गया है कि गुणों एवं कर्मों से युक्त मन वृत्तियों का आश्रयण करता है उसका विस्तार किया गया और जब मन गुण और कर्म से रहित होकर वृत्तियों का आश्रयण नहीं करता है तब वह तत्त्व का आश्रयण करता है, यह जो कहा गया उसी तत्त्व को **क्षेत्रज्ञ० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं। क्षेत्र साक्षी रूप से जीवोपाधि तथा संसार के बन्धन में डालने वाला कर्मो को करने वाले मन की नित्य प्रवाह रूप से निरन्तर बनी रहने वाली जाग्रत् और स्वप्नावस्थाओं में प्रकट रहने वाली वृत्तियों को देखता रहता है और सुषुप्तावस्था में तिरोहित रहने वाली वृत्तियों को देखता है । तीनों अवस्थाओं का साक्षी क्षेत्रज्ञ (परमात्मा) ही तत्त्व हैं ॥१२॥

क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः साक्षात्स्वयंज्योतिरजः परेशः ।
नारायणो भगवान्वासुदेवः स्वमाययात्मन्यवधीयमानः ॥१३॥

अन्वयः— क्षेत्रज्ञ आत्मा, पुराणः पुरुषः, साक्षात् स्वयं ज्योतिः अजः परेशः नारायणः भगवान् वासुदेवः स्वमायया आत्मनि अवधीय मानः ॥१३॥

अनुवाद— यह क्षेत्रज्ञ परमात्मा, सर्व व्यापक जगत् का आदि कारण, परिपूर्ण अपरोक्ष, स्वयं प्रकाश अजन्मा, ब्रह्मा आदि का भी नियामक और अधीन रहने वाली माया के द्वारा सबों के अन्तःकरणों में रहकर जीवों को प्रेरित करने वाला समस्त भूतों का आश्रय रूप भगवान वासुदेव है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

क्षेत्रज्ञो द्विविधः त्वंपदार्थो जीवः तत्पदार्थ ईश्वरश्च । तत्राद्यो निरूपितः । इदानीं तत्प्राप्यमीश्वरं निरूपयति । क्षेत्रज्ञ आत्मा व्यापी । पुराणो जगत्कारणभूतः । पुरुषः पूर्णः । साक्षादपरोक्षः । स च स्वयंज्योतिः । नतु ज्ञानस्य विषयत्वेनाश्रयत्वेन वा परोक्षः । अजो जन्मादिशून्यः । परेषां ब्रह्मादीनामपि ईशः । नारं जीवसमूहः सोऽयनं यस्य नियन्तुः । भगवानैश्वर्यादिषड्गुणवान्। वासुदेवः सर्वभूतानामाश्रयः स्वाधीनया माययात्मनि जीवेऽवधीयमानोऽवस्थाप्यमानः । कर्मकर्तरिप्रयोगः । तन्नियन्तृत्वेन वर्तमान इत्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

क्षेत्रज्ञ दो प्रकार का है त्वं पदार्थ जीव और तत्पदार्थ ईश्वर । त्वं पदार्थ जीव का निरूपण किया जा चुका है, अब जीव के प्राप्यभूत ईश्वर का निरूपण करते हैं । क्षेत्रज्ञ आत्मा (व्यापक) पुराणः (जगत् का कारणभूत)

पुरुष (पूर्ण) साक्षात् (अपरोक्ष) स्वयं ज्योति: (स्वयं प्रकाश) है वह ज्ञान का आश्रय और विषय रूप से अपरोक्ष नहीं है । वह अज (जन्मादि रहित) परेश: (ब्रह्मा आदि का भी नियामक नारायण) भगवान् (ऐश्वर्यादि षड्गुण सम्पन्न) वासुदेव (सभी भूतों का आश्रय) तथा अपने अधीन रहने वाली माया के द्वारा जीव में अवस्थापित यह कर्म कर्ता में प्रयोग है । जीव का नियामक है ॥१३॥

यथाऽनिल: स्थावरजङ्गमानामात्मस्वरूपेण निविष्टईशेत् ।
एवं परो भगवान्वासुदेव: क्षेत्रज्ञ आत्मेदमनुप्रविष्ट: ॥१४॥

अन्वय:— यथा अनिल स्थावर जङ्गमानाम् आत्म स्वरूपेण निविष्ट:, एवं क्षेत्रज्ञ परो भगवान् वासुदेव: आत्मा इदम् अनु प्रविष्ट: ईशेत् ॥१४॥

अनुवाद— जिस तरह वायु सम्पूर्ण स्थावरों एवं जङ्गमों में प्राण रूप से प्रविष्ट होकर उन सबों को प्रेरित करने का काम करती है, उसी तरह से वे परमेश्वर भगवान् वासुदेव सर्वसाक्षी आत्मा रूप से इस सम्पूर्ण प्रपञ्च में ओत-प्रोत हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

एतत्सदृष्टान्तमाह-यथेति । आत्मस्वरूपेण प्राणरूपेण ईशेन्नियमयति । इदं विश्वम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बात को ही दृष्टान्तो पन्यास पूर्वक कहते हैं । जिस तरह संसार के सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम प्राणियों में प्राण रूप से प्रवेश करके उन्हें प्रेरित करने का काम करती है, उसी तरह परमात्मा सम्पूर्ण जगत् में आत्म रूप से प्रवेश करके उसे प्रेरित करने का काम करते हैं ॥१४॥

न यावदेतां तनुभृन्नरेन्द्र विधूय मायां वयुनोदयेन ।
विमुक्तसङ्गो जितषट्सपत्नो वेदात्मतत्त्वं भ्रमतीह तावत् ॥१५॥

अन्वय:— हे नरेन्द्र ! यावत् तनुभृत् वयुनं उदयेन एतां मायां विधूय जित षट्सपत्न: विमुक्त सङ्ग: आत्मतत्त्वं न वै तावत् इह भ्रमति ॥१५॥

अनुवाद— हे राजन् ! जब तक यह शरीरधारी जीव ज्ञान के उत्पन्न हो जाने से इस माया का तिरस्कार करके काम क्रोध आदि छह शत्रुओं को जीतकर तथा सभी प्रकार की आसक्तियों को छोड़कर आत्मा के वास्तविक स्वरूप को नहीं जान लेता है, तब तक वह इस संसार चक्र में घूमता रहता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तदेवमात्मन: शुद्धत्वं संसारस्य च मिथ्यात्वं प्रदर्श्येदानीं तन्निवृत्तिमाह । तनुभृद्देही वयुनोदयेन ज्ञानोत्पत्त्या यावन्मायां विधूयात्मतत्त्वं न वेद तावदिह भ्रमति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से आत्मा की शुद्धता और संसार के मिथ्यात्व का प्रतिपादन करके इस श्लोक के द्वारा उसकी निवृत्ति को बतलाते हुए कहते हैं । जब तक यह शरीरधारी जीव ज्ञान के उत्पन्न हो जाने के कारण माया को दूर करके तथा सभी प्रकार की असक्तियों का त्याग करके आत्मत्व का ज्ञान नहीं प्राप्त कर लेता है तब तक वह इस संसार चक्र में पड़कर भटकता रहता है ॥१५॥

न यावदेतन्मन आत्मलिङ्गं संसारतापावपनं जनस्य । यच्छोकमोहामयरागलोभवैरानुबन्धं ममतां विधत्ते॥१६॥

अन्वय:— आत्मलिङ्ग एतन्मन: जनस्य संसार तापावपनं न वेदतावत् भवति यच्छोक मोहामयरागलोभवैरानुबन्धं ममतां विधते ॥१६॥

अनुवाद जब तक यह आत्मा के उपाधि रूप मन को संसार दुःख का क्षेत्र नहीं जान लेता है तब तक वह इस संसार चक्र में भटकता रहता है । क्योंकि यह मन उसके शोक, मोह, रोग, राग, लोभ आदि के संस्कार तथा ममता की वृद्धि करता रहता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

यावच्च विषयानुरक्तं मन एवानर्थहेतुरिति न वेद तावन्निर्वेदाभावात्परिभ्रमत्येवेत्याह-नेति । आत्मनो लिङ्गमुपाधिभूतं मनः संसारतापनामावपनं क्षेत्रं यावन्न वेद तावद्भ्रमतीत्यनुषङ्गः। तापावपनत्वे हेतुः— यन्मनः शोकाद्यनुबन्धं ममतां च विधत्ते॥१६॥

भाव प्रकाशिका

जब तक मनुष्य यह नहीं जान लेता है कि सभी अनर्थों का कारण मन ही है, तब उसको संसार निर्वेद नहीं होता है और उसके फल स्वरूप वह इस संसार में भटकता रहता है । इस बात को **न यावदेतत्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । आत्मा की उपाधिभूत मन ही संसार संताप रूपी दुःख का क्षेत्र है इस बात को जब तक जीव नहीं जान लेता है तब तक वह इस संसार में भटकता रहता है संसार ताप कब पनत्व (क्षेत्रत्व) का कारण यह है कि मन शोक इत्यादि के द्वारा संसार में ममता को बढाते रहने का काम करता है ॥१६॥

भ्रातृव्यमेनं तददभ्रवीर्यमुपेक्षयाऽध्येधितमप्रमत्तः ।
गुरोर्हरेश्चरणोपासनास्त्रो जहि व्यलीकं स्वयमात्ममोषम् ॥१७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे रहूगणसंवादे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अन्वयः--- तत् अदभ्रवीर्यं, उपेक्षया अध्येधितं भ्रातृव्यम् एनम् स्वं व्यलीकं आत्ममोषम् गुरोः हरेः चरणोपासनास्त्रः अप्रमत्तः जहि ॥१७॥

अनुवाद— अतएव अत्यन्त पराक्रमशाली यह तुम्हारा शत्रु यह मन उपेक्षा करने के कारण अत्यन्त समृद्धिशाली स्वयं मिथ्या होकर भी आत्मा को चुराने वाला है । अतएव श्रीहरि रूपी गुरु के चरण कमलों की उपासना रूपी अस्त्र के द्वारा सावधानी पूर्वक इसका वध कर दो ॥१७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मात् । भ्रातृव्यं शत्रुमध्येधितं संप्रवृद्धं स्वयं व्यलीकं मित्याभूतं तथाप्यात्मानं मुष्णातीति तथा तम् । गुरुरेव हरिस्तस्य चरणोपासनमेवास्त्रं यस्य तथाभूतः सन् जहि घातय ॥१७॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थ दीपिकाटीकायांमेकादशोऽध्यायः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

अतएव अपने शत्रु इस मन को जो उपेक्षा के कारण अत्यन्त समृद्ध हो गया है तथा स्वयं मिथ्याभूत है और ऐसा होकर भी आत्म को चुराने का काम करता है, उस मन को श्रीहरि रूप गुरु के चरणों की उपासना रूप अस्त्र से उसको मार दो ॥१७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पञ्चमस्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के ग्यारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥११॥

बारहवाँ अध्याय

राजा रहूगण का प्रश्न और भरतजी का समाधान

रहूगण उवाच

नमो नमः कारणविग्रहाय स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय ।
नमोऽवधूत द्विजबन्धुलिङ्गनिगूढनित्यानुभवाय तुभ्यम् ॥१॥

अन्वयः— कारण विग्रहाय स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय नमो नमः । हे अवधूत द्विजबन्धु लिङ्गनिगूढनित्यानुभावाय तुभ्यम् नमः ॥१॥

राजा रहूगण ने कहा

अनुवाद— हे भगवन आपने जगत् का उद्धार करने के लिए यह शरीर धारण किया है । हे योगेश्वर अपने परमानन्दमय स्वरूप का अनुभव करके इस स्थूल शरीर से उदासीन हो गये हैं ऐसे आपको हम बारम्बार नमस्कार करते हैं । एक जड़ ब्राह्मण के वेष से आपने नित्य ज्ञानमय स्वरूप को जन साधारण की दृष्टि से छिपाये हुए हैं ऐसा आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशे पुनरापृष्टः संदेहेन महीभृता । स योगी सर्वसंदेहानपानुददितीर्यते । कारणमीश्वरस्तस्यैव लोकसंरक्षणार्थो विग्रहो देहो यस्य । स्वरूपेण परमानन्दप्रकाशेन तुच्छीकृतो विग्रहो येन । हे अवधूत योगेश्वर, द्विजबन्धोर्लिङ्गेन वेषेण निगूढो नित्यानुभवो येन तस्मै नमः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बारहवें अध्याय में राजा रहूगण के द्वारा संदेह पूर्वक पूछे जाने पर योगी भरतजी ने उनके समस्त संदेहों को दूर कर दिया इस बात का वर्णन किया गया है । इस संसार की रक्षा करने के लिए आपने जगत् के कारण ईश्वर के शरीर को आपने धारण किया है, तथा अपने परमानन्द प्रकाशमय स्वरूप का अनुभव हो जाने के कारण आप अपने इस स्थूल शरीर से उदासीन हो गये हैं हे अवधूत (योगेश्वर) ! एक जड़ ब्राह्मण का वेष धारण करके आप अपने नित्यानुभव रूप स्वरूप को जन साधारण की दृष्टि से छिपा लिया है, ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

ज्वरामयार्तस्य यथाऽगद सन्निदाघदग्धस्य यथा हिमाम्भः ।
कुदेहमानाहिविदष्टदृष्टेर्ब्रह्मन्वचस्तेऽमृतमौषधं मे ॥२॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! ज्वरामयार्तस्य यथा अगदं सन् निदाधदग्धस्य यथा हिमाम्भः कुदेहमानाहिविदष्ट दृष्टेः ते वचः मे अमृतौषधम् ॥२॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! जैसे ज्वर रूपी रोग से पीड़ित के लिए मिठी औषधि ओर धूप से संतप्त पुरुष के लिए शीतल जल अमृत के समान होता है, उसी प्रकार जिसकी विवेक बुद्धि को देहाभिमान रूप विषैले सर्प ने दंश (काट) लिया है ऐसे मेरे लिए आपके वचन अमृतमय औषधि के समान हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

विशेषतः प्रष्टुं तद्वाक्यमभिनन्दति । ज्वर एवामयो रोगस्तेनार्तस्य यथा सत्स्वादु अगदमौषधम् । यथाच निदाधेन दग्धस्य संतप्तस्य हिमाम्भः शीतलमुदकं गङ्गोदकं वा । तथा हे ब्रह्मन्, कुत्सिते देहे यो मानोऽहङ्कारः स एवाहिस्तेन विशेषेण दष्टा दृष्टिर्विवेकलक्षणा यस्य तस्य ते तवेदं वचोऽमृततुल्यमौषधम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

विशेष प्रश्नों को पूछने के लिए राजा रहूगण पहले भरतजी के वचनों का अभिनन्दन करते हुए कहते हैं। ज्वर स्वरूप रोग से व्याकुल बने रोगी के लिए मीठी दवा अमृत तुल्य होती है, धूप से संतप्त पुरुष के लिए जैसे शीतल जल अमृत के समान होता है, उसी तरह जिसकी विवेक रूपी दृष्टि को देहाभिमान रूपी विषैले सर्प ने डँस लिया है, ऐसे मेरे लिए आपके वचन अमृतमय और औषधि के समान है ॥२॥

तस्माद्भवन्तं मम संशयार्थं प्रक्ष्यामि पश्चादधुना सुबोधम् ।
अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्तमाख्याहि कौतूहलचेतसो मे ॥३॥

अन्वयः— तस्मात् भवन्तं मम संशयार्थं पश्चात् प्रक्ष्यामि, अधुना अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्तम् सुबोध माख्याहि, ते चेतसः कौतूहलः ॥३॥

अनुवाद— भगवान् मैं आपसे अपने संशयों की निवृत्ति तो पीछे कराऊँगा, इस समय पहले आपने जो अध्यात्म योगमय उपदेश दिया है उसको सरल करके समझाइये, उसे जानने की मुझे अत्यधिक उत्कण्ठा बनी हुई है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

मम संशयविषयमर्थं पश्चात्प्रक्ष्यामि । अधुना तावत्त्वदुक्तं वचोऽध्यात्मयोगेन ग्रथितं दुर्बोधं सुबोधं यथा भवत्येवं व्याख्याहि । कौतूहलयुक्तं चेतो यस्य तस्य मम ॥३॥

भाव प्रकाशिका

राजा रहूगण ने कहा कि मुझे जिन विषयों में संशय है उसको तो मैं बाद में पूछूगाँ इस समय आपने जिन अध्यात्मयोग विषयक वचनों को कहा है वह अत्यन्त दुर्बोध है उसे आप सरलरीति से बतलायें क्योंकि उसको जानने के लिए मेरे मन में अत्यन्त उत्कण्ठा है ॥३॥

यदाह योगेश्वरदृश्यमानं क्रियाफलं सद्व्यवहारमूलम् ।
न ह्यञ्जसा तत्त्वविमर्शनाय भवानमुष्मिन् भ्रमते मनो मे ॥४॥

अन्वयः— हे योगेश्वर ! यदभवान् आह दृश्यमानं क्रियाफलं सद् व्यवहारमलम् हि अञ्जसा तत्त्वविमर्शनाय न, अमुष्मिन् मे मनः भ्रमते ॥४॥

अनुवाद— हे योगेश्वर ! आपने यह जो कहा है कि भार उठाने कि क्रिया और उसके कारण होने वाला श्रम ये दोनों ही प्रत्यक्ष होने पर भी व्यवहार मूलक ही हैं, वस्तुतः ये सत्य नहीं है, क्योंकि तत्त्व विचार के समझ कुछ भी नहीं कहते हैं । इसके विषय में मेरा मन अत्यन्त भ्रमित हो रहा है अर्थात् आपके इस कथन का अभिप्राय मैं नहीं समझ पा रहा हूँ ॥४॥

भावार्थ दीपिका

त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धमित्यादिना भारवहनादिक्रिया तत्फलं च श्रमादिप्रत्यक्षादिभिर्दृश्यमानं सदबाधितमपि व्यवहारमात्रमूलम् । यद्वा सतोऽबाधितव्यवहारस्य मूलं कारणमपि न ह्यञ्जसा तत्त्वविमर्शनाय क्षममिति भवान्यदाह । अमुष्मिन्नर्थे मम मनो भ्रमति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

आपने जो **व्यक्तमविप्रलबधम्० इत्यादि** वाक्य के द्वारा यह जो कहा है कि भार उठाने की क्रिया और उसका फल श्रम ये दोनों ही यद्यपि प्रत्यक्षादि के द्वारा देखे जाते हैं, और अबाधित भी हैं फिर भी ये व्यवहार

मूलक हैं, अथवा सत् शब्द वाच्य अवाधित व्यवहार के मूल हैं अर्थात् कारण हैं किन्तु यह तत्त्व विचार के योग्य नहीं हैं । आपके इस कथन के विषय में मेरा मन भ्रमित हो रहा है ॥४॥

ब्राह्मण उवाच

अयं जनो नाम चलन्पृथिव्यां यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः ।
तस्यापि चाङ्घ्र्योरधिगुल्फजङ्घाजानूरुमध्योरशिरोधरांसाः ॥५॥

अन्वयः— पार्थिव ! यः पार्थिवः विकारः सः एव कस्य हेतोः पृथिव्यां चलन् अयं जनः नाम प्रसिद्ध। यः न चलति सपाषाणादिः । तस्यापि अङ्घ्र्योः अधिगुल्फ जङ्घाजानूरु मध्योररशिरो धरांशः ।।५।।

अनुवाद— पृथिवीपते ! यह शरीर पृथिवी का विकार है, इसका पाषाण आदिसे क्या भेद ? यही न कि यह चलता और पाषाण आदि नहीं चलते हैं । अन्यथा दोनों पार्थिव है । किसी कारण वश जब यह शरीर चलने लगता है तो इसका नाम भारवाही जन हो जाता है । इस शरीर के दो पैर हैं, उसके ऊपर क्रमशः गुल्फ, (टखने) पिंडली घुटने, जाँघ, कमर, छाती, गर्दन और कन्धे आदि हैं । इन अवयवों के अतिरिक्त अवयवी शरीर नामक कोई वस्तु नहीं हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

अबाधितत्वमसिद्धमित्याह हे पार्थिव, यः पार्थिवो विकारः स एव कस्य हेतोः कस्माञ्चित्कारणात्पृथिव्यां चलन्नयं भारवाहकादिर्जनो नाम प्रसिद्धः । यस्तु न चलति स पाषाणादिरित्येतावानेव भेदः । तस्य च जडत्वान्न भारः श्रमश्च । किंच भवेदेवं यदि श्रमस्याश्रयो निरूप्येत, न त्वेतदस्ति । अवयवव्यतिरेकेण श्रमास्पदस्यावयविनोऽनिरूपणादित्याशयेनाह । तस्यापि पृथ्वीविकारस्यापि । अङ्घ्र्योरध्युपर्युपरि गुल्फादयः । उरस; सलोप आर्षः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

इस शरीर का अवाधितत्व असिद्ध है इस बात को वे इस श्लोक में कहते हैं । हे राजन् ! यह जो पार्थिव (पृथिवी का विकार भूत) शरीर है वह किसी कारणवश पृथिवी पर चलने लगता है तो यह भारवाहक आदि नाम वाला हो जाता है यह प्रसिद्ध है किन्तु इसका पाषाण आदि से क्या भेद है ? यही न कि जो चलता है वह शरीर है और जो नहीं चलता है वह पाषाणादि है । पार्थिव शरीर जड़ है । जो जड़ होता है उसको भार नही होता है यह लोक में देखा जाता है । अतएव इस जड़ शरीर को न तो भार है और न श्रम है । यह श्रम वाला तब हो सकता है यदि उसको श्रम के आश्रय रूप से निरूपण किया जा सके । किन्तु जड़ शरीर श्रम का आश्रय नहीं हो सकता । क्योंकि चरणादि अवयवों से भिन्न कोई अवयवी (शरीर) नामक पदार्थ का निरूपण नहीं किया जा सकता है । इस पृथिवी के विकार शरीर के भी चरणों के ऊपर गुल्फ इत्यादि अङ्ग हैं । उरसः के सकार का लोप आर्ष हैं ।।५।।

अंसेऽधिदार्वी शिबिका च यस्यां सौवीरराजेत्यपदेश आस्ते ।
यस्मिन्भवान्रूढनिजाभिमानो राजास्मि सिन्धुष्विति दुर्मदान्धः ॥६॥

अन्वयः— अंसे अधिदार्वी शिविका यस्यां च सौवीरराजेत्थपदेशः आस्ते, यस्मिन् भवान् सिन्धुषु राजा अस्मि इति दुर्मदान्धः निजाभिमानः ।।६।।

अनुवाद— उस कन्धे के ऊपर एक लकड़ी की पालकी रखी है, उसमें भी एक पार्थिव विकार है, जो सौ वीरराज के नाम से अभिहित किया जाता है । उसी में तुम मैं सिन्धुदेश का राजा हूँ इस प्रकार देहाभिमान के मद में अन्धे बने हुए हो ।।६।।

भावार्थ दीपिका

शिबिकायामप्यवयवी नास्ति, त्वय्यपि नास्ति तदाह । सौवीरराजेत्यपदेशो नाममात्रं यस्य स पार्थिवो विकार आस्ते। राजेति सन्धिरार्षः । यस्मिन्भवाननिरूढात्माभिमानः सिन्धुषु राजास्मीति दुर्मदेनान्धः सन् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

अब इस श्लोक में बतला रहे हैं कि शिविका में भी अवयवी नहीं है और तुम में भी वह अवयवी नहीं है । शिविका में तो जिसका सौवीरराज यह नाम मात्र हैं, वह भी पृथिवी का विकार मात्र ही है । **राजेति** में सन्धि आर्ष है । किन्तु उसी में तुम्हारा आत्माभिमान बना हुआ है । और यह मानकर तुम दुर्मदान्ध बने हुए हो कि मैं तो सिन्धु देश का राजा हूँ ।।६।।

शोच्यानिमांस्त्वमधिकष्टदीनान्विष्ट्या निगृह्णन्निरनुग्रहोऽसि ।
जनस्य गोप्तास्मि विकत्थमानो न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः ।।७।।

अन्वयः— इमान् शोच्यान् अधिकष्टदीनान विष्ट्या निगृहणन् निरनुग्रहः असि, जनस्य गोप्ता अस्मि इति विकत्थमानः धृष्टः त्वं वृद्धसमासु न शोभसे ।।७।।

अनुवाद— तुम इन दीन दुखियों को बेगार में पकड़कर शिविका में लगा रखे हो अतएव तुम अत्यन्त क्रूर हो अतएव यह जो कहकर अपनी आत्मश्लाघा करते हो कि मैं प्रजाओं का रक्षक हूँ वस्तुतः तुम धृष्ट हो अतएव ज्ञान वृद्धों की सभा में सुशोभित नहीं होते हो ।।७।।

भावार्थ दीपिका

शोच्यानिमान्विष्ट्या निगृह्णन्निष्कृपो वर्तसे, अतो मिथ्यैव गोप्ताऽस्मीति श्लाघमानो महतां सभासु न शोभसे। यतो धृष्टः।।७।।

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त इन दीन दुखियों को तुम बेगार में पकड़कर अपनी पालकी में लगा रखे हो अतएव तुम अत्यन्त क्रूर हो, अतएव यह जो तुम आत्मश्लाघा करते हो कि मैं प्रजाओं का रक्षक हूँ । वस्तुतः तुम धृष्ट हो अतएव महापुरुषों की सभा में सुशोभित नहीं होते हो ।।७।।

यदा क्षितावेव चराचरस्य विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यम् ।
तन्नामतोऽन्यद्व्यवहारमूलं निरूप्यतां सत्क्रिययानुमेयम् ।।८।।

अन्वयः— यदा क्षितौ एव चराचरस्य निष्ठां प्रभवं च नित्यम् विदाम तत् नामतः अन्यद् व्यवहारमूलं सत्क्रियया अनुमेयम् निरूप्यताम् ।।८।।

अनुवाद— जब हम देखते हैं कि सम्पूर्ण चराचर भूत पृथिवी से ही उत्पन्न होते हैं और अन्त में पृथिवी में ही नष्ट होकर मिल जाते हैं अतएव उनके क्रिया भेद के ही कारण अलग-अलग नाम पड़े हैं, तो बतलाओ इसके अतिरिक्त व्यवहार का मूल और क्या हो सकता है ?।।८।।

भावार्थ दीपिका

न चोत्तरोत्तरावयवभारः पूर्वपूर्वावयवानां भवेदिति वाच्यम्, तेषामप्यनिरूपणादित्याशयेनाह–यदेति । निष्ठां नाशं प्रभवमुत्पत्तिं विदाम विद्मस्तत्तदा क्षितेरन्यस्य विकारस्याभावान्नाममात्रादन्यद्व्यवहारस्य मूलं कारणमर्थक्रियया सदित्यनुमेयं निरूप्यताम् । तथाच श्रुतिः 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्' इति ।।८।।

भाव प्रकाशिका

यह भी नहीं कहा जासकता है कि ऊपर-ऊपर के अङ्गों का भार नीचे-नीचे के अवयवों पर पड़ता है, क्योंकि

उन सबों का भी निरूपण नहीं किया जा सकता है । इसी आशय से **यदा० इत्यादि** श्लोक को कहा गया है। **निष्ठा** का अर्थ नाश है, प्रभव का अर्थ उत्पत्ति है । अर्थात् जब हम जानते है कि समस्त चराचर भूतों की उत्पत्ति पृथिवी से ही होती है, और नाश होकर वे पृथिवी में ही मिल जाती हैं । अतएव पृथिवी से भिन्न के विकार (कार्य) नहीं है, केवल नाम के ही कारण उनका अलग-अलग अभिधान होता है । अतएव पृथिवी से भिन्न किसी दूसरे व्यवहार के मूल कारण का तुम निरूपण करो जो अनुमेय हो श्रुति भी कहती है **वाचरम्भणं विकारोनामधेयम् मृत्तिकेत्येव सत्यम्** जितने भी घटादि कार्य हैं वे वागालम्बन मात्र होने के कारण मिथ्या है, नामों और विकारो का कारण मिट्टी ही सत्य है ॥८॥

एवं निरुक्तं क्षितिशब्दवृत्तमसन्निधानात्परमाणवो ये ।
अविद्यया मनसा कल्पितास्ते येषां समूहेन कृतो विशेषः ॥९॥

अन्वयः— एवं निरुक्तम् क्षिति शब्दवृत्तम् असत्, निधानात्, ये परमाणवः ते अविद्यया कल्पिताः, येषां समूहेन विशेषः कृतः ॥९॥

अनुवाद— इस तरह पृथिवी शब्द का भी व्यवहार मिथ्या ही हैं क्योंकि उसका लय अपने उपादान कारण परमाणुओं में होता है । जिनके मिलने से पृथिवी की सिद्धि होती वे परमाणु भी अविद्यावशात् मनः कल्पित हैं। वस्तुतः उनकी भी सत्ता नहीं है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि क्षितेः सत्यता स्यात्तत्राह । एवं क्षितिशब्दस्यापि वृत्तं वर्तनमर्थं विनैव निरुक्तम् । यद्वा क्षितिशब्दस्य वृत्तं यस्मिंस्तदपि मिथ्यात्वेन निरुक्तमित्यर्थः । कुतः । असत्सु सूक्ष्मेषु परमाणुषु स्वकारणभूतेषु निधानाल्लयात् । अतः परमाणुव्यतिरेकेण क्षितिर्नास्तीत्यर्थः । परमाणवस्तर्हि सत्याः स्युस्तत्राह । ते मनसा कार्यानुपपत्त्या वादिभिः कल्पिताः । कल्पनाबीजमाह । येषां समूहेन विशेषः कृतस्तेषां समूहः पृथ्वीबुद्ध्यालम्बनमित्यर्थः । अवयविनो निरस्तत्वात्समूहग्रहणम् । तथापि सत्याः स्युः । न। अविद्यया प्रपञ्चस्य भगवन्मायाविलसितत्वादज्ञानेन कल्पिताः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि तब तो पृथिवी को ही सत्य मानना चाहिए तो इस पर कहते हैं, पृथिवी का भी व्यवहार बिना अर्थ के ही किए जाने के कारण वह भी मिथ्या है, क्योंकि पृथिवी भी अपने उपादान कारण परमाणु में लीन हो जाती है परमाणु से भिन्न पृथिवी नहीं है । यदि कहें कि तब तो परमाणुओं को ही सत्य मानना चाहिए, इस पर कहते हैं कि परमाणु भी अविद्यावशात् मनः कल्पित हैं । कार्यानुपपत्ति के कारण वादियों ने परमाणुओं की कल्पना की है । उनके कल्पना का कारण यह है कि परमाणुओं के समूह से ही पृथिवी आदि कार्यों की उत्पत्ति होती है । परमाणुओं के समूह को ही पृथिवी कहते हैं । चूकि अवयवी का निरास पहले किया जा चुका है अतएव समूह का ग्रहण किया गया है । तो फिर समूह को ही सत्य मानें तो ऐसी बात नहीं हैं क्योंकि सारा प्रपञ्च श्रीभगवान् की माया रूप अविद्या से कल्पित होने के कारण मिथ्या है ॥९॥

एवं कृशं स्थूलमणुर्बृहद्यदसच्च सज्जीवमजीवमन्यत् ।
द्रव्यस्वभावाशयकालकर्मनाम्नाऽजयाऽवेहि कृतं द्वितीयम् ॥१०॥

अन्वयः— एवं अन्यत् अपि कृशं, स्थूलम्, अणुः बृहद्यद् असत् सत् जीवम् अजीवम् च द्रव्य, स्वभाव, आशय, कालकर्म नाम्ना अजया द्वितीयम् कृतम् अवेहि ॥१०॥

अनुवाद— इसी तरह और भी जो पतला, मोटा, सूक्ष्म, वृहत्, असत् सत्, जीव अजीव जिस द्वैत की

बुद्धि से प्रतीति होती है वे सबके सब, द्रव्य, स्वभाव, काल, और कर्म आदि नामों से अभिहित किए जाने वाली माया के ही कार्य हैं इस तरह से जानो ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

एवमन्यदपि कृशत्वादिधर्मकं बुद्ध्या प्रतीतं द्वितीयं द्वैतं द्रव्यादिनाम्नोपलक्षितयाऽजया मायया कृतमवेहि । तत्र कृशं ह्रस्वं, स्थूलं तत्प्रतियोगी । अणुबृहतोः पृथगुपादानात् । असत् कारणम् । सत् कार्यम् । जीवं चेतनम्, अजीवं जडम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इसी तरह से दूसरे भी पतला-मोटा आदि धर्म युक्त वस्तु की बुद्धि से द्वैत की प्रतीति होती है वह सम्पूर्ण द्वैत द्रव्य आदि नामों से उपलक्षित किए जाने वाली माया का ही कार्य समझो । कृश शब्द से पतले को और स्थूल शब्द से उसके प्रतियोगी मोटे को कहा गया है क्योंकि अणु और बृहत् का अलग से ग्रहण किया गया है । असत् शब्द से कारण और सत् शब्द से कार्य को कहा गया है । इसी तरह जीव शब्द से चेतन ओर अजीव शब्दसे अचेतन को कहा गया है ॥१०॥

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥११॥

अन्वयः— विशुद्धं परमार्थम्, एकं अनन्तरं तु अवहिः ज्ञानम् सत्यम् ब्रह्म, प्रत्यक्, प्रशान्तं, भगवच्छब्दवाच्यं यद् वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥११॥

अनुवाद— विशुद्ध परमार्थ स्वरूप, अद्वितीय तथा भीतर बाहर के भेद से रहित परिपूर्ण ज्ञान ही सत्य वस्तु है वह सर्वान्तर्वर्ती और निर्विकार है । उसी का नाम भगवान् है और उसी को पण्डित जन वासुदेव कहते है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि किं सत्यं तदाह । ज्ञानं सत्यम् । व्यावहारिकसत्यत्वं व्यावर्तयति । परमार्थम् । वृत्तिज्ञानव्यवच्छेदार्थानि षड्विशेषणानि। विशुद्धम्, तत्त्वाविद्यकम् । एकम्, तत्तु नानारूपम् । अनन्तरं त्वबहिर्बाह्याभ्यन्तरशून्यम्, तत्तु विपरीतम् । ब्रह्म परिपूर्णम्, तत्तु परिच्छिन्नम् । प्रत्यक्, तत्तु विषयाकारम् । प्रशान्तं निर्विकारम्, तदेवं स्वरूपज्ञानं सत्यमित्युक्तम् । कीदृशं तत् । ऐश्वर्यादिषड्गुणत्वेन भगवच्छब्दः संज्ञा यस्य । यच्च ज्ञानं वासुदेवं वदन्ति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

तो फिर प्रश्न उठता है कि क्या सत्य है, इस पर कहते हैं कि ज्ञान ही सत्य है । उससे भिन्न है व्यवहारिक सत्यत्व । क्योंकि ज्ञान परमार्थ है । ज्ञान को वृत्ति ज्ञान से भिन्न करने के लिए ज्ञान के छह विशेषण दिए गये हैं । ज्ञान विशुद्ध है जब कि वृत्ति ज्ञान आविद्यिक है, ज्ञान एक (अद्वितीय) है । किन्तु वृत्ति ज्ञान अनेक प्रकार का होता है, ज्ञान वाह्याभ्यन्तर शून्य है किन्तु वृत्ति ज्ञान आभ्यन्तर और बाह्य दोनों प्रकार का होता है । ज्ञान परिपूर्ण है किन्तु वृत्ति ज्ञान सीमित होता है, ज्ञान प्रत्यक् है किन्तु वृत्ति ज्ञान विषयाज्ञान होता है । ज्ञान निर्विकार (शान्त) है । जबकि वृत्तिज्ञान सविकार होता है । इस तरह से स्वरूप ज्ञान की सत्यता बतलाई गई है । प्रश्न होता है कि वह कैसा है ? तो इसका उत्तर है कि ऐश्वादि षाडगुण्य सम्पन्न होने के कारण भगवत् शब्द वाच्य है । उसी ज्ञान को विज्ञ जन वासुदेव शब्द से अभिहित करते हैं ॥११॥

रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा ।
न छन्दसा नैव जलाग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोभिषेकम् ॥१२॥

अन्वयः— हे रहूगण ! महत्पादरजोभषेकं विना तपसान, इज्यया न, निर्वपणात् गृहादवान छन्दसा जलाग्नि सूर्यैः उपासितैः नैव याति ॥१२॥

अनुवाद— हे रहूगण परमात्मज्ञान महापुरुषों की चरण धूलि से अपने को नहलाये बिना केवल तपस्या, यज्ञादि वैदिक कर्म, अन्नादिका दान, अतिथि सेवा दीन जनों की सेवा इत्यादि गार्हस्थ्योचित धर्मानुष्ठा वेदाध्ययन या जल, अग्नि तथा सूर्य की उपासना आदि किसी दूसरे साधन से नहीं प्राप्त होता है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

एतत्प्राप्तिस्तु महत्सेवां विना न भवतीत्याह । हे रहूगण, एतज्ज्ञानं तपसा पुरुषो न याति । इज्यया वैदिककर्मणा । निर्वपणादन्नादिसंविभागेन गृहाद्वा तन्निमित्तपरोपकारेण । छन्दसा वेदाभ्यासेन । जलाग्न्यादिभिरुपासितैः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

इस परमात्म ज्ञान की प्राप्ति महापुरुषों के चरण धूलि से अपने को स्नान कराये बिना तपस्या, या इज्या आदि वैदिक कर्मों के द्वारा अन्नादि के दान द्वारा या गृह आदि के द्वारा परोपकार या वेदाध्यन से अथवा जल. अग्नि तथा सूर्य की उपासना से नहीं प्राप्त होता है ।।१२।।

यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः ।
निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षोर्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे ।।१३।।

अन्वयः— यत्रोत्तम श्लोक गुणानुवादः प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः, निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षोः सतीं मतिं वासुदेवे यच्छति ।।१३।।

अनुवाद— इस ज्ञान की प्राप्ति का साधन यह है कि महापुरुषों के यहाँ सदा पवित्र कीति श्रीभगवान् के गुणों की ही चर्चा होती रहती है जिससे कि ग्राम्य कथाओं का विनाश हो जाता है । उस भगवत्कथा का जब प्रतिदिन सेवन किया जाता है तब मुमुक्षु (मोक्ष चाहने वाले) पुरुष की शुद्ध बुद्धि को वह भगवान् वासुदेव में लगा देती है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

महत्सेवायास्तत्प्राप्त्युपायतामाह । यत्र येषु महत्सु । ग्राम्यकथानां विघातो यस्मात् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

उस ज्ञान की प्राप्ति का साधन महापुरुषों की सेवा को बतलाते हुए कहते हैं कि उन महापुरुषों के यहा पवित्र कीर्ति भगवान् वासुदेव की ही सदा चर्चा होती रहती है और उसके कारण ग्राम्य कथाओं का विनाश हो जाता है जिससे कि मुमुक्षु पुरुष की शुद्ध बनी हुई बुद्धि भगवान् वासुदेव में लग जाती है ।।१३।।

अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्तदृष्टश्रुतसङ्गबन्धः ।
आराधनं भगवत ईहमानो मृगोऽभवं मृगसङ्गाद्धतार्थः ।।१४।।

अन्वयः— अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्त दृष्टश्रुतसङ्गबन्धः भगवतः आराधनं ईहमानः मृगसङ्गात् हतार्थः मृगः अभवम् ।।१४।।

अनुवाद— पूर्वकाल में मैं भरत नाम का राजा था, लौकिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकार के विषयों से विरक्त होकर श्रीभगवान् की आराधना में ही लगा रहता था किन्तु एक मृग में आसक्ति होने के कारण परमार्थ से भ्रष्ट होकर मुझे मृग होना पड़ा ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

विषयसङ्गस्तु योगभ्रंशक इति वदन् कस्त्वं निगूढश्चरसीति प्रश्नस्योत्तरमाह-अहमिति द्वाभ्याम् । विमुक्तो दृष्टश्रुताभ्यां सङ्गनिमित्तो बन्धो येन । हतोऽर्थः प्रयोजनं यस्य ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

विषयों में होने वाली आसक्ति योग भ्रष्ट बना देती है । इस बात को बतलाते हुए रहूगण के आप कौन है ? इस तरह से अपने को छिपाये सञ्चरण करते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं- मैं लौकिक और वैदिक आसक्तियों से मुक्त होकर भगवदाराधन करता था, किन्तु एक मृग में आसक्ति हो जाने के मेरा परमार्थ नष्ट हो गया और मुझे मृग होना पड़ा ।।१४।।

सा मां स्मृतिर्मृगदेहेऽपि वीर कृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति ।
अथो अहं जनसङ्गादसङ्गो विशङ्कमानोऽविवृतश्चरामि ।।१५।।

अन्वयः— हे वीर कृष्णार्चनप्रभवा स्मृतिः मां मृगदेहे अपि नो जहाति अथो अहं जनसङ्गात् विशङ्कमानः अविवृतः असङ्गः चरामि ।।१५।।

अनुवाद— हे वीर ! श्रीभगवान् की सेवा के कारण उत्पन्न वह यादगारी मुझे मृग शरीर में भी बनी रही इसीलिए मैं जनसंसर्ग से डरकर अप्रकट रूप से विचरण करता हूँ ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णार्चनं भ्रष्टमप्युद्धरतीत्याह-सेति । जनसङ्गाद्विशङ्कमानः । अविवृतोऽप्रकटः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भरतजी बतलाते है कि भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा भ्रष्ट का भी उद्धार करती है । इसीलिए मैं जनसंसर्ग से डरकर अप्रकट रूप से विचरण करता हूँ ।।१५।।

तस्मान्नरोऽसङ्गसुसङ्गजातज्ञानासिनेहैव विवृक्णमोहः ।
हरिं तदीहाकथनश्रुतिभ्यां लब्धस्मृतिर्यात्यतिपारमध्वनः ।।१६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे ब्राह्मणरहूगणसंवादे द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

अन्वयः— तस्मति् नरः असङ्गसुसङ्गजातज्ञानासिना इहैव विवृक्णमोहः हरिं तदीहाकथनश्रुताभ्यां लब्धस्मृतिः अध्वनः पारम् अतियाति ।।१६।।

अनुवाद— अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह इस लोक में ही विरक्त महापुरुषों की सत्सङ्गति से उत्पन्न ज्ञान रूपी तलवार के द्वारा अपने मोह रूपी अज्ञान के बन्धन को काट डाले, तदनंतर श्रीहरि की लीलाओं के कथन और श्रवण से भगवत्स्मृति के बने रहने से आसानी से इस संसार सागर को पार करके श्रीभगवान् को प्रापत कर लेता है ।।१७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

असङ्गैर्महद्भिर्यः सुसङ्गस्तेन जातं ज्ञानमेवासिः खड्गस्तेन च्छिन्नमोहः सन् । अध्वनः संसारमार्गस्यातिशयितं श्रेष्ठं पारं हरिं याति । यद्वा पारमति अतिक्रम्य हरिं याति । 'अतिरतिक्रमणे च' इति कर्मप्रवचनीयत्वाद्द्वितीया । तस्य हरेरीहानां कथनश्रुतिभ्यां लब्धा स्मृतिर्येन सः ।।१६।।

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे पञ्चम स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

आसक्तियों से रहित महापुरुषों की सत्सङ्गति से उत्पन्न ज्ञान रूप तलवार के द्वारा मोह को काट डाले और उसके पश्चात श्रीहरि की लीलाओं के कथन और श्रवण के द्वारा प्राप्त भगवत्स्मृति पुरुष आसानी से इस संसार मार्ग को पारकर के अत्यन्त श्रेष्ठ श्रीहरि को प्राप्त कर लेता है । अथवा संसारमार्ग के पार का अतिक्रमण करके श्रीहरि को प्राप्त कर लेता है । यह **हरिम्** से अतिरतिक्रमणें सूत्र से कर्म प्रवचनीय संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति हुई है ॥१६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवे स्कन्ध की भाव प्रकाशिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१२।।

* * *

तेरहवाँ अध्याय

भवाटवी का वर्णन और रहूगण का संशय नाश

ब्राह्मण उवाच

दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशितो रजस्तमः सत्त्वविभक्तकर्मदृक् ।
स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन्भवाटवीं याति न शर्म विन्दति ॥१॥

अन्वयः— अर्थ परः परिभ्रमन् सार्थः (मथा) अटवीं याति (तथा) अजया दुरत्यये अध्वनि निवेशितः स एषः रजस्तमः सत्त्व विभक्त कर्मदृक अर्थपरः परिभ्रमन् भवाटवीं याति शर्म न विन्दति ॥१॥

अनुवाद— जिस तरह परायण व्यापारियों का समूह भटककर सभी वन में प्रवेश कर जाता है, उसी तरह माया ने इस जीव को दुस्तर प्रवृत्ति मार्ग में लगा दिया है । और यह सुख रूपी धन के लोभ में इसकी दृष्टि सात्त्विक, राजस एवं तमस कर्मों पर ही जाती है । उन कर्मों में भटकता हुआ जीव संसार रूप जङ्गल में प्रवेश कर जाता है । वहाँ इसको थोड़ी सी भी शान्ति नहीं मिलती है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोदशे विरक्ताय वृथा तत्त्वनिरूपणम् । इति वैराग्यदाढर्याय भवाटव्युपवर्ण्यते । अध्वनः पारमित्युक्तं तमेवाध्वानं प्रसिद्धमार्गरूपकेण वैराग्याय प्रपञ्चयति । दुरत्यये दुस्तरेऽध्वनि प्रवृत्तिमार्गे । रजस्तमःसत्त्वैर्विभक्तानि कर्माणि कार्यतया पश्यतीति तथा । स एष प्रसिद्धः सार्थो जीवसमूहोऽर्थपरः सुखार्थः सन् । यथा वणिक्सार्थोऽर्थार्जनाय गच्छन्नटवीं याति तद्वत् । अस्याध्यायस्य व्याख्यानरूप उत्तराध्यायोऽस्ति तथापि सुखप्रतिपत्तये किंचित्किंचिद्याख्यायते ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तेरहवें अध्याय में यह संसार से विरक्त पुरुष के लिए तत्तव का निरूपण व्यर्थ है इसलिए वैराग्य को सुदृढ बनाने के लिए भवाटवी का वर्णन किया जाता है । इससे पहले के अध्याय में कहा गया है कि भगवत्कथा सुनने वाला जीव संसार मार्ग के पार पहुँच जाता है । उस संसार मार्ग का ही वर्णन इस अध्याय में प्रसिद्ध मार्ग रूपक के द्वारा वैराग्य प्राप्ति के लिए किया जा रहा है । माया ने इस जीव को दुस्तर प्रवृत्ति मार्ग में लगा रखा है । उसके कारण वह सात्त्विक, राजस और तामस कर्मों को ही कार्य रूप से देखता है । यह प्रसिद्ध जीव समूह सुख की प्राप्ति के लिए जैसे व्यापारी समूह अर्थार्जन के लिए घूमता हुआ जङ्गल में प्रवेश कर जाता है उसी तरह जीव

भी सुखार्थ भवाटवी में प्रवेश कर जाता है । यद्यपि इस अध्याय की व्याख्या अगला अध्याय है, फिर भी सुख पूर्वक ज्ञान होने के लिए मैं (श्रीधर स्वामी) इसकी थोड़ी-थोड़ी व्याख्या करता हूँ ।।१।।

यस्यामिमे षण्नरदेव दस्यवः सार्थं विलुम्पन्ति कुनायकं बलात् ।
गोमायवो यत्र हरन्ति सार्थिकं प्रमत्तमाविश्य यथोरणं वृकाः ।।२।।

अन्वयः— हे नरदेव ! यस्याम् इमे षट्दस्यवः कुनायं सार्थम् बलात् विलुम्पन्ति यथा प्रमत्तम् उरणं प्रविश्य वृकाः हरन्ति यत्र गोमायवः सार्थिकं हरन्ति ।।२।।

अनुवाद— हे राजन् ! इस संसार रूप जङ्गल (भावाटवी) में इन्द्रिय रूप छह लुटेरे हैं । जिस तरह निन्दित नायक वाले व्यापारी समूह के धन को लुटेरे लूट लेते हैं उसी तरह से इन्द्रियाँ भी उपभोग के द्वारा इस दुष्ट बुद्धि सारथि वाले जीव समूह के भगवत्समाराधनार्थ धन को उपभोग के द्वारा लूट लेते हैं । जिस तरह असावधान भेड़ समूह में घुसकर वृक उसके बच्चे को उठा ले जाते हैं, उसी तरह इस जीव समूह को पत्नी पुत्र इत्यादि रूपी गीदड़ आप मेरे पति हैं, आप मेरे पिता हैं इस तरह से कहकर परमात्मपराङ् मुख बना देते हैं ।।२।।

भावार्थ दीपिका

यस्यां भवाटव्यामिमे इन्द्रियनामानः षड् दस्यश्चोराः । कुत्सितो नायकः सारथिर्बुद्धिर्यस्य तं सार्थं विलुम्पन्ति । तस्य धर्म्यं धनमुपभोगेन मुष्णन्तीत्यर्थः । गोमायवः सृगालतुल्या दारापत्यादयस्त्वं मे भर्ता पितेत्येवं प्रविश्य प्रमत्तं सार्थिकं सार्थे स्थितं हरन्ति इतस्तत आकर्षन्ति । उरणं मेषम् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

इस भवाटवी में ये छह इन्द्रिय रूपी डकैत है, और जिस तरह दुष्ट नायक वाले व्यापारियों के धन को लुटेरे लूट लेते हैं, उसी तरह भगवदराधनार्थ एकत्रित जीव समूह के धन को इन्द्रियाँ अपने उपभोग के द्वारा चुरा लेने का काम करती है । घर की पत्नी तथा पुत्र इत्यादि गीदड़ (सियार) के समान हैं, वे आप मेरे पति हैं आप मेरे पिता हैं इत्यादि बातों के द्वारा जीव को अपने अनुकूल बनाकर उसी तरह उसको परमात्मा पराङ्मुख बना देते हैं जिस तरह असावधान भेड़ों के समूह में घुसकर वृक् (विगवा) उनके छोटे बच्चें उठा ले जाते हैं ।।२।।

प्रभूतवीरुत्तृणगुल्मगह्वरे कठोरदंशैर्मशकैरुपद्रुतः ।
क्वचित्तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति क्वचित्क्वचिच्चाशुरयोल्मुकग्रहम् ।।३।।

अन्वयः— प्रभूत वीरुत्तृण गुल्मगह्वरे कठोर दंशैर्मशकैरुपद्रुतः, क्वचित् तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति क्वाचित् क्वचित् च आशुरयोल्मुक ग्रहम् ।।३।।

अनुवाद— वह जङ्गल बहुत सी लताघास और झाड़ झंखाड के कारण बहुत दुर्गम है, उसमें तीव्र दंशों और मच्छरों से उसे चैन नहीं मिलती है । वहा उसे कभी तो गन्धर्व नगर दिखता है और कभी-कभी चमचमाता हुआ उल्मुक (अगिया बेताल) दिखने लगता हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

वीरुधो लतास्तृणानि च गुल्माश्च लतादिजालानि प्रभूतैरेतैर्गह्वरे दुष्प्रवशे क्षेत्रे कठोरैस्तीव्रैर्दंशैर्मक्षिकाविशेषैश्च यथा कश्चिदुपद्रुतो भवत्येवं कामकर्मादिभिर्गह्वरे गृहाश्रमे वर्तमानो दुर्जनैरुपद्रुतो भवतीत्यर्थः । गन्धर्वपुरवदघटमानमेव देहादिकं प्रकर्षेण सत्यमेवेदमिति पश्यति । क्वचित्क्वचित्क्वापि क्वाप्याशुरयोऽतिवेगो य उल्मुकाकारो ग्रहः पिशाचस्तत्तुल्यं सुवर्णमुपादेयत्वेन प्रपश्यतीत्यर्थः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

उस अटवी में उसे दुष्ट प्रवेश क्षेत्र में वृक्ष, लता, तृण, गुल्म इत्यादि अधिक मात्रा में विद्यमान हैं जैसे उस दुष्प्रवेश जङ्गल में दंश और मच्छर चैन नहीं लेने देते हैं उसी तरह संसार रूपी जङ्गल में काम तथा कर्म इत्यादि से भयङ्कर बने गृहस्थाश्रम में मनुष्य दुर्जनों से उपद्रुत होता रहता है । वह गन्धर्व नगर के समान इस देहादि को ही अत्यधिक सत्य के समान समझने लगता है । कहीं-कहीं पर वह उल्कामुख पशिाच के समान अत्यन्त वेगवान् सुवर्ण को ही उपादेय समझने लगता है ।।३।।

निवासतोयद्रविणात्मबुद्धिस्ततस्ततो धावति भो अटव्याम् ।
क्वचिच्च वात्योत्थितपांसुधूम्रादिशो न जानाति रजस्वलाक्षः ।।४।।

अन्वयः— निवासतोयद्रविणात्मबुद्धिः ततस्ततः अटव्यां धावति क्वचित् च वात्योत्थितपांसुधूम्रा रजस्वलाक्षः दिशोन जानाति ।।४।।

अनुवाद— वह वणिक् समुदाय इस वन में निवास स्थान जल तथा धन में आसक्त बुद्धि वाला होकर इधर-उधर भटकता रहता है । कभी तो बवण्डर से उठी धूल के कारण जब भी दिशाएँ धूल से भर जाती हैं तो आँखों में धूल के भर जाने के कारण उसे दिशाओं का ज्ञान भी नहीं रह जाता है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

निवासादिष्वात्मा स्वभावो यस्याः सा बुद्धिर्यस्य स ततस्ततो धावतीत्युभयत्र तावानेवार्थः । वात्या चक्रवातस्तस्यामुत्थितः पांसुस्तेन धूम्रा दिशो रजस्वले रजोव्याप्ते अक्षिणी यस्य स यथा न जानाति । तथा वात्येव भ्रमयन्ती या स्त्री तस्यामुद्गतै रागादिभिरप्रकाशमाना दिग्देवताः कर्मसाक्षिभूता न जानातीत्यर्थः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

निवास आदि में जिसकी बुद्धि स्वाभाविक रूप से लगी रहती है वह बणिक् समुदाय इधर-उधर भटकता रहता है । यदि उस अटवी में चक्रवात उठ जाता है तो उसकी धूल से सारी दिशाएँ भर जाती हैं और धूल से आँखों के भर जाने से उसको दिशाओं का भी ज्ञान नही रह जाता है इस भवाटवी की वात्या स्त्री ही हैं । उसमें होने वाला अनुराग ही धूल है । उसके कारण उसे कर्म के साक्षी दिग्देवताओं का भी ज्ञान नहीं रह जाता है ।।४।।

अदृश्यझिल्लीस्वनकर्णशूल उलूकवाग्भिर्व्यथितान्तरात्मा ।
अपुण्यवृक्षान् श्रयते क्षुधार्दितो मरीचितोयान्यभिधावति क्वचित् ।।५।।

अन्वयः— क्वचित् अदृश्य झिल्ली स्वनकर्णशूल उल्लुक वाग्भिर्व्यथितान्तरात्मा क्षुधार्दितः अपुण्यवृक्षान् श्रयते, क्वचित् मरीचितोयानि अभिधावति ।।५।।

अनुवाद— कभी-कभी उसे नहीं दिखाई देने वाले झिगुरों की कर्णकटु आवाज सुनाई पड़ती हैं तो उसका चित्त उल्लुओं की आवाज से व्यथित हो जाता है । जब कभी उसको भूख लगती है तो वह निन्दित वृक्षों को ही अपना सहारा बनाता है और कभी प्यास से व्याकुल होकर वह मृगतृष्णा की ओर दौड़ता है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

अदृश्यानां झिल्लीनां भृङ्गारिकासंज्ञानां कीटविशेषाणां स्वनैः कर्णयोः शूलो व्यथा यस्य । उलूका घूकास्तेषां वाग्भिर्व्यथितोऽन्तरात्मा मनो यस्य । अत्र च परोक्षमप्रियवक्तारो झिल्लीतुल्याः । प्रत्यक्षमप्रियवक्तारो घूकतुल्याः । येषां छायापि पापहेतुस्ते अपुण्यवृक्षास्तत्तुल्यान् अधार्मिकान्सेवते । मरीचितोयानीति निष्फलत्वेन विज्ञातानपि विषयान् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

कभी उसको नहीं दिखायी देने वाले झिगुरों की ध्वनि से कानों में व्यथा उत्पन्न हो जाती है, तो कभी उल्लुओं की आवाज से उसकी अन्तरात्मा व्यथित हो जाती है । परोक्ष में अप्रिय बोलने (शिकायत करने वाले) ही इस भवाटवी के झिङ्गुर हैं । सामने ही अप्रिय बोलने वाले उल्लू के समान हैं, जिनकी छाया भी पाप का कारण बनती है, ऐसे अधार्मिक लोग ही अपवित्र वृक्ष के समान हैं और निष्फल रूप से ज्ञातविषय ही मृग मरीचिका हैं ॥५॥

क्वचिद्वितोयाः सरितोऽभियाति परस्परं चालषते निरन्धः ।
आसाद्य दावं क्वचिदग्नितप्तो निर्विद्यते क्व च यक्षैर्हृतासुः ॥६॥

अन्वयः— क्वचित् वितोयाः सरितः अभियाति, निरन्धः पस्परं च आलषते, क्वचित् दावं आसाद्य अग्नितप्तः निर्विद्यते कव च यक्षैः हृतासुः भवति ॥६॥

अनुवाद— कभी तो वह जलहीन नदियों की ओर जाता है और कभी अन्न नहीं मिलने पर परस्परमें एक दूसरे से भोजन प्राप्ति की इच्छा करता है । कभी दावानल में घुसकर अग्नि में झुलस जाता है और कभी यक्षगण उसके प्राणों को खिंचने लगते हैं तो वह खिन्न होने लगता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

वितोयासु सरित्सु पतितस्य गात्रभङ्गात्सद्यो दुःखं भवति, न चोदकलाभस्तद्वदिह च परत्र च दुःखदान्पाखण्डानभियाति। आलषते दायादादिभ्योऽन्नादि वाञ्छति । उभयत्रापि स एवार्थः । दावं दावाग्नितुल्यं दुःखदं गृहं प्राप्य शोकाग्निना तप्तो निर्विद्यते विषीदति । तत्र च यक्षराक्षसतुल्यै राजभिर्हृतमसुवत्प्रेष्ठं धनं यस्य स निर्विद्यते ॥६॥

भाव प्रकाशिका

जल हीन नदियों में गिरने से अङ्ग-भङ्ग हो जाने से कष्ट होता है किन्तु जल नहीं मिलता, उसी तरह लोक और परलोक में दुःख देने वाले पाखण्ड को अपनाता है । आलषते अर्थात् अपने दायादों से अन्न प्राप्त करना चाहता है । भवाटवी और अटवी दोनों जगह एक ही अर्थ है । दावाग्नि के समान दुःख देने वाले गृह में प्रवेश करके शोकाग्नि से संतप्त होता है । और दुःखी होता है । इस भवाटवी में यक्षों एवं राक्षसों के समान राजाओं के द्वारा प्राण के समान धन के छिन लिए जाने पर दुःखी होता है ॥६॥

शूरैर्हृतस्वः क्व च निर्विण्णचेताः शोचन्विमुह्यन्नुपयाति कश्मलम् ।
क्वचिच्चा गन्धर्वपुरं प्रविष्टः प्रमोदते निर्वृतवन्मुहूर्तम् ॥७॥

अन्वयः— शूरैः हूतस्वः क्वच निर्विण्णचेताः शोचन् विमुह्यन् उपयाति कश्मलम् क्वचित् च गन्धर्व पुरं प्रविष्टः निर्वृतवत् मुहूर्तम् प्रमोदते ॥७॥

अनुवाद— कभी अपने से बलवान् लोग इसका धन छिन लेते हैं तो यह दुःखी होकर यह शोक एवं मोह से अचेत हो जाता हैं और कभी गन्धर्व नगर में प्रवेश करके घड़ीभर के लिए सभी दुःख को भूलकर खुशी मानने लगता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अन्यैश्च शूरैर्हृतं स्वं वित्तं यस्य । निर्विण्णं विषण्णं चेतो यस्य । कश्मलं मूर्च्छाम् । गन्धर्वपुरमिव मनोरथोपगतपितृपुत्रादिसमाजं प्रविष्टः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे बलवान् लोग जब इसके धन को छिन लेते हैं तो यह दु:खी हो जाता है और मूर्छित हो जाता है। गन्धर्व नगर के समान अपने मनोरथ के अनुकूल पिता-पुत्र इत्यादि के समाज में प्रविष्ट होकर खुशी मनाता है।।७।।

चलन् क्वचित्कण्टकशर्कराङ्घ्रिर्नगारुरुक्षुर्विमना इवास्ते ।
पदे पदेऽभ्यन्तरवह्निनार्दित: कौटुम्बिक: क्रुध्यति वै जनाय ।।८।।

अन्वय:— क्वचित् नगारुरुक्षु चलन् कण्टकशर्कराङ्घ्रि: विमना इवास्ते । कौटुम्बिक: आभ्यन्तर बह्निनार्दित: पदे-पदे वै जनाय क्रुध्यति ।।८।।

अनुवाद— कभी पर्वत पर वह चढ़ना चाहता है तो काँटों और कङ्कड़ों से उसके पैर छिल जाते हैं और वह उदास हो जाता है । परिवार के बढ़ जाने पर और उदर पूति के साधन के नहीं होने पर वह भूख की ज्वाला से सन्तप्त होकर अपने ही बान्धवों पर क्रोध करने लगता है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

कण्टकादिविद्धाङ्घ्रिरिव विघ्नैरभिभूत: सन्नगतुल्यं महत्कर्मारोढुं कर्तुमिच्छुर्विमना इव आस्ते । पदे पदे क्षणे क्षणे । आभ्यन्तरेण वह्निना जाठरेण ।।८।।

भाव प्रकाशिका

जिसके काण्टों से पैर छेद गये हों उसके ही समान पर्वत के समान बड़े कर्मों को करने का इच्छुक वह विघ्नों से अभिभूत होकर उदास सा हो जाता है भोजन के साधन के नहीं होने पर भूख की ज्वाला से सन्तप्त हो करके लोगों पर ही बार-बार क्रोध करता है ।।८।।

क्वचिन्निगीर्णोऽजगराहिना जनो नावैति किंचिद्विपिनेऽपविद्ध: ।
दष्ट: स्म शेते क्व च दन्दशूकैरन्धोऽन्धकूपे पतितस्तमिस्रे ।।९।।

अन्वय:— क्वचित् अजगराहिना निगीर्ण: विपिने अपविद्ध: जन: नावैति, क्वच दन्दशकै: दष्ट: अन्ध: अन्धकूपे पतित: अन्धतमिस्रे: शेते स्म ।।९।।

अनुवाद— कभी अजगर सर्प का ग्रास बनकर वन में फेंक दिए गये मूर्दे के समान पड़ा रहता है और उसको होश नहीं रहता है जब कभी उसको विषैले जीव काट लेते हैं विष के प्रभाव से क्षुब्ध होकर किसी अन्धे कुएँ में गिर पड़ता है औरउसी में पड़ा रहता है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

अजगराहिना निद्रारूपेण गिलितो न वेत्ति । विपिने त्यक्त: शव इव दन्दशूकैर्हिस्रैर्दुर्जनैर्दष्ट: पीडितोऽन्धो लुप्तविवेकोऽन्धकूपे मोहे पतितस्तमिस्रे दु:खे शेते लीयते ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इस भवाटवी के निद्रा रूप अजगर के द्वारा निगले गये के समान कुछ भी नहीं जानता है । वन में फेंक दिए गये शव के समान दुष्टजन रूपी हिंस्र जीवों के द्वारा पीड़ित उसका विवेक नष्ट हो जाता है मोह रूपी अन्धे कुएं में गिरकर दु:ख पूर्वक पड़ा रहता है ।।९।।

कर्हिस्मचित्क्षुद्ररसान्विचिन्वंस्तन्मक्षिकाभिर्व्यथितो विमान: ।
तत्रातिकृच्छ्रात्प्रतिलब्धमानो बलाद्विलुम्पन्त्यथ तं ततोऽन्ये ।।१०।।

अन्वय:— कर्हिस्मचित् क्षुद्ररसान् विचिन्वन् तन्मक्षिकाभि: व्यथित: विमान:, तत्राति कृच्छ्रात् प्रतिलब्धमान: बलाद् विलुम्पन्त्यथ तं ततोऽन्ये ।।१०।।

अनुवाद— जब कभी वह मधु खोजने लगता है तो उसको मधुमखियाँ काटकर बेचैन कर देती हैं, यदि किसी प्रकार अनेक कठिनाइयों का सामना करके वह प्राप्त भी हो गया तो उससे दूसरे लोग बल पूर्वक छिन लेते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

क्षुद्ररसान्परयोषादीन्विचिन्वनगवेषयंस्तन्मक्षिकाभिर्योषादिस्वामिभिर्विमानोऽवज्ञातस्ताडितः सन्व्यथितो भवति । यदि कथंचित्तत्रातिक्लेशेन प्रतिलब्धमानः प्राप्तयोषादिर्भवति तदा बलादन्येऽपहरन्ति । तान्यदाभियुङ्क्ते तदा ततोऽप्यन्ये हरन्ति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

पर स्त्री आदि ही क्षुद्र रस है उन सबों का यदि वह अन्वेषण करता है तो उन स्त्रियों के पति आदि उसको अपमानित करते हैं ओर पीटते भी हैं । यदि किसी तरह वह उसे प्राप्त भी कर लिया तो दूसरे जो बलवान् लोग हैं वे उससे छिन लेते हैं । यदि वह उन सबों को दोषी बतलाता है, तो उससे भी भिन्न लोग उसे ले लेते हैं॥१०॥

क्वचिच्च शीतातपवातवर्षप्रतिक्रियां कर्तुमनीश आस्ते ।
क्वचिन्मिथो विपणन्यच्च किंचिद्विद्वेषमृच्छत्युत वित्तशाठ्यात् ॥११॥

अन्वयः— क्वचित् च शीतातप वातवर्ष प्रतिक्रियां कर्तुम् अनीशः आस्ते, क्वचित् मिथः विपणन् यच्च वित्तशाठ्यात् उत किंचित् विद्वेषभ् ऋच्छति ॥११॥

अनुवाद— कभी वह ठंढी, गर्मी, वायु तथा वर्षा से अपने को बचाने में असमर्थ हो जाता है, कभी वह परस्पर में व्यापार करता है तो धन के लोभ में दूसरों को धोखा देकर वैर कर लेता है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

यत्किंचिदत्यल्पमपि मिथो व्यवहरन् क्रियादिना गृह्णन् । वित्तशाठ्याद्धनवञ्चनात् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

यदि परस्पर में वह व्यापार करता है तो धन के लोभ में दूसरों के धन के लोभ में धोखा देकर वैर मोल ले लेता है ॥११॥

क्वचित्क्वचित्क्षीणधनस्तु तस्मिन् शय्यासनस्थानविहारहीनः ।
याचन्परादप्रतिलब्धकामः पारक्यदृष्टिर्लभतेऽवमानम् ॥१२॥

अन्वयः— क्वचित् क्वचित् क्षीण धनस्तु तस्मिन् शय्यासन स्थान विहार हीनः, याचन् परादप्रतिलब्ध कामः पारक्दृष्टिः अवमानम् लभते ॥१२॥

अनुवाद— जब कभी इस संसार वन में उसका धन नष्ट हो जाता है तो वह दूसरे से याचना करता है, माँगने पर भी जब अभिलषित वस्तु नहीं मिलती है तो वह परायी वस्तु पर अनुचित दृष्टि रखने के कारण उसे अपमान मिलता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

शय्यादिहीनः । आस्यतेऽस्मिन्नित्यासनं कम्बलादि । स्थीयतेऽत्रेति स्थानं गृहम् । विहरन्त्रेति विहारो यानादि । याचमानोऽपि यदा परस्मादप्राप्तकामस्तदा परकीये वस्तुनि दृष्टिरभिलाषो यस्य सोऽवमानं प्राप्नोति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

शय्या आदि से रहित वह आसन शब्द से कम्बल आदि को कहा गया है, स्थान शब्दे गृह को तथा विहार

शब्द से सवारी को कहा गया है । याचना करने पर भी जब उसको दूसरी अभिलषित वस्तु नहीं मिलती है तो वह दूसरे की वस्तु को प्राप्त करने की अभिलाषा करता है और उसके कारण उसे अपमानित होना पड़ता है ॥१२॥

अन्योन्यवित्तव्यतिषङ्गवृद्धवैरानुबन्धो विवहन्मिथश्च ।
अध्वन्यमुष्मिन्नुरुकृच्छ्रवित्तबाधोपसर्गैर्विहरन्विपन्नः ॥१३॥

अन्वयः— अन्योन्यवित्त व्यतिषङ्गवृद्धबैरानुबन्धो विवहन् मिथश्च, अमुस्मिन् अध्वनि उरुकृछ्रवित वाधोपसर्गैः विहरन् विपन्नः ॥१३॥

अनुवाद— इस तरह व्यवहारिक सम्बन्ध के भी कारण एक दूसरे से द्वेष भाव बढ़ जाने पर भी वह वर्णिक आपस में विवाहदि सम्बन्ध स्थापित करता है और इस मार्ग में विभिन्न प्रकार के कष्ट और धनयक्ष आदि सङ्कटों के कारण मृतक के समान हो जाता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

एवमन्योन्यं वित्तव्यतिषङ्गेन धनविनिमयेन विवृद्धो वैरानुबन्धो यस्य तथाविधोऽपि परस्परं विवहन्विवाहादिसंबन्धं कुर्वन्नुरुभिः कृच्छ्रैः श्रमैर्वित्तबाधैरूपसर्गैश्च द्वेषादिभिर्विपन्नो मृतप्रायो भवति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

इसी प्रकार परस्पर में धन का विनिमय करने के कारण वैर के बढ़ जाने पर भी वे वणिक् परस्पर में विवाहादि सम्बन्ध कर लेते हैं । अनेक प्रकार के कष्टों से तथा धन सम्बन्धी सङ्कटों से एवं द्वेष आदि सङ्कटों को सहते-सहते वह मृतप्राय हो जाते हैं ॥१३॥

तांस्तान्विपन्नान्स हि तत्र तत्र विहाय जातं परिगृह्य सार्थः ।
आवर्ततेऽद्यापि न कश्चिदत्र वीराध्वनः पारमुपैति योगम् ॥१४॥

अन्वयः— सहि तात तान् विपन्ना तत्र तत्र विहाय, जातं परिगृह्य सार्थः हे वीर अद्यापि कश्चित् अत्र न आवर्तते, न अध्वनः पारम् योगभ न उपैति ॥१४॥

अनुवाद— साथियों में से जो जो जहाँ मर जाता है, उसको वहीं छोड़कर और नवीन उत्पन्न हुओं के साथ लेकर वह आगे बढ़ता ही जाता है, उस सङ्कट पूर्ण मार्ग को पारकर कोई भी आजतक नही लौटा है और न तो योग को अपना कर परमानन्द को ही प्राप्त करता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

दुरत्ययत्वमध्वनो दर्शयति । तांस्तान्विपन्नान्मृतान्विहाय जातं जातं परिगृह्य विहरन्यतः प्रस्थितस्तं प्रति नावर्तते । हे वीर, अध्वनः पारं यो योगस्तं च नोपैति । अत्र सार्थे । कश्चिदतिसमर्थोऽपि ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में मार्ग की दुष्पारता को बतलाते हैं । जो जहाँ मर जाता है उसको वहीं छोड़कर और नवीन उत्पन्न हुओं को साथ लेकर वह वनजारों का समूह आगे-ही-आगे बढ़ता जाता है । उस दुष्पार मार्ग को पार करके जहाँ से प्रस्थान किया था वहाँ पर आज तक कोई अत्यन्त समर्थ भी नहीं लौटा और न परमानन्दमय मार्ग को अपनाता है ॥१४॥

मनस्विनो निर्जितदिग्गजेन्द्रा ममेति सर्वे भुवि बद्धवैराः ।
मृधे शयीरन्नतु तद्व्रजन्ति यन्न्यस्तदण्डो गतवैरोऽभियाति ॥१५॥

अन्वयः— निर्जित दिग्गजेन्द्राः मनस्विनः मम इति भुवि बद्धवैराः मृधे शयीरन् तु तद् न व्रजन्ति यत् न्यस्त दण्डः गतवैरः अभियाति ॥१५॥

अनुवाद— जिनसबों ने दिक्पालों को भी जित लिया है ऐसे बड़े-बड़े मनस्वी वीर यह कहकर कि पृथिवी मेरी है, और युद्ध करके युद्ध में मर जाते हैं, फिर वे उस भगवान् विष्णु के उस लोक को नहीं प्राप्त करते है जिसको वैरहीन परमहंस जन प्राप्त करते हैं ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

तदेवाह । मनस्विनः शूराः निर्जिता दिग्गजेन्द्रा यैः । ममेयं भूर्ममेयमिति भुवि निमित्तभूतायां बद्धं वैरं यैः । न्यस्तदण्डः संन्यासी यद्विष्णोः पदमभियाति तत्तु न व्रजन्ति ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

उस दुष्पारमार्ग का ही वर्णन करते हैं मनस्वी शूरवीर जिन लोगों ने दिक्पालों को भी जीत लिया है, मेरी ही यह पृथिवी है इस प्रकार से कहकर वैर के कारण इस पृथिवी पर युद्ध करके मर जाते हैं । फिर भी वे भगवान् विष्णु के उस लोक को नहीं प्राप्त करते हैं जिसको बैरहीन परमहंस जन प्राप्त कर लेते हैं ।।१५।।

प्रसज्जति क्वापि लताभुजाश्रयस्तदाश्रयाऽव्यक्तपदद्विजस्पृहः ।
क्वचित्कदाचिद्धरिचक्रतस्त्रसन्सख्यं विधत्ते बककङ्कगृध्रैः ।।१६।।

अन्वयः— क्वापि लता भुजाश्रयः प्रसज्जति, तदाश्रय व्यक्तपदाद्विजाश्रयः क्वचित् कदाचित् हरिचक्रतः त्रसन् बककङ्कगृध्रैः सख्यंविधत्ते ।।१६।।

अनुवाद— इस भवाटवी में भटकने वाला यह बनिजारों का समूह कभी किसी लता की डालियों का आश्रय लेता है और उस पर रहने वाले मधुर भाषी पक्षियों के मोह में पड़ जाता है । कभी वह सिंहो के समूह से भयभीत होकर बगुला कङ्क और गृधों से मित्रता करता है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

सिंहावलोकनेन पुनर्भवाटवीमेवानुवर्णयति । प्रसज्जत्यासक्तिं करोति । कीदृशः । लतानां भुजाः शाखास्तद्वत्सुकुमारा ये स्त्रीणां भुजास्तदाश्रयः संस्तदाश्रया अव्यक्तपदा अस्फुटाक्षराः कलभाषिणो ये द्विजाः पक्षिणस्तत्तुल्येषु स्त्रीसङ्गप्रसक्तेष्वपत्येषु स्पृहा यस्य तादृशो भूत्वा हरिचक्रं सिंहसमूहस्तत्तुल्यात्कालचक्रनिमित्ताज्जन्ममरणादेस्त्रसंस्तत्परिहाराय कैश्चित्प्रलोभितो बकादिवद्वञ्चकेः क्षुद्रैः क्रूरैश्च पाखण्डैः सह सख्यं करोति तेषु प्रविशति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

सिंहावलोकन न्याय से भरतजी पुनः भवाटवी का ही वर्णन करते है, कभी वह लताओं की डालियों से अर्थात् लता के समान सुकुमार स्त्रियों का आश्रय लेता है । और उन पर रहने वाले मधुर भाषी पक्षियों के मोह में फँस जाता हैं अर्थात् स्त्रियों के संबन्धी मधुरभाषी सन्तानों से प्रेम करता हैं । इस प्रकार का होकर वह सिंहमण्डल के समान कालचक्र के द्वारा होने वाले जन्म और मृत्यु से भयभीत होकर उससे बचने के लिए बक आदि के समान पाखण्डियों के प्रलोभन में आकर उन सबों के साथ मित्रता करके उन सबों के ही समाज में प्रवेश कर जाता है।।१६।।

तैर्वञ्चितो हंसकुलं समाविशन्नरोचयन् शीलमुपैति वानरान् ।
तज्जातिरासेन सुनिर्वृतेन्द्रियः परस्परोद्वीक्षणविस्मृतावधिः ।।१७।।

अन्वयः— तैर्वञ्चितः हंसकुलं समाविशन् शीलं न रोचयन्, वानरानुपैति तज्जातिरासेन सुनिर्वृतेन्द्रियः परस्परोद्वीक्षणविस्मृतावधिः ।।१७।।

अनुवाद— उन पाखण्डियों से धोखा खाने पर वह वनजारों का समूह हंसों को समूह प्रवेश करना चाहता है किन्तु उस को उन सबों का शील अच्छा नहीं लगता है, इसलिए वह वानरों में मिलकर उनकी जाति के स्वभाव

के अनुसार दाम्पत्य सुख में रत होकर विषय भोगों के द्वारा इन्द्रियों को तृप्त करता रहता है और एक दूसरे को देखते हुए अपनी आयु को भूल जाता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तैर्वञ्चितस्तत्र फलाभावं ज्ञात्वा हंसानां ब्राह्मणानां कुलं पुनः प्रविशंस्तेषां शीलं प्रायश्चित्तपूर्वकं पुनरुपनयनाद्याचारमरोचयन्नप्रियं पश्यन्वानरतुल्यान् भ्रष्टाचारान् शूद्रप्रायानुपैति । तज्जातिरासेन वानरजातिक्रीडया स्त्रिया मिथुनीभूय परस्परमुखोद्वीक्षणेन विस्मृतो जीवितावधिर्मरणकालो येन ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

वह जब पाखण्डियों से धोखा खाता है अर्थात् उसमें फल का अभाव जानकर पुनः हंस रूपी ब्राह्मणों के वंश में प्रवेश करना चाहता है, किन्तु ब्राह्मणों का जो प्रायश्चित्त पूर्वक पुनः उपनयन आदि जो आचार है उसको अच्छा नहीं लगता है अतएव वह वानरों में जाकर मिल जाता है । यहाँ पर आचर भ्रष्ट शूद्र प्रायः मनुष्य ही वानर कहे गये हैं । और वानर जाति की क्रीडा जो स्त्री के साथ मैथुन करके परस्पर में एक दूसरे के मुख देखने में ही वे अपनी आयु की सीमा को भी भूल जाते हैं ॥१७॥

द्रुमेषु रंस्यन्सुतदारवत्सलो व्यवायदीनो विवशः स्वबन्धने ।
क्वचित्प्रमादाद्गिरिकन्दरे पतन्वल्लीं गृहीत्वा गजभीत आस्थितः ॥१८॥

अन्वयः— द्रुमेषुरंस्यन् सुतदारवत्सलः व्यवायदीनः स्वबन्धने विवशः क्वचित् प्रमादात् गिरिकन्दरे पतन् गजभीतः बल्लीं गृहित्वा आस्थितः ॥१८॥

अनुवाद— वह वृक्षों पर क्रीड़ा करते हुए स्त्री और पुत्र के स्नेह पाश में बन्ध जाता है, इसमें मैथुन की वासना इतना बढ़ जाती है कि वह विभिन्न प्रकार के दुर्व्यवहारों से दीन होकर भी अपने बन्धन को तोड़ने का साहस नहीं कर पाता है । कभी असावधानी से पर्वत की कन्दरा में जब गिरने लगता है तो उसमें रहने वाले हाथी के डर से किसी लता के सहारे लटका रहता है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

द्रुमवत्केवलदृष्टार्थेषु गृहेषु । व्यवायदीनः सुरतेच्छया कृपणः । एवं स्वस्य यद्बन्धनं प्राप्तं तस्मिन्विवशः परिहर्तुमशक्तः। पाठान्तरे तु वने संसारे चरन्नित्यर्थः । गिरिकन्दरवदतिभयानके रोगादिदुःखे पतन्कन्दर स्थगजतुल्यान्मृत्योर्भीत सन् वल्लीतुल्यं प्राचीनं कर्मावलम्ब्यावस्थितो भवति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

वृक्ष के समान केवल लौकिक फल प्रदान करने वाले गृहों में क्रीडा करता है । वह मैथुन के कारण दीन बना हुआ अपने गार्हस्थ्य के बन्धन को तोड़ पाने में असमर्थ हो जाता है । जहाँ पाठान्तर पाठ हैं वहाँ अर्थ होगा कि संसार में विचरण करते हुए पर्वत की कन्दरा के समान भयानक रोग आदि दुःखों में पड़कर कन्दरा में रहने वाले हाथी के तुल्य मृत्यु से भयभीत होकर लता के समान प्राचीन कर्मों को ही अपना सहारा बनाता है॥१८॥

अत कथंचित्स विमुक्त आपदः पुनश्च सार्थं प्रविशत्यरिन्दम ।
अध्वन्यमुष्मिन्नजया निवेशितो भ्रमन् जनोऽद्यापि न वेद कश्चन ॥१९॥

अन्वयः— हे अरिन्दम् ! अतः कथञ्चित् स विमुक्तआपदः पुनः सः सार्थं प्रविशति, अजया अमुष्मिन् अध्वनि निवेशितः भ्रमञ्जनः कश्चन न वेद ॥१९॥

अनुवाद— हे शत्रुदमन ! यदि उसे किसी प्रकार उस आपत्ति से मुक्ति मिल भी जाती है तो फिर वह अपने समुदाय में मिल जाता है । माया के द्वारा प्रेरित होकर जो मनुष्य इस मार्ग में प्रवृत्त हो जाता है, वह इसी में भटकता रहता है उसे अन्त तक पता नहीं चलता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

सार्थं प्रविशति यथापूर्वं प्रवृत्तिमार्गे रमते । न वेद परम पुरुषार्थम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

यदि किसी तरह अपने इस विपत्ति से युक्त भी हो जाता तो वह पुनः जाकर अपने समुदाय में मिल जाता है और पहले के ही समान वह प्रवृत्ति मार्ग में रमण करता है ॥१९॥

रहूगण त्वमपि ह्यध्वनोऽस्य संन्यस्तदण्डः कृतभूतमैत्रः ।
असज्जितात्मा हरिसेवया शितं ज्ञानासिमादाय तरति पारं ॥२०॥

अन्वयः— रहूगण त्वमपि हि संन्यस्तदण्डः कृतभूतमैत्रः असज्जितात्मा हरिसेवया शितं ज्ञानासिम् आदाय अस्य अध्वनः अतिपारम् तर ॥२०॥

अनुवाद— रहूगण तुम भी प्रजाओं को दण्ड देना त्याग कर सबों के मित्र बन जाओ और विषयों से अपने चित्त को हटाकर श्रीहरि के चरण सेवा से तीक्ष्ण वने ज्ञान रूपी खड्ग लेकर इस दुस्तर संसार मार्ग को पार कर लो॥२०॥

भावार्थ दीपिका

त्वमपि अध्वनि निवेशित इत्यनुषङ्गः । अतोऽस्याध्वनः पारमतितर । असज्जितात्मा विषयेष्वनभिनिवेशितचित्तः सन्। हरिसेवया शितं तीक्ष्णीकृतम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

तुम भी इस संसारमार्ग में ही माया के द्वारा लगा दिए गये हो । अतएव इस संसार मार्ग के पार चले जाओ। विषयों से अपने चित्त को हटाकर तथा श्रीहरि की सेवा से तीक्ष्ण बनी तलवार को लेकर ॥२०॥

राजोवाच

अहो नृजन्माखिलजन्मशोभनं किं जन्मभिस्त्वपरैरप्यमुष्मिन् ।
न यद्धृषीकेशयशः कृतात्मनां महात्मनां वः प्रचुरः समागमः ॥२१॥

अन्वयः— अहो नृजन्म अखिलजन्म शोभनं किं जन्मभिस्त्वरैरप्यमुष्मिन् ? यदधृषीकेशयशः कृतात्मनां महात्मनां वः प्रचुरः समागमः न ॥२१॥

राजा रहूगण ने कहा

अनुवाद— अहो मनुष्यों का जन्म सभी योनियों में होने वाले जन्मों से सुन्दर है, अन्य लोकों में होने वाले देवादि जन्मों से कौन सा लाभ है ? जहाँ भगवान् हृषीकेश के पवित्र यश से शुद्ध अन्तःकरण आप जैसे महात्माओं का अधिकाधिक समागम नहीं होता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अखिलजन्मसु शोभनं नृजन्मैव । न परं श्रेष्ठं येभ्यो देवादिजन्मभ्यस्तैरपि किम्, (अमुष्मिन् स्वर्गेऽपि जन्मभिः किम्) न किंचित् । यद्येषु जन्मसु यत्र स्वर्गे वा वो महात्मनां समागमः प्रचुरो न भवति । हृषीकेशस्य यशसा कृतः शोधित आत्मा यैस्तेषाम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

सभी जन्मों में मनुष्य का ही जन्म सुन्दर है, जिन सबों से श्रेष्ठ दूसरे जन्मों से क्या लाभ है ? जिन जन्मों में या स्वर्ग में भी श्रीहरि के यश से पवित्रित आत्मा वाले आप जैसे महात्माओं कासमागम नहीं होता है ।।२१।।

न ह्यद्भुतं तवच्चरणाब्जरेणुभिर्हतांहसो भक्तिरधोक्षजेऽमला ।
मौहूर्तिकाद्यस्य समागमाच्च मे दुस्तर्कमूलोऽपहतोऽविवेकः ।।२२।।

अन्वयः— नह्यद्भुतं त्वच्चरणाब्जरेणुभिः हतांहसः अधोक्षजे अमलाभक्तिः यस्यच मौहुर्तिकात् समागमात् मे कुतर्कमूलः अविवेकः अपहतः ।।२२।।

अनुवाद— आपके चरणकमलों की रज का सेवन करने से जिनके सारे पाप नष्ट हो गये हों उन महानुभावों की श्रीभगवान् में निर्मल भक्ति का हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । आपके एक मुहूर्त के समागम से मेरा कुतर्क मूलक अविवेक विनष्ट हो गया है ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

संततमुपासितैस्त्वत्पदाब्जरेणुभिर्हतमंहो यस्य तस्याधोक्षजे निर्मला भक्तिर्भवतीति नैवाद्भुतम् । यस्य तव मुहूर्तमात्रभवत्समागममात्रादपि दुस्तर्केण बद्धमूलोऽपि ममाविवेको नष्टः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

निरन्तर आपके चरण कमलों की धूलि का सेवन करने से जिसके पाप विनष्ट हो गये है उन महापुरुषों की श्रीभगवान् में भक्ति हो जाती है यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । आपके एक मुहूर्त के समागम से ही मेरा दुस्तर्क मूलक अविवेक नष्ट हो गया ।।२२।।

नमो महद्भ्योऽस्तु नमः शिशुभ्यो नमो युवभ्यो नम आबटुभ्यः ।
ये ब्राह्मणा गामवधूतलिङ्गाश्चरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम् ।।२३।।

अन्वयः— महद्भ्यः नमोऽस्तु, शिशुभ्यः नमः युवभ्यः नमः आबटुभ्यः नमः, ये ब्राह्मणा अवधूत लिङ्गाः गाम् चरन्ति तेभ्यः राज्ञाम् शिवमस्तु ।।२३।।

अनुवाद— ब्रह्मज्ञानियों में जो वयोवृद्ध हो उनको नमस्कार है । जो शिशु हों उनको नमस्कार है, जो युवा हों उनको नमस्कार है, जो क्रीडारत बालक हों उनको नमस्कार है, जो ब्राह्मण अवधूत वेष में पृथिवी पर विचरण करते हैं, उनसे हम जैसे ऐश्वर्योन्मत्त राजाओं का कल्याण हों ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मविदः केन रूपेण विचरन्तीत्ययज्ञानात्सर्वान्नमस्यति- नम इति । ये बटवः क्रीडारतत्वादश्रद्धेयधौरेयास्तानप्यभिव्याप्य सर्वेभ्यो नमः इत्यर्थः । स्वदृष्टान्तेन राज्ञां महदवज्ञां संभाव्याह-राज्ञां शिवमस्त्विति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मज्ञानी किस रूप में विचरण करते हैं, इस बात का ज्ञान नहीं होने से सबों को नमस्कार राजा रहूगण नमः इत्यादि श्लोक से करते हैं जो क्रीडारत होने के कारण सर्वाधिक अश्रद्धेय ब्रह्मज्ञानी हो उन सबों से लेकर सभी ब्रह्मज्ञानियों को नमस्कार है । अपने को ही दृष्टान्त रूप से उपन्यस्त करके कहते हैं कि राजागण जो महापुरुषों की अवज्ञा (अपमान) भी कर देते हैं, उन राजाओं का भी कल्याण हो ।।२३।।

श्रीशुक उवाच

इत्येवमुत्तरामातः स वै ब्रह्मर्षितः सिन्धुपतय आत्मसतत्त्वं विगणयतः परानुभावः परमकारुणिकतयोपदिश्य रहूगणेन सकरुणमभिवन्दितचरण आपूर्णार्णव इव निभृतकरणोर्म्याशयो धरणिमिमां विचचार ॥२४॥

श्रीशुकदेव जी ने कहा

अनुवाद— हे उत्तरानन्दन ! इस तरह उन परम प्रभाव सम्पन्न ब्रह्मर्षि पुत्र, अपना अपमान करने वाले सिन्धु देशाधिपति रहूगण को अत्यन्त करुणा करने वाले होने के कारण आत्मतत्त्व का उपदेश दिए । उस समय रहूगण ने दीन भाव से उनके चरणों की वन्दना की । उसके पश्चात् वे परिपूर्ण सागर के समान शान्तचित्त और उपरतेन्द्रिय होकर पृथिवी पर विचरण करने लगे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

उत्तरा माता यस्य हे उत्तरामातः । विगणयतो न गणयतः । अवमन्तर्यपि परमकरुणाकरत्वेन सिन्धुपतये आत्मतत्त्वमुपदिश्य। निभृताः शान्ताः करणानामूर्मयो यस्मिन्स आशयो यस्य ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

हे उत्तरानन्दन ! यह मेरा अपमान करने वाला है, इस प्रकार से सोचे बिना ही करुणावश सिन्धु देशाधिपति राजा रहूगण को आत्मतत्त्व का उपदेश देकर शान्तचित्त और जितेन्द्रिय होकर पृथ्वी पर विचरने लगे ॥२४॥

सौवीरपतिरपि सुजनसमवगतपरमात्मसतत्त्व आत्मन्यविद्याध्यारोपितां च देहात्ममतिं विससर्ज एवं हि नृप भगवदाश्रिताश्रितानुभावः ॥२५॥

अनुवाद— भरतजी के सत्सङ्ग से परमात्म तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करके सौवीरपति रहूगण भी अविद्या के द्वारा अन्तःकरण में आरोपित देहात्मबुद्धि का परित्याग कर दिये । राजन् ! जो लोग भगवदाश्रित भक्तों की शरण ले लेते हैं उनका ऐसा ही प्रभाव होता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

सुजनात्तस्मात्सम्यगवगतं परमात्मसतत्त्वं येन तथाभूतः संस्तदानीमेव देहे आत्ममतिं च विससर्ज । हे नृप, भगवदाश्रितो भरतस्तदाश्रितो रहूगणो यस्तस्यानुभावः सद्यो देहाहंकारत्यागः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

सत्पुरुष श्रीभरतजी से परमात्म तत्त्व को अच्छी तरह से जानकर राजा रहूगण वैसा ही बन गये । उसी समय उन्होंने देहात्मबुद्धि का परित्याग कर दिया । राजन् भरतजी भगवदाश्रित थे और राजा रहूगण उनके आश्रित हो गये उनकी ऐसी महिमा हुई कि उन्होंने देहाहङ्कार का परित्याग कर दिया ॥२५॥

राजोवाच

यो ह वा इह बहुविदा महाभागवत त्वयाभिहितः परोक्षेण वचसा जीवलोकभवाध्वा स ह्यार्यमनीषया कल्पितविषयो नाञ्जसाऽव्युत्पन्नलोकसमधिगमः अथ तदेवैतद्दुरवगमं समवेतानुकल्पेन निर्दिश्यतामिति॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

राजाओं ने कहा

अनुवाद— महाभागवत मुनिश्रेष्ठ आप परम विद्वान हैं । अपने परोक्ष रूप से जीवों के जिस संसार रूप

मार्ग का वर्णन किया है उसकी कल्पना विवेकी पुरुषों की ही बुद्धि ने की है, मन्द बुद्धि वाले पुरुषों के समझ में वह बात नहीं आ सकती है, अतएव आप इस दुर्बोध विषय को स्पष्ट रूप से समझाने की कृपा करें ॥२६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

परोक्षेण वणिक्सार्थरूपकेण । आर्याणां विवेकिनां मनीषयैव दस्युस्थानीयानीन्द्रियाणि गोमायुस्थानीयान्यपत्यादीनीत्येवं कल्पितविषयः । अव्युत्पन्नस्य तु लोकस्य जनस्य सम्यगधिगमो न भवति । अथ अतस्तदेतदेव भवाध्वरूपं समवेतानुकल्पेन प्रस्तुते तत्तदनुरूपार्थोपकल्पनेन ॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थ दीपिकांटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

परोक्ष अर्थात् बणिक् समुदाय रूपक के माध्यम से । आर्य शब्द से विवेकी पुरुषों को कहा गया है । उनकी ही बुद्धि से दस्यु स्थानीय छह इन्द्रियों को गीदड़ स्थानी पुत्रों आदि की कल्पना की गयी है । इसको अज्ञानी पुरुष तो बिल्कुल नहीं समझ सकता है । अतएव उस संसार मार्ग का आप समवेतानुकल्प (दार्ष्टान्तिक वाचक शब्द) के द्वारा वर्णित विषय को स्पष्ट रूप से बतलायें ॥२६॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१३।।

* * *

चौदहवाँ अध्याय

भवाटवी का स्पष्टीकरण

सहोवाच

य एष देहात्ममानिनां सत्त्वादिगुणविशेषविकल्पितकुशलाकुशलसमवहारविनिर्मितविविधदेहावलिभिर्वियोगसंयोगाद्यनादिसंसारानुभवस्य द्वारभूतेन षडिन्द्रियवर्गेण तस्मिन्दुर्गाध्ववदसुगमेऽध्वन्यापतित ईश्वरम् भगवतो विष्णोर्वशवर्तिन्या मायया जीवलोकोऽयं यथा वणिक्सार्थोऽर्थपरः स्वदेहनिष्पादितकर्मानुभवः श्मशानवदशिवतमायां संसाराटव्यां गतो नाद्यापि विफलबहुप्रतियोगेहस्ततापोपशमनीं हरिगुरुचरणारविन्दमधुकरानुपदवीमवरुन्धे यस्यामु ह वा एते षडिन्द्रियनामानः कर्मणा दस्यव एव ते॥१॥

अनुवाद— राजन् ! देहाभिमानी जीवों के द्वारा सत्त्वादि गुणों के भेद से शुभ, अशुभ तथा मिश्र तीन प्रकार के कर्म होते हैं । उन कर्मों के द्वारा ही निर्मित विविध शरीरों के साथ होने वाले संयोग और विप्रयोग इत्यादि रूप से अनादि संसार जीव को प्राप्त होता है । उस संसारानुभव के छह द्वार हैं पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ आर एक मन। उन सबों के अधीन होकर यह जीव समूह मार्ग भूलकर भयङ्कर वन में भटकने वाले धन के लोभी वणिकों के समान सम्पूर्ण जगत् के नियामक भगवान् विष्णु के अधीन रहने वाली माया के द्वारा प्रेरित होकर घोर जङ्गल में पड़कर संसार वन में पहुँच जाता है । यह शमशान के समान अत्यन्त अशुभ है । इसमें भटकने वाले जीव को अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भोगना पड़ता है । यहाँ पर होने वाले अनेक विघ्नों के कारण उसके अपने व्यापार में सफलता नहीं मिलती है।

फिर भी अपने श्रम को शान्त करने वाले श्रीहरि एवं गुरु के चरणारबिन्द मकरन्द मधु के रसिक भक्त-भ्रमरों के मार्ग का अनुसरण नहीं करता है । इस संसार वन में छह इन्द्रियाँ ही कर्मों की दृष्टि से लुटेरे हैं॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्दशे भवारण्यरूपकव्याकृतिः कृता । प्रस्तुते तस्य गोमायुमशकाद्यर्थकल्पनम् ॥१॥ यः परीक्षिता पृष्टः स श्रीशुक उवाच हेति सूतोक्तिः । दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशित इति यदुक्तं तदेव निवेशनप्रकारकथनेन प्रपञ्चयति । य एष प्रसिद्धो जीवलोकोऽयं विष्णोर्मायायाऽसुगमेऽध्वन्यापतितो भवाटवीं गतः सन् हरिरूपस्य गुरोश्चरणारविन्दे ये मधुकराः सेवकास्तेषामनुपदवीं तैरनुष्ठितं भक्तिमार्गमद्यापि नावरुन्धे न संप्राप्रोतीत्यन्वयः । मायायाः स्वकार्यद्वारेण संसारमार्गे पातहेतुत्वमाह । देहात्ममानिनां सत्त्वादिगुणविशेषैर्विकल्पितानि विभक्तानि यानि कुशलाकुशलविमिश्रकर्माणि तैर्विनिर्मिताभिर्विविधदेहावलिभिर्वियोगसंयोगादिर्योऽनादिः संसारस्तदनुभवस्य द्वारभूतेन षडिन्द्रियवर्गेण तस्मिन्संसाररूपे दुर्गमार्गवदसुगमेऽध्वन्यापतितो यथा वणिजां सार्थः समूहोऽर्थार्जनपरः । स्वदेहनिष्पादितानां कर्मणां फलद्वारेणानुभवो यस्य । विफलाश्च बहुप्रतियोगा वहुविघ्नाश्च ईहाश्चेष्टा यस्य सः, तस्यां संसाराटव्यां ये तापास्तेषामुपशमनीं नाशनीम् । यस्यामित्यादि व्याचष्टे । यस्यां भवाटव्याम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौदहवें अध्याय में भवाटवी रूपक की व्याख्या की गयी है । प्रस्तुत में शृगाल तथा मच्छर इत्यादि की कल्पना की गयी है । राजा परीक्षित् के द्वारा पूछे जाने पर श्रीशुकदेवजी ने कहा यह सूतजी की उक्ति है । इससे पहले के अध्याय में यह जो कहा गया है कि दुष्पारमार्ग में माया के द्वारा जीव को प्रवेश करा दिया गया । उसको प्रवेश कराने के प्रकार का विस्तार से वर्णन करते हैं । यह प्रसिद्ध जीव लोक भगवान् विष्णु की माया के द्वारा दुर्गम मार्ग में डाल दिए जाने के कारण भवाटवी में प्रवेश कर गया । उसके कारण श्रीहरि रूप श्रीगुरु के चरणारविन्द के सेवकों द्वारा अनुष्ठित भक्ति मार्ग को आज तक नहीं प्राप्त कर पाता है । अपने कार्य के द्वारा संसारमार्ग में पड़ने का कारण माया ही है इस बात को बतलाते हैं; देहाभिमानी जीव सत्त्वादि तीन गुणों के भेद से तीन प्रकार के कर्मों को करते है, शुभ, अशुभ और मिश्र । उन कर्मों के द्वारा रचित अनेक प्रकार के देहों से होने वाले संयोग और वियोग रूप जो अनादि संसार है उसके अनुभव द्वार भूत छह इन्द्रियों के द्वारा दुर्गम मार्ग के समान संसार रूप दुष्पार मार्ग में भटकने वाले अर्थार्जन परायण व्यापारियों के समूह के समान है । अपने कर्म के द्वारा रचित देह के द्वारा कर्मों के फल का अनुभव करने वाले व्यापारियों का व्यापार अनेक विघ्नों के कारण विफल होने पर भी वे संसार के संताप को शान्त करने वाले श्रीगुरु की शरणागति नहीं करते हैं और इस भवाटवी में भटकते रहते हैं॥१॥

तद्यथा पुरुषस्य धनं यत्किंचिद्धर्मौपयिकं बहुकृच्छ्राधिगतं साक्षात्परमपुरुषाराधनलक्षणो योऽसौ धर्मस्तं तु सांपराय उदाहरन्ति तद्धर्म्यं धनं दर्शनस्पर्शनश्रवणास्वादनावघ्राणसंकल्पव्यवसायगृहग्राम्योपभोगेन कुनाथस्याजितात्मनो यथा सार्थस्य तथाऽजितात्मनो विलुम्पन्ति ॥२॥

अनुवाद— पुरुष बहुत कष्ट उठाकर जिस धन को कामाता है उसका उपयोग धर्म में होना चाहिए । वही धन यदि साक्षात् परम पुरुष भगवान् की आराधना में उपयुक्त होता है तो उसको परलोक में निःश्रेयस् रूप बतलाया गया है । किन्तु जो मनुष्य बुद्धिरूप सारथि विवेकहीन होता है और उसका मन वश में नहीं होता है तो उसके उस धर्मोपयोगी धन को ये मन और छह इन्द्रियाँ देखने, स्पर्श करने, सुनने, स्वाद लेने, सूंघने, सङ्कल्प विकल्प करने और निश्चय करने रूप गृहस्थोचित विषयभोगों में फँसाकर उसी तरह लूट लेते हैं जिस तरह वेइमान मुखिया का अनुगमन करने वाले असावधान व्यापारियों के दल का धन चोर लूट लेते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

दस्युतुल्यं तेषां कर्म दर्शयति-तद्यथेति । धर्मौपयिकं धर्मकारणम् । तमेव स्वाभिप्रेतं धर्ममाह-साक्षादिति । तं तु सांपराये परलोकार्थमुदाहरन्ति । तद्धर्म्यं धर्मार्हं धनम् । दर्शनाद्याः पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणां वृत्तयः; सङ्कल्पव्यवसायावन्तःकरणस्य, एतैर्गृहे यो ग्राम्य उपभोगस्तेन कुनाथस्य कुबुद्धेरजितात्मनो विलुम्पन्ति यथा चोराः कुपालकस्यानवहितात्मनः सार्थस्य धनं हरन्ति तद्वत् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीशुकदेवजी उन इन्द्रियों के कर्म को लुटेरों के कर्म के समान बतलाते हैं । धर्मौपयिकम् का अर्थ है धर्म के साधन । यदि वह धर्म परमात्माराधन रूप हुआ तो वह परलोक में निःश्रेयस का साधन होता है यह पण्डित जनों का कहना है । धर्म्यम् अर्थात् धर्म के योग्य धन । विवेकहीन बुद्धिवाले तथा जिसका मन वश में नहीं है ऐसे व्यक्ति के उस धन को ये छहो इन्द्रियाँ दर्शन आदि गृहस्थोचित विषय भोगों में व्यय करा देती है । दर्शन आदि पाँच वृत्तियाँ पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के है और सङ्कल्प तथा निश्चय अन्तःकरण की वृत्तियाँ हैं । जिस तरह दुष्ट मुखिया वाले व्यापारियों के धन को डकैत लूट लेते हैं उसी तरह विवेक हीन बुद्धि वाले मनुष्य के धन को ये इन्द्रिय रूप लुटेरे लूट लेते हैं ।।२।।

अथ च यत्र कौटुम्बिका दारापत्यादयो नाम्ना कर्मणा वृकसृगाला एवानिच्छतोऽपि कदर्यस्य कुटुम्बिन उरणकवत्संरक्ष्यमाणं मिषतोऽपि हरन्ति ।।३।।

अनुवाद— यही नहीं उस संसार वन में रहने वाले उसके परिवार वाले भी जो कहने के लिए तो स्त्री पुत्र आदि हैं । किन्तु इन सबों के कर्म भेड़ियें और गीदड़ों के समान हैं । उस अर्थ लोलुप कुटुम्बी के धन को उसकी इच्छा नहीं रहने पर भी उसके देखते-ही-देखते उसी तरह छिन लेते हैं जैसे भेड़िया भेड़ों के झुण्ड में घुसकर भेंड को उठा ले जाते हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

गोमायवो यत्रेत्येतद्याचष्टे । अथ चेत्यर्थान्तरोपन्यासे । कर्मणा ते तु वृकाः सृगालाश्च । कदर्यस्यातिलुब्धस्य ।।३।।

भाव प्रकाशिका

शुकदेवजी ने पत्नी पुत्र आदि को भेड़ियों और सियार के समान बतलाया है । अथ च से अर्थान्तर को बतलाया है । उन्होंने कहा है कि स्त्री पुत्रादि का कर्म भेड़िये और सियार के समान है । गृहस्थ को कदर्य अर्थात् अर्थ लोलुप कहा है अर्थात् धन कमाने में ही लगे रहने वाला कहा है ।।३।।

यथा ह्यनुवत्सरं कृष्यमाणमप्यदग्धबीजं क्षेत्रं पुनरेवावपनकाले गुल्मतृणवीरुद्भिर्गह्वरमिव भवत्येवमेव गृहाश्रमः कर्मक्षेत्रं यस्मिन्नहि कर्माण्युत्सीदन्ति यदयं कामकरण्ड एष आवसथः ।।४।।

अनुवाद— जिस तरह प्रतिवर्ष किसी खेत के बीज को अग्नि से यदि नहीं जला दिया जाय तो प्रतिवर्ष जोतने पर भी बीज बोने का समय आने पर वह खेत झाड़ झंखाड़ से भर जाता है उसी तरह इह गृहस्थाश्रम कर्म क्षेत्र है । इसमें कर्मों का पूर्णतया नाश कभी नहीं होता है, क्योंकि यह घर कामनाओं की पिटारी है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

प्रभूतवीरुत्तृणगुल्मगह्वरमित्येतद्व्याचष्टे- यथा हीति । न दग्धानि बीजानि यस्मिन् । यद्यस्माद्योऽयमावसथ आश्रम एष कामानां करण्डः । यथा कर्पूरभाजने कर्पूरक्षयेऽपि परिमलो न क्षीयते एवमत्र वासनानामक्षीणत्वान्न कर्माण्युत्सीदन्तीत्यर्थः।।४।।

भाव प्रकाशिका

इस दण्डक में **प्रभूतवीत्तृणगुल्मगहवरम्** पद की व्याख्या यथा इत्यादि से करते हैं यदि खेतों के बीज को प्रतिवर्ष नहीं जला दिया जाय तो वे फिर जम जाते हैं और खेत झाड़-झंखाड़ से भर जाता है । यह गृहस्थाश्रम कामनाओं की मञ्जूषा है । जिसतरह कपूर का पात्र कर्पूर से खाली हो जाने पर उसमें कपूर की गन्ध बनी रहती है, उसी तरह गृहस्थाश्रम में वासना के विनष्ट नहीं होने से कर्मों का पूर्णतया नाश नहीं होता है ॥४॥

तत्र गतो दंशमशकसमापसदैर्मनुजैः शलभशकुन्ततस्करमूषकादिभिरुपरुध्यमानबहिः प्राणः क्वचित्परिवर्तमानोऽस्मिन्नध्वन्यविद्याकामकर्मभिरुपरक्तमनसाऽनुपपनार्थं नरलोकं गन्धर्वनगरमुपपन्नमिति मिथ्यादृष्टिरनुपश्यति ॥५॥

अनुवाद— उस गृहस्थाश्रम में आसक्त हुए व्यक्ति के धन रूपी बाहरी प्राण को दंश और मच्छरों के समान नीच पुरुषों से तथा टिड्डी, पक्षी, चोर और चूहे आदि से क्षति होती रहती है । कभी इस मार्ग से भटकते हुए अविद्या कामना और कर्मों से कलुषित चित्त से दृष्टि दोष के कारण इस मर्त्यलोक को जो गन्धर्व नगर के समान मिथ्या है उसे सत्य समझने लगता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

दंशमशकतुल्यैरपसदैर्नीचैः शलभादिभिश्चोपरुध्यमानः पीड्यमानो बहिःप्राणो वित्तं यस्य तथाविधोऽप्यस्मिन्नध्वनि परिभ्रमन्नविद्यादिभिरुपरक्तेन मनसा गन्धर्वपुरतुल्यमघटमानं नरलोकं सत्यतया मिथ्यादृष्टिरनुपश्यति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

दंश और मच्छर के समान नीच पुरुषों के द्वारा तथा टिड्डी आदि के द्वारा पीड़ित होता हुआ जिसका धन ही बाहरी प्राण है वह इस संसार मार्ग में भटकता हुआ अविद्या आदि से कलुषित मन से गन्धर्व नगर के समान असम्भव मनुष्य लोक को सत्य समझने लगता है ॥५॥

तत्र च क्वचिदातपोदकनिभान्विषयानुपधावति पानभोजनव्यवायादिव्यसनलोलुपः ॥६॥

अनुवाद— पुनः वह खान-पान और स्त्री प्रसङ्ग आदि व्यसनों में फँसकर मृणतृष्णा के समान मिथ्या विषयों की ओर दौड़ने लगता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

प्रपश्यतीति प्रशब्दसूचितमर्थान्तर दर्शयति । तत्र च गन्धर्वपुरे क्वचिदातपोदकं मृगतृष्णाजलं तत्तुल्यान्विषयानुपधावतीति॥६॥

भाव प्रकाशिका

तेरहवें अध्याय के तीसरे श्लोकस्थ प्रपश्यति शब्द के प्रशब्द के द्वारा सूचित् अर्थान्तर को बतलाते हैं । उस गन्धर्व नगर में कहीं पर आतपोदक (मृग तृष्णा) के जल के समान विषयों को प्राप्त करना चाहता है ॥६॥

क्वचिच्चाशेषदोषनिषदनं पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमतिः सुवर्णमुपादित्सत्यग्निकामकातर इवोल्मुकपिशाचम् ॥७॥

अनुवाद— कभी बुद्धि के रजोगुण से प्रभावित होने पर सम्पूर्ण अनर्थों के मूल अग्नि के मल रूप सुवर्ण को ही सुख का साधन समझकर उसको प्राप्त करने के लिए लालायित होकर ऐसे प्रयास करने लगता है जैसे वन में जाड़े से ठिठुरता हुआ पुरुष अग्नि के लिए व्याकुल होकर उल्मुक पिशाच (अगिया वेताल) की ओर उसे आग समझकर दौड़ता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

क्वचित्क्वचिच्चशुरयोल्मुकग्रहमित्येतद्व्याचष्टे । क्वचिन्नाशेषाणां दोषाणां निषदनं स्थानं पुरीषविशेषमग्नेर्विष्ठा तस्य पुरीषस्येव लोहितो वर्णो यस्य रजोगुणस्य तेन निर्मिता तद्विषया मतिर्यस्य स सुवर्णमुपादातुमिच्छति । अग्निकामेन कातरः परवश उल्मुकसदृशं पिशाचमिव । शीतातुरो ह्यरण्येऽग्निवज्जाज्वल्यमानं ततस्ततो धावन्तमुल्मुकपिशाचमग्निबुद्ध्याऽनुधावति-नतु तं प्राप्नोति कथंचित्प्राप्तश्चेत्तर्हि तेन भक्षितः सन् म्रियते । एवं सुवर्णमनुधावन्नपीत्यर्थः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

तेरहवें अध्याय के **क्वचित्क्वचिदुल्मुक ग्रहम्० इत्यादि** श्लोक की व्याख्या करते हैं कभी-कभी वह सभी दोषों के आश्रय, अग्नि के मल के समान रक्तवर्ण वाले, रजोगुण से युक्त बुद्धि वाला होकर वह सुवर्ण को प्राप्त करना चाहता है । अग्नि की कामना से कातर बना हुआ वह उल्मुक (अगियावे ताल) के समान पिशाच के समान वह सर्दी से व्याकुल व्यक्ति जैसे वन में चमकने वाले इधर-उधर दौड़ता हुआ जैसे अगिया वेताल को अग्नि समझकर उसके पीछे दौड़ता रहता है उसको प्राप्त नहीं कर पाता है, यदि वह मिल भी जाय तो उसके द्वारा खाया जाकर मर जाता है । इसी तरह सुवर्ण के पीछे पागल रहने वाला व्यक्ति भी वह मर जाता है ।।७।।

अथ कदाचिन्निवासपानी यद्रविणाद्यनेकात्मोपजीवनाभिनिवेश एतस्यां संसाराटव्यामितस्ततः परिधावति॥८॥

अनुवाद— कभी वह इस शरीर को जीवित रखने वाले घर, अन्न, जल और धन आदि में अभिनिवेश करके इस संसार वन में इधर-उधर दौड़ता रहता है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

निवासतोयद्रविणेत्येतद्व्याचष्टे-अथेति निवासादिष्वनेकेष्वात्मन उपजीव्येष्वभिनिवेशो यस्य ।।८।।

भाव प्रकाशिका

निवासतोय० इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते हुए शुकदेवजी कहते हैं— आत्मा के उपजीव्य भूत निवास आदि अनेक वस्तुओं में अभिनिवेश होने के कारण वह इधर-उधर दौड़ता रहता है ।।८।।

क्वचिच्च वात्यौपम्यया प्रमदयारोहमारोपितस्तत्कालरजसा रजनीभूता इवासाधुमर्यादो रजस्वलाक्षोऽपि दिग्देवता अतिरजस्वलमतिर्न विजानाति ॥९॥

अनुवाद— कभी बवण्डर के समान कोई भी स्त्री उसको अपनी गोद में बैठा लेती है । तो तत्काल वह रागान्ध सा होकर सत्पुरुषों की मर्यादा का विचार भी नहीं करता है । उस रजोगुण की धूल आँखों में भर जाने के कारण उसकी बुद्धि इतनी मलिन हो जाती है कि वह दिग्देवताओं को भी भूल जाता है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

क्वचिच्च वात्योत्थितेत्येतद्व्याचष्टे-क्वचिच्चेति । आरोहमङ्कम् । तस्मिन्काले यद्रजो रागस्तेन स्वदृष्ट्यावरकेण रजन्यां रात्रौ भूता इव । ह्रस्वपाठे रजनीभूतस्तमोमय इवातीव रजसा छन्नमतिरत एव रजोव्याप्तचक्षुरिव दिक्षु स्थिता मर्यादातिक्रमसाक्षिभूता देवता न जानाति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

क्वचिच्चवात्योत्थित इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते हुए शुकदेवजी कहते हैं,की स्त्री ही वात्या के समान है । उसकी गोद में बैठ जाने पर उसमें जो राग उत्पन्न होता है वही उसकी दृष्टि को ढंक देता है । वह दिन में रात्रि जैसा समझने लगता है । ह्रस्वपाठ भेद होने पर अर्थ होगा । अन्धकारमय के ही समान रजोगुण से उसकी

बुद्धि ढँक जाती है । जैसे— उसके नेत्रों में धूल भर गयी हो मर्यादातिक्रमण रूप कर्म के साक्षी भूत दिग्देवताओं का भी ख्याल नहीं रखता है ।।९।।

क्वचित्सकृदवगतविषयवैतथ्यः स्वपराभिध्यानेन विभ्रंशितस्मृतिस्तयैव मरीचितोयप्रायांस्तानेवाभिधावति।।१०।।

अनुवाद— कभी-कभी अपने आप विषयों के मिथ्यत्व को जान लेने पर भी वह अनादि काल से रहने वाली देहात्मबुद्धि वाला वह विवेक के नष्ट हो जाने से मरुमरीचिका के समान विषयों की ओर पुनः दौड़ने लगता है ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

अनुपादेयमेवोपादेयतया गृह्णातीति प्रक्रमसाजात्यादुत्तरश्लोकचतुर्थपादं प्रथमं व्याचष्टे- क्कचित्सकृदिति । क्कचिदातपोदकनिभानित्यत्र मिथ्याविषयेषु लम्पटत्वमुक्तम् । निवासतोयेत्यत्र तदर्जनप्रयास उक्तः । अत्र तु बाधितेष्वपि पुनः प्रवृत्तिरुच्यत इत्यपौनरुक्त्यम् । स्वयमेव सकृदवगतं विषयाणां वैतथ्यं विफलत्वं येन । पराभिध्यानेन देहाभिनिवेशेन विभ्रंशिता स्मृतिर्यस्य । तयैव विभ्रंशितया स्मृत्या स्मृतिभ्रंशादेवेत्यर्थः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

अनुपादेय वस्तुओं को ही वह उपादेय रूप से जानने लगता है । एक समान होने के कारण तेरहवें अध्याय के पाँचवें श्लोक के चौथे पाद की व्याख्या करते हैं । कभी मृगमरीचिका के जल के समान मिथ्या विषयों का ही प्रेम बन जाता है । निवास जल इत्यादि के द्वारा इन सबों को अर्जित करने में होने वाले प्रयास को कहा गया है । यहाँ पर बाधित विषयों में ही पुनः होने वाली प्रवृत्ति का वर्णन किए जाने के कारण पुनरुक्ति दोष नहीं है। कभी अपने आप ही विषयों की व्यर्थता का ज्ञान होने पर भी परमात्म सङ्कल्प के कारण देहाभिमान के होने से उसकी वह बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । और उसी के कारण उसकी स्मृति का भी भ्रंश हो जाता है ।।१०।।

क्वचिदुलूकझिल्लीस्वनवदतिपरुषरभसाटोपं प्रत्यक्षं परोक्षं वा रिपुराजकुनिर्भर्त्सितेनातिव्यथितकर्णमूलहृदयः ।।११।।

अनुवाद— कभी प्रत्यक्ष शब्द करने वाले उल्लुओं के समान शत्रुओं की और परोक्ष रूप से बोलने वाले झिंगुरों के समान राजा के अतिकठोर हृदय को दहला देने वाली डाँट के कारण उसके कानों और हृदय में व्यथा हो जाती हैं ।।११।।

भावार्थ दीपिका

अदृश्यझिल्लीस्वनेत्येतद्याचष्टे-क्कचिदुलूकेति । अतिपरुषो रभस उत्साहस्तेनाटोपः संभ्रमो यथा भवत्येवं रिपूणां राजकुलस्य च निर्भर्त्सितेनातिव्यथितं कर्णमूलं हृदयं च यस्य ।।११।।

भाव प्रकाशिका

अदृश्य झिल्ली स्वन इत्यादि तेरहवें श्लोक की व्याख्या करते हैं- अत्यन्त परुष तथा उत्साह पूर्ण शत्रुओं और राजा की भयानक डाँट डपट की बातों को सुनकर उसके कान और हृदय व्यथित होने लगते हैं ।।११।।

स यदा दुग्धपूर्वसुकृतस्तदा कारस्करकाकतुण्डाद्यपुण्यद्रुमलताविषोदपानवदुभयार्थशून्यद्रविणान् जीवन्मृतान्स्वयं जीवन्म्रियमाण उपधावति ।।१२।।

अनुवाद— पूर्व जन्म के पुण्य के समाप्त हो जाने के कारण जीवित भी मूर्दे के समान हो जाता है । और वह उन कृपण पुरुषोंका आश्रयण कर लेता है जो कारस्कर और काकतुण्ड आदि विषैले फल वाले वृक्षों और ऐसी लताओं के समान है तथा उनका धन न तो लोक में काम आता है और न परलोक में काम आता है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

अपुण्यवृक्षानित्येतद्याचष्टे–स यदेति । दुग्धमुपभुक्तं पूर्वसुकृतं येन । तदा कारस्करो विषतिन्दुस्तत्प्रमुखा येऽपुण्यद्रुमास्तथाविधा लताश्च विषोदपानाश्च विषकूपास्तत्तुल्यान् दृष्टादृष्टप्रयोजनशून्यधनान् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

तेरहवें अध्याय के अपुण्य वृक्षान् इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते हैं । पूर्व पुण्यों के समाप्त हो जने पर वह विपन्न हो जाता है और जो विषतिन्दुक इत्यादि अपवित्र वृक्षों तथा वैसी लताओ और कुओं के समान उन कृपणों का आश्रय ग्रहण कर लेता है जिनका धन लौकिक पारलौकिक प्रयोजनों से रहित होता है ॥१२॥

एकदाऽसत्प्रसङ्गान्निकृतमतिर्व्युदकस्त्रोतःस्खलनवदुभयतोऽपि दुःखदं पाखण्डमभियाति ॥१३॥

अनुवाद— कभी असत् पुरुषों की सङ्गति से बुद्धि के विकृत हो जाने के कारण सूखी नदी में गिरकर दुःखी होने के समान लोक तथा परलोक में दुःख देने वाले पाखण्डों में फँस जाता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

क्वचिद्वितोयाः सरित इत्येतद्याचष्टे । एकदा क्वचिदसतां प्रसङ्गान्निकृता वञ्चिता मतिर्यस्य सः । निरुदकनदीगर्तपाते यथा सद्यः शिरः स्फुटति पश्चादपि तद्वेदनानुवर्तते एवमिह परत्र च दुःखदम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

तेरहवें अध्याय के **क्वचिद्वितोय० इत्यादि** श्लोक की व्याख्या करते है । कभी असत्पुरुषों की सङ्गति से बुद्धि के दूषित हो जाने पर सूखी नदी के गढे में गिरने पर शिर फूटने के समान दुःख देने वाले पाखण्ड में वह प्रवेश कर जाता है ॥१३॥

यदा तु परबाधयान्ध आत्मने नोपनमति तदा हि पितृपुत्रबर्हिष्मतः पितृपुत्रान्वा स खलु भक्षयति॥१४॥

अनुवाद— दूसरों को सताने से उसे अन्न भी नहीं मिलता है तो वह पिता या पुत्रों के पास यदि एक तृण भी देखता है तो वह उन सबों को मानो खा जाना चाहता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

परस्परं चालषते निरन्ध इत्येतद्याचष्टे- यदा त्विति । अन्धोऽन्नं नोपनमति नोपतिष्ठति । पितृपुत्राणां बर्हिः कुशस्तद्वतः। पितुः पुत्राणां वा कुशादितृणमात्रमपि येषु पश्यति तान्भक्षयति बाधत इत्यर्थः । पितृपुत्रबर्हिष्ठानिति तु पाठः सुगमः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

परस्परं चालषते निरन्धः इस श्लोक की व्याख्या करते हैं । जब उसको अन्न नहीं मिलता है तो वह अपने पिता या पुत्र के पास यदि तृण मात्र भी वस्तु देखता है तो मानो वह उन सबों को खा जाना चाहता है । पितृपुत्रबर्हिष्ठान् यह पाठ भेद सुगम हैं ॥१४॥

क्वचिदासाद्य गृह दाववत्प्रियार्थविधुरमसुखोदर्कं शोकाग्निना दह्यमानो भृशं निर्वेदमुपगच्छति ॥१५॥

अनुवाद— कभी दावाग्नि के समान प्रिय विषयों से रहित एवं दुःखद परिणाम वाले घर में जाता है तो वहाँ प्रियजनों के वियोग आदिसे वह शोकाग्नि से जलने लगता है और दुःखी होकर खिन्न हो जाता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

असाद्य दावमित्येतद्याचष्टे-क्वचिदासाद्येति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

आसाद्य दावम् इत्यादि श्लोक व्याख्या क्वचिदासाद्य इत्यादि से करते हैं ॥१५॥

क्वचित्कालविषमितराजकुलरक्षसापहृतप्रियतमधनासुः प्रमृतक इव विगतजीवलक्षण आस्ते ॥१६॥

अनुवाद— कभी काल के समान भयङ्कर राजकुल इसके प्राणप्रिय धन को छिन लेता है तो यह मरे हुए के समान हो जाता है । शूरै हृतस्वः की भी व्याख्या हो गयी ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

क्व च यक्षैर्हृतासुरित्येतद्याचष्टे । क्वचित्कालेन विषमितं प्रतिकूलतां नीतं यद्राजकुलं तदेव रक्षस्तेनापहृताः प्रियतमधनरूपा असबो यस्य । विगतानि जीवलक्षणानि हर्षादीनि यस्य । शूरैर्हृतस्व इत्यप्यनेनैव व्याख्यातम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

क्व च यक्षैर्हृतासुः इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते है समय के कारण प्रतिकूल बने राजकुल रूपी राक्षस से प्राणों के समान प्रियतम धन के हरलिए जाने पर वह मरे के समान हो जाता है ॥१६॥

कदाचिन्मनोरथोपगतपितृपितामहाद्यसत्सदिति स्वप्ननिर्वृतिलक्षणमनुभवति ॥१७॥

अनुवाद— कभी मनोरथ के पदार्थों के समान अत्यन्त असत् पिता पितामह आदि सबन्धों को सत्य समक्षकर उनके सहवास से क्षणिक सुख का अनुभव करता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

क्वचिञ्च गन्धर्वपुरं प्रविष्ट इत्येतद्व्याचष्टे । कदाचिन्मनोरथप्राप्तं पित्राद्यसदेव सदिति मत्वा पूर्वं गन्धर्वपुरवदघटमानदर्शनमुक्तमिदानीं तन्निमित्तसुखासक्तिरुच्यत इति भेदः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

क्वचिच्च गन्धर्व पुरं प्रविष्ट इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते हैं कभी मनोरथ प्राप्त पदार्थ के समान असत् पितृपिताह सत् मानकर उसकी पहले व्याख्या की गयी है, इस समय असत् पितृपितामह की आसक्ति से सुख की प्राप्ति कही जा रही है । अतएव दोनों में अन्त हैं ॥१७॥

क्वचिद्गृहाश्रमकर्मचोदनातिभरगिरिमारुरुक्षमाणो लोकव्यसनकर्शितमनाः कण्टकशर्कराक्षेत्रं प्रविशन्निव सीदति ॥१८॥

अनुवाद— गृहस्थाश्रम के लिए विहित कर्मों का अनुष्ठान पर्वत की चढ़ाई के समान कठिन है । लोगों को उस ओर प्रवृत देखकर स्वयं भी उसको पूरा करना चांहता है तो तब वह विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों के कारण काण्टों और कङ्कड़ों से भरी भूमि में पहुँचे हुए व्यक्ति के समान दुःखी होता है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

चलन् क्वचिदित्येतद्व्याचष्टे । क्वचिद्गृहाश्रमे याः कर्मचोदनास्तासामतिभरोऽतिविस्तारः स एव गिरिस्तमारुरुक्षंस्तदन्तं गन्तुमिच्छन् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

गृहाश्रम के लिए विहित विस्तृत कर्मों का पालन पर्वत की चढ़ाई के समान कठिन उसका पालन करने वाला वह कठिनाई के कारण काँटों और कङ्कड़ों से भरी भूमि में पहुँचे हुए पुरुष के समान दुःखी होता है ॥१८॥

क्वचिच्च दुःसहेन कायाभ्यन्तरवह्निना गृहीतसारः स्वकुटुम्बाय क्रुध्यति ॥१९॥

अनुवाद— कभी भूख की असह्य ज्वाला से घबराकर कुटुम्ब के लोगों पर ही क्रोध करता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

पदे पदेऽभ्यन्तरवह्निनेति व्याचष्टे-क्वचिच्च दुःसहेनेति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

पदे-पदेऽभ्यन्तर बह्निना श्लोक की व्याख्या क्वचिच्च दुःसहेन इस दण्डक से करते हैं ।।१९।।

स एव पुनर्निद्राजगरगृहीतोऽन्धे तमसि मग्नः शून्यारण्य इव शेते नान्यत्किंचन वेद शव इवापविद्धः।।२०।।

अनुवाद— जब वह निद्रारूपी अजगर के मुख में फँस जाता है तो वह अज्ञान रूप घोर अन्धकार में डूबकर सूने वन में फेंके गये मूर्दे के समान पड़ा रहता है । उस समय उसको किसी प्रकार का ज्ञान नहीं रहता है।२०।।

भावार्थ दीपिका

क्वचिन्निगीर्ण इत्येतद्व्याचष्टे स एवेति ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

क्वचिन्निगीर्ण इत्यादि श्लोक की व्याख्या स एव इत्यादि से किए है ।।२०।।

कदाचिद्भग्नमानदंष्ट्रो दुर्जनदन्दशूकैरलब्धनिद्राक्षणो व्यथितहृदयेनानुक्षीयमाणविज्ञानोऽन्धकूपेऽन्धवत्पततिच ।।२१।।

अनुवाद— कभी काटने वाले दुर्जन रूप जीव इतना तिरस्कार करते हैं कि इसका गर्व रूप दाँत, जिनसे यह दूसरों को दुःख देता था, टूट जाते हैं । तब इसको अशान्ति के कारण नींद भी नहीं आती है और मर्म वेदना के कारण प्रतिक्षण विवेक शक्ति क्षीण होने से अन्त में यह अन्धे के समान नरक रूप कुँए में गिर जाता है ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

दष्टः स्म शेते इति व्याचष्टे–कदाचिदिति । मानो गर्व एव दंष्ट्रा परपीडाकरत्वात्, भग्ना मानदंष्ट्रा यस्य । अतएव न लब्धो निद्रारयाः क्षणोऽपि येन ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

कदाचित इत्यादि इस दण्डक से **दष्टः स्मशेते इत्यादि** श्लोक की व्याख्या करते हैं । दूसरों को पीड़ित करने वाला गर्व रूपी दाँत उसका तब टूट जाता है जब दूर्जन उसका अत्यन्त तिरस्कार करते हैं । उसके कारण उसको रात्रि में नींद भी नहीं आती है ।।२१।।

कर्हिस्मचित्काममधुलवान्विचिन्वन्यदा परदारपरद्रव्याण्यवरुन्धानो राज्ञा स्वामिभिर्वा निहतः पतत्यपारे निरये ।।२२।।

अनुवाद— जब वह विषय रूप मधुकणों को ढूढते हुए किसी प्रकार पर स्त्री या परधन को ले लेना चाहता है, तब वह उसके स्वामी या राजा के हाथों मारा जाता है । और जाकर निस्सीम विस्तृत नरक में गिर पड़ता है ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

कर्हिस्मचित्क्षुद्ररसानित्येतद्या चिष्टे— कर्हिस्मचित्काममधुलवानिति । यदा निहतो भवति तदासद्य एव निरये पतति।।२२।।

भाव प्रकाशिका

कर्हिचित्क्षुदरसान् इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते हैं कभी काम रूप मधु के बाणों को प्राप्त करने के प्रयास में जब मारा जाता तो वह शीघ्र नरक में गिर पड़ता है ।।२२।।

अथ च तस्मादुभयथापि हि कर्मास्मिन्नात्मनः संसारावपनमुदाहरन्ति ॥२३॥

अनुवाद— इसी से कहते हैं कि प्रवृत्ति मार्ग में रहकर किए हुए लौकिक वैदिक दोनों प्रकार के कर्म जीव को संसार की ही प्राप्ति कराते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गात्प्रवृत्तस्य कर्मणः संसारहेतुत्वं स्फुटयति-अथ चेति । यस्मादेवं तस्मात् । अथ अनन्तरमेव । उभयथा इह च परत्र च । अस्मिन् प्रवृत्तिमार्गे । संसारस्यावपनं जन्मक्षेत्रं कर्मोदाहरन्ति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्गवशात् किए जाने वाले कर्मों के संसार हेतुत्व का वर्णन करते हुए चूकि ऐसी बात है अतएव इस प्रवृत्ति मार्ग में रहकर किए गये लौकिक एवं वैदिक दोनों प्रकार के कर्म संसार की प्राप्ति कराते हैं ॥२३॥

मुक्तस्ततो यदि बन्धाद्देवदत्त उपाच्छिनत्ति तस्मादपि विष्णुमित्र इत्यनवस्थितिः ॥२४॥

अनुवाद— यदि राजा आदि के बन्धन से मुक्त भी हो गये तो अन्याय पूर्वक अपहृत स्त्री आदि को देव्रदत नामक दूसरा व्यक्ति ले लेता है औरउससे विष्णु मित्र नामक तीसरा व्यक्ति लेता है । इस तरह भोग एक से दूसरे के पास जाते रहते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तत्रातिकृच्छ्रात्प्रतिलब्धमान इत्येतद्व्याचष्टे-मुक्त इति । यदि बन्धान्मुक्तो भवति तर्हि ततः सकाशादन्यो हरति तस्मादप्यन्यः न त्वसौ भोक्तुं लभत इत्यर्थः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

तत्राति कृछ्रात् प्रतिलब्धमान इत्यादि श्लोक की व्याख्या मुक्त इत्यादि से करते है । यदि राजा के बन्धन से मुक्त भी हो गये तो भी उस भोग के साधन को दूसरा ले लेता है और दूसरे तीसरा वह उसको भोग नहीं कर पाता है ॥२४॥

क्वचिच्च शीतवाताद्यनेकाधिदैविकभौतिकात्मीयानां दशानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरन्तचिन्तया विषण्ण आस्ते ॥२५॥

अनुवाद— कभी-कभी शीत तथा वायु आदि अनेक अधिभौतिक अधिदैविक अदि दु:खों का निवारण करने में असमर्थ होने के कारण चिन्तित होकर उदास हो जाता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

क्वचिच्च शीतातपेत्येतद्याचष्टे- क्वचिश्चेति । शीतादयोऽनेका आधिदैविकाद्या या दशा दु:खावस्थास्तासाम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

क्वचिच्च इत्यादि के द्वारा क्वचिच्च शीतातप इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते हैं । कभी शीत आतप इत्यादि आदि अधिदैविक आदि दु:खों का निवारण करने में असमर्थ हो जाता है ॥२५॥

क्वचिन्मिथो व्यवहरन्यत्किंचिद्धनमन्येभ्यो वा काकिणिकामात्रमप्यपहरन्यत्किंचिद्वा विद्वेषमेति वित्तशाठ्यात्॥२६॥

अनुवाद— यदि वह परस्पर में व्यवहार करते हुए वेइमानी से दूसरे का आत्यल्प भी धन वित्तशाठ्य के कारण ले लेता है तो उससे वैर हो जाता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

क्वचिन्मिथ इत्येतद्व्याचष्टे । क्वचिन्मिथो यत्किंचिद्धनं व्यवहरन्काकिणिकामात्रं विंशतिकपर्दकमात्रं ततोऽपि न्यूनं वा यत्किंचिदपहरन्विद्वेषमेति ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

क्वचिन्मिथ: की व्याख्या करते हुए कहते है कि परस्पर में व्यवहार करते हुए यदि बीस कौड़ी भर भी धन किसी का ले लेता है तो उसके कारण वैर हो जाता है ।।२६।।

अध्वन्यमुष्मिन्निम उपसर्गास्तथा सुखदु:खरागद्वेषभयाभिमानप्रमादोन्मादशोकमोहलोभमात्सर्येर्ष्यावमान-क्षुत्पिपासाधिव्याधिजन्मजरामरणादय:।।२७।।

अनुवाद— राजन् इस मार्ग में पूर्वोक्त विघ्नों के अतिरिक्त सुख, दु:ख, राग-द्वेष, भय, अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, अपमान, भूख, प्यास, आहित, व्याधि जन्म, जरा, मरण आदि भी अनेक विघ्न हैं ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

अध्वन्यमुष्मिन्नुरुकृच्छ्रवित्तबाधोपसर्गैरित्युक्तानुपसर्गान्प्रपञ्चयति । अध्वन्यमुष्मिन्निमे उरुकृच्छ्रवित्तबाधादयस्तथा सुखदु:खादयश्च ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

इस दण्डक में **अध्वन्यमुष्मिन्नुरुकृछ्र० इत्यादि** श्लोक में वर्णित उपद्रवों का वर्णन किया गया है इस भाग में ये बहुत अधिक कष्ट हैं धन वाधा इत्यादि ।।२७।।

विशेष भावार्थ दीपिका

व्युत्क्रमै: पुनरुक्तैश्च नानापाठैरत: परम् । दुर्गमोऽपि भवाध्वायं संप्रदायेन तीर्यते ।।१।। तत्र प्रसज्जति क्वापीत्यादिना सिंहावलोकनन्यायेनोक्तमर्थमपकृष्य क्रमेण व्याचष्टे—

भाव प्रकाशिका

अब इसके पश्चात् उलटे क्रम से तथा पुनरुक्तों के द्वारा इसके पश्चात् अनके पाठों के द्वारा इस दुर्गम संसार मार्ग का संम्प्रदायानुसार वर्णित किया जाता है । तत्र प्रसज्जति क्वापि इत्यादि के द्वारा सिंहावलोकन न्याय से वर्णित विषय को लेकर उसकी क्रमश: व्याख्या करते हैं ।

क्वापि देवमायया स्त्रिया भुजलतोपगूढ: प्रस्कन्नविवेकविज्ञानो यद्विहारगृहारम्भाकुलहृदयस्तदाश्रयावसक्त-सुतदुहितृकलत्रभाषितावलोकविचेष्टितापहृतहृदय आत्मानमजितात्माऽपारेऽन्धे तमसि प्रहिणोति ।।२८।।

अनुवाद— इस विघ्नों से भरे हुए संसार मार्ग में भटकने वाला जीव देवमाया रूपिणी स्त्री के बाहुपाश में पड़कर विवेकहीन हो जाता है । वह उसी के लिए विहार भवन बनवाने की चिन्ता से ग्रस्त हो जाता है । उसी के आश्रित रहने वाले पुत्र पुत्री और दूसरी स्त्रियों की मीठी बातों चितवन और चेष्टाओं में आसाक्त होकर उन्हीं में मन के आसक्त हो जाने के कारण वह इन्द्रियों का दास अपार अन्धकार नरकों में गिरता है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

क्वापि देवमाययेति । प्रस्कन्नमपगतं विवेकविज्ञानं यस्य । यस्या: स्त्रिया विहारगृहं क्रीडागृहं तदारम्भे आकुलं हृदयं यस्य । अनेन प्रसज्जतीति व्याख्यातम् । तदाश्रयेत्यादि व्याचष्टे । तस्या आश्रयेऽवसक्ता: संलग्ना: सुता दुहितरश्च कलत्रं च सैव स्त्री तेषां भाषितादिभिरपहृतं हृदयं यस्य । प्रहिणोति प्रक्षिपति ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

स्त्री के चक्कर में पड़ा हुआ जीव अपना विवेक खो देता है । वह उस स्त्री के क्रीडा गृह को बनवाने के लिए उसका हृदय व्याकुल हो जाता है । इसके द्वारा प्रसज्जति की व्याख्या की गयी । **तदाश्रय इत्यादि** की व्याख्या करते है । उसके आश्रय में रहने वाले पुत्र-पुत्री कलत्रतो वही स्त्री है । उन सबों की मीठी बोली में आसक्त हृदय वह जीव घोर अन्धकारमय नरक में गिर जाता है ।।२८।।

कदाचिदीश्वरस्य भगवतो विष्णोश्चक्रात्परमाण्वादिद्विपरार्धापवर्गकालोपलक्षणात्परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्मतृणस्तम्बादीनां भूतानामनिमिषतो मिषतां वित्रस्तहृदयस्तमेवेश्वरं कालचक्रनिजायुधं साक्षाद्भगवन्तं यज्ञपुरुषमनादृत्य पाखण्डदेवताः कङ्कगृध्रबकवटप्राया आर्यसमयपरिहृताः सांकेत्येनाभिधत्ते ।।२९।।

अनुवाद— कालचक्र साक्षात् भगवान् विष्णु का आयुध है । वह परमाणु से लेकर द्विपरार्ध पर्यन्त क्षण घटी आदि अवयवों से युक्त हैं । वह सदा सावधान रहकर घूमता रहता है । शीघ्रता से परिवर्तित होने वाले बाल्य यौवन अवस्थाएँ उसका ही वेग है । अपने वेग के द्वारा वह ब्रह्माजी से लेकर एक तृण पर्यन्त सभी भूतों का सदा संहार करता रहता है । उसकी गति में कोई बाधा नहीं डाल सकता है । उससे भयभीत होकर भी यह मन्दबुद्धि मानव जिनका यह काल चक्र है उन यज्ञ पुरुष की आराधना को छोड़कर पाखण्डियों के जाल में फँस जाता है उनके कङ्क, गिद्ध, बगुला तथा बटेर के समान आर्य शास्त्र बहिष्कृत देवताओं का आश्रय लेता है । उन देवताओं का वर्णन वेद बाह्य अप्रमाणिक आगमों में ही उल्लेख है ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

क्वचित्कदाचिद्धरिचक्रतस्त्रसन्नित्येतद्व्याचष्टे-कदाचिदीश्वरस्येति । परमाणुरादिः द्विपरार्धोऽपवर्गोऽन्तः तदेवोपलक्षणं यस्य तस्मात् । कालोपलक्षणादिति पृथक्पदत्वेन पाठे कालस्वरूपादित्यर्थः । रंहसा शीघ्रेण परिवर्तितेन परिभ्रमणेन वयसा बाल्यादिक्रमेण। ब्रह्माणमभिव्याप्य तृणस्तम्बादीनि भूतानि हरतश्चक्रतः सकाशाद्वित्रस्तहृदयः सन्पाखण्डदेवता । आभिमुख्येन धत्त इत्यन्वयः । अनिमिषतो निमेषमकुर्वतः, अप्रमत्तादित्यर्थः। । मिषतां प्रतिकर्तुमशक्तानामित्यर्थः । कर्मणि षष्ठ्यः । कालचक्रं निजं नित्यमायुधं यस्य । सांकेत्येन मूलप्रमाणशून्येन पाखण्डागमेन ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

इस दण्डक में क्वचित् का चिद्धरिचक्रतस्त्रसन् इत्यादि की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि जिसका आदि परमाणु है और अन्त द्विपरार्ध (मोक्ष) है उस काल से डरता हुआ वह जीव कालोपलक्षणात् यह अलग पद पाठ होने पर अर्थ होगा कि काल स्वरूपात् (कालस्वरूप काल चक्र से) बाल्य आदि क्रम से शीघ्रता से परिवर्तित होने वाली अवस्था द्वारा ब्रह्माजी से लेकर एक तृण पर्यन्त सभी भूतों को काल कवलित करने वाले कालचक्र से डरकर वह पाखण्ड देवता को अपना लेता है जिसका वर्णन अप्रामाणिक पाखण्ड आगम करते हैं उस पाखण्ड देवता के शरण में चला जाता है और श्रीभगवान् के शरण में नहीं जाता है ।।२९।।

यदा पाखण्डिभिरात्मवञ्चितैस्तैरुरु वञ्चितो ब्रह्मकुलं समावसंस्तेषां शीलमुपनयनादिश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानेन भगवतो यज्ञपुरुषस्याराधनमेव तदरोचयन् शूद्रकुलं भजते निगमाचारेऽशुद्धितो यस्य मिथुनीभावकुटुम्बभरणं यथा वानरजातेः ।।३०।।

अनुवाद— जो पाखण्डी स्वयं धोखे में हैं उन सबों के जाल में फँसकर जब यह दुःखी होता है तब ब्राह्मणों की शरण में जाता है किन्तु ब्राह्मणों के उपनयन संस्कार के पश्चात् श्रौत एवं स्मार्त कर्मों के अनुष्ठान से यज्ञ पुरुष की आराधना करना आदि आचार उसको अच्छा नहीं लगता है । तब वह वैदिक आचार के अनुसार अपने

में शुद्धि नहीं होने के कारण वह शूद्र कुल में प्रवेश कर जाता है। जिसका आचार वानरों के समान केवल कुटुम्ब पोषण और स्त्री सेवन होता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तैर्वञ्चित इत्येतद्व्याचष्टे- यदा त्विति। आत्मना वञ्चितैरुरु अधिकं वञ्चितः सन्। तेषां ब्राह्मणानां यच्छीलमुपनयनादि तदरोचयन् शूद्रवद्वर्तते। निगमोक्ताचारे अशुद्धितः स्वस्य शुद्ध्याभावात्। यस्य शूद्रस्य केवलं मिथुनीभावः कुटुम्बभरणं च व्यापारो नाग्निहोत्रादिः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

उस पाखण्डियों के द्वारा धोखा खाकर इत्यादि की व्याख्या करते हैं जो स्वयम् धोखे में हैं उन पाखण्डियों द्वारा अत्यधिक धोखा खाकर वह उन ब्राह्मणों की शरण में जाता है जिनका शील उपनयन आदि संस्कार आदि का पालन करना है किन्तु उसको ब्राह्मणों का यह आचरण अच्छा नहीं लगता है। वह अपने में वेदोक्त आचार का अभाव रूप अशुद्धि के कारण वह उन शूद्रों के वंश में प्रवेश कर जाता है जिनका आचार वानरों के समान अपने परिवार का पालन और स्त्री का सेवन है। वे अग्निहोत्रादि कर्मों को नहीं करते हैं ॥३०॥

तत्रापि निरवरोधः स्वैरेण विहरन्नतिकृपणबुद्धिरन्योन्यमुखनिरीक्षणादिना ग्राम्यकर्मणैव विस्मृतकालावधिः॥३१॥

अनुवाद— वहाँ स्वच्छन्द रूप से विहार करने के कारण उसकी बुद्धि असत्य दीन हो जाती है। वहाँ एक दूसरे का मुख देखना आदि विषय भोगों में फँसकर अपने मृत्यु काल को भी भूल जाता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तज्जातिरासेनेत्यादि व्याचष्टे। तत्रापि निरवरोधः प्रतिबन्धरहितः। स्वैरेण स्वेच्छया क्रीडन्विस्मृतमृत्युकालः सन्॥३१॥

भाव प्रकाशिका

तज्जातिरासेन इत्यादि की व्याख्या करते हैं उस शूद्रवंश में भी स्वच्छन्द विहार करता हुआ वह अपने मृत्युकाल को भी भूल जाता है ॥३१॥

क्वचिद्द्रुमवदैहिकार्थेषु गृहेषु रंस्यन्यथा वानरः सुतदारवत्सलो व्यवायक्षणः ॥३२॥

अनुवाद— वृक्षों के समान जिसका लौकिक सुख ही फल है उन गृहों में ही सुख का अनुभव करता हुआ वह वानरों के समान स्त्री पुत्रादि में आसक्त रहकर अनाचार समय मैथुनादि विषय भोगों में ही बिता देता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

द्रुमेषु रंस्यन्नित्येतद्व्याचष्टे-क्वचिद्द्रुमवदिति। व्यवायक्षणो मैथुनोत्सवो भवति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

क्वचित् इत्यादि से द्रुमेषु रंस्यन् इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते है। इस शूद्रकुय में तो आजीवन मैथुनोत्सव ही होता रहता है ॥३२॥

एवमध्वन्यवरुन्धानो मृत्युगजभयात्तमसि गिरिकन्दरप्राये ॥३३॥

अनुवाद— इस तरह प्रवृत्ति मार्ग में पड़कर सुख इत्यादि भोगते हुए यह जीव रोग रूप पर्वत कन्दरा में फँसकर उसमें रहने वाले हाथी के समान मृत्यु से डरता रहता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

क्वचित्प्रमादादित्येतद्व्याचष्टे । एवमध्वनि सुखदुःखाद्यवरुन्धानो गिरिकन्दरप्राये तमसि रोगाद्यापदि पततीति शेषः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

क्वचित्प्रमादात् इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते हैं इस तरह संसार मार्ग में सुख-दुःख इत्यादि से युक्त वह पर्वत की कन्दरा के समान रोग आदि आपत्तियां में पड़ जाता है ।।३३।।

क्वचिच्छीतवाताद्यनेकदैविकभौतिकात्मीयानां दुःखानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरन्तविषयविषण्ण आस्ते।।३४।।

अनुवाद— कभी तो वह शीत, वायु आदि अनेक प्रकार के आधिदैविक तथा आधिभौतिक आदि दुःखों की निवृत्ति में जब असमर्थ हो जाता है तो उस समय वह विभिन्न विषयों की चिन्ता से खिन्न हो जाता है।।३४।।

भावार्थ दीपिका

क्वचिच्छीतवातेत्यादिपूर्वस्मादधिकोक्तिः । रोगाद्यापदि पतितः सन् शीतादिभिः क्लिश्यन्नास्त इत्यर्थः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

कभी वह शीत, वायु इत्यादि पहले की अपेक्षा अधिक दुःखों को बतलाया गया है । रोग आदि से रुग्ण होकर वह शीत तथा वायु आदि से कष्ट का अनुभव करता है ।।३४।।

क्वचिन्मिथो व्यवहरन्यत्किंचिद्धनमुपयाति वित्तशाठ्येन ।।३५।।

अनुवाद— कभी आपस में क्रय-विक्रय आदि व्यापार करने पर कंजूसी करने के कारण उसे थोड़ा सा धन मिल जाता है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं सिंहावलोकनन्यायेनोक्तमर्थं यथास्थानमपकृष्य व्याख्याय क्रमस्थमनुवर्तयितुं पूर्वोक्तमेवानुवदति-क्वचिन्मिथ इति । वित्तशाठ्येन कदाचिद्यत्किंचिद्धनमुपयाति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार सिंहावलोकन न्याय से वर्णित अर्थ को उचित स्थान पर खींचकर व्याख्या करके क्रम ठीक करने के लिए अनुवाद करते हैं । कंजूसी के कारण कुछ धन प्राप्त कर लेता है ।।३५।।

क्वचित्क्षीणधनः शय्यासनाशनाद्युपभोगविहीनो यावदप्रतिलब्धमनोरथोपगतादानेऽवसितमतिस्ततस्ततोऽवमानादीनि जनादभिलभते ।।३६।।

अनुवाद— कभी धन क्षीण हो जाने से जब इसके पास सोने, बैठने और खाने आदि की भी कोई सामग्री नहीं रह जाती है तब यह उन सबों को चोरी आदि गल्त उपायों से प्राप्त करने का निश्चय करता है, इसके कारण इसे यत्र-तत्र दूसरों से बहुत अपमानित भी होना पड़ता है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

क्वचित्क्वचित्क्षीणधनस्त्वति व्याचष्टे-क्वचित्क्षीणधन इति । अप्रतिलब्धं यन्मनोरथेनोपगतं वाञ्छितं तस्यादाने स्वीकारे निश्चितमतिः सन् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

इस दण्डक से क्वचित्क्वचित्क्षीण धनः इत्यादि श्लोक की व्याख्या करते हैं । मनोरथ से अप्राप्त धन को प्राप्त करने के लिए चोरी आदि से प्राप्त करने का निश्चय करता है ॥३६॥

एवं वित्तव्यतिषङ्गविवृद्धवैरानुबन्धोऽपि पूर्ववासनया मिथ उद्वहत्यथापवहति ॥३७॥

अनुवाद— इस प्रकार धन की आसक्ति से परस्पर में वैर-भाव बढ़ जाने से भी यह पूर्व वासना के कारण आपस में विवाहादि सम्बन्ध को करता और छोड़ता रहता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

अन्योन्यवित्तव्यतिषङ्गेनेत्येतद्वयाचष्टे-एवं वित्तव्यतिषङ्गेति । अपवहति त्यजति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

अन्योऽन्यवित्तव्यतिषङ्गेन इत्यादि की व्याख्या इस दण्डक से किये हैं। अपवहति का अर्थ है छोड़ता है॥३७॥

एतस्मिन्संसाराध्वनि नानाक्लेशोपसर्गबाधित आपन्नविपन्नो यत्र यस्तमु ह वावेतरस्तत्र विसृज्य जातं जातमुपादाय शोचन्मुह्यन्बिभ्यद्विवदन् क्रन्दन्संहृष्यन्गायन्नह्यमानः साधुवर्जितो नैवावर्ततेऽद्यापि यत आरब्ध एष नरलोकसार्थो यमध्वनः पारमुपदिशन्ति ॥३८॥

अनुवाद— इस पर भी संसार मार्ग में चलने वाला जिस-जिस पर जहाँ विपत्ति आयी या कोई मर जाता है तो उसको वही छोड़कर और नए उत्पन्न हुओं को साथ लेकर आगे बढ़ जाता है । कभी तो किसी के लिए शोक करता तो किसी के लिए मूर्छित हो जाता है, किसी का वियोग होने की आशङ्का से भयभीत हो जाता है, वह किसी से झगड़ा करता है । अपने पर विपत्ति आने पर रोता है । कभी प्रसन्न होता है तो कभी गाने लग जाता है । कभी उन्हीं के लिए बँध जाता है । साधुजनों से रहित इसके पास साधुजन आते भी नहीं है । इस प्रकार आगे बढ़ता हुआ उसने जहाँ से यात्राा प्रारम्भ की थी जिसे इस मार्ग का अन्त कहते है । उस परमात्मा के पास यह नहीं लौटता है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

अध्वन्यमुष्मिन्नित्यादि व्याचष्टे-एतस्मिन्निति । आपन्न आपदं प्राप्तः विपन्नो विनष्टो वा यत्र यस्तमितरस्तत्र विसृज्य । नह्यमानो बध्यमानः । साधुवर्जितः साधुव्यतिरिक्तः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

अध्वन्यमुष्मिन् की व्याख्या करते हैं । इस संसार मार्ग में जिस पर जहाँ विपत्ति आती है अथवा जो जहाँ मर जाता है उसको वही छोड़कर आगे बढ़ जाता है **न ह्यमानः** का अर्थ है बँध जाता है । साधुवर्जितः अर्थात् साधु जनों से रहित ॥३८॥

यदिदं योगानुशासनं न वा एतदवरुन्धते यन्न्यस्तदण्डा मुनय उपशमशीला उपरतात्मानः समवगच्छन्ति॥३९॥

अनुवाद— परमात्मा पर्यन्त योग शास्त्र की भी गति नहीं है, जिन लोगों ने दण्ड का परित्याग कर दिया है वे निवृत्ति परायण संयतात्मा मुनिजन ही परमात्मा को प्राप्त कर पाते हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

अनावृत्तौ हेतुमाह-यदिदमिति ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

मुक्ति के साधन को इस दण्डक में बतलाया गया है ।।३९।।

यदपि दिग्भिजयिनो यज्विनो ये वै राजर्षयः किंतु परं मृधे शयीरन्नस्यामेव ममेयमिति कृतवैरानुबन्धा यां विसृज्य स्वयमुपसंहृताः ।।४०।।

अनुवाद— जो दिग्गजों को जीतने वाले और बड़े-बड़े यज्ञों को करने वाले राजर्षि हैं वे संग्राम में शत्रुओं का सामना करके केवल प्राण परित्याग करते है और यह पृथिवी मेरी है, यह कहकर जो वैर करते हैं वे अपना शरीर पृथिवी पर ही छोड़कर परलोक चले जाते हैं वे इस संसार से पार नहीं जाते हैं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

मनस्विन इत्यादि व्याचष्टे-यदपीति । ये वै राजर्षयस्तेऽपि नावरुन्धते किंतु परं केवलं मृधे शयीरन् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

इस दण्डक में मनस्विनः इत्यादि की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि राजर्षिगण भी परमात्मा को नहीं प्राप्त कर पाते वे केवल युद्ध में मारे जाते हैं ।।४०।।

कर्मवल्लीमवलम्ब्य तत आपदः कथंचिन्नरकाद्विमुक्तः पुनरप्येवं संसाराध्वनि वर्तमानो नरलोकसार्थमुपयाति एवमुपरिगतोऽपि ।।४१।।

अनुवाद— अपने पुण्यकर्म रूपी लता का आश्रय लेकर जीव किसी प्रकार इन आपत्तियों अथवा नरक से बच भी जाता है तो फिर इस संसार मार्ग में भटकता हुआ जन समुदाय में मिल जाता है यही दशा स्वर्ग आदि ऊपर के लोकों में जाने वालों की होती हैं ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

प्रसज्जतीत्यादि गिरिकन्दर इत्यन्तमपकृष्य व्याख्यातं, ग्रन्यमतिक्रम्य वल्लीं गृहीत्वेत्यादिग्रन्थं व्याचष्टे-कर्मवल्लीमिति। एवमुपरि स्वर्गं गतोऽपि नरलोकसार्थमेवोपयाति ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

प्रसज्जति से लेकर गिरिकन्दरे पर्यन्त जिसकी व्याख्या की गयी है उस ग्रन्थ को लांघकर बल्लीं गृहित्वा की व्याख्या इस दण्डक में की गयी है । स्वर्ग में जाने वाले भी मनुष्यों के साथ आकर मिल जाते हैं ।।४१।।

तस्येदमुपगायन्ति ।
आर्षभस्येह राजर्षेर्मनसापि महात्मनः । नानुवर्त्मार्हति नृपो मक्षिकेव गरुत्मतः ।।४२।।

अन्वयः— गरुत्मतः मक्षिकेव आर्षभस्य, राजर्षेः महात्मनः अन्द वर्तस इह नृपः नार्हति ।।४२।।

अनुवाद— राजन् ! राजर्षि भरतजी के विषय में पण्डितजन ऐसा कहते हैं । जैसे गरुड़ की होड़ कोई मक्खी नहीं कर सकती है उसी तरह राजर्षि महात्मा भरतजी के मार्ग का अनुसरण कोई राजा नहीं कर सकता है ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं भरतोक्तिं व्याख्याय तच्चरितसंग्रहश्लोकानाह । तस्येदं कर्म श्लोकैरुपगायन्ति । आर्षभस्य ऋषभपुत्रस्य अन्यो नृपोऽनुवर्त्मनार्हति वर्त्मानुगन्तुं शक्नोति ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से भरतजी की उक्तियों की व्याख्या करके उनके चरित का वर्णन करते हैं राजर्षि भरत के चरित का लोग गायन करते हैं, ऋषभदेवजी के पुत्र भरतजी के मार्ग का अनुरण दूसरे राजा नहीं कर सकते हैं ।।४२।।

यो दुस्त्यजान्दारसुतान्सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः । जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालसः ।।४३।।

अन्वयः— युवैव यः दुस्त्यजान् दारसुतान् सुहृद राज्यं हृदिस्पृर्शः उत्तमश्लोकलालसः मलवत् जहौ ।।४३।।

अनुवाद— युवावस्था में ही जिनको त्यागना कठिन है उन हृदयस्पर्शी पत्नी, पुत्र, मित्र, राज्य आदि का जिन्होंने पवित्रीकृत श्रीभगवान् को प्राप्त करने के लिए विष्ठा के समान त्याग दिया ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुमाह-य इति । सुहृद्राज्ययोर्द्वन्द्वैक्यम् । यो दुस्त्यजान्दारादीन्विष्ठामिव जहौ तस्यार्षभस्येति संबन्धः । दुस्त्यजत्वे हेतुः-हृदिस्पृशो मनोज्ञान् त्यागे हेतुः- उत्तमश्लोके लालसा लम्पटत्वं यस्य ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

भरतजी के मार्ग का अनुसरण नहीं करने का कारण है कि उन्होंने दुस्त्यज पत्नी इत्यादि का उसी प्रकार त्याग कर दिया जैसे कोई मल का परित्याग कर देता है । सुहृत तथा राज्य दोनों में द्वन्द्व समास होने के कारण एकवद्भाव है । इन सबों के दुस्त्यज होने का कारण यह था कि पत्नी इत्यादि अत्यन्त मनोहर थे । त्याग का कारण है कि उनकी लालसा थी की मैं परमात्मा को प्राप्त कर लूँ ।।४३।।

यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान्प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम् ।
नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट्सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ।।४४।।

अन्वयः— यो नृपः दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान् सुरवरैः प्रार्थ्यां सदयावलोकाम् नैच्छत् तदुचितम् मधुद्विटसेवानुरक्तमनसां महतां अभवोऽपि फल्गुः ।।४४।।

अनुवाद— जिन्होंने अत्यन्त दुस्त्यज, पृथिवी, पुत्र, स्वजन् सम्पत्ति और स्त्री की तथा जिसके लिए बड़े-बड़े देवता भी लालायित रहते हैं किन्तु वे उनको सदादेखती रहती थी उन लक्ष्मीजी को भी त्याग दिया, यह सब उनके लिए उचित ही था क्योंकि जिन महापुरुषों का मन श्रीभगवान् की सेवा में अनुरक्त हो जाता है उनके लिए मुक्ति भी तुच्छ है ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

तस्यैवं विषयत्यागो न चित्रमित्याह । य एवंभूतोऽसौ नृपः स क्षित्यादीन्नैच्छदिति यत्तदुचितम् । सदयावलोकां भरतस्य दया यथा भवत्येवमवलोको यस्या इति परिजनावलोकः श्रियामुपचर्यते । यतो मधुद्विषः सेवायामनुरक्तं मनो येषां तेषां महतामभवो मोक्षोऽपि फल्गुस्तुच्छ एव ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

उनके द्वारा सांसारिक विषयों का त्याग कोई आश्चर्य नहीं हैं । इस बात को उस श्लोक में कहा गया है। इस प्रकार के वे राजा पृथिवी आदि को जो नहीं चाहे वह उचित ही है । लक्ष्मी चाहती थीं कि भरतजी मुझको चाहें, इस तरह से परजनों के समान लक्ष्मीजी का उपचार किया गया है । क्योंकि जिन लोगों का मन श्रीभगवान् की सेवा में लग गया है उनके लिए तो मुक्ति भी तुच्छ है ।।४४।।

यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय योगाय सांख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय ।
नारायणाय हरये नम इत्युद्वारं हास्यन्मृगत्वमपि यः समुदाजहार ॥४५॥

अन्वयः— यः मृगत्वमपि हास्यन् इति उदारं समुदाजहार यज्ञाय धर्मपतये, विधिनैपुणाय योगाय सांख्यशिसे, प्रकृतीश्वराय हरये नारायणाय नमः ।।४५।।

अनुवाद— जो भरत मृग शरीर का परित्याग करते समय जोर से कहे थे धर्म की रक्षा करने वाले, धर्मानुष्ठान में निपुण योग जन्य सांख्यप्रतिपाद्य, प्रकृति के स्वामी यज्ञमूर्ति सर्वान्तर्यामी श्रीहरि भगवान् नारायण को नमस्कार है ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

तस्य सेवानुरागमेवाह-यज्ञायेति । यज्ञरूपाय धर्मपतये यज्ञादिफलदात्रे । विधौ नैपुण्यं यस्य तस्मै धर्मानुष्ठात्रे । योगोऽष्टाङ्गस्तस्मै । सांख्यं ज्ञानं तच्छिरः प्रधानं फलं यस्य तस्मै । योगाय प्रकृतीश्वराय मायानियन्त्रे । अतएव नारं जीवसमूहः सोऽयनमाश्रयो यस्य सर्वजीवनियन्त्रे । एवं कर्मज्ञानदेवताकाण्डैः प्रतिपादिताय हरये नम इत्युदारमुच्चैर्यः सम्यगुच्चारितवान्। मृगत्वं मृगदेहमपि हास्यन् त्यक्ष्यन् । य एवंभूतस्तस्य तदुचितमिति वा तस्यानुवर्त्मनाऽर्हतीति वा संबन्धः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

भरतजी की श्रीभगवान् की सेवा का अनुराग इस श्लोक में वर्णित है । यज्ञ स्वरूप, धर्म के स्वामी अर्थात् यज्ञ आदि के फल को प्रदान करने वाले, धर्मानुष्ठानकर्ता, अष्टाङ्गयोग स्वरूप, सांख्य प्रतिपाद्य योग स्वरूप प्रकृति का भी नियमन करने वाले (मायापति) सभी जीवों के नियामक एवं कर्मकाण्ड ज्ञान काण्ड एवं देवता काण्ड में प्रतिपादित श्रीहरि को नमस्कार है । इस तरह मृग शरीर का परित्याग करते समय जिन्होंने जोर से कहा ऐसे भरतजी का राज्यादि त्याग उचित ही था, अथवा कोई भी उनके मार्ग का अनुगमन नहीं कर सकता है ।।४५।।

य इदं भागवत सभाजितावदातगुणकर्मणो राजर्षेर्भरतस्यानुचरितं स्वस्त्ययनमायुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यापवर्ग्यं वाऽनुश्रृणोत्याख्यास्यत्यभिनन्दति च सर्वा एवाशिष आत्मन आशास्ते न कांचन परत इति॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भरतोपाख्याने पारोक्ष्यविवरणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

अनुवाद— राजर्षि भरत के गुणों एवं कर्मों की प्रशंसा भक्तजन भी किया करते हैं, उनका यह चरित कल्याणकारी आयु एवं धन को बढ़ाने वालाऔर सुयश को बढ़ाने वाला है । अन्त में यह स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला है । जो पुरुष इसको सुनता या सुनाता है या इसका अभिनन्दन करता है, उसकी सारी कामनाएँ अपने आप पूर्ण हो जाती हैं । उसको दूसरों से कुछ भी नहीं माँगना पड़ता है ।।४६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

भरतचरितश्रवणादिफलमाह-य इदमिति । भागवतैः सभाजिता अवदाताः शुद्धा गुणाः कर्माणि च यस्य तस्य भरतस्यानुचरितं योऽनुश्रृणोति स आत्मन एवं सकाशात्सर्वा आशिष आशास्ते स्वत एव प्राप्नोति नतु कांचिदपि परस्मादपेक्षत इत्यर्थः ।।४६।।

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां चतर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

इस दण्डक में भरत चरित के श्रवण आदि का फल बतलाया गया है । भरत चरित भगवद् भक्तों द्वारा प्रशंसित है । शुद्ध गुण एवं कर्मों को करने वाले भरतजी के चरित जो श्रवण करता है उसकी अपने आप ही सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं वह दूसरों से कोई भी अपेक्षा नहीं करता है ॥४६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के भाव प्रकाशिका टीका के चौदहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१४।।

पन्द्रहवाँ अध्याय

भरतजी के वंश का वर्णन

श्रीशुक उवाच

भरतस्यात्मजः सुमतिर्नामाभिहितो यमु ह वाव केचित्पाखण्डिन ऋषभपदवीमनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमाम्नातां देवतां स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यन्ति ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन ! भरतजी के पुत्र का नाम सुमति था । उसने ऋषभदेव जी के मार्ग का अनुसरण किया। इसलिए कलियुग में बहुत से पाखण्डी अनार्य उसको वेद विरुद्ध कल्पना करके देवता मानने लगेंगे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एवमष्टभिरध्यायैर्भरतस्योक्तमीहितम् । ततः पञ्चदशे तस्य कीर्त्यन्ते वंशजा नृपाः ॥१॥ ऋषभपदवीं जीवन्मुक्तमार्गमनुवर्तमानं यं दृष्ट्वेति शेषः । यद्वा यं सुमतिमवेदसमाम्नातां देवतां कल्पयिष्यन्ति बुद्धोऽयं साक्षादवतीर्ण इति मंस्यन्त इत्यर्थः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह आठ अध्यायों में भरतजी की उक्ति का वर्णन किया गया अब पन्द्रहवें अध्याय में भरतजी के वंशजों का वर्णन किया जाता है । सुमति को ऋषभदेव के जीवन्मुक्त मार्ग का अनुगमन करने वाला देखकर, अथवा जिस सुमति को वेद विरुद्ध देवता की कल्पना करेंगे । वे अनार्य पुरुष मानेगें कि सुमति के रूप में साक्षात् बुद्ध ही अवतीर्ण हुए हैं॥१॥

तस्माद्वृद्धसेनायां देवताजिन्नाम पुत्रोऽभवत् ॥२॥

अनुवाद— सुमति की वृद्ध सेना नामक पत्नी के गर्भ से देवताजित नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

अथासुर्यां तत्तनयो देवद्युम्नस्ततो धेनुमत्यां सुतः परमेष्ठी तस्य सुवर्चलायां प्रतीह उपजातः ॥३॥

अनुवाद— देवताजित् के आसुरी नामक पत्नी के गर्भ से देवद्युम्न, देवद्युम्न की धेनुमति नामक पत्नी के गर्भ से परमेष्ठी और उसका सुवर्चला के गर्म से प्रतीह नामक पुत्र उत्पनत्र हुआ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्तनयो देवताजितः पुत्रः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

देवताजित का पुत्र देवद्युम्न था ॥३॥

य आत्मविद्यामाख्याय स्वयं संशुद्धो महापुरुषमनुसस्मार ॥४॥

अनुवाद— प्रतीह अन्य पुरुषों को आत्मविद्या का उपदेश करके स्वयं शुदचित्त होकर परमपुरुष श्रीभगवान् का साक्षात् अनुभव किया ॥४॥

भावार्थ दीपिका

आत्मविद्यां बहुभ्य आख्याय व्याख्यानेनैव स्वयं संशुद्धोऽनुसस्मार अपरोक्षतयानुभूतवान् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

अनेक पुरुषों को आत्म विद्या का उपदेश देकर स्वयं शुद्ध चित्त वाला वह परम पुरुष परमात्मा का साक्षात्कार किया था ॥४॥

प्रतीहात्सुवर्चलायां प्रतिहर्त्रादयस्त्रय आसन्निज्याकोविदाः सूनवः प्रतिहर्तुः स्तुत्यामजभूमानावजनिषाताम्॥५॥

अनुवाद— प्रतीह की पत्नी सुवर्चला के गर्भ से, प्रतिहर्ता, प्रस्तोता और उद्गाता नामक तीन पुत्र हुए । ये यज्ञादि कर्म में बहुत निपुण थे प्रतिहर्ता की पत्नी स्तुति थी उसके गर्भ से अज और भूमा नामक पुत्र हुए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिहर्ता प्रस्तोता उद्गोतेति त्रयो यज्ञनिपुणाः सूनव आसन् । अजनिषातां जातौ ॥५॥

भाव प्रकाशिका

प्रतीत के तीन पुत्र हुए प्रतिहर्ता, प्रस्तोता और उद्गाता । ये तीन यज्ञ कर्म में निपुण थे । अजनिषाताम् अर्थात् उत्पन्न हुए ॥५॥

भूम्न ऋषिकुल्यायामुद्गीथस्ततः प्रस्तावो देवकुल्यायां प्रस्तावान्नियुत्सायां हृदयज आसीद्विभुर्विभो रत्यां च पृथुषेणस्तस्मान्नक्त आकूत्यां जज्ञे नक्ताद्द्रुतिपुत्रो गयो राजर्षिप्रवर उदारश्रवा अजायत साक्षाद्भगवतो विष्णोर्जगद्रिरक्षिषया गृहीतसत्त्वस्य कलात्मवत्त्वादिलक्षणेन महापुरुषतां प्राप्ताः ॥६॥

अनुवाद— भूमा की ऋषिकुल्या पत्नी से उद्गीथ उत्पन्न हुए उद्गीथ की पत्नी देवकुल्या से प्रस्ताव उत्पन्न हुए। प्रस्ताव के नियुत्सा नाम की पत्नी से विभु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । विभु की पत्नी रति के गर्भ से पृथषेण उत्पन्न हुए, पृथुषेण की पत्नी आकूति के गर्भ से नक्त उत्पन्न हुए । नक्त की पत्नी द्रुति के गर्भ से उदार कीर्ति राजर्षि प्रवर गय का जन्म हुआ । ये जगत् की रक्षा के लिए सत्त्वगुण को स्वीकार करने वाले साक्षात् भगवान् विष्णु के अंश माने जाते थे । संयम आदि अनेक गुणों के कारण इनकी महापुरुषों में गणना की जाती हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

हृदयजः पुत्रः । जगतो रिरक्षिषया रक्षितुमिच्छया गृहीतं सत्त्वं येन तस्य विष्णोः कलांशः सन् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

मूल के हृदयजः का अर्थ पुत्र है । महाराज जगत् की रक्षा करने की इच्छा से सत्त्वगुण को स्वीकार किया। उसके कारण उनको भगवान् विष्णु की कला माना जाता है ॥६॥

स वै स्वधर्मेण प्रजापालनपोषणप्रीणनोपलालनानुशासनलक्षणेनेज्यादिना च भगवति महापुरुषे परावरे ब्रह्मणि सर्वात्मनार्पितपरमार्थलक्षणेन ब्रह्मविच्चरणानुसेवयापादितभगवद्भक्तियोगेन चाभीक्ष्णशः

परिभावितातिशुद्धमतिरुपरतानात्म्य आत्मनि स्वयमुपलभ्यमानब्रह्मात्मानुभवोऽपि निरभिमान एवावनिजजूगुपत् ॥७॥

अनुवाद— गय प्रजा के पालन पोषण, प्रीणन, लालन तथा अनुशासन के द्वारा और यज्ञ आदि करके निष्काम भाव से केवल भगवान् की प्रसन्नता के लिए अपने धर्म का आचरण किए । इसके कारण उनके सभी कर्म परम पुरुष श्रीहरि को अर्पित होकर परमार्थ रूप बन गये । इससे तथा ब्रह्मज्ञानी पुरुषों के चरणों की सेवा से उनको भक्ति योग की प्राप्ति हुई । तदनन्तर निरन्तर भगवच्चिन्तन करके इन्होंने अपने अन्त:करण को शुद्ध किया तथा देहादि अनात्म वस्तुओं से अहन्त्व को हटाकर वे अपनी आत्मा को ब्रह्म रूप से अनुभव करने लगे। यह सब कुछ होने पर भी ये पृथिवी का पालन करते रहे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

महापुरुषत्वमेवाह-स वै इति । धर्मस्तस्य द्विविध:-अभिषिक्तत्वात्प्रजापालनादिरेक:, गृहस्थत्वादिज्यादिश्चापर: । द्विविधोऽपि भगवति सर्वात्मनार्पित: सन् परमार्थलक्षणस्तेन परिभाविता संस्कृताऽतिशुद्धा मतिर्यस्य । अतएवोपरतमनात्म्यदेहाद्यहंभावो यस्मिंस्तस्मिन्नात्मनि चित्ते स्वयमेवोपलभ्यमाने ब्रह्मण्यात्मानुभवो यस्य तादृशोऽपि निरभिमान एवावनिमजूगुपत् पालयामास।।७।।

भाव प्रकाशिका

स वै इत्यादि से उनके महापुरुषत्व का वर्णन करते हैं उनको दो प्रकार के धर्म थे । राज्याभिषिक्त होने के कारण प्रजापालन और दूसरा गृहस्थ होने के कारण यज्ञादि का अनुष्ठान । इन दोनों प्रकार के कर्मों को इन्होंने परमात्मा को समर्पित कर दिया था । इस परमार्थ रूप कर्म के कारण उनकी बुद्धि शुद्ध हो गयी थी । इसीलिए वे अनात्मादेहादि में आत्मभाव रहित हो गये थे । ऐसी अपने आत्मा में वे ब्रह्मभाव का अनुभव करने लग गये थे । ऐसा होने पर भी निरभिमन रहकर उन्होंने पृथिवी का पालन किया ॥७॥

तस्येमां गाथां पाण्डवेय पुराविद उपगायन्ति ॥८॥

अनुवाद— परीक्षित् इतिहासूत महात्मा उनके विषय में यह गाथा गाते हैं ॥८॥

गयं नृप: क: प्रतियाति कर्मभिर्यज्वाभिमानी बहुविद्धर्मगोप्ता ।
समागतश्री: सदसस्पति: सतां सत्सेवकोऽन्यो भगवत्कलामृते ॥९॥

अन्वय:— क: नृप: कर्मभि: गयं प्रतियाति । भगवत् कलाम् ऋते क: अन्य: यज्वाभिमानी, बहुवित्, धर्मगोप्ता, समागतश्री:, सदसस्पति: सतां सत्सेवक: ।।९।।

अनुवाद— कौन राजा अपने कर्मों से महाराज गय की बराबरी कर सकता है । वे भगवान् की कला थे उनको छोड़कर कौन दूसरे यज्ञों का विधिवत् अनुष्ठान करने वाला मनस्वी बहुज्ञ, धर्म रक्षक, लक्ष्मी का प्रियपात्र, साधु समाज शिरोमणि, और सत्पुरुषों का सच्चा सेवक कौन हो सकता है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

कर्मभिर्गवं क: प्रतियात्यानुकरोति न कोऽपि । अत्र हेतु:-यज्वादिरूपो भगवत्कलां गयमृतेऽन्य: क इत्यनुषङ्ग: । अभिमानी सर्वतो मानास्पदं मनस्वीति वा । समागता संप्राप्ता श्रीर्येन यमिति वा । सतां सदस: सभाया: पति: सतां सेवक:। यद्वा यज्वादिरूपोऽपि भगवत्कलामृते गयं कोऽन्य: प्रतियातीत्यन्वय: ।।९।।

भाव प्रकाशिका

कौन राजा अपने कर्मों से गय का अनुसरण कर सकता है ? कोई नहीं । उसका कारण है यज्ञों का विधिवत्

अनुष्ठान करने वाला भगवान् की कला गय को छोड़कर कौन मनस्वी, लक्ष्मी का प्रियपात्र साधु शिरोमणि सज्जनों का सेवक। अथवा यज्ञाभिमानी भी भगवत् कला को छोड़कर गय का अनुसरण दूसरा कौन कर सकता है ॥९॥

यमभ्यषिञ्चन्परया मुदा सतीः सत्याशिषो दक्षकन्याः सरिद्भिः ।
यस्य प्रजानां दुदुहे धराशिषो निराशिषो गुणवत्सस्नुतोधाः ॥१०॥

अन्वयः— यम् सत्याशिषः दक्ष कन्याः सतीः सरिद्भि परया मुदाः अभ्यषिञ्चन् निराशिषोऽपि यस्य प्रजानां धराशिषः गुणवत् सस्नुतोधाः दुदुहे ॥१०॥

अनुवाद— सत्य संकल्प वाली परम साध्वी श्रद्धा, मैत्री आदि दक्ष कन्या ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक गङ्गादि नदियाँ के साथ उनका अभिषेक किया था, तथा उनकी इच्छा नहीं रहने पर भी पृथिवी उनके गुणों पर प्रसन्न होकर जिस प्रकार गौ बछड़े पर स्नेह के कारण दुग्ध क्षरणकरती है उसी तरह प्रजाओं को सभी अभीष्ट पदार्थों को प्रदान की थी ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

सतीः सत्यः । सत्या आशिषो यासां ताः । दक्षकन्याः श्रद्धा मैत्री दयेत्याद्याः । निराशिषोऽपि यस्य प्रजानामाशिषः कामान् धरा दुदुहे । तस्य गुणा एव वत्सस्तेन स्नुतमूधो यस्याः पृथिव्याः । यच्छब्दानां तं गयं कः प्रतियातीति संबन्धः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

सत्य संङ्कल्प वाली परम साध्वी दक्ष कन्याएँ दया मैत्री आदि ने जिनका परम प्रसन्नता के साथ अभिषेक किया था । नहीं चाहने पर भी जिनकी प्रजाओं की कामनाओं को पूर्ण करती थी । महाराज गय के गुण ही वत्स स्थानी थे जिनके स्नेह के कारण पृथिवी रूपी गौ सभी अभीष्ट पदार्थों को प्रदान करती थी उन गयकी बराबरी कौन कर सकता है ॥१०॥

छन्दांस्यकामस्य च यस्य कामान्दुदूहुराजह्रुरथो बलिं नृपाः ।
प्रतयञ्चिता युधि धर्मेण विप्रा यदाशिषां षष्ठमंशं परेत्य ॥११॥

अन्वयः— अकामस्य यस्य छन्दांसि कामानदुदुहुः अथो युधि प्रत्यञ्चिताः नृपाः विप्राः धर्मेण यदाशिषां परेत्य षष्ठमंशं आजह्रुः ॥११॥

अनुवाद— इच्छा नहीं होने पर भी वेदोक्त कर्मों ने उनको सब प्रकार के भोग प्रदान किया, युद्ध में बाणों से सत्कृत होकर राजाओं ने उनको उपहार प्रदान किया और राजा के धर्म से संतुष्ट होकर ब्राह्मणों ने परलोक में प्राप्त होने वाले अपने धर्म फल का छठा अंश प्रदान किया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

छन्दांसि वेदास्तद्विहितकर्माणि च । दुदूहुर्दुदुहुः । युधि प्रत्यञ्चिताबाणैः प्रतिपूजिता नृपा यस्य बलिमाजह्रुरर्पयामासुः। धर्मेण पालनेन दक्षिणादिभिश्च यदा प्रत्यञ्चिता विप्रास्तदा परेत्य लोकान्तरे आशिषां धर्मफलानां षष्ठमंशमाजहुः । 'पुण्यषड्भागमादत्ते न्यायेन परिपालयन्' इति स्मृतेः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

वेद और वेद विहित कर्मो ने उनके नहीं चाहने पर भी उनको सभी प्रकार के भोग प्रदान किए युद्ध में बाणों से सत्कृत राजाओं ने उनको उपहार प्रदान किया और ब्राह्मणों ने उनको परलोक में प्राप्त होने वाले अपने धर्म फल के छठे अंश को प्रदान किया स्मृति भी कहती है— **पुण्यषड्भागमादते धर्मेण प्रतिपालयन्** । अर्थात् धर्म पूर्वक पालन करने वाला राज प्रजाओं के पुण्य के छठे भाग को प्राप्त करता है ॥११॥

यस्याध्वरे भगवानध्वरात्मा मघोनि माद्यत्युरुसोमपीथे ।
श्रद्धाविशुद्धाचलभक्तियोगसमर्पितेज्याफलमाजहार ॥१२॥

अन्वयः— यस्य अध्वरे उरुसोमपीथे मधोनि माद्यति श्रद्धा विशुद्धाचलभक्तियोग समर्पित अध्वरात्मा भगवान् फलमाजहार॥१२॥

अनुवाद— जिनके यज्ञ में बहुत अधिक सोमपान करने के कारण इन्द्र उन्मत हो गये थे, तथा उनकी श्रद्धा और निश्चल विशुद्ध भक्तिभाव से समर्पित किए जाने के कारण यज्ञ के फल को यज्ञ पुरुष भगवान् साक्षात् प्रकट होकर यज्ञ के फल को ग्रहण किए ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

उरुसोमपीथे बहुसोमपानेऽध्वरे मघोनि इन्द्रे माद्यति मदं प्राप्नुवति सति श्रद्धया विशुद्धो योऽचलो भक्तियोगस्तेन समर्पितमिज्याफलमाजहार । अर्हणमिव प्रत्यक्षतः स्वीकृतवानित्यर्थः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

बहुत सोम पान करने के कारण इन्द्र के उन्मत्त होने पर श्रद्धा के कारण विशुद्ध एवं अचल भक्तियोग से समर्पित यज्ञ के फल को यज्ञात्मा भगवान् ने साक्षात् पूजा के ही समान ग्रहण किए ॥१२॥

यत्प्रीणनाद्बर्हिषि देवतिर्यङ्मनुष्यवीरुत्तृणमाविरिञ्च्यात् ।
प्रीयेत सद्यः स ह विश्वजीवः प्रीतः स्वयं प्रीतिमगाद्गयस्य ॥१३॥

अन्वयः— गयस्य बर्हिषि यत् प्रीणनात् अविरिञ्चयात् देवतिर्यक्मनु वीरत्तृणम् सद्यः प्रीयेत सह विश्वजीवः स्वयं प्रीतः प्रीतिमगात् ॥१३॥

अनुवाद— महाराज गय के यज्ञ में जिनके प्रसन्न हो जाने पर ब्रह्माजी से लेकर देवता मनुष्य, तिर्यक् वृक्ष तथा तृण सबके सब सद्यः प्रसन्न हो जाते हैं वे स्वयं तृप्त विश्वात्मा प्रसन्न हो गये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

यस्य भगवतः प्रीणनात् । देवादीनां द्वन्द्वैक्यम् । तत्सद्यः प्रीयते प्रीतिं गच्छेत् । स विश्वजीवः सर्वान्तर्यामी स्वयं प्रीतरूप एव बर्हिषि यज्ञे गयस्य । ह स्फुटं प्रीतिमगात् तृप्तोऽस्मीति प्रत्यक्षं प्रीतिमाविष्कृतवानित्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

जिन श्रीभगवान् के प्रसन्न होने पर देवमनुष्यादि शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं, वे विश्वात्मा सर्वान्तर्यामी स्वयं प्रसन्नता रूप होने पर भी महाराज गय के रूप में स्पष्ट रूप से प्रसन्न हो गये अर्थात् मैं प्रसन्न हूँ इस तरह से अपनी प्रसन्नता प्रकट किए । देवर्ग्यिङ्मनुष्यवीरुत्तृणम् में द्वन्द्वसमास होने के कारण एक वचन का प्रयोग है ॥१३॥

गयाद्गयन्त्यां चित्ररथः सुगतिरवरोधन इति त्रयः पुत्रा बभूवुश्चित्ररथादूर्णायां सम्राडजनिष्ट ॥१४॥

अनुवाद— महाराज गय की पत्नी गयन्ती के गर्भ से चित्ररथ, सुगत और अवरोधन नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए । उनमें चित्ररथ की पत्नी उर्णा से सम्राट् पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१४॥

तत उत्कलायां मरीचिर्मरीचेर्बिन्दुमत्यां बिन्दुमानुदपद्यत तस्मात्सरघायां मधुनामाऽभवन्मधोः सुमनसि वीरव्रतस्ततो भोजायां मन्थुप्रमन्थू जज्ञाते मन्थोः सत्यायां भौवस्ततो दूषणायां त्वष्टाऽजनिष्ट त्वष्टुर्विरोचनायां विरजो विरजस्य शतजित्प्रवरं पुत्रशतं कन्या च विषूच्यां किल जातम् ॥१५॥

अनुवाद— सम्राट की पत्नी उल्कला से मरीचि, मरीचि की पत्नी विन्दुमती से विन्दुमान नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । विन्दुमान की पत्नी सरधा से मधु, मधु की पत्नी सुमना से वीरव्रत, वीरव्रत की पत्नी भोजा से मन्थु,

और प्रमन्थु नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। मन्थु की पत्नी सत्या के गर्भ से भौवन भौवन की पत्नी दूषणा के गर्भ से त्वष्टा, त्वष्टा की पत्नी विरोचना से विरज और विरज की विषूची नाम की पत्नी के गर्भ से सौ पुत्र एवं एक कन्या उत्पन्न हुई ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

सुमनसि स्त्रियाम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

मधु की सुमना नामक पत्नी के गर्भ से वरीव्रत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥१५॥

तत्रायं श्लोकः।

प्रैयव्रतं वंशमिमं विरजश्चरमोद्भवः। अकरोदत्यलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥१६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे प्रियव्रतवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अन्वयः— विष्णुः सुरगणं यथा चरमोद्भवः विरजः इमं प्रैयव्रतं वंश कीर्त्या अत्ययं अकरोत् ॥१६॥

अनुवाद— विरज के विषय में यह श्लोक प्रसिद्ध है जिस प्रकार भगवान् विष्णु देवताओं की शोभा बढ़ाते हैं, उसी तरह इस प्रियव्रत वंश को इस वंश में सबसे पीछे उत्पन्न होने वाले विरज अपने सुयश से महाराज प्रियव्रत के वंश की शोभा अत्यधिक बढाये ॥१६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के प्रियव्रत वंश वर्णन नामक पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

कीर्त्या अतिशयेनालमकरोद्भूषितवान् ॥१६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

विरज ने अपने सुयश से महाराज प्रियव्रत के वंश को अत्यधिक अलंकृत किया ॥१६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के पन्द्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१५॥

* * *

सोलहवाँ अध्याय

भुवन कोश का वर्णन

रजोवाच

उक्तस्त्वया भूमण्डलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैश्चन्द्रमा वा सह दृश्यते॥१॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद जहाँ तक सूर्य का प्रकाश है और जहाँ तक तारागण के साथ चन्द्रमा दीख पड़ते है वहाँ तक भूमण्डल है यह आपने कहा है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वोक्तद्वीपसिन्ध्वादिमानचिह्नस्वरूपतः । स्पष्टं प्रवक्तुमारब्धा पञ्चाध्यायी ततः परम् ।।१।। षोडशेऽधस्तथा चोर्ध्वं परितः सन्निवेशतः । मेरोः स्थितिर्महीकञ्जकर्णिका चोपवर्ण्यते ।।२।। प्रियव्रतचरित्रोक्तौ योक्ता द्वीपादिकल्पना । तद्विशेषविजिज्ञासुः कथान्ते परिपृच्छति ।।३।। उक्त इति किंपर्यन्तमुक्तस्तदाह । यावदादित्यस्तपति, यत्र चासौ शुक्लकृष्णपक्षयोर्नक्षत्रगणैः सह चन्द्रमा वा दृश्यते तावत् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

द्वीप तथा समुद्र आदि महाराज प्रियव्रत के रथ के चिह्नस्वरूप हैं यह पहले कहा जा चुका है, उसको स्पष्ट रूप से कहने के लिए यह पञ्चाध्यायी प्रियव्रत के वर्णन के पश्चात् वर्णित की जाती है । सोलहवें अध्याय में सुमेरु पर्वत के नीचे, ऊपर, चारो ओर सन्निविष्ट स्थित पृथिवी रूपी कमल की कर्णिका का भी वर्णन किया जाता है। प्रियव्रत के चरित्र के वर्णन में जो द्वीपों आदि की कल्पना बतलायी गयी है, उसके विषय में विशेष रूप से जिज्ञासु राजा परीक्षित् कथा के अन्त में पूछते हैं । कहाँ तक आपने भूमण्डल को कहा है तो उसके विषय में बतलाते हैं जहाँ तक सूर्य का प्रकाश जाता है तथा जहाँ तक शुक्ल तथा कृष्ण दोनों पक्षों में ताराओं के साथ चन्द्रमा दिखायी देते हैं वहाँ तक ।।१।।

तत्रापि प्रियव्रतरथचरणपरिखातैः सप्तभिः सप्त सिन्धव उपक्लृप्ताः यत एतस्याः सप्तद्वीपविशेषविकल्पस्त्वया भगवन्खलु सूचित एतदेवाखिलमहं मानतो लक्षणतश्च सर्वं विजिज्ञासामि ।।२।।

अनुवाद— उसमें भी महाराज प्रियव्रत के रथ के पहियों की सात लीकों से सात समुद्र बन गये जिनके कारण इस भूमण्डल में सात द्वीपों का विभाग बन गया । हे भगवन् ! अब में इन सबों का परिमाण और लक्षण के साथ पूरा विवरण जानना चाहता हूँ ।।२।।

भावार्थ दीपिका

यतो येभ्यः सिन्धुभ्यः एतस्या भुवः । सूचितः संक्षेपतो दर्शितः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

जिन समुद्रों से पृथिवी के सात द्वीपों की कल्पना हुई इस बात को आपने संक्षेप में सूचित किया है ।।२।।

भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितु तदु हैतद्गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ।।३।।

अनुवाद— जो मन श्रीभगवान् के गुणमय इस स्थूल शरीर में लग सकता है वही मन श्रीभगवान् के वासुदेव संज्ञक स्वयं प्रकाश निर्गुण ब्रह्म रूप सूक्ष्मतम स्वरूप में भी लग सकता है अतएव हे गुरो ! इस विषय का विशद रूप से आप वर्णन करें ।।३।।

भावार्थ दीपिका

जिज्ञासायाः फलमाह-भगवत इति ।।३।।

भाव प्रकाशिका

भगवतः इत्यादि इस दण्डक से महाराज परीक्षित् की जिज्ञासा का फल बतलाया गया है ।।३।।

ऋषिरुवाच

न वै महाराज भगवतो मायागुणविभूतेः काष्ठां मनसा वचसा वाऽधिगन्तुमलं विबुधायुषापि पुरुषस्तस्मात्प्राधान्येनैव भूगोलकविशेष नामरूपमानलक्षणतो व्याख्यास्यामः ॥४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— महाराज ! श्रीभगवान् की माया के गुणों का इतना विस्तार है कि कोई भी मनुष्य देवता की भी आयु को प्राप्त कर ले तो भी मन या वाणी से उसका अन्त नहीं पा सकता है । इसलिए मैं नाम, रूप, परिणाम और लक्षणों के माध्यम से मुख्य-मुख्य बातों को ही लेकर इस भूमण्डल की विशेषताओं का वर्णन करूँगा ।।४।।

भावार्थ दीपिका

या मायागुणविभूतिस्तस्याः । काष्ठां अन्तम् । रूपं संनिवेशः । लक्षणं चिह्नम् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

माया के गुणों की जो विभूति (ऐश्वर्य) है उसका अन्त कोई देवता की भी आयु प्राप्त करके नहीं पा सकता है । काष्ठा अर्थात् अन्त । रूप विस्तार, लक्षण अर्थात् चिह्न ।।४।।

यो वाऽयं द्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तरकोशो नियुतयोजनविशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम्॥५॥

अनुवाद— यह जो जम्बूद्वीप है, यह भूमण्डल रूप कमल के कोश स्थानीय जो सात द्वीप हैं उनमें सबसे भीतर का है । इसका विस्तार एक लाख योजन है । यह कमल पत्र के समान गोलाकार है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

कुवलयं भूण्डलं तदेव कमलं तस्य कोशाः सप्तद्वीपास्तेष्वभ्यन्तरकोशः प्रथमो जम्बूद्वीपो नियुतयोजनविशालो लक्षयोजनविस्तीर्णः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

भूमण्डल रूप कमल के कोश भूत जो सात द्वीप है उनमें सबसे भीतर का कोश यह पहला जम्बूद्वीप है। यह एक लाख योजन विस्तीर्ण है ।।२।।

यस्मिन्नव वर्षाणि नवयोजनसहस्रायामान्यष्टभिर्मर्यादागिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति ॥६॥

अनुवाद— इसमें नव-नव हजार योजन विस्तार वाले नव वर्ष है जो इनकी सीमा का विभाग करने वाले आठ पर्वतों से बटे हुए हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

नवयोजनसहस्रमायामो येषाम् आयामोऽत्र विस्तारः । एतच्च भद्राश्वकेतुमालव्यतिरेकेण द्रष्टव्यम् । तयोश्चतुस्त्रिंशद्योजनसहस्रायामत्वात् । केचित्तु नीलनिषधयोः संलग्नाग्रयोः समुद्रप्रवेशमङ्गीकृत्य तयोरपि सङ्कुचितत्वेन नवसहस्रायामत्वं संपादयन्ति । संनिवेशश्च वायुनोक्तः। 'धनुर्वत्संस्थिते ज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे। दीर्घाणि तत्र चत्वारि चतुरस्रमिलावृतम्। इति।।६।।

भाव प्रकाशिका

जिन सबों का नह हजार योजन विस्तार है । यहाँ आयाम शब्द विस्तार का बोधक है । यह नव सहस्र योजन विस्तार भद्राश्व और केतुमाल इन दो वर्षों को छोड़कर जानना चाहिए, क्योकि उन दोनों वर्षों का विस्तार बीस हजार योजन है । कुछ लोगों का कहना है कि नील और निषध नामक पर्वत उन दोनों के अग्रभाग में संलग्न

हैं, जो समुद्र में प्रविष्ट हैं । अतएव उन दोनों का भी विस्तार सङ्कुचित होने के कारण नव-नव हजार योजन ही है । इन दोनों के संनिवेश को वायु पुराण में वायु ने कहा है । वहाँ कहा गया है कि धनुर्वत् संस्थिते० इत्यादि अर्थात् इन दोनों वर्षों को धनुष के समान गोलकार दक्षिणा और उत्तर में दो वर्षों को जानना चाहिए वे चार योजन विस्तृत इलवृत वर्ष है ।।६।।

एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुर्द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य मूर्धनि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनविततो मूले षोडशसहस्रं तावताऽन्तर्भूम्यां प्रविष्टः ।।७।।

अनुवाद— इनके बीचो-बीच इलावृत नामक दसवाँ वर्ष हैं उसके बीच में कुल पर्वतों का राजा मेरु पर्वत है । वह भूमण्डल रूप कमल की कर्णिका के समान है । वह ऊपर से नीचे तक सारा का सारा सुवर्णमय है। यह एक लाख योजन ऊँचा है । उसका शिखर पर विस्तार बतीस हजार और तलहठी में सोलह हजार योजन है । सोलह हजार योजन ही वह पृथिवी में घुसा हुआ है । अर्थात् भूमि के ऊपर उसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है ।।७।।

भावार्थदीपिका

नाभ्यां मध्ये । द्वीपस्यायामो लक्षयोजनप्रमाणं तावान्समुन्नाह उच्छ्रायो यस्य । मूले षोडशयोजनसहस्रं विततः । तावता षोडशयोजनसहस्रमानेन । चतुरशीतियोजनसहस्रमानेन च बहिर्दृश्यते । एवं लक्षयोजनोन्नाहः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

इलावृत वर्ष के बीच में जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है । उतनी ही ऊँचाई मेरुपर्वत की है। यह मूल में सोलह हजार योजन विस्तृत है और सोलह हजार योजन यह पृथिवी में घुसा हुआ है चौरासी हजार योजन बाहर दिखायी देता है । इस तरह उसकी ऊचाई एक लाख योजन हो गयी ।।७।।

उत्तरोत्तरेणेलावृतं नीलः श्वेतः शृङ्गवानिति त्रयो रम्यकहिरण्मयकुरूणां वर्षाणां मर्यादागिरयः प्रागायता उभयतः क्षारोदावधयो द्विसहस्रपृथव एकैकशः पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो दशांशाधिकांशेन दैर्घ्य एव ह्रसन्ति ।।८।।

अनुवाद— इलवृत्त के उत्तर में क्रमशः तीन पर्वत हैं नील, श्वेत और शृङ्गवान जो रम्यक, हिरण्मय और कुरु नामक वर्षों की सीमा को बाँधते हैं । वे पूर्व से पश्चिम तक खारे पानी के समुद्र तक फैले हुए हैं । उनमें से प्रत्येक की चौड़ाई दो-दो हजार योजन है और पहले की अपेक्षा क्रमशः दशमांश से कुछ अधिक कम है । सबों की ऊँचाई एक समान है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

उत्तरोत्तरेणेलावृतमिलावृतस्योत्तरोत्तरतः क्रमेण नीलादयस्त्रयो मर्यादागिरयः । प्रागायताः पूर्वतो दीर्घाः । क्षारोद एवावधिर्येषाम्। द्विसहस्रयोजनविस्तीर्णाः । दशांशादीषदधिको योंऽशस्तेन दैर्घ्य एव ह्रसन्ति न तूच्चत्वे पृथुत्वे वा । यथोक्तं विष्णुपुराणे 'लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथापरे' इति । एतच्च स्थूलदृष्ट्यैवोक्तम् । तयोरपि यथावन्मध्यमत्वभावेन लक्षप्रमाणत्वाभावात् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

इलावृत वर्ष के उत्तर में क्रमशः नील आदि तीन मर्यादा पर्वत हैं । ये पूर्व से लेकर पश्चिम दिशा तक

खारे जल के समुद्र तक फैले है । इन सबों का विस्तार दो हजार योजन है । पहले की अपेक्षा बादवाले की लम्बाई दशांश से कुछ अधिक कम है । किन्तु इनकी ऊँचाई और चौड़ाई एक समान है । जैसा कि विष्णु पुराण में कहा गया है **'लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीना तथा परे'** अर्थात् दो पर्वतों की चौड़ाई लाख-लाख योजन है किन्तु बीच वाले का प्रमाण दशमांश कम है । यह चौड़ाई की ही दृष्टि से कहा गया है । उन दोनों के भी बराबर मध्यमत्व का अभावलक्ष योजन प्रमाण का अभाव होने के कारण है ॥८॥

एवं दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालय इति प्रागायता यथा नीलादयोऽयुतयोजनोत्सेधा हरिवर्षकिंपुरुषभारतानां यथासंख्यम् ॥९॥

अनुवाद— इसी तरह इलावृत के दक्षिण की ओर एक के पश्चात् एक निषध, हेमकूट और हिमालय नामक तीन पर्वत हैं । ये भी नील आदि पर्वतों के समान पूर्व से पश्चिम की ओर फैले हुए हैं और दस-दस हजार योजन ऊँचे हैं । इन तीनों से क्रमशः हरिवर्ष, किम्पुरुष और भारतवर्ष की सीमाओं का विभाग होता है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अयुतयोजन उत्सेध उच्छ्रायो येषाम् । अयं चोत्सेधो नीलादीनामपि द्रष्टव्यः । नीलादिपृथुत्वं चैषामपि द्रष्टव्यम् । यथासंख्यं मर्यादागिरय इति शेषः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इन तीनों पर्वतों की ऊँचाई दस-दस हजार योजन है । नीलादि पर्वतों की भी ऊँचाई इतनी ही है । इन सबों की चौड़ाई भी नील पर्वतों के समान ही है । ये तीनों तीन वर्षों के मर्यादा पर्वत हैं ॥९॥

तथैवेलावृतमपरेण पूर्वेण च माल्यवद्गन्धमादनावानीलनिषधायतौ द्विसहस्रं पप्रथतुः केतुमालभद्राश्वयोः सीमानं विदधाते ॥१०॥

अनुवाद— इलावृत के पूर्व और पश्चिम की ओर उत्तर में नील पर्वत और दक्षिण में निषध पर्वत पर्यन्त फैले हुए गन्धमादन और माल्यवान् नामक दो पर्वत हैं । इन दोनों की चौड़ाई दो-दो हजार योजन है । ये भद्राश्व एवं केतुमाल नामक दो वर्षों की सीमा को निश्चत करते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

आनीलनिषधायतौ उत्तरतो नीलपर्यन्तं दक्षिणतो निषधपर्यन्तं च दीर्घौ । पप्रथतुर्विस्तीर्णौ भवतः । तावेव केतुमालभद्राश्वयोर्वर्षयोः सीमानं कुर्वाते । नन्वेवं सति पूर्वापररेखायामिलावृतवेष्टितो मेरुर्मध्ये ततः पूर्वापरतो गिरिद्वयं वर्षद्वयं च नातः किंचिदस्ति । दक्षिणोत्तररेखायां तु तथैवेलावृतवेष्टितो मध्ये मेरुरुभयतस्त्रीणि त्रीणि वर्षाणि गिरयश्च षट् तत्कथं सर्वतो लक्षप्रमाणत्वं जम्बूद्वीपस्य । उच्यते । मेरोः षोडश सहस्राणि । सर्वतः स्थितत्वादिलावृतस्याष्टादश । अन्येषां षण्णां चतुष्पञ्चाशत्। गिरीणां षण्णां द्वादशेत्येवं दक्षिणोत्तररेखायां तावल्लक्षम् । पूर्वापररेखायामपि सुमेरोरिलावृतस्य चतुस्त्रिंशत् । गिर्योश्चत्वारि । शेषाणि द्विषष्टिसहस्राणि पूर्वापरवर्षयोरासमुद्रं दैर्घ्यं द्रष्टव्यान्यतो न विरोधः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

नील एवं नीषध पर्वत पर्यन्त चौड़े उत्तर की ओर नील पर्यन्त और दक्षिण की ओर निषध पर्यन्त ये दोनों (गन्धमादन और माल्यवान्) पर्वत लम्बे हैं । प्रपथतुः का अर्थ है, विस्तृत । इस तरह वे दोनों केतुमाल और भद्राश्व इन दो वर्षों की सीमा निश्चित करते हैं । यदि कोई यह प्रश्न करे कि ऐसा होने पर पूर्व एवं पश्चिम रेखा पर इलावृत से धिरे हुए मेरु पर्वत बीच में हैं । उसके पूर्व और पश्चिम में दो पर्वत और दो वर्ष हैं । इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है । दक्षिण और उत्तर रेखा पर तो उसी प्रकार इलावृत से वेष्टित बीच में मेरु पर्वत और दोनों ओर से तीन-

तीन वर्ष हैं इस तरह छह वर्ष हैं । इस तरह जम्बूद्वीप सब ओर से एक लाख योजन कैसे कहा जा सकता है? तो इसका उत्तर है कि सुमेरु पर्वत हर ओर से सोलह हजार योजन है और इलावृत का विस्तार अठारह हजार योजन है और शेष छह वर्षों का विस्तार चौवन हजार योजन है । छह पर्वतों का बारह हजार योजन विस्तार है। इस तरह दक्षिण और उत्तर की रेखा पर एक लाख योजन हो गया । पूर्व और पश्चिम रेखा पर भी सुमेरु तथा इलावृत का विस्तार चौत्तिस हजार योजन दोनों पर्वतों का चार हजार योजन, शेष बासठ हजार योजन पूर्व एवं पश्चिम रेखाओं का समुद्र पर्यन्त विस्तार है अतएव् किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है ।।१०।।

मन्दरो मेरुमन्दरः सुपार्श्वः कुमुद इत्ययुतयोजनविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशमवष्टम्भगिरय उपक्लृप्ताः।।११।।

अनुवाद— इनके अतिरिक्त मन्दर, मेरु मन्दर, सुपार्श्व और कुमद ये चारो पर्वत दश हजार योजन ऊँचे और दस हजार योजन चौड़े मेरु पर्वत के आधार भूत अवष्टम्भ पर्वत के समान है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

अयुतयोजनप्रमाणौ विस्तारोन्नाहो येषाम् । विस्तीर्णमूर्ध्नौ मेरोरवष्टम्भत्वात्पूर्वपश्चिमौ गिरी दक्षिणोत्तरविस्तारौ, दक्षिणोत्तरौ च पूर्वापरविस्तारौ द्रष्टव्यौ। सर्वतो दशयोजनसहस्रविस्ताराङ्गीकारे त्विलावृतलोपात्पूर्वेणेलावृतमुपप्लावयतीत्यादिविरोधः स्यात्।।११।।

भाव प्रकाशिका

दस हजार योजन चौड़ाई और उतनी ही ऊँचाई वाले ये मन्दर मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद चारो पर्वत हैं । ये मेरु पर्वत के अवष्टम्भ (थूम्मी) का काम करते हैं । अतएव पूर्व और पश्चिम के दो पर्वत दक्षिण और उत्तर में विस्तार वाले हैं । सुमेरु के दक्षिण और उत्तर के पर्वतों का विस्तार पूर्व और पश्चिम में होगा । हर ओर से दस योजन विस्तार मानने पर तो इलावृत वर्ष ही गायब हो जायेगा । अतएव सत्रहवें दण्डक में यह जो कहा गया है कि पूर्व दिशा से इलावृत को प्लावित करता है, इसका विरोध होगा ।।११।।

चतुर्ष्वेतेषु चूतजम्बूकदम्बन्यग्रोधाश्चत्वारः पादपप्रवराः पर्वतकेतव इवाधिसहस्रयोजनोन्नाहास्तावद्विटपविततयः शतयोजनपरिणाहाः ।।१२।।

अनुवाद— इन चारों पर्वतों पर उनकी ध्वजाओं के समान क्रमशः आम, जामुन, कदम्ब और बड़ के चार वृक्ष है । ये प्रत्येक वृक्ष ग्यारह सौ योजन ऊँचे और इतना ही इनकी शाखाओं का विस्तार है । इन वृक्षों की मोटाई सौ-सौ योजन है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

अधिसहस्रमेकादशशतानि उन्नाहो येषाम् । तावत्प्रमाणा विटपततिर्येषाम् । शतयोजनं परिणाहो विस्तारो येषाम्।।१२।।

भाव प्रकाशिका

उन चारो वृक्षों की ऊँचाई ग्यारह सौ योजन है और उतना ही उन सभी वृक्षों की शाखाओं का विस्तार है तथा वे चारो वृक्ष सौ-सौ योजन मोटे हैं ।।१२।।

ह्रदाश्चत्वारः पयोमध्विक्षुरसमृष्टजला यदुपस्पर्शिन उपदेवगणा योगैश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ धारयन्ति ।।१३।।

अनुवाद— भरतश्रेष्ठ ! उन पर्वतों पर चार सरोवर भी हैं । वे क्रमशः दूध, मधु, ईख के रस और मीठे जल के है । इनका सेवन करने वाले यक्ष किन्नरादि उपदेवों को स्वभाव से ही योग सिद्धियाँ प्राप्त हैं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

यदुपस्पर्शिनो यत्सेविनः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

यदुपस्पर्शिनः पद का अर्थ उनका सेवन करने वाले होता है ।।१३।।

देवोद्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतोभद्रमिति ।।१४।।

अनुवाद— इन चारो पर्वतों पर चार दिव्य उपवन भी हैं इनका नाम क्रमशः नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र है ।।१४।।

येष्वमरपरिवृढाः सहसुरललनाललामयूथपतय उपदेवगणैरुपगीयमानमहिमानः किल विहरन्ति ।।१५।।

अनुवाद— उन सबों में अनेक प्रधान-प्रधान देवता सुरसुन्दरियों के नायक वनकर साथ-साथ विहार करते हैं । उस समय गन्धर्व आदि उपदेवगण उनकी महिमा का गान करते है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

ललामो भूषणम् । सुरललनानां भूषणभूताः श्रेष्ठा याः स्त्रियस्तासां यूथस्य पतयः सह संभूय येषु विहरन्ति ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

ललाम पद का अर्थ हे भूषण ! अर्थात् सुर सुन्दरियों के भूषण भूत जो स्त्रियाँ हैं उनके समूह के नायक बनकर उनके साथ विहार करते हैं । उस समय गन्धर्व आदि उपदेवगण उनकी महिमा का गान करते हैं ।।१५।।

मन्दरोत्सङ्ग एकादशशतयोजनोत्तुङ्गदेवचूतशिरसो गिरिशिखरस्थूलानि फलान्यमृतकल्पानि पतन्ति।।१६।।

अनुवाद— मन्दराचल की गोद में जो ग्यारह सौ योजन ऊँचा देवताओं का आम्रवृक्ष है उससे गिरिशिखर के समान बड़े-बड़े और अमृत के समान स्वादिष्ट फल गिरते हैं ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

एकादशशतयोजनमुत्तुङ्गो यो देवचूतस्य शिरसः सकाशात् । फलप्रमाणमुक्तं वायुपुराणे 'अरत्नीनां शतान्यष्टावेकषष्ट्यधिकानि च । फलप्रमाणमाख्यातमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । इति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

ग्यारह सौ योजन ऊँचा जो देवताओं का आम्रवृक्ष है उसके शिरोभाग से फल गिरते हैं । उन फलों का प्रमाण वायुपुराण में बतलाया गया है कि आठ सौ एकसठ हाथ बड़ा उन फलों का प्रमाण तत्त्वदर्शी ऋषियों ने कहा है ।।१६।।

तेषां वीशीर्यमाणानामतिमधुरसुरभिसुगन्धिबहुलारुणरसोदेनारुणोदा नाम नदी मन्दरगिरिशिखरान्निपतन्ती पूर्वेणेलावृतमुपप्लावयति ।।१७।।

अनुवाद— वे फल जब फटते हैं तो उनसे अत्यन्त सुगन्धित और मीठा लाल-लाल रस प्रवाहित होने लगता है । वही अरुणोदा नाम की नदी के रूप में परिणत हो जाता है । वह नदी मन्दराचल के शिखर से गिरकर इलावृत वर्ष पूर्वी भाव को पलावित करती है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

अतिमधुरश्चासौ स्वतः सुरभिश्च सुगन्धिश्च । न चान्येषां गन्धैरधिवासितः बहुलश्चारुणश्च रसः स एव उदमुदकं तेन।।१७।।

भाव प्रकाशिका

उस आम का रस दूसरे गन्धों से नहीं अपितु स्वतः सुगन्धित और अत्यधिक मात्रा में लाल-लाल होता है । रस रूप जल से वह नदी इलावृत के पूर्वी भाग को प्लवित करती है ॥१७॥

यदुपजोषणाद्भवान्या अनुचरीणां पुण्यजनवधूनामवयवस्पर्शसुगन्धवातो दशयोजनं समन्तादनुवासयति ॥१८॥

अनुवाद— इस जल का सेवन पार्वतीजी की अनुचरी यक्ष पत्नियाँ करती हैं । इसके कारण इन सबों के अङ्गों से ऐसी सुगन्धि निकलती है कि उनका स्पर्श करके चलने वाली वायु उनके चारो ओर दस-दस योजन तक सारे देश को सुगन्धित कर देती है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

यदुपजोषणाद्यस्य रसस्य सेवनात् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

यदुपजोषणात् पद का अर्थ है उस रस का सेवन करने से ॥१८॥

एवं जम्बूफलानामत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणामिभकायनिभानां रसेन जम्बूनाम नदी मेरुमन्दरशिखरादयुतयोजनादवनितले निपतन्ती दक्षिणेनात्मानं यावदिलावृतमुपस्यन्दयति ॥१९॥

अनुवाद— इसी प्रकार जामुन के वृक्ष से पृथी के समान बड़े-बड़े प्रायः बिना गुठली के ही फल गिरते हैं । बहुत ऊँचे से गिरने के कारण वे फट जाते हैं । उनके रस से जम्बू नाम की नदी प्रवाहित होती है जो मेरुमन्दर पर्वत के दस हजार योजन ऊँचे शिखर से गिरकर इलावृत वर्ष के दक्षिण भूभाग को सींचती है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

अनस्थिप्रायाणामतिसूक्ष्मबीजानाम् । यत्र निपतति ततश्चारभ्यात्मनो दक्षिणतः सर्वमिलावृतं व्याप्य वहतीत्यर्थः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अनस्थिप्राय का अर्थ है कि उन जामुन के फलों के बीज अत्यन्त छोटे होते हैं । वे फल जहाँ गिरते हैं वहाँ से लेकर उनका रस इलावृत वर्ष के दक्षिणी भाग पर्यन्त प्रवाहित होता है ॥१९॥

तावदुभयोरपि रोधसोर्या मृत्तिका तद्रसेनानुविध्यमाना वाय्वर्कसंयोगविपाकेन सदाऽमरलोकाभरणं जाम्बूनदं नाम सुवर्णं भवति ॥२०॥

अनुवाद— उस नदी के दोनों किनारों की मिट्टी उस रस से भींगकर जब वायु और सूर्य के संयोग से पक जाती है तब वही देवलोक को विभूषित करने वाला जाम्बूनद नामक सुवर्ण बन जाती है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तावत्सर्वतः रोधसोस्तटयोः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

जहाँ तक वह नदी प्रवाहित होती है, वहाँ तक के दोनों तटों की मिट्टी पूर्ण रूप से जाम्बूनद नामक सुवर्ण बन जाती है ॥२०॥

यदु ह वाव विबुधादयः सह युवतिभिर्मुकुटकटककटिसूत्राद्याभरणरूपेण खलु धारयन्ति ॥२१॥

अनुवाद— इसे देवता और गन्धर्व आदि अपनी तरुणी स्त्रियों के सहित मुकुट कङ्कण और करधनी इत्यादि आभूषणों के रूप में धारण करते हैं ॥२१॥

यस्तु महाकदम्बः सुपार्श्वनिरूढो यास्तस्य कोटरेभ्यो विनिःसृताः पञ्चायामपरिणाहाः पञ्च मधुधाराः सुपार्श्वशिखरात्पतन्त्योऽपरेणात्मानमिलावृतमनुमोदयन्ति ॥२२॥

अनुवाद— सुपार्श्व पर्वत पर जो विशाल कदम्ब वृक्ष है, उसके पाँच कोटरों से मधु की धारा प्रवाहित होती है। इन धाराओं की मोटाई पाँच पोरसे जितनी है। ये सुपार्श्व के शिखर से गिरकर इलावृत वर्ष के पश्चिमी भाग को अपनी सुगन्ध से सुगन्धित कर देती हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

आयामोऽत्र व्यामः। स च 'व्यामो बाह्वोः सकरयोस्ततयोस्तिर्यगन्तरम्' इत्युक्तलक्षणः। पञ्च व्यामाः परिणाहः स्थौल्यं यासामित्यर्थः। केचित्तु पञ्चव्यामपरिणाहा इत्येव पठन्ति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ पर आयाम शब्द व्याम का बोधक। दोनों हाथों को फैलाने से जो उनका तिर्यक् विस्तार होता है उसे व्याम कहते हैं। कहीं तो पञ्चव्याम परिणाहाः यही पाठ है ॥२२॥

या ह्युपयुञ्जानानां मुखनिर्वासितो वायुः समन्ताच्छतयोजनमनुवासयति ॥२३॥

अनुवाद— उस मधु का जो लोग पान करते हैं उनके मुख से निकली हुई वायु अपने चारो ओर सौ योजन पर्यन्त सुगन्धित बना देती है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

एवं कुमुदनिरूढो यः शतवल्शो नाम वटस्तस्य स्कन्धेभ्यो नीचीनाः पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यम्बर-शय्यासनाभरणादयः सर्व एव कामदुघा नदाः कुमुदाग्रात्पतन्तस्तमुत्तरेणेलावृतमुपयोजयन्ति ॥२४॥

अनुवाद— इसी तरह कुमुद नामक पर्वत पर जो शतवल्श नामक वट वृक्ष है, उसकी जटाओं से नीचे की ओर प्रवाहित होने वाले अनेक नद निकलते हैं, वे सब इच्छानुसार फल देने वाले हैं। उनसे दूध, दही, मधु, घृत गुड़, अन्न, वस्त्र शय्या, आसन और आभूषण प्रभृति सभी पदार्थ प्राप्त होते हैं। ये सब कुमुद पर्वत के शिखर से गिरकर इलावृत्त के उत्तरीभाग को सींचते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

नीचीना अधोमुखाः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

नीचीना यानी नीचे की ओर प्रवाहित होने वाले ॥२४॥

याननुपजुषाणानां न कदाचिदपि प्रजानां क्लीपलितक्लमस्वेददौर्गन्ध्यजरामयमृत्युशीतोष्णवैवर्ण्योपसर्गादयस्तापविशेषा भवन्ति यावज्जीवं सुखं निरतिशयमेव ॥२५॥

अनुवाद— इनके दिए हुए पदार्थों का उपभोग करने से वहाँ की प्रजाओं की त्वचा में झुरियाँ, बाल पकना, थकना (श्रान्त होना) शरीर में पसीना होना, दुर्गन्ध निकलना, जरा, रोग, मृत्यु सर्दी-गर्मी की पीड़ा, शरीर का कान्ति हीन होना, तथा अङ्गों का टूटना आदि कष्ट कभी नहीं सताते हैं। उन लोगों को आजीवन सुख ही प्राप्त होता है ॥२५॥

कुरङ्गकुररकुसुम्भवैकङ्कत्रिकूटशिशिरपतङ्गरुचकनिषधशिनीवासकपिलशङ्खवैदूर्यजारुधिहंसर्षभनाग-कालञ्जरनारदादयो विंशतिगिरयो मेरोः कर्णिकाया इव केसरभूता मूलदेशे परित उपक्लृप्ताः॥२६॥

अनुवाद— राजन् ! जिस तरह कमल की कर्णिका के चारो ओर केसर होते हैं । उसी तरह मेरु के मूल में चारो ओर बीस पर्वत हैं । उनके नाम हैं कुरङ्ग, कुङ्कर, कुसुम्भ, वैङ्कक, त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक, निषध, शिनीवास, कपिल, शङ्ख,वैदूर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग कलंजर और नारद आदि ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

जठरदेवकूटौ मेरुं पूर्वेणाष्टादशयोजनसहस्रमुदगायतौ द्विसहस्रं पृथुतुङ्गौ भवतः एवमपरेण पवनपारियात्रौ दक्षिणेन कैलासकरवीरौ प्रागायतावेवमुत्तरतस्त्रिशृङ्गमकरावष्टभिरेतैः परिस्तृतोऽग्निरिव परितश्चकास्ति काञ्चनगिरिः ॥२७॥

अनुवाद— इसके अतिरिक्त मेरु पर्वत के पूर्व की ओर जठर और देवकूट नामक दो पर्वत हैं । वे दोनों अठारह-अठारह हजार योजन लम्बे और दो-दो हजार योजन चौड़े और ऊँचे हैं । इसी तरह उसके पश्चिम दिशा में पवन और परियात्र पर्वत हैं, दक्षिण की ओर कैलास और करवीर पर्वत हैं और उत्तर की ओर त्रिशृङ्ग और मकर नामक दो पर्वत हैं । इन आठ पर्वतों से चारो ओर से घिरा हुआ सुवर्ण पर्वत मेरु अग्नि के समान चमकता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्दिक्षु मेरुमूलाद्योजनसहस्रं त्यक्त्वाऽग्रेः परितः परिधय इव जठरदेवकूटादयस्तिष्ठन्ति । अतोऽष्टादशयोजनसहस्रं प्रमाणमत्रोक्तम् 'वैष्णवादिपुराणेषु परिमाणादि यत्पुनः। अन्यथा वर्णितं तत्तु कल्पभेदाद्यपेक्षया । द्विसहस्रं पृथु च तुङ्गौ च॥२७॥

भाव प्रकाशिका

एक हजार योजन छोड़कर मेरु पर्वत की चार दिशाओं में अग्नि के चारो ओर परिधि के समान जठर देव कूट आदि पर्वत विद्यमान हैं । इसलिए यहाँ पर अठारह हजार योजन प्रमाण यहाँ बतलाया गया है । विष्णु आदि पुराणों में जो परिमाण बतलाया गया है वह कल्प भेद आदि के कारण भिन्न प्रकार का है जठर और देवकूट दोनों पर्वत दो हजार योजन ऊँचे और चौड़े हैं ॥२७॥

मेरोर्मूर्धनि भगवत आत्मयोनेर्मध्यत उपक्लृप्तां पुरीमयुतयोजनसाहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदन्ति॥२८॥

अनुवाद— यह कहा जाता है कि मेरु पर्वत के शिखर पर ठीक बीच में ब्रह्माजी की सुवर्ण मयी नगरी हैं । वह आकार में समान चतुरस्र दस हजार योजन विस्तृत है ॥२८॥

तामनु परितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं यथारूप तुरीयमानेन पुरोऽष्टावुपक्लृप्ताः ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे भुवनकोश वर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् पूर्वादि आठ दशाओं के अधिपति इन्द्र आदि आठ लोकपालों की आठ नगरियाँ हैं । वे अपने-अपने स्वामी के अनुरूप उनके ही दिशाओं में हैं उन सबों का परिमाण ब्रह्माजी की पुरी के चौथाई-चौथाई में हैं ॥२९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवे स्कन्ध के भुवनकोश वर्णन नामक सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६।।

सत्रहवाँ अध्याय

गङ्गाजी का विवरण और भगवान् शङ्कर कृत सङ्कर्षण देव की स्तुति

श्रीशुक उवाच

तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरेणान्तःप्रविष्टा या बाह्यजलधारा तच्चरणपङ्कजावनेजनारुणकिंजल्कोपरञ्जिताखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनामला साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोभिधीयमानातिमहता कालेन युगसहस्त्रो पलक्षणेन दिवो मूर्धन्यवततार यत्तद्विष्णुपदमाहुः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जब राजा बलि की यज्ञशाला में यज्ञ मूर्ति भगवान् विष्णु ने त्रैलोक्य को नापने के लिए अपना पैर फैलाया तो उनके बाये पैर के अङ्गूठे के नख से अण्डकटाह के ऊपर का भाग फट गया और उस अण्डकटाह के छिद्र से जो जलधारा बाहर की ओर निकली वह उस चरण कमल के धोने के कारण पैर में लगे केसर के मिल जाने से लाल हो गयी। उस धाराका र्स्पश होने से इस संसार का सारा पाप विनष्ट हो गया फिर भी वह धारा निर्मल ही बनी रही। उस धारा को पहले विष्णुपदी नाम से ही कहा जाता था। वह धारा हजारों युग बीत जाने पर स्वर्ग के शिरोभाग में स्थित ध्रुवलोक में गिरी जिसे विष्णुपद भी कहते हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततः सप्तदशे गङ्गागमनं तच्चतुर्दिशम्। इलावृते च रुद्रेण सङ्कर्षणनिषेवणम्। यज्ञलिङ्गस्य बलेर्यज्ञे लिङ्गं त्रिविक्रममूर्तिर्यस्य विक्रमतो दक्षिणेन पदा भुवं क्रान्त्वा वामपदमुत्क्षिपतो वामपादाङ्गुष्ठनखेन निर्भिन्नमूर्ध्वमुपरिभागो यस्याण्डकटाहस्य तस्य विवरेणान्तः प्रविष्टा या बाह्यजलधारा सा दिवो मूर्धन्यवततारेत्यन्वयः। तस्य यच्चरणपङ्कजं तस्यावनेजनेन क्षालनेनारुणं तद्गतं कुङ्कुम तदेव किंजल्कास्तैरुपरञ्जिता अतएवाखिलस्य जगतोघमलापहमुपस्पर्शनं यस्यास्तथाप्यमला तन्मलसङ्गशून्या साक्षाद्भगवत्पदीति यदनुपलक्षितं जाह्नवी भागीरथीत्याद्युपलक्षणान्तररहितं वचो नाम तेनाभिधीयमानां तस्मिन्समये भगवत्पदी नाम पश्चान्नामान्तराणि जातानीत्यर्थः। कोऽसौ दिवो मूर्धा तमाह-यदिति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

भुवनकोश के वर्णन के पश्चात् सत्रहवें अध्याय में गङ्गा के चारो दिशाओं में जाने का वर्णन है । और इलावर्त वर्ष में भगवान् शङ्करजी के द्वारा भगवान सङ्कर्षण की स्तुति का वर्णन है । यज्ञ मूर्ति भगवान् का बलि के यज्ञ में त्रिविक्रमशरीरधारी त्रैलोक्य के नापने के समय दाहिने पैर पृथिवी को नापकर जब वे बायें पैर को ऊपर उठाये तो ब्रह्माण्ड कटाह के ऊपर का भाग फट गया उसके छिद्र से बाह्य जलधारा भीतर प्रवेश की वह स्वर्ग लोक के शिरोभाग में गिरी । श्रीभगवान् के चरण कमल के धोने से उस चरण में लगे लाल कुङ्कुम रूप पराग से रंजित वह अपने स्पर्श मात्र से संसार के पाप का अपनोदन कर दी, किन्तु उसके मूल से संसक्त नहीं होने के कारण वह निर्मल ही बनी रही । वह जाह्नवी, भगीरथी इत्यादि नामों से भगवतपदी के नाम से अभिहित की जाती थी । उस समय उसका नाम भगवत्पदी ही था बाद में उसके दूसरे जाह्नवी इत्यादि नाम हुए । अव प्रश्न हैं कि स्वर्ग लोक का शिरोभाग क्या है तो उसका नाम विष्णुपद अर्थात् ध्रुवलोक है ॥१॥

यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतोऽस्मत्कुलदेवताचरणारविन्दोदकमिति यामनुसवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्तियोगेन दृढं क्लिद्यमानान्तर्हदय औत्कण्ठ्यविवशामीलितलोचनयुगलकुड्भलविगलितामलबाष्पकलयाभिव्यज्यमानरोमपुलककुलकोऽधुनापि परमादरेण शिरसा बिभर्ति ॥२॥

अनुवाद— हे वीरव्रत परीक्षित ! उस ध्रुवलोक में उत्तानपाद के पुत्र परम भागवत ध्रुव का निवास हैं । वे प्रतिदिन यह हमारे कुल देवता श्रीभगवान् का चरणोदक है, ऐसा मानकर बढ़ते हुए भक्ति भाव से आज भी उस जल को वे अपने सिर पर चढ़ाते हैं । उस समय उनका हृदय प्रेम से गद्गद हो जाता है । उत्कण्ठा के कारण उने मुंदे हुए नेत्रों से आँसू की धारा प्रवाहित होने लगती है । और उनके शरीर में रोमाञ्च हो जाता है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

किं तद्विष्णुपदं तदाह-यत्रेति । वीरव्रतो दृढसङ्कल्पः अस्मत्कुलदेवताया हरेश्चरणारविन्दोदकमिति हेतोः परमादरेण बिभर्तीत्यन्वयः । कथंभूतः सन् । प्रतिक्षणं वर्धमानेन भगवद्भक्तियोगेन दृढमत्यन्तं क्लिद्यमानमन्तर्हृदयं यस्य । अत एवौत्कण्ठ्येन विवशमामीलितं यल्लोचनयुगलं तदेव कुड्भले ताभ्यां विगलितममलं बाष्पं तस्य कलया सहाभिव्यज्यमानं रोमपुलकानां कुलं यस्य ॥२॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि वह विष्णुपद क्या है ? तो उसे इस दण्डक में बतलाते हैं । वीरव्रत अर्थात् सुदृढ सङ्कल्प वाले ध्रुवजी यह हमारे कुल देवता श्रीभगवान् का चरणोदक है, यह मानकर उसे अत्यन्त आदर के साथ अपने शिर पर धारण करते है । कैसे होकर वे यह काम करते हैं ? तो इस पर कहते है प्रतिक्षण बढ़ने वाले भक्तियोग के द्वारा अत्यन्त गद्गद हृदय वाले होकर धारण करते हैं । अतएव उनके मुंदे हुए नेत्रों से उत्कण्ठा वशात् अश्रुधारा बहने लगती है और उनके शरीर में रोमाञ्च हो जाता है ॥२॥

ततः सप्तऋषयस्तत्प्रभावाभिज्ञायां ननु तपस आत्यन्तिकी सिद्धरेतावती भगवति सर्वात्मनि वासुदेवेऽनुपरतभक्तियोगलाभेनैवोपेक्षितान्यार्थात्मगतयो मुक्तिमिवागतां मुमुक्षव इव सबहुमानमद्यापि जटाजूटैरुद्वहन्ति ॥३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् सप्तर्षिगण विष्णुपदी के प्रभाव को जानने के कारण, यही तपस्या की आत्यन्तिकी सिद्धि है, यह मानकर अत्यन्त आदर पूर्वक आज भी वैसे ही अपने जटा-जूट पर धारण करते हैं । ये सप्तर्षिगण निष्काम है । सर्वात्मा भगवान् वासुदेव की निश्चल भक्ति को ही अपना धन मानकर इन लोगों ने सभी कामनाओं को भी त्याग दिया है । यहाँ तक कि ये भक्तियोग के सामने आत्मज्ञान को भी महत्त्व नहीं देते हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

ततः सप्तऋषयस्तस्या गङ्गायाः प्रभावाभिज्ञाः सन्तो यां जटाजूटैरुद्वहन्तीत्यन्वयः । एतावत्येव नातोऽधिकास्तीत्यभिप्रायवन्तः। तत्र हेतुः-भगवति सन्ततं भक्तियोगलाभेनैवोपेक्षिता अन्ये पुरुषार्था आत्मज्ञानं च यैः । कामिव क इव धारयन्ति । प्रत्यक्षं मुक्तिमिव तामागताम् । मुमुक्षवो जना इव ते ।।३।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् गङ्गाजी के प्रभाव को जानने वाले सप्तर्षि गण उसके अपने जटा-जूट पर धारण करते हैं। वे जानते हैं कि यही तपस्या की आत्यन्तिकी सिद्धि है । श्रीभगवान् में भक्तियोग का लाभ हो जाने के कारण ये सप्तर्षि अन्य पुरुषार्थों और आत्मज्ञान की भी उपेक्षा कर देते हैं । वे उसको साक्षात् मुक्ति के समान धारण करते हैं । मुमुक्षु पुरुषों के समान ।।३।।

ततोऽनेकसहस्रकोटिविमानानीकसंकुलदेवयानेनावतरन्तीन्दुमण्डलमावार्य ब्रह्मसदने निपतति ।।४।।

अनुवाद— उसके पश्चात् गङ्गाजी करोड़ों विमानों से घिरे हुए आकाश में उतरती हैं और चन्द्रमण्डल को आप्लावित करती हुई मेरु के शिखर पर ब्रह्मपुरी में गिरती हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

ततोऽनेकसहस्रकोटीनां विमानामनामनीकैः सङ्कुलेन देवयानेनाकाशमार्गेणावतरन्ती । सप्तऋषिभ्योऽर्वागेव प्रायशः कर्मिणां गतिरिति ततोऽर्वागेव सङ्कुलत्वमुक्तम् । आवार्य आप्लाव्य । मेरुमूर्धस्थ ब्रह्मसदने निपतति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् विमान समूह से भरे आकाश मार्ग से अवतरित होती हुई सप्तर्षियों से पहले ही, कर्मियों की गति रूप उससे पहले ही चन्द्र लोक को आप्लावित कर ब्रह्माजी की पुरी में गिरती हैं ।।४।।

तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशमभिस्पन्दन्ती नदनदीपतिमेवाभिनिविशति सीताऽलकनन्दा चक्षुर्भद्रेति ।।५।।

अनुवाद— वहाँ से ये सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा इन चार धाराओं में विभक्त होकर अलग-अलग चारो दिशाओं में प्रवाहित होती हुई नदों एवं नदियों के स्वामी समुद्र में जाकर मिल जाती हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

अभिस्पन्दन्ती अभितो गच्छन्ती ।।५।।

भाव प्रकाशिका

अभिस्पदन्ती का अर्थ चारो ओर प्रवाहित होती हुई ।।५।।

सीता तु ब्रह्मसदनात्केसराचलादिगिरिशिखरेभ्योऽधोऽधः प्रस्रवन्ती गन्धमादनमूर्धसु पतित्वान्तरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्यां दिशि क्षारसमुद्रमभिप्रविशति ।।६।।

अनुवाद— सीता नाम की धारा ब्रह्मपुरी में गिर करके सराचलों के सर्वोच्च शिखरों से होकर नीचे की ओर प्रवाहित होती हुई गन्ध मादन पर्वत के शिखरों पर गिरती है । और भद्राश्व वर्ष को पलावित करके पूर्व दिशा में जाकर खारे जल के पूर्व समुद्र में जाकर मिल जाती हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

केसराचलानां मेरुसमानोच्छ्रायत्वात्प्रथमं तेषामादिशिखरेषु मुख्यशृङ्गेषु पतति ततस्तेभ्योऽधोऽधः प्रस्रवन्ती सती ।।६।।

भाव प्रकाशिका

केसराचलों के मेरु पर्वत के समान ऊँचे होने के कारण पहले उन सबों के ऊँचे शिखरों पर गिरती है, उसके पश्चात् उन सबों से नीचे बहती हुई जाकर पूर्वसमुद्र में मिल जाती है ।।६।।

एवं माल्यवच्छिखरान्निष्पतन्ती ततोऽनुपरतवेगा केतुमालमभि चक्षुः प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति।।७।।

अनुवाद— इसी तरह चक्षु नाम की धारा माल्यवान् पर्वत के शिखा पर गिरकर बिना किसी अवरोध के केतुमाल वर्ष में होती हुई पश्चिम समुद्र में जाकर मिल जाती है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

माल्यवच्छिखरात्केतुमालाभिमुखं निष्पतन्ती । चक्षुःसंज्ञा ।।७।।

भाव प्रकाशिका

चक्षु नाम की धारा माल्यवान् पर्वत पर होकर केतुमाल वर्ष में होकर पश्चिम समुद्र में जाकर मिल जाती हैं ।।७।।

भद्रा चोत्तरतो मेरुशिरसो निपतिता गिरिशिखराद्गिरिशिखरमतिहाय शृङ्गवतः शृङ्गादवस्यन्दमाना उत्तरांस्तु कुरूनभित उदीच्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ।।८।।

अनुवाद— भद्रा मेरुपर्वत के शिखर से उत्तर की ओर गिरती है एक पर्वत के शिखर से दूसरे पर्वत के शिखर पर गिरती हुई शृङ्गवान शिखर से गिरकर उत्तर की ओर बहती हुई उत्तर समुद्र में जाकर मिल जाती हैं।।८।।

भावार्थ दीपिका

गिरिशिखरादिति । कुमुदशिखरादुच्चलिता नीलशिखरं तत उच्चलिता श्वेतशिखरं तदप्यतिहाय शृङ्गवतः शृङ्गादधः स्रवन्ती ।।८।।

भाव प्रकाशिका

कुमुद पर्वत के शिखर से चलकर नील पर्वत के शिखर पर फिर श्वेत पर्वत के शिखर पर, उसको भी छोड़कर शृङ्गवान पर्वत से नीचे गिरकर प्रवाहित होती हुई उत्तर समुद्र में जाकर मिली जाती हैं ।।८।।

तथैवालकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनाद्बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य हेमकूटाद्धैमकूटान्यतिरभसतररंहसा लुठन्ती भारतमभिवर्षं दक्षिणस्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति यस्यां स्नानार्थं चागच्छतः पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराजसूयादीनां फलं न दुर्लभमिति ।।९।।

अनुवाद— उसी तरह अलकनन्दा नाम की भी धारा ब्रह्मपुरी से दक्षिण की ओर गिरकर अनेक पर्वत शिखरों को पार करती हुई हेमकूट पर्वत पर आती है । हेमकूट पर्वत से हिमालय पर्वत के शिखरों को अत्यन्त वेग से गिरती हुई भारतवर्ष में दक्षिण दिशा के समुद्र में प्रवेश कर जाती है । इस अलकनन्दा में स्नान करने के लिए आने वाले पुरुष को पग-पग पर अश्वमेध तथा राजसूय आदि यज्ञों का फल प्राप्त होता है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

अतिरभसतररंहसा अस्खलिततीव्रतरवेगेन ।।९।।

भाव प्रकाशिका

अतिरभसतररंहसा का अर्थ है अपने अत्यन्त वेग से ।।९।।

अन्ये च नदा नद्यश्च वर्षे वर्षे सन्ति बहुशो मेर्वादिगिरिदुहितरः शतशः ॥१०॥

अनुवाद— दूसरे भी वर्षों में मेरु आदि से निकलने वाली सैकड़ों नदियाँ हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

बहुशो बहुविधाः । मेर्वादिगिरीणां दुहितरस्तत्प्रसूताः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

बहुशः अर्थात् अनेक प्रकार की मेरु आदि पर्वतों से निकलने वाली नदियाँ हैं ॥१०॥

तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्टवर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति ॥११॥

अनुवाद— इन सभी वर्षों में भारत वर्ष ही कर्म क्षेत्र है अन्य आठ वर्ष तो स्वर्ग वासी पुरुषों के भोग से बचे हुए पुण्यों को भोगने के स्थान है । उन वर्षों को भौम स्वर्ग पद से लोग अभिहित करते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

दिव्यभौमबिलभेदात्त्रिविधः स्वर्गः तत्र भौमस्वर्गस्य पदानि स्थानानि व्यपदिशन्ति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

स्वर्ग तीन प्रकार का है दिव्य, भौम और बिल । इनमें से ये भौम स्वर्ग पद से अभिहित किए जाते हैं॥११॥

एषु पुरुषाणामयुतपुरुषायुर्वर्षाणां देवकल्पानां नागायुतप्राणानां वज्रसंहननबलवयोमोदप्रमुदितमहासौरतमिथुनव्यवायापवर्गवर्षधृतैकगर्भकलत्राणां तत्र तु त्रेतायुगसमः कालो वर्तते ॥१२॥

अनुवाद— वहाँ के देवतुल्य मनुष्यों की मानवी गणना के अनुसार दस हजार वर्षों की आयु होती है । उनमें दस हजार हाथियों का बल होता है । उनके वज्र के समान सुदृढ अङ्गों में जो शक्ति, यौवन और उल्लास होते हैं । उनके कारण वे बहुत समय तक मैथुन आदि भोगों को भोगते हैं । अन्त में भोगों के समाप्त होने पर उनकी आयु का एक वर्ष जब बचता है तब उनकी स्त्रियाँ गर्भ धारण करती हैं । इस तरह वहाँसदैव त्रेतायुग के समान काल बना रहता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अयुतं पुरुषमानेन आयुर्वर्षाणि येषाम् । वज्रवदृढं संहननं शरीरं तस्मिन्बलवयोमोदास्तैः प्रमुदितानि यानि महासौरतानि मिथुनानि तेषां व्यवायापवर्गे संभोगावसाने एकवर्षशेषे आयुषि धृत एको गर्भो यैस्तादृशानि कलत्राणि येषाम् । त्रेतायुगसमः विषयसुखोत्कर्षात् । कृतयुगे हि सर्वे ध्याननिष्ठाः । द्वापरादौ तु दुःखबहुलाः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

वहाँ के लोगों की आयु मनुष्यों की गणना से दस हजार वर्षों की होती है । उन लोगों के शरीर वज्र के समान सुदृढ होता है । उन शरीरों में विद्यमान बल अवस्था और उल्लास के कारण वे बहुत समय तक मैथुन आदि विषयों को भोगते हैं । उन स्वर्ग में भोगों के अन्त में जब आयु का एक वर्ष बचा रहता है तो उनकी स्त्रियाँ गर्भ धारण करती हैं । वैषयिक आनन्द की उत्कृष्टता के कारण वहाँ त्रेतायुग के समान काल बना रहता है । सत्य युग में सभी मनुष्य ध्यान निष्ठ होते हैं । द्वापर आदि युग में तो लोग अधिक दुःखी रहते हैं ॥१२॥

यत्र ह देवपतयः स्वैः स्वैर्गणनायकैर्विहितमहार्हणाः सर्वर्तुकुसुमस्तबकफलकिसलयश्रियानम्यमानविटपलताविटपिभिरुपशुम्भमानरुचिरकाननाश्रमायतनवर्षगिरिद्रोणीषु तथा चामलजलाशयेषु बिकचविविधनववनरुहामोदमुदितराजहंसजलकुक्कुटकारण्डवसारसचक्रवाकादिभिर्मधुकरनिकराकृतिभिरुपकूजितेषु जलक्रीडादिभिर्विचित्रविनोदैः सुललितसुरसुन्दरीणां कामकलिलविलासहासलीलावलोकाकृष्टमनोदृष्टयः स्वैरं विहरन्ति ॥१३॥

अनुवाद— वहाँ ऐसे आश्रम, भवन और वर्ष, पर्वतों की घाटियाँ हैं जिनके सुन्दर वन उपवन सभी ऋतुओं के पुष्पों के गुच्छे, फल और नवीन पल्ल्वों की शोभा के भार से झुकी हुई डालियों और लताओं वाले वृक्षों से समलंकृत हैं। वहाँ निर्मल जल से परिपूर्ण ऐसे जलाशय हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के कमल सदा विकसित रहते हैं। उन कमलों की सुगन्धि से प्रमुदित होकर राजहंस, जलमूर्ग कारण्डव सारस और चकवा आदि पक्षी विभिन्न प्रकार की बोलियाँ बोलते हैं। भिन्न-भिन्न जाति के मदमत्त भ्रमर मधुर गुञ्जन करते है। इन आश्रमों भवानों, घाटियों में तथा जलाशयों में देवेश्वर गण परम सुन्दरी देवाङ्गनाओं के साथ कामोन्मादक हास-विलास और लीला कटाक्षों से मन और नेत्रों के आकृष्ट हो जाने के कारण स्वच्छन्द विहार करते हैं और उनके मुख्य अनुचर गण विविध प्रकार की सामग्रियों से उनका समादर करते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

यत्र ह येषु हि वर्षेषु देवपतयः स्वैः स्वैः सेवकगणेषु मुख्यैः कृतमहोपचाराः सन्तः स्वैरं विहरन्तीत्यन्वयः। केषु स्थानेषु। सर्वेषु ऋतुषु कुसुमस्तबकादीनां श्रिया समृद्ध्यात्यन्तं नम्यमाना विटपास्तदाश्रिता लताश्च येषु तैर्विटपिभिरुपशुम्भमानानि शोभमानानि रुचिराणि काननानि येषु तेष्वाश्रमायतनेषु वर्षगिरिद्रोणीषु च तथा अमलेषु जलाशयेषु विकचानि विकासीनि विविधानि नवानि च यानि वनरुहाणि नीरजानि तेषामामोदेन मुदितैः राजहंसादिभिर्मधुकरनिकराणां चाकृतिभिर्जातिविशेषैरुपकूजितेषु। कामेन कलिलैः क्षुभितैर्विलासादिभिराकृष्टं मनो दृष्टिश्च येषां ते ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

जिन वर्षों में देवेश्वरगण अपने मुख्य सेवकों द्वारा समादृत होकर अपनी इच्छा के अनुसार विहार करते हैं। यह मुख्य वाक्य है। जिन स्थानों में सभी ऋतुओं में पुष्पों के गुच्छों आदि को अत्यन्त भार से झुके हुए वृक्ष तथा उनके आश्रित रहने वाली लताएँ भी उन वृक्षों के द्वारा अत्यन्त सुशोभित होती हैं। इस प्रकार के वनों में विद्यमान आश्रम वर्ष (विख्यात पर्वत) तथा पर्वतों की धाटियों में, विद्यमान स्वच्छ जलाशयों में विकसित अनेक प्रकार के कमलों की सुगन्धि से प्रसन्न राजहंस आदि और अनेक जाति के भ्रमर भी गुंजन करते हैं काम जन्य विकारों से तथा विलास आदि से जिन सबों का मन और दृष्टि आकृष्ट रहते हैं ऐसे देवेश्वर स्वच्छन्द विहार करते हैं ॥१३॥

नवस्वपि वर्षेषु भगवान्नारायणो महापुरुषः पुरुषाणां तदनुग्रहायात्मत्त्वव्यूहेनात्मनाद्यापि संनिधीयते॥१४॥

अनुवाद— उन नवो वर्षों में रहने वाले पुरुषों पर कृपा करने के लिए परम पुरुष भगवान् नारायण इस समय भी अपनी मूर्तियों में विराजमान रहते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

नवस्वपि वर्षेषु ये पुरुषास्तेषां तदनुग्रहाय स चासौ वक्ष्यमाणोऽनुग्रहस्तदर्थमात्मतत्त्वव्यूहेन स्वमूर्तिसमूहेन संनिधीयते संनिहितो भवति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

उन नवो वर्षों में रहने वाले जीवों पर कृपा करने के लिए भगवान् आज भी अपनी मूर्तियों से विराजामन रहते हैं ॥१४॥

इलावृते तु भगवान् भव एक एव पुमान्नह्यन्यस्तत्रापरो निर्विशति भवान्याः शापनिमित्तज्ञो यत्प्रवेक्ष्यतः स्त्रीभावस्तत्पश्चाद्वक्ष्यामि ॥१५॥

अनुवाद— इलावृत वर्ष में तो एक मात्र भगवान् शङ्कर ही पुरुष हैं श्रीपार्वतजी के शाप को जानने वाला कोई दूसरा पुरुष उस वर्ष में प्रवेश नहीं करता है । इस प्रसङ्ग को हम आगे (नवें स्कन्ध में) कहेंगे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अपरोऽर्वाचीनः । पश्चात् नवमस्कन्धे ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

अपर अर्थात् बाद में उत्पन्न होने वाला, पश्चात् अर्थात् नवें स्कन्ध में ॥१५॥

भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो भगवतश्चतुर्मूर्तेर्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः सङ्कर्षणसंज्ञामात्मसमाधिरूपेण संनिधाप्यैतदभिगृणन् भव उपधावति ॥१६॥

अनुवाद— वहाँ पार्वतीजी एवं उनकी अरबों खर्वों दासियों से सेवित भगवान् शङ्कर परम पुरुष परमात्मा श्री वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सङ्कर्षण संज्ञक चतुर्व्यह मूर्तियों में से अपनी कारण रूपा चौथी सङ्कर्षण नामकी तमः प्रधान मूर्ति का ध्यान मनोमयं विग्रह के रूप में चिन्तन करते हैं और इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए इस प्रकार स्तुति करते रहते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

भवानी नाथः स्वामिनी येषां तैः स्त्रीगणानामर्बुदसहस्रैरवरुध्यमानः सर्वतः सेव्यमानः । आत्मनः प्रकृतिं कारणम् । आत्मनि समाधिर्ध्यानं यस्य तेन रूपेण । एतद्वक्ष्यमाणं मन्त्रादिकमभिगृणन् जपन् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

जिन सबों की पार्वतीजी स्वामिनी हैं ऐसी अरबों खरबों स्त्री समूह से सेवित भगवान् शङ्कर अपनी करणभूता समाधिस्थित मनोमय मूर्ति सङ्कर्षण मूर्ति भगवान् की आगे कहे जाने वाले मन्त्र आदि से जप करते हुए स्तुति करते हैं ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति ॥१७॥

शङ्करजी कहते हैं

अनुवाद— जिनसे सभी गुणों की अभिव्यक्ति होती है उन अनन्त और अव्यक्त मूर्ति ओङ्कार स्वरूप परम पुरुष भगवान् को नमस्कार है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

सर्वेषां गुणानां संख्यानं प्रकाशो यस्मात् । स्वयं त्वव्यक्तायाप्रमेयाय ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

जिनसे सभी गुणों की अभिव्यक्ति होती है स्वयं अप्रमेय भगवान को मेरा नमस्कार है ॥१७॥

भजे भजन्यारणपादपङ्कजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ।
भक्तेष्वलंभावितभूतभावनं भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ।।१८।।

अन्वयः— हे भजन्य अरणंपाद पङ्कज, कृत्स्नस्य भगस्य परं परायणम् भक्तेषु अलं भावितभूतभावनं भवापहं भवभावमीश्वरं त्वां भजे ।।१८।।

अनुवाद— हे भजनीय प्रभो ! आपके चरण कमल भक्तों का एकमात्र आश्रय हैं । आप सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के परम आश्रय है । भक्तों के सामने आप अपना भूतभाव स्वरूप प्रकट कर देते हैं तथा उनको आप संसार से मुक्त कर देते हैं। किन्तु अभक्तों को आप संसार के बन्धन में डाल देते हैं । आप सर्वेश्वर का मैं भजन करता हूँ ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

हे भजन्य भजनीय, त्वा त्वां परमेश्वरं भजे इत्यन्वयः । अरणं शरणं पादपङ्कजं यस्य । कृत्स्नस्य भगस्यैश्वर्यादिषाड्गुण्यस्य परमयनमाश्रयम् । भक्तेष्वलमत्यर्थं भावितं प्रकटितं भूतभावनं स्वरूपं येन । भवापहं संसारहरम् । भक्तेष्वित्यनुषङ्गः । भवं भावयतीति तथा तम् । अर्थादभक्तेष्विति द्रष्टव्यम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

हे भजनीय प्रभो ! मैं आप परमेश्वर का भजन करता हूँ । यह मुख्य वाक्य है । आपके चरण कमल भक्तों के एकमात्र आश्रय हैं । आप सम्पूर्ण षडैश्वर्यों के आश्रय हैं । भक्तों के समक्ष आप अपना भूत भावन रूप प्रकट कर देते हैं और उनको संसार बन्ध से मुक्त कर देते हैं । और अभक्तों को संसार के बन्धन में डाल देते हैं ।।१८।।

न यस्य मायागुणचित्तवृत्तिभिर्निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ।
ईशे यथा नोऽजितमन्युरंहसां कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ।।१९।।

अन्वयः— यथा अजितक्रोधवेगानां नः दृष्टि रज्यते तथा मायागुण चित्तवृत्तिभिः ईशे यस्य दृष्टिः अण्वपि न अज्यते तं आत्मनः जिगीषुः कः न मन्येत ।।१९।।

अनुवाद— प्रभो ! हमलोग क्रोध के वेग को नहीं जीत सके हैं अतएव हमलोगों की दृष्टि पाप से लिप्त हो जाती है आप तो संसार का नियमन करने के लिए निरन्तर साक्षी रूप से उसके समस्त व्यापारों को देखते रहते हैं फिर भी हमलोगों के समान आपकी दृष्टि पर उन मायिक विषयों और चित्त की वृत्तियों का थोड़ा सा भी प्रभाव नहीं पड़ता है; ऐसी स्थिति में अपने मन को वश में करने की इच्छा वाला कौन ऐसा होगा जो आपका समादर नहीं करेगा ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

ईश्वरत्वमुपपादयंस्तामसत्वेन प्रसक्तमनादरं वारयति–न यस्येति । यस्य निरीक्षमाणस्यापि दृष्टिर्मायागुणैर्विषयैश्चित्तवृत्तिभिः करणैश्चाण्वपीषदपि नाज्यते न लिप्यते । किमर्थं निरीक्षमाणस्य । ईशे ईशनाय नियमनाय । ईशनमीट् । संपदादित्वाद्भावे क्विप्। अत्र वैधर्म्ये दृष्टान्तः । यथा अजितक्रोधवेगानां नोऽस्माकं दृष्टिरज्यते न तथेति । अत आत्मन इन्द्रियाणि जिगीषुर्जेतुमिच्छुर्मुमुक्षुस्तं को न मन्येत नाद्रियेत ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् सङ्कर्षण के ईश्वरत्व का प्रतिपादन करते हुए उनके तामस होने के कारण प्रसक्त अनादर को दूर करते हुए कहते हैं कि हे प्रभो ! आप संसार का नियमन करने के लिए उसको साक्षिरूप से सदा देखते हुए भी उसके मायिक गुणों और चित्त की वृत्तियों का आपकी दृष्टि पर अणुमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता है । यहाँ वैधर्म्य में दृष्टान्त उपन्यस्त करते हैं । जैसे कि क्रोध के वेग को नहीं जीत पाने वाले हमलोगों की दृष्टि पाप से युक्त

हो जाती है ईश का अर्थ नियमन करने के लिए ईशनम् इस अर्थ में संपदादिगण होने के कारण क्विप् प्रत्यय होकर और क्विप् प्रत्यय होकर इट् शब्द व्युत्पन्न होता है। उसके चतुर्थी एक वचन का रूप है ईशे। ऐसे आपका जो अपने मन को वश में करना चाहता है, वह कौन पुरुष होगा जो आपका समादर न करें ॥१९॥

असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः ।
न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः ॥२०॥

अन्वयः— यः मध्वासक्तताम्रलोचनः क्षीबेव मायया असदृशः प्रतिभाति यत् पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः नागबध्वः ह्रिया अर्हणे न ईशिरे ॥२०॥

अनुवाद— आप जिन पुरुषों को मधु आसव आदि पान करने के कारण अरुण नयन और मतवाले के समान जान पड़ते हैं वे माया के वशीभूत होकर ही आपका मिथ्या दर्शन करते हैं। आपका चरणों का स्पर्श करने से चित्त के चञ्चल हो जाने के कारण नाग पत्नियाँ लज्जावशात् आपकी पूजा करने में समर्थ नहीं हो पाती हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

ननु सुरामद्याभ्यां मत्तस्य कुतो दृष्टिर्नाज्यते तत्राह। असती दृष्टिर्यस्य तस्य स्वमायया क्षीबा मत्त इव यो भयङ्करः प्रतिभाति। मध्वासवाभ्यां ताम्रलोचन इव च। नागवधूविमोहनेन तथा प्रतिभानं युक्तमित्याह- नेति। पादार्चने यस्य पादयोः स्पर्शनेन धर्षितं मोहितमिन्द्रियं मनो यासां तां ह्रिया लज्जया भुजाद्यर्हणे न ईशिरे न शेकुः। कस्तं न मन्येतेति पूर्वेणैवान्वयः॥२०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि सुरा तथा मद्य का पान करने से मतवाले बने सङ्कर्षण की दृष्टि पाप रंजित क्यों नहीं होती है ? इसका उत्तर है कि माया के कारण उन देखने वाले पुरुषों की मिथ्या दृष्टि है उसी के कारण आप मत्त के समान भयङ्कर प्रतीत होती है। मद्य और आसवपान करने के कारण अरुणनयन के समान प्रतीत होते हैं। नाग पत्नियों के मोहित हो जाने के कारण उस तरह की प्रतीति होना तो उचित ही है। आपके चरणों का स्पर्श करने मात्र से उन सबों का मन मोहित हो जाता है और वे लज्जावशात् आपकी भुजाओं आदि की पूजा नहीं कर पाती हैं ॥२०॥

यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः ।
न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु ॥२१॥

अन्वयः— यम् अस्य स्थिति जन्मसंयमंयम्आहुः त्रिभिः विहीनम्, आहुः, ऋषयः यम् अनन्तम् आहुः, भूमण्डलं यस्य मूर्धसहस्रधामसु सिद्धार्थमिक क्वचित् स्थितम् न वेद ॥२१॥

अनुवाद— वेद आपको जगत् उत्पत्ति स्थिति और संहार का कारण बतलाते हैं, किन्तु आप इन तीनों विकारों से रहित हैं, अतएव ऋषियों ने आपको अनन्त कहा है। आपके हजार हजार मस्तकों पर यह भूण्डल सरसों के दाने के समान है। आपको इसका भी पता नहीं है कि यह आपके किस शिर पर स्थित है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अस्य विश्वस्य स्थितिजन्मसंयमहेतुं यमाहुःअत एव त्रिभिः स्थित्यादिभिर्विहीनमनन्तं च यमाहुः। ऋषयो मन्त्राः। छन्दोनुरोधेन दीर्घपाठे ऋकारो देवमाता लक्ष्मीः सा च ऋषयश्चेत्यर्थः। अनन्तत्वं दर्शयति। मूर्धसहस्रमेव धामानि स्थानानि तेषु क्वचिदेकदेशस्थितं भूमण्डलं यो न वेद। सिद्धार्थं सर्षपमिव तस्मै नम इति चतुर्थेनान्वयः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

जिनको वेद इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति और संहार का कारण बतलाते हैं, तथा जो इन तीनों विकारों से रहित हैं । इसलिए ऋषियों और मन्त्रों ने आपको अनन्त कहा है । ऋषि शब्द या मन्त्र का वाचक है । छन्द की दृष्टि से दीर्घ ॠ पाठ मानने पर ॠ शब्द वाच्य लक्ष्मी और ऋषिगण आपको अनन्त कहते हैं । उनके अनन्त त्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं । आपके हजार शिरों के ऊपर सरसों के दाने के सामन पृथिवी का आपको यह भी पता नहीं है कि पृथिवी कहाँ पर स्थित है ।।२१।।

यस्याद्य आसीद्गुणविग्रहो महान्विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल ।
यत्संभवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे ।।२२।।

अन्वयः— यत्सम्भवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसम् इन्द्रियं सृजे, विज्ञानधिष्ण्यः भगवान् अजः यस्याद्यः महानगुण विग्रहः आसीत् किल ।।२२।।

अनुवाद— जिनसे उत्पन्न हुआ मैं त्रिगुणमय तेज से देवता इन्द्रिय और भूतों की रचना करता हूँ वे ज्ञिन के आश्रय भगवान् ब्रह्माजी भी आपके ही महत् तत्त्वसंज्ञक प्रथम गुणमय स्वरूप हैं ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

तत्र जन्महेतुत्वं महदादिद्वारेण प्रपञ्चयति । यस्य गुणनिमित्तो महान्नाम विग्रह आसीत् । विज्ञानं तत्त्वं धिष्ण्यमाश्रयो यस्य सः । तस्य चित्तरूपत्वेन सत्त्वप्रधानत्वात् । स एव किलाधिदैवो वासुदेवाभेदविवक्षया । भगवानजो ब्रह्मा यत्संभवो यस्माद्ब्रह्मणः संभूतोऽहं रुद्रः । त्रिवृता त्रिगुणेन स्वतेजसा स्वविभूतिरूपेणाहंकारेण वैकारिकं देवतावर्गं तामसं भूतवर्गमैन्द्रियमिन्द्रियवर्गं च सृजे सृजामि ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

महदादि द्वारा जन्म कारणत्व का प्रतिपादन करते हैं । आपका गुणनिमितक महान् नामक विग्रह था । वे ब्रह्माजी विज्ञान के आश्रय हैं । उसके चित्त रूप सत्त्व प्रधान होने के कारण, वे ही अधिदैव वासुदेव से अभिन्न है । यह बतलाने के लिए ब्रह्माजी जिनसे उत्पन्न हुए और मैं (शङ्करजी) उन ब्रह्माजी से उत्पन्न हूँ । अपने त्रिगुणात्मक तेज से मैं अपनी विभूति रूप से वैकारिक अहङ्कार से देवता वर्ग की, तामस अहङ्कार से भूत वर्ग को और इन्द्रिय वर्ग की सृष्टि करता हूँ ।।२२।।

एते वयं यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयन्त्रिताः ।
महानहंवैकृततामसेन्द्रियाः सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम् ।।२३।।

अन्वयः— यस्य महात्मनः वशे सूत्रयन्त्रिताः शकुन्ता इव स्थिताः महान् अहं, वैकृत तामसेन्द्रियाः वयं सर्वे यदनुग्रहात् सृजामः ।।२३।।

अनुवाद— आप श्रीभगवान् के अधीन सूत्र में बंधे हुए पक्षी के समान रहकर महान् अहङ्कार इन्द्रियाभिमानी देवता और पंच महाभूत हम सभी आपकी ही कृपा से इस जगत् की रचना करते हैं ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

किंच एते वयं महदादयः सर्वे यस्यानुग्रहादिदं ब्रह्माण्डं सृजामः । कथंभूताः । यस्य महात्मनो वशे स्थिताः सन्तः। यतः सूत्रेण क्रियाशक्त्या यन्त्रिताः प्रोताः शकुन्ताः पक्षिण इव लौकिकेन सूत्रेण वयमित्युक्तं तानेवाह । महानहंकारश्च वैकृतादयः पूर्वोक्ता वर्गाश्च ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

और हम सभी महदादि मिलकर आपकी ही कृपा से इस जगत् की रचना करते है। कैसे हमलोग ? तो इसका उत्तर है आपमहापुरुष के वश में रहकर तथा आपकी क्रिया शक्ति के द्वारा नियन्त्रित होकर सूत्र में बंधे हुए पक्षी के समान महान् अहङ्कार तथा वैकृत इन्द्रियाभिमानी देवता हम सभी मिलकर इस जगत् की रचना करते हैं।।२३।।

यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः ।
न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ।।२४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

अन्वयः— गुणसर्गमोहितः अयं जनः कर्ह्यपि यत् निर्मितां कर्म पर्वणीं मायां वेद निस्तारणयोगम् अञ्जसान वेद तस्मै विलयो दयात्मने नमस्ते ।।२४।।

अनुवाद— सत्त्वादि गुणों की सृष्टि से मोहित हुआ यह जीव आपकी ही रची हुई इस माया को तो कभी जान भी लेता है। किन्तु उससे मुक्त होने का उपाय उसको आसानी से ज्ञात नहीं होता है। इस जगत् की उत्पत्ति और लय भी आपके ही रूप है ऐसे आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ।।२४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

स्थितिलयहेतुत्व दर्शयन्प्रणमति। येन निर्मितामेतां मायामेवायं जनोऽञ्जसा वेद, नतु तन्निस्तारणयोगमुपायं कर्हिचिदपि वेदेति स्थितिहेतुत्वं दर्शितम्। कीदृशीम्। कर्माण्येव पर्वाणि ग्रन्थयस्तानि नयति प्रापयतीति तथा ताम्। प्रलयहेतुत्वमाह। विलीयतेऽस्मिन्निति विलयः। उदेत्यस्मादित्युदयः। विलयश्चोदयश्चात्मा स्वरूपं यस्य तस्मै नमः ।।२४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिका टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भगवान् सङ्कर्षण को जगत् की स्थिति और लय का कारण बतलाते हैं। जिस आपके द्वारा रचित माया को यह जीव किसी तरह जान लेता है किन्तु उस माया से मुक्त होने योग्य साधन को किसी भी प्रकार नहीं जान पाता है इस तरह स्थित का हेतु बतलाया गया है। उदेति कहकर जगत् की उत्पत्ति का कारण कहा गया है। लय और उत्पत्ति भी जिनका स्वरूप है ऐसे आपको नमस्कार है ।।२४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के सत्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।

* * *

अठारहवाँ अध्याय

भिन्न-भिन्न वर्षों का वर्णन

श्रीशुक उवाच

तथा च भद्रश्रवा नाम धर्मसुतस्तत्कुलपतयः पुरुषा भद्राश्ववर्षे साक्षाद्भगवतो वासुदेवस्य प्रियां तनूं धर्ममयीं हयशीर्षाभिधानां परमेण समाधिना संनिधाप्येदमभिगृणन्त उपधावन्ति ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! भद्राश्ववर्ष में धर्म के पुत्र भद्रश्रवा और उनके मुख्य-मुख्य सेवक भगवान् वासुदेव की हयग्रीव संज्ञक धर्ममयी प्रिय मूर्ति को अत्यन्त समाधिनिष्ठा द्वारा हृदय में स्थापित करके मन्त्र का जप करते हुए उनकी स्तुति करते हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टादशे ततो मेरोः पूर्वादिक्रमतस्त्रिषु । त्रिषु चोत्तरवर्षेषु सेव्यसेवकवर्णनम् ॥१॥ भद्रश्रवा वर्षपतिः तस्य कुलपतयः सेवकमुख्याश्च ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इसके पश्चात् अठारहवें अध्याय में मेरु पर्वत के पूर्वादि क्रम में तीन और तीन उत्तर वर्षों में सेव्य सेवक भाव का वर्णन है । भद्रश्रवा भद्राश्ववर्ष के स्वामी उनके (कुलपतय) मुख्य-मुख्य सेवक गण ॥१॥

भद्रश्रवस ऊचु:

ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥२॥

भद्रश्रवा और उनके सेवक गण कहते है

अनुवाद— चित्त को विशुद्ध करने वाले ओङ्कार स्वरूप भगवान धर्म को नमस्कार है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

भद्रश्रवस ऊचुरिति । 'प्राणभृत उपदधाति' इतिवद्गणलक्षणया तद्योगाद्गणिषु लिङ्गसमवायन्यायेन बहुवचनम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

भद्रश्रवसः में "प्राणभृत उपदधाति" इस वाक्य में जिस तरह **प्राणभृतः** में गण लक्षण के समान उस गण में रहने वालो के अर्थ ने लिङ्गसमवाय न्याय से भद्रश्रवसः में बहुवचन है । भद्रश्रवः का अर्थ है जिसमें भद्रश्रवा प्रधान है उन लोगों ने कहा अब प्रश्न होता है कि लिङ्ग समवाय न्याय क्या है तो इसका उत्तर है कि लिङ्गसमवाय (जै. न्याय. म. १/४/२८) इस सूत्र व्याख्या में प्राण्भृत उपदधाति यहाँ पर प्राण लिङ्ग के मन्त्र के समीप पढे गये प्राणभृतव्यतिरिक्त मन्त्रों का भी प्राणभृत्व गौणीवृति से हो जाता है । चूकि पहले प्राण लिङ्ग के मन्त्र का पाठ है अतएव उसकी प्रधानता है यही लिङ्ग समवाय न्याय हैं ॥२॥

अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं घ्नन्तं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ।
ध्यायन्नसद्यर्हि विकर्म सेवितुं निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषति ॥३॥

अन्वयः— अहो भगवाद्विचेष्टितं विचित्रं, अयं जनः घ्नन्तं मिषन् न पश्यति । विकर्म सेवितुम् यहि असद्ध्यायन पुत्रं निर्हृत्य जिजीविषति ॥३॥

अनुवाद— अहो भगवान् की लीला विचित्र है, मनुष्य सम्पूर्ण लोकों का संहार करने वाले काल को देखकर भी नहीं देखता है, तुच्छ विषयों का सेवन करने के लिए पापमय विचारों को करता रहता है। अपने ही हाथों पिता और पुत्र को जलाकर भी स्वयं जीवित रहना चाहता है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अय जनो मिषन्नपि पश्यन्नपि घ्नन्तं हिंसन्तं न पश्यति नालोचयतीति भगवद्विचेष्टितमेव । तच्च विचित्रम् । अदर्शन लिङ्गम् । पुत्रं बालं पितरं वृद्धं मृतं निर्हृत्य दग्ध्वा स्वयं तदुभयधनैर्जिजीविषति जीवितुमिच्छति । पाठान्तरे तु छन्दःसामञ्जस्यम्। किं धर्माद्यर्थम् । न । यर्हि यतोऽसत्तुच्छं विषयसुखं सेवितुं विकर्म पापमेव ध्यायन् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

यह मनुष्य सबों को मारने वाले काल को देखते हुए भी नहीं देखता है, इस तरह की भगवान् की माया विचित्र है। उसके नहीं देखने में प्रमाण यह है कि वह अपने ही हाथों मरे हुए पुत्र और पिता को जलाकर उनके ही धन से जीना चाहता है। पाठान्तर में छन्द का सामाञ्जस्य है। क्या वह धर्म के लिए जीना चाहता है ? नहीं वह तुच्छ विषयों का सेवन करने के लिए पापमय विचारों को करता रहता है ॥३॥

वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः ।
तथापि मुह्यन्तितवाज मायया सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥४॥

अन्वयः— कवयः विश्वं नश्वरं वदन्तिस्म अध्यात्मविदः विपश्चितः पश्यन्ति च तथापि हे अज तव मायया मुह्यन्ति तम् सुविस्मितं कृत्यं नतः अस्मि ॥४॥

अनुवाद— विद्वज्जन जगत् को नश्वर बतलाते है, आत्मज्ञानी पुरुष इसको वैसा ही देखते हैं तो भी हे जन्म रहित प्रभो आपकी माया से वे मोहित हो जाते हैं। अतएव आश्चर्य जनक कार्य करने वाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४॥

भावार्थ दीपिका

नन्वविद्वान्न पश्यति किमत्र चित्रं तत्राह । नश्वरं वदन्ति स्म शास्त्रतः । पश्यन्ति च समाधौ । हे अज, तथापि मायया मुह्यन्ति । एतच्च तव कृत्यं चेष्टितं सुविस्मितमतिचित्रम्, अतः शास्त्रादिश्रमं विहाय तं त्वामजं नतोऽस्मि ॥४॥'

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि अज्ञानी जीव नहीं देखते हैं इसमें क्या आश्चर्य है ? इस पर कहते हैं कि विद्वज्जन जगत् को शास्त्रानुसार नश्वर कहते हैं और आत्मज्ञानी इसको वैसा ही समाधि में देखते भी हैं। हे अजन्मा प्रभो फिर भी वे आपकी माया से मोहित हो जाते हैं। आपका यह कार्य अत्यन्त आश्चर्य जनक है अतएव मैं शास्त्रादि श्रम करना छोड़कर आपको नमस्कार करता हूँ ॥४॥

विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते ह्यकर्तुरङ्गीकृतमप्यपावृतः ।
युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥५॥

अन्वयः— अकर्तुः अपावृतः ते विश्वोद्भवस्थाननिरोध कर्म अङ्गीकृतम् । सर्वात्मनि कार्यकारणे त्वयि युक्तं चित्रं न । वस्तुतः च व्यतिरिक्ते ॥५॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप अकर्ता और माया के आवरण से रहित हैं, फिर भी जगत् की उत्पत्ति स्थिति और संहार के कार्य आपके हैं यह वेद बतलाता है। हे सर्वात्मा आपके लिए उचित ही है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि सम्पूर्ण कार्यों के कारण आप ही हैं और वस्तुतः आप कार्य कारण भाव से रहित हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

इदमपरं चित्रवत्प्रतीयमानमपि त्वयि न चित्रमित्याह । विश्वोद्भवादिकर्माकर्तुरप्यपगता आवृदावरणं यस्मात्ताद् शस्यापि तेऽङ्गीकृतं वेदेन । त्वयि तन्न चित्रम् । यतो मायया सर्वात्मनि कार्यस्य कारणे स्रष्टरि कर्म युक्तम् । वस्तुतः सर्वव्यतिरिक्ते निरुपाधावनावृतत्वमकर्तृत्वं च युक्तम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

यह दूसरे आश्चर्य के समान प्रतीत होता है पर आपके लिए यह कोई आश्चर्य नहीं हे । सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि आदि कर्मों को करने वाले आप माया के आवरण से रहित हैं यह वेद स्वीकार करता है । वह भी आप में आश्चर्य नहीं है । आप सर्वात्मा हैं ओर माया के द्वारा सृष्ट्यादि कार्य करने वाले आपके लिए यह उचित ही है । वस्तुतः सबों से परे आप उपाधि से रहित हैं आपमें माया से रहितत्व और अकर्तृत्व उचित ही हैं ।।५।।

वेदान्युगान्ते तमसा तिरस्कृतान् रसातलाद्यो नृतुरङ्गविग्रहः ।
प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्तेऽवितथेहिताय इति ।।६।।

अन्वयः— मृतुरङ्गविग्रहः युगान्तेतमसा तिरस्कृतान् वेदान् अभियाचते कवये यः रसातलात् प्रत्याददे अवितथे हिताय तस्मै ते नमः ।।६।।

अनुवाद— आपका शरीर मनुष्य और अश्व दोनों के शरीर से युक्त है । जब तमः प्रधान दैत्यगण प्रलय काल में वेदों को चुरा लेंगे ये उस समय ब्रह्माजी की प्रार्थना से आप रसातल से वेदों को लाकर उन्हे दिये, इस तरह अमोध कल्याणकारी कार्य करने वाले आप को मेरा नमस्कार है ।।६।।

भावार्थ दीपिका

परमेश्वरत्वेन स्तुत्वा प्रस्तुतावतारचरितमाह-वेदानिति । तमसा दैत्यरूपेण तिरस्कृतानपनीतान् । ना च तुरङ्गश्च नृतुरङ्गौ तद्रूपो विग्रहो यस्य । कवये ब्रह्मणे । तदर्थमवितथेहिताय सत्यसङ्कल्पाय ।।६।।

भाव प्रकाशिका

परमेश्वर रूप स्तुति करने के पश्चात् वर्तमान कालिक ह्यग्रीवावतार के चरित का वर्णन करते हैं प्रलय काल में तमोगुण प्रधान दैत्यगण जब वेदों को चुरा लिए तो ह्यग्रीव रूपधारी आप वेदों को रसातल से लाकर ब्रह्माजी को प्रदान किए । इस तरह सत्य सङ्कल्प करने वाले आपको नमस्कार है ।।६।।

हरिवर्षे चापि भगवान्नरहरिरूपेणास्ते तद्रूपग्रहणनिमित्तमुत्तरत्राभिधास्ये तद्दयित रूपं महापुरुषगुणभाजनो महाभागवतो दैत्यदानवकुलतीर्थीकरणशीलाचरितः प्रह्लादोऽव्यवधानानन्यभक्तियोगेन सह तद्वर्षपुरुषैरूपास्ते इदं चोदाहरति ।।७।।

अनुवाद— हरि वर्ष में भी भगवान् नरसिंह रूप से रहते हैं । उन्होंने इस रूप को जिस कारण से धारण किया था उसको आगे सातवें स्कन्ध में कहेंगे । श्रीभगवान् के उस प्रिय रूप की उपासना महाभागवत प्रह्लादजी उस वर्ष के अन्य पुरुषों के साथ निष्काम भाव एवं अनन्य भक्तिभाव से किया करते हैं । प्रह्लादजी महापुरुष के गुणों से सम्पन्न हैं । इन्होंने अपने शील एवं आचरण से दैत्यों एव दानवों के वंश को पवित्र बना दिया । वे इस मन्त्र तथा स्तोत्र का जप एवं पाठ किया करते हैं ।।७।।

भावार्थ दीपिका

उत्तरत्र प्रह्लादचरित्रे । महापुरुषस्य गुणानां भाजन आश्रयः । दैत्यदानवकुलस्य तीर्थीकरणं शीलमाचरितं च यस्य । फलसंकल्पेन व्यवधानशून्यश्चासावनन्यश्चाव्यभिचारी यो भक्तियोगस्तेनोपास्ते सेवते ।।७।।

भाव प्रकाशिका

आगे प्रह्लाद चरित्र में कहेंगे । प्रह्लादजी महापुरुष के गुणों से सम्पन्न हैं । उन्होंने अपने शील और आचरण से दैत्यों एवं दानवों के कुल को पवित्र बना दिया फल रूपी व्यवधान से रहित अर्थात् निष्काम रूप से वे अनन्य तथा व्यभिचार रहित भक्तिभाव से भगवान् नरसिंह की उपासना करते हैं ॥७॥

ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐ क्ष्रौम् ॥८॥

अनुवाद— ओङ्कार स्वरूप भगवान् नरसिंह को नमस्कार है । आप अग्नि आदि तेजों के भी तेज है । आपको नमस्कार है । हे व्रजनख ! हे वज्रदंष्ट्र ! आप हमारे सन्निकट प्रकट होइये, हमारी कर्म की वासनाओं को जला डालिए । हमारे अज्ञान रूप अन्धकार को विनष्ट कीजिए । ओम् स्वाहा । हमारे अन्त:करण में अभयदान देते हुए प्रकाशित होइये ओम क्ष्रौम् ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तेजसामपि तेजसे । आविरावि: अतिप्रकटो भव । वीप्सा वा । कर्माशयान्कर्मवासना: कर्माश्रयानिति पाठे रागादीन् रन्धय निर्दह । भूयिष्ठा: भूया: ॥८॥

भाव प्रकाशिका

तेजस्वियों के भी तेज आप प्रकट होइये । आविरवि: में वीप्सा के अर्थद्वित्व हुआ है । कर्मशयप्न् अर्थात् कर्म की वासनाओं को । कर्माश्रयान् पाठ होने पर मेरे राग इत्यादि को नष्ट करें यह अर्थ होगा । रन्धय अर्थात् भस्म कर दें । भूयिष्ठा: अर्थात् होइये ॥८॥

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षज आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥९॥

अन्वय:— विश्वस्य स्वस्ति, खल: प्रसीदताम्, भूतानि मिथो धिया शिवं ध्यायन्तु, भवश्च भद्रं भजातात् नो अहैतुकी मति: अधोक्षजेआवेश्यतत् ॥९॥

अनुवाद— विश्व का कल्याण हो, दुष्टों की बुद्धि शुद्धि हो जाय, सभी प्राणियों में परस्पर में सद्भावना हो, सभी एक-दूसरे का हित चिन्तन करें, हमारा मन शुभ मार्ग में प्रवृत्त हो । हम सबों की बुद्धि निष्काम भाव से श्रीहरि में लगे ॥९॥

भावार्थ दीपिका

विश्वस्य स्वस्तिप्रार्थने खलस्यापि भवेत्, तच्च साधुपीडां बिना न स्यात्, अन्योन्यममङ्गलं ध्यायतां च भूतानामन्योन्यघातं विना न भवेदित्याशङ्क्याह । खल:प्रसीदतां प्रसीदतु क्रौर्यं त्यजतु । भूतानि च मिथ: शिवमेव ध्यायन्तु । तेषां मनश्च भद्रमुपशमादिकं भजतु । नोऽस्माकमपि मतिरपिशब्दाद्भूतानां च मतिरहैतुकी निष्कामा सती ॥९॥

भाव प्रकाशिका

विश्व के कल्याण की प्रार्थना करने पर दुष्टों का भी कल्याण होगा । दुष्टों का कल्याण साधुजनों को पीड़ित किए बिना नहीं हो सकता । परस्पर में अमङ्गल का ध्यान करने वाले दुष्टों का कल्याण जीवों का परस्पर मे घात किए बिना नहीं हो सकता इस तरह की आशङ्का करके प्रह्लादजी कहते हैं दुष्ट जन अपनी क्रूरता का त्याग कर दें । सभी जीव परस्पर में एक दूसरे का कल्याण ही चाहें । उन सबों का मन शान्त हो जाय । हमलोगों की भी अहैतुकी मति श्रीभगवान् में लग जाय । **मतिरपि** के अपि शब्द के द्वारा सभी जीवों की भी बुद्धि भगवान् में लग जाय ॥९॥

माऽगारदारात्मजवित्तबन्धुषु सङ्गो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः ।
यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्सिध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः ॥१०॥

अन्वयः— नः सङ्गःआगारदारात्मजवित्तबन्धुषु मा स्यात् यदिस्यात् तर्हि भगवत्प्रियेषु यथा प्राण वृत्त्या आत्मवान् परितुष्ट अदूरात् सिद्ध्यति तथा इन्द्रिय प्रियः नः ॥१०॥

अनुवाद— हम लोगों की गृह, पत्नी, पुत्र, धन तथा बान्धवों में आसक्ति यदि न हो तो भगवान् के प्रेमी भक्तों में हो । जो संयमी पुरुष निर्वाह के योग्य अन्नादि से संतुष्ट रहता है, उसको जितनी शीघ्र सिद्धि प्राप्ति होती उतना शीघ्र इन्द्रिय लोलुप पुरुष को नहीं होती है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

नः सङ्गःक्कापि मा स्यात् । यदि कथंचित्स्यात्तर्ह्यगारादिषु मा स्यात्किंतु भगवत्प्रियेष्वेव । अगारादिसङ्गे दोषमाह-य इति । इन्द्रियप्रियो गृहाद्यासक्तः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

हमलोगों की आसक्ति किसी वस्तु में नहीं । यदि हो भी तो भगवान् के प्रिय भक्तों में हो । गृह आदि में आसक्ति न हो । गृहादि में होने वाली आसक्ति का दोष बतलाते हैं इन्द्रिय प्रिय अर्थात् गृहादि मे आसक्ति वालों को उतना शीघ्र सिद्धि नहीं मिलती है जितना शीघ्र संयम पूर्वक अन्नादि से संतुष्ट रहने वालों को मिलती है ॥१०॥

यत्सङ्गलब्धं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुहूः संस्पृशतां हि मानसम् ।
हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गज को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम् ॥११॥

अन्वयः— यत्सङ्गलब्धं तीर्थं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुकुन्द विक्रमम् श्रुतिभिः मुहुः संस्पृशतां मानसं गतः अन्तः गतः अजः अङ्गजं मेलं हरति तत् को वैन सेवेत ॥११॥

अनुवाद— जिन भगवद् भक्तों की सङ्गति से तीर्थ के समान पवित्र श्रीभगवान् का चरित्र सुनने को मिलता है जो श्रीभगवान् की आसाधारण शक्ति एवं प्रभाव का सूचक होता है उसको बार-बार सुनने वालों के कानों के मार्ग से भगवान् हृदय में प्रवेश कर जाते हैंऔर मानसिक मलों को नष्ट कर देते हैं ऐसे भगवान् के भक्तों का सेवन कौन नहीं कर सकता है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

भगवत्प्रियसङ्गे गुणमाह । येषां भगवत्प्रियाणां सङ्गाल्लब्धं मुकुन्दविक्रमं श्रुतिभिः श्रवणादिभिः संस्पृशतां सेवमानानां पुंसामन्तर्गतोऽजो मानसं मल हरति । कथंभूतं विक्रमम् । निजमसाधारणं वीर्यवैभवं प्रभावातिशयो यस्य । तीर्थं तु गङ्गादि मुहुः संस्पृशतामङ्गजं मलं केवलं हरति, नतु वासनाः । तान्को वै न सेवेतेत्यन्वयः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

भगवत् प्रिय भक्तों की सङ्गति में होने वाले गुणों को बतलाते है । भगवद् भक्तों के सङ्ग भगवान् की लीलाएँ सुनने को मिलती है जो उनकी असाधारण शक्ति और प्रभाव के सूत्रक होती हैं । भगवान् की लीलाओं को सुनने से कानों के मार्ग से भगवान् हृदय में प्रवेश करके मन के दोषों के दूर कर देते हैं ॥११॥

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥१२॥

अन्वयः— यस्य भगवति अकिञ्चनभक्तिः अस्ति, तत्र सर्वैः गुणैः सुराः समासते हरौ अभक्तस्य मनोरथेन असति बहिः धावतः महद्गुणाः कुतः ?॥१२॥

अनुवाद— जिसकी भगवान में निष्काम भक्ति होती है उसके हृदय में सभी ज्ञानादि गुणों के साथ देवताओं का निवास होता है । जो श्रीहरि का भक्त नहीं है उसके मनोरथ के द्वारा बाह्य असत्य वस्तुओं में दौड़ने वाले महापुरुषों के गुण कहाँ से आ सकते हैं ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

मानसमलापगमफलमाह- यस्येति । अकिंचना निष्कामा । मनःशुद्धौ हरेर्भक्तिर्भवति, ततश्च तत्प्रसादे । सति सर्वे देवाः सर्वैर्गुणैर्धर्मज्ञानादिभिः सह तत्र सम्यगासते नित्यं वसन्ति । गृहाद्यासक्तस्य तु हरिभक्त्यसंभवात्कुतो महतां गुणा ज्ञानवैराग्यादयो भवन्तीति । असति विषयसुखे मनोरथेन बहिर्धावतः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

मानसिक दोषों के दूर होने का फल बतलाते हैं । मन की शुद्धि होने पर श्रीहरि में निष्काम भक्ति होती है । परमात्मा के प्रसन्न होने पर सभी देवता अपने धर्मज्ञान आदि सभी गुणों के साथ उसके हृदय में सदा निवास करते हैं जो गृह इत्यादि में ही आसक्त है इसकी श्रीहरि में भक्ति नहीं हो सकती है अतएव उसमें महापुरुषों के ज्ञान, वैराग्य इत्यादि गुण कैसे हो सकते हैं । उसका मन तो सदा असत्य और बाह्य विषय सुख में ही लगा रहता है ।।१२।।

हरिर्हि साक्षाद्भगवान् शरीरिणामात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ।
हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दंपतीनाम् ।।१३।।

अन्वयः— झषाणाम् इप्सितं तोयम् इव शरीरिणाम् भगवान् श्रीहरिः साक्षात् आत्मा तं हित्वा यदि गृहे सज्जते तदा दम्पतीन्नाम् महत्वं वयसा महान् ।।१३।।

अनुवाद— जिस तरह मछलियों को जल अत्यन्त प्रिय होता है उसी तरह शरीरधारियों को श्रीहरि ही प्रिय आत्मा हैं, उनको छोड़कर यदि कोई महत्त्वाभिमानी पुरुष गृह में ही आसक्त रहता है उन स्त्री पुरुषों का बड़प्पन केवल आयु को ही लेकर होता है गुण के कारण नहीं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ननु हरिविमुखस्य गृहाद्यासक्तस्यापि लोके महत्त्वं दृश्यते, सत्यं दृश्यते, तत्तूपहासास्पदमिति सहेतुकमाह-हरिर्हीति । यथा झषाणां मीनानामीप्सितं तोयमेवात्मा, तेन विना जीवनाभावात् महानतिप्रसिद्धोऽपि गृहे यदि सज्जते तदा दम्पतीनां मिथुनानां शूद्रादिष्वपि प्रसिद्धं वयसैव केवलं यन्महत्त्वं तदेव तस्य भवति, नतु ज्ञानादिना । मिथुनेषु पूज्यमानेषु स्त्रीभ्यः पुंसां महत्त्वं बालमिथुनेभ्यश्च वृद्धमिथुनानां महत्त्वं यथेत्यर्थः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि परमात्मा के विमुख रहने वाले तथा गृह आदि में ही आसक्त रहने वाले भी लोगों का महत्त्व संसार में देखा जाता है तो इस पर कहते हैं कि हाँ देखा तो जाता है किन्तु वह महत्त्व उपहास्पद होता है । इस बात के कारणों को उपन्यस्त करते हुए कहते हैं जैसे मछलियों को जलप्रिय आत्मा है । जल के बिना वे नहीं जी सकती हैं । अत्यन्त प्रसिद्ध व्यक्ति भी यदि गृह में आसक्त होता है तो शूद्रों आदि में प्रसिद्ध स्त्री पुरुषों की अवस्था को ही लेकर महत्त्व होता है, ज्ञान इत्यादि के कारण नहीं । पूज्यमान दम्पतियों में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष का महत्त्व होता है । बालक दम्पती की अपेक्षा जैसे बृद्ध दम्पतियों का महत्त्व होता है उसी तरह ।।१३।।

तस्माद्रजोरागविषादमन्युमानस्पृहायभयदैन्याधिमूलम् ।
हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं नृसिंहपादं भजताऽकुतोभयमिति ।।१४।।

अन्वयः— तस्माद् रजोराग विषाद मत्युमान् स्पृहामयदैन्यधिमूलम्, संसृति चक्रवालं गृहं हित्वा अकुतोभयम् नृसिंहपादं भजत ।।१४।।

अनुवाद— अतएव हे असुरगण तुमलोग तृष्णा, राग, विषाद, क्रोध, अभिमान, इच्छा, भय, दीनता, और मानसिक सन्ताप के मूल तथा जन्म मरण रूप संसारचक्र का वहन करने वाले गृह आदि का त्याग करके भगवान् नृसिंह के निर्भय चरण कमलों का आश्रय लो ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

यस्मादेवं तस्माद्गृहं हित्वा अकुतोभयं नृसिंहपादं भजतेत्यसुरानुपदिशति । कीदृशं गृहम् । रज: तृष्णा, रागोऽभिनिवेश:। रजआदीनां मूलं कारणमत एव संसृतीनां जन्ममरणादीनां चक्रवालं मण्डलमविच्छेदो यस्मात् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में प्रह्लादजी असुरों को उपदेश देते हैं । प्रश्न है कि कैसे गृह का त्याग करें तो इसका उत्तर है कि जो तृष्णा राग (अभिनिवेश) आदि का मूल कारण है ऐसे गृह को तथा जिसके कारण जन्म मरण आदि रूप संसार चक्र बना रहता है ऐसे गृह को ॥१४॥

केतुमालेऽपि भगवान्कामदेवस्वरूपेण लक्ष्म्या: प्रियचिकीर्षया प्रजापतेर्दुहितॄणां पुत्राणां तद्वर्षपतीनां पुरुषायुषाहोरात्रपरिसंख्यानानां यासां गर्भा महापुरुषमहास्त्रतेजसोद्वेजितमनसां विध्वस्ता व्यसव: संवत्सरान्ते विनिपतन्ति ॥१५॥

अनुवाद— केतुमाल वर्ष में भी लक्ष्मीजी का तथा संवत्सरनामक प्रजापति के पुत्र और पुत्रियों का प्रिय करने के लिए भगवान् कामदेव रूप से निवास करते हैं । उन रात्रि की अभिमानी देवता रूप कन्याओं और दिन के अभिमानी देवता रूप पुत्रों की संख्या मनुष्य की आयु के दिन और रात्रि के बराबर छतीस हजार है । उन कन्याओं का श्रीभगवान् के महान् अस्त्र चक्र के तेज से उसके कारण संवत्सर के अन्त में गर्भपात हो जाता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

केतुमालेऽपि कामदेवस्वरूपेणास्त इति शेष: । किमर्थमास्तेऽत आह-लक्ष्म्या इति । प्रजापति: संवत्सर: । 'संवत्सरो वै प्रजापति:' इति श्रुते: । तस्य दुहितरो रात्र्यभिमानिन्यो देवता: पुत्रा दिवसाभिमानिनो देवास्तेषां च प्रियचिकीर्षया । पुरुषायुषा वर्षशतेन यान्यहोरात्राणि तै: परिसंख्यानं गणना येषाम् । षट्त्रिंशत्सहस्त्राणामित्यर्थ: । यासां दुहितॄणाम् । महापुरुषस्य महास्त्रं चक्रं तस्य तेजसा ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

केतुमाल वर्ष में श्रीभगवान् कामदेव रूप से विराजते हैं । प्रश्न होता है कि वे क्यों रहते हैं ? तो इसके उत्तर में कहते हैं लक्ष्मीजी का और प्रजापति संवत्सर की रात्र्यभिमानी देवता रूप पुत्रियों तथा दिनाभिमानी देव, रूप पुत्रों का कल्याण करने के लिए । पुरुषों की सौ वर्ष की आयु के दिन के तथा रात्रियों की संख्या के बराबर उन सबों की संख्या है । अर्थात् छतीस हजार है । उन संवत्सर की कन्यायें भगवान के महान् अस्त्र चक्र के तेज को देखकर डर जाती हैं और संवत्सर के अन्त में उन सबों का गर्भपात हो जाता है । इन सबों का कल्याण करने के लिए भगवान् केतुभाल वर्ष में रहते हैं ॥१५॥

अतीवसुललितगतिविलासविलसितरुचिरहासलेशावलोकलीलया किंचिदुत्तम्भितसुन्दरभ्रूमण्डलसुभगवदनारविन्दश्रिया रमां रमयन्निन्द्रियाणि रमयते ॥१६॥

अनुवाद— भगवन् अत्यन्त मनोहर गति विलास के द्वारा सुशोभित तथा मधुर मन्द मुस्कान से मनोहर लीला पूर्ण अवलोकन से कुछ झुके हुए सुन्दर भ्रूमण्डल की छबीली छटा से अपने वदनारविन्द की सौन्दर्य राशि से लक्ष्मीजी को अत्यन्त आनन्दित करते हैं और स्वयं भी आनन्दित होते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

रमां रमयन् स्वीयानीन्द्रियाणि रमयते । केन साधनेन रमयंस्तदाह । अतीव सुललितया गत्या यो विलासस्तेन विलसितो रुचिरो हासलेशो मन्दस्मितं तत्सहितोऽवलोक एव लीला तया किंचिदुत्तम्भितमुत्तुङ्गितं सुन्दरं यद्भ्रूमण्डलं तेन सुभगं यद्वदनारविन्दं तस्य श्रिया ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

लक्ष्मीजी को आनन्दित करते हुए भगवान् स्वयं भी आनन्दित होते हैं । किन्तु प्रश्न है कि किस साधन से आनन्दित करते हैं तो इस पर कहते हैं अत्यन्त मनोहर गति से जो विलास उससे विलसित मनोज्ञ मन्द मुस्कान उससे युक्त चितवन रूप लीला के द्वारा कुछ ऊपर उठी हुई भौहों से मनोज्ञ मुखमण्डल की शोभा से आनन्दित करते हैं ।।१६।।

तद्भगवतो मायामयं रूपं परमसमाधियोगेन रमादेवी संवत्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेर्दुहितृभिरुपेताहस्सु च तद्भर्तृभिरुपास्ते इदं चोदाहरति ।।१७।।

अनुवाद— लक्ष्मीजी परम समाधि योग के द्वारा भगवान् के उस मायामय स्वरूप की रात्रि के समय प्रजापति संवत्सर की कन्याओं के साथ और दिन में उनके पतियों के साथ आराधना और इस मन्त्र का जप करती हुई भगवान् की स्तुति करती हैं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

तद्भर्तृभिर्दिवसाधिष्ठातृभिरुपेता ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

रात्रि की अभिमानी कन्याओं के पतियों तथा दिन के अधिष्ठातृ देवताओं के साथ श्रीभगवान् की उपासना करती हैं ।।१७।।

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ओं नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ।।१८।।

अनुवाद— जो इन्द्रियों के नियामक और समस्त श्रेष्ठ वस्तुओं के आकर हैं, क्रियाशक्ति, ज्ञान शक्ति और सङ्कल्प तथा अध्यवसाय आदिचित्त के धर्मों और उनके विषयों के अधीश्वर हैं, ग्यारह इन्द्रिय और पाँच विषयों के अधीश्वर तथा ग्यारह इन्द्रिय और पाँच विषयों इन सोलह कलाओं से युक्त हैं, वेदोक्त कर्मो से प्राप्त होते है, वे अन्नमय, अमृतमय और सर्वमय हैं । उन मानसिक ऐन्द्रियिक और शारीरिक बल स्वरूप परम सुन्दर भगवान् कामदेव को ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं इन बीज मन्त्रों के साथ सब ओर से नमस्कार है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

सर्वैर्गुणविशेषैः श्रेष्ठवस्तुभिर्विलक्षितो लक्षीकृत आत्मा यस्य । आकूतीनां क्रियाणाम् । चित्तीनां ज्ञानानाम् । चेतसां सङ्कल्पाध्यवसायादीनाम् । विशेषाणां तत्तद्विषयाणाम् । षोडशकला अंशा एकादशेन्द्रियपञ्चविषयलक्षणा यस्य । छन्दोमयाय वेदोक्तकर्मप्राप्याय । अन्नमयायान्नोपष्टभ्यत्वात् । अमृतमयाय परमानन्दाविष्कारत्वात् । सर्वमयाय सर्वविषयत्वात् । सहसे ओजसे बलाय तद्धेतुत्वात् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

समस्त गुण विशेषों तथा श्रेष्ठ वस्तुओं युक्त श्रीभगवान् की तथा क्रियाओं, ज्ञानों सङ्कल्प तथा अध्यवसाय आदि सभी विषयों के स्वामी श्रीभगवान् हैं । ग्यारह इन्द्रियाँ और पाँच विषय रूप सोलह कलाओं से वे युक्त हैं ।वे वेदोक्त कर्मों से प्राप्त होते हैं । अन्न से उद्रिक्त होने के कारण अन्नमय, परमानन्द को अविष्कृत करने के कारण अमृतमय और एकलविषय रूप होने के कारण सर्वमय तथा मानसिक, ऐन्द्रियिक और शारीरिक बल के कारण स्वरूप श्रीभगवान् को सब ओर से नमस्कार है ॥१८॥

स्त्रियो व्रतैस्त्वा हृषिकेश्वरं स्वतो ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ।
तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतन्त्राः ॥१९॥

अन्वयः— स्त्रियः व्रतैः स्वतः हृषीकेश्वरं त्वा हि व्रतैः आराध्य लोके अन्यं पतिम् आशासते । यतः अस्वतन्त्राः ते वैत्तासां प्रियं अपत्यं धनायूंषि न परिपान्ति ॥१९॥

अनुवाद— हे भगवन् स्त्रियाँ अनेक प्रकार के व्रतों को करके स्वतः इन्द्रियों के स्वामी आपकी आराधना करके अन्य लौकिक पतियों की कामना किया करती हैं, किन्तु अस्वतन्त्र होने के कारण उनके प्रिय पुत्रों धनों तथा आयु की रक्षा नहीं कर पाते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तत्कामेनैव त्वत्सेवकत्वादहं कृतार्थोऽस्मि । अन्यकामनया तु त्वामर्चन्त्यो न परिपूर्णमनोरथाः स्युरित्याह-स्त्रिय इति। स्वत एव हृषीकाणामीश्वरं पतिं सन्तं त्वामाराध्य याः स्त्रियोऽन्यं पतिं प्रार्थयन्ते । पतिकामानां हि कामाराधनं व्रतेषु प्रसिद्धम्। तासामपत्यादीनि ते पतयो न पातुं शक्ताः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

काम की कामना मात्र से काम का सेवक होने के कारण मैं कृतार्थ हूँ । आपसे भिन्न पतियों की कामना करने वाली स्त्रियों का मनोरथ पूर्ण नहीं होता है । इस बात को **स्त्रियः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । अपने आप इन्द्रियों के स्वामी (पति) आपकी आराधना करके जो स्त्रियाँ दूसरे पति की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करती हैं। पति चाहने वाली स्त्रियों का कामाराधन व्रत प्रसिद्ध है । वे पति परतन्त्र होने के कारण उन स्त्रियों के पुत्रों आदि की रक्षा नहीं कर पाते हैं ॥१९॥

स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ।
स एक एवेतरथा मिथो भयं नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥२०॥

अन्वयः— यः स्वयं अकुतोभयः स वै पतिः स्यात् भयातुरं जनम् समन्ततः पाति स एक एव इतरथा मिथो भयम् आत्मलाभात् परम् अधिन मन्यते ॥२०॥

अनुवाद— सच्चा पति वहीं है, जो स्वयं पूर्णरूप से निर्भय हो और दूसरे भयभीत लोगों की रक्षा करे। ऐसे पति एक मात्र आप ही हैं । यदि एकसे अधिक पति (ईश्वर) माने जायँ तो उन्हें एक दूसरे से भय होने की सम्भावना होती है । इसीलिए आप अपनी प्राप्ति से बढकर किसी दूसरे लाभ को नहीं मानते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अतस्ते पतय एव न भवन्तीत्याह-स वा इति । स चैवंभूतः पतिर्भवानेक एव नान्यो यो भवानात्मलाभात्परमन्यदधिकं न मन्यते । इतरथान्याधीनसुखस्य न स्वतन्त्रता, स्वतन्त्रनानात्वे च मण्डलेश्वराणामिव मिथो भयं स्यादित्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अतएव वे लौकिक पतिगण पति होते ही नहीं, इस बात को **सवै० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । इस प्रकार के पति तो आप ही हैं दूसरा कोई नहीं । आप अपनी प्राप्ति से किसी दूसरी वस्तु की प्राप्ति को अपने से बढ़कर मानते ही नहीं है, अन्यथा दूसरे के अधीन सुख वाले पति की स्वतंत्रता नहीं होती है । अनेक स्वतन्त्रों के होने पर तो अनेक मण्डलेश्वरों को जैसे एक दूसरे से भय होता है उसी तरह भय होगा ।।२०।।

या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं निकामयेत्साखिलकामलम्पटा ।
तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो यद्भग्नयाच्ञा भगवन्प्रतप्यते ।।२१।।

अन्वयः— भगवन् यातस्य ते पादसरोरुहार्हणं निकाम येत् सा अखिलकाम लम्पटा ईसितः अर्पितः इप्सितं रासि। यद् भग्नयाच्ञा प्रतप्यते ।।२१।।

अनुवाद— हे भगवन् ! जो स्त्री आपके चरण कमलों की पूजा ही चाहती है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं । जो स्त्री किसी एक कामना को लेकर अपनी पूजा करती है । उसको आप उसी वस्तु को प्रदान करते हैं और जब भोग समाप्त हो जाने पर वह वस्तु नष्ट हो जाती है तो उसको सन्तप्त होना पड़ता है ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

किंच निष्कामभजनेऽप्रार्थिता एव सर्वे कामा भवन्ति, सकामभजने तु कामितमात्रमनित्यं चेत्याह । या स्त्री तस्योक्तलक्षणस्य तव पादसरोरुहस्यार्हणं पूजामेव कामयेत्, न फलान्तरं साखिलेषु कामेषु लम्पटा सर्वान्कामान्प्राप्नोतीत्यर्थः । ईप्सितमीप्सितः फलान्तरमाप्तुमपेक्षितः सन्नर्चितश्चेत्तर्हि तदेवैकं रासि ददासि । किंच यद्यतः फलभोगानन्तरं भग्ना याच्ञा याचितोऽर्थो यस्याः सा प्रतप्यते दुःखं प्राप्नोति, तदेव रासि नतु नित्यम् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

निष्काम होकर भगवान् की भक्ति करने से जिनकी प्रार्थना नहीं की गयी है वे सभी कामनाएँ प्राप्त हो जाती और सकाम भजन करने पर तो केवल कामित वस्तु की ही प्राप्ति होती है और वह अनित्य होती है । इस बात को **या तस्य० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । जो स्त्री आपके उपर्युक्त प्रकार के आपके चरण कमलों की पूजा मात्र की ही कामना करती है, किसी दूसरे फल की कामना नहीं करती है, वह अपनी समस्त कानमाओं को प्राप्त कर लेती है यदि किसी के द्वारा कामना विशेष से आप पूजित होते हैं तो फिर उसको आप उसी कामित वस्तु को प्रदान करते है । साथ ही फलभोग के पश्चात् वह याचित वस्तु विनष्ट हो जाती है तो वह स्त्री सन्तप्त होती है, दुःख प्राप्त करती है । वह वस्तु नित्य भी नहीं होती है ।।२१।।

मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादयस्तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रियेधियः ।
ऋते भवत्पादपरायणान्न मां विन्दन्त्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ।।२२।।

अन्वयः— हे अजित ! मत्प्राप्तयेऽजेश सुरासुरादयः ऐन्द्रियेधियः उग्रंतप तप्यन्ते भवत्पादपरायणात् मां न विन्दति यतः अहं त्वद्हृदया ।।२२।।

अनुवाद— हे अजित ! मुझे प्राप्त करने के लिए इन्द्रिय सुखों के अभिलाषी ब्रह्मा, रुद्र आदि उग्रतपस्या करते रहते हैं, किन्तु मुझको आपके चरण कमलों का आश्रय लेने वाले भक्तों से भिन्न कोई प्रिय नहीं है, क्योंकि मेरा मन तो आपमें ही लगा रहता है ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

ननु ममार्हणे कुतः सर्वकामप्राप्तिस्त्वमेव कामार्थिभिः सेव्यसेऽत आह । मत्प्राप्तये ब्रह्मादयस्तपस्तप्यन्ते कुर्वन्ति ।

कथंभूताः । ऐन्द्रियसुखे धीर्येषाम् । अलुक्समासः । तथापि भवत्पादपरायणादृते मां न विन्दति । मत्कटाक्षविलसिता विभूतीर्न लभन्त इत्यर्थः । यतस्त्वय्येव हृदयं यस्याः साहं त्वत्परतन्त्रत्वात्त्वदनुवर्तिनमेव विलोकयामि नान्यमित्यर्थः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मेरी पूजा करने पर ही सभी कामनाओं की पूर्ति होती है यह कैसे कहती हो ? सभी काम्य पदार्थों की प्राप्ति के लिए तो लोग तुम्हारी ही सेवा करते हैं, तो इस पर कहते हैं । मेरी प्राप्ति के लिए ब्रह्मा इत्यादि तप करते हैं, उन लोगों की बुद्धि ऐन्द्रियिक भोगों में ही लगी रहती है । किन्तु मेरा मन तो आपमें ही लगा रहता है। अतएव आपके परतन्त्र रहने वाली मैं आपके भक्तों को ही देखती हूँ दूसरों को नहीं देखती हूँ ।।२२।।

स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वन्दितं कराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्त्वताम् ।
बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुः-इति ॥२३॥

अन्वयः— अच्युत सत्वं यत् त्वत् वन्दितं कराम्बुजं सात्वताम् शीर्ष्णि अयपि ममापि शीर्ष्णि द्येहीति शेषः । हे वरेण्य! मां लक्ष्म विभर्षि ईश्वरस्य मायया इहितं उहितुं कः विभुः ।।२३।।

अनुवाद— हे अच्युत आप अपने जिस वन्दनीय करकमल को भक्तों के शिर पर रखते हैं, उसे आप मेरे भी शिर पर रख दीजिये । आप तो मुझे श्रीवत्स चिह्न के रूप में ही धारण करते हैं । आप तो सर्व समर्थ है। आप अपनी माया से जिन लीलाओं को करते हैं उनके रहस्य को जानने में कौन समर्थ हो सकता है ?।।२३।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं कृपां प्रार्थयते-स त्वमिति । यद्भजनं बिना न कश्चित्पुरुषार्थः स त्वम् । त्वदिति त्वया यत्कराम्बुजं सात्वतां भक्तानां शीर्ष्ण्यधायि कृपया न्यस्तं तन्ममापि शीर्ष्णि निधेहीति शेषः । कथंभूतम् । वन्दितं सर्वकामवर्षित्वेन सद्भिः स्तुतम्। नच मयि तवानादरः । यतो हे वरेण्य, मां वक्षसि लक्ष्म बिभर्षि अहो चित्रमेतत् मयि केवलमादरमात्रं भक्तेषु तु परमा कृपा अत ईश्वरस्य तव यन्मायया ईहितं तत्को वितर्कयितुं समर्थः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के द्वारा लक्ष्मीजी श्रीभगवान् से कृपा की प्रार्थना करती हैं । आपका भजन किए बिना किसी पुरुषार्थ की प्राप्ति नहीं हो सकता है । आप अपने वन्दित कर कमल को भक्तों के शिर पर रखते हैं उसी कर कमल को मेरे भी शिर पर रख दें । आपका कैसा कर है ? तो इसे बतलाती हैं जो सभी कामनाओं को प्रदान करने वाला होने के कारण सत्पुरुष उसकी स्तुति करते हैं । आपका मेरे प्रति अनादर नहीं है । हे वरेण्य आप तो मुझे आदर पूर्वक अपने वक्षः स्थल में श्रीवत्स चिह्न के रूप में धारण करते है आपका मेरे प्रति समादर है, किन्तु कृपा नहीं है । अतएव भक्तों पर तो आपकी अत्यन्त कृपा होती है । अतएव आप अपनी माया से जो करना चाहते हैं उसको दूसरा कौन जान सकता है ? इस तरह से लक्ष्मीजी श्रीभगवान् की स्तुति करती हैं ।।२३।।

रम्यके च भगवतः प्रियतमं मात्स्यमवताररूपं तद्वर्षपुरुषस्य मनोः प्राक्प्रदर्शितं स इदानीमपि महता भक्तियोगेनाराधयतीदं चोदाहरति ॥२४॥

अनुवाद— रम्यक वर्ष में भगवान् ने वहाँ के अधिपति मनुजी को पूर्वकाल में अपना परम प्रिय मत्स्य रूप दिखाया था । मनुजी इस समय भी भगवान् के उसी रूप की भक्ति भाव से उपासना इस समय करते हैं और इस मन्त्र का जप करते हुए स्तुति करते हैं ।।२४।।

ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नमः इति॥२५॥

अनुवाद— सत्वप्रधान मुख्यप्राण सूत्रात्मा तथ मनोबल, इन्द्रिय बल और शरीर बल ओम् पद के अर्थ, सर्वश्रेष्ठ भगवान् महामत्स्य को बार-बार नमस्कार है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

सत्त्वाय सत्त्वप्रधानाय । मुख्यतमाय प्राणाय सूत्रात्मने ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् मत्स्य सत्त्वगुण प्रधान मुख्यतम प्राणस्वरूप और सूत्रात्मा हैं ॥२५॥

अन्तर्बहिश्चाखिललोकपालकैरदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ।
स ईश्वरस्त्वं य इदं वशेऽनयन्नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥२६॥

अन्वयः— दारुमयीं स्त्रियम् यथा नरः स ईश्वर स्त्वम् इदं नाम्नावशे नयन् अखिललोक पालकैः अदृष्टः त्वं उरुस्वनः अन्तर्बहिश्च विचरसि ॥२६॥

अनुवाद— जिस तरह नट कठपुतलियों को डोरी से बाँध कर नचाता है उसी तरह आप ब्राह्मणादि नामों की डोरी से बाँध कर सम्पूर्ण विश्व को नचा रहे हैं। अतएव आप सबों के प्रेरक हैं। आप को ब्रह्मा आदि लोकपालगण भी नहीं देख पाते हैं फिर भी आप सभी प्राणियों के भीतर प्राण रूप से और बाहर वायु रूप से संचरण करते हैं । वेद ही आपका महान् शब्द है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

उरुः स्वनो वेदात्मको नादो यस्य । य इदं विश्वं ब्राह्मणादिनाम्ना विधिनिषेधालम्बनभूतेन वशेऽनयन्नियमितवान्स त्वमीश्वरः। तथाच श्रुतिः 'तस्य वाक्तन्तिर्नामानि दामानि' इति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

वेद ही जिनका महान् शब्द है । जो भगवान् इस विश्व को ब्राह्मण आदि नाम से विधि निषेध रूप आधार के द्वारा अपने वश में करके नियन्त्रित करते हैं ऐसे आप सम्पूर्ण जगत् के नियामक है । श्रुति भी कहती हैं- **तस्यवाक्तन्तिर्नामानिदामानि** । अर्थात् उनकी वाणी ही नाथ है और नाम ही रस्सी हैं ॥२६॥

यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा हित्वा यतन्तोऽपि पृथक् समेत्य च ।
पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते ॥२७॥

अन्वयः— मत्सरज्वराः लोकपालाः किल यं हित्वा पृथक् समेत्य च यतन्तोऽपि द्विपदः चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते पातुं न शेकुः ॥२७॥

अनुवाद— एक बार इन्द्रियाभिमानी इन्द्रादि देवताओं को प्राण स्वरूप आप से डाह हो गया । उस समय आपके अलग हो जाने पर वे अलग-अलग अथवा मिलकर भी मनुष्य, पशु स्थावर जंगम आदि जितने शरीर दिखायी देते हैं उनमें से किसी की भी बहुत प्रयत्न करने पर भी रक्षा नहीं कर सके ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

नन्विन्द्रादयो वशं नयन्ति लोकपालत्वात्कुतोऽहं तत्राह-यमिति । मत्सर एव ज्वरो येषां ते यं हित्वा द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपं जङ्गमं स्थाणुं स्थावरं च यदत्र दृश्यते तत्किंचिदपि पातुं न शक्ताः । स त्वमेव प्राणरूपेण पालक ईश्वरश्चेत्यर्थः । तथाच श्रुतिः 'ता अहिंसन्ताहमुकमस्म्यहमुकमस्मि' इत्यादि ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि अपने वश में करने वाले इन्द्रादि देवता है मैं कैसे वश में करने वाला हूँ । इस पर कहते हैं— इन्द्रादिगण देवता एक बार मत्सर से ग्रस्त हो गये, उस समय प्राण स्वरूप परमात्मा जब अलग हो गये उस समय सभी इन्द्रादि देवता अलग-अलग तथा मिलकर भी मनुष्य, पशु, सरीसृप जङ्गम स्थावर में से किसी की भी रक्षा नहीं कर सके । ऐसे आप प्राण रूप से पालक ईश्वर ही है । श्रुति भी कहती है । वे इन्द्रादि देवताओं ने स्पर्धा किया मैं अमुक देवता हूँ ॥२७॥

भवान्युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनी क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ।
मया सहोरु क्रमतेऽज ओजसा तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नमःइति ॥२८॥

अन्वयः— हे अज भवान् युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनि ओषधि विरुधां निधिम् इमां क्षोणीम् आदाय मया सह ओजसा ऊरुक्रमते, तस्मैजगत् प्राण गणात्मने नमः ॥२८॥

अनुवाद— हे अजन्मा प्रभो ! आप प्रलयार्णव ये जब उत्ताल तरङ्गों से तरंगायित हो रहा था उस समय मेरे साथ इस सभी औषधि और लताओं के अश्रयभूत इस पृथिवी को लेकर बड़े ही उत्साह पूर्वक विहार किए थे ऐसे जगत् के प्राण स्वरूप आपको मेरा नमस्कार है । इस तरह से मनु जी मत्स्यावतार श्रीभगवान् की स्तुति करते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अवतारचरितमाह । भवानिमां क्षोणीं मया मनुना सह मत्सहितां धृत्वेत्यध्याहारः । ऊर्मिमालावति प्रलयार्णवे ओजसा क्रमते विचरति । यद्वा पातुमित्यस्यानुषङ्गः । क्षोणीं पातुं क्रमते । उत्सहत इत्यर्थः । यतोऽजः । कीदृशीम् । ओषधीनां वीरुधां च निधिमाश्रयभूताम् । तस्मै नमः । जगतो यः प्राणगणस्तस्यात्मने नियन्त्रे ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

मत्स्यावतार के चरित का वर्णन करते हैं । आप इस पृथिवी को मेरे साथ धारण करके तरङ्गों से व्याप्त प्रलय कालीन समुद्र में अपने तेज के द्वारा विचरण करते रहे । अथवा मेरी रक्षा करने के लिए इस तरह से अन्वय होगा । आप पृथिवी की रक्षा करने के लिए उत्साह करते हैं, कैसी पृथिवी ? ओषधियों और लताओं के आश्रय रूप ऐसे आपको नमस्कार है । सम्पूर्ण जगत् के प्राणों के नियामक आपको नमस्कार है ॥२८॥

हिरण्मयेऽपि भगवान्निवसति कूर्मतनुं बिभ्राणस्तस्य तत्प्रियतमां तनुमर्यमा सह वर्षपुरुषैः पितृगणाधिपतिरुपधावति मन्त्रमिमं चानुजपति ॥२९॥

अनुवाद— हिरण्मय वर्ष में भगवान् कच्छप रूप धारण करके रहते हैं । वहीं के निवासियों के साथ पितृराज अर्यमा श्रीभगवान् की उस प्रियतम रूप की उपासना करते हैं और इस मन्त्र का जप करते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तत्प्रियतमां तां प्रियतमाम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

तत्पियतमाम् का अर्थ है उस प्रियतम मूर्ति की ॥२९॥

ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाय नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते ॥३०॥

अनुवाद— जो सम्पूर्ण सत्त्व गुण से युक्त हैं, जल में विचरते रहने के कारण उनके रहने का कोई निश्चित

स्थान नहीं है तथा जो काल की मर्यादा के बाहर हैं उन ओङ्कार स्वरूप सर्वव्यापक सर्वाधार भगवान् कच्छप को मेरा नमस्कार है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

अकूपाराय कूर्माय। सर्वः संपूर्णः सत्त्वगुणो विशेषणं यस्य। न उपलक्षितं स्थानं यस्य वारिचरत्वात्। वर्ष्मणे वर्षीयसे कालानवच्छिन्नाय। भूम्ने सर्वगताय। अवस्थानायाधाराय ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अकूपाराय अर्थात् कूर्म भगवान् को जो सम्पूर्ण सत्त्वगुण से सम्पन्न हैं। सदा जल में विचरण करने के कारण उनके रहने का कोई निश्चित स्थान नहीं है। वे सदा विराजमान रहने वाले तथा सर्व व्यापक तथा सर्वाधार कूर्म भगवान् को नमस्कार है ॥३०॥

यद्रूपमेतन्निजमाययार्पितमर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम्।
संख्या न यस्यास्त्ययथोपलम्भनात्तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥३१॥

अन्वयः— बहुरूप रूपितं यस्य संख्यानास्ति अयथोपलम्भनात् अर्थस्वरूपं निजमाययार्पितम् एतत् यद्रूपम् तस्मै अव्यपदेश रूपिणे नमः ॥३१॥

अनुवाद— हे भगवान् अनेक रूपों में प्रतीत होने वाला यह जगत् यद्यपि मिथ्या ही है इसलिए इसकी कोई संख्या नहीं है। फिर भी यह माया से प्रकाशित होने वाला आपका ही रूप है। इस प्रकार के अनिर्वचनीय रूप वाले आपको नमस्कार है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

निजमाययार्पितं प्रकाशितमेतदर्थस्वरूपं दृश्यं पृथिव्यादि यस्यैवंरूपं यतः पृथक् नास्ति। कथंभूतम्। बहुभी रूपै रूपितं निरूपितम्। यस्य च संख्या नास्ति। कुतः। अयथा मिथ्यैवोपलम्भनात्। नहि मरीचिजलमेतावदिति संख्यातुं शक्यते। अव्यपदेशरूपिणेऽनिरुक्तप्रपञ्चाकाराय ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

आपकी अपनी माया से ही प्रकाशित होने वाला यह दृश्य पृथिवी आदि इसका जो रूप आपसे पृथक नहीं है फिर भी अनेक रूप से प्रकाशित होने वाला है और इसकी कोई संख्या नहीं है। क्योंकि इसकी मिथ्या ही प्रतीति होती है। जिस तरह मृगमरीचिका के जल को इतना जल है, यह नहीं कहा जा सकता है। उसी तरह अनिर्वचनीय स्वरूप आपको नमस्कार है ॥३१॥

जरायुजं स्वेदजमण्डजोद्भिदं चराचरं देवर्षिपितृभूतमैन्द्रियम्।
द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्रद्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥३२॥

अन्वयः— एकः अभिधेयः त्वमेव जरायुजं स्वेदजम् अण्डजोद्भिदं चराचरं देवर्षि पितृभूतमैन्द्रियम् द्यौः खं क्षितिः, शैल सरित् समुद्र द्वीप ग्रहर्क्षेति ॥३२॥

अनुवाद— एकमात्र आप ही जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, जङ्गम, स्थावर, देवता, ऋषि, पितृगण, भूत, इन्द्रिय, स्वर्ग, आकाश, पृथिवी पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, ग्रह और तारा इत्यादि विभिन्न नामों से कहे जाते हैं॥३२॥

भावार्थ दीपिका

बहुरूपत्वं दर्शयंस्तस्येश्वरादव्यतिरेकमाह–जरायुजमिति। द्वीपग्रहर्क्षमित्यभिधेयैस्त्वमेवैको न त्वद्व्यातिरिक्तोऽस्ति। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादिश्रुतेरित्यर्थः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

अनेक रूपता को बतला कर उसको परमात्मा से अभिन्न जरायुजम् इत्यादि श्लोक से बतलाते हैं । द्वीप ग्रह नक्षत्र आदि नाम से केवल आप ही कहे जाते हैं । आपसे भिन्न कुछ भी नहीं है । श्रुति भी कहती है सर्वं खल्विदं ब्रह्म । यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म रूप ही है ।।३२।।

यस्मिन्नसंख्येयविशेषनामरूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् ।
संख्या यया तत्त्वदृशाऽपनीयते तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते इति ।।३३।।

अन्वयः— यस्मिन् असंख्य विशेष नाम रूपाकृतौ कविभिः कल्पिता इयं संख्या यया तत्त्वदृशा अपनीयते तस्मै सांख्य निदर्शनाय तेनमः इति ।।३३।।

अनुवाद— आप असंख्य नाम, रूप और आकृतियों से युक्त, कपिल आदि विद्वानों ने आप में जो चौबीस तत्त्वों की कल्पना की है, वह जिस तत्त्व दृष्टि का उदय होने पर निवृत्त हो जाती है वह भी आप ही हैं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

सप्रपञ्चतामनूद्य तन्निरासेन प्रणमति-यस्मिन्निति । असंख्येया अनन्ता विशेषा येषां तानि नामानि रूपाण्याकृतयश्च यस्य तादृशे यस्मिंस्त्वयि कविभिः कपिलादिभिरियं चतुर्विंशत्यादिसंख्या कल्पिता सती यया तत्त्वदृशा येन तत्त्वज्ञानेनापनीयते तस्मै ते सांख्यसिद्धान्तरूपाय नमः । परमार्थज्ञानरूपायेति वा ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

प्रपञ्च युक्तता का अनुवाद करके उसका निरास पूर्वक प्रणाम करते हैं । जिनके अनन्त भेद हैं उन नामों और रूपों तथा आकृतियों से युक्त जिस आप में कपिल आदि महर्षियों ने चौबीस तत्त्वों की कल्पना की है उसका जिस तात्त्विक दृष्टि से निरास होता है ऐसे सांख्य सिद्धान्त स्वरूप आपको नमस्कार है ।।३३।।

उत्तरेषु च कुरुषु भगवान्यज्ञपुरुषः कृतवराहरूप आस्ते तं तु देवी हैषा भूः सह कुरुभिरस्खलितभक्तियोगेनोपधावति इमां च परमामुपनिषदमावर्तयति ।।३४।।

अनुवाद— उत्तर कुरुवर्ष में भगवान् यज्ञपुरुष वराह रूप धारण करके विराजमान हैं । वहाँ के निवासियों के साथ भूदेवी अविचल भक्तिभाव से उनकी उपासना करती हैं और इस परमोत्कृष्ट मन्त्र का जप करती हुई स्तुति करती हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

एषा भूरुपधावति हेत्यन्वयः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

यह भूदेवी यज्ञ वराह भगवान् की स्तुति करती हैं ।।३४।।

ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ।।३५।।

अनुवाद— जिनके तत्त्व को मन्त्रों से जाना जाता है, जो यज्ञ और क्रतु रूप हैं, एवं बड़े-बड़े यज्ञ जिनके अङ्ग हैं उन ओङ्कार स्वरूप शुक्ल कर्ममय, त्रियुगमूर्ति पुरुषोत्तम भगवान् वराह को नमस्कार है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

मन्त्रैस्तत्त्वेन लिङ्ग्यत इति तथा तस्मै । यज्ञा अयूपाः, क्रतवः सयूपास्तद्रूपाय । अतएव महान्तोऽध्वरा अवयवभूता यस्य । कर्मणा शुक्लाय शुद्धाय यज्ञानुष्ठात्रे । त्रियुगाय कृतयुगे यज्ञाभावात् । यद्वा कलियुगे छन्नत्वात् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

जिनको मन्त्रों के द्वारा ही जाना जाता है, यज्ञ और क्रतु रूप जो हैं, बड़े-बड़े यज्ञ जिनके अङ्ग हैं शुद्ध यज्ञ के अनुष्ठान स्वरूप, सत्ययुग में यज्ञ का अभाव होने के कारण त्रियुग स्वरूप अथवा कलियुग में आच्छन्न रहने के कारण त्रियुग स्वरूप यज्ञ वाराह भगवान् को नमस्कार है ।।३५।।

यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम् ।
मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने ।।३६।।

अन्वयः— यस्य स्वरूपं दिदृक्षवः विपश्चितः कवयः दारुषु जातवेदसम् इव क्रियार्थै गूढम् गुणेषु मनसा मथ्ना मथ्नन्ति ईरितात्मने नमः ।।३६।।

अनुवाद— परिष्कृत जन कर्मासक्ति और कर्म फल की इच्छा से छिपे हुए जिस वराह भगवान् के स्वरूप का साक्षात्कार करने के लिए अपने मनरूपी मथानी से इन्द्रियों आदि को उसी तरह से मथ डालते हैं जिस तरह ऋषिगण अरणि नामक काष्ठ खण्ड में छिपी हुई अग्नि को मन्थन द्वारा प्रकट करते हैं । इस तरह मन्थन करने पर अपने स्वरूप को प्रकट करने वाले वाराह भगवान् को नमस्कार है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

कवयो विद्वांसो विपश्चितो निपुणा गुणेषु देहेन्द्रियादिषु मथ्नन्ति विचिन्वन्ति । मथ्ना विवेकसाधनेन मनसा । क्रियार्थैः कर्मभिस्तत्फलैश्च गूढं अप्रकाशमानं दिदृक्षवः एवं मथने ईरितः प्रकटित आत्मा स्वरूपं यस्य तस्मै नमः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

निपुण विद्वज्जन देह इन्द्रिय आदि का मन्थन विवेक रूप साधन मन के द्वारा कर्म तथा उसके फलों से छिपे हुए वराह भगवान् का साक्षात्कार करने के लिए मन्थन करते हैं और मन्थन करने पर अपने स्वरूप को प्रकट करने वाले वराह भगवान् को नमस्कार है ।।३६।।

द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभिर्मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने ।
अन्वीक्षयाङ्गातिशयात्मबुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतये नमो नमः ।।३७।।

अन्वयः— अन्वीक्षयापाङ्गातिशयात्म बुद्धिभिः द्रव्यक्रियाहेत्व यनेश कर्तृभिः मायागुणैः वस्तुनिरीक्षितात्मने निरस्तमायाकृतये नमो नमः ।।३७।।

अनुवाद— विचार तथा यम नियम आदि योगाङ्गों के साधन से जिनकी बुद्धि निश्चयात्मिका हो गयी हैं वे महापुरुष द्रव्य (विषय) क्रिया (इन्द्रियों के व्यापार) हेतु (इन्द्रियाधिष्ठातृ देवता) अयन (शरीर ईश, काल तथा कर्ता अहङ्कार) आदि माया के कार्यों को देखकर जिनके वास्तविक स्वरूप का निश्चय करते हैं, ऐसे मायिक आकृतियों से रहित आपको बार-बार नमस्कार है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

मथनमेव दर्शयन्त्याह-द्रव्येति । द्रव्यं विषयः । क्रिया इन्द्रियव्यापारः । हेतुर्देवता । अयनं देहः । ईशः कालः कर्ता अहङ्कारः । एतैर्मायाया गुणैः कार्यैरुपलक्षणैर्वस्तुत्वेन निरीक्षितो य आत्मा तस्मै । अन्वीक्षया विचारेणाङ्गैर्यमनियमादिभिरतिशयात्मा निश्चयवती बुद्धिर्येषां तैर्निरस्ता मायानिमित्ता आकृतिर्यस्मात्तस्मै ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

दव्य इत्यादि श्लोक में भूदेवी मंथन को ही बतलाती है । द्रव्य (विषय) क्रिया (इन्द्रियों के व्यापार) हेतु (इन्द्राधिष्ठातृ देवता) अयन (देह) ईश, काल, कर्ता (अहङ्कार) आदि माया के कार्यों को देखकर वस्तु रूप से

दृष्ट आत्मा को नमस्कार है । विचार, यम नियम आदि योगाङ्गो, आदि से जिनकी बुद्धि निश्चयात्मिका हो गयी है वे लोग माया की आकृति से रहित आपके वास्तविक स्वरूप का निश्चय करते हैं ।।३७।।

करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितुर्गुणैः ।
माया यथाऽयो भ्रमते तदाश्रयं ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ।।३८।।

अन्वयः— यथा अपः ग्राव्णः तदाश्रयं भ्रमते, तथा माया यस्येप्सितं विश्वस्थितिसंयमोदयं करोति ईक्षितुः गुणैः न, गुणकर्म साक्षिणे नमस्ते ।।३८।।

अनुवाद— जिस तरह जड़ लोहा अयस्कान्त (चुम्बक के) सन्निधान मात्र से उसी की ओर चलने लगता है, उसी तरह जडा माया सर्वसाक्षी ईश्वर की इच्छा मात्र से जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय का काम अपने लिए नहीं अपितु सभी प्राणियों के लिए करती है उन सम्पूर्ण गुणों और कर्मों के साक्षी आपको नमस्कार है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं निर्गुणरूपेण नत्वा परमेश्वररूपेण प्रणमति-करोतीति । यस्येक्षितुर्जीवार्थमीप्सितम् । अत्यन्तानिच्छायामीक्षणायोगात्। स्वार्थं तु नेप्सितम् । विश्वस्थित्यादिस्वगुणैर्माया करोति । तस्या जडत्वेपीश्वरसन्निधानात्प्रवृत्तिं दृष्टान्तेनाह । यथाऽयो लोहं ग्राव्णोऽयस्कान्तान्निमित्ताद्भ्रमति । तदाश्रयं तदभिमुखं सत् । अतो गुणानां कर्मणां जीवादृष्टानां च साक्षिणे तस्मै ते नमः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

इस निर्गुण रूप से नमस्कार करके पृथिवी देवी वराह भगवान् को परमेश्वर रूप से प्रणाम करती हैं जीवों के लिए अभीप्सित अत्यन्त अनिच्छा रहने पर भी इच्छा के योग से, माया अपने लिए नहीं, सभी जीवों के लिए सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि स्थिति और प्रलय का कार्य करती है । यद्यपि माया जड़ा है फिर भी ईश्वर के सन्निधान मात्र से उसमें उस तरह प्रवृत्ति हो जाती है जिस तरह जड़ लोहे में चुम्बक के सन्निधान मात्र से गति हो जाती है । अतएव गुणों, कर्मों तथा जीवों के अदृष्टों के साक्षी आपको नमस्कार है ।।३८।।

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगदादिसूकरः ।
कृत्वाऽग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुम् इति ।।३९।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भुवनकोष वर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

अन्वयः— मृधे प्रतिवारणं दैत्यं प्रमथ्य यः आदि सूकरः मां रसाया अग्रदंष्ट्रे कृत्वा क्रीडन् इभ इव उदन्वतः निरगात् तं प्रणता अस्मि ।।३९।।

अनुवाद— जो जगत् कारण भूत आदि सूकर आप युद्ध में अपने प्रतिद्वन्दी हिरण्याक्ष दैत्य का बध करके मुझ को रसातल से अपने दाँतों के अग्रभाग पर रखकर क्रीडा करने वाले हाथी के समान समुद्र से ऊपर निकले, उन अपना उद्धार करने वाले आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ ।।३९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाचवें स्कन्ध के भुवनकोश वर्णन नामक अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

अवतारचरितमाह-प्रमथ्येति । यो जगतामादिः कारणभूतः सूकरो मां पृथ्वीमग्रदंष्ट्रे दंष्ट्राग्रे कृत्वा रसातलादारभ्योदन्वतः प्रलयार्णवादिभो गज इव निरगात् । ततश्च प्रतिगजतुल्यं दैत्यं प्रमथ्य यः क्रीडन् स्थितस्तं विभुं प्रणताऽस्मीत्यन्वयः ।।३९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

प्रमथ्य इत्यादि श्लोक में वराहावतार के चरित का पृथिवी देवी वर्णन करती हैं। जो जगत् के आदि कारण स्वरूप सूकर हैं। मुझ पृथिवी को रसातल से अपने दाँतों के अग्रभाग पर रखकर प्रलय कालीन समुद्र से हाथी के समान निकले जैसे कोई गज अपने प्रतिद्वन्दी गज को मारकर क्रीडा करता है। उसी तरह स्थित रहने वाले श्रीभगवान् को मैं प्रणाम करती हूँ ॥३९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के अठारहवं अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१९।।

उन्नीसवाँ अध्याय

किम्पुरुष और भारतवर्ष का वर्णन

श्रीशुक उवाच

किंपुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसंनिकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान्सह किंपुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! किम्पुरुष वर्ष में लक्ष्मणजी के बड़े भाई आदि पुरुष सीता हृदयाभिराम भगवान् श्रीराम के चरणों की सन्निधि में संलग्न रहने वाले परम भागवत श्रीहनुमानजी अन्य किन्नरों के साथ अविचल भक्तिभाव से उनकी उपासना करते हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ऊनविंशे किंपुरुषे भारते चोपवर्ण्यते । सेव्यसेवकभावश्च भारतश्रैष्ठ्यमेव च ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उन्नीसवें अध्याय में किम्पुरुष वर्ष तथा भारत वर्ष में सेव्य सेवक भाव तथा भारत वर्ष की श्रेष्ठता का वर्णन किया जाता है ॥१॥

आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपश्रृणोति स्वयं चेदं गायति॥२॥

अनुवाद— वहाँ अन्य गन्धर्वों के साथ आर्ष्टिषेण अपने स्वामी भगवान राम की परम कल्याणमयी गाथा गाते रहते हैं और हनुमानजी उसे सुनते है । और स्वयं भी इस मन्त्र का जप करते हुए इसतरह से उनकी स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

भर्ता चासौ भगवांश्च तस्य कथाम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

अपने स्वामी भगवान् श्रीराम की गाथा का गायन करते हैं ॥२॥

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणायनमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः इति ॥३॥

अनुवाद— हम ओङ्कार स्वरूप पवित्र कीर्ति भगवान् श्रीराम को नमस्कार करते हैं। सत्पुरुषों के लक्षण, शील और आचरण से सम्पन्न भगवान् को नमस्कार है। संयत चित्त और लोकाराधन में तत्पर रहने वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है। साधुत्व की परीक्षा के लिए कसौटी के समान श्रीभगवान् को नमस्कार है। ब्राह्मणों के भक्त, महापुरुष तथा महाराज भगवान् राम को मेरा बार-बार नमस्कार है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

आर्याणि लक्षणानि शीलं व्रतं च यस्मिन्। उपशिक्षितात्मने संयतचित्ताय। उपासितोऽनुसृतो लोको येन। साधुवादः साधुत्वप्रसिद्धिस्तस्य निकषणाय निकषाश्मवन्निर्धारस्थानाय परमसीम्ना इत्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

सबों के द्वारा शिरोधार्य लक्षण शील तथा व्रत वाले, संयत चित्त, लोकाराधनतत्पर, साधुत्व परीक्षण की कसौटी की पराकाष्ठा स्वरूप भगवान् श्रीराम को मेरा बार-बार नमस्कार है ॥३॥

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥४॥

अन्वयः— यत्-तत् विशुद्धानुभव मात्रमेकं, स्वतेजसा ध्वस्त गुण व्यवथाम्, प्रत्यक् प्रशान्तं सुधिगोपलम्भनं, अनामरूपं हि निरहं प्रपद्ये ॥४॥

अनुवाद— विशुद्ध ज्ञान स्वरूप अद्वितीय, अपने स्वरूप के प्रकाश से, जाग्रदादि सम्पूर्ण अवस्थाओं का निरास करने वाले, सर्वान्तरात्मा परमशान्त, शुद्ध बुद्धि से ग्रहण किए जाने योग्य, नाम रूप से रहित, और अहङ्कार शून्य भगवान् श्रीराम की मैं शरणागति करता हूँ ॥४॥

भावार्थ दीपिका

श्रीरामं परमार्थरूपेण प्रणमति। यदेकं वेदान्तेषु प्रसिद्धं तत्त्वं तत्प्रपद्ये। तत्कथंभूतम्। विशुद्धश्चासावनुभवश्च स एव मात्रा स्वरूपं यस्य। विशुद्धत्वे हेतुः-प्रशान्तम्। तत्रापि हेतुः-स्वतेजसा स्वरूपप्रकाशेन ध्वस्ता गुणानां विविधा जाग्रदाद्यवस्था यस्मिन्। अनुभवमात्रत्वे हेतुः-प्रत्यग्दृश्यादन्यत्। तत्कुतः अनामरूपम्। ननु वस्तुत एवम्भूतस्यापि जीवस्योक्तसर्वविपर्ययो दृश्यते तत्राह। निरहम्, अहङ्काराभावान्न तथा वैपरीत्यमित्यर्थः। ननु श्रीरामस्य स्वरूपं नैवं प्रतीयते तत्राह। सुधिया पुंसा उपलभ्यत इत्युपलम्भनम्। शुद्धचित्तेन ब्रह्मत्त्वेनैवोपलम्भ्यत इत्यर्थः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भगवान् श्रीराम को परमार्थ रूप से प्रणाम करते हैं। वेदान्तों में अद्वितीय रूप से प्रसिद्ध तत्त्व स्वरूप श्रीराम की मैं शरणागति करता हूँ। वे भगवान् श्रीराम कैसे हैं तो इस पर कहते हैं। वे शुद्ध अनुभव स्वरूप हैं, क्योंकि वे सर्वात्मा है, तथा परम शान्त स्वरूप हैं। उसका कारण है कि वे अपने तेज से गुणों की जो जाग्रत इत्यादि अवस्थाएँ हैं उन सबों को निरस्त कर दिए है। वे अनुभव मात्र इसलिए हैं कि वे प्रत्यक् दृश्यव्यतिरिक्त, नाम और रूप से रहित हैं यदि कहें कि इस प्रकार के भी जीव के उक्त सभी विपर्यय देखे जाते हैं। तो इस पर कहते हैं वे अहङ्कार शून्य है। अतएव उनमें वैपरीत्य नहीं है। यदि कहें कि श्रीराम के स्वरूप की ऐसी प्रतीति नहीं होती है तो इस पर कहते हैं— शुद्ध चित्त वाले महापुरुषों को उनकी उपलब्धि ब्रह्म रूप से होती है ॥४॥

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥५॥

अन्वयः— विभोः मर्त्यावतारः केवलं रक्षो वधायै वन अपितु मर्त्मशिक्षणं अन्यथा स्व आत्मनः रमतः ईश्वरस्य सीता कृतानि व्यसनानि कुतः स्यात् ॥५॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आपका मनुष्यावतार केवल रावणादि राक्षसों का वध करने के लिए नहीं है अपितु मनुष्यों को शिक्षा देने के लिए हुआ है । अन्यथा अपने स्वरूप में ही रमण करने वाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वर को श्रीसीताजी के वियोग में इतना दुःख क्यों सहना पड़ता ?॥५॥

भावार्थ दीपिका

कथं तर्हि दशरथपुत्रत्वं तत्राह । विभोर्मर्त्यावतारस्तु रक्षसो रावणस्य वधाय तस्य मनुष्यादन्यतोऽवध्यत्वात् । न केवलमेतावत्किंतु इह संसारे स्त्रीसङ्गादि कृतं दुःखं दुर्वारमिति मर्त्यानां शिक्षणं च । शिक्षार्थमपीत्यर्थः । अन्यथा स्वे स्वरूपे रममाणस्य जगदात्मनः सीताविरहकृतानि व्यसनानीति कुतः स्यात् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि तो फिर वे दशरथजी के पुत्र कैसे हैं ? तो इस पर कहते है- प्रभु श्रीराम का मर्त्यावतार तो रावण का वध करने के लिए हुआ है, क्योंकि मनुष्य व्यतिरिक्त से उसका वध असम्भव था । किन्तु केवल इतना ही इस अवतार का प्रयोजन नहीं है, किन्तु उनका अवतार तो मनुष्यों को यह शिक्षा देने के लिए हुआ है कि स्त्री आदि की सङ्गति होने पर दुःखों की प्राप्ति निर्निवार्य है । अन्यथा अपने स्वरूप में ही रमण करने वाले जगदात्मा भगवान् श्रीराम को सीता वियोगजन्य इतना कष्ट क्यों होता ?॥५॥

न वै स आत्मात्मवतां सुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान्वासुदेवः ।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥६॥

अन्वयः— स वै आत्मवताम् आत्मा, सुहृत्तमः भगवान् वासुदेवः त्रिलोक्यां सक्तः न, स्त्रीकृतं कश्मलं न अश्नुवीत, लक्ष्मणं चापि विहातुम् न अर्हति ॥६॥

अनुवाद— भगवान् श्रीराम आत्मज्ञानी पुरुषों की आत्मा और प्रियतम भगवान् वासुदेव हैं, वे त्रिलोकी की किसी भी वस्तु में आसक्त नहीं है, वे सीताजी के लिए मोह को भी नहीं प्राप्त हो सकते हैं और न तो वे लक्ष्मणजी का परित्याग ही कर सकते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

विषयासक्तप्रभावेन व्यसनानर्हत्वमुपपादयति । न वै स भगवांस्त्रिलोक्यां क्वापि सक्तः । यत आत्मवतां धीराणामात्मा सुहृत्तमश्च । अतो न स्त्रीकृतं मोहं प्राप्नुयात् । न लक्ष्मणं चेति । देवदूतेन श्रीरामं संमन्त्रयता विज्ञापितमत्रागतस्त्वया वध्य इति तदैव द्वारि स्थितं लक्ष्मणं दुर्वाससमागतं विज्ञापयितुं प्रविष्टं हन्तुमुद्यतो वसिष्ठवाक्यात्तत्याज तच्च न युज्येतेत्यर्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में इस बात का प्रतिपादन करते हैं कि भगवान् श्रीराम की किसी भी विषय में आसक्ति नहीं होने के कारण उनको कष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती है । वे भगवान् त्रिलोकी की किसी भी वस्तु में आसक्त नहीं हैं क्योंकि वे ज्ञानी पुरुषों की आत्मा और प्रियतम हैं । अतएव उनको स्त्री वियोग जन्य कष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती है वे लक्ष्मणजी का भी परित्याग नहीं कर सकते हैं । देवताओं के दूत द्वारा मन्त्रणा करते समय देवदूत ने कहा कि हम दोनों की वार्ता के बीच में जो आ जाय उसका आप वध कर देंगे । उससमय आये हुए दुर्वासा

महर्षि के आगमन की सूचना देने के लिए द्वार पर स्थित लक्ष्मणजी को मारने के लिए जब भगवान् उद्यत हो गये तो वसिष्ठजी के कथनानुसार उन्होंने लक्ष्मणजी का परित्याग कर दिया ॥६॥

न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ्न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥७॥

अन्वयः— नूनं महतो जन्म न, सौभगं न, वाक् न, बुर्द्धिन आकृतिः यत् तैः विसृष्टान्अपि बनौकसः नः बत लक्ष्मणाग्रजः सख्ये चकार ॥७॥

अनुवाद— भगवान् श्रीराम की प्रसन्नता का कारण उत्तम कुल में जन्म, सुन्दरता, वाक्चातुर्य, बुद्धि और श्रेष्ठ इनमें से कोई नहीं हो सकता है, क्योंकि इन सबों से हम वनवासियों के लक्ष्मणाग्रज श्रीरामजी ने अपना मित्र बनाया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अतः श्रीराम एव सर्वैः सेव्य इति वक्तुं न तस्य तोषहेतुः सत्कुलजन्मादि किंतु भक्तिरेवेत्याह- न जन्मेति । महतः पुरुषाज्जन्म । महतः श्रीरामस्येति वा । सौभगं सौन्दर्यम् । आकृतिर्जातिः । यद्यस्मात्तैर्जन्मादिभिर्विसृष्टांस्त्यक्तानपि नो वनचरान् बत अहो लक्ष्मणस्याग्रजोऽपि सखित्वे कृतवान् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

अतएव सबों को भगवान् श्रीरामकी ही आराधना करनी चाहिए इस बात को बतलाने के लिए वे कहते हैं कि उनकी प्रसन्नता का साधन उत्तम कुल में जन्म आदि नहीं अपितु भक्ति ही है । महानों के वंश में जन्म, अथवा श्रीराम का महान वंश में जन्म, सौन्दर्य, जाति, आदि भगवान् श्रीराम की प्रसन्नता के साधन नहीं हैं, क्योंकि उत्तम कुल में जन्म आदि से रहित वन में रहने वाले हम वानरों को भगवान् श्रीराम ने अपना मित्र बनाया यह उनक बड़ी उदारता है ॥७॥

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत्कोशलान्दिवम् इति ॥८॥

अन्वयः— सुरः असुरः अपि अथ नरः वानरः वा सर्वात्मना उत्तमं सुकृतज्ञं मनुजाकृतिं हरिं रामं भजेत यः उत्तरान् कोसलान् दिवम् अनयत् ॥८॥

अनुवाद— देवता, अथवा असुर, अथवा मनुष्य या वानर सबों को हर प्रकार से सर्वोत्तम सुकृतज्ञ मानव रूप धारी श्रीहरि भगवान् श्रीराम का ही भजन करना चाहिए जो भगवान् श्रीराम परधाम गमन करते समय सभी उत्तर कोसल वासियों को अपने साथ लेते गये ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तस्मात्सुरो वान्यो वा यः कोऽपि श्रीराममेव सर्वप्रकारेण भजेत् । सुकृतज्ञमल्पीयस्यपि भजने बहुमानिनम् । उत्तरान्कोशलानयोध्यावासिनः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अतएव देवता या असुर आदि कोई भी हो उसको हर प्रकार से भगवान् श्रीराम का ही भजन करना चाहिए। वे अन्य भी भजन करने का बहुत अधिक महत्त्व देते हैं । वे परधाम गमन की बेला में समस्त अयोध्या वासियों को अपने साथ लेते गये ॥८॥

भारतेऽपि वर्षे भगवान्नरनारायणाख्य आकल्पान्तमुपचितधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपशमो परमात्मोपलम्भनमनुग्रहायात्मवतामनुकम्पया तपोऽव्यक्तगतिश्चरति ॥९॥

अनुवाद— भारत वर्ष में भी दयापरतन्त्र भगवान् नारायण रूप धारण करके संयमशील पुरुषों पर कृपा करने के लिए अव्यक्त रूप से कल्प के अन्त तक तप किया करते हैं। उनकी इस तपस्या से धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, शान्ति और उपरति की उत्तरोत्तर वृद्धि होकर अन्त में आत्म स्वरूप की उपलब्धि हो सकती हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

उपचितैर्धर्मादिभिरात्मोपलभ्यते येन तत्तपश्चरति। तत्रोपशम इन्द्रियाणां संयमः उपरमो निरहंकारता। आत्मवतामनुग्रहाय न स्वार्थम्, ईश्वरत्वात् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

धर्मादि की वृद्धि होने के कारण जिससे आत्मा की उपलब्धि हो सके इस प्रकार का तप भगवान् नर-नारायण करते हैं। इन्द्रियों के संयम को उपशम कहते हैं। अहङ्कार राहित्य को उपरम कहते हैं। वे आत्मज्ञ पुरुषों पर कृपा करने के लिए अपने लिए नहीं क्योंकि वे तो ईश्वर हैं ॥९॥

तं भगवान्नारदो वर्णाश्रमवतीभिर्भारतीभिः प्रजाभिर्भगवत्प्रोक्ताभ्यां सांख्ययोगाभ्यां भगवदनुभावोपवर्णनं सावर्णेरुपदेक्ष्यमाणः परमभक्तिभावेनोपसरति इदं चाभिगृणाति ॥१०॥

अनुवाद— वहाँ भगवान् नारदजी स्वयं श्रीभगवान् के ही कहे हुए सांख्यशास्त्र एवं योगशास्त्र के साथ श्रीभगवान् की महिमा को प्रकट करने वाले पाञ्चरात्र दर्शन का सवर्णि मनु को उपदेश करने के लिए भारत वर्ष की वर्णाश्रमधर्म का पालन करने वाली प्रजा के साथ अत्यन्त भक्तिभाव से श्रीभगवान् नर-नारायण की उपासना करते हैं और इस मन्त्र का जप करते हुए उनकी स्तुति करते ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

भगवदनुभाव उपवर्ण्यते येन पञ्चरात्रेण तत्। सावर्णेर्मनोः। उपसरति सेवते ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् की महिमा को प्रकट करने वाले पञ्चरात्र शास्त्र का सावर्णि मनु को उपदेश देने के लिए श्रीभगवान् की उपासना नारदजी करते हैं ॥१०॥

ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नमः- इति ॥११॥

अनुवाद— ॐकारस्वरूप अहङ्कार से रहित, निर्धनों के धनस्वरूप शान्त स्वभाव ऋषियों श्रेष्ठ भगवान् नरनारायण को नमस्कार है। वे परम हंसों के गुरु और आत्मारामों के अधीश्वर हैं। उनको बार-बार नमस्कार हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

उपरतानात्म्याय निरहंकाराय ॥११॥

भाव प्रकाशिका

उपरतानात्म्याय पद का अर्थ है अहङ्कार से रहित भगवान् को नमस्कार है ॥११॥

नारद उवाच

गायति चेदम् ।

कर्तास्य सर्गादिषु यो न बध्यते न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः ।
द्रष्टुर्नदृग्यस्य गुणैर्विदूष्यते तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥१२॥

अन्वयः— अस्य कर्ता यः न बध्यते, यस्य द्रष्टुः दृग् अस्यगुणैः न विदूष्यते, देहगतोऽपि यः दैहिकैः न हन्यते, तस्मै असक्त साक्षिणे नमः ॥१२॥

नारदजी इस प्रकार से स्तुति करते हैं

अनुवाद— जो इस विश्व की उत्पत्ति आदि के कर्ता होकर के भी कर्तृत्वाभिमान में नहीं वँधते हैं, शरीर में रहते हुए भी जो शरीर के धर्म भूख-प्यास आदि के वशीभूत नहीं होते हैं, तथा द्रष्टा होने पर भी जिनकी दृष्टि दृश्य के गुणों एवं दोषों से दूषित नहीं होती है, उन असंग एंव विशुद्ध साक्षी स्वरूप भगवान् नर-नारायण को नमस्कार है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

असक्तश्चासौ विविक्तश्च साक्षी न तस्मै नमः । असक्तत्वं दर्शयति । अस्य विश्वस्य सर्गादिषु कर्तापि यो न बध्यतेऽहङ्कर्तेति न मन्यते विविक्तत्वमाह । देहगतोऽपि दैहिकैः क्षुत्पिपासादिभिर्यो न हन्यते नाभिभूयते । साक्षित्वमाह । यस्य द्रष्टुरपि सतो दृष्टिगुणैर्दृश्यैर्न विदूष्यते न विक्रियते ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

असक्त विशुद्ध एवं साक्षी स्वरूप श्रीभगवान् नर-नारायण को नमस्कार है । भगवान् की असक्तता का वर्णन करते हैं कि इस जगत् के कर्ता होकर भी इसके कर्तृत्वाभिमान से नहीं बंधते हैं । विशुद्धत्व को बतलाते हुए कहते हैं कि देह में रहकर भी देह को धर्म भूख प्यास के वशीभूत नहीं होते हैं । श्रीभगवान् के साक्षित्व को बतलाते हुए नारदजी ने कहा द्रष्टा होने पर भी भगवान् की दृष्टि दृश्य के दोषों और गुणों से दूषित नहीं होती हैं ॥१२॥

इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत् ।
यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो भक्तयादधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥१३॥

अन्वयः— हे योगेश्वर ! भगवान् हिरण्यगर्भ योगनैपुणं इदं हि जगाद यत्, अन्त काले उज्झितदुष्कलेवरः निगुणे त्वयि भक्त्यामनः दधीत ॥१३॥

अनुवाद— हे योगेश्वर ! भगवान् हिरण्यगर्भ ब्रह्माजी ने योग की यही निपुणता बतलाया है कि मनुष्य अन्तकाल में देहाभिमान का परित्याग करके भक्तिपूर्वक आपके गुण रहित स्वरूप में अपने मन को लगाये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

योगकौशलं निरूपयन्योगं प्रार्थयते-इदमिति त्रिभिः । हे योगेश्वर, हिरण्यगर्भो यद्योगनैपुणं जगाद । इदमेव तत् । किम्। जन्मप्रभृति भक्त्यान्तकाले पुमांस्त्वयि मनो धारयेदिति यत् । कथंभूतः सन् । उज्झितं दुष्कलेवरं तदभिमानो येन ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

योग की निपुणता को बतलाते हुए योग की प्रार्थना तीन श्लोकों से करते हैं । हे योगेश्वर ब्रह्माजी ने जो योग की निपुणता बतलायी है वह यही है कि जन्म से लेकर भक्तिपूर्वक आपमें मन को लगाना चाहिए । प्रश्न है कि कैसा होकर मन को लगाये । इसका उत्तर है कि देहाभिमान को त्यागकर ॥१३॥

यथैहिकामुष्मिककामलम्पटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् ।
शङ्केत विद्वान्कुकलेवरात्ययाद्यस्तस्य यन्तः श्रम एव केवलम् ॥१४॥

अन्वयः— ऐहिकामुष्मिककामलम्पटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् यथा विद्वान् कलेवरात्ययात् शङ्केत तस्य यत्नः केवलम् श्रमएव ॥१४॥

अनुवाद— लौकिक एवं पारलौकिक भोगों के लालची अज्ञानी पुरुष जैसे पुत्र, पत्नी तथा धन की चिन्ता करता हुआ जैसे मृत्यु से डरता है इसी तरह यदि विद्वान् भी मृत्यु से डरता है तो उसका ज्ञान प्राप्ति के लिए किया हुआ प्रयत्न केवल श्रममात्र ही है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अन्यथा तस्य शास्त्राभ्यासादिश्रमो व्यर्थ इत्याह । यथैहिकामुष्मिककामेषु लम्पटो मूर्खः सुतादिषु योगक्षेमं चिन्तयन् कुत्सितस्य कलेवरस्यात्ययान्मृत्योः शङ्कते । तथा विद्वानपि सन् यः शङ्केत तस्य यत्नः शास्त्रश्रवणादिः श्रम एव ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

यदि विद्याप्राप्त भी मृत्यु से भयभीत होता है तो उसके द्वारा किया गया शास्त्राभ्यास व्यर्थ ही है । जिस तरह लौकिक और पारलौकिक भोगों का लालची मूर्ख मनुष्य पुत्र, पत्नी और धन की चिन्ता करता हुआ मृत्यु के भय से भयभीत होता है उसीतरह यदि विद्वान भी शरीर परित्याग रूप मृत्यु से भयभीत होता है तो उसका शास्त्र श्रवण इत्यादि के लिए किया गया प्रयास केवल श्रम मात्र ही है ॥१४॥

तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां त्वन्माययाऽहंममतामधोक्षज ।
भिन्द्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावम्- इति ॥१५॥

अन्वयः— तत् हे प्रभो अधोक्षज्त्वम् त्वयि स्वभावं योगं विधेहि येन वयं कुकलेवरार्पितां सुदुर्भिदां त्वन्माययार्पितां आशुभिन्द्याम् ॥१५॥

अनुवाद— हे अधोक्षज प्रभो ! आप हमे अपना स्वाभाविक प्रेम स्वभक्तियोग प्रदान करे जिससे कि मैं इस निन्दनीय शरीर में आपकी माया के कारण बद्धमूल तथा दुर्भेद्य अहन्त्व-ममत्व को शीघ्र ही काट डालूं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

यस्माद्विदुषोऽपीयमेव दशा तत्तस्माद्धे प्रभो अधोक्षज, त्वमेव नो योगं विधेहि । कीदृशम् । त्वयि स्वभावं सहजवासनारूपम्। येन योगेन वयं त्वन्मायया नः कुकलेवरेऽर्पितामहंममतां शीघ्रं भिन्द्याम त्यजेम । सुदुर्भिदामुपायान्तरैः सर्वथा त्यक्तुमशक्याम्।।१५।।

भाव प्रकाशिका

चूकि विद्वान् की भी यही दशा है अतएव हे अधोक्षज प्रभो आप ही मुझे उस भक्तिरूपी योग अपने में प्रदान करें । जिससे कि उस योग के द्वारा आपकी माया के द्वारा शरीर में बद्धमूल अहन्त्व और ममत्व को मैं शीघ्र ही त्याग दूँ । क्योंकि दूसरे किसी उपाय से उसका त्याग नहीं हो सकता है ॥१५॥

भारतेऽप्यस्मिन्वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवो मलयो मङ्गलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेङ्कटो महेन्द्रो वारिधारो विन्ध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये च शतहस्त्रशः शैलास्तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यश्च सन्त्यसंख्याताः ॥१६।

अनुवाद— इस भारत वर्ष में भी बहुत से पर्वत और नदियाँ हैं । जैसे मलय, मङ्गलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट,

ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल वेङ्कट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, शुक्तिमान, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुम, नील, गोकामुख, इन्द्रकील और कामगिरि आदि। इसी तरह और भी सैकड़ों हजारों पर्वत है। उनके तट प्रान्त से निकले वाले नद और नदियाँ भी अनेक हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

इलावृतवदस्मिन्नपि वर्षे सरितः शैलाश्च सन्ति। नितम्बप्रभवास्तटेभ्यः संभूताः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

इलावृत वर्ष के ही समान भारत वर्ष में भी बहुत से पर्वत और नदियाँ है। पर्वतों के तट प्रान्त से निकलने वाले नद और नदियाँ भी बहुत हैं ॥१६॥

एतासामपो भारतीयः प्रजा नामभिरेव पुनन्तीनामात्मना चोपस्पृशन्ति ॥१७॥

अनुवाद— ये नदियाँ अपने नाम से ही भरतीय प्रजा को पवित्र बनाती हैं। भारतीय प्रजा इन नदियों के जल में स्नान करती हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

आत्मना च देहेनाप्युपस्पृशन्ति ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

अपने शरीर से इन नदियों का स्पर्श करती हैं ॥१७॥

चन्द्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुङ्गभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिन्धुरन्धः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिर्ऋःषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रूश्चन्द्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ॥१८॥

अनुवाद— चन्द्रवशा, तामपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पंचस्वनी, शर्करावर्ता, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिन्धुरन्धः, शोणः ये दोनों नद हैं। महानदी, वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रू, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा वितएता असिक्नी, और विश्वा, ये मुख्य नदियाँ हैं ॥१८॥

अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्व्य आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति ॥१९॥

अनुवाद— इस भारत वर्ष में ही जन्म लेने वाले पुरुषों को अपने किए हुए सात्त्विक, राजस और तामस कर्मों के अनुसार अनेक प्रकार की देव, मनुष्य तथा नारकीय योनियाँ प्राप्त होती है। क्योंकि कर्मानुसार सभी जीवों को सभी योनियाँ प्राप्त होती है इसी वर्ष में अपने-अपने वर्ण के लिए विहित धर्मों का अनुष्ठान करने से मोक्ष की भी प्राप्ति होती है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

लब्धं जन्म यैस्तैः पुरुषै; सात्विकादिना स्वकृतेन कर्मणा दिव्यादिगतय आत्मनो विधीयन्ते साध्यन्ते। हि यस्मात् सर्वा

एवं गतयः कर्मानुसारेण सर्वेषां भवन्ति । यस्य वर्णस्य यद्विधानं मोक्षप्रकारः संन्यासवनस्थत्वादिस्तदनतिक्रमेणास्मिन्नेव वर्षे नृणामपवर्गश्च भवति । एतच्च कर्मादिबहुसाधनसंभवाभिप्रायेणोक्तं न त्वन्यत्रापवर्गाभावेन तदुपर्यपि बादरायणः संभवादिति देवानामपि मोक्षस्य सूचितत्वात् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इसी ही वर्ष में जन्म लेने वाले पुरुषों के द्वारा अपने सात्त्विक इत्यादि कर्मों के द्वारा देव आदि योनियाँ प्राप्त की जाती हैं । सबों को सारी गतियाँ उनक कर्मो के अनुसार ही होती हैं । जिस वर्ण के लिए शास्त्र जिस प्रकार के कर्मों का विधान करते हैं तथा संन्यास वानप्रस्थ इत्यादि के जो कर्म है उन कर्मों का पालन करने से मनुष्यों को मोक्ष की भी प्राप्ति होती है । इस बात को अनेक प्रकार के कर्मों रूप साधन से ही सम्भव है, इसी अभिप्राय से कहा गया है । ऐसा नहीं है कि मनुष्य व्यतिरिक्त को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है । **तदुपर्यपिबादरायणः संभवात्** इस सूत्र में महर्षि बादरायण ने बतलाया कि अर्थित्व और सामर्थ्य का देवताओं में भी सद्भाव होने के कारण देवताओं को भी मुक्ति की प्राप्ति सम्भव है ।।१९।।

योऽसौ भगवति सर्वभूतात्मन्यनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने परमात्मनि वासुदेवेऽनन्यनिमित्तभक्तियोगलक्षणो नानागतिनिमित्ताविद्याग्रन्थिरन्धनद्वारेण यदा हि महापुरुषपुरुषप्रसङ्गः ।।२०।।

अनुवाद— राजन् सभी भूतों की आत्मा, रागादि दोषों से रहित, अनिर्वचनीय, आधर शून्य परमात्मा भगवान् वासुदेव में अनन्य एवं अहैतुक भक्तिभाव ही मोक्षप्रद है । यह भक्ति तब ही प्राप्त होती है, जब अनेक प्रकार की गतियों को प्रकट करने वाली अविद्या रूप हृदय की ग्रन्थि के कट जाने पर भगवद् भक्तों की सङ्गति प्राप्त होती है ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

अपवर्गस्वरूपमाह–योऽसाविति । अनात्म्ये आत्मनि भवमात्म्यं रागादि तद्रहिते । अनिरुक्ते वाचामगोचरे अनिलयने अनाधरे । अनन्यनिमित्तोऽहैतुको भक्तियोग एव लक्षणं स्वरूपं यस्य । कथं भवति । नानागतीनां निमित्तं योऽविद्याग्रन्थिस्तस्य रन्धनं छेदनं तद्द्वारेण । महापुरुषपुरुषा विष्णुभक्तास्तैः प्रकृष्टः संयोगो यदा भवति तदा ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

मोक्ष के स्वरूप को **योऽसौ० इत्यादि** श्लोक से बतलाते है रागादि दोष से रहित, वाणी के अविषय भूत अर्थात् अनिर्वचनीय, आधाररहित अनन्या अर्थात् अहैतुकीभक्ति रूप ही जिसका रूप है । अब प्रश्न उठता है कि उस भक्ति की प्राप्ति कैसे होती है इसके उत्तर में कहते हैं कि अनेक प्रकार की गतियों के कारणभूत जब अविद्या की ग्रन्थि कट जाती है, और श्रीभगवान् के भक्तों की जब सङ्गति प्राप्त होती है तब ही भक्ति की प्राप्ति होती है ।।२०।।

एतदेव हि देवा गायन्ति ।

अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ।।२१।।

अन्वयः— अहो यैः मुकुन्दसेवौपयिकं भारताजिरे नृषु जन्म लब्धं अमीषां किं शोभनम् अकारि उतस्वित् एषां स्वयं हरिः प्रसन्नः नः हि स्पृहा ।।२१।।

अनुवाद— देवता भी भारत वर्ष में उत्पन्न पुरुषों की इस प्रकार ही महिमा का गान करते हैं ।

अहो ! जिन लोगों ने श्रीभगवान् की सेवा करने योग्य इस भारत वर्ष में जन्म प्राप्त किया है, इन लोगों

ने कौन सा पुण्य कर्म किया है, अथवा इन लोगों पर श्रीहरि ही प्रसन्न हैं । इसके लिए तो हमलोगों की भी स्पृहा बनी रहती है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव मानुष्यमेव सर्वपुरुषार्थसाधनं गायन्ति । अमीषामेभिः । उतस्वित् अथवा स्वयमेव साधनं विनैव हरिरेषां प्रसन्नोऽभूत्। एवंभूतस्य पुण्यस्य दुष्करत्वात् । भारताजिरे भारताङ्गणे नः केवलं स्पृहैव । यत्र तन्मुकुन्दसेवोपयोगि नृषु जन्म यैर्लब्धम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ के मनुष्य जन्म की ही प्रशंसा करते हैं । इन मनुष्यों ने कौन सा पुण्य कर्म किया है । अथवा साधन के बिना ही अपने आप इन लोगों पर श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं । भारतवर्ष में जन्म लेने की हमलोगों की इच्छा ही रहती है जन्म ही प्राप्त कर पाते । जिस भारत वर्ष में जिन लोगों ने श्रीभगवान् की सेवा के लिए उपयोगी जन्म प्राप्त किया है ॥२१॥

किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतैर्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना ।
न यत्र नारायणपादपङ्कजस्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात् ॥२२॥

अन्वयः— नः दुष्करैः क्रतुभिः तपोव्रतैः दानादिभिः वा फल्गुनाद्युजयेन किम् यत्र नारायण पादपङ्कजस्मृतिः न अतिशयेन्द्रियोत्सवात् स्मृतिः प्रमुष्टा ॥२२॥

अनुवाद— हमें अत्यन्त कठिन याग, तप, व्रत तथा दानादि के करने से क्षुद्र स्वर्ग पर अधिकार प्राप्त करने से कौन सा लाभ हुआ । यहाँ तो भगवान नारायण के चरण कमलों की याद भी नहीं आती, सदैव इन्द्रियों का प्रीणन करते रहने के कारण भगवान् की स्मृति ही विनष्ट हो गयी है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

स्पृहामेवाहुः– किमित्यादिसप्तभिः । दुष्करैः क्रत्वादिभिर्नः फल्गुना तुच्छेन द्युजयेन स्वर्गप्राप्त्या किम् । न किंचित्फलम्। कुतः । यत्र नारायणपादपङ्कजस्मृतिर्नास्ति । प्रत्युतातिशयितादिन्द्रियाणामुत्सवाद्भोगात्प्रमुष्टाभूत् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

देवगण अपनी स्पृहा को ही **किम० इत्यादि** सात श्लोकों द्वारा कहते हैं कठोरयाग इत्यादि के करने से हमे जो तुच्छ स्वर्ग की प्राप्ति हुई है इससे कौन सा लाभ हुआ । कुछ भी नहीं । यहाँ तो भगवान् नारायण के चरण कमलों की याद भी नहीं आती है । अपितु अत्यधिक इन्द्रियों का भोग प्राप्त होने के कारण हमारी स्मृति ही विनष्ट हो जाती है ॥२२॥

कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ।
क्षणे मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ॥२३॥

अन्वयः— कल्पायुषां स्थानजयात् पुनर्भवात् क्षणायुषांभारतभूजयोवरम् क्षणेन मनर्येन कृतं मनस्विनं संन्यस्य हरेः अभयं पदं संयान्ति ॥२३॥

अनुवाद— जिस ब्रह्मलोक में स्थान प्राप्त करके उस एक कल्प की आयु प्राप्त करने वालों को भी पुनः जन्म लेना पड़ता है । उन लोगों की अपेक्षा तो भारत भूमि में क्षणभर का ही जन्म प्राप्त करना श्रेष्ठ है । यहाँ ज्ञानी पुरुष अपने क्षणिक मर्त्य शरीर से किए हुए कर्मों को भगवान् नारायण को समर्पित करके श्रीहरि के अभय पद को प्राप्त कर लेते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

क्षणमल्पमेवायुर्येषाम् । वरत्वे हेतुः- मर्त्येनापि देहेन क्षणेनेव कालेन कृतं कर्म संन्यस्य हरेः पदं सम्यग्यान्ति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

अल्प आयु वाले मनुष्यों का ही जन्म श्रेष्ठ है । उसका कारण है कि इस मानव शरीर से ही किए गये कर्मों को भगवान् नारायण को समर्पित करके श्रीहरि के लोक को प्राप्त कर लेते हैं ।।२३।।

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ।।२४।।

अन्वयः— यत्र वैकुण्ठ कथासुधापगा न तदाश्रयाः भागवताः साधवः न, यत्रयज्ञेश मखाः महोत्सवाः न सवै सुरेश लोकः अपि न सेव्यताम् ।।२४।।

अनुवाद— जहाँ पर श्रीभगवान् की कथा रूपी अमृत की नदी प्रवाहित नहीं होती है, जहाँ भगवदाश्रित रहने वाले भगवद्भक्त साधुजन न हों, जहाँ पर यज्ञ पुरुष भगवान् नारायण के यज्ञादि महोत्सव नहीं मनाये जाते हों उस ब्रह्माजी के लोक का भी सेवन नहीं करना चाहिए ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

अतो यत्र वैकुण्ठकथामृतनद्यो न सन्ति । तदाश्रयाः कथापगाश्रयाः । महान्तो नृत्याद्युत्सवा येषु तादृशा यज्ञेशस्य मखाश्च पूजाः । स सुरेशस्य ब्रह्मणोऽपि लोको न सेव्यताम् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

अतएव जहाँ पर भगवान् वैकुण्ठनाथ की कथामृत की नदी नहीं प्रवाहित होती हो तथा श्रीभगवान् की कथामृत की नदी का सेवन करने वाले भगवत साधुजन न हों । जहाँ पर नृत्य गीतों के साथ श्रीभगवान् की पूजा अर्चा नहीं होती हो उस ब्रह्माजी के भी लोक का सेवन नहीं करना चाहिए ।।२४।।

प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसंभृताम् ।
न वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम् ।।२५।।

अन्वयः— ये च जन्तवः इह ज्ञान क्रिया द्रव्यकलाप संभृताम् नृजातिं प्राप्ता ते वै अपुनर्भवाय न यतेरन् ते वनौका इव पुन र्बन्धनम् यान्ति ।।२५।।

अनुवाद— जिन जीवों ने इस भारत वर्ष में ज्ञान तदनुकूला कर्म तथा उस कर्म के लिए उपयोगी द्रव्यादि समग्री से सम्पन्न मनुष्य जन्म प्राप्त किया है, वे यदि इस संसार चक्र से निकलने का प्रयास नहीं करते हैं तो फिर वे बहेलिए के जाल से निकलकर पुन उसी वृक्ष पर विहार करने वाले पक्षी के समान पुनः संसार के बन्धन में पड़ जाते हैं ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

अमुमुक्षून्नरान्निन्दति-प्राप्ता इति । ज्ञानं च तदर्थाः क्रियाश्च तदर्थानि द्रव्याणि च तेषां कलापेन संभृतां पूर्णाम् । अपुनर्भवाय मोक्षाय वनौका इव । वनौकसः पक्षिणो यथा लुब्धकान्मुक्ता अपि पुनर्यदि तस्मिन्नेव वृक्षे प्रमत्ता विहरन्ति तर्हि यथा बध्यन्ते तद्वत् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

प्राप्ता० इत्यादि श्लोक के द्वारा अमुमुक्षु मनुष्यों की निन्दा करते हैं । ज्ञान, तदनुकूल कर्म उसके लिए

उपयोगी द्रव्यादि समूह से परिपूर्ण मानव जन्म प्राप्त करके भी जो लोग मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रयास नहीं करते है वे वन के उन पक्षियों के समान हैं जो किसी तरह बहेलिए के जाल से मुक्त होकर पुनः उसी वृक्ष पर प्रमत्त होकर विहार करते हैं और पुनः बन्धन में पड़ जाते हैं ॥२५॥

यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हविर्निरुप्तमिष्टं विधिमन्त्रवस्तुतः ।
एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ॥२६॥

अन्वयः— यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशः हविः विधिमन्त्र वस्तुतः इष्टं हविः निरुप्तं स्वयमाशिषां एकः पूर्णः प्रभुः पृथक् नामभिः आहूतः गृह्णाति ॥२६॥

अनुवाद— इन भारत वासियों का कितना सौभाग्य है जब कि वे यज्ञ में भिन्न-भिन्न देवताओं के नाम से अलग-अलग भाग रखकर विधि, मन्त्र और द्रव्यादि के द्वारा श्रद्धापूर्वक उन्हें हविष्य प्रदान करते हैं तब इन्द्रादि भिन्न-भिन्न नामों से पुकारे जाने वाले स्वयं पूर्णकाम श्रीहरि ही प्रसन्न होकर उस हविष्य को ग्रहण करते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अहो भारतवासिनां भाग्यमित्याहुः-यैरिति । 'अग्नये जुष्टं निर्वपामि, इन्द्राय जुष्टं निर्वपामि' इत्येवं भागशो निरुप्तं पृथक् कृतम् । कथम् । विधिना प्रकारेण मन्त्रेण च वस्तुतश्चरुपुरोडाशादिभेदेन चेष्टं देवतामुद्दिश्य त्यक्तं निरुप्तं च ममेदमिति स्वीकृत्य त्यागानन्तरमश्नतीत्यर्थः । पृथगिन्द्रादिनामभिराहुत आहूतः । आशिषां प्रभुः स्वयं पूर्णोऽपि हरिः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं ने कहा भारतवासियों का भाग्य कितना सराहनीय है— जो यज्ञ करते समय **अग्नये जुष्टं निर्वपामि इन्द्राय जुष्टं निर्वपामि** इस तरह से तत्-तत् देवताओं का अलग-अलग भाग निकलते हैं । इस कार्य को वे विधिपूर्वक और मन्त्र पूर्वक चरु तथा पुरोडाश इत्यादि रूप से इष्ट देवता का उद्देश करके जब प्रदान करते हैं। उस प्रदान करने के पश्चात् यह मेरा है इस तरह से भिन्न-भिन्न देवता के नाम से पुकारे जाने वाले स्वयं पूर्ण काम हरि उसे स्वयं ग्रहण करते हैं ॥२६॥

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः ।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छतामिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥२७॥

अन्वयः— नृणाम् अर्थितम् अर्थितः दिशति सत्यम् नैवार्थदः यतः पुनरर्थिता अनिच्छताम् भजताम् इच्छापिधानं निज पादपल्ल्वम् स्वयं विधत्ते ॥२७॥

अनुवाद— मनुष्य के द्वारा किसी वस्तु के लिए प्रार्थना किए जाने पर श्रीभगवान् उसे प्रदान करते हैं यह सत्य है किन्तु यह वास्तविक प्रदान नहीं क्योंकि उसके बाद भी कामना बनी रहती हैं । किन्तु निष्काम होकर आराधना करने वाले को तो श्रीभगवान् अपना चरण कमल ही प्रदान कर देते हैं जो उसकी सारी इच्छाओं को विनष्ट कर देता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

तत्रापि निष्कामाः कृतार्था इत्याहुः-सत्यमिति । प्रार्थितः सन्नर्थितं ददातीति सत्यं, तथापि परमार्थदो न भवत्येव । यद्यस्माद्यतो दत्तादनन्तरं पुनरप्यर्थिता भवति । ननु नार्थितश्चेत्किमपि न दद्यादित्याशङ्क्याहुः । अनिच्छतां निष्कामानां तु इच्छानां पिधानमाच्छादकं सर्वकामपरिपूरकं निजपादपल्लवं स्वयमेव संपादयति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

जो लोग श्रीभगवान् की आराधना निष्काम होकर करते हैं वे कृतकृत्य हैं, इस बात को **सत्यम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । जो लोग किसी कामना विशेष से श्रीभगवान् की आराधना करते हैं उनके द्वारा प्रार्थित

वस्तु को श्रीभगवान् प्रदान करते हैं। किन्तु यह वास्तविक प्रदान नहीं हैं, क्योंकि उसके पश्चात् भी कामनाएँ बनी ही रहती हैं। यदि कहें कि नहीं माँगने पर तो वे कुछ भी नहीं प्रदान करेंगे। तो इस पर कहते हैं- निष्काम आराधन करने पर तो वे उन आराधकों को अपने चरण कमल को ही प्रदान कर देते है जो उनकी सारी कामनाओं को ही पूर्ण कर देते हैं ॥२७॥

यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम् ।
तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्याद्वर्षे हरिर्यद्भजतां शं तनोति ॥२८॥

अन्वयः— स्वर्गसुखावशेषितं स्विष्टस्य सूक्तस्य शोभनं कृतस्य यदि अत्र नः तेन अजनाभे स्मृतिमत् नः जन्म स्यात यत् वर्षे हरिः भजतांशं तनोति ॥२८॥

अनुवाद— अतएव अब तक स्वर्ग सुख भोग लेने के बाद हमारे पूर्वकृत यज्ञ, प्रवचन, तथा शुभ कर्मों में से यदि कुछ बचा हो तो उसके प्रभाव से हम भारत वर्ष में भगवान् की स्मृति से युक्त मनुष्य का जन्म प्राप्त करे, क्योंकि श्रीहरि अपना भजन करने वाले को हर प्रकार से कल्याण करते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

स्विष्टस्य सम्यग्यजनस्य। सूक्तस्य प्रवचनस्य कृतस्यान्यस्यापि कर्मणः। स्वर्गसुखादुपभुक्तादवशेषितं यदि किंचिदस्ति तेनाजनाभे वर्षे नोऽस्माकं जन्म स्यात्। कीदृशम्। स्मृतिमत् हरिरेव सेव्य इत्यनुसंधानयुक्तम्। यतो हरिर्भजतां शं सुखं तनोति॥२८॥

भाव प्रकाशिका

स्विष्टस्य अर्थात् यज्ञ का प्रवचन का अथवा किसी दूसरे कर्म का कुछ भी बचा हो तो हमें भगवत् स्मृति से युक्त भारत वर्ष में मनुष्य का जन्म मिले। क्योंकि श्रीहरि अपनी आराधना करने वालों का कल्याण करते हैं ॥२८॥

श्रीशुक उवाच

जम्बूद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशन्ति सगरात्मजैरश्वान्वेषण इमां महीं परितो निखनद्भिरुपकल्पितान् ॥२९॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् राजा सगर के पुत्रों ने अपने यज्ञ के घोड़े को खोजते हुए इस पृथिवी को चारो ओर से खोदा था उससे जम्बूद्वीप के अन्तर्गत ही आठ उपद्वीप बन गये ऐसा कुछ लोग कहते हैं ॥२९॥

तद्यथा स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्ल आवर्तनो रमणको मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः सिंहलो लङ्केति ॥३०॥

अनुवाद— वे स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मन्दरहारिण पाञ्चजन्य सिहल और लङ्का हैं॥३०॥

एवं तव भारतोत्तम जम्बूद्वीपवर्षविभागो यथोपदेशमुपवर्णित इति ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे जम्बूद्वीपवर्णनं नाम एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥

अनुवाद— हे भरत श्रेष्ठ इस प्रकार जैसा मैंने गुरुमुख से सुना था ठीक वैसा ही तुम्हें यह जम्बूद्वीप के वर्षों का विभाग सुना दिया ॥३१॥

इस तरह श्रीमद्भागवतमहापुराण के पाँचवें स्कन्ध के जम्बूद्वीपवर्णन नामक उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां एकोनविंशतितमोऽध्यायः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी श्रीधराचार्य कृत उन्नीसवें अध्याय की भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१९।।

बीसवाँ अध्याय

जम्बूद्वीप से भिन्न छह द्वीपों का वर्णन

श्रीशुक उवाच

अतः परं प्लक्षादीनां प्रमाणलक्षणसंस्थानतो वर्षविभाग उपवर्ण्यते ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! अब परिमाण, लक्षण और स्थिति के अनुसार प्लक्ष आदि अन्य द्वीपों के वर्ष विभाग का वर्णन किया जाता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

विंशे प्लक्षादिषड्द्वीपस्थितिमाह सहार्णवैः । लोकालोकस्थितिश्चान्तर्वहिर्भागादिमानतः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

वीसवें अध्याय में प्लक्ष आदि छह द्वीपों की समुद्रों के साथ स्थिति का वर्णन तथा लोकालोक पर्वत की स्थित आभ्यन्तर और वाह्य परिमाण के अनुसार वतलाया गया है ॥१॥

जम्बूद्वीपोऽयं यावत्प्रमाणविस्तारस्तावता क्षारोदधिना परिवेष्टितो यथा मेरुर्जम्ब्वाख्येन लवणोदधिरपि ततो द्विगुणविशालेन प्लक्षाख्येन परिक्षिप्तो यथा परिखाबाह्योपवनेन प्लक्षो जम्बूप्रमाणो द्वीपाख्याकरो हिरण्मय उत्थितो यत्राग्निरुपास्ते सप्तजिह्वस्तस्याधिपतिः । प्रियव्रतात्मज इध्मजिह्वः स्वं द्वीपं सप्तवर्षाणि विभज्य सप्तवर्षनामभ्य आत्मजेभ्य आकलय्य स्वयमात्मयोगेनोपरराम ॥२॥

अनुवाद— जिस तरह मेरु पर्वत जम्बूद्वीप से घिरा है उसी तरह जम्बूद्वीप भी अपने ही सदृश परिमाण और विस्तार वाले खारे जल के समुद्र से घिरा है । फिर खाई जिस तरह बाहरी उपवन में घिरी होती है उसी तरह समुद्र भी अपने दूगने विस्तार वाले प्लक्षद्वीप से वेष्टित है । जम्बूद्वीप में जितना बड़ा जामुन का वृक्ष है प्लक्ष द्वीप में भी उतना ही वड़ा सुवर्णमय पाकड़ का वृक्ष है । उसी के कारण इस द्वीप का नाम प्लक्षद्वीप है । यहाँ सात जिह्वाओं वाले अग्निदेव विराजते हैं । इस द्वीप के स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्र महाराज इध्मजिह्व हैं । उन्होंने ही इस द्वीप को सात वर्षों में विभक्त किया है । उन वर्षों का इन्होंने अपने उन वर्षों के नाम वाले पुत्रों को सौंप दिया और स्वयं अध्यात्मयोग को अपना कर उपरत हो गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तावता लक्षविस्तारेण परिक्षिप्तः परिवेष्टितः उपास्ते तिष्ठति । आकलय्य समर्प्य ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उतने ही लाख योजन विस्तार वाले खारे जल के समुद्र से घिरा है आकलय्य अर्थात् समर्पित करके ॥२॥

शिवं यवयसं सुभद्रं शान्तं क्षेमममृतमभयमिति वर्षाणि तेषु गिरयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः ॥३॥

अनुवाद— उन वर्षों के नाम है, शिव, यवस, सुभद्र, शान्त क्षेम, अमृत और अभय । इन वर्षों में भी सात पर्वत और सात नदियाँ प्रसिद्ध हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अभिज्ञाताः प्रसिद्धाः सप्तैव । अन्ये च पर्वता नद्यश्च सहस्रशः सन्तीत्यर्थः । मानसोत्तरस्य मण्डलाकारत्वोक्तेरेतेषु प्लक्षादिपञ्चद्वीपेषु वर्षाद्रयस्तिर्यग्रेखाकारा उभयतोऽब्धिस्पृश इति गम्यते । अन्यथा सप्तभिः सप्तवर्षविभागासंभवात् । वैष्णवे वर्षाणां पूर्वादिक्रमोक्तेश्च ॥३॥

भाव प्रकाशिका

सप्तैवाभिज्ञाताः अर्थात् सात ही प्रसिद्ध हैं इन सबों के अतिरिक्त हजार नदियाँ और पर्वत भी हैं । मानसरोवर के उत्तर में मण्डलाकृति रूप से वर्णित प्लक्ष आदि पाँच द्वीपों में वर्ष तथा पर्वत तिरछी रेखा के आकार वाले तथा दोनों तरफ समुद्र से सटे हुए हैं । यदि ऐसा नहीं हो तो सातों के द्वारा सात विभाग का होना असम्भव होगा किञ्च विष्णु पुराण में वर्षों को पूर्व आदि के क्रम से बतलाया गया है ॥३॥

मणिकूटो वज्रकूट इन्द्रसेनो ज्योतिष्मान्सुपर्णो हिरण्यष्ठीवो मेघमाल इति सेतुशैलाः अरुणानृम्णाङ्गिरसी सावित्री सुप्रभाता ऋतम्भरा सत्यंभरा इति महानद्यः यासां जलोपस्पर्शनविधूतरजस्तमसो हंसपतङ्गोर्ध्वायनसत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः सहस्रायुषो विबुधोपमसंदर्शनप्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्या विद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्ते ॥४॥

अनुवाद— प्लक्षद्वीप में मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन ज्योतिष्मान् सुवर्ण हिरण्यष्ठीव और मेघमाला ये सात मर्यादा पर्वत हैं, एवं अरूणा, नृम्णा, आङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा और सत्यंभरा ये सात महानदियाँ हैं । वहाँ हंस, पतङ्ग, उर्ध्वायन और सत्याङ्ग नामक चार वर्ण हैं । उपर्युक्त नदियों में स्नान करने से, इनके रजोगुण और तमोगुण क्षीण होते रहते हैं । यहाँ के लोगों की आयु एक हजार वर्ष की होती है । इनके शरीर में देवताओं के समान थकान और पसीना आदि नहीं होते हैं । सन्तानोत्पत्ति भी उनके ही सदृश होती है । ये त्रयी विद्या के द्वारा तीनों वेदों (ऋग्यजुः सामवेदों) में वर्णित, स्वर्ग प्राप्ति के साधनभूत आत्म स्वरूप भगवान् सूर्य की उपासना किया करते हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

जलोपस्पर्शनेन विधूतं रजस्तमश्च येषाम् । हंसादयो ब्राह्मणादिस्थानीयाः । विबुधोपमं संदर्शनं क्लमस्वेदादिरहितं रूपं प्रजननमपत्योत्पादनं च येषाम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

उन नदियों के जल का स्पर्श करने के कारण वहाँ के लोगों का रजोगुण और तमोगुण क्षीण होता रहता है । हंस इत्यादि ब्राह्मणादि वर्णों के समान हैं । देवताओं के समान दिखाने वाले उन लोगों के देह में थकान और पसीना से रहित होता है । उनके सन्तानें भी उन लोगों के ही समान होती हैं ॥४॥

प्रत्नस्य विष्णो रूपं यत्सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः । अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति ॥५॥

अनुवाद— वे कहते हैं— जो सत्य अर्थात् अनुष्ठान योग्य और ऋत अर्थात् प्रतीत होने वाले धर्म वे और शुभाशुभ फल के अधिष्ठाता हैं उन पुराण पुरुष विष्णु स्वरूप भगवान् सूर्य की हम शरणाति करते हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

विगीता अपि द्वीपमन्त्रा व्याख्यायन्ते । प्रत्नस्य पुराणपुरुषस्य । विष्णोर्यद्रूपं तं सूर्यमीमहि शरणं व्रजेम् । कथंभूतम्। सत्यादीनामात्मानमधिष्ठातारम् । तत्र सत्यमनुष्ठीयमानो धर्मः । ऋतं प्रमीयमाणो धर्मः ब्रह्मणस्तद्बोधकस्य वेदस्य । अमृतस्य शुभफलस्य मृत्योरशुभफलस्य ॥५॥

भाव प्रकाशिका

मूल में है कि नहीं यह निश्चित नहीं है यह विगीता का अर्थ है । द्वीप के मन्त्रों की व्याख्या की जा रही है । प्रत्न अर्थात् पुरुष भगवान् विष्णु के समान जिनका रूप है उन सूर्य भगवान् की हम शरणागति करते हैं । प्रश्न है कि कैसे विष्णु तो इसका उत्तर है कि सत्य आदि आत्माओं के अधिष्ठाता वहाँ अनुष्ठान किए जाने वाला धर्म सत्य है और प्रतीत होने वाला धर्म ऋत है । ब्रह्म के बोधक वेद के अमृतस्य अर्थात् शुभ फल के तथा मृत्योः अर्थात् अशुभफल के अधिष्ठाता हैं ॥५॥

प्लक्षादिषु पञ्चसु पुरुषाणामायुरिन्द्रियमोजः सहो बलं बुद्धिर्विक्रम इति च सर्वेषामौत्पत्तिकी सिद्धिर-विशेषेण वर्तते ॥६॥

अनुवाद— पलक्ष आदि पाँचो द्वीपों में सभी मनुष्यों को जन्म से ही आयु, इन्द्रिय मनोबल, इन्द्रिय बल, शारीरिक बल, बुद्धि और पराक्रम समान रूप से सिद्ध होते हैं ॥६॥

प्लक्षः स्वसमानेनेक्षुरसोदेनावृतो यथा तथा द्वीपोऽपि शाल्मलो द्विगुणविशालः समानेन सुरोदेनावृतः परिवृङ्क्ते ॥७॥

अनुवाद— प्लक्षद्वीप अपने ही समान विस्तार वाले इक्षु रस के समुद्र से आवृत है । उसके आगे उसके दो गुने परिमाण वाला शाल्मली द्वीप है । जो उतने ही विस्तार वाले मदिरा के समुद्र से घिरा है ॥७॥

यत्र ह वै शाल्मलीप्लक्षायामा यस्यां वाव किल निलयनमाहुर्भगवतश्छन्दःस्तुतः पतत्रिराजस्य सा द्वीपहूतये उपलक्ष्यते ॥८॥

अनुवाद— प्लक्ष द्वीप के पाकड़ के बाराबर शाल्मली (सेमर) का वृक्ष है । कहा जाता है कि यही वृक्ष अपनी आँखों से भगवान् की स्तुति करने वाले पक्षिराज भगवान् गरुड का निवास स्थान है और यही इस द्वीप के नामकरण का भी कारण है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

'सुपर्णोऽसि गरुत्मान् त्रिवृत्ते शिरः' इत्यादिश्रुतेश्छन्दोभिः स्वावयवभूतैः श्रीविष्णुं स्तौतीति छन्दःस्तुत् तस्य गरुडस्य निलयनं स्थानम् । सा शाल्मली । द्वीपस्य हूतये व्यपदेशाय ॥८॥

भाव प्रकाशिका

वह सेमर का वृक्ष अपने अवयव स्वरूप **सुपर्णोऽसि गरुत्मान त्रिवृत्ते शिरः इत्यादि** श्रुति के छन्दों से भगवान् विष्णु की स्तुति करता है । छन्द के द्वारा जिनकी स्तुति किया गया है उस गरुड के स्थान वह शल्मली (सेमर) का वृक्ष है । द्वीप के आहूत करने के लिए है ॥८॥

तद्द्वीपाधिपतिः प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्तभ्यस्तन्नामानि सप्तवर्षाणि व्यभजत्सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं देववर्ष पारिभद्रमाप्यायनमविज्ञातमिति ॥९॥

अनुवाद— इस द्वीप के अधिपति महाराज प्रियव्रत के पुत्र यज्ञ बाहु थे । उन्होंने इस द्वीप के सात विभाग किया । उनके नाम है सुरोचन, सौमन्य, रमणक, देववर्ष, परिभद्र, आप्यायन, और अविज्ञात । उन्होंने इन्हीं नाम वाले अपने पुत्रों को सौंप दिया ॥९॥

तेषु वर्षाद्रयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः स्वरसः शतशृङ्गो वामदेवः कुन्दो मुकुन्दः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिरिति अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहू रजनी नन्दा राकेति ॥१०॥

अनुवाद— इनमें भी सात वर्ष पर्वत हैं और सात ही नदियाँ प्रसिद्ध हैं, पर्वतों के नाम स्वरस, शतशृङ्ग, वामदेव, कुन्द, मुकुन्द, पुष्पवर्ण और सहस्र श्रुति । इसी तरह नदियाँ के नाम हैं अनुमती, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका ॥१०॥

तद्वर्षपुरुषा श्रुतधरवीर्यधरवसुन्धरेषन्धरसंज्ञा भगवन्तं वेदमयं सोममात्मानं वेदेन यजन्ते ॥११॥

अनुवाद— उन वर्षो में रहने वाले श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर और इषन्धर नाम के चार वर्ण वेदमव आत्म स्वरूप भगवान् चन्द्रमा की वेद मन्त्रों से उपासना करते हैं ॥११॥

स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन् कृष्णशुक्लयोः । प्रजानां सर्वासां राजाऽन्धः सोमो न आस्त्विति॥१२॥

अन्वयः— यः कृष्ण शुक्लपक्ष यो स्वगोभिः, विभजन् पितृदेवेभ्यः सर्वासां प्रजानाम् अन्धः सोमः नः राजा अस्त्विति॥१२॥

अनुवाद— वे कहते हैं कि जो कृष्ण पक्षों में अपनी किरणों से विभाग करके पितरों, देवों तथा समस्त प्रजाओं को अन्न प्रदान करते हैं वे चन्द्र देव हमारे राजा हों ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

स्वगोभिः स्वरश्मिभिः । अन्धोऽन्नम् । सोमो नो राजा आस्तु आभिमुख्येन भवतु । ह्रस्वपाठे त्वविवक्षया संध्यभावः॥१२॥

भाव प्रकाशिका

स्वगोभि: अर्थात् किरणों से । अन्ध: अर्थात् अन्न प्रदान करने वाले चन्द्रदेव हमारे राजा हों ह्रस्वपाठ होने पर विवक्षा नहीं होने से सन्धि का अभाव है ॥१२॥

एवं सुरोदाद्बहिस्तद्विगुणः समानेनावृतो घृतोदेन यथा पूर्वः कुशद्वीपो यस्मिन्कुशस्तम्बो देवकृतस्त द्वीपाख्याकरो ज्वलन इवापरः स्वशष्परोचिषा दिशो विराजयति ॥१३॥

अनुवाद— इसी तरह सुरासमुद्र के बाहर उससे दो गुने परिमाण वाला कुशद्वीप है । पूवोक्त द्वीपों के समान यह भी अपने ही समान परिमाण वाले घृत समुद्र से घिरा हुआ है । इसमे परमात्म रचित एक कुश की झाड़ है । उसी से इस द्वीप का नाम कुशद्वीप हैं । वह दूसरे अग्निदेव के समान अपनी कोमल शिखाओं की कान्ति से सभी दिशाओं को प्रकाशित करता हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

एवं सुरोदाद्वहिर्घृतोदेनावृतः कुशद्वीप इत्यन्वयः । स्वशष्पाणि स्वकोमलशिखास्तेषां रोचिषा ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

इसी तरह सुरासमुद्र के बाहर घृतसमुद्र से घिरा हुआ कुश द्वीप है, वह अनी कोमल शिखाओं की कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित करता है ॥१३॥

तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतो राजन्हिरण्यरेतो नाम स्वं द्वीपं सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत वसुवसुदानदृढरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेवनामभ्यः ॥१४॥

अनुवाद— राजन् उस द्वीप के स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्र महाराज हिरण्यरेता थे। उन्होने इसका सात विभाग करके उनमें से एक-एक को अपने सात पुत्रों वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त, और वामदेव को दे दिया ॥१४॥

तेषां वर्षेषु सीमा गिरयो नद्यश्चाभिज्ञाताः सप्त सप्तैव चक्रश्चतुः शृङ्गः कपिलश्चित्रकूटो देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविण इति रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा श्रुतविन्दा देवगर्भा घृतच्युता मन्त्रमालेति॥१५॥

अनुवाद— उन सबों के भी वर्षों में सात मर्यादा पर्वत हैं और सात ही नदियाँ हैं। पर्वतों के नाम इस प्रकार हैं चक्र, चतुःशृङ्ग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा, और द्रविण नदियों के भी नाम इस तरह हैं रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा, श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता, और मन्त्रमाला ॥१५॥

यासां पयोभिः कुशद्वीपौकसः कुशलकोविदाभियुक्तकुलकसंज्ञा भगवन्तं जातवेदसरूपिणं कर्मकौशलेन यजन्ते ॥१६॥

अनुवाद— इन नदियों के जल में स्नान करके कुशद्वीप निवासी, कुशल, कोविद, अभियुक्त, और कुलक वर्ण के पुरुष अग्नि स्वरूप भगवान् श्रीहरि का यज्ञादि कर्म कौशल के द्वारा पूजन करते हैं ॥१६॥

परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट्। देवानां पुरुषाङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यज-इति ॥१७॥

अन्वयः— हे जातवेदः! साक्षात् परस्य ब्रह्मणः हव्यवाट् असि पुरुषाङ्गानां देवानां यज्ञेन पुरुषं यज इति ॥१७॥

अनुवाद— वे लोग अग्नि की स्तुति करते हुए कहते हैं हे अग्निदेव! आप साक्षात् परब्रह्म को हविष्य पहुँचाने वाले हैं अतएव आप परमपुरुष के अङ्गभूत देवताओं के यज्ञ के द्वारा परम पुरुष परमात्मा का ही यजन करें ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

हे जातवेदः, त्वं साक्षात्परस्य ब्रह्मणो हरेर्हव्यवाडसि। अतो देवानां यज्ञेन पुरुषं हरिमेव यज। अङ्गानां नाम्ना दत्तमङ्गिने समर्पयेत्यर्थः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

हे अग्ने! आप साक्षात् परब्रह्म श्रीहरि को हवि पहुँचाने वाले हैं अतएव देवताओं के यज्ञसे श्रीहरि का यजन करे। अङ्गों के नाम से दिए गये हवि को अङ्गों को समर्पित करें ॥१७॥

तथा घृतोदाद्बहिः क्रौञ्चद्वीपो द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उपक्लृप्तो वृतो यथा कुशद्वीपो घृतोदेन यस्मिन् क्रौञ्चो नाम पर्वतराजो द्वीपनामनिर्वर्तक आस्ते ॥१८॥

अनुवाद— उसी तरह घृत समुद्र के आगे उससे दो गुना परिमाण वाला क्रौञ्च द्वीप है। जिस तरह घृत समुद्र से कुशद्वीप घिरा है उसी तरह क्रौञ्च द्वीप भी अपने ही समान विस्तार वाले दूध के समुद्र से घिरा हुआ है। यहाँ क्रौञ्च नाम का एक बहुत बड़ा पर्वत है, उसी के कारण इस द्वीप का नाम क्रौञ्च द्वीप है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

उपक्लृप्तो वेष्टितः। यथा कुशद्वीपो घृतोदेन वृतः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

उपक्लृप्तः अर्थात् घिरा हुआ है जैसे कुशद्वीप घृत समुद्र से घिरा हुआ है ॥१८॥

योऽसौ गुहप्रहरणोन्मथितनितम्बकुञ्जोऽपि क्षीरोदेनासिच्यमानो भगवता वरुणेनाभिगुप्तो विभयो बभूव ॥१९॥

अनुवाद— श्री कार्तिकेयजी के शस्त्र के प्रहार से इसके कटि प्रदेश और लता निकुञ्ज आदि क्षत विक्षत हो गये थे, किन्तु क्षीर सागर से सीचा जाकर और वरुण देव से सुरक्षित होकर यह पुनः निर्भय हो गया ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

गुहस्य कार्तिकेयस्य प्रहरणेनायुधेनोन्मथिता नितम्बाः कुञ्जानि च यस्य ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

कार्तिकेयजी के आयुध के प्रहार से जिसका कटि प्रदेश और कुञ्ज क्षत विक्षत् हो गये थे ॥१९॥

तस्मिन्नपि प्रैयव्रतो घृतपृष्ठो नामाधिपतिः स्वे द्वीपे वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु सप्त रिक्थादान्वर्षपान्निवेश्य स्वयं भगवान्भगवतः परमकल्याणयशस आत्मभूतस्य हरेश्चरणारविन्दमुपजगाम ॥२०॥

अनुवाद— इस द्वीप के स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्र घृतपृष्ठ थे । उन्होंने इस द्वीप को सात भागों में करके उनमें उन सबों के ही समान नाम वाले अपने सात पुत्रों को नियुक्त करके स्वयं सम्पूर्ण जीवों के अन्तरात्मा, परममङ्गलमय कीर्तिशाली भगवान् श्रीहरि के चरण कमलों की शरणागति की ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

स्वयं भगवान् ज्ञानी परमकल्याणं यशो यस्य ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

स्वयं भगवान् अर्थात् ज्ञानी । जिन श्रीभगवान् का यश जीवों का अत्यन्त कल्याण करने वाला है ॥२०॥

आमो मधुरुहो मेघपृष्ठः सुधामा भ्राजिष्ठो लोहितार्णो वनस्पतिरिति घृतपृष्ठसुतास्तेषां वर्षगिरयः सप्तसप्तैव नद्यश्चाभिख्याताः शुक्लो वर्धमानो भोजन उपबर्हिण नन्दो नन्दनः सर्वतोभद्र इति अभया अमृतौघा आर्यका तीर्थवती वृत्तिरूपवती पवित्र वती शुक्लेति ॥२१॥

अनुवाद— महाराज घृतपृष्ठ के आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा भ्रजिष्ठ लोहितार्ण तथा वनस्पति ये सात पुत्र थे । उन सबों के वर्षों में भी सात वर्ष पर्वत और सात नदियाँ विख्यात हैं । पर्वतों के नाम इस प्रकार हैं— शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपवर्हिण, नन्द, नन्दन तथा सर्वतोभद्र । नदियों के नाम है— अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, पवित्रवती और शुक्ला ॥२१॥

यासामम्भः पवित्रममलमुपयुञ्जानाः पुरुषऋषभद्रविणदेवकसंज्ञा वर्षपुरुषा आपोमयं देवमपां पूर्णेनाञ्जलिना यजन्ते ॥२२॥

अनुवाद— जिन नदियों के पवित्र जल का सेवन करने वाले वहाँ के पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक नामक चार वर्णों वाले निवासी जल से पूर्ण अञ्जलि के द्वारा जल की देवता की उपासना करते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

आपोमयमम्मयम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

जल स्वरूप जल के देवता ॥२२॥

आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीर्भूर्भुवः सुवः । ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृश तामात्मना भुवः इति॥२३॥

अन्वयः— हे आपः पुरुषवीर्याः स्थ, भूः भुवः सुवः पुनन्तीः नः स्पृशतां भुवः पुनीत, आत्मना अमीवाघ्नीः ॥२३॥

अनुवाद— (वे कहते हैं) हे जलाधिष्ठत्री देवते तुमलोगों को परमात्मा से सामर्थ्य प्राप्त है, तुमलोग भूः भुवः और स्वः इन तीनों लोकों को पवित्र करती हो । हम अपने शरीर से तुम्हारा स्पर्श करते हैं, तुमलोग हमारे अङ्गों को पवित्र कर दो ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

हे आपः पुरुषवीर्या ईश्वराल्लब्धसामर्थ्याः स्थ मथथ । अतएव भूर्भुवःस्वस्त्रैलोक्यं पुनन्त्यस्ता भवत्यो नोऽस्माकं स्पृशतां स्पर्शनं कुर्वतां भुवः शरीराणि पुनन्तु । यत आत्मना स्वरूपेणैवामीवघ्नीः पापहन्त्र्यः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

हे जल के अधिष्ठात्री देवते तुमको परमात्मा से ही सामर्थ्य प्राप्त है । इसीलिए तुम भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक इन तीनों लोकों को पवित्र करती हो । अतएव तुम्हारा स्पर्श करने वाले हमलोगों के शरीर को तुम पवित्र कर दो, क्योंकि तुम स्वरूपतः पापों का विनाश करने वाली हो ॥२३॥

एवं पुरस्तात्क्षीरोदात्परित उपवेशितः शाकद्वीपो द्वात्रिंशल्लक्षयोजनायामः समानेन च दधिमण्डोदेन परीतो यस्मिन् शाको नाम महीरुहः स्वक्षेत्रव्यपदेशको यस्य ह महासुरभिगन्धस्तं द्वीपमनुवासयति॥२४॥

अनुवाद— इसी तरह क्षीर सागर से आगे उसके चारो ओर बत्तीस लाख योजन विस्तार वाला शाक द्वीप है । वह अपने ही समान विस्तार वाले मट्ठे के समुद्र से घिरा हुआ है । उससे शाक नामक महान् वृक्ष है वही इस क्षेत्र के नाम का कारण है । उसके मनोहर सुगन्ध से सम्पूर्ण द्वीप सुगन्धित बना रहता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

दध्नो मण्डं रसः स एवोदकं यस्य । यस्य पर्णान्यन्तः खरस्पर्शानि बहिर्मृदुस्पर्शानि स शाको नाम वृक्षः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

उस समुद्र का जल मट्ठे का है । उस वृक्ष के पत्ते भीतर से रुक्ष स्पर्श वाले हैं ओर बाह्य उन सबों का स्पर्श कोमल है । इस प्रकार का वह शाक नामक वृक्ष है ॥२४॥

तस्यापि प्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथिः सोऽपि विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु स्वात्मजान्पुरोजवमनोजवपवमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपविश्वधारसंज्ञान्निधाय्याधिपतीन्स्वयं भगवत्यनन्त आवेशितमतिस्तपोवनं प्रविवेश ॥२५॥

अनुवाद— उसके भी स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्र मेधातिथि थे । वे भी अपने द्वीप को सात भागों में विभक्त किये और उनमें उन्हीं के समान नाम वाले अपने पुत्रों को समर्पित कर दिया । पुत्रों के नाम है— पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रनीक, चित्तरेफ, बहुरूप और विश्वधार । उसके पश्चात् वे स्वयं भगवान् अनन्त में दत्तचित्त होकर तपोवन में चले गये ॥२५॥

एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्त सप्तैव ईशान उरुशृङ्गो बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतो देवपालो महानस इति अनघायुर्दा उभयस्पृष्टिरपराजिता पञ्चपदी सहस्रस्रुतिर्निजधृतिरिति ॥२६॥

अनुवाद— इन वर्षों में भी सात अवधि पर्वत और सात विख्यात नदियाँ हैं । पर्वतों के नाम इस प्रकार

है— ईशान, उरुशृङ्ग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महानस हैं। तथा नदियाँ आयुर्दा, उभयस्पृष्टि: अपराजिता पंचपदी, सहस्रस्रुति और निजधृति हैं ॥२६॥

तद्वर्षपुरुषा ऋतव्रतसत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानो भगवन्तं वाय्वात्मकं प्राणायामविधुतरजस्तमस: परमसमाधिना यजन्ते ॥२७॥

अनुवाद— उस वर्ष के ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत और अनुव्रत नामक पुरुष प्राणायाम के द्वारा अपने रजोगुण और तमोगुण को क्षीण करके महान समाधि के द्वारा, वायुरूप श्रीहरि की आराधना करते हैं ॥२७॥

अन्त: प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभि: । अन्तर्यामीश्वर: साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥२८॥

अन्वय:— य: आत्मकेतुभि: अन्त: प्रविश्य भूतानि विभर्ति, यद्वशे स्फुटम् अन्तर्यामी ईश्वर: न: साक्षात् पातु॥२८॥

अनुवाद— (वे उनकी इस प्रकार से स्तुति करते हैं) जो प्राणादि वृत्ति रूप अपनी ध्वजाओं के साथ प्राणियों के भीतर प्रवेश करके उनका पालन करते हैं, यह सम्पूर्ण जगत् जिनके अधीन है वे साक्षात् भगवान् वायु हम सबों की रक्षा करें ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

आत्मकेतुभि: प्राणादिवृत्तिभि: ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

जो प्राण आदि अपनी वृत्तियों रूप ध्वजाओं के साथ ॥२८॥

एवमेव दधिमण्डोदात्परत: पुष्करद्वीपस्ततो द्विगुणायाम: समन्तत उपकल्पित: समानेन स्वादूदकेन समुद्रेण बहिरावृतो यस्मिन् बृहत्पुष्करं ज्वलनशिखामलकनकपत्रायुतायुतं भगवत: कमलासनस्याध्यासनं परिकल्पितम् ॥२९॥

अनुवाद— इसी तरह मट्ठे के समुद्र के आगे उसके चारो ओर उससे दो गुने विस्तार वाला पुष्कर द्वीप हैं। वह चारो ओर से अपने ही समान विस्तार वाले मीठे जल के समुद्र से घिरा है। वहाँ अग्नि की शिखा के समान देदीयमान लाखों पङ्खुडियों वाला एक बहुत बड़ा पुष्कर (कमल) है। वह ब्रह्माजी का आसन माना जाता है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

ज्वलनशिखावदमलानां कनकपत्राणामयुतानामयुतानि यस्य तत् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

अग्नि के ज्वाला के समान स्वच्छ सुवर्ण की लाखों जिसकी पङ्खुड़िया है, इस प्रकार का वह कमल हैं॥२९॥

तद्द्वीपमध्ये मानसोत्तरनामैक एवार्वाचीनपराचीनवर्षयोर्मर्यादाचलोऽयुतयोजनोच्छ्रायायामो यत्र तु चतसृषु दिक्षु चत्वारि पुराणि लोकपालानामिन्द्रादीनां यदुपरिष्टात्सूर्यरथस्य मेरुं परिभ्रमत: संवत्सरात्मकं चक्रं देवानामहोरात्राभ्यां परिभ्रमति ॥३०॥

अनुवाद— उस द्वीप के ठीक बीच में एक पूर्वीय एवं पश्चिमीय विभागों की मर्यादा निश्चित करने वाला मानसोत्तर नाम का एक ही पर्वत है। वह दश हजार योजन ऊँचा और उतना ही लम्बा है। इसके ऊपर चारो दिशाओं में इन्द्रादि चार दिक्पालों की चार पुरियाँ हैं। इस पर मेरु पर्वत के चारो ओर धूमने वाला सूर्य के रथ का संवत्सर नामक चक्का है। वह देवताओं के दिन (उत्तरायण) और रात (दक्षिणायन) के क्रम से सर्वदा घुमा करता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

देवानामहोरात्राभ्यामुत्तरदक्षिणायनाभ्यामित्यर्थः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं के दिन (उत्तरायण) और रात (दक्षिणायन) के क्रम से ॥३०॥

तद्द्वीकीपस्याप्यधिपतिः प्रैयव्रतो वीतिहोत्रो नामैतस्यात्मजौ रमणकधातकिनामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वजवद्भगवत्कर्मशील एवास्ते ॥३१॥

अनुवाद— उस द्वीप के स्वामी महाराज प्रियव्रत के पुत्र वीतिहोत्र थे। उनके दो पुत्र थे उनके नाम हैं रमणक और धातकि। वे उन दोनों को वर्षों का स्वामी बनाकर अपने बड़े भाइयों के समान भागवत् सेवा में संलग्न हो गये॥३१॥

तद्वर्षपुरुषा भगवन्तं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेन कर्मणाराधयन्तीदं चोदाहरन्ति ॥३२॥

अनुवाद— वहाँ के निवासी ब्रह्मा रूप भगवान् श्रीहरि की ब्रह्मसालोक्यादि की प्राप्ति कराने वाले कर्मों से आराधना करते हुए इस प्रकार से स्तुति करते हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मरूपिणं कमलासनमूर्तिम्। सकर्मकेन ब्रह्मसालोक्यादिसाधनेन ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मामूर्ति ब्रह्माजी के सालोक्य प्राप्ति के साधन भूत कर्म के द्वारा आराधना करते हैं ॥३२॥

यत्तत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत्। एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नमः इति ॥३३॥

अनुवाद— जो साक्षात् कर्मफलरूप हैं और जिनकी स्थिति एक मात्र परमेश्वर में ही है जिनकी सबलोग पूजा करते हैं ब्रह्म ज्ञान के साधन रूप उन अद्वितीय और शान्त स्वरूप ब्रह्ममूर्ति भगवान् को मेरा नमस्कार है॥३३॥

भावार्थ दीपिका

कर्ममयं कर्मफलरूपम्। ब्रह्म लिङ्ग्यते यस्मात्। एकस्मिन्नेव परमेश्वरेऽन्तो निष्ठा यस्य तदत एव वस्तुतोऽद्वैतम्॥३३॥

भाव प्रकाशिका

कर्ममयम् अर्थात् कर्मफल रूप। जिसे ब्रह्म ज्ञात होते हैं एक ही परमेश्वर में जिनकी निष्ठा है अतएव वे अद्वैत हैं ॥३३॥

ऋषिरुवाच

ततः परस्ताल्लोकालोकनामाचलो लोकालोकयोरन्तराले परित उपक्षिप्तः ॥३४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इसके आगे लोकलोक पर्वत है यह पृथिवी के सब ओर सूर्य आदि के द्वारा प्रकाशित और अप्रकाशित प्रदेशों के बीच में उनका विभाग करने के लिए स्थित है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

ततः शुद्धोदात्परस्तात्। लोकः सूर्याद्यालोकवान्देशः अलोकस्तद्रहितस्तयोरन्तराले मध्ये। तयोर्विभागार्थमित्यर्थः॥३४॥

भाव प्रकाशिका

शुद्धोदक समुद्र के बाद। सूर्य आदि के प्रकाश से युक्त तथा प्रकाश से रहित दोनों प्रकार के देशों के बीच में उनका विभाजन करने के लिए स्थित है ॥३४॥

यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्यन्यादर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथंचित्पुनः प्रत्युपलभ्यते तस्मात्सर्वसत्त्वपरिहृतासीत् ॥३५॥

अनुवाद— मेरू से लेकर मानसोत्तर पर्वत तक जितना अन्तर है उतनी ही भूमि शुद्धोक समुद्र के उस पार है । उसके आगे सुवर्णमयी भूमि है । जो दर्पण के समान स्वचछ है, इसमें गिरी हुई कोई भी वस्तु फिर नहीं मिलती है, इसीलिए वहा देवताओं को छोड़कर कोई भी प्राणी नहीं रहता है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

ततः परस्तादित्युक्तं तदेव कियतान्तरेणेत्यपेक्षायां तदन्तर्वर्तिनी भूमिमाह । यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरं सार्धसप्तलक्षोत्तर-सार्धकोटिपरिमितं तावती भूः शुद्धोदात्पराऽस्ति । तत्र च प्राणिनोऽपि सन्ति, ततः काञ्चनी भूमिरन्यास्तीत्यर्थः। सा चैकोनचत्वारिंशल्लक्षोतरकोट्यष्टकपरिमिता ज्ञेया । एवं हि सति मेरुलोकालोकयोरन्तरं सार्धद्वादशकोटिपरिमितं वक्ष्यमाणमुपपन्नं भवति । एतदेव शैवतन्त्रेषूक्तम् । 'कोटिद्वयं त्रिपञ्चाशल्लक्षाणि च ततः परम् । पञ्चाशच्च सहस्राणि सप्तद्वीपाः ससागराः । ततो हेममयी भूमिर्दशकोट्यो वरानने । देवानां क्रीडनार्थाय लोकालोकस्ततः परम्' इति । अत्र च दशकोटित्वं पूर्वोक्तभूम्या सह द्रष्टव्यम् । सर्वसत्त्वपरिहृतेति देव्यतिरेकेणेति विज्ञेयम्, देवानां क्रीडनार्थायेत्युक्तत्वात् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

उसके आगे कहा गया है । प्रश्न है कि उसके भीतर रहने वाली भूमि कितनी है, इस प्रकार की शङ्का होने पर कहते हैं कि मानसोत्तर और मेरु पर्वत इन दोनों के बीच में जितना अन्तराल है अर्थात् एक करोड़ साढ़े सत्तावन लाख योजन परिमित भूमि शुद्धोक के बाद में है । उस भूमि में प्राणी भी है । उसके पश्चात् सुवर्णमयी दूसरी भूमि है । वह भूमि आठ करोड़ उनचालिस लाख ८३९०००० योजन परिमित है । इस तरह मेरु और लोकालोक पर्वतों के बीच का अन्तराल १२५०००००० योजन परिमित है उसको आगे कहा जायेगा । इसी को शैव तन्त्रों में कहा गया है । उसके पश्चात् दो करोड़ तिरपन लाख योजन भूमि है । द्वीपों और सागरों को मिलाकर पचास हजार योजन विस्तार है । हे सुन्दरि उसके पश्चात् सुवर्णमयी भूमि दश करोड़ योजन है । जो देवताओं को क्रीडा करने के लिए है । उसके आगे लोकालोक पर्वत है । यहाँपर पूर्वोक्त भूमि मिलाकर दश करोड़ योजन समझना चाहिए । वहाँदेवताओं को छोड़कर कोई भी प्राणी नहीं जाता है क्योंकि उसको देवताओं के क्रीडा करने के लिए बतलाया गया है ॥३५॥

लोकालोक इति समाख्या यदनेनाचलेन लोकालोकस्यान्तर्वर्तिनावस्थाप्यते ॥३६॥

अनुवाद— लोकालोक पर्वत सूर्य आदि से प्रकाशित और आप्रकाशित भू भाग के बीच में स्थित है । इसीलिए इसका नाम लोकालोक है ॥३६॥

स लोकत्रयान्ते परित ईश्वरेण विहितो यस्मात्सूर्यादीनां ध्रुवापवर्गाणां ज्योतिर्गणानां गभस्तयोऽर्वाचीनांस्त्रीँल्लोकानावितन्वाना न कदाचित्पराचीना भवितुमुत्सहन्ते तावदुन्नहनायामः ॥३७॥

अनुवाद— इसे परमेश्वर ने त्रिलोकी के बाहर उसके चारो ओर सीमा के रूप में स्थापित किया है । यह इतना ऊँचा और लम्बा है कि इसके एक ओर से तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाली सूर्य से लेकर ध्रुव पर्यन्त समस्त ज्योतिर्मण्डल की किरणें दूसरी ओर नहीं जा पाती हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

लोकत्रयस्यान्ते परितो मर्यादारूपो विहितः । यस्मात् प्रतिबन्धकात् । सूर्य आदिर्येषाम् । ध्रुवोपवर्गोऽन्तो येषाम् ।

आवितन्वानाः समन्तात्प्रकाशयन्तः परतो गन्तुं न शक्नुवन्ति तावदुन्नहनमुत्सेधस्तदनुरूप आयामश्च विस्तारो यस्य । ध्रुवादप्युच्छ्रितत्वात्त्रिलोकीमर्यादाभूत इत्यर्थः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

इस लोकालोक पर्वत को त्रिलाकी के बाहर चारो ओर से मर्यादा रूप से स्थापित किया है । यस्मात् उस प्रतिबन्धक के कारण सूर्य से लेकर ध्रुव पर्यन्त समस्त ज्योतिमण्डल की किरणें जो चारो ओर फैलती है किन्तु उस लोकालोक के दूसरी ओर नहीं जा सकती है । इतनी ऊँचाई और लम्बाई इस पर्वत की है । ध्रुव से भी ऊँचा होने के कारण यह त्रिलोकी का मर्यादा पर्वत है ।।३७।।

एतावाँल्लोकविन्यासो मानलक्षण संस्थाभिर्विचिन्तितः कविभिः स तु पञ्चाशत्कोटिश्च गणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः ।।३८।।

अनुवाद— विद्वानो ने प्रमाण, लक्षण और स्थिति के अनुसार सम्पूर्ण लोकों का इतना ही विस्तार बतलाया है । यह समस्त भूगोल पचास करोड़ योजन है । इसका चौथाई भाग अर्थात् साढे बारह करोड़ योजन विस्तार वाला लोकालोक पर्वत है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

सोऽयं तु लोकालोकाचलस्तुरीयभागश्चतुर्थोऽशः सार्धद्वादशकोट्यः । मेरोरेकत इति द्रष्टव्यम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

यह लोकालोक पर्वत सम्पूर्ण भूमण्डल के चतुर्थांश में स्थित है अर्थात् मेरु से एक तरफ साढे बारह करोड़ योजन में स्थित है ।।३८।।

तदुपरिष्टाच्चतसृष्वाशास्वात्मयोनिनाऽखिलजगद्गुरुणाधिनिवेशिता ये द्विरदपतय ऋषयः पुष्करचूडो वामनोऽपराजित इति सकललोकस्थितिहेतवः ।।३९।।

अनुवाद— इसके ऊपर चारो दिशाओं में सम्पूर्ण जगत् के गुरु स्वयम्भू श्रीब्रह्माजी ने सम्पूर्ण लोकों की स्थिति के लिए ऋषभ, पुष्कर चूड, वामन और अपराजित नाम के चार गजराजों को नियुक्त किया हैं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

आशासु दिक्षु येऽधिनिवेशितास्ते आसते.।।३९।।

भाव प्रकाशिका

चार दिशाओं में जिन गजराजों को नियुक्त किया है वे हैं ।।३९।।

तेषां स्वविभूतीनां लोकपालानां च विविधवीर्योपबृंहणाय भगवान्परममहापुरुषो महाविभूतिपतिरन्तर्याम्यात्मनो विशुद्धसत्त्वं धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याद्यष्टमहासिद्ध्युपलक्षणं विष्वक्सेनादिभिः स्वपार्षदप्रवरैः परिवारितो निजवरायुधोपशोभितैर्निजभुजदण्डैःसंधारयमाणस्तस्मिन्गिरिवरे समन्तात्सकललोकस्वस्तय आस्ते ।।४०।।

अनुवाद— उन दिग्गजों और इन्द्रादि लोकपालों की विविध शक्तियों की वृद्धि तथा समस्त लोकों के कल्याण के लिए परम ऐश्वर्य के स्वामी सर्वान्तर्यामी परम पुरुष श्रीहरि अपने विष्क्सेन आदि पार्षदों के साथ इस पर्वत पर सब ओर से विराजते हैं । वे अपने विशुद्ध श्रीविग्रह को जो धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य इत्यादि आठ महासिद्धियों से सम्पन्न धारण किए हुए हैं । उनके कर कमलों में शङ्ख, चक्र, आदि आयुध सुशोभित होते हैं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

तेषां दिग्गजानां स्वविभूतीनां स्वांशभूतानां महेन्द्रादीनां च विविधवीर्योपबृंहणाय सकललोकस्वस्तये च भगवांस्तस्मिन्नास्ते इत्यन्वयः । किं कुर्वन् । आत्मनः स्वस्य यद्विशुद्धं सत्त्वं तत्संधारयमाण आविष्कुर्वन् । कीदृशम् । धर्मज्ञानादीन्यष्टमहासिद्धयश्चोपलक्षणं यस्य तत् । दोर्दण्डैरुपलक्षितः सनमहाविभूतेः परमैश्वर्यस्य षतित्वादेकयैव मूर्त्या समन्तादास्ते ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

उन दिग्गजों और अपने अंशभूत इन्द्रादि दिक्पालो के अनेक प्रकार के पराक्रम को बढ़ाने के लिए सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करने के लिए ही भगवान् उस पर्वत पर विराजमान है । वे वहाँ कैसे रहते हैं ? तो इसका उत्तर है कि अपने शुद्ध श्रीविग्रह को अविष्कृत करके रहते हैं । धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य उनके उस श्रीविग्रह के उपलक्षण हैं । वे अपनी महाभुजाओं से सुशोभित हैं । वे ही केवल इन परम ऐश्वर्यों के मूर्ति है ॥४०॥

आकल्पमेवं वेषं गत एष भगवानात्मयोगमायया विरचितविविधलोकयात्रागोपीथायेत्यर्थः ॥४१॥

अनुवाद— इस प्रकार अपनी योग माया से विरचित विविध लोकों की व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिए वे अपने इसी लीलामय रूप से कल्प के अन्त तक वहाँ सब ओर रहते हैं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

नन्वन्तर्याभिणान्तःस्थेनैव सर्वं कर्तुं शक्यं किं तस्य बहिः समन्तादवस्थानेनेत्याशङ्क्य तस्यार्थं स्वयमेव व्याचष्टे । आत्मनो योगमायया विरचिता या विविधलोकयात्रा तस्या गोपीथाय रक्षणाय एष भगवानेवंभूतमाकल्पं वेषं गतो लीलया प्राप्त इति समन्तादास्त इत्यस्यार्थः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि भगवान् अन्तर्यामी रूप से भीतर रहकर ही सबकुछ कर सकते हैं उनके बाहर चारो रहने से कौन सा प्रयोजन है ? इस तरह से आशङ्का करके उनके प्रयोजन को स्वयं बतलाते हैं अपनी योगमाया से विरचित विविध लोकों की व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिए वे लीला से प्राप्त इस शरीर से चारो ओर बने रहते हैं ॥४१॥

योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातं यद्बहिर्लोकालोकाचलात् । ततःपरस्ताद्योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरन्ति ॥४२॥

अनुवाद— लोकालोक के भीतर जितना भूभाग का विस्तार है उसी से उसके दूसरी ओर के प्रकाश रहित प्रदेश के विस्तार को जान लेना चाहिए । उसके आगे तो योगेश्वरों की विशुद्ध गति होती है ऐस कहा जाता है॥४२॥

भावार्थ दीपिका

अलोकपरिमाणं च मेरोरेकतः सार्धद्वादशकोट्यः ततो लोकालोकात् । अलोकाद्वा परस्तात् । विशुद्धां द्विजपुत्रानयनेऽर्जुनस्य श्रीकृष्णेन प्रदर्शिताम् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

यदि मेरु पर्वत से लोकालोक पर्वत पर्यन्त की एक ओर की भूमि साढे बारह करोड़ योजन है तो प्रकाश रहित दूसरी ओर की भी भूमि उतनी ही होगी । उस विशुद्ध भूमि को ब्राह्मण पुत्र के लाने के समय भगवान् श्रीकृष्ण ने उसको अर्जुन को दिखलाया था ॥४२॥

अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् । सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ॥४३॥

अन्वयः— अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योः यदन्तरम्, सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये पञ्चविंशतिः कोट्यः स्युः ॥४३॥

अनुवाद— सूर्य और पृथिवी के बीच में जो ब्राह्माण्ड का केन्द्र है वही सूर्य की स्थिति है । सूर्य और ब्रह्माण्डगोलक के बीच में पचीस करोड़ का अन्तर सभी ओर से है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

विस्तरेणोक्तं ब्रह्माण्डमानं सर्वतोऽपि निरूपयति । अण्डमध्यगतः । किं तन्मध्यं तदाह । द्यावाभूम्योः पूर्वोत्तरकपालयोर्यदन्तरं मध्यस्थानम् । सर्वतः पञ्चविंशतिकोट्यः ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

विस्तार पूर्वक कहे गये ब्रह्माण्ड के परिमाण को सब ओर से निरूपित **अण्डमध्यगतः इत्यादि** श्लोक से करते हैं । उसके मध्य में क्या है तो उसे बतलाते है । द्युलोक और भूलोक इन दोनों के पूर्व और उत्तर कपालों के बीच में जो अन्तराल है वह हर ओर से पच्चीस करोड़ योजन है ॥४३॥

मृतेऽण्ड एष एतस्मिन्यदभूत्ततो मार्तण्डइति व्यपदेशः हिरण्यगर्भ इति यद्धिरण्याण्डसमुद्भवः ॥४४॥

अनुवाद— सूर्य इस मरे हुए (अचेतन) अण्ड में वैराज रूप से रहते है इसी से इनका नाम मार्तण्ड है। यो हिरण्यमय ब्रह्माण्ड से प्रकट हुए है । इसीलिए इनको हिरण्यगर्भ भी कहा जाता है ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

अण्डमध्यावस्थाने कारणं तन्नामनिर्वचनेनाह । मृतेऽचेतने एष सूर्यो वैराजरूपेण यस्मात्प्रविष्टः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

सूर्य और ब्रह्माण्ड के बीच में रहने के कारण सूर्य के नाम के निर्वचन के द्वारा बतलाते हैं । चूकि अण्ड के अचेतन हो जाने पर सूर्य उसमें वैराज रूप से रहते हैं, इसीलिए उनको मार्तण्ड कहा जाता है ॥४४॥

सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्मही भिदा । स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥४५॥

अन्वयः— सूर्येण ही दिशः खं, द्यौः मही, स्वर्गापवर्गो, नरका, रसौकांसि च सर्वशः विभज्यन्ते ॥४५॥

अनुवाद— सूर्य के द्वारा ही दिशा, आकाश, द्युलोक, भूलोक, स्वर्ग और मोक्ष के प्रदेश, नरक एवं रसातल का विभाग होता है ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

किंच सूर्येणैव विभज्यन्ते दिशः। खमन्तरिक्षम्। भिदा अन्योऽपि विभागः। स्वर्गापवर्गौ भोगमोक्षदेशौ। रसौकांस्यतलादीनि।॥४५॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च सूर्य के द्वारा ही दिशाएँ अन्तरिक्ष का भेद तथा दूसरे भी भेद किए जाते हैं । स्वर्ग (भोग) एवं मोक्ष प्रदेश और रसातल के अतल इत्यादि लोकों का विभाग होता है ॥४५॥

देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपवीरुधाम् । सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने समुद्रद्वीपवर्षसंनिवेशपरिमाणलक्षणो नाम विंशतितमोऽध्यायः॥२०॥

अन्वयः— देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसविरुधाम् सर्वजीवनिकायनां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥४६॥

अनुवाद— तिर्यक् तथा मनुष्यों के, सरीसृप (रेंग कर चलने वाले सर्प आदि) तथा लतावृक्ष आदि सभी जीव समूहों की आत्मा तथा नेत्रों के अधिष्ठाता सूर्य है ।।४६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के भुवनकोश वर्णन के अन्तर्गत समुद्र, द्वीप, वर्ष, उनके सन्निवेश परिमाण तथा लक्षण वर्णन नामक बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

उपासनार्थमाह । देवादीनां सूर्य आत्मा दृगीश्वरो नेत्राधिष्ठाता च ।।४६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां विंशतितमोऽध्यायः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

सूर्य की उपासना करने के लिए बतलाते है । सूर्य देवताओं आदिकी आत्मा और नेत्रों के अधिष्ठाता भी हैं।।४६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के बीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२०।।

* * *

इक्कीसवाँ अध्याय

सूर्य के रथ और उसकी गति का वर्णन

श्रीशुक उवाच

एतावानेव भूवलयस्य संनिवेशः प्रमाणलक्षणतो व्याख्यातः॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! परिमाण और लक्षण के साथ इस भूमण्डल का कुल इतना ही विस्तार है, उसे मैंने आपको बतला दिया है ।।१।।

भावार्थ दीपिका

एवमध्यायविंशत्या भूमर्यादा निरूपिता । अत:परं द्युमर्यादापालनं त्रिभिरुच्यते ।।१।। एकविंशे रवेः कालचक्रेण भ्रमतोऽन्वहम्। स्वगत्या राशिसंचारैर्लोकयात्रा निरूप्यते ।।२।। एतावान्विस्तारेण कोट्यः पञ्चाशत् । उत्सेधेन पञ्चविंशतिः।।१।।

भाव प्रकाशिका

बीस अध्यायों के द्वारा पृथिवी की मर्यादा (सीमा) का निरूपण किया गया है इसके पश्चात् द्युलोक की मर्यादा और उसके पालन का वर्णन, तीन अध्यायों में किया जा रहा है । इक्कीसवें अध्याय में सूर्य के प्रतिदिन घूमने वाले कालचक्र के द्वारा उसकी अपनी गति से तथा राशियों पर होने वाले संचार के द्वारा लोक की व्यवस्था का निरूपण किया जा रहा है । इस तरह भूमण्डल का पचास करोड़ योजन विस्तार है और उसकी ऊँचाई पच्चीस करोड़ योजन है ।।१।।

एतेन हि दिवो मण्डलमानं तद्विद उपदिशन्ति यथा द्विदलयोर्निष्पावादीना ते अन्तरेणान्तरिक्षं तदुभयसंधितम्॥२॥

अनुवाद— इसी के अनुसार विद्वज्जन द्युलोक का भी परिमाण बतलाते हैं। जिस तरह मटर आदि के दो दलों में से एक का स्वरूप जान लेने से दूसरे का भी स्वरूप जान लिया जाता है, उसी तरह भूलोक के भी परिमाण से द्युलोक का भी परिमाण जान लेना चाहिए। इन दोनों के बीच में अन्तरिक्ष लोक है यह इन दोनों का सन्धि स्थान है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

द्विदलयोर्मध्ये यथैकस्य मानेनापरस्य मानमुपदिश्यते तद्वत्। ते अन्तरेण तयोर्मध्ये तदुभयंसंधितं ताभ्यामुभयतः सँल्लग्नम्॥२॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह दो दलों में से एक के परिमाण से दूसरे का परिमाण बतलाया जाता है उसी तरह द्युलोक और भूलोक के बीच में विद्यमान अन्तरिक्षलोक दोनों से सटा हुआ है ॥२॥

यन्मध्यगतो भगवांस्तपतां पतिस्तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपत्यवभासयत्यात्मभासा स एष उदगयनदक्षिणायनवैषुवतसंज्ञाभिर्मान्द्यशैघ्र्यसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमानस्थानेषु यथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥३॥

अनुवाद— इसके मध्यभाग में स्थित ग्रहों एवं नक्षत्रों के स्वामी भगवान् सूर्य अपने ताप एवं प्रकाश से तीनों लोकों को संतप्त करते हैं और प्रकाशित करते हैं। ये उत्तरायण दक्षिणायन तथा विषुवत् नामक क्रमशः मन्द, शीघ्र और समान गतियों से चलते हैं तथा समयानुसार मकरादि राशियों में ऊँचे नीचे तथा समान स्थानों में जाकर दिन तथा रात को बड़ा-छोटा तथा समान किया करते हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

उदगयनादिसंज्ञाभिर्मन्दक्षिप्रसमगतिभिर्यथाकालमारोहणादिस्थानेष्वारोहणाद्यभिपद्यमानो मकरादिष्वहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उत्तरायण आदि संज्ञक, मन्द, शीघ्र तथा समान गतियों के समयानुसार ऊँचे आदि स्थानों में आरोहण आदि करके मकर आदि राशियों में दीन और रात को बड़ा, छोटा अथवा एक बाराबर करते हैं ॥३॥

यदा मेषतुलयोर्वर्तते तदाहोरात्राणि समानानि भवन्ति यदा वृषभादिषु पञ्चसु च राशिषु चरति तदाऽहान्येव वर्धन्ते ह्रसति च मासि मास्येकैका घटिका रात्रिषु ॥४॥

अनुवाद— जब भगवान् सूर्य मेष अथवा तुला राशि पर जाते हैं तब दिन और रात बराबर होते है। जब वृष आदि पाँच राशियों पर चढ़ते हैं तो प्रत्येक मास में रात में एक-एक घटी घटता जाता है और उसी हिसाब से दिन में एक-एक घटी बढ़ता जाता है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तत्प्रपञ्चयति-यदेति। अत्यन्तवैषम्याभावात्समानानीत्युक्तम्। सर्वथा साम्यं त्वेकस्यैवाहोरात्रस्य। यद्यपि वृषभमिथुनयोरेवाह्नां वृद्धिः कर्कटादिषु ह्रासस्तथापि रात्र्यपेक्षयाऽधिकत्वाद्वर्धन्त इत्युक्तम्। एवं रात्रिवृद्धावपि दिनापेक्षया ह्रसतीत्युक्तम्। एकैकेति स्थूलदृष्ट्योक्तम्। वृद्धिह्रासयोः प्रतिमासवैषम्यात् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही विस्तार से वर्णन करते है । अत्यन्त विषमता नहीं होने के कारण समान कहा गया है । पूर्णरूप से समता तो एक ही दिन और रात होते हैं । यद्यपि वृष तथा मिथुन राशियों में ही दिन बढ़ते है कर्क आदि में तो उनमें ह्रास होने लगता है फिर भी उन राशियों में रात्रि की अपेक्षा दिन के बड़े होने के कारण दिन बढ़ते हैं यह कहा गया है । इसी तरह रात्रि के बढ़ने पर भी रात-दिन की अपेक्षा छोटी होती है । एक-एक घटी स्थूल दृष्टि से कहा गया है । क्योंकि वृद्धि और ह्रास प्रत्येक मास में विषम रूप से होते हैं ।।४।।

यदा वृश्चिकादिषु पञ्चसु वर्तते तदाऽहोरात्राणि विपर्ययाणि भवन्ति ।।५।।

अनुवाद— जब सूर्य भगवान् वृश्चिक आदि पाँच राशियों पर रहते हैं तब दिन और रात में इसके विपरीत परिवर्तन होते हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

विपर्ययाणीति । अहानि न्यूनानि रात्रयोऽधिका इत्यर्थः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

विपर्ययाणि अर्थात् इन राशियों में दिन छोटे और रात्रि बड़ी होती है ।।५।।

यावद्दक्षिणायनमहानि वर्धन्ते यावदुदगयनं रात्र्यः ।।६।।

अनुवाद— सूर्य के दक्षिणायन होने तक दिन बड़े होते हैं और उत्तरायण होने तक रात्रियाँ बड़ी होती हैं।।६।।

भावार्थ दीपिका

तद्वृद्धिह्रासकलापमाह-यावदिति ।।६।।

भाव प्रकाशिका

दिन और रात्रि के बढ़ने और घटने के काल को यावत् इत्यादि दण्डक से कहते हैं ।।६।।

एवं नवकोटय एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्योपदिशन्ति तस्मिन्नैन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मान्मेरोर्देवधानीं नाम दक्षिणतो याम्यां संयमनीं नाम पश्चाद्वारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासूदयमध्याह्नास्तमयनिशीथानीति भूतानां प्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्तानि समयविशेषेण मेरोश्चतुर्दिशम् ।।७।।

अनुवाद— इस प्रकार पण्डित जन मानसोत्तर पर्वत पर सूर्य की परिक्रमा का मार्ग नव करोड़ एक्यावन लाख योजन बतलाते है । उस पर्वत पर मेरु के पूर्व की ओर इन्द्र की देवधानी, दक्षिण में यमराज की संयमनी पश्चिम में वरुण की निम्लोचनी और उत्तर में चन्द्रमा की विभावरी नाम की पुरियाँ हैं ।।७।।

भावार्थ दीपिका

एवं मन्दादिगतिभिः । नवकोटय इति । मेरोरुभयतो मानसोत्तरस्यान्तर्विस्तारेण पञ्चदशलक्षाधिककोटित्रयपरिमितेनेदं परिमण्डलमानमुन्नेयम् । एवं पञ्चदशभिर्घटिकाभिरित्यादिष्वपि त्रैराशिकगणितेन तत्तन्मानमुन्नेयम् । अत्रापेक्षितो विशेषः पुराणान्तरादवगन्तव्यः । तत्रारोहणादिस्थानानि वायुपुराणे दर्शितानि । 'सर्वग्रहाणां त्रीण्येव स्थानानि द्विजसत्तमाः । स्थानं जरद्गवं मध्यं तथैरावतमुत्तरम् । वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वतः' इति । तदेव मध्यमोत्तरदक्षिणमार्गत्रयं प्रत्येकं वीथीत्रयेण त्रिधा भिद्यते । त्रिभिस्त्रिभिरश्विन्यादिनक्षत्रैर्नागवीथी गजवीथी ऐरावती चेत्युत्तरमार्गे वीथीत्रयम् । आर्षभी गोवीथी जरद्गवी चेति वैषुवते मध्यममार्गे वीथीत्रयम् । अजवीथी मृगवीथी वैश्वनरी चेति दक्षिणमार्गे वीथीत्रयम् । तदप्युक्तं तत्रैव- 'अश्विनी कृत्तिका

याम्या नागवीथीति शब्दिता । रोहिण्यार्द्रामृगशिरो गजवीथ्यभिधीयते । पुष्याश्लेषा तथादित्या वीथी चैरावती स्मृता । एतास्तु वीथयस्तिस्त्र उत्तरो मार्ग उच्यते । तथा द्वे चापि फाल्गुन्यौ मघा चैवार्षभी मता । हस्तश्चित्रा तथा स्वाती गोवीथीति तु शब्दिता। ज्येष्ठा विशाखानुराधा वीथी जारद्गवी मता । एतास्तु वीथयस्तिस्रो मध्यमो मार्ग उच्यते । मूलाषाढोत्तराषाढा अजवीथ्यभिशब्दिता। श्रवणं च धनिष्ठा च मार्गी शतभिषस्तथा । वैश्वानरी भाद्रपदे रेवती चैव कीर्तिता । एतास्तु वीथयस्तिस्रो दक्षिणो मार्ग उच्यते।' इति । याम्या भरणी, आदित्या आदितिदेवताका पुनर्वसुः मार्गी मृगवीथी एवं स्थिते उत्तरायणे ध्रुवेन युगाक्षकोटिनिबद्धवायुपाशद्वयाकर्षणे रथस्यारोहणम् । तदाभ्यन्तरमण्डलप्रवेशो गतिमान्द्यं चेति दिनवृद्धिरात्रिह्रासश्च । दक्षिणायने च पाशप्रेरणादवरोहणे बहिर्मण्डलप्रवेशो गतिशैघ्र्यं चेत्यहोरात्रयोर्विपर्यय; । वैषुवते तु पाशसाम्यात्समावस्थाने मध्यमण्डलप्रवेशो गतिसाम्यं चेत्यहोरात्रयोः साम्यमिति । तथाच पुराणान्तरम्- 'आकृष्येते यदा तौ तु ध्रुवेण समधिष्ठितौ । तदाभ्यन्तरतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु । ध्रुवेण मुच्यमानेन पुना रश्मियुगेन तु । तथैव वाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि च ।।' इति । तदेतदुक्तम्, यदा मेषतुलयोरित्यादिना। उदयास्तादिकं वक्तुमाह । तस्मिन्मानसोत्तरे मेरोः पूर्वत ऐन्द्रीं पुरीमुपदिशन्तीत्यनुषङ्गः । तासु पुरीषूदयादीन्युपदिशन्ति । चतुर्दिशमित्युक्ते ये मेरोर्दक्षिणे देशे तेषामैन्द्रीमारभ्य पूर्वादयः । ये पश्चिमे तेषां याम्यामारभ्य य उत्तरे तेषां वारुणीमारभ्य । ये पूर्वे तेषां सौम्यामारभ्य ।।७।।

भाव प्रकाशिका

एवम् अर्थात् मन्द आदि गतियों के द्वारा। नवकोटयः अर्थात् मेरू पर्वत के दो मानसोत्तर पर्वत के भीतर विस्तार के द्वारा तीन करोड़ पन्द्रह लाख योजन परिमित इस मण्डल के परिमाण को जानना चाहिए । इसी तरह पन्द्रह घटियों में भी त्रैराशिक गणित के द्वारा विभिन्न परिमाणों को जानना चाहिए । यहाँ पर अपेक्षित विशेष बातों को दूसरे पुराणों से जानना चाहिए । उसमें भी आरोहण आदि स्थानों को वायु पुराण में बतलाया गया है । वहाँ कहा गया है कि हे द्विजश्रेष्ठ ! सभी ग्रहों के तीन ही स्थान हैं । बीच का स्थान जरद्गव कहलाता है । उत्तर का स्थान ऐरावत कहलाता है तथा दक्षिण का स्थान वैश्वानर कहा गया है । इस तरह मध्यम, उत्तर और दक्षिण ये तीनों मार्ग तीन वीथियों के भेद से तीन-तीन प्रकार के कहे गये हैं । अश्विनी इत्यादि तीन-तीन नक्षत्रों के द्वारा नागवीथी गजवीथी, तथा ऐरावतवीथी ये तीन वीथियाँ उत्तर मार्ग में हैं । आर्ष भी गोवीथी तथा जरद्गवी वैषुवत् मध्यम मार्ग पर तीन बीथियाँ है । अजवीथी मृगवीथी तथा वैश्वानरीवीथी ये तीन विथियाँ दक्षिण मार्ग में हैं । उसके (विथियों के) भी विषय में कहा गया है अश्विनी, कृत्तिका और पाम्या (भरणी) इन तीनों को नागवीथी कहा गया है । रोहिणी, आर्द्रा तथा मृगशिरा इन तीनों नक्षत्रों को गजवीथी कहते हैं । पुष्य अश्लेषा तथा आदित्य देव तक नक्षत्र को ऐरावती वीथी कहा गया हैं । ये तीनों वीथियाँ उत्तर मार्ग कही जाती है । पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी एवं मधा इन तीन नक्षत्र को आर्ष वीथी कहा जाता है । हस्त, चित्रा और स्वाती इन तीनों नक्षत्रों को गोवीथी कहते हैं । ज्येष्ठा अनुराधा और विशाखा इन तीनों नक्षत्रों को जारद्रवी वीथी कहते हैं । ये तीनों बीथियाँ मध्यम मार्ग कही जाती हैं । मूल पूर्वाषाढा तथा उत्तराषाढ इन तीन नक्षत्रों को अजवीथी कहा गया है । श्रवण, धनिष्ठा तथ शतभिषा इन तीनों नक्षत्रों को मार्गी वीथी कहते है । पूर्वाभाद्रपद एवं उत्तराभाद्रपद तथा रेवती इन तीनों नक्षत्रों को वैश्वानरी वीथी कहा जाता है । इन तीनों वीथियों को दक्षिण मार्ग कहा जाता है । यम देवताक भरणी, अदिति देवताक आदित्या और पुनर्वसु, मार्गी अर्थात् मृगी इस तरह से रहने पर उत्तरायण में ध्रुव के द्वारा युगाक्ष करोड़ से निबद्ध वायु के दो पाशों द्वारा खींचे जाने पर रथ का अरोहण होता है। उस समय भी आभ्यन्तर मण्डल में प्रवेश होने से रथ की गति मन्द हो जाती है । उस समय दिन बड़ा होत है और रात छोटी होती है। दक्षिणायान में पाश की प्रेरण से अवरोहरण में बाह्य मार्ग में प्रवेश होता है तथा गति तीव्र हो जाती है । इस तरह दिन और रात्रि में परिवर्तन होता है । वैषुवत् में पाश की समता के कारण मध्य मण्डल में प्रवेश होता है । गति में समता आ जाती है । अतएव दिन और रात दोनों समान होते हैं । और दूसरे पुराण में भी कहा गया है जब ध्रुव के

द्वारा अधिष्ठित दोनों पाश खींचे जाते हैं उस समय सूर्य भीतरी मण्डलों में भ्रमण करते हैं । जब ध्रुव दोनों पाशों को छोड़ देते हैं । उस समय सूर्य बाहरी मण्डलों में भ्रमण करते हैं । इस बात को **यदामेषतुलयोः इत्यादि** के द्वारा कहा गया है । सूर्योदय तथा सूर्यास्त को बतलाने के लिए कहा गया है कि उस मानसोत्तर पर्वत पर मेरु के पूर्व इन्द्र की पुरी बतलायी गयी है । उन पुरियों में उदय और अस्त आदि बतलाये गये हैं । जहाँ चतुर्दिशम् कहा गया है वहाँ मेरु के दक्षिण दिशा में उन सबों के पूर्व दिशा से लेकर पूर्व आदि दिशाएँ बतलायी गयी हैं। जो पश्चिम में उन सबों के दक्षिण दिशा से लेकर । जो उत्तर दिशा में कही गयी हैं उनसबों की उत्तर दिशा से लेकर जो पूर्व में कही गयी हैं उन सबों पूर्व से लेकर कहा गया है ॥७॥

तत्रत्यानां दिवसमध्यङ्गत एव सदादित्यस्तपति सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति ॥८॥

अनुवाद— जो लोग सुमेरु पर रहते हैं उन लोगों को तो सूर्य सदा मध्याह्न कालीन ही रहकर तपाते रहते हैं और अपनी गति के अनुसार सदा नक्षत्रों की ओर जाते हुए यद्यपि मेरु पर्वत को बायीं ओर रखकर चलते हैं तो भी सम्पूर्ण ज्योति मण्डल को घुमाने वाली निरन्तर दायीं ओर बहती हुई प्रवाह वायु के द्वारा घुमा दिए जाने के कारण वे उसे दायीं ओर रखकर चलते हुए से प्रतीत होते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तत्रत्यानां मेरुस्थानाम् । सव्येनेति । नक्षत्राभिमुखतया खगत्या मेरुं वामतः कुर्वन्नपि प्रदक्षिणावर्तप्रवहाख्यवायुभ्राम्यमाणज्योतिचक्रवशात्प्रत्यहं दक्षिणतः करोति । अतश्चक्रगतिवशादतिदूरतो भूसंलग्नस्येव दर्शनमुदयः । आकाशमारुढस्येव दर्शनं मध्याह्नः । भूमिं प्रविष्टस्येव दर्शनमस्तमयः । ततोऽतीव दूरगमने निशीथ इति । समुद्रतीरस्थदृष्ट्या च 'अद्यो वा एष प्रातरुदेत्यपः सायं प्रविशति' इति श्रुतिव्यवहारो न वस्तुतः । तदुक्तं वैष्णवे 'उदयास्तमये चैव सर्वकालं तु संमुखे । दिशास्वशेषासु तथा मैत्रेय विदिशासु च । यैर्यत्र दृश्यते भास्वान्स तेषामुदयः स्मृतः । तिरोभावं च यत्रेति तत्रैवास्तमनं रवेः । नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा स्मृतः । उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः । शक्रादीनां पुरे तिष्ठन् स्पृशत्येष पुरत्रयम् । विकर्णौ द्वौ विकर्णस्थस्त्रीन्कोणान् द्वे पुरं तथा । इति । अतएव तत्रैवोक्तम्- 'तस्माद्दिश्युत्तरस्यां वै दिवारात्रिः सदैव हि । सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरोरुत्तरतः स्थितिः ।' इति । यतो यत्र यः पश्यति सैव तस्य प्राची । तस्य च वामतो मेरुस्तिष्ठतीति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

तत्रत्यानाम् अर्थात् मेरु पर्वत पर रहने वालों को अपनी गति से नक्षत्रों की ओर जाते हुए यद्यपि मेरु को बायें रखकर जाते हैं फिर भी प्रदक्षिणावर्त चलने वाली प्रवह नामक वायु के द्वारा घुमाये जाने वाले ज्योतिर्मण्डल के कारण लगता है कि ये मेरु को दायें रखकर चलते हैं । अतएव चक्र गति के कारण दूर से लगता है कि इनका उदय पृथिवी से सट कर हो रहा है । मध्याह्न के समय लगता है सूर्य आकाश के बीच में आ गये हैं। सूर्यास्त के समय लगता है कि जैसे ये पृथिवी में समा गये हैं । उससे अत्यन्त दूर चले जाने पर आधी रात प्रतीत होती है । समुद्र के तट पर स्थित होकर देखने पर लगता है कि ये जल से उदित हो रहे है । इसीलिए श्रुति कहती है— **अद्‌भ्यो वा एष प्रातरुदेति अपः सायं प्रविशति** । अर्थात् ये सूर्यदेव प्रातः जल के भीतर से उदित होते हैं और सायंकाल जल में प्रवेश कर जाते हैं । विष्णुपुराण में कहा भी गया है । उदय और अस्त के समय सूर्य सदैव सामने रहते हैं । हे मैत्रेय ! वे इस प्रकार से सभी दिशाओं और विदिशाओं में प्रतीत होते हैं । जिन लोगों से जहाँ सूर्य दिखाई देते हैं उन लोगों के लिए वही उदयस्थान होता है । जहाँपर सूर्य तिरोहित होते है। वही उसका सुस्त होना कहा गया है । किन्तु वास्तविकता यह है कि सूर्य न तो अस्त होते हैं और न उदित होते है । सूर्य का दिखायी देना ही उदय कहलाता है और उनका नहीं दिखना ही अस्त कहलाता है । इन्द्र इत्यादि की पुरियों में रहकर ये तीनों पुरियों का स्पर्श करते हैं । दो विकर्षा है । विकर्ण में रहकर तीन कोणों को तथा

दो पुरियों का स्पर्श करते हैं । **अतएव इत्यादि** इसीलिए विष्णुपुराण में कहा गया है कि मेरु पर्वत से उत्तर दिशा में दिन और रात्रि सदैव होते हैं । सभी द्वीपों और सभी वर्षों की उत्तर दिशा में मेरुपर्वत स्थित है । इसीलिए जो जहाँ से जहाँ देखता है वही उसकी वही पूर्व दिशा होती है । और उसकी बायीं ओर मेंरु पर्वत रहता है ॥८॥

यत्रोदेति तस्य ह समानसूत्रनिपाते निम्लोचति यत्र क्वचन स्यन्देनाभितपति तस्य हैष समानसूत्रनिपाते प्रस्वापयति तत्र गतं न पश्यन्ति ये तं समनुपश्येरन् ॥९॥

अनुवाद— जिस पुरी में भगवान् सूर्य उदित होते है उसके ठीक दूसरी ओर की पुरी में अस्त होते प्रतीत होते हैं । जहाँ वे लोगों को पसीना से संतप्त करते हैं वहाँसे सामने की ओर आधी रात होने के कारण वहाँ के लोगों को निद्रित किए होंगे । जिन लोगों को वे मध्याह्न के समय स्पष्ट दिखते है वे ही सूर्य जब सौम्य दिशा में पहुँच जायँ तो उनका दर्शन नहीं होगा ॥९॥

भावार्थ दीपिका

यथोक्तमुदयास्तमनाद्यनियमं दर्शयति, यत्रोदेतीत्यादिना । स्यन्देन स्वेदोद्गमेन । प्रस्वापयति निशीथं करोति । ये तं समनुपश्येरन् प्रस्वापसमानसूत्रस्थाः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त उदय एवं अस्त का कोई नियम नहीं इस बात को **यत्रोदेति० इत्यादि** के द्वारा बतलाते हैं । **स्यन्देन** अर्थात् पसीने से । प्रस्वापयति अर्थात् आधी रात के कारण सुला देते हैं । अर्थात् जहाँ के लोग सो रहे हैं उनके ठीक सामंने के लोग सूर्य को नहीं देख पाते है ॥९॥

यद्वा चैन्द्याः पुर्याः प्रचलते पञ्चदशघटिकाभिर्याम्यां सपादकोटिद्वयं योजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि चोपयाति ॥१०॥

अनुवाद— सूर्यदेव जब इन्द्र की पुरी से यमराज की पुरी को चलते है, तब वे पन्द्रह घड़ी में सबा दो करोड़ और साढे बारह लाख योजन से पचीस हजार योजन अधिक चलते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

साधिकानि पञ्चविंशतिसहस्राधिकानि ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

साधिकानि पद का अर्थ है पचीस हजार योजन अधिक ॥१०॥

एवं ततो वारुणीं सौम्यामैन्द्रीं च पुनस्तथाऽन्ये च ग्रहाः सोमादयो नक्षत्रैः सह ज्योतिश्चक्रे समभ्युद्यन्ति सह वा निम्लोचन्ति ॥११॥

अनुवाद— फिर भगवान् सूर्य इसी क्रम से वरुण और चन्द्रमा की पुरियों को पार करके इन्द्र की पुरी में पहुँच जाते हैं । इस तरह चन्द्रमा आदि भी दूसरे ग्रह इस ज्योतिष् चक्र में अन्य नक्षत्रों के साथ ही उदित और अस्त होते रहते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

सहवा सहैव । यद्यपि वस्तुतः सूर्यस्यापि नक्षत्रैः सहैवोदयास्तमयौ तथापि तस्य तत्साहित्यादर्शनात्सोमादीनामेव तत्साहित्यमुक्तम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

सहवा पद का अर्थ है साथ ही । यद्यपि वास्तविकता यह है कि सूर्य का भी उदय और अस्त नक्षत्रों के साथ ही होता है फिर भी उनसबों का साहित्य देखने के कारण चन्द्रमा आदि का ही सूर्य का बतलाया गया है॥११॥

एवं मुहूर्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्षयोजनान्यष्टशताधिकानि सौरो रथस्त्रयीमयोऽसौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु॥१२॥

अनुवाद— इस तरह भगवान् सूर्य का वेदमयरथ एक मुहूर्त में चौंतिस लाख आठ सौ योजन चलता हुआ इन चारो पुरियों में घूमता रहता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

त्रयीमय इत्याद्युपासनार्थम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

भगवन् सूर्य के रथ के त्रयीमय रूप से उपसना के लिए कहा गया है ॥१२॥

यस्यैकं चक्रं द्वादशारं षण्नेति त्रिणाभि संवत्सरात्मकं समामनन्ति तस्याक्षो मेरोर्मूर्धनि कृतो मानसोत्तरे कृतेतरभागो यत्र प्रोतं रविरथचक्रं तैलयन्त्रचक्रवद्भ्रमन्मानसोत्तरगिरौ परिभ्रमति ॥१३॥

अनुवाद— इसका संवत्सर नामक एक चक्र (पहिया) बतलाया गया है । उसमें मास रूप बारह अर हैं ओर तीन नाभि और छह ऋतुएँ नेमियाँ हैं । चौमासा रूप तीन नाभि है । इस रथ की धुरी का एक सिरा मेरु पर्वत की चोटी पर है और दूसरा मानसोत्तर पर्वत पर । इसमें लगा हुआ यह पहिया कोल्हू के पहिए के समान घूमता है और मानसोत्तर पर्वत पर चक्कर लगाता रहता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशमासा अरा यस्य । पड्तवो नेमयो यस्य । त्रीणि चातुर्मास्यानि नाभयो यस्य । कृत इतरभागो यस्य । मानसोत्तरगिरौ लक्षादुपरि वायुबद्धभूमाविति द्रष्टव्यम् । चक्रं वा तावदुच्छ्रितमिति मन्तव्यम् । अन्यथाऽयुतमात्रोच्छ्रायत्वान्मानसोत्तरस्य मेरोश्चतुरशीत्युच्छ्रायत्वादक्ष्य साम्यानुपपत्तेः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

बारह महीनें ही सूर्य के रथ को बारह अर है । छह ऋतुएँ यही इस रथ की नेमियाँ (हाल) हैं तथा तीन चातुर्मास्य इसके तीन नाभियाँ हैं । इसका दूसरा भाग मानसोत्तर पर्वत पर रहता है । मानसोत्तर पर्वत पर आधा लाख योजन से अधिक वायुबद्ध भाग वाली भूमि पर वह रहता है । अर्थात् उतना ऊँचा पहिया है । नहीं तो दस हजार योजन ऊँचे मानसोत्तर पर्वत के तथा मेरु के चौरासी योजन ऊँचाई होने के कारण उसकी धूरी में समता नहीं हो सकती है ॥१३॥

तस्मिन्नक्षे कृतमूलो द्वितीयोऽक्षस्तुमर्यमानेन संमितस्तैलयन्त्राक्षवद्ध्रुवे कृतोपरिभागः ॥१४॥

अनुवाद— इस धूरी में जिसका मूल भाग जुड़ा है । एक ऐसी धूरी और है । वह इसकी लम्बाई चौड़ाई है । उसका ऊपरी भाग तैल यन्त्र के धूरे के समान ध्रुव लोक से लगा हुआ है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तस्मिन्नक्षे चक्रप्रान्ते कृतमूलो निबद्धपूर्वभागः प्रथमाक्षो मेरुमानसोत्तरायतः सार्धसप्तलक्षाधिकसार्धकोटिप्रमाणस्तस्य तुर्यमानेन सार्धसप्तत्रिंशत्सहस्राधिकैकोनचत्वारिंशल्लक्षमानेन । ध्रुवे कृतो वायुपाशेन निबद्ध उपरिभागो यस्य ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

उस धूरी में चक्र के अन्तिम भाग से जिसका मूल भाग लगा हुआ है । पहली धूरी मेरु से लेकर मानसोत्तर तक लम्बा है और वह एक करोड़ साढे सत्तावन लाख योजन लम्बा है । इसका परिमाण पहली धुरी के चौथाई अर्थात् उनचालिस लाख साढे सैंतिस हजार योजन है । उसके ऊपर का भाग ध्रुव में वायु पाश से बँधा है ॥१४॥

रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीयभागविशालस्तावान् रविरथयुगो यत्र हयाश्छन्दोनामानः सप्तारुणयोजिता वहन्ति देवमादित्यम् ॥१५॥

अनुवाद— इस रथ में बैठने का स्थान छत्तीस लाख योजन लम्बा और नौ लाख योजन चौड़ा है । उस रथ को खीचने वाले सात घोड़ों के नाम गायत्री इत्यादि छन्दों के नाम के है और उन सबों को अरुण नामक सारथी ने रथ में नाँध रखा है । वे ही इस रथ पर बैठे हुए सूर्य भगवान् को वहन करने का काम करते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

नीड उपवेशस्थानम् । गायत्र्यादिच्छन्दो नामानः । अरुणेन योजिताः सन्तो देवं वहन्ति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

नीड रथ में बैठने के स्थान को कहते हैं । अरुण के द्वारा नाँधे हुए अश्वों के नाम गायत्री आदि छन्दों के नाम हैं । वे ही सूर्यदेव को वहन करते हैं ॥१५॥

पुरस्तात्सवितुररुणः पश्चाच्च नियुक्तः सौत्ये कर्मणि किलास्ते ॥१६॥

अनुवाद— भगवान् सूर्य के आगे उनके ही ओर मुँह करके अरुण सारथि का काम करते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

पुरस्तात्स्थितोऽपि पश्चात्प्रत्यङ्मुख आस्ते । यद्वा यत्सूर्यस्य पुरस्तात्तस्य वै पश्चिमत्वात्पश्चादित्युक्तम् । अश्वस्थानं च वायुनोक्तम् "सप्ताश्वरूपच्छन्दांसि वहन्ते वामतो रविम् । चक्रपक्षनिबद्धानि चक्रे चाक्षः समाहितः ।।" इति ॥१६।

भाव प्रकाशिका

सामने बैठे हुए पीछे की ओर मुख करके उनकी ओर मुख किए हैं । अथवा जो सूर्य के आगे है उसके पश्चिम मुख होने के कारण पश्चिम कहा गया है अश्वों के स्थान को वायु पुराण में वायु ने कहा है सात अश्वों के रूप में वैदिक जो गायत्री, उष्णिक इत्यादि छन्द हैं वे बायें सूर्य का वहन करते हैं । वे सातो छन्दचक्र अक्ष में बँधे हैं और अक्ष चक्र में बँधा है ॥१६॥

तथा वालरिवल्या ऋषयोऽङ्गुष्ठर्वमात्राः षष्टिसहस्राणि पुरतः सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवन्ति॥१७॥

अनुवाद— भगवान् सूर्य के आगे अङ्गूठे के पर्व परिमाण वाले साठ हजार ऋषिगण स्वस्तिवाचन के लिए नियुक्त हैं । वे सूर्य भगवान् की स्तुति करते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

सूक्तवाकाय सुभाषिताय ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

सूक्तवाकाय पद का अर्थ है सुभाषित के लिए ॥१७॥

तथान्ये च ऋषयो गन्धर्वाप्सरसो नागा ग्रामण्यो यातुधाना देवा इत्येकैकशो गणाः सप्त चतुर्दश मासि मासि भगवन्तं सूर्यमात्मानं नानानामानं पृथङ्नानामानः पृथक्कर्मभिर्द्वन्द्वश उपासते ॥१८॥

अनुवाद— इनके अतिरिक्त ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस, और देवता भी जो कुल मिलाकर चौदह किन्तु जोड़े रहने के कारण सात कहे गये हैं, प्रत्येक मास में भिन्न-भिन्न नाम वाले अपने भिन्नि-भिन्न कर्मों से प्रत्येक मास में भिन्न-भिन्न नाम धारण करके आत्म स्वरूप भगवान् सूर्य की दो-दो मिलकर उपासना करते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

एकैकशश्चतुर्दशद्वन्द्वशः सप्तगणाः सन्तो मासि मास्युपासत इत्यन्वयः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

एक-एक करके चौदह और जोड़े के रूप में सात का गण प्रत्येक मास में भगवान् सूर्य की उपासना करते हैं॥१८॥

लक्षोत्तरं सार्धनवकोटियोजनपरिमण्डलं भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूत्युत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुङ्क्ते॥१९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे ज्योतिश्चक्रसूर्यरथ मण्डल वर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

अनुवाद— भगवान् सूर्य भूमण्डल के नौ करोड़े एकावन लाख योजन लम्बे घेरे में से प्रत्येक क्षण में दो हजार दो योजन की दूरी पार कर लेते हैं ॥१९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवें स्कन्ध के ज्योतिश्चक्र तथा सूर्यरथ मण्डल का वर्णन नामक इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

गव्यूतिः क्रोशद्वयम् । सगव्यूत्युत्तरं यथा भवति तथा ।।१९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

गव्यूति दों कोश को कहते हैं। अर्थात् दो योजन परिमाण अधिक जैसे हो सके अर्थात् दो हजार दो योजन॥१९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवेंस्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत इक्कीसवें अध्याय की भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२१।।

बाइसवाँ अध्याय

भिन्न-भिन्न ग्रहों की स्थिति और गति का वर्णन

राजोवाच

यदेतद्भगवत आदित्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतो राशीनामभिमुखं प्रचलितं चाप्रदक्षिणं भगवतोपवर्णितममुष्य वयं कथमनुमिमीमहीति ॥१॥

राजा ने कहा

अनुवाद— भगवन् आपने जो कहा कि यद्यपि भगवान् सूर्य राशियों की ओर जाते हुए मेरु और ध्रुव को दायीं ओर रखकर चलते प्रतीत होते हैं। किन्तु वास्तविकता हैं कि उनकी गति दक्षिणावर्त हीं होती है। इस विषय को हमलोग कैसे अनुमान करें ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वाविंशे सोमशुक्रादेः स्थानमाहोत्तरोत्तरम् । तत्तद्गत्यनुसारेण इष्टानिष्टे तथ नृणाम् । राशीनामभिमुखमप्रदक्षिणं चोपवर्णितं सव्येन चलन् दक्षिणेन करोतीति वदता । अमुष्य वयं कथमनुमिमीमहि एतत्कथं ज्ञास्यामो विरुद्धत्वादित्यर्थः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

बाइसवें अध्याय में सोम, शुक्र आदि ग्रहों का उत्तरोत्तर स्थान वर्णित है । और उन ग्रहों की भिन्न-भिन्न गतियों मनुष्यों के लिए इष्ट और अनिष्ट भी बतलाया गया है । राशियों के सम्मुख तथा वामावर्त जो बतलाया गया दक्षिणावर्त नहीं, यह जो आपने कहा है, इस बात को हम कैसे जाने क्योंकि यह बात विरुद्ध प्रतीत होती है ।।१।।

स होवाच

यथा कुलालचक्रेण भ्रमता सह भ्रमतां तदाश्रयाणां पिपीलिकादीनां गतिरन्यैव प्रदेशान्तरेष्वप्युपलभ्यमानत्वादेवं नक्षत्रराशिभिरुपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन परिधावता सह परिधावमानानां तदाश्रयाणां सूर्यादीनां ग्रहाणां गतिरन्यैव नक्षत्रान्तरे राश्यन्तरे चोपलभ्यमानत्वात् ॥२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जैसे कुम्हार के चाक पर बैठकर उसके साथ घूमने वाली चींटी आदि को अपनी गति उससे भिन्न प्रतीत होती है । क्योंकि भिन्न-भिन्न कालों में उस चक्र के भिन्न स्थानों में देखी जाती है, उसी तरह नक्षत्र और राशियों से उपलक्षित काल चक्र में पड़कर ध्रुव और मेरु को बायें रखकर घूमने वाले सूर्य आदि ग्रहों की गति वस्तुत: उससे भिन्न ही होती है क्योंकि वे काल भेद से भिन्न-भिन्न राशियों और नक्षत्रों में देखे जाते हैं ।।२।।

भावार्थ दीपिका

चक्रवशात्स्वतश्च गतिद्वयमविरुद्धमिति परिहारार्थः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

चक्र के कारण और स्वयम् भी दो प्रकार की गतियों का विरोध नहीं है यह इस परिहार का अर्थ है ।।२।।

स एष भगवानादिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्तादिषु ऋतुषु यथोपजोषमृतुगुणान्विदधाति॥३॥

अनुवाद— वेद और विद्वज्जन जिनकी गति को जानने के लिए उत्सुक रहते हैं वे साक्षात् अदि पुरुष भगवान् नारायण के लोकों का कल्याण और कर्मों की शुद्धि अपने वेदमय विग्रह काल को बारह महीनों में विभक्त करके वसन्त आदि छह ऋतुओं में उनके यथायोग्य गुणों का विधान करते हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

तत्तत्कालनियमेन कर्मणां विशुद्धेः साद्गुण्यस्य निमित्तभूतमात्मानं विभज्य । विजिज्ञास्यमानो वितर्क्यमाणः । यथोपजोषं यथाकर्मभोगम् । ऋतुगुणन् शीतोष्णादीन् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

विभिन्न काल के नियमानुसार कर्मों की विशुद्धि और सद्गुण के कारण भूत अपने आत्मभूत काल को विभक्त करके । विजिज्ञास्यमान: जिसके विषय में जानने की इच्छा होती है । यथोपजोषम् अर्थात् कर्मों के भोग के अनुसार ऋतुओं के शीत और उष्ण आदि गुणों का विधान श्रीभगवान् करते हैं ।।३।।

तमेतमिह पुरुषास्त्रय्या विद्यया वर्णाश्रमाचारानुपथा उच्चावच्चैः कर्मभिराम्नातैर्योगवितानैश्च श्रद्धया यजन्तोऽञ्जसा श्रेयः समधिगच्छन्ति ॥४॥

अनुवाद— इस लोक में वर्णाश्रम धर्म का अनुसरण करने वाले पुरुष वेदत्रयी के द्वारा प्रतिपादित छोटे बड़े कर्मों के द्वारा इन्द्रादि देवताओं के रूप में तथा योग के साधनों द्वारा अन्तर्यामी रूप में उनकी आराधना करके आसानी से परमपद प्राप्त कर सकते हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

वर्णाश्रमाचारानुवर्तिनः पुरुषास्त्रय्या आम्नातैः कर्मभिरिन्द्रादिरूपं योगवितानैश्च ध्यानादिभिरन्तर्यामिरूपं पूजयन्तः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले पुरुष वेदत्रयी के द्वारा विहित कर्मों के द्वारा तथा योग के साधनों से इन्द्र आदि के रूप में ध्यान आदि साधनों से अन्तर्यामी रूप की पूजा करके परम पद को प्राप्त कर लेते हैं ॥४॥

अथ स एष आत्मा लोकानां द्यावापृथिव्योरन्तरेण नभोवलयस्य कालचक्रगतो द्वादशमासान् भुङ्क्ते राशिसंज्ञान्संवत्सरावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवा नक्तं चेति सपादर्क्षद्वयमुपदिशन्ति यावता षष्ठमंशं भुञ्जीत स वै ऋतुरित्युपदिश्यते संवत्सरावयवः ॥५॥

अनुवाद— भगवान् सूर्य सम्पूर्ण लोकों की आत्मा हैं। वे पृथिवी और द्युलोक के मध्य में स्थित आकाश मण्डल के भीतर कालचक्र में स्थित होकर बारह महिनों का भोग करते हैं, जो संवत्सर के अवयव हैं और मेष आदि राशियों के नाम से प्रख्यात हैं। इनमें से प्रत्येक महिने चन्द्रमा के मान से शुक्ल और कृष्ण दो महिनों के होते हैं। पितरों के मान से एक रात और एक दिन का एवं सौर मान से सवादो नक्षत्रों का होता है। संवत्सर के छः अंश का भगवान् सूर्य भोगते हैं, संवत्सर के उस अवयव को ऋतु शब्द से अभिहित किया जाता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

स एव स्वगत्या मासादिव्यवहारकारणमित्याह। स एष लोकानामात्मा। द्यावापृथिव्योरन्तरेण मध्ये यन्नभोवलयमन्तरिक्षं तस्य मध्ये यत्कालचक्रं तद्गतः राशिभिर्मेषादिभिः संज्ञा येषाम्। चैत्रादिसंज्ञास्तु चान्द्रमासानाम्। मासमाह, पक्षद्वयं मास इति चान्द्रेण मानेन। सपादं महानक्षत्रद्वयं सौरेण, दिवानक्तं चाहोरात्रमिति पित्र्येण। षष्ठमंशं राशिद्वयम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् सूर्य ही अपनी गति के द्वारा मास आदि व्यवहारों के कारण होते हैं। वे ही लोकों की आत्मा हैं। पृथिवी और द्युलोक के बीच के अन्तराल में आकाशमण्डल के रूप में विद्यमान अन्तरिक्ष उसके बीच में जो कालचक्र है उस कालचक्र में विद्यमान जो मेष आदि राशियाँ है उनकी चन्द्रमान के अनुसार चैत्र आदि नाम है। चान्द्रमान से दो पक्षों का एक मास होता है। सौर मास से सवा दो नक्षत्रों का एक मास होता है। पितरों के मानसे एक दिन और एक रात का एक मास होता है। दो राशियों का संवत्सर का छठा भाग एक ऋतु होती है ॥५॥

अथ च यावताऽर्धेन नभोवीथ्यां प्रचरति तं कालमयनमाचक्षते ॥६॥

अनुवाद— आकाश में भगवान् सूर्य का जितना मार्ग है, उसके आधे भाग को वे जितने समय में पार कर लेते हैं उस काल को अयन करते हैं ॥६॥

अथ च यावन्नभोमण्डलं स ह द्यावापृथिव्योर्मण्डलाभ्यां कार्त्स्न्येन सह भुञ्जीत तं कालं संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमनुवत्सरं वत्सरमिति भानोर्मान्द्यशैघ्र्यसमगतिभिः समामनन्ति ॥७॥

अनुवाद— जितने समय में भगवान् सूर्य अपनी मन्द, तीव्र तथा सम गति के द्वारा स्वर्ग और पृथिवी मण्डल के साथ पूरे आकाश का चक्कर लगा जाते हैं उतने समय को संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर कहते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

मण्डलाभ्यां सह भुञ्जीत । स ह स हि सूर्यः । यदा शुक्लप्रतिपदि संक्रान्तिर्भवति तदा सौरचान्द्रयोर्मासयोर्युगपदुपक्रमो भवति स संवत्सरः । ततः सौरमानेन वर्षे षट् दिनानि वर्धन्ते चान्द्रमाने षट् ह्रसन्तीति द्वादशदिनव्यवधानादुभयोरग्रपश्चाद्भावो भवति । एवं पञ्चवर्षाणि गच्छन्ति तन्मध्ये द्वौ मलमासौ भवतः । ततः पुनः षष्ठः संवत्सरो भवति । तदेवमवान्तरभेदेन संवत्सरादिपञ्चकं समामनन्ति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी मण्डल के साथ पूरे आकाश मण्डल का भोग भगवान् सूर्य करते हैं उसे संवत्सर आदि शब्दों से अभिहित करते हैं । जब शुक्ल पक्ष की प्रतिपत् तिथि को संक्राति होती है उस समय सूर्य और चन्द्रमा दोनों मासों का एक साथ प्रारम्भ होता है । वही संवत्सर कहलाता हैं सौर मान से एक वर्ष में छह दिन बढ़ते हैं और चन्द्रमान से छह दिन घटते हैं । इस तरह से बारह दिनों के व्यवधान से दोनों महिने आगे पीछे होते है । इस तरह पाञ्च वर्षो के बीतने में दो मालमास (पुरुषोत्तम मास) होते हैं । उसके पश्चात् छठा वर्ष संवत्सर होता है । इस तरह अवान्तर भेद से संवत्सर आदि पाँचों होते हैं ॥७॥

एवं चन्द्रमा अर्कगभस्तिभ्यः उपरिष्टाल्लक्षयोजनत उपलभ्यमानोऽर्कस्य संवत्सरभुक्तिं पक्षाभ्यां मासभुक्तिं सपादर्क्षाभ्यां दिनेनैव पक्षभुक्तिमग्रचारी द्रुततरगमनो भुङ्क्ते ॥८॥

अनुवाद— इसी तरह सूर्य की किरणों से एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमा है । चन्द्रमा की चाल बतलाते हैं । इसी लिए वह सभी नक्षत्रों से आगे रहता है यह सूर्य के एक वर्ष के मार्ग को एक मास में एक मास के मार्ग को सवा दो दिन में औरएक पक्ष के मार्ग को एक दिन में भोग कर लेता है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

सोमादीनामपि स्थानं कार्यं चाह-एवं चन्द्रमा इति । अर्कगभस्तिभ्यो मण्डलरूपेभ्यः । सपादर्क्षाभ्यां सपाददिनद्वयेन॥८॥

भाव प्रकाशिका

सोम इत्यादि ग्रहों के भी स्थान कार्य को एवं चन्द्रमा इत्यादि से बतलाते हैं । मण्डल रूप सूर्य की किरणों से चन्द्रमा एक लाख योजन ऊपर है । वह सूर्य के एक मास के मार्ग का भोग सवा दो दिन में कर लेता है॥८॥

अथ चापूर्यमाणाभिश्च कलाभिरमराणां क्षीयमाणाभिश्च कलाभिः पितृणामहोरात्राणि पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यां वितन्वानः सर्वजीवनिवहप्राणो जीवश्चैकमेकं नक्षत्रं त्रिंशता मुहूर्तैर्भुङ्क्ते ॥९॥

अनुवाद— यह कृष्ण पक्ष में क्षीण होती हुई कलाओं से पितृगण के और शुक्ल पक्ष में बढ़ती हुई कलाओं से देवताओं के दिन-रात का विभाग करता है । चन्द्रमा तीस मुहूर्तों में एक-एक नक्षत्र को पार कर जाते हैं । अन्नमय और अमृतमय होने के कारण यह सभी जीवों का प्राण है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

सर्वेषां जीवनिवहानां प्राणः अन्नमयत्वादमृतमयत्वाच्च । अतएव जीवनहेतुत्वाज्जीवश्च ॥९॥

भाव प्रकाशिका

चन्द्रमा सम्पूर्ण जीव समूह का अन्नमय और अमृतमय होने के कारण प्राण हैं । अतएव जीवन का कारणहोने के कारण जीव भी है ॥९॥

य एष षोडशकलः पुरुषो भगवान्मनोमयोऽन्नमयोऽमृतमयो देवपितृमनुष्यभूतपशुपक्षिसरीसृपवीरुधां प्राणाप्यायनशीलत्वात्सर्वमय इति वर्णयन्ति ॥१०॥

अनुवाद— सोलह कलाओं से युक्त ये जो मनोमय अन्नमय अमृतमय पुरुष स्वरूप भगवान् चन्द्रमा हैं ये ही देवता, पितर, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सरीसृप, और वृक्षादि समस्त प्राणियों के प्राणों का पोषण करते हैं। इसीलिए इनको सर्वमय कहा जाता है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह- य एष इति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही प्रतिपादन इस दशवें दण्डक में किया गया है ॥१०॥

तत उपरिष्टात्त्रिलक्षयोजनतो नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैव कालायन ईश्वरयोजितानि सहाभिजिताऽष्टाविंशतिः॥११॥

अनुवाद— चन्द्रमा से तीन लाख योजन ऊपर अभिजित् को मिलाकर अठाइस नक्षत्र हैं । परमात्मा ने कालचक्र में इन सबों को भी नियुक्त कर दिया । अतएव ये मेरु को दायीं ओर रखकर घूमते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

दक्षिणेनैव नतु तेषां पृथगन्या गतिरस्तीत्यर्थः । कालायने कालचक्रे । उत्तराषाढाश्रवणसन्धावभिजिन्नक्षत्रं फलविशेषेण पृथक्कल्पितं तेन सह । तथाच श्रुतिः- 'अभिजिन्नाम नक्षत्रमुपरिष्टादाषाढानामधस्ताच्छ्रोणायाः' इति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

उन सबों की गति भिन्न नहीं है । कालचक्र में जब-जब उत्तराषाढा और श्रवण नक्षत्र की सन्धि होती है तो अभिजित् नक्षत्र उसके साथ फलरूप से कल्पित है । श्रुति भी कहती है अभिजित् नामक नक्षत्र उत्तराषाढा के पश्चात् और श्रवण नक्षत्र से पहले होता है ॥११॥

तत उपरिष्टादुशना द्विलक्षयोजनत उपलभ्यते पुरतः पश्चात्सहैव वाऽर्कस्य शैघ्र्यमान्द्यसाम्याभिर्गतिभिरर्कवच्चरति लोकानां नित्यदाऽनुकूल एव प्रायेण वर्षयंश्चारेणानुमीयते सवृष्टिविष्टम्भग्रहोपशमनः॥१२॥

अनुवाद— इन नक्षत्रों से दो लाख योजन ऊपर शुक्र दिखाई देता है । यह सूर्य को शीघ्र मन्द और समगतियों के अनुसार उन्हीं के समान कभी आगे और कभी पीछे और कभी साथ-साथ रहकर चलता है । यह वर्षा करने वाला ग्रह है । अतएव यह सदैव लोकों के अनुकूल ही रहता है । इसकी गति से अनुमान किया जाता है कि यह वर्षा को रोकने वाले ग्रहों को शान्त कर देने वाला ग्रह है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

पुरतः सूर्येण भोक्ष्यमाणे नक्षत्रे । पश्चाद्भुक्ते । सहैव भुज्यमाने चारेण क्रमस्थनक्षत्राद्यतिक्रमेण । वृष्टेर्विष्टम्भः स्तम्भनं यस्माद्ग्रहात्तमुपशमयतीति तथा ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

आगे सूर्य के द्वारा भोगे जाने वाले नक्षत्र होने पर बाद में भोग करता है। चार के द्वारा साथ ही भोगे जाने पर क्रमस्थ नक्षत्र आदि का अतिक्रमण कर जाता है। जिस ग्रह के द्वारा वृष्टि रोकी जाती है उसको शान्त कर देता है ॥१२॥

उशनसा बुधो व्याख्यातस्तत उपरिष्टाद्विलक्षयोजनतो बुधः सोमसुत उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृद्यदार्काद्व्यतिरिच्येत तदातिवाताभ्रप्रायानावृष्ट्यादिभयमाशंसते ॥१३॥

अनुवाद— शुक्र की गति के साथ ही बुध की भी व्याख्या हो गयी। अर्थात् शुक्र के ही समान बुध की भी गति समझनी चाहिए। बुध, चन्द्रमा का पुत्र है और शुक्र से दो लाख योजन ऊपर है। यह प्रायः मङ्गलकारी है किन्तु जब सूर्य की गति का उल्लंघन करते चलता है तब वह बहुत अधिक आंधी, बादल और सूखे की सूचना देता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

बुधो व्याख्यातः पुरतः पश्चात्सहैव वा चरतीति किंचिद्विशेषं चाह-तत इत्यादिना आशंसते सूचयति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

शुक्र से ही बुध की गति की व्याख्या हो गयी। वह शुक्र के साथ या आगे या पीछे चलता है। **ततः इत्यादि** के द्वारा कुछ विशेषता बतलाते हैं। जब बुध सूर्य का उल्लंघन करके चलता है तो वह आंधी, मेघ और सूखे की सूचना देता है ॥१३॥

अत ऊर्ध्वमङ्गारकोऽपि योजनलक्षद्वितय उपलभ्यमानस्त्रिभिस्त्रिभिः पक्षैरेकैकशो राशीन् द्वादशानुभुङ्क्ते यदि न वक्रेणाभिवर्तते प्रायेणाशुभग्रहोऽघशंसः ॥१४॥

अनुवाद— बुध के दो लाख योजन ऊपर मङ्गल ग्रह है। यदि वह वक्री न हो तो एक-एक राशि को तीन-तीन पक्ष में भोगता हुआ बारह राशियों को पार करता है। यह अशुभ ग्रह है और प्रायः अमङ्गल का सूचक है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अघशंसो दुःखसूचकः। यदि न वक्रेणाभिवर्तते तर्हि त्रिभिस्त्रिभिः पक्षैः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अघशंसः अर्थात् दुःख का सूचक यदि वक्री न हो तो मङ्गल ग्रह एक राशि को तीन-तीन पक्ष में पार करता है ॥१४॥

तत उपरिष्टाद्द्विलक्षयोजनान्तरगतो भगवान्बृहस्पतिरेकैकस्मिन् राशौ परिवत्सरं परिवत्सरं चरति यदि न वक्रः स्यात्प्रायेणानुकूलो ब्राह्मणकुलस्य ॥१५॥

अनुवाद— मङ्गल के दो लाख योजन की दूरी पर भगवान् बृहस्पति हैं। यदि ये वक्र गति से न चलें तो एक-एक राशि को एक-एक वर्ष में भोगते हैं। ये ब्राह्मण वंश के लिए प्रायः अनुकूल रहते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

यदि न वक्रः स्यात्तर्हि परिवत्सरम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

यदि ये वक्री न रहें तो प्रत्येक वर्ष में एक राशि को भोगते हैं ॥१५॥

तत उपरिष्टाद्योजनलक्षद्वयात्प्रतीयमानः शनैश्चर एकैकस्मिन् राशौ त्रिंशन्मासान्विलम्बमानः सर्वानेवानुपर्येति तावद्भिरनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषामशान्तिकरः ॥१६॥

अनुवाद— बृहस्पति से दो लाख योजन ऊपर शनैश्चर प्रतीत होते हैं । वे एक-एक राशि पर तीन मासों तक रहा करते हैं । इनको सभी राशियों को पार करने में तीस वर्ष लग जाते हैं । ये प्राय: सबों के लिए अशान्ति कारक हैं ॥१६॥

तत उत्तरस्मादृषय एकादशलक्षयोजनान्तर उपलभ्यन्ते य एव लोकानां शमनुभावयन्तो भगवतो विष्णोर्यत्परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति ॥१७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे ज्योतिश्चक्रवर्णने नाम द्वाविंशोऽध्याय: ॥२२॥

अनुवाद— शनैश्चर के ऊपर ग्यारह लाख योजन की दूरी पर कश्यप आदि सप्तर्षिगण दिखते हैं । ये सभी लोकों की मङ्गल कामना करते हुए भगवान् विष्णु के परम पद ध्रुवलोक की प्रदक्षिणा करते रहते हैं ॥१७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवेंस्कन्ध की भावार्थ दीपिका का नाम टीका के बाइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका नामक व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२२।।

तेइसवाँ अध्याय

शिशुमार चक्र का वर्णन

श्रीशुक उवाच

अथ तस्मात्परतस्त्रयोदशलक्षयोजनान्तरतो यत्तद्विष्णोः परमं पदमभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतो ध्रुव औत्तानपादिरग्निनेन्द्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीमपि कल्पजीविनामाजीव्य उपास्ते तस्येहानुभाव उपवर्णितः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! सप्तर्षियों से तेरह लाख योजन ऊपर ध्रुव लोक है । उसी को भगवान् विष्णु का परम पद कहते हैं । यहा उत्तानपाद के पुत्र महाभागवत ध्रुवजी रहते हैं । अग्नि, इन्द्र सभी प्रजापति, कश्यप और धर्म सभी एक साथ इनकी अत्यन्त समादर पूर्वक इनकी प्रदक्षिणा किया करते हैं । इस समय भी कल्प पर्यन्त रहने वाले लोक इनके ही आधार पर स्थित हैं । इनके इस लोक का प्रभाव पीछे चौथे स्कन्ध में वर्णन किया जा चुका है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोविंशे ध्रुवस्थानं ज्योतिश्चक्राश्रयं ततः । शिशुमारस्वरूपेण हरेश्च स्थितिरुच्यते । यत्तत्प्रसिद्धं विष्णोः पदम् । यत्र ध्रुव उपास्ते तिष्ठतीत्यन्वयः । समकालमेव युज्यन्त इति तथा तैर्नक्षत्ररूपैः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

तेइसवें अध्याय में ज्योतिश्चक्र के आश्रय ध्रुव स्थान का वर्णन किया गया है । शिशुमार के रूप में श्रीहरि की स्थिति भी इसी अध्याय में बतलायी गयी है ।

भगवान् विष्णु का जो वह परम पद है उसमें ध्रुवजी का निवास है । धर्म आदि एक ही साथ उन नक्षत्रों से मिल जाते हैं ।।१।।

स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्रादीनामनिमिषेणाव्यक्तरंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुरिवावष्टम्भ ईश्वरेण विहितः शश्वदवभासते ।।२।।

अनुवाद— सदा जागते रहने वाले अव्यक्त गति भगवान् काल के द्वारा जो ग्रह नक्षत्र आदि जो ग्रह नक्षत्र आदि ज्योतिर्गण निरन्तर घुमाये जाते हैं श्रीभगवान् ने उनके आधार रूप से ध्रुवलोक को ही विहित किया है । इसीलिए ध्रुवलोक एक ही स्थान पर रहकर सदैव प्रकाशित होता है ।।२।।

यथा मेढीस्तम्भ आक्रमणपशवः संयोजितास्त्रिभिस्त्रिभिः सवनैर्यथास्थानं मण्डलानि चरन्त्येवं भगणा ग्रहादय एतस्मिन्नन्तर्बहिर्योगेन कालचक्र आयोजिता ध्रुवमेवावलम्ब्य वायुनोदीर्यमाणा आकल्पान्तं परिचंक्रमन्ति नभसि यथा मेघाः श्येनादयो वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते एवं ज्योतिर्गणाः प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीताः कर्मनिर्मितगतयो भुवि न पतन्ति ।।३।।

अनुवाद— जैसे दँवरी के समय अनाज को बाहर करने वाले बैल रस्सियों में बँधकर क्रमशः निकट दूर और मध्य में रहकरी खम्भे के चारो ओर मण्डल बाँधकर घूमते रहते हैं उसी तरह सम्पूर्ण नक्षत्र तथा ग्रह भी भीतर और बाहर रहकर कालचक्र में नियुक्त होकर ध्रुवलोक का ही आश्रय लेकर वायु की प्रेरणा से कल्पान्त पर्यन्त घूमते रहते हैं । जिस तरह मेघ तथा बाज पक्षी आदि अपने कर्मों की सहायता से वायु के अधीन रहकर आकाश में उड़ते रहते हैं, उसी तरह ये ज्योतिर्गण भी प्रकृति और पुरुष के संयोग के द्वारा अनुगृहीत होकर अपने-अपने कर्मों को अनुसार चक्कर काटते रहते है । वे पृथिवी पर नहीं गिरते हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

मेढीस्तम्भे बद्धा धान्याक्रमणपशवो बलीवर्दाः । कर्म सारथिः सहायो येषाम् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

जैसे दँवरी के समय डाँठ से अन्न निकालने वाले पशु मेढ़ी स्तम्भ के चारो ओर घूमते रहते हैं उसी तरह अपने कर्म के अधीन रहकर ध्रुवलोक के चारो ओर चक्कर काटते रहते हैं और पृथिवीपर नहीं गिरते हैं ।।३।।

केचनैतज्ज्योतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयन्ति ।।४।।

अनुवाद— कुछ विद्वान श्रीभगवान् की योगमाया के आधार पर स्थित इस जयोतिष चक्र का शिशुमार (सूंस) के रूप में वर्णन करते हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

ईश्वराधारत्वात्पतनशङ्कैव नास्तीति वक्तुं मतान्तरमाह-केचनेति। ज्योतिरनीकं ज्योतिश्चक्रम्। योगधारणायां स्थितमिति शेषः।।४।।

भाव प्रकाशिका

ईश्वर के आधार पर स्थित होने के कारण इन सबों के गिरने की शङ्का ही नहीं है; इस बात को कहने के लिए दूसरे मत को बतलाते हैं कुछ लोगों का कहना है कि यह ज्योतिश्चक्र योगधारणा पर स्थित है ॥४॥

यस्य पुच्छाग्रेऽवाक्शिरस; कुण्डलीभूतदेहस्य ध्रुव उपकल्पितस्तस्य लाङ्गूले प्रजापतिरग्निरिन्द्रो धर्म इति पुच्छमूले धाता विधाता च कट्यां सप्तर्षयस्तस्य दक्षिणावर्तकुण्डलीभूतशरीरस्य यान्युदगयनानि दक्षिणपार्श्वे तु नक्षत्राण्युपकल्पयन्ति दक्षिणायनानि तु सव्ये यथा शिशुमारस्य कुण्डलाभोगसन्निवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरप्यवयवाः समसंख्या भवन्ति पृष्ठे त्वजवीथी आकाशगङ्गा चोदरतः ॥५॥

अनुवाद— यह शिशुमार कुण्डलाकृति होकर स्थित है। इसका मुख नीचे की ओरहै। इसके पूंछ के अग्रभाग में ध्रुव स्थित हैं। पूँछ के मध्य में प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म स्थित हैं। पूंछ की जड़ में धाता एवं विधाता हैं। इसके कटि प्रदेश में सप्तर्षि हैं। यह शिशुमार दायीं ओर अपने शरीर को सिकोड़कर कुण्डली मारे बैठा है। अतएव अभिजित् से लेकर पुनर्वसु पर्यन्त जो उत्तरायण के चौदह नक्षत्र हैं वे इस शिशुमार की दायीं ओर हैं तथा पुष्य से लेकर उत्तराषाढा पर्यन्त जो दक्षिणायन के चौदह नक्षत्र हैं वे बाँये भाग में स्थित हैं। लोक में भी देखा जाता है कि जब शिशुमार कुण्डला कृति होता है तो उसके दोनों पार्श्वों के अङ्गों की संख्या समान होती है। इसी तरह इसके दोनों पार्श्वों के नक्षत्रों की संख्या एक समान है। इसके पीठ में अजवीथी (मूल पूर्वाषाढ एवं उत्तराषाढ) तीन नक्षत्र हैं। इसके उदर में आकाश गङ्गा हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

लाङ्गूले अग्रादघोभागे। उदगयनान्यभिजिदादीनि पुनर्वस्वन्तानि चतुर्दश दक्षिणपार्श्वे। दक्षिणायनानि पुष्यादीन्युत्तराषाढान्तानि चतुर्दशं वामपार्श्वे ॥५॥

भाव प्रकाशिका

लाङ्गूले अर्थात् आगे से नीच के भाग में। उत्तरायण के अभिजित से लेकर पुनर्वसु पर्यन्त चौदह नक्षत्र दायें पार्श्व में है। तथा दक्षिणायन के पुष्य से लेकर उत्तराषाढा पर्यन्त के चौदह नक्षत्र बायें पार्श्व में हैं ॥५॥

पुनर्वसुपुष्यौ दक्षिणवामयोः श्रोण्योरार्द्राश्लेषे च दक्षिणवामयोः पश्चिमयोः पादयोरभिजिदुत्तराषाढे दक्षिणवामयोर्नासिकयोर्यथासंख्यं श्रवणपूर्वाषाढे दक्षिणवामयोर्लोचनयोर्धनिष्ठा मूलं च दक्षिणवामयोः कर्णयोर्मघादीन्यष्ट नक्षत्राणि दक्षिणायनानि वामपार्श्ववंक्रिषु युञ्जीत तथैव मृगशीर्षादीन्युदगयनानि दक्षिणपार्श्ववंक्रिषु प्रातिलोम्येन प्रयुञ्जीत शतभिषाज्येष्ठे स्कन्धयोर्दक्षिणवामयोर्न्यसेत् ॥६॥

अनुवाद— इस शिशुमार के दाहिने और बायें कटि प्रदेशों में क्रमशः पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र हैं, पीछे के दाहिने और बायें चरणों में आर्द्रा और आश्लेषा नक्षत्र हैं। इसके दायें और बायें नथुनों में क्रमशः अभिजित् और उत्तराषाढा हैं। इसके दायें और बायें नेत्रों में श्रवण और पूर्वाषाढा नक्षत्र हैं। दायें और बायें कानों में धनिष्ठा और मूल नक्षत्र हैं। मघा आदि दक्षिणायन के आठ नक्षत्र इसकी बायीं पसलियों में हैं और इसके विपरीत क्रम से मृगशिरा आदि उत्तरायण के आठ नक्षत्र इसकी दायीं पसलियों में हैं। इसके दायें ओर बायें कन्धों पर क्रमशः शतभिषा और ज्येष्ठा नक्षत्र हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

तदेव स्थानविशेषेण विभज्य दर्शयति–पुनर्वसुपुष्यावित्यादिना। पुनर्वसुरुदगयनान्त्यं नक्षत्रम्। पुष्यो दक्षिणायनस्याद्यम्।

आर्द्राश्लेषे तयोर्निरन्तरे अभिजिदुत्तराषाढे उत्तरदक्षिणायनयोराद्यन्तनक्षत्रे । श्रवणपूर्वाषाढे तयोरुत्तरपूर्वे । धनिष्ठामूलं च तयोरप्युत्तरपूर्वे। मघादीनि यान्यनुराधान्तानि दक्षिणायनान्यष्ट तानि वामपार्श्ववंक्रिषु वामपार्श्वास्थिषु । मृगशीर्षादीनि प्रातिलोम्येन पूर्वाभाद्रपदान्तानि यान्युदगयननक्षत्राण्यष्ट तानि दक्षिणपार्श्ववंक्रिषु शतभिषाज्येष्ठे उत्तरदक्षिणायनयोर्येऽवशिष्टे ते स्कन्धयोः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बातों का स्थान विशेष विभाग करके बतलाते हैं । उत्तरायण का अन्तिम नक्षत्र पुनर्वसु है और दक्षिणायन का प्रथम नक्षत्र पुष्य है । शिशुमार के अन्तिम चरणों में क्रमशः आर्द्रा और आश्लेषा नक्षत्र हैं । अभिजित् तथा उत्तराषाढा उत्तरायण और दक्षिणायन के क्रमशः आदि और अन्तिम नक्षत्र हैं । श्रवण और पूर्वाषाढा उन दोनों के उत्तर और पूर्व में हैं । धनिष्ठा और मूल उन दोनों के भी उत्तर और पूर्व में है । मघा से लेकर अनुराधा पर्यन्त जो दक्षिणायन के आठ नक्षत्र है वे बायीं बगल के पसलियों के अस्थियों में हैं । मृगशिरा से लेकर उलटा पूर्वाभाद्रपद पर्यन्त उत्तरायण के जो आठ नक्षत्र हैं वे दाहिनी पसलियों में हैं । बचे हुए शतभिषा और ज्येष्ठा वे क्रमशः उत्तरायण और दक्षिणायन के कन्धे में हैं ।।६।।

उत्तराहनावगस्तिरधराहनौ यमो मुखेषु चाङ्गरकः शनैश्चर उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षस्यादित्यो हृदये नारायणो मनसि चन्द्रो नाभ्यामुशना स्तनयोरश्विनौ बुधः प्राणापानयो राहुर्गले केतवः सर्वाङ्गेषु रोमसु सर्वे तारागणाः ।।७।।

अनुवाद— इसके ऊपर के थुथुन में अगस्त्य और नीचे के ठोढी में नक्षत्र रूप यम है । मुख में मङ्गल, लिङ्ग प्रदेश में शनि, ककुद में बृहस्पति, छाती में सूर्य, हृदय में नारायण मन में चन्द्रमा, नाभि में शुक्र, स्तनों में अश्विनी कुमार, प्राण तथा अपान में बुध गले में राहु सम्पूर्ण अङ्गों में केतु तथा रोमों में सम्पूर्ण तारागण हैं।।७।।

भावार्थ दीपिका

यमो नक्षत्ररूपः । तथा नारायणोऽश्विनौ च । ककुदि गलपृष्ठशृङ्गे ।।७।।

भाव प्रकाशिका

नक्षत्र रूप यम इसकी ढोढ़ी में, नारायण और दोनों अश्विनी कुमार क्रमशः हृदय और छाती में है । कुकद डीला को कहते हैं उसमें बृहस्पति हैं ।।७।।

एतदु हैव भगवतो विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपमहरहः संध्यायां प्रयतो वाग्यतो निरीक्षमाण उपतिष्ठेत नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहीति ।।८।।

अनुवाद— यह भगवान् नारायण का सर्वदेवमय स्वरूप है । प्रतिदिन सायं काल पवित्र होकर मौन होकर दर्शन करते हुए चिन्तन करना चाहिए एवं इस मन्त्र का जप करते हुए स्तुति करनी चाहिए । सम्पूर्ण ज्योतिर्गणों के आश्रय कालचक्र स्वरूप सर्वदेवाधिपति परम पुरुष परमात्मा को हम नमस्कार पूर्वक ध्यान करते हैं ।।८।।

भावार्थ दीपिका

ज्योतिषो लोकायाश्रयाय । कालायनाय कालचक्ररूपाय । 'नमोभिधीमहि' इति मन्त्रेणोपतिष्ठेत ।।८।।

भाव प्रकाशिका

ज्योति र्लोकाय का अर्थ ज्योति समूह आश्रय भूत, कालायनाय अर्थात् कालचक्र स्वरूप भगवान् विष्णु को हम नमस्कार करते हैं । इस मन्त्र से स्तुति करनी चाहिए ।।८।।

ग्रहर्क्षताराममयमाधिदैविकं पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालम् ।
नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ॥९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे शिशुमारसंस्थानवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥२३॥

अन्वयः— ग्रहर्क्षताराममयमाधि दैविकं त्रिकालं मन्त्रकृताम् पापापहम् त्रिकालं नमस्यतं स्मरतः वा तत्कालज पापं आशु नश्येत् ॥९॥

अनुवाद— ग्रह, नक्षत्र और ताराओं के रूप में श्रीभगवान् का अधिदैविक रूप प्रकाशित हो रहा है, इस तरह जो तीनों कालों में इस मन्त्र का जप करता है अथवा जो तीनों कालों में नमस्कार करता है या स्मरण करता है उसके उस समय किए हुए पापों को परमात्मा शीघ्र ही विनष्ट कर देते हैं ॥९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के शिशुमार संस्थान वर्णन नामक तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

मन्त्रकृतां पूर्वोक्तं मन्त्रं जपताम् ॥९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चम स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त मन्त्र को जपने वाले के ॥९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के तेइसवें अध्याय का भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२३॥

चौबीसवाँ अध्याय

राहु आदि की स्थिति तथा अतल आदि नीचे के लोकों का वर्णन

श्रीशुक उवाच

अधस्तात्सवितुर्योजनायुते स्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके योऽसावमरत्वं ग्रहत्वं चालभत भगवदनुकम्पया स्वयमसुरापसदः सैंहिकेयो ह्यतदर्हः तस्य तात जन्मकर्माणि चोपरिष्टाद्वक्ष्यामः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् कुछ लोगों का कहना है कि राहु सूर्य से दस हजार योजन नीचे नक्षत्रों के ही समान घूमता है । इसने श्रीभगवान् की ही कृपा से देवत्व और ग्रहत्व को प्राप्त किया है । यह स्वयं सिंहिका का पुत्र होने के कारण अधम राक्षस है और यह इस पद के योग्य विल्कुल नहीं है । हम आगे चलकर राहु के जन्म और कर्म का वर्णन करेंगे ॥

भावार्थ दीपिका

एवं त्रिभिर्द्युमर्यादापालनं वर्णितं तथा । अधोभुवनमर्यादापालनं त्रिभिरुच्यते । चतुर्विंशे रवेरर्वाक् स्वर्भान्वादिस्थितिःक्रमात्। अतलादिबिलस्वर्गमर्यादाः सप्त वर्णिताः । सूर्यमारभ्य ध्रुवान्तं सन्निवेशं निरूप्येदानीं सूर्यादधस्तान्निरूपयति–अधस्तादिति । स्वर्भानू राहुः । अलभत लेभे सिंहिकायाः पुत्रः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह तीन अध्यायों के द्वारा द्युलोक की मर्यादा औरउसके पालन का वर्णन किया जा चुका है । अब नीचे के लोकों की मर्यादा और पालन का वर्णन तीन अध्यायों के द्वारा किया जाता है । चौबीसवें अध्याय में सूर्य से पहले राहु आदि की स्थिति क्रमशः बतलायी जा रही है अतल आदि पाताल रूपी सात स्वर्गों की मर्यादा भी इस अध्याय में बतलायी जा रही है । सूर्य से लेकर ध्रुव पर्यन्त की व्यवस्थाओं का वर्णन करके अब सूर्य से नीचे की स्थिति का वर्णन करते हैं । स्वर्भानु राहु का नाम है यह सिंहिका का पुत्र है ॥१॥

यददस्तरणेर्मण्डलं प्रतपतस्तद्विस्तरतो योजनायुतमाचक्षते द्वादशसहस्रं सोमस्य त्रयोदशसहस्रं राहोर्यः पर्वणि तद्व्यवधानकृद्वैरानुबन्धः सूर्याचन्द्रमसावभिधावति ॥२॥

अनुवाद— सूर्यदेव का जो अत्यन्त तपता हुआ मण्डल है उसका विस्तार दस हजार योजन बतलाया गया है । चन्द्र मण्डल का विस्तार बारह हजार योजन हैं । राहु का विस्तार तेरह हजार योजन है । अमृत पान के अवसर राहु देवता का वेष बनाकर सूर्य और चन्द्रमा के बीच में आकर बैठ गया । उस समय सूर्य चन्द्रमा ने इसक भेद को बतला दिया था । उस बैर को याद करके यह आमवस्या और पूर्णिमा के दिन उन पर आक्रमण करता है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

ग्रहणं वक्तुमाह । यददः प्रतपतस्तरणेर्मण्डलम् । अमृतपाने मध्यप्रवेशेन तयोर्व्यवधानं करोतीति तथा । अत एवैताभ्यां सूचितत्वाद्वैरमनुबध्नातीति तथा ॥२॥

भाव प्रकाशिका

ग्रहण का वर्णन करने के लिए शुकदेवजी कहते हैं आकाश में जो सूर्य मण्डल तपता है । अमृत पान के अवसर पर सूर्य और चन्द्रमा के बीच में बैठने के कारण सूर्य और चन्द्रमा ने इसको राक्षस है यह बतला दिया इसीलिए यह सूर्य और चन्द्रमा से वैर करता है ॥२॥

तन्निशम्योभयत्रापि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं नाम भागवतं दयितमस्त्रं तत्तेजसा दुर्विषहं मुहुः परिवर्तमानमभ्यवस्थितो मुहूर्तमुद्विजमानश्चकितहृदय आरादेव निवर्तते तदुपरागमिति वदन्ति लोकाः॥३॥

अनुवाद— इस बात को सुनकर श्रीभगवान् ने सूर्य और चन्द्रमा के पास अपने प्रिय अस्त्र सुदर्शन चक्र को नियुक्त कर दिया है । वह सदैव घूमता रहता है । चक्र के असह्य तेज के कारण राहु सूर्य और चन्द्रमा के समक्ष उद्विग्न और आश्चर्यित होकर मुहूर्त मात्र टिकता है उसके पश्चात् वह लौट आता है उसके उतनी देर तक ठहरने को ही लोग ग्रहण कहते हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

भागवतं चक्रं परिवर्तमानं परिभ्रमद्भि अभिमुखं मुहूर्तमवस्थितः सन् । इत्येवमन्तरा तदवस्थानमुपरागं ग्रहणं वदन्ति। तत्र च ऋजुवक्रस्थितिभ्यां सर्वग्रासासर्वग्रासौ, नतु वस्तुतो ग्रासोऽस्ति दूरान्तरत्वात् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के घूमते हुए चक्र को देखकर वह सूर्य और चन्द्रमा के सामने एक मुहूर्त से अधिक न ठहर कर लौट आता है । इतने देर तक उसके ठहरने को लोग उपराग (ग्रहण) कहते है । राहू जब सीधे खड़ा रहता है तो उसे सर्वग्रास कहते हैं । और जब वह तिरछा रहता है तो उसे असर्व ग्रास कहते हैं । वस्तुतः वह ग्रास नहीं है क्योंकि राहू सूर्य और चन्द्रमा से चक्र के डर के मारे दूर ही रहता है ॥३॥

ततोऽधस्तात्सिद्धचारणविद्याधराणां सदनानि तावन्मात्र एव ॥४॥

अनुवाद— राहु से दस हजार योजन नीचे सिद्धों, चारणों और विद्याधरों का निवास स्थान हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तावन्मात्रे योजनायुते ॥४॥

भाव प्रकाशिका

तावन्मात्रे अर्थात् दस हजार योजन नीचे की ओर ॥४॥

ततोऽधस्ताद्यक्षरक्षःपिशाचप्रेतभूतगणानां विहाराजिरमन्तरिक्षं यावद्वायुः प्रवाति यावन्मेघा उपलभ्यन्ते॥५॥

अनुवाद— उन सबों से नीचे जहाँ तक वायु की गति हैं तथा मेघ दिखाई देते हैं, अन्तरिक्ष लोक है यह यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत तथा प्रेतों का विहार स्थान हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अन्तरिक्षं ग्रहहीनम् । तस्यावधिमाह । यावद्वायुः प्रवाति । तस्याप्यवधिमाह । यावन्मेघाः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अन्तरिक्ष में ग्रह नहीं रहते हैं । जहाँ तक वायु गति है, वहीं तक अन्तरिक्ष है उसकी सीमा बतलाया गया है कि जहाँ तक मेघ दिखाई देते हैं ॥५॥

ततोऽधस्ताच्छतयोजनान्तर इयं पृथिवी यावद्धंसभासश्येनसुपर्णादयः पतत्रिप्रवरा उत्पतन्तीति ॥६॥

अनुवाद— उसके सौ योजन की दूरी तक यह पृथिवी है जहाँ तक हंस, गिद्ध बाज और गरुड आदि प्रधान-प्रधान पक्षी उड़ सकते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

पृथिव्या उपरि भूर्लोकावधिमाह । यावद्धंसादयः पार्थिवा विकाराः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी के ऊपर भूर्लोक की सीमा को बतलाते हैं जहाँ तक हंस आदि पार्थिव पक्षी उड़ सकते हैं ॥६॥

उपवर्णितं भूमेर्यथासन्निवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात्सप्तभूविवरा एकैकशो योजनायुतान्तरेणायामविस्तारेणोपक्लृप्ताः अतलं वितलं सुतलं तलातलं महातलं रसातलं पातालमिति ॥७॥

अनुवाद— पृथिवी के विस्तार और स्थिति आदि का वर्णन हो चुका है इसके भी नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, और पाताल नामक सात भूविवर (पृथिवी के नीचे स्थित लोक) हैं । ये एक के नीचे एक दस-दस हजार योजन की दूरी पर स्थित हैं । इनमें से प्रत्येक की लम्बाई चौड़ाई भी दश-दश हजार योजन है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

योजनायुतान्तरेण प्रत्येकमुच्छ्रिताः । आयामो यः कटाहस्य तावद्विस्तारेण ॥७॥

भाव प्रकाशिका

प्रत्येक दश-दश हजार योजन ऊँचा है । इन सबों का विस्तार उतना ही है जितना अण्ड कटाह का विस्तार है ॥७॥

एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गादप्यधिककामभोगैश्वर्यानन्दविभूतिभिः सुसमृद्धभवनोद्यानाक्रीडविहारेषु दैत्यदानवकाद्रवेया नित्यप्रमुदितानुरक्तकलत्रापत्यबन्धुसुहृदनुचरा गृहपतय ईश्वरादप्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा निवसन्ति ॥८॥

अनुवाद— ये भूमि के बिल भी स्वर्ग ही हैं। इनमें स्वर्ग से भी अधिक विषयभोग, ऐश्वर्य, आनन्द, सन्तान सुख, और धन सम्पत्ति है। यहाँ के वैभव पूर्ण भवन, उद्यान और क्रीडा स्थलों में दैत्य, दानव और नाग तरह-तरह की क्रीडा करते हुए निवास करते हैं। वे सब गार्हस्थ्यधर्म का पालन करने वाले हैं। उनके स्त्री, पुत्र, बन्धु, बान्धव और सेवक उनसे सदा प्रेम करते हैं और सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। उनके भोगों में बाधा डालने की इन्द्रिादि में भी शक्ति नहीं है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

सामान्येन विवराणि वर्णयति-एतेष्वित्यादिना अथातल इत्यतः प्राक्तनेन ग्रन्थेन। एतेषु दैत्यादयो निवसन्तीत्यन्वयः। कथंभूतेषु। अधिकः कामभोगश्च ऐश्वर्यानन्दश्च विभूतिश्च संपत्तिस्तैः सुसमृद्धा भवनादयो येषु। कथंभूताः नित्यप्रमुदिता अनुरक्ताः कलत्रादयो येषाम्। न प्रतिहतः कामो येषाम्। मायया विनोदो येषाम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

एतेषु इत्यादि दण्डक के द्वारा **अक्षातलः** इससे पहले के ग्रन्थ के द्वारा इन भूविवरों का सामान्य रूप से वर्णन करते हैं। इन पातालों में दैत्य इत्यादि निवास करते हैं। प्रश्न है कि ये पाताल कैसे हैं जिनमें दैत्यों और दानवों आदि का निवास है ? तो इसका उत्तर है कि इन पातालों में स्वर्ग की अपेक्षा अधिक काम भोग, आनन्द तथा सम्पत्ति आदि हैं। इन सबों से वहाँ के भवन आदि अत्यन्त समृद्ध हैं। वे कैसे दैत्य आदि हैं ? तो इसका उत्तर हैं कि उनके पत्नी आदि सदैव उनसे प्रेम करती हैं उन सबों की कामनाएँ कभी बाधित नहीं होती। वे माया के द्वारा विनोद (मनोरञ्जन) करते हैं ॥८॥

येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरो नानामणिप्रवरप्रवेकविरचितविचित्रभवनप्रकारगोपुरसभाचैत्यचत्वरायतनादिभिर्नागासुरमिथुनपारावतशुकसारिकाकीर्णकृत्रिमभूमिभिर्विवरेश्वरगृहोत्तमैः समलंकृताश्चकासति ॥९॥

अनुवाद— महाराज उन बिलों में मायावी मयदानव की बनायी हुई अनेक पुरियाँ शोभा से जगमगा रही हैं। जो उनके जाति के सुन्दर श्रेष्ठ मणियों से रचे हुए चित्र विचित्र भवन परकोटे नगर द्वार सभा भवन मन्दिर बड़े-बडे आँगन और गृहों से सुशोभित हैं तथा जिनकी कृत्रिम भूमियों पर नाग तथा असुरों के जोड़े एवं कबुतर तोता और मैना आदि पक्षी विचरते हैं। ऐसे पातालधिपतियों के भव्य भवन उन पुरियों की शोभा बढ़ाते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

किंच हे महाराज, येषु मयेन निर्मिताः पुरश्च चकासतीत्यः। कथंभूताः। नाना ये मणिप्रवरास्तेषां प्रवेका मुख्यास्तैर्विरचितैर्विचित्रैर्भवनादिभिस्तथा विवरेश्वराणां गृहोत्तमैश्च समलंकृताः। कीदृशैर्गृहोत्तमैः। नागाश्चासुराश्च मिथुनभूताः पारावतादयश्च तैराकीर्णाः कृत्रिमा भूमयो येषु तैः। पाठान्तरे नानास्वनत्वं मिथुनविशेषणम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

और हे महाराज जिन भूविरों में मय के द्वारा निर्मित पुरियाँ जगमगा रही हैं। प्रश्न है कि कैसी पुरियाँ? तो इसका उत्तर है कि अनेक प्रकार की श्रेष्ठ मणियों से निर्मित अद्भुत भवनों आदि से तथा पतालाधिपतियों के

उत्तम गृहों से वे पुरियाँ सुशोभित हैं । नागों तथा असुरों के जोड़े तथा कबुत्तरो आदि से जिन सबों की कृत्रिम भूमि भरी रहती हैं उन सबों से सुशोभित है । जहाँ पाठान्तर है वहाँ नानास्वनत्वं मिथुन का विशेष होगा ॥९॥

उद्यानानि चातितरां मनइन्द्रियानन्दिभिः कुसुमफलस्तबकसुभगकिसलयावनतरुचिरविटविटपिनां लताङ्गालिङ्गितानां श्रीभिः समिथुनविविधविहङ्गमजलाशयानाममलजलपूर्णानां झषकुलोल्लङ्घनक्षुभितनीरनीरजकुमुदकुवलयकह्लारनीलोत्पललोहितशतपत्रादिवनेषु कृतनिकेतनानामेकविहाराकुलमधुरविविधस्वनादिभिरिन्द्रयोत्सवैरमरलोकश्रियमतिशयितानि ॥१०॥

अनुवाद— वहाँ के उद्यान भी अपने सौन्दर्य से देवलोक के उद्यानों की शोभा को मात करते हैं । उनमें ऐसे अनेक वृक्ष है जिनकी मनोहर डालियाँ फल-फूलों के गुच्छों और कोमल कोपलों के भार से झुकी रहती हैं तथा जिन्हे विभिन्न प्रकार की लताएँ अपने अङ्गों से आलिङ्गित की हैं । वहाँ के निर्मल जल से भरे जलाशयों में अनेक प्रकार के पक्षियों के जोड़े विलास करते हैं । इन वृक्षों और जलाशयों की सुषमा से वे उद्यान उत्यधिक सुशोभित हैं । उन जलाशयों क्रीडारत मछलियाँ उछलती हैं तो उनका जल आन्दोलित हो उठता है और उसके साथ ही उनमें विकसित कमल, कुमद, कुवलय कह्लार, नीलकमल लालकमल तथा शतदल कमल के समुदाय आदि भी हिलने लगते हैं । इन कमल बनों में रहने वालें पक्षी सतत क्रीडा कौतुक करते हुए मधुर ध्वनि करते हैं । उसे सुनकर मन और इन्द्रियाँ आह्लादित हो जाती हैं । उससे समस्त इन्द्रियाँ उत्कण्ठित हो जाती हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

उद्यानानि चातितराममरलोकश्रियमतिशयितानि येषु चकासतीत्यन्वयः । काभिः श्रीभिः । केषाम् । कुसुमफलस्तबकाश्च सुभगकिसलयानि च तैरवनता रुचिरा विटपा येषां तेषां विटपिनाम् । लतानामङ्गैरालिङ्गितानां श्रीभिः । तथा समिथुनाश्चक्रवाकादिमिथुनसहिता ये विविधा विहङ्गास्तद्युक्तानां जलाशयानां च श्रीभिः । कीदृशानाम् । अमलैर्जलैः पूर्णानाम्। पुनरपि कैरतिशयितानि । झषकुलोल्लङ्घनेन क्षुभितं यज्जलाशयानां नीरं तस्मिन्यानि नीरजादीनि तेषां वनेषु कृतं निकेतनं यैस्तेषामर्थात्पक्षिणामेकोऽखण्डो यो विहारस्तेनाकुलाश्च ते मधुराश्च विविधाः स्वनादयस्तैर्ये इन्द्रियोत्सवास्तैश्च । यद्वा समिथुनेत्यादेरुत्तरेणैव संबन्धः । मनइन्द्रियानन्दिभिरिति स्वनादीनां विशेषणम् । तत्र नीरजं सामान्येन कमलम् । लोहितं शतपत्रं तद्विशेषः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उन भूविवरों (पातालों) के उद्यान देवद्यानों से अत्यधिक शोभा सम्पन्न होने के कारण जगमगा रहे हैं । जिन सबों की किन शोभाओं से ? तो उत्तर है कि पुष्पों, फलों गुच्छों तथा कोमल पल्लवों से झुकी हुई डालियों वाले वृक्षों की शोभा से । लताओं के अङ्गों से आलिङ्गित वृक्षों की शोभा से । चकवा चकई के जोड़ों वाले अनेक प्राकार के पक्षियों से युक्त जलाशयों की शोभा से, किस प्रकार के जलाशयों से ? तो इसका उत्तर है जो स्वच्छ जलों से भरे हुए हैं । वे किससे सुशोभित है ? तो उत्तर है कि उछलती हुई मछलियों से क्षुब्ध जो जलाशयों का जल उनमें विद्यमान कमल आदि के वनों में रहने वाले के अखण्ड विहार के कारण उस कुल तथा मधुर अनेक प्रकार की ध्वनियों से होने वाली इन्द्रियों की उत्कण्ठा उससे सुशोभित अथवा मिथुन इत्यादि विविध विहङ्गम से ही सम्बन्ध है । मन इन्द्रियानन्दिभि: स्वप्न इत्यादि के विशेषण हैं । वहाँ पर नीरज शब्द सामान्य रूप से कमल का वाचक है । लोहित (लाल) शतदल इत्यादि कमल के विशेषण हैं ॥१०॥

यत्र ह वाव न भयमहोरात्रादिभिः कालविभागैरुपलक्ष्यते ॥११॥

अनुवाद— वहाँ सूर्य का प्रकाशनहीं जाने से दिन-रात आदि काल के विभाग का भी कोई भय नहीं दिखता है॥११॥

भावार्थ दीपिका

अहोरात्रादिभिर्यद्भयं तन्नोपलक्ष्यते । सूर्याद्यभावात् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

सूर्य आदि का अभाव होने के कारण वहाँ दिन तथा रात का भी जो भय नहीं दिखता है ॥११॥

यत्र हि महाहिप्रवरशिरोमणयः सर्वं तमः प्रबाधन्ते ॥१२॥

अनुवाद— वहाँ के बड़े-बड़े सर्पों के शिरो की मणियाँ सम्पूर्ण अन्धकार को दूर कर देती हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसरसायनान्नपानस्नानादिभिराधयो व्याधयो वलीपलितजरादयश्च देहवैवर्ण्यदौर्गन्ध्यस्वेदक्लमग्लानिरिति वयोवस्थाश्च न भवन्ति ॥१३॥

अनुवाद— इन लोकों में रहने वाले ओषधि, रस, रसायन, अन्न, पान और स्नान आदि का सेवन करते हैं । वे सभी पदार्थ दिव्य होते हैं । इन दिव्य वस्तुओं के सेवन से इनको मानसिक या शारीरिक रोग नहीं होते हैं । तथा झुरियाँ पड़ जाना, बालों का पकना, वार्द्धक्य का होना, शरीर का कान्ति हीन हो जाना, शरीर से दुर्गन्ध निकलना, पसीना निकलना, थकान अथवा शिथिलता आना तथा आयु के साथ शरीर की अवस्थाओं का बदलना, ये कोई विकार नहीं होते वे सदा सुन्दर, स्वस्थ, युवा और शक्ति सम्पन्न ही बने रहते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

क्लमः श्रमः । ग्लानिरनुत्साहः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

क्लम थकान को कहते हैं और ग्लानि उत्साहहीनता को ॥१३॥

न हि तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युर्विना भगवत्तेजसश्चक्रापदेशात् ॥१४॥

अनुवाद— उन पुण्य पुरुषों की भगवान् के तेजः स्वरूप चक्र के अतिरिक्त किसी दूसरे साधन से मृत्यु नही हो सकती है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

कल्याणानां मङ्गलरूपाणाम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

कल्याणानाम् अर्थात् मङ्गलस्वरूप की ॥१४॥

यस्मिन्प्रविष्टेऽसुरवधूनां प्रायः पुंसवनानि भयादेव स्रवन्ति पतन्ति च ॥१५॥

अनुवाद— उस सुदर्शन चक्र के आते ही असुर रमणियों का भय के कारण गर्भ स्राव और गर्भपात हो जाता है॥१५॥

भावार्थ दीपिका

यस्मिन् भगवत्तेजसि प्रविष्टे । पुंसवनानि गर्भाः 'आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः' इति स्रावपातौ ज्ञेयौ ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

जिस श्रीभगवान के तेजः स्वरूप चक्र के आते ही **पुंसवन** अर्थात् गर्भ का स्राव और पात हो जाता है।

आचतुर्थाद् भवेत् स्रावः पातः पञ्चम षष्ठयोः । इस स्मृति वाक्य के अनुसार चौथे मास तक जो गर्भपात होता है उसे गर्भस्राव कहते हैं और पाँचवें और छठे मास में होने वाले गर्भपात को गर्भपात कहते हैं ॥१५॥

अथातले मयपुत्रोऽसुरो बलो निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षण्णवतिर्मायाः काश्चनाद्यापि मायाविनो धारयन्ति यस्य च जृम्भमाणस्य मुखतस्त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिण्यः कामिन्यः पुंश्चल्य इति या वै बिलायनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा स्वविलासावलोकेनानुरागस्मितसँल्लापोपगूहनादिभिः स्वैरं किल रमयन्ति यस्मिन्नुपयुक्ते पुरुष ईश्वरोऽहं सिद्धोऽहमित्ययुतमहागजबलमात्मानमभिमन्यमानः कत्थते मदान्ध इव ॥१६॥

अनुवाद— अतल लोक में मय का पुत्र बल रहता है । उसने छियानबे प्रकार की माया की रचना की है। उनमें से कोई-कोई आज भी किसी-किसी पुरुषों में पायी जाती है । उसने एक बार जम्भाई ली थी उसके मुँह से तीन प्रकार की स्त्रियाँ उत्पन्न हुई स्वैरिणी, कामिनी और पुंश्चली । वे उसलोक में रहने वाले पुरुषों को हाटक नामकरस पिलाकर सम्भोग करने में समर्थ बना देती हैं । उसके पश्चात् वे उन पुरुषों के साथ अपनी हाव-भाव मयी देखने की कला, प्रेमपूर्ण मुस्कान और प्रेमालाप तथा आलिङ्गनादि के द्वारा यथेष्ट रमण कराती हैं । उस हाटक रस को पीकर मनुष्य मदान्ध हो जाता है और अपने को दस हजार हाथियों के समान बलवान समझकर मैं ईश्वर हूँ, मैं सिद्ध हूँ इस तरह से मानकर बढ़-चढ़कर बाते करता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

सवर्णे रताः स्वैरिण्यः । कामिन्यस्त्वसवर्णेऽपि । तत्राप्यतिचञ्चलाः पुश्चल्यः । विलायनं विलायतनम् । साधयित्वा संभोगसमर्थं कृत्वा । स्वे ये असाधारणा विलासास्तत्पूर्वकोऽवलोकस्तेनानुरागयुक्तं स्मितं तेन संल्लाप उपगूहनं च तदादिभिः। यस्मिन्हाटकाख्ये रसे उपयुक्ते सेविते ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

अपने सवर्ण पुरुषों के साथ रमण करने वाली को स्वैरिणी कहते हैं । अपने वर्ण से भिन्न वर्ण वाले पुरुष के साथ रमण करने वाली स्त्री को कामिनी कहते हैं । उससे भी अत्यधिक चञ्चल स्वभाव वाली स्त्री को पुँश्चली कहते हैं । **विलायनम्** अर्थात् अतल लोक में । **साधयित्वा** अर्थात् सम्भोग करने में समर्थ बनाकर । **स्वेये० इत्यादि** अपने असाधारण हावभाव पूर्वक देखने की कला से, उसके कारण प्रेम पूर्वक मुस्कुराकर बातें करके तथा **उपगूहन** अर्थात् आलिङ्गन आदि के द्वारा । उस हाटक नामक रस का पान करने से ॥१६॥

ततोऽधस्ताद्वितले हरो भगवान्हाटकेश्वरः स्वपार्षदभूतगणावृतः प्रजापतिसर्गोपबृंहणाय भवो भवान्या सह मिथुनीभूत आस्ते यतः प्रवृत्ता सरित्प्रवरा हाटकी नाम भवयोर्वीर्येण यत्र चित्रभानुर्मातरिश्वना समध्यिमान ओजसा पिबति तन्निष्ठँयूतं हाटकाख्यं सुवर्णं भूषणेनासुरेन्द्रावरोधेषु पुरुषाः सह पुरुषीभिर्धारयन्ति ॥१७॥

अनुवाद— उसके नीचे बितल लोक में भगवान् हाटकेश्वर नामक महादेवजी अपने पार्षद भूतगणों के साथ रहते हैं । वे ब्रह्माजी की सृष्टि के लिए भवानी के साथ विहार करते हैं । उन दोनों के तेज से वहाँ हाटकी नाम की नदी प्रवाहित होती है । उस नदी के जल को वायु से प्रज्वलित अग्नि अत्यन्त उत्साह से पीता है और वह हाटक नामक सुवर्ण को थूकता है । उस सुवर्ण से बने आभूषणों को दैत्यराजों की स्त्रियों के साथ पुरुष भी धारण करते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

भवयोर्भवस्य भवान्याश्च । चित्रभानुरग्निः । तेन निष्ठ्यूतं फूत्कृत्य त्यक्तम् । असुरेन्द्राणामवरोधेष्वन्तःपुरेषु । पुरुषीभिः स्त्रीभिः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

भवयोः अर्थात् शङ्करजी तथा भवानी के चित्रभानुः अर्थात् अग्नि । तेन निष्ठयूतमयानि थूका हुआ । असुराणा मव रोधेषु अर्थात् असुरों के अन्तःपुर में । पुरुषीभिः यानी स्त्रियों द्वारा ।।१७।।

ततोऽधस्तात्सुतल उदारश्रवाः पुण्यश्लोको विरोचनात्मजो बलिर्भगवता महेन्द्रस्य प्रियं चिकीर्षमाणेनादितेर्लब्धकायो भूत्वा बटुवामनरूपेण पराक्षिप्तलोकत्रयो भगवदनुकम्पयैव पुनः प्रवेशित इन्द्रादिष्वविद्यमानया सुसमृद्धया श्रियाभिजुष्टः स्वधर्मेणाराधयंस्तमेव भगवन्तमाराधनीयमपगतसाध्वस आस्तेऽधुनापि॥१८॥

अनुवाद— वितल लोक के नीचे सुतल लोक में महा यशस्वी पवित्र कीर्ति विरोचन के पुत्र बलि रहते हैं। श्रीभगवान् इन्द्र का उपकार करने के लिए अदिति के गर्भ से बटु ब्रह्मचारी के रूप में अवतीर्ण होकर उनसे तीनों लोक छिन लिए थे । उसके पश्चात् श्रीभगवान् की कृपा से ही बलि का इस सुतल लोक में प्रवेश हुआ । वहाँ बलि को ऐसी सम्पत्ति है कि वैसी सम्पत्ति इन्द्र के भी पास नही है । उन ऐश्वर्यों से युक्त बलि अपने धर्मानुसार पूज्यतम भगवान् वामन की ही आराधना करते हुए वहाँ आज भी निर्भय होकर रहते हैं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

सुतले बलिरधुनाप्यास्त इत्यन्वयः । कथंभूतः । महेन्द्रस्य प्रियं कर्तुमिच्छता भगवता प्रथमं पराक्षिप्तमपहृतं लोकत्रयं यस्य सः । पुनर्भगवतोऽनुकम्पयैव तत्र प्रवेशितः सन् । कीदृशेन । योऽदितेः सकाशाद्भूत्वा बटुवामनरूपेण लब्धकायस्तेन।।१८।।

भाव प्रकाशिका

सुतल लोक में बलि आज भी है । कैसे बलि ? तो इसका उत्तर है कि इन्द्र का कल्याण करने के लिए श्रीभगवान् के द्वारा त्रैलोक्य छिन लिया गया । फिर श्रीभगवान् की ही कृपा से सुतल लोक में उनका प्रवेश हुआ है कि किस तरह से भगवान् के द्वारा ? तो इसका उत्तर है कि जो अदिति के गर्भ से वामन वटु के रूप में अवतीर्ण हुए थे उनके द्वारा ।।१८।।

नो एवैतत्साक्षात्कारो भूमिदानस्य यत्तद्भगवत्यशेषजीवनिकायानां जीवभूतात्मभूते परमात्मनि वासुदेवे तीर्थतमे पात्र उपपन्ने परया श्रद्धया परमादरसमाहितमनसा संप्रतिपादितस्य साक्षादपवर्गद्वारस्य यद्बिलनिलयैश्वर्यम् ॥१९॥

अनुवाद— सम्पूर्ण जीव समूह के नियामक तथा आत्म स्वरूप परमात्मा भगवान् वासुदेव के समान पूज्यतम पवित्रतम पात्र के आने पर उनको परम श्रद्धा एवं आदर पूर्वक स्थिर चित्त से प्रदत्त भूमिदान का फल यह सुतल लोक का ऐश्वर्य मात्र नही है अपितु भूमिदान साक्षात् मोक्ष का द्वार है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

केचित्तस्य सुतलराज्यं भूमिदानफलं मन्यन्ते तन्निराकरोति–नो एवैतदिति । यद्बिलनिलये विवरस्थाने ऐश्वर्यमेतद्भूमिदानस्य साक्षात्कारः फलं न भवत्येव। कुत इत्यपेक्षायामेवंभूतस्य दानस्य साक्षादपवर्गहेतुत्वादित्याह । यत्तत्प्रसिद्धं दानं तस्य । तदेवाह। भगवत्यशेषजीवनिकायानां जीवभूतश्चासावात्मभूतश्च सर्वजीवनियन्ता चासावात्मारामश्चेत्यर्थः । तस्मिन्संप्रतिपादितस्य ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

कुछ लोग बलि के सुतल लोक के राज्य को भूमि दान का फल मानते हैं शुकदेवजी उन लोगों की मान्यता का खण्डन करते है । जो सुतल लोक में प्राप्त ऐश्वर्य इस भूमिदान का फल नहीं है । यदि कोई कहे क्यों ? तो इसका उत्तर है कि इस प्रकार का दान साक्षात् मोक्ष का साधन होने के कारण क्योंकि बलि का वह प्रसिद्ध दान का जो दान सम्पूर्ण जीव समूह के नियन्ता आत्मस्वरूप तथा आत्माराम श्रीभगवान् को प्रदत्त है ॥१९॥

यस्य ह वाव क्षुतपतनप्रस्खलनादिषु विवशः सकृन्नामाभिगृणन्पुरुषः कर्मबन्धनमञ्जसा विधुनोति यस्य हैव प्रतिबाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते ॥२०॥

अनुवाद— छिकने, गिरने और फिसलने के समय विवश होकर जो एक बार भी श्रीभगवान् के नाम को ले लेता है वह संसार के बन्धन को काट देता है जबकि मुमुक्षु पुरुष इस कर्म के बन्धन को भोग साधन आदि अनेक उपायों के द्वारा बड़े कष्ट से काट पाते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

किंच यस्य नाम क्षुतादिषु च विवशोऽपि सकृदपि गृणन्कर्मबन्धं विधुनोति । कथंभूतम् । यस्य प्रतिबाधनं त्विह मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते । यन्निवृत्त्यर्थं योगसांख्यादिक्लेशाननुभवन्तीत्यर्थः । तं कर्मबन्धं त्यजति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

जिस परमात्मा का नाम छिंकने आदि के समय भी जिसके मुख से निकल जाता है तो वह प्राकृतिक बन्धन को काट देता है । उस संसार के बन्धन को तो मुमुक्षु पुरुष दूसरे ही को मानते हैं । वे संसार के बन्धन की निवृति के लिए अष्टाङ्ग योग और सांख्य के साधनो को अपनाते है । उस कर्म के बन्धन को भगवान् के नाम का उच्चारण करके ही मनुष्य त्याग देता है ॥२०॥

तद्भक्तानामात्मवतां सर्वेषामात्मन्यात्मद आत्मतयैव ॥२१॥

अनुवाद— अतएव अपने संयमी भक्त और ज्ञानियों को स्वस्वरूप प्रदान करने वाले और समस्त प्राणियों की आत्मा श्रीभगवान् को आत्मभाव से किए हुए भूमिदान का यह फल नहीं हो सकता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मिन्भगवति भक्तानां ज्ञानिनां च यथायथमात्मन्यात्मदे ज्ञानदे चात्मतयैव समर्पितस्य भूमिदानस्य न तत्फलमिति पूर्वेणैव संबन्धः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

जो अपने भक्तों तथा ज्ञानियों अपने स्वरूप विषय का ज्ञान प्रदान करने वाले श्रीभगवान् को आत्मा रूप से भूमि प्रदान करने का वह फल नहीं हो सकता है ॥२१॥

न वै भगवान्नूनममुष्यानुजग्राह यदुत पुनरात्मानुस्मृतिमोषणं मायामयभोगैश्वर्यमेवातनुतेति ॥२२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने अपना सर्वस्व प्रदान कर देने वाले बलि को अपना विस्मृति करा देने वाले सुतल का भोग और ऐश्वर्य ही प्रदान किया तो यह उन्होंने बलि पर कोई कृपा नहीं किया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

किंच नेदं भगवदनुकम्पाफलमपि किंत्वेकान्तभक्तस्य तस्यान्तरायमात्रमित्याह–नेति । भगवानमुष्य अमुं नैवानुगृहीतवान्। तत्र हेतुः–यदुतेति । आत्मन ईश्वरस्यानुस्मृतिं मुष्णातीति तथा । तदुक्तम् 'वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु । तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ।' इति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

नवै० इत्यादि दण्डक के द्वारा यह कहा गया है कि अपने एकान्त भक्त तेज यह सुतल लोक का भोग और ऐश्वर्य प्रदान करना उस पर कृपा नहीं है; अपितु एकान्त भक्त बलि के लिए यह विघ्न ही है । श्रीभगवान् ने बलि को अनुगृहीत नहीं किया, उसका कारण **यदुत० इत्यादि** से बतलाते हैं अपितु वह सर्वात्मा परमात्मा की स्मृति को विनष्ट करने वाला है । महर्षि पराशर ने कहा भी है **वासुदेवे मनोयस्य० इत्यादि** जिनका मन भगवान् वासुदेव में तथा जप, होम तथा अर्चना आदि में लगा है । हे मैत्रेय ! उसके लिए इन्द्र इत्यादि का पद विघ्न स्वरूप ही है।।२२।।

यत्तद्भगवतानधिगतान्योपायेन याच्ञाच्छलेनापहृतस्वशरीरावशेषितलोकत्रयो वरुणपाशैश्च संप्रतिमुक्तो गिरिदर्यां चापविद्ध इति होवाच ।।२३।।

अनुवाद— जिस समय कोई और उपायन देखकर भगवान् ने याचना के बहाने उसके त्रिलोंकी राज्य को छिन लिया और उसके पास शरीर मात्र बच गया, उस समय उसको वरुण पाश में बाँधकर पर्वत की कन्दरा में डाल दिया गया उस समय उसने कहा था ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

तस्यैकान्तभक्तिं सप्रपञ्चामाह । यत्तदतिप्रसिद्धमिति वक्ष्यमाणमुवाच हेत्यन्वयः । कथंभूतः । अनधिगतोऽन्य उपायो येन तेन भगवता याञ्चाच्छलेनापहृतं स्वशरीरमात्रावशेषितं लोकत्रयं यस्य । सम्यक्प्रतिमुक्तो बद्धः । अपविद्धः प्रक्षिप्तोऽपि सन् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

बलि की ऐकान्तिक भक्ति का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं— **यत्त्‌० इत्यादि** के द्वारा अत्यन्त प्रख्यात कही जाने वाली बात को बलि ने कहा कैसे बलि ने कहा ? दूसरा कोई उपाय नहीं मिलने के कारण श्रीभगवान् ने याचना के छल से उसके सर्वस्व को ले लिया और उसका शरीर मात्र ही अवशिष्ट रह गया था अच्छी तरह से बाँधकर पर्वत की गुफा में डला दिया गया उस बलि ने कहा ।।२३।।

नूनं बतायं भगवानर्थेषु न निष्णातो योऽसाविन्द्रो यस्य सचिवो मन्त्राय वृत एकान्ततो बृहस्पतिस्तमतिहाय स्वयमुपेन्द्रेणात्मानमयाचतात्मनश्चाशिषो नो एव तद्दास्यमतिगम्भीरवयसः कालस्य मन्वन्तरपरिवृत्तं कियल्लोकत्रयमिदम् ।।२४।।

अनुवाद— खेद है कि यह ऐश्वर्य इन्द्र विद्वान् होकर भी अपना वास्तविक स्वार्थ सिद्ध करने में कुशल नहीं है । उसने सम्मति प्राप्त करने के लिए बृहस्पतिजी को अपना मन्त्री बनाया फिर भी उनकी अवहेलना करके उसने भगवान् विष्णु से दान माँगकर उनके द्वारा मुझसे अपने लिए यह भोग को ही माँगा । ये तीनो लोक तो केवल एक मन्वन्तर तक ही रहते हैं जो अनन्त काल का एक अवयव मात्र है । श्रीभगवान् के कैंकर्य के समक्ष तुच्छ भोगों का क्या मूल्य हैं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

बतेति खेदे । भगवान्विद्वानपि योऽसाविन्द्रो यस्यैकान्तेन बृहस्पतिः सचिवः सहायो यतो मन्त्रार्थं वृतः सोऽपि पुरुषार्थेषु नूनं न निष्णातो न निपुणः । यत्र उपेन्द्रेण द्वारभूतेन तमुपेन्द्रं विहायात्मानं मां लोकत्रयमयाचत । तं मन्त्रपदं बृहस्पतिमतिहायेति वा । तस्मिन्प्रसन्ने स एव वरणीयो न लोकत्रयं यतस्तदतितुच्छमित्याह । अतिगम्भीरमनन्तं वयो यस्य तस्य कालस्य यन्मन्वन्तरं तेन परिवृत्तं विपर्यस्तं लोकत्रयमिदं कियत् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

बत यह अव्यय खेदार्थक है । अर्थात् खेद की बात है कि विद्वान भी इन्द्र जिसके ऐकान्तिक मन्त्र प्रदान करने वाले बृहस्पति जी है, ऐसा भी अपने पुरुषार्थ के विषय में निष्णात नहीं है । क्योंकि उसने श्रीभगवान् के द्वारा उन भगवान् को त्यागकर मुझसे त्रैलोक्य को अथवा उन बृहस्पतिजी की अवहेलना करके । श्रीभगवान् के प्रसन्न होने पर तो उनका ही वरण करना चाहिए त्रैलोक्य नहीं क्योंकि त्रैलोक्य तो अत्यन्त तुच्छ है । महान् काल के अवयव भूत मन्वन्तर पर्यन्त ही रहने वाले त्रैलोक्य का क्या महत्व है ॥२४॥

यस्यानुदास्यमेवास्मत्पितामहः किल वव्रे नतु स्वपित्र्यं यदुताकुतोभयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवतोपरते खलु स्वपितरि ॥२५॥

अनुवाद— हमारे पितामह प्रह्लादजी श्रीभगवान् के हाथों अपने पिता के मारे जाने पर श्रीभगवान् की सेवा का ही वरदान माँगा था । भगवान् राज्य देना चाहते किन्तु उनसे दूर करने वाले अपने पिता के निष्कण्टक राज्य को नहीं स्वीकार किया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

प्रह्लादस्त्वेक एवार्थे निष्णात इत्याह-यस्यानुदास्यमिति । स्वपितरि उपरते मृते सति स्वपित्र्यं पदं भगवता दीयमानमपि भगवतः खलु परमन्यदिति कृत्वा नतु जग्राहेत्यर्थः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

बलि ने कहा कि इस विषय में तो केवल प्रहलादजी निष्णात हैं । अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् श्रीभगवान् के द्वारा दिये जाने पर भी उन्होंने अपने पिता के राज्य को इसलिए नहीं स्वीकार किया कि श्रीभगवान् से श्रेष्ठ कोई भी दूसरी वस्तु नहीं है ॥२५॥

तस्य महानुभावस्यानुपथममृजितकषायः को वास्मद्विधः परिहीणभगवदनुग्रह उपजिगमिषतीति ॥२६॥

अनुवाद— उन महानुभाव का अनुसरण कौन मुझ जैसा व्यक्ति कर सकता है ? क्योंकि मेरी न तो वासनाएँ ही शान्त हुई हैं और न मुझ पर भगवान् की कृपा ही है । अतएव उनके पास माँगने की इच्छा भी कौन कर सकता है ?॥२६॥

भावार्थ दीपिका

ननु त्वमतिवीरः कुतस्तमेव बहूमन्यसे तत्राह । तस्यानुपथमनुवर्त्म । अमृजिता अक्षीणाः कषाया रागादयो यस्य । परिहीणो भगवदनुग्रहो यस्य । स को वा उपगन्तुमिच्छतीति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि तुम तो बहुत बड़े वीर हो अतएव प्रह्लादजी का ही बहुत समादर क्यों करते हो ? उस पर बलि ने कहा कि मेरी तो वासनाएँ ही नहीं समाप्त हुई हैं और न तो श्रीभगवान् की मुझ पर कृपा ही है । अतएव उनके मार्ग का अनुसरण मुझ जैसा व्यक्ति कैसे कर सकता है ?॥२६॥

तस्यानुचरितमुपरिष्टाद्विस्तरिष्यते यस्य भगवान्स्वयमखिलजगद्गुरुर्नारायणो द्वारि गदापाणिरवतिष्ठते निजजनानुकम्पितहृदयो येनाङ्गुष्ठेन पदा दशकन्धरो योजनायुतायुतं दिग्विजय उच्चाटितः ॥२७॥

अनुवाद— शुकदेवजी कहते हैं राजन् मैं बलि का चरित आठवें स्कन्ध में विस्तार से कहूँगा । श्रीभगवान् का हृदय अपने भक्तों के प्रति दया से भरा रहता है । सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीभगवान् अपने हाथ में गदा लेकर

सुतल लोक में बलि के द्वारा पर सदा विराजमान रहते हैं । एक बार दिग्विजय करता हुआ घमण्डी रावण वहाँ गया तब श्रीभगवान् ने अपने पैर के अङ्गूठे से ही ठोकर मारकर उसको लाखों योजन दूर फेंक दिया था ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अथ शुकोक्तिः । नन्वेवंभूतश्चेद्बलिस्तर्हि तस्यैव चरितं विस्तरेण कथ्यतां तत्राह । तस्य बलेरनुचरितमुपरिष्टादष्टमे विस्तरिष्यते । यस्य द्वार्यवतिष्ठते निजजनेष्वनुकम्पितं कृतानुकम्प हृदयं यस्य । द्वारपालकर्म दर्शयति । येन श्रीनारायणेन बलेर्द्वारि विशन्दशकन्धर उच्चाटितः । केन पदा । तत्राप्यङ्गुष्ठेनैव ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ शुकदेवजी कहते हैं । यदि कोई कहे कि यदि बलि का चरित इस तरह का है तो उनका चरित कहिए? तो इस पर कहते हैं कि बलि का चरित आगे आठवें स्कन्ध में विस्तार से कहेंगे । भगवान का हृदय अपने भक्तों के लिए कृपा से भरा रहता है । वे बलि के द्वार पर सदा गदालेकर विराजमान रहते हैं । अर्थात् बलि के द्वारपाल का काम करते हैं । वे भगवान् बलि के द्वार में प्रवेश करने वाले रावण को अपने पैर के अङ्गूठे से फेंक दिये॥२७॥

ततोऽधस्तात्तलातले मयो नाम दानवेन्द्रस्त्रिपुराधिपतिर्भगवता पुरारिणा त्रिलोकीशं चिकीर्षुणा निर्दग्धस्वपुरत्रयस्तत्प्रसादाल्लब्धपदो मायाविनामाचार्यो महादेवेन परिरक्षितो विगतसुदर्शनभयो महीयते ॥२८॥

अनुवाद— सुतल लोक के नीचे तलातल में त्रिपुराधिपति मय रहता है । त्रैलोक्य को शान्ति प्रदान करने के लिए पूर्वकाल में भगवान् शङ्कर ने उसकी तीनों पुरियों को भस्म कर दिया था । उसके पश्चात् उनकी ही कृपा से मय को यह स्थान प्राप्त हुआ । मय मायावियों का गुरु है और शङ्करजी के द्वारा सुरक्षित है । अतएव उसको सुदर्शन चक्र से कोई भय नहीं है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

यथा हरिणा स्वभक्तो बलिः सुतले निहितः सुखमास्ते एवं महादेवभक्तोऽपि मयस्तलातले सुखमास्त इत्याह–तत इति। लब्धं पदं स्थानं येन । महीयते पूज्यते ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह श्रीहरि के द्वारा सुतल में स्थापित बलि सुख पूर्वक रहते हैं उसी तरह महादेव भक्त मय भी तलातल में सुख पूर्वक है । इस बात को **तत० इत्यादि** दण्डक के द्वारा कहा गया है । उसने तलातल में स्थान प्राप्त किया। महीयते अर्थात् वहाँ के निवासियों द्वारा पूजित होता है ॥२८॥

ततोऽधस्तान्महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां नैकशिरसां क्रोधवशो नाम गणः कुहकतक्षककालियसुषेणादिप्रधाना महाभोगवन्तः पतत्रिराजाधिपतेः पुरुषवाहादनवरतमुद्विजमानाः स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुम्बसङ्गेन क्वचित्प्रमत्ता विहरन्ति ॥२९॥

अनुवाद— उसके नीचे महातल में क्रदु से उत्पन्न अनेक शिरो वाले क्रोधवशा नामक एक सर्पो का समुदाय रहता है । उनमें कुहक, तक्षक, कालिय एवं सुषेण आदि प्रधान है । उनका शरीर विशाल है । उनके बड़े-बड़े फन हैं और वे श्रीभगवान के वाहन गरुडजी से डरते रहते हैं फिर भी कभी-कभी अपने स्त्री, पुत्र, मित्र एवं कुटुम्ब के साथ प्रमत्त होकर विहार करने लगते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

नैकशिरसामनेकफणानां गणोऽस्ति । एतत्प्रपञ्चयति–कुहकेति । महाभोगवन्तो महाकायाः । पुरुषवाहात् हरेर्वाहनात्॥२९॥

भाव प्रकाशिका

नैकशिरसाम् अर्थात् अनेक फनों वाले । गणऽस्ति अर्थात् समूह है । महाभोगवन्त:यानी विशाल शरीर वाले। पुरुषवाहात् अर्थात् श्रीहरि के वाहन गरुड़ से ॥२९॥

ततोऽधस्ताद्रसातले दैतेया दानवाः पणयो नाम निवातकवचाः कालेया हिरण्यपुरवासिन इति विबुधप्रत्यनीका उत्पत्त्या महौजसो महासाहसिनो भगवतः सकललोकानुभावस्य हरेरेव तेजसा प्रतिहतबलावलेपा बिलेशया इव वसन्ति ये वै सरमयेन्द्रदूत्या वाग्भिर्मन्त्रवर्णाभिरिन्द्राद्बिभ्यति ॥३०॥

अनुवाद— उसके नीचे रसातल में पाणि नामक दैत्य और दानव रहते हैं । ये निवात कवच, कालेय और हिरण्यपुरवासी भी कहलाते हैं । इनका देवताओं से विरोध है । ये जन्म से ही महाबलवान और अत्यन्त साहसी होते हैं । किन्तु जिनका सम्पूर्ण लोकों में प्रभाव फैला है उन श्रीहरि के तेज से बलाभिमान चूर्ण हो जाने के कारण सर्पों के समान छिप कर रहते हैं । इन्द्र की दूती सरमाद्वारा कहे हुए मन्त्र वर्ण रूप वाक्य के कारण इन्द्र से सदैव डरते रहते हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

विबुधप्रत्यनीका देवशत्रवः सकलेष्वपि लोकेष्वनुभावो यस्य तस्यैव तेजसा सुदर्शनेन प्रतिहतो बलावलेपो वीर्यमदो येषाम् । बिलेशयाः सर्पा इव । इन्द्रदूत्या प्रयुक्ताभिर्मन्त्ररूपाभिर्वाग्भिः । एवं हि वैदिकमाख्यानम् । पणिभिरसुरैर्निगूढां गामन्वेष्टुं सरमां देवशुनीमिन्द्रेण प्रहितां सन्धिमिच्छन्तः पणयः प्राहुः 'किमिच्छन्ती सरमा' इत्यादि । सा च संधिमनिच्छन्तीन्द्रस्तुतिपूर्वकं तान्प्रति परुषमाह । 'हता इन्द्रेण पणयः शयध्वम्' इत्यादि । ते च तच्छ्रुत्वा बिभ्यतीति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

विवुध प्रत्यनीकाः अर्थात् देवताओं के शत्रु । सम्पूर्ण लोकों में जिनका प्रभाव फैला है ऐसे श्रीहरि के तेज से (सुदर्शन चक्र से) उन सबों का मद चूर्ण हो जाता है । विलेशयाः इव अर्थात् सर्पों के समान । इन्द्र की दूती के द्वारा प्रयुक्तं मन्त्र रूप वाणी के द्वारा । यह वैदिक आख्यायिका है पणि नामक दैत्यों ने रसातल में पृथिवी को छिपा दिया था । उसको खोजने के लिए इन्द्र की दूती सरमा गयी तो पाणियों ने उससे सन्धि करना चाहा । किन्तु सरमा ने सन्धि नहीं की उसने इन्द्र की स्तुति करते हुए पणियों से कठोर वाणी में कहा— **'हता इन्द्रेण पणयः शयध्वम्'** अर्थात् हे पाणियों इन्द्र के द्वारा मारे जाकर सो जाओ । वे उस वाक्य का सुनकर डरते हैं ॥३०॥

ततोऽधस्तात्पाताले नागलोकपतयो वासुकिप्रमुखाः शङ्खकुलिकमहाशङ्खश्वेतधनञ्जयधृतराष्ट्रशङ्खचूड-कम्बलाश्वतरदेवदत्तादयो महाभोगिनो महामर्षा निवसन्ति येषामु ह वै पञ्चसप्तदशशतसहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो रोचिष्णवः पातालविवरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा विधमन्ति ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे राह्वादिस्थितिबिलस्वर्गमर्यादानिरूपणं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥२४॥

अनुवाद— रसातल के नीचे पताल में शङ्ख, कुलिक, महाशङ्ख, श्वेत, धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शङ्खचूड़, कम्बल, अश्वतर और देवदत्त आदि अत्यन्त क्रोधी और बड़े-बड़े फनो वाले नाग रहते हैं । इनमें वासुकि प्रधान हैं । उनमें से किसी के पाँच, किसीं के सात, किसी के दस, किसी के सौ और किसी के हजार सिर हैं । उनके फनों की चमकती हुई मणियाँ अपने प्रकाश से पाताल लोक के सम्पूर्ण अन्धकार को विनष्ट कर देती हैं ॥३१॥

इस तरह श्रीमद्भगवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध के राहु आदि की स्थिति तथा बिल स्वर्ग की मर्यादा का वर्णन नामक चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

महाभोगिनो महाफणाः। महानमर्षः क्रोधो येषाम्। पञ्चादिसंख्यानि शीर्षाणि येषाम्। शीर्ष्णामिति वक्तव्ये शीर्षाणामित्यार्षः।।३१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भवार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

महाभोगिन अर्थात् बड़े-बड़े फन वाले। महामर्षा: अर्थात् अत्यन्त क्रोधी सर्प जिन सबों के पाँच आदि शिर हैं। शीर्ष्णाम् कहना चाहिए किन्तु शीर्षाणाम् यह आर्ष प्रयोग है ।।३१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२४।।

पच्चीसवाँ अध्याय

श्रीसङ्कर्षणदेव का विवरण और स्तुति

श्रीशुक उवाच

तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजनसहस्रान्तर आस्ते या वै कला भगवतस्तामसी समाख्याताऽनन्त इति सात्वती या द्रष्टृदृश्ययोः सङ्कर्षणमहमित्यभिमानलक्षणं यं सङ्कर्षणमित्याचक्षते ॥१॥

अनुवाद— राजन् पाताल लोक के नीचे तीस हजार योजन की दूरी पर अनन्त नाम से विख्यात श्रीभगवान् की नित्य कला है। यह अहङ्कार रूप होने के कारण द्रष्टा और दृश्य को खींचकर एक कर देती हैं। इसीलिए पाँच रात्रागम के अनुयायी भक्तजन इसे सङ्कर्षण कहते हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चविंशे ततोऽधस्तादाह शेषस्य संस्थितिम्। संजिहीर्षोरिदं काले यत्र रुद्रसमुद्भवः। तस्य पातालस्य कोऽसावनन्तः सात्वतीयाः सात्वततन्त्रनिष्ठाश्चतुर्व्यूहोपासने यं सङ्कर्षणमित्याचक्षते। तथाख्याने हेतुः-द्रष्टृदृश्योः सम्यक्कर्षणमेकीकरणं येन। तत्कुतः। अहमित्यभिमानो लक्षणं चिह्नमधिष्ठातुर्यस्य। अहङ्काराधिष्ठानेन द्रष्टृदृश्यसङ्कर्षणात्सङ्कर्षण इत्यर्थः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

पच्चीसवें अध्याय में पाताल के नीचे शेष की स्थिति बतलायी गयी है। इस जगत् का संहार करने की इच्छा होने पर उस समय उन शेष से ही रुद्र की उत्पत्ति होती है। उस पाताल के ये अनन्त कौन हैं? सात्वतीयाः अर्थात् पञ्चरात्रागम सिद्धान्तानुयायी चतुर्व्यूहोपासना में जिनको सङ्कर्षण कहते हैं। इनको सङ्कर्षण कहने का कारण यह है कि ये द्रष्टा और दृश्य को एक में खींचकर मिला देते हैं। जिसके अधिष्ठाता का अहङ्कार ही चिह्न है। उस अहङ्कार का अधिष्ठाता होने के कारण ये द्रष्टा और दृश्य का सङ्कर्षण करते हैं, इसीलिए इनका नाम सङ्कर्षण है ॥१॥

यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥२॥

अनुवाद— एक हजार मस्तक वाले इन भगवान् अनन्त के मूर्ति के एक ही शिर पर रखा हुआ यह भूमण्डल सरसों के दाने के समान प्रतीत होता है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अनन्तत्वमाह । यस्येदमिति । यच्छब्दानां स एष भगवाननन्त इत्युत्तरेणान्वयः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

यस्येदमित्यादिदण्डक के द्वारा इनके अनन्तत्व को बतलाते हैं यत् षष्ठी का आगे के भगवान् अनन्त हैं पद से संबन्ध है ।।२।।

यस्य ह वा इदं कालेनोपसंजिहीर्षतोऽमर्षविरचितरुचिरभ्रमद्भुवोरन्तरेण साङ्कर्षणो नाम रुद्र एकादशव्यूहस्त्र्यक्षस्त्रिशिखं शूलमुत्तम्भयन्नुदतिष्ठत् ।।३।।

अनुवाद— प्रलय काल के आने पर इन्हे इस विश्व का संहार करने की इच्छा होती है तब इनके क्रोधवश घूमती हुई मनोहर भ्रुकुटियों के मध्य भाग से सङ्कर्षण नामक रुद्र प्रकट होते हैं । उनकी व्यूह संख्या ग्यारह है। वे सभी तीन नेत्रों वाले होते हैं और हाथ में त्रिशूल लिए रहते हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

तामसत्वमाह । यस्येदं विश्वमुपसंहर्तुमिच्छतः । अमर्षेण विरचिते कुटिलीकृते रुचिरीकृते । भ्रमन्त्यौ भ्रुवौ तयोर्मध्ये। उत्तम्भयन् उन्नमयन् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

अनन्त के तामसत्व का वर्णन इस दण्डक में करते हैं— इस विश्व का संहार करने की इच्छा वाले इनके होने पर जब इनकी मनोहर भौंहे टेढी हो जाती हैं, तो घूमती हुई इनकी भौंहों के बीच से सङ्कर्षण रुद्र उत्पन्न होते हैं । ये हाथ में त्रिशूल लिए रहते हैं ।।३।।

यस्याङ्घ्रिकमलयुगलारुणविशदनखमणिषण्डमण्डलेष्वहिपतयः सह सात्वतर्षभैरेकान्तभक्तियोगेनावनमन्तः स्ववदनानि परिस्फुरत्कुण्डलप्रभामण्डितगण्डस्थलान्यतिमनोहराणि प्रमुदितमनसः खलु विलोकयन्ति।।४।।

अनुवाद— इन भगवान् सङ्कर्षण के चरण कमलों के गोल-गोल स्वच्छ और अरुण वर्ण के नख मणियों की पंक्ति के समान देदीप्यमान है । जब दूसरे प्रधान भक्तों के साथअनेक नागराज अनन्याभक्ति से इनको प्रणाम करते हैं तब उनके उन नखमणियों में कुण्डल की कान्ति से अलंकृत मनोज्ञ रूप वाले मनोहर मुखारविन्दों की मनोमोहक झाँकी होती है औरउनका मन आनन्द से भर जाता है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

सुभगत्वमाह । यस्याङ्घ्रिकमलयुगलेऽरुणा विशदा नखा एव मणयस्तेषां षण्डः समूहस्तस्य मण्डलेषु । परिस्फुरतां कुण्डलानां प्रभया मण्डितानि गण्डस्थलानि येषु तानि ।।४।।

भाव प्रकाशिका

सङ्कर्षण भगवान् की सुभगता का वर्णन करते हैं । जिनके दोनों चरण कमलों में विद्यमान स्वच्छ एवं लाल नख रूपी मणियों के समूह में चमकते हुए कुण्डलों की कान्ति से जिनके कपोल अलंकृत हो जाते हैं ।।४।।

यस्यैव हि नागराजकुमार्य आशिष आशासानाश्चार्वङ्गवलयविलसितविशदविपुलधवलसुभगरुचिरभुजरजतस्तम्भेष्वगुरुचन्दनकुङ्कुमपङ्कानुलेपेनावलिम्पमानास्तदभिमर्शनोन्मथितहृदयमकरध्वजावेशरुचिरललितस्मितास्तदनुरागमदमुदितमदविघूर्णितारुणकरुणावलोकनयनवदनारविन्दं सव्रीडं किल विलोकयन्ति।।५।।

अनुवाद— अनेक नागराजों की कुमारियाँ अनेक प्रकार की कामनाओं से उनके मनोहर अङ्गमण्डल पर रजत स्तम्भ के समान सुन्दर उनकी कङ्कण से सुशोभित लम्बी-लम्बी श्वेत वर्ण की भुजाओं पर अगर, चन्दन, कुङ्कुम के पङ्क का लेप करती है उस समय उनके अङ्गों का स्पर्श करने के कारण मथित हुए उनके हृदय में काम का संचार हो जाता है । तब वे उनके मद विह्वल सकरुण अरुण नेत्रों से सुशोभित तथा अनुराग मद से मुदित, मुखारविन्द को मधुर मनोहर मुस्कान पूर्वक सलज्जभाव से देखने लगती हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

चारुण्यङ्गवलये विसिताश्च ते विशदाश्च विपुलाश्च धवलाश्च सुभगाश्च रुचिराश्च भुजा एव रजतस्तम्भास्तेष्वगुरुचन्दनकुङ्कुमानां पङ्क एवानुलेपस्तेनावलिम्पमानाः । तेषामभिमर्शनेनोन्मथिते हृदये मकरध्वजस्यावेशेन रुचिरं च ललितं च स्मितं यासां ताः । तस्यानुरागेण मदेन च मुदितं च तन्मदेन विघूर्णिते प्रचलिते च आ ईषदरुणे करुणावलोकयुक्ते नयने यस्मिंस्तद्वदनारविन्दं विलोकयन्ति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

मनोहर अङ्ग मण्डल पर विशाल धवल तथा मनोहर रजतस्तम्भ के सामन श्वेत वर्ण की भुजाओं पर अगुरु, चन्दन, कुङ्कुम के पङ्क का लेप लगाती हैं । लेप लगाते समय उनके अङ्गो का स्पर्श करने के कारण उन कुमारियों का कामवेश के कारण हृदय मथ जाता है । वे मनोहर तथा मधुर मुस्कान पूर्वक उनके अनुराग के कारण मदविह्वल होने के कारण चञ्चल तथा अरुण करुणावलोक युक्त नेत्रों वाले मुखारविन्द को देखने लगती हैं ।।५।।

सएव भगवाननन्तोऽनन्तगुणार्णव आदिदेव उपसंहृतामर्षरोषवेगो लोकानां स्वस्तय आस्ते ।।६।।

अनुवाद— वे अनन्त गुणों के समुद्र आदि देव भगवान् अनन्त अपने अमर्ष (असहनशीलता) और रोष के वेग को रोके हुए वहाँ से सभी लोकों का कल्याण करने के लिए वहाँ विराजमान हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अमर्षोऽसहनम् । रोषः क्रोधः । उपसंहृतस्तयोर्वेगो येन ।।६।।

भाव प्रकाशिका

असहनशीलता को अमर्ष कहते हैं । रोष क्रोध को कहते है । उन दोनों के वेग को रोक कर वहाँ विद्यमान हैं अनन्त देव ।।६।।

ध्यायमानः सुरासुरोरगसिद्धगन्धर्वविद्याधरमुनिगणैरनवरतमदमुदितविकृतविह्वललोचनः सुललितमुखरिकामृतेनाप्यायमानः स्वपार्षदविबुधयूथपतीनपरिम्लानरागनवतुलसिकामोदमध्वासवेन माद्यन्मधुकरव्रातमधुरगीतश्रियं वैजयन्तीं स्वां वनमालां नीलवासा एककुण्डलो हलककुदि कृतसुभगसुन्दरभुजो भगवान्माहेन्द्रो वारणेन्द्र इव काञ्चनी कक्षामुदारलीलो बिभर्ति ।।७।।

अनुवाद— देवता, असुर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और मुनिगण भगवान् अनन्त का ध्यान किया करते हैं । उनके नेत्र सदैव अनुराग मद से मुदित होकर चञ्चल और विह्वल, बने रहते हैं । वे अपने मधुर वचनामृतों से अपने पार्षदों औरदेवयूथपों का आप्यायित (संतुष्ट) किया करते हैं । उनके शरीर पर नीलाम्बर और एक कुण्डल सुशोभित होता है । उनका सुभग और सुन्दर हाथ हल की मूठ पर रखा रहता है । उदार लीलामय भगवान् सङ्कर्षण अपने गले में वैजयन्ती की माला धारण करते हैं जो रुद्र के ऐरावत हाथी के गले में पड़ी हुए सवुर्ण की शृङ्खला के समान प्रतीत होती है । उसकीकान्ति कभी भी फीकी नहीं होती है । इस प्रकार की नवीन तुलसी की सुगन्ध और मधुर मकरन्द से उन्मत्त बने हुए भौंरे मधुर गुञ्जन करते हुए उसकी शोभा को बढ़ाते हैं ।।७।।

भावार्थ दीपिका

उपासनार्थमाह । सुरादिभिर्ध्यायमानश्चिन्त्यमानः अनवरतं मदेन मुदितश्चासौ विकृतविह्वललोचनश्च । सुललितेन मुखरिकामृतेन वचनामृतेन स्वपार्षदान्विबुधयूथपानां पतींश्चाप्यायमानो हर्षयन् । नीले वाससी यस्य एकमेव कुण्डलं यस्य । हलस्य ककुदि पृष्ठे कृतो न्यस्तः सुभगश्च सुन्दरश्च भुजो येन । उदारा लीला यस्य सः । न परिम्लानो रागः कान्तिर्यस्यास्तस्याः नवतुलसिकाया आमोदमध्वासवेन सुरभिमधुरसेन माद्यतां मधुकराणां ये व्रातास्तेषां मधुरगीतेन श्रीर्यस्यास्तां वनमालाम् । कक्षां वरत्राम्॥७॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् अनन्त की उपासना के लिए कहते है— देवता आदि उन सङ्कर्षण देव का सदा ध्यान करते रहते हैं । वे सदा मदमुदित रहते हैं । उनके नेत्र विह्वल रहते हैं । वे अपने वचनामृत से अपने पार्षदों और देवाधिपों को प्रसन्न करते हैं । वे नीलम्बरधारी हैं । वे अपने एक ही कान में कुण्डल धारण करते हैं । उनका एक हाथ हल के मुट्ठे पर रहता है । उनकी भुजाएँ सुन्दर हैं । उनकी लीलाएँ औदार्यपूर्ण होती हैं । जिनकी नवीन तुलसी की कान्ति कभी मलिन नहीं होती उनकी सुगन्धित तुलसी की वनमाला जिस पर भौंरे मड़राते रहते हैं ऐसी वनमाला को वे धारण करते हैं कक्षा वरत्रा (शृङ्खला) को कहते हैं ॥७॥

य एष एवमनुश्रुतो ध्यायमानो मुमुक्षूणामनादिकालकर्मवासनाग्रथितमविद्यामयं हृदयग्रन्थिं सत्त्वरजस्तमोमयमन्तर्हृदयं गत आशु निर्भिनत्ति तस्यानुभावान्भगवान्स्वायंभुवो नारदः सह तुम्बुरुणा सभायां ब्रह्मणः सश्लोकयामास ॥८॥

अनुवाद— राजन् ! इस प्रकार माहात्म्य श्रवण ध्यान करने से भगवान् अनन्त मुमुक्षु पुरुषों के हृदय में अविर्भूत होकर उनकी अनादि कालिक कर्म वासनाओं और अविद्या रूप हृदयग्रन्थि को शीघ्र ही काट डालते हैं । एक बार ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी ने ब्रह्माजी की सभा में तुम्बुरु के साथ इस प्रकार से गान किया था ॥८॥

भावार्थ दीपिका

संश्लोकयामास वर्णयामास ॥८॥

भाव प्रकाशिका

संश्लोकयामास का अर्थ है वर्णन किया ॥८॥

उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयासन् ।
यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्नानाधात्कथमु ह वेद तस्य वर्त्म ॥९॥

अन्वयः— यदीक्षया अस्य उत्पत्ति स्थिति लयहेतवः सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणः कल्पाः आसन्, यदीक्षया ध्रुवम् अकृतम् यदेकम् आत्मन् नानाधात् कथम् उ तस्य वर्त्म वेद ॥९॥

अनुवाद— जिनकी दृष्टि पड़ने से ही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारणभूत प्रकृति के सत्त्वादिगुण अपना कार्य करने में समर्थ होते है । उनका रूप ध्रुव और अनादि है, जो एक होकर भी नानात्मक प्रपञ्च को अपने में धारण किए हुए है उन भगवान् सङ्कर्षण के तत्त्व को कोई कैसे जान सकता है ?॥९॥

भावार्थ दीपिका

अस्य जगत उत्पत्त्यादिहेतवो गुणा यस्येक्षया कल्पाः स्वस्वकार्यसमर्था आसन् । यस्य तु रूपं ध्रुवमनन्तमकृतमनादि। तत्र हेतुः— यदेकमेव सदात्मन्नात्मनि नानाकार्यप्रपञ्चमधात् । तस्य ब्रह्मरूपस्य वर्त्म तत्त्वं जनः कथमु ह वेद । नैव वेदेत्यर्थः॥९॥

भाव प्रकाशिका

इस जगत् की उत्पत्ति इत्यादि के कारण भूत सत्त्वादि प्रकृति के गुण जिनकी दृष्टि पड़ने से ही अपना कार्य करने में समर्थ (कल्प) होते हैं, उन ब्रह्मरूप सङ्कर्ष देव के तत्त्व को कोई भी मनुष्य कैसे जान सकता है ? अर्थात् नहीं जान सकता ॥९॥

मूर्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ।
यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्यामादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥१०॥

अन्वयः— यत्र इदं सद्सद् विभर्ति, स्वजनमनांसि आदातुं अनवद्यां यल्लीलां उदारवीर्यः मृगपतिः आददे, नः पुरु कृपया सुंशुद्धं सत्त्वं बभार ॥१०॥

अनुवाद— जिनमें यह कार्य कारण जगत् आभास रहा है । जो भगवान् अपने जनों के मन को आकृष्ट करने के लिए जिनकी बीरता पूर्ण लीला को आदर्श मानकर परम पराक्रमी सिंह ने अपनाया वे भगवान् सङ्कर्षण देव हम पर अत्यधिक कृपा करने के लिए, शुद्ध सत्त्वमय स्वरूप को धारण किये हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि कथमसौ मुमुक्षुभिः सेव्यते तत्राह–मूर्तिमिति । यत्रेदं सदसद्विभाति स नोऽस्माकं भक्तानां बहुकृपया संशुद्धं सत्त्वं मूर्तिं बभार । स्वजनानां मनांस्यादातुं वशीकर्तुं कृतां यस्य लीलां मृगपतिः सिंह आददे अशिक्षत् । यतः उदाराणि वीर्याणि यस्य तस्मादन्यं मुमुक्षुः कमाश्रयेदित्युत्तरेणान्वयः । यद्वा कृपयेत्यत्र हेतुः–यद्यस्मात्स्वजनानां मनांस्यादातुं लीलामाददे । मृगपतिरिवोदारवीर्यः । यद्वा मृग्यन्त इति मृगाः कामप्रदास्तेषां पतिर्मुख्यः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यदि ऐसी बात है तो उनका मुमुक्षुजन कैसे सेवन करते हैं ? तो इस पर कहते हैं जिनमें यह कार्य कारण रूप प्रपञ्च भासित हो रहा है, वे हम भक्तों पर बहुत अधिक कृपा करके शुद्ध सत्त्वमयी मूर्ति को धारण किए हैं। अपने भक्तों के मन को अपने अधीन करने के लिए जिनके द्वारा की गयी लीला को परम पराक्रमी सिंह ने धारण किया । जिनके औदार्य पूर्ण लीलाएँ उन भगवान् सङ्कर्षण देव से भिन्न को मुमुक्षु पुरुष अपना आश्रय कैसे बना सकते हैं । अथवा कामनाओं को पूर्ण करने वालों में मुख्य ये मृगपतियों में मुख्य हैं ॥१०॥

यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मादार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ।
हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥११॥

अन्वयः— यत् श्रुतंनाम यदि आर्तः पतितो वा प्रलम्भनात् वा अनुकीर्तयेत् सः सपदि नृणाम् अंहः हन्ति मुमुक्षुः भगवतः शेषात् अन्यं कं आश्रयेत् ॥११॥

अनुवाद— जिनके सुने हुए नाम को यदि कोई पीड़ित अथवा पतित व्यक्ति हंसी में भी उच्चारण कर लेता है तो वह दूसरों के भी सम्पूर्ण पापों को शीघ्र ही विनष्ट कर देता है उन शेष भगवान् को छोड़कर मुमुक्षु पुरुष किस दूसरे का आश्रय ग्रहण करें ॥११॥

भावार्थ दीपिका

किंच आस्तां तस्य कृपया वपुर्धारणं तद्भजनं वा तन्नामौदार्यमेवातिचित्रमित्याह । यस्य नाम यदि पतितो महापातक्यप्यनुकीर्तयेत्तर्हि स शुद्धेदिति किमु वक्तव्यम् । यतोऽसावेव नृणामशेषमंहः सद्यो हन्ति । कथमनुकीर्तयेत् । अन्यतः श्रुतं वाऽकस्माद्वा आर्तो वा सन्प्रलम्भनाद्वा परिहासात् । तस्माच्छेषादन्यम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च छोड़िये उनके कृपा पूर्वक शरीर धारण को अथवा भजन का उनके नाम की ही उदारता अत्यन्त विचित्र है, इस बातको नारदजी ने इस श्लोक में कहा है । उनके नाम का उच्चारण यदि महापतकी पुरुष भी कर ले तो वह शुद्ध हो जाता है, यह क्या कहना है ? दूसरों से अकस्मात् सुने हुए भी यदि कोई पीड़ित व्यक्ति हँसी में भी उच्चारण कर लेता है तो वह लोगो के पापों को पूर्ण रूप से शीघ्र ही नष्ट कर देता उन शेष भगवान् से भिन्न किसका मुमुक्षु पुरुष आश्रय ग्रहण करें ।।११।।

मूर्धन्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् ।
आनन्त्यादनिमितविक्रमस्य भूम्नः को वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ।।१२।।

अन्वयः— सहस्रमूर्ध्नोः सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् भूगोलं मूर्धनि अणुवत् अर्पितम् आनन्त्यात् अतिविक्रमस्य भूम्नःवीर्याणि कः सहस्रजिह्वः अधिगणयेत् ।।१२।।

अनुवाद— हजारों शिर वाले शेषजी के एक शिर पर पर्वत, नदी, समुद्र आदि से युक्त रखा हुआ यह सम्पूर्ण भूमण्डल एक रजकण के समान है । वे अनन्तर हैं, उनके पराक्रम का कोई परिमाण नहीं हैं । किसके हजार जीभ भी हों तो भी वह उन व्यापक शेषजी के पराक्रम की गणना कैसे कर सकता है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

गिर्यादिसहितं भूगोलम् । सत्त्वानि प्राणिनः । सहस्रजिह्वोऽपि को गणयेत् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

पर्वत आदि से यह सम्पूर्ण भूण्डल शेषजी के शिर पर एक रज कण के समान रखा है । सत्त्व अर्थात् जीवगण को हजार जीभ वाला भी अनन्त भगवान् शेष के पराक्रम की गणना कैसे कर सकता है ।।१२।।

एवंप्रभावो भगवाननन्तो दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः ।
मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ।।१३।।

अन्वयः— दुरन्तवीर्योरुगुण प्रभावः भगवान् अनन्तः एवं प्रभावः, रसायाः मूले स्थिताः । आत्मतन्त्रः यः क्ष्मां स्थितये लीलया विभति ।।१३।।

अनुवाद— उनके वीर्य, अतिशयगुण वाले भगवान् अनन्त का इस प्रकार का प्रभाव है वे रसातल के मूल में अपनी ही महिमा से स्थित एवं स्वतंत्र है । वे सम्पूर्ण लोकों की स्थिति के लिए लीला पूर्वक पृथिवी को धारण किए हैं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

दुरन्तं वीर्यं बलं यस्य । उरवो गुणाअनुभावश्च यस्य स च रसाया भूमेर्मूले स्थितिस्तिष्ठति । आत्मतन्त्र आत्माधारः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

शेषजी का पराक्रम अनन्त है उनके गुण और प्रभाव अतिशय हैं । वे पृथिवी के मूल में स्थित हैं, वे स्वतन्त्र हैं ।।१३।।

एता ह्येवेह नृभिरुपगन्तव्या गतयो यथाकर्म विनिर्मिता यथोपदेशमनुवर्णिताः कामान्कामयमानैः ।।१४।।

अनुवाद— राजन् भोगों की कामना वाले पुरुषों की अपने कर्मों के अनुसार प्राप्त होने वाली भगवान् की रची हुई ये ही गतियाँ हैं । मैंने अपने गुरु के मुख से जैसा सुना था वैसा सुना दिया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

उक्तस्य लोकविभागस्योपयोगं वदन्नुपसंहरति । एता ह्येवेह कामान्कामयमानैर्नृभिरुपगन्तव्या इत्यन्वयः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

उपरि वर्णित लोकों के विभाग का उपभोग वर्णन करते हुए उसका उपसंहार करते हैं । कामना करने वाले पुरुषों द्वारा ये गतियाँ जानने योग्य हैं ।।१४।।

एतावतीर्हि राजन्पुंसः प्रवृत्तिलक्षणस्य धर्मस्य विपाकगतय उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये किमन्यत्कथयाम इति ।।१५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भूविवरविध्युपवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्याय: ।।२५।।

अनुवाद— मनुष्य को प्रवृत्ति रूप धर्म परिणाम रूप से प्राप्त होने वाली जो परस्पर में विलक्षण ऊँची नीची गतियाँ हैं, वे इतनी ही हैं । इनको तुम्हारे प्रश्न के अनुसार मैंने सुना दिया अब बताओ क्या सुनाऊँ ।।१५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाञ्चवे स्कन्ध के भूविवरविध्युप वर्णन नामक पच्चीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

तस्य प्रपञ्चः एतावत्यो विपाकगतयः फलभूता गतयस्ता व्याचख्ये व्याख्यातवानस्मि ।।१५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चविंशतितमोऽध्याय: ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

उसका विस्तार बतलाते हुए कहते हैं इतनी ही कर्मों के फल स्वरूप गतियाँ हैं उन सबों की मैंने व्याख्या कर दी है ।।१५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के पाँचवे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के पच्चीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२५।।

छबीसवाँ अध्याय

नरकों की विभिन्न गतियों का वर्णन

राजोवाच

महर्ष एतद्वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति ॥१॥

राजा परीक्षित ने पूछा

अनुवाद— महर्षे ! लोगों में जो इतनी उँची नीची गतियाँ होती हैं, उनमें इतनी विभिन्नता क्यों हैं ?॥१॥

भावार्थ दीपिका

षड्विंशे तु ततोऽधस्तान्नरकस्थितिरुच्यते । पापिनो यत्र दह्यन्ते यमदूतैर्यथायथम् । पुंसो गतय उच्चावचा विसदृशा इति भोगवैचित्र्यमुक्तं तदेतत्कुत इति पृच्छति-महर्ष इति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

छब्बीसवे अध्याय में उसके भी नीचे नरकों की स्थिति बतलायी गयी है । जहाँ पर पापी जीवों को यमदूत उनके कर्मानुसार ले जाया करते हैं । पुरुषों की जो ऊँची नीची गतियाँ और भोगों की भिन्नता कही गयी है ऐसा क्यों होता है । इस बात को राजा परीक्षित् महर्षे इत्यादि दण्डक से पूछते हैं ॥१॥

ऋषिरुवाच

त्रिगुणत्वात्कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति ॥२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— कर्मों को करने वाले तीन प्रकार के होते हैं सात्त्विक, राजस और तामस, उसके कारण उनकी श्रद्धओं में भी भेद होता है । इस तरह स्वभाव तथा श्रद्धा के भेद से उनके कर्मों की गतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। और ये सभी गतियाँ सभी कर्ताओं की न्यूनाधिक मात्रा में होती भी हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

कर्मणः समानत्वेऽपि श्रद्धावैचित्र्यात्फलवैचित्र्यमिति परिहरति-त्रिगुणत्वादिति । सात्त्विक्या श्रद्धया कर्तुः सुखित्वं, राजस्या सुखित्वं दुःखित्वं च, तामस्या दुःखित्वं मूढत्वं च, तत्रापि तासां श्रद्धानां तारतम्यात्सुखादितारतम्यं सर्वेषामित्यर्थः॥२॥

भाव प्रकाशिका

कर्मों की समानता होने पर भी श्रद्धा की भिन्नता के कारण फल की भी भिन्नता होती है यह कहकर शुकदेवजी उसका परिहार करते हैं । सात्त्विकी श्रद्धा के द्वारा सुख की प्राप्ति होती है, राजासी श्रद्धा के द्वारा कर्ता दुखी होता है और तामसी बुद्धि के द्वारा दुःखित्व और अज्ञानित्व की प्राप्ति होती है । उसमें भी उन श्रद्धाओं के तारतम्य (कमीवेशी) के कारण सुख दुःख आदि में नैयून्याधिक्य सबों को प्राप्त होता है ॥२॥

अथेदानीं प्रतिषिद्धलक्षणस्याधर्मस्य तथैव कर्तुः श्रद्धया वैसादृश्यात्कर्मफलं विसदृशं भवति ह्यनाद्यविद्यया कृतकामानां तत्परिणामलक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्तास्तासां प्राचुर्येणानुवर्णयिष्यामः ॥३॥

अनुवाद— निषिद्ध रूप कर्म करने वालों की भी उनकी श्रद्धा के अनुसार समान फल नहीं मिलता है । अतएव अनादि अविद्या के वशीभूत कामना पूर्वक किए हुए निषिद्ध कर्मों के परिणाम में जो हजारों प्रकार की नारकीय गतियाँ होती है उनका मैं विस्तार से वर्णन करूँगा ॥३॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिषिद्धं प्रतिषेधः स एव लक्षणं प्रमाणं यस्याधर्मस्य कर्तुः श्रद्धावैसादृश्यं तमसस्तारतम्यात् । तत्रापि कारणं दर्शयन्नाह। अनाद्यविद्याकृतानां कामानां याः सृतयो नरकास्तासां ताः । अथेदानीं ताः प्राचुर्येणानुवर्णयिष्याम इत्यन्वयः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

जिन पाप कर्मों में शास्त्रों के निषेध वाक्य ही प्रमाण हैं उनके कर्ताओं की विसदृशता रूप तमोगुण के तारतम्य के कारण उन सबों का कारणभूत अनादि अविद्या जन्य कामनाओं की जो नरक रूपी सृष्टियाँ हैं उन सबों का मैं विस्तार से वर्णन करूँगा ॥३॥

राजोवाच

नरका नाम भगवन्किं देशविशेषा अथवा बहिस्त्रिलोक्या आहोस्विदन्तराल इति ॥४॥

राजा परीक्षित ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ये नरक इस पृथिवी के कोई देश विशेष हैं ? या त्रिलोकी के बाहर हैं ? त्रिलोकी के भीतर ही हैं ?॥४॥

भावार्थ दीपिका

किं भूमावेव देशविशेषाः, त्रिलोक्या ब्रह्माण्डाद्बहिर्वा आवरणेषु मध्येऽन्तराले वा भूमिव्यतिरिक्ते ॥४॥

भाव प्रकाशिका

क्या नरक भूमि पर विद्यमान देश विशेष हैं, या अथवा ब्रह्माण्ड से बाहर हैं ? या अथवा ब्रह्माण्ड के आवरणों के भीतर हैं ?॥४॥

ऋषिरुवाच

अन्तराल एव त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्यामधस्ताद्भूमेरुपरिष्टाच्च जलाद्यस्यामग्निष्वात्तादयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एवाशिष आशासाना निवसन्ति ॥५॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! वे त्रिलोकी के भीतर ही है। तथा दक्षिण दिशा में पृथिवी से नीचे जल के ऊपर स्थित हैं। इसी दिशा में अग्निष्वात्त आदि पितृगण रहते हैं वे अत्यन्त एकाग्रता पूर्वक अपने वंश वालों की मङ्गल कामना किया करते हैं ॥५॥

यत्र ह वाव भगवान्पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जन्तुषु संपरेतेषु यथाकर्मावद्यं दोषमेवानुल्लङ्घितभगवच्छासनः सगणी दमं धारयति ॥६॥

अनुवाद— उस नरक लोक में सूर्य के पुत्र पितृराज भगवान् यम अपने सेवकों के साथ रहते हैं। श्रीभगवान् की आज्ञा का उल्लङ्घन नहीं करते हुए, अपने द्वारा वहा लाये गये मृत प्राणियों को उनके पापों के अनुसार दण्ड देते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

कर्मदोषमनतिक्रम्य दोषमेव दमं पापफलं दण्डं करोति न उल्लङ्घितं भगवच्छासनं येन ॥६॥

भाव प्रकाशिका

पुरुषों के पाप कर्म के ही अनुसार उन पापों का दण्ड प्रदान रूप फल श्रीभगवान् की आज्ञा के अनुकूल ही प्रदान करते हैं ॥६॥

तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयन्ति अथ तांस्ते राजन्नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामस्तामिस्रोऽन्धतामिस्रो रोरवो महारौरवः कुम्भीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकरमुखमन्धकूपः कृमिभोजनः सन्दंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकण्टकशाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयःपानमिति किंच क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतो दन्दशूकोऽवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमित्यष्टाविंशतिनरका विविधयातनाभूमयः ॥७॥

अनुवाद— कुछ लोग नरकों की संख्या इक्कीस बतलाते हैं । राजन् अब हम उनके नाम, रूप और लक्षण के अनुसार वर्णन करते हैं । तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमीभोजन, सन्दंश, तप्तभूमि, वज्रकण्टक, शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, अयः पान । इनके अतिरिक्त क्षारकर्दम, रक्षोगण भोजन, शूलप्रोत, दन्दशूक, आवटणनिरोधन, पर्यावर्तन, तथा सूचीमुख, इस तरह से अठाइस नरक अनेक प्रकार की यातना भूमि हैं ।।७।।

भावार्थ दीपिका

मतान्तरेणाष्टाविंशतिमाह-किंचेति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

किञ्च० इत्यादि के द्वारा दूसरे मत के अनुसार नरकों की संख्या अट्ठाइस बतलाई गयी हैं ।।७।।

तत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि कालपाशबद्धो यमपुरुषैरतिभयानकैस्तामिस्रे नरके बलान्निपत्यते अनशनानुदपानदण्डताडनसंतर्जनादिभिर्यातनाभिर्यात्यमानो जन्तुर्यत्र कश्मलमासादित एकदैव मूर्च्छामुपयाति तामिस्रप्राये ।।८।।

अनुवाद— जो दूसरों के धन, सन्तान अथवा स्त्रियों का हरण करता है उसको अत्यन्त भयानक यमदूत कालपाश में बाँधकर बल पूर्वक तामिस्र नरक में डाल देते हैं । उस अन्धकारमय नरक में उसे अन्न जल न देना, डण्डे से पीटना तथा भयभीत करना आदि अनेक प्रकार के उपायों से पीडित किया जाता है । इसके कारणदु:खी होकर वह एका-एक मूर्छित हो जाता है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

पापभेदेन च तत्तन्नरकयातनाभेदं प्रपञ्चयति-यत्र यस्त्वित्यादिना । यात्यमानः पीड्यमानः । एकदैव तदैव ।।८।।

भाव प्रकाशिका

पाप भेद के कारण यातना भेद का विस्तार से वर्णन करते हैं । **यात्यमानः** पीड़ित किया जाता है । एकदैव अर्थात् उसी समय ।।८।।

एवमेवान्धतामिस्रे यस्तु वञ्चयित्वा पुरुषं दारादीनुपयुङ्क्ते यत्र शरीरी निपात्यमानो यातनास्थो वेदनया नष्टमतिर्नष्टदृष्टिश्च भवति यथा वनस्पतिर्वृश्च्यमानमूलस्तस्मादन्धतामिस्रं तमुपदिशन्ति ।।९।।

अनुवाद— इस तरह जो किसी दूसरे को धोखा देकर उसकी स्त्री का भोग करता है वह अन्धतामिस्र नरक में डाल दिया जाता है । उस नरक की यातनाओं में पड़कर वह जड़ से कटे हुए वृक्ष के समान । वेदना के कारण बेहोश हो जाता है उसकी आँखें भी नष्ट हो जाती हैं । इसलिए इस नरक का नाम अन्ध तामिस्र है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

पुरुषं पतिं वञ्चयित्वा ।।९।।

भाव प्रकाशिका

पति को धोखा देकर ।।९।।

यस्त्विह वा एतदहमिति ममेदमिति भूतद्रोहेण केवलं स्वकुटुम्बमेवानुदिनं प्रपुष्णाति स तदिह विहाय स्वयमेव तदशुभेन रौरवे निपतति ।।१०।।

अनुवाद— जो पुरुष देह में ही आत्मबुद्धि करता है तथा स्त्री तथा धन आदि के ही ममत्व में पड़ा रहता

है । और दूसरे प्राणियों से द्रोह करता है और अपने कुटुम्ब के पालन में लगा रहता है वह अपने शरीर का त्याग करने पर स्वयं ही जाकर रौरव नरक में गिर पड़ता है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

एतच्छरीरमहमिति इदं धनादि ममेति मत्वा स्वं च कुटुम्बमेव पुष्णाति । तेनाशुभेन ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

शरीर को ही आत्मा मानता है, धनादि में ममत्व रखता है, और अपने परिवार के ही पोषण में लगा रहता है, उसी पाप के कारण वह रौरव नरक में गिर पड़ता है ॥१०॥

ये त्विह यथैवामुना विहिंसिता जन्तवः परत्र यमयातनामुपगतं त एव रुरवो भूत्वा तथा तमेव विहिंसन्ति तस्माद्रौरवमित्याहुः रुरुरिति सर्पादतिक्रूरसत्त्वस्यापदेशः ॥११॥

अनुवाद— जो लोग इस लोक में जिस जीव को जिस प्रकार से कष्ट देते हैं, परलोक में वही जीव रुरु होकर उस जीव को उसी प्रकार से कष्ट देता है । इसीलिए इस नरक का नाम रौरव है सर्प से भी अधिक क्रूर स्वभाव वाले एक जीव का नाम है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

रुरवो भूत्वेति । कर्माण्येव तथा परिणामं प्राप्येत्यर्थः । अतिक्रूरस्य भारशृङ्गाख्यस्य सत्त्वस्यापदेशः संज्ञा ॥११॥

भाव प्रकाशिका

कर्म ही रुरु बन जाते हैं । अत्यन्त क्रूर भार शृङ्ग नामक जीव का नाम रुरु हैं ॥११॥

एवमेव महारौरवो यत्र निपतितं पुरुषं क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्येण घातयन्ति यः केवलं देहंभरः॥१२॥

अनुवाद— महारौरव नरक भी ऐसा ही है । जो व्यक्ति दूसरे की परवाह किए बिना केवल अपने ही शरीर का पालन-पोषण करता है इस नरक में वही मनुष जाता है वहाँ कच्चा मांस खाने वाले रुरु मांस के लोभ में उसको काटते हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

क्रव्येण निमित्तेन मांसार्थमित्यर्थ; ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

क्रव्येण निमित्तेन अर्थात् मांस के लोभ में उसको काटते हैं ॥१२॥

यस्त्विह वा उग्रः पशून्पक्षिणो वा प्राणत उपरन्धयति तमपकरुणं पुरुषादैरपि विगर्हितममुत्र यमानुचराः कुम्भीपाके तप्ततैले उपरन्धयन्ति ॥१३॥

अनुवाद— जो मनुष्य इस लोक में अपना पेट पालने के लिए जीवित पशु या पक्षियों का पकाता है उस हृदय हीन राक्षसों से भी गये बीते पुरुष को यमदूत ले जाकर कुम्भीपाक नामक नरक में खौलते हुए तेल में डाल देते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

प्राणतः सजीवान् उपरन्धयति पचति । अपकरुणं निष्कृपम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

जीवित पशुओं अथवा पक्षियों को पकाता है उस निष्कृप पुरुष को ॥१३॥

यस्त्विह पितृविप्रब्रह्मध्रुक्स कालसूत्रसंज्ञके नरके अयुतयोजनपरिमण्डले ताम्रमये तप्तखले उपर्यधस्तादग्न्यर्काभ्यामतितप्यमानेऽभिनिवेशितः क्षुत्पिपासाभ्यां च दह्यमानान्तर्बहिः शरीर आस्ते शेते चेष्टतेऽवतिष्ठति परिधावति च यावन्ति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्राणि ॥१४॥

अनुवाद— जो मनुष्य इस लोक में माता-पिता, ब्राह्मण और वेद से विरोध करता है उसे यमदूत काल सूत्र नरक में डाल देते हैं। इसका घेरा दस हजार योजन में है। इसकी भूमि ताम्बे की है। इसमें जो तपा हुआ मैदान है वह ऊपर से सूर्य और नीचे से के अग्नि दाह से जलता रहता है। वहाँ पहुंचाया हुआ पापी जीव भूख-प्यास से व्याकुल हो जाता है। उसका शरीर बाहर भीतर से जलने लग जाता है। बेचैन होकर वह कभी बैठता है कभी लेटता है कभी छटपटाता है, कभी खड़ा होता है और कभी इधर-उधर दौड़ने लगता है उस नर पशु के शरीर में जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्ष तक उसकी यह दुर्गति होती है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

खले समे देशे ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

खल अर्थात् समतल भूमि ॥१४॥

यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्डं चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति तत्र हासावितस्ततो धावमान उभयतोधारैस्तालवनासिपत्रैश्छिद्यमानसर्वाङ्गो हा हतोऽस्मीति परमया वेदनया मूर्च्छितः पदे पदे निपतति स्वधर्महा पाखण्डानुगतं फलं भुङ्क्ते ॥१५॥

अनुवाद— जो पुरुष बिना किसी विपत्ति के अपने वैदिक मार्ग का परित्याग करके पाखण्ड धर्म को अपना लेता है उसको यमदूत असिपत्र वन में ले जाकर कोड़ों से पीटते हैं। जब वह मार से बचने के लिए इधर-उधर भागता है तो उसके सारे अङ्ग तालवन के तलवार के समान तीक्ष्ण और दोनों ओर धार वाले पत्तों से कटने लगता है। उस समय वह वेदना के कारण मैं मर गया इस प्रकार चिल्लाता हैं। पग-पग पर मूर्छित होकर गिरता है। अपने धर्म का परित्याग करके पाखण्ड मत अपनाने के कारण उसे इस प्रकार अपने कुकर्म का फल भोगना पड़ता हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

स्वधर्महा धर्मत्यागी ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

स्वधर्महा अर्थात् अपने धर्म का त्याग करने वाला ॥१५॥

यस्त्विह वै राजा राजपुरुषो वा अदण्ड्ये दण्डं प्रणयति ब्राह्मणे वा शरीरदण्डं स पापीयान्नरकेऽमुत्र सूकरमुखे निपतति तत्रातिबलैर्विनिष्पिष्यमाणावयवो यथैवेहेक्षुखण्ड आर्तस्वरेण स्वनयन् क्वचिन्मूर्च्छितः कश्मलमुपगतो यथैवेहादृष्टदोषा उपरुद्धाः ॥१६॥

अनुवाद— इस लोक में जो राजा या राज कर्मचारी होकर किसी निरपराध मनुष्य को दण्ड देता है अथवा किसी ब्राह्मण को शरीरिक दण्ड देता है, तब वह पापी मरकर सूकर मुख नामक नरक में गिरता है। वहाँ जब महाबली यमदूत उसके अङ्गों की कुचलते हैं उसके बाद वह कोल्हू में पेरा जाता है, ईख के समान पीड़ित होकर जिस प्रकार उसके द्वारा सताये गये निरपराध प्राणी रोते चिल्लाते हैं उसी प्रकार वह आर्त होकर चिल्लाता रोता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

स्वनयन् रुदन्कश्मलं मोहमुपगतो भवति । अदृष्टदोषास्तेनोपरुद्धाः सन्तो यथा कश्मलमुपगतास्तद्वत् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

वह आर्त स्वर से रोता हुआ उसी तरह से मूर्छित हो जाता है जिस तरह उसके द्वारा इस लोक में रोकर, चिल्लाकर मूर्छित हो गये रहते हैं ।।१६।।

यस्त्विह वै भूतानामीश्वरोपकल्पितवृत्तीनामविविक्तपरव्यथानां स्वयं पुरुषोपकल्पितवृत्तिर्विविक्तपरव्यथो व्यथामाचरति स परत्रान्धकूपे तदभिद्रोहेण निपतति तत्र हासौ तैर्जन्तुभिः पशुमृगपक्षिसरीसृपैर्मशकयूकामत्कुणमक्षिकादिभिर्ये के चाभिद्रुग्धास्तैः सर्वतोऽभिद्रुह्यमाणस्तमसि विहतनिद्रानिर्वृतिरलब्धावस्थानः परिक्रामति यथा कुशरीरे जीवः ॥१७॥

अनुवाद— जो पुरुष इस लोक में खटमल आदि जीवों को मारता है वह उनसबों से द्रोह करने के कारण अन्धकूप नरक में जाकर गिरता है । क्योंकि परमात्मा ने स्वयं ही रक्त पान उनकी वृत्ति बना दी है । उसके कारण दूसरों के होने वाले कष्ट का उनको ज्ञान भी नहीं रहता है किन्तु परमात्मा ने मनुष्य की वृत्ति विधिनिषेध पूर्वक बनाई है ! उसको दूसरों को होने वाले कष्ट का ज्ञान भी है । उस नरक में वे पशु मृग, पक्षी, सर्प, आदि रेङ्गने वाले जीव बनकर तथा मच्छर खटमल आदि होकर उसको सब ओर से काटते रहते हैं । इससे उसकी निद्रा और शान्ति का भङ्ग हो जाता है । वह बेचैनी के कारण उस अन्धकार में भटकता रहता है जैसे रोगग्रस्त शरीर में जीव छटपटाता है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

ईश्वरेणोपकल्पिता मनुष्यरक्तपानादिलक्षणा वृत्तिर्येषां मत्कुणादीनाम् । न विविक्ता विज्ञाता परव्यथा यैरविवेकिभिस्तेषाम्। पुरुषेण ब्राह्मणादिभावेन विधिनिषेधपूर्वकमुपकल्पिता वृत्तिर्यस्य । विविक्ता परव्यथा येन विवेकिना । अभिद्रुग्धा हिंसिताः। विहता निद्रारूपा निर्वृतिर्यस्य । न लब्धमवस्थानं येन । स तमसि परिक्रामति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

खटमल आदि की मनुष्यों आदि का रक्त पीना, वृत्ति ईश्वर ने ही बनाया है । जिन अज्ञानियों को दूसरों को होने वाली पीडा का ज्ञान नहीं । परमात्मा ने मनुष्यों की विधिनिषेध रूप वृत्ति बनाया है । जिन विवेकी मनुष्यों को दूसरों को होने वाली व्यथा का ज्ञान है । अभिद्रुग्धाः अर्थात् मारे गये या पीडित किए गये उन पापी जीवों की उस अन्धकूप में निद्रा और शान्ति का भङ्ग हो जाता है । अलब्ध अवस्थानम् अर्थात् छटपटाता रहता है ।।१७।।

यस्त्विह वा असंविभज्याश्नाति यत्किंचनोपनतमनिर्मितपञ्चयज्ञो वायससंस्तुतः स परत्र कृमिभोजने नरकाधमे निपतति तत्र शतसहस्रयोजने कृमिकुण्डे कृमिभूतः स्वयं कृमिभिरेव भक्ष्यमाणः कृमिभोजनो यावत्तदप्रत्ताप्रहुतादोऽनिर्वेशमात्मानं यातयते ॥१८॥

अनुवाद— जो मनुष्य इस लोक में जो कुछ मिले बिना पञ्च यज्ञ किए ही अथवा किसी दूसरे को दिए बिना ही खा लेता है उसको कौए के समान कहा गया है । वह परलोक में कृमि भोजन नामक निकृष्ट नरक में गिरता है । वहाँ लाख योजन लम्बा चौड़ा एक कीड़ों का कुण्ड है, उसी में उसको भी कीड़ा बनकर रहना पड़ता है जब तक अपने पापों का प्रायश्चित नहीं करने वाले उस पापी के पापों का अच्छी तरह से शोधन नहीं हो जाता है तब तक वह उसी नरक में पड़े हुए कष्ट भोगता रहता है उसे कीड़े नोंचते हैं और वह कीड़ों को खाता है।।१८।।

भावार्थ दीपिका

यत्किंचन भक्ष्यादिकमुपनतं प्राप्तं तदसंविभज्य । न निर्मिताः पञ्चयज्ञा येन । अतएव वायसैः संस्तुतः समत्वेन वर्णितः। कृमिभोजनः कृमीनेव भुञ्जानः यावत्तत् यावन्ति योजनानि तत्कृमिकुण्डं तावन्ति वर्षाणि यावद्वा तत्पातकमित्यर्थः । अप्रत्तमसंविभक्तमप्रहुतं चात्तीति तथा सः । अनिर्वेशमकृतप्रायश्चित्तम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

जो कुछ भी भोज्य पदार्थ मिले उसके द्वारा पञ्च महायज्ञों को किए बिना जो खा लेता है वह कौआ कहा गया है। वह जितना योजन बड़ा वह कुण्ड है उतने वर्षों तक उसी कीड़ों को खाकर रहता है । जब तक पञ्चमहायज्ञ किए तथा दूसरों को दिए बिना रूप पाप का प्रायश्चित नहीं हो जाता है तब तक उसे उस नरक कुण्ड में रहना पड़ता है ।।१८।।

यस्त्विह वै स्तेयेन बलाद्वा हिरण्यरत्नादीनि ब्राह्मणस्य वापहरत्यन्यस्य वानापदि पुरुषस्तममुत्र राजन्यमपुरुषा अयस्मयैरग्निपिण्डैः सन्दंशैस्त्वचि निष्कुषन्ति ।।१९।।

अनुवाद— जो व्यक्ति इस लोक में चोरी करके अथवा बल पूर्वक ब्राह्मण के अथवा आपत्ति का समय नहीं होने पर भी दूसरे पुरुष के सुवर्ण या रत्नादि का हरण करता है उसको मरने पर यमदूत संदंश नामक नरक में ले जाते हैं और उस कुण्ड में उसको तपाए हुए लोहे के गोलो से दागते हैं और संडसी से उसकी खाल नोचते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

निष्कुषन्ति छिन्दन्ति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

निष्कुषन्ति अर्थात् नोचते हैं ।।१९।।

यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्यं वा पुरुषं योषिदभिगच्छति तावमुत्र कशया ताडयन्तस्तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुषमालिङ्गयन्ति स्त्रियं च पुरुषरूपया सूर्म्या ।।२०।।

अनुवाद— जो पुरुष किसी अगम्या स्त्री से व्यभिचार करता है अथवा कोई स्त्री अगम्य पुरुष के साथ व्यभिचार करती है, उस पुरुष अथवा स्त्री को यमदूत सूर्मि मूर्ति नामक नरक कुण्ड में ले जाकर कोड़ों से पीटते हैं और पुरुष को तपाये हुए लोहे की स्त्री मूर्ति से तथा स्त्री को तपाये हुए लोहे के पुरुष मूर्ति से आलिङ्गन कराते हैं।।२०।।

भावार्थ दीपिका

तिग्मया तप्तया । सूर्म्या प्रतिमया ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

लोहे की जलती हुई प्रतिमा से ।।२०।।

यस्त्विह वे सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्तमानं वज्रकण्टकशाल्मलीमारोप्य निष्कर्षन्ति ।।२१।।

अनुवाद— जो पुरुष इस लोक में पशु आदि सबों के साथ व्यभिचार करता है उसके मरने के पश्चात् यमदूत वज्र कण्टक शाल्मली नरक में गिराते हैं या वज्र के समान काण्टों वाले सेमर के वृक्ष पर चढाकर उसको नीचे की ओर खींचते हैं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

सर्वाभिगमः पश्वाद्युपगन्ता ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

पशुओं आदि के साथ व्यभिचार करता है ।।२१।।

ये त्विह वै राजन्या राजपुरुषा वा अपाखण्डा धर्मसेतून्भिन्दन्ति ते संपरेत्य वैतरण्यां निपतन्ति भिन्नमर्यादास्तस्यां निरयपरिखाभूतायां नद्यां यादोगणैरितस्ततो भक्ष्यमाणा आत्मना न वियुज्यमानाश्चासुभिरुह्यमानाः स्वाघेन कर्मपाकमनुस्मरन्तो विण्मूत्रपूयशोणितकेशनखास्थिमेदोमांसवसावाहिन्यामुपतप्यन्ते ॥२२॥

अनुवाद— जो राजा अथवा राज पुरुष इस संसार में श्रेष्ठ कुल में जन्म लेकर धर्म की मर्यादा का उच्छेद करता है वह उस मर्यादातिक्रमण के कारण मृत्यु के पश्चात् वैतरणी नदी में डाल दिए जाते है। यह नदी नरकों की खाई के समान है उसमें मल, मूत्र, पीब, रक्त, केश, नख, हड्डी, चर्बी, मांस और मज्जा आदि गन्दी चीजे भरी रहती है। उसमें गिरने पर उसको जल के जीव नोचते हैं। किन्तु इससे उन मनुष्यों का शरीर नहीं छूटता है। पाप के कारण प्राण उसे वहन किए रहता है ओर वे जीव अपनी करनी का फल समझकर उस दुर्गति को भोगते रहते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अपाखण्डाः सत्कुलीनाः सन्तः। द्वितीयान्तपाठे सेतुविशेषणम्। नदीं विशिनष्टि-विण्मूत्रेति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अपाखण्ड सद्वंश में उत्पन्न, द्वितीयान्त पाठ होने पर सेतुका विशेषण अपाखण्डा पद को मानना होगा विण्मूत्र० इत्यादि से उस नदी की विशेषता का वर्णन किया गया है ॥२२॥

ये त्विह वै वृषलीपतयो नष्टशौचाचारनियमास्त्यक्तलज्जाः पशुचर्यां चरन्ति ते चापि प्रेत्य पूयविण्मूत्रश्लेष्ममलपूर्णार्णवे निपतन्ति तदेवातिबीभत्सितमश्नन्ति ॥२३॥

अनुवाद— जो लोग इस संसार में शौच तथा अचार के नियमों का परित्याग करके इस लोक में शूद्राओं के साथ संबन्ध बनाकर पशुओं के समान आचरण करते हैं वे लोग भी मृत्यु के पश्चात् पीब, विष्ठा, मूत्र, कफ और मल से भरे हुए पूयोद नामक समुद्र में डाल दिए जाते हैं और उन अत्यन्त घृणित वस्तुओं को वे खाते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

पशुचर्यां स्वेच्छाचारम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

पशुचर्या का अर्थ है अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करते हैं ॥२३॥

ये त्विह वै श्वगर्दभपतयो ब्राह्मणादयो मृगयाविहारा अतीर्थे च मृगान्निघ्नन्ति तानपि संपरेताँल्लक्ष्यभूतान्यमपुरुषा इषुभिर्विध्यन्ति ॥२४॥

अनुवाद— इस संसार में जो ब्राह्मण आदि उच्च वर्ण के लोग कुत्ते और गधे पालते हैं तथा आखेट आदि में लगे रहते है तथा शास्त्र के विपरीत पशुओं का वध करते हैं वे लोग मृत्यु के पश्चात् प्राणरोधन नामक नरक में डाल दिए जाते हैं वहाँ यमदूत उनको लक्ष्य बनाकर बाणों बिंधते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अतीर्थे विहितादन्यत्र। विध्यन्तीति प्राणनिरोधो दर्शितः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

अतीर्थ शास्त्र विपरीत विध्यन्ति कहकर उनके प्राणों का विरोध कहा गया है ॥२४॥

ये त्विह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून्विशसन्ति तानमुष्मिँल्लोके वैशसे नरके पतितान्निरयपतयो यातयित्वा विशसन्ति ॥२५॥

अनुवाद— जो पाखण्डी पाखण्ड पूर्ण यज्ञों में पशुओं का वध करते हैं उन लोगों को मरने के पश्चात् विशसन नरक में डालकर उन लोगों को वहाँ बहुत दुःख देते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

निरयपतयो यमपुरुषाः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

निरयपतयः अर्थात् यमदूत ॥२५॥

यस्त्विह वै सवर्णां भार्यां द्विजो रेतः पाययति काममोहितस्तं पापकृतममुत्र रेतः कुल्यायां पातयित्वा रेतः संपाययन्ति ॥२६॥

अनुवाद— जो मनुष्य कामातुर होकर अपनी सवर्णा भार्या को वीर्य पान कराता है, उस पापी को मरने के बाद यमदूत वीर्य की नदी (लाला भक्ष नामक नरक) में डालकर वीर्यपान कराते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

लालाभक्षमाह-यस्त्विति। रेतःपानं कारयन्ति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

लालभक्ष नामक नरक का वर्णन करते हैं वीर्य पान कराते हैं ॥२६॥

ये त्विह वै दस्यवोऽग्निदा गरदा ग्रामान्सार्थान्वा विलुम्पन्ति राजानो राजभटा वा तांश्चापि हि परेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्तशतानि विंशतिश्च सरभसं खादन्ति ॥२७॥

अनुवाद— जो कोई चोर या राजा या राजपुरुष इस लोक में किसी के घर में आग लगा देते हैं किसी को विष दे देते हैं, या गावों या व्यापारियों की टोलियों के लूट लेते हैं, उन सबों के मृत्यु के पश्चत् सारमेयादन नामक नरक में वज्र के समान दाँतों वाले सात सौ बीस यमदूत कुत्ते बनकर अत्यधिक वेग से काटने लगते हैं॥२७॥

भावार्थ दीपिका

यमदूता ये श्वानः । सरभसं ससंभ्रमम् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

यमदूत ही कुत्ते बनकर वेग से काटने लगते हैं ॥२७॥

यस्त्विह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथंचित्स वै प्रेत्य नरकेऽवीचिमत्यधःशिरा निरवकाशे योजनशतोच्छ्रायाद्गिरिमूर्ध्नः संपात्यते यत्र जलमिव स्थलमश्मपृष्ठमवभासते तदवीचिमत्तिलशो विशीर्यमाणशरीरो न म्रियमाणः पुनरारोपितो निपपति ॥२८॥

अनुवाद— जो मनुष्य किसी की गवाही देने में, व्यापार में अथवा दान मे किसी भी तरह झूठ बोलत है वह मृत्यु के पश्चात् आधार शून्य अवीचिमान नरक में गिरता है । वहाँ उसके सौ योजन ऊँचे पर्वत से नीचे सिर करके गिराया जाता है । उस नरक की पत्थर की भूमि जल के समान प्रतीत होती है । इसीलिए उस नरक का नाम अवीचिमान है । वहाँ गिराये जाने पर भी उसके श्रीर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, फिर भी उसके प्राण नहीं निकलते हैं इसीलिए उसको बार-बार ऊपर ले जाकर पटका जाता है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

द्रव्यविनिमये क्रयविक्रयादौ। निरवकाशे निरालम्बे। अवीचिशब्दार्थमाह-यत्रेति। वीचिस्तरङ्गस्तद्रहितत्वादवीचिः॥२८॥

भाव प्रकाशिका

द्रव्य विनिमये अर्थात् व्यापार में निरवकाशे अर्थात् अधार शून्य, अवीचि शब्द का अर्थ बतलाते हैं तरङ्ग से रहित ॥२८॥

यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथस्तत्कलत्रं वा सुरां व्रतस्थोऽपि वा पिबति प्रमादतस्तेषां निरयं नीतानामुरसि पदाक्रम्यास्ये वह्निना द्रवमाणं कार्ष्णायसं निषिञ्चन्ति ॥२९॥

अनुवाद— जो ब्राह्मण या ब्राह्मणी कोई भी व्रत काल में प्रमाद वश मद्यपान करता है, या क्षत्रिय अथवा वैश्य सोमपान करता है। मृत्यु के पश्चात् उसको यमदूत अयः पान नामक नरक में ले जाते हैं और उनकी छाती पर पैर रखकर उनके मुँह में आग से गलाये गये लोहे डालते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

यो विप्रस्तत्कलत्रं वा सुरां पिबत्यन्योऽपि वा व्रतस्थः सन् राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथः कृतसोमपान इत्यन्वयः। तयोः सोमस्थाने फलचमसविधानात्सोमपाननिषेधाच्च। तथा श्रुतिः- 'न्यग्रोधस्त्रिभिराहृत्य ताः संपिष्य दधन्युपमृज्य तमस्मै भक्षं संप्रयच्छेन्न सोमम्' इति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

जो ब्राह्मण अथवा ब्राह्मण की पत्नी अथवा दूसरा कोई भी व्रत करके मदिरापान करता है तथ क्षत्रिय या वैश्य सोमपान करते हैं। क्योंकि क्षत्रिय या वैश्य को फलचमस का विधान है सोमपान का निषेध। श्रुति भी करती है। तीन बड़के फल को लाकर उसे पिसे और उसको दही में मिलाकर क्षत्रिय या वैश्य यजमान को पीने के लिए देना चाहिए ॥२९॥

अथ च यस्त्विह वा आत्मसंभावनेन स्वयमधमो जन्मतपोविद्याचारवर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽवाक्शिरा निपातितो दुरन्ता यातना ह्यश्नुते ॥३०॥

अनुवाद— जो मनुष्य इस लोक में निम्न श्रेणी का भी होकर अपने को बड़ा मानने के कारण, जन्म, तप, विद्या, आचार या वर्ण, या आश्रम में अपने से बड़े लोगों का समादर नहीं करता है वह जीवित ही मरे के समान हैं। मरने के पश्चात् उसको क्षारकर्दम नामक नरक में नीचे करके गिराया जाता है और उसे अनन्त पीडाएँ भोगनी पड़ती हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

स पूर्वमपि मृतक एव सन् मृत्वा ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

पहले से ही मृतक रहता है वह मरकर ॥३०॥

ये त्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजन्ते याश्च स्त्रियो नृपशून्खादन्ति तांश्च ते पशव इव निहता यमसदने यातयन्तो रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिनाऽवदायासृक् पिबन्ति नृत्यन्ति च गायन्ति च हृष्यमाणा यथेहपुरुषादाः ॥३१॥

अनुवाद— जो लोग इस संसार में नरमेघ के द्वारा भैरव, यक्ष, राक्षस आदि का पूजन करते हैं तथा जो

स्त्रियाँ पशुओं के समान पुरुषों को खा जाती हैं, उन सबों को वे पशुओं के समान मारे गये यमलोक में राक्षस बनकर तरह की यातना देते हैं और रक्षोगण भोजन नामक नरक में कुल्हाड़ियों से काट-काटकर उस पुरुष का रक्त पीते हैं । मांस भोजी पुरुष उसका जैसे मांस खाकर आनन्दित होते थे उसी प्रकार वे भी उनका रक्त पीते हैं और आनन्दित होकर नाचते गाते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

पुरुषस्य मेधेन हिंसया भैरवादीन्यजन्ते । याश्च स्त्रियो नरमांसं भक्षयन्ति । कामरूपा रक्षोगणा भूत्वा यथेह ते पुरुषादाः सन्तः पूर्वमनृत्यन्त तद्वत् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

पुरुष की हिंसा करके भैरव आदि की पूजा जो लोग करते है तथा जो स्त्रियाँ मनुष्यों के मांस को खाती हैं वे मारे गये ही पुरुष अपनी इच्छा के अनुसार रूप बनाने वाले राक्षस होकर पुरुषों को खाने वाले होकर मारने वाले पुरुषों ने जैसे नृत्य किया था उसी तरह उन मरने वालों को खाकर नृत्य करते हैं ॥३१॥

ये त्विह वा अनागसोऽरण्ये ग्रामे वा वैश्रम्भकैरुपसृतानुपविश्रम्भय्य जिजीविषून् शूलसूत्रादिषूपप्रोतान् क्रीडनकतया यातयन्ति तेऽपि च प्रेत्य यमयातनासु शूलादिषु प्रोतात्मानः क्षुत्तृड्भ्यां चाभिहताः कङ्कवटादिभिश्चेतस्ततस्तिग्मतुण्डैराहन्यमाना आत्मशमलं स्मरन्ति ॥३२॥

अनुवाद— इस लोक में जो लोग वन या ग्रामों के निरपराध जीवों को जो जीवित रहना चाहते हैं उन सबों को विभिन्न प्रकार के उपायों से फुसलाकर अपने पास बुला लेते हैं और उसके पश्चात् उन सबों का काँटों से बेधकर या रस्सी से बाँधकर खिलवाड़ करते हैं तथा पीड़ाएँ देते हैं, उन्हें भी मृत्यु के पश्चात् यमयातनाओं के समय शूलप्रोत नामक नरक में शूलों से बेधा जाता है । उस समय जो भूख-प्यास लगती है और उनको कंक बटेर आदि तीखी चोचों वाले नरक के भयानक पक्षी नोचते हैं तब वे अपने किए हुए समस्त पापों को याद करते हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

वैश्रम्भवैर्विश्वासोपायैः । उपविश्रम्भय्य विश्वास्य ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

वैश्रम्भकैः अर्थात् विश्वास के साधनों द्वारा उपविश्रभ्य अर्थात् विश्वास करके ॥३२॥

ये त्विह वै भूतान्युद्वेजयन्ति नरा उल्बणस्वभावा यथा दन्दशूकास्तेऽपि प्रेत्य नरके दन्दशूकाख्ये निपतन्ति यत्र नृप दन्दशूकाः पञ्चमुखाः सप्तमुखा उपसृत्य ग्रसन्ति यथा बिलेशयान् ॥३३॥

अनुवाद— इस लोक में जो सर्पों के समान उग्र स्वभाव वाले पुरुष दूसरे जीवों को पीड़ित करते है, वे लोग मृत्यु के पश्चात् दन्दशूक नामक नरक में जाते हैं वहाँ पाँच मुख वाले तथा सात मुख वाले सर्प उनके समीप आकर चूहों के समान उनको निगल जाते हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

बिलेशयान् मूषकान् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

विलेशय शब्द चूहों का वाचक है ॥३३॥

ये त्विह वा अन्या वटकुसूलगुहादिषु भूतानि निरुन्धन्ति तथाऽमुत्र तेष्वेवोपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुन्धन्ति ॥३४॥

अनुवाद— जो लोग इस लोक में दूसरे लोगों को अँधेरी खत्तियों कोठों या गुफाओं में बन्द कर देते हैं उन लोगों को यमदूत वैसे ही स्थानों में बन्द करके विषैली आग के धुएँ में सताते हैं। इस नरक को अवटनिरोधन कहते हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

सगरेण सविषेण ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

सगरेण अर्थात् विष से युक्त ॥३४॥

यस्त्विह वा अतिथीनभ्यागतान्वा गृहपतिरसकृदुपगतमन्युर्दिधक्षुरिव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य चापि निरये पापदृष्टेरक्षिणी वज्रतुण्डा गृध्राः कङ्ककाकवटादयः प्रसह्योरुबलादुत्पाटयन्ति ॥३५॥

अनुवाद— जो गृहस्थ अपने घर आये हुए अतिथियों का क्रोध में भरकर ऐसी कुटिल दृष्टि से देखता है जैसे वह उन्हें भस्म कर देगा वह जब नरक में जाता है जब उस पापदृष्टि के नेत्रों को गिद्ध, कङ्क, काग और बटेर आदि वज्र के समान कठोर चोंच वाले पक्षी बल पूर्वक निराकरण लेते हैं इस नरक को पर्यावर्तन कहते हैं॥३५॥

भावार्थ दीपिका

अतिथयोऽज्ञातपूर्वा अभ्यागता ज्ञातपूर्वास्तान् । पापेन वक्रीकृतेन ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

अपरचित आये पुरुष को अतिथि और परिचित आये पुरुष को अभ्यागत कहते हैं पापेन टेढी नजर से ॥३५॥

यस्त्विह वा आढ्याभिमतिरहंकृतिस्तिर्यक्प्रेक्षणः सर्वतोऽभिविशङ्की अर्थव्ययनाशचिन्तया परिशुष्यमाणहृदयवदनो निर्वृतिमनवगतो ग्रह इवार्थमभिरक्षति स चापि प्रेत्य तदुत्पादनोत्कर्षणसंरक्षणशमलग्रहः सूचीमुखे नरके निपतति यत्र ह वित्तग्रहं पापपुरुष धर्म राजपुरुषा वायका इव सर्वतोऽङ्गेषु सूत्रैः परिवयन्ति ॥३६॥

अनुवाद—इस लोक में जो व्यक्ति अपने को धनवान समझकर अभिमान वशात् सबको टेढी नरज से देखता है और सबो पर सन्देह करता है, धन के व्यय और नाश के भय से जिसकामुख सुखा रहता है, अतएव थोड़ा सा भी चैन नहीं पाकर यक्ष के समान सदा धन की ही रक्षा में लगा रहता है तथा पैसा बँचाने के लिए तरह-तरह का पाप करता है वह नराधम सूचीमुख नामक नरक में जाता है। वहाँ उस पापी पुरुष के सभी अङ्गों को यमराज के पुरुष दर्जी के समान सूई धागे से सीते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

आढ्याभिमतिर्धनगर्वितः । अहंकृतिः श्रेष्ठोऽहमिति मानी । तिर्यक् प्रेक्षणं यस्य । सर्वतो गुर्वादेरपि धनं चोरयिष्यन्तीति विशङ्कमानः । परिशुष्यमाणं हृदयं वदनं च यस्य । अनवगतोऽप्राप्तः । तस्यार्थस्योत्पादनादिभिः शमलं गृह्णातीति तथा । परिवयन्ति सूत्रप्रोतं कुर्वन्ति ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

धन के गर्व से गर्वित तथा मैं श्रेष्ठ हूँ इस तरह से मानने वाला वह गुरुजन इत्यादि पर इस तरह से सन्देह करता है कि ये लोग धन चुरा लेंगे। धन की चिन्ता से उसका मुख सुखा रहता है। अशान्त रहने वाला उस धन को प्राप्त करने के लिए जो पाप करता है, यमदूत उसके अङ्गों को सूई डोरा से सीने का काम करते हैं॥३६॥

एवंविधा नरका यमालये सन्ति शतशः सहस्रशस्तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चावनिपते पर्यायेण विशन्ति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र इह तु पुनर्भवे तु उभयशेषाभ्यां निविशन्ति ॥३७॥

अनुवाद— यमलोक में इस तरह के सैकड़ो हजारों नरक हैं, उनमें जिनका यहाँ उल्लेख किया गया है और जिनके विषय में कुछ नहीं कहा गया है, वे सभी पापी जीव उन नरकों में बारी-बारी से जाते हैं। इस तरह नरक और स्वर्ग के भोग से जब उनके अधिकांश पुण्य तथा पाप क्षीण होते हैं तब वे बचे हुए पुण्य और पाप को लेकर वे जीव पुनः इस लोक में जन्म लेने के लिए लौट आते हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

इतरत्र स्वर्गादौ। इह मर्त्यलोके पुनर्भवे पुनर्जन्मनिमित्तम्। उभयोर्धर्माधर्मयोः शेषाभ्याम् ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

इतरत्र अर्थात् स्वर्ग आदि में वे जीव बचे हुए पुण्य पापरूप कर्मों के साथ इस लोक में जन्म लेने के लिए लौट आते हैं ॥३७॥

निवृत्तिलक्षणमार्ग आदावेव व्याख्यातः एतावानेवाण्डकोशो यश्चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते यत्तद्भगवते नारायणस्य साक्षान्महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपमात्ममायागुणमयमनुवर्णितमादृतः पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनोऽग्राह्यमपि श्रद्धाभक्तिविशुद्धबुद्धिर्वेद ॥३८॥

अनुवाद— निवृत्त रूप जो मार्ग है उसका वर्णन दूसरे ही स्कन्ध में कह दिया गया है। पुराणों में जिसका चौदह भुवन के रूप में वर्णन किया गया है वह ब्रह्माण्ड कोश इतना ही है। वह पुरुष भगवान् नारायण का अपनी माया के गुणों से युक्त अत्यन्त स्थूल रूप है। इसका वर्णन मैंने आपको सुना दिया। उपनिषदों में वर्णित परमात्मा का निर्गुण स्वरूप मन और बुद्धि का विषय नहीं बनता है तो भी जो पुरुष इस स्थूल रूप को आदर पूर्वक पढ़ता, सुनता और सुनाता है उसकी बुद्धि भक्ति एवं श्रद्धा के कारण शुद्ध हो जाती है तथा वह उस सूक्ष्म रूप का भी अनुभव करता है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

आदावेव द्वितीयस्कन्धे 'वैश्वानरं याति' इत्यादिना उपगेयमौपनिषदं रूपम्। श्रद्धाभक्तिभ्यां विशुद्धा बुद्धिर्यस्य ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे स्कन्ध में ही **वैश्वानरं आदि इत्यादि** के द्वारा वर्णित है श्रीभगवान् का औपनिषद रूप तो श्रद्धा और भक्ति के द्वारा जिसकी बुद्धि विशुद्ध हो गयी है, वही जान सकता है ॥३८॥

श्रुत्वा स्थूलं यथा सूक्ष्मं रूपं भगवतो यतिः। स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मं धिया नयेदिति॥३९॥

अन्वयः— यतिः भगवतः स्थूलं सूक्ष्मं च रूपं श्रुत्वा स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मं धिया नयेदिति ॥३९॥

अनुवाद— यति को चाहिए कि वह भगवान् के स्थूल तथा सूक्ष्म रूप का श्रवण करके पहले स्थूल रूप में अपने मन को स्थिर करे उसके पश्चात् वहाँ से चित्त को धीरे-धीरे हटाकर उसे सूक्ष्म में लगाये ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

यथायथावच्छ्रुत्वा ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

यथावत अर्थात् ठीक-ठीक सुनकर ।।३९।।

भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभःसमुद्रपातालदिङ्नरकभागणलोकसंस्था ।
गीता मया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे नरकानुवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः।।२६।।

अन्वयः— हे नृप ! भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभः समुद्र पातालदिङ्नरकभागण लोक संस्था तवमया गीता, अद्भुतम् ईश्वरस्य स्थूलं वपुः सकल जीव निकाय धाम ।।४०।।

अनुवाद— राजन् पृथिवी, द्वीप, वर्ष, सरित, पर्वत, आकाश, समुद्र, पाताल दिशाएं, नरक, ज्योतिर्गण तथा लोको की स्थिति को मैंने आपको सुनाया यह श्रीभगवान् का अद्भूत स्थूल रूप है और यह समस्त जीव समूह का आश्रय है ।।४०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत नामक महापुराण की महर्षि व्यास रचित पारमहंस्य संहिता के अन्तर्गत पाञ्चवे स्कन्ध में नरकों का वर्णन नामक छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

कथंभूता संस्था । सकलानां जीवनिकायानां धाम आश्रयभूतं वपुः ।।४०।। पञ्चमस्कन्धसंबन्धिपदभावार्थदीपनैः । प्रीयतां परमानन्दनृहरिर्वालभाषितैः ।।१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां पञ्चमस्कन्धटीकायां षड्विंशतितमोऽध्यायः।।२६।।

समाप्तोऽयं पञ्चमः स्कन्धः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

किस प्रकार की स्थिति ? सम्पूर्ण जीव समूह के आश्रय भूत धाम (शरीर) ।।४०।। पाँचवे स्कन्ध के पदों के अर्थ प्रकाशन रूप मुझ अज्ञानी के वचनों द्वारा परमानन्द स्वरूप श्रीनृंसहभगवान् प्रसन्न होएँ ।।१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के श्रीधरस्वामी द्वारा प्रणीत पञ्चम स्कन्ध के भावार्थ दीपिका टीका के छब्बीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२६।।

इस तरह पाँचवाँ स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

।। ओम नमो भगवते वासुदेवाय ।।

छठा स्कन्ध

पहला अध्याय

अजामिलोपाख्यान का प्रारम्भ

राजोवाच

निवृत्तिमार्गः कथित आदौ भगवता यथा । क्रमयोगोपलब्धेन ब्रह्मणा यदसंसृतिः ॥१॥

अन्वयः— भगवता आदौ यथा निवृत्ति मार्ग कथितः क्रमयोगोपलब्धेन ब्रह्मणा यद संसृतिः ॥१॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— भगवान् आपने पहले द्वितीय स्कन्ध में निवृत्ति मार्ग का वर्णन किया है उसके द्वारा अर्चिरादि मार्ग सेगया हुआ जीव क्रमशः ब्रह्मलोक में जाता है और बाद में ब्रह्माजी के साथ ही मुक्त हो जाता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पुण्यारण्ये नृसिंहैकनामसिंहो विराजते । यन्नादतः पलायन्ते महाकल्मषकुञ्जराः । विसर्गसंभवान् जीवान्स्वमर्यादासु संस्थितान् । विष्णुः पात्यखिलै रूपैरित्येवं पञ्चमे स्थितम् । अध्यायैकोनविंशत्या षष्ठे पोषणमुच्यते । अतिलङ्घितमर्यादभक्तरक्षणलक्षणम् । अजामिलो मनुष्येषु महापापो यथाऽवितः । विश्वरूपादिघाती च यथा देवेषु वासवः । अजामिलस्य भक्तत्वं विष्णुदूतैर्निरूपितम् । सङ्केतभगवन्नामपुत्रस्नेहानुषङ्गजम् । इन्द्रोऽपि भगवद्भक्तः सख्येनोपेन्द्रसेवकः । तदधीनसुरैश्वर्यशत्रुनिर्जयजीवितः । तत्रादौ त्रिभिरध्यायैरजामिलकथोच्यते । विश्वरूपकथा षड्भिरिन्द्रदोषोक्ते ये ततः । इन्द्रस्यैव तु दोषोक्त्यै वृत्राख्यानं ततोऽष्टभिः । द्वाभ्यां च मरुदाख्यानमेव प्रकरणक्रमः । तत्रादौ प्रथमे विष्णोर्दूतैः पातकिमोचने । तत्पापख्यापनायोक्तं याम्यैर्धर्मादिलक्षणम् । अथ षष्ठस्कन्धो व्याख्यायते । पूर्वोक्तानुवादपूर्वकं निरन्तरोक्तनरकपरिहारोपायं पृच्छति निवृत्ति मार्ग इति षड्भिः । आदौ द्वितीय स्कन्धे वैश्वानरं याती त्यादिना । भगवता । यथायथावत् । उद्येन मार्गेण। क्रमेण योगोऽर्चिरादिप्राप्तिस्तेनोपलब्धो ब्रह्मा तेन सहासंसृतिर्मोक्षो भवति । 'ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे । परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् । इति वचनात् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

पुण्य रूपी वन में नृसिंह नामक एक सिंह विराजते हैं । उनके सिंहनाद को सुनकर पापरूप हाथी पलायन कर जाते हैं ॥१॥ अपनी मर्यादा में रहने वाले विसर्ग में उत्पन्न होने वाले जीवों को भगवान् विष्णु अपने सभी रूपों से रक्षा करते हैं, इस अर्थ का प्रतिपादन पाँचवें स्कन्ध में किया गया है । अब छठे स्कन्ध में उन्नीस अध्यायों द्वारा भक्तों कि निर्मर्यादरक्षण रूप पोषण का वर्णन किया जा रहा है । मनुष्यों में महापापी अजामिल की भगवान् ने जिस तरह से रक्षा की उसी तरह देवताओं में महापापी विश्वरूप का वध करने वाले इन्द्र की भी भगवान् ने रक्षा की । पुत्र के स्नेह से युक्त भगवान् नाम का सङ्केत करने वाले नारायण नाम के द्वारा अजामिल के भक्तत्व का निरूपण भगवान् विष्णु के दूतों ने किया है । सख्य भक्ति के द्वारा भगवान् उपेन्द्र का सेवक इन्द्र भी भगवद्

भक्त है श्रीभगवान् के द्वारा ही इन्द्र को देवताओं का ऐश्वर्य प्राप्त है तथा शुत्र पराजय एव इन्द्र का जीवन है। सर्वप्रथम इस स्कन्ध के तीन अध्यायों में अजामिल की कथा वर्णित है। उसके पश्चात् छह अध्यायों मे इन्द्र का दोष बतलाने के लिए विश्वरूप की कथा है। इन्द्र के ही दोष को बतलाने के लए आठ अध्यायों में वृत्रासुर की कथा वर्णित है। उसके बाददो अध्यायों में मरुतो की कथा है। यही इस स्कन्ध के प्रकरणे का क्रम है। उसमें भी पहले अध्याय में विष्णु दूतों द्वारा पापी को छुड़ा लिए जाने पर अजामिल के पापों को बतलाने के लिए यमदूतों ने धर्म आदि के लक्षण का वर्णन किया है। यहाँ से छठे स्कन्ध की व्याख्या प्रारम्भ होती है। पूर्वोक्त विषयों का अनुवाद पूर्वक इससे पहले वर्णित नरकों से बचने के उपायों को **निवृत्तमार्गः इत्यादि** छह श्लोकों द्वारा राजा परीक्षित् पूछते है। आदौ अर्थात् द्वितीय स्कन्ध में **वैश्वानरं याति० इत्यादि** के द्वारा आपने ठीक-ठीक वर्णन किया है। जिस मार्ग के द्वारा क्रमशः अर्चिरादि मार्ग की प्राप्ति के द्वारा जीव को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है और ब्रह्माजी के साथ ही उस जीव की मुक्ति हो जाती है। कहा भी गया है कि महाप्रलय काल के उपस्थित होने पर ब्रह्मलोक में गये हुए सभी जीव द्वितीय परार्द्ध के अन्त में कृत-कृत्य होकर मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं॥१॥

प्रवृत्तिलक्षणश्चैव त्रैगुण्यविषयो मुने। येऽसावलीनप्रकृतेर्गुणसर्गः पुनः पुनः ॥२॥

अन्वयः— हे मुने त्रैगुण्य विषयः प्रवृत्ति लक्षणः चैव यः असौ अलीन प्रकृतिः पुनः पुनः गुण सर्गः ॥२॥

अनुवाद— हे मुने ! आपने त्रिगुणात्मक स्वर्गादि की प्राप्ति होती है। उस प्रवृत्ति मार्ग का भी विस्तार से वर्णन किया है। उसमें प्रकृति के लीन नहीं होने के कारण बार-बार जन्म लेना पड़ता है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

त्रैगुण्यं स्वर्गादिसुखं तदेव विषयः प्राप्यं यस्य। न लीना प्रकृतिर्यस्य तस्य पुंसः। पुनः पुनर्गुणसर्गो भोगार्थं देहारम्भरूपो यो मार्गः स च कथितस्तृतीये 'दक्षिणेन पथाऽर्यम्णः पितृलोकं व्रजन्ति ते' इत्यादिना ॥२॥

भाव प्रकाशिका

जिसके द्वारा स्वर्गादि सुख की प्राप्ति होती है। जिस पुरुष की प्रकृति का लय नहीं होता है उसको बार-बार जिसमें शरीर धारण करना पड़ता है। उस प्रवृत्ति मार्ग का आपने तृतीय स्कन्ध में वर्णन किया है। उसको आपने **दक्षिणेन० इत्यादि** श्लोक से बतलाया है कि दक्षिण अर्यमा के मार्ग से जाने वाले जीव पितृलोक में जाते हैं ॥२॥

अधर्मलक्षणा नाना नरकाश्चानुवर्णिताः। मन्वन्तरश्च व्याख्यात आद्यः स्वायंभुवो यतः ॥३॥

अन्वयः— अधर्म लक्षणाः नाना नरकाः च अनुवर्णिताः यतः स्वायम्भुवः आद्यः मनवन्तरः च व्याख्यातः ॥३॥

अनुवाद— आपने अधर्म के फलरूप अनेक नरकों का भी वर्णन किया है। जिसके अधिपति स्वायम्भुव मनु अधिपति थे उस प्रथम मन्वन्तर का भी चौथे स्कन्ध में आपने वर्णन किया है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अनुवर्णिता निरन्तराध्याये। व्याख्यातश्चतुर्थस्यादौ। यतो यस्मिन् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

इससे ठीक पहले के अध्याय में नरकों का वर्णन किया है। जिसमें स्वायम्भुव मनु अधिपति थे उस प्रथम मन्वन्तर का भी चौथे स्कन्ध में वर्णन आपने किया है ॥३॥

प्रियव्रतोत्तानपदोर्वंशस्तच्चरितानि च। द्वीपवर्षसमुद्राद्रिनद्युद्यानवनस्पतीन् ॥४॥
धरामण्डलसंस्थानं भागलक्षणमानतः। ज्योतिषां विवराणां च यथेदमसृजद्विभुः ॥५॥

अन्वयः— प्रियव्रतोत्तानपदोः तत् चरितानि च द्वीप-वर्ष-समुद्रद्रि-नद्युद्यान् नस्पतीन्। ज्योतिषाम् विवराणां च यथ इदम् विभुः असृजत् तत् सर्वं भवता वर्णितमितिशेषः ॥४-५॥

अनुवाद— इसके अतिरिक्त अपने चतुर्थ तथा पञ्चम स्कन्धों में प्रियव्रत ओर उत्तानपाद के वंशों उनके चरित्रों, द्वीप वर्ष, समुद्र, पर्वत, नदी, उद्यान तथा विभिन्न द्वीपों के वृक्षों का भूमण्डल के संस्थान (स्थिति) उसमें विद्यमान द्वीपों उसके वर्ष आदि विभागों, उनके लक्षण और परिमाण नक्षत्रों की स्थिति, (अतल, वितल) आदि सात भूविरों (पातालों) की तथा श्रीभगवान् ने इन सबों की है जैसे सृष्टि की उन सबों का आपने विस्तार से वर्णन किया है ॥४-५॥

भावार्थ दीपिका

द्वीपादीन् भागतो लक्षणतो मानतश्च । धरामण्डलस्य संस्थानं ज्योतिषां विवराणां चेदं संस्थानं विभुर्यथाऽसृजत्तथा व्याख्यातमित्यर्थः ॥४-५॥

भाव प्रकाशिका

द्वीपों आदि की अनेक वर्षादि विभागों का, उनके परिमाणों को भूण्डल की स्थिति, नक्षत्रों, भूविवरों (अतल आदि सात पातालों) इस जगत् की स्थिति तथा परमात्मा ने जैसे इस जगत् की सृष्टि की है, इन सारी बातों की आपने व्याख्या की है ॥४-५॥

अधुनेह महाभाग यथैव नरकान्नरः । नानोग्रयातनान्नेयात्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥६॥

अन्वयः— हे महाभाग ! नरः यथा, नाना उग्रयातनात् नरकान् न इयात् तत् मे अधुना इह व्याख्यातुम् अर्हसि ॥६॥

अनुवाद— हे महाभाग ! जिसका अनुष्ठान करने से मनुष्य भयङ्कर यातनाओं वाले नरकों में नहीं जाता है आप कृपा करके अब इस स्कन्ध में उसे बतलाइये ॥६॥

भावार्थ दीपिका

नाना उग्रा यातना येषु तान्नरकान् यथा येनोपायेन न इयान्न गच्छेत्तन्मेऽधुना व्याख्यातुमर्हसि ॥६॥

भाव प्रकाशिका

अनेक प्रकार की भयङ्कर यातनाओं को जिनमें सहना पड़ता उन अनेक प्रकार के नरकों में जिस प्रकार से मनुष्य को नहीं जाना पड़ता है इस स्कन्ध में आप उन्हीं साधनों का वर्णन करें ॥६॥

श्रीशुक उवाच

न चेदिहैवापचितिं यथांहसः कृतस्य कुर्यान्मनउक्तिपाणिभिः ।
ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकानुपैति ये कीर्तिता मे भवतस्तिग्मयातनाः ॥७॥

अन्वयः— मनउक्तिपाणिभिः यथा कृतस्य अंहसः चेद इहैव न कुर्यात् ये मे भवतः तिग्म यातनाः कीर्तिताः तान् नरकान् स वै प्रेत्य ध्रुवं उपैति ॥७॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— मनुष्य मन, वाणी और शरीर से जिन पाप कर्मों को किया है उन पापों का यदि इस लोक में अच्छी तरह से प्रायश्चित नहीं किया है तो जिन भयङ्कर यातनाओं वाले नरकों को मैंने आपको सुनाया है, उन नरकों में उसको अवश्य जाना पड़ता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तावन्मन्वाद्युक्तं प्रायश्चित्तं विना नरका दुर्निवारा इत्याह न चेदिति द्वाभ्याम् । मनउक्तिपाणिभिर्मनोवाक्कायैः कृतस्यांहसस्तैरेवेहैवापचितिं प्रायश्चितं न कुर्याच्चेत्तर्हि स पुरुषः प्रेत्य मृत्वा नरकान्ध्रुवमुपैति । मे मया ये भवतः कीर्तिताः। तिग्मा दारुणा यातना येषु तान् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

मनु आदि के द्वारा बतलाये गये प्रायश्चित्तों को किए बिना नरकों में अवश्य जाना पड़ता है । इस बात को **न चेत० इत्यादि** दो श्लोकों से कहा गया है । मन वाणी तथा शरीर के द्वारा किए गये पापों का मनुष्य यदि इस लोक में ही प्रायश्चित नहीं कर लेता है तो फिर उस मनुष्य को मृत्यु के पश्चात् निश्चित रूप से उन नरकों में जाना पड़ता है जिन नरकों का वर्णन मैंने आपको सुनाया है ॥७॥

तस्मात्पुरैवाश्विह पापनिष्कृतौ यतेत मृत्योरविपद्यतात्मना ।
दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा भिषक्चिकित्सेत रुजां निदानवित् ॥८॥

अन्वयः— तस्मात् इह मृत्योः अविपद्यता आत्मनापाप निष्कृतौ दोषस्य गुरुलाघवं दृष्ट्वा आशु पतेत यथा निदानवित् भिषक् रुजा चिकित्सेत् ॥८॥

अनुवाद— इसलिए मृत्यु तथा रोग से पहले शरीर के स्वास्थ रहने पर ही बड़ी सावधानी पूर्वक लोक में ही पापों का प्रायश्चित करते समय पापों की गुरुता और लघुता का विचार करके शीघ्र ही प्रयास उसी प्रकार करना चाहिए जिस तरह मर्मज्ञ चिकित्सक दोष की गुरुता और लघुता का विचार करके ही उसकी चिकित्सा करता है॥८॥

भावार्थ दीपिका

यस्मादेवं तस्मात्पापस्य प्रायश्चित्ते यतेत । कदा । मृत्योः पुरैव । तत्रापि अविपद्यता अक्षीयमाणेनात्मना देहेन । यद्वा अविपत् विपत्तिरहितो यावत् । यतात्मना संयतेन मनसा । तत्राप्याशु । अन्यथा 'अतीव चिरकाले तु द्विगुणं व्रतमर्हति' इति द्वैगुण्यापत्तेः । तत्र च पापस्य महत्त्वमल्पत्वं चावेक्ष्य तदनुरूपे प्रायश्चित्ते यतेत । रुजां रोगाणां निदानवित् यथा वैद्यस्तदनुरूपं चिकित्सेत तद्वत् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

चूकि ऐसी बात है अतएव प्रायचित्त का प्रयास स्वस्थ शरीर के रहते ही शीघ्र ही करे अथवा विपत्ति आने से पहले ही करे । वह भी सावधानी पूर्वक करे । शीघ्र नहीं करने पर दो गुना करना पड़ता है । पाप की गुरुता और लघुता का विचार करके करे । जैसे वैद्य रोग की गुरुता और लघुता को जानकर ही चिकित्सा करता है ॥८॥

राजोवाच

दृष्टश्रुताभ्यां यत्पापं जानन्नप्यात्मनोऽहितम् । करोति भूयो विवशः प्रायश्चित्तमथो कथम् ॥९॥

अन्वयः— दृष्टश्रुताभ्यां यत् पापं आत्मनः अहितम् इति जानन् अपि, विवशः भूयः करोति अथो प्रायश्चित्तम् कथम्॥९॥

राजा परीक्षित ने कहा

अनुवाद— भगवन् मनुष्य राजदण्ड समन दण्ड आदि लौकिक और शास्त्रोक्त नरक गमन आदि पार लौकिक कष्टों से यह जानकर भी कि पाप उसका शत्रु है फिर भी पाप की वासनाओं से विवश होकर वह बार-बार उन्हीं कर्मो को करने लगता है अतएव उसके पापों का प्रायश्चित्त कैसे सम्भव है ?॥९॥

भावार्थ दीपिका

अत्र चोदयति द्वाभ्याम् । दृष्टं राजदण्डादि । श्रुतं नरकपातादि । ताभ्यामात्मनः पापमहितं जानन्नपि भूयः प्रायश्चित्तानन्तरं करोति । अथो अतः कारणाद्द्वादशाब्दादि कथं प्रायश्चित्तम् । तेन समूलस्य दोषस्यानिवृत्तेः । निवृत्तौ वा पुनश्च पापप्ररोहयोगादिति भावः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

राजा दो श्लोकों से शङ्का करते हैं— लौकिक राजदण्ड और शास्त्र प्रोक्त नरक गमन अदि इन दोनों के द्वारा यह जानकर भी कि पाप आत्मा का शत्रु है किन्तु प्रायश्चित्त के पश्चात् भी पापों को करता है। अतएव बारह वर्षों आदि में किए जाने वाले प्रायश्चित्त को कैसे किया जा सकता है। अतएव दोष की समूल निवृत्ति नहीं होने से पुनः पापों का बढ़ना सम्भव है ॥९॥

क्वचिन्निवर्ततेऽभद्रात्क्वचिच्चरति तत्पुनः । प्रायश्चित्तमतोऽपार्थं मन्ये कुञ्जरशौचवत् ॥१०॥

अन्वयः— क्वचित् अभद्रात् निवर्तते क्वचित् तत्पुनः चरति, अतः प्रायश्चित्तम् कुञ्जर शौचवत् अपार्थं मन्ये ॥१०॥

अनुवाद— मनुष्य कभी प्रायश्चित्तों के द्वारा पापों से छुटकारा पा लेता है कभी वह उन पापों को वासनावशात् पुनः करने लगता है, अतएव जिसतरह हाथी स्नान करने के बाद पुनः अपने ऊपर धूल डाल लेता हैं उसी तरह मैं प्रायश्चित को व्यर्थ समझता हूँ ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

किञ्च क्वचित्कदाचिदभद्रात्पापान्निवर्तते । क्वचित्तदेव पुनराचरति । यथा कुञ्जरः स्नातोऽपि रजोभिरात्मानं मलिनीकरोति तथा पापस्य पुनर्दुर्निवारत्वेन नरकपातस्यावश्यंभावित्वात्प्रायश्चित्तं व्यर्थमिति मन्ये ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

कभी तो मनुष्य प्रायश्चित्तानुष्ठान के द्वारा पाप मुक्त हो जाता है, किन्तु पाप की वासना के कारण वह उन्हीं पापों को करने लगता है। अतएव प्रायश्चित्त तो उसी तरह व्यर्थ है जिस तरह हाथी स्नान करने के पश्चात् पुनः अपने ऊपर धूल डालकर अपने को मलिन बना देता है ॥१०॥

श्रीशुक उवाच

कर्मणा कर्मनिर्हारो न ह्यात्यन्तिक इष्यते । अविद्वदधिकारित्वात्प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥११॥

अन्वयः— कर्मणा हि आत्यन्तिक कर्म निर्हारः न इष्यते, अविद्वद् अधिकारीत्वात् प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥११॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— कर्मों के द्वारा कर्मों का आत्यन्तिक विनाश सम्भव नहीं है। क्योंकि कर्मों का अधिकारी अज्ञानी होता है, अतएव वास्तविक प्रायश्चित्त तो तत्त्वज्ञान है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

परिहरति । कर्मणा कृच्छ्रादिप्रायश्चित्तेन कर्मणः पापस्य निर्हारो नाश आत्यन्तिकः समूलो नहीष्यते । अविद्वानधिकारी यस्मिंस्तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् । अतोऽविद्याया नाशाभावान्नष्टेऽपि तस्मिन्पापे तत्संस्कारेण पापान्तरस्य पुनःपुनः प्ररोहो भवत्येव। किं तर्हि मुख्यं प्रायश्चित्तं तदाह । प्रायश्चित्तं तु विमर्शनं ज्ञानम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

उपयुक्त सन्देह का परिहार करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि कृच्छ्र चान्द्रायणादि के द्वारा पापों का समूल नाश एसलिए नहीं हो सकता है कि कर्मों का अधिकारी अज्ञानी होता है। अतएव अविद्या का नाश नहीं होने के कारण इस पाप के नष्ट हो जाने पर भी उसके संस्कार के द्वारा पुनः पाप का होना सम्भव ही है। अतएव पापों का मुख्य प्रायश्चित्त ज्ञान है ॥११॥

नाश्नतः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्ति हि । एवं नियमकृद्राजन् शनैः क्षेमाय कल्पते ॥१२॥

अन्वयः— राजन् ! पथ्यमेवान्नं अश्नतः व्याधयः नहि अभिभवन्ति, एवं नियमकृत् शनैः क्षेमाय कल्पते ॥१२॥

अनुवाद— राजन् ! केवल पथ्य अन्न का ही सेवन करने वाले को व्याधियाँ ग्रस्त नहीं कर पाती है, उसी तरह नियम का पालन करने वाला व्यक्ति धीरे-धीरे पाप की वासनाओं से मुक्त होकर तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर लेता है॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तत्तु नित्यमप्रमत्तः शनैर्लभते नान्य इति सदृष्टान्तमाह-नेति । पथ्यमेवान्नमश्नतः पुरुषान् यथा व्याधयो न बाधन्ते तथा नियमादिकर्ता क्षेमाय तत्त्वज्ञानाय समर्थो भवति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

सदा सावधान रहने वाला व्यक्ति धीरे-धीरे ज्ञान को प्राप्त कर लेता है इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहते हैं । जैसे पथ्य अन्न का भोजन करने वाले पुरुषों को रोग बाधित नहीं करते हैं उसी तरह नियम पूर्वक रहने वाला मनुष्य धीरे-धीरे तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर लेता है ॥१२॥

तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च । त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन च॥१३॥
देहवाग्बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञाः श्रद्धयान्विताः । क्षिपन्त्यघं महदपि वेणु गुल्ममिवानलः ॥१४॥

अन्वयः— अनलः वेणु गुल्मम् इव तपसा, ब्रह्मचर्येण दमेन च शमेन च, त्यागेन, सत्यशौचाभ्याम् यमेन नियसेन च श्रद्धयान्विताः धीराः धर्मज्ञाः महदपि अघं क्षिपन्ति ॥१३-१४॥

अनुवाद— जिस तरह बाँसों की झुरमुट में लगी आग बांसों की झुरमुट को जला देती है, उसी तरह तपस्या, ब्रह्मचर्य, शम, दम, त्याग सत्य और बाह्यन्तर शौच यम तथा नियम के द्वारा श्रद्धा सम्पन्न ज्ञानी पुरुष बड़े-से-बड़े भी पाप को विनष्ट कर देते हैं ॥१३-१४॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव विशदयति द्वाभ्याम् । तपसा ऐकाग्र्येण । 'मनसश्चेन्द्रियाणां च ऐकाग्र्यं परमं तपः' इति स्मृतेः । ब्रह्मचर्येणाष्टाङ्गेन। तदुक्तम् 'स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् । सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृतिरेव च । एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः । विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ।' इति शमो मनसो नियमनम् । दमो बाह्येन्द्रियाणाम् । त्यागो दानम् । यमोऽहिंसादिः । नियमो जपादिः ॥१३-१४॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का दो श्लाकों द्वारा विस्तार से वर्णन करते हैं । तपस्या अर्थात् एकाग्रता के द्वारा । स्मृति भी कहती है, मन तथा इन्द्रियों की एकाग्रता सर्वश्रेष्ठ तप है । अष्टाङ्ग ब्रह्मचर्य के द्वारा । अष्टाङ्ग ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुए कहा गया है— **स्मरण कीर्तनम्० इत्यादि** अर्थात् स्त्रियों का स्मरण करना, उनका नाम लेना, हँसी मजाक करना, स्त्रियों को देखना, उनसे रहस्य की बातें करना, मन में स्त्रियों का सङ्कल्प करना, उनका निश्चय करना मैथुन करना, ये मैथुन के आठ अङ्ग हैं, यह मनीषी पुरुष कहते हैं । इन सबों के विपरीत इन सबों से वचना ही आठ प्रकार का ब्रह्मचर्य है । मन के नियमन को शम कहते हैं, बाह्येन्द्रियों को अपने वश में करना दम कहलाता है । दान देने को त्याग कहते हैं । अहिंसा इत्यादि का पालन यम है और जप आदि को करना ही नियम है ॥१३-१४॥

केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः । अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारमिव भास्करः ॥१५॥

अन्वयः— केचित् वासुदेवपरायणाः केवलया भक्त्या नीहारम् भास्कर इव कार्त्स्न्येन अघं धुन्वन्ति ॥१५॥

अनुवाद— कुछ श्रीभगवान् के ही शरण में रहने वाले भक्त जन केवल भक्ति के द्वारा अपने सम्पूर्ण पापों को उसी तरह विनष्ट कर देते हैं जिस तरह भगवान् सूर्य कुहरे को विनष्ट कर देते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अस्यातिदुष्करत्वान्मुख्यमेवान्यत्प्रायश्चित्तमाह । केचिदिति अनेनैवंभूता भक्तिप्रधाना विरला इति दर्शयति । केवलया तपआदिनिरपेक्षया। वासुदेवपरायणा इति नाधिकारिविशेषणमेतत् किंत्वन्येषां, श्रद्धया तत्राप्रवृत्तेरर्थात्तेष्वेव पर्यवसानादनुवादमात्रम्।।१५।।

भाव प्रकाशिका

तस्या आदि साधनों के अत्यन्त दुष्कर दूसरे ही मुख्य प्रायश्चित बतलाते हैं । **केचित्** पद के द्वारा भक्ति प्रधान पुरुषों कै वैरल्य को बतलाया गया है । केवलया कहकर यह बतलाया गया है कि भक्ति के तप आदि साधनों की अपेक्षा नहीं होती है । वासुदेव परायणा: यह अधिकारी का विशेषण नहीं है अपितु दूसरों का श्रद्धा के द्वारा उसमें प्रवृत्ति नहीं होने के कारण, अर्थत: उन सबों को पर्यवासन होने से अनुवाद मात्र है ।।१५।।

न तथा ह्यघवान् राजन्पूयेत तपआदिभिः । यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया ।।१६।।

अन्वयः— राजन् अघवान् तप आदिभिः तथा न पूयेत यथा कृष्णार्पितप्राण तत्पुरुषनिषेवया पूयेत ।।१६।।

अनुवाद— राजन् पापी पुरुष तपस्या आदि से उतना नहीं पवित्र होता है जितना कि श्रीभगवान् को आत्म समर्पण करने से तथा भगवद् भक्तों की सेवा करने से पापापनोदन होता है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

एतच्च ज्ञानमार्गादपि श्रेष्ठमित्याह । न तथा पूयेत शुध्येत् । तत्पूरुषनिषेवया कृष्णेऽर्पिताः प्राणा येन ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

यह भक्ति का मार्ग ज्ञान मार्ग से भी श्रेष्ठ है इस बात को इस श्लोक में कहा गया है । तपस्या आदि से पापी उतना शुद्ध नहीं हो सकता है । भगवान् के भक्तों की सेवा करने से तथा भगवान् कृष्ण को ही आत्म समर्पण करने जितना शुद्ध होता है ।।१६।।

सध्रीचीनो ह्ययं लोके पन्थाः क्षेमोऽकुतोभयः । सुशीलाः साधवो यत्र नारायणपरायणाः ।।१७।।

अन्वयः— लोके अयं हि पन्थाः सध्रीचीनः, क्षेमः अकुतोभयः । यत्र सुशीला,नारायण परायणाः साधवः ।।१७।।

अनुवाद— संसार में भक्ति का ही मार्ग सर्वश्रेष्ठ है, कल्याणमय और निर्भय है । इस मार्ग पर शील गुण सम्पन्न, भगवान् नारायण के भक्त ही चला करते हैं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः-सध्रीचीनः समीचीनः । अयं पन्था भक्तिमार्गः । यतः क्षेमः । क्षेमत्वे हेतुः-न कुतश्चिद्विघ्नादेर्भयं यस्मिन्। तदेवाह । सुशीलाः कृपालवः । साधवो निष्कामाः । यत्र यस्मिन्मार्गे धर्मनिष्ठाः । अतो न ज्ञानमार्ग इवासहायतानिमित्तं भयं नापि कर्ममार्गवन्मत्सरादियुक्तेभ्यो भयमिति भावः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

ज्ञानमार्ग से भक्ति मार्ग के श्रेष्ठ होने का कारण है कि यह सर्वश्रेष्ठ मार्ग है । अयं पन्था से भक्ति मार्ग को कहा गया है । क्योंकि यह कल्याणमय है । उसमें किसी प्रकार से विघ्न इत्यादि का भय नहीं है । इस मार्ग पर कृपालु तथा निष्काम भक्तजन चला करते हैं इस मार्ग पर धर्मनिष्ठ पुरुष चलते हैं अतएव ज्ञान मार्ग के समान सहाय रहित होने के भय और न तो कर्म मार्ग के समान द्वेष करने वालों से भय है ।।१७।।

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम् । न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवापगाः ।।१८।।

अन्वयः— हे राजेन्द्र ! सुराकुम्भम् आपगाः इव चीर्णानि प्रायश्चित्तानि, नारायणपराङ्मुखम् न निष्पुनन्ति ।।१८।।

अनुवाद— हे राजेन्द्र जैसे शराब के घड़े को नदियाँ पवित्र नहीं कर पाती हैं, उसी तरह परमात्म पराङ् मुख व्यक्ति को अनुष्ठित प्रायश्चित्त पवित्र नहीं कर पाते हैं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

भक्तेरन्यनिरपेक्षत्वमुक्तं, कृच्छ्रादीनि तु भक्तिं विना न शोधयन्तीत्याह-प्रायश्चित्तानीति । महतामप्यशोधकत्वे दृष्टान्तमाह-सुराकुम्भमापगा नद्य इवेति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि भक्ति अन्य निरपेक्ष साधन है । कृछ्र चान्द्रायणादि भी भक्ति के बिना शुद्ध नहीं कर सकते है । इस बात को **प्रायश्चितानि० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । महान् से महान् प्रायश्चित्त परमात्मा पराङ्मुख को शुद्ध नहीं कर सकते हैं । जैसे बड़ी नदियाँ भी मदिरा के घड़े को पवित्र नहीं कर पाती हैं ।।१८।।

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयोर्निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह ।
न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ।।१९।।

अन्वयः— यैः इह कृष्ण पदारविन्दयोः तद्गुणरागिमनः सकृत् निवेशितं ते यमम् तत् पाशभृतः भटान् स्वप्ने अपि न पश्यन्ति चीर्ण निष्कृताः पश्यन्ति हि ।।१९।।

अनुवाद— इस संसार में जिन लोगों ने भगवद् गुणों से प्रेम करने वाले अपने मन को श्रीभगवान् के चरणों में एक बार भी लगा दिया है, स्वप्न में भी वे लोग न तो यम को और न यमपाश धारी यमदूतों को देखते हैं, किन्तु जिन लोगों ने प्रायश्चित्त कर लिया है, वे यम तथा यमदूतों को देखते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

भक्तिः स्वल्पापि पुनात्येवेत्याह-सकृदिति । तस्य गुणेषु रागमात्रमस्ति नतु ज्ञानं यस्य तन्मनः । तावतैव चीर्णं निष्कृतं प्रायश्चित्तं यैः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

सकृत्० इत्यादि श्लोक के द्वारा बतलाते हैं कि थोड़ी सी भी भक्ति पवित्र बना देती है । जिसके मन में परमात्मा के गुणों में प्रेम भाव है उनके गुणों का ज्ञान न हो तो भी वे प्राणश्चित्त कर लिए जिन लोगों ने पापों का प्रायश्चित कर भी लिया उनको भी यमराज का दर्शन करना ही पड़ता है ।।१९।।

अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । दूतानां विष्णुयमयोः संवादस्तं निबोध मे ।।२०।।

अन्वयः— अत्र च इमम् पुरातनम् इतिहासम् उदाहरन्ति विष्णुयमदूतयोः संवादः तं मे निबोध ।।२०।।

अनुवाद— इस विषय में महात्मागण इस प्राचीन इतिहास को कहा करते हैं । जो भगवान् विष्णु और यमराज के दूतों का संवाद स्वरूप है । उसको मैं तुम्हे बतलाता हूँ ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

इममर्थमितिहासेनोपपादयति अत्र चेति । मे मत्तः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का प्रतिपादन इतिहास द्वारा करते हैं मै अर्थात् मुझसे ।।२०।।

कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिद्दासीपतिरजामिलः । नाम्ना नष्टसदाचारो दास्याः संसर्गदूषितः ।।२१।।

अन्वयः— कान्यकुब्जे कश्चित् दासीपति द्विजः नाम्ना अजामिल नष्ट सदाचारः दास्या; संसर्ग दूषितः आसीत् ।।२१।।

अनुवाद— कान्यकुब्ज प्रदेश मे एक दासीपति ब्राह्मण था । उसका नाम अजामिल था । उसका सदाचार नष्ट हो गया था । क्योंकि वह दासी के संसर्ग से दूषित था ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

कान्यकुब्जे पुरे । दास्याः पतिः नाम्ना अजामिलः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

कान्यकुब्ज प्रदेश में अजामिल नाम का ब्राह्मण था ॥२१॥

बन्द्यक्षकैतवैश्चौर्यैर्गर्हितां वृत्तिमास्थितः । बिभ्रत्कुटुम्बमशुचिर्यातयामास देहिनः ॥२२॥

अन्वयः— बन्द्यक्षकैतवैः चौर्यैः गर्हितां वृत्तिमास्थितः कुटुम्बम् विभ्रत् अशुचिः देहिनः यातयामास ॥२२॥

अनुवाद— कभी बटोहियों को बन्दी बनाकर उनको लूट लेता था, कभी जूए के छल से लोगों को हरा देता था, कभी लोगों को धोखा देकर किसी का धन चुराकर निन्दित वृत्ति से अपने परिवार को पालता था । वह सदा अपवित्र रहता था और लोगों को सताता रहता था ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

बन्दीग्रहेण अक्षैश्च द्यूतेन कैतवैर्वञ्चनादिभिश्च । वृत्तिं जीविकाम् । बिभ्रत् पुष्णन् । यातयामास पीडयामास ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

धनिक लोगों को बन्दी बनाकर जूए से तथा धोखाधड़ी से अपनी जीविका चलाता था । यातयामास अर्थात् पीड़ित करता था ॥२२॥

एवं निवसतस्तस्य लालयानस्य तत्सुतान् । कालोऽत्यगान्महान् राजन्नष्टाशीत्यायुषः समाः ॥२३॥

अन्वयः— राजन् ! एवं तस्य निवसतः तत्सुतान् लालयानस्य महान् कालः अत्यगात् आयुषः अशीति समाः नष्टाः॥२३॥

अनुवाद— राजन् ! इस प्रकार रहते हुए तथा दासी के ही पुत्रों का लालन-पालन करते हुए महान् काल बीत गया । उसके जीवन के अठासी वर्ष नष्ट हो गये ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

आयुषः संबन्धी महान् कालोऽत्यगात् । स कियानित्यपेक्षायामाह । अष्टाशीत्या संख्यया युक्ताः समाः संवत्सराः॥२३॥

भाव प्रकाशिका

जीवन का महान् काल बीत गया कितने वर्ष ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर बतलाते हैं अठासी वर्ष॥२३॥

तस्य प्रवयसः पुत्रा दश तेषां तु योऽवमः । बालो नारायणो नाम्ना पित्रोश्च दयितो भृशम् ॥२४॥

अन्वयः— प्रवयसः तस्य दश पुत्रा तेषां यः अवयः बालः नाम्ना नारायणः पित्रोश्च भृशं दयितः ॥२४॥

अनुवाद— उस बूढे अजामिल के दश पुत्र थे, उनमें जो सबसे छोटा बालक था वह अपने माता-पिता का अत्यनत प्रिय था उसका नाम नारायण था ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

प्रवयसो वृद्धस्य ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

प्रवयसः अर्थात् बूढे अजामिल के ॥२४॥

स बद्धहृदयस्तस्मिन्नर्भके कलभाषिणि । निरीक्षमाणस्तल्लीलां मुमुदे जरठो भृशम् ॥२५॥

अन्वयः— जरठः सन कलभाषिणि तस्मिन् अर्भके बद्धहृदय तल्लीलां निरीक्षमाणः भृशम् मुमुदे ॥२५॥

अनुवाद— बूढा अजामिल का मधुर बोलने वाले उस बालक में ही मोह के कारण हृदय बँध गया था, वह उस बालक की क्रीडाओं को देखकर बहुत प्रसन्न होता था ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

बद्धं हृदयं येन । जरठो बृद्धः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

जिसने अपने हृदय को बाँध दिया था । जरठः अर्थात् बूढ़ा ॥२५॥

भुञ्जानः प्रपिबन्खादन्बालकस्नेहयन्त्रितः । भोजयन्पाययन्मूढो न वेदागतमन्तकम् ॥२६॥

अन्वयः— बालकस्नेहयन्त्रितः भुञ्जानः भोजयन् प्रपिबन् पाययन्, खादन्, मूढः आगतम् अन्तकम् न वेद ॥२६॥

अनुवाद— वह अजामिल, बालक के स्नेह में बँधा हुआ जब खाता था तो उसको भी खिलाता था, पीता था तो उसको भी पिलाता था, इस तरह अज्ञानी वह अपने आये हुए काल को भी नहीं जान सका ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

एतच्च तदुपलालनादि श्रीनारायणनामोच्चारमाहात्म्येन तद्भक्तिरेवाभूदिति सिद्धान्तोपयोगित्वेनापि द्रष्टव्यम् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

यह उस बालक के प्रति प्रेम आदि श्रीनारायण नामोच्चारणादि की महिमा से उसकी भक्ति ही बन गयी, यह इस सिद्धान्त के लिए उपयोगी भी समझना चाहिए ॥२६॥

स एवं वर्तमानोऽज्ञो मृत्युकाल उपस्थिते । मतिं चकार तनये बाले नारायणाह्वये ॥२७॥

अन्वयः— एवं वर्तमानः स अज्ञः मृत्युकाले उपस्थिते नारायणाह्वये बाले तनये मतिं चकार ॥२७॥

अनुवाद— वह अज्ञान अजामिल इस प्रकार अपना जीवन बिता रहा था कि उसकी मृत्यु का समय आ गया । वह अपने पुत्र नारायण के ही विषय में सोचने विचारने लगा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

स पाशहस्तांस्त्रीन्दृष्ट्वा पुरुषान्भृशदारुणान् । वक्रतुण्डानूर्ध्वरोम्ण आत्मानं नेतुमागतान् ॥२८॥

अन्वयः— सः आत्मानं नेतुम् आगतान् ऊर्ध्वरोम्णः वक्रतुण्डान् भृशदारुणान् पाशहस्तान् आत्मानं नेतुमागतान् त्रीन् पुरुषान् दृष्ट्वा ॥२८॥

अनुवाद— उसने अपने को लेने के लिए आये हुए खड़े रोओं वाले, टेढे मुँह वाले अत्यन्त भयङ्कर तथा हाथ में फाँसी लिए तीन पुरुषों को देखा ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

वक्राणि तुण्डानि मुखानि येषाम् । ऊर्ध्वानि रोमाणि येषां तान् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

टेढ़े मुँह वाले और खड़े रोओं वाले ॥२८॥

दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम् । प्लावितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेन्द्रियः ॥२९॥

अन्वयः— दूरे क्रीडनकासक्तं नारायणाह्वयम् पुत्रं आकुलेन्द्रियःप्लावितेन स्वरेण उच्चैः आजुहाव ॥२९॥

अनुवाद— उस समय कुछ दूरी पर खिलौने से खेलने वाले नारायण नाम के पुत्र को घबराया हुआ अजामिल प्लुतस्वर से जोर से पुकारा नारायण ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

प्लावितेन प्लुतत्वं नीतेन ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

प्लुतस्वर से ॥२९॥

निशम्य म्रियमाणस्य ब्रुवतो हरिकीर्तनम् । भर्तुर्नाम महाराजपार्षदाः सहसाऽपतन् ॥३०॥

अन्वयः— हे महाराज ! म्रियमाणस्य हरिकीर्तनम् भर्तुःनाम ब्रुवतः निशम्य सहसा पार्षदा अपतन् ॥३०॥

अनुवाद— हे महाराज ! मरते समय श्रीहरि के कीर्तन रूप अपने स्वामी का नाम उच्चारण करने वाले अजामिल के शब्दों को सुनकर एकाएक श्रीभगवान् के पार्षद वहाँ आ गये ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

हरिकीर्तनं निशम्यापतन् । यतस्तद्भर्तुर्नाम ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के नाम का उच्चारण सुनकर श्रीभगवान् के पार्षद आ गये क्योंकि वह नाम उन लोगों के स्वामी का था ॥३०॥

विकर्षतोऽन्तर्हृदयाद्दासीपतिमजामिलम् । यमप्रेष्यान्विष्णुदूता वारयामासुरोजसा ॥३१॥

अन्वयः— दासीपतिम् अजामिलम् अन्तर्हृदयात् विकर्षतः यमप्रेष्यान् विष्णुदूताः ओजसा वारयामासुः ॥३१॥

अनुवाद— दासी पति अजामिल को हृदय के भीतर से खीचने वाले यम के दूतों को भगवान् के दूतों ने बल पूर्वक रोक दिया ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

ऊचुर्निषेधितास्तांस्ते वैवस्वतपुरः सराः । के यूयं प्रतिषेद्धारो धर्मराजस्य शासनम् ॥३२॥

अन्वयः— निषेधिता ते वैवस्वतपुरस्सराः तान ऊचुः धर्मराजस्य शासनम् प्रतिषेद्धारः यूयम् के ? ॥३२॥

अनुवाद— रोके गये वे यमराज के दूत उन विष्णु दूतों से पूछे कि यमराज की आज्ञा का निषेध करने वाले आपलोग कौन हैं ?॥३२॥

भावार्थ दीपिका

पुरःसरा भृत्याः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

पुरस्सरा शब्द से भृत्यों को कहा गया है ॥३२॥

कस्य वा कुत आयाताः कस्मादस्य निषेधथ । किं देवा उपदेवा वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥३३॥

अन्वयः— कस्य वा कुतः आयाताः अस्य कस्मात् निषेधथ ? यूयं किं देवाः, उपदेवाः किं वा सिद्धसत्तमाः ॥३३॥

अनुवाद— आपलोग किसके दूत है ? कहाँ से आये हैं ? इसको हमें ले जाने से क्यों रोक रहे हैं। आपलोग कोई देव हैं क्या ? या उपदेव हैं ? या श्रेष्ठ सिद्ध हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अस्य नयनं निषेधथ ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

इसको ले जाने से रोक रहे हैं ॥३३॥

सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः । किरीटिनः कुण्डलिनो लसत्पुष्करमालिनः ॥३४॥

अन्वयः— सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः, किरीटिनः, कुण्डलिनः लसत्पुष्कर मालिनः ॥३४॥

अनुवाद— आप सबों ने कमलदल के समान मनोहर पीला पीताम्बर धारण किए हुए है, किरीट कुण्डल वनमाला और कमल की माला धारण किए हुए हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

वयं युष्मान्न जानीम इति न कोपः कार्यो यतोऽलौकिकादभुतरूपा यूयमित्याहुः-सर्व इति सार्धाभ्याम् । लसन्त्यः पुष्करमालाः सन्ति येषाम् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

हमलोग आप लोगों को नहीं जानते हैं, इस बात को लेकर आपलोगों को कोप नहीं करना चाहिए क्योंकि आपलोगों का रूप अलौकिक है, इस बात को सर्वे इत्यादि डेढ श्लोक से कहा गया है आप सबों की कमल की माला सुशोभित हो रही है ॥३४॥

सर्वे च नूत्नवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः । धनुर्निषङ्गासिगदाशङ्खचक्राम्बुजश्रियः ॥३५॥

अन्वयः— सर्वेचनूत्नवयसः सर्वेचारुचतुर्भुजाः, धनुर्निषङ्गासिगदाशङ्खचक्राम्बुज श्रियः ॥३५॥

अनुवाद— आप सबों की नई अवस्था है, सबों की चार भुजाएँ हैं, सभी धनुष निषङ्ग कृपाण, गदा, शङ्ख और चक्र धारण किए है, आप सबों की शोभा कमल के समान मनोज्ञ है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

नूत्नं नवं वयो येषाम् । निषङ्ग इषुधिः । धनुर्निषङ्गादिभिः श्रीः शोभा येषां ते ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

नवीन अवस्था आप सबों की है । निषङ्ग तरकस से कहते है । धनुष तथा तरकस आदि के द्वारा आप सबों की शोभा हो रही है ॥३५॥

दिशो वितिमिरालोकाः कुर्वन्तः स्वेन रोचिषा । किमर्थं धर्मपालस्य किङ्करान्नो निषेधथ ॥३६॥

अन्वयः— स्वेन रोचिषाः दिशः वितिमिराः कुर्वन्तः धर्मपालस्य किङ्करान् नो किमर्थं निषेधथः ॥३६॥

अनुवाद— आपलोग अपनी कान्ति के प्रकाश के द्वारा सभी दिशाओं को प्रकाशित कर रहे हैं । धर्मराज के दूत हम सबों को क्यों रोक रहे हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

विगतं तिमिरमालोकश्चान्यस्य प्रकाशो यासु तथाभूता दिशः कुर्वन्तः । भवतामेतदनुचितमित्याहुः- किमर्थमिति ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

दिशाओं के अन्धकार और दूसरों के प्रकाश भी विनष्ट हो गया है आपलोगों की कान्ति से । आपलोगों का यह कहना उचित नहीं है यह यमदूतों ने किमर्थम् इत्यादि से कहा ॥३६॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्ते यमदूतैस्तैर्वासुदेवोक्तकारिणः । तान् प्रत्यूचुः प्रहस्येदं मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥३७॥

अन्वयः— तैः यमदूतैः इत्युक्ते वासुदेवोक्तकारिणः प्रहस्य, मेधनिर्हार्दया गिरा तान् प्रति इदं प्रोचुः ॥३७॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— यमदूतों के इस तरह कहने पर भगवान् के दूतों ने जोर से हँसकर मेघ के समान गम्भीर ध्वनि वाली वाणी से उन सबों से कहा ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

अहो दण्ड्यादण्ड्यादिज्ञानशून्या एते चोरा एवास्मद्भिया धर्मराजस्य किङ्करा इत्यनृतं वदन्तीति विस्मयेन प्रहस्य तान्प्रत्यूचुः। मेघस्येव निर्ह्रादो ध्वनिर्यस्यास्तया ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

अरे दण्ड्य तथ अदण्ड्य के ज्ञान से रहित ये सभी चोर हैं हम लोगों के भय से झूठे अपने को धर्मराज का दूत बतलाते हैं इस प्रकार के आश्चर्य से जोर से हँसकर उन यमदूतों से कहा उनकी वाणी की ध्वनि मेघ के समान गम्भीर थी ।।३७।।

विष्णुदूता ऊचुः

यूयं वै धर्मराजस्य यदि निर्देशकारिणः । ब्रूत धर्मस्य नस्तत्त्वं यच्च धर्मस्य लक्षणम् ।।३८।।

अन्वयः— यूयं यदि वै धर्मराजस्य निर्देश कारिणः यत् च धर्मस्य तत्त्वं धर्मस्य लक्षणं तत् नः ब्रूहि ।।३८।।

भगवान् विष्णु के दूतों ने कहा

अनुवाद— तुमलोग यदि धर्मराज की आज्ञा का पालन करने वाले हो तो हमलोगों को धर्म के तत्त्व को तथा धर्म का जो लक्षण है, उसको बतलाओ ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

तत्त्वं स्वरूपम् । लक्षणं प्रमाणम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

तत्त्व स्वरूप को और लक्षण प्रमाण को कहते हैं ।।३८।।

कथंस्विद्ध्रियते दण्डः किं वाऽस्य स्थानमीप्सितम् ।
दण्ड्याः किंकारिणः सर्वे आहोस्वित्कतिचिन्नृणाम् ।।३९।।

अन्वयः— कथंस्वित् दण्डःध्रियते, किवा अस्य इप्सितम् स्थानम् किं कारिणः दण्डयाः सर्वे आहोश्वित् नृणाम् कतिचित् ।।३९।।

अनुवाद— दण्ड किस प्रकार दिया जाता है ? दण्ड का पात्र कौन है ? मनुष्यों में सभी पापाचारी दण्डनीय हैं, अथवा उनमें से कुछ ही ?।।३९।।

भावार्थ दीपिका

कथंस्वित्केन प्रकारेण । स्थानं विषयः । कारिणः कर्मिणः । नृणामिति नरा एव न पश्वादयः । तेष्वपि कतिचिदेवेत्यर्थः।।३९।।

भाव प्रकाशिका

दण्ड कैसे दिया जाता है ? दण्ड के पात्र कौन है ? सभी कर्म करने वाले मनुष्य दण्डनीय हैं क्या ? नृणाम् कहकर यह कहा गया है कि मनुष्य ही दण्डनीय हैं, पशु आदि नहीं । उन सबों में भी कुछ ही दण्नीय है ।।३९।।

यमदूता ऊचुः

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः । वेदो नारायणः साक्षात्स्वयंभूरिति शुश्रुम ।।४०।।

अन्वयः— वेद प्राणिहितः धर्मः तद्विपर्ययः अधर्मः, वेदः साक्षात् नारायणः स्वयम्भूः इतिशुश्रुम् ।।४०।।

यमराज के दूतों ने कहा

अनुवाद— वेद जिन कर्मों का विधान करते हैं वही धर्म है और वेद जिन कर्मों का निषेध करते हैं वही अधर्म है । वेद साक्षात् नारायण स्वरूप हैं वे नित्य हैं यह हमलोगों ने सुना है ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

वेदेन प्राणिहितो विहितो धर्मः, वेदप्रमाणक इत्यर्थः । अनेन यो वेदप्रमाणकः स धर्मों यो धर्मः स वेदप्रमाणक इति स्वरूपं प्रमाणं चोक्तम् । यथाह जैमिनिः 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः' इति । व्याख्यातं च भट्टैः 'द्वयमेकेन सूत्रेण श्रुत्यर्थाभ्यां निरूप्यते' इति । अपृष्टस्याप्यधर्मस्य स्वरूपं लक्षणं च दण्डस्थानकथनायाहुः । तद्विपर्ययो यो वेदनिषिद्धः सोऽधर्मः । निषेधश्च तस्मिन्प्रमाणमित्यर्थः । वेदस्य प्रामाण्ये हेतुः-वेदो नारायणादुद्भूतः स एव साक्षादित्युपचारः । स्वयंभूरिति च निःश्वासमात्रेण स्वयमेव भवतीति । तथाच श्रुतिः— 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदः' इति ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

वेदों के द्वारा जिन कर्मों का विधान किया जाता है वही धर्म है अर्थात् जिन कर्मों में वेद प्रमाण हैं, वह धर्म है । इससे यह सिद्ध हुआ कि जो वेद प्रमाणक है वही धर्म है और जो धर्म है वही वेद प्रमाणक है । इस तरह से उन सबों ने धर्म के स्वरूप और लक्षण को बतलाया । महर्षि जैमिनि भी कहते हैं— शास्त्र जिन कर्मों को करने के लिए प्रेरित करते हैं वही धर्म है । भट्टाचार्य उसकी व्याख्या में कहते हैं- धर्म के स्वरूप और लक्षण दोनों का एक ही सूत्र **'श्रुत्यर्थाभ्याम्'** के द्वारा निरूपण किया जाता है । यद्यपि अधर्म का स्वरूप और लक्षण नहीं पूछा गया है फिर भी यमदूतों ने कहा जिससे कि धर्म के पात्र को बतला सके । वेद निषिद्ध कर्म अधर्म हैं । अधर्म में निषेध प्रमाण है । वेद की प्रमाणिकता का कारण है कि वेद नारायण से उत्पन्न है । साक्षात् नारायण ही वेद हैं यह औपचारिक प्रयोग है । स्वयम्भूः कहकर यह बतलाया कि वेद भगवान् नारायण के निःश्वास मात्र हैं । श्रुति भी कहती है— **अस्य महतोभूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदः'** अर्थात् ऋग्वेद आदि सभी वे श्रीभगवान् के निःश्वास हैं । जिस तरह हमलोग अपने निःश्वास के कर्ता नहीं हैं, उसी तरह वेद भी परमात्माकृत नहीं । इसीलिए वेदों को **अपौरुषेय** माना जाता है ।।४०।।

येन स्वधाम्न्यमी भावा रजःसत्त्वतमोमयाः । गुणनामक्रियारूपैर्विभाव्यन्ते यथातथम् ।।४१।।

अन्वयः— येन स्वधाम्नि अमी रजः सत्त्व तमोमयाः भावाः गुणनामक्रियारूपैः यथातथम् विभाव्यन्ते सनारायण इति शेषः ।।४१।।

अनुवाद— जिनके द्वारा ये सभी रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुणमय सभी भाव पदार्थ अपने गुण नाम, कर्म और रूप के साथ ही जो वस्तु जैसी है उसी तरह से अपने स्वरूप में प्रकाशित किए जाते हैं, वे ही नारायण हैं ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

कोऽसौ नारायणस्तत्राहुः । येन स्वधाम्नि स्वस्वरूपे । अमी भावाः प्राणिनः । गुणाः शान्तत्वादय; । नामानि ब्राह्मण इत्यादीनि । क्रियाश्चाध्ययनाद्याः । रूपाणि वर्णाश्रमादयस्तैर्विभाव्यन्ते विविच्यन्ते । यथातथं यथावत् । स नारायणः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि नारायण कौन है ? इसके उत्तर में कहते हैं कि जिनके द्वारा अपने स्वरूप में ही ये सभी भाव

पदार्थ (प्राणी) गुण (शान्तघोर मूढ) नाम (ब्राह्मण इत्यादि) किया (अध्ययन आदि) रूप 'वर्ण तथा आश्रम आदि' पृथक्-पृथक प्रकाशित किए जाते हैं वे ही नारायण शब्द वाच्य है ॥४१॥

सूर्योऽग्निः खं मरुद्गावः सोमः सन्ध्याहनी दिशः । कं कुः कालो धर्म इति ह्येते दैह्यस्य साक्षिणः॥४२॥

अन्वयः— सूर्यः अग्निः स्वं, मरुद्गावः, सोमः, सन्ध्याहनी, दिशः कं, कुः, कालः धर्म इति एते हि दैह्यस्य साक्षिणः॥४२॥

अनुवाद— सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, इन्द्रियाँ, चन्द्रमा, सन्ध्या, रात, दिन, दिशाएँ, जल, पृथ्वी, काल और धर्म ये सभी मनुष्य द्वारा शरीर अथवा मनोवृत्ति द्वारा किए जाने वाले कर्मों के साक्षी हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

तथाप्यधर्मोऽनेन कृत इति कुतो ज्ञायते तत्राहुः-सूर्य इति । अहनी अहश्च रात्रिश्च । कम् उदकम् । कुः पृथ्वी । दैह्यस्य जीवस्य । यथाहुः-'आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च । अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ।' इति ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

फिर भी इसने अधर्म किया है इस बात को कैसे जाना जा सकता है ? इस पर यमदूतों ने सूर्य इत्यादि श्लोक कहा । अहनी अर्थात् दिन और रात, कम् जल का वाचक है, कु पृथ्वी का, और दैह्यस्य अर्थात् जीव के कर्मों के साक्षी हैं । जैसा कि कहा गया है- आदित्य चन्द्रावनिलः इत्यादि अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल, हृदय, यम, दिन, रात दोनों सन्ध्यायें तथा धर्म मनुष्य के द्वारा किए गये कर्मों के साक्षी हैं ॥४२॥

एतैरधर्मो विज्ञातः स्थानं दण्डस्य युज्यते । सर्वे कर्मानुरोधेन दण्डमर्हन्ति कारिणः ॥४३॥

अन्वयः— एतै अधर्मो विज्ञातः दण्डस्य स्थानं युज्यते सर्वकारिणः कर्मानुरोधेन दण्डमर्हन्तिः ॥४३॥

अनुवाद— जब इन सबों के द्वारा अधर्म का पता चल जाता है तब दण्ड के पात्र का निर्णय होता है । पाप कर्म करने वाले सभी मनुष्य अपने किए हुए कर्मों के अनुसार ही दण्ड के पात्र होते हैं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

स्थानमाहुः । एतैर्निमित्तभूतैर्विज्ञातः । दण्ड्यानाहुः-सर्व इति ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

इन सभी साक्षियों द्वारा अधर्म को जान लेने पर ही जीव दण्ड का पात्र होता है । सर्वे इत्यादि के द्वारा दण्डनीयों को बतलाया गया है ॥४३॥

संभवन्ति हि भद्राणि विपरीतानि चानघाः । कारिणां गुणसङ्गोऽस्ति देहवान्न ह्यकर्मकृत् ॥४४॥

अन्वयः— हे अनघाः कारिणां गुणसङ्ग अस्ति अतः भद्राणि विपरीतानि च भवन्ति नहि देहवान् अकर्मकृत् ॥४४॥

अनुवाद— हे निष्पाप पुरुषों जितने भी कर्म करने वाले हैं उन सबों का सत्त्वादि गुणों से सम्बन्ध होता ही है अतएव उन सबों से पुण्य तथा पाप कर्म हो जाते हैं । कोई भी शरीरधारी कर्मों को किए बिना नहीं रह सकता है ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

विपरीतान्यभद्राण्यपि कर्मिणां संभवन्ति । यतस्तेषां गुणसङ्गोऽस्ति । यदि कश्चिदकर्ता स्यात्तर्हि तस्याभद्राणि न स्युः। न त्वेतदस्तीत्याहुः । नहि देहवानकर्मकृदस्तीति । अतः सर्वे कर्मिणः कर्मिणां च पापस्यावश्यंभावित्वात्ते सर्वे दण्डमर्हन्तीत्यर्थः॥४४॥

भाव प्रकाशिका

विपरीतानि अर्थात् पापकर्म भी कर्म करने वालों से हो ही जाते हैं। क्योंकि सभी कर्म करने वालों का सत्त्वादि गुणों से सम्बन्ध होता है। यदि कोई (कर्मों को) नहीं करने वाला हो तो उसके द्वारा पाप कर्म न हों, किन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं है। शरीरधारी कर्मों को किए बिना नहीं रह सकता है अतएव साथ के सब कर्म करने वाले हैं। और कर्म करने वालों द्वारा पाप अवश्य होगा अतएव वे सभी दण्डनीय हैं ॥४४॥

येन यावान्यथाऽधर्मो धर्मो वेह समीहितः । स एव तत्फलं भुङ्क्ते तथा तावदमुत्र वै ॥४५॥

अन्वयः— इह येन यावान् यथा अधर्मः धर्मः वा समीहितः स एव इह अमुत्र वा तावदेव तत्फलं भुङ्क्ते ॥४५॥

अनुवाद— इस लोक मे जो मनुष्य जितना और जैसा धर्म अथवा अधर्म करता है वह उतना ही और उसके अनुसार ही फल को इस लोक में तथा परलोक में फल को प्राप्त करता है ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

कथंस्विद्ध्रियते दण्ड इत्यस्योत्तरम्–येनेति। धर्मो वेति दृष्टान्तः। अधर्मानुसारेण दण्डो धर्मानुसारेण सुखवदित्यर्थः॥४५॥

भाव प्रकाशिका

यदि आपलोग कहें कि तुमलोग किस प्रकार से दण्ड देते हो ? इसके उत्तर में यमदूतों ने कहा जिसके द्वारा जिनता पाप अथवा पुण्य कर्म किए जाते हैं उसी मात्रा में उसको दण्ड अथवा सुख प्राप्त होता है ॥४५॥

यथेह देवप्रवरास्त्रैविध्यमुपलभ्यते । भूतेषु गुणवैचित्र्यात्तथान्यत्रानुमीयते ॥४६॥

अन्वयः— हे देवप्रवराः इह भूतेषु यथा त्रैविध्यम् गुणवैचित्र्यात् उपलभ्यते तथा अन्यत्र अनुमीयते ॥४६॥

अनुवाद— हे देवश्रेष्ठों इस लोक में जिस तरह सत्त्व, रजस एवं तमस् इन तीनों के कारण लोग सुखी दुःखी और सुखी दुःखी लोग पाये जाते हैं, उसी तरह से परलोक में भी उनके सात्त्विकत्व, राजस एवं तामसत्व का अनुमान होता है ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

न केवलं सूर्यादय एव धर्माधर्मज्ञापकाः किंत्वर्थापत्तिरपीत्याहुः–यथेति। हे देवप्रवराः, इह जन्मनि शान्तघोरमूढत्वेन वा सुखदुःखमिश्रत्वेन वा धार्मिकत्वादिना वा त्रैविध्यं भूतेषु यथोपलभ्यते तथान्यत्र जन्मान्तरेऽनुमीयते त्रैविध्यान्यथानुपपत्त्या कल्प्यते ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

केवल सूर्य आदि से ही नही धर्माधर्म का पता चलता है अपितु अर्थापति के द्वारा भी जीवों द्वारा किए गये धर्मकर्मों का पता चलता है। इस जन्म में शान्त, घोर अथा मूढ होने के कारण अथवा उनके सुखी, दुःखी और सुखी-दुःखी दो प्रकार के होने के कारण, अथवा धार्मिकत्व आदि के कारण, जीवों में जिस तरह त्रिविधता पायी जाती है, उसी तरह जन्मान्तर में भी उनकी त्रिविधता का अन्यथाऽनुपपत्ति के द्वारा अनुमान होता है ॥४६॥

वर्तमानोऽन्ययोः कालो गुणाभिज्ञापको यथा । एवं जन्मान्ययोरेतद्धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥४७॥

अन्वयः— यथा वर्तमानः अन्ययोः कालः गुणाभिज्ञापकः एवं जन्मनि अयोः एतद् धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥४७॥

अनुवाद— हमारे स्वामी भगवान् अजन्मा यमराज सबों के अन्तःकरण में अतर्यामी रूप से विराजमान हैं। अतएव अपने मन से सबों के पूर्व रूप (अतीतकालिक रूप) को जान लेते हैं। किञ्च उसी से वे उन जीवों के भावी स्वरूप का विचार कर लेते हैं ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

वर्तमानजन्मना पूर्वापरजन्मधर्माधर्मज्ञानं भवतीति सदृष्टान्तमाहुः । वर्तमानो वसन्तादिकालः । अन्ययोर्भूतभविष्ययोर्वसन्तयोर्ये गुणाः पुष्पफलादयस्तेषामभिज्ञापको यथा । एवमेतज्जन्म अन्ययोर्भूतभाविजन्मनोर्धर्माधर्मौ निदर्शयतीति तथा ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

वर्तमान के द्वारा ही अतीत एवं अनागत काल के धर्मों एवं अधर्मों का ज्ञान हो जाता है । इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक यमदूतों ने कहा । जिस तरह वर्तमान वसन्तादि काल भूत एवं भविष्यत् काल के गुणों पुष्प फल इत्यादि बोधक होते हैं उसी तरह वर्तमान जन्म भी भूत काल एवं भविष्यत् काल के धर्मा धर्म के बोधक होते हैं ।।४७।।

मनसैव पुरे देवः पूर्वरूपं विपश्यति । अनुमीमांसतेऽपूर्वं मनसा भगवानजः ।।४८।।

अन्वयः— देव भगवान् अजः पुरे मनसैव पूर्वरूपं विपश्यति अपूर्वं अनुमीमांसते च ।।४८।।

अनुवाद— हमारे स्वामी भगवान् अजन्मा यमराज सबों के अन्तःकरण में अन्तर्यामी रूप से विराजमान हैं। अतएव अपने मन से सबों के पूर्वरूप (अतीत कालिक रूप) को जान लेते हैं । किञ्च उसी से वे उन जीवों के भावी स्वरूप का विचार कर लेते हैं ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

अयं च धर्माधर्मज्ञानप्रकारोऽन्येषां, धर्मराजस्तु मनसैव सर्वं पश्यतीत्याहुः । पुरे संयमिन्यां स्थित एव देवो यमो देहे स्थितोन्तर्यामी वा जीवस्य पूर्वरूपं धर्माधर्मादियुक्तं विशेषेण पश्यति । अन्वनन्तरमपूर्वं रूपं मीमांसते । यद्यस्यानुरूपं तद्विचारयति, यतोऽसौ भगवानजः ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

मनुष्यों के धर्म और अधर्म के ज्ञान का यह प्रकार दूसरों के लिए यमराज तो अपने मन से ही जीव के धर्म और अधर्म को जान लेते हैं । ये अपनी संयमनी नगरी में विद्यमान रहकर ही अन्तर्यामी रूप से सबों के देह में स्थित हैं । वे जीव के भूत कालिक धर्म और अधर्म को विशेष रूप से देखते हैं, उसी तरह वे भावी पुण्य पाप का विचार कर लेते हैं । जो जिसके अनुरूप होता है उसका वे विचार कर लेते हैं क्योंकि वे भगवान् तथा अजन्मा हैं ।।४८।।

यथाऽज्ञस्तमसा युक्त उपास्ते व्यक्तमेव हि । न वेद पूर्वमपरं नष्टजन्मस्मृतिस्तथा ।।४९।।

अन्वयः— अज्ञः यथा तमसायुक्तः अज्ञः व्यक्तम् एव उपास्ते नष्ट जन्म स्मृतिः तथा पूर्वम् परं न वेद ।।४९।।

अनुवाद— जिस तरह अज्ञानी जीव वर्तमान शरीर को जानता है अपने अतीत कालिक और अनागत कालिक शरीर को नहीं क्योंकि उसकी पूर्वा पर जन्म विषयक स्मृति उसी तरह नष्ट हो गयी रहती जिस तरह स्वप्न देखने वाले को अपने स्वप्न कालिक ही शरीर की प्रतीति होती है, सोने से पहले और सोने के बाद के शरीर की प्रतीति नहीं होती है ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

जीवस्त्वीश्वरेणोपस्थापितं वर्तमानं देहं पश्यति नतु पूर्वमपरं चेत्याहुः-यथेति । अज्ञोऽविद्योपाधिर्जीवस्तु व्यक्तमेव प्राचीनकर्माभिव्यक्तं वर्तमानमेव देहाद्युपास्तेऽहमिति मन्यते, पूर्वमपरं वा न वेद । अत्र हेतुः-नष्टा जन्मनां स्मृतिर्यस्य । अत्र दृष्टान्तः-तमसा निद्रया युक्तो यथा स्वप्नेऽपि व्यक्तमेव देहाद्युपास्ते न तु जाग्रद्देहादि पूर्वस्वप्नादिगतं वा तद्वदित्यर्थः ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

जीव परमात्मा के द्वारा प्रदत्त वर्तमान शरीर को ही जानता है, उससे पहले भूतकाल के अथवा बाद के

भविष्यत् कालिक शरीर को नहीं जानता है । इसी अर्थ को **यथा० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । अज्ञानी जीव अविद्योपहित होने के कारण अपने प्राचीन कर्मों के फलस्वरूप वर्तमान शरीर को ही मैं मनुष्य हूँ इत्यादि रूप से जानता है । वह अपने पहले अथवा बाद में होने वाले शरीर के विषय में नहीं जानता है । उसका कारण हैं कि उसको अपने पूर्वजन्मों की स्मृति नष्ट हो गयी रहती है । **उदाहणार्थ**— तमोगुण के कारण निद्रा युक्त पुरुष जैसे स्वपन कालिक शरीर को ही मैं हूँ इस तरह से जानता है, स्वप्न काल में प्रतीत होने वाली शरीर से पहले और बाद के शरीर का अर्थात् जाग्रत कालिक शरीर का उसे ज्ञान नहीं रहता है ॥४९॥

पञ्चभिः कुरुते स्वार्थान्पञ्च वेदाथ पञ्चभिः । एकस्तु षोडशेन त्रीन्स्वयं सप्तदशोऽश्नुते ॥५०॥

अन्वयः— पञ्चभिः स्वार्थान् कुरुते अथ पञ्चभिः पञ्च वेद, एकस्तु स्वयं षोडशेन सप्तदशः त्रीन् अश्नुते ॥५०॥

अनुवाद— जीव इस शरीर में पाञ्च कर्मेन्द्रियों द्वारा आदान, गमन आदि विविध क्रियाओं को करता है, और पाँच ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का अनुभव करता है । सोलहवें मन के साथ सत्रहवा वह ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों और मन इन तीनों के विषयों को भोगता है ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतस्य जीवस्य संसारं प्रपञ्चयन्ति पञ्चभिः श्लोकैः । पञ्चभिः कर्मेन्द्रियैः स्वार्थानुपादानादीन्कुरुते । पञ्च शब्दादीन्वेद पञ्चभिर्ज्ञानेन्द्रियैः । षोडशेन मनसा सह सप्तदशः षोडशोपाध्यन्तर्गतोऽपि स्वयं त्वेक एव । सर्वेन्द्रियविषयप्रतिसंधानात् । त्रीन् ज्ञानकर्मेन्द्रियमनोविषयान्प्राप्नोति ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के जीवों के संसार का पाञ्च श्लोकों के द्वारा यमदूत विस्तार से वर्णन करते हैं जीव अपने पाञ्च कर्मेन्द्रियों के द्वारा अपने अभिप्रेत आदान-प्रदान, गमनादि क्रियाओं को करता है, और अपने पाञ्च ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध रूप विषयों का अनुभव करता है सलहवें मन के साथ मिलकर सत्रहवाँ जीव ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों और मन इन तीनों के विषयों का भोग करता है ॥५०॥

तदेतत्षोडशकलं लिङ्गं शक्तित्रयं महत् । धत्तेऽनुसंसृतिं पुंसि हर्षशोकभयार्तिदाम् ॥५१॥

अन्वयः— षोडशकलं शक्तित्रयं तदेतत् लिङ्गं महत् पुंसि हर्षशोकभयार्तिदाम् अनुसंसृतिम् धत्ते ॥५१॥

अनुवाद— जीव का सोलह कलाओं और तीन सत्त्वादि गुणों वाला यह लिङ्ग शरीर अनादि है । यह जीव को बार-बार हर्ष, भय और शोक प्रदान करने वाले जन्म और मृत्यु के चक्र में डालता है ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

तदेतल्लिङ्गशरीरं शक्तित्रयं गुणत्रयकार्यं महदनादि पुंसि जीवे अन्वनुसंसृतिं धत्ते ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

जीव का जो यह सोलह कलाओं वाला सत्त्वादि गुण त्रय के कार्यभूत तीन शक्तियों से युक्त होकर जीव में बार-बार जन्मों को धारण करता है ॥५१॥

देह्यज्ञोऽजितषड्वर्गो नेच्छन्कर्माणि कार्यते । कोशकार इवात्मानं कर्मणाच्छाद्य मुह्यति ॥५२॥

अन्वयः— अज्ञो देही अजितषडवर्गः न इच्छन् कर्माणि कार्यते, कर्मणा कोशकार इव आत्मानम् आच्छाद्य मुह्यति॥५२॥

अनुवाद— जो जीव अज्ञानवशात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मत्सर इन छह शत्रुओं पर विजय नहीं प्राप्त कर लेता है, उसको इच्छा नहीं रहने पर भी वासनाओं के अनुसार विभिन्न कर्मों को बाध्य होकर करना

ही पड़ता है। ऐसी स्थिति में वह रेशम के कीड़ों के समान अपने को कर्मों के जाल में जकड़ लेता है और अपने ही हाथों उसे मोह का शिकार होना पड़ता है ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

नेच्छन्ननिच्छन्नप्यनेनैव कर्माणि कार्यते। कोशकारः कीटविशेषः। मुह्यति निर्गमोपायं न जानाति ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

जो जीव अपने काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ एवं मत्सर इन छह शत्रुओं को नहीं जीते रहता है उसको नहीं चाहने पर भी विभिन्न प्रकार के कार्यों को करना ही पड़ता है। और कर्मों के जाल में जकड़ा हुआ वह इससे उसी तरह नहीं निकल पाता है जिस तरह रेशम का कीड़ा कोश का स्वयं निर्माण करके उससे बाहर निकल पाने का रास्ता नहीं पाता है ॥५२॥

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म गुणैः स्वाभाविकैर्बलात् ॥५३॥

अन्वयः— कश्चित् क्षणमपि, अकर्मकृत् जातु नहि तिष्ठति, स्वाभिकैः गुणैः बलात् अवशः कर्म कार्यते ॥५३॥

अनुवाद— कोई भी शरीरधारी जीव कभी क्षण भर कर्म किए बिना नहीं रहता है, प्रत्येक क्षण स्वाभाविक गुण उसको विवश करके उससे कर्मो को करवाते हैं ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

कार्यत इत्यत्रानुभवं प्रमाणयन्ति-नहीति। गुणैर्गुणकार्यरागादिभिः। स्वाभाविकैः पूर्वकर्मसंस्कारोद्भूतैः ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

नहि० इत्यादि श्लोक के **कार्यते** इस पद के द्वारा अनुभव को प्रामाणिक सिद्ध करते हैं। गुणै: अर्थात् गुणों के कार्य राग द्वेष आदि जो स्वाभाविक हैं तथा पूर्व जन्मों के संस्कारों से उत्पन्न होते है, वे जीव को कर्म करने के लिए बाध्य कर देते हैं और बाध्य होकर जीव को कर्मों को करना ही पड़ता है ॥५३॥

लब्ध्वा निमित्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं भवत्युत। यथायोनि यथाबीजं स्वभावेन बलीयसा ॥५४॥

अन्वयः— अव्यक्तं निमित्तं लब्ध्वा यथा योनि यथा बीजं बलीयसा स्वभावेन व्यक्ता व्यक्तं भवति ॥५४॥

अनुवाद— जीव अपने पूर्वजन्म के पाप पुण्य रूप कर्मों से उत्पन्न अदृष्ट के अनुसार स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर वाला हो जाता है। और उसकी स्वाभाविक वासनाएँ जो अत्यन्त प्रबल होती हैं उसका रूप यथा योनि (माता के समान स्त्री रूप) और कभी यथा बीजम् (पिता के समान पुरुष) बना देने का काम करती है ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

कर्मवशेन च तदनुरूपो देहो भवतीत्याहुः-लब्ध्वेति। अव्यक्तमदृष्टं निमित्तं लब्ध्वा व्यक्ताव्यक्तं तदनुरूपं स्थूलं सूक्ष्मं च शरीरं भवति। यथायोनि मातृसदृशम्। यथाबीजं पितृसदृशम्। स्वभावो वासना। शुक्रशोणितयोरेकत्वेऽपि कर्मवासनया मातापितृसदृशो देहो भवतीत्यर्थः ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

जीव अपने पूर्व जन्म के कर्मों के कारण उनके अनुसार ही शरीर को प्राप्त करता है इस बात को **लब्ध्वा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है। पूर्वजन्म के कर्मजन्य अदृष्ट को प्राप्त करके जीव अपने सूक्ष्म और स्थूल शरीर को प्राप्त करता है। और स्वाभाविक वासना के कारण यद्यपि शुक्र और शोणित के एक होने पर भी उसे कभी माता के समान स्त्री शरीर वाला और कभी पिता के समान पुरुष रूप वाला बना देने के काम करती है; क्योंकि वासना अत्यन्त प्रबल होती है ॥५४॥

एष प्रकृति सङ्गेन पुरुषस्य विपर्ययः । आसीत्स एव नचिरादीशसङ्गाद्विलीयते ॥५५॥

अन्वयः— प्रकृति सङ्गेन एषः पुरुषस्य विपर्ययः आसीत् सः ईश सङ्गेन न चिरात् विलीयते ॥५५॥

अनुवाद— प्रकृति का सम्बन्ध होने के कारण ही जीव अपने को अपने वास्तविक स्वरूप के विपरीत लिङ्ग शरीर मान लेता है, यह उसका विपरीत ज्ञान है । परमात्मा का भजन करने से उसका यह विपरीत ज्ञान शीघ्र ही दूर हो जाता है ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

संसारचक्रमुपसंहरन्तो मुक्तिप्रकारमाहुः-एष इति । ईशसङ्गात् परमेश्वरभजनात् ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

संसार चक्र का उपसंहार करते हुए यमदूत मुक्ति के प्रकार को एष इत्यादि श्लोक से कहते हैं । परमात्मा का भजन करने से ॥५५॥

अयं हि श्रुतसंपन्नः शीलवृत्तगुणालयः । धृतव्रतो मृदुर्दान्तः सत्यवान्मन्त्रविच्छुचिः ॥५६॥

अन्वयः— अयं हि श्रुतसम्पन्नः शीलवृत्तगुणालयः, धृतव्रतः मृदुः दान्त सत्यवान् मन्त्रवित् शुचिः ॥५६॥

अनुवाद— यह अजामिल पहले शास्त्र ज्ञान सम्पन्न, शील, सदाचार और सद्गुणों का आश्रय था । यह ब्रह्मचारी, विनय सम्पन्न, जितेन्द्रिय, सत्य बोलने वाला मन्त्रज्ञ और पवित्र था ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं सामान्यतो धर्मादिनिर्णयमुक्त्वा प्रस्तुतस्याजामिलस्याधर्मं प्रपञ्चयन्तो दण्ड्यत्वमाहुः- अयं हीति यावदध्यायसमाप्ति। तत्र द्वाभ्यां तत्पूर्ववृत्तान्तानुवादोऽन्यायातिरेकप्रदर्शनार्थः । शीलं सुस्वभावः, वृत्तं सदाचारः, गुणाः क्षमादयस्तेषामालयः ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह सामान्य रूप से धर्म आदि के निर्णय को बतलाकर अजामिल के अधर्म का विस्तार से वर्णन करते हुए यमदूतों ने उसके दण्डयत्व का प्रतिपादन इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त किया है उसमें भी दो श्लोकों द्वारा अजामिल के पूर्व वृतान्त का अनुवाद उसके अत्यधिक अन्याय को बतलाने के लिए किया गया है । शील शब्द से सुख रूपता को, वृत्त शब्द से सदाचार को एव गुण शब्द से क्षमा दया आदि को बतलाकर इन सबों का आश्रय उसको बतलाया गया है ॥५६॥

गुर्वग्न्यतिथिवृद्धानां शुश्रूषुर्निरहंकृतः । सर्वभूतसुहृत्साधुर्मितवागनसूयकः ॥५७॥

अन्वयः— गुर्वग्न्यतिथि वृद्धानां शुश्रुषुः, निरहंकृतः सर्वभूतसुहृत्, साधुः मितवाक् अनसूयकः ॥५७॥

अनुवाद— इस आजामिल ने गुरु, अग्नि, अतिथि, और वृद्ध पुरुषों की सेवा की थी, यह अहङ्कार रहित था । यह सभी प्राणियों का कल्याणकारी था, उपकार करने वाला मितभाषी और किसी के भी गुणों में दोष नहीं ढूढ़ता था ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

निरहंकृतो निरहंकारः ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

निरहंकृत शब्द से अहङ्कार राहित्य को बतलाया गया है ॥५७॥

एकदाऽसौ वनं यातः पितृसंदेशकृद्द्विजः । आदाय तत आवृतः फलपुष्पसमित्कुशान् ॥५८॥

अन्वयः— असौ पितृसंदेकृन् द्विजः एकदावनं यातः, ततः फलपुष्पसमित् कुशान् आदाय आवृतः ॥५८॥

अनुवाद— एक बार वह ब्राह्मण अपने पिता की आज्ञा से वन में गया और वहाँ से फल, पुष्प, समिधा और कुश लेकर लौटा ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

तत आवृत्तो वनात्परावृत्तः ॥५८॥

भाव प्रकाशिका

तत आवृतः का अर्थ है वन से लौटा ॥५८॥

ददर्श कामिनं कंचिच्छूद्रं सह भुजिष्यया । पीत्वा च मधु मैरेयं मदाघूर्णितनेत्रया ॥५९॥

अन्वयः— कश्चित् कामिनं शूद्रं मैरेयं मधुपीत्वा मदाधूर्णितनेत्रया भुजिष्यया सह ददर्श ॥५९॥

अनुवाद— उसने मार्ग में किसी कामी शूद्र को देखा जो पेष्टी मदिरा को पीकर उसके मद के कारण मत्त बनी हुई किसी दासी के साथ देखा ॥५९॥

भावार्थ दीपिका

भुजिष्यया भोगस्त्रिया दास्या । मैरेयं मधु पैष्टीं सुरां पीत्वा । मदेनाघूर्णिते भ्रान्ते नेत्रे यस्याः ॥५९॥

भाव प्रकाशिका

उसने एक कामी शूद्र को देखा जो पैष्टी मदिरा को पिये हुए था । वह किसी ऐसी दासी के साथ था जिसके मद के कारण नेत्र घूर्णित हो रहे थे ॥५९॥

मत्तया विश्लथन्नीव्या व्यपेतं निरपत्रपम् । क्रीडन्तमनु गायन्तं हसन्तमनयाऽन्तिके ॥६०॥

अन्वयः— व्यपेतं निरपत्रपं मत्तया, विश्लथनीव्या क्रीडन्तम् अनया गायन्तम्, हसन्तम् अन्तिके ददर्श इति पूर्वेणान्वयः॥६०॥

अनुवाद— उस आचार भ्रष्ट तथा निर्लज्ज शूद्र को जिसका नीवी बन्ध खुल गया था ऐसी मदमत्त दासी के साथ मैथुन कर रहा था, तथा उसके साथ गीत गाता था और हँसता था । इस तरह के शूद्र को इसने सन्निकट से ही देखा ॥६०॥

भावार्थ दीपिका

विशेषेण श्लथन्ती नीवी यस्यास्तया सह । व्यपेतं स्वाचाराद्भ्रष्टम् ॥६०॥

भाव प्रकाशिका

जिसका नीवी बन्धन विशेष रूप से ढीला हो गया था यह श्लथन्ती व्यपेतं अर्थात् अपने आचार से भ्रष्ट ॥६०॥

दृष्ट्वा तां कामलिप्तेन बाहुना परिरम्भिताम् । जगाम हृच्छयवशं सहसैव विमोहितः ॥६१॥

अन्वयः— कामलप्तेन बाहुना परिरम्भिताम् ताम् दृष्ट्वा सहसैव विमोहितः हृच्छयवशं जगाम ॥६१॥

अनुवाद— उस शूद्र की भुजाओं में कामोदीपक वस्तुएँ हल्दी आदि लगी थी ओर वह उन भुजाओं से उस कुलटा का आलिङ्गन कर रहा था । अजामिल उन दोनों को उस अवस्था में देखकर काम मोहित हो गया तथा कामार्त हो गया ॥६१॥

भावार्थ दीपिका

कामेन कामोद्दीपकेन तदङ्गरागेण हरिद्रादिना लिप्तेन ।।६१।।

भाव प्रकाशिका

कामेन अर्थात कामेद्दीपक इरिद्रा आदि से लिप्त भुजाओं से ।।६१।।

स्तम्भयन्नात्मनात्मानं यावत्सत्त्वं यथाश्रुतम् । न शशाक समाधातुं मनो मदनवेपितम् ।।६२।।

अन्वयः— यावत् सत्त्वं यथाश्रुतम् आत्मना आत्मानं स्तम्भयन् मदनवेपितं मनः समाधातुं न शशाक ।।६२।।

अनुवाद— अपने धैर्य और ज्ञान के अनुसार अजामिल ने अपने मन को रोकने की भरपूर चेष्टा की किन्तु वह काम से चञ्चल बने मन को रोकने में समर्थ नहीं हुआ ।।६२।।

भावार्थ दीपिका

सत्त्वं धैर्यम् श्रुतं ज्ञानम् । तद्बलेन स्तम्भयन्नपि मदनेन कम्पितं मनः समाधातुं नियमितुं शक्तो नाभूत् ।।६२।।

भाव प्रकाशिका

सत्त्व धैर्य को कहते हैं और श्रुत ज्ञान को । अजामिल अपने धैर्य और ज्ञान के द्वारा काम से चञ्चल बने अपने मन को अपने वश में करने का बहुत प्रयास किया किन्तु ऐसा वह कर नहीं सका ।।६२।।

तन्निमित्तस्मरव्याजग्रहग्रस्तो विचेतनः । तामेव मनसा ध्यायन्स्वधर्माद्विरराम ह ।।६३।।

अन्वयः— तन्निमितस्मरव्याजग्रहग्रस्तः विचेतनः मनसा तामेव ध्यायन् स्वधर्माद् विरराम ह ।।६३।।

अनुवाद— उस वेश्या को ही निमित्त बनाकर काम रूपी ग्रह ने अजामिल को ग्रस लिया । उसका सदाचार और शास्त्र विषयक ज्ञान की चेतना विनष्ट हो गयी । वह मन ही मन उस वेश्या का ही चिन्तन करने लगा और अपने धर्म से विमुख हो गया ।।६३।।

भावार्थ दीपिका

तद्दर्शनमेव निमित्तं यस्य स्मरव्याजग्रहस्य तेन ग्रस्तः । विचेतनो गतस्मृतिः ।।६३।।

भाव प्रकाशिका

उस वेश्या के दर्शन रूपी निमित्त था काम के बहाने ग्रहग्रस्त होने में उस ग्रह से अजामिल ग्रस्त हो गया उसके सदाचार और ज्ञान की चेतना विनष्ट हो गयी ।।६३।।

तामेव तोषयामास पित्र्येणार्थेन यावता । ग्राम्यैर्मनोरमैः कामैः प्रसीदेत यथा तथा ।।६४।।

अन्वयः— ग्राम्यैः मनोरमैः कामै यथा प्रसीदेत तथा यावता पित्र्येणार्थेन तामेव तोषयामास ।।६४।।

अनुवाद— अजामिल सुन्दर वस्त्र तथा आभूषण आदि वस्तुओं जिससे कि वह वेश्या प्रसन्न रहे उसको लाता था यहाँ तक कि उसने अपने पिता की सम्पूर्ण सम्पत्ति को उसी को प्रसन्न करने में विनष्ट कर दिया ।।६४।।

भावार्थ दीपिका

यावता समग्रेण ।।६४।।

भाव प्रकाशिका

यावता पद का अर्थ है सम्पूर्ण सम्पत्ति के द्वारा ।।६४।।

विप्रां स्वाभार्यामप्रौढां कुले महति लम्भिताम् । विससर्जाचिरात्पापः स्वैरिण्यापाङ्गविद्धधीः ॥६५॥

अन्वयः— स्वैरिण्यापाङ्गविद्धधीः सः पाप महति कुले लम्भितां अप्रौढ़ाम् विप्राम् स्वभार्याम् अचिरात् विससर्ज।।६५।।

अनुवाद— उस स्वच्छाचारिणी वेश्या के कटाक्षपातों से मोहित उस पापी ने महान् वंश की नवयुवती अपनी ब्राह्मणी भार्या का शीघ्र ही परित्याग कर दिया ।।६५।।

भावार्थ दीपिका

लम्भितां परिणीताम् ।।६५।।

भाव प्रकाशिका

लम्भिताम् विवाहिता ।।६५।।

यत्तस्ततश्चोपनिन्ये न्यायतोऽन्यायतो धनम् । बभारास्याः कुटुम्बिन्याः कुटुम्बंमन्दधीरयम् ॥६६॥

अन्वयः— अयम् मन्दधी यतस्त न्यायतः अन्यायतश्च धनम् उपनिन्ये अस्याः कुटुम्बिन्याः कुटुम्बम् बमार ।।६६।।

अनुवाद— यह मूर्ख जहाँ-तहाँ से न्यायपूर्वक अथवा अन्याय से धन लाता था और उस वेश्य के बड़े परिवार का ही पालन करने में सदा व्यस्त रहता था ।।६६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।६६।।

यदसौ शास्त्रमुल्लङ्घ्य स्वैरचार्यार्यगर्हितः । अवर्तत चिरं कालमघायुरशुचिर्मलात् ॥६७॥

अन्वयः— यत् असौ शास्त्रम् उल्लंघ्य स्वैराचारगर्हितः अघायुः मलात् अशुचिः चिरं कालम् अवर्तत ।।६७।।

अनुवाद— इस पापी ने शास्त्राज्ञा का उल्लंघन करके स्वच्छन्दाचरण किया है । यह सत्पुरुषों के द्वारा निन्दित है । इसने वेश्या के मल के समान निन्दित अन्न से अपना बहुत समय तक समय बिताया है । अतएव यह महापापी है ।।६७।।

भावार्थ दीपिका

अघरूपमायुर्यस्य । मलमेव तदीयमन्नादिकमत्तीति मलात् ।।६७।।

भाव प्रकाशिका

इसका जीव पाप स्वरूप है । उस वेश्या का अन्न मल स्वरूप है उसको खाने के कारण उस मल से दूषित है ।।६७।।

तत एनं दण्डपाणेः सकाशं कृतकिल्बिषम् । नेष्यामोऽकृतनिर्वेशं यत्र दण्डेन शुध्यति ॥६८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे अजामिलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

अन्वयः— ततः एवं कृतकिल्विषं दण्डपाणेः सकाशं नेष्यामः यत्र अकृतनिवेशः अयम् दण्डेन शुद्ध्यति ।।६८।।

अनुवाद— इसने अब तक अपने पापों का प्रायश्चित नहीं किया है अतव इसको हमलोग भगवान् यमराज के पास ले जायेंगे वहाँ पर अपने पापों का दण्ड भोग कर शुद्ध हो जायेगा ।।६८।।

इस तरह से श्रीमद्भागवत पुराण के छठे स्कन्ध के अजामिलोपाख्यान के अन्तर्गत प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

भावार्थ दीपिका

अकृतनिर्वेशमकृतप्रायश्चित्तम् । अस्यैव च हितार्थे नेष्याम् इत्याहुः— यत्रेति ।।६८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

अपने पापों का प्रायश्चित नहीं करने वाले इसके ही कल्याण के लिए इसको हमलोग यमराज के पास ले जायेंगे, इस बात को **यत्र इत्यादि** के द्वारा कहा गया है ॥६८॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराग के छठे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के प्रथम अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१।।

दूसरा अध्याय

भगवान् विष्णु के दूतों के द्वारा भागवत धर्म का निरूपण और अजामिल का परम धाम गमन

श्रीशुक उवाच

एवं ते भगवद्दूता यमदूताभिभाषितम् । उपाधायार्थ तान् राजन्प्रत्याहुर्नयकोविदाः ॥१॥

अन्वयः— राजन् ! नय कोविदाः ते भगवद् दूताः एवं यमदूताभिभाषितम् उपधार्य तान प्रत्याहुः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— नीतिज्ञ भगवद् दूतों ने इस प्रकार से यमदूतों के अभिप्राय को सुनकर उन सबों से इस प्रकार से कहा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वितीये वैष्णवैर्याम्यान्नाममाहात्म्यमद्भुतम् । श्रावयित्वा द्विजो विष्णोर्लोकं नीत इतीर्यते । नयकोविदा न्यायनिपुणाः॥१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे अध्याय में भगवान् के दूत श्रीभगवान् के नामों की अद्भुत महिमा को सुनाकर ब्राह्मण अजामिल को भगवान् विष्णु के लोक में ले गये इस बात को कहा गया है । **नयकोविदाः** अर्थात् नीतिनिपुण ॥१॥

विष्णुदूता ऊचुः

अहो कष्टं धर्मदृशामधर्मः स्पृशते सभाम् । यत्रादण्ड्येष्वपापेषु दण्डो यौर्ध्रियते वृथा ॥२॥

अन्वयः— अहो कष्टम् धर्मदृशाम् सभाम् अधर्मः स्पृशते यत्रयैः अदण्ड्येषु अपापेषु वृथा दण्डो ध्रियते ॥२॥

भगवान् विष्णु के दूतों ने कहा

अनुवाद— यमदूतों यह कष्ट की बात है कि धर्मज्ञों की सभा में अधर्म प्रवेश कर रहा है क्योंकि वहाँ अदण्डनीय और निष्पाप पुरुषों को व्यर्थ ही दण्ड दिया जाता है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

धर्मदृशां सभामधर्मः स्पृशति । तदाहुः यत्र सभायाम् । यैर्धर्मदृग्भिः । तेषां तां सभाम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

धर्मज्ञों की सभा में अधर्म प्रवेश कर रहा है । उस समय के धर्म के अभिज्ञों द्वारा उन सबों की उस सभा में॥२॥

प्रजानां पितरो ये च शास्तारः साधवः समाः । यदि स्यात्तेषु वैषम्यं कं यान्ति शरणं प्रजाः ॥३॥

अन्वयः— ये च प्रजानां पितरः शास्तारः साधवः समाः यदि तेषु वैषम्यं स्यात् प्रजाः कं शरणं यान्ति ॥३॥

अनुवाद— जो लोग प्रजाओं के रक्षक, प्रशासक परोपकारी और समदर्शी हैं वे ही यदि प्रजा के साथ विषमता का व्यवहार करने लगें तो फिर प्रजायें किसके शरण में जायेंगी ?॥३॥

भावार्थ दीपिका

पितरः पितृवत्पालकाः शास्तारो दण्डयनुशिक्षकाः । वैषम्यमदण्ड्यदण्डनम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

पितरः अर्थात् पिता के समान पालन करने वाले शास्तारःअर्थात् दण्ड देने वाले को शिक्षा देने वाले । वैषम्यम् अर्थात् अदण्डनीय को दण्डित करना ॥३॥

यद्यदाचरति श्रेयानितरस्तत्तदीहते । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥४॥

अन्वयः— श्रेयान् यद् यद् आचरति इतरः तत्तदीहते, स यत् प्रमाणं कुरुते लोकः तदनुवर्तते ॥४॥

अनुवाद— सत्पुरुष जैसा आचरण करते हैं साधारण लोग भी वैसा ही करते है । वे अपने आचरण के द्वारा जिस कर्म को धर्मानुकूल प्रमाणित करते हैं लोग उसी का अनुकरण करते हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रवर्तितमधर्ममन्योऽपि करिष्यतीति महत्कष्टमभूदित्याहुः-यद्यदिति । श्रेयान् श्रेष्ठः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

इसके द्वारा प्रवर्तित अधर्म को दूसरे लोग भी करने लगेंगे यह अत्यन्त कष्ट की बात है इस तरह से श्रीभगवान् के दूतों ने कहा । श्रेयान् अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष ॥४॥

यस्याङ्के शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृतः । स्वयं धर्ममधर्मं वा नहि वेद यथा पशुः ॥५॥

अन्वयः— यस्य अङ्के शिरम् आधाय निर्वृतः लोकः स्वपिति सः पशु यथा स्वयं धर्मम् अधर्मंवा न वेद ॥५॥

अनुवाद— जिसकी गोद में सिर रखकर संसार निश्चिन्त होकर सोता है वही यदि पशुओं के समान धर्म और अधर्म को नहीं जाने तो क्या होगा ॥५॥

भावार्थ दीपिका

विश्वस्तघातादपीत्याहुः यस्येति द्वाभ्याम् । निर्वृतो निश्चिन्तः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

यस्य इत्यादि दो श्लोकों द्वारा यह बतलाया गया है कि यह तो विश्वासघात से भी बढ़कर पाप है । निर्वृतः अर्थात् निश्चिन्त ॥५॥

स कथं न्यर्पितात्मानं कृतमैत्रमचेतनम् । विश्रम्भणीयो भूतानां सघृणो द्रोग्धुमर्हति ॥६॥

अन्वयः— विश्रम्भणीयः भूतानां सघृणः सः न्यर्पितात्मानम् अचेतनम्, कृतमैत्रम् कथं द्रोग्धुम् अर्हति ॥६॥

अनुवाद— विश्वसनीय तथा जीवों पर दया करने वाला वह पुरुष आत्म समर्पण करने वाले अचेतन तथा मित्रता के भाव से युक्त पुरुष के प्रति विश्वासघात कैसे कर सकता है ?॥६॥

भावार्थ दीपिका

विश्वासेन नितरामर्पितः आत्मा येन तम् । विश्रम्भणीयो विश्वसनीयः । सघृणश्चेत् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

विश्वास होने के कारण जिसने पूर्ण रूप से आत्मसमर्पण कर दिया है उसके साथ विश्वसनीय और दयालु व्यक्ति विश्वासघात कैसे कर सकता है ॥६॥

अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि । यद्व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥७॥

अन्वयः— अयं हि जन्मकोट्यंहसाम् अपि कृतनिर्वेशः यत् विवशः सन् हरेः स्वस्त्यनं नाम व्याजहार ॥७॥

अनुवाद— इसने तो करोड़ों जन्मों के पापों का इस तरह से ही प्रायश्चित कर लिया कि मृत्यु के समय विवश होकर श्रीहरि के मङ्गलमय नाम का उच्चारण किया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

नन्वस्य पापिनो दण्डे किमर्थमाक्रोशः क्रियते तत्राहुः-अयं हीति । यद्यस्माद्विवशोऽपि हरेर्नाम व्याजहारोच्चारितवान्। न केवलं प्रायश्चित्तमात्रं हरेर्नाम, अपितु स्वस्त्ययनं मोक्षसाधनमपि । 'सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् । बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ।' इति स्मृतेः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

यदि दूत यह पूछें कि इस पापी को दण्ड देने पर आपलोगों को क्रोध क्यों हो रहा है ? तो इस पर विष्णु दूतों ने कहा **अयं हि० इत्यादि** चूकि यह विवश भी होकर श्रीहरि के नाम का उच्चारण किया है । वह श्रीहरि का नाम केवल प्रायश्चित्त ही नहीं है अपितु वह मङ्गलमय होने के कारण मोक्ष का साधन भी है । स्मृति भी कहती हैं— सकृदुच्चरितम्० इत्यादि जिसने एक बार भी श्रीभगवान् के हरि इन दो अक्षरों का उच्चारण कर लिया उसने मोक्ष प्राप्ति के लिए कमर कस लिया है ॥७॥

एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् । यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥८॥

अन्वयः— अस्य अघोनः एतेनैव अघनिष्कृतम् कृतं स्यात् यदा नारायणाय इति चतुरक्षरम् जगाद ॥८॥

अनुवाद— इस पापी के सम्पूर्ण पापों का प्रायश्चित्त उसी समय हो गया जिस समय इसने नारायण आप (हे नारायण आओ) इस चार अक्षरों वाले श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण किया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

ननु कर्मसाद्गुण्यकरं हरेर्नामेति युक्तम्, 'यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु । न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ।' इत्यादिवचनात्, स्वातन्त्र्येण त्वघनिवर्तकं हरेर्नाम कथं स्यात्तत्राहुः- एतेनैवेति । अघोनः अघवतः । मघवच्छब्दवद्रूपम्। यत् आ इति च्छेदः । आ ईषदाभासमात्रं चतुरक्षरं यन्नाम जगाद एतेनैव केवलेन । चतुरक्षरमित्यनेनाधिक्यं च दर्शितम् । कथं जगाद । नारायण आय आगच्छ इत्येवं विक्रोशरूपेण पुत्राह्वानेन । अयं भावः-कर्माङ्गत्वेऽपि हरिनाम्नः खादिरत्वादिवत्संयोगपृथक्त्वेन सर्वप्रायश्चित्तार्थत्वं युक्तमेव । तथाहि 'अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्तिते सर्वपातकैः । पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव ।' इत्यादिभिः पुराणे तावत्सहस्रशो नाम्नः स्वातन्त्र्यमवगम्यते । नचैतेऽर्थवादा इति शङ्कनीयम्; विधिशेषत्वाभावात् । नच विध्यश्रवणादन्यशेषता कल्पनीया । यदा 'आग्नेयोऽष्टाकपालो भवति' इत्यादिवदप्राप्तार्थत्वेन विधिकल्पनोपपत्तेः । मन्त्रेषु च मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम नमामहे । विप्रासो जातवेदसः' अस्य जानन्तोनाम चिद्विवक्तन' इत्यादिषु नाम्नस्तपोदानादिसर्वधर्माधिक्यमवगम्यते । उपपादितं च मन्त्रार्थवादानामपि स्वार्थे प्रामाण्यं देवताधिकरणे । तस्माच्छ्रीनारायणनामा भासमात्रेणैव सर्वाघनिष्कृतं कृतं स्यादिति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि श्रीहरि का नाम कर्म साद्गुण्य का साधन हो यह तो उचित ही है क्योंकि कहा गया

है कि **यस्य स्मृत्या० इत्यादि** अर्थात् जिन श्रीभगवान् के नाम का स्मरण करने तथा उच्चारण करने से तपस्या तथा यज्ञ आदि कर्मों में होने वाला कर्म शीघ्र ही पूर्ण हो जाता है उन भगवान् अच्युत की मैं वन्दना करता हूँ, किन्तु श्रीहरि का नाम स्वतन्त्र रूप से पापों का विनाशक कैसे हो सकता है, तो इसके उत्तर में भगवान् के दूतों ने कहा **एतेनैव० इत्यादि** अर्थात् इस पापी के सम्पूर्ण पापों का प्रायश्चित्त उसी समय हो गया जब इसने नारायाण इस चार अक्षरों का उच्चारण कर लिया । अघोन: पद का अर्थ पापी का । जिस तरह मघोन रूप बनता है उसी तरह अघोन: रूप बना है । **यदा नारायणायेति** में **तद्आ नारायणाय** इस प्रकार पदच्छेद है । आ यह अल्प आभास का बोधक है । अर्थात् श्रीभगवान् के चार अक्षरों वाले नाम का उच्चारण किया । केवल इससे ही पापों का प्रायश्चित हो गया । अब प्रश्न है कि **नारायणाय** में तो पाँच अक्षर हैं चार अक्षर कैसे है ? तो इसका उत्तर है कि नारायणाय का पदच्छेद **नारायण आय** अर्थात् हे नारायण आओ । इस तरह से उसने अपने पुत्र को बुलाया। **अयं भाव: इत्यादि** कहने का अभिप्राय है कि खादिरत्वादि गण के समान कर्म का अङ्ग होने पर भी श्रीहरि का नाम संयोग पृथक्त्व के कारण सभी पापों का प्रायश्चित्त रूप है इसमें कोई दोष नहीं है । कहा भी गया है **अवशेन० इत्यादि** विवश होकर भी जिन श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण करने पर पुरुष उसी तरह से सभी पापों से मुक्त हो जाता है जिस तरह सिंह को देखकर मृगगण डरकर पलायन कर जाते हैं । यदि कहें कि पुराणों में श्रीहरि के हजारों नामों को स्वतन्त्र रूप से पाप विनाशक कहा गया है यह नामों का अर्थवाद नहीं है क्योंकि यह किसी विधि का शेष नहीं है । यह भी नहीं कहा जा सकता है कि विधि पद का श्रवण नहीं किए जाने पर शेषत्व की कल्पना कर लेनी चाहिए । जब **आग्नेयोऽष्टकपालो भवति इत्यादि** के समान अश्रुत अर्थ के विधित्व की कल्पना की जाती है । मन्त्रों में भी मर्ता अमर्त्यस्य ते भूति नाम मनाम हे विप्रासे जातवेदस: अर्थात् मरण धर्मा हम ब्राह्मण गण अग्नि का नाम तपो दान आदि सभी धर्मों से अधिक मानते हैं । तथा **आस्य जानन्तो ना चिद् विवक्तन'** अर्थात् इस भगवान् विष्णु के नामों का आपलोग इनके नामों के माहात्म्य को जानते हुए अच्छी तरह से उच्चारण करें । इन सभी मन्त्रों में श्रीभगवान् के नामों का तपस्या दान इत्यादि सभी धर्मों से आधिक्य ज्ञात होता है । किञ्च देवताधिकरण में इस बात का प्रतिपादन किया गया है कि अर्थवादों का भी स्वार्थ में महत्त्व होता है । अतएव श्रीनारायण इस नामाभास के ही द्वारा सभी पापों का प्रायश्चित्त हो ही सकता है ।।८।।

स्तेन: सुरापो मित्रध्रुग्ब्रह्महा गुरुतल्पग: । स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ।।९।।
सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् । नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मति: ।।१०।।

अन्वय:— स्तेन: सुराप: मित्रधुक् ब्रह्महा, गुरु तल्पग: स्त्रीराजपितृगोहन्ता, ये च अपरे पातकिन:, सर्वेषाम् अघवताम् इदम् एव सुनिष्कृतम् विष्णो: नामव्याहरणम् यत: तद्विषयामति: भवतीतिशेष: ।।९-१०।।

अनुवाद— चोर, शराबी, मित्रद्रोही, ब्रह्मघाती, गुरुपत्नीगामी,ऐसे लोगों का संसर्गी , स्त्री, राजा, पिता और गौ को मारने वाला चाहे और भी बड़ा कोई पापी हो सबों के लिए इतना ही सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है कि श्रीभगवान् के नामों का उच्चारण किया जाय क्योंकि भगवान् के नामों का उच्चारण करने से मनुष्य की बुद्धि भगवान् के गुण, लीला और स्वरूप में लग जाती है और स्वयं भगवान् की उसके प्रति आत्मीय बुद्धि हो जाती है।।९-१०।।

भावार्थ दीपिका

ननु कामकृतानां बहूनां महापातकानां सहस्त्रश आवर्तितानां द्वादशाब्दकोटिभिरप्यनिवर्त्यानां कथमिदमेकमेव प्रायश्चित्तं स्यात्तत्राहु:-स्तेन इति द्वाभ्याम् । सुनिष्कृतं श्रेष्ठं प्रायश्चित्तमिदमेव । तत्र हेतु:-यतो नामव्याहरणात् । तद्विषया नामोच्चारकपुरुषविषया मदीयोऽयं मया सर्वतो रक्षणीय इति विष्णोर्मतिर्भवति ।।९-१०।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि काम वशात् किए गये अनेक महापातकों को जो हजारों बार किए जा चुके हैं जिनकी निवृत्ति बारह करोड़ वर्षों में भी नहीं हो सकती है, केवल इस भगवान् के नाम से कैसे प्रायश्चित्त हो सकता है? तो इसके उत्तर में **स्तेनः सुरापः इत्यादि** दो श्लोकों को कहा गया है । **सुनिष्कृतम्** अर्थात् श्रेष्ठ प्रायश्चित्त भगवान् के नामों का उच्चारण ही है । उसका कारण है कि श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण करने से मनुष्य की बुद्धि श्रीभगवान् की लीला, गुण तथा ऐश्वर्य विषयिणी हो जाती है और उसके कारण श्रीभगवान् की भी उसमें आत्मीयत्व की बुद्धि हो जाती है ।।९-१०।।

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभिस्तथा विशुध्यत्यघवान् व्रतादिभिः ।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतैस्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ।।११।।

अन्वयः— ब्रह्मवादिभिः उदितैः निष्कृतैः व्रतादिभिः अघवान् तथा न विशुद्ध्यति यथा हरेः नामपदैः उदाहृतैः तत् उत्तम श्लोक गुणोपलम्भकम् ।।११।।

अनुवाद— ब्रह्मवादी ऋषियों के द्वारा बतलाये गये प्रायश्चित्तों जो कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रत स्वरूप हैं उनसे पापी पुरुष की उस प्रकार से शुद्धि नहीं होती है, जितनी शुद्धि श्रीभगवान् के नाममय पदों का उच्चारण करने से होती है, क्योंके वे नाम श्रीभगवान् के गुणों का ज्ञान कराने वाले हैं ।।११।।

भावार्थ दीपिका

श्रेष्ठत्वमेवोपपादयन्ति–नेति द्वाभ्याम् । ब्रह्मवादिभिर्मन्वादिभिरुक्तैर्व्रतादिभिर्निष्कृतैस्तथा न शुध्यति । उदाहृतैरुच्चारितैर्यथा। नामपदैरित्यनेन नमामीत्यादिक्रियायोगोऽपि नापेक्षित इति दर्शितम् । किंच तन्नामपदोच्चारणमुत्तमश्लोकस्य गुणानां चोपलम्भकं ज्ञापकं भवति नतु कृच्छ्रचान्द्रायणादिवत्पापनिवृत्तिमात्रोपक्षीणमित्यर्थः ।।११।।

भावप्रकाशिका

श्रीभगवान् के नामोच्चारण की श्रेष्ठता का ही प्रतिपादन **निष्कृतैः इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा किया गया है। पापी पुरुष के लिए ब्रह्मवादी मनु आदि ऋषियों के द्वारा वर्णित व्रत आदि प्रायश्चित्तों से उतनी शक्ति नही होती है जितनी शुद्धि श्रीभगवान् के नामोच्चारण मात्र से हो जाती है । **नाम पदैः** कहने का अभिप्राय है कि हरि नमामि विष्णु नमामि इत्यादि भी कहने की कोई अपेक्षा नहीं हैं केवल श्रीहरि, श्रीविष्णो इत्यादि नामोच्चारण करने मात्र से भी पापों का विनाश हो जाता है । किञ्च श्रीभगवान् के नामों का उच्चारण करने मात्र से श्रीभगवान् के गुणों का ज्ञान होता है । और कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतों के करने से तो केवल पापों का ही नाश होता है । यदि हरये नमः कहें या विष्णवे नमः कहें तो बहुत अच्छा है ।।११।।

नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे ।
तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरेर्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ।।१२।।

अन्वयः— तत् कृतेऽपि निष्कृते मनः चेत् असत् पथे धावति तद्धि एकान्तिकं, तत् कर्मनिर्हारम् अभीप्सतां हरेः गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ।।१२।।

अनुवाद— यदि प्रायश्चित्त कर लेने पर भी मन असन्मार्ग में दौड़ता है तो (पाप में लगता है तो) वह चरम सीमा का पूर्ण रूप से प्रायश्चित्त नहीं हो सकता है अतएव जो लोग ऐसा प्रायश्चित्त करना चाहें जिससे पापों की जड़ ही समाप्त हो जाय तो उनको श्रीभगवान् के गुणों का ही चिन्तन करना चाहिए, क्योंकि उससे चित्त सर्वदा के लिए शुद्ध हो जाता है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

नैकान्तिकं नात्यन्तशोधकम् । तन्निष्कृतम् । यस्मिन्कृतेऽप्यसत्पथे पापमार्गे मनो धावति चेत् कर्मणां पापानां निर्हारमात्यन्तिकं नाशमिच्छतां हरेर्गुणानुवाद एव प्रायश्चित्तम् । यतोऽसौ खलु सत्त्वभावनश्चित्तशोधकः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

प्रायश्चित्तों को करने से पापों की सदा-सदा के लिए पूर्ण रूप से शुद्धि नहीं होती है । उस प्रायश्चित्त के करने से भी यदि मन असन्मार्ग में जाता है तो वह पूर्ण रूप से शुद्धि नहीं होती है । अतएव जो लोगों पापों का जड़ से ही नाश करना चाहें उन लोगों को श्रीभगवान् के गुणों का गायन करना चाहिए, क्योंकि उससे अन्तःकरण की पूर्ण रूप से शुद्धि हो जाती है ।।१२।।

अथैनं माऽपनयत कृताशेषाघनिष्कृतम् । यदसौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ।।१३।।

अन्वयः— अथ कृताशेषाधनिष्कृतम् एवं मा अपनयत, यत् मियमाण असौ भगवन्नाम समग्रहीत ।।१३।।

अनुवाद— अतएव इसको तुम लोग मत ले जाओं इसने अपने समस्त पापों का प्रायश्चित्त कर लिया है । क्योंकि मृत्यु की बेला में इसने श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण किया है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अथ तस्मादेनं मा अपमार्गेण नयत । कृतमशेषाणामघानां निष्कृतं येन । यद्यस्मात् । समग्रहीत् सम्पूर्णमुच्चारितवान्। नामैकदेशेनाप्यलमिति भावः । म्रियमाण इत्यनेन पुनः पापान्तरासंभव उक्तो नतु तत्कालत्वमेव विविक्षितम् तदानीं कृच्छ्रादिविधिवन्नामोच्चारणविधेरप्यसंभवात् । नच विधिं विना काकतालीयनामोच्चारणं पापापहमिति प्रमाणमस्ति ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

अतएव इसको निन्दित मार्ग से मत ले जाओ, इसने अपने समस्त पापों का प्रायश्चित्त कर लिया है । क्योंकि इसने भगवान् के नारायण इस सम्पूर्ण नाम का उच्चारण किया है । भगवान् के नाम के एक अंश मात्र का भी उच्चारण पापों का विनाशक है, इसमें प्रमाण है ।।१३।।

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा । वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ।।१४।।

अन्वयः— साङ्केत्यं वा पारिहास्यंवा स्तोभं हेलानम् एव वा, वैकुण्ठ नाम ग्रहणम् अशेषाधहरं विदुः ।।१४।।

अनुवाद— महापुरुष इस बात को जानते हैं कि सङ्केत में किसी दूसरे अभिप्राय से परिहास में या राग अलापने में या किसी अनादर भी करने में यदि भगवान् के नाम का उच्चारण हो जाता है तो वह जीव समस्त पापों को विनष्ट कर देता है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

नन्वयं पुत्रनामाग्रहीन्न तु भगवन्नाम तत्राहुः-साङ्केत्यं पुत्रादौ सङ्केतितम् । पारिहास्यं परिहासेन कृतम् । स्तोभं गीतालापपूरणार्थं कृतम् । हेलनं किं विष्णुनेति सावज्ञमपि च वैकुण्ठनामोच्चारणम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि इसने अपने पुत्र के नाम का उच्चारण किया था श्रीभगवान् के नाम का नहीं तो इसके उत्तर अभिप्राय से भगवान् के दूतों ने कहा— **सांकेत्यम्० इत्यादि** यदि संकेत में किसी दूसरे के परिहास में, गीतों का राग अलापने में अथवा अवहेलना करने में जैसे विष्णु से क्या लाभ है ? इस तरह से कहने में भी यदि भगवान् का नाम कोई ले लेता है तो उससे उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ।।१४।।

पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः । हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम् ॥१५॥

अन्वयः— पतितः स्खलितः भग्नः, संदष्टः तप्तः आहतः हरिः इति अवशेनाह पुमान् यातनाम् नार्हति ॥१५॥

अनुवाद— गिरते समय, पैर फिसलने पर, अङ्ग-भङ्ग होने पर, सांप के डंसने पर, ज्वर आदि से संतप्त होने पर अथवा चोट लगने पर जो मनुष्य हरि इस नाम का उच्चारण कर लेता है तो वह यमयातना का पात्र नहीं बनता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

ननु नायं सङ्कल्पपूर्वकं वैकुण्ठनामाग्रहीत्किंतु पुत्रस्नेहपरवशः संस्तत्राहुः पतित इति । अवशेनापि यो हरिरित्याह स यातनां नार्हति । पुमानित्यनेन नात्र वर्णाश्रमादिनियम इत्युक्तम् । अवशत्वमेवाह-पतितः प्रासादादिभ्यः । स्खलितो मार्गे । भग्नो भग्नगात्रः । संदष्टः सर्पादिभिः तप्तो ज्वरादिना । आहतो दण्डादिना ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि इसने सङ्कल्प पूर्वक श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण नहीं किया है अपितु इसने तो पुत्र स्नेह के कारण उसने उसका नाम पुकारा है तो इस पर श्रीभगवान् के दूत कहते हैं पतितः इत्यादि । यदि कोई विवश होकर श्रीहरि के नाम का उच्चारण कर लेता है तो वह यम यातना का पात्र नहीं बनता है । पतितः अर्थात् छत पर से गिरते आदि के समय, रास्तें में फिसलने पर या अङ्ग भङ्ग होने पर सर्प आदि के काटने पर या ज्वर आदि से सतप्त होने पर या दण्डे आदि से मारे जाने पर भी यदि विवश होकर वह भगवन्नामोच्चारण करता है तो वह यम यातना का पात्र नहीं बनता है ॥१५॥

गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च । प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभिः ॥१६॥

अन्वयः— महर्षिभिः गुरूणां लघूनां च पापानां गुरूणि लघूनि च प्रायश्चित्तनि ज्ञत्वा उक्तानि ॥१६॥

अनुवाद— महर्षियों ने बड़ें एवं छोटे पापों के बड़े तथा छोटे प्रायश्चित्तों को जानकर ही उन सबों को बतलाया है । अर्थात् बड़े पापों के लिए बड़े प्रायश्चित्तों को और छोटे पापों के लिए छोटे प्रायश्चित्तों को बतलाया है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

ननु महतः पापस्य महदेव प्रायश्चित्तं युक्तं नत्वल्पं नामग्रहणमात्रम्, पापतारतम्येन कृच्छ्रादितारतम्यवत्, तत्राहुर्द्वाभ्याम्। गुरुणां पापानां गुरूणि प्रायश्चित्तानि लघूनि लघूनां च तारतम्यं ज्ञात्वा मन्वादिभिरुक्तानि । अतस्तत्र तथैव व्यवस्था । हरिनाम्नस्तु नेयं व्यवस्थोक्ता । 'विष्णोः स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः' इति वचनात् । नच सुराबिन्दुपाने महापातकत्वस्मरणवन्नाम्नस्तत्प्रायश्चित्तत्वस्मरणस्यायमतिभारः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहें कि बड़े पापों के लिए बड़ा ही प्रायश्चित्त होना चाहिए छोटा नाम ग्रहण इत्यादि नहीं जैसा पाप हो उसी तरह का उसका प्रायश्चित्त भी होना चाहिए । इसके उत्तर में भगवद् दूतों ने दो श्लोकों में कहा मन्वादि महर्षियों ने तो बड़े पापों के लिए बड़े प्रायश्चित्तों और छोटे पापों के लिए छोटे प्रायश्चित्तों को ही बतलाया है । अतएव वह व्यवस्था उन लोगों के ही यहाँ है । श्रीहरि के नाम के विषय में ऐसी कोई भी व्यवस्था नहीं हे । सभी पापों के श्रीहरि के नाम के स्मरण की ही व्यवस्था है । स्मृतियाँ कहती भी हैं **विष्णोः स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः** भगवान् विष्णु के स्मरण करने मात्र से ही मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है । ऐसा नहीं है कि मदिरा पान कर लेने पर उसके महापातकों में गिने जाने के कारण श्रीभगवान् के नाम स्मरण रूप उसके प्रायश्चित्त के स्मरण का अतिभार है ॥१६॥

तैस्तान्यघानि पूयन्ते तपोदानजपादिभिः । नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशाङ्घ्रिसेवया ।।१७।।

अन्वयः— तैः तपोदान जपादिभिः तानि अघानि पूयन्ते अधर्मजं तदधृदयं न, ईशाङ्घ्रि सेवया तदपि ।।१७।।

अनुवाद— महर्षियों द्वारा वर्णित तपस्या दान, जप तथा व्रतों आदि से उन पापों की ही शुद्धि होती है, अधर्म करने के कारण दूषित हुए हृदय की शुद्धि नहीं होती है कि श्रीहरि के चरणों की सेवा करने से तो हृदय भी पवित्र हो जाता है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

किंच तैस्तपोदानादिभिस्तान्यघान्येव पूयन्ते नश्यन्ति । अधर्माज्जातं मलिनं तु तस्य पापकर्तुर्हृदयम् । यद्वा तेषामघानां हृदयं सूक्ष्मं रूपं संस्काराख्यं न शुध्यति । तदपीशाङ्घ्रिसेवया कीर्तनादिना शुध्यतीत्यर्थः । अयं भावः- महान्त्यपि पापानि सकृदुच्चारितेनैव नामुना नश्यन्ति । सकृत्प्रवर्तितेन दीपेनेव गाढध्वान्तानि । तदावृत्त्या तु पापान्तरस्यानुत्पत्तिः । दीपधारण इव तमोऽन्तरस्य । ततश्च वासनाक्षयाद्धृदयशुद्धिः । एतदर्थमेव तत्र तत्रावृत्तिविधानम् । 'पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम्' इत्यादिषु । तदेवात्राप्युक्तम् 'गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः' । 'तदपीशाङ्घ्रिसेवया' इति । च । अतोऽस्य हरिनाम्नैव सर्वपापक्षयो वासनाक्षयस्तु महापुरुषदर्शनादिभिरिति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

महर्षियों द्वारा प्रायश्चित्त रूप से उपदिष्ट तप, दान, जप आदि के द्वारा उन पापों की ही शुद्धि होती है किन्तु अधर्माचरण के कारण दूषित हुए हृदय की शुद्धि उनसे नहीं होती है । अथवा उन पापों का जो हृदय पर सूक्ष्म संस्कार हैं उनकी शुद्धि नहीं होती है । किन्तु हरिनाम कीर्तन के द्वारा तो उसकी भी शुद्धि हो जाती है । कहने का अभिप्राय है कि मुँह से भी बड़े पाप श्रीभगवान् के नाम का एक बार भी उच्चारण करने से विनष्ट हो जाते हैं । उसी तरह जिस तरह एक बार दीपक जला देने से जैसे घोर अन्धकार विनष्ट हो जाता है । श्रीभगवान् के नामों का बार-बार स्मरण करने से तो दूसरे पाप उत्पन्न ही नहीं होते है । जिस तरह से दीपक के लिए रहने से वहाँ दूसरा अन्धकार नहीं उत्पन्न होता है । बार-बार नाम लेने से तो वासना का क्षय हो जाने से हृदय की शुद्धि हो जाती है । इसीलिए स्थान-स्थान पर भगवन्नामोच्चारण का विधान किया गया है । कहा भी गया है **पापक्षयश्च० इत्यादि** दिन रात भगवान् के नाम स्मरण से पापों का नाश होता है । उसी बात को इस प्रकरण में (इस अध्याय में) कहा गया है कि **गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः** अर्थात् श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन करनेसे अन्तःकरण की शुद्धि होती है । इस श्लोक में भी कहा गया है **तदपीशाङ्घ्रि सेवया** अर्थात् श्रीहरि के चरणों की सेवा से तो अन्तकरण की भी शुद्धि हो जाती है । अतएव इस अजामिल के श्रीहरि का नाम स्मरण करने से ही सारे पापों का विनाश हो गया है । वासना का नाश तो महापुरुषों के दर्शन आदि से होता है ।।१७।।

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् । सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथाऽनलः ।।१८।।

अन्वयः— अज्ञानात् अथवा ज्ञानात् यत् उत्तमश्लोक नाम सङ्कीर्तितम् अनलः एधो यथा पुंसः अघं दहेत् ।।१८।।

अनुवाद— जानकर अथवा बिना जाने ही जो श्रीभगवान् के नाम का स्मरण किया जाता है उससे पापों का नाश उसी तरह हो जाता है जिस तरह अग्नि इन्धन को जला देती है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

तथापि पापप्रायश्चित्तमिदमिति ज्ञात्वा नोच्चारितमिति चेत्तत्राहुः-अज्ञानादिति । बालके नाज्ञानादपि प्रक्षिप्तोऽग्निर्यथा काष्ठराशिं दहति तद्वत् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि जिसको यह ज्ञान हो कि भगवन्नाम स्मरण पापों का प्रायश्चित्त है किन्तु वह नामों स्मरण करता है तो क्या होगा ? तो इस पर कहते हैं कि जिस तरह अग्नि जलाकर इन्धन पर रखा जाय अथवा बिना जलाये भी, वह जिस तरह इन्धन को जलाकर भस्म ही कर देती है, उसी तरह भगवान् का नाम जानकर उच्चारण किया जाय अथवा बिना जाने ही उच्चारण किया जाय वह पुरुष के पापों को विनष्ट करता ही है ॥१८॥

यथाऽगदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया । अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः ॥१९॥

अन्वयः— यथा वीर्यतमं अगदं यदृच्छया उपयुक्तं अजानतः अपि आत्मगुणं कुर्यात् एवं मन्त्रोऽप्युदाहृतः ॥१९॥

अनुवाद— यदि कोई उसके गुण को जाने बिना ही किसी अत्यन्त शक्ति युक्त औषधि को खाले तो भी वह औषधि अपना काम करेगी ही उसी तरह नाम का प्रभाव जाने बिना भी उसका उच्चारण कोई करता है तो वह पापों का विनाश करेगा ही ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

नन्विदमपि पार्षदनुपदिष्टं श्रद्धाहीनं च कथं प्रायश्चित्तं स्यात्तत्राहुः-यथेति । अगदमौषधम् । वीर्यवत्तममिति वक्तव्ये वीर्यतममित्युक्तम् यदृच्छया श्रद्धादिहीनमुपयुक्तं भक्षितं पार्षन्मुखादजानतोऽपि स्वगुणमारोग्यं कुर्यात् । मन्त्रोऽपि नामात्मकस्तथा स्वकार्यं कुर्यादेव । नहि वस्तुशक्तिः श्रद्धादिकमपेक्षते इत्यर्थः । तदुक्तं विष्णुधर्मेषु 'हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः । अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ।' इति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

हे श्रीभगवान् के पार्षदों जो व्यक्ति नाम के माहात्म्य को जाने बिना भी बिना श्रद्धा के ही नामों का उच्चारण करता है तो उस दशा में नामोच्चारण पापों का प्रायश्चित कैसे बन सकता है । इस पर भगवत् पार्षदों ने **यथा० इत्यादि** श्लोक को कहा— अगद औषधि को कहते हैं । विर्यवत्तमम् कहना चाहिए किन्तु उसके स्थान पर **वीर्यतमम्** कहा गया है । जिसको चिकित्सक ने अत्यन्त शक्ति सम्पन्न औषधि का गुण नहीं बतलाया है फिर भी वह जाने बिना ही बिना श्रद्धा के ही उस औषधि को खा लेता है तो भी वह अपना जो गुण है निरोग बना दवा करेगी ही । इसी तरह नाम का माहात्म्य जाने बिना भी यदि कोई उसका उच्चारण करता है तो वह पापों का विनाश करेगा ही । वस्तु की शक्ति श्रद्धा इत्यादि की अपेक्षा नहीं करती है । विष्णुधर्म ग्रन्थ में कहा ही गया है **हरिर्हरति० इत्यादि** अर्थात् श्रीहरि का नाम यदि कोई दुष्ट व्यक्ति भी लेता है, तो वह उसके पापों का विनाश उसी तरह करता है जिस तरह बिना इच्छा के ही अग्नि का स्पर्श किया जाय तो वह जलाने का काम करेगी ही ॥१९॥

प्रक्षिप्त श्लोक

पतिं वः पृच्छत भटा धर्मेऽस्मिन्यदि संशयः । स वेद परमं गुह्यं धर्मस्य भगवान्यमः ॥१॥

अन्वयः— हे भटाः यदि अस्मिन् धर्मे वः संशयः तदावः पतिं पृच्छत सः भगवान् यमः वेदस्य परमं गुह्यं वेद ॥१॥

अनुवाद— हे यमदूतों तुम लोगों को यदि इस धर्म के विषय में सन्देह हो तो जाकर अपने स्वामी यमराज से पूछ लेना भगवान यम धर्म के परम रहस्य के ज्ञाता हैं ॥१॥

श्रीशुक उवाच

त एवं सुविनिर्णीय धर्मं भागवतं नृप । तं याम्यपाशान्निर्मुच्य विप्रं मृत्योरमूमुचन् ॥२०॥

अन्वयः— हे नृप एवं भागवतं धर्मं सुविनिर्णीय ते तं विप्रं याम्यपाशत् निर्मुच्य मृत्योः अमूमुचन् ॥२०॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् इस प्रकार श्रीभगवान् के पार्षदों ने भागवत धर्म का अच्छी तरह से निर्णय करके अजामिल को यमदूतों के पाश से छुड़ाकर उसे मृत्यु के मुख से बचा लिया ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

तं विप्रममूमुचन् मोचयामासुः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

उस अजामिल को मृत्यु के मुख से बचा लिया ।।२०।।

इति प्रत्युदिता याम्या दूता यात्वा यमान्तिके । यमराज्ञे यथासर्वमाचचक्षुररिन्दम ।।२१।।

अन्वयः— हे अरिन्दम इति प्रत्युदिता याम्याः यमान्तिके यात्वा यमाराज्ञे यथा सर्वम् आचचक्षुः ।।२१।।

अनुवाद— हे अपने शत्रुओं का दमन करने वाले राजन् श्रीभगवान् के पार्षदों द्वारा इस तरह से कहे जाने पर वे यमदूत यमराज के सन्निकट में जाकर यमराज को सारी घटना सुना दिए ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

प्रत्युदिता निराकृताः सन्तो यात्वा गत्वा यमराजाय यथावत्कथयामासुः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

भगवत पार्षदों द्वारा इस तरह से लौटा दिए जाने पर वे यमदूत यमराज के पास जाकर सारी घटना ज्यों की त्यों सुना दिए ।।२१।।

द्विजः पाशाद्विनिर्मुक्तो गतभीः प्रकृतिं गतः । ववन्दे शिरसा विष्णोः किङ्करान्दर्शनोत्सवः ।।२२।।

अन्वयः— पाशात् विनिर्मुक्त द्विज; गतभी प्रकृतिं गतः, दर्शनोत्सव विष्णोः किङ्करान् शिरसा व वन्दे ।।२२।।

अनुवाद— यमदूतों के फन्दे से मुक्त होकर अजामिल निर्भय होकर स्वस्थ हो गया और श्रीभगवान् के पार्षदों के दर्शन के कारण आनन्दित होकर उन सबों को प्रणाम किया ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

दर्शनेनोत्सवो यस्य ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

दर्शन के कारण जिसको प्रसन्नता थी ।।२२।।

तं विवक्षुमभिप्रेत्य महापुरुषकिङ्कराः । सहसा पश्यतस्तस्य तत्रान्तर्दधिरेऽनघ ।।२३।।

अन्वयः— हे अनघ ! तं विवक्षुम् अभिप्रेत्य महापुरुषकिङ्करा सहसा तस्य पश्यतः तत्र अन्तर्दधिरे ।।२३।।

अनुवाद— हे निष्पाप परीक्षित् ! उस अजामिल को बोलने की इच्छा वाला देखकर श्रीभगवान् के पार्षद उसके सामने से अन्तर्धान हो गये ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

विवक्षुं वक्तुमिच्छन्तं ज्ञात्वा ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

अजामिल को कुछ कहने की इच्छा वाला जानकर ।।२३।।

अजामिलोऽप्यथाकर्ण्य दूतानां यमकृष्णयोः । धर्मं भागवतं शुद्धं त्रैविद्यं च गुणाश्रयम् ॥२४॥

अन्वयः— अथ अजामिलोऽपि यमकृष्णयो दूतानां शुद्धं भागवतं धर्मं गुणाश्रयत्रैविद्यं च आकर्ण्य भक्तिमानभवदिति उत्तरेण अन्वयः ॥२४॥

अनुवाद— अजामिल भी यमराज के दूतों के मुख से वैदिक सगुण (प्रवृत्ति मूलक) धर्म तथा भगवान् के दूतों के मुख से शुद्ध भागवत धर्मों को सुनकर भक्ति सम्पन्न हो गया इस तरह से आगे के श्लोक के साथ अन्वय है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

त्रैविद्यं वेदत्रयप्रतिपाद्यं गुणाश्रयं यमदूतानां धर्मं कृष्णदूतानां च भागवतं भगवत्प्रणीतं शुद्धं निर्गुणं धर्ममाकर्ण्येति योज्यम् । भक्तिमानासीदित्युत्तरस्यानुषङ्गः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

त्रैविद्यम् अर्थात् जिसका प्रतिपादन वे दत्रयी करते हैं ऐसे सगुण यमदूतों के द्वारा उक्त धर्म को तथा भगवान् के द्वारा प्रणीत शुद्ध-निर्गुण धर्म को सुनकर अजामिल भक्ति से सम्पन्न हो गया इस तरह से आगे के श्लोक से इसका सम्बन्ध है ॥२४॥

भक्तिमान्भगवत्याशु माहात्म्यश्रवणाद्धरेः । अनुतापो महानासीत्स्मरतोऽशुभमात्मनः ॥२५॥

अन्वयः— हरेः माहात्म्यश्रवणात् आशु भगवति भक्तिमान् आत्मनः अशुभम् स्मरतः महान् अनुतापः आसीत् ॥२५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के माहात्म्य को सुनने के कारण अजामिल शीघ्र ही भगवान् का भक्त हो गया । अपने पापों को स्मरण करने के कारण उसके मन में अत्यधिक पश्चात्ताप हो रहा था ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

अहो मे परमं कष्टमभूदविजितात्मनः । येन विप्लावितं ब्रहम वृषल्यां जायतात्मना ॥२६॥

अन्वयः— अहो अविजितात्मनः मे परमं कष्टम् अभूत् येवृषल्यां जायतात्मना मया ब्रह्मविप्लावितम् ॥२६॥

अनुवाद— अहो अपने मन को वश में नहीं कर पाने के कारण मुझको अत्यन्तधिकार है । क्योंकि वेश्या के गर्भ से पुत्र उत्पन्न करके मैंने अपना ब्राह्मण्य खो दिया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अनुतापं प्रपञ्चयति-अहो इति चतुर्भिः । येनात्मना मया वृषल्यां पुत्रतया जायमानेन ब्रह्म ब्राह्मणजातिर्विप्लावितं नाशितम् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अहो० इत्यादि चार श्लोकों द्वारा अजामिल को होने वाले पश्चात्ताप का ही विस्तार से वर्णन करते है । क्योंकि वेश्या के गर्भ से पुत्र उत्पन्न करने के कारण अपने ब्राह्मत्व को नष्ट कर दिया ॥२६॥

धिङ्मां विगर्हितं सद्भिर्दुष्कृतं कुलकज्जलम् । हित्वा बालां सतीं योऽहं सुरापामसतीमगाम ॥२७॥

अन्वयः— सद्भिः विगर्हितं दुष्कृतं कुलकज्जलम् मां धिक् यः अहम् सतीं बालाम् हित्वा, असतीं सुरापाम् अगाम् ॥२७॥

अनुवाद— सत्पुरुषों द्वारा निन्दित पापी तथा कुल कलङ्क मुझको धिक्कार है, क्योंकि मैं अपनी पतिव्रता पत्नी को त्यागकर मदिरा पीने वाली पुंश्चली को अपना लिया ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

दुष्कृतं दोषकर्तारम् । कुलस्य कज्जलं कलङ्कम् ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

दुष्कृतम् अर्थात् अपराधी **कुलस्य कज्जलम्** अर्थात् कुल का कलङ्क ।।२७।।

वृद्धावनाथौ पितरौ नान्यबन्धू तपस्विनौ । अहो मयाधुना त्यक्तावकृतज्ञेन नीचवत् ।।२८।।

अन्वयः— अहोनीचवत् अधुना अकृतज्ञेन वृद्धौ अनाथौ, नान्यवन्धू तपस्विनौ मया अधुना त्यक्तौ ।।२८।।

अनुवाद— इस अवस्था में कृतघ्न मैंने अपने वृद्ध, अनाथ तथा असहाय अपने माता-पिता का परित्याग कर दिया है मैं कितना नीच हूँ ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

नास्त्यन्यो बन्धुः पुत्रादिर्ययोः । तपस्विनौ संतप्तौ । अधुना तत्क्षणमेव ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

अजामिल मन-ही-मन पश्चात्ताप कर रहे थे कि मैं अत्यन्त नीच हूँ मैंने ऐसे माता-पिता का परित्याग कर दिया है जिनका कोई रक्षक नहीं था । वे अत्यन्त सन्तप्त हो रहे हैं । ऐसा पाप मैंने इस जन्म में किया है । मैं अत्यन्त कृतघ्न और नीच हूँ ।।२८।।

सोऽहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे । धर्मघ्नाः कामिनो यत्र विन्दन्ति यमयातनाः ।।२९।।

अन्वयः— सोऽहम् व्यक्तं भृशदारुणे नरके पतिष्यामि यत्र धर्मघ्नाः कामिनः यमयातनाः विन्दन्ति ।।२९।।

अनुवाद— इस प्रकार का मैं अब निश्चित रूपसे भयङ्कर नरक में गिरूँगा जहाँपर धर्मघाती कामी जीव यम यातना को भोगते हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२९।।

किमिदं स्वप्न आहोस्वित्साक्षाद्दृष्टमिहाद्भुतम् । क्व याता अद्य ते ये मां व्यकर्षन्पाशपाणयः ।।३०।।

अन्वयः— इदं स्वप्नः किम् आहोस्वित् साक्षात् अद्भुतम् दृष्टम् ये पाशपाणयः मां व्यकर्षन् ते अद्यक्व याताः ।।३०।।

अनुवाद— क्या मैं यह स्वप्न देख रहा था ? अथवा मैं यह साक्षात् अद्भुत बातें देख रहा था ? जो पाशधारी मुझको खिंच रहे थे वे सब कहाँ चले गये ?।।३०।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं तस्य विमर्शपूर्वकं मोक्षक्रममाह-किमिदमित्यष्टभिः । साक्षात्प्रत्यक्षमिह जाग्रतैव दृष्टम् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में अजामिल के विचार पूर्वक मोक्ष के क्रम का वर्णन **किमिदम्० इत्यादि** आठ श्लोकों से करते हैं अजामिल सोच रहे थे कि क्या मैं जागरावस्था में ही इस अद्भुत दृश्य को देख रहा था कि मैं स्वप्न देख रहा था ?।।३०।।

अथ ते क्व गताः सिद्धाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः । व्यमोचयन्नीयमानं बद्ध्वा पाशैरधो भुवः ।।३१।।

अन्वयः— अथते चत्वार चारुदर्शनाः सिद्धाः क्व गताः ये पाशैः बद्ध्वा भुवः अधो नीयमानं मां व्यमोचयन् ।।३१।।

अनुवाद— जो देखने में अत्यन्त सुन्दर लगते थे वे चारो सिद्ध पुरुष कहाँ चले गये जिन लोगों ने मुझको पाश (फाँसी का फँदा) में बाँधकर पृथिवी के नीचे ले जाने वालों से मुझको छुड़ा लिया है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

ये मां व्यमोचयंस्ते च क्व गताः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों ने मुझे पाश से मुक्त किया वे सिद्ध पुरुष कहाँ चले गये ?।।३१।।

अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तमदर्शने । भवितव्यं मङ्गलेन येनात्मा मे प्रसीदति ।।३२।।

अन्वयः— अथापि दुर्भगस्य में विवुधोत्तमदर्शने मङ्गलेन भाव्यम् येन मे आत्मा प्रसीदति ।।३२।।

अनुवाद— फिर भी यद्यपि मैं दुर्भाग्य सम्पन्न हूँ उन श्रेष्ठ देवताओं का दर्शन कर लेने के कारण मेरा मङ्गल अवश्य होगा, क्योंकि इस समय मेरा मन प्रसन्न है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

यद्यप्यहमस्मिन् जन्मनि दुर्भगः पापीयानथापि जन्मान्तरे नूनं पुण्यवानित्याह-विबुधोत्तमदर्शन इति निमित्तसप्तमी । तेषां दर्शनार्थं पूर्वेण मङ्गलेन महता पुण्येन भवितव्यम् । येन दर्शनेन ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि मैं इस जन्म में अत्यन्त पापी और दुर्भाग्य वाला हूँ किन्तु यह निश्चित हैं कि मैं दूसरे जन्म का पुण्वान् हूँ । क्योंकि उन श्रेष्ठ देवताओं का दर्शन होने में मेरे पूर्व जन्म का महान् पुण्य ही कारण है । जिससे कि उन लोगों का दर्शन हो जाने से मेरा मन आनन्दमग्न हो रहा है । विबुधोत्तम दर्शने इस पद में निमित्त के अर्थ में सप्तमी विभक्ति है ।।३२।।

अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपतेः । वैकुण्ठनामग्रहणं जिह्वा वक्तुमिहार्हति ।।३३।।

अन्वयः— अन्यथा म्रियमाणस्य अशुचेः वृषलीपतेः जिह्वा वैकुण्ठनामग्रहणम् न अर्हति ।।३३।।

अनुवाद— यदि मेरा पूर्व जन्म का पुण्य नहीं होता तो मरने के समय मुझे अपवित्र तथा कुलटागामी की जिह्वा वैकुण्ठाधिपति श्रीभगवान् के नाम का उच्चारण नहीं कर सकती थी ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

अन्यथा पूर्वपुण्यं बिना । कथंभूतं वैकुण्ठनाम । गृह्यते वशीक्रियते चित्तमनेनेति ग्रहणम् ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

यदि मेरा पूर्व जन्म का पुण्य नहीं रहता तो फिर कैसे मुझ पापी अपवित्र तथा कुलगामी की जीभ श्रीभगवान् का नामोच्चारण कैसे करती ?।।३३।।

क्व चाहं कितवः पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रपः । क्व च नारायणेत्येतद्भ गवन्नाम मङ्गलम् ।।३४।।

अन्वयः— क्व चाहं कितवः पापः ब्रह्मध्नः निरपत्रपः क्व च नारायण इत्येतद् भगवन्नाम मङ्गलाम् ।।३४।।

अनुवाद— कहाँ तो महाकपटी, पापी, निर्लज्ज तथा ब्रह्मतेज को विनष्ट करने वाला मैं और कहा श्रीभगवान् का मङ्गलमय नारायण यह नाम वस्तुतः मैं कृतकृत्य हो गया ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मघ्नो विप्रत्वनाशकः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मणत्व का विनाश करने वाला ।।३४।।

सोऽहं तथा यतिष्यामि यतचित्तेन्द्रियानिलः । यथा न भूय आत्मानमन्धे तमसि मज्जये ॥३५॥

अन्वयः— सोऽहम् यतचित्तेन्द्रियानिलः तथा यतिष्यामि यथा भूयः आत्मानम् अन्धः तमसि न पातये ॥३५॥

अनुवाद— इस प्रकार का मैं अपने मन और इन्द्रियों को अपने वश में करने का ऐसा प्रयास करूँगा कि अपने को घोर अन्धकार मय नरकों न डालूँ ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३५॥

विमुच्य तमिमं बन्धमविद्याकामकर्मजम् । सर्वभूतसुहृच्छान्तो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥३६॥

अन्वयः— अविद्या कामकर्मजम् इमम् बन्धं विमुच्य, सर्वभूत सुहृत शान्तः मैत्रः करुण आत्मवान् ॥३६॥

अनुवाद— अज्ञान, कामना तथा कर्मो से उत्पन्न इस शरीर के बन्धन से मुक्त होकर मैं सबों का कल्याण चाहने वाला होकर अपनी सारी वासना जन्य कामनाओं को शान्त कर दूँगा । सबों के साथ मित्रता का व्यवहार करूँगा, सबों पर दया करूगा तथा पूर्ण रूप से संयम पूर्वक जीवन व्यतीत करूँगा ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

मोचये ग्रस्तमात्मानं योषिन्मय्यात्ममायया । विक्रीडितो ययैवाहं क्रीडामृग इवाधमः ॥३७॥

अन्वयः— अहं योषित् मय्या आत्म मायया आत्मानं मोचये यया एव अधमः अहम् क्रीड़ा मृग इव विक्रीडितः॥३७॥

अनुवाद— मैं नारी रूपी परमात्मा की माया से अपनी आत्मा को मुक्त कर लूँगा जिसके साथ अधम मैं क्रीडामृग के समान क्रीडा करता रहा ॥३७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

ममाहमिति देहादौ हित्वाऽमिथ्यार्थधीर्मतिम् । धास्ये मनो भगवति शुद्धं तत्कीर्तनादिभिः ॥३८॥

अन्वयः— देहादौ मम अहम् इति मति हित्वा घीः तत् कीर्तनादिभिः भगवति मनो धास्ये ॥३८॥

अनुवाद— शरीर इन्द्रिय आदि अहन्त्व तथा ममत्व की बुद्धि का परित्याग करके सत्य वस्तु के ज्ञान से सम्पन्न मैं उन परमात्मा का ही कीर्तन आदि करते हुए श्रीभगवान् में ही अपना मन लगाऊँगा ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

अमिथ्याभूतेऽर्थे धीर्यस्य तथाभूतः सन् देहादौ ममाहमिति मतिं हित्वा मनो धास्ये ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

सत्य वस्तु परब्रह्म परमात्मा के ज्ञान से सम्पन्न मैं उनके ही नाम आदि का कीर्तन करते हुए श्रीभगवान् में ही अपने शुद्ध मन को लगाऊँगा ॥३८॥

श्रीशुक उवाच

इति जातसुनिर्वेदः क्षणसङ्गेन साधुषु । गङ्गाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धनः ॥३९॥

अन्वयः— इति साधुषु क्षणसङ्गेन इति जातसुनिर्वेदः मुक्त सर्वानुबन्धनः गङ्गाद्वारमुपेयाय ॥३९॥

श्रीशुकदेवजी ने कंहा

अनुवाद— इस तरह से क्षणभर के सत्पुरुष की सङ्गति के कारण जिसके मन में सुदृढ वैराग्य उत्पन्न हो गया था वे अजामिल अपने सम्पूर्ण ममताओं के बन्धन से मुक्त होकर गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में चले आये ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

मुक्तं सर्वमनुबन्धनं पुत्रादिस्नेहो येन सः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

पुत्रों आदि से स्नेह रूप सम्पूर्ण माया के बन्धनों को तोड़कर अजामिल हरिद्वार में चले आये ।।३९।।

स तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमाश्रितः । प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामो युयोज मन आत्मनि ।।४०।।

अन्वयः— स तस्मिन् देवसदने योगमाश्रितः आसीन प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामः आत्मनि मनः युयोज ।।४०।।

अनुवाद— वे उसी देव मन्दिर में योग को अपनाकर आसन लगाकर बैठ गये । अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को संयमित करके मन में लीन कर दिया ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

प्रत्याहृत इन्द्रियग्रामो येन ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

अजामिल ने अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों से हटा लिया ।।४०।।

ततो गुणेभ्य आत्मानं वियुज्यात्मसमाधिना । युयुजे भगवद्धाम्नि ब्रह्मण्यनुभवात्मनि ।।४१।।

अन्वयः— ततः आत्मसमाधिना गुणेभ्यः आत्मानं वियुज्य अनुभवात्मनि भगवद्धाम्नि ब्रह्मणि मनः युयोज ।।४१।।

अनुवाद— उसके पश्चात् आत्म चिन्तन के द्वारा विषयों से अपने मन को हटाकर श्रीभगवान् के धाम में जो अनुभव स्वरूप है उस परंब्रह्म में अपने मन को लगा दिया ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

गुणेभ्यो देहेन्द्रियादिभ्य आत्मानं वियुज्य विशोध्य आत्मसमाधिना चित्तैकाग्र्येण । भगवतो धाम्नि स्वरूपे ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

देह इन्द्रियों आदि से अपने मन को हटाकर अजामिल अपनी चित्त की एकाग्रता के द्वारा श्रीभगवान् के स्वरूप में अपने मन को लगा दिया ।।४१।।

यर्ह्युपारतधीस्तस्मिन्नद्राक्षीत्पुरुषान्पुरः । उपलभ्योपलब्धान्प्राग्ववन्दे शिरसा द्विजः ।।४२।।

अन्वयः— यर्हि उपरात घीः तस्मिन् तर्हि पुरः पुरुषान् उपलब्धान् उपलभ्य द्विजः शिरसा ववन्दे ।।४२।।

अनुवाद— जिस समय आजमिल की बुद्धि उस परमात्म स्वरूप में निश्चल हो गयी उसी समय अपने समान पुरुषों को (भगवत्पार्षदों को) देखा । पूर्व परिचित् उन पुरुषों को पहचान करके उन्होंने भगवत् पार्षदों को शिर झुकाकर प्रणाम किया ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

तस्मिन्भगवद्धाम्नि उपारता निश्चला धीर्यस्य सः तस्मिन्कालेऽद्राक्षीदिति वा । पुरः पुरतः । ततश्च प्रागुपलब्धानेव तानुपलभ्य प्रत्यभिज्ञाय ववन्दे ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

जिस समय अजामिल की बुद्धि भगवत्स्वरूप में निश्चल हो गयी, उसी समय उन्होंने अपने सामने भगवत्पार्षदों को देखा । पूर्व परिचित उन सबों को देखकर अजामिल ने अपना शिर झुकाकर प्रणाम किया ।।४२।।

हित्वा कलेवरं तीर्थे गङ्गायां दर्शनादनु । सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत्पार्श्ववर्तिनाम् ॥४३॥

अन्वयः— दर्शनाद् अनु शरीरं गङ्गायां तीर्थे हित्वा सद्यः भगवत्पार्श्ववर्तिनाम् रूप जगृहे ॥४३॥

अनुवाद— उन पुरुषों के देखने के पश्चात् शरीर को गङ्गाजी के जल में त्यागकर शीघ्र ही परमात्मा के सन्निकटवर्ती पुरुषों का रूप अजामिल ने धारण कर लिया ॥४३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४३॥

साकं विहायसा विप्रो महापुरुषकिङ्करैः । हैमं विमानमारुह्य ययौ यत्र श्रियः पतिः ॥४४॥

अन्वयः— विप्रः हैमं विमानम् आरुह्य महापुरुष किङ्करैः साकं ययौ यत्र श्रियः पतिः ॥४४॥

अनुवाद— अजामिल स्वर्णमय विमान पर बैठकर श्रीभगवान् के दूतों के साथ अर्चिरादि मार्ग से श्रीभगवान् के लोक वैकुण्ठ में चले गये ॥४४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४४॥

एवं स विप्लावितसर्वधर्मा दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा ।
निपात्यमानो निरये हतव्रतः सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन् ॥४५॥

अन्वयः— एवं सः विप्लवितसर्व धर्मा, दास्याः पतिः गहर्यकर्मणा पतितः हतव्रतः निरये निपात्यमानः भगवन् नामगृह्णन् सद्यः विमुक्तः ॥४५॥

अनुवाद— इस तरह से वे अजामिल का वेश्या पति होने के कारण सारा धर्म विनष्ट हो गया था निन्दित कर्म के कारण वे नरक में गिराये जा रहे थे किन्तु श्रीभगवान् का नामोच्चारण करने के कारण ही शीघ्र ही सभी पापों से मुक्त हो गये ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-एवमिति द्वाभ्याम् । विप्लाविताः सर्वे धर्मा येन । हतं व्रतं स्वदारनियमादि यस्य ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

इस आख्यान का उपसंहार एवम् इत्यादि श्लोकों से किया जा रहा है । जिसने अपना सारा धर्म नष्ट कर दिया था । वह स्वपत्नी ग्रहण इत्यादि के नियमों को भी विनष्ट कर दिया था ॥४५॥

नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात् ।
न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥४६॥

अन्वयः— अतः मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात् परं कर्मनिबन्ध कृन्तनं न, यत्पुनः कर्मसु मनः सज्जते ततोऽन्यथा रजस्तमोभ्यां कलिलम् ॥४६॥

अनुवाद— जो लोग संसार के बन्धन से मुक्त होना चाहते है उनके लिए भगवन्नोच्चारण से बढ़कर कर्म के बन्धन को काटने वाला कोई भी दूसरा साधन नहीं है । जो लोग दूसरे साधनों को अपनाते है उनका मन रजोगुण और तमोगुण के पचड़े में पड़ारहता है । तथा उन साधनों से सम्पूर्ण पापों का नाश भी नहीं होता है ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

कर्मनिबन्धस्य पापमूलस्य कृन्तनं छेदकमतः परं नास्ति । कस्मात्परम् तीर्थपदस्यानुकीर्तनात् । तत्र हेतुः-यद्यतोऽनुकीर्तनात्। ततोऽनुकीर्तनात् । अन्यथा प्रायश्चित्तान्तरे रजस्तमोभ्यां कलिलं मलिनमेव तिष्ठति यत्तन्मनः कर्मसु पुनर्न सज्जते ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

पाप मूल कर्म के बन्धन को काटने वाला अपने चरणों से तीर्थ को तीर्थ बताने वाले श्रीभगवान् के नाम सङ्कीर्तन से बढ़कर कोई दूसरा साधन नहीं है । उसका कारण यह है कि श्रीभगवान् का नाम कीर्तन करने से मन पुनः कर्मों में आसक्त नहीं होता है जब कि दूसरे प्रायश्चित्तों के करने पर मन रजोगुण और तमोगुण रूप कीचड़ में पड़ा रहता है ।।४६।।

य एवं परमं गुह्यमितिहासमघापहम् । शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो यश्च भक्त्यानुकीर्तयेत्।।४७।।
न वै स नरकं याति नेक्षितो यमकिङ्करैः । यद्यप्यमङ्गलो मर्त्यो विष्णुलोके महीयते।।४८।।

अन्वयः— एवं परमं गुह्यम् अघापहम् इतिहासं यः श्रद्धयायुक्तः शृणुयात् यश्च भक्त्याकीर्तयेत् यद्यपि अमङ्गलः मर्त्यः सः नरकं न याति नवै यमकिङ्करैः इक्षितः स विष्णुलोके महीयते ।।४७-४८।।

अनुवाद— इस प्रकार से अत्यन्त गोपनीय पाप विनाशक इस इतिहास को जो श्रद्धा पूर्वक सुनता है और भक्ति पूर्वक पढ़ता है, वह यदि अमङ्गलमय पुरुष हो तो भी वह न तो नरक में जाता है और न तो उसको यमदूत देख ही पाते हैं । वह भगवान् विष्णु के लोक में पूजित होता है ।।४७-४८।।

भावार्थ दीपिका

न चेक्षितो भवति ।।४७-४८।।

भाव प्रकाशिका

उसे यमदूत भी नहीं देख पाते हैं ।।४७-४८।।

म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितम् । अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे अजामिलोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

अन्वयः— म्रियमाणः हरेर्नाम पुत्रोपचारतः गृहणन् अजामिलोऽपि हरे धाम अगात् पुनः श्रद्धया गृणन् किम् ।।४९।।

अनुवाद— मरते समय अपने पुत्र के बहाने श्रीहरि के नाम का उच्चारण करने वाला महापापी अजामिल भी श्रीहरि के लोक में चला गया तो जो व्यक्ति श्रद्धा पूर्वक श्रीहरि के नाम का उच्चारण करता है उसके विषय में क्या कहना है ।।४९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के अजामिलोपाख्यान के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

भावार्थ दीपिका

म्रियमाणोऽवशत्वेन श्रद्धारविहीनोऽपि ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धस्य भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

मरते समय विवश होकर तथा श्रद्धा रहित भी अजामिल ।।४९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के दूसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२।।

* * *

तीसरा अध्याय

यम और यमदूतों का संवाद

राजोवाच

निशम्य देवः स्वभटोपवर्णितं प्रत्याह किं तान्प्रति धर्मराजः ।
एवं हताज्ञो विहतान्मुरारेर्नैदेशिकैर्यस्य वशे जनोऽयम् ॥१॥

अन्वयः— एवं मुरारेः नैदेशिकैः हताज्ञः विहितः यस्य वशं अयंजनः देवः धर्मराजः स्वभटोपवर्णितं निशम्य तान् प्रति किं प्रत्याह ॥१॥

राजा परीक्षित ने कहा

अनुवाद— इस तरह से श्रीभगवान् के पार्षदों द्वारा अपनी आज्ञा के भङ्ग हो जाने के कारण भगवान् धर्मराज (यमराज) जिनके वश में यह अजामिल था, वे अपने दूतों द्वारा सारी बातों को सुनकर उन सबों से क्या कहे?॥१॥

भावार्थ दीपिका

तृतीये तु यमेनापि वैष्णवोत्कर्षवर्णनैः । सान्त्वयित्वा स्वदूतास्ते वैष्णवे किङ्करीकृताः । विष्णुदूतैर्निर्णीतं शास्त्रार्थं यममुखेन द्रढयितुं तृतीयाध्यायारम्भः । तत्र यदुक्तं यमराज्ञे यथा सर्वमाचचक्षुरिति ततः किं तत्र वृत्तमिति पृच्छति-निशम्येति। मुरारेर्नैदेशिकैः किङ्करैरेवं विहतान् । अतएव हता आज्ञा यस्य । यस्य वशवर्त्ययं जनः सोऽपि तान्प्रति किमाह ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तीसरे अध्याय में यमराज भी श्रीवैष्णावों के उत्कर्ष का वर्णन करके अपने दूतों को सान्त्वना प्रदान किए और उन सबों को श्रीवैष्णवों का दास बना दिए । भगवान् विष्णु के द्वारा निर्णीत शास्त्रार्थ को यम के मुख से सुदृढ़ करने के लिए तीसरे अध्याय का आरम्भ किया गया है । यह जो पिछले अध्याय में कहा गया है कि यमराज को उनके दूतों ने सारी बातें जाकर सुना दी, उसके पश्चात् वहाँ क्या हुआ ? इस बात को महाराज परीक्षित् निशम्य० इत्यादि श्लोक से पूछते हैं । श्रीभगवान् के पार्षदों ने ऐसा किया । अतएव जिन यमराज की आज्ञा का भङ्ग हुआ था, वे तथा जिनके वश में यह मनुष्य है वे यमराज अपने दूतों से क्या कहे ?॥१॥

यमस्य देवस्य न दण्डभङ्गः कुतश्चनर्षे श्रुतपूर्व आसीत् ।
एतन्मुने वृश्चति लोकसंशयं नहि त्वदन्य इति मे विनिश्चितम् ॥२॥

अन्वयः— हे ऋषे यमस्य देवस्य दण्डभङ्गः न कुतश्चन श्रुतपूर्वः आसीत् । हे मुने ! एतत् लोकसंशयं त्वदन्यः कश्चन न वृश्चति इति मे विनिश्चितम् ॥२॥

अनुवाद— हे ऋषे ! यमराज देव की आज्ञा का भङ्ग इससे पहले मैंने कभी नहीं सुना था, किसी कारण के वशात् भी उनकी आज्ञा का भङ्ग नहीं सुना गया है । अतएव इस विषय में लोगों को बहुत अधिक संशय होगा और शङ्का का उत्तर आपसे भिन्न कोई भी नहीं दे सकता है, यह मेरा निश्चय है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अत्याश्चर्यमेतदित्याह-यमस्येति । हे ऋषे, यमस्य दण्डभङ्गः कुतश्चन कस्माच्चिदपि श्रुतपूर्वो नासीत् । एतदेतस्मिन्नर्थे। यद्वा न श्रुतपूर्वः । एतद्यमदूतनिराकरणं चासीत् । अतः सर्वस्यापि लोकस्य संशयो वर्तते तं त्वत्तोऽन्यो न च्छिनत्तीति मे निश्चितमतः कथयेति शेषः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

यमस्य० **इत्यादि** श्लोक के द्वारा राजा परीक्षित् ने कहा कि यह तो अत्यन्त आश्चर्य की बात है । यमराज के दण्ड की आज्ञा का भङ्ग कहीं से तथा कभी भी नहीं सुना गया है । हे मुने इस विषय में लोगों का संशय है और इस शङ्का को आपसे भिन्न दूसरा कोई भी दूर नहीं कर सकता है, यह मेरा निश्चय है । अतएव आप इसे बतलायें । अथवा यम के दूतों को भगा देने की बात इससे पहले नहीं सुनी गयी थीं ॥२॥

श्रीशुक उवाच

भगवत्पुरुषै राजन्याम्याः प्रतिहतोद्यमाः । पतिं विज्ञापयामासुर्यमं संयमिनीपतिम् ॥३॥

अन्वयः— हे राजन् ! भगवत् पुरुषैः याम्याः प्रतिहतोद्यमाः पतिं संयमनी पतिम् यमं विज्ञापयामासुः ॥३॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! परीक्षित् श्रीभगवान् के पुरुषों द्वारा जिनका प्रयास विफल कर दिया गया वे यमदूत जाकर संयमनी नगरी के स्वामी तथा अपने स्वामी यमराज से कहें ॥३॥

भावार्थ दीपिका

भागवतः पुरुषैः प्रतिहत उद्यमो येषां ते । याम्याः पुरुषाः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के दूतों द्वारा जिन सबों के प्रयास को विफल बना दिया गया था उन यमराज के पुरुषों ने अपने स्वामी यमराज से जाकर कहा ॥३॥

यमदूता ऊचुः

कति सन्तीह शास्तारो जीवलोकस्य वै प्रभो । त्रैविध्यं कुर्वतः कर्म फलाभिव्यक्तिहेतवः ॥४॥

अन्वयः— हे प्रभो त्रैविध्यं कर्म कुर्वतः जीव लोकस्य फलभिव्यक्तिहेतवः इह वै कति सन्ति ॥४॥

यमदूतों ने कहा

अनुवाद— हे स्वामिन इस लोक में तीन प्रकार के कर्मों, पुण्य, पाप और पुण्यपापमिश्रित को करने वाले जीवों को फल प्रदान करने वाले प्रशासक कितने हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

कति सन्तीत्याक्षेपोक्तिः । त्रैविध्यं त्रिविधम् । स्वार्थे ष्यञ् । यद्वा त्रैविध्यं यथा भवति तथा कर्म कुर्वतः । तथा कर्मफलस्याभिव्यक्तिहेतवः कति सन्तीति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

कितने हैं यह यमदूतों की आक्षेपोक्ति है । त्रिविधम् के अर्थ में त्रिविध शब्द से स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय करके त्रैविध्यम् पद का प्रयोग किया गया है । अथवा जिस तरह से त्रैविध्य हो उस तरह के कर्मों को करने वाले तथा कर्मों फलों को प्रदान करने वाले कितने हैं ?॥४॥

यदि स्युर्बहवो लोके शास्तारो दण्डधारिणः । कस्य स्यातां न वा कस्य मृत्युश्चामृतमेव वा ॥५॥

अन्वयः— यदि लोके बहवो दण्डधारिणः शास्तारः इह सन्ति तर्हि कस्य मृत्युः अमृतम् वा एव स्याताम् कस्य वान स्याताम् ॥५॥

अनुवाद— यदि प्रशासन करने वाले अनेक हैं तो फिर इस बात की व्यवस्था नहीं बन सकती है कि किसको मृत्युदण्ड दिया जाय तथा किसको मोक्ष प्रदान किया जाय ?॥५॥

भावार्थ दीपिका

सन्तु बहवः को बाधस्तत्राहुः-यदीति । मृत्युर्दुःखममृतं सुखम् । तेषां विप्रतिपत्तौ ते उभे कस्य स्यातां न कस्यापि। परस्परविरोधेनोभयोरपि प्रतिबन्धात् । ऐकमत्ये तु कस्य वा न स्याताम् । एकः सुखं कर्तुमिच्छति दुःखं चान्यः । ऐकमत्ये च तयोः परस्परकार्यानुमोदनेनोभयोरपि प्राप्ते कस्य वा ते उभे अपि न स्यातामित्यर्थः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें कि बहुत से प्रशासकों के रहने से कौन सी हानि है ? इस पर यमदूतों ने **यदि सन्ति० इत्यादि** श्लोक से कहा कि मृत्यु दुःख का बोधक है और अमृत सुख का । अनेक प्रशासक के होने पर उन सबों में मतभेद होने पर सुख अथवा दुःख किसको प्राप्त हो यह कैसे निश्चित होगा ? अर्थात् किसको नहीं हो सकता है। क्योंकि उन दोनों के मतभेद होने पर दोनों का बोध होगा दोनों के ऐकमत्य हो जाने पर दोनों में कोई भी नहीं होगा। क्योंकि एक सुख देना चाहेगा और दूसरा दुःख । दोनों प्रशासकों का ऐकमत्य हो जाने पर तो दोनों के द्वारा एक दूसरे का समर्थन किए जाने के कारण किसी को न तो सुख मिलेगा और न किसी को दुख ।।५।।

किंतु शास्तृबहुत्वे स्याद्बहूनामिह कर्मिणाम् । शास्तृत्वमुपचारो हि यथा मण्डलवर्तिनाम् ।।६।।

अन्वयः— किन्तु शास्तृबहुत्वे मण्डलवर्तिनाम् यथा शास्तृत्वं हि उपचारः स्यात् कर्मिणाम् बहुत्वात् ।।६।।

अनुवाद— प्रशासकों के अनेक होने पर जिस तरह से एक सम्राट के अनेक सामान्तों के होने पर प्रशासन नाम मात्र का ही रह जाता है, उसी तरह प्रशासकों की अनेकता होने पर उनका प्रशासनकर्तृत्व उपचार मात्र ही होगा क्योंकि कर्म करने वाले जीव भी तो अनेक हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

ननु बहूनां कर्मिणां व्यवस्थया बहवः शास्तारो भवन्तु, तथा सति नायं दोषः स्यात्तत्राहुः-बहूनां कर्मिणां व्यवस्थया शास्तृत्वबहुत्वे शास्तृत्वं न घटेत । किंतु तदा यत्सर्वशास्तरि मुख्यं शास्तृत्वं तदेकदेशे उपचारमात्रमेव स्यात् । यथा चक्रवर्तिन एव मुख्यं शास्तृत्वं मण्डलवर्तिनामुपचारमात्रम्, निरङ्कुशत्वाभावात् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि अनेक प्रकार के कर्म करने वालों की व्यवस्था के कारण अनेक प्रशासक हो सकते हैं, ऐसा होने पर उपर्युक्त दोष का प्रसङ्ग नहीं होगा । इस पर यमदूतों ने कहा । अनेक कर्म करने वालों की व्यवस्था के कारण प्रशासकों के अनेक होने पर प्रशासकत्व तो हो सकता हैं किन्तु उस स्थिति में एक मुख्य प्रशासक का आदेश होने पर तद् व्यतिरिक्त प्रशासकों में प्रशास्तृत्व का उपचार मात्र होगा । उसी तरह एक चक्रवर्ती का ही मुख्य शासकत्व होता है । मण्डल के प्रशासकों का तो केवल उपचार होता है । क्योंकि वे सभी चक्रवर्ती के अधीन रहते हैं, स्वतन्त्र नहीं होते ।।६।।

अतस्त्वमेको भूतानां सेश्वराणामधीश्वरः । शास्ता दण्डधरो नृणां शुभाशुभविवेचनः ।।७।।

अन्वयः— अतः त्वम् सेश्वराणां भूतानाम् एकः अधीश्वरः शास्ता, दण्डधरः, नृणां शुभाशुभविवेचनः ।।७।।

अनुवाद— इसीलिए आप समस्त जीवों तथा उनके स्वामियों के एकमात्र अधीश्वर, प्रशास्ता, दण्ड प्रदान करने वाले तथा उनके पुण्यों तथा पापों का निर्णय करने वाले हैं ।।७।।

भावार्थ दीपिका

यस्मादेवं शास्तृबहुत्वं न घटतेऽतस्त्वमेक एव शास्ता । शुभाशुभे विविनक्तीति तथा ।।७।।

भाव प्रकाशिका

चूकि अनेक प्रशासकों का होना समुचित नहीं है इसीलिए आप सभी जीवों के एकमात्र प्रशासन करने वाले तथा उनके पुण्यों तथा पापों का निर्णय करने वाले हैं ।।७।।

तस्य ते विहतो दण्डो न लोके वर्ततेऽधुना । चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैराज्ञा ते विप्रलम्भिता ।।८।।

अन्वयः— तस्य ते दण्डः लोके अधुनाविहतो न वर्तते चतुर्भिः अद्भुतैः सिद्धैः ते आज्ञा विप्रलम्भिता ।।८।।

अनुवाद— इस प्रकार के आपके होने के कारण आपकी आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं करता था, किन्तु इस समय चार अद्भुत सिद्धों ने आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर दिया है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

विप्रलम्भिता वञ्चिता । लङ्घितेत्यर्थः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

विप्रलम्भिता का अर्थ है उल्लंघन किया है ।।८।।

नीयमानं तवादेशादस्माभिर्यातनागृहान् । व्यमोचयन्पातकिनं छित्त्वा पाशान्प्रसह्य ते ।।९।।

अन्वयः— तवादेशात् अस्माभिः यातना गृहान् नीयमानं पातकिनं ते प्रसह्य पाशान् छित्वा व्यमोचयन् ।।९।।

अनुवाद— आपकी आज्ञा से हमलोगों द्वारा यातना गृह में ले जाये जाने वाले पापी को उन लोगों ने बल पूर्वक फाँसी के फँदे को काटकर मुक्त कर दिया है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

तदेवाहुः-नीयमानमिति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

उसी को सबों ने बतलाते हुए **नीयमानम्० इत्यादि** श्लोक को कहा है ।।९।।

तांस्ते वेदितुमिच्छामो यदि नो मन्यसे क्षमम् । नारायणेत्यभिहिते माभैरित्याययुर्द्रुतम् ।।१०।।

अन्वयः— तान् त वेदितुम् इच्छामः यदि नो क्षमम् मन्यसे नाराणेति अभिहिते ते माभैः इतिद्रुतम् आययुः ।।१०।।

अनुवाद— यदि आप हमलोगों को जानना उचित समझें तो उन सबों के विषय में हम आपसे जानना चाहते हैं नारायण शब्द का उच्चारण करते ही वे सब शीघ्र ही आ गये और कहे डरो मत ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

ते त्वत्तः । यदि नोऽस्माकं क्षमं हितं मन्यसे । अन्यथाऽज्ञानतस्तदवज्ञाने तवाप्यनर्थः स्यात् । अतर्क्यो हि तेषां प्रभावो यतो नारायणेति केवलमभिहिते मा भयं कुर्विति वदन्तः शीघ्रमागताः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

उन सबों के विषय में आपसे हमलोग जानना चाहते है । यदि आप हमलोगों को जानना उचित समझें तो अन्यथा अज्ञान वशात् उन लोगों का अपमान करने पर आपका भी अनर्थ हो सकता है । उन सबों का प्रभाव अतर्क्य है क्योंकि नारायण कहते ही डरो मत इस तरह से कहते हुए वे आ गये ।।१०।।

श्रीशुक उवाच

इति देवः स आपृष्टः प्रजासंयमनो यमः । प्रीतः स्वदूतान्प्रत्याह स्मरन्पादाम्बुजं हरेः ॥११॥

अन्वयः— इति आपृष्टः प्रजासंयमनः देवः यमः प्रीतः हरेः पादाम्बुजं स्मरन् स्वदूतान् प्रत्याह ॥११॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से पूछे जान पर प्रजाओं का प्रशासन करने वाले देवता यमराज प्रसन्न होकर श्रीहरि के चरण कमलों का स्मरण करते हुए अपने दूतों से कहे ॥११॥

भावार्थ दीपिका

प्रजाः संयमयतीति तथा ॥११॥

भाव प्रकाशिका

प्रजाओं का नियमन करने वाले यमराज ने अपने यमदूतों से कहा ॥११॥

यम उवाच

परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम् ।
यदंशतोऽस्य स्थितिजन्मनाशा नस्योतवद्यस्य वशे च लोकः ॥१२॥

अन्वयः— मदन्य जगतः तस्थुषः च यत्र विश्वम् पटवत् ओतं प्रोतम् यदंशतः अस्य स्थिति, जन्मनाशाः लोकः च नसि ओतवत् यस्य वशे ॥१२॥

यमदूतों ने कहा

अनुवाद— मुझसे भिन्न यह जड जंगमात्मक सम्पूर्ण जगत् जिनमें सूत्र में वस्त्र के समान ओत-प्रोत है उनके ही अंशभूत ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव इस जगत् की सृष्टि, स्थिति (रक्षा) और संहार करते हैं । वे ही इस सम्पूर्ण जगत् को नाथ में नथे बैल के समान अपने वश में कर रखे हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

मत्तोऽन्यो जगतस्तस्थुषश्च परोऽधीश्वरोऽस्ति । अहं तु जङ्गमानामेव तत्रापि नृणामेव तत्रापि पापिनामेव तत्किंकरः सन्नीश्वरः, स तु सर्वेश्वरः । कोऽसौ । यत्र यस्मिनन्विश्वमोतं प्रोतं चोर्ध्वतिर्यक्तन्तुषु पटवत् । यस्य त्वंशेभ्यो विष्णुब्रह्मरुद्रेभ्योऽस्य स्थित्यादयो भवन्ति, यस्य च वशे लोको वर्तते । नासिकायां प्रोतबलीवर्दवत् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

मुझसे भिन्न जङ्गम तथा जड समस्त पदार्थों के अधीश्वर हैं । मैं तो जङ्गमों का ही, उनमें भी मनुष्यों का ही, मनुष्यों में भी पापियों का ही नियामक हूँ । मैं वस्तुतः उनका दास हूँ । वे ही सबों के स्वामी हैं । उनमें ही यह जगत् जिस तरह ऊपर तिरक्षा सूतों में वस्त्र ओत-प्रोत (गूंथा) रहता है उसी तरह उनके ही अंशभूत ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के द्वारा इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं । उनके ही वश में यह सम्पूर्ण संसार उसी तरह रहता है जिस तरह नाथ से नथे बैल अपने स्वामी के वशवर्ती होकर रहते हैं ॥१२॥

यो नामभिर्वाचि जनान्निजायां बध्नाति तन्त्यामिव दामभिर्गाः ।
यस्मै बलिं त इमे नामकर्मनिबन्धबद्धाश्चकिता वहन्ति ॥१३॥

अन्वयः— यः नामभिः निजायां वाचि तन्त्यां तन्त्यां, दामभिःगाः इव बध्नाति त इमे नाम कर्मनिबन्ध बद्धा चकिताः यस्मै बलिम् वहन्ति ॥१३॥

अनुवाद— जो परमात्मा छोटी-छोटी रस्सियों के समान पहले, ब्राह्मणादि वर्णों तथा ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में बन्धे सभी जीवों को वेद, वाणी रूप बड़ी रस्सी में उसी तरह बाँध रखे हैं जिस तरह किसान पहले नाथ रूपी छोटी-छोटी रस्सी में बाँधकर फिर उन सबों को एक बड़ी रस्सी में (दंवरी में) बाँध देते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण जीव नाम एवं कर्म रूप बन्धन में बँधे हुए भयभीत होकर उनको ही उपहार प्रदान करते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति। ब्राह्मणादिनामभिर्वाचि निजायां तन्त्यां दामन्यां जनान्यो बध्नाति दामभिर्गा बलीवर्दानिव। त इमे जीवा नामकर्मभिर्निबन्धैर्दृढबन्धसाधनैर्बद्धा यस्मै बलिं वहन्ति। यदधीनाः कर्म कुर्वन्तीत्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

इसी बात का विस्तार से वर्णन करते हैं जो परमात्मा ब्राह्मण आदि नामों तथा आश्रमों के बन्धन में बाँधकर पुनः सम्पूर्ण जगत् को वेदवाणी के बन्धन रूपी बड़ी रस्सी में उसी तरह बाँध रखे हैं जिस तरह किसान बैलों को पहले नाथ रूप छोटी रस्सी में बाँधकर उसके पश्चात् बड़ी रस्सी में बाँध देते हैं। ये सभी जीव नाम तथा कर्म रूप सुदृढ बन्धनों में बँधकर उस परमात्मा के अधीन रहकर कर्मों को किया करते हैं ॥१३॥

अहं महेन्द्रो निर्ऋतिः प्रचेताः सोमोऽग्निरीशः पवनोऽर्को विरिञ्चः।
आदित्यविश्वे वसवोऽथ साध्या मरुद्गणा रुद्रगणाः ससिद्धाः ॥१४॥
अन्ये च ये विश्वसृजोऽमरेशा भृग्वादयोऽस्पृष्टरजस्तमस्काः।
यस्येहितं न विदुः स्पृष्टमायाः सत्त्वप्रधाना अपि किं ततोऽन्ये ॥१५॥

अन्वयः— अहं महेन्द्रः, नियतिः, प्रचेताः, सोमः, अग्निः, ईशः, पवनः, अर्कः, विरिञ्चः, आदित्यविश्वेवसवः अथ साध्याः मरुद्गणाः, रुद्रगणाः ससिद्धाः, अन्ये च ये विश्वसृजः अमरेशाः, अस्पृष्टरजस्तमस्काः भृग्वादयः, सत्त्वप्रधानाः, अपि स्पृष्टमायाः यस्य इहितं न विदुः ततः अन्ये किम् ॥१४-१५॥

अनुवाद— यमराज ने कहा दूतों मैं इन्द्र, निर्ऋति, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि, शङ्कर, वायु, सूर्य, ब्रह्मा, द्वादशादित्य, विश्वेदेव, आठो वसु, साध्यगण, उनचास मरुद्गण, सिद्धगण, एकादश रुद्रगण, जिनको रजोगुण एवं तमोगुण ने स्पर्श भी नहीं किया है। वे भृगु आदि महर्षिगण, सभी प्रजापति, तथा बड़े-बड़े देवगण माया के वशवर्ती होने के कारण यह नहीं जान पाते हैं कि श्रीभगवान् कब और क्या करने वाले हैं ? तो दूसरों की क्या वात हैं ?॥१४-१५॥

भावार्थ दीपिका

यस्य च लीला दुर्विभाव्येत्याह-अहमिति द्वाभ्याम्। न स्पृष्टं रजस्तमश्च यैः ईहितमभिप्रेतं चेष्टितं वा न विदुः। स्पृष्टमाया मायया स्पृष्टाः। ततस्तेभ्योऽन्ये न विदुरिति किं पुनर्वक्तव्यम् ॥१४-१५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की लीला को कोई नही जान सकता है, इस बात को यमराज अहम् इत्यादि दो श्लोकों से कहते हैं जिन लोगों को रजोगुण एवं तमोगुण ने स्पर्श भी नहीं किया है वे भृगु आदि महर्षि भी श्रीभगवान् की लीला को नहीं जान पाते है तो फिर दूसरों की क्या बात है ?॥१४-१५॥

यं वै न गोभिर्मनसाऽसुभिर्वा हृदा गिरा वाऽसुभृतो विचक्षते।
आत्मानमन्तर्हृदि सन्तमात्मनां चक्षुर्यथैवाकृतयस्ततः परम् ॥१६॥

अन्वयः— यम् वै सुभृतः गोभिः, मनसा, वा असुभृतोः, हृदा गिरा वै हृदि सन्तम् आत्मान्तर्हृदि आत्म आकृतयः ततः परम् चक्षुः यक्षैव न विचक्षते ॥१६॥

अनुवाद— अन्तःकरण के भीतर साक्षी रूप से विद्यमान परमात्मा को प्राणी अपनी इन्द्रियों, मन, या प्राण या हृदय, या वाणी के द्वारा उसी तरह से नहीं जान पाते हैं जिस तरह घर पर आदि आकृतियाँ अपने प्रकाशक नेत्रों को नहीं जान पाती हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तन्मायया विमोहितत्वान्न जानन्तीत्युक्तमविषयत्वाच्च तस्येत्याह-यमिति । गोभिरिन्द्रियैर्हृदा चित्तेन न विचक्षते न पश्यन्ति । 'यद्वाचाऽनभ्युदितं', 'यन्मनो न मनुते' इत्यादिश्रुतेः । आत्मनां जीवानामात्मानं द्रष्टारम् । आकृतयो रूपाणि चक्षुर्यथा कर्मभूतं न जानन्ति ततः परमाकृतीनां प्रकाशकम् । नहि प्रमाता प्रमाणस्य विषय इति भावः । एवंभूतः परमेश्वरो मदन्योऽस्तीति पूर्वेणैव संबन्धः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि परमात्मा की माया से मोहित जो परमात्मा की लीलाओं को नहीं जान पाते हैं क्योंकि परमात्मा किसी के विषय नहीं हैं । इसी अर्थ का प्रतिपादन **यम इत्यादि** श्लोक से किया गया है । प्राणी अपनी इन्द्रियों, हृदय, चित्त, इत्यादि साधनों के द्वारा उस परमात्मा को नहीं जान पाते हैं । श्रुतियाँ भी कहती हैं— **यद्वाचाऽनभ्युदितं** अर्थात् जिसका वर्णन वाणी के द्वारा नहीं किया जा सकता है **'यन्मनोनमनुते'** जिस परमात्मा का मनन मन के द्वारा नहीं किया जा सकता है । जीवों के भी साक्षी परमात्मा को उसी तरह नहीं जान पाते है जिस तरह घट-पट आदि रूपवान आकृतियाँ अपने प्रकाशक नेत्र को नहीं जान पाती हैं । जो चक्षु उन आकृतियों का प्रकाशक है कहने का अभिप्राय है कि प्रमात्ता को प्रभाण अपना विषय नहीं बना पाते हैं । इस प्रकार के परमात्मा मुझसे भिन्न एवं हम सबों के अधीश्वर हैं । यह इससे पहले के श्लोक से सम्बन्ध है ॥१६॥

तस्यात्मतन्त्रस्य हरेरधीशितुः परस्य मायाधिपतेर्महात्मनः ।
प्रायेण दूता इह वै मनोहराश्चरन्ति तद्रूपगुणस्वभावाः ॥१७॥

अन्वयः— तस्य आत्मतन्त्रस्य, अधीशितुः मायाधिपतेः परस्य महात्मनः प्रायेण तद्रूपगुण स्वभावाः मनोहराः दूताः वै इह चरन्ति ॥१७॥

अनुवाद— उन, परम स्वतन्त्र, सबों के स्वामी, माया के भी नियामक सर्वोत्कृष्ट महान् आत्मा परमेश्वर के ही समान रूप तथा गुण अत्यन्त मनोहर दूत निश्चित रूप से इस संसार में सञ्चरण किया करते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

भवत्वेवं भूतोऽन्यः परमेश्वरः, ये पुनरस्मान्निर्भर्त्स्य पापिनं रक्षितवन्तस्ते के तानाह-तस्येति द्वाभ्याम् । तस्येव रूपं गुणाः प्रभावादयः स्वभावो भक्तवात्सल्यादिर्येषां ते ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

यदि दूत यह कहें कि ठीक है आपसे भिन्न परमात्मा सबों के स्वामी हैं किन्तु वे लोग कौन थे जिन लोगों ने हमलोगों को डाँट फटकारकर उस पापी की रक्षा किए ? उन सबों को यमराज ने **तस्य० इत्यादि** दो श्लोकों से बतलाया हैं श्रीभगवान् के समान ही रूप प्रभाव तथा वात्सल्य आदि जिनका स्वभाव होता है, ऐसे भगवान् के दूत पृथिवी पर सञ्चरण किया करते हैं ॥१७॥

भूतानि विष्णोः सुरपूजितानि दुर्दर्शलिङ्गानि महाद्भुतानि ।
रक्षन्ति तद्भक्तिमतः परेभ्यो मत्तश्च मर्त्यानथ सर्वतश्च ॥१८॥

अन्वयः— विष्णोः सुरपूजितानि भूतानि दुर्दर्शलिङ्गानि महाद्भुतानि, तद्भक्तिमतः मर्त्यान् परेभ्यः मत्तः अथ सर्वतः च रक्षन्ति ॥१८॥

अनुवाद— भगवान् विष्णु के देवताओं के द्वारा पूजित पार्षदों का दर्शन अत्यन्त दुर्लभ होता है, वे परम अलौकिक होते हैं वे भगवद भक्तों की रक्षा उनके शत्रुओं से, मुझसे तथा अन्य सबों से किया करते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

विष्णोर्भूतानि भृत्याः दुर्दर्शानि द्रष्टुमप्यशक्यानि लिङ्गानि रूपाणि येषां तानि । तद्भक्तिमतो विष्णुभक्तान् । परेभ्यः शत्रुभ्यो मत्तः सर्वतोऽग्न्यादिभ्यश्च रक्षन्ति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् विष्णों के दूतों का दर्शन मिलना कठिन है उनके रूपों को कोई देख नहीं पाता है जो मनुष्य भगवान् विष्णु के भक्त होते हैं उन सबों की रक्षा वे उनके शत्रुओं से, मुझसे तथा अग्नि आदि से किया करते हैं ॥१८॥

धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः ।
न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः कुतश्च विद्याधरचारणादयः ॥१९॥

अन्वयः— साक्षत् भगवत् प्रणीतं धर्मं तु नवै ऋषयः नापि देवाः, न सिद्ध मुख्याः असुराः मनुष्याः न विदुः विद्याधर चारणादयः कुतः ॥१९॥

अनुवाद— साक्षात् स्वयं श्रीभगवान् ने ही धर्म की मर्यादा का निर्माण किया है, उसको न तो ऋषिगण जानते है न तो देवगण जानते हैं, न प्रधान सिद्धगण जानते है न तो असुरगण जानते हैं, न मनुष्य जानते हैं तो फिर विद्याधर और चारण गण कैसे जान पायेंगे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ननु विष्णुभक्ताश्चेत्कथमधर्मपक्षपातं कृतवन्तस्तत्राह-धर्ममिति । ऋषयो भृग्वादयः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

यदि यमराज के दूत कहें कि वे यदि विष्णु भगवान् के दूत थे तो उन लोगों ने अधर्म का पक्षपात कैसे किया । इसके उत्तर में यमराज ने **धर्मम्० इत्यादि** श्लोक को कहा । भगवत् प्रणीत धर्म को तो ऋषिगण भी नहीं जान सकते हैं ॥१९॥

स्वयंभूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः । प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥२०॥
द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः । गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥२१॥

अन्वयः— भटाः गुह्यं, विशुद्धं दुर्बोधं भागवतं धर्मं स्वयम्भूः नारदः शम्भुः कुमारः कपिलः, मनुः, प्रह्लादः, जनकः, भीष्मः, बलिः, वैयासकिः, एते द्वादश वयम् विजानीमः, यं ज्ञात्वा अमृतम् अश्नुते ॥२०-२१॥

अनुवाद— हे दूतों ! अत्यन्त गोपनीय, विशुद्ध (सभी प्रकार के दोषों से रहित) तथा बड़ी कठिनाई से जानने योग्य भागवत धर्म को ब्रह्माजी, नारदजी, शङ्करजी, सनकादिक महर्षिगण, भगवान् कपिल, मनु महर्षि, प्रह्लाद, जनक, भीष्म, राजा बलि, श्रीशुकदेवजी तथा मैं ये बारह लोग ही जानते हैं, उस धर्म को जानने वाला जीव मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥२०-२१॥

भावार्थ दीपिका

ननु केऽपि चेन्न जानन्ति तस्य सत्त्वे किं प्रमाणं तत्राह-स्वयंभूरिति । कुमारः सनत्कुमारः । वयमित्यात्मानमेव बहुमन्यमानो निर्दिशति । हे भटाः ॥२०-२१॥

भाव प्रकाशिका

यदि यमदूत कहें जिसको कोई भी नहीं जानता है, उसकी सत्ता में क्या प्रमाण है ? इस पर यमराज ने कहा **स्वयम्भू० इत्यादि** अर्थात् हमलोग बारह व्यक्ति ही इस भागवत, धर्म को जानते हैं । कुमार शब्द से सनत्कुमार को कहा गया है । अपने को ही अधिक महत्त्व देते हुए अपनावयम् शब्द से यमराज निर्देश करते हैं हे भटाः अर्थात् हे दूतों ॥२०-२१॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां धर्मः परः स्मृतः । भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥२२॥

अन्वयः— अस्मिन् लोके एतावानेव परः धर्मः स्मृतः यत् तन्नामग्रहणादिभिः भगवति भक्तियोगः ॥२२॥

अनुवाद— इस लोक में मनुष्यों के लिए यही सबसे बड़ा धर्म है कि श्रीभगवान् के नामों का उच्चारण करते हुए श्रीभगवान् की भक्ति की जाय ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तमेव धर्ममाह-एतावानिति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

एतावानेव इत्यादि श्लोक के द्वारा उसी धर्म को कहा गया है ॥२२॥

नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः । अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥२३॥

अन्वयः— हे पुत्रका हरेः नामोच्चारण माहात्म्यं पश्यत येनैव अजामिलोऽपि मृत्युपाशात् अमुच्यत ॥२३॥

अनुवाद— दूतों ! श्रीहरि के नामोच्चारण की महिमा को तो देखों कि श्रीभगवान् के नामोच्चारण करने मात्र से अजामिल जैसा पापी भी मृत्यु के पाश से मुक्त हो गया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

न चात्र प्रमाणं वक्तव्यं दृष्टत्वादित्याह-नामोच्चारणेति । येनैव केवलेन सकृदुच्चारितेन ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

भागवत धर्म में प्रमाण उपन्यस्त करने की आवश्यकता नहीं है, उसका प्रभाव तो लोक दृष्ट है श्रीभगवान् का केवल एक बार ही नामोच्चारण करने से अजामिल जैसा पापी मृत्यु के पाश से मुक्त हो गया ॥२३॥

एतावताऽलमघनिर्हरणाय पुंसां संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ।
विक्रुश्य पुत्रमघवान्यदजामिलोऽपि नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥२४॥

अन्वयः— भगवतः गुण कर्मनाम्नाम् सङ्कीर्तनम् पुसां अघनिर्हरणाय एतावता अलम् यत् म्रियमाणः अधवान् अजामिलः अपि, नारायण इति पुत्रम् विक्रुश्य मुक्तिम् इयाय ॥२४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के गुणों, कर्मों तथा नामों का सङ्कीर्तन पुरुषों के पाप को विनष्ट करने के लिए पर्याप्त है । क्योंकि मरने वाला पापी अजामिल भी अपने पुत्र का नारायण नाम पुकार करके मुक्ति को प्राप्त कर लिया॥२४॥

भावार्थ दीपिका

ननु नामाभासेन कथं सर्वपापक्षयः स्यात् । श्रद्धाभक्त्यावृत्त्यादेरपि विधानात् । तथाहि 'सायं प्रातर्गृणन् भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते' इति, 'अनुदिनमिदमादरेण शृण्वन्' इति, 'श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः । जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ।' इत्याद्यस्मिन्नेव पुराणे तत्र-तत्र पठ्यते । पुराणान्तरे च 'पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम्' इति । अत्रैव च 'तस्मात्संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम् । महतामपि कौरव्य विद्धयदैकान्तिकनिष्कृतम् ।' इत्यादिना सम्यक्कीर्तनादेव

मुच्यते । किंच तथा सति किमिति मन्वादयो द्वादशाब्दादीनि स्मरेयुः । तस्मादिदमनुपपन्नमिव तत्राह- एतावतेति । भगवतो गुणानां कर्मणां च नाम्नां च सम्यक्कीर्तनमिति यदेतावता पुंसामघनिर्हरणाय पापक्षयमात्रायालमुपयोगो नास्ति । अलंशब्दोऽत्र वारणे । यथाहामरसिंहः- 'अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्' इति । उपयोगाभावमेवाह । अजामिलो महापातक्यपि नारायणेति विक्रुश्य ननु सम्यक्कीर्तयित्वा । तच्च पुत्रं विक्रुश्य ननु हरिम् । अघवानशुचिरपि म्रियमाणोऽस्वस्थचित्तोऽपि मुक्ति मवाप न त्वघनिर्हरणमात्रम्, अतो नामाभासेनापि सर्वपापक्षय इत्येव तत्त्वम् । आवृत्तिश्रद्धादिविधयस्तु पापवासनाक्षयार्था इत्युक्तमेव 'हरेर्गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः' इत्यत्र ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि नामाभास के द्वारा सभी पापों का नाश कैसे सम्भव है ? क्योंकि इसके साथ ही श्रद्धा-भक्ति तथा आवृत्ति बार-बार श्रीभगवान् के नामों के उच्चारण का भी विधान किया गया है कहा भी गया है कि जो व्यक्ति श्रीभगवान् के नामों का सायंकाल और प्रातःकाल भक्ति पूर्वक उच्चारण करता है, वह सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है । यह भी कहा गया है कि जो इसको प्रतिदिन आदर पूर्वक सुनता है । किञ्च **श्रवणम् इत्यादि** अर्थात् अद्भुत कर्म करने वाले श्रीहरि का श्रवण, कीर्तन, ध्यान तथा उनके जन्म, कर्म तथा गुणों का एवं उनकी समस्त चेष्टाओं का ध्यान करना चाहिए ये सारी बातें इसी पुराण में कही गयी है । **पुराणान्तरे च० इत्यादि** दूसरे पुराणों में भी कहा गया हैं जो लोग श्रीभगवान् का दिन-रात स्मरण करते है । उनके पाप विनष्ट हो जाते हैं । इस पुराण में भी कहा गया है कि अतएव हे विदुर ! श्रीभगवान् का नाम सङ्कीर्तन संसार का मङ्गलकारी है तथा बड़े-से-बड़े भी पापों का प्रायश्चित्त है । इनसे स्पष्ट है कि अच्छी तरह से कीर्तन करने से ही प्राणी मुक्त होता है । दूसरी बात है कि यदि एक बार ही नामोच्चारण से पापों का विनाश हो जाता है तो मनु इत्यादि महर्षियों ने क्यों बारह वर्ष का व्रत बतलाया ? अतएव यह कथन अनुपपन्न सा प्रतीत होता है । इस पर यमराज कहते हैं **एतावता० इत्यादि** भगवान् के गुणों कर्मो तथ नामों का अच्छी तरह से कीर्तन जो कहा गया है इतने मात्र से पुरुषों के केवल पापों का विनाश करने के लिए पर्याप्त नहीं है । यहाँ अलं शब्द वारणार्थक है । अमरकोश कार ने कहा भी है— अलं, भूषण, पर्याप्ति शक्तिवरण वाचकम् अपितु इसके उपयोग का अभाव ही वतलाया गया है । अजामिल महापातकी भी होकर नारायण इस नाम का उच्चारण करने मात्र से अच्छी तरह कीर्तन करके नहीं उसमें भी अपने पुत्र को चिल्लाया था, श्रीहरि कोनहीं, वह पापी और अपवित्र भी था मरते समय होने के कारण उसका चित्त चञ्चल था फिर भी मुक्ति को प्राप्त कर लिया केवल उसके पाप ही दूर नहीं हुए । अतएव नामाभास के द्वारा भी सभी पापों का क्षय होता है, यही तत्त्व है । आवृति तथा श्रद्धा आदि तो वासना के विनाश के लिए कहे गये इस बात को कहा ही जा चुका है । श्रीहरि के गुणों का अनुवाद अन्तःकरण को शुद्ध करने वाला है ।।२४।।

प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं देव्या विमोहितमतिर्बत माययाऽलम् ।
त्रय्यां जडीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ।।२५।।

अन्वयः— अयं महाजनः मायया देव्या अयं विमोहितमतिः तत इदं प्रायेण न वेद मधुपुष्पितायां त्रय्यां जड़ीकृतमतिः महति वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः वत ।।२५।।

अनुवाद— उपर्युक्त बारह लोगों से भिन्न बड़े-बड़े विद्वान् भी माया से बुद्धि के मोहित होने के कारण इस नामोच्चारण की महिमा को नहीं जान पाते हैं और वे और वे मीठे-मीठे फलों का वर्णन करने वाली वादों की अर्थवाद मयी वाणियों से मोहित होकर बड़े-बड़े यज्ञों के ही करने में लगे रहते हैं, यह अत्यन्त खेद की बात है ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

यत्तूक्तं व्यर्थं तर्हि द्वादशाब्दादिस्मरणमिति तत्राह-प्रायेणेति । महाजनो मन्वादिः । अयं भावः-यथामृतसंजीवनौषधिमजानन्तो वैद्यो रोगनिर्हरणाय त्रिकटुकनिम्बादीनि स्मरन्ति तथा स्वयंभूशंभुप्रमुखद्वादशव्यतिरेकेणायं महाजनोऽतिगुह्यमिदमज्ञात्वा द्वादशाब्दादिकं स्मरतीति । किंच मायया देव्या अलं विमोहितमतिरयं जनो मधु मधुरं यथा भवत्येवं पुष्पितायां पुष्पस्थानीयैरर्थवादैर्मनोहरायां त्रय्यां जडीकृता अभिनिविष्टा मतिर्यस्य । अतो महत्येव कर्मणि श्रद्धया युज्यमानो नाल्पे प्रवर्तते । दृश्यते हि प्राकृतस्य लोकस्य महति मन्त्रादौ श्रद्धा अल्पे चाश्रद्धा । तस्मादस्य ग्राहको नास्तीति तैर्नोक्तम् । यद्वा स्वाधीनः सिंहोऽस्त्येतावता श्वशृगालादिनिवारणाय तं यथा न प्रयुञ्जते तथाऽतितुच्छत्वात्पापस्य न तन्निरसनाय परममङ्गलं हरेर्नाम स्मरन्ति । यद्वा नाममाहात्म्यज्ञाने सर्वमुक्तिप्रसङ्गादित्येषा दिक् । ग्रन्थविस्तरभयात्तु नातिप्रपञ्च्यते ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

यह जो कहा गया है कि यदि नामोच्चारण मात्र से ही मुक्ति प्राप्ति हो जाती है तब तो मन्वादि महर्षियों ने बारह वर्षों का जो व्रत बतलाया है वह व्यर्थ हो जायेगा तो इस शङ्का का निरास करते हुए यमराज ने कहा महाजन अर्थात् मनु आदि । कहने का अभिप्राय है कि जो वैद्य मृतसंजीवनी औषधि को नहीं जानते है वे रोग के विनाश के लिए जैसे त्रिकटु निम्ब आदि को बतलाते हैं उसी तरह ब्रह्मा शिव आदि प्रमुख जो बारह भागवत धर्म के ज्ञाता है उन लोगों से भिन्न ये महापुरुष इस अत्यन्त गोपनीय रहस्य को नहीं जानकर बारह वर्षों आदि के प्रायश्चित्तों आदि का विधान करते है । किञ्च माया देवी के द्वारा अत्यधिक मोहित होने के कारण ये महर्षिगण मधुर फलों का वर्णन करने वाले पुष्प स्थानीय अर्थवाद वाक्यों से मनोहर त्रयी (ऋग्यजुस्सामवेदों) में ही जिनकी बुद्धि जड़ बनी हुई है । वे बड़े-बड़े यज्ञ यागादि कर्मों के ही अनुष्ठान में लगे रहते है । इस अल्प नामोच्चारणादि में नहीं प्रवृत्त होते हैं । लोक में देखा भी जाता है कि संसारी लोगों की बड़े-बड़े मन्त्रों में ही श्रद्धा होती है और छोटे मन्त्रों में उन लोगों की अश्रद्धा हो जाती है । अतएव इसका (नमोच्चारण) कोई ग्राहक नहीं अतएव उन लोगों (मन्वादि महर्षियों) ने इसका उपदेश नहीं किया । अथवा यज्ञादि स्वधीन सिंह के रहते श्वा शृगाल आदि को भगाने के लिए उसका प्रयोग नहीं किया जाता है । उसी तरह पाप के विनाशार्थ श्वा शृङ्गाल आदि के समान अत्यन्त छोटे नामोच्चारण का प्रयोग नहीं करते हैं । यद्यपि श्रीहरि का नाम सर्वाधिक मङ्गलमय है । **यद्वा० इत्यादि** इसलिए भी वे नामोच्चारण का उपदेश नहीं करते हैं कि नाम के माहात्म्य का ज्ञान हो जाने पर तो सबों की मुक्ति हो जायेगी फलतः श्रीभगवान की लीला विभूति ही उजड़ जायेगी इसीलिए उसका (नाम की महिमा का) उपदेश नहीं करते हैं । इस तरह ग्रन्थ के विस्तार के भय से इसका विस्तार नहीं किया जा रहा है ।।२५।।

एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ।
ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां स्यात्पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ।।२६।।

अन्वयः— एवं विमृश्य सुधियः एवं विमृश्य अनन्ते भगवति सर्वात्मना खल भावयोगम् विदधते । ते मे दण्डम् अर्हन्ति अथ यदि अमीषां पातकं स्यात् तदपि उरुगायवाद हन्ति ।।२६।।

अनुवाद— दूतों बुद्धिमान् पुरुष इस प्रकार से विचार करके आनन्त्यगुण सम्पन्न श्रीभगवान् में पूर्ण रूप से भक्ति किया करते हैं । उन लोगों में जो कुछ भी पाप रहता है उसको भी श्रीभगवान् का नाम सङ्कीर्तन विनष्ट कर देता है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

भावयोगं भक्तियोगम् । अमीषां पातकं न स्यादेव । यदि स्यात् उरुगायस्य वादः कीर्तनम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

भावयोग भक्ति योग को कहते हैं । ऐसे महापुरुषों में कोई पाप नहीं रहता है और यदि रहता है तो उसको श्रीभगवान् का नाम सङ्कीर्तन विनष्ट कर देता है ॥२६॥

ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः ।
तान्नोपसीदत हरेर्गदयाभिगुप्तान्नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे ॥२७॥

अन्वयः— ये साधवः समदृशः भगवत्प्रपन्नाः ते देवसिद्ध परिगीतपवीत्र गाथाः तान् हरेः गदया अभिगुप्तान् न उपसीदत एषांवयम् वयः च दण्डे न प्रभवाम् ॥२७॥

अनुवाद— जो समदर्शी साधुजन श्रीभगवान् के शरण में रहने वाले हैं बड़े-बड़े देवता और सिद्ध उनके पवित्र चरित का गान करते है । उनकी रक्षा श्रीभगवान् की गदा किया करती है, उन लोगों के पास तुमलोग कभी मत जाना उन लोगों को दण्डित करने में न तो मैं समर्थ हूँ और न काल समर्थ हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं धर्मतत्त्वं निर्णीय भृत्याननुशास्ति-त इति । ये भगवन्तं प्रपन्नास्ते देवैः सिद्धैश्च परिगीतपवित्रगाथा वर्णितपवित्रकथाः, अतस्तान्नोपसीदत तत्समीपमपि न गच्छत । वयः कालोऽपि न प्रभवति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से अपने भृत्यों के समक्ष धर्म तत्त्व का निर्णय करके यमराज उन सबों को उपदेश देते हैं **ते० इत्यादि** जो समदर्शी साधुजन श्रीभगवान् की शरणागति किए हुए हैं उनके पवित्र चरित्र का कीर्तन देवता और सिद्ध जन किया करते हैं । ऐसे पुरुषों के पास तुमलोग मत जाना उनका प्रशासन न तो मैं कर सकता हूँ और न काल ही कर सकता है ॥२७॥

तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुन्दपादारविन्दमकरन्दरसादजस्त्रम् ।
निष्किंचनैः परमहंसकुलै रसज्ञैर्जुष्टाद्गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् ॥२८॥

अन्वयः— मुकुन्दपादार विन्द मकरन्दरस्रादजस्त्रम् निष्किञ्चनैः परमहंस कुलैः रसज्ञैः जुष्टात् विमुखान् निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् तान् असतः आनयध्वम् ॥२८॥

अनुवाद— बड़े-बड़े परमहंस दिव्य रस के लोभ से श्रीभगवान् के चरण कमलों के मकरन्द का निरन्तर सेवन किया करते हैं, जो दुष्ट उस दिव्य रस से विमुख हैं तथा नरक के द्वार के समान गार्हस्थ्य की तृष्णा का बोझ ढो रहे हैं उन्हीं को तुमलोग मेरे पास लाना ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

के तर्हि दण्डार्थमानेया इत्यत्राह-तानिति द्वाभ्याम् । असतो दुष्टान् । तानेवाह । मुकुन्दपादारविन्दयोर्यो मकरन्दरूपो रसस्तस्माद्विमुखान् । कथंभूतान् निष्किंचनैरजस्त्रं जुष्टात् तेषां ज्ञापकमाह । निरवयत्र्मनि स्वधर्मशून्ये गृहे बद्धा तृष्णा यैस्तान्॥२८॥

भाव प्रकाशिका

तो प्रश्न होता है कि किन लोगों को दण्ड देने के लिए लाया जाय, इस पर यमराज दो श्लोकों से कहते हैं **तान० इत्यादि** श्रीभगवान् के चरणारविन्द के मकरन्दों का पान करने से जो विमुख है उन्ही दुष्ट जनों को लाया जाय । श्रीभगवान् के पादारविन्द का अविचल परमहंस जन निरन्तर सेवन किया करते हैं । दुष्टों की पहचान है कि वे नरक के द्वार स्वरूप अपने धर्म से रहित गृहस्थ के बोझ ढोने की जिनकी लालच बनी रहती है ॥२८॥

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥२९॥

अन्वयः— येषां जिह्वा भगवद्गुण नाम धेयं न वक्ति चेतः च तच्चरणारविन्दं न स्मरति, यच्छिरः एकदापि कृष्णाय न नमति तान् असतः अकृत विष्णुकृत्यान् आनयध्वम् ॥२९॥

अनुवाद— जिनकी जीभ श्रीभगवान् के गुणों और नामों का उच्चारण नहीं करती है, जिनका अन्तःकरण श्रीभगवान् के चरण कमलों का कभी स्मरण नहीं करता है । जो लोग कभी भी श्रीभगवान् को शिर झुकाकर प्रणाम नहीं करते हैं, ऐसे दुष्टों को तुमलोग मेरे पास लाना जो कभी भी श्रीभगवान् का कैंकर्य नहीं करते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

किंच जिह्वेत्यादि । यद्येषां जिह्वेत्याद्यन्वयः । न कृतं विष्णुकृत्यं भगवद्व्रतं यैः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

जो लोग कभी भगवन नाम का उच्चारण नहीं करते हैं और न श्रीभगवान् के व्रतों को करते हैं, उन पापियों को तुमलोग मेरे पास लाना ॥२९॥

तत्क्षम्यतां स भगवान्पुरुष; पुराणो नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः ।
स्वानामहो नविदुषां रचिताञ्जलीनां क्षान्तिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने ॥३०॥

अन्वयः— सः पुराणः पुरुषो भगवान् नारायणः यत् नः स्व पुरुषैः असत्कृतः तत् क्षम्यताम् । अहो रचिताञ्जलीनां न विदुषाम् स्वानाम् गरीयसि क्षान्तिः, भूम्ने पुरुषाय नमः ॥३०॥

अनुवाद— मेरे पुरुषों ने जो श्रीभगवान् के पार्षदों का अपराध करके वह स्वयं भगवान् का ही तिरस्कार है । यह मेरा अपना अपराध है । पुराण पुरुष भगवान् नारायण हमलोगों के इस अपराध को क्षमा कर दें । यद्यपि हम अज्ञानी हैं फिर भी श्रीभगवान् के निजजन हैं । उनकी आज्ञा प्राप्त करने के लिए अंजलि बाँधे रहते हैं कि श्रीभगवान् मुझे आदेशित करें । अतएव महिमामण्डित श्रीभगवान् के लिए यही उचित है कि वे हमें क्षमा कर दें। मैं उन सर्वान्तर्यामी और एकरस भगवान् को बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

भगवन्तं क्षमापयति-तदिति । अयं भावः-नःस्वपुरुषैरस्मदीयत्वेन स्थितैः स्वीयैरेव पुरुषैर्यद्यस्मादसदन्याय्यं कृतं तत्तस्मात्स्वयमेव क्षम्यतां सहताम् । स्वानां स्वीयानां भक्तानां नोऽस्माकं नविदुषामज्ञानाम् । अहो गरीयसि तस्मिन् क्षान्तिर्युक्तैव। मह इति पाठे स्वीयानां माहातात्म्यमविदुषां नः क्षमां करोत्वित्यर्थः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

यमराज श्रीभगवान् से क्षमा प्रार्थना करते हुए **तत्क्षम्यताम्ः इत्यादि** श्लोक कहते हैं; कहने का अभिप्राय है कि हमारे दूतों ने जो श्रीभगवान् के पार्षदों का अपमान किया है वह हमारा ही अपराध है । क्योंकि वह हमारे ही पुरुषों द्वारा किया गया अपराध हैं । उसको भगवान् क्षमा कर दें । हम श्रीभगवन् की महिमा के विषय में अज्ञानी हैं किन्तु हैं तो उनके ही भक्त अतएव अत्यन्त महिमा मण्डित श्रीभगवान् को क्षमा कर देना ही उनके योग्य है। जहाँ **रचानां महः** यह पाठ है वहाँ अर्थ होगा कि माहात्म्य को नहीं जानने वाले अज्ञानी हमलोगों को भगवान् क्षमा करें ॥३०॥

तस्मात्संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम् । महतामपि कौरव्य विद्ध्येकान्तिकनिष्कृतम् ॥३१॥

अन्वयः— हे कौरव्य ! तस्मात् विष्णोः सङ्कीर्तनं जगन्मङ्गलम् महतामपि अंहसाम् ऐकान्तिकम् निष्कृतम् विद्धि॥३१॥

अनुवाद— अतएव हे कुरुवंशी राजन् परीक्षित् अतएव भगवान् विष्णु के नामों का सङ्कीर्तन जगत् का मङ्गल कारक है । वह बड़े से बड़े भी पाप को पूर्ण रूप से विनाश कर देने वाला प्रायश्चित है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तस्मादित्यादिः शुकोक्तिः । जगतोऽपि मङ्गलरूपम् ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

तस्मात् इत्यादि शुकदेवजी की उक्ति है । भगवान् के नाम का सङ्कीर्तन संसार का भी मङ्गल करने वाला है।।३१।।

श्रृण्वतां गृणतां वीर्याण्युद्दामानि हरेर्मुहुः । यथा सुजातया भक्त्या शुध्येन्नात्मा व्रतादिभिः ।।३२।।

अन्वयः— हरेः उद्दामानिवीर्याणि श्रृण्वतां गृणतां सुजातया भक्त्या आत्मा यथा शुद्धयेत व्रतादिभिः न ।।३२।।

अनुवाद— श्रीहरि के उदार चरित्रों का श्रवण और कीर्तन करने से जिस ह्रदय में सुन्दर भक्ति उत्पन्न होती है उससे आत्मा की जैसी शुद्धि होती है वैसी शुद्धि व्रत इत्यादि के द्वारानहीं होती है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

ऐकान्तिकत्वमेवाह-श्रृण्वतामिति । व्रतादिभिस्तथा न शुध्येत ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

भगवन्नाम सङ्कीर्तन आदि की एकान्तिकता प्रतिपादन करते हुए कहते है । श्रीभगवान् के चरित्रों को सुनने और कीर्तन करने से उत्पन्न भक्ति के द्वारा जैसी आत्मशुद्धि होती है वैसी व्रतादि के द्वारा नहीं होती है ।।३२।।

कृष्णाङ्घ्रिपद्ममधुलिण्न पुनर्विसृष्टमायागुणेषु रमते वृजिनावहेषु ।
अन्यस्तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टुमीहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात् ।।३३।।

अन्वयः— कृष्णाङ्घ्रिमधुलिट् वृजिनाहवेषु विसृष्टमायागुणेषु पुनः न रमते, अन्यः कामहतस्तु आत्मरजः प्रमार्ष्टुम् कामहत यतएव पुनः रजः स्यात् ।।३३।।

अनुवाद— जो मनुष्य श्रीभगवान् के चरण कमलों के मकरन्द पान लोभी भ्रमर है वह स्वभावतः ही माया के रमणीय दुःखद और पहले से ही त्यागे गये विषयों में पुनः रमण नहीं करता है । जो लोग उस दिव्य रस से विमुख हैं कामनाओं के कारण जिनका विवेक बुद्धि विनष्ट हो गयी है, वे अपने पापों का अपनादेन करने के लिए पुनः प्रायश्चित रूप कर्मो को ही करते हैं उसके फलस्वरूप उनकी कर्मों की वासना विनष्ट नहीं होती है और वे पुनः उसी प्रकार के पापों को कर लेते हैं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

एतदुपपादयति । कृष्णाङ्घ्रिपद्मयोर्मधु लेढि आस्वादयतीति तथा । मधुलिहताऽतितुच्छत्वेन विसृष्टा ये मायागुणा विषयास्तेषु पुनर्न रमते । अन्यस्तु तन्मध्वास्वादरहितोऽत एव कामाभिभूत; सन् आत्मनो रजः पापं प्रमार्ष्टुमपि कर्मैव प्रायश्चित्तरूपमीहेत। यतः कर्मणः पुनरपि रजः पापं स्यादेव कुञ्जरशौचवत् । सत्त्वशोधकत्वाभावात् ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

भक्ति के ही श्रैष्ठ्य का प्रतिपादन करते हैं । जो मनुष्य श्रीभगवान् के चरण कमल के पराग के पान का रसिक भ्रमर है, उसके द्वारा पहले से ही परित्यक्त माया के गुणभूत विषय हैं उनमें वह पुनः रमण नहीं करता है जो लोग उस दिव्य रस के आस्वादन से पराङ्मुख है तथा कामनाओं से अभिभूत है वह अपने पापापनोदनार्थ प्रायश्चित रूप कर्मो को ही करना चाहता है । उस कर्म के द्वारा पुनः पाप हो जाने से उसके द्वारा किया गया प्रायश्चित्त हाथी की पवित्रता के समान ही है ।।३३।।

इत्थं स्वभर्तृगदितं भगवन्महित्वं संस्मृत्य विस्मितधियो यमकिंकरास्ते ।
नैवाच्युताश्रयजनं प्रतिशङ्कमाना द्रष्टुं च बिभ्यति ततःप्रभृति स्म राजन् ॥३४॥

अन्वयः— एव इत्थं स्वभर्तृगदितं भगवन् महित्वं संस्मृत्य नैव विस्मितधियः ते यमकिङ्कराः अच्युताश्रयजनं प्रतिशङ्कमानाः ततः प्रभृति द्रष्टुम् विभ्यति ॥३४॥

अनुवाद— हे राजन् ! अपने स्वामी के द्वारा वर्णित इस प्रकार की श्रीभगवान् की महिमा की याद करके आश्चर्यित नहीं हुए । उस समय से वे अपने नाश के भय से भगवद् भक्तों के पास नहीं जाते है यहाँ तक कि उनकी ओर देखने से भी वे डरते हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

नैव विस्मितधियो बभूवुः किंतु सत्यमुक्तमित्येव मेनिरे । ततःप्रभृति शङ्कमाना अस्मानेवैष हन्यादिति शङ्कां वहन्तस्तं द्रष्टुमपि बिभ्यति स्म । पाठान्तरे तु विस्मितधियो जाताः । ते च तत्ःप्रभृति बिभ्यति स्मेत्यर्थः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

यमराज के मुख से श्रीभगवान् की महिमा को सुनकर यमराज के दूत आश्चर्यित नहीं हुए अपितु वे माने कि यह सत्य ही है । उसी समय से डरते हैं कि भगवद् भक्त हमलोगों का नाश कर देंगे अतएव वे उनके पास नहीं जाते हैं यहाँ तक कि वे भगवद भक्तों को देखने में डरते हैं । **ते चाच्युताश्रय जनम्** इस तरह का पाठ भेद होने पर अर्थ होगा कि वे आश्चर्यित हो गये और उसी समय से भगवद् भक्तों के देखने से भी डरते हैं ॥३४॥

इतिहासमिमं गुह्यं भगवान्कुम्भसंभवः । कथयामास मलय आसीनो हरिमर्चयन् ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अन्वयः— भगवान् कुम्भ संभवः मलये आसीनः हरिम् अर्चयन् इमम् गुह्यम् इतिहासं कथयामास ॥३५॥

अनुवाद— भगवान् अगस्त्य महर्षि मलयाचल पर बैठकर श्रीहरि की पूजा करते हुए इस गोपनीय इतिहास कहे थे ॥३५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद प्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

भावार्थ दीपिका

कुम्भसंभवोऽगस्त्यो मलये पर्वते आसीनोऽव्यग्रो हरिमर्चयन् । पुनःपुनर्विश्वासार्थं हरेः पादौ स्पृशन्नित्यर्थः ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठ स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

ऐश्वर्य सम्पन्न महर्षि अगस्त्य मलय पर्वत पर बैठकर विश्वास के लिए बार-बार श्रीहरि के चरणों का स्पर्श करते हुए इस गोपनीय इतिहास को कहे थे ॥३५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका के तीसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३।।

* * *

चौथा अध्याय

दक्ष प्रजापति के द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति और श्रीभगवान् का प्रादुर्भाव

राजोवाच

देवासुरनृणां सर्गो नागानां मृगपक्षिणाम् । सामासिकस्त्वया प्रोक्तो यस्तु स्वायंभुवेऽन्तरे ॥१॥

अन्वयः— त्वया देवासुरनृणां नागानां मृगपक्षिणाम् स्वायम्भुवन्तरे सर्गः सामासिकः प्रोक्तः ॥१॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् आपने देवता, असुर, मनुष्य, नाग, मृग तथा पक्षियों की सृष्टि स्वायम्भुव मन्वन्तर में कैसे हुई इस बात का संक्षेप में कहा है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्थादित्रिभिर्विश्वरूपजन्मविवक्षया । प्रचेतःसुतदक्षस्य वंशस्तावत्प्रतन्यते । चतुर्थे तु प्रजासृष्ट्यै दक्षेणाराधनं हरेः । तपसा हंसगुह्याख्यस्तोत्रेण च निरूप्यते । प्रसक्तानुप्रसक्तेन स्वायंभुवसुतान्वये । नामप्रभावमाकर्ण्य वंशव्यासं बुभुत्सते । देवासुरेति द्वाभ्याम् । सामासिकः संक्षिप्तो यः प्रोक्तस्तृतीयस्कन्धे ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौथे अध्याय से लेकर तीन अध्यायों तक विश्वरूप के जन्म आदि का वर्णन करने के लिए प्रचेता के पुत्र दक्ष के वंश का विस्तार से वर्णन किया जा रहा है । चौथे अध्याय में प्रजा की सृष्टि के लिए श्रीहरि की आराधना और हंसगुह्य नामक स्तोत्र के द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति का वर्णन है । प्रसङ्गानुसार ब्रह्माजी के वंश के विषय में उनके नाम और प्रभाव को सुनकर उस वंश को विस्तार पूर्वक जानने के इच्छुक राजा परीक्षित् को शुकदेवजी ने बतलाया। देवासुर इत्यादि दो श्लोकों के द्वारा कहा गया है कि आगे तीसरे स्कन्ध में संक्षेप में वर्णन किया है ॥१॥

तस्यैव व्यासमिच्छामि ज्ञातुं ते भगवन्यथा । अनुसर्गं यया शत्तया ससर्ज भगवान्परः ॥२॥

अन्वयः— हे भगवन् तस्यैव व्यासं ज्ञातुमिच्छामि यथा भगवान्परः यया शक्त्या यथा ससर्ज तदपि ज्ञातुमिच्छामि॥२॥

अनुवाद— हे भगवान् मैं आपसे उस स्वायभुव मन्वर की सृष्टि को विस्तार से जानना चाहता हूँ । यह भी जानना चाहता हूँ कि ब्रह्माजी ने किस शक्ति के द्वारा उसकी कैसी सृष्टि की ॥२॥

भावार्थ दीपिका

व्यासं विस्तारम् । ते त्वत्तः यया शत्तया यथा ससर्ज तां शक्तिं तत्प्रकारं च ज्ञातुमिच्छामि । अनुसर्गमनुवृत्तं सर्गम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

व्यास विस्तार को कहते हैं । यह मैं आपसे जानना चाहता हूँ । यह भी जानना चाहता हूँ कि ब्रह्माजी ने किस शक्ति के द्वारा किस प्रकार की सृष्टि की जो अनुवृत्त है ॥२॥

सूत उवाच

इति संप्रश्नमाकर्ण्य राजर्षेर्बादरायणिः । प्रतिनन्द्य महायोगी जगाद मुनिसत्तमाः ॥३॥

अन्वयः— हे मुनिसतमाः इति राजर्षे संप्रश्नम् आकर्ण्य महायोगी बादरायणिः प्रतिनन्द्य जगाद ॥३॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— हे श्रेष्ठ मुनियों ! इस प्रकार से राजर्षि परीक्षित् के सुन्दर प्रश्न को सुनकर महायोगी शुकदेवजी ने उनका अभिनन्दन किया और वे कहने लगे ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

श्रीशुक उवाच

यदा प्रचेतसः पुत्रा दश प्राचीनबर्हिषः । अन्तः समुद्रादुन्मग्ना ददृशुर्गां द्रुमैर्वृताम् ।।४।।

अन्वयः— यदा प्राचीनबर्हिषः दश पुत्राः प्राचेतसः अन्तः समुद्रात् उन्मग्नाः द्रुमैर्वृताम गां ददृशुः ।।४।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जब राजा प्राचीन बर्हि के दश पुत्र प्रचेतागण समुद्र के भीतर से निकले तो उन लोगों ने देखा कि पृथ्वी वृक्षों से ढँक गयी है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

दक्षादिरूपेण ससर्जेति वक्तुं दक्षजन्मप्रकारमाह-यदेति । प्राचीनबर्हिषः पुत्रा यदा समुद्रमध्यादुन्मग्ना निर्गतास्तदा गां पृथ्वीं द्रुमैर्वृतां ददृशुः । नारदोपदेशतः प्राचीनबर्हिषो निवृत्त्या अराजके सति कृष्याद्यभावात् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने दक्ष इत्यादि के रूप से सृष्टि की इस बात को कहने के लिए दक्ष के जन्म का प्रकार वतलाया। जब प्राचीन बर्ही के पुत्र प्रचेतागण समुद्र के भीतर से तपस्या करके निकले तो उन लोगों ने देखा कि पृथिवी वृक्षों से ढँक गयी है । नारदजी के उपदेश को सुनकर महाराज प्राचीन बर्ही तपस्या करने के लिए चले गये थे अतएव कृषि इत्यादि न होने के कारण पृथिवी वृक्षों से भर गयी थी ।।४।।

द्रुमेभ्यः क्रुध्यमानास्ते तपोदीपितमन्यवः । मुखतो वायुमग्निं च ससृजुस्तद्दिधक्षया ।।५।।

अन्वयः— तपोदीपित मन्यवः ते द्रुमेभ्यः क्रुध्यमाना तद्दिधीक्षणा मुखतः वायुम् अग्निं च ससुजुः ।।५।।

अनुवाद— तपस्या के कारण प्रदीप्त क्रोध वाले वे वृक्षों पर क्रोध करके वृक्षों को जला देने की इच्छा से अपने मुख से अग्नि तथा वायु की सृष्टि किए ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तपसा दीपितो मन्युर्येषां ते तेषां द्रुमाणां दग्धुमिच्छया ।।५।।

भाव प्रकाशिका

तपस्या के कारण प्रदीप्त क्रोध वाले वे वृक्षों को जला डालने की इच्छा से ।।५।।

ताभ्यां निर्दह्यमानांस्तानुपलभ्य कुरूद्वह । राजोवाच महान्सोमो मन्युं प्रशमयन्निव ।।६।।

अन्वयः— हे कुरुद्वहताभ्याम् ताननिर्दह्य मानान् तान् उपलभ्य महान् राजा सोमः मन्युः प्रशमयन्निव उवाच ।।६।।

अनुवाद— हे राजन् ! परीक्षित् अग्नि तथा वायु के द्वारा जलते हुए वृक्षों को देखकर वृक्षों के राजा चन्द्रमा ने उन सबों के क्रोध को शान्त करते हुए कहा ।।६।।

भावार्थ दीपिका

ताभ्यां वाय्वग्निभ्यां दह्यमानांस्तान् द्रुमान् । वनस्पतीनां राजा सोम उवाच । मा द्रुमेभ्य इति नवभिः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

अग्नि तथा वायु के द्वारा जलते हुए वृक्षों को देखकर वनस्पतियों के राजा सोम ने माद्रुमेभ्यः इत्यादि नव श्लोकों से कहा ।।६।।

मा द्रुमेभ्यो महाभागा दीनेभ्यो द्रोग्धुमर्हथ । विवर्धयिषवो यूयं प्रजानांपतयः स्मृताः ॥७॥

अन्वयः— महाभागाः दीनेभ्यः द्रुमेभ्यः माद्रोग्धुम् अर्हथ यूयं प्रजानां विवर्धयिषवः प्रजापतयः स्मृताः ॥७॥

अनुवाद— हे महाभागों ! इन दीन वृक्षों पर आपलोगों को क्रोध नहीं करना चाहिए, आपलोग तो प्रजा को बढ़ाने के इच्छुक है अतएव आपलोग प्रजापति कहे गये हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

हे महाभागाः । विवर्धयिषवो विशेषेण वर्धयितुमिच्छवः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

हे महाभागों आपलोग तो प्रजाओं को विशेष रूप से बढ़ाने के इच्छुक हैं ॥७॥

अहो प्रजापतिपतिर्भगवान्हरिरव्ययः । वनस्पतीनोषधीश्च ससर्जोर्जमिषं विभुः ॥८॥

अन्वयः— अहो प्रजापतिपति अव्ययः भगवान् विभुः वनस्पतीन् ओषधिः च प्रजानाम् ऊर्जं इषं ससर्ज ॥८॥

अनुवाद— हे प्रचेताओं प्रजापतियों के भी स्वामी अविनाशी तथा व्यापक श्रीभगवान् ने सम्पूर्ण वनस्पतियों और ओषधियों को प्रजाओं के खान-पान के लिए सृष्टि की है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

प्रजापतीनां तद्भक्ष्यभोज्यदाहोऽनुचित इत्याह-अहो इति त्रिभिः । ऊर्जं भक्ष्यम् । इषम् अन्नम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

प्रजापतियों द्वारा भक्ष्य भोज्य वृक्षों को जलाना अनुचित है इस बात को चन्द्रमा ने अहो इत्यादि तीन श्लोकों द्वारा कहा ऊर्जा का अर्थ है भक्ष्य तथा इष का अर्थ है अन्न ॥८॥

अन्नं चराणामचरा ह्यपदःपादचारिणाम् । अहस्ता हस्तयुक्तानां द्विपदां च चतुष्पदः ॥९॥

अन्वयः— चराणाम् अचराः अन्नम् पादचारिणाम् हि अपदः हस्त युक्तानां अहस्ताः द्विपदां च चतुष्पदः ॥९॥

अनुवाद— जङ्गम प्राणियों मनुष्यादि के जड़ फलादि अन्न (भक्ष्य) हैं, पैरों से चलने वाले पश्वादिकों के लिए नहीं चलने वाले तृण आदि भक्ष्य है, हाथ वालों के लिए वृक्ष लता आदि बिना हाथ वाले भक्ष्य है और दो पैर वाले मनुष्यों के लिए चार पैर वाले गेहू आदि अन्न भोजन हैं और उन अन्नों की उत्पत्ति में बैल आदि सहायक हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

यूयं च पित्राऽन्वादिष्टा देवदेवेन चानघाः । प्रजासर्गाय हि कथं वृक्षान्निर्दग्धुमर्हथ ॥१०॥

अन्वयः— हे अनघाः यूयं हि पित्रा देवदेवेन च प्रजासर्गाय हि अन्वादिष्टाः कथं वृक्षान् निर्दग्धुम् अर्हथ ॥१०॥

अनुवाद— हे निष्पाप प्रचेताओं आपलोगों के पिता महाराज प्राचीन बर्हीं ने तथा श्रीभगवान् ने प्रजाओं की सृष्टि करने के लिए आदेश दिया है, ऐसी स्थिति में आपलोग वृक्षों को कैसे जला सकते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

आतिष्ठत सतां मार्गं कोपं यच्छत दीपितम् । पित्रा पितामहेनापि जुष्टं वः प्रपितामहैः ॥११॥

अन्वयः— पित्रा पितामहेन प्रपितामहैः अपि जुष्टं जुष्टं सतां मार्गं अतिष्ठत दीपितं कोपं यच्छत ॥११॥

अनुवाद— आपलोग अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामहों के द्वारा सेवित सत्पुरुषों के मार्ग का अनुसरण करें और समृद्ध क्रोध को शान्त करें ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अत आतिष्ठत आश्रयत । सतां मार्गमुपशमम् । पित्रादिभिर्जुष्टम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

अतएव आपलोग अनुसरण करें सत्पुरुषों के मार्ग को, पित्रादिभिः जुष्टम् जो आपलोगों को पिता आदि के द्वारा सेवित है ।।११।।

तोकानां पितरौ बन्धुर्दृशां पक्ष्म स्त्रियाः पतिः । पतिः प्रजानां भिक्षूणां गृह्यज्ञानां बुधः सुहृत्।।१२।।

अन्वयः— तोकानाम् पितरौ बन्धुः दृशां पक्ष्म, स्त्रियाः पतिः, प्रजानां पतिः भिक्षूणां गृही अज्ञानां बुधः सुहृत् ।।१२।।

अनुवाद— छोटे बच्चों के रक्षक माता-पिता होते हैं, नेत्रों की पलकें रक्षक हैं, स्त्रियों के रक्षक उनके पति होते हैं, प्रजाओं के रक्षक राजा होते है, भिक्षुकों के रक्षक गृहस्थ होते हैं और अज्ञानियों के रक्षक ज्ञानी होते हैं।।१२।।

भावार्थ दीपिका

प्रजानां प्रजापतिरेव बन्धुरतस्तज्जीविकानाशो न कर्तव्य इति दृष्टान्तपञ्चकेनाह । तोकानां बालानां मातापितरौ अज्ञानां ज्ञानदो बुध एव सुहृत् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

प्रजाओं के बन्धु राजा ही होते हैं अतएव प्रजाओं की जीविका वृक्षों का नाश न करें । इस बात को पाँच दृष्टान्तों के द्वारा कहा गया है । बालकों के सुहृत् उनके माता-पिता होते हैं, अज्ञानियों के सुहृत् ज्ञानी होते हैं।।१२।।

अन्तर्देहेषु भूतानामात्मास्ते हरिरीश्वरः । सर्वं तद्धिष्ण्यमीक्षध्वमेवं वस्तोषितो ह्यसौ ।।१३।।

अन्वयः— भूतानाम् अन्तः देहेषु ईश्वरः हरिः आत्मा आस्ते, सर्वं तद्धिष्ण्यम् ईक्षध्वम् एवं वः असौ तोपितः ।।१३।।

अनुवाद— प्रचेताओं सभी प्राणियों के हृदय में सम्पूर्ण जगत् के नियामक श्रीहरि आत्मा रूप से विराजमान हैं । आप लोग सम्पूर्ण प्राणियों को उनका निवास स्थान समझें । ऐसा करके आपलोग श्रीभगवान् को प्रसन्न करेंगे।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ईश्वराधिष्ठानत्वाच्च भूतद्रोहो न युक्त इत्याह-अन्तर्देहेष्विति । वो युष्माभिः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

वृक्षों के परमात्माधिष्ठित होने के कारण भी आपलोग उन सबों को अपने क्रोध का विषय नहीं बनायें । सबों के शरीर के भीतर परमात्मा का निवास है **वः** अर्थात् आपलोगों के द्वारा ।।१३।।

यः समुत्पतितं देह आकाशान्मन्युमुल्बणम् । आत्मजिज्ञासया यच्छेत्स गुणानतिवर्तते ।।१४।।

अन्वयः— यः आकाशात् देहेसमुत्पतितं उल्बणं मन्युम् आत्मजिज्ञासया यच्छते सः गुणानतिवर्तते ।।१४।।

अनुवाद— जो मनुष्य अकस्मात् उत्पन्न भयङ्कर क्रोध को आत्म विचार के द्वारा शान्त कर लेता है वह कालक्रम से तीनों गुणों पर विजय प्राप्त कर लेता है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

आकाशाद्देहे समुत्पतितमाकस्मिकमित्यर्थः । आत्मविचारेण यो नियच्छेत् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

अकस्मात् उत्पन्न क्रोध को आत्मविचार के द्वारा नियन्त्रित कर लेता है, वह तीनों गुणों पर विजय प्राप्त कर लेता है ।।१४।।

अलं दग्धैर्द्रुमैर्दीनैः खिलानां शिवमस्तु वः । वार्क्षी ह्येषा वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥१५॥

अन्वयः— दीनैः वृक्षैः दग्धैः अलम् खिलनाम् वः शिवम् अस्तु । एषा वार्क्षी वरा कन्या पत्नित्वे प्रतिगह्यताम् ॥१५॥

अनुवाद— प्रचेताओं इन दीन वृक्षों को आपलोग जलाना बन्द कर दें । बचे वृक्षों का तथा आपलोगों का कल्याण हो । यह वृक्षों की पुत्री वार्क्षी नाम की श्रेष्ठ कन्या है इसको आपलोग अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करें ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

खिलानां शेषाणां वो युष्माकं च शिवमस्तु । वृक्षरक्षणार्थं तदीयां कन्यां ददाति । वार्क्षी वृक्षैः पालिता ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

बचे हुए वृक्षों का तथा आपलोगों का कल्याण हों वृक्षों की रक्षा करने के लिए वृक्ष अपनी कन्या को प्रदान कर रहे हैं । इसका नाम वार्क्षी हैं । इसको वृक्षों ने पाला हैं ॥१५॥

इत्यामन्त्र्य वरारोहां कन्यामाप्सरसीं नृप । सोमो राजा ययौ दत्त्वा ते धर्मेणोपयेमिरे ॥१६॥

अन्वयः— हे नृप इति वरारोहाम् आप्सरसीं कन्यां दत्त्वा आमन्त्र्य च सोमो राजा ययौ ते धर्मेण उपयेमिरे ॥१६॥

अनुवाद— हे राजन् ! इस प्रकार से सुन्दरी प्रम्लोचा नाम की अप्सरा की पुत्री को देकर तथा प्रचेताओं सान्त्वना प्रदान करके चन्द्रमा चले गये और प्रचेताओं ने भी वार्क्षी के साथ धर्मपूर्वक विवाह कर लिया ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

आमन्त्र्य सान्त्वयित्वा आप्सरसीमप्सरसः प्रम्लोचायाः सुताम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

आमन्त्र्य अर्थात् प्रचेताओं को सान्त्वना प्रदान करके तथा प्रम्लोच अप्सरा की पुत्री को प्रदान करके चले गये ॥१६॥

तेभ्यस्तस्यां समभवद्दक्षः प्राचेतसः किल । यस्य प्रजाविसर्गेण लोका आपूरितास्त्रयः ॥१७॥

अन्वयः— तेभ्यः तस्यां किल प्राचेतसः दक्षः समभवत् यस्य प्रजाविसर्गेण त्रयः लोकाः आपूरिताः ॥१७॥

अनुवाद— उन प्रचेताओं द्वारा वार्क्षी के गर्भ से प्राचेतस दक्ष की उत्पत्ति हुई । पुनः दक्ष की प्रजा सृष्टि के द्वारा यह त्रैलोक्य परिपूर्ण हो गया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

यथा ससर्ज भूतानि दक्षो दुहितृवत्सलः । रेतसा मनसा चैव तन्ममावहितः शृणु ॥१८॥

अन्वयः— दुहितृवत्सलः दक्षः यथा भूतानि रेतसा मनसा चैव ससर्ज तम् मम अवहितः शृणु ॥१८॥

अनुवाद— पुत्रिवत्सल दक्षने जिस प्रकार अपने वीर्य तथा सङ्कल्प के द्वारा विविध प्राणियों की सृष्टि की उसको आप मुझसे सावधानी पूर्वक सुनें ॥८॥

भावार्थ दीपिका

दुहितृवत्सल इति तस्य कन्यावंश एवेत्युक्तम् । मम मत्तः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

दुहितृवत्सल कहने से स्पष्ट है कि प्राचेत्स दक्ष के वंश में कन्यायें ही थीं मम अर्थात् मुझसे ॥१८॥

मनसैवासृजत्पूर्वं प्रजापतिरिमाः प्रजाः । देवासुरमनुष्यादीन्नभस्थलजलौकसः ॥१९॥

अन्वयः— पूर्वं प्रजापतिः दक्षः इमाः देवासुरमनुष्यादीन् जलस्थलनभौकसः प्रजा मनसैव असृजत् ॥१९॥

अनुवाद— पहले प्रजापति दक्ष ने इन देवता, असुर तथा मनुष्य आदि जो जल, स्थल और आकाश में रहने वाली प्रजाएँ हैं इन सबों की सृष्टि संकल्प से ही की ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

प्रजापतिर्दक्षः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

दक्षप्रजापति ॥१९॥

तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः । विन्ध्यपादानुपव्रज्य सोऽचरद्दुष्करं तपः ॥२०॥

अन्वयः— तम् प्रजासर्गम् अबृंहितम् आलोक्य प्रजापति विन्ध्यपादान् उपव्रज्य दुष्करं तपः अचरत् ॥२०॥

अनुवाद— उस प्रजासर्ग को उन्होंने नहीं बढ़ते हुए देखा तो वे विन्ध्याचल के निकटवर्ती पर्वत पर जाकर कठोर तपस्या किए ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अबृंहितमसंवृद्धम् । विन्ध्यस्य पादान्संनिहितपर्वतान् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अबृंहितम् अर्थात् नही बढ़ते हुए देखकर प्रजापति विन्ध्य पर्वत के संनिकटवती पर्वतों पर ॥२०॥

तत्राघमर्षणं नाम तीर्थं पापहरं परम् । उपस्पृश्यानुसवनं तपसातोषयद्धरिम् ॥२१॥

अन्वयः— तत्र अघमर्षणां नाम परम् पापहरं तीर्थम् उपस्पृश्य तपसा हरिम् तोषयत् ॥२१॥

अनुवाद— वहाँ अघमर्षण नामक पाप विनाशक श्रेष्ठ तीर्थ है । उसमें तीनों संध्यायों में स्नान करके तपस्या के द्वारा उन्होंने श्रीहरि को सन्तुष्ट कर लिया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

अस्तौषीद्धंसगुह्येन भगवन्तमधोक्षजम् । तुभ्यं तदभिधास्यामि कस्यातुष्यद्यतो हरिः ॥२२॥

अन्वयः— अधोक्षजम् भगवन्तम् हंसगुह्येन अस्तोषीत् तुभ्यं तत् अभिधास्यामि यतः हरिः कस्य अतुष्यत् ॥२२॥

अनुवाद— दक्ष ने इन्द्रियातीत भगवान् की हंसगुह्य नामक स्तोत्र से श्रीहरि की स्तुति की जिससे श्रीभगवान् दक्ष पर प्रसन्न हुए । उस स्तोत्र को मैं आपको बतलाता हूँ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

हंसगुह्याख्येन स्तोत्रेण । कस्य दक्षस्य ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

हंस गुह्य नामक स्तोत्र से दक्ष ने भगवान् की स्तुति की उससे भगवान् दक्ष के ऊपर प्रसन्न हो गये ॥२२॥

प्रजापतिरुवाच

नमः परायावितथानुभूतये गुणत्रयाभासनिमित्तबन्धवे ।
अदृष्टधाम्ने गुणतत्त्वबुद्धिभिर्निवृत्तमानाय दधे स्वयंभुवे ॥२३॥

अन्वयः— पराय अवितथानुभूतये, गुणत्रयाभासनिमित्तबन्धवे, अदृष्टधाम्ने, गुणतत्त्वबुद्धिभिः निवृत्तमानाय स्वयम्भुवे नमो दधे ॥२३॥

दक्ष प्रजापति ने कहा

अनुवाद— सर्वोत्तम मत्त्व स्वरूप अमोघ चित्शक्ति सम्पन्न, प्रकृति तथा जीव तत्त्व से श्रेष्ठ एवं उनके नियामक तथाउनको स्फूर्ति प्रदान करने वाले, त्रिगुणात्मिका सृष्टि को सत्य समझने वाले जीवों द्वारा जिनके स्वरूप का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता है तथा किसी भी प्रमाण का विषय नहीं बनने वाले स्वयम्प्रकाश श्रीभगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

पराय सर्वोत्तमाय नमो दधे नमनं करोमि । परत्वे हेतुः-अवितथा अनुभूतिश्चिच्छक्तिर्यस्य । अतो गुणत्रयाभासो जीवो निमित्तं माया च तयोर्बन्धवे नियन्त्रे । एवमपि गुणेषु तत्त्वबुद्धिर्येषां तैर्जीवैरदृष्टं धाम स्वरूपं यस्य । तत्र हेतुः-निवृत्तं मानं यस्मात् । पाठान्तरे निवृत्तं निरस्तं मानमवधिश्च यस्मात् । तर्हि कथं तस्य सिद्धिरत आह । स्वयंभुवे स्वप्रकाशाय ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

मैं सर्वोत्तम तत्त्व स्वरूप श्रीभगवान् को नमस्कार करता हूँ । श्रीभगवान् परतत्त्व इसलिए हैं कि उनकी अनुभूति चित्शक्ति अमोघ हैं । अतएव वे जीव तथा प्रकृति दोनों के नियामक हैं । ऐसा होने पर जिन लोगों की सृष्टि में सत्य बुद्धि वे लोग परमात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार नहीं कर सकते हैं । उसका कारण यह है कि परमात्मा किसी भी प्रमाण के विषय नहीं बनते हैं । तब प्रश्न होता है कि ऐसे परमात्मा की सिद्धि कैसे होती है, तो इसका उत्तर है कि वे स्वयम् प्रकाश हैं । ऐसे श्रीभगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ । जहाँ पर **निवृत्तमानावधये स्वयम्भुवे** पाठ हैं वहाँ पर अर्थ होगा जिनकी कोई सीमा नहीं है ॥२३॥

न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सख्युः सखा वसन्संवसतः पुरेऽस्मिन् ।
गुणो यथा गुणिनो व्यक्तदृष्टेस्तस्मै महेशाय नमस्करोमि ॥२४॥

अन्वयः— पुरुषः सखा अस्मिन् पुरे वसन् सवंसतः सख्युः यस्य सख्यं व्यक्तदृष्टेः गुणिनः गुणो यथा न अवैति, तस्मै महेशाय नमस्कारोमि ॥२४॥

अनुवाद— एक ही शरीर में एक साथ रहने वाले अपने मित्र परमात्मा को यह जीव रूप सखा के सख्य भाव को उसी प्रकार से नहीं जानता है जिस तरह अपने प्रकाशित करने वाली नेत्र आदि इन्द्रियों की वृत्ति को रूप रसादि विषय नहीं जानते है, क्योंकि परमात्मा जीव और जगत् के द्रष्टा हैं दृश्य नहीं हैं । इस प्रकार के महेश्वर आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अदृष्टधामत्वं दर्शयन्नाह-नेति । पुरुषः सखा जीवोऽस्मिन्पुरे देहे वसन्नप्यत्रैव संवसतः सख्युर्यस्य सख्यं करणप्रवर्तकत्वादिकं नावैति न जानाति तस्मै । कुतः । व्यक्तदृष्टेः प्रपञ्चद्रष्टुः । नहि द्रष्टा दृश्यो भवतीति । प्रथमान्तपाठे व्यक्ते प्रपञ्च एव दृष्टिर्यस्य स गुणो विषयो गुणिनो विषयिण इन्द्रियादेः सख्यं प्रकाशकत्वं यथा न वेत्ति तद्वत् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के अदृष्ट धामत्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं श्रीभगवान् के सखा जीवात्मा इस शरीर में जीवात्मा के साथ ही रहने वाले परमात्मा के सख्य भाव अर्थात् इन्द्रियों आदि के प्रवर्तकत्व को नहीं जानता है, ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है । क्योंकि इस प्रपञ्च के देखने वाले परमात्मा द्रष्टा हैं दृश्य नहीं हैं । अतएव जीव उनके स्वरूप का साक्षात्कार नहीं कर पाता है । जहाँ पर प्रथमान्त पाठ हैं वहाँ अर्थ होगा कि जिसका प्रपञ्च में ही वह गुण रूप रसादि विषय अपने प्रकाशक इन्द्रियों आदि को जैसे नहीं जानते हैं, उसी तरह जीव भी परमात्मा के स्वरूप को नहीं जान पाता है ॥२४॥

देहोऽसवोऽक्षा मनवो भूतमात्रा नात्मानमन्यं च विदुः परं यत् ।
सर्वं पुमान्वेद गुणांश्च तज्ज्ञो न वेद सर्वज्ञमनन्तमीडे ॥२५॥

अन्वयः— देहः असवः अक्ष मनवः भूतमात्राः आत्मानम् अन्यं परं च यत् न विदु तज्ज्ञः पुमान् सर्वं गुणान् च वेद सर्वज्ञं न वेद तम् अनन्तम् ईडे ॥२५॥

अनुवाद— देह प्राण, अन्तःकरण की वृत्तियाँ पञ्चमहाभूत और उनकी तन्मात्राएँ ये सभी जड़ पदार्थ होने के कारण न तो अपने को जानते हैं और न तो अपने से भिन्न को ही जानते हैं किन्तु जीव इन सबों को तथा इन सबों के कारण सत्त्व, रजस एवं तमस को जानता है किन्तु जीव भी परमात्मा को दृश्य अथवा ज्ञेय रूप से आपको नहीं जानता है। क्योंकि आप ही सबों को जानने वाले सर्वज्ञ हैं। इस प्रकार के सर्वज्ञ आपकी मैं स्तुति करता हूँ ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

ननु गुणो जडत्वान्न जानातीति जीवस्तु चेतनः किमिति न जानात्यत आह-देह इति । देहश्चासवश्च प्राणा अक्षाणीन्द्रियाणि मनवश्चान्तःकरणानि भूतानि च मात्राश्च तन्मात्राण्यात्मानं स्वरूपं दृश्यमन्यमिन्द्रियवर्गं तयोः परं देवतावर्गं च न विदुः । पुमान् जीवस्तु सर्वमेतत्त्रयं वेद गुणांश्च तन्मूलभूतान्वेद । तज्ज्ञोऽपि सन् यं सर्वज्ञं न वेद । तमनन्तमीडे स्तौमि ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि गुण तो जड़ हैं वे नहीं जानते है किन्तु जीव तो चेतन है अतएव वह क्यों नहीं जानता है इस पर कहते हैं देह, प्राण, इन्द्रियाँ अन्तःकरण, पञ्च महाभूत तथा उनकी तन्मात्राएँ अपने स्वरूप को तथा अपने से भिन्न वर्ग और उनके देवता वर्ग को नहीं जानते हैं, किन्तु जीव इन सबों को जानता है और इनके कारण भूत सत्त्वादिगुणों को भी जानता है। किन्तु वह जीव भी सर्वज्ञ परमात्मा को नहीं जान पाता है। इस प्रकार के अनन्त परमात्मा की मैं स्तुति करता हूँ ॥२५॥

यदोपरामो मनसो नामरूपरूपस्य दृष्टस्मृतिसंप्रमोषात् ।
य ईयते केवलया स्वसंस्थया हंसाय तस्मै शुचिसद्मने नमः ॥२६॥

अन्वयः— यदा दृष्टस्मृतिसम्प्रमोषात् मनसः स्वरूपस्य उपरमः केवलया स्वसंस्थया य ईयते तस्मैशुचिसद्मने नमः॥२६॥

अनुवाद— जिस समाधि काल में प्रमाण और विपर्यय रूप विविध ज्ञान और स्मरण शक्ति का सम्ओष लोप हो जाने के कारण इस नाम रूपात्मक जगत् का निरूपण करने वाला मन उपरत हो जाता है उस समय मन के बिना भी उस समय सच्चिदानन्दमयी अपनी स्वरूपस्थिति के द्वारा केवल आप ही प्रकाशित होते हैं ऐसे शुद्ध तथा शुद्ध हृदय रूपी सद्म (निवास स्थान) में प्रकाशित होने वाले आपको नमस्कार है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अदृष्टधामत्वमुक्त्वा स्वप्रकाशत्वमाह । यदा मनस उपरामः समाधिर्नतु सुषुप्ताविव लयो नच जाग्रत्स्वप्नयोरिव विक्षेपः। तदाह-नामरूपे रूप्येते येन तत्तथा तस्य । उपरामे हेतुः-दृष्टं दर्शनं स्मृतिश्च तयोः संप्रमोषान्नाशात् । तदा याः केवलेन स्वरूपज्ञानेन प्रतीयते तस्मै हंसाय शुद्धाय शुचि शुद्धं मनः सद्म प्रतीतिस्थानं यस्य तस्मै नमः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के अदृष्टधामत्व का वर्णन करने के पश्चात् उनके स्वयम्प्रकाशत्व का इस श्लोक में प्रतिपादन करते हैं। जिस समाधि काल में मन का उपराम हो जाता है सुषुप्ति काल के समान मन का लय नहीं होता है और न जग्रत् काल अथवा स्वप्न काल में उसका विक्षेप होता है उसके कारण नाम रूपात्मक जगत् का भी उपराम हो जाता है। क्योंकि उस समय दर्शन तथा स्मृति दोनों का सम्प्रमोष (लोप) हो गया रहता है। उस स्थिति में

सच्चिदानन्दमय स्वरूप स्थिति के कारण केवल परमात्मा की ही प्रतीति है उन शुद्ध स्वरूप तथा शुद्ध हृदय रूपी निवास स्थान में प्रतीत होने वाले आपको नमस्कार है ॥२६॥

मनीषिणोऽन्तर्हृदि संनिवेशितं स्वशक्तिभिर्नवभिश्च त्रिवृद्भिः ।
वह्निं यथा दारुणि पाञ्चदश्यं मनीषया निष्कर्षन्ति गूढम् ॥२७॥

अन्वयः— यथा दारुणि गूढम् बह्निम् पाञ्चदश्यं मनीषया निष्कर्षन्ति, तथा मनीषिण नवभिश्च त्रिवृद्भिः स्वशक्तिभिः हृदि सन्निवेशितं परमात्मानं निष्कर्षन्ति ।।२७।।

अनुवाद— जिस तरह वैदिक विद्वान् काष्ठ में छिपी हुई अग्नि को पन्द्रह सामधेनी मन्त्र के द्वारा प्रकट करते हैं उसी तरह ज्ञानी पुरुष अपनी सत्ताइस शक्तियों के भीतर छिपे हुए परमात्मा को हृदय में ढूँढ निकालते हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतः केषां प्रतीयत इत्यपेक्षायामाह-मनीषिण इति द्वाभ्याम् । विवेकिनो यं निष्कर्षन्ति विविच्य ध्यायन्ति स निर्वाणसुखानुभूतिर्मम प्रसीदतामिति द्वयोरन्वयः । एवं निष्कर्षतां प्रतीयत इति भावः । किमिति निष्कर्षन्ति । स्वशक्तिभिर्गूढमप्रकाशमानम् । कतिभिर्नवभिः पुनश्च त्रिवृद्भिः त्रिगुणाभिः सप्तविंशत्युपाधिभिर्गूढमष्टाविंशं निष्कर्षन्तीत्यर्थः । यद्वा नवभिः प्रकृतिपुरुषमहदहंकारपञ्चतन्मात्ररूपाभिः । त्रिवृद्भिस्त्रिगुणात्मिकाभिः । चकारात्षोडशविकाररूपाभिश्च । कथंभूतं निष्कर्षन्ति । मनीषयान्तर्हृदि संनिवेशितं निश्चलीकृतं पाञ्चदश्यं पञ्चदशसामिधेनीमन्त्रैः प्रकाश्यमलौकिकं वह्निमिवाहंकारास्पदादात्मनोऽन्यं परमात्मानं निष्कर्षन्तीत्यर्थः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि समाधि काल में किन लोगों को प्रतीति होती है, तो इसके उत्तर में मनीषिण: इत्यादि दो श्लोकों को कहते हैं इसका अभिप्राय है कि विवेकी पुरुष जिस परमात्मा को विवेक बुद्धि के द्वारा जानकर ध्यान करते हैं वे निवार्ण सुखानुभूति स्वरूप परमात्मा मुझ पर प्रसन्न हों इस तरह से मुख्य वाक्य है । ढूँढ निकालने वालों को वे इस प्रकार से प्रतीत होते हैं । किसको निकालते हैं ? तो इसका उत्तर है कि अपनी शक्तियों में छिपे हुए परमात्मा को ढूढ निकालते हैं कितनी शक्तियों से ? तो इसका उत्तर है कि सत्ताइस उपाधियों से छिपे हुए परमात्मा को अठाइसवीं शक्ति रूप परमात्मा को प्रकट करते हैं । अथवा प्रकृति पुरुष अहङ्कार तथा पञ्च तन्मात्राएँ सत्त्व रजस तथा तमस इन गुणों से त्रिगुणित होकर सत्ताइस उपाधियों से तथा चकारात् सोलह विकारों से परमात्मा को प्रकट करते है । प्रश्न है कि कैसे परमात्मा को प्रकट करते हैं तो इसका उत्तर है अपनी बुद्धि के द्वारा हृदय में निश्चल किए गये परमात्मा को प्रकट करते है । उसी तरह जिस तरह पन्द्रह सामधेनी मन्त्रों से वैदिक गण काष्ठ में छिपी अग्नि को प्रकट करते हैं । ज्ञानी पुरुष मैं मैं इस शब्द से कहे जाने वाले आत्मा से भिन्न परमात्मा को प्रकट करते हैं ॥२७॥

स वै ममाशेषविशेषमायानिषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः ।
स सर्वनामा स च विश्वरूपः प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः ॥२८॥

अन्वयः— अशेषविशेष मायानिषेध निर्वाणसुखानुभूतिः स सर्वनामा सच विश्वरूपः स वै अनिरुक्तात्मशक्तिः मम प्रसीदताम् ।।२८।।

अनुवाद— जगत् में जितनी भी भिन्नताएँ वे सब के सब मायिक हैं । उस माया का निषेध कर देने पर केवल परम सुख के साक्षात्कार स्वरूप परमात्मा ही अवशिष्ट रह जाते हैं, उन परमात्मा के ही सभी नाम हैं और उस परमात्मा के ही सारे रूप हैं । किन्तु विचार करने पर परमात्मा की माया की उपलब्धि नहीं होती है । ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा मुझ पर प्रसन्न हों ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

अशेषा विशेषा यस्यास्तस्या मायाया निषेधेन निर्वाणसुखेऽनुभूतिर्यस्य अप्रसक्तनिषेधासंभवात्प्रसक्तिमाह । स एव सर्वनामा स एव विश्वरूप इति। तद्रूपत्वेऽपि वास्तवत्वाभावान्निषेधः संभवतीत्याह। अनिरुक्ता आत्मनि शक्तिर्माया यस्य सः।।२८।।

भाव प्रकाशिका

जगत् में प्रतीत होने वाली सारी विशेषताएँ मायिक हैं, उस माया का निषेध कर देने पर सुख के साक्षात्कार स्वरूप परमात्मा ही अवशिष्ट रह जाते हैं। चूकि प्रसक्ति के बिना निषेध हो ही नहीं सकता है अतएव उस प्रसक्ति को बतलाते है परमात्मा के ही सभी नाम और सभी रूप हैं। रूप होने पर भी वास्तविक नहीं होने के कारण उसका निषेध होता है। उन परमात्मा के स्वरूप में विचार करने पर माया की उपलब्धि नहीं होती है ।।२८।।

यद्यन्निरुक्तं वचसा निरूपितं धियाऽक्षभिर्वा मनसा वोत यस्य ।
मा भूत्स्वरूपं गुणरूपं हि तत्तत्स वै गुणापायविसर्गलक्षणः ।।२९।।

अन्वयः— यत् यत् वचसा निरुक्तं धिया, अक्षभिः, मनसा वा उतनिरूपितं तत् स्वरूपं माभूत् गुणरूपं हि तत् स वै गुणापायविसर्ग लक्षणः ।।२९।।

अनुवाद— हे भगवन् ! जो कुछ भी वाणी से कहा जाता है अथवा मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों से ग्रहण किया जाता है वह आपका स्वरूप नहीं है वह तमोगुण रूप ही है आप गुणों की उत्पत्ति और प्रलय के अधिष्ठान हैं। आपमें उनकी प्रतीति मात्र होती है ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

ननु यदि केवलया स्वसंस्थया प्रतीयते तर्हि सर्वनामत्वं विश्वरूपत्वं चानुपपन्नं वागाद्यगोचरत्वादित्याशङ्क्य सर्वैर्नामभिर्वाच्यं प्रत्यक्षादिदृश्यं च तस्य स्वरूपं वस्तुतो माभूत्तथापि मायया घटत इति श्लोकत्रयेणोपपादयन्नमस्करोति-यद्यदिति । यद्यद्वचसा निरुक्तमभिहितं धिया निरूपितं व्यवसितमक्षभिर्वा इन्द्रियैर्निरूपितं गृहीतमुत अपि मनसापि निरूपितं सङ्कल्पितं यस्य स्वप्रकाशत्वं तस्य तत्स्वरूपं मा भूत् । स्वरूपत्वाभावे हेतुः-हि यस्मात्तत्तद्गुणानामेव रूपम् । पाठान्तरे गुणैर्वर्धितम् । स तु गुणव्यतिरिक्तः। यतो गुणानामपायविसर्गाभ्यां प्रलयोत्पत्तिभ्यां लक्ष्यत इति तथा । चेतनाधिष्ठानं विना तयोरसंभवात् । यद्वा यस्य स्वरूपं मा भून्न भवति तस्मै नम इति तृतीयेनान्वयः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि यदि स्वरूपतः स्थित रूप से परमात्मा की प्रतीति होती है तब तो परमात्मा के सर्वनामत्व तथा विश्वरूपत्व ये दोनों अनुपन्न हो जायेंगे, क्योंकि स्वरूप तो वाणी आदि का विषय नहीं है। इस प्रकार की आशङ्का करके कहते हैं, स्वरूप वस्तुतः सभी शब्दों का वाच्य अथवा प्रत्यक्षादि प्रमाणों का विषय वस्तुतः भले ही न हो फिर भी माया के द्वारा तो यह सब सम्भव है ही। इस अर्थ का प्रतिपादन तीन श्लोकों के द्वारा करते हुए नमस्कार करते हैं। यद्ययत् इत्यादि। अर्थात् जिसका वाणी से अभिधान होता है तथा बुद्धि, इन्द्रिय अथवा मन के द्वारा निरूपण किया जाता है, वह आपका स्वरूप इसलिए नहीं हो सकता है, कि आत्मा तो स्वप्रकाश है। वह स्वरूप इसलिए नहीं हो सकता है कि वह सब तो विभिन्न गुणों का ही रूप है। पाठान्तर में अर्थ होगा कि गुणों के द्वारा बढ़ा हुआ है। आत्मा तो गुण से भिन्न है। क्योंकि आत्मा को गुणों की उत्पत्ति तथा प्रलय का आश्रय माना जाता है। चेतन रूप अधिष्ठान के बिना न तो गुणों की उत्पत्ति हो सकती है और न तो उनका संहार ही सम्भव है। अथवा जिसका स्वरूप नहीं होता है उसको नमस्कार नहीं है। इस तरह से इकतीसवें श्लोक से अन्वय हैं।।२९।।

यस्मिन्यतो येन च यस्य यस्मै यद्यो यथा कुरुते कार्यते च ।
परावरेषां परमं प्राक् प्रसिद्धं तद्ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम् ॥३०॥

अन्वयः— यस्मिन् यतः, येन, च यस्य, यस्मै, यत्, यो, यथा, कुरुते कार्य ते च परावरेषां परमं प्राक् प्रसिद्धं, तद् ब्रह्म, तद् हेतु अनन्यत् एकम् ॥३०॥

अनुवाद— हे प्रभो ! यह जगत् जिसमें है, वह आप हैं, जिससे उत्पन्न हुआ है, वह आप हैं जिसके द्वारा निर्मित हैं, वह भी आप है, जिसके लिए निर्मित हैं वह भी आप है, तथा जिसको यह इप्सिततम है वह आप, इसके कर्ता भी आप हैं जो करने में स्वतन्त्र हैं, वे भी आप हैं तथा इसके प्रयोज्य कर्ता भी आप ही हैं । आप ही ब्रह्म हैं इस जगत् के एक मात्र कारण आप हैं आप इस सम्पूर्ण जगत् से पूर्ववर्ती रूप से प्रसिद्ध हैं आप स्वगत भेद से रहित अद्वितीय और एक हैं आप मुझ पर प्रसन्न हों ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं वस्तुतो गुणस्वरूपत्वाभावमङ्गीकृत्यानिरुक्तात्मशक्तिरित्यनेन द्योतितं मायया सर्ववाच्यत्वेन विश्वरूपत्वमाह । यस्मिन्नधिकरणे । यतोऽपादानात् । येन करणेन । यस्य संबन्धि । यस्मै संप्रदानाय यदीप्सिततमम् । यः कर्ता । कुरुते स्वतन्त्रः कार्यते चान्येन प्रयोज्यकर्त्रा । तद्ब्रह्मेति प्रत्येकं संबन्धः । अत्र च सप्तभिर्यच्छब्दैः सप्तविभक्त्यर्थाः दर्शिताः । यथेति च क्रियाकारकसंबन्धप्रकारवाचिनाम् व्ययानामर्थाः । कुरुते कार्यते चेति स्वार्थपरार्थक्रियान्वयश्च सर्वेषां दर्शितः । चशब्देन भावकर्मादिविहितप्रत्ययार्थाः संगृहीताः । तद्ब्रह्मैवेति कुतस्तत्राह । तद्धेतुस्तेषां कारणम् । तत्कुतः सर्वेभ्यः प्राक्प्रसिद्धम् । ननु ब्रह्मादयस्तद्धेतवः श्रूयन्तेऽवरे च दृश्यन्ते तत्कथं ब्रह्मैव तद्धेतुस्तत्राह । परेषामवरेषां च हेतूनां परमं कारणम् । ननु सर्वकारणत्वे तस्य किं नाम सहकारि भवत्तदानीमन्यस्याभावात् । सत्यम्, निरपेक्षमेव तत्कारणमित्याह । अनन्यद्विजातीयशून्यम्। एकं सजातीयशून्यं च । तस्मै नम इत्युत्तरेणान्वयः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से आत्मा का स्वरूप गुण स्वरूप नहीं है, इस प्रकार से स्वीकार करके **अनिरुक्तात्मशक्तिः** पद के द्वारा द्योतित सर्व वाच्य माया के ही होने के कारण आत्मा की विश्वरूपता का प्रतिपादन करते हुए कहते है कि इस सम्पूर्ण जगत् के आश्रय, ब्रह्म हैं, उनसे जगत् उत्पन्न है और इस जगत् का कारण साधकतम भी ब्रह्म ही है । इस जगत् के सम्प्रदान और कर्म भी ब्रह्म है । यह जगत् ब्रह्म का ही है । इस जगत् के स्वतन्त्रकर्ता और प्रयोज्य कर्ता भी ब्रह्म हैं । इस श्लोक में सात यत् शब्दों के द्वारा बतलाया गया है कि सातो विभक्तियों का अर्थ ब्रह्म ही है । यथा पद के द्वारा क्रिया तथा कारक के सबन्ध के वाचक अव्ययों के अर्थ को प्रदर्शित किया गया है । कुरुते तथा **कार्यते** इन दो पदों के द्वारा स्वार्थ तथा परार्थ अपने लिए तथा दूसरे के लिए क्रिया का सबों के साथ सम्बन्ध दिखलाया गया है । **च** शब्द के द्वारा भाव कर्म में होने वाले प्रत्ययों के भी अर्थ का संग्रह किया गया है । यदि कोई कहे कि सबकुछ ब्रह्म हैं यह कैसे कहा जा सकता है ? इस पर कहते हैं उन सबों के कारण ब्रह्म ही है । क्योंकि ब्रह्म सबों से पूववर्ती रूप में प्रसिद्ध है । **ननु० इत्यादि** यदि कोई कहे जगत् के कारण तो ब्रह्म आदि है, यह सुना जाता है और देखा भी जाता है अतएव ब्रह्म ही जगत् के कारण है यह कैसे कहा जा सकता है ? इस पर कहते है कि ब्रह्म आदि अवर कोटि के हेतु है उनके भी करण ब्रह्म ही हैं। प्रश्न है कि यदि ब्रह्म सबों के कारण है तो फिर सहकारी कारण कौन है ? क्योंकि उस समय ब्रह्म से भिन्न कोई दूसरा था ही नहीं । तो इसका उत्तर है ब्रह्म सहकारी निरपेक्ष कारण है । वे ब्रह्म सजातीय विसजातीय भेद से रहित है । इस प्रकार के ब्रह्म को नमस्कार है इस तरह से अगले श्लोक से अन्वय हैं ॥३०॥

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै विवादसंवादभुवो भवन्ति ।
कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने ॥३१॥

अन्वयः— यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै विवाद संवाद भुवो भवन्ति, एषां मुहुः आत्ममोहं च कुर्वन्ति । तस्मै अनन्तगुणाय भूम्ने वै नमः ॥३१॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आपकी ही शक्तियाँ वादी और प्रतिवादी के विवाद और संवाद के हेतु होती है और उन सबों को बार-बार मोह में भी डाल देती हैं । आप अप्राकृत दिव्य गुणों से युक्त अनन्त गुणों से युक्त हैं तथा अनन्त स्वरूप है । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं ब्रह्म चेद्विश्वस्य हेतुस्तर्हि न कदाचिदनीदृशं जगदिति वदन्तो मीमांसकाः कुतोऽत्र विवदन्ते । तैश्चान्ये स्वभाववादिनः संवदते । ते च ते च तत्त्वविद्भिर्बोधिता अपि कुतः पुनः पुनर्मुह्यन्ति तत्राह । यस्य मायाविद्यायाः शक्तयो विवादस्य क्वचित्संवादस्य भुवः स्थानानि भवन्ति तस्मै नमः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

यदि इस प्रकार के ब्रह्म है तो फिर मीमांसक विद्वान् यह कहकर क्यों विवाद करते है कि ब्रह्म यदि ऐसा है तो जगत् जो उसका कार्य है वह इस प्रकार का क्यों नहीं है । उन सबों का दूसरे स्वभाव वादियों के साथ ऐकमत्य हो जाता है । वे दोनों तत्त्व का प्रतिपादन करने वालों के द्वारा बोधित किए जाने पर भी पुनः मोहित कैसे हो जाते है ? इस पर कहते हैं कि जिन परब्रह्म की माया की शक्ति कहीं पर विवाद की तथा कहीं पर संवाद की भूमि बन जाती हैं, उन परब्रह्म को नमस्कार है ॥३१॥

अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयोरेकस्थयोर्भिन्नविरुद्धधर्मयोः ।
अवेक्षितं किंचन योगसांख्ययोः समं परं ह्यनुकूलं बृहत्तत् ॥३२॥

अन्वयः— अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयोः एकस्थयोः भिन्न विरुद्ध धर्मयोः योग सांख्ययोः किञ्चन परम् अनुकूलं हि समम् तत् बृहत् ॥३२॥

अनुवाद— उपसना करने वाले योगमतानुयायियों का कहना है कि ब्रह्म साकार है, वह हस्त पादादि से विशिष्ट है कि सांख्यमतानुयायी कहते हैं कि ब्रह्म पादादि अवयवों से रहित है । इस प्रकार वे एक ही वस्तु के विषय में परस्पर विरोधी दो मतों को उपन्यस्त करते हैं । ऐसा होने पर भी उनमें विरोध इसलिए नहीं है कि दोनों एक ही परम वस्तु में स्थित हैं । बिना आधार के हस्त पादादि का होना सम्भव नहीं है और निषेध की भी कोई न कोई अवधि होनी ही चाहिए । अतएव आप वही आधार और निषेध की अवधि हैं । फलतः आप साकार एवं निराकार दोनों से ही अविरुद्ध सम पर ब्रह्म है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

ननु किं तद्ब्रह्म यस्य शत्तयो विवादादिभुवो भवन्ति तत्राह–अस्तीति । योग उपासनाशास्त्रम् । तत्र हि विराड्रूपेणोपासनायां पातालपादादिकमस्तीत्युपास्यत्वेन विधीयते । नास्तीति सांख्यं ज्ञानशास्त्रम् । तत्र 'अपाणिपादः अचक्षुरश्रोत्रम्' इति च पादादि नास्तीति निषिध्यते । तयोर्योगसांख्ययोर्यत्किंचित्सममनुवर्तमानमवेक्षितं प्रतीतं तद्बृहद्ब्रह्म । विवादास्पदं ब्रह्मेत्यर्थः । विवादं स्फुटयति । भिन्नावस्तिनास्तीत्येवंभूतौ विरुद्धौ धर्मौ ययोः । तयोर्भिन्नविषयत्वेऽपि विरोधो न स्यादित्येकस्थयोरित्युक्तमेकविषययो; कुतः वस्तुनिष्ठयोः पादादिविधिप्रतिषेधयोरेकवस्तुनिष्ठत्वात् । समत्वे हेतुः–परम् । हि यतः । विधिप्रतिषेधयोरविषयस्तयोः पादादिविषयत्वात् । तथा तर्ह्यविषयस्य सद्भावे किं प्रमाणं तदाह । अनुकूलमधिष्ठानं बिनापवादादिकल्पनायोगात्, अवधिं विना तन्निषेधायोगाच्च तयोरुपपादकत्वेन सिद्धमित्यर्थः । तस्मै नम इति पूर्वस्यानुषङ्गः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

वे ब्रह्म कैसे हैं जिनकी शक्तियाँ विवाद का विषय बनती हैं। इस पर **अस्तीति० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। योग को उपासना शास्त्र कहते है। उसके अनुसार विराट् रूप से उपासना करने पर पाताल इत्यादि लोकों की उपासना पर ब्रह्म के पैर इत्यादि के रूप में उपास्यत्वेन विहित हैं। हस्त पादादि अव्यय ब्रह्म के नहीं है, इत्यादि निराकारवादी सांख्यशास्त्र ज्ञान शास्त्र है। ब्रह्म के हस्त पादादि का निषेध करती हुई श्रुति भी कहती है **'अपाणिपाद'** ब्रह्म हस्ता पादादि से रहित है। **अचक्षुःश्रोत्रम्** ब्रह्म नेत्र तथा श्रोत्र आदि इन्द्रियों से रहित है। उन दोनों योग तथा सांख्य दोनों शास्त्रों का समान रूप से जो आधार प्रतीत होता है। वह ब्रह्मत्त्व गुण सम्पन्न ब्रह्म है। अर्थात् वह विवाद का विषय ब्रह्म है। विवाद के विषय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं योग एवं सांख्य दोनों के अस्तित्व एव नास्तित्व रूप परस्पर विरोधी धर्म हैं। उन दोनों के विषय भिन्न-भिन्न होने पर भी विरोध इसलिए नहीं हैं कि वे दोनों एक वस्तु को अपना समान रूप से विषय बनाते है। समत्व का कारण है कि वह बह्म दो से परे हैं। क्योंकि वह न तो विधि का विषय है और न निषेध का विषय है। दोनों पाद इत्यादि विषयक है। अब प्रश्न होता है कि जो ब्रह्म पादादिका विषय होता ही नहीं है उसके सद्भाव में क्या प्रमाण है ? तो इस पर कहते हैं कि अनुकूल अधिष्ठान के बिना पैर आदि की कल्पना नहीं की जा सकती है और अवधि के बिना निषेध भी नहीं हो सकता है। ब्रह्म उन दोनों का उपपादक रूप से सिद्ध होता है। ऐसे ब्रह्म को नमस्कार है॥३२॥

योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूलमनामरूपो भगवाननन्तः ।
नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभिर्भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥३३॥

अन्वयः— अनामरूपः यः भगवान् पादमूलं भजताम् अनुग्रहार्थं जन्म कर्मभिः नामानिरूपाणि च भेजे। सः परमः मह्यं प्रसीदतु ॥३३॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप अनन्त हैं आप प्राकृत नाम और रूप से रहित हैं फिर भी जो लोग आपके चरण कमलों का भजन करते हैं उन लोगों पर कृपा करने के लिए आप अनेक रूपों में प्रकट होकर अनेक प्रकार की लीलाओं को करते हैं। उन लीलाओं के अनुकूल अनेक नामों को भी धारण कर लेते हैं। हे प्रभो आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

ननूदासीनस्य समस्य नमस्कारे को लाभस्तत्राह- य इति। पादमूलं भजतामनुग्रहार्थं प्राकृतनामरूपरहितोऽपि जन्मभिरवतारैर्विशुद्धोर्जितसत्त्वानि रूपाणि कर्मभिर्नामानि च यो भेजे। तत्कुतः। भगवानचिन्त्यैश्वर्यः। स मह्यं प्रसीदतु॥३३॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि ब्रह्म तो सबों से उदासीन है उसको नमस्कार करने से कौन सा लाभ है ? तो इसपर **यः प्राकृतैः इत्यादि** श्लोक कहते हैं। अर्थात् जो लोग श्रीभगवान् की चरणों की सेवा करते है। उन पर कृपा करने के लिए वे प्राकृत नाम और रूप से रहित भी वे अवतारों को ग्रहण करके विशुद्ध सत्त्व सम्पन्न रूपों और विविध कर्मों को किया करते हैं। यह पूछें किं यह कैसे तो इसका उत्तर है कि वे अचिन्त्य ऐश्वर्य सम्पन्न हैं। वे भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों ॥३३॥

यः प्राकृतैर्ज्ञानपथैर्जनानां यथाशयं देहगतो विभाति ।
यथाऽनिलः पार्थिवमाश्रितो गुणं स ईश्वरो मे कुरुतान्मनोरथम् ॥३४॥

अन्वयः— यः प्रजानां प्राकृतैः ज्ञानपथैः यथाशयं देहगतः विभाति यथा पार्थिवं गुणमाश्रितः अनिलः, सः ईश्वरः मे मनोरथम् कुरुतात् ॥३४॥

अनुवाद— हे भगवन् ! लोगों की उपासनाएँ प्राय: साधारण कोटि की होती हैं, इसलिए परमात्मा आप सबों के हृदय में स्थित रहकर उन उपासकों की भावना के अनुसार विभिन्न देवताओं के रूप में प्रतीत होते रहते हैं । यह वैसे ही होता है जैसे वायु विभिन्न प्रकार के गन्धों को लेकर विभन्र प्रकार की सुगन्धि से सम्पन्न प्रतीत होती है किन्तु वास्तविकता है कि वायु सुगन्धित या दुर्गन्धित नहीं होती है । इसी तरह सबों की वासनाओं का अनुसरण करने वाले परमात्मा हमारे मनोरथ को पूरा करें ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

ननु त्वादृशाः सकामा गणेशादीन् प्रार्थयन्ते त्वं तु तान्विहाय किमिति भगवन्तमेव प्रार्थयसे तत्राह । प्राकृतैरर्वाचीनैर्ज्ञानपथैरुपासनामार्गैर्यथाशयं तत्तद्वासनानुसारेण यो देहगतोऽन्तर्यामी तत्तद्देवतारूपेण विविधो भाति । यथा वायुः पार्थिवं गुणं चम्पकादिगन्धभेदमाश्रित्य नानागन्धवान्विभाति रेणोर्गुणं धूसरत्वादिकमाश्रित्य नानारूपवान् प्रतीयते तद्वत्तस्यैव तत्तद्देवतारूपेण फलदातृत्वात्स ईश्वर एव मे मनोरथं सत्यं करोतु किमन्तर्गडुभिर्देवतान्तरैरित्यर्थः । तदुक्तं गीतासु– 'यो यो यां यां तनु भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति । तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् । स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते । लभते च ततः कामान्मयैव विहितान् हि तान्' इति । 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' इति चेति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

यदि भगवान् यह कहें कि तुम्हारे समान सकाम पुरुष तो गणेश आदि देवताओं की प्रार्थना किया करते हैं, उन देवताओं को छोड़कर श्रीभगवान् की ही प्रार्थना क्यों करते हो तो इस पर कहते हैं कि अर्वाचीन ज्ञानमार्ग अथवा उपासना मार्ग के द्वारा उपासकों द्वारा उपासना किए जाने पर सबों के देहों में अन्तर्यामी रूप से रहने वाले परमात्मा उन उपासकों की वासना के अनुसार विभिन्न देवता रूप से प्रतीत होते है । जैसे वायु पार्थिव चम्पा आदि के गन्धों से युक्त होकर विभिन्न गन्धों से सम्पन्न प्रतीत होती है । इस तरह धूल के कणों से युक्त होने पर उसका रूप भी भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतीत होने लगती है, किन्तु वास्तविकता है कि वायु रूप एवं गन्ध से रहित है । उसी तरह ईश्वर ही विभिन्न देवताओं के रूप में विभिन्न फलों को प्रदान करते हैं । वे ही परमात्मा हमारे मनोरथों को सफल करें बीच के अन्यथा सिद्ध देवताओं से क्या लाभ है ? श्रीभगवद् गीता में श्रीभगवान् कहते भी हैं यो-यो यां यां इत्यादि अर्थात् जो भक्त हमारे शरीर भूत जिस देवता की उपासना श्रद्धा पूर्वक करते हैं मैं उस भक्त की अपने उसी देवता रूप शरीर में श्रद्धा को अचल बना देता हूँ । और वह उपासक हमारे उसी देवता रूप शरीर की आराधना करता है । और मेरे द्वारा वितीर्ण फल को वह उसी देवता के माध्यम से प्राप्त करता है । गीता में ही अन्यत्र श्रीभगवान् कहते हैं **ये यथा माम्०** जो उपासक जिस प्रकार से मेरी आराधना करते हैं, मैं उसको उसी रूप में स्वीकार करता हूँ ।।३४।।

श्रीशुक उवाच

इति स्तुतः संस्तुतवतः स तस्मिन्नघमर्षणे । आविरासीत्कुरुश्रेष्ठ भगवान्भक्तवत्सलः ।।३५।।

अन्वयः— हे कुरुश्रेष्ठ तस्मिन् अघमर्षणे इति स्तुतः सः संस्तुतवतः भक्तवत्सलः सः भगवान् आविरासीत् ।।३५।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! परीक्षित् ! इस अधमर्षण तीर्थ में प्रजापति दक्ष के द्वारा इस प्रकार से स्तुति किए गये श्रीभक्त वत्सल भगवान् उनके समक्ष प्रकट हो गये ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

संस्तुतवतो दक्षस्य स भगवान् प्रत्यक्षोऽभूत् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

स्तुति करने वाले दक्ष प्रजापति के समक्ष श्रीभगवान् प्रकट हो गये ।।३५।।

कृतपादः सुपर्णांसे प्रलम्बाष्टमहाभुजः । चक्रशङ्खासिचर्मेषुधनुःपाशगदाधरः ॥३६॥

अन्वयः— सुपर्णांसे कृतपादः प्रलम्बाष्टमहाभुजः, चक्रशङ्खासिचर्मेषुधनुः पाशगदाधरः ।।३६।।

अनुवाद— श्रीभगवान् गरुड के कन्धे पर अपना पैर रखे हुए थे, उनकी लम्बी आठ भुजाएँ थीं और वे अपने हाथों में चक्र, शङ्ख, तलवार, चर्म (ढाल) बाण धनुष, पाश एवं गदा इन आयुधों को धारण किए हुए थें ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

तं वर्णयति सार्धैश्चतुर्भिः । सुपर्णस्यांसे स्कन्धे कृतौ पादौ येन । प्रलम्बा अष्टौ महान्तो भुजा यस्य । चक्राद्यष्टायुधधरः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीशुकदेवजी श्रीभगवान् का वर्णन साढे चार श्लोकों में करते हैं । श्रीभगवान् गरुड के कन्धे पर अपने दोनों पैरों को रखे थे । उनकी आठ लम्बी भुजाएँ थीं । वे अपनी भुजाओं में चक्र आदि आठ आयुधों को धारण किए हुए थे ।।३६।।

पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदनेक्षणः । वनमालानिवीताङ्गो लसच्छ्रीवत्सकौस्तुभः ॥३७॥

अन्वयः— पीतवासा, धनश्यामः, प्रसन्नवदनेक्षणः वनमालानिवीताङ्गः लसत् श्रीवत्सकौस्तुभः ।।३७।।

अनुवाद— वे पीताम्बर धारण किए हुए थे, उनका श्रीविग्रह वर्षा कालीन जल से भरे मेघ के समान श्याम वर्ण का था, उनका मुख मण्डल अत्यन्त मनोहर था और नेत्रों से प्रसाद की वर्षा हो रही थी । उनकी वनमाला घुटनों तक लटक रही थी तथा उनके वक्षः स्थल में श्रीवत्स चिह्न और कौस्तुभमणि सुशोभित हो रहे थे ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

प्रसन्नं वदनमीक्षणो च यस्य । वनमालया निवीतं कण्ठादिपादान्तव्याप्तमङ्गं यस्य । लसन्तौ श्रीवत्सकौस्तुभौ यस्य।।३७।।

भाव प्रकाशिका

उनके मुखमण्डल और नेत्र प्रसन्न थे, वनमाला गले से लेकर पैर तक लटक रही थी तथा उनके वक्षस्थल में श्रीवत्सचिह्न और कौस्तुभमणि दोनों सुशोभित हो रहे थे ।।३७।।

महाकिरीटकटकः स्फुरन्मकरकुण्डलः । काञ्च्यङ्गुलीयवलयनूपुराङ्गदभूषितः ।।३८।।

अन्वयः— महाकिरीटकटकः स्फुन्मकरकुण्डलः, काञ्च्यङ्गुलीयवलायनूपुराङ्गदभूषितः ।।३८।।

अनुवाद— बहुमूल्य किरीट, कङ्गन वे धारण किए थे । कानों में मकराकृति कुण्डल चमक रहे थे । कमर में सुवर्ण की करधनी, अङ्गुलियों में अङ्गूठी वलय, हाथों में कड़े तथा बाजूबन्द (अङ्गद) सुशोभित हो रहे थे तथा पैरों में नूपुर सुशोभित हो रहे थे ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

महान्ति किरीटकटकानि यस्य । स्फुरती मकरकुण्डले यस्य । काञ्च्यादिभिर्विभूषितः । वलयमत्र पादभूषणं द्रष्टव्यम्। कटकस्योक्तत्वात् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के किरीट और कङ्गन अत्यन्त मूल्यवान् थे । उनके मकराकृति कुण्डल चमक रहे थे वे करधनी इत्यादि से मण्डित थे । यहाँ वलय शब्द से पैर का भूषण कहा गया है क्योंकि कटक शब्द से कङ्गन को कहा जा चुका है ।।३८।।

त्रैलोक्यमोहनं रूपं बिभ्रन्त्रिभुवनेश्वरः । वृतो नारदनन्दाद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः ।।३९।।

अन्वयः— त्रिभुवनेश्वरः त्रैलोक्यमोहनं रूपं विभ्रत् नारदनन्दद्यैः पार्षदै सुरयूथपैः वृतः ।।३९।।

अनुवाद— श्रीभगवान् का रूप त्रैलोक्य को मोहित कर देने वाला था नारद, नन्द आदि पार्षदों तथा इन्द्र आदि देवेश्वर श्रीभगवान् के चारो ओर खड़े थे ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

त्रैलोक्यमोहनं श्रीपुरुषोत्तमाख्यम् । सुरयूथपैर्लोकपालैः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का त्रैलोक को मोहित करने वाला श्रीपुरुषोत्तम नामक रूप तथा लोकपालों और नारदादि पार्षदों से वे भगवान् घिरे थे ।।३९।।

स्तूयमानोऽनुगायद्भिः सिद्धगन्धर्वचारणैः । रूपं तन्महदाश्चर्यं विचक्ष्यागतसाध्वसः ।।४०।।

अन्वयः— सिद्धगन्धर्वचारणैः अनुगायद्भिः स्तूयमानः । तन्महदाश्चर्यं रूपं विचक्ष्य आगत साध्वसः ।।४०।।

अनुवाद— सिद्ध, गन्धर्व, चारण ये सब श्रीभगवान् के गुणों का गायन कर रहे थे तथा देवेश्वर इन्द्रादि लोकपाल श्रीभगवान् की स्तुति कर रहे थे । श्रीभगवान् के अत्यन्त आश्चर्यमय इस रूप को देखकर दक्ष प्रजापति कुछ सहम से गये ।।४०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४०।।

ननाम दण्डवद्भूमौ प्रहृष्टात्मा प्रजापतिः । न किंचनोदीरयितुमशकत्तीव्रया मुदा ।।
आपूरितमनोद्वारैर्ह्रदिन्य इव निर्झरैः ।।४१।।

अन्वयः— प्रहृष्टात्मा प्रजापतिः भूमौ दण्डवद् ननाम, निर्झरैः ह्रादिन्यः इव द्वारैः तीव्रया मुदा अपूरितः किञ्चनादीरयितुम् न अशकत् ।।४१।।

अनुवाद— श्रीभगवान् को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर दक्ष प्रजापति ने पृथिवी पर दण्ड के समान गिरकर श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किया । जिस तरह झरनों के जल से नदियाँ भर जाती हैं उसी तरह परमानन्द के उद्रिक्त हो जाने के कारण उनकी प्रत्येक इन्द्रियाँ आनन्द से परिपूर्ण हो गयीं । आनन्दपराधीन होने के कारण वे कुछ भी बोल नहीं सकें ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

आपूरितानि मनोद्वाराणि इन्द्रियाणि तैः । यथा ह्रदिन्यो नद्यो निर्झरैरापूर्यन्ते तथा महानन्दापूर्णत्वेनावृत्तिकत्वाद्वागादिना न किंचिद्वक्तुं शक्तोऽभूदित्यर्थः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

मनरूपी द्वार से उनकी सारी इन्द्रियाँ आनन्दपूर्ण हो गयी थी । जिस तरह झरनों के जल से नदियाँ भर जाती है उसी तरह महान् आनन्द से परिपूर्ण होने के कारण दक्ष प्रजापति कुछ नहीं बोल सके ।।४१।।

तं तथाऽवनतमं भक्तं प्रजाकामं प्रजापतिम् । चित्तज्ञः सर्वभूतानामिदमाह जनार्दनः ।।४२।।

अन्वयः— तथा अवनतं भक्तं प्रजाकामं तं प्रजापतिम् सर्वभूतानाम् चित्तज्ञः जनार्दनः इदम् आह ।।४२।।

अनुवाद— इस प्रकार से झुके हुए भक्त तथा प्रजाओं की कामना वाले प्रजापति यद्यपि कुछ बोल नहीं सके फिर भी सबों के चित्त को जानने वाले भगवान् जनार्दन ने उनसे कहा ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

यद्यप्यसौ नावोचत्तथापि चित्तज्ञ इदं वक्ष्यमाणमाह ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि दक्ष प्रजापति कुछ नहीं बोल सके फिर भी सबों के मन की बातों को जानने वाले भगवान् जनार्दन ने उनसे कहा ।।४२।।

श्रीभगवानुवाच

प्राचेतस महाभाग संसिद्धस्तपसा भवान् । यच्छ्रद्धया मत्परया मयि भावं परं गतः ।।४३।।

अन्वयः— महाभाग प्राचेतस ! भवान् तपसा संसिद्धः, यत् मत् परया श्रद्धया मयि परं भावं गतः ।।४३।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— महाभाग्यवान् प्रजापते दक्ष अब तुम अपनी तपस्या के द्वारा सिद्ध हो गये हो, क्योंकि मुझ पर श्रद्धा करने से तुम्हारा मुझमें अत्यन्त प्रेम हो गया है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

भावं भक्तिं । गतः प्राप्तः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

तुम्हारी मुझमें अत्यन्त उत्कृष्ट भक्ति हो गयी है ।।४३।।

प्रीतोऽहं ते प्रजानाथ यत्तेऽस्योद्बृंहणं तपः । ममैष कामो भूतानां यद्भूयासुर्विभूतयः ।।४४।।

अन्वयः— हे प्रजानाथ अहं ते प्रीतः यत् ते तपः अस्य उद्बृहणम् मम एषः कामः यत् प्रजानां विभूतयः भूयासुः।।४४।।

अनुवाद— हे प्रजापते ! मैं तुम पर इसलिए प्रसन्न हूँ कि तुम प्रजाओं की समृद्धि के लिए तप किए हो। मैं भी चाहता हूँ कि प्रजाओं की वृद्धि और समृद्धि हो ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

यद्यतस्ते तपोऽस्य विश्वस्योद्बृंहणं वृद्धिकरमतस्तेऽहं प्रीतः । मत्तपसो लोकसमृद्यद्धर्थत्वे त्वत्प्रीतेः किं कारणं तत्राह-ममेति । भूतानां विभूतयः समृद्धयो भूयासुरिति यदेष एव मम कामः । अतो मत्कामपूरणादेवाहं प्रीतोऽस्मीत्यर्थः ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा प्रजापते चूकि तुम्हारी तपस्या प्रजाओं की समृद्धि करने वाली है अतएव मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । लोक की समृद्धि करने वाली मेरी तपस्या के होने से आप क्यों प्रसन्न है ? इसके उत्तर में श्रीभगवान् ने कहा कि मेरी यह इच्छा है कि जीवों की विभूतियों की समृद्धि हो । अतएव मेरी कामना को पूर्ण करने वाली तुम्हारी तपस्या होने के कारण मैं प्रसन्न हूँ ।।४४।।

ब्रह्मा भवो भवन्तश्च मनवो विबुधेश्वराः । बिभूतयो मम ह्येता भूतानां भूतिहेतवः ।।४५।।

अन्वयः— ब्रह्मा भवः भवन्तः मनवः विवुधेश्वराः एता हि मम विभूतयः भूतानां भूति हेतवः ।।४५।।

अनुवाद— ब्रह्मा, शङ्कर तुम जैसे प्रजापति, मनुगण, इत्यादि श्रेष्ठ देवगण ये सभी मेरी विभूतियाँ सभी प्राणियों की अभिवृद्धि करने वाली हैं ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

भूतिविस्तारप्रयत्नश्च तवोचित एवेत्याह-ब्रह्मेति । भवन्तः प्रजापतयः भूतेरुद्भवस्य हेतवः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा कि विभूतियों का विस्तार करने के लिए तुम्हारे द्वारा प्रयत्न किया जाना उचित ही है। इस बात को भगवान् ने **ब्रह्मा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा है । भवन्तः अर्थात् तुम जैसे प्रजापतिगण ऐश्वर्य के विस्तार के साधन है ॥४५॥

तपो मे हृदयं ब्रह्मंस्तनुर्विद्या क्रियाकृतिः । अङ्गानि क्रतवो जाताधर्म आत्मासवः सुराः ॥४६॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् तपो मे हृदयम्, विद्यातनुः, कर्म आकृतिः, क्रतवः अङ्गानि जाता, धर्मः आत्मा, सुराः असवः॥४६॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! तपस्या मेरा हृदय है, विद्या शरीर है, कर्म आकृति है, यज्ञ अङ्ग हैं, धर्म आत्मा है और देवता मेरे प्राण हैं ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

विश्ववृद्ध्यर्थेन त्वत्तपसाऽहं प्रीत इत्युक्तं तदेव तपः स्तुवन्प्रसङ्गादन्यान्यपि लोकवृद्धिकराणि विद्यादीनि स्तौति । तपो यमनियमादिसहितं ध्यानं मे हृदयम् । विद्या साङ्गमन्त्रजपः सा । ध्यानं तनोतीति तनुर्देहः । क्रिया ध्यानादिविषयः पुंव्यापारो भावनाशब्दवाच्यस्तेन हि ध्यानादिकमाक्रियत इत्याकृतिः । जाताः सुनिष्पन्नाः क्रतवोऽङ्गानि 'शिरो वा एतद्यत्प्रवर्ग्यः ग्रीवा उपसदश्चक्षुषी आज्यभागौ' इत्यादिश्रुतेः । धर्मः क्रत्वाद्यपूर्वमात्मा मनः, हृदयाश्रयत्वात् । सुरा यज्ञभुजस्त एवासवः प्राणाः, संतर्पणीयत्वात् ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

विश्व की वृद्धि के लिए तुम्हारे द्वारा की गयी तपस्या से मैं सन्तुष्ट हूँ इस बात को श्रीभगवान् ने कहा है। उस तप की प्रशंसा करते हुए लोक की वृद्धि के जो दूसरे साधन है उन विद्या आदि की भगवान् प्रशंसा करते हैं । उन्होंने कहा यम आदि से युक्त ध्यान मेरा हृदय हैं । अङ्गों सहित मन्त्र का जप ही मेरा शरीर है । ध्यान का विस्तार करने के कारण तनु शब्द वाच्य देह है । क्रिया शब्द से ध्यानादि विषयक पुरुष के द्वारा किये जाने वाले व्यापार कहे गये है । उन्हीं को भावना भी कहते हैं । ध्यान आदि को पूर्ण रूप से करना ही आकृति है। अच्छी तरह से निष्पन्न किए जाने वाले क्रतु ही मेरे अङ्ग हैं । श्रुति भी कहती है— **शिरोवा एतद० इत्यादि** अर्थात् क्रतुओं में सम्पन्न किया जाने वाला प्रवर्ग्य यज्ञ पुरुष परमात्मा का शिर है, उपसद ही ग्रीवा है । दोनों आज्य भाग ही दोनों नेत्र हैं । क्रतु आदि से उत्पन्न होने वाला अपूर्व रूप धर्म ही मेरी आत्मा है अर्थात् मन है, क्योंकि उसका आश्रय हृदय है । यज्ञ भाग का उपभोग करने वाले, देवता ही मेरे प्राण हैं । क्योंकि यज्ञों के द्वारा देवताओं को तृप्त किया जाता है ॥४६॥

अहमेवासमेवाग्रे नान्यत्किंचान्तरं बहिः । संज्ञानमात्रमव्यक्तं प्रसुप्तमिव विश्वतः ॥४७॥

अन्वयः— अग्रे अहम् एवं आसम् अन्यत् किञ्च आन्तरं बहिः न संज्ञानमात्रम् अव्यक्तम् विश्वतः प्रसुप्तम् इव ॥४७॥

अनुवाद— सृष्टि से पहले केवल मैं ही था और वह भी निष्क्रिय रूप में था । बाहर भीतर कुछ भी कहीं भी नहीं था, न तो कोई द्रष्टा था और न दृश्य था मैं केवल ज्ञान स्वरूप और अव्यक्त था, मानो सब ओर सुषुप्ति ही सुषुप्ति छा रही थी ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

तपसः संतानवृद्धिहेतुत्वं दर्शयितुं द्वितीयतृतीयोक्तमितिहासमाह चतुर्भिः । अहमेवेति वस्त्वन्तरव्यावृत्तिः । आसमेवेति क्रियान्तर व्यावृत्तिः । आन्तरं ग्राहकम् । बहिर्ग्राह्यम् । संज्ञानमात्रं चैतन्यमात्रम् अव्यक्तमिन्द्रियवृत्तिभिरनभिव्यक्तम् । अतएव प्रसुप्तमिव विश्वतः सर्वत्र ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

तपस्या सन्तान की वृद्धि का कारण है इस बात को बतलाने के लिए द्वितीय स्कन्ध के नवें अध्याय में तथा तीसरे स्कन्ध के आठवें अध्याय से प्रारम्भ करके कहे गये इतिहास को चार श्लोकों द्वारा बतलाते। अहमेव कहकर भगवान् ने कहा कि मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं था आसमेव से कहा गया है कि कोई क्रिया भी नहीं थी। आन्तर का अर्थ ग्राहक (द्रष्टा) है और बहि:शब्द से दृश्य को कहा गया है। संज्ञानमात्र अर्थात् ज्ञानमात्र। अव्यक्त शब्द से बतलाया गया है कि वह किसी इन्द्रिय की वृत्ति के द्वारा अभिव्यक्त होने वाला नहीं था। अतएव सर्वत्र सुषुप्ति के ही समान था ॥४७॥

मय्यनन्तगुणेऽनन्ते गुणतो गुणविग्रहः। यदासीत्तत एवाद्यः स्वयंभूः समभूदजः ॥४८॥

अन्वयः— अनन्त गुणे अनन्ते मयि यदा गुणतः गुणविग्रहः आसीत् तत एव आद्यः स्वम्भूः अजः समभूत् ॥४८॥

अनुवाद— अनन्त गुणों का आश्रय मैं अनन्त हूँ। जब गुणमयी माया के क्षोभ से यह ब्रह्माण्ड शरीर प्रकट हुआ तब इसमें अयोनिज आदि पुरुष ब्रह्मा उत्पन्न हुए ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

गुणतो मायातः। गुणमयो विग्रहो ब्रह्माण्डम्। ततस्तदैव। अजोऽयोनिजः ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

माया में क्षोभ उत्पन्न हुआ तो उससे गुणमय शरीर ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। उसी समय अयोनिज ब्रह्म की उत्पत्ति हुई ॥४८॥

स वै यदा महादेवो मम वीर्योपबृंहितः। मेने खिलमिवात्मानमुद्यतः सर्गकर्मणि ॥४९॥

अन्वयः— ममवीर्योपबृहितः यदावै स महादेवः सर्गकर्मणि उद्यतः तथा खिलमिव आत्मनम् मेने ॥४९॥

अनुवाद— मेरे द्वारा वीर्य का संचार किए जाने पर जब ब्रह्मा सृष्टि करने के लिए उद्यत हुए तो वे इस कार्य में अपने को असमर्थ माने ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

खिलमसमर्थमिव ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

खिलमिव अर्थात् असमर्थ के समान ॥४९॥

अथ मेऽभिहितो देवस्तपोऽतप्यत दारुणम्। नव विश्वसृजो युष्मान्येनादावसृजद्विभुः ॥५०॥

अन्वयः— अथ मे अभिहितः देवः दारुणं तपः अतप्यत। अदौ विभुः युष्मान् नव विश्वसृजः असृजत् ॥५०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् मेरे कहने से उन्होंने कठोर तपस्या की और उसके कारण उन्होंने सर्वप्रथम तुम नव प्रजापतियों की सृष्टि की ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

मे मया तपतपेत्यभिहितः सन्। येन तपसा ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

मैने कहा तपस्या करो तपस्या करो तो उन्होंने घोर तपस्या की उस तपस्या के बल से उन्होंने सर्वप्रथम तुम नव प्रजापतियों की सृष्टि की ॥५०॥

एषा पञ्चजनस्याङ्ग दुहिता वै प्रजापतेः । असक्नी नाम पत्नीत्वे प्रजेश प्रतिगृह्यताम् ॥५१॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! एषा पञ्चजनस्य प्रजापतेः दुहिता असिक्नी नाम हे प्रजेश पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥५१॥

अनुवाद— हे प्रिय दक्ष ! यह पञ्चजन प्रजापति की पुत्री असिक्नी है । इसे तुम अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करो ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

सन्ततिबृद्ध्युपायमाह-एषेति । अङ्ग हे दक्ष । पञ्चजनाख्यस्य प्रजापतेः ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

सन्तान वृद्धि का उपाय भगवान् ने बतलाया । अङ्ग अर्थात् हे दक्ष ! इस पञ्चजनप्रजापति की पुत्री को पत्नी के रूप में स्वीकार करो ॥५१॥

मिथुनव्यवायधर्मस्त्वं प्रजासर्गमिमं पुनः । मिथुनव्यवायधर्मिण्यां भूरिशो भावयिष्यसि ॥५२॥

अन्वयः— मिथुन व्यवाय धर्म त्वम् मिथुन व्यवाय धर्मिण्यां पुनः इमम् प्रजासर्गम् भूरिशः भावयिष्यसि ॥५२॥

अनुवाद— अब तुम गृहस्थोचित स्त्री सहवास रूप धर्म को स्वीकार करो यह भी उसी धर्म को स्वीकार करेगी तब तुम इससे बहुत सी प्रजाओं को उत्पन्न करोगे ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

मिथुनस्य यो व्यवायो रतिः स एव धर्मो यस्य स त्वम् । तथाभूतायां तस्याम् ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

पति-पत्नी का जो रति रूप धर्म है उसको तुम अपनाओ ऐसा ही करके तुम इसके गर्भ से बहुत सी प्रजाओं को उत्पन्न करोगें ॥५२॥

त्वत्तोऽधस्तात्प्रजाः सर्वा मिथुनीभूय मायया । मदीयया भविष्यन्ति हरिष्यन्ति च मे बलिम् ॥५३॥

अन्वयः— त्वतः अधस्तात् सर्वाः प्रजाः मदीयया मायया मिथुनीभूय भविष्यन्ति, मे बलिं च हरिष्यन्ति ॥५३॥

अनुवाद— प्रजापते अब तक मानसी सृष्टि होती थी अब तुम्हारे पश्चात् सारी प्रजा मेरी माया से मोहित होकर स्त्री पुरुष के संयोग से ही उत्पन्न होगी और मेरी पूजा करेगी ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

मायया निमित्तभूतया । स्त्रिया सह मिथुनीभूय भविष्यन्ति पुत्रादिरूपेणोत्पत्स्यन्ते ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

माया से मोहित होकर पत्नी के साथ संयोग करने से ही सारी प्रजाएँ पुत्र आदि रूप से उत्पन्न होंगी ॥५३॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वा मिषतस्तस्य भगवान्विश्वभावनः । स्वप्नोपलब्धार्थ इव तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥५४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अन्वयः— इत्युक्त्वा विश्वभावनः भगवान् हरिः तस्य मिषतः स्वप्नोपलब्धार्थ इव तत्रैव अन्तर्दधे ॥५४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से कहकर विश्व के जीवन दाता भगवान् श्रीहरि दक्ष के सामने से ही इस प्रकार से अन्तर्धान हो गये जैसे स्वप्न में देखी गयी वस्तु स्वप्न टूटते ही लुप्त हो जाती है ।।५४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठ स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के चौथे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।४।।

* * *

पाँचवाँ अध्याय

श्रीनारदजी के उपदेश से दक्ष पुत्रों की विरक्ति और नारदजी को दक्ष का शाप

श्रीशुक उवाच

तस्यां स पाञ्चजन्यां वै विष्णुमायोपबृंहितः । हर्यश्वसंज्ञानयुतं पुत्रानजनयद्विभुः ॥१॥

अन्वयः— तस्यां पाञ्चजन्यां वै विष्णुमायोपबृंहितः स विभुः हर्यश्वसंज्ञान् अयुतं पुत्रान् अजनयत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् श्रीभगवान् की शक्ति संचार से अत्यन्त समर्थ दक्ष उस पञ्चजनी के गर्भ से दश हजार पुत्रों को उत्पन्न किये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चमे नारदेनाथ वाचःकूटैस्तु नाशितान् । सुतानाकर्ण्य दक्षोऽमुं शशापेति निरूप्यते ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इस पाञ्चवें अध्याय में नारदजी ने अपने कूटमयी वाणी के द्वारा विनष्ट किए गये अपने पुत्रों को सुनकर दक्ष प्रजापति ने नारदजी को शाप दे दिया इस बात का निरूपण किया गया है ॥१॥

अपृथग्धर्मशीलास्ते सर्वे दाक्षायणा नृप । पित्रा प्रोक्ताः प्रजासर्गे प्रतीचीं प्रययुर्दिशम् ॥२॥

अन्वयः— हे नृप ! अपृथग्धर्मशीलाः ते सर्वे दाक्षायणाः पित्रा प्रोक्ताः प्रतीची दिशम् ययुः ॥२॥

अनुवाद— राजन् ! दक्ष के वे सभी पुत्र एक समान स्वभाव और शील वाले थे । वे पिता के द्वारा सन्तान उत्पन्न करने के लिए कहे जाने पर तपस्या करने के लिए पश्चिम दिशा में गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अपृथग्धर्मशीला एकाचारस्वभावाः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

एक समान सदाचार और स्वभाव वाले यह **अपृथग्धर्मशीलाः** का अर्थ है ॥२॥

तत्र नारायणसरस्तीर्थं सिन्धुसमुद्रयोः । सङ्गमो यत्र सुमहन्मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥३॥

अन्वयः— यत्र सिन्धुसमुद्रयोः सङ्गमः तत्र नारायण सुमहत् तीर्थम् मुनिसिद्ध निषेवितम् ॥३॥

अनुवाद— पश्चिम दिशा में जहाँ पर सिन्धु नदी और समुद्र का सङ्गम हैं, वहाँ एक नारायण सरोवर नामक महान् तीर्थ है, जो मुनियों तथा सिद्धों द्वारा सेवित है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रतीच्यां दिशि सिन्धोर्नद्याः समुद्रस्य च यत्र सङ्गमस्तत्रस्थं नारायणसरो नाम तीर्थं प्रययुरित्यन्वयः। सुमहदतिविस्तीर्णम्॥३॥

भाव प्रकाशिका

उस पश्चिम दिशा में जहाँ पर सिन्धु नदी और समुद्र का सङ्गम है, वहाँ पर नारायण सरोवर नामक महान् तीर्थ है । वहीं वे सब गये । वह तीर्थ अत्यन्त विस्तृत है ॥३॥

तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः । धर्मे पारमहंस्ये च प्रोत्पन्नमतयोऽप्युत ॥४॥

अन्वयः— तदुपस्पर्शनात् एव विनिर्धूतमलाशयाः पारम हंस्ये च धर्मे ते प्रोत्पन्नमतयः अपि उत ॥४॥

अनुवाद— उस नारायण सरोवर में स्नान करते ही उन हर्यश्वों के अन्तःकरण शुद्ध हो गये उनकी बुद्धि भागवत धर्म में लग गयी ॥४॥

भावार्थ दीपिका

विनिर्धूतो मलो रागादिर्यस्मात्स आशयो येषाम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

राग रूपी मल के विनष्ट हो जाने के कारण उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया ॥४॥

तेपिर तप एवोग्रं पित्रादेशेन यन्त्रिताः । प्रजाविवृद्धये यत्तान् देवर्षिस्तान्ददर्श ह ॥५॥

अन्वयः— पित्रा देशेन यन्त्रिताः प्रजाविवृद्धये उग्रं तप एवतेपिरे यत्तान् तान् देवर्षिः ददर्श ॥५॥

अनुवाद— पिता के आदेश के बन्धन में पड़े हुए वे सब प्रजा की वृद्धि के लिए उग्र तपस्या कर रहे थे । प्रजा की वृद्धि के लिए तपस्या करने वाले उन सबों देवर्षि नारदजी ने देखा ॥५॥

भावार्थ दीपिका

तान् शुद्धसत्त्वानपि पित्रादेशजाड्येन प्रजाविवृद्धये यत्तान् उद्युक्तान्ददर्श ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अन्तःकरण के शुद्ध होने पर, पिता के आदेश एव जाड्य के कारण प्रजा की वृद्धि के लिए कठोर तपस्या करने वाले उन सबों को नारदजी ने देखा ॥५॥

उवाच चाथ हर्यश्वाः कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः । अदृष्ट्वाऽन्तं भुवो यूयं बालिशा बत पालकाः ॥६॥

अन्वयः— अथ उवाच च हर्यश्वाः पालका यूयं बतबालिशाः भुवः अन्तम् अदृष्ट्वा कथं स्रक्ष्यथ ॥६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् वे उन सबों के सन्निकट आकर कहे कि हर्यश्वो तुम लोग पालक होकर भी मूर्ख हो । पृथिवी का अन्त देखे बिना सृष्टि कैसे करोगे ॥६॥

भावार्थ दीपिका

अहो कष्टं मोक्षमार्गाधिकारिणः सन्त एते प्रवृत्तिनिष्ठैः कर्मभिर्नश्येरन्निति कृपया तान्निगूढार्थैर्वाक्यैरुपदिशति स्म ।

तदाह- उवाचेति चतुर्भिः । पालकाः सन्तोऽपि बालिशा अज्ञा यूयं कथं प्रजाः स्रक्ष्यथ । बतेति खेदे । बालका इति पाठे बालिशत्वे हेतुः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने सोचा कि यह तो अत्यन्त कष्ट का विषय है । ये सभी तो मोक्ष के अधिकारी है । अतएव प्रवृत्ति मार्ग में लगे हुए इन सबों का तो कर्मों को करने से तो नाश हो जायेगा । अतएव कृपा पूर्वक उन सबों को गूढ अर्थ वाले वाक्यों के द्वारा उपदेश दिए । उन सबों को उवाच इत्यादि चार श्लोकों से उपदेश दिया । यद्यपि तुमलोग पालक हो फिर भी मूर्ख हो । जब तुमलोगों ने पृथिवी का अन्त ही नहीं देखा तो सृष्टि कैसे करोगे। बत यह अव्यय खेदार्थक है । जहाँ बालकाः पाठ है वहाँ तो उन सबों के मूर्खत्व का हेतु होगा ।।६।।

तथैकपुरुषं राष्ट्रं बिलं चादृष्टनिर्गमम् । बहुरूपां स्त्रियं चापि पुमांसं पुंश्चलीपतिम् ।।७।।
नदीमुभयतोवाहां पञ्चपञ्चाद्भुतं गृहम् । क्वचिद्धंसं चित्रकथं क्षौरपव्यं स्वयं भ्रमिम ।।८।।
कथं स्वपितुरादेशमविद्वांसो विपश्चितः । अनुरूपमविज्ञाय अहो सर्गं करिष्यथ ।।९।।

अन्वयः— एक पुरुषं राष्ट्रं, अदृष्टनिर्गमम् बिलम्, बहुरूपां स्त्रियम्, पुंश्चलीपतिं पुमांसम्, उभयतो वाहांनदीम्, पञ्चपञ्चाशदभूतं गृहम्, चित्रकथं क्वचिद् हंसम् । क्षौरपब्यं स्वयं भ्रमिम्, अहो अविद्वांसः विपश्चितः स्वपितुः आदेशम् अनुरूपम् अविज्ञाय अहो सर्गं करिष्यथ ।।७-९।।

अनुवाद— एक ऐसा देश है जिसमें एक ही पुरुष है, एक ऐसा बिल है जिससे बाहर निकलने का मार्ग नहीं है, एक ऐसी स्त्री है जो बहुरूपिणी है, एक ऐसा पुरुष है जो व्यभिचारिणी का पति है । एक ऐसी नदी है जो आगे पीछे दोनों ओर बहती है, एक ऐसा विचित्र घर है जो पच्चीस पदार्थों से बना है । एक ऐसा हंस है जिसकी विचित्र कहानी है । एक ऐसा चक्र है जो छूरे और वज्र से बना है और अपने आप घूमता रहता है। मूर्ख हर्यश्वरों तुमलोग अपने सर्वज्ञ पिता के उचित आदेश को समझे बिना तथा उपर्युक्त वस्तुओं को देख नहीं लोगे तब तक उनकी आज्ञा के अनुसार किस तरह सृष्टि करोगे ।।७-९।।

भावार्थ दीपिका

एक एव पुरुषो यस्मिंस्तद्राष्ट्रमदृष्ट्वेत्यनुषङ्गः । बिलं चेत्यादिद्वितीयान्तानामविज्ञाय कथं सर्गं करिष्यथेति तृतीयेनान्वयः। पञ्चपञ्चानां पञ्चविंशतेरद्भुतं गृहम् । क्षौरपव्यं क्षुरैः पविभिर्वज्रैश्च निर्मितमिवातितीक्ष्णं दृढं चेत्यर्थः । स्वयं स्वतन्त्रम् । भ्रमिं भ्रमणस्वभावम् । विपश्चितः सर्वज्ञस्य स्वपितुरादेशमात्मनोऽनुरूपमविद्वांसोऽजानन्तः पूर्वोक्तं चैकपुरुषं राष्ट्रमित्याद्यविज्ञायाहो कथं सर्गं करिष्यथेत्यन्वयः ।।७-९।।

भाव प्रकाशिका

एक ही पुरुष वाले राष्ट को देखे बिना, इस तरह सर्वत्र अन्वय होगा । एक ऐसा बिल है जिससे निकलने का मार्ग नहीं है, इत्यादि से लेकर जितने भी द्वितीयान्त पदार्थ हैं उन सबों को जाने बिना कैसे सृष्टि करोगे, इस तरह नवें श्लोक के साथ अन्वय है । पच्चीस पदार्थों से निर्मित अद्भुत गृह । क्षुरे तथा व्रज से बने हुए के समान अत्यन्त तीब्र और सुदृढ स्वयं स्वतन्त्र तथा स्वभाव से ही घूमते रहने वाले चक्र को । अपने सर्वज्ञ पिता के आदेश को जो तुमलोगों के अनुसार है उस अपने पिता के आदेश को नहीं जानने वाले, तथा पूर्वोक्त पुरुष वाले राष्ट्र को जाने बिना तुमलोग कैसे सृष्टि करोंगे।।७-९।।

श्रीशुक उवाच

तन्निशम्याथ हर्यश्वा औत्पत्तिकमनीषया । वाचः कूटं तु देवर्षेः स्वयं विममृशुर्धिया ।।१०।।

अन्वयः— अथ तत् निशम्य, औत्पत्तिक मनीषया, देव वाचः कूटं तु स्वयं धिया विममृशुः ।।१०।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् नारदजी के बातों की पहेली का जन्म से ही अत्यन्त बुद्धिमान् हर्यश्वगण अपनी ही बुद्धि से विचार करने लगे ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

वाचः कूटं परोक्षवादेनार्थान्तरमिव प्रतीयमानं वचनम् । औत्पत्तिकी सहजा मनीषा विचारशक्तिर्यस्यास्तया धिया स्वयमेव विममृशुर्विचारितवन्तः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

वाणी की पहली जो परोक्ष वाद होने के कारण जो अर्थान्तर के समान प्रतीत हो रहे थे अपनी स्वाभाविक बुद्धि के द्वारा स्वयं विचार करने लगे ।।१०।।

भूः क्षेत्रं जीवसंज्ञं यदनादिनिजबन्धनम् । अदृष्ट्वा तस्य निर्वाणं किमसत्कर्मभिर्भवेत् ।।११।।

अन्वयः— जीवसंज्ञं भूः क्षेत्रं यत् अनादि निजबन्धनम्, तस्य निर्वाणम् अदृष्टवा असत् कर्मभिः किम् भवेत् ।।११।।

अनुवाद— नारदजी के कहने का अभिप्राय है कि यह लिङ्ग शरीर जिसे जीव कहते हैं वही पृथिवी है। यह आत्मा का अनादि बन्धन है। उसका अन्त अर्थात् नाश देखे बिना मोक्ष के लिए अनुपयोगी इन असत् कर्मों में लगे रहने से क्या लाभ है ?।।११।।

भावार्थ दीपिका

नारदोक्तदशवाक्यानां तैर्विमृश्य निर्णीतानर्थानाह दशभिः । अदृष्ट्वाऽन्तं भुव इत्यत्र भूशब्दार्थमाह-भूरिति । क्षेत्रं तच्चात्र जीवसंज्ञं लिङ्ग शरीरम् यन्निजबन्धनमात्मनो बन्धकारणम् । अन्तशब्दार्थमाह । निर्वाणं नाशम् । असद्भिर्मोक्षानुपयोगिभिः कर्मभिः किं भवेन्न किमपि ।।११।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी के दश वाक्यों का विचार करके उसके निर्णीत अर्थ को शुकदेवजी ने दश श्लोकों से कहा **अदृष्ट्वान्तं भुवः** भू शब्द का अर्थ यह जीव संज्ञक लिङ्ग शरीर पृथिवी है। यही आत्मा के बन्धन का कारण है अन्त शब्द का अर्थ है उसका नाश उसको जाने बिना मोक्ष के लिए असत् अर्थात् अनुपयोगी कर्मों को करने से कौन सा लाभ है ? कुछ भी नहीं ।।११।।

एक एवेश्वरस्तुर्यो भगवान्स्वाश्रयः परः । तमदृष्ट्वाऽभवं पुंसः किमसत्कर्मभिर्भवेत् ।।१२।।

अन्वयः— ईश्वरः एक एव तुर्यः भगवान् स्वाश्रयः परः तम् अभवम् अदृष्टवा असत् कर्मभिः पुंसः किं भवेत् ।।१२।।

अनुवाद— ईश्वर एक है। वह जाग्रत स्वप्न तथा सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं से और उनके अभिमानियों से भिन्न तथा उनका साक्षी तुरीय है। यही सबका आश्रय है, उस प्रकृति आदि से परे नित्यमुक्त परमात्मा को देखे बिना, श्रीभगवान् को असमर्पित कर्मों को करने से कौन सा लाभ है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

एकपुरुषमित्यस्यार्थमाह-एक एवेति । तुर्यः सर्वसाक्षी । स्वाश्रयः स्वाधारः । अभवं नित्यमुक्तम् । असद्भिरीश्वरासमर्पितैः कर्मभिः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

तथैकं पुरुष्म् इत्यादि श्लोक का अर्थ बतलाते हैं तुर्य पद का अर्थ है, जाग्रत् स्वप्न तथा सुषुप्ति तीनों

का साक्षी, स्वाश्रयः का अर्थ है सबों का आश्रय, अभव अर्थात् नित्यमुक्त परमात्मा एक है । उनका साक्षात्कार किए बिना मोक्ष के लिए अनुपयोगी कर्मों को करने से क्या लाभ है ?॥१२॥

पुमान्नैवैति यद्गत्वा बिलस्वर्गं गतो यथा । प्रत्यग्धामाऽविद इह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१३॥

अन्वयः— विल स्वगं गतो यथ यद्गत्वापुमान् न अवैति प्रत्यक् धाम अविदः इह असत् कर्मभिःकिं भवेत् ॥१३॥

अनुवाद— जिस तरह विल स्वर्ग (पाताल में) गया हुआ मनुष्य वहाँ से नहीं लौट पाता है उसी तरह जीव जिसको प्राप्त करके पुनः संसार में नहीं लौट पाता है, जो स्वयं प्रकाश है, उस परमात्मा को जाने बिना मोक्ष के लिए अनुपयोगी इन कर्मों को करने से क्या लाभ हैं ?॥१३॥

भावार्थ दीपिका

बिलं चादृष्टनिर्गममित्यस्यार्थमाह-पुमान् यद्गत्क्ष प्राप्य बिलस्वर्गं पातालं गत इव नैवैति नावर्तते तत् प्रत्यग्धाम ज्योतीरूपं ब्रह्म । अविदोऽविदुषः असद्भिर्नश्वरस्वर्गादिसाधनैः कर्मभिः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

बिलं चादृष्टनिर्गमम् का अर्थ बतलाते हैं जीव जिस परमात्मा को प्राप्त करके पुनः इस संसार में उसी तरह नहीं लैटता है जिस तरह पाताल में गया हुआ मनुष्य पुनः नहीं लौटता है । उस प्रकार के ब्रह्म को जाने बिना अज्ञानी पुरुष को मोक्ष के लिए अनुपयोगी कर्मों को करने से कौन सा लाभ है ?॥१३॥

नानारूपात्मनो बुद्धिः स्वैरिणीव गुणान्विता । तन्निष्ठामगतस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१४॥

अन्वयः— आत्मनः बुद्धिः स्वैरिणीइव, गुणान्विता बहुरूपिणी, तन्निष्ठाम् अगतस्य इह असत् कर्मभिः किं भवेत्॥१४॥

अनुवाद— अपनी बुद्धि ही अनेक रूपों वाली है, यह व्यभिचारिणी स्त्री के समान सत्त्व, रजस एवं तमस गुणों को धारण करने वाली है । उसके नाश (निष्ठा) को जाने बिना मोक्ष के लिए उपयोगी कर्मों को करने से क्या लाभ है ?॥१४॥

भावार्थ दीपिका

बहुरूपां स्त्रियमित्यस्यार्थमाह-नानारूपेति । स्वैरिणीव पुंश्चलीव विमोहकै रजआदिगुणैरन्विता । तन्निष्ठां तस्या अवसानं विवेकमगतस्याप्राप्तस्य । असद्भिरशान्तैः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

वहुरूपां स्त्रियम् इसका अर्थ बतलाते है यह अपनी बुद्धि ही अनेक रूपों वाली व्यभिचारिणी स्त्री के समान हैं । यह मोहित करने वाले सत्त्व आदि गुणों से युक्त होती है । उसकी निष्ठा अर्थात् उसका नाश जाने बिना अशान्त कर्मो के करने से कौन सा लाभ है ?॥१४॥

तत्सङ्गभ्रंशितैश्वर्यं संसरन्तं कुभार्यवत् । तद्गतीरबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१५॥

अन्वयः— तत्सङ्ग भ्रंशि तैश्वर्य संसरन्तं कुमार्यवत् तद्गतिः अबुधस्य इह असत् कर्मभिः किं भवेत् ॥१५॥

अनुवाद— यह बुद्धि कुलटा स्त्री के समान है । इसके ही संयोग से इस पुरुष का ऐश्वर्य विनष्ट हो गया है । इसकी स्वतंत्रता विनष्ट हो गयी है । कुलटा स्त्री के पति के समान अनेक योनियों में भटक रहा है । इस बुद्धि की गति के जाने बिना इस विवेक रहित कर्मों को करने से क्या होगा ?॥१५॥

भावार्थ दीपिका

पुमांसं पुंश्चलीपतिमित्यस्यार्थमाह । तस्याः सङ्गेन भ्रंशितमैश्वर्यं स्वातन्त्र्यं यस्य । कुत्सिता भार्या यस्य तद्वत् तस्या गतीः सुखदुःखलक्षणाः । संसरन्तं गच्छन्तं जीवमबुधस्याजानतः । असद्भिबुद्ध्यादिविवेकप्राप्तैः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

पुमांसं पुश्चली पतिम् का अर्थ श्रीशुकदेवजी बतलाते हैं । उस कुलटा नारी के समान बुद्धि के ही सङ्ग के कारण पुरुष का स्वातन्त्र्य रूप ऐश्वर्य विनष्ट हो गया है । जिस तरह कुलटा नारी का पति होता है उसी तरह उस बुद्धि की जो सुख दुःख रूपी गति (चाल है) को जाने बिना अविवेक रूप कर्मों को करने से कौन सा लाभ है ?॥१५॥

सृष्ट्ययप्ययकरीं मायां वेलाकूलान्तवेगिताम् । मत्तस्य तामविज्ञस्य किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१६॥

अन्वयः— सृष्ट्यप्ययकरीं मायां बेलाकूलान्तवेगिताम् ताम् अविज्ञस्य मत्तस्य असत् कर्मभिः किं भवेत् ॥१६॥

अनुवाद— माया ही दोनों ओर बहने वाली नदी है, यही सृष्टि भी करती है और प्रलय भी करती है । जो लोग इससे निकलने के लिए तपस्या विद्या आदि तटका सहारा लेते हैं, उनको रोकने के लिए यह क्रोध अहङ्कार आदि के रूप में और अधिक वेग से प्रवाहित होने लगती है । जो पुरुष उसके वेग से विवश एवं अनभिज्ञ है, वह इन मायिक कर्मों को करके कौन सा लाभ उठायेगा ?॥१६॥

भावार्थ दीपिका

नदीमुभयतोवाहामित्यस्यार्थमाह । सृष्ट्यप्ययौ करोतीत्युभयतःप्रवाहो दर्शितः । बेला कूलं प्रवाहपतितानां निर्गमस्थानं तपोविद्यादि तस्यान्ते समीपे वेगितां निर्गमप्रतिबन्धाय क्रोधाहंकरादिभिः । कृतवेगाम् । मत्तस्य तद्वेगेन विवशस्य । अतएव तां तथा भूतामविज्ञस्याविचारयतः । असद्भिर्मायिकैः । यद्वा बेलाकूलं समुद्रस्य व्यवहारस्थानं तस्य समीपे समुद्रवृद्धिह्रासाभ्यां यथोभयतोऽन्तर्बहिः कृतवेगा नदी भवत्येवं समुद्रतुल्यस्यात्मनो व्यवहारस्थाने देहे जन्ममरणादिभिः कृतवेगामित्यर्थः । वेगिनीमिति पाठे वेगवतीम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

नदीमुभयतो बाहाम् की व्याख्या करते है यह माया ही दोनों ओर बहने वाली नदी है । यह सृष्टि भी करती है भी संहार करती है इस तरह इसका दोनों ओर प्रवाह है । इस नदी में गिरे हुए लोग जो तपस्या तथा विद्या आदि का सहारा लेते है तो उनके समीप में यह क्रोध अहङ्कार आदि के रूप में और वेग से प्रवाहित होने लगती है । उसके वेग से विवश एवं अनभिज्ञ लोग जो उसके स्वरूप का विचार नहीं करते है, उनके इन मायिक कर्मों को करने से कौन सा लाभ है ? अथवा समुद्र के तट जहाँ पर व्यवहार किया जाता है उसके समीप में बहने वाली नदी जो समुद्र के बढने पर बढ़ती है और घटने पर घटती हैं, वह आगे-पीछे दोनों ओर वेग सम्पन्न नदी होती है । उस तरह समुद्र के समान आत्मा का व्यवहार स्थान जो देह उसमें जन्म मत्वा रूपी वेग वाली जो माया है उसको जाने बिना इस मायिक कर्मों को करने से क्या लाभ है ? वेगिनी पाठ के होने पर अर्थ होग वेग से युक्त ॥१६॥

पञ्चविंशतितत्त्वानां पुरुषोऽद्भुतदर्पणम् । अध्यात्ममबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१७॥

अन्वयः— पञ्चविंशतितत्त्वानां पुरुषः अद्भुतदर्पणम् अध्यात्मम् अबुधस्या इह किम् असत् कर्मभिः भवेत् ॥१७॥

अनुवाद— पच्चीस तत्त्व (चतुर्विंशति तत्त्वात्मिका प्रकृति और (जीवात्मा) ही एक अद्भुत गृह है । पुरुष (अन्तर्यामी) ही उसका अद्भुत आश्चर्य मय आश्रय है । यह सम्पूर्ण कार्य कारणात्मक जगत् का अधिष्ठाता है । उसके जाने बिना मिथ्या स्वातन्त्र्य प्रदान करने वाले कर्मों को करने से कौन सा लाभ है ?॥१७॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चपञ्चेत्यस्यार्थमाह । पञ्चविंशतितत्त्वानां पुरुषोऽन्तर्यामी । अद्भुतदर्पणमाश्चर्यरूपं आश्रयः । अध्यात्मं कार्यकारणसङ्घाताधिष्ठातारम् । तमबुधस्य । असद्भिर्मिथ्यास्वातन्त्रयकृतैः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

पञ्च पञ्च इसका अर्थ बतलाते हैं पञ्चीस तत्त्वों का पुरुष (अन्तर्यामी) है । वही अद्भुत अर्थात् आश्चर्यमय दर्पण अर्थात् आश्रय है । उस कार्य एवं कारण वर्ग के अधिष्ठाता पुरुष को जाने बिना मिथ्यास्वातन्त्र्य प्रदान करने वाले कर्मों से कौन सा लाभ है ?॥१७॥

ऐश्वरं शास्त्रमुत्सृज्य बन्धमोक्षानुदर्शनम् । विविक्तपदमज्ञाय किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१८॥

अन्वयः— ऐश्वरं शास्त्रम् बन्धमोक्षानुदर्शनम् उत्सृज्य विविक्तपदमज्ञाय असत् कर्मभिः किम् भवेत् ॥१८॥

अनुवाद— परमात्मा के स्वरूप का निरूपण करने वाला शास्त्र नीर क्षीर विवेकी हंस के समान है । वह बन्ध एवं मोक्ष को अलग-अलग करके बतलाने वाला है । उस अध्यात्म शास्त्र रूप हंस का परित्याग करके उसको जाने बिना बहिर्मुख बनाने वाले कर्मों को करने से कौन सा लाभ है ?॥१८॥

भावार्थ दीपिका

क्वचिद्धंसमित्यस्यार्थमाह । ऐश्वरमीश्वरप्रतिपादकम् । विविक्तं पदं चिज्जडरूपं वस्तु येनेति । हंसपदव्याख्यानम् बन्धमोक्षावनुदर्शयतीति तथा। अनेन चित्राः कथा यस्येति व्याख्यातम् । तदुत्सृज्यमामभ्यस्य अज्ञायाविदुषः । असद्भिर्बहिर्मुखैः॥१८॥

भाव प्रकाशिका

क्वचिद्धंसम् इत्यादि श्लोक का अर्थ बतलाते है । परमात्मा के स्वरूप का प्रतिपादन करने वाला शास्त्र नीर क्षीर विवेकी हंस के समान है । वह जड़ एवं चेतन के स्वरूप को पृथक्-पृथक् करके निरूपण करता है वह बन्ध एवं मोक्ष के स्वरूप को निरूपित करता है । इस तरह से विचित्र कथा वाले शास्त्र को जाने बिना बहिर्मुख कर्मो को करने से क्या लाभ है ?॥१८॥

कालचक्रं भ्रमिस्तीक्ष्णं सर्वं निष्कर्षयज्जगत् । स्वतन्त्रमबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१९॥

अन्वयः— कालचक्रं भ्रमिः तीक्ष्णं सर्वं जगत् निष्कर्षयन् स्वतन्त्रम् अबुधस्य इह असत् कर्मभिः किं भवेत् ॥१९॥

अनुवाद— काल ही एक चक्र हैं यह छरे और वज्र के समान तीक्ष्ण है । यह सम्पूर्ण जगत् को अपनी ओर खींच रहा है । इसको कोई भी नहीं रोक सकता है । यह स्वतन्त्र है । इस बात को जाने बिना अनित्य फल को प्रदान करने वाले सकाम कर्मों को करने से कौन सा लाभ है ?॥१९॥

भावार्थ दीपिका

क्षौरपव्यमित्यस्यार्थमाह-कालचक्रमिति । भ्रमिर्भ्रमणात्मकम् । तीक्ष्णमिति निष्कर्षयदिति च क्षौरपव्यपदं व्याख्यातम्। तदबुधस्यात एव फलस्य नित्यबुद्ध्यद्धा काम्यकर्मानुष्ठाने वैगुण्यबाहुल्यादसद्भिः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में क्षौर पव्यम् इत्यादि की व्याख्या की जा रही है काल ही एक चक्र हैं वह निरन्तर घूमता रहता है । वह अत्यन्त तीक्ष्ण है । तथा सबों को अपनी ओर खींच रहा है । क्षौरपव्य पद की व्याख्या की जा चुकी है कि वह छुरे और वज्र से निर्मित होने के कारण अत्यन्त सुदृढ है । उसको जाने बिना सकाम कर्मों को करने से प्राप्त होने वाले फल को नित्य फल समझकर कर्मों को करने से क्या लाभ है ? क्योंकि कर्मों को करने में अनेक प्रकार के दोष है ॥१९॥

शास्त्रस्य पितुरादेशं यो न वेद निवर्तकम् । कथं तदनुरूपाय गुणविश्रम्भ्युपक्रमेत् ॥२०॥

अन्वयः— शास्त्रस्य पितुः गुणनिवर्तकम् आदेशम् यो नवेद कथं तदनुरूपाय गुण विश्रम्भी उपक्रमेत् ॥२०॥

अनुवाद— शास्त्र ही पिता, दूसरा जन्म शास्त्र के द्वारा ही होता है । उसका आदेश कर्मों में लगाना नहीं

है अपितु उनसे निवृत्त होना है । इस बात को जो नहीं जानता है वह गुणमय शब्द आदि पर ही विश्वास कर लेता है । वह कर्मों से निवृत्त होने की आज्ञा का पालन कैसे कर सकता है ?॥२०॥

भावार्थ दीपिका

स्वपितुरादेशमित्यस्यार्थमाह । शास्त्रस्य स्वपितुर्द्वितीयजन्महेतोः । तदनुरूपाय निवृत्त्यनुरूपाय । निवर्तकमादेशं यो न वेद स कथं गुणविश्रम्भी गुणमयप्रवृत्तिमार्गविश्वासवान्सन्नुपक्रमेत्सृष्ट्यादौ प्रवर्तेत । 'मोक्षेशब्रह्मबुद्धीनां जीवमायान्तरात्मनाम्। शास्त्रकालोपदेशानामज्ञाने किमु कर्मभिः ।' इति वाचः कूटसंग्रहश्लोकः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में **स्वपितुरादेशम् इत्यादि** श्लोक का अर्थ बतलाया गया है शास्त्र ही पिता है, क्योंकि वही द्वितीय जन्म का कारण है । उसका निवृति के अनुरूप आदेश को जो नहीं जानता है वह जो व्यक्ति गुणमय प्रवृत्ति में विश्वास करता है वह मोक्ष प्राप्ति के अनुकूल कर्मो से निवृत्त होने की शास्त्रों की आज्ञा का पालन कैसे कर सकता है ? मोक्ष प्राप्ति के अनुकूल परमात्म विषयक ज्ञान वाले, जीव, माया तथा परमात्मा का शास्त्र तथा काल के द्वारा प्रदत्त ज्ञान के विषय से इन मोक्ष विरोधी कर्मों को करने से क्या लाभ है ? यही कूट श्लोक के शब्दों का संक्षिप्त अर्थ है ॥२०॥

इति व्यवसिता राजन् हर्यश्वा एकचेतसः । प्रययुस्तं परिक्रम्य पन्थानमनिवर्तनम् ॥२१॥

अन्वयः— राजन् एकचेतसः हर्यश्वाः इति व्यवसिताः तं परिक्रम्य अनिवर्तनम् पन्थानम् प्रययौ ॥२१॥

अनुवाद— राजन् हर्यश्वों ने एक मन से इस अर्थ का निश्चय किया और नारदजी की परिक्रमा करके उसी मोक्षमार्ग के पथिक हो गये जिससे जीव पुनः इस संसार में नहीं आता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

इति व्यवसिता एवं निश्चितवन्तः । ऐकचेतस एकमत्ययुक्ताः । तं नारदं प्रदक्षिणीकृत्यापुनरावृत्तिमार्गं प्रययुः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

हर्यश्वों ने इसी प्रकार से एकमत से निश्चय किया उसके पश्चात् वे नारदजी की परिक्रमा करके निवृत्त मार्ग में प्रवृत्त हो गये ॥२१॥

स्वरब्रह्मणि निर्भातहृषीकेशपदाम्बुजे । अखण्डं चित्तमावेश्य लोकाननुचरन्मुनिः ॥२२॥

अन्वयः— स्वर ब्रह्मणि निर्भात हृषीकेश पदाम्बुजे अखण्डं चित्तम् आवेश्य मुनिः लोकाननुचरत् ॥२२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् नारदजी स्वर ब्रह्म जिसमें प्रतीत होने वाले श्रीभगवान् के चरण कमलों में अखण्ड रूपसे अपने चित्त को अविष्ट करके लोकों में विचरण करने लगे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

निर्भातः साक्षात्कृतो यो हृषीकेशस्तस्य पदाम्बुजे । अनुचरत् अन्वचरदित्यर्थः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

स्वरलहरी में साक्षात् प्रतीत होने वाले श्रीभगवान् के चरणों में अपने चित को अखण्ड रूप से सन्निविष्ट करके नारदजी विचरण करने लगे ॥२२॥

अनुवाद— दक्ष प्रजापति ने जब यह सुना कि मेरे शील गुण सम्पन्न पुत्रों को नारद ने कर्त्तव्यच्युत बना तो वे शोक सन्तप्त हो गये । सच है कि अच्छी सन्तानों का होना भी शोक प्रद होता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

नाशमदर्शनं स्वधर्मभ्रंशं वा । शीलेन शालन्ते शोभन्त इति तथा तेषाम् । को दक्षः । सुप्रजास्त्वं सत्पुत्रवत्त्वम् । शुचां शोकानां स्थानम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

नाश शब्द का अर्थ अदर्शन अथवा अपने धर्म से च्युत होना है । शीलगुण सम्पन्न अपने पुत्रों का नारदजी के द्वारा स्वधर्मभंश सुनकर दक्ष प्रजापति को अत्यन्त शोक हुआ । सत्सन्तान का होना भी शोक प्रद होता है॥२३॥

स भूयः पाञ्चजन्यायामजेन परिसान्त्वितः । पुत्रानजनयद्दक्षः शबलाश्वान्सहस्रशः ॥२४॥

अन्वयः— अजेन परिसान्त्वितः सः दक्षः भूयः पाञ्चजन्यायाम् सहस्रशः शबलाश्वान् पुत्रानजनयत् ॥२४॥

अनुवाद— राजन् ब्रह्माजी के द्वारा सान्त्वना प्राप्त करने के पश्चात् वे दक्ष प्रजापति पुनः पञ्चजनी के गर्भ से हजारों शबलाश्व नामक पुत्रों को उत्पन्न किए ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अजेन ब्रह्मणा । सहस्रशः सहस्रसंख्यान् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

अजेन अर्थात् ब्रह्माजी के द्वारा सहस्रशः अर्थात् हजारों की संख्या में ॥२४॥

तेऽपि पित्रा समादिष्टाः प्रजासर्गे धृतव्रताः । नारायणसरो जग्मुर्यत्र सिद्धाः स्वपूर्वजाः ॥२५॥

अन्वयः— पित्रा प्रजासर्गे पित्रा समादिष्टाः धृतव्रताः ते अपि नारायणसरो जग्मुः यत्र स्वपूर्वजाः सिद्धाः ॥२५॥

अनुवाद— अपने पिता दक्ष प्रजापति की प्रजाओं की सृष्टि करने की आज्ञा प्राप्त करके व्रत धारण करके उसी नारायण सरोवर पर गये जहाँ उन लोगों के बड़े भाई सिद्ध हो गये थे ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः । जपन्तो ब्रह्म परमं तेपुस्तेऽत्र महत्तपः ॥२६॥

अन्वयः— तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूत मलाशयाः ते अत्र परमंब्रह्म जपन्तः महत् तपः तेपुः ॥२६॥

अनुवाद— वे शबलाश्व भी वहाँ जाकर स्नान किए । उस जल से स्नान करने के कारण उनके अन्तःकरण के रागादि दोष विनष्ट हो गये और वे वहीं पर परम ब्रह्म प्रणव (ओम्) का जप करते हुए कठोर तपस्या में लग गये॥२६॥

भावार्थ दीपिका

परमं ब्रह्म प्रणवं वक्ष्यमाणमन्त्रं वा ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

परमं ब्रह्म शब्द के द्वारा प्रणव को अथवा आगे कहे जाने वाले मन्त्र का जप करने लगे ॥२६॥

अब्भक्षाः कतिचिन्मासान्कतिचिद्वायुभोजनाः । आराधयन्मन्त्रमिममभ्यस्यन्त इडस्पतिम् ॥२७॥
ओं नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने । विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥२८॥

अन्वयः— कतिचिन्मासाः अब्भक्षा, कतिचित् वायु भोजनाः ओम् नमो नारायणाय धीमहि विशुद्ध सत्त्वधिष्ण्याय महा हंसा य महात्मने नमः । इमम् मन्त्रम् अभ्यसन्तः इडस्पतिम् आराध्यन् अवर्तन्त इति शेषः ॥२७-२८॥

अनुवाद— कुछ महीनों तक केवल जल पीकर तथा कुछ मासों तक केवल वायु पीकर वे हम नमस्कार पूर्वक ओङ्कार स्वरूप भगवान् नारायण का ध्यान करते हैं जो विशुद्ध चित्त में निवास करते हैं। वे सबों के अन्तर्यामी सर्वव्यापक एवं परमहंस स्वरूप है इस मन्त्र का जप करते हुए मन्त्र प्रतिपाद्य भगवान् नारायण की आराधना किए ॥२७-२८॥

भावार्थ दीपिका

इडस्पतिं वाचां मन्त्राणां पतिं विष्णुमाराधयामासुः। विशुद्धसत्त्वाश्रयाय परमहंसाय नमो धीमहि ॥२७-२८॥

भाव प्रकाशिका

वाणियों एवं मन्त्रों के स्वामी भगवान् विष्णु की आराधना किए जो भगवान् विशुद्ध अन्तःकरण में निवासकरते हैं तथा परमहंस स्वरूप हैं ॥२७-२८॥

इति तानपि राजेन्द्र प्रतिसर्गधियो मुनिः। उपेत्य नारदः प्राह वाचः कूटानि पूर्ववत् ॥२९॥

अन्वयः— हे राजेन्द्र ! इति प्रतिसर्गधियः तान् अपि मुनिः नारदः उपेत्य पूर्ववत् वाचः कूटानि प्राह ॥२९॥

अनुवाद— हे राजेन्द्र परीक्षित् इस तरह से प्रजा की सृष्टि के लिए तपस्या में लगे हुए उन सबों के भी पास आकर नारद मुनि पहले के ही समान कूट वचनों को कहे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिसर्गे धीर्येषां तान्। वाचःकूटानि 'अदृष्ट्वाऽन्तं भुवः' इत्यादीनि पूर्वोक्तानि प्राह ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

उन शबलाश्वों की बुद्धि सृष्टि करने में लगी थी उन सबों के भी पास आकर अदृष्टवान्तःभुवः इत्यादिकूट वचनों के कहे ॥२९॥

दाक्षायणाः संशृणुत गदतो निगमं मम। अन्विच्छतानुपदवीं भ्रातॄणां भ्रातृवत्सलाः ॥३०॥

अन्वयः— हे दाक्षायणाः गदतः मम निगमं संशृणुत। भ्रातृवत्सलाः भ्रातॄणां पदवीम् अन्विक्षत ॥३०॥

अनुवाद— हे दक्ष के पुत्रों तुम लोग मेरे उपदेश को सुनो। तुम लोग अपने भाइयों से प्रेम करते हो, अतएव अपने भाइयों के मार्ग का अनुसरण करो ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

हे दाक्षायणाः, संशृणुतेत्यादिपुनरन्यदपि प्राह। निगममुपदेशम्। अन्विच्छतावलोकयत् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

नारदजी पुनः उन शबलाश्वों के पास आकर कहे, ऐ दक्ष के पुत्रों तुमलोग अपने भाइयों से प्रेम करने वाले हो। तुम लोग मेरे उपदेश को सुनो और अपने भाइयों के मार्ग को देखो (अनुसरण) करो ॥३०॥

भ्रातॄणां प्रायणं भ्राता योऽनुतिष्ठति धर्मवित्। स पुण्यबन्धुः पुरुषो मरुद्भिः सह मोदते ॥३१॥

अन्वयः— यः धर्मवित् भ्राताभ्रातॄणां प्रायणं अनुतिष्ठति सः पुण्यबन्धुः पुरुषः मरुद्भिः सह मोदते ॥३१॥'

अनुवाद— जो धर्म को जानने वाला भाई अपने बड़े भाइयों के मार्ग का अनुसरण करता है, वस्तुतः वही भाई पुण्यवान् पुरुष परलोक में देवगणों के साथ आनन्द का अनुभव करता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

प्रायणं प्रकृष्टं गमनम्। पुण्यमेव बन्धुर्यस्य मरुद्भिर्भ्रातृवत्सलैर्देवैः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

जो अपने बड़े भाई के श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण करता है वह पुण्य पुरुष परलोक में देवताओं के साथ आनन्दानुभव करता है ॥३१॥

एतावदुक्त्वा प्रययौ नारदोऽमोघदर्शनः । तेऽपि चान्वगमन्मार्गं भ्रातृणामेव मारिष ॥३२॥

अन्वयः— हे मारिष अमोघ दर्शनः नारदः एतावदुक्त्वा प्रययौ । ते अपि च भ्रातृणाम् एव मार्गम् अन्वगमन् ॥३२॥

अनुवाद— आर्य पुरुष राजा परीक्षित् जिनका दर्शन कभी निष्फल नहीं होता वे देवर्षि नारद शवलाश्वों को इस प्रकार का उपदेश देकर वहाँ से चल गये । वे शवलाश्व भी अपने बड़े भाइयों के ही मार्ग के पथिक हो गये॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अमोघं दर्शनं यस्य । हे मारिष आर्य ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

हे आर्यजन मार्गानुयायी परीक्षित जिनका दर्शन कभी विफल नहीं होता वे नारद जी शवलाश्वों को इस प्रकार का उपदेश देकर चले गये ॥३२॥

सध्रीचीनं प्रतीचीनं परस्यानुपथं गताः । नाद्यापि ते निवर्तन्ते पश्चिमा यामिनीरिव ॥३३॥

अन्वयः— सध्रीचीनं प्रतीचीनं परस्य अनुपथं गताः ते पश्चिमाः यामिनीः इव ते अद्यापि न निवर्तन्ते ॥३३॥

अनुवाद— प्रत्यग्वृत्ति के द्वारा ही जिनकी प्राप्ति होती है उन परमात्मा की प्राप्ति के अनुकूल सभी मार्ग के अनुयायी बने हुए वे शवलाश्व भी अभी तक उसी प्रकार नहीं लौटे जिस तरह बीती हुई रात्रि कभी भी लौट कर नहीं आती है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

सध्रीचीनं समीचीनम् । प्रतीचीनं प्रत्यग्वृत्तिलभ्यम् । अनुपथमनुगुणपन्थानम् । पश्चिमा यामिनीर्गता रात्र्य इव ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

जिसकी प्राप्ति प्रत्यग्वृत्ति के ही द्वारा होती है उस परमात्मा की प्राप्ति के अनुकूल मार्ग के पथिक वने हुए वे शबलाश्व आज तक उसी प्रकार नहीं लौटे हैं जिस तरह बीति हुई रात्रि कभी लौट कर नहीं आती है ॥३३॥

एतस्मिन्काल उत्पातान्बहून्पश्यन्प्रजापतिः । पूर्ववन्नारदकृतं पुत्रनाशमुपाशृणोत् ॥३४॥

अन्वयः— एतस्मिन् काले ब्रहून उत्पातान् पश्यन् प्रजापतिः पूर्ववत् नारदकृतम् पुत्रनाशम् उपाशृणोत् ॥३४॥

अनुवाद— उस समय दक्ष प्रजापति ने बहुत से अपशकुनों को देखा इसी समय उन्होंने यह भी सुना कि पहले के ही समान नारदजी ने उनके पुत्रों को कर्तव्यच्युत कर दिया है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

चुक्रोध नारदायासौ पुत्रशोकविमूर्च्छितः । देवर्षिमुपलभ्याह रोषाद्विस्फुरिताधरः ॥३५॥

अन्वयः— पुत्रशोक विमूर्छितः असौ नारदाय चुक्रोध रोष विस्फुरिताधरः देवर्षिम् उपलभ्य आह ॥३५॥

अनुवाद— पुत्रों के शोक से अत्यन्त संतप्त दक्षप्रजापति को नारदजी पर बड़ा क्रोध हुआ । नारदजी के मिलने पर क्रोध के कारण उनके ओष्ठ फड़कने लगे । उन्होंने नारदजी को कहा ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

पुत्राणां पारमहंस्यनिष्ठामुपश्रुत्य दक्षोऽपि प्रायशो विरक्तः स्वादिति तदनुग्रहार्थं देवर्षिस्तत्पार्श्वं गतस्तदा तमुपलभ्य दक्ष आह ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी यह सोचकर कि अपने पुत्रों की पारमहंस्य निष्ठा को सुनकर हो सकता है कि दक्ष भी संसार से विरक्त बन जायँ अतएव उन पर कृपा करने के लिए नारदजी जब उनके पास गये तो दक्ष प्रजापति ने कहा ।।३५।।

दक्ष उवाच

अहो असाधो साधूनां साधुलिङ्गेन नस्त्वया । असाध्वकार्यर्भकाणां भिक्षोर्मार्गः प्रदर्शितः ।।३६।।

अन्वयः— अहो असाधो साधूनां साधुलिङ्गेन त्वया नः अर्भकाणाम् असाधुकरि भिक्षोः मार्गः प्रदर्शितः ।।३६।।

दक्ष प्रजापति ने कहा

अनुवाद— अरे दुष्ट तुमने साधुओं का वेष बना रखा है । हमारे भोले पुत्रों को भिक्षुओं का मार्ग दिखाकर तुमने मेरा बड़ा अपकार किया है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

साधोरिव लिङ्ग वेषो यस्य तेन त्वया नोऽस्मदीयानामर्भकाणामसाध्वकारि कृतम् । तदेवाह-साधूनां स्वधर्मे प्रवृत्तानां भिक्षोर्यो मार्गः स प्रदर्शितः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

साधु के समान वेष बनाकर तुमने हमारे पुत्रों का बहुत बड़ा अपकार किया है । अपने धर्म में लगे रहने वाले मेरे पुत्रों को भिक्षुकों का मार्ग दिखाकर अपकार किया है ।।३६।।

ऋणैस्त्रिभिरमुक्तानाममीमांसितकर्मणाम् । विघातः श्रेयसः पाप लोकयोरुभयोः कृतः ।।३७।।

अन्वयः— त्रिभिः ऋणैः अमुक्तानां अमीमांसित कर्मणाम् हे पाप उभयोः लोकयोः श्रेयसः विघातः कृतः ।।३७।।

अनुवाद— जिन सबों ने ब्रह्मचर्य के द्वारा ऋषिऋण को; यज्ञों के द्वारा देवऋण को, तथा पुत्रों की द्वारा पितृऋण को नहीं उतारा है, उन सबों ने अभी कर्म फलों की नश्वरता को भी नहीं जाना था, इस तरह हे पापी तुमने उन सबों को दोनों लोकों को विनष्ट कर दिया है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

ननु संन्यासिनो मार्गः साधुरेव, मोक्षहेतुत्वात् । सत्यम्, ऋणत्रयापाकरणं बिना तु महाननर्थ एवेत्याह-ऋणैरिति । 'जायमानो वै ब्रह्मणस्त्रिभिर्ऋणवाञ्जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः एष वा अनृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारीवासि' इति श्रुतेः । ऋणैरमुक्तानाम् । न मीमांसितानि विचारितानि कर्माणि यैः । तेषां तावदृणविमोको नास्ति । तदुत्तरकालभावित्वाच्च पुत्रोत्पादनयज्ञानुष्ठानयोरभावेन पितृदेवर्षिऋणाद्विमुक्तिश्च नास्ति । अतो हे पाप, विषयभोगत्यागादिह लोके श्रेयसो विघातः कृतः । मोक्षेनधिकारित्वाच्च परलोकेऽपि श्रेयसो विघातः कृत इत्यर्थः । तथाच मनुः— 'ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् । अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ।। इति।।३७।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि संन्यासियों का मार्ग तो मोक्षप्रद होता है, ते यह भी सत्य है किन्तु वह तीनों ऋणों के अपाकरण के बिना अनर्थकारी है । श्रुति भी कहती है— **जायमानो हि ब्रह्माणः त्रिभिऋणवान् जयते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यः,**

यज्ञेन, देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः एष वा अनृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारीवानसि । जन्म के साथ ही ब्राह्मण तीन ऋणों से ऋणी होता है । ब्रह्मचर्य के द्वारा ऋषियों के ऋण से, यज्ञ के द्वारा देवताओं के ऋण से तथा पुत्रोंत्पादन के द्वारा पितरों के ऋण से वह मुक्त होता है, जो पुत्र वाला यज्ञ करता है वह ब्रह्मचारी ही है । मेरे पुत्र ऋणों से मुक्त नहीं हुए थे और न तो उन सबों ने कर्म फलों की अनित्यता का विचार ही किया था । अतएव उन सबों की ऋण से मुक्ति नहीं हुई है । संन्यास तो उसके पश्चात् होता है । पुत्रोत्पादन और यज्ञ के अभाव के कारण उन सबों का तीनों ऋण बचा हुआ है । तुमने उन सबों को विषयभोग से वञ्चित करके इस लोक को विनष्ट कर दिया तथा मोक्ष का अधिकारी नहीं होने के कारण परलोक का भी विनाश कर दिया है । मनु महर्षि भी कहते हैं- **ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् । अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो ब्रजत्यधः ।**

अर्थात् तीन ऋणों को उतर करके ही मन को मोक्ष की प्राप्ति में लगना चाहिए जो ऋणों को उतारे बिना मोक्ष प्राप्ति का प्रयास करता है उसका अधः पतन (नरक में गमन) होता है ॥३७॥

एवं त्वं निरनुक्रोशो बालानां मतिभिद्धरेः । पार्षदमध्ये चरसि यशोहा निरपत्रपः ॥३८॥

अन्वयः— एवं त्वं निरनुकोशः बालानां मतिभित् निरषत्रतः यशोहा हरेः पार्षदमध्ये चरसि ॥३८॥

अनुवाद— इस तरह तुम महानिष्ठुर हो बालकों की बुद्धि को बिगाड़ने का काम करते हो । तुम निर्ल्लज हो और श्रीहरि के पार्षदों के बीच में रहकर उनकी कीर्ति को कलङ्कित करने का काम करते हो ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

बालानां मतिं पुत्रादिविषयां भिनत्तीति तथा। एवं निरनुक्रोशो निर्घृणः। हरेर्यशोनाशकः सन् तत्पार्षदानां मध्ये कथं चरसि॥३८॥

भाव प्रकाशिका

तुम अज्ञानियों की पुत्रोत्पादनादि विषयिणी बुद्धि को विनष्ट करने का काम करते हो । अतएव निर्दय हो श्रीहरि के यश का नाश करते हो और श्रीहरि के पार्षदों के बीच में रहा करते हो ॥३८॥

ननु भागवता नित्यं भूतानुग्रहकातराः । ऋते त्वां सौहृदघ्नं वै वैरंकरमवैरिणाम् ॥३९॥

अन्वयः— ननु भागवतानित्यं भूतानुग्रहकातराः सौहृदघ्नं वै, अवैरिणाम् वैरकरंत्वाम् ऋते ॥३९॥

अनुवाद— मैं यह भी जानता हूँ कि श्रीभगवान् के पार्षदगण दुःखी जीवों के दुःख को दूर करने के लिए व्याकुल रहा करते हैं किन्तु प्रेमभाव का विनाश करने वाले तथा जो लोग किसी से वैर नहीं करते हैं, उन लोगें से वैर करने वाले तुमको छोड़कर ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

निर्लज्जत्वमेवाह–नन्विति। ननुं त्वामृते भागवताः सर्वे भूतानुग्रहपरवशास्त्वं तु भूतविप्रियं कुर्वन्कथं न लज्जस इति भावः॥३९॥

भाव प्रकाशिका

यह ठीक है तुमको छोड़कर जितने भी भगवान् के भक्त हैं वे सब जीवों पर कृपा करने के लिए तैयार रहते हैं । तुम तो सबों का अप्रिय कार्य करने वाले हो तुमको लज्जा भी क्यों नहीं आती है ?॥३९॥

नेत्थं पुंसां विरागः स्यात्त्वया केवलिना मृषा । मन्यसे यद्युपशमं स्नेहपाशनिकृन्तनम् ॥४०॥

अन्वयः— यदि केवलिना मृषा त्वया स्नेहपाशनिकृन्तनं उपशमं इत्थं पुसां विरागः न स्यात् केवलिना त्वया मृषा॥४०॥

अनुवाद— तुम यह समझो कि वैरागय से ही स्नेहपाश का बन्धन कटता है तो तुम्हारा यह सोचना ठीक नहीं है क्योंकि तुम्हारे जैसे मिथ्या वैराग्य का स्वांग रचने वाले से किसी को वैराग्य नहीं हो सकता है ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

ननु वैराग्यादुपशमउपशमाच्च भूतस्नेहपाशच्छेदनं भवति, नच विरक्तस्य ऋणत्रयापाकरणमावश्यकम्, 'यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्' 'यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत्' इत्यादिश्रुतेः । अतो वैराग्योपदेशेन तेषां मयानुग्रह एव कृत इति चेत्तत्राह-नेति । यद्यपि त्वमेवं मन्यसे तथपि मृषा केवलिना ज्ञानं विनाऽवधूतवेषेण त्वयेत्थं मतिचालने कृतेऽपि पुंसां विरागो नैव स्यात् । नच विरागं विनोपशमः, नच तेन बिना स्नेहपाशनिकृन्तनमित्यर्थः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि वैराग्य के द्वारा उपशम होता है और उसके द्वारा जीवों के स्नेह पाश का उच्छेद होता है। विरक्त पुरुष के लिए ऋणत्रय का अपाकरण आवश्यक नहीं होता है । श्रुति कहती है— **जिस दिन वैराग्य हो जाय उसी दिन संन्यास ग्रहण कर लेना चाहिए'** दूसरी श्रुति कहती है— **अथवा ब्रह्मचर्य काल से ही संन्यास ग्रहण कर लेना चाहिए ।** अतएव वैराग्य का उपदेश करके मैंने उन सबों पर कृपा ही किया है । ऐसा यदि नारदजी कहें तो ऐसी बात नही हैं । यद्यपि तुम ऐसा मानते हो किन्तु मिथ्या वैराग्य के द्वारा ज्ञान के बिना केवल अवधूत का वेष बना लेने से तुम्हरे द्वारा उन सबों की बुद्धि को कर्तव्य पथ से विचलित किए जाने पर भी वैराग्य नहीं हो सकता है । वैराग्य के बिना उपशम नहीं हो सकता है और उसके बिना स्नेह का बन्धन नहीं कट सकता है ।।४०।।

नानुभूय न जानाति पुमान्विषयतीक्ष्णताम् । निर्विद्येत स्वयं तस्मान्न तथा भिन्नधीः परैः ।।४१।।

अन्वयः— पुमान् विषयान् न अनुभूय विषयतीक्ष्णाताम् न जानाति स्वयं तस्मात् निर्विद्येत तथा परैः भिन्न धीः न।।४१।।

अनुवाद— मनुष्य विषयों का अनुभव किए बिना उन सबों की तीक्ष्णता को नहीं जान सकता है । अतएव विषयों की दुःख रूपता का ज्ञान होने पर स्वयं जैसा वैराग्य होता है वैसा वैराग्य दूसरों के बहकाने से नहीं होता है।।४१।।

भावार्थ दीपिका

इत्थं विरागो न स्यादित्यत्र हेतुमाह-नानुभूय अननुभूय विषयाणां तीक्ष्णतां दुःखहेतुत्वं न जानाति । तस्माद्विषयानुभवेन तीक्ष्णत्वज्ञानात् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से वैराग्य न होने का कारण बतलाते हैं जब तक मनुष्य विषयों की तीक्ष्णता का अनुभव नहीं कर लेता है तब तक उसको विषयों की दुःख हेतुता का ज्ञान नहीं होता । अतएव विषयों का अनुभव होने से ही उनकी तीक्ष्णता ज्ञात होती है ।।४१।।

यन्नस्त्वं कर्मसंधानां साधूनां गृहमेधिनाम् । कृतवानसि दुर्मर्षं विप्रियं तव मर्षितम् ।।४२।।

अन्वयः— यत् त्वं कर्म सन्धानां साधूनां गृहमेधिनाम् दुर्मर्षं विप्रियं कृतवान् असि तव मर्षितम् ।।४२।।

अनुवाद— हमलोग सद्गृहस्थ हैं । अपने धर्म की मर्यादा का पालन करते है । तुमने हमारा पहले जो असह्य अपराध किया था उसको तो मैंने सह लिया था ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

अतस्त्वयास्माकमप्रियमेव कृतं तथापि वयं न कुर्म इत्याह-यदिति । कर्मसंधानां कर्ममर्यादानाम् । कर्तुमन्धानामिति पाठे विप्रियं कर्तुमजानतामित्यर्थः । दुःसहं यत्त्वं कृतवानसि तन्मर्षितं सोढम् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

अतएव तुमने मेरा अपकार ही किया है फिर भी हम तुम्हारा अपकार करते नहीं हैं, कर्ममर्यादा का पालन करने वाले हम लोग किसी का अपकार करना जानते ही नहीं है तुमने जो असह्य अपराध किया था उसको मैंने सहलिया था जहाँ **कर्तुमन्धानाम्** पाठ है वहाँ अर्थ होगा कि हमलोग अपराध करना जानते ही नहीं हैं ।।४२।।

तन्तुकृन्तन यन्नस्त्वमभद्रमचरः पुनः । तस्माल्लोकेषु ते मूढ न भवेद्भ्रमतः पदम् ।।४३।।

अन्वयः— यन्नः त्वं तन्तुकृन्तनः पुनः अभद्रम् अचरः तस्मात् हे मूढ ते लोकेषु भ्रमतः पदम् न भवेत् ।।४३।।

अनुवाद— तुम हमारी वंश परम्परा का उच्छेद करना चाहते हो तुमने पुनः हमारे साथ उसी दुष्टता का आचरण किया । अतएव हे मूर्ख ! तुम हमेशा लोकों में भटकते रहो कहीं एक स्थान पर तुम नहीं रूक सकोगे।।४३।।

भावार्थ दीपिका

तथापि तवाभद्रं भविष्यत्येवेत्याह । तन्तुकृन्तन संतानच्छेदक । यद्यस्मादभद्रं पुत्राणां स्थानभ्रंशमचरस्तत्तस्मात्तव लोकेषु भ्रमतः पदं स्थानं न भवेदिति मृदुच्छलेन शापः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

फिर भी तुम्हारा अकल्याण होगा ही । चूकि तुम मेरे सन्तान का उच्छेद करने वाले हो । अतएव तुमने हमारे पुत्रों का स्थानभ्रंश रूप अपराध किया है अतएव निरन्तर लोकों में विचरण करने वाले तुम्हारे लिए कोई रुकने का स्थान नहीं होगा । यह मृदुता के व्याज से दिया गया शाप है ।।४३।।

श्रीशुक उवाच

प्रतिजग्राह तद्बाढं नारदः साधुसंमतः । एतावान्साधुवादो हि तितिक्षेतेश्वरः स्वयम् ।।४४।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे षष्ठ स्कन्धे नारदशापो नाम पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

अन्वयः— तत् साधुसम्मतः नारदः बाढम् प्रतिजग्राह एतावान् साधुवादो हि ईश्वरः स्वयं तितिक्षेत् ।।४४।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् सन्त शिरोमणि नारदजी ने बहुत अच्छा कहकर दक्ष के शाप स्वीकार कर लिया । साधुता इसी को कहते है कि शक्ति रहने पर भी दूसरे के अपराध को स्वीकार कर लिया जाय ।।४४।।

इस तरह श्रीमद्भगवत महापुराण के छठे स्कन्ध के नारदशाप नामक पाञ्चवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

भावार्थ दीपिका

बाढं तथेति स्वीकृतवान् । ईश्वरोऽपि प्रतिशप्तुं समर्थोऽपि । तितिक्षेत सहेतेति यदेतावानेव ।।४४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठ स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

दक्ष प्रजापति के शाप को नारदजी ने बहुत अच्छा कहकर स्वीकार कर लिया । शाप के बदले में शाप देने का समर्थ होने पर भी उसको सह लेना ही साधुता कहलाती है ।।४४।।

इस तरह श्रीमद्भगवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के पाँचवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।५।।

छठा अध्याय

दक्ष प्रजापति की साठ कन्याओं के वंश का विवरण

श्रीशुक उवाच

ततः प्राचेतसोऽसिक्न्यामनुनीतः स्वयंभुवा । षष्टिं संजनयामास दुहितॄः पितृवत्सलाः ॥१॥

अन्वयः— ततः स्वयम्भुवा अनुनीतः प्राचेतसः असिक्रियाम् षष्टिं पितृवत्सलाः दुहितॄ संजनयामास ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् ब्रह्माजी के द्वारा कहे जाने पर दक्ष प्रजापति ने असिक्नी के गर्भ से अपने पिता से प्रेम करने वाली साठ पुत्रियों को उत्पन्न किया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षष्ठे दक्षेण सृष्टायां कन्याषष्ट्यां प्रकीर्तिताः । पृथग्वंशा यतो जातो विश्वरूपा दितेः सुतात् । नारदात्पुत्राणां नाशमाशङ्कमानो दुहितॄर्जनयामास ॥१॥

भाव प्रकाशिका

छठे अध्याय में दक्ष प्रजापति के द्वारा उत्पन्न की गयी साठ कन्याओं के वंश का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है । जिससे की दिति के पुत्र के विश्वरूप उत्पन्न हुए । नारद से पुत्रों के नाश की शङ्का से दक्ष प्रजापति ने पुत्रियों को उत्पन्न किया ॥१॥

दश धर्माय कायेन्दोर्द्विषट् त्रिणव दत्तवान् । भूताङ्गिरः कृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे तार्क्ष्याय चापराः ॥२॥

अन्वयः— दश धर्माय, कायेन्दोः द्विषट् त्रिणव दत्तवान् भूताङ्गिरः कृशाश्वेम्यः द्वे द्वे तार्क्ष्याय च अपराः ॥२॥

अनुवाद— धर्म को दश, कश्यप को तेरह, चन्द्रमा को सत्ताइस भूत, अङ्गिरा, तथा कृशाश्व इन तीनों को तथा अवशिष्ट चार पुत्रियों को तर्क्ष्यनामधारी कश्यप को प्रदान दक्ष प्रजापति ने कर दिया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

काय कश्यपाय । द्विषट् द्विगुणाः षट्द्वादश यासु ताः, त्रयोदशेत्यर्थः । इन्दोः सोमाय । त्रिणव सप्तविंशतिम् । तार्क्ष्याय नामान्तरं प्राप्ताय कश्यपायैव । अपरा अवशिष्टाश्चतस्रः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

दक्ष प्रजापति ने उनमें से दस पुत्रियों का विवाह धर्म से कर दिया, तेरह पुत्रियों का विवाह कश्यप से कर दिया, सत्ताइस पुत्रियों का विवाह चन्द्रमा से कर दिया दूसरे तार्क्ष्य नामधारी कश्यप महर्षि को अवशिष्ट चार पुत्रियों को दे दिया भूत, अङ्गिरा और कृशाश्व इन प्रत्येक को दो-दो पुत्रियों को दे दिया दक्ष प्रजापति ने ॥२॥

नामधेयान्यमूषां त्वं सापत्यानां च मे शृणु । यासां प्रसूतिप्रसवैर्लोका आपूरितास्त्रयः ॥३॥

अन्वयः— अमूषां सापात्यानां नामधेयानि चमेश्रुणु यासां प्रसूति प्रसवैः त्रयः लोकाः पूरिताः ॥३॥

अनुवाद— हे परीक्षित् इन सबों का उनकी सन्तानों के साथ नाम तुम मुझसे सुनो उन सबों के ही वंश परम्परा से त्रैलोक्य व्याप्त है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

सापत्यानामपत्यसहितानाम् । मे मत्तः शृणु । प्रसूतिप्रसवैः पुत्रपौत्रादिभिः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उन सबों का उनके सन्तानों के साथ नाम तुम मुझसे सुनो । उन सबों के ही पुत्र पौत्रादि से यह तीनों लोक भरा हुआ है ॥३॥

भानुर्लम्बा ककुब्जामिर्विश्वा साध्या मरुत्वती । वसुर्मुहूर्ता सङ्कल्पा धर्मपत्न्यः सुतान् शृणु ॥४॥

अन्वयः— भानुः, लम्बा ककुप्, जामिः विश्वा साध्या, मरुत्वती, वसुः मुहूर्ता सङ्कल्पा धर्मपत्न्यः सुतान् शृणु॥४॥

अनुवाद— भानु, ल्मबा, जामिः विश्वा, साध्या, मरूवती, वसु, मुहूर्ता तथा सङ्कल्पा ये धर्म की दस पतिनयों के नाम हैं अब इनके पुत्रों का नाम सुनो ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

भानोस्तु देवऋषभ इन्द्रसेनस्ततो नृप । विद्योत आसील्लम्बायास्ततश्च स्तनयित्नवः ॥५॥

अन्वयः— हे नृप ! भानोः तु देवऋषयः ततः इन्द्रसेन, लम्बायाः विद्योत आसीत् ततः च स्तनयित्नवः ॥५॥

अनुवाद— राजन् भानु का पुत्र देव ऋषभ था और देवभूषण का पुत्र इन्द्रसेन हुआ । लम्बा का पुत्र विद्योत हुआ और विद्योत के पुत्र मेघगण हुए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

ततो देवऋषभात् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

देव ऋषभ का पुत्र इन्द्रसेन हुआ ॥५॥

ककुभः सङ्कटस्तस्य कीकटस्तनयो यतः । भुवो दुर्गाणि जामेयः स्वर्गो नन्दिस्ततोऽभवत् ॥६॥

अन्वयः— ककुभः सङ्कटः तस्य कीकटः तनयः यत्र भुवो दुर्गाणि जामेयः स्वर्गः ततो नन्दिः अभवत् ॥६॥

अनुवाद— ककुप् के पुत्र सङ्कट हुए उनके पुत्र कीकट हुए और कीकट के पुत्र पृथिवी पर से सभी दुर्गो (किलों) के अभिमानी देवता । जामि के पुत्र का नाम स्वर्ग था स्वर्ग के पुत्र नन्दी हुए ॥६॥

भावार्थ दीपिका

यतः कीकटाद्भुवो दुर्गाणि दुर्गाभिमानिनो देवाः । जामेयो जाम्याः पुत्रः स्वर्गस्ततः स्वर्गान्नन्दिः पुत्रोऽभवत् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

कीकट के पुत्र पृथिवी के सभी दुर्गो (किलों) के अभिमानी देवता हुए जामि के पुत्र का नाम स्वर्ग था और स्वर्ग के पुत्र का नाम नन्दी हुआ ॥६॥

विश्वेदेवास्तु विश्वाया अप्रजांस्तान्प्रचक्षते । साध्यो गणस्तु साध्याया अर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ॥७॥

अन्वयः— विश्वायाः तु विश्वेदेवाः तान् अप्रजान् प्रचक्षते । साध्यायाः साध्यःगणः तत्सुतः अर्थसिद्धिः ॥७॥

अनुवाद— विश्वा के पुत्र विश्वेदेव हुए उन सबों की कोई सन्तान नही है । साध्या के पुत्र साध्यगण हुए और उनके पुत्र अर्थसिद्धि हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तत्सुतः साध्यानां सुतः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

तत् सुतः अर्थात् साध्यों के पुत्र अर्थसिद्धि हुए ॥७॥

मरुत्वांश्च जयन्तश्च मरुत्वत्यां बभूवतुः । जयन्तो वासुदेवांश उपेन्द्र इति यं विदुः ॥८॥

अन्वयः— मरुत्वत्याः मरुत्वान् च जयन्तः च ब भूवतुः । जयन्तः वासुदेवांश यं उपेन्द्र इति विदुः ॥८॥

अनुवाद— मरुत्वती के गर्भ से मरुत्वान् और जय जयन्त नामक दो पुत्र हुए । जयन्त भगवान् वासुदेव के अंश है जिनको लोग उपेन्द्र भी कहते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

मौहूर्तिका देवगणा मुहूर्तायाश्च जज्ञिरे । ये वै फलं प्रयच्छन्ति भूतानां स्वस्वकालजम् ॥९॥

अन्वयः— मुहूर्तायाः च मौहर्तिकाः देवगणाः, जज्ञिरे ये वै स्वस्वकालजम् भूतानां फलं प्रयच्छन्ति ॥९॥

अनुवाद— मुहूर्ता के पुत्र मौहूर्तिक देवगण उत्पन्न हुए ये अपने-अपने समय में लोगों को उनके कर्मानुसार फल प्रदान करते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

सङ्कल्पायाश्च सङ्कल्पः कामः सङ्कल्पजः स्मृतः । वसवोऽष्टौ वसोः पुत्रास्तेषां नामानि मे शृणु॥१०॥

अन्वयः— च सङ्कल्पायाः सङ्कल्पः सङ्कल्पजः कामः स्मृतः । वसोः पुत्राः अष्टौ वसवः तेषांनामानि मे शृणु ॥१०॥

अनुवाद— सङ्कल्पा के पुत्र सङ्कल्प हुए और सङ्कल्प के पुत्र का नाम काम हुआ । वसु के पुत्र आठ वसुगण हुए उन सबों का नाम मुझसे सुनो ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

वसोर्वंशस्य भूयस्त्वादन्ते निर्देशः । मे मत्तः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

वसु का वंश बहुत बड़ा है इसलिए उसका अन्त में निर्देश किया गया है । मैं अर्थात् मुझसे ॥१०॥

द्रोणः प्राणो ध्रुवोऽर्कोऽग्निर्दोषो वसुर्विभावसुः । द्रोणस्याभिमतेः पत्न्या हर्षशोकभयादयः ॥११॥

अन्वयः— द्रोण, प्राण, ध्रुवः, अर्कः अग्निः, दोषः वसुः विभावसुः । दोणस्य अभिमतेः पत्न्याः हर्ष, शोक भयादयः॥११॥

अनुवाद— द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु ये आठ वसुओं के नाम हैं । द्रोण की पत्नी का नाम अभिमति था उसके पुत्र हर्ष, शोक और भय आदि हुए ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अभिमतिर्नाम पत्नी तस्या हर्षादयः पुत्राः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

द्रोण की पत्नी का नाम अभिमति था उसके ही पुत्र हर्ष शोक तथा भय आदि हुए ॥११॥

प्राणस्योर्जस्वती भार्या सह आयुः पुरोजवः । ध्रुवस्य भार्या धरणिरसूत विविधाः पुरः ॥१२॥

अन्वयः— प्राणस्य भार्या ऊर्जस्वती तस्या पुत्राः सह, ओजः पुरोजवः ध्रुवस्य भार्या धरणिः विविधाः पुरः असूत॥१२॥

अनुवाद— प्राण की पत्नी का नाम उर्जस्वती था उसके तीन पुत्र हुए सह, ओज और पुरोजव । ध्रुव की पत्नी का नाम धरणि था उसने अनेक नगरों के अभिमानी देवताओं को जन्म दिया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

सहश्च आयुश्च पुरोजवश्च पुत्राः । पुरः पुराणि ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

ऊर्जस्वती के तीन पुत्र है, सह ऊर्ज और पुरोजव । पुरः अर्थात् नगर ॥१२॥

अर्कस्य वासना भार्या पुत्रास्तर्षादयः स्मृताः । अग्नेर्भार्या वसोर्धारा पुत्रा द्रविणकादयः ॥१३॥

अन्वयः— अर्कस्य भार्या वासना तत्पुत्रा तर्षादयः स्मृताः अग्नेः भार्या वसोर्धारा तस्या पुत्राः दविणकादय अभूवन्॥१३॥

अनुवाद— अर्क की पत्नी का नाम वासना था उसके तर्ष (तृष्णा) आदि पुत्र उत्पन्न हुए । अग्नि की पत्नी का नाम वसोर्धारा है उसके पुत्र द्रविणक आदि हुए ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

स्कन्दश्च कृत्तिकापुत्रो ये विशाखादयस्ततः । दोषस्य शर्वरी पुत्रः शिशुमारो हरेः कला ॥१४॥

अन्वयः— कृत्तिका पुत्रः च स्कन्दः ततः ये विशाखादयः, दोषस्य शर्वरी तस्या पुत्रः हरेः कला शिशुमारः ॥१४॥

अनुवाद— कृत्तिका के पुत्र का नाम स्कन्द है और स्कन्द के पुत्र विशाखा आदि हैं । दोष की पत्नी का नाम शर्वरी है । उसके पुत्र का नाम शिशुमार है । वह श्रीहरि की कला है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

स्कन्दश्च कृत्तिकासुतोऽग्नेः पुत्रः । षाण्मातुर इत्यग्निभूरितिच प्रसिद्धेः । ततः स्कन्दात् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अग्नि की पत्नी कृत्तिका का नाम स्कन्द है और स्कन्द क पुत्र विशाखा आदि हैं ॥१४॥

वसोराङ्गिरसी पुत्रो विश्वकर्माऽऽकृतीपतिः । ततो मनुश्चाक्षुषोऽभूद्विश्वे साध्या मनोः सुताः ॥१५॥

अन्वयः— वसु की पत्नी का नाम आङ्गिरसी है, तस्याः पुत्रः आकृती पतिः विश्वकर्मा, ततः चाक्षुषो मनुः अभूत् मनोःसुताः विश्वे साध्या ॥१५॥

अनुवाद— वसु की पत्नी आङ्गीरसी के पुत्र शिल्पकलाओं के अधिपति विश्वकर्मा हुए । उनकी पत्नी आकृति के पुत्र चाक्षुष मनु हुए । चाक्षुष मनु के पुत्र विश्वेदेव और साध्यगण हुए ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

आकृतीपतिः शिल्पाचार्यः ततो विश्वकर्मणश्चाक्षुषो मनुरासीत् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

विश्वकर्मा की पत्नी आकृती थी । विश्वकर्मा शिल्प कला के अधिपति हुए । विश्वकर्मा के पुत्र चाक्षुष मनु हुए॥१५॥

विभावसोरसूतोषा व्युष्टं रोचिषमातपम् । पञ्चयामोऽथ भूतानि येन जाग्रति कर्मसु ॥१६॥

अन्वयः— विभावसो उषा व्युष्टं, रोचिषम् आतपम् । अथ पञ्चयामः येन भूतानि कर्मसु जाग्रति ॥१६॥

अनुवाद— विभावसु की पत्नी उषा के तीन पुत्र व्युष्ट, रोचिष, आतप । आतप के पुत्र पञ्चयाम (दिन) हुए जिनके के कारण सभी जीव कर्मों में लगे रहते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

विभावसोरुषा नाम भार्या। अथ आतपात्पञ्चयामो दिवसो जातः। अतएव रात्रिस्त्रियामा प्रदोषप्रत्यूषयोर्दिवसस्यावयवत्वात् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

विभावसुकी पत्नी उषा थी । और आंतप के पुत्र पञ्चयाम (दिवस) हुए । इसीलिए रात्रि को त्रियामा कहते है, क्योंकि प्रदोष और प्रत्यूष दिन के अङ्ग हैं ॥१६॥

सरूपाऽसूत भूतस्य भार्या रुद्रांश्च कोटिशः । रैवतोऽजो भवो भीमो वाम उग्रो वृषाकपिः ॥१७॥
अजैकपादहिर्बुध्न्यो बहुरूपो महानिति । रुद्रस्य पार्षदाश्चान्ये घोरा भूतविनायकाः ॥१८॥

अन्वयः— भूतस्य पत्नी सरूपा कोटिश, रुद्रांन् च असूत । रैवतः अजः, भवः, भीमः वामः उग्रः, वृषाकपिः, अजैकपादः अहिर्बुध्न्यः बहुरूपः महान् इति । अन्ये च घोराः रुद्रस्य पार्षदाः भूतविनायकाः ॥१७-१८॥

अनुवाद— भूत की पत्नी सरूपा ने करोड़ों रुद्रों को जन्म दिया । उनमें से रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप और महान् ये ग्यारह मुख्य हैं । भूत की दूसरी पत्नी भूता से भयङ्कर भूतों विनायकों आदि का जन्म हुआ । ये सभी ग्यारहवें रुद्र महान् के पार्षद हैं ॥१७-१८॥

भावार्थ दीपिका

भूतस्य द्वे भार्ये तयोर्वंशमाह-सरूपेति । महानित्येवमेकादशरूपस्य रुद्रस्य । पार्षदाः प्रेतादयः । अन्येऽन्यस्यां जाताः ॥१७-१८॥

भाव प्रकाशिका

भूत की दो पत्नियाँ थी उन दोनों के वंश को **सरूपा० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । महान् इस तरह से ग्यारह रूप वाले रुद्र के प्रेत इत्यादि पार्षद हैं । दूसरे भूत की दूसरी पत्नी भूता के पुत्र हैं ॥१७-१८॥

प्रजापतेरङ्गिरसः स्वधा पत्नी पितॄनथ । अथर्वाङ्गिरसं वेदं पुत्रत्वे चाकरोत्सती ॥१९॥

अन्वयः— अङ्गिरसः प्रजापते पत्नी स्वधा पितॄन्, अथ सती अथर्वाङ्गिर संवेदं पुत्रत्वे च अकरोत् ॥१९॥

अनुवाद— अङ्गिरा प्रजापति की पत्नी स्वधा ने पितरों को उत्पन्न किया और अङ्गिरा प्रजापति की दूसरी पत्नी सती ने अथर्वाङ्गिर वेद को ही पुत्र रूप में स्वीकार किया ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

अङ्गिरसः स्वधा सती चेति द्वे भार्ये तयोर्वंशमाह-प्रजापतेरिति । स्वधा नाम पत्नी पितॄन्पुत्रत्वेऽकरोत् । अथ सती चाथर्वाङ्गिरसं नाम वेदम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अङ्गिरा प्रजापति की दो पत्नियाँ थी स्वधा और सती स्वधा ने पितरों को ही अपना पुत्र बनाया और सती ने अथर्वाङ्गिरस वेद को अपना पुत्र बनाया ॥१९॥

कृशाश्वोऽर्चिषि भार्यायां धूम्रकेशमजीजनत् । धिषणायां वेदशिरो देवलं वयुनं मनुम् ॥२०॥

अन्वयः— कृशाश्वः अर्चिषि भार्यायां धूम्रकेशम् अजीजनत्, धिषणायां वेदशिरः, देवलं, वयुनम् मनुम् ॥२०॥

अनुवाद— कृशाश्व की पत्नी अर्चि ने धूम्रकेश को जन्म दिया और धीषणा के चार पुत्र हुए वेदशिरा, देवल, वयुन और मनु ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

कृशाश्वस्यार्चिर्धिषणेति द्वे भार्ये तयोर्वंशमाह-कृशाश्व इति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

कृशाश्वः० इत्यादि श्लोक से कृशाश्व की अर्चि एवं घिषणा इन पत्नियों के वंश का वर्णन किया गया है ॥२०॥

तार्क्ष्यस्य विनता कद्रूः पतङ्गी यामिनी इति । पतङ्ग्यसूत पतगान् यामिनी शलभानथ ॥२१॥

अन्वयः— तार्क्ष्यस्य, विनता, कद्रूः पतङ्गी यामिनी इति पतङ्गी पतगान् असूत अथ यामिनी शलभान् ॥२१॥

अनुवाद— तार्क्ष्यनामधारी कश्यप की चार पत्नियाँ थी विनता, कद्रूः पतङ्गी और यामिनी । पतङ्गी ने पतंग (पक्षियों) को जन्म दिया यामिनी ने शलभों (पतिङ्गों) को ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

सुपर्णासूत गरुडं साक्षाद्यज्ञेशवाहनम् । सूर्यसूतमनूरूं च कद्रूर्नागाननेकशः ॥२२॥

अन्वयः— सुपर्णा साक्षात् यज्ञेश वाहनम् गरुडम् सूर्यसूतम् अनूरुं च असूत, कद्रूः अनेकशः नागान् ॥२२॥

अनुवाद— सुपर्णा (विनता) ने साक्षात् यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु के वाहन गरुड को और सूर्य के सारथि, अनूरू (अरुण) को जन्म दिया और कद्रू ने अनेक नागों को जन्म दिया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

सुपर्णा विनता । अनूरुमरुणम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

विनता काही नाम सुपर्णा है और अरुण का नाम अनूरू है ॥२२॥

कृत्तिकादीनि नक्षत्राणीन्दोः पत्न्यस्तु भारत । दक्षशापात्सोऽनपत्यस्तासु यक्ष्मग्रहार्दितः ॥२३॥

अन्वयः— हे भारत ! कृत्तिकादीनि नक्षत्राणि तु इन्दोः पत्न्यः दक्षशापात् सः तासु अनपत्यः यक्ष्माग्रहार्दितः ॥२३॥

अनुवाद— हे परीक्षित् कृत्तिका आदि सत्ताइस नक्षत्र चन्द्रमा की पत्नियाँ है । रोहिणी से विशेष प्रेम करने के कारण दक्ष ने उनको शाप दे दिया जिससे वे यक्ष्मा रोग से ग्रस्त हो गये और निस्सन्तान रह गये ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

रोहिण्यामेव प्रेमातिशयेनान्यासामुपेक्षणात्कुपितस्य दक्षस्य शापाद्यक्ष्मग्रहार्दितः क्षयरोगपीडितः सन् तास्वनपत्योऽभूत्॥२३॥

भाव प्रकाशिका

रोहिणी से ही अधिक प्रेम करने और अन्य पत्नियों की उपेक्षा करने के कारण चन्द्रमा यक्ष्मा रोग से ग्रस्त हो गये और अपनी किसी पत्नी से सन्तान नहीं उत्पन्न कर सके ॥२३॥

पुनः प्रसाद्य तं सोमः कला लेभे क्षये दिताः। शृणु नामानि लोकानां मातॄणां शङ्कराणि च॥२४॥
अथ कश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदं जगत् । अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठा अरिष्टा सुरसा इला॥२५॥
मुनिः क्रोधवशा ताम्रा सुरभिः सरमा तिमिः । तिमेर्यादोगणा आसन् श्वापदाः सरमासुताः ॥२६॥

अन्वयः— पुन तं प्रसाद्य सोमः क्षये दिताः कलाः लेभे । अथकश्यपत्नीनां लोकानां मातॄणां शङ्कराणि नामानि शृणु यत् प्रसूतम् इदं जगत् । अदितिः दितिः, दनुः, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनिः, क्रोधवशा, ताम्र, सुरभिः सरमा, तिमिः। तिमेः यादोगणाः आसन् श्वापदाः सरमासुताः ॥२४-२६॥

अनुवाद— चन्द्रमा ने पुनः दक्ष को प्रसन्न करके कृष्ण पक्ष में खण्डित कलाओं को प्राप्त कर लिया किन्तु नक्षत्राभिमानी देवियों से उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई । अब तुम कश्यप पत्नियों के मङ्गलमय नामों को सुनो । वे लोक माताएँ हैं उन्हीं से यह सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न हुई है । उनके नाम हैं अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, कोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा और तिमि । तिमि के पुत्र ये सभी जलचर जीव हैं, और सरमा के पुत्र सिंह व्याघ्र आदि हिंसक जीव हैं ॥२४-२६॥

भावार्थ दीपिका

तं दक्षं प्रसाद्य केवलं कला एव लेभे न त्वपत्यानि । कथंभूताः । क्षये कृष्णपक्षे दिताः खण्डिताः सतीः । पाठान्तरे क्षये सति पुनरेधितास्तेनैव वर्धिताः सतीः । अल्पत्वेन सुगमत्वाद्यथायथं व्युत्क्रमेण तासां वंशानाह-तिमेरित्यादिना ।।२४-२६।।

भाव प्रकाशिका

चन्द्रमा ने दक्ष को प्रसन्न करके कृष्ण पक्ष में खण्डित अपनी कलाओं को तो प्राप्त कर लिया किन्तु कृतिका आदि पत्नियों से सन्तान नहीं प्राप्त किया । क्षयेधिताः यह पाठ भेद होने पर अर्थ होगा क्षय होने पर पुनः चन्द्रमा से ही वर्धित कलाओं को प्राप्त कर लिया । अल्प होने के कारण सुगम होने से, ठीक विपरीत क्रम से उन सबों के वंशों का वर्णन किया गया है ।।२४-२६।।

सुरभेर्महिषा गावो ये चान्ये द्विशफा नृप । ताम्रायाः श्येनगृध्राद्या मुनेरप्सरसां गणाः ।।२७।।

अन्वयः— हे नृपा सुरभेः महिषाः गावः मे च अन्ये दिशफाः । ताम्रायाः श्येन गृध्राद्याः मुनेः अप्सरसां गणाः ।।२७।।

अनुवाद— महिष भैंस गौ तथा दूसरे जो दो खुरों वाले पशु है, वे सुरभि की सन्तान हैं ताम्रा के बाज तथा गृध्र आदि सन्तान हैं । मुनि की सन्तान अप्सराओं का समूह हैं ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

दन्दशूकादयः सर्पा राजन् क्रोधवशात्मजाः । इलाया भूरुहाः सर्वे यातुधानाश्च सौरसाः ।।२८।।

अन्वयः— हे राजन् ! क्रोधवशात्मजाः दन्दशूकादयः सर्पाः, इलाया; सर्वे भूरुहाः सौरसाः यातुधानाश्च ।।२८।।

अनुवाद— राजन् ! क्रोधवशा के पुत्र सर्प, विच्छू आदि विषैले जीव हुए, इला के पुत्र सभी वृक्ष लता आदि हुए, जो पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले हैं, और सुरसा के पुत्र राक्षस हुए ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

सौरसाः सुरसायाः पुत्राः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

सुरसा के पुत्रों को सौरसाः कहा गया है ।।२८।।

अरिष्टायाश्च गन्धर्वाः काष्ठाया द्विशफेतराः । सुता दनोरेकषष्टिस्तेषां प्राधानिकान् शृणु ।।२९।।

अन्वयः— अरिष्टायाः च गन्धर्वाः, काष्ठायाः द्विशेफेतराः, दनोः सुताः एकषष्टिः तेषा प्रधानिकान शृणु ।।२९।।

अनुवाद— अरिष्टा के पुत्र गन्धर्व गण हुए, काष्ठा से एक खुर वाले धोड़े आदि पशु उत्पन्न हुए, दनु के एकसठ पुत्र हुए उनमें प्रधानों के नाम को आप सुनें ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

प्राधानिकान्मुख्यानष्टादश शृणु ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

उनमें जो मुख्य अठारह हैं उनका नाम आप सुनें ।।२९।।

द्विमूर्धा शम्बरोऽरिष्टो हयग्रीवो विभावसुः। अयोमुखः शङ्कुशिराः स्वर्भानुः कपिलोऽरुणः।।३०।।
पुलोमा वृषपर्वा च एकचक्रोऽनुतापनः । धूम्रकेशो विरूपाक्षो विप्रचित्तिश्च दुर्जयः ।।३१।।

अन्वयः— द्विमूर्धा, शम्बरः अरिष्टः, हयग्रीवः विभावसुः अयोमुखः, शङ्कुशिराः स्वर्भानुः कपिलः, अरुणः पुलोमा, वृपपर्वा, एकचक्रः अनुतापनः, धूमकेशः, विरूपाक्षः, दुर्जयः विप्रचित्तिः च ।।३०-३१।।

अनुवाद— वे प्रधान इस प्रकार है द्विमूर्धा, शम्बर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु, अयोमुख, शङ्कुशिरा, स्वर्भानु कपिल, अरुण, पुलोमा, वृषपर्वा, एकचक्र, अनुतापन, धूम्रकेश, विरूपाक्ष, तथाा दुर्जय एवं विप्रचित्ति ॥३०-३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०-३१॥

स्वर्भानोः सुप्रभां कन्यामुवाह नमुचिः किल । वृषपर्वणस्तु शर्मिष्ठां ययातिर्नाहुषो बली ॥३२॥

अन्वयः— स्वर्भानोः कन्यां सुप्रभां किल नमुचिः उवाह, वृषपर्वणः तु शर्मिष्ठां, नाहुषः बली ययातिः उवाह इति शेषः॥३२॥

अनुवाद— स्वर्भानु की पुत्री सुप्रभा के साथ नमुचि ने विवाह किया और वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा के साथ नहुष के पुत्र बलवान् ययाति ने किया ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

वैश्वानरसुता याश्च चतस्रश्चारुदर्शनाः । उपदानवी हयशिरा पुलोमा कालका तथा ॥३३॥

अन्वयः— वैश्वानर सुताया च चतस्रः चारुदर्शनाः आसन् उपदानवी हयशिरा, पुलोमा तथा कालका ॥३३॥

अनुवाद— दनु के पुत्र वैश्वानर की चार सुन्दर पुत्रियाँ थी उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा तथा कालका ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

वैश्वानरो दनोः पुत्रस्तस्य सुताः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

दनु के पुत्र वैश्वानर की चर पुत्रियाँ थी ॥३३॥

उपदानवीं हिरण्याक्षः क्रतुर्हयशिरां नृप । पुलोमां कालकां च द्वे वैश्वानरसुते तु कः॥३४॥
उपयेमेऽथ भगवान्कश्यपो ब्रह्मचोदितः। पौलोमाः कालकेयाश्च दानवा युद्धशालिनः॥३५॥
तयोः षष्टिसहस्राणि यज्ञघ्नांस्ते पितुः पिता। जघान स्वर्गते रजन्नेक इन्द्रप्रियंकरः ॥३६॥

अन्वयः— उपदानवीं हिरण्याक्षः हयशिरां क्रतुः, पुलोमां कालकां च द्वे ब्रह्मचोदितः भगवान् कश्यपः उपयेमे, तयोः पौलोमाः कालकेया च युद्धशलिनः षष्टि सहस्राणि यज्ञध्नाः दानवाः अभूवन् राजन् स्वर्गतः ते पितः पिता एक इन्द्राप्रियङ्करः जघान ॥३४-३६॥

अनुवाद— उपदानवी का विवाह हिरण्याक्ष से हुआ, और हयशिरा का विवाह क्रतु सें हुआ अवशिष्ट पुलोमा और कालका के साथ ब्रह्माजी की आज्ञा से भगवान् कश्यप महर्षि ने किया । उन दोनों को पौलोम तथा कलकेय संज्ञक साठ हजार युद्ध करने वाले तथा यज्ञों में विघ्न डालने वाले दानव पुत्र हुए । राजन् तुम्हारे पिता के पिता अर्जुन जब स्वर्ग में गये थे, उस समय इन्द्र का प्रिय कार्य करने के लिए वे अकेले ही उन सभी दानवों का वध कर दिए ॥३४-३६॥

भावार्थ दीपिका

कः प्रजापतिः कश्यप उपयेम इत्यन्वयः। दानवीपरिणयने हेतुः ब्रह्मणा चोदित इति। तयोः षष्टिसहस्राणि निवातकवचाः पुत्रा जातास्तांश्च स्वर्गतः संस्ते पितामहोऽर्जुनो जघान ॥३४-३६॥

भाव प्रकाशिका

पुलोमा और कालका के साथ प्रजापति कश्यप ने विवाह किया । ब्रह्माजी के आदेश के कारण ही महर्षि ने उन दोनों दानवियों के साथ विवाह किया था । उन दोनों के साठ हजार निवात कवच पुत्र हुए । उन सबों को जब तुम्हरे पितामह अर्जुन स्वर्ग में गये थे अकेले ही मार डाले ॥३४-३६॥

विप्रचित्तिः सिंहिकाया शतं चैकमजीजनत् । राहुज्येष्ठं केतुशतं ग्रहत्वं य उपागतः ॥३७॥

अन्वयः— विप्रचित्तिः, सिंहिकायां शतं चैकम् अजीजनत् । राहुज्येष्ठं केतु शतं यः ग्रहत्वम् उपागतः ॥३७॥

अनुवाद— विप्रचित्ति ने सिंहिका के गर्भ से एक सौ एक पुत्रों को उत्पन्न किया । उनमें राहु सबसे बड़ा था उसने ग्रहत्व को प्राप्त कर लिया बचे सौ पुत्रों का नाम केतु था ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

राहुर्ज्येष्ठो यस्य ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

उन सबों में राहु सबसे बड़ा था ॥३७॥

अथातः श्रूयतां वंशो योऽदितेरनुपूर्वशः । यत्र नारायणो देवः स्वांशेनावतरद्विभुः ॥३८॥

अन्वयः— अथ अतः अदितेः वंशः अनुपूर्वशः श्रूयताम् । यत्र नारायणो देवः एव अंशेन विभुः अवतरत् ॥३८॥

अनुवाद— अब आप क्रमशः दिति के वंश का क्रमशः वर्णन सुनें जिस वंश में भगवान् नारायण अपने अंश से अवतीर्ण हुए ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३८॥

विवस्वानर्यमा पूषा त्वष्टाथ सविता भगः । धाता विधाता वरुणो मित्रः शक्र उरुक्रमः ॥३९॥

अन्वयः— विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, अथ सविता, भगः, धाता विधाता, वरुणः मित्रः शक्रः उरुक्रमः ॥३९॥

अनुवाद— अदिति के पुत्रों के नाम है विवस्वान्, अर्यमा, पूषा त्वष्टा, और सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक्र और उरुक्रमः ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

विवस्वतः श्राद्धदेवं संज्ञाऽसूयत वै मनुम् । मिथुनं च महाभागा यमं देवं यमीं तथा ॥
सैव भूत्वाथ वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि ॥४०॥

अन्वयः— महाभागा संज्ञा विवस्वतः श्राद्धदेवं मनुम् तथा यमंदेव यमीं असूयत अथ सैव बडवा भूत्वा भुवि नासत्यौ सुषुवे ॥४०॥

अनुवाद— महाभाग्यवती संज्ञा ने विवस्वान् के पुत्र श्राद्धदेव (वैवस्वत) मनु को जन्म दिया । वही ही भूलोक में घोड़ी का रूप धारण करके दोनों अश्विनी कुमारों को जन्म दिया ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

असूयताजनयत् । भुवि वर्तमाना ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

भूलोक में रहकर दोनों अश्विनी कुमारों को जन्म दिया संज्ञा ने ॥४०॥

छाया शनैश्चरं लेभे सावर्णि च मनुं ततः । कन्यां च तपतीं या वै वव्रे संवरणं पतिम् ॥४१॥

अन्वयः— छाया ततः शनैश्चरं लेभे, सावर्णि मनुः तपतीं कन्यां च या वै संवरणं पति वव्रे ॥४१॥

अनुवाद— विवस्वान् की दूसरी पत्नी छाया ने शनैश्चर और सावर्णि मनु को जन्म दिया तथा तपती नाम की कन्या को जन्म दिया जिसने संवरण का पति के रूप में वरण किया ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

ततो विवस्वतः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

ततः का अर्थ है विवस्वान् से ॥४१॥

अर्यम्णो मातृका पत्नी तयोश्चर्षणयः सुताः । यत्र वै मानुषी जातिर्ब्रह्मणा चोपकल्पिता ॥४२॥

अन्वयः— अर्यम्णः पत्नी मातृका तयोः चर्षणयः सुताः जाता, यत्र वै ब्रह्मणा मानुषी जाति कल्पिता ॥४२॥

अनुवाद— अर्यमा की पत्नी मातृका थी अर्यमा और मातृका से चर्षणी नामक पुत्र हुए । उन सबों के ही आधार पर ब्रह्माजी मनुष्यों की ब्राह्मणादि जाति की कल्पना की ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

चर्षणयः कृताकृतज्ञानवन्तः । पश्यति कर्मत्वेन निघण्टावुक्तेः । यत्र येषु आत्मानुसंधानविशेषेण मानुषी जातिश्चोपकल्पिता। तथाच श्रुतिः 'पुरुषत्वे चाविस्तरामात्मा' इति ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

चर्षणी लोग कर्तव्या कर्तव्य के ज्ञान से युक्त थे । जिनको कर्मों का ज्ञान हो उन्हें चर्षणी कहते है, यह निघण्टु में कहा गया है । उन्हीं सबों के आधार पर आत्मा का अनुसन्धान करके ब्रह्माजी ने ब्राह्मणादि जाति की कल्पना की । श्रुति भी कहती है- पुरुषत्व में आत्मा का विस्तार नहीं है ॥४२॥

पूषानपत्यः पिष्टादो भग्नदन्तोऽभवत्पुरा । योऽसौ दक्षाय कुपितं जहास विवृतद्विजः ॥४३॥

अन्वयः— पूषा अनपत्यः पिष्टादः यः पुरा भग्नदन्त अभवत् यः असौ दक्षाय कुपितं विवृतद्विजः जहास ॥४३॥

अनुवाद— पूषा की कोई सन्तान नहीं थी । वे पिसा ही खाते है । जिनके दाँतों को वीरभद्र ने तोड़ दिया था, क्योंकि दक्ष पर कुपित शिवजी को वे अपने दाँतो को दिखाकर जोर से हँसे थे ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

कुपितं हरमिति शेषः । विवृतद्विजः प्रकटितदन्तः सन् ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

क्रुद्ध हुए शङ्करजी को दाँत निकालकर हँसे थे ॥४३॥

त्वष्टुर्दैत्यानुजा भार्या रचनानाम कन्यका । संनिवेशस्तयोर्जज्ञे विश्वरूपश्च वीर्यवान् ॥४४॥

अन्वयः— दैत्यानुजा रचना नाम कन्यका त्वष्टुः भार्या । तयोः संनिवेशः वीर्यवान् विश्वरूपः च ॥४४॥

अनुवाद— दैत्यों की छोटी बहिन कुमारी रचना त्वष्टा की पत्नी थी । त्वष्टा और रचना के दो पुत्र हुएसंनिवेश और पराक्रमी विश्वरूप ॥४४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४४॥

तं वव्रिरे सुरगणा दौहित्रं द्विषतामपि । विमतेन परित्यक्ता गुरुणाङ्गिरसेन यत् ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अन्वयः— द्विषतामपि स्व स्त्रीयं तं सुरगणाः वव्रिरे यत् विमतेन गुरूणा आङ्गीरसेन परित्यक्ताः सुरगणाः तं वव्रिरे॥४५॥

अनुवाद— विश्वरूप यद्यपि शत्रुओं के भांजे थे फिर भी जब देवगुरु बृहस्पति इन्द्र से अपमानित होकर देवताओं का परित्याग कर दिये थे उस समय देवताओं ने विश्वरूप कों ही अपना पुरोहित बनाया ।।४५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

भावार्थ दीपिका

यद्यदा विमतेनावज्ञातेन बृहस्पतिना परित्यक्तास्तदा द्विषतां शत्रूणां भागिनेयमपि विश्वरूपं पौरोहित्ये वृतवन्तः ।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठ स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां षष्ठोध्यायः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

जिस समय इन्द्र के द्वारा अपमानित होने के कारण बृहस्पति ने देवताओं को त्याग दिया था उस समय शत्रुओं के भान्जे विश्वरूप को ही देवताओं ने पुरोहित बनाया ।।४५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भावप्रकाशिका टीका के छठे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।६।।

* * *

सातवाँ अध्याय

बृहस्पति द्वारा देवताओं का परित्याग और विश्वरूप का देवगुरु के रूप में वरण

राजोवाच

कस्य हेतोः परित्यक्ता आचार्येणात्मनः सुराः । एतदाचक्ष्व भगवन् शिष्याणामक्रमं गुरौ ॥१॥

अन्वयः— भगवन् ! आचार्येण आत्मनः सुराः कस्य हेतोः परित्यक्ताः ? एतत् शिष्याणाम् गुरौ अक्रमं आचक्ष्व॥१॥

परीक्षित् ने पूछा

अनुवाद— भगवन् देवगुरु बृहस्पति ने किस कारण से अपने शिष्य देवताओं का परित्याग कर दिया ? देवताओं ने अपने गुरु बृहस्पतिजी का ऐसा कौन सा अपराध कर दिया था ? आप उसे बतलाएँ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तमे विश्वरूपोऽसौ पौरोहित्ये वृतः सुरैः । गुरुणा संपरित्यक्तैः पौरोहित्यमथाकरोत् । कस्य हेतोः कस्माद्धेतोरात्मनः शिष्याः सुराः परित्यक्ताः । अक्रममपराधम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सातवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि आचार्य बृहस्पति के द्वारा परित्यक्त देवताओं ने पौरुहित्य कार्य करने के लिए विश्वरूप का पुरोहित के रूप में वरण किया और विश्वरूप ने भी देवताओं पौरोहित्य कार्य करना प्रारम्भ कर दिया । महाराज परीक्षित ने पूछा कि किस अपराध के कारण देवगुरु बृहस्पति ने अपने शिष्यों का परित्याग कर दिया । अक्रम शब्द का अर्थ अपराध है ॥१॥

श्रीशुक उवाच

इन्द्रस्त्रिभुवनैश्वर्यमदोल्लङ्घितसत्पथः । मरुद्भिर्वसुभी रुद्रैरादित्यैर्ऋभुभिर्नृप ॥२॥
विश्वेदेवैश्च साध्यैश्च नासत्याभ्यां परिश्रितः। सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥३॥

विद्याधराप्सरोभिश्च किन्नरैः पतगोरगैः । निषेव्यमाणो मघवान्स्तूयमानश्च भारत ॥४॥
उपगीयमानो ललितमास्थानाध्यासनाश्रितः । पाण्डुरेणातपत्रेण चन्द्रमण्डलचारुणा ॥५॥
युक्ताश्चान्यैः पारमेष्ठ्यैश्चामरव्यजनादिभिः । विराजमानः पौलोम्या सहार्धासनया भृशम् ॥६॥
स यदा परमाचार्यं देवानामात्मनश्च ह । नाभ्यनन्दत संप्राप्तं प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥७॥
वाचस्पतिं मुनिवरं सुरासुरनमस्कृतम् । नोच्चचालासनादिन्द्रः पश्यन्नपि सभागतम् ॥८॥

अन्वयः— हे नृप ! त्रिभुवनैश्वर्यमदोल्लंघितसत्पथः इन्द्रः, मरुद्भिः वसुभिः रुद्रैः, आदित्यैः ऋभुभिः, विश्वेदेवैः च साध्यैः च नासत्याभ्याम् परिश्रितः सिद्धचारणगन्धर्वैः ब्रह्मवादिभिः मुनिभिः, विद्याधरोप्सरोभिश्च, किन्नरैः पतगोरगैः निपेव्यमाणः मघवान् स्तूयमानः च हे भारत, ललितमुपगीयमानः अस्थानाध्यासनाश्रितः, चन्द्रमण्डलचारुणा पाण्डुरेणातपत्रेण युक्त; अन्यैः पारमेष्ठयैः चामर व्यजना दिभिः अर्धासनया पौलोभ्या सहभृशम् विराजमानः यदा देवानाम् आत्मनः च संप्राप्तं परमाचार्यं सुरासुरनमस्कृतम् मुनिवरं वाचस्पतिं प्रत्युत्थानासनादिभिः नाभ्यनन्दत समागतम् सभागतम् पश्यन्नपि इन्द्रः आसनात् न उच्चचाल ॥२-८॥

अनुवाद— राजन् इन्द्र को त्रैलोक्य का राज्य प्राप्त करके अभिमान हो गया था । उसी कारण वे सन्मार्ग का उल्लंघन करने लगे थे । एक बार जब वे भरी हुई सभा में अपनी पत्नी शची के साथ सिंहासन पर बैठे थे। सभी मरुद्गण सभी वसुगण, ग्यारहो रुद्र, द्वदश आदित्य, ऋभुगण, विश्वेदेव साध्यगण और दोनों अश्विनी कुमार उनकी सेवा में उपस्थित थे । सिद्ध चारण, ब्रह्मवादी मुनिगण, विद्याधर अप्सराएँ किन्नरगण, पक्षीगण एवं नाग उनकी सेवा और स्तुति कर रहे थे । सब ओर से ललित स्वर से देवराज इन्द्र की कीर्ति का गान हो रहा था। ऊपर की ओर चन्द्र मण्डल के समान सुन्दर श्वेत छत्र शोभायमान था । चँवर पङ्खे आदि महाराजोचित सामग्रियाँ यथा स्थान सुसज्जित थीं । इस तरह के दिव्य समाज में देवराज इन्द्र सुशोभित हो रहे थे । उसी समय देवराज इन्द्र तथा सभी देवताओं के परम गुरु आचार्य बृहस्पति आये । बृहस्पति को देवता और असुर दोनों नमस्कार करते हैं । आये हुए बृहस्पति को इन्द्र ने देखा भी किन्तु वे न तो अपने आसन से उठे और न उनका आसनादि प्रदान के द्वारा सत्कार ही किए । वे अपने आसन से हिले डुले भी नहीं ॥२-८॥

भावार्थ दीपिका

स इन्द्रो यदा संप्राप्तं वाचस्पतिं नाभ्यनन्दत नादृतवांस्तदा स आङ्गिरसस्ततो निर्गत्य तूष्णीं स्वगृहमाययावित्यष्टानामन्वयः अनादरे हेतुं मदं दर्शयितुं तं विशिनष्टि । त्रिभुवनैश्वर्यमदेनोल्लङ्घितः सतां पन्था येन सः । परिश्रितः परिवृतः । अस्थानं सभा तस्मिन्नध्यासनं सिंहासनं तदास्थितः । पारमेष्ठ्यैर्महाराजचिह्नैः । आसनस्यार्धे स्थितया पौलोम्या सह विराजमानः सन् । प्रत्युत्थानादिना नाभ्यनन्दत नादृतवान् । न चोच्चचाल आसन एव स्थितोऽपि किंचिन्न चलितवान् ॥२-८॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र जब आये हुए बृहस्पति को देखकर भी उनका समादर नहीं किए, उस समय बृहस्पति सभा से निकलकर चुपचाप अपने घर चले आये इस तरह से आठ श्लोकों का एक साथ अन्वय है । अनादर का कारण इन्द्र का अभिमन था । इस बात का शुकदेवजी विश्लेषण करते हैं । त्रैलोक्य के राज्य की प्राप्ति के कारण इन्द्र सन्मार्ग का उल्लंघन करने लग गये थे । परिश्रितः अर्थात् घिरे हुए, आस्थान सभा को कहते हैं । इन्द्र सभा में सिंहासन पर बैठे थे । सिंहासन के आधे भाग में बैठी हुई शची के साथ वे सुशोभित हो रहे थे । उठकर खड़ा होना इत्यादि सदाचार के द्वारा इन्द्र ने बृहस्पतिजी का आदर नहीं किया । आसन पर बैठे हुए हिले डुले तक नहीं ॥२-८॥

ततो निर्गत्य सहसा कविराङ्गिरसः प्रभुः । आययौ स्वगृहं तूष्णीं विद्वान् श्रीमदविक्रियाम् ॥९॥

अन्वयः— कविः प्रभुः आङ्गिरसः श्रीमदविक्रियाम् विद्वान् ततः सहसा निर्गत्य तुष्णीं स्वगृहम् आययौ ॥९॥

अनुवाद— त्रिकालदर्शी बृहस्पतिजी ने देखा कि यह तो ऐश्वर्यमद का दोष है अतएव वे वहां से अचानक उठकर चुपचाप अपने घर चले आये ॥९॥

भावार्थ दीपिका

श्रीमदेन या विक्रिया तां विद्वान् जानन् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

ऐश्वर्य के मद से होने वाले विकार को बृहस्पतिजी ने जान लिया ।।९।।

तर्ह्येव प्रतिबुध्येन्द्रो गुरुहेलनमात्मनः । गर्हयामास सदसि स्वयमात्मानमात्मना ।।१०।।

अन्वयः— इन्द्रःतर्हि एव आत्मनः गुरुहेलनम् प्रतिबुध्य सदसि आत्मानम् आत्मना गर्हयामास ।।१०।।

अनुवाद— उसी समय इन्द्र ने जान लिया कि मैंने अपने गुरुदेव का अनादर किया है वे उस सभा में अपने आपकी निन्दा करने लगे ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

प्रतिबुध्यानुस्मृत्य ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

प्रतिबुध्य अर्थात् जानकर ।।१०।।

अहो बत ममासाधु कृतं वै दभ्रबुद्धिना । यन्मयैश्वर्यमत्तेन गुरुः सदसि कात्कृतः ।।११।।

अन्वयः— अहो बत मम असाधु कृतं यत् दभ्रबुद्धिना ऐश्वर्यमत्तेन मया वै सदसि गुरुः कात्कृतः ।।११।।

अनुवाद— यह बड़ा खेद है कि मूर्खता वश ऐश्वर्य के मद से मत्त होकर अज्ञानी मैंने सभा में अपने गुरु का अपमान किया है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

मम कृतं कर्म अहो असाधु । यद्यस्माददभ्रबुद्धिनाल्पमतिना मया कात्कृतस्तिरस्कृतः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

मेरे द्वारा किये गये कर्म निन्दित है मन्दबुद्धि मैंने अपने गुरु का तिरस्कार किया है ।।११।।

को गृध्येत्पण्डितो लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेरपि । ययाहमासुरं भावं नीतोऽद्य विबुधेश्वरः ।।१२।।

अन्वयः— त्रिविष्टपपतेः अपि लक्ष्मीम् कः पण्डितः गृध्येत् यया अद्य विबुधेश्वरः अहं आसुरं भावं नीतः ।।१२।।

अनुवाद— त्रैलोक्याधिपति की भी लक्ष्मी को कौन विज्ञ पुरुष प्राप्त करना चाहेगा, जिसके द्वारा आज देवराज भी मैंने आसुरभाव को प्राप्त कर लिया है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

विबुधानां सात्त्विकानां देवानामीश्वरोऽप्यहम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

सात्त्विक देवताओं का स्वामी होकर भी मैंने ।।१२।।

ये पारमेष्ठ्यं धिषणमधितिष्ठन्न कंचन । प्रत्युत्तिष्ठेदिति ब्रूयुर्धर्मं ते न परं विदुः ।।१३।।

अन्वयः— पारमेष्ठ्यंधिषणम् अधितिष्ठन् कञ्चन न प्रत्युत्तिष्ठेत् इति ये ब्रुयुः ते परं धर्मं न विदुः ।।१३।।

अनुवाद— जो लोग यह कहते हैं कि सर्बभौमसिंहासन पर बैठै हुए सम्राट् को किसी के आने पर नहीं खड़ा होना चाहिए वे लोग धर्म के श्रेष्ठतत्त्व को नहीं जानते हैं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ननु सिंहासनस्थो राजाऽभ्युत्थानं न कुर्यादिति वृद्धा वदन्ति तत्राह-य इति द्वाभ्याम् । धिषणमासनम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

बृद्ध पुरुषों का कहना है कि सिंहासन पर बैठे हुए राजा को किसी को देखकर खड़ा नहीं होना चाहिए। इसको विषय में दो श्लोकों द्वारा कहते हैं धिषणम् अर्थात् सिंहासन ।।१३।।

तेषां कुपथदेष्टॄणा पततां तमसिह्यधः । ये श्रद्दध्युर्वचस्ते वै मज्जन्त्यश्मप्लवा इव ।।१४।।

अन्वयः— तेषां हि कुपथादेष्टॄणाम् अधः तमसि पतताम् वचः ये श्रद्दध्युः ते वै अश्मप्लवा इवं मज्जन्ति ।।१४।।

अनुवाद— कुमार्ग का उपदेश करने वालों की बातें अधः पतन कराने वाले हैं । उनकी बातों पर विश्वास करने वालें पत्थर की नाम की तरह डूब जाते हैं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

कुपथं दिशन्त्युपदिशन्त्युत्पथदेष्टारस्तेषां वचः । अश्ममयः प्लवो येषां ते यथा मज्जन्तं प्लवमनु मज्जन्ति तद्वत् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

कुमार्गकाउपदेश करने वालों की बातों पर विश्वास करने वालों का उसी तरह पतन हो जाता है जिस तरह पत्थर की नाव डूब जाती हैं ।।१४।।

अथाहममराचार्यमगाधधिषणं द्विजम् । प्रसादयिष्ये निशठः शीर्ष्णा तच्चरणं स्पृशन् ।।१५।।

अन्वयः— अथ अहम् अगाधधिषणम् द्विजम्अमराचार्यम् निशठः शीर्ष्णा तत् चरणं स्पृशन् प्रसादयिष्ये ।।१५।।

अनुवाद— अब ज्ञान के अथाह सागर के समान तथा ब्राह्मण एवं देवताओं के आचार्य बृहस्पति को निषकपट भाव से उनके चरणों पर शिर रखकर उनको प्रसन्न करूँगा ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अगाधा गम्भीरा धिषणा यस्य तम् । निशठः शाठ्यहीनः सन् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

जिनका ज्ञान अगाध हो उनको निष्कपट भाव से मनाऊँगा ।।१५।।

एवं चिन्तयतस्तस्य मघोनो भगवान्गृहात् । बृहस्पतिर्गतोऽदृष्टां गतिमध्यात्ममायया ।।१६।।

अन्वयः— तस्य मघोनः एवं चिंतयतः भगवान् बृहस्पतिः गृहात् अध्यात्ममायया अदृष्टां गतिं गतः।।१६।।

अनुवाद— इन्द्र इस प्रकार से सोच ही रहे थे कि भगवान् बृहस्पति अपने घर से ही अपने योग बल से अन्तर्धान हो गये ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

अधिकया आत्ममायया ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

मायातिरेक के द्वारा ।।१६।।

गुरोर्नाधिगतः संज्ञां परीक्षन्भगवान्स्वराट् । ध्यायन् धिया सुरैर्युक्तः शर्म नालभतात्मनः ।।१७।।

अन्वयः— भगवान् स्वराट् धिया ध्यायन् गुरोः संज्ञां न अधिगतः सुरैयुक्तः आत्मनः शर्म न अलभत ।।१७।।

अनुवाद— ऐश्वर्य सम्पन्न सम्राट इन्द्र देवताओं के साथ अपनी बुद्धि के अनुसार आचार्य बृहस्पति का पता लगाने का बहुत प्रयास किया किन्तु वे उनका पता नहीं लगा सके । उसके कारण वे अशान्त हो गये उनको शान्ति नहीं मिल पाती थी ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

गुरोः संज्ञां ज्ञानोपायं परीक्षमाणोऽपि नाधिगतोऽप्राप्तः सन् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

प्रयास करके भी इन्द्र अपने आचार्य को जानने का साधन नहीं जान सके ।।१७।।

तच्छ्रुत्वैवासुराः सर्व आश्रित्यौशनसं मतम् । देवान्प्रत्युद्यमं चक्रुर्दुर्मदा आततायिनः ।।१८।।

अन्वयः— तत् सर्वं श्रुवा एव दुर्मदाः आततायिनः असुराः औशनसं मतम् अश्रित्य देवान् प्रति उद्यमं चक्रुः ।।१८।।

अनुवाद— उन सारी बातों को सुनकर मदोन्मत्त तथा आततायी असुरों ने विजय प्राप्त करने के लिए शुक्राचार्य का आदेश प्राप्त करके देवताओं पर आक्रमण कर दिया ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

आततायिन उद्यतास्त्राः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

अततायी अर्थात् हाथ में अस्त्र शस्त्र धारण किए हुए ।।१८।।

तैर्विसृष्टेषुभिस्तीक्ष्णैर्निर्भिन्नाङ्गोरुबाहवः । ब्रह्माणं शरणं जग्मुः सहेन्द्रानतकन्धराः ।।१९।।

अन्वयः— विसृष्टेषुभिः तीक्ष्णैः निर्भिन्नाङ्गोरुबाहवः, सहेन्द्राः नतकन्धराः ब्रह्माणं शरणं जग्मुः ।।१९।।

अनुवाद— उन असुरों द्वारा छोड़े गये अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों के द्वारा देवताओं कमर हाथ आदि अङ्ग कटकर गिरने लगे तब सभी देव इन्द्र को साथ लेकर अपनी गर्दन झुकाए हुए ब्रह्माजी के शरण में चले गये ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

निर्भिन्नान्यङ्गान्युत्तमाङ्गानि शिरांसि ऊरवो बाहवश्च येषाम् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

जिनके शिर जङ्घा तथा बाहु आदि कट गये थे, इस प्रकार के देवता अपना शिर झुकाए हुए ब्रह्माजी की शरण में गये ।।१९।।

तांस्तथाभ्यर्दितान्वीक्ष्य भगवानात्मभूरजः । कृपया परया देव उवाच परिसान्त्वयन् ।।२०।।

अन्वयः— तान् तथा अभ्यर्दितान् वीक्ष्य भगवान् आत्मभूः अजः देवः पारया कृपया परिसान्त्वयन् उवाच ।।२०।।

अनुवाद— देवताओं को उस प्रकार कष्टापन्न देखकर स्वयम्भू एवं समर्थ ब्रह्माजी ने करुणा क्रान्त होकर देवताओं का धैर्य बढ़ाते हुए कहा ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

ब्रह्मोवाच

अहो बत सुरश्रेष्ठा ह्यभद्रं वः कृतं महत् । ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं दान्तमैश्वर्यान्नाभ्यनन्दत ।।२१।।

अन्वयः— अहो बत सुरश्रेष्ठा, ब्रह्मि अभद्रं कृतम् यत ऐश्वर्यात् बहिष्ठं दान्तम् ब्राह्मणं न अभ्यनन्दत ।।२१।।

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— देवताओं यह बड़े ही खेद की बात है कि तुमलोगों ने ऐश्वर्य के मद से मदमत्त होकर ब्रह्मज्ञानी, वेदज्ञ तथा संयमी ब्रह्मण बृहस्पति का सत्कार नहीं किया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

वो युष्माकं कृतं करणं महदभद्रम् । तदाह-ब्रह्मिष्ठमिति । नाभ्यनन्दत नाभिनन्दितवन्तः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

तुमलोगों ने अत्यनत अमङ्गलमय कार्य किया हैं कि ब्रह्मज्ञानी आचार्य बृहस्पति का सत्कार नहीं किया है॥२१॥

तस्यायमनयस्यासीत्परेभ्यो वः पराभवः । प्रक्षीणेभ्यः स्ववैरिभ्यः समृद्धानां च यत्सुराः ॥२२॥

अन्वयः— सुराः अयम् तस्यैव अनयस्य आसीत् । यत् प्रक्षीणेभ्यः स्ववैरिभ्यः यत् समृद्धानां वः पराभवः ॥२२॥

अनुवाद— देवताओं यह अनीति का फल है कि तुमलोग समृद्ध होकर भी अपने दुर्बल शत्रु दैत्यों से पराजित हो गये ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

परेभ्यः शत्रुभ्यो वः पराभव इति यदयं तस्याऽनयस्यान्यायस्य संबन्धी फलरूप आसीत् । उक्तंच 'ब्राह्मणं कुलसंपन्नं भक्तं विष्णोर्महात्मनः । आयान्तं वीक्ष्य नोत्तिष्ठेत्स दुःखैः परिभूयते ।' इति । स्वयमेव वैरिणो हन्तारो येषां तेभ्यः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

आपलोगों का जो शत्रुओं से पराभव हुआ है वह उसी अनीति का फल है । कहा भी गया है— **ब्राह्मणं कुलसम्पन्नम् इत्यादि** अर्थात् कुलीन तथा भगवद् भक्त ब्राह्मण को आते हुए देखकर जो उठकर खड़ा नहीं हो जाता है, वह कष्टापन्न होता है । आपलोगों के जो वैरी थे वे आपलोगों से दुर्बल थे उन सबों से आपलोग पराजित हो गये ॥२२॥

मघवन्द्विषतः पश्य प्रक्षीणान्गुर्वतिक्रमात् । संप्रत्युपचितान्भूयः काव्यमाराध्य भक्तितः ॥
आददीरन्निलयनं ममापि भृगुदेवताः ॥२३॥

अन्वयः— हे मघवन् गुर्वातिक्रमात् प्रक्षीणान् भक्तितः काव्यम् आराध्य सम्प्रति भूयः उपचितान् पश्य भृगुदेवताः ते ममापि निलयनम् आददीरन ॥२३॥

अनुवाद— हे इन्द्र पहले अपने गुरु का अपमान करने के कारण दुर्बल हो गये थे, किन्तु भक्ति पूर्वक अपने गुरु शुक्राचार्य की आराधना करके वे पुनः प्रबल हो गये हैं, मुझे तो लगता है कि वे कहीं मेरा भी स्थान अपने अधीन न कर लें ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

गुरुतिरस्कारसत्कारावेवापचयोपचयकारणमित्यसुरदृष्टान्तेनाह-मघवन्निति । द्विषतः शत्रून् काव्यं भार्गवं गुरुमेवासेव्योपचितान्। उपचितत्वमेवाह । आददीरन्गृह्णीयुः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्माजी ने देवताओं को बतलाया है कि गुरु का तिरस्कार करने से अवनत्ति होती है तथा गुरु का सत्कार करने से उन्नति होती है । यह दैत्यों के देखने से ही स्पष्ट है तुम लोग अपने शत्रूओं को देखो । अपने गुरु की सेवा करने से उन सबो की समुन्नति हुई है । उसके कारण यह भी सम्भव है कि कहीं वे हमारे भी स्थान को अपने अधीन न कर लें ॥२३॥

त्रिविष्टपं कि गणयन्त्यभेद्यमन्त्रा भृगूणामनुशिक्षितार्थाः ।
न विप्रगोविन्दगवीश्वराणां भवन्त्यभद्राणि नरेश्वराणाम् ॥२४॥

अन्वयः— भृगूणामनुशिक्षितार्थाः अभेद्यमन्त्राः त्रिविष्टपम् किं गणयन्ति विप्रगोविन्दगवीश्वराणाम् नरेश्वराणां अभद्राणि न भवन्ति ॥२४॥

अनुवाद— भृगुवंशी ब्राह्मणों ने उन सबों को अर्थशास्त्र की पूरी शिक्षा दे दी है । उनकी मन्त्रणा अभेद्य होती है । उसको कोई नहीं जान पाता है । इस प्रकार के बने हुए वे दैत्य स्वर्ग लोक को क्या गिनते हैं । वे चाहे जिस लोक को जीत लें । जो श्रेष्ठ पुरुष ब्राह्मण, गौ तथा गोविन्द को अपना सर्वस्व मानते हैं उनका कभी भी अमङ्गल नहीं होता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अभेद्यो मन्त्रो येषाम् । अनुशिक्षितार्थाः शिष्याः यतो विप्रा गोविन्दो गावश्चेश्वरा आनुग्राहका येषां तेषामेवाऽभद्राणि न भवन्त्यन्येषां तु भवन्ति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों की मन्त्रणा गुप्त होती है, यह अभेद्यमन्त्रा का अर्थ है । भृगूणामनुशिक्षितार्थाः अर्थात् शुक्राचार्य के शिष्य । जिन लोगों के ब्राह्मण, गोविन्द एवं गौ सर्वस्व होते हैं उनका कभी अमङ्गल नहीं होता है, दूसरे लोगों का तो अमङ्गल होता ही है ॥२४॥

तद्विश्वरूपं भजताशु विप्रं तपस्विनं त्वाष्ट्रमथात्मवन्तम् ।
सभाजितोऽर्थान्स विधास्यते वो यदि क्षमिष्यध्वमुतास्य कर्म ॥२५॥

अन्वयः— तत् त्वाष्ट्रम् तपस्विनं विप्रम् आत्मवन्तं विश्वरूपं आशु भजत यदि उतअस्य कर्म क्षमिष्यध्वम् सभाजितः सः वः अर्थान् विधास्यते ॥२५॥

अनुवाद— इसलिए तुमलोग त्वष्टा के पुत्र तपस्वी विप्र तथा आत्मज्ञ विश्वरूप के पास शीघ्र जाओ यदि तुमलोग उनके असुरों के प्रति प्रेम को क्षमा करा सकोगे और उनका सम्मान करोगे तो वे तुमलोग का कार्य करेंगे॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मात् । अथानन्तरमेव भजत । अस्य कर्मासुरपक्षपातम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

अतएव तुम लोग इसके पश्चात् विश्वरूप की सेवा करो । उनका असुरों के प्रति जो पक्षपात है, उसको यदि तुमलोग क्षमा करा सकोगे तो ॥२५॥

श्रीशुक उवाच

त एवमुदिता राजन्ब्रह्मणा विगतज्वराः । ऋषिं त्वाष्ट्रमुपव्रज्य परिष्वज्येदमब्रुवन् ॥२६॥

अन्वयः— हे राजन् एवम् ब्रह्मणा उदिता ते विगतज्वरा त्वष्ट्रं ऋषिम् उपव्रज्य परिष्वज्य इदम् अब्रुवन् ॥२६॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् ब्रह्माजी के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर देवताओं की चिन्ता दूर हो गयी वे त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप ऋषि के पास गये और उनका आलिङ्गन करके वे कहने लगे ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

उदिता उक्ताः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

उदिता अर्थात् कहे गये ।।२६।।

देवा ऊचुः

वयं तेऽतिथयः प्राप्ता आश्रमं भद्रमस्तु ते । कामः संपाद्यतां तात पितृणां समयोचितः ।।२७।।

अन्वयः— वयं आश्रमं अतिथयः प्राप्ताः तेभद्रम् अस्तु । तात ते पितृणां समयोचितः कामः सम्पद्यताम् ।।२७।।

देवताओं ने कहा

अनुवाद— वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो हमलोग तुम्हारे आश्रम में अतिथि के रूप में आयें है । हमलोग तुम्हारे पितृगण हैं । हमलोग का समयोचित कार्य तुम्हारे द्वारा पूरा होना चाहिए ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

पुत्राणां हि परो धर्मः पितृशुश्रूषणं सताम् । अपि पुत्रवतां ब्रह्मन्किमुत ब्रह्मचारिणाम् ।।२८।।

अन्वयः— ब्रह्मन् पुत्रवताम् अपि सताम् पुत्राणां परमोधर्मः पितृशुश्रूषणं ब्रह्मचारिणाम् किमुत ?।।२८।।

अनुवाद— ब्रह्मन् पुत्रवान् भी सज्जन पुत्रों का सबसे बड़ा यही धर्म है कि वे अपने पिता तथा गुरुजनों की सेवा करें और जो ब्रह्मचारी पुत्र हो तो उसके विषय में क्या कहना है ?।।२८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२८।।

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः । भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिर्माता साक्षात्क्षितेस्तनुः ।।२९।।

अन्वयः— आचार्यः ब्रह्मणो मूर्तिं पिता प्रजापतेः मूर्तिः भ्राता मरुत्पतेः मूर्तिः माता साक्षात् क्षितेः तनुः ।।२९।।'

अनुवाद— आचार्य वेद मूर्ति हैं, पिता ब्रह्माजी की मूर्ति, भाई इन्द्र की मूर्ति है और माता साक्षात् पृथ्वी देवी की मूर्ति हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

अतिथीनां पितृणां च प्रशंसार्थमाहुः आचार्य उपनीय वेदाध्यापकः । ब्रह्मणो वेदस्य मूर्तिः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

अतिथियों और पितरों की प्रशंसा के लिए देवताओं ने कहा जो उपनयन संस्कार करके अपने शिष्य को वेद पढ़ाता है उसे आचार्य कहते हैं आचार्य वेदमूर्ति होते हैं ।।२९।।

दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्यात्माऽतिथिः स्वयम् । अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चात्मनः ।।३०।।

अन्वयः— दयायाः मूर्तिः भगिनी अतिथिः स्वयम् धर्मस्य आत्मनः अभ्यागतः अग्नेः मूर्तिः सर्वभूतानि च आत्मनः मूर्तिः ।।३०।।

अनुवाद— बहिन दया की मूर्ति है अतिथि स्वयम् धर्म की मूर्ति (आत्मा) होता है, अभ्यागत अग्नि की मूर्ति होता है और सभी जीव आत्मा की मूर्ति हैं ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

धर्मस्यात्मा मूर्तिरतिथिः स्वयं साक्षात् । आत्मनः श्रीविष्णोः । यद्वा आत्मनः स्वस्य । सर्वभूतेष्वात्मदृष्टिः कर्तव्येत्यर्थः।।३०।।

भाव प्रकाशिका

अतिथि स्वयं धर्म की मूर्ति हैं। सभी प्राणी आत्मा की मूर्ति हैं। यहाँ पर आत्मा शब्द से भगवान् विष्णु को कहा गया है। अथवा अपनी ही मूर्ति है अर्थात् सभी भूतों में आत्म दृष्टि करनी चाहिए ॥३०॥

तस्मात्पितृणामार्तानामार्तिं परपराभवम्। तपसाऽपनयंस्तात संदेशं कर्तुमर्हसि ॥३१॥

अन्वयः— तस्मात् हे तात ! आर्तानाम् पितृणाम् आर्तानाम् परपराभवम् आर्तिं तपसा अपनयन् संदेशं कतुमर्हसि॥३१॥

अनुवाद— अतएव हे वत्स ! हमलोग अपने शत्रुओं से पराजित हो गये हैं अतएव हमलोग दुःखी हैं। तुम अपनी तपस्या के द्वारा हमारे कष्ट को दूर कर दो। तुम्हे हमलोगों की आज्ञा का पालन करना चाहिए ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

परेभ्यः पराभव एवार्तिस्ताम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

शत्रुओं से पराभव ही कष्ट है उसको तुम दूर कर दो ॥३१॥

वृणीमहे त्वोपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुम्। यथाञ्जसा विजेष्यामः सपत्नांस्तव तेजसा ॥३२॥

अन्वयः— ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुम् त्वा उपाध्यायं वृणीमहे। यथा तवतेजसा अञ्जसा सपत्नान् विजेष्यामः ॥३२॥

अनुवाद— तुम ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण हो अतएव जन्म से ही हमारे गुरु हो। हम तुम्हारा आचार्य के रूप में वरण करते हैं। जिससे कि तुम्हारे तेज से हम अपने शत्रुओं पर अनायास विजय प्राप्त कर लेंगे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

संदेशमाहुः-वृणीमह इति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

वणीमहे इत्यादि श्लोक के द्वारा देवताओं ने आज्ञा को बतलाया है ॥३२॥

न गर्हयन्ति ह्यर्थेषु यविष्ठाङ्घ्र्यभिवादनम्। छन्दोभ्योऽन्यत्र न ब्रह्मन्वयो ज्यैष्ठयस्य कारणम् ॥३३॥

अन्वयः— अर्थेषु यविष्ठ्याङ्घ्रिभिवादनम् न गर्हयन्ति। हे ब्रह्मन् छन्दोभ्यः अन्यत्र वयः ज्यैष्ठस्य कारणम् न ॥३३॥

अनुवाद— वत्स ! प्रयोजनवशात् अपने से छोटी उम्र वाले का चरण स्पर्श करने को निन्दित नहीं बतलाया गया है। वेदज्ञान से भिन्न केवल अवस्था ही श्रेष्ठता का कारण नहीं होती है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

ननूपाध्यायत्वे कनिष्ठस्य ममाभिवन्दनं करिष्यथ तच्च गर्हितं तत्राहुः— नेति। अर्थेषु प्रयोजननिमित्तं यविष्ठानामभिवादनं न निन्दन्ति। किंच छन्दोभ्यो मन्त्रेभ्योऽन्यत्र वयो ज्यैष्ठ्यस्य कारणं नतु मन्त्रेषु। अतोऽस्मभ्यं मन्त्रदातृत्वेन त्वमेव ज्येष्ठो भविष्यसि। यद्वा छन्दोभ्योऽन्यत्र वेदान्विहाय वयएव ज्यैष्ठ्यस्य कारणं न भवति, किंतु वेदा एवं मुख्यं कारणम्। तत्साम्ये तु वयः वेदज्ञत्वाच्च त्वमेव ज्येष्ठ इत्यर्थः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि मेरे आचार्य हो जाने पर मैं तो आप लोगों से छोटा अपने से छोटे का चरण स्पर्श करना तो निन्दित है। इस पर देवताओं ने कहा ऐसी बात नहीं है। प्रयोजन वशात् अपने से छोटे लोगों के चरण स्पर्श की निन्दा नहीं करते हैं। किञ्च वेदार्थ ज्ञान से भिन्न अवस्था श्रेष्ठता का कारण नहीं है। अतएव हमलोगों को मन्त्र प्रदान करने के कारण आप ही ज्येष्ठ हैं, अथवा वेदों को छोड़कर अवस्था ही ज्येष्ठता का कारण नहीं होती है। अपितु वेद ही मुख्य कारण हैं। अवस्था उसके समान है। वेदज्ञ होने से तुम ही ज्येष्ठ हो ॥३३॥

ऋषिरुवाच

अभ्यर्थितः सुरगणैः पौरोहित्ये महातपाः । स विश्वरूपस्तानाह प्रसन्नः श्लक्ष्णया गिरा ।।३४।।

अन्वयः— सुरगणैः पौरोहित्ये अभ्यर्थितः स महातपाः विश्वरूपः प्रसन्नः श्लक्ष्णया गिरा तान् आह ।।३४।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— देवताओं द्वारा पौरोहित्य कर्म के लिए प्रार्थना किए जाने पर महा तपस्वी विश्वरूप ने प्रसन्न होकर मधुर वाणी में देवताओं से कहा ।।३४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३४।।

विश्वरूप उवाच

विगर्हितं धर्मशीलैर्ब्रह्मवर्चउपव्ययम्। कथं नु मद्विधो नाथा लोकेशैरभियाचितम्।।
प्रत्याख्यास्यति तच्छिष्यः स एव स्वार्थ उच्यते ।।३५।।

अन्वयः— धर्मशीलैः विगर्हितम् ब्रह्मवर्च उपव्यम् । हे नाथाः लोकेशैः अभियाचितम् मद्विधः कथं प्रत्यास्व्यास्यति तत् शिष्य स एव स्वार्थः ।।३५।।

विश्वरूप ने कहा

अनुवाद— धर्मज्ञों ने पौरोहित्य कर्म को निन्दित कर्म कहा है । उसके द्वारा ब्रह्मतेज का क्षय होता है । किन्तु आपलोग तो मेरे स्वामी है । मेरे जैसा व्यक्ति आपलोगों की आज्ञा को कैसे टाल सकता है । मैं तो आपलोगों का सेवक हूँ । आपलोगों की आज्ञाओं का पालन ही मेरा स्वार्थ हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

निन्दितमपीदं युष्मद्याच्ञाभङ्गभयेन करिष्यामीत्याह सार्धेन । विगर्हितं पौरोहित्यं धर्मशीलैः, अधर्महेतुत्वात् । किंच ब्रह्मवर्चउपव्ययं पूर्वसिद्धस्य ब्रह्मवर्चसो व्ययकरम् । प्रत्याख्यातुं च मादृशो नार्हतीत्याह-कथं न्विति । तेषां शिष्यः शिक्षाणार्हः। स एव प्रत्याख्यानाभाव एव हि शिष्यस्य स्वार्थ उच्यते ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि पौरोहित्य निन्दित है फिर भी आपलोगों की प्रार्थना भङ्ग न हो इस भय से मैं उसे करूँगा इस बात को विश्वरूप ने डेढ श्लोक के द्वारा कहा । धार्मिक पुरुषों ने पौरोहित्य की निन्दा की है, क्योंकि वह अधर्म का कारण है । किञ्च उससे पहले से विद्यमान ब्रह्मतेज क्षीण होता है । मुझ जैसा व्यक्ति आपलोगों को मना नहीं कर सकता है । क्योंकि मैं तो आपलोगों का शिष्य (सेवक) हूँ । अतएव गुरुजनों का प्रत्याख्यान नहीं करना ही शिष्य का स्वार्थ होता है ।।३५।।

अकिंचनानां हि धनं शिलोञ्छनं तेनेह निर्वर्तितसाधुसत्क्रियः ।
कथं विगर्ह्यं तु करोम्यधीश्वराः पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मति ।।३६।।

अन्वयः— अकिञ्चनानां हि धनं शिलोञ्छनं तेन इह निर्वर्तित साधुसत्क्रियः अधीश्वराः विगर्ह्यं पौरोधसं कथं करोमि येनदुर्मतिः हृष्यति ।।३६।।

अनुवाद— देवताओं मैं तो अकिञ्चन हूँ शिलोञ्छ वृत्ति से ही इस लोक में साधुजनों की सेवा करता हूँ। लोकपालों ? जब इस तरह मेरी वृत्ति चल जाती है तो फिर मैं निन्दित पौरोहित्य कर्म क्यों करूँ । पुरोहित्य कर्म से प्रसन्न तो वे ही लोग होते हैं जिनकी बुद्धि बिगड़ गयी है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

ननु पौरोहित्येन धनलाभाद्धर्मः सिध्येत् । अन्यथा निर्धनस्य कुतो धर्मः । अत एव तेन लोको ह्यष्यति तत्राह । अकिंचनानां शिलोञ्छनं हि धनम् । क्षेत्रे स्वाम्युपेक्षितकणिशोपादानं शिलम् । हट्टादौ पतितव्रीह्यादेरुपादानमुञ्छनम् । इह गृहाश्रमे तेनैव निर्वर्तिता साधूनां सत्क्रिया येन ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि पौरोहित्य से धन लाभ होता है । धन से धर्म होता है धन के बिना धर्म कैसे हो सकता है ? निर्धन व्यक्ति धर्म नहीं कर सकता है । उससे संसार प्रसन्न होता है । इस पर विश्वरूप ने कहा अकिञ्चनों का धन शिलोञ्छ ही है । खेत में गिरे हुए अन्नकणों को लेना ही शिल हैं । बाजार आदि में गिरे अन्न को लाना ही ऊञ्छ कहलाता है । गृहस्थाश्रम में उसी से अपना जीवन निर्वाह करना तथा सत्पुरुषों की सेवा करने वाला मैं हूँ ॥३६॥

तथापि न प्रतिब्रूयां गुरुभिः प्रार्थितं कियत् । भवतां प्रार्थितं सर्वं प्राणैरर्थैश्च साधये ॥३७॥

अन्वयः— तथापि गुरुभिः प्रार्थितं न प्रतिब्रूयां भवतां प्रर्थितं कियत् । सर्वं प्राणैरर्थैश्च साधये ॥३७॥

अनुवाद— फिर भी मैं आप गुरुजनों द्वारा की गयी प्रार्थना का प्रत्याख्यान नहीं करूँगा । आपलोगों की प्रार्थना तो अल्यल्प है । आपलोगों के मनोरथ को मैं तन, मन, धन से पूरा करूँगा ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

कियदेतत्प्रार्थितमल्पमेव । अभ्यधिकमपि करिष्यामीत्याह-भवतामिति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

विश्वरूप ने कहा आपलोगों की प्रार्थना अत्यल्प हैं मैं उससे अधिक भी करूँगा ॥३७॥

श्रीशुक उवाच

तेभ्य एवं प्रतिश्रुत्य विश्वरूपो महातपाः । पौरोहित्यं वृतश्चक्रे परमेण समाधिना ॥३८॥

अन्वयः— तेभ्य एवं प्रतिश्रुत्य महातपा विश्वरूपः वृतः परमेण समाधिना पौरोहित्यं चक्रे ॥३८॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— देवताओं से इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके विश्वरूप देवताओं द्वारा वृत्त होकर अत्यन्त सावधानी पूर्वक देवताओं का कार्य करने लगे ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

परमेण समाधिना परमोद्यमेन ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त प्रयास पूर्वक यह परमेण समाधिना का अर्थ है ॥३८॥

सुरद्विषां श्रियं गुप्तामौशनस्यापि विद्यया । आच्छिद्यादान्महेन्द्राय वैष्णव्या विद्यया विभुः ॥३९॥

अन्वयः— औशनस्य अपि विद्यया सुरद्विषां गुप्तांश्रियं विभुः वैष्णव्या विद्यया आच्छिद्य महेन्द्राय अदात् ॥३९॥

अनुवाद— यद्यपि शुक्राचार्य ने अपनी नीति से दैत्यों की सम्पत्ति को सुरक्षित कर दिया किन्तु विश्वरूप ने अपनी वैष्णवी विद्या के प्रभाव से उस छिन कर इन्द्र को प्रदान कर दिया ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

वैष्णव्या श्रीनारायणकवचात्मिकया ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

वैष्णव्या अर्थात् नारायण कवच स्वरूपिणी विद्या के द्वारा छिनकर इन्द्र को प्रदान कर दिया ।।३९।।

यया गुप्तः सहस्राक्षो जिग्येऽसुरचमूर्विभुः । तां प्राह स महेन्द्राय विश्वरूप उदारधीः ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

अन्वयः— यया गुप्तः विभुः सहस्राक्षः असुरचमूः जिग्ये, ताम् स उदारधीः विश्वरूपः महेन्द्राय प्राह ।।४०।।

अनुवाद— राजन् ! जिस विद्या से सुरक्षित होकर इन्द्र ने दैत्यों की सेना पर विजय प्राप्त किया उस विद्या को उदार बुद्धि वाले विश्वरूप ने उनको प्रदान किया ।।४०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के सातवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

भावार्थ दीपिका

असुरचमूर्दैत्यसेनाः ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठ स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

असुरचमू अर्थात् दैत्यों की सेना ।।४०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के सातवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।७।।

* * *

आठवाँ अध्याय

विश्वरूप द्वारा इन्द्र को नारायण कवच का उपदेश

राजोवाच

यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान्। क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्याः बुभुजे श्रियम् ॥१॥

अन्वयः— यया गुप्त सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान् कीडन् इव विनिर्जित्य त्रिलोक्याः श्रियं बुभुजे ॥१॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— जिस विद्या से संरक्षित होकर इन्द्र ने अनायास खेल-खेल में दैत्यों की चतुरङ्गिणी सेना को जीतकर त्रिलोकी के राज्य को भोगा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टमे विश्वरूपस्तु धर्म नारायणात्मकम्। इन्द्राय प्राह येनेन्द्रो गुप्तो दैत्यानथाजयत्। त्रिलोक्याः संबन्धिनीं श्रियम्॥१॥

भाव प्रकाशिका

आठवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि विश्वरूप ने इन्द्र को नारायण कवच का उपदेश दिया और उससे संरक्षित होकर दैत्यों पर विजय प्राप्त कर लिया और त्रैलोक्य की राज लक्ष्मी का उपभोग किया ॥१॥

भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम् । यथाततायिनः शत्रून्येन गुप्तोऽजयन्मृधे ॥२॥

अन्वयः— हे भगवन् तत्मम नारायणात्मकम् वर्म आख्याहि येन गुप्तः यथा आतातायिन मृधे अजयत् ।।२।।

अनुवाद— हे भगवन् ! आप मुझे उस नारायण वर्म को बतलाएँ जिससे संरक्षित होकर इन्द्र ने आततायी इन्द्र पर विजय प्राप्ति किया ।।२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।२।।

श्रीशुक उवाच

वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेन्द्रायानुपृच्छते । नारायणाख्यं वर्माह तदिहैकमनाः शृणु ॥३॥

अन्वयः— वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रः अनुपृच्छते महेन्द्राय नारायणाख्यं वर्म आह, तत् इह एकमना शृणु ।।३।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— देवताओं द्वारा पुरोहित रूप से वरण कर लिए जाने पर इन्द्र द्वारा पूछे जाने पर विश्वरूप ने उनको नारायण वर्म का उपदेश दिया । उसको तुम सावधान होकर सुनो ।।३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३।।

विश्वरूप उवाच

धौताङ्घ्रिपाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः। कृतस्वाङ्गकरन्यासो मन्त्राभ्यां वाग्यतः शुचिः॥४॥
नारायणमयं वर्म संनह्येद्भय आगते । पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि ॥५॥
मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादोंकारादीनि विन्यसेत् । ओं नमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ॥६॥

अन्वयः— भय आगते धौतङ्घ्रिपाणिः आचम्य, पवित्रः उदङ्मुखः, वाग्यतः शुचिः, मन्त्राभ्यां कृतस्वङ्गकरन्यासः नारायण वर्म सन्न ह्येत् पादयोः जानुनो उर्वोःउदरे हृदि अथ उरसि मुखे शिरसि आनुपूर्यात् ओङ्कारादीनि ओम् नमोनारायणाय इति अथापि वाविपर्ययम् विन्यसेत् ।।४-६।।

अनुवाद— इन्द्र भय का अवसर आने पर नारायण वर्म धारण करे पहले हाथ पैर धोकर आचमन करें फिर कुश की पवित्री धारण करे । उसके पश्चात् उत्तराभिमुख बैठ जाय । नारायण वर्म धारण पर्यन्त कुछ भी न बोले उसके पश्चात् ओम् नमो नारायणाय तथा ओम नमो भगवते वासुदेवाय इन दोनों मन्त्रों से हृदयादि अङ्गन्यास तथा अङ्गष्ठादि करन्यास करे । पहले **ओम् नमो नारायणाय** इस मन्त्र के ओम् आदि आठ अक्षरों द्वारा दोनों पैरों, दोनों घुटनों, दोनों जाङ्घों, पेट, हृदय, वक्षः स्थल, मुख और सिर में न्यास करें । अथवा उसी मन्त्र के मकार से लेकर पैर तक उन्हं आठ अङ्गों में न्यास करें ।।४-६।।

भावार्थ दीपिका

मन्त्राभ्यामष्टाक्षरद्वादशाक्षराभ्याम् । कृतः स्वाङ्गेषु करयोश्च न्यासो येन । नारायणमयं वर्म संनह्येद्बध्नीयात् । तत्राष्टाक्षरेण पादाद्यष्टाङ्गेषु न्यासमाह-पादयोरिति सार्धेन । प्रणवसंपुटितमोङ्कारद्येकैकमक्षरं विन्यसेत् । विपर्ययं यथा भवत्येवं शिरआदिपादान्तं वा विन्यसेत् । उत्पत्तिन्यासं संहारन्यासं वा कुर्यादित्यर्थः ।।४-६।।

भाव प्रकाशिका

अष्टक्षर तथा द्वादशाक्षर इन दोनों मन्त्रों से अपने अङ्गों तथा हाथों में न्यास करके नारायण वर्म धारण करे। अष्टाक्षर मन्त्र से पैर आदि आठ अङ्गों में न्यास डेढ श्लोकों में बतलाया गया है । प्रणव संपुटित ओङ्कार आदि प्रत्येक अक्षर का न्यास करे । अथवा इसके ठीक विपरीत क्रम से न्यास करे । अथवा उत्पत्ति न्यास अथवा संहारन्यास करें ।।४-६।।

करन्यासं ततः कुर्याद्द्वादशाक्षरविद्यया । प्रणवादियकारान्तमङ्गुल्यङ्गुष्ठपर्वसु ॥७॥

अन्वयः— ततः द्वादक्षाक्षरविद्यया प्रणवादि यकारान्तं करन्यासं कुर्यात् ।

अनुवाद— उसके पश्चात् **ओम् नमो भगवते वासुदेवाय** इस द्वादशाक्षर मन्त्र से कर न्यास करे । ओम् आदि वारह अक्षरों का दायीं तर्जनी से बायीं तर्जनी तक दोनों हाथ की आठ अङ्गुलियों में और दोनों हाथों की अङ्गूठे के दो दो गाँठों में न्यास करें ॥७॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशाक्षरस्यो द्वारः प्रणवादियकारान्तमिति । प्रणवसंपुटितमेकैकमक्षरं दक्षिणतर्जनीमारभ्य वामतर्जनीपर्यन्तमङ्गुलीषु। परिशिष्टमक्षरचतुष्टयमङ्गुष्ठयोराद्यन्तपर्वसु न्यसेत् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में द्वादशाक्षर मंत्र का उद्धार वर्णित है । प्रणव से लेकर चकार तक के प्रत्येक अक्षर को प्रणव से संपुटित करके दाहिने हाथ की तर्जनी से लेकर बायें हाथ की तर्जनी पर्यन्त अङ्गुलियों में न्यास करे अवशिष्ट चारवर्णों को दोनों हाथों के दोनों अङ्गूठाों के प्रथम तथा अन्तिम पर्वों में न्यास करें ॥७॥

न्यसेद्धृदय ओङ्कारं विकारमनु मूर्धनि । षकारं तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखयादिशेत् ॥८॥
वेकारं नेत्रयोर्युञ्ज्यान्नकारं सर्वसन्धिषु । मकारमस्त्रमुद्दिश्य मन्त्रमूर्तिभ्रवेद्बुधः ॥९॥

अन्वयः— हृदये ओङ्कारम् अनु विकारम् मूर्धनि, षकारं तु भ्रुवोर्मध्येणकारं शिखया दिशेत् वेकारं नेत्रयोः युञ्जयात्। नकारं सर्वसन्धिषु, मकारमस्त्रम् उद्विश्य मन्त्रर्भवेद बुध; ॥८-९॥

अनुवाद— हृदय में ओङ्कार का न्यास करे, वि का ब्रह्मरन्ध्र में, ष का भौहो के बीच में, या काचौटी में, वेत्र का दोनों नेत्रों म्न का शरीर की सभी गांठो में और ॐ मः अस्त्राय पुट कहकर दिग्बन्ध करे ऐसा करने वाला मनुष्य मन्त्र स्वरूप हो जाता है ॥८-९॥

भावार्थ दीपिका

मन्त्रान्तरन्यासमाह-न्यसेदिति। षकारणकारयोर्विश्लेषेण षडक्षराणि हृदयादिषु न्यसेत्। मकारमस्त्रमुद्दिश्य ध्यात्वा ॥८-९॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे मन्त्र का न्यास बतलाते हैं ष् और ण को पृथक करके छह अक्षरों का न्यास करना चाहिए । मकार का अस्त्र रूप से ध्यान करके द्विग्बन्धन करे ॥८-९॥

सविसर्गं फडन्तं तत्सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् । ॐ विष्णवे नम इति ॥१०॥

अन्वयः— सविसर्गं फडन्तं तत् सर्व दिक्षु विनिर्दिशीत् । ओविष्णवे नमः ॥१०॥

अनुवाद— उसके पश्चात मः अस्त्राय फट् कहकर दिग्बन्ध करे। यह ओम् विष्णवे नमः मन्त्र का न्यास है॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तन्मकारास्त्रं 'मः अस्त्राय फट्' इत्येवं दिग्बन्धे विनिर्दिशेत् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् 'मः अस्त्राय फट' कहकर दिग्बन्ध करे ॥१०॥

आत्मानं परमं ध्यायेद्ध्येयं षट्शक्तिभिर्युतम् । विद्यातेजस्तपोमूर्तिमिमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥११॥

अन्वयः— षट्शक्तिभिर्युतम् परमं आत्मानं ध्येयं ध्यायेत् । विद्यातेजस्तपो मूर्तिम् इमं मन्त्रम् उदाहरेत् ॥११॥

अनुवाद— उसके पश्चात् समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य से परिपूर्ण अपने इष्टदेव श्रीभगवान् का ध्यान करे और अपने को भी उसी रूप में चिन्तन करे उसके पश्चात् विद्या, तेज और तपः स्वरूप इस कवच का पाठ करें ॥११॥

भावार्थ दीपिका

ध्येयमीश्वररूपमात्मानं ध्यायेत् । षट्शक्तिभिरैश्वर्यादिभिर्भगशब्दवाच्याभिः । विद्या च तेजश्च तपश्च मूर्तिर्यस्य तम् । इमं वक्ष्यमाणं श्रीमन्नारायणकवचाख्यम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

ध्येय ईश्वर रूप आत्मा का ध्यान करे । भग शब्द से कहे जाने वाली ऐश्वर्य आदि छह शक्तियों से युक्त परमात्मा का ध्यान करे । विद्या, तेज और तपः स्वरूप कहे जाने वाले नारायणवर्म नामक कवच का पाठ करे॥११॥

ॐ हरर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां न्यस्ताङ्घ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे ।
दरारिचर्मासिगदेषुचापपाशान्दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः ॥१२॥

अन्वयः— पतगेन्द्रपृष्ठे न्यस्ताङ्घ्रिपद्मः, दरारिचर्मासिगदेषुचापपाशान् दधानः अष्टगुणः अष्टबाहु हरिः मम सर्वारक्षां विदध्यात् ॥१२॥

अनुवाद— जो गरुडजी के पीठ पर अपना चरण कमल रखे हैं, अपने आठ हाथों में क्रमशः शङ्ख, चक्र, ढाल, तलवार, गदा, बाण, धनुष एवं पाश धारण किए हैं । अणिमा आदि आठ गुणों से सम्पन्न आठ भुजाओं वाले श्रीहरि हमारी हर प्रकार से रक्षा करें वे ॐकार स्वरूप हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अष्टगुणोऽणिमाद्यष्टैश्वर्ययुक्तः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अष्टगुणः अर्थात् अणिमा आदि आठ ऐश्वर्यों से युक्त ॥१२॥

जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात् ।
स्थलेषु मायाबटुवामनोऽव्यात्त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः ॥१३॥

अन्वयः— मत्स्यमूर्तिः मां जलेषु यादोगणेभ्यः वरुणस्य पाशात् रक्षतु, मायावटुवामनः स्थलेषु अव्यात् खे विश्वरूपः त्रिविक्रमः अवतु ॥१३॥

अनुवाद— जल में भगवान् मत्स्यमूर्ति जल जन्तुओं से तथा वरुण के पाश से मेरी रक्षा करे स्थल पर माया से वामन वटु ने भगवान् वामन मेरी रक्षा करें और आकाश में विश्वरूप त्रिविक्रम भवान् मेरी रक्षा करें ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

यादसां गणा एव वरुणस्य पाशस्तस्मात् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

जलचर समूह रूप वरुण के पाश से ॥१३॥

दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः ।
विमुञ्चतो यस्य महाट्टहासं दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः ।।१४।।

अन्वयः— यस्य महाट्टहासं विमुञ्चत दिशोविनेदुः न्ययतंश्च गर्भा असुरयूथपारिः प्रभुः नृसिंहः दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु पायात् ।।१४।।

अनुवाद— जिनके भयङ्कर अट्टहास के कारण दिशाएँ गूंज उठी थीं और दैत्यों की पत्नियों के गर्भ गिर गये थे, इस प्रकार के दैत्य यूथ पतियों के शत्रु नृसिंह भगवान् किला जङ्गल तथा युद्ध भूमि में मेरी रक्षा करें।।१४।।

भावार्थ दीपिका

अटवी आजिमुखं संग्रामोपक्रमश्च आदिर्येषां तेषु सङ्कटस्थानेषु ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

जङ्गल तथा संग्राम भूमि आदि सङ्कटमय स्थानों में भगवान् नृसिंह मेरी रक्षा करें ।।१४।।

रक्षत्वसौ माऽध्वनि यज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराहः ।
रामोऽद्रिकूटेश्वथ विप्रवासे सलक्ष्मणोऽव्याद्भरताग्रजोऽस्मान् ।।१५।।

अन्वयः— मा अध्वनि यज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रयोन्नीत्धरो वराहः । अथ अद्रि कूटेषु विप्रवासे सलक्ष्मणः भरताग्रजः अस्मान् अव्यात् ।।१५।।

अनुवाद— अपने दाँतों पर पृथिवी को धारण किए भगवान् यज्ञ वाराहः मेरी रक्षा मार्ग में, श्रीपरशुरामजी, मेरी रक्ष पर्वत शिखरों पर करें, प्रवास काल में श्रीलक्ष्मण जी के साथ भरताग्रज भगवान् श्रीराम मेरी रक्षा करें।।१५।।

भावार्थ दीपिका

असौ प्रसिद्धो वराहो मा मामध्वनि रक्षतु । यज्ञैरवयवरूपैः कल्प्यते निरूप्यत इति तथा । उन्नीता उद्धृता धरा येन सः। अद्रिकूटेषु गिरिशिखरेषु । रामो जामदग्न्यः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

यज्ञ के अवयवों के द्वारा जिनका निरूपण किया जाता है ऐसे यज्ञ कल्प भगवान् जो अपने दाँतों पर भू देवी को धारण किए हुए हैं वे मेरी रक्षा करे । पर्वत शिखरों पर श्रीपरशुरामजी मेरी रक्षा करें ।।१५।।

मामुग्रधर्मादखिलात्प्रमादान्नारायणः पातु नरश्च हासात् ।
दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथः पायाद्गुणेशः कपिलः कर्मबन्धात् ।।१६।।

अन्वयः— नारायणः माम् उग्रधर्मात् अखिल प्रमादात् पातु, नरश्च हासात्, योगनाथः दत्तः अयोगात्, गुणेशः कपिलः कर्मबन्धात् पायात् ।।१६।।

अनुवाद— भगवान् नारायण मारण मोहन आदि भयङ्कर अभिचारों से और सभी प्रकार के प्रमादों से मेरी रक्षा करें, ऋषिश्रेष्ठ नर गर्व से मेरी रक्षा करें, योगेश्वर भगवान् दत्तात्रेय योग के विघ्नों से मेरी रक्षा करें, त्रिगुणाधिपति भगवान् कपिल कर्म के बन्धनों से मेरी रक्षा करें ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

उग्रधर्मादभिचारादिलक्षणात् हासाद्गर्वान्नरोऽवतु । दत्तो दत्तात्रेयः । अयोगाद्योगभ्रंशात् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् नारायण मेरी रक्षा मारण मोहन आदि भयङ्कर अभिचार कर्मों से करें । **हासात्** अर्थात् गर्व से ऋषिवर्य नर मेरी रक्षा करें । दत्त शब्द दत्तात्रेय का बोधक है । योगात् अर्थात् योग के विघ्नों से मुझे बचायें ।।१६।।

सनत्कुमारोऽवतु कामदेवाद्धयशीर्षा मां पथि देवहेलनात् ।
देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनान्तरात्कूर्मो हरिर्मां निरयादशेषात् ।।१७।।

अन्वयः— सनत् कुमारो कामदेवात् हयशीर्षा माम् पथिदेव हेलनात् देवर्षिवर्यः पुरुर्षचनान्तरात् कूर्मो हरिः मां अशेषत् निरयात् पातु ।।१७।।

अनुवाद— परमर्षि सनत् कुमार मेरी रक्षा कामदेव से, हयग्रीव भगवान् मेरे मार्ग में चलते समय देवताओं को नमस्कार नहीं करने आदि अपराधों से देवर्षि नारद मेरी रक्षा सेवा परधि से तथा भगवान् कच्छप सभी प्रकार के नरकों से मेरी रक्षा करें ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

पथि यद्देवानां हेलनं नमस्कारमकृत्वा गमनं तस्मात् । पुरुषार्चनस्यान्तरादेवपूजाच्छिद्राद्वात्रिंशदपराधरूपान्नारदः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

पथि देव हेलनात् अर्थात् मार्ग में पड़ने वाले देवताओं को नमस्कार किए बिना जाना रूप अपराध से । **पुरुषार्चनान्तरात्** अर्थात् देव पूजा में होने वाले बत्तीस प्रकार के अपराधों से ।।१७।।

विशेष— सेवा में होने वाले बत्तीस प्रकार के अपराधों को शास्त्रों में बतलया गया है— १. सवारी पर चढ़कर अथवा खड़ाऊँ पहनकर भगवान् के मन्दिर में जाना, २. रथयात्रा जन्माष्टमी आदि उत्सवों को नहीं करना अथवा उसको देखने के लिए नहीं जाना, ३. श्रीमूर्ति का दर्शन करके प्रणाम नहीं करना, ४. अपवित्रावस्था में दर्शन करना, ५. एक हाथ से प्रणाम करना, ६. परिक्रमा करते समय भगवान् के सामने आकर कुछ रुके बिना फिर परिक्रमा करने लगना, अथवा केवल सामने ही परिक्रमा करते रहना, ७. श्रीभगवान् के विग्रह के सामने पैर फैलाकर बैठना, ८. श्रीभगवान् के विग्रह के सामने घुटना ऊँचा करके उसको हाथ से लपेट कर बैठ जाना, ९. श्रीभगवान् के विग्रह के सामने सोना, १०. श्रीभगवान के विग्रह के सामने भोजन करना, ११. श्रीभगवान् के विग्रह के सामने झूठ बोलना, १२. श्रीभगवान् के विग्रह के समक्ष जोर से बोलना, १३. श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के समक्ष परस्पर में बातें करना, १४. श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के सामने चिल्लाना, १५. श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के समक्ष कलह करना, १६. श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के समक्ष किसी को पीड़ित करना, १७. श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के समक्ष किसी पर अनुग्रह करना, १८. श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के समक्ष किसी को निष्ठुर कहना, १९. श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के सामने कम्बल से पूरे शरीर को ढँक लेना, २०. श्रीभगवान् के विग्रह के सामने दूसरे किसी की निन्दा करना, २१. श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के सामने दूसरे की स्तुति करना, २२. श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के समक्ष अश्लील शब्दों को बोलना, २३. श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के समक्ष आधो वायु का त्याग करना, २४. शक्ति रहते हुए भी गौण (सामान्य) उपचारों से श्रीभगवान् की सेवा पूजा करना, २५. श्रीभगवान् को निवेदित किए बिना किसी वस्तु को खाना पीना, २६. जिस ऋतु में जो फल हो उसे सबसे पहले श्रीभगवान् को न चढ़ाना, २७. किसी शाक अथवा फलादि के अगले भाग को तोड़कर श्रीभगवान् के व्यञ्जनादि के लिए देना, २८. श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के समक्ष पीठ करके बैठना, २९. श्रीभगवान् के श्रीविग्रह के समक्ष दूसरे किसी को प्रमाम करना, ३०. गुरुदेव की प्रार्थना अथवा कुशल प्रश्न नहीं करना, और उनका स्तवन न करना, ३१. स्वयम् अपनी प्रशंसा करना और ३२. किसी भी देवता की निन्दा करना ।

धन्वन्तरिर्भगवान्पात्वपथ्याद्द्वन्द्वाद्भयादृषभो निर्जितात्मा ।
यज्ञश्च लोकादवताज्जनान्ताद्बलो गणात्क्रोधवशादहीन्द्रः ।।१८।।

अन्वयः— भगवान् धन्वन्तरिः अपथ्यात् पातु, निर्जितात्मा ऋषभः द्वन्द्वात्, भयात, यज्ञश्च लोकात् अवतात्, बलः जनान्तात्, अहीन्द्रः क्रोधवशात् गणात् ।।१८।।

अनुवाद— भगवान् धन्वन्तरि कुपथ्य से मेरी रक्षा करे, जितेन्द्रिय भगवान् ऋषभदेंव सुख-दु:ख आदि भयानक द्वन्दों से, यज्ञ भगवान् लोकापवाद से, बलरामजी मनुष्य कृत कष्टों से तथा भगवान् शेषनाग क्रोध वशा नामक सर्प समूह से मेरी रक्ष करें ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

लोकाज्जनापवादात्यज्ञः । जननिमित्तो योऽन्त उपघातस्तस्माद्बलभद्रोऽवतात् । कृतान्तादिति पाठे कृतान्तात् कालाद्रक्षतु। क्रोधवशात्सर्पाणां गणात् । अहीन्द्रः शेषः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् यज्ञ लोकपवाद से मेरी रक्षा करें । भगवान् बलभद्र मनुष्यों से प्राप्त होने वाले कष्ट से रक्षा करें। जहाँ कृतान्तात् पाठ है वहाँ अर्थ होगा काल से रक्षा करें । क्रोधवशा नामक सर्पों के समूह से भगवान् शेष रक्षा करें ॥१८॥

द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद्बुद्धस्तु पाखण्डगणाप्रमादात् ।
कल्किः कलेः कालमलात्प्रपातु धर्मावनायोरुकृतावतारः ॥१९॥

अन्वयः— भगवान् द्वैपायनः अप्रबोधात बुद्धस्त पाखण्डगणात् प्रमादात्, धर्मावनायऊरुकृतावतारः कल्किः कलेः कालमलात् प्रयातु ॥१९॥

अनुवाद— भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यासजी अज्ञान से, भगवान् बुद्ध पाखण्डियों से तथा प्रमाद से तथा धर्म संरक्षणार्थ महान् अवतार ग्रहणकरने वाले भगवान् कल्कि कलिकाल के दोषों से मेरी रक्षा करें ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

कालमलभूतात्कलेः कल्किः । धर्मावनाय धर्मरक्षणायोरुर्महान्कृतोऽवतारो येन ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

काल के मल स्वरूप कलियुग के दोषों से भगवान् कल्कि मेरी रक्षा करे, धर्म का संरक्षण करने के लिए महान् अवतार भगवान् कल्कि ने ग्रहण किया है ॥१९॥

मां केशवो गदया प्रातरव्याद्गोविन्द आसङ्गवमात्तवेणुः ।
नारायणः प्राह्ण उदात्तशक्तिर्मध्यन्दिने विष्णुररीन्द्रपाणिः ॥२०॥
देवोऽपराह्णे मधुहोग्रधन्वासायं त्रिधामाऽवतु माधवो माम् ।
दोषे हृषीकेश उतार्धरात्रे निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभः ॥२१॥

अन्वयः— केशवः माम् गदया प्रातः अव्यात् गोविन्दः आत्तवेणुः आसङ्गवम् उदात्तशक्तिः नारायणः प्राह्णे अरीन्द्र पाणिः विष्णुः मध्यन्दिने, उग्रधन्वा मधुहादेवः अपराह्णे, त्रिधामामाधवः माम् सायं, दोषे हृषीकेशः उत अर्धरात्रे निशीथ एकः पद्मानाभः अवतु ॥२०-२१॥

अनुवाद— भगवान् केशव प्रात:काल मेरी रक्षा गदा से करें भगवान् गोविन्द कुछ दिन चढ़ने तक मेरी रक्षा हाथ में बाँसरी लेकर करें, दोपहर के पहले भगवान् नारायण अपनी तीक्ष्ण शक्ति से मेरी रक्षा करें, दोपहर को भगवान् विष्णु चक्रराज सुदर्शन से मेरी रक्षा करें, तीसरे प्रहर में उग्रधन्वा भगवान् मधुसूदन सायंकाल में ब्रह्मा आदि त्रिमूर्ति धारण करने वाले भगवान् माधव मेरी रक्षा करें सूर्यास्त के पश्चात् भगवान् हृषीकेश और अर्द्धरात्रि के पूर्व और अर्द्धरात्रि के समय भगवान् पद्मनाभ अकेले मेरी रक्षा करो ॥२०-२१॥

भावार्थ दीपिका

दिनस्य षट्सु भागेषु क्रमेण प्रातरादिसंज्ञेषु रात्रेश्च प्रदोषादिसंज्ञेषु रक्षाप्रार्थनम्- मां केशव इति त्रिभिः । आसङ्गवं सङ्गवमभिव्याप्य । त्रिधामा ब्रह्मादित्रिमूर्तिः श्रीमाधवः दोषे प्रदोषे आर्धरात्रे अर्धरात्रिपर्यन्ते काले निशीथे चैक एव पद्मनाभोऽवतु ।।२०-२१।।

भाव प्रकाशिका

दिन के छह भागों में क्रमशः प्रातः काल आदि संज्ञाओं वाले कालों में तथा रात्रि के प्रदोष आदि छह संज्ञाओं वाले कालों में रक्षा की प्रार्थना मां केशवः इत्यादि तीन श्लोकों में की गयी है । **आसङ्गवम्** सूर्योदय के बाद कुछ दिन चढ़ने तक के काल में **त्रिधामा** अर्थात् ब्रह्मा आदि तीन शरीरों को धारण करने वाले भगवान् माधव, **दोषे** अर्थात् प्रदोष काल में **अर्धरात्रे** अर्थात् अर्द्धरात्रि काल पर्यन्त, भगवान् पद्मनाभ अकेले रक्षा करें । **निशीथे** अर्थात् आधी रात में ।।२०-२१।।

श्रीवत्सधामाऽपररात्र ईशः प्रत्यूष ईशोऽसिधरो जनार्दनः ।
दामोदरोऽव्यादनुसन्ध्यं प्रभाते विश्वेश्वरो भगवान्कालमूर्तिः ।।२२।।

अन्वयः— श्रीवत्सधामा ईशः अपररात्रे, प्रत्यूषे असिधारः ईशः जनार्दनः अनुसन्ध्यं दामोदर अव्यात् प्रभाते कालमूर्तिः भगवान् विश्वेश्वरः ।।२२।।

अनुवाद— रात्रि के पीछले प्रहर में श्रीवत्स लांछन श्रीहरि, उषःकाल में खड्गधारी भगवान् जनार्दन सूर्योदय से पूर्व भगवान् दामोदर और सभी सन्ध्याओं में कालमूर्ति भगवान् विश्वेश्वर मेरी रक्षा करें ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

अपररात्रे ईशः श्रीवत्सधामा अवतु । प्रत्यूष ईशः श्रीजनार्दनः श्रीदामोदरः प्रभाते श्रीविश्वेश्वरोऽनुसन्ध्यम् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

रात्रि के पीछेले प्रहार में श्रीवत्सलांछन भगवान् रक्षा करें, प्रत्यूष काल में श्रीजनार्दन भगवान् रक्षा करे, श्रीदामोदर भगवान् प्रातःकाल रक्षा करे और प्रत्येक सन्ध्याओं में भगवान् श्रीविश्वेश्वर रक्षा करें ।।२२।।

चक्रं युगान्तानलतिग्मनेमि भ्रमत्समन्ताद्भगवत्प्रयुक्तम् ।
दन्दग्धि दन्दग्ध्यरिसैन्यमासु कक्ष यथा वातसखो हुताशः ।।२३।।

अन्वयः— युगान्तानलतिग्मनेमि भगवत्प्रयुक्तं समन्तात् भ्रमत् चक्रम् वातसखः हुताशः कक्षं यथा अरिसैन्यम् आशु दन्दग्धि, दन्दग्धि ।।२३।।

अनुवाद— प्रलय कालीन अग्नि के समान तीक्ष्ण नेमि वाले तथा श्रीभगवान् के द्वारा प्रयुक्त चारो ओर घूमने वाले हे चक्रराज ! वायु के द्वारा समृद्ध हुए अग्नि जिस तरह सूखे तृण को जलाकर भस्म कर देते हैं, उसी तरह आप शीघ्र ही शत्रुओं को भस्म कर दें ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

युगान्तानलवत्तिग्मा तीक्ष्णा नेमिर्यस्य तच्चक्रं भगवता प्रयुक्तं सत् अरिसैन्यं दन्दग्धि दन्दग्धि अतिशयेन दहति । तस्यायं स्वभाव एव, न तु तस्मात्प्रार्थनीयमित्यर्थः । यद्वा दन्दग्धीति लोण्मध्यमपुरुषः । अत्र त्वमेवंभूतं चक्रमिति स्वरूपमुक्त्वा संबोध्य प्रार्थ्यतेऽतिशयेन दहेति । कक्षं शुष्कतृणम् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

प्रलयकालीन अग्नि के समान तीक्ष्ण जिसकी नेमि (अर) हैं वह चक्र श्रीभगवान् के द्वारा प्रयुक्त होकर अत्यधिक

जलाने का काम करता है चक्र का तो यह स्वभाव ही है, उसके लिए यह प्रार्थना करने की कोई आवश्यकता नहीं है। अथवा दन्दग्धि यह लोट् लकार के मध्य पुरुष एक वचन का रूप है । इस प्रकार के आप चक्र है । इस प्रकार स्वरूप का वर्णन करके प्रार्थना की गयी है कि आप मेरे शत्रुओं को अत्यधिक मात्रा में भस्म कर दें ॥२३॥

गदेऽशनिस्पर्शनविस्फुलिङ्गे निष्पिण्ढि निष्पिण्ढ्यजितप्रियाऽसि ।
कूश्माण्डवैनायकयक्षरक्षोभूतग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन् ॥२४॥

अन्वयः— अशनिस्पर्शवत् विस्फुलिङ्गे गदे अजितप्रियासि, कूष्माण्ड वैनायक यक्ष रक्षो भूतग्रहान्, निष्पिण्ढि निष्पिण्ढि अरीन् चूर्णय चूर्णय ॥२४॥

अनुवाद— हे श्रीभगवान् की कौमोदकी नामक की गदा, आपसे निकलने वाली चिन्गारियों का स्पर्श वज्र के समान है । आप भगवान् अजित की प्रिया हैं और मैं भगवान् का दास हूँ । अतएव आप कूष्माण्ड, विनायक, यक्ष, राक्षस, भूत तथा प्रेत आदि को कुचल डालिए कुचल डालिए चूर-चूर कर दें ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अशनिवत्स्पर्शो येषां ते विस्फुलिङ्गा यस्यास्तस्याः संबोधनं हे गदे, त्वमजितस्य प्रियासि । अहमच्युतस्य दासः । अतः कूश्माण्डादीन्निष्पिण्ढि निष्पिण्ढि संचूर्णय संचूर्णय । अरींश्च चूर्णय चूर्णय । सर्वत्र वीप्सातिशीघ्रत्वाय ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

हे गदे ! आपसे निकलने वाली चिन्गारियों का स्पर्श वज्र के समान है, आप तो श्रीभगवान् की प्रियतमा है । और मैं भगवान का दास हूँ । अतएव आप कूष्माडों अदि को कुचल डालिए कुचल डालिए, चूर-चूर कर दीजिए । यहः अत्यन्त शीघ्रता के अर्थ में विप्सा है ॥२४॥

त्वं यातुधानप्रमथप्रेतमातृपिशाचविप्रग्रहघोरदृष्टीन् ।
दरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितो भीमस्वनोऽरेर्हृदयानि कम्पयन् ॥२५॥

अन्वयः— हे दरेन्द्र त्वँ कृष्णपूरितः भीम स्वनः अरेः हृदयानि कम्पयन् यातुधान-प्रमथ-प्रेतमात्-पिशाच-विप्रग्रह-घोर दृष्टिन् विदाय ॥२५॥

अनुवाद— हे शङ्खराज ! आप भगवान् श्रीकृष्ण के फूंकने से भयङ्कर शब्द करते हुए मेरे शत्रुओं का दिल दहला दीजिए तथा यातुधान, प्रमथ, प्रेत, मातृका, पिशाच तथा ब्रह्मराक्षस आदि भयङ्कर प्राणियों को यहाँ से भगा दीजिए॥२५॥

भावार्थ दीपिका

हे दरेन्द्र पाञ्चजन्य, त्वं यातुधानादीन्विद्रावय । विप्रग्रहा ब्रह्मराक्षसाः, येऽन्ये च घोरदृष्टयस्तान् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

हे शङ्खराज पाञ्चजन्य आप यातुधान आदि को यहाँ से भगा दीजिये ब्रह्मराक्षस तथा दूसरे घोर दृष्टि वालों को आप भगा दें ॥२५॥

त्वं तिग्मधाराऽसिवरारिसैन्यमीशप्रयुक्तो मम छिन्धि छिन्धि ।
चक्षूंषि चर्मन् शतचन्द्र छादय द्विषामघोनां हर पापचक्षुषाम् ॥२६॥

अन्वयः— हे तिग्मधारासिवर ! ईश प्रयुक्तः त्वम् मम अरिसैन्यम् छिन्धि छिन्धि, हे शतचन्द्र चर्म त्वं पापचक्षुषाम् अघोनां चक्षूंषि छादय हर ॥२६॥

अनुवाद— हे तीक्ष्ण धार वले श्रेष्ठ कृपाण श्रीभगवान् के द्वारा प्रयुक्त होकर आप मेरे शत्रुओं की सेना को

काट डालिए, काट डालिए । हे श्रीभगवान् के प्रिय ढाल आपमें सैकड़ें चन्द्राकार मण्डल हैं, आप मेरे पापी शत्रुओं के नेत्रों को बन्द कर दीजिए और उन पापियों के अन्धा बना दीजिए ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

तिग्मा धारा यस्य हे तिग्मधार असिवर खड्गश्रेष्ठ, त्वं ममारिसैन्यं छिन्धि छिन्धि । शतचन्द्राकाराणि मण्डलानि यस्मिन् हे शतचन्द्र चर्मन् अघोनामघवतां द्विषां चक्षूंषि छादय, पापचक्षुषां चोग्रदृष्टीनां चक्षूंषि हर ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

हे तीक्ष्ण धार वाले श्रेष्ठ कृपाण आप मेरे शत्रुओं की सेना को काट डालिए । हे सैकड़ों चन्द्राकार मण्डलों से युक्त श्रीभगवान् के प्रिय ढाल आप मेरे पापी शत्रुओं की आँखों को ढँक दे और उन सबों को अन्धा बना दें।।२६।।

यन्नोभयं ग्रहेभ्योऽभूत्केतुभ्ये नृभ्य एव च। सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योंऽहोभ्य एव वा।।२७।।
सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात्। प्रयान्तु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयः प्रतीपकाः।।२८।।

अन्वयः— ग्रहेभ्यः केतुभ्यः नृभ्यः एव च सरीसृपेभ्यः दंष्ट्रिभ्यः भूतेभ्यः अंहोभ्यः एव वा यत् नः भयं एतानि सर्वाणि भगवन्नामरूपास्त्र कीर्तनात् ये नः श्रेयः प्रतीपकाः सद्यः संक्षयं प्रयान्तु ।।२७-२८।।

अनुवाद— सूर्य आदि ग्रहों, पुच्छलतारों आदि केतुओं दुष्ट मनुष्यों सर्पो, दाँत से काटने वाले हिंस्र, पशुओं, भूतों, प्रेतों आदि पापी प्राणियों से जो-जो भय हो, वे सबके सब श्रीभगवान् के नाम कीर्तन रूपी अस्त्र के द्वारा शीघ्र ही विनष्ट हो जायँ ।।२७-२८।।

भावार्थ दीपिका

यत् येभ्यो भयम् । अंहोभ्यः पापेभ्यः । श्रेयःप्रतीपका इष्टव्याघातकाः ।।२७-२८।।

भाव प्रकाशिका

जिन सबों से मुझे भय हो । **अंहोभ्यः** अर्थात् पापियों से, श्रेयः प्रतीपकाः अर्थात् हमारे कल्याण के नाशक हों, वे सब विनष्ट हो जायँ ।।२७-२८।।

गरुडो भगवान्स्तोत्रस्तोभश्छन्दोमयः प्रभुः । रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्सेनः स्वनामभिः ।।२९।।

अन्वयः— स्तोत्रस्तोभः छान्दोभ्यः भगवान् गरुडः प्रभुः विष्वक्सेनः स्वनामभिः अशेषकृच्छ्रभ्यः रक्षतु ।।२९।।

अनुवाद— बृहद रथन्तर आदि सामवेदीय स्तोत्रों से जिनकी स्तुति की जाती है, वे वेदमूर्ति भगवान् गरुड तथा भगवान् विष्वक्सेन अपने नामोच्चारण के प्रभाव से हमें सभी प्रकार की विपत्तियों से बचाएँ ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

स्तोत्राणि बृहद्रथन्तरादिसामानि तैः स्तोभ्यते संस्तूयत इति स्तोत्रस्तोभः । छन्दोमयो वेदमूर्तिः 'सुपर्णोऽसि गरुत्मान्' इत्यादि श्रुतेः । ऐकपद्यपाठे स्तोभा गीतिपूरकाक्षराणि । स्तोत्रस्तोमेति पाठे सामाधारभूतऋक्समुदायः स्तोमः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

बृहद् रथन्तर, इत्यादि साम स्तुतियों से जिनकी स्तुति की जाती है । स्तोत्र अर्थात् स्तोभ । वेदमूर्ति 'सुपर्णोऽसि गरुत्मान्' इत्यादि श्रुतियों से जिनकी स्तुति की जाती है वे भगवान् गरुड एकपद्य पाठ में स्तोभ गीतिके पूरक अक्षर स्वरूप होते हैं । जहाँ स्तोत्र स्तोम पाठ हैं वहाँ पर साम के आधार भूत ऋक्समुदाय को ही स्तोम कहा गया है ।।२९।।

सर्वापद्भ्यो हरेर्नामरूपयानायुधानि नः । बुद्धीन्द्रियमनः प्राणान्पान्तु पार्षदभूषणाः ।।३०।।

अन्वयः— हरेः नाम, रूपायुधानि पार्षदभूषणाः नः बुद्धिन्द्रियमनः प्राणान् सर्वापद्भ्यः पान्तु ।।३०।।

अनुवाद— श्रीहरि के नाम, रूप, आयुध तथा श्रेष्ठ पार्षद गण हमारी बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणों की रक्षा करें तथा सभी प्रकार की आपत्तियों से बचाएँ ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

नामानि च रूपाणि च यानानि च वाहनानि आयुधानि च नो बुद्ध्यादीन् पान्तु । पार्षदभूषणाः पार्षदमुख्याश्च पान्तु॥३०॥

भाव प्रकाशिका

नाम, रूप, बाहन, यान, आयुध तथा श्रीभगवान् के मुख्य पार्षद हमारी बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणों की रक्षा करें ॥३०॥

यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत् । सत्येनानेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः ॥३१॥

अन्वयः— यथा हि सत् असच्च यत् वस्तुतः भगवानेव अनेन सत्येन सर्वे उपद्रवाः नाशं यान्तु ॥३१॥

अनुवाद— सम्पूर्ण कार्य और कारण रूप जगत् वस्तुतः भगवान् ही हैं, इसी सत्य के द्वारा सारे उपद्रव नष्ट हो जायँ ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

सच्च असच्च मूर्तामूर्तं यत्तत्सर्वं जगत् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

कार्य कारण रूप सम्पूर्ण मूर्तामूर्तात्मक जगत् भगवान् ही हैं ॥३१॥

यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम् । भूषणायुधलिङ्गाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया॥३२॥
तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान्हरिः । पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥३३॥

अन्वयः— यथैकात्म्यानुभावानां स्वयम् विकल्परहितः हरिः स्वमायया भूषणायुधलिङ्गाख्या शक्तीः धत्ते तेनैव सत्यमानेन सदा सर्वत्र सर्वगः सर्वज्ञः भगवान् सर्वैः स्वरूपैः नः पातु ॥३२-३३॥

अनुवाद— जिन लोगों ने परमात्मा की एकता का अनुभव कर लिया है, उनकी दृष्टि में परमात्मा का स्वरूप सभी विकल्पों से रहित है, फिर भी वे अपनी माया शक्ति के द्वारा भूषण, आयुध और लिङ्ग नामक शक्तियों को धारण करते है, यह निश्चित रूप से सत्य है । इसीलिए सर्वव्यापक सदैव सर्वज्ञ श्रीभगवान् अपने सभी रूपों से हमारी रक्षा करें ॥३२-३३॥

भावार्थ दीपिका

ऐकात्म्यस्यानुभावोऽनुध्यानं येषां तेषाम् । विकल्पो भेदस्तद्रहितोऽपि । सत्यमानेन सत्यभूतेन प्रमाणेन ॥३२-३३॥

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों ने परमात्मा के ऐकात्म्य का अनुध्यान कर लिया है उनकी दृष्टि में सभी भेदों से रहित भी माया शक्ति के द्वारा वे अपने भूषणादि शक्तियों को धारण करके इस सत्य प्रमाण के द्वारा श्रीभगवान् अपने सभी स्वरूपों से हमारी रक्षा करें ॥३२-३३॥

विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समन्तादन्तर्बहिर्भगवान्नारसिंहः ।
प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्तसमस्ततेजाः ॥३४॥

अन्वयः— स्वनेन लोकभयं प्रहापयन् स्वतेजसा ग्रस्तसमस्तेजाः भगवान् नारसिंहः दिक्षु, विदिक्षु, ऊर्ध्वम् अधः समन्तान्तःबहिः नः रक्षतात् ॥३४॥

अनुवाद— अपनी भयङ्कर गर्जना के द्वारा जो लोगों के समस्त भयों को भगा देते हैं और अपने तेज से समस्त तेजों को ग्रस्त कर लेते हैं। वे भगवान् दिशाओं, विदिशाओं, ऊपर, नीचे, भीतर, बाहर, सर्वत्र हमारी रक्षा करें ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

पुनरपि श्रीनृसिंह एव प्रार्थ्यते-विदिक्ष्विति । पात्वित्यनुषङ्गः । यद्वा नारसिंहः प्रह्लादः । स्वनेन श्रीनृसिंहनामगर्जनेन। स्वतेजसा स्वप्रभावेण । ग्रस्तानि समस्तानि दिग्गजविषशस्त्रजलवाय्वग्न्यादीनां तेजांसि प्रभावा येन सः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

पुनः इस श्लोक में भगवान नृसिंह की प्रार्थना की जाती है अथवा नारसिंह शब्द से प्रह्लाद को कहा गया है। नृसिंह नाम की गर्जना से ही सभी लोगों के भय पलायित हो जाते हैं, अपने प्रभाव से समस्त दिग्गज विष शस्त्र जल वायु अग्नि आदि के तेज को जिन्होंने विनष्ट कर दिया ऐसे प्रह्लादजी हमारी सब ओर से रक्षा करें ॥३४॥

मघावन्निदमाख्यातं वर्म नारायणात्मकम् । विजेष्यस्यञ्जसा येन दंशितोऽसुरयूथपान् ॥३५॥

अन्वयः— हे मघवन् इदम् नारायणात्मकं वर्म अख्यातं येन दंशितः असुरयूथपान् अञ्जसा विजेष्यसि ॥३५॥

अनुवाद— इन्द्र मैंने यह नारायण वर्म (कवच) सुना दिया इससे तुम अपने को सुरक्षित कर लो। फिर तुम अनायास असुर यूथपों को पराम्त कर दोगे ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

दंशितः कवचितः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

दंशितः अर्थात कवच के रूप में धारण कर लो ॥३५॥

एतद्धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा । पदा वा संस्पृशेत्सद्यः साध्वसात्स विमुच्यते ॥३६॥

अन्वयः— एतद् धारयमाणस्तु यं यं चक्षुषा पश्यति पदावा स्पृशेत् सः सद्यः साध्वसात् विमुच्येत् ॥३६॥

अनुवाद— इस नारायण वर्म को धारण करने वाला मनुष्य जिसको जिसको अपने नेत्रों से देखता है अथवा अपने पैरों से स्पर्श करता है वह तत्काल भय से मुक्त हो जाता है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

सोऽपि साध्वसाद्भयाद्विमुच्यते ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

वह भी भयों से मुक्त हो जाता है ॥३६॥

न कुतश्चिद्भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत् । राजदस्युग्रहादिभ्यो व्याघ्रादिभ्यश्च कर्हिचित् ॥३७॥

अन्वयः— विद्यां धारयतः तस्य राजदस्युग्रहादिभ्यो: व्याघ्रादिभ्यः च कर्हिचित् कुतश्चित् भयं न भवेत् ॥३७॥

अनुवाद— इस वैष्णवी विद्या को धारण करने वाले को राजा, चोर, ग्रह, आदि तथा व्याघ्र आदि का कभी भी तथा कहीं भी भय नहीं होता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तस्य तु भयं न भवेदेव ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

उसको भय नहीं ही होता है ॥३७॥

इमां विद्यां पुरा कश्चित्कौशिको धारयन् द्विजः । योगधारणया स्वाङ्गं जहौ स मरुधन्वनि ॥३८॥

अन्वयः— पुरा कश्चित् कौशिकः इमां विद्यां धारयन् योगधारणाया स्वाङ्गं मरुधन्वनि जहौ ॥३८॥

अनुवाद— प्राचीन काल में किसी कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण ने इस विद्या को धारण करके योग धारण के द्वारा अपने शरीर को मरुभूमि में त्याग दिया ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

एतद्विद्याप्रभावमितिहासेनाह-इमामिति सार्धैस्त्रिभिः । मरुधन्वनि निरुदके देशे । अनेन विद्यायाः क्षेत्रतीर्थानपेक्षत्वं दर्शितम् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

इस विद्या के प्रभाव को इतिहास के माध्यम से साढे तीन श्लोकों द्वारा बतलाया गया है । मरुधन्वनि अर्थात् मरुभूमि में इसके द्वारा यह बतलाया गया है कि यह विद्या तीर्थ क्षेत्र निरपेक्ष है ॥३८॥

तस्योपरि विमानेन गन्धर्वपतिरेकदा । ययौ चित्ररथः स्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः ॥३९॥

अन्वयः— यत्र द्विजक्षयः तस्योपरि विमानेन एकदा गन्धर्वपतिः चित्ररथः स्त्रीभिः वृतः ययौ ॥३९॥

अनुवाद— जहाँ पर उस ब्राह्मण का शरीर छूटा था उसके ऊपर से एक बार स्त्रियों से घिरे हुए गन्धर्वों के स्वामी चित्ररथ विमान से गये ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

यत्र द्विजस्य क्षयो देहत्यागस्तस्योपरि ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

जहाँपर उस ब्राह्मण शरीर त्यागा था उसके ऊपर से गये ॥३९॥

गगनान्न्यपतत्सद्यः सविमानो ह्यवाक्शिराः । स वालखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः ॥
प्रास्य प्राचीसरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वमन्वगात् ॥४०॥

अन्वयः— सद्यः सविमानः ह्यवाकशिराः गगनान्यपतत् स विस्मितः बालखिल्यवचनात् अस्थीनि आदाय प्राचीसर स्वत्यां प्रास्य स्नात्वा, स्वधाम् अनवगात् ॥४०॥

अनुवाद— शीघ्र ही विमान के साथ ही नीचे शिर करके आकाश से पृथिवी पर गिर पड़ा बालखिल्य मुनियों के कहने से चित्ररथ उस ब्राह्मण की अस्थियों को लेकर प्राची सरस्वती में डालकर उसके पश्चात् अपने गन्धर्व लोक में चले गये ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

सद्यस्तत्क्षणादेव गगनान्न्यपतत् । पाठान्तरे अङ्गनाभिः सह । बालखिल्योपदेशात्तस्यास्थीनि प्रास्य प्राक्षिप्य विस्मितः सन् स्वं धाम गनधर्वलोकं जगाम ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

ज्यों ही वे उस ब्राह्मण के शरीर के ऊपर से गुजरे त्यों ही आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़े । **साङ्गनोन्यपतत्** ऐसा पाठ भेद होने पर अर्थ होगा कि वे स्त्रियों के साथ गिर पड़े । बाल्यखिल्य मुनि के उपदेश से उस ब्राह्मण की अस्थियों को प्राची सरस्वती में डालकर विस्मित हुए वे अपने गन्धर्व लोक को चले गये ॥४०॥

श्रीशुक उवाच

य इदं शृणुयात्काले यो धारयति चादृतः । तं नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतोभयात् ॥४१॥

अन्वयः— य इदं काले शृणुयात् य आदृतः धारयति तं भूतानि नमस्यति सर्वतो भयात् मुच्यते ।।४१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जो इस विद्या को समय पर सुनता है तथा जो इसको आदर पूर्वक धारण करता है उसको सभी प्राणी नमस्कार करते हैं और वह सभी भयों से मुक्त हो जाता है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४१।।

एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः । त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठ स्कन्धे नारायण वर्म नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अन्वयः— एताम् विद्याम् विश्वरूपात् अधिगतः शतक्रतुः मृधे असुरान् विनिर्जित्य त्रैलोक्य लक्ष्मीं बुभुजे ॥४२॥

अनुवाद— इस विद्या को विश्वरूप से प्राप्त करके शतक्रतु इन्द्र युद्ध में असुरों को जीतकर त्रैलोक्य की लक्ष्मी का उपभोग किए ॥४२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के नारायण वर्म वर्णन नामक आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

भावार्थ दीपिका

अधिगतः प्राप्तः सन् ।।४२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामअष्टमोऽध्यायः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

अधिगत: अर्थात् प्राप्त करके ॥४२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका के आठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।८।।

* * *

नवाँ अध्याय

विश्वरूप का वध देवताओं का वृत्रासुर से पराजित होना, श्रीभगवान् की आज्ञा से देवताओं का दधीचि ऋषि के पास जाना

श्रीशुक उवाच

तस्यासन्विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत । सोमपीथं सुरापीथमन्नादमिति शुश्रुम ।।१।।

अन्वयः— भारत तस्य विश्वरूपस्य सोमपीथम् सुरापीथं अन्नादम् इति त्रीणि शिरांस्यासन् इति शुश्रुम ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् ! उस विश्वरूप के सोमपीथ, सुरापीथ तथा अन्नाद नामक तीन शिर थे, यह हमने सुना है । वे एक मुँह से सोमपान करते थे, एक मुहँ से सुरा पान करते थे और तीसरे मुँह से वे अन्न खाते थे।।१।।

भावार्थ दीपिका

नवमे विश्वरूपे तु हते शक्रेण कोपतः । त्वष्ट्रा चोत्पादिते वृत्रे भीतैर्देवैर्हरेः स्तुतिः । सोमस्य पीथं पानं यस्मिन् एवं सुरापीथम् । अन्नमत्तीत्यन्नादम् । अत्र 'विश्वरूपो वै त्वष्ट्रः पुरोहितो देवानामासीत् इत्यादिश्रुतिरनुसन्धेया ।।१।।

भाव प्रकाशिका

नवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि इन्द्र ने विश्वरूप को मार दिया । इसके बाद क्रोध करके त्वष्टा ने वृत्र नामक पुत्र को उत्पन्न किया । वृत्रासुर से पराजित देवताओं ने श्रीभगवान् की स्तुति की । विश्वरूप जिस मुख से सोमपान करते थे वह सोमपीथ था जिस मुँह से मदिरा पीते थे वह सुरापीथ था और जिस मुँह से अन्न खाते थे वह अन्नाद था । इस विषय में **विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रः पुरोहितो देवानामासीत्** अर्थात् त्वष्टा का पुत्र विश्वरूप देवताओं का पुरोहित इस श्रुति का अनुसन्धान करना चाहिए ।।१।।

स वै बर्हिषि देवेभ्यो भागं प्रत्यक्षमुच्चकैः । अवदद्यस्य पितरो देवाः सप्रश्रयं नृप ।।२।।

अन्वयः— नृप यस्य पितरो देवाः सवै सप्रश्रयं बर्हिषि देवेभ्यः भागं उच्चकैः अवदत् ।।२।।

अनुवाद— राजन् जिसके त्वष्टा आदि बारह आदित्य पिता थे, वह विश्वरूप अत्यन्त विनीत होकर कुश पर देवताओं को भाग जोर से बोलकर प्रदान करता था ।।२।।

भावार्थ दीपिका

तस्यासुरपक्षपातमाह-स वा इति द्वाभ्याम् । प्रत्यक्षं प्रकटं यथा भवति तथा सविनयं देवेभ्यो हविर्भागमिन्द्रायेदमग्रय इदमित्युच्चैरवदत् । अत्र हेतुः-यस्य पितरो देवाः सः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

उस विश्वरूप के असुरों के प्रति होने वाले पक्षपात को **स वै० इत्यादि** दो से बतलाते है । वह प्रकट रूप से नम्रता पूर्वक देवताओं का भाग, इदम् इन्द्राय, इदम अग्नये इत्यादि रूप से जोर से बोलकर कुश पर प्रदान करता था उसका कारण था कि देवता उसके पिता थे ।।२।।

स एव हि ददौ भागं परोक्षमसुरान्प्रति । यजमानोऽवहद्भागं मातृस्नेहवशानुगः ।।३।।

अन्वयः— यजमानः स एवहि मातृस्नेहवशानुगः असुरान् प्रति भागं अवहत् परोक्षं भागं ददौ ।।३।।

अनुवाद— यज्ञ करते समय वह ही अपने माता के प्रति स्नेहिल होने के कारण असुरों का भाग प्रदान करते समय परोक्ष रूप से मौन होकर भाग प्रदान करता था ।।३।।

भावार्थ दीपिका

असुरेभ्यस्तु परोक्षं गुप्तं भागं ददौ । तदेवाह-देवान्यजमानोऽसावसुरान्प्रति भागमवहत्, केनाप्युपायेन प्रापयामास । यतो मातृस्नेहवशेनासुराननुगच्छति ।।३।।

भाव प्रकाशिका

असुरों को वह परोक्ष में गुप्त रूप से यज्ञों में प्रदान करता था । उसी को कहा गया है कि देवताओं का पूजन करने वाला वह असुरों को भी भाग किसी उपाय विशेष से प्रदान करता था । क्योंकि अपनी माता के प्रति प्रेम होने के कारण वह असुरों का अनुगमन करता था ।।३।।

तद्देवहेलनं तस्य धर्मालीकं सुरेश्वरः । आलक्ष्य तरसा भीतस्तच्छीर्षाण्यच्छिनद्रुषा ।।४।।

अन्वयः— तस्य तद् देवहेलनं धर्मालीकं आलक्ष्य सुरेश्वरः तरसाभीतः सुरेश्वरः रुषा तत् शीर्षाणि अच्छिनत् ।।४।।

अनुवाद— विश्वरूप के द्वारा किए जाने वाले देवताओं का अपराध तथा धर्म में कपट देखकर देवराज इन्द्र डर गये और वे क्रोध करके विश्वरूप के शिरों के काट दिए ।।४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४।।

सोमपीथं तु यत्तस्य शिर आसीत्कपिञ्जलः । कलविङ्कः सुरापीथमन्नादं यत्स तित्तिरिः ।।५।।

अन्वयः— तस्य तु यत् सोमपीथम् शिर आसीत् कपिञ्जलः, सुरापीत्थं कलविङ्कः यद् अन्नादं तस्य तित्तिरिः ।।५।।

अनुवाद— उसका जो सोमपान करने वाला शिर था उससे कपिञ्जल पपीहा, और सुरापान करने वाले शिरसे गौरैया तथा अन्न खाने वाले शिर से तित्तिर प्रकट हुए ।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५।।

ब्रह्महत्यामञ्जलिना जग्राह यदपीश्वरः । संवत्सरान्ते तदघं भूतानां स विशुद्धये ॥
भूम्यम्बुद्रुमयोषिद्भ्यश्चतुर्धा व्यभजद्धरिः ।।६।।

अन्वयः— यदपि ईश्वरः तथापि ब्रह्महत्याम् अञ्जलिनागग्राह । सः सवत्सरान्ते विशुद्धये संवत्सरान्ते भूतानां समक्षम् हरिः तदघं भूम्यम्बुद्रुमयोषिद्धायः व्यभजत् ।।६।।

अनुवाद— इन्द्र यद्यपि समर्थ थे कि विश्वरूप के बध से लगी हुई हत्या को दूर कर देते किन्तु वे ब्रह्महत्या को हाथ जोड़कर स्वीकार कर लिए और एक वर्ष के अन्त में वे अपनी शुद्धि के लिए उस ब्रह्म हत्या का चार भागों में विभक्त करके पृथिवी, जल, वृक्ष तथा स्त्री को बाँट दिया ।।६।।

भावार्थ दीपिका

तां वारयितुं समर्थस्तथापि जग्राह । संवत्सरं तथैव स्थित्वा संवत्सरान्ते भूताक्रोशभीतः सन् भूतानां मध्ये विशुद्धये लोकापवादपरिहाराय स हरिरिन्द्रो भूम्यादिभ्यस्तदघं व्यभजद्विभज्य ददावित्यन्वयः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्र उस ब्रह्महत्या को दूर करने में समर्थ होकर भी एक वर्ष उसी तरह रहकर संवत्सर के अन्त में, जीवों के आक्रोश से भयभीत होकर जीवों के सामने ही अपनी शुद्धि के लिए लोकापवाद को दूर करने के लिए इन्द्र उस ब्रह्महत्या को चार भागों में विभक्त करके पृथिवी आदि को दे दिये ।।६।।

भूमिस्तुरीयं जग्राह खातपूरवरेण वै । ईरणं ब्रह्महत्याया रूपं भूमौ प्रदृश्यते ।।७।।

अन्वयः— खातपूर वरेण वै भूमिः तुरीयं जग्राह भूमौ ब्रह्म हत्यायाः रूपं इरिणं प्रदृश्यते ।।७।।

अनुवाद— बदले में जहाँ कहीं गढा होगा वह समयानुसार अपने आप भर जाया करेगा यह वरदान लेकर भूमि ने उस ब्रह्महत्या के चतुर्थांश को स्वीकार कर लिया । पृथिवी पर ब्रह्महत्या का रूप उषर के रूप में दिखाई देता है।।७।।

भावार्थ दीपिका

तुरीयं चतुर्थं भागम् । खातस्य गर्तस्य पूरः पूरणं तेन वरेण । यदि खातपूरणं स्वत एव भविष्यति तर्हि ग्रहीष्यामीत्येवं भाषाबन्धेन जग्राहेत्यर्थः । ईरणमूषरम् । अत एवोषरेऽध्ययनादि निषिध्यते ।।७।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी ने पृथिवी के चतुर्थांश को इस शर्त के साथ स्वीकार कि मुझमें यदि गढ़ा होगा तो वह समयानुसार अपने आप भर जायेगा, तब तो मैं इसको लूँगी । ब्रह्महत्या का वह रूप पृथिवी उषर के रूप में दिखता है । इसीलिए उषर में वेदाध्ययन का निषेध किया गया है ।।७।।

तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहुर्द्रुमाः । तेषां निर्यासरूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥८॥

अन्वयः— द्रूमाः तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहुः तेषां ब्रह्महत्या निर्यास रूपेण प्रदृश्यते ॥८॥

अनुवाद— वृक्षों ने ब्रह्महत्या के चतुर्थांश को इस वरदान के बदले में स्वीकार किया कि उनका कोई भी हिस्सा कट जाने पर फिर जम जायेगा । वृक्षों में ब्रह्महत्या निर्यास गोंदों के रूप में दिखाई पड़ती हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

छेदे सति पुनर्विरोहः प्ररोहो भवत्विति वरेण । निर्यासरूपेण ब्रह्महत्याया दृष्टत्वान्निर्यासो न भक्ष्यः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

वृक्षों ने इस वरदान के बदलें में किसी हिस्से के कट जाने पर वह पुनः जम जाय, ब्रह्म हत्या के चतुर्थांश को स्वीकार किया । अतएव वृक्षों के निर्यास (गोंद) को नहीं खाना चाहिए ॥८॥

शश्वत्कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुः स्त्रियः । रजोरूपेण तास्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते ॥९॥

अन्वयः— शश्वत् काम वरेण स्त्रियः तुरीयं अंहः जगृहुः । तासु अंहः मासि मासि रजो रूपेण दृश्यते ॥९॥

अनुवाद— वे सर्वदा पुरुष का सहवास कर सकें इस वरदान के बदले में स्त्रियों में ब्रह्महत्या के चतुर्थांश को स्वीकार किया वह स्त्रियों में प्रत्येक मास में रजस्वला के रूप में दिखता है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

शश्वत्कामवरेण यावत्प्रसवं गर्भानुपघातेनैव संभोगवरेण । रज इति । अत एव रजोदर्शने तत्सङ्गादि न कार्यम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

गर्भ को किसी प्रकार की क्षति पहुँचाये बिना प्रसव काल पर्यन्त पुरुष का सहवास कर सकें इस वरदान के बदले में स्त्रियों ने ब्रह्महत्या के चतुर्थांश को ले लिया । ब्रह्महत्या स्त्रियो में रजोदर्शन के रूप में दिखायी देती है । इसीलिए रजोदर्शन काल में स्त्रियों का सहवास नहीं करना चाहिए ॥९॥

द्रव्यभूयोवरेणापस्तुरीयं जगृहुर्मलम् । तासु बुद्बुदफेनाभ्यां दृष्टं तद्धरति क्षिपन् ॥१०॥

अन्वयः— आपः द्रव्य भूमो वरेण तुरीयं मलंजगृहुः तासु बुदबुद फेनाभ्यां दृष्टम् तत् क्षिपन् हरति ॥१०॥

अनुवाद— जल ने इस वरदान के बदले में ब्रह्महत्या के चतुर्थां को स्वीकार कि उनकी वृद्धि होती रहेगी। जल में ब्रह्महत्या फेन तथा बुदबुद के रूप में दिखायी देती है । इसीलिए फेन और बुदबुद को हटाकर ही जल लेते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

द्रव्यभूयोवरेण यस्मिन्द्रव्ये क्षीरादावापो मिश्रा भवेयुस्तस्य भूयस्त्वमाधिक्यं स्यादिति वरेण । यद्वा स्वस्यैव निर्झरोद्गमादिना भूयस्त्ववरेण । द्रवभूय इति पाठेऽप्ययमेवार्थः । यद्वा द्रवभूयस्त्वं सांसिद्धिकद्रवत्वं तेन वरेण । अस्य विभागस्य विश्वरूपो वै त्वाष्ट्रः इत्यस्यां श्रुतावुक्तेः तद्विभागफलमाह । तत्पापं हरति निराकरोति । कः क्षिपन् । बुद्बुदादिजलाद्बहिः प्रक्षिपन्नित्यर्थः। यद्वा क्षिपन् जलं पापं हरति आहरति गृह्णातीत्यर्थः । अयं च 'तस्मादापो न परिचक्ष्या' इत्यादिश्रुत्यर्थ उक्तः । पाठान्तरे हरिकिल्बिषमिन्द्रपापम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

द्रव्य भूयोवरेण अर्थात् जिस दूध इत्यादि भी द्रव्य जल मिश्रित हो जाय और वह द्रव्य बढ़ जाय, इस तरह के वरदान के द्वारा अथवा झरने आदि के उद्गम आदि से अधिक होने के वरदान के द्वारा । अथवा द्रव भूयत्व

अर्थात् स्वाभाविक द्रवत्व के वरदान के रूप में उस ब्रह्म हत्या के चौथे भाग को जलों ने स्वीकार कर लिया। उस विभाग का फल बतलाते है उस बुद्बुद आदि को बाहर फेंक देने वाला जल के पापों को दूर कर देता है। अथवा उसके लेने वाला जल के पाप को ही ग्रहण करता है। इसी अर्थ का प्रतिपादन **तस्माद् आपो न परिचक्ष्या** इत्यादि श्रुति कहती है। जहाँ **दृष्टं तद्धिकिल्विषम्** पाठ भेद है वहाँ अर्थ होगा कि इन्द्र को पाप दिखता है ॥१०॥

हतपुत्रस्ततस्त्वष्टा जुहावेन्द्राय शत्रवे । इन्द्रशत्रो विवर्धस्व माचिरं जहि विद्विषम् ॥११॥

अन्वयः— ततः हतपुत्रः त्वष्टा **इन्द्रशत्रोविवर्धस्व विद्विषम् मा, चिरं जहि** इति शत्रवे इन्द्रया जुहाव ॥११॥

अनुवाद— विश्वरूप की मृत्यु के पश्चात् उनके पिता त्वष्टा, हे इन्द्रशत्रो तुम्हारी अभिवृद्धि हो, तुम शीघ्रातिशीघ्र अपने शत्रु को मार डालो, इस मन्त्र से इन्द्र का शत्रु उत्पन्न करने के लिए होम करने लगे ॥११॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्रायेन्द्रं हन्तुम्। शत्रवे शत्रूत्पत्त्ये तदाह इन्द्रशत्रो विवर्धस्वेति। अत्र चेन्द्रशत्रुपदस्याद्युदात्तत्वात् 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम् इति स्मृतेर्बहुव्रीहिलक्षणापत्त्या इन्द्र एव तस्य शत्रुरभूत्। तदुक्तं श्रुत्या यदब्रवीत्स्वाहेन्द्रशत्रो वर्धस्वेति तस्मादस्येन्द्रः शत्रुरभवत्' इति। तथाच शिक्षायाम् 'मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह। स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्। इति ॥११॥ '

भाव प्रकाशिका

इन्द्र रूप शत्रु को मारने के लिए इन्द्र के शत्रु की उत्पत्त्यर्थ होम करने लगे त्वष्टा। त्वष्टा का मन्त्र था इन्द्रशत्रो विवर्धस्व। इस मन्त्र में इन्द्र पद का आद्युदात्त होने के कारण **'ब्रहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्'** इस सूत्र के अनुसार बहुव्रीहि समास होने से उस वृत्रासुर के इन्द्र ही शत्रु हो गये। श्रुति भी कहती है **यदब्रवीत् स्वाहेन्द्र शत्रो वर्धस्वेति तस्मादस्येन्द्रः शत्रुरभूत्**। अर्थात् चूकि त्वष्टा ने इन्द्र पद का आद्युदात्त उच्चारण किया होम करते समय उसके कारण वृत्रासुर के शत्रु ही हो गये। शिक्षा शास्त्र में भी कहा गया है जो मन्त्र स्वर तथा वर्ण से रहित उच्चारण किया जाता है वह मिथ्या प्रयुक्त होने के कारण उस कार्य को नहीं बतलाता है। वह वाणी वज्र बनकर यजमान को ही विनष्ट कर देती है। उदाहरणार्थ, इन्द्रशत्रो इस पद में इन्द्र शब्द के आद्युदात्त होने के कारण, वृत्र का ही वध हो गया ॥११॥

अथान्वाहार्यपचनादुत्थितो घोरदर्शनः । कृतान्त इव लोकानां युगान्तसमये यथा ॥१२॥

अन्वयः— अथ अन्वाहार्य पचनात् यथा युगान्त समये लोकानां कृतान्त इव घोर दर्शनः उत्थितः ॥१२॥

अनुवाद— यज्ञ के समाप्त होने पर अन्वाहार्यपचन (दक्षिणाग्नि) से एक बड़ा भयङ्कर दैत्य प्रकट हुआ वह ऐसा प्रतीत होता था जैसे लोगों का नाश करने के लिए प्रलय कालीन भयङ्कर काल ही प्रकट हो गया हो ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अन्वाहार्यपचनाद्दक्षिणाग्नेः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अन्वाहार्यपचनात् अर्थात् दक्षिणाग्नि से ॥१२॥

विष्वग्विवर्धमानं तमिषुमात्रं दिने दिने । दग्धशैलप्रतीकाशं सन्ध्याभ्रानीकवर्चसम् ॥१३॥

अन्वयः— दिने-दिने इषुमात्रं विवर्धमानं, दग्धशैलप्रतीकाशं, सन्ध्याभ्रनीकवर्चसमतम् वीक्ष्य वित्रस्ता लोका दशदिशो विदुद्रुवः इति पञ्चमेनान्वयः ॥१३॥

अनुवाद— राजन् ! वह अपने शरीर के चारो ओर बाण के बराबर बढ़ जाता था, वह जले हुए पर्वत के समान काला बड़ा शरीर वाला था, उसके शरीर से सायं कालीन मेघ के समान कान्ति निकलती थी । उसको देखकर सभी लोग भयभीत होकर जिधर-तिधर भाग गये इस तरह अगले पाँचवे श्लोक के साथ अन्वय हैं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

तं वीक्ष्य वित्रस्ता लोका दश दिशो विदुद्रुवुरिति पञ्चमेनान्वयः । कथंभूतम् । विष्वक् समन्तत इषुविक्षेपमात्रं प्रतिदिनं वर्धमानम् । दग्धशैलप्रतीकाशं कृष्णवर्णम् । सन्ध्याभ्रानीकवद्वर्चो दीप्तिर्यस्य तम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

वह प्रतीदिन अपने शरीर के चारो ओर बाण के समान बढ़ जाता था उसको देखकर सभी लोग भयभीत हो गये और जिधर-तिधर भाग गये वह जले हुए पर्वत के समान काला था । इस तरह से उसको आगे के पाँचवें श्लोक के साथ अन्वय है ।।१३।।

तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं मध्याह्नार्कोग्रलोचनम् ।।१४।।

अन्वयः— तप्त ताम्रशिखाश्मश्रुं मध्याह्नार्कोग्रलोचनम् ।।१४।।

अनुवाद— उसके सिर के बाल तथा दाढ़ी, मूंछ तपे हुए ताम्बे के समान लाल थे । और नेत्र दोपहर के सूर्य के समान प्रचण्ड थे ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

तप्तताम्रवच्छिखाः श्मश्रूणि च यस्य । मध्याह्नार्कवदुग्रे लोचने यस्य ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

उसके शिर के बाल और दाढ़ी मूंछ तपे हुए ताम्बे के समान लाल थे ।।१४।।

देदीप्यमाने त्रिशिखे शूल आरोप्य रोदसी । नृत्यन्तमुन्नदन्तं च चालयन्तं पदा महीम् ।।१५।।

अन्वयः— देदीप्यमाने त्रिशिखे शूले रोदसी आरोप्य इव नृत्यन्तम् उन्नदन्तं पदामहीं च चालयन्तम् तम् ।।१५।।

अनुवाद— अपने चमकते हुए तीन शिखाओं वाले त्रिशूल पर मानो वह द्युलोक और भूलोक को उठाकर नाचते हुए तथा गरजते हुए तथा अपने पैरों के प्रहार से पृथिवी को कँपाते हुए देखकर लोग भयभीत होकर भाग जाते थे ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

रोदसी आरोप्यैवेत्यर्थः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

मानो भूलोक और द्युलोक को रखकर ।।१५।।

दरीगम्भीरवक्त्रेण पिबता च नभस्तलम् । लिहता जिह्वयर्क्षाणि ग्रसता भुवनत्रयम् ।।१६।।
महता रौद्रदंष्ट्रेण जृम्भमाणं मुहुर्मुहुः । वित्रस्ता दुद्रुवुर्लोका वीक्ष्य सर्वे दिशो दश।।१७।।

अन्वयः— दरी गम्भीरवक्त्रेण नभस्तलम् च पिबता, जिह्वया ऋक्षाणि लिहता, भुवनत्रयम् महता रौद्रदंष्ट्रेण भुवनत्रयम् ग्रसता मुहुर्मुहुः जम्भमाणं वीक्ष्य वित्रस्ताः सर्वे लोकाः दिशो दश दुद्रुवुः ।।१६-१७।।

अनुवाद— लगता था कि वह अपने गुफा के समान गहरे मुख से आकाश को पी जायेगा, अपनी जीभ से तारों को चाट जायेगा, बार-बार जम्भाई लेने के कारण अपने भयङ्कर दाँतों वाले विशाल मुख से त्रैलोक्य को निगल जायेगा; इस प्रकार के उसे देखकर भयभीत हुए लोग जिधर-तिधर भाग गये ।।१६-१७।।

भावार्थ दीपिका

दरीवद्गम्भीरेण वक्रेण मुहुर्मुहुर्जृम्भमाणमित्यन्वयः । कथंभूतेन । नभस्तलं पिबता, ऋक्षाणि जिह्वया लिहता, भुवनत्रयं ग्रसता । महता विस्तीर्णेन । रौद्रा दंष्ट्रा यस्मिन् ।।१६-१७।।

भाव प्रकाशिका

गुफा के समान गहरे मुख से वह बार-बार जम्भाई लेता था तो लगता था कि वह आकाश को पी जायेगा, तारों को अपनी जीभ से चाट जायेगा, तथा भयङ्कर दाँतों वाले विशाल मुख से वह त्रैलोक्य को निगल जायेगा । इस तरह के उसे देखकर भयभीत हुए सभी लोग जिधर-तिधर भग गये ।।१६-१७।।

येनावृता इमे लोकास्तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना । स वै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः ।।१८।।

अन्वयः— येन तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना इमे लोकाः आवृताः स वै परम दारुणः पापः वृत्र इति प्रोक्तः ।।१८।।

अनुवाद— राजन् ! त्वष्टा के तमोगुणी पुत्र ने सारे लोकों को घेर लिया था इसीलिए उस पापी तथा अत्यन्त क्रूर पुरुष का नाम वृत्रासुर हुआ ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

वृत्रनाम निर्वक्ति-येनावृता इति। त्वाष्ट्रो मूर्तिर्यस्य तमसस्तेन। तथाच श्रुतिः-'स इमाँल्लोकानावृणोत्तद्वृत्रस्य वृत्रत्वम्' इति।।१८।।

भाव प्रकाशिका

येनावृता० इत्यादि इस श्लोक से वृत्र नाम का निर्वचन कर रहे है । त्वष्टा के तमोगुण पुत्र के द्वारा श्रुति भी कहती है स इमान् लोकानावृणोत्तद्वृत्रस्य वृत्रत्वम् अर्थात् वृत्रासुर ने इन सभी लोकों को घेर लिया यही वृत्र का वृत्रत्व है ।।१८।।

तं निजघ्नुरभिद्रुत्य सगणा विबुधर्षभाः । स्वैः स्वैर्दिव्यास्त्रशस्त्रौघैः सोऽग्रसत्तानि कृत्स्नशः ।।१९।।

अन्वयः— सगणा विवुधर्षभाः अभिद्रुत्य तं स्वैः स्वैः दिव्यायास्त्रौद्धौः निजघ्नुः सः तानि कृत्स्नशः अग्रसत् ।।१९।।

अनुवाद— श्रेष्ठ देवगण अपने अनुयायियों के साथ एक ही साथ उस पर टूट पड़े और अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्रों से उस पर प्रहार किए किन्तु वह सबों के दिव्य अस्त्र शस्त्रों को निगल गया ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

अग्रसद्भक्षितवान् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

अग्रसत् अर्थात् निगल गया ।।१९।।

ततस्ते विस्मिताः सर्वे विषण्णा ग्रस्ततेजसः । प्रत्यञ्चमादिपुरुषमुपतस्थुः समहिताः ।।२०।।

अन्वयः— ततः ते सर्वे विस्मिताः विषण्णाः ग्रस्ततेजसः समाहिताः प्रत्यञ्चम् आदि पुरुषः उपतस्थुः ।।२०।।

अनुवाद— यह देखकर वे सबके सब आश्चर्यचकित हो गये उनका तेज समाप्त हो गया था, वे दीन-हीन और उदास हो गये, एकाग्रचित्त होकर अपने हृदय में विद्यमान भगवान् नारायण के शरण में गये ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

ग्रस्तं तेजो येषाम् । प्रत्यञ्चमन्तर्यामिणम् । त्रिभुवनस्य तेन व्याप्तत्वात्क्वापि गमनासंभवात्तत्रैव स्थित्वा तुष्टुवुरित्यर्थः। महाभये परित्राणमन्यतो न भवेदिति । हरिमेव प्रपद्यन्ते सुराः शरणमातुराः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

देवताओं का तेज समाप्त हो गया था, वे अन्तर्यामी श्रीभगवान् की शरणागति किये। वृत्रासुर सर्वत्र व्याप्त हो गया था अतएव कहीं जाना सम्भव नहीं था वे वहीं श्रीभगवान् की स्तुति किए। चूकि महान् भय उपस्थित होने पर दूसरा कोई रक्षक नहीं हो सकता है। अतएव आतुर बने हुए देवगण श्रीभगवान् की शरणागति किए॥२०॥

देवा ऊचु:

वाय्वम्बराग्न्यप्क्षितयस्त्रिलोका ब्रह्मादयो ये वयमुद्विजन्तः ।
हराम यस्मै बलिमन्तकोऽसौ बिभेति यस्मादरणं ततो नः ॥२१॥

अन्वयः— वाय्वम्बराग्न्यप्क्षितयः त्रिलोकाः बह्मादयः ये वयम् उद्विजन्तः यस्मै बलिं हरामः असौ अन्तकः यस्मात् विभेति ततो नः अरणम् ॥२१॥

देवताओं ने कहा

अनुवाद— वायु आकाश, तेज, जल और पृथ्वी ये पाँचो भूत तथा इनसे बने तीनों लोक, इन लोकों के स्वामी ब्रह्मा आदि तथा हम सभी देवता जिससे डरकर जिसको उपहार प्रदान किया करते हैं, वह काल भी जिनसे डरता है, वे भगवान् ही हमारे रक्षक हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

वाय्वादीनि पञ्चमहाभूतानि तैर्निर्मितास्त्रयो लोकास्तेषामधिपतयो ब्रह्मादयश्च ततोऽर्वाचीना वयं च सर्वे यस्मै अन्तकाय कालायोद्विजन्तः सन्तो बलिं हराम। असावपि यस्माद्बिभेति ततः परमेश्वरादेव नोऽस्माकमरणं शरणं रक्षणमस्तु ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

वायु आदि पाँचो महाभूत, उनसे बने हुए तीनों लोक, उन लोकों के अधिपति ब्रह्मा आदि देवता औरउनसे अर्वाचीन हम सभी देवता जिससे डरकर उसे उपहार प्रदान करते हैं, वह काल भी जिन श्रीभगवान् से डरता है, वे ही अब हमलोगों के रक्षक हैं ॥२१॥

अविस्मितं तं परिपूर्णकामं स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम् ।
विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः श्वलाङ्गुलेनातितितर्ति सिन्धुम् ॥२२॥

अन्वयः— अविस्मितं परिपूर्णकामं स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तं तं विना यः बलिशः अपरं उपसर्पति सः श्वलाङ्गुलेन सिन्धुम् अतितितर्ति ॥२२॥

अनुवाद— नवीन कुछ नहीं होने के करण जो कभी विस्मित नहीं होते हैं अपने स्वरूप के साक्षात्कार से ही पूर्ण काम बने हुए सदा सम एवं शान्त रहने वाले हैं, उनको छोड़कर जो किसी दूसरे की शरणागति करता है वह मूर्ख कुत्ते की पूंछ पकड़कर समुद्र को पार कर जाने की इच्छा करता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तत एवेत्यवधारणे हेतुमाहुः-अविस्मितं निरहंकारम्, कुतूहलशून्यं वा। कुतः, प्रशान्तं रागादिशून्यम्। तच्च कुतः, स्वेनैव लाभेन परिपूर्णकामम्। तच्च कुतः, सममुपाधिपरिच्छेदशून्यम्। एवंभूतं परमेश्वरं विनाऽपरं यः शरणार्थमुपसर्पति स बालिशोऽज्ञः। यतोऽसौ शुनो लाङ्गूलेन पुच्छेन समुद्रमतितितर्ति अतितर्तुमिच्छतीत्यर्थः। यथा तेन समुद्रतरणं न भवति तथा निरीश्वराश्रयणेन व्यसनार्णवतरणं न भवतीति भावः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

तत एव के द्वारा निश्चय का कारण बतलाते है, क्योंकि परमात्मा अहङ्कार अथवा कुतूहल से रहित हैं। क्योंकि वे राग आदि से रहित हैं, क्योंकि वे स्वरूप साक्षात्कार से ही पूर्णकाम हैं। वह भी इसलिए कि वे सभी उपाधियों से रहित हैं। इस तरह के परमात्मा को छोड़कर किसी दूसरे अनीश्वर की शरणागति करने वाला उसी तरह मूर्ख है जिस तरह कुत्ते की पूंछ पकड़कर समुद्र पार कर जाने की इच्छा वाला मूर्ख है। जिस तरह उससे समुद्र को पार नहीं किया जा सकता है उसी तरह निरीश्वर को अपना आश्रय बनाने वाला दु:ख सागर के पार करना असंभव है ॥२२॥

यस्योरुशृङ्गे जगतीं स्वनावं मनुर्यथाबध्य ततार दुर्गम् ।
स एव नस्त्वाष्ट्रभयाद्दुरन्तात्त्राताश्रितान्वारिचरोऽपि नूनम् ॥२३॥

अन्वयः— यस्य ऊरु शृङ्गे स्वनावं जगतीं बध्य मनुः दुर्गम् ततार । स स्व वारिचरः अपि नः आश्रितान् दुरन्तात् त्वाष्ट्रभयात् त्राता ॥२३॥

अनुवाद— वैवस्वतमनु पिछले कल्प के अन्त में जिनके विशाल सींग में पृथिवी रूप नाव को बाँधकर अनायास ही प्रलयकालीन सङ्कट से बच गये वे ही मत्स्य भगवान् हम शरणागतों को वृत्रासुर से उपस्थित भयङ्कर भय से बचायें ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

महाभये स एव रक्षक इति दृष्टमित्याहुः-यस्येति द्वाभ्याम् । यस्य महाशृङ्गे जगतीं पृथ्वीमेव स्वनावं बद्ध्वा मनुः सत्यव्रतो यथावद्दुर्गं संकटं ततार स एव वारिचरो मत्स्यमूर्तिर्नोऽस्मानप्याश्रितान्सतो नूनं त्राता रक्षिष्यति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

महान् भय से बचाने वाले श्रीभगवान् ही है, इस कथन में दृष्टान्त उपन्यस्त **यस्य० इत्यादि** दो श्लोकों से करते हैं। जिन मत्स्य भगवान् के विशाल सीङ्ग में अपनी पृथिवी रूपी नाव को बाँधकर मनु सत्यव्रत जिस तरह भयङ्कर सङ्कट को पार कर लिए वे ही मत्स्य भगवान् हम आश्रितों की रक्षा वृत्रासुर के भय से बचायेंगे ॥२३॥

पुरा स्वयंभूरपि संयमाम्भस्युदीर्णवातोर्मिरवैः कराले ।
एकोऽरविन्दात्पतितस्ततार तस्माद्भयाद्येन स नोऽस्तु पारः ॥२४॥

अन्वयः— पुरा स्वयम्भूः अपि उदीर्णवातोर्मिरवैः कराले संयमाम्भसि अरविन्दात् पतितः एकः येन तस्माद् भयात् ततार स नो पारः अस्तु ॥२४॥

अनुवाद— प्राचीन काल में प्रचण्ड पवन के झोंकों से उठी हुई उत्ताल तरङ्गों की गर्जना के कारण श्रीब्रह्माजी श्रीभगवान् के नाभिकमल से प्रलयकालीन जल में गिर पड़े थे। उस समय वे असहाय थे। किन्तु जिन श्रीभगवान् की कृपा से वे उस विपत्ति से बच गये वे भगवान् हमलोगों को इस सङ्कट से पार करें ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

संयमाम्भसि प्रलयोदके । उदीर्णैरुद्गतैर्वातैर्ये ऊर्मयस्तेषां रवैः कराले भयङ्करे । अरविन्दान्नाभिकमलात्पतितप्राय एकोऽसहाय एव तस्माद्भयाद्येन ततार स एव नः पारस्तारकाऽस्तु ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

संयमाम्भसि अर्थात् प्रलयकालीन जल में उठी हुई वायु के कारण उठने वाली उत्ताल तरङ्गों की भयङ्कर ध्वनि के कारण श्रीभगवान् के नाभि कमल से प्राय: गिर ही चुके थे। उस सयम वे असहाय थे। किन्तु जिन परमात्मा

ध्वनि के कारण श्रीभगवान् के नाभि कमल से प्राय: गिर ही चुके थे । उस सयम वे असहाय थे । किन्तु जिन परमात्मा के कारण वे उस विपत्ति से बच गये वे भगवान् हमलोगों को इस विपत्ति से पार करे ।।२४।।

य एक ईशो निजमायया नः ससर्ज येनानु सृजाम विश्वम् ।
वयं न यस्यापि पुरः समीहतः पश्याम लिङ्गं पृथगीशमानिनः ।।२५।।

अन्वयः— यः एक ईशः निजमायया नः ससर्ज येन अनुसृजाम विश्वम् । पुरः समीहतः अपि पृथक् ईशमनिनः वयम् यस्य अपि लिङ्ग न पश्यामः ।।२५।।

अनुवाद— अद्वितीय होने पर भी जिन परमात्मा ने हमलोगों की सृष्टि की और जिनकी ही कृपा से हमलोग भी सृष्टि के कार्य का संचालन करते है । वे श्रीभगवान् हमलोगों के समक्ष ही सभी प्रकार की चेष्टाएँ करते हैं, फिर उनसे अलग अपने को नियामक मानने वाले हमलोग उनके स्वरूप को नहीं देख पाते हैं ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

किंच वयं भगवतैव सृष्टाः पालिताश्च बहुशोऽतस्तमेव शरणं व्रजामेत्याहुः-य एक इति त्रिभिः । येनानुगृहीताः सन्तो विश्वं सृजाम । ननु यूयमेव स्रष्टारो नान्यो युष्माकमनुग्राहकोऽस्ति तस्यादर्शनात्तत्राहुः- अस्मत्तः पुरः पूर्वमेवान्तर्यामितया समीहमानस्यापि यस्य लिङ्गं रूपं न पश्यामः । तत्र हेतुः- पृथक्पृथगीशा इत्यभिमानिनः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

हमलोगों की सृष्टि भी परमात्मा ने ही की हैं वे ही हमलोगों का पालन करने वाले भी हैं, हम उनकी ही शरणागति करते हैं । इस बात को **य एक० इत्यादि** तीन श्लोकों से कहा गया है । वे अन्तर्यामी होने के कारण हम लोगों के सामने ही चेष्टाएँ करते हैं किन्तु उनसे पृथक् ही ईश्वरत्व का अभिमान होने के कारण हमलोग उनके स्वरूप का दर्शन नहीं कर पाते हैं ।।२५।।

यो नः सपत्नैर्भृशमर्द्यमानान्देवर्षितिर्यङ्नृषु नित्य एव ।
कृतावतारस्तनुभिः स्वमायया कृत्वात्मसात्पाति युगे युगे च ।।२६।।

अन्वयः— यः नः सपत्नैः भृशम् अर्द्यमानान् वीक्ष्य नित्य एव देवर्षि तिर्यङ्नृषु स्वमायया कृतावतारः तनुभिः आत्मसात् कृत्वा युगे युगे पाति ।।२६।।

अनुवाद— जो परमात्मा यह देखकर कि देवता अपने शत्रुओं से अत्यधिक पीडित है, वे वस्तुतः नित्य तथा निर्विकार ही रहकर, देवता, ऋषि, तिर्यक् (पशु-पक्षी) अथवा मनुष्य रूप से अपनी माया का आश्रय लेकर अवतरित होते हैं, तथा हम देवताओं को अपना समझकर प्रत्येक युग में रक्षा करते हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

देवादिषूपेन्द्रपरशुराममत्स्यरामादितनुभिः कृतावतारः सन्नात्मसात्कृत्वा पाति च ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

देवता आदि के रूप में उपेन्द्र श्रीपरशुराम, मत्स्य तथा श्रीराम आदि के रूप में अवतीर्ण होते हैं और हम देतवाओं की रक्षा अपना बनाकर करते हैं ।।२६।।

तमेव देवं वयमात्मदैवतं परं प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यम् ।
व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं स्वानां स नो धास्यति शं महात्मा ।।२७।।

अन्वयः— परं आत्मदैवतं प्रधानं पुरुषं विश्वम् अन्यम्वयं सर्वे तमेव शरण्यं शरणं व्रजाम सः महात्मा नः शं धास्यति।।२७।।

अनुवाद— वे ही श्रीभगवान् सबों की आत्मा और परमाराध्य हैं । वे ही प्रकृति एवं पुरुष रूप से विश्व के कारण और उससे भिन्न हैं । वे विश्व रूप भी हैं और विश्व से पृथक् भी वे हैं । हमलोग उन्हीं सबों के रक्षक श्रीभगवान् की शरणागति करते हैं । वे ही उदार शिरोमणि प्रभु अपने निज जन हमलोगों की रक्षा अवश्य करेंगे।।२७।।

भावार्थ दीपिका

आत्मभूतं दैवतम् । कुतः । विश्वं विश्वात्मकम् । तथापि विकारं वारयन्ति, अन्यम् । विश्वात्मत्वे हेतुः परं कारणम्। ननु प्रधानं पुरुषश्च विश्वस्य कारणं तत्राहुः-प्रधानं पुरुषं च । तदात्मकोऽपि स एवेत्यर्थः । स एव नः शं विधास्यति ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

वे ही प्रभु आत्मा तथा परमाराध्य हैं । वे ही विश्वात्मा है । फिर भी विकार रहित होने के कारण विश्व से भिन्न भी हैं । वे सबों के कारण हैं । यदि कहें कि विश्व के कारण तो प्रधान और पुरुष हैं ? तो इसका उत्तर हैं कि प्रधान और पुरुष रूप भी वे ही हैं । वे ही श्रीभगवान् हमलोगों का कल्याण करेंगे ।।२७।।

श्रीशुक उवाच

इति तेषां महाराज सुराणामुपतिष्ठताम् । प्रतीच्यां दिश्यभूदाविः शङ्खचक्रगदाधरः ।।२८।।

अन्वयः— हे महाराज ! इति तेषां उपतिष्ठतां सुराणां प्रतीच्यां दिशि शङ्खचक्रगदाधरः आविरभूत् ।।२८।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे महाराज परीक्षित् ! इस तरह से श्रीभगवान् की स्तुति करने वाले देवताओं के हृदय में शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण करने वाले श्रीभगवान् आविर्भूत हो गये ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

प्रतीच्यां दिशि हृदि प्रथममाविरभूत् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम हृदय में अवतीर्ण हो गये ।।२८।।

आत्मतुल्यैः षोडशर्भिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ । पर्युपासितमुन्निद्रशरदम्बुरुहेक्षणम् ।।२९।।

अन्वयः— विना श्रीवत्सकौस्तुभौ आत्मतुल्यैः षोडशभिः पर्युयासितप्रन्निशरदम्बुरहेक्षणम् ।।२९।।

अनुवाद— श्रीभगवान् अपने ही समान रूप वाले, स्निग्ध पार्षदों से युक्त थे । उन सबों के वक्षःस्थल पर केवल श्रीवत्स चिह्न और कौस्तुभ मणि नहीं थी । श्रीभगवान् के नेत्र शरत् कालीन विकसित कमल के समान अत्यन्त मनोहर थे ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

पुनश्च तं पुरो दृष्ट्वा ईक्षणाह्लादेन विवशा अवनौ दण्डवत्पतिताः सन्तः शनैरुत्थाय तुष्टुवुरित्यन्वयः । कथंभूतम् । श्रीवत्सकौतुभौ विना स्वतुल्यैः षोडशभिः सुनन्दादिभिः परितः सेवतिम् । उन्निद्रशरदम्बुरुहवदीक्षणे यस्य तम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

तदन्तर श्रीभगवान् को अपने समक्ष देखकर अवलोकन जन्य आह्लाद के कारण वे सभी पृथिवी पर गिरकर श्रीभगवान को साष्टाङ्ग प्रणाम किए और उसके पश्चात् उठकर उनकी स्तुति किए । वे श्रीभगवान् अपने ही समान रूप वाले सुनन्द आदि अपने सोलह पार्षदों से सेवित थे । उन पार्षदों के वक्षःस्थल पर केवल श्रीवत्सचिह्न और कौस्तुभ मणि नहीं थे । श्रीभगवान् के नेत्र शरत् कालीन विकसित कमल के समान मनोहर थे ।।२९।।

दृष्ट्वा तमवनौ सर्व ईक्षणाह्लादविक्लवाः । दण्डवत्पतिता राजन् शनैरुत्थाय तुष्टुवुः ॥३०॥

अन्वयः— हे राजन् ! तम् दृष्ट्वा सर्वे ईक्षणाह्लादविक्लवाः अवनौ दण्डवत् पतिताः शनैः उत्थाय तुष्टुवुः ॥३०॥

अनुवाद— हे राजन् ! परीक्षित् श्रीभगवान् को देखकर श्रीभगवान् के दर्शन, जन्य अह्लाद के कारण सभी देवता पृथिवी पर दण्ड के समान गिरकर श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किए और उसके पश्चात् उठकर उन सबों ने उनकी स्तुति की ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

देवा ऊचुः

नमस्ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः । नमस्ते ह्यस्तचक्राय नमः सुपुरुहूतये ॥३१॥

अन्वयः— यज्ञवीर्याय नमस्ते, वयसे उत ते नमः । अहस्तचक्राय ते हि नमः, सुपुरुहूतये नमः ॥३१॥

देवताओं ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! यज्ञ में स्वर्गादि फल प्रदान करने की शक्ति तथा उन फलों की सीमा निश्चित करने वाले काल स्वरूप आपको नमस्कार है । यज्ञों में विघ्न करने वालें दैत्यों पर चक्र का प्रहार करने वाले आपको नमस्कार है तथा सुन्दर अनन्त नामों वाले आपको नमस्कार है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञो वीर्यं स्वर्गादिफलजननाय सामर्थ्यं यस्य तस्मै नमः । वयसे उत तत्फलपरिच्छेदककालात्मनेऽपि । तद्विघातकेषु दैत्येष्वस्तं प्रक्षिप्तं चक्रं येन एवंभूतैः प्रभावैः सुपुरुहूतये शोभनबहुनाम्ने ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञ में स्वर्ग आदि फलों के उत्पन्न करने की शक्ति आपकी है । ऐसे आपको नमस्कार है । उन फलों की सीमा निर्धारित करने वाले काल स्वरूप आपको नमस्कार है । यज्ञों में विघ्न उत्पन्न करने वाले दैत्यों पर चक्र का प्रहार करके उन सबों को विनष्ट करने वाले आपको नमस्कार है । ऐसे प्रभावों से सम्पन्न सुन्दर अनेक नामों वाले आपको नमस्कार है ॥३१॥

यत्ते गतीनां तिसृणामीशितुः परमं पदम् । नार्वाचीनो विसर्गस्य धातर्वेदितुमर्हति ॥३२॥

अन्वयः— हे धातः ! तिसृणाम् गतीनाम् ईशितुः ते परमं पदम् अर्वाचीनो विसर्गस्य अर्वाचीनः वेदितुम् न अर्हति॥३२॥

अनुवाद— हे धातः ! सत्त्व, रज एवं तम इन तीनों गुणों के अनुसार उत्तम, मध्यम तथा निकृष्ट इन तीनों प्रकार की होने वाली गतियों के नियामक आप ही है । आपके परम पद का वास्तविक स्वरूप इस कार्यरूप जगत् को कोई भी आधुनिक पुरुष नहीं जान सकता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

ननु मम गुणातीतं रूपं विहाय गुणोपाधिकं यज्ञवीर्यत्वादि किमिति वर्ण्यते तत्राहुः– यत्तव गुणत्रयस्येशितुर्नियन्तुस्त्रिगुणात्मिकानां तिसृणां गतीनां परमं पदं निर्गुणस्वरूपं तद्विसर्गस्यार्वाचीन इदानींतनो हे धातः, वेदितुं नार्हति । अतः केवलं तस्मै ते नमोऽस्तु॥३२॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मेरे गुणातीत रूप को छोड़कर गुणोपाधिक यज्ञवीर्यत्व इत्यादि का वर्णन क्यों करते हो ? तो इसका उत्तर है कि तीनों गुणों के अनुसार तीन प्रकार की जो गतियाँ होती है, उत्तम, मध्यम और निकृष्ट उसके नियामक आप ही हैं । आपका परम पद निगुर्ण स्वरूप है । उसके स्वरूप को इस कार्य रूप जगत् को कोई भी व्यक्ति ठीक-ठीक नहीं जान सकता है । अतएव आपके उस रूप का वर्णन असम्भव है ॥३२॥

ॐ नमस्तेऽस्तु भगवन्नारायण वासुदेवादिपुरुष महापुरुष महानुभाव परममङ्गल परमकल्याण परमकारुणिक केवल जगदाधार लोकैकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथ परमहंसपरिव्राजकैः परमेणात्मयोगसमाधिना परिभावित परिस्फुटपारमहंस्यधर्मेणोद्धाटिततमः कपाटद्वारे चित्तेऽपावृत आत्मलोके स्वयमुपलब्धनिजसुखानुभवे भवान् ॥३३॥ १॥

अनुवाद— हे भगवन् ! नारायण ! हे वासुदेव आप ही आदि पुरुष और महापुरुष (पुरुषोत्तम) हैं । आप महाप्रभाव से सम्पन्न है, परम मङ्गलमय परमकल्यण स्वरूप है । आप परम दयालु है । इस सम्पूर्ण जगत् के केवल आप ही आधार है । आप सम्पूर्ण लोकों के एक मात्र स्वामी तथा सबें के नियामक हैं । हे लक्ष्मीजी के नाथ परमहंस परिव्राजक विरक्त महात्मा पुरुष जब आत्म संयम रूप परम समाधि के द्वारा खूब अच्छी तरह से आपका चिन्तन करते हैं, तब उनके परिशुद्ध अन्तःकरण में परमहंसों के वास्तविक भगवद् भजन रूप धर्म का उदय होता है । उसके फलस्वरूप उनके हृदय के अज्ञान रूप कपाट (किवाड़) उद्घाटित (खुल) हो जाते हैं । इस प्रकार के उनके आत्म लोक में आत्मानन्द रूप से बिना किसी आवरण के आप प्रकट हो जाते हैं । तथा वे परमहंस परिव्राजक पुरुष आपका दर्शन करके कृतकृत्य हो जाते हैं इस तरह के आप अनुभव स्वरूप है ॥३३॥ १॥

भावार्थ दीपिका

मिताक्षराणि पद्यानि न मीयन्ते हरेर्गुणाः । इति पद्यैरतुष्यन्तः सद्यो गद्येन तुष्टुवुः । भक्त्युद्रेकेण बहुधा संबोधयन्तो दुर्ज्ञेयत्वं प्रपञ्चयन्ति-भगवन्नित्यादिना । परमं मङ्गलं शुद्धो धर्मो यस्मिन् । आत्मयोगेनाष्टाङ्गेन यः समाधिश्चित्तैकाग्र्यं तेन परिभावितः सुशीलितः परिस्फुटो यः पारमहंस्य धर्मो भगवद्भजनं तेनोद्धाटितं तमोरूपं कपाटं यस्मिंस्तस्मिन् द्वारभूते चित्ते अपावृते प्रकटे आत्मलोके प्रत्यग्रूपे स्वयमेवोपलब्धमभिव्यक्तं यन्निजसुखं तदनुभवरूपो भवान् ॥३३॥ १॥

भाव प्रकाशिका

सीमित अक्षरों वाले पद्य श्रीहरि के गुणों का ठीक से वर्णन नहीं कर सकते हैं । अतएव पद्यों द्वारा वर्णन करने से सन्तोष नहीं होने से देवताओं ने शीघ्र ही गद्यों द्वारा वर्णन प्रारम्भ किया । भक्ति का उद्रेक हो जाने के कारण अनेक प्रकार से श्रीहरि को संबोधित करते हुए उनके दुर्ज्ञेयत्व का विस्तार भगवान् इत्यादि के द्वारा करते हैं । परम मङ्गल स्वरूप शुद्ध धर्म सम्पन्न प्रभो ! अष्टाङ्ग योग के द्वारा चित की एकाग्रता रूप समाधि के द्वारा चिन्तन करने से प्रकट हुए भगवद् भजन रूप पारमहंस्य धर्म के द्वारा अज्ञानान्धकार के कपाट (किवाड़) खुल जाते हैं । उसके द्वारभूत चित्त में प्रकट हुए प्रत्यक् स्वरूप में जो आत्म स्वरूपैकलाभजन्य होने वाले आत्मसुख के अनुभव रूप आप हैं ॥३३॥ १॥

दुरवबोध इव तवायं विहारयोगो यदशरणोऽशरीर इदमनवेक्षितास्मत्समवाय आत्मनैवाविक्रियमाणेन सगुणमगुणः सृजसि पासि हरसि ॥३४॥ २॥

अनुवाद— प्रभो अपकी लीला का रहस्य समझ पाना उत्यन्त कठिन है आप बिना किसी आश्रय के तथा बिना प्राकृत शरीर के ही हम सबों की सहायता की अपेक्षा किए बिना ही निर्गुण और निर्विकार होने पर भी स्वयं ही इस सगुण संसार की रचना, रक्षा और संहार किया करते हैं ॥३४॥२॥

भावार्थ दीपिका

ननु केवलानुभवरूपत्वे मम सृष्ट्यादिकर्तृत्वं कथं तत्राहुः-दुरवबोध इव तवायं विहारयोगो यद्यस्मादशरणो निराश्रयः। इदं विश्वम् । अनवेक्षितोऽस्माकं समवायो मेलनं साहाय्यं येन सः ॥३४॥२॥

भाव प्रकाशिका

यदि यह कहें कि मैं अनुभव स्वरूप ही हूँ तो फिर मैं सृष्टि आदि का कार्य कैसे किया करता हूँ ? तो इस पर देवताओं ने कहा आपकी इस लीला को समझपाना अत्यन्त कठिन है । आप आश्रय रहित होकर भी इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि, रक्षा और संहार किया करते हैं । इस कार्य में आपको हम देवताओं की सहायता की अपेक्षा भी नहीं रहती हैं ॥३४॥२॥

अथ तत्रभवान्किं देवदत्तवदिह गुणविसर्गपतित पारतन्त्र्येण स्वकृतकुशलाकुशलं फलमुपाददात्याहोस्विदात्माराम उपशमशीलः समञ्जसदर्शन उदास्त इति ह वाव न विदामः ॥३५॥३॥

अनुवाद— भगवान् हमलोग इस बात को भी अच्छी तरह से नहीं समझ पाते हैं कि आप इस सृष्टि कर्म में, देवदत्त आदि किसी व्यक्ति के समान गुणों के कार्यभूत इस जगत् में जीव रूप से प्रकट हो जाते हैं और अपने किए हुए कर्मो को अच्छे-बुरे कर्मों के फलों को कर्माधीन होकर भोगते हैं क्या अथवा आप साक्षी मात्र, आत्माराम शान्त स्वभाव एवं सबसे उदासीन रहकर सबों को समान रूप से देखते हैं ॥३५॥३॥

भावार्थ दीपिका

दुर्ज्ञेयान्तरमाहुः-अथ तत्रेति । यथेह देवदत्तो गृहादि निर्माय तत्र स्वकृतशुभाशुभयोः फलमुपादत्ते एवं भवान् ब्रह्मस्वरूपों जीवरूपेण गुणविसर्गे पतितः । सन्नुपाददाति । यद्वा समञ्जसमप्रच्युतं दर्शनं चिच्छक्तिर्यस्य स भवानुदास्ते उदासीनः साक्षितया वर्तत इति ॥३५॥३॥

भाव प्रकाशिका

अथ तत्र० इत्यादि के द्वारा देवगण परमात्मा के दूसरे दुर्ज्ञेयत्व को बतलाते हैं । जिस तरह लोक में देवदत्त आदि जीव गृह आदि का निर्माण करके अपने द्वारा पुण्य पाप रूप कर्मों का फल भोगते हैं, उसी तरह आप ब्रह्म स्वरूप भी जीव रूप से इस गुणकृत कार्य रूप इस संसार में पड़कर जीवों के समान अपने किए हुए कर्मों का फल कर्माधीन होकर भोगते हैं, क्या अथवा साक्षी रूप से आप बने रहते हैं ?॥३५॥३॥

न हि विरोध उभयं भगवत्यपरिगणितगुणगण ईश्वरेऽनवगाह्यमाहात्म्येऽर्वाचीनविकल्पवितर्कविचारप्रमाणाभासकुतर्कशास्त्रकलिलान्तःकरणाश्रयदुरवग्रहवादिनां विवादानवसर उपरतसमस्तमायामये केवल एवात्ममायामन्तर्धाय कोन्वर्थो दुर्घट इव भवति स्वरूपद्वयाभावात् ॥३६॥४॥

अनुवाद— हमलोग तो यह जानते हैं कि आप में दोनों बातें रहे तो भी कोई विरोध नहीं है । क्योंकि आप स्वयं भगवान् हैं । आपके गुण अगणित है । आपकी महिमा अपार है और आप सर्वशक्तिमान हैं । आधुनिक लोग अनेक प्रकार के विकल्प, वितर्क, विचार, झूठे प्रमाण और तर्कपूर्ण शास्त्रों का अध्ययन करके, अपने हृदय को दूषित कर लेते हैं, इसीलिए वे दुराग्रही भी हो जाते हैं । आपमें उनके वाद-विवाद के लिए कोई अवसरनहीं है । आपका वास्तविक स्वरूप समस्त मायामय पदार्थों से परे केवल है । जब उसी में आप अपनी माया को छिपा लेते हैं तब ऐसी कोई भी बात नहीं है । जो आपमें नहीं हो सके । अतएव आप साधारण पुरुषों के समान कर्ता, भोक्ता भी हो सकते हैं तथा महापुरुषों के समान उदासीन भी । क्योंकि आपमें न तो कर्तृत्व भोक्तृत्व है और न उदासीनता ही । आप दोनों से विलक्षण और अनिर्वचनीय हैं ॥३६॥४॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं विरोधेन दुर्ज्ञेयत्वमुक्त्वा तत्परिहारेण ज्ञानप्रकारमाहुः- नहीति । विरुध्यत इति विरोधः । उभयं न विरुद्धमित्यर्थः। नह्यन्यदृष्टान्तेन त्वयि विकल्पो युज्यतेऽतर्क्यैश्वर्यत्वादित्याहुः-भगवतीति । अपरिमिता गुणगणा यस्य तस्मिन्नीश्वरे

स्वतन्त्रेऽनवगाह्यमतर्क्यं माहात्म्यं यस्य तस्मिन् । विकल्प एवं वेति, वितर्कः किमत्र युक्तमिति, विचार इत्थमेवेति । तत्र प्रमाणाभासास्तदनुग्राहकाः । कुतर्काश्चार्वाचीना वस्तुस्वरूपासंस्पर्शिनो ये विकल्पादयस्ते येषु शास्त्रेषु तैः कलिलं व्याकुलमन्तःकरणमाश्रयो यस्य दुरवग्रहस्य तेन वादिनां विवादस्यानवसरेऽगोचरे । ननु श्रद्धामात्रमेतत्, युक्तिरुच्यतां तत्राहुः-उपरतो मायामयः संसारो यस्मिंस्तस्मिन्केवलेऽप्यात्ममायां मध्ये निधाय केन्वर्थः कर्तृत्वादिर्न संभवति । यदि वस्तुतः कर्तृत्वादि भवेत्तर्हि विरोधः स्यान्नतु तदस्तीत्याहुः-स्वरूपद्वयाभावादिति ॥३६॥४॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार विरोध होने के कारण परमात्मा का स्वरूप ही दुर्ज्ञेयता को बतलाकार देवगण उस विरोध का परिहार करके परमात्मा के ज्ञान के प्रकार को बतलाते हैं । दोनों बातों में कोई भी विरोध नहीं है । दूसरे के दृष्टान्त को उपन्यस्त करके श्रीभगवान् में विकल्पों को करना उचित नहीं हैं । क्योंकि उनका ऐश्वर्य तर्क से परे है । श्रीभगवान् के गुण समूह अगणनीय है । वे श्रीभगवान् स्वतन्त्र है उनकी महिमा अगाध और अतवर्य है । परमात्मा इस प्रकार के हैं अथवा इस प्रकार के हैं यही विकल्प कहलाता है । इसमें कया मानना उचित है, इस प्रकार का तर्क करना ही वितर्क है । तथा परमात्मा इस प्रकार के ही है, यही विचार का स्वरूप है । उन सबों के अनुग्राहक के प्रमाण भास ही हुआ करते हैं । जिनका वस्तु (ब्रह्म) के स्वरूप से सस्पर्श भी नहीं हो सकता है वे आधुनिक कुतर्क तथा विकल्प जो शास्त्रों में वर्णित है, उन सबों का अध्ययन करने के कारण व्याकुल अन्तःकरण ही उन सबों का आश्रय है उसी के कारण वे लोग दुराग्रह से युक्त हो जाते हैं । किन्तु परंब्रह्म में तो उन वादियों के वाद-विवाद का कोई अवसर ही नहीं है । परमात्मा का स्वरूप सभी मायामय पदार्थों से रहित केवल स्वरूप है । जब वे उसी में अपनी माया के छिपा लेते हैं तब तो उनमें कर्तृत्व इत्यादि सबकुछ सिद्ध हो जायेगा । परमात्मा में वास्तविक रूप से कर्तृत्व आदि है ही नहीं अतएव कोई विरोध नहीं है । परमात्मा का स्वरूप एक है की नहीं ॥३६॥४॥

समविषममतीनां मतमनुसरसि यथा रज्जुखण्डः सर्पादिधियाम् ॥३७॥५॥

अनुवाद— जैसे एक ही रस्सी का टुकड़ा भ्रान्त बुद्धि वालों को सर्प, माला तथा जलधार के रूप में प्रतीत होता है किन्तु जानकार को वह रस्सी का टुकड़ा ही प्रतीत होता है । वैसे आप भ्रान्त बुद्धि वालों को कर्ता भोक्ता प्रतीत होते हैं और ज्ञानी पुरुषों को शुद्ध सच्चिदानन्द प्रतीत होते हैं । इस तरह आप सबों की बुद्धि का अनुसरण करते हैं ॥३७॥५॥

भावार्थ दीपिका

अनुग्रहनिग्रहादिकं तु तत्तन्मतिभेदेन त्वन्मायया त्वयि स्फुरतीत्याहुः-समा विषमा च मतिर्येषां तेषां मतमभिप्रायम् । सर्पादिविषया धीर्येषां तेषां यथा रज्जुखण्डस्तथा तथा भाति । यद्वा तमेवाविरोधं पुरुषमतिभेदेन दर्शयति-समविषमेति ॥३७॥५॥

भाव प्रकाशिका

अनुग्रह तथा निग्रह आदि विभिन्न प्रकार के मतभेद के कारण आपकी माया के द्वारा आप में प्रतीत होते है । इस बात को **समविषम० इत्यादि** के द्वारा देवताओं ने कहा । जिन लोगों की बुद्धि ब्रह्म विषयक होने के कारण सम है तथा जिन लोगों की बुद्धि प्रपञ्च विषयक होने के कारण विषय है । उन दोनों प्रकार के लोगों की बुद्धि का आप अनुसरण करते हैं । जैसे— भ्रान्त पुरुषों को रस्सी में सर्पादि विषयिणी बुद्धि होती है । तथा जानकार लोगों को रस्सी सदा रम्सी ही प्रतीत होती है । इसी तरह सम बुद्धि वालों को आप सच्चिदानन्द रूप प्रतीत होते हैं । और विषम बुद्धि वालों को आप कर्ता भोक्ता प्रतीत होते हैं ॥३७॥५॥

स एव हि पुनः सर्ववस्तुनि वस्तु स्वरूपः सर्वेश्वरः सकलजगत्कारणभूतः सर्वप्रत्यगात्मत्वात्सर्वगुणाभासोपलक्षित एक एव पर्यवशेषितः ॥३८॥६॥

अनुवाद— विचार करने पर प्रतीत होता है कि आप सभी वस्तुओं में वस्तुत्व रूप हैं । आप सबों के स्वामी, जगत् के कारणभूत प्रकृति, ब्रह्मा आदि कारणों के भी कारण स्वरूप, तथा सबों के अन्तर्यामी आत्मा हैं । आतएव जगत् में जितने भी गुण दोष प्रतीत होते हैं उन समस्त प्रतीतियों के एक मात्र अधिष्ठान आप है । श्रुतियाँ भी समस्त पदार्थों का निषेध करके अन्त में निषेध की अवधि के रूप में आपको ही शेष रखा है ॥३८॥६॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं विरोधं परिहृत्य निश्चितं परमार्थमाहुः- स एव हि नानारूपेण प्रतीतः । वस्तुस्वरूपः सद्रूपः । सर्वेषां गुणानां विषयाणामाभासैः प्रकाशैरुपलक्षितः । ननु तैर्जीव एवोपलक्ष्यते, न । सर्वप्रत्यगात्मत्वात्सर्वजीवान्तर्यामित्वात् । जडतादात्म्याध्यासेन जीवस्यापि जडप्रायत्वान्न तेन बिना प्रकाश इति भावः । पर्यवशेषितो 'नेति नेति' इत्यादिश्रुतिभिः ॥३८॥६॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से विरोध का परिहार करके निश्चित परमार्थ का वर्णन करते हुए देवताओं ने कहा । भ्रान्त पुरुषों को ब्रह्म ही अनेक रूपों में प्रतीत होते है । वे ही वस्तु स्वरूप सद्रूप हैं । जगत् में प्रतीत होने वाले समस्त गुण दोषों के द्वारा आप ही उपलक्षित होते हैं । यदि कहें कि उन सबों के द्वारा तो जीव ही उपलक्षित होता है तो ऐसा इसलिए नहीं कहा जा सकता है कि आप सबों के प्रत्यगात्मा (अन्तर्यामी) हैं । जड़ शरीर के साथ तादात्म्याध्यास होने के कारण जीव भी जड़ प्राय ही है । जीव के बिना प्रकाश नहीं हो सकता है । **नेति नेति इत्यादि** श्रुतियों सभी पदार्थों का निषेध करके निषेध की अवधि रूप आपको ही शेष रखी है ॥३८॥६॥

अथ ह वाव तव महिमामृतरससमुद्रविप्रुषा सकृदवलीढया स्वमनसि निष्यन्दमानानवरतसुखेन विस्मारितदृष्टश्रुतविषयसुखलेशाभासाः परमभागवता एकान्तिनो भगवति सर्वभूतप्रियसुहृदि सर्वात्मनि नितरां निरन्तरं निर्वृतमनसः कथमु ह वा एते मधुमथन पुनः स्वार्थकुशला ह्यात्मप्रियसुहृदः साधवस्त्वच्चरणाम्बुजानुसेवां विसृजन्ति न यत्र पुनरयं संसारपर्यावर्तः ॥३९॥७॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आपकी अमृतमयी महिमा रस का अनन्त समुद्र उसके एक विन्दु मात्र का भी आस्वादन कर लेने से हृदय में नित्यनिरन्तर परमानन्द की धारा प्रवाहित होने लगती है । उसके कारण जिन परमभागवतों ने इस संसार में प्रतीत होने वाले समस्त सुख लेशों तथा स्वर्गादिलोक के विषय में सुने गये सभी सुखों को भुला दिया है । तथा सभी जीवों के परम प्रियतम हितैषी सुहृद तथा सर्वात्मा आपमें नित्य निरन्तर अपने मन को जो लोग लगाये रखते हैं तथा आपके चिन्तन जन्य परमानन्द का अनुभव करते रहते हैं, वे ही आपके अनन्य प्रेमी परम भक्त पुरुष अपने स्वार्थ और परमार्थ के विषय में निपुण हैं । हे मधुसूदन वे आपके परम प्रिय साधु पुरुष आपके चरण कमलों का परित्याग कैसे कर सकते हैं ? आपके चरण कमलों के सेवन के ही द्वारा संसार के चक्कर से मुक्ति मिल जाती है ॥३९॥७॥

भावार्थ दीपिका

अतस्त्वद्भक्तिरेव परमपुरुषार्थ इत्याहुः-अथ हेत्यादिपर्यावर्त इत्यन्तेन । यस्मादेवंभूतस्त्वं परमेश्वरः । अथ ह वाव अत एव हि । हे मधुमथन, परमभागवता एते त्वत्पादाम्भोजानुसेवां कथं मुहुर्मुहुर्विसृजन्तीत्यन्वयः । हि यस्मात्स्वार्थे पुरुषार्थे कुशला निपुणाः । अतएव आत्मा त्वमेव प्रियः सुहृच्च येषां ते साधवो रागादिशून्याः । तत्र हेतुः-तव महिमैवामृतरससमुद्रस्तस्य विप्रुषा बिन्दुमात्रेण सकृदवलीढया आस्वादितया स्वमनसि निष्यन्दमानमतिशयेन स्रवद्यन्निरन्तरं सुखं तेन विस्मारिता दृष्टश्रुतविषयाः सुखलेशाभासा येषां ते । अत एव भगवति त्वयि नितरां निरन्तरं निर्वृतं च मनो येषां ते यत्र यस्यामनुसेवायां सत्याम् ॥३९॥७॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं ने कहा भगवन आपकी भक्ति ही परम पुरुषार्थ है । इस बात को अथ ह इत्यादि दण्डक के द्वारा कहा गया है । चूकि आप परमेश्वर हैं अतएव हे मधुसूदन ! जो परमभागवत पुरुष हैं वे आपके चरण कमलों की सेवा का बार-बार परित्याग कैसे कर सकते हैं ? क्योंकि वे लोग स्वार्थ एवं परमार्थ के विषय में निपुण है। उन रागादि रहित साधु पुरुषों के प्रियतम सुहृत् आप ही है क्योंकि आपकी महिमा अमृत रस का समुद्र है । उसके केवल एक बूंद का आस्वादन कर लेने से हृदय में परमानन्द की निरन्तर धारा प्रवाहित होने लगती है । उसके कारण वे लोग लौकिक विषयभोग जन्य सुख को तथा स्वर्गादि में प्राप्त होने वाले सुने गये सुखों को वे भुला देते हैं । एवं आप श्रीभगवान् में ही अपने मन को निरन्तर लगाये रखते हैं । वे आपके चरण कमलों की सेवा को कभी भी नहीं भुला सकते हैं ॥३९॥७॥

त्रिभुवनात्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलोकमनोहरानुभाव तवैव विभूतयो दितिजदनुजादयश्चापि तेषामनुपक्रमसमयोऽयमिति स्वात्ममायया सुरनरमृगमिश्रितजलचराकृतिभिर्यथापराधं दण्डं दण्डधर दधर्थ एवमेनमपि भगवञ्जहि त्वाष्ट्रमुत यदि मन्यसे ॥४०॥८॥

अनुवाद— हे त्रैलोक्य की आत्मा ! और आश्रय प्रभो ! हे अपने तीन पगों से तीनों लोकों को नाप लेने वाले भगवान् हे तीनों लोकों का संचालन करने वाले, हे त्रैलोक्य के मन को हरण करने वाले प्रभाव सम्पन्न प्रभो! ये दैत्य भी आपकी ही विभूति है । किन्तु यह उनकी उन्नति का समय नहीं है । इस प्रकार से सोचकर आप देव, मनुष्य, पशु, मिश्रित नृसिंह आदि तथा जलचर मत्स्य आदि रूपों को धारण करते हैं और उनके अपराधानुसार उन्हें दण्ड भी देते हैं । हे प्रभो ! यदि आप उचित समझें तो इसी प्रकार इस त्वाष्ट्र वृत्रासुर का भी आप वध करें ॥४०॥८॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतं विज्ञापयन्ति-त्रिभुवनेत्यादिना यावत्समाप्तिं । त्रिभुवनमात्मा स्वरूपं भवनं च यस्य । त्रिभुवनस्यात्मा भवनं चेति वा । त्रयो विक्रमा यस्य । त्रीन् लोकान्नयतीति तथा त्रयाणां लोकानां मनोहरोऽनुभावो यस्य । एवं चतुर्धा संबोध्याहुः- तेषामनुपक्रमसमय उद्यमकालो न भवतीति मत्त्वा हे दण्डधर, पूर्वं यथा दण्डं दधर्थ धृतवानस्येवमेनं त्वाष्ट्रमपि जहि, यदि मन्यसे हन्तुं यदीच्छसि ॥४०॥८॥

भाव प्रकाशिका

इस दण्डक से प्रारम्भ करके इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त देवगण अपने निवेदनीय विषय का निवेदन करते हैं । हे त्रिभुवन रूप आत्मा और आश्रय वाले भगवन् ! अथवा त्रिभुवन की आत्मा और आश्रय स्वरूप भगवन्! आप त्रिविक्रम इसलिए हैं कि आप तीन डगों में ही त्रैलोक्य को नाप लिए थे । तीनों लोकों के संचालक तथा त्रैलोक्य के मन को आकृष्ट करने वाले प्रभाव से सम्पन्न प्रभो इस तरह चार प्रकार से संबोधित करके देवताओं ने कहा प्रभो दैत्य भी आपकी ही विभूति हैं फिर भी जब आप यह सोचते हैं कि यह उनकी उन्नति का काल नहीं है तब आप उनके लिए दण्डधारण करते हैं । आपने जैसे पहले दैत्यों को दण्ड दिया है उसी तरह से इस त्वष्टा के पुत्र वृत्र का भी आप वध कर दें यदि आप इसका वध करना उचित समझे तब ॥४०॥८॥

अस्माकं तावकानां तव नतानां तत ततामह तव चरणनलिनयुगलध्यानानुबद्धहृदयनिगडानां स्वलिङ्गविवरणेनात्मसात्कृतानामनुकम्पानुरञ्जितविशदरुचिरशिशिरस्मितावलोकेन विगलितमधुरमुखर-सामृतकलया चान्तस्तापमनघार्हसि शमयितुम् ॥४१॥९॥

अनुवाद— प्रभो ! हम देवगण आपके निजजन हैं तथा सदैव आपके समक्ष सिर झुकाये रहते हैं । आप हमारे पिता पितामह आदि सब कुछ हैं । आपके चरण कमलों का ध्यान करते रहने के कारण हमारा हृदय उन चरणों के ही प्रेम रूप बन्धन में फँस गया है । आप हमारे समक्ष अपने साकार रूप को प्रकट करके हमें अनुगृहीत किये हैं । अतएव प्रभो हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप अपनी अनुकम्पा पूर्ण विशद, सुन्दर एवं शीतल मुस्कान पूर्ण अवलोकन तथा अपने मुखारविन्द से टपकते हुए अमृतविन्दु से हमारे हृदय के ताप को शान्त कीजिए और हमारे अन्तःताप को शान्त कीजिए ॥४१॥९॥

भावार्थ दीपिका

प्रथमं तावत्त्वदीयानामस्माकमन्तस्तापं शमयितुमर्हसि । तावकानामित्यत्र हेतुः– हे पितः, हे पितामह, तव चरणनलिनयुगलध्यानेनैवानुबद्धो हृदये निगडः शृङ्खला येषाम् । स्वलिङ्गविवरणेन निजमूर्तिप्रकटनेन स्वीकृतानाम् । केन । अनुकम्पयानुरञ्जितं सानुरागं च तद्विशदं रुचिरं शिशिरं च स्मितं तत्सहितेनावलोकेन । तथानुकम्पयैव विगलितो मधुरो मुखरसः प्रियवाक् सैवामृतकला तया च ॥४१॥९॥

भाव प्रकाशिका

हे प्रभो हम आपके है अतएव पहले आप हमारे हृदयके सन्ताप को शान्त करें परमात्मा के निज जन होने में हेतु है हे पितः ! हे पितामह ! आपके चरण युगल का ध्यान करते रहने से उसी के प्रेम के बन्धन में हमारा हृदय बँधा है । आपने दर्शन देकर हमें अपना लिया है । अतएव अनुकम्पा पूर्ण विशद, सुन्दर और शीतल मुस्कान युक्त अवलोकन से युक्त मुखारविन्द के पराग से मधुर वाणी से आप हमलोगों के अन्तस्ताप को शान्त करें ॥४१॥९॥

अथ भगवंस्तवास्माभिरखिलजगदुत्पत्तिस्थितिलयनिमित्तायमानदिव्यमायाविनोदस्य सकजीवनिकायानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि च ब्रह्मप्रत्यगात्मस्वरूपेण प्रधानरूपेण च यथादेशकालदेहावस्थानविशेषं तदुपादानोपलम्भकतयानुभवतः सर्वप्रत्ययसाक्षिण आकाशशरीरस्य साक्षात्परब्रह्मणः परमात्मनः कियानिह वा अर्थविशेषो विज्ञापनीयः स्याद्विस्फुलिङ्गादिभिरिव हिरण्यरेतसः ॥४२॥१०॥

अनुवाद— जिसतरह अग्नि के ही अंश भूत चिन्गारियाँ अग्नि को प्रकाशित करने में असमर्थ है, उसी तरह हम भी अपना कोई भी स्वार्थ परमार्थ आपको निवेदित करने में असमर्थ हैं, और आपसे कहना भी क्या है ? आप तो सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय करने वाली माया के साथ विनोद करते रहते हैं, तथा सम्पूर्ण जीवों के अन्तःकरण में ब्रह्म तथा अन्तर्यामी के रूप में निवास करते हैं एवं उनके बाहर भी प्रकृति रूप आप ही विराजमान हैं । संसार के समस्त देश, काल, शरीर और अवस्थाओं के उपादान और प्रकाशक के रूप में आप उनका अनुभव करते रहते हैं । आप समस्त वृत्तियों के साक्षी और आकाश के समान सर्वगत और निर्लिप्त हैं । आप स्वयं परमात्मा हैं ॥४२॥१०॥

भावार्थ दीपिका

किंच अस्मदभिप्रायस्त्वया ज्ञायत एव किमत्रास्माभिर्विज्ञापनीयमित्याहुः– अथ हे भगवन्, तवास्माभिरिह कियान्वार्थविशेषो विज्ञापनीयः स्यादित्यन्वयः । यथा हिरण्यरेतसोऽग्नेस्तदंशभूतैर्विस्फुलिङ्गादिभिः प्रकाशो न क्रियते तथा तवास्माभिः कार्यार्थप्रकाशनं न कार्यमित्यर्थः:अत्र हेतुगर्भाणि विशेषणानि । अखिलजगतामुत्पत्त्यादिषु निमित्तायमानया दिव्यमायया विनोदो यस्य । अतएव सर्वजीवनिकायानामन्तर्हृदयेषु ब्रह्मस्वरूपेण प्रत्यगात्मान्तर्यामी तद्रूपेण च बहिरपि प्रधानरूपेण देशकालदेहावस्थानविशेषाननुल्लङ्घ्यानुभवतः । कथम् । तेषामुपादानतयोपलम्भकतया च,उपादानस्योपलम्भकतयेति वा । अतएव सर्वेषां प्रत्ययानां बुद्ध्याधादीनामपि साक्षिणः । साक्षित्वे हेतुः–आकाशवदलिप्तं शरीरं स्वरूपं यस्य । अलिप्तत्वे हेतुद्वयम्, साक्षात्परब्रह्मणो निरुपाधेः परमात्मनः शुद्धसत्त्वमूर्तेश्च ॥४२॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इस दण्डक में देवों ने कहा कि प्रभो ! आप हमारे अभिप्राय को जानते ही है अतएव आपसे कुछ भं क्या कहना है ? हे भगवन् ! आपसे हमलोगों को क्या कहना है, यह इसका मुख्य वाक्य है । जिस तरह चिनगारिये के द्वारा अग्नि का प्रकाशन नही हो सकता है । उसी तरह हमलोग भी आपके समक्ष अपने कार्य का प्रकाशन नहीं कर सकते है । क्योंकि सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति आदि के कारण रूपिणी माया से आप विनोद करते हैं। अतएव आप सम्पूर्ण जीव समूह के हृदय में ब्रह्मरूप से तथा अन्तर्यामी रूप से विहार करते हैं । अन्तःकरण के बाहर भी प्रकृति रूप से समस्त देश, काल, शरीर तथा अवस्था आदि का अनुभव करते रहते हैं । आप सम्पूर्ण जगत् के उपादान रूप से तथा प्रकाशक रूप से विद्यमान हैं । अतएव आप सभी बुद्धियों के भी साक्षी है । क्योंकि आप आकाश के समान निर्लिप्त स्वरूप वाले हैं । क्योंकि आप साक्षात् परब्रह्म और परमात्मा है ।।४२।।१०।।

अतएव स्वयं तदुपकल्पयास्माकं भगवतः परमगुरोस्तव चरणशतपलाशच्छायां विविधवृजिनसंसार-परिश्रमोपशमनीमुपसृतानां वयं यत्कामेनोपादिताः ।।४३।।११।।

अनुवाद— अतएव हम अपना अभिप्राय आपसे निवेदित करें इसकी अपेक्षा नहीं करके हम जिस अभिलाषा से यहाँ आये हैं, उसे आप पूर्ण करें । आप अचिन्त्य ऐश्वर्य सम्पन्न और जगत् के परमगुरु हैं । हम आपके चरणों की छत्र छाया में आये हैं जो विविध पापों के फल स्वरूप जन्म मृत्यु रूप संसार में भटकने के थकावट को दूर करने वाली है ।।४३।।११।।

भावार्थ दीपिका

अतएव सर्वज्ञत्वादेव वयं यत्कामेन यस्य कार्यस्य कामेनोपसादिताः प्रापितास्तदस्माकं कार्यं स्वयमेवोपकल्पय संपादयेति। चरणमेव शतपलाशं कमलं तस्य छायां विविधैर्वृजिनैर्यः संसारपरिश्रमस्तस्योपशमकरीमुपसृतानां प्राप्तानाम् ।।४३।।११।।

भाव प्रकाशिका

सर्वज्ञ होने के कारण ही हम जिस कामना से यहाँ आये हैं उसको आप स्वयं ही पूर्ण करें । आपके चरण कमल जो अनेक पापों के कारण संसार में भटकने से उत्पन्न थकान को मिटाने वाली हैं, उसकी छाया में हम आये हैं ।।४३।।११।।

अथो ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसन्तं भुवनत्रयम् । ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांस्यस्त्रायुधानि च ।।४४।।

अन्वयः— अथो ईश भुवनत्रयम् ग्रसन्तं त्वाष्ट्र जहि । हे कृष्ण येन नः तेजांसि अस्त्रायुधानि च ग्रस्तानि ।।४४।।

अनुवाद— अतएव हे सम्पूर्ण जगत् के नियामक प्रभो ! वृत्रासुर त्रैलोक्य को ग्रस रहा है । हे कृष्ण ! इसने हमारे तेज, अस्त्र तथा आयुधों को निगल लिया है ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

पूर्वं भक्तेरुत्कर्षोक्तेस्तत्कामशङ्का मा भूदिति स्वकामं कथयन्ति । अथोऽनन्तरमेव ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

पहले देवों ने भक्ति के उत्कर्ष का प्रतिपादन किया है अतएव श्रीभगवान् को यह शङ्का न हो कि ये भक्ति ही चाहते हैं इसीलिए देवताओं ने अपनी कामना को इस श्लोक में बतलाया है । अर्थात् इसके पश्चात् ही ।।४४।।

हंसाय दह्रनिलयाय निरीक्षकाय कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय ।
सत्संग्रहाय भवपान्थनिजाश्रमाप्तावन्ते परीष्टगतये हरये नमस्ते ।।४५।।

अन्वयः— हंसाय दह्रनिलयाय, निरीक्षकाय कृष्णाय, मृष्टयशसे, निरूपक्रमाय, सत्संग्रहाय भवपान्थनिजाश्रमाप्तौ अन्ते परिष्टगतये हरये नमस्ते ।।४५।।

अनुवाद— शुद्ध स्वरूप, हृदयाकाश में निवास करने वाले, सबके साक्षी सदा आनन्द स्वरूप, उज्ज्वल कीर्ति सम्पन्न, तथा सन्त पुरुष जिनका संग्रह करते है। संसारी पुरुष भटकते-भटकते यदि जिनके शरण में आ जाता है तो उसको परमानन्द स्वरूप अभीष्ट गति प्रदान करने वाले श्रीहरि को नमस्कार है ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

शीघ्रं तद्वधाय पुनः प्रणमन्ति। हंसाय शुद्धाय हरये आर्तिहराय ते नमः। शुद्धत्वे हेतवः-दहनिलयाय हृदयाकाशनिकेताय। निरीक्षकाय बुद्‌यधादिसाक्षिणे। कृष्णाय सदानन्दरूपाय। 'कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः। तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।' इति निरुक्तेः। आर्तिहरत्वे हेतवः-मृष्टं रुचिकरं यशो यस्य। निरुपक्रमायादिशून्याय। सद्भिः संगृह्यत इति तथा तस्मै। भवपान्थो भवरूपे पथि वर्तमानस्तस्य जनस्य निजाश्रमाप्तौ स्वशरणप्राप्तौ सत्यां संसारस्यान्ते परीष्टा सर्वतः पूजिता उत्तमा गतिः फलं यस्तस्मै ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् शीघ्र वृत्रासुर का वध कर दें एतदर्थ देवगण उनको पुनः प्रणाम करते हैं। शुद्ध स्वरूप तथा भक्तों के कष्ट को दूर करने वाले आपको नमस्कार है। परमात्मा के शुद्धत्व का कारण है कि वे सबों के हार्दाकाश में निवास करते हैं तथा बुद्धि आदि के साक्षी हैं एवं सर्वदा आनन्द स्वरूप हैं। कृष्ण शब्द का कृष शब्द भूमि का वाचक है तथा ण परिपूर्णता का वाचक है। कृष तथा ण के योग से निष्पन्न कृष्ण शब्द परब्रह्म का बोधक है। भक्तों के कष्ट निवारकत्व का कारण है कि उनका यश रुचिकर है। वे अनादि और अनन्त हैं। साधु उनकी संग्रह करते हैं। ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार हैं। संसार के मार्ग में भटकने वाला पथिक यदि अन्त में उनके शरण में पहुँच जाता है तो उसको मुक्ति रूपी अभीष्ट गति प्रदान कर देते हैं ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार हैं ॥४५॥

श्रीशुक उवाच

अथैवमीडितो राजन्सादरं त्रिदशैर्हरिः। स्वमुपस्थानमाकर्ण्य प्राह तानभिनन्दितः ॥४६॥

अन्वयः— राजन्! अथ त्रिदशैः एव सादरम् ईडितः हरिः एवम् उपस्थानम् आकर्ण्य अभिनंदितः तान् प्राह ॥४६॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन्! परीक्षित् इस प्रकार से देवताओं प्रेम पूर्वक स्तुति किये जाने पर उस स्तुति को सुनकर प्रसन्न हुए श्रीहरि देवताओं से प्रसन्न होकर कहे ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

अभिनन्दितः संतोषितः ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

अभिनन्दितः अर्थात् संतुष्ट होकर ॥४६॥

श्रीभगवानुवाच

प्रीतोऽहं वः सुरश्रेष्ठा मदुपस्थानविद्यया। आत्मैश्वर्यस्मृतिः पुंसां भक्तिश्चैव यया मयि ॥४७॥

अन्वयः— हे सुरश्रेष्ठा मदुपस्थान विद्यया अहं वः प्रीतः यया पुंसां आत्मेश्वर्यस्मृतिः भक्तिश्चैव ॥४७॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे श्रेष्ठ देवताओ! इस स्तुति युक्त ज्ञान के द्वारा मैं तुमलोगों पर प्रसन्न हो गया हूँ। इस स्तुति के द्वारा मनुष्यों को अपने स्वरूप की स्मृति और मेरी भक्ति प्राप्त होगी ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

मदीयमुपस्थानं स्तोत्रं तत्सहितया धिया ज्ञानेन । आत्मन ऐश्वर्यमसंसारित्वं तस्य स्मृतिर्यया । नहि विरोध उभयमित्यादिना कर्तृत्वभोक्तृत्वादेर्मायिकत्वोक्तेः । भक्तिश्च यया भवति ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने देवताओं से कहा कि तुमलोगों ने मेरी स्तुतियुक्त ज्ञान के द्वारा उपासना किया है, इससे मैं तुमलोगों पर प्रसन्न हूँ इस स्तुति के द्वारा मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप का स्मरण हो जायेगा तथा मुझमें भक्ति उत्पन्न होगी ॥४७॥

किं दुरापं मयि प्रीते तथापि विबुधर्षभाः । मय्येकान्तमतिर्नान्यन्मत्तो वाञ्छति तत्त्ववित् ॥४८॥

अन्वयः— विवुधर्षभाः मयि प्रीते किं दुरापं तथापि मयि एकान्तमतिः तत्त्ववित्त मत्तः अन्यत् न वाञ्छति ॥४८॥

अनुवाद— हे श्रेष्ठ देवों ! मेरे प्रसन्न हो जाने पर कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता है फिर भी मेरा अनन्य प्रेमी तत्त्वज्ञ पुरुष मुझे अतिरिक्त कुछ भी नहीं माँगता है ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

अथ ह भगवन्नित्यादिना भक्तेः सर्वोत्कर्षोक्तेर्भक्तमभिनन्दति-किमिति ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

अथ ह भगवन् इत्यादि दण्डक के द्वारा देवताओं ने भक्ति के उत्कर्ष का वर्णन किया है । इसलिए श्रीभगवान् **किं दुरापं० इत्यादि** श्लोक के द्वारा भक्ति की प्रशंसा करते हैं ॥४८॥

न वेद कृपणः श्रेय आत्मनो गुणवस्तुदृक् । तस्य तानिच्छतो यच्छेद्यदि सोऽपि तथाविधः ॥४९॥

अन्वयः— कृपणः आत्मनः श्रेयः न वेद गुणवस्तु दृक् तस्य इच्छतः यदि यच्छेत् सोऽपि तथाविधः ॥४९॥

अनुवाद— अज्ञानी अपने वास्तविक कल्याण को नहीं जानता है, इसीलिए वह विषयों को प्राप्त करना चाहता है किन्तु तत्त्वज्ञ पुरुष यदि उसको उसके अभिलषित वस्तु को प्रदान कर देता है तो वह उसी के समान अज्ञ है ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं देवैः स्वयं तदुपकल्पयास्माकमित्यादि तत्संपादनं कृपालोर्ममानुचितमित्याशयेनाह-न वेदेति द्वाभ्याम् । गुणेषु विषयेषु तत्त्वदर्शी । तान्विषयान् तथाविधोऽज्ञ एव ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं ने यह जो कहा है कि आप हमलोगों के अभिप्रेत पदार्थ को आप स्वयं प्रदान करें । इस पर श्रीभगवान् का कहना है कि यदि मैं दयालु हूँ तो मेरे द्वारा उसे प्रदान करना उचित नहीं है । इसी अभिप्राय से उन्होंने **न वेदः इत्यादि** दो श्लोकों को कहा है । अर्थात् तत्त्वज्ञ पुरुष उन अज्ञाओं को यदि विषयों में ही व्यापृत करना है तो वह भी उस अज्ञानी के समान ही अज्ञ है ॥४९॥

स्वयं निःश्रेयसं विद्वान्न वक्त्यज्ञाय कर्म हि । न राति रोगिणोऽपथ्यं वाञ्छतो हि भिषक्तमः ॥५०॥

अन्वयः— स्वयं निः श्रेयसं विद्वान् अज्ञाप हि कर्म नहि वक्तिः भिषक्तमः हि, अपथ्यं वाञ्छतः रागिणं न राति ॥५०॥

अनुवाद— मुक्ति के स्वरूप को जानने वाला तत्त्वज्ञ पुरुष अज्ञानी व्यक्ति को उसी तरह से कर्मों का उपदेश नहीं देता है जिस तरह अपथ्य चाहने वाले रोगी को सद्वैद्य उसको वह नहीं प्रदान करता है ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

कर्म न वक्ति प्रवृत्तिमार्गं न वक्ति हि । अपथ्यं यथा न राति न ददाति । भिषक्तमः सद्वैद्यः ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

ज्ञानी पुरुष अज्ञानी व्यक्ति को प्रवृत्ति मार्ग का उसी तरह उपदेश नहीं देता है, जिस तरह सद्वैद्य अपथ्य चाहने वाले रोगी को कुपथ्य नहीं देता है ।।५०।।

मघवन्यात भद्रं वो दध्यञ्चमृषिसत्तमम् । विद्याव्रततपः सारं गात्रं याचत मा चिरम् ।।५१।।

अन्वयः— हे मधवन् वः भद्रं मा चिरम् दध्यञ्चं ऋषि सत्तमम् यात विद्याव्रत तपः सारं गात्रं याचत ।।५१।।

अनुवाद— हे इन्द्र ! तुमलोगों का कल्याण हो । शीघ्र ही तुम लोग ऋषियों में श्रेष्ठ दधीचि ऋषि के पास जाओ और उनकी विद्या, व्रत एवं तपस्या के सार स्वरूप उनके शरीर को उनसे माँग लो ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

एवं तत्त्वकथनेनानौचित्यं परिहृत्य तदभिप्रायमनुसरन्नाह-मघवन्निति । विद्यया व्रतैस्तपसा च सारं दृढं गात्रं शरीरं याचत याचध्वम् ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से तत्त्व कथन के द्वारा अनौचित्य का परिहार करके श्रीभगवान् इन्द्रादि के अभिप्राय का अनुसरण करते हुए कहे विद्या, व्रत एवं तप के द्वारा सुदृढ बने हुए शरीर को उनसे माँग लो ।।५१।।

स वा अधिगतो दध्यङ्ङश्विभ्यां ब्रह्म निष्कलम् । यद्वा अश्वशिरोनाम तयोरमरतां व्यधात् ।।५२।।

अन्वयः— स वा दध्यङ् यद्वा अश्वशिरोनाम निष्कलं ब्रह्म अधिगतः अश्विभ्याम् तयोः अमरतां व्यधात् ।।५२।।

अनुवाद— वेदधीचि ऋषि उनका एक नाम अश्वशिरः है वे शुद्ध ब्रह्म के ज्ञाता है उन्होंने अश्विनी कुमारों को उसका उपदेश देकर जीवन्मुक्त बना दिया है ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तदीयं विद्यातिशयमाह- सा वा इति द्वाभ्याम् । एवं ह्यत्र प्रसिद्धा कथा । 'निशम्याथर्वणं दक्षं प्रवर्ग्यब्रह्मविद्ययोः। दध्यञ्चं समुपागम्य तमूचतुरथाश्विनौ । भगवन्देहि नौ विद्यामिति श्रुत्वा स चाब्रवीत् । कर्मण्यवस्थितोऽद्याहं पश्चाद्वक्ष्यामि गच्छतम् । तयोर्निर्गतयोरेव शक्र आगत्य तं मुनिम् । उवाच भिषजोर्विद्यां मावदीरश्विनोर्मुने । यदि मद्वाक्यमुल्लङ्घ्य ब्रवीषि सहसैव ते । शिरश्छिन्द्यां न संदेह इत्युक्त्वा स ययौ हरिः । इन्द्रे गते तथाभ्येत्य नासत्यावूचतुर्द्विजम् । तन्मुखादिन्द्रगदितं श्रुत्वा तावूचतुः पुनः । आवां तव शिरश्छित्त्वा पूर्वमश्वस्य मस्तकम् । संधास्यावस्ततो ब्रूहि तेन विद्यां च नौ द्विज । तस्मिन्निन्द्रेण संछिन्ने पुनः संधाय मस्तकम् । निजं ते दक्षिणां दत्त्वा गमिष्यावो यथातथम् । एतच्छ्रुत्वा तथोवाच दध्यङ्ङाथर्वणस्तयोः । प्रवर्ग्यं ब्रह्मविद्यां च सत्कृतोऽसत्यशङ्कितः । इति । ततश्चायमर्थः-दध्यङ् निष्कलं शुद्धं ब्रह्माधिगतो ज्ञातवान् । पाठान्तरे तु निष्कृतं नितरां कृतं भवति धनं येन तं प्रवर्ग्यं चाधिगतो ज्ञातवान् । ततोऽश्विभ्यां प्रादादित्युत्तरस्यानुषङ्गः उपदिदेशेत्यर्थः । कथंभूतं ब्रह्म यद्वै अश्वशिरसा प्रोक्तत्वादश्वशिरोनाम प्रसिद्धम् । तयोरमरतां जीवन्मुक्तत्वं व्यधात् । तथाच श्रुतिः 'अश्वस्य शीर्ष्णा प्रपदीमुवाच' इति ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम महर्षि दधीचि के विद्यातिशय्य का वर्णन **स वा इत्यादि** दो श्लोकों से श्रीभगवान् करते हैं । इसके विषय में यह प्रसिद्ध कथा है । महर्षि दधीचि अथर्ववेदी को प्रवर्ग्य और ब्रह्मविद्या में दक्ष सुनकर दोनो अश्विनी कुमारों ने आकर उनसे कहा भगवन् आप हमें ब्रह्म विद्या प्रदान करें । यह सुनकर महर्षि ने कहा इस समय मैं

कर्म में लगा हूँ बाद में उसका उपदेश कर दूँगा, अतएव तुम दोनों जाओ । उन दोनों के चले जाने पर इन्द्र ने आकर कहा मुने ! इन वैद्यों के आप ब्रह्मविद्या का उपदेश न दें । यदि मेरी बात न मानकर आप उन दोनों को उपदेश देंगे तो मैं आपका शिर काट दूँगा । इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है । यह कहकर इन्द्र चले गये । इन्द्र के चले जाने पर अश्विनी कुमारों ने दधीचि ऋषि से कहा ऋषि के मुख से इन्द्र की बातों को सुनकर उन दोनों ने कहा पहले हमलोग अपका शिर काटकर आपके धड़ से अश्व का शिर जोड़ देते हैं । हे द्विज ! उसी मुख से आप हमलोगों को विद्योपदेश कर दें । इन्द्र के द्वारा उस शिर के काट दिए जाने पर हमलोग आपके वास्तविक शिर को जोड़कर आपको दक्षिणा देकर अपने अभिलषित स्थान पर चले जायेंगे । इस बात को सुनकर दधीचि ऋषि ने कहा ठीक है । महर्षि ने अपने उसी मुख से अश्विनी कुमारों को प्रवर्ग्य तथा ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया कहने का अभिप्राय है कि दधीचि ऋषि ब्रह्मविद्या के ज्ञाता हैं । पाठान्तर होने पर तो अर्थ होगा कि अच्छी तरह से दक्षिणा प्रदान करना धन देना है । जिसके द्वारा उन्होंने प्रवर्ग्य को जाना । इसीलिए उन्होंने उसका उपदेश अश्विनी कुमारों को दिया । किस प्रकार के ब्रह्म को तो इसका उत्तर है कि जिसका उन्होंने अपने अश्व के शिर से उपदेश दिया था । उसको प्रदान करके उन्होंने अश्विनी कुमारों को जीवन्मुक्त बना दिया । श्रुति भी कहती है-अश्वस्य शीर्ष्णा प्रपदीमुवाच ॥५२॥

दध्यङ्ङाथर्वणस्त्वष्ट्रे वर्माभेद्यं मदात्मकम् । विश्वरूपाय यत्पदात्त्वष्टा यत्त्वमधास्ततः ॥५३॥

अन्वयः— दध्यङ्ङाथर्वणः त्वष्ट्रे मदात्मकम् अभेद्यम् वर्म प्रादात् त्वष्टा यत् विश्वरूपाय प्रादात् यत् त्वम् ततः अधाः॥५३॥

अनुवाद— सर्वप्रथम अथर्ववेदी दधीचि ऋषि ने ही मेरे स्वरूप भूत अभेद्य नारायण कवच का उपदेश त्वष्टा को दिया था और त्वष्टा ने उसका उपदेश विश्वरूप को दिया । तुमने विश्वरूप से उसका उपदेश प्राप्त किया ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

मदात्मकं वर्म श्रीनारायणकवचं चाधिगत इति पूर्वस्यानुषङ्गः । तत्र हेतुः-यस्मात्त्वष्ट्रे प्रादात् । किं तत् । यत्त्वष्टा विश्वरूपाय पुत्राय प्रादात् । कीदृशम् । यत्त्वं ततो विश्वरूपादधाः धृतवानसि । तदेवं विद्यया सारं गात्रं याचध्वमित्यर्थः ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा नारायण कवच मेरा स्वरूप भूत है उस नारायण कवच को अथर्ववेदी दधीचि ऋषि से त्वष्टा ने प्राप्त किया था । त्वष्टा ने अपने पुत्र विश्वरूप को उसका उपदेश दिया और विश्वरूप से तुमने उस विद्या को धारण किया इस तरह विद्या के सारभूत महर्षि दधीचि के शरीर को तुमलोग उनसे माँगो ॥५३॥

युष्मभ्यं याचितोऽश्विभ्यां धर्मज्ञोऽङ्गानि दास्यति । ततस्तैरायुधश्रेष्ठो विश्वकर्मविनिर्मितः ॥५४॥

अन्वयः— धर्मज्ञः युष्मभ्यं अश्विभ्यां याचितः अङ्गानि दास्यति । ततः तैः विश्वकर्म निर्मितः आयुधश्रेष्ठः वज्र भविष्यतीति शेषः ॥५४॥

अनुवाद— महर्षि धर्म के जानकर हैं अश्विनी कुमारों द्वारा तुमलोगों के लिए माँगे जाने पर वे अपने शरीर को दे देंगे । उसके पश्चत् उन सबों से विश्वकर्मा श्रेष्ठ आयुध वज्र का निर्माण करेंगे ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

ननु प्रेष्ठं देहं कथं दास्यति तत्राह । युष्मभ्यमङ्गान्यस्थीनि याचितः सन् दास्यति । यतो धर्मज्ञः । विशेषतोऽश्विभ्यां शिष्यप्रीत्या दास्यति । अस्थीनीत्यनेन हेयत्वं दर्शितम् । तैरस्थिभिर्विश्वकर्मणा विनिर्मित आयुधश्रेष्ठो वज्रो भविष्यतीति शेषः॥५४॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि शरीर तो सबको अत्यन्त प्रिय होता है, वे अपने शरीर को कैसे देंगे ? इस पर श्रीभगवान्

ने कहा कि दोनों अश्विनी कुमार उनके शिष्य हैं अतएव शिष्य के प्रति प्रेम होने के कारण, यदि अश्विनी कुमार आप लोगों के लिए माँगें तो वे अवश्य दे देंगे । अस्थि होने के कारण त्याजत्व कहा गया है । उन अस्थियों से विश्वकर्मा श्रेष्ठ आयुध वज्र का निर्माण करेंगे ॥५४॥

येन वृत्रशिरो हर्ता मत्तेजउपबृंहितः। तस्मिन्विनिहते यूयं तेजोऽस्त्रायुधसंपदः ॥
भूयः प्राप्स्यथ भद्रं वो न हिंसन्ति च मत्परान् ॥५५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठे स्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥९॥

अन्वयः— येन मत्तेज उपबृंहितः त्वं वृत्रशिरः हर्ता । तस्मिन् विनिहते यूयं तेजोऽस्यायुध संपदः भूयः प्राप्स्यथः। वः भद्रं मत्परान् च न हिंसन्ति ॥५५॥

अनुवाद— उस वज्र के द्वारा मेरे तेज से उपबृहितं तुम वृत्रासुर का शिर काट दोगे उसके मारे जाने के पश्चात् तुमलोग पुनः अस्त्र-शस्त्र तेज तथा संपत्ति से सम्पन्न हो जाओगे । तुमलोगों का कल्याण अवश्यंभावी है। मेरे भक्तों को कोई नहीं मार पाता है ॥५५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

येन भवान्वृत्रशिरो हर्ता हरिष्यति । मम तेजसा उपबृंहितः सन् । तेजश्चास्त्राणि चायुधानि च संपदश्च भूयः प्राप्स्यथ। महाकायस्त्रिभुवनग्रासी स एवास्मान्हन्यादिति शङ्काकुलचित्तान्प्रत्याह । मत्परांश्च केऽपि न हिंसन्त्यतो युष्माकं भद्रमेवेति ।।५५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठ स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां नवमोऽध्यायः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

उस वज्र के ही द्वारा तुम वृत्रासुर का शिर काटोगे । मेरी शक्ति से सम्पन्न होकर तुम लोग तेज, अस्त्र और संपत्ति को प्राप्त कर लोगे । यदि कहो कि महाकाय त्रिभुवन को ग्रसने (निगलने) वाला वह हमलोगों की मार दे सकता है तो इस पर कहते हैं मेरे भक्तों को कोई भी नहीं मार पाता है । अतएव तुम लोगों का कल्याण होगा।।५५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के नवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।९।।

◆

दसवाँ अध्याय

देवताओं द्वारा दधीचि ऋषि की हड्डियों द्वारा वज्र का निर्माण और वृत्रासुर की सेना पर आक्रमण

श्रीशुक उवाच

इन्द्रमेवं समादिश्य भगवान्विश्वभावनः । पश्यतामनिमेषाणां तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥१॥

अन्वयः— एवं इन्द्रं समादिश्य विश्वभावनः भगवान् हरिः अनिमेषाणं पश्यताम् तत्रैव अन्तर्दधे ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद राजन् ! इन्द्र को इस प्रकार से आदेश देकर विश्व को जीवन प्रदान करने वाले श्रीहरिः देवताओं सामने से ही अन्तर्धान हो गये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

दशमे केशवादिष्टदध्यङ्ङस्थिजवज्रधृत् । इन्द्रोऽयुध्यत वृत्रेण सासुरेण सनिर्जरः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दशवें अध्याय में श्रीभगवन् का आदेश पाकर महर्षि दधीचि की अस्थि से निर्मित वज्र को धारण करने वाले इन्द्र देवताओं को साथ लेकर असुरों से युक्त वृत्रासुर के साथ युद्ध किया ॥१॥

तथाऽभियाचितो देवैर्ऋषिराथर्वणो महान् । मोदमान उवाचेदं प्रहसन्निव भारत ॥२॥

अन्वयः— हे भारत ! देवैः तथा अभियाचितः महान् आथर्वणः ऋषिः मोदमानः प्रहसन्न इव इदम् उवाच ॥२॥

अनुवाद— हे परीक्षित देवताओं के द्वारा उस प्रकार से याचना किए जाने पर प्रसन्न हुए अथर्ववेदी महान् ऋषि दधीचि ने हँसते हुए यह कहा ॥२॥

भावार्थ दीपिका

मोदमान एव तन्मुखाद्धर्मं श्रोतुकामः प्रत्याचक्षाण इवोवाचअपीति द्वाभ्याम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं की प्रार्थना सुनकर दधीचि ऋषि को प्रसन्नता ही हुई फिर वे देवताओं के मुख से धर्म की बातों को सुनने के लिए देवताओं का प्रत्याख्यान करने के ही समान **अपि इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा कहे ॥२॥

अयि वृन्दारका यूयं न जानीथ शरीरिणाम् । संस्थायां यस्त्वभिद्रोहो दुःसहश्चेतनापहः ॥३॥

अन्वयः— अयि वृन्दारका यूयं न जानीथ शरीरिणां संस्थायां यः तु दुः सहः चेतना पहः अभिद्रोहः ॥३॥

अनुवाद— देवताओं शायद तूमलोग इस बात को नहीं जानते हो कि मरने में प्राणियों को बड़ा कष्ट होता है । जब तक प्राणी होश में रहता है तब तक उसे असह्य पीड़ा सहनी पड़ती है और अन्त में वह मूर्छित हो जाता है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

हे वृन्दारकाः, अपि किं संस्थायां मृत्यौ योऽभिद्रोहो दुःखं तं न जानीथ ॥३॥

भाव प्रकाशिका

हे देवताओं कि आप लोग मरने में होने वाली असह्य पीड़ा को नहीं जानते हो ॥३॥

जिजीविषूणां जीवानामात्मा प्रेष्ठ इहेप्सितः । क उत्सहेत तं दातुं भिक्षमाणाय विष्णवे ॥४॥

अन्वयः— जिजीविषूणां जीवानाम् आत्मा इह प्रेष्ठ इप्सितः भिक्षमाणाय विष्णवे तं दातुं कः उत्सहेत ॥४॥

अनुवाद— जो जीव इस संसार में जीवित रहना चाहते हैं उनके लिए आत्मा सर्वाधिक प्रिय एवं अभिप्रेत वस्तु है । यदि भगवान् विष्णु भी माँगें तो भी उसे देने का कौन उत्साह कर सकता हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

आत्मा देहः । वयं जानीम एव किंतु श्रीविष्णुरस्मन्मुखेन याचत इति चेत्तत्राह-याचते विष्णवेऽपि दातुं क उत्सहेत॥४॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में आत्मा शब्द से देह को कहा गया है । यदि कहो कि हमलोग तो इस बात को जानते ही हैं किन्तु हमलोगों के माध्यम से भगवान् विष्णु इसे माँगते हैं, तो इसका उत्तर है कि भगवान् विष्णु के भी माँगने पर इसे देने का कौन उत्साह कर सकता है ?॥४॥

देवा ऊचुः

किं नु तद्दुस्त्यजं ब्रह्मन्पुंसां भूतानुकम्पिनाम् । भवद्विधानां महतां पुण्यश्लोकेड्यकर्मणाम् ॥५॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! भवद्विधानाम् भूतानुकम्पिनाम् महतां पुण्यश्लोके ड्यकर्मणाम् किं नु दुस्त्यजम् ॥५॥

देवताओं ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् आप जैसे उदार और प्राणियों पर दया करने वाले महापुरुष जिनके कर्मों की महायशस्वी महानुभाव भी प्रशंसा करते हैं । उनके लिए प्राणियों की भलाई के लिए कौन सी वस्तु अदेय हो सकती है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

पुण्यश्लोकैरीड्यानि कर्माणि येषाम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

महायशस्वी पुरुष भी जिनके कर्मों की प्रशंसा करते हैं ॥५॥

ननु स्वार्थपरो लोको न वेद परसंकटम् । यदि वेद न याचेत नेति नाह यदीश्वरः ॥६॥

अन्वयः— ननु लोकः स्वार्थपरः पर संकटं न वेद यदि वेद न याचेत नेति नाह यदीश्वरः ॥६॥

अनुवाद— निश्चित रूप से संसार के माँगने वाले लोग दूसरे के सङ्कट को नहीं जानते हैं, यदि वे जानते ही तो फिर माँगते ही क्यों, किन्तु देने वाले लोग माँगने वाले के सङ्कट को नहीं जानते हैं, क्योंकि यदि वे जानते तो नही नहीं कहते ॥६॥

भावार्थ दीपिका

याचको यदिवेद तर्हि न याचेत । यदीश्वरो दानसमर्थश्चेत्तर्हि सोऽपि नेति नाह । अतो यथा तव सङ्कटं स्वार्थपरा वयं न जानीम एव प्रत्याचक्षाणस्त्वमस्मत्सङ्कटं न जानासीति भावः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

याचना करने वाले को यदि दूसरे के सङ्कट का ज्ञान होता तो वे माँगते ही नहीं । इसी तरह जो दान देने में समर्थ है वह भी दूसरे के सङ्कट को नहीं जानता है । यदि वह जानता तो नहीं नही कहता । अतएव स्वार्थ परायण हमलोग आपके सङ्कट को नहीं समझ पाते है, उसी तरह देने से इनकार करने वाले आप भी हमलोगों के सङ्कट को नहीं जानते हैं ॥६॥

ऋषिरुवाच

धर्मं वः श्रोतुकामेन यूयं मे प्रत्युदाहृताः । एष वः प्रियमात्मानं त्यजन्तं संत्यजाम्यहम् ॥७॥

अन्वयः— वः धर्मं श्रोतुकामेन यूयम् मे प्रत्युदाहृताः एष वः प्रियमात्मानं त्यजन्तम् अहम् संत्यजामि ॥७॥

दधीचि ऋषि ने कहा

अनुवाद— देवताओं आप लोगों के मुख से धर्म की बात सुनने के ही लिए हमने आपलोगों की माँग का प्रत्याख्यान किया था, अब मैं आपलोगों की भलाई के लिए अपने इस प्रिय शरीर का परित्याग कर रहा हूँ, क्योंकि एक न एक दिन इस शरीर को तो छोड़ना ही है अन्यथा यह शरीर मुझे ही छोड़ देगा ॥७॥

भावार्थ दीपिका

मे मया प्रत्युदाहृताः प्रत्युक्ताः । मां त्यजन्तं त्यक् त्वा यान्तमात्मानं देहम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

आपलोगों से धर्म सुनने के ही लिए मैंने इनकार किया था यह शरीर तो मुझको छोड़कर जाने वाले इस शरीर को मैं स्वयं छोड़ रहा हूँ ।।७।।

योऽध्रुवेणात्मना नाथा न धर्मं न यशः पुमान् । ईहेत भूतदयया स शोच्यः स्थावरैरपि ।।८।।

अन्वयः— हे नाथाः यः पुमान् अध्रुवेणापि आत्मना भूतदयया न धर्मं न यशः इहेत सः स्थावरैः अपि शोच्यः ।।८।।

अनुवाद— हे दवेवर्यों ! जो मनुष्य इस विनाशी शरीर के द्वारा दुःखी प्राणियों पर दया करने के लिए मुख्य रूप से धर्म और गौण रूप से यश को नहीं प्राप्त करना चाहे, वह स्थावरों के लिए शोचनीय है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

अध्रुवेणात्मना देहेन । हे नाथाः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

हे देवावर्यों ! इस विनाशशील शरीर के द्वारा ।।८।।

एतावानव्ययो धर्मः पुण्यश्लोकैरुपासितः । यो भूतशोकहर्षाभ्यामात्मा शोचति हृष्यति ।।९।।

अन्वयः— पुण्य श्लोकै उपासितः धर्मः एतावानेव यः भूतशोकहर्षाभ्यां शोचति हृष्यति च ।।९।।

अनुवाद— बड़े-बड़े महापुरुषों ने इस अविनाशी धर्म की उपासना की है वह धर्म इतना ही है कि मनुष्य किसी भी दुःखी प्राणी के दुःख का अनुभव करे और सुख में सुख का अनुभव करे ।।९।।

भावार्थ दीपिका

भूतानां शोकेन शोचति हर्षेण हृष्यति य आत्मा स्वयं तस्य यो धर्म एतावानेवाव्यय इत्यर्थः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

अविनाशी धर्म यही है कि दुःखी प्राणी के दुःख में दुःखी हुआ जाय और सुख में सुख का अनुभव किया जाय ।।९।।

अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यैः क्षणभङ्गुरैः । यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्यः स्वज्ञातिविग्रहैः ।।१०।।

अन्वयः— अहो दैन्यम् अहोकष्टम् यत् पारक्यै क्षणभङ्गुरै स्वज्ञाति विग्रहैः स्वार्थैः मर्त्य न उपकुर्यात् ।।१०।।

अनुवाद— यह कितनी बड़ी दीनता और कष्ट की बात है कि मनुष्य कुत्ते तथा शृगाल के भक्ष्य भूत इन क्षणभङ्गुर धन परिवार और शरीर के भी द्वारा दूसरे का उपकार नहीं किया जाय ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

पारक्यैः श्वशृगालादिभक्ष्यैः। अस्वार्थैरात्मोपयोगशून्यैः । स्वं वित्तम्। ज्ञातयः पुत्रादयः। विग्रहो देहः। तैर्नोपकुर्यादिति यावत्।।१०।।

भाव प्रकाशिका

कुत्तों तथा शृङ्गाल (स्यार) को भक्ष्य बनने वाले इस शरीर पुत्रादि तथा धन के द्वारा निस्वार्थ होकर किसका उपकार नहीं करना अत्यन्त शोचनीय है ।।१०।।

श्रीशुक उवाच

एवं कृतव्यसितो दध्यङ्ङाथर्वणस्तनुम् । परे भगवति ब्रह्मण्यात्मानं संनयञ्जहौ ।।११।।

अन्वयः— एवं कृतव्यवसितः दध्यङ्ङाथर्वणः आत्मानं भगवति परे ब्रह्मणि संनयन् तनुम् जहौ ।।११।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से जिन्होंने निश्चय कर लिया था वे अथर्ववेदी दधीचि महर्षि अपने आत्मा को परंब्रह्म परमात्मा में मिलाते हुए अपने शरीर का परित्याग कर दिए ।।११।।

भावार्थ दीपिका

कृतं व्यवसितं निश्चयो येन । आत्मानं क्षेत्रज्ञं संनयन्नेकीकुर्वस्तनु जहौ ।।११।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि दधीचि इस प्रकार से निश्चय करके अपनी आत्मा को परंब्रह्म परमात्मा में मिलाकर शरीर का परित्याग कर दिए ।।११।।

यताक्षासुमनोबुद्धिस्तत्त्वदृग्ध्वस्तबन्धनः । आस्थितः परमं योगं न देहं बुबुधे गतम् ।।१२।।

अन्वयः— यताक्षसुमनोबुद्धिः तत्त्वदृगध्वस्तबन्धनः परमंयोगम् आस्थितः गतम् देहं न बुबुधे ।।१२।।

अनुवाद— उनकी इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि ये सबके सब संयत थे उनकी दृष्टि तत्त्वमयी थी, उनके सारे बन्धन कट चुके थे परम योग में स्थित उनको इसका पता भी नहीं चला कि उनका शरीर छूट चुका है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

यता अक्षादयो येन । तत्त्वं पश्यतीति तथा । ध्वस्तानि बन्धनानि यस्य ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि दधीचि शरीर परित्याग काल में अपनी इन्द्रियों आदि को संयमित कर लिए थे वे तत्त्व का दर्शन रहे थे अतएव उनके सारे बन्धन कट चुके थे ।।१२।।

अथेन्द्रो वज्रमुद्यम्य निर्मितं विश्वकर्मणा । मुनेः शुक्तिभिरुत्सिक्तो भगवत्तेजसान्वितः ।।१३।।
वृतो देवगणैः सर्वैर्गजेन्द्रोपर्यशोभत । स्तूयमानो मुनिगणैस्त्रैलोक्यं हर्षयन्निव ।।१४।।

अन्वयः— अथ विश्वकर्मणा निर्मितं वज्रम् उद्यम्य मुनेः शुक्तिभिः उत्सिक्तः भगवत् तेजसा अन्वितः इन्द्रः सर्वैः देवगणैः वृतः, मुनिगणैः स्तूयमानः त्रैलोक्यं हर्षयन्निव गजोपरि अशोभत ।।१३-१४।।

अनुवाद— उसके पश्चात् विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित दधीचि ऋषि की अस्थियों से निर्मित वज्र को लेकर इन्द्र ऐरावत नामक हाथी पर सवार हो गये, वे श्रीभगवान् के तेज से सम्पन्न थे, इन्द्र के चारो ओर देवगण उनको घेरे हुए थे, मुनिगण उनकी स्तुति कर रहे थे, इस प्रकार से इन्द्र मानो त्रैलोक्य को प्रहर्षित कर रहे थे।।१३-१४।।

भावार्थ दीपिका

अथेन्द्रोऽशोभतेत्युत्तरेणान्वयः। मुनेः शुक्तिभिरस्थिभिर्निर्मितम्। उत्सिक्त ऊर्जितः। मुनेरस्थिभिरिति वा पाठः ।।१३-१४।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् इन्द्र सुशोभित हुए इस तरह आगे के पद के साथ अन्वय है । मुनि की अस्थियों से वह वज्र बना था । उत्सिक्त अर्थात् तेजः सम्पन्न अथवा **मुनेरस्थिभिः** भी पाठ मिलता किन्तु अर्थ में कोई अन्तर नहीं है ।।१३-१४।।

वृत्रमभ्यद्रवच्छेत्तुमसुरानीकयूथपैः । पर्यस्तमोजसा राजन् क्रुद्धो रुद्र इवान्तकम् ।।१५।।

अन्वयः— राजन् क्रुद्धो रुद्र अन्तकम् इव ओजसा पर्यस्तम्, असुरानीकयूथपैः वृत्रम् छेतुम् अभ्यद्रवत् ।।१५।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् जिस तरह भगवान् शङ्कर काल को मारने के लिए उस पर टूट पड़े थे उसी तरह इन्द्र भी ओजस् सम्पन्न तथा असुरों के सेनापतियों के समूह को काट डालने के लिए टूट पड़े ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

असुरानीकानां यूथपैः पर्यस्तं परिवृतम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

असुरों की सेना सेनापतियों से घिरे हुए वृत्रासुर को मार डालने के लिए ॥१५॥

ततः सुराणामसुरै रणः परमदारुणः । त्रेतामुखे नर्मदायामभवत्प्रथमे युगे ॥१६॥

अन्वयः— ततः प्रथमे युग त्रेतामुखे नर्मदायाम् सुराणाम सुरैः परमदारुणः रणः अभवत् ॥१६॥

अनुवाद— इस वैवस्वतमन्वन्तर के प्रथम चतुर्युगी के त्रेतायुग में नर्मदा नदी के तट पर देवताओं का असुरों के साथ अत्यन्त भयङ्कर युद्ध हुआ था ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

रणः संग्रामः । प्रथमे चतुर्युगे त्रेतायुगस्य मुखे आरम्भे ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

प्रथम चतुयुर्ग के त्रेतायुग के आरम्भ में यह युद्ध हुआ था ॥१६॥

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां पितृवह्निभिः । मरुद्भिर्ऋभुभिः साध्यैर्विश्वेदेवैर्मरुत्पतिम् ॥१७॥
दृष्ट्वा वज्रधरं शक्रं रोचमानं स्वया श्रिया । नामृष्यन्नसुरा राजन्मृधे वृत्रपुरःसराः ॥१८॥

अन्वयः— राजन् ! रुद्रैः वसुभिः, आदित्यैः, अश्विभ्यां, पितृबह्निभिः मरुद्भिः ऋभुभिः साध्यैः विश्वेदेवैः मरुत्पतिम् स्वया श्रिया रोचमानं वज्रधंर शक्रं दृष्ट्वा वृत्रपुरःसराः असुराः मृधे न अमृष्यन् ॥१७-१८॥'

अनुवाद— रुद्रों, वसुओं, आदित्यों अश्विनी कुमारों, पितृगणों, अग्नियां, देवताओं, ऋभुओं, साध्यगणों, विश्वेदेवों के साथ देवराज इन्द्र अपनी कान्ति से सुशोभित, हाथ में वज्र धारण किए थे, ऐसे इन्द्र को युद्ध के मैदान में देखकर वृत्रासुर आदि सभी असुरगण और नाराज हो गये ॥१७-१८॥

भावार्थ दीपिका

नामृष्यन् नासहन्त ॥१७-१८॥

भाव प्रकाशिका

और अधिक नाराज हो गये ॥१७-१८॥

नमुचिः शम्बरोऽनर्वाद्विमूर्धा ऋषभोऽम्बरः । हयग्रीवः शङ्कुशिरा विप्रचित्तिरयोमुखः ॥१९॥
पुलोमा वृषपर्वा च प्रहेतिर्हेतिरुत्कलः । दैतेया दानवा यक्षा रक्षांसि च सहस्रशः ॥२०॥
सुमालिमालिप्रमुखाः कार्तस्वरपरिच्छदाः । प्रतिषिध्येन्द्रसेनाग्रं मृत्योरपि दुरासदम् ॥२१॥

अन्वयः— नमुचिः,शम्बरः, अनर्वा, द्विमूर्धा, ऋषयः, अम्बरः, हयग्रीवः, शङ्कुशिरा, विप्रचित्तिः अयोमुखः, पुलोमा, वृषपर्वा, प्रहेतिः, उत्कलः, माली, सुमाली प्रमुखाः, सहस्रः दैत्याः, दानवाः, यक्षाः, रक्षांसि च कार्तस्वरपरिच्छदाः मृत्योअपि दुरासदम् इन्द्रसेनाग्रं प्रतिषिध्य ॥१९-२१॥

अनुवाद— उस समय नमुचि, शम्बर, अनर्वा, द्विमूर्धा, ऋषभ, अम्बर, हयग्रीव, शङ्कुशिरा, विप्रचित्ति, अयोमुख, पुलोमा, वृषपर्वा, प्रहेति, उत्कल, माली, सुमाली, सुमाली आदि हजारो दैत्य दानव एवं यक्ष राक्षस,

सुवर्ण के साज समाज से सुसज्जित होकर देवराज इन्द्र की सेना को आगे बढ़ाने से रोकने लगे । राजन् उस समय इन्द्र की सेना स्वयं मृत्यु के लिए भी अजेय थी ।।१९-२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१९-२१।।

अभ्यर्दयन्नसंभ्रान्ताः सिंहनादेन दुर्मदाः । गदाभिः परिघैर्बाणैः प्रासमुद्गरतोमरैः ।।२२।।
शूलैः परश्वधैः खड्गैः शतघ्नीभिर्भुशुण्डिभिः। सर्वतोऽवाकिरन् शस्त्रैरस्त्रैश्च विबुधर्षभान् ।।२३।।

अन्वयः— दुर्मदाः सिंहनादेन असम्भ्रान्ताः अभ्यर्दयन्त गदाभिः परिधैः बाणैः प्रासमुद्गरतोमरैः शूलैः, परश्वधैः, खड्गैः शतघ्नीभिः भुशुण्डिभिः, शस्त्रैः अस्त्रैश्च विवुधर्षभान् सर्वतः अवाकिरन् ।।२२-२३।।

अनुवाद— वे अभिमानी असुर सिंहनाद करते हुए सावधानी पूर्वक देवताओं की सेना पर प्रहार करने लगे । उन सबों ने गदा, परिध, बाण, प्रास, मुद्गर, तोमर, शूल, फरसा, तलवार, शतघ्नी (तोप तथा भुशुण्डि) आदि अस्त्रों-शस्त्रों के प्रहार से देवताओं को सब ओर से ढँक दिया ।।२२-२३।।

भावार्थ दीपिका

शतघ्नी च चतुर्हस्ता लोहकण्टकसंचिता । भुशुण्डी सर्वतोलोहकण्टकानुक्रमोन्नता । इत्यभिधानम् ।।२२-२३।।

भाव प्रकाशिका

शतघ्नी चारहाथ लम्बा तथा लोहे के काँटे उसमें लगे रहते है । भुशुण्डी में सर्वत्र लोहे के काँटे लगे रहते हैं और वह क्रमशः ऊँची होती जाती है ।।२२-२३।।

न तेऽदृश्यन्त संछन्नाः शरजालैः समन्ततः । पुङ्खानुपुङ्खपतितैर्ज्योतींषीव नभोघनैः ।।२४।।

अन्वयः— समन्ततः पुङ्खानुपुङ्खपतितैः शरजालैः संछन्नाः ते नभोघनैः ज्योतींषीव न अदृश्यन्त ।।२४।।

अनुवाद— चारो ओर से एक पर एक इतने बाण आ रहे थे कि देवगण उसी तरह नहीं दिखायी देते थे जैसे मेघ के कारण आकाश के तारे नहीं दिखायी देते हैं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

पुङ्खो मूलदेशः । एकस्य मूलदेशमनु तत्संल्लग्नोऽपरस्य पुङ्खो यथा भवति तथा । नभस्थैर्घनैर्ज्योतींषीवेत्यनेन तेषां तदप्राप्तिः सूचिता ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

बाणों के मूल स्थान को पुङ्ख कहते है । जैसे एक बाण के मूल देश से दूसरे बाण का मूल प्रदेश लगा हो उसी तरह से चारो ओर से बाण आ रहे थे । उन बाणों से देवगण ऐसे ढँक गये जैसे मेघों से तारे ढँक जाते हैं । इसके द्वारा यह सूचित है कि देवगण दिखते ही नहीं थे ।।२४।।

न ते शस्त्रास्त्रवर्षौघा ह्यासेदुः सुरसैनिकान् । छिन्नाः सिद्धपथे देवैर्लघुहस्तैः सहस्त्रधा ।।२५।।

अन्वयः— ते शस्त्रास्त्रषर्षौघाः सुरसैनिकान् न आसेदुः लघुहस्तै देवैः सिद्धपथे सहस्त्रधा संछिन्नाः ।।२५।।

अनुवाद— शस्त्रास्त्रों की वह वर्षा समूह देव सैनिकों को नहीं छू सका, उन सबों ने अपने हस्तलाघव से उन सबों के आकाश में ही हजारो टुकड़े कर दिए ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

तामेवाह-न त इति । शस्त्राणामस्त्राणां च यानि वर्षाणि तेषामोघाः नासेदुर्न प्रापुः । सिद्धपथे आकाशे ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

असुरो के शस्त्रास्त्रों के समूह देव सैनिकों को नहीं छू सके उन सबों को देवताओं ने आकाश में ही काट दिया ॥२५॥

अथ क्षीणास्त्रशस्त्रौघा गिरिशृङ्गद्रुमोपलैः । अभ्यवर्षन्सुरबलं चिच्छिदुस्तांश्च पूर्ववत् ॥२६॥

अन्वयः अथ क्षीणास्त्रशस्त्रौघाः सुरबलं गिरिशृङ्ग द्रुमोपलैः अभ्यवर्षन् तान् च पूर्ववत् चिच्छिदुः ॥२६॥

अनुवाद अस्त्र-शस्त्र समूह के समाप्त हो जाने पर असुरों ने देव सेना पर पर्वत शिखर वृक्ष तथा पत्थरों की वर्षा की किन्तु उन सबों को भी देवताओं ने पहले ही के समान काट दिया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

क्षीणा अस्त्राणां च शस्त्राणां च ओघायेषाम् । गिरिशृङ्गैर्द्रुमैरुपलैश्च ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

असुरों के अस्त्र-शस्त्र समूह निनष्ट हो गये पर्वत शिखर वृक्ष तथा पत्थरों के प्रहार विफल हो गये ॥२६॥

तानक्षतान्स्वस्तिमतो निशाम्य शस्त्रास्त्रपूगैरथ वृत्रनाथाः ।
द्रुमैदृषद्भिर्विविधाद्रिशृङ्गैरविक्षतांस्तत्रसुरिन्द्रसैनिकान् ॥२७॥
सर्वे प्रयासा अभवन्विमोघाः कृताः कृता देवगणेषु दैत्यैः ।
कृष्णानुकूलेषु यथा महत्सु क्षुद्रैः प्रयुक्ता रुशती रूक्षवाचः ॥२८॥

अन्वयः— अथ वृत्रनाथाः शस्त्रास्त्रपूगैः द्रुमैः दृषद्भिः विविधाद्रिशृङ्गैः इन्द्र सैनिकान् अक्षतान् स्वस्तिमतः निशाम्य तत्रसुः देवगणेषु दैत्यैः कृताः कृताः सर्वे प्रयासाः क्षुद्रैः प्रयुक्ताः रुशतीः रूक्षवाचः महत्सुकृष्णानुकूलेषु यथा विमोघा अभवन् ॥२७-२८॥

अनुवाद— वृत्रासुर के अनुयायियों ने देखा कि उन सबों के शस्त्रास्त्र समूहों तथा वृक्षों, पत्थरों एवं पर्वत शिखरों के प्रहार से इन्द्र के सभी सैनिक देवगण सुरक्षित एवं कल्याण सम्पन्न हैं । उन सबों के द्वारा बार-बार किए गये सारे प्रयास उसी तरह विफल हो गये जिस तरह श्रीभगवान् पर किए गये दुष्टों के दुर्वचनों का कोई भी असर नहीं होता है । यह सब देखकर वे डर गये ॥२७-२८॥

भावार्थ दीपिका

तानिन्द्रसैनिकान् शस्त्राणामस्त्राणां च पूगैः समूहैरक्षतान् क्षतशून्यान्स्वस्तिमतः सुखिनो द्रुमादिभिश्चाविक्षतान्निशाम्य दृष्ट्वा । वृत्रो नाथो येषां ते । तत्रसुर्भीताः । कृताः कृताः पुनः पुनः कृताः । कृष्णोऽनुकूलो येषां तेषु देवगणेषु । रुशतीः रुशत्यः अकल्याण्यो रूक्षाः परुषा वाचो यथा महत्सु क्षोभकर्त्र्यो न भवन्ति तद्वत् ॥२७-२८॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र के सैनिकों के शस्त्रों और अस्त्रों से क्षतिग्रस्त नहीं होते हुए तथा सुखी देखकर । जिन सबों के वृत्रासुर ही स्वामी हैं वे असुर डर गये । जिन सबों ने बार-बार श्रीभगवान् को प्रसन्न किया है, उन देवताओं के समूह में उन सबों को कठोर बातें क्षुब्ध नहीं करती है । उस तरह ॥२७-२८॥

ते स्वप्रयासं वितथं निरीक्ष्य हरावभक्ता हतयुद्धदर्पाः ।
पलायनायाजिमुखे विसृज्य पतिं मनस्ते दधुरात्तसाराः ॥२९॥

अन्वयः— हरौ अभक्ताः स्वप्रयासं वितथं निरीक्ष्य आत्तसाराः हतयुद्धदर्पाः ते पति आजिमुखे विसृज्य पलायनाय मनः दधुः ॥२९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के अभक्त तथा अपने सारे प्रयास को विफल देखकर दैत्यों का युद्ध करने का घमण्ड समाप्त हो चुका था उनके सम्पूर्ण बल एवं पौरुष को देवताओं ने छिन लिया था । ऐसी स्थिति में वे वृत्रासुर को युद्ध के मैदान में ही छोड़कर भागने का मन बना लिए ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

हतो युद्धे दर्पो येषां ते । आत्तः परैर्गृहीतः सारो धैर्यं येषाम् । ते अतिप्रसिद्धा अपि ते दैत्याः । एवं ते इत्यस्यापौनरुक्त्यम्। आजिमुखे युद्धारम्भे । पतिं विसृज्य पलायनाय मनो दधुः । यतो हरावभक्ताः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

जिनके युद्ध करने का अभिमान समाप्त हो गया था ऐसे असुरों के धैर्य को देवताओं ने छिन लिया था। इस प्रकार के अत्यन्त प्रसिद्ध वे दैत्य वीर, इस तरह से अन्वय होने के कारण **ते** पद की पुनरुक्ति नहीं है । आजिमुखे अर्थात् युद्ध के प्रारम्भ में ही अपने स्वामी वृत्रासुर को छोड़कर भागने का मन बना लिए, क्योंकि वे भगवान् भक्त नहीं थे ॥२९॥

वृत्रोऽसुरांस्ताननुगान्मनस्वी प्रधावतः प्रेक्ष्य बभाष एतत् ।
पलायितं प्रेक्ष्य बलं च भग्नं भयेन तीव्रेण विहस्य वीरः ॥३०॥

अन्वयः— मनस्वी वीरः वृत्रःताननुगान् प्रधावतः प्रेक्ष्य भग्नं च बलं तीव्रेण भयेन पलायितं प्रेक्ष्य विहस्य एतत् बभाषे ॥३०॥

अनुवाद— धैर्य सम्पन्न वीर वृत्रासुर ने अपने अनुयायी असुरों को इधर-उधर दौड़ते हुए तथ अत्यधिक भय के कारण पलायन करते हुए देखकर हंस कर कहा ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

प्रधावतः पलायमानान्प्रेक्ष्य आदावेव तीव्रेण भयेन पलायितं भग्नं च तद्बलं सैन्यं तच्च प्रेक्ष्य एतद्वक्ष्यमाणं बभाषे ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

युद्ध के आरम्भ में ही अत्यधिक भय के कारण अपनी सेना के तितर-बितर होकर भागते हुए देखकर वृत्रासुर ने कहा ॥३०॥

कालोपपन्नां रुचिरां मनस्विनामुवाच वाचं पुरुषप्रवीरः ।
हे विप्रचित्ते नमुचे पुलोमन्मयानर्वन शम्बर मे शृणुध्वम् ॥३१॥

अन्वयः— पुरुष प्रवीरः कालोपपन्नां रुचिरां मनस्विनाम् वाचम् उवाच हे विप्रचित्ते नमुचे पुलोमन् मय अनर्वन् शम्बर मे शृणुध्वम् ॥३१॥

अनुवाद— वीर शिरोमणि वृत्रासुर ने समयानुसार वीरोचित वाणी कहा हे विप्रचित्ति, नमुचि, पुलोमन्, मय, अनर्वन, शम्बर तुम मेरी बात सुनो ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तदेव विशिनष्टि । कालोपपन्नामवसरोचिताम् । मनस्विनां रुचिराम् । हे मय, हे अनर्वन्, मे वाचं शृणुत ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

वृत्रासुर की बातों की व्याख्या करते हैं । वीर शिरोमणि वृत्रासुर ने कालोचित बातों को कहा— हे मय! हे अनर्वन ! तुमलोग मेरी बात सुनो ॥३१॥

जातस्य मृत्युर्ध्रुव एष सर्वतः प्रतिक्रिया यस्य न चेह क्लृप्ता ।
लोको यशश्चाथ ततो यदि ह्यमुं को नाम मृत्युं न वृणीत युक्तम् ॥३२॥

अन्वयः— एष सर्वतः जातस्य मृत्युः ध्रुवः यस्य च इह प्रतिक्रिया न क्लृप्ता, अथ ततः यदि इह यशः अमुं लोकः को नाम युक्तं मृत्युं न वृणीत ॥३२॥

अनुवाद— इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जो जन्म लेता है वह मरता है, इस लोक में मृत्यु की कोई दवा नहीं है । अतएव उस मृत्यु से इस लोक में यश तथा स्वर्ग लोक की प्राप्ति हो तो कौन बुद्धिमान होगा जो उसका वरण न करे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

ततो मृत्योरिह यशो लोकः स्वर्गश्च यदि स्यात् अथ तर्हि अमुं मृत्युम् । युक्तं समीचीनं प्राप्तं वा ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

उस मृत्यु से यदि संसार में यश और स्वर्गलोक की प्राप्ति हो तो उस सुन्दर मृत्यु का कौन ऐसा वीर होगा जो वरण न करे ॥३२॥

द्वौ संमताविह मृत्यु दुरापौ यद्ब्रह्मसंधारणया जितासुः ।
कलेवरं योगरतो विजह्याद्यदग्रणीर्वीरशयेऽनिवृत्तः ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अन्वयः— इह द्वौ मृत्यु दुरापौ संमतौ यत् जितासुः योगरतः ब्रह्मसंधारणया कलेवरं विजह्यात् यत् अनिवृत्तः वीर शये॥३३॥

अनुवाद— इस संसार में दो प्रकार की मृत्यु अत्यन्त दुर्लभ बतलायी गयी हैं । योगी का अपने प्राणों को वश में करके ब्रह्मचिन्तन के द्वारा प्राणों का परित्याग करना और युद्ध में बिना पीठ दिखाये युद्ध करते हुए वीर शय्या पर सो जाना ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के षष्ठ स्कन्ध के दशवें स्कन्ध का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मसंधारणया कलेवरं जह्यादिति यत्स एको मृत्युः । वीरशये रणभूमावनिवृत्तोऽपराङ्मुखः सन् जह्यादिति यत्स एकः। तौ द्वाविह शास्त्रे संमतौ मृत्यु । तथाच स्मृतिः-'द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ । परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः । इति ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां दशमोऽध्यायः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मचिन्तन के द्वारा शरीर का परित्याग करना यह पहली मृत्यु है और युद्धभूमि से भागे बिना युद्ध करके वीरशय्या पर सो जाना यह दूसरी मृत्यु ये दोनों मृत्यु दुर्लभ हैं । कहा भी गया है **द्वाविमावित्यादि** ये दो प्रकार के पुरुष सूर्य मण्डल का भेदन कर देते है, वह योगी जो यौगिक विधि से अपने प्राणों का परित्याग करता है तथा जो युद्ध करते हुए मारा जाय ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के दसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

वृत्रासुर की वीर वाणी और भगवत्प्राप्ति

श्रीशुक उवाच

त एवं शंसतो धर्मं वचः पत्युरचेतसः । नैवागृह्णन्भयत्रस्ताः पलायनपरा नृप ॥१॥

अन्वयः— हे नृप ! एवं धर्मः शंसतः पत्युः वचः अचेतसः भयत्रस्ताः पलायनपराः ते नैव अगृह्णन् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! इस तरह धर्मानुकूल बातें कहने वाले अपने स्वामी की बातों पर इसलिए ध्यान नही दिये कि वे सभी असुर डरकर घबरा गये थे और भाग रहे थे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकादशे तु वृत्रस्य युध्यमानस्य वज्रिणा । भक्तिज्ञानबलोदर्काश्चित्रा वाचोऽनुवर्णिताः । शंसतः कथयतः पत्युर्वचः॥१॥

भाव प्रकाशिका

इस ग्यारहवें अध्याय में वज्रधारी इन्द्र के साथ युद्ध करने वाले वृत्रासुर की भक्ति, ज्ञान और बल प्रदान करने वाला अद्भुत बातों का वर्णन किया गया है । धर्ममय बातें कहने वाले अपने स्वामी की बातों को असुरों ने नहीं सुना ॥१॥

विशीर्यमाणां पृतनामासुरीमसुरर्षभः कालानुकूलैस्त्रिदशैः काल्यमानामनाथवत् ॥२॥

अन्वयः— असुरर्षभः कालानुकूलैः त्रिदशैः अनाथवत् काल्यमानां विशीर्यमाणां आसुरीं पृतनाम् ॥२॥

अनुवाद— असुरों में श्रेष्ठ वृत्रासुर ने देखा कि समय अनुकूल होने के कारण देवगण असुरों की सेना को खदेड़ रहे हैं और उसकी सेना छिन्न-भिन्न हो रही है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

कालानूकूलैः कालानुवर्तिभिः । काल्यमानां विद्राव्यमाणाम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

कालानुकूलै समय का अनुवर्तन करने वाले । कल्यमानाम् अर्थात् खदेड़ी जा रही ॥२॥

दृष्ट्वाऽतप्यत संक्रुद्ध इन्द्रशत्रुरमर्षितः । तान्निवार्यौजसा राजन्निर्भर्त्स्येदमुवाच ह ॥३॥

अन्वयः— राजन् दृष्ट्वा अमर्षितः इन्द्रशत्रुः संक्रुद्ध अतप्यत तान् ओजसा निवार्य निर्भत्स्य इदम् उवाच ॥३॥

अनुवाद— राजन् ! यह देखकर असहिष्णु वृत्रासुर अत्यन्त क्रुद्ध होकर तिलमिला गया उसने बलपूर्वक देवताओं की सेना को आगे बढ़ने से रोक दिया और डाँट कर कहने लगा ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अमर्षितोऽसहमानस्तांस्त्रिदशान्निवार्य निर्भर्त्स्य चेदं वक्ष्यमाणमुवाच ॥३॥

भाव प्रकाशिका

असहिष्णु वृत्रासुर देवताओं को आगे बढ़ने से रोककर और डाँटकर कहा ॥३॥

किं व उच्चरितैर्मातुधावद्भिः पृष्ठतो हतैः । न हि भीतवधः श्लाघ्यो न स्वर्ग्यः शूरमानिनाम् ॥४॥

अन्वयः— मातुःउच्चरितैः धावद्भिः पृष्ठतो हतैः वः किम् शूरमानिनाम् भीतवध न हि श्लाध्य न स्वर्ग्यः ॥४॥

अनुवाद— अपने माता के मल-मूत्र के समान इन पालायन करने वाले असुरों को पीछे से मारने से तुमलोगों को कौन सा लाभ है ? अपने को वीर मानने वालों भयभीतों को मारना न तो प्रशंसित है और न तो स्वर्ग प्रदान करने वाला है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह द्वाभ्याम् । मातुरुच्चरितैः पुरीषप्रायैः । प्रथमान्तपाठे देवानां संबोधनम् । पृष्ठतो हतैर्दैत्यैः किम् । न किंचित् । न यशो नापि धर्मः । तदेवाह-नहीति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

वृत्रासुर की वाणी का ही दो श्लोकों में वर्णन किया गया है । अपनी माता के मल-मूत्र के समान यह मातुरुच्चरितैः का अर्थ है । प्रथमान्त पाठ हाने पर यह देवताओं को संबोधन रूप अर्थ होगा । दैत्यों को पीठ पर मारने से तुमलोगों को कोई लाभ नही है । इससे तुम लोगों को न तो यश मिलेगा और न धर्म ॥४॥

यदिवः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि । अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद्ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥५॥

अन्वयः— क्षुल्लका यदि वः प्रधने श्रद्धा वा सारं यदि ग्राम्य सुखे स्पृहा न तदा मे मात्रं अग्रे तिष्ठत ॥५॥

अनुवाद— क्षुद्र देवताओं यदि तुमलोगों की युद्ध करने में श्रद्धा है, या तुमलोगों में बल है, यदि तुमलोगों की ग्राम्य सुखों की अभिलाषा नहीं है । तो केवल मेरे सामने डट जाओ ॥५॥

भावार्थ दीपिका

प्रधने संग्रामे । सारं धैर्यं हृदि चेत्तर्हि हे क्षुल्लकाः क्षुद्राः, मात्रं क्षणमात्रमग्रे तिष्ठत । न चेदिह लोकभोगे स्पृहास्ति॥५॥

भाव प्रकाशिका

यदि तुमलोग की युद्ध करने में श्रद्धा है, या धैर्य है तो क्षुद्र देवताओं यदि तुमलोगों की इस लोक के भोगों की इच्छा न हो तब क्षण भर मेरे सामने आकर डट जाओ ॥५॥

एवं सुरगणान्क्रुद्धो भीषयन्वपुषा रिपून् । व्यनदत्सुमहाप्राणो येन लोका विचेतसः ॥६॥

अन्वयः— एवं सुमहाप्राणः क्रुद्धः वपुषा सुरगणान् रिपून भीषयन् व्यनदत् येन लोका विचेतस अभूवन् ॥६॥

अनुवाद— इस तरह महाबल सम्पन्न तथा क्रुद्ध वृत्रासुर अपने विशालकाय के द्वारा अपने शत्रु देवताओं को भयभीत करता हुआ जोर से गर्जना किया जिसे सुनकर ही बहुत से अचेत हो गये ॥६॥

भावार्थ दीपिका

सुरगणान् । सुमहान्प्राणो बलं यस्य । येन विचेतसो बभूवुः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

महाबलवान् वृत्रासुर अपने विशालकाय के द्वारा देवताओं को भयभीत करते हुए ऐसी गर्जना किया कि बहुत से देवता मूर्छित हो गये ॥६॥

तेन देवगणाः सर्वे वृत्रविस्फोटनेन वै । निपेतुर्मूर्च्छिता भूमौ यथैवाशनिना हताः ॥७॥

अन्वयः— तेन वृत्रस्फोटनेन वै सर्वे देवगणाः अशनिना हताः यथा मूर्छिताः भूमौ निपतिताः ॥७॥

अनुवाद— वृत्रासुर के उस गर्जना के द्वारा सभी देवगण जैसे उन पर वज्र का प्रहार किया गया है, उस तरह मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े ॥७॥

भावार्थ दीपिका

वृत्रस्य विस्फोटेनेन नादेन ॥७॥

भाव प्रकाशिका

वृत्रस्य स्फोटनेन अर्थात् वृत्रासुर की गर्जना से ॥७॥

ममर्द पद्भ्यां सुरसैन्यमातुरं निमीलिताक्षं रणरङ्गदुर्मदः ।
गां कम्पयन्नुद्यतशूल ओजसा नालं वनं यूथपतिर्यथोन्मदः ॥८॥

अन्वयः— नालं वनं उन्मदः पतिः यथा आतुरं निमीलिताक्षं सुरसैन्यम् रणरङ्गदुर्मदः उद्यतशूलः ओजसा गां कम्पयन् पदभ्यां ममर्द ॥८॥

अनुवाद— नरकट वन को मदमत्त गजेन्द्र जैसे रौंद डालता है उसी तरह रण बाँकुरा वृत्रासुर अपने हाथ में त्रिशूल लिए हुए भय के कारण अपनी आँखें बन्द की हुई देवताओं की सेना को अपने पैरों से कुचल रहा था। उसके वेग से पृथिवी काँपने लगी ॥८॥

भावार्थ दीपिका

उद्यतं शूलं येन। नालं वनं नलानां वनं उद्गतो मदो यस्य स यूथपतिर्गजो यथा मर्दयति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह नरकट के वन को गजराज रौद डालता है उसी तरह वृत्रासुर देवताओं की सेना को अपने पैरों से कुचल रहा था ॥८॥

विलोक्य तं वज्रधरोऽत्यमर्षितः स्वशत्रवेऽभिद्रवते महागदाम् ।
चिक्षेप तामापततीं सुदुःसहां जग्राह वामेन करेण लीलया ॥९॥

अन्वयः— तं विलोक्य अत्यमर्षितः वज्रधरः अभिद्रवते स्वशत्रवे महागदाम् चिक्षेप सुदुःसहाम् आपततीम् ताम् वामकरेण लीलया जग्राह ॥९॥

अनुवाद— वृत्रासुर को देखकर क्रुद्ध हुए इन्द्र अपनी ओर आते हुए अपने शत्रु वृत्रासुर के ऊपर एक भयङ्कर गदा चलाये किन्तु वृत्रासुर ने उसको खेल-खेल में अपने बाँये हाथ से पकड़ लिया ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

स इन्द्रशत्रुः कुपितो भृशं तया महेन्द्रवाहं गदयोग्रविक्रमः ।
जघान कुम्भस्थल उन्नदन्मृधे तत्कर्म सर्वे समपूजयन्नृप ॥१०॥

अन्वयः— नृप स इन्द्रशत्रुः उग्रविक्रमः कुपितः तया गदया मृधे उन्नदन् महेन्द्रवाहं कुम्भस्थले जघान तत्कर्म सर्वे समपूजयन् ॥१०॥

अनुवाद— राजन् परम पराक्रमी वृत्रासुर क्रोध में भरकर उसी गदा से समराङ्गण में जोर से गर्जना करते हुए इन्द्र के हाथी के कुम्भ स्थल (माथे) पर प्रहार किया वृत्रासुर के उस कर्म की सबों ने प्रशंसा की ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

ऐरावतो वृत्रगदाभिमृष्टो विघूर्णितोऽद्रिः कुलिशाहतो यथा ।
उपासरद्भिन्नमुखः सहेन्द्रो मुञ्चन्नसृक्सप्तधनुर्भृशार्तः ॥११॥

अन्वयः— वृत्रगदाभिमृष्टः ऐरावतः कुलिशाहतः अद्रिः यथा विघूर्णितः भिन्नमुखः भृशार्तः असृक्मुञ्चन् सहेन्द्रः सप्तधनुः अपासरत् ॥११॥

अनुवाद— वृत्रासुर की गदा के प्रहार से ऐरावत हाथी वज्र से प्रहार किये गये पर्वत के समान घबरा गया वह सिर के फट जाने से अत्यन्त व्याकुल हो गया। वह खून उगलते हुए इन्द्र को लिए हुए अठाइस हाथ पीछे हट गया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

सप्तधनुः प्रमाणं देशम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

सातधनु के बराबर पीछे हट गया ॥११॥

न सन्नवाहाय विषण्णचेतसे प्रायुङ्क्त भूयः स गदां महात्मा ।
इन्द्रोऽमृतस्यंदिकराभिमर्शवीतव्यथः क्षतवाहोऽवतस्थे ॥१२॥

अन्वयः— सन्नवाहाय विषण्णचेतसे स महात्मा भूयः गदां न प्रायुङ्क्त । इन्द्रः अमृतस्यंदि कराभिमर्श वीतव्यथः क्षतवाहः अवतस्थे ॥१२॥

अनुवाद— देवराज इन्द्र अपने वाहन ऐरावत के मूर्छित हो जाने से स्वयं विषाद ग्रस्त हो गये। यह देखकर युद्ध धर्म के ज्ञाता वृत्रासुर ने पुनः गदा का प्रहार नहीं किया। इन्द्र भी अपने अमृतस्रवी हाथ के स्पर्श से घायल हुए ऐरावत की व्यथा दूर कर दिए और पुनः रणभूमि में आकर डट गये ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

सन्नोऽवसन्नो वाहो यस्य तस्मै न प्रायुङ्क्त । अमृतस्यन्दी अमृतस्रावी यः स्वकरस्तेनाभिमर्शः स्पर्शस्तेन वीतव्यथो गतदुःखः क्षतो वाहो यस्येन्द्रस्य स तथाभूतोऽवतस्थे ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

जिनका वाहन मूर्छित हो गया था ऐसे इन्द्र पर गदा का पुनः प्रहार वृत्रासुर ने नहीं किया इन्द्र भी अपने अमृतस्रवी हाथ के स्पर्श से हाथी के कष्ट को दूर कर दिए उसका खून बहना बन्द हो गया। और वे पुनः रणभूमि में आकर डट गये ॥१२॥

स तं नृपेन्द्राहवकाम्यया रिपुं वज्रायुध भ्रातृहणं विलोक्य ।
स्मरंश्च तत्कर्म नृशंसमंहः शोकेन मोहने हसन् जगाद ॥१३॥

अन्वयः— हे नृपेन्द्र ! सः तं आहवकाम्यया रिपुं वज्रयुधं भ्रातृहणं विलोक्य तत् नृशंसमंहः कर्म स्मरन् च शोकेन मोहेन हसन् जगाद ॥१३॥

अनुवाद— हे राजवर्य परीक्षित् वृत्रासुर अपने शत्रु इन्द्र को जो उसके भाई विश्वरूप का वध कर दिए थे उनके उस निन्दित पाप कर्म को याद करके शोक और मोह से युक्त हो गया और हँसते हुए कहा ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

स वृत्रः हे नृपेन्द्र, आहवकाम्यया युद्धेच्छयावस्थितम् । भ्रातृहणं भ्राता विश्वरूपस्तस्य हन्तारम् । नृशंसं क्रूरं तदेवाहः पापं तस्य कर्म स्मरन् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

हे राजवर्य ! वृत्रासुर अपने भाई का वध करने वाले इन्द्र को युद्ध करने की इच्छा से स्थित देखकर तथा इन्द्र के उस क्रूर पापमय कर्म को याद करके शोक और मोह से युक्त होकर हँसते हुए कहा ॥१३॥

वृत्र उवाच

दिष्टया भवान्मे समवस्थितो रिपुर्यो ब्रह्महा गुरुहा भ्रातृहा च ।
दिष्टयानृणोऽद्याहमसत्तम त्वया मच्छूलनिर्भिन्नदृषद्धृदाऽचिरात् ॥१४॥

अन्वयः— दिष्ट्या भवान् मे रिपुः समवस्थितः यः ब्रह्महा, गुरुहा, भ्रातृहा च हे असत्तम दिष्ट्या अद्य अहम् मत्तशूलनिर्भिन्न हृदा त्वा अद्य अनृणः अचिरात् भविष्यामीति शेषः ॥१४॥

वृत्रासुर ने कहा

अनुवाद— आज मेरे लिए बड़े सौभाग्य का दिन है । तुम जैसा शत्रु जिसने विश्वरूप नामक ब्राह्मण, तथा तुम्हारे गुरु और मेरे भाई का वध करने वाला है मेरे समने खड़ा है । अरे ! दुष्ट अब मैं शीघ्र ही तेरे पत्थर के समान हृदय को अपने त्रिशूल से चिरकर भाई के ऋण से उऋण हो जाऊँगा । यह मेरे लिए आनन्द की बात होगी ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

यो ब्रह्महा ब्राह्मणं हतवान्विशेषतः स्वगुरुं मम च भ्रातरं स भवानग्रतः समवस्थितः एतद्दिष्ट्या भद्रं जातम् । दिष्ट्येत्यव्ययमानन्दार्थे । हे असत्तम, मम शूलेन निर्भिन्नं इषत्तुल्यं हृत् हृदयं यस्य तेन त्वया निमित्तभूतेनाद्याचिरादेव भ्रातुरनृणोऽहं स्यामेतच्च दिष्ट्या ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

जो ब्राह्मण को मारने वाला है, विशेष रूप से अपने गुरु का वध करने वाला है तथा मेरे भाई का वध करने वाला है । ऐसे शत्रु तुम मेरे सामने खड़े हो यह मेरे लिए आनन्द का विषय है । अरे दुष्ट मेरे त्रिशूल के द्वारा पत्थर के समान हृदय के चिर जाने से मैं शीघ्र ही अपने भाई के ऋण से ऊऋण हो जाऊँगा । यह भी मेरे लिए आनन्द का विषय है ॥१४॥

यो नोऽग्रजस्यात्मविदो द्विजातेर्गुरोरपापस्य च दीक्षितस्य ।
विश्रम्य खड्गेन शिरांस्य वृश्चत्पशोरिवाकरुणः स्वर्गकामः ॥१५॥

अन्वयः— यः नः आत्मविदः द्विजातेः अपापस्य गुरोः दीक्षितस्य च विश्रम्य खड्गेन अकरुणः स्वर्गकामः पशोरिव शिरांसि अवृश्चत् ॥१५॥

अनुवाद— जो तुम मेरे आत्मज्ञ ब्राह्मण तथा निष्पाप अपने गुरु तथा मेरे भाई का जो यज्ञ में दीक्षित था उसको विश्वास में लाकर अपनी तलवार से उसके तीनों शिरों को उसी तरह काट दिये जिस तरह स्वर्ग चाहने वाला यजमान यज्ञ पशु के शिर को काट देता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

स्वर्गकामो यो भवानवृश्चत् । स्वर्गकामो याज्ञिकः पशोरिवेति वा ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

स्वर्ग चाहने वाले जो आप स्व चाहने के कारण मेरे भाई के शिरों को काट दिए जिस तरह स्वर्ग चाहने वाला याज्ञिक यजमान निर्दयता पूर्वक यज्ञ पशु के शिर को काट देता है ॥१५॥

ह्रीश्रीदयाकीर्तिभिरुज्झितं त्वां स्वकर्मणा पुरुषादैश्च गर्ह्यम् ।
कृच्छ्रेण मच्छूलविभिन्नदेहमस्पृष्टवह्निं समदन्ति गृध्राः ॥१६॥

अन्वयः— ह्री-श्रीदया-कीर्तिभिः उज्झितं त्वां स्वकर्मणा पुरुषादैः चगर्ह्यम् । कृच्छ्रेण मच्छूलविभिन्न देहम् अस्पृष्ट वह्निम् समदन्ति गृध्राः ॥१६॥

अनुवाद— इन्द्र तुमको लज्जा, लक्ष्मी, दया तथा कीर्ति छोड़ चुकी हैं। तुमने जिन कर्मों को किया है, उसकी निन्दा मनुय क्या राक्षस भी करते हैं। मेरे इस त्रिशूल से तुम्हारा शरीर टुकड़ा-टुकड़ा हो जायेगा। तुम्हारी मृत्यु अत्यन्त कष्ट से होगी। तुमको अग्नि भी नहीं जलायेगी, तुमको गीध नोंच-नोंच कर खायेंगें ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तं त्वामस्पृष्टवह्निमदग्धदेहं समदन्ति। वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवन्निर्देशः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

तुमको अग्नि नहीं जलायेगी तुम्हारे शरीर को गीध नोंच-नोंचकर खायेंगे। वर्तमान सामीप्य के अर्थ में वर्तमान के समान निर्देश किया जाता है, इसलिए समदन्ति यह लट् लकार का प्रयोग किया गया है ॥१६॥

अन्येऽनु ये त्वेह नृशंसमज्ञा ये ह्युद्यतास्त्राः प्रहरन्ति मह्यम्।
तैर्भूतनाथान्सगणान्निशातत्रिशूलनिर्भिन्नगलैर्यजामि ॥१७॥

अन्वयः— अन्ये ये अज्ञात्वा नृशंसम् अनु ये हि उद्यतास्त्राः मह्यम् प्रहरन्ति तैः निशात त्रिशूलनिर्भिन्नगलै सगणान् भूतनाथान् यजामि ॥१७॥

अनुवाद— दूसरे जो अज्ञानी जीव तुम जैसे क्रूर अनुयायी बनकर मुझ पर अस्त्रों का प्रहार करते हैं उन सबों के गले को अपने तीक्ष्ण त्रिशूल से काटकर उससे भैरव आदि भूतनाथों की पूजा करूँगा ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अन्येऽपि ये अज्ञा इह त्वा त्वां नृशंसमनु मह्यमुद्यतास्त्राः सन्तो यदि प्रहरन्ति तैर्भूतनाथान्भैरवादीन्यक्ष्यामि। कथंभूतैः। निशातं तीक्ष्णीकृतं यन्मम त्रिशूलं तेन निर्भिन्नो गलो येषां तैः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे जो अज्ञानी देवता तुम्हारा अनुयायी बनकर मुझ पर अस्त्र प्रहार करते हैं, उनके गले को अपनी तीक्ष्ण त्रिशूल से काटकर उससे गणों सहित भूतनाथों का पूजन करूँगा ॥१७॥

अथो हरे मे कुलिशेन वीर हर्ता प्रमथ्यैव शिरो यदीह।
तत्रानृणो भूतबलिं विधाय मनस्विनां पादरजः प्रपत्स्ये ॥१८॥

अन्वयः— अथो वीर हरे कुलिशेन यदि इह मा प्रमथ्य एव शिरः हर्ता तत्र भूतबलिं विधाय मनस्विनां पादराजः प्रपत्स्ये ॥१८॥

अनुवाद— अथवा हे इन्द्र यदि तुम मेरा प्रमथन करके वज्र से मेरे शिर को काट लेते हो मैं अपने देह की बलि पशु-पक्षियों को प्रदान करके कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाऊँगा महापुरुषों के चरण रज को प्राप्त कर लूगाँ अर्थात् मैं महापुरुषों के लोक में जाऊँगा ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अथो अथवा। हरे भो इन्द्र, यदि भवानेव मम शिरो हर्ता हरिष्यति तत्र तथा सत्यनृणो विमुक्तकर्मबन्धः सन्भूतेभ्यो बलिं देहेन विधाय मनस्विनां पादरजः प्रपत्स्ये धीराणां पदं प्राप्स्यामि ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

अथवा हे इन्द्र यदि आप ही मेरे शिर को काट लेंगे तो मैं कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाऊँगा और अपने शरीर से पशु-पक्षियों को बलि प्रदान करके महापुरुषों के लोक में जाकर उनके चरण रज को प्राप्त कर लूँगा ॥१८॥

सुरेश कस्मान्न हिनोषि वज्रं पुरः स्थिते वैरिणि मय्यमोघम् ।
मा संशयिष्ठा न गदेव वज्रं स्यान्निष्फलं कृपणार्थेव याच्ञा ॥१९॥

अन्वयः— सुरेश पुरः स्थिते वैरिणि मयि अमोघम् वज्रं कस्मात् न हिनोषि ? मा संशयिष्ठाः, कृपणार्थे याच्भा इव गदेव वज्रं निष्फलं न स्यात् ॥१९॥

अनुवाद— इन्द्र मैं तुम्हारा शत्रु हूँ तुम्हारे सामने खड़ा हूँ तुम मुझ पर अपने अमोघ वज्र का प्रहार क्यों नहीं करते हो ? संदेह मत करो, जिस तरह किसी कृपण से की गयी धन की याचना के समान गदा के समान तुम्हारा वज्र विफल नहीं होगा ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

जीवितादपि मृत्युरेव ममाभिमत इत्याशयेनाह–सुरेशेति । न हिनोषि नहि क्षिपसि । गदेव विफलो यास्यतीति संशयं मा कार्षीः । कृपणादर्थः प्रयोजनं यस्याः सा याच्ञा यथा निष्फला तथा न स्यात् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

मुझको जीवन की अपेक्षा मृत्यु ही अभीष्ट है, इसी अभिप्राय से वृत्रासुर ने कहा **सुरेश० इत्यादि** श्लोक को कहा है । तुम मुझ पर वज्र का प्रहार क्यों नहीं करते हो । यह संदेह मत करो कि गदा की तरह यह वज्र भी विफल हो जायेगा । ठीक उसी तरह से जैसे किसी कृपण से की गयी धन की याचना विफल हो जाती है ॥१९॥

त्वेष वज्रस्तव शक्र तेजसा हरेर्दधीचेस्तपसा च तेजितः ।
तेनैव शत्रुं जहि विष्णुयन्त्रितो यतो हरिर्विजयः श्रीर्गुणास्ततः ॥२०॥

अन्वयः— शक्र एषः तव वज्र त्वातेजसा न, हरेः दधीचेः, तपसा च तेजितः तेनैव विष्णुयन्त्रितः शत्रुं जहि यतो हरिः ततः विजयः श्रीः गुणाः ॥२०॥

अनुवाद— इन्द्र यह वज्र तुम्हारे तेज से नहीं अपितु श्रीहरि के तेज से तथा दधीचि ऋषि की तपस्या के तेज से तेजः सम्पन्न है । भगवान् विष्णु के द्वारा प्रेरित होकर तुम अपने शत्रु का वध करो क्योंकि जहाँ श्रीहरि होते हैं, वहाँ विजय श्री और सभी गुण विद्यमान रहते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अमोघत्वे हेतुं वदंस्तं प्रोत्साहयति–नन्विति । तेजितस्तीक्ष्णीकृतः । शत्रुं मां जहि । विष्णुना यन्त्रितः प्रेरितः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

वज्र के अमोघ होने के कारण को बतलाया वृत्र ने कि यह श्रीहरि के तेज से तथा महर्षि दधीचि की तपस्या से तीक्ष्ण बना हुआ है । अतएव भगवान् विष्णु के द्वारा प्रेरित होकर मुझ शत्रु का वध करो ॥२०॥

अहं समाधाय मनो यथाह संकर्षणस्तच्चरणारविन्दे ।
त्वद्वज्ररंहोलुलितग्राम्यपाशो गतिं मुनेर्याम्यपविद्धलोकः ॥२१॥

अन्वयः— यथाह अहं संकर्षणस्तचरणारविन्दे मनः समाधाय त्वद्वज्ररंहः लुलितग्राम्यपाशः अपविद्धलोकः मुनेः गतिं यामि ॥२१॥

अनुवाद— इन्द्र मैं भगवान् सङ्कर्षण की आज्ञानुसार अपने मन को उनके चरणों में लीन कर दूँगा तुम्हारे इस वज्र का वेग मेरा नहीं मेरे विषयभोग रूप फंदे को काट देगा और मैं अपने शरीर का परित्याग करके मुनिजनोचित गति को प्राप्त कर लूँगा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

हननेन मम पीडा स्यादित्यपि मा संशयिष्ठा इत्याह-अहमिति । सङ्कर्षणो मत्पतिर्यथाह तथा तदीयचरणारविन्दे मनः समाधाय मुनेर्योगिनो गतिमहं यास्यामि । तव वज्रस्य रंहसा लुलितश्छिन्नो ग्राम्यपाशो विषयभोगलक्षणो यस्य । अपविद्धलोकस्त्यक्तदेहः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

तुम यह भी संदेह मत करो कि तुम्हारे मरिन से मुझे पीडा होगी इस बात को वृत्र ने **अहम् इत्यादि** श्लोक से कहा है । मेरे स्वामी सङ्कर्षण ने मुझको जैसे आज्ञा दी हैं उसी तरह से मैंने उनके चरणों में मैं अपना मन लगा दूँगा, तुम्हारे वज्र के वेग से मेरे ग्राम्य भोग का फंदा कट जायेगा और अपने शरीर का त्याग करके मैं मुनिजनोचित गति को प्राप्त कर लूँगा ॥२१॥

पुंसां किलैकान्तधियां स्वकानां याः संपदो दिवि भूमौ रसायाम् ।
न राति यद्द्वेग उद्वेग आधिर्मदः कलिर्व्यसनं संप्रयासः ॥२२॥

अन्वयः— एकान्तधियां स्वकानां पुंसां किल याः संपदो दिवि, भूमौ रसायाम् न राति, यदद्वेष, उद्वेग आधिः मद कलिः व्यसनं संप्रयासः ॥२२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् अपने अनन्य प्रेमी भक्तों को जो उनके निजजन हैं उनको स्वर्ग, पृथिवी अथवा रसातल की सम्पत्तियों को नहीं देते हैं, क्योंकि उन सबों से तो द्वेष, उद्वेग मानसिक पीडा, कलह और परिश्रम ही मिलता है॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि भगवान्सङ्कर्षणः स्वभृत्याय मह्यमेव स्वर्गादिसंपदो दास्यतीत्यपि मा संशयिष्ठा इत्याह-पुंसामिति स्वर्गे भूमौ रसातले च याः संपदस्ताः किल निश्चितं न राति न ददाति । तत्र हेतुः-यद्याभ्यो द्वेषादयो भवन्ति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

तुमको यह भी शङ्का नहीं करना चाहिए कि भगवान् सङ्कर्षण मुझको ही स्वर्ग का राज्य प्रदान कर देंगे, क्योंकि भगवान् अपने अनन्य प्रेमी भक्तों को स्वर्ग लोक, भूलोक अथवा रसातल की संपतियाँनहीं देते हैं क्योंकि उन सबों से तो द्वेष, उद्वेग, मानसिक पीड़ा इत्यादि की ही प्राप्ति होती है ॥२२॥

त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र ।
ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो यो दुर्लभोऽकिंचनगोचरोऽन्यैः ॥२३॥

अन्वयः— शक्र अस्मत्पतिः पुरुषस्य त्रैवर्गिकायास विघातम् विधत्ते । ततो भगवत्प्रसादाः अनुमेयः यः अकिञ्चन गोचरः अन्यैः दुर्लभः ॥२३॥

अनुवाद— इन्द्र हमारे स्वामी अपने पुरुषों द्वारा धर्म, अर्थ एवं काम की प्राप्ति के लिए किए जाने वाले प्रयास को विफल बना देते है । श्रीभगवान् का इस प्रकार का कृपा प्रसाद उनके अकिंचन भक्तों के ही अनुभव गम्य है । दूसरों के लिए तो वह दुर्लभ ही है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि स्वभक्तस्य किं विधत्ते तत्राह-त्रैवर्गिको धर्मार्थकामविषयो य आयासस्तस्य विघातं विधत्ते । तत आयासोपरमादनुमेयो न त्वैश्वर्यादिना अतः सम्यग्भगवत्प्रसादाभावात्तव संपदो भविष्यन्तीति भावः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

यदि पूछो तो फिर भगवान अपने भक्तों को क्या देते हैं तो उसका उत्तर है कि वे धर्मार्थ, काम विषय भक्तों

के प्रयास को विनष्ट कर देते हैं । उसी के द्वारा श्रीभगवान् के कृपा प्रसाद का अनुभव किया जा सकता है । ऐश्वर्य आदि के द्वारा उसका अनुभव नहीं किया जा सकता है । तुम पर श्रीभगवान् की अच्छी तरह से कृपा नहीं है, अतएव तुमको सम्पत्ति मिलेगी ॥२३॥

अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः ।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक्कर्म करोतु कायः ॥२४॥

अन्वयः— हे हरे अहंभूयः तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि असुपतेः ते गुणान् मनः स्मरेत् वाक् गृणीत कायः कर्म करोतु ॥२४॥

अनुवाद— हे श्रीहरे ! मैं पुनः आपका दासानुदास होने वाला हूँ । हे मेरे प्राणों के स्वामिन् ! मेरा मन आपके गुणों का स्मरण करे, वाणी उन सबों का उच्चारण करे और मेरा शरीर आपकी सेवा में लगा रहे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

एवमिन्द्राय स्वाभिप्रायं निवेद्य भगवन्तं प्रार्थयते-अहमिति । तव पादावेव एकं मूलमाश्रयो येषां तेषां दासानामनुदासो भूयो भवितास्मि भविष्यामि भवेयम् । असुपतेः प्राणनाथस्य तव गुणान्मम मनः स्मरतु । वागपि तानेव कीर्तयतु । कायस्तवैव कर्म करोतु ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से इन्द्र के समक्ष अपने अभिप्राय को प्रकट करके वह श्रीभगवान् से प्रार्थना करता है । आपके चरण ही आपके जिन दासों का एक मात्र आश्रय है आपके उन दासों का मैं अनुदास पुनः होने वाला हूँ । हे मेरे प्राणों के नाथ अपके गुणों का ही मेरा मन स्मरण करता रहे, वाणी उन सबों का ही कीर्तन करती रहे तथा मेरा शरीर आपकी सेवा में संलग्न हो जाय ॥२४॥

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समंजस वा विरहय्य काङ्क्षे ॥२५॥

अन्वयः— हे समंजस ! त्वा विरहय्य नाकपृष्ठं न, न च पारमेष्ठयं, न सार्वभौमं, न रसाधिपत्यम्, न योगसिद्धीः अपुनर्भवं वा काङ्क्षे ॥२५॥

अनुवाद— हे सर्व सौभाग्यनिधे ! आपको छोड़कर मैं न तो स्वर्ग लोक चाहता हूँ, न तो ब्रह्मलोक को प्राप्त करना चाहता हूँ, न तो मैं भूण्डल का साम्राज्य प्राप्त करना चाहता हूँ, न तो रसातल का एक छत्र आधिपत्य प्राप्त करना चाहता हूँ, न तो योग की सिद्धियाँ चाहता हूँ और न तो मोक्ष ही प्राप्त करना चाहता हूँ ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

ननु किं दास्येन तुभ्यं महाफलानि दास्यामि तत्राह-नाकपृष्ठं ध्रुवपदं ब्रह्मलोकदिकं च हे समंजस, निखिलसौभाग्यनिधे, त्वा त्वां विरहय्य पृथक्कृत्य न काङ्क्षे नेच्छामि ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि दास्य से कौन सा लाभ है ? मैं तुमको महान् फलों को प्रदान करता हूँ । तो इस पर वृत्रासुर ने कहा हे सर्वसौभाग्यनिधे आपको छोड़कर मैं स्वर्गलोक या ध्रुवलोक या ब्रह्मलोक इत्यादि कुछ भी नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ ॥२५॥

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥२६॥

अन्वयः— अजातपक्षाः मातरं इव, यथा क्षुधार्ताः वत्सतराः स्तन्यं, व्युषितं प्रियं विषण्णा प्रिया इव, हे अरविन्दाक्ष मे मनः त्वाम् दिदृक्षते ॥२६॥

अनुवाद— जिस तरह पक्षियों के पङ्खहीन बच्चे अपनी माँ की प्रतीक्षा करते रहते हैं, जैसे— भूख से व्याकुल बछड़े अपनी माँ के दूध को पीने के लिए आतुर रहते हैं, जिस तरह वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतम से मिलने के लिए उत्कण्ठित रहती है, वैसे ही हे कमल नयन मेरा मन आपको देखना चाहता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि किमिच्छसि तदाह–अजातपक्षाः खगा घूकादिभिः पीडिता यथा मातरम् । यथाच दाम्ना बद्धा बालवत्साः स्तन्यम्। यथा च व्युषितं दूरदेशगतं प्रियं कामेन विषण्णा प्रिया । तथा मे मनस्तापत्रयपीडितं कर्मभिर्बद्धं च कामादिभिर्विषण्णं च त्वां दिदृक्षते द्रष्टुमिच्छतीत्यर्थः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप पूछें कि तो फिर क्या चहते हो ? तो इसके उत्तर में वृत्रासुर ने कहा जैसे पक्षियों के पङ्खहीन बच्चे उल्लू इत्यादि के भय से भयभीत होकर अपनी माँ की प्रतीक्षा करते रहते हैं, अथवा रस्सी से बंधे छोटे बछड़े अपनी माँ का दूध पीना चाहते हैं, जिस तरह कामार्त प्रियतमा अपने दूर देश में गये हुए प्रियतम से मिलना चाहता है उसी तरह हे कमलनयन प्रभो तापत्रय से संतप्त, कर्मों के बन्धन में पड़ा हुआ तथा कामादि के द्वारा विषादग्रस्त मेरा मन आपका दर्शन करना चाहता है ॥२६॥

ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ।
त्वन्माययात्मात्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥२७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अन्वयः— हे नाथ स्वकर्मभिः संसारचक्रे भ्रमतः मम उत्तमश्लोक जनेषु सख्यं भूयात् त्वमायया आत्मजदार गेहेषु आसक्तचित्तस्य भूयः सख्यं न भूयात् ॥२७॥

अनुवाद— हे प्रभो अपने कर्मों के अनुसार संसार चक्र में भटकने वाले मेरी मित्रता श्रीभगवान् के भक्तों से ही हो यही मैं चाहता हूँ । मैं यह भी चाहता हूँ कि आपकी माया से मोहित होकर मेरी मित्रता पुनः पुत्र, पत्नी और परिवार आदि में न होए ॥२७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

उत्तमश्लोकस्य तव जनेषु भक्तेष्वेव सख्यं भूयात् । त्वन्मायया देहादिष्वासक्तचित्तस्य भूयोऽपि तेष्वासक्तिर्न भूयात्॥२७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणस्य षष्ठ स्कन्धे भावार्थ दीपिकायामेकादशोऽध्यायः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

हे प्रभो ! आप पवित्र कीर्ति सम्पन्न आपके भक्तों से ही मेरी मित्रता हो आपकी माया से मोहित होकर मेरी पुनः पुत्र, पत्नी तथा परिवार में आसक्ति न हो ॥२७॥

इस तरह श्रीमद्भभागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के ग्यारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥११॥

बारहवाँ अध्याय

वृत्रासुर का वध

ऋषिरुवाच

एवं जिहासुर्नृप देहमाजौ मृत्युं वरं विजयान्मन्यमानः ।
शूलं प्रगृह्याभ्यपतत्सुरेन्द्रं यथा महापुरुषं कैटभोऽप्सु ॥१॥

अन्वयः— हे नृप आजौ देहंजिहसुः वृत्रः विजयात् मृत्युं वरं मन्यमानः अप्सु कैटभः महापुरुषं यथ शूलं प्रगृह्य सुरेन्द्रम् अभ्यपतत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! वृत्रासुर रणभूमि में अपना देह त्याग करना चाहता था क्योंकि वह विजय की अपेक्षा मृत्यु को ही अच्छा मान रहा था । अतएव वह अपने हाथ में त्रिशूल लेकर इन्द्र पर उसी प्रकार टूट पड़ा जिस तरह प्रलय कालीन जल में कैटभासुर भगवान् विष्णु पर प्रहार करने के लिए टूट पड़ा था ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशेऽतिविषण्णेन स्मयमुत्साहितेन तु । महेन्द्रेण महायुद्धे वृत्रस्य वध ईर्यते । महापुरुषं श्रींविष्णु अप्सु प्रलयोदके॥१॥

भाव प्रकाशिका

बारहवें अध्याय में संसार से अत्यन्त उदासीन वृत्रासुर स्मय (गर्व) तथा उत्साह युक्त इन्द्र के द्वारा महायुद्ध में वृत्रासुर का युद्ध वर्णित है । महापुरुष शब्द का अर्थ भगवान् विष्णु है । अप्सु अर्थात् प्रलय कालीन जल में ॥१॥

ततो युगान्ताग्निकठोरजिह्वमाविध्य शूलं तरसासुरेन्द्रः ।
क्षिप्त्वा महेन्द्राय विनद्य वीरो हतोऽसि पापेति रुषा जगाद ॥२॥

अन्वयः— ततः युगान्ताग्निकठोजिह्वाम् शूलमूआविध्य तरसामेहन्द्राय क्षिप्तवा वीरः असुरेन्द्रः विनद्य पापहतः असि इति रुषा जगाद ॥२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् प्रलय कालीन अग्नि के समान तीखी नोकों वाले त्रिशूल को घुमाकर बड़े वेग से इन्द्र पर चलाया और उस वीर ने सिंह के समान गर्जना करके कहा पापी इन्द्र अब तुम मरे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

युगान्ताग्निवत्कठोरा जिह्वा शिखा यस्य तत् । आविध्य भ्रामयित्वा ॥२॥

भाव प्रकाशिका

युगान्तिाग्नि की लपटों के समान तीखी नोकों वाली त्रिशूल को वृत्रासुर ने घुमाकर इन्द्र पर चलाया ॥२॥

ख आपतत्तद्विचलद्ग्रहोल्कवन्निरीक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमजातविक्लवः ।
व्रजेण वज्री शतपर्वणाऽच्छिनद्भुजं च तस्योरगराजभोगम् ॥३॥

अन्वयः— तत् खे आपतत् विचलद्ग्रहोल्कवत् तत् दुष्प्रेक्ष्यम् निरीक्ष्य अजातविक्लवः वज्रीशतपर्वणा वज्रेण तस्य उरगराज भोगम् भुजं च आच्छिनत् ॥३॥

अनुवाद— इन्द्र ने देखा कि भयङ्कर त्रिशूल ग्रह तथा उल्का के समान चक्कर काटते हुए आकाश में आ

रहा है । यह देखकर इन्द्र घबराये नहीं । उन्होंने अपने सौ पर्वों वाले वज्र से त्रिशूल के साथ ही वासुकि नाग के समान वृत्रासुर की विशाल भुजा को काट दिया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत् खे आपतदागच्छत् । विचलत्परिभ्रमत् । ग्रहश्चोल्का च ग्रहोल्कं तद्वद्दुष्प्रेक्ष्यम् । शतं पर्वाणि यस्य तेन । उरगराजो वासुकिस्तस्य भोगो देहस्तदाकारम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उस खे = आकाश में, आपतत् = आते हुए, विचलत् = चक्कर काटते हुए, ग्रह तथा उल्का के समान दुष्प्रेक्ष्य, शतपर्वणा = सौ गाँठों वाला **उरगराजभोगम्** = सर्पराज वासुकि के शरीर के समान ॥३॥

छिन्नैकबाहुः परिघेण वृत्रः संरब्ध आसाद्य गृहीतवज्रम् ।
हनौ तताडेन्द्रमथामरेभं वज्रं च हस्तान्न्यपतन्मघोनः ॥४॥

अन्वयः— अथ छिन्नैकबाहुः वृत्रः संरब्धः गृहीतवज्रम् इन्द्रम् अमरेभं च आसाद्य परिघेण हनौ तताड मघोनः हस्तात् वज्रं च न्यपतत् ॥४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् जिसकी एकभुजा कट गयी थी वह वृत्रासुर क्रुद्ध होकर हाथ में व्रज लिए हुए इन्द्र के सन्निकट में जाकर परिध से इन्द्र को ढोढी पर और ऐरावत पर ऐसा प्रहार किया कि इन्द्र के हाथ से वज्र गिर पड़ा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

हनौ कपोलप्रान्ते । अमरेभमैरावतं च ॥४॥

भाव प्रकाशिका

हनौ = ठुढी पर अमरेभम् = ऐरावत हाथी को ॥४॥

वृत्रस्य कर्मातिमहाद्भुतं तत्सुरासुराश्चारणसिद्धसङ्घा ।
अपूजयंस्तत्पुरुहूतसङ्कटं निरीक्ष्य हाहेति विचुक्रुशुर्भृशम् ॥५॥

अन्वयः— वृत्रस्य तत् अतिमहद्भुतं कर्म सुरासुराश्चारणसिद्धसङ्घाः अपूजयन् तत् पुरुहूत सङ्कटं निरीक्ष्य हा हा इति भूशम् विचुक्रुशुः ॥५॥

अनुवाद— वृत्रासुर के उस अत्यन्त अद्भुत कर्म को देखकर देवता, असुर, चारण तथा सिद्धगण आदि सभी उसकी प्रशंसा किए किन्तु इन्द्र के हाथ से छूट कर गिरे हुए वज्र के कारण इन्द्र के सङ्कट को देखकर हाय-हाय कहकर चिल्लाने लगे ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

इन्द्रो न वज्रं जगृहे विलज्जितश्च्युतं स्वहस्तादरिसंनिधौ पुनः ।
तमाह वृत्रो हर आत्तवज्रो जहि स्वशत्रुं न विषादकालः ॥६॥

अन्वयः— स्वहस्ताद अरिसन्निधौ च्युतं वज्रं विलज्जितः इन्द्रः पुनः न जगृहे, तम् वृत्रः आह, हरे आत्तवज्रःस्वशत्रुं जहि विषादकालः न ॥६॥

अनुवाद— अपने हाथ से छूटकर शत्रु के सन्निकट में गिरे हुए वज्र को देखकर इन्द्र लज्जित हुए उसको नहीं उठाये तो वृत्रासुर ने इन्द्र से कहा— इन्द्र वज्र को उठाकर अपने शत्रु का वध करो यह विषाद का समय नहीं है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

पुनश्च तमाह वृत्रः । हे हरे इन्द्र ।।६।।

भाव प्रकाशिका

लज्जित हुए इन्द्र से वृत्रासुर ने कहा इन्द्र ! अपने शत्रु का वज्र लेकर वध करो यह विषाद का समय नहीं है ।।६।।

युयुत्सतां कुत्रचिदाततायिनां जयस्तदैकत्र न वै परात्मनाम् ।
विनैकमुत्पत्तिलयस्थितीश्वरं सर्वज्ञमाद्यं पुरुषं सनातनम् ।।७।।

अन्वयः— एकम् सर्वज्ञं, सनातनम् आद्यं पुरुषं उत्पत्तिलयस्थितीश्वरं विना युयुत्सतां आततायिनां सदा एकत्र जयः न वै परात्मनाम् ।।७।।

अनुवाद— केवल सर्वज्ञ सनातन आदि पुरुष तथा सम्पूर्ण जगत्, सृष्टि, स्थिति और प्रलय के नियामक परमात्मा को छोड़कर युद्ध के लिए सदा उत्सुक बने रहने वाले आततायियों को सदा विजय ही नहीं होती है, उनकी कही पराजय भी होती है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

सदा जयो नैव किंतु कुत्रचिज्जय एकत्र कुत्रचिन्नैव । यद्वा कुत्रचिदपि युयुत्सतां सदा जयो नैव किंत्वेकत्रैव । कदाचिदेवेत्यर्थः । परो देह आत्मा येषां, पराधीनात्मनामिति वा । आद्यमनादिम् । सनातनं नित्यम् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

आततायियों की सदा विजय ही नहीं होती है अपितु उनसबों को ही कहीं विजय होती है तो कहीं पराजय भी होती है । अथवा कहीं भी युद्ध करने लगने वालों की कहीं विजय होती है तो कहीं पराजय भी सर्वदा विजय नही होती । परात्मनाम् = देहाभिमानियों की अथवा जिनकी आत्मा पराधीन है उन सबों की । आद्यम्— अनादि । सनातनम्— नित्य ।।७।।

लोकाः सपाला यस्येमे श्वसन्ति विवशा वशे । द्विज इव शिचा बद्धाः स काल इह करणम् ।।८।।

अन्वयः— सपालाः इमे लोकाः शिचा बद्धाः द्विजा इव यस्य वशे विवशाः श्वसन्ति सः कालः इह कारणम् ।।८।।

अनुवाद— लोकपालों सहित ये सारे लोक जाल में फँसे हुए पक्षियों की भाँति जिसके पराधीन होकर चेष्टाएँ करते हैं वह काल ही सबों के जय और पराजय का कारण है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

पराधीनतामेवाह-लोका इति सप्तभिः । यस्य वशे स्थिताः स्वयं विवशाः सन्तः श्वसन्ति चेष्टन्ते । द्विजाः पक्षिणः । शिचा जालेन । कालः कलयतीति भगवान् । इह जयादौ कारणम् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

लोकाः इत्यादि सात श्लोको से जगत् की परमात्म पराधीनत का वर्णन वृत्रासुर करता है । जिस काल के अधीन में रहकर स्वयं विवश बने हुए सभी लोक और लोकपाल जाल में फँसे हुए पक्षियों के समान चेष्टा करते हैं वे भगवान् काल जय और पराजय के कारण है ।।८।।

ओजः सहो बलं प्राणममृतं मृत्युमेव च । तमज्ञाय जनो हेतुमात्मानं मन्यते जडम् ।।९।।

अन्वयः— ओजः सहः बलम्, प्राणम् अमृतम् मृत्यम् एव च तम् अज्ञाय जनः जडम् आत्मनं हेतुम् मन्यते ।।९।।

अनुवाद— वह काल ही मनुष्य का मनोबल, इन्द्रिय बल, शरीरबल प्राण, जीवन तथा मृत्यु के रूप में स्थित है, उसको जानकर मनुष्य जड़ शरीर को ही जय तथा पराजय का कारण मानता है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

ओजआदिरूपं कालं तं हेतुमज्ञायाविज्ञाय जडं सन्तमात्मानं देहं हेतुं मन्यते ।।९।।

भाव प्रकाशिका

मनोबल आदि के रूप में काल को ही स्थित नहीं जानकर मनुष्य जड़ शरीर को ही विजय एवं पराजय का कारण मानता है ।।९।।

यथा दारुमयी नारी यथा यन्त्रमयो मृगः । एवं भूतानि मघवन्नीशतन्त्राणि विद्धि भोः ।।१०।।

अन्वयः— भे मघवन् दारुमयी नारी यथा, यन्त्रमयः मृगः यथा एवं भूतानि ईशतन्त्राणि विद्धि ।।१०।।

अनुवाद— हे इन्द्र ! जैसे कठपुतली तथा यन्त्र निर्मित मृग नचाने वाले के अधीन ही होते हैं, इसी तरह तुम सभी जीवों को परमात्मा के ही अधीन जानो ।।१०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१०।।

पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमात्मा भूतेन्द्रियाशयाः । शक्नुवन्त्यस्य सर्गादौ न बिना यदनुग्रहात् ।।११।।

अन्वयः— यदनुग्रहात् बिना पुरुषः, प्रकृतिः, व्यक्तम्, आत्मा भूतेन्द्रियाशयाः अस्य सर्गादौ न शक्नुवन्ति ।।११।।

अनुवाद— जिस परमात्मा की कृपा के बिना पुरुष, प्रकृति, महदादि, अहङ्कार, पञ्चभूत इन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण चतुष्टय आदि कोई भी इस जगत् की सृष्टि करने में समर्थ नहीं होते हैं ।।११।।

भावार्थ दीपिका

ननु स्वारम्भकप्रधानपुरुषादितन्त्राणीति युक्तं तत्राह-पुरुष इति । व्यक्तं महत्तत्वम् । आत्माऽहङ्कारः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

जगत् का निर्माण तो प्रकृति इत्यादि के द्वारा होता है यही मानना चाहिए तो इस पर वृत्रासुर कहता हैं जितने भी महदादि हैं वे परमात्मा के द्वारा ही अधिष्ठित होकर जगत् के निर्माण में समर्थ होते हैं ।।११।।

अविद्वानेवमात्मानं मन्यतेऽनीशमीश्वरम् । भूतैः सृजति भूतानि ग्रसते तानि तैः स्वयम् ।।१२।।

अन्वयः— अविद्वान् एवम् अनीशम् आत्मानम् ईश्वरम् मन्यते। ईश्वर एव भूतानि भूतैः सृजति तैः तानि स्वयम् ग्रसते।।१२।।

अनुवाद— जिस व्यक्ति को परमात्म नियामकत्व का ज्ञान नहीं है, वह आत्मा को स्वतन्त्र कर्ता मानता है । वस्तुतः परमात्मा ही जीवों के द्वारा जीवों को उत्पन्न करते हैं और जीवों के द्वारा वे स्वयं जीवों का संहार कराते हैं ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

ननु स्वकर्मद्वारा जीव एव सृष्ट्यादिहेतुरिति मीमांसका मन्यन्ते तत्राह-एवमविद्वाननीशमेवात्मानमीश्वरं स्वतन्त्रं मन्यते। ननु पित्रादयः स्रष्टारो दृश्यन्ते व्याघ्रादयस्तु हन्तारस्तत्राह-भूतैरिति । स्वमीश्वरः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

मीमांसकों का कहना है कि अपने कर्मो के माध्यम से जीव ही सृष्टि आदि का कारण होता है । इसके उत्तर में वृत्रासुर ने कहा कि जो लोग यह नहीं जानते हैं कि परमात्मा ही सबका नियन्त्रण करते हैं वे ही परतन्त्र

जीवात्मा को स्वतन्त्र कर्ता मानते हैं। यदि कहें कि लोक में पिता इत्यादि को स्रष्टा के रूप में तथा व्याघ्र आदि को मारने वाले के रूप में देखा जाता है तो इसका उत्तर है कि परमात्मा ही जीवों के द्वारा जीवों की सृष्टि तथा जीवों के द्वारा ही जीवों का संहार स्वयम् कराते हैं ॥१२॥

आयुः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यमाशिषः पुरुषस्य याः। भवन्त्येव हि तत्काले यथाऽनिच्छोर्विपर्ययाः ॥१३॥

अन्वयः— तत्काले हि पुरुषस्य याः आयु, श्रीः, कीर्तिः, ऐश्वर्यम् , आशिषः तथैव भवन्ति एव यथा अनिच्छोः विपर्ययाः॥१३॥

अनुवाद— समय के अनुकूल होने पर पुरुष को आयुः लक्ष्मी, यश तथा ऐश्वर्य आदि भोग उसी तरह प्राप्त होते हैं जिस तरह समय के विपरीत होने पर इच्छा नहीं रहने पर भी मनुष्य को मृत्यु तथा अपयश इत्यादि की प्राप्ति होती है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

ननु त्वया पराजितस्य मम जयादिशङ्कैव नास्ति किमिति मां बलाद्युद्धे प्रवर्तयसि तत्राह-आयुरिति। तत्काले जयादिकाले। विपर्यया अकीर्त्यादयः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि मैं तो तुमसे पराजित हो गया हूँ मुझको विजय प्राप्ति हो ही नहीं सकती है अतएव मुझको बलपूर्वक युद्ध में क्यों प्रवृत्त कर रहे हो ? तो इसका उत्तर है कि समय के अनुकूल होने पर आयु आदि की प्राप्ति उसी प्रकार हो जाती है जिस तरह समय के प्रतिकूल होने पर इच्छा नहीं रहने पर भी मृत्यु आदि की प्राप्ति हो जाती हैं ॥१३॥

तस्मादकीर्तियशसोर्जयापजययोरपि। समः स्यात्सुखदुःखाभ्यां मृत्युजीवितयोस्तथा ॥१४॥

अन्वयः— तस्माद् अकीर्तियशसोः, जयापराजययोः, समः स्यात् तथा सुख दुःखाभ्याम् मृत्यु जीवितयोः अपि समः स्यात् ॥१४॥

अनुवाद— अतएव यश, अपयश, जय, पराजय, सुख-दुख तथा जीवन मरण इनमें से किसी की भी इच्छा अथवा अनिच्छा नहीं रखकर सभी स्थितियों में समान भाव से रहना चाहिए। सुखी अथवा दुःखी नहीं होना चाहिए॥१४॥

भावार्थ दीपिका

यस्मादेवं सर्वमीश्वराधीनं तस्मात्समः स्याद्धर्षविषादहीनो भवेत् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

चूकि सबकुछ ईश्वराधीन है अतएव हर परिस्थितियों में एक समान बने रहना चाहिए हर्ष अथवा विषाद नहीं करना चाहिए ॥१४॥

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः। तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बध्यते ॥१५॥

अन्वयः— सत्त्वं रजः तमः इति प्रकृतेः गुणाः आत्मनः न तत्र यः आत्मानं साक्षिणं वेद स न बध्यते ॥१५॥

अनुवाद— सत्त्व, रजस एवं तमस् ये तीनों प्रकृति के गुण हैं आत्मा के नहीं है अतएव जो पुरुष आत्मा को उनका साक्षी जानता वह हर्ष आदि से युक्त नहीं होता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

समदृष्टावुपायमाह-सत्त्वमिति। हर्षादिभिर्नबध्यते ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

समदृष्टि होने का उपाय बतलाते हुए वृत्रासुर ने कहा कि जो सत्त्वादि गुणों को प्राकृति मानकर आत्मा को उन सबों का साक्षी मानता है वह हर्षशोकादि से युक्त नहीं होता है ।।१५।।

पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्णायुधभुजं मृधे । घटमानं यथाशक्ति तव प्राणजिहीर्षया ।।१६।।

अन्वयः— शक्र वृक्णायुधभुजं निर्जितं मां पश्य तथापि तव प्राण जिहीर्षया मृधे यथाशक्ति घटमानं पश्य ।।१६।।

अनुवाद— इन्द्र मुझे देखो तुमने मेरे आयुध और भुजा को काटकर एक तरह से परास्त कर दिया है, फिर भी तुम्हारा प्राणापहार करने का मैं अपनी शक्ति के अनुसार युद्ध में प्रयास कर रहा हूँ ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

हर्षविषादनिवृत्त्यै तवाहमेव गुरुरित्याह-पश्येति । वृक्णमायुधं भुजश्च यस्य ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

हर्ष तथा विषाद को दूर करने के लिए तो मैं ही तुम्हारा गुरु हूँ । मुझको देखो मेरी भुजा और आयुध कट गये हैं फिर भी मैं तुमको मारने का प्रयास कर रहा हूँ ।।१६।।

प्राणग्लहोऽयं समर इष्वक्षो वाहनासनः । अत्र न ज्ञायतेऽमुष्य जयोऽमुष्य पराजयः ।।१७।।

अन्वयः— अयं समर प्राणग्लहः इष्वक्षः, वाहनासनः अत्र अमुष्य जयः अमुष्य पराजयः इति न ज्ञायते ।।१७।।

अनुवाद— यह युद्ध एक जुए का खेल है, इसमें प्राणों की ही बाजी लगती है बाणों के पासे डाले जाते है, वाहन ही चौसर हैं । इसमें पहले से किसी को भी पहले से यह नहीं ज्ञात होता है कि किसका जय होगा और किसका पराजय ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

अनियतत्वं द्यूतरूपकेणोपसंहरति । प्राण एव ग्लहः पणो यस्मिन् । इषव एवाक्षाः पाशका यस्मिन् । वाहनान्येवेतस्ततश्चाल्यमानान्यासनानि फलका यस्मिन् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

अनिश्चितता का उपसंहार वृत्रासुर द्यूत रूपक के द्वारा करता है । इसमें प्राण की ही बाजी लगाने का काम करते हैं, बाण ही पाशे का काम करते हैं और इधर-उधर चलाये जाने वाले वाहन ही चौसर होते हैं ।।१७।।

श्रीशुक उवाच

इन्द्रो वृत्रवचः श्रुत्वा गतालीकमपूजयत् । गृहीतवज्रः प्रहसंस्तमाह गतविस्मयः ।।१८।।

अन्वयः— इन्द्रः गतालीकम् वृत्रवचः श्रुत्वा अपूजयत् गृहीतवज्र प्रहसन् गतविस्मयः तमाह ।।१८।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् वृत्रासुर के सत्य वचन को सुनकर इन्द्र ने उसका आदर किया और वज्र उठाकर जोर से हँसते हुए आश्चर्य रहित होकर वृत्रासुर से कहा ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

गतालीकं निष्कपटम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

गतालीकम् = कपट रहित ।।१८।।

इन्द्र उवाच

अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी । भक्तः सर्वात्मनात्मानं सुहृदं जगदीश्वरम् ॥१९॥

अन्वयः— अहो दानव सिद्धः असि यस्य ते इदृशी मतिः आत्मानं सुहृदं जगदीश्वरम् सर्वात्मना भक्तः ॥१९॥

इन्द्र ने कहा

अनुवाद— अहो दानवराज तुम तो सिद्ध हो । इसीलिए तुम्हारी बुद्धि इस प्रकार की धैर्य सम्पन्न बन गयी है। तुम सभी प्राणियों की आत्मा, सुहृद तथा सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीभगवान् के पूर्ण रूप से भक्त हो गये हो॥१९॥

भावार्थ दीपिका

भक्तः सेवितवानसि ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

भक्त अर्थात् श्रीभगवान् के सेवक हो ॥१९॥

भवानतार्षीन्मायां वै वैष्णवीं जनमोहिनीम् । यद्विहायासुरं भावं महापुरुषतां गतः ॥२०॥

अन्वयः— भवान् वै जनमोहिनीम् वैष्णवीं मायाम् अतार्षीत् यत् आसुरं भावं विहाय महापुरुषतां गतः ॥२०॥

अनुवाद— निश्चित रूप से तुमने जीवों को मोहित करने वाली भगवान् विष्णु की माया को पार कर लिया है, इसीलिए तुम आसुर भाव का परित्याग करके महापुरुषत्व को प्राप्त कर लिए हो ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

खल्विदं महदाश्चर्यं यद्रजः प्रकृतेस्तव । वासुदेवे भगवति सत्त्वात्मनि दृढा मतिः ॥२१॥

अन्वयः— इदं खलु महदाश्चर्यः यत् रजः प्रकृतेः तव सत्त्वात्मनि भगवति वासुदेवे दृढा मतिः ॥२१॥

अनुवाद— यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि रजोगुणी प्रकृति वाले तुम्हारी शुद्ध सत्त्वगुण सम्पन्न बुद्धि भगवान वासुदेव में इस तरह से दृढ़ता पूर्वक लगी हुई है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे । विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः ॥२२॥

अन्वयः— यस्य निःश्रेयसेश्वरे भगवति हरौ भक्तिः तस्य अमृताम्भोधौ विक्रीडितः तस्य क्षुद्रै खातोदकैः किम् ॥२२॥

अनुवाद— सभी कल्याणों के स्वामी श्रीभगवान् में इस प्रकार की भक्ति है, उसको सांसारिक भोगों से कौन सा प्रयोजन है ? जो अमृत सागर में क्रीडा करता है उसे छोटे-छोटे गड्ढों के जल से कौन सा प्रयोजन हैं ?॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तस्य तव खातकोदकैर्गर्तादिजलोपमैः स्वर्गादिभिः किम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के तुमको गढों के जल के समान स्वर्गादि से कौन सा प्रयोजन है ?॥२२॥

श्रीशुक उवाच

इति ब्रुवाणावन्योन्यं धर्मजिज्ञासया नृप । युयुधाते महावीर्याविन्द्रवृत्रौ युधां पती ॥२३॥

अन्वयः— हे नृप ! धर्मजिज्ञासया, अन्योन्यं ब्रुवाणौ युधां पती महावीर्यौ इन्द्रवृत्रौ युयुधाते ॥२३॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! धर्म के तत्त्व को जानने की इच्छा से परस्पर में बातें करते हुए योद्धाओं में श्रेष्ठ इन्द्र और वृत्रासुर परस्पर में युद्ध करने लगे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

युधां संग्रामाणां पती मुख्यौ ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

युद्ध करने वालों में प्रधान ॥२३॥

आविध्य परिघं वृत्रः कार्ष्णायसमरिन्दमः । इन्द्राय प्राहिणोद्घोरं वामहस्तेन मारिष ॥२४॥

अन्वयः— हे मारिष ! अरिन्दमः वृत्रः कार्ष्णायसं घोरं परिघं वाम हस्तेन आविध्य इन्द्राय प्राहिणोत् ॥२४॥

अनुवाद— हे राजन् ! अपने शत्रुओं का दमन करने वाले वृत्रासुर ने एक फौलाद से बने परिघ को बायें हाथ से घुमाकर इन्द्र पर प्रहार किया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

हे मारिष श्रेष्ठराजन् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

हे मारिष अर्थात् हे श्रेष्ठ राजन् परीक्षित् ॥२४॥

स तु वृत्रस्य परिघं करं च करभोपमम् । चिच्छेद युगपद्देवो वज्रेण शतपर्वणा ॥२५॥

अन्वयः— स तुदेव वृत्रस्य परिधं करभोपमं करं च युगपद शतपर्वणा वज्रेण चिच्छेद ॥२५॥

अनुवाद— किन्तु देवराज इन्द्र ने वृत्रासुर के परिध तथा हाथी के सूंढ के समान भुजा दोनों को अपने सौ गाँठ वाले वज्र से एक ही साथ काट दिया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

दोर्भ्यामुत्कृत्तमूलाभ्यां बभौ रक्तस्रवोऽसुरः । छिन्नपक्षो यथा गोत्रः खाद्भ्रष्टो वज्रिणा हतः ॥२६॥

अन्वयः— उत्कृत्तमूलाभ्यां रक्तस्रवः असुरः वज्रिणाहतः खात् भ्रष्टः छिन्नपक्षः गोत्रः यथा बभौ ॥२६॥

अनुवाद— जड़ से दोनों भुजाओं के कट जाने से वृत्रासुर के दोनों कन्धों से रक्त की धारा प्रवाहित हो रही थी। वह ऐसा लगता था जो इन्द्र के द्वारा पङ्खों के काट दिए जाने के कारण आकाश से कोई पर्वत गिरा हो॥२६॥

भावार्थ दीपिका

उत्कृतं मूलं ययोस्ताभ्याम् । रक्तं स्रवतीति तथा । गोत्रः पर्वतः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

जो जड़ से काट दिए गये थे उन दोनों स्कन्धों से रक्त प्रवाहित हो रहा था। और वृत्रासुर इन्द्र के द्वारा पङ्ख के काट दिए जाने के कारण आकाश से गिरे हुए पर्वत के समान सुशोभित हो रहा था ॥२६॥

कृत्वाऽधरां हनुं भूमौ दैत्यो दिव्युत्तरां हनुम् । नभोगम्भीरवक्त्रेण लेलिहोल्बणजिह्वया ॥२७॥
दंष्ट्राभिः कालकल्याभिर्ग्रसन्निव जगत्त्रयम् । अतिमात्रमहाकाय आक्षिपंस्तरसा गिरीन् ॥२८॥
गिरिराट् पादचारीव पद्भ्यां निर्जरयन्महीम् । जग्रास स समासाद्य वज्रिणं सह वाहनम्॥२९॥

महाप्राणो महावीर्यो महासर्प इव द्विपम् । वृत्रग्रस्तं तमालक्ष्य सप्रजापतयः सुराः ॥
हा कष्टमिति निर्विण्णाश्चुक्रुशुः समहर्षयः ॥३०॥

अन्वयः— पादचारी गिरिराट् इव अतिमात्रकायः दैत्यः अधरां हनुं भूमौ उत्तरां हनुम् दिवि कृत्वा नभोगम्भीरवक्त्रेण लेलिहोल्वणजिह्वया कालकल्पाभिः दंष्ट्राभिः जगत्त्रयम् ग्रसन्निव पद्भयां महीं निर्जरयन् तरसा गिरीन् आक्षिपन् वज्रिणं समासाद्य सहवाहनम् महाप्रणः महावीर्यः महासर्पः द्विपम् इव जग्रास । वृत्रग्रस्तम् तम् आलक्ष्य सप्रजापतयः समहर्षयः सुराः निर्विण्णाः हा कष्टमिति चुक्रुशुः ॥२७-३०॥

अनुवाद— पैरों से चलने वाले पर्वतराज के समान अत्यन्त दीर्घकाय वृत्रासुर ने अपनी नीचली ठोढी को पृथिवी से और ऊपर के ओठ को स्वर्ग से सटा दिया । वह आकाश के समान गहरे मुँह सर्प के समान भयङ्कर जीभ तथा मृत्यु के समान कराल दाँतों से मानो त्रैलोक्य को निगलता हुआ अपने पैरों की चोट से पृथिवी को रौंदता हुआ और प्रबल वेग से पर्वतों को उलटता हुआ इन्द्र के पास आया और उनके वाहन के साथ उनको इस तरह निगल गया जैसे कोई परम पराक्रमी और अत्यन्त बलवान् अजगर हाथी को निगल जाय । वृत्रासुर के द्वारा इन्द्र को निगले हुए देखकर सभी प्रजापतियों और महर्षियों के साथ देवगण दुःखी हो गये और हाय-हाय महा अनर्थ हो गया यह कहकर चिल्लाने लगे ॥२७-३०॥

भावार्थ दीपिका

कृत्वाऽधरामित्यादेर्जग्रासेति तृतीयेणान्वयः । नभोवद्गम्भीरेण वक्त्रेण । लेलिहः सर्पस्तद्वदुल्बणया जिह्वया । कालकल्पाभिः कालतुल्याभिर्दंष्ट्राभिर्ग्रसन्निव । आक्षिपन् चालयन् । निर्जरयन् चूर्णयन् । महाप्राणो महाबलः । महावीर्यो महाप्रभावः ॥२७-३०॥

भाव प्रकाशिका

कृत्वा अधराम् से लेकर तीसरे श्लोक के जग्रास पद के साथ इसका अन्वय है । उसने आकाश के समान गहरे मुख से लेलिहः = सर्प के समान अत्यन्त भयावनी जीभ से काल के समान भयङ्कर दाँतों से निगलते हुए के समान । आक्षिपन् = डगमगाता हुआ । महाप्राणः = महाबलवान् । महावीर्य = महापराक्रम सम्पन्न ॥२७-३०॥

निगीर्णोऽप्यसुरेन्द्रेण न ममारोदरं गतः । महापुरुषसन्नद्धो योगमायाबलेन च ॥३१॥

अन्वयः— महापुरुष सन्नद्धः योगमाया बलेन च असुरेन्द्रेण निगीर्णः अपि उदरं गतः (इन्द्रः) न ममार ॥३१॥

अनुवाद— महापुरुष विद्या (नारायण कवच) से संरक्षित तथा योगमाया के बल के कारण असुरराज वृत्रासुर के द्वारा निगल लिए जाने पर भी वृत्रासुर के पेट में गए हुए इन्द्र नहीं मरे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

महापुरुषेण कवच रूपेण श्रीनारायणेन सन्नद्धो दंशितः । योगबलेन मायाबलेन च ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

महापुरुष रूप कवच भगवान् नारायण के द्वारा संरक्षित एवं योगमाया के बल से ॥३१॥

भित्त्वा वज्रेण तत्कुक्षिं निष्क्रम्य बलभिद्विभुः । उच्चकर्त शिरः शत्रोर्गिरिशृङ्गमिवौजसा ॥३२॥

अन्वयः— विभुः बलभित् वज्रेण तत् कुक्षिं भित्वा निष्क्रम्य शत्रोः गिरिशृङ्गम् इव शिरः ओजसा उच्चकर्त ॥३२॥

अनुवाद— ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्र अपने वज्र से वृत्रासुर की कोंख को फाड़ दिए और बाहर निकलकर वेग पूर्वक उसके पर्वत के समान शिर को काट दिए ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

बलभिदिन्द्रः । उच्चकर्त चिच्छेद ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

बलभित् = इन्द्र, उच्चकर्त = काट दिए ।।३२।।

वज्रस्तु तत्कन्धरमाशुवेगः कृन्तन्समन्तात्परिवर्तमानः ।
न्यपातयत्तावदहर्गणेन यो ज्योतिषामयने वार्त्रहत्ये ।।३३।।

अन्वयः— आशुवेग यो वज्रः तु समन्तात् परिवर्तमानः तत् कन्धरम् कृन्तन् ज्योतिषामयने वार्त्रहत्ये तावदहर्गणेन न्यपातयत् ।।३३।।

अनुवाद— तीव्रवेगशाली वज्र ने वृत्रवध का योग उपस्थित होने पर चारो ओर घूमते हुए उसकी गरदन को सूर्यादि ग्रहों की उत्तरायण और दक्षिणायन रूप गति में जितना समय लगता है उतने दिनों में अर्थात् एक वर्ष में उसके शिर को काट कर गिरा दिया ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

तस्य कन्धरं कन्धराम् । आशुवेगोऽतिवेगवान् । ज्योतिषां सूर्यादीनाम् । अयने दक्षिणोत्तरगतिरूपे संवत्सरे योऽहर्गणः षष्ट्युत्तरशतत्रयात्मकस्तावताऽहर्गणेन वार्त्रहत्ये वृत्रहत्यायोग्ये काले न्यपातयत् । यद्वा स्वार्थे तद्धितः । वृत्रहत्यायां वृत्रहननार्थं परिवर्तमान इत्यर्थः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त वेग सम्पन्न वज्र उसकी गरदन को सूर्यादि ग्रहों की दक्षिणायन और उत्तरायण गति रूप एक वर्ष में जितने दिन (३६०) होते हैं उतने दिन में वृत्रासुर के वध के योग के आने पर काट कर गिरा दिया । अथवा वार्त्रहत्ये पद में स्वार्थ में तद्धित प्रत्यय है । वृत्रासुर को मारने के लिए घूमता हुआ वज्र ।।३३।।

तदा च खे दुन्दुभयो विनेदुर्गन्धर्वसिद्धाः समहर्षिसङ्घाः ।
वार्त्रघ्नलिङ्गैस्तमभिष्टुवाना मन्त्रैर्मुदा कुसुमैरभ्यवर्षन् ।।३४।।

अन्वयः— तद च खे दुन्दुभयः विनेदुः, समहर्षिसङ्घाः गन्धर्वसिद्धाः वार्त्रघ्नलिङ्गैः मन्त्रै तमभिष्टुवानाः मुदा कुसुमैः अभ्यवर्षन् ।।३४।।

अनुवाद— उस समय आकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं, महर्षियों के साथ सिद्धों तथा गन्धर्वों ने वृत्रासुरघाती इन्द्र के पराक्रम सूचक मन्त्रों से इन्द्र की स्तुति की और प्रसन्नता पूर्वक उन पर पुष्पों की वर्षा की ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

वार्तघ्नलिङ्गैर्वृत्रहन्तुर्वीर्यप्रकाशकैः वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च इत्याद्यैस्तमिन्द्रमभिष्टुवाना अभिष्टुवन्तः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

वृत्रासुर विनाश सूचक वार्त्रहत्याय शवसे पृतनासाह्याय इत्यादि मन्त्रों से इन्द्र की स्तुति की ।।३४।।

वृत्रस्य देहान्निश्क्रान्तमात्मज्योतिररिन्दम । पश्यतां सर्वलोकानामलोकं समपद्यत ।।३५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे वृत्रवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

अन्वयः— हे अरिन्दम वृत्रस्य देहात् निष्क्रान्तम् आत्मज्योतिः सर्वलोकानाम् पश्यतां अलोकं समपद्यत ।।२५।।

अनुवाद— हे शत्रुदमन परीक्षित् ! वृत्रासुर के शरीर से निकली हुई आत्मज्योति इन्द्र आदि सभी लोगों के देखते ही देखते श्रीभगवान् में लीन हो गयी ॥३५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के वृत्रवध नामक बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

अलोकं लोकातीतं भगवन्तम् ।।३५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठ स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

सर्वलोकातीत श्रीभगवान् में लीन हो गयी ।।३५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के बारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१२।।

तेरहवाँ अध्याय

इन्द्र पर ब्रह्महत्या का आक्रमण

श्रीशुक उवाच

वृत्रे हते त्रयो लोका विना शक्रेण भूरिद । सपाला ह्यभवन्सद्यो विज्वरा निर्वृतेन्द्रियाः ॥१॥

अन्वयः— हे भूरिद ! वृत्रे हते शक्रेण विना सपालाः त्रयो लोकाः सद्यः हि निर्वृतेन्द्रियाः विज्वराः अभवान् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— महादानी परीक्षित् वृत्रासुर के मर जाने पर इन्द्र को छोड़कर लोकपालों के साथ तीनों लोक शीघ्र ही अत्यन्त प्रसन्न हो गये । उनका सारा भय समाप्त हो गया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोदशे तु वृत्रस्य ब्रह्महत्यामहाभयात् । चिरं नष्टोऽवितः शक्रो विष्णुनेति निरूप्यते ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तेरहवें अध्याय में वृत्रासुर की ब्रह्महत्या रूप महाभय से दीर्घकाल से छिपे हुए इन्द्र की रक्षा भगवान् विष्णु ने की इस बात का निरूपण किया गया है ॥१॥

देवर्षिपितृभूतानि दैत्या देवानुगाः स्वयम् । प्रतिजग्मुः स्वधिष्ण्यानि ब्रह्मेशेन्द्रादयस्ततः ॥२॥

अन्वयः— देवर्षिपितृभूतानि दैत्याः देवानुगाः स्वयम् स्वधिष्ण्यानि प्रतिजग्मुः ततः ब्रह्मेशेन्द्रादयः ॥२२॥

अनुवाद— वृत्रासुर के मारे जाने पर इन्द्र से बिना पूछे ही देवता, ऋषिगण, पितृगण, भूतगण अपने-अपने लोकों में चले गये उसके पश्चात् ब्रह्माजी, शङ्करजी तथा इन्द्र आदि भी चले गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अनिर्वृतं शक्रमपृष्ट्वा स्वयमेव प्रतिजग्मुः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र से पूछे बिना चले गये ॥२॥

राजोवाच

इन्द्रस्यानिर्वृतेर्हेतुं श्रोतुमिच्छामि भो मुने । येनासन्सुखिनो देवा हरेर्दुःखं कुतोऽभवत् ॥३॥

अन्वयः— भो मुने ! इन्द्रस्य अनिर्वृतेः हेतुम् श्रोतुम् इच्छामि, येन देवाः सुखिनः आसन् हरेः दुःखं कुतः अभवत्॥३॥

महाराज परीक्षित ने पूछा

अनुवाद— हे मुने ! मैं इन्द्र की अप्रसन्नता के कारण को सुनना चाहता हूँ, जब वृत्रासुर के वध से सभी देवता सुखी हो गये तब इन्द्र को दुःख होने का कारण क्या था ?॥३॥

भावार्थ दीपिका

हरेरिन्द्रस्य ॥३॥

भाव प्रकाशिका

हरे: = इन्द्र के ॥३॥

श्रीशुक उवाच

वृत्रविक्रमसंविग्नाः सर्वे देवाः सहर्षिभिः । तद्वधायार्थयन्निन्द्रं नैच्छद्भीतो बृहद्वधात् ॥४॥

अन्वयः— वृत्रविक्रमसंविग्नाः ऋषिभिः सह सर्वे देवाः तदवधाय इन्द्रं अर्थयन् बृहद्वधात् भीतः न ऐच्छत् ॥४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— वृत्रासुर के पराक्रम से सभी देवता तथा ऋषिगण अत्यन्त उद्विग्न हो गये । उन लोगों ने वृत्रासुर का वध करने के लिए इन्द्र से प्रार्थना की किन्तु इन्द्र ब्रह्महत्या के भय से उसका वध नहीं करना चाहते थे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तस्य दुःखहेतुं वक्तुं प्रस्तावकथामाह-वृत्रविक्रमेत्यादिना । आर्थयन्प्रार्थयन्तः । वृहद्वधाद्ब्राह्मणवधाद्भीतः सन् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र के दुःख का कारण बतलाने के लिए शुकदेवजी ने उसके प्रस्ताव की कथा इस श्लोक के द्वारा कहा है अर्थयन् = प्रार्थना किए । बृहदवधात् भीतः = ब्राह्मण के वध के भय से भयभीत होकर ॥४॥

इन्द्र उवाच

स्त्रीभूजलद्रुमैरेनो विश्वरूपवधोद्भवम् । विभक्तमनुगृह्णद्भिर्वृत्रहत्यां क्व मार्ज्म्यहम् ॥५॥

अन्वयः— विश्वरूपवधोद्भवम् एनः अनुगृह्णद्भिः स्त्रीभूजलद्रुमैः एनः विभक्तम् अहम वृत्रहत्यां क्व मार्ज्मि ॥५॥

इन्द्र ने कहा

अनुवाद— विश्व रूप के वध से उत्पन्न ब्रह्महत्या को तो कृपा करने वाले स्त्री, पृथ्वी, जल तथा वृक्षों में विभक्त हो गया । इस वृत्र के वध से उत्पन्न ब्रह्म हत्या का मार्जन मैं कहाँ करूँगा ?॥५॥

भावार्थ दीपिका

एनः पापम् । विभक्तं विभज्य गृहीतम् । मार्ज्मि शोधयामि ॥५॥

भाव प्रकाशिका

एनः अर्थात् पाप को **विभज्य** अर्थात् विभाग करके, मर्ज्मि = दूर करता हूँ ॥५॥

श्रीशुक उवाच

ऋषयस्तदुपाकर्ण्य महेन्द्रमिदमब्रुवन् । याजयिष्याम भद्रं ते हयमेधेन मा स्म भैः ॥६॥

अन्वयः— तत् उपाकर्ण्य, ऋषयः महेन्द्रम्, इदम् अब्रुवन् ते भद्रम् घ्यमेधेन याजयिष्यामः मास्म भैः ॥६॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इन्द्र की बात को सुनकर ऋषियों ने इन्द्र से कहा— आपका कल्याण हो हमलोग अश्वमेध याग कराकर ब्रह्महत्या से आपको मुक्त करा लेंगे, डरने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

हयमेधेन पुरुषं परमात्मानमीश्वरम् । इष्ट्वा नारायणं देवं मोक्ष्यसेऽपि जगद्वधात् ॥७॥

अन्वयः— हयमेधेन परमात्मानम् ईश्वरं पुरुषं नारायणं देवं इष्ट्वा जगद्वधात् अपि मोक्ष्य से ॥७॥

अनुवाद— आश्वमेध यज्ञ के द्वारा सबों के अन्तर्यामी परम पुरुष भगवान् नारायण की आराधना करके तुम संसार के भी वध के पाप से मुक्त हो जाओगे फिर वृत्र वध जन्य पाप की क्या बात है ?॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

ब्रह्महा पितृहा गोघ्न मातृहाचार्यहाघवान् । श्वादः पुल्कसको वापि शुध्येरन्यस्य कीर्तनात् ॥८॥

अन्वयः— यस्य कीर्तनात् ब्रह्महा, पितृहा, गोघ्नः मातृहा, आचार्यहा, अघवान् श्वादः पुल्कसकः अपि वा शुद्धयेरन्॥८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के नाम सङ्कीर्तन मात्र से ही ब्राह्मण, पिता, गौ, माता तथा आचार्य आदि की हत्या करने वाले महापापी कुत्ते का मांस खाने वाले चाण्डाल तथा कसाई भी शुद्ध हो जाते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

तमश्वमेधेन महामखेन श्रद्धान्वितोऽस्माभिरनुष्ठितेन ।
हत्वापि स ब्रह्म चराचरं त्वं न लिप्यसे किं खलनिग्रहेण ॥९॥

अन्वयः— अस्माभिः अनुष्ठितेन अश्वमेधेन महामखेन तम् श्रद्धान्वितः इष्ट्वा त्वं सब्रह्मचराचरम् अपि हत्वा न लिप्यसे किम् खलनिग्रहेण ॥९॥

अनुवाद— हमलोगों के द्वारा अनुष्ठित अश्वमेध नामक महायज्ञ के द्वारा श्रीभगवान् की श्रद्धा पूर्वक आराधना करके तुम ब्रह्मा पर्यन्त सम्पूर्ण चराचर जगत् का भी वध करके पाप से लिप्त नहीं होओगे फिर इस दुष्ट को दण्ड देने के पाप से छूटने की कौन सी बात है ?॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

श्रीशुक उवाच

एवं संचोदितो विप्रैर्मरुत्वानहनद्रिपुम् । ब्रह्महत्या हते तस्मिन्नाससाद वृषाकपिम् ॥१०॥

अन्वयः— एवं विप्रैः सं चोदितः मरुत्वान् रिपुम् अहनत् । तस्मिन् हते ब्रह्महत्या वृषाकपिम् आससाद ॥१०॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— ब्राह्मणों द्वारा प्रेरित होकर इन्द्र ने अपने शत्रु वृत्रासुर का वध किया और वृत्रासुर की मृत्यु के पश्चात् ब्रह्महत्या इन्द्र के पास आयी ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

वृषाकपिमिन्द्रम् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

वृषाकपि = इन्द्र ।।१०।।

तयेन्द्रः स्मासहत्तापं निर्वृतिर्नामुमाविशत् । ह्रीमन्तं वाच्यतां प्राप्तं सुखयन्त्यपि नो गुणाः ।।११।।

अन्वयः— तया इन्द्रः तापं असहत् स्म अमुम् निवृत्तिः न अविशत्, वाच्यतां प्राप्तं ह्रीमन्तं गुणा अपि न सुखयन्ति।।११।।

अनुवाद— उस ब्रह्महत्या के द्वारा इन्द्र को बहुत क्लेश और जलन सहना पड़ा उनको क्षणभर के लिए भी शान्ति नहीं मिलती थी जब किसी सङ्कोची सज्जन पर कलङ्क लग जाता है तब उसके धैर्य आदि गुण भी उसे सुखी नहीं बना पाते हैं ।।११।।

भावार्थ दीपिका

तया देवादिभिः कारितया । स्मेत्यवधारणे । इन्द्र एव तापमसहत नान्यः । अमुमिन्द्रं निर्वृतिर्नाविशत् । ननु धैर्यादिगुणयुक्तस्य कुतोऽनिर्वृतिस्तत्राह-ह्रीमन्तं लज्जावन्तम् वाच्यतां निन्द्यताम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

देवताओं द्वारा प्रेरित होकर करायी गयी ब्रह्महत्या के द्वारा केवल इन्द्र ही सन्ताप को सह रहे थे कोई दूसरा नहीं सह रहा था । इन्द्र को कहीं शान्ति नहीं मिलती थी । यदि कहें कि धैर्य आदि गुणों से युक्त इन्द्र अशान्त कैसे हो गये तो इसका उत्तर है कि सङ्कोची सज्जन पुरुष को कलङ्क लग जने पर उसके धैर्य आदि गुण भी सुखी नहीं बना पाते हैं ।।११।।

तां ददर्शानुधावन्तीं चाण्डालीमिव रूपिणीम् । जरया वेपमानाङ्गीं यक्ष्मग्रस्तामसृक्पटाम् ।।१२।।

अन्वयः— ताम् रूपिणीम् चाण्डालीम् इव अनुधावन्तीम् जरया वेपमानाङ्गीम् यक्ष्मग्रस्ताम्, असृक्पटाम् ददर्श।।१२।।

अनुवाद— देवराज इन्द्र ने देखा कि ब्रह्महत्या साक्षात् चाण्डाली के समान उनके पीछे दौड़ी आ रही है। बुढापे के कारण उसके सारे अङ्ग काँप रहे थे । उसको क्षय रोग सता रहा है उसके सारे कपड़े खून से लथ-पथ थे ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

यक्ष्मग्रस्तां क्षयरोगव्याप्ताम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

यक्ष्मग्रस्ताम्= क्षयरोग से ग्रस्त ।।१२।।

विकीर्य पलितान्केशांस्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणीम् । मीनगन्ध्यसुगन्धेन कुर्वतीं मार्गदूषणम् ।।१३।।

अन्वयः— पलितान् केशान् विकीर्य तिष्ठतिष्ठ इति भाषिणीम् मीनगन्धी असुगन्धेन मार्गदूषणम् कुर्वतीम् ददर्श ।।१३।।

अनुवाद— वह अपने पके केशों को विखेरे हुई थी, ठहर जा, ठहर जा यह बोल रही थी । उसके श्वास के साथ मछली की दुर्गन्धि आ रही थी, दुर्गन्ध के कारण वह मार्ग के दूषित बना रही थी ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

मीनस्येव गन्धो यस्य स मीनगन्धिः, स चासा वसुश्च श्वासवायुस्तस्य गन्धेन ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

उसके श्वास की वायु से मछली की दुर्गन्धि आ रही थी ।।१३।।

नभो गतो दिशः सर्वाः सहस्राक्षो विशांपते । प्रागुदीचीं दिशं तूर्णं प्रविष्टो नृप मानसम् ॥१४॥

अन्वयः— हे विशाम्पते ! सहस्राक्षः नभो सर्वाः दिशः गतः, नृप प्रागुदीचीं दिशं तूर्णं मानसं प्रविष्टः ॥१४॥

अनुवाद— हे राजन् ! इन्द्र उसके भय से आकाश की सभी दिशाओं में भटकते रहे, कहीं भी शरण नहीं मिलने पर पूर्व तथा उत्तर दिशा में विद्यमान मानसरोवर में शीघ्रता से प्रवेश कर गये ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

प्रागुदीचीं दिशं गतः संस्तूर्णं । मानसं सरः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

पूर्व और उत्तर दिशा (ईशान कोण) में विद्यमान मानसरोवर में शीघ्रता से इन्द्र प्रवेश कर गये ॥१४॥

स आवसत्पुष्करनालतन्तूनलब्धभोगो यदिहाग्निदूतः ।
वर्षाणि साहस्रमलक्षितोऽन्तः स चिन्तयन् ब्रह्मवधाद्विमोक्षम् ॥१५॥

अन्वयः— सः पुष्करनालतन्तून् अलब्धभोग यदिहाग्निदूतः, वर्षाणिसहस्रम् अलक्षितः ब्रह्मवधात् विमोक्षम् चिन्तयन् अवसत् ॥१५॥

अनुवाद— इन्द्र कमल नाल के तन्तुओं के भीतर एक हजार वर्षों तक छिपकर निवास करते रहे । वहाँ उनको भोगों की प्राप्ति नहीं होती थी, क्योंकि वे अग्निमुख से ही भोगों को प्राप्त करते हैं, और जल में अग्नि जा नहीं सकते थे । वे ब्रह्महत्या से मुक्ति प्राप्ति का उपाय सोचते रहे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

स इन्द्रः सहस्रं वर्षाणि पुष्करनालस्य तन्तूनावसत् । कथं भूतः । न लब्धो भोगो येन सः । कुतः यद्यस्मादिह जले वसन्नग्निदूतश्च स्वयम् । अग्नेश्च स्वदूतस्य हविर्भागान्नेतुर्जले प्रवेशासंभवादलब्धभोग इत्यर्थः । पाठान्तरे न लब्धो यज्ञभागो येन सः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र एक हजार वर्षों तक कमल नाल के तन्तुओं में निवास करते रहे । वहाँ उनको भोग की प्राप्ति नहीं होती थी, क्योंकि वे अग्निदूत हैं । अग्नि जल में प्रवेश नहीं कर सकते थे । अतएव वे वहाँ अलब्ध भोग बने रहे । पाठभेद के अनुसार उनको यज्ञ का भाग नहीं मिलता था ॥१५॥

तावन्त्रिणाकं नहुषः शशास विद्यातपोयोगबलानुभावः ।
स संपदैश्वर्यमदान्धबुद्धिर्नीतस्तिरश्चां गतिमिन्द्रपत्न्या ॥१६॥

अन्वयः— तावत् त्रिणाकं विद्यातपोयोग बलाऽनुभावः नहुषः शशास स सम्पदैश्वर्यमदान्धबुद्धिः इन्द्रपत्न्या तिरश्यां गतिम् नीतः ॥१६॥

अनुवाद— जब तक इन्द्र कमल नाल के तन्तु में छिपे रहे तब तक अपनी विद्या तप और योग बल के प्रभाव से नहुष त्रैलोक्य का प्रशासन करते रहे । किन्तु जब वे सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य के मद से अन्धे होकर इन्द्र की पत्नी शची के साथ अनाचार करना चाहे तो शची ने उनके द्वारा ऋषियों का अपराध करवाकर ऐसा शाप दिलवा दिया कि वे सर्प हो गये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

त्रिणाकम्, न अकं दुःखं यस्मिन्निति नाकः पुण्यलोकः । तृतीयं नाकं स्वर्गम् । ननु मनुष्यस्य कुतः स्वर्गराज्यं तत्राह–

विद्या दिभिरनुभावः सर्गपालनसामर्थ्यं यस्य सः । तर्हि तस्मिन्सति कथमिन्द्रस्य पुनः स्वर्गप्राप्तिस्तत्राह–स नहुषः संपदैश्वर्याभ्यां यो मदस्तेनान्धा बुद्धिर्यस्य स इन्द्रपत्न्या शच्या तिरश्चां गतिं सर्पयोनिं नीत उपायेन प्रापितः । एवं ह्याख्यायते–नहुषः किल कदाचिदिन्द्राणीमुवाच । इन्द्रस्तावदहमतस्त्वं मां भजेति । तया चावेदितवृतान्तो बृहस्पतिस्तामुवाच । ब्राह्मणवाह्यशिबिकायामारुह्यागतं त्वां भजिष्यामीति ब्रूहि ततोऽसौ ब्रह्मशापात्पतिष्यतीति । तया च तथोक्तो नहुषोऽगस्त्यादीन् शिबिकां वाहयामास । तदा शीघ्रं सर्पसर्पेत्यगस्त्यं पदा पस्पर्श । तेन कुपितेन सर्पो भवेति शप्तो महासर्पोऽजगरोऽभूदिति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

त्रिणाक पद पुण्य लोक का वाचक है । अथवा वह स्वर्ग का बोधक है । प्रश्न है कि मनुष्य को स्वर्ग का राज्य कैसे प्राप्त हो सकता है ? तो इसका उत्तर है कि विद्या इत्यादि के प्रभाव से नहुष में सबों का पालन करने का सामर्थ्य था । यदि ऐसी बात है तो फिर इन्द्र को कैसे स्वर्ग का राज्य मिला । तो इसका उत्तर है कि नहुष सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य के मद से मदान्ध हो गये । इन्द्र की पत्नी शची ने उपाय के द्वारा उनको सर्प योनि प्राप्त करा दिया । इसके विषय में आख्यान है कि नहुष ने एक बार इन्द्राणी से कहा मैं इन्द्र हूँ अतएव तुम मेरी सेवा करो। शची ने इस बात को बृहस्पति से कहा । बृहस्पति की शची को कहा कि तुम नहुष से कहो कि ब्राह्मणों के द्वारा ढोई जाने वाली शिविका पर सवार होकर तुम आओ तो मैं तुम्हारी सेवा करूँगी । तथा ब्राह्मणों के शाप से नहुष का पतन हो जायेगा । नहुष ने अगस्त्य आदि महर्षियों को शिबिकाबहन में लगा दिया उस समय उसने पैर से मारकर अगस्त्य महर्षि से कहा कि शीघ्रं सर्प, सर्प । उससे क्रुद्ध होकर महर्षि अगस्त्य ने कहा तुम सर्प ही हो जाओ । उनके शाप से नहुष अजगर सर्प हो गये ।।१६।।

ततो गतो ब्रह्मगिरोपहूत ऋतंभरध्याननिवारिताघः ।
पापस्तु दिग्देवतया हतौजास्तं नाभ्यभूदवितं विष्णुपत्न्या ।।१७।।

अन्वयः— ऋतम्भरध्यान निवारिताघः ततः ब्रह्मगिरोपहूतः गतः । दिग्देवतया हतौजाः पापस्तु विष्णुपत्न्या अवितं तं न अभ्यभूत् ।।१७।।

अनुवाद— सत्य के परमपोषक भगवान् का ध्यान करने के कारण इन्द्र के पाप नष्टप्राय हो गये थे । तब ब्राह्मणों के बुलाने पर इन्द्र स्वर्ग लोक में गये । ईशान कोण के अधिपति रुद्र ने पाप को निस्तेज बना दिया था। कमल वनवासिनी लक्ष्मी देवी के द्वारा रक्षित होने से पाप उन पर आक्रमण नहीं कर सका ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

तत इन्द्रः स्वर्गं गतः प्राप्तः । कथंभूतः । ब्रह्मगिरा ब्राह्मणवाक्येनोपहूतः सन् । ऋतंभरः सत्यपालको हरिस्तस्य ध्यानेन निवारितमघं येन । प्रागपि तु पापो ब्रह्मवधस्तमिन्द्रं नाभ्यभूत्तस्याभिभवं नाकरोत् । कुतः । दिग्देवतया प्रागुदीच्यां दिशि स्थितया श्रीरुद्रेण । अवितं रक्षितं सन्तम् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों द्वारा बुलाये जाने पर इन्द्र स्वर्ग में गये । सत्य के पोषक श्रीभगवान् का ध्यान करने के कारण पाप नष्ट प्राय हो गया था । पहले भी ब्राह्मण का वध करने के कारण पाप इन्द्र को अभिभूत नहीं कर सका था । ईशान कोण के अधिपति रुद्र ने पाप को निस्तेज बना दिया था । लक्ष्मी देवी के द्वारा रक्षित होने के कारण भी पाप इन्द्रपर आक्रमण नहीं कर सका ।।१७।।

तं च ब्रह्मर्षयोऽभ्येत्यहयमेधेन भारत । यथावद्दीक्षयांचक्रुः पुरुषाराधनेन ह ।।१८।।

अन्वयः— हे भारत तं ब्रह्मर्षयः अभ्येत्य हयमेधेन पुरुषाराधनेन, यथावद्दीक्षयाञ्चक्रुः ।।१८।।

अनुवाद— हे परीक्षित् ! इन्द्र के पास आकर ब्रह्मर्षियों ने अश्वमेघ यज्ञ के द्वारा श्रीभगवान् की आराधना करने के लिए यज्ञ की दीक्षा दी ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

पुरुषस्य हरेराराधनं यस्मिंस्तेन ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

जिसके द्वारा श्रीहरि की आराधना की जाती है उस अश्वमेघ याग की दीक्षा दी ॥१८॥

अथेज्यमाने पुरुषे सर्वदेवमयात्मनि। अश्वमेधे महेन्द्रेण वितते ब्रह्मवादिभिः ॥१९॥
स वै त्वाष्ट्रवधो भूयानपि पापचयो नृप। नीतस्तेनैव शून्याय नीहार इव भानुना॥२०॥

अन्वयः— अथ ब्रह्मवादिभिः वितते अश्वमेधे, महेन्द्रेण सर्वदेवमयात्मनि पुरुषे इज्यमाने हे नृप स वै त्वाष्ट्रवधो पापचयो भानुना नीहार इव तेनैव शून्याय नीतः ॥१९-२०॥

अनुवाद— जब ब्रह्मवादी ऋषियों ने इन्द्र से अश्वमेघ यज्ञ कराया तथा इन्द्र ने सर्वदेवमय पुरुषोत्तम भगवान् की यज्ञ के द्वारा आराधना की तब श्रीभगवान् की आराधना के प्रभाव से वृत्रासुर के वध की वह पाप राशि उसी तरह भस्म हो गयी जैसे सूर्योदय होते ही कुहरे का नाश हो जाता है ॥१९-२०॥

भावार्थ दीपिका

सर्ववेदमयात्मनीति वा पाठः। ब्रह्मवादिभिर्विततेऽनुष्ठितेऽश्वमेधे महेन्द्रेणेज्यमाने पुरुषे सति। तेनैव पुरुषेणैव शून्याय नीतः। नाशित इत्यर्थः ॥१९-२०॥

भाव प्रकाशिका

सर्ववेदमयात्मनि भी पाठ है। ब्रह्मवादियों के द्वारा यज्ञ का अनुष्ठान किए जाने पर तथा इन्द्र के द्वारा श्रीभगवान् की आराधना किए जाने पर श्रीभगवान् ने ही उस पापराशि को विनष्ट कर दिया ।१९-२०॥

स वाजिमेधेन यथोदितेन वितायमानेन मरीचिमिश्रैः ।
इष्ट्वाधियज्ञं पुरुषं पुराणमिन्द्रो महानास विधूतपापः ॥२१॥

अन्वयः— मरीचिमिश्रैः वितायमानेन यथोदितेन वाजिमेधेन अधियज्ञं पुराणं पुरुषं इष्ट्वा स महान् इन्द्रः विधूतपापः आस ॥२१॥

अनुवाद— मरीचि आदि महर्षियों द्वारा विधि पूर्वक अश्वमेध यज्ञ के कराये जाने पर यज्ञाधिपति श्रीभगवान् की आराधना करके महान् इन्द्र निष्पाप हो गये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अधिकृता यज्ञा येन तम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञाधिपति यह अधियज्ञं पद का अर्थ है ॥२१॥

इदं महाख्यानमशेषपाप्मनां प्रक्षालनं तीर्थ पदानुकीर्तनम् ।
भक्त्युच्छ्रयं भक्तजनानुवर्णनं महेन्द्रमोक्षं विजयं मरुत्त्वतः ॥२२॥

अन्वयः— इदं महाख्यानम् अशेष पाप्मनां प्रक्षालनं तीर्थपदानुकीर्तनम्। मरुत्वतः विजय महेन्द्रमोक्षम् भक्तजनानुवर्णनम् भक्त्युच्छ्रयं च ॥२२॥

अनुवाद— यह श्रेष्ठ आख्यान सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाला है, तीर्थों को भी तीर्थ बनाने वाले श्रीहरि के गुणों का वर्णन है । इसमें इन्द्र के विजय का वर्णन तथा उनकी ब्रह्महत्या से मुक्ति का वर्णन है । इसमें भगवद्भक्त वृत्रासुर का चरित्र वर्णित है तथा यह भक्ति को बढ़ाने वाला है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

पाठादि विधातुमाख्यानं स्तौति-इदमिति । प्रक्षाल्यतेऽनेनेति प्रक्षालनम् । तीर्थपदस्यानुकीर्तनं यस्मिन् । भक्तेरुच्छ्रयो यस्मिन् । भक्तजनानामनुवर्णनं यस्मिन् । महेन्द्रस्य मोक्षो यस्मिन् । मरुत्त्वतो विशेषेण जयो यस्मिन् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इस आख्यान का पाठ आदि करने के लिए इसकी महता का वर्णन करते हैं । यह आख्यान पापों का प्रक्षालन करने वाला है, श्रीभगवान् के गुणों का इसमें वर्णन है । इसका पाठ करने से भक्ति बढ़ती है, भगवद् भक्त वृत्रासुर के चरित्र का इसमें वर्णन है । इसमें इन्द्र की पाप से मुक्ति का वर्णन है, तथा विशेष रूप से इन्द्र के विजय का इसमें वर्णन है ॥२२॥

पठेयुराख्यानमिदं सदा बुधाः शृण्वन्त्यथो पर्वणि पर्वणीन्द्रियम् ।
धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं रिपुंजयं स्वस्त्ययनं तथायुषम् ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे इन्द्रविजयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अन्वयः— इदम् आख्यानं बुधाः सदा पठेयुः अथो पर्वणि पर्वणि शृण्वन्तु, इन्द्रियम् धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं रिपुंजयं स्वस्त्ययनं तथायुषम् ॥२३॥

अनुवाद— विज्ञ पुरुषों को चाहिए कि वे इस आख्यान को सदा पढ़ते रहें, प्रत्येक पर्वों पर इसक सदा श्रवण करना चाहिए । यह धन एवं यश को बढ़ाता है, पापों का नाश करता है शत्रुओं पर विजय प्रदान करता है एवं आयु तथा मङ्गल की वृद्धि करता है ॥२३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के इन्द्र विजय नामक तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

इन्द्रियं तत्पाटवकरम् । इन्द्रसंबन्धीति वा । आयुषमायुष्यम् ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भावार्थदीपिका टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्रय का अर्थ है इन्द्रियों की पटुता का संचार करता है । अथवा इन्द्र सम्बन्धी । आयुषम् अर्थात् आयु को बढ़ाने वाला ॥२३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के तेरहवे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१३।।

* * *

चौदहवाँ अध्याय

वृत्रासुर के पूर्वजन्म का चरित्र

परीक्षिदुवाच

रजस्तमःस्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः । नारायणे भगवति कथमासीद्दृढा मतिः ॥१॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! रजस्तमः स्वभावस्य पाप्मनः वृत्रस्य भगवति नारायणे दृढा मतिः कथम् आसीत् ॥१॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! रजोगुणी तथा तमोगुणी स्वभाव वाले, पापी वृत्रासुर की भगवान् नारायण के चरणों में सुदृढ भक्ति कैसे हो गयी थी ?॥१॥

भावार्थ दीपिका

वृत्रस्य ज्ञानभक्त्यादि श्रुत्वा पृष्टः परीक्षिता । हेतुमाह चतुर्भिस्तत्प्राग्जन्मचरितोक्तिभिः । चतुर्दशे तु सहसा कृच्छ्रलब्धे सुते मृते । चित्रकेतोरतिस्नेहादतिशोको निरूप्यते । रजश्च तमश्च स्वभावो यस्य ॥१॥

भाव प्रकाशिका

वृत्रासुर के ज्ञान तथा भक्ति आदि को सुनकर उसके बारे में परीक्षित् के द्वारा पूछे जाने पर उसके कारण को शुकदेवजी ने चार अध्यायों में वृत्रासुर के पूर्व जन्म के चरित्र का वर्णन करके बतलाया है । चौदहवें अध्याय में तो कष्ट से प्राप्त पुत्र के मर जाने पर पुत्र के प्रति अत्यन्त स्नेह होने के कारण अत्यधिक शोक का वर्णन किया गया है । रजोगुणी और तमोगुणी स्वभाव वाले ॥१॥

देवानां शुद्धसत्त्वानां मृषीणां चामलात्मनाम् । भक्तिर्मुकुन्दचरणे न प्रायेणोपजायते ॥२॥

अन्वयः— शुद्धसत्त्वानाम् अमलात्मनाम् देवानाम् ऋषीणां च मुकुन्दचरणे भक्तिः प्रायेण न उपजायते ॥२॥

अनुवाद— देखा जाता है कि शुद्धसत्त्व सम्पन्न देवताओं और अमलात्मा ऋषियों की भी श्रीभगवान् के चरणों में प्रायः भक्ति नहीं होती है ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

रजोभिः समसंख्याताः पार्थिवैरिह जन्तवः । तेषां ये केचनेहन्ते श्रेयो वै मनुजादयः ॥३॥

अन्वयः— पार्थिवैः रजोभिः इह समसंख्याताः जन्तवः सन्ति। तेषां ये केचन मनुजादयः वै ये केचनः श्रेयः इहन्ते॥३॥

अनुवाद— हे भगवन् ! इस संसार में पृथिवी के धूल कणों के समान प्राणियों की संख्या असंख्य हैं उनमें कुछ मनुष्य आदि ही आत्मकल्याण प्राप्त करना चाहते हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

भक्तेर्दुर्लभत्वं प्रपञ्चयति-रजोभिरिति त्रिभिः । पार्थिवै रजोभिः परमाणुभिः समाः संख्याताः । अनन्ता इत्यर्थः । जन्तवे जीवाः । तेषां मध्ये ये केचन कतिपये श्रेयो धर्ममीहन्ते कुर्वन्ति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

रजोभिः इत्यादि तीन श्लोकें द्वारा राजा परीक्षित भक्ति की दुर्लभता का वर्णन करते हैं । पृथिवी की धूलि कणों के समान संसार के प्राणियों की संख्या अनन्त है । उन सबों में से कुछ ही मनुष्य आदि जीव आत्मकल्याण प्राप्त करना चहते हैं ॥३॥

प्रायो मुमुक्षवस्तेषां केचनैव द्विजोत्तम । मुमुक्षूणां सहस्रेषु कश्चिन्मुच्येत सिध्यति ॥४॥

अन्वयः— हे द्विजोत्तम ! तेषां केचन एव मुमुक्षः मुमुक्षूणं सहस्रेषु कश्चित् मुच्येत सिध्यति ॥४॥

अनुवाद— हे द्विजोत्तम ! उन सबों में से कुछ ही मनुष्य आदि मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं । हजारों मुमुक्षुओं में से कुछ ही लोग गृह आदि से अनासक्त होकर तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर पाते हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

मुच्येत गृहादिसङ्गाद्विमुच्यते । सिध्यति तत्त्वं जानाति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

कुछ ही लोग गृह आदि से अनसक्त होकर तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर पाते हैं ॥४॥

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः । सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥
वृत्रस्तु स कथं पापः सर्वलोकोपतापनः ॥५॥

अन्वयः— हे महामुने ! मुक्तानाम् अपि सिद्धानाम् कोटिषु अपि नारायण परायणः प्रशान्तात्मा सुदुर्लभः । स सर्वलोकोपतापनः पापः वृत्रः तु कथम् ॥५॥

अनुवाद— हे महामुने ! करोड़ों मुक्तों और सिद्धों में भी भगवान् नारायण का भक्त शान्त स्वभाव वाले महापुरुष का मिलना दुर्लभ होता है । और सम्पूर्ण संसार को दुःख देने वाले पापी वृत्रासुर कैसे श्रीभगवान् का भक्त हो गया॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

इत्थं दृढमतिः कृष्ण आसीत्संग्राम उल्बणे ॥६॥

अन्वयः— उल्बणे संग्रामे इत्थं दृढमतिः कृष्णे आसीत् ॥६॥

अनुवाद— उस वृत्रासुर की भयं कर संग्राम में भी इसत रह की उसकी सुदृढ भक्ति श्रीभगवान् में थी ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

अत्र न संशयो भूयान् श्रोतुं कौतूहलं प्रभो । यः पौरुषेण समरे सहस्राक्षमतोषयत् ॥७॥

अन्वयः— प्रभो अत्र नः भूयान् संशयः श्रोतुं कौतूहलः । यः समरे पौरुषेण इन्द्रम् अतोषयत् ॥७॥

अनुवाद— हे प्रभो ! इस विषय में हमको बड़ा ही सन्देह है और सुनने का कौतूहल भी है । युद्ध में उसने अपने पराक्रम से देवराज इन्द्र को सन्तुष्ट कर दिया था ॥७॥

भावार्थ दीपिका

न चेन्द्रभिया कृष्णं शरणं गत इत्याह-यः पौरुषेणेति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

वह इन्द्र के भय से भगवान् की शरणागति नहीं की थी । उसने तो युद्ध में अपने पराक्रम से देवराज इन्द्र को भी सन्तुष्ट कर दिया था ॥७॥

सूत उवाच

परीक्षितोऽथ संप्रश्नं भगवान्बादरायणिः । निशम्य श्रद्दधानस्य प्रतिनन्द्य वचोऽब्रवीत् ॥८॥

अन्वयः— अथ श्रद्दधानस्य परीक्षितः संप्रश्नं निशम्य भगवान् बादरायणिः प्रतिनन्द्य वचः अब्रवीत् ॥८॥

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— इसके पश्चात् श्रद्धा सम्पन्न परीक्षित् के प्रश्न को सुनकर श्रीशुकदेवजी उनका अभिनन्दन करके कहने लगे ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

श्रीशुक उवाच

शृणुष्वावहितो राजन्नितिहासमिमं यथा । श्रुतं द्वैपायनमुखान्नारदाद्देवलादपि ॥९॥

अन्वयः— राजन् ! अवहितः इमं इतिहासं शृणुष्व, यथा द्वैपायनमुखात् नारदात् देवलात् अपि मयाश्रुतम् ॥९॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! आप इस इतिहास को सावधानी पूर्वक सुनें जैसा कि मैंने अपने पिता महर्षि बादरायण, देवर्षि नारद और महर्षि देवल के मुख से विधिपूर्वक सुना है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

यथा यथावत् श्रृणु ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इसको आप जैसा है उसी तरह से सुनें ॥९॥

आसीद्राजा सार्वभौमः शूरसेनेषु वै नृप । चित्रकेतुरिति ख्यातो यस्यासीत्कामधुड्मही ॥१०॥

अन्वयः— हे नृप शूरसेनेषु वै सार्वभौमः राजा चित्रकेतुः इति ख्यातः आसीत् यस्य मही कामधुक् आसीत् ॥१०॥

अनुवाद— प्राचीन काल में शूरसेन देश में चित्रकेतु नामक चक्रवर्ती महाराज थे । उनके राज्य में पृथिवी प्रजा की इच्छा के अनुसार अन्न इत्यादि दिया करती थी ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

तस्य भार्यासहस्राणां सहस्राणि दशाभवन् । सान्तानिकश्चापि नृपो न लेभे तासु सन्ततिम् ॥११॥

अन्वयः— तस्य सहस्राणां दश सहस्राणि भार्या अभवन्, सान्तानिकः चापि नृपः तासु सन्ततिम् न लेभे ॥११॥

अनुवाद— उस राजा की एक करोड़ रानियाँ थीं । राजा सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ थे फिर भी उनकी उन रानियों से सन्तान नहीं थी ॥११॥

भावार्थ दीपिका

भार्यासहस्राणां दशसहस्राणि कोटिरित्यर्थः । सान्तानिकः स्वयं सन्तानार्होऽपि पुत्रोत्पादनसमर्थोऽपि तासु सन्ततिं न लेभे । सर्वास्ता बन्ध्या एव दैवयोगेन मिलिता इति भावः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

राजा की एक करोड़ रानियाँ थी राजा सान्तानिक अर्थात् सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ थे । किन्तु उनमें से किसी भी रानी से सन्तान नहीं हुई । दैवयोग से वे सभी बन्ध्या ही थीं ॥११॥

रूपौदार्यवयोजन्मविद्यैश्वर्यश्रियादिभिः । संपन्नस्य गुणैः सर्वैश्चिन्ता बन्ध्यापतेरभूत् ॥१२॥

अन्वयः— रूपौदार्यवयोजन्म विद्यैश्वर्यश्रियादिभिःसर्वैः गुणैः सम्पन्नस्य बन्ध्यापतेः चिन्ता अभूत् ॥१२॥

अनुवाद— वे सुन्दरता, उदारता, युवावस्था, कुलीनता, विद्या, ऐश्वर्य तथा सम्पत्ति आदि सभी गुणों से सम्पन्न थे । किन्तु उनकी सारी पत्नियाँ बन्ध्या थीं अतएव उनको सन्तान की चिन्ता हुई ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-बन्ध्यापतेरिति ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

राजा की सारी पत्नियाँ बन्ध्या थीं इसीलिए वे बन्ध्यापति थे ।।१२।।

न तस्य संपदः सर्वा महिष्यो वामलोचनाः । सार्वभौमस्य भूश्चेयमभवन्प्रीतिहेतवः ।।१३।।

अन्वयः— सार्वभौमस्य तस्य सर्वाः वामलोचनाः महिष्यः इयम् भूः च प्रीतिहेतवः न अभवन् ।।१३।।

अनुवाद— सभी सुन्दरी रानियाँ तथा यह पृथिवी चक्रवर्ती महाराज चित्रकेतु को प्रसन्न नहीं कर सकीं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१३।।

तस्यैकदा तु भवनमङ्गिरा भगवानृषिः । लोकाननुचरन्नेतानुपागच्छद्यदृच्छया ।।१४।।

अन्वयः— एकदा भगवान अङ्गिरा ऋषि एतान् लोकान् अनुचरन् तस्य तु भवनम् यदृच्छया उपागच्छत् ।।१४।।

अनुवाद— एक बार शाप एवं वरदान देने में समर्थ अङ्गिरा ऋषि अनेक लोकों में विचरण करते हुए अचानक इस राज के भवन में आये ।।१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४।।

तं पूजयित्वा विधिवत्प्रत्युत्थानार्हणादिभिः । कृतातिथ्यमुपासीदत्सुखासीनं समाहितः ।।१५।।

अन्वयः— प्रत्युत्थानार्हाणादिभिः तं पूजयित्वा कृतातिथ्यम् सुखासीनम् तं समाहितः उपासीदत् ।।१५।।

अनुवाद— राजा ने उनकी प्रत्युत्थान तथा अर्घ्य आदि से विधि पूर्वक पूजा की आतिथ्य सत्कार हो जाने के पश्चात् सुख पूर्वक बैठे हुए महर्षि के पास हीं राजा भी शान्त भाव से बैठ गये ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

उपासीदत्तस्य समीपमुपविवेश । समाहितः संयतः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

उपासीदत् अर्थात् उनके सन्निकट ही बैठ गये । समाहितः अर्थात् शान्त भाव से ।।१५।।

महर्षिस्तमुपासीनं प्रश्रयावनतं क्षितौ । प्रतिपूज्य महाराज समाभाष्येदमब्रवीत् ।।१६।।

अन्वयः— हे महाराज प्रश्रयावनतं क्षितौ उपासीनम् प्रतिपूज्य महर्षिः समाभाष्य इदम् अब्रवीत् ।।१६।।

अनुवाद— हे महाराज ! परीक्षित् ! सन्निकट में नम्रता पूर्वक पृथिवी पर बैठे हुए उस राजा का समादर करते हुए महर्षि ने उनको सम्बोधित करके कहा ।।१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१६।।

अङ्गिरा उवाच

अपि तेऽनामयं स्वस्ति प्रकृतीनां तथात्मनः । यथा प्रकृतिभिर्गुप्तः पुमान् राजापि सप्तभिः ।।१७।।

अन्वयः— अपि ते प्रकृतीनाम् तथा आत्मनः स्वस्ति । यथा सप्तभिः प्रकृतिभिः पुमान् राजापि ।।१७।।

अङ्गिरा महर्षि ने कहा

अनुवाद— राजन् ! क्या तुम अपनी प्रकृतियां गुरु, मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, सेना और मित्र के साथ सकुशल

होना, जैसे जीव महदादि सात आवरणों से घिरा रहता है वैसे ही राजा भी इन सात प्रकृतियों से घिरा रहता है। उनकी कुशलता से ही राजा का भी कुशल होता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अपि किम् । अनामयमारोग्यम् । स्वस्ति शुभम् । प्रकृत्यधीनमेव हि राज्यमिति सदृष्टान्तमाह । यथा महदाद्यादिभिः सप्तभिः पुमान् जीवो नित्यं गुप्तो भवति नतु तद्व्यतिरेकेण क्षणमपि तिष्ठति तथा राजापि सप्तप्रकृतिभिः 'स्वाम्यमात्यौ जनपदा दुर्गद्रविणसंचयाः । दण्डो मित्रं च तस्यैताः सप्त प्रकृतयो मताः ।' इत्युक्तलक्षणाभिर्नित्यं गुप्तः सन् । स्वामी गुरुः स्वयं वा ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

अपि अर्थात् क्या ? अनामय अर्थात् निरोगिता, स्वस्ति = कल्याण, महर्षि ने कहा कि प्रकृतियों के अधीन ही राज्य रहता है इस बात को महर्षि ने दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहा जिस तरह महदादि कों (महान् अहङ्कार और पञ्चतन्मात्राओं) से जीव सदैव घिरा रहता है । इन पाञ्चों के बिना वह क्षणभर भी नहीं रहता है । उसी तरह राजा भी सात प्रकृतियों से सदा घिरा रहता है । वे प्रकृतियाँ हैं गुरु, मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग, कोश, सेना और मित्र । इन सातों से राजा सदा संरक्षित रहता है ॥१७॥

आत्मानं प्रकृतिष्वद्धा निधाय श्रेय आप्नुयात् । राज्ञा तथा प्रकृतयो नरदेवाहिताधयः ॥१८॥

अन्वयः— अद्धा आत्मानं प्रकृतिषु निधाय श्रेयः आप्नुयात् । हे नरदेव तथा प्रकृतयः राज्ञा आहिताधयः समृद्धाः भवन्तीति शेषः ॥१८॥

अनुवाद— राजन् ! जिस तरह राजा अपनी उपर्युक्त प्रकृतियों के अनुकूल रहने पर ही राज्य सुख प्राप्त करता है, उसी तरह प्रकृतियाँ भी अपनी रक्षा का भार राजा पर छोड़कर सुख और समृद्धि का लाभ कर सकती हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

आत्मानं प्रकृतिष्वद्धा साक्षान्निधाय तदनुवर्तिनं कृत्वा श्रेयो राज्यसुखं प्राप्नुयादित्यर्थः । प्रकृतीनां च सुखं राजाधीनमेवेत्याह। हे नरदेव, तथा प्रकृतयोऽपि राज्ञा आहिताधयो निहितनिक्षेपा धनैः समृद्धा भवन्ति । पाठान्तरे आसमन्ततो हताधयो निरस्तमनोदुःखा भवन्तीत्यर्थः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह प्रकृतियों को अपने अनुकूल बनाकर उन पर अपना सारा भार छोड़कर राज्यसुख प्राप्त करता है, उसी तरह प्रकृतियों का भी सुख राजा के अधीन होता है । हे नरदेव ! उसी तरह प्रकृतियाँ भी राजा के ऊपर अपनी रक्षा का सारा भार छोड़कर समृद्ध हो जाती हैं । **आहताधयः** पाठभेद होने पर अर्थ होगा सभी मनोदुःखों से रहित हो जाती हैं ॥१८॥

अपि दाराः प्रजामात्या भृत्याः श्रेण्योऽथ मन्त्रिणः । पौरा जानपदा भूपा आत्मजा वशवर्तिनः ॥१९॥

अन्वयः— अपि दाराः, प्रजा अमात्याः भृत्याः, श्रेण्यः अथमन्त्रिणः पौराः जानपदाः भूयाः, अत्मजाः वशवर्तिनः? ॥१९॥

अनुवाद— क्या तुम्हारी रानियाँ, प्रजाएँ, मन्त्रीगण, सेवक, व्यापारी, अमात्य, नागरिक, देशवासी, मण्डलेश्वर राजा और पुत्र वश में हैं ? ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

प्रजाश्च अमात्याश्च श्रेण्यश्च समयविशेषेण सङ्घशो वर्तमाना वणिक्प्रभृतयः पौराः पुरवासिनः । जानपदास्तत्तद्देशाधिकारिणः। मन्त्रसहायो मन्त्री कर्मसहायोऽमात्य इति भेदः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

प्रजाएँ, अमात्य, समय विशेष में एक साथ रहने वाले व्यापारी गण, नागरिक, मण्डलेश्वर मन्त्रणा में सहायता करने वाले मन्त्री कहलाते हैं तथा जो कर्मों में सहायता करे वह आमात्य कहलाता है। यही मन्त्री और आमात्यों में अन्तर हैं ॥१९॥

यस्यात्मानुवशश्चेत्स्यात्सर्वे तद्वशगा इमे । लोकाः सपाला यच्छन्ति सर्वे बलिमतन्द्रिताः ॥२०॥

अन्वयः— यस्य आत्मानुवशः चेत् तस्य वशगा इमे सर्वे सर्वे सपालाः लोका अतन्द्रिताः बलिं यच्छन्ति ॥२०॥

अनुवाद— जिसका मन अपने वश में रहता है, उसके वश में ये सभी रहा करते हैं यहाँ तक कि लोकपालों सहित सभी लोक उसे उपहार प्रदान करते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तव मनः स्ववशे वा न वेत्यर्थात्पृच्छति । यस्यात्मा मनोऽनुवशोऽनुवर्ती अधीनः स्यात्तस्य वशगा इमे सर्वे भवन्ति। किंच लोकाश्च तस्य बलिं यच्छन्ति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

तुम्हारा मन अपने वश में है कि नहीं इस बात को वे अर्थतः पूछते हैं जिस का मन अपने वश में होता है उसी के वश में ये सभी होते हैं। यही नहीं सभी लोग भी उसे उपहार प्रदान करते हैं ॥२०॥

आत्मनः प्रीयते नात्मा परतः स्वत एव वा । लक्षयेऽलब्धकामं त्वां चिन्तया शबलं मुखम् ॥२१॥

अन्वयः— चिन्तयाअलब्धकामं त्वां चिन्तया शबलं मुखं लक्षये परतः स्वत एव वा आत्मनः आत्मा न प्रियते ॥२१॥

अनुवाद— मैं देख रहा हूँ कि तुम सन्तुष्ट नहीं हो। तुम्हारी कोई कामना अपूर्ण है। तुम्हारे मुख पर किसी आन्तरकि चिन्ता के चिह्न झलक रहे हैं। तुम्हारे इस असन्तोष का कारण कोई दूसरा है अथवा स्वयम् तुम ही हो॥२१॥

भावार्थ दीपिका

आत्मा भवान् । आत्मनः न प्रीयते न तुष्यति तत्किम् । परतो वा स्वतो वाऽलब्धकामं त्वां लक्षये ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि ने कहा तुम अपने आप में प्रसन्न नहीं हो। यह क्यों मैं तुमको अपूर्ण इच्छा वाला देखता हूँ। इसका कारण तुम ही हो अथवा कोई दूसरा है ?॥२१॥

एवं विकल्पितो राजन्विदुषा मुनिनापि सः । प्रश्रयावनतोऽभ्याह प्रजाकामस्ततो मुनिम् ॥२२॥

अन्वयः— राजन् विदुषा अपि मुनिना एवं विकल्पितः प्रश्रयावनतः प्रजाकामः सः ततो मुनिम् अभ्याह ॥२२॥

अनुवाद— राजन् ! यद्यपि मुनि जानते थे फिर भी जब उन्होंने इस तरह से पूछा तो सन्तान की कामना वाला राजा ने अत्यन्त विनीत होकर मुनि से कहा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

विदुषा सर्वज्ञेनापि ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

सर्वज्ञमुनि के द्वारा ॥२२॥

चित्रकेतुरुवाच

भगवन्किं न विदितं तपोज्ञानसमाधिभिः । योगिनां ध्वस्तपापानां बहिरन्तःशरीरिषु ॥२३॥

अन्वयः— भगवन् तपो योग समाधिभिः ध्वस्तापापानां योगिनां वहिरन्तः शरीरिषु किं न विदितम् ॥२३॥

चित्रकेतु ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! जिन योगियों के तपस्या ज्ञान तथा समाधि के द्वारा सारे पाप नष्ट हो चुके हैं उनको प्राणियों कि भीतर अथवा बाहर की कौन सी ऐसी बात है जो ज्ञात न हो ?॥२३॥

भावार्थ दीपिका

अलब्धकामत्वं कथयन्पुत्रं याचते-भगवन्निति चतुर्भिः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

भगवन् इत्यादि चार श्लोकों से राजा ने अपने अलब्ध कामत्व को बतलाते हुए पुत्र की याचना की ॥२३॥

तथापि पृच्छतो ब्रूयां ब्रह्मन्नात्मनि चिन्तितम् । भवतो विदुषश्चापि चोदितस्त्वदनुज्ञया ॥२४॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! तथापि भवतः विदुषः चापि पृच्छतः त्वदनुज्ञया प्रेरितः आत्मनिचिन्तितं ब्रूयाम् ॥२४॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! ऐसा होने पर सबकुछ जानने वाले आप जब पूछ ही रहे हैं, तो आपकी आज्ञा से प्रेरित होकर मैं अपने मन की चिन्ता को बतला ही रहा हूँ ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

लोकपालैरपि प्रार्थ्याः साम्राज्यैश्वर्यसंपदः । न नन्दयन्त्यप्रजं मां क्षुत्तृट्काममिवापरे ॥२५॥

अन्वयः— लोकपालैः अपि प्रार्थ्याः साम्रज्यैश्वर्य सम्पदः क्षुतृतृटकामम् अपरे इव अप्रजं मां न नन्दयन्ति ॥२५॥

अनुवाद— जिसे लोकपालगण भी प्राप्त करना चाहते हैं, इस प्रकार का साम्राज्य तथा ऐश्वर्य निःसन्तान मुझको उसी तरह आनन्दित नहीं कर पाते हैं जिस तरह से भूखे तथा प्यासे व्यक्ति को दूसरे भोग नहीं आनन्दित कर पाते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अप्रजमपुत्रम् । क्षुत्तृड्भ्यामन्नपानकाममपरे स्रक्चन्दनादयो यथा न सुखयन्ति ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

अप्रजम् अर्थात् पुत्रहीन । अन्न जल चाहने वाले भूखे व्यक्ति को जैसा माला चन्दन इत्यादि सुखी नहीं बना पाते हैं ॥२५॥

ततः पाहि महाभाग पूर्वैः सह गतं तमः । यथा तरेम दुस्तारं प्रजया तद्विधेहि नः ॥२६॥

अन्वयः— हे महाभाग ! पूर्वैः सहतमः गतम् पाहि, यथा दुस्तारं प्रजया तरेम तद नः विधेहि ॥२६॥

अनुवाद— हे महाभाग्यवान महर्षे मैं तो दुःखी हूँ ही पिण्डदान न मिलने की आशङ्कासे मेरे पितृगण भी दुःखी हैं । अतएव आप मुझे पुत्र प्रदान करके नरक में जाने से बचाइये ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वैः पित्रादिभिः सह गतं प्राप्तं तमो नरकं प्रजया यथा तरेम तत्तथा विधेहि ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

आप मुझे पुत्र प्रदान करके मुझे ऐसा बना दीजिए कि मैं अपने पूर्वजों के साथ नरक में न जाऊँ ॥२६॥

श्रीशुक उवाच

इत्यर्थितः स भगवान्कृपालुर्ब्रह्मणः सुतः । श्रपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारमयजद्विभुः ॥२७॥

अन्वयः— इति अर्थितः सः विभुः कृपालु ब्रह्मणः सुतः चरु श्रपयित्वा त्वष्टारम् त्वाष्ट्रं अयजत् ॥२७॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजा चित्रकेतु के द्वारा इस तरह प्रार्थना किए जाने पर सर्वसमर्थ तथा परम कृपालु ब्रह्माजी के पुत्र भगवान् अङ्गिरा ने त्वष्टा देवता के योग्य चरु का निर्माण करके उनका यजन किया ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

ज्येष्ठा श्रेष्ठा च या राज्ञो महिषीणां च भारत । नाम्ना कृतद्युतिस्तस्यै यज्ञोच्छिष्टमदाद्द्विजः ॥२८॥

अन्वयः— हे भारत ! राज्ञः महिषीणां च या ज्येष्ठा श्रेष्ठा नाम्ना कृतद्युतिः तस्यै यज्ञोच्छिष्टम् अदात् ॥२८॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् राजा की रानियों में जो सबसे बड़ी और श्रेष्ठ रानी कृतद्युति थी उसी को यज्ञ के उच्छिष्ट भाग को प्रदान किया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञोच्छिष्टं यज्ञशेषम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञोच्छिष्ट अर्थात् यज्ञ से बचे हुए अंश को प्रदान किया ॥२८॥

अथाह नृपतिं राजन्भवितैकस्तवात्मजः । हर्षशोकप्रदस्तुभ्यमिति ब्रह्मसुतो ययौ ॥२९॥

अन्वयः— राजन् ! अथ नृपतिं आह तुभ्यं हर्षशोकप्रदः तव एकः आत्मजः भविता, इति ब्रह्मसुतः ययौ, उक्त्वेति शेषः ॥२९॥

अनुवाद— परीक्षित् उसके पश्चात् उन्होंने राजा चित्रकेतु से कहा कि राजन् तुम्हारी पत्नी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न होगा जो तुम्हे हर्ष तथा शोक प्रदान करने वाला होगा। यह कहकर ब्रह्माजी के पुत्र महर्षि अङ्गिरा चले गये॥२९॥

भावार्थ दीपिका

जन्मना हर्षं मरणेन च शोकं प्रददातीति तथा । इत्येवमुक्त्वा ययौ ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

जन्म के द्वारा हर्ष प्रदान करेगा और मृत्यु के द्वारा शोक प्रदान करेगा । यह कहकर महर्षि चले गये ॥२९॥

सापि तत्प्राशनादेव चित्रकेतोरधारयत् । गर्भं कृतद्युतिर्देवी कृत्तिकाऽग्नेरिवात्मजम् ॥३०॥

अन्वयः— सा कृतद्युतिदेवी अपि तत्प्राशनादेव चित्रकेतोः कृत्तिका अग्नेः आत्मजम् इव गर्भं दधार ॥३०॥

अनुवाद— महारानी कृतधुति भी उस यज्ञशेष के प्रसाद के खाने से ही चित्रकेतु द्वारा गर्भ को उसी तरह धारण की जिस तरह कृत्तिका ने अग्नि कुमार को धारण किया था ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

तस्या अनुदिनं गर्भः शुक्लपक्ष इवोडुपः । ववृधे शूरसेनेशतेजा शनकैर्नृप ॥३१॥

अन्वयः— नृपः शूरसेनेशतेजसा तस्यः गर्भ शुक्लपक्षे उडुपः इव अनुदिनं शनकै ववृधे ॥३१॥

अनुवाद— परीक्षित् शूरसेन देश के राजा चित्रकेतु के तेज से कृतद्युति का भी गर्भ प्रतिदिन क्रमशः उसी तरह बढ़ने लगा जिस तरह शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कला बढ़ती है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

शूरसेनानामीशस्य तेजसा वीर्येण यो गर्भः स ववृधे ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

शूरसेन देश के स्वामी के तेजसे जो गर्भ था वह बढ़ने लगा ॥३१॥

अथ काल उपावृत्ते कुमारः समजायत । जनयन् शूरसेनानां शृण्वतां परमां मुदम् ॥३२॥

अन्वयः— अथ काले उपावृते शूरसेनानां परमं मुदम् जनयन् कुमारः समजायत ॥३२॥

अनुवाद— तदनन्तर समय आने पर महारानी कृतद्युति के गर्भ से एक सुन्दर बालक का जन्म हुआ यह सुनकर शूरसेन देशवासियों को बहुत प्रसन्नता हुई ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

हृष्टो राजा कुमारस्य स्नातः शुचिरलंकृतः । वाचयित्वाशिषो विप्रैः कारयामास जातकम् ॥३३॥

अन्वयः— हृष्टो राजा स्नातः शुचिः अलंकृतः विप्रैः अशिषः वाचयित्वा कुमारस्य जातकर्म कारयामास ॥३३॥

अनुवाद— पुत्र जन्म की बात सुनकर राजा चित्रकेतु अत्यन्त प्रसन्न हुए वे स्नान करके पवित्र हुए फिर वस्त्र भूषण से अलंकृत होकर उन्होंने ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन करवाकर अपने पुत्र का जातकर्म संस्कार कराया॥३३॥

भावार्थ दीपिका

जातकं जातकर्म ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

जातकम् अर्थात् जातकर्म संस्कार ॥३३॥

तेभ्यो हिरण्यं रजतं वासांस्याभरणानि च । ग्रामान्हयान्गजान्प्रादाद्धेनूनामर्बुदानि षट् ॥३४॥

अन्वयः— तेभ्यः हिरण्यं, रजतं वासांसि, आभरणानि ग्रामान्, गजान् धेनूनाम् षट् अर्बुदानि च प्रादात् ॥३४॥

अनुवाद— उन्होंने उन ब्राह्मणों को सोना, चाँदी, वस्त्र, आभूषण, गाँव, घोड़े, हाथी और छह अरब गौओं का दान दिया ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

अर्बुदं दशकोटयः। वेदे तु कोटिरेवार्बुदम् । नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं चेति प्रयुतानन्तरं निर्देशात् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

दश करोड़ को अर्बुद कहते हैं । वेद में तो करोड़ को ही अर्बुद कहा गया है । नियुतं, प्रयुतं अन्त में प्रयुत के पश्चात् ही अर्बुद का निर्देश किये जाने के कारण ॥३४॥

ववर्ष काममन्येषां पर्जन्य इव देहिनाम् । धन्यं यशस्यमायुष्यं कुमारस्य महामनाः ॥३५॥

अन्वयः— कुमारस्य धन्यं यशस्यमायुष्यं महामनाः अन्येषां देहिनाम् पर्जन्य इव कामम् ववर्ष ॥३५॥

अनुवाद— पुत्र के धन, यश तथा आयु की वृद्धि के लिए उदार शिरोमणि राजा ने दूसरों लोगों को उसी तरह से अभिप्रेत वस्तुओं को प्रदान किया जिस तरह मेघ सभी जीवों का कल्याण करता है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

धन्यं धनकरम् । आयुष्यमायुष्करम् । महामना अत्युदारः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

शिशु के धन, यश, आयु की कामना से अत्यन्त उदार राजा ने ॥३५॥

कृच्छ्रलब्धेऽथ राजर्षेस्तनयेऽनुदिनं पितुः । यथा निःस्वस्य कृच्छ्राप्ते धने स्नेहोऽन्ववर्धत ॥३६॥

अन्वयः— निः स्वस्य कृच्छ्राप्ते धने यथा अथ कृच्छ्रलब्धे तनये राजर्षेः पितुः, अनुदिनं स्नेहः अन्वर्धत ॥३६॥

अनुवाद— जिस तरह किसी निर्धन को यदि कठिनाई से कोई धन मिल जाय तो उसमें उसकी आसक्ति बढ़ जाती है उसी तरह राजर्षि चित्रकेतु को अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त उस पुत्र में प्रतिदिन स्नेह बढ़ता गया ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

मातुस्त्वतितरां पुत्रे स्नेहो मोहसमुद्भवः । कृतद्युतेः सपत्नीनां प्रजाकामज्वरोऽभवत् ॥३७॥

अन्वयः— मातुः तु पुत्रे अतितरां मोहसमुद्भवः स्नेहः, कृतद्युतेः सपत्नीनां प्रजाकामः ज्वरः अभवत् ॥३७॥

अनुवाद— माता कृतद्युति को भी अपने पुत्र पर मोह के कारण अत्यधिक स्नेह था, परन्तु उनकी सौत रानियों के मन में पुत्र की कामना से और अधिक जलन होने लगी ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

मोहस्य समुद्भवो यस्मिन् । प्रजाकामरूपो ज्वरस्तापः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

कृतद्युति को मोहजन्य पुत्र में स्नेह था किन्तु उस पुत्र को देखकर उनकी सौतों के मन में अधिक जलन होने लगी ॥३७॥

चित्रकेतोरतिप्रीतिर्यथा दारे प्रजावति । न तथाऽन्येषु संजज्ञे बालं लालयतोऽन्वहम् ॥३८॥

अन्वयः— अन्वहं बालं लालयतः चित्रकेतोः प्रजावति दारे यथा प्रीतिः तथा अन्येषु न संजज्ञे ॥३८॥

अनुवाद— प्रतिदिन बालक का लाड़-प्यार करते रहने के कारण सम्राट् चित्रकेतु का बच्चे की माँ कृतद्युति में जितना प्रेम था उतना अन्य रानियों में नहीं रहा ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

दार इत्येकवचनमार्षम् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

द्वारा शब्द बहुवचनान्त ही प्रयुक्त होता है किन्तु आर्ष प्रयोग के कारण दारे यह एकवचनान्त प्रयोग है ॥३८॥

ताः पर्यतप्यन्नात्मानं गर्हयन्त्योऽभ्यसूयया । आनपत्येन दुःखेन राज्ञोऽनादरणेन च ॥३९॥

अन्वयः— आनपत्येन दुःखेन, राज्ञः अनादरेण च ता अभ्यसूयया आत्मानं गर्हयन्त्यः ॥३९॥

अनुवाद— सन्तान हीनता जन्य दुःख के कारण तथा राजा के द्वारा की जाने वाली उपेक्षा के कारण वे सभी डाह से अपने को धिक्कारने लगीं और मन ही मन जलने लगीं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

आनपत्येन अपुत्रत्वनिमित्तेन ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

आनपत्येन अर्थात् सन्तान हीनता के कारण ॥३९॥

धिगप्रजां स्त्रियं पापां पत्युश्चागृहसंमतम् । सुप्रजाभिः सपत्नीभिर्दासीमिव तिरस्कृताम् ॥४०॥

अन्वयः— अप्रजां पापां स्त्रियं धिक् पत्युः च अगृहसम्मताम् सुप्रजाभिः सपत्नीभिः, दासीमिव तिरस्कृताम् ॥४०॥

अनुवाद— वे आपस में बातें करने लगीं निःसन्तन स्त्री तो पापिनी होती है, उसको धिक्कार है यहा तक कि उसके पतिदेव भी उसका समादर नहीं करते है और सन्तान वाली स्त्रियाँ तो उसका दासी के समान तिरस्कार करती हैं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

न गृहे संमतां न बहुमताम् । यद्वा गृहिण्येव गृहं न भार्येति संमतामित्यर्थः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

अगृहसम्मताम् का अर्थ है जिसका गृह में समादर नहीं होता है । अथवा गृहिणी के समान पत्नी अभिमत नहीं होती हैं ॥४०॥

दासीनां कोऽनुसंतापः स्वामिनः परिचर्यया । अभीक्ष्णं लब्धमानानां दास्या दासीव दुर्भगाः ॥४१॥

अन्वयः— स्वामिनः परिचर्यया अभीक्ष्णं लब्धमानानां दासीनां कः अनुसन्तापः दास्याः दासीव दुर्भगाः वयमिति शेषः ॥४१॥

अनुवाद— अपने स्वामी की सेवा करके सम्मान पाने वाली दासियों को कौन सा कष्ट है हमलोग तो दासियों की दासी के समान उनसे भी गयी गुजरी हैं और बार-बार तिरस्कृत होती हैं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

दास्याः दासी यथा तथा वयं दुर्भगाः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

दासी की दासी के समान हमलोग दुर्भाग्य ग्रस्त हैं ॥४१॥

एवं संदह्यमानानां सपत्न्याः पुत्रसंपदा । राज्ञोऽसंमतवृत्तीनां विद्वेषो बलवानभूत् ॥४२॥

अन्वयः— एवं सपत्न्याः पुत्रः सम्पदा संदहयमानानां राज्ञः असंमतवृतीनां विद्वेषः बलवानभूत् ॥४२॥

अनुवाद— परीक्षित् इस प्रकार से अपनी सौत के पुत्र रूप सम्पत्ति को देखकर वे सारी रानियाँ बहुत जलती रहती थीं । और राजा चित्रकेतु भी उन सबों की ओर से उदासीन हो गये थे अतएव वे और जलती थीं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

न संमता वृत्तिर्जीवनं यासाम् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

राजा को भी वे सब प्रिय नहीं थीं ॥४२॥

विद्वेषनष्टमतयः स्त्रियो दारुणचेतसः । गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति ॥४३॥

अन्वयः— विद्वेषनष्टमतयः दारुणचेतसः नृपं प्रति दुर्मर्षा स्त्रियः कुमाराय गरंददुः ॥४३॥

अनुवाद— विद्वेष के कारण उन रानियों की बुद्धि विनष्ट हो गयी थी । उनके मन में क्रूरता भर गयी उन सबों को अपने पति का बालक में स्नेह बर्दास्त नहीं होता था उन सबों ने बालक को विष दे दिया ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

विद्वेषेण नष्टा मतिर्यासां ताः । गरं विषम् । दुर्मर्षा असहमानाः ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

डाह के कारण उन सबों की बुद्धि नष्ट हो गयी थी । गर अर्थात् विष दुर्मर्षा अर्थात् नहीं बर्दास्त करने वाली ।।४३।।

कृतद्युतिरजानन्ती सपत्नीनामघं महत् । सुप्त एवेति संचिन्त्य निरीक्ष्य व्यचरद्गृहे ।।४४।।

अन्वयः— सपत्नीनाम् महत् अघं अजानन्ती सुप्त एव इति संचिन्त्य गृहे व्यचरत् ।।४४।।

अनुवाद— अपनी सौतों द्वारा किए गये इस महान् पाप का पता कृतद्युति को नहीं था बच्चा सो रहा है यह देखकर वे गृह में घूम फिर रहीं थीं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४४।।

शयानं सुचिरं बालमुपधार्य मनीषिणी । पुत्रमानय मे भद्रे इति धात्रीमचोदयत् ।।४५।।

अन्वयः— मनीषिणी सुचिरं शयानं बालम् उपधार्य भद्रे मे पुत्रम् आनय इति धात्रीम् अचोदयत् ।।४५।।

अनुवाद— बुद्धिमती रानी ने यह सोचकर कि बालक देर से सो रहा है, धाय से कहा कि कल्याणि मेरे बच्चे को ले आओ ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

धात्रीं स्तनदायिनीम् ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

स्तनपिलाने वाली दासी को धात्री कहते हैं ।।४५।।

सा शयानमुपव्रज्य दृष्टवा चोत्तरलोचनम् । प्राणेन्द्रियात्मभिस्त्यक्तं हतास्मीत्यपतद्भुवि ।।४६।।

अन्वयः— शयानं उपव्रज्य सा उत्तरलोचनम् प्राणेन्द्रियात्मभिः त्यक्तं दृष्ट्वा हता अस्मि, इति भुवि अपतत् ।।४६।।

अनुवाद— सोए हुए बालक के सन्निकट में जाकर उसने देखा कि उसकी पुतलियाँ उलट गयी हैं, प्राण, इन्द्रिय और आत्मा उसके शरीर से निकल गयी हैं यह देखकर हाय मैं तो मारी यह कहकर पृथिवी पर गिर पड़ी ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

उद्गते तारके कनीनिके ययोस्ते लोचने यस्य तम् ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

जिसके आँखों की पुतलियाँ उलट गयी थीं उस बालक को ।।४६।।

तस्यास्तदाकर्ण्य भृशातुरं स्वरं घ्नन्त्याः कराभ्यामुर उच्चकैरपि ।
प्रविश्य राज्ञी त्वरयात्मजान्तिकं ददर्श बालं सहसा मृतं सुतम् ।।४७।।

अन्वयः— कराभ्यामुच्चकैः अपि उरः घ्नन्त्याः तदा तस्याः भृशातुरं स्वरं आकर्ण्य राज्ञी त्वरया प्रविश्य सहसा अन्तिकं बालं मृतम् ददर्श ।।४७।।

अनुवाद— अपने दोनों हाथों से जोर-जोर से छाती पीट-पीट कर दासी के अत्यन्त आर्त स्वर को सुनकर रानी शीघ्रता से बालक के शयन कक्ष में प्रवेश करके बालक को अचानक मरा हुआ देखी ।।४७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४७।।

पपात भूमौ परिवृद्धया शुचा मुमोह विभ्रष्टशिरोरुहाम्बरा ॥४८॥

अन्वयः— परिवृद्धया शुचा भूमौ पपात विभ्रष्टशिरोरुहाम्बरा मुमोह ।।४८।।

अनुवाद— अत्यन्त शोक के कारण वे भूमि पर गिर पड़ी उनके शिर के केश विखर गये और वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये और वे मुर्छित हो गयीं ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

विभ्रष्टाः शिरोरुहा अम्बरं च यस्याः सा ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

सिर के बाल विखर गये और वस्त्र अस्त व्यस्त हो गये ।।४८।।

ततो नृपान्तः पुरवर्तिनो जना नराश्च नार्यश्च निशम्य रोदनम् ।
आगत्य तुल्यव्यसनाः सुदुःखितास्ताश्च व्यलीकं रुरुदुः कृतागसः ॥४९॥

अन्वयः— ततः नृपान्तः पुरवर्तिनः जनाः नराः च नार्यः च रोदनम् निशम्य आगत्य तुल्यव्यसनाः सुदुःखिता च कृतागसः व्यलीकं रुरुहुः ।।४९।।

अनुवाद— महारानी का रुदन सुनकर रनीवास के सभी स्त्री पुरुष वहाँ दौड़ आये और सहानुभूति के कारण अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगे । वे हत्यारी रानियाँ भी वहाँ आकर झूठ-मुठ रोने का ढोंग करने लगीं ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

ताश्च सपत्न्योऽपि ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

वे सौतें भी ।।४९।।

श्रुत्वा मृतं पुत्रमलक्षितान्तकं विनष्टदृष्टिः प्रपतन् स्खलन्पथि ।
स्नेहानुबन्धैधितया शुचा भृशं विमूर्च्छितोऽनुप्रकृतिर्द्विजैर्वृतः ॥५०॥
पपात बालस्य स पादमूले मृतस्य विस्रस्तशिरोरुहाम्बरः ।
दीर्घं श्वसन्बाष्पकलोपरोधतो निरुद्धकण्ठो न शशाक भाषितुम् ॥५१॥

अन्वयः— अलक्षितान्तकं मृतं पुत्रं श्रुत्वा स्नेहानुबन्धैधितया भृशं शुचा विनष्टदृष्टिः अनुप्रकृतः द्विजैर्वृतः पथि स्खलन्प्रपतन् सः विमूर्छितः मृतस्य बालस्य पादमूले पपात विस्रस्तशिरोरुहाम्बरः दीर्घ श्वसन् वाष्पकलोपरोधतः निरुद्ध कण्ठः भाषितुम् न शशाक ।।५०-५१।।

अनुवाद— राजा चित्रकेतु को जब इस बात का पता चला कि मेरे पुत्र की अकारण मृत्यु हो गयी है, तो अत्यधिक स्नेह के कारण उनकी आखों के सामने अन्धेरा छा गया । वे धीरे-धीरे अपने मन्त्रियों और ब्राह्मणों के साथ रास्ते में गिरते-पड़ते मृत बालक के पास आकर मूर्छित हो गये और उसके पैरों के पास गिर पड़े । उनके केश और वस्त्र विखर गये थे । वे दीर्घ श्वास ले रहे थे । आँसुओं की अधिकता के कारण गला रुँध गया था और वे कुछ बोल नहीं सके ।।५०-५१।।

भावार्थ दीपिका

अलक्षितोऽन्तको मृत्युहेतुर्यस्य तम् । अनुगताः प्रकृतयोऽमात्यादयो यस्य सोऽनुप्रकृतिः वाष्पकलभिरश्रुबिन्दुभिरूपरोधतः संवृतत्वेन निरूद्धः कण्ठो यस्य ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

जिसकी मृत्यु कोई देख नहीं पा रहा था । **अनुपकृति** जिसके साथ मन्त्री आदि प्रकृति थे अतएव अनुप्रकृति आँसुओं की अधिकता के कारण जिनका गला रुँध गया था । ॥५०-५१॥

पतिं निरीक्ष्योरुशुचार्पितं तदा मृतं च बालं सुतमेकसन्ततिम् ।
जनस्य राज्ञी प्रकृतेश्च हृद्रुजं सती दधाना विललाप चित्रधा ॥५२॥

अन्वयः— तदा ऊरु शुचार्पितं पतिं एकसन्ततिं बालं यं निरीक्ष्य राज्ञी सती जनस्य प्रकृतेः च हृद्रुजं दधाना चित्रधा विललाप ॥५२॥

अनुवाद— अत्यधिक शोक से सन्तप्त अपने पति को तथा एक मात्र सन्तान अपने बच्चे को मरा हुआ देखकर रानी अपने मन्त्री आदि सभी लोगों को शोक ग्रस्त करती हुई अनेक प्रकार से विलाप करने लगी ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

उरुशुचार्पितं बहुशोकेन व्याप्तम् । एकमेव सन्ततिरूपम् ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

उरुशुचार्पितम् अर्थात् अत्यधिक शोक सन्तप्त । एक सन्ततिम् अर्थात् एक मात्र सन्तान स्वरूप ॥५२॥

स्तनद्वयं कुङ्कुमगन्धमण्डितं निषिञ्चती साञ्जनबाष्पबिन्दुभिः ।
विकीर्य केशान्विगलत्स्रजः सुतं शुशोच चित्रं कुररीव सुस्वरम् ॥५३॥

अन्वयः— कुङ्कुमगन्धमण्डितं स्तनद्वयं साञ्जनवाष्पविन्दुभिः निषिञ्चती केशान् विकीर्य विगलत्स्रजः सुतं कुररी इव सुस्वरम् । चित्रं शुशोच ॥५३॥

अनुवाद— महारानी की आँखों से निकलने वाले आँसू आँखों के आँजन को लेकर केसर तथा चन्दन से चर्चित उनके दोनों स्तनों को भिंगो रहे थे । उनके बाल विखरे हुए थे तथा केशों में गूँथे हुए पुष्प गिर रहे थे । इस प्रकार वे अपने पुत्र के लिए कुररी पक्षी के समान उच्च स्वर में विविध प्रकार से विलाप कर रही थीं ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

विगलन्त्यः स्रजो येभ्यस्तान्केशान् ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

जिन सबों में गूंथीं मालाएँ गिर रही थी ऐसे केशों को विखेर कर महारानी विलाप कर रही थीं ॥५३॥

अहो विधातस्त्वमतीव बालिशो यस्त्वात्मसृष्ट्यप्रतिरूपमीहसे ।
परेऽनुजीवत्यपरस्य या मृतिर्विपर्ययश्चेत्त्वमसि ध्रुवः परः ॥५४॥

अन्वयः— अहो विधातः त्वम् अतीव बालिशः यस्त्वात्मसृष्ट्यप्रतिरूपम् ईहसे, परे अनुजीवति अपरस्य या मृतिः विपर्ययः चेत् त्वम् परः ध्रुवः असि ॥५४॥

अनुवाद— वे कह रही थीं अरे विधाता ! वस्तुत तुम बहुत बड़े मूर्ख हो क्योंकि तुम अपनी सृष्टि के प्रतिकूल चेष्टा करते हो, बूढे लोग बचे रहें और बालक मार जायँ । यदि तुम्हारे स्वभाव में इस प्रकार की विपरीतता है तब तो तुम जीवों का अमर शत्रु हो ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

आत्मसृष्टेरप्रतिरूपमननुरूपं चेष्टसे । तदेवाह–नु अहो परे वृद्धे जीवत्यपरस्य बालस्य या मृतिस्तत् । तदा हि वृद्धस्य

सृष्टिसामर्थ्याभावे बाले च मृते सति तव सृष्टिर्नष्ट स्यादित्यर्थः । ननु सांप्रतं स्वसृष्टेर्विपरीतोऽस्मीति चेत्तत्राह- विपर्ययो विपरीतोऽसि चेत्तर्हि त्वं प्राणिनामतिदुःखकारित्वात् ध्रुवो नित्यः परः शत्रुरसि । न तु कृपालुरित्यर्थः ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

तुम अपनी सृष्टि के प्रतिकूल आचरण करते हो । उसी को कहती हैं- क्योंकि वृद्धों के जीवित रहने पर बालक की मृत्यु होती है । ऐसा होने पर तो वृद्ध की सृष्टि सामर्थ्य का अभाव होने से तथा बालकों के मर जाने पर तो तुम्हारी सृष्टि ही नष्ट हो जायेगी । यदि कहो कि इसी समय मैं अपनी सृष्टि के विपरीत हूँ, तो इस पर कहती है यदि तुम विपरीत हो तब तो तुम प्राणियों को अत्यन्त दुःख देने के कारण उनका अमर शत्रु हो न कि दयालु हो ॥५४॥

नहि क्रमश्चेदिह मृत्युजन्मनोः शरीरिणामस्तु तदात्मकर्मभिः ।
यः स्नेहपाशो निजसर्गवृद्धये स्वयं कृतस्ते तमिमं विवृश्चसि ॥५५॥

अन्वयः— चेत् इह मृत्युजन्मनोः क्रमः नहि शरीरिणाम् तत् आत्मकर्मभिः अस्तु निजसर्ग वृद्धये ते यः स्नेहपाशः कृतः तम् इमम् स्वयं विवृश्चसि ॥५५॥

अनुवाद— यदि इस लोक में जन्म मरण का कोई क्रम नहीं है तब तो वे अपने कर्म के अनुसार जन्मते मरते रहेंगे फिर उसमें तुम्हारी कौन सी आवश्यकता है ? तुमने संबन्धियों में स्नेह का बन्धन इसलिए डाल रखा है कि वे तुम्हारी सृष्टि को बढ़ायें, किन्तु तुम तो इस तरह से बच्चों को मारकर उस बन्धन को अपने हाथों से काट रहे हो ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

ननु जीवकर्मानुसारेण जन्मादि कुर्वतो मम कोऽपराधस्तत्राह-नहीति । पुत्रे जीवत्येव पिता म्रियते पितरि जीवत्येव पुत्रो जायत इति क्रमो कर्माधीनत्वादिति चेत्तर्ह्यात्मकर्मभिरेव तज्जन्मादिकमस्तु किं त्वया कृत्यम् । ननु मयेश्वरेण बिना जडैः कर्मभिरिदं कथं सिध्येत् । भवतु नाम, तथापि निजसर्गवृद्धये ते त्वया यः स्नेहपाशः कृतस्तमिमं स्वयमेव विवृश्चसि छिनत्सीत्यादि क्रोशति । नह्येवंविधं दुःखं दृष्ट्वा कश्चिदपि पुत्रादिषु स्नेहं करिष्यतीति भावः ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि जीवों के कर्मो के अनुसार उनका जन्म और मरण होता है, इसमें मेरा कौन सा अपराध है ? इस पर महारानी ने कहा तब तो पुत्र के जीवित रहने पर ही पिता की मृत्यु हो जाती है और पिता के जीवित रहने पर ही यदि पुत्र की मृत्यु हो जाती है अतएव जीवन मरण का कोई क्रम नहीं है । यह सब कर्म के अधीन ही होता है, तोफिर तुम्हारा इसमें कौन सा प्रयोजन है ? यदि कहो कि मुझ नियामक के बिना जड़ कर्म क्या कर सकते है ? यदि ऐसी बात है तो फिर अपनी सृष्टि को बढते रहने के लिए तुम जो संबन्धियों में स्नेह का बन्धन डाले हो उसको तो तुम स्वयं काट रहे हो । इस प्रकार के दुःखों को देखकर कोई भी पुत्र इत्यादि से स्नेह नहीं करेगा ॥५५॥

त्वं तात नार्हसि च मां कृपणामनाथां त्यक्तुं विचक्ष्व पितरं तव शोकतप्तम् ।
अञ्जस्तरेम भवताऽप्रजदुस्तरं यद्ध्वान्तं न याह्यकरुणेन यमेन दूरम् ॥५६॥

अन्वयः— तात कृपणाम् अनाथां च मां त्वं त्यक्तुं नार्हसि, तव शोकतप्तम् पितरं विचक्ष्व । भवता अप्रजदुस्तरं अञ्जस्तरेम अकरुणेन यमेन यदध्वान्तं दूरम् न याहि ॥५६॥

अनुवाद— अपने मरे बच्चे को देखकर कहती है, वत्स मै तुम्हारे बिना अनाथ और दीन हो रही हूँ ।

अतएव मुझको छोड़कर तुम्हारा इस तरह चले जाना उचित नहीं है । आँखें खोलकर तुम अपने शोक सन्तप्त पिता को देखो । वत्स ! जिस घोर नरक को नि:सन्तान पुरुष बड़ी कठिनाई सें पार कर पाते हैं उसको हमलोग तुम्हारे सहारे बड़ी आसानी से पार कर लेंगे । वत्स तुम इस निर्दय यमराज के साथ दूर मत जाओ ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

अप्रजदुस्तरमप्रजानां दुस्तरम् । अकरुणेन सह ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

अप्रजदुस्तरम् अर्थात् नि:सन्तान पुरुषों के लिए बड़ी कठिनाई से पार करने योग्य नरक । इस निर्दय यमराज के साथ मत जाओ ।।५६।।

उत्तिष्ठ तात त इमे शिशवो वयस्यास्त्वामाह्वयन्ति नृपनन्दन संविहर्तुम् ।
सुप्तश्चिरं ह्यशनया च भवान्परीतो भुंक्ष्व स्तनं पिब शुचो हर नः स्वकानाम् ।।५७।।

अन्वयः— हे तात ! हे नृपनन्दन ! उत्तिष्ठ ते इमे वयस्याः शिशवः संविहर्तुम् त्वाम् आह्वयन्ति, चिरं सुप्तः भवान् अशनया परीतः भुंक्ष्व स्तनं पिब नः स्वकानाम् शुचः हर ।।५७।।

अनुवाद— हे तात ! हे नृपनन्दन उठो तुम्हारे साथी बालक तुम्हें खेलने के लिए बुला रहे हैं । तुम्हे सोते हुए बहुत देर हो चुकी है, तुम्हें भूख लगी होगी उठो कुछ खा लो, नहीं तो मेरा दूध ही पी लो । अपने स्वजन संबन्धी हमलोगों के शोक को तुम दूर करो ।।५७।।

भावार्थ दीपिका

अशनया क्षुधा ।।५७।।

भाव प्रकाशिका

अशनया अर्थात् भूख से ।।५७।।

नाहं तनूज ददृशे हतमङ्गला ते मुग्धस्मितं मुदितवीक्षणमाननाब्जम् ।
किं वा गतोऽस्यपुनरन्वयमन्यलोकं नीतोऽघृणेन न शृणोमि कला गिरस्ते ।।५८।।

अन्वयः— हे तनूज हतमङ्गला अहं ते मुग्धस्मितं मुदितवीक्षणं आननाब्जं न ददृशे, ते कलाः गिरः न शृणोमि, किं वा अघृणेन नीतः अपुनरन्वयं अन्य लोकं गत असि ।।५८।।

अनुवाद— वत्स ! आज मैं तुम्हारे मुखारविन्द पर मनोहर मुस्कान और आनन्दभरी चितवन नहीं देख पायी हूँ । मैं अत्यन्त अभागिन हूँ । अब भी मैं तुम्हरा मनोहर बोली नहीं सुन पा रही हूँ । क्या सचमुच निष्ठुर यमराज तुमको उस लोक में ले गया जहाँ से कोई लौट कर नहीं आता है ।।५८।।

भावार्थ दीपिका

तनूज हे पुत्र नाहं प्रथमं त्वत्पार्श्वमागता सती तव मुग्धस्मितं वक्रं ददृशे दृष्टवत्यस्मि । इदानीमपि गिरो न शृणोमि । तर्हि किं अपुनरन्वयं पुनरागमनं यथा न भविष्यति तथा गतोऽसि ।।५८।।

भाव प्रकाशिका

हे पुत्र ! पहले मैं तुम्हारे पास नहीं आयी अतएव मनोहर मुस्कान से युक्त तुम्हारे मुख कमल को नहीं देख पायी हूँ । इस समय भी तुम्हारी वाणी नहीं सुन पा रही हूँ । क्या जहाँ से लोग कभी लौट कर नहीं आते उस लोक में चले गये हो ?।।५८।।

श्रीशुक उवाच

विलपन्त्या मृतं पुत्रमिति चित्रविलापनैः । चित्रकेतुर्भृशं तप्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥५९॥

अन्वयः— मृतं पुत्रं इति चित्रबिलापनैः बिल पन्त्या भृशं तप्तो चित्रकेतुः मुक्तकण्ठः रुरोद ह ॥५९॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— अपने मरे हुए पुत्र के लिए अनेक प्रकार से विलाप करती हुई महारानी को देखकर चित्रकेतु अत्यन्त शोक सन्तप्त होकर फूट-फूट कर रोने लगे ॥५९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५९॥

तयोर्विलपतोः सर्वे दम्पत्योस्तदनुव्रताः । रुरुदुः स्म नरा नार्यः सर्वमासीदचेतनम् ॥६०॥

अन्वयः— तयोः दम्पत्योः विलपतोः सर्वे तदनुव्रताः नराः नार्यः रुरुदुः स्म सर्वम् अचेतनम् आसीत् ॥६०॥

अनुवाद— राजा-रानी के इस प्रकार विलाप करने पर उनके अनुगामी सभी स्त्री पुरुष भी दुखित होकर रोने लगे। इस तरह सारा नगर अचेत सा हो गया ॥६०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६०॥

एवं कश्मलमापन्नं नष्टसंज्ञमनायकम् । ज्ञात्वाङ्गिरा नाम मुनिराजगाम सनारदः ॥६१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अन्वयः— एवं कश्मलम् आपन्नं, नष्टसंज्ञम् अनायकम् ज्ञात्वा अङ्गिरानाम मुनिः सनारदः आजगाम ॥६१॥

अनुवाद— इस तरह शोक संन्तप्त, चेतना हीन, यहाँ तक कि उनको समझने वाला कोई नहीं है, यह चित्रकेतु को देखकर अङ्गिरा नामक महर्षि नारदजी के साथ उनके यहाँ आये ॥६१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे षष्ठ स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भाव प्रकाशिका टीका के चौदहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१४॥

* * *

पन्द्रहवाँ अध्याय

चित्रकेतु को अङ्गिरा महर्षि और देवर्षि नारद का उपदेश

श्रीशुक उवाच

ऊचतुर्मृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम् । शोकाभिभूतं राजानं बोधयन्तौ सदुक्तिभिः ॥१॥

अन्वयः— मृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम् शोकाभिभूतं राजानं सदुक्तिभिः बोधयन्तौ ऊचतुः ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— अपने मरे हुए पुत्र के सन्निकट गिरे हुए मरे हुए के ही समान शोकग्रस्त राजा चित्रकेतु को अपनी सदुक्तियों के द्वारा समझाते हुए उन दोनों ऋषियों ने कहा ।।१।।

भावार्थ दीपिका

ततः पञ्चदशे चित्रकेतोः शोकापनोदनम् । कृतं तत्त्वोपदेशेने नारदेनाङ्गिरोयुजा । मृतकोपान्ते शवसमीपे ।।१।।

भाव प्रकाशिका

तदानन्तर पन्द्रहवें अध्याय में अङ्गिरा महर्षि के साथ नारदजी द्वारा तत्त्वोपदेश के द्वारा राजा चित्रकेतु के शोक को दूर करने का वर्णन किया गया है । मृतकोपान्ते अर्थात् शव के सन्निकट ।।१।।

कोऽयं स्यात्तव राजेन्द्र भवान्यमनुशोचति । त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम् ॥२॥

अन्वयः— राजेन्द्र भवान् यम् अनुशोचति अयं तव पुरा सृष्टौ इदानीम् च तव कः ? त्वं च अस्य कतमः ? अतः परम् कः ?।।२।।

अनुवाद— राजेन्द्र तुम जिसके लिए इतना शोक कर रहे हो वह तुम्हारा पूर्व जन्म में कौन था ? और इस जन्म में कौन है ? तुम भी इसके पूर्व जन्म में कौन थे ? और इसके आगे तुम्हारा इसके साथ कौन सा सम्बन्ध होगा ?।।२।।

भावार्थ दीपिका

त्वं चास्य बन्धूनां मध्ये कतमः । सृष्टौ प्रजारूपायाम् । अयं पुत्राऽहं चास्य पितेति चेत्तत्राहतुः-पुरेति । ये पूर्वजन्मनि पित्रादिरूपेण संयुक्ता आसंस्त एव मरणेन वियुक्ताः सन्तो वर्तमानजन्मनि कदाचित्तस्यैवान्यस्य वा पुत्रादयो भवन्ति, ते जन्मान्तरे तस्यैवान्यस्य वा कलत्रादयः शत्रुमित्रादयो वा भवन्त्ज्यतो नायं नियम इति भावः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

ऋषियो ने पूछा कि राजन् इस प्रजा रूप सृष्टि में इस बालक के बान्धवों में तुम कौन हो ? यदि यह कहो कि यह मेरा पुत्र है और मैं इसका पिता हूँ तो इसके उत्तर में ऋषियों ने **पुरा० इत्यादि** श्लोक से पूछा कि जो लोग पूर्व जन्म में पिता इत्यादि रूप से संबद्ध थे वे मरकर अलग हो जाने के पश्चात् इस जन्म में अपने उसी पिता के पुत्र होते हैं ? अथवा दूसरों के पुत्र इत्यादि हो जाते हैं वे अगले जन्मों में भी उसके ही अथवा दूसरों के भी कलत्र इत्यादि हो जाते हैं ? या शत्रु मित्र इत्यादि हो जाया करते हैं ? अतएव इस प्रकार का कोई भी नियम नहीं है, यह उन ऋषियों के कहने का अभिप्राय है ।।२।।

यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतोवेगेन वालुकाः । संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ॥३॥

अन्वयः— यथा स्रोतोवेगेन बालुकाः प्रयान्ति संयान्ति च तथा कालेन देहिनः कालेन संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते च ।।३।।

अनुवाद— जिस तरह जल के वेग से बालु के कण एक दूसरे से विछुड़ते और जुड़ते रहते हैं उसी तरह काल के प्रवाह में सभी प्राणी एक दूसरे से मिलते और विछुड़ते रहते हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

तमेवाभिप्रायं प्रकटयति यथेति । स्रोतसः प्रवाहस्य वेगेन यथा प्रयान्ति वियुज्यन्ते संयान्ति संयुज्यन्ते तथा कालवेगेन देहिनो जीवा अपि ।।३।।

भाव प्रकाशिका

इस **यथा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा अपने उसी अभिप्राय को प्रकट करते हैं । जिस तरह जल के प्रवाह के वेग से बालू के कण एक दूसरे से मिलते हैं और अलग हो जाया करते हैं, उसी तरह से काल के प्रवाह से एक जीव दूसरे जीव से मिला करते है और अलग भी हो जाया करते हैं ।।३।।

यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च । एवं भूतेषु भूतानि चोदितानीशमायया ।।४।।

अन्वयः— यथा वै धानासुधानाः भवन्ति न भवन्ति च तथा ईश मायया चोदिताः भूतेषु भूतानि ।।४।।

अनुवाद— जिस तरह कुछ बीज उत्पन्न होते हैं और कुछ बीज नष्ट हो जाया करते हैं, उसी तरह परमात्मा की माया से प्रेरित होकर कुछ प्राणियों से अन्य प्राणी उत्पन्न होते हैं और कुछ नष्ट हो जाया करते हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तथाप्येतावन्तं कालं मम पुत्रो नाभूद्वार्धके जातो मृत इति दुःखमिति चेत्तत्राहतुः-यथा धानासु बीजेषु धाना बीजान्तराणि भवन्ति, कासुचित्कदाचिन्न भवन्ति नोत्पद्यन्ते नश्यन्ति च । न तु भवन्त्येव तिष्ठन्त्येवेति वा नियमः । एवमेव भूतानि पित्रादिरूपाणि भूतेषु पुत्रादिषु । अतो धानानां जन्यजनकत्वेऽपि यथा पितृपुत्रादिभावो नास्त्येवमत्रापीति न शोकः कार्य इति भावः ईशमायाप्रेरितानामेव भवनमभवनं, न वस्तुतः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि इतने समय तक मुझको पुत्र नहीं उत्पन्न हुआ वृद्धावस्थ में पुत्र हुआ और वह मर गया इसीलिए दुःख हो रहा है । तो इस पर **यथा० इत्यादि** कहते हैं अर्थात् जिस तरह कुछ बीजों से दूसरे बीज उत्पन्न होते हैं, और कुछ बीज विनष्ट हो जाया करते हैं उनसे दूसरे बीज नहीं उत्पन्न होते हैं । अतएव ऐसा कोई नियम नहीं है कि बीजों से बीज उत्पन्न ही हों, और वे बने ही रहें । इसी तरह से कुछ पिता इत्यादि प्राणियों से पुत्र इत्यादि उत्पन्न होते हैं और नहीं भी उत्पन्न होते हैं तथा उत्पन्न होकर कुछ रहते हैं और कुछ मर भी जाते हैं । अतएव बीजों में जन्य जनक भाव रहने पर भी जैसे पिता-पुत्र भाव नहीं होता है, इसी तरह माता के भी विषय में नियम नहीं हैं । अतएव माता को भी शोक नहीं करना चाहिए । परमात्मा की माया से ही प्रेरित होकर जीव उत्पन्न भी होते हैं, नहीं भी उत्पन्न होते हैं, तथा उत्पन्न होकर मर भी जाते हैं । यह पिता-पुत्र इत्यादि भाव वास्तविक नहीं है ।।४।।

वयं च त्वं च ये चेमे तुल्यकालाश्चराचराः । जन्ममृत्योर्यथा पश्चात्प्राङ्नैवमधुनापि भो ।।५।।

अन्वयः— वयं च त्वं च ये च इमे तुल्यकालाः चराचराः यथा जन्म मृत्योः प्राक् पश्चात् वा नैव तथा अधुनापि भोः।।५।।

अनुवाद— राजन् ! हम तुम और हमलोगों के साथ इस जगत् में जितने भी चराचर प्राणी हैं, वे सब जन्म से पहले नहीं थे, और मृत्यु के पश्चात् भी नहीं रहेंगे, उसी तरह वर्तमान में भी नहीं है, क्योंकि जो वस्तु सत्य होती है, वह सर्वदा एक समान ही रहा करती हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तस्य च सर्वसाधारणत्वान्न पुत्र एव शोचनीय इत्याहतुः-वयं चेति । तुल्यकाला वर्तमानकालीनाः । जन्मनः प्राक् मृत्योः पश्चाच्च यथा न सन्त्येवमधुनापि न सन्ति । भो राजन्, आद्यन्तयोरसत्त्वात्स्वप्नवदित्यर्थः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि उपर्युक्त नियम तो सर्व साधारण है अतएव पुत्र के विषय में तो शोक करना ही चाहिए। इस पर ऋषियों ने **वयं च० इत्यादि** श्लोक कहा वर्तमान काल में विद्यमान हम तुम तथा ये सम्पूर्ण जगत् के चराचर प्राणी जन्म से पहले और मृत्यु के पश्चात् नहीं रहते हैं। इसी तरह वर्तमान काल में भी हमलोगों का अस्तित्व नहीं है। राजन् आदि और अन्त में सत्ता का अभाव होने के कारण वर्तमान काल में भी स्वप्न के समान हमलोगों का अस्तित्व नहीं है ॥५॥

भूतैर्भूतानि भूतेशः सृजत्यवति हन्त्यजः । आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैरनपेक्षोऽपि बालवत् ॥६॥

अन्वयः— अजः भूतेशः आत्म सृष्टैः अस्वतन्त्रैः अनपेक्षः अपि बालवत् भूतैः भूतानि सृजति अवति हन्ति ॥६॥

अनुवाद— परमात्मा ही सभी प्राणियों के अधिपति हैं। वे जन्म और मृत्यु से रहित हैं। उनको किसी की न तो इच्छा है और न अपेक्षा है। वे अपने आप परतन्त्र कर्म प्राणियों की सृष्टि करके उनके ही द्वारा अन्य प्राणियों की रचना और संहार भी करते हैं। वे यह सब बालक के समान करते हैं। जैसे बालक घरौंदे का बनाते है और विगाड़ भी देते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

असत्त्वे कथं प्रततिः कथं वाहमस्य जनक इत्याद्यभिमानस्तत्राहतुः-भूतैरिति। ईश्वरेण मायया सृष्टत्वात्प्रतीतिर्निमित्तमात्रत्वेनैव च भूतानामयमभिमान इति भावः। नन्वीश्वरस्य सृष्ट्यादिभिः साध्यमस्ति चेत्तर्ह्यपूर्णकामता प्राप्ता, नास्ति चेत्कुतः प्रवृत्तिस्तत्राहतुः- अनपेक्षोऽपि बालवल्लीलया करोतीति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि हमलोगों की सत्ता ही नहीं है तो फिर प्रतीति कैसे होती है ? तथा मैं इसका पिता हूँ, इत्यादि रूप से अभिमान कैसे हो जाता है, इस पर महर्षियों ने **भूतैर्भूतानि श्लोक** को कहा ईश्वर ने अपनी माया के द्वारा इन सबों की सृष्टि की है अतएव इन सबों की प्रतीति होती है, और उसी के कारण जीवों का इस प्रकार से अभिमान भी होता है। यदि कहें कि ईश्वर का सृष्टि आदि के द्वारा यदि कुछ साध्य है तो ईश्वर अपूर्ण काम होंगे। यदि कोई साध्य नहीं है तो फिर उनकी प्रवृत्ति कैसे होती है ? इस पर ऋषियों ने कहा कि निरपेक्ष होकर भी बालकों के समान क्रीड़ा करते हैं ॥६॥

देहेन देहिनो राजन्देहाद्देहोऽभिजायते । बीजादेव यथा बीजं देह्यर्थ इव शाश्वतः ॥७॥

अन्वयः— राजन् ! देहेन देहिनः देहाद देहः अभिजायते यथा बीजादेव बीजं देहयर्थ इव शाश्वतः ॥७॥

अनुवाद— पिता के देह से पुत्र का देह माता के देह से पुत्र का देह उत्पन्न होता है। यह उसी तरह होता है जिस तरह एक बीज से दूसरा बीज उत्पन्न होता है। पिता-माता और पुत्र जीव के रूप में देही है किन्तु बाह्य दृष्टि से वे केवल शरीर हैं। उनमें देही जीव घट आदि कार्यों में पृथिवी के समान नित्य हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अयं च जन्मादिव्यवहारो देहानामेव न त्वात्मन इत्याहतुः-देहिनः पितुर्देहेन देहिनः पुत्रस्य देहो मातुर्देहिनो देहादभिजायते। यथा बीजादेव बीजं जायते। देही तु शाश्वत एव अर्थों भूम्यादिर्यथा तद्वत् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

यह जन्म आदि का व्यवहार तो केवल देहों का ही होता है आत्मा का नहीं इस बात को ऋषियों ने **देहेन० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा। देहवान् पिता के देह से देहवान पुत्र का देह देहवाली माता के देह से उत्पन्न होता

है । यह उसी तरह होता है जिस तरह बीज से ही बीज उत्पन्न होता है । जीव तो नित्य है । और वह देह में उसी तरह व्याप्त है जिस तरह भूमि घट आदि मृण्मयों में व्यापक है ।।७।।

देहदेहिविभागोऽयमविवेककृतः पुरा । जातिव्यक्तिविभागोऽयं यथा वस्तुनि कल्पितः ।।८।।

अन्वयः— यथा अयं जाति व्यक्तिविभागः वस्तुनि कल्पितः तथा अयं देहदेहिविभागः पुरा अविवेक कृतः ।।८।।

अनुवाद— राजन् ! जैसे एक ही मृत्तिका रूप वस्तु में घटत्व आदि जाति तथा घट आदि व्यक्तियों का विभाग केवल कल्पना मात्र है । उसी प्रकार यह देह और देही का विभाग भी अनादि एवं अविद्या कल्पित है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

ननु नश्वरदेहप्रतियोगित्वाद्देह्यपि न शाश्वतः स्यात्तत्राहतुः-देहदेहिनोरयं परस्परप्रतियोगिविभागः पुराऽनादिरविवेककृतोऽज्ञान-कल्पितः । जातिः सामान्यं व्यक्तिर्विशेषस्तयोर्विभागो यथा वस्तुनि सन्मात्रे कल्पितः । परस्परापेक्षसिद्धत्वेनानिरूप्यत्वात्तद्वत्।।८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि नश्वर देह का प्रतियोगी होने के कारण देही जीव भी नित्य नहीं हो सकता है । इस पर ऋषियों ने कहा देह और देही का जो यह परस्पर में प्रतियोगी का विभाग अनादि और अज्ञान कल्पित है । यह उसी तरह से है जिस तरह एक ही मृत्तिका रूप वस्तु में घटत्व आदि जाति और घट आदि व्यक्ति कल्पित हैं । जाति एवं व्यक्ति दोनों एक दूसरे की अपेक्षा रखते हैं अनिरूप्य हैं । उसी तरह से देह एवं देही यह विभाग भी परस्परापेक्षी होने के कारण कल्पित एवं अनिरूप्य हैं ।।८।।

श्रीशुक उवाच

एवमाश्वासितो राजा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः । प्रमृज्य पाणिना वक्त्रमाधिम्लानमभाषत ।।९।।

अन्वयः— एवं द्विजोक्तिभिः आश्वासितः राजा चित्रकेतुः पाणिना आधिम्लानम् वक्त्रं प्रमृज्य अभाषत ।।९।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् ! जब महर्षि अङ्गिरा और नारदजी ने इस प्रकार अपनी उक्तियों के द्वारा राजा चित्रकेतु को समझाया तब वे धैर्यधारण करके शोक से मुरझाये हुए अपने मुख को हाथों से पोंछ कर कहे ।।९।।

भावार्थ दीपिका

आधिम्लानं वक्त्रम् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

शोक से मुरझाये हुए मुख को ।।९।।

राजोवाच

कौ युवां ज्ञानसंपन्नौ महिष्ठौ च महीयसाम् । अवधूतेन वेषेण गूढाविह समागतौ ।।१०।।

अन्वयः— महीयसाम् महिष्ठौ ज्ञानसम्पन्नौ युवां कौ इह अवधूतेन वेषेण गूढौ समागतौ ?।।१०।।

राजा चित्रकेतु ने पूछा

अनुवाद— महानों से भी महान् एवं परम ज्ञानवान आप दोनों अपने को अवधूत वेश में छिपाकर आये हुए आप दोनों कौन हैं ? इसे आपलोग बतलायें ।।१०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१०।।

चरन्ति ह्यवनौ कामं ब्राह्मणा भगवत्प्रियाः । मादृशां ग्राम्यबुद्धीनां बोधायोन्मत्तलिङ्गिनः ॥११॥

अन्वयः— मादृशं ग्राम्यबुद्धीनां बोधाय उन्मत्तालिङ्गिनः भगवत् प्रियाः ब्राह्मणाः हि अवनौ कामं चरन्ति इत्यहं जाने॥११॥

अनुवाद— मुझ जैसे विषयासक्त प्राणियों को ज्ञानोपदेश करने के लिए बहुत से श्रीभगवान् के प्रिय ब्रह्मवेत्ता इस पृथिवी पर स्वेच्छया संचरण किया करते हैं । इस बात को मैं जानता हूँ ॥११॥

भावार्थ दीपिका

उन्मत्तस्येव लिङ्गं येषां ते ॥११॥

भाव प्रकाशिका

जो लोग अवधूत का वेष बनाये रहते हैं ॥११॥

कुमारो नारद ऋभुरङ्गिरा देवलोऽसितः । अपां तरतमो व्यासो मार्कण्डेयोऽथ गौतमः॥१२॥
वसिष्ठो भगवान् रामः कपिलो बादरायणिः । दुर्वासा याज्ञवल्क्यश्च जातूकर्ण्यस्तथारुणिः॥१३॥
रोमशश्च्यवनो दत्त आसुरिः सपतञ्जलिः । ऋषिर्वेदशिरा बोध्यो मुनिः पञ्चशिरास्तथा॥१४॥
हिरण्यनाभः कौसल्यः श्रुतदेव ऋतध्वजः । एते परे च सिद्धेशाश्चरन्ति ज्ञानहेतवः ॥१५॥

अन्वयः— कुमार, नारदः, ऋभुः, अङ्गिरा, देवलः, असितः, अपान्तरतमः, व्यासः मार्कण्डेयः अथ गौतमः, वसिष्ठः भगवान् रामः, कपिलः, बादरायणिः, दुर्वासा, याज्ञवल्क्यः, जातूकर्ण्यः आरुणिः रोमशः, च्यवनः, दत्तः, आसुरिः, पतञ्जलिः, वेदशिरा ऋषिः, बोध्यमुनिः, तथा पञ्चाशिराः, हिरण्यनाभः, कौसल्यः, श्रुतदेवः, ऋतध्वजः, एते परेच सिद्धेशाः ज्ञानहेतवः चरन्ति ॥१२-१५॥

अनुवाद— सनत्कुमार, नारद, ऋभु, अङ्गिरा, देवल, असित, अपान्तरतम व्यास, मार्कण्डेय, गौतम वसिष्ठ, भगवान् परशुराम, कपिलदेव, शुकदेव व दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातूकर्ण्य, आरुणिः, रोमश, च्यवन, दत्तात्रेय, आसुरि, पतञ्जलि, वेदशिराः, बोध्यमुनि, पञ्चशिरा, हिरण्यनाभ कौसल्य, श्रुतदेव और ऋतध्वज ये सबके सब तथा दूसरे सिद्धेश्वर ऋषि मुनि ज्ञानदान करने के लिए पृथिवी पर विचरण किया करते हैं ॥१२-१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२-१५॥

तस्माद्युवां ग्राम्यपशोर्मम मूढधियः प्रभू । अन्धे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदीर्यताम् ॥१६॥

अन्वयः— तस्मात् हे प्रभू ! अन्धे तमसि भग्नस्य ममग्रम्यपशोः मूढधियः, ज्ञानदीपः उदीर्यताम् ॥१६॥

अनुवाद— अतएव हे स्वामियों मैं घोर अज्ञानन्धकार में फँसा हुआ विषयासक्त अज्ञानी जीव हूँ, आपलोग मुझे ज्ञानदीप का प्रकाश प्रदान करें ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

मम प्रभू रक्षकौ बोधे समर्थाविति वा । अतो युवाभ्यां ज्ञानदीपः प्रवर्त्यताम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

आप दोनों मेरे रक्षक एवं स्वामी है। मुझे ज्ञान देने में समर्थ हैं। अतएव आप दोनों मुझे ज्ञान प्रदान करें॥१६॥

अङ्गिरा उवाच

अहं ते पुत्रकामस्य पुत्रदोऽस्म्यङ्गिरा नृप । एष ब्रह्मसुतः साक्षान्नारदो भगवानृषिः ॥१७॥

अन्वयः— हे नृप ! अहं पुत्रकामस्यते पुत्रदः अङ्गिरा अस्मि, एषः ब्रह्मसुतः साक्षात् भगवान् ऋषिः नारदः॥१७॥

अङ्गिरा महर्षि ने कहा

अनुवाद— राजन् मैं अङ्गिरा हूँ। पुत्र की कामना वाले तुमको मैंने ही पुत्र प्रदान किया था और ये ब्रह्माजी के पुत्र साक्षात् भगवान् नारद ऋषि हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

इत्थं त्वां पुत्रशोकेन मग्नं तमसि दुस्तरे । अतदर्हमनुस्मृत्य महापुरुषगोचरम् ॥१८॥
अनुग्रहाय भवतः प्राप्तावावामिह प्रभो । ब्रह्मण्यो भगवद्भक्तो नावसीदितुमर्हति ॥१९॥

अन्वयः— पुत्र शोकेन इत्थं दुस्तरे तमसि मग्नंत्त्वां महापुरुषगोचरम् अतदर्हम् अनुस्मृत्य प्रभो भवतः अनुग्रहाय इह प्राप्तौ । ब्रह्मण्यो भगवद्भक्तः अवसीदितुम् न अर्हति ॥१८-१९॥

अनुवाद— पुत्र शोक के कारण दुस्तर अज्ञानान्धकार में डूबते हुए श्रीहरि के भक्त तुम को देखकर तुम पर कृपा करने के लिए हमदोनों यहाँ आये हैं। ब्रह्मण्य तथा भगवद् भक्त तुमको तो शोक करना ही नहीं चाहिए ॥१८-१९॥

भावार्थ दीपिका

महापुरुषगोचरं हरिभक्तं त्वाम् ॥१८-१९॥

भाव प्रकाशिका

महापुरुषगोचरम् अर्थात् श्रीहरि के भक्त तुमको ॥१८-१९॥

तदैव ते परं ज्ञानं ददामि गृहमागतः । ज्ञात्वान्याभिनिवेशं ते पुत्रमेव ददावहम् ॥२०॥

अन्वयः— तदैव ते परंज्ञानं ददामि इति गृहम् आगतः ते अन्याभिनिवेशं ज्ञत्वा पुत्रमेव अहम् ददौ ॥२०॥

अनुवाद— उसी समय मैं तुमको सर्वोत्तम ज्ञान का उपदेश देने के लिए तुम्हारे घर आया था; किन्तु तुम्हारे हृदय में पुत्र की अभिलाषा देखकर मैंने तुम्हें पुत्र प्रदान कर दिया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तदैव यदा पूर्वमागतोऽस्मि ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

जब मैं पहले आया था उसी समय ॥२०॥

अधुना पुत्रिणां तापो भवतैवानुभूयते । एवं दारा गृहा रायो विविधैश्वर्यसम्पदः ॥२१॥
शब्दादयश्च विषयाश्चला राज्यविभूतयः ।
मही राज्यं बलं कोशो भृत्यामात्याः सुहृज्जनाः ॥२२॥

अन्वयः— अधुना भवता एव पुत्रिणां तापः अनुभूयते । एवं दाराः गृहाः रायः, विविधैश्वर्यसम्पदः शब्दादयः विषयाः, राज्यविभूतयः, मही, राज्यं बलं, कोशः, भृत्याः आमात्याः, सुहृत् जनाः चलाः ॥२१-२२॥

अनुवाद— इस समय तुम स्वयम् अनुभव कर सकते हो कि पुत्रवानों को कितना कष्ट होता है, उसी तरह स्त्री, घर, धन, विविध प्रकार के ऐश्वर्य संपत्तियाँ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषय, राज्य का वैभव, पृथिवी, राज्य, सेना, खजाना, सेवक, आमात्य, सगे सबन्धी, इष्ट मित्र सबके सब अत्यन्त अनित्य है॥२१-२२॥

भावार्थ दीपिका

रायः अर्थाः । चला अनित्याः किंच महीति ॥२१-२२॥

भाव प्रकाशिका

रायः = धन, चलाः = अनित्याः और पृथिवी भी अनित्य है ॥२१-२२॥

सर्वेऽपि शूरसेनेमे शोकमोहभयार्तिदाः । गन्धर्वनगरप्रख्याः स्वप्नमायामनोरथाः ॥२३॥
दृश्यमाना विनाऽर्थेन न दृश्यन्ते मनोभवाः । कर्मभिर्ध्यायतो नाना कर्माणि मनसोऽभवन्॥२४॥

अन्वयः— हे शूरसेन ! इमे सर्वे अपि शोकमोहभयप्रदा, गन्धर्वनगर प्रख्याः स्वप्नमायामनोरथाः अर्थेन विना दृश्यमानाः मनोभवाः न दृश्यन्ते कर्मभिः ध्यायतः मनसः नाना कर्माणि अभवन् ॥२३-२४॥

अनुवाद— हे शूरसेन ! अतएव ये सभी शोक, मोह एवं भय प्रदान करने वाले हैं, ये गन्धर्व नगर के समान स्वप्न, माया तथा मनोरथ के समान असत्य हैं । विषय के बिना ही इनकी प्रतीति होती है । मनः कल्पित वस्तुओं की प्राप्ति कभी नहीं होती है । जो लोग कर्म की वासनाओं से प्रेरित होकर विषयों का चिन्तन करते हैं उन्हीं का मन अनेक प्रकार के कर्मों की सृष्टि करता है ॥२३-२४॥

भावार्थ दीपिका

हे शूरसेन, इमे सर्वेऽपि शोकादिप्रदाः । किंच आगमापायित्वेन गन्धर्वनगरतुल्याः । गन्धर्वनगरं ह्यकस्मादेव क्वचिदायात्यपयाति चेति प्रसिद्धम् । तदेवम् नित्यत्वं शोकादिहेतुत्वं चागमापायित्वं चोक्तम् । मिथ्यात्वमप्याह-स्वप्नश्च माया च मनोरथश्च यथा तद्वत् । मनोभवा मनोमात्रविजृम्भिताः । अत्र हेतुः अर्थेन तात्त्विकस्वरूपेण विनैव दृश्यमानाः । तत्कुतः। यस्मात्क्षणान्तरे न दृश्यन्ते । तात्त्विकत्वे हि क्षणान्तरे बाधो न स्यात् । अतो मनोमात्रविजृम्भितत्वेन स्वप्नादिवन्मिथ्याभूता इत्यर्थः । नन्वेते पुण्यापुण्यकृता इति मीमांसकाः प्राहुस्तत्कुतो मनोभवत्वं तत्राह-कर्मभिः कर्मवासनाभिरर्थान् ध्यायतः पुंसो मनस एव निमित्तात्कर्माण्यभवन् । पाठान्तरे कर्म ईप्सिततममभिध्यायत इत्यर्थः । कर्मणोऽपि मनोभवत्त्वात्तत्साध्या अर्था अपि मनोभवा एवेति भावः ॥२३-२४॥

भाव प्रकाशिका

हे शूरसेन ये सबके सब शोक आदि को प्रदान करने वाले हैं । ये विनाशशील होने के कारण गन्धर्व नगर के समान मिथ्या हैं । लोक में प्रसिद्ध है कि गन्धर्व नगर अचानक कभी उदित होता है और अपने आप विनष्ट हो जाता है । उसी के समान ये सब अनित्य है । शोक आदि को प्रदान करते हैं । ये सभी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं और विनष्ट हो जाती हैं । ये सभी स्वप्न माया, और मनोरथ के समान मिथ्या हैं । ये मन से ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि इनका कोई तात्त्विक स्वरूप नही होता है फिर भी इनकी प्रतीति होती है । क्योंकि ये क्षणभर के बाद नहीं दिखाई पड़ते हैं । यदि ये सभी पदार्थ वास्तविक होते तो इनका बाधनहीं होता, क्योंकि जो सत्य वस्तु होती है उसका बाध नहीं होता है । केवल मनः कल्पित होने के कारण स्वप्न आदि के समान मिथ्या हैं। यदि कहें कि ये सभी वस्तुएँ पुण्य और पाप कर्मों के फल हैं इस तरह से मीमांसक विद्वान कहते हैं अतएव इनको मनः कल्पित कैसे कहा जा सकता है, तो इस पर महर्षि ने कहा जो लोग कर्म की वासना से विषयों का चिन्तन करते हैं उनका ही मन अनेक प्रकार के कर्मों की सृष्टि करता है । जहाँ **कर्मभिःध्यायतः** इसतरह का पाठ भेद है वहाँ अर्थ होगा कि अपने अत्यन्त अभिप्रेत वस्तु का चिन्तन करने वालों का ही मन अनेक प्रकार के विषयों की सृष्टि करता है। कर्म भी मनोजन्य होने के करण कर्म जन्य वसतुएँ भी मनोजन्य ही हैं। यही अभिप्राय हैं ॥२३-२४॥

अयं हि देहिनो देहो द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः । देहिनो विविधक्लेशसंतापकृदुदाहृतः ॥२५॥

अन्वयः— देहिन हि अयं द्रव्यज्ञान क्रियात्मकः देहः देहिनः विविधक्लेशसंतापकृत उदाहृतः ॥२५॥

अनुवाद— शरीरधारियों का पञ्चभूत, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों का समूह रूप यह देह भी जीवों को अनेक प्रकार के क्लेशों और सन्तापों को प्रदान करने वाला कहा गया है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं ममतास्पदानां पुत्रादीनां दुःखादिहेतुत्वमुक्तं तत्र देहसंबन्धो मूलमित्याह- अयं हीति । हीत्यवधारणे । अयं द्रव्यज्ञानक्रियात्मकोऽधिभूताधिदैवाध्यात्मरूपो देह एव देहिनो देहोऽहमिति मन्यमानस्य देहिनो जीवस्य विविधान् क्लेशान्संतापांश्च करोतीति तथा ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार ममता के विषय भूत पुत्र आदि को दुःखप्रद बतलाया जा चुका है । इसका कारण भी देह का सम्बन्ध है । इस बात को **अयं हि० इत्यादि** श्लोक से कहा जा चुका है कि यह अवयय निश्चयार्थक है यह शरीर पञ्चमहाभूत, ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों का संघात रूप है और अधिभूत, अधिदैव और अध्यात्म रूप यह देह मैं देह हूँ इस तरह से देहाभिमानी जीव को अनेक प्रकार के क्लेशों और सन्तापों को प्रदान करता है॥२५॥

तस्मात्स्वस्थेन मनसा विमृश्य गतिमात्मनः । द्वैते ध्रुवार्थविश्रम्भं त्यजोपशममाविश ॥२६॥

अन्वयः— तस्मात् स्वस्थेन मनसा आत्मनः गतिं विमृश्य द्वैते ध्रुवार्थविश्रम्भं त्यज उपशमम् आविश ॥२६॥

अनुवाद— अतएव तुम अपने मन को शान्त करो स्वस्थ मन से आत्मा के स्वरूप का चिन्तन करो । तथा इन सभी भेदों में नित्यत्व के विश्वास का परित्याग करो तथा परम शान्ति स्वरूप परमात्मा में स्थित हो जाओ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

स्वस्थेनाव्यग्रेण । गतिं तत्त्वम् । ध्रुवोऽयमर्थ इति विश्रम्भं विश्वासं प्रणयं वा त्यज । ततश्चोपशममाविशाश्रय ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

स्वस्थेन अर्थात् शान्ति पूर्वक गतिम् अर्थात् तत्त्व के । यह होना निश्चित है यह सोचकर विश्वास अथवा प्रेम को त्याग दो और शान्त हो जाओ ॥२६॥

नारद उवाच

एतां मन्त्रोपनिषदं प्रतीच्छ प्रयतो मम । यां धारयन्सप्तरात्राद्द्रष्टा सङ्कर्षणं प्रभुम् ॥२७॥

अन्वयः— प्रयतः एतां मन्त्रोपनिपदं मम प्रतीच्छ यां धरयन् सप्त रात्राद् सङ्कर्षणं प्रभुं द्रष्टा ॥२७॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! तुम सावधानी पूर्वक मुझसे इन मन्त्रोपनिषद् को ग्रहण करो । इसको धारण करके तुम सात रातों में ही भगवान् सङ्कर्षण का दर्शन कर लोगे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अङ्गिरसोपदिष्टं तत्त्वं परमेश्वरप्रसादं विना न प्राप्यत इति तत्प्रसादाय मन्त्रविद्यां नारद उपदिशति-एतामिति । उपनिषण्णं परं श्रेयोऽस्यामित्युपनिपत् । मन्त्र एवोपनिपत्तां प्रतीच्छ गृहाण । द्रष्टा द्रक्ष्यति भवान् ॥२७॥'

भाव प्रकाशिका

देवर्षि नारदजी ने कहा कि अङ्गिरा महर्षि के द्वारा उपदिष्ट तत्त्वज्ञान परमात्मा की कृपा के बिना नहीं प्राप्त होता है । अतएव परमात्मा की कृपा की प्राप्ति के लिए देवर्षि नारद मन्त्र विद्या का उपदेश करते हैं एतामित्यादि श्लोक के द्वारा । जिसमें परं कल्याण विद्यमन हो उसको उपनिषत् कहते हैं । मन्त्र ही उपनिषत् है उस उपनिषत् को तुम ग्रहण करो । उसका ग्रहण करके तुम सात रातों में ही भगवान् सङ्कर्षण का साक्षात्कार कर लोगे ॥२७॥

यत्पादमूलमुपसृत्य नरेन्द्र पूर्वे शर्वादयो भ्रममिमं द्वितयं विसृज्य ।
सद्यस्तदीयमतुलानधिकं महित्वं प्रापुर्भवानपि परं न चिरादुपैति ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठ स्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अन्वयः— नरेन्द्र ! यत् पादमूलम् उपसृत्य पूर्वे शर्वादयः इमं द्वितयं भ्रमम्विसृज्य सद्यः तदीयम् अतुलानधिकं महित्वं प्रापुः भवान् अपि न चिरात् परं उपैति ।।२८।।

अनुवाद— नरेन्द्र प्राचीन काल में भगवान् शङ्कर आदि उन्हीं के चरण कमलों का आश्रय ग्रहण करके द्वैत भ्रम का परित्याग कर दिया और उनकी उस महिमा को प्राप्त किया जिससे बढ़कर कोई है ही नहीं । तुम भी शीध्र ही उसी परम पद को प्राप्त कर लोगें ॥२८॥

इस तरह श्रीमद्भागतव महापुराण के छठे स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अतुलं च तदनधिकं च समानाधिकशून्यं परं महिमानं प्रापुः । उपैत्युपैष्यति ।।२८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अतुलानधिकम् का अर्थ है अतुलनीय किन्तु भगवान् सङ्कर्षण की महिमा से अधिक नहीं ॥२८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के पन्द्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१५।।

सोलहवाँ अध्याय

चित्रकेतु का वैराग्य और उनको भगवान् सङ्कर्षण का दर्शन

श्रीशुक उवाच

अथ देवऋषी राजन् संपरेतं नृपात्मजम् । दर्शयित्वेति होवाच ज्ञातीनामनुशोचताम् ॥१॥

अन्वयः— राजन् अथ देवऋषिः संपरेतं नृपात्मजं दर्शयित्वा अनुशोचताम् ज्ञातीनाम् उवाच ह ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! उसके पश्चात् देवर्षि नारदजी ने मृत राजकुमार के जीवात्मा को शोकाकुल स्वजनों के सामने प्रत्यक्ष बुलाकर कहा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षोडशे तत्सुतोत्तयैव विशोकीकृत्य तं नृपम् । आदिदेश महाविद्यां नारदः शेषतोषणीम् । आदौ तावत्तत्पुत्रमुखेनैव पितृपुत्रादिसंबन्धो मिथ्येति दर्शयितुं योगबलेन तमेव ज्ञातीनां दर्शयित्वा जीवात्मन्नित्याद्युवाच ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सोलहवें अध्याय में राजकुमार के वचनों से ही राजा को शोक रहित बनाकर दवेर्षि ने उनका भगवान् शेष को

प्रसन्न करने वाली विद्या का उपदेश दिया । सर्वप्रथम राजकुमार के ही मुख से पिता पुत्र आदि समबन्धों को मिथ्या कहलवाने के लिए देवर्षि नारदजी योग के बल से उसको ही उसके संबन्धियों को दिखलाकर कहे हे जीवात्मा इत्यादि॥१॥

नारद उवाच

जीवात्मन्पश्य भद्रं ते मातरं पितरं च ते । सुहृदो बान्धवास्तप्ताः शुचा त्वत्कृतया भृशम् ॥२॥

अन्वयः— हे जीवात्मन् ते भद्रम ते मातरं पितरं च ते सुहृदः बान्धवाः त्वत्कृतया शुचा भृशम् तप्ता ॥२॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— जीवात्मन् तुम्हारा और तुम्हारे माता-पिता का कल्याण हो । तुम्हारे वियोग में तुम्हारे सुहृदों और बान्धव अत्यन्त सन्तप्त हो रहे हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

कलेवरं स्वमाविश्य शेषमायुः सुहृद्वृतः । भुङ्क्ष्व भोगान्पितृप्रत्तानधितिष्ठ नृपासनम् ॥३॥

अन्वयः— एवं कलेवरम् आविश्य शेषम् आयुः पितृप्रत्तान् भोगान् सुहृदवृतः भुंक्ष्व नृपासनम् अधितिष्ठ ॥३॥

अनुवाद— तुम अपने शरीर में प्रवेश करके अवशिष्ट आयु को तथा अपने पिता के द्वारा प्रदत्त भोगों को अपने सुहृदों के साथ भोगो और राजसिंहासन पर बैठो ॥३॥

भावार्थ दीपिका

शेषमवशिष्टमायुरस्ति । अपमृत्युना मृतत्वादित्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

आयु तो अवशिष्ट है ही क्योंकि तुम अपमृत्यु से मरे हो ॥३॥

जीव उवाच

कस्मिञ्जन्मन्यमी मह्यं पितरो मातरोऽभवन् । कर्मभिर्भ्राम्यमाणस्य देवतिर्यङ्नृयोनिषु ॥४॥

अन्वयः— कर्मभिः देवतिर्यङनृयोनिषु भ्राम्यमाणस्य मह्यम् अमी कस्मिन् जन्मनि पितरो मातरो अभवन् ॥४॥

जीव ने कहा

अनुवाद— देवर्षे ! मैं अपने कर्मों के कारण देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि योनियों में अनेक जन्मों से भटक रहा हूँ, उनमें से किस जन्म में ये लोग मेरे माता-पिता हुए ?॥४॥

भावार्थ दीपिका

तदेव कलेवरं प्रविश्योत्थितो जीव उवाच । यद्वा अन्तराले प्रेतशरीरे स्थित्वेति ज्ञेयम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

उसी शरीर में अथवा प्रेत शरीर में प्रवेश होकर उस जीव ने कहा ॥४॥

बन्धुज्ञात्यरिमध्यस्थमित्रोदासीनविद्विषः । सर्व एव हि सर्वेषां भवन्ति क्रमशो मिथः ॥५॥

अन्वयः— सर्वे एव हि क्रमशः मिथः सर्वेषां बन्धुज्ञात्यरिमध्यस्थमित्रोदासीन विद्विषः भवन्ति ॥५॥

अनुवाद— विभिन्न जन्मों में सभी एक दूसरे के भाई बन्धु, ज्ञाति, शत्रु, मित्र मध्यस्थ तथा उदासीन हुआ करते हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

मयि मृते पुत्रदृष्ट्या शोकश्चेच्छत्रुदृष्ट्या हर्षः किं न क्रियत इत्याशयेन संबन्धस्यानियतत्वमाह-बन्धवो विवाहादिभिः संबन्धिनः, ज्ञातयः सपिण्डाः, अरयो घातकाः, मित्राणि रक्षकाः, मध्यस्था उभयव्यतिरिक्ताः साधारणाः, विद्विषो द्रव्यादिनिमित्तेन द्वेषिणः, उदासीनास्तव्यतिरिक्ता इति भेदः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

मेरे मर जाने पर यदि पुत्र की दृष्टि से शोक है तो शत्रु की दृष्टि से ये लोभ हर्षित क्यों नहीं होते हैं ? संबन्ध कोई निश्चित नहीं हैं, विवाह आदि के सम्बन्धी बन्धु होते हैं, एक गोत्र के लोग ज्ञाति होते हैं । मारने वाले शत्रु होते हैं ।, रक्षा करने वाले मित्र कहलाते हैं, इन दोनों से भिन्न मध्यस्थ होते हैं । किसी द्रव्य आदि के कारण द्वेष करने वाले विद्वेषी हैं । उन सबों से भिन्न लोग उदासीन कहलाते हैं ॥५॥

यथा वस्तूनि पण्यानि हेमादीनि ततस्ततः । पर्यटन्ति नरेष्वेवं जीवो योनिषु कर्तृषु ॥६॥

अन्वयः— यथा हेमादीनि पण्यानि वस्तूनि ततः ततः नरेषु पर्यटन्ति एवं जीवः कर्तृषु योनिषु ॥६॥

अनुवाद— जिस तरह सुवर्ण आदि क्रय-विक्रय की वस्तुएँ एक व्यापारी से दूसरे व्यापारी के पास आती जाती रहती हैं उसी तरह जीव भी विभिन्न योनियों में उत्पन्न होता रहता हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

कर्मभिर्भ्राम्यमाणत्वे दृष्टान्तः-यथा पण्यानि क्रयविक्रयाद्यर्हाणि कर्तृषु व्यवहर्तृषु परिभ्रमन्ति । एवं जीवोऽपि योनिषु जनकेषु ॥६॥

भाव प्रकाशिका

जीव कर्मों के अनुसार विभिन्न योनियों में भटकता रहता है इसके उदाहरण रूप में उसने कहा जिस तरह क्रय विक्रय की वस्तुएँ व्यापारियों के पास आती जाती रहती हैं, उसी तरह जीव भी विभिन्न योनियों और पिता आदि के यहाँ उत्पन्न होता रहता है ॥६॥

नित्यस्यार्थस्य संबन्धो ह्यनित्यो दृश्यते नृषु । यावद्यस्य हि संबन्धो ममत्वं तावदेव हि ॥७॥

अन्वयः— नित्यस्य अर्थस्थ नृषु संबन्धः अनित्यः दृश्यते यस्य यावद् हि संबन्धः तावदेव ममत्वम् ॥७॥

अनुवाद— विचार करने पर पता चलता है कि अधिक दिन तक ठहरने वाले सुवर्ण आदि का मनुष्यों के साथ संबन्ध स्थानीय होकर क्षणिक होता है । जिसका जिसके साथ जब तक संबन्ध रहता है, उसके प्रति उसका उतने ही समय तक ममत्व रहता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

एकस्मिन्नपि जन्मनि संबन्धस्यानियतत्वं सदृष्टान्तमाह द्वाभ्याम् । नित्यस्य जीवतोऽप्यर्थस्य पश्वादेः । अनित्योऽनियतः विक्रयादिना संबन्धनिवृत्तेः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

एक जन्म में भी संबन्ध की अनियतता को दो श्लोकों में दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक जीव कहता है । नित्य जीव के साथ पशु आदि का संबन्ध क्रय-विक्रय आदि के द्वारा अनियत देखा जाता है । जब तक जिसका जो पशु रहता है तब तक ही उसके प्रति ममत्व रहता है बिक जाने पर उसके प्रति ममता समाप्त हो जाती है ॥७॥

एवं योनिगतो जीवः स नित्यो निरहंकृतः । यावद्यत्रोपलभ्येत तावत्स्वत्वं हि तस्य तत् ॥८॥

अन्वयः— एवं नित्यः निरहंकृतः जीव योनिगतः यावत् यत्र उपलभ्यते तावत् ही तत् स्वत्वम् ॥८॥

अनुवाद— जीव नित्य और अहङ्कार रहित है वह गर्भ में आकर जब तक जिस शरीर में रहता है तभी तक वह उस शरीर का अपना मानता है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

एवं योनिगतः पित्रादिसंबन्धं प्राप्तोऽपि स जीवो नित्यः । देहजन्मादिना तस्य जन्माद्यभावात् । अतएव वस्तुतो निरहंकृतोऽहमस्य पुत्र इत्यभिमानशून्यः । यत्र पित्रादौ संबन्धिनि यावदुपलभ्येत कर्मवशेन वर्तेत तावदेव तस्य पित्रादेस्तत्तस्मिन् स्वत्वं, नतु विक्रयादुत्तरकालमपि । अथवैवं संबन्धः-यदुक्तं कलेवरं समाविश्येति तत्र तस्मिन्कलेवरे ममेदानीं स्वत्वं निवृत्तमिति सदृष्टान्तमाह-नित्यस्य चिरकालावस्थायिनः सुवर्णादेः । योनिगतो देहं प्रविष्टः । यत्र देहे । तस्य जीवस्य तत्तस्मिन्देहे स्वत्वम्। नतु मरणोत्तरकालमपीत्यर्थः । शेषं समानम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

इसी तरह गर्भ में आकर पिता आदि के साथ सम्बन्ध प्राप्त करके भी वह नित्य जीव, क्योंकि देह आदि का ही जन्म होता है जीव तो नित्य है । अतएव वह मैं इसका पुत्र हूँ इस प्रकार के अभिमान से रहित है । वह जहाँ पिता इत्यादि संबन्धियों के साथ अपने कर्म के अनुसार रहता है तब तक उसका पिता इत्यादि से स्वत्व होता है । अथवा ऐसा इसका सम्बन्ध है । नारदजी ने यह जो कहा कि इस शरीर में प्रवेश करके रहो तो उस शरीर के प्रति इस समय मेरा ममत्व समाप्त हो गया है । जैसे चिरकाल स्थायी सुवर्ण आदि का सम्बन्ध भी अस्थायी होता है । इसी तरह देह में प्रविष्ट जीव का जिस देह में जब तक निवास होता है तभी तक उसका शरीर के प्रति ममत्व रहता है । मृत्यु के पश्चात् नहीं ॥८॥

एष नित्योऽव्ययः सूक्ष्म एष सर्वाश्रयः स्वदृक् । आत्ममायागुणैर्विश्वमात्मानं सृजते प्रभुः ॥९॥

अन्वयः— एषः नित्यः अव्ययः सूक्ष्मः सर्वाश्रयः स्वदृक् आत्ममायागुणैः प्रभुः विश्वम् आत्मानं सृजते ॥९॥

अनुवाद— यह जीव नित्य अविनाशी और सूक्ष्म (जन्मादि से रहित) है यह सबों का आश्रय और स्वयं प्रकाश है । इसमें स्वरूपतः जन्म मृत्यु कुछ भी नहीं होता है । फिर भी यह ईश्वर रूप होने के कारण अपनी माया के गुणों से ही अपने आपको विश्व के रूप में प्रकट कर देता है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

जीवस्य नित्यत्वं साधयति-एष नित्यः । तत्र हेतुः-अव्ययोऽपक्षयशून्यः । तत्कुतः, सूक्ष्मो जन्मादिशून्यः । तच्च कुतः, सर्वाश्रयो जन्मादिगतो देहादेराश्रयो नतु देहादिरूपः । यतः स्वदृक् स्वप्रकाशः । सर्वाश्रयत्वमुपपादयति । आत्मनो मायाया गुणैरात्मानमेव विश्वं विश्वात्मकं सृजति । 'तदात्मानँस्वयमकुरुत इति श्रुतेः । उपादानकारणत्वात्सर्वाश्रय इत्यर्थः । जीवस्य वस्तुतो ब्रह्मत्वाद्ब्रह्मण एव चिच्छक्तिविशिष्टस्येश्वरत्वेन स्रष्टृत्वाज्जीवः सृजतीति वाचोयुक्तिः । यद्वा स्वकर्मद्वारा सृष्टिनिमित्तत्वेन स्रष्टृत्वं भोग्यस्य च सर्वस्य भोक्त्रा श्रयत्वात्सर्वाश्रयत्वं चोक्तमिति द्रष्टव्यम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक से जीव की नित्यता सिद्ध करता है । जीव नित्य है क्योंकि यह विकार शून्य है । क्योंकि इसका जन्म आदि नहीं होता है । क्योंकि यह उत्पन्न होने वाले देह आदि का आश्रय है न कि देहादि स्वरूप है । अतएव यह स्वयम्प्रकाश है । जीव के सर्वाश्रयत्व का प्रतिपादन करते हुए कहता है यह अपनी माया के गुणों से अपने को ही विश्व के रूप में प्रकट कर देता है । श्रुति भी कहती है **तदात्मानं स्वयमकुरुत** । अर्थात्

उस जीव ने स्वयम् अपने को विश्वरूप बना दिया । यह उपादान कारण होने के कारण सबों का आश्रय है । वस्तुत: जीव ब्रह्म ही हैं । वह ब्रह्म के ही चित् शक्ति से विशिष्ट होने के कारण ईश्वर रूप से स्रष्टा होने के कारण जीव सृष्टि करता है । अथवा अपने कर्म द्वारा सृष्टि का निमित्त कारण होने के कारण स्रष्टा है । सभी भोग्य पदार्थों के भोक्ता का आश्रय होने के कारण सर्वाश्रय कहा गया है ॥९॥

नह्यस्यातिप्रिय: कश्चिन्नाप्रिय: स्व: परोऽपि वा । एक: सर्वधियां द्रष्टा कर्तॄणां गुणदोषयो: ॥१०॥

अन्वय:— अस्य कश्चित् अतिप्रिय नहि न अप्रिय: न वा स्व: पर: आपि एक: सर्वधियां गुणदोषयो: कर्तॄणां द्रष्टा॥१०॥

अनुवाद— इसका न तो कोई अत्यन्त प्रिय है और न तो अप्रिय, न तो अपना और न पराया है । क्योंकि गुणदोष (हित-अहित) करने वाले शत्रु मित्र आदि की भिन्न-भिन्न बुद्धियों वृत्तियों का यह अकेला साक्षी है । वस्तुत: यह अद्वितीय है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं सुहृद्वृत इति सुहृदो बान्धवास्तप्ता इति च तत्राप्याह-नह्यस्येति । तत्र हेतु:-एक: सुहृदादिसङ्गरहित: । तत्कुत: गुरुदोषयोर्हिताहितयो: कर्तॄणां मित्रादीनां या: सर्वा धियो विचित्रा बुद्धयस्तासां द्रष्टा साक्षी ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने यह जो कहा कि तुम्हारे सुहृद अत्यन्त संतप्त है, तुम इन सुहृदों के साथ रहों । इसके उत्तर में उसने कहा जीव का कोई प्रिय या अप्रिय नहीं है इत्यादि । क्योंकि जीव सुहृदों आदि की आसक्ति से रहित होने के कारण एक अर्थात् अद्वितीय है । क्योंकि हित और अहित करने वाले मित्रों और शत्रुओं की विचित्र बुद्धियों का यह द्रष्टा (साक्षी) है ॥१०॥

नादत्त आत्मा हि गुण न दोषं न क्रियाफलम् । उदासीनवदासीन: परावरदृगीश्वर: ॥११॥

अन्वय:— आत्मा हि परावर दृगीश्वर: न गुणं न दोषं न क्रियाफलम् आदत्ते उदासीनवत् आसीन: ॥११॥

अनुवाद— आत्मा कार्य और कारण का साक्षी है, अतएव यह शरीर आदि के गुण या दोष या कर्म फल को नहीं ग्रहण करता है सदा उदासीन भाव से स्थित रहता है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

यथोक्तं भुंक्ष्व भोगानित्यादि तत्राप्याह-नादत्त इति । गुणं सुखम् । दोषं दु:खम् । क्रियाफलं च राज्यादिकम् । उदासीनत्वे हेतु:-परावरदृक्कारणस्य कार्यस्य च साक्षी नतु भोक्ता । यत ईश्वरो देहादिपारतन्त्र्यशून्य: । अत एवंभूतस्य मम च युष्माकं च संबन्धाभावाच्छोकं मा कुरुतेति वाक्यार्थ: ॥११॥

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने यह जो कहा था कि तुम भोगों को भोगों, इसके उत्तर में जीव ने कहा आत्मा गुण (सुख) दोष (दु:ख) तथा कर्मों के फल राज्य इत्यादि को नहीं करता है । वह उदासीन बना रहता है । उसका कारण है कि वह कार्य तथा कारण का साक्षी है वह भोक्ता नहीं है । वह देह आदि के अधीन नहीं रहने के कारण ईश्वर है । इससे मुझसे और आपलोगों का कोई सम्बन्ध नहीं है । फलत: शोक करना व्यर्थ है ॥११॥

श्रीशुक उवाच

इत्युदीर्य गतो जीवो ज्ञातयस्तस्य ते तदा । विस्मिता मुमुचु: शोकं छित्त्वात्मस्नेहशृङ्खलाम् ॥१२॥

अन्वय:— इति उदीर्य जीव: गत: । तदा तस्य ते ज्ञातय: विस्मिता: आत्मस्नेहशृङ्खलाम् छित्वा शोकं मूमुचु: ॥१२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से कहकर वह जीव चला गया । उसकी बातों को सुनकर उसके सम्बन्धी विस्मित हो गये । उनका स्नेह का बन्धन कट गया और उसके मरने का शोक भी समाप्त हो गया ।।१२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१२।।

निर्हृत्य ज्ञातयो ज्ञातेर्देहं कृत्वोचिताः क्रियाः । तत्यजुर्दुस्त्यजं स्नेहं शोकमोहभयार्तिदम् ।।१३।।

अन्वयः— ज्ञातयः ज्ञातेः देहं निहृत्य, उचिताः, क्रियाः कृत्वा, शोकमोहभयार्तिदम्, दुस्त्यजं स्नेहं तत्यजुः ।।१३।।

अनुवाद— इसके पश्चात् उसकी जाति वालों ने उस बालक के शरीर को ले जाकर तत्कालोचित संस्कार और और्ध्व दैहिक क्रियाओं को सम्पन्न करके उस दुस्त्यज स्नेह को भी त्याग दिया जिसके कारण शोक, मोह, भय और दुःख की प्राप्ति होती है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१३।।

बालघ्न्यो व्रीडितास्तत्र बालहत्याहतप्रभाः । बालहत्याव्रतं चेरुर्ब्राह्मणैर्यन्निरूपितम् ।।
यमुनायां महाराज स्मरन्त्यो द्विजभाषितम् ।।१४।।

अन्वयः— महाराज ! तत्र बालहत्याहतप्रभाः बालघ्न्यः व्रीडिताः ब्राह्मणैः यत् निरूपितम् द्विजभाषितम् स्मरन्त्यः यमुनायां बाल हत्या व्रतं चेरुः ।।१४।।

अनुवाद— हे महाराज ! उसके पश्चात् बालक की हत्या करने के कारण जो श्रीहीन हो गयी थीं वे सभी लज्जा के कारण अपनी आँख भी नहीं उठा पाती थीं वे सभी रानियाँ अङ्गिरा ऋषि के उपदेश को याद करके मात्सर्यहीन हो गयीं और ब्राह्मणों के उपदेशानुसार उन सबों ने बाल हत्या व्रत का अनुष्ठान यमुना नदी में जाकर किया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

द्विजभाषितमङ्गिरसा प्रोक्तं पुत्रादीनां दुःखहेतुत्वं स्मरन्त्यः । पुत्रकामनाशून्या निर्मत्सराः सत्य इति भावः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि अङ्गिरा के द्वारा उपदिष्ट पुत्र आदि के दुःख का स्मरण करती हुई पुत्र की कामना से रहित होकर महर्षि के उपदेशानुसार यमुना में जाकर बालक की हत्या करने वाली रानियों ने पुत्रहत्या व्रत का अनुष्ठान किया ।।१४।।

स इत्थं प्रतिबुद्धात्मा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः । गृहान्धकूपान्निष्क्रान्तः सरः पङ्कादिव द्विपः ।।१५।।

अन्वयः— प्रतिबुद्धात्मा सः चित्रकेतु द्विजोक्तिभिः सरः पङ्कात् द्विपइव गृहान्धकूपात् निष्क्रान्तः ।।१५।।

अनुवाद— राजन् ! महर्षि अङ्गिरा और नारदजी के उपदेश से राजा चित्रकेतु विवेक बुद्धि उत्पन्न हो जाने के कारण गृहरूपी अन्धेकूप से उसी प्रकार निकल गये जिस तरह सरोवर के कीचड़ में फँसा हुआ हाथी उस कीचड़ से बाहर निकल जाय ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

निबिडपङ्कतुल्यं गृहं विहाय निष्क्रमणमतिधीरस्य तस्यैव योग्यं नान्यस्येति सदृष्टान्तमाह-स इत्थमिति । सरसः पङ्काद्द्विपो गज इव ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अत्यधिक कीचड़ के समान गृह को त्यागकर निकल जाना अत्यन्त धैर्य सम्पन्न उस राजा के ही लिए उचित

था दूसरों के लिए नहीं, इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक **सङ्क्त्थम्० इत्यादि** इस श्लोक के द्वारा कहा गया। जिस तरह सरोवर के कीचड़ में फँसा हाथी उससे बाहर निकल जाय ॥१५॥

कालिन्द्यां विधिवत्स्नात्वा कृतपुण्यजलक्रियः । मौनेन संयतप्राणो ब्रह्मपुत्राववन्दत ॥१६॥

अन्वयः— कालिन्द्यां विधिवत् स्नात्वा कृतपुण्यजलक्रियः संयतप्राणः मौनेन ब्रह्मपुत्रौ अवन्दत ॥१६॥

अनुवाद— महाराज चित्रकेतु ने यमुनाजी में विधिपूर्वक स्नान करके तर्पण आदि धार्मिक क्रियाओं को किया फिर संयतेन्द्रिय और मौन होकर उन्होंने ब्रह्माजी के पुत्र महर्षि अङ्गिरा तथा देवर्षि नारदजी के चरणों की वन्दना की ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

कृताः पुण्यजलक्रियाः पितृतर्पणाद्या येन । संयतप्राणो नियतेन्द्रियः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

जिसने तर्पण इत्यादि पुण्य कर्मों को कर लिया था ऐसे संयतेन्द्रिय राजा ने दोनों ब्रह्मपुत्रों के चरणों की वन्दना की ॥१६॥

अथ तस्मै प्रपन्नाय भक्ताय प्रयतात्मने । भगवान्नारदः प्रीतोविद्यामेतामुवाच ह ॥१७॥

अन्वयः— अथ प्रयतात्मने प्रपन्नाय भक्ताय तस्मै प्रीतो भगवान् नारदः एताम् विद्याम् उवाच ह ॥१७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् संयतेन्द्रिय शरणागत एवं भक्त राजा चित्रकेतु को प्रसन्न होकर भगवान् नारदजी ने इस विद्या का उपदेश दिया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

ॐ नमस्तुभ्यं भगवत वासुदेवाय धीमहि । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥१८॥

अन्वयः— ओम् भगवते वासुदेवाय तुभ्यं धीमहि नमः प्रद्युम्नाय, अनिरुद्धाय, सङ्कर्षणाय च नमः ॥१८॥

अनुवाद— ओङ्कार स्वरूप हे भगवन् ! वासुदेव हम अपका नमस्कार पूर्वक ध्यान करते हैं, आप वासुदेव प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सङ्कर्षण के रूप में क्रमशः, चित्त, बुद्धि, मन और अहङ्कार के अधिष्ठाता हैं । मैं आपके इस चतुर्व्यूह रूप को नमस्कार करता हूँ ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

नमो धीमहि ध्यायेम । मनसा नमस्याम इत्यर्थः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

हम अपको नमस्कार पूर्वक ध्यान करते हैं और मन से नमस्कार करते हैं ॥१८॥

नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये । आत्मारामाय शान्ताय निवृतद्वैतदृष्टये ॥१९॥

अन्वयः— विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये परमानन्दमूर्तये, आत्मारामाय शान्ताय निवृत्त द्वैत दृष्टये नमः ॥१९॥

अनुवाद— विशुद्ध विज्ञान स्वरूप, हे भगवन् आपकी मूर्ति परमानन्दमयी है, आप आत्मा राम और शान्त स्वरूप हैं, आपमें द्वैत (भेद) बुद्धि है ही नहीं ऐसे आपको हम नमस्कार करते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

निवृत्ता द्वैतदृष्टिर्यस्मात् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

भेद दृष्टि से रहित ॥१९॥

आत्मानन्दानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः । हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये ॥२०॥

अन्वयः— आत्मानन्दानुभूत्यैव, न्यस्तशक्त्युर्मये नमः हृषीकेशय, महते विश्वमूर्तये नमः ॥२०॥

अनुवाद— अपने स्वरूप भूत आनन्द की अनुभूति से ही आपने माया जन्य राग द्वेष आदि को त्यागा दिया है । ऐसे आपकों मैं नमस्कार करता हूँ । आप सर्वों के समस्त इन्द्रियों के प्रेरक हैं परम महान् विराट् स्वरूप आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

न्यस्ता निरस्ताः शक्त्यूर्मयो मायानिमित्ता रागद्वेषादयो येन ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

जिन्होंने माया जन्य रागद्वेषों का परित्याग कर यह न्यस्तशक्त्यूर्मये का अर्थ है ॥२०॥

वचस्युपरतेऽप्राप्य य एको मनसा सह । अनामरूपश्चिन्मात्रः सोऽव्यान्नः सदसत्परः ॥२१॥

अन्वयः— मनसा सह वचसि अप्राप्य उपरते अनामरूपः चिन्मात्रः सदसत्परः यः एकः प्रकाशते सः नः अव्यात्॥२१॥

अनुवाद— जिस आपका पता लगाने में प्रवृत्त मन तथा वाणी आप तक नहीं पहुँच सकने के कारण बीच से ही लौट आती है, उसके उपरत हो जाने पर नाम और रूप से रहित ज्ञान मान तथा कार्य एवं कारण से परे जो एक मात्र अद्वितीय रूप से प्रकाशित होने वाले आपको नमस्कार हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

नमसा सह वचस्यप्राप्योपरते सति य एक एव प्रकाशते । वचसीति सर्वेन्द्रियोपलक्षणम् । सोऽस्मानव्यात् । सदसत्परः कार्यकारणयोः कारणम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

आपका पता लगाने में प्रवृत्त मन के साथ वाणी आप तक नहीं पहुँच पाने के कारण बीच से लौट आती है, और वे दोनों जब अपने व्यापार से उपरत हो जाती हैं । तब नाम और रूप से रहित कारण और कार्य के भी कारण आप प्रकाशित होते हैं ऐसे आपको नमस्कार है ॥२१॥

यस्मिन्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यप्येति जायते । मृन्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥२२॥

अन्वयः— मृण्मयेषु मृज्जाति इव इदं यस्मिन् तिष्ठति अप्येति यतः च इदं जायते तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥२२॥

अनुवाद— जिस तरह मृण्मयों में मृत्तिका जाति स्थित रहती है और उन सबों में लीन होती है, उसी तरह यह कार्यकारण रूप सम्पूर्ण जगत् जिनमें स्थित है, जिनमें लीन होता है तथा जिनसे उत्पन्न होता है, उन परब्रह्म स्वरूप आपको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-यस्मिन्निति । यस्मिन्निदं कार्यकारणं तिष्ठत्यप्येति च, यतश्च जायते, मृन्मयेषु घटादिषु मृज्जातिर्मृन्मात्रमिव सर्वानुस्यूतं यत्तस्मै ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के सम्पूर्ण जगत् के कारणत्व का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं । जिस परब्रह्म से यह कार्य कारण रूप जगत् उत्पन्न होता है, उनमें ही स्थित रहता है, तथा उनमें ही उसी तरह से लीन हो जाता है जिस तरह घटादि में जाति ओत-प्रोत रहती है । ऐसे आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥२२॥

यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः । अन्तर्बहिश्च विततं व्योमवत्तन्नतोऽस्म्यहम् ॥२३॥

अन्वयः— अन्तर्बहिश्च व्योमवत् विततमपि यत् मनोबुद्धीन्द्रियासवः न स्पृशन्ति न विदुः तदहं नतोऽस्मि ॥२३॥

अनुवाद— आकाश के समान भीतर बाहर सर्वत्र व्यापक भी जिस ब्रह्म का स्पर्श, मन बुद्धि और इन्द्रियाँ न तो स्पर्श कर पाती हैं और न जान पाती हैं उसी परंब्रह्म परमात्मा आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

ननु सर्वानुस्यूतं चेन्मृज्जातिवत्प्रतीयेत कथं मनोवचसोरप्राप्तिस्तत्राह । यद्ब्रह्म व्योमवद्विततमपि । असवः प्राणाः क्रियाशक्त्या न स्पृशन्ति । मनआदीनि च ज्ञानशक्त्या न विदुः । तद्ब्रह्म नतोऽस्मि ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि यदि ब्रह्म सबों में ओत-प्रोत हैं तो फिर उनकी मृत्तिका जाति के समान प्रतीति क्यों नहीं होती है ? उसकी मन आदि की द्वारा अप्राप्ति कैसे कही गयी है ? तो इस पर कहते हैं जो ब्रह्म यद्यपि आकाश के समान व्यापक है फिर भी प्राण आदि अपनी क्रिया शक्ति के द्वारा स्पर्श नहीं कर पाते हैं और मन आदि अपनी ज्ञान शक्ति के द्वारा उसको नहीं जान पाते हैं । उस ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२३॥

देहेन्द्रियप्राणमनोधियोऽमी यदंशविद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु ।
नैवान्यदा लोहमिवाप्रतप्तं स्थानेषु तद्द्रष्ट्रपदेशमेति ॥२४॥

अन्वयः— यदंश विद्धा अमी देहेन्द्रियप्राणमनोधियः कर्मसु प्रचरन्ति अन्यदा नैव यथा अप्रतम् लोहं स्थानेषु न तद द्रष्ट्रपदेशम् एति ॥२४॥

अनुवाद— जिस तरह आपके चैतन्यांश से युक्त होकर ही ये सभी, देह, इन्द्रियाँ, मन, प्राण तथा बुद्धि जाग्रत तथा स्वप्नावस्था में अपना-अपना काम करते हैं, किन्तु सुषुप्ति की अवस्था तथा मूर्छा की अवस्था में आपके चैतन्यांश से युक्त नहीं होने के कारण काम नहीं करते हैं । यह ठीक उसी तरह होता है जैसे अग्नि से संतप्त होने पर ही लोहा जलाने का काम करता है अन्यथा नहीं करता है । द्रष्टा भी आपका ही नाम है उसे आप जाग्रत एवं स्वप्न की दशा में स्वीकार करते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तेषां तदज्ञाने हेतुमाह-देहेन्द्रियादयोऽमी यदंशविद्धा यच्चैतन्यांशेनाविष्टाः सन्तः कर्मसु स्वस्वविषयेषु प्रचरन्ति जाग्रत्स्वप्नयोः। अन्यदा सुषुप्तिमूर्च्छादौ नैव प्रचरन्ति । यथा अप्रतप्तं लोहं न दहति । अतो यथा लोहमग्निशक्त्यैव दाहकं सदग्निं बिना न दहत्येवं ब्रह्मगतज्ञानक्रियाशक्तिभ्यां प्रवर्तमाना देहादयस्तन्न स्पृशन्ति न विदुश्चेति भावः । जीवस्तर्हि द्रष्टृत्वाज्जानातु नेत्याह-स्थानेषु जाग्रदादिषु द्रष्ट्रपदेशं द्रष्टृसंज्ञां तदेवैति प्राप्नोति नान्यो जीवो नामास्ति । 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा' इत्यादिश्रुतेः । यद्वा द्रष्ट्रपदेशं द्रष्टृसंज्ञं जीवमपि तदेवैति जानाति नतु जीवस्तज्जानातीत्यर्थः । तदुक्तं हंसगुह्यस्तोत्रे 'देहोऽसवोऽक्षा' इत्यादि ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

देह तथा इन्द्रिय आदि को परम ब्रह्म का ज्ञान नहीं होने के कारण को इस श्लोक में बतलाते हैं । देह तथा इन्द्रिय आदि जब जाग्रत् और स्वप्न की अवस्था में उन पंरब्रह्म के चैतन्यांश से आविष्ट होते हैं तब ही अपने-अपने विषय में प्रवृत्त हो जाते हैं; जब वे सुषुप्ति तथा मूर्छा आदि की अवस्था में परंब्रह्म के चैतन्यांश से नहीं आविष्ट होने के ही कारण अपना-अपना कार्य करने में असमर्थ हो जाते हैं यह उसी तरह होता है जिस तरह अग्नि से संतप्त होने पर ही लोहा जलाने का काम करता है, क्योंकि उस समय वह अग्नि के शक्ति से युक्त होता है। अग्नि से संतप्त नही होने पर वह जलाने का काम नहीं करता है । इसी तरह ब्रह्म की ज्ञान शक्ति और

क्रियाशक्ति के द्वारा ही अपने कार्य में प्रवृत्त होने वाले देह आदि उस परब्रह्म का न तो स्पर्श कर पाते हैं और न तो उसको जान ही पाते हैं । यदि कहें कि तो फिर जीव को तो उसको जानना ही चाहिए क्योंकि जीव द्रष्टा है । इस पर कहते हैं कि ऐसी बात नहीं है क्योंकि जाग्रत् आदि अवस्थाओं में ब्रह्म ही जीव कहलाता है, ब्रह्म से भिन्न जीव नमक तत्त्व नहीं है । इसीलिए श्रुति कहती है— **नान्योऽतोऽस्तिद्रष्टा** अर्थात् ब्रह्म से भिन्न कोई द्रष्टा नहीं है । अथवा द्रष्टा संज्ञक जीव को भी वह ब्रह्म ही जानता है; जीव उस ब्रह्म को नहीं जानता है । इसी बात को हंस गुह्य स्तोत्र में **देहोऽसवोऽक्षा** इत्यादि श्लोक में कहा गया है ॥२४॥

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सकलसत्वतपरिवृढनिकरकरकमलकुड्मलोपलालितचरणारविन्दयुगल परम परमेष्ठिन्नमस्ते ॥२५॥

अनुवाद— ओङ्कार स्वरूप महाप्रभावशाली महाविभूति पति भगवान् महापुरुष को नमस्कार है । श्रेष्ठ भक्तों का समूह अपने करकमल की कलियों से आपके दोनों चरण कमलों की सेवा में सदा संलग्न रहता है । हे प्रभो! आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं । मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

सकला ये सात्वतपरिवृढास्तेषां निकरः समूहस्तस्य करकमलानां कुड्मलैर्मुकुलैरुपलालितं चरणारविन्दयुगलं यस्य तस्य संबोधनम् । परम उत्कृष्ट । परमेष्ठिन् सर्वेश्वर ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

हे सर्वेश्वर ! सम्पूर्ण श्रेष्ठ भक्तों का समूह अपने कर कमलों की कलियों से आपके दोनों चरण कमलों की सेवा में सदा संलग्न रहता है, हे सर्वश्रेष्ठ प्रभो ॥२५॥

श्रीशुक उवाच

भक्तायैतां प्रपन्नाय विद्यामादिश्य नारदः । ययावङ्गिरसा साकं धाम स्वायंभुवं प्रभो ॥२६॥

अन्वयः— हे प्रभो ! नारदः प्रपन्नाय भक्ताय एतां विद्याम् आदिश्य अङ्गिरसा साकं स्वायम्भुवं धाम ययौ ॥२६॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे परीक्षित् ! शरणागत भक्त चित्रकेतु को इस विद्या का उपदेश देकर नारदजी अङ्गिरा महर्षि के साथ ब्रह्माजी के लोक में चले गये ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वं सनारदोऽङ्गिरा आजगामेत्यङ्गिराः प्राधान्येनोक्तः । चित्रकेतोः पुत्रप्रदत्वेन तस्य पृथगुक्तत्वात् । इह तु नारदोऽङ्गिरसा साकं ययाविति नारदस्य प्राधान्यनिर्देशः । तदुपदेशेन तस्य वैराग्योत्पत्तेः । प्रभो हे समर्थ ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

पहले नारदजी के साथ अङ्गिरा महर्षि आये इस तरह से अङ्गिरा महर्षि को प्रधान रूप से कहा गया है । चित्रकेतु को पुत्र प्रदान करने के कारण उनको अलग निर्देश किया गया है और इस श्लोक में नारदजी अङ्गिरा महर्षि के साथ चले गये इस तरह से नारदजी का प्रधान रूप से निर्देश किया गया है, क्योंकि नारदजी के ही उपदेश से राजा चित्रकेतु को वैराग्य उत्पन्न हुआ था । हे प्रभो अर्थात् हे समर्थ राजन् परीक्षित् ॥२६॥

चित्रकेतुस्तु विद्यां तां यथा नारदभाषिताम् । धारयामास सप्ताहमब्भक्षः सुसमाहितः ॥२७॥

अन्वयः— सप्ताहमब्भक्षः सुमाहितः चित्रकेतु तु नारदभाषितां यथा तां विद्यां धारयामास ॥२७॥

अनुवाद— नारदजी की आज्ञा के अनुसार एक सप्ताह पर्यन्त केवल जल पीकर बड़ी एकाग्रता के साथ चित्रकेतु ने नारदजी के द्वारा उपदिष्ट विद्या का अनुष्ठान किया ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

यथा यथावद्धारयामास ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

जैसा उस विद्या को नारदजी ने बताया था उसी तरह से धारण किया ॥२७॥

ततश्च सप्तरात्रान्ते विद्यया धार्यमाणया । विद्याधराधिपत्यं स लेभेऽप्रतिहतं नृप ॥२८॥

अन्वयः— ततः च स नृपः सप्तरात्रान्ते धार्यमाणया विद्यया अप्रतिहतं विद्याधराधिपत्यं लेभे ॥२८॥

अनुवाद— उस विद्या के अनुष्ठान के सात रात के पश्चात् राजा चित्रकेतु को विद्याधरो का अखण्ड आधिपत्य प्राप्त हो गया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

विद्याधराधिपत्यं चावान्तरफलं लेभे । अप्रतिहतमस्खलितम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

विद्या की सिद्धि के अतिरिक्त अप्रतिहत विद्याधराधिपत्य की प्राप्ति हो गयी ॥२८॥

ततः कतिपयाहोभिर्विद्ययेद्धमनोगतिः । जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरणान्तिकम् ॥२९॥

अन्वयः— ततः कतिपयाहोभिः विद्ययेद्धमनोगति देवदेवस्य शेषस्य चरणान्तिकम् जगाम ॥२९॥

अनुवाद— उसके पश्चात् कुछ ही दिनों में मन के और शुद्ध हो जाने के कारण वे देवाधिदेव शेष के चरणों के समीप पहुँच गये ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

कतिपयैरहोभिः । विद्ययेद्धेन दीप्तेन मनसा गतिर्यस्य ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

कुछ हि दिनों में विद्या के प्रभाव से राजा चित्रकेतु के मन की गति और समृद्ध हो गयी थी । उसी के सहारे वे भगवान् शेष के चरणों के सन्निकट पहुँच गये ॥२९॥

मृणालगौरं शितिवाससं स्फुरत्किरीटकेयूर कटित्रकङ्कणम् ।
प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनं वृतं ददर्श सिद्धेश्वरमण्डलैःप्रभुम् ॥३०॥

अन्वयः— मृणाल गौरम् शितिवाससे स्फुरत् किरीटकेयूर कटित्र कङ्कणम् प्रसन्नवक्त्रारुण लोचनं सिद्धेश्वर मण्डलैः वृतम् प्रभुम् ददर्श ॥३०॥

अनुवाद— राजा ने देखा कि शेषजी का शरीर कमल नाल के समान गौर वर्ण का है । वे नीले रङ्ग का वस्त्र धारण किए हुए, सिर पर किरीट भुजाओं में बाजूबन्द एवं कलाई में कङ्गन आदि आभूषण चमक रहे हैं । उनके नेत्र अरुण वर्ण के है और उनका मुख प्रसन्न है । इस प्रकार के भगवान् शेष सिद्धेश्वरों के समूह से घिरे हुए हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

मृणालवद्गौरम् । शितिवाससं नीलाम्बरम् । स्फुरन्ति किरीटादीनि यस्य । कटित्रं कटिसूत्रम् प्रसन्नानि वक्त्राणि यस्य। अरुणानि लोचनानि यस्य तं च तं च ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

कमलनाल के समान गौर वर्ण का यह **मृणालगौरम्** का अर्थ है । **शितिवाससम्** का अर्थ है नीला वस्त्र धारण किए हुए । **स्फुरत्किरीट केयूर कटित्रकङ्कणम्** अर्थात् उनके किरीट, बाजूबन्द, कटिसूत्र (कटित्र) तथा कङ्गन चमक रहे थे । **प्रसन्नानिवक्त्राणि यस्य** अर्थात् उनके मुखों पर प्रसन्नता थी, और उनके नेत्र अरुण वर्ण के (रतनारे) थे ।।३०।।

तद्दर्शनध्वस्तसमस्तकिल्बिषः स्वच्छामलान्तःकरणोऽभ्ययान्मुनिः ।
प्रवृद्धभक्त्या प्रणयाश्रुलोचनः प्रहृष्टरोमाऽनमदादिपूरुषम् ।।३१।।

अन्वयः— तद्दर्शन ध्वस्तसमस्तकिल्विषः, स्वच्छामलान्तःकरणोऽभ्ययान्मुनिः, प्रणयाश्रुलोचनः, प्रहृष्टरोमा, आदिपूरुषम् अनमत् ।।३१।।

अनुवाद— भगवान् शेष का दर्शन करने से राजा चित्रकेतु के सारे पाप विनष्ट हो गये, उनका अन्तःकरण स्वच्छ एवं निर्मल हो गया, हृदय में भक्ति भावना की बाढ आ गयी नेत्रो में प्रेमाश्रु भर गये, उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमांच हो गया, इस तरह के भगवान् शेष के रूप का मनन करते हुए महाराज चित्रकेतु ने शेष भगवान् को नमस्कार किया ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

दृष्ट्वा च तमादिपूरुषमभ्ययाच्छरणं गतः । अनमन्ननाम । कथंभूतः । तस्य दर्शनेन ध्वस्तं समस्तं किल्विषं यस्य । स्वच्छममलं चान्तःकरणं यस्य । प्रणयेनाश्रुमुक्ते लोचने यस्य । प्रहृष्टानि रोमाणि यस्य सः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

शेषजी का दर्शन करके महाराज चित्रकेतु ने उनकी शरणागति की, और उनको नमस्कार किया, क्योंकि शेष जी का दर्शन करने से उनके समस्त पाप विनष्ट हो गये थे तथा उनका अन्तःकरण स्वच्छ तथा निर्मल हो गया था । उनकी आँखों में प्रेमाश्रु भर गया था और तथा उनको रोमाञ्च हो गया था ।।३१।।

स उत्तमश्लोकपदाब्जविष्टरं प्रेमाश्रुलेशैरुपमेहयन्मुहुः ।
प्रेमोपरुद्धाखिलवर्णनिर्गमो नैवाशकत्तं प्रसमीडितुं चिरम् ।।३२।।

अन्वयः— प्रेमाश्रुलेशैः सः उत्तमश्लोकपदाब्जविष्टरं मुहुः उपमेहयन् प्रेमावरुद्धाखिलवर्ण निर्गमः तं प्रसमीडितुं नैव अशकत् ।।३२।।

अनुवाद— प्रेमाश्रुओं के बून्दों से राजा चित्रकेतु ने भगवान् शेष की चरण चौकी को बार-बार भिंगो दिया। प्रेमातिरेक के कारण उनके मुख से वाणी नहीं निकल रही थी इस तरह के राजा चित्रकेतु देर तक भगवान् शेष की स्तुति नहीं कर सके ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

तं प्रसमीडितुं स्तोतुं चिरं नैवाशकन्न शशाक । तत्र हेतुः- उत्तमश्लोकस्य पादाब्जयोर्विष्टरमासनमुपमेहयन्नभिषिञ्चन् । प्रेम्णोपरुद्धोऽखिलानां वर्णानां निर्गम उच्चारणं यस्य सः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

राजा चित्रकेतु देर तक भगवान् शेष की स्तुति नहीं कर सके। उसका कारण यह था कि राजा के प्रेमाश्रुओं की बून्दों से भगवान् शेष की चरण चौकी बार-बार भिंग जा रही थी तथा प्रेमातिरेक के कारण उनके मुख से वाणी नहीं निकल रही थी ॥३२॥

ततः समाधाय मनो मनीषया बभाष एतत्प्रतिलब्धवागसौ ।
नियम्य सर्वेन्द्रियबाह्यवर्तनं जगद्गुरुं सात्त्वतशास्त्र विग्रहम् ॥३३॥

अन्वयः— मनीषया मनः समाधाय प्रतिलब्धवाक् असौ सर्वेन्द्रियबाह्यवर्तनं नियम्य सात्वतशास्त्रविग्रहम् जगद्गुरुम् एतत् बभाषे ॥३३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् बुद्धि के द्वारा मन को समाहित करके राजा ने जब शब्दोच्चारण की शक्ति प्राप्त की तो अपनी समस्त इन्द्रियें की बाह्य विषयों में होने वाली वृत्ति को रोककर पाञ्चरात्र शास्त्रों में वर्णित विग्रह से सम्पन्न जगद्गुरु भगवान् शेष की इस प्रकर से स्तुति की ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

मनीषया बुद्ध्या मनः समाधायैतद्वक्ष्यमाणं बभाषे। प्रतिलब्धा वाक् येन। सात्वतशास्त्रोक्तो विग्रहो यस्य तम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

जब राजा चित्रकेतु ने बोलने की शक्ति प्राप्त की तो बुद्धि के द्वारा अपने मन को समाहित करके पाञ्चरात्रागम शास्त्र में वर्णित विग्रह वाले शेषजी की उन्होंने निम्नांकित प्रकार से स्तुति की ॥३३॥

चित्रकेतुरुवाच

अजित जितः सममतिभिः साधुभिर्भवान् जितात्मभिर्भवता ।
विजितास्तेऽपि च भजतामकामात्मनां य आत्मदोऽतिकरुणः ॥३४॥

अन्वयः— हे अजित ! जितात्मभिः सममतिभिः साधुभिः भवान् जितः भवता अपिचते विजिताः अकामात्मनां भजताम् च अतिकरुणः यः भवान् आत्मदः ॥३४॥

महाराज चित्रकेतु ने कहा

अनुवाद— हे कभी भी पराजित नहीं होने वाले भगवन् जितेन्द्रिय तथा समदर्शी साधु पुरुषों ने आपको जीत लिया है और आपने भी अपने सौन्दर्य आदि अपने गुणों से उन लोगों को अपने वश में कर लिया है। निष्काम भाव से जो लोग आपकी उपासना करते हैं, उनको आप करुणावशात् अपने आपको भी प्रदान कर देते हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

अन्योन्यप्रेमजानन्दनिभृतान्स्वामिसेवकान्। अभिनन्दन्मुदा स्तौति दशभिः पञ्चभिर्विभुम्। हे अजित, अन्यैरजितोऽपि भवान्साधुभिर्भक्तैर्जितः स्वाधीन एव कृतः। यतो भवानतिकरुणः। तेऽपि च निष्कामा अपि भवता विजिताः। यो भवानकामात्मनामात्मानमेव ददाति ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

परस्पर में प्रेमजन्य आनन्द से परिपूर्ण स्वामियों तथा सवेकों को अभिनन्दित करते हुए श्रीभगवान् की पन्द्रह श्लोकों से प्रार्थना करते हैं हे अजित ! दूसरों द्वारा आप नहीं जीते जा सकते हैं। फिर भी साधु भक्तों ने आपको अपने अधीन कर लिया है। क्योंकि आप अत्यन्त दयालु हैं। वे भी निष्काम भी होकर आपके द्वारा जीत लिए गये हैं। आप कामना रहित भक्तों को अपने को भी प्रदान कर देते हैं ॥३४॥

तव विभवः खलु भगवन् जगदुदयस्थितिलयादीनि ।
विश्वसृजस्तेऽशांशास्तत्र मृषा स्पर्धन्ते पृथगभिमत्या ॥३५॥

अन्वयः— हे भगवन् ! जगदुदयस्थितिलयादीनि खलु तव विभवः श्विसृजस्ते अंशांशाः पृथगभिमत्य तत्र मृषा स्पर्धन्ते ॥३५॥

अनुवाद— हे भगवन् ! जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय ये आपकी लीला के विलास मात्र हैं । विश्व के निर्माता ब्रह्मा आदि आपके अंश के भी अंश मात्र हैं । फिर भी अपने को पृथक्-पृथक् जगत् कर्ता आदि मानने के कारण आपस में एक दूसरे से भी स्पर्धा करते हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

ननु भक्तैरेव जित इति कथं, स्पर्धमानैरपि सृष्ट्यादिकर्तृभिरन्यैरीश्वरैर्जयसंभवात्तत्राह-तवेति । जगत उदयादीनि तवैव विभवो विभवनं महिमा लीलेति यावत् । आदिशब्देन प्रवेशनियमनादीनि । विश्वसृजस्तु ब्रह्मादयो नेश्वराः किंतु ते तवांशो यः पुरुषस्तस्यांशाः । तत्र एवं स्थितेऽपि पृथक्पृथगीश्वरा वयमित्यभिमानेन वृथैव स्पर्धन्ते ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि भगवान् को भक्तों ने ही पराजित किया है यह कैसे कहा जाता है, स्पर्धा करने वाले सृष्टि आदि के करने वाले दूसरे ब्रह्मा आदि से भी उनका पराजय सम्भव है । तो इसके उत्तर में **तव० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । जगत् की सृष्टि इत्यादि आपकी लीला मात्र हैं । आदि शब्द के द्वारा अन्तर्यामित्व आदि को कहा गया है । ब्रह्मा इत्यादि जो विश्व की सृष्टि करने वाले हैं वे तो अपके अंशभूत जो पुरुष है उसके अंश हैं । इस तरह के होने पर भी वे अलग-अलग मैं ईश्वर हूँ इस प्रकार के जो स्पर्धा करते हैं, वह व्यर्थ है ॥३५॥

परमाणुपरममहतोस्त्वमाद्यन्तान्तरवर्ती त्रयविधुरः ।
आदावन्तेऽपि च सत्त्वानां यद्ध्रुवं तदेवान्तरालेऽपि ॥३६॥

अन्वयः— परमाणु परममहतोः त्वम् आद्यन्तान्तरवर्ती त्रय विधुरः सत्त्वानाम् आदौ अन्ते अपि च यद् ध्रुवं तदेव अन्तराले अपि ॥३६॥

अनुवाद— एक छोटे से परमाणु से लेकर परममहान् तत्त्व पर्यन्त सभी वस्तुओं की आदि, अन्त और मध्य में आप ही वर्तमान हैं, तथा स्वयं आप आदि अन्त और मध्य से रहित हैं । पदार्थों की आदि और अन्त में जो वस्तु रहती है, वही मध्य में भी रहती है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

त्वमेव सृष्ट्यादिकर्तेत्येतदुपपादयति । परमाणुः सूक्ष्ममूलकारणम् । परममहदन्तिमं कार्यम् । तयोस्त्वमेवाद्यन्तान्तरवर्ती। आदावन्ते चान्तरे मध्ये च वर्तितुं शीलं यस्य सः । अतएव त्रयविधुर आद्यन्तमध्यशून्यो ध्रुवः । ते च त्वया सृज्यन्तु ते ध्रुवः। कुत इत्यत आह- सत्त्वानां सत्त्वेन प्रतीतानां कार्याणामादावन्तेऽपि यद्ध्रुवमनपाय्यन्तरालऽपि च तदेव ध्रुवं सुवर्णादिवत् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

हे भगवन् ! आप ही सृष्टि आदि को करने वाले हैं इस अर्थ का प्रतिपादन करते हुए चित्रकेतु कहते हैं। सूक्ष्म मूल कारण परमाणु है और परम महान् अन्तिम कार्य है । उन दोनों के आदि और अन्त और मध्य में रहने वाले आप ही है, आप आदि अन्त तथा मध्य से रहित तथा ध्रुव हैं । परमाणु और परम महान् दो की सृष्टि आप करते हैं । जो ध्रुव होते हैं उनकी सृष्टि नहीं होती है । यह कैसे कहा जा सकता है ? तो इसके उत्तर में कहते हैं सत्त्व रूप से प्रतीत होने वाले कार्यों के आदि और अन्त में रहने वाला जो नहीं विनष्ट होने वाला ही ध्रुव

कहलाता है । सुवर्ण आदि के समान । आभूषण बनने से पहले भी सुवर्ण रहता है और आभूषण के विनष्ट हो जाने पर भी वह सुवर्ण ही हो जाता है । अतएव आभूषण के रूप में भी सुवर्ण ही रहता है ॥३६॥

क्षित्यादिभिरेष किलावृतः सप्तभिर्दशगुणोत्तरैराण्डकोशः ।
यत्र पतत्यणुकल्पः सहाण्डकोटिकोटिभिस्तदनन्तः ॥३७॥

अन्वयः— एषः आण्डकोशः दशगुणोत्तरैः क्षित्यादिभिः किल आवृतः, अण्डकोटि कोटिभिः यत्र अणु कल्पः पतति तदनन्तः ॥३७॥

अनुवाद— उत्तरोत्तर दस गुने पृथिवी आदि के सात आवरणों से घिरा हुआ यह ब्रह्माण्डकोश अपने ही समान करोड़ों ब्रह्माण्डो के साथ आप में परमाणु के समान घूमता रहता है फिर भी उसको अपकी सीमा का पता नहीं हैं, अतएव आप अनन्त हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

एवं ध्रुवत्वेन कालतः परिच्छेदो नास्तीत्युक्तं देशतोऽप्यपरिच्छेदमाह-क्षित्यादिभिरिति । पूर्वस्मात्पूर्वस्माद्दशगुण-मुत्तरोत्तरैरधिकैरावृतः । यत्र त्वय्यणुकल्पोऽणुतुल्यः पतति परिभ्रमति तत्तस्मादनन्तस्त्वम् ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को ध्रुव बतलाकर उनको काल की सीमा से रहित बतलाया जा चुका है । **क्षित्यादिभिः इत्यादि** श्लोक के द्वारा उनको देश परिच्छेद से रहित बताया जा रहा है । यह ब्रह्माण्ड कोश पृथिवी आदि के पूर्व-पूर्व आवरणों की अपेक्षा उत्तरोत्तर दस-दस गुने आवरणों से घिरा हुआ है । इस प्रकार के करोड़ों ब्रह्माण्ड आप में परमाणु के समान घूमते रहते हैं । इसीलिए आप अनन्त कहे जाते हैं ॥३७॥

विषयतृषो नरपशवो य उपासते विभूतीर्न परं त्वाम् ।
तेषामाशिष ईश तदनु विनश्यन्ति यथा राजकुलम् ॥३८॥

अन्वयः— ये विषयतृषः नरपशवः विभूतीः उपासते परं त्वाम् न हे ईश तेषाम् आशिषः राजकुलम् यथा तदनु विनश्यन्ति ॥३८॥

अनुवाद— जो नरपशु केवल विषयभोगों को ही प्राप्त करना चाहते हैं, वे आपकी उपासना न करके आपकी विभूति रूप इन्द्रादि देवताओं की ही आराधना करते हैं । हे प्रभो ! जिस तरह राजकुल का नाश हो जाने पर उनके अनुयायियों की जीविका का भी नाश हो जाता है, उसी तरह उन क्षुद्र उपास्य देवों का नाश हो जाने पर उनके द्वारा प्रदत्त भोगों का भी नाश हो जाता है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

यस्मादेवं परमेश्वरस्त्वमेवाऽन्ये देवास्तव विभूतयोऽतस्त्वां विहाय विषयकामनयान्योपासका अतिमन्दा इत्याह-विषयेषु तृट् तृष्णा येषां ते नराकाराः पशवः । कुतः, ये विभूतीरिन्द्राद्या उपासते न तु परं त्वाम् । ततः किं तत्राह-तेषामिति । तदनु उपास्यनाशानन्तरम् । यथा राजकुलमनु राजकुलनाशानन्तरं तत्सेवकानामाशिषो नश्यन्ति तद्वत् । अयं च परमोऽवधिर्मध्येऽपि नश्यन्त्येव ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

चूकि परमेश्वर आप ही है दूसरे देवता तो आपकी विभूति हैं । अतएव आपकी उपासना न करके विषयों की प्राप्ति की इच्छा से दूसरे देवताओं की उपासना करने वाले लोग अत्यन्त मन्द हैं । इसी बात को **विषयतृषः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । जो लोग विषय भोगों को ही प्राप्त करना चाहते हैं, वे मनुष्य के रूप में पशु ही हैं । क्योकि जो लोग आपकी विभूति भूत इन्द्र आदि देवताओं की ही उपासना करते हैं और आपकी उपासना

नहीं करते देवताओं के द्वारा प्रदत्त विषय भोग उन देवताओं के नष्ट हो जाने पर उसी तरह विनष्ट हो जाते हैं जिस तरह राजवंश का विनाश हो जाने पर उनके अनुयायिओं की जीविका का भी नाश हो जाता है ॥३८॥

कामधियस्त्वयि रचिता न परम रोहन्ति यथा करम्भबीजानि ।
ज्ञानात्मन्यगुणमये गुणगणतोऽस्य द्वन्द्वजालानि ॥३९॥

अन्वयः— ज्ञानात्मनि अगुणमये त्वयि रचिता कामधियः करम्भ बीजानि यथा परम न रोहन्ति अस्य द्वन्द्वजालानि गुणगणतः ॥३९॥

अनुवाद— ज्ञान स्वरूप तथा निर्गुण प्रभो ! आपके प्रति की गयी सकाम भावना भी दूसरे कर्मों के समान जन्म तथा मृत्यु रूप फल को प्रदान करने वाली उसी तरह नहीं होती हैं जिस तरह भुने हुए बीजों से अङ्कुर नहीं उत्पन्न होते हैं । जीव को प्राप्त होने वाले सुख-दु:ख आदि द्वन्द सत्त्वादि गुणों से होते हैं निर्गुण से नहीं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

विषयकामेनापि कृता त्वत्सेवा मोक्षफलैवेत्याह–कामधियो विषयकामना अपि हे परम, त्वयि रचिताः कृताश्चेन्न रोहन्ति देहान्तरोत्पत्तये न भवन्ति । करम्भबीजानि भर्जितबीजानि यथा । यतोऽस्य जीवस्य गुणगणादेव द्वन्द्वसमूहा भवन्ति । अतः कामेनापि निर्गुणस्य तव भजनाच्छनैर्नैर्गुण्यं भवतीत्यर्थः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई विषय भोग की प्राप्ति की इच्छा से आपकी सेवा करता है तो उससे मोक्ष रूपी फल की ही प्राप्ति होती है; इस बात को **कामधियः इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । विषय भोगों की प्राप्ति की इच्छा से भी यदि आपकी कोई सेवा करता है तो उससे दूसरे देह की प्राप्ति उसी तरह नहीं होती है जिस तरह भुने हुए बीजों से अङ्कुर की उत्पत्ति नहीं होती है । इस जीव के सुख-दु:ख इत्यादि द्वन्द्वों की प्राप्ति तो सत्त्वादि गुणों के कारण होती है । अतएव कामना विशेष से भी आप निर्गुण की अराधना नेर्गुण्य को ही प्रदान करती हैं ॥३९॥

जितमजित तदा भवता यदाह भागवतं धर्ममनवद्यम् ।
निष्किंचना ये मुनय आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय ॥४०॥

अन्वयः— हे अजित भवता तदाजितम् यदा अनवद्यम् भागवतं धर्मम् आह यम् निष्किञ्चना आत्मारामाः मुनयः अपवर्गाय उपासते ॥४०॥

अनुवाद— हे अजित ! आपने उसी समय सबको जीत लिया जिस समय आपने विशुद्ध भागवत धर्म का उपदेश दिया है । उसी धर्म निष्किञ्चन किसी वस्तु में अहंत्व ममत्व को नहीं रखने वाले आत्माराम सनकादि महर्षिगण मोक्ष की प्राप्ति के लिए सेवन करते हैं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

फलकामनयपि त्वदाराधनं यदा मोक्षहेतुस्तदा किं वक्तव्यं भगवद्धर्ममाहात्म्यमिति वक्तुं तत्संप्रदायप्रवर्तकत्वेन च भगवन्तं स्तौति-जितमिति । यदा भवान्भागवतं धर्ममाह तदा हे भगवन्, त्वया जितं सर्वोत्कर्षेण स्थितम् । तत्र हेतुः- ये निष्किंचनाः सनत्कुमरादयो मुनयस्ते यं भवन्तमपवर्गाय सेवन्ते तेन भवता जितम् । यं धर्ममिति वा ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

यदि फल विशेष की प्राप्ति की इच्छा से की गयी आपकी सेवा मोक्ष प्रदान करने वाली होती है तो फिर भगवत धर्म की महिमा के विषय में क्या कहना है ? इस बात को कहने के लिए भागवत धर्म के सम्प्रदाय प्रवर्तक

रूप से राजा चित्रकेतु श्रीभगवान् की स्तुति इस **जितम् इत्यादि** श्लेक से करते हैं । हे भगवन् ! जिस समय आपने भागवत धर्म का उपदेश दिया उसी समय सर्वोत्कृष्ट हो गये । यही कारण है कि किसी वस्तु में अहंत्व ममत्व की भावना नहीं रखने वाले सनत्कुमार आदि परमर्षिगण आपकी अथवा आपके द्वारा उपदिष्ट भागवत धर्म का सेवन मोक्ष की प्राप्ति के लिए किया करते हैं ।।४०।।

विषममतिर्न यत्र नृणां त्वमहमिति मम तवेति च यदन्यत्र ।
विषमधिया रचितो यः स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः ।।४१।।

अन्वयः— यत्र नृणाम् अन्यत्र यत् त्वम् अहम् तव मम इति विषममतिः न, यः विषमधियारचितः स हि अविशुद्धः क्षयिष्णुः अधर्मबहुलः ।।४१।।

अनुवाद— यह भागवत धर्म इतना शुद्ध है कि इसमें सकाम धर्मों के समान मनुष्यों की मैं, तुम, मेरा, तेरा इत्यादि प्रकार की विषम बुद्धि होती ही नहीं है । जिस धर्म का निर्माण विषम बुद्धि से किया जाता है वह धर्म अशुद्ध, नाशवान् और अधर्म बहुल होता है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

अनवद्यतामेवाह-विषममतिर्यत्र यस्मिन्भागवते धर्मे नास्ति । यदन्यत्र यथान्यस्मिन्काम्ये धर्मे । ननु सोऽपि वेदोक्तत्वादनवद्य एव तत्राह-विषमधिया शत्रुमारणादिकामनया रचितो विहितो यः स ह्यविशुद्धः रागद्वेषादिमत्त्वात् । क्षयिष्णुश्च नश्वरफलत्वात्। अधर्म बहुलश्च हिंसादिबाहुल्यात् । तदुक्तं शबरस्वामिभिः 'उभयमिह चोदनायां लक्ष्यतेऽर्थोऽनर्थश्च' इत्यादि ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भगवत धर्म की निर्दोषता को बतलाते हैं । उस भागवत धर्म में सकाम धर्म के समान विषम बुद्धि नहीं होती है । यदि कहें कि वेदप्रतिपादित होने के कारण सकाम धर्म भी धर्म ही है, तो इसके उत्तर में कहते हैं शत्रुमारण आदि की बुद्धि से किया जाने वाला धर्म अशुद्ध है क्योंकि वह राग-द्वेष आदि के कारण किया जाता है । वह क्षयिष्णु है क्योंकि उसका फल नश्वर होता है । हिंसादि बहुल होने के कारण वह अधर्म भी है। शबर स्वामी ने कहा भी है इस कामना विशेष से किए जाने वाले सकाम धर्म के द्वारा अर्थ एवं अनर्थ दोनो देखे जाते हैं ।।४१।।

कः क्षेमो निजपरयोः कियानर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण । स्वद्रोहात्त्व कोपः परसंपीडया च तथाऽधर्मः ।।४२।।

अन्वयः— स्वपरद्रुहा धर्मेण निजपरयोः कः क्षेमः कियानर्थः स्वद्रोहात् तवकोपः तथा परसम्पीडया च अधर्मः ।।४२।।

अनुवाद— अपने तथा पराये से द्रोह करने वाले सकाम मारणादि धर्मों से अपना तथा पराया दोनों का न तो कोई कल्याण होता है और न तो उससे किसी के हित की सिद्धि होती है । सकाम कर्म करने वाले का जब चित्त दुखित होता है तो वे रुष्ट होते हैं और दूसरे को जो कष्ट होता है उसे अधर्म होता है ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति-कः क्षेमः किं कुशलं, न किंचित्: निजपरयोः स्वस्य परस्य च स्वपरद्रुहा स्वस्मै परस्मै च द्रुह्यतीति स्वपरध्रुक् तेन । यतः स्वद्रोहादत्यन्तकायक्लेशात्त्व कोपः पीडा संभवति । तदुक्तं गीतासु 'कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः। मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यसुरनिश्चयान् । इति । तथा परसंपीडया अधर्मः । च शब्दात्त्व कोपश्च । अतस्त्वया रागान्धमपि कथंचिद्वेदमार्गे प्रवर्तयितुं काम्यधर्मोऽभिहितो न तत्त्वदृष्ट्या ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

इसी अर्थ का विस्तार से वर्णन करते हैं, अपने से तथा दूसरे से द्रोह करने वाले सकाम कर्म से अपना अथवा दूसरे का कोई भी कल्याण नहीं होता है । क्योंकि उन कर्मों को करने में अपने शरीर को बहुत कष्ट देना

पड़ता है, उससे आप रुष्ट हो जाते है। श्रीभगवान् ने गीता में भी कहा है। **कर्षयन्तः शरीरस्थं्** जो लोग अज्ञानवशात् सबों के शरीर में अन्तर्यामी रूप से रहने वाले तथा सबों के अन्तःकरण में स्थित मुझको कष्ट देते है उन सबों को तुम आसुर निश्चय वाला जानो। तथा उन सकाम कर्मों के कारण दूसरों को चूकि पीडा होती है, अतएव वे धर्म अधर्म हैं। अतएव किसी राग एवं द्वेष से युक्त प्राणियों के वैदिक धर्म में प्रवृत्त करने के ही लिए आपने सकाम धर्मों का उपदेश किया गया है, तात्त्विक दृष्टि से नहीं किया गया है ॥४२॥

न व्यभिचरति तवेक्षा यया ह्यभिहितो भागवतो धर्मः ।
स्थिरचरसत्त्वकदम्बेष्वपृथग्धियो यमुपासते त्वार्याः ॥४३॥

अन्वयः— तवेक्षा यया भागवतो धर्मः यया अभिहितः न व्यभिचरति। यम् अपृथक धियः आर्याः अमुम् स्थिरचरसत्त्वकदम्बे उपासते ॥४३॥

अनुवाद— हे भगवन्! आपने जिस दृष्टि से भागवत धर्म का उपदेश दिया वह कभी भी परमार्थ से विचिलित नहीं होता है। इसीलिए सन्त पुरुष चर-अचर समस्त प्राणियों में समदृष्टि रखते हैं और उसी धर्म का सेवन करते हैं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

भागवतधर्मेण तु न द्रोह इत्याह-नेति। न व्यभिचरति न परमार्थं जहाति। तव ईक्षा दृष्टिः। अव्यभिचारे हेतुः-स्थिरेति। स्थावरजङ्गमप्राणिसमूहेषु समबुद्धयो भगवता यं धर्मं सेवन्ते ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

इस भागवत धर्म से किसी का भी द्रोह नहीं होता है। इस बात को इस श्लोक में बतलाया गया है। अपकी दृष्टि परमार्थ से कभी विचलित नहीं होती है। व्यभिचार राहित्य का कारण यह है कि सन्त पुरुष सम्पूर्ण प्राणियों मे समान दृष्टि से भागवत धर्म का सेवन करते हैं ॥४३॥

नहि भगवन्नघटितमिदं त्वद्दर्शनान्नृणामखिलपापक्षयः ।
यन्नामसकृच्छ्रवणात्पुल्कसकोऽपि विमुच्यते संसारात् ॥४४॥

अन्वयः— भगवन् तव दर्शनात् नृणाम् अखिल पापक्षयः इदं हि अघटितं न, यन्नामसकृच्छ्रवणात् पुल्कसकोऽपि संसारात् विमुच्यते ॥४४॥

अनुवाद— हे भगवन्! यह कोई असंभव बात नहीं है। कि आपके दर्शनमात्र से मनुष्यों के सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं, क्योंकि आपका एक बार भी नाम सुन लेने मात्र से चाण्डाल भी संसार से मुक्त हो जाता है॥४४॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतस्य भागवतधर्मप्रवर्तकस्य तव दर्शनात्सर्वपापक्षयो भवतीति किं चित्रमित्याह-नहीति ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

हे भगवन्! आप इस प्रकार के भागवत धर्म के प्रवर्तक हैं, अतएव आपके दर्शन मात्र से मनुष्यों के सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं, इसमें कौन सा आश्चर्य हैं? अर्थात् कोई नहीं ॥४४॥

अथ भगवन्वयमधुना त्वदवलोकपरिमृष्टाशयमलाः ।
सुरऋषिणा यदुदितं तावकेन कथमन्यथा भवति ॥४५॥

अन्वयः— अथ हे भगवन्! अधुना त्वदवलोकपरिमृष्टा शयमलाः तावकेन सुरर्षिण यदुदितं कथमन्यथा भवति॥४५॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आपका दर्शन कर लेने के कारण हमारे अन्तःकरण का सारा मल धुल गया। आपके अनन्य भक्त देवर्षि नारदजी ने जो कहा है, वह मिथ्या कैसे हो सकता है ?॥४५॥

भावार्थ दीपिका

अतोऽहं कृतार्थोऽस्मीत्याह-अथेति । अथ अतो हेतोः । तवावलोकनेन परिमृष्टा निरस्ता आशये चित्ते मला येषां ते। त्वद्दर्शनं च मम नारदोपदेशेन जातमित्याह-सुरऋषिणेति ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

अतएव मैं कृतकृत्य हो गया हूँ इस बात का चित्रकेतु ने **अथ० इत्यादि** श्लोक से कहा है । आपका दर्शन करने से हमारे अन्तकरण के मल दूर हो गये है । देवर्षि नारदजी के उपदेश के कारण ही मुझे आपका दर्शन मिला॥४५॥

विदितमनन्त समस्तं तव जगदात्मनो जनैरिहाचरितम् ।
विज्ञाप्यं परमगुरोः कियदिव सवितुरिव खद्योतैः ॥४६॥

अन्वयः— हे अनन्त ! जगदात्मनः जनैः इहाचरितम् तव समस्तं विदितम् खद्योतैः सवितुः इह परमगुरो कियदिव विज्ञातम् ॥४६॥

अनुवाद— हे अनन्त ! आप सम्पूर्ण जगत् की आत्मा है अतएव इस संसार में प्राणी जो कुछ भी करता है, वह आपको सबकुछ ज्ञात है । इसलिए जैसे जुगनू सूर्य को नहीं प्रकाशित कर सकता है, वैसे ही परम गुरु आपसे मैं क्या निवेदन करूँ ?॥४६॥

भावार्थ दीपिका

यथा चाहं पूर्वमतिमूढ आसं यथा च नारदेनानुगृहीतोऽस्मि तत्सर्वान्तर्यामिणस्तव मया किं प्रकाशनीयमित्याह-विदितमिति। विशेषेण ज्ञाप्यं प्रकाशनीयं कियदिव । न किमपीत्यर्थः । सवितुर्यथा खद्योतैः प्रकाशनीयं नास्ति तद्वत् ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

पहले मैं अत्यन्त अज्ञानी था और देवर्षि नारदजी ने मुझे अनुगृहीत किया, इन सारी बातों को आप अन्तर्यामी होने के कारण जानते ही हैं अतएव इन सारी बातों को मैं क्या कहूँ ? इस बात को चित्रकेतु ने **विदितम्० इत्यादि** श्लोक से कहा है । तो विशेष रूप से उन्हीं बातों को कहना अनावश्यक है । यह तो उसी तरह से है जैसे कोई जुगून सूर्य को नहीं प्रकाशित कर सकता है ॥४६॥

नमस्तुभ्यं भगवते सकलजगत्स्थितिलयोदयेशाय । दुरवसितात्मगतये कुयोगिनां भिदा परमहंसाय॥४७॥

अन्वयः— सकलजगत् स्थिति लयोदयेशाय, कुयोगिनां भिदा दुरवसितात्म गतये परमहंसाय तुभ्यं भगवते नमः॥४६॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आपकी अध्यक्षता में सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय होते हैं । कुयोगिजन अपने भेद बुद्धि के कारण आपके वास्तविक स्वरूप को नहीं जान पाते हैं हे भगवन् इस प्रकार के आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

उक्तलक्षणं भगवन्तं प्रणमति-नम इति द्वाभ्याम् । सकलस्य जगतः स्थित्यादीनामीशाय समर्थाय । दुरवसिताऽवज्ञाता आत्मगतिर्निजतत्त्वं यस्य तस्मै । केषां । कुयोगिनाम् । केन । भिदा भेददृष्ट्या ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

अब दो श्लोक में महाराज चित्रकेतु उपर्युक्त प्रकार के भगवान् सङ्कर्षण को प्रणाम करते हुए कहते हैं—

सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने में आप ही समर्थ हैं, कुयोगिजन अपनी भेद दृष्टि के कारण आपके वास्तविक स्वरूप को नहीं जान पाते हैं ।।४७।।

यं वै श्वसन्तमनु विश्वसृजः श्वसन्ति यं चेकितानमनुचित्तय उच्चकन्ति ।
भूमण्डलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने ।।४८।।

अन्वयः— यं श्वसन्तमनु विश्वसृजः श्वसन्ति यं चेकितानम् अनुचित्तय उच्चकन्ति, यस्य मूर्ध्नि भूमण्डलं सर्षपायति तस्मै सहस्रमूर्ध्ने भगवते नमः अस्तु ।।४८।।

अनुवाद— हे भगवन् ! आपके ही श्वास लेने पर उससे शक्ति प्राप्त करके विश्व की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा आदि भी श्वास लेते हैं और आपकी ही दृष्टि से जीवित होकर ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों का ग्रहण करने में समर्थ होती हैं । यह भूमण्डल आपके शिर पर सरसों के दाने के समान प्रतीत होता है, ऐसे हजारों सिर वाले आप श्रीभगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

श्वसन्ति चेष्टन्ते । चेकितानं पश्यन्तमनु चित्तयो ज्ञानेन्द्रियाणि उच्चकन्ति स्वारूढं पश्यन्ति ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

श्वसन्ति अर्थात् चेष्टा सम्पन्न होते है । **चित्तयो उच्चकन्ति** का अर्थ है कि आपकी ही दृष्टि से शक्ति प्राप्त करके ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने विषय का ग्रहण करती हैं ।।४८।।

श्रीशुक उवाच

संस्तुतो भगवानेवमनन्तस्तमभाषत । विद्याधरपतिं प्रीतश्चित्रकेतुं कुरूद्वह ।।४९।।

अन्वयः— हे कुरुद्वह ! स्वं संस्तुतः भगवान् अनन्तः प्रीतः सन् तम विद्याधरपतिं चित्रकेतुम् अभाषत् ।।४९।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! परीक्षित् इस प्रकार से स्तुति किए जाने पर प्रसन्न होकर भगवान् अनन्त (शेषनाग) ने प्रसन्न होकर विद्याधरों के स्वामी राजा चित्रकेतु से कहा ।।४९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४९।।

श्रीभगवानुवाच

यन्नारदाङ्गिरोभ्यां ते व्याहृतं मेऽनुशासनम् । संसिद्धोऽसि तया राजन्विद्यया दर्शनाच्च मे ।।५०।।

अन्वयः— हे राजन् ! यत् नारदोऽङ्गिरोभ्याम् मे अनुशासनं ते व्याहृतम् तया विद्यया मे दर्शनाच्च संसिद्धोऽसि।।५०।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— राजन् ! चित्रकेतो नारद और अङ्गिरा इन दोनों ऋषियों ने मेरे विषय में तुमको जो विद्या प्रदान किया है उस विद्या के द्वारा और मेरा दर्शन हो जाने के कारण तुम अच्छी तरह से सिद्ध हो चुके हो ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

मेऽनुशासनं मद्विषय उपदेशः । तेन तया च विद्ययाऽस्माच्च दर्शनात्संसिद्धोऽसि ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

उन दोनों ऋषयों ने जो मेरे विषय में तुमको उपदेश दिया है उस उपदेश के द्वारा उस विद्या के द्वारा और मेरा दर्शन हो जाने के कारण तुम अच्छी तरह से सिद्ध हो चुके हो ।।५०।।

अहं वै सर्वभूतानि भूतात्मा भूतभावनः । शब्दब्रह्म परं ब्रह्म ममोभे शाश्वती तनू ।।५१।।

अन्वयः— अहं वै सर्वभूतानि भूतात्मा, भूतभावनः, शब्द ब्रह्म परंब्रह्म ममोभे शाश्वती तनूः ।।५१।।

अनुवाद— मैं ही सम्पूर्ण प्राणियों के रूप में सबों की आत्मा हूँ तथा मैं ही उनसबों का पालन करने वाला हूँ । शब्द ब्रह्म वेद और परंब्रह्म ये दोनों में सनातन शरीर हैं ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

तद्बोधदार्ढ्याय स्वयमप्युपदिशति-अहमित्यादिना । सर्वभूतान्यहमेव भूतानामात्मा भोक्ताप्यहमेव । भोक्तृभोग्यात्मकं विश्वं मद्यतिरिक्तं नास्तीत्यर्थः । यतोऽहं भूतभावनः भूतानां प्रकाशकः कारणं च । ननु शब्दब्रह्म प्रकाशकं परं ब्रह्म कारणं च प्रकाशकं च । सत्यम्, ते उभे ममैव रूपे इत्याह-शब्दब्रह्मेति । शाश्वती शाश्वत्यौ ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

राजाचित्रकेतु के ज्ञान को सुदृढ बनाने के लिए श्रीभगवान् उनको स्वयम् उपदेश देते हैं । मैं ही सभी प्राणियों के रूप में हूँ, सभी प्राणियों की आत्मा मैं ही हूँ भोक्ता भी मैं ही हूँ क्योंकि मैं ही सबों का प्रकाशक कारण और कार्य भी मैं ही हूँ । यदि कहे कि शब्द ब्रह्म (वेद) के प्रकाशक परंब्रह्म ही कारण और प्रकाशक है, तो तुम ठीक कहते हो क्योंकि वेद और परंब्रह्म दोनों मेरे सनातन शरीर हैं ।।५१।।

लोके विततमात्मानं लोकं चात्मनि संततम् । उभयं च मया व्याप्तं मयि चैवोभयं कृतम् ।।५२।।

अन्वयः— लोके आत्मानं विततं लोकं च आत्मनि सन्ततम् उभयं च मया व्याप्तं उभयं चैव मयि कृतम् ।।५२।।

अनुवाद— कार्य कारणात्मक जगत् में आत्मा व्याप्त है तथा कार्य कारणात्मक जगत् आत्मा में स्थित है । उन दोनों में मैं अधिष्ठान रूप से व्याप्त हूँ और मुझमें ये दोनों कल्पित हैं ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

अतस्तमेवं पश्येत्याह-लोके भोग्यप्रपञ्चे भोक्तृत्वेन विततमनुगतमात्मानं लोकं चात्मनि भोग्यत्वेन संततं व्याप्तम् । तदुभयं च मया कारणात्मना व्याप्तम् । मयि चैवोभयं कृतं प्रकल्पितं स्मरेदिति तृतीयेनान्वयः । पश्येदित्यध्याहारो वा ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

अतएव उस परंब्रह्म को इस तरह से जानो । कार्य कारणात्मक भोग्य प्रपञ्च में मैं भोक्ता रूप से व्याप्त हूँ तथा आत्मा में यह प्रपञ्च भोग्य रूप से व्याप्त है । वे दोनों आत्मा और प्रपञ्च मुझमें ही कल्पित हैं इस तरह से आगे के तीसरे श्लोक से अन्वय है अथवा पश्येत का अध्याहार कर लेना चाहिए ।।५२।।

यथा सुषुप्तः पुरुषो विश्वं पश्यति चात्मनि । आत्मानमेकदेशस्थं मन्यते स्वप्न उत्थितः ।।५३।।
एवं जागरणादीनि जीवस्थानानि चात्मनः । मायामात्राणि विज्ञाय तद्द्रष्टारं परं स्मरेत् ।।५४।।

अन्वयः— यथा सुषुप्तः पुरुषः विश्वं च आत्मनि पश्यति, आत्मानम् एकदेशस्यं मन्यते, स्वप्न उत्थितः, एवं जीवस्थानानि जागराणादीनि आत्मनः मायामात्राणि विज्ञाय तद द्रष्टारं परं स्मरेत् ।।५३-५४।।

अनुवाद— जैसे स्वप्न में सोया हुआ पुरुष दूसरा स्वप्न होने पर सम्पूर्ण जगत् को अपने भीतर ही देखता है तथा दूसरा स्वप्न समाप्त हो जाने पर स्वप्न में ही जागता है, किन्तु वस्तुतः वह भी स्वप्न ही रहता है, वैसे ही जीव की जाग्रत इत्यादि अवस्थाएँ परमात्मा की माया ही है, इस तरह से जानकर सबों के साक्षी परमात्मा का ही स्मरण करना चाहिए ।।५३-५४।।

भावार्थ दीपिका

ननु जाग्रदाद्यवस्थाभेदेन भोक्तृभोग्यात्मकं विश्वं स्फुटं प्रतीयमानं कथं कल्पितं स्यादित्याशङ्क्य स्वप्नगतजाग्रदादिदृष्टान्तेन संभावयन्नाह-यथेति द्वाभ्याम् । यथा स्वप्ने सुप्तो विश्वं गिरिवनादिरूपं देशान्तरस्थमात्मन्येव पश्यति । स्वप्नमध्ये सुषुप्तिं स्वप्नं च पश्यतीत्यर्थः । तथा स्वप्न एन्नोत्थितः सन्नात्मानमेकदेशस्थं शयनदेशे स्थितं मन्यते जाग्रदवस्थामनुभवति । एवं प्रसिद्धान्यपि जागरादीनि जीवस्थानानि जीवोपाधेर्बुद्धेरवस्थभूतान्यात्मनो मायामात्राणीत्येवं विज्ञाय तेषां द्रष्टारमत एव परं तदवस्थारहितमात्मानं स्मरेत् ।।५३-५४।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि जाग्रत आदि आवस्थाओं के भेद से भोक्ता एवं भोग्य स्वरूप सम्पूर्ण जगत् स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है अतएव यह कल्पित कैसे हो सकता है ? इस तरह की आशङ्का करके स्वप्नगत जाग्रत आदि दृष्टान्त के द्वारा उसके सम्भव होने का प्रतिपादन करते हुए दो श्लोकों द्वारा कहते हैं । जैसे स्वप्न में सोया हुआ पुरुष दूसरे स्थान में स्थित पर्वत तथा वन इत्यादि रूप सम्पूर्ण जगत् को अपने भीतर देखता है । स्वप्न के बीच में सुषुप्ति तथा स्वप्न को भी देखता है । और स्वप्न में जगकर अपने को एक स्थान में विद्यमान शयन स्थान में ही देखता है और अपने को जाग्रत् अवस्था के ही समान अनुभव करता है । इस तरह प्रसिद्ध भी जागर आदि जीवें की अवस्थाएँ जीवोपाधि बुद्धि की ही अवस्थाएँ हैं और ये परमात्मा की मायामात्र हैं, इस तरह से जानकर उन सबों के द्रष्टा उस अवस्था से रहित परमात्मा को ही जानना चाहिए ।।५३-५४।।

येन प्रसुप्तः पुरुष स्वापं वेदात्मनस्तदा । सुखं च निर्गुणं ब्रह्म तमात्मानमवेहि माम् ।।५५।।

अन्वयः— येन प्रसुप्तः पुरुषः आत्मनः स्वापं तदा सुखं च वेद तम् आत्मानं निर्गुणं ब्रह्म माम् अवेहि ।।५५।।

अनुवाद— जिनकी सहायता से सोया हुआ पुरुष अपनी निद्रा तथा उसके अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करता है, वह ब्रह्म मैं ही हूँ । उसे तुम अपनी आत्मा समझो ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

ननु तेषां द्रष्टारमिति कथमुच्यते, स्वापे दृष्ट्याभावेन द्रष्टत्वाभावात्तत्राह-येनेति । प्रसुप्तः पुरुषो जीवो येन रूपेण तदा स्वापकाले आत्मनः स्वापं निर्गुणमतीन्द्रियं सुखं च वेद तमात्मानं ब्रह्म मामवेहि । तदा स्वापसुखयोरसंवेदेन 'सुखमहमस्वाप्सम्' इति स्मृतेरसंभवात् ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि परश्मेवर को उन सबों का द्रष्टा क्यों कहा गया है, क्योंकि स्वाप काल में जब दृश्य कुछ होता ही नहीं है तो फिर द्रष्टा का भी अभाव होगा । इस पर कहते हैं- सोया हुआ पुरुष जिस रूप से अपने निद्रा तथा उसके निर्गुण अतीन्द्रिय सुख को जानता है उसे तुम अपनी आत्मा समझो । उस समय निद्रा और सुख का यदि अनुभव नहीं होता तो फिर मैं सुख पूर्वक सोया, इस प्रकर की स्मृति भी नहीं होती ।।५५।।

उभयं स्मरतः पुंसः प्रस्वापप्रतिबोधयोः । अन्वेति व्यतिरिच्येत तज्ज्ञानं ब्रह्म तत्परम् ।।५६।।

अन्वयः— पुंसः प्रस्वापप्रतिबोधयोः उभयं स्मरतः यत् अन्वेति तत् व्यतिरिच्येत् तज्ज्ञानं तत् परं ब्रह्म ।।५६।।

अनुवाद— पुरुष निद्रा और जागरण इन दोनों अवस्थाओं का अनुभव करने वाला है । वह उन अवस्थाओं में अनुगत होने पर भी वस्तुतः उन दोनों से भिन्न है । वह सभी अवस्थाओं में रहने वाला अखण्ड एकरस ज्ञान ही वही परंब्रह्म है ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

ननु स्वापसाक्षिणा दृष्टं कथं जाग्रदवस्थः स्मरेत, नह्यन्येन दृष्टमन्यः स्मरति तत्राह- उभयं प्रस्वापं प्रतिबोधं च स्मरतोऽनुसंदधतः । तयोः प्रस्वापप्रतिबोधयोः प्रकाशकत्वेन यदन्वेति ताभ्यां व्यतिरिच्येत च । एकैकापायेऽप्यनपायात् । तज्ज्ञानं परं ब्रह्म तदेव, नतु भिन्नमित्यर्थः । अतो बाल्ये दृष्टस्य यौवने स्मृतिवदवस्थान्तरत्वेऽपि स्वापानन्दयोः स्मरणं घटत इति भावः । तदेवंभूतं ब्रह्मात्मानमवेहीत्यनुषङ्गः ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि स्वप्न के साक्षी के द्वारा देखे गये का जागरावस्था में रहने वाला जीव कैसे स्मरण कर सकता है ? लोक में भी देखा जाता है कि दूसरे के द्वारा दृष्ट वस्तु का दूसरा नहीं स्मरण करता है । इसके उत्तर में कहते हैं प्रस्वाप और प्रतिबोध इन दोनों का अनुसन्धान करने वाले के लिए । उन प्रस्वाप और प्रतिबोध के प्रकाशक रूप से जिसका अन्वय होता है वह उन दोनों से भिन्न ही होता है यही इन दोनों में से एक का भी अपाय (नाश) होने पर उसका नाश नहीं होता है । वह ज्ञान श्रेष्ठ है और वही ब्रह्म है । अतएव बाल्यावस्था में दृष्ट वस्तु का मनुष्य युवावस्था में जैसे स्मरण करता है उसी तरह दूसरी अवस्था में भी मनुष्य स्वाप काल में हुए आनन्द का भी जागर काल में स्मरण करता ही है । इस तरह की आत्मा तुम मुझको जानो इस तरह से अन्वय होता है ॥५६॥

यदेतद्विस्मृतं पुंसो मद्भावं भिन्नमात्मनः । ततः संसार एतस्य देहाद्देहो मृतेर्मृतिः ॥५७॥

अन्वयः— यदा पुंसः मद्भावः विस्मृतम् तदा आत्मना भिन्नम् । ततः संसार एतस्य देहाद्देहः मृतेः मृतिः ॥५७॥

अनुवाद— जब जीव मेरे स्वरूप को भूल जाता है तब वह अपने को अलग मान लेता है, उसी के कारण वह संसार चक्र में पड़कर बार-बार देह को और मृत्यु को प्राप्त करता है ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

विपक्षे दोषमाह-यद्यपि एतन्मद्भाव मत्स्वरूपं ब्रह्म विस्मृतं तदात्मनः सकाशाद्भिन्नं भवति । तत एतस्य पुंसः संसारो भवति । संसारस्वरूपमाह-देहाद्देहो जन्मानन्तरं पुनर्जन्म मृतेरनन्तरं मृतिश्चेति ॥५७॥'

भाव प्रकाशिका

मुझ परमात्मा को अपनी आत्मा नहीं मानने पर होने वाले दोष को बतलाते हुए शेषभगवान् कहते हैं यदि मनुष्य मेरे इस ब्रह्म स्वरूप को भूल जाता है तो वह आत्मा से भिन्न हो जाता है उसके पश्चात् उसको संसार की प्राप्ति होती है । संसार का स्वरूप यही है कि एक जन्म के बाद दूसरा जन्म होता है और एक बार मरने के बाद फिर मरना पड़ता है । अर्थात् बार-बार जन्म लेना और मरना ही संसार कहलाता है ॥५७॥

लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसंभवाम् । आत्मानं यो न बुध्येत न क्वचिच्छममाप्नुयात् ॥५८॥

अन्वयः— ज्ञान-विज्ञान संभवाम् इह मानुषीं योनिं लब्ध्वा यः आत्मानं न बुद्ध्येत क्वचित् शमं न आप्नुयात् ॥५८॥

अनुवाद— इस ज्ञान-विज्ञान के मूल स्रोत मनुष्ययोनि को प्राप्त करके भी जो अपने स्वरूप परमात्मा के नहीं जान लेता है उसको किसी भी योनि में शान्ति नहीं प्राप्त होती है ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

योन्यन्तरेऽपि भोगादिसंपादनं शक्यं ज्ञानार्थं त्वत्रैव यतितव्यमित्याह-लब्ध्वेति । ज्ञानं शास्त्रोक्तम्, विज्ञानमपरोक्षम्, तयोः सम्भवो यस्यां ताम् ॥५८॥

भाव प्रकाशिका

भोग की प्राप्ति तो दूसरी योनियों में भी हो जाती है किन्तु ज्ञान की प्राप्ति का प्रयास तो मनुष्य इस योनि में ही करना चाहिए। इसी बात को इस **लब्ध्वा० इत्यादि** श्लोक में कहा गया है। शास्त्रोक्त ज्ञान को ज्ञान शब्द से अभिहित किया जाता है और अपरोक्ष ज्ञान को विज्ञान कहा जाता है। इन दोनों की प्राप्ति इस मनुष्य योनि में ही सम्भव है ॥५८॥

स्मृत्वेहायं परिक्लेशं ततः फलविपर्ययम्। अभयं चाप्यनीहायां सङ्कल्पाद्विरमेत्कविः ॥५९॥

अन्वयः— इहायां परिक्लेशः ततः फलविपर्ययः स्मृत्वा अनीहायां चापि अभयं स्मृत्वा कविः सङ्कल्पात् विरमेत्।।५९।।

अनुवाद— प्रवृत्ति मार्ग में सुख की प्राप्ति के लिए की जाने वाली चेष्टाओं और उन चेष्टाओं से प्राप्त होने वाले क्लेश को याद करके तथा निवृत्ति मार्ग में होने वाली अभयत्व की प्राप्ति को जानकर मनुष्य को प्रवृत्ति मार्ग में किए जाने वाले विविध प्रकार के सङ्कल्पों का परित्याग कर देना चाहिए ॥५९॥

भावार्थ दीपिका

वैराग्यार्थमाह-ईहायां प्रवृत्तिमार्गे। तत ईहातः अनीहायां निवृत्तिमार्गे त्वभयं मोक्षो भवतीति च स्मृत्वा फलसङ्कल्पाद्विरमेत्। पाठान्तरे नोभयं परिक्लेशः फलविपर्ययश्च नास्तीत्येवं स्मृत्वा ॥५९॥

भाव प्रकाशिका

संसार से होने वाले वैराग्य के लिए शेष भगवान् कहते हैं प्रवृत्ति मार्ग में होने वाले सङ्कल्पों तथा उसका दुःखों में परिमाण को एवं निवृत्ति मार्ग में होने वाले मोक्ष का स्मरण करके ज्ञानी मनुष्य को प्रवृत्तिमार्ग का परित्याग कर देना चाहिए ॥५९॥

सुखाय दुःखमोक्षाय कुर्वाते दम्पती क्रियाः। ततोऽनिवृत्तिरप्राप्तिर्दुःखस्य च सुखस्य च ॥६०॥

अन्वयः— दम्पती सुखाय दुःखमोक्षाय क्रियाः कुर्वाते। किन्तु ततः दुःखस्य अनिवृत्तिः सुखस्य च अप्राप्तिः ॥६०॥

अनुवाद— संसार के सभी स्त्री-पुरुष अनेक प्रकार की क्रियाओं के द्वारा सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति का प्रयास करते हैं किन्तु उससे न तो दुःख की निवृत्ति होती है और न तो सुख की प्राप्ति होती है ॥६०॥

भावार्थ दीपिका

एतद्विवृणोति सुखायेति त्रिभिः। दुःखस्यानिवृत्तिः सुखस्याप्राप्तिः ॥६०॥

भाव प्रकाशिका

उनसठवें श्लोक में कही गयी बातों का विस्तार तीन श्लोकों में करते हैं- संसार के सभी स्त्रीपुरुष अपने प्रयासों के द्वारा न तो सुख की प्राप्ति कर पाते हैं और न तो उनके दुःख की निवृत्ति ही हो पाती है ॥६०॥

एवं विपर्ययं बुद्ध्वा नृणां विज्ञाभिमानिनाम्। आत्मनश्च गतिं सूक्ष्मां स्थानत्रयविलक्षणाम् ॥६१॥

अन्वयः— विज्ञाभिमानिनाम् विपर्ययं बुद्ध्वा एवं स्थानत्रय विलक्षणाम् आत्मनः सूक्ष्मां गतिं बुद्ध्वा सङ्कल्पात् विरमेत् ॥६१॥

अनुवाद— जो मनुष्य अपने को विज्ञ मानकर प्रवृत्ति मार्ग में पड़े हुए है वे अपने कर्मों का विपरीत फल दुःख को ही प्राप्त करते है इस बात को जान लेना चाहिए और आत्मा का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म हैं, वह जाग्रत स्वप्न एवं सुषुप्ति से भिन्न ही है इस प्रकार से भी जान लेना चाहिए ॥६१॥

भावार्थ दीपिका

विज्ञा उद्यमे प्रवीणा वयमित्यभिमानवताम् । स्थानत्रयविलक्षणां तुरीयां बुद्ध्वा ।।६१।।

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों को इस बात का अभिमान होता है कि हम कर्मों को करने में कुशल हैं अतएव हमलोग ज्ञानी है, इस तरह से जानने वालों को केवल दुःख ही प्राप्त होता है, तथा आत्मा का स्वरूप जाग्रत स्वप्न एवं सुषुप्ति इन तीनों से भिन्न तुरीय स्वरूप है, इस बात को जान लेना चाहिए और यह जानकर सङ्कल्पों का परित्याग कर देना चाहिए ।।६१।।

दृष्टश्रुताभिर्मात्राभिर्निर्मुक्तः स्वेन तेजसा । ज्ञानविज्ञानसंतुष्टो मद्भक्तः पुरुषो भवेत् ।।६२।।

अन्वयः— दृष्टश्रुताभिः मात्राभिः स्वेन तेजसा निर्मुक्तः ज्ञानविज्ञानसन्तुष्टः पुरुषः मद्भक्तः भवेत् ।।६२।।

अनुवाद— अपनी विवेक बुद्धि के द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक समस्त विषयों से विरक्त होकर मनुष्य को चाहिए कि वह मेरा भक्त बन जाय ।।६२।।

भावार्थ दीपिका

दृष्टश्रुताभिर्मात्राभिरैहिकामुष्मिकैर्विषयैः । स्वेन तेजसा विवेकबलेन ।।६२।।

भाव प्रकाशिका

दृष्टश्रुताभिः मात्राभिः अर्थात् लौकिक पारलौकिक विषयों से, स्वतेजसा अर्थात् अपने विवेक के द्वारा ।।६२।।

एतावानेव मनुजैर्योगनैपुणबुद्धिभिः । स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनम् ।।६३।।

अन्वयः— योगनैपुण्यबुद्धिभिः मनुजैः एतावानेव ज्ञेयो यत् सर्वात्मना परात्मैकदर्शनम् स्वार्थः ।।६३।।

अनुवाद— योग के तत्त्व को समझने में निपुण बुद्धि वाले मनुष्यों को यही समझना चाहिए कि पूर्ण रूप से आत्मा और परमात्मा का दर्शन ही स्वार्थ और परमार्थ है ।।६३।।

भावार्थ दीपिका

न चातः परः पुरुषार्थोऽस्तीत्याह-एतावानिति । योगे नैपुणं यस्यां सा बुद्धिर्येषाम् । परस्यात्मन एकं दर्शनमिति यदेतावानेव ।।६३।।

भाव प्रकाशिका

इससे बढ़कर दूसरा कोई पुरुषार्थ नहीं है इस बात को **एतावानेव इत्यादि** श्लोक से कहा गया है जिन मनुष्यों की बुद्धि योग के तत्त्व को समझने में निपुण है, उन लोगों को जानना चाहिए कि आत्मा और परमात्मा के अभेद का अनुभव करना ही जीव का स्वार्थ और परमार्थ है ।।६३।।

त्वमेतच्छ्रद्धया राजन्नप्रमत्तो वचो मम । ज्ञानविज्ञानसंपन्नो धारयन्नाशु सिध्यसि ।।६४।।

अन्वयः— राजन् ! अप्रमत्तः त्वम् एतत् मम वचः श्रद्धया धारयन् ज्ञानविज्ञान सम्पन्नः आशु सिध्यसि ।।६४।।

अनुवाद— राजन् ! यदि तुम सावधानी पूर्वक मेरे इस उपदेश को श्रद्धा पूर्वक धारण करोगे तो तुम ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न होकर शीघ्र ही सिद्ध हो जाओगे ।।६४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६४।।

श्रीशुक उवाच

आश्वास्य भगवानित्थं चित्रकेतुं जगद्गुरुः । पश्यतस्तस्य विश्वात्मा ततश्चान्तर्दधे हरिः ॥६५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अन्वयः— जगद्गुरुः भगवान् इत्थं चित्रकेतुं समाश्वास्य ततः विश्वात्मा हरिः तस्य पश्यतः अन्तर्दधे ॥६५॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जगद्गुरुः विश्वात्मा भगवान् श्रीहरिः चित्रकेतुम् इत्थं समाश्वास्य ततः तस्य पश्यतः अन्तर्दधे॥६५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण की भावार्थ दीपिका टीका के सोलहवें अध्याय की भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१६॥

सत्रहवाँ अध्याय

चित्रकेतु को पार्वतीजी का शाप

श्रीशुक उवाच

यतश्चान्तर्हितोऽनन्तस्तस्यै कृत्वा दिशे नमः । विद्याधरश्चित्रकेतुश्चचार गननेचरः ॥१॥

अन्वयः— विद्याधरश्चित्रकेतुः यतः अनन्तः अन्तर्हितः तस्यै दिशे नमः कृत्वा गगनेचरः चचार ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद—राजन् ! विद्याधर चित्रकेतु जिस दिशा में भगवान् अनन्त अन्तर्धान हुए थे उसी दिशा को नमस्कार करके आकाश मार्ग में विचरण करने लगे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततः सप्तदशेऽमोघमहर्द्धिं प्राप्य खे चरन् । विहस्य गिरिशं शापादुमाया वृत्रतां गतः । यतो यस्मात् । तस्यै दिशे नमः नमनं कृत्वा ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् सत्रहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है विद्याधर चित्रकेतु अमोघ महती सिद्धि को प्राप्त करके आकाशमार्ग से सञ्चरण करते हुए भगवान् शिव का उपहास करके पार्वतीजी के शाप से वृत्र के रूप में जन्म लिया ॥१॥ **यतः** अर्थात् जिस दिशा में **तस्यै दिशे नमः** यानी उस दिशा के नमस्कार करके ॥१॥

स लक्षं वर्षलक्षाणामव्याहतबलेन्द्रियः । स्तूयमानो महायोगी मुनिभिः सिद्धचारणैः ॥२॥
कुलाचलेन्द्रद्रोणीषु नानासङ्कल्पसिद्धिषु । रेमे विद्याधरस्त्रीभिर्गापयन्हरिमीश्वरम् ॥३॥

अन्वयः— महायोगी सः वर्षलक्षाणां लक्षम् नानासङ्कल्पसिद्धिषु कुलाचलेन्द्रद्रोणीषु रेमे अव्याहतबलेन्द्रियः मुनिभिः सिद्धचारणैः स्तूयमानः विद्याधरस्त्रीभिः हरिम् ईश्वरं गापयन् ॥२-३॥

अनुवाद— महायोगी चित्रकेतु सब प्रकार के सङ्कल्पों को पूरा करने वाली सुमेरु पर्वत की घाटियों में करोड़ों वर्षों तक विहार करते रहे उस समय उनके शरीर का बल और इन्द्रियों की शक्ति अक्षुण्ण बनी रही । बड़े-बड़े मुनि सिद्ध और चारण उनकी स्तुति करते रहते थे । उनकी प्रेरणा से विद्याधरों की स्त्रियाँ उनके सन्निकट सर्वशक्तिमान श्रीहरि की लीलाओं का गान करती रहती थी ॥२-३॥

भावार्थ दीपिका

स चित्रकेतुर्विद्याधरस्त्रीभिर्हरिं गापयन् रेम इति द्वयोरन्वयः । अव्याहतं बलमिन्द्रियपाटवं च यस्य । नानाविधाः सङ्कल्पेनैव सिद्धयो यासु तासु ॥२-३॥

भाव प्रकाशिका

विद्याधर चित्रकेतु विद्याधरों की स्त्रियों से श्रीहरि की लीलाओं का गान करवाते हुए विहार करते रहे इस तरह से दूसरे और तीसरे दोनों श्लोकों का एक साथ अन्वय है । सङ्कल्प मात्र से अनेक प्रकार की जिनमें सिद्धियाँ हो जाती हैं उन सुमेरु पर्वत की घाटियों में चित्रकेतु करोड़ों वर्षों तक विहार करते रहे ॥२-३॥

एकदा स विमानेन विष्णुदत्तेन भास्वता । गिरिशं ददृशे गच्छन्परीतं सिद्धचारणैः ॥४॥

अन्वयः— सः एकदा विष्णुदत्तेन भास्वता विमानेन, गच्छन् सिद्धचारणैः गिरिशं ददृशे ॥४॥

अनुवाद— एक बार भगवान् विष्णु के द्वारा प्रदत्त देदीप्य विमान से जाते हुए चित्रकेतु ने सिद्धों तथा चारणों से घिरे हुए श्रीशङ्करजी को देखा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अकस्मादद्भुतैश्वर्यगर्वात्प्राचीनकर्मतः । आसुरीं योनिमापन्नो भवानीशापतः स तु । तदाह-एकदेत्यादिना ॥४॥

भाव प्रकाशिका

अद्भुत एश्वर्य प्राप्ति के गर्व से तथा अपने प्राचीन कर्मों के कारण विद्याधर चित्रकेतु अकस्मात् पार्वतीजी शापवशात् आसुरी योनि में चले गये । इसी अर्थ का प्रतिपादन **एकदा इत्यादि** श्लोक से किया गया है ॥४॥

आलिङ्ग्याङ्कीकृतां देवीं बाहुना मुनिसंसदि । उवाच देव्याः शृण्वत्या जहासोच्चैस्तदन्तिके ॥५॥

अन्वयः— मुनिसंसदि बाहुना आलिङ्ग्य अङ्कीकृतां देवीं देव्या; शृणवत्याः तदन्तिके उच्चैः जहास उवाच ॥५॥

अनुवाद— चित्रकेतु देखे कि शिवजी पार्वतजी को अपनी गोद में बैठाकर भुजाओं से उनका आलिङ्गन किए हुए बैठे हैं । यह देखकर वे पार्वतीजी के सन्निकट में ही जोर से हँसे और उनका उपहास करते हुए कहने लगे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अङ्कीकृतामुत्सङ्गेनैकीकृत्य देवीं बाहुनालिङ्ग्य स्थितम् । उवाच जहास च । तस्यान्तिके स्थितः सन् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अपनी गोद में बैठाकर एक हाथ से पार्वतीजी का आलिङ्गन किए हुए शिवजी बैठे हैं । यह देखकर पार्वतीजी के सन्निकट में जाकर चित्रकेतु उनका उपहास किए और कहे ॥५॥

चित्रकेतुरुवाच

एष लोकगुरुः साक्षाद्धर्मं वक्ता शरीरिणाम् । आस्ते मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया ॥६॥

अन्वयः एषः लोकगुरुः साक्षात् धर्मवक्ता शरीरिणाम् मुख्यः वै सभायां भार्यया मिथुनीभूय आस्ते ॥६॥

चित्रकेतु ने कहा

अनुवाद ये सम्पूर्ण जगत् के धर्म शिक्षक और गुरु हैं । सभी शरीरधारियों में श्रेष्ठ हैं और सभा में ही अपनी पत्नी को अपने शरीर से चिपकाये बैठे हुए हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

धर्मं वक्ता वदति । शरीरिणां मध्ये मुख्यश्च भार्यया मिथुनीभूय चास्ते ॥६॥

भाव प्रकाशिका

धर्मवक्ता अर्थात् धर्मोपदेश करने वाले, **शरीरिणां मुख्यः** शरीर धारियों में सबसे मुख्य **मिथुनीभूय भार्यया** अर्थात् पत्नी को अपने से चिपकाये हुए बैठे हैं ॥६॥

जटाधरस्तीव्रतपा ब्रह्मवादिसभापतिः । अङ्कीकृत्य स्त्रियं चास्ते गतह्रीः प्राकृतो यथा ॥७॥

अन्वयः— जटाधरः तीव्रतपा ब्रह्मवादिसभापतिः प्राकृतो यथा गतह्रीः स्त्रियं अङ्कीकृत्य च आस्ते ॥७॥

अनुवाद— ये जटाधारण किए हुए और बहुत बड़े तपस्वी हैं । ये ब्रह्मवादियों के सभापति होकर भी साधारण पुरुष के समान निर्लज्जता पूर्वक गोद में स्त्री लेकर बैठे हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

प्रायशः प्राकृताश्चापि स्त्रियं रहसि बिभ्रति । अयं महाव्रतधरो बिभर्ति सदसि स्त्रियम् ॥८॥

अन्वयः— प्रायशः प्राकृताः चापि रहसि स्त्रियं विभ्रति अयं महाव्रत धरः सदसि स्त्रियं विभर्ति ॥८॥

अनुवाद— प्रायः साधारण पुरुष भी एकान्त में ही स्त्रियों के साथ बैठते है और ये तो महान् व्रत करने वाले हैं किन्तु सभा में स्त्री को साथ में लेकर बैठे हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

श्रीशुक उवाच

भगवानपि तच्छ्रुत्वा प्रहस्यागाधधीर्नृप । तूष्णीं बभूव सदसि सभ्याश्च तदनुव्रताः ॥९॥

अन्वयः— हे नृपः ! अगाध धीः भगवान् अपि तच्छ्रुत्व प्रहस्य सदसि तुष्णीं बभूव तत् अनुव्रतां अपि तुष्णीं बभूबुरिति शेषः ॥९॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! अगाध बुद्धि वाले भगवान् शिवजी भी उसकी बातों को सुनकर जोर से हँसे और सभा में हँसकर मौन हो गये और उनके अनुगामी भी चूप रहे ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अगाधा गम्भीरा धीर्यस्य सः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

गम्भीर धी: का अर्थ है अगाध बुद्धि सम्पन्न ॥९॥

इत्यतद्वीर्यविदुषि ब्रुवाणे बह्वशोभनम् । रुषाऽऽह देवी धृष्टाय निर्जितात्माभिमानिने ॥१०॥

अन्वयः— इत्यतदवीर्यविदुषि बहु अशोभनम् ब्रुवाणे धृष्टाय निर्जितात्मने देवी रुषा आह ॥१०॥

अनुवाद— भगवान् शङ्करजी की महिमा को नहीं जानने वाले तथा उनको बहुत कुछ बुरा भला कहने वाले, अपने को वशीकृत इन्द्रिय मान वाले तथा धृष्ट चित्रकेतु को क्रोध करके देवी पार्वतीजी ने कहा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

न तस्य वीर्यं प्रभावं विद्वानतद्वीर्यविद्वांस्तस्मिन् । निर्जितात्माभिमानिने जितेन्द्रियोऽहमित्यभिमानवते । इति रुषा क्रोधेनाह॥१०॥

भाव प्रकाशिका

राजा भगवान शिव के प्रभाव से अनभिज्ञ थे । मैं जितेन्द्रिय हूँ इस बात का उनको अभिमान था । इस प्रकार के चित्रकेतु को देवी पार्वतीजी ने क्रोध पूर्वक कहा ॥१०॥

पार्वत्युवाच

अयं किमधुना लोके शास्ता दण्डधरः प्रभुः । अस्मद्विधानां दुष्टानां निर्लज्जानां च विप्रकृत् ॥११॥

अन्वयः— अस्मदविधाना दुष्टानां निर्लज्जानां च विप्रकृत् अधुना लोके शास्ता दण्ड धरः प्रभुः अयं किम् ?॥११॥

पार्वतीजी ने कहा

अनुवाद— हम जैसे दुष्टों और निलज्जों का इस समय संसार में दण्ड के बराबर प्रशासन और तिरस्कार करने वाला यही है क्या ?॥११॥

भावार्थ दीपिका

विरुद्धं प्रकर्षेण करोतीति विप्रकृत् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

अत्यधिक तिरस्कार करने वाला ॥११॥

न वेद धर्मं किल पद्मयोनिर्न ब्रह्मपुत्रा भृगुनारदाद्याः ।
न वै कुमारः कपिलो मनुश्च ये नो निषेधन्त्यतिवर्तिनं हरम् ॥१२॥

अन्वयः— किल पद्मयोनिः धर्म वेद न भृगुनारदाद्याः ब्रह्मपुत्राः न वै कुमारः कपिलः मनुश्च ये अतिवर्तिन हरम् न निषेधन्ति ॥१२॥

अनुवाद— लगता है कि ब्रह्माजी भृगु आदि महर्षि गण, नारदजी, ब्रह्माजी के पुत्र सनकादिक परमर्षि कपिलदेवजी तथा मनु आदि धर्म के स्वरूप को नहीं जानते हैं, इसीलिए वे लोग शास्त्र विरुद्ध आचरण करने वाले श्रीशङ्करजी को ऐसा आचरण करने से मना नहीं करते हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अतिवर्तिनं शास्त्रमतिक्रम्य वर्तनशीलम् । ये नो निषेधन्ति न निवारयन्ति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अतिवर्तिनम् अर्थात् शास्त्र की मर्यादा का अतिक्रमण करने वाले शङ्करजी को, नहीं रोकते हैं ॥१२॥

एषामनुध्येयपदाब्जयुग्मं जगद्गुरुं मङ्गलमङ्गलं स्वयम् ।
यः क्षत्रबन्धुः परिभूय सूरीन्प्रशास्ति धृष्टस्तदयं हि दण्ड्यः ॥१३॥

अन्वयः— एषामनुध्येय पदाब्जयुग्मं जगद्गुरुम स्वयं मङ्गलमङ्गलम् यः धृष्टः क्षत्रबन्धुः सूरीन् परिभूय प्रशास्ति तत अयं हि दण्ड्यः ॥१३॥

अनुवाद— उपर्युक्त ब्रह्मा आदि सभी महापुरुष जिनके चरणों की वन्दना करते है, उन मङ्गलों को भी मङ्गलमय बना देने वाले जगद्गुरु भगवान् शङ्कर का तथा उनके अनुयायी महापुरुषों का इस अधम क्षत्रिय ने जो तिरस्कार किया है । अतएव यह दण्डनीय हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

एषां ब्रह्मादीनामनुध्येयं पदाब्जयुग्मं यस्य तम् । मङ्गलमङ्गलं परमधर्ममूर्तिम् । सूरीन् परिभूयाज्ञान् कृत्वा जगद्गुरुं यः तिरस्करोति । तत्तस्मात् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी आदि सभी महापुरुष जिन श्रीशङ्करजी के चरणों का ध्यान करते हैं, वे शङ्करजी मङ्गल को भी मङ्गलमय बना देने वाले हैं । अर्थात् मूर्तिमान परमधर्म स्वरूप हैं तथा महापुरुषों को अज्ञ मानकर शङ्करजी का अपमान करता है. अतएव यह दण्ड का अधिकारी है ॥१३॥

नायमर्हति वैकुण्ठपादमूलोपसर्पणम् । संभावितमतिः स्तब्धः साधुभिः पर्युपासितम् ॥१४॥

अन्वयः— सम्भावितमतिः स्तब्धः अयम् साधुभिः पर्युपासितम् वैकुण्ठपादमूलोपसर्पणम् न अर्हति ॥१४॥

अनुवाद— इसको अपने बडप्पन का अभिमान है, अतएव यह दुर्विनीत है । अतएव सत्पुरुषों के जिनकी सेवा की जाती है उन श्रीभगवान् के चरणों में रहने योग्य नहीं है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

ननु हरिभक्तोऽयं न दण्डार्ह इति चेत्तत्राह नायं साधुभिः परिसेवितं वैकुण्ठस्य पादमूलोपसर्पणमर्हति । यतः संभाविता अहमधिक इति कृता मतिर्येन । अतएव स्तब्धोऽनम्रः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि यह श्रीहरि का भक्त है अतएव दण्ड के योग्य नहीं है तो इसके उत्तर में पार्वतीजी कहती हैं कि सत्पुरुषों के द्वारा सेवित श्रीहरि के चरणों की शरणागति नहीं कर सकता है, क्योंकि इसको मैं ही सबसे महान् हूँ, इस तरह का अभिमान हो गया है, अतएव यह दुर्विनीत हो गया है ॥१४॥

अतः पापीयसीं योनिमासुरीं याहि दुर्मते । यथेह भूयो महतां न कर्ता पुत्र किल्बिषम् ॥१५॥

अन्वयः— अतः हेदुर्मते त्वम् पापीयसीम् आसुरीम् योनिम् याहि। हे पुत्र यथा इह भूयः महतां किल्बिषम् न कर्ता॥१५॥

अनुवाद— अतएव हे दुर्बुद्धि ! तुम पापमयी आसुरी योनि में चले जाओ, जिससे कि पुनः तुम किसी महापुरुष का अपराध नहीं करोगे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं स्वयं दण्ड्यत्वं निश्चित्य तं प्राह-अत इति । हे पुत्र, यथा भूयो महतां किल्बिषमपराधं नकर्ता न करिष्यसि तथा याहीत्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से स्वयम् चित्रकेतु को दण्ड के योग्य निश्चय करके पार्वतीजी ने कहा हे पुत्र ! जिससे कि तुम पुनः किसी महापुरुष का अपराध नहीं करोगे अतएव तुम पापमयी आसुरी योनि में जन्म लो ॥१५॥

श्रीशुक उवाच

एवं शप्तश्चित्रकेतुर्विमानादवरुह्य सः । प्रसादयामास सतीं मूर्ध्ना नम्रेण भारत ॥१६॥

अन्वयः— एवं शप्तः स चित्रकेतुः विमानत् अवरुह्य, सतीं नम्रेण मूर्ध्ना प्रसादयामास ॥१६॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे परीक्षित् ! इस तरह से पार्वतीजी के द्वारा अभिशप्त होकर वह चित्रकेतु अपने विमान से उतर कर शिर झुकाकर पार्वतीजी को प्रसन्न किया ।।१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१६।।

चित्रकेतुरुवाच

प्रतिगृह्णामि ते शापमात्मनोऽञ्जलिनाम्बिके । देवैर्मर्त्याय यत्प्रोक्तं पूर्वदिष्टं हि तस्य तत् ।।१७।।

अन्वयः— अम्बिके ते शापं आत्मनः अञ्जलिना प्रतिगृह्णामि देवैः मर्त्यापि यत् प्रोक्तं तत् हि तस्य पूर्वादिष्टम् ।।१७।।

अनुवाद— हे मातः ! मैं अपना हाथ जोड़कर आपके शाप को स्वीकार करता हूँ, क्योंकि देवता लोग मनुष्यों के लिए जो कह देते हैं, वह उसके प्रारब्धानुसार मिलने वाले फल की सूचना मात्र होती है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

पूर्वदिष्टं प्राचीनकर्मप्राप्तमेव ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

पूर्वदिष्टं अर्थात् पूर्वजन्म के कर्मों का फल ही होता है ।।१७।।

संसारचक्र एतस्मिन् जन्तुरज्ञानमोहितः । भ्राम्यन्सुखं च दुःखं च भुङ्क्ते सर्वत्र सर्वदा ।।१८।।

अन्वयः— एतस्मिन् संसार चक्रे अज्ञानमोहितः जन्तुः भ्राम्यन् सर्वत्र सर्वदा सुखं च दुःखं च भुङ्क्ते ।।१८।।

अनुवाद— इस संसार चक्र में भटकता हुआ अज्ञान से मोहित बना हुआ यह जीव सर्वत्र और सर्वदा दुःख तथा सुख को भोगता है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

यं च संसारचक्रस्वभाव एव न चित्रमित्याह-संसारचक्र इति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में चित्रकेतु ने कहा है कि यह तो संसार चक्रभाव ही है यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।।१८।।

नैवात्मा न परश्चापि कर्ता स्यात्सुखदुःखयोः । कर्तारं मन्यतेऽप्राज्ञ आत्मानं परमेव च ।।१९।।

अन्वयः— सुख दुःखयोः कर्ता नैव आत्मा न अपि परः अप्राज्ञ आत्मानं परम् एव च कर्तारं मन्यते ।।१९।।

अनुवाद— हे मातः ! सुख एवं दुःख को देने वाली न तो अपनी आत्मा होती है और न कोई दूसरा होता है । अज्ञानी लोग ही सुख एवं दुःख को देने वाली अपनी आत्मा को तथा दूसरे को मानते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

अतएवात्र मम च तव च न कोऽपि दोष इत्याह-नैवेति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में चित्रकेतु कहते हैं कि इसमें न तो, मेरा दोष है न आपका ही दोष है ।।१९।।

गुणप्रवाह एतस्मिन्कः शापः कोन्वनुग्रहः । कः स्वर्गो नरकः को वा किं सुखं दुःखमेव वा।।२०।।

अन्वयः— गुण प्रवाहः एतस्मिन् कः शापः ? कः नु अनुग्रहः ?, कः स्वर्गः ? कः नरकः ? किं सुखं ? किं वा दुखम् ?।।२०।।

अनुवाद— यह संसार सत्त्व, रजस एवं तमस इन तीनों गुणों का स्वाभाविक प्रवाह है, इसमें क्या शाप, क्या अनुग्रह, क्या स्वर्ग, क्या नरक, क्या सुख और क्या दुःख ?॥२०॥

भावार्थ दीपिका

एवं तावत्सुखदुःखादिकमङ्गीकृत्योक्तमिदानीं तदपि वस्तुतो नास्तीत्याह-गुणानां मायामयानां प्रवाहे संसारे ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से सुख-दुःख इत्यादि को स्वीकार करके उसने कहा इस समय सुखादि भी मिथ्या हैं । इस संसार में मायामय सत्त्वादि गुणों का प्रवाह चलता रहता है ॥२०॥

एकः सृजति भूतानि भगवानात्ममायया । एषां बन्धं च मोक्षं च सुखं दुःखं च निष्कलः ॥२१॥

अन्वयः— एकः निष्कलः भगवान् आत्ममायया भूतानि सृजति एषां बन्धं च मोक्षं च सुखं दुःखं च सृजति ॥२१॥

अनुवाद— एकमात्र परिपूर्ण भगवान् बिना किसी की सहायता अपनी माया के द्वारा सभी प्राणियों, उनके बन्ध, मोक्ष तथा सुख-दुःख की भी सृष्टि करते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

ननु मायागुणानां चेदयं प्रवाहस्तर्हि तेषां जडत्वाद्बन्धमोक्षाद्यनुभवो न स्यात्तत्राह- एकः परमेश्वरो मायया निमित्तभूतया भूतानि प्राणिनः सृजति । एषां बन्धादिकं च सृजति । निष्कलः स्वयं बन्धादिशून्यः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होत है कि यदि यह माया के सत्त्वादि गुणों का प्रवाह है तो फिर सत्त्वादि गुणों के जड़ होने के कारण उन सबों को मोक्ष इत्यादि का अनुभव नहीं हो सकता है । तो इस पर चित्रकेतु कहते हैं एक ही परमात्मा अपनी निमित्त स्वरूपिणी माया के द्वारा सभी प्राणियों की सृष्टि करते हैं, वे ही उन सबों के बन्ध तथा मोक्ष आदि की भी सृष्टि करते हैं, स्वयं परमात्मा निष्कल अर्थात् बन्ध से रहित हैं ॥२१॥

न तस्य कश्चिद्दयितः प्रतीपो न ज्ञातिबन्धुर्न परो न च स्वः ।
सा यस्य सर्वत्र निरञ्जनस्य सुखेन रागः कुत एव रोषः ॥२२॥

अन्वयः— सर्वत्र समस्य, निरञ्जनस्य तस्य कश्चिद् दयितः न न प्रतीपः न ज्ञाति बन्धु, न परः न च स्वः तस्य सुखे रागः न कृतः एवं रोषः ॥२२॥

अनुवाद— हे मातः ! श्रीहरि सबों में सम तथा माया आदि के दोषों से रहित है, उनका न तो कोई अपना है और न को ई पराया उनका कोई ज्ञाति बन्धु भी नहीं है । जब उनका सुख में राग ही नहीं है तो फिर उनको रोष कैसे हो सकता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवंभूतविषमसृष्टौ तस्य किं कारणं, प्रियादिवैषम्याभावादित्याशङ्क्य यद्यपि प्रियादयो न सन्ति तथापि तत्तत्कर्मवशात्सर्वं घटत इत्याह-न तस्येति द्वाभ्याम् । प्रतीपोऽप्रियः । न ज्ञातिर्बन्धुश्चेत्यर्थः । तत्र हेतुः-सर्वत्र समस्य । तत्कुतः, निरञ्जनस्य निःसङ्गस्य । अतएव तन्निमित्ते सुखे रागो नास्ति, रागानुबन्धी रोषः कुतः स्यात् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि संसार में पायी जाने वाली इस विषम सृष्टि का कारण क्या है ? क्योकि उनमें प्रिय आदि वैषम्य का अभाव है । इस तरह की आशङ्का करके चित्रकेतु ने कहा यद्यपि परमात्मा का कोई प्रिय आदि

नहीं है फिर जीव के जो पूर्वकृत कर्म विविध प्रकार के हैं, उसी के कारण जगत् में विचित्र सृष्टि पायी जाती है। इस बात को श्लोकों में कहा गया हैं । प्रतीप अर्थात् विरुद्ध परमात्मा का ज्ञाति बन्धु कोई नहीं है । उसका कारण यह है कि वे सर्वत्र सम एवं नि:सङ्ग हैं । अतएव उनका सुख से राग नहीं है । फलत: राग से सम्बन्ध रखने वाला रोष उनमें कैसे हो सकता है ?॥२२॥

तथापि तच्छक्तिविसर्ग एषां सुखाय दु:खाय हिताहिताय ।
बन्धाय मोक्षाय च मृत्युजन्मनो: शरीरिणां संसृतयेऽवकल्पते ॥२३॥

अन्वय:— तथापि तत् शक्तिविसर्ग: एषां सुखाय दु:खाय, हिताहिताय बन्धाय मोक्षाय शरीरिणां मृत्युजन्मनो: संसृतयेऽवकल्प्यते ।।२३।।

अनुवाद— फिर भी उनकी माया शक्ति के कार्य पाप और पुण्य ही प्राणियों के सुख-दु:ख, हित-अहित, बन्ध-मोक्ष, मृत्यु-जन्म और आवागमन के कारण उनसे ही होते हैं ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

यद्यप्येवं तथापि तस्य शत्तया मायया यो विसर्ग: पुण्यपापादिलक्षणं कर्म एषां शरीरिणां सुखाद्यर्थमवकल्पते समर्थो भवति । यथोक्तं गीतासु 'भूतभावोद्भवकरो विसर्ग: कर्मसंज्ञित:' इति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि परमात्मा सबों के लिए सम हैं फिर भी उनकी माया नामक शक्ति के द्वारा जो पुण्य-पाप रूप कर्म कराये जाते है उसी के कारण सभी प्राणियों को सुख-दु:ख इत्यादि की प्राप्ति होती है । गीता में कहा भी गया है- भूतभावोद्भवकर: विसर्ग कर्म संज्ञित: । अर्थात् भूतों के भाव और उद्भव को करने वाला कर्म शब्द से अभिहित किया जाने वाला विसर्ग ही है ।।२३।।

अथ प्रसादये न त्वां शापमोक्षाय भामिनि । यन्मन्यसे असाधूक्तं मम तत्क्षम्यतां सति ॥२४॥

अन्वय:— अथ हे भामिनि त्वां शापमोक्षाय न प्रसादये हे सति मम यत् असाधूक्तं मन्यसे तत्क्षम्यताम् ।।२४।।

अनुवाद— अतएव मैं आपको शाप की मुक्ति के लिए नहीं प्रसन्न कर रहा हूँ । हे पतिप्राणा देवि ! मैं चहता हूँ कि मेरी जो बात आपको अनुचित प्रतीत हुई है उसको आप क्षमा कर दें ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

अथ तस्माद्भामिनि हे कोपने, त्वां केवलं प्रसादयामि नतु शापमोक्षाय । तर्हि किं प्रसादनेनात आह-ममोक्तमुक्तिं साध्वप्यसाधुवन्मन्यसे तत्त्वया क्षम्यताम् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

अतएव हे पतिप्राणा देवि ! मैं केवल आपको प्रसन्न कर रहा हूँ, शाप की मुक्ति के लिए मैं आपसे नहीं प्रार्थना कर रहा हूँ । यदि आप पूछे कि तो फिर इस प्रसन्न करने से तुमको कौन सा लाभ है ? तो इस पर चित्रकेतु कहते हैं मेरी अच्छी भी बातें जो आपको बुरी लगीं हों उसको आप क्षमा कर दें ।।२४।।

श्रीशुक उवाच

इति प्रसाद्य गिरिशौ चित्रकेतुररिंदम । जगाम स्वविमानेन पश्यतो: स्मयतोस्तयो: ॥२५॥

अन्वय:— हे अरिंदम ! इति गिरिशौ प्रसाद्य चित्रकेतु: स्मयतो: तयो: पश्यतो: स्वविमानेन जगाम ।।२५।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे अपने शत्रुओं का दमन करने वाले परीक्षित ! इस तरह से शङ्कर पार्वती जी को प्रसन्न करके चित्रकेतु आश्चर्य चकित उन दोनों के सामने अपने विमान से चला गया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

गिरिशौ भवानीशङ्करौ प्रसाद्य । स्मयतोर्विस्मयं कुर्वतोः सतोः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

शङ्करजी तथा पार्वती को प्रसन्न करके उनश्चर्य करने वाले उन दोनों के सामने ही चित्रकेतु चले गये ॥२५॥

ततस्तु भगवान् रुद्रो रुद्राणीमिदमब्रवीत् । देवर्षिदैत्यसिद्धानां पार्षदानां च शृण्वताम् ॥२६॥

अन्वयः— ततः तु भगवान् रुद्रः देवर्षि-दैत्य-सिद्धानाम् पार्षदानां च शृण्वताम्, रुद्राणीम् इदम् अब्रवीत् ॥२६॥

अनुवाद— चित्रकेतु के चले जाने के पश्चात् भगवान् शङ्कर ने देवताओं, ऋषियां, दैत्यों और अपने पार्षदों के सामने ही भगवती पार्वतीजी से इस प्रकार कहे ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

श्रीरुद्र उवाच

दृष्टवत्यसि सुश्रोणि हरेरद्भुतकर्मणः । माहात्म्यं भृत्यभृत्यानां निस्पृहाणां महात्मनाम् ॥२७॥

अन्वयः— हे सुश्रोणि ! अद्भुत कर्मणः हरेः भृत्यभृत्यानाम् निस्पृहाणाम् महात्मन् माहात्म्यम् दृष्टवती असि ॥२७॥

श्रीशङ्करजी ने कहा

अनुवाद— हे सुन्दरि ! अद्भुत लीला करने वाले श्रीभगवान् के निस्पृह और उदार हृदय वाले दासानुदासों की महिमा तुमने अपनी आँखों से देख ली ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति । स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥२८॥

अन्वयः— सर्वे नारायणपराः कुतश्चन न विभ्यति स्वर्गापवर्ग नरकेषु अपि तुल्य दर्शिनः ॥२८॥

अनुवाद— जो लोग भगवान् नारायण के भक्त होते हैं वे किसी से भी नहीं डरते हैं, वे स्वर्ग मुक्ति तथा नरक को एक समान ही देखते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

स्वर्गादावेव तुल्योऽर्थः प्रयोजनमिति द्रष्टुं शीलं येषां ते तथा ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

भगवद्भक्तो स्वर्ग, नरक और मोक्ष को भी एक समान दृष्टि से देखते हैं ॥२८॥

देहिनां देहसंयोगाद्द्वन्द्वानीश्वरलीलया । सुखं दुःखं मृतिर्जन्म शापोऽनुग्रह एव च ॥२९॥

अन्वयः— देहिनां देह संयोगात् ईश्वरलीलया सुखं दुखं मृतिः जन्म शाप अनुग्रह एव च ॥२९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की लीला से ही शरीरधारियों को शरीर की प्राप्ति होती है । उनको सुख-दुःख, जन्म मरण, शाप एवं शापानुग्रह ये सब भगवान् की लीला है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तदुक्तमेव हेतुमाह द्वाभ्याम् । देहिनां सुखं दु:खमित्यादिद्वन्द्वानीश्वरस्य लीलया मायया भवन्ति । तेषु च गुणदोषविकल्पश्चेत्यन्वयः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् शङ्कर दो श्लोकों द्वारा चित्रकेतु प्रोक्त ही हेतु को भगवद्भक्तों के तुल्य दर्शित्व को बतलाते हैं। शरीरधारियों को सुख-दु:ख इत्यादि द्वन्द्वों की प्राप्ति श्रीभगवान् की माया से ही होती है। उन द्वन्दों में गुण तथा दोष रूप विकल्प होते हैं ।।२९।।

अविवेककृतः पुंसो ह्यर्थभेद इवात्मनि । गुणदोषविकल्पश्च भिदेव स्रजिवत्कृतः ।।३०।।

अन्वयः— पुंसः अविवेककृत आत्मनि अर्थभेद इव गुणदोष विकल्पाः च स्रजिव भिदेव कृतः ।।३०।।

अनुवाद— जैसे स्वप्न में भेदभ्रम के कारण सुख तथा दु:ख आदि की प्रतीति होती है और जाग्रत अवस्था में भ्रमवशात् माला में ही सर्प की बुद्धि हो जाती है वैसे ही मनुष्य अज्ञानवश आत्मा में देव, मनुष्य आदि के भेद और गुण दोष आदि की कल्पना करता है ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

इष्टानिष्टभेद इव य; स्फुरति य आत्मन्यर्थभेदः सुखादिभेदः पुंसः स्वप्ने यथा अविवेककृतो भवति। स्रजिवत् सर्पमालादिभिर्यथा तथैव कृत इत्यर्थः। स्रग्वदिति वक्तव्ये स्रजिवदित्यार्षम्। पाठान्तरे तु सुगमम् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

जिस तरह पुरुष को स्वप्न भेद के कारण सुख दु:ख की प्रतीति होती है, अथवा जैसे जागरावस्था में भ्रम के कारण माला में ही सर्पादि की प्रतति होती है, उसी तरह भ्रम के ही कारण आत्मा में देव, मनुष्य आदि तथा उनमें होने वाले दोष एव गुण की भी प्रतीत भ्रमवशात् ही होती है। **स्रग्वत्** के बदले में सजिवत् पाठ आर्ष हैं।।३०।।

वासुदेवे भगवति भक्तिमुद्वहता नृणाम् । ज्ञानवैराग्यवीर्याणां नेह कश्चिद्व्यवपाश्रयः ।।३१।।

अन्वयः— ज्ञानवैराग्य वीर्याणाम् वासुदेवे भगवति भक्तिमुद्वहताम् नृणाम् इत कश्चिद् व्यपाश्रयः न ।।३१।।

अनुवाद— जिन मनुष्यों के पास ज्ञान एवं वैराग्य का बल है तथा जो लोग भगवान् वासुदेव की भक्ति करते हैं, उन लोगों के लिए इस संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जिसको वे हेय अथवा उपादेय समझकर द्वेष अथवा राग करें ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

अतो भागवतानां निस्पृहत्वमुचितमेवेत्याह–वासुदेव इति। ज्ञानवैराग्ययोवीर्यं बलं येषां तेषाम्। व्यपाश्रयो विशिष्टवद्‌युद्धा आश्रयणीयोऽर्थो नास्ति ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

अतएव भगवान् के भक्त हैं उनका निस्पृह होना उचित ही है इसी बात को इस श्लोक में कहा गया है। जिनलोगों का बल ज्ञान और वैराग्य है उन लोगों के लिए इस संसार में कोई भी वस्तु विशिष्ट बुद्धि से स्वीकाराहं नहीं है ।।३१।।

नाहं विरिञ्चो न कुमारनारदौ न ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशाः ।
विदाम यस्येहितमंशकांशका न तत्स्वरूपं पृथगीशमानिनः ।।३२।।

अन्वयः— अहं विरिञ्चः न कुमारनारदौ, न ब्रह्मपुत्राः मुनय सुरेशाः, यस्य अंशकांशकाः यस्य इहितं न विदाम न तत्स्वरूपं विदाम पृथक् ईश मानिनः ।।३२।।

अनुवाद— मैं ब्रह्माजी सनकादि, नारदजी, ब्रह्माजी के पुत्र भृगु आदि महर्षि तथा बड़े-बड़े देवता भी जिन श्रीभगवान् के सूक्ष्माति सूक्ष्म अंश हैं और अपने को अलग ईश्वर मानते हैं, हमलोगों में से कोई भी श्रीभगवान् की न तो लीला को जान पाते हैं और न तो उनके स्वरूप को जानते हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अस्य च हरिदासत्वेन तत्स्वभावत्वान्नैतच्चित्रमिति वक्तुं हरेर्माहात्म्यमाह—नाहमिति द्वाभ्याम् । ईहितमभिप्रायं लीलां वा यदा वयं न विद्मस्तदा तस्य स्वरूपमंशकांशका अपि सन्तः पृथगीशमानिनो न विदुरेव ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

यह चित्रकेतु श्रीहरि का दास है, अतएव इसका इस प्रकार का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, इस बात को कहने के लिए **नाहम् इत्यादि** दो श्लोकों के द्वारा शङ्करजी श्रीहरि की महिमा का वर्णन करते हैं । ईहित शब्द के द्वारा अभिप्राय अथवा लीला को कहा गया है और न उनके स्वरूप को ही जानता हैं । हमलोग तो उनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंश हैं । फिर भी अपने को अलग ईश्वर मानते हैं ॥३२॥

नह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा । आत्मत्वात्सर्वभूतानां सर्वभूतप्रियो हरिः ॥३३॥

अन्वयः— अस्य कश्चित् प्रियः नहि अस्ति। न अप्रियः, स्वः वा परंः अपि, सर्वभूतानाम् आत्मत्वात् सर्वभूतप्रियः हरिः ॥३३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का न तो कोई प्रिय है और न अप्रिय है अथवा न तो कोई अपना है और न पराया है, श्रीहरि सभी प्राणियों की आत्मा हैं अतएव वे सभी प्राणियों के प्रिय हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अतएव हरिरपि सर्वेषां भूतानां प्रियः॥३३॥

भाव प्रकाशिका

शङ्करजी कहते है कि श्रीहरि सभी प्राणियों के प्रिय इसलिए हैं कि वे सबों की आत्मा हैं ॥३३॥

तस्य चायं महाभागश्चित्रकेतुः प्रियोऽनुगः । सर्वत्र समदृक् शान्तो ह्यहं चैवाच्युतप्रियः ॥३४॥

अन्वयः— अयं च महाभागः चित्रकेतु; तस्य प्रियः अनुगः, सर्वत्र, समदृक् शान्तः अहं चैव अच्युत प्रियः ॥३४॥

अनुवाद— यह महाभाग्यवान् चित्रकेतु श्रीभगवान् का प्रिय अनुचर है यह शान्त और समदर्शी और शान्त हैं । मै भी श्रीहरि का ही प्रिय हूँ ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

अहं चैवाच्युतस्य प्रियः । तस्मान्ममास्मिन्क्रोधो नाभूदिति भावः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

मैं भी भगवान् अच्युत का प्रिय हूँ । यह कारण है कि मैं चित्रकेतु पर क्रुद्ध नहीं हुआ ॥३४॥

तस्मान्न विस्मयः कार्यः पुरुषेषु महात्मसु । महापुरुषभक्तेषु शान्तेषु समदर्शिषु ॥३५॥

अन्वयः— तस्मात् महात्मसु पुरुषेषु, महापुरुषभक्तेषु, शान्तेषु समदर्शिषु, विस्मयः न कार्यः ॥३५॥

अनुवाद— अतएव महात्मा पुरुषों के विषय में श्रीभगवान् के भक्तों के विषय में, शान्त एवं समदर्शी पुरुषों के विषय में आश्चर्य नही करना चाहिए ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३५॥

श्रीशुक उवाच

इति श्रुत्वा भगवतः शिवस्योमाभिभाषितम् । बभूव शान्तधी राजन्देवी विगतविस्मया ॥३६॥

अन्वयः— राजन् ! इति भगवतः शिवस्य अभिभाषितम् श्रुत्वा देवी विगतविस्मयां शान्तधी बभूव ॥३६॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार भगवान शङ्कर की बातों को सुनकर देवी पार्वती के आश्चर्य का परित्याग करके शान्त बुद्धि वाली हो गयी ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

इति भागवतो देव्याः प्रतिशप्तुमलंतमः । मूर्ध्ना संजगृहे शापमेतावत्साधुलक्षणम् ॥३७॥

अन्वयः— इति प्रतिशप्तुं अलंतमः भागवतः देव्याशापम् मूर्ध्ना संजगृहे एतावत् साधुलक्षणम् ॥३७॥

अनुवाद— इस तरह से शाप के बदले में प्रतिशाप देने में अत्यन्त समर्थ होकर भी भगवद्भक्त चित्रकेतु ने पार्वतीजी के शाप को शिरोधार्य कर लिया यही साधु पुरुषों का लक्षण है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिशापं दातुमलंतमः समर्थतमोऽपि ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

पार्वतीजी को भी शाप देने में अत्यन्त समर्थ भी चित्रकेतु शाप नहीं दिए यही साधु पुरुषों का लक्षण हैं॥३७॥

जज्ञे त्वष्टुर्दक्षिणाग्नौ दानवीं योनिमाश्रितः । वृत्र इत्यभिविख्यातो ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥३८॥

अन्वयः— त्वष्टुः दक्षिणाग्नौ दानवीं योनिमाश्रितः वृत्र इत्यभिविख्यातः ज्ञान विज्ञान संयुतः जज्ञे ॥३८॥

अनुवाद— वही (चित्रकेतु) ही त्वष्टा की दक्षिणाग्नि से दानवी योनि को अपनाकर वृत्र के नाम से विख्यात एवं ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न उत्पन्न हुआ ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३८॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि । वृत्रस्यासुरजातेश्च कारणं भगवन्मतेः ॥३९॥

अन्वयः— यत् मां त्वं परिपृच्छसि, एतत् ते सर्वम् वृत्रस्य असुरजातेः भगवन्मतेः कारणं च आख्यातम् ॥३९॥

अनुवाद— तुमने जो पूछा था वह सब मैंने तुमको सुना दिया तथा वृत्रासुर के असुर जाति में जन्म और श्रीभगवान् में भक्ति के कारण को भी मैंने तुम्हे सुना दिया ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

असुरजातेरसुरभावेनोत्पत्तेः । भगवति मतेश्च ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

वृत्रासुर के असुर भाव से सम्पन्न होने तथा भगवद् भक्त होने के कारण को मैंने सुना दिया ॥३९॥

इतिहासमिमं पुण्य चित्रकेतोर्महात्मनः । महात्म्यं विष्णुभक्तानां श्रुत्वा बन्धाद्विमुच्यते ॥४०॥

अन्वयः— महात्मनः चित्रकेतोः इमं पुण्यम् इतिहासम् विष्णुभक्तानां माहात्म्यं च श्रुत्वा बन्धाद् विमुच्यते ॥४०॥

अनुवाद— महात्मा चित्रकेतु के इस पवित्र इतिहास का तथा भगवान् विष्णु के भक्तों की महिमा का श्रवण करके मनुष्य समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है ॥४०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४०॥

य एतत्प्रातरुत्थाय श्रद्धया वाग्यतः पठेत् । इतिहासं हरिं स्मृत्वा स याति परमां गतिम् ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे सप्तदशोध्याय: ॥१७॥

अन्वयः— यः प्रातः उत्थाय वाग्यतः एतत् इतिहासं श्रद्धया पठेत् हरिं स्मृत्वा सः परमां गति याति ॥४१॥

अनुवाद— जो मनुष्य प्रात:काल उठकर मौन रहकर इस इतिहास को श्रद्धापूर्वक पढेगा वह मुक्ति को प्राप्त कर लेगा ॥४१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

एतदेतम् ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण षष्ठस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

एतत् शब्द का अर्थ है इस इतिहास को ॥४१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के सत्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१७॥

◆

अठारहवाँ अध्याय

अदिति और दिति के सन्तानों की तथा मरुद्गणों की उत्पत्ति

श्रीशुक उवाच

पृश्निस्तु पत्नी सवितुः सावित्रीं व्याहृतिं त्रयीम् । अग्निहोत्रं पशुं सोमं चातुर्मास्यं महामखान् ॥१॥

अन्वयः— सवितुः पत्नी पृश्निः तु सवित्रीम् व्याहृतिम् त्रयीम्, अग्निहोत्रम् पशुं, सोमं, चातुर्मास्यं महामखान् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— सविता की पत्नी पृश्नि ने आठ सन्तानों को उत्पन्न किया सावित्री, व्याहृति, त्रयी, अग्निहोत्र, पशु, सोम, चामुर्मास्य तथा पञ्चमहायज्ञ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

आदित्यानां चतुर्थस्य त्वष्टुर्वंशप्रसङ्गतः । प्रोक्तमिन्द्रकृतं विश्वरूपवृत्रवधादिकम् । अदितेः पञ्चमादीनां पुत्राणामन्वयोक्तिभिः। अष्टादशे दितेर्गर्भे शक्रेण मरुता भिदा त्वष्टुर्वंशमनुक्रम्य सप्रसङ्गं यथाक्रमम् । आदित्यानामथान्येषां वंशानाह मुनीश्वरः । दक्षकन्यान्वयानुकथने अदित्या द्वादश पुत्राः प्रोक्ताः विश्वस्वानर्यमा पूषा त्वष्टाऽथ सविता भगः । धाता विधाता वरुणो मित्रः शक्र उरुक्रमः । इति । तत्र षष्ठाध्यायान्तमारभ्य विरूपवृत्रचित्रकेतूपाख्यानैस्त्वष्टुर्वंशमनुवर्ण्येदानीं सवितुर्वंशमाह–पृश्निस्त्विति। सावित्रीमित्यादिषु प्रासूतेत्युत्तरस्यानुषङ्गः । पशुं पशुयागम् । महामखान् पञ्चयज्ञान् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौथे आदित्य त्वष्टा के वश के प्रसङ्ग में इन्द्र द्वारा किए गये विश्वरूप वृत्रासुर के वध आदि का वर्णन किया जा चुका है । अदिति के पञ्च पुत्रों के वंश के वर्णन के द्वारा इस अठारहवें अध्याय में दिति के गर्भ का तथा इन्द्र

के द्वारा उसके काटे जाने के कारण भेद का वर्णन किया गया है । त्वष्टा के वंश से प्रारम्भ करके प्रसङ्ग पूर्वक क्रमशः आदित्या तथा दूसरों के वंश का वर्णन श्रीशुकदेवजी ने किया है । दक्ष की कन्याओं के वर्णन के प्रसङ्ग में बारह आदित्यों को कहा है वे हैं विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शक और उरुक्रम । उसमें भी इस स्कन्ध के छठे अध्याय से लेकर विश्वरूप, वृत्र और चित्रकेतु के उपाख्यान के द्वारा त्वष्टा के वंश का वर्णन करके **पृश्निस्तु० इत्यादि** श्लोक से सविता के वंश को बतलाया गया है । सावित्रीम् इत्यादि के अन्त में प्रसूता पद का अन्वय होगा । पशु अर्थात् पशुयाग को महामखान् अर्थात् पञ्च महायज्ञों को ॥१॥

सिद्धिर्भगस्य भार्याऽङ्ग महिमानं विभुं प्रभुम् । आशिषं च वरारोहां कन्यां प्रसूत सुव्रताम् ॥२॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! भगस्य भार्या सिद्धिः महिमानं, विभुम्, प्रभुम् आशिषम् च वरारोहां, सुव्रताम् कन्यां च प्रासूत॥२॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! भग की पत्नी सिद्धि ने महिमा, विभु, प्रभु और आशिष् नाम की सुन्दरी और सदाचारिणी पुत्री को जन्म दिया ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

धातुः कुहूः सिनीवाली राका चानुमतिस्तथा । सायं दर्शमथ प्रातः पूर्णमासमनुक्रमात् ॥३॥

अन्वयः— धातुः कूहूः, सिनीवाली, राका अनुमतिः च पत्न्यः सायं, दर्शम्, प्रातः अथ पूर्णमासम् अनुक्रमात् जनयामासुः ॥३॥

अनुवाद— धाता की पत्नी कुहू ने सायम् को, सिनीवाली ने दर्शको, राका ने प्रातः को और अनुमति ने पूर्णमास को क्रमशः जन्म दिया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

धातुर्भार्या कुहूः सायं पुत्रं प्रासूत । एवं सिनीवाली दर्शमित्यनुक्रमात ॥३॥

भाव प्रकाशिका

धाता की पत्नी कुहू ने सायं नामक पुत्र को जन्म दिया । इसीतरह सिनीवाली ने दर्श को इस तरह क्रमशः चारो पत्नियों ने चार पुत्रों को जन्म दिया ॥३॥

अग्नीन्पुरीष्यानाधत्त क्रियायां समनन्तरः । चर्षणी वरुणस्यासीद्यस्यां जातो भृगुः पुनः ॥४॥

अन्वयः— समनन्तरः क्रियायां पुरीष्यान् अग्नीन् आधत्त, वरुणास्य चर्षणी यस्यां भृगुः पुनः जातः ॥४॥

अनुवाद— धाता के अनुज विधाता की पत्नी क्रिया थीं, उन्होंने पाँच पुरीषी अग्नियों को जन्म दिया । वरुण की पत्नी का नाम चार्षणी था । उनके गर्भ से भृगु महर्षि का पुनः जन्म हुआ ॥४॥

भावार्थ दीपिका

समनन्तरो विधाता क्रियायां भार्यायां पुरीष्यानग्नीन्पञ्च चितान् 'पुरीष्यासो अग्नयः' इति 'पञ्च वा एतेऽग्नयो यच्चित्तयः' इति श्रुतेः । चर्षणी वरुणस्य भार्यासीत् । पूर्वं ब्रह्मणः पुत्रो भृगुर्यस्यां पुनर्जातः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

समनन्तर शब्द से विधाता को कहा गया है । उनकी पत्नी क्रिया के गर्भ से पुरीष्य पाँच चित अग्नियों का जन्म हुआ । श्रुति भी कहती है- **पुरीष्यासो अग्नयः** । अर्थात् पुरीष्य नामक अग्नियाँ हैं । दूसरी श्रुति कहती है **पञ्च वा एते अग्नयो यच्चितान्** । अर्थात् चित अग्नियाँ पाँच हैं । वरुण की पत्नी चर्षणी थी उनके गर्भ से भृगु महर्षि पुनः उत्पन्न हुए । उसके पहले वे ब्रह्माजी के पुत्र थे ॥४॥

वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकादभवत्किल। अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्रावरुणयोर्ऋषी ॥५॥
रेतः सिषिचतुः कुम्भे उर्वश्याः संनिधौ द्रुतम्। रेवत्यां मित्र उत्सर्गमरिष्टं पिप्पलं व्यधात् ॥६॥

अन्वयः— महायोगी वाल्मीकिश्च वल्मीकात् अभवत् । मित्रावरुणयोः अगस्त्यः च वसिष्ठः च ऋषी । उर्वश्याः सन्निधौ द्रुतम् कुम्भे रेतः सिषिचतुः । मित्रः रेवत्याम् उत्सर्गम्, अरिष्टं पिप्पलं च व्यधात् ॥५-६॥

अनुवाद— महायोगी वाल्मीकि वाल्मीक से उत्पन्न हुए । अपने सन्निकट में उर्वशी को देखकर मित्र तथा वरुण नामक दोनों देवताओं का वीर्य स्खलित हो गया । उसको उन लोगों ने घड़ें में रखा उससे अगस्त्य तथा वसिष्ठ नाम के दो ऋषी उत्पन्न हुए । मित्र की पत्नी का नाम रेवती था । उनके गर्भ से तीन पुत्र उत्पन्न हुए उत्सर्ग, अरिष्ट और पिप्पल ॥५-६॥

भावार्थ दीपिका

वाल्मीकिर्वरुणस्यैव पुत्रोऽभवत् । एतो वरुणस्यासाधारणौ पुत्रौ, तथोत्सर्गादयोऽपि मित्रस्यासाधारणाः । तयोरेव साधारणौ द्वौ पुत्रावाह । अगस्त्यश्च वसिष्ठ ऋषी मित्रावरुणयोरभवताम् । यत उभावपि कुम्भे रेतः सिषिचतुः । 'सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्' इति श्रुतेः । द्रुतं स्कन्नम् ॥५-६॥

भाव प्रकाशिका

वाल्मीकि वरुण के ही पुत्र थे । भृगु और वाल्मीकि वरुण के आसाधारण पुत्र थे और उत्सर्ग आदि भी मित्र के असाधारण पुत्र थे, वरुण और मित्र के ही अगस्य और वसिष्ठ साधारण पुत्र थे उसी को कहा गया है। अगस्त्य और वसिष्ठ मित्रा वरुण के पुत्र हुए । मित्र और वरुण ने कुम्भ में ही रेतः सेचन किया । श्रुति कहती है **'सत्रे ह जातविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम् द्रुतम्** पद का अर्थ है स्खलित हो गया ॥५-६॥

पौलोम्यामिन्द्र आधत्त त्रीन्पुत्रानिति नः श्रुतम् । जयन्तमृषभं तात तृतीयं मीढुषं प्रभुः ॥७॥

अन्वयः— प्रभुः इन्द्रः पौलोम्याम् त्रीन् पुत्रान् आधत्त हे तात जयन्तम् ऋषभम् तृतीयम् मीढुषम् ॥७॥

अनुवाद— देवराज इन्द्र ने शची के गर्भ से तीन पुत्रों को उत्पन्न किया जयन्त, ऋषभ तथा मीढुष को॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

उरुक्रमस्य देवस्य मायावामनरूपिणः । कीर्तौ पत्न्यां बृहच्छ्लोकस्तस्यासन्सौभगादयः ॥८॥

अन्वयः— मायावामन रूपिणः उरुक्रमस्य देवस्य कीर्तौ पत्न्यां बृहच्छलोकः तस्य सौभगादयः आसन् ॥८॥

अनुवाद— माया के द्वारा वामन के रूप में बलि से तीन पग पृथिवी माँगने के लिए और राजा बलि को अनुगृहीत करने के लिए भगवान् विष्णु ही वामन के रूप में अवतीर्ण हुए थे । उनकी पत्नी का नाम कीर्ति था। उनके पुत्र बृहच्छ्रवा थे । और बृहच्छ्रवा के सौभग आदि कई पुत्र हुए ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

तत्कर्मगुणवीर्याणि काश्यपस्य महात्मनः । पश्चाद्वक्ष्याम हेऽदित्यां यथावाववततार ह ॥९॥

अन्वयः— काश्यपस्य महात्मनः अदित्यां यथा वाहअवततार तत् कर्म गुणवीर्याणि पश्यत् वक्ष्याम् ह ॥९॥

अनुवाद— महर्षि कश्यप के पुत्र भगवान् वामन् अदिति माता के गर्भ से किस कार्य के लिए अवतीर्ण है ? उनके गुणों तथा पराक्रमों का (लीलाओं का) वर्णन मैं आठवें स्कन्ध में करूँगा ॥९॥

भावार्थ दीपिका

पश्चादष्टमस्कन्धे ॥९॥

भाव प्रकाशिका

पश्चात् अर्थात् आठवें स्कन्ध में ॥९॥

अथ कश्यपदायादान्दैतेयान्कीर्तयामि ते । यत्र भागवतः श्रीमान्प्रह्लादो बलिरेव च ॥१०॥

अन्वयः— अथ कश्यपदायादान् दैतेयान् ते कीर्तयामि यत्र भागवतः श्रीमान् प्रह्लादः बलिः एव च ॥१०॥

अनुवाद— अब मैं आपको कश्यप एवं दिति के पुत्रों का वर्णन सुनाता हूँ जिस वंश में भगवद् भक्तों में श्रेष्ठ श्रीप्रह्लादजी और बलि भी उत्पन्न हुए ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अथेति । कश्यपस्यादितेः पुत्राणां द्वादशादित्यानां संततिमुक्त्वा दितेः पुत्रान्कथयामीत्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

अब मैं कश्यप एवं अदिति के पुत्रों द्वादश आदित्यों की सन्तानों के वर्णन के पश्चात् दिति के पुत्रों का वर्णन कर रहा हूँ ॥१०॥

दितेर्द्वावेव दायादौ दैत्यदानववन्दितौ । हिरण्यकशिपुर्नाम हिरण्याक्षश्च कीर्तितौ ॥११॥

अन्वयः— दितेः दैत्यदानववन्दितौ द्वौ एव दायादौ कीर्तितौ हिरण्यकशिपुः नाम हिरण्याक्षः च ॥११॥

अनुवाद— दिति के दैत्यों और दानवों से वन्दित दो ही पुत्र हुए जिनका वर्णन संक्षेपत मैंने तीसरे स्कन्ध में की है । उनके नाम हैं हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष ॥११॥

भावार्थ दीपिका

हिरण्यकशिपुर्हिरण्याक्षश्चेति प्रथमं द्वावेव । तौ च कीर्तितौ तृतीयस्कन्धे ॥११॥

भाव प्रकाशिका

दिति के पुत्रों के नाम थे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष इनका वर्णन तीसरे स्कन्ध में किया जा चुका है ॥११॥

हिरण्यकशिपोर्भार्या कयाधुर्नाम दानवी । जम्भस्य तनया दत्ता सुषुवे चतुरः सुतान् ॥१२॥

अन्वयः— हिरण्यकशिपोः भार्या दानवी कयाधुः नाम । जम्भस्य तनया दत्ता चतुरः सुतान् सुषवे ॥१२॥

अनुवाद— हिरण्यकशिपु की पत्नी कयाधु नाम की दानवी थी वह जम्भ की पुत्री थी । जम्भ ने उसका विवाह हिरण्यकशिपु से कर दिया था । उसने चार पुत्रों को जन्म दिया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

संह्लादं प्रागनुह्लादं ह्लादं प्रह्लादमेव च । तत्स्वसा सिंहिका नाम राहुं विप्रचितोऽग्रहीत् ॥१३॥

अन्वयः— संह्लादं अनुह्लादं, ह्लादम् प्रह्लादं, तत्स्वसा सिंहिका नाम विप्रचित्ति राहुं अग्रहीत् ॥१३॥

अनुवाद— उन पुत्रों के नाम हैं- संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद और प्रह्लाद इनकी एक बहिन थी उसका नाम सिंहिका था । उसका विप्रचित्ति नामक दानव से विवाह हुआ । उसका एक पुत्र था राहु ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

विप्रचितो दानवाद्भर्तुः सकाशाद्राहुं पुत्रमग्रहीत् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

सिंहिका ने अपने पति विप्रचित् नामक दानव से राहु नामक पुत्र को प्राप्त किया ॥१३॥

शिरोऽहरद्यस्य हरिश्चक्रेण पिबतोऽमृतम् । संह्लादस्य कृतिर्भार्याऽसूत पञ्चजनं ततः ॥१४॥

अन्वयः— अमृतं पिबतः यस्य शिरः हरिः चक्रेण अहरत् । संह्लादस्य भार्या कृति ततः पञ्चजनं असूत ॥१४॥

अनुवाद— यह वह राहु है जिसका अमृत पान करते समय श्रीहरि ने शिर काट दिया था । संह्लाद की पत्नी कृति ने पञ्चजन नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

ततः संह्लादादसूत ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अपने पति संह्लाद से पञ्चजन को जन्म दिया ॥१४॥

ह्लादस्य धमनिर्भार्याऽसूत वातापिमिल्वलम् । योऽगस्त्याय त्वतिथये पेचे वातापिमिल्वलम् ॥१५॥

अन्वयः— ह्लादस्य भार्या धमनिः वातापिन् इल्वलन् च आसूत। यः अतिथये अगस्त्याय वातापिम् इल्वलम् पेचे॥१५॥

अनुवाद— ह्लाद की पत्नी धमनी थी उसने वातापि और इल्वल को जन्म दिया । इल्वल ने ही अतिथि अगस्त्य महर्षि के लिए वातापि को पका कर खिला दिया था ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

यो मेषरूपं वातापिं पेचे तमिल्वलम् । यं पेचे तं वातापिं चासूतेत्यन्वयः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

जिसने मेषरूप धारण किये हुए वातापि को पकाकर खिला दिया था । उस इल्वलव को और जिसने पकाया था उस वातापि को जन्म दिया ॥१५॥

अनुह्लादस्य सूर्म्यायां बाष्कलो महिषस्तथ । विरोचनस्तु प्राह्लादिर्देव्यास्तस्याभवद्बलिः ॥१६॥

अन्वयः— अनुह्लादस्य सूर्म्यायां वाष्कलः महिषः तथा । विरोचनः तु प्रह्लादिः तस्य देव्याः बलिः अभवत् ॥१६॥

अनुवाद— अनुह्लाद की पत्नी का नाम सूर्म्या था उसके दो पुत्र हुए वाष्कल और महिषासुर । प्रह्लाद जी के पुत्र विरोचन थे । उनकी पत्नी का नाम देवी था देवी के पुत्र महाराज बलि हुए ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

बाणज्येष्ठं पुत्रशतमशनायां ततोऽभवत् । तस्यानुभावः सुश्लोक्यः पश्चादेवाभिधास्यते ॥१७॥

अन्वयः— ततः अशनायां बाणज्येष्ठ पुत्रशतं अभवत् । तस्य सुश्लोक्यः अनुभवः पश्चाद वक्ष्यते ॥१७॥

अनुवाद— बलि के अशना के गर्भ से बाण आदि सौ पुत्र हुए । बलि के सराहनीय प्रभावका मैं पीछे चलकर (अठावें स्कन्ध) में वर्णन करूँगा ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ततो बलेः सकाशादभवत् तस्य बलेरनुभावः सुश्लोक्यः पुण्यकीर्त्यर्हः । यद्वा. अनुभाव्यते सद्भिः स्तूयत इत्यनुभावम्। सुश्लोक्यं यश इति शेषः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

बलि के अशना के गर्भ से बाण आदि सौ पुत्र हुए । बलि की पवित्र कीर्ति का वर्णन आठवें स्कन्ध में करूँगा । अनुभाव का अर्थ यश भी है ॥१७॥

बाण आराध्यगिरिशं लेभे तद्गणमुख्यताम् । यत्पार्श्वे भगवानास्ते ह्यद्यापि पुरपालकः ॥१८॥

अन्वयः— बाणः गिरिशं आराध्य तद्गणमुख्यतां लेभे । यत् पार्श्वे अद्यापि पुरपालक आस्ते ॥१८॥

अनुवाद— बाण शङ्करजी की आराधन करके अपने गण में प्रधान हो गया उसके पास आज भी नगर के रक्षक के रूप में शङ्करजी विद्यमान हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

तस्य गणेषु मुख्यतां प्राधान्यम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

उसके अपने गण में प्रधानता ॥१८॥

मरुतश्च दितेः पुत्राश्चत्वारिंशन्नवाधिकाः । त आसन्नप्रजाः सर्वे नीता इन्द्रेण सात्मताम् ॥१९॥

अन्वयः— चत्वारिंशत् नवाधिकाः दितेः मरुतः प्रजाः आसन् ते सर्वे इन्द्रेण सात्मताम् नीताः ॥१९॥

अनुवाद— हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष के अतिरिक्त दिति के मरुत् नामक उनचास पुत्र थे उन सबों को इन्द्र ने अपने समान देवता बना लिया ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

सात्मतां समानरूपताम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

सात्मतां अर्थात् अपने ही समान देवता ॥१९॥

राजोवाच

कथं त आसुरं भावमपोह्यौत्पत्तिकं गुरो । इन्द्रेण प्रापिताः सात्म्यं किं तत्साधु कृतं हि तैः ॥२०॥

अन्वयः— हे गुरो कथं ते औत्पत्तिकं आसुरं भावम् अपोह्य इन्द्रेण सात्म्यं प्रापिताः तैः हि तत् किं साधु कृतम्॥२०॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! वे सब कैसे अपने जन्म सिद्ध आसुरभाव का परित्याग करके इन्द्र के द्वारा अपने समान देवता बना दिए गये थे । उन सबों ने कौन सा पुण्य कर्म किया था ?॥२०॥

भावार्थ दीपिका

सात्म्यं देवत्वं प्रापिताः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

सात्म्यं प्रापिता: अर्थात् देवता बना लिए गये ॥२०॥

इमे श्रद्दधते ब्रह्मन्नृषयो हि मया सह । परिज्ञानाय भगवंस्तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥२१॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! मया सहसे ऋषयः परिज्ञानाय श्रद्दधते भगवन् तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥२१॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! मेरे साथ ये सभी ऋषिगण इस बात को जानने के लिए उत्सुक हैं । हे भगवन्! आप इस बात को विस्तार से बतलाएँ ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

सूत उवाच

तद्विष्णुरातस्य स बादरायणिर्वचो निशम्यादृतमल्पमर्थवत् ।
सभाजयन्सन्निभृतेन चेतसा जगाद सत्रायण सर्वदर्शनः ॥२२॥

अन्वयः— बादरायणिः विष्णुरातस्य तत् अल्पम् अर्थवत् वचः निशम्य निभृतेन चेतसा समाजयन् सर्वदर्शनः सत्रायणः जगाद ॥२२॥

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— हे शौनक जी ! श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित् की सार्थक और संक्षिप्त बातों को सुनकर उसका हृदय से समादर किए और सर्वज्ञ वे कहने लगे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

आदृतं सादरम् । अल्पं मिताक्षरम् । अर्थवत् बह्वर्थयुक्तम् । सत्रमयनमाश्रयो यस्य हे सत्रायण शौनक ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

आदृतम् अर्थात् समादर किए । राजा परीक्षित् की वाणी कम अक्षरों वाली और बहुत अर्थों वाली थी । हे सत्रायण अर्थात् हे शौनक ॥२२॥

श्रीशुक उवाच

हतपुत्रा दितिः शक्रपार्ष्णिग्राहेण विष्णुना । मन्युना शोकदीप्तेन ज्वलन्ती पर्यचिन्तयत् ॥२३॥

अन्वयः— शक्रपार्ष्णिग्राहेण विष्णुना हतपुत्रा दितिः, शोकदीप्तेन मन्युना ज्वलन्ती पर्यचिन्तयत् ॥२३॥

अनुवाद— इन्द्र का पक्ष लेने वाले भगवान् विष्णु के द्वारा जब दिति के पुत्र. हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष मार दिये गये तब शोक से संतप्त वह क्रोध से जलती हुई सोचने लगी ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

शक्रस्य पार्ष्णिग्राहेण पृष्ठतः सहायेन ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र के सहायक विष्णु के द्वारा ॥२३॥

कदा नु भ्रातृहन्तारमिन्द्रियाराममुल्बणम् । अक्लिन्नहृदयं पापं घातयित्वा शये सुखम् ॥२४॥

अन्वयः— अक्लिन्न हृदयं इन्द्रियारामं उल्बणम् भ्रातृहन्तारं पापं घातयित्वा कदानुसखं शये ॥२४॥

अनुवाद— कठोर हृदय वाले विषयी तथा क्रूर एवं अपने भाइयों को मारने वाले इन्द्र को मरवाकर मैं कब सुख-पूर्वक सोऊँगी ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

भ्रातृहन्तारमिन्द्रं मारयित्वा सुखिनी कदा स्यामिति चिन्तयामास दितिः । उल्बणं क्रूरम् । अक्लिन्नहृदयं कठिनचितम्॥२४॥

भाव प्रकाशिका

अपने भाइयों को मारने वाले इन्द्र को मरवाकर मै कब सुखी हो जाऊँगी इस प्रकार से सोचने लगी । उल्बण अर्थात् क्रूर अक्लिन्नहृदयम् अर्थात् कठोर चित्त वाले ॥२४॥

कृमिविड्भस्मसंज्ञासीद्यस्येशाभिहितस्य च । भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥२५॥

अन्वयः— कृमि विड्भस्म संज्ञासीत् यस्येशाभिहितस्य च तत्कृत भूतध्रुक् किं स्वार्थं वेद यतः निरयः ॥२५॥

अनुवाद— जिसका परिणाम कीड़ों की विष्ठा अथवा भस्म में होता है उस राजा कहे जाने वाले शरीर के लिए जो जीवों से द्रोह करता है वह क्या स्वार्थ को जानता है, जिससे कि नरक में ही जाना पड़ता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

ननु राजा स्वदेहरक्षार्थमन्येषां घातं करोत्येव किमत्र चित्रं तत्राह-कृमीति । ईशः प्रभुरित्यभिहितस्यापि यस्य पूर्वेषां

राज्ञां देहस्य मरणानन्तरं द्वित्रिदिनावस्थितस्य कृमय इति, श्वादिभिर्भक्षितस्य तु विष्ठेति, दग्धस्य भस्मेति च संज्ञा आसीत्तत्कृते तस्य देहस्यार्थे यो भूतेभ्यो द्रुह्यति स किं स्वार्थं वेद, न वेदैव । तत्र हेतुः-यतो भूतद्रोहान्निरयो भवति ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि राजा अपने शरीर की रक्षा करने के लिए दूसरे लोगों को मारता ही है इसमें क्या आश्चर्य है ? इस पर कहते हैं— पहले के राजाओं का शरीर भी जिसको लोग स्वामी कहते हैं, वह भी मरने के बाद यदि दो तीन दिन बना रहे तो उसे कीड़ा या कुत्ते आदि खाकर विष्ठा कर देते हैं, अथवा जला दिए जाने पर वह भस्म कहलाने लगता है । उसी शरीर की रक्षा करने के लिए जो दूसरों से द्रोह करता है, वह स्वार्थ को जानता है क्या ? नहीं जानता है क्योंकि प्राणियों से द्रोह करने से तो नरक की प्राप्ति होती है ।।२५।।

आशासानस्य तस्येदं ध्रुवमुन्नद्धचेतसः । मदशोषक इन्द्रस्य भूयाद्येन सुतो हि मे ।।२६।।

अन्वयः— इदं ध्रुवं आशासानस्य उन्नद्धचेतस्य तस्य इन्द्रस्य मदशोषकः हि मे सुतो भूयात् ।।२६।।

अनुवाद— अपने इस शरीर को नित्य मानने वाला इन्द्र मदमत्त हो गया है अतएव मैं ऐसा उपाय करूँगी कि मेरा पुत्र इन्द्र के घमण्ड को चूर-चूर कर दे ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

इदं देहादिकं ध्रुवं नित्यमाशासानस्य मन्यमानस्यात उन्नद्धमुच्छृङ्खलं चेतो यस्य तस्येन्द्रस्य यो मदस्तस्य शेषकः पुत्रो मे येन हेतुना भूयाद्भवेत् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

अपने इस शरीर आदि को नित्य मानने वाला इन्द्र उच्छृंखल हो गया है । मै ऐसा उपाय करूँगी कि इन्द्र के मद को विनष्ट करने वाला मेरा पुत्र हो जाय ।।२६।।

इति भवेन सा भर्तुराचचारासकृत्प्रियम् । शुश्रूषयानुरागेण प्रश्रयेण दमेन च ।।२७।।

अन्वयः— इति भावेन सा भर्तुः शूश्रूषया अनुरागेण प्रश्रयेण दमेन च असकृत् प्रियम् चचार ।।२७।।

अनुवाद— इसी भावना से भरकर उसने अपने पति महर्षि कश्यप की सेवा, प्रेम, तादधीनता तथा इन्द्रिय निग्रह आदि के द्वारा बार-बार प्रिय कार्यो को की ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

भर्तुः प्रियाचरणमेवेति भावेन सा भर्तुः प्रियमसकृदाचचार ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

अपने पति को प्रिय लगने वाले आचरण को उसने बार-बार किया ।।२७।।

भक्त्या परमया राजन्मनोज्ञैर्वल्गुभाषितैः मनो जग्राह भावज्ञा सुस्मितापाङ्गवीक्षणैः ।।२८।।

अन्वयः— हे राजन् ! परमया भक्त्या मनोज्ञैः बल्गुभाषितैः सुस्मितापाङ्गवीक्षणैः भावज्ञा सा मनो जग्राह ।।२८।।

अनुवाद— हे राजन् ! परीक्षित् परम प्रेम भाव के द्वारा मनोहर एवं मधुर भाषण के द्वारा मधुर मुस्कान मण्डित तिरक्षी चितवन के द्वारा महर्षि कश्यप के भावों को जानने वाली उसने अपने पति के मन को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया ।।२८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२८।।

एवं स्त्रिया जडीभूतो विद्वानपि विदग्धया । बाढमित्याह विवशो न तच्चित्रं हि योषिति ॥२९॥

अन्वयः— विद्वान् अपि विदग्धया स्त्रिया जड़ीभूतः विवशः बाढमित्याह । योपिति हि तत् चित्रम् न ॥२९॥

अनुवाद— महर्षि कश्यप विज्ञ पुरुष थे फिर भी चतुर दिति की सेवा से विवश होकर उन्होंने स्वीकार कर लिए कि मैं तुम्हारी कामना पूर्ण करूँगा । स्त्री के विषय में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

विवशः स्त्रीपरतन्त्रः सन् बाढं तव मनोरथं पूरयिष्यामीति यदाह तन्न चित्रम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

स्त्री के परतन्त्र होकर उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारी कामना पूरी करूँगा । और स्त्री के विषय में कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥२९॥

विलोक्यैकान्तभूतानि भूतान्यादौ प्रजापतिः । स्त्रियं चक्रे स्वदेहार्धं यया पुंसां मतिर्हृता ॥३०॥

अन्वयः— आदौ प्रजापति एकान्तभूतानि विलोक्य स्वदेहार्ध स्त्रियं चक्रे यया पुंसां मतिः हृता ॥३०॥

अनुवाद— सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी ने देखा कि सभी जीव असङ्ग हो रहे हैं, तथा उन्होंने अपने शरीर के आधे भाग से स्त्रियों की रचना की और स्त्रियों ने पुरुषों की मति को अपनी ओर आकर्षित किया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुमाह-विलोक्येति ।एकान्तभूतानि निःसङ्गानि मैथुनेव सृष्टिवृद्यद्धर्थं स्वेदहार्थमेव स्त्रियं चक्रे ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

पुरुष के स्त्री परतंत्र होने के कारण को बतलाते हुए **विलोक्यः इत्यादि** श्लोक कहते हैं । सभी भूतों को निसङ्ग होते देखकर ब्रह्माजी ने मैथुन के द्वारा सृष्टि की वृद्धि के लिए अपने देह के आधे भाग को स्त्री बना दिया ॥३०॥

एवं शुश्रूषितस्तात भगवान्कश्यपः स्त्रिया । प्रहस्य परमप्रीतो दितिमाहाभिनन्द्य च ॥३१॥

अन्वयः— हे तात ! एवं स्त्रिया सुश्रुषितः भगवान् कश्यपः परमप्रीतः प्रहस्य अभिनन्द्य च दितिम् आह ॥३१॥

अनुवाद— हे राजन् ! पत्नी के द्वारा जिनकी अच्छी तरह से सेवा की गयी थी वे भगवान् कश्यप बहुत अधिक प्रसन्न हो गये । वे जोर से हँसकर दिति की प्रशंसा करके उससे कहे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

एवं स्त्रिया शुश्रूषितः सन् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से पत्नी के द्वारा अच्छी तरह से सेवित महर्षि कश्यप ने दिति की प्रशंसा की और जोर से हँसकर वे उससे कहे ॥३१॥

कश्यप उवाच

वरं वरय वामोरु प्रीतस्तेऽहमनिन्दिते । स्त्रिया भर्तरि सुप्रीते कः काम इह चागमः ॥३२॥

अन्वयः— हे वामोरु वरं वरय, हे अनिन्दिते अहम् ते प्रीतः भर्तरि सुप्रीते स्त्रियाः कः कामः इह अगमः ॥३२॥

कश्यप महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे सुन्दरि ! तुम वरदान माँगो, हे अनिन्दिते मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । पति के प्रसन्न हो जाने पर पत्नी की कौन सी अभीष्ट वस्तु लोक अथवा परलोक में दुर्लभ हो सकती है ?॥३२॥

भावार्थ दीपिका

इह चकारात्परत्र च । अगमोऽप्राप्यः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

इह का अर्थ इस लोक में है और चकारात परलोक में भी कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होती है ।।३२।।

पतिरेव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतम् । मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः श्रियः पति ।।३३।।

अन्वयः— नारीणां पतिः एव हि परमं दैवतं स्मृतम्, मानसः श्रीवासुदेव हि सर्वदेवानां श्रियः पति ।।३३।।

अनुवाद— शास्त्रों में बतलाया गया है कि पति स्त्रियों के लिए परमाराध्य बतलाया गया है । मन में स्थित भगवान् वासुदेव ही सभी जीवों के लिए लक्ष्मीपति हैं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

ननु परमेश्वरे सुप्रीते सर्वकामप्राप्तिरिति प्रसिद्धं तत्राह- पतिरेवेति । ननु मनसि स्थितः श्रीवासुदेव एव लक्ष्मीपतिः परं दैवतमिति प्रसिद्धम् । सत्यम्, स एव स्वाधिकारेण रूपभेदैः पूज्यत इत्याह-मानस इति सार्धेन ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि भगवान् के ही प्रसन्न होने पर सभी कामनाओं की पूर्ति होती है, यह प्रसिद्ध है । इसके उत्तर में **पतिरेव० इत्यादि** कहते हैं । शास्त्रों में पति को ही स्त्रियों का परमाराध्य बतलाया गया है । यदि कहेंकि मन में विद्यमान भगवान् वासुदेव लक्ष्मीपति को ही परम दैवत कहा गया है तो यह भी ठीक है । भगवान् वासुदेव ही अपने अधिकारानुसार भिन्न रूप से पूजित होते हैं, इसको **मानस० इत्यादि** डेढ श्लोकों से कहा गया है ।।३३।।

स एव देवतालिङ्गैर्नामरूपविकल्पितैः । इज्यते भगवान्पुम्भिः स्त्रीभिश्च पतिरूपधृक् ।।३४।।

अन्वयः— स एव भगवान् नामरूप विकल्पितैः देवतालिङ्गैः पुम्भिः इज्यते स्त्रीभिः च पतिरूप धृक् ।।३४।।

अनुवाद— वे ही श्रीभगवान् विभिन्न नामों और रूपों से विभिन्न देवताओं के रूप में लोगों द्वारा पूजित हैं और स्त्रियों द्वारा वे ही पति के रूप में पूजित होते हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

देवतालिङ्गैर्मूर्तिभिरुपलक्षितः । तान्येवाह-नाम इन्द्रादि, रूपं वज्रहस्तत्वादि, ताभ्यां विविधं कल्पितैः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

विभिन्न देवताओं के द्वारा उपलक्षित श्रीभगवान् ही इन्द्र आदि के रूप में पूजित होते हैं । उनकी ही नाम तथा रूप के द्वारा अनेक प्रकार से कल्पना की गयी है ।।३४।।

तस्मात्पतिव्रता नार्यः श्रेयस्कामाः सुमध्यमे । यजन्तेऽनन्यभावेन पतिमात्मानमीश्वरम् ।।३५।।

अन्वयः— हे सुमध्यमे, तस्मात् पतिव्रता श्रेयस्कामा नार्यः अनन्य भावेन आत्मानम् ईश्वरम् पतिम् यजन्ते ।।३५।।

अनुवाद— हे सुन्दरि ! इसीलिए कल्याण चाहने वाली पतिव्रता नारियाँ अपने ईश्वर अपने पति की ही अनन्यभाव से आराधना करती हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

सोऽहं त्वयार्चितो भद्रे ईदृग्भावेन भक्तितः । तत्ते संपादये काममसतीनां सुदुर्लभम् ।।३६।।

अन्वयः— हे भद्रे ! सोऽहं त्वया इदृग्भावेन भक्तितः अर्चितः तत् ते कामम् सम्पादये असतीनाम् दुर्लभम् ।।३६।।

अनुवाद— हे कल्याणी ! तुमने इसी तरह भक्तिभाव से मेरी पूजा की है अतएव मैं तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करूँगा । असती स्त्रियों के जीवन में ऐसा होना दूर्लभ है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३६।।

दितिरुवाच

वरदो यदि मे ब्रह्मन्पुत्रमिन्द्रहणं वृणे । अमृत्युं मृतपुत्राहं येन मे घातितौ सुतौ ।।३७।।

अन्वयः— ब्रह्मन् यदि मे वरदः येन मे पुत्रौ घातितौ मृतपुत्रा अहं अमृत्युं इन्द्रहणं पुत्रं वृणे ।।३७।।

दिति ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! यदि आप मुझे वरदान देना चाहते हैं, तो जिसने मेरे दो पुत्रों को विष्णु से मरवा दिया है, उस इन्द्र को मारने वाले अमर पुत्र का वरदान मैं आप से माँगती हूँ ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

इन्द्रहणं इन्द्रहन्तारम् । अमृत्युं मृत्युशून्यम् । येनेन्द्रेण विष्णुना सहायेन घातितौ ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्रहणम् = इन्द्र को मारने वाला, अमृत्युम् अमर, येन = विष्णु की सहायता से मेरे पुत्रों को मारने वाले इन्द्र ।।३७।।

निशम्य तद्वचो विप्रो विमनाः पर्यतप्यत । अहो अधर्मः सुमहानद्य मे समुपस्थितः ।।३८।।

अन्वयः— तद्वचः निशम्य विमनाः विप्रः पर्यतप्यत । अहो अद्य मे महान् अधर्मः समुपस्थितः ।।३८।।

अनुवाद— दिति की बात को सुनकर महर्षि कश्यप अत्यन्त सन्तप्त हो गये । वे पछता रहे थे कि आज मेरे जीवन में बहुत बड़े अधर्म का अवसर आ गया है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३८।।

अहो अद्येन्द्रियारामो योषिन्मय्येह मायया । गृहीतचेताः कृपणः पतिष्ये नरके ध्रुवम् ।।३९।।

अन्वयः— अहो, इह अद्य इन्द्रियारामः योषिन्मय्या मायया गृहीतचेताः कृपणः ध्रुवम् नरके पतिष्ये ।।३९।।

अनुवाद— अरे ! अब मैं इन्द्रियों के विषयों में सुख मानने लगा हूँ । स्त्री रूपी माया ने मेरे चित्त को अपने वश में कर लिया है । आज मैं अत्यन्त दीन दशा में पड़ गया हूँ । मुझे अवश्य नरक में जाना होगा ।।३९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३९।।

कोऽतिक्रमोऽनुवर्तन्त्याः स्वभावमिह योषितः । धिङ्या बताबुधं स्वार्थे यदहं त्वजितेन्द्रियः ।।४०।।

अन्वयः— स्वभावम् अनुवर्तन्त्याःयोषितः इह कः अतिक्रमः नत यत् अहंतुस्वार्थे अजितेन्द्रियः अबुधं मां धिक्।।४०।।

अनुवाद— अपने जन्मजात स्वभाव का अनुसरण करने वाली इस स्त्री का इसमें क्या दोष है । मैं जो अपने इन्द्रियों को वश में नहीं रख सका इस प्रकार के अज्ञानी मुझको धिक्कार है ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

स्वभावमनुवर्तमानाया योषितः कोऽतिक्रमोऽपराधः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप मन ही मन पछता रहे थे कि अपने स्वभाव का अनुसरण करने वाली इस दिति का इसमें क्या दोष है ? दोष तो मेरा है कि मैं अपने इन्द्रियों को वश में नहीं रख सका ।।४०।।

शरत्पद्मोत्सवं वक्त्रं वचश्च श्रवणामृतम् । हृदयं क्षुरधाराभं स्त्रीणां को वेद चेष्टितम् ॥४१॥

अन्वयः— स्त्रीणां वक्त्रम् शरत्पद्मोत्सवं, वचः च श्रवणामृतम्, हृदयं क्षुरधाराभम् स्त्रीणां चेष्टितं को वेद ?॥४१॥

अनुवाद— स्त्रियों का मुख तो शरत् कालीन कमल के समान चित्ताकर्षक होता है । उनकी वाणी सुनने में अमृत के समान लगती है, किन्तु उन सबों का हृदय तलवार की धार के समान अत्यन्त भयानक होता है । अतएव स्त्रियों कि चेष्टाओं को कौन जान सकता है ?॥४१॥

भावार्थ दीपिका

स्वभावमेवाह द्वाभ्याम् । शरत्पद्मस्येवोत्सवो विकासो यस्मिन् । श्रवणे श्रुती तयोरमृतम् । क्षुरधारोपमं चित्तम् ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

दो श्लोकों के द्वारा कश्यप महर्षि स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन करते हैं । स्त्रियों का मुख तो शरत्कालीन कमल के समान अत्यन्त मनोहर होता है, उन सबों की वाणी सुनने में अत्यन्त मधुर प्रतीत होती है, किन्तु उन सबों का चित्त तलवार की धार के समान खतरनाक होता है ॥४१॥

न हि कश्चित्प्रियः स्त्रीणामञ्जसा स्वाशिषात्मनाम् । पतिं पुत्रं भ्रातरं वा घ्नन्त्यर्थे घातयन्ति च ॥४२॥

अन्वयः— अञ्जसा स्वाशि षात्मनाम् स्त्रीणाम् कश्चित् प्रियः नहि । अर्थे पतिं पुत्रं भ्रातरं वा ध्नन्ति घातयन्ति च।॥४२॥

अनुवाद— वास्तविकता यह है कि अपनी लालसा की पूर्ति चाहने वाली स्त्रियों का कोई भी प्रिय नहीं होता है । अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए वे अपने पति, पुत्र या भाई को मार डालती हैं या मरवा देती हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

स्वाशिषात्मनां स्वार्थकामनयाऽऽत्मवत्प्रेष्ठेत्येन प्रतीयमानानाम् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

अपने स्वार्थ की कामनावशात् आत्मा के समान प्रतीत होने वाली यह **स्वाशिषात्मनाम्** पद का अर्थ हैं।॥४२॥

प्रतिश्रुतं ददामीति वचस्तन्न मृषा भवेत् । वधं नार्हति चेन्द्रोऽपि तत्रेदमुपकल्पते ॥४३॥

अन्वयः— प्रतिश्रुतं ददामीति तत् वचः मृषा न भवेत् इन्द्रः अपि वधम् न अर्हति तत्रेदम् उपकल्पते ॥४३॥

अनुवाद— मैं कह चुका हूँ कि तुम जो माँगोगी वह मैं दूँगा, अतएव मेरी इस वाणी को मिथ्या नहीं होना चाहिए । किन्तु इन्द्र भी वध करने योग्य नहीं है । अतएव इस विषय में मैं यह युक्ति करता हूँ ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

तत्रेदमुपकल्पते योग्यं भवति । अयं भावः-वैष्णवव्रतं तावदुपदेक्ष्यामि तेनैवास्याः शुद्धचित्तायाः इन्द्रं प्रति क्रोधो निवर्तिष्यते । पुत्रस्त्वमर्त्यो भविष्यति । दीर्घकालत्वे च व्रतस्य कथंचिद्वैगुण्यै सतीन्द्रस्य वधोऽपि न भविष्यतीति ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

इसके विषय में ऐसा ही करना उचित होगा । कहने का अभिप्राय है कि इसको वैष्णवव्रत का उपदेश करूँगा उससे इसका चित्त शुद्ध हो जायेगा तथा यह इन्द्र पर क्रोध करना छोड़ देगी । इसका पुत्र तो अमर होगा। दीर्घ काल तक व्रत का पालन करने से हो सकता है कि इसके व्रत में विगुणता भी आ जाय ऐसा होने पर इन्द्र का वध भी नहीं होगा ॥४३॥

इति संचिन्त्य भगवान्मारीचः कुरुनन्दन । उवाच किंचित्कुपित आत्मानं च विगर्हयन् ॥४४॥

अन्वयः— हे कुरुनन्दन इति संचिन्त्य भगवान् मारीचः, किञ्चित् कुपितः आत्मानं च विगर्हयन् उवाच ॥४४॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! इस तरह से विचार करके महर्षि कश्यप कुछ क्रुद्ध हुए से मन ही मन अपने को धिक्कारते हुए दिति से कहे ॥४४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४४॥

कश्यप उवाच

पुत्रस्ते भविता भद्रे इन्द्रहा देवबान्धवः । संवत्सरं व्रतमिदं यद्यञ्जो धारयिष्यसि ॥४५॥

अन्वयः— हे भद्रे ! यदि अञ्जः इदं व्रतं संवत्सरं धारयिष्यसि तर्हि ते पुत्रः इन्द्रहा देव बान्धवः भविता ॥४५॥

महर्षि कश्यप ने कहा

अनुवाद— हे भद्रे ! यदि तुम निर्विघ्न इस व्रत का एक वर्ष तक पालन करोगी तो तुम्हारा पुत्र इन्द्र को मारने वाला होगा । अन्यथा देवताओं का बन्धु हो जायेगा ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

हे भद्रे ! अञ्जः यथावद्यदि धारयिष्यसि तर्हीन्द्रहा भविष्यति । वैगुण्ये तु देवबान्धवो भविष्यति वैष्णवत्वाद्व्रतस्य, कथंचिद्वैगुण्येऽपि सति सर्वथा वैकल्याभावात् ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

हे कल्याणि ! यदि तुम ठीक-ठीक व्रत का पालन करोगी तब तो तुम्हारा पुत्र इन्द्र को मारने वाला होगा। उसमें किसी भी प्रकार के दोष आ जाने पर वह देवताओं का बन्धु हो जायेगा, क्योंकि यह वैष्णव व्रत है । व्रत में किसी भी प्रकार का वैगुण्य नहीं होना चाहिए ॥४५॥

दितिरुवाच

धारयिष्ये व्रतं ब्रह्मन्ब्रूहि कार्याणि यानि मे । यानि चेह निषिद्धानि न व्रतं घ्नन्ति यानि तु ॥४६॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन्! व्रतं ब्रूहि धारयिष्ये, यानि मे कार्याणि, यानि चेह निषिद्धानि, यानि तु व्रतं न घ्नन्ति तानि ब्रूहि॥४६॥

दिति ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! आप व्रत को बतलायें, उसका मैं पालन करूँगी, जिन कार्यों को मुझे करना चाहिए, जिन कार्यों को नहीं करना चाहिए तथा जिन कार्यों को करने से व्रत में वैगुण्य नहीं होता है उन सबों का आप बतलायें ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

कार्याण्यावश्यकानि । व्रतं यानि न घ्नन्ति नावश्यकानि नच निषिद्धानि किंत्वभ्यनुज्ञातानि । तानि सर्वाण्यपि ब्रूहि॥४६॥

भाव प्रकाशिका

आवश्यक कार्यों को, तथा जिनसे व्रत विघ्नित नहीं होता है ऐसे जो कार्य आवश्यक नहीं है, तथा जिन कार्यों का निषेध भी नहीं किया गया है, किन्तु जो विहित हैं, उन सभी कार्यों को आप मुझे बतलाएँ ॥४६॥

कश्यप उवाच

न हिंस्याद्भूतजातानि न शपेन्नानृतं वदेत्। न च्छिन्द्यान्नखरोमाणि न स्पृशेद्यदमङ्गलम् ॥४७॥
नाप्सु स्नायान्न कुप्येत न संभाषेत दुर्जनैः। न वसीताधौतवासः स्रजं च विधृतां क्वचित्॥४८॥

अन्वयः— भूताजातानि न हिंस्यात् न शपेत् नानृतं वदेत् नखरोमाणि न छिन्द्यात् अमङ्गलं न स्पृशेत् । अप्सु न स्नायात्, न कुप्येत, दुर्जनैः न सम्भाषेत अधौतवासः न वसीत क्वचित् विधृतां स्रजं न धारयेत् ॥४७-४८॥

कश्यप महर्षि ने कहा

अनुवाद— किसी भी जीव की हिंसा न करे, किसी को शाप या गाली न दे, झूठ न बोले, नखों और रोओं को न काटे, किसी भी अशुभ वस्तु का स्पर्श न करे। जल में घुसकर स्नान न करे, क्रोध न करे, दुर्जनों से बातें न करें। बिना धुला हुआ वस्त्र न पहने तथा किसी की पहनी हुई माला को न पहने ॥४७-४८॥

भावार्थ दीपिका

तत्रैकत्रिंशन्निषेधानाह-न हिंस्यादिति पञ्चभिः। न शपेन्नाक्रोशेत्। यदमङ्गलं कपालास्थ्यादिकं तन्न स्पृशेत्। नाप्सु प्रविश्य स्नायात्। पूर्वं विधृतां स्रजं पुनर्न धारयेत् ॥४७-४८॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप ने इकतीस निषेधों को **नहिंस्यात् इत्यादि** पाँच श्लोकों से बतलाया। **न शपेत्** अर्थात् गाली न दे। कपाल आदि की अस्थियों का स्पर्श न करे जल में घुसकर स्नान न करे। पहले किसी के द्वारा धारण की गयी माला को न पहने ॥४७-४८॥

नोच्छिष्टं चण्डिकान्नं च सामिषं वृषलाहृतम्। भुञ्जीतोदक्यया दृष्टं पिबेदञ्जलिना त्वपः ॥४९॥
नोच्छिष्टास्पृष्टसलिला सन्ध्यायां मुक्तमूर्धजा। अनर्चिताऽसंयतवाङ्नासंवीता बहिश्चरेत् ॥५०॥
नाधौतपादाऽप्रयता नार्द्रपान्नो उदक्शिराः। शयीत नापराङ्नान्यैर्न नग्ना न च सन्ध्ययोः ॥५१॥

अन्वयः— उच्छिष्टं न, चण्डिकाया अन्नम् सामिषं च, वृषलाहृतम् उदक्यया दृष्टम् च अन्नं न भुञ्जीत, अञ्जलिना तु अपः न पिबेत्। नोच्छिष्टास्पृष्ट सलिला सन्ध्यायं मुक्तमूर्धजा अनर्चितासंयतवाङ् नासंवीता बहिश्चरेत्। नाद्यौतपादाप्रयता नार्द्रपात् नो उदक्शिरा, शयीत नापराङ् नान्यैः न नग्ना न च सन्ध्ययोः शयीत ॥४९-५१॥

अनुवाद— जूठा न खाय, भद्रकाली का प्रसाद या मांस युक्त अन्न न खाय। शूद्र का लाया हुआ और रजस्वला का देख हुआ भी अन्न न खाय। अञ्जलि से जल न पिए। जूठे मुँह बिना आचमन किए सन्ध्या के समय, बाल खोले हुए बिना शृङ्गार के, वाणी का संयम किए बिना और बिना चादर ओढे घर से बाहर न जाय। बिना पैर धोए, अपवित्र अवस्था में गील पावों से उत्तर या पश्चिम शिर करके दूसरों के साथ, नग्नावस्था में तथा सुबह शाम न सोए ॥४९-५१॥

भावार्थ दीपिका

भोजने पञ्च निषेधानाह-नोच्छिष्टमिति। चण्डिकान्नं भद्रकाल्यै निवेदितं पिपीलिकादिदूषितं वा। अञ्जलिना त्वपो न पिबेत्। गृहाद्बहिर्निर्गमे सप्त निषेधानाह-नोच्छिष्टेति। अनर्चिता मण्डनहीना। असंवीताऽप्रावृता। शयनेऽष्टौ निषेधानाह-नाधौतपादेति। नापराक्पश्चिमशिराः ॥४९-५१॥

भाव प्रकाशिका

भोजन के विषय में पाँच प्रकार के निषेधों को कहा— जूठा भोजन न करे, भद्रकाली का प्रसाद अथवा जिसमें चीटीं आदि पड़ी हो ऐसा भोजन न करे, अञ्जलि से जल न पिए। घर से बाहर जाने में नोच्छिष्टा० इत्यादि से सात प्रकार के निषेधों को कहा गया है अनलंकृत रूप से, बिना चादर ओढ़े, बाहर न जाय। **ना धौतपादा इत्यादि** श्लोक से सोने में आठ प्रकार का निषेध बतलाया गया है। **नापराक् शिरा** अर्थात् पश्चिम की ओर शिर करके न सोए ॥४९-५१॥

धौतवासाः शुचिर्नित्यं सर्वमङ्गलसंयुता। पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्गोविप्रान् श्रियमच्युतम् ॥५२॥

अन्वयः— धौतवासाः नित्यंशुचिः सर्वमङ्गलसंयुता प्रातराशात् प्राक् गोविप्रान् श्रियम् अच्युतम् पूजयेत ॥५२॥

अनुवाद— धुला हुआ वस्त्र धारण करे, सदा पवित्र रहे, सौभाग्य के सभी चिह्न से अलंकृत रहे, प्रातःकाल कलेवा करने से पहले गौ, ब्राह्मण, लक्ष्मी और भगवान् विष्णु की पूजा करें ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

कार्याण्याह- धौतवासा इति द्वाभ्याम् । प्रातराशात् प्रथमभोजनात् ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

धौतवासाः इत्यादि दो श्लोकों से करने योग्य कार्यों को बतलाते हैं । कलेवा करने से पहले यह प्रातराशात् प्राक् का अर्थ है ।।५२।।

स्त्रियो वीरवतीश्चार्चेत्स्रग्गन्धबलिमण्डनैः । पतिं चार्च्योपतिष्ठेत ध्यायेत्कोष्ठगतं च तम् ।।५३।।

अन्वयः— स्रग्गन्धबलिमण्डनैः वीरवतीः स्त्रियः च अर्चेत् पतिं च अर्च्य उपतिष्ठेत् कोष्ठगतं च तं ध्यायेत् ।।५३।।

अनुवाद— पुष्पमाला, चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों से सुहागिन स्त्रियों की पूजा करे । पति की पूजा करके उनकी सेवा में संलग्न रहे, यह ध्यान करे कि पति का तेज मेरी कुक्षि में प्रविष्ट है ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

वीरवतीर्जीवद्भर्तृकाः । आर्च्य संपूज्य कोष्ठगतं कुक्ष्यन्तरगतम् ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

सुहागिन स्त्रियों की पूजा करे पति की पूजा करके ध्यान करे कि पति का तेज मेरी कुक्षि में प्रविष्ट है।।५३।।

सांवत्सरं पुंसवनं व्रतमेतदविप्लुतम् । धारयिष्यसि चेत्तुभ्यं शक्रहा भविता सुतः ।।५४।।

अन्वयः— एतद् सांवत्सरं पुंसवनं व्रतम् चेत् अविप्लुतम् धारयिष्यसि, तुभ्यं शक्रहा सुतः भविता ।।५४।।

अनुवाद— प्रिये ! यह एक वर्ष का पुंसवन व्रत है इसका यदि तुम बिना किसी त्रुटि के पालन करोगी तो तुम्हारा पुत्र इन्द्र को मारने वाला होगा ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

पुंसवनं पुत्रोत्पत्तिकरम् । तुभ्यं तव ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

यह पुत्र को उत्पन्न करने वाला व्रत । इसका पालन करोगी तो तुम्हारा पुत्र इन्द्र को मारने वाला होगा ।।५४।।

बाढमित्यभिप्रेत्याथ दिति राजन्महामनाः । काश्यपं गर्भमाधत्त व्रतं चाञ्जो दधार सा ।।५५।।

अन्वयः— राजन् बाढम् इति अभिप्रेत्य महामनाः सा दितिः काश्यपं गर्भम् आधत्त, व्रतं च अञ्जः दधार ।।५५।।

अनुवाद— राजन् ! परीक्षित् ठीक है ऐसा कहकर मनस्विनी दिति उनकी आज्ञा को स्वीकार कर ली । उसने अपनी कोंख में कश्यप महर्षि के वीर्य को और जीवन में उनके बतलाएँ हुए निमय का अनायास पालन करने लगी ।।५५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५५।।

मातृष्वसुरभिप्रायमिन्द्र आज्ञाय मानद । शुश्रूषणेनाश्रमस्थां दितिं पर्यचरत्कविः ।।५६।।

अन्वयः— हे मानद ! कविः इन्द्रः मातृष्वसुः अभिप्रायम् आज्ञाय आश्रमस्था दितिं शूश्रूषणेन पर्यचरत् ।।५६।।

अनुवाद— हे शत्रुओं के मान का दमन करने वाले परीक्षित् अपनी मौसी के अभिप्राय को जानकर बुद्धिमान इन्द्र, आश्रम में रहने वाली दिति की सेवा करने लगे ।।५६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५६।।

नित्यं वनात्सुमनसः फलमूलसमित्कुशान् । पत्राङ्कुरमृदोऽपश्च काले काल उपाहरत् ॥५७॥

अन्वयः— नित्यं वनात् सुमनसः फलमूल समित्कुशान् पत्राङ्कुरमृदोऽपश्च काले-काले उपाहरत् ।।५७।।

अनुवाद— वे प्रतिदिन दिति के लिए वन से फूल, फल, कन्द समिधा तथा कुश एवं पत्ते, दूब, मिट्टी समय-समय से लाकर उनको समर्पित करते थे ।।५७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५७।।

एवं तस्या व्रतस्थाया व्रतच्छिद्रं हरिर्नृप । प्रेप्सुः पर्यचरज्जिह्मो मृगहेव मृगाकृतिः ॥५८॥

अन्वयः— हे नृप ! एवं व्रतस्थायाः तस्याः व्रतच्छिद्रं प्रेप्सुः जिह्मः हरिः मृगाकृतिः मृगहा इव पर्यचरत् ।।५८।।

अनुवाद— हे राजन् ! इस प्रकार से व्रत का पालन करने वाली दिति के व्रत में त्रुटि प्राप्त करने के लिए कुटिल इन्द्र मृग का वेष बनाये हुए बहेलिए के समान उसकी सेवा कर रहे थे ।।५८।।

भावार्थ दीपिका

हरिरिन्द्रों व्रतस्य च्छिद्रं प्रेप्सुः प्राप्तुमिच्छुः । जिह्मः कुटिलः साधुवेषः । मृगहा लुब्धको यथा मृगवञ्चनाय मृगवेषो भवति तद्वत् ।।५८।।

भाव प्रकाशिका

व्रत में त्रुटि प्राप्त करने की इच्छा से कुटिल इन्द्र मृग का वेष बनाये हुए व्याधे के समान दिति की सेवा कर रहे थे ।।५८।।

नाध्यगच्छद्व्रतच्छिद्रं तत्परोऽथ महीपते । चिन्तां तीव्रां गतः शक्रः केन मे स्याच्छिवं त्विह ॥५९॥

अन्वयः— हे महीपते ! तत्परः शक्रः व्रतच्छिद्रं न अध्यगच्छत् । अथ इहतु मे केन शिवं स्यात् इति तीव्रां चिन्ताम् शक्रः गतः ।।५९।।

अनुवाद— हे राजन् ! सदा सावधान रहने वाले इन्द्र दिति के व्रत में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं पाये । उसके पश्चात् इस संसार में मेरा किस प्रकार से कल्याण हो इस प्रकार की उनको अत्यधिक चिन्ता हो गयी ।।५९।।

भावार्थ दीपिका

केन मे शिवं स्यादिति चिन्तां प्राप्तः ।।५९।।

भाव प्रकाशिका

किस तरह से मेरा कल्याण हो इस प्रकार की इन्द्र को चिन्ता हो गयी ।।५९।।

एकदा सा तु सन्ध्यायामुच्छिष्टा व्रतकर्शिता । अस्पृष्टवार्यधौताङ्घ्रिः सुष्वाप विधिमोहिता ॥६०॥

अन्वयः— व्रतकार्शिता सा एकदा तु सन्ध्यायाम् उच्छिष्टा अस्पृष्टवारि अधौतङ्घ्रिः विधिमोहिता सुष्वाप ।।६०।।

अनुवाद— व्रत के नियमों का पालन के कारण कृश बनी हुई दिति एक दिन सायंकाल बिना मुँह धोए हुए जूठे मुँह तथा आचमन किए बिना ही तथा पैरों को धोए बिना ही सो गयी विधि ने भी उनको मोहित कर दिया था ।।६०।।

भावार्थ दीपिका

अस्पृष्टवारिश्चासावधौताङ्घ्रिश्च ।।६०।।

भाव प्रकाशिका

आचमन किए बिना ही तथा पैरों को धोए बिना ही सो गयी दिति ।।६०।।

लब्ध्वा तदन्तरं शक्रो निद्रापहृतचेतसः । दितेः प्रविष्ट उदरं योगेशो योगमायया ॥६१॥

अन्वयः— तदन्तरं लब्ध्वा योगेशः शक्रः निद्रापहतचेतसः दितेः उदरं योगमायया प्रविष्टः ॥६१॥

अनुवाद— उस त्रुष्टि को देखकर योगेश इन्द्र निद्रा के कारण अचेत पड़ी हुई दिति के पेट में योगमाया के सहारे प्रवेश कर गये ॥६१॥

भावार्थ दीपिका

निद्रयापहृतं चेतो यस्याः ॥६१॥

भाव प्रकाशिका

निद्रा के कारण अचेत दिति ॥६१॥

चकर्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभम् । रुदन्तं सप्तधैकैकं मा रोदीरिति तान्पुनः ॥६२॥

अन्वयः— कनक प्रभं गर्भं वज्रेण सप्तधा चकर्त, रुदन्तं मा रोदीः इति एकैकं पुनः तान् सप्तधा चकर्त इति शेषः॥६२॥

अनुवाद— सुवर्ण के समान चमकते हुए उस गर्भ को इन्द्र ने वज्र से सात टुकड़े कर दिया । जब वह गर्भ रोने लगा तो इन्द्र ने कहा रोओ मत और फिर प्रत्येक के सात-सात टुकड़े कर दिया ॥६२॥

भावार्थ दीपिका

मा रोदीरित्युपलालयन्निव तान्पुनः सप्तधा चकर्त चिच्छेद ॥६२॥

भाव प्रकाशिका

रोओ मत इस तरह उससे प्रेम करते हुए के समान फिर सातों के सात-सात टुकड़े कर दिया ॥६२॥

ते तमूचुः पाट्यमानाः सर्वे प्राञ्जलयो नृप । नो जिघांससि किमिन्द्र भ्रातरो मरुतस्तव ॥६३॥

अन्वयः— हे नृप ! पाट्यमानाः ते सर्वे प्राञ्जलयः तमूचु इन्द्र नो किम् जिघांससि तव भ्रातरः मरुतः वयमिति शेषः॥६३॥

अनुवाद— हे राजन् ! काटे जाते हुए वे सब हाथ जोड़कर इन्द्र से कहे, इन्द्र ! हम लोगों को क्यों मारते हो हमलोग आपके भाई मरुद्गण हैं ॥६३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६३॥

मा भैष्ट भ्रातरो मह्यं यूयमित्याह कौशिकः । अनन्यभावान्पार्षदानात्मनो मरुतां गणान् ॥६४॥

अन्वयः— अनन्यभावान् आत्मनः पार्षदान् मरुतां गणान् कौशिकः आह- यूयं मह्यम् भ्रातरः मा भैष्ट ॥६४॥

अनुवाद— तब अनन्य भावों वाले अपने पार्षद मरुद्गणों से इन्द्र ने कहा तुमलोग मेरे भाई हो अतएव अव मत डरो ॥६४॥

भावार्थ दीपिका

कौशिक इन्द्रः । गणान्सप्त । 'सप्तगणा वै मरुतः' इति श्रुतेः ॥६४॥

भाव प्रकाशिका

कौशिक अर्थ इन्द्र, गणान् अर्थात् सात-सात के सात गण वाले मरुतों को । श्रुति भी कहती है । सप्तगणा वै **मरुतः** अर्थात् मरुतों के सात गण हैं ॥६४॥

न ममार दितेर्गर्भः श्रीनिवासानुकम्पया । बहुधा कुलिशक्षुण्णो द्रौण्यस्त्रेण यथा भवान् ॥६५॥

अन्वयः— द्रौण्यस्त्रेण भवान् यथा बहुधा कुलिशक्षुण्णः दित्तेः गर्भः श्रीनिवासानुकम्पया दितेः गर्भः न ममार ॥६५॥

अनुवाद— जिस तरह श्रीभगवान् की कृपा से आप अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से नहीं मरे थे उसी तरह श्रीभगवान् की कृपा से है वज्र से उनचास टुकड़े कर दिए जाने पर भी दिति का गर्भ मरा नहीं ।।६५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६५।।

सकृदिष्ट्वादिपुरुषं पुरुषो याति साम्यताम् । संवत्सरं किंचिदूनं दित्या यद्धरिरर्चितः ।।६६।।

अन्वयः— आदि पुरुषं सकृद् इष्ट्वा पुरुष साम्यताम् याति । यद् हरिः दित्या किञ्चिद् ऊनं हरिः अर्चितः ।।६६।।

अनुवाद— एक बार भी श्रीहरि की आराधना करके मनुष्य उनके समान रूप वाला हो जाता है और दिति ने तो एक वर्ष से कुछ ही कम समय तक भगवान् श्रीहरि की आराधना की थी ।।६६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६६।।

सजूरिन्द्रेण पञ्चाशाद्देवास्ते मरुतोऽभवन् । व्यपोह्य मातृदोषं ते हरिणा सोमपाः कृताः ।।६७।।

अन्वयः— इन्द्रेण सजूः ते मरुतः पञ्चाशद् देवा अभवन् मातृदोषं व्यपोह्य ते हरिणा सोमपाः कृताः ।।६७।।

अनुवाद— इन्द्र के साथ मिलकर वे मरुद्गण पचास हो गये । इन्द्र भी सौतेली माँ के पुत्रों के साथ शत्रु भाव को त्यागकर मरुद्गणों को सोमपायी बना दिया ।।६७।।

भावार्थ दीपिका

सजूः सह ।।६७।।

भाव प्रकाशिका

सजूः अर्थात् साथ ।।६७।।

दितिरुत्थाय ददृशे कुमाराननलप्रभान् । इन्द्रेण सहितान्देवी पर्यतुष्यदनिन्दिता ।।६८।।

अन्वयः— दितिः उत्थाय अनल प्रभान् कुमारान् इन्द्रेण सहितान् ददृशे अनिन्दिता देवी पर्यतुष्यत ।।६८।।

अनुवाद— जगकर दिति ने अग्नि के समान कान्ति वाले उन बच्चों को इन्द्र के साथ देखा । यह देख अनिन्दिता दिति देवी को प्रसन्नता हुई ।।६८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६८।।

अथेन्द्रमाह ताताहमादित्यानां भयावहम् । अपत्यमिच्छन्त्यचरं व्रतमेतत्सुदुष्करम् ।।६९।।

अन्वयः— अथ इन्द्रम् आह, हेतात अहम् आदित्यानां भयावहं अपत्यम् इच्छन् एतत् सुदुष्करं व्रतम् अत्यचरम्।।६९।

अनुवाद— इसके पश्चात् दिति ने कहा वत्स ! मैं अदिति के पुत्रों को भयभीत करने वाले पुत्र को प्राप्त करने की इच्छा से इस अत्यन्त दुष्कर व्रत को कर रही थी ।।६९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६९।।

एकः संकल्पितः पुत्रः सप्त सप्ताभवन्कथम् । यदि ते विदितं पुत्र सत्यं कथय मा मृषा ।।७०।।

अन्वयः— हे पुत्र एकः पुत्र सङ्कल्पितः कथं सप्त-सप्त अभवन् यदि ते विदितं सत्यं कथय मृषा मा ।।७०।।

अनुवाद— हे पुत्र ! मैंने तो एक पुत्र का सङ्कल्प किया था ये उनचास कैसे हो गये ? यदि तुमको ज्ञान हो तो सत्य बतलाओ झूठ मत कहना ।।७०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७०।।

इन्द्र उवाच

अम्ब तेऽहं व्यवसितमुपधार्यागतोऽन्तिकम् । लब्धान्तरोऽच्छिदं गर्भमर्थबुद्धिर्न धर्मवित् ॥७१॥

अन्वयः— हे अम्ब ! अहं ते व्यवसितम् उपधार्य अन्तिकम् अर्थ बुद्धिः धर्मबुद्धि न आगतः लब्धान्तरं गर्भमच्छिदम्।॥७१॥

इन्द्र ने कहा

अनुवाद— हे मातः ! मैं आपके उद्देश्य को जानकर आपके पास अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए आया, मेरे मन में धर्म की बुद्धि नहीं थी । तुम्हारे व्रत में छिद्र देखकर मैंने इस गर्भ को टुकड़े-टुकड़े कर दिया ॥७१॥

भावार्थ दीपिका

दित्या निष्कपटमुक्ते सतीन्द्रोऽपि निष्कपटमेवाह-अम्बेति । लब्धमन्तरं येन । अर्थे एव बुद्धिर्यस्य ॥७१॥

भाव प्रकाशिका

दिति के निष्कपट भाव से बोलने पर इन्द्र ने भी निष्कपट भाव से ही उत्तर दिया । इन्द्र ने कहा आपके व्रत में त्रुटि को देखकर स्वार्थ वशात् मैंने गर्भ को टुकड़े-टुकड़े कर दिया ॥७१॥

कृतो मे सप्तधा गर्भ आसन्सप्त कुमारकाः । तेऽपि चैकैकशो वृक्णाः सप्तधा नापि मम्रिरे॥७२॥

अन्वयः— मे गर्भः सप्तधा कृत्तः सप्तकुममारका आसन् । ते अपि च एकैकशः सप्तधा वृक्णाः नापि मभ्रिरे ॥७२॥

अनुवाद— गर्भ को मैंने पहले सात टुकड़ों में काट दिया उन प्रत्येक के भी मैंने सात-सात टुकड़े कर दिया । किन्तु वे सब मरे नहीं ॥७२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७२॥

ततस्तत्परमाश्चर्यं वीक्ष्याध्यवसितं मया । महापुरुषपूजायाः सिद्धिः काप्यानुषङ्गिणी ॥७३॥

अन्वयः— ततः तत् परमाश्चर्यं वीक्ष्य मया अध्यवसितं यत् महापुरुष पूजायाः कपि अनुषङ्गिणी अत्र वाप्ति इत्यर्थः।॥७३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस परम ऐश्वर्य को देखकर मैंने निश्चय कर लिया कि यह परम पुरुष श्रीभगवान् की आराधना की कोई सिद्धि है जिसके कारण ये सब नहीं मर रहे हैं ॥७३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७३॥

आराधनं भगवत ईहमाना निराशिषः । ये तु नेच्छन्त्यपि परं ते स्वार्थकुशलाः स्मृताः ॥७४॥

अन्वयः— भगवतः आराधनं निराशिषः ईहमानाः ये तु परम् अपि नेच्छन्ति ते स्वार्थकुशलाः स्मृताः ॥७४॥

अनुवाद— जो लोग निष्काम भाव से परम पुरुष परमात्मा की आराधना करते हैं किन्तु वे उसके बदले में मुक्ति को भी नहीं प्राप्त करना चाहते हैं वे ही लोग स्वार्थ एवं परमार्थ के विषय में कुशल हैं ॥७४॥

भावार्थ दीपिका

अपि परं मोक्षमपि ॥७४॥

भाव प्रकाशिका

अपि परम् अर्थात् मोक्ष की भी ॥७४॥

आराध्यात्मप्रदं देवं स्वात्मानं जगदीश्वरम् । को वृणीते गुणस्पर्शं बुधः स्यान्नरकेऽपि यत् ॥७५॥

अन्वयः— जगदीश्वरम् स्वात्मानं स्वात्मप्रदं देवं आराध्य को बुधः गुणस्पर्शं वृणीते यत् नरकेऽपि स्यात् ॥७५॥

अनुवाद— इन्द्र ने कहा यहाँ सम्पूर्ण जगत् के स्वामी तथा सबों की आत्मा जो परमात्मा प्रसन्न होकर अपने आप को भी दे देते हैं, उनकी आराधना करके कौन ऐसा ज्ञानी पुरुष होगा जो विषय भोगों को प्राप्त करना चाहेगा। विषय भोग तो नरकों में भी प्राप्त हो जाते हैं ॥७५॥

भावार्थ दीपिका

गुणस्पर्शं विषयभोगं बुधः को वृणीते । यद्यस्मान्नरकेऽपि विषयभोगः स्यात् ।।७५।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा की आराधना करके कोई भी ज्ञानवान् व्यक्ति विषयभोगों को उनसे प्राप्त करना नहीं चाहेगा । विषय भोग तो नरकों में भी प्राप्त हो जाते हैं ।।७५।।

तदिदं मम दौर्जन्यं बालिशस्य महीयसि । क्षन्तुमर्हसि मातस्त्वं दिष्ट्या गर्भो मृतोत्थितः ।।७६।।

अन्वयः— हे महीयसि मातः तदिदम् मम बालिशस्य दौर्जन्यं त्वं क्षन्तुम् अर्हसि । दिष्ट्या मृतो गर्भः उत्थितः ।।७६।।

अनुवाद— हे महिमामयी मातः ! तुम मुझ अज्ञानी के इस दुष्टता पूर्ण कार्य को तुम क्षमा करो । यह सौभाग्य की बात है कि तुम्हारा मरा हुआ गर्भ जीवित हो गया ।।७६।।

भावार्थ दीपिका

महीयसि महत्तमे । मृतः सन्नुत्थितः ।।७६।।

भाव प्रकाशिका

महीयसि अर्थात् महिमामयी, मृतः सन्नुत्थितः अर्थात् मरकर भी जी गया ।।७६।।

श्रीशुक उवाच

इन्द्रस्तयाऽभ्यनुज्ञातः शुद्धभावेन तुष्टया । मरुद्भिः सह तां नत्वा जगाम त्रिदिवं प्रभुः ।।७७।।

अन्वयः— शद्धभावेन तुष्टया तया अभ्यनुज्ञातः इन्द्रः मरुद्भिः सह तां नत्वा त्रिदिवं जगाम ।।७७।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इन्द्र के शुद्धभाव से संतुष्ट दिति की आज्ञा प्राप्त करके इन्द्र मरुद्गणों के साथ दिति के नमस्कर करके उन सबों के साथ स्वर्गलोक चले गये ।।७७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७७।।

एवं ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि । मङ्गलं मरुतां जन्म किं भूयः कथयामि ते ।।७८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

अन्वयः— एवं यन्मां परिपृच्छसि मङ्गलं मरुतां जन्म ते सर्वम् आख्यातम् ते भूयः किं कथयामि ।।७८।।

अनुवाद— इस तरह आपने जो कुछ मुझसे पूछा उस मङ्गलमय मरुतों के जन्म को मैंने पूर्ण रूप से आपको सुना दिया अब मैं आपको क्या बतलाऊँ ।।७८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठ स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायांमष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध के अठारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१८।।

उन्नीसवाँ अध्याय

पुंसवन व्रत की विधि

राजोवाच

व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन्भवता यदुदीरितम् । तस्य वेदितुमिच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति ॥१॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! भवता यद पुंसवनं व्रतं उदीरितम् येन विष्णुः प्रसीदति तस्य वेदितुमिच्छामि ॥१॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! आपने जिस पुंसवन व्रत को कहा है तथा जिसको करने से भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं उसकी विधि को मैं जानना चाहता हूँ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ऊनविंशे तु यत्प्रोक्तं कश्यपेन दितेर्व्रतम् । तदेव विवृतं लोकहिताय हरितोषणम् । तस्य प्रकारमिति शेषः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप ने दिति के लिए जिस पुंसवन नामक व्रत का बतलाया था उन्नीसवें अध्याय में जगत् का कल्याण करने के लिए उस श्रीहरि को प्रसन्न करने वाले व्रत का विस्तार से वर्णन किया है । तस्य पद के द्वारा उस व्रत के प्रकार को कहा गया है ॥१॥

श्रीशुक उवाच

शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषिद्भर्तुरनुज्ञया । आरभेत व्रतमिदं सार्वकामिकमादितः ॥२॥

अन्वयः— भर्तुः अनुज्ञया योषित् मार्गशिरे शुक्ले पक्षे सर्वकामिकम् इदं व्रतम् आदितः आरभेत् ॥२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— पत्नी को चाहिए कि अपने पति से आज्ञा लेकर मार्गशीर्ष मास के शुक्ल पक्ष में सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले इस पुंसवान व्रत को शुरु से ही प्रारम्भ करे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

मार्गशिरे मासे शुकल्पक्षे । आदितः प्रतिपदि ॥२॥

भाव प्रकाशिका

मार्गशीर्ष (अग्रहायण) मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपद् तिथि से ही प्रारम्भ करना चाहिए ॥२॥

**निशम्य मरुतां जन्म ब्राह्मणाननुमन्त्र्य च । स्नात्वा शुक्लदती शुक्ले वसीतालंकृताम्बरे ॥
पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्भगवन्तं श्रिया सह ॥३॥**

अन्वयः— मरुतां जन्म निशम्य ब्राह्मणान् अनुमन्त्र्य च शुक्लदती स्नात्वा अलंकृता शुक्ले अम्बरे वसीत प्रातराशात् प्राक् श्रिया सह भगवन्तम् पूजयेत् ॥३॥

अनुवाद— पहले मरुद्गणों के जन्म की कथा सुनकर ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर दाँतों को साफ करके स्नान करे । पुनः आभूषणों को धारण करके दो श्वेत वस्त्रों को धारण करें प्रातःकाल कुछ भी खाने से पहले भगवान् लक्ष्मी नारायण की पूजा करे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अनुमन्त्र्य पृष्ट्वा । शुक्ला दन्ता यस्याः सा शुक्लदती धौतदन्ता । अलंकृता सती पूजयेत् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

अनुमन्त्र्य अर्थात् पूछकर अपने दाँतों को अच्छी तरह से साफ करके अलङ्कार धारण करके भगवान् लक्ष्मी नारायण की पूजा करे ।।३।।

अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोऽस्तु ते । महाविभूतिपतये नमः सकलसिद्धये ।।४।।

अन्वयः— हे पूर्णकाम ते अलम् निरपेक्षाय ते नमः अस्तु । सकलसिद्धये महाविभूतिये नमः ।।४।।

अनुवाद— (पहले इस तरह नमस्कार करे) हे पूर्णकाम प्रभो अतएव आप सबसे निरपेक्ष है, आपको किसी से कुछ भी नहीं लेना है । ऐसे आपको नमस्कार है । हे सकल सिद्धि स्वरूप हे समस्त विभूतियों के स्वामी मैं आपको नमस्कार करती हूँ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

आदौ तावन्नमस्कारमन्त्रानाह त्रिभिः । तुभ्यमलं पर्याप्तमेव सर्वं न किंचिदन्यैः कृत्यमस्ति, अतः केवलं ते तुभ्यं नमोऽस्तु। पर्याप्तौ हेतवः-निरपेक्षाय हे पूर्णकाम महाविभूतिपतये लक्ष्मीपतये । सकलाः सिद्धयोऽणिमाद्या यस्मिंस्तस्मै ।।४।।

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम शुकदेवजी तीन श्लोकों में नमस्कार मन्त्र को बतलाते हैं । आप अपने आपमें परिपूर्ण है आपको दूसरों से कोई भी प्रयोजन नहीं है । अतएव आपको केलव नमस्कार करती हूँ । श्रीभगवान् की परिपूर्णता का कारण बतलाते हैं हे पूर्णकाम ! हे लक्ष्मीपति ! आपमें ही अणिमा आदि सभी सिद्धिया विराजमान है, ऐसे आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ ।।४।।

यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिनौजसा । जुष्ट ईश गुणैः सर्वैस्ततोऽसि भगवान्प्रभुः ।।५।।

अन्वयः— हे ईश यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा, महिना, ओजसा, हे ईश सर्वैः गुणैः जुष्टः ततः भगवान् प्रभुः असि।।५।।

अनुवाद— हे प्रभो ! चूकि आप कृपा, विभूति तेज, महिमा ओज आदि ऐश्वर्यो तथा समस्त कल्याण गुणों से युक्त हैं, इसीलिए आप भगवान् हैं तथा सबों के स्वामी हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

भो ईश, यथा यथावत् । त्वं कृपादिभिर्जुष्टः । अन्यैश्च सत्यसङ्कल्पत्वादिभिः सर्वैर्गुणैः । ततस्तस्मात् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

हे भगवन् ! चूकि आप सम्पूर्ण कृपा आदि से ऐश्वर्यो से युक्त हैं तथा दूसरे सत्यसङ्कल्पत्व आदि से युक्त है इसीलिए आप भगवान् कहे जाते हैं ।।५।।

विष्णुपत्नि महामाये महापुरुषलक्षणे । प्रीयेथा मे महाभागे लोकमातर्नमोऽस्तु ते ।।६।।

अन्वयः— हे विष्णुपत्नि हे महामाये ! हे महापुरुष लक्षणे ! हे महाभागे ! हे लोकमातः मे प्रियेणा ते नमोऽस्तु।।६।।

अनुवाद— हे मातः ! लक्ष्मीजी आप श्रीभगवान् की पत्नी हैं । आप महामाया स्वरूपिणी हैं आप में श्रीभगवान् के सारे गुण विद्यमान हैं, हे महाभाग्यवती, हे जगन्मातः आप मुझ पर प्रसन्न होइये आपको मैं नमस्कार करती हूँ ।।६।।

भावार्थ दीपिका

महापुरुषस्य परमेश्वरस्येव लक्षणानि निरपेक्षत्वादीनि यस्यास्तस्याः संबोधनम् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

परमेश्वर के ही समान निरपेक्षत्व इत्यादिसारे गुण जिनमें विद्यमान ऐसी लक्ष्मीजी का संबोधन है महापुरुष लक्षणे।।६।।

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सहमहाविभूतिभिर्बलिमुपहराणीति । अनेनाहरहर्मन्त्रेण विष्णोरावाहनार्घ्यपाद्योपस्पर्शनस्नानवासउपवीतविभूषणगन्धपुष्पधूपदीपोपहाराद्युपचारांश्च समाहित उपाहरेत् ॥७॥

अनुवाद— यह भगवान् की पूजा का मन्त्र है ओङ्कार स्वरूप महाप्रभाव सम्पन्न, समस्त विभूतियों के स्वामी श्रीभगवान् को तथा उनकी विभूतियों को मैं नमस्कार करती हूँ और उनको पूजोपहार की सामग्री समर्पित करती हूँ । इसी मन्त्र से प्रतिदिन स्थिर चित्त से भगवान् विष्णु का आवाहन, अर्घ्य, पाद, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, उपहार तथा उपचारों को समर्पित करे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

पूजामन्त्रमाह ॐ नम इति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

ओम् नमः इत्यादि श्रीभगवान् की पूजा का मन्त्र है ॥७॥

हविःशेषं तु जुहूयादनले द्वादशाहुतीः । ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहेति॥८॥

अनुवाद— उपहार के अवशिष्ट भाग को अग्नि में होम करें । बारह आहुति दे ॥८॥

भावार्थ दीपिका

हविःशेषमुपहारावशिष्टम् । होममन्त्रं दर्शयति । ओमिति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

उपहार के अवशिष्ट भाग का अग्नि में होम करें ।

होम का मन्त्र— ओम् नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतेय स्वाहा ॥८॥ इस मन्त्र से बचे हुए नैवेद्य की बारह आहुति देनी चाहिए । **मन्त्र का अर्थ**— महान् ऐश्वर्यों के स्वामी भगवान् पुरुषोत्तम को नमस्कार है । मैं उन्हीं के लिए हविष्य का हवन कर रहा हूँ ॥८॥

श्रियं विष्णुं च वरदावाशिषां प्रभवावुभौ । भक्त्या संपूजयेन्नित्यं यदीच्छेत्सर्वसम्पदः ॥९॥

अन्वयः— यदि सर्वसम्पदः इच्छेत् नित्यं वरदौ आशिषा प्रभवौ श्रियं विष्णुं च उभौ नित्यं भक्त्या सम्पूजयेत् ॥९॥

अनुवाद— यदि कोई सभी प्रकार की सम्पत्तियों को प्राप्त करना चाहता है तो नित्य ही उसको वरदान देने वाले तथा सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले लक्ष्मी और नारायण दोनों की भक्ति पूर्वक पूजा करनी चाहिए॥९॥

भावार्थ दीपिका

प्रकर्षेण भवन्त्याभ्यामिति प्रभवौ ॥९॥

भाव प्रकाशिका

प्रभवौ का अर्थ है कि लक्ष्मीजी और भगवान् इन दोनों की ही पूजा करने से श्रेष्ठ सम्पत्तियों की प्राप्ति होती है ॥९॥

प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ भक्तिप्रह्वेण चेतसा । दशवारं जपेन्मन्त्रं ततः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥१०॥

अन्वयः— भक्तिप्रह्वेण चेतसा दण्डवत् भूमौ प्रणमेत् । दशवारं मन्त्रं जपेत् ततः स्तोत्रम् उदीरयेत् ॥१०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् भक्ति भरे अन्तःकरण से भूमि पर दण्ड के समान गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिए । फिर दशवार मन्त्र का जप करे । उसके बाद निम्नाङ्कित स्तोत्र का पाठ करें ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परम् । इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा मायाशक्तिर्दुरत्यया ॥११॥

अन्वयः— युवां तु विश्वस्य विभू जगत् परम् कारणम् इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा माया शक्तिः दुरत्यया ॥११॥

अनुवाद— हे लक्ष्मीनारायण प्रभो ! आप इस सम्पूर्ण जगत् में व्यापक और सम्पूर्ण जगत् के सर्वश्रेष्ठ कारण हैं । यह प्रकृति अत्यन्त सूक्ष्म हैं । यही माया शक्ति है । इसको पार करना अत्यन्त कठिन हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

तस्या अधीश्वरः साक्षात्त्वमेव पुरुषः परः । त्वं सर्वयज्ञ इज्येयं क्रियेयं फलभुग्भवान् ॥१२॥

अन्वयः— त्वम् साक्षात् तस्या अधीश्वरः त्वमेव परः पुरुषः त्वं सर्वयज्ञः इयं इज्या, भवान् फल भुक इयं क्रिया॥१२॥

अनुवाद— आप साक्षात् इस माया के स्वामी है तथा आप ही परम पुरुष है । आप ही सर्वयज्ञ स्वरूप हैं और ये लक्ष्मीजी इज्या स्वरूपिणी हैं । आप सम्पूर्ण यज्ञों के फलों को भोग करने वाले हैं और ये लक्ष्मी उसको उत्पन्न करने वाली क्रिया हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

इज्या यज्ञाभिनिवर्तकः पुरुष व्यापारो भावनारव्यः । क्रिया लौकिकी ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञ को पूर्ण करने वाला पुरुष के द्वारा किया जाने वाला व्यापार ही इज्या शब्द वाच्य है । इज्या को ही भावना कहते हैं क्रिया शब्द से लौकिक क्रिया को कहा गया है ॥१२॥

गुण व्यक्तिरियं देवी व्यञ्जको गुणभुग्भवान् । त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेन्द्रियाशया ॥
नामरूपे भगवती प्रत्ययस्त्वमपाश्रयः ॥१३॥

अन्वयः— इयं देवी गुणव्यक्तिः, भवान् गुणव्यञ्जकः गुणभुक् । त्वं हि सर्वशरीरी आत्मा श्रीशरीरेन्द्रियाश्रया, भगवती नाम रूपे त्वम् अपाश्रयः प्रत्ययः ॥१३॥

अनुवाद— माता लक्ष्मीजी गुणों की अभिव्यक्ति हैं और आप गुणों के अभिव्यञ्जक तथा आप गुणों के भोक्ता है । आप ही सभी शरीरों में अन्तर्यामी रूप से रहने वाले आत्मा हैं और माता लक्ष्मीजी शरीर इन्द्रिय और अन्तःकरण श्रीलक्ष्मीजी के नाम और रूप हैं और आप नाम और रूप दोनों के प्रकाशक और आधार हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्ययो नामरूपयोः प्रकाशकः । अपाश्रयस्तयोराधारः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

प्रत्यय अर्थात् नाम और रूप के प्रकाशक और अपाश्रय अर्थात् नाम और रूप दोनों के आधार ॥१३॥

यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ । तथा म उत्तमश्लोक सन्तु सत्या महाशिषः ॥१४॥

अन्वयः— हे उत्तम श्लोक यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ तथा मे महाशिषः सत्याः सन्तु ॥१४॥

अनुवाद— हे पवित्र कीर्ति भगवन् आप दोनों ही त्रिलोकी को वरदान देने वाले परमेश्वर है । अतएव मेरी जो बड़ी-बड़ी अभिलाषाएँ हैं वे पूर्ण जो जायँ ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

इत्यभिष्टूय वरदं श्रीनिवासं श्रिया सह । तन्नि:सार्योपहरणं दत्त्वाचमनमर्चयेत् ॥१५॥

अन्वयः— इति श्रिया सह वरदं श्रीनिवासम् अभिष्टूय तदुपहरणं निःसार्य आचमनं दत्वा अर्चयेत् ।।१५।।

अनुवाद— इस तरह से लक्ष्मीजी के साथ वरदान देने वाले श्रीभगवान् की स्तुति करके नैवेद्य को हटा दे और उसके पश्चात् आचमन प्रदान कर पूजन करे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१५।।

ततः स्तुवीत स्तोत्रेण भक्तिप्रह्वेण चेतसा । यज्ञोच्छिष्टमवघ्राय पुनरभ्यर्चयेद्धरिम् ॥१६॥

अन्वयः— ततः भक्ति प्रह्वेण चेतसा स्तोत्रेण स्तुवीत यज्ञोच्छिष्टमवघ्राय पुनः हरिम् अर्चयेत् ।।१६।।

अनुवाद— उसके पश्चात् भक्ति भरे हृदय में श्रीभगवान् की स्तोत्र से स्तुति करें और यज्ञावशेष को सूंघकर श्रीभगवान् की पूजा करे ।।१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१६।।

पतिं च परया भक्त्या महापुरुषचेतसा। प्रियैस्तैस्तैरुपनमेत्प्रेमशीलः स्वयं पतिः ॥
बिभृयात्सर्वकर्माणि पत्न्या उच्चावचानि च ॥१७॥

अन्वयः— महापुरुष चेतसा परया भक्त्या पतिं तैः तैः प्रियैः उपनमेत् स्वयं प्रेमशीलः पतिः पत्न्या उच्चावचानि सर्वकर्माणि विभृयात् ।।१७।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की पूजा के पश्चात् अपने पति को परमात्मा की बुद्धि से विभिन्न पति को प्रिय वस्तुओं को प्रदान करे और प्रेमी पति भी स्वयम् पत्नी की छोटी बड़ी कामनाओं को पूरा करें ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

महापुरुषचेतसा ईश्वरबुद्यद्धोमनमेद्व्रजेत्। पतिश्च स्वयं प्रेमशीलः सन् पत्न्याः कर्माणि बिभृयात्। तदनुकूलो भवेदित्यर्थः।।१७।।

भाव प्रकाशिका

महापुरुष चेतसा अर्थात् साक्षात् परमात्मा समझकर पति के पास जाय । प्रेमी पति को भी चाहिए कि वह भी पत्नी के सभी कर्मों को सम्पन्न करे और पत्नी के अनुकूल बना रहे ।।१७।।

कृतमेकतरेणापि दम्पत्योरुभयोरपि । पत्न्यां कुर्यादनर्हायां पतिरेतत्समाहितः ॥१८॥

अन्वयः— एकतरेण अपि कृतम् उभयोः अपि दम्पत्योः भवति । अनर्हायां पत्न्यां पतिःसमाहितः एतत् कुर्यात्।।१८।।

अनुवाद— पति-पत्नी दोनों में से यदि एक भी कोई काम करता है तो उसका फल दोनों को मिलता है। अतएव रजस्वला इत्यादि पत्नी यदि पूजन करने के योग्य न हो तो पति को ही उतने दिन तक सावधानी पूर्वक उस अनुस्ठान को करना चाहिए ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

यतो दम्पत्योर्मध्ये एकतरेण कृतमुभयोरपि भवति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

चूकि पति और पत्नी दोनों में से कोई एक भी कोई काम करता है तो उसका फल दोनों को मिलता है।।१८।।

विष्णोर्व्रतमिदं बिभ्रन्न विहन्यात्कथंचन । विप्रान्स्त्रियो वीरवतीः स्रग्गन्धबलिमण्डनैः ॥
अर्चेदहरहर्भक्त्या देवं नियममास्थितः ॥१९॥

अन्वयः— इदं विष्णो व्रतं विभ्रन् कथंचन न विहन्यात् । विप्रान् वीरवतीः स्त्रियः स्रग्गन्धबलिमण्डनैः अहरहः भक्त्या नियममास्थितः अर्चेत् ॥१९॥

अनुवाद— भगवान् विष्णु के इस व्रत को धारण करने वाला किसी भी हालत में इस व्रत का परित्याग न करे । ब्राह्मणों तथा सौभाग्यवती स्त्रियों की माला चन्दन उपहार तथा अलङ्कार से पूजा करे प्रतिदिन भक्ति पूर्वक नियमत भगवान् की पूजा करें ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

न विहन्यान्न विच्छिन्द्यात् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

न विहन्यात् अर्थात् इसका परित्याग न करें ॥१९॥

उद्वास्य देवं स्वे धाम्नि तन्निवेदितमग्रतः । अद्यादात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकामर्द्धये तथा ॥२०॥

अन्वयः— देवं उद्वास्य स्वे धाम्नि तन्निवेदितम् अग्रतः आत्मविशुद्ध्यर्थ तथा सर्वकामद्धिये अद्यात् ॥२०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् श्रीभगवान् को उनके धाम में पहुँचा दे अर्थात् विसर्जन कर दे और अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए तथा सभी कामनाओं की समृद्धि के लिए श्रीभगवान् के प्रसाद को पहले खाय ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

एतेन पूजाविधिना मासान्द्वादश हायनम् । नीत्वाऽथोपचरेत्साध्वी कार्तिके चरमेऽहनि ॥२१॥

अन्वयः— एतेन पूजाविधिना मासान् द्वादश हायनम् नीत्वा कर्तिके चरमेऽहनि साध्वी अथोपचरेत् ॥२१॥

अनुवाद— साध्वी स्त्री इस विधि से बारह महिनों तक पूर एक वर्ष तक इस व्रत का आचरण करके मार्गशीर्ष की अमावस्था को उद्यापन विषयक उपवास और पूजन आदि करें ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशमासानित्युक्ते कदाचित्तन्मध्ये मलमासे सति तेन सह द्वादश संख्यायां सत्यां शुद्धस्यैकस्य त्यागः स्यात् । हायनमित्युक्ते तन्मध्यपतितस्य तस्यापि प्रसङ्गः स्यात् । तदुभयं वारयितुमुभयमुक्तम् । उपचरेदुपवसेत ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

बारह मास कहे जाने के कारण कभी बीच में पुरुषोत्तम मास आ जाने पर उसके साथ बारह मासों की संख्या होने पर शुद्ध मासों का एक मास त्याग दे । वर्ष कहे जाने पर भी उसके बीच में पुरुषोत्तम मास के आ जाने पर उसका प्रसङ्ग होगा उन दोनों को बचाने के लिए दोनों तरह की बातें कही गयी हैं । उपचरेत् अर्थात् उपवास करें ॥२१॥

श्वोभूतेऽप उपस्पृश्य कृष्णमभ्यर्च्य पूर्ववत् । पयःशृतेन जुहूयाच्चरुणा सह सर्पिषा ॥
पाकयज्ञविधानेन द्वादशैवाहुतीः पतिः ॥२२॥

अन्वयः— श्वो भूते अप उपस्पृश्य पूर्ववत् कृष्णमभ्यर्च्य पयः शृतेन जुहुयात् चरुणा सह सर्पिषा । पतिः पाकयज्ञविधानेन द्वादशैवाहुतीः जुहुयात् ॥२२॥

अनुवाद— उस दिन प्रात:काल ही स्नान करके पहले के ही समान भगवान् विष्णु की पूजा करे । उसका पत्नी पाकयज्ञ विधि से घृत मिश्रित खीर से अग्नि में बारह आहुति दें ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

श्वोभूते प्रभाते सति । पयसि शृतेन पक्वेन । पाकयज्ञविधानेन पार्वणस्थालीपाकविधानेन ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

प्रात:काल होने पर पके हुए दूध से पाक यज्ञ की विधि के पार्वण की स्थाली विधि से ।।२२।।

आशिषः शिरसादाय द्विजैः प्रीतैः समीरिताः । प्रणम्य शिरसा भक्त्या भुञ्जीत तदनुज्ञया ।।२३।।

अन्वयः— प्रीतैः द्विजैः समीरिताः आशिषः शिरसा आदाय भक्त्या शिरसा प्रणम्य तदनुज्ञया भुञ्जीत ।।२३।।

अनुवाद— उसके पश्चात् प्रसन्न होकर जब ब्राह्मण अशीर्वाद दें तो उसको शिर झुका कर ग्रहण करे और भक्ति पूर्वक शिर झुकाकार उन ब्राह्मणों को प्रणाम करके ब्राह्मणों की आज्ञा प्राप्त कर भोजन करे ।।२३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२३।।

आचार्यमग्रतः कृत्वा वाग्यतः सह बन्धुभिः । दद्यात्पत्न्यै चरोः शेषं सुप्रजास्त्वं सुसौभगम् ।।२४।।

अन्वयः— आचार्यमग्रतः कृत्वा वाग्यतः बन्धुभिः सह, सुप्रजास्त्वम् सुसौभगम् चरोः शेषम् पत्न्यै दद्यात् ।।२४।।

अनुवाद— पहले आचार्य को भोजन कराये । उसके पश्चात् अपने बान्धवों के साथ मौन होकर स्वयम् भोजन करें । उसके पश्चात् होम से बचे तथा घृतमिश्रित खीर को पत्नी को दे । वह प्रसाद स्त्री को सत्पुत्र और सौभाग्य दान करने वाला होता है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

सुप्रजास्त्वं सत्पुत्रत्वमित्यर्थः । तद्यतस्तं शेषम् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

वह खीर सुन्दर सन्ताप और सौभाग्य देने वाला है ।।२४।।

एतच्चरित्वा विधिवद्व्रतं विभोरभीप्सितार्थं लभते पुमानिह ।
स्त्री त्वेतदास्थाय लभेत सौभगं श्रियं प्रजां जीवपतिं यशो गृहम् ।।२५।।

अन्वयः— हे विभो ! एतद् विधिवत् चरित्वा पुमान् इह अभीप्सितार्थंलभते स्त्री तु एतत् आस्थाय सौभगं श्रियं प्रजां जीवपतिं यशः गृहम् लभेत ।।२५।।

अनुवाद— हे राजन् ! परीक्षित् उस व्रत का विधिपूर्वक अनुष्ठान करके मनुष्य इस लोक में ही अपने अभिप्रेत अर्थ को प्राप्त कर लेता है । इसका अनुष्ठान करने वाली स्त्री सौभाग्य लक्ष्मी, सन्तान तथा दीर्घायुपति को प्राप्त करती है ।।२५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२५।।

कन्याच विन्देत समग्रलक्षणं वरं त्ववीरा हतकिल्बिषा गतिम् ।
मृतप्रजा जीवसुता धनेश्वरी सुदुर्भगा सुभगा रूपमग्र्यम् ।।२६।।

अन्वयः— कन्या समग्रलक्षणं वरं विन्देत, अवीर हतकिल्विषा गतिम् मृतप्रजा जीवसुता धनेश्वरी सुदुर्भगा सुभगा अग्र्यं रूपं विन्देत ।।२६।।

अनुवाद— इस व्रत को करने वाली कन्या सभी लक्षणों से सम्पन्न वर को प्राप्त करती है, विधवा निष्पाप होकर सद्गति प्राप्त करती है, मृतवत्सा नारी दीर्घायु पुत्र को प्राप्त करती है, और धनेश्वरी किन्तु दुर्भगानारी सौभाग्य तथा श्रेष्ठ रूप को प्राप्त करती हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

अवीरा विधवा । धनेश्वरी सत्यपि या सुदुर्भगा सा सुभगा भवति ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

अवीरा अर्थात् विधवा नारी, धनेश्वरी होकर भी अत्यन्त दौर्भाग्यवती नारी सौभाग्य सम्पन्न हो जाती है ।।२६।।

विन्देद्विरूपा विरुजा विमुच्यते य आमयावीन्द्रियकल्पदेहम् ।
एतत्पठन्नाभ्युदये च कर्माण्यनन्ततृप्तिः पितृदेवतानाम् ।।२७।।

अन्वयः— विरूपा विन्देत यः आमयावी विरुजा विमुच्यते इन्द्रिकल्पं देहम्, अभ्युदये कर्मणि एतत् पठन् पितृदेवतानाम्अनन्त तृप्तिः ।।२७।।

अनुवाद— कुरूपा स्त्री को श्रेष्ठ रूप प्राप्त होता है, रोगी पुरुष भयङ्कर रोग से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। तथा निरोग सुन्दर देह को प्राप्त करता है । जो माङ्गलिक श्राद्ध कर्मों में इसका पाठ करता है तो देवताओं और पितरों को अनन्त तृप्ति होती है ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

य आमयावी रोगी स विरुजा विशिष्टया रुजा विमुच्यते । इन्द्रियैः सहितं कल्पं देहं च विन्देदिति शेषः । पठन्यो वर्तेत तस्य पितॄणां देवतानां चानन्ता तृप्तिर्भवतीत्यर्थः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

रोगी मनुष्य भयङ्कर रोग से मुक्ति प्राप्त कर लेता है तथा इन्द्रियों के साथ सुन्दर शरीर को प्राप्त कर लेता है । माङ्गलिक श्राद्ध कर्मों में इसका पाठ करने से देवताओं तथा पितरों को अनन्त तृप्ति प्राप्त होती है ।।२७।।

तुष्टाः प्रयच्छन्ति समस्तकामान्होमावसाने हुतभुक् श्रीर्हरिश्च ।
राजन्महन्मरुतां जन्म पुण्यं दितेर्व्रतं चाभिहितं महत्ते ।।२८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
पुंसवनव्रतकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

समाप्तोऽयं षष्ठः स्कन्धः ।।६।।

अन्वयः— होमावसाने तुष्टाः ते हुतभूक् श्रीहरिश्च समस्त कामान् प्रयच्छन्ति राजन् ते महन् मरुतां पुण्यं जन्म दितेः महद् व्रतं च अभिहितम् ।।२८।।

अनुवाद— होम के समाप्त हो जाने पर सन्तुष्ट हुए देवता, पितृगण और श्रीहरि ये सबके सब व्रती की सारी अभिलाषाओं को पूर्ण कर देते हैं । राजन् मैंने आपको महान् मरुद्गणों की तथा दिति के महान् व्रत की कथा सुना दी ।।२८।।

इस तरह महर्षि व्यास प्रणीत अठारह हजार श्लोकों वाली श्रीमद्भागवत महापुराण नामक पारमहंस्य संहिता के छठे स्कन्ध के पुंसवनव्रत वर्णन नामक उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९।।

इस तरह छठा स्कन्ध भी सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति राजन्निति । महत्पुण्यं जन्म महद्व्रतं च ॥२८॥

षष्ठस्कन्धनिगूढार्थपदभावार्थदीपिका । सद्भिरासेव्यतामेषा ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थ दीपिका टीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

राजन इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीशुकदेवजी इस कथा का और इस छठे स्कन्ध का उपसंहार करते हैं । अत्यन्त पवित्र मरुद्गणों का जन्म तथा दिति के महान् व्रत को श्रीशुकदेवजी ने सुनाया ॥२८॥

छठे स्कन्ध में छिपे हुए अर्थ तथा पदों के भावार्थ को प्रकाशित करने वाली यति श्रीधर स्वामी के द्वारा प्रणीत भावार्थदीपिका का सज्जन सेवन करें ॥१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के छठे स्कन्ध की श्रीधर स्वामी द्वारा प्रणीत भावार्थ दीपिका टीका के उन्नीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१९।।

इस तरह छठा स्कन्ध सम्पूर्ण हो गया ।।६।।

॥ ओम नमो भगवते वासुदेवाय ॥

सातवाँ स्कन्ध

पहला अध्याय

नारदयुधिष्ठिर संवाद और जय विजय की कथा

राजोवाच

समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन्भूतानां भगवान्स्वयम् । इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषमो यथा ॥१॥

अन्वयः हे ब्रह्मन् भगवान् स्वयम् भूतानां समः प्रियः सुहृद् इन्द्रस्यार्थे विषमो यथा दैत्यान् कथम् अवधीत् ॥१॥

राजा परीक्षित ने कहा

अनुवाद हे ब्राह्मन ! श्रीशुकदेवजी श्रीभगवान तो सभी जीवों के प्रति सम (भेदभाव से रहित) सभी प्राणियों के प्रिय और सुहृद् है फिर भी वे पक्षपाती के समान इन्द्र के लिए दैत्यो का वध क्यों किए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

स्वभक्तपक्षपातेन तद्विपक्षविदारणम् । नृसिंहमद्भुतं वन्दे परमानन्दविग्रहम् । ऊतिः पञ्चदशाध्यायैः सप्तमे वर्ण्यतेऽधुना। ऊतिश्च वासना प्रोक्ता सा तत्कर्मानुसारिणी । अशुभा च शुभा चेति द्विधा सा हेतुभेदतः । अशुभा महतां कोपाच्छुभा महदनुग्रहात्। हरेर्द्वारपयोर्वैकुण्ठे वसतोरपि । चतुःसनरुषा विष्णुद्वेषाद्यशुभवासना । यथा च दैत्यगर्भेऽपि प्रह्लादस्य सतः स्थिरा । नारदानुग्रहादास विष्णौ सद्भक्तिवासना । स्वभक्तं च सदा विष्णुर्द्विषन्तमपि रक्षति । तृतीयेऽथ भवे द्वास्थावकरोदात्मसात्पुनः । अतो मनीषिणा यत्नः कार्यो महदनुग्रहे । इत्येतदर्थमूतीनामत्र लक्षणमुच्यते । तत्रादौ दशभिर्दैत्यतत्पुत्रमतिभेदतः । महत्कोपानुकम्पोत्थवासना भेद उच्यते । सद्वासना च युज्येत कर्मभिः शुद्धचेतसः । परैस्तु पञ्चभिस्तस्मात्क्रियते धर्मनिर्णयः । तत्र तु प्रथमेऽध्याये हिरण्यकशिपो मृते । विष्णुभक्तेः विरोधस्तु विप्रशापज ईर्यते । यदुक्तं पूर्वस्कन्धान्ते हतपुत्रा दितिः शक्रपार्ष्णिग्राहेण विष्णुना। मन्युना शोकदीप्तेन ज्वलन्ती पर्यचिन्तयत् । इति तच्छ्रुत्या विस्मितः परीक्षित्पृच्छति-सम इति त्रिभिः। नहि समस्य सुहृदश्च वैषम्यं नामास्ति । न च प्रियस्य प्रीतिकर्तृषु वैषम्यं युक्तमित्यर्थः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

अपने भक्तों के प्रति पक्षपात होने के कारण भक्तों के विपक्षियों का विनाश करने वाले परमानन्द विग्रह स्वरूप अद्भुत भगवान् नृसिंह की मैं वन्दना करता हूँ। इस सातवें स्कन्ध के पन्द्रह अध्यायों द्वारा उति का वर्णन किया गया है। विभिन्न प्रकार के किए जाने वाले कर्मो के अनुसार जो वासना होती है उसे ही ऊति कहते है। कारणों की भिन्नता के कारण होने वाली ऊति (वासना) दो प्रकार की होती है, शुभ एवं अशुभ महापुरुषों के कोप के कारण अशुभ ऊति होती है और महापुरुषों की कृपा के कारण शुभ ऊति होती है। श्रीहरि के द्वारपाल तथा श्रीवैकुण्ठ में निवास करने वाले चार सनकादियों के क्रोध के कारण और भगवान् विष्णु के भी क्रोध के कारण हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष में अशुभ वासना हुई। जैसे दैत्य के गर्भ में रहने पर सत्पुरुष प्रह्लाद की भगवान् विष्णु मे सद्भक्ति स्थिर सद्वासना थी उसका कारण प्रह्लाद पर नारदजी की कृपा थी। भगवान् विष्णु अपने से

द्वेष करने वाले भी भक्त की रक्षा करते है । इसलिए जय और विजय को उन्होंने तीसरे जन्म में अपना लिया। अतएव मनीषी पुरुष को चाहिए कि वे महापुरुषों की कृपा प्राप्ति का प्रयास करें । इसीलिए यहाँ पर ऊति का लक्षण कहा गया है । उसमें पहले दश अध्यायों में दैत्य (हिरण्यकशिपु) और उसके पुत्र प्रह्लाद में बुद्धि का भेद होने के कारण श्रीभगवान् का कोप और प्रह्लाद पर अनुकम्पा जन्य वासना के भेद का वर्णन किया गया हैं । शुद्ध अन्तःकरण से किए गये कर्मो के द्वारा सद्वासना की प्राप्ति होती है । बाद के पन्द्रह अध्यायों के द्वारा धर्म का निर्णय किया गया है । तो उसमें प्रथम अध्याय में भगवान् विष्णु के भक्त के प्रति हिरण्यकशिपु का विरोध सनकादि ब्राह्मणों के शाप के कारण था इस बात को बतलाया गया है । छठे स्कन्ध के अन्त में यह जो कहा गया है कि इन्द्र के सहायक विष्णु भगवान् के द्वारा हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्रों के मार दिए जाने के कारण क्रोधाग्नि शोकाग्नि में जलती हुई दिति ने विचार किया । इस बात को सुनकर राजा परीक्षित् आश्चर्यित होकर तीन श्लोकों से पूछते हैं । सबों के प्रति एक समान रहने वाले सुहृद में विषम बुद्धि नहीं होती है । प्रिय व्यक्ति का अपने से प्रेम करने वालों के प्रति पक्षपात का होना भी उचित नहीं है ॥१॥

नह्यस्यार्थः सुरगणैः साक्षान्निः श्रेयसात्मनः । नैवासुरेभ्यो विद्वेषो नोद्वेगश्चागुणस्य हि ॥२॥

अन्वयः— साक्षात् निःश्रेयसात्मनः अस्य हि सुरगणैः अर्थः न अगुणस्य हि तस्य असुरेभ्यः नैव विद्वेषः नोद्वेगः च॥२॥

अनुवाद— स्वयं कल्याण स्वरूप होने के कारण श्रीभगवान् का देवताओं से कोई प्रयोजन नहीं है और निर्गुण होने के कारण उनका असुरों से न तो विद्वेष है और न किसी प्रकार का उद्वेग है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

किंच यस्य यैः प्रयोजनं सिध्यति स तत्पक्षपाती भवति, येभ्यो बिभेति तान्द्वेषेण हन्ति नतु तदत्रास्तीत्याह-नहीति । निःश्रेयसं परमानन्द एव आत्मा स्वयं यस्य । असुरेभ्यश्चोद्वेगो भयं नास्ति । अतो विद्वेषोऽपि नास्त्येव । तत्र हेतु-अगुणस्येति। गुणाधीनौ प्रीतिद्वेषावित्यर्थः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

जिसका जिन लोगों से किसी प्रयोजन की सिद्धि होती है वह उन लोगों का पक्षपाती होता है जिन लोगों से भय रहता है उन लोगों को वह द्वेष के कारण मारता है । किन्तु श्रीभगवान् में कोई ऐसी बात नहीं है । परमात्मा स्वयं परमानन्द स्वरूप हैं अतएव उनका देवताओं से कोई प्रयोजन नहीं है । असुरों से उनको कोई भय भी नहीं है । अतएव उनका असुरों से विद्वेष भी नहीं है । उसका कारण है कि वे निर्गुण हैं । गुणों के कारण ही किसी से प्रेम अथवा द्वेष होता है ॥२॥

इति नः सुमहाभाग नारायणगुणान्प्रति । संशयः सुमहान् जातस्तद्भवाञ्छेत्तुमर्हति ॥३॥

अन्वयः— हे सुमहाभाग ! इति नः नारायणगुणान् प्रति सुमहान् संशयः जातः तद्भवान् छेत्तुम अर्हति ॥३॥

अनुवाद— हे भगवत्प्रेम के सौभाग्य से सम्पन्न महाभाग हमारे मन में भगवान् नारायण के गुणों के विषय में महान संदेह उत्पन्न हो गया है उसे आप ही दूर कर सकते हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

श्रीनारायणस्य गुणाननुग्रहनिग्रहादीन् प्रति । तत्तं संशयम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् नारायण के अनुग्रह और निग्रह रूप गुणों के विषय में उत्पन्न उस संशय को आप दूर करें ॥३॥

श्रीशुक उवाच

साधु पृष्टं महाराज हरेश्चरितमद्भुतम् । यत्र भागवतमाहात्म्यं भगवद्भक्तिवर्धनम् ॥४॥

अन्वयः— महाराज ! हरेः अद्भुतं चरितम् साधु पृष्टम् यत्र भगवद्भक्तिवर्धनम् भागवत माहात्म्यम् ॥४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे महाराज ! परीक्षित् आपने श्रीहरि के अद्भुत चरित्र के विषय में बहुत अच्छा प्रश्न किया है, क्योंकि इसका सम्बन्ध श्रीभगवान् की भक्ति को बढ़ाने वाले भगवान के भक्त प्रह्लाद की महिमा से है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

भागवतस्य प्रह्लादस्य माहात्म्यं गीयत इति संबन्धः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

भगवद् भक्त प्रह्लाद का माहात्म्य इसमें वर्णित किया जाता है ॥४॥

गीयते परमं पुण्यमृषिभिर्नारदादिभिः । नत्वा कृष्णाय मुनये कथयिष्ये हरेः कथाम् ॥५॥

अन्वयः— नारदादिभिः ऋषिभिः परमं पुण्यं गीयते । कृष्णाय मुनये नत्वा हरेः कथम् कथयिष्ये ॥५॥

अनुवाद— नारदजी प्रभृति ऋषिगण इस अत्यन्त पवित्र प्रसङ्ग का गान करते हैं । अतएव मैं श्रीकृष्ण द्वैपायन मुनि श्रीव्यास को नमस्कार करके इस कथा को कहूँगा ॥५॥

भावार्थ दीपिका

कृष्णाय व्यासाय । कृष्णं मुनिं नत्वेत्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

व्यासजी को नमस्कार करके ॥५॥

क्षेपक

जिह्वां लब्ध्वापि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत् । लब्ध्वापि मोक्षनिः श्रेणीं स नारोहति दुर्मति॥१॥

अन्वयः— यः जिह्वां लब्ध्वा अपि, कीर्तनीयं विष्णुं न कीर्तयेत् । स दुर्मतिः मोक्षनिःश्रेणी लब्ध्वा अपि न रोहति॥१॥

अनुवाद— जो जीभ को प्राप्त करके भी कीर्तन करने योग्य भगवान् विष्णु का कीर्तन नहीं करता है, वह मूर्ख मोक्ष की सीढ़ी को प्राप्त करके भी उस पर नहीं चढ़ता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१॥

तस्माद्गोविन्दमाहात्म्यमानन्दरससुन्दरम् । शृणुयात्कीर्तयेन्नित्यं स कृतार्थो न संशयः ॥२॥

अन्वयः— तस्मात् आनन्दरससुन्दरम् गोविन्दमाहात्म्यम् नित्यं शृणुयात् कीर्तयेत् स कृतार्थः न संशयः ॥२॥

अनुवाद— इसीलिए आनन्द रूप रस से मनोहर बने हुए भगवान् गोविन्द की महिमा का नित्य ही श्रवण करना चाहिए और कीर्तन करना चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य कृत-कृत्य हो जाता है, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

तस्माद्धीमन्कथां पुण्यां गोविन्दचरिताञ्चिताम् । महापुण्यप्रदां यस्माच्छृणुष्व नृपसत्तम ॥३॥

अन्वयः— तस्मात् हे धीमन् नृपसत्तम महापुण्य प्रदां गोविन्द चरिताञ्चिताम् पुण्यां कथां शृणुष्व ॥३॥

अनुवाद— अतएव ही महाबुद्धि राजवर्य महान् पुण्य प्रदान करने वाली भगवान् गोविन्द की कथा से समलंकृत पवित्र कथाओं का आप श्रवण करें ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

इति क्षेपक

निर्गुणोऽपि ह्यजोऽव्यक्तो भगवान्प्रकृतेः परः । स्वमायागुणमाविश्य बाध्यबाधकतां गतः ॥६॥

अन्वयः— भगवान् निर्गुणः अपि अजः अव्यक्तः प्रकृतेः परः स्वमायागुणमाविश्य बाध्यबाधकतां गतः ॥६॥

अनुवाद— वस्तुतः श्रीभगवान् निर्गुण हैं फिर भी वे अजन्मा और अव्यक्त और प्रकृति से परे हैं । वे अपनी माया के गुणों (सत्वादि गुणों) को स्वीकार करके परस्पर में विरोधी वाध्य (मारे जाने वाले) और बाधक (मारने वाले) रूपो को ग्रहण करते है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

यस्मात्प्रकृतेः परः । अतो निर्गुणः । अत एवाजः । अत एवाव्यक्तो रागद्वेषादिनिमित्तभूतदेहेन्द्रियादिरहितः । सोऽपि स्वमायागुणं सत्त्वादिकमाविश्याधिष्ठाय बाध्यान्प्रति । यद्वा देवासुराणां परस्परं या बाध्यबाधकता तां गतः प्राप्तः । तत्र हेतुर्जात इत्यर्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

प्रकृति से परे होने के कारण ही श्रीभगवान् निर्गुण हैं । इसीलिए वे अजन्मा हैं । अतएव अव्यक्त हैं अर्थात् राग एवं द्वेष आदि के कारणभूत देह तथा इन्द्रिय आदि से रहित हैं । ऐसा होकर भी श्रीभगवान् अपनी माया के सत्त्व आदि गुणों को अपनाकर बाध्यों के प्रति बाधक हो जाते हैं । अथवा देवताओं और असुरों में जो परस्पर में जो बाध्य बाधक भाव है उसी को स्वींकर कर लेते हैं । अर्थात् उसके कारण बन जाते हैं ॥६॥

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः । न तेषां युगपद्राजन् ह्रास उल्लास एव वा ॥७॥

अन्वयः— राजन् ! सत्त्वं, रजः तमः इति प्रकृतेः गुण आत्मनः न, तेषां युगपत् ह्रासः अथवा उल्लासः न भवतीति शेषः ॥७॥

अनुवाद— हे राजन् ! सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण ये तीनों प्रकृति के गुण हैं आत्मा के नहीं । एक ही समय में इन तीनों का न तो ह्रास होता है और न तो उद्रेक होता है । कोई भी गुण अपने से भिन्न दो गुणों को अभिभूत करके ही उद्रिक्त होता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तत्र गुणानां स्वीयत्वे सति प्राकृतपुरुषवद्विषमः स्यात्तु नास्तीत्याह-सत्त्वमिति । ननु स्वेच्छया गुणाधिष्ठानेनापि पक्षपातवैषम्यं स्यादेव, न । तस्य कालकृतत्वादित्याह- न तेषामिति सार्धेन । उल्लासो वृद्धिः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

यदि सत्त्वादि गुण परमात्मा के होते तब ही वे प्राकृत पुरुष (संसारी जीव) के समान विषम होते है, किन्तु ये गुण आत्मा के नहीं अपितु प्रकृति के हैं । इसी बात को **सत्त्वम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । यदि कहें कि अपनी इच्छा से ही गुणों को अधिष्ठित करने पर भी पक्षपात रूप वैषम्य होगा ही । तो ऐसा कहना उचित नहीं हैं । अधिष्ठान तो कालकृत होता है । इस बात को शुकदेवजी **न तेषामपि० इत्यादि** डेढ श्लोकों से कहा है । उल्लास अर्थात् वृद्धि ॥७॥

जयकाले तु सत्त्वस्य देवर्षीन् रजसोऽसुरान् । तमसो यक्षरक्षांसि तत्कालानुगुणोऽभजत् ॥८॥

अन्वयः— सत्त्वस्य जयकाले तु देवर्षीन् रजसः असुरान् तमसः यक्षरक्षांसि तत्कालानुगुणः अभजत् ॥८॥

अनुवाद— भगवान् सत्त्व गुण की वृद्धि के समय देवताओं और ऋषियों को रजोगुण की वृद्धि के समय असुरों का और तमोगुण की वृद्धि के समय व यक्षों एवं राक्षसों को अपनाते और उनका अभ्युदय करते हैं । इस तरह समय के अनुसार वे गुणों को अपनाते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

सत्त्वस्य जयकले देवादीनृषींश्चाभजत् । तत्तद्देहं प्रविश्य वर्धयतीत्यर्थः । रजसो जयकालेऽसुरान् । तमसो जयकाले यक्षरक्षांसि । तस्य कालस्यानुगुणः सन् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

जिससमय सत्त्वगुण की वृद्धि होती है, उस समय भगवन् देवों और ऋषियों को अपनाते हैं । अर्थात् विभिन्न शरीरों में प्रवेश करके उनकी वृद्धि करते हैं । रजोगुण की वृद्धि के समय दैत्यों को अपनाते हैं और तमोगुण की वृद्धि के समय यक्षों एवं राक्षसों को अपनाते हैं और उनका अभ्युदय करते हैं । अर्थात् जैसा काल आता है वैसा ही वे बन जाते हैं ॥८॥

ज्योतिरादिरिवाभाति संघातान्न विविच्यते । विदन्त्यात्मानमात्मस्थं मथित्वा कवयोऽन्ततः ॥९॥

अन्वयः— ज्योतिः आदि इव आभाति संघातात् न विविच्यते कवयः आत्मानं मथित्वा अन्ततः आत्मस्थं विदन्ति ॥९॥

अनुवाद— जिस तरह अग्नि अदि काष्ठ आदि पदार्थों में रहकर भी उस काष्ठ समूह से अलग नहीं प्रतीत होती है । किन्तु वह अग्नि मन्थन करने पर प्रकट हो जाती है, उसी तरह परमात्मा सभी शरीरों में व्यापक हैं फिर भी उनकी शरीर से अलग प्रतीति नहीं होती है । किन्तु ज्ञानी पुरुष अपने हृदय का मन्थन करके हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान परमात्मा का साक्षात्कार कर लेते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

समस्यापि निमित्तभेदेन वैषम्ये दृष्टान्तः ज्योतिरादिरिव । ज्योतिरग्निर्यथा काष्ठादिषु । जलं यथा पात्रेषु आकाशो यथा घटादिषु । तथा भगवान्नानारूप आभाति । ननु तर्हि तद्वदेव विवेकेन किं न प्रतीयते तत्राह-संघातात्सुरादिदेहान्न विविच्यते न पृथक् प्रतीयते । तर्हि तान्भजतीति कुतो ज्ञायते तत्राह-विदन्तीति । आत्मस्थं परमात्मानं कवयो निपुणाः मथित्वा कार्यदर्शनलिङ्गेन विचार्य जानन्ति । अन्ततः स्वभावकालकर्मादिवादनिषेधेन । विन्दन्तीति पाठे लाभोऽपि ज्ञानमेव । अत्रापि ज्योतिरादिरिवेति द्रष्टव्यम् । यथा सूर्यकान्तादौ दाहदर्शनाज्ज्योतिर्ज्ञायते । यथा च गन्धदर्शनाद्वायुरित्यादि ॥९॥

भाव प्रकाशिका

सबों के प्रति सम होने पर परमात्मा के विषय होने का दृष्टान्त **ज्योतिरादिरिव इत्यादि** श्लोक में दिया गया है । जिस तरह काष्ठ आदि में अग्नि विद्यमान रहती है । जिस तरह पात्रों में जल रहता है । तथा घट आदि में आकाश रहता है, फिर भी उसकी अलग प्रतीति नहीं होती है उस तरह से श्रीभगवान् भी अनेक रूप से प्रतीत होते हैं । **ननु० इत्यादि** प्रश्न होता है कि तो फिर वे विवेक के द्वारा उसी तरह क्यों नहीं प्रतीत होते हैं, इस पर कहते हैं- वे देव आदि शरीर से अलग नहीं प्रतीत होते हैं । तो फिर प्रश्न होता है कि वे उन सबों को अपनाते हैं । यह कैसे पता चलता है ? तो इसके उत्तर में **विदन्ति इत्यदि** कहते हैं । आत्मस्थ परमात्मा को ज्ञानी पुरुष उनके कार्यों को देखकर जान जाते हैं । वे स्वभाव, काल, कर्म आदि का निषेध करके परमात्मा को जान लेते हैं । जहाँ **विदन्ति** पाठ है वहा लाभ भी ज्ञान स्वरूप है । यहाँ भी ज्योति आदि के ही समान जानना

चाहिए । जिस तरह सूर्यकान्त आदि में दाह को देखकर अग्नि की प्रतीति होती है उसी तरह अथवा जैसे गन्ध को देखकर वायु की प्रतीति होती है ॥९॥

यदा सिसृक्षुः पुर आत्मनः परो रजः सृजत्येष पृथक् स्वमायया ।
सत्त्वं विचित्रास् रिरंसुरीश्वरः शयिष्यमाणस्तम ईरयत्यसौ ॥१०॥

अन्वयः— यदा परः आत्मनः पुरः सिसृक्षुः तदा एषः स्वमायया पृथक् रजः पृथक् सृजति विचित्रासु रिरंशुः सत्त्वं सृजति, शयिष्यमाण असौ तमः सृजति ॥१०॥

अनुवाद— जब परमात्मा जीवों के भोग के लिए शरीरों की सृष्टि करना चाहते हैं उस समय वे अपनी माया के द्वारा रजोगुण की अधिक सृष्टि करते हैं जब वे विचित्र योनियों में रमण करना चाहते हैं, उस समय वे सत्त्व गुण की अधिक सृष्टि करते हैं और जब वे सोना चाहते हैं उस समय वे तमोगुण की अधिक सृष्टि करते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं मायागुणवशेनैतद्वैषम्यं न स्वाभाविकमित्युक्तम्, तर्हि गुणपारतन्त्र्यादनीश्वरत्वमाशङ्क्याह-यदा आत्मनो जीवस्य भोगाय पुरः शरीराणि परः परमेश्वरः सिसृक्षुर्भवति तदा साम्येन स्थितं रजः पृथक् सृजति । विचित्रासु तासु पूर्षु रिरंसुः क्रीडितुमिच्छुर्यदा सत्त्वं तदा पृथक् सृजति शयिष्यमाणः संहरिष्यन्यदा तदा तमः पृथगीरयति प्रेरयति, आधिक्यं नयतीत्यर्थः॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह यह बतलाया जा चुका है कि माया के गुणों के कारण परमात्मा में वैषम्य होता है, यह उनका स्वाभाविक गुण नहीं है । इस पर प्रश्न होता है कि यदि वे गुणों के परतन्त्र रहते हैं तब तो उनको अनीश्वर होना चाहिए इस तरह की आशङ्का करके कहते हैं— जब परमात्मा जीवों के भोग के लिए शरीरों की सृष्टि करना चाहते हैं तो वे साम्यावस्थावस्थित रजोगुण की अधिक अलग सृष्टि कर देते हैं, जब वे विचित्र शरीरों में रमण करना चाहते हैं उस समय वे सत्त्वगुण की अलग से अधिक सृष्टि कर देते हैं । जब वे जगत् का संहार करना चाहते हैं उस समय वे तमोगुण की अलग से अधिक सृष्टि करते हैं ॥१०॥

कालं चरन्तं सृजतीश आश्रयं प्रधानपुंभ्यां नरदेव सत्यकृत् ।
य एष राजन्नपि काल ईशिता सत्त्वं सुरानीकमिवैधयत्यतः ॥
तत्प्रत्यनीकानसुरान्सुरप्रियो रजस्तमस्कान्प्रमिणोत्युरुश्रवाः ॥११॥

अन्वयः— हे नरदेव ! सत्यकृत् ईशः प्रधान पुंभ्यां चरन्तं आश्रयं कालं सृजति । राजन् । य एष काल ईशिता अतः सत्त्वं सुरानीकम् इव एधयति । सुरप्रियः तत्प्रत्यजोकान् रजस्तमस्कान् असुरान् उरुश्रवाः प्रमिणोति ॥११॥

अनुवाद— हे राजन् ! परीक्षित् सत्यसङ्कल्प भगवान् ही जगत् की उत्पत्ति के निमित्तभूत प्रकृति और पुरुष के सहकारी एवं आश्रय काल की सृष्टि करते हैं । अतएव वे काल के अधीन नहीं हैं अपितु काल ही उनके अधीन हैं । राजन् काल स्वरूप परमात्मा जब सत्त्वगुण की वृद्धि करते हैं उस समय वे सात्त्विक देवताओं के बल को बढ़ाते हैं । उस समय परम यशस्वी देव प्रिय परमात्मा देव विरोधी रजोगुणी एवं तमोगुणी दैत्यों का संहार करते हैं । वस्तुतः वे समय ही हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

यदा सिसृक्षुरित्यादिनिर्देशात्प्रतीतं कालपारतन्त्र्यं वारयन् प्रधानपुरुषपारतन्त्र्यमपि वारयति-कालमिति । हे नरदेव, प्रधानपुंभ्यां निमित्तभूताभ्यां सत्यकृदमोघकर्ता ईशस्तयोः सहकारित्वेनाश्रयभूतं चरन्तं वर्तमानं कालं स्वयमेव सृजति । स्वचेष्टारूपत्वात्कालस्य न तत्पारतन्त्र्यमित्यर्थः । तथापि प्रस्तुते किमायातं तत्राह-य एष कालः सत्त्वमेधयति वर्धयत्यतो

हेतोरीशिताऽपीश्वरोऽपि सत्त्वप्रधानं सुरानीकं देवसमूहमेधयतीव । तत्प्रत्यनीकानसुरान्सुरप्रतिपक्षान् प्रमिणोति हिनस्ति चेत्यन्वयः। उरु प्रभूतं श्रवः कीर्तिर्यस्य सः । कालशक्तिक्षुभितगुणगतवैषम्यमिह सन्निधिमात्रेण तदधिष्ठातरि स्फुरतीति प्रकरणार्थः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

यदासिसृक्षु इत्यादि श्लोक के द्वारा प्रतीत परमात्मा के काल पारतन्त्र्य का निरास करते हुए परमात्मा के प्रधान और पुरुष के पारतन्त्र्य का निषेध करते हुए **कालमित्यादि** श्लोक को कहते हैं । हे राजन् ! जगत् की उत्पत्ति के निमित्त भूत प्रधान और पुरुष अमोघ कर्ता ईश्वर उन दोनों के सहचारी रूप से वर्तमान काल की सृष्टि स्वयम् करते हैं । परमात्मा का कार्य होने के कारण परमात्मा काल के अधीन नहीं है । जो काल सत्त्व गुण को बताता है अतएव उसका नियामक होकर ईश्वर भी सत्त्वगुण प्रधान देवताओं को बढाते हैं । और देवताओं के विरोधी असुरों का वे नाश करते हैं । प्रभूत कीर्ति सम्पन्न होने के कारण परमात्मा उरुश्रवा है । प्रकरणार्थ यह है कि काल शक्ति के द्वारा क्षुब्ध गुणों में होने वाले वैषम्य को अपने सन्निधान मात्र से उसके अधिष्ठाता परमात्मा में वैषम्य प्रतीत होता है ।।११।।

अत्रैवोदाहृतः पूर्वमितिहासः सुरर्षिणा । प्रीत्या महाक्रतौ राजन्पृच्छतेऽजातशत्रवे ।।१२।।

अन्वयः— हे राजन् ! महाक्रतौ पृच्छते अजातशत्रवे प्रीत्या सुरर्षिणा अत्रैव पूर्वम् इतिहासः उदाहृतः ।।१२।।

अनुवाद— राजसूय यज्ञ में महाराज युधिष्ठिर द्वारा पूछे जाने पर प्रसन्न हुए देवर्षि नारदजी ने इस विषय में एक प्राचीन इतिहास को सुनाया था ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

तदानीं तयोर्न सुरपक्षपातेन वधः किंतु ब्रह्मशापेनासुरीं योनिं प्राप्तयोरनुग्रहार्थ एवेति वक्तुमितिहासमुपक्षिपति–अत्रैवेति। अत्र द्वेषादिरहितस्यापि दैत्यवधे नारदेनेतिहासः प्रस्तावितः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

उस समय हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष का वध भगवान् ने देवताओं के पक्षपात के कारण नहीं किया था अपितु सनाकदिकों के शाप के कारण आसुरी योनि में गये हुए जय और विजय पर कृपा करने के लिए उन दोनों का वध भगवान् ने किया था । इस बात को बतलाने के लिए यहाँ पर प्राचीन इतिहास को उपन्यस्त करते हैं। द्वेष आदि से रहित भी परमात्मा ने दैत्यों का वध किया इस विषय में नारदजी ने इतिहास को बतलाया था ।।१२।।

दृष्ट्वा महाद्भुतं राजा राजसूये महाक्रतौ । वासुदेवे भगवति सायुज्यं चेदिभूभुजः ।।१३।।

अन्वयः— राजसूये महाक्रतौ वासुदेवे भगवति चेदिभूभुजः महाद्भुतं सायुज्यं दृष्ट्वा राजा पप्रच्छ इति शेषः ।।१३।।

अनुवाद— राजसूय नामक महायज्ञ के अवसर पर चेदि नरेश शिशुपाल का भगवान् वासुदेव में अद्भुत सायुज्य को देखकर महाराज युधिष्ठिर ने पूछा ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

चेदिभूभुजः शिशुपालस्य ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

चेदिदेशाधिपति शिशुपाल का ।।१३।।

तत्रासीनं सुरऋषिं राजा पाण्डुसुतः क्रतौ । पप्रच्छ विस्मितमना मुनीनां शृण्वतामिदम् ।।१४।।

अन्वयः— विस्मितमना राजा पाण्डुसुतः तत्रासीनं सुरऋषिं मुनीनां शृण्वताम् इदं पप्रच्छ ।।१४।।

अनुवाद— आश्चर्यचकित पाण्डुनन्दन महाराज युधिष्ठिर ने वहाँ पर विद्यमान देवर्षि नारदजी से सभी मुनियों के सामने ही यह पूछा ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

युधिष्ठिर उवाच

अहो अत्यद्भुतं ह्येतद्दुर्लभैकान्तिनामपि । वासुदेवे परे तत्त्वे प्राप्तिश्चैद्यस्य विद्विषः ॥१५॥

अन्वयः— अहो एतद्हि अत्यद्भुतं यत् एकान्तिनामापि दुर्लभं विद्विषः चैद्यस्य वासुदेवे परे तत्त्वे प्राप्तिः ॥१५॥

महाराज युधिष्ठिर ने कहा

अनुवाद— अहो यह तो अत्यन्त अद्भुत बात है कि श्रीभगवान् से द्वेष करने वाला चेदिराज शिशुपाल ने परतत्त्व भगवान् वासुदेव को अन्त में प्राप्त कर लिया यह तो भगवान् के ऐकान्तिक भक्तों के लिए भी दुर्लभ है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

एकान्तभक्तानामपि दुर्लभा प्राप्तिर्विद्विषो जातेत्येतदत्यद्भुतं हि ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

जो एकान्त भक्तों को भी दुर्लभ है उस गति को भगवान् से द्वेष करने वाले शिशुपाल ने भी प्राप्त कर लिया यह तो अत्यन्त दुर्लभ है ॥१५॥

एतद्वेदितुमिच्छामः सर्व एव वयं मुने । भगवन्निन्दया वेनो द्विजैस्तमसि पातितः ॥१६॥

अन्वयः— हे मुने ! एतत् सर्व एववेदितुमिच्छामो वयम् । भगवन्निन्दया वेनः द्विजैः तमसि पातितः ॥१६॥

अनुवाद— हे मुने मैं इन सारी बातों को जानना चाहता हूँ श्रीभगवान् की निन्दा करने वाले वेन को ब्राह्मणों ने नरक में डाल दिया था ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तस्य तु वेनवन्नरकपात एवोचित इत्याह-भगवन्निन्दयेति । तमसि नरके ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

महाराज युधिष्ठिर ने कहा कि श्रीभगवान् की निन्दा करने वाले शिशुपाल को तो उसी तरह नरक में जाना चाहिए था जिस तरह श्रीभगवान् की निन्दा करने वाले वेन को नरक में जाना पड़ा । और शिशुपाल को कैसे भगवान् वासुदेव की प्राप्ति हो गयी ? तमसि का अर्थ है नरक में ॥१६॥

दमघोषसुतः पाप आरभ्य कलभाषणात् । संप्रत्यमर्षी गोविन्दे दन्तवक्रश्च दुर्मतिः ॥१७॥

अन्वयः— पापः दमघोषसुतः कल भाषाणात् दुर्मतिः दन्तवक्त्रः च गोविन्दे प्रत्यमर्षी ॥१७॥

अनुवाद— दमघोष का पुत्र पापी शिशुपाल अपने बाल्यकाल से ही भगवान् का विरोधी था और दुष्ट दन्त्रवक्त्र भी ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

दमघोषस्य सुतः शिशुपालः । कलभाषणाद्बाल्यकोमलभाषणमारभ्य । संप्रत्यधुनाप्यमर्षी क्रोधी मत्सरी वा ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

दमघोष का पुत्र शिशुपाल अपने बाल्यकाल से अब तक श्रीभगवान् से द्वेष करता था । इसी तरह दुष्ट दन्तवक्त्र भी ॥१७॥

शपतोरसकृद्विष्णुं यद्ब्रह्म परमव्ययम् । श्वित्रो न जातो जिह्वायां नान्धं विविशतुस्तमः ॥१८॥

अन्वयः— अव्ययम् यत परं ब्रह्म विष्णु असकृत् शपतोः जिह्वायां श्वित्रो न जातः अन्धं तमो न विविशतुः ॥१८॥

अनुवाद— अविनाशी परं ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण की बार-बार निन्दा करने वाले इन दोनों की जीभ में न कोढ़ हुआ और न तो ये दोनों घोर नरक में गिरे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

श्वित्रः श्वेतकुष्ठम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

श्वित्र श्वेत कोढ़ को कहते हैं ॥१८॥

कथं तस्मिन्भगवति दुरवग्राहधामनि । पश्यतां सर्वलोकानां लयमीयतुरञ्जसा ॥१९॥

अन्वयः— दुरवग्रहधामनि तस्मिन् भगवति सर्वलोकानां पश्यताम् लयम् कथम् ईयतुः ॥१९॥

अनुवाद— जिनकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है उन श्रीभगवान् में ही ये दोनों सबों के सामने अनायास ही कैसे लीन हो गये ?॥१९॥

भावार्थ दीपिका

दुरवग्राहं दुष्प्रापं धाम स्वरूपं यस्य तस्मिन् लयं सायुज्यमीयतुर्जग्मतुः । अभूतस्यापि दन्तवक्त्रस्य तज्जातकप्रामाण्येन सिद्धवन्निर्देशः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

जिनके स्वरूप की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, उन श्रीभगवान् में ही ये दोनों सायुज्य को कैसे प्राप्त कर लिये । यद्यपि दन्तवक्त्र का उस समय तक लय नहीं हुआ फिर भी जातक प्रमाण के अनुसार युधिष्ठिर ने सिद्धवत निर्देश किया है ॥१९॥

एतद्भ्राम्यति मे बुद्धिर्दीपार्चिरिव वायुना । ब्रूह्येतदद्भुततमं भगवांस्तत्र कारणम् ॥२०॥

अन्वयः— वायुनादीपार्चिरिव एतत् में बुद्धि भ्राम्यति भगवान् एतद् अद्भुततमं ब्रूहि तत्र कारणं ब्रूहि ॥२०॥

अनुवाद— जिस तरह वायु के कारण दीप की ज्वाला लड़खड़ाती है उसी तरह इस विषय में मेरी बुद्धि बहुत भ्रमित होती है, आप सर्वज्ञ हैं अतएव आप उसका कारण बतलाइये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

एतदद्भुततममत एतत्प्रति मे धीर्भ्राम्यति । भगवान् सर्वज्ञस्त्वं ब्रूहि ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

यह अत्यन्त आश्चर्यमय बात है इसके विषय में मेरी बुद्धिभ्रमित होती है । आप सर्वज्ञ हैं अतएव आप इसका कारण बतलायें ॥२०॥

श्रीशुक उवाच

राज्ञस्तद्वच आकर्ण्य नारदो भगवानृषिः । तुष्टः प्राह तमाभाष्य शृण्वत्यास्तत्सदः कथाः ॥२१॥

अन्वयः— राज्ञः तदवचः आकर्ण्य भगवान् ऋषिः नारदः तुष्टः तत्सदः कथाः शृण्वत्याः तम् आभाष्य प्राह ॥२१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजा युधिष्ठिर की उस वाणी को सुनकर सर्व समर्थ नारदजी उस सभा के सामने ही राजा युधिष्ठिर को संबोधित करके कहने लगे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

आभाष्य संबोध्य। सीदन्ति निषीदन्त्यस्यामिति सद् सभा तस्याः सदः सदसः शृण्वत्याः सत्याः कथाः प्राहेत्यन्वयः॥२१॥

भाव प्रकाशिका

आभाष्य अर्थात् संबोधित करके उनकी सभा के सदस्यों के समक्ष ही कहें ॥२१॥

नारद उवाच

निन्दनस्तवसत्कारन्यक्कारार्थं कलेवरम् । प्रधानपरयो राजन्नविवेकेन कल्पितम् ॥२२॥

अन्वयः— निन्दनस्तवसत्कार न्यक्कारार्थं कलेवरम् राजन् प्रधान परयोः अविवेकेन कल्पितम् ॥२२॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— राजन निन्दा, स्तुति,सत्कार और तिरस्कार ये सब शरीर के होते हैं आत्मा के नहीं होते। शरीर की कल्पना तो प्रकृति पुरुष विवेक के अभाव के ही कारण होती है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अहो भगवन्निन्दकस्य नरकपातेन भाव्यमिति वदतस्तव कोऽभिप्रायः । भगवत्पीडाकरत्वेन वा तदभावेऽपि सुरापानादिवन्निषिद्धनिन्द्याचरणाद्वा तत्र तावद्देहाभिमानकृतनिन्दादिनिमित्तत्वात्पीडादीनां भगवतश्च तदभावान्न पीडाशङ्कास्तीत्याह- निन्दनेति सार्धैस्त्रिभिः । निन्दनं दोषकीर्तनम् । न्यक्कारस्तिरस्कारः । निन्दास्तुत्यादिज्ञानार्थं प्रधानपुरुषयोरविवेकेन कलेवरं कल्पितं रचितम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

आप यह जो कह रहे हैं कि भगवान् की निन्दा करने वाले का नरकपात होना चाहिए इसमें आपका क्या अभिप्राय है ? श्रीभगवान् को पीड़ित करने के कारण अथवा उसके अभाव में भी सुरापान आदि के समान निषिद्ध तथा निन्दित आचरण करने के कारण ? देहाभिमान के कारण ही निन्दा इत्यादि से पीडा इत्यादि होते हैं, श्रीभगवान् को देहाभिमान नहीं होने से उनको निन्दाजन्य पीडा की शङ्का नहीं की जा सकती है इस बात को **निन्दन० इत्यादि** साढे तीन श्लोकों से कहा गया है। दोष बतलाने को निन्दा कहते हैं। न्यक्कार का अर्थ तिरस्कार है। निन्दा स्तुति आदि के ज्ञान के ही लिए प्रकृति पुरुष के अविवेक के कारण शरीर की कल्पना हुई है ॥२२॥

हिंसा तदभिमानेन दण्डपारुष्ययोर्यथा । वैषम्यमिह भूतानां ममाहमिति पार्थिव ॥२३॥

अन्वयः— हे पार्थिव ! तदभिमानेन हिंसा दण्डपारुष्ययोः यथा इह भूतानां मम अहमिति वैषम्यम् ॥२३॥

अनुवाद— देहात्माभिमान के ही कारण हिंसा तथा दुर्वचनों से जैसे पीड़ा होती है उस तरह इस संसार में मैं और मेरा इस भेद की भावना के ही कारण सारा अनर्थ होता है। यह भेद की बुद्धि सभी अनर्थों का मूल है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तदभिमानेन भूतानां यथा ममाहमिति वैषम्यं तत्कृतं हिंसादिकं च भवति तथा न यस्येत्युत्तरेणान्वयः । दण्डस्ताडः पारुष्यं निन्दा तयोर्हेतुभूतयोर्हिंसा पीडा च भवति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

देहात्माभिमान के ही कारण जैसे जीवों को मैं और मेरा इस तरह की भेद बुद्धि होती है और उसी के कारण हिंसा इत्यादि होते हैं, इस तरह से आगे के श्लोक से अन्वय होता है । दण्ड ताड़न पारुष्य और निन्दा के कारण ही हिंसा और पीड़ा भी होते हैं ॥२३॥

यन्निबद्धोऽभिमानोऽयं तद्वधात्प्राणिनां बधः । तथा न यस्य कैवल्यादभिमानोऽखिलात्मनः ॥
परस्य दमकर्तुर्हि हिंसा केनास्य कल्प्यते ॥२४॥

अन्वयः— यन्निबद्धोभिमानोऽयं तद्वघात् प्राणिनां बधः, यस्य अखिलात्मन कैवल्यात् तथा अभिमानोन परस्य दम कर्तुः हि अस्य हिंसा केन कल्प्यते ॥२४॥

अनुवाद— जिस शरीर में मैं यह हूँ इस प्रकार का अभिमान हो जाता है उस शरीर का वध करने से ही उसकी हिंसा हैं । परमात्मा तो सम्पूर्ण जगत् की आत्मा है, उनको किसी भी शरीर में आत्माभिमान नहीं होता है । परमात्मा जो दूसरों को दण्ड देते हैं वह उसी के कल्याण के लिए करते हैं क्रोध अथवा द्वेष वशात् नहीं करते हैं अतएव भगवान् के विषय में हिंसा की कल्पना ही कैसे की जा सकती है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

यस्मिन्निबद्धोऽयमभिमानस्तस्य देहस्य बधाद्बधश्च यथा तथा यस्याभिमानो नास्ति । अतोऽस्य परमेश्वरस्य हिंसा केन हेतुना कल्प्यते न केनापीति । अभिमानाभावे हेतुः-कैवल्याददि्वतीयत्वेनाभिमन्तव्याभावात् । वैषम्याभावे हेतुः-अखिलात्मनः सर्वात्मन इति । तर्हि किमिति हन्ति दैत्यांस्तत्राह-परस्य दमकर्तुः हितार्थं दण्डं करोतीत्यर्थः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

जिस शरीर में अहन्त्वाभिमान हो जाता है उसी का वध करने से हिंसा होती है । किन्तु जिसका किसी भी शरीर में अहन्त्वाभिमान है ही नहीं उस परमात्मा की किस कारण से हिंसा होगी ? किसी भी कारण से नहीं। परमात्मा को किसी भी शरीर में अहन्त्वाभिमान नहीं होने के कारण यह है कि वे अद्वितीय हैं अतएव उनका अभिमन्तव्य कोई भी शरीर नहीं है । क्योंकि वे सबों की आत्मा हैं तो प्रश्न होता है कि तो फिर वे किस कारण से दैत्यों को मारते हैं ? इसके उत्तर में नारदजी कहते हैं कि परमात्मा किसी शरीर को दण्ड भी उसका कल्याण करने के लिए देते हैं ॥२४॥

तस्माद्वैरानुबन्धेन निर्वैरेण भयेन वा । स्नेहात्कामेन वा युञ्ज्यात्कथंचिन्नेक्षते पृथक् ॥२५॥

अन्वयः— तस्माद् वैरानुबन्धेन, निर्वैरेण, भयेन वा स्नेहात् कामेन वा कथञ्चित् युञ्जयात् पृथक् नेक्षते ॥२५॥

अनुवाद— अतएव सुदृढ वैर भाव से, या वैर रहित भक्ति भाव से, या भय से, या प्रेम से या कामना विशेष से किसी तरह भगवान् में मन को लगा देना चाहिए । श्रीभगवान् इन सबों में किसी भी प्रकार का भेद नहीं मानते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

यस्माद्भगवतो निन्दादिकृतवैषम्यं नास्ति तस्माद्येन केनाप्युपायेन ध्यायतस्तेनैव ध्यानेन निन्दादिकृतपापस्यापि । नाशात्सायुज्यं युक्तमित्याशयेनाह-तस्मादिति सप्तभिः । निर्वैरेण नास्ति वैरं केनापि यस्मिस्तेन भक्तियोगेनेत्यर्थः । युञ्ज्यान्मन इति शेषः । यस्मादेतैरुपायैः पृथङ्नेक्षते ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

चूकि श्रीभगवान् में निन्दादि जन्य वैषम्य नहीं है अतएव भगवान् का किसी भी प्रकार से ध्यान करने वाले

का उसी ध्यान से निन्दादि जन्य पाप का भी नाश हो जाने से सायुज्य का भी होना उचित ही है । इसी बात को **तस्मात्० इत्यादि** सात श्लोकों से कहा गया है । निर्वैरेण का अर्थ है भक्तियोग के द्वारा । मन को परमात्मा में लगाना चाहिए । इस श्लोक में वर्णित उपायों में से किसी भी उपाय में श्रीभगवान् भेद नहीं मानते हैं, यह पृथक् नेक्षते का अर्थ है ॥२५॥

यथा वैरानुबन्धेन मर्त्यस्तन्मयतामियात् । न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥२६॥

अन्वयः— वैरानुबन्धेन मर्त्यः यथा तन्मयतां इयात् तथा योगेन न इति मे निश्चिता मतिः ॥२६॥

अनुवाद— मनुष्य जिस तरह सुदृढ वैर भाव से जितना तन्मय होता है उतना भक्तियोग के द्वारा तन्मय नहीं होता है यह मेरा सुदृढ विचार है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तेष्वपि वैरानुबन्धः श्रेष्ठ इत्याह-यथेति । न तथा भक्तियोगेनापि ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

उन सभी उपायों में वैरानुबन्धन तन्मयता का सर्वश्रेष्ठ साधन है । इस बात को नारदजी ने यथा इत्यादि श्लोक से कहा है । उन्होंने कहा कि सुदृढ वैर की भावना से जितनी तन्मयता होती है उतना योग से नहीं होती है ॥२६॥

कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तमनुस्मरन् । संरम्भभयोगेन विन्दते तत्सरूपताम् ॥२७॥

अन्वयः— पेशस्कृता कुड्यारुद्ध कीटः तमनुस्मरन् संरम्भभययोगेन तत्सरूपता मियात् ॥२७॥

अनुवाद— भृङ्गी कीड़े को लाकर दिवाल पर अपने छिद्र में बन्द कर देता है । और भय के तथा उद्वेग के कारण भृङ्गी का चिन्तन करते-करते वह क्रीड़ा उसके जैसा ही हो जाता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अत्र दृष्टान्तः-कीटः पेशस्कृता भ्रमरेण । संरम्भो द्वेषो भयं च स एव योगस्तेन ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त कथन इस श्लोक के द्वारा दृष्टान्त उपन्यस्त किया गया है । भृङ्गी के द्वारा दिवाल के छिद्र में बन्द हुआ कीड़ा भय एवं द्वेष के कारण चिन्तन करते-करते भृङ्गी ही होता है ॥२७॥

एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे । वैरेण पूतपाप्मानस्तमापुरनुचिन्तया ॥२८॥

अन्वयः— एवं मायामनुजे ईश्वरे भगवति कृष्णे वैरेण पूतपाप्मानः अनुचिन्तया तम् आपुः ॥२८॥

अनुवाद— इसी तरह माया को स्वीकार करके मनुष्य बने हुए सम्पूर्ण जगत् के नियामक भगवान् श्रीकृष्ण से वैर करने के कारण उन दैत्यों का पाप विनष्ट हो गया और सदैव श्रीभगवान् का चिन्तन करने के कारण उन सबों ने श्रीभगवान् को प्राप्त कर लिया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

वैरेण यानुचिन्ता चिन्तनं तयैव पूतः पाप्मा येषां ते तं प्रापुः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

वैरभाव के कारण निरन्तर भगवान् का चिन्तन करने के कारण शिशुपाल आदि पवित्र हो गये उसी के कारण वे सब श्रीभगवान् का सायुज्य प्राप्त कर लिए ॥२८॥

कामाद्द्वेषाद्भयात्स्नेहाद्यथा भक्त्येश्वरे मनः । आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः ॥२९॥

अन्वयः— यथा कामात् द्वेषात् भयात् स्नेहात् ईश्वरे मनः आवेश्य तदघं हित्वा बहवः तद्गतिं गताः ॥२९॥

अनुवाद— उदाहरणार्थ कामना वशात् द्वेषवशात् भय के कारण तथा स्नेह के द्वारा परमात्मा में अपने मन को लगाकर अपने पाप को विनष्ट करके अनेक जीव परमात्मा के सायुज्य को प्राप्त कर लिए ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तदघं कामादिनिमित्तं पापं हित्वा ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

कामादि जन्य पाप को दूर करके ॥२९॥

गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः । संबन्धाद्वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभो ॥३०॥

अन्वयः— हे विभो ! कामात् गोप्यः, भयात् कंसः, चैद्यादयः नृपाः द्वेषात् वृष्णयः संबन्धात् यूयं स्नेहात् भक्त्या वयम् ॥३०॥

अनुवाद— गोपियाँ श्रीभगवान् से मिलने की तीव्र कामना से, कंस भय के कारण, शिशुपाल आदि राजा गण द्वेष के कारण, यदुवंशियों ने परिवार के संबन्ध से, आपलोगों ने स्नेह से और हमलोगों ने भक्ति से अपने मन को भगवान् में लगाया है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तानाह-गोप्य इति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त उपायों से भगवान् में मन लगाने वालों को इस श्लोक में नारदजी ने लगाया है ॥३०॥

कतमोऽपि न वेनः स्यात्पञ्चानां पुरुषं प्रति । तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥३१॥

अन्वयः— पञ्चानां कतमः अपि वेनः पुरुषं प्रति न स्यात् । तस्मात् केनापि उपायेन कृष्णे मनः निवेशयेत् ॥३१॥

अनुवाद— भक्ति व्यतिरिक्त उपर्युक्त पाँच उपायों में से किसी भी उपाय की कोटि में नहीं आते हैं अतएव किसी भी उपाय से मन को भगवान् में मन को लगाना चाहिए ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि वेनः किमिति नरके पातितः । तीव्रध्यानाभावात्पापमेव तस्य फलितमित्याह-कतमोऽपीति । पुरुषं श्रीहरिं प्रति। पुरुषे पुरुषस्य कामासंभवाद्भयादिभिश्चिन्तयतां पञ्चानां मध्ये वेनो न कतमोऽपीत्युक्तम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

तो फिर वेन क्यों नरक में डाल दिये गये ? तो इसके उत्तर में कहते हैं तीव्र ध्यान के अभाव में उसे केवल पाप ही मिला इसी बात को इस श्लोक में कहा गया है— पुरुषं अर्थात् श्रीहरि में पुरुष की काम भावना का होना असम्भव है । भय इत्यादि से परमात्मा का सदा चिन्तन करने वालों में से किसी भी कोटि वेन नहीं आते हैं ॥३१॥

मातृष्वस्रेयो वश्चैद्यो दन्तवक्त्रश्च पाण्डव । पार्षदप्रवरौ विष्णोर्विप्रशापात्पदाच्च्युतौ ॥३२॥

अन्वयः— हे पाण्डवः चैद्यः दन्तवक्त्रः च वंः मातृस्वस्रेयः विष्णोः पार्षद प्रवरौ विप्रशापात् पदात् च्युतौ ॥३२॥

अनुवाद— हे पाण्डुनन्दन शिशुपाल और दन्तवक्त्र दोनों आपलोगों के मौसेरे भाई थे । पहले वे भगवान् विष्णु के मुख्य पार्षद थे । सनकादि ब्राह्मणों के शाप के कारण वे अपने पद से च्युत हो गये ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

तदेवामितिहासप्रस्तावकथामुक्त्वा श्रीकृष्णे शिशुपालस्य वैरानुबन्धे को हेतुरित्यपेक्षायां तमेवेतिहासं वक्तुमाह-मातृष्वस्रेय इति । पदाद्वैकुण्ठाच्च्युतौ ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह इतिहासोपन्यास की कथा का वर्णन करके शिशुशपाल का भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति क्यों वैरानुबन्ध था? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर उसी इतिहास को नारदजी कहते हैं। पदात् अर्थात् वैकुण्ठ से च्युत हो गये।।३२।।

युधिष्ठिर उवाच

कीदृशः कस्य वा शापो हरिदासाभिमर्शनः । अश्रद्धेय इवाभाति हरेरेकान्तिनां भवः ।।३३।।

अन्वयः— हरिदासाभिमर्शनः कीदृशः कस्य वाशायः हरेः एकान्तिनां भवः अश्रद्धेय इव आभाति ।।३३।।

राजा युधिष्ठि ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवान् के भक्तों को भी प्रभावित करने वाला शाप किसका और कैसा था । श्रीभगवान् के एकान्तभक्तों को जन्म मरण रूप संसार की प्राप्ति अविश्वसनीय सी प्रतीत होती है ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

हरिदासावभिमृशत्यभिभवतीति तथा। कस्य शापः । कीदृशो वा। अश्रद्धेयोऽनादरणीय इव असंभावात् । भवो जन्म।।३३।।

भाव प्रकाशिका

भगवद् भक्तों को भी अभिभूत करने वाला वह शाप किसका और कैसा था ? भगवद् भक्तों का जन्म तो असम्भव होने के कारण अनादरणीय प्रतीत होता है ।।३३।।

देहेन्द्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम् । देहसंबन्धसंबद्धमेतदाख्यातुमर्हसि ।।३४।।

अन्वयः— देहेन्द्रियासुहीनानाम् वैकुण्ठपुरवासिनाम् एतत् देह संबन्ध संबद्धम् आख्यातुमर्हसि ।।३४।।

अनुवाद— वैकुण्ठ में रहने वाले लोग प्राकृत देह, इन्द्रिय और प्राण से रहित होते हैं, उनका प्राकृत शरीर से सम्बन्ध किस प्रकार हुआ । इसे आप बतलायें ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

असंभवमेवाह-जन्महेतुभूतैः प्राकृतै र्देहेन्द्रियासुभिर्हीनानाम् । शुद्धसत्त्वमयदेहानामित्यर्थः । प्राकृतदेहसंबन्धेन संबद्धमेतदाख्यानमाख्यातुमर्हसि ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

वैकुण्ठ वासियों के जन्म का होना असम्भव है, इस बात को बतलाते है प्राकृत, देह, इन्द्रिय और प्राण ही जन्म के कारण हैं, वैकुण्ठवासी उन सबों से रहित होते हैं । उन लोगों का शरीर शुद्ध सत्त्वमय होता है । उनके प्राकृत देह से संबद्ध इस आख्यान को आप बतलायें ।।३४।।

नारद उवाच

एकदा ब्रह्मणः पुत्रा विष्णोर्लोकं यदृच्छया । सनन्दनादया जग्मुश्चरन्तो भुवनत्रयम् ।।३५।।

अन्वयः— एकदा ब्रह्मणः सनन्दनादयः पुत्राः भुवनत्रयम् चरन्तः यदृच्छया विष्णोर्लोकं जग्मुः ।।३५।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— एक बार ब्रह्माजी के सनन्द आदि मानस पुत्र स्वच्छन्द रूप से त्रैलोक्य में विचरण करते हुए अचानक भगवान् विष्णु के लोक में गये ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

पञ्चषड्हयनार्भाभाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः । दिग्वाससः शिशून्मत्वा द्वास्थौ तान्प्रत्यपेधताम् ॥३६॥

अन्वयः— पञ्च षड् हायनार्भाभाः पूर्वेषामापि पूर्वजाः दिग्वाससः शिशून् मत्वा तान् प्रत्यपेधताम् ॥३६॥

अनुवाद— पाँच या छह वर्ष के बच्चे के समान प्रतीत होने वाले तथा सबसे प्राचीन वस्त्र भी नहीं पहनने वाले उन सबों को बच्चा जानकर उन दोनों ने उनको भीतर जाने से रोक दिया ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

कथंभूताः । पञ्च वा षड्वा हायनानि वर्षाणि येषां ते । अर्भा बालास्तद्वदाभा येषां ते । पूर्वेषां मरीच्यादीनामपि पूर्वजास्तेभ्यः प्रथमं जाताः । दिग्वाससो दिगम्बराः अतः शिशून्मत्वा ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

पाञ्च अथवा छह वर्ष के बच्चों के समान प्रतीत होने वाले तथा मरीचि महर्षि आदि से भी पहले उत्पन्न दिगम्बर वेष में रहने वाले उन लोगों को बच्चा समझकर जय और विजय ने भीतर जाने से रोक दिया ॥३६॥

अशपन्कुपिता एवं युवां वासं न चार्हथः । रजस्तमोभ्यां रहिते पादमूले मधुद्विषः ॥
पापिष्ठामासुरीं योनिं बालिशौ यातमाश्वतः ॥३७॥

अन्वयः— **कुपिता एवं अशपन् बालिशौ मधुद्विषः पादमूले रजस्तमोभ्यां रहिते युवां वासं न चार्हथ । अतः अशुपापिष्ठां आसुरीं योनिम् यातम् ॥३७॥**

अनुवाद— वे लोग क्रुद्ध हो गये और शाप दिए मूर्खों भगवान् मधुसूदन के चरण कमल रजोगुण एवं तमोगुण से रहित हैं । तुमलोग इनके समीप रहने योग्य नहीं हो अतएव शीघ्र ही तुम दोनों आसुरी योनि में चले जाओ ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

वासमपि नार्हथः, कुतः पुनस्तत्सेवामिति चकारार्थः । हे बालिशौ । अतो हेतोराशु यातम् ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

तुम लोग यहाँ रहने के भी योग्य नहीं है, उनकी सेवा करने की तो कोई बात ही नहीं । मूर्खों अतएव शीघ्र ही यहाँ से आसुरी योनि में चले जाओ ॥३७॥

एवं शप्तौ स्वभवनात्पतन्तौ तैः कृपालुभिः । प्रोक्तौ पुनर्जन्मभिर्वां त्रिभिर्लोकाय कल्पताम् ॥३८॥

अन्वयः— एवं शप्तौ भवनात् पतन्तौ तैः कृपालुभिः प्रोक्तौ पुनः त्रीभिः जन्मभिः वां लोकाय कल्पताम् ॥३८॥

अनुवाद— उनके इस प्रकार के शाप देते ही जब वे वैकुण्ठ से नीचे गिरने लगे तो उन कृपालु महात्माओं ने कहा अच्छा तीन जन्मों में इस शाप को भोगकर पुनः इस वैकुण्ठ लोक में आ जाना ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

वां युवयोस्त्रिभिर्जन्मभिः । लोकाय स्वस्थानप्राप्तये कल्पता तावतायं शापः समाप्यतामिति पुनः प्रोक्तावित्यर्थः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

तुम दोनों के तीन जन्मों में यह शाप समाप्त हो जायेगा अतएव उसके पश्चात् तुमलोग इस वैकुण्ठ लोक में आ जाओगे इस तरह उन सनकादि महर्षियों ने कहा ॥३८॥

जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानववन्दितौ । हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः ॥३९॥

अन्वयः— तौ दितेः पुत्रौ जज्ञाते दैत्यदानववन्दितौ हिरण्यकशिपुः ज्येष्ठः हिरण्याक्षः ततः अनुजः ॥३९॥

अनुवाद— ये ही दोनों दिति के पुत्र हुए उनमे बड़े का नाम हिरण्यकशिपु था और छोटे का नाम हिरण्याक्ष था । दैत्य और दानव इन दोनो की वन्दना करते थे ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

हतो हिरण्यकशिपुर्हरिणा सिंहरूपिणा । हिरण्याक्षो धरोद्धारे बिभ्रता सौकरं वपुः ॥४०॥

अन्वयः— हिरण्यकशिपुः सिंहरूपिणा हरिणा हतः हिरण्याक्षः धरोद्धारे सौकरं वपुः दधता ॥४०॥

अनुवाद— हिरण्यकशिपु का वध नृसिंह रूपधारी श्रीभगवान् ने किया और हिरण्याक्ष का वध पृथिवी के उद्धार के समय वराह रूपधारी श्रीभगवान् ने किया ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

धरोद्धारनिमित्ते तत्प्रतिघाती हतः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी का उद्धार करने के लिए वाराह रूपधारी भगवान् का विरोध करने वाला हिरण्याक्ष मारा गया ॥४०॥

हिरण्यकशिपुः पुत्रं प्रह्लादं केशवप्रियम् । जिघांसुरकरोन्नाना यातना मृत्युहेतवे ॥४१॥

अन्वयः— हिरण्यकशिपुः केशवप्रियं पुत्रं प्रह्लादं जिघांसु तस्य मृत्यु हेतवे नाना यातनाः अकरोत् ॥४१॥

अनुवाद— हिरण्यकशिपु भगवान् के प्रिय तथा अपने पुत्र प्रह्लाद को मार देना चाहता था, उसको मारने के लिए उसने प्रह्लाद को अनेक प्रकार की यातनाएँ दी ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

हिरण्यकशिपोर्वधे कारणं सूचयति हिरण्यकशिपुः पुत्रमिति ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के द्वारा हिरण्यकशिपु के बध के कारण को सूचित करते हैं ॥४१॥

सर्वभूतात्मभूतं तं प्रशान्तं समदर्शनम् । भगवत्तेजसा स्पृष्टं नाशक्नोद्धन्तुमुद्यमैः ॥४२॥

अन्वयः— सर्वभूतात्मभूतं, प्रशान्तं समदर्शनम् भगवत् तेजसा स्पृष्टं तं उद्यमैः हन्तुम् न अशक्नोत् ॥४२॥

अनुवाद— सभी भूतों के आत्मस्वरूप परमात्मा के अत्यन्त प्रिय, प्रशान्त तथा समदर्शी प्रह्लाद को अपने प्रयासों के द्वारा नहीं मार सका ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

सर्वभूतानामात्मभूतम् । कुतः । समं ब्रह्मैव पश्यतीति तथा तम् । अतः प्रशान्तं द्वेषादिरहितम् अतएव भगवत्तेजसा स्पृष्टं व्याप्तम् । उद्यमैः शस्त्रास्त्रप्रहारादिभिः ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

सभी भूतों की आत्मा स्वरूप समदर्शी होने के कारण सर्वत्र ब्रह्म का ही दर्शन करने वाले तथा द्वेष आदि से रहित होने के कारण प्रशान्त प्रह्लाद परमात्मा के तेज से व्याप्त थे । उनको वह शस्त्र प्रहार आदि के द्वारा नहीं मार सका ॥४२॥

ततस्तौ राक्षसौ जातौ केशिन्यां विश्रवःसुतौ । रावणः कुम्भकर्णश्च सर्वलोकोपतापनौ ॥४३॥

अन्वयः— ततः तौ केशिन्यां विश्रवः सुतौ राक्षसौ सर्वलोकोपतापनौ रावणः कुम्भःकर्णश्च जातौ ॥४३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् वे दोनों जय और विजय ही केशिनी के गर्भ से विश्रवा के पुत्र सम्पूर्ण जगत् को दुःख देने वाले रावण और कुम्भकर्ण नामक राक्षस उत्पन्न हुए ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

विश्रवसः सुतौ ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

विश्रवा के पुत्र रूप से उत्पन्न हुए ॥४३॥

तत्रापि राघवो भूत्वा न्यहनच्छापमुक्तये । रामवीर्यं श्रोष्यसि त्वं मार्कण्डेयमुखात्प्रभो ॥४४॥

अन्वयः— हे प्रभो ! तत्रापि राघवो भूत्वा शापमुक्तये न्यहनत् । रामवीर्य त्वं मार्कण्डेय मुखात् श्रोष्यसि ॥४४॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! उस जन्म में भी श्रीभगवान् राघव रूप से अवतीर्ण होकर शाप से मुक्ति के लिए उन दोनों का वध किए । राजन् आप श्रीराम के पराक्रम का वर्णन मार्कण्डेय महर्षि के मुख से सुनेंगे ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

न्यहनत्, हतवानित्यर्थः । तर्हि तदेव कथनीयमित्युत्सुकं प्रत्याह रामवीर्यमिति ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

न्यहनत् अर्थात् मारा । तो फिर आपको उनकी ही कथा कहनी चाहिए इस तरह से उत्सुक परीक्षित् से नारदजी ने कहा कि आप श्रीराम के पराक्रम का वर्णन महर्षि मार्कण्डेय के ही मुख से सुनेंगे ॥४४॥

तावेव क्षत्रियौ जातौ मातृष्वस्रात्मजौ तव । अधुना शापनिर्मुक्तौ कृष्णचक्रहतांहसौ ॥४५॥

अन्वयः— तौ एव तव मातृस्वस्रात्मजौ क्षत्रियौ जातौ अधुना कृष्णचक्रहतांहसौ शापनिर्मुक्तौ ॥४५॥

अनुवाद— वे ही दोनों आपके मौसेरे भाई क्षत्रिय जाति में उत्पन्न हुए । इस समय वे भगवान् कृष्ण के चक्र से मारे जाने के कारण पापों के विनष्ट हो जाने से वे शापमुक्त हो गये हैं ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

कृष्णचक्रेण हतमंहो ययोस्तौ । तयोः पापमेव हतं नतु तावित्यर्थः ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के चक्र ने उन दोनों के पाप को ही मारा है उन दोनों को नहीं ॥४५॥

वैरानुबन्धतीव्रेण ध्यानेनाच्युतसात्मताम् । नीतौ पुनर्हरेः पार्श्वं जग्मतुर्विष्णुपार्षदौ ॥४६॥

अन्वयः— वैरानुबन्धतीव्रेण ध्यानेन अच्युत सात्मताम् नीतौ विष्णुपार्षदौ पुनः हरेः पार्श्वं जग्मतुः ॥४६॥

अनुवाद— सुदृढ़ वैरभाव के कारण वे सदैव श्रीभगवान् का ही चिन्तन किया करते थे, उसी तन्मयता के कारण वे दोनों श्रीभगवान् को प्राप्त कर लिए और उनका पार्षद होकर पुनः उनके पास चले गये ॥४६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४६॥

युधिष्ठिर उवाच

विद्वेषो दयिते पुत्रे कथमासीन्महात्मनि । ब्रूहि मे भगवन्येन प्रह्लादस्याच्युतात्मता ।।४७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

अन्वयः— :दयिते पुत्रे महात्मनि विद्वेषः कथमासीत् । हे भगवन् ! मे ब्रूहि येन प्रह्लादस्य अच्युतात्मता ।।४७।।

राजा युधिष्ठिर ने कहा

अनुवाद— हिरण्यकशिपु ने अपने प्रिय पुत्र प्रह्लाद से द्वेष क्यों किया ? क्योंकि प्रह्लादजी तो महात्मा थे। हे भगवन् ! आप यह भी बतलायें कि किस साधन से प्रह्लाद परमात्ममय हो गये ?।।४७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

भावार्थ दीपिका

येन कारणेन प्रह्लदस्याच्युतात्मताच्युतैकचित्तत्वं तदपि ब्रूहीति शेषः ।।४७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

आप यह भी बतलायें कि किस साधन से प्रह्लादजी परमात्मैकचित्त वाले हो गये ।।४७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के प्रथम अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१।।

द्वितीय अध्याय

हिरण्याक्ष का वध होने पर हिरण्यकशिपु का अपनी माता ओर कुटुम्बियों को समझाना

नारद उवाच

भ्रातर्येवं विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना । हिरण्यकशिपू राजन्पर्यतप्यद्रुषा शुचा ॥१॥

अन्वयः— राजन् ! एवं क्रोडमूर्तिना हरिणा भ्रातरि विनिहते हिरण्यकशिपुः रुषा क्रुधा पर्यतप्यत ॥१॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! इस प्रकार से वाराहरूपधारी श्रीहरि ने हिरण्याक्ष को जब मार दिया तो हिरण्यकशिपु क्रोध से भर गया और शोक से सन्तप्त हो गया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वितीये विष्णुरोषेण लोकं विप्लाव्य दानवैः । तद्धतभ्रातृपुत्रादीनितिहासैरसान्त्वयत् । भगवद्वेष एव तद्देषेऽपि कारणमित्याशयेनाह-भ्रातरीत्यादिना एवं देवपक्षपातेन ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे अध्याय में भगवान् विष्णु के रोष के कारण दानवों द्वारा संसार को नष्ट भ्रष्ट करके हिरण्यकशिपु विष्णु के द्वारा मारे गये अपने भाई के पुत्रों इत्यादि को इतिहास के माध्यम से सान्त्वना प्रदान किया । भगवान् का द्वेष

ही हिरण्यकशिपु के द्वेष का कारण था इसी अभिप्राय से भ्रातरि इत्यादि श्लोक के द्वारा कहा गया है। एवम् अर्थात् देवताओं का पक्षपात करने के कारण ॥१॥

आह चेदं रुषाऽऽघूर्णः संदष्टदशनच्छदः । कोपोज्ज्वलद्भ्यां चक्षुर्भ्यां निरीक्षन्धूम्रमम्बरन् ॥२॥

अन्वयः— रुषा आघूर्णं संदष्टदशनः छदः कोपोज्ज्वलदभ्यां चक्षुर्भ्यां घ्रूमम् अम्बरम् निरीक्षन् इदं चाह ॥२॥

अनुवाद— क्रोध से काँपता हुआ हिरण्यकशिपु अपने ओष्ठों को चबा लिया तथा क्रोध से जलती हुई आँखों की अग्नि के धूम से धूमिल आकाश को देखते हुए कहने लगा ॥२॥

भावार्थ दीपिका

कोपेन उत् अतिशयेन ज्वलद्भ्याम् कोपाग्निधूमेनैव धूम्रमम्बरं निरीक्षमाणः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

क्रोध से अत्यधिक जलती हुई नेत्रों की अग्नि के धूम से धूमिल आकाश को देखते हुए हिरण्यकशिपु ने कहा॥२॥

करालदंष्ट्रोग्रदृष्ट्या दुष्प्रेक्ष्यभ्रुकुटीमुखः । शूलमुद्यम्य सदसि दानवानिदमब्रवीत् ॥३॥

अन्वयः— करालदंष्ट्रा उग्रदृष्ट्या दुष्प्रेक्ष्य भ्रुकुटीमुखः सदसि शूलम् उद्यम्य दानवान् इदमब्रवीत् ॥३॥'

अनुवाद— भयङ्कर दाँतों और आग उगलने वाली उग्रदृष्टि और चढ़ी हुई भृकुटी के कारण उसका मुँह देखने में भयङ्कर हो गया था उसने अपना त्रिशूल उठाकर सभा में दानवों से इस तरह कहने लगा ॥३॥

भावार्थ दीपिका

करालदंष्ट्राभिर्युक्तयोगया दृष्ट्या । दुष्प्रेक्ष्यं भ्रुकुटीयुक्तं मुखं यस्य सः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

विकराल दाँतों तथा उग्र नेत्रों से युक्त तथा चढ़ी हुई भृकुटी के कारण हिरण्यकशिपु का मुख अत्यन्त भयङ्कर हो गया था ॥३॥

भो भो दानवदैतेया द्विमूर्धंस्त्र्यक्ष शम्बर। शतबाहो हयग्रीव नमुचे पाक इल्वल ॥४॥
विप्रचित्ते मम वचः पुलोमन् शकुनादयः। शृणुताऽनन्तरं सर्वे क्रियतामाशु मा चिरम् ॥५॥

अन्वयः— भो भो दानव दैतेयाः द्विमूर्धः त्र्यक्ष शम्बर, शतबाहो, हयग्रीव, नमुचे, पाक, इल्वल, विप्रचित्ते, पुलोमन् शकुनादयः ममवचः शृणुत अनन्तरं सर्वे आशु क्रियताम् मा चिरम् ॥४-५॥

अनुवाद— हे दानवों ! दैत्यों, द्विमूर्ध, त्र्यसे, शम्बर, शतबाहु, हयग्रीव नमुचि, पाक, इल्वल, विप्रचित्ति, पुलोमन् तथा शकुन आदि तुम लोग मेरी बात सुनो औरउसके बाद शीघ्र करना शुरु कर दो देर न करो ॥४-५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४-५॥

सपत्नैर्घातितः क्षुद्रैर्भ्राता मे दयितः सुहृत् । पार्ष्णिग्राहेण हरिणा समेनाप्युपधावनैः ॥६॥

अन्वयः— क्षुद्रैः सपत्नैः मे दयितः भ्राता सुहृत् उपधावनैः समेन पार्ष्णिग्राहेण हरिणा घातितः ॥६॥

अनुवाद— मेरे क्षुद्र शत्रुओं ने मेरे प्रिय भाई और हितैषी को सबों के प्रति समान रहने वाले विष्णु की सेवा श्रुश्रूषा से अपने पक्ष मे मिलाकर गरवा डाला है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

समेनाप्युपधावनैर्भजनैर्निमित्तभूतैः पार्ष्णिग्राहेण सता ॥६॥

भाव प्रकाशिका

सबों के प्रति समान रहने वाले भी विष्णु की सेवा सुश्रुषा से अपने सहायक बने विष्णु से ॥६॥

तस्य त्यक्तस्वभावस्य घृणेर्मायावनौकसः । भजन्तं भजमानस्य बालस्येवास्थिरात्मनः ॥७॥

अन्वयः— त्यक्त स्वभावस्य तस्य घृणेः मायावनौकसः भजन्तं भजमानस्य बालस्य इव अस्थिरात्मजः ॥७॥

अनुवाद— जिसने अपने स्वभाव का परित्यग कर दिया है, उस शुद्ध तेजोमय माया से वाराह रूप धारण करने वाले तथा जो उसकी सेवा करता है उसी के पक्ष में हो जाने वाले उस विष्णु का चित्त बालक के समान अस्थिर है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

एवं त्यक्तः स्वभावः समत्वं येन तस्य । घृणेः शुद्धतेजोमयस्यापि मायया वनौकसो वराहरूपस्य सतः । अस्थिरात्मनोऽव्यवस्थितचित्तस्य । कुतः । यो यो भजति तं तं भजमानस्यानुसरतः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

अपने ममत्व रूप स्वभाव को त्याग देने वाले शुद्ध तेजोमय होने पर भी वाराहरूपधारी, अव्यवस्थित चित्त वाले तथा जो उनकी सेवा करता है उसी के पक्ष में हो जाने वाले उस विष्णु का ॥७॥

मच्छूलभिन्नग्रीवस्य भूरिणा रुधिरेण वै । रुधिरप्रियं तर्पयिष्ये भ्रातरं मे गतव्यथः ॥८॥

अन्वयः— मत् शूल भिन्न ग्रीवस्य भूरिणा रुधिरेण वै रुधिरप्रियं मे भ्रातरं गतव्यथः तर्पयिष्ये ॥८॥

अनुवाद— अपने त्रिशूल से उसका गला काटकर उस विष्णु के खून की धारा से अपने रुधिरप्रिय भाई का तर्पण करूँगा तब मेरे हृदय की पाड़ी शान्त होगी ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तस्य रुधिरेण यावत्तर्पयिष्यामि तावद्यूयं भुवं यातेति तृतीयेनान्वयः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

उस विष्णु के रक्त से जब तक में अपने भाई का तर्पण करता हूँ तब तक आप लोक पृथिवी पर जायँ इस तरह से आगे के तीसरे श्लोक से अन्वय है ॥८॥

तस्मिन्कूटेहिते नष्टे कृत्तमूले वनस्पतौ । विटपा इव शुष्यन्ति विष्णुप्राणा दिवौकसः ॥९॥

अन्वयः— तस्मिन् कूटे अहिते नष्टे कृत्तमूले वनस्पतौ विटपा इव विष्णुप्राणाः दिवौकसः शुष्यन्ति ॥९॥

अनुवाद— उस मायावी शत्रु के नष्ट हो जाने पर जिसकी जड़ कट गयी हो उस वृक्ष की डालियों के समान विष्णु के ही आधार पर जींने वाले देवता तो अपने आप विनष्ट हो जायेंगे ॥९॥

भावार्थ दीपिका

ननु देवैस्तद्वधः कारितोऽतस्ते किं न हन्यन्ते तत्राह-तस्मिन्हरौ कूटे कपटे । अहिते प्रतिपक्षे । कूटमीहितं यस्येति वा। नष्टेऽदृष्टे सति देवाः शुष्यन्ति स्वयमेव नाशं यास्यन्ति । कुतः । विष्णुरेव प्राणो येषां ते । यथा कृत्तमूले वृक्षे शाखाः स्वयं शुष्यन्ति तद्वत् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि देवताओं ने तुम्हारे भाई का वध कराया है अतएव देवता क्यों नहीं मारे जायँ ? इस पर हिरण्यकशिपु ने कहा कपटी शत्रु विष्णु के मारे जाने पर विष्णु ही जिनके जीवन हैं ऐसे देवता तो अपने आप मर जायेंगे । उसी तरह जिस तरह वृक्ष की जड़ कट जाने पर उसकी डालियाँ अपने आप सूख जाती हैं ॥९॥

तावद्यात भुवं यूयं विप्रक्षत्रसमेधिताम् । सूदयध्वं तपोयज्ञस्वाध्यायव्रतदानिनः ॥१०॥

अन्वयः— तावद् यूयं विप्रक्षत्रसमेधिताम् भुवं यात तपोयज्ञ स्वाध्यायव्रतदानिनः सूदयध्वम् ॥१०॥

अनुवाद— इसलिए तुम लोग पृथ्वी पर जाओ इस समय वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय बहुत बढ गये हैं । जो लोग तपस्या, यज्ञ, वेदाध्ययन, और दान करने वाले हों उन सबों को मार डालो ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तपोयज्ञादियुक्तान् सूदयध्वं घातयत ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

तपस्या यज्ञ आदि करने वाले लोगों को मार डालो ॥१०॥

विष्णुर्द्विजक्रियामूलो यज्ञो धर्ममयः पुमान् । देवर्षिपितृभूतानां धर्मस्य च परायणम् ॥११॥

अन्वयः— विष्णुः द्विजक्रियमूलः यज्ञो धर्ममयः पुमान्, देवर्षि पितृभूतानां धर्मस्य च परायणम् ॥११॥

अनुवाद— द्विजातियों का धर्म ही विष्णु का मूल है, यज्ञ और धर्म ही उसका स्वरूप है । देवता, ऋषि, पितृगण समस्त प्राणी और धर्म का वही आश्रय हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

ननु तैः किमपराद्धं तत्राह-विष्णुरिति द्विजानां क्रिया अनुष्ठानं मूलं यस्य सः । यतोऽसौ यज्ञो धर्ममयश्च । देवादीनां परायणं परम आश्रयः । अतो यज्ञरूपस्य विष्णोर्मूलत्वान्मामनादृत्य तदाश्रयणाच्च ते बध्या इति भावः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि तपस्या, यज्ञ, दान आदि करने वालों ने क्या विगाड़ा है ? इस पर हिरण्यकशिपु ने **द्विज इत्यादि** श्लोक कहा है । ब्राह्मणों के धर्ममय कर्म ही विष्णु के मूल हैं । धर्ममय यज्ञ ही विष्णु का स्वरूप है। विष्णु ही देवताओं, ऋषियों, पितरों और सभी प्राणियों के सर्वश्रेष्ठ आश्रय हैं ॥११॥

यत्र यत्र द्विजा गावो वेदा वर्णाश्रमाः क्रियाः । तं तं जनपदं यात संदीपयत वृश्चत ॥१२॥

अन्वयः— यत्र-यत्र द्विजाः गावः वेदाः वर्णाश्रमाः क्रियाः तं तं जनपदं यात संदीपयत वृश्चत ॥१२॥

अनुवाद— जिस-जिस जनपद में ब्राह्मण, गौ, वेद, तथा वर्णाश्रम धर्म की प्रधानता हो उन जनपदों में जाकर तुमलोग जाकर आग लगा दो और लोगों को मार डालो ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तस्मात्परमं मन्त्रं शृणुतेत्याह-यत्र यत्रेति । संदीपयत दहत । वृश्चत आजीव्यानां वृक्षाणां छेदं कुरुत ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अतएव तुम लोग मेरे सर्वश्रेष्ठ मन्त्र के सुनो । संदीपयत यानी आग लगा दो, वृश्चत लोगों को काट डालो॥१२॥

इति ते भर्तृनिर्देशमादाय शिरसादृताः । तथा प्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः ॥१३॥

अन्वयः— इति ते भर्तृनिर्देश शिरसा आदृताः आदाय कदन प्रियाः ते प्रजानां कदनं विदधुः ॥१३॥

अनुवाद— इस तरह से अपने स्वामी के आदेश को समादार पूर्वक शिरोधार्य करके वे उसी के अनुसार जनता का नाश करने लगे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

पुरग्रामव्रजोद्यानक्षेत्रारामाश्रमाकरान् । खेटखर्वटघोषांश्च ददहुः पत्तनानि च ॥१४॥

अन्वयः— पुरग्रामव्रजोद्यानक्षेत्रारामाश्रमाकरान् खेट खर्वट घोषांश्च, पत्तनानि च ददहुः ॥१४॥

अनुवाद— उन सबें ने नगर, ग्राम, गौओं के रहने के स्थान, उद्यान, खेत, टहलने के स्थान, ऋषियों के आश्रम रत्नों आदि की खानें, किसानों की वस्तियाँ, तराई के ग्राम, अहीरों की वस्तियाँ, व्यापार के केन्द्र तथा बड़े-बड़े नगरों को जला दिया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

पुरं हट्टादिमत् । ग्रामस्तद्रहितः । व्रजो गवां वासः । उद्यानं कृत्रिमं वनम् । क्षेत्रं व्रीह्यादेः । आरामोऽकृत्रिमं वनम् । आश्रमः ऋषीणां स्थानम् । आकरो रत्नादीनाम् । खेटः कृषीवलानां वासः । खर्वटो गिरिद्रोण्याश्रयो ग्रामः । घोष आभीराणां वासः । पत्तनं राजधानी ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

बाजार वाले नगर, ग्राम, गायों के निवास स्थान, उद्यान, खेत, वन, ऋषियों के आश्रम, रत्नों आदि के खादान, किसानों के गाँव, तराई के ग्राम, अहीरों की वस्तियाँ, और राजधानी सबों को जला दिया ॥१४॥

केचित्खनित्रैर्बिभिदुः सेतुप्राकारगोपुरान् । आजीव्यांश्चिच्छिदुर्वृक्षान्केचित्परशुपाणयः ॥
प्रादहन् शरणान्यन्ये प्रजानां ज्वलितोल्मुकैः ॥१५॥

अन्वयः— केचित् खनित्रैः शेतुप्राकारगोपुरान् विभिदुः केचित् परशुपाणयः आजीव्यान् वृक्षान् चिक्षिदुः, अन्ये ज्वलितोल्मुकैः प्रजानां शरणानि प्रादहन ॥१५॥

अनुवाद— कुछ दैत्यों ने खोदने के शस्त्रों से पुल, परकोटे और गोपुरों को खोद डाला, हाथ में कुल्हाड़ी लिए हुए कुछ दैत्यों ने कुल्हाड़ियों से फले फूले हरे भरे वृक्षों को काट डाला, कुछ दैत्यों ने जलती हुई लकड़ियों से प्रजाओं के गृहों को जला दिया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

खनित्रैः खननसाधनैः । आजीव्यानुपजीव्यान् जम्ब्वाम्रकपित्थादीन् शरणानि गृहान् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

खनित्रैः अर्थात् खनने के शस्त्रों से **आजीव्यान्** अर्थात जामुन, आम तथा कैंथ आदि के वृक्षों को शरणानि अर्थात् गृहों को ॥१५॥

एवं विप्रकृते लोके दैत्येन्द्रानुचरैर्मुहुः । दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुरलक्षिताः ॥१६॥

अन्वयः— दैत्येन्द्रानुचरैः मुहुः एवं लोके विप्रकृते, देवा दिवं परित्यज्य, भुवि अलक्षिताः चेरुः ॥१६॥

अनुवाद— दैत्याधिपति हिरण्यकशिपु के अनुचरों द्वारा बार-बार प्रजाओं का उत्पीड़न किए जाने पर देवता लोग स्वर्ग छोड़ पृथिवी पर छिपे रूप से विचरण करने लगे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

विप्रकृते उपद्रुते । यज्ञभागानामभावाद्दिव परिज्यालक्षिताः सन्तो भुवि चेरुः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

विप्रकृते उपद्रवग्रस्त कर दिये जाने पर । यज्ञभाग का अभाव होने से देवगण स्वर्ग को छोड़ कर छिपे रूप से पृथिवी पर सञ्चरण करने लगे ॥१६॥

हिरण्यकशिपुर्भ्रातुः संपरेतस्य दुःखितः । कृत्वा कटोदकादीनि भ्रातृपुत्रानसान्त्वयत् ॥१७॥

अन्वयः— दुखितः हिरण्यकशिपुः संपरेतस्य भ्रातुः कटोदकादीनि कृत्वा भ्रातृपुत्रान् असान्त्वयत् ॥१७॥

अनुवाद— भाई के मृत्यु से दुःखी हिरण्यकशिपु ने अपने मरे हुए भाई की अन्त्येष्टि क्रिया आदि को करके अपने छोटे भाई के पुत्रों को सान्त्वना प्रदान किया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं प्रजानां कदनं दानवेषु कुवत्सु स्वयं स्वर्गराज्यादि साधयितुं तपस्तप्तुकामः प्रथमं यत्कृतवांस्तदाह- हिरण्यकशिपुरित्यादिना । कटोदकं प्रेताय प्रदेयमुदकम् । आदिशब्दात्प्रेतश्राद्धादिकम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

जब दानव लोगों को मारने का काम कर रहे थे उस समय स्वयं स्वर्ग का राज्य करने के लिए तपस्या करने के लिए हिरण्यकशिपु ने जो काम पहले किया उसको **हिरण्यकशिपु इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। प्रेत को दिए जाने वाले जल को कटोदक या (घटोदक) कहा जाता है । आदि शब्द से श्राद्ध इत्यादि को जानना चाहिए ॥१७॥

शकुनिं शम्बरं धृष्टं भूतसंतापनं वृकम् । कालनाभं महानाभं हरिश्मश्रुमथोत्कचम् ॥१८॥
तन्मातरं रुषाभानुं दितिं च जननीं गिरा । श्लक्ष्णया देशकालज्ञ इदमाह जनेश्वर ॥१९॥

अन्वयः— शकुनिं शम्बरं, धृष्टं, भूतसन्तापनं, वृकम् कालनाभं, महानाभं हरिश्मश्रुम् अथ उत्कचम्, तन्मातरं, रूषाभानुम् दितिं च जननीम् च देशकालज्ञः श्लक्ष्णया गिरा इदमाह ॥१८-१९॥

अनुवाद— शकुनि, शम्बर, धृष्ट, भूतासन्तापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरि, श्मश्रु और उत्कच नामक हिरण्याक्ष के पुत्रों को एवं उन सबों की माता रुषभानु को तथा अपनी माता दिति को देश एवं काल के अनुसार मधुर वाणी से समझाते हुए कहा ॥१८-१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८-१९॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

अम्बाम्ब हे वधूः पुत्रा वीरं मार्हथ शोचितुम् । रिपोरभिमुखे श्लाध्यः शूराणां वध ईप्सितः॥२०॥

अन्वयः— हे अम्बाम्ब ! हे वधूः हे पुत्रा ! वीरं मार्हथ शोचितुम्, रियोरभिमुखे शूराणां वधः श्लाध्यः ईप्सितः॥२०॥

हिरण्यकशिपु ने कहा

अनुवाद— हे मातः हे वधूः ! हे पुत्रों !!! मेरे वीर भाई हिरण्याक्ष के विषय में तुमलोगों को शोक नहीं करना चाहिए । युद्ध के मैदान मे शत्रु के साथ युद्ध करते हुए मारा जाना ही वीरों को अभिप्रेत होता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

हे वधूरिति भ्रातुर्भार्यां संबोधयति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

हे बधू इस पद से हिरण्याक्ष की पत्नी को संबोधित किया है ॥२०॥

भूतानामिह संवासः प्रपायामिव सुव्रते । दैवेनैकत्र नीतानामुन्नीतानां स्वकर्मभिः ॥२१॥

अन्वयः— हे सुव्रते ! इह वीराणां संवासः प्रपायाम् इव दैवेन स्वकर्मभिः एकत्र नीतानाम् उन्नीतानामिव भवतीतिशेषः॥२१॥

अनुवाद— हे देवि ! इस संसार में वीरों का एक स्थान पर मिलना और मिलकर विछुड़ जाना उसी तरह होता है, जिस तरह प्याऊ पर लोग अपने कर्मवशात् इकट्ठे होते हैं और मिलकर विछुड़ जाते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

भवतु नाम तस्य श्लाघ्यो वधस्तथाप्यस्माकं तावद्बन्धुर्गत एवेति चेत्तत्राह-भूतानामिति । दैवेन प्राचीनकर्मणा एकत्र नीतानां संयोजितानां पुनश्च स्वैः स्वैः कर्मभिरुन्नीतानां वियोजितानाम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

ठीक है कि उसका (हिरण्याक्ष का) वध प्रशंसनीय है; किन्तु हमलोगों का एक बन्धु तो चला गया । तो इस पर हिरण्यकशिपु कहता है । अपने प्राचीन कर्मों के अनुसार एक स्थान पर एकत्रित होना और फिर अपने कर्मो के अनुसार ही मिलकर विछुड़ जाना होता है ॥२१॥

नित्य आत्माव्ययः शुद्धः सर्वगः सर्ववित्परः । धत्तेऽसावात्मनो लिङ्गं मायया विसृजन्गुणान् ॥२२॥

अन्वयः— परः आत्मा नित्यः अव्ययः शुद्धः सर्वगः सर्ववित् असौ आत्मनः गुणान् विसृजन् मायया लिङ्गं धत्ते॥२२॥

अनुवाद— देह आदि से भिन्न आत्मा नित्य, क्षय रहित, शुद्ध, सर्वगत और सर्वज्ञ है । यह अपनी अविद्या से ही देह आदि की सृष्टि करके भोगों के साधन लिङ्ग शरीर को धारण करता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

एवं लौकिकदृष्ट्या शोकं निवार्य तत्त्वदृष्ट्या वारयति-नित्य इति । आत्मा नित्यो मृत्युशून्यः । अव्ययोऽपक्षयशून्यः। शुद्धो निर्मलः । सर्वगतः सर्ववित्सर्वज्ञश्च । सर्वत्र हेतुः-परो देहादिव्यतिरिक्तः । अतो मृत इति कृश इति मलिन इति वियुक्त इत्यज्ञ इति च मत्वा शोको न कार्य इत्यर्थः । कथं तर्हि तस्य संसारस्तत्राह-धत्त इति । आत्मनो मायया स्वाविद्यया लिङ्गं मूर्तीर्धत्ते । गुणानुच्चावचान्देहान्सुखदुःखादीन्वा विशेषेण सृजन्स्वीकुर्वन् । लिङ्गशरीरोपाधिः संसार इत्यर्थः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से लौकिक दृष्टि से शोक को दूर करके तत्त्व की दृष्टि से शोक को दूर **नित्य० इत्यादि** श्लोक से करता है । वह कहता है कि आत्मा नित्य अर्थात् मृत्यु से रहित है, वह अव्यय अर्थात् कभी भी क्षीण नहीं होता है । वह शुद्ध होने के कारण दोषों से रहित है, सर्वज्ञ और सर्ववेत्ता है । इन सबों का कारण है कि वह देह इन्द्रिय आदि से रहित है । अतएव आत्मा को मृत, कृश, मलिन, वियुक्त तथा अज्ञ मानकर शोक नहीं करना चाहिए । तो प्रश्न होता है कि इस प्रकार के आत्मा का संसार में संसरण कैस होता है ? तो इसका उत्तर है कि आत्मा अपनी अविद्या से ही संसारिक भोगों को भोगने के लिए लिङ्ग शरीर को धारण करता है । वह विशेष रूप से अच्छे बुरे शरीरों तथा सुख-दुःख आदि की सृष्टि करके स्वीकार कर लेता है । यह संसार लिङ्ग शरीरोपाधि है ॥२२॥

यथाम्भसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव । चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः ॥२३॥

अन्वयः— यथा प्रचलता अम्भसा तरवः अपि प्रचलन्ति भ्राम्यमाणेन चक्षुषा भूः प्रचलतीव ॥२३॥

अनुवाद— उदाहरणार्थ हिलते हुए पानी के साथ उसमें प्रतिविम्बित होने वाले वृक्ष भी हिलते से प्रतीत होते हैं, इसी तरह घुमायी जाती हुई आँख के साथ पृथिवी भी घूमती हुई पतीत होती है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

एतत्सदृष्टान्तं प्रपञ्चयति-यथेति चतुर्भिः । तरवः प्रतिबिम्बिताः । उपाधिधर्मा उपहिते भवन्तीति दृष्टान्तमुक्त्वा ग्राहकधर्मा ग्राह्ये भवन्तीति दृष्टान्तमाह-चक्षुषेति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

यथा० इत्यादि चार श्लोकों द्वारा इस प्रतिपादन को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक बतलाते हैं। हिलते हुए पानी में प्रतिबिम्बित होने वाले वृक्ष भी हिलते से प्रतीत होता है। उपाधि के धर्म उपहित में होते हैं, इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहकर अब बतलाते हैं कि ग्राहक के धर्म ग्राह्य पदार्थों में होते हैं इसका उदाहरण चक्षुषा इत्यादि श्लोक से कहते हैं ॥२३॥

एवं गुणैर्भ्राम्यमाणे मनस्यविकलः पुमान् । याति तत्साम्यतां भद्रे ह्यलिङ्गो लिङ्गवानिव ॥२४॥

अन्वयः— भद्रे एवं गुणैः भ्राम्यमाणे मनसि अविकलः पुमान् अलिङ्गो हि लिङ्गवानिव तत्साम्यतां याति ॥२४॥

अनुवाद— हे कल्याणी उसी तरह विषयों के कारण मन भटकने लगता है निर्विकार होने पर भी आत्मा उसी तरह उसी के समान भटकता हुआ सा प्रतीत होता है। आत्मा का स्थूल और सूक्ष्म शरीरों से कोई भी संवन्ध नहीं है, फिर भी वह संबन्धी सा प्रतीत होता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अविकलः परिपूर्ण एव। तत्साम्यताम्, मनः समतामित्यर्थः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

आत्मा परिपूर्ण है किन्तु वह भटकने वाले मन के समान प्रतीत होता है ॥२४॥

एष आत्मविपर्यासो ह्यलिङ्गे लिङ्गभावना । एष प्रियाप्रियैर्योगो वियोगः कर्मसंसृतिः ॥२५॥

अन्वयः— अलिङ्गे लिङ्गभावना एषः आत्मविपर्यासः, प्रियाप्रियैः योगः एष कर्मसंसृतिः ॥२५॥

अनुवाद— सूक्ष्म और स्थूल दोनों प्रकार के शरीर से रहित आत्मा को शरीर समझ लेना इसी को अज्ञान कहते हैं। इसी के कारण प्रिय एवं अप्रिय एवं अप्रिय का मिलना और विछुड़ना होता है। इसी को कर्म संसृति कहते है। अर्थात् कर्मों के साथ सम्बन्ध हो जाने के कारण संसार में भटकना पड़ता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

लिङ्गभावना देहाभिमानः। एष आत्मनो विपर्यासोऽन्यथाभावः। तमेवाह-प्रियैर्वियोगोऽप्रियैर्योगश्च। कर्म च संसृतिश्च नानागर्भेषु प्रवेशः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

लिङ्ग भावना अर्थात् देह में आत्माभिमान आत्मविपर्यास अर्थात् आत्मा के विषय में अज्ञान। अर्थात् जैसा आत्मा है उससे भिन्न प्रकार का ही उसे समझना शरीर के कारण प्रिय का वियोग होता है और अप्रिय का संयोग होता है। कर्मसंसृति अर्थात् अनेक गर्भों में प्रवेश करना ॥२५॥

संभवश्च विनाशश्च शोकश्च विविधः स्मृतः । अविवेकश्च चिन्ता च विवेकास्मृतिरेव च ॥२६॥

अन्वयः— संभवः च विनाशः च विविधः शोकः, च, अविवेकः च चिन्ता च विवेकास्मृति एव च ॥२६॥

अनुवाद— उत्पत्ति, विनाश, अनेक प्रकार के शोच, अविवेक, चिन्ता और विवेक की विस्मृति इन सबों का कारण अज्ञान ही है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च संभव उत्पत्तिः। विवेकस्यास्मृतिरननुसंधानम् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

उत्पत्ति तथा विवेक का अनुसंधान नहीं होना आदि अज्ञान के कारण होता है ॥२६॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । यमस्य प्रेतबन्धूनां संवादं तं निबोधत ॥२७॥

अन्वयः— अत्रापि यमस्य प्रेतबन्धूनाम् संवादं इमम् प्राचीनं इतिहासं उदाहरन्ति तं निबोधत ॥२७॥

अनुवाद— इसके विषय में यमराज और मरे हुए मनुष्य के संबन्धियों का संवाद रूप प्राचीन इतिहास महात्मा लोग इस तरह कहते हैं उसे तुमलोग सुनो ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अत्रापि शोकहेतुं विना वृथैवायं शोक इत्यस्मिन्नर्थे । प्रेतस्य मृतस्य कस्यचिद्ये बन्धवस्तेषां च संवादं शृणुत ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

इस विषय में शोक के कारण बिना व्यर्थ ही शोक है । इस विषय में मरे हुए के कुछ बान्धवों का यमराज के साथ हुआ संवाद को तुमलोग सुनों ॥२७॥

उशीनरेष्वभूद्राजा सुयज्ञ इति विश्रुतः । सपत्नैर्निहतो युद्धे ज्ञातयस्तमुपासत ॥२८॥

अन्वयः— उशीनरेषु सुयज्ञ इति विश्रुतः राजा अभूत् । सपत्नैः युद्धे निहतः तं ज्ञातयः उपासते ॥२८॥

अनुवाद— उशीनर देश में सुयज्ञ नाम का एक विख्यात राजा हुआ । उसके शत्रुओं ने उसको युद्ध में मार दिया । उस समय उसके भाई बन्धु उसको घेर कर बैठ गये ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

उपासत तत्समीपे आवृत्य स्थिताः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

उपासते अर्थात् घेर कर बैठ गये ॥२८॥

विशीर्णरत्नकवचं विभ्रष्टाभरणस्रजम् । शरनिर्भिन्नहृदयं शयानमसृगाविलम् ॥२९॥
प्रकीर्णकेशं ध्वस्ताक्षं रभसा दष्टदच्छदम् । रजः कुण्ठमुखाम्भोजं छिन्नायुधभुजं मृधे ॥३०॥

अन्वयः— विशीर्ण रत्नकवचं, विभ्रष्टाभरण स्रजम्, शरनिर्भिन्नहृदयम्, असृगाविलम् शयानम् प्रकीर्णकेशम्, ध्वस्ताक्षम् रभसा दष्टदच्छदम् रजः कुण्ठ मुखम्भोजम् मृधे छिन्नायुधभुजम् उपासत इत्यर्थः ॥२९-३०॥

अनुवाद— उसका रत्नजटित कवच छिन्न भिन्न हो गया था, उसके आभूषण और मालाएँ तहस नहस हो गयी थीं, बाणों के प्रहार से हृदय विदीर्ण हो गया था, शरीर रक्त से लथ-पथ हो गया था, उसके केश विखर गये थे, आँखें धस गयी थीं, उसका मुखकमल धूल से ढँक गया था, युद्ध में उसकी भुजाएँ एवं आयुध कट गये थे, और राजा का शरीर सोया पड़ा था ॥२९-३०॥

भावार्थ दीपिका

विशीर्णं रत्नमयं कवचं यस्य । विभ्रष्टान्याभरणानि स्रजश्च यस्य । शरेण निर्भिन्नं हृदयं यस्य । असृजा रक्तेनाविलं लिप्तम् । प्रकीर्णाः केशा यस्य । ध्वस्ते अक्षिणी यस्य । रभसा संरम्भेण दष्टो दच्छद ओष्ठो येन । रजसा कुण्ठमावृतं मुखाम्भोजं यस्य । छिन्नमायुधं भुजश्च यस्य ॥२९-३०॥

भाव प्रकाशिका

उसका रत्न मय कवच छिन्न-भिन्न हो गया था, उसके आभूषण तहस-नहस हो गये थे, बाणों के प्रहार से उसका हृदय विंध गया था । राजा का शरीर रक्त से लथपथ था, उसके केश विखर गये थे, आँखें धस गयी थी, वेग के कारण उसके ओष्ठ कट गये थे, उसके मुखकमल धूल से ढँक गया था और उसकी भुजाएँ कट गयी थीं ॥२९-३०॥

उशीनरेन्द्रं विधिना तथा कृतं पतिं महिष्यः प्रसमीक्ष्य दुःखिताः ।
हताः स्म नाथेति करैरुरो भृशं घ्नन्त्यो मुहूस्तत्पदयोरुपापतन् ॥३१॥

अन्वयः— विधिना तथा कृतं उशीनरेन्द्रं पतिं प्रसमीक्ष्य दुःखिताः महिष्यः हताः स्म नाथ इति करैः उरः मुहुः भृशं घ्नन्त्यःतत् पादयोः उपापतन् ॥३१॥

अनुवाद— दैववशात् अपने पतिदेव उशीनर नरेश की यह दशा देखकर अत्यन्त दुःखी उनकी रानियाँ हाय नाथ हमलोग तो बे मौत मारी गयीं, यह कह कह कर अपने हाथों से बार-बार अपनी छाती पीटती हुए राजा के चरणों पर गिर पड़ीं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तस्य पदयोरुप समीपे आसमन्तादपतन् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

उस राजा के चरणों के सन्निकट चारो ओर गिर पड़ी ॥३१॥

रुदन्त्य उच्चैर्दयिताङ्घ्रिपङ्कजं सिञ्चन्त्य अस्रैः कुचकुङ्कुमारुणैः ।
विस्रस्तकेशाभरणाः शुचं नृणां सृजन्त्य आक्रन्दनया विलेपिरे ॥३२॥

अन्वयः— उच्चैः रुदन्त्यः कुचकुङ्कुमारुणैः अस्रैः दयिताङ्घ्रिपङ्कजं सिचन्त्यः विस्रस्तकेशामरणाः आक्रन्दनया नृणां शुंच सृजन्त्यः विलेपिरे ॥३२॥

अनुवाद— वे जोर-जोर से रो रही थीं, कुचकुङ्कुम से मिलकर बहते हुए आँसुओं से वे अपने पतिदेव के चरण कमलों को भिगो रही थीं, उन सबों के केश और आभूषण विखर कर अस्त-व्यस्त हो गये थे, वे करुण क्रन्दन के साथ विलाप कर रही थीं जिसे सुनकर मनुष्यों के हृदय में शोक का संचार हो जाता था ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

अहो विधात्राऽकरुणेन नः प्रभो भवान्प्रणीतो दृग्गोचरां दशाम् ।
उशीनराणामसि वृत्तिदः पुरा कृतोऽधुना येन शुचां विवर्धनः ॥३३॥

अन्वयः— हे प्रभो ! अकरुणेन विधात्रा भगवान् नः दृगगोचरां दशां प्रणीतः पुरा उशीनराणां वृत्तिदः असि अधुन येन शुचां विवर्धनः कृतः ॥३३॥

अनुवाद— हे स्वामिन् ! इस क्रूर विधाता ने ही आप आपको हमारी आँखों से ओझल कर दिया है। पहले आप उशीनर देश वासियों को वृत्ति प्रदान करने वाले थे, किन्तु इस समय विधाता ने आपको ऐसा बना दिया है कि आप हमलोगों का शोक संवर्द्धन कर रहे हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

विलापमेवाह-अहो इति द्वाभ्याम् । अकरुणत्वमेवाहुः-येन विधात्रा दृशामगोचरां दशां भवान्प्रणीतो गतिस्तेन विधात्रा त्वमधुना शुचां विवर्धनः कृतोऽसीत्यन्वयः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

अहो० इत्यादि दो श्लोकों से विलाप का ही वर्णन कर रहा है । विधाता की क्रूरता ही बतला रही हैं। जिस विधाता ने आप को हमलोगों की आँखों से ओझल कर दिया है, उसी ने आज आपको हमलोगों के शोक को बढ़ाने वाला बना दिया है ॥३३॥

त्वया कृतज्ञेन वयं महीपते कथं विना स्याम सुहृत्तमेन ते ।
तत्रानुयानं तव वीर पादयोः शुश्रूषतीनां दिश यत्र यास्यसि ॥३४॥

अन्वयः— महीपते, कृतज्ञेन, सुहृत्तमेन त्वां विना वयं कथं स्याम् । वीर तवपादयोः शुश्रुपन्तीनां तत्रानुयानं दिश यत्र यास्यसि ॥३४॥

अनुवाद— राजन् आप कृतज्ञ हैं और हमलोगों के सर्वश्रेष्ठ सुहृत् हैं । हे वीरवर आपके चरणों की सेवा करने वाली हमलोगों को भी वही चलने की आज्ञा प्रदान करें जहाँ आप जा रहे हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

हे महीपते, त्वया सुहृत्तमेन विना वयं कथं स्याम भवेम् । जीवेमेत्यर्थः । अतो हे वीर, यत्र त्वं यास्यसि तत्र तेऽनुयानमनुगमनं तव पादयोः शुश्रूषां कुर्वतीनामस्माकं दिश देहि ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

हे राजन् ! आपके बिना हमलोग कैसे रह सकती हैं आप हमलोगों के सर्वश्रेष्ठ सुहृद् हैं, अतएव हे वीर जहाँ आप जायेंगे वही आपके चरणों की दासियो हमलोगों को भी चलने की आप अनुमति प्रदान करें ॥३४॥

एवं विलपतीनां वै परिगृह्य मृतं पतिम् । अनिच्छन्तीनां निर्हारमर्कोऽस्तं संन्यवर्तत ॥३५॥

अन्वयः— मृतं पतिपरिगृह्य एवं विलपतीनां निर्हारम् अनिच्छतीनां अर्कः अस्तं संन्यवर्तत ॥३५॥

अनुवाद— वे रानियाँ अपने मरे हुए पति को पकड़ कर उपर्युक्त प्रकार से विलाप कर रहीं थीं और उस मूर्दे को दाह के लिए नहीं जाने देना चाहती थीं । तब तक सूर्यास्त भी हो गया ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

निर्हारं दाहार्थं नयनमनिच्छन्तीनाम् । अस्तमस्ताचलं प्रति ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

दाह के लिए ले जाने देना नहीं चाहती थीं । उसी समय सूर्यास्त हो गया ॥३५॥

तत्र ह प्रेतबन्धूनामाश्रुत्य परिदेवितम् । आह तान्बालको भूत्वा यमः स्वयमुपागतः ॥३६॥

अन्वयः— तत्र ह प्रेतबन्धूनाम् परिदेवितम् आश्रुत्य स्वयमुपागतः यमः तान् बालको भूत्वा आह ॥३६॥

अनुवाद— यह प्रसिद्ध है कि मरे हुए के बान्धवों के रुदन को सुनकर स्वयम् बालक बनकर आये यमराजने उन सबों से कहे ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

परिदेवितं रोदनं स्वपुर्यामेव स्थित आश्रुत्य श्रुत्वा तत्र स्वयमेवोपागतो यमो बालको भूत्वा तानाह–अहो इत्यादिना॥३६॥

भाव प्रकाशिका

परिदेवित रोने को कहते हैं । अपनी नगरी में हे रहकर यमराज उन सबों के रोने को सुनकर यमराज स्वयम् वहाँ बालक बनकर आये और उन सबों से **अहो०** **इत्यादि** श्लोक से कहे ॥३६॥

यम उवाच

अहो अमीषां वयसाऽधिकानां विपश्यतां लोकविधिं विमोहः ।
यत्रागतस्तत्र गतं मनुष्यं स्वयं सधर्मा अपि शोचन्त्यपार्थम् ॥३७॥

अन्वयः— अहो अमीषां वयसाधिकानां लोकविधिं विमोहः विपश्यताम् यत्रागतः तत्र गतं मनुष्यं स्वयं सधर्मा अपि अपार्थम् शोचन्ति ॥३७॥

यमराज ने कहा

अनुवाद— आश्चर्य हैं कि हमसे अधिक अवस्था वाले तथा संसार की जन्म-मरण रूपी विधि को देखने वाले इन लोगों को मोह तो देखो । यह मनुष्य जहाँ से आया था वहीं चला गया इन लोगों को भी एक न एक दिन वहाँ जाना हैं, फिर भी व्यर्थ के ही शोक कर रहे हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

अहे आश्चर्यम् । अस्मत्तो वयसाऽधिकानामपि लोकस्य विधिं जन्मरणादिप्रकारं विपश्यतामपि विमोहः । मोहमेवाहयत्र यस्मादव्यक्तादागतस्तत्रैव गतमपार्थं शोचन्ति । तदुक्तं गीतासु– 'अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत । अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ।' इति । किंच स्वयमपि सधर्माः मृतेन सह समानो मृत्युलक्षणो धर्मो येषां तथाभूता अपि ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

यह आश्चर्य की बात है कि ये लोग हमसे अधिक अवस्था वाले हैं तथा संसार की जन्म मरण रूपी विधि को प्रतिदिन देखते भी हैं फिर भी इनका इतना मोह हैं । यह मनुष्य जिस अव्यक्त से आया था उसी में चला गया किन्तु ये लोग व्यर्थ में ही शोक कर रहे हैं । गीता में भगवान् ने कहा है ये जीव उत्पन्न होने से पहले अव्यक्त ही थे बीच में कुछ दिन के लिए व्यक्त हो गये है और मरने के पश्चात् पुनः अव्यक्त हो जायेंगे । अतएव इस मृत्यु को लेकर क्या रोना हैं । किञ्च स्वयं ये लोग भी इसी के समान यहाँ ही चले जायेंगे ॥३७॥

अहो वयं धन्यतमा यदत्र त्यक्ताः पितृभ्यां न विचिन्तयामः ।
अभक्ष्यमाणा अबला बृकादिभिः स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे ॥३८॥

अन्वयः— अहो वयं धन्यतमा यदत्र पितृभ्यां त्यक्ताः न विचिन्तयामः अबलाः, वृकादिभिः अभक्ष्यमाणाः, यो हि गर्भे रक्षति स रक्षिता ॥३८॥

अनुवाद— इन लोगों से तो हमलोग बहुत अच्छे हैं, हमारे माता-पिता ने यहाँ छोड़ दिया, फिर भी हम इसकी कोई चिन्ता नहीं करते हैं । विगवा इत्यादि हमें नहीं खाता है क्योंकि जो परमात्मा गर्भ में रक्षा करते हैं, वही यहाँ भी रक्षा करेंगे ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

अबला दुर्बला अपि वृकादिभिरभक्ष्यमाणा वयं न विचिन्तयामः । तत्र हेतुः–यो गर्भे रक्षति स एव सर्वत्र रक्षिता ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

हम बालक होने के कारण दुर्बल हैं फिर भी विगवा इत्यादि हमें नहीं खाते हैं और हम इसकी चिन्ता भी नहीं करते हैं, क्योंकि जो परमात्मा गर्भ में रक्षा करते हैं वे ही सर्वत्र रक्षक हैं ॥३८॥

य इच्छयेशः सृजतीदमव्ययो य एव रक्षत्यवलुम्पते च यः ।
तस्याबलाः क्रीडनमाहुरीशितुश्चराचरं निग्रहसंग्रहे प्रभुः ॥३९॥

अन्वयः— हे अबलाः यः अव्ययः ईशः इदम् सृजति य एव रक्षति अवलुम्पते च यः तस्य ईशितुः क्रीडनमाहुः सः चराचरं निग्रह संग्रहे प्रभुः ॥३९॥

अनुवाद— हे देवियों, जो निर्विकार परमात्मा इस जगत् की अपनी इच्छा से जागत् की सृष्टि करते हैं । वे ही इसकी रक्षा करते हैं ओर अन्त में संहार भी कर देते हैं । उन श्रीहरि का यह एक खिलौना है वे ही परमात्मा इस सम्पूर्ण जगत् का निग्रह करने में अथवा पुरस्कार देने में समर्थ हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

ननु तस्य रक्षणे किं प्रयोजनं न किंचिदपि, किंतु क्रीडैव केवलमित्याह-य इति । य ईश: इदं विश्वं सृजति रक्षत्यवलुम्पते संहरति च । भो अबला:, तस्येशितुश्चराचरं क्रीडासाधनमाहु:- अत: स एव निग्रहे संहारे संग्रहे पालने च प्रभु: ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि जगत् की रक्षा करने में परमात्मा का क्या प्रयोजन है ? तो इसके उत्तर में कहते हैं कोई भी प्रयोजन नहीं केवल क्रीडा ही प्रयोजन है । इस बात को **य इच्छयेश:० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं। जो परमात्मा अपनी इच्छा मात्र से इस जगत् की सृष्टि स्थिति और संहार करते है । देवियों यह चराचर जगत् उस नियामक परमात्मा का यह जगत् क्रीडा का साधन मात्र है ।।३९।।

पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यति ।
जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति ।।४०।।

अन्वय:— पथिच्युतं तिष्ठति दिष्टाक्षितम् तत्र विहतम् गृहे स्थितं विनश्यति, तदीक्षित: वने अनाथ: अपि जीवति, अथ हत: गृहे गुप्त: अपि न जीवति ।।४०।।

अनुवाद— भाग्य के अनुकूल रहने पर रास्ते में भी गिरी हुई वस्तु पड़ी रहती है और भाग्य के प्रतिकूल होने पर घर में भी रखी हुई वस्तु विनष्ट हो जाती है दैव की दया दृष्टि होने पर वन में अनाथ भी मनुष्य जीवित रहता है और दैव के द्वारा मारा हुआ घर में सुरक्षित रहने पर भी मनुष्य मर जाता है ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

प्रभुत्वमेवान्वयव्यतिरेकाभ्यां दर्शयति-पथीति। दिष्टेन दैवेनेश्वरेण रक्षितं तेनेश्वरेण विहतमुपेक्षितम्। अस्य हतस्तेनोपेक्षित:।।४०।।

भाव प्रकाशिका

दैव के ही प्रभुत्व का वर्णन अन्वव्यतिरेक के द्वारा करते हैं । दैव के द्वारा रक्षित व्यक्ति वन में भी जीवित रहता है और दैव के द्वारा उपेक्षित घर में भी मर जाता है ।।४०।।

भूतानि तैस्तैर्निजयोनिकर्मभिर्भवन्ति काले नभवन्ति सर्वश: ।
न तत्र ह्यात्मा प्रकृतावपि स्थितस्तस्या गुणैरन्यतमो निबध्यते ।।४१।।

अन्वय:— तै: तै: निजयोनिकर्मभि: भूतानि भवन्ति न भवन्ति सर्वश: । प्रकृतौ अपि स्थित: आत्मा तस्य गुणै: अन्यतम: तत्र न निवध्यते ।।४१।।

अनुवाद— सभी प्राणियों की मृत्यु अपने पूर्वजन्म के कर्म के अनुसार समय पर ही होती हैं और उसी के अनुसार उसका जन्म भी होता है । आत्मा शरीर (प्रकृति) से अत्यन्त भिन्न है अतएव वह शरीर में रहने पर भी शरीर के मृत्यु तथा जन्म आदि धर्मों से असम्पृक्त ही रहता है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

तदेवमात्मनो जन्ममरणादिकमङ्गीकृत्येश्वराधीनत्वान्न शोक: कार्य इत्युक्तम्, इदानीं तु देहानामेव जन्मादि न त्वात्मन इत्याह- भूतानीति त्रिभि: । भूतनि देहा: निजयोनि: स्वकरणभूतं लिङ्गशरीरं तन्निमित्तै: कर्मभिर्भवन्ति जयन्ते, नभवन्ति नश्यन्ति च । सर्वशो देवादिदेहा अपि । तत्र ह तदा प्रकृतौ देहे स्थितोऽप्यात्मा तस्या: प्रकृतेर्गुणैर्देहधमैर्जन्मादिभिर्न निबध्यते न युज्यते। यतोऽन्यतमो देहादत्यन्तविलक्षण: ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से अत्मा के जन्म और मरण आदि को स्वीकार करके उसको ईश्वराधीन बतलाया गया है ।

और बतलाया गया है कि शोक आदि करना व्यर्थ है । अब यह बतलाया जा रहा है कि जन्म मरण आदि शरीर के ही होते हैं आत्मा के नहीं, क्योंकि आत्मा शरीर आदि से अत्यन्त भिन्न हैं । इस बात को **भूतानि० इत्यदि** तीन श्लोंको से बतलाया गया है । आत्मा अर्थात् देह, अपने कारण भूत लिङ्ग शरीर तथा उसके कारण भूत पूर्व जन्मों के कर्मो के द्वारा होते हैं । और विनष्ट भी हो जाते हैं । यहाँ तक देवों आदि के भी शरीर । आत्मा यद्यपि शरीर के भीतर ही रहता है फिर भी प्रकृति के गुणों तथा देह के धर्म जन्म मृत्यु आदि से वह असम्पृक्त ही रहता है। क्योंकि आत्मा देह से अत्यन्त विलक्षण है ॥४१॥

इदं शरीरं पुरुषस्य मोहजं यथा पृथग्भौतिकमीयते गृहम् ।
यथौदकैः पार्थिवतैजसैर्जनः कालेन जातो विकृतो विनश्यति ॥४२॥

अन्वयः— पुरुषस्य इदं शरीरं मोहजं यथा भौतिकं गृहम् ईयते । यथोदकैः पार्थिव तैजसैः जनः कालेन जातः विकृतः विनश्यति ॥४२॥

अनुवाद— पुरुष का यह शरीर मोह जन्यम् (अज्ञान जन्य) है । यह उसी तरह आत्मा से अलग है जिस तरह मिट्टी का मकान् अपने से अलग होता है जैसे बुलबुले आदि पानी के विकार हैं, घड़े आदि मिट्टी के विकार हैं । तथा आभूषण आदि स्वर्ण के विकार हैं और उत्पन्न होकर विनष्ट होते हैं । इसी तरह पृथिवी जल, तेज से बना हुआ मनुष्य का शरीर समय पर बनता है और बिगड़ जाता है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

नन्वहं कृशः स्थूल इत्यादौ वैलक्षण्यं न प्रतीयते तत्राह- इदमिति । इदं शरीरं मोहजमविवेकादात्मत्वेन जातम् । वस्तुतस्तु पृथगेव । यत ईयते दृश्यते । भौतिकं च यथा गृहमित्यन्वयः । अत्रैवं प्रयोगः-द्रष्टुरभौतिकाच्च पुरुषाच्छीरं भिन्नम्। दृश्यत्वाद्भौतिकत्वाच्च । यथात्यन्ताविवेकिन आत्मत्वेनाभिमतमपि गृहं ततः पृथक् तद्वदिति । भौतिकत्वानुमानं विवृण्वन्नात्मनो जन्माद्यभावमुपसंहरति । यथा औदकैः परमाणुभिर्जातो बुद्बुदादिर्यथा च पार्थिवैर्जातो घटादिर्यथा च तैजसैर्जातः कुण्डलादिर्विनश्यति तथा तैरेव त्रिविधैः परमाणुभिर्जातो जनो देह एव विकृतः परिणतः सन्विनश्यति । न त्वात्मेत्यर्थः ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि मैं कृश हूँ स्थूल हूँ इत्यादि प्रतीतियों में शरीर आत्मा से अलग नहीं प्रतीत होता है । इसके उत्तर में **इदम्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । यह शरीर अज्ञान जन्य है । अज्ञान के करण आत्मा रूप से प्रतीत होता है । वास्तविकता तो यह ही है कि यह आत्मा से भिन्न ही है । क्योंकि यह प्रतीत होता है और यह भौतिक है गृह के समान । यहाँ पर इस तरह का अनुमान अभिप्रेत है- द्रष्टा अभौतिक आत्मा से यह भौतिक शरीर भिन्न है । यह उसी तरह है जिस तरह अत्यन्त अविवेक के कारण गृह आत्मा से भिन्न है । शरीर के भौतिकत्वानुमन की व्याख्या करते हुए यमराज आत्मा के जन्म आदि के अभाव का उपसंहार करते हुए कहते हैं— जैसे जल के परमाणुओं से बना हुआ बुलबुला, जल का विकार है और बनता बिगड़ता है, और जैसे पार्थिव परमाणुओं से उत्पन्न घट आदि एवं तैजस (सुवर्ण आदि) से बने आभूषण आदि बनते एवं बिगड़ते हैं, उसी तरह पृथिवी, जल एवं तेज के परमाणुओं से बना हुआ यह शरीर समय से बनता है विनष्ट होता है आत्मा से अलग है । क्योंकि आत्मा इन सबों से पृथक और नित्य है ॥४२॥

यथाऽनलो दारुषु भिन्न ईयते यथाऽनिलो देहगतः पृथक् स्थितः ।
यथा नभः सर्वगतं न सज्जते तथा पुमान्सर्वगुणाश्रयः परः ॥४३॥

अन्वयः— यथा अनलः दारुषु भिन्न ईयते, यथा देहगतः अनिलः पृथक् स्थितः, यथा सर्वगतं नभः न सज्जते तथा पुमान् सर्वगुणाश्रयः परः ॥४३॥

अनुवाद— जैसे काष्ठ में व्यापक अग्नि उससे भिन्न ही देखी जाती है, जैसे शरीर में व्यापक वायु शरीर से भिन्न ही है, जिस तरह सर्वत्र व्यापक आकाश किसी के दोष गुण से सम्पृक्त नहीं होता है, उसी तरह सभी देहेन्द्रियों में रहने वाला तथा उन सबों का आश्रय आत्मा भी उन सबों से अलग और निर्लिप्त ही है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

पृथगवस्थानाभावेऽपि भिन्नत्वे दृष्टान्तद्वयमाह-यथेति । यथाऽनलो दारुष्ववस्थितोऽपि दाहकत्वेन प्रकाशकत्वेन भिन्न एव प्रतीयते । यथा च देहगतोऽप्यनिलो मुखनासिकादिषु पृथक् स्थित एव प्रतीयते । देहस्थत्वेऽप्यात्मनस्तद्धर्मयोगाभावे दृष्टान्तमाह-यथा नभो न सज्जते क्वापि सङ्गं न प्राप्नोति तथा पुमानपि सर्वेषां गुणानां देहेन्द्रियादीनामाश्रायस्तेष्वाश्रितो वा परः पृथगेवेत्यर्थः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

अलग नहीं रहने पर भी भिन्न होने का दो उदाहरण इस श्लोक में दिया गया है । जिस तरह काष्ठ में व्यापक रूप से रहने वाली अग्नि उससे भिन्न है क्योंकि अग्नि दाहक प्रकाश है, अतएव वह काष्ठ से भिन्न है। जिस तरह से देहभर में रहने वाली वायु मुख और नाक में ही स्थित प्रतीत होती है और शरीर से भी भिन्न प्रतीत होती है; उसी तरह शरीर में व्यापक आत्मा शरीर से भिन्न है । आत्मा देहभर में व्यापक है, किन्तु वह शरीर के धर्मों से संषद्ध नहीं होती है, इस अर्थ में दृष्टान्त उपन्यस्त करते हैं- जिस तरह सभी शरीर में व्यापक आत्मा शरीर के किसी भी धर्म से आसक्त नहीं होती है । वह सभी देहेन्द्रियों का आश्रय और उससे भिन्न है ।।४३।।

सुयज्ञो नन्वयं शेते मूढा यमनुशोचथ । यः श्रोता योऽनुवक्तेह स न दृश्येत कर्हिचित् ।।४४।।

अन्वयः— मूढाः यम अनुशोचथ सोऽयं सुयज्ञः शेते । यः श्रोता, यः अनुवक्ता सः कर्हिचित् न दृश्येत कर्हिचित्।।४४।।

अनुवाद— मूर्खो जिसके लिए तुमलोग शोक कर रहे हो वह सुयज्ञ नामक शरीर तो तुमलोगों के सामने सोया है । तुम तो इसी को देखते थे । इससे जो सुनने वाला और बोलने वाला था वह कभी भी किसी को भी नहीं दिखाई देता था आज भी नहीं दिखाई देता है । अतएव शोक क्यों ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

किंच हे मूढाः यमनुशोचथ सोऽयं युष्मद्भर्ता सुयज्ञः शेते । किमिति शोचथ । नन्वेतावन्तं कालमसौ शृणोत्यनन्तरं प्रतिवक्ति च । इदानीं तस्यादर्शनान्मृत इति शोचतामेति चेत्स सु शोच्यो न भवतिः, प्रागपि तस्यादर्शनादित्याह-यः श्रोतेति।।४४।।

भाव प्रकाशिका

मूर्खों तुमलोग जिसके विषय में शोक करते हैं वह तुम लोगों का स्वामी सुयज्ञ नामक शरीर तो सोया हुआ ही है क्यों शोक करते हो ? यदि कहो कि अब तक यह सुनता था और सुनकर उत्तर भी देता था, इस समय उसके नहीं दिखाई देने के कारण यह मर गया है यह सोचकर हमलोग शोक करते हैं । इस पर यमराज ने कहा कि उसके विषय में तो शोक करना व्यर्थ हैं । वह कभी भी दिखाई नहीं पड़ा और न दिखेगा इस बात को इस श्लोक में कहा गया है ।।४४।।

न श्रोता नानुवक्तायं मुख्योऽप्यत्र महानसुः । यस्त्विहेन्द्रियवानात्मा स चान्यः प्राणदेहयोः ।।४५।।

अन्वयः— अत्र अयं मुख्यः महान् असुः अपि न श्रोता न वक्ता । यः तु इह इन्द्रियवान् आत्मा स च देह प्राणयोः अन्यः ।।४५।।

अनुवाद— तुमलोग यह जो मानते हो कि यह मुख्य प्राण ही सुनने अथवा सुनकर बोलता है वह प्राण शरीर से निकल गया अतएव यह मर गया । यह भी तुम लोगों की मान्यता ठीक नहीं क्योंकि प्राण तो जड़ हैं,

वह बोलता अथवा सुनता नहीं । इन इन्द्रियों और देह का जो आश्रय आत्मा है, वह वही सुनने और बोलने का काम करता है । आत्मा, देह और प्राण इन दोनों से भिन्न है ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

ननु मुखनासिकासंचारी प्राण: श्रोता वक्ता च दृष्ट एवेति चेन्नासौ श्रोता वक्ता वा अचेतनत्वादित्याह-न श्रोतेति । महासन्सर्वेन्द्रियचेष्टाहेतु: । अतएव मुख्य: । 'प्राणो वै मुख्य:' इति श्रुते । कस्तर्हि श्रोता वक्ता च तत्राह- यस्त्विह देहेन्द्रियैस्तत्तदर्थद्रष्टा आत्मा स तु प्राणदेहाभ्यामचेतनाभ्यामन्य एव सचेतन: ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

इस मुख और नाक में सञ्चरण करने वाला प्राण ही सुनने और बोलने वाला प्रतीत होता है । तो ऐसा कहना ठीक नहीं है, यह प्राण सुनने और बोलने वाला नहीं है । क्योंकि वह जड़ है । वह महान् इसलिए है कि वह इन्द्रियों में होने वाली चेष्टा का हेतु है । अतएव वह मुख्य है । श्रुति भी कहती है । **प्राणो वै मुख्य:** प्रश्न होता है कि तो फिर सुनने और बोलने वाला कौन है इसके उत्तर में यमराज ने कहा जो श्रोत्रों आदि इन्द्रियों के माध्यम से उस अर्थ को जानता है वही सुनने और बोलने वाला है वह आत्मा है वह प्राण एवं देह दोनों से पृथक ही है वह अचेतन नहीं सचेतन है ॥४५॥

भूतेन्द्रियमनोलिङ्गान्देहानुच्चा वचान्विभु: । भजत्युत्सृजति ह्यन्यस्तच्चापि स्वेन तेजसा ॥४६॥

अन्वय:— तच्चापि अन्य: विभु: स्वेन तेजसा देहेन्द्रियमनोलिङ्गान् उच्चावचान् देहान् भजति उत्सृजति ॥४६॥

अनुवाद— यद्यपि आत्मा व्यापक है फिर भी पञ्चभूत, इन्द्रिय एवं मन से युक्त अच्छे बुरे (देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि) शरीरों को ग्रहण करता है । और यह अपने विवेक वल से मुक्त भी हो जाता है । वस्तुत: आत्मा देह एवं इन्द्रिय आदि से भिन्न है ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

ननु चेतनत्वेऽन्यत्वे च तस्याहं कृश: स्थूल: काणो बधिर इत्यादिदेहधर्मोपलब्धि: कुतस्तत्राह-भूतेन्द्रियमनोभिर्लिङ्ग्यन्ते लक्ष्यन्त इति तथा तान्देहांस्तेभ्योऽन्य एव भजत्यहमिति मन्यते । तर्हि कथं मोक्षस्तत्राह-तच्च भजनं स्वेन तेजसा विवेकबलेनोत्सृजत्यपि । हीत्यनुभवं प्रमाणयति ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि आत्मा यदि चेतन तथा इन्द्रियादि से भिन्न है तो उसकी मैं स्थूल हूँ कृश हूँ, वहरा हूँ इत्यादि रूप से समानाधिकरण रूप प्रतीति कैसे होती है ? इन अनुभवों से आत्मा में देहादि धर्मो की उपलब्धि प्रमाणित होती है । तो इस पर कहते हैं कि आत्मा देहादि से भिन्न भी होकर उन देहादि को अपनाता है । यदि कहें कि यदि अपनाता है तो फिर मुक्त कैसे होता है तो इसका उत्तर है कि यह अपने विवेक के वल से मुक्त हो जाता है । हि इस पद के द्वारा अनुभव को प्रमाणित करते हैं ॥४६॥

यावल्लिङ्गान्वितो ह्यात्मा तावत्कर्म निबन्धनम् । ततो विपर्यय: क्लेशो मायायोगोऽनुवर्तते ॥४७॥

अन्वय:— यावत् हि आत्मा लिङ्गान्वित: तावत् कर्म निबन्धनम् ततो विपर्यय: क्लेश: मायायोग: अनुवर्तते ॥४७॥

अनुवाद— जब तक आत्मा लिङ्ग शरीर से युक्त रहता है, तव तक उसको कर्मो का वन्धन बना रहता है, इस बन्धन के कारण ही माया से होने वाले मोह और क्लेश आत्मा के पीछे पड़े रहते हैं ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

ननु विवेकानन्तरमप्याहारादिकर्मसु प्रवृत्तेर्बन्ध: स्यादेवेत्यत आह-यावदिति । यावल्लिङ्गशरीरेणान्वितस्तदभिमानवानात्मा

भवति तावदेव तस्य तत्कर्म निबन्धनं बन्धहेतुर्भवति, ततो विपर्ययो देहधर्मभाक्त्वं, ततः क्लेशश्चानुवर्तते न तु लिङ्गाभिमाने निवृत्तेऽपि। यतोऽयं मायायोगो विपर्ययादिः। मायया युज्यत इति तथा। न परमार्थ इत्यर्थः ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि विवेक हो जाने के पश्चात् भी भोजनादि में प्रवृत्ति देखे जाने के कारण बन्ध तो बना ही रहता है। इसीलिए **यावत्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं- आत्मा जब तक लिङ्ग शरीर में युक्त होता है तब तक आत्मा उसके अभिमान से युक्त होता ही है। उतने ही समय तक उसको कर्मों का बन्धन होता है। और उतने ही समय तक वह देह के धर्मों से युक्त होता है। उसी के कारण उसको क्लेश भी होता है। किन्तु लिङ्ग शरीर का अभिमान समाप्त हो जाने पर उसके क्लेशादि नही होते हैं। लिङ्ग शरीर के ही कारण विपर्यय आदि माया का योग हो जाता है। किन्तु वह परमार्थ नहीं है ॥४७॥

वितथाभिनिवेशोऽयं यद्गुणेष्वर्थदृग्वचः। यथा मनोरथः स्वप्नः सर्वमैन्द्रियकं मृषा ॥४८॥

अन्वयः— यद्गुणेष अर्थदृक वचः अयं मिथ्यभिनिवेशः मनोरथः स्वप्नः यथा सर्वमैन्द्रियकं मृषा ॥४८॥

अनुवाद— प्रकृति अथवा प्राकृत वस्तुओं को सत्य कहना यह मिथ्या दुराग्रह है। मनोरथ के समय की कल्पित और स्वप्न के समय में दिखने वाली वस्तुओं के ही समान जिन वस्तुओं का ज्ञान इन्द्रियों से होता है, वह मिथ्या है ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

ननु सुखदुःखादीनां तत्साधनानां च सत्यत्वप्रतीतेः कुतो मायामयत्वम्। तथाच बहवो वादिनः सत्यत्वमेव वदन्ति तत्राह-वितथेति। वितथो मिथ्याभूतोऽयमभिनिवेशः। कोऽसौ। गुणेषु तत्कार्येषु सुखदुःखादिष्वर्थः परमार्थ इति दृक् वचश्चेति यत्। स कुत इत्यत आह-यथेति ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि सुख तथा दुःख आदि तथा इनके साधनों की सत्यता ही प्रतीत होती है इनको मायामय क्यों माना जाता है। किञ्च बहुत से ऐसे वादी हैं जो इनको सत्य कहते भी है। इसके उत्तर में यमराज कहते हैं इन वस्तुओं को सत्य मानना या सत्य समझना ही मिथ्या दुराग्रह है। अर्थात् इन्द्रियों के कार्य सुख-दुःख आदि में परमार्थ बुद्धि उसी तरह से मिथ्या है जिस तरह मनोरथ की कल्पना अथवा स्वप्न में दिखने वाली वस्तुएँ मिथ्या होती हैं ॥४८॥

अथ नित्यमनित्यं वा नेह शोचन्ति तद्विदः। नान्यथा शक्यते कर्तुं स्वभावः शोचतामिति ॥४९॥

अन्वयः— इह तदविदः नित्यमनित्यं वा न शोचन्ति अथ शोचताम् स्वभावः अन्यथा कुर्तुं न शक्यत इति ॥४९॥

अनुवाद— नित्य आत्मा और अनित्य शरीर के विषय में ज्ञानी पुरुष नहीं शोक करते हैं किन्तु जिन लोगों का सोचने का स्वभाव ही बन गया है उन लोगों के स्वभाव को भी नहीं बदला जा सकता है ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति- अथेति। अथ तस्मात्। नित्यमात्मानमनित्यं देहं वा तद्विदो नित्यमनित्यं च जानन्तो न शोचन्ति। नन्वेवमुपदेष्टारोऽपि शोचन्तो दृश्यन्ते तत्राह- नान्यथेति। ज्ञानदार्ढ्या भावात्स्वभावो न निवर्तत इत्यर्थः ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

अपने कथन का उपसंहार करते हुए यम कहते है इसीलिए नित्य आत्मा और अनित्य शरीर के स्वभाव को जानने वाले नित्य वस्तु अथवा अनित्य वस्तु के विषय में शोक नहीं करते हैं। यदि कहें कि देखा जाता

है कि इस तरह से उपदेश करने वाले लोग भी शोक करते हैं। इसके उत्तर में यमराज कहते हैं जिन लोगों के सोचने का स्वभाव बन गया है उन लोगों के स्वभाव को भी तो नहीं बदला जा सकता है ॥४९॥

लुब्धको विपिने कश्चित्पक्षिणां निर्मितोऽन्तकः । वितत्य जालं विदधे तत्र तत्र प्रलोभयन् ॥५०॥

अन्वयः— कश्चित् विपिने लुब्धकः पक्षिणाम् अन्तकः निर्मितः । तत्र-तत्र जालं वितत्य प्रलोभयन विदधे ॥५०॥

अनुवाद— किसी जङ्गल में एक बहेलिया रहता था। वह बहेलिया क्या था पक्षियों के लिए काल था। जहाँ कहीं जाल फैलाकर पक्षियों को फँसा लेता था ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

स्वयं स्वधर्मा अपीति यदुक्तं तत्रेतिहासमाह-लुब्धक इत्यादिना । पक्षिणामन्तक ईश्वरेण निर्मितः सन् यत्र यत्र ते तत्र तत्र तान्कणादिभिः । प्रलोभयन् जालं विस्तार्य विशेपेण धृतवान् । पाठान्तरे तेषामामिषादिभिः प्रलोभनं कृतवानित्यर्थः ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

ऊपर यमराज यह चुके है कि स्वयं भी मरण शील होकर उसके विषय में वे एक इतिहास बतलाते हैं। **लुब्धक० इत्यादि** श्लोक के द्वारा ईश्वर ने उस बहेलिए को पक्षियों का काल बनाया था। जहाँ कहीं भी पक्षी रहते थे वहाँ कण इत्यादि के द्वारा लुभाकर और जाल को फैलाकर पक्षियों को फँसा लेता था। पाठान्तर के अनुसार पक्षियों के मांस आदि से लुभा कर लुभाने का काम करता था ॥५०॥

कुलिङ्गमिथुनं तत्र विचरत्समदृश्यत । तयोः कुलिङ्गी सहसा लुब्धकेन प्रलोभिता ॥५१॥

अन्वयः— तत्र कुलिङ्ग मिथुनं विचरन्तम् अदृश्यत, तयोः कुलिङ्गी सहसा लुब्धकेन प्रलोभिता ॥५१॥

अनुवाद— वहाँ पर उसने कुलिङ्ग पक्षी के जोड़े को चारा चुगते हुए देखा और उन दोनों में से कुलिङ्गी को उसने सहसा लुभ कर फँसा लिया ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

कुलिङ्गः कन्दभक्षी पक्षिविशेषः । कुलिङ्गयोर्मिथुनम् ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

कन्द को खाने वाले पक्षी को कुलिङ्ग कहते हैं। कुलिङ्ग मिथुनम् कुलिङ्ग पक्षी के जोड़े को ॥५१॥

साऽसज्जत शिचस्तन्त्यां महिषी कालयन्त्रिता । कुलिङ्गस्तां तथापन्नां निरीक्ष्य भृशदुःखितः ॥
स्नेहादकल्पः कृपणः कृपणां पर्यदेवयत् ॥५२॥

अन्वयः— सा महिषी कालयन्त्रिता । शिचः तन्त्यां असज्जत । तथापन्नां तां निरीक्ष्य कुलिङ्गः भृशदुःखितः । अकल्पः कृष्णः स्नेहाद् कृपणां पर्यदेवयत् ॥५२॥

अनुवाद— वह कुलिङ्गी कालवशात् बहेलिए के जाल में फँस गयी, उस तरह से उसको सङ्कटापन्न देखकर कुलिङ्ग पक्षी अत्यन्त दुःखी हो गया। वह कुलिङ्गी को छुड़ा पाने में असमर्थ था। अतएव दुःखी वह कुलिङ्गी के विषय में विलाप करने लगा ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

शिचस्तन्त्यां जालस्य सूत्रेऽसज्जत बन्धं प्राप । तामापन्नामापदं प्राप्तम् । (दृष्ट्वा कुलिङ्गः पक्षी तां मोचयितुमकल्पः सन्पर्यदेवयत्वृक्षशाखामाश्रित्य विलापं चकार) ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

जाल के सूत्रों में फँस गयी । उस सङ्कटापन्ना कुलिङ्गी की विपत्ति को देखकर कुलिङ्ग पक्षी उसको छुड़ा पाने मे असमर्थ था अतएव वृक्ष की शाखा पर बैठकर विलाप करने लगा ॥५२॥

अहो अकरुणो देवः स्त्रियाऽऽकरुणया विभुः । कृपणं माऽनुशोचन्त्या दीनया किं करिष्यति॥५३॥

अन्वयः— विभुः देवः अहा अकरुणः कृपणं मानुशोचन्त्या आकरुगया दीनया स्त्रिया किं करिष्यति ॥५३॥

अनुवाद— सबकुछ करने में समर्थ दैव अत्यन्त क्रूर है । मुझ दुःखी के विषय में शोक करने वाली तथा मुझसे अत्यधिक स्नेह करने वाली इस दीन कुलिङ्गी को लेकर क्या करेगा ?॥५३॥

भावार्थ दीपिका

आकरुणया सर्वतोऽनुकम्प्यया स्त्रिया किं करिष्यति ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

बहुत अधिक प्रेम करने वाली केवल इस कुलिङ्गी को लेकर क्या करेगा ?॥५३॥

कामं नयतु मां देवः किमर्धेनात्मनो हि मे । दीनेन जीवता दुःखमनेन विधुरायुषा ॥५४॥

अन्वयः— देवः मां कामं नयतु अनेन दीनेन आत्मनः अर्धेन दुःखम् जीवता विधुरायुषा मे किम् ॥५४॥

अनुवाद— यदि वह चाहे तो मुझे भी ले जाय । उसके बिना मेरा यह जीवन आधा-अधूरा और विधुर जीवन है । यह दीनता और दुःख से भरा है । इसे लेकर मैं क्या करूँगा ?॥५४॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनो देहस्यार्धेन । अनेन विधुरायुषा भार्याशून्यजीवितेन दुःखं यथा भवत्येवं जीवता किं मे प्रयोजनम् । अतो मामपि कामं नयत्वित्यन्वयः ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

अपने शरीर के आधे भाग से, इस पत्नी रहित जीवन से जो दुःख से भरा हुआ है, ऐसे जीवन से मेरा क्या प्रयोजन है ? अतएव यह मुझे भी ले जाय ॥५४॥

कथं त्वजातपक्षांस्तान्मातृहीनान्बिभर्म्यहम् । मन्दभाग्याः प्रतीक्षन्ते नीडे मे मातरं प्रजाः ॥५५॥

अन्वयः— कथं तु अजात पक्षान् तान् मातृहीनान् अहं विभर्मि, मन्दभाग्याः मे प्रजाः नीडे मातरं प्रतीक्षन्ते ॥५५॥'

अनुवाद— जिनके पङ्ख नहीं जमें है उन माता रहित अपने बच्चों का पालन मैं कैसे कर पाऊँगा ? भाग्यहीन मेरे बच्चे घोसले में अपनी माँ की प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

न जाताः पक्षा येषां तान्बालकान्कथं विभर्मि पुष्यामि । मन्दभाग्या मे प्रजा मातरं प्रतीक्षन्ते ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

जिनके पङ्ख भी नहीं जमें है उन बच्चों का पालन मैं कैसे करूँगा ? अभागे मेरे बच्चे अपनी माँ की प्रतीक्षा करते हैं ॥५५॥

एवं कुलिङ्गं विलपन्तमारात्प्रियावियोगातुरमश्रुकण्ठम् ।
स एव तं शाकुनिकः शरेण विव्याध कालप्रहितो विलीनः ॥५६॥

अन्वयः— एवं आरात् विलपन्तम् प्रियावियोगातुरम् अश्रुकण्ठम्, कुलिङ्गम् बाल प्रहितः विलीनः स एव कलप्रहितः शाकुनिकः तं शरेण विव्याध ॥५६॥

अनुवाद— इस तरह सन्निकट में ही विलाप करने वाले तथा प्रियतमा के वियोग से व्याकुल जिसका गला रुँध गया था उस कुलिङ्ग को वही बहेलिया जो काल के द्वारा भेजा गया था और छिपकर बैठा था ऐसा बाण मारा कि वह भी मर गया ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

शाकुनिकः पक्षिहन्ता । विलीनः सन् ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

छिपा हुआ बहेलिया ।।५६।।

एवं यूयमपश्यन्त्य आत्मापायमबुद्धयः । नैनं प्राप्स्यथ शोचन्त्यः पतिं वर्षशतैरपि ।।५७।।

अन्वयः— एवं अबुद्धयः यूयम् आत्मापायमपश्यन्त्यः पतिं शोचयन्त्यः वर्षशतैः अपि एनं न प्राप्स्यथ ।।५७।।

अनुवाद— रानियों तुमलोगों की भी यही दशा होने वाली है, तुमलोगों को अपनी मृत्यु नहीं दिखायी देती है । यदि तुमलोग सौ वर्ष तक इस तरह अपने पति के विषय में शोक करती रहो तो भी तुम लोग इसको नहीं प्राप्त कर सकोगी ।।५७।।

भावार्थ दीपिका

आत्मापायं स्वमृत्युम् ।।५७।।

भाव प्रकाशिका

आत्मापायम् अर्थात् अपनी मृत्यु को ।।५७।।

हिरण्यकशिपुरुवाच

बाल एवं प्रवदति सर्वे विस्मितचेतसः । ज्ञातयो मेनिरे सर्वमनित्यमयथोत्थितम् ।।५८।।

अन्वयः— बाले एवं प्रवदति विस्मित चेतसः सर्वे ज्ञातयः सर्वमनित्यम् अयथोत्थितम् मेनिरे ।।५८।।

हिरण्यकशिपु ने कहा

अनुवाद— उस बालक की इस प्रकार से ज्ञान की बातें सुनकर सभी आश्चर्यित हो गये । राजा उशीनर के सभी बान्धव और रानियों ने जान लिया कि यह सम्पूर्ण जगत् और इसके सुख दुःख अनित्य और मिथ्या हैं।।५८।।

भावार्थ दीपिका

अयथोत्थितं मिथ्यैवाविर्भूतम् ।।५८।।

भाव प्रकाशिका

अयथोत्थितम् अर्थात् मिथ्या ही उत्पन्न है ।।५८।।

यम एतदुपाख्याय तत्रैवान्तरधीयत । ज्ञातयोऽपि सुयज्ञस्य चक्रुर्यत्सांपरायिकम् ।।५९।।

अन्वयः— एतदुपाख्याय यमः तत्रैव अन्तरधीयत सुयज्ञस्य ज्ञातयः अपि साम्परायिकम् चक्रुः ।।५९।।

अनुवाद— इस उपाख्यान को सुनाकर यमराज वहीं अन्तरधान हो गये । भाई बन्धुओं ने भी सुयज्ञ की अन्त्येष्टि की ।।५९।।

भावार्थ दीपिका

सांपरायिकं परलोककृत्यम् ।।५९।।

भाव प्रकाशिका

साम्परायिकम् अर्थात् अन्त्येष्टि ।।५९।।

ततः शोचत मा यूयं परं चात्मानमेव च । क आत्मा कः परो वात्र स्वीयः पारक्य एव वा ॥
स्वपराभिनिवेशेन विनाऽज्ञानेन देहिनाम् ॥६०॥

अन्वयः— ततः शोचत मा यूयं परं चात्मानम् एव वा अत्र कः आत्मा कः वा परः, स्वीयः पारक्य एव वा, देहिनां ज्ञानेन विना स्वपराभिनिवेशेन ।

अनुवाद— अतएव आपलोग अपने अथवा दूसरे के विषय में शोक न करें । इस संसार में अपना कौन है और पराया क्या है, क्या अपना है और क्या पराया है । प्राणियों को ज्ञान के अभाव के ही कारण अपने और पराये का अभिनिवेश होता है । इस भेदबुद्धि का दूसरा कोई कारण नहीं है ॥६०॥

भावार्थ दीपिका

अशोचतेति पाठे अडागम आर्षः । स्वः पर इत्यभिनिवेश एवाज्ञानं तेन विना ॥६०॥

भाव प्रकाशिका

अशोचत में अट् का आगम आर्ष है । अपना और पराया इस प्रकार का अभिनिवेश (दुराग्रह) ही अज्ञान है । उसके बिना ॥६०॥

नारद उवाच

इति दैत्यपतेर्वाक्यं दितिराकर्ण्य सस्नुषा । पुत्रशोकं क्षणात्त्यक्त्वा तत्त्वे चित्तमधारयत् ॥६१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे दितिशोकापनयनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अन्वयः— इति दैत्यपतेः वाक्यं आकर्ण्य सस्नुषा दितिः क्षणात् पुत्रशोकं व्यक्त्वा तत्त्वे चित्तमधारयत् ॥६१॥

नारदजी ने राजा युधिष्ठिर से कहा

अनुवाद— हिरण्यकशिपु की बातों को सुनकर अपनी पुत्रवधू के साथ दिति ने पुत्र के शोक का परित्याग करके तत्त्व के चिन्तन में अपने मन को लगा दिया ॥६१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के शोकापनोदन नामक दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

भावार्थ दीपिका

सस्नुषा स्नुषासहिता ॥६१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

सस्नुषा अर्थात् पुत्र वधू के साथ ॥६१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के दूसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२।।

* * *

तीसरा अध्याय

हिरण्यकशिपु की तपस्या और वर प्राप्ति

नारद उवाच

हिरण्यकशिपू राजन्नजेयमजरामरम् । आत्मानमप्रतिद्वन्द्वमेकराजं व्यधित्सत ।।१।।

अन्वयः— राजन् ! हिरण्यकशिपुः आत्मानम् अजेयम् अजरामरम्, अप्रतिद्वन्द्वम् एकराजं व्यधित्सत ।।१।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! हिरण्यकशिपु अपने को अपराजेय, अजर अमर तथा संसार का एक मात्र सम्राट् बनाना चाहा । जिससे कि कोई भी उसका प्रतिद्वन्दी नहीं हो सके ।।१।।

भावार्थ दीपिका

तृतीये तस्य तपसा तप्तं वीक्ष्य जगद्विधिः । आगत्य विस्मितस्तेन संस्तुतश्च वरानदात् । तदेवं साधूनां कदने दानवानादिश्य बन्धूनां शोकं तत्त्वनिरूपणेनापनीय यत्कृतवांस्तदाह-हिरण्यकशिपुरित्यादिना । अप्रतिद्वन्द्वं प्रतिपक्षहीनमेकराजमेकमेव राजानं व्यधित्सत कर्तुमैच्छत् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

हिरण्यकशिपु की तपस्या से संसार को देखकर ब्रह्माजी ने आकर देखे और आश्चर्यित हो गये हिरण्यकशिपु के द्वारा अच्छी तरह से स्तुत ब्रह्माजीने उसको वरदान दिया ।।१।। इस तरह से सज्जनों को मारने का दानवों का आदेश देकर अपने बान्धवों का शोक तत्त्वनिरूपण के द्वारा दूर करके जिस कार्य को हिरण्यकशिपु ने किया उसको हिरण्यकशिपु इत्यादि श्लोक के द्वारा कहा गया है । अप्रतिद्वन्द्वम् अर्थात् प्रतिपक्ष रहित सम्राट् अपने को बनाना चाहा ।।१।।

स तेपे मन्दरद्रोण्यां तपः परमदारुणम् । ऊर्ध्ववाहुर्नभोदृष्टि; पादाङ्गुष्ठाश्रितावनिः ।।२।।

अन्वयः— ऊर्ध्ववाहु नभोदृष्टिः पादाङ्गुष्ठाश्रितवनिः सः मन्दर द्रोणयां परमादारुणं तपः तेपे ।।२।।

अनुवाद— ऊपर की ओर हाथ उठाकर आकाश की ओर देखता हुआ वह पैर के अङ्गूठे के वल पृथिवी पर खड़ा होकर मन्दराचल की घाटी में अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगा ।।२।।

भावार्थ दीपिका

ऊर्ध्वौ वाहू यस्य । नभसि दृष्टिर्यस्य । पादाङ्गुष्ठेनाश्रिताऽवनिर्येन ।।२।।

भाव प्रकाशिका

ऊपर की ओर दोनों भुजाओं को उठाकर आकाश की ओर दृष्टि लगाये हुए वह अपने पैरों के अङ्गूठे के वल पृथिवी पर खड़ा था ।।२।।

जटादीधितिभी रेजे संवर्तार्क इवांशुभिः । तस्मिंस्तपस्तप्यमाने देवाः स्थानानि भेजिरे ।।३।।

अन्वयः— जटादीधितिभिः अंशुभिः संवर्तार्क इव रेजे तस्मिंस्तपः तप्यमाने देवाः स्थानानि भेजिरे ।।३।।

अनुवाद— उसकी जटाएँ प्रलय कालीन सूर्य की किरणो के समान चमक रही थी । जब हिरण्यकशिपु तपस्या में लीन हो गया तो देवतागण अपने-अपने पद पर सुशोभित हो गये ।।३।।

भावार्थ दीपिका

जटानां दीधितिभिः कान्तिभिः अंशुभी रश्मिभिः प्रलयकर्ता अर्क इव रेजे । पूर्वं येऽलक्षिताः सन्तो भुवि विचेरुस्ते देवाः पुनः स्वानि स्थानानि भेजिरे ।।३।।

भाव प्रकाशिका

जटाओ की कान्तिओं से वह प्रलय कालीन सूर्य के समान सुशोभित होने लगा । पहले जो देवता अलक्षित होकर पृथिवी पर विचरण करते वे देवता पुनः अपने पद पर प्रतिष्ठित हो गये ॥३॥

तस्य मूर्ध्नः समुद्धुतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः । तिर्यगूर्ध्वमधोलोकानतपद्विष्वगीरितः ॥४॥

अन्वयः— तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतः तपोमयः सधूमः अग्निः तिर्यक् ऊर्ध्वम् अधोलोकान् विष्वगीरितः तेपे ॥४॥

अनुवाद— बहुत दिन तक तपस्या करने के बाद उसके शिर से तपस्या की आग का धुआँ निकलने लगा और वह चारो ओर फैल गया वह अग्नि ऊपर नीचे अलग-बगल के लोकों के जलाने लगी ॥४॥

भावार्थ दीपिका

विष्वगीरितः सर्वतः प्रसृतः सन् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

चारो ओर फैली हुई आग ॥४॥

चुक्षुभुर्नद्युदन्वन्तः सद्वीपाद्रिश्चचाल भूः । निपेतुः सग्रहास्तारा जज्वलुश्च दिशो दश ॥५॥

अन्वयः— नद्युदन्वन्तः चुक्षुभुः सद्वीपाद्रिभूः चचाल । सग्रहाः ताराः निपेतुः दश दिशः जज्वलुः च ॥५॥

अनुवाद— उस अग्नि की लपट से अग्नि और समुद्र खौलने लगे, दीपों और पर्वतों से युक्त पृथिवी डगमगाने लगी, ग्रह और तारे टूट-टूट कर गिरने लगे ओर दशो दिशाओं में मानो आग लग गयी ॥५॥

भावार्थ दीपिका

द्वीपैरद्रिभिश्च सहिता भूश्चलिता ॥५॥

भाव प्रकाशिका

द्वीपों और पर्वतों के साथ पृथिवी डोलने लगी ॥५॥

तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः। धात्रे विज्ञापयामासुर्देवदेव जगत्पते ॥६॥
दैत्येन्द्रतपसा तप्ता दिवि स्थातुं न शक्नुमः। तस्य चोपशमं भूमन्विधेहि यदि मन्यसे ॥
लोका न यावन्नङ्क्ष्यन्ति बलिहारास्तवाभिभूः ॥७॥

अन्वयः— तेन तप्ताः सुराः दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः, धात्रे, विज्ञापयामासुः हे देव देव ! हे जगत् पते ! दैत्येन्द्रतपसा तप्तः दिवि स्थातुं न शक्नुमः, हे भूमन् हे अभिभूः यदि मन्ये तव बलिहाराः यावन्न नश्यन्ति, तस्य च उपशमं विधेहि ॥६-७॥

अनुवाद— उस हिरण्यकशिपु की तपोमयी आग की लपटों से सन्तप्त होकर सभी देवता ब्रह्माजी के लोक में जाकर ब्रह्माजी से स्तुति करने लगे, हे देवताओं के आराध्य हे जगत् के स्वामिन् ! दैत्यराज हिरण्यकशिपु की तपस्या की आग से हमलोग जल रहे हैं, अतएव हमलोग स्वर्ग में नहीं रह सकते हैं । हे अनन्त ! हे स्वाधिपते! यदि आप उचित समझें तो अपनी सेवा करने वाली जनता का नाश होने से पहले ही इस ज्वाला को शान्त कर दें ॥६-७॥

भावार्थ दीपिका

तव बलिहराः करप्रदाः पूजाकारिण इति वा । अभितो भवतीत्यभिभूः । हे अभिभूः हे सर्वाधिपते । पाठान्तरे भो इति संबोधनम् । अभितो यावन्न नङ्क्ष्यन्तीति संबन्धः ॥६-७॥

भाव प्रकाशिका

हे सर्वाधिपते आपकी पूजा करने वाली प्रजाओं को विनष्ट होने से पहले उसको शान्त करें । तत्राभिभो इस प्रकार का पाठ भेद होने पर अर्थ होगा कि जब तक पूर्ण रूप से विनष्ट न हो जायँ उससे पहले आप उसको शान्त कर दें ॥६-७॥

तस्यायं किल सङ्कल्पश्चरतो दुश्चरं तपः । श्रूयतां किं न विदितस्तवाथापि निवेदितः ॥८॥

अन्वयः— तस्य दुश्चरं तपः चरतः किल अयं सङ्कल्पः श्रूयताम् तव किं न विदितः अथापि निवेदितः ॥८॥

अनुवाद— इस कठोर तपस्या करने वाले हिरण्यकशिपु का यह सङ्कल्प है, उसे आप सुन लें, यद्यपि आपको सब कुछ मालुम है, फिर भी हम कह देते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मणस्तस्मिन्द्वेषमुत्पादयितुं तत्सङ्कल्पमाहुः-तस्येति चतुर्भिः । तस्य सङ्कल्पस्तव किं न विदितोऽथाप्यस्माभिर्निवेदितस्त्वया श्रूयताम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

तस्य० इत्यादि चार श्लोकों के द्वारा हिरण्यकशिपु के सङ्कल्प को देवगण ब्रह्माजी को इसलिए सुनाते हैं कि उसके प्रति ब्रह्माजी का द्वेषभाव बढ़ जाय । यद्यपि आपको उसका सङ्कल्प ज्ञात है फिर भी उसे हमलोग आपको निवेदित करते हैं, उसे आप सुन लें ॥८॥

सृष्ट्वा चराचरमिदं तपोयोगसमाधिना । अध्यास्ते सर्वधिष्ण्येभ्यः परमेष्ठी निजासनम् ॥९॥

अन्वयः— इदं चराचरं सृष्ट्वा परमेष्ठी तपोयोग समाधिना सर्वधिष्ण्येभ्यः निजासनम् अध्यास्ते ॥९॥

अनुवाद— जिस तरह इस सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् की सृष्टि करके ब्रह्माजी सभी लोको से ऊपर अपने सत्यलोक में विराजमान रहते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तपोयोगयोः समाधिना निष्ठया सर्वधिष्ण्येभ्यः श्रेष्ठं निजासनं सत्यलोकं यथा अध्यास्तेऽधितिष्ठति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह ब्रह्माजी तपस्या, योग तथा निष्ठा के द्वारा सभी लोकों से श्रेष्ठ सत्यलोक में विराजते हैं ॥९॥

तदहं वर्धमानेन तपोयोगसमाधिना । कालात्मनोश्च नित्यत्वात्साधयिष्ये तथात्मनः ॥१०॥

अन्वयः— तदहं वर्धमानेन तपो योगसमाधिना कालात्मनो च नित्यत्वात् आत्मनः साधयिष्ये ॥१०॥

अनुवाद— इस तरह से प्रतिदिन बढ़ने वाले तप, योग और समाधि के द्वारा काल तथा आत्मा के नित्य होने के कारण अनेक जन्मों में ब्रह्माजी के उस पद को प्राप्त कर लूँगा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तत्तथैवात्मनः साधयिष्यामि । ननु ब्रह्मणाऽतिदीर्घायुषा तपस्तप्त्वा तत्साधितमन्यः कुतस्तत्साधयेत्तत्राहुः कालात्मनोरिति। यद्यप्यायुषोऽल्पत्वेन देहो वारंवारं म्रियेत तथापि कालस्यात्मनश्च नित्यत्वाद्बहुभिर्जन्मभिस्तपस्तप्त्वा तत्पदं साधयिष्याम्येवेति॥१०॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी के इस लोक को प्राप्त कर लूँगा । यदि कोई कहे ब्रह्मजी की आयु तो बड़ी लम्बी है अतएव उन्होंने उतनी लम्बी तपस्या करके उस लोक को प्राप्त कर लिया किन्तु सामान्य जीव उसे कैसे प्राप्त कर सकता है ।

तो इसके उत्तर में हिरण्यकशिपु का मानना है, कि काल तथा आत्मा तो नित्य है । शरीर मरने आत्मा नहीं मरती है । अतएव अनेक जन्मों में तपस्या के द्वारा उसे मैं प्राप्त कर लूंगा ॥१०॥

अन्यथेदं विधास्येऽहमयथापूर्वमोजसा । किमन्यैः कालनिर्धूतैः कल्पान्ते वैष्णवादिभिः ॥११॥

अन्वयः— अहम् इदम् ओजसा, अन्यथा अयथापूर्वम् विधास्ये कल्पान्ते वैष्णवादिभिः कालनिर्धूतैः अन्यैः किम्॥११॥

अनुवाद— मैं अपनी तपस्या के प्रभाव से इस जगत में पाप-पुण्यों के नियमों को पलट कर ऐसा परिवर्तन कर दूंगा जैसा कभी नही हुआ । काल के अधीन रहने वाले और कल्प के अन्त में विनष्ट हो जाने वाले इन वैष्णव इत्यादि पदो मे क्या रखा है ?॥११॥

भावार्थ दीपिका

वर्धमानेनेति यदुक्तं तदभिप्रायमाह-अन्यथेति । अन्यथा सुरासुरादिव्यत्ययेन । अयथापूर्वं पुण्यपापादिव्यत्ययेन । इदं जगद्विधास्यामि । अन्यैर्वैष्णवादिभिर्ध्रुवादिपदैः किं प्रयोजनमतस्तदेव साधयिष्यामि ॥११॥

भाव प्रकाशिका

वर्धमनेन इत्यादि का अभिप्राय बतलाते हुए देवताओं ने कहा कि वह सोचता है कि मैं देवताओं असुरों में उलटफेर कर दूँगा. अथवा पूर्वम् का अभिप्राय कि मैं पुण्य तथा पाप में उलट फेर कर दूगा । वह सोचता है कि वैष्णव आदि पदों से मुझे क्या करना है, वे तो कल्प के अन्त में विनष्ट हो जाते हैं । यद्यपि वैकुण्ठ लोक नित्य हैं कि हिरण्यकशिपु अपनी असुरी बुद्धि के कारण उसको अनित्य मानता है ॥११॥

इति शुश्रुम निर्बन्धं तपः परममास्थितः । विधत्स्वानन्तरं युक्तं स्वयं त्रिभुवनेश्वर ॥१२॥

अन्वयः— हे त्रिभुवनेश्वर परमम् तपः आस्थितः इति निर्बन्धं शुश्रुम् अनन्तरं स्वयं युक्तं विधत्स्व ॥१२॥

अनुवाद— हे त्रैलोक्य के स्वामिन् इतनी कठोर तपस्या करने वाले उस हिरण्यकशिपु का इस प्रकार का हठ हमलोगों ने सुना इसके पश्चात् आपको जैसा उचित लगे वैसा आप कीजिए ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

इति त्वत्पदापहरणे तस्य निर्बन्धं शुश्रुम । अत एवासौ तपः परममास्थितो वर्तते । यदत्र युक्तं तदनन्तरमेव विधत्स्व॥१२॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह का आपका पद छिन लेने के लिए उस दुराग्रह को हमलोगों ने सुना है । इसीलिए यह अत्यन्त कठोर तप कर रहा है । अब इसके विषय में जो भी करना उचित हो उसे आप करें ॥१२॥

तवासनं द्विजगवां पारमेष्ठयं जगत्पते । भवाय श्रेयसे भूत्यै क्षेमाय विजयाय च ॥१३॥

अन्वयः— हे जगत्पते ! तव पारमेष्ठ्य आसनं द्विजगवां भवाय श्रेयसे भूत्यै, क्षेमाय विजयाय च वर्तत इति शोकः॥१३॥

अनुवाद— हे ब्रह्माजी ! आपका यह सर्वश्रेष्ठ परमेष्ठी पद ब्राह्मणों और गौओं की वृद्धि कल्याण विभूति कुशल और विजय के लिए है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अन्यथा तव स्थानभ्रंशे सति साधूनामनिष्टं स्यादिति शोचन्त आहुः-तव पारमेष्ठ्यमिदमासनम् । द्विजानां गवां च भवायोद्भवाय । श्रेयसे सुखाय । भूत्यै ऐश्वर्याय । क्षेमाय लब्धपालनाय । विजयायोत्कर्षाय ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

आपका पद यदि हिरण्यकशिपु के हाथ में चला गया तब तो सज्जनों का बहुत बड़ा अनिष्ट हो जायेग । आपका जो सर्वश्रेष्ठ परमेष्ठी का पद ब्राह्मणों की समृद्धि वृद्धि एश्वर्य, कल्याण ओर अभ्युन्नति कारक है ॥१३॥

इति विज्ञापितो देवैर्भगवानात्मभूर्नृप । परीतो भृगुदक्षाद्यैर्ययौ दैत्येश्वराश्रमम् ॥१४॥

अन्वयः— :हे नृप ! इति देवैः विज्ञापितः भगवान् आत्मभूः भृगुदक्षाद्यैः परीतः दैत्येश्वराश्रमम् ययौ ॥१४॥

अनुवाद— हे राजन् ! इस प्रकार से देवताओं के द्वारा कहे जाने पर ऐश्वर्य सम्पन्न ब्रह्माजी भृगु महर्षि तथा दक्ष आदि के साथ हिरण्यकशिपु के आश्रम में गये ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

न ददर्श प्रतिच्छन्नं वल्मीकतृणकीचकैः । पिपीलिकाभिराचीर्णमेदस्त्वङ्भांसशोणितम् ॥१५॥

अन्वयः— वल्मीक तृणकीचकैः प्रतिच्छन्नं पिपीलिकाभिः मेदस्त्वङ्मासशोणितम् अचीर्णम् न ददर्श ॥१५॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने पहले, दीमक की मिट्टी, घास तथा बांस से ढँके हुए एवं चीटियां जिसके मेदस, चमड़ा, मांस और रक्त को चाट गयी थीं ऐसे हिरण्यकशिपु को देखे ही नहीं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

वल्मीकादिभिः प्रतिच्छन्नं प्रथमं न ददर्श । पश्चात्कथंचिद्विलक्ष्य तं प्राहेति द्वयोरन्वयः । पिपीलिकाभिराचीर्णं समन्ताद्भक्षितं मेदश्च त्वक्च मांसं च शोणितं च यस्य ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

बल्मीक आदि से ढँके हुए हिरण्यकशिपु को पहले तो देखे ही नहीं । बाद में किसी तरह पहचान कर हिरण्यकशिपु से कहे, इस तरह से दो श्लोक का एक साथ अन्वय है । उसके मेदा, चमड़ा, मांस और रक्त को त्रिंटियाँ चाट गयी थीं ॥१५॥

तपन्तं तपसा लोकान्यथाभ्रापिहितं रविम् । विलक्ष्य विस्मितः प्राह प्रहसन्हंसवाहनः ॥१६॥

अन्वयः— अभ्रपिहितम् रविमिव तपसा लोकान् तपन्तम् विलक्ष्य विस्मितः हंसवाहनः प्रहसन् प्राह ॥१६॥

अनुवाद— मेघ से ढँके हुए सूर्य के समान तथा अपनी तपस्या से लोकों को सन्तप्त करने वाले हिरण्यकशिपु को देखकर ब्रह्माजी आश्चर्यित हो गये और उसके बाद वे हँसते हुए कहे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

अभ्रैरपिहितं छन्नं रविमिव विलक्ष्य विस्मितः प्राह ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

मेघ से ढँके हुए सूर्य के समान हिरण्यकशिपु को देखकर आश्चर्यति ब्रह्माजी ने कहा ॥१६॥

ब्रह्मोवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपः सिद्धोऽसि काश्यप । वरदोऽहमनुप्राप्तो व्रियतामीप्सितो वरः ॥१७॥

अन्वयः— हे कश्यप उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ ते भद्रम् तपः सिद्धोऽसि अहं वरदः अनुप्राप्ताः ईप्सितः वरः व्रीयताम् ॥१७॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— हे हिरण्यकशिपु उठो उठो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारी तपस्या सिद्ध हो गयी मै तुमको वरदान देने के लिए आया हूँ तुम अपने अभिप्रेत वरदान को माँग लो ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

अद्राक्षमहमेतत्ते हृत्सारं महदद्भुतम् । दंशभक्षितदेहस्य प्राणा ह्यस्थिषु शेरते ॥१८॥

अन्वयः— दंश भक्षित देहस्य ते एतत् महददभुतं हृत्सारं अहभद्राक्षम् । ते हि प्राणा अस्थिषु शेरते ॥१८॥

अनुवाद— तुम्हारे शरीर को दंशों ने खा लिया है । तुम्हारे इस अद्भुत हृदय को मैंने देख लिया, तुम्हारा प्राण हड्डियों के सहारे टिके हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

हृत्सारं धैर्यम् । दंशैर्मक्षिकादिविशेषैर्भक्षितो देहो यस्य ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

हृतसार अर्थात् धैर्य । जिसके शरीर को दंशों ने काट लिया है ॥१८॥

नैतत्पूर्वर्षयश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे । निरम्बुर्धारयेत्प्राणान् को वै दिव्यसमाः शतम् ॥१९॥

अन्वयः— एतत् पूर्वर्षयः न चक्रुः नचापरे करिष्यन्ति को वै दिव्यसमाः शतम् निरम्बु प्राणान् धारयेत् ॥१९॥

अनुवाद— इस प्रकार की कठिन तपस्या न तो किसी ऋषि ने की थी और न कोई करेगा । ऐसा कौन है जो देवताओं के सौ वर्ष पर्यन्त बिना पानी के जीवित रह सके ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

निरम्बुर्निषिद्धमम्बु येन सः । त्यक्तोदक इत्यर्थः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

जिसने जल पीना छोड़ दिया ॥१९॥

व्यवसायेन तेऽनेन दुष्करेण मनस्विनाम् । तपोनिष्ठेन भवता जितोऽहं दितिनन्दन ॥२०॥

अन्वयः— मनस्विानाम् दुष्करेण ते अनेन तपोनिष्ठेन व्यवसायेन हे दितिनन्दन अहं भवता जितः ॥२०॥

अनुवाद— बड़े-बड़े धैर्यवानों के लिए भी दुष्कर इस तप में निष्ठा रूप व्यवसाय से हे दितिनन्दन तुमने मुझको जीत लिया है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

ते त्वया अनेन व्यवसायेनैव तावज्जितोऽहम् । तपोनिष्ठेन भवता तु सुतरां जितः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

तुमने अपने इस तप में निष्ठा रूप व्यवसाय के द्वारा मुझको जीत लिया है ॥२०॥

ततस्त आशिषः सर्वा ददाम्यसुरपुङ्गव । मर्त्यस्य ते अमर्त्यस्य दर्शनं नाफलं मम ॥२१॥

अन्वयः— हे असुर पुङ्गव ! ततः ते सर्वाः आशिषः ददामि, मर्त्यस्य ते अमर्त्यस्य मम दर्शनं अफलं न ॥२१॥

अनुवाद— हे असुरशिरोमणे इसी से प्रसन्न होकर तुम जो कुछ वरदान माँगोगे वह सारा वरदान मैं दूँगा। तुम मर्त्य हो और मैं अमर हूँ अतएव मेरा तुमको दर्शन निष्फल नहीं होगा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

मर्त्यस्य तवामर्त्यस्य मम दर्शनमफलं निष्फलं न भवति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

तुम मरण शील हो और मैं अमर हूँ, अतएव मेरा दर्शन निष्फल नहीं होगा ॥२१॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वादिभवो देवो भक्षिताङ्गं पिपीलिकैः । कमण्डलुजलेनौक्षद्दिव्येनामोघराधसा ॥२२॥

अन्वयः— आदि भवो देव इत्युक्त्वा पिपिलिकैः भक्षिताङ्गं अमोघराधसा दिव्येन कमण्डलु जलेन औक्षत् ॥२२॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— हे युधिष्ठिर इस तरह से कहकर ब्रह्माजी ने उसके चींटियों से खाये हुए शरीर पर अपने कमण्डलु के दिव्य एवं अमोघ प्रभाव वाले जल को छिड़क दिया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

आदौ भवतीत्यादिभवो ब्रह्मा । औक्षत् प्रोक्षितवान् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी को आदिभवः इसलिए कहते हैं कि वे सृष्टि में सबसे पहले उत्पन्न हुए थे । औक्षत अर्थात् छिड़क दिया ॥२२॥

स तत्कीचकवल्मीकात्सहओजोबलान्वितः । सर्वावयवसंपन्नो वज्रसंहननो युवा ॥
उत्थितस्तप्तहेमाभो विभावसुरिवैधसः ॥२३॥

अन्वयः— एधसः विभासुः इव सः तत् कीचक वल्मीकात् सहओजो वलान्वितः सर्वावय सम्पन्नः वज्र संहननः युवा तप्तहेमाभः उत्थितः ॥२३॥

अनुवाद— उस जल के छिड़कते ही जैसे लकड़ी की ढेर से आग जल जाय, उसी तरह बाँस और दीमकों की मिट्टी के ढेर से वह उठ खड़ा हुआ । उस समय उसका शरीर सभी अवयबों से परिपूर्ण एवं बलवान् हो गया। उसके सारे अङ्ग वज्र के समान कठोर थे । वह नव युवक हो गया । उसके सारे अङ्ग तपाये गये सुवर्ण के समान चमक रहे थे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

वज्रवत्संहननमङ्गदाढर्यं यस्य । तप्तस्य हेम्न इवाभा देहकान्तिर्यस्य ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्यकशिपु के सारे अङ्ग वज्र के समान कठोर थे । तपाये गये सुवर्ण के समान उसके शरीर की कान्ति थी॥२३॥

स निरीक्ष्याम्बरे देवं हंसवाहमवस्थितम् । ननाम शिरसा भूमौ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥२४॥

अन्वयः— सः अम्वरे हंसवाहम् अवस्थितं देवं निरीक्ष्य तद्दर्शन महोत्सवैः भूमौ शिरसा ननाम ॥२४॥

अनुवाद— आकाश में हंसवाहन पर बैठे हुए ब्रह्माजी को देखकर हिरण्यकशिपु अत्यन्त प्रसन्न हुआ । उसने भूमि पर माथा टेककर ब्रह्माजी को नमस्कार किया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तस्य दर्शनेन महानुत्सवो यस्य ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी को देखकर हिरण्यकशिपु को अत्यधिक प्रस्नता हुई ॥२४॥

उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व ईक्षमाणो दृशा विभुम् । हर्षश्रुपुलकोद्भेदो गिरा गद्गदयाऽगृणात् ॥२५॥

अन्वयः— उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्वः विभुम् दृशा ईक्षमाणः हर्षाश्रुपुलकोद्भेदः गद्गदयागिरा अगृणात् ॥२५॥

अनुवाद— उठकर हाथ जोड़े हुए अत्यन्त नम्रता से हिरण्यकशिपु ब्रह्माजी को अपने निर्निमेष नेत्रों से देख रहा था, उसके नेत्र आनन्दाश्रु से भर गये थे, और उसने अपनी लड़खड़ाती वाणी से ब्रह्माजी की स्तुति की ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

हर्षेणाश्रूणि पुलकोद्भेदश्च यस्य सः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

हर्षातिरेक के कारण उसके नेत्रों में आंसू भर गये थे और शरीर में रोमाञ्च हो गया था ॥२५॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

कल्पान्ते कालसृष्टेन योऽन्धेन तमसावृतम् । अभिव्यनक् जगदिदं स्वयंज्योतिः स्वरोचिषा॥२६॥
आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुम्पति । रजः सत्त्वतमोधाम्ने पराय महते नमः ॥२७॥

अन्वयः— कल्पान्ते कालसृष्टेन अन्धेन तमसावृता यः स्वयंज्योतिः स्वरोचिषा इदं जगत् अभिव्यनक् त्रिवृता । आत्मना च इदं सृजति अवति लुम्पति रजःसत्त्वतमोधाम्ने पराय महते नमः ॥२६-२७॥

हिरण्यकशिपु ने कहा

अनुवाद— कल्प के अन्त में यह सम्पूर्ण जगत् काल के द्वारा प्रेरित घोर अन्धकार से ढँक गया था उस समय अपने स्वप्रकाश स्वरूप आपने इसे प्रकट किया आप ही अपने त्रिगुणात्मक रूप से इस जगत् की सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं । आप रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण के आश्रय है । आप सबों से परे और महान् हैं, ऐसे आपको मैं वार-वार नमस्कार करता हूँ ॥२६-२७॥

भावार्थ दीपिका

अन्धेन निविडेन । तत्र हेतुः— कालसृष्टेन प्रकृतिगुणरूपेण नतु ध्वान्तेन । तमसावृतमिदं जगद्योऽभिव्यक्तमकरोत् । यश्च त्रिगुणेनात्मना इदं जगत्सृजत्यवति पालयति लुम्पति संहरति च तस्मै रजःसत्त्वतमसां धाम्ने आश्रयाय महते पराय परमेश्वराय नम इति द्वयोरन्वयः ॥२६-२७॥

भाव प्रकाशिका

अन्धेन अर्थात् अत्यन्त घने । उसका कारण यह है कि प्रकृति के गुण स्वरूप काल के द्वारा घोर तमोगुण से आवृत इस संसार को आपने हीं अभिव्यक्त किया है । आप अपने त्रिगुणात्मक स्वरूप से इस जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, इस प्रकार के रजोगुण सत्त्वगुण तथा तमोगुण के आश्रय सबसे और महान् आप परमेश्वर को मेरा नमस्कार है ॥२६-२७॥

नम आद्याय बीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्तये । प्राणेन्द्रियमनोबुद्धिविकारैर्व्यक्तिमीयुषे ॥२८॥

अन्वयः— आद्याय बीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्तये प्राणेन्द्रियमनोबुद्धिविकारैः व्यक्तिम् ईयुषे नमः ॥२८॥

अनुवाद— आप ही जगत् के मूल कारण, ज्ञान और विज्ञान आपकी मूर्ति हैं । प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि विकारों द्वारा आपने अपने आपको प्रकट किया है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अत्र च स्वप्रकाशत्वं, जगत्प्रकाशकत्वं, तत्कारणत्वं, तत्सृष्ट्यादिकर्तृत्वं, महत्त्वं, परमेश्वरत्वं, चेति षड्विधत्वमुक्तं

तदेव प्रपञ्चयन्नमस्करोति-नम इति चतुर्भिः । बीजाय कारणाय । तत्र हेतुः— आद्याय । ज्ञानं ज्ञप्तिर्विज्ञान विपयाकारं ज्ञानं मूर्तिर्यस्य तस्मै । अनेन स्वप्रकाशत्वं जगत्प्रकाशकत्वं च दर्शितम् बीजायेति निमित्तत्वमुक्तम् । उपादानत्वमाह-प्राणादयो ये विकारास्तै रूपैर्व्यक्तिं कार्याकारमीयुषे प्राप्तवते ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

नमः इत्यादि चार श्लोकों से हिरण्यकशिपु ब्रह्माजी को छह प्रकारों का वर्णन किया है । वे प्रकार हैं— १. स्वप्रकाशत्व, २. जगत् प्रकाशकत्व, ३. तत्कारणत्व, ४. जगत् की सृष्टि आदि कर्तृत्व, ५. महत्व एवं ६. परमेश्वरत्व इन्ही छह बातों का विस्तार से कहते हुए वह ब्रह्माजी को नमस्कार करता । बीजाय अर्थात् कारण स्वरूप, उसका कारण है कि वे जगत् के आदि पुरुष हैं । ज्ञान, और विज्ञान (विषय रूप से होने वाला ज्ञान) ही आपकी मूर्ति हैं । इसके द्वारा हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माजी को स्वप्रकाश और जगत् प्रकाशक बतलाया है । बीजाय कहकर उसने ब्रह्माजी को निमित्त कारण कहा है । उनको जगत् का उपादान कारण बतलाते हुए कहा प्राण आदि विकारों के द्वारा ब्रह्माजी कार्य रूप में व्यक्त होते हैं । ऐसे ब्रह्माजी को नमस्कार है ।।२८।।

त्वमीशिषे जगतस्तस्थुषश्च प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानाम् ।
चित्तस्य चित्तेर्मनइन्द्रियाणां पतिर्महान्भूतगुणाशयेशः ।।२९।।

अन्वयः— त्वम् मुख्येन प्राणे जगतस्तस्थुषश्च प्रजानाम् ईशिषे पतिः चित्तस्य चित्तेः इन्द्रियाणां मनः, महान् पति भूतगुणशयेशः ।।२९।।

अनुवाद— आप मुख्यप्राण सूत्रात्मारूप से जड़जङ्गमात्मक जगत् का प्रशासन करते हैं । आप ही प्रजाओं के रक्षक भी हैं । प्रभो ! आप ही चित्त चेतना, मन तथा इन्द्रियों के स्वामी है, पञ्चभूत, उनके शब्दादि गुण तथा उनकी वासना, संस्कारों के रचयिता भी महत् तत्त्व के रूप में आप ही हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

एवमात्मना त्रिवृता चेत्यनेनोक्तं कारणत्वं द्वेधा दर्शितम्, महत्त्वमीश्वरत्वं चाह-त्वमिति । त्वमेव जगतो जङ्गमस्य तस्थुषः स्थावरस्य च ईशिषे नियन्ता भवसि । केन । मुख्येन प्राणेन सूत्रात्मरूपेण । अतस्त्वं प्रजानां पतिः । तासां चित्तस्य चित्तेश्च तत्परिणामभूतायाश्चेतनाया मनसश्च तन्नियम्यानामिन्द्रियाणां च पतिः । अतस्त्वमेव महान् । भूतानामाकाशादीनां तद्गुणानां शब्दादिविषयाणामाशयानां तद्वासनानामीशश्च । एतेनैव स्रष्टृत्वं दर्शितम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह त्रिवृत आत्मा के द्वारा उक्त कारण को प्रकट कारण बतलाया गया है । **त्वम्० इत्यादि** के द्वारा ब्रह्माजी के महत्त्व तथा ईश्वरत्व को वह बतलाया है । आप ही जङ्गम तथा स्थावर जगत् के मुख्य प्राण सूत्रात्मा रूप से जगत् के प्रशासक और उसके पति हैं । उन सबों के चित्त उसके परिणामभूत चेतना मन तथा मन के नियाम्य इन्द्रियों के भी स्वामी आप हैं । अतएव आप ही महान् है । आकाश आदि महाभूतों, उनके शब्दादि गुण तथा उनकी वासनाओं के भी स्वामी आप ही हैं । इसके द्वारा ब्रह्माजी के जगत् स्रष्टृत्व का वर्णन किया गया हैं।।२९।।

त्वं सप्ततन्तून्वितनोषि तन्वा त्रय्या चातुर्होत्रकविद्यया च ।
त्वमेक आत्मात्मवतामनादिरनन्तपारः कविरन्तरात्मा ।।३०।।

अन्वयः— त्वम् त्रय्या तन्वा सप्त तन्तून् चातुहोत्रक विद्यया वितनोषि, त्वम् एकः आत्मवताम् आत्मा, अनादिः अनन्तः अपारः कविः अन्तरात्मा ।।३०।।

अनुवाद— आप ही नयी रूप अपने शरीर के द्वारा और चतुर्होत्रक विद्या के द्वारा यज्ञों का विस्तार करते हैं । आप ही सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा हैं । क्योंकि आप अनादि, अनन्त, अपार, सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं यज्ञप्रवर्तकत्वेनान्तर्यामित्वेन जगत्पालकत्वमाह । त्वमेव सप्ततन्तूनग्निष्टोमादियज्ञान्विस्तारयसि । कथम् । त्रय्या तन्वा वेदत्रयरूपेण । कथंभूतया । चत्वारो होतारो यत्र तच्चातुर्होत्रकं कर्म तद्विषयया विद्यया । आत्मवतां प्राणिनामात्मभूतस्त्वमेवान्तरात्मा चान्तर्यामी । कुतः । यतः कविः सर्वज्ञः । तत्कुतः एकोऽखण्डः । तत्र हेतुः— अनादिरनन्तपारश्चेति। नास्त्यन्तः कालतः पारश्च देशतो यस्य सः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में हिरण्यकशिपु यज्ञ के प्रवर्तक रूप से और अन्तर्यामी रूप से ब्रह्माजी को जगत् का पालक बतलाता है । वह कहता है कि आप ही अग्निष्टोम आदि यज्ञों का विस्तार करते हैं । यदि कोई पूछे कि कैसे तो इसका उत्तर है कि ऋग् यजुः और सामवेद रूप अपने शरीर के द्वारा, जिस विद्या के द्वारा यज्ञ के चार होता चातुर्होत्रक कर्म करते है । उस विद्या के द्वारा आप यज्ञ का विस्तार करते हैं । सभी प्राणियों की आत्मा रूप होने के कारण आप अन्तरात्मा हैं और अन्तर्यामी भी हैं । अतएव आप अखण्ड और सर्वज्ञ हैं । इसका कारण है कि आप अनादि और अनन्त हैं । आप देश काल और वस्तु की सीमा से परे हैं ।।३०।।

त्वमेव कालोऽनिमिषो जनानामायुर्लवाद्यावयवैः क्षिणोषि ।
कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महांस्त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा ।।३१।।

अन्वयः— त्वमेव अनिमिषः कालः लवाद्यैः अवयवैः जनानाम् आयुः क्षिणोषि त्वं कूटस्थ, आत्मा परमेष्ठी, महान् जीवलोकस्य जीव आत्मा ।।३१।।

अनुवाद— आप ही काल स्वरूप हैं और लव आदि अपने विभागों के द्वारा लोगों की आयु को क्षीण करते रहते हैं फिर भी आप निर्विकार, क्योंकि आप ज्ञान स्वरूप परमेश्वर अजन्मा, महान् और सम्पूर्ण जीवों के जीवन प्रदान करने वाले, अन्तरात्मा हैं ।

भावार्थ दीपिका

कालरूपेण संहर्तृत्वमाह-त्वमेवेति । लवाद्यैः कालावयवैः क्षिणोषि क्षुपयसि । तदेवं सृष्ट्यादिकर्तृत्वेऽपि निर्विकारत्वमेवाह-कूटस्थ इति । तत्र हेतवः-आत्म ज्ञानरूपः । परमेष्ठी परमेश्वरः । अजो जन्मशून्यः । महानपरिच्छिन्नः । किंच जीवलोक एव कर्मवशाज्जन्मादिभिर्विक्रियते त्वं तु तस्य जीवो जीवनहेतुः-यतस्तस्यात्मा नियन्ता ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

त्वमेव इत्यादि श्लोक के द्वारा ब्रह्माजी को जगत् का संहार करने वाला बतलाता है । वह कहता है कि काल रूप से आप अपने लव आदि विभागों के द्वारा लोगों की आयु को क्षीण करते हैं । इस प्रकार से कहता है कि आप सृष्टि आदि कर्ता होकर भी कूटस्थ अर्थात् निर्विकार है । उसके कारण ये हैं कि आप आत्मा अर्थात् ज्ञान स्वरूप हैं, परमेष्ठी अर्थात् परमेश्वर हैं, अज अर्थात् अजन्मा है । और महान् अर्थात् अपरिच्छिन्न हैं । संसार में ही कर्माधीन होने के कारण जन्मादि के कारण जीव विकृत होते हैं आप तो सबों के जीवनदाता होने के कारण आत्मा अर्थात् नियन्ता हैं ।।३१।।

त्वत्तः परं नापरमप्यनेजदेजच्च किंचिद्व्यतिरिक्तमस्ति ।
विद्याकलास्ते तनवश्च सर्वा हिरण्यगर्भोऽसि बृहत्त्रिपृष्ठः ।।३२।।

अन्वयः— त्वत्तः परं अपरम् अपि ऐजत् अनेजत् च किञ्चित् व्यतिरिक्तं न, सर्वा विद्याः कलाः च ते तनवः, त्रिपृष्ठः हिरण्यगर्भः असि ।।३२।।

अनुवाद-- संसार के जितने भी जड़ जङ्गम कार्य वर्ग हैं, वह आपसे श्रेठ नहीं और न तो कोई भी वस्तु आपसे भिन्न ही हैं। सारी विद्याएँ और कलाएँ आपका शरीर हैं। आप त्रिगुणात्मिका प्रकृति से परे और हिरण्यगर्भ हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

तत्कुतस्तत्राह- त्वत्त इति । त्वत्तो व्यतिरिक्तं यदि किंचिद्भवेत्तर्हि तस्मात्तव जन्मादिविकारो नियम्यत्वादिकं वा भवेत्तत्तु नास्तीत्याह-परं कारणमपरं कार्यम् । तत्र चैजज्जङ्गमम्, अनेजत्स्थावरं च तद्यवतिरिक्तं नास्ति । ननु मद्बोधकशास्त्रं व्यतिरिक्तमस्तीति चेन्न, यतो विद्या वेदोपवेदादिविद्यास्थानानि कलाश्च तदङ्गानि तवैव तनवो नतु त्वद्व्यतिरिक्ताः । तत्कुतः । यतस्त्वं वृहद्ब्रह्मैवासि। तदपि कुतस्तत्राह-हिरण्यरूपं ब्रह्माण्डं गर्भे यस्य सः । त्रिपृष्ठस्त्रिगुणात्मकस्य प्रधानस्य पृष्ठे परतः स्थितः । 'अक्षरात्परतः परः' इत्यादिश्रुते ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बातें कैसे हैं ? इस पर कहता है **त्वत्तः इत्यादि** अर्थात् आपसे भिन्न यदि कोई वस्तु होती तब तो उसके कारण आपमें जन्मादि विकार तथा नियम्यत्व आदि होते किन्तु कोई भी कारण और कार्य आपसे अतिरिक्त है नहीं कोई जड़ जङ्गम वस्तु भी भिन्न नहीं है । यदि आप कहे मेरा ज्ञान कराने वाला शास्त्र तो मुझसे भिन्न है ही तो ऐसी बात भी नहीं है क्योंकि वेद तथा उपवेद इत्यादि जितने भी विद्या स्थान हैं और जितनी भी कलाएँ हैं वे सब आपके शरीर हैं । अतएव वे भी आपसे भिन्न नहीं है । क्योंकि आप तो ब्रह्म ही हैं । यदि कहें कि यह भी कैस सम्भव है ? तो इसका पर वह कहता है यह हिरण्य रूप ब्रह्माण्ड आपके गर्भ में हैं और आप त्रिगुणात्मक प्रकृति से परे हैं । श्रुति भी कहती है अक्षरात् परतः परः ।।३२।।

व्यक्तं विभो स्थूलमिदं शरीरं येनेन्द्रियप्राणमनोगुणांस्त्वम् ।
भुङ्क्षे स्थितो धामनि पारमेष्ठ्य अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ।।३३।।

अन्वयः— हे विभो ! इदं व्यक्तं स्थूलम् शरीरम् येन त्वम् इन्द्रियः प्राण मनोगुणान् भुङ्क्षे, 'तदानीमपि त्वं' पारमेष्ठ्ये धामनि स्थितः पुराणः पुरुषः अव्यक्त आत्मा ।।३३।।

अनुवाद— हे प्रभो ! यह ब्रह्माण्ड आपका स्थूल शरीर है उसी के द्वारा आप इन्द्रिय प्राण और मन के विषयों का उपभोग करते हैं । किन्तु उस समय भी आप अपने सर्वश्रेष्ठ धाम में विराजमान रहते हैं । वस्तुतः आप पुराण पुरुष अव्यक्त आत्मा हैं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

ननु ब्रह्माण्डशरीरस्य जीवस्य मम कुतो ब्रह्मत्वं, कुतो वा ब्रह्माण्डगर्भत्वादि तत्राह-व्यक्तं कार्यमिदं तव शरीरम् । व्यक्तं सत्यमिति वा । येन शरीरेण त्वमिन्द्रियप्राणमनसां गुणान्विपयान्भुङ्क्षे । किंच पारमेष्ठ्ये पारमैश्वर्ये धामनि स्वरूपे स्थित एव भुङ्क्षे, न त्वस्मदादिवत्स्वरूपतिरोधानेन । अतस्त्वमव्यक्त आत्मा निरुपाधिर्ब्रह्मैव पुराणः पुरुपश्चेत्यर्थः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि ब्रह्माण्ड शरीरक मैं ब्रह्म अथवा ब्रह्माण्ड गर्भ कैसे हूँ ? तो इस पर कहता है कि यह कार्य वर्ग आपका शरीर है । अथवा व्यक्त का अर्थ सत्य है । इसी शरीर के द्वारा आप इन्द्रियों प्राण एवं मन के विषयों का भोग करते हैं । किन्तु उस समय भी आप अपने श्रेष्ठ धाम में ही विराजमान रहते हैं । हमलोगों के समान स्वरूप के तिरोधान हो जाने से नहीं । इसीलिए आप अव्यक्त आत्मा और पुराण पुरुष हैं ।।३३।।

अनन्ताव्यक्तरूपेण येनेदमखिलं ततम् । चिदचिच्छक्तियुक्ताय तस्मै भगवते नमः ।।३४।।

अन्वयः— येन अनन्ताव्यक्तरूपेण इदं ततम् चिदचिच्छक्ति युक्ताय तस्मै भगवते नमः ।।३४।।

अनुवाद— हे भगवन् ! आप अनन्त तथा अव्यक्त रूप से इस सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं, चेतन और अचेतन ये दोनों आपकी शक्तियां हैं । भगवन् ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

ननु ब्रह्मत्वं पुराणपुरुषत्वं कथमेकस्य तत्राह-अनन्त इति । हे अनन्त, येन त्वयाऽव्यक्तेन मनोवचनागोचरेण रूपेणेदं विश्वं ततं व्याप्तं तस्मै तुभ्यं भगवतेऽचिन्त्यैश्वर्याय नमः । भगवत्त्वे हेतुः-चिदचिच्छक्तियुक्ताय, चिच्छक्तिर्विद्या, अचिच्छक्तिर्माया, ताभ्यां युक्तायेति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि ब्रह्मत्व और पुराण पुरुषत्व दोनों एक ही व्यक्ति में कैसे हो सकते हैं तो इस पर अनन्त इत्यादि श्लोक कहता है हे अनन्त आप मन एवं वाणी के अविषय हैं । आप ही इस रूप से इस सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं । ऐसे अचिन्त्य ऐश्वर्य सम्पन्न आपको नमस्कार हैं । आप भगवान् इसलिए हैं कि सभी चेतन और अचेतन आपकी शक्ति हैं । यह चिच्छक्ति शब्द से विद्या तथा अचिच्छक्ति माया है । इन दोनों से आप युक्त हैं ।।३४।।

यदि दास्यस्यभिमतान्वरान्मे वरदोत्तम । भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मा भून्मम प्रभो ।।३५।।

अन्वयः— हे प्रभो ! यदि मे अभिमतानवरान् दास्यसि हे वरदोत्तम ! त्वद्विसृष्टेभ्यः भूतेभ्यः मम मृत्युः मा भूत्।।३५।।

अनुवाद— हे प्रभो यदि आप मुझे मेरे अभिमत वरदान को देना चाहते हैं तो फिर आपके द्वारा सृष्ट भूतों (जीवों) से मेरी मृत्यु न हो ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

नान्तर्बहिर्दिवा नक्तमन्यस्मादपि चायुधैः । न भूमौ नाम्बरे मृत्युर्न नरैर्न मृगैरपि ।।३६।।

अन्वयः— अन्तः ब्रहिः दिवा नक्तम् अन्यस्मात् आयुधैः अपि न। न भूमौ नाम्बरे न नरैः न मृगैः अपि मृत्युः न।।३६।।

अनुवाद— मेरी मृत्यु न बाहर हो न भीतर, न दिन में न रात में, किसी दूसरे आयुधों से भी न हो । न भूमि पर न आकाश में, और न मनुष्यों से न पशुओं से मेरी मृत्यु न हो ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

अन्यस्मात्त्वत्सृष्टव्यतिरिक्तादपि । अयुधैर्मृत्युर्मा भूत् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

आपके द्वारा रचित आयुधों से भिन्न आयुधों से भी न हो ।।३६।।

व्यसुभिर्वाऽसुमद्भिर्वा सुरासुरमहोरगैः । अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे ऐकपत्यं च देहिनाम् ।।३७।।

अन्वयः— व्यसुभि, असुमद्भिः वा, सुरासुरमहोरगैः, अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे एकपत्यं च देहिनाम् ।।३७।।

अनुवाद— निष्प्राणों अथवा प्राणवानों से, या देवता, असुर, महासर्पो से भी मेरी मृत्यु न हो । युद्ध में कोई मेरी सामना न कर सके और मैं समस्त शरीरधारियों का एकमात्र स्वामी होऊँ ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

व्यसुभिरप्राणैः । असुमद्भिः सप्राणैः । यथा आत्मनस्तवास्ति महिमा तथाऽप्रतिद्वन्द्वतादिकं देहीति शेषः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

प्राण हीन अथवा सप्राण किसी देवता, असुर तथा बड़े-बड़े सर्पो से भी मेरी मृत्यु न हो । जैसे आपकी महिमा है उसी तरह से युद्ध में मेरा कोई भी सामना न कर सके । इस तरह से आप मुझे अप्रतिद्वन्द्विता का वरदान दें ।।३७।।

सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथात्मनः । तपोयोगप्रभावाणां यन्न रिष्यति कर्हिचित् ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे हिरण्यकशिपोर्वरयाचनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अन्वयः— सर्वेषां लोकपालानाम् आत्मनः महिमा यथा तपो योग प्रभावाणां यन्नरिष्यति कर्हिचित् ॥३८॥

अनुवाद— सभी इन्द्रादि लोकपालों में जैसी आपकी अप्रतिम महिमा है उसी तरह मेरी भी महिमा हो। तपस्वियों और योगियों को जो अक्षय ऐश्वर्य प्राप्त है, वैसा ही मेरा भी एश्वर्य हो ॥३८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के हिरण्यकशिपु द्वारा वर की याचना नामक तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद समपूर्ण हुआ ।।३।।

भावार्थ दीपिका

तपसा योगेन च प्रभावो येषां तेषाम् । यदणिमाद्यैश्वर्यं न रिष्यति न नश्यति तच्च देहीत्यर्थः ।।३८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

तपस्या एवं योग के द्वारा जिन योगियों का अक्षय ऐश्वर्य होता है वैसा ही अक्षय ऐश्वर्य मुझे प्रदान करें॥३८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्यख्या सम्पूर्ण हुई ।।३।।

चौथा अध्याय

हिरण्यकशिपु के अत्याचार और प्रह्लाद के गुणों का वर्णन

नारद उवाच

एवं वृतः शतधृतिर्हिरण्यकशिपोरथ । प्रादात्तत्तपसा प्रीतो वरांस्तस्य सुदुर्लभान् ॥१॥

अन्वयः— एवं वृतः शतधृतिः हिरण्यकशिपोः तत तपसाप्रीतः तस्य सुदुर्लभान् वरान प्रादात् ॥१॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— हिरण्यकशिपु के द्वारा इस प्रकार के वरदारन के माँगे जाने पर उसकी तपस्या से प्रसन्न हुए ब्रह्माजी ने उसको अत्यन्त दुर्लभ वरदानों को प्रदान किया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्थे तु वराँल्लब्ध्वा विजित्याखिललोकपान् विष्णुद्वेषेण तान्सर्वान्दैत्येन्द्रः समपीडयत् । शतधृतिर्ब्रह्मा ॥१॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी से वरदान को प्राप्त करके सम्पूर्ण लोकपालों को जीतकर भगवान् विष्णु से द्वेष होने के कारण हिरण्यकशिपु उन सबों को दुःख देने लगा इस बात का वर्णन चौथें अध्याय में किया गया है । शतधृति का अर्थ ब्रह्माजी है ॥१॥

ब्रह्मोवाच

तातेमे दुर्लभाः पुंसां यान्वृणीषे वरान्मम । तथापि वितराम्यङ्ग वरान्यदपि दुर्लभान् ॥२॥

अन्वयः— हे तात ! यान वरान्मम वृणीषे पुसां दुर्लभाः तथापि हे अङ्ग वितरामि यदपि दुर्लभान् वरान् ॥२॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— वत्स ! तुम जिन वरदानों को माँग रहे हो वे मनुष्यों के लिए दुर्लभ हैं, किन्तु दुर्लभ होने पर भी मैं उन वरदानों को तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ ॥२॥

भावार्थ दीपिका

मम मत्तः । यदपि यद्यपीमे दुर्लभाः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

मम अर्थात् मुझसे, यद्यपि ये वरदान दुर्लभ हैं ॥२॥

ततो जगाम भगवानमोघानुग्रहो विभुः । पूजितोऽसुरवर्येण स्तूयमानः प्रजेश्वरैः ॥३॥

अन्वयः— ततः असुरवर्येण पूजितः भगवान् अमोघानुग्रहः विभुः प्रजेश्वरैः स्तूयमानः जगाम ॥३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् असुरवर्य हिरण्यकशिपु के द्वारा पूजित होकर ऐश्वर्य सम्पन्न तथा अमोघ वरदान प्रदान करने वाले समर्थ ब्रह्माजी प्रजापतियों के द्वारा स्तुति किए जाते हुए वहाँ से अपने लोक में चले गये ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अमोघोऽनुग्रहो यस्य । प्रजेश्वरैर्मरीच्यादिभिः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

जिनका वरदान कभी मिथ्या नहीं होता है ऐसे ब्रह्माजी मरीचि आदि महर्षियों से स्तुति किए जाते हुए अपने लोक में चले गये ॥३॥

एवं लब्धवरो दैत्यो बिभ्रद्धेममयं वपुः । भगवत्यकरोद्द्वेषं भ्रातुर्वधमनुस्मरन् ॥४॥

अन्वयः— एवं लब्ध वरः दैत्य; हेममयं वपुः विभ्रत् भ्रातुर्वधम् अनुस्मरन् भगवति द्वेषम् अकरोत् ॥४॥

अनुवाद— इस तरह से वरदान प्राप्त करके सुवर्ण के समान शरीर वाला हिरण्यकशिपु अपने भाई हिरण्याक्ष के वध का स्मरण करते हुए श्रीभगवान् से द्वेष करने लगा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

यदर्थं तपस्तप्तं तदाह-एवमित्यादिना ॥४॥

भाव प्रकाशिका

एवम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा हिरण्यकशिपु ने जिस उद्देश्य से तपस्या किया उस उद्देश्य को बतलाया गया है ॥४॥

स विजित्य दिशः सर्वा लोकाश्च त्रीन्महासुरः। देवासुरमनुष्येन्द्रान्गन्धर्वगरुडोरगान् ॥५॥
सिद्धचारणविद्याध्रानृषीन्पितृपतीन्मनून् । यक्षरक्षः पिशाचेशान्प्रेतभूतपतीनथ ॥६॥
सर्वसत्त्वपतीन् जित्वा वशमानीय विश्वजित्। जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा ॥७॥

अन्वयः— स महासुरः सर्वाः दिशः विजित्य, त्रीन् लोकान् च देवासुरमनुष्येन्द्रान् गन्धर्वगरुडोरगान्, सिद्धचारण

विद्याध्रान् ऋषीन् पितृपतीन् मनून् यक्षरक्षः पिशाचेशान् प्रेतभूतपतीन् अथ, सर्वसत्त्वपतीन् जित्वा वशम् आनीय विश्वभन् लोकपालानां तेजसा सह स्थानानि जहार ।।५-७।।

अनुवाद— उस महाअसुर ने समस्त दिशाओं, तीनों लोकों, देवताओं, असुरों, राजाओं, गन्धर्व, गरुड़, सर्प. सिद्धचारण विद्याधर ऋषि, पितरों के अधिपति, मनुओं, यक्ष राक्षस, पिशाचराज, प्रेत, भूतपति, तथा समस्त प्राणियों के राजाओं को जीतकर अपने वश में कर लिया । उस विश्वविजयी दैत्य ने देवताओं के तेज तथा स्थानों को भी छिन लिया ।।५-७।।

भावार्थ दीपिका

सर्वेषां सत्त्वानां प्राणिजातानां ये ये पतयस्तान् ।।५-७।।

भाव प्रकाशिका

सभी प्राणियों के स्वामियों को भी उसने जीतकर अपने वश में कर लिया ।।५-७।।

देवोद्यानश्रिया जुष्टमध्यास्ते स्म त्रिविष्टपम् । महेन्द्रभवनं साक्षान्निर्मितं विश्वकर्मणा ॥
त्रैलोक्यलक्ष्म्यायतनमध्युवासाखिलर्द्धिमत् ॥८॥

अन्वयः— देवोद्यानश्रिया जुष्टम् । त्रिविष्टपम् अध्यास्ते स्म साक्षात् विश्वकर्मणा निर्मित्तं महेन्द्रभवनं त्रैलोक्यलक्ष्म्यायतनम् अखिलर्द्धिमत अध्युवास ।।८।।

अनुवाद— नन्दनवन आदि की शोभा से युक्त स्वर्ग में रहने लगा । साक्षात् विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित इन्द्र का भवन जो त्रैलोक्य की शोभा से सम्पन्न था उसी में रहने लगा । वह सब प्रकार की सम्पत्ति से सम्पन्न था ।।८।।

भावार्थ दीपिका

त्रिविष्टपं स्वर्गमध्यास्तेस्माधिष्ठितवान् । तत्र स्वर्गेऽपि महेन्द्रभवनमध्युवासाधिवसति स्म् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

हिरण्यकशिपु स्वर्ग में ही रहने लगा और स्वर्ग में भी इन्द्र के भवन में ही रहने लगा ।।८।।

यत्र विद्रुमसोपाना महामारकता भुवः । यत्र स्फाटिककुड्यानि वैदूर्यस्तम्भपङ्क्तयः ॥९॥
यत्र चित्रवितानानि पद्मरागासनानि च । पयःफेननिभाः शय्या मुक्तादामपरिच्छदाः ॥१०॥

अन्वयः— यत्र विद्रुमसोपानाः महामारकता भुवः स्फटिककुड्यानि वैदूर्भस्तम्भपङ्क्तयः । यत्र चित्रवितानानि पद्मरागासनानि च, पयः फेननिभाः शय्याः मुक्तादाम परिच्छदाः ।।९-१०।।

अनुवाद— उस महल में मूङ्गे की सीढ़ियाँ पन्ने के फर्श, स्फाटिक मणियों की दिवारें, वैदूर्यमणि के स्तम्भों की पक्तियाँ, रङ्ग-विरङ्गे चंदोवां, पद्मरागमणि के आसन दूध के फेन के समान श्वेत वर्ण की शय्याएँ जिन पर मोती की झालरें सुशोभित हो रही थीं ।।९-१०।।

भावार्थ दीपिका

अखिलसमृद्धियुक्तत्वमेवाह=यत्रेति त्रिभिः । मुक्तादामानि परिच्छदाः परिकरा यासाम् ।।९-१०।।

भाव प्रकाशिका

यत्र इत्यादि तीन श्लोकों से सकल समृद्धि सम्पन्नता का ही वर्णन किया गया है । शय्याओं पर मोती की झालरें सुशोभित होती थीं ।।९-१०।।

कूजद्भिर्नूपुरैर्देव्यः शब्दयन्त्य इतस्ततः । रत्नस्थलीषु पश्यन्ति सुदतीः सुन्दरं मुखम् ॥११॥

अन्वयः— देव्यः कूजद्भिः नूपुरैः सुदतीदेव्यः इतस्ततः शब्दयन्त्यः रत्नस्थलीषु सुन्दरं मुखम् पश्यन्ति ॥११॥

अनुवाद— सर्वाङ्ग सुन्दरी अप्सराएँ अपने पैरों के पायल की रुन झुन करती हुई इधर उधर घूमती हुई रत्नमयी भूमि में कहीं-कहीं अपना सुन्दर मुख देखती थीं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

सुदतीः सुदत्यः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

सुदतीं: अर्थात् सुन्दर दन्त पंक्ति वाली अप्सराएँ ॥११॥

तस्मिन्महेन्द्रभवने महाबलो महामना निर्जितलोक एकराट् ।
रेमेऽभिवन्द्याङ्घ्रियुगः सुरादिभिः प्रतापितैरूर्जितचण्डशासनः ॥१२॥

अन्वयः— महाबलः महामनाः निर्जितलोक एकराट् सुरादिभिः वन्द्याङ्घ्रियुगः प्रतापितैरूर्जितचण्डशासनः तस्मिन् महेन्द्रभवने रेमे ॥१२॥

अनुवाद— महाबली महामनस्वी हिरण्यकशिपु सभी लोकों को जीतकर सबका एकच्छत्र सम्राट हो गया वह उसी इन्द्र के भवन में विहार करने लगा । उसका प्रशासन इतना कठोर था कि सभी देवता और दानव उसके चरणों की वन्दना करते थे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

ऊर्जितमधिकं चण्ऽतीव्रं शासनं यस्य ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अत्यधिक कठोर शासन वाला यह उर्जित चण्डशासन: का अर्थ है ॥१२॥

तमङ्ग मत्तं मधुनोरुगन्धिना विवृत्तताम्राक्षमशेषधिष्ण्यपाः ।
उपासतोपायनपाणिभिर्विना त्रिभिस्तपोयोगबलौजसां पदम् ॥१३॥

अन्वयः— अङ्ग उरुगन्धिना मधुना मत्तं तं विवृत्तताम्राक्षम् तपोयोगबलौजसां पदं त्रिभिः विना अशेषधिष्ण्यपाः उपायन पाणिभिः उपासत ॥१३॥

अनुवाद— हे युधिष्ठिर ! वह अत्यधिक गन्ध वाली मदिरा को पीकर सदा मत्त बना रहता था उसकी आँखें सदा लाल बनी रहती थीं वह तपस्या, योग तथा बल इन सबों का भण्डार था । ब्रह्मा विष्णु तथा महेश इन तीनों को छोड़कर सभी लोकपाल अपने हाथ में उपहार लेकर सदैव उसकी सेवा में लगे रहते थे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अङ्ग हे राजन्, उरुगन्धिनोग्रगन्धेन मधुना सुरया मत्तम् । अतएव विवृत्ते विघूर्णिते ताम्रे अक्षिणी यस्य तम् । अशेषधिष्ण्यपाः सर्वलोकपाला उपायनयुक्तैः पाणिभिरुपासत सेवन्ते । त्रिभिर्ब्रह्मविष्णुरुद्रैर्विना पदमाश्रयभूतम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

नारदजी कहते हैं कि राजन् युधिष्ठिर उस समय वह उत्कट गन्ध वाली मदिरा को पीकर सदा मत्त बना रहता था । अतएव उसकी मदमत्त नेत्र सदा लाल बने रहते थे । ब्रह्मा विष्णु और रुद्र को छोड़कर सभी लोकपाल हाथ में उपहार लेकर उसकी सेवा में लगे रहते थे ॥१३॥

जगुर्महेन्द्रासनमोजसा स्थितं विश्वावसुस्तुम्बुरुरस्मदादयः ।
गन्धर्वसिद्धा ऋषयोऽस्तुवन्मुहुर्विद्याधरा अप्सरसश्च पाण्डव ॥१४॥

अन्वयः— हे पाण्डव ! ओजसा महेन्द्रासनम् स्थितम् विश्वावसुः तुम्बुरु स्मदादयः जगु गन्धर्वसिद्धाः ऋषय विद्याधरा अप्सरः च मुहुः स्तुवन् ॥१४॥

अनुवाद— हे युधिष्ठिर ! जब वह बल पूर्वक इन्द्रासन पर बैठ गया उस समय विश्वावसु तुम्बुरु हमलोग भी गान गाते थे । गन्धर्व, सिद्ध, ऋषिगण, विद्याधर तथा अप्सराएँ उसकी बार-बार स्तुति करते थे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

उपासनप्रकारमाह-जगुरिति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

जगुः इत्यादि श्लोक से देवताओं द्वारा हिरण्यकशिपु की उपासना का प्रकार वर्णित है ॥१४॥

स एव वर्णाश्रमिभिः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः । इज्यमानो हविर्भागानग्रहीत्स्वेन तेजसा ॥१५॥

अन्वयः— वर्णाश्रमिभिः भूरिदक्षिणैः इज्यमानः स एव स्वेनतेजा हविर्भागम् अग्रहीत् ॥१५॥

अनुवाद— वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले लोग जो बहुत अधिक दक्षिणाओं वाले यज्ञों को करते थे उनकी आहुतियों को वह अपने तेज के द्वारा ग्रहण कर लेता था । उन आहुतियों का भाग देवताओं को नहीं मिल पाता था ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

अकृष्टपच्या तस्यासीत्सप्तद्वीपवती मही । तथा कामदुघा द्यौस्तु नानाश्चर्यपदं नभः ॥१६॥

अन्वयः— तस्य सप्तद्वीपवती मही अकृष्टपच्या आसीत् तथा द्यौः तु कामदुघा, नभः नानाश्चर्यपदं आसीत् ॥१६॥

अनुवाद— हिरण्यकशिपु का राज्य सातो द्वीपों में था । उसके राज्य की पृथिवी बिना जोते, बोए ही सबकुछ उत्पन्न करती थी । वह जो कुछ भी चाहता था अन्तरिक्ष से उसे प्राप्त हो जाता था । आकाश उसे अनेक प्रकार की आश्चर्य जनक वस्तुएँ दिखाकर उसका मनोरञ्जन किया करते थे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

रत्नाकराश्च रत्नौघांस्तत्पत्न्यश्चोहुरूर्मिभिः । क्षारसीधुघृतक्षौद्रदधिक्षीरामृतोदकाः ॥१७॥

अन्वयः— क्षारसीधु घृतक्षौद्र दधिक्षीरामृतोदकाः रत्नाकराः च तत्पत्न्यश्च, ऊर्मिभिः रत्नौघान् ऊहुः ॥१७॥

अनुवाद— इसी तरह क्षार, सुरा, घृत, इक्षुरस, दधि, दुग्ध, और मीठे पानी के समुद्र और उनकी पत्नियाँ (नदियाँ) अपनी तरङ्गों के माध्यम से उसको रत्नों का समूह समर्पित किया करते थे ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तत्पत्न्यो नद्यः । ऊहुर्वहन्ति स्म । रत्नाकरानेवाह-क्षारेति ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

क्षार इत्यादि के द्वारा सात समुद्रों के नाम को गिनाया गया है । **तत्पत्न्यः** शब्द से नदियों को कहा गया है । ऊहुः अर्थात् प्रदान करती थीं ॥१७॥

शैला द्रोणीभिराक्रीडं सर्वर्तुषु गुणान्द्रुमाः । दधार लोकपालानामेक एव पृथग्गुणान् ॥१८॥

अन्वयः— शैलाः द्रोणीभिः आक्रीडं द्रुमाः सर्वर्तुषु गुणान् एक एव लोकपालानाम् पृथग्गुणान्दधार ॥१८॥

अनुवाद— पर्वत अपनी घाटियों में उसके खेलने के लिए स्थान प्रदान करते थे, वृक्ष सभी ऋतुओं में फलते-फूलते थे । अकेला ही वह समस्त लोकपालों के विभिन्न गुणों को धारण करता था ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

आक्रीडं क्रीडास्थानम् । द्रुमाः सर्वेषु ऋतुषु गुणान्पुष्पफलादीन् । स च लोकपालानां पृथग्विधान्गुणान्वर्षणदहनशोषणादीनेक एव दधार ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

आक्रीड क्रीडा स्थान को कहते हैं । वृक्ष सभी ऋतुओं में फलते-फुलते थे । अकेला ही वह लोकपालों के वर्षण, दहन, शोषण आदि अनेक गुणों को धारण करता था ॥१८॥

स इत्थं निर्जितककुबेकराड्विषयान्प्रियान् । यथोपजोषं भुञ्जानो नातृप्यदजितेन्द्रियः ॥१९॥

अन्वयः— इत्थं निर्जितककुप् एकराट् सः प्रियान् विषयान् यथोपजोषं भुञ्जानः अजितेन्द्रियः स न अतृप्यत् ॥१९॥

अनुवाद— दिग्विजयी एकच्छत्र सम्राट हिरण्यकशिपु अपने को प्रिय लगने वाले विषयों का स्वच्छन्दता पूर्वक उपभोग करता था किन्तु वह जितेन्द्रिय नहीं था अतएव इतना होने पर भी उसको तृप्ति नहीं हुई ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

निर्जिताः ककुभो येन । यथोपजोषं यथाप्रीति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

निर्जितककुप् अर्थात् दिग्विजयी । यथोपजोषम् अर्थात् अपनी इच्छा भर ॥१९॥

एवमैश्वर्यमत्तस्य दृप्तसच्छास्त्रवर्तिनः । कालो महान्व्यतीयाय ब्रह्मशापमुपेयुषः ॥२०॥

अन्वयः— एवम् ब्रह्माशापम् उपेयुषः एश्वर्यमत्तस्य दृप्तस्य उच्छास्त्रवर्तिनः महान् कालः व्यतीयाय ॥२०॥

अनुवाद— इस प्रकार से सनकादिकों के शाप से ग्रस्त वह हिरण्यकशिपु ऐश्वर्य के मद से मत्त बना हुआ तथा घमण्ड में चूर था । वह शास्त्रों की मर्यादा का उल्लंघन करता था । इस तरह से उसके जीवन का बहुत अधिक समय बीत गया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

महान्कालः एकसप्ततियुगानि किंचिदधिकानि ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इकहत्तर युगों से अधिक का समय महान् काल शब्द से कहा गया है ॥२०॥

तस्योग्रदण्डसंविग्नाः सर्वे लोकाः सपालकाः । अन्यत्रालब्धशरणाः शरणं ययुरच्युतम् ॥२१॥

अन्वयः— तस्य उग्रदण्डसंविग्नाः सर्वे सपालकाः लोकाः अन्यत्र अलब्धशरणाः अच्युतम् शरणं ययुः ॥२१॥

अनुवाद— हिरण्यकशिपु के कठोर दण्ड से व्याकुल होकर अपने लोकपालों के साथ सभी लोक अन्यत्र कहीं भी त्राण नहीं पाकर भगवान् अच्युत के शरण में गये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

तस्यै नमोऽस्तु काष्ठायै यत्रात्मा हरिरीश्वरः । यद्गत्वा न निवर्तन्ते शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥२२॥

अन्वयः— तस्यै काष्ठायै नमोऽस्तु यत्रात्मा हरिः ईश्वरः, यद्गत्वा अमलाः, शान्ताः संन्यसिनः, न निवर्तन्ते ॥२२॥

अनुवाद— उस दिशा को नमस्कार है जिस दिशा में सर्वात्मा तथा सबों के नियामक श्रीहरि का निवास है । जिन श्रीहरि को प्राप्त करके निर्मल तथा संन्यासीजन पुनः इस संसार में नहीं आते हैं, इस तरह से देवताओं ने मन-ही-मन श्रीहरि को नमस्कार किया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

इति ते संयतात्मानः समाहितधियोऽमलाः । उपतस्थुर्हृषीकेशं विनिद्रा वायुभोजनाः ॥२३॥

अन्वयः— इति संयतात्मानः समाहितधियः अमलाः विनिद्राः वायुभोजनाः ते हृषीकेशम् उपतस्थुः ॥२३॥

अनुवाद— इस प्रकार से अपनी इन्द्रियों को संयमित करके तथा समाहित मन वाले निर्मल वे निद्रा का त्याग कर दिए तथा केवल वायु पीकर रहने वाले उन लोगों ने श्रीभगवान् हृषीकेश की स्तुति की ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

तेषामाविरभूद्वाणी अरूपा मेघनिःस्वना । संनादयन्ती ककुभः साधूनामभयङ्करी ॥२४॥

अन्वयः— तेषाम् मेघसन्निभा अरूपा साधूनामभयङ्करी ककुभः सन्नादयन्ती वाणी अविरभूत् ॥२४॥

अनुवाद— उन सबों को मेघ की ध्वनि के समान गम्भीर ध्वनि वाली रूप रहित, सज्जनों को निर्भय बना देने वाली दिशाओं को ध्वनित करती हुई निम्न प्रकार की वाणी सुनायी दीं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अरूपा वक्तृरहिता ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

जिसको कहने वाला कोई नहीं था ॥२४॥

मा भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां भद्रमस्तु वः । मद्दर्शनं हि भूतानां सर्वश्रेयोपपत्तये ॥२५॥

अन्वयः— विबुधश्रेष्ठाः मा भैष्ट वः सर्वेषांभद्रम् अस्तु । मद् दर्शनं हि भूतानां सर्वश्रेयोपपत्तये ॥२५॥

अनुवाद— हे श्रेष्ठ देवताओं ! तुमलोग डरो मत, तुम सबों का कल्याण हो, मेरा दर्शन सभी जीवों का कल्याण करने के लिए होता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

मम दर्शनं श्रवणं सर्वेषां श्रेयसामुपपत्तये भवति ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

मेरा श्रवण सभी जीवों का कल्याण करने के लिए होता है ॥२५॥

ज्ञातमेतस्य दौरात्म्यं दैतेयापसदस्य च । तस्य शान्तिं करिष्यामि कालं तावत्प्रतीक्षत ॥२६॥

अन्वयः— एतस्य दैतेयापसदस्य दौरात्म्यं ज्ञातम्, तस्य शान्तिं करिष्यामि तावत् कालं प्रतीक्षत ॥२६॥

अनुवाद— इस नीच दैत्य की दुष्टता का पता मुझे पहले से ही है । मैं इसका नाश करूँगा तब तक तुम लोग समय की प्रतीक्षा करो ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु । धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति ॥२७॥

अन्वयः— यदा, देवेषु, वेदेषु, गोषु, विप्रेषु, साधुषु, धर्मे मयि च विद्वेष; स वै आशु विनश्यति ॥२७॥

अनुवाद— जब वह देवताओं से वेदों से, गौओं से, ब्राह्मणों से, साधुओं से धर्म से तथा मुझसे द्वेष करेगा तो उसका शीघ्र ही विनाश हो जायेगा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने । प्रह्लादाय यदा द्रुह्येद्धनिष्येऽपि वरोर्जितम् ॥२८॥

अन्वयः— निर्वैराय, प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने, प्रह्लादाय यदा द्रुह्येत् वरोर्जितम् अपि हनिष्ये ॥२८॥

अनुवाद— जब वह वैर रहित, परम शान्त, महात्मा अपने पुत्र प्रह्लाद से द्वेष करेगा उस समय वरदान के कारण शक्ति सम्पन्न भी हिरण्यकशिपु को मैं मार दूँगा ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

ननु देवादिविद्वेषेऽप्यस्य विनाशो नास्ति, ब्रह्मवरेणोर्जितत्वात्तत्राह-निर्वैरायेति । सर्वमहं सहे न मद्भक्तद्रोहमिति भावः॥२८॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि वह देवों आदि से द्वेष करता ही है फिर भी उसका विनाश नहीं होता है क्योंकि ब्रह्माजी के वरदान से वह शक्ति सम्पन्न बना हुआ है । इस पर श्रीभगवान् ने **निर्वैराय० इत्यादि** श्लोक कहा अर्थात् मैं सब सह लेता हूँ किन्तु मेरा भक्त से जो द्रोह करता है, उसको मैं नहीं वर्दास्त करता हूँ ॥२८॥

नारद उवाच

इत्युक्ता लोकगुरुणा तं प्रणम्य दिवौकसः । न्यवर्तन्त गतोद्वेगा मेनिरे चासुरं हतम् ॥२९॥

अन्वयः— इति लोकगुरुणा उक्ता दिवौकसः तं प्रणम्य गतोद्वेगा न्यवर्तन्त, असुरं च हतं मेनिरे ॥२९॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— लोकगुरु श्रीभगवान् के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर देवगण श्रीभगवान् को प्रणाम करके तथा उद्विग्नता को त्यागकर लौट गये । उन देवताओं ने मान लिया कि अब हिरण्यकशिपु मर गया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

असुरं च हतं मेनिरे । तदानीं तद्द्वेषे प्रवृत्तत्त्वा दिति भावः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं ने मान लिया कि अब हिरण्यकशिपु मरने ही वाला है, क्योंकि हिरण्यकशिपु प्रह्लाद से वैर करने लगा था ॥२९॥

तस्य दैत्यपतेः पुत्राश्चत्वारः परमाद्भुताः । प्रह्लादोऽभून्महांस्तेषां गुणैर्महदुपासकः ॥३०॥

अन्वयः— तस्य दैत्यपतेः परम अद्भुताः चत्वारः पुत्रा असन् । तेषां प्रह्लादः महान् अद्भुत गुणैः महदुपासकः ॥३०॥

अनुवाद— उस दैत्यराज के चार अत्यन्त अद्भुत पुत्र थे । उन सबों में प्रह्लाद गुणों के कारण सबों से महान् थे वे महान् गुण सम्पन्न सन्तों के सेवक थे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तमेव द्वेषं वक्तुमादौ सुतस्य महत्त्वमाह तस्येति । गुणैर्महानभूत् । गुणानेवाह-महदुपासक इत्यादिना ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

प्रह्लाद के प्रति द्वेष का वर्णन करने के ही लिए पहले उनकी महिमा को वतलाते हैं । प्रह्लाद छोटे भी होकर अपने गुणों से महान थे । उनका गुण था कि वे महापुरुषों के उपासक थे ॥३०॥

ब्रह्मण्यः शीलसंपन्नः सत्यसन्धो जितेन्द्रियः । आत्मवत्सर्वभूतानामेकः प्रियसुहृत्तमः ॥३१॥

अन्वयः— ब्रह्मण्यः शीलसम्पन्नः सत्य सन्धःजितेन्द्रियः, सर्वभूतानाम् आत्मवत् एकः प्रियसुहृत्तमः ॥३१॥

अनुवाद— प्रह्लादजी ब्राह्मणों के भक्त, शील गुण सम्पन्न, सत्य प्रतिज्ञ, एवं जितेन्द्रिय थे । वे सभी प्राणियों के साथ अपने के ही समान वर्ताव करने वाले तथा एकमात्र प्रिय तथा सुहृद् थे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

सत्या सन्धा प्रतिज्ञा यस्य । एक एव प्रियश्च सुहृत्तमश्च ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

वे सत्यप्रतिज्ञ थे तथा एक मात्र प्रिय और सुहृत्तम थे ॥३१॥

दासवत्सन्नतार्याङ्घ्रि पितृवद्दीनवत्सलः । भ्रातृवत्सदृशे स्निग्धो गुरुष्वीश्वरभावनः ॥
विद्यार्थरूपजन्माढ्यो मानस्तम्भविवर्जितः ॥३२॥

अन्वयः— दासवत् सन्नतार्याङ्घ्रि पितृवद्दीनवत्सलः, सदृशे भ्रातृवत् स्निग्धः गरुषु ईश्वर भावनः विद्या-अर्थ-रूप-जन्माढ्यः मानस्तम्भविवर्जितः ॥३२॥

अनुवाद— बड़े लोगों के चरणों में दासों के समान झुककर रहते थे दीनदुखियों के प्रति वे पिता के समान वात्सल्य गुण सम्पन्न थे, अपने समान लोगों के भाई के समान स्नेहित बने रहते थे और अपने गुरुजनों में ईश्वर की भावना रखते थे । विद्या, धन, सौन्दर्य और कुलीनता से सम्पन्न होकर भी उनमें घमण्ड आदि का संस्पर्श भी नहीं था ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

दासवत्सम्यङ्नता आर्याणामङ्घ्रयो येन । गुरुषु ईश्वर इति भावना यस्य ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

बड़े लोगों के चरणों में दास के समान झुककर रहते थे । गुरुजनों को वे ईश्वर के समान मानते थे ॥३२॥

नोद्विग्नचित्तो व्यसनेषु निस्पृहः श्रुतेषु दृष्टेषु गुणेष्ववस्तुदृक् ।
दान्तेन्द्रियप्राणशरीरधीः सदा प्रशान्तकामो रहितासुरोऽसुरः ॥३३॥

अन्वयः— व्यसनेषु उद्विग्नचित्तो न, निःस्पृहः श्रुतेषु दृष्टेषु गुणेषु अवस्तुदृक इन्द्रियप्राणशरीरधीः दान्तः सदा प्रशान्तकामः रहितासुरः असुरः ॥३३॥

अनुवाद— वे कष्टों में कभी नहीं घबराते थे, उनके मन में किसी भी प्रकार की लालसा नहीं थे, लौकिक एवं पारलौकिक वस्तुओं को बहुत अधिक देखकर भी उनमें अवस्तु की बुद्धि रखते थे । उनके इन्द्रियाँ प्राण, शरीर और बुद्धि वश में थीं, उनके मन में कभी भी किसी वस्तु की कामना नहीं होती थी । जन्म से असुर जाति का होकर भी वे आसुरी सम्पत्ति से रहित थे ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

व्यसनेषु प्राप्तेष्वपि नोद्विग्नचित्तः दृष्टेषु श्रुतेषु गुणेषु विषयेषु निस्पृहः । यतस्तेष्ववस्तुदृक् । दान्ता इन्द्रियादयो यस्य। रहित आसुरो भावो मत्सरादिर्यस्य सः । असुरोऽपि सन् प्रशान्तकामः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

सङ्कटों के आने पर भी वे घबराते नहीं थे, श्रुत एवं दृष्ट लौकिक तथा पारलौकिक वस्तुओं को प्राप्त करने की उनमें लालसा नहीं थी, क्योंकि उन वस्तुओं में उनकी निःसारता की दृष्टि थी । उनकी इन्द्रियाँ आदि वश में थीं । वे मत्सर आदि आसुर भावों से रहित थे, असुर जाति का होकर भी उनकी सारी कामनाएँ शान्त थीं ।।३३।।

यस्मिन्महद्गुणा राजन्गृह्यन्ते कविभिर्मुहुः । न तेऽधुनापि धीयन्ते यथा भगवतीश्वरे ।।३४।।

अन्वयः— राजन् ! यस्मिन् महद्गुणाः कविभिः मुहुः गृह्यन्ते ते भगवति ईश्वरे यथा अधुना अपि न धियन्ते ।।३४।।

अनुवाद— जिन प्रह्लाद में विद्यमान महान गुणों को ज्ञानी पुरुष बार-बार ग्रहण करते हैं, वे गुण उन प्रह्लादजी में उसी प्रकार अनन्त हैं जिस तरह श्रीभगवान् के गुण अनन्त हैं । प्रह्लादजी में विद्यमान वे गुण आज भी तिरोहित नहीं होते हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

अधुनापि ते गुणा नापिधीयन्ते तिरोहिता न भवन्ति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

प्रह्लादजी के वे गुण आज भी तिरोहित नहीं होते हैं ।।३४।।

यं साधुगाथासदसि रिपवोऽपि सुरा नृप । प्रतिमानं प्रकुर्वन्ति किमुतान्ये भवादृशाः ।।३५।।

अन्वयः— हे नृप ! रिपवः अपि सुरा साधुगाथासदसि यं प्रतिमानं कुर्वन्ति अन्ये भवादृशाः किमुत ।।३५।।

अनुवाद— हे युधिष्ठिर ! प्रह्लादजी के शत्रु देवगण भी साधुपुरुषों के वर्णन के प्रसङ्ग में जिस प्रह्लादजी के दृष्टान्त के रूप में उपन्यस्त करके उनके गुणों को सुनते हैं तो फिर आप जैसे भगवद् भक्त के विषय में क्या कहना हैं ?।।३५।।

भावार्थ दीपिका

साधुगाथासदसि साधुकथाप्रसङ्गवत्यां सभायाम् । यं प्रह्लादम् । प्रतिमानं दृष्टान्तम् । रिपवोऽपि सुराः कुर्वन्ति, किं वक्तव्यं भवादृशा विष्णुभक्ताः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

साधु पुरुषों के चरित वर्णन की सभा में साधु पुरुषों की चर्चा के प्रसङ्ग में प्रह्लादजी को दृष्टान्त बनाकर उनके शत्रु देवता भी उनके चरित का समादर करते हैं तो फिर आप जैसे भगवद् भक्तों के विषय में क्या कहना है ।।३५।।

गुणैरलमसंख्येयैर्माहात्म्यं तस्य सूच्यते । वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः ।।३६।।

अन्वयः— यस्य वासुदेवे भगवति नैसर्गिकी रतिः तस्य असंख्येयें गुणैः तस्य अलं माहात्म्यं सूच्यते मयेतिशेषः।।३६।।

अनुवाद— नारदजी कहते हैं कि जिस प्रह्लादजी का भगवान् श्रीकृष्ण में स्वाभाविक प्रेम ही प्रह्लादजी के असंख्य गुणों में उनकी पर्याप्त महिमा को सूचित करता है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

सूच्यते मया केवलं द्योत्यते । सुष्ठु कथ्यत इति वा ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

सूच्यते अर्थात् मेरे द्वारा प्रकाशित किया जाता है अथवा अच्छी तरह कहा जाता है ।।३६।।

न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत्तन्मनस्तया । कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम् ॥३७॥

अन्वयः— व्यस्त क्रीडनकः बालः जडवत् तन्मनस्तया कृष्णग्रहगृहीतात्मा इदृशं जगत् न वेद ॥३७॥

अनुवाद— प्रह्लादजी बाल्यावस्था में क्रीड़ा के साधन खिलौनों का त्याग करके भगवान् के ध्यान में जड़ के समान तन्मय हो जाते थे । भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा रूपी ग्रह ने उनके हृदय को इस प्रकार अपनी ओर खीच लिया था कि उनको संसार का कुछ पता ही नहीं चलता था ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

नैसर्गिकरतेर्लिङ्गान्याह-न्यस्तक्रीडनक इति षड्भिः । तन्मनस्तया तदेकचित्तत्वेन ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् में उनके स्वाभाविक स्नेह के चिह्न को नारदजी ने **न्यस्तकीडनक० इत्यादि** छह श्लोकों में बतलाया है । तन्मयस्त या अर्थात् निरन्तर श्रीभगवान् का ही चिन्तन करने के कारण ॥३७॥

आसीनः पर्यटन्नश्नन् शयानः प्रपिबन्ब्रुवन् । नानुसंधत्त एतानि गोविन्दपरिरम्भितः ॥३८॥

अन्वयः— गोविन्द परिरम्भितः आसीनः, पर्यटन् अश्नन् शयानः प्रपिबन् एतानि न अनुसन्धत्ते ॥३८॥

अनुवाद— सर्वदा भगवान् गोविन्द के द्वारा आलिङ्गित प्रह्लादजी के बैठते, सोते, चलते, खाते-पीते समय भी इन सभी वस्तुओं का ध्यान नहीं रहता था कि मैं क्या कर रहा हूँ ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

एतान्यासनादीनि गोविन्देन परिरम्भित आत्मना एकीकृतः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् गोविन्द के द्वारा आलिङ्गित रहने के कारण उनको सोने-बैठने आदि का पता ही नहीं चलता था॥३८॥

क्वचिद्रुदति वैकुण्ठचिन्ताशबलचेतनः । क्वचिद्धसति तच्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित् ॥३९॥

अन्वयः— वैकुण्ठचिन्ताशबलचेतनः क्वचिद् रुदति, तच्चिन्ताह्लादः क्वचित् हसति, क्वचित् उद्गायति ॥३९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् हमें छोड़कर चले गये इस भावना से भूषित होकर वे कभी तो जोर-जोर से रोने लगते हैं कभी यह सोचकर कि श्रीभगवान् हमारे सामने आ गये यह सोचकर हँसने लगते थे, कभी श्रीभगवान् के ध्यान के माधुर्य का अनुभव करके जोर-जोर से गाने लग जाते थे ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

रुदति रोदिति रौति । वैकुण्ठस्य चिन्तया शबलःव्यामिश्रा क्षुभिता चेतना यस्य । तस्य चिन्तयाह्लादो यस्य ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का चिन्तन करने से उनसे दूर होने की भावना से वे रोने लगते थे और श्रीभगवान् के मिल जाने की भावना से प्रसन्न होकर हँसने और जोर-जोर से गाने लगते थे प्रह्लादजी ॥३९॥

नदति क्वाचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्यति क्वचित् । क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह ॥४०॥

अन्वयः— क्वचित् उत्कण्ठः नदति क्वचित् विलज्जो नृत्यति, क्वचित् तद्भावनायुक्तः तन्मयः अनुचकार ह ॥४०॥

अनुवाद— कभी उत्कण्ठावशात् वे चिल्लाने लगते थे और कहीं पर वे लज्जा का परित्याग करके नृत्य करने लगते थे । कभी तो वे श्रीभगवान् की भावना का युक्त होकर नृत्य करने लगते थे । कभी तो वे श्रीभगवान् की भावना से भरकर श्रीभगवान् का ही अनुसरण करने लगते थे ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

क्वचिदुत्कण्ठो मुक्तकण्ठः सन् अनुचकार तच्चेष्टादिकं स्वयं कृतवान् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

कभी वे उत्कण्ठित होकर मुक्त कण्ठ से श्रीभगवान् की लीलाओं को स्वयं करने लगते थे ।।४०।।

क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्वृतः । अस्पन्दप्रणयानन्दसलिलामीलितेक्षणः ।।४१।।

अन्वयः— क्वचित् संस्पर्श निर्वृतः उत्फलकः तुष्णीम् आस्ते आस्पन्दप्रणयानन्द सलिलामीलितेक्षणः ।।४१।।

अनुवाद— कभी मन ही मन श्रीभगवान् के कोमल संस्पर्श का अनुभव करके मौन होकर बैठे ही रहते थे । उस समय उनके शरीर में रोमाञ्च हो जाता था । और उनके अधखुले नेत्र प्रेमाश्रु से भर जाते थे ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

संस्पर्शस्तद्भावापत्तिस्तेन निर्वृतः । अस्पन्दः स्थिरो यः प्रणयस्तेन य आनन्दस्तेन यत्सलिलं तेन युक्ते आमीलिते ईषन्निमीलिते ईक्षणे यस्य सः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के स्पर्श जन्य आनन्द का अनुभव करके मौन हो जाना उनका श्रीभगवान् में स्थित प्रेम था उसके कारण उनके अधखुली नेत्रों में आँसू भर जाते थे ।।४१।।

स उत्तमश्लोकपदारविन्दयोर्निषेवयाऽकिंचनसङ्गलब्धया ।
तन्वन्परां निर्वृतिमात्मने मुहुर्दुःसङ्गदीनान्यमनः शमं व्यधात् ।।४२।।

अन्वयः— अकिञ्चन सङ्गलब्धया उत्तमश्लोकपदारविन्दयोः निषेवया सः आत्मनः परां निर्वृतिं तन्वन् दुःसङ्गदीनान्यमनः शमं मुहुःव्यधात् ।।४२।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों की भक्ति तो अकिञ्चन भक्तों की सङ्गति से ही प्राप्त होती है इसके द्वारा वे स्वयं मग्न तो रहते ही थे जिन दूसरे लोगों का कुसङ्ग के कारण मन दीन बना रहता था उन लोगों को भी वे बार-बार शान्ति प्रदान करते थे ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनः परां निर्वृतिं तन्वन् दुःसङ्गेन दीनस्यान्यस्यापि मनः शमं शान्तं व्यधात् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

स्वयम् अपने भी अत्यधिक शान्ति का अनुभव करते हुए दुःसङ्ग के कारण दूसरे दीन लोगों को भी वे शान्ति प्रदान करते थे ।।४२।।

तस्मिन्महाभागवते महाभागे महात्मनि । हिरण्यकशिपू राजन्नकरोदघमात्मजे ।।४३।।

अन्वयः— हे राजन् ! तस्मिन् महाभागवते महाभागे महात्मनि आत्मजे हिरण्यकशिपुः अघम् अकरोत् ।।४३।।

अनुवाद— हे राजन् ! युधिष्ठिर इस प्रकार के महाभागवत महाभाग्यवान् महात्मा अपने पुत्र के विषयमे हिरण्यकशिपु द्रोह करता था ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

अघं द्रोहमकरोत् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

हिरण्यकशिपु प्रह्लादजी से द्रोह करता था ।।४३।।

युधिष्ठिर उवाच

देवर्ष एतदिच्छामो वेदितुं तव सुव्रत । यदात्मजाय शुद्धाय पिताऽदात्साधवे ह्यघम् ॥४४॥

अन्वयः— हे दवर्षे ! हे सुव्रत ! तव एतद्वेदितुमिच्छामः यत् शुद्धया आत्मजाय साधवे पिता अघम् अदात् ॥४४॥

महाराज युधिष्ठिर ने कहा

अनुवाद— हे अखण्ड व्रत वाले देवर्षे नारदजी ! आप से हम यह जानना चाहते हैं कि शुद्ध स्वभाव वाले साधु अपने पुत्र से पिता होकर भी हिरण्यकशिपु ने क्यों द्रोह किया ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

प्रथमाध्यायान्ते पृष्टमेवार्थमतिविस्मयेन पुनः पृच्छति-देवर्ष इति । तव त्वत्तस्तव वाक्यमिति वा । साधवेऽघमदात् साधोर्द्रोहं कृतवानिति यदेतद्वेदितुं ज्ञातुमिच्छामः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

प्रथम अध्याय के अन्त में युधिष्ठिर ने जिस बात को पूछा था उसी बत को वे पुनः अत्यन्त आश्चर्यित होकर पूछते हैं । आपसे हम यह जानना चाहते हैं कि अपने साधु स्वभाव वाले पुत्र से हिरण्यकशिपु ने क्यों द्रोह किया ॥४४॥

पुत्रान्विप्रतिकूलान्स्वान्पितरः पुत्रवत्सलाः । उपालभन्ते शिक्षार्थं नैवाघमपरो यथा ॥४५॥

अन्वयः— विप्रतिकूलान् स्वान् पुत्रान् पुत्रवत्सलाः पितरः शिक्षार्थम् उपालभन्ते अपरः इव अघः नैव ॥४५॥

अनुवाद— यदि अपना पुत्र कोई विपरीत काम करता है तो पुत्र वत्सल पिता उसको शिक्षा देने के लिए डाँटते हैं शत्रु के समान उससे द्वेष नहीं करते हैं ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

उपालभन्ते आक्षिपन्ति । अघं तु नैव कुर्वन्ति । अपरः शत्रुरिव ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

उपालभन्ते अर्थात् डाँटते हैं, शत्रु के समान द्वेष नहीं ही करते हैं ॥४५॥

किमुतानुवशान्साधूंस्तादृशान्गुरुदेवतान् । एतत्कौतूहलं ब्रह्मन्नस्माकं विधम प्रभो ॥
पितुः पुत्राय यद्द्वेषो मरणाय प्रयोजितः ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अन्वयः— अनुवशान् साधून् तादृशान् गुरुदेवतान् किमुता हे ब्रह्मन् ! हे प्रभो अस्माकं एतत् कौतूहलं विधम् । यत् पितुः पुत्राय मारणाय द्वेषः प्रयोजितः ॥४६॥

अनुवाद— वशवर्ती साधु स्वभाव वाले प्रह्लाद के समान गुरुजनों में देवत्व की भावना करने वाले पुत्र के विषय में कोई कैसे द्वेष करेगा । हे ब्रह्मन् प्रभो ! हमारा यह कौतूहल है कि पिता ने अपने पुत्र को मार डालने का पाप क्यों किया इसे आप शान्त करें ॥४६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के प्रह्लाद चरित के अन्तर्गत चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अनुवशाननुकूलान् । साधून् अरागरोषान् । गुरुः पितैव देवता येषां तानुद्दिश्याघं न कुर्वन्तीति किमु वक्तव्यमित्यर्थः।

पुत्राय पुत्रमुद्दिश्य पितुर्द्वेषःपित्रा कृतो द्वेषः पुत्रस्य मरणार्थं प्रयोजितः प्रवर्तित इति यदेतत्कौतूहलं विधमापाकुरु । यद्वा यद्यस्मात्पुत्राय यो द्वेषः स पितुर्मरणाय प्रयोजितोऽत एतत्कौतूहलं विधमेत्यर्थः ॥४६॥

इति श्रीद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

अनुवशान् अर्थात् अनुकूल, राग तथा रोष से रहित अपने पिता को ही देवता मानने वाले, ऐसे पुत्र के प्रति कोई द्वेष नहीं करता है इस बात को क्या कहना है ? और ऐसे पुत्र से द्वेष वशात् उस को मारने का जो प्रयास पिता ने किया यह तो हमारा बहुत बड़ा कौतूहल है; इसको आप दूर करें । अथवा पुत्र के प्रति किया गया द्वेष ही पिता की मृत्यु का कारण बन गया हमारे इस कौतूहल को आप दूर करें ॥४६॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के चौथे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥४॥

* * *

पाँचवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपु के द्वारा प्रह्लादजी को मारने का प्रयास

नारद उवाच

पौरोहित्याय भगवान्वृतः काव्यः किलासुरैः । शण्डामर्कौ सुतौ तस्य दैत्यराजगृहान्तिके ॥१॥

अन्वयः— असुरैः किल भगवान् काव्यः पौरोहित्याय वृतः तस्य शण्डामर्कौ द्वौ सुतौ दैत्यराजगृहान्तिके न्यवसातामिति शेषः ॥१॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— असुरों ने भगवान् शुक्राचार्य का पौरोहित्य कर्म करने के लिए वरण किया, शुक्राचार्य के शण्ड और आमर्क नामक दो पुत्र दैत्यराज हिरण्यकशिपु के गृह के सन्निकट में रहते थे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चमे गुरुतोऽधीतं त्यक्त्वा विष्णुस्तुतौ रतम् । घातयन्द्विपसर्पाद्यैः सुतं दैत्यो न चाशकत् । भगवद्भक्तिरेव विद्वेषे कारणमिति वक्तुमाह-पौरोहित्यायेत्यादिना । काव्यः शुक्रः । अतस्तस्य सुतौ दैत्यराजगृहान्तिके न्यवसतामिति शेषः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

पाञ्चवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि गुरु के द्वारा पढायी गयी बातों को छोड़कर भगवान् विष्णु की स्तुति करने वाले अपने पुत्र प्रह्लाद को हाथी तथा सर्प आदि से मरवाने में हिरण्यकशिपु समर्थ नहीं हुआ। श्रीभगवान् की भक्ति की विद्वेष का कारण था इस बात को कहने के लिए पौरोहित्य इत्यादि श्लोक को पढा गया है । काव्य शुक्राचार्य का नाम है । अतएव शुक्राचार्य के दो पुत्र दैत्य राज्य के गृह के सन्निकट रहते थे ॥१॥

तौ राज्ञा प्रापितं बालं प्रह्लादं नयकोविदम् । पाठयामासतुः पाठ्यानन्यांश्चासुरबालकान् ॥२॥

अन्वयः— तौ राज्ञा प्रापित नयकोविदं बालं प्रह्लादं अन्यान च आसुर बालकान् पाठयामास तुः ॥२॥

अनुवाद— हिरण्यकशिपु के द्वारा भेजे गये नीति निपुण प्रह्लाद को तथा दूसरे पढाये जाने वाले असुरों के बालकों को पढ़ाते थे ॥२॥

पाँचवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपु के द्वारा प्रह्लादजी को मारने का प्रयास

नारद उवाच

पौरोहित्याय भगवान्वृतः काव्यः किलासुरैः । शण्डामर्कौ सुतौ तस्य दैत्यराजगृहान्तिके ॥१॥

अन्वयः— असुरैः किल भगवान् काव्यः पौरोहित्याय वृतः तस्य शण्डामर्कौ द्वौ सुतौ दैत्यराजगृहान्तिके न्यवसातामिति शेषः ॥१॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— असुरों ने भगवान् शुक्राचार्य का पौरोहित्य कर्म करने के लिए वरण किया, शुक्राचार्य के शण्ड और आमर्क नामक दो पुत्र दैत्यराज हिरण्यकशिपु के गृह के सन्निकट में रहते थे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चमे गुरुतोऽधीतं त्यक्त्वा विष्णुस्तुतौ रतम् । घातयन्द्विपसर्पाद्यैः सुतं दैत्यो न चाशकत् । भगवद्भक्तिरेव विद्वेषे कारणमिति वक्तुमाह-पौरोहित्यायेत्यादिना । काव्यः शुक्रः । अतस्तस्य सुतौ दैत्यराजगृहान्तिके न्यवसतामिति शेषः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

पाञ्चवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि गुरु के द्वारा पढायी गयी बातों को छोड़कर भगवान् विष्णु की स्तुति करने वाले अपने पुत्र प्रह्लाद को हाथी तथा सर्प आदि से मरवाने में हिरण्यकशिपु समर्थ नहीं हुआ। श्रीभगवान् की भक्ति की विद्वेष का कारण था इस बात को कहने के लिए पौरोहित्य इत्यादि श्लोक को पढा गया है । काव्य शुक्राचार्य का नाम है । अतएव शुक्राचार्य के दो पुत्र दैत्य राज्य के गृह के सन्निकट रहते थे ॥१॥

तौ राज्ञा प्रापितं बालं प्रह्लादं नयकोविदम् । पाठयामासतुः पाठ्यानन्यांश्चासुरबालकान् ॥२॥

अन्वयः— तौ राज्ञा प्रापित नयकोविदं बालं प्रह्लादं अन्यान च आसुर बालकान् पाठयामास तुः ॥२॥

अनुवाद— हिरण्यकशिपु के द्वारा भेजे गये नीति निपुण प्रह्लाद को तथा दूसरे पढाये जाने वाले असुरों के बालकों को पढ़ाते थे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

पाठ्यान्दण्डनीत्यादीन् । पाठ्यानसुरबालकानीति वान्वयः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

पढायी जाने योग्य दण्डनीति को अथवा पढाये जाने योग्य असुर वालकों को पढाते थे ।।२।।

यत्तत्र गुरुणा प्रोक्तं शुश्रुवेऽनुपपाठ च । न साधु मनसा मेने स्वपरासद्ग्रहाश्रयम् ।।३।।

अन्वयः— यत् तत्र गुरुणा प्रोक्तं शुश्रुवे अनुपपाठ च न साधुमनसामेने स्वपरासद्ग्रहाश्रयम् ।।३।।

अनुवाद— गुरू के द्वारा जो कहा जाता था प्रह्लाद उसको सुनते थे और उससे पढ़ते भी थे, किन्तु वे उन बातों को मन से अच्छा नहीं मानते थे, क्योंकि वह अपना और पराया रूपी असत् दुराग्रह का अश्रय था।।३।।

भावार्थ दीपिका

अनु श्रवणानन्तरं तथैव पपाठ च किंतु तत्साधु न मेने । तत्र हेतुः-स्वः पर इत्यसद्ग्रहो मिथ्याभिनिवेश एवाश्रयो यस्य तत् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

प्रह्लाद गुरु के पढ़ाये पाठ को सुनकर उसी तरह से पढते भी थे किन्तु वे उसको मन से अच्छा नहीं मानते थे क्योंकि वह अपना तथा पराया रूप मिथ्या अभिनिवेश का आश्रय था ।।३।।

एकदाऽसुरराट् पुत्रमङ्कमारोप्य पाण्डव । पप्रच्छ कथ्यतां वत्स मन्यते साधु यद्भवान् ।।४।।

अन्वयः— हे पाण्डव एकदा असुरराट् पुत्रम् अङ्कमआरोप्य पप्रच्छ वत्स यद् भवान् साधु मन्यते तत् कथ्यताम्।।४।।

अनुवाद— हे युधिष्ठिर ! एक बार दैत्यराज हिरण्यकशिपु अपने पुत्र प्रह्लाद को अपनी गोद में बैठाकर कहे हे वत्स जो तुम अच्छा समझते हो उसे सुनाओ ।।४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४।।

प्रह्लाद उवाच

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ।
हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ।।५।।

अन्वयः— हे असुरवर्य असद्ग्रहात् सदासमुद्विग्नधियां देहिनां तत् साधु मन्ये आत्मपातं अन्धकूपं गृहं हित्वा वनं गत्वा यत् हरिम् । आश्रयेत् ।।५।।

प्रह्लादजी ने कहा

अनुवाद— हे असुरों में श्रेष्ठ ! पिता श्री संसार के प्राणी मैं और मेरे इस मिथ्या आग्रह में पड़कर सदैव उद्विग्न बने रहते हैं । ऐसे प्राणियों के लिए मैं यही अच्छा समझता हूँ कि वे अपने अधः पतन कारणभूत अंधे कूप के समान गृह का परित्याग करके वन में चले जायँ और श्रीहरि का शरण ग्रहण करें ।।५।।

भावार्थ दीपिका

हे असुरवर्य, असद्ग्रहादहंममेति मिथ्याभिनिवेशाद्धेतोः सम्यगुद्विग्ना विषाण्णा धीर्येषां ते । वनं गतः सन्हरिमाश्रयंतीति यत्तदेवाहं साधु मन्ये । कथंभूतं गृहम् । आत्मपातमात्मनोऽधःपातनिमित्तम् । कुतः । अन्धकूपवन्मोहावहम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

हे असुरश्रेष्ठ ! अहंकार और ममकार रूपी मिथ्या अभिनिवेश के कारण संसारी जीव सदा उद्विग्न बने रहते हैं । वे आत्मा के अध: पतन के साधनभूत औंधे कुएँ के समान गृह का परित्याग करके वन में चले जायँ और श्रीहरि के शरण को ग्रहण करें ॥५॥

नारद उवाच

श्रुत्वा पुत्रगिरो दैत्यः परपक्षसमाहिताः । जहास बुद्धिर्बालानां भिद्यते परबुद्धिभिः ॥६॥

अन्वयः— परपक्ष समाहिताः पुत्रगिरः श्रुत्वा जहास परबुद्धिभिः बालानां बुद्धिः भिद्यते ॥६॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— शत्रु के पक्ष की प्रशंसा युक्त अपने पुत्र की बातों को सुनकर हिरण्यकशिपु जोर से हँसा और कहा दूसरों के बहकाने से बच्चों की बुद्धि ही बिगड़ जाती है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

परपक्षे विष्णौ समाहिता; परिनिष्ठताः । हासे हेतुः-बुद्धिरिति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् विष्णु की भक्ति से युक्त । उसके हँसने का कारण है कि दूसर के बहकाने से बच्चों की बुद्धि विगड़ जाती है ॥६॥

सम्यग्विधार्यताम् बालो गुरुगेहे द्विजातिभिः । विष्णुपक्षैः प्रतिच्छन्नैर्न भिद्येतास्य धीर्यथा ॥७॥

अन्वयः— बालः सम्यग्विधार्यताम् यथा गुरुगेहे विष्णु पक्षैः प्रतिच्छन्नैः द्विजातिभिः अस्य धीः न भिद्येत ॥७॥

अनुवाद— बालक की अच्छी तरह से देखरेख रखी जाय जिससे कि गुरु के घर वेष बदलकर रहने वाले विष्णु पक्षीय ब्राह्मणों के द्वारा इसकी बुद्धि बहकावे में नहीं आये ॥७॥

भावार्थ दीपिका

विष्णुपक्षैर्भागवतैर्हेतुभूतैः । ननु त्वद्गृहे कुतस्तेषां प्रवेशः । सत्यम्, तथापि प्रतिच्छन्नैर्वेषान्तरेण छन्नैः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

विष्णु के पक्ष वाले भागवतों द्वारा इसकी बुद्धि बहकाने में न आये । प्रश्न है कि आपके घर में भागवतों का कैसे प्रवेश हो गया ? सत्य कहते हो वे वेष बदलकर छिपे हुए रहते हैं ॥७॥

गृहमानीतमाहूय प्रह्लादं दैत्ययाजकाः । प्रशस्य श्लक्ष्णया वाचा समपृच्छन्त सामभिः ॥८॥

अन्वयः— गृहमानीतं प्रह्लादम् आहूय दैत्ययाजकाः प्रशस्य श्लक्षणया वाचा सामभिः समपृच्छन्त ॥८॥

अनुवाद— दैत्यों द्वारा गुरु के घर पहुँचा दिए जाने पर हिरण्यकशिपु के पुरोहित ने प्रह्लादको बहुत पुचकार कर मधुर वाणी से पूछा ॥८॥

भावार्थ दीपिका

दैत्यैर्गृहमानीतम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

दैत्यों द्वारा घर पहुँचा दिए गये ॥८॥

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते सत्यं कथय मा मृषा । बालानति कुतस्तुभ्यमेष बुद्धिविपर्ययः ॥९॥

अन्वयः— वत्स प्रह्लाद ते भद्रम् सत्यं कथय मृषा माकथय, तुभ्यम् एषः बुद्धिविपर्ययः कुतः बालानति ।

अनुवाद वत्स प्रह्लाद तुम्हारा कल्याण हो, तुम सत्य कहना, झूठ मत बोलना तुम्हारी यह उल्टी हो गयी ? दूसरे बालकों की तो ऐसी बुद्धि नहीं है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

बालान्सर्वानति अतिक्रम्य । तुभ्यं तव ॥९॥

भाव प्रकाशिका

सभी बालकों का अतिक्रमण करके तुम्हारी बुद्धि उल्टी कैसे हो गयी ?॥९॥

बुद्धिभेदः परकृत उताहो ते स्वतोऽभवत् । भण्यतां श्रोतुकामानां गुरूणां कुलनन्दन ॥१०॥

अन्वयः— हे कुलनन्दन ! बुद्धि भेदः परकृतः उताहो ते स्वतः अभवत् । श्रोतुकामानां गुरूणां भण्यताम् ॥१०॥

अनुवाद— कुलनंदन प्रह्लाद तुम्हारी इस तरह की उल्टी बुद्धि किसी दूसरे ने तुम्हारी कर दी है, अथवा तुम्हारी बुद्धि अपने आप ऐसी हो गयी है, तुम्हारे गुरुजन हमलोग इस बात को सुनना चाहते हैं, बोलो ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

प्रह्लाद उवाच

स्वः परश्चेत्यसद्ग्राहः पुंसां यन्मायया कृतः । विमोहितधियां दृष्टस्तस्मै भगवते नमः ॥११॥

अन्वयः— यन्मायया मोहितधियां पुंसां स्वः परश्च इत्यसद्ग्राहः दृष्टः तस्मै भगवते नमः ॥११॥

प्रहलादजी ने कहा

अनुवाद— जिन मनुष्यों की बुद्धि मोह से ग्रस्त हो रही है उन्हीं को भगवान् की माया से यह झूठा दुराग्रह होता है । यह देखा गया है कि यह अपना है और यह पराया है । उन माया के स्वामी श्रीभगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अहो मायामोहिता भवन्तो मामाक्षिपन्तीत्याशयेन तावदाह-स्वः परश्चेति मिथ्याभिनिवेशो यदीयया माययैव कृतो न तु वास्तवः । अतएव तदीयया मायया विमोहितबुद्धीनां भवतामेव दृष्टो नतु मम । तस्मै अचिन्त्यमायेश्वराय नमः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

अरे आपलोग माया से मोहित हैं और मुझ पर आक्षेप करते हैं, इसी अभिप्राय से प्रह्लादजी स्वः परश्च इत्यदि श्लोक कहते हैं । जिन श्रीभगवान् की माया से अपना और पराये का मिथ्या अभिनिवेश होता है वह अभिनिवेश वास्तविक नहीं है । उन श्रीभगवान् की माया से आपलोगों की बुद्धि मोहित हो गयी है । अतएव मेरी बुद्धि मोहित नहीं है । इस प्रकार के अचिन्त्य माया वाले श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥११॥

स यदानुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते । अन्य एष तथान्योऽहमिति भेदगताऽसती ॥१२॥

अन्वयः— स यदा अनुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिः विभिद्यते अन्य एष अन्यः अहम् इति भेदगता असती ॥१२॥

अनुवाद— जब श्रीभगवान् अनुकूल होते हैं तब यह मैं हूँ और यह दूसरा है, इस प्रकार की असत्य पशु बुद्धि विनष्ट हो जाती है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अहो किमेतत्प्रलपसि तव बुद्धिभेदो यतो जातस्तं कथयेत्याक्षिप्तः संस्तत्प्रसादादेवेत्युत्तरमाह-स इति त्रिभिः । स भगवान्यदाऽनुव्रतोऽनुकूलो भवति, तदा पशूनामविवेकिनामिव बुद्धिर्भेदगता असती मिथ्या संसारविषया विभिन्नं अभिन्नात्मनिष्ठा भवति ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

अरे यह क्या कह रहे हो तुमको बुद्धि भेद पैदा हो गया है । वह बुद्धि जिससे उत्पन्न हुई हो उसको बतलाओ। इस तरह से गुरु द्वारा आक्षिप्त किए जाने पर प्रह्लादजी ने **स यदा० इत्यादि** तीन श्लोकों से बतलाया कि यह श्रीभगवान् की कृपा से ही हुआ है । जब परमात्मा अनुकूल होते हैं तब ही अविवेकियों के समान भेदमयी बुद्धि जो संसार विषयिणी है, वह विनष्ट हो जाती हैं ।।१२।।

स एष आत्मस्वपरेत्यबुद्धिभिर्दुरत्ययानुक्रमणो निरूप्यते ।
मुह्यन्ति यद्वर्त्मनि वेदवादिनो ब्रह्मादयो ह्येष भिनत्ति मे मतिम् ।।१३।।

अन्वयः— स एष आत्मा, स्वपरा इति अबुद्धिभिः निरूप्यते, यद्वर्त्मनि वेदवादिनः ब्रह्मादयः मुह्यन्ति, एष मे मतिम् भिन्नति ।।१३।।

अनुवाद— वे ही परमात्मा आत्मा हैं अज्ञानी पुरुष उसमें स्व एवं पर का भेद करके वर्णन करते हैं । उस परमात्म तत्त्व को जानना अत्यन्त कठिन है । ब्रह्मा इत्यादि बड़े-बड़े वेदज्ञ पुरुषों को भी परमात्म तत्त्व के विषय में मोह हो जाता है । आपलोगों के शब्दों में वे ही परमात्मा मेरी बुद्धि को विगाड़ रहे हैं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

भेदस्यासत्त्वं दर्शयन्नाह-स एष परमात्मैव स्वः पर इति चाविवेकिभिर्निरूप्यते । युक्तं चैतत् । यतो यस्य वर्त्मनि जिज्ञासायां ब्रह्मादयोऽपि मुह्यन्ति । तत्र हेतुः-दुरत्ययं दुर्घटमनुक्रमणमनुचरितमनुवर्णनं वा यस्य ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से भेद के अभाव का ही वर्णन करते हुए प्रह्लादजी कहते हैं वे परमात्मा ही आत्मा हैं । अज्ञानी जीव उनमें ही स्व एवं पर का भेद करके वर्णन करते हैं । ऐसा होना उचित भी है । क्योंकि उस परब्रह्म के विषय में तो ब्रह्मा इत्यादि बड़े-बड़े वेदवादियों को भी भ्रम हो जाता है । क्योंकि उस परमात्मा का वर्णन करना अत्यन्त कठिन है ।।१३।।

यथा भ्राम्यत्ययो ब्रह्मन् स्वयमाकर्षसंनिधौ । तथा में भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया ।।१४।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! यथा आकर्षसन्निधौ स्वयम् अयः भ्राम्यति तथा मे चेतः चक्रपाणेः यदृच्छया भिद्यते ।।१४।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! जिस तरह चुम्बक के पास लोहा स्वयं खिच आता है उसी तरह भगवान् चक्रपाणि की स्वच्छन्द इच्छा शक्ति से मेरा चित्त भी संसार से अलग होकर उनकी ओर बरवस खिंच जाता है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

ननु निर्विकारस्य कथं मतिभेदकत्वं तत्राह-यथेति । यथा अयो लोहमाकर्षस्यायस्कान्तस्य समीपे स्वयमेव भ्रमति तथा मे चेतश्चक्रपाणेः संनिधौ । तव कुतो जातस्तत्संनिधिस्तत्राह-यदृच्छयेति । कस्य तपोदानादेः फलमेतदिति न ज्ञायत इत्यर्थः।।१४।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि परमात्मा तो निर्विकार हैं वे तुम्हारे में भेद कैसे उत्पन्न कर सकते हैं तो इस पर प्रह्लादजी कहते हैं कि जिस तरह चुम्बक के पास लोहा स्वयं खिंचकर आ जाता है उसी तरह भगवान् चक्रपाणि के सन्निकट

मेरी बुद्धि अपने आप खिंचकर चली जाती है । यदि आप पूछे कि उनसे तुम्हारा सन्निधान कैसे हुआ ? तो इ
पर कहते हैं यह किसकी तपस्या और दान आदि का फल है, यह मैं नहीं जनता हूँ ॥१४॥

नारद उवाच

एतावद्ब्राह्मणायोक्त्वा विरराम महामतिः । तं निर्भर्त्स्याथ कुपितः स दीनो राजसेवकः ॥१५॥

अन्वयः— महामतिः ब्राह्मणाय एतवद् उक्त्वा विरराम सः कुपितः दीनः राजसेवकः तं निर्भर्त्स्य अथ आहेतिशेषः॥१५॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— परमज्ञानी प्रह्लाद अपने गुरु जी से इतना कहकर चुप हो गये । बेचारे पुरोहित तो राजा के सेवक और पराधीन थे । वे प्रह्लादजी को बहुत डाँटे और कहे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

राजसेवक उवाचेति शेषः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

राजसेवक पुरोहित ने कहा ॥१५॥

आनीयतामरे वेत्रमस्माकमयशस्करः । कुलाङ्गारस्य दुर्बुद्धेश्चतुर्थोऽस्योदितो दमः ॥१६॥

अन्वयः— अरे वेत्रम् आनीयताम् अयम् अस्माकम् अयशस्करः कुलाङ्गारस्य अस्य दुर्बुद्धेः इह चतुर्थः दम उदितः॥१६॥

अनुवाद— अरे कोई मेरा बेंत तो लाओ, यह हमलोगों की कीर्ति में कलङ्क लगाने वाला है, उस कुलाङ्गार दुर्वुद्धि को ठीक करने के लिए चतुर्थ उपाय दण्ड देनाही उचित होगा ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

अरे वेत्रं आनीयताम् । सामदानभेददण्डानां मध्ये चतुर्थो दमो दण्डोऽस्य दुर्बुद्धेरुदित उक्तः शास्त्रेषु । दुर्बुद्धित्वे हेतुः कुलाङ्गारस्य कुलस्याङ्गारवन्नाशहेतोः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

उस राजपुरोहित ने कहा कि मेरा बेंत लाओ । सामादान भेद और दण्ड इन चार उपायों में से इसको दण्ड देना ही उचित होगा । क्योकि यह दुर्वुद्धि है । दुबुर्द्धि के कारण वंश विनाशक है ॥१६॥

दैतेयचन्दनवने जातोऽयं कण्टकद्रुमः । यन्मूलोन्मूलपरशोर्विष्णोर्नालायितोऽर्भकः ॥१७॥

अन्वयः— दैतेयचन्दनवने, अयं कण्टकद्रुमः जातः, यन्मूलोन्मूलपरशोः विष्णोः नालायितः अर्भकः ॥१७॥

अनुवाद— दैत्यों का वंश चन्दन वृक्ष के समान है । इस वंश में यह बबूल जम गया है । इस दैत्य वंश को कुल्हाड़ी के समान काटने का काम विष्णु करते हैं और यह उस विष्णु का सहायक हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तत्कुतस्तत्राह दैतेया एव चन्दनद्रुमास्तेषां वनेऽयं कण्टकद्रुमतुल्यो जातः । तदेवाह-यस्य दैतेयचन्दनवनस्य मूलोन्मूलने परशुस्थानीयस्य विष्णोरयमर्भक एव नालायितो नालमिवाचरत् । यथा परशोश्छेदकत्वे बब्बूलादिद्रुमनिर्मितो दण्डः सहकारी तं बिना छेदनासंभवात्तथायं विष्णोर्दैत्यमूलोच्छेदे हेतुर्जात इत्यर्थः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि यह दैत्यवंश का विनाशक कैसे है ? तो इस पर कहते हैं । दैत्य चन्दन के समान

हैं उनके वंश में यह बबूल पैदा हो गया है। उस दैत्य वंश को विनष्ट करने का काम कुल्हाड़ी के समान भगवान् विष्णु है। यह उन कुल्हाड़ी रूप विष्णु के नाल (बेंट) के समान उनका सहायक है ॥१७॥

इति तं विविधोपायैर्भीषयंस्तर्जनादिभिः । प्रह्लादं ग्राहयामास त्रिवर्गस्योपपादनम् ॥१८॥

अन्वयः— इति विविधोपायैः तर्जनादिभिः भीपयन् प्रह्लादं तं त्रिवर्गस्योपपादनम् ग्राहयामास ॥१८॥

अनुवाद— इस तरह अनेक प्रकार के उपायों से प्रह्लाद को भयभीत करते हुए राजपुरोहित ने धर्म, अर्थ और काम की शिक्षा दी ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

इति तं प्रह्लादं भीषयन्धर्मार्थकामवर्गस्य प्रतिपादकं शास्त्रमध्यापयामास ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से प्रह्लादजी को भयभीत करते हुए राजपुरोहित ने उनको धर्म, अर्थ और काम के प्रतिपादक शास्त्रों का अध्ययन कराया ॥१८॥

तत एनं गुरुर्ज्ञात्वा ज्ञातज्ञेयचतुष्टयम् । दैत्येन्द्रं दर्शयामास मातृमृष्टमलंकृतम् ॥१९॥

अन्वयः— ततः ज्ञातज्ञेयं ज्ञात्वा गुरुः मातृमृष्टम् अलंकृतं एनं दैत्येन्द्रं दर्शयामास ॥१९॥

अनुवाद— उसके पश्चात् गुरुजी ने जब जान लिया कि प्रह्लाद साम, दान, दण्ड और भेद सम्वन्धी सारी बातों को जान लिए हैं तब वे प्रह्लादजी को उनकी माता के पास ले गये। इसके पश्चात् जब उनकी माता ने उनको स्नानादि कराकर आभूषणों से सजा दिया तो वे प्रह्लादजी को दैत्यराज हिरण्यकशिपु के पास ले गये ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञातं ज्ञेयमुपायानां चतुष्टयं सामदानादि येन तं दैत्येन्द्र प्रति। मात्रा मृष्टमुद्वर्त्य स्नापितम्। अलंकृतं भूषणतिलकादिभिः॥१९॥

भाव प्रकाशिका

गुरु ने जब यह जान लिया कि प्रह्लाद साम, दान, दण्ड तथा भेद नामक चारो उपायों के ज्ञाता हो गये तो वे प्रह्लादजी को उनकी माता के पास ले गये और माता ने जब उनको उबटन आदि लगाकर स्नान करा दिया और भूषण एवं तिलक इत्यादि से सजा दिया तो वे उनको दैत्यराज हिरण्यकशिपु के पास ले गये ॥१९॥

पादयोः पतितं बालं प्रतिनन्द्याशिषाऽसुरः । परिष्वज्य चिरं दोर्भ्यां परमामाप निर्वृतिम् ॥२०॥

अन्वयः— पादयो पतितं बालं आशिषा प्रतिनन्द्य असुरः दोर्भ्यां चिरं परिष्वज्य परमाम् निर्वृतिम् आप ॥२०॥

अनुवाद— पैरों पर गिरकर प्रणाम करने वाले बालक प्रह्लाद को आशीर्वचन प्रदान के हिरण्यकशिपु ने अपने हाथों से देर तक अलिङ्गित किये हुए अत्यन्त शान्ति का अनुभव किया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

आरोप्याङ्कमवघ्राय मूर्धन्यश्रुकलाम्बुभिः । आसिञ्चन्विकसद्वक्त्रमिदमाह युधिष्ठिर ॥२१॥

अन्वयः— हे युधिष्ठिर अङ्कम् आरोप्य मूर्ध्नि अवघ्राय अश्रुकलाम्बुभिः, असिञ्चन् विकसद् वक्त्रम् इदम् आह॥२१॥

अनुवाद— हे युधिष्ठिर ! अपने पुत्र को अपनी गोद में बैठाकर हिरण्यकशिपु ने प्रह्लादजी का सिर सूंघा और उसने अपनी आँसुओं की बून्दों से प्रह्लादजी के सिर को भिंगो दिया। उसके पश्चात् उसने प्रसन्न मुख वाले प्रह्लादजी से कहा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

प्रह्लादानूच्यतां तात स्वधीतं किंचिदुत्तमम् । कालेनैतावतायुष्मन्यदशिक्षद्गुरोर्भवान् ॥२२॥

अन्वयः— तात प्रह्लाद ! स्वधीतं किञ्चिदुत्तमं अनूच्यताम् । हे आयुष्मन् एतावता कालेन यद्भवान् गुरोः अशिक्षत ॥२२॥

हिरण्यकशिपु ने कहा

अनुवाद— हे वत्स ! प्रह्लाद तुमने जिन अच्छी बातों का अध्ययन किया है उनमें से कुछ सुनाओ । इतने समय में गुरु ने जो तुमको पढ़ाया है, उसमें से ही सुनाओ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

प्रह्लाद उवाच

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥२३॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा । क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥२४॥

अन्वयः— श्रवणं, कीर्तन, विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यम् आत्मनिवेदनम् इति नव लक्षणा भक्तिः पुंसा विष्णौ क्रियते चेत् तत् उत्तमम् अधीतम् मन्ये ॥२३-२४॥

प्रह्लादजी ने कहा

अनुवाद— पिताजी ! भगवान् विष्णु के गुणों और लीलाओं को सुनना, उसका कीर्तन करना, उनके रूप का नाम आदि का स्मरण करना, श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करना, उनकी पूजा करना, श्रीभगवान् की स्तुति करना, उनकी दासता करना, श्रीभगवान् के प्रति मित्र भाव को रखना तथा श्रीभगवान् को आत्म निवेदन करना ये श्रीभगवान् की भक्ति के नव प्रकार के भेद हैं, भगवान् विष्णु की इन्हीं भक्तियों को यदि कोई करता है तो उसी को मैं उत्तम अध्ययन मानता हूँ ॥२३-२४॥

भावार्थ दीपिका

पादसेवनं परिचर्या । अर्चनं पूजा । दास्यं कर्मार्पणम् । सख्यं तद्विश्वासादि । आत्मनिवेदनं स्वशरीसमर्पणम । यथा विक्रीतस्य गवाश्वादेर्भरणपालनादिचिन्ता न क्रियते तथा देहं तस्मै समर्प्य तच्चिन्तावर्जनमित्यर्थः । इति नवलक्षणनि यस्याः सा अधीतेन चेद्भगवति विष्णौ भक्तिः क्रियते सा चार्पितैव सती यदि क्रियेत नतु कृता सती पश्चादर्प्येत तदुत्तममधीतं मन्ये। नत्वस्मद्गोरधीतं शिक्षितं वा तथाविधं किंचिदस्तीति भावः ॥२३-२४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की सेवा करने को ही पादसेवन शब्द से कहा गया है । अर्चनं अर्थात् पूजा, **दास्य** अर्थात अपने सभी कर्मों को श्रीभगवान् को समर्पित कर देना । सख्यम् अर्थात भगवान् में विश्वास करना । आत्मसमर्पणम् अर्थात अपने शरीर को श्रीभगवान् को समर्पित करना चाहिए । जैसे जो गौ बेच दी गयी है, उस गौ के भरण और पोषण की चिन्ता बेंचने वाले को नहीं होती है उसी तरह परमात्मा को अपने शरीर को समर्पित करके उसकी चिन्ता नहीं करना चाहिए । इस तरह नव प्रकार की भक्ति श्रीभगवान् की, की जाती है और उस भक्ति को श्रीभगवान को अर्पित की जाती है, यह मेरा उत्तम अध्ययन है । गुरुजी ने जो मुझे पढ़ाया उसमें कोई अच्छी बात नहीं है ॥२३-२४॥

निशम्यैतत्सुतवचो हिरण्यकशिपुस्तदा । गुरुपुत्रमुवाचेदं रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥२५॥

अन्वयः— एतत् सुतवचः निशम्य तदा हिरण्यकशिपुः रुषा प्रस्फुरिताधरः गुरुपुत्रम् इदम् उवाच ॥२५॥

अनुवाद— अपने पुत्र की इस वाणी को सुनकर उस समय हिरण्यकशिपु के ओष्ठ फड़फड़ाने लगे और उसने क्रोध से अपने गुरुपुत्र से कहा ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

ब्रह्मबन्धो किमेतत्ते विपक्षं श्रयताऽसता । असारं ग्राहितो बालो मामनादृत्य दुर्मते ॥२६॥

अन्वयः— हे दुर्मते ब्रह्मबन्धो ! एतत् किम् असताविपक्षं श्रयता माम् अनादृत्य किमेतत् बालः असारं ग्राहितः ॥२६॥

अनुवाद— अरे नीच ब्राह्मण ! यह तुमने क्या किया है ? अरे दुर्बुद्धि मेरी थोड़ी सी भी परवाह किए बिना तुमने बालक को यह निस्सार शिक्षा दी है । लगता है तुम मेरे शत्रुओं के हो ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

न विद्यते सारं यत्र तदसारम् । न विद्यते सारं यस्मादिति वास्तवोऽर्थः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

असारं अर्थात् व्यर्थ। न विद्यते सारं यस्मात् इस विग्रह के अनुसार असार अर्थात् वास्तविक भी अर्थ होगा॥२६॥

सन्ति ह्यसाधवो लोके दुर्मैत्राश्छद्मवेषिणः । तेषामुदेत्यघं काले रोगः पातकिनामिव ॥२७॥

अन्वयः— लोके छद्मवेषिणः असाधवः दुर्मैत्रा सन्ति, तेषाम् काले अधम् पातकिनाम् अघ इव ॥२७॥

अनुवाद— संसार में ऐसे लोगों की कोई कमी नहीं जो मित्र तो बने रहते हैं किन्तु शत्रु का काम किया करते हैं । किन्तु ऐसे लोगों का पाप समय से उसी तरह से प्रकट हो जाता है जो छिपकर पाप करने वालों का पाप रोग के रूप में प्रकट हो जाता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

मित्रत्वेन प्रवर्तमानस्यापि तव विरोधाचरणं नासंभावितमित्याह- सन्ति हीति । दुष्टं मैत्रं मित्रत्वं येषां ते दुर्मैत्राः । रोग इत । 'ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात्सुरापः श्यावदन्तकः । स्वर्णहारी तु कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥' इत्यादि स्मृत्युक्तपातकिनां काले नरकभोगानन्तरं रोगो यथोदेति तथा तेषां दुर्जनानां सुजनत्वेन वर्तमानानामप्यघं विद्वेषादिकमुदेतीत्यर्थः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

तुम यद्यपि मेरा बनते हो फिर भी तुम्हारा विरोधाचार असम्भव नहीं हीं । दूषित मित्रता को दुर्मैत्र कहते हैं । स्मृतियों में कहा गया है कि ब्रह्मघाती क्षयरोग का रोगी, मदिरा पीने वाला, काला दाँत वाला, सुवर्ण चुराने वाला, जिसके नख खराब हों जिसका चमड़ चर्मरोग या कुष्ट रोग से दूषित है तथा गुरुपत्नी के साथ सहगमन करने वाला ये सभी पातकी (पापी) हैं । जब ये सब नरक भोग लेते हैं तो उसके बाद मनुष्य जन्म में ये पाप प्रकट होते हैं । उसी तरह सज्जन बनकर दुर्जन का काम करने वाले से पाप विद्वेष इत्यादि के रूप में प्रकट होता है ॥२७॥

गुरुपुत्र उवाच

न मत्प्रणीतं न परप्रणीतं सुतो वदत्येष तवेन्द्रशत्रो ।
नैसर्गिकीयं मतिरस्य राजन्नियच्छ मन्युं कददाः स्म मा नः ॥२८॥

अन्वयः— हे इन्द्र शत्रो ! तव एषः सुतः न मत् प्रणीत वदति न वा परप्रणीतम् इयम् अस्य नैसर्गिकी मतिः राजन् मन्युं नियच्छ नः कददाः मास्म ॥२८॥

गुरु के पुत्र ने कहा

अनुवाद— हे इन्द्रशत्रो ! आपका यह पुत्र न तो मेरा पढ़ाया हुआ कहता है और न तो किसी दूसरे के बहकाने में आकर कहता है । यह इसकी स्वाभाविक बुद्धि हैं । अतएव आप क्रोध न करें और न हमें दोष दें॥२८॥

भावार्थ दीपिका

मत्प्रणीतं मया पाठितम् । नोऽस्मभ्यं कत् कुत्सितं दोषं मा स्म अदाः । अडागम आर्षः । मयि दोषारोपं मा कृथा इत्यर्थः । इन्द्रशत्रो इति नहि ब्राह्मणेषु तव कोप उचित इति भावः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

मत्प्रणीतम् मेरे द्वारा पढ़ाया हुआ । मास्म नः कददाः हम दोष न दें । अददाः अट् का आगम आर्ष है। अर्थात् हम पर दोषारोपण न करें । इन्द्रशत्रो ! इससे सूचित किया गया है कि आप तो इन्द्र के शत्रु हैं ब्राह्मणों पर आप क्रोध न करें ॥२८॥

नारद उवाच

गुरुणैवं प्रतिप्रोक्तो भूय आहासुरः सुतम् । न चेद्गुरुमुखीयं ते कुतोऽभद्राऽसती मतिः ॥२९॥

अन्वयः एवं गुरुणा प्रतिप्रोक्तः असुरः भूयः सुतम् आह । इयं चेद् गुरुमुखी न ते अभद्रा असती मतिः कुतः ॥२९॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद युधिष्ठिर ! गुरु के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर हिरण्यकशिपु ने पुनः प्रह्लादजी से कहा यदि तुमको गुरुजी ने नहीं कहा तो फिर तुमको इस तरह की अभद्र बुद्धि कहाँ से मिली ?॥२९॥

भावार्थ दीपिका

गुरुमुखी गुरुवाक्यजनिता । हे अभद्र ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

यदि गुरु ने नही पढ़ाया तो । हे अभद्र अकल्याणमय ॥२९॥

प्रह्लाद उवाच

मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोऽभिपद्येत गृहव्रतानाम् ।
अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम् ॥३०॥

अन्वयः— पुनः पुनः चर्वित चर्वणानाम् अदान्त भोगाभिः तमिस्रं विशतां गृहव्रतानाम् मतिः कृष्णे स्वतः परतः वा मिथः न अभिपद्येत ॥३०॥

प्रह्लादजी ने कहा

अनुवाद— पिताजी ये सभी संसारी जीव बार-बार चबाए हुए का ही चर्वण कर रहे हैं । इन्द्रियों के वश में नहीं होने के कारण वे लोग भोगे हुए ही भोगों को भोगने के लिए संसार रूप घोर नरक की ओर जा रहे हैं। इस प्रकार के गृहासक्त पुरुषों की बुद्धि अपने आप अथवा दूसरे लोगों के सिखाने से अथवा अपने ही जैसे दूसरे लोगों की सङ्गति से भगवान् श्रीकृष्ण में नहीं लगती हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

आस्तामियं वार्ता भवादृशानां विषयासक्तानामत्रानधिकारादित्याशयेनाह–मतिरिति । परतो गुरोः स्वतो वा मिथो वाऽन्योन्यतो नाभिपद्येत न संपद्येत । केषाम् । गृहव्रतानां गृह एव व्रतं सङ्कल्प इति कृत्यचिन्ता येषाम् । अत एवादान्तैरनुपरतैर्गोभिरिन्द्रियैर्हेतुभूतैस्तमिस्रं संसारं विशताम् । तत्र चर्वितस्यैव चर्वणं येषाम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

यह बात आप जैसे लोग जो विषयों को ही भोगने में लगे हुए हैं । ऐसे लोगों का इसमें अधिकार नहीं है । इसी बात को प्रह्लादजी इस श्लोक से कहते हैं जो लोग गृह का ही सदा चिन्तन करते हैं । क्योंकि वे अदान्त हैं अर्थात् उनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं है । उनकी इन्द्रियाँ सदा भोग की ही ओर प्रवृत्त हैं । वे लोग इस भोगों के ही भोगने के कारण घोर संसार रूपी नरक में जा रहे हैं । उनका यह भोगों का भोगना चर्वित चर्वण रूप है।

ऐसे लोगों की बुद्धि न तो अपने आप या दूसरों के सिखाने से, या अपने ही जैसे किसी दूसरे व्यक्ति की सङ्गति से भगवान् श्रीकृष्ण में नहीं प्रवृत्त होती है ॥३०॥

न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं दुराशया ये बहिरर्थमानिनः ।
अन्धा यथाऽन्धैरूपनीयमाना वाचीशतन्त्यामुरुदाम्नि बद्धाः ॥३१॥

अन्वयः— ये दुराशयाः बहिरर्थमानिनः अन्धैः उपनीयमानाः अन्धाः यथा वाचीशतन्त्यांमुरुदाम्निबद्धाः ते स्वार्थ गतिं हि विष्णुं न विदुः ॥३१॥

अनुवाद— हे पिताजी जो अज्ञानी जीव बाह्य विषयों रूप रसादि की प्राप्ति को ही अपना पुरुषार्थ मानने वाले लोग हैं वे अन्धों के पीछे चलने वाले अन्धों के ही समान गड्ढे में गिरने के लिए जा रहे हैं । एवं वेदवाणी रूपी रस्सी में प्रोत काम्य कर्मो के ही दीर्घ बन्धन में बँधे हुए हैं । उनको यह बात ज्ञात नहीं है कि हमारे स्वार्थ एवं परमार्थ भगवान् विष्णु ही हैं । उनकी ही प्राप्ति होने से समस्त पुरुषार्थों की प्राप्ति सम्भव हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

ननु श्रीकृष्णस्य परमानन्दस्वरूपत्वात्तेऽपि तन्निष्ठा एव किं न स्युरिति चेत्तदज्ञानादित्याह-नेति । ये दुराशया विषयवासितान्तःकरणास्ते हि वष्णुं न विदुः । तत्र हेतुः- स्वस्मिन्नेवार्थः पुरुषार्थो येषां तेषां गतिं गम्यम् । ननु तेऽपि गुरूपदेशाद्विष्णुं ज्ञास्यन्ति तत्राह-बहिर्विषयेष्वर्थो येषां ते बहिरर्थास्तानेव गुरुत्वेन मन्तुं शीलं येषां ते । अतोऽन्धैरुपनीयमाना अन्धा यथा पन्थानं न विदुः किंतु गर्ते पतन्ति तथा तेऽपीशस्य तन्त्यां दीर्घरज्ज्वां वेदलक्षणायामुरूणि दामानि ब्राह्मणादिनामानि यस्यां तस्यां काम्यैः कर्मभिर्बद्धा एव भवन्तीत्यर्थः । तदुक्तम् 'विषयाविष्टचित्तानां विष्ण्वावेश सुदूरतः । वारुणीदिग्गतं वस्तु व्रजन्नैन्द्रीं किमाप्नुयात्।' इति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि भगवान् श्रीकृष्ण तो परमानन्द स्वरूप है, अतएव वे संसारी जीव भी भगवान् श्रीकृष्ण की ही भक्ति क्यों नहीं करते हैं, तो इसका उत्तर है कि वे अज्ञानी हैं इसीलिए **न ते० इत्यादि** श्लोक से यही वात कही गयी हैं । जिन लोगों का अन्तःकरण विषयों की वासना से ही वासित है वे लोग भगवान् विष्णु को नहीं जानते हैं । उसका कारण है कि वे अपने में ही स्वार्थ औरपरमार्थ को मानते हैं । यदि कहें कि वे भी गुरु के उपदेश से भगवान् विष्णु को जान लेंगे । तो इस पर प्रह्लादजी कहते हैं वे लोग बाह्य विषयों की प्राप्ति को ही पुरुषार्थ मानने वाले होते हैं । वे लोग अन्धों के पीछे चलने वाले अन्धो के समान वास्तविक मार्ग न ही जानकर गढ़े में गिर जाते हैं । और वे लोग भी परमात्मा की वेद वाणी रूप लम्बी रस्सी में बँधे हुए हैं तथा काम्य कर्मो को ही करते रहते हैं । कहा भी गया है- **विषया विष्टचितानाम्० इत्यादि** जिन लोगों की बुद्धि सदा विषयों में ही लगी रहती है, उनकी भगवान् विष्णु में भक्ति का होना अत्यन्त कठिन है । वे उसी तरह भगवान् विष्णु को नहीं प्राप्त कर सकते हैं जिस तरह पश्चिम दिशा में विद्यमान वस्तु को पूर्व दिशा में जाने वाला व्यक्ति नहीं प्राप्त कर सकता है ॥३१॥

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रि स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ।
महीयसां पादरजोभिषेकं निष्किंचनानां न वृणीत यावत् ॥३२॥

अन्वयः— यावत् महीयसां निकिञ्चनानां पादरजोभिषेकः नवृणीत् तावत एषां मतिः उरुक्रमाङ्घ्रिं नस्पृशति यदर्थः अनर्थापगमः ॥३२॥

अनुवाद— जब तक कोई भी व्यक्ति महान् अकिञ्चन महापुरुषों के चरणों की धूलि से स्नान नहीं कर लेता है

तब तक इन संसारी पुरुषों की श्रीभगवान् के चरणों में भक्ति भरी बुद्धि प्रवृत्त नहीं होती है । किन्तु जिन लोगों की बुद्धि भगवान् के श्रीचरणों में लग जाती हैं उनके संसार में जन्म मरण रूप समस्त अनर्थों का नाश हो जाता है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

ननु च 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा' इत्यादिश्रुतिप्रतिपादितं विष्णुं कथं न विदुः, कुतो वा तेषां तमिस्रप्रवेशस्तत्राह— नैषामिति । निष्किंचनानां निरस्तविषयाभिमानानां महत्तमानां पादरजसाभिषेकं यावन्न वृणीत तावच्छ्रुतिवाक्यतो जाताप्येषां मतिरुरुक्रमस्याङ्घ्रिं न स्पृशति न प्राप्नोति । असंभावनादिभिर्विहन्यत इत्यर्थ; । अनर्थस्य संसारस्यापगमो यदर्थो यस्या अङ्घ्रिस्पर्शिन्या मतेरर्थः प्रयोजनम् । महदनुग्रहाभावान्न तत्त्वनिश्चयो नापि मोक्षस्तेषामित्यर्थः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि श्रुति बतलाती है कि एक ही परमात्मा सभी भूतों के भीतर अन्तर्यामी रूप से छिपे हुए। इस प्रकार के भगवान् विष्णु को लोग क्यों नहीं जानते हैं, उन लोगों का घोर अन्धकारमय नरकों में क्यों प्रवेश होता है तो प्रह्लादजी इस पर **नैषामित्यादि** श्लोक कहते हैं जिन महापुरुषों ने समस्त विषयों के अभिमान का परित्याग कर दिया है ऐसे महापुरुषों के चरणों की धूलि से जब तक मनुष्य स्नान नहीं कर लेता है, तब तक श्रुतियों के वाक्यों से उनका ज्ञान हो जाने पर भी उन लोगों की बुद्धि श्रीभगवान् के चरणों की भक्ति में नहीं लगती है । अर्थात् असंभावना आदि के द्वारा वह विहत हो जाती है । श्रीभगवान् के चरणों के स्पर्श का प्रयोजन यही है कि उसके द्वारा संसार में जन्म मरण रूपी अनर्थ का विनाश हो जाता है । महापुरुषों के अनुग्रह के बिना तो तत्त्वों का निश्चय नहीं होता है । उन लोगों का मोक्ष भी नहीं होता है ।।३२।।

इत्युक्त्वोपरतं पुत्रं हिरण्यकशिपू रुषा । अन्धीकृतात्मा स्वोत्सङ्गान्निरस्यत महीतले ।।३३।।

अन्वयः— इत्युक्त्वा उपरतं पुत्रं अन्धीकृतात्मा हिरण्यकशिपुः रुषा स्वोत्सङ्गात् महीतले निरस्यत ।।३३।।

अनुवाद— इतना कहकर मौन हुए प्रह्लादजी को हिरण्यकशिपु क्रोध से अन्धा होकर अपनी गोद से भूमि पर पटक दिया ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

निरस्यत चिक्षेप ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

निरस्यत अर्थात् फेंक दिया ।।३३।।

आहामर्षरुषाविष्टः कषायीभूतलोचनः । वध्यतामाश्वयं बध्यो निःसारयत नैर्ऋताः ।।३४।।

अन्वयः— अमर्षरुषाविष्टः कषायीभूतलोचनः आह नैर्ऋताः निःसारयत अयं बध्यः आशु वध्यताम् ।।३४।।

अनुवाद— प्रह्लादजी की बात को सुनकर हिरण्यकशिपु की आँखें क्रोध के मारे लाल हो गयी थीं । उसने कहा दैत्यों इसको यहाँ से लो जाओ यह मार डालने योग्य है, इसको शीघ्र मार डालो ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

अमर्षोऽसहनं तेन सहितया रुषाविष्टो व्याप्तः । कषायीभूते आताम्रे लोचने यस्य । हे नैर्ऋता राक्षसाः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

प्रह्लाद की बातों को नहीं सह सकने के कारण वह क्रोध से व्याप्त हो गया था उसकी आँखें लाल हो गयी थीं । उसने कहा राक्षसों इसे ले जाओ और मार डालो ।।३४।।

अयं मे भ्रातृहा सोऽयं हित्वा स्वान्सुहृदोऽधमः । पितृव्यहन्तुर्यः पादौ विष्णोर्दासवदर्चति ॥३५॥

अन्वयः— यः पितृव्यहन्तुः अयं अधमः स्वान् सुहृदः हित्वा विष्णोः पादौ दासवदर्चति । सोऽयं मे भ्रातृहा ॥३५॥

अनुवाद— जो विष्णु मेरे भाई को मारने वाला है यह अपने सुहृदों का परित्याग करके विष्णु के चरणों की दास के समान अर्चना करता है लगता है, वह विष्णु ही इसके रूप में आ गया है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

वध्यत्वे हेतुः- यतोऽयं मे भ्रातृहा । कुतः । यो विष्णोः पादौ दासवदर्चति। तत्पक्षपातीत्यर्थः । अतः स एवायमित्यन्वयः॥३५॥

भाव प्रकाशिका

यह मार दिए जाने के ही योग्य है इसका कारण है कि यह मेरे भाई को मारने वाला है । क्योंकि यह विष्णु के चरणों की पूजा दास के समान करता है । अतएव यह विष्णु ही है ॥३५॥

विष्णोर्वा साध्वसौ किं नु करिष्यत्यसमञ्जसः । सौहृदं दुस्त्यजं पित्रोरहाग्यः पञ्चहायनः ॥३६॥

अन्वयः— असौ विष्णोः वा साधु किंनु करिष्यति पञ्चहायनो यः पित्रोः दुस्त्यजं सौहृदं अहाक् ॥३६॥

अनुवाद— अथवा यह विष्णु का क्या उपकार करेगा । इसने तो पाँच वर्ष की अवस्था में अपने माता पिता के दुस्त्यज स्नेह को त्याग दिया ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

अहो विष्णुरप्यविश्वसनीयं किमिति स्वीकृतवानित्याह- विष्णोर्वेति । अहाज्जहौ ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

यह विष्णु है इस बात पर भी विश्वास करने योग्य नहीं है क्या इस बात को स्वीकार करके हिरण्यकशिपु **विष्णो० इत्यादि** श्लोक कहता है । **अहाक्** का अर्थ है त्याग दिया ॥३६॥

परोऽप्यपत्यं हितकृद्यथौषधं स्वदेहजोऽप्यामयवत्सुतोऽहितः ।
छिन्द्यात्तदङ्गं यदुतात्मनोऽहितं शेषं सुखं जीवति यद्विवर्जनात् ॥३७॥

अन्वयः— परः अपि औषधं यथाहितकृत् अपत्यम्, स्वदेहजःअपि आमयवत् अहितः यद् उतात्मनः अहितं तद अङ्गं छिन्द्यात् यद विवर्जनात् शेषं सुखं जीवति ॥३७॥

अनुवाद— यदि दूसरा भी औषधि के समान उपकार करता है तो वह एक प्रकार से पुत्र ही है । यदि अपना भी पुत्र यदि अहित करे तो वह शत्रु ही है । अपने शरीर के ही किसी अङ्ग में यदि रोग उत्पन्न हो जाय तो उस अङ्ग को काट देना चाहिए । क्योंकि उसके काट देने पर दूसरे अङ्ग तो सुख पूर्वक जी सकेंगे ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

ननु तवायमपत्यं कथं वध्यस्तत्राह- परोप्यौषधमिव हितकृच्चेत्तर्ह्यपत्यमेव ज्ञेयः । सुतः स्वदेहजोऽप्यहितश्चेदामय इव ज्ञेयः । आस्तां ममतास्पदस्य कथा, अङ्गमपि च यत्करचरणादि तदप्यात्मनोऽहितं चेच्छिन्द्यादेवेत्यर्थः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि आपका यह सन्तान वध्य कैसे हैं ? तो इसके उत्तर में हिरण्यकशिपु कहता है कि यदि दूसरे का भी पुत्र हितकारी है तो वह एक तरह से पुत्र ही है और अपना भी पुत्र यदि अहितकारी है तो उसी तरह शत्रु है जिस तरह अपने शरीर से उत्पन्न होने वाल रोग । छोड़िये ममतास्पद की कथा यदि अपने किसी अङ्ग में रोग उत्पन्न हो जाय तो उसको काट देना ही उचित है ताकि दूसरे अङ्ग सुख पूर्वक रह सकें ॥३७॥

सर्वैरुपायैर्हन्तव्यः संभोजशयनासनैः । सुहृल्लिङ्गधरः शत्रुर्मुनेर्दुष्टमिवेन्द्रियम् ॥३८॥

अन्वयः— मुनेः दुष्टमिन्द्रियमिव सुहृल्लिङ्गधरः शत्रु अयं संभोजशयनासनैः हन्तव्यः ॥३८॥

अनुवाद— जिस तरह योगी की भोग लोलुप इन्द्रियाँ योगी का अहित ही करती हैं उसी तरह यह पुत्र के रूप धारण किए हुए मेरा शत्रु ही है । इसलिए भोजन में विष आदि देकर अथवा सोते बैठते समय किसी भी उपाय से इसको मार ही देना चाहिए ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

अतः सर्वैरुपायैर्हन्तव्यः । संभोजो भोजनम् । भोजनादिषु विषादिप्रयोगैरित्यर्थः । यथा दुष्टमिन्द्रियं मुनेः शत्रुः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

अतएव हर प्रकार के उपायों से इसको मार ही देना चाहिए । भोजन में विष देकर अथवा सोते बैठते समय किसी तरह इसको मार देना चाहिए । यह उसी तरह हमारा शत्रु है जिस तरह योगी की भोग लोलुप इन्द्रियाँ उसका शत्रु होती हैं ॥३८॥

नैर्ऋतास्ते समादिष्टा भर्त्रा वै शूलपाणयः । तिग्मदंष्ट्रकरालास्यास्ताम्रश्मश्रुशिरोरुहाः ॥३९॥
नदन्तो भैरवान्नादांश्छिन्धि भिन्धीति वादिनः । आसीनं चाहनन् शूलैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु ॥४०॥

अन्वयः— भर्त्रा समादिष्टाः वै शूलपाण्यः तिग्मदंष्ट्रकरालास्याः ताम्रश्मश्रुशिरोरुहाः ते नैऋताः भैरवान् नादान् न दन्तः छिन्धिभीन्धीति वादिनः आसीनं प्रह्लादं सर्वमर्मसु च अहनन् ॥३९-४०॥

अनुवाद— नारदजी कहते हैं कि हिरण्यकशिपु के द्वारा इस तरह का आदेश दिए जाने पर हाथ में त्रिशूल धारण करके तीक्ष्ण दाँतों वाले तथा भयङ्कर मुख वाले, लाल दाढ़ी मूंछ तथा केशों वाले दैत्य बैठे हुए प्रह्लादजी के सभी मर्म स्थानों में प्रहार किए ॥३९-४०॥

भावार्थ दीपिका

तिग्मास्तीक्ष्णां दंष्ट्रा येषाम् । करालान्यास्यानि भयङ्कराणि मुखानि येषां ते च ते च । ताम्राणि श्मश्रूणि शिरोरुहाश्च येषाम् ॥३९-४०॥

भाव प्रकाशिका

जिन दैत्यों के दाँत तीक्ष्ण थे, मुख भयङ्कर थे तथा दाढी मूंछ एवं शिर के बाल लाल थे उन दैत्यों ने प्रह्लादजी पर त्रिशूल से प्रहार किया ॥३९-४०॥

परे ब्रह्मण्यनिर्देश्ये भगवत्यखिलात्मनि । युक्तात्मन्यफला आसन्नपुण्यस्येव सत्क्रियाः ॥४१॥

अन्वयः— पारे ब्रह्मणि अनिर्देश्ये अखिलात्मनि भगवति युक्तात्मनि अपुण्यस्य सत्क्रियाः इव अफला आसन् ॥४१॥

अनुवाद— उस समय प्रह्लादजी का चित्त मन और वाणी के अविषय सर्वात्मा समस्त शक्तियों के आधार एवं ब्रह्म परमात्मा में लगा हुआ था । अतएव उन सबों के सारे प्रहार उसी तरह से विफल हो गये जिस तरह भाग्यहीन की सारी क्रियाएँ विफल हो जाती हैं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

परे ईश्वरे युक्तः समाहित आत्मा मनो यस्य तस्मिन्प्रह्लादे तेषां नैर्ऋतादीनां प्रहारा निष्फला आसन् जाताः । तत्र हेतवः- ब्रह्मणि निर्विकारेऽनिर्देश्येऽविषये भगवति निरतिशयैश्वर्येऽखिलात्मनि शास्त्रादीनामपि नियन्तर्यैवंभूते परे । अपुण्यस्य निर्दैवस्य सत्क्रिया महोद्यमा इव ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

उस समय प्रह्लादजी का मन परमेश्वर में लगा हुआ था अतएव दैत्यों के सारे प्रहार निष्फल हो गये । उसका कारण था कि परब्रह्म तो निर्विकार निर्विषय हैं वे निस्सीम ऐश्वर्य सम्पन्न सर्वात्मा तथा शस्त्र आदि के भी नियन्ता हैं । जिस तरह निर्भाग्य की सारी सत्क्रियाएँ विफल हो जाती हैं उसी तरह उन दैत्यों के भी सारे प्रहार विफल हो गये ॥४१॥

प्रयासेऽपहते तस्मिन्दैत्येन्द्रः परिशङ्कितः । चकार तद्वधोपायान्निर्बन्धेन युधिष्ठिर ॥४२॥

अन्वयः— हे युधिष्ठिर ! तस्मिन् प्रयासे अपहते परिशङ्कितः दैत्येन्द्रः निर्वन्धेन तद्वधोपायान् चकार ॥४२॥

अनुवाद— हे युधिष्ठिर ! उस प्रयास के विफल हो जाने पर घबराया हुआ हिरण्यकशिपु हठ पूर्वक प्रह्लाद को मारने का तरह-तरह का उपाय करने लगा ॥४२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४२॥

दिग्गजैर्दन्दशूकैश्च अभिचारावपातनैः । मायाभिः संनिरोधैश्च गरदानैरभोजनैः ॥४३॥
हिमवाय्वग्निसलिलैः पर्वताक्रमणैरपि । न शशाक यदा हन्तुमपापमसुरः सुतम् ॥
चिन्तां दीर्घतमां प्राप्तस्तत्कर्तुं नाभ्यपद्यत ॥४४॥

अन्वयः— दिग्गजैः, दन्दशूकं च अभिचारावपातनैः मायाभिः, संनिरोधैः च, गरदानैः अभोजनैः हिमवाय्वग्निसलिलैः पर्वताक्रमणैः अपि यदा अपापम् सुतम् असुरः हन्तुम् न शशाक तदा दीर्घतमां चिन्तां प्राप्तः तत्कतुं न अभ्यपद्यत ॥४३-४४॥

अनुवाद— दिग्गजों से कुचलवाकर, विषैले साँपों से कटवाकर पुरोहितों द्वारा कृत्या को उत्पन्न करवाकर, पर्वतों से गिरवाकर, शम्बरासुर की मायाओं के द्वारा, अंधेरी कोठरी में बन्द करके, विष खिलावाकर, भोजन बन्द करके बर्फीली जगह, दहकती हुई अग्नि, तथा समुद्र में डलवा दिया, आँधी में छोड़ दिया एवं पर्वतों के नीचे दबवा दिया किन्तु जब इनमें से किसी भी उपाय से वह अपने निष्पाप पुत्र प्रह्लादजी को नहीं मार सकता तो वह अत्यधिक चिन्तित हो गया । इसके पश्चात् उसे प्रह्लादजी को मारने का कोई भी उपाय नहीं सूझा ॥४३-४४॥

भावार्थ दीपिका

दन्दशूकैः सर्पैः । अभिचाराः कृत्यादयः । अवपातनानि गिरिशृङ्गादधःपातनानि तैः । मायाभिः शम्बरनिर्मिताभिः; अवटादिषु संनिरोधैश्च । पर्वताक्रमणैः पर्वतानां तदुपरिक्षेपैः । बहुवचनैरभिचाराद्यावृत्तिं दर्शयति तद्धननं कर्तुं नाभ्यपद्यत न प्राप । नाशक्नोदित्यर्थः ॥४३-४४॥

भाव प्रकाशिका

दन्दशूकैः = सर्पों से, **अभिचाराः** = कृत्या आदि, **अवपातनानि** = पर्वतों के शिखर से गिराना, **मायाभिः** शम्बरासुर के द्वारा निर्मित मायाओं से, **अवटादिषु संनिरोधः** गढ़ो में बन्द कर देना, बहुवचनान्त के द्वारा अभिचारों आदि की आवृत्ति बतलायी गयी है । इन सभी उपायों से जब हिरण्यकशिपु प्रह्लादजी को नहीं मार सका तो उसे दूसरा कोई उपाय नहीं मिला ॥४३-४४॥

एष मे बह्वसाधूक्तो बधोपायाश्च निर्मिताः । तैस्तैर्द्रोहैरसद्धर्मैर्मुक्तः स्वेनैव तेजसा ॥४५॥

अन्वयः— एष में बह्वसाधूक्तः वधोपायाः च निर्मिताः तैः तैः द्रोहैः असद्धर्मैः मुक्तः स्वेनैव तेजसा ॥४५॥

अनुवाद— हिरण्यकशिपु सोचने लगा इसको मैंने बहुत बुरा भला कहा, मारा डालने का बहुत उपाय किया किन्तु यह मेरे द्रोह और दुर्व्यहारों से विना किसी की सहायता के अपने प्रभाव से ही बचता गया ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

चिन्तामेवाह-एष इति त्रिभिः । मे मया असाधु परुषं यथा भवति तथोक्तः । असद्धर्मैरपकारैरभिचारैर्वा ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

एष० इत्यादि तीन श्लोकों से हिरण्यकशिपु की चिन्ता का ही वर्णन किया गया है । मैंने इसको कठोर बातें कहा, अपकारों तथा अभिचारों से इसको मारना चाहा ।।४५।।

वर्तमानोऽविदूरे वै बालोऽप्यजडधीरयम् । न विस्मरति मेऽनार्यं शुनः शेप इव प्रभुः ।।४६।।

अन्वयः— बालः अपि अजडधीः अयम् अविदूरे वर्तमानः मे अनार्यं शुनःशेप इव प्रभुः न विस्मरति ।।४६।।

अनुवाद— यह बालक होकर भी बुद्धिमान है और मेरे सन्निकट ही निःशङ्क भाव से रहता है । निश्चित रूप से यह सामर्थ्य सम्पन्न है । जिस तरह शुनः शेप अपने पिता के कार्यों से उसका विरोधी हो गया था उसी तरह यह भी मेरे अपकारों को नहीं भूलेगा और मेरा विरोधी हो जायेगा ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

अविदूरे समीपे वर्तमानोऽपि बालोप्ययमजडधीर्निर्भयचित्तो मेऽनार्यमन्याय्यं शत्रुत्वं वा न विस्मरति । अजीगर्तस्य मध्यमपुत्रः शुनः शेपो नाम पितृभ्यां हरिश्चन्द्राय विक्रीतः सन्यथा तयोरपकारमविस्मरंस्तद्विपक्षं विश्वामित्रमाश्रित्य गोत्रान्तरमापन्नस्तद्वत्। यद्वा स्वभावा परित्यागे दृष्टान्त-शुनः शेपः पुच्छमिवेति ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

मेरे समीप में ही रहकर यह बालक होने पर भी बुद्धिमान है । तथा निःशङ्क है । मेरे अन्याय और मेरी शत्रुता को नहीं भूलता है । अजीगर्त का मध्यम पुत्र शुनः शेप अपने माता-पिता द्वारा हरिश्चन्द्र को बेंच दिया गया था । वह जिस तरह अपने माता-पिता के अपकार को नहीं भूलकर विश्वामित्र को अपना आश्रय बनाकर दूसरे गोत्र का हो गया । अथवा स्वभाव का परित्यग नहीं करने का दृष्टान्त शुनः शेप कुत्ते की पूंछ से दिया गया है ।।४६।।

अप्रमेयानुभावोऽयमकुतश्चिद्भयोऽमरः । नूनमेतद्विरोधेन मृत्युर्मे भविता न वा ।।४७।।

अन्वयः— अयम् अप्रमेयानुभावः अकुतश्चिद्भयः अमरः नूनम् एतद् विरोधेन मृत्यु मे भविता नवा ।।४७।।

अनुवाद— इसका प्रभाव अथाह है, इसको किसी से भी डर नहीं है, यह अमर है । निश्चित रूप से इसका विरोध करने के कारण मेरी भी मृत्यु हो सकती है । सम्भव है न भी हो ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

अप्रमेयोऽपरिमेयोऽनुभावो यस्य । न कुतश्चिद्भयं यस्य । अमरो मृत्युशून्यश्च । न वा भविता । अन्यथा मृत्युर्नैव भविष्यतीत्यर्थः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

इसके प्रभाव का पता नहीं लग सकता है । इसको किसी से भय नहीं है, यह अमर है अथवा इसकी मृत्यु होगी ही नहीं ।।४७।।

इति तं चिन्तया किंचिन्म्लानश्रियमधोमुखम् । शण्डामर्कावौशनसौ विविक्त इति होचतुः ।।४८।।

अन्वयः— इति चिन्तया किञ्चिन्मलानम् अधोमुखम् तं विविक्ते औशनसौ शण्डामर्कौ उचतु ह ।।४८।।

अनुवाद— इस प्रकार की चिन्ता से कुछ मलीन मुख वाले तथा नीचे मुख किए हुए हिरण्यकशिपु से एकान्त में शण्डामर्क नामक शुक्राचार्य के दो पुत्रों ने कहा ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

औशनसौ उशनसः पुत्रौ नीतिज्ञौ । विविक्ते एकान्ते ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

औशनसौ = शुक्राचार्य के दोनों नीतिज्ञ पुत्र । विविक्ते = एकान्त में ।।४८।।

जितं त्वयैकेन जगत्रयं भ्रुवोर्विजृम्भणत्रस्तसमस्तधिष्ण्यपम् ।
न तस्य चिन्त्यं तव नाथ चक्ष्महे न वै शिशूनां गुणदोषयोः पदम् ।।४९।।

अन्वयः— एकेनत्वया जगत्रयं जितं भ्रुवोः विजृम्भणत्रस्तसमस्तधिष्ण्यम् । तस्य तव चिन्त्यं न चक्ष्महे, न वै शिशूनां गुणदोषयोः पदम् ।।४९।।

अनुवाद— स्वामिन् आपने अकेले त्रैलोक्य को जित लिया है । आपके भौंहे टेढी करने पर ही समस्त लोकपाल काँप जाते हैं मेरी दृष्टि में आपको सोचने की कोई बात नहीं है । बच्चों का व्यवहार गुण एवं दोष का विषय नहीं होता है ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

भ्रुवोर्विजृम्भणेनैव त्रस्ताः समस्ता धिष्ण्यपा लोकपाला यस्मिन् । तस्य तव चिन्त्यं न चक्ष्महे न पश्यामः । पदमालम्बनं नैवास्ति । यद्वा शिशूनां वृत्तं गुणदोषयोः पदं विषयो न भवतीत्यर्थः ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

आपकी भृकृटि के टेढी होने पर ही सभी लोकपाल काँप उठते हैं । हमारी दृष्टि में आपकी चिन्ता का विषय कुछ भी नहीं हैं बच्चों का व्यवहार गुण दोष का विषय नहीं होता है ।।४९।।

इमं तु पाशैर्वरुणस्य बद्ध्वा निधेहि भीतो न पलायते यथा ।
बुद्धिश्च पुंसो वयसार्यसेवया यावद्गुरुर्भार्गव आगमिष्यति ।।५०।।

अन्वयः— यावद गुरुः भार्गव आगमिष्यति तावत् इमं वरुणस्य पाशैः बद्धवा भीतो विधेहि यथा न पलायते पुंसः बुद्धिश्च वयसा आर्यसेवया ।।५०।।

अनुवाद— जब तक हमारे गुरु (पिता) नहीं आते हैं, तब तक इसको वारुण पाश में बाँधकर आप भयभीत करें जिससे कि यह भाग न जाय । देखा जाता है कि आयु के साथ बुद्धि बढ़ती है और गुरुजनों की सेवा करने से सुधर भी जाती है ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

तथापि तु बन्धनमस्योचितमित्याहतुः-इमं त्विति । यवद्गुरुर्भार्गव अगमिष्यति तावद्बद्ध्वा निधेहि । ततः किमत ऊचतुः- यत; पुंसो बुद्धिश्च वयसा तथा आर्यसेवया समीचीना भवति ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

उन दोनों ने कहा कि इसको बाँधकर ही रखना उचित है । जब तक हमारे पिता नहीं आते हैं तब तक इसको बाँधकर ही रखिये । क्योंकि पुरुष की बुद्धि आयु के साथ-साथ बढती है और गुरुजनों की सेवा करने से सुधरती है ।।५०।।

तथेति गुरुपुत्रोक्तमनुज्ञायेदमब्रवीत् । धर्मा ह्यस्योपदेष्टव्या राज्ञां ये गृहमेधिनाम् ।।५१।।

अन्वयः— तथेति गुरुपुत्रोक्तम् अनुज्ञाय इदम् अब्रवीत् । अस्यहि गृहमेधिनाम् राज्ञां ये धर्माः उपदेष्टव्याः ।।५१।।

अनुवाद— ठीक है, इस तरह से गुरु के पुत्रों की आज्ञा मानकर हिरण्यकशिपु ने कहा कि इसको गृहस्थ लड़के के धर्म का ही उपदेश देना चाहिए ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

अनुज्ञाय तथेत्यङ्गीकृत्य ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

अनुज्ञाय अर्थात् ठीक है इस तरह कहकर स्वीकार करके ।।५१।।

धर्ममर्थं च कामं च नितरां चानुपूर्वशः । प्रह्लादायोचतू राजन्प्रश्रितावनताय च ।।५२।।

अन्वयः— राजन् ! प्रश्रितावनताय प्रह्लादाय धर्मं अर्थं च कामं च अनुपूर्वशः । नितराम् ऊचतुः ।।५२।।

अनुवाद— हे राजन् ! अत्यन्त नम्र सेवक प्रह्लाद को वे दोनों शाण्डा और मर्क धर्म, अर्थ और काम संबन्धी शिक्षा क्रमशः देने लगे ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

ततश्च तौ प्रह्लादाय धर्मादिकमूचतुः-प्रश्रितश्चासाववनतश्च तस्मै ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त नम्र बने रहने वाले प्रह्लादजी को वे दोनों क्रमशः धर्म, अर्थ और काम संबन्धी शिक्षा देने लगे।।५२।।

यथा त्रिवर्गं गुरुभिरात्मने उपशिक्षितम् । न साधु मेने तच्छिक्षां द्वन्द्वारामोपवर्णिताम् ।।५३।।

अन्वयः— गुरुभिः त्रिवर्गं यथा आत्मने उपशिक्षितम्, द्वन्द्वारामोपवर्णिताम् तां शिक्षां साधु नमेने ।।५३।।

अनुवाद— गुरुओं के द्वारा अपने को त्रिवर्ग के अनुसार दी गयी शिक्षा को वे अच्छा नहीं माने क्योंकि वह शिक्षा उन लोगों के लिए थी जो लोग द्वन्द्व और भोगों में आनन्दानुभव करते हैं ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

यदा यथावत्त्रिवर्गमुपशिक्षितमपि न साधु मेने तत्तां शिक्षां च। कुतः। द्वन्द्वैः रागद्वेषादिभिर्विषयेष्वारमणं येषां तैरुपवर्णिताम्।।५३।।

भाव प्रकाशिका

त्रिवर्ग सम्बन्धी यथा शिक्षा कर लेने पर भी उस शिक्षा को प्रह्लादजी अच्छा नहीं माने । क्योंकि वह उन लोगों के लिए थी जो लोग राग द्वेष में भी आनन्दानुभव करते हैं ।।५३।।

यदाचार्यः परावृत्तो गृहमेधीयकर्मसु । वयस्यैर्बालकैस्तत्र सोपहूतः कृतक्षणैः ।।५४।।

अन्वयः— यदा आचार्यः गृहमेधीय कर्मसु परावृत्तः तत्र कृतक्षणैः वयस्यैः बालकैः स उपहूतः ।।५४।।

अनुवाद— जब आचार्य अपने घरेलू कर्मों से कहीं अन्यत्र गये थे उस समय अवकाश प्राप्त होने के कारण समवयस्क बालकों ने उनको खेलने के लिए बुलाया ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

परावृत्तोऽन्यत्र गतः । स उपहूतः । सन्धिः पादपूरणार्थम् । क्रीडार्थं कृतक्षणैः कृतोत्सवैर्लब्धावसरैरिति वा ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

जब आचार्य कहीं अन्यत्र गये थे तो अवकाश प्राप्त होने के कारण बालकों ने प्रह्लादजी को खेलने के लिए बुलाया ।।५४।।

अथ तान् श्लक्षणया वाचा प्रत्याहूय महाबुधः । उवाच विद्वांस्तन्निष्ठां कृपया प्रहसन्निव ।।५५।।

अन्वयः— अथ महाबुधः विद्वान् तान् श्लक्षणया वाचा प्रत्याहूय प्रहसन्निव कृपया तन्निष्ठाम् उवाच ।।५५।।

अनुवाद— उसके पश्चात् परम ज्ञानी तथा विद्वान प्रह्लादजी उन सबों को अपनी मधुर वाणी से बुलाकर हँसते हुए उन बालकों पर कृपा करने के लिए परमात्म विषयिणी श्रद्धा तथा भक्ति का उपदेश देने लगे ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

तन्निष्ठां तेषां निष्ठां जन्ममरणादिलक्षणां विद्वान् ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

उन सबों को जन्म मरणादि के विषय में श्रद्धा भक्ति का उपदेश दिए क्योंकि वे इन विषयों के ज्ञाता थे।।५५।।

ते तु तद्गौरवात्सर्वे त्यक्तक्रीडापरिच्छदाः । बाला नदूषितधियो द्वन्द्वरामेरितेहितैः ।।५६।।
पर्युपासत राजेन्द्र तन्न्यस्तहृदयेक्षणाः । तानाह करुणो मैत्रो महाभागवतोऽसुरः ।।५७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

अन्वयः— हे राजेन्द्र ! द्वन्द्वारामेरिते हितै न दूषित धियः सर्वेबाला तद्गौरवात् व्यक्त क्रीडापरिच्छदाः तन्नयस्तहृदयेक्षणाः पर्युपासत, महाभागवतः असुरः तान् करुणः मैत्रः आह ।।५६-५७।।

अनुवाद— हे राजेन्द्र युधिष्ठिर ! वे सब अभी बालक थे, अतएव रागद्वेष परायण विषयभोगी पुरुषों के उपदेशों से और चेष्टाओं से उन सबों का हृदय दूषित नहीं हुआ था । अतएव प्रह्लादजी के प्रति आदर बुद्धि होने के कारण उन सबों ने अपनी क्रीडा की समाग्रियों को त्याग दिया और प्रह्लादजी के पास आकर वे सब बैठ गये । वे उनके उपदेश में मन लगाकर उनकी ओर देख रहे थे । श्रीभगवान् के महान् भक्त प्रह्लादजी का हृदय उन सबों के प्रति करुणा और मैत्री से भर गया था । वे उन सबों से कह रहे थे ।।५६-५७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

भावार्थ दीपिका

द्वन्द्वारामाणामीरितैरीहितैश्च न दूषिता धीर्येषाम् । यतो बालाः । तस्मिन्नेव न्यस्तं हृदयमीक्षणं च यैः ।।५६-५७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

द्वन्द्वारामाणामीरितैरीहितैश्च अर्थात् रागद्वेष परायण लोगों के उपदेशों और चेष्टाओं से उन सबों का हृदय इसलिए नहीं दूषित हुआ था कि वे अभी बालक थे । **तन्न्यस्त हृदयेक्षणाः** प्रह्लादजी के ही उपदेश में उन सबों का मन लगा था और वे सब उनको ही देख रहे थे ।।५६-५७।।

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के पाँचवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्यख्या सम्पूर्ण हुई ।।५।।

* * *

छठा अध्याय

प्रह्लादजी का असुर बालकों को उपदेश

प्रह्लाद उवाच

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह । दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥१॥

अन्वयः— मानुषं जन्म दुर्लभम् तदपि अध्रुवम् अर्थदम् तस्मात् प्राज्ञः इह कौमारे भागवतान् धर्मान् आचरेत् ॥१॥

प्रह्लादजी ने कहा

अनुवाद— मित्रो ! यह मानव जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, क्योंकि मानव शरीर से ही परमात्मा की प्राप्ति की जा सकती है, अतएव यह शरीर अत्यन्त उपयोगी हैं । किन्तु साथ ही यह शरीर अनित्य हैं । यह कब विनष्ट हो जायेगा ? इसको कोई भी नहीं जानता है । अतएव बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह इस जन्म में कौमारावस्था में ही भागवत धर्मों का अनुष्ठान करे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षष्ठे गुरौ गृहव्यग्रे प्रह्लादो दैत्यबालकान् । अनुकम्प्य परं तत्त्वं नारदोक्तमुपादिशत् । निरर्थकक्रियालापैरायुर्व्ययमजानताम् । प्रह्लादः सदयं प्राह धर्मं भागवतं कृती । कौमार इत्यादिना इहैव मानुषजन्मनि धर्मानाचरेत् । यतोऽर्थदमेतत् । तत्र च कौमार एव । यतस्तदप्यध्रुवम् । न चैवंभूतं जन्मान्तरम् । यतो दुर्लभम् । तत्र धर्मानेवाचरेन्न सुखार्थे प्रयासान् । तत्र भागवतानेव न काम्यान् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इस छठे अध्याय में बतलाया गया है कि जब प्रह्लादजी के गुरु गृहकार्य वशात् बाहर गये थे उस समय प्रह्लादजी दैत्य बातकों पर कृपा करके उन सबों को देवर्षि नारदजी के द्वारा प्रोक्त तत्त्वों का उपदेश दिए । निरर्थक कार्यो को करने तथा व्यर्थ की बातों में होने वाले आयु के व्यय को नहीं जानने वाले बालकों को प्रह्लादजी दया करके उन सबों को भागवत धर्म का उपदेश दिए । **कौमार० इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया गया है कि, इस मानव जन्म में ही धर्म का आचरण करना चाहिए । क्योंकि मानव शरीर अत्यन्त उपयोगी है । किन्तु यह शरीर अनित्य है । अतएव कुमारावस्था में ही धर्माचरण करें । यह जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, इस प्रकार का कोई भी जन्म नहीं होता है । इस जन्म में धर्म का ही आचरण करके सुख की प्राप्ति का प्रयास न करें । किञ्च भागवत धर्मो का ही अनुष्ठान करे काम्य धर्मो का नहीं ॥१॥

यथा हि पुरुषस्येह विष्णोः पादोपसर्पणम् । यदेष सर्वभूतानां प्रिय आत्मेश्वरः सुहृत् ॥२॥

अन्वयः— इह पुरुषस्य विष्णोः पादोपसर्पणम् एव यथा यदेष सर्वभूतानां प्रियः आत्मा ईश्वरः सुहृत् ॥२॥

अनुवाद— इस मानव जीवन में पुरुष को चाहिए कि वह भगवान् विष्णु के चरणों की शरणागति करे, उसका ऐसा ही करना उचित् है क्योंकि भगवान् विष्णु सभी प्राणियों की प्रिय आत्मा, नियन्त्रक और सुहृद् हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

इह भागवतानेव धर्मानाचरेदित्येतदुपपादयति-यथा हीति चतुर्भिः । इह पुरुषस्य विष्णोः पादोपसर्पणमेव यथानुरूपं योग्यमित्यर्थः । यद्यस्मदेष प्रिय इत्यादि ॥२॥

भाव प्रकाशिका

यथा हि इत्यादि चार श्लोकों के द्वारा यही बतलाया गया है कि इस जीवन में भागवत धर्म का ही अनुष्ठान

करना चाहिए । इस जन्म में मनुष्यों के लिए भगवान् विष्णु के ही धर्मो का अनुठान करना स्वरूपानुरूप है क्योंकि भगवान् विष्णु सबों की प्रिय आत्मा नियामक और मित्र है ॥२॥

सुखमैन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम् । सर्वत्र लभ्यते दैवाद्यथां दुःखमयत्नतः ॥३॥

अन्वयः— हे दैत्याः ऐन्द्रियकं सुखं देहिनाम् देहयोगेन दैवात् सर्वत्र लभ्यते, यथा अयत्नः दुखम् ॥३॥

अनुवाद— दैत्यों इन्द्रिय जन्य सुख तो देहधारी जीवों का देह का संयोग होने से दैववशात् सर्वत्र उपलब्ध हो जाता है चाहे व जिस योनि का हो । यह उसी तरह बिना प्रयास किए ही प्राप्त होता है जिस तरह विना प्रयास के दुःख की प्राप्ति होती है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

ननु भोगोद्यमः कथं त्याज्य इति चेत्तत्राह-सुखमिति । सर्वत्र पश्चादावपि । दैवात् पूर्वादृष्टादेव ॥३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि भोगों की प्राप्ति का प्रयास क्यों छोड़ा जाय तो इस पर कहते हैं भोग तो पशु आदि की योनियों में अदृष्टवशात् प्राप्त हो ही जाता है ॥३॥

तत्प्रयासो न कर्तव्यो यत आयुर्व्ययः परम् । न तथा विन्दते क्षेमं मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥४॥

अन्वयः— तत् प्रयासः न कर्तव्यः यतः परम् आयुर्व्ययः तथा क्षेमं न विन्दते यथा मुकुन्द चरणाम्बुजम् ॥४॥

अनुवाद— अतएव भोग की प्राप्ति के लिए प्रयास इसलिए नहीं करना चाहिए कि उसकी प्राप्ति तो अपने आप होने वाली है । अतएव उसके लिए आयु को व्यर्थ गँवाना है । उन सुखों से उतना कल्याण नहीं होता हैं जितना श्रीभगवान् के चरण कमलों के सेवन से सुख मिलता है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अतस्तदर्थ। प्रयासो न कर्तव्यः । यतः प्रयासात्परं केवलमायुषो व्यय एव । यतस्तथा तेन प्रकारेण क्षेमं न प्राप्नोति।।४।।

भाव प्रकाशिका

अतएव सांसारिक भोगों की प्राप्ति के लिए प्रयास नहीं करना चाहिए । क्योंकि उसके लिए प्रयास करना केवल आयु का व्यय ही है । क्योंकि उससे उस प्रकार का कल्यण नहीं प्राप्त होता है जितना प्रयास श्रीभगवान् के चरण कमलों की शरणागति से होता है ॥४॥

ततो यतेत कुशलः क्षेमाय भयमाश्रितः । शरीरं पौरुषं यावन्न विपद्येत पुष्कलम् ॥५॥

अन्वयः— ततः भयमाश्रितः कुशलः यावत् पुष्कलं शरीर नं विपद्येत तावतक्षेमाय यतेत ॥५॥

अनुवाद— अतएव अनेक प्रकार के भयों से युक्त इस संसार में बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि जब तक उसका यह शरीर रोगादि से ग्रस्त न हो उससे पहले ही परमात्म प्राप्ति का प्रयास कर ले ॥५॥

भावार्थ दीपिका

भयमाश्रितः संसारं प्राप्तः । पुरुषरूपं शरीरं यावत्पुष्कलमस्ति न विपद्येत अक्षमं न भवेन्न नश्येदिति वा तावच्छीघ्रं क्षेमाय यतेत ॥५॥

भाव प्रकाशिका

संसार रूपी भय को प्राप्त बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि जब तक शरीर स्वस्थ रहे रोगादि से ग्रस्त न हो तब तक वह परमात्म प्राप्ति का प्रयास करें ॥५॥

पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्धं चाजितात्मनः । निष्फलं यदसौ रात्र्यां शेतेऽन्धं प्रापितस्तमः ॥६॥

अन्वयः— अजितात्मनः पुंसः वर्षशतं हि आयुः तदर्धं निष्फलं यत् असौ रात्र्यां अन्धंतमः प्रापितः शेते ॥६॥

अनुवाद— जिस मनुष्य की इन्द्रियाँ वश में नही हैं उसके सौ वर्ष की आयु का आधा भाग तो व्यर्थ में ही बीत जाता है, क्योंकि उतने समय तक की आयु को वह रात्रि में घोर तमोगुण से व्याप्त होकर सोने में बिता देता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

आयुर्व्ययक्रममाह-पुंस इति त्रिभिः । यद्यस्मात् शेते ॥६॥

भाव प्रकाशिका

पुंसः इत्यादि तीन श्लोकों द्वारा आयु के व्यय का क्रम बतलाया गया है । क्योंकि जीवन के आधे भाग को तो वह मनुष्य सोने मे ही बिता देता है ॥६॥

मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतो याति विंशतिः । जरया ग्रस्तदेहस्य यात्यकल्पस्य विंशतिः ॥७॥

अन्वयः— मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतः विंशतिः याति जरयाग्रस्तदेहस्य अकल्पस्य विंशतिः यति ॥७॥

अनुवाद— बाल्यावस्था में मनुष्य को किसी प्रकार का ज्ञान नहीं रहता है, इसके बाद कौमारावस्था आती वह अवस्था खेलने में ही बीत जाती है । इस तरह जीवन के बीस वर्ष तो खेलने में ही बीत जाते हैं । जब शरीर बार्द्धक्य से ग्रस्त हो जाता है तो वह कुछ भी करने में असमर्थ हो जाता है । अतएव जीवन के अन्तिम बीस वर्ष बुढापे में ही बीत जाते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

विंशतिर्वर्षाण्यायुर्याति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

आयु के अन्तिम बीस वर्ष असमर्थ बुढापे में बीत जाते हैं ॥७॥

दूरापूरेण कामेन मोहेन च बलीयसा । शेषं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्यापयाति हि ॥८॥

अन्वयः— गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्य शेषं दुरापूरेण कामेन बलीयसा मोहेन च अपयाति हि ॥८॥

अनुवाद— जो जीवन से असावधान तथा गृह में आसक्त पुरुष होता है उसके जीवन का शेष भाग दुष्पूर कामनाओं को पूरा करने में तथा अत्यधिक बलवान् मोह में ही बरबाद हो जाता है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

दुरापूरेण दुःखैः समन्तादापूर्यमाणेन ॥८॥

भाव प्रकाशिका

बड़े ही कष्ट पूर्वक पूरा करने में यह दुरापूरेण का अर्थ है ॥८॥

को गृहेषु पुमान्सक्तमात्मानमजितेन्द्रियः । स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेत विमोचितुम् ॥९॥

अन्वयः— कः अजितेन्द्रियः पुमान् गृहेषु सक्तम् स्नेहपाशैर्दृढैः बद्धम् आत्मानम् विमोचितुम् उत्सहेत ॥९॥

अनुवाद— जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं ऐसा कौन पुरुष है ? जो गृह परिवार में आसक्त है तथा माया ममता के मजबूत पाश में बन्धे हुए मन को छुड़ा लेने का प्रयास करे ॥९॥

भावार्थ दीपिका

ननु यौवने गृहासक्तोऽपि पश्चाद्विरक्तः सन् क्षेमं यास्यतीत्याशङ्क्य तदसंभवं दर्शयन्कौमार एवाचरेदित्येतदुपपादयति- को गृहेष्विति सप्तभिः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

को गृहेषु० इत्यादि सात श्लोकों से प्रह्लादजी बतलाते हैं कि यदि कोई यह कहे कि युवावस्था में गृह में आसक्त रहने पर भी मनुष्य उसके पश्चात् विरक्त होकर कल्याण को प्राप्त कर सकता है । इसी तरह की आशङ्का करके कहते है कि यह होना असम्भव है । अतएव कौमारावस्था में ही भागवत धर्म का अनुष्ठान करना चाहिए।।९।।

को न्वर्थतृष्णां विसृजेत्प्राणेभ्योपि य ईप्सितः । यं क्रीणात्यसुभिः प्रेष्ठैस्तस्करः सेवको वणिक्।।१०।।

अन्वयः— यः प्राणेभ्यः अपि इप्सितः यं तस्करः सेवकः, वणिक् प्रेष्ठैः असुभिः क्रणातिं तां अर्थतृष्णां कः नु विसृजेत्।।१०।।

अनुवाद— जो प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं । जिसको चोरसेवक और व्यापारी अपने प्रियतम प्राणों के भी बदले में प्राप्त करना चाहते हैं, उस धन की लालच का कौन ऐसा गृहासक्त पुरुष है जो त्याग सकता है ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

यमर्थमसुभिः क्रीणाति प्राणहानिमङ्गीकृत्यापि साधयति तस्करादिः । तस्मिन्नर्थे तृष्णां को नु विसृजेत् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

चोर आदि प्राणों की भी बाजी लगाकर जिसे प्राप्त करना चाहते हैं, उस धन की लालच को कौन त्याग सकता है ?।।१०।।

कथं प्रियाया अनुकम्पितायाः सङ्गं रहस्यं रुचिरांश्च मन्त्रान् ।
सुहृत्सु च स्नेहसितः शिशूनां कलाक्षराणामनुरक्तचित्तः ।।११।।

अन्वयः— अनुकम्पितायाः प्रिययाः रहस्यं सङ्ग रूचिरान् मन्त्रान् च सुहृत्सु च स्नेहसितः शिशूनां कलाक्षराणामनुरक्तचित्तः कथं वि सृजेत् इति शेषः ।।११।।

अनुवाद— जो अपनी प्रियतमा पत्नी का एकान्त सहवास, उसकी प्रेम पूर्ण मिट्ठी बातों और सलाह पर आसक्त हो चुका है, अपने मित्रों के साथ स्नेहपूर्ण बातें तथा छोटे बच्चों की तोतली बोली पर न्योछावर हो चुका है, वह उसे कैसे छोड़ सकता है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

किञ्च कथमित्यादि । प्रियायाः सङ्गादिकं स्मरन्कथं त्यजेतेति तृतीयेनान्वयः । मन्त्रान् हितशिक्षालापान् । सुहृत्सु च सङ्गम् । तेषां स्नेहेन सितो बद्धः । कलानि मधुराण्यक्षराणि येषां तेषां च सङ्गम् । तेष्वनुरक्तं चित्तं यस्य ।।११।।

भाव प्रकाशिका

कथम्० इत्यादि श्लोक से प्रह्लादजी बतलाते हैं कि अपनी प्रियतमा पत्नी के सहवास को स्मरण करने वाला पुरुष उसको कैसे त्याग सकता है ? यह आगे के तीसरे श्लोक से अन्वय है । मन्त्रान् अर्थात् हितकार बातों को मित्रों की सङ्गति तथा उनके स्नेह में बँधा हुआ पुरुष तथा बच्चों की मनोहर तोतली बोली तथा उनकी सङ्गति में अनुरक्त पुरुष उन सबों को कैसे त्याग सकता है ?।।११।।

पुत्रन्स्मरंस्ता दुहितॄर्हृदय्या भ्रातॄन्स्वसॄर्वा पितरौ च दीनौ ।
गृहान्मनोज्ञोरुपरिच्छदांश्च वृत्तीश्च कुल्याः पशुभृत्यवर्गान् ।।१२।।

अन्वयः— ताः हृदस्याः दुहितृः भातृन् स्वसृः वा दीनौ पितरौ पुत्रान् च मनोज्ञोरुपरिच्छदान् च गृहान् कुल्याः वृत्तीः पशुभृत्यवर्गान् च स्मरन् कथं परित्यजेत् ।।१२।।

अनुवाद— ससुराल मे गयी हुई अपनी मनोज्ञ पुत्रियो, भाइयो, बहनो, दीन बने माता-पिता पुत्रों मनोह सामग्रियो से परिपूर्ण गृहो कुल परम्परा से प्राप्त जीविका, पशुओ तथा भृत्य वर्गो को स्मरण करने वाला मनुष्य उन सबों को कैसे त्याग सकता है ?॥१२॥

भावार्थ दीपिका

ताः श्वशुरगृहे स्थिताः । हृदय्या हृदयङ्गमाः । मनोज्ञा उरवः परिच्छदा येषु तान् गृहान् । वृत्तीर्जीविकाः । कुल्याः कुलपरम्परागताः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

ताः अर्थात् ससुराल में गयी हुई पुत्रियों को, हृदय्याः = मनोहर, मनोज्ञोरुपरिच्छदान् अर्थात् मनोहर बहुमूल्य सामग्रियों से युक्त, वृत्तीः = जीविका को, कुल्याः = अर्थात् कुल परम्परा से प्राप्त ॥१२॥

त्यजेत कोशस्कृदिवेहमानः कर्माणि लोभादवितृप्तकामः ।
औपस्थ्यजैह्वयं बहुमन्यमानः कथं विरज्येत दुरन्तमोहः ॥१३॥

अन्वयः— औपस्थ्यं जौह्वयं बहुमन्यमानः अवितृप्त कामः लोभात् कोशस्कृत इव कर्माणि इहमानः दुरन्तमोहः कथं त्यजेत । कथं विरज्येत ॥१३॥

अनुवाद— जो जननेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय को ही अपना सर्वस्वमान बैठा है । जिसकी काम भवना तृप्त नही हुई है, लोभ के कारण वह रेशम के कीड़े के समान अधिकाधिक कर्मो को करना चाहता है । वह अपने अत्यन्त भयङ्कर मोह को कैसे त्याग सकता है तथा वह संसार से कैसे विरक्त हो सकता है ?॥१३॥

भावार्थ दीपिका

कोशस्कृत् कोशस्कारी कीटः । स यथा आत्मनो हितं गृहं कुर्वाणो निर्गमाय द्वारमपि नावशेषयति तथा कर्माणीहमानः। नन्ववितृप्तकामोऽपि दोषदर्शनेन विरक्तः संस्त्यजेत्तत्राह-औपस्थ्यं शैश्नयं जैह्वयं च सुखं बहुमन्यमानस्तदेवाधिकं मन्यमानः। अतो दुरन्तो मोहो यस्य स कथं विरज्येत विरक्तः स्यात् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

कोशस्कृत अर्थात् रेशम का कीड़ा । वह जैसे अपने लिए गृह का निर्माण करते-करते उससे बाहर निकलने का द्वार भी नहीं छोड़ता है, उसी तरह से कर्मों को करना चाहने वाला जिसकी कामनाएँ तृप्त नहीं हुई है वह भी उसमें होने वाले दोष को देखकर उससे विरक्त हो सकता है । और उसका त्याग भी कर सकता है । इसके उत्तर में प्रह्लादजी कहते हैं जो व्यक्ति जननेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय सुख को ही अपना सर्वस्व मानता है अतएव उसका उसमें अत्यधिक मोह होता है । वह उस काम वासन से विरक्त कैसे हो सकता है ॥१३॥

कुटुम्बपोपाय वियन्निजायुर्न बुध्यतेऽर्थं विहतं प्रमत्तः ।
सर्वत्र तापत्रयदुःखितात्मा निर्विद्यते न स्वकुटुम्बरामः ॥१४॥

अन्वयः— स्वकुटुम्बरामः प्रमत्तः कुटुम्ब पोषाय निजायुः वियन् विहतं अर्थं न बुध्यते सर्वत्र तापत्रय दुखितात्मा न निर्विद्यते ॥१४॥

अनुवाद— जो अपने परिवार में ही रमा हुआ है, वह अपने परिवार का पोषण करने के लिए अपनी आयु को गवाँ देता है, वह इस बात को नहीं जानता है कि मेरे इस जीवन का लक्ष्य क्या है ? वह सर्वत्र दैहिक, दैविक एवं भौतिक संतापों से संतप्त रहता है फिर भी उसको अपने कुटुम्ब से निर्वेद पैदा नहीं होता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

दुरन्तमोहत्वं दर्शयन्नाह-कुटुम्बपोषणाय क्षीयमाणं निजमायुः पुरुषार्थं च विहतं न बुध्यते । अतएव तापत्रयेण दुःखितचित्तोऽपि न निर्विद्यते तत्र दुःखबुद्धिं न करोति । यतः स्वकुटुम्बे रामो रतिर्यस्य ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

कुटुम्बपोषण में संलग्न जीव के भयङ्कर मोह को प्रह्लादजी बतलाते हैं । अपने परिवार के पोषण में ही रमा हुआ मनुष्य न तो अपनी क्षीण होने वाली आयु को जान पाता है और न तो वह अपने जीवन के उद्देश्य को ही जान पाता है । अतएव सर्वत्र दैहिक, दैविक एवं भौतिक इन तीनों प्रकार के संतापों से संतप्त रहकर भी वह अपने परिवार से विरक्त नहीं होता है । क्योंकि उसका अपने परिवार में ही प्रेम रहता है ।।१४।।

वित्तेषु नित्याभिनिविष्टचेता विद्वांश्च दोषं परवित्तहर्तुः ।
प्रेत्येह चाथाप्यजितेन्द्रियस्तदशान्तकामो हरते कुटुम्बी ।।१५।।

अन्वयः— वित्तेषु नित्याभिनिविष्टचेत्ता, परवित्तहर्तुः दोषान् प्रेत्य इह च विद्वान् अजितेन्द्रियः अशान्तकामः कुटम्बी तत् हरते ।।१५।।

अनुवाद— वह कुटुम्ब के पालन में अत्यन्त आसक्त होने के कारण उसका मन सदा धन प्राप्ति के उपायों में ही लगा रहता है । वह जानता है कि जो दूसरें की सम्पत्ति को चुराता है वह इस लोक में तथा मृत्यु के पश्चात् परलोक में भी उसका दण्ड भोगता है । फिर भी इन्द्रियों के वश में नहीं होने के कारण उसकी कामनाएँ कभी शान्त नहीं होती है और वह दूसरे के धन की चोरी कर ही लेता है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

प्रत्युत चौर्यं करोतीत्याह-वित्तेष्विति । नित्यमभिनिविष्टं चेतो यस्य स परवित्तहर्तुः प्रेत्य नरकलक्षणमिह च दण्डादिरूपं दोषं यद्यपि विद्वान् जानन्नथाप्यशान्ताभिलाषस्तत्परवित्तं हरत्येव ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

कुटुम्ब परायण पुरुष परिवार पालन के लिए चोरी भी करता है इस बात को वित्तेष्विह इत्यादि श्लोक से प्रह्लदजी कहते हैं— जिसका मन सदा धन में लगाता है, वह यद्यपि जानता है कि दूसरे की सम्पत्ति को चुराने वाले को इस लोक तथा परलोक में भी नरक भोगादि रूप दण्ड भोगना ही पड़ता है किन्तु अभिलाओं के शान्त नहीं होने के करण वह दूसरे की सम्पत्ति का हरण कर ही लेता है ।।१५।।

विद्वानपीत्थं दनुजाः कुटुम्बं पुष्णन्स्वलोकाय न कल्पते वै ।
यः स्वीयपारक्यविभिन्नभावस्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः ।।१६।।

अन्वयः— हे दनुजा इथं विद्वान् अपि कुटुम्बं पुष्णन् वै स्वलोकाय न कल्पते, यः स्वीयपारक्य विभिन्नभावः विमूढो यथा तमः प्रपद्यते ।।१६।।

अनुवाद— हे दानवों इस प्रकार विद्वान् भी यदि अपने परिवार के पोषण में ही लगा हुआ है तो भी वह आत्मचिन्तन नहीं कर सकता है । यह मेरा है, यह दूसरे का है, इस प्रकार की विभिन्न भावना से युक्त होने के कारण उसी तरह से नरक में चला जाता है जिस तरह से अज्ञानी मनुष्य नरक में जाता है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं को गृहेषु पुमानित्यादिसप्तभिः श्लोकैरुपपादितम्, गृहादिषु प्रसक्तस्य वैराग्याद्यसंभवमुपसंहरति-विद्वानिति ।

स्वलोकायात्मपरामर्शाय न कल्पते । किंतु विमूढो यथा तथा विद्वानपि तमोऽभिनिवेशमेव प्रपद्यते । तत्र हेतुः- य इति । स्वीयमिदं पारक्यमिदमिति विभिन्नो भावो भावना यस्य सः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह को **गृहेषु० पुमान० इत्यादि** सात श्लोकों से जिसका प्रतिपादन किया जा चुका है, उसके विषय में यह कहा जा रहा है कि गृह आदि में आसक्त विद्वान् पुरुष को वैराग्य नहीं हो सकता है । वह आत्मा चिन्तन नहीं कर सकता है । अपितु अज्ञानियों के ही समान वह भी नरक में चला जाता है । उसका कारण है कि उसको भी यह भावना बनी रहती है कि यह मेरा है तथा यह दूसरे का है ।।१६।।

यतो न कश्चित्क्व च कुत्रचिद्वा दीनः स्वमात्मानमलं समर्थः ।
विमोचितुं कामदृशां विहारक्रीडामृगो यन्निगडो विसर्गः ।।१७।।

अन्वयः— यः कामदृशां विहारक्रीडामृगः यत् निगडः विसर्गः यतो दीनः कश्चित् क्व च कुत्रचित् वा स्वमात्मानं आत्मांनं विमोचितु न समर्थः ।।१७।।

अनुवाद— जो कामिनियों के मनोरञ्जन का क्रीडा मृग बना हुआ है तथा जिसने अपने पैरों में सन्तान रूपी बेर्णी को डाल लिया है वह बेचारा कोई भी हो कहीं भी और किसी भी प्रकार से हो वह अपनी आत्मा को मुक्त करने मे समर्थ नही हो सकता है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

तस्मात्कौमार एव भागवतान्धर्मानाचरेदिति सहेतुकमुपसंहरति-यत इति । यतः कश्चिदपि स्वमात्मानं मोचितुं न समर्थस्ततो नारायणमुपेत शरणं यातेत्युत्तरेणान्वयः । असामर्थ्ये हेतुः- अलं दीनो लम्पटः । अतः कामो दृशि यासां तासां विहारे क्रीडायां निमित्ते क्रीडामृगः । विहारमिति पृथक्पाटे तासां विहारसाधनमात्मानम् । यतस्तासां क्रीडामृगः स इत्यन्वयः । किंच यद्यामु निगडः शृङ्खलातुल्यो विसर्गः पुत्रपौत्रादिरूपो भवति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

अतएव कौमारावस्था में ही भागवत धर्मों का अनुष्ठान करे इस बात का उपसंहार हेतु के उपन्यास पूर्वक करते है । क्योंकि कोई अपनी आत्मा को मुक्त करने में समर्थ नहीं हो सकता है । अतएव तुम लोग भगवान् नारायण की ही शरणागति करो । यह आगे के श्लोक से अन्वय है । असामर्थ्य का कारण है कि वह व्यक्ति अत्यन्त लम्पट होता है । अतएव वह कामिनियों के मनोरंजन की सामग्री (क्रीडामृग) बन जाता है । **विहारम्** यह पृथक् पाठ होने पर अर्थ होगा कि वह विहार के साधन अपनी आत्मा को मुक्त नहीं कर सकता है, क्योंकि वह कामिनियों का क्रीडा मृग होता है । क्योंकि वह कामिनियों की शृङ्खला के समान पुत्र-पौत्रादि रूप होता हैं।।१७।।

ततो विदूरात्परिहृत्य दैत्या दैत्येषु सङ्गं विषयात्मकेषु ।
उपेत नारायणमादिदेवं स मुक्तसङ्गैरिषितोऽपवर्गः ।।१८।।

अन्वयः— हे दैत्याः ततः विषयात्मकेषु दैत्येषु सङ्गं दूरात् परिहृत्य आदिदेवं नारायणं उपेत सः मुक्तसङ्गैरिपितः अपवर्गः ।।१८।।

अनुवाद— हे दैत्यों ! इसलिए तुमलोग विषय भोगों में आसक्त दैत्यों का सङ्ग दूर से ही त्याग दो और आदि देव भगवान् नारायण की शरणागति कर लो । जिन महापुरुषों ने संसार की आसक्ति का परित्याग कर दिया हैं, उन लोगों को वे ही परम प्रिय और परम गति हैं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

विदूराद्दूरतः सङ्गं परिहृत्य । यद्वा अविदूराच्छीघ्रं नारायणमुपेतेत्यन्वयः । यस्मात्स एवापवर्ग इपित इष्टः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

विषयभोगी दैत्यों का सङ्ग दूर से ही त्याग दो अथवा शीघ्र ही नारायण की शरणागति कर लो । क्योंकि भगवान् नारायण ही मुक्ति रूप से अभिप्रेत हैं ।।१८।।

नह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः । आत्मत्वात्सर्वभूतानां सिद्धत्वादिह सर्वतः ।।१९।।

अन्वयः— हे असुरात्मजाः अच्युतं प्रीणयतः बहुआयासः नहि; तस्य सर्वभूतानाम् आत्मत्वात् इह सर्वतः सिद्धत्वात्।।१९।।

अनुवाद— हे असुरात्मजों ! भगवान् अच्युत को प्रसन्न करने के लिए बहुत अधिक प्रयास नहीं करना पड़ता हैं, क्योंकि वे सभी जीवों की आत्मा हैं और सर्वत्र सबकी सत्ता के रूप में विद्यमान हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

ननु बालानामस्माकं तद्भजनमशक्यमिति चेत्तत्राह-नहीति । बह्वायासोऽतिप्रयासः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि हमलोग तो बालक हैं अतएव उनका भजन करना हमलोगों के लिए अशक्य है तो इस पर प्रह्लादजी कहते हैं कि भगवान् को प्रसन्न करने में बहुत अधिक प्रयास नहीं करना पड़ता है ।।१९।।

परावरेषु भूतेषु ब्रह्मान्तस्थावरादिषु । भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च ।।२०।।

अन्वयः— ब्रह्मान्तस्थावरादिषु परावरेषु भूतेषु, भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च परमात्मा व्यापक इति शेषः।।२०।।

अनुवाद— वे परमात्मा ब्रह्माजी से लेकर एक तृण पर्यन्त छोटे बड़े सभी भूतों में तथा भौतिक विकारों में आकाशादि महाभूतों में भी वे अन्तर्यामी रूप से व्याप्त हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

आत्मत्वात्सर्वत्र सिद्धत्वादिति च हेतुद्वयमुपपादयति-परावरेष्विति चतुर्भिः । ब्रह्मा अन्तो येषां स्थावर आदिर्येषां तेषु भूतेषु जीवेषु । भौतिकेष्वजीवेषु घटादिषु । महत्सु च भूतेष्वाकाशादिषु ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा सबों की आत्मा हैं तथा सर्वत्र व्यापक है इन दोनों अर्थों का प्रतिपादन **परावरेषु० इत्यादि** चार श्लोकों से करते हैं । परमात्मा एक छोटे से तृण से लेकर ब्रह्माजी पर्यन्त सभी जीवों में अन्तर्यामी रूप से व्यापक हैं । वे भौतिक घटादिकों में तथा आकाशादि महाभूतों में भी व्यापक हैं ।।२०।।

गुणेषु गुणसाम्ये च गुणव्यतिकरे तथा । एक एव परो ह्यात्मा भगवानीश्वरोऽव्ययः ।।२१।।

अन्वयः— गुणेषु गुणसाम्ये च तथा गुणव्यतिकरे, एक एव हि परः आत्मा भगवान् अव्ययः ईश्वरः ।।२१।।

अनुवाद— सूक्ष्म तन्मात्रों में, प्रकृति में, महत् तत्त्व आदि गुण व्यतिकरों में एक ही परमात्मा, जो भगवान् शब्द से कहे जाते हैं, वे अविनाशी और सबों के नियामक रूप से व्यापक हैं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

गुणसाम्ये प्रधाने । गुणव्यतिकरे महत्तत्त्वादो च । परो ब्रह्मस्वरूपः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा गुणसाम्य शब्द से कही जाने वाली प्रकृति में महत् तत्त्व आदि में भी ब्रह्म स्वरूप हैं ।।२१।।

प्रत्यगात्मस्वरूपेण दृश्य रूपेण च स्वयम् । व्याप्यव्यापकनिर्देश्यो ह्यनिर्देश्योऽविकल्पितः ॥२२॥

अन्वयः— स्वयम् प्रत्यगात्मस्वरूपेण दृःश्यरूपेण च स्वयम् अनिर्देश्यः अविकल्पितः हि व्याप्यव्यापक निर्देशः॥२२॥

अनुवाद— वे ही स्वयम् अन्तर्यामी रूप से व्यापक हैं, और वे ही दृश्य जगत् स्वरूप हैं । सर्वथा अनिर्वचनीय तथा विकल्प रहित होने पर भी द्रष्टा दृश्य तथा व्याप्य व्यापक रूप में उनका निर्वचन किया जाता है । वस्तुतः उनमें कोई भी विकल्प नहीं है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

कथं तर्हि द्रष्टृदृश्यभोक्तृभोग्यादिभेदो माययेत्याह-प्रत्यगात्मा द्रष्टा भोक्ता तत्स्वरूपेण व्यापकतया निर्देश्यः । दृश्यं भोग्यं देहादि तद्रूपेण च व्याप्यतया निर्देश्यो मायया ईयत इत्युत्तरेणान्वयः । वस्तुतस्तु स्वयमविकल्पितोऽनिर्देश्योऽपि सन् । यद्वा अनिर्देश्योऽप्येवं निर्देश्यः सन् विकल्पित ईयत इत्यन्वयः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

यदि ऐसी बात है तो फिर द्रष्टा, दृश्य, भोक्ता भोग आदि का निर्देश कैसे होता है ? तो इसका उत्तर है कि माया के द्वारा । प्रत्यगात्मा, द्रष्टा, भोक्ता रूप से परमात्मा का व्यापक रूप से परमात्मा निर्देश्य हैं । दृश्य, भोग्य,तथा देह आदि रूप से परमात्मा का व्याप्य रूप से निर्देश होता है । परमात्मा माया के द्वारा ही द्रष्टा और दृश्य रूप हो जाते हैं । वस्तुतः वे विकल्प रहित एवं अनिर्देश्य भी हैं । अथवा अनिर्देश्य भी होकर परमात्मा निर्देश्य रूप से विकल्पित होते हैं ॥२२॥

केवलानुभवानन्दस्वरूपः परमेश्वरः । माययान्तर्हितैश्वर्य ईयते गुणसर्गया ॥२३॥

अन्वयः— केवलानुभवानन्दस्वरूपः परमेश्वरः माययान्तर्हितैश्वर्यः गुणसर्गया । ईयते ॥२३॥

अनुवाद— वे केवल अनुभव स्वरूप आनन्द स्वरूप परमेश्वर हैं । गुणमयी सृष्टि करने वाली माया के द्वारा ही उनका ऐश्वर्य छिपा हुआ है । उस माया के विकृत होते ही उनका दर्शन हो जाता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यतः केवलोऽनुभवात्मक आनन्दएव स्वरूपं यस्य । ननु स एव चेत्सर्वत्र तर्हि सर्वत्र सर्वज्ञत्वाद्युपलभ्येत तत्राह-गुणात्मकः सर्गो यस्याः सा गुणसर्गा तया माययान्तर्हितमैश्वर्यं येन सः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

चूकि वे केवल तथा अनुभव स्वरूप तथा आनन्द ही उनका स्वरूप है । यदि कहें कि सर्वत्र यदि परमात्मा ही हैं तो सर्वत्र सर्वज्ञत्व आदि की उपलब्धि होनी चाहिए तो इसके उत्तर में प्रह्लादजी कहते हैं कि गुणमयी सृष्टि करने वाली माया के ही द्वारा इनका ऐश्वर्य अच्छन्न है ॥२३॥

तस्मात्सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदम् । आसुरं भावमुन्मुच्य यया तुष्यत्यधोक्षजः ॥२४॥

अन्वयः— तस्मात् आसुरं भावं उन्मुच्य सर्वेष भूतेषु सैहृदम् दयां कुरुत यया अधोक्षजः तुष्यति ॥२४॥

अनुवाद— अतएव तुमलोग आसुरी प्रवृत्ति का परित्याग करके सभी जीवों से मैत्री करो और उन पर दया करो उसी से भगवान् नारायण प्रसन्न होते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

यस्मादेवं तस्मात्सर्वेपु भूतेषु यथोचित्तं दयां सौहृदं च कुरुत । यया दयया उन्मुच्य संत्यज्य ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

चूंकि ऐसी बात है इसलिए सभी जीवों पर यथोचित मात्रा में दया और मैत्री की भावना रखो। उस दया के द्वारा ही श्रीभगवान् प्रसन्न होते हैं। उन्मुच्य अर्थात् त्याग कर ॥२४॥

तुष्टे च तत्र किमलभ्यमनन्त आद्ये किं तैर्गुणव्यतिकरादिह ये स्वसिद्धाः ।
धर्मादयः किमगुणेन च काङ्क्षितेन सारंजुषां चरणयोरुपगायतां नः ॥२५॥

अन्वयः— तस्मिन् अनन्ते आद्ये तुष्टे च तत्र किम् अलभ्यम् ? गुणव्यतिकरादिह ये स्वसिद्धाः धर्मादयः तैः किम् सारं जुषां चरणयोः उपगायतां नः कांक्षितेन अगुणेन मोक्षेण किम् ॥२५॥

अनुवाद— भगवान् आदि नारायण जो अनन्त स्वरूप हैं उनके प्रसन्न हो जाने पर कौन सी ऐसी वस्तु है जो नही मिल सकती है, सत्त्वरजादि गुणों के परमाणु स्वरूप लौकिक तथा पारलौकिक वस्तुएँ तथा धर्मादि तो अपने आप प्राप्त होने वाले हैं, उन सबों के लिए प्रयास करने की क्या आवश्यकता है ? सबों के सार स्वरूप श्रीभगवान् के चरणों की सेवा तथा कीर्तन करने वाले हमलोगों अगुण (गुणहीन) मोक्ष की प्राप्ति की क्या अकाङ्क्षा करनी है ?॥२५॥

भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह तुष्टे च तत्र तस्मिन्किमलभ्यम्। तथापि गुणपरिणामादेवादेव स्वसिद्धा अयत्नतः सिद्धा ये धर्मादयस्तैः किम्। अगुणेन च मोक्षेण काङ्क्षितेन किम्। तमुपगायतां नोऽस्माकमकाङ्क्षितस्यापि तस्य सिद्धेः। यद्वा मा भून्मोक्षस्तस्य चरणयोः सारंजुषां सुधां सेवमानानां तेनापि किमित्यर्थः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि सबों पर दया करने से क्या होता है ? तो इस पर प्रह्लादजी कहते हैं श्रीभगवान् के पसन्न हो जाने पर कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो प्राप्त न हो जाय। किञ्च गुणों के परिणाम स्वरूप भाग्य से प्राप्त होने वाले धर्म इत्यादि पुरुषार्थों से कौन सा लाभ है ? वे तो अपने आप प्राप्त होने वाले हैं। उसके लिए प्रयास करने की कोई आवश्यकता नही गुण हीन मोक्ष की भी आकाङ्क्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं है। सबों के सार स्वरूप श्रीभगवन् के चरणों का सेवन तथा कीर्तन करने वाले क्योंकि मोक्ष भी तो अपने आप प्राप्त होने वाला है। अथवा मोक्ष न मिले श्रीभगवन् के चरणों के सारभूत अमृत का सेवन करने वाले हमलोगों को मोक्ष से भी कौन सा लाभ है ?॥२५॥

धर्मार्थकाम इति योऽभिहितस्त्रिवर्ग ईक्षा त्रयी नयदमौ विविधा च वार्ता ।
मन्ये तदेतदखिलं निगमस्य सत्यं स्वात्मार्पणं स्वसुहृदः परमस्य पुंसः ॥२६॥

अन्वयः— धर्मार्थकाम, इति त्रिवर्गः यः अभिहितः ईक्षा, त्रयी, नयदमौ विविधा। वार्ता च तदेतत् निगमस्य अखिलं स्वसुहृदः परमस्य पुंसः स्वात्मसर्पणं चेत सत्यं मन्ये अन्यथा व्यर्थमेवेतिशेषः ॥२६॥

अनुवाद— धर्म, अर्थ और काम ये त्रिवर्ग रूप से जो शास्त्रों में वर्णित हैं तथा ईक्षा (आत्मविद्या) त्रयी (कर्मविद्या) नय दमौ (तर्क तथा दण्ड नीति) तथा अनेक प्रकार की वार्ता (जीविका) ये सभी शास्त्र वर्णित पदार्थ यदि अपने परम हितैषी परम पुरुष भगवान् श्रीहरि को आत्म समर्पण के साधन हैं, तब तो मैं इन सबों को सार्थक मानता हूँ अन्यथा ये सवके सब व्यर्थ है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

ननु च धर्मादेरपुरुषार्थत्वे किमित्याचार्याभ्यां वेदोक्तत्वेन सत्य एवाभिहितस्तत्राह-धर्मोऽर्थः कामश्चेति यस्त्रिवर्गस्तदर्थं

च य ईक्षाद्या अभिहिता: । ईक्षा आत्मविद्या त्रयी कर्मविद्या । नयदमौ तर्को दण्डनीतिश्च । द्विविधा च वार्ता जीविका । तदेतत्सर्वं निगमस्यार्थजातं स्वसुहृद: स्वान्तर्यामिण: परमस्य पुंस: स्वात्मार्पणसाधनं चेत्तर्हि सर्वं सत्यं मन्ये । सत्यपरत्वात् अन्यथा तदसत्यमेव, यद्वा तदेतदखिलं निगमस्य त्रैगुण्यविषयस्य प्रतिपाद्यं मन्ये । सत्यं पुनर्निस्त्रैगुण्यलक्षणं परमस्य पुंस: स्वात्मार्पणमेवेत्यर्थ:। तदुक्तं भगवता त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन' इति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता हे कि यदि धर्म आदि पुरुषार्थ नहीं है तो फिर दोनों आचार्योंने धर्मादि को वेदोक्त कहकर क्यों सत्य कहा है ? इस पर प्रह्लादजी ने कहा धर्म, अर्थ, और काम ये जो त्रिवर्ग हैं तथा उनके साधन भूत जो आत्मविद्या, कर्म विद्या, तर्क, दण्ड नीति, अनेक प्रकार की जीविका, ये सभी वेदोक्त पदार्थ समूह आदि अपने परमहितैषी अन्तर्यामी परम पुरुष परमात्मा को आत्म समर्पण के साधन हैं तब तो ये सबके सब सत्य हैं, अन्यथा ये सब असत्य ही हैं ऐसा मैं मनता हूँ । अथवा ये सबके सब त्रैगुण्य विषयक वेदों के प्रतिपाद्य हैं । निस्त्रैगुण्य स्वरूप परम पुरुष के स्वात्म समर्पण रूप ही हैं । श्रीभगवान् ने गीता में कहा भी है । 'त्रैगुण्य विषया वेदा: निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।'' अर्थात् अर्जुन ! वेद त्रैगुण्य विषयक है तुम त्रैगुण्य से रहित हो जाओ ॥२६॥

ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह नारायणो नरसखः किल नारदाय ।
एकान्तिनां भगवतस्तदकिंचनानां पादारविन्दरजसाप्लुतदेहिनां स्यात् ॥२७॥

अन्वय:— तदेतत् अमलम् दुरवापं ज्ञानं किल नरसख: नारायण: नारदाय आह तत् भगवत: एकान्तिनां अकिञ्चनानां पादारविन्दरजसा आप्लुत देहिनां स्यात् ॥२७॥

अनुवाद— इस निर्मल तथा कठिनाई से प्राप्त होने वाले ज्ञान को सर्वप्रथम भगवान् नारायण ने नारदजी को दिया । यह ज्ञान उन सभी प्राणियों को प्राप्त हो सकता है, जिन लोगों ने भगवान् के ऐकान्तिक तथा अकिञ्चन भक्तों के चरणारविन्द की धूलि से नहाया है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

तेषां पुनर्विश्वासार्थं गुरुसंप्रदायमाह-ज्ञानमिति । यत्र नारद: श्रोता तत्र कुतो मादृशानामधिकार इति माशङ्कीत्याह-भगवत एकान्तभक्तानां यत्पादरजस्तेनाप्लुतानां स्नातानां देहिनां सर्वेषामपि तज्ज्ञानं स्यान्न तूत्तमानामेवेति नियम: ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

उन दैत्य बालकों को विश्वास करने के लिए प्रह्लदजी ने इस ज्ञान के गुरु सम्प्रदाय का वर्णन इस श्लोक में किया है । यदि दैत्य बालक कहें कि जिसके श्रोता नारदजी हैं उसमें हमलोगों का अधिकार कैसे सम्भव हैं? तो इस प्रकार की शङ्का नहीं करनी चाहिए । श्रीभगवान् के जो अकिञ्चन तथा ऐकान्तिक भक्त हैं उन लोगों के चरणों की धूलि से जो अपने के स्नान करा लेता है, उन सभी पुरुषों का इस भागवत धर्म के ज्ञान में अधिकार है केवल उत्तम भक्तों का ही नहीं ॥२७॥

श्रुतमेतन्मया पूर्वं ज्ञानं विज्ञानसंयुतम् । धर्मं भागवतं शुद्धं नारदाद्देवदर्शनात् ॥२८॥

अन्वय:— एतत् विज्ञान संयुतम् ज्ञानम् शुद्धं भागवतं धर्मं मया देवदर्शनात् नारदात् श्रुतम् ॥२८॥

अनुवाद— इस विज्ञान से युक्त शुद्ध भागवत धर्म नामक ज्ञान को मैंने पूर्वकाल में श्रीभगवान् का दर्शन कराने वाले नारदजी के ही मुख से सुना था ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अतएव मयापि पूर्वं नारदाच्छ्रुतम् । विज्ञानसहितमनुभवपर्यन्तं ज्ञानं धर्मं च श्रुतम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

अतएव इस ज्ञान को मैंने भी नारदजी के ही मुख से सुना है। **विज्ञानसहितम्** अर्थात् अनुभव पर्यन्त ज्ञान तथा धर्म को मैंने सुना है ॥२८॥

दैत्यपुत्रा ऊचुः

प्रह्लाद त्वं वयं चापि नर्तेऽन्यं विद्महे गुरुम्। एताभ्यां गुरुपुत्राभ्यां बालानामपि हीश्वरौ ॥२९॥

अन्वयः— प्रह्लाद त्वं वयं चापि एताभ्यां गुरुपुत्राभ्यां ऋते अन्यं न विद्महे। बालानमपि हि ईश्वरौ ॥२९॥

दैत्य बालकों ने कहा

अनुवाद— हे प्रह्लादजी आप और हमलोगों भी इन शण्डा तथा मर्क नामक इन दो गुरु पुत्रों से भिन्न किसी दूसरे गुरु को नहीं जानते हैं, क्योंकि ये ही दोनों हम दैत्य बालकों के गुरु हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तत्रातिविस्मिताः पृच्छन्ति-प्रह्लादेति। हे प्रह्लादः, त्वं वयमेताभ्यां शण्डामर्काभ्यामृतेऽन्यं गुरुं न विद्मः। एतदागमनात्पूर्वमेवाहं नारदपार्श्वं गत इति चेत्तत्राहुः-बालानामप्यतिशिशूनामस्माकमेतावीश्वरौ नियन्तारावतस्तवान्यत्र गमनं न संभवति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

प्रह्लादजी की बातों को सुनकर अत्यन्त विस्मित दैत्य बालकों ने पूछा हे प्रह्लाद आप और हम सभी शण्डा तथ मर्क नामक इन दो गुरु पुत्रों से भिन्न गुरु को नहीं जानते हैं, क्योंकि दैत्य बालकों को पढ़ाने का काम ये ही दोनों करते है। यदि आप कहें कि इन सबों के पास आने से पहले ही हम नारदजी के पास गये तो ऐसा नहीं कह सकते। हम छोटे दैत्य बालको को पढ़ाने का काम ये ही दोनों करते हैं अतएव इन दोनों से अन्यत्र आपका गमन सम्भव नहीं है ॥२९॥

बालस्यान्तः पुरस्थस्य महत्सङ्गो दुरन्वयः। छिन्धि नः संशयं सौम्य स्याच्चेद्विश्रम्भकारणम् ॥३०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अन्वयः— अन्तःपुरस्थस्य बालस्य महत्सङ्गः दुरन्वयः चेत् विश्रम्भकरणं स्यात् हे सौम्य नः संशयं छिन्धि ॥३०॥

अनुवाद— प्रह्लाद अन्तः पुर में रहने वाले बालकों का महपुरुषों से सम्बन्ध होना भी कठिन है, अतएव ऐसा यदि कोई कारण हो जिसको सुनकर हमलोगों को विश्वास हो सके तो उसे आप सुनाइये ॥३०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के प्रह्लाद चरित के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

भावार्थ दीपिका

स एवात्रागत इत्यपि न संभवतीत्याहुः-बालस्येति। दुरन्वयो दुर्घटः। विश्रम्भकारणं विश्वासहेतुः ॥३०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षष्ठोऽध्ययः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मैं तो नहीं गया था वे ही आ गये तो यह भी नहीं हो सकता है क्योंकि अन्तःपुर में रहने वाले बालकों के साथ महापुरुषों का सम्बन्ध असम्भव है। अतएव आप ऐसी कोई बात बतलाइये जिससे कि विश्वास हो सकें॥३०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के छठे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥६॥

सातवाँ अध्याय

प्रह्लादजी द्वारा माता के गर्भ में प्राप्त हुए उपदेश का वर्णन

नारद उवाच

एवं दैत्यसुतैः पृष्टो महाभागवतोऽसुरः । उवाच स्मयमानांस्तान् स्मरन्मदनुभाषितम् ॥१॥

अन्वयः— एवं दैत्यसुतः पृष्टः महाभागवतः असुरः मदनुभाषितम् स्मरन् स्मयमानान् तान् उवाच ॥१॥'

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से दैत्य पुत्रों द्वारा पूछे जाने पर श्रीभगवान् के परम प्रेमी प्रह्लादजी को मेरी बात याद आ गयी और वे आश्चर्य चकित उन सबों से कहने लगे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तमे मातृगर्भस्थे स्वस्मिन्नारदभाषितम् । प्रह्लादो वर्णयामास शिष्यप्रत्ययसिद्धये । अश्रावि नारदादेतन्मया गर्भ इतीरितुम्। तत्प्रस्तावकथामाह पद्यैः षोडशभिः सुधीः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सातवें अध्याय में माता के गर्भ में जब प्रह्लादजी विद्यमान थे उस समय नारदजी के द्वारा दिए गये उपदेश को याद करके प्रह्लादजी अपने शिष्यों को विश्वास दिलाने के लिए वर्णित किए । नारदजी से मैंने इसे सुना है इस बात को कहने के लिए प्रह्लादजी ने उसके प्रस्ताव कथा को सोलह श्लोकों में कहा ॥१॥

प्रह्लाद उवाच

पितरि प्रस्थितेऽस्माकं तपसे मन्दराचलम् । युद्धोद्यमं परं चक्रुर्विबुधा दानवान्प्रति ॥२॥

अन्वयः— अस्माकं पितरि तपसे मन्दराचलम् प्रस्थिते विवुधाः दानवान् प्रति परं युद्धोद्यमं चक्रुः ॥२॥

प्रह्लादजी ने कहा

अनुवाद— जब मेरे पिता तपस्या करने के लिए मन्दराचल पर्वत पर चले गये उस समय इन्द्रादि देवताओं ने दैत्यों से युद्ध करने का वहुत अधिक प्रयास किया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अस्माकं पितरि हिरण्यकशिपौ । स्वकृतेनैव पापेन पापोऽसावभक्षि भक्षित इति हर्षेण वदन्तो युद्धोद्यमं चक्रुः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

मेरे पिता हिरण्यकशिपु के मन्दराचल पर तपस्या करने के लिए चले जाने पर उस समय प्रसन्नता पूर्वक यह अपने ही पाप के कारण खा लिया गया । यह कहते हुए देवताओं ने युद्ध करने का प्रयास किया ॥२॥

पिपीलिकैरहिरिव दिष्ट्या लोकोपतापनः । पापेन पापोऽभक्षीति वादिनो वासवादयः ॥३॥

अन्वयः— दिष्ट्या पिपीलिकैः अहिः इव लोकोपतापनः पापः पापेन अभक्षीति वादिनः वासवादय ॥३॥

अनुवाद— दैववशात् जिस तरह साँप को चीटियाँ चाट जाती हैं उसी तरह इस संसार को संतप्त करने वाले पापी हिरण्यकशिपु को उसके पाप ने ही खा लिया इस तरह से इन्द्र इत्यादि देवता कह रहे थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

तेषामतिबलोद्योगं निशम्यासुरयूथपाः । वध्यमानाः सुरैर्भीता दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥४॥
कलत्रपुत्रमित्राप्तान्गृहान्पशुपरिच्छदान् । नावेक्षमाणास्त्वरिताः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥५॥

अन्वयः तेषाम् अतिबलोद्योगं निशम्य सर्वे असुर यूथपाः सुरैः वध्यमानाः भीताः कलत्रपुत्रमित्राप्तान् गृहान् पशुपरिच्छदान् नावेक्षमाणाः त्वरितः प्राणपरीप्सवः सर्वतोदिशम् दुद्रुवुः ॥४ ५॥

अनुवाद देवताओं की अत्यधिक तैयारी को देखकर सभी असुर सेनापति, देवताओं द्वारा मारे जाने हुए अतएव भयभीत होकर वे सब के सब पत्नी, पुत्र, मित्र, गुरुजन, महल, पशु और साज समाज की सारी वस्तुओं को छोड़कर अपना प्राण बचाने की इच्छा से शीघ्रता से इधर उधर भाग गये ॥४-५॥

भावार्थ दीपिका नहीं है ॥४-५॥

व्यलुम्पन् राजशिबिरममरा जयकाङ्क्षिणः । इन्द्रस्तु राजमहिषीं मातरं मम चाग्रहीत् ॥६॥

अन्वयः— जयकांक्षिणः अमराः राजशिबिरम् व्यलुम्पन इन्द्रस्तु राजमहिषीं मम मातरं च अग्रहीत् ॥६॥

अनुवाद— विजय प्राप्ति की इच्छा वाले देवगणों ने राजमहल को लूटा और इन्द्र ने राजरानी कयाधू मेरे माता को ही पकड़ लिया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

राज्ञः शिबिरमावासं व्यलुम्पन्सर्वस्वापहारेण नाशितवन्तः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

राजमहल का सबकुछ लूटकर उसको विनाश कर दिया ॥६॥

नीयमानां भयोद्विग्नां रुदतीं कुररीमिव । यदृच्छयागतस्तत्र देवर्षिर्ददृशे पथि ॥७॥

अन्वयः— नीयमानां भयोद्विग्नां कुररीम् इव रुदतीम् यदृच्छया आगतः तत्र देवर्षिः पथि ददृशे ॥७॥

अनुवाद— इन्द्र उसको ले जा रहे थे और भयभीत बनी हुई मेरी माँ कुररी पक्षी के समान रो रही थी । दैववशात् वहाँ देवर्षि आ गये और उन्होंने उसके मार्ग में देखा ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

प्राह मैनां सुरपते नेतुमर्हस्यनागसाम् । मुञ्च मुञ्च महाभाग सतीं परपरिग्रहम् ॥८॥

अन्वयः— प्राह सुरपते ! अनागसाम् एनां मा नेतुम् अर्हसि । महाभाग परपरिग्रहम् । सतीम् मुञ्च मुञ्च ॥८॥

अनुवाद— नारदजी ने कहा देवराज निरपराध इसको मत ले जाओ । महाभाग्यवान् ! इसको छोड़ दो, छोड़ दो, यह सती दूसरे की नारी का तिरस्कार मत करो ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अनागसं निरपराधामेनां नेतुं मार्हसीति प्राह ॥८॥

भाव प्रकाशिका

यह निरपराध है, इसको मत ले जाओ ॥८॥

इन्द्र उवाच

आस्तेऽस्या जठरे वीर्यमविषह्यं सुरद्विषः । आस्यतां यावत्प्रसवं मोक्ष्येऽर्थपदवीं गतः ॥९॥

अन्वयः— अस्याः जठरे सुरद्विषः अविषह्यं वीर्यम् आस्ते यावत् प्रसवं आस्यतां अर्थपदवीं गतः मोक्ष्ये ॥९॥

इन्द्र ने कहा

अनुवाद— इसके उदर में देवद्रोही हिरण्यकशिपु का अत्यन्त प्रभावशाली वीर्य है। प्रसवकाल पर्यन्त यह मेरे पास रहेगी, उत्पन्न पुत्र को मारकर मैं इसको छोड़ दूँगा ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अविषह्यं दुःसहम्। अतोऽनया प्रसवपर्यन्तमत्रास्यताम्। ततश्चार्थस्य पदवीं मार्गं गतः प्राप्तः सन्। जातं तु हत्वा मोक्ष्यामीत्यर्थः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

अविसह्यं अर्थात् अत्यन्त प्रभावशाली, अतएव यह प्रसव काल पर्यन्त मेरे यहाँ रहेगी। पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर उसको मारकर मैं इसको छोड़ दूँगा ॥९॥

नारद उवाच

अयं निष्किल्बिषः साक्षान्महाभागवतो महान्। त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनन्तानुचरो बली ॥१०॥

अन्वयः— अयं महान् निष्किल्विषः साक्षात् महाभागवतः अनन्तानुचरः वली त्वया संस्थां न प्राप्स्यते ॥१०॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— यह महान् गुण सम्पन्न निर्दोष तथा साक्षात् श्रीभगवान् का परम प्रिय भक्त है। यह अत्यन्त बलवान् और श्रीहरि का अनुचर है, तुम इसको नहीं मार सकते हो ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

साक्षात्स्वगुणैरेव महान्नतु पित्रादिसंबन्धात्। त्वया हेतुभूतेन संस्थां मृत्युं न यास्यति। तत्र हेतवः-निष्किल्बिष इत्यादयः॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यह साक्षात् अपने गुणें से ही महान् है न कि अपने पिता इत्यदि के संबन्ध से महान् है। तुममें इसको मारने की शक्ति नहीं, क्योंकि यह निर्दोष तथा श्रीभगवान् का अत्यन्त प्रियभक्त हैं ॥१०॥

इत्युक्तस्तां विहायेन्द्रो देवर्षेर्मानयन्वचः। अनन्तप्रियभक्त्यैनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥११॥

अन्वयः— इत्युक्तः देवर्षेः वचः मानयन् इन्द्रः तां विहाय अनन्तप्रिय भक्त्या एनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥११॥

अनुवाद— इस तरह से कहे जाने पर देवर्षि की बातों का सम्मान करते हुए इन्द्र ने उसको छोड़ दिया और श्रीभगवान् की भक्ति के कारण इन्द्र ने कयाधू की परिक्रमा की और वे स्वर्गलोक चले गये ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अनन्तस्य प्रियो योऽहं, स वा प्रियो यस्य तस्य मम भक्त्या एनां प्रदक्षिणीकृत्य ॥११॥

भाव प्रकाशिका

चूकि मैं भगवान् का अनन्त प्रिय हूँ, अथवा इन्द्र जिनका भक्त है उन श्रीभगवान् की भक्ति के कारण मेरी माता की प्रदक्षिणा करके इन्द्र स्वर्ग चले गये ॥११॥

ततो नो मातरमृषिः समानीय निजाश्रमम्। आश्वास्येहोष्यतां वत्से यावत्ते भर्तुरागमः ॥१२॥

अन्वयः— ततः ऋषिः नः मातरम् निजाश्रमम् आनीय आश्वास्य वत्से! ते भर्तुः आगमः यावत् इह उष्यताम् ॥१२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् देवर्षि नारदजी मेरी माता को अपने आश्रम में लाकर आश्वस्त किए और कहे वत्से! जब तक तुम्हारे पति नहीं आ जाते हैं तब तक तुम यहीं निवास करो ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

इहोष्यतामित्याहेति शेषः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

यहीं पर रहो इस तरह से देवर्षि ने कहा ॥१२॥

तथेत्यवात्सीद्देवर्षेरन्ति साऽप्यकुतोभया । यावद्दैत्यपतिर्घोरात्तपसो न न्यवर्तत ॥१३॥

अन्वयः— अकुतोभया साऽपि तथा इति देवर्षेः अन्ति यवद्दैत्यपतिः घोरात् तपसो न न्यवर्तत् तावत् अवात्सीत्॥१३॥

अनुवाद— निर्भय मेरी माता भी ठीक है, यह कहकर देवर्षि के ही सन्निकट तब तक निवास की जब तक दैत्यराज घोर तपस्या करके नहीं लौटे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अन्ति समीपे ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

अन्ति अर्थात् सन्निकट में ॥१३॥

ऋषिं पर्यचरत्तत्र भक्त्या परमया सती । अन्तर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमायेच्छाप्रसूतये ॥१४॥

अन्वयः— तत्र अन्तर्वत्नीसती स्वगर्भस्य क्षेमाय, इच्छाप्रसूतये च ऋषिं परमया भक्त्या पर्यचरत् ॥१४॥

अनुवाद— वहाँ पर गर्भवती तथा पतिव्रता मेरी माँ अपने गर्भ के कल्याण के लिए तथा अपनी इच्छा के अनुसार ही प्रसव करने के लिए देवर्षि नारदजी की अत्यन्त भक्ति पूर्वक सेवा करती थी ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अन्तर्वत्नी गर्भिणी । इच्छया भर्तुरागमनानन्तरं प्रसूतये । एवमपि स्वगर्भस्य क्षेमाय ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अन्तर्वत्नी अर्थात् गर्भिणी, अपनी इच्छा से पति के आने के पश्चात् ही प्रसव करने के लिए तथा अपने गर्भ के कल्याण के लिए ॥१४॥

ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रादादुभयमीश्वरः । धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम् ॥१५॥

अन्वयः— ईश्वरः कारुणिकः ऋषिः तस्याः धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च निर्मलम् मामुद्दिश्य उभयं प्रादात् ॥१५॥

अनुवाद— सर्वसमर्थ ऋषि नारदजी अत्यन्त करुणा करने वाले हैं उन्होंने मुझको ही उद्देश्य बनाकर मेरी माँ को भागवत धर्म के रहस्य के उपदेश का तथा विशुद्ध ज्ञान का उपदेश दिया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तस्याः शोकशान्त्यै धर्मस्य तत्त्वं भक्तिलक्षणं, ज्ञानमात्मानात्मविवेकस्तदुभयं प्रादात् । ईश्वरः समर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

मेरी माता के शोक की शान्तिके लिए भक्ति स्वरूप धर्म के तत्त्व तथा आत्मानात्मविवेक रूप ज्ञान दोनों का उपदेश दिए । नारदजी सर्वसमर्थ हैं ॥१५॥

तत्तु कालस्य दीर्घत्वात्स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे । ऋषिणाऽनुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात्स्मृतिः ॥१६॥

अन्वयः— ततु कालस्य दीर्घत्वात् स्त्रीत्वात् मातुः तिरोदधे, ऋषिणाऽनुगृहीतं मां आधुनाऽपि स्मृतिः न अजहात्॥१६॥

अनुवाद— बहुत अधिक समय बीत जाने के कारण तथा स्त्री होने के कारण भी मेरी माता को उस ज्ञान की स्मृति नहीं रही किन्तु देवर्षि की विशेष कृपा होने के कारण मुझको वह ज्ञान विस्मृत नहीं हुआ है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः । वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्रीबालानां च मे यथा ॥१७॥

अन्वयः— यदि मे वचः श्रद्दधते तदा भवतामपि वैशारदी धीः भूयात् श्रद्धातः स्त्रीबालानां च मे यथा वैशारदी धी स्यात् ॥१७॥

अनुवाद— यदि तुमलोग भी मेरी बातों में श्रद्धा करो तो तुमलोगों की भी बुद्धि मेरे ही जैसी शुद्ध हो सकती है । श्रद्धा से ही स्त्रियों और बालकों की बुद्धि शुद्ध होती है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

भूयाद्भवेत् । वैशारदी । स्वार्थे तद्धितः । देहाद्यहङ्कारच्छेदनिपुणेत्यर्थः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

भूयात् अर्थात् होए । वैशारदी में स्वार्थ मे तद्धित प्रत्यय हुआ है । देहादि अहङ्कार को विनष्ट करने वाली शुद्धबुद्धि हो जायेगी ॥१७॥

जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः । फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वरमूर्तिना ॥१८॥

अन्वयः— ईश्वरमूर्तिना कालेन वृक्षस्य फलानाम् इव जन्माद्याः इमे षड्भावाः देहस्य दृष्टाः आत्मनः न ॥१८॥

अनुवाद— जिस तरह ईश्वर की मूर्ति काल के द्वारा वृक्षों है फल लगते, ठहरते, बढ़ते, पकते, क्षीण होते एवं विनष्ट होते हैं, उसी तरह शरीर के ही जन्म, अस्तित्व, वृद्धि, परिणाम, क्षय और विनाश ये छह भाव विकार होते हैं, आत्मा के नहीं । इन सबों का आत्मा से कोई संबन्ध नहीं है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

कासौ वैशारदी धीरित्यपेक्षायां नारदोक्तमेव देहात्मविवेकप्रकारमाह-जन्मेति दशभिः । जन्माद्या जायते अस्ति वर्धते विपरिणमतेऽपक्षीयते नश्यतीत्येवंभूता इमे षड्भावा विकारा वृक्षे सन्त्येव यथा फलानां दृश्यन्ते तद्वदात्मनि तथैव स्थिते देहस्य दृष्टा इत्यर्थः । ईश्वरी विकारसमर्था मूर्तिर्यस्य तेन ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि वैशारदी बुद्धि का स्वरूप क्या है ? इसके उत्तर में नारदजी द्वारा प्रोक्त देह एवं आत्मा के विवेक के प्रकार को प्रह्लादजी जन्म० इत्यादि दस श्लोकों से बतलाते हैं । जन्म आदि षड्भाव विकार ये हैं अस्ति (जन्म) सत्ता की अनुभूति, बढ़ना, परिपक्व होना, क्षीण होना, और नष्ट होना । ये छहो विकार वृक्षों के फलों के भी होते हैं । इसी तरह आत्मा के रहते समय से शरीर के भी वे छह भाव विकार होते हैं । ये सभी विकार ईश्वर मूर्ति काल के द्वारा प्रेरित होकर होते हैं ॥१८॥

आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः । अविक्रियः स्वदृग्घेतुर्व्यापकोऽसङ्ग्यनावृतः ॥१९॥

अन्वयः— आत्मा, नित्यः अव्ययः शुद्धः एकः क्षेत्रज्ञः आश्रयः अविक्रियः स्वदृग् हेतुः व्यापकः असङ्गी अनावृतः ॥१९॥

अनुवाद— यह आत्मा नित्य, अविनाशी शुद्ध, एक, क्षेत्रज्ञ, आश्रय, निर्विकार, स्वयं प्रकाश, सब का कारण, व्यापक, असङ्ग तथा आवरण रहित है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं देहधर्मैस्तद्वैलक्षण्येनात्मनो देहाद्भेदो दर्शितः, इदानीमात्मधर्मैरेव भेदं स्फुटयंस्तदहंकारादिकं त्याजयति- आत्मेति। आत्मा नित्यः । 'अविनाशी वारेऽयमात्मा' इति श्रुतेः । अव्ययोऽपक्षयशून्यः । 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्' इति श्रुतेः । शुद्धः 'निरवद्यं निरञ्जनम्' इति श्रुतेः । एकः 'एकमेवाद्वितीयम्' इति श्रुतेः । क्षेत्रज्ञः 'विज्ञातारमरे केन विजानीयात्' इति श्रुतेः । आश्रयः 'यस्मिन्द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षम्' इति श्रुतेः । अविक्रियः 'निष्कलं निष्क्रियं शान्तम्' इति श्रुतेः । स्वदृक् 'आत्मज्योतिः सम्राडिति होवाच' इति श्रुतेः । हेतुः 'स इमाँल्लोकानसृजत' इति श्रुतेः । व्यापकः 'सत्यं ज्ञानमनन्तम्' इति श्रुतेः । असङ्गी 'असङ्गो ह्ययं पुरुषः' इति श्रुतेः । अनावृतः 'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते' इति श्रुतेः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह देह के धर्मों से आत्मा की भिन्नता है इस बात को बतलाया गया है । इस श्लोक में आत्मा के धर्मों के ही द्वारा भेद को स्पष्ट करते हुए देह में होने वाले अहङ्कार आदि को दूर करते हैं । आत्मा नित्य है इस बात को अविनाशी वाऽरेयमात्मा यह श्रुति कहती है । अर्थात् अरे मैत्रेयी ! यह आत्मा अविनाशी है । आत्मा अपक्षय रहित है । श्रुति भी कहती है **ऋचो अक्षरे परमेव्यामन्** । आत्मा शुद्ध हैं इस बात को **निरवद्यं निरञ्जनम्** श्रुति कहती है । एकमेवा द्वितीयम् श्रुति आत्मा को एक कहती है । विज्ञातारमरे केन विजानीयात् श्रुति आत्मा को क्षेत्रज्ञ बतलाती हैं । **यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षम्** श्रुति आत्मा को सबका आश्रय बतलाती हे । **निष्कलं निष्क्रयं शान्तं** श्रुति आत्मा को विकार रहित (अविक्रिय) बतलाती हैं । **आत्मज्योतिः सम्राडिति हो वाच** आत्मा का स्वदृक् (स्वयं प्रकाश) बतलाती हैं । **सइमान् लोकानसृजत्** श्रुति आत्मा को सम्पूर्ण जगत् का कारण बतलाती है । **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म** श्रुति आत्मा को व्यापक बतलाती हैं । और **पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते** श्रुति आत्मा को अनावृत बतलाती है ।।१९।।

एतैर्द्वादशभिर्विद्वानात्मनो लक्षणैः परैः । अहंममेत्यसद्भावं देहादौ मोहजं त्यजेत् ।।२०।।

अन्वयः— एतैः द्वादशभिः परैः लक्षणैः विद्वान् देहादौ अहं मम इति मोहजं असद्भावं त्यजेत् ।।२०।।

अनुवाद— ये आत्मा के उत्कृष्ट बारह लक्षण हैं । इनके द्वारा आत्मा तत्त्ववेत्ता पुरुष को चाहिए कि शरीर आदि में अज्ञान के कारण जो अहन्त्व एवं ममत्व के मिथ्या भाव को त्याग दे ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

एतैर्द्वादशभिरात्मनो लक्षणैः परैः श्रेष्ठैर्विवेकसमर्थैर्देहाद्भेदं विद्वानसद्भावं मिथ्याबुद्धिं त्यजेत् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

ये आत्मा के श्रेष्ठ बारह लक्षण है । इन से आत्मा का देहादि से भेद ज्ञान हो जाता है । अतएव देहादि में होने वाले मिथ्या अहन्त्व एवं ममत्व बुद्धि को आत्मवेता पुरुष को त्याग देना चाहिए ।।२०।।

स्वर्णं यथा ग्रावसु हेमकारः क्षेत्रेषु योगैस्तदभिज्ञ आप्नुयात् ।
क्षेत्रेषु देहेषु तथात्मयोगैरध्यात्मविद्ब्रह्मगतिं लभेत् ।।२१।।

अन्वयः— यथा ग्रावसु स्वर्णं तदभिज्ञः हेमकारः क्षेत्रेषु आप्नुयात् तथा अध्यात्मवित् देहेषु क्षेत्रेषु योगैः ब्रह्मगतिं लभेत् ।।२१।।

अनुवाद— जिस तरह पत्थर के ऊपर चमकने वाले सुवर्ण को उसको निकाल लेने के उपाय को जानने वाला सुनार धमनी आदि उपायों से निकाल लेता है, उसी तरह आध्यात्म तत्त्व को जानने वाला पुरुष आत्म प्राप्ति के उपायों द्वारा अपने शरीर रूपी क्षेत्र में ही ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं विविक्तात्मज्ञानिनोऽप्यपरोक्षानुभवेन ब्रह्मताप्राप्तिः कथं स्याद्यतोऽहङ्कारादिकं त्यजेदित्यपेक्षायां तत्प्राप्तिप्रकारं सदृष्टान्तमाह-स्वर्णाकरक्षेत्रेषु स्फुरत्स्वर्णकणेषु ग्रावसु योगैर्धमनाद्युपायैस्तदभिज्ञ उपायाभिज्ञो हेमकारो यथा स्वर्णं प्राप्नुयात् । आत्मयोगैरात्मप्राप्त्युपायैः । ब्रह्मगतिं ब्रह्मताम् । अध्यात्मवित् आत्माधिकृतकार्यकारणसंघातज्ञाता ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि विविक्त आत्मा को जानने वाला भी पुरुष अपरोक्ष अनुभव के द्वारा ब्रह्मत्व की प्राप्ति कैसे कर सकता है ? जिससे कि वह अहङ्कार इत्यादि का त्याग कर दे । तो इसके उत्तर में प्रह्लादजी कहते हैं। स्वर्ण के खजाने के क्षेत्र में पत्थर के ऊपर चमकने वाले सुवर्ण के कणों को उसके निकालने के उपाय के ज्ञाता स्वर्णकार धमनी आदि साधनों से उस सुवर्ण को प्राप्त कर लेता है । उसी तरह अध्यात्म तत्त्व का ज्ञाता आत्मज्ञ पुरुष आत्म प्राप्ति के उपायों से अपने शरीर रूप क्षेत्र में ही ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेता है ॥२१॥

अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्तास्त्रय एव हि तद्गुणाः । विकाराः षोडशाचार्यैः पुमानेकः समन्वयात् ॥२२॥

अन्वयः— आचार्यै अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्ताः त्रय एव हि तद्गुणाः, विकाराः षोडश एकः पुमान् समन्वयात् ॥२२॥

अनुवाद— आचार्यों ने मूल प्रकृति, महान् अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा ये इन आठों को प्रकृति कहा है। इन सबों के तीन ही गुण हैं । सत्त्व, रजस् एवं तसम् तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, पञ्च महाभूत और मन इन सोलहों को विकार कहा है । इन सबों में एक ही आत्मा साक्षी रूप से समन्वित है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अध्यात्मविवेकमात्मप्राप्त्युपायमाह-अष्टाविति त्रिभिः । मूलप्रकृतिर्महदहङ्कारौ पञ्चतन्मात्राणि चेत्यष्टौ । त्रयः सत्त्वादयस्ते च प्रकृतिगुणा एव, नतु भिन्नाः । एकादशेन्द्रियाणि पञ्चमहाभूतानि चेति षोडश । पुमानात्मा एकः प्रोक्तः कपिलादिभिराचार्यैः। एकत्वे हेतुः— एषु साक्षित्वेनान्वयात् । तदुक्तम् 'मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त । षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ॥' इति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अष्टौ इत्यादि तीन श्लोकों से अध्यात्म विवेक को आत्म प्राप्ति का उपाय कहा गया है । मूल प्रकृति, महान् और अहङ्कार एवं पञ्च तन्मात्रायें इन आठों को आचार्यों ने प्रकृति कहा है । सत्त्व इत्यदि तीन ही उन सबों के गुण हैं । उनसे भिन्न गुण नहीं है । ग्यारह इन्द्रियाँ और पञ्च महाभूत ये सोलह विकार कहे गये हैं । कपिल आदि आचार्यों पुरुष नामक आत्मा को एक कहा है । उसके एक ही होने का कारण है कि वह उन सबों का साक्षी रूप से अनुगत हैं । कहा भी गया है **मूल प्रकृतिः इत्यादि** मूल प्रकृति विकार रहित है तथा सात महदादि प्रकृति और विकृति (कारण एवं कार्य दोनों) है । सोलह केवल कार्य हैं तथा पुरुष न तो प्रकृति है और न विकृति है ॥२२॥

देहस्तु सर्वसंघातो जगत्तस्थुरिति द्विधा । अत्रैव मृग्यः पुरुषो नेति नेतीत्यतत्त्यजन् ॥२३॥

अन्वयः— देहः तु सर्वसंघातः जगत् तस्थुः इति द्विधा अत्रैव नेति नेति इति अत्यजन् पुरुषो मृग्यः ॥२३॥

अनुवाद— शरीर इन सबों का समूह है । यह शरीर दो प्रकार का होता है । स्थावर और जङ्गम । इसी में अनात्म वस्तुओं इन्द्रियों आदि का बाध करते हुए आत्म तत्त्व का अन्वेषण करना चाहिए ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

जगज्जङ्गमम् । तस्थुः स्थावरम् । अत्रैव सर्वसंघातात्मके देह एव पुरुषो मृग्योऽन्वेष्टव्यः । सुशकं चैतदित्याह-नेति नेतीत्यन्यापोहे क्रियमाणे स्वयमेवातत्त्यजन् । अनात्मवर्गात्पृथगुपलभ्यमान इत्यर्थः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

जगत् शब्द से जंगम शरीर के तथा तस्थु: शब्द से स्थावर शरीर को कहा गया है । इन सब्रों के संघात रूप शरीर में ही आत्मा का अन्वेषण करना चाहिए । इसको आसान बतलाते हुए कहा गया है कि नेति-नेति यह नहीं है । यह नहीं है । इस तरह से इन्द्रियादि का वाध करते हुए अपने आप अनात्म वर्ग से भिन्न आत्मा की उपलब्धि हो जाती हैं ॥२३॥

अन्वयव्यतिरेकेण विवेकेनोशतात्मना । सर्गस्थानसमाम्नायैर्विमृशद्भिरसत्वरैः ॥२४॥

अन्वयः— अन्वयव्यतिरेकेण विवेकेन उशतात्मना सर्गस्थान. समाम्न्यायैः असत्वरैः विमृशद्भिः ॥२४॥

अनुवाद— आत्मा सब में अनुस्यूत है किन्तु वह सबसे भिन्न हैं । इस प्रकार शुद्ध बुद्धि के द्वारा धीरे-धीरे संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय पर विचार करना चाहिए । शीघ्रता नहीं करना चाहिए ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

मणिषु सूत्रमिव सर्वत्रानुस्यूतत्वेनान्वयः । अतएव मणिभ्यः सूत्रस्येवैकैकव्यतिरेकश्च । तयोर्द्वन्द्वैक्यम् । तेन यो विवेकः पूर्वोक्तो वा तेन उशता शुद्धेनत्मना मनस । सर्गस्थानसमाम्नायैः सृष्टिस्थितिसंहारैः । 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादिश्रुत्युक्तसर्गाद्यनुसंधानेनेत्यर्थः । विमृशद्भिर्विचारयद्भिः असत्वरैरव्यग्रैर्मृग्य इति पूर्वेणान्वयः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह माला की सभी मणियों में सूत्र अनुस्यूत रहता हैं । उसी तरह आत्मा सवों में अनुस्यूत है । अतएव जिस तरह सूत्र मणियों से भिन्न होता है उसी तरह आत्मा शरीर इन्द्रियों आदि से भिन्न है । **अन्वव्यतिरेकेण** में द्वन्द्व समास होने के कारण एकत्व है । उसके द्वारा होने वाले विवेक उस शुद्ध मन से सृष्टि, स्थिति तथा संहार के द्वारा धीरे-धीरे विचार करना चाहिए शीघ्रता न करे । इस तरह से आत्मा का अन्वेषण करे वा इमानि भूतानि जायन्ते इस श्रुति में प्रोक्त सृष्टि आदि का अनुसन्धान करना चाहिए ॥२४॥

बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः । ता येनैवानु भूयन्ते सोऽध्यक्षः पुरुषः परः ॥२५॥

अन्वयः— बुद्धे जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिः इति वृत्तयः ता; येन एव अनुभूयन्ते सः अध्यक्षः परः पुरुषः ॥२५॥

अनुवाद— बुद्धि की तीन वृत्तियाँ होती है, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति । इन तीनों वृत्तियों का जो अनुभव करने वाला है, वही परं पुरुष सबों का अध्यक्ष है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

विमर्शप्रकारमाह-बुद्धेरिति द्वाभ्याम् । अध्यक्षः साक्षी ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

विचार करने के प्रकार को **बुद्धे० इत्यादि** दो श्लोकों से कहा गया है । अध्यक्ष अर्थात् साक्षी ॥२५॥

एभिस्त्रिवर्णैः पर्यस्तैर्बुद्धिभेदैः क्रियोद्भवैः । स्वरूपमात्मनो बुध्येद्गन्धैर्वायुमिवान्वयात् ॥२६॥

अन्वयः— गन्धैः अन्वयात् वायुमिव पर्यस्तैः क्रियोद्भवैः बुद्धिभेदैः आत्मनः स्वरूपम् बुध्येत् ॥२६॥

अनुवाद— जिस तरह गन्ध के द्वारा उसके आश्रय वायु का ज्ञान होता है, उसी तरह बुद्धि की इन कर्म जन्य वदलने वाली अवस्थाओं के द्वारा इनके साक्षी रूप में अनुगत आत्मा को जानना चाहिए ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अत एभिर्बुद्धिभेदैः परिणामैः पर्यस्तैः परितः क्षिप्तैरनात्मधर्मत्वेन निरस्तैः । बुद्धिधर्मत्वे हेतुः-त्रिवर्णैस्त्रिगुणात्मकैः ।

क्रियोद्भवैः कर्मजन्यैः । बुद्धेरेव त्रिगुणात्मकत्वात्कर्मकर्तृत्वाच्च तस्य एवैत अवस्थाः । आत्मा तु बुद्ध्यन्वयात्तदवस्थावा न तत्वत इत्यात्मनः स्वरूपं बुध्येज्जानीयादित्यर्थः । अत्र दृष्टन्तः-कुसुमधर्मैर्गन्धैस्तदाश्रयं वायुमिव ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अतएव इन बुद्धि के तीनों परिणामों के जो अनात्मा रूप से निरस्त हैं उनके द्वारा इन परिणामों के का धर्म होने का कारण है कि वे कर्म जन्य हैं तथा त्रिगुणात्मक होने के कारण एवं कर्म कर्ता होने के बुद्धि की ही ये अवस्थाएँ हैं । आत्मा तो बुद्धि से अन्वित होने के कारण उन अवस्थाओं वाला प्रतीत वह तत्वतः वैसा नहीं है । इस तरह से आत्मा के स्वरूप को जानना चाहिए । इसमें दृष्टान्त है कि जिस गन्ध के द्वारा उसके आश्रय वायु का पता चलता है ॥२६॥

एतद्द्वारो हि संसारो गुणकर्मनिबन्धनः । अज्ञानमूलोऽपार्थोऽपि पुंसः स्वप्न इवेष्यते ॥२७॥

अन्वयः— एतद् द्वारो हि संसारः गुणकर्म निबन्धनः अज्ञानमूलः अपार्थः पुंसः स्वप्नः इव इष्यते ॥२७॥

अनुवाद— गुणों एवं कर्मों के कारण जन्म और मृत्यु के चक्र रूप यह संसार आत्मा को शरीर और से पृथक नहीं कर पाने के कारण होता है । यह संसार अज्ञानमूलक एवं मिथ्या है । फिर भी स्वप्न के इसकी प्रतीति जीव को होती रहती है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि यथा कुसुमोपाधिकोऽपि वायोर्गन्धो विवेकज्ञानेन निवर्तते एवमात्मनः संसारो न निवर्तत इत्याशङ्क्य एतद्द्वारो बुद्धिद्वारकस्तदवस्थाद्वारको वासंसारो न स्वतः । हि यस्माद्बुद्धेर्ये गुणाः कर्माणि च तैर्निवध्यत इति । तथा चाज्ञानमूलोऽतोऽपार्थो मिथ्याभूतोऽपि स्वप्न इवेष्यते । वायोस्तु गन्धद्रव्यसंबन्धस्य वास्तवत्वाद्विषमो दृष्टान्तः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि जैसे कुसुमोपाधिक भी वायु की गन्ध विवेक ज्ञान के द्वारा दूर होता है, उसी तरह का संसार नहीं निवर्तित होता है । इस प्रकार की आशङ्का करके कहते हैं । बुद्धि के द्वारा अथवा बुद्धि की के द्वारा संसार स्वतः नहीं निवर्तित होता है । क्योंकि बुद्धि के जो कर्म और गुण है उन सवों से आत्मा में वँध जाता है । किञ्च अज्ञान मूलक तथा मिथ्या होकर भी वह जीव को स्वप्न के समान प्रतीत हो रहा है वायु का तो गन्ध द्रव्य से संबन्ध वास्तविक है मिथ्या नहीं हैं अतएव यह विषम दृष्टान्त है ॥२७॥

तस्माद्भवद्भिः कर्तव्यं कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् । बीजनिर्हरणं योगः प्रवाहोपरमो धियः ॥२८॥

अन्वयः— तस्माद् भवद्भि; त्रिगुणात्मनाम् कर्मणां बीज निर्हरणं कर्तव्यम् प्रवाहोपरमः धियः योगः अपरमेवेतिशेषः ॥२८

अनुवाद— इसलिए तुमलोगों को सर्वप्रथम गुणों के अनुसार होने वाले कर्मों के बीज अज्ञान को भस्म कर चाहिए उसी से बुद्धि की वृत्तियों का प्रवाह रुक जाता है । इसी को योग अथवा परमात्मा से मिलन कहते हैं ॥२८

भावार्थ दीपिका

यस्मादेवं निवृत्तिर्घटते तस्माद्बीजमज्ञानं तस्य निर्हरणं दहनम् । किं तत् । योगः । कथंभूतः धियः प्रवा जाग्रदादिरूपमुपरमयतीति तथा ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

चूकि इसी तरह से संसार की निवृत्ति होती है अतएव कर्मों के बीज अज्ञान को भस्म कर देना चाहिए । उसी से उसमें बुद्धि की जाग्रत आदि वृत्तियां का प्रवाह रुक जाता है । इसी को योग कहते हैं ॥२८॥

तत्रोपायसहस्राणामयं भगवतोदितः । यदीश्वरे भगवति यथा यैरञ्जसा रतिः ॥२९॥

अन्वयः— तत्र उपायसहस्राणां अयं भगवताः उदितः यत् ईश्वरे भगवति यथा यैः अञ्जसा रतिः ॥२९॥

अनुवाद— यद्यपि त्रिगुणात्मक कर्मों की जड़ को विनष्ट करने के हजारो उपाय हैं, फिर भी जिस उपाय से जिस तरह परमात्मा मे स्वाभाविक रूप से प्रेम हो वही उपाय सर्वश्रेष्ठ है यह श्रीभगवान् ने कहा है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं ज्ञानप्रकारमुक्त्वा तत्साधनं धर्मस्य तत्त्वं नारदोक्तमेवाह-तत्रेति पञ्चभिः । यैर्धर्मैर्यथा यथावदनुष्ठितैर्वा भगवति श्रीनारायणे रतिरिति यदयमुपायो भगवतोक्तः । तथाच गीतासूक्तम् । 'यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् । इति । 'भक्त्या मामाभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः' इत्यादि च ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से ज्ञान के प्रकार को बतलाकर प्रह्लादजी ने बतलाया की उसकी प्राप्ति का साधन नारदजी द्वारा प्रोक्त धर्म का साधन है । इस बात को उन्होंने तत्र इत्यादि पाँच श्लोकों से बतलाया है । जिन धर्मो से जैसे अथवा ठीक-ठीक अनुष्ठान करने से भगवान् नारायण में प्रेम उत्पन्न होता है उस उपाय को श्रीभगवान् ने स्वयं कहा है। गीता में कहा भी गया है **यत् करोषि० इत्यादि** अर्थात् हे अर्जुन तुम जो कहते हो, जो खाते हो, जो होम करते है तथा जो दान करते हो तथा जो तपस्य करते हो, उसको मुझे ही अर्पित कर दो । उपासक भक्ति के द्वारा ही मुझे ठीक-ठीक जान पाता है इत्यादि ॥२९॥

गुरुशुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च । सङ्गेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च ॥३०॥
श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनैर्गुणकर्मणाम् । तत्पादाम्बुरुहध्यानात्तलिलङ्गेक्षार्हणादिभिः ॥३१॥
हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः । इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत्॥३२॥

अन्वयः— गुरुशुश्रुपया, भक्त्या सर्वलव्धार्पणेन, साधुभक्तानाम् सङ्गेन, ईश्वराराधनेन च, तत्कथायां श्रद्धया, कीर्तनैगुणकर्मणाम् तत्पदाम्बुरुहध्यानात् तैल्लिङ्गेक्षार्हणादिभिः सर्वभूतेपु भगवान् हरिः, ईश्वर; आस्ते, इति तैः तैः कामैः भूतानि मानयेत् ॥३०-३२॥

अनुवाद—गुरु की भक्ति पूर्व सेवा करना, जो भी मिले उसे श्रीभगवान् को समर्पित करने भगवत्प्रेमी भक्तों की आराधना करना, भगवान् की आराधना करने, उनकी कथाओं में श्रद्धा करने उनकी लीलाओं और नामों का कीर्तन करने, उनके चरण कमलों का ध्यान करने तथा उनके मन्दिरो तथा मूर्तियों का दर्शन करने से, सर्वशक्तिमान श्रीभगवान् सभी प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से विराजमान है; इस भावना से यथा शक्ति सभी प्राणियों की इच्छा को पूर्ण करने और हृदय से उनका सम्मान करने से श्रीभगवान् में स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न हो जाता है ॥३०-३२॥

भावार्थ दीपिका

तत्रैवान्तरङ्गान्धर्मानाह गुरोः शुश्रूषया भत्तया प्रेम्णा सर्वेषां लब्धानामर्पणेन च । तस्य लिङ्गानां मूर्तीनामीक्षणमर्हणमादिर्येषां वन्दनादीनां तैश्च ॥३०-३२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् में प्रेम उत्पन्न होने के अन्तरङ्ग साधनों को बतलाते हुए प्रह्लादजी ने कहा गुरुजनों की सेवा करने से भक्तिपूर्वक सम्पूर्ण सम्प्राप्त पदार्थों को श्रीभगवान् को समर्पित कर देने से । श्रीभगवान् की मूर्तियों का दर्शन करने, पूजन करने आदि एवं स्तुति करने से परमात्मा में स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न हो जाता है ॥३०-३२॥

एवं निर्जितषड्वर्गैः क्रियते भक्तिरीश्वरे । वासुदेवे भगवति यया सँल्लभते रतिम् ।।३३।।

अन्वयः— एवं निर्जित षड्वगैः ईश्वरे भक्तिः क्रियते, यया वासुदेवे भगवति रतिम् संलभते ।।३३।।

अनुवाद— काम, क्रोध, लोभ, मोह मद मत्सर इन छह शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके, जो लोग भगवान् की साधन भक्ति का अनुष्ठान करते हैं उन्हें आप भक्ति के द्वारा भगवान् वासुदेव के श्रीचरणों में अनन्य प्रेम की प्राप्ति होती है ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

निर्जितः षण्णां कामक्रोधलोभमोहमदमत्सराणामिन्द्रियाणां वा वर्गो यैः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों ने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मत्सर इन छहो शत्रुओं के समूह को जीत लिया है ।।३३।।

निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि ।
यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति ।।३४।।
यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धसत्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम् ।
मुहुः श्वसन्वक्ति हरे जगत्पते नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः ।।३५।।
तदा पुमान्मुक्तसमस्तबन्धनस्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः ।
निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ।।३६।।

अन्वयः— यदा कर्माणि अतुल्यान् गुणान्, लीलातनुभिः कृतानि वीर्याणि निशम्य हर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं प्रोत्कण्ठ उद्गयति रौति नृत्यति, यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचित् हसति, आक्रन्दते, ध्यायति जनम् वन्दते मुहुः श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते, नारायण इति आत्ममतिः गतत्रपः तदा पुमान् मुक्त समस्त बन्धनः तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः निर्दग्ध वीजानुशयो महीयसा भक्ति प्रयोगेण अधोक्षजम् समेति ।।३४-३६।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की अद्भुत लीलाओं, लोकोत्तर गुणों तथा लीला शरीरों से किए गये पराक्रमों को सुनकर भक्त में अत्यन्त आनन्द के उद्रिक्त हो जाने के कारण उसके शरीर में रोमाञ्च हो जाता है आँखों में आँसू भर जाता है । कण्ठ गदगद् हो जाता है । वह सङ्कोच छोड़कर जोर-जोर से भगवान् के नामों और गुणों का गायन करने लगता है तो कभी भगवान् के विप्रयोग का अनुभव करके रोने लगता है और कभी नाचने लगता है । जब वह ग्रहग्रस्त के समान कभी हँसने लगता है, कभी करुणक्रन्दन करने लगता है, ध्यान करता है और लोगों की वन्दना करता है । वह बार-बार दीर्घश्वास लेता है और कहने लगता है हे हरे ! हे जगत के स्वामिन् ! हे नारायण! उसकी सारी लज्जा समाप्त हो जाती है और उसकी बुद्धि सदा परमात्म विषयिणी ही बनी रहती है । उस समय भक्ति के प्रभाव से उसके सारे बन्धन विनष्ट हो जाते हैं । भगवान् की ही भावना करते उसका अन्तःकरण भगवान्मय हो जाता है । उस समय उसके जन्म और मृत्यु के सारे बीज जल जाते हैं और वह महान् भक्तिभाव से श्रीभगवान को प्राप्त कर लेता है ।।३४-३६।।

भावार्थ दीपिका

भगवद्रतेर्लिङ्गान्याह-निशम्येति त्रिभिः । गुणान्भक्तवात्सल्यादीन् । अतिहर्षेणोद्गताः पुलका अश्रूणि च तैर्गद्गदं यथा भवत्येवं प्रोत्कण्ठो मुक्तकण्ठ उद्गायति । तस्य भावश्चेष्टादिस्तस्य भावो भावना तेनानुकृते आशयाकृती मनःशरीरे यस्य । निर्दग्धं बीजमज्ञानमनुशयो वासना च यस्य सः सम्यगेति प्राप्नोति ।।३४-३६।।

भाव प्रकाशिका

प्रह्लादजी निशम्य इत्यादि तीन श्लोकों से श्रीभगवान् में होने वाले प्रेम के चिह्नों को बतलाते हैं । गुणान् पद के द्वारा श्रीभगवान् के भक्तों के प्रति होने वाले वात्सल्य औदार्य आदि गुण ही विवक्षित हैं । श्रीभगवान् की लीलाओं का स्मरण करके वह आनन्द से भर जाता है और उसका सारा शरीर रोमाञ्चित हो जाता है । उसका कण्ठ गदगद हो जाता है और जोर-जोर से श्रीभगवान् के नामों का और गुणों का गायन करने लगता है । वह श्रीभगवान् की भक्ति की भावना से भर जाता है और उसका अन्त:करण भगवान् मय हो जाता है । उस स्थिति में पहुंचे हुए जीव को जन्म मरण के सारे बीज भस्म हो जाते हैं और वह परमात्मा को प्राप्त कर लेता है ।।३४-३६।।

अधोक्षजालम्भमिहाशुभात्मनः शरीरिणः संसृतिचक्रशातनम् ।
तद्ब्रह्म निर्वाणसुखं विदुर्बुधास्ततो भजध्वं हृदये हृदीश्वरम् ।।३७।।

अन्वयः— अशुभात्मनः शरीरिणः अधोक्षजालम्भम् इह संसृति चक्रशातनम् तत् बुधाः निर्वाणसुखं विदुः ततः हृदये हृदीश्वरं भजध्वम् ।।३७।।

अनुवाद— इस अशुभ संसार में फँसकर रागद्वेष आदि के कारण अशुभ बना हुआ जीव जब अपने मन से परमात्मा का स्पर्श कर लेता है तो उसके जन्म मरण के चक्र मिट जाते हैं । उसी को ज्ञानी पुरुष निर्वाण सुख के रूप में जानते हैं अतएव तुमलोग भी अपने हृदय के स्वामी श्रीभगवान् का भजन करो ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह-अधोक्षजस्यालम्भं मनसा स्पर्शम् । पाठान्तरे तस्याश्रयणम् । अशुभात्मनः अशुभो रागादियुक्त आत्मा मनो यस्य । संसृतिचक्रशातनं तन्निवर्तकं वुधा विदुस्तदेव ब्रह्मणि निर्वाणं लयो मोक्षस्तदात्मकं सुखं विदुः । हृदीश्वरमन्तर्यामिणम्।।३७।।

भाव प्रकाशिका

जब प्रेमी श्रीभगवान् को प्राप्त कर लेता हैं तो फिर क्या होता है ? तो इस पर प्रह्लादजी कहते है कि इस अशुभ संसार में रागद्वेष से ग्रस्त होने के कारण जीव अशुभ हो जाता है । किन्तु जब वह अपने मन से परमात्मा का स्पर्श कर लेता है तो उसका संसार चक्र निवर्तित हो जाता है । विद्वद्गण उसकी को मोक्षात्मक आनन्द रूप से जानते है । अतएव तुमलोग अपने हृदय में अन्तर्यामी श्रीभगवान् का ध्यान करो ।।३७।।

कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरेरुपासने स्वे हृदि छिद्रवत्सतः ।
स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनां सामान्यतः किं विषयोपपादनैः ।।३८।।

अन्वयः— हे असुर बालकाः स्वेहृदिछिद्रवत् सतः स्वस्य आत्मनः सामान्यतः अशेषदेहिनाम् सरव्युः हरे उपासने कः अतिप्रयासः । विषयोपपादनैः किम् ।।३८।।

अनुवाद— हे असुर बालकों ! अपने हृदय में आकाश के ही समान विद्यमान् वे समान रूप से सबों की आत्मा और मित्र हैं । उनकी उपासना करने में कौन सी कठिनाई हैं ? उन अपनी आत्मा परमात्मा को छोड़कर विषयभोग की साम्रग्री को एकत्रित करने से कौन सा लाभ है ?।।३८।।

भावार्थ दीपिका

भक्तिरशक्येति च न मन्तव्यमित्याह-क इति । छिद्रवदाकाशवद्धृदितिष्ठतः । विपयाणामुपपादनैरर्जनैः किम् । तत्र हेतुः- सर्वदेहिनां सामान्यतः विपयनिष्ठत्वे सूकरादिसाधारण्यापत्तेरित्यर्थः । नचैवमादौ पौनरुक्तयदोपः नारदोक्तानुवादरूपत्वादस्य प्रकरणस्य ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

प्रह्लादजी ने कहा कि यह नहीं सोचना चाहिए कि भक्ति हमलोगों के लिए अशक्य है । उसे हमलोग नहीं कर सकते हैं । श्रीहरि हृदय में आकाश के समान सदा विराजमान रहते हैं । विषय भोगों की सामग्रियों को एकत्रित करने से कौन सा लाभ है ? उसका कारण है कि श्रीभगवान् समान रूप से सबों के सुहृद और सवों की आत्मा है । विषय भोगों को भोगने वाले तो सूकर आदि भी हैं, अतएव विषय जीव और सूकर आदि तो एक ही समान है । इस तरह से कहने में पुनरुक्ति आदि दोष भी नहीं है क्योंकि यह प्रकरण ही नारदजी के वचनों का अनुवाद स्वरूप हैं ॥३८॥

रायः कलत्रं पशवः सुतादयो गृहा मही कुञ्जरकोशभूतयः ।
सर्वेऽथ कामाः क्षणभङ्गुरायुषः कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत्प्रियं चलाः ॥३९॥

अन्वयः— रायः कलत्रम् पशवः सुतादयः गृहा, मही कुञ्जरकोश भूतयः अथः सर्वे चलाः कामाः क्षणभङ्गुरायुषः कियत् प्रियम् ॥३९॥

अनुवाद— धन सम्पत्ति, पत्नी, पशु, पुत्र, पुत्री, गृह, पृथ्वी, हाथी खजाना, ऐश्वर्य तथा संसार के सभी क्षणभङ्गुर काम्य पदार्थ क्षण भङ्गुर जीव को कितना सुख दे सकते हैं वे सब तो स्वयं क्षणभङ्गुर हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

अनर्थकं विषयार्जनमित्याह-रायोऽर्थाः क्षणभङ्गुरमायुर्यस्य तस्यैते कियत्प्रियं कुर्वन्ति । तदुक्तमितिहासेषु 'धनं हि पुरुषो लोके पुरुषं धनमेव वा । अवश्यमेकं त्यजति तस्मात्किं धनतृष्णया । इति ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में प्रह्लादजी ने कहा है कि धन सम्पत्ति का अर्जन अनर्थक है । धन सम्पत्ति इत्यादि क्षण भङ्गुर मनुष्य को कितना सुख दे सकते हैं । इतिहासों में कहा भी गया है इस संसार में या तो पुरुष धन को त्याग कर मर जाता है अथवा धन ही पुरुष को त्याग देता है दोनों में से कोई एक दूसरे को अवश्य त्याग देता है। अतएव धन की लालच करने से कौन सा लाभ है ?॥३९॥

एवं हि लोकाः क्रतुभिः कृता अमी क्षयिष्णवः सातिशया न निर्मलाः ।
तस्माददृष्टश्रुतदूषणं परं भक्त्यैकयेशं भजतात्मलब्धये ॥४०॥

अन्वयः— एवं हि क्रतुभिः कृताः अमी लोकाः क्षयिष्णवः, सातिशया, निर्मलः न तस्मात् अदृष्ट श्रुत दूषणं परं ईशं आत्मलब्धये एकया भक्त्या भजत ॥४०॥

अनुवाद— जिसतरह इस लोक की सारी सम्पत्तियाँ नाशवान् हैं उसी तरह यज्ञों के अनुष्ठान के फलरूप से प्राप्त होने वाले स्वर्गादि लोक भी क्षयिष्णु, आपेक्षिक रूप से छोटे-बड़े हैं, अतएव निर्दोष नहीं है । निर्दोष केवल परमात्मा हैं । उनमें दोष न तो किसी ने देखा है और न सुना अतएव परमात्मा की प्राप्ति के लिए उनको अनन्या भक्ति से तुमलोग भजन करो ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

'यत्र दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनन्तरम् । अभिलाषोपपन्नं च सुखं स्वर्गपदास्पदम् ।' इत्येवंभूताः स्वर्गादिभोगा अपि न सेवार्हा इत्याह-एवं हीति । क्षयिष्णुत्वे हेतुः- क्रतुभिः कृता इति । तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयत एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते' इति श्रुतेः । अतएव पुण्यतारतम्येन सातिशयाः न च निर्मलाः, स्पर्धादिमत्त्वात् । न विद्यते दृष्टं श्रुतं च दूषणं यस्मिन् ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

जो दु:ख से युक्त नहीं है, और न तो बाद में ही वह दु:ख से युक्त होगा। अपनी अभिलाषा के अनुसार प्राप्त होने वाला जो सुख है, वह स्वर्ग शब्द वाच्य है। इस तरह मे वर्णित स्वर्गादि भोग भी सेवनीय नहीं है, इस बात को बतलाते हुए प्रह्लादजी ने कहा यज्ञादि के करने से प्राप्त होने वाले स्वर्गादि लोक भी नाशवान हैं। श्रुति कहती है— **तद्यथेह० इत्यादि** अर्थात् जिस तरह इस लोक में कर्मों से प्राप्त होने वाले धन समपत्ति नाशवान हैं उसी तरह यज्ञादि कर्मों से प्राप्त होने वाले स्वर्गादि नाशवान हैं। किञ्च पुण्यों से छोटे-बड़े होने से प्राप्त होने वाले स्वार्गादि सुख छोटे-बड़े होते हैं। अतएव आपेक्षिक अतिशय युक्त होने के कारण निर्दोष नहीं हैं। निर्दोष केवल परमात्मा हैं। उनमें किसी ने भी दोष न तो देखा है और न सुना है ॥४०॥

यदध्यर्थ्येह कर्माणि विद्वन्मान्यसकृन्नरः। करोत्यतो विपर्यासममोघं विन्दते फलम् ॥४१॥

अन्वयः— विद्वन्मान्य सकृन्नरः यदध्यर्थ्येह कर्माणि करोति अतो विपर्यासम् अमोघं फलं विन्दति ॥४१॥

अनुवाद— अपने को विद्वान् मानने वाला पुरुष जिस उद्देश्य से कर्मों को करता है, वह उसके विपरीत निश्चित रूप से फल को प्राप्त करता है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

किंच पदध्यर्थ्य यत्सङ्कल्प्य। अतः सङ्कल्पिताद्विपर्यासं विपरीतं फलममोघमवश्यं प्राप्नोति ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

जिस प्रकार का सङ्कल्प करके कर्मों को करता है उसके विपरीत फल को वह अवश्य प्राप्त करता है ॥४१॥

सुखाय दुःखमोक्षाय सङ्कल्प इह कर्मिणः। सदाप्नोतीहया दुःखमनीहायाः सुखावृतः ॥४२॥

अन्वयः— इह कर्मिणः सङ्कल्पः सुखाय दुःखमोक्षाय भवति, अनीहायाः सुखावृतः सदा दुःखम् आप्नोति ॥४२॥

अनुवाद— इस लोक में कर्म करने वाले लोगों का सङ्कल्प दो प्रकार का होता है सुख की प्राप्ति और दु:ख की निवृत्ति किन्तु पहले कामना न होने के कारण जो सुख पूर्वक रहता था वही अब कामना के कारण दु:ख को प्राप्त करता है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

तदेव दर्शयति सुखायेति। ईहया इच्छया क्रियया वा। यः पूर्वमनीहाया हेतोः सुखेनावृतो व्याप्ता आसीत्स ईहया दुःखमाप्नोत्येव ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

कर्मों का फल दु:खमय होता है इसी बात को प्रह्लादजी इस श्लोक में बतलाते हैं। इहया अर्थात् कामना के कारण, कामना से पहले जो मनुष्य सुखपूर्वक रहता था कामना के कारण वहीं दु:ख को प्राप्त करता है ॥४२॥

कामान्कामयते काम्यैर्यदर्थमिह पूरुष; । स वै देहस्तु पारक्यो भङ्गुरो यात्युपैति च ॥४३॥

अन्वयः— पुरुष यदर्थमिह काम्ये कामान् कामयते सः देहो वै पारक्यः भङ्गुरः याति उपैति च ॥४३॥

अनुवाद— मनुष्य इस लोक में काम्य कर्मों के द्वारा जिस शरीर के लिए सुख को प्राप्त करना चाहता है वह देह ही पराया है स्यार कुत्तों का भोजन है वह कभी छूट जाता है और कभी मिल जाता है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

किंच कामान्भोगान्। काम्यैर्विषयैः कर्मभिर्वा। पारक्यः श्वादिभोग्यो न त्वात्मीयो भङ्गुरश्च ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

कामान् अर्थात् भोगों को, काम्यैः अर्थात् कमनीय विषयों अथवा कर्मो के द्वारा । पारक्यः अर्थात् कुत्ते आदि का भोग्य अपना नहीं तथा क्षण भङ्गुर भी ॥४३॥

किमु व्यवहितापत्यदारागारधनादयः । राज्यं कोशगजामात्यभृत्याप्ता ममतास्पदाः ॥४४॥

अन्वयः— व्यवहितापत्यदारागारधनादयः राज्यं, कोशगजामात्यभृत्याप्ताः ममतास्पदाः किमु ?॥४४॥

अनुवाद— जब शरीर की ही ऐसी स्थिति है तो फिर अलग रहने वाले पुत्र-पत्नी, गृह धन आदि राज्य कोश हाथी, मन्त्री नौकर तथा दूसरे गुरुजन और अपने लोगों के विषय में क्या कहना है ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

किमु देहाद्व्यवहिता अपत्यादयो ममताविषयाः पारक्या इति वक्तव्यम् ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

देह से भी दूर रहने वाले केवल ममत्व के विषय भूत सन्तान और पत्नी आदि पराये हैं, इस बात को क्या कहना है ?॥४४॥

किमेतैरात्मनस्तुच्छैः सहदेहेन नश्वरैः । अनर्थैरर्थसङ्काशैर्नित्यानन्दमहोदधेः ॥४५॥

अन्वयः— देहेन सहनश्वरैः एतैः तुच्छैः अनर्थैः अर्थसंकाशैः नित्यानन्दमहोदधेः आत्मनः किम् ॥४५॥

अनुवाद— देह के साथ ही विनष्ट होने हो जाने वा इन तुच्छ सन्तानादि जो पुरुषार्थ के समान प्रतीत होते हैं किन्तु वह वस्तुतः अनर्थ स्वरूप ही । अतएव अनन्द के महासागर आत्मा को इन सबों की कौन सी आवश्यकता है ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

किंच स्वयं पुरुषार्थरूपस्य किमेतरतितुच्छैरित्याह-किमेतैरिति ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

इस किम् इत्यादि श्लोक से कहा गया है कि आत्मा तो स्वयं पुरुषार्थ स्वरूप है, उसको इन पुत्र पत्न्यादिकों से कौन सा लाभ है ?॥४५॥

निरूप्यतामिह स्वार्थः कियान्देहभृतोऽसुराः । निषेकादिष्ववस्थासु क्लिश्यमानस्य कर्मभिः ॥४६॥

अन्वयः— हे असुराः निषेकादिषुअवस्थासु कर्मभि क्लिश्यमानस्य देहभृतः इहकियान् स्वार्थ इति निरूप्यताम्॥४६॥

अनुवाद— जो जीव गर्भाधन से लेकर मृत्यु पर्यन्त सभी अवस्थाओं में अपने कर्मो के अधीन रहकर केवल कष्टों को ही भोगता है, उस आत्मा को इस संसार में क्या स्वार्थ है ?॥४६॥

भावार्थ दीपिका

भोगावसराभावाच्चैतैः क उपयोग इत्याह- निरूप्यतामिति । प्राचीनैः कर्मभिः क्लिश्यमानस्य । कर्मभिः कियान्स्वार्थ इति वाऽन्वयः ॥४६॥

कर्माण्यारभते देही देहेनात्मानुवर्तिना । कर्मभिस्तनुते देहमुभयं त्वविवेकतः ॥४७॥

अन्वयः— देही आत्मानुवर्तिना देहेन कर्माणि आरभते, कर्मभिः देहं तनुते उभयं तु अविवेकतः ॥४७॥

अनुवाद— यह जीव इस सूक्ष्म शरीर को ही आत्मा मानकर उसके द्वारा कर्मों को करता है । उन कर्मों के द्वारा वह पुनः शरीर ग्रहण करता है । ये दोनों अज्ञान के कारण ही होते हैं ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

ननु कर्मसु समाप्तेषु भोगावसरः स्यात्तत्राह-कर्माणीति । नचेदं कर्म तस्य फलं देहादिकं च परमार्थ इत्याह-उभयं कर्म च देहं च । अविवेकतोऽज्ञानेनैव तनुते ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

यदि यह कहा जाय कि कर्मों के समाप्त हो जाने पर तो भोगों को भोगने का अवसर प्राप्त होयेगा ही तो इस पर प्रह्लादजी कर्माणि इत्यादि श्लोक कहते हैं । यह कर्म और उसके फल शरीर आदि भी परमार्थ नहीं हैं, इस बात को उन्होंने कहा कि कर्म और शरीर दोनों ही अपरमार्थ हैं । अज्ञान के द्वारा ही जीव इन दोनों का विस्तार करता है ॥४७॥

तस्मादर्थाश्च कामाश्च धर्माश्च यदपाश्रयाः । भजतानीहयात्मानमनीहं हरिमीश्वरम् ॥४८॥

अन्वयः— तस्मात् अनीहया आत्मानम् अनीहं हरिम् ईश्वरम् भजत यत् अपाश्रयाः अर्थाः च कामाः च धर्मा च॥४८॥

अनुवाद— अतएव निष्काम भाव से निष्क्रिय आत्म स्वरूप भगवान् श्रीहरि की तुमलोग आराधना करो उन्हीं की इच्छा के ही अधीन, अर्थ, धर्म और काम हैं । उनकी ही इच्छा से प्राप्त होते हैं अन्यथा नहीं प्राप्त होते हैं॥४८॥

भावार्थ दीपिका

अर्थादयो यदपाश्रया यदधीनाः ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

धन इत्यादि परमात्मा की इच्छा के अधीन हैं ॥४८॥

सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मेश्वरः प्रियः । भूतैर्महद्भिः स्वकृतैः कृतानांजीवसंज्ञितः ॥४९॥

अन्वयः— हरिः सर्वेषाम् अपि भूतानां आत्मा ईश्वरः प्रियः स्वकृतैः भूतैः महद्भिः कृतानां जीव संज्ञितः ॥४९॥

अनुवाद— श्रीहरि सभी जीवों की आत्मा, नियामक और प्रियतम हैं । वे अपने द्वारा ही निर्मित पञ्च भूतों तथा महादादि से बने शरीर के द्वारा जीव कहलाते हैं ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

भूतानां प्राणिनाम् । जीवसंज्ञितोऽन्तर्यामी ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

भृतानाम् अर्थात् प्राणियों का । जीव संज्ञितः अर्थात् अन्तर्यामी ॥४९॥

देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एव च । भजन्मुकुन्द चरणं स्वस्तिमान्स्याद्यथा वयम् ॥५०॥

अन्वयः— देवः, असुरः, वा मनुष्यः, यक्षः, गन्धर्व एव च मुकुन्दचरणं भजन् वयं यथा स्वस्मिान् स्यात् ॥५०॥

अनुवाद— देवता, दैत्य, मनुष्य, यक्ष अथवा गन्धर्व कोई भी हो जो श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करते हैं वह हमलोगों के ही समान कल्याण प्राप्त होता है ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

असुराणामस्माकमत्राऽनधिकार इत्यपि न वाच्यमित्याह-देव इति पञ्चभिः ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

देव० इत्यादि पञ्च श्लोकों से यह बतलाया गया है कि तुमलोग यह भी नही कह सकते हो कि हम असुर हैं, अतएव हमलोगों का भगवान् के भजन में अधिकार नहीं है ॥५०॥

नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वाऽसुरात्मजाः । प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥५१॥

अन्वयः— असुरात्मजाः, मुकुन्दस्य प्रीणनाय, द्विजत्वं, देवत्वं, ऋषित्वं वा न न बहुज्ञता च च अलम् ॥५१॥

अनुवाद— दैत्य बालकों भगवान् श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिए न तो ब्राह्मण होना, न देवता होना न ऋषि होना न सदाचार सम्पन्न होना और न तो बहुज्ञ होना आवश्यक हैं ॥५१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५१॥

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च । प्रीतयेऽमलया भक्तया हरिरन्यद्विडम्बनम् ॥५२॥

अन्वयः— न दानं, न तपः नेज्या, न शौचं न व्रतानि अलम् हरिः अमलया भक्त्या प्रीयते अन्यद् विडम्वनम् ॥५२॥

अनुवाद— दान, तपस्या, इज्या (यज्ञ) शौच तथा व्रत करने से भी श्रीहरि प्रसन्न नहीं होते हैं वे अनन्या भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं । भक्ति व्यतिरिक्त सभी साधन नरक मात्र हैं ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

अमलया निष्कामया । अन्यद्विडम्वनं नटनमात्रम् ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

अमलया अर्थात् निष्काम भक्ति से, विडम्वनम् अर्थात् नाटक मात्र से ॥५२॥

ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः । आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे ॥५३॥

अन्वयः— ततो हे दानवाः आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूतात्मनीश्वरे हरौ भक्तिं कुरुत ॥५३॥

अनुवाद— हे दानव बन्धुओं अपने ही समान मत्रों को समझकर सभी जीवों की आत्मा परमात्मा की भक्ति तुम लोग करो ॥५३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५३॥

दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः । खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गता; ॥५४॥

अन्वयः— दैतेया, यक्ष रक्षासि, स्त्रियः शूद्रा, व्रजौकसः, खगाः, मृगाः, पापजीवाः अच्युततां हि गताः सन्ति ॥५४॥

अनुवाद— भक्ति के प्रभाव से दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्रियाँ, शूद्र आभीर, पक्षी, मृग तथा बहुत से पापी जीव भी भगवद् भाव को प्राप्त हो चुके हैं ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

अच्युततामममृतत्वम् ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

अच्युतताम् अर्थात् मुक्ति को ॥५४॥

एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः । एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत्सर्वत्र तदीक्षणम् ॥५५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे दैत्यपुत्रानुशासनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अन्वयः— अस्मिन् लोके एतावानेव परः स्वार्थः यत् गोविन्दे एकान्त भक्तिः सर्वत्र तदीक्षणम् ॥५५॥

अनुवाद— इस लोक में सबसे बड़ा स्वार्थ अर्थात् परमार्थ यही है कि भगवान् गोविन्द में अनन्या भक्ति की जाय और सम्पूर्ण वस्तुओं मे श्रीभगवान् का दर्शन किया जाय ॥५५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के दैत्यपुत्रों को उपदेश नामक सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

भावार्थ दीपिका

अध्यायद्वयोक्तमुपसंहरति-एतावानिति । तदीक्षणं गोविन्ददृष्ट्या संमाननम् ।।५५।।

इति श्रीमद्भागवतमहापुराणे सप्तमस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां सप्तममोऽध्यायः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

दो अध्यायों में कही गयीं बातों का उपसंहार एतावान् इत्यादि श्लोक के द्वारा किया गया है । भगवान् गोविन्द की दृष्टि में सबों का सम्मान करना यह तदीक्षणम् का अर्थ है ॥५५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के सातवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।७।।

* * *

आठवाँ अध्याय

भगवान् नृसिंह का प्राकट्य एवं हिरण्यकशिपु का वध तथा ब्रह्मादि देवताओं द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति

नारद उवाच

अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वा तदनुवर्णितम् । जगृहुर्निरवद्यत्वान्नैव गुर्वनुशिक्षितम् ॥१॥

अन्वयः— अथ तदनुवर्णितम् श्रुत्वा सर्वे दैत्यसुताः निरवद्यत्वात् जगृहुः गुर्वनु शिक्षितम् नैव ॥१॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— ततपश्चात् प्रह्लादजी के द्वारा वर्णित बातों को सुनकर सभी दैत्य बालकों ने निर्दोष होने के कारण उनकी सारी बातों को स्वीकार कर लिया । और दोष युक्त होने के कारण गुरु के द्वारा वर्णित शिक्षा को नहीं स्वीकारा॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टमेऽतिरुषा सूनुं निघ्नन् दैत्यो हतः स्वयम् । आविर्भूय नृसिंहेन स च ब्रह्मादिभिः स्तुतः । अन्तः कृपासुधापूर्णो बहिः क्रोधो नृकेसरी । दैतयेन्द्रमरिभावेन भजन्तं समभावयत् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

आठवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि अत्यन्त क्रोध करके अपने पुत्र को मारना चाहने वाले हिरण्यकशिपु को आविर्भूत होकर भगवान् नृसिंह ने स्वयं मार दिया । उसके बाद ब्रह्मा आदि देवताओं ने भगवान् नृसिंह की स्तुति की । भगवान् नृसिंह भीतर से तो परिपूर्ण कृपा के सागर हैं और बाहर से वे क्रोध करके शत्रु की भावना से श्रीहरि का भजन करने वाले दैत्यराज की सम्भावना की ॥१॥

अथाचार्यसुतस्तेषां बुद्धिमेकान्तसंस्थिताम् । आलक्ष्य भीतस्त्वरितो राज्ञ आवेदयद्यथा ॥२॥

अन्वयः— अथ आचार्यसुतः तेषाम् एकान्तसंस्थिताम् बुद्धिम् आलक्ष्य भीतः त्वरितः राज्ञः यथा आवेदयत् ॥२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् गुरु के पुत्र उन दैत्य बालकों कि बुद्धि केवल परमात्मा में लगी हुई देखकर बहुत घबरा गये और शीघ्र ही हिरण्यकशिपु के पास जाकर निवेदन किया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

एकान्तसंस्थितां प्रत्यङ्निष्ठाम् । यथा यथावत् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मा में लगी हुई यह एकान्त संस्थितम् पद का अर्थ है ॥२॥

श्रुत्वा तदप्रियं दैत्यो दुःसहं तनयानयम् । कोपावेशचलद्गात्रः पुत्रं हन्तुं मनो दधे ॥३॥

अन्वयः— तत् दुःसहं तनयानयम् श्रुत्वा दैत्यः कोपावेशचलद्गात्रः पुत्रं हन्तुं मनोदधे ॥३॥

अनुवाद— अपने पुत्र के उस असह्य अनीति को सुनकर क्रोध के मारे हिरण्यकशिपु का शरीर काँपने लगा और उसने प्रह्लाद को मार डालने का मन बना लिया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

स च पुत्रं हन्तुं मनो दधे । कथंभूतः । कोपस्यावेशेनोद्रेकेण चलद्गात्रं वपुर्यस्य सः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

गुरुपुत्र के मुख से अपने पुत्र की अनीति को सुनकर क्रोधावेश के कारण काँपता हुआ हिरण्यकशिपु अपने पुत्र को मार डालने का मन बना लिया ॥३॥

क्षिप्त्वा परुषया वाचा प्रह्लादमतदर्हणम् । आहेक्षमाणः पापेन तिरश्चीनेन चक्षुषा ॥४॥

अन्वयः— परुषया वाचा अतदर्हणम् प्रह्लादं क्षिप्त्वा पापेन तिरश्चीनेन चक्षुषा ईक्षमाणः आह ॥४॥

अनुवाद— कठोर वाणी से उसने प्रह्लादजी को डाँटा यद्यपि प्रह्लादजी उसके योग्य नही थे । उस पापी ने पाप भरी तिरछी नजर से प्रह्लादजी को देखा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

क्षिप्त्वा तिरस्कृत्य । पापेन सरोषेण । तिरश्चीनेन वक्रेण ॥४॥

भाव प्रकाशिका

क्षिप्त्वा अर्थात् तिरस्कार करके, क्रोध भरी तिरछी नजर से उसने प्रह्लादजी को देखा ॥४॥

प्रश्रयावनतं दान्तं बद्धाञ्जलिमवस्थितम् । सर्पः पदा हत इव श्वसन्प्रकृतिदारुणः ॥५॥

अन्वयः— प्रश्रयावनतं दान्तं बद्धाञ्जलिम् अवस्थितम् पदा हतः सर्प इव प्रकृति दारुणः आहेति पूर्वेणान्वयः ॥५॥

अनुवाद— जिनकी इन्द्रियां वश में थी ऐसे विनयावनत प्रह्लादजी हाथ जोड़े खड़े थे उनको पैर से मारे जाने के कारण क्रुद्ध सर्प के समान स्वभाव से ही कठोर हिरण्यकशिपु ने प्रह्लादजी से कहा ।

भावार्थ दीपिका नहीं है ॥५॥

हे दुर्विनीत मन्दात्मन्कुलभेदकराधम । स्तब्धं मच्छासनोद्धृतं नेष्ये त्वाऽद्य यमक्षयम् ॥६॥

अन्वयः— हे दुर्विनीत मन्दात्मन् कुलभेदकराधम स्तब्धं मच्छासनोद्धृतं त्वा अद्य यमक्षयं नेष्ये ॥६॥

अनुवाद— हे दुर्विनीत मूर्ख कही के घमण्डी और मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने वाले कुल में भेद उत्पन्न करने वाले नीच तुमको आज ही मैं मारकर यमराज के घर भेज देता हूँ ॥६॥

भावार्थ दीपिका

हे मन्दात्मन्नल्पबुद्धे, मदाज्ञातिलङ्घिन् त्वामद्य यमालयं नेष्यामि ॥६॥

भाव प्रकाशिका

हे अल्पबुद्धि वाले ! तथा मेरी आज्ञा का उल्लघंन करने वाले तुमको आज यमलोक भेज रहा हूँ ॥६॥

क्रुद्धस्य यस्य कम्पन्ते त्रयो लोकाः सहेश्वराः । तस्य मेऽभीतवन्मूढ शासनं किंबलोऽत्यगाः ॥७॥

अन्वयः— यस्य कुद्धस्य सहेश्वराः त्रयोलोकाः कम्पन्ते मूढ तस्य मे शासनं किं बलः अत्यगाः ।।७।।

अनुवाद— मेरे कुद्ध हो जाने पर लोकपालों के साथ तीनों लोक काँपने लगते हैं ऐसे मेरी आज्ञा का उल्लंघन तुमने निर्भय के समान किसके बल पर किया ?॥७॥

भावार्थ दीपिका

अभीतवत् । किं बलं यस्य स किंबलः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

अभीतवत् अर्थात् निर्भय के समान । **किंबलः** किसके बल से ।।७।।

प्रह्लाद उवाच

न केवलं मे भवतश्च राजन्स वै बलं बलिनां चापरेषाम् ।
परेऽवरेऽमी स्थिरजङ्गमा ये ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः ॥८॥

अन्वयः— राजन् स केवलं मे न भवतः च अपरेषां बलिनां च बलं येन ये स्थिर जङ्गमाः परेऽवरे ब्रह्मादयः वशं नीताः।।८।।

प्रह्लादजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! वे केवल मेरे ही नहीं अपितु आपका भी तथा दूसरे छोटे वड़े बलवानों के भी वल हैं जिन्होंने ब्रह्मा आदि सभी देवताओं को भी अपने वश में कर लिया है ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।८।।

स ईश्वरः काल उरुक्रमोऽसावोजः सहः सत्त्वबलेन्द्रियात्मा ।
स एव विश्वं परमः स्वशक्तिभिः सृजत्यवत्यत्ति गुणत्रयेशः ॥९॥

अन्वयः— सः ईश्वरः कालः उरुक्रमः असौ ओजः, सहः सत्त्वबलेन्द्रियात्मा स एव परमः स्वशक्तिभिः विश्वं सृजति, अवति, अत्ति गुणत्रयेशः ।।९।।

अनुवाद— वे ही परमात्मा सम्पूर्ण जगत् के नियामक हैं, वे महा पराक्रमी सर्वशक्तिमान काल हैं । वे सभी प्राणियों के इन्द्रिय बल, मनोबल एवं देह बल धैर्य तथा इन्द्रिय आदि भी हैं वे ही अपनी शक्तियों के द्वारा इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं, रक्षा करते हैं और संहार करते हैं । वे ही सत्त्वादि तीनों गुणों के स्वामी भी हैं॥९॥

भावार्थ दीपिका

वशं प्रणीता इत्यत्र हेतुः-स ईश्वर इति । उरवः क्रमाः पादविक्षेपा यस्य । बहुपराक्रम इति वा । ओजआदिरूपः । सत्त्वं धैर्यं बुद्धिर्वा ।।९।।

भाव प्रकाशिका

स ईश्वरः इत्यादि श्लोक से परमात्मा ने ब्रह्मादि सबों का अपने वश में कर रखा है इसका कारण बतलाया

गया है। **उरुक्रमः** अर्थात् बड़े-बड़े डग डालने वाले। अथवा अत्यधिक पराक्रमी **ओज आदि रूपः** में सत्त्व शब्द में धैर्य अथवा बुद्धि को कहा गया है ॥९॥

जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः ।
ऋतेऽजितादात्मन उत्पथस्थितात्तद्धि ह्यनन्तस्य महत्समर्हणम् ॥१०॥

अन्वयः— त्वम् आत्मन इमम् आसुरं भावं जहि, समं मनो धत्स्व, उत्पथ स्थितात् अजितात् आत्मनः ऋते विद्विषः न सन्ति, तद्धि अनन्तस्य महत् समर्पणम् ॥१०॥

अनुवाद— आप अपने आसुर भाव का परित्याग कर दें, सबों के प्रति आप अपने को एक समान बनाइये। कुमार्गगामी तथा अपने वश में नहीं रहने वाले मन को छोड़कर दूसरा कोई भी शत्रु नहीं है। सबों के प्रति समता का भाव ही परमात्मा के प्रति महान् समर्पण है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ननु मच्छत्रुरसौ कथं ममापि स एव बलं स्यादत आह-जहीति। आत्मनः स्वस्य भावं स्वभावं त्यज। यतोऽजितादात्मनो मनस ऋते विनाऽन्ये विद्विषो न सन्ति। किंच तद्धि तदेव हि साम्येन मनसो धारणमेव समर्हणमाराधनम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

प्रह्लादजी ने कहा कि यदि आप कहें कि विष्णु तो मेरा शत्रु है अतएव वह मेरा भी बल वह कैसे हो सकता है? इस पर प्रह्लादजी ने कहा आप अपने आसुर भाव का परित्याग कर दें, क्योंकि अवशीकृत मन से भिन्न कोई शत्रु नहीं है। मन में समता को लाना ही परमात्मा की सबसे बड़ी आराधना है ॥१०॥

दस्यून्पुरा षण्णविजित्य लुम्पतो मन्यन्त एके स्वजिता दिशो दश ।
जितात्मनो ज्ञस्य समस्य देहिनां साधोः स्वमोहप्रभवाः कुतः परे ॥११॥

अन्वयः— पुरा लुम्पतः षट् शत्रून् अविजित्य एके स्वजिता दश दिशः मन्यन्ते। साधोः देहिनां समस्य जितात्मनः स्वमोह प्रभवाः परे कुतः ॥११॥

अनुवाद— अपना सबकुछ लूटने वाले इन इन्द्रिय रूप छह शत्रुओं को जीते बिना ही कुछ अज्ञानी लोग यह कहते हैं कि मैंने दशों दिशाओं को जीत लिया। जिसकी सारी इन्द्रियां वश में हैं ऐसे साधु पुरुष के अज्ञान से उत्पन्न होने वाले वाह्य शत्रु भी अपने आप विनष्ट हो जाते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

ननु मया दिग्विजये सर्वे रिपवो जिता अतः सांप्रतं विद्विषो न सन्तीति चेत्सत्यं, तत्राह-दस्यूनिति। एके भवादृशा मन्दाः पुरा आदौ लुम्पतः सर्वस्वं हरतः षडिन्द्रियलक्षणान् शत्रूनविजित्याजित्वा दश दिशः स्वयं जिता मन्यन्ते। साधोस्तु जितचित्तस्य। देहिनां समस्य ज्ञस्य विदुषः स्वाज्ञानकल्पिताः परे शत्रुवः कुतः स्युः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें कि दिग्विजय में अपने समस्त शत्रुओं को जीत लिया है अतएव इस समय मेरे शत्रु नहीं हैं, अतएव तुम्हारा यह कहना सत्य है इस पर प्रह्लादजी ने कहा कुछ आपके ही जैसे अज्ञानी पुरुष हैं जो अपना सर्वस्व लूट लेने वाले छह इन्द्रिय रूप शत्रुओं को पहले जीते बिना ही कहते हैं कि मैंने दशों-दिशाओं को जीत लिया है। जो साधु पुरुष हैं जिनकी इन्द्रियां वश में हैं। समस्त शरीरधारियों के प्रति समान बुद्धि रखते हैं उनके अज्ञान से उत्पन्न होने वाले बाहरी शत्रु भी अपने आप विनष्ट हो जाते हैं ॥११॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

व्यक्तं त्वं मर्तुकामोऽसि योऽतिमात्रं विकत्थसे । मुमूर्षूणां हि मन्दात्मन्ननु स्युर्विप्लवा गिरः ॥१२॥

अन्वयः— हे मन्दात्मन् व्यक्तं त्वं मर्तुकामोऽसि यः त्वं अतिमात्रं विकत्थसे, ननु मुमूर्षूणां हि गिरः विप्लवः स्युः॥१२॥

हिरण्यकशिपु ने कहा

अनुवाद— अरे मूर्ख ! तुम निश्चित रूप से मरना चाहते हो इसीलिए इतना बढ़-चढ़कर बोल रहे हो। यह निश्चित है कि जो लोग मरने वाले होते हैं उनकी वाणी असम्वद्ध हुआ करती है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

व्यक्तं निश्चितम् । विप्लवा अनन्विता इत्यर्थः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

व्यक्तम् अर्थात् निश्चित रूप से, **विप्लवाः** अर्थात् असम्वद्ध ॥१२॥

यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः । क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात्स्तम्भे न दृश्यते ॥१३॥

अन्वयः— हे मन्दभाग्य ! यः त्वया मदन्यः जगदीश्वरः असौ क्व ? यदि सः सर्वत्र कस्मात् स्तम्भे न दृश्यते ॥१३॥

अनुवाद— ऐ मन्दभाग्य ! तुमने यह जो कहा है कि मुझसे भिन्न ही ईश्वर है तो फिर वह कहाँ रहता है। यदि वह सर्वत्र व्यापक है तो वह इस स्तम्भ में क्यों नहीं दिखता है ? ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

हे मन्दभाग्य, मदन्यो जगदीश्वरो यद्यस्ति तर्ह्यसौ क्वास्ति । प्रह्लाद आह- स सर्वत्रास्ति । हिरण्यकशिपुराह-तर्हि कस्मात्स्तम्भे नास्ति । प्रह्लादस्तु तं स्तम्भं निरीक्षमाणो नमस्यन्नाह दृश्यत इति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्यकशिपु ने पूछा हे मन्दभाग्य यदि मुझसे भिन्न कोई दूसरा जगत् का स्वामी है तो फिर वह कहाँ रहता है ? प्रह्लादजी ने कहा जगदीश्वर तो सर्वत्र रहते हैं हिरण्यकशिपु ने कहा तो फिर वह इस स्तम्भ में क्यों नहीं है ? प्रह्लादजी स्तम्भ को देखकर नमस्कार करते हुए कहे, वे दिखाई तो पड़ते हैं ॥१३॥

सोऽहं विकत्थमानस्य शिरः कायाद्धरामि ते । गोपायेत हरिस्त्वाद्य यस्ते शरणमीप्सितम् ॥१४॥

अन्वयः— सोऽहम् विकत्थमानस्य ते शिरः कायाद् हरामि, यस्ते शरणम् ईप्सितः सः त्वा अद्यगोपायेत ॥१४॥

अनुवाद— तो फिर इस तरह से वहुत अधिक असम्वद्ध बातें करने वाले तेरा मैं शिर काटता हूँ । जिसको तुम अपना अभिप्रेत रक्षक मानते हो वह हरि आज तुम्हारी रक्षा करें ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

हिराण्यकशिपुस्तु तत्र तमपश्यन्नाह-सोऽहमिति । विकत्थमानस्य विपरीतं ब्रुवाणस्य ते शिरः कायाद्धरामि पृथक्करोमि॥१४॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्यकशिपु को श्रीहरि उस स्तम्भ में नहीं दिखे उसने कहा इस तरह से विपरीत बातें करने वाले तुम्हारे शिर को मैं काट देता हूँ, तुम्हारा ईश्वर तुम्हारी रक्षा कर ले ॥१४॥

एवं दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन् रुषा सुतं महाभागवतं महासुरः ।
खड्गं प्रगृह्योत्पतितो वरासनात्स्तम्भं तताडातिबलः स्वमुष्टिना ॥१५॥

अन्वयः— एवं महाभागवतं सुतं रुषा दुरुक्तैः मुहुः अर्दयन् महासुरः खड्गं प्रगृह्य वरासनात् उत्पतितः अतिबलः स्वमुष्टिना स्तम्भं तताड़ ॥१५॥

अनुवाद— इस तरह श्रीभगवान् के परम प्रेमी अपने पुत्र प्रह्लादजी को बार-बार झिड़कियां देकर वह महा दैत्य हिरण्यकशिपु सताता रहा, उसके पश्चात् वह क्रोध के कारण हाथ में खड्ग लेकर अपने सिंहासन से उठ खड़ा हुआ । और उस महाबलवान् ने अपनी मुट्ठी से उस खम्भे पर प्रहार किया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

प्रह्लादेन मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिना निरीक्ष्यमाणं स्तम्भं मुष्टिना ताडितवान् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

प्रह्लादजी द्वारा शिर पर हाथ जोड़कर देखे जाते हुए स्तम्भ पर उसने अपने मुक्के से प्रहार किया ॥१५॥

तदैव तस्मिन्निनदोऽतिभीषणो बभूव येनाण्डकटाहमस्फुटत् ।
यं वै स्वधिष्ण्योपगतं त्वजादयः श्रुत्वा स्वधामाप्ययमङ्ग मेनिरे ॥१६॥

अन्वयः— हे अङ्ग तदैव तस्मिन् अतिभीषणः निनदः, बभूव, येन अण्डकटाहम् अस्फुटत् यं श्रुत्वा स्वधिष्ण्योपगता अजादयः स्वधाम अप्ययम् मेनिरे ॥१६॥

अनुवाद— हे युधिष्ठिर ! उसी समय उस स्तम्भ से अत्यन्त भयङ्कर ध्वनि हुई, उस ध्वनि से ब्रह्माण्ड का कटाह फूट गया और उस ध्वनि को सुनकर अपने लोकों में विद्यमान ब्रह्मा आदि देवों को यह लगने लगा कि अब उनके भी लोक का लय होने वाला है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

स विक्रमन्पुत्रवधेप्सुरोजसा निशम्य निर्ह्रादमपूर्वमद्भुतम् ।
अन्तःसभायां न ददर्श तत्पदं वितत्रसुर्येन सुरारियूथपाः ॥१७॥

अन्वयः— पुत्रवधेप्सुः ओजसा विक्रमन् सः अपूर्वम् अद्भुतम् निर्ह्रादम् निशम्य येन सुरारियूथपाः वितत्रसुः तत् पदं सभायामन्तः न ददर्श ॥१७॥

अनुवाद— अपने पुत्र का वध करने का इच्छुक हिरण्यकशिपु प्रह्लादजी की ओर झपटा । किन्तु वह उस भयङ्कर अद्भुत और अपूर्व ध्वनि को सुनकर घबरा गया । वह ध्वनि दैत्य सेनापतियों को कंपा देने वाली थी । हिरण्यकशिपु देखने लगा कि यह ध्वनि कहाँ से हो रही है, किन्तु वह उस सभा में ऐसा कुछ भी नहीं देखा ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तत्पदं तस्य ध्वनेराश्रयम् । येन नादेन ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

तत्पदम् अर्थात् ध्वनि को करने वाला । येन अर्थात् जिस ध्वनि से ॥१७॥

सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ।
अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन् स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥१८॥

अन्वयः— निजभृत्यभाषितम्, अखिलेषु भूतेषु आत्मनः व्याप्तिं च सत्यं विधातुम्, स्तम्भे सभायां अत्यद्भुतं रूपम् उद्वहन न मृगं न मानुषम् ॥१८॥

अनुवाद— अपने सेवक प्रह्लादजी तथा ब्रह्माजी की बातें सत्य करने के लिए और सर्वत्र समस्त वस्तुओं में अपनी व्यापकता को सत्य करने के लिए उसी स्तम्भ में अत्यन्त अद्भुत रूप धारण किए हुए श्रीभगवान् प्रकट

हो गये । भगवान् का यह रूप न तो पूरा-पूरा सिंह का था और न तो पूरा-पूरा मनुष्य का ही था । भगवान् का यह रूप नृसिंह का था ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

भगवांस्तदा स्तम्भं विदार्यादृश्यत दृश्यो बभूव । किमर्थम् । निजभृत्येन प्रह्लादेन यद्भाषितं दृश्यत इति तत्सत्यं विधातुं कर्तुम् । तथाऽखिलेषु भूतेष्वात्मनो व्याप्तिं च सत्यां कर्तुं स्तम्भेऽदृश्यत । तत्किमर्थम् । 'भौतिकेषु च भावेषु भूतेष्वथ महत्सु च । भगवानास्ते इति तेनैव भृत्येन यद्भाषितं तत्सत्यं कर्तुम् । तथाऽत्यद्भुतं दैत्यघातकमतिघोरं रूपमुद्वहन् दधत् । तत्किमर्थम्। निजभृत्यैः सनकादिभिः शापानन्तरमनुतप्तैर्भाषितं यत्, 'त्रिभिर्जन्मभिः शापमोक्षो भवतु' इति तत्सत्यं कर्तुम् । तथाऽत्यद्भुतं रूपं ब्रह्मसृष्टावदृष्टमश्रुतं च रूपमुद्वहन् । तच्च न मृगाकारं न च मनुष्याकारमुद्वहन् । सभायां मध्येऽदृश्यत तत्किमर्थम् । निजभृत्येन हिरण्यकशिपुना ब्रह्माणं प्रति यद्भाषितम्, 'भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मा भून्मम प्रभो' इति, तथ 'नान्तर्न बहिः' इति, 'न नरैर्न मृगैरपि' इति च । ब्रह्मणा च निजभृत्येन तथास्त्विति यद्भाषितं तदुभयोर्वाक्यं सत्यं कर्तुम् । नहि तद्ब्रह्मसृष्टं भूतं नच नरो वा मृगो वा न च सभागृहस्यान्तः न च प्राङ्गणवद्बहिः एवं ताभ्यां यद्भाषितं तत्सत्यं कर्तुम् । यच्च हिरण्यकशिपुना भषितम्, 'नूनमेतद्विरोधेन मृत्युर्मे भविता' इति, 'अकुतश्चिद्भयोऽमरः' इति च । यच्च नारदेन निजभृत्येन भाषितमिन्द्रं प्रति 'अयं महांस्त्वया संस्पर्शा न प्राप्स्यति' 'अनन्तानुचरः' इत्यनेन स्वभक्तपक्षपातित्वं च यद्भाषितं तच्च सत्यं कर्तुं तथा अदृश्यत । चकारान्निजभाषितं च । किं तत् । 'कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति' इति, तथा 'तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्' इत्यादि तच्च सत्यं कर्तुमदृश्यतेति द्रष्टव्यम् । अलमतिविस्तरेण ॥१८॥ '

भाव प्रकाशिका

भगवान् उस स्तम्भ को फाड़कर प्रकट हो गये । प्रश्न है कि श्रीभगवान् ने ऐसा क्यों किया तो इसका उत्तर है कि उनके सेवक प्रह्लादजी ने कहा था कि भगवान् तो इस स्तम्भ में दिखते हैं । अपने सेवक की उस वाणी को सत्य करने के लिए तथा सभी पदार्थों में अपनी व्यापकता को सत्य करने के लिए वे स्तम्भ से प्रकट हुए । ऐसा भगवान् ने क्यों किया तो इसका उत्तर है कि उनके भक्त प्रह्लाद ने यह जो कहा था कि भगवान् तो सभी भौतिक भाव पदार्थों तथा सभी महान् भूतों में परमात्मा विद्यमान हैं । उसी को सत्य करने के लिए वे स्तम्भ से प्रकट हुए । भगवान् अत्यन्त अद्भुत अर्थात् उस दैत्य को मार डालने वाले उस भयङ्कर रूप को धारण किए हुए थे । किञ्च उस रूप धारण करने का यह भी उद्देश्य था कि श्रीभगवान् के भक्त सनकादियों ने शाप के पश्चात् संतप्त होकर यह कहा था कि तीन जन्मों में हमारे इस शाप से तुम लोगों को मुक्ति मिलेगी, उसको सत्य करने के लिए भगवान् ने वैसा रूप धारण किया ब्रह्माजी की सृष्टि में अदृष्ट और अश्रुत भगवान् का वह रूप था । भगवान् का वह रूप न तो मृगाकार था और न मनुष्याकार था । इस प्रकार का रूप धारण किए थे भगवान् । भगवान् सभा के बीच में क्यों दिखायी दिए ? तो इसका उत्तर है कि हिरण्यकशिपु भी पहले भगवान् का सेवक ही था । उसने ब्रह्माजी से कहा था— 'हे प्रभो ! आपके द्वारा सृष्ट भूतों से मेरी मृत्यु न हो' तथा मेरी मृत्यु न तो भीतर हो न बाहर हो न मनुष्यों द्वारा हो न पशुओं के द्वारा हो, ब्रह्माजी भी भगवान् के भक्त हैं । उन्होंने कहा था ऐसा ही होगा अतएव उन दोनों की वाणी सत्य करने के लिए भगवान् सभा के बीच में नृसिंह रूप से प्रकट हुए । भगवान् का वह रूप ब्रह्माजी की सृष्टि में नहीं था । वे न तो नर थे और न पशु थे । वे सभा गृह में इसलिए प्रकट हुए कि न तो वह गृह के भीतर ही था और न बाहर । अतएव हिरण्यकशिपु और ब्रह्माजी द्वारा उक्त बातों को सत्य करने के लिए सभा के बीच में प्रकट हुए । हिरण्यकशिपु ने यह जो कहा था कि प्रह्लाद के द्वारा किये जाने वाले विरोध के कारण ही मेरी मृत्यु होगी । यह प्रह्लाद निर्भय और अमर है । किञ्च नारदजी ने यह जो इन्द्र से कहा था कि यह महान् है और इसको तुम नहीं मार सकते हो । यह श्रीभगवान् का सेवक

हैं । इस तरह यह जो कहा गया कि भगवान् अपने भक्त के पक्षपाती हैं उन सबों को सत्य करने के लिए श्रीभगवान् उस रूप में प्रकट हुए। चकार के द्वारा यह भी अर्थ अभिप्रेत है कि भगवान् ने गीता में कहा है कि अर्जुन ! तुम प्रतिज्ञा करो कि मेरा भक्त विनष्ट नहीं होता है । **कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति**' मैं अपने भक्तों का इस संसार सागर से उद्धार करने वाला हूँ, इसको भी सत्य करने के लिए भगवान् उस तरह से प्रकट हुए।।१८।।

स सत्त्वमेवं परितोऽपि पश्यन्स्तम्भस्य मध्यादनु निर्जिहानम् ।
नायं मृगो नापि नरो विचित्रमहो किमेतन्नृमृगेन्द्ररूपम् ।।१९।।

अन्वयः— एवं सः सत्त्वं परितः अपि पश्यन् स्तम्भस्यमध्याद अनुनिर्जिहानम् नायं मृगो नापि नरः अहो विचित्रम् एतत् नृमृगेन्द्ररूपं किम् ?।।१९।।

अनुवाद— इस प्रकार की ध्वनि को सुनकर उस ध्वनि को करने वाले को जब हिरण्यकशिपु चारों ओर देख रहा था उसने स्तम्भ के बीच से निकलते हुए श्रीभगवान् को देखा । वह सोचने लगा कि यह न तो मनुष्य है न पशु बल्कि यह नृसिंह रूप में कौन हैं ?।।१९।।

भावार्थ दीपिका

स दैत्य एवमद्भुतं ध्वनिं श्रुत्वा तदाश्रयं सत्त्वं प्राणिविशेषं सर्वतो विलोकयन्स्तम्भमध्यान्निर्गच्छत् नृमृगेन्द्रयोर्मिश्रं रूपमहो किमेतदिति मीमांसितवानिति शेषः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

वह दैत्य इस प्रकार की अद्भुत ध्वनि को सुनकर उस ध्वनि को करने वाले प्राणि विशेष को चारों ओर देख रहा था । और स्तम्भ के बीच से निकलने वाले मनुष्य और सिंह का मिश्रित रूप को देखकर विचार करने लगा और यह ऐसा रूप किसका है ।।१९।।

मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो नृसिंहरूपस्तदलं भयानकम् ।
प्रतप्तचामीकरचण्डलोचनं स्फुरत्सटाकेसरजृम्भिताननम् ।।२०।।

अन्वयः— मीमांसमानस्य अग्रतः नृसिंह रूपः समुत्थितः तत् प्रतप्तचामीकरचण्डलोचनं स्फुरसटाकेसर जिम्भृताननम् अलं भयानक आसीदिति शेषः ।।२०।।

अनुवाद— इस तरह से जब हिरण्यकशिपु विचार ही कर ही रहा था कि उसके सामने ही नृसिंह रूपधारी श्रीभगवान् खड़ा हो गये । उनके नेत्र तपाये हुए सुवर्ण के समान पीले-पीले थे । वे जम्भाई ले रहे थे अतएव उनके कन्धों के केसर इधर-उधर लहरा रहे थे । इस तरह उनका रूप अत्यन्त भयानक था ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

तस्यैवमलं भयानकं तन्नृसिंह रूपं मीमांसमानस्याग्रतो नृसिंहरूपो हरिः समुत्थितः भयानकत्वमेव दर्शयंस्तद्रूपमनुवर्णयति-प्रतप्तेत्यादिना विद्रावितदैत्यदानवमित्यन्तेन । प्रतप्तं चामीकरं सुवर्णं तद्वत्पिङ्गानि चण्डानि लोचनानि यस्मिन् । सटा जटाः, केसराः कण्ठरोमाणि, स्फुरद्भिः सटाकेसरैर्जृम्भितं साटोपमाननं यस्मिन् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् नृसिंह का वह रूप अत्यन्त भयानक था । वे भगवान् विचार करने वाले हिरण्यकशिपु के समक्ष खड़े हो गये । श्रीभगवान् के उस रूप की भयानकता को दिखाते हुए श्रीभगवान् के रूप का वर्णन श्रीनारदजी कर रहे थे । **प्रतप्त इत्यादि** से लेकर विद्रावित दैत्य दानवम् पर्यन्त श्रीभगवान् के रूप की भयङ्करता का वर्णन

किए हैं। तपाये हुए सुवर्ण के समान पीली-पीली उनकी आँखें थीं। जम्भाई लेने वाले श्रीभगवान् की गर्दन के बाल इधर-उधर लहरा रहे थे ॥२०॥

करालदंष्ट्रं करवालचञ्चलक्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणम् ।
स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकन्दराद्भुतव्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम् ॥२१॥

अन्वयः— तद्रूपं करालदंष्ट्रं करवाल चञ्चलक्षुरान्त जिह्वम् । भृकुटीमुखोल्बणम् स्तब्धोर्ध्वकर्णम् गिरिकन्दराद्भुतव्यात्तास्यनासम् हनुभेदभीषणम् ॥२१॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का वह रूप भयङ्कर दाँतो, तलवार की तरह लपलपाती हुई छूरे की धारा के समान तीक्ष्ण जीभ, टेढी भौहों से भयङ्कर लगने वाले मुख, ऊपर की ओर उठे हुए एवं निश्चल कानों, पर्वत की कन्दरा के समान अद्भुत फूली हुई नाक तथा फटे हुए जवड़ों से खुले हुए मुख से युक्त था ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

करालास्तुङ्गा दंष्ट्रा यस्मिन् । करवालः खड्गस्तद्वच्चञ्चला क्षुरान्तवत्तीक्ष्णा च जिह्वा यस्मिन् । भ्रुकुटीयुक्तेन मुखेनोल्बणम् । स्तब्धावुन्नतौ शङ्कुवदूर्ध्वौ कर्णौ यस्मिन् । गिरिकन्दरवदद्भुतं व्यात्तं प्रसृतमास्यं नासे च यस्मिन् । हनू कपोलप्रान्तौ तयोर्भेदिन विदारणेन भीषणम् । कर्णान्तमुखविस्तारमित्यर्थः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के उस रूप के भयङ्कर लम्बे दाँत थे, तलवार के समान चञ्चल और छूरे की धार के समान तीक्ष्ण जीभ लपलपा रही थी, टेढ़ी भौंहों के कारण भयङ्कर लगने वाला मुख था, ऊपर की ओर उठे तथा निश्चल कान थे पर्वत की कन्दरा के समान अद्भुत फैला हुआ मुँह तथा नाक थे, फैले हुए होने के कारण उनके जवड़े भयङ्कर लग रहे थे। इस तरह उस रूप का मुख कानों तक फैला था ॥२१॥

दिविस्पृशत्कायमदीर्घपीवरग्रीवोरुवक्षःस्थलमल्पमध्यमम् ।
चन्द्रांशुगौरैश्छुरितं तनूरुहैर्विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधम् ॥२२॥

अन्वयः— दिविस्पृशत्कायम् अदीर्घपीवर ग्रीवोरुवक्षः स्थलम्, अल्पमध्यमम्, चन्द्रांशुगौरैः तनूरुहैः छुरितं, विष्वाभुजानीकि शतं नखायुधम् तद्ररूपमासीत् ॥२२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के उस रूप का शरीर स्वर्ग का स्पर्श कर रहा था, गरदन नाटी और मोटी थी, छाती चौड़ी और कमर पतली थी, चन्द्रमा की किरणो के समान सफेद रोएँ शरीर पर चमक रहे थे, चारो ओर सैंकड़ों भुजाएँ फैली थी। वड़े-बड़े नख आयुध का काम करते थे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

दिविस्पृशन् कायो यस्मिन्, अलुक्समासः । अदीर्घा ह्रस्वा पीवरा च स्थूला ग्रीवा यस्मिन्, उरु विशालं वक्षःस्थलं यस्मिंस्तच्च तच्च । अल्पं मध्यममुदरं यस्मिन् । चन्द्रांशुवद्गौरैस्तनूरुहैर्लोमभिश्छुरितं व्याप्तम् । विष्वञ्चः सर्वतः प्रसृता भुजास्तेषामनीकानि स्तोमास्तेषां शतानि यस्मिन् । नखान्येवायुधानि यस्मिन् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

उस रूप का शरीर आकाश को छू रहा था, **दिविस्पृशत्** काय में अलुक् समास है। उसकी गरदन छोटी और मोटी थी, छाती चौड़ी थी, कमर पतली थी, चन्द्रमा की किरणों के समान श्वेत रोएँ सम्पूर्ण शरीर पर चमक रहे थे। चारो ओर सैंकड़ों भुजाओं का समूह फैला था। उस रूप में नख ही आयुध का काम करते थे ॥२२॥

दुरासदं सर्वनिजेतरायुधप्रवेकविद्रावितदैत्यदानवम् ।
प्रायेण मेऽयं हरिणोरुमायिना बधः स्मृतोऽनेन समुद्यतेन किम् ॥२३॥

अन्वयः— दुरासदं सर्वनिजेतरायुधप्रवेक विद्रावितदैत्य दानवम्, प्रायेण उरुमायिना हरिणा मे अयं वधः स्मृतः किन्तु अनेन समुद्यतेन किम ?॥२३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के उस रूप के पास कोई नहीं जा पाता था, चक्र आदि अपने और वज्र आदि अन्य श्रेष्ठ आयुधों के द्वारा उन्होंने सभी दैत्य दानवों को भगा दिया। उस रूप को देखकर हिरण्यकशिपु सोचने लगा। महामायावी विष्णु ने मुझे मार डालने के ही लिए इस रूप को धारण किया है किन्तु इसकी इन चालों से क्या हो सकता है ? कुछ नहीं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

दुरासदं प्राप्तुमशक्यम् । सर्वाणि च निजानि चक्रादीनीतराणि वज्रादीनि त एवायुधप्रवेकाः शस्त्रोत्तमास्तैर्विद्राविता दैत्यदानवा येन तद्रूपं मीमांसमानस्याग्रतः समुत्थित इति पूर्वेणैवान्वयः । तदाविर्भावप्रयोजनविमर्शपूर्वकं तेन सह दैत्यस्य युद्धमाह सप्तभिः । प्रायेण महामायिना हरिणा मेऽयमेवंभूतो वधो मृत्युहेतुः स्मृतश्चिन्तितस्तथाप्यनेन समुद्यतेन किं न किंचित्स्यादित्येवं ब्रुवन्नभ्यपतदित्यन्वयः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के उस रूप के समक्ष कोई जा नहीं सकता था वे अपने नीजी शङ्ख, चक्रादि आयुधों तथा दूसरे श्रेष्ठ वज्र आदि आयुधों को धारण किए थे जिसे देखकर सभी दैत्य दानव भाग गये। श्रीभगवान् के उस रूप को देखकर हिरण्यकशिपु सोच रहा था कि महामायावी विष्णु मुझे मारने के लिए ही इस रूप को बनाये हैं, किन्तु ऐसा रूप बनाकर वे मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं वे कुछ भी नहीं कर सकते हैं ॥२३॥

एवं ब्रुवंस्त्वभ्यपतद्गदायुधो नदन्नृसिंहं प्रति दैत्यकुञ्जरः ।
अलक्षितोऽग्नौ पतितः पतङ्गमो यथा नृसिंहौजसि सोऽसुरस्तदा ॥२४॥

अन्वयः— एवं ब्रुवन् दैत्यकुञ्जरः नदन गदायुधः नृसिंह प्रति अभ्यपतत् सः असौ असुरः पतङ्गमो यथा नृसिंहहौजसि अलक्षितोऽग्नौ पतितः ॥२४॥

अनुवाद— इस तरह से कहते हुए वह दैत्य श्रेष्ठ हाथ में गदा लेकर भगवान् नृसिंह पर टूट पड़ा। ऐसा करके हिरण्यकशिपु भगवान् नृसिंह के तेज रूप अग्नि में पतङ्गों के समान गिर पड़ा और उस तेज में गिरकर वह अदृश्य हो गया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तदा सोऽसुरो नृसिंहस्यौजसि दीप्तौ पतितः सन्नलक्षितोऽदृष्टोऽभूत् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

उस समय हिरण्यकशिपु भगवान् नृसिंह के देदीप्यमान तेज रूप अग्नि में गिरकर अृदश्य हो गया ॥२४॥

न तद्विचित्रं खलु सत्त्वधामनि स्वतेजसा यो नु पुरापिबत्तमः ।
ततोऽभिपद्याभ्यहनन्महासुरो रुषा नृसिंहं गदयोरुवेगया ॥२५॥

अन्वयः— तत् खलुं सत्त्वधामनि विचित्रं न यः पुरा स्वतेजसा तमः अपिबत् । ततः अभिपद्य महासुर उरुवेगया गदया नृसिंह अभ्यहनत् ॥२५॥

अनुवाद— ऐसा होना सम्पूर्ण तेजो के एक मात्र आश्रय श्रीभगवान् के लिए कोई अद्भुत बात नहीं थी क्योंकि प्रलय काल के अन्त में वे अपने प्रलय के निमित्त भूत घोर अन्धकार को भी पी लिए थे। उसके पश्चात् वह दैत्य क्रोध करके अत्यधिक वेगवाली गदा से भगवान् नृसिंह पर प्रहार किया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

सत्वधामनि सत्वप्रकाशे हरौ पतितस्य तमोमयस्यादर्शनं तद्विचित्रं न भवति। तत्र हेतुः-यो हरिः पुरा सृष्ट्यादौ प्रलयकालीनं तमः नु अहो अपिवत्तस्मिन् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

सत्वगुण के प्रकाश में पड़ा हुआ तमोगुणमय हिरण्यकशिपु का अदृश्य हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उसका कारण है कि प्रलय काल के अन्त में तथा सृष्टि काल के प्रारम्भ में श्रीभगवान् अपने तेज के द्वारा प्रलय कालीन अन्धकार को भी पी लिए थे ॥२५॥

तं विक्रमन्तं सगदं गदाधरो महोरगं तार्क्ष्यसुतो यथाऽग्रहीत् ।
स तस्य हस्तोत्कलितस्तदाऽसुरो विक्रीडतो यद्वदहिर्गरुत्मतः ॥२६॥

अन्वयः— विक्रमन्तं सगदं तं गदाधरः तार्क्ष्यसुतः महोरगं यथा अग्रहीत, तदा असुरः विक्रीडितः तस्य हस्तात् उत्कलितः यद्वद् अहिगरुत्मतः ॥२६॥

अनुवाद— प्रहार करते समय गदा धारण किए हुए हिरण्यकशिपु को गदा धारण करने वाले भगवान् नृसिंह उसी तरह पकड़ लिए जिस तरह गरुड बहुत बड़े सर्प को पकड़ लेते हैं। जब भगवान् उसके साथ क्रीड़ा करने लगे तो वह उनके हाथ से उसी तरह छूट गया जिस तरह गरुड के चङ्गुल से सर्प छूट जाता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

विक्रमन्तं ततस्ततः प्रहरन्तम्। हस्तादुत्कलितो निःसृत ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

विक्रमन्तं अर्थात् जब हिरण्यकशिपु भगवान् पर प्रहार कर रहा था हस्तादुत्कलितः अर्थात् हाथ से छूट गयी॥२६॥

असाध्वमन्यन्त हृतौकसोऽमरा घनच्छदा भारत सर्वधिष्ण्यपाः ।
तं मन्यमानो निजवीर्यशङ्कितं यद्धस्तमुक्तो नृहरिं महासुरः ॥
पुनस्तमासज्जत खड्गचर्मणी प्रगृह्य वेगेन जितश्रमो मृधे ॥२७॥

अन्वयः— हे भारत ! सर्वधाष्ण्यपाः घनच्छदा हृतौकसः अमरा असाधु अमन्यन्त, महासुरः यद हस्तमुक्तः तं नृहरि निजवीर्यशङ्कितं मन्यमानः मृधे जितश्रमः खड्गचर्मणीप्रगृह्य वेगेन पुनः तम् असज्ञत ॥२७॥

अनुवाद— युधिष्ठिर ! उस समय सबके सब लोकपाल बादलों में छिपकर युद्ध देख रहे थे। उन देवताओं के स्वर्ग को तो हिरण्यकशिपु ने पहले ही छिन लिया था। देवताओं ने जब यह देखा कि हिरण्यकशिपु भगवान् के हाथ में से छूट गया तो वे और डर गये। हिरण्यकशिपु ने भी यह समझा कि भगवान् मेरे पराक्रम से डरकर मुझे छोड़ दिए हैं। यह सोचकर उसकी थकान दूर हो गयी। और वह ढाल एवं तलवार लेकर श्रीभगवान् की ओर युद्ध करने के लिए दौड़ा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

तदा अमरा देवाः सर्वे धिष्ण्यपा असाध्वमन्यन्त। हतान्योकांसि स्थानानि येषां ते। तद्भिया घनच्छदा मेघान्तरिताः सन्तः। यस्य हस्तात्स्वयं मुक्तस्तं नृहरिं स्ववीर्याच्छङ्कितं मन्यमानः खड्गचर्मणी प्रगृह्य पुनस्तमासज्जताभ्यपद्यतेत्यन्वयः॥२७॥

भाव प्रकाशिका

जिस समय हिरण्यकशिपु भगवान के हाथ से छूट गया उस समय सभी लोकपाल देवता उसको बहुत बुरा माने। उन लोगों का स्वर्ग हिरण्यकशिपु ने छीन लिया था वे देवता हिरण्यकशिपु के डर से मेघों में छिपकर युद्ध को देख रहे थे। जिस नृसिंह भगवान के हाथ से वह छूट गया था उसको वह मानने लगा कि मेरे पराक्रम से भयभीत होकर भगवान् मुझे छोड़ दिए हैं। वह ढाल और तलवार लेकर पुनः युद्ध करने के लिए भगवान पर टूट पड़ा ॥२७॥

तं श्येनवेगं शतचन्द्रवर्त्मभिश्चरन्तमच्छिद्रमुपर्यधो हरिः ।
कृत्वाट्टहासं खरमुत्स्वनोल्बणं निमीलिताक्षं जगृहे महाजवः ॥२८॥

अन्वयः— तं श्येनवेगम् शतचन्द्रवर्त्मभिः उपरि अधः अच्छिद्रं चरन्तम् तं हरिः खरमुत्स्वनोल्बणं अट्टहासं कृत्वा निमीलिताक्षं महाजवः जगृहे ॥२८॥

अनुवाद— बाज पक्षी के समान वेग पूर्वक ऊपर नीचे उछल कूदकर हिरण्यकशिपु इस तरह ढाल तलवार के पैंतरे बदल रहा था कि उस पर प्रहार करने का अवसर ही न मिले। उसी समय भगवान प्रचण्ड और भयङ्कर अट्टहास किए जिसके कारण उसकी आँखें बन्द हो गयी और अत्यन्त वेग सम्पन्न हरि उसको पकड़ लिए ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

श्येनस्येव वेगो यस्य तम् । शतचन्द्रवर्त्मभिः खड्गचर्ममार्गैरच्छिद्रं यथा भवत्येवमुपर्यधश्चरन्तम् । अट्टहासमेवाह- खरं तीव्रम् । उत्स्वनेन महाशब्देनोल्बणं भयङ्करम् । तद्भयेन हरेस्तेजसा च निमीलिते अक्षिणी यस्य ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

बाजपक्षी के समान वेग वाला हिरण्यकशिपु ढाल तलवार के पैंतरे को नीचे ऊपर उछल कर ऐसे बदल रहा था कि जिससे कि उस पर प्रहार करने का अवसर ही न मिले' उसी समय अत्यन्त भयङ्कर अट्टहास नृसिंह भगवान् ने किया जिससे कि उसकी आँखें बन्द हो गयी ॥२८॥

विष्वक् स्फुरन्तं ग्रहणातुरं हरिर्व्यालो यथाऽऽखुं कुलिशाक्षतत्वचम् ।
द्वार्यूर आपात्य ददार लीलया नखैर्यथाऽहिं गरुडो महाविषम् ॥२९॥

अन्वयः— व्यालः आखुं यथा ग्रहणातुरं विष्वग् स्फुरन्तं कुलिशाक्षतत्वचम् हरिः द्वारि ऊरं आपात्य महाविषम् अहिं गरुडो यथा नखैः लीलयाददार ॥२९॥

अनुवाद— जिस तरह सर्प चूहे को पकड़ लेता है, उसी तरह पकड़ जाने के कारण जो चारो तरफ छटपटा रहा था, इन्द्र के वज्र से जिसकी त्वचा पर खरोंच भी नहीं लगा था उस हिरण्यकशिपु को सभा के द्वार पर श्रीभगवान् ने अपनी जङ्घो पर सुला कर और जैसे गरुड़ सर्प को चीर-फाड़ देता है उसी तरह भगवान् ने हिरण्यकशिपु को अपने नखों से बड़ी आसानी से चीर-फाड़ दिया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

ग्रहणे दृष्टान्तः व्यालो यथा आखुं मूषकम् । विदारणे दृष्टान्तः अहिं गरुड इवेति । विष्वक् सर्वतः स्फुरन्तं निःसरन्तम्। ग्रहणेनातुरं विवशम् । इन्द्रेण सह युद्धे तत्प्रयुक्तेन कुलिशेन न क्षता त्वगपि यस्य । द्वारि सभायां नान्तर्न बहिः । ऊरे ऊरौ निपात्य, न भूमौ न चाम्बरे । नखैर्न व्यसुभिरसुमद्भिर्वा । एवं दिवानक्तपरिहाराय सन्ध्यायामिति द्रष्टव्यम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

सर्प जैसे चूहे को पकड़ लेता है, यह पकड़ने का दृष्टान्त है, गरुड जैसे सर्प को चीर देता है, यह चीर डालने में उदाहरण है। विष्वक् स्फुरन्तम् अर्थात् छटपटा कर निकलना चाहने वाले किन्तु पकड़ जाने के कारण हिरण्यकशिपु विवश था। युद्ध में इन्द्र के द्वारा प्रयुक्त वज्र के द्वारा जिसकी त्वचा पर खरोंच भी नहीं आयी थी। न भीतर न बाहर बल्कि सभा के द्वार पर, न पृथिवी पर न आकाश में बल्कि जङ्घे पर, न निष्प्राणों से और न तो प्राणवानों से, बल्कि नखों से उसी तरह दिन और रात का परिहार करने के लिए संध्या के समय भगवान् ने हिरण्यकशिपु को चीर दिया ॥२९॥

संरम्भदुष्प्रेक्ष्यकराललोचनो व्यात्ताननान्तं विलिहन्स्वजिह्वया ।
असृग्लवाक्तारुणकेसराननो यथाऽन्त्रमाली द्विपहत्यया हरिः ॥३०॥

अन्वयः— संरम्भदुष्प्रेक्ष्यकराललोचनः व्यात्ताननान्तं विलिहन् स्वजिह्वया असृग्लवाक्तारुणकेसराननः यथान्त्रमाली द्विपहत्यया हरिः ॥३०॥

अनुवाद— उस समय उनके क्रोध से भरी भयङ्कर आँखों की ओर कोई देख नहीं पाता था, अपनी लपलपाती हुई जीभ से फैले हुए मुख के दोनों कोनों को भगवान् चाट रहे थे। रक्त के छीटों से उनका मुख और गरदन के बाल लाल हो गये थे। उस समय उनकी शोभा हाथी को मारकर उसकी आँतों की माला पहने हुए मृगराज के समान हो रही थी ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

दैत्यवधमुक्त्वा तद्भृत्यवधमाह द्वाभ्याम्। संरम्भेण दुष्प्रेक्ष्याणि करालानि लोचनानि यस्य। असृजो रक्तस्य लवैर्बिन्दुभी रक्ताः सिक्ता अत एवारुणाः केसरा आननं च यस्य सः। क इव। द्विपहत्यया गजवधेन हरिः सिंहो यथा एवंभूतस्तस्यानुचरानहन्नित्युत्तरेणान्वयः। अन्त्राणां माला कण्ठे विद्यते यस्य ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

नारदजी हिरण्यकशिपु के वध का वर्णन करके उसके भृत्यों के वध का वर्णन दो श्लोकों से करते हैं। क्रोध के कारण भगवान् के नेत्रों की ओर देखना कठिन हो गया था। खून के बूंदों से श्रीभगवान् के गरदन के बाल और मुख लाल हो गये थे, लगता था जैसे कोई सिंह हाथी को मार कर उसकी आँतों की माला धारण कर लिया हो। इस तरह के श्रीभगवान् ने हिरण्यकशिपु के अनुचरों को मार डाला अन्त्राणां माला विद्यते कण्ठे यस्य यह आन्त्रमाली का विग्रह है ॥३०॥

नखाङ्कुरोत्पाटितहृत्सरोरुहं विसृज्य तस्यानुचरानुदायुधान् ।
अहन्समन्तान्नखशस्त्रपार्ष्णिभिर्दोर्दण्डयूथोऽनुपथान्सहस्रशः ॥३१॥

अन्वयः— नखाङ्कुरोत्पारिटतहृत्सरोरुहं विसृज्य उदायुधान् सहस्रशः तस्य अनुपथान् असुरान् दोर्दण्डयूथः नखशस्त्र पार्ष्णिभिः समन्तात् अहन् ॥३१॥

अनुवाद— श्रीभगवान् अपने तीक्ष्ण नखों से हिरण्यकशिपु के कलेजे को फाड़कर उसके शरीर को जमीन पर पटक दिए और आयुध धारण करके आये हुए हिरण्यकशिपु के हजारों अनुयायी असुरों को अपनी भुजा रूपी सेना से नख रूप शस्त्र से तथा पैरों से खदेड़-खदेड़ कर मार डाले ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

नखाङ्कुरैरुत्पाटितं हृत्सरोरुहं यस्य तम्। दोर्दण्डानां यूथानि समूहा यस्य सः। तं दैत्येन्द्रमनु पन्था येषां तान् अन्यानपि तत्पक्षपातिन इत्यर्थः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

नखरूपी अङ्कुरों से जिसका हृदय कमल निकाल लिया गया था यह नखाङ्कुरोतपटितहृत्सरोरुहं का विग्रह है । भुजाओं के समूह वाले यह **दोर्दण्डयूथः** का विग्रह है । अनुपथान् अर्थात् अनुयायियों को अर्थात् हिरण्यकशिपु के पक्षपातियो को ॥३१॥

सटावधूता जलदाः परापतन् ग्रहाश्च तद्दृष्टिविमुष्टरोचिषः ।
अम्भोधयः श्वासहता विचुक्षुभुर्निर्ह्रादभीता दिगिभा विचुक्रुशुः ॥३२॥

अन्वयः— सटावधूताः जलदाः परापतन् तद्दृष्टि विमुष्टरोचिषः ग्रहाः च, श्वासहताः अम्भोधयः विचुक्षुभुः निर्ह्रादभीताः दिगिभः विचुक्रुशुः ॥३२॥

अनुवाद— उस समय श्रीभगवान् के गरदन के बालों की फटकार से मेघ तितर-वितर हो गये, श्रीभगवान् के नेत्रों की ज्योति से सूर्यादि ग्रहों की ज्योति फीकी पड़ गयी, उनके श्वासों से टकराने के कारण समुद्रों में ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं तथा श्रीभगवान् के सिंहनाद से दिग्गज चिग्घाड़ने लगे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

दैत्यवधव्यग्रस्य नृहरेराटोपमाह द्वाभ्याम् । सटाभिरवधूताः प्रकम्पिता जलदा मेघाः परापतन् व्यशीर्यन्त । (अनेन ये मेघान्तरिता देवास्ते स्पष्टं पश्यन्त्वित्याज्ञां दत्तवानित्यर्थः) । तस्य दृष्ट्या विमुष्टं रोचिर्येषां ग्रहाणां ते तिरस्कृतप्रभा अभवन्निति शेषः । दिगिभा दिग्गजाः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्यकशिपु दैत्य के वध में व्यग्र हुए श्रीभगवान् के आटोप का वर्णन दो श्लोकों से नारदजी करते हैं। श्रीभगवान् के गरदन के बालों की फटकार से काँपते हुए मेघ तितर-वितर हो गये । इसके द्वारा जो देवता मेघ में छिपकर युद्ध देख रहे थे, वे स्पष्ट रूप से देखे इस तरह से भगवान् ने आज्ञा दे दी । श्रीभगवान् के नेत्रों की दृष्टि से ग्रहों की कान्ति फीकी पड़ गयी । दिगिभाः अर्थात् दिग्गज ॥३२॥

द्यौस्तत्सटोत्क्षिप्तविमानसंकुला प्रोत्सर्पत क्ष्मा च पदाऽतिपीडिता ।
शैलाः समुत्पेतुरमुष्य रंहसा तत्तेजसा खं ककुभो न रेजिरे ॥३३॥

अन्वयः— तत्सटोत्क्षिप्त विमान सकला द्यौः पदातिपीडिता क्ष्माच प्रोत्सर्पत, अमुष्य रंहसा शैला समुत्पेतुः तत्तेजसा खं ककुभः न रेजिरे ॥३३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के गरदन के बालों से टकराकर देवताओं के विमान अस्त-व्यस्त हो गयें और स्वर्ग डगमगा गया । उनके पैरों की धमक से भूचाल आ गया । उनके वेग से पर्वत हवा में उड़ने लगे और उनके तेजकी चकाचौंध से आकाश और (दिशाओं) का दिखना बन्द हो गया ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तस्य सटाभिरुत्क्षिप्तानि विमानानि तैः सङ्कुला व्याप्ता सती प्रोत्सर्पत स्वस्थानात्प्रकर्षेणोदसर्पच्चलिता ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् नृसिंह के वरदान के बालों से टकराने से देवताओं के विमान से भरा हुआ स्वर्ग डगमगा गया॥३३॥

ततः सभायामुपविष्टमुत्तमे नृपासने संभृततेजसं विभुम् ।
अलक्षितद्वैरथमत्यमर्षणं प्रचण्डवक्त्रं न बभाज कश्चन ॥३४॥

अन्वयः— ततः समायाम् उत्तमे नृपासने उपविष्टम् संभृततेजसं अलक्षित द्वैरथम् अत्यमर्षणं प्रचण्डवक्त्रं विभुम्, कश्चन बभाज ॥३४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् राजसभा के बीच में उत्तम राज सिंहासन पर बैठे हुए तेज से भरे हुए तया जिनका कोई भी विरोधी योद्धा नहीं था ऐसे अत्यन्त क्रोध के कारण श्रीभगवान् के भयङ्कर मुख को देखकर किसी में भी ऐसा साहस नहीं हुआ कि जो जाकर श्रीभगवान् की सेवा करे ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

स्वभृत्यैश्वर्यमाश्चर्यमिव मत्वा कौतूहलेन तस्यासने उपविष्टं भयात्कोऽपि न बभाज नासेवत । न लक्षितो द्वैरथः प्रतियोद्धा येन ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्यकशिपु भी इस जन्म से पहले भगवान् का सेवक ही था उसके ऐश्वर्य को आश्चर्य को मानकर कौतूहल वशात् उसके सिंहासन पर बैठे हुए तथा जिनका कोई भी विरोधी योद्धा नहीं था उनके भय के कारण कोई भी श्रीभगवान् की सेवा करने उनके पास नहीं जा सका ॥३४॥

निशम्य लोकत्रयमस्तकज्वरं तमादिदैत्यं हरिणा हतं मृधे ।
प्रहर्षवेगोत्कलितानना मुहुः प्रसूनवर्षैर्ववृषुः सुरस्त्रियः ॥३५॥

अन्वयः— लोकत्रयमस्तक ज्वरं तम् आदिदैत्यं हरिणा मृधेहतं निशम्य प्रहर्षवेगोत्कलितानना: सुरस्त्रियः मुहुः प्रसूनवर्षैः ववृषुः ॥३५॥

अनुवाद— त्रैलोक्य मस्तक ज्वर के समान वह आदि दैत्य हिरण्यकशिपु युद्ध में श्रीहरि के द्वारा मारा गया। इस शुभ समाचार को सुनकर देवताओं की स्त्रियों का मुख प्रसन्नता के कारण विकसित हो गया और उन सबों ने बार-बार पुष्पों की वर्षा की ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

लोकत्रयस्य मस्तकज्वरं शिरोव्यथेव दुःसहम् । प्रहर्षस्य वेगेनोत्कलितानि विकसितान्याननानि यासां ताः सुरस्त्रियः पुष्पवर्षैर्नृहरिं ववृषुः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

हिरण्यकशिपु त्रैलोक्य के दुःसह शिरोव्यथा के समान दुखदायी था, उसकी मृत्यु का समाचार सुनकर देवस्त्रियों को अत्यन्त हर्ष हुआ, उस हर्ष के वेग के कारण उन सबों का मुख कमल विकसित हो गया और उन सबों ने बार-बार श्रीनृसिंह भगवान् के ऊपर पुष्पों की वर्षा की ॥३५॥

तदा विमानावलिभिर्नभस्तलं दिदृक्षतां सङ्कुलमास नाकिनाम् ।
सुरानका दुन्दुभयोऽथ जघ्निरे गन्धर्वमुख्या ननृतुर्जगुः स्त्रियः ॥३६॥

अन्वयः— तदा दिदृक्षतां नाकिनाम् विमानावलिभिः नभस्तलं सङ्कुलमास अथ सुरानका दुन्दुभयःजघ्निरे गन्धर्व मुख्याः जगुः स्त्रियः ननृतुः ॥३६॥

अनुवाद— उस समय श्रीभगवान् के दर्शन की इच्छा से आये हुए देवताओं के विमानों से आकाश भर गया । देवताओं के ढोल और नगाड़े बजने लगे, मुख्य गन्धर्वों ने गान किया और अप्सराओं ने नृत्य किया ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

नाकिनां देवानां विमानावलिभिर्नभस्तलं सङ्कीर्णमास । सुराणामानकाः पटहास्तैर्जघ्निरे वादिताः । स्त्रियोऽप्सरसो ननृतुः। गन्धर्वा जगुः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं के विमानों से आकाश भर गया देवताओं ने नगाड़ों को बजाया । अप्सराओं ने नृत्य किया और मुख्य गन्धर्वो ने गान किया ॥३६॥

तत्रोपव्रज्य विबुधा ब्रह्मेन्द्रगिरिशादयः । ऋषयः पितरः सिद्धा विद्याधरमहोरगाः ॥३७॥
मनवः प्रजानां पतयो गन्धर्वाप्सरचारणाः । यक्षाः किंपुरुषास्तात वेतालाः सिद्धकिन्नराः॥३८॥
ते विष्णुपार्षदाः सर्वे सुनन्दकुमुदादयः । मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटा आसीनं तीव्रवेजसम् ॥
ईडिरे नरशार्दूलं नातिदूरचराः पृथक् ॥३९॥

अन्वयः--- हे तात ब्रह्मेन्द्रगिरिशादयः विबुधाः, ऋषयः, पितरः सिद्धाः विद्याधरमहोरगाः, मनवः प्रजानां पतयः गन्धर्वाप्सरचारणाः यक्षाः किम्पुरुषाः वेतालाः सिद्धकिन्नरः सुनन्दकुमुदादयः विष्णुपार्षदाः ते तत्र उपव्रज्य मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटाः नातिदूरचराः पृथक् तीव्रतेजसम् आसीनं नरशार्दूलं ईडिरे ॥३७-३९॥

अनुवाद— हेतात उससमय ब्रह्मा, इन्द्र, शङ्कर आदि देवता ऋषि पितर सिद्ध विद्याधर महानाग, मनु, प्रजापतिगण, गन्धर्व, अप्सराएँ, चारण, यक्ष, किम्पुरुष वेताल, सिद्ध किन्नर और सुनन्द कुमुद आदि श्रीभगवान् के सभी पार्षद उनके पास आकर और सिर पर अञ्जलि बाँधकर सिंहासन पर विराजमान अत्यन्त तेजस्वी नृसिंह भगवान् को थोड़ी दूर से ही अलग-अलग स्तुति किए ॥३७-३९॥

भावार्थ दीपिका

गन्धर्वाप्सरसश्चारणाश्चेत्यर्थः । नरशार्दूलं पुरुषोत्तमम् ॥३७-३९॥

भाव प्रकाशिका

गन्धर्व, अप्सराएँ चारण ये सभी पुरुषोत्तम भगवान् नृसिंह की अलग-अलग स्तुति किए ॥३७-३९॥

ब्रह्मोवाच

नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ।
विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान्गुणैः स्वलीलया संदधतेऽव्ययात्मने ॥४०॥

अन्वयः— अनन्ताय, दुरन्तशक्तये, विचित्रवीर्याय, पवित्रकर्मणे, गुणैः स्वलीलया विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान् संदधते अव्ययात्मने नतोऽस्मि ॥४०॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— अनन्त तथा दुरन्तशक्ति से सम्पन्न अद्भुत पराक्रम वाले, सुनने मात्र से पवित्र बना देने वाले कर्मों को करने वाले, गुणों के द्वारा अपनी लीला से ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार को यथोचित ढंग से करने वाले आप उन सबों से कोई भी सम्बन्ध नहीं रखते हैं, ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मादयो नृसिंहस्य शङ्कयाकुलचेतसः । आरादेवास्तुवन्सप्तदशश्लोकैः पृथक् पृथक् । अनन्तायानन्तं त्वां प्रसादयितुं नतोऽस्मि । अनन्तत्वे हेतुः-दुरन्ताः शक्तयो यस्य । तत्कुतः । विचित्राणि वीर्याणि प्रभावा यस्य । तत्किमर्थम् । पवित्राणि श्रवणमात्रेण शोधकानि कर्माणि यस्य। विचित्रवीर्यत्वमेवाह-विश्वस्येति। संदधते सम्यक्कुर्वते। एवमप्यव्ययात्मनेऽप्रच्युतस्वरूपाय॥४०॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् नृसिंह से भयभीत होने के कारण व्याकुल अन्तःकरण से ब्रह्मा आदि देवता दूर से श्रीभगवान् की सत्रह श्लोकों द्वारा अलग-अलग स्तुति किए । अनन्त स्वरूप आपको प्रसन्न करने के लिए मैं आपके समक्ष विनयावनत हूँ । भगवान् अनन्त इसलिए हैं कि वे दुर्गम शक्ति से सम्पन्न हैं । उनका प्रभाव अद्भुत है । वह भी इसलिए कि वे सुनने मात्र से पवित्र बना देने वाली लीलाओं को करते हैं । वे गुणों के ही द्वारा अपनी लीलामात्र से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि स्थिति और संहारयथोचित रूप से करते हैं यह भी उनका अद्भुत प्रभाव ही है । ऐसा होने पर भी श्रीभगवान् के स्वरूप में कोई भी विकार नहीं आता है ॥४०॥

श्रीरुद्र उवाच

कोपकालो युगान्तस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः । तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥४१॥

अन्वयः— ते कोपकालः युगान्तः अयम् अल्पकः असुरः हतः हे भक्त वत्सल तत्सुतं उपसृतं ते भक्तं पाहि ॥४१॥

श्रीशङ्करजी ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! आपके क्रोध का समय तो कल्प के अन्त में होता है । यदि इस तुच्छ दैत्य को मारने के ही लिए आपने क्रोध किया है तो वह भी मारा जा चुका । उसका पुत्र जो आपका भक्त हैं वह आपके शरण में आया है आप उसकी रक्षा करें ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

रुद्रस्तु तत्कोपकालाभिज्ञो नायं कोपावसर इति तं प्रार्थयते-कोपेति । सहस्रयुगान्तस्तव कोपस्य कालः, कोपायोग्यश्चायमित्याह-अल्पकोऽत्यल्पः । अतः कोपानिवृत्त्या प्रह्लादं मा हिंसीरित्याह-तत्सुतमिति । यद्वा अकालेऽप्ययं कोपोऽस्य भक्तस्य रक्षणार्थमिति चेत्तर्हीदानीं कोपं त्यक्त्वेमं पाहीत्यर्थः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

रुद्र श्रीभगवान् के कोपकाल के ज्ञाता है उन्होंने प्रार्थना की कि यह आपके कोप का अवसर नहीं हैं । आपके कोप का काल एक हजार चतुर्युग के अन्त में होता है । यह दैत्य तो तुच्छ है । यह आपके कोप के योग्य नहीं है । अतएव कोप को नियन्त्रित न करके आप प्रह्लाद को न मारें । अथवा यदि बिना अवसर के आपका कोप इस भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिए यदि है तो फिर क्रोध को त्यागकर इस प्रह्लाद की आप रक्षा करें ॥४१॥

इन्द्र उवाच

प्रत्यानीताः परम भवता त्रायता नः स्वभागा दैत्याक्रान्तं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि ।
कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते मुक्तिस्तेषां न हि बहुमता नारसिंहापरैः किम् ॥४२॥

अन्वयः— नः त्रयता भवता स्वभागा, प्रत्यानीता, दैत्याक्रान्तं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि, नाथ कालग्रस्तं इदम् अहो कियत् हे नारसिंह ते शुश्रुषतां तेषां मुक्तिः नहि बहुमता अपरैः किम् ॥४२॥

इन्द्र ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! आपने हमारी रक्षा की है, हमलोगों की रक्षा करने वाले आपने जो यज्ञभाग को लौटाया है, वह वस्तुतः आपका ही भाग है । अब तक यह दैत्य जिसे आक्रान्त कर रखा यह हमारा हृदय कमल आपका निवास स्थान है, उसे आपने आज विकसित कर दिया है । यह स्वर्ग आदि का जो राज्य है, जिसे आपने हमलोगों को प्रदान किया है, वह कालग्रस्त है । जो आपके भक्त हैं, उनके लिए यह क्या है । आपकी सेवा करने वाले आपके भक्तों को जब मुक्ति भी अधिक अभिमत नहीं होती है तो और वस्तुओं की कौन सी बात है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्रस्तु नास्माकं हविर्भागादिलाभः पुरुषार्थः किंतु त्वत्परिचर्यैव । भवता पुनरनेन संरम्भेण स्वकार्यमेव साधितं तस्य च सिद्धत्वादुपसंहरैनं क्रोधमित्याशयेनाह-हे परम, नोऽस्मांस्त्रायता रक्षता भवता स्वीया एव भागा दैत्यात्प्रत्याहृताः, अन्तर्यामिणस्तवैव यज्ञेषु भोक्तृत्वात् । अस्मदीयं हृदयकमलं त्वद्गृहमेवैतावत्पर्यन्त भयहेतुत्वेनास्मत्स्मृतिपथे नित्यं स्थितेन दैत्येनाक्रान्तं व्याप्तं सत्प्रत्यवोधि भयापाकरणेन विकासं नीतम् । ननु तव त्रैलोक्यैश्वर्यसाधनार्थमयमुद्यम इति चेत्तत्राह-कालग्रस्तमिति । ते त्वाप। हे नारसिंह, नरस्य सिंहस्य चाकाराभ्यामाविर्भूत, अपरैः स्वर्गादिभिः किम् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्र ने कहा कि प्रभो यह हमलोगों को हविष्य भाग का लाभ पुरुषार्थ लाभ नहीं है अपितु यह आपकी परिचर्या ही हमारा पुरुषार्थ है । आपने इस क्रोध के द्वारा अपने ही अर्थ की सिद्धि की है । वह भी सिद्ध हो गया अतएव आप अपने क्रोध का परित्याग कर दें । इन्द्र ने कहा है परम प्रभो ! हमलोगों की रक्षा करने वाले आपने अपने ही भाग को इस दैत्य से लौटा लाया है । आप अन्तर्यामी रूप से सभी यज्ञों के भोक्ता हैं । हमारा हृदय कमल आपका निवास गृह है अब तक भय के कारण हमारे स्मृति पथ में नित्य ही स्थित रहने वाले दैत्य से वह आक्रान्त था उसको आपने विकसित कर दिया है । यदि आप कहें कि तुमको त्रैलोक्य का ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए मैंने यह प्रयास किया है ? तो इसका उत्तर है कि यह त्रैलोक्य का राज्य तो काल का ग्रास है। हे नारसिंह! जो लोग आपकी सेवा करना चाहते है, उनको तो मुक्ति भी बहुमत नहीं होती है, स्वर्गादिकों की कौन सी बात है ।।४२।।

ऋषय ऊचुः

त्वं नरस्तपः परममात्थ यदात्मतेजो येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज ।
तद्विप्रलुप्तममुनाद्य शरण्यपाल रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ।।४३।।

अन्वयः— त्वं नः आत्थ तपः परमम् यदात्मतेजः हे आदिपुरुष येन आत्मगतं इदं ससर्ज, हे शरणपाल ! तत् अमुना विप्रलुप्तं अद्य रक्षागृहीत वपुषा पुनरन्वमंस्थाः ।।४३।।

ऋषियों ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! आपने यह जो कहा था कि तप ही सर्वश्रेष्ठ है तप ही आत्मा का प्रभाव है, हे आदि पुरुष उस तप से ही यह विश्व आपमें लीन हो गया था उसकी पुन सृष्टि आपके ही द्वारा की गयी थी, हे शरणागत जीवों की रक्षा करने वाले भगवन्, इस दैत्य के द्वारा तप विशेष प्रकार से लुप्त हो गया था उसी की रक्षा के लिए आपने इस शरीर को धारण करके उसका पुनः अनुमोदन किया है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

ऋषयस्तु तपःप्रवर्तनेनास्माकं महाननुग्रहः कृत इत्याहुः-त्वं नो दयात्थ परमं ध्यानलक्षणं तपः । परमत्वे हेतुः-आत्मनस्तव तेजः प्रभावरूपम् । तदेवाहुः-येन तपसात्मनि लीनमिदं विश्वं ससर्ज सृष्टवानसि तदमुना दैत्येन विप्रलुप्तं कुण्ठितं सत्। हे शरण्यपाल, अद्य रक्षार्थं गृहीतेनानेन वपुषा पुनरपि तपः कुरुतेत्यनुज्ञातवानसि तस्मै ते नम इत्युत्तरश्लोकचतुर्थपादस्यानुषङ्गः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

ऋषियों ने कहा कि आपने तप का पुनः प्रवर्तन करके हमलोगों पर महान् अनुग्रह किया है । आपने पहले जो कहा था कि ध्यान स्वरूप तप ही सबसे श्रेष्ठ है । इसके सर्वश्रेष्ठ होने का कारण है कि यह आपका प्रभाव स्वरूप है । इसको बतलाते हुए ऋषियों ने कहा कि प्रलय काल के आने पर यह जगत् आप में ही लीन हो

गया उसकी सृष्टि आपने तपस्या के द्वारा की है । वह तप इस समय इस दैत्य के द्वारा अवरुद्ध हो गया था । हे शरणागत जीवों की रक्षा करने वाले प्रभो ! रक्षा करने के लिए आपने इस शरीर को धारण करके आपने रक्षा करने के लिए अनुज्ञा प्रदान कर दी । आपको नमस्कार हैं यह आगे के श्लोक के चतुर्थपाद से अन्वय है ।।४३।।

पितर ऊचु:

श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजैर्दत्तानि तीर्थसमयेऽप्यपिबत्तिलाम्बु ।
तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद्य आर्च्छत्तस्मै नमो नृहरयेऽखिलधर्मगोप्त्रे ।।४४।।

अन्वयः— तनूजैर्दत्तानि श्राद्धानि अधिबुभुजे, तीर्थसमये अपि तिलाम्बु अपिबत्, तस्योदरान्नरवविदीर्णवपाद्या आर्च्छत् तस्मै अखिलधर्मगोप्त्रे नृहरये नमः ।।४४।।

पितरों ने कहा

अनुवाद— हमलोगों के पुत्र जो पिण्डदान करने थे उसको यह दैत्य बलपूर्वक छिनकर खा जाता था तथा पवित्र समय में तीर्थ में जाकर जो तिल जल से सब तर्पण करते थे उस तिल मिश्रित जल को यह पी जाता था आपने अपने नखों से इसके उदर को फाड़कर जैसे हमलोगों को आपने उसे प्रदान कर दिया है, इस तरह सम्पूर्ण धर्म की रक्षा करने वले आप नृसिंह भगवान् को हम नमस्कार करते हैं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

पितरस्तु श्राद्धोद्धरणेन परमोपकारिणं श्रीनृसिंह प्रणमन्ति । श्राद्धानि श्रद्धायुक्तानि पिण्डादीनि नोऽस्मभ्यं पुत्रैर्दत्तानि प्रसभं बलाद्यः स्वयमधिकृत्य बुभुजे । किंच तीर्थस्नानसमये ददत्तिलोदकमप्यपिबत् । तानि च तस्योदराद्य आर्च्छदाहृतवान्। कथंभूतात् । नखैर्विदीर्णा वपा यस्य तस्मात् । वपाविदारणस्य तद्गतपिण्डोद्धरणमेव फलमिति भावः ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

ऋषियें ने श्राद्ध का उद्धार करने के कारण परम उपकारी भगवान् नृसिंह को प्रणाम किया । श्रद्धा पूर्वक श्राद्ध के समय में हमारे पुत्र जो पिण्डादान करते थे उसको यह दैत्य छिनकर खा जाता था । तथा पवित्र समय में तीर्थों में जाकर जो हमारे पुत्र तिल से तर्पण करते थे उस तिल मिश्रित जल भी यह पी लेता था । उन सबों को आपने नख से उसके पेट को फाड़कर मानों हमे लौटा दिया । कैसे पेट से इसका उत्तर है कि नखों से उसकी वपा का विदीण करके उसके पेट से उसको निकाल लिया है आपने । अतएव आपके अवतार का पिण्डोद्धार ही फल हैं ।।४४।।

सिद्धा ऊचु:

यो नो गतिं योगसिद्धामसाधुरहार्षीद्योगतपोबलेन ।
नानादर्पं तं नखैर्निर्ददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह ।।४५।।

अन्वयः— हे नृसिंह यः असाधुः योगतपो बलेन नः योगसिद्धां गतिम् अहार्षीत् नाना दर्पं तं नखैः निर्ददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मः ।।४५।।

सिद्धों ने कहा

अनुवाद— हे नृसिंह ! यह दुष्ट अपने योग और तपस्या के बल से हमलोगों की योग सिद्ध गति को छिन लिया था । आप अपने नखों से इस घमण्डी के पेट को फाड दिए हैं ऐसे आपको हम लोगों का नमस्कार हैं।।४५।।

भावार्थ दीपिका

योगसिद्धां गतिमणिमादिसिद्धिम् । नाना अनेके दर्या यस्य तम् । तस्मैं तुभ्यं तं त्वामुद्दिश्य ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

योग के द्वारा सिद्ध होने वाली अणिमा आदि सिद्धियों को इसने छिन लिया था । अनेक प्रकार के घमण्ड वाले इस घमण्डी के पेट को आपने फाड दिया है, अतएव हम आपको नमस्कार करते हैं ।।४५।।

विद्याधरा ऊचुः

विद्यां पृथग्धारणयाऽनुराद्धां न्यषेधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः ।
स येन संख्ये पशुवद्धतस्तं मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ।।४६।।

अन्वयः— बलवीर्य दृप्तः अज्ञः पृथक् धारणया राद्धां विद्यां न्यषेधत् स येन संख्ये पशुवत् हतः तं मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ।।४६।।

विद्याधरो ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! बल एवं पराक्रम से दृप्त बना हुआ यह मूर्ख अनेक प्रकार की धारणाओं से हमलोगों ने जो विद्या प्राप्त की थी उसको इसने छिन लिया था आपने युद्ध में उसे पशु के समान मार दिया है । ऐसे माया से नृसिंह रूप धारण करने वाले आपको हमलोग प्रणाम करते हैं ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

विद्यामन्तर्धानादिलक्षणाम् । अनुराद्धां संप्राप्ताम् । संख्ये युद्धे ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

विद्या अर्थात् अन्तर्धान आदि होने की विद्या, अनुराद्धाम् अर्थात् प्राप्त की गयी । संख्ये अर्थात् युद्ध में।।४६।।

नागा ऊचुः

येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः । तद्वक्षः पाटनेनासां दत्तानन्द नमोस्तु ते ।।४७।।

अन्वयः— येन पापेन नः रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि तदवक्षः पाटनेन आसां दत्तानन्दं ते नमोऽस्तु ।।४७।।

नागों ने कहा

अनुवाद— जिस पापी ने हमारे रत्नों तथा स्त्री रत्नों का अपहरण कर लिया था, उसके वक्षःस्थल को चीरकर आपने हमारी पत्नियों को आनन्द प्रदान किया है । हे नृसिंह आपको नमस्कार है ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

रत्नानि फणासु स्थितानि तथा स्त्रीरत्नानि चोत्तमाः स्त्रियः । आसां स्त्रीणां दत्त आनन्दो येन तत्संबोधनम् । पाठान्तरेऽस्माकं दत्त आनन्दो येनेति ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

हमारी फणाओं में विद्यमान रत्नों को तथा हमारी उत्तम स्त्रियों को इसने चुरा लिया था । हमारी स्त्रियों को आनन्द देने वाले आपको नमस्कार है । दत्तानन्द यह सम्बुद्धि पद है । पाठभेद में अर्थ होगा कि हमलोगों को आनन्द देने वाले आपको ।।४७।।

मनव ऊचुः

मनवो वयं तव निदेशकारिणो दितिजेन देव परिभूतसेतवः ।
भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो करवाम ते किमनुशाधि किङ्करान् ।।४८।।

अन्वयः— हे देव ! मनवो वयं तव निदेशकारिणः दितिजेन परिभूत सेतवः । प्रभो भवता सः खलः उपसंहृतः ते किं करवाम, किङ्करान् अनुशाधि ।।४८।।

मनुओं ने कहा

अनुवाद— हे देव ! हम मनुगण आपके आज्ञाकारी सेवक हैं । इस दैत्य ने हमारे धर्म की मर्यादा को भङ्ग कर दिया था, प्रभो ! आपने उसका संहार कर दिया है आप हम किङ्करों को आज्ञा दें कि हमलोग आपकी कौन सी सेवा करें ?॥४८॥

भावार्थ दीपिका

नृसिंहेनावलोकिताः सन्तो मूर्ध्नि बद्धाञ्जलयो मनवः प्रोचुः- मनवो वयं धर्मपालकाः । परिभूताः सेतवो वर्णाश्रमधर्ममर्यादा येषां ते । अनुशाध्यनुशिक्षय ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् नृसिंह के द्वारा देखे गये तथा शिर पर अञ्जलि मुद्रा बाँधे हुए मनुओं ने कहा हम मनुगण धर्म का पालन करने वाले हैं । इस दैत्य ने वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा को भङ्ग कर दिया था । **अनुशाधि** अर्थात् बतलायें या आज्ञा करें ॥४८॥

प्रजापतय ऊचुः

प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा न येन प्रजा वै सृजामो निषिद्धाः ।
स एष त्वया भिन्नवक्षा नु शेते जगन्मङ्गलं सत्त्वमूर्तेऽवतारः ॥४९॥

अन्वयः— हे परेश ! ते अभिसृष्टाः वयं प्रजेशाः येन निषिद्धाः वै प्रजाः न सृजामः स एष त्वया भिन्नवक्षा नु शेते हे सत्त्वमूर्ते अवतारः जगन्मङ्गलम् ॥४९॥

प्रजापतियों ने कहा

अनुवाद— हे परमेश्वर ! आपने हमलोगों की सृष्टि प्रजेश रूप से की है किन्तु जिसके द्वारा रोक दिए जाने के कारण हमलोग प्रजाओं की सृष्टि नहीं करते है । आपने इसके वक्षःस्थल को फाड़ दिया और यह सदा के लिए पृथिवी पर सो रहा है । हे सत्त्वमय मूर्ति धारण करने वाले प्रभो ! आपका अवतार जगत् के लिए मङ्गलकारी होए॥४९॥

भावार्थ दीपिका

प्रजापतयोऽपि तदवलोकिताः प्रोचुः- हे परेश, ते त्वया अभिसृष्टा वयं प्रजेशा येन निषिद्धाः सन्तः प्रजा न सृजामः स एष भिन्नं वक्षो यस्य नु निश्चितं शेते मृतः । अतःपरं प्रजाः सृजाम इति हृष्यन्तःप्राहुः-हे सत्त्वमूर्ते, तवायमवतारो जगतो मङ्गलम् ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के द्वारा देखे गये प्रजापतियों ने कहा । हे परेश आपके द्वारा हमलोग प्रजापति रूप से सृष्टि किए गये हैं, जिसके द्वारा निषेध किए जाने के कारण हमलोग प्रजाओं की सृष्टि नहीं करते हैं । वह हिरण्यकशिपु आपके द्वारा इसके वक्षः स्थल के फाड़ दिए जाने के कारण निश्चित रूप से पृथिवी पर सो रहा है । अब हमलोग प्रजाओं की सृष्टि करेंगे इस तरह से प्रसन्न होते हुए प्रजापतियों ने कहा कि हे सत्त्वमय शरीर धारण करने वाले प्रभो ! आपका यह अवतार जगत् के लिए मङ्गलकारी होए ॥४९॥

गन्धर्वा ऊचुः

वयं विभो ते नटनाट्यगायका येनात्मसाद्वीर्यबलौजसा कृताः ।
स एष नीतो भवता दशामिमां किमुत्पथस्थः कुशलाय कल्पते ॥५०॥

अन्वयः— हे विभो वयं ते नटनाट्यगायकाः येन वीर्यबलौजसा आत्मसात् कृताः स एव भवता इमां दशां नीतः उत्पथस्थः कुशलाय कल्पते किम् ?॥५०॥

गन्धर्वों ने कहा

अनुवाद— हमलोग आपका नट, नाट्य गायक हैं । जिस हिरण्यकशिपु ने अपने बल एवं पराक्रम के द्वारा हमलोगों को अपने अधीनकर लिया था उसको आपने मार दिया है । क्या कुमार्गगामी का कभी कल्याण हो सकता है ? कभी नहीं ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

गन्धर्वा अपि तदवलोकिताः प्रोचुः-हे विभो, वयं ते त्वदीया नटा नर्तका नाट्ये नृत्ये गायकाश्च येन स्वाधीनाः कृताः। कथंभूतेन । वीर्यं शौर्यं बलं शक्तिस्ताभ्यामोजः प्रभावो यस्य तेन । स एष भवता इमां दशां मृतिं नीतः । उचितं चैतदित्याहुः-किमिति ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के द्वारा देखे जाने पर गन्धर्वों ने कहा हे विभो ! हमलोग आपके नट, नाट्य तथा नाट्य एवं नृत्य में गान करने वाले हैं, किन्तु इस हिरण्यकशिपु ने हमलोगों को अपने बल एवं पराक्रम से अपने अधीन कर लिया था किन्तु वह आज आपके द्वारा मारा जा चुका है । **किमिति इत्यादि** वाक्यांश के द्वारा उन सबों ने कहा कि ऐसा होना उचित ही है ॥५०॥

चारणा ऊचुः

हरे तवाङ्घ्रिपङ्कजं भवापवर्गमाश्रिताः । यदेष साधुहृच्छयस्त्वयाऽसुरः समापितः ॥५१॥

अन्वयः— हे हरे यदेष साधुहृच्छयः असुरः त्वया समापितः आश्रिता वयं तवाङ्घ्रि पङ्कजम् भवापवर्गम् ॥५१॥

चारणों ने कहा

अनुवाद— हे हरे ! आपने सज्जनों को कष्ट देने वाले इस दुष्ट को मार दिया है । अतएव हम आपके चरण कमलों के शरण में हैं, उन चरण कमलों की शरणागति करने से मुक्ति मिल जाती है ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

भवापवर्गं संसारनिवर्तकम् । आश्रयणे हेतुः-यद्यस्मात्साधूनां हृदि भयजनकत्वेन शेते तिष्ठतीति तथा स एषोऽसुरस्त्वया समापितोऽन्तं नीतः ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

भवापवर्गम् अर्थात् संसार निवर्तक अर्थात् मुक्तिपद् आपके चरण की शरणागति करने का कारण है कि जो पहले सज्जनों को भयभीत करने वाला था उस असुर को आपने मार दिया है ॥५१॥

यक्षा ऊचुः

वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञैस्त इह दितिसुतेन प्रापिता वाहकत्वम् ।
सतु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंश ॥५२॥

अन्वयः— वयम् मनोज्ञैः कर्मभिः ते अनुचर मुख्या त इह दितिसुतेन वाहकत्वं प्रापिताः हे नरहर तत्कृतं जनपरितापं जानता तु ते पञ्चविंश पञ्चताम् उपनीतः ॥५२॥

यक्षों ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! आपने श्रेष्ठ कर्मों के कारण हमलोग आपके मुख्य अनुचर हैं, किन्तु हिरण्यकशिपु ने हमलोगों को अपना पालकी ढोने वाला बना लिया था हे नरहरे ! इसके कारण होने वाले अपने निज जनों के कष्ट को जानने वाले प्रभो आपने इसे मार दिया है ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

मनोज्ञैः कर्मभिस्तवानुचरेषु मुख्यास्ते वयं दितिसुतेन शिबिकावाहकत्वं प्रापिताः । पञ्चतां मृत्युम् । हे पञ्चविंश चतुर्विंशतितत्त्वनियामक ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

अपने मनोहर कर्मों के कारण आपके मुख्य अनुचर हैं । हिरण्यकशिपु ने हमलोगों को अपना पालकी वाहक बना लिया था । हे प्रकृति के नियामक प्रभो उसको आपने मार दिया ॥५२॥

किंपुरुषा ऊचुः

वयं किंपुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः । अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥५३॥

अन्वयः— वयं किम्पुरुषाः त्वं तु महापुरुष ईश्वरः, अयं कुपुरुषो नष्टः साधुभिः यदा धिक्कृतः ॥५३॥

किम्पुरुषों ने कहा

अनुवाद— हमलोग किम्पुरुष हैं और आप तो महापुरुष ईश्वर हैं, यह कुपुरुष तो उसी समय नष्ट हो गया जिस समय साधु पुरुषों ने इसे, धिक्कारा है ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

किंपुरुषास्तु त्वां स्तोतुं के वयं वराका इत्याहुः-वयमिति । वयं किंपुरुषास्तुच्छप्राणिनस्त्वं तु महानद्भुतप्रभावः पुरुषः। नन्वयं महान्दैत्यो हत इति किं न वर्ण्यत इत्याशङ्क्य कियदेतदित्याहुः-अयमिति। यदा साधुभिर्भगवद्भक्तैस्तिरस्कृतस्तदैव नष्टः॥५३॥

भाव प्रकाशिका

किम्पुरुषों ने कहा हमलोगों तो तुच्छ पुरुष है आपकी स्तुति क्या कर सकते हैं । हमलोग तो किम्पुरुष अर्थात् तुच्छ प्राणी हैं और आप तो महान् और अद्भुत प्रभाव सम्पन्न पुरुष हैं । यदि आप कहें कि यह दैत्य मारा गया इस तरह से क्यों नहीं वर्णन करते हो । इस तरह की आशङ्का करके कहते हैं कि यह क्या कहना है ? यह तो कुपुरुष था । यह उसी समय विनष्ट हो गया जब साधु पुरुषों ने इसको धिक्कारा ॥५३॥

वैतालिका ऊचुः

सभासु सत्रेषु तवामलं यशो गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे ।
यस्तां व्यनैषीद्भृशमेष दुर्जनो दिष्ट्या हतस्ते भगवन्यथाऽऽमयः ॥५४॥

अन्वयः— हे भगवन् सभासु सत्रेष तवामलं यशो गीत्वा महतीं सपर्यां लभामहे य एष दुर्जनः तां व्यनैषीत् दिष्ट्या ते आभयः यथा हतः ॥५४॥

वैतालिकों ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! बड़ी-बड़ी सभाओं और ज्ञानसत्रों में आपके निर्गल यश को गाकर हमलोग बहुत अधिक दक्षिणा प्राप्त करते थे, किन्तु इस दुष्ट ने हमलोगों की उस जीविका को ही रोक दिया, दैववशात् आपने इसको अपने महान् रोग कै समान मार दिया है यह हमलोगों के सौभाग्य की बात है ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

सत्रेषु यज्ञेषु । ते त्वया हतः एतद्दिष्ट्या भद्रं कृतम् ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

सत्रेषु अर्थात् यज्ञों में अपने इसको मारकर इसका भी कल्याण ही किया है ॥५४॥

किन्नरा ऊचुः

वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा दितिजेन विष्टिममुनाऽनुकारिताः ।
भवता हरे स वृजिनोऽवसादितो नरसिंह नाथ विभवाय नो भव ॥५५॥

अन्वयः— हे ईश वयं किन्नरगणाः तवानुगाः अमुना दितिजेन विष्टिम् अनुकारिताः । हे हरे भवता स वृजिनः अवसादितः नरसिंहनाथ नः विभवाय भव ॥५५॥

किन्नरो ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! हमलोग किन्नरगण आपके अनुचर हैं । यह दैत्य हमलोगों से बेगार में ही काम लेता था । आज आपने कृपा करके इस पापी को विनष्ट कर दिया । हे नरसिंह ! हे नाथ !! आप इसी तरह हमलोगों का अभ्युदय करते रहें ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

अमुना दितिजेन विष्टिं निर्मूल्यं कर्मानु निरन्तरं कारिताः, अतः परं नो विभवाय समृद्धये भव ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

यह दैत्य हमलोगों से हमेशा बेगार कराता था । अब इसके पश्चात् आप हमलोगों का कल्याण करते रहें॥५५॥

विष्णुपार्षदा ऊचुः

अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म ।
सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्तस्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः ॥५६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते दैत्यराजवधे नृसिंहस्तवो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अन्वयः— हे शरणद हे सर्वलोकशर्म अद्य एतद् हरिनररूपम् अद्भुतं ते दृष्टम् हे ईश सोऽयं ते विधिकरः विप्रशप्तस्य तस्य इदं निधनम् अनुग्रहाय विद्मः ॥५६॥

भगवान् विष्णु के पार्षदों ने कहा

अनुवाद— हे शरणगत वत्सल ! हे सम्पूर्ण लोकों का कल्याण करने वाले प्रभो हमलोगों ने आज आपके इस अद्भुत नरसिंह रूप का दर्शन किया है इससे पहले हमलोगों ने इसे नहीं देखा था । हे प्रभो ! यह वही आपका आज्ञाकारी भृत्य है । ब्राह्मणों के शाप से अभिशप्त इसकी आपके हाथो मृत्यु इस पर कृपा करने के लिए हुई इस तरह का हमलोगों को लगता है ॥५६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवे स्कन्ध के प्रह्लाद चरित के अन्तर्गत दैत्यराज हिरण्यकशिपु के वध के प्रसङ्ग में श्रीनृसिंह स्तुति नामक आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

भावार्थ दीपिका

नोऽस्माकं भक्तानां हे शरणद आश्रयप्रद, सर्वेषां लोकानां शर्म मङ्गलमेतदद्भुतं रूपमद्यैवदृष्टं, नतु पूर्वम्। विधिकर:किङ्करः॥५६॥

इति श्रीमद्भगवते महापुराणे सप्तम स्कन्धे भावप्रकाशिकायां टीकायां अष्टमोऽध्यायः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

आप हमलोगों की रक्षा करने वाले हैं सम्पूर्ण लोकों के लिए मङ्गलमय अपके इस अद्भुत नृसिंह रूप को हमलोगों ने आज ही देखा हैं, इससे पहले नहीं । यह अपका अनुचर था ॥५६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महपुराण के सातवे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीक के आठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥८॥

नवाँ अध्याय

प्रह्लादजी द्वारा नृसिंह भगवान् की स्तुति

नारद उवाच

एवं सुरादयः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरःसराः । नोपैतुमशकन्मन्युसंरम्भं सुदुरासदम् ॥१॥

अन्वयः— एवं ब्रह्म रुद्रपुरः सराः सर्वे सुरादयः सुदुरासदम् मन्युसंरम्भम् न उपैतुम् अशकन् ॥१॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद-- इस प्रकार से ब्रह्मा रुद्र आदि सभी देवता आदि भगवान् नृसिंह के अत्यन्त भयङ्कर क्रोधावेश को न तो शान्त कर सके और न उनके पास जा सके ॥१॥

भावार्थ दीपिका

नवमे ब्रह्मणा भीत्या चोदितोऽसुरबालकः । कोपं प्रशमयन्नस्तौन्नृसिंहमतिभीषणम् । 'उग्रोऽप्यनुग्र एवायं स्वभक्तानां नृकेसरी । केसरीव स्वपोतानामन्येषामुग्रविग्रहः ॥' इत्याद्यागमोक्तं भक्तानुकम्पितामाह-एवमिति सप्तभिः । एवं दूरत एवं स्थित्वा स्तुवन्तः मन्युना संरम्भ अवेशो यस्य तम् । उपसमीपे गन्तुं नाशक्नुवन् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

नवें अध्याय में भयभीत ब्रह्माजी के द्वारा प्रेरित किये जाने पर प्रह्लादजी ने श्रीभगवान् के क्रोध को शान्त करके उनकी स्तुति की इस बात का वर्णन है । भगवन् नृसिंह उग्र होकर भी अपने भक्तों के लिए सौम्य ही बने रहते हैं । उसी तरह जिस तरह सिंह अपने बच्चों के लिए सौम्य होता है और दूसरों के लिए उग्र होता है । इत्यादि आगमोक्त भक्तों पर श्रीभगवान् के द्वारा की जाने वाली कृपा का वर्णन एवम् इत्यादि सात श्लोको द्वारा किया गया है । देवताओं आदि ने दूर से ही भगवान् की स्तुति की । उनके क्रोधावेश के कारण कोई भी श्रीभगवान् के सन्निकट नहीं जा सका ॥१॥

साक्षाच्छ्रीः प्रेषिता देवैर्दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् । अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात्सा नोपेयाय शङ्किता ॥२॥

अन्वयः— देवैः प्रेपिता साक्षात् श्रीः तत् महदद्भुतं दृष्ट्वा सा अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात् शङ्किता न उपेयाय ॥२॥

अनुवाद— देवताओं द्वारा भेजी गयी साक्षत् लक्ष्मीजी भी उस अद्भुत क्रोध को देखकर पहले कभी नही देखे हुए के कारण डर गयीं और श्रीभगवान् के पास नही गयी ॥२॥

भावार्थ दीपिका

श्रीर्लक्ष्मीर्देवैः प्रेपितापि महदद्भुतं तद्रूपं दृष्ट्वा शङ्किता सती तं नोपजगाम । अद्भुतत्वे हेतुः-अदृष्टेति ॥२॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं द्वारा भेजी गयी लक्ष्मीजी श्रीभगवान् के उस अद्भुत रूप को देखकर डर गयीं और नहीं गयीं। क्योंकि उन्होंने श्रीभगवान् के इस रूप को पहले कभी नहीं देखा था ॥२॥

प्रह्लादं प्रेषयामास ब्रह्मावस्थितमन्तिके । तात प्रशमयोपेहि स्वपित्रे कुपितं प्रभुम् ॥३॥

अन्वयः— अन्तिके अवस्थितम् प्रह्लादम् ब्रह्मा प्रेषयामास । तात उपेहि पित्रे कुपितं प्रभुम् प्रशमय ॥३॥

अनुवाद— अपने सन्निकट में विद्यमान प्रह्लादजी को ब्रह्माजी ने यह कहकर भेजा कि वत्स ! तुम्हारे पिता पर क्रुद्ध हुए श्रीभगवान् के पास तुम जाओ और उनको शान्त करो ॥३॥

भावार्थ दीपिका

उपेह्युपगच्छ ॥३॥

भाव प्रकाशिका

पास जाओ ॥३॥

तथेति शनकै राजन्महाभागवतोऽर्भकः । उपेत्य भुवि कायेन ननाम विधृताञ्जलिः ॥४॥

अन्वयः— राजन् तथेति शनकैःमहाभागवतः अर्भकः उपेत्य विधृताञ्जलिः भुविकायेन ननाम ॥४॥

अनुवाद— हे राजन् ! युधिष्ठिर ! जो आज्ञा यह धीरे से कहकर भगवान् का परम प्रेमी बालक प्रह्लाद भगवान् नृसिंह के सन्निकट जाकर हाथ जोड़े हुए श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किए ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

स्वपादमूले पतितं तमर्भकं विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः ।
उत्थाप्य तच्छीर्ष्ण्यदधात्कराम्बुजं कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयम् ॥५॥

अन्वयः— स्वपादमूले पतितं तम् अर्भकं विलोक्य कृपया परिप्लुतः देवः उत्थाप्य तत् शीर्ष्णि कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयम् कराम्बुजं अदधात् ॥५॥

अनुवाद— अपने चरणों के पास पड़े हुए उस बालक को देखकर श्रीभगवान् का हृदय दया से भर गया, उन्होंने प्रह्लाद को उठाकर उनके सिर पर अपने उस कर कमल को रख दिया जो कालसर्प से भयभीत लोगों को अभय प्रदान करने वाला है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

काल एवाहिस्तस्माद्वित्रस्ता धीर्येषां तेषां कृतमभयं येन तत्कराम्वुजम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

काल रूपी सर्प से डरे हुए लोगों को निर्भय बना देने वाले अपने कर कमल को प्रह्लाद के सिर पर रख दिया॥५॥

स तत्करस्पर्शधुताखिलाशुभः सपद्यभिव्यक्तपरात्मदर्शनः ।
तत्पादपद्मं हृदि निर्वृतो दधौ हृष्यत्तनुः क्लिन्नहृदश्रुलोचनः ॥६॥

अन्वयः— तत् करस्पर्श धुताखिलाशुभः सः सपद्यभिव्यक्त परात्मदर्शनः निर्वृतः तत्पादपद्मं हृदिदधौ हृष्यत् तनुः क्लिन्नहृदश्रुलोचनः ॥६॥

अनुवाद— श्रीभगवान के कर कमलों का स्पर्श होते ही प्रह्लादजी के समस्त अशुभ संस्कार विनष्ट हो गये

उनको तत्काल परमात्मतत्त्व का दर्शन हो गया। वे आनन्द मग्न होकर श्रीभगवान् [illegible] हृदय कमल में धारण कर लिए। उस समय उनका सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया हृदय में प्रेम [illegible] होने लगी और आँखो से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगा ॥६॥

भावार्थ दीपिका

तस्य श्रीनृसिंहस्य करस्पर्शेन धुतं निरस्तमखिलमशुभं यस्य। सपदि तत्क्षणमेवाभिव्यक्तमपरोक्षीभूतं परात्मदर्शनं ब्रह्मज्ञानं यस्य। निर्वृतः सन् हदि दधौ। हृष्यन्ती रोमाञ्चिता तनुर्यस्य। क्लिन्नं प्रेमार्द्रं हृत् यस्य अश्रूणि लोचनयोर्यस्य। परमपुरुषार्थतया दधौ न साधनत्वेनेत्यर्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् नृसिंह के कर कमलों का स्पर्श होते ही प्रह्लादजी के समस्त अशुभ संस्कार विनष्ट हो गये उनको शीघ्र ही ब्रह्मज्ञान का साक्षात्कार हो गया। वे आनन्दमग्न हो गये और अपने हृदय कमल में श्रीभगवान् के चरण कमलों को धारण किए। उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया। उनका हृदय प्रेम से भर गया तथा नेत्र आनन्दाश्रु से भर गये। उन्होंने श्रीभगवान् के चरणों को परम पुरुषार्थ रूप से धारण किया साधन रूप से नही ॥६॥

अस्तौषीद्धरिमेकाग्रमनसा सुसमाहितः। प्रेमागद्गदया वाचा तन्न्यस्तहृदयेक्षणः ॥७॥

अन्वयः— तन्न्यस्य हृदयेक्षणः सुसमाहितः प्रेमगद्गदया वाचा एकाग्रमनसा हरिम्अस्तौषीत् ॥७॥

अनुवाद— प्रह्लादजी प्रेमपूर्ण हृदय और निर्निमेष नेत्रों से श्रीभगवान् को देख रहे थे भाव समाधि से स्वयं एकाग्र हुए मन के द्वारा उन्होंने भगवान् के गुणों का चिन्तन करते हुए प्रेम गदगद वाणी से स्तुति की ॥७॥

भावार्थ दीपिका

सुसमाधिमेवाह— तस्मिन्नेव न्यस्त हृदयमीक्षणं च येनेति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

प्रह्लादजी अपने हृदय और नेत्र दोनों को श्रीभगवान् में लगा दिऐ थे ॥७॥

प्रह्लाद उवाच

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः।
नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥८॥

अन्वयः— ब्रह्मादय सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः सत्त्वैकतानमतयः वचसां प्रवाहैः पुरुगुणैः अधुनापिन पिप्रुः स हरिः उग्रजातेः मे तोष्टुमर्हति किम् ॥८॥

प्रह्लादजी ने कहा

अनुवाद— ब्रह्मा आदि देवगण मुनिगण तथा सिद्धगण ये इन सबों की बुद्धि सत्त्वगुण प्रधान होती है, वे अपनी धारा प्रवाह स्तुतियों से तथा अपने विविध गुणों के द्वारा जिनको आजतक प्रसन्न नहीं कर सके, वे श्रीहरि उग्रअसुर जाति में उत्पन्न मुझसे प्रसन्न हो सकते हैं क्या ?॥८॥

भावार्थ दीपिका

'स्वस्मिन्निव समस्तेषु तत्कृपामृतदृष्टये। प्रह्लादः स्तौति सत्पद्यैर्द्विचत्वारिंशता हरिम्।' इति। तत्र तावदात्मनो भगवत्स्तुतावनधिकारमिवाशङ्क्याधिकारं संभावयन्नाह-ब्रह्मादय इति पञ्चभिः। मुनयो मननशीलाः। सिद्धा ज्ञानिनोऽपि कथंभूताः। सत्त्व एवैकस्मिंस्तानो विस्तारो यस्याः सा मतिर्येषां तथाविधा अपि वचसां प्रवाहैरपि तथा बहुभिर्वक्ष्यमाणैर्गुणैरपि यमाराधयितुं न पिप्रुर्न पूर्णाः, न शक्ता इत्यर्थः। स हरिर्मे मम कथं तोषं प्राप्तुमर्हति। तत्र हेतुः-उग्रजातेः उग्रा घोरा आसुरी जातिर्यस्य॥८॥

भाव प्रकाशिका

अपने ही समान कृपारूपी अमृत की दृष्टि के लिए प्रह्लादजी श्रीहरि की बयालिस श्लोकों में स्तुति करते हैं। सर्वप्रथम श्रीहरि की स्तुति करने मे अपने अनधिकार के ही समान अधिकार की सभावना करते हुए ब्रह्मादय: पाञ्च श्लोकों द्वारा कहते हैं। मननशील मुनिगण, ज्ञानी सिद्धगण इन सबों की बुद्धि सात्त्विक होती है, ऐसा होकर भी वे अपनी स्तुति रूपी धारा प्रवाह वाणी के द्वारा भी तथा जिनका वर्णन किया जाता है उन अनेक गुणों के द्वारा जिन श्रीभगवान् को प्रसन्न करने मे समर्थ नहीं हो सके वे श्रीहरि मुझसे कैसे प्रसन्न हो सकते हैं क्योंकि मेरी तो उग्र आसुरी जाति है ॥८॥

मन्ये धनाभिजनरूपतप: श्रुतौजस्तेज: प्रभावबलपौरुषबुद्धियोगा: ।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय ॥९॥

अन्वय:— मन्ये धनाभिजनरूपतप: श्रुतौज: तेज: प्रभाव बल पौरुष बुद्धियोगा: हि परस्य पुंस: आराधनाय न भवन्ति भगवान् गजयूथपाय भक्त्या तुतोष ॥९॥

अनुवाद— मेरा मानना है कि धन, कुलीनता, रूप, तपस्या, विद्या, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, वुद्धि तथा योग ये सभी गुण परम पुरुष श्रीभगवान् को सन्तुष्ट करने में समर्थ नहीं है। भगवान् गजेन्द्र की केवल भक्ति से ही प्रसन्न हो गये ॥९॥

भावार्थ दीपिका

एवं हरितोषणे स्वस्यायोग्यतामाशङ्क्य योग्यतां संभावयति-मन्य इति द्वाभ्याम्। अभिजन: सत्कुले जन्म। रूपं सौन्दर्यम्। श्रुतं पाण्डित्यम्। ओज इन्द्रियनैपुणम्। तेज: कान्ति:। प्रभाव: प्रताप:। पौरुषमुद्यम:। बुद्धि: प्रज्ञा। योगोऽष्टाङ्ग:। एते धनादयो द्वादशापि गुणा: परस्य पुंस आराधनाय न भवन्ति। हि यत: केवलया भक्त्यैव गजेन्द्राय तुष्टोऽभवत् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीहरि को प्रसन्न करने में अपनी अयोग्यता की शङ्का करने, मन्ये इत्यादि दो श्लोकों से अपनी योग्यता की संभावना करते हैं। अभिजन अर्थात् अच्छे वंश में जन्म, सौन्दर्य, श्रुत अर्थात् ज्ञान, कान्ति, प्रताप, पौरुष अर्थात् प्रयास, वुद्धि, अष्टाङ्गयोग ये बारहो गुण मिलकर श्रीभगवान् को प्रसन्न करने में समर्थ नहीं है, क्योंकि श्रीभगवान् गजेन्द्र पर केवल भक्ति से ही प्रसन्न हो गये ॥९॥

विप्राद्द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभपादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणं पुनाति स कुलं नतु भूरिमान: ॥१०॥

अन्वय:— अरविन्दनाभपादारविन्दविमुखात् द्विपड्गुण युतात् विप्रात् तदर्पित मनोवचनेहितार्थ श्वपचं वरिष्ठं मन्ये यत: स: प्राणं कुलं च पुनाति भूरिमान: विप्रस्तु न ॥१०॥

अनुवाद— पद्मनाभ भगवान् के चरणारविन्द से विमुख रहने वाले तथा उपर्युक्त बारह गुणों से युक्त ब्राह्मण से उस चाण्डाल को मैं श्रेष्ठ मानता हूँ जो अपने मन, वचन, कर्म, धन और प्राण को श्रीभगवान् के चरणों में समर्पित किए हुए हैं क्योंकि चाण्डाल तो अपने वंश को भी पवित्र बना देता है किन्तु बडप्पन के अभिमान से युक्त वह ब्राह्मण अपने को भी पवित्र नहीं कर पाता है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

एवं भक्त्यैव केवलया हरेस्तोष: संभवतीत्युक्तमिदानीं भक्तिं बिना नान्यत्किंचित्तत्तोषहेतुरित्याह-विप्रादिति। पूर्वोक्ता धनादयो द्विषट् द्वादश गुणास्तैर्युक्ताद्विप्रादपि श्वपचं वरिष्ठं मन्ये। यद्वा सनत्सुजातोक्ता द्वादश धर्मादयो गुणा द्रष्टव्या:। तदुक्तम्-

'धर्मश्च सत्यं च दमस्तपश्च अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षानसूया । यज्ञश्च दानं च धृतिः श्रुतं च व्रतानि वै द्वादश ब्राह्मणस्य ।' इति । यद्वा 'शमो दमस्तपः शौचं क्षान्त्यार्जवविरक्तताः । ज्ञानविज्ञानसंतोषाः सत्यास्तिक्यं द्विषड्गुणाः ।' इति । कथंभूताद्विप्रात् । अरविन्दनाभस्य पादारविन्दाद्विमुखात् । कथंभूतं श्वपचम् । तस्मिन्नरविन्दनाभेऽर्पिता मनआदयो येन तम् । ईहितं कर्म । वरिष्ठत्वे हेतुः- स एवंभूतः श्वपचः सर्वं कुलं पुनाति । भूरिर्मानो गर्वो यस्य स तु विप्र आत्मानमपि न पुनाति । कुतः कुलम् । यतो भक्तिहीनस्यैते गुणा गर्वायैव भवन्ति न तु शुद्धये । अतो हीन इति भावः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से कहा जा चुका है कि केवल भक्ति से ही श्रीहरि को सन्तोष होता है, अब इस **विप्रात० इत्यादि** श्लोक से यह कहा जा रहा है कि भक्ति को छोड़कर श्रीभगवान् की प्रसन्नता का दूसरा कोई भी साधन नही है। पूर्वोक्त धन इत्यादि बारह गुणों से युक्त भगवद् भक्ति **पराङ्मुख** ब्राह्मण से चाण्डाल को मैं श्रेष्ठ मानता हूँ । अथवा सनत् सुजात के द्वारा उक्त बारह गुणों को यहाँ मानना चाहिए । कहा भी गया है **धर्मश्च सत्यं च० इत्यदि** अर्थात् धर्म, सत्य, दम, तप, मात्सर्यराहित्य, लज्जा, तितिक्षा अनसूया यज्ञ, दान, धैर्य, ज्ञान तथा व्रत ये बारह गुण ब्राह्मण के हैं । अथवा शम, दम, तप, शौच, क्षान्ति (क्षमा) आर्जव, विरक्तता, ज्ञान, विज्ञान, संतोष सत्य एवं आस्तिक्य ये बारह गुण हैं । प्रश्न होता है कि कैसे ब्राह्मण से तो उसका उत्तर है कि पद्मनाभ भगवान् के चरणारविन्द से विमुख ब्राह्मण से । कैसा चाण्डाल श्रेष्ठ है तो इसका उत्तर है कि जिसने श्रीभगवान् को अपने मन आदि को समर्पित कर दिया है । ईहित अर्थात् कर्म । उस चण्डाल के वरिष्ठ होने का कारण है कि इस प्रकार का चाण्डाल अपने साथ-साथ अपने सम्पूर्ण कुल को पवित्र बना देता है । और भक्तिहीन अत्यन्त अभिमानी ब्राह्मण अपने को भी पवित्र नहीं बना पाता है ।।१०।।

नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते ।
यद्यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुख श्रीः ।।११।।

अन्वयः— निजलाभपूर्णः अयं प्रभुः अविदुषः जनात् आत्मनः मानं नैव वृणीते, अपितु करुणः वृणीते, जनः भगवते यत् यत्मानं भमवते विदधीत तच्च आत्मने यथा प्रतिमुखस्य मुखश्रीः ।।११।।

अनुवाद— श्रीहरि तो अपने स्वरूप साक्षात्कार से ही परिपूर्ण है । उनको अपने लिए क्षुद्र पुरुषों से पूजा ग्रहण करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है, वे तो करुणावशात् अपने भक्तों के हित के लिए उन सबों से की हुई पूजा को स्वीकार कर लेते हैं । यह उसी तरह से होता है जिस तरह अपने मुख का सौन्दर्य दर्पण में दीखने वाले का प्रतिविम्ब दर्पण को भी सुन्दर बना देता है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि किं धनाद्यर्पणेन संमानं प्राकृत इव भगवानपेक्षते नेत्याह-नैवेति । अयं प्रभुरीश्वरोऽविदुषोऽल्पकाज्जनान्मानं पूजामात्मनोऽर्थे न वृणीते नेच्छति । यतो निजलाभेनैव पूर्णः । तर्हि पूजां नेच्छत्येव तत्राह-करुणः कृपालुरतो वृणीते च । तत्र हेतुः-यद्यदिति । यं यं मानम् । यद्वा यद्यस्माद्येन धनादिना भगवते मानं विदधीत तदेवात्मने भवति नान्यत् । यथा मुखे कृतैव तिलकादिश्रीः शोभा प्रतिबिम्बस्य भवति नतु साक्षात्तस्यैव कर्तुं शक्यते तद्वत् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि क्या प्रकृत लोगों के समान धन आदि के समर्पण के द्वारा श्रीभगवान् भी अपने सम्मान की अपेक्षा करते हैं ? तो इसका उत्तर है कि नहीं । इसी बात को **नैवात्मन० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। श्रीभगवान् अज्ञानी पुरुषों से पूजा अपने लिए नहीं चाहते हैं, क्योंकि वे तो आत्मसाक्षात्कार से ही पूर्ण हैं तो फिर वे पूजा नहीं चाहते हैं क्या ? तो इस पर प्रह्लादजी कहते हैं वे कृपालु है, इसीलिए पूजा स्वीकार करते हैं उसका कारण है कि

पुरुष जिस धन आदि से श्रीभगवान् की पूजा करता है वह उसके ही लिए होता है, दूसरे के लिए नहीं जैसे मुख पर की हुई तिलक आदि की शोभा प्रतिविम्ब की होती है साक्षात करने वाली की नहीं ॥११॥

तस्मादहं विगतविक्लव ईश्वरस्य सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम् ।
नीचोऽजया गुणविसर्गमनुप्रविष्टः पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥१२॥

अन्वयः— तस्मात् सर्वात्मना नीचोऽपि अहं विगत विक्लवः यथामनीषम् ईश्वरस्य महि गृणामि येन हि वर्णितेन अजया गुणविसर्गम् अनुप्रविष्टः पुमान् पूयेत् ॥१२॥

अनुवाद— अतएव सर्वथा अयोग्य होने पर भी मैं बिना किसी शङ्का के अपनी बुद्धि के अनुसार श्रीभगवान् की महिमा का वर्णन करता हूँ । जिसका वर्णन करने से ही अविद्या वशात् संसार चक्र में पड़ा हुआ भी मनुष्य पवित्र हो जाता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

यस्मादेवं भगवान्भक्त्यैव तुष्यति तस्मादहं नीचोऽपि विगतविक्लवो गतशङ्कः सन्नीश्वरस्य महि महिमानं सर्वप्रयत्नेन स्वमनीषानुसारेणानुवर्णयामि । अजानतोऽपि स्तुतिकरणे हेतुमाह-येनैव मांहमानुवर्णितेनाविद्यया संसारमनुप्रविष्टः पुमान् पूयेत शुध्येत तन्महि अन्यस्य तथा शोधकत्वाभावादित्यर्थः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

चूंकि श्रीभगवान् भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं अतएव हर प्रकार से अयोग्य होने पर भी बिना किसी शङ्का के श्रीभगवान् की महिमा का वर्णन करता हूँ । उस महिमा का वर्णन करने से ही अविद्या के द्वारा संसार चक्र में पड़ा हुआ भी पुरुष पवित्र है । इसके अतिरिक्त किसी दूसरे साधन से पुरुष वैसा पवित्र नहीं हो सकता है ॥१२॥

सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः ।
क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य विक्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः ॥१३॥

अन्वयः— हे ईश ! अमी सर्वे हि ब्रह्मादयः तव सत्त्वधाम्नः विधिकराः वयम् इव न च उद्विजन्तः । अस्य क्षेमाय भूतये उत आत्मसुखाय भगवतो रुचिरावतारैः विक्रीडितम् ॥१३॥

अनुवाद— हे प्रभो ! ये ब्रह्मा आदि सभी देवगण सत्त्वगुण के एकमात्र आश्रय आपकी आज्ञा का पालन करने वाले हैं, ये हमलोगों के समान आप से द्वेष नहीं करते हैं । हे प्रभो ! आप अपने मनोहर अवतारों के द्वारा इस जगत् के अभ्युदय और कल्याण के लिए तथा उसे आत्मानन्द की प्राप्ति करने के लिए अनेक प्रकार की लीलाएँ करते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

तदेवमात्मनः स्तुतावनधिकारं परिहृत्येदानीं तं स्तुवन्कोपोपसंहारं प्रार्थयते- सर्वे हीति द्वाभ्याम् । भो ईश, अभी उद्विजन्तो बिभ्यतः सर्वे ब्रह्मादयः सत्त्वमूर्तेस्तव विधिकरास्त्वन्नियोगकर्तारो भक्ता एव नान्ये । नच वयमसुरा इव वैरभावेनैते भक्ताः किंतु श्रद्धयैव । तव रुचिरैरवतारैर्विविधं क्रीडनमस्य विश्वस्य श्रेयादिप्रयोजनाय नतु भयोत्पादनाय ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह अपना स्तुति में अधिकार नहीं है इस बात को छोड़कर श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए प्रह्लादजी प्रार्थना करते हैं कि वे क्रोध का परित्याग कर दें । इस बात की प्रार्थना वे **सर्वे हि० इत्यादि** श्लोकों से करते हैं । भगवन् ब्रह्मा इत्यादि सभी देवता डरे हुए और आपके किङ्कर हैं । आप तो सत्त्वगुण के मूर्त रूप हैं । हम असुरों के समान इन लोगों में वैरभाव के कारण आपके भक्त नहीं हैं अपितु श्रद्धा के कारण ये आपके भक्त हैं।

आपके मनोहर अवतारों से इस तथा अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं से इस विश्व का कल्याण होता है । संसार में भय उत्पन्न करने के लिए आप क्रीडा नहीं करते हैं ॥१३॥

तद्यच्छ मन्युमसुरश्च हतस्त्वयाद्य मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या ।
लोकाश्च निर्वृतिमिताः प्रतियन्ति सर्वे रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरन्ति ॥१४॥

अन्वयः— तत् मन्यु यक्ष त्वया अद्य असुरः च हतः, वृश्चिकसर्पहत्या साधुरपि मोदते, सर्वे लोकाः च निर्वृतिमिताः हे नृसिंह सर्वे रूपं प्रतियन्ति विभयाय जनाः स्मरन्ति ॥१४॥

अनुवाद— प्रभो अब आप अपना क्रोध उपसंहत करें जिस असुर को मारने के लिए क्रोध किए थे वह असुर मारा जा चुका है । वृश्चिक और सर्प की मृत्यु से सज्जन भी सुखी ही होते हैं । इस दैत्य के मरने से लोग सुखी हो गये हैं । अब ये लोग आपके सौम्य रूप को देखना चाहते हैं । हे नृसिंह लोग भय से मुक्ति पाने के लिए आपके इस रूप का स्मरण करेंगे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

ततस्मादेषां भयपरिहाराय मन्युं यच्छोपसंहर । यदर्थमयं मन्युः स चासुरः साधूनां संतोपार्थमद्य हतः । अतःपरं क्रोधेन कार्याभावात्तं नियच्छ । नन्वन्येषां वधेन साधुः किं मोदते तत्राह-वृश्चिकादेः परोपद्रवकारिणोऽन्यतो जातया हत्या वधेन तस्यैव तद्भद्रं जातमिति साधुरपि मोदतैव । तर्हि बहूनां सुखावहत्वादमुं क्रोधं न त्यजामीति चेत्तत्राह-लोकाश्च निर्वृत्तिमिताः प्राप्ताः सन्तः प्रतियन्ति क्रोधोपसंहारं प्रतीक्षन्ते तर्हि जनानां पुनर्भयाभावाय मन्युं धारयामीति चेत्तत्राह-रूपमिति । विभयाय भयनिवृत्त्यै। एतद्रूपस्मरणादेव भयनिवृत्तेर्न मन्यु धारणेन कृत्यमस्तीत्यर्थः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अतएव इन सबों के भय को दूर करने के लिए आप क्रोध को नियंत्रित करें । आपने यह क्रोध जिस कार्य के लिए किया था वह असुर तो आज आपके द्वारा मारा जा चुका है । इससे सज्जनों को सन्तोष मिला है । अब क्रोध की कोई आवश्यकता नहीं है अतएव इसको आप त्याग दें । प्रश्न होता है कि दूसरों के वध से सज्जन क्यों प्रसन्न होंगे ? तो इस पर कहते है । दूसरों के प्रति उपद्रव करने वाले वृश्चिक और सर्प के मरने से साधु जन इसलिए प्रसन्न होते हैं कि उन सबों के वध से ही उन सबों का कल्याण होता है । यदि आप कहें कि बहुत लोगों को सुखप्रद होने के लिए क्रोध को नहीं त्यागना चाहिए तो ऐसी बात नहीं है । सभी लोग भी आनन्दित हो गये हैं अब वे लोग आपके सौम्य रूपी की प्रतीक्षा कर रहे हैं । यदि आप कहें कि लोगों के पुनः भय दूर करने के लिए क्रोध को मैंने धारण किया है, तो ऐसी बात भी नहीं है आपके इसी रूप का स्मरण करने से लोगों का भय दूर हो जायेगा ॥१४॥

नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्यजिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात् ।
आन्त्रस्रजः क्षतजकेसरशङ्कुकर्णान्निर्ह्लादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥१५॥

अन्वयः— हे अजित ते अतिभयानकस्यजिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात् आन्त्रसजः क्षतजकेसरशङ्कुकर्णात् निर्हादभीतदिगिभात्, अरिभित नखाग्रात् अहं न विभेमि ॥१५॥

अनुवाद— हे अजित आपके अत्यन्त भयानक मुख, लपलपाती जीभ, सूर्य के समान चमकते नेत्र, चढ़ी हुई भृकुटी, अत्यन्त तीक्ष्ण दाँत, आँत की माला, खून से भींगे गरदन के बाल, वर्छे के समान खड़े कान, दिग्गजों को भी भयभीत वना देने वाली दहाड़ और शत्रु को चीर डालने वाले नख इन सबों से मुझको भय नहीं लगता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

त्वं चेद्बिभेषि तर्हि त्यजामीति चेत्तत्राह-नाहमिति । भो अजित, तेऽस्माद्रूपादहं न विभेमि । कथंभूतात् । आस्यं च जिह्वा चार्कसदृशनेत्राणि च भ्रुकुटीनां रभस आटोपश्च उग्रा दंष्ट्राश्च एतान्यतिभयानकानि यस्मिंस्तस्मात् । आन्त्रमय्यः स्रजो यस्मिंस्तदान्त्रस्रक् तस्मात् । क्षतजाक्ताः केसरा यस्मिन्, शङ्कुवदुन्नतौ स्तब्धौ कर्णौ यस्मिन्, तच्च तच्च तस्मात् । निर्ह्रादेन भीता दिगिभा यस्मात्। अरीन् भिन्दन्तीत्यरिभिन्दितानि नखाग्राणि यस्मिन् । एवंभूतादपि ते रूपादहं न विभेमि ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि यदि तुम डरते हो तो मैं क्रोध त्याग देता हूँ, इस पर प्रह्लादजी ने कहा **नाहम्० इत्यादि** हे अजित् ! आपके इस रूप से मैं नहीं डरता हूँ । कैसे रूप ? तो इसका उत्तर है मुख जीभ सूर्य के समान नेत्र, चढ़ी हुई भ्रुकुटी, भयङ्कर दाँत ये सब अत्यन्त भयानक हैं । आँत की माला वाले रूप से आपने उस असुर के आँत की माला धारण कर ली हैं । खून से सने गरदन की बालों, बर्छे के समान खड़े कानों दिग्गजों को भयभीत करने वाले सिंहनाद तथा शत्रुओं को चीर डालने वाले नखाग्र वाले आपके रूप से मुझे भय नहीं लगता है ।।१५।।

त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्रसंसारचक्रकदनाद्ग्रसतां प्रणीतः ।
बद्धस्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ।।१६।।

अन्वयः— हे कृपणवत्सल अहं दुःसहोग्रसंसारचक्रकदनात् त्रस्तः अस्मि स्वकर्मभिः बद्धः ग्रसतां प्रणीतः हे उशत्तम ! अपवर्गशरणं तेङ्घ्रिमूलं कदा नु ह्वयसे ।।१६।।

अनुवाद— हे दीन बन्धो ! मैं केवल इस असह्य एवं उग्र संसार चक्र में पिसने से भयभीत हूँ मैं अपने कर्मपाशों में बँधकर इन भयङ्कर जंतुओं के बीच में डाल दिया गया हूँ । हे स्वामिन् ! प्रसन्न होकर आप कब अपने उन चरण कमलों में बुलायेगें जो सभी जीवों के एक मात्र शरण और मोक्ष स्वरूप हैं ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

महद्भयं त्वन्यदस्तीत्याह-त्रस्तोऽस्मीति । दुःसहं यदुग्रं संसारचक्रे कदनं दुःखं तस्मादहं त्रस्तोऽस्मि । तत्र च ग्रसतां हिंस्राणां मध्ये स्वकर्मभिर्वद्धः सन्प्रणीतो निक्षिप्तोऽस्मि । हे कृपणवत्सल, हे उशत्तम, कदा नु त्वं प्रीतः सन्नपवर्गभूतं शरणं तवाङ्घ्रिकमलं प्रति ह्वयसे ममाह्वयसि ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

महान् भय तो दूसरा है इस बात को प्रह्लादजी ने **त्रस्तो० इत्यादि** श्लोक से कहा है । यह संसार चक्र जो दुःसह और उग्र हैं इसमें होने वाले दुःख से मैं भयभीत हूँ । अपने कर्मो से बँधकर इन हिंस्र जन्तुओं के बीच मैं डाल दिया गया हूँ । हे दीनबन्धों, हे कमनीयतम ! आप कब प्रसन्न होकर मोक्ष रूप तथा रक्षक अपने चरण कमलों में मुझे कब बुलायेंगे ?।।१६।।

यस्मात्प्रियाप्रियवियोगसंयोगजन्मशोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः ।
दुःखौषधं तदपि दुःखमतद्धियाहं भूमन् भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम् ।।१७।।

अन्वयः— हे भूमन् ! यस्मात् प्रिया प्रिय वियोग संयोग जन्मशोकाग्निना सकलयोनिपु दह्यमानः दुःखौषधं तदपिदुःखम् अतद्धियाऽहंभ्रमामि तव दास्योगम् वद ।।१७।।

अनुवाद— हे प्रभो ! मैंन जिन-जिन योनियों में जन्म लिया उन सभी योनियों में प्रिय का वियोग तथा अप्रिय का संयोग जन्य शोक की अग्नि में जल रहा हूँ । उन दुःखों को मिटाने की जो दवा है वह भी दुःख रूप ही है । ऐसा होने पर भी देहात्माभिमान के कारण मैं भटक रहा हूँ । अब आप उस साधन को बतलायें जिससे कि आपकी दासता का अवसर मुझे प्राप्त हो सके ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

दास्ये सति मत्प्रीतिरिति चेत्तर्हि नानायोनिषु क्लिश्यमानस्य मम दास्यज्ञानाभावात्त्वमेव तदुपदिशेति प्रार्थयते । यस्मात्प्रियैरप्रियैश्च यथासंख्यं वियोगसंयोगाभ्यां जन्म यस्य तेन शोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानोऽस्मि । दुःखस्य प्रतीकारः कार्य इति चेत्तत्राह- दुःखस्यौषधं प्रतीकारस्तदपि दुःखमेव । एवमप्यतद्धिया देहाद्यभिमानेन मुह्यामि । अतो हे भूमन्विभो, मे तव दास्यरूपं योगं निस्तारोपायं वद ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

यदि मेरा प्रेम आपके दास्य में है तो अनेक योनियों में कष्ट का अनुभव करने वाले मुझे आपके दास्य का ज्ञान नहीं है, आप ही मुझे उसका उपदेश दीजिए इस प्रकार से प्रह्लादजी प्रार्थना करते हैं । कयोंकि मैं सभी योनियों में प्रिय के वियोग तथा अप्रिय के संयोग जन्य शोक की अग्नि में जल रहा हूँ । यदि आप कहें कि उस दुःख का प्रतिकार करना चाहिए तो, उन दुःखों को दूर करने की जो दवा है वह भी दुःख रूप ही है । ऐसा होने पर मै अपने से भिन्न देह आदि में ही आत्माभिमान होने के कारण भटक रहा हूँ । अतएव हे भूमन् ! आप अपने दास्य रूप निर्वाह के उपायों को वतलायें ।।१७।।

सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया लीलाकथास्तव नृसिंह विरिञ्चगीताः ।
अञ्जस्तितर्म्यनुगृणन्गुणविप्रमुक्तो दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससङ्गः ।।१८।।

अन्वयः— हे नृसिंह प्रियस्य, सुहृदः परदेवतायाः तव विरिञ्चगीताः लीलाकथाः अनुगृणन् गुणविप्रमुक्तः अहं ते पद युगालयहंससङ्गः दुर्गाणि अञ्जः तितर्मि ।।१८।।

अनुवाद— हे नृसिंह भगवन् ! अप हमारे प्रिय सुहृत (हितैषी) हैं आप ही सर्वश्रेष्ठ देवता है । ऐसे ब्रह्माजी के द्वारा वर्णित आपकी लीला कथाओं का गान करके बड़ी सुगमता से प्राकृत गुणों से मुक्त होकर इस संसार की कठिनाइयों से पार हो जाऊँगा । क्योंकि आपके चरण युगल में रहने वाले महात्माओं की सङ्गति मुझे प्राप्त होती रहेगी ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

ननु दास्ययोगेन प्रवृत्तस्यापि तदन्तरायभूतानां पूर्वोक्तनानादुःखानां कुतः परिहारस्तत्राह-सोऽहं त्वद्दासः सन् भो नृसिंह, तव लीलाकथा अनुगृणन्दुर्गाणि महादुःखान्यञ्जसा तितर्मि तरामि । न गणयिष्यामीत्यर्थः । तत्र हेतुः- गुणै रागादिभिर्विशेषेण प्रमुक्तः सन् । तत्कुतः ते पदयुगमेवालयो येषां भक्तानां त एव हंसा ज्ञानिनस्तैः सङ्गो यस्य मम सोऽहम् । कथंभूतस्य कथास्तत्राह-प्रिययेत्यादि । कुतो ज्ञाताः । विरिञ्चेन गीतस्तत्संप्रदायप्रवृत्ताः । तथा चाथर्वणी श्रुतिः- 'देवा ह वै प्रजापतिमब्रुवन्' इत्यादि । दास्ये प्रवृत्तस्य भवदनुग्रहेण सत्सङ्गस्ततो वीतरागतया भगवद्गुणानुवर्णनं ततश्च न दुःखाभिभवः स्यादिति वाक्यार्थः।।१८।।

भाव प्रकाशिका

इस दास्य योग में प्रवृत्त होने वाले के भी विघ्न स्वरूप पूर्वोक्त अनेक प्रकार के दुःखों का परिहार कैसे होगा ? इस पर प्रह्लादजी कहते हैं मैं आपका दास हूँ । हे नृसिंह आपकी लीला कथाओं का गान करते हुए संसार के समस्त दुःखों को आसानी से पार कर जाऊँगा । मैं उन दुःखों की परवाह नहीं करूँगा । वह इसलिए की मैं राग आदि दोषों से मुक्त हो जाऊँगा । यदि कहें कि वह भी कैसे होगा ? तो इसका उत्तर है कि आपके चरण युगल रूप आश्रय में रहने वाले परमहंसों की सङ्गति तो मुझे प्राप्त होयेगी ही । यदि कहें कि कैसे मेरी कथा से तो इसका उत्तर है कि आप मेरे प्रिय सुहृत और परा देवता हैं, ऐसे आपकी कथा । इसको तुमने कैसे जाना ? तो इसका उत्तर है कि ब्रह्माजी ने उसका गान किया है । अथर्ववेद की श्रुति कहती है **देवा ह वै० इत्यादि** अर्थात् देवताओं ने प्रजापति से कहा इत्यादि । आपके दास्य में प्रवृत्त मेरे ऊपर आपकी कृपा होने के कारण सत्सङ्ग से तथा वीतराग होने के कारण भी आपके गुणों का वर्णन मैं करूँगा और उसके कारण दुःख मुझे अभिभूत नहीं कर पायेंगे । यह वाक्यार्थ है ।।१८।।

बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः ।
तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्टस्तावद्विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ।।१९।।

अन्वयः- हे विभो ! हे नृसिंहे तप्तस्य इह यः प्रति विधिः इह अञ्जसा इष्टः सः तवदुपेक्षितानां तावदेव, इह बालस्य शरणं पितरौ न, आर्तस्य अगदं न उदन्वति मज्जतः नौः न ।।१९।।

अनुवाद— हे सर्वत्र व्यापक नृसिंह प्रभो सकल जीवों के दुःख को मिटाने के लिए इस लोक में जो उपाय बतलाये गये वे आपके द्वारा उपेक्षित होने पर क्षणभर के लिए ही होते हैं । बालक के रक्षक उसके माता-पिता नहीं हो सकते हैं । रोग से आर्त बने हुए रोगी की रक्षा औषधि से नहीं होती है और न समुद्र में डूबने वाले व्यक्ति की रक्षा नौका से हो सकती हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

ननु दुःखैस्तप्तस्य तत्प्रतीकारो लोके प्रसिद्ध एवं किं मद्दास्यादिना तत्राह- बालस्येति । भो नृसिंह, तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्दुःखप्रतीकार इह लोके योऽञ्जसेष्टः स त्वयेपेक्षितानां तावदेव क्षणमात्रमेव न त्वात्यन्तिकः । तदेवाह- बालस्य पितरौ शरणं रक्षकाविह न भवतः, ताभ्यां पाल्यमानस्यापि तस्य दुःखदर्शनात्, क्वचिदजीगर्तादिपु ताभ्यामेव तद्वधदर्शनाच्च । न चार्तस्य रोगिणोऽगदमौषणं शरणम्, कृतेऽप्यौषधे मृत्युदर्शनात् । न चोदन्वति समुद्रे मज्जतः पुंसो नौः शरणम्, तया सह मज्जनदर्शनात् । अतस्त्वमेव शरणमित्यर्थः । अथवैवं काक्वा व्याख्येयम् । तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इह तावत्प्रसिद्धः स त्वदुपेक्षितानां किमञ्जसेष्टोऽपितु नेष्ट एव । यद्वा यस्तावदिह प्रतिविधिरिष्टः स किमञ्जसा नैवाञ्जसेत्यादि योज्यम् । बालस्येत्यादि पूर्ववदेव।।१९।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें की जो जीव दुःखों से दुःखी होते हैं, उनके लिए दुःख से छूटने के लोक मे जो उपाय बतलाये गये है उन्हीं उपायों को करना चाहिए मेरी दासता करने से क्या होने वाला है ? तो इसके उत्तर में प्रह्लादजी कहते है कि हे नृसिंह विभो ! इस संसार में दुःखों को दूर करने के लिए जो बतलाये गये हैं दुःखी व्यक्ति के आपके द्वारा उपेक्षित होने पर वे उपाय क्षण भर के ही लिए होते है दुःख के आत्यन्तिक विनाश के वे साधन नहीं होते हैं । इस संसार में बालक के रक्षक माता-पिता नहीं होते । देखा जाता है कि माता-पिता के द्वारा पालित होने पर भी बालक दुःखी हो जाता है । अजीगर्त इत्यादि माता-पिता अपने पुत्र शुनः शेप के मृत्यु के कारण बन गये । इसी तरह रोगी व्यक्ति की रक्षा औषधि से नहीं हो पाती है । दवा करते रहने पर भी रोगी की मृत्यु हो जाती है । इसी तरह समुद्र में डूबते हुए व्यक्ति की रक्षा नौका नहीं कर पाती है देखा जाता है कि नौका के साथ मनुष्य डूब जाता है । अतएव आप ही सबों के रक्षक हैं । अथवा काकु के द्वारा इस प्रकार से व्याख्या करनी चाहिए दुःख से संतप्त जीवों के दुःख के विनाश के लिए जो उपाय बतलायें गये हैं वे आपके द्वारा उपेक्षित व्यक्ति के लिए साक्षात् अभिप्रेत हैं क्या ? अपितु ऐसा नहीं है । अथवा इस लोक में जो दुःखों के प्रतिकार के साधन कहे गये हैं वे क्या अञ्जसा अभिप्रेत हैं ? तो ऐसी बात नहीं है । **बालस्य इत्यादि** की व्याख्या उपर्युक्त प्रकार से ही करनी चाहिए ।।१९।।

यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद्यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो वा ।
भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः संचोदितस्तदखिलं भवत स्वरूपम् ।।२०।।

अन्वयः— यः तु अपरः परो भावः कर्ता, यस्मिन्, यतः येन संचोदितः यस्य, यस्मात् यस्मै यथा यदुत पृथक् स्वभावः करोति विकरोति तदखिलं भवतः स्वरूपम् ।।२०।।

अनुवाद— सत्त्वादि गुणों के कारण भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले जितने भी श्रेष्ठ ब्रह्मा आदि तथा कनिष्ठ माता-

पिता इत्यादि कर्ता हैं, अथवा परिवर्तित करने वाले वे सबके सब आप से ही प्रेरित होकर जिस आधार में स्थित होकर जिस निमित्त से, जिन मिट्टी आदि उपकरणों से, जिस समय, जिन साधनों के द्वारा जिस अदृष्ट आदि की सहायता से, जिस प्रयोजन के उद्देश्य से, जिस विधि से जो कुछ उत्पन्न करते हैं या रूपान्तरित करते हैं वे सब और वह सब आपका ही स्वरूप हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

ननु क्वचित्कुतश्चित्केनचित्कदाचित्कश्चिद्रक्षकोऽपि दृश्यत एवेत्याशङ्क्य तत्रापि तत्तद्रूपेण त्वमेव रक्षक इत्युररीकृत्य तस्यैव सर्वात्मतामाह-यस्मिन्निति । अपरोऽर्वाचीनः पित्रादिः परो ब्रह्मादिर्वा भावः कर्ता तत्तत्कारकैर्यत्करोति तत्सर्वं भवत एव स्वरूपं नतु पृथक् । यस्मिन्नधिकरणे, यतो निमित्तात्, यर्हि यस्मिन्काले, येन करणेन, येन हेतुकर्त्रा संचोदितश्च, यस्य संबन्धि यस्मादपादानात्, यस्मै संप्रदानाय, यदीप्सिततमं, यः कर्ता, इत्येव सप्त विभत्तयर्थाः । यथा येन प्रकारेणेति क्रियाविशेषणभूतानामव्ययानामर्थः । पृथक्स्वभावः सत्त्वादिप्रकृतिः । करोत्युत्पादयति विकरोति रूपान्तरं नयतीति ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि देखा जाता है कि कहीं पर कहीं से किसी के द्वारा कभी कोई रक्षक भी होता है इस प्रकार की आशङ्का करके प्रह्लादजी वहाँ भी विभिन्न रूपों से आप ही रक्षक होते हैं, इस बात को हृदय में रखकर परमात्मा की ही सर्वात्मता को **यस्मिन् इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । अपर अर्थात् आधुनिक माता-पिता इत्यादि पर (श्रेष्ठ) ब्रह्माजी इत्यादि भाव पदार्थों के कर्ता विभिन्न साधनों से जो कुछ भी करते हैं वह सब आपका ही स्वरूप हैं । आप से भिन्न नहीं । जिस आधार में, जिस निमित्त से, जिस काल में, जिस कारण से, जिस कर्ता के द्वारा प्रेरित होकर जिस संवन्धी, जिस अपादान से, जिस सम्प्रदान के लिए जिस इप्सिततम वस्तुओं का जो कर्ता है । इस तरह सात विभक्तियों के अर्थ को दिखलाया गया है । जिस प्रकार से क्रिया विशेषण अव्ययों के अर्थ हैं । भिन्न-भिन्न स्वभाव वाला सत्त्वादि प्रकृति वाला उत्पन्न करता है, अथवा रूपान्तरित करता हैं वह सबके सब आपका ही स्वरूप है ।।२०।।

माया मनः सृजति कर्ममयं बलीयः कालेन चोदितगुणानुमतेन पुंसः ।
छन्दोमयं यदजयाऽर्पितषोडशारं संसारचक्रमज कोऽतितरेत्त्वदन्यः ॥२१॥

अन्वयः— पुंसः अनुमतेन कालेन चोदित गुणा माया कर्ममयं, वलीय छन्दोमयं मनः सृजति, यत् अजया अपिति षोडशारं संसारचक्रम् हे अज त्वदन्यः कः तरेत् ।।२१।।

अनुवाद— पुरुष की अनुमति से काल के द्वारा गुणों में क्षोभ उत्पन्न होने पर माया मनः प्रधान लिङ्ग शरीर की सृष्टि करती है । यह लिङ्ग शरीर बलवान् कर्ममय अनेक नाम रूपों में आसक्त (छन्दोमय) हैं । यही अविद्या के द्वारा कल्पित (मन दश इन्द्रियों और पञ्च तन्मात्रा) इन सोलह विकार रूप अरों से युक्त संसार चक्र है । हे जन्म रहित प्रभो आपसे भिन्न रहकर कौन ऐसा पुरुष है जो इस मन रूप संसार चक्र को पार कर ले ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

अतोऽन्यस्य रक्षकस्याभावादसंसारित्वाच्च नित्यमुक्तस्त्वमेव मां शरणागतं रक्षेति प्रार्थयते-मायेति द्वाभ्याम् । त्वदंशस्य पुंसोऽनुमतेनेक्षणरूपेणानुग्रहेण मनो मनःप्रधानं लिङ्गं माया सृजति । कथंभूता । कालेन नोदिताः क्षोभिता गुणा यस्याः । कथंभूतं मनः । कर्ममयं कुर्वद्रूपम् । वलीयो दुर्जयम् । छन्दोमयं वेदोक्तकर्मप्रधानं च । अजया जीवस्याविद्यया तद्भोगार्थमर्पिताः षोडश अरा विकारा यस्मिन्। यदेवंभूतं संसारचक्रात्मकं मनस्तत्कोऽतितरेत्। भो अज, त्वदन्यस्त्वत्तः पृथक् स्थितः त्वामभजन्नित्यर्थः।।२१।।

भाव प्रकाशिका

अतएव आपसे भिन्न रक्षक का अभाव होने के कारण असंसारी तथा नित्यमुक्त आप ही मुझ शरणागत की

रक्षा करें, इस तरह से प्रह्लादजी **माया० इत्यादि** दो श्लोकों से प्रार्थना करते हैं । आपके अंश भूत पुरुष ईक्षण (सङ्कल्प) रूप अनुग्रह के द्वारा माया मनः प्रधान लिङ्ग शरीर की सृष्टि करती है । प्रश्न है कि कैसी माया ? तो उत्तर है कि काल के द्वारा प्रेरित होकर जिसके गुणों में वैषम्य रूप क्षोभ उत्पन्न हो गया है । कैसा मन ? कर्मों को करने वाला तथा दुर्जय मन और वेदोक्त कर्म प्रधान मन । जिसमें जीव के भोग के लिए सोलह अर हैं । इस प्रकार का संसार चकात्मक मन को हे अजन्मा प्रभो आप से पृथक रहकर आपका भजन नहीं करने वाला कौन ऐसा पुरुष है जो पार कर जाय ?।।२१।।

स त्वं हि नित्यविजितात्मगुणः स्वधाम्ना कालो वशीकृतविसृज्यविसर्गशक्तिः ।
चक्रे विसृष्टमजयेश्वर षोडशारे निष्पीड्यमानमुपकर्ष विभो प्रपन्नम् ।।२२।।

अन्वयः— हे ईश्वर ! हे विभो ! अजया षोडशरे चक्रे विसृष्टम् निष्पीडयमानं प्रपन्नं माम् उपकर्ष । स त्वं हि स्वधाम्ना नित्यविजितात्मगुणः कालो वशीकृत विसृष्ट विसृज्य शक्तिः ।।२२।।

अनुवाद— हे सर्वशक्तिमान प्रभो ! माया इस सोलह आरों वाले संसार चक्र में डालकर मुझे ईख के समान पेर रही है आप मुझ शरणागत को अपनी ओर खींच लीजिए, क्योंकि आप तो अपनी चैतन्य शक्ति से बुद्धि के समस्त गुणों सर्वदा पराजित करके अपने वश में रखते हैं काल स्वरूप आप माया के प्रेरक हैं तथा सभी साध्यों साधनों को अपने वश में रखते हैं । अतएव आप मुझे इससे बचा लें ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

ननु ममापि मायासंबन्धात्कर्तृत्वाद्यविशेषाच्च त्वत्तः को विशेष इत्याह-स इति । स्वधाम्ना चिच्छक्त्या नित्यं विजिता आत्मनो बुद्धेर्गुणा येन स हि त्वम् । यतः कालो मायाप्रेरकः । अतएव वशीकृता विसृज्यानां कार्याणां विसर्गाणां साधनानां च शक्तयो येन । अत इक्षुदण्डवन्निष्पीड्यमानं मामुपकर्ष स्वसमीपं नय ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मेरा भी माया से संबन्ध होने के कारण मैं भी कर्तृत्व आदि से युक्त हूँ अतएव मुझमें और तुममें क्या अन्तर है ? इस पर प्रह्लादजी **सत्वम्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । आप अपनी चित् शक्ति के द्वारा सदैव बुद्धि के गुणों को पराजित करके अपने वश में रखते हैं । काल स्वरूप आप ही माया के प्रेरक हैं। अतएव आप सभी साध्यों और साधनों को अपने वश में रखते हैं । अतएव ईख के समान माया के द्वारा पेरे जाते हुए शरणगत मुझको अपने सन्निकट खींच लें ।।२२।।

दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपानामायुः श्रिये विभव इच्छति यां जनोऽयम् ।
येऽस्मत्पितुः कुपितहासविजृम्भितभ्रूविस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ।।२३।।

अन्वयः— विभो ! यान् अयं जनः इच्छति दिवि अखिलधिष्ण्यपानाम् आयुः श्रियः विभवः मया दृष्टा ये अस्मत् पितुः कुपितहास विजृम्भित भ्रूविस्फूजितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ।।२३।।

अनुवाद— हे विभो ! जिनके लिए संसारी लोग लालायित रहते हैं, स्वर्ग में प्राप्त होने वाली सभी लोकपालों की आयु लक्ष्मी तथा ऐश्वर्य को मैंने देख लिया । जब मेरे पिता थोड़ा सा क्रोध करके हँसते थे, और उससे उनकी भौंहें थोड़ी टेढ़ी हो जाती थी । उस समय स्वर्ग की सारी समपत्तियों के लिए कोई ठिकाना नहीं रहता था, वे लुढकती फिरती थीं, किन्तु आपने मेरे उस पिता को भी मार दिया ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

ननु लोकपालानां भोगान्भुङ्क्ष्व पित्र्यं वा राज्यमिदं दास्यामि किमिति संसारादुद्विजसे तत्राह-दृष्टा इति त्रिभिः । श्रियः

संपदः । विभव उद्भवः । आयुरादयो दृष्टा इति काक्का तुच्छत्वमुक्तम् । तदेवाह येऽस्मत्पितुः कोपहासविकृतभ्रूभङ्गमात्रेण विध्वस्ताः । स च त्वया निरस्तः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि लोकपालों को प्राप्त होने वाले भोगों को तुम भोगों अथवा तुम्हारे पिता के राज्य को मैं तुम्हे दे रहा हूँ । तुम संसार से क्यों उद्विग्न हो रहे हो ? इसके उत्तर में प्रह्लादजी **दृष्टा० इत्यादि** तीन श्लोकों को कहते हैं । श्रीशब्द संपत्ति का वाचक है और विभव शब्द, उत्पत्ति का आयु आदि को मैंने देख लिया है, यह कहकर प्रह्लादजी ने उसे तुच्छ बतलाया है । उसी बात को उन्होंने कहा मेरे पिता के क्रोध जन्य हास मात्र से विध्वस्त हो जाते थे । मेरे उस पिता को आप ने मार दिया ॥२३॥

तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषो ज्ञ आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिञ्चात् ।
नेच्छामि ते विलुलितानु रुविक्रमेण कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ॥२४॥

अन्वयः— तस्माद् आविरिञ्चित् आयुः श्रियम् विभवम् ऐन्द्रियम् अमूः तनुभृताम् आशिषः ज्ञः अहम् कालात्मना ते उरुक्रमेण विलुलितान् नेच्छामि मां निज भृत्य पार्श्वम् नय ॥२४॥

अनुवाद— अतएव ब्रह्मलोक पर्यन्त की आयु, लक्ष्मी, ऐश्वर्य, ऐन्द्रियिक भोग, जिन सत्रों को लोग प्राप्त करना चाहते हैं उन सबों को मैं जानता हूँ वे सबके सब काल रूपधारी आपके द्वारा ग्रस्त हैं । अतएव मैं इन सबों को नहीं चाहता हूँ अतएव आप मुझको आप अपने दासों की सन्निधि में ले चलिए ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

यस्मादेवं तस्मादाशिषो भोगान् । ज्ञस्तत्परिपाकं विद्वानहमैन्द्रियमिन्द्रियैर्भोग्यं ब्रह्मणो भोगमभिव्याप्य किमपि नेच्छामि। ते कालात्मनो विक्रमेण विलुलितान्विध्वस्तानणिमादीनपि ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

चूकि ऐसी बात है, इसलिए भोगों का ज्ञाता मैं जानता हूँ कि ब्रह्मलोक पर्यन्त के सभी ऐन्द्रियिक भोग तथा अणिमा आदि भी आपके द्वारा विध्वस्त हो जाते हैं । अतएव इन सबों को मैं नहीं चाहता हूँ ॥२४॥

कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ।
निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्कामानलं मधुलवैः शमयन्दुरापैः ॥२५॥

अन्वयः— श्रुतिसुखाः मृगतृष्णिरूपा अशिषः क्व अशेष रूजां विरोहः क्व, इति यदपि विद्वान् जनः दुरापैः मधुलवैः कामानलं शमयन् तु न निर्विद्यते ॥२५॥

अनुवाद— कहाँ तो सुनने में अच्छा लगने वाले तथा मृगतृष्णा के जल के समान मिथ्या विषय भोग और जिससे विषयभोगे जाते हैं यह रोगों से युक्त शरीर भी है, इन दोनों बातों को जानने वाले विद्वान् पुरुष भी, कठिनाई से प्राप्त होने वाले भोगों की बून्दों से अपनी कामना रूप अग्नि को शान्त करते रहते हैं, और इन विषयों को सारहीन समझकर विरक्त नहीं होते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

किंच वर्तमानकालेऽपि न भोगार्हा इत्याह-कुत्रेति । श्रुतिः श्रवणं तदेव सुखं यासु ताः । मृगतृष्णिकावन्मिथ्याभूताश्चाशिषः क्क । अशेषाणां रुजां रोगाणां विरोह उद्भवस्थानं क्क चेदं कलेवरम् । एवं चेत्सर्वोऽपि जनः किं न विरज्यते तत्राह-यदपि यद्यपि इति एवं विद्वानयं जनस्तथापि न निर्विद्यते विरक्तो न भवति । कुतः । काम एवानलस्तम् । मधुतुल्यैः सुखलवैर्दुःसाध्यैरपि शमयन् । कामाग्निशमनव्यग्रस्य निर्वेदावकाशो नास्तीत्यर्थः । यद्वा अचिन्त्यमिदं त्वन्मायाचेष्टितमिति भावः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

[illegible] में [illegible] ये विषय भोग भोगने योग्य नहीं है, इस बात को प्रह्लादजी ने **कुत्र० इत्यादि** [illegible] कहा है कि ये विषय सुनने में ही अच्छे लगते हैं किन्तु ये मृगतृष्णा में प्रतीत होने वाले जल के समान मिथ्या हैं । कहाँ तो इस प्रकार के विषय भोग तथा कहाँ तो समस्त रोगों के उत्पत्ति स्थान यह शरीर । यदि यही बात है तो फिर सभी लोग इन विषयभोगों से विरक्त क्यों नहीं हो जाते हैं ? इस पर प्रह्लादजी कहते हैं कि मनुष्य यद्यपि इन दोनों बातों को जानते हैं फिर भी वे इन विषय भोगों से विरक्त नहीं होते हैं । उसका कारण है कि कठिनाई से प्राप्त होने वाले मधु के समान सुख के कणों से वे अपनी कामना रूपी अग्नि को शान्त करते रहते हैं । अतएव व्यग्रता के अभाव के कारण संसार से विरक्त होने का कोई अवसर ही नहीं है । अथवा आपकी इन माया की चेष्टाएं अचिन्त्य हैं ॥२५॥

क्वाहं रजःप्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन् जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकम्पा ।
न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः ॥२६॥

अन्वयः— हे ईश तमोधिके रजःप्रभवः अस्मिन् सुरेतरकुले जातः अहं क्व ? तवानुकम्पा यत् पद्मकरः न ब्रह्मणः न तु भवस्य, न वै रमायाः शिरसि अर्पितः स प्रसादः मे सिरसि अर्पितः ॥२६॥

अनुवाद— हे प्रभो ! कहाँ तो तमोगुणी असुरवंश में रजोगुण से उत्पन्न हुआ मैं और कहाँ आपकी अनन्त कृपा । आपने अपने जिस कर कमल को न तो ब्रह्माजी के, न शङ्करजी के और न तो लक्ष्मी के सिर पर रखा आपने अपने उसी परम प्रसाद रूपी अपने कर कमल को मेरे शिर पर रख दिया अतएव इससे तो मैं धन्य हो गया हूँ ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि त्वं कथं निर्विण्णोऽसि । अनर्हेऽपि मयि प्रवृत्तया त्वत्कृपयैवेत्याशयेनाह-क्वेति । रजसैव प्रभवो जन्म यस्य सः। सप्तम्यन्तं वा कुलविशेषणम् । तमोऽधिकं यस्मिंस्तस्मिन्नसुराणां कुले जातोऽहं क्व । क्व च तवानुकम्पा । तामेवाह-ब्रह्मादीनां शिरसि यो नैवार्पितः स पद्मवत्सकलसंतापहरः करः प्रसादः पुरुषार्थरूपो मे शिरस्यर्पित इति यत् । यद्वयानुकम्पयेति वा॥२६॥

भाव प्रकाशिका

तो फिर तुम क्यो उदास हो ? उत्तर है कि यद्यपि मैं इसके योग्य नहीं हूँ फिर भी मुझ पर जो आपकी कृपा के कारण इसी आशयसे प्रह्लादजी ने कहा मेरा जन्म रजोगुण से ही हुआ है, अथवा **रजः प्रभवे** यह सप्तभ्यन्त कुल का विशेषण पद है । जिनमें तमोगुण की ही अधिकता होती है उस असुरों के वंश में मैं उत्पन्न हूँ । और कहाँ तो आपकी मुझ पर अनुकम्पा । श्रीभगवान् की अनुकम्पा का वर्णन करते हुए प्रह्लादजी कहते हैं— ब्रह्माजी आदि के शिर पर जिसको आपने कभी नहीं रखा उस कमल के समान समस्त संतापों को दूर कर देने वाले परम प्रसाद स्वरूप अपने कर कमल को आपने मेरे शिर पर रखा है, उस आपकी अनुकम्पा के द्वारा ॥२६॥

नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्याज्जन्तोर्यथात्मसुहृदो जगतस्तथापि ।
संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम् ॥२७॥

अन्वयः— ननु जन्तोः यथा भवतः परावरमतिः न स्यात् जगतः, आत्म सुहृद तथापि ते प्रसादः सुरतरोः इव संसेवया सेवानुरूपम् उदयः न परावरत्वम् ॥२७॥

अनुवाद— संसारी जीवों के समान आपमें छोटे-वड़े का भेद भाव नहीं है । क्योंकि आप सबों की आत्मा और अकारण प्रेमी हैं । फिर भी आपका कृपा प्रसाद कल्पवृक्ष के समान सेवा और भजन से ही प्राप्त होता है। सेवा के अनुसार ही जीवों पर आपकी कृपा का उदय होता है उसमें जातिगत उच्चता और नीचता का कारण नहीं है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

नच त्वयीदमतिचित्रमित्याह-नैषेति । एते ब्रह्मादय उत्तमा अयमसुरो नीच इत्येषा परावरमतिर्जन्तोः प्राकृतस्य यथा तथा भवतो नैव स्यात् । अत्र हेतुः-जगत आत्मनः सुहृदश्च । तर्हि सर्वत्र मत्प्रसाद एवंरूपश्च किं न स्यात्तत्राह-संसेवया तव प्रसादो भवति, तत्र च सेवानुरूपं तत्तदिच्छानुसारेण धर्मादीनामुदयो भवति । एवं सत्यपि वैषम्याभावे दृष्टान्तः सुरतरुर्यथा सेवकस्यैव सङ्कल्पानुसारेण फलं ददाति नच विषमस्तद्वत् । न परावरत्वमत्र कारणमिति शेषः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

ऐसा होना आपके लिए कोई विचित्र बात नहीं है इस बात को **नैषा० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । ये ब्रह्मा आदि उत्कृष्ट हैं और यह असुर नीच ही इस तरह की जातिगत छोटे बड़े की बुद्धि आपमें नहीं है । ऐसा भेदभाव तो संसारी जीवों में ही होता है । इसका कारण है कि आप सम्पूर्ण जगत् की आत्मा और अकारण प्रेमी हैं । यदि आप कहें कि तो फिर मेरा सबों पर इस प्रकार का कृपा प्रसाद क्यों नहीं होता है ? इसके उत्तर में प्रह्लाद जी ने कहा आपकी कृपा सेवा के अनुसार होने वाली इच्छा के अनुसार ही धर्म आदि का उदय होता है। इसका उदाहरण है कल्प वृक्ष कल्पवृक्ष के द्वारा सेवकों के ही सङ्कल्पानुसार कामनाओं की पूर्ति होती हैं उसमें छोटा बड़ा होना कारण नहीं होता है ॥२७॥

एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे कामाभिकाममनु यः प्रपतन्प्रसङ्गात् ।
कृत्वात्मसात्सुरर्षिणा भगवन्गृहीतः सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम् ॥२८॥

अन्वयः— एवं प्रभवाहि कूपे निपतितं जनं कामाभिकाममनु यः प्रसङ्गात् प्रपतन् हे भगवन् सुरर्षिणा आत्मसात् कृत्वा गृहीतः सोऽहं तव भृत्यसेवां कथं नु वृसृजे ॥२८॥

अनुवाद— यह संसार एक औंधा कुआँ है, उसमें काल रूपी सर्प डसने के लिए तैयार है । विषयभोगों की इच्छा वाले पुरुष उसी में गिरे हुए है, मै भी सङ्गवशात् उसी में गिरने जा रहा था किन्तु हे भगवन् ! देवर्षि नारदजी ने मुझे अपनाकर बचा लिया । ऐसी स्थिति में मैं आपके भृत्य जनों की सेवा का परित्याग कैसे कर सकता हूँ ?॥२८॥

भावार्थ दीपिका

एतच्च त्वद्भृत्यकृपया मया प्राप्तमिति त्वद्भृत्यपार्श्वमेव मां नयेत्याशयेनाह-एवमिति । यथा त्वयानुकम्पितोऽस्म्येवं नारदेनात्मसात्कृत्वा पूर्वमनुगृहीतः सोऽहं कथं नु त्वद्भृत्यसेवां विसृजामि । कथंभूतोऽनुगृहीतोऽस्मि । प्रभव एवाहियुक्तः कूपस्तस्मिन्कामानभितः कामयमानं जनं निपतितमनु तत्प्रसङ्गात्प्रपतन्योऽहम् । तदेवं त्वद्भृत्यस्य नारदस्यानुग्रहेण त्वयात्यन्तमनुकम्पितोऽस्म्ययमेव च मम परमोऽनुग्रहो न पुनरिदमतितुच्छं मत्प्राणरक्षणादि ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

आपके इस कृपा प्रसाद को मैंने आपके भक्त की कृपा से ही प्राप्त किया है अतएव आप मुझे अपने भक्त के पास ही ले चलें । इस बात को प्रह्लादजी ने **स्वम्० इत्यादि** श्लोक से कहा है । जिस तरह से आपने मेरे ऊपर कृपा की है, उसी तरह मैं आपके भक्त नारदजी के द्वारा भी अनुगृहीत हूँ । अतएव मैं आपके भक्तों की सेवा का परित्याग कैसे कर सकता हूँ ? किस प्रकार का मैं अनुगृहीत हुआ हूँ, इसे मैं बतलाता हूँ जन्म लेना ही सर्प से युक्त कूप है, उसमें अनेक प्रकार के विषय भोगों की कामना करने वाली संसारी जीव गिरे हुए हैं । मैं भी सङ्गवशात् उसमें गिरने ही जा रहा था, किन्तु आपके सेवक नारदजी की कृपा से मैं आपकी अत्यधिक कृपा को प्राप्त कर सका हूँ । यही मेरे ऊपर सबसे बड़ी कृपा है । मेरे प्राणों की रक्षा आदि तो अत्यन्त छोटी बात हैं ॥२८॥

मत्प्राणरक्षणमनन्त पितुर्वधश्च मन्ये स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं विधातुम् ।
खड्गं प्रगृह्य यदवोचदसद्विधित्सुस्त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं हरामि ॥२९॥

अन्वयः— खड्गं प्रगृह्य असत् विधित्सुः यत् अवोचत् मदपरः ईश्वरोऽस्ति यदि तव कं हरामि त्वाम् अवतु अनन्त प्राणरक्षणम् पितुः वधः च स्वभृत्य ऋषिवाक्यम् ऋतं विधातुम् ॥२९॥

अनुवाद— हे अनन्त जब मेरे पिता अन्याय करने के लिए हाथों में खड्ग लेकर कहने लगे कि यदि मेरे सिवा कोई और ईश्वर है तो तुमको बचा ले, मैं तुम्हारा सिर काटता हूँ, उस समय आपने मेरे प्राणों की रक्षा की और मेरे पिता का वध किया । मैं समझता हूँ कि आपने अपने प्रेमी भक्त सनकादि ऋषियों का वचन सत्य करने के लिए वैसा किया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

न चेदं त्वया मदनुग्रहार्थं कृतं किं त्वन्यार्थमित्याह-भो अनन्त, यदेतन्मत्प्राणरक्षणं मां हन्तुमुद्यतस्य मत्पितुर्वधश्च तदुभयं स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं सत्यं विधातुमित्यहं मन्ये । कुतः । यद्यस्मादसदयुक्तं विधित्सुः खड्गं प्रगृह्यावोचत् । किम्। मदपरो मद्व्यतिरिक्तश्चेदीश्वरोऽस्ति तर्हि त्वामिदानीमवतु तव कं शिरोऽहं हरामीति । पाठान्तरेऽप्ययमेवार्थः । यद्यदाऽवोचत्तदा मत्प्राणरक्षणमिति वान्वयः । 'सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितम्' इत्यत्रैव बहुधा व्याख्यातम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

आप मेरी रक्षा करने के लिए अपने यह कार्य नहीं किया है अपितु मेरे पिता का वध दूसरे कार्य के लिए किया है इस बात को प्रह्लादजी ने कहा हे अनन्त मेरे प्राण की रक्षा और मेरे पिता का वध आपने अपने भक्त ऋषियों के वाक्य को सत्य करने के लिए किया है । क्योंकि मेरे पिता जब असत् कार्य करने के लिए हाथ में खड्ग लेकर कहे यदि मुझसे भिन्न कोई ईश्वर है तो वह तुम्हारी रक्षा करे । मैं तुम्हारा सिर काटता हूँ । पाठान्तर में भी यही अर्थ होगा अथवा मेरे प्राण की रक्षा के लिए ऐसा अन्वय है । अपने भृत्य की वाणी को सत्य करने के लिए इसकी बहुत व्याख्या की गयी है ॥२९॥

एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत्त्वमाद्यन्तयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च ।
सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमाययेदं नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः ॥३०॥

अन्वयः— एतत् जगत् त्वमेव एकः अमुष्य आद्यन्तयोः पृथक् अवस्यसि मध्यतः च गुणव्यतिकरं इदं जगत् सृष्ट्वा त्वं तदनु प्रविष्टः ॥३०॥

अनुवाद— हे प्रभो ! यह सम्पूर्ण जगत् एक मात्र आप ही है । इसके आदि में कारण रूप से आप ही थे और अन्त में भी अवधिरूप से आप ही रहेंगे आप अपनी माया से गुणों के परिणाम स्वरूप इस जगत् की सृष्टि करके इसमें पहले से विद्यमान रहने पर भी इसमें प्रवेश की लीला करते हैं और उन गुणों से युक्त होकर अनेक प्रतीत होते हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

नचेदं पक्षपातेन रक्षणं दैत्यहननं च त्वयि स्वाभाविकं किंतु मायागुणोपाधिकम्, सर्वात्मके त्वयि स्वतस्तदयोगादित्याह- एक इति । एतच्च जगत् त्वमेवैकः । यद्यतः अमुष्यादावन्ते च पृथगवस्यसि विरामं करोषि । सन्मात्रतया कारणत्वेनावधित्वेन च वर्तस इत्यर्थः । अतो मध्यतश्च त्वमेव । कुतस्तर्हि भेदप्रतीतिस्तत्राह-निजमायया गुणपरिणामात्मकमिदं जगत्सृष्ट्वा तदनुप्रविष्टस्त्वं तैर्गुणैर्हेतुभूतैर्नानेव रक्षक इव हन्तेव चावसितः प्रतीतः । तदुक्तं स्कन्धोपक्रमे- 'निर्गुणोऽपि ह्यजोऽव्यक्तो भगवान्प्रकृतेः परः। स्वमायागुणमाविश्य बाध्यबाधकतां गतः ।' इत्यादिना ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

आप पक्षपात करने के कारण रक्षा करना और दैत्य का वध करने का काम आपका स्वाभाविक नहीं है अपितु माया गुणोपाधिक है । आप सर्वात्मा हैं अतएव आपमें यह स्वाभाविक नहीं हो सकता है । यह सम्पूर्ण जगत् केवल आप ही हैं । क्योंकि इसके आदि और अन्त में आप ही रहते हैं । सन्मात्र स्वरूप होने के कारण रूप से और अवधि रूप से आप विद्यमान है । अतएव मध्य में भी आप ही हैं । यदि कहें कि तो फिर भेद की प्रतीति कैसे होती है तो इसका उत्तर है कि अपनी माया से गुणों के परिणाम रूप से इस जगत् की सृष्टि करके पहले विद्यमान भी उसमें प्रवेश कर गये । आप उन्हीं गुणों से रक्षक के समान अनेक के समान हन्ता के समान प्रतीत होते हैं । इस स्कन्ध के आदि में कहा भी गया है कि परमात्मा निर्गुण होकर भी अजन्मा, अव्यक्त तथा प्रकृति से परे हैं । अपनी माया के गुणों में प्रवेश करके वे वाध्य एवं बाधक हो गये ॥३०॥

त्वं वा इदं सदसदीश भवांस्ततोऽन्यो माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था ।
यद्यस्य जन्म निधनं स्थितिरीक्षणं च तद्वै तदेव वसुकालवदष्टितर्वोः ॥३१॥

अन्वयः— हे ईश इदं सदसत् त्वं वै भवान् ततः अन्यः यदात्म परबुद्धिः इयं अपार्थामाया, यद यस्य जन्म निधनं स्थिति रक्षणं च तद् वै तदैव वसुकालवदिष्टतर्वोः ॥३१॥

अनुवाद— हे भगवन् ! यह जो कुछ कार्य कारण रूप प्रतीत होता है वह सब आप ही है, और आप उससे भिन्न भी आप ही हैं । अपने और पराये का भेदभाव तो अर्थहीन शब्दों की माया ही है, क्योंकि जिससे जिसका जन्म, स्थिति और लय होता है वह उसका स्वरूप ही होता है, जैसे बीज और वृक्ष कारण और कार्य की दृष्टि से भिन्न-भिन्न होते हैं, फिर भी गन्ध तन्मात्र की दृष्टि से एक ही है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

ननु यद्येतज्जगदहमेव तर्हि जगतो वैषम्येण मम वैषम्यमपि किं न स्यादित्यत आह-त्वं वै त्वमेवेदं सदसत्कार्यकारणात्मकं जगन्न तु त्वत्तः पृथक् । भवांस्तु ततोऽन्यः । आद्यन्तयोः पृथगवस्थानात् । यद्यस्मादेवमतोऽयमात्मीयोऽयं पर इति या बुद्धिः साऽपार्था मायैव । कार्यकारणाभेदं दृष्टान्तेन साधयति । यद्यतो यस्य जन्म ईक्षणं प्रकाशश्च । यस्मिन्निधनं च स्थितिश्च तद्वै तदेव। अष्टिर्बीजं कारणं तरुः कार्यं तयोर्यथा वसुकालमात्रत्वम् । अयमर्थः-कालशब्देन नीलत्वाद्यसाधारणगुणयोगात्पृथ्वी । वसुशब्देन वस्तुमात्रं भूतसूक्ष्मम् । तत्र तरोर्यथा पृथ्वीमयबीजमात्रत्वं तस्य च यथा भूतसूक्ष्ममात्रत्वमेवं सर्वमपि कार्यकारणात्मकं जगत् परमकारणात्मकमेवेति । तथा च पारमर्षं सूत्रम् 'तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः' इति । श्रुतिश्च- 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्' इति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहे कि यह जगत् मै ही हूं तो फिर जगत् में विषमता के कारण मुझमे भी विषमता क्यो नही है ? इस पर प्रह्लादजी कहते है, यह कर्म कारणात्मक जगत् आप ही है वह आप से अलग नही है । आप उससे अलग हैं । क्योंकि आदि और अन्त दोनो एक नही हो सकते है । आदि और अन्त दोनो अलग-अलग स्थित होते है । चूंकि ऐसी बात है अतएवयह मेरा है और यह दूसरे का है इस प्रकार की बुद्धि होने के कारण मिथ्या है । कार्य एवं कारण कि अभिन्नता दृष्टान्त के द्वारा सिद्ध करते है । जिससे जिसका जन्म और ईक्षण प्रकाश होता है और जिस मे स्थिति और निधन होता है वह वही होता है । अष्टि (बीज)याकारण तरु (वृक्ष) या कार्य उन दोनो की वसुकाल मात्रता मात्र होती है अर्थात् काश शब्द के द्वारा नीलत्व आदि असाधारण गुणो का योग होने से पृथिवी कही गयी है और वसु शब्द से वस्तु मात्र भूत सूक्ष्म कहा गया है । जैसे वृक्ष पृथिवी मय बीज मात्र है और बीज जैसे भूत सूक्ष्म मात्र है एवं सर्वमपि कार्य कारणात्मकं जगत् परम कारणात्मक मेव । इस बात को

ब्रह्मसूत्र में कहा गया है, ''तदनन्यत्वं आरम्भण शब्दादिभ्यः ।'' अर्थात् कारण और कार्य की अनन्यता । भी कहती है- **वाचारम्भणं विकारो नामधेयम् मृत्तिकेत्येव सत्यम्** अर्थात् पार्थिव पदार्थों काष्ठ पाषाण आदि विषमता होने पर उन सबों के परम कारण गन्धतन्मात्र में भिन्नता नहीं होती है उसी तरह जगत् में विषमता आने पर भी उनके परम कारण परमात्मा में कोई भी भिन्नता नही है ।।३१।।

न्यस्येदमात्मनि जगद्विलयाम्बुमध्ये शेषेऽऽत्मना निजसुखानुभवो निरीहः ।
योगेन मीलितदृगात्मनिपीतनिद्रस्तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणांश्च युङ्क्षे ।।३२।।

अन्वयः— इदम् जगत् आत्मनि न्यस्य विलयाम्बुमध्ये आत्मना निजसुखानुभवः निरीहः शेषे योगेन मीलितदृगात्मनिपीतनिद्रः तुर्ये स्थितः न तु तमः न गुणाश्च युङ्क्षे ।।३२।।

अनुवाद— हे भगवान् ! आप सम्पूर्ण जगत को अपने में लीन करके आत्म सुख का अनुभव करते हुए निष्क्रिय होकर प्रलय कालीन जल में शयन करते हैं । उस समय अपने स्वयं सिद्ध योग के द्वारा वाह्य दृष्टि को बन्द करके आप अपने स्वरूप के प्रकाश में निद्रा को विलीन कर लेते हैं और तुरीय ब्रह्म पद में स्थित रहते हैं । उस समय आप न तो तमोगुण से ही युक्त होते हैं और न तो विषयों को ही स्वीकार करते हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तावदन्ते पृथगवस्थानं दर्शयति-न्यस्येदमिति । इदं जगदात्मनैवात्मनि निक्षिप्य स्वसुखमेवानुभवन्निष्क्रियः सन्प्रलयोदकमध्ये शयनं करोषि । तर्हि किं जीवस्येव ममापि तमोवृत्तिरूपा निद्रास्ति । नहि नहि । योग एव तु बहिर्वृत्त्यभावसाम्यान्निद्रोच्यत इत्याह- योगेन मीलिते दृशौ येन । आत्मनः स्वरूपप्रकाशेन निपीता निद्रा येन । यतस्तुर्येऽवस्थात्रयातीते स्वरूपे स्थितस्त्वं नतु सुप्त इवात्मना तमो युङ्क्षे योजयसि न पश्यसि न जाग्रत्स्वप्नयोरिव गुणान्विषयांश्चेत्यर्थः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में परमात्मा की जगत् से पृथक् स्थिति को बतलाते हैं । प्रह्लादजी । इस जगत् का अपने से ही अपने भीतर समेटकर अपने आत्म सुख का अनुभव करते हुए निष्क्रिय होकर प्रलय कालीन जल में आप शयन करते हैं । यदि आप पूछे कि उस समय जीव के ही समान मेरी भी निद्रा तमोवृत्ति स्वरूपिणी होती है क्या? तो ऐसी बात नहीं है । योग में ही चूकि बाह्य वृत्ति का अभाव होता है, इसीलिए उसको निद्रा शब्द से अभिहित किया जाता है । इसी बात को **योगेन मीलित दृक्** शब्द से कहा गया है । अपने स्वरूप के प्रकाश से आप निद्रा को अपने में विलीन कर देते हैं । उस समय आप तुरीयावस्था रूप स्वरूप में आप स्थित रहते हैं । सोये हुए के समान आप न तो तमोगुण से युक्त होते हैं और न तो जाग्रदावस्था और स्वप्नावस्था के समान विषयों को ही स्वीकार करते हैं ।।३२।।

तस्यैव ते वपुरिदं निजकालशक्त्या संचोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम् ।
अम्भस्यनन्तशयनाद्विरमत्समाधेर्नाभेरभूत्स्वकणिकावटवन्महाब्जम् ।।३३।।

अन्वयः— तस्यैव ते निज कालशक्त्या संचोदित प्रकृति धर्मणः आत्मगूढम् इदम् वपुः अभ्यस्यनन्तशयनाद् विरमत् समाधेः नाभेः स्वकणिकाबटवत् नाभेः महाब्जम् अभूत् ।।३३।।

अनुवाद— जो आप प्रलयकालीन जल में शयन करते हैं, उसी अपनी काल शक्ति के द्वारा प्रेरित करने वाले आपका यह ब्रह्माण्ड जो पहले आप में ही लीन था वह ब्रह्माण्ड आपका शरीर है । प्रलयकालीन जल में शेष शय्या पर शयन करने वाले आपने योगानिद्रा की समाधि त्याग दी तब बट के बीज से विशाल वृक्ष के समान आपकी नाभि से यह विशाल ब्रह्माण्ड कमल उत्पन्न हुआ ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं कारणत्वेनादावपि पृथगवस्थानं दर्शयन्मध्यतश्च त्वमेवेत्येतत्प्रपञ्चयति चतुर्भिः । यस्त्वमम्भसि शेषे तस्यैव ते इदं जगद्वपुः स्वरूपं नान्यस्य, यतस्त्वं मध्यतोऽपि तस्य । कथंभूतस्य । निजया कालशक्त्या संचोदिताः प्रकृतेर्धर्माः सत्त्वादयो येन । स्वरूपत्वे हेतुः-अनन्तशयनाच्छेषपर्यङ्काद्विरमन्समाधिर्यस्य तस्य तव नाभेः सकाशात् एकार्णवोदके महाब्जं लोकपद्ममभूत्। कथंभूतम् । आत्मनि त्वय्येव गूढं सत् । स्वकणिकातः सूक्ष्माद्वटबीजान्महावट इव ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

अब प्रह्लादजी सृष्टि के प्रारम्भ में भी श्रीभगवान की पृथक स्थिति को दिखलाते हुए बीच के भी समय में आप ही रहते हैं इस बात को वे चार श्लोकों से बतलाते हैं । जो आप जल में शयन करते हैं वही आपका यह जगत् शरीर स्वरूप है किसी दूसरे का नहीं, क्योंकि सृष्टि के बीच में भी आपका ही यह शरीर रहता । कैसे आप? जो आप अपनी कालशक्ति के द्वारा प्रकृति के सत्त्वादि गुणों को प्रेरित करते हैं । स्वरूपता का कारण यह है कि शेषशय्या पर शयन से जब आप अपनी योगनिद्रा की समाधि को त्याग देते हैं तब आपकी नाभि से बट के बीज से विशाल वृक्ष के समान एकार्णव के जल में विशाल ब्रह्माण्ड कमल उत्पन्न हुआ । कैसा ब्रह्माण्ड कमल? तो इसका उत्तर है कि जो पहले (प्रलय काल में) आप में लीन था । सूक्ष्म बट बीज से विशाल वृक्ष के समान वह ब्रह्माण्ड कमल उत्पन्न हुआ ।।३३।।

तत्संभवः कविरतोऽन्यदपश्यमानस्त्वां बीजमात्मनि ततं स्वबहिर्विचिन्त्य ।
नाविन्ददब्दशतमप्सु निमज्जमानो जातेऽङ्कुरे कथमुहोपलभेत बीजम् ।।३४।।

अन्वयः— तत्सम्भवः कविः अतः अन्यत् अपश्यमानः आत्मनि ततं बीजं त्वां स्वबहिः विचिन्त्य अप्सु अब्दशतम् निमज्जमानः न अविन्दत उह जाते अङ्कुरे बीजम् कथम् उपलभेत ।।३४।।

अनुवाद— उस ब्रह्माण्ड कमल से उत्पन्न होने वाले सूक्ष्मदर्शी ब्रह्माजी उस कमल से अतिरिक्त कुछ भी नहीं देख सके तब अपने में बीज रूप से व्याप्त आपको वे नहीं जान सके । आपको बाहर समझकर व जल के भीतर प्रवेश करके ढूंढते रहे किन्तु उनको कुछ भी नहीं मिला । यह उचित ही है अङ्कुर के निकल आने पर उसमें व्याप्त बीज को कोई बाहर कैसे देख सकता है ?।।३४।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं कारणत्वेनानुगतः सन्मध्यतश्च त्वमेव वर्तस इत्युक्तमेतदेव शुद्धसत्त्वस्य ब्रह्मणोऽनुभवेन स्फुटयितुं तस्य प्राक्तनीमवस्थामाह-तस्मिन्नब्जे संभवो यस्य । कविर्ब्रह्मा । अतः पद्मादन्यदपश्यन् बीजमुपादानकारणभूतं त्वां स्वस्मिन्व्याप्तं तमपि नाविन्दत् । युक्तं चैतत् उह अहो । अङ्कुरे जाते सति बीजं तदनुगतं कारणं पृथक्कथं नाम पुमान्पश्येत् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि कारण रूप से व्याप्त मध्य में भी आप ही रहते हैं इस बात को शुद्ध सत्त्व स्वरूप ब्रह्म का अनुभव के द्वारा स्पष्ट करने के लिए उनकी सृष्टि से पहले की अवस्था का वर्णन करते हुए प्रह्लादजी कहते हैं- उस कमल पर ही उत्पन्न होने वाले सूक्ष्मदर्शी ब्रह्माजी, उस कमल से भिन्न किसी दूसरी वस्तु को नहीं देख सकने के कारण अपने उपादान कारण आपको अपने में व्याप्तरहने पर भी नहीं जान सके । यह उचित भी है, क्योंकि अङ्कुर के उत्पन्न हो जाने पर उसमें व्याप्त बीज को उससे अलग कोई कैसे देख सकता है ?।।३४।।

स त्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितोऽब्जं कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः ।
त्वामात्मनीश भुवि गन्धमिवातिसूक्ष्मं भूतेन्द्रियाशयमये विततं ददर्श ।।३५।।

अन्वयः— हे ईश ! अति विस्मितः सतु आत्मयोनिः अब्जं आस्थितः कालेन तीव्र तपसा परिशुद्धभावः भूतेन्द्रियाशयमये आत्मनि विततं भुवि अतिसूक्ष्मं गन्धमिव ददर्श ।।३५।।

अनुवाद— अत्यन्त आश्चर्यित ब्रह्माजी उस कमल पर बैठे हुए बहुत समय बीत जाने पर तीव्र तपस्या के द्वारा अन्तःकरण के शुद्ध हो जाने पर भूत, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण से अपने शरीर में ही ओत-प्रोत रूप में स्थित आपके सूक्ष्म रूप का उसी तरह से साक्षात्कार किए जिस तरह पृथिवी में व्याप्त उसकी सूक्ष्म तन्मात्रा गन्ध का होता है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

भवदुपासनया तु स्वस्मिन्नेव दृष्टवानित्याह-स त्विति । परावृत्याब्जमास्थितः सन् । तीव्रेण तपसा ध्यानेन अनेन सन्मात्ररूपेणोपादानतया दर्शनमुक्तम् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ने आपकी उपासना करके अपने में ही आपका साक्षात्कार किया इस बात को उन्होंने इस श्लोक में कहा है । ब्रह्माजी थककर कमल पर ही लौटकर आ गये । कमल पर ही बैठे हुए अपनी तीव्र तपस्या रूप ध्यान के द्वारा उन्होंने सन्मात्र रूप से उपादान कारण के रूप में आपका साक्षात्कार किया ॥३५॥

एवं सहस्रवदनाङ्घ्रिशिरः करोरुनासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम् ।
मायामयं सदुपलक्षितसंनिवेशं दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं विरिञ्चः ॥३६॥

अन्वयः— एवं सहस्रवदनाङ्घ्रिशिरः करोरुनासास्य कर्णनयनाभरणायुधाढ्यम् मायामयं सदुपलक्षितसंनिवेशम् महापुरुषं दृष्टवाः विरिञ्चः मुदमाप ॥३६॥

अनुवाद— इस तरह हजारों मुख, चरण, शिर, हाथ, जङ्घा, नाक, मुख, कान, नेत्र, आभूषण एवं आयुधों से सम्पन्न उस महापुरुष जिसके अङ्गों के रूप में मायामय प्रपञ्च सुशोभित हो रहा था उसको देखकर ब्रह्माजी अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

ईश्वरत्वे च दृष्ट्वा कृतार्थोऽभवदित्याह-एवमनेन प्रकारेण सहस्रमपरिमितानि यानि वदनादीनि तैराढ्यं समृद्धम् । मायामयं मायाप्रधानम् । सता प्रपञ्चेनोपलक्षितः संनिवेशः पादादिरचना यस्य ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी ईश्वर आपका दर्शन करके कृतार्थ हो गये इस बात को प्रह्लादजी ने कहा है । अपरिमित मुख आदि से समलंकृत आपको अङ्गों के रूप में माया प्रधान प्रपञ्च सुशोभित हो रहा था ॥३६॥

तस्मै भवान्हयशिरस्तनुवं च बिभ्रद्वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ ।
हत्वाऽनयच्छ्रुतिगणांस्तु रजस्तमश्च सत्त्वं तव प्रियतमां तनुमामनन्ति ॥३७॥

अन्वयः— तस्मै भवान् हयाशिरः तनुवं विभ्रत् रजः तमः च वेदद्रुहौ अतिबलौ मधुकैटभाख्यौ हत्वा श्रुतिगणान् तु अनयत् सत्त्वं तव प्रियतमां तनुम् आमनिन्त ॥३७॥

अनुवाद— उन ब्रह्माजी के लिए हयग्रीव शरीर धारण करने वाले आप वेद विरोधी रजोगुण एवं तमोगुण रूप अत्यन्त बल वाले मधु एवं कैंटभ नामक दोनों दैत्यों को मारकर आप सत्त्वगुण प्रधान वेदों को लाकर आपने ब्रह्माजी को लौटा दिया । सन्त पुरुष सत्त्वगुण को ही आपका प्रियतमः शरीर बतलाते हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तदा च भवांस्तस्यानुग्रहं कृतवानित्याह-तस्मा इति । हयग्रीवमूर्तिं विभ्रत्सन् रजस्तमोरूपौ मधुकैटभाख्यौ हत्वा तस्मै श्रुतिगणान्समर्पितवान् । तत्र हेतुः-सत्त्वमिति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

उस समय आपने ब्रह्माजी पर कृपा की इस बात को प्रह्लादजी ने **तस्मै० इत्यादि** श्लोक से कहा है । हयग्रीव रूप धारण किए हुए आप रजोगुण एवं तमोगुण रूप मधु एवं कैटभ नामक दैत्यों को मारकर उनसे वेदों को लौटाये । उसका कारण है कि सत्त्वपुरुष सत्त्वगुण को ही आपका प्रिय शरीर बतलाते हैं ॥३७॥

इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारैर्लोकान्विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान् ।
धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम् ॥३८॥

अन्वयः— हे महापुरुष इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारैः लोकान् विभावयसि जगत् प्रतीयान् हंसि, युगानुरूपं धर्मं पासि, अथ कलौ छन्नः अभवः, सत्त्वं त्रियुगः ॥३८॥

अनुवाद— हे महापुरुष ! आप इस प्रकार से मनुष्य, पशु, पक्षी, ऋषि, देवता और मत्स्य आदि अवतारों को ग्रहण करके लोकों का पालन करते हैं, और संसार के द्रोहियों को मारने का काम करते है । इन अवतारों के माध्यम से आप प्रत्येक युग में उसके धर्मो की रक्षा करते हैं । और कलियुग में तो आप छिपकर ही रहते हैं अतएव आपका एक नाम त्रियुग है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

एकस्त्वमेवेत्यादिभिरष्टभिः श्लोकैर्यदुक्तं पक्षपातेन रक्षणं तद्विपक्षवधश्च सत्त्वौपाधिको नतु स्वत इति तदुपसंहरति-इत्थमिति । विभात्रयसि पालयसि । हंसि घातयसि । कलौ तु तन्न करोषि । यतस्तदा त्वं छन्नोऽभवः । अतस्त्रिष्वपि युगेष्वाविर्भावात्स एवंभूतस्त्वं त्रियुग इति प्रसिद्धः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

एकस्त्वमेव इत्यादि आठ श्लोकों द्वारा उक्त पक्षपात के द्वारा जो आप रक्षा करते है और उसके विपक्षियों का वध करते हैं वह सत्त्वौपाधिक हैं स्वाभाविक नहीं है । उसका उपसंहार इस इत्थम इत्यादि श्लोक के द्वारा करते हैं । विभावयसि अर्थात् पालन करते हैं और हंसि अर्थात् मारते हैं । कलियुग में आप इस कार्य को नहीं करते हैं क्योंकि कलियुग में आप छिपकर रहते हैं । अतएव तीनो युगों में आविर्भूत होने के कारण आपका एक नाम त्रियुग है ॥३८॥

नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ संप्रीयते दुरितदुष्टमसाणु तीव्रम् ।
कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं तस्मिन्कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥३९॥

अन्वयः— हे विकुण्ठनाथ ! दुरितदुष्टम् तीव्रम् असाधु, कामातुरं हर्षशोकभयैषगतिं एतन्मनः तवकथा स न सम्प्रीयते तस्मिन् तवगतिं कथं विमृशामिः ॥३९॥

अनुवाद— हे वैकुण्ठनाथ, पापों से दूषित स्वयं भी अत्यन्त दुष्ट, विभिन्न प्रकार की कामनाओं से आतुर बना हुआ एवं हर्ष, भय, शोक, विविध एषणाओं से आर्त बना हुआ यह मेरा मन आपकी कथाओं में नहीं लगता है । इसके कारण मैं हीन बना हुआ हूँ । इस प्रकार के मन में मैं आपके स्वरूप का चिन्तन कैसे करूँ ?॥३९॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं भगवतस्तत्त्वं निरूप्य स्वस्य च तद्विचारायोग्यतमां निवेदयन्प्रार्थयते-नैतदिति त्रिभिः । असाधु बहिर्मुखम् । तीव्रं दुर्धरम् । हर्षशोकभयैरेषणात्रयेण चार्तं दुःखितमपि त्वत्कथासु न संप्रीयते तस्मिन्नेवंभूते मनसि सति कथं तव तत्त्वं विचारयामि॥३९॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से परमात्मा तत्त्व का निरूपण करके प्रह्लादजी अपने विचार की अयोग्यता का निवेदन करते

हुए प्रार्थना **नैतत्० इत्यादि** तीन श्लोकों से करते है । असाधु अर्थात् बहिर्मुख । तीव्रं अर्थात् अत्यधिक हर्ष शोक
तथा तीनों पुत्रैषण, वित्तैषणा तथा लोकैषणा एषाणओं से आर्त होने के कारण दुःखी होने पर भी आपकी कथाओं
में नहीं लगता है । इस प्रकार के मन में मैं आपके स्वरूप का चिन्तन कैसे करूँ ।।३९।।

जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति माऽवितृप्ता शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ।।४०।।

अन्वयः— हे अच्युत ! अवितृप्ताजिह्वा एकतो मा विकर्षति, शिश्नः अन्यतः त्वक् उदरं, श्रवणं, कुतश्चित् घ्राणः अन्यतः चपलदृक् अन्यतः बह्वाः कर्मशक्तयः क्वच, सपत्न्यः गेहपतिं इव लुनन्ति ।।४०।।

अनुवाद— हे अच्युत ! कभी भी तृप्त नहीं होने वाली जिह्वा मुझे रस की ओर खींचती है, जननेन्द्रिय सुन्दरी स्त्री की ओर, त्वगिन्द्रिय सुकोमल स्पर्श की ओर, पेट स्वादिष्ट भोजन की ओर, चञ्चल नेत्र सुन्दर रूप की ओर और सभी कर्मेन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों की ओर खींच रही हैं । मेरी दशा तो ऐसी हो गयी है जैसे किसी पुरुष की अनेक पत्नियाँ हों ओर वे सबके सब उसको अपने-अपने शयनागार में ले जाने के लिए घसीट रहीं हों ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

किंच जिह्वा अवितृप्ता सती भो अच्युत, मा मां यतो मधुरादिरसस्तत आकर्षति । उदरं तु क्षुधासंतप्तं सत् सद्य एवं यत्किंचिदाहारमात्रं प्रति । चपला दृक् चक्षुः । कर्मशक्तिः कर्मेन्द्रियाणि लुनन्ति त्रोटयन्ति ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

हे अच्युत कभी भी तृप्त नहीं होने वाली जिह्वा मधुर आदि रसों की ओर खींचती है, भूख से व्याकुल पेट किसी भी आहार की ओर खींचता है । चञ्चल नेत्र रूप की ओर ले जाना चाहते हैं, और कर्मेन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों की ओर मुझे ले जाना चाहते हैं ।।४०।।

एवं स्वकर्मपतितं भववैतरण्यामन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम् ।
पश्यन् जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं हन्तेति पारचर पीपृहि मूढमद्य ।।४१।।

अन्वयः— एवं भववैतरण्यां स्वकर्म पतितं अन्योन्य जन्ममरणाशन भीतभीतम्, स्वपर विग्रहवैर वैर मैत्रं जनं पश्यन् हे पारचर, हन्तेति मूढम् अद्यपीपृहि ।।४१।।

अनुवाद— इस प्रकार से अपने कर्मों के बन्धन में पड़कर संसार रूपी वैतरणी नदी में गिरे हुए जन्म से मृत्यु और मृत्यु से जन्म इन दोनों के द्वारा कर्मभोगों को भोगते-भोगते यह जीव अत्यन्त भयभीत हो गया है, यह अपना है और यह पराया है, इस प्रकार के भेदभाव के कारण यह किसी से शत्रुता करता है तो किसी से मित्रता करता है । हे अच्युत ! इस जीव जाति की इस दुर्दशा को देखकर आप करुणा से द्रवित हो जाइये । आप इस संसार से पार रहने वाले हैं इस जीव को भी संसार से पार कर दीजिए ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

नदि केवलमहमेक एवैवं कष्टां दशामापन्नः किंतु महाजनोऽप्येवमेव क्लिश्यत्यतः सर्वं जनं पालयेति प्रार्थयेते एवमिति। भवः संसार एव वैतरणी यमद्वारनदी तस्याम् । अन्योन्यतो यानि जन्मादीनि तेभ्योऽतिभीतम् । स्वेषां परेषां च विग्रहेषु यथायथं वैरं मैत्रं च यस्य । एवं मूढं जनं पश्यंस्त्वम् । हे पारचर, तस्याः पारे स्थित नित्यमुक्त । हन्तेति अहो कष्टमित्येवमनुकम्प्याद्य पीपृहि वैतरणीमुत्तार्य पालय ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

केवल मैं ही इस प्रकार कष्टमयी दशा में नहीं पड़ा हूँ बड़े-से बड़े लोग भी इसी तरह क्लेशित होते हैं अतएव आप सभी जीवों का पालन कीजिए इस प्रकार से प्रह्लादजी प्रार्थना करते हैं । यह संसार ही यम के द्वार पर बहने वाली वैतरणी नदी है । जन्म तथा मृत्यु दोनों से प्राप्त होने वाले कर्म फलों के भोग से यह जीव अत्यन्त भयभीत हो गया है । अपने तथा पराये के विग्रहों में यह किसी से वैर करता है तो किसी से मित्रता करता है। इस तरह के अज्ञानी जीव को देखते हुए हे संसार के पार रहने वाले भगवन् इस जीव जाति को ही संसार से पार करके आप इसका पालन कीजिए ।।४१।।

को न्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन्प्रयास उत्तारणेऽस्य भवसंभवलोपहेतोः ।
मूढेषु वै महदनुग्रह आर्तबन्धो किं तेन ते प्रियजनाननुसेवतां नः ।।४२।।

अन्वयः— हे अखिलगुरो भगवन् भवसंभवलोपहेतोः ते कः नु अत्र प्रयासः, हे आर्तबन्धो, मूढेषु महदनुग्रहः ते प्रियजनान् अनुसेवतां नः तेन किम् ।।४२।।

अनुवाद— हे जगद्गुरो भगवन् आप तो सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार करने वाले हैं, इन अज्ञानी जीवों को संसार से पार उतार देने में आपको कौन सा प्रयास करना है ? महापुरुष तो अज्ञानी जीवों पर ही दया करते हैं । आपके प्रियजनों की सेवा में ही लगे रहने वाले मुझे उसकी आवश्यकता नहीं है ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

एकेन मया कथं सर्वो जनस्तारणीय इति चेत्तत्राह-को न्विति । को नु ते अत्र सर्वजनोत्तारणे प्रयासो न कोऽपि । कुतः। अस्य विश्वस्य भवसंभवलोपानामुत्पत्तिस्थितिसंहाराणां हेतोः ततोऽपि किमेतद्दुष्करमिति भावः । उचितं चैतदित्याह-मूढेष्विति। त्वां च त्वदीयांश्च तारयिष्यामीमं दुराग्रहं मा कृथा इति चेत्तत्राह-तव ये प्रियजना भक्तास्ताननु सेवमानानां नोऽस्माकं तेनोत्तारणेन किम् । 'कोऽतिप्रयासोऽसुरबालका हरेः को न्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन्प्रयासः । प्रह्लाद इत्थमुपमन्त्र्य मिथो नराणामीशेन सख्यमकरोदपनीय मायाम् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि अकेले मैं सबों को कैसे संसार नदी से पार उतार सकता हूँ तो इस पर कहते हैं **कोन्विति०** सभी जीवों के संसार से पार उतारने में आपको कौन सा प्रयास करना है ? कोई नहीं क्योंकि आप तो इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि स्थिति और संहार करने वाले हैं, यह उससे भी अधिक कठिन है क्या ? ऐसा करना उचित भी है, क्योंकि महापुरुषों का अनुग्रह अज्ञानी जीवों पर ही होता है । यदि आप कहें तुमको तथा तुम्हारे लोगों को मैं पार उतार दूँगा, इस दुराग्रह को मत करो, इस पर प्रह्लादजी कहते हैं, हमलोग तो आपके प्रिय भक्तों की सेवा में लगे रहते हैं, मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है । प्रह्लादजी ने असुर बालकों से कहा था । हे असुर बालको! श्रीहरि का भजन करने में कोई भी अधिक प्रयास नहीं करना है । यहाँ पर भी उसी तरह से कहते हैं कि हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् भगवन् ! सबों को पार उतारने में आपको कौन अत्यधिक प्रयास करना है ? प्रह्लादजी इस प्रकार से उप मन्त्रणा करके मनुष्य तथा ईश्वर से मित्रता माया को दूर करके किए ।।४२।।

नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्यास्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः ।
शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थमायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान् ।।४३।।

अन्वयः— परदुरत्यय वैतरण्याः त्वद्वीर्यगायन महामृत मग्न चित्तः नैव उद्विजे ततो विमुखचेतसः इन्द्रियार्थम् मायासुखाय भरम् उद्वहतः विमूढान् शोचे ।।४३।।

अनुवाद— दूसरे लोगो के लिए इस संसार रूपी वैतरणी नदी को पार करना कठिन आपकी लीलाओं के गायन रूपी महा अमृत मे जिसका मन मग्न है ऐसा मैं इस संसार रूपी वैतरणी से भयभीत नहीं हूं । क्योंकि मेरा मन इस वैतरणी में है ही नहीं । मै उन अज्ञानी प्राणियों के लिए शोक कर रहा हूँ जो आपके गुण गान से विमुख रहा करते है । और इन्द्रियों के विषयों का मायामय मिथ्या सुख प्राप्त करने के लिए अपने सिर पर सम्पूर्ण संसार का वोझ ढोते रहते हैं ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

वत्स प्रह्लाद,त्वां तावत्तारयिष्यामि तावतैव कृतार्थः स्याः, किमनेन निर्बन्धेनेत्यत आह-नैवेति । हे पर सर्वोत्तम, त्वद्वीर्यगायनमेव महामृतमस्मिन्मग्न चित्तं यस्य सोऽहं भववैतरण्याः नैवोद्विजे किंतु विमूढान्शोचामि । तानेवाहततो महामृताद्विमुखं चेतोयेपाम् । प्रत्युतेन्द्रियार्थनिमित्तं यन्मायासुखं तदर्थं भरं कुदुम्बदिभारमुद्वहतः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि वत्स प्रह्लाद मैं तुमके इस संसार से पार उतार देता हूँ इतने से ही तुम कृतकृत्य हे जाओ, सभी जीवों को संसार से पार करने का आग्रह क्यों करते हो ? इस पर प्रह्लादजी ने कहा **नैव० इत्यादि** हे सर्वोत्तम प्रभो ! आपकी लीलाओं का गान महान् अमृत है, उसी में मेरा चित्त मग्न रहता है, अतएव इस संसार रूपी वैतरणी में भयभीत नहीं हूँ, अपितु मैं तो अज्ञानी जीवों के विषय में शोच रहा हूँ । उस सबो का चित्त इस महान् अमृतरूप आपकी लीलाओं के गान के विपरीत रहता है । वे तो इन्द्रिय जन्य सुख के लिए संसार का भार वहन करते हैं ।।४३।।

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामा मौनं चरन्ति विजनेन परार्थनिष्ठाः ।
नैतन्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ।।४४।।

अन्वयः— हे देव ! स्वविमुक्तिकामाः मुनयः प्रायेण विजने मौनं चरन्ति परार्थ निष्ठाः न एतान् कृपाणन् विहाय एकः विमुमुक्षुः न, भ्रमतः अस्य त्वदन्यः शरणं न पश्ये ।।४४।।

अनुवाद— हे भगवन् ! अपनी मुक्ति की कामना से मुनिजन वन में जाकर मौन व्रत धारण कर लेते हैं, वे दूसरों की भलाई के लिए प्रयास नहीं करते हैं । मैं इन बेचारों को छोड़कर अकेले मुक्ति प्राप्त करना नहीं चाहता हूँ और इन वेचारों के लिए आपको छोड़कर दूसरे किसी को इन सबों का रक्षक भी नहीं देखता हूँ ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

त्वं तावन्मुक्तिं गृहाण तांस्तु तत्त्वज्ञा मुनय उपदेक्ष्यन्तीति चेत्तत्राह-प्रायेणेति । न विमुमुक्षे विमुक्तिं नेच्छामि । तर्ह्यन्यं कमपि प्रार्थय मामेव किमिति । निर्बध्नासीति चेदत आह-त्वत्तोऽन्यमस्य जनस्य शरणं न पश्यामि ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें कि तुम मुक्ति प्राप्त कर लो इन सबों को मुनिजन उपदेश करेंगे । इस पर प्रह्लादजी ने **प्रायेण० इत्यादि** श्लोक कहा है अर्थात् प्रायः मुनिजन मुक्ति को प्राप्त करने के लिए वन में जाकर मौन व्रत धारण कर लेते हैं, वे दूसरों की मुक्ति का प्रयास नहीं करते । और मैं इन सबों को छोड़कर अकेले मुक्त होना नहीं चाहता हूँ । इस पर आप यह कह सकते हैं कि तो इसके लिए दूसरे किसी से प्रार्थना करो मुझसे ही क्यों प्रार्थना करते हो? इस पर प्रह्लादजी ने कहा कि आपको छोड़कर इन जीवों का रक्षक किसी दूसरे को मैं देखता ही नहीं हूँ ।।४४।।

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ।
तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः ।।४५।।

अन्वयः— गेहमेधि यत् मैथुनादि सुखं तुच्छं हि, करयोः कण्डूयनेन दुःख दुखम् इव, बहुदुःखभाजः कृपणः इह न तृप्यन्ति कण्डूति वत् मनसिजं धीरः विषहेत् ।।४५।।

अनुवाद— घर में फँसे हुए लोगों के जो मैथुनादि से सुख प्राप्त होता है वह तुच्छ ही है, जैसे दोनों हाथों में खुजली को खुजलने वाले को पहले तो थोड़ा सुख मिलता पर बाद में तो उससे अत्यधिक दु:ख मिलता है। किन्तु ये अज्ञानी जीव बहुत अधिक दु:ख भोगने पर भी विषयभोग से तृप्त नहीं होते हैं, जो धीर पुरुष होते हैं, वे जैसे खुजलाहत को सह लेते हैं उसी तरह वे कामजन्य वेग को भी सह लेते हैं । सहने से ही काम का नाश होता है ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेते स्त्रीसंभोगादिना सुखिन एव न कृपणास्तत्राह-यदिति । करयो: कण्डूयनेन संघर्षणेनेव दु:खमनु दु:खं यस्मिन्। तर्हि द:खत्वादेव ततो निर्विद्य मुच्येरंस्तत्राह-कृपणा: कामुका बहुदु:खभाजोऽपीह गृहमेधिसुखे न तृप्यन्त्यलमिति न मन्यन्ते। कण्डूतिवत्कामस्य दु:सहत्वात् । ननु केचित्कण्डूतिमपि सहन्ते कामं चेत्यत्राह-त्वत्प्रसादात्तु कश्चिद्धीर एव मनसिजं कामं विषहेत् नतु सर्वे । अत्रापि कण्डूतिवदिति दृष्टान्त: ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि स्त्री संभोग इत्यादि करने के कारण ये संसारी जीव भी सुखी ही हैं, ये दु:खी नहीं है, इस पर प्रह्लादजी ने कहा कि जैसे कोई दोनों हाथों से खाज को खुलजाता है तो उसको पहले कुछ सुख मिलता है किन्तु बाद में उससे अत्यधिक कष्ट होता है, इस तरह विषय भोगों का परिणाम अत्यधिक कष्टमय होता है, यदि आप कहें कि विषयभोगों के दु:ख रूप होने के कारण ये सब उससे विरक्त होकर मुक्त हो जायेंगे, तो इस पर प्रह्लादजी कहते हैं कि घरों में फँसे हुए कामुक जीव बहुत अधिक दु:ख को भोग कर भी विषयों को भोगने से तृप्त नहीं होते हैं । जिस तरह खुजली के खुजलाहट के वर्दास्त करना अत्यन्त कठिन होता है उसी तरह काम के वेग के वर्दास्त करना कठिन है । यदि आप कहें कि कुछ लोग तो खुजलाहट और काम के वेग दोनों को सह लेते हैं । इस पर प्रह्लादजी कहते हैं आपकी कृपा से कोई धीर पुरुष ही खुजली की खुजलाहट और काम के वेग को सह पाते हैं सभी नहीं ॥४५॥

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्मव्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्या: ।
प्राय: परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम् ॥४६॥

अन्वय:— मौनव्रत श्रुत तपोध्ययन स्वधर्म व्याख्या रहो, जप समाधय: आपवर्ग्या: प्राय: परं पुरुष ते तु अजितेन्द्रियाणां वार्ता भवन्ति, दाम्भिकानां तु भवन्ति उत न वा ॥४६॥

अनुवाद— मोक्ष प्राप्ति के ये प्रधान साधन हैं । मौन, व्रत, तप, वेदाध्ययन, स्वधर्मपालन, युक्तियों से शास्त्रों की व्याख्या करना, एकान्त सेवन, जप तथा समाधि, हे परम पुरुष जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं है, उनके लिए तो ये सब केवल जीविका के साधन होते है और जो दम्भी जीव हैं, उनके लिए ही तो ये होते हैं कि यह भी नहीं कहा जा सकता है ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

ननु मौनादिभिर्मोक्षसाधनै: सुलभैव तेषामपि मुक्तिस्तत्राह-मौनेति । हे पुरुष अन्तर्यामिन्, ये मौनादयो दश आपवर्ग्या अपवर्गहेतव: प्रसिद्धा: । रहो विविक्तवास: । ते तु प्रायशोऽजितेन्द्रियाणामिन्द्रियभोगायार्थार्थं विक्रीणतां वार्ता जीवनोपाया भवन्ति । दाम्भिकानां तु वार्ता अपि भवन्ति वा न वा । दम्भस्यानियतफलत्वात् ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मौन इत्यादि का पालन करने से उन अज्ञानी जीवों की भी मुक्ति सुलभ ही है । तो

इस पर प्रह्लादजी कहते हैं कि **मौन० इत्यादि** अर्थात् हे अन्तर्यामिन् भगवन् मौन इत्यादि दस मुक्ति की प्राप्ति के साधन बतलाये गये है । **रहः** का अर्थ एकान्त सेवन है । ये सभी साधन जिन लोगों की इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं उन लोगों के इन्द्रियों के भोग के लिए तथा अर्थ प्राप्ति के साधन हैं । वेचने वालों के लिए जीविका के साधन हैं । जो लोग दम्भ करने वाले है उन लोगों के लिए जीविका का भी साधन होते हैं कि नहीं यह भी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह कोई निश्चित नहीं है कि दम्भ का कौन सा फल होगा ।।४६।।

रूपे इमे सदसती तव वेदसृष्टे बीजाङ्कुराविव न चान्यदरूपकस्य ।
युक्ताः समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वां योगेन वह्निमिव दारुषु नान्यतः स्यात् ।।४७।।

अन्वयः— बीजाङ्कुराविव तव इमे सदसती वेद सृष्टे, न चान्यदरूपकस्य युक्ताः योगेन प्रत्यक्षं त्वाम् उभयत्र त्वां विचिन्वते योगेन दारुष वह्निमिव अन्यतः न स्यात् त्वज्ज्ञान मितिशेषः ।।४७।।

अनुवाद— वे दोनों आपके दो रूप बतलाये हैं कारण और कार्य । आप वस्तुतः प्राकृत रूप से रहित हैं, किन्तु इन कार्य और कारण रूपों को छोड़कर आपके ज्ञान का कोई दूसरा साधन नहीं है । जिस तरह मन्थन रूप योग के द्वारा काष्ठ से अग्नि पैदा की जाती है, उसी तरह योगिजन अपनी भक्तियोग के द्वारा कार्य और कारण इन दोनों में आपका प्रत्यक्ष कर ही लेते हैं ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

त्वज्ज्ञानं भक्तिं विना सकामैर्मौनादिभिर्न भवत्येवेत्याह-रूपे इति त्रिभिः । बीजाङ्कुराविव प्रवाहापन्ने इमे सदसती कार्यकारणे एव ते रूपे उपलक्षणभूते वेदेन सृष्टे प्रकाशिते, नच अन्यत् स्वसमवेतं गौरत्वादिकमिव देवदत्तादेः । कुतः । अरूपकस्य प्राकृतरूपादिशून्यस्य, अतो युक्ताः संयता एव भक्तियोगेन प्रत्यक्षं त्वामुभयत्र कार्ये कारणे चानुगतं पश्यन्ति मथनेन दारुषु वह्निमिव । नान्यतः स्यात्वज्ज्ञानमिति शेषः । यद्वा ज्ञानप्रकारमेवाह- एतदुभयमन्यतः प्रधानपरमाण्वादेर्न स्यात्। 'स ऐक्षत' इत्यादिश्रुतेः । अतस्त्वमेव कारणत्वात्सर्वत्रानुस्यूत इति ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

रूपे इत्यादि तीन श्लोकों से प्रह्लादजी यह कहते हैं कि हे भगवन् भक्ति के बिना इन सकाम मौन इत्यादि के द्वारा आपके स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकता है । प्रवाह रूप से कार्य कारण रूप आपके इन दो रूपों को ही वेदों ने प्रकाशित किया, देवदत्त आदि के गौरत्व आदि के समान इसके अतिरिक्त कोई दूसरा रूप वेदों ने नहीं बतलाया हैं । क्योंकि आप तो प्राकृत रूप से रहित हैं, अतएव आपके भक्त जन भक्ति योग के द्वारा आपका साक्षात्कार कार्य एवं कारण इन दोनों रूपों में अनुस्यूत रूप से कर लेते हैं । यह उसी तरह से होता है जिस तरह मंथन के द्वारा काष्ट से अग्नि प्रकट की जाती हैं । इससे भिन्न प्रकार से आपका ज्ञान नहीं हो सकता है। अथवा ज्ञान के प्रकार को ही यहाँ बतलाया गया है । आपका ज्ञान इन दो रूपों से भिन्न प्रधान और परमाणु आदि से सम्भव नहीं है । श्रुति भी कहती है **स ऐक्षत** उस परं ब्रह्म ने सङ्कल्प किया । अतएव कारण होने से आप ही सर्वत्र व्याप्त हैं ।।४७।।

त्वं वायुरग्निरवियदम्बुमात्राः प्राणेन्द्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहश्च ।
सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन्नान्यत्त्वदस्त्यपि मनोवचसा निरुक्तम् ।।४८।।

अन्वयः— हे भूमन् वायुः अग्निः अवनिः वियत, अम्बु, मात्राः, प्राण, इन्द्रियाँ, हृदय चिदनुगहः च सर्व। त्वमेव, सुगणो, विगुणः च, मनोवचसा निरुक्तम् अपि त्वत् अन्यत् नास्ति ।।४८।।

अनुवाद— हे अनन्त प्रभो ! वायु, अग्नि, पृथिवी, आकाश, जल, पञ्चतन्मात्राएँ, प्राण, इन्द्रियाँ, हृदय,

चित्, अहङ्कार सम्पूर्ण जगत् एवं सगुण एवं निर्गण भी आप ही हैं । मन और वाणी के द्वारा जो कुछ भी निरूपित किया जाता है, वह भी आप ही है आपसे पृथक् कुछ भी नहीं है ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

तदेवाह- त्वं वायुरिति । हृदयं मनः । चिच्चित्तम् । अनुग्रहोऽहङ्कारो देवतावर्गो वा । सगुणः स्थूलः । विगुणः सूक्ष्मः। मनश्च वचश्च मनोवचस्तेन निरुक्तं प्रकाशितं किमपि त्वत्तोऽन्यन्नास्ति ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बात को ही **त्वंवायु० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । **हृदयं** अर्थात् मन, **चित्** अर्थात् चित, **अनुग्रहः** अर्थात् अहङ्कार अथवा देवता वर्ग, **सगुणः** अर्थात् स्थूल, **निर्गुणः** अर्थात् सूक्ष्म तथा मन और वाणी से जो भी प्रकाशित किया जाता है वह भी आप ही है । आपसे भिन्न कुछ भी नहीं है ।।४८।।

नैते गुणा न गुणिनो महदादयो ये सर्वे मनः प्रभृतयः सहदेवमर्त्याः ।
आद्यन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वामेवं विमृश्य सुधियो विरमन्ति शब्दात् ।।४९।।

अन्वयः— हे उरुगाय ! गुणाः गुणिनः न ये महदादयः सहदेवमर्त्याः मनः प्रभृतयः सर्वे एते आद्यन्तवन्तः त्वां न विदन्ति, एवं विमृश्य सुधियः शब्दात् विरमन्ति ।।४९।।

अनुवाद— हे समग्रकीर्ति के आश्रय भगवन् ये सत्त्वादि गुण और इन गुणों के परिणाम महदादि, देवता, मनुष्य एवं मन आदि कोई भी आपका स्वरूप जानने में समर्थ नहीं है, इसका कारण है कि ये सब आदि और अन्त वाले हैं और आप तो अनादि एवं अनन्त है । इस प्रकार से ही विचार करके ज्ञानी जन शब्दों की माया से उपस्त हो जाते हैं ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

अभक्तास्तु स्वस्मिन्ननुगतमपि त्वां न जानन्तीत्याह-नैत इति । एते गुणाद्यभिमानिनो देवा आद्यन्तवन्तो जडोपाधित्वादनाद्यन्तं निरुपाधिं त्वां न विदन्ति । हि यस्मात्सुधियो विद्वांस एवं विचार्य शब्दादध्ययनादिव्यापारादुपरमन्ति । त्वामेव समाधिनोपासत इत्यर्थः । तथाच श्रुतिः- 'किमर्था वयमध्येष्यामहे किमर्था वयं यक्ष्यामहे- इति । 'नानुध्यायेद्बहून् शब्दान्वाचो विग्लापनं हि तत्' इति । स्मृतिश्च 'यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति । तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ।' इत्यादिः ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

जो लोग भक्त नहीं होते हैं वे अपने में व्याप्त भी आपको नहीं जान पाते है, इसी बात को **नैते० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । ये सभी गुणों के अभिमानी देवता आदि और अन्त वाले हैं क्योंकि ये जड़ोपाधि है अतएव अनादि एवं अनन्त तथा उपाधि रहित आपको नहीं जान पाते हैं । इसी तरह से विचार करके विज्ञ पुरुष अध्ययन आदि व्यापार से उपरत हो जाते है । समाधि के द्वारा वे आपकी ही उपासना करते हैं । श्रुति भी कहती है- **किमर्था वयं अध्येष्यामहे किमर्थां वयं यक्ष्यामहे** । अर्थात् हमलोग वेदाध्ययन क्यों करे और यज्ञ क्यों करे?। **नानुध्यायेद बहून शब्दान् वाचो विग्लापनं हितत्** अर्थात् बहुत अधिक शब्दों का चिन्तन न करे, वह वाणी की वर्बादी है । स्मृति भी कहती हैं **यदा ते मोहकलिलं० इत्यादि** अर्थात् जब तुम्हारी बुद्धि अज्ञान रूपी कीचड़ को पार कर जायेगी तव तुम श्रोतव्य तथा श्रुत ज्ञानों से निर्विण्य हो जाओगे । इत्यादि ।।४९।।

तत्तेऽर्हत्तम नमःस्तुतिकर्मपूजाः कर्मस्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ।
संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किं भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ।।५०।।

अन्वयः— तत् हे अहत्तम नमः स्तुतिः कर्म पूजाः कर्म चरणयोः स्मृतिः कथायां श्रवणम् षडङ्गया संसेवया विना परमहंसगतौ त्वयि भक्तिं जनः कथं लभेत ।।५०।।

अनुवाद-- हे परम पूज्य प्रभो ! नमस्कार, स्तुति, समस्त कर्मो का समर्पण, सेवा, पूजा, चरण कमल का चिन्तन तथा लीला कथा का श्रवण आपकी सेवा के इन छह अङ्गों के बिना परमहंसो को प्राप्त होने वाले आपमें भक्ति कैसे हो सकती है ? भक्ति के बिना आपकी प्राप्ति कैसे होगी ?।।५०।।

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-तदिति । हे अर्हत्तम, नमःस्तुतिकर्मपूजाः प्रणिपातस्तुतिसर्वकर्मार्पणानि, कर्म च परिचर्या, चरणयोः स्मृतिश्च, कथायां श्रवणं चेत्येवं पडङ्ग्या सम्यक्सेवया विना परमहंसानां गतौ प्राप्ये त्वयि जनः कथं भक्तिं लभेत् । यस्मादेवं भक्तिं बिना न मोक्षो नच भक्तिः संसेवया बिना, अतः प्राक् प्रार्थितं त्वद्दास्ययोगमेव देहीति प्रकरणार्थः ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

तत० इत्यादि श्लोक के द्वारा प्रह्लादजी अपनी स्तुति का उपसंहार करते हैं । वे कहते हैं कि हे परमपूज्य प्रभो ! नमस्कार, स्तुति, सेवा पूजा, साष्टाङ्ग प्रणाम स्तुति सभी कर्मो का समर्पण तथा सेवा आपके चरण कमलों की स्मृति अपकी कथाओं का श्रवण उस तरह से अच्छी तरह से की जाने वाली पडङ्ग सेवा के बिना परमहंस जनों के ही प्राप्यभूत आप में मनुष्य को भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है ? क्योंकि इस प्रकार की भक्ति के बिना मोक्ष नहीं होता है और न भक्ति ही सेवा के बिना हो सकती है । अतएव आपसे मैंने जो प्रार्थना की है आप अपने भक्तों की ही सङ्गति प्रदान करें यह प्रकरणार्थ है ।।५०।।

नारद उवाच

एतावद्वर्णितगुणो भक्त्या भक्तेन निर्गुणः । प्रह्लादं प्रणतं प्रीतो यतमन्युरभाषत ।।५१।।

अन्वयः— एतावत् भक्त्या भक्तेन वर्णित गुणः निर्गुणः प्रीतः यत मन्युः प्रणतं प्रह्लादम् अभाषत ।।५१।।

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से भक्त प्रह्लाद के द्वारा प्रकृति तथा प्राकृत गुणों से रहित श्रीभगवान् के स्वरूप भूत गुणों का वर्णन किया गया । इसके पश्चात् श्रीभगवान् के प्रति विनयावनत प्रह्लाद से प्रसन्न हुए श्रीभगवान् अपने क्रोध को शान्त करके प्रह्लादजी से कहे ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

एतावन्तो वर्णिता गुणा यस्य । यतमन्युरुपसंहृतकोपः ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

प्रह्लादजी के द्वारा जिनके इन सभी स्वरूप भूत गुणों का वर्णन किया गया था ऐसे श्रीभगवान् अपने क्रोध से संवृत कर लिए ।।५१।।

श्रीभगवानुवाच

प्रह्लाद भद्र भद्रं ते प्रीतोऽहं तेऽसुरोत्तम । वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम् ।।५२।।

अन्वयः— हे प्रह्लाद भद्र ते भद्रं हे असुरोत्तम अहं ते प्रीतः अभिमतं वरं वृणीष्व, अहं नृणाम् काम पूरोऽस्मि ।।५२।।

श्रीनृसिंह भगवान् ने कहा

अनुवाद— हे परम कल्याण स्वरूप प्रह्लाद ! तुम्हारा कल्याण होगा हे असुरोत्तम ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम अपने अभिमत वरदान को माँगो । मैं मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाला हूँ ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

कामान्पूरयतीति तथा । यद्वा पुरुपार्थप्रवाहोऽस्मीत्यर्थः ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

कामनाओं को पूर्ण करने वाला अथवा पुरुषार्थों के प्रवाह स्वरूप यह **कामपूरः** का अर्थ है ।।५२।।

मामप्रीणत आयुष्मन्दर्शनं दुर्लभं हि मे । दृष्ट्वा मां न पुनर्जन्तुरात्मानं तप्तुमर्हति ।।५३।।

अन्वयः— हे आयुष्मन् ! अप्रीणतः माम में दर्शनं दुर्लभम् मां दृष्ट्वा जन्तुः पुनः आत्मानं तप्तुं न अर्हति ।।५३।।

अनुवाद— हे आयुष्मन् मुझे प्रसन्न हुए बिना मेरा दर्शन दुर्लभ है, किन्तु जब मेरा दर्शन हो जाता है तब प्राणी के हृदय में किसी प्रकार की जलन नहीं रह जाती है ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

अप्रीणतः अप्रीणयतः । तप्तुमपूर्णकामत्वेन शोचितुम् ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

अप्रीणतः अर्थात् प्रसन्न किए बिना । कामनाओं के पूर्ण नहीं होने शोक करना नहीं रहता है । यह तप्तुम् का अर्थ है ।।५३।।

प्रीणन्ति ह्यथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः । श्रेयस्कामा महाभागाः सर्वासामाशिषां पतिम् ।।५४।।

अन्वयः— अथ घोराः श्रेयस्कामाः महाभागाः साधवः सर्वागाम् आशिषां पतिम् सर्वभावेन पीणन्ति ।।५४।।

अनुवाद— सभी कल्याणकामी परम भाग्यवान् साधुजन जितेन्द्रिय होकर अपनी समस्त वृत्तियों से मुझे इसलिए प्रसन्न करते हैं कि मैं समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाला हूँ ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

प्रीणन्ति तोपयन्ति ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

प्रीणन्ति अर्थात् प्रसन्न करते हैं ।।५४।।

एवं प्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः । एकान्तित्वाद्भगवति नैच्छत्तानसुरोत्तमः ।।५५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रह्लाद चरिते भगवत स्तवो नाम नवमेऽध्यायः ।।९।।

अन्वयः— एवं वरैः लोकप्रलोभनैः प्रलोभ्यमानोऽपि भगवति एकान्तित्वात् असुरोत्तमः तान् नैच्छत् ।।५५।।

अनुवाद— इस तरह बड़े-बड़े लोगों को प्रलोभन में डाल देने वाले वरों के द्वारा प्रलोभित किए जाने पर असुर कुल भूषण प्रह्लादजी श्रीभगवान् के अनन्य प्रेमी होने के कारण उन वरदानों को नहीं प्राप्त करना चाहे ।।५५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के प्रह्लाद चरित के अन्तर्गत भगवत्स्तव नामक नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

एकान्तित्वान्निरूपाधिभक्तत्वात् ।।५५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां नवमोऽध्यायः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

एकान्तित्वात् अर्थात् श्रीभगवान् का स्वाभाविक भक्त होने के कारण ॥५५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के नवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।९।।

* * *

दसवाँ अध्याय

प्रह्लादजी का राज्याभिषेक और त्रिपुरदाह की कथा

नारद उवाच

भक्तियोगस्य तत्सर्वमन्तरायतयार्भकः । मन्यमानो हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह ॥१॥

अन्वयः— तत्सर्वम् भक्तियोगस्य अन्तरायम् मन्यमानः अर्भकः स्मयमानः हृषीकेशं उवाच ह ॥१॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— उन सभी वरदानों को भक्तियोग में विघ्न मानने वाले बालक श्रीप्रह्लादजी कुछ मुस्कुराते हुए श्रीभगवान् से कहने लगें ॥१॥

भावार्थ दीपिका

दशमे त्वनुगृह्यामुं भक्तमन्तर्हिते हरौ । प्रसङ्गाद्धरिणा रुद्रे कृतोऽनुग्रह ईर्यते । तत्सर्वं वरजातम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दशवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि भक्त प्रह्लाद को अनुगृहीत करके श्रीभगवान् जब अन्तर्धन हो गये प्रसङ्गवशात् श्रीहरि ने श्रीशङ्करजी पर कृपा की इस बात का वर्णन किया गया है । **तत्सर्वम्** अर्थात् वरदान समूह ॥१॥

प्रह्लाद उवाच

मा मां प्रलोभयोत्पत्त्यासक्तं कामेषु तैर्वरैः । तत्सङ्गभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः ॥२॥

अन्वयः— उत्पत्त्या कामेषु आसक्तं तैः वरैः माम् मा प्रलोभय । तत्सङ्गभीतः निर्विण्णः मुमुक्षुः त्वाम् उपाश्रितः॥२॥

प्रह्लादजी ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! मैं जन्म से ही विषय भोगों में आसक्त हूँ । अब आप मुझे उन वरदानों द्वारा न लुभाएँ। उन भोगों से डरकर मैं उनसे होने वाली तीव्र वेदना का अनुभव करके उनसे मुक्त होने की अभिलाषा से मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥२॥

भावार्थ दीपिका

उत्पत्त्या स्वभावेनैवासक्तं माम् । तेषां कामानां सङ्गाद्भीतः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

स्वभाव से ही भोगों में आसक्त मैं, उन सबों के भय से भयभीत हूँ ॥२॥

भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेष्वचोदयत् । भवान्संसारबीजेषु हृदयग्रन्थिषु प्रभो ॥३॥

अन्वयः— प्रभो ! भृत्यलक्षण जिज्ञासुः भवान् संसारबीजेषु हृदय ग्रन्थिषु कामेषु अचोदयत् ॥३॥

अनुवाद— हे प्रभो ! मुझमें सेवक के लक्षण हैं कि नहीं इस बात को जानने के लिए आप अपने भक्त को वरदान माँगने के लिए प्रेरित किए हैं । ये विषयभोग हृदय की गाँठ को और मजबूत करने वाले हैं तथा बार-बार जन्म और मृत्यु के चक्र में डालने वाले हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

ननु किमहं भक्तं प्रलोभयामि । नहि किंतु वरं वृणीष्वेति वदतस्तवैवाभिप्रायोऽन्य एवेत्याह-भृत्यलक्षणेति । हृदयस्य ग्रन्थिवद्बन्धकेषु ॥३॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि क्या मैं अपने भक्त को प्रलोभित करता हूँ ? तो ऐसी बात नहीं है किन्तु वरदान माँगो इस तरह से कहने वाले आपका अभिप्राय दूसरा ही हो सकता है । इस बात को प्रह्लादजी **भृत्यलक्षण० इत्यादि** श्लोक से कहे हैं । **हृदयग्रन्थिषु** अर्थात् ग्रन्थि के समान हृदय को बन्धने वाले ॥३॥

नान्यथा तेऽखिलगुरो घटेत करुणात्मनः । यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥४॥

अन्वयः— हे अखिलगुरो ! अन्यथा करुणात्मनः तेन घटेत यस्त आशिषः आशास्ते सः भृत्यः न स वणिक् ॥४॥

अनुवाद— हे जगद्गुरो परीक्षा के सिवा ऐसा कहने का कोई और कारण नहीं दिखता है । क्योंकि आप तो परम दयालु हैं अपने भक्तों को भोगों में फँसाने वाला वरदान कैसे दे सकते हैं । आपसे जो सेवक अपनी कामनाओं की पूर्ति चाहता है, वह भक्त नहीं व्यापारी है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अन्यथाऽनर्थसाधने प्रवर्तनं न घटेतेत्यर्थः । कथमेवं भृत्यलक्षणज्ञानं स्यात्तत्राह-य इति । ते त्वत्तः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

परीक्षा के बिना आप अनर्थ के साधन में कैसे प्रवृत्त कर सकते हैं । यदि आप कहें कि ऐसा करने से भक्त के लक्षण का ज्ञान कैसे हो सकता है ? इस पर प्रह्लादजी कहते हैं— **य० इत्यादि** अर्थात् जो आपसे अपनी कामनाओं की पूर्ति करना चाहता है वह भक्त नहीं बनिया है ॥४॥

आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः । न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन्यो राति चाशिषः ॥५॥

अन्वयः— स्वामिनि आत्मनः आशासानः वै भृत्यः न, भृत्यतः स्वाम्यम् इच्छन् च आशिषः राति न स्वामी ॥५॥

अनुवाद— स्वामी से अपने आशाओं की पूर्ति चाहने वाला भक्त नहीं है, और सेवक से स्वामित्व चाहने वाला यदि उसकी कामनाओं को पूर्ण करता है वह स्वामी नहीं है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

ननु कामनयापि सेव्यसेवकयोः स्वामिभृत्यभावः प्रसिद्धः । सत्यम् । सोपाधिकोऽसौ नतु तात्त्विक इत्याह-स्वामिन्यात्मन आशिषोऽपेक्षमाणो नैव भृत्यः । भृत्यहेतुकमात्मनः स्वाम्यमिच्छन्यो भृत्याय ददाति स च नैव स्वामी ॥५॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि कामना की पूर्ति के द्वारा भी सेव्य एवं सेवक में स्वामी और भृत्य भाव होता है यह प्रसिद्ध है इस पर प्रह्लादजी कहते हैं— आप जो कह रहे हैं वह सोपाधिक स्वामी और भृत्य भाव है । वह तात्त्विक

नहीं है। जो स्वामी से अपने मनोरथ की पूर्ति चाहता है वह भक्त नहीं है। और जो भृत्य से अपने स्वामित्व को चाहने वाला भृत्य की कामनाओं को पूर्ण करता है वह स्वामी नहीं है ॥५॥

अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः । नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव ॥६॥

अन्वयः— अहं तु अकामः त्वद्भक्तः त्वं च अनपाश्रय स्वामी। अन्यथा इह अवयोः राजसेवकयोः इव अर्थो न॥६॥

अनुवाद— मैं आपका निष्काम सेवक हूँ और आप मेरे निरपेक्ष स्वामी हैं। राजा और उसके सेवकों जैसा प्रयोजन वश स्वामी सेवक भाव के समान हमदोनो का स्वामि सेवक भाव रूप संबन्ध नहीं है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

आवयोस्तु तात्त्विकोऽसावित्याह-अहं त्विति । अनपाश्रयो निरभिसन्धिः । अन्यथा कामाद्यभिसन्धिनार्थः प्रयोजनं नास्ति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

हम दोनों का तो सेवक-सेव्य भाव तात्त्विक है इस बात को प्रह्लादजी ने **अहं त्वा॰ इत्यादि** श्लोक में कहा है। अनपाश्रयः अर्थात् अभिसन्धि रहित अर्थात् निरपेक्ष। कामना आदि की अभिसन्धि के द्वारा होने वाले सेवक स्वामी भाव में कोई प्रयोजन नहीं है ॥६॥

यदि रासीश मे कामान्वरांस्त्वं वरदर्षभ । कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥७॥

अन्वयः— हे वरदर्षभ ईश यदि मे कामान् वरान् रासि तदा हृदि कामानां असंरोहः भवत वरं वृणे ॥७॥

अनुवाद— हे वरदानि शिरोमणि प्रभो यदि आप मेरी कामना के अनुसार आप वरदान देना चाहते हैं तो मैं आपसे यही वरदान माँगता हूँ कि मेरे हृदय में कभी भी कामना का बीज अङ्कुरित न होए ॥७॥

भावार्थ दीपिका

ननु तथापि परमोदारस्य मम संतोषार्थं किमपि वृणीष्वेति चेदत आह-यदीति । कामाङ्कुराणामसंहरोहमनुत्पत्तिम् । भवतः सकाशात् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मैं सर्वश्रेष्ठ उदार हूँ मेरे सन्तोष के लिए तुम कोई वरदान माँग लो तो इस पर प्रह्लादजी कहते हैं। मैं आपसे यही वरदान माँगता हूँ कि मेरे मन में कभी कामना का अङ्कुर उत्पन्न न हो ॥७॥

इन्द्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः । ह्री श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना॥८॥

अन्वयः— यस्य जन्मना इन्द्रियाणि मनः प्राणः, आत्मा, धर्मः, धृतिः मतिः ह्रीः श्रीः तेजः स्मृतिः सत्यं च नश्यन्ति॥८॥

अनुवाद— हृदय में कामना के अङ्कुरित होने से इन्द्रियाँ, मन, प्राण, आत्मा धर्म, धृति (धैर्य) मति (बुद्धि) लज्जा, श्री, तेज, स्मृति और सत्य ये सबके सब नष्ट हो जाते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

ननु कामोत्पत्तौ सत्यां को दोषस्तत्राह-इन्द्रियादीनि यस्य जन्मना नश्यन्ति । आत्मा देहः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप पूछें कि कामना की उत्पत्ति होने में कौन सा दोष है इस पर प्रह्लादजी ने बतलाया कि कामना की उत्पत्ति होने से इन्द्रिय इत्यादि नष्ट हो जाते है। आत्मा शब्द शरीर का वाचक है ॥८॥

विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् । तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ॥९॥

अन्वयः— हे पुण्डरीकाक्ष ! यदा मानवः मनसि स्थितान् कामान् विमुञ्चति तर्हि एव भगवत्त्वाय कल्पते ॥९॥

अनुवाद— हे कमलनयन ! मनुष्य जिस समय अपने मन में विद्यमान कामनाओं का परित्याग कर देता उसी समय वह भगवत् स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

कामाभावे गुणमाह-विमुञ्चतीति । भगवत्त्वाय त्वत्समानैश्वर्याय । तथाच श्रुतिः-'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ।' इति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

कामनाओं का अभाव हो जाने पर होने वाले गुणों को प्रह्लादजी **विमुञ्चति० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । मनुष्य भगवान् के ही समान ऐश्वर्य वाला हो जाता है । श्रुति भी कहती है- जब उपासक के हृदय में विद्यमान सभी कामनाओं का परित्याग कर देता है तो वह मर्त्य जीव अमृत हो जाता है । और वह इस लोक में ही ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ॥९॥

नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने । हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥१०॥

अन्वयः— महात्मने पुरुषाय अद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने तुभ्यं भगवते नमः ॥१०॥

अनुवाद— सबके हृदय में विद्यमान रहने वाले उदार शिरोमणि अद्भुत नरसिंह रूपधारी परंब्रह्म परमात्मा आप श्रीभगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

निर्दोषान्कामान्दातुमिच्छन्तं प्रत्याख्यास्यन्नमस्यति नम इति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

निर्दोष कामनाओं को देने की इच्छा वाले श्रीभगवान् का प्रत्याख्यान करने की इच्छा से प्रह्लादजी उनको इस श्लोक से नमस्कार करते हैं ॥१०॥

नृसिंह उवाच

नैकान्तिनो मे मयि जात्विहाशिष आशासतेऽमुत्र च ये भवद्विधाः ।
अथापि मन्वन्तरमेतदत्र दैत्येश्वराणामनुभुङ्क्ष्व भोगान् ॥११॥

अन्वयः— भवद्विधाः ये एकान्तिनः जातु इह अमुत्र च मयि न आशासते अथापि एतत् मन्वन्तरम् अत्र दैत्येश्वराणाम् भोगान् अनुभुंक्ष्व ॥११॥

नृसिंह भगवान् ने कहा

अनुवाद— प्रह्लाद तुम जैसे मेरे एकान्ती भक्त कभी भी मुझसे लौकिक अथवा पारलौकिक वस्तु के लिए कामना नहीं करते हैं, फिर भी मेरे सन्तोषार्थ इस मन्वन्तर पर्यन्त तुम दैत्येश्वरों के समस्त भोगों को भोगो ॥११॥

भावार्थ दीपिका

सत्यमेकान्तभक्तस्त्वं तथापि मदाज्ञा करणीयेत्याह-नेति । मे एकान्तिनः कदाचिदपि इहामुत्र च मय्याशिषो न वाञ्छन्त्येव तथाप्येतन्मन्वन्तरमात्रं भोगान्भुङ्क्ष्व ॥११॥

भाव प्रकाशिका

नरसिंह भगवान् ने कहा प्रह्लाद तुम मेरा ऐकान्तिक भक्त हो फिर भी तुमको मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिए । इस बात को भगवान् ने **नैकान्तिन इत्यादि** श्लोक से कहा है । मेरे जो एकान्ती भक्त होते हैं वे मुझसे इस लोक अथवा परलोक किसी भी वस्तु की प्राप्ति की कामना नही करते हैं । फिर भी इस मन्वन्तर पर्यन्त तुम दैत्येश्वरो के भोगो को भोगो ॥११॥

कथा मदीया जुषमाण: प्रियास्त्वमावेश्य मामात्मनि संतमेकम् ।
सर्वेषु भूतेष्वधियज्ञमीशं यजस्व योगेन च कर्म हिन्वन् ॥१२॥

अन्वय:— मदीया: प्रिया: कथा: जुषमाण: संततम् एकम् माम् आत्मनि आवेश्य योगेन च कर्म हिन्वन् सर्वेषु भूतेषु अधियज्ञं ईशं यजस्व ॥१२॥

अनुवाद— तुम मेरी प्रिय लगने वाली कथाओं का प्रेम पूर्वक सेवन करो, सर्वदा एक मात्र तुमको ही अपने मन में आवेशित करके मेरा दर्शन करते रहो तथा सभी भूतों में अधियज्ञ रूप से विद्यमान मेरे भक्तियों के द्वारा आराधना करके अपने प्रारब्ध कर्मो को क्षीण करो ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि बन्ध: स्यादित्यत आह-कथा इति द्वाभ्याम् । सर्वेषु भूतेषु संतमेकमीशं यज्ञाधिष्ठातारं मामात्मन्यावेश्य यजस्व, तर्ह्यनेनैवापि कर्मणा बन्ध: स्यान्नेत्याह-योगेन मय्यर्पणेन कर्म हिन्वंस्त्यजन् यजस्व ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

यदि तुम कहो कि भोगों को भोगने पर तो कर्मो का बन्धन होगा तो इस पर श्रीभगवान् दो श्लोकों से कहते हैं- सभी भूतों के भीतर आत्मा रूप से विद्यमान एक मात्र नियामक तथा समस्त यज्ञों के अधिष्ठाता मुझको अपनी आत्मा में बैठाकर मेरी पूजा करो । यदि कहो कि इस प्रकार के भी कर्म से बन्धन होगा तो श्रीभगवान् कहते हैं कि सभी कर्मो को मुझको समर्पण रूपयोग के द्वारा कर्मों का परित्याग कर दो ॥१२॥

भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं कलेवरं कालजवेन हित्वा ।
कीर्तिं विशुद्धां सुरलोकगीतां विताय मामेष्यसि मुक्तबन्ध: ॥१३॥

अन्वय:— भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं हित्वा कालजवेन कलेवरं हित्वा सुरलोक गीतां विशुद्धं कीर्तिं विताय मुक्तबन्ध: माम् एष्यसि ॥१३॥

अनुवाद— भोगों के भोगने से प्रारब्ध पुण्य कर्मो को क्षीण करके तथा निष्काम कर्मों के द्वारा पाप कर्मो के फल को नष्ट करके तुम काल के वेग से अपने शरीर का परित्याग करके एवं देवलोक में भी गायी जाने वाली अपनी शुद्ध कीर्ति का विस्तार करके तुम मुझको प्राप्त करोगें ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

किंच भोगेन सुखानुभवेन प्रारब्धं पुण्यं हित्वा मुक्तबन्ध: सन् लोकानुग्रहार्थं कीर्तिं च विस्तार्य मां प्राप्स्यसि । कुशलेन पुण्याचरणेन पापं हित्वेति विभीषामात्रम् । अन्यथा तस्य राज्येऽप्रवृत्ते: । नतु तस्य प्राचीनं पापमस्ति । 'तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात्' इति न्यायात् । 'तत्सुकृतदुष्कृते विधुनुत:' इति श्रुतेश्च । न चेदं प्रारब्धपापाभिप्रायम्, तस्य भोगेनैव क्षयात्, कुशलेन हित्वेति वचनानुपपत्ते: । नचासावविद्वानिति वाच्यम्, भगवतैव कृतार्थत्वस्यानन्तरं वक्ष्यमाणत्वात्। अतएव योगेन कर्म हिन्वन्निनतीदमपि लोकसंग्रहार्थे कर्मणि प्रवर्तितस्यानुद्वेगमात्रायेति सर्वमनवद्यम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

सुखों का अनुभव करने से प्रारब्ध पुण्य कर्मों के फल को विनष्ट करके बन्धनों से मुक्त होकर तुम लोकों पर कृपा करने के लिए अपनी कीर्ति का विस्तार करके तुम मुझको प्राप्त कर लोगे । निष्काम पुण्यचरण के द्वारा पापों का परित्याग करके । यह भय मात्र है । यदि ऐसा नहीं कहें तो प्रह्लाद राज्य करने में प्रवृत्त ही नहीं होंगे। प्रह्लाद का पूर्व जन्म का पाप है ही नहीं, महर्षि बादरायण भी कहते हैं— **तदधिगमे उत्तरपूर्वाघयोरश्लेष विनाशौ तदव्यपदेशात्** । अर्थात् विद्या की प्राप्ति हो जाने पर उत्तराघ का संश्लेषाभाव हो जाता है और पूर्वाघ का विनाश हो जाता है । यह श्रुतियाँ ही बतलाती हैं । श्रुति भी कहती **तत्सुकृत दुष्कृते धुनुते** । मुक्त जीव अपने पाप तथा पुण्य रूप कर्मों का परित्याग कर देता है । यह श्रुति प्रारब्ध पापाभिप्राय विषयिणी नहीं है, क्योंकि उसका तो भोग से ही नाश हो गया था । प्रारब्ध कर्म विषयिणी मानने पर कुशलेन हित्वा यह वचन भी अनुपपन्न हो जायेगा । श्रीप्रह्लादजी को अविद्या प्राप्त भी नहीं कहा जा सकता है । क्योंकि इसके पश्चात् श्रीभगवान् ही प्रह्लादजी का कृत कृत्य कहेंगे । अतएव योग के द्वारा कर्मों का परित्याग करके यह भी कथन लोकसंग्रहार्थ है । वह कर्म करने वालों के उद्वेग राहित्य के लिए कहा गया है । इस सबकुछ साफ हो गया ।।१३।।

स एतत्कीर्तयेन्मह्यं त्वया गीतमिदं नरः । त्वं च मां च स्मरन्काले कर्मबन्धात्प्रमुच्यते ।।१४।।

अन्वयः— यः नरः त्वया गीतमिदं कीर्तयेत् त्वांच मां च स्मरन् काले कर्मबन्धात् प्रमुच्यते ।।१४।।

अनुवाद— जो मनुष्य तुम्हारे द्वारा की गयी इस स्तुति का गायन करेगा वह तुमको तथा मुझको स्मरण करते हुए मृत्यु का समय आने पर कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जायेगा ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

किंच-य इति । त्वां च मां चेदं मच्चरित्रं च स्मरन्नेतत्स्तोत्रं यद्वा कीर्तयेत् सोऽपि कर्मबन्धाद्विमुच्यते कुतस्तव बन्धशङ्केत्यर्थः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

जो मनुष्य तुमको तथा मेरे इस चरित का स्मरण करते हुए तथा इस स्तोत्र का कीर्तन करते हुए वह भी कर्म के बन्धन से मुक्त हो जायेगा, अतएव तुमको कर्मबन्ध की शङ्का क्यों हो रही है ?।।१४।।

प्रह्लाद उवाच

वरं वरय एतत्ते वरदेशान्महेश्वर। यदनिन्दत्पिता मे त्वामविद्वांस्तेज ऐश्वरम् ।।१५।।
विद्धामर्षाशयः साक्षात्सर्वलोकगुरुं प्रभुम् । भ्रातृहेति मृषादृष्टिस्त्वद्भक्ते मयि चाघवान्।।१६।।
तस्मात्पिता मे पूयेत दुरन्ताद्दुस्तरादघात् । पूतस्तेऽपाङ्गसंदृष्टस्तदा कृपणवत्सल ।।१७।।

अन्वयः— हे महेश्वर ! वरदेशात् ते एतत् वरं वरये यत् अविद्वान् मे पिता ऐश्वरं तेज अनिन्दन् भ्रातृहा इति मिथ्या दृष्टिः विद्धामर्शाशयः साक्षात् सर्वलोकगुरुम् प्रभुम् त्वद्भक्ते मयि च अधवान् तस्मात् दुरन्तात् दुस्तरात् अघात् तदा ते अपाङ्गसंदृष्टःहे कृपणवत्सल मे पिता पूयेत ।।१५-१७।।

प्रह्लादजी ने कहा

अनुवाद— हे महेश्वर ! वरदान देने वालों के भी स्वामी आप से मैं यह वरदान माँगता हूँ कि मेरे पिता आपके ईश्वरीय तेज को तथा सर्वशक्तिमान चराचर गुरु साक्षात् आपको नहीं जान सकने के कारण आपकी निन्दा किए । इस विष्णु ने मेरे भाई हिरण्याक्ष को मारा है, इस मिथ्या दृष्टि के कारण मेरे पिता क्रोध के आवेश को नहीं सह सके उसी के कारण आपके भक्त मुझसे भी द्रोह किया, हे दीनबन्धो ! यद्यपि आपकी दृष्टि पड़ते ही

वे पवित्र हो गये थे फिर भी मैं आप से यह प्रार्थना करता हूँ कि उस शीघ्र समाप्त होने वाले दुस्तर दोष से मेरे पिता पवित्र हो जायें ॥१५-१७॥

भावार्थ दीपिका

ईश्वराज्ञया प्राप्तकर्माधिकार: सन्पितुर्निष्कृतिं प्रार्थयते त्रिभि: । वरं वरणीयमेतदपरं वृणे । ते त्वत: । विद्धोऽमर्षेण क्रोधेनाशयो यस्य । तेऽपाङ्गेन संदृष्टोऽत: पूत एवं तथापि भो कृपणवत्सल, कार्पण्येन प्रार्थय इत्यर्थ: ॥१५-१७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की आज्ञा से कर्मों के करने में अधिकार प्राप्त प्रह्लादजी तीन श्लोकों से अपने पिता की पापों से मुक्ति की प्रार्थना करते है । वरण करने योग्य एक वरदान आप से माँगता हूँ उनका अन्त:करण क्रोध से विद्ध हो गया था यह विद्धनाशांशय: का अर्थ है । आपकी दृष्टि पड़ने से ही पवित्र हो गये थे मेरे पिता फिर भी हे दीनवन्धो ! दीनता के कारण मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ ॥१५-१७॥

श्रीभगवानुवाच

त्रि:सप्तभि: पिता पूत: पितृभि: सह तेऽनघ । यत्साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावन: ॥१८॥

अन्वय:— हे अनघ! ते पिता त्रिसप्तभि: पितृभि: सह पूत: हे साधो यत् अस्य गृहे भवान् वै कुलपावन: जात:॥१८॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे निष्पाप प्रह्लादजी ! तुम्हारे पिता अपने इक्कीस पीढी के पितरों के साथ पवित्र हो गये हैं, क्योंकि उनके घर में तुम जैसे वंश को पवित्र करने वाला पुत्र उत्पन्न हुआ है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

यद्यपि कश्यपो मरीचिर्ब्रह्मा चेति तत्पितुस्त्रय एव पूर्वजास्तथापि त्रि:सप्तभि: सहेति प्राक्कल्पगतपित्रभिप्रायेणोक्तम्। यद्यस्मात् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि तुम्हारे पिता के तीन ही पूर्वज हुए है, कश्यप, मरीचि और ब्रह्मा फिर भी तुम्हारे पिता अपने पूर्वकल्प के पूर्वजो को मिलाकर इक्कीस पीढी के पूर्वजो के साथ पवित्र हो गये हैं क्योंकि उनके घर में अपने वंश को पवित्र वना देने वाला तुम पुत्र उत्पन्न हुए हो ॥१८॥

यत्र यत्र च मद्भक्ता: प्रशान्ता: समदर्शिन: । साधव: समुदाचारास्ते पूयन्त्यपि कीकटा: ॥१९॥

अन्वय:— यत्र-यत्र च साधव: समुदाचारा: समदर्शीन: प्रशान्ता: मद्भक्ता ते कीकटा: अपि पूयन्ते ॥१९॥

अनुवाद— जिन-जिन स्थानों में साधु स्वभाव वाले सदाचार परायण, समदर्शी, शान्त मेरे भक्त रहते हैं, वे स्थान चाहे कीकट ही क्यों न हों पवित्र हो जाते है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

सम्यगुक्तम आचारो येषां ते कीकटा अपि देशास्ततुल्यवंशाश्च पूयन्ते शुद्धा भवन्ति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

उत्तम आचरण वाले मेरे भक्तजन जहाँ रहते हैं वे कीकट देश भी पवित्र हो जाते हैं ॥१९॥

सर्वात्मना न हिंसन्ति भूतग्रामेषु किंचन । उच्चावचेषु दैत्येन्द्र मद्भावेन गतस्पृहा: ॥२०॥

अन्वय:— हे दैत्येन्द्र ! मद्भावेन गतस्पृहा: उच्चावचेषु भूतेषु, सर्वात्मना किंचन न हिंसन्ति ॥२०॥

अनुवाद— हे दैत्येन्द्र ! प्रह्लाद मेरी भक्ति भावना से जिनकी कामनाएँ नष्ट हो गयी हैं तथा सर्वत्र आत्म भाव के कारण वे मेरे भक्त छोटे बड़े किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

ननु त्वद्भक्तानामयं महिमेति न चित्रम्, अहं तु तादृशो न भवामीति चेत्तत्राह-सर्वात्मनेति द्वाभ्याम् । मद्भावेन मद्भक्त्या विगता स्पृहा येषाम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि आपके भक्तों की ऐसी महिमा है इसमें कोई भी आश्चर्य नहीं है । मैं तो उस प्रकार नहीं हूँ तो इस पर भगवान् ने दो श्लोकों से कहा मेरी भक्ति के कारण मेरे भक्तों को किसी वस्तु की स्पृहा नहीं होती हैं ॥२०॥

भवन्ति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः । भवान्मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक् ॥२१॥

अन्वयः— त्वामनुव्रताः लोके ये पुरुषामद्भक्ताः भवन्ति, भवान् खलु सर्वेषाम मद्भक्तानां प्रतिरूपधृक् ॥२१॥

अनुवाद— संसार में जो तुम्हारे अनुयायी होंगे वे भी मेरे भक्त हो जायेंगे तो तुम तो मेरे सभी भक्तों के आदर्श हो ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

त्वामनुगता ये केचित्पुरुषास्तेऽप्येवंलक्षणाः सन्तो मद्भक्ता भवन्त्यतो भवान्मे भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृगुपमानास्पदम्। श्रेष्ठः खल्वित्यर्थः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

तुम्हारा अनुसरण करने वाले जो कोई भी पुरुष होंगे, वे भी इसी तरह के आचरण वाले होने के कारण मेरे भक्त होंगे तुम तो मेरे सभी भक्तों में उपमान स्वरूप अर्थात् श्रेष्ठ हो ॥२१॥

कुरु त्वं प्रेतकार्याणि पितुः पूतस्य सर्वशः । मदङ्गस्पर्शनेनाङ्ग लोकान्यास्यति सुप्रजाः ॥२२॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! मदङ्गस्पर्शनेन सर्वशः पूतस्य पितुः प्रेतकार्याणि कुरु सुप्रजा लोकान् यास्यति ॥२२॥

अनुवाद— वत्स ! मेरे अङ्गों का स्पर्श हो जाने के कारण पूर्ण रूप से पवित्र बने हुए अपने पिता की अन्त्येष्टि कर्म को करो । तुम जैसे सन्तान के कारण यह उत्तम लोकों में जायेगा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

मदङ्गस्पर्शनेन सर्वशः पूतस्य ते पितुः पापशङ्कैव नास्ति । केवलं पुत्रकृत्यानि प्रेतकार्याणि कुरु ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

मेरे अङ्गों का स्पर्श हो जाने से पूर्ण रूप से पवित्र बने होने के कारण इसमें पाप की शङ्का ही नहीं फिर भी तुम अपने पिता की अन्त्येष्टि क्रिया करो ॥२२॥

पित्र्यं च स्थानमातिष्ठ यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः । मय्यावेश्य मनस्तात कुरु कर्माणि मत्परः ॥२३॥

अन्वयः— हे तात ! पित्र्यं च स्थानमातिष्ठ ब्रह्मवादिभिर्यथोक्तं मयि मनः आवेश्य मत्परः कर्माणि कुरु ॥२३॥

अनुवाद— वत्स ! तुम अपने पिता के पद पर स्थित हो जाओ और वेदवादी मुनियों के अनुसार मुझमें अपना मन लगाकर तथा मेरी शरण में रहकर अपने समस्त कर्मों को करो ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मवादिभिर्वेदवादिभिः । उक्तमनतिक्रम्य मत्परः सत्कर्माणि कुरु ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

वेदवादियो के कथनानुसार मेरे परायण होकर सारे कर्मों को करो ॥२३॥

नारद उवाच

प्रह्लादोऽपि तथा चक्रे पितुर्यत्साम्परायिकम् । यथाह भगवान् राजन्नभिषिक्तो द्विजोत्तमैः ॥२४॥

अन्वयः— राजन् ! यथा भगवान् आह द्विजोत्तमैः अभिषिक्तः प्रह्लादः अपि पितुः यत्साम्परायिकम् चक्रे ॥२४॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! जैसा कि भगवान् ने कहा श्रेष्ठ ब्राह्मणों के द्वारा अभिषिक्त होकर प्रह्लादजी ने भी अपने पिता की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

प्रसादसुमुखं दृष्ट्वा ब्रह्मा नरहरिं हरिम् । स्तुत्वा वाग्भिः पवित्राभिः प्राह देवादिभिर्वृतः ॥२५॥

अन्वयः— नरहरिं हरिम् प्रसादसुमुखं दृष्ट्वा देवादिभिः वृतः ब्रह्मा पवित्राभिः वाग्भिः स्तुत्वा प्राह ॥२५॥

अनुवाद— नृसिंह रूपधारी श्रीभगवान् को प्रसन्न देखकर देवताओं से घिरे हुए ब्रह्माजी अपनी पवित्र वाणियों से स्तुति करके कहे ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

देवदेवाखिलाध्यक्ष भूतभावनपूर्वज । दिष्ट्या ते निहतः पापो लोकसंतापनोऽसुरः ॥२६॥

अन्वयः— हे देवदेव अखिलाध्यक्ष भूतभावन पूर्वज ! दिष्ट्या लोकसंतापनः असुरः ते हतः ॥२६॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— हे देवाधिदेव हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् हे जीवों के जीवनदाता यह बड़े सौभाग्य की बात हैं कि इस सम्पूर्ण जगत् को दुःख देने वाले असुर को आपने मार दिया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

योऽसौ लब्धवरो मत्तो न बध्यो मम सृष्टिभिः । तपोयोगबलोन्नद्धः समस्तनिगमानहन् ॥२७॥

अन्वयः— यः असौ मत्तः लब्धवरः मम सृष्टिभिः न वध्यः तपोयोग बलोनद्धः समस्त निगमान् अहन् ॥२७॥

अनुवाद— इसने मुझसे यह जो वरदान प्राप्त कर लिया था कि मेरी सृष्टि का कोई भी जीव तुम्हें नहीं मार सकेगा, उससे तथा तपस्या योग तथा बल के कारण यह उन्मत्त हो गया था इसने सम्पूर्ण वेदविधियों का उल्लंघन कर दिया ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

मम सृष्टिभिर्मया सृष्टैर्भूतैः । समस्तान्निगमान्धर्मानित्यर्थः । अहन् हतवान् । स त्वया हतः एतद्दिष्ट्या भद्रम् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

मेरी सृष्टि के किसी भी जीव से तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी । इसने सभी धर्मों का भङ्ग कर दिया । सौभाग्यवशात् आपने इसे मार दिया ॥२७॥

दिष्ट्यास्य तनयः साधुर्महाभागवतोऽर्भकः । त्वया विमोचितो मृत्योर्दिष्ट्या त्वां समितोऽधुना ॥२८॥

अन्वयः— दिष्ट्या अस्य तनयः साधुः महाभागवतः अर्भकः त्वया मृत्यो विमोचितः दिष्ट्या त्वां अधुना समितः॥२८॥

अनुवाद— यह भी सौभाग्य की बात है कि इसका पुत्र साधु स्वभाव का महाभागवत है और इस बच्चे को आपने मृत्यु के मुख से बचा लिया है । यह भी सौभाग्य की बात है कि यह आपके शरणागत है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

समितः सम्यक् प्राप्तः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

अच्छी तरह से आपके शरणागत है ॥२८॥

एतद्वपुस्ते भगवन्ध्यायतः प्रयतात्मनः । सर्वतो गोप्तृ संत्रासान्मृत्योरपि जिघांसतः ॥२९॥

अन्वयः— भगवन् ते एतद् वपुः प्रयतात्मनः ध्यायतः संत्रासात् सर्वतः गोप्तृ, जिघांसतः मृत्योरपि ॥२९॥

अनुवाद— हे भगवन् ! एकाग्रमना होकर आपके इस रूप का ध्यान करने वाले को आपका यह रूप उसको सभी प्रकार के भयों से बचा लेगा, यहाँ तक कि मारने के लिए आई हुई मृत्यु से भी उसे बचा लेगा॥२९॥

भावार्थ दीपिका

सर्वतः संत्रासात् । गोप्तृ रक्षकम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

आपका यह रूप हर प्रकार के भय से रक्षा करने वाला है ॥२९॥

नृसिंह उवाच

मैवं वरोऽसुराणां ते प्रदेयः पद्मसंभव । वरः क्रूरनिसर्गाणामहीनाममृतं यथा ॥३०॥

अन्वयः— हे पद्मसंभव ! असुराणां एवं वरः ते मा प्रदेयः क्रूरनिसर्गाणां वरः अहीनां अमृतं यथा ॥३०॥

नरसिंह भगवान् ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! आपको असुरों को ऐसा वरदान नहीं देना चाहिए क्रूर स्वभाव वाले को वरदान सर्पों को दूध पिलाने जैसा है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

एवं वरस्त्वया न प्रदेयः । क्रूरो निसर्गः स्वभावो येषाम् । अमृतं क्षीरम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

आपको ऐसा वरदान नहीं देना चाहिए क्रूर स्वभाव वालों के लिए वरदान सर्पों को दूध पिलाने जैसा है॥३०॥

नारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवान् राजंस्तत्रैवान्तर्दधे हरिः । अदृश्यः सर्वभूतानां पूजितः परमेष्ठिना ॥३१॥

अन्वयः— राजन् ! परमेष्ठिना पूजितः भगवान् हरिः इत्युक्त्वा तत्रैव सर्वभूतानाम् अदृश्यः अन्तर्दधे ॥३१॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ब्रह्माजी की पूजा स्वीकार करके नरसिंह भगवान् इस प्रकार से कहकर वहीं पर अन्तर्धान होकर सबों के लिए अदृश्य हो गये ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

ततः संपूज्य शिरसा ववन्दे परमेष्ठिनम् । भवं प्रजापतीन्देवान्प्रह्लादो भगवत्कलाः ॥३२॥

अन्वयः— ततः प्रह्लादः भगवत् कलाः परमेष्ठिनम्, भवं, प्रजापतीन् देवान् संपूज्य शिरसा ववन्दे ॥३२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् प्रह्लादजी श्रीभगवान् की कला स्वरूप ब्रह्माजी शङ्करजी प्रजापतियों तथा देवताओं को अच्छी तरह से पूजा करके उन सबों को शिर झुकाकर स्तुति किए ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

ततः काव्यादिभिः सार्धं मुनिभिः कमलासनः । दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादमकरोत्पतिम् ॥३३॥

अन्वयः— ततः कमलासनः काव्यादिभिः मुनिभिः सार्धं प्रह्लादम् दैत्यानां दानवानां च पतिम् अकरोत् ॥३३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् ब्रह्माजी शुक्राचार्य आदि मुनियों के साथ प्रह्लादजी को सभी दैत्यों और दानवों के स्वामी बनाये ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

प्रतिनन्द्य ततो देवाः प्रयुज्य परमाशिषः । स्वधामानि ययू राजन्ब्रह्माद्याः प्रतिपूजिताः ॥३४॥

अन्वयः— राजन् ततः ब्रह्माद्याः देवाः प्रतिनन्द्य प्रतिपूजिताः परमाशिषः प्रयुज्य स्वधामनि गताः ॥३४॥

अनुवाद— राजन् युधिष्ठिर ! उसके पश्चात् ब्रह्मा आदि देवता प्रह्लादजी का अभिनन्दन करके उसके पश्चात् सत्कृत हुए और प्रह्लादजी को श्रेष्ठ आशीर्वाद प्रदान करके अपने-अपने लोक में चले गये ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

एवं तौ पार्षदौ विष्णोः पुत्रत्वं प्रापितौ दितेः । हृदि स्थितेन हरिणा वैरभावेन तौ हतौ ॥३५॥

अन्वयः— एवं तौ विष्टणोः पार्षदौ दिते पुत्रत्वं प्राप्तौ हृदि स्थितेन वैरभावेन हरिणा तौ हतौ ॥३५॥

अनुवाद— इस प्रकार भगवान् विष्णु के जय-विजय नामक दोनों पार्षद दिति के पुत्र हो गये और हृदय में विद्यमान वैर भाव के कारण वे दोनों श्रीहरि के द्वारा मारे गये ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

शिशुपालदन्तवक्त्रयोर्द्विषतोः श्रीकृष्णसायुज्यं कथमिति यत्पृष्टं तदेव तयोः पूर्वजन्मकथनादिभिरुपपादितमुपसंहरति- एवमिति सप्तभिः । दितेः पुत्रत्वं प्राप्तौ । विप्रशापेनेत्युत्तरस्यानुषङ्गः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करने वाले शिशुपाल एवं दन्तवक्त्र को श्रीभगवान् का सायुज्य कैसे हुआ यह जो युधिष्ठिर ने पूछा था वही उन दोनों के पूर्व जन्म की कथा के द्वारा प्रतिपादन का उपसंहार **एवम० इत्यादि** सात श्लोकों के द्वारा किया गया है । वे दोनों ब्राह्मण के शाप से दिति के पुत्र हुए यह आगे के श्लोक से अन्वय है ॥३५॥

पुनश्च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः । कुम्भकर्णदशग्रीवौ हतौ तौ रामविक्रमैः ॥३६॥

अन्वयः— पुनः च विप्रशापेन तो कुम्भकर्णदशग्रीवौ राक्षसौ वभूवतुः तौ राम विक्रमैः हतौ ॥३६॥

अनुवाद— पुनः ब्रह्मण के शाप के कारण वे दोनों रावण और कुम्भकर्ण नामक राक्षस और वे दोनों भगवान् श्रीराम के पराक्रम के द्वारा मारे गये ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

शयानौ युधि निर्भिन्नहृदयौ रामसायकैः । तच्चित्तौ जहतुर्देहं यथा प्राक्तनजन्मनि ॥३७॥

अन्वयः— रामसायकैः निर्भिन्न हृदयौ युधिशयानौ प्राक्तन जन्मनि यथा तच्चितौ देहं जहतुः ॥३७॥

अनुवाद— भगवान् श्रीराम के बाणों से उन दोनों का हृदय फट गया था वे पूर्वजन्म के ही समान श्रीराम में ही अपने मन को लगाये हुए युद्ध के मैदान में सो गये ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तच्चित्तौ श्रीरामे चित्तं ययोस्तौ ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

तच्चितौ अर्थात् भगवान् श्रीराम में ही अपने मन को लगाये हुए ॥३७॥

ताविहाथ पुनर्जातौ शिशुपालकरूषजौ । हरौ वैरानुबन्धेन पश्यतस्ते समीयतुः ॥३८॥

अन्वयः— अथ तौ इह पुनः शिशुपालकरूषजौ जातौ हरौ वैरानुबन्धेन ते पश्यतः समीयतुः ॥३८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् वे दोनों इस संसार में शिशुपाल और करूषज (दन्तवक्त्र) के रूप में उत्पन्न हुए। श्रीहरि में वैरभाव होने के कारण वे दोनों आपके सामने ही श्रीभगवान् के सायुज्य को प्राप्त कर लिए ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

करूषजो दन्तवक्त्रः । हरौ सायुज्यं समीयतुः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

करूषज शब्द से दन्तवक्त्र को कहा गया है वे दोनों श्रीहरि में सायुज्य को प्राप्त कर लिये ॥३८॥

एनः पूर्वकृतं यत्तद्राजानः कृष्णवैरिणः । जहुस्त्वन्ते तदात्मानः कीटः पेशस्कृतो यथा ॥३९॥

अन्वयः— कृष्णवैरिणः राजानः यत् पूर्वकृतं एनः तदात्मानः पेशस्कृतः कीटो यथा अन्ते जहुः ॥३९॥

अनुवाद— राजन् भगवान् श्रीकृष्ण से शत्रुता करने वाले सभी राजागण अन्त समय में भगवान् श्रीकृष्ण का स्मरण करके तद्रूप होकर अपने पूर्व कृत पापों से सदा के लिए मुक्त हो गये । जैसे भृङ्गी से पकड़ा गया कीड़ा भय के ही कारण भृङ्गी का ही रूप प्राप्त कर लेता है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

कृष्णनिन्दादिना पूर्वकृतं च यदेनः पापं तद्ध्यानेन तदात्मानः सन्तो जहुः । तदात्मत्वे दृष्टान्तः-कीटः पेशस्कृतो ध्यानेन यथा तदात्मा भवतीति ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की निन्दा आदि करने के कारण पहले के जो पाप, उसको श्रीभगवान् का ध्यान करने से भगवत् स्वरूप होकर त्याग दिए । तदात्मत्व का उदाहरण है कीड़ा भृङ्गी का ध्यान करके जैसे भृङ्गी ही हो जाता है, वैसे ही ॥३९॥

यथा यथा भगवतो भक्त्या परमयाऽभिदा । नृपाश्चैद्यादयः सात्म्यं हरेस्तच्चिन्तया ययुः ॥४०॥

अन्वयः— भक्त्या यथा यथा भगवत:अभिदा परमया भक्त्या चैद्यादयः नृपाः तच्चिन्तया हरेः सात्म्यं ययुः ॥४०॥

अनुवाद— जिस तरह श्रीभगवान् के प्रियभक्त अपनी भेदभाव रहित अनन्या भक्ति के द्वारा भगवत्स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं, उसी तरह शिशुपाल आदि राजागण श्रीभगवान् का वैरभाव से चिन्तन करने के कारण उनके सारूप्य को प्राप्त कर लिए ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

अभिदा भेददर्शनशून्यया । हरेः सात्म्यं सारूप्यम् ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

भेदभाव से रहित अनन्या भक्ति के द्वारा । **हरेः सात्म्यम्** अर्थात् श्रीहरि के सारूप्य को ॥४०॥

आख्यातं सर्वमेतत्ते यन्मां त्वं परिपृष्टवान् । दमघोषसुतादीनां हरेः सात्म्यमपि द्विषाम् ॥४१॥

अन्वयः— यान्मां त्वं परिपृष्टवान् यत् हरेः द्विषाम् दमघोषसुतादीनां अपि सात्म्यम् एतत् सर्व ते आख्यातम् ॥४१॥

अनुवाद— युधिष्ठिर आपने यह जो मुझसे पूछा था कि श्रीहरि से द्वेष करने वाले शिशुपाल आदि को सारूप्य की प्राप्ति कैसे हुई, इन सारी बातों का उत्तर मैंने दे दिया ॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४१॥

एषा ब्रह्मण्यदेवस्य कृष्णस्य च महात्मनः । अवतारकथा पुण्या वधो यत्रादिदैत्ययोः ॥४२॥

अन्वयः— एषा ब्रह्मण्यदेवस्य महात्मनः कृष्णस्य पुण्या अवतार कथा यत्र आदि त्ययोः वधः ॥४२॥

अनुवाद— यह ब्रह्मण्यदेव परमात्मा श्रीकृष्ण का यह परम पवित्र अवतार चरित्र है । जिसमें कि दोनों आदि दैत्यों हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु का वध वर्णित है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

प्रह्लादचरितार्थमुपसंहरति-एषेति चतुर्भिः । अवतारः श्रीनृसिंहरूपस्तस्य कथा आख्यातेति शेषः ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

एषा० इत्यादि चार श्लोकों द्वारा नारदजी प्रह्लाद चरित के अर्थ का उपसंहार किए है । नरसिंह रूप अवतार की कथा वर्णित है ॥४२॥

प्रह्लादस्यानुचरितं महाभागवतस्य च । भक्तिर्ज्ञानं विरक्तिश्च याथात्म्यं चास्य वै हरेः॥४३॥
सर्गस्थित्यप्ययेशस्य गुणकर्मानुवर्णनम् । परावरेषां स्थानानां कालेन व्यत्ययो महान्॥४४॥

अन्वयः— महाभागवतस्य प्रह्लादस्य अनुचरितं भक्तिः ज्ञानं विरक्तिः च सर्ग स्थिति अप्ययेशस्य अस्य हरेः वै याथात्म्यं गुण कर्मानुवर्णनम् परावरेषां स्थानानां महान् व्यय: ॥४३-४४॥

अनुवाद— इस प्रसङ्ग में महाभागवत प्रह्लाद का चरित्र भक्ति ज्ञान वैराग्य श्रीहरि के यथार्थ स्वरूप, उनके द्वारा किए जाने वाले जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय का; श्रीभगवान् के दिव्य गुणों और लीलाओ का तथा देवों तथा दैत्यों के स्थानों में होने वाले महान् परिवर्तन का भी वर्णन किया गया है ॥४३-४४॥

भावार्थ दीपिका

प्रह्लादस्यानुचरितमित्यादेः समाप्रातमिति तृतीयेनान्वयः । अस्येत्यनेनोक्तं सर्गस्थित्यप्ययानामीशस्य हरेर्याथात्म्यं तत्त्वम्, अनेन कृतं हरेर्गुणकर्मानुवर्णनं चेत्यर्थः । परावरेषां देवदैत्यादीनां यानि स्थानानि तेषां व्यत्ययो विपर्यासः ॥४३-४४॥

भाव प्रकाशिका

देवों तथ दैत्यों के स्थानों का होने वाला महान उलट फेर भी वर्णित है ॥४३-४४॥

धर्मो भागवतानां च भगवान्येन गम्यते । आख्यानेऽस्मिन्समाम्नातमाध्यात्मिकमशेषत: ॥४५॥

अन्वय:— भागवतानां च धर्म; येन भगवान् गम्यते अस्मिन् आख्याने अशेषत: आध्यात्मिकम् आख्यातम् ॥४५॥

अनुवाद— इस आख्यान में जिसके द्वारा भगवान् का ज्ञान होता है उस भागवत धर्म का वर्णन है। अध्यात्म के भी सम्बन्ध में जानने योग्य सारी बातें इसमें वर्णित हैं ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

आध्यात्मिकमात्मानात्मविवेकादि ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

आध्यात्मिक अर्थात् आत्मा एवं अनात्मा के विवेक आदि ॥४५॥

य एतत्पुण्यमाख्यानं विष्णोर्वीर्योपबृंहितम् । कीर्तयेच्छ्रद्धया श्रुत्वा कर्मपाशैर्विमुच्यते ॥४६॥

अन्वय:— य: एतत् विष्णो: वीर्मोप बृंहितं पुण्यम् आख्यानं श्रद्धया कीर्तयेत् श्रुत्वा कर्मपाशै: विमुच्यते ॥४६॥

अनुवाद— भगवान् विष्णु के पराक्रम से पूर्ण इस पवित्र आख्यान का जो श्रद्धापूर्वक कीर्तन करता हैं अथवा सुनता है, वह कर्मो के बन्धन से मुक्त हो जाता हैं ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

एतच्छ्रवणादिफलमाह-य इति द्वाभ्याम् । एतच्छ्रुत्वा य: कीर्तयेत् ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

य० इत्यादि दो श्लोकों से इस आख्यान के श्रवण आदि फल बतलाते हैं इस पवित्र आख्यान को सुनकर जो कीर्तन करता है ॥४६॥

एतद्य आदिपुरुषस्य मृगेन्द्रलीलां दैत्येन्द्रयूथपवधं प्रयत: पठेत ।
दैत्यात्मजस्य च सतां प्रवरस्य पुण्यं श्रुत्वाऽनुभावमकुतोभयमेति लोकम् ॥४७॥

अन्वय:— य: आदिपुरुषस्य एतद् मृगेन्द्रलीलां, दैत्येन्द्रयूथपवधं सतां प्रवरस्य दैत्यात्मजस्य च पुण्यं अनुभावं श्रुत्वा प्रयत: पठेत अकुतोभयं लोकम् एति ॥४७॥

अनुवाद— जो मनुष्य परम पुरुष परमात्मा की इस मृगेन्द्र लीला को हिरण्यकशिपु के वध को और सन्त प्रवर श्रीप्रह्लादजी के पुण्य प्रभाव को सुनकर पढता है वह श्रीभगवान् के वैकुण्ठलोक में जाता है ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

एतदेतां मृगेन्द्रस्य लीलाम् तामेवाह-दैत्येन्द्रस्य यूथपानां च वधम् । य: शुचि: सन्पठेत् । पुण्यमनुभावं प्रभावं मतिनिश्चयं वा । लोकं वैकुण्ठम् ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

इस श्रीनृसिंह भगवान् कृत मृगेन्द्र की लीला को बतलाते हैं हिरण्यकशिपु के वध को जो पवित्र होकर पढ़ता है तथा प्रह्लाद के पवित्र प्रभाव अथवा ज्ञान के निश्चय को पढता है वह वैकुण्ठ लोक में जाता है ॥४७॥

यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ।
येषां गृहानावसतीति साक्षाद्गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥४८॥

अन्वयः— यूयं बत नृलोके भूरिभागा, येषां गृहान् साक्षात् ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् गूढं आवसति इति लोकं पुनाना मुनयः अभियन्ति ॥४८॥

अनुवाद— राजन् ! युधिष्ठिर आपलोग निश्चित रूप से इस मनुष्य लोक में अत्यधिक भाग्यवान् हैं, क्योंकि आपलोगों के घरों में मनुष्य रूप धारी परब्रह्म छिपकर रहते हैं और उनका ही दर्शन करने के लिए संसार को पवित्र कर देने वाले मुनिजन चारो ओर से आया करते हैं ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

अहो प्रह्लादस्य भाग्यं येन देवो दृष्टो वयं तु मन्दभाग्या इति विषीदन्तं प्रत्याह-यूयमिति त्रिभिः । येषां युष्माकं गृहान्मुनयोऽभियन्ति सर्वतः समायान्ति । तत्कस्य हेतोः, येषु गृहेषु नराकारं गूढं सच्छ्रीकृष्णाख्यं परं ब्रह्म साक्षाद्वसतीति॥४८॥

भाव प्रकाशिका

धन्य है प्रह्लाद का भाग्य कि उन्होंने श्रीभगवान् का दर्शन किया हमलोग तो मन्दभाग्य हैं, इस तरह से विषाद करने वाले युधिष्ठिर से नारदजी **यूयम्० इत्यादि** तीन श्लोकों से कहते हैं । आपलोगों के घर मुनिजन चारो ओर से आते हैं । वे किस कारण से आते हैं ? तो इसका उत्तर है कि आपलोगों के घर में श्रीकृष्ण नामक मनुष्य रूपधारी साक्षात् परंब्रह्म का निवास है ॥४८॥

स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्यकैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ।
प्रियः सुहृद्वः खलु मातुलेय आत्माऽर्हणीयो विधिकृद्गुरुश्च ॥४९॥

अन्वयः— स वा अयं ब्रह्म महद् विमृग्यकैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः । प्रियः सुहृत् यः खलुमातुलेयः अर्हणीयः विधिकृत गुरुः आत्मा च ॥४९॥

अनुवाद— निश्चित रूप से वे ही परंब्रह्म बड़े-बड़े महापुरुष उनका ही अन्वेषण करते हैं । वे माया के लेश से रहित परमशान्त, परमानन्दानुभव स्वरूप है । वे ही तुम्हारे प्रिय हितैषी तुम्हारे ममेरे भाई हैं वे पूजनीय तथा आज्ञाकारी हैं, वे ही गुरु तथा आत्मा है भगवान् श्रीकृष्ण ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

ननु कृष्णोऽस्माकं मातुलेयः कथं ब्रह्मेत्युच्यते तत्राह-स वा इति । सोऽयं ब्रह्मैव । कथंभूतः । महद्भिर्विमृग्यं यत्कैवल्यनिर्वाणसुखं निरुपाधिः परमानन्दस्तदनुभूतिरूपो वो युष्माकं खलु प्रियः सुहृदित्यादिरूपो भवति । विधिकृदाज्ञानुवर्ती॥४९॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि कृष्ण तो हमलोगों के ममेरे भाई है, उनको आप ब्रह्म कैसे कहते हैं इस पर नारदजी ने कहा **सवा० इत्यादि** वे भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्म ही है यदि आप कहें कि वे कैसे ब्रह्म हैं तो इस पर वे कहते हैं बड़े-बड़े महापुरुष उनका अन्वेषण किया करते हैं । जो कैवल्य निर्वाण सुख उपाधि रहित है वे ही वह परमानन्द और अनुभव स्वरूप हैं । वे ही आपलोगों के प्रिय हितैषी, ममेरे भाई, इत्यादि रूप हैं । वे आपलोगों के आज्ञाकारी भी हैं ॥४९॥

न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ।
मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः ॥५०॥

अन्वयः— भव पद्मजादिभिः यस्य रूपं साक्षात्धिया न वस्तुतयोपवर्णितम् मौनेन, भक्त्या, उपशमेन पूजितः स एष सात्वतां पतिः प्रसीदताम् ॥५०॥

अनुवाद— शङ्करजी ब्रह्माजी आदि अपनी सारी बुद्धि का उपयोग करके इनका इदं इत्थन्तया वर्णन नहीं कर सकते हैं। मैं तो उनकी पूजा, मौन, भक्ति और संयम के द्वारा ही करता हूँ वे यदुवंशियों के स्वामी हम पर प्रसन्न हो जायँ ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

ननु परं ब्रह्म चेत्कथं ह्यष्टसहस्त्रस्त्रीषु रतिः, कथं वाऽधर्माद्याचरणं तस्येत्यत आह-नेति। यस्य रूपं तत्त्वं भवादिभिरपि धिया स्वबुद्‌यधा वस्तुतयेदमित्थमिति साक्षान्नोपवर्णितं स युष्माकं स्वयमेव प्रसन्नः। अस्माकं तु मौनादिसाधनैस्तत्प्रसादः प्रार्थनीय एवेत्याह-मौनेनेति। स एष सात्वतां पतिर्नः प्रसीदतु। नहि प्रह्लादस्य गृहेषु परं ब्रह्म वसति, न च तद्दर्शनाय मुनयस्तद्गृहानभियन्ति, नच तस्य ब्रह्म मातुलेयादिरूपेण वर्तते, नच स्वयमेव प्रसन्नमतो यूयमेव ततोप्यस्मत्तोऽपि भूरिभागा इति भावः ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि ब्रह्म है तो फिर वे सोलह हजार स्त्रियों से प्रेम कैसे करते हैं ? और कैसे वे अधर्म आदि करते हैं ? इस पर नारदजी ने कहा उन श्रीभगवान् के रूप को शङ्करजी इत्यादि भी अपनी बुद्धि के द्वारा **इदम इत्थम्** रूप से वर्णित नहीं कर सकते हैं। वे आपलोगों पर अपने आप प्रसन्न रहते हैं। हमलोगों द्वारा वे मौन आदिसे ही प्रसन्न करने योग्य हैं। इस बात को नारदजी ने **मौनेना० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा है। वे यदुवंशियों के स्वामी हम पर प्रसन्न होएँ। प्रह्लादजी के गृह में परब्रह्म नहीं रहते हैं। और न तो परब्रह्म का दर्शन करने के लिए मुनिगण उनके घर आते हैं। ब्रह्म उनके मातुलेय आदि भी नहीं हैं और न तो वे प्रह्लाद पर स्वयं प्रसन्न ही रहते हैं। अतएव आपलोग ही प्रह्लाद से तथा हमलोगों से भी अधिक भाग्यवान् हैं ॥५०॥

स एष भगवान् राजन् व्यतनोद्विहतं यशः। पुरा रुद्रस्य देवस्य मयेनानन्तमायिना ॥५१॥

अन्वयः— राजन् ! स एष भगवान् पुरा रुद्रस्य देवस्य मयेननान्तमायिनाविहतं यशः व्यतनोत् ॥५१॥

अनुवाद— राजन् प्राचीन काल में मायासुर ने अपनी अनन्त माया के द्वारा जब रुद्रदेव की कमनीय कीर्ति में कलङ्क लगाना चाहा था तो इन्ही श्रीभगवान् ने उनके यश का पुनः विस्तार किया ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

नन्वन्यैर्दुष्करं त्रिपुरभेदादिकं श्रीरुद्रः कृतवान् स एवंभूत ईश्वरोऽप्यस्य तत्त्वं न जानातीति कथमित्यपेक्षायां तस्याप्येतत्साहाय्यादेवासौ प्रभावो न केवलस्येति वक्तुमाख्यानमुपक्षिपति-स एष इति ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि दूसरे के लिए दुष्कर त्रिपुर भेदन का काम शङ्करजी ने किया था, इस तरह के शङ्करजी भी श्रीभगवान् के तत्त्व को नहीं जानते हैं, यह कैसे कहा जा सकता है ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर उत्तर है कि शङ्करजी भी इस कार्य को श्रीभगवान् की सहायता से उनका ऐसा प्रभाव है इस बात को बतलाने के लिए नारदजी एक अख्यायिका को उपन्यस्त करते हैं। **स एव० इत्यादि** श्लोक के द्वारा ॥५१॥

राजोवाच

कस्मिन्कर्मणि देवस्य मयोऽहन् जगदीशितुः। यथा चोपचिता कीर्तिः कृष्णेनानेन कथ्यताम् ॥५२॥

अन्वयः— जगदीशितुः देवस्य कस्मिन् कर्मणि मयः अहन् यथा च अनेन कृष्णेन कीर्तिः उपचिता कथ्यताम् ॥५२॥

राजा युधिष्ठिर ने कहा

अनुवाद— जगत् के नियामक शङ्करजी के किस कार्य में मय नामक असुर उनकी कीर्ति को नष्ट करना चाहा था और श्रीभगवान् ने उनकी कीर्ति की किस प्रकार रक्षा की ?॥५२॥

भावार्थ दीपिका

राजा युधिष्ठिर उवाच । जगदीशितुर्देवस्य कीर्तिं कस्मिन्कर्मणि मयो हतवान् ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

जगदीश्वर शङ्करजी के किस कार्य में मय नामक असुर उनकी कीर्ति को नष्ट करना चाहा था ।।५२।।

नारद उवाच

निर्जिता असुरा देवैर्युध्यनेनोपबृंहितैः । मायिनां परमाचार्यं मयं शरणमाययुः ।।५३।।

अन्वयः— युध्यनेन उपबृंहितैः देवैः निर्जिता असुरा मयिनां परमाचार्यं मयं शरणम् आययुः ।।५३।।

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवान् से शक्ति प्राप्त देवताओं के साथ युद्ध करने में असुर देवताओं से पराजित हो गये। इसके बाद असुर मायावियों के परमाचार्य मय के शरण में गये ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

अनेन श्रीकृष्णेनोपबृंहितैः संबर्धितैः ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा ही शक्ति प्रदान करके बढाये गये देवताओं से ।।५३।।

स निर्माय पुरस्तिस्त्रो हैमीरौप्यायसीर्विभुः । दुर्लक्ष्यापायसंयोगा दुर्वितर्क्यपरिच्छदाः ।।५४।।

अन्वयः— सः विभुः हैमीरौप्यायसीः तिस्त्रः पुरः दुर्लक्ष्यापाय संयोगा दुर्वितर्क्यपरिच्छदाः निर्माय तेभ्योददौ ।।५४।।

अनुवाद— शक्ति सम्पन्न मयासुर ने सुवर्ण, चाँदी, और लोहे की तीन नगरियों का निर्माण करके, जिन नगरियों का आना-जाना कोई जान नहीं पाता था उन नगरियों की समग्रियाँ दुर्वितर्क्य थीं ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

हैमी च रौप्या चायसी चेति तिस्त्रः पुरो निर्माय तेभ्यो ददाविति शेषः । दुर्लक्ष्यावपायसंयोगौ गमनागमने यासाम् । दुर्वितर्क्याः परिच्छदाः यासु ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

सुवर्ण, चाँदी और लाहे की तीन नगरियों का निर्माणकिया उन नगरियों को आना जाना कोई नहीं जान पाता था । उन नगरियों की सामग्रियाँ तर्क से परे थीं ।।५४।।

ताभिस्तेऽसुरसेनान्यो लोकांस्त्रीन्सेश्वरान्नृप । स्मरन्तो नाशयांचक्रुः पूर्ववैरमलक्षिताः ।।५५।।

अन्वयः— हे नृप ताभिः ते असुरसेनान्यः अलक्षिताः सन्तः पूर्ववैरम् स्मरन्तः सेश्वरान् त्रीन् लोकान् नाशयाञ्चक्रुः ।।५५।।

अनुवाद— हे राजन् ! उन नगरियों के द्वारा असुरों के सेनापतियों ने दिखायी पड़े बिना ही पहले के वैर का स्मरण करके लोकपालों सहित त्रिलोक का नाश कर दिया ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

सेनान्यः सेनापतयः । पूर्ववैरं स्मरन्तः ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

पहले के वैर का स्मरण करके सेनापतियों ने ।।५५।।

ततस्ते सेश्वरा लोका उपासाद्येश्वरं विभो । त्राहि नस्तावकान्देव विनष्टांस्त्रिपुरालयैः ॥५६॥

अन्वयः— हे विभो ! ततः ते लोकाः सेश्वरा ईश्वरं उप आसाद्य देव त्रिपुरालयैः विनष्टान् तावकान् नः त्राहि ॥५६॥

अनुवाद— लोकपालों के साथ उन लोकों की सारी प्रजाएँ शङ्करजी के पास जाकर कहीं कि देव त्रिपुर में रहने वाले असुर हमलोगों का नाश कर रहे हैं । हमलोग आपके हैं, आप हमारी रक्षा करें ॥५६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५६॥

अथानुगृह्य भगवान्मा भैष्टेति सुरान्विभुः । शरं धनुषि संधाय पुरेष्वस्त्रं व्यमुञ्चत ॥५७॥

अन्वयः— अथ विभुः भगवान् सुरान् अनुगृह्य, मा भैष्ट इति उक्त्वा धनुषि शरं सन्धाय अस्त्रं पुरेषु व्यमुञ्चत ॥५७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् भगवान् शङ्कर देवताओं पर कृपा करके कहे डरो मत । फिर उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ाकर उन नगरियों पर छोड़ दिया ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

अस्त्रमभिमन्त्रितं शरं पुरेषु व्यमुञ्चत ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

अस्त्र अर्थात् अभिमन्त्रित बाण को उन नगरियों पर छोड़ दिया ॥५७॥

ततोऽग्निवर्णा इषव उत्पेतुः सूर्यमण्डलात् । यथा मयूखसंदोहा नादृश्यन्त पुरो यतः ॥५८॥

अन्वयः— ततः सूर्यमण्डलात् मयूख संदोहा इव अग्निवर्णाः इषवः उत्पेतुः यतः पुरः न अदृश्यन्त ॥५८॥

अनुवाद— उस बाण से सूर्यमण्डल से निकलने वाली किरणों के समान अनेक अग्नि के समान चमकते हुए बाण निकले । उसके कारण उन पुरों का दिखना बन्द हो गया ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

ततः शरात् । सूर्यमण्डलान्मयूखसंदोहा रश्मिसमूहा इव । यतो येभ्यः ॥५८॥

भाव प्रकाशिका

ततः अर्थात् उस बाण से, सूर्यमण्डल से निकलने वाली किरण समूह के समान। यतः अर्थात् उन बाणों से॥५८॥

तैः स्पृष्टा व्यसवः सर्वे निपेतुः स्म पुरौकसः । तानानीय महायोगी मयः कूपरसेऽक्षिपत् ॥५९॥

अन्वयः— तै स्पृष्टाः सर्वे पुरौकसः व्यसवः निपेतुः महायोगी मयः तान आनीय कूपरसे अक्षिपत् ॥५९॥

अनुवाद— उन बाणो से स्पृष्ट होने के कारण उन नगरियों के निवासी असुर मरकर गिर पड़े । महामायावी मय उन असुरों को उठा लाया और अपने बनाये हुए अमृत के कुएँ में डाल दिया ॥५९॥

भावार्थ दीपिका

कूपरसे स्वयं निर्मितकूपामृते ॥५९॥

भाव प्रकाशिका

कूपरसे अर्थात् अपने से निर्मित अमृत के कुएँ में ॥५९॥

सिद्धामृतरसस्पृष्टा वज्रसारा महौजसः । उत्तस्थुर्मेघदलना वैद्युता इव वह्नयः ॥६०॥

अन्वयः— सिद्धामृतरसस्पृष्टाः वज्रसारा महौजसः मेघदलनाः वैद्युताः बह्नयः इव उत्तस्थुः ॥६०॥

अनुवाद— उस सिद्ध अमृत रस का स्पर्श होते ही उन दैत्यों का शरीर वज्र के समन सुदृढ और अत्यन्त तेजस्वी हो गया वे बादलों को चीरने वाली बिजली की आग के समान उठ खड़े हुए ॥६०॥

भावार्थ दीपिका

वज्रसाराः वज्रवद्दृढाङ्गाः । महौजसौ महाबलाः । मेघदलना मेघभेदिनो विद्युद्रूपा वह्नय इव ॥६०॥

भाव प्रकाशिका

वज्रसाराः अर्थात् वज्र के मान सुदृढ अङ्ग वाले, **महौजसः** महाबलवान्, मेघदलनाः = बादलों को चीरने वाली, वैद्युताः **वह्नयः इव** विद्युत रूपी अग्नि के समान ॥६०॥

विलोक्य भग्नसङ्कल्पं विमनस्कं वृषध्वजम् । तदायं भगवान्विष्णुस्तत्रोपायमकल्पयत् ॥६१॥

अन्वयः— भग्नसङ्कल्पं विमनस्कं वृषध्वजम् विलोक्य तदा अयम् भगवान् विष्णुः तत्र उपायम् अकल्पयत् ॥६१॥

अनुवाद— सङ्कल्प के भङ्ग हो जाने के कारण उदास शङ्करजी को देखकर भगवान् विष्णु ने उपाय किया॥६१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६१॥

वत्स आसीत्तदा ब्रह्मास्वयं विष्णुरयं हि गौः । प्रविष्य त्रिपुरं कले रसकूपामृतं पपौ ॥६२॥

अन्वयः— तदा ब्रह्मावत्सआसीत् अयं विष्णुः हि गौः त्रिपुरं कले प्रविश्य रसकूपामृतं पपौ ॥६२॥

अनुवाद— उस समय ब्रह्माजी ही बछड़ा बन गये और ये विष्णु ही गौ बन गये । उस समय ये दोनों त्रिपुर की नगरी में मध्याह्न के समय में प्रवेश करके उस सिद्ध अमृत रस के कुएँ के अमृत के पी गये ॥६२॥

भावार्थ दीपिका

कले मध्याह्ने ॥६२॥

भाव प्रकाशिका

मध्याह्न काल की बेला में यह कले पद का अर्थ है ॥६२॥

तेऽसुरा ह्यपि पश्यन्तो न न्यषेधन्विमोहिताः । तद्विज्ञाय महायोगी रसपालानिदं जगौ ॥६३॥

अन्वयः— ते विमोहिता असुरा पश्यन्तः अपि हि न न्यषेधन तद्विज्ञाय महायोगी रसपालान इदं जगौ ॥६३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की माया से मोहित असुर यह देख रहे थे किन्तु वे पीने से नहीं रोके । इस बात का पता जब मायासुर को चला तो उसने उस रस की रक्षा करने वाले असुरों से कहा ॥६३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६३॥

स्वयं विशोकः शोकार्तान्स्मरन्दैवगतिं च ताम् ।
देवोऽसुरो नरोऽन्यो वा नेश्वरोऽस्तीह कश्चन ॥६४॥
आत्मनोऽन्यस्य वा दिष्टं दैवेनापोहितुं द्वयोः ।
अथासै शक्तिभिः स्वाभिः शम्भोः प्राधानिकं व्यधात् ॥६५॥

अन्वयः— स्वयं विशोकः शोकार्तान् ताम् दैवगतिं स्मरन् इह देवः असुरः नरः अन्यो वा कश्चन आत्मनः अन्यस्यवा द्वयोः दैव दिष्टं अपोहितुं ईश्वरो नास्ति । अथ असौ स्वाभि, शक्तिभिः शम्भोः प्राधानिकं व्यधात् ॥६४-६५॥

अनुवाद— स्वयं शोक रहित रहकर मयासुर ने शोकार्त असुरों से कहा देवता, असुर, मनुष्य अथवा दूसरा कोई भी अपने अथवा दूसरे का अथवा दोनों का जो प्रारब्ध का विधान है उसको नहीं मिटा सकता है । उसके पश्चात् ये भगवान् विष्णु ने ही अपनी शक्ति के द्वारा भगवान् शङ्कर के युद्ध की सामग्रियों को तैयार की ॥६४-६५॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनो वा अन्यस्य वा द्वयोरपि वा दैवेन दिष्टमुपकल्पितमपोहितुं परिहर्तुमिह कश्चिदपीश्वरः समर्थो नास्ति असौ श्रीकृष्णः। प्रधनं संग्रामस्तत्साधनम् ।।६४-६५।।

भाव प्रकाशिका

अपना या दूसरे का या दोनों का जो प्रारब्ध का विधान है उसको कोई भी मिटाने में समर्थ नही है । उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने संग्राम सामग्री शङ्करजी को प्रादान किया ।।६४-६५।।

धर्मज्ञानविरक्त्यृद्धितपोविद्याक्रियादिभिः । रथं सूतं ध्वजं वाहान्धनुर्वर्म शरादि यत् ।।६६।।

अन्वयः— धर्मज्ञान विरक्त्यृद्धितपो विद्या क्रियादिभिः रथं, सूतं, ध्वजं, वाहान् धनुर्वर्म शरादि यत् ।।६६।।

अनुवाद— श्रीभगवान् ने धर्म से रथ, ज्ञान से सारथि, वैराग्य से ध्वज, ऐश्वर्य से अश्व, तपस्या से धनुष विद्या से कवच, क्रिया से बाण तथा अन्य शक्तियों से अन्य वस्तुओं का निर्माण करके प्रदान किया ।।६६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६६।।

सन्नद्धो रथमास्थाय शरं धनुरुपाददे । शरं धनुषि संधाय मुहूर्तेऽभिजितीश्वरः ।।६७।।
ददाह तेन दुर्भेद्या हरोऽथ त्रिपुरो नृप । दिवि दुन्दुभयो नेदुर्विमानशतसङ्कुलाः ।।६८।।

अन्वयः— हे नृपा अभिजिति मुहूर्ते ईश्वरः सन्नद्धः खम् आस्थाय शरंधनुः उपाददे धनुषि शरं संधाय अथ हरः तेन दुर्भेद्याः त्रिपुरः ददाह । दिवि विमानशतशङ्कुलाः दुन्दुभयोः नेदुः ।। ६७-६८।।

अनुवाद— हे राजन् ! युधिष्ठर अभिजित् मुहूर्त में भगवान् शङ्कर सजधज कर रथ पर बैठे उन्होंने धनुष और बाण ले लिया । धनुष पर बाण चढ़ाकर शङ्करजी ने उस बाण से दुर्भेद्य उन तीनों नगरों को भस्म कर दिया। उसी समय स्वर्ग में दुन्दुभियाँ बजने लगीं और विमान से स्वर्ग भर गया ।।६७-६८।।

भावार्थ दीपिका

अभिजिति मध्याह्ने । विमानशतानि सङ्कुलानि सङ्कीर्णानि येषां ते देवादयः ।।६७-६८।।

भाव प्रकाशिका

अभिजित् अर्थात् मध्याह्न की बेला में स्वर्ग में देवताओं आदि के सैकड़ों विमान भर गये ।।६७-६८।।

देवर्षिपितृसिद्धेशा जयेति कुसुमोत्करैः । अवाकिरन् जगुर्हृष्टा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।।६९।।

अन्वयः— देवर्षि पितृसिद्धेशाः जयेति कुसुमोत्करैः अवाकिरन् हृष्टाः जगुः अप्सरोगणाः ननृतुः ।।६९।।

अनुवाद— देवता, ऋषि, पितृगण, सिद्धेश्वरगण, आनन्द से भरकर जय-जयकार करने लगें अपसराएँ नाचने और गाने लगीं ।।६९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६९।।

एंव दग्ध्वा पुरस्तिस्रो भगवान्पुरहा नृप । ब्रह्मादिभिः स्तूयमानः स्वधाम प्रत्यपद्यत ।।७०।।

अन्वयः— हे नृप ! एवं तिस्रः पुरः दग्ध्वा पुरहा भगवान् ब्रह्मादिभिः स्तूयमानः स्वधाम प्रत्यपद्यत ।।७०।।

अनुवाद— इस तरह तीन नगरियों को जलाकर भगवान् शङ्कर ने पुरारि की संज्ञा प्राप्त की और ब्रह्माजी आदि की स्तुति सुनते हुए अपने धाम में चले गये ।।७०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७०।।

एवंविधान्यस्य हरेः स्वमायया विडम्बमानस्य नृलोकमात्मनः ।
वीर्याणि गीतान्यृषिभिर्जगद्गुरोर्लोकान्पुनानान्यपरं वदामि किम् ।।७१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे त्रिपुरविजयो नाम दशमोऽध्यायः ।।१०।।

अन्वयः— आत्मनः जगद्गुरोः नृलोकम् विडम्बमानस्य अस्य लोकान् पुनानि एवंविधानि वीर्याणि ऋषिभिः गीतानि, सन्ति, अपरं किम् वदामि ।।७१।।

अनुवाद— आत्म स्वरूप जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण अपनी माया से मनुष्यों के समान लीला किया करते हैं। संसार को पवित्र बना देने वाली श्रीभगवान् की इसी प्रकार की लीलाओं का गान ऋषिलोग किया करते हैं, बताओ अब मैं तुम्हें क्या सुनाऊँ ।।७१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के युधिष्ठिर नारद संवाद के अन्तगर्त त्रिपुर विजय नामक दसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

आदित आरभ्य स्कन्धार्थं निगमयति-एवंविधानीति । नृलोकं नराकारमात्मनो विडम्बमानस्यानुकुर्वतः ।।७१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां दशमोऽध्यायः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

इस स्कन्ध से लेकर यहाँ तक स्कन्धार्थ का उपसंहार **एवं विधानि०** **इत्यादि** श्लोक से करते हैं । अपने नराकार लीलाओ का अनुकरण करने वाले ।।७१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के दसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१०।।

ग्यारहवाँ अध्याय

मानव धर्म, वर्ण धर्म और स्त्री धर्म का वर्णन

श्रीशुक उवाच

श्रुत्वेहितं साधुसभासभाजितं महत्तमाग्रण्य उरुक्रमात्मनः ।
युधिष्ठिरौ दैत्यपतेर्मुदा युतः पप्रच्छ भूयस्तनयं स्वयंभुवः ॥१॥

अन्वयः— उरुक्रमात्मनः महत्तमाग्रण्यः दैत्यपतेः साधुसभासभाजितं इहित श्रुत्वा मुदा युतः युधिष्ठिरः स्वयम्भुवः तनयं भूयः पप्रच्छ ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परमात्ममय महापुरुषों में श्रेष्ठ प्रह्लादजी के साधु समाज में सम्मानित पवित्र चरित्र को सुनकर संत शिरोमणि महाराज युधिष्ठिर आनन्द पूर्वक नारदजी से पुनः पूछे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं दशभिर्ज्ञानभक्तियोगावुदीरितौ । अथ पञ्चभिरध्यायैः कर्मयोगोऽनुवर्ण्यते । एकादशे नृणां धर्माः साधारण्येन

वर्णिताः । विशेषेण च वर्णानां मुख्यामुख्याश्च योषिताम् । दैत्यपतेः प्रह्लादस्य । साधूनां सभासु सभाजितं सत्कृतमीहितं चरितं श्रुत्वा पुनर्नारदं पप्रच्छ । कथंभूतस्येहितम् । महत्तमानामग्रगण्यो मुख्यस्य । तत्र हेतुः- उरुक्रमे आत्मा मनो यस्य ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह दश अध्यायों द्वारा ज्ञानयोग एवं भक्तियोग का वर्णन किया गया है । अब पाञ्च अध्यायों के द्वारा कर्मयोग का वर्णन किया जाता है । इस ग्यारहवें अध्याय में सामान्य रूप से मानव धर्म का तथा विशेष रूप से वर्णों के धर्म का और स्त्रियों के मुख्य तथा अमुख्य धर्मो का वर्णन किया गया है । **दैत्यपते** अर्थात् प्रह्लादजी का । साधु समाज मे समादृत चरित को सुनकर महाराज युधिष्ठिर ने नारदजी से पुनः पूछे । प्रश्न है कि कैसे प्रह्लादजी के चरित को ? इसका उत्तर है **महत्तमाग्रण्यः** महापुरुषों में श्रेष्ठ प्रह्लादजी के क्योंकि उनका मन सदैव श्रीभगवान् में लगा रहता है ।।१।।

युधिष्ठिर उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि नृणां धर्मं सनातनम् । वर्णाश्रमाचारयुतं यत्पुमान् विन्दते परम् ।।२।।

अन्वयः— हे भगवन् वर्णाश्रमाचारयुतं नृणां सनातनं धर्म श्रोतुमिच्छामि यत् पुमान् परम् विन्दते ।।२।।

महाराज युधिष्ठिर ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् मैं वर्णों एवं आश्रमों के सदाचार से युक्त मनुष्यों के सनातन धर्म को सुनना चाहता हूँ । उसी से मनुष्यों को परमात्मा की प्राप्ति होती है ।।२।।

भावार्थ दीपिका

श्रवणेच्छायां हेतुः-यद्यतो धर्मादनुष्ठितात्परं ज्ञानं भक्तिं च विन्दते ।।२।।

भाव प्रकाशिका

सुनने की इच्छा का कारण है कि धर्म का अनुष्ठान करने से मनुष्य ज्ञान और भक्ति को प्राप्त करता है।।२।।

भवान्प्रजापतेः साक्षादात्मजः परमेष्ठिनः । सुतानां संमतो ब्रह्मंस्तपोयोगसमाधिभिः ।।३।।

अन्वयः— भवान् साक्षात् प्रजापतेः परमेष्ठिनः आत्मजः । ब्रह्मन् तपोयोगसमाधिभिः सुतानां सम्मतः ।।३।।

अनुवाद— आप साक्षात् प्रजापति ब्रह्माजी के पुत्र है हे ब्रह्मन् तपस्या, योग तथा समाधि के कारण आपको ब्रह्माजी अधिक मानते हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३।।

नारायणपरा विप्रा धर्मं गुह्यं परं विदुः । करुणाः साधवः शान्तास्त्वद्विधा न तथाऽपरे ।।४।।

अन्वयः— त्वद्विधाः नारायणपराः, करुणाः, साधवः, शान्ताः परं गुह्यं धर्म विदुः परे तथा विधाः न ।।४।।

अनुवाद— आपके नारायण परायण दयालु सदाचारी तथा शान्त पुरुष धर्म के गुप्त से भी गुप्त धर्म को जानते हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

ननु स्मृतिकारैर्धर्म उक्त एव तत्राह-नारायणपरा इति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि स्मृतिकारों ने तो धर्मों का वर्णन किया ही है, इस पर कहते हैं कि नारायणपरायण सदाचार तथा दयालु पुरुष जैसे धर्म के गुप्ततम रहस्य को जानते हैं, उस तरह से दूसरे लोग नहीं जानते ।।४।।

नारद उवाच

नत्वा भगवतेऽजाय लोकानां धर्महेतवे । वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम् ।।५।।

अन्वयः— अजाय लोकानां धर्महेतवे भगवते नत्वा नारायणमुखाच्छ्रुतम् सनातनं धर्मं वक्ष्ये ।।५।।

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— अजन्मा, समस्त लोकों के धर्म के मूलकार श्रीभगवान् को नमस्कार कर मैं भगवान् नारायण के मुख से सुने हुए मैं सनातन धर्म का वर्णन करता हूँ ।।५।।

भावार्थ दीपिका

अजाय श्रीनारायणाय । तस्यैव मुखाच्छ्रुतम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

अजन्मा भगवान् नारायण ही है, उनके ही मुख से सुने हुए सनातन धर्म को मैं कहता हूँ ।।५।।

योऽवतीर्यात्मनोंऽशेन दाक्षायण्यां तु धर्मतः । लोकानां स्वस्तयेऽध्यास्ते तपो बदरिकाश्रमे ।।६।।

अन्वयः— यः आत्मनः अंशेन धर्मतः दाक्षयण्याम् अवतीर्य, लोकानां स्वस्तये बदरिकाश्रमे तप अध्यास्ते ।।६।।

अनुवाद— जो भगवान् अपने अंश से दक्ष पुत्री मूर्ति के गर्भ से धर्म के पुत्र के रूप में अवतीर्ण होकर संसार का कल्याण करने के लिए बदरिकाश्रम में तपसया कर रहे हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

तन्मुखादात्मनः श्रवणं संभावयन्विशिनष्टि-य इति ।।६।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् नारायण के मुख से श्रवण का सम्मान करते हुए उसकी व्याख्या इस श्लोक से करते हैं ।।६।।

धर्ममूलं हि भगवान्सर्ववेदमयो हरिः । स्मृतं च तद्विदां राजन्येन चात्मा प्रसीदति ।।७।।

अन्वयः— राजन् ! सर्ववेदमयः श्रीहरिः भगवान् तद्विदां स्मृतं च धर्ममूलं येन च आत्मा प्रसीदति ।।७।।

अनुवाद— हे राजन् युधिष्ठिर ! सर्ववेदमय भगवान् श्रीहरि और उन वेदों को जानने वाले ऋषियों के द्वारा प्रणीत स्मृतियाँ धर्म का मूल हैं, उसी से आत्म प्रसाद की प्राप्ति होती है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

प्रथमं तावद्धर्मे प्रमाणमाह-धर्मेति । धर्मस्य मूलं प्रमाणम् । स्मृतं च स्मृतिः तद्विदां वेदविदाम् । येन चात्मा मनः प्रसीदति तुष्यति च । तथा च याज्ञवल्क्यः- 'श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । सम्यक्सङ्कल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ।' इति मनुश्च— 'वेदोखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् । आचारश्चैव साधूनमात्मनस्तुष्टिरेव च ।' इति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम धर्म में प्रमाण को बतलाते हैं । धर्ममूलम् अर्थात् धर्म में प्रमाण, स्मृतम् अर्थात् स्मृतिः । तद्विदाम् अर्थात वेदों के ज्ञाता जिससे कि परमात्मा प्रसन्न होते हैं । महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा भी है श्रुतिः स्मृतिः इत्यादि श्रुतियाँ, स्मृतियाँ सदाचार तथा जो अपनी आत्मा को जो प्रिय लगे वे सत् सङ्कल्पजन्य कामनाये सभी धर्म में प्रमाण हैं । मनुस्मृतिकार भी कहते हैं सम्पूर्ण वेद धर्म में प्रमाण है और वेदज्ञों द्वारा प्रणीत स्मृतियाँ और उन स्मृतियों का शील, सत्पुरुषों का आचरण तथा अपनी आत्मा की जिससे तुष्टि हो, ये ही धर्म में प्रमाण हैं ।।७।।

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः। अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्॥८॥
संतोषः समदृक्सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः। नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्॥९॥
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः। तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥१०॥
श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरण महतां गतेः। सेवेज्याऽवनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥११॥
नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः। त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति॥१२॥

अन्वयः— हे पाण्डवः सत्यं, दया, तपः, शौचं, तितिक्षा, इक्षा, शमः, दमः अहिंसा, ब्रह्मचर्यं, त्यागः, स्वाध्यायः आर्जवम्, संतोषः, समदृक्, सेवा, ग्राम्येहोपरमः, विपर्ययेहेक्षा मौनम्, आत्मविमर्शनम्, भूतेभ्यः च अन्नाद्यादेःयथाहितः संविभागः, तेषु आत्मदेवता बुद्धिः सुतरां नृषु, अस्य महतां गतेः श्रवणं, कीर्तनं, स्मरणं च, सेवेज्यावनतिः दास्यं, सख्यम्, आत्म समर्पणम् हे राजन् ! त्रिशल्लक्षणवान् अयं नृणां परो धर्मः समुदाहृतः येन सर्वात्मा तुष्यति ॥८-१२॥

अनुवाद— हे पाण्डव युधिष्ठिर ! सत्य, दया, तपः शौचं, तितिक्षा (सहिष्णुता) ईक्षा, उचित अनुचित का विचार शम, (मन का संयम) दम (इन्द्रियों का संयम) अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, ऋजुता, सन्तोष, समदर्शित्वि, महापुरुषों की सेवा, धीरे-धीरे सांसारिक चेष्टाओं की निवृत्ति, मनुष्य के अभिमान पूर्ण प्रयत्नों का फल उलटा होता है। ऐसा विचार, मौन, आत्म चिन्तन, प्राणियों को यथायोग्य अन्न आदि का विभाजन, उन सबों में तथा विशेष रूप से अपनी आत्मा और इष्टदेव का भाव, सत्पुरुषों के परम आश्रय परमात्मा के नाम, गुण तथा लीला आदि का श्रवण, कीर्तन और स्मरण, उनकी सेवा, पूजा, नमस्कार, उनके प्रति दास्य, सख्य एवं आत्म समर्पण हे राजन्! ये तीस प्रकार के आचरण सभी मनुष्यों के परम धर्म है। इनके पालन से सर्वात्मा प्रसन्न होते हैं ॥८-१२॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तावन्नरमात्रसाधारणधर्ममाह-सत्यमिति पञ्चभिः। तप एकादश्युपवासादि। ईक्षा युक्तायुक्तविवेकः। शमो मनसः संयमः। दमो बाह्येन्द्रियाणाम्। त्यागो दानम्। स्वाध्यायो यथोचितजपः। संतोषो दैवलब्धेनालंबुद्धिः। समदृशां महतां सेवा। ग्राम्येहोपरमः प्रवृत्तिकर्मभ्यो निवृत्तिः। विपर्ययेहेक्षा निष्फलक्रियाणामीक्षणम्। मौनं वृथालापनिवृत्तिः। आत्मविमर्शनं देहादिव्यतिरिक्तात्मानुसंधानम्। आत्मेति देवतेति च बुद्धिः। अस्य श्रीकृष्णस्य श्रवणादयो नव। इज्याऽर्चनम्। एवं त्रिंशल्लक्षणवान् ॥८-१२॥

भाव प्रकाशिका

सभी मनुष्यों के साधारण धर्म को नारदजी ने **सत्यम्० इत्यादि** पाँच श्लोकों से कहा है। तप, अर्थात् एकादशी आदि का उपवास, ईक्षा अर्थात् उचित अनुचित का विचार शम (मानसिक संयम) दम (बाह्य इन्द्रियों का संयम) त्याग (दान) स्वाध्याय (यथोचित मन्त्र का जप) संतोष (जो कुछ भी भाग्यवशात् मिल जाय उसी से सन्तोष करना, समदर्शी पुरुषों की सेवा, प्रवृत्ति कर्मों से निवृत्ति, विपर्ययेहेक्षा (निष्फल क्रिया का विचार) मौन (अनावश्यक न बोलना) आत्मविमर्शनम (देह आदि से भिन्न आत्मा का अनुसंधान) तेष्वात्मबुद्धि (सभी प्राणियों में आत्मा और देवता की बुद्धि) भगवान् श्रीकृष्ण के नामों, गुणों और लीलाओं का श्रवण, आदि नव गुण, इज्या (अर्चना) इस तरह से तीस सभी मनुष्यों के परम धर्म हैं ॥८-१२॥

संस्कारा यत्राविच्छिन्नाः स द्विजोऽजो जगाद यम्। इज्याध्ययनदानानि विहितानि द्विजन्मनाम् ॥
जन्मकर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिताः ॥१३॥

अन्वयः— यत्र संस्कारा अविच्छिन्नाः यम अजः जगाद स द्विजः, जन्मकर्माववदातानां द्विजन्मनाम् इज्याध्ययन दानानि, आश्रमचोदिताः क्रियाः च विहितानि ॥१३॥

अनुवाद— जिनके वंश में अखण्ड रूप से संस्कार होते आये हैं और ब्रह्माजी ने जिनको संस्कार योग्य कहा है, वे द्विज है । जन्म और कर्म से शुद्ध द्विजों के लिए, यज्ञ, अध्ययन, दान तथा ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों के विशेष कर्मो का विधान हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं वर्णधर्मान्वक्तुं द्विजानां लक्षणमाह-संस्कारा मन्त्रवन्तो गर्भाधानादयो यस्मिन्नविच्छिन्नाः स द्विजः । तर्हि शूद्रस्यापि संस्काराविच्छेदे सति द्विजत्वं स्यात्तत्राह- अजो ब्रह्मा यमेवंभूतसंस्कारयुक्तं जगाद स द्विजः । शूद्रं तु न मन्त्रवत्संस्कारयुक्तं जगाद नचोपनयनवन्तमतो नासौ द्विजः । तथा च स्मृतिः- 'विवाहमात्रसंस्कारं शूद्रोऽपि लभतां सदा । न केनचित्समसृजच्छन्दसा तं प्रजापतिः ।' इति। श्रुतिश्च 'गायत्र्या ब्राह्मणमसृजत् । त्रिष्टुभा राजन्यम् । जगत्या वैश्यम् । न केनचिच्छूद्रम्' इति । अतो विवाहव्यतिरिक्तसंस्कारस्यानावश्यकत्वादुपनयनस्य तु सर्वथा निषेधान्न तस्य द्विजत्वमित्यर्थः । पाठान्तरे वैदिकादय इति गर्भधानादय इत्यर्थः । त्रैवर्णिकानामावश्यकान्धर्मानाह- इज्येति । जन्मना विशुद्धेन कुलेन कर्मणा चाचारेणावदातानां शुद्धानाम्। दुष्कुलानां दुराचाराणं च नैतानि विहितानीत्यर्थः । ब्रह्मचर्याद्याश्रमविहिताः क्रियाश्च । शूद्रस्य तु वर्णधर्मा एव, आश्रमभेदकृतविशेषाभावात् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

वर्णों के धर्मो का वर्णन करने के लिए द्विजों का लक्षण बतलाते हैं । जिन लोगों के यहाँ मन्त्रोचारणादि पूर्वक गर्भाधान इत्यादि संस्कार अविच्छिन्न रूप से होते आये हैं वह द्विज है । यदि कहें कि तव तो मन्त्र का विच्छेद नहीं होने पर शूद्र भी द्विज हो सकता है । इस पर नारदजी कहते हैं— जिसको ब्रह्मार्जा ने इस प्रकार के संस्कार से युक्त कहा है वही द्विज है । ब्रह्माजी ने शूद्र को मन्त्र युक्त संस्कार वाला नहीं कहा है और न तो उसको उपनयन से युक्त कहा है । अतएव शूद्र द्विज नहीं है । स्मृति ने कहा भी है शूद्र का केवल विवाह संस्कर होता है । शूद्र की ब्रह्माजी ने किसी मन्त्र के साथ सृष्टि नहीं की श्रुति भी कहती हैं कि ब्रह्माजी ने गायत्री से ब्राह्मण की सृष्टि की, क्षत्रिय की त्रिष्पटुप् से वैश्य की जगती छन्द से शूद्र की किसी भी मन्त्र से सृष्टि नहीं की हैं । अतएव विवाह व्यक्तिरिक्त शूद्र का कोई भी संस्कार होना अनावश्यक है । उपनयन्न का तो बिल्कुल निषेध किया गया है । अतएव शूद्र का द्विजत्व नहीं हो सकता है । जहाँ पाठभेद है वहाँ वैदिकादय का अर्थ गर्भाधान आदि हं । त्रैवर्णिकों के लिए आवश्यक धर्मो को बतलाते हुए नारदजी ने कहा— **इज्या० इत्यादि** जन्म से विशुद्ध तथा शुद्धाचार युक्त द्विजों दुराचारियों के ये संस्कार विहित नहीं है । ब्रह्मचर्य आदि आश्रम विहित कर्मों को कहा गया है । शूद्र के लिए तो वर्ण धर्म नही है । क्योंकि शूद्र के लिए विशेष आश्रम धर्म नहीं कहे गये हैं ॥१३॥

विप्रस्याध्ययनादीनि षडन्यस्याऽप्रतिग्रहः । राज्ञो वृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद्वा करादिभिः ॥१४॥

अन्वयः— विप्रस्य अध्ययनादीनि षट् अन्यस्य अप्रतिग्रहः प्रजागोप्तुः राज्ञः वृत्तिः अविप्राद्वा करादिभिः ॥१४॥

अनुवाद— ब्राह्मण के अध्ययन आदि (अध्यापन, दान लेना, दान देना, यज्ञ करना और यज्ञ कराना) ये छह कर्म हैं, प्रजा की रक्षा करने वाले राजा (क्षत्रिय) की वृत्ति (जीवन निर्वाह का साधन) ब्राह्मण को छोड़कर दूसरों से कर लेकर तथा दण्ड (जुर्माना) आदि से है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणादीनां चतुर्णामपि वृत्तिरूपान्धर्मानाह- विप्रस्येति सार्धैः सप्तभिः । विप्रस्य षट् कर्माणि विहितानीत्यनुषङ्गः । तत्र त्वध्यापनं याजनं प्रतिग्रहश्च जीविका । यथाह मनुः- 'षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका । याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः ।' इति । अन्यस्य क्षत्रियस्य अप्रतिग्रह इति प्रतिग्रहातिरिक्तं याजनमध्यापनं चापद्यनुजानाति । वक्ष्यति

चानन्तरमेव ऋते राजन्यमिति । श्रूयते चाश्वपतिकैकयप्रभृतीनां क्षत्रियाणामुपदेष्ट्टत्वादि । प्रजापालनेऽधिकृतस्य क्षत्रियस्य वृत्यन्तरमाह- राज्ञ इति । आदिशब्देन दण्डशुल्कादि ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण आदि चारो वर्णों की वृत्ति (जीविका) रूप धर्मों को **विप्रस्य० इत्यादि** साढे सात श्लोकों से वर्णन करते हैं । ब्राह्मण के छह कर्म बतलाये गये हैं यह अन्वय है । उनमें अध्ययन कराना, यज्ञ कराना और दान लेना ये जीविका हैं । जैसा कि मनु महर्षि ने कहा है । **षण्णां तु० इत्यदि** ब्राह्मण के छह कर्मों में से तीन कर्म जीविका हैं यज्ञ कराना, अध्यापन करना और शुद्ध व्यक्तियों से दान लेना । क्षत्रिय को दान नहीं लेना चाहिए। दान न लेकर शेष पाँच कर्मों को विपत्ति की स्थिति में क्षत्रिय कर्मों को कर सकता है, क्योंकि इसके बाद ही नारदजी भी कहेंगे **ऋतेराजन्यम्० इत्यादि** राज अश्वपति तथा कैकय आदि राजाओं का उपदेश कर्तृत्व श्रुतियाँ बतलाती भी हैं । प्रजापालन के अधिकारी क्षत्रिय की दूसरी भी वृत्ति बतलायी गई है । **राज्ञ० इत्यादि** यहाँ आदि शब्द से दण्ड शुल्क आदि का भी ग्रहण करना चाहिए ॥१४॥

वैश्यस्तु वार्तावृत्तिश्च नित्यं ब्रह्मकुलानुगः । शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा वृत्तिश्च स्वामिनो भवेत् ॥१५॥

अन्वयः— नित्यं ब्रह्म कुलानुगः वैश्यः तु वार्ता वृत्तिः च, शूद्रस्य द्विज शुश्रूषा वृत्तिः च स्वामिनः भवेत् ॥१५॥

अनुवाद— सदैव ब्राह्मण वंश का अनुयायी रहने वाला वैश्य अपनी वृत्ति वार्ता गोरक्षा, कृषि एवं व्यापार से चलाये । शूद्र की वृत्ति द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों) की सेवा से तथा अपने स्वामी से होती है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

वार्ता कृषिवाणिज्यादिलक्षणा वृत्तिर्यस्य। शूद्रस्य द्विजानां शुश्रूषा विहिता । स्वामिनो द्विजस्य तु शुश्रूषा वृत्तिश्च भवेत्॥१५॥

भाव प्रकाशिका

व्यापार आदि रूप वृत्ति (जीविका) वैश्य की होती है । शूद्रों के लिए द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों) की सेवा विहित है । स्वामी द्विज की सेवा से ही शूद्र की जीविका चलती है ॥१५॥

वार्ता विचित्रा शालीनयायावरशिलोञ्छनम् । विप्रवृत्तिश्चतुर्धेयं श्रेयसी चोत्तरोत्तरा ॥१६॥

अन्वयः— विप्रवृत्तिः वार्ता, विचित्रा, शालीने यायावर, शिलोञ्छनम्, इयं चतुर्धा वृत्तिः उत्तरोत्तरा च श्रेयसी ॥१६॥

अनुवाद— ब्राह्मण की वृत्ति (जीवन निर्वाह के साधन) चार प्रकार के हैं— वार्ता (यज्ञाध्ययन आदि कराकर धन लेना) शालीन (बिना माँगे जो कुछ भी मिल जाय उसी से निर्वाह करना) यायावर (प्रतिदिन धान्य आदि माँगकर लाना) तथा शिलोञ्छन (किसान के खेत काटकर घर ले जाने पर जो कण पृथिवी पर पड़े रह जाते हैं उन शिल और ऊँछों को बीनकर ले आना और उसी से जीवन निर्वाह करना ।) इन चारों में पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर वृत्ति श्रेष्ठ है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

विप्रस्य मुख्यानुकल्पभेदेन वृत्त्यन्तराण्याह-वार्तेति । वार्ता विचित्रा कृष्यादिरूपा । शालीनं धार्ष्ट्यं विनैव प्राप्तमयाचितम्। यायावरं प्रत्यहं धान्ययाच्ञा । शिलं शालिक्षेत्रादौ स्वामित्यक्तकणिशोपादानम् । उञ्छनमाणादिपतितकणोपादानम् । शिलोञ्छनद्वयमेकीकृत्य चतुर्धेत्युक्तम् । श्रेयसी उत्तमा ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

अनुकल्प भेद से ब्रह्माजी की दूसरी वृत्तियों को बतलाया गया है । कृषि आदि रूप विचित्र वार्ता, बिना माँगे ही जो कुछ मिल जाय उससे जीवन निर्वाह करना, इसी के शलीन वृत्ति कहते हैं । प्रतिदिन माँगकर अन्न

लाना यही यथावर वृत्ति है । और किसान द्वारा खेत काटकर अन्न अपने घर ले जाने पर जो अन्न के कण खेत में रह जाते हैं उनको बीन लेना इसी को शील वृत्ति कहते हैं । बाजार में गिरे हुए अन्न के कणों को उठा लेना ही उञ्छ वृत्ति है । शिल तथा उञ्छ इन दोनों को एक में मिला देने से शिलोञ्छ वृत्ति होती है । इस तरह ब्राह्मणों की चार वृत्तियाँ हैं । इनमें पूर्व-पूर्व की उपेक्षा उत्तरोत्तर वृत्ति श्रेष्ठ है ।।१६।।

जघन्यो नोत्तमां वृत्तिमनापदि भजेन्नरः । ऋते राजन्यमापत्सु सर्वेषामपि सर्वशः ।।१७।।

अन्वयः— ऋते राजन्यम् जघन्यः नर अनापदि उत्तमां वृत्तिं न भजेत् आपत्सु सर्वेषामपि सर्वशः ।।१७।।

अनुवाद— क्षत्रिय को छोड़कर दूसरे नीच वर्ण का पुरुष बिना आपत्ति के उत्तम वाणी की वृत्ति को न अपनाये। आपत्ति काल में तो सभी वर्ण के लोग सभी वर्णों की वृत्ति को पूर्ण रूप से अपना ले सकते हैं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

वृत्तिष्वेव व्यवस्थां दर्शयन्नापद्धत्तीराह जघन्यो नीचः । उत्तमामध्यापनादिरूपाम् । ऋते राजन्यम् । क्षत्रियस्तु प्रतिग्रहादन्यां भजेत् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

वृत्तियों (जीविकाओं) के विषय में व्यवस्था को बतलाते हुए आपत्ति कालिक वृत्तियों के बतलाते हैं । **जघन्यः** अर्थात् नीच वर्ण के पुरुष को क्षत्रिय को छोड़कर अध्यापन आदि की वृत्ति को नहीं अपनाना चाहिए । क्षत्रिय को दान नहीं लेना चाहिए ।।१७।।

ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा । सत्यानृताभ्यां जीवेत न श्ववृत्त्या कथंचन ।।१८।।

अन्वयः— ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा सत्यामृताभ्यां जीवेत न श्ववृत्त्या कदाचन ।।१८।।

अनुवाद— ऋत अमृत इन दोनों वृत्तियों के द्वारा जीवन निर्वाह करे अथवा मृत और प्रमृत वृत्ति से निर्वाह करे अथवा सत्य एवं अमृत वृत्ति से जीवन निर्वाह करे किन्तु श्वावृत्ति कभी न अपनाएँ ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

चतुर्विधां पूर्वोक्तां विप्रवृत्तिमितरेषामपि दर्शयन्नाह-ऋतामृताभ्यामिति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

पूर्वोक्त चार प्रकार की ब्राह्मण वृत्ति को दूसरों के लिए भी बतलाते हुए नारदजी ऋतामृताभ्याम् इत्यादि श्लोक को कहते हैं ।।१८।।

ऋतमुञ्छशिलं प्रोक्तममृतं यदयाचितम् । मृतं तु नित्ययाच्ञा स्यात्प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ।।१९।।

अन्वयः— ऋतम् उञ्छशिलं प्रोक्तम्, अमृतं यदयाचितम्, मृतं तु नित्य याच्ञा स्यात् प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ।।१९।।

अनुवाद— शिलोञ्छवृत्ति को ऋत कहा गया है, बिना माँगे जो मिल जाय उसे अमृत कहा गया है । प्रतिदिन भिक्षा माँगकर लाने को (यायावर वृत्ति को) मृत कहा गया और कृषि आदि वार्तावृत्ति के द्वारा जीवन निर्वाह को प्रमृत कहते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

श्लोकं व्याचष्टे- ऋतमिति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के द्वारा अठारहवें श्लोक की व्याख्या की गयी है ।।१९।।

सत्यानृतं तु वाणिज्यं श्ववृत्तिर्नीचसेवनम् । वर्जयेत्तां सदा विप्रो राजन्यश्च जुगुप्सिताम् ॥
सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो नृपः ॥२०॥

अन्वयः— सत्यानृतं तु वाणिज्यं नीचसेवनम् श्ववृत्तिः विप्रः तां सदा वर्जयेत् राजन्यः च जुगुप्सितम्, सर्ववेदमयः विप्रः सर्वदेवमयः नृपः ॥२०॥

अनुवाद— व्यापार करना सत्यानृत वृत्ति है, नीचों की नौकरी करना श्वावृत्ति है। ब्राह्मण और क्षत्रिय को उस निन्दित वृत्ति का सदैव त्याग करना चाहिए। ब्राह्मण सर्ववेदमय (सर्ववेद स्वरूप) है औरे क्षत्रिय सर्वदेवमय हैं॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तयोस्तद्वर्जने हेतुमाह-सर्ववेदमय इति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए नौकरी के निषेध का कारण बतलाते हैं कि ब्राह्मण सर्ववेदमय है और क्षत्रिय सर्वदेवमय ॥२०॥

शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षान्तिरार्जवम् । ज्ञानं दयाऽच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मलक्षणम् ॥२१॥

अन्वयः— शमो, दमः, तपः शौर्य, सन्तोषः क्षान्तिः, आर्जवम्, ज्ञानं दया, अच्युतात्मत्वं सत्यं च, ब्रह्मलक्षणम्॥२१॥

अनुवाद— शम, दम, तपस्या, शौच (पावित्र्य पालन) सन्तोष, क्षमा करना, ऋजुता, ज्ञान, दया करना, भगवद् भक्ति, तथा सत्य बोलना ये सभी ब्राह्मण के धर्म हैं, अर्थात् ब्रह्मणत्व के अभिव्यजक हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

वर्णानामभिव्यञ्जकरूपान्धर्मानाह-शम इति चतुर्भिः । अच्युतात्मत्वं श्रीविष्णुपरत्वम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण आदि वर्णों के अभिव्यञ्जक धर्मों को **शमः आदि** श्लोक कहे हैं ॥२१॥

शौर्यं वीर्यं धृतिस्तेजस्त्याग आत्मजयः क्षमा । ब्रह्मण्यता प्रसादश्च रक्षा च क्षत्रलक्षणम् ॥२२॥

अन्वयः— शौर्य, वीर्य, धृतिः, तेजः, त्यागः आत्मजयः क्षमा, ब्रह्मण्यता, प्रसादः, रक्षा च क्षत्र लक्षणम् ॥२२॥

अनुवाद— शौर्यम् (युद्ध में उत्साह) वीरता, धैर्य, तेज, त्याग (दान देना) मन को वश में रखना, क्षमा, ब्राह्मणों की भक्ति, अनुग्रह और रक्षा करना यह क्षत्रिय का लक्षण है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

शौर्यं युद्धोत्साहः । वीर्यं प्रभावः । तेजः प्रागल्भ्यम् । त्यागो दानम् । आत्मनो मनसो जयः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

युद्ध में उत्साह को शौर्य कहते हैं, वीर्य अर्थात् प्रभाव, प्रगल्भता तेज को कहते है, दान करने को त्याग कहते हैं, आत्मजयः अर्थात् मन को अपने वश में रखना ॥२२॥

देवगुर्वच्युते भक्तिस्त्रिवर्गपरिपोषणम् । आस्तिक्यमुद्यमो नित्यं नैपुणं वैश्यलक्षणम् ॥२३॥

अन्वयः— देवगुर्वच्युते भक्तिः त्रिवर्गपरिपोषणम् आस्तिक्यम्, उद्यमः नैपुणं नित्यं वैश्यलक्षणम् ॥२३॥

अनुवाद— देवता, गुरु, और भगवान् अच्युत की भक्ति करना, अर्थ, धर्म और काम का सम्वर्द्धन करना, श्रद्धा, प्रयासरत रहना और निपुणता ये वैश्य के लक्षण हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

शूद्रस्य संनतिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया । अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्यं गोविप्ररक्षणम् ॥२४॥

अन्वयः— संनति, शौचम् स्वमिनि अमायया सेवा, अमन्त्रयज्ञः अस्तेयम् सत्यं गोविप्ररक्षणम् च शूद्रस्य लक्षणम्॥२४॥

अनुवाद— नम्रता, पावित्र्य पालन, निष्कपट भाव से अपने स्वामी की सेवा करना, बिना मन्त्र के ही यज्ञ करना, चोरी नहीं करना, सत्य बोलना गौ और ब्राह्मण की रक्षा करना यह शूद्र का लक्षण है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अमन्त्रयज्ञो नमस्कारेणैव पञ्चयज्ञानुष्ठानम् । तथा च याज्ञवल्क्यः- 'नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्न हापयेत्' इति॥२४॥

भाव प्रकाशिका

केवल नमस्कर के द्वारा ही पञ्च महायज्ञों का अनुष्ठान करना । महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा भी है नमस्कार रूपी मन्त्र के द्वारा पञ्चयज्ञ का परित्याग करे ॥२४॥

स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषानुकूलता । तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम् ॥२५॥

अन्वयः— तच्छुश्रुषा अनुकूलता, तद्बन्धुषु अनुवृतिः च नित्यं तद्वधारणम् पति देवानां स्त्रीणां लक्षणम् इति शेषः॥२५॥

अनुवाद— पति की सेवा करना, पति के अनुकूल वने रहना, पति के संबन्धियों को प्रसन्न रखना, तथापति के नियमों की रक्षा करना, ये पति के ही ईश्वर मानने वाली पतिव्रता स्त्रियों का लक्षण हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

स्त्रीधर्मानाह-स्त्रीणामिति पञ्चभिः । पतिरेव देवो यासाम् । तस्य पत्युरेव शुश्रूषा पादसंवाहनादिभिः । तदनुकूलता च हिताचरण्म् । तस्य यद्व्रतं नियमस्तस्य धारणमाचरणम् । एतच्चतुष्टयं पतिव्रतानां लक्षणं धर्मश्च ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

स्त्रीणाम्० इत्यादि पाञ्च श्लकों से स्त्रियों के धर्मों का वर्णन करते हैं । पति को ही देवता मानने वाली अपने पति की ही सेवा अर्थात् पति का पैर दबाना इत्यदि, पति के अनुकूल आचरण करना ही तदनुकूलता है। पति के व्रत अर्थात् नियमों का आचरण करना, ये चारो पतिव्रता स्त्रियों के लक्षण और धर्म हैं ॥२५॥

संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः । स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा ॥२६॥

अन्वयः— संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः, स्वयं च मण्डिता, नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा ॥२६॥

अनुवाद— साध्वी स्त्री को चाहिए कि वह झाड़ने, लीपने, तथा चौक पूरने आदि से घर को और वस्त्राभूषणों से अपने शरीर को अलंकृत रखे, सामग्रियों को साफ सुथरा रखे ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

किंच संमार्जनोपलेपाभ्यामित्यादेः पतिं भजेदित्युत्तरेणान्वयः । परिमृष्टा उद्वर्तनादिना निर्मलीकृताः परिच्छदा गृहोपकरणानि यया ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

घर को झाड़कर तथा लिपकर पति की सेवा करे इसका आगे के श्लोक से सम्बन्ध है । उद्वर्तन आदि से घर के उपकरणों और अपने शरीर को स्वच्छ रखें ॥२६॥

कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च । वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत्पतिम्॥२७॥

अन्वयः— उच्चावचै कामैः प्रश्रयेण, दमेन च, सत्यैः, प्रियैः वाक्यैः साध्वी काले-काले पतिं भजेत् ॥२७॥

अनुवाद— साध्वी स्त्री के चाहिए कि वह पति की छोटी-बड़ी इच्छाओं को समयानुसार पूर्ण करे । विनय, इन्द्रिय संयम, सत्य एवं प्रिय वचनों से पति की सेवा करे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

संतुष्टाऽलोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक् । अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत् ॥२८॥

अन्वयः— संतुष्टा, अलोलुपा, दक्षा, धर्मज्ञा, प्रिय सत्यवाक्, अप्रमत्ता, शुचिः स्निग्ध तु अपतितं पतिं भजेत् ॥२८॥

अनुवाद— जो कुछ मिल जाय उसी से सन्तुष्ट रहना, किसी वस्तु की लालच न करे, सभी कार्यों में चतुर एवं धर्मज्ञ, सत्य एवं प्रिय बोलना अपने कर्तव्य में सावधन रहे, पवित्रता एवं प्रेम से परिपूर्ण रहकर यदि पति पतित न हो तो उसका सहवास करे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

किंच संतुष्टा यथालाभेन । तावन्मात्रभोगेऽप्यलोलुपा । दक्षा अनलसा । प्रिया सत्या च वाग्यस्याः । सर्वत्राप्यप्रमत्ताऽवहिता। अपतितं महापातकशून्यम् । यथाह याज्ञवल्क्यः 'आशुद्धेः संप्रतीक्ष्यो हि महापातकदूषितः' इति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

जो कुछ भी मिल जाय उसी से संतुष्ट रहना, उतना भोग मिलने पर भी लालच न करना, किसी कार्य में आलस्य न करना, प्रिय एवं सत्यवाणी बोलना, सदैव सावधान रहना इस प्रकार की साध्वी स्त्री अपने महपातक से रहित पति की सेवा करे । महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा भी है अशुद्धे संप्रतीक्ष्यो हि महापातक दषितः अर्थात् महापातक के कारण पति के अशुद्ध हो जाने पर उसकी शुद्धि काल तक प्रतीक्षा करनी चाहिए ॥२८॥

या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव तत्परा । हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते ॥२९॥

अन्वयः— या श्रीरिव, तत्परा हरिभावेन पतिं भजेत् सा हरेः लोके हर्यात्मना पत्या श्रीरिव मोदते ॥२९॥

अनुवाद— जो नारी श्रीलक्ष्मीजी के समान पति परायण होकर श्रीहरि की भावना से अपने पति की सेवा करती है, वह श्रीहरि के लोक में अपने श्रीहरि स्वरूप पति के साथ आनन्दानुभव करती है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तत्परा सती भजेत् । श्रीर्हरिमिव । हर्यात्मना पत्या सह ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

पति परायण होकर लक्ष्मीजी के समान अपने पति को श्रीहरि समझकर सेवा करने वाली स्त्री श्रीवैकुण्ठ लोक में अपने श्रीहरि स्वरूप पति के साथ आनन्दित होती है ॥२९॥

वृत्तिः सङ्करजातीनां तत्तत्कुलकृता भवेत् । अचौराणामपापानामन्त्यजान्तेवसायिनाम् ॥३०॥

अन्वयः— अचौराणाम् आपापानाम् अन्त्यजान्ते अवसायिनाम् सङ्कर जातीनां वृत्तिः तत् तत्कृता भवेत् ॥३०॥

अनुवाद— जो चोरी नहीं करते और न पाप करते हैं, उन अत्यन्त और चाण्डालआदि अन्तेवसायी वर्ण शङ्कर जातियों की वृत्ति वही होती है जो उनकी कुल परम्परा से प्राप्त है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिलोमजानुलोमजानां वृत्तिमाह-वृत्तिरिति । तत्तत्कुलकृता कुलपरम्पराप्राप्ता । परम्पराप्राप्तमपि चौर्यं हिंसादिकं च प्रतिषेधति-अचौराणामपापानां चेति । तत्प्रदर्शनार्थं कांश्चित्प्रतिलोमजविशेषनाह-अन्त्यजेति । 'रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च । कैवर्तभेदभिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः ।' इति अन्तेवसायिनस्तु चाण्डालपुल्कसमातङ्गादयः । तेषां परम्पराप्राप्तैव वस्त्रनिर्णेजनादिवृत्तिरित्यर्थः ॥३०॥

तथा पाप नहीं करने वाले इससे कुल परम्परा से प्राप्त भी चोरी और हिंसा का निषेध किया गया है । कुछ प्रतिलोमज जातियों के अन्त्यज शब्द से कहा गया है । **रजकश्चर्मकश्च० इत्यादि** धोबी, चमार, नट, बुरुड, अनेक प्रकार के वट और भिल्ल ये सात अन्त्यज जातियाँ है । चाण्डाल पुल्कस तथा मातङ्ग आदि अन्तेवसायी जातियाँ हैं। चौरी उन सबों की कुल परम्परा से प्राप्त ही वृत्ति है । जैसे धोबी का कपड़ा धोना इत्यादि ॥३०॥

प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे युगे । वेददृग्भिः स्मृतो राजन्प्रेत्य चेह च शर्मकृत ॥३१॥

अन्वयः— राजन् ! वेद दृग्भिः युगे-युगे प्रायः स्वभाविहितः धर्मः स्मृतः सः इह प्रेत्य च शर्मकृत् ॥३१॥

अनुवाद— राजन् ! वेद का साक्षात्कार करने वाले ऋषियों ने प्रत्येक युग में स्वभावानुकूल ही धर्म का विधान किया है । अपना ही धर्म सबों का इस लोक में और परलोक में कल्याणकारी होता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

श्रेष्ठादपि परधर्मान्नीचोऽपि स्वधर्म एव श्रेयानित्याह प्राय इति । स्वभावेन सत्त्वादिप्रकृत्या विहितो धर्मः शर्मकृत् सुखहेतुः स्मृतः । कैः । वेद एव दृक् चक्षुर्येषां तैः । भगवता चोक्तम्- 'श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्' इति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

श्रेष्ठ भी दूसरे के धर्म से अपनी जाति का नीच धर्म ही कल्याणकारी होता है इस बात को **प्रायः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । सत्त्व आदि प्रकृति के अनुसार विदित धर्म सुखप्रद होता है । यह वेद मन्त्रों का साक्षात्कार करने वाले ऋषियों ने कहा है । श्रीभगवान्ने गीता में कहा भी है- गुण रहित भी अपना धर्म दूसरों के अच्छी तरह से अनुष्ठित धर्म की अपेक्षा अधिक कल्याणकारी होता है ॥३१॥

वृत्त्या स्वभावकृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत् । हित्वा स्वभावजं कर्म शनैर्निर्गुणतामियात् ॥३२॥

अन्वयः— स्वभावकृतया वृत्या वर्तमानः स्वकर्मकृत् स्वभावजं कर्म हित्वा शनैः निर्गुणताम् इयात् ॥३२॥

अनुवाद— अपनी स्वाभाविक वृत्ति का आश्रय लेकर अपने कर्म को करने वाला मनुष्य धीरे-धीरे अपने स्वाभाविक कर्म का परित्याग करके गुणातीत हो जाता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

ननु स्वाभाविकस्य कर्मणो बन्धहेतुत्वात्कथं सुखहेतुत्वं तत्राह-वृत्त्येति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि स्वाभाविक कर्म बन्धन कारक होता है, वह सुखप्रद कैसे हो सकता है ? इस पर **वृत्या० इत्यादि** श्लोक कहते हैं ॥३२॥

उप्यमानं मुहुः क्षेत्र स्वंय निर्वीर्यतामियात् । न कल्पते पुनः सूत्या उप्तं बीजं च नश्यति॥३३॥
एवं कामाशयं चित्तं कामानामतिसेवया । विरज्येत यथा राजन्नाग्निवत्कामबिन्दुभिः ॥३४॥

अन्वयः— राजन् ! मुहुः उप्यमानं क्षेत्रं स्वयं निर्वीर्यताम् इयात् पुनः सूत्यै न कल्पते, उप्तं बीजं च नश्यति । एवं कामाशयं चित्तं कामानामतिसेवया, यथा विरज्येत कामविन्दुभिः अग्निवत् ॥३३-३४॥

अनुवाद— राजन् ! जिस तरह बार-बार बोने से खेत स्वयं शक्ति हीन हो जाते है, और उसमें अङ्कुर का उगना बन्द हो जाता है और बोया हुआ बीज भी नष्ट हो जाता है, उसी तरह वासनाओं का खजाना यह चित्त विषयों का अत्यधिक सेवन करने से उब जाता है । किन्तु स्वल्प भोगों से ऐसा नहीं होता है, जैसे एक-एक बूंद घी डालने से आग नहीं बुझती है, किन्तु एक साथ ही अधिक घी डालने पर वह बूझ जाती हैं ॥३३-३४॥

भावार्थ दीपिका

ननु काम्यानि कर्माणि कुर्वतस्तत्फलभोगपरस्य कथं नैर्गुण्यं स्यात् । तदुक्तं प्रह्लादेन–'औपस्थ्यजैह्वयं बहुमन्यमानः कथं विरज्येत दुरन्तमोहः' इत्यादि । तत्राधिकारिभेदेन व्यवस्थां सदृष्टान्तामाह–उप्यमानमिति द्वाभ्याम् । पुनः सूत्यै सत्यप्रसवाय । कामा आशेरते वासनारूपेण यस्मिंस्तत् । अयं भावः–उत्कटवासनाविष्टस्य सहसैव कामत्यागासंभवाद्वेदोक्तनियमेन बहुशः कामान्भुञ्जानस्यैव नित्यनैमित्तिकैर्विशुद्धचेतसस्तद्दोषदर्शनेन ययातिसौभरिप्रमुखानामिव शनैर्विरागो भवति, यथा सवीर्यं क्षेत्र शानैर्निवीर्यं भवति, यथा चप्रज्वलितोऽग्निर्न घृतबिन्दुभिः शाम्यति, महता तु घृतपूरेण शाम्यत्येव तद्वत् । प्रह्लादकृतस्तुतौ कौमार एव निवृत्त्युपदेशो मन्दवासनानामधिकारेण । तदुक्तं तत्रैव- 'बाला न दूषितधियो द्वन्द्वारामेरितेहितैः' इति । अतः सर्वमनवद्यम् ।।३३-३४।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि काम्य कर्मों को करने वाले का नैगुण्र्य कैसे सम्भव है ? प्रह्लादजी ने कहा भी है जननेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय विषय भोगों को बहुत महत्त्व देने वाले का अज्ञान इतना सुदृढ हो जाता है कि वह उससे कभी विरक्त नहीं हो सकता है । उसके विषय में अधिकारी की भिन्नता के कारण व्यवस्था को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक **उप्यमानम्० इत्यादि** श्लोकों के द्वारा देते है पुनः सूत्यै का अर्थ है कि वह क्षेत्र पुनः अङ्कुर नहीं उत्पन्न कर पाता है । **कामाशयः** की व्युत्पत्ति है जिसमें कामनाएँ शयन करती है वह कहने का अभिप्राय है जो व्यक्ति उत्कट वासनाओं से आविष्ट है वह सहसा काम का परित्याग नहीं कर सकता है । अतएव वेदोक्त नियमानुसार अनेक कामनाओं का भोग करने वाले पुरुष का अन्तःकरण नित्य नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान करने से जब शुद्ध हो जाता है, तो वह उन भोगों में द्वेष का अनुभव करने लगता है, जैसे ययाति तथा सौभारि इत्यादि और उन पुरुषों का धीरे-धीरे विषयों से विराग हो जाता है । यह उसी तरह होता है जैसे उपजाऊ खेत बार-बार बोते रहने से धीरे-धीरे उषर हो जाता है जैसे प्रज्वलित अग्नि घी की विन्दुओं से नहीं बुझती है किन्तु बहुत अधिक घी डाल देने पर तो वह बूझ ही जाती है उसी तरह । प्रह्लाद स्तुति में तो कुमारावस्था में ही निवृत्ति का उपदेश मन्दवासना वालों का अधिकार होने से है । वहीं पर कहा भी गया है विषय भोगों की चेष्टाओं से बालकों की बुद्धि दूषित नहीं होती है । अतएव सम्पूर्ण नारदोक्ति निर्दोष है ।।३३-३४।।

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् । यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ।।३५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नामैकादशोऽध्यायः ।।११।।

अन्वयः— यस्य पुंसो वणीभिव्यंजकं यल्लक्षणं प्रोक्तं यत् अन्यत्र दृश्येत तत् तेनैव विनिर्दिशेत् ।।३५।।

अनुवाद— जिस पुरुष का वर्णाभिव्यंजक जो लक्षण बतलाया गया है, वह लक्षण यदि दूसरे में भी मिले तो उसको भी उसी वर्ण का मानना चाहिए ।।३५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के युधिष्ठिर नारद संवाद के अन्तर्गत सदाचार निर्णय नामक ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ।।११।।

भावार्थ दीपिका

शमादिभिरेव ब्राह्मणादिव्यवहारो मुख्यो न जातिमात्रादित्याह-यस्येति । यद्यदि अन्यत्र वर्णान्तरेऽपि दृश्येत तद्वर्णान्तरं तेनैव लक्षणनिमित्तेनैव वर्णेन विनिर्दिशेत् । न तज्जातिनिमित्तेनेत्यर्थः ।।३५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तम स्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकादशोऽध्यायः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

शम आदि गुणों के द्वारा ही ब्राह्मण आदि का व्यवहार मुख्य है, केवल जाति से नहीं। इस बात को नारदजी ने **यस्य० इत्यादि** श्लोक से कहा है। यदि वह लक्षण दूसरे वर्ण वाले पुरुष में भी मिलता है तो उसको भी उसी जाति का मानना चाहिए। केवल जाति के द्वारा उसको उस जाति का नहीं कहना चाहिए ॥३५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के ग्यारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।११।।

◆

बारहवाँ अध्याय

ब्रह्मचर्य एवं बानप्रस्थ आश्रमों के नियम

नारद उवाच

ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दान्तो गुरोर्हितम् । आचरन्दासवन्नीचो गुरौ सुदृढसौहृदः ॥१॥

अन्वयः— गुरुकुले वसन् ब्रह्मचारी दान्तः गुरोहिर्तम् आचरन् दासवत् नीचः गुरौ सुदृढः सौहृदः ॥१॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— गुरुकुल में रहने वाला ब्रह्मचारी अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर गुरु का हित कार्य करते हुए अपने को दास के समान छोटा माने और गुरुदेव के चरणों में सुदृढ अनुराग रखे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशे वर्ण्यते धर्मो ब्रह्मचारिवनस्थयोः । चतुर्णामाश्रमाणां च साधारण्येन कश्चन । वर्णादीनां धर्मा उक्ताः, इदानीमाश्रमधर्मा उच्यन्ते । तत्रास्मिन्द्वादशेऽध्याये ब्रह्मचारिवानप्रस्थयोरसाधारणाश्चतुर्णां साधारणाश्चोच्यन्ते । त्रयोदशे यतेर्धर्माः । चतुर्दशे गृहस्थस्य पञ्चदशे सर्वधर्मसारसंग्रहः । ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्गुर्वादीनुपासीतेत्युत्तरेणान्वयः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बारहवें अध्याय में ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ आश्रमों के धर्म का वर्णन किया गया है । और चारो आश्रमों के धर्मों का वर्णन साधारण रूप से किया गया है । वर्णों आदि के धर्मों का वर्णन किया जा चुका है । अब आश्रम धर्मों का वर्णन किया जा रहा है । उसमें भी इस बारहवें अध्याय में ब्रह्मचारी तथा वानप्रस्थों का असाधारण धर्म वर्णित है और चारो आश्रमों के साधारण धर्मों का वर्णन है । तेरहवें अध्याय में यतियों के धर्म का वर्णन है, चौदहवें अध्याय में गृहस्थों के धर्म का वर्णन है और पन्द्रहवें अध्याय में सभी धर्मों का सारांश संगृहित है । गुरुकुल में रहने वाला ब्रह्मचारी गुरु आदि की सेवा करे यह आगे के श्लोक से अन्वित है ॥१॥

सायम्प्रातरुपासीत गुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान् । उभे सन्ध्ये च यतवाग्जपन्ब्रह्म समाहितः ॥२॥

अन्वयः — सायम्प्रातः गुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान् उपासीत, यतवाक् ब्रह्मजपन् समाहित उभे सध्ये च उपासीत ॥२॥

अनुवाद— ब्रह्मचारी सायं काल और प्रातःकाल गुरु, अग्नि, सूर्य तथा श्रेष्ठ देवताओं की उपासना कर तथा मौन होकर गायत्री मन्त्र का जप करते हुए एकाग्रता पूर्वक दोनों सन्ध्याओं की उपासना करें ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तानाह- सायमिति ब्रह्म गायत्रीं जपन् सन्ध्यात्रयमुपासीत् । उभे सन्ध्ये तु यतवाक् सायम्प्रातः सन्ध्याकालनिमित्तं मौनं कुर्यादित्यर्थः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उन नियमों को सायं प्रातः इत्यादि श्लोक से कहते हैं। ब्रह्म गायत्री का जप करते हुए तीनों (प्रातः मध्याह्न और सायं) सन्ध्याओं की उपासना करें। दोनों सन्ध्याअें में मौन होकर सायं एवं प्रातः सन्ध्या काल के करण सन्ध्या करे ॥२॥

छन्दांस्यधीयीत गुरोराहूतश्चेत्सुयन्त्रितः। उपक्रमेऽवसाने च चरणौ शिरसा नमेत् ॥३॥

अन्वयः— गुरो राहूतः चेत सुयन्त्रितः छन्दांस्यधीयीत। उपक्रमे अवसाने च चरणौ शिरसा नमेत् ॥३॥

अनुवाद— जब गुरुजी बुलायें तो पूर्णतया अनुशासन में रहकर उन से वेदों का अध्ययन करे। पाठ के आदि में तथा अन्त में गुरु के चरणों में शिर टेककर प्रणाम करें ॥३॥

भावार्थ दीपिका

उपक्रमे आदाववसाने अन्ते गुरोश्चरणौ नमेत् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

पाठ के प्रारम्भ में और अन्त में गुरु के चरणों में शिर टेक कर प्रणाम करे ॥३॥

मेखलाजिनवासांसि जटादण्डकमण्डलून्। बिभृयादुपवीतं च दर्भपाणिर्यथोदितम् ॥४॥

अन्वयः— यथोदितम् मेखलाजिनवसांसि जटादण्डकमण्डलून् उपवीतं, दर्भपाणि च विभृयात् ॥४॥

अनुवाद— शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार मेखला, मृगचर्म, वस्त्र, जटा, दण्ड, कमण्डलु, यज्ञोपवित धारण करे और हाथ में कुश धारण करें ॥४॥

भावार्थ दीपिका

यथोदितमिति। पालाशो दण्डो ब्राह्मणस्येत्यादिनियममनतिक्रम्य। जटाधारणं तु केशप्रसाधनाभावमात्रम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

जैसा कि शास्त्र बतलाता है ब्राह्मण का दण्ड पलाश का होना चाहिए इत्यादि नियमों के अनुसार ही होना चाहिए केश को संवारने के साधन का अभाव होने के कारण ही जटा धारण करें ॥४॥

सायंप्रातश्चरेद्भैक्षं गुरवे तन्निवेदयेत्। भुञ्जीत यद्यनुज्ञातो नो चेदुपवसेत्क्वचित् ॥५॥

अन्वयः— सायम्प्रातः भैक्षं चरेत् तद गुरवे निवेदेयेत्। यदि अनुज्ञातः भुञ्जीत नो चेत् क्वचित् उपवसेत् ॥५॥

अनुवाद— सायं काल और प्रातःकाल भिक्षाटन करे और उसे गुरुजी को निवेदित करे। यदि गुरुजी आज्ञा दें तो उसे खाये और आज्ञा नहीं देने पर कभी उपवास भी करे ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

सुशीलो मितभुग्दक्षः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः। यावदर्थं व्यवहरेत्स्त्रीषु स्त्रीनिर्जितेषु च ॥६॥

अन्वयः— सुशीलः मितभुक्, दक्षः, श्रदधानः जितेन्द्रियः स्त्रीषु स्त्रीनिर्जितेषु च यावदर्थं व्यवहरेत् ॥६॥

अनुवाद— अपने शील की रक्षा करें थोड़ा भोजन करे, अपने कामों को निपुणता पूर्वक करे, शास्त्र तथा गुरु में श्रद्धा रखे, इन्द्रियों को अपने वश में रखे, स्त्रियों तथा स्त्रियों के वश में रहने वाले लोगों से अनवश्यक रूप से वातें न करें ॥६॥

भावार्थ दीपिका

यावदर्थं यथोपयोगमेव ॥६॥

भाव प्रकाशिका

आवश्यक मात्रा में ही ॥६॥

वर्जयेत्प्रमदागाथामगृहस्थो बृहद्व्रतः । इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्त्यपि यतेर्मनः ।।७।।

अन्वयः— अगृहस्थः, बृहदव्रतः प्रमदागाथां वर्जयेत् प्रमाथीनि इन्द्रियाणि यतेः अपि मनः हरन्ति ।।७।।

अनुवाद— जो गृहस्थ नहीं है और ब्रह्मचारी का व्रत लिए हुए है, उसे स्त्रियों की चर्चा से दूर रहना चाहिए क्योंकि मन अत्यन्त बलवान् है वे यति के भी मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

बृहद्व्रतो ब्रह्मचर्यवान् गृस्थव्यतिरिक्तः सर्वोऽपि प्रमदागाथां वर्जयेत् । तत्र हेतुः-इन्द्रियाणि बलवन्ति संयतस्यापि मनो हरन्तीति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

बृहद्व्रत अर्थात् ब्रह्मचर्यवान् गृहस्थ से भिन्न, सबों को स्त्रियों की चर्चा से दूर रहना चाहिए । इन्द्रियाँ बलवान् होती हैं संयत पुरुष को भी आकर्षित कर लेती है ।।७।।

केशप्रसाधनोन्मर्दस्नपनाभ्यञ्जनादिकम् । गुरुस्त्रीभिर्युवतिभि कारयेन्नात्मनो युवा ।।८।।

अन्वयः— युवा युवतिभिः गुरुस्त्रीभिः आत्मनः केशप्रसाधनोन्मर्दस्नपनाभ्यञ्जनादिकम् न कारयेत् ।।८।।

अनुवाद— युवक ब्रह्मचारी यवती गुरु पत्नियों से अपना बाल सुलझाना, शरीर मलवाना, स्नान करवाना, उबटन लगवाना इत्यादि कार्य न कराये ।।८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।८।।

नन्वग्निः प्रमदा नाम घृतकुम्भसमः पुमान् । सुतामपि रहो जह्यादन्यदा यावदर्थकृत् ।।९।।

अन्वयः— ननु प्रमदानाम अग्निः पुमान् घृतकुम्भसमः सुताम् अपि रहः जह्यात् अन्यदा यावदर्थकृत् ।।९।।

अनुवाद— स्त्री आग के समान है और पुरुष घी के घड़े के समान है, यदि पुत्री भी एकान्त में हो तो उसके पास आवश्यकता के अनुसार ही रहना चाहिए ।।९।।

भावार्थ दीपिका

न कारयेदित्यत्र हेतुः- नन्विति । रहः एकान्ते । अन्यदा केशप्रसाधनादिव्यतिरिक्तावसरे अनेकान्तावसरे वा । यावदर्थं तदुक्तं कुर्यात् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

युवती गुरु पत्नी से भी अञ्जन इत्यादि न कराये उसका कारण **ननु० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । एकान्त में पुत्री से भी केश प्रसाधनादि व्यतिरिक्त समय में एकान्त अथवा अनेकान्त में भी जितना आवश्यक हो उतना ही उसका कहना करे ।।९।।

कल्पयित्वात्मना यावदाभासमिदमीश्वरः । द्वैतं तावन्न विरमेत्ततो ह्यस्य विपर्ययः ।।१०।।

अन्वयः— आत्मना इदमाभासम् इति कल्पपित्वा ईश्वरो न यावत् न भवेत् तावद् द्वैतं न विरमेत् ततः हि अस्य विपर्ययः ।।१०।।

अनुवाद — जब तक यह जीव आत्म साक्षात्कार के द्वारा इन देह और इन्द्रियों का प्रतीति मात्र निश्चय करके स्वतंत्र नहीं हो जाता है, तब तक द्वैत नहीं मिटता है, तब तक यह भी निश्चित है कि ऐसे पुरुष यदि स्त्री के संसर्ग में रहेंगे तो उनकी उनमें भोग्य बुद्धि हो ही जायेगी ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

ननु मिथ्यात्वादतिकश्मलत्वाच्च स्वयं त्यक्तप्रायं स्त्र्यादि जह्यादिति कोऽयमतिनिर्बन्धस्तत्राह-कल्पयित्वेति । आत्मना स्वरूपसाक्षात्कारेणेदं देहेन्द्रियाद्याभासमात्रं कल्पयित्वा निश्चित्य यावदसौ जीव ईश्वरः स्वतन्त्रो न भवेत्तावद्द्वैतं अयं पुमानियं स्त्रीत्यादिभेदो न विरमेत् । ततः किमत आह- ततो हि द्वैतात् विपर्ययो गुणाध्यासेन भोग्यताबुद्धिः । अतो जह्यादेवेत्यर्थः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहे कि मिथ्या तथा अत्यन्त पाममय होने के कारण भी स्त्रियों का परित्याग हो जाता है । अतएव यह निर्बन्ध करने की क्या आवश्यकता है कि त्याग ही देना चाहिए । इसके उत्तर में **कल्पयित्वा० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । स्वरूप साक्षात्कार के द्वारा जब तक जीव यह निश्चित करके स्वतंत्र नहीं हो जाता है कि यह देह और इन्द्रियाँ प्रतीति मात्र हैं तब तक यह पुरुष है और यह स्त्री है, इस प्रकार की भेद भावना विनष्ट नहीं होती है। यदि कहें कि तो इससे क्या हुआ ? तो इस पर कहते हैं कि गुणाध्यास के कारण भोग्यता बुद्धि होगी ही इसलिए परित्याग करना चाहिए ।।१०।।

एतत्सर्वं गृहस्थस्य समाम्नतं यतेरपि । गुरुवृत्तिर्विकल्पेन गृहस्थस्यर्तुगामिनः ।।११।।

अन्वयः— एतत् सर्वं गृहस्थस्य यतेः अपि समाम्नातम् ऋतु गामिनः गृहस्थस्य गुरुवृत्ति विकल्पेन वर्तत इति शेषः।।११।।

अनुवाद— ये शील संरक्षण आदि सारी बातें गृहस्थ तथा संन्यासी के भी लिए हैं, ऋतुकाल में पत्नी गमन करने वाले गृहस्थ के लिए गुरुकुल में रहकर गुरु की सेवा वैकल्पिक है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

एतत्सर्वं सुशील इत्याद्युक्तम् । गृहस्थस्य विशेषमाह-गुरुवृत्तिरिति ।।११।।

भाव प्रकाशिका

ये सब शील संरक्षण आदि सारी बातें गृहस्थ के लिए तथा संन्यासी के लिए भी हैं । किन्तु ऋतुकाल में पत्नी गमन करने वाले गृहस्थ के लिए गुरुवृत्ति वैकल्पिक है ।।११।।

अञ्जनाभ्यञ्जनोन्मर्दस्त्र्यवलेखामिषं मधु । स्रग्गन्धलेपालंकारांस्त्यजेयुर्ये धृतव्रताः ।।१२।।

अन्वयः— ये धृतव्रताः ते अञ्जनाभ्यञ्जनोन्मर्द स्त्र्यवलेखामिषं मधु, स्रग्गन्धलेपालङ्कारान् त्यजेयुः ।।१२।।

अनुवाद— जो ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाले हैं उनको चाहिए कि वे सुरमा या तेल न लगायें, उबटन न मलें, स्त्रियों का चित्र न बनायें, मांस और मदिरा का सेवन न करें, माला इत्र, चन्दन, और आभूषणों का परित्याग कर दें ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

अञ्जनादीनामामिपान्तानां द्वन्द्वैक्यम् । अञ्जनं शरीरस्य । अभ्यञ्जनं शिरसः । स्त्रियं चावलेखां च चित्रकर्म स्त्रीणां कुड्यादौ लेखनं वा तन्निरीक्षणं वा । अत्राभ्यङ्गादि स्वरूपतो निषिध्यते । पूर्वं तु कथंचिदापदि प्राप्तमपि स्त्रीकर्तृकं निपिद्धमिति भेदः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

श्लोक में अञ्जन से लेकर आमिष पर्यन्त का द्वन्द्व समास होने के कारण एक वचनान्त प्रयोग है । शरीर का अञ्जन और शिर का अभ्यञ्जन दिवाल आदि पर स्त्रियों का चित्र को बनाना अथवा स्त्रियों के चित्र को देखना त्याग दे ब्रह्मचर्य व्रती को उसमें भी तैलमर्दन आदि का स्वरूपतः निषेध है । आपत्ति में किसी तरह से पहले प्राप्त भी होने पर स्त्रियों के द्वारा इन सबों को करवाना निषिद्ध है ।।१२।।

उषित्वैवं गुरुकुले द्विजोऽधीत्यावबुध्य च । त्रयीं साङ्गोपनिषदं यावदर्थं यथाबलम् ॥१३॥

अन्वयः— एवं गुरुकुले उषित्वा एव द्विजः यावदर्थ यथाबलं साङ्गोपनिषदं त्रयीं अधीत्य अवबुध्य च ॥१३॥

अनुवाद— इस प्रकार द्विज को चाहिए कि वह गुरुकुल में रहकर ही अपनी और आवश्यकता के अनुसार शिक्षा कल्प व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष इन अङ्गों और उपनिषदों के साथ वेदों का अध्ययन करके उसका अर्थ जाने ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अङ्गैः शिक्षादिभिरुपनिषद्भिश्च सहितां वेदत्रयीमधीत्यावबुध्य च तदर्थं च विचार्य । यावदर्थं स्वाधिकारानुसारेण ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

शिक्षा इत्यादि वेदाङ्गों और उपनिषदों के साथ ऋग्यजु साम इन तीनों वेदों का अध्ययन करके और उसके अर्थो को जानकर अपने अधिकार के अनुसार जाने ॥१३॥

दत्त्वा वरमनुज्ञातो गुरोः कामं यदीश्वरः । गृहं वनं वा प्रविशेत्प्रव्रजेत्तत्र वा वसेत् ॥१४॥

अन्वयः— यद् ईश्वरः गुरोः कामं वरम् दत्वा अनुज्ञात गृहं, वनं वा प्रविशेत् प्रव्रजेत् तत्र वा वसेत् ॥१४॥

अनुवाद— यदि सामर्थ्य हो तो गुरु को मुँह माँगी दक्षिणा देकर गुरु की आज्ञा प्राप्त करके, गार्हस्थ्य स्वीकार करे या वानप्रस्थ हो जाय अथवा संन्यास ग्रहण कर ले या गुरुकुल में ही निवास करें ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

यदीश्वरः शक्तस्तर्हि गुरोः काममपेक्षितं वरं दत्त्वा यथाधिकारं गृहस्थाद्याश्रमं स्वीकुर्यात्प्रव्रजेत् वातत्रैववा वसेत् नैष्ठिकः स्यादित्यर्थः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

यदि सामर्थ्य हो तो गुरु को अपेक्षित दक्षिणा प्रदान करके अपने अधिकारानुसार गृहस्थाश्रम स्वीकार करे या संन्यास ग्रहण कर ले अथवा गुरुकुल में ही निवास करे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो जाय ॥१४॥

अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेष्वधोक्षजम् । भूतैः स्वधामभिः पश्येदप्रविष्टं प्रविष्टवत् ॥१५॥

अन्वयः— अग्नौ गुरौ आत्मनि सर्वभूतेषु स्वधामभिः भूतौः अप्रविष्टं अधोक्षजम् प्रविष्टवत् पश्येत् ॥१५॥

अनुवाद— यद्यपि परमात्मा सर्वत्र समान रूप से व्याप्त हैं फिर भी अग्नि, गुरु, आत्मा और सभी भूतों में वे अपने आश्रित जीवों के साथ विद्यमान परमात्मा को उनमें प्रविष्ट के समान देखना चाहिए ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

स्वधामभिः स्वाश्रयैर्भूतैर्जीवैः सह तन्नियन्तृतया ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मा अपने आश्रय भूत जीवों के साथ उनके नियामक रूप से विशेष रूप से वर्तमान हैं ॥१५॥

एवंविधो ब्रह्मचारी वानप्रस्थो यतिर्गृही । चरन्विदितविज्ञानः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥१६॥

अन्वयः— एवं विधः चरन् ब्रह्मचारी वानप्रस्थः यति, गृही विदित विज्ञानः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥१६॥

अनुवाद— इस प्रकार आचरण करने वाला ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, यति अथवा गृहस्थ विज्ञान सम्पन्न होकर परंब्रह्म को प्राप्त कर लेता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

चरन्नेवमाचरन् । विदितं विज्ञानं विज्ञेयं येन सः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

आचरण करने वाला ज्ञान सम्पन्न हो जाता है ॥१६॥

वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमान्मुनिसंमतान् । यानातिष्ठन्मुनिर्गच्छेदृषिलोकमिहाञ्जसा ॥१७॥

अन्वयः— वानप्रस्थस्य मुनिसम्मतान् नियमान वक्ष्यामि, यान् आतिष्ठन् मुनिः इह ऋषि लोकम् अञ्जसा गच्छेत्॥१७॥

अनुवाद— अब मैं वानप्रस्थ मुनियों के अभिमत् नियमों को बतलाता हूँ इन नियमों का पालन करने वाला वानप्रस्थीं अनायास ही ऋषियों के लोक महलोक में जाता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ऋषिलोकं महर्लोकम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

ऋषियों का लोक महर्लोक है ॥१७॥

न कृष्टपच्यमश्नीयादकृष्टं चाप्यकालतः । अग्निपक्वमथामं वा अर्कपक्वमुदाहरेत् ॥१८॥

अन्वयः— न कृष्टपच्यम् अश्नीयात् अकृष्टं चापि अकालतः अग्निपक्वम् अथामं वा अर्कपक्वम् अथ आहरेत्॥१८॥

अनुवाद— वानप्रस्थी को जोती हुई भूमि में उत्पन्न गेहूँ, चावल आदि अन्न को नहीं खाना चाहिए, बिना जोती हुई भी भूमि में बिना समय के पके हुए अन्न को भी नहीं खाना चाहिए। उसे अग्नि में पकाये हुए अथवा कच्चा भी नहीं खाना चाहिए। वह केवल सूर्य से पके हुए कन्दमूल और फल को खाकर निर्वाह करे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अकृष्टमकृष्टपच्यम् । अकालतः पाककालात्पूर्वमेव निष्पन्नमित्यर्थः । अर्कपक्वं फलादि । आहरेदश्नीयात् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

बिना जोती हुई भूमि में उत्पन्न किन्तु बिना समय के पके हुए भी अन्न को नहीं खाना चाहिए। उसे केवल सूर्य से पके हुए फल आदि को ही खाना चाहिए ॥१८॥

वन्यैश्चरुपुरोडाशान्निर्वपेत्कालचोदितान् । लब्धे नवे नवेऽन्नाद्ये पुराणं तु परित्यजेत् ॥१९॥

अन्वयः— वन्यैः चरुपुरोडाशान् कालचोदितान् निर्वपेत् नवे, नवे अन्नाद्ये लब्धे पुराणं तु परित्यजेत् ॥१९॥

अनुवाद— जङ्गलों में अपने आप पके हुए धान्यों से नित्य नैमित्तिक चरु और पुरोडाश का हवन करे। जब नये-नये अन्न, फल आदि मिलने लगें तो पुराने को वह त्याग दें ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

वन्यैर्नीवारादिभिश्चरुपुरोडाशान् । कालचोदितान्नित्यान् । पुराणं पूर्वसंचितम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

निवार आदि से बने चरु और पुरोडाश से नित्य नैमित्तिक होम करे। **पुराणम्** अर्थात् पहले से संचित॥१९॥

अग्न्यर्थमेव शरणमुटजं वाद्रिकन्दराम् । श्रयेत हिमवाय्वग्निवर्षार्कातपषाट् स्वयम् ॥२०॥

अन्वयः— अग्न्यर्थमेव शरणम् ऊटजम् वा अद्रिकन्दरम् स्वयम् हिमवाय्वग्निवर्षार्कातपषाट् श्रयेत् ॥२०॥

अनुवाद— अग्निहोत्र की अग्नि की रक्षा के लिए ही गृह, पर्णकुटी या पर्वत की कन्दरा का आश्रय ले स्वयम् वह शीत, वायु, अग्नि, वर्षा, धूप को वर्दास्त करे ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

हिमादीन्सहत इति तथा ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

शीत आदि को वह स्वयं सहता है ।।२०।।

केशरोमनखश्मश्रुमलानि जटिलो दधत् । कमण्डल्वजिने दण्डवल्कलाग्निपरिच्छदान् ।।२१।।

अन्वयः— केशरोमनखश्मश्रुरुमलानि जटिलः कमण्डल्वजिने, दण्डवल्कलाग्निपरिच्छदान् दधत् ।।२१।।

अनुवाद— वह केश, रोम, दाढी, मूंछ को न कटवाये मैल को भी शरीर से अलग न करे, जटा धारण करे कमण्डलु, मृगचर्म, दण्ड, वल्कल वस्त्र तथा होम की सामग्री को अपने पास रखे ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

केशादीन्मलं चाप्रक्षालनेन धारयेत् । कमण्डल्वादींश्च दधत् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

केश आदि को तथा मैल आदि धारण करे । कमण्डलु आदि को भी धारण करे ।।२१।।

चरेद्वने द्वादशाब्दानष्टौ वा चतुरो मुनिः । द्वावेकं वा यथाबुद्धिर्न विपद्येत कृच्छ्रतः ।।२२।।

अन्वयः— मुनिः वने द्वादशाब्दान् अष्टौवा चतुरः द्वौ वा एकं चरेत् यथा कृच्छ्रतः बुद्धिः न विपद्येत् ।।२२।।

अनुवाद— विचारवान पुरुष को चाहिए कि वह वन में बारह या आठ या चार या दो या एक वर्ष तक वानप्रस्थ के नियमों का पालन करे । ध्यान रहे कि अधिक कष्ट के कारण बुद्धि बिगड़ न जाय ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

कृच्छ्रतस्तपः क्लेशाद्यथा बुद्धिर्न नश्येत्तथा चरेत् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

तपस्या जन्य क्लेश के कारण कहीं बुद्धि नष्ट न हो जाय ऐसा ही आचरण करे ।।२२।।

यदाऽकल्पः स्वक्रियायां व्याधिभिर्जरयाऽथ वा । आन्वीक्षिक्यां वा विद्यायां कुर्यादनशनादिकम्।।२३।।

अन्वयः— यदा व्याधिभिः जरया स्वक्रियायाम् अकल्पः आन्वक्षिवक्यां वा विद्ययां अनशनादिकम् कुर्यात् ।।२३।।

अनुवाद— जब वानप्रस्थी लोग अथवा बुढापे के कारण अपनी क्रिया को नहीं संपन्न करे तब वह वेदान्त विचार भी न कर सके तो उसे उपवास आदि करना चाहिए ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

द्वादशाब्दाद्यनन्तरमपि यदि स्वधर्मानुष्ठाने शक्तस्तर्हि वन एव वसेत् । यदि तु ज्ञानाभ्यासे योग्यस्तर्हि संन्यसेदित्युत्तराध्याये वक्ष्यति । तदुभयरहितस्य तु यत्कृत्यं तदाह यदाऽकल्पोऽसमर्थः । आन्वीक्षिक्यां विद्यायां ज्ञानाभ्यासे ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

बारह वर्ष आदि के पश्चात् भी यदि वह अपने धर्म का अनुष्ठान करने में समर्थ हो तो वन में ही निवास करे। यदि वह ज्ञान का अभ्यास करने में योग्य हो तो संन्यास ग्रहण कर ले इस बात को आगे अध्याय में कहेंगे। इन दोनों से रहित के कृत्य को बतलाते हैं । जब वह असमर्थ हे जाय, ज्ञान में भी असमर्थ हो जाय तो उपवास करे ।।२३।।

आत्मन्यग्नीन्समारोप्य संन्यस्याहंममात्मताम् । कारणेषु न्यसेत्सम्यक् संघातं तु यथार्हतः॥२४॥

अन्वयः— आत्मनि अग्नीन् समारोप्य अहं ममात्मताम् संन्यस्य संघातं तु यथार्हत कारणेषु सम्यक् न्यसेत् ॥२४॥

अनुवाद— अनशन करने के पूर्व ही अपनी आहवनीय आदि अग्नियों के लीन कर ले । और अहन्त्व और ममत्व का परित्यग करके शरीर को उसके कारण तत्वों में यथयोग्य अच्छी तरह से लीन करे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अनशनादि करिष्यतः पूर्वकृत्यमाह-आत्मनीत्यादि यावत्समाप्ति । यथार्हतो यथायोग्यं स्वकारणेष्वाकाशादिषु सङ्घातं देहं न्यसेत्प्रविलापयेत् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

अनशन आदि करने से पहले के कृत्यों को **आत्मनि० इत्यादि** श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त बतलाते हैं । यथार्हतः अर्थात् यथायोग्य शरीर को उसके आकाश आदि कारणो में विलीन कर दे ॥२४॥

खे खानि वायौ निःश्वासांस्तेजस्यूष्माणमात्मवान् । अप्स्वसृक्श्लेष्मपूयानि क्षितौ शेषं यथोद्भवम्॥२५॥

अन्वयः— आत्मवान् खे खानि, वायौ निः श्वासान् तेजसि उष्माणम्, अप्सु असृक श्लेष्मपूयानि क्षितौ यथोद्भवम् शेषम् ॥२५॥

अनुवाद— जितेन्द्रिय पुरुष आकाश में शरीर के छिद्राकाशों को, वायु में प्राणों का तेज में शरीर की उष्मा को, जल में रक्त, कफ, पीब आदि जलीय तत्त्वों की और हड्डी आदि ठोस पदार्थों को पृथ्वी में लीन करे ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तदेव विभज्य दर्शयति खे आकाशे खानि देहगतच्छिद्राणि । आत्मवान् धीमान् । शेषमस्थिमांसादिकठिनांशम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

शरीर को लीन किए जाने वाले पदार्थों को अलग-अलग करके बतलाते हैं । शरीर के छिद्रों को आकाश में लीन करे । आत्मवान् अर्थात् बुद्धिमान् पुरुष । अस्थि, मांस आदि कठिन अंश को पृथ्वी में लीन करें ॥२५॥

वाचमग्नौ सवक्तव्यामिन्द्रे शिल्पं करावपि । पदानि गत्या वयसि रत्योपस्थं प्रजापतौ ॥२६॥

अन्वयः— सवक्तव्याम् वाचम् अग्नौ, शिल्पं करौ अपि इन्द्रे, पदानि गत्यावयसि, रत्योपस्थं प्रजापतौ ॥२६॥

अनुवाद— वाणी और उसके कर्मभूत भाषण को वाणी की अधिष्ठातृ देवता अग्नि में, दोनों हाथों और उसके कर्मभूत शिल्प (कलाकौशल) इत्यादि को उसके अधिष्ठातृ देवता इन्द्र में, पैर और उसके विषय गमन को उसके अधिष्टातृ देवता वयसि (विष्णु में) और उपस्थ तथा उसके कर्म रति को उसके अधिष्ठातृ देवता प्रजापति में लीन करे ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

एवं स्थूलशरीरस्य लयमुक्त्वा लिङ्गशरीररूपस्याध्यात्मादित्रयस्य लयमाह-वाचमित्यादिना । तत्र यद्यपि यथोद्भवं लयस्य युक्तत्वादध्यात्मादीनां स्वस्वकारणेषु राजसाहंकारादिषु लयो वाच्यस्तथापीह तेषां लयभावेनयमद्वितीयात्मप्रतिपत्तिपरेति यथकथंचिदव्यययये भाव्ये देवतानां प्रवर्तकत्वेन प्राधान्यादिन्द्रियतद्विषययोर्देवतासु लयः कथ्यते । वक्तव्यसहितां वाचमग्नौ न्यसेत्। एवं सर्वत्र । पदानि पादौ । वयसि विष्णौ ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से स्थूल शरीर के लय का वर्णन करके लिङ्ग शरीर रूप आध्यात्मादि तीनों का लय वाचम् इत्यादि

से लय बतलाते हैं। यद्यपि उचित यह है कि जो जिससे उत्पन्न हुआ हो उसका उसी में लय किया जाय। अतएव अध्यात्म आदि का लय उसके कारण भूत राजसाहंकार आदि में ही करना चाहिए फिर भी यहाँ उन सबों का लय रूप से यह अद्वितीय आत्मपरक है। अतएव किसी तरह लय होना चाहिए, वाणी आदि के प्रवर्तक उनके अधिष्ठातृ देवताओं के होने के करण देवताओं में ही उन सबों का लय बतलाया जा रहा है। भाषण के साथ वाणी का अग्नि में लय करे। इस तरह सर्वत्र समझना चाहिए। दोनों पैरों का उने अधिष्ठातृ देवता विष्णु में लय करना चाहिए ॥२६॥

मृत्यौ पायुं विसर्गं च यथास्थानं विनिर्दिशेत्। दिक्षु श्रोत्रं सनादेन स्पर्शमध्यात्मनि त्वचम् ॥२७॥

अन्वयः— पायुं विसर्गं च मृत्यौ सनादेन श्रोत्रम् दिक्षु, स्पर्शं त्वचं च अध्यात्मनि यथा स्थानं विनिर्दिशेत् ॥२७॥

अनुवाद— पायु तथा मलोत्सर्ग को उनके आश्रय मृत्यु में, शब्दों के साथ श्रोत्र को उनके आश्रय दिशाओं में यथा योग्य लीन करे और स्पर्श तथा त्वचा को अध्यात्म (वायु) में लीन करें ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

सनादेन शब्देन सह। अध्यात्मनि वायौ। अध्यात्मदिति पाठे वायाविति ज्ञातव्यम् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

सनादेन अर्थात् शब्द के साथ। अध्यात्मनि अर्थात् वायु में अध्यात्मवित् पाठ होने पर भी अर्थ वायु में ही होगा ॥२७॥

रूपाणि चक्षुषा राजन् ज्योतिष्यभिनिवेशयेत्। अप्सु प्रचेतसा जिह्वां घ्रेयैर्घ्राणं क्षितौ न्यसेत् ॥२८॥

अन्वयः— राजन् रूपाणि चक्षुषा ज्योतिषि, अभिनिवेशयेत्। प्रचेतसजिह्वां अपसु, घ्रेयैः घ्राणं क्षितौन्यसेत् ॥२८॥

अनुवाद— राजन्! युधिष्ठिर नेत्रों के साथ रूपों को तेज में लीन कर दें, प्रचेता के साथ जिह्वा को जल में लीन करे। ध्रेय द्रव्यों के साथ ध्राणेन्द्रिय को पृथ्वी में लीन करे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

ज्योतिष्यादित्ये। रसगन्धयोस्त्विन्द्रियाद्याकर्षकत्वेन प्राधान्यविवक्षया देवतासहितस्येन्द्रियस्य विषये लयमाह-प्रचेतसा सह जिह्वां रसनमप्सु रसरूपसु। घ्राणशब्देनाश्विनोरप्युपलक्षणम्। अश्विभ्यां सह घ्राणं घ्रेयैर्गन्धैरुपलक्षितायां क्षितावित्यर्थः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

ज्योतिषि अर्थात् आदित्य में रस और गन्ध ये दोनों इन्द्रियों के आकर्षक है। अतएव इन दोनों की प्रधानता की विवक्षा से देवता के साथ इन्द्रिय का विषय में लय कहा गया है। प्रचेता के साथ रसनेन्द्रिय का रसरूप जल में लय कहा गया है। घ्राण शब्द से अश्विनी कुमारों का भी उपलक्षण है। अश्विनी कुमारों के साथ घ्राणेन्द्रिय का घ्रेय गन्धां के द्वारा उपलक्षित पृथिवी में लय बतलाया गया है ॥२८॥

मनो मनोरथैश्चन्द्रे बुद्धिं बोध्यैः कवौ परे। कर्माण्यध्यात्मना रुद्रे यदहंममताक्रिया ॥
सत्त्वेन चित्तं क्षेत्रज्ञे गुणैर्वैकारिकं परे ॥२९॥

अन्वयः— मनोरथैः मनः चन्द्रे, बोध्यैः बुद्धिः परे कवौ अध्यात्मना कर्माणि रुद्रे, यद अहंममता क्रिया रुद्रो, सत्त्वेन चित्तं क्षेत्रज्ञे गुणैः वैकारिकं परे ॥२९॥

अनुवाद— मनोरथों के साथ मन का चन्द्रमा में, जानने योग्य पदार्थों के साथ बुद्धि को ब्रह्माजी में, अहन्ता तथा ममता रूप क्रिया को करने वाले अहङ्कार को उसके कर्मों के साथ रुद्र में लीन करे। चेतना सहित चित्त को जीव में लीन करे गुणों के कारण विकारी के समान प्रतीत होने वाले जीव को परब्रह्म में लीन करे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

परे कवौ ब्रह्मणि । अध्यात्मनाहंकारेण । अध्यात्मतामिति पाठे कर्माण्यहंकारं चेत्यर्थः । कथंभूते रुद्रे । यद्यस्मादहंममतापूर्विका क्रिया भवति तस्मिन् । सत्त्वेन चेतनया । गुणैर्गुणकार्यैः प्रागवशिष्टैर्देवैः सह । यद्वा सत्त्वादिभिर्गुणैर्हेतुभूतैः । वैकारिकं भोक्तृत्वादिविकारवन्तं क्षेत्रज्ञं परे निर्विकारे ब्रह्मणि ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

परे कवौ अर्थात् ब्रह्मा में अध्यात्मना अर्थात् अहङ्कार के साथ । **अध्यात्मताम्** यह पाठ होने पर अर्थ होगा कर्मों तथा अहङ्कार को । कर्मों के साथ अहङ्कार को रुद्र में लीन करे । प्रश्न होता है कि कैसे रुद्र में तो इसका उत्तर है जिस रुद्र से अहन्त्व और ममत्व पूर्वक क्रिया होती है उस रुद्र में । सत्त्वेन अर्थात् चेतना के साथ देवैः पहले से बचे हुए देवताओं के साथ । अथवा कारणभूत सत्त्व आदि गुणों से । वैकारिकम् अर्थात् भोक्तृत्वादि विकारों से युक्त जीव का परब्रह्म में लय करे ।।२९।।

अप्सु क्षितिमपो ज्योतिष्यदो वायौ नभस्यमुम् । कूटस्थे तच्च महति तदव्यक्तेऽक्षरे च तत् ।।३०।।

अन्वयः— क्षितिम् अप्सु, अपः ज्योतिषि, अदो वायौ, अमुम् नभसि, तच्च कूटस्थे, तत् महति, तत अव्यक्ते तच्च अक्षरे ।।३०।।

अनुवाद— पृथिवी का जल में जल का तेज में, तेज का वायु में, वायु का आकाश में, आकाश का अहङ्कार में, अहङ्कार का महत् तत्त्व में, महत् तत्त्व का अव्यक्त में, और अव्यक्त का अविनाशी परमात्मा में लय करे ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

ननु विकारवतः कथं परेऽविकारे लयः स्यात् । विकारहेतूनां सर्वोपाधीनां लयद्वारेणेत्याह-अप्स्विति । अदो ज्योतिः। तच्च नभः कूटस्थेऽहंतत्त्वे । तच्च कूटस्थं महति महत्तत्त्वे । तदव्यक्ते प्रधाने । तच्च अव्यक्तमक्षरे परमात्मनि ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि विकारवान् का निर्विकार में लय कैसे हो सकता है ? तो इसका उत्तर है कि विकार के कारण भूत सभी उपाधियों का लय के द्वारा निर्विकार परमात्मा में लय होता है । इस बात को **अप्सु० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । अदः अर्थात् तेज के उस आकाश का कूटस्थ अहङ्कार में लय करे । उस कूटस्थ अहङ्कार का महत् तत्त्व में लय करे । महत् तत्त्व का अव्यक्त प्रकृति में लय होता है । उस अव्यक्त प्रकृति का अविनाशी परमात्मा में लय हेता है ।।३०।।

इत्यक्षरतयात्मानं चिन्मात्रमवशेषितम् । ज्ञात्वाऽद्वयोऽथ विरमेद्दग्धयोनिरिवानलः ।।३१।।

इति श्रीमद्भगवते महापुराणे सप्तम स्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

अन्वयः— इति अक्षरतया अवशिष्टं चिन्मात्रम् आत्मानम् ज्ञात्वा अथ, दग्धयोनिः अनलइव अद्वयः विरमेत् ।।३१।।

अनुवाद— इस तरह अविनाशी परमात्मा के रूप में अवशिष्ट जो ज्ञान मात्र आत्मा है, वही मैं हूँ इस प्रकार से जानकर अद्वितीय भाव में अवस्थित हो जाय । जिस तरह इन्धन के जल जाने पर अग्नि अपने आप शान्त हो जाती है वैसे ही वह भी उपरत हो जाय ।।३१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

इति सर्वोपाधिलयाद्धेतोरवशेषितं चिन्मात्रमात्मानं क्षेत्रज्ञमक्षरतया ज्ञात्वाऽद्वयः सन्विरमेत् । दग्धकाष्ठो यथाऽनलः।।३१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भावार्थदीपिकायं टीकायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से सभी उपाधियों का लय हो जाने के कारण अवशिष्ट ज्ञान मात्र अपनी आत्मा के अविनाशी रूप से जानकर जिस तरह इन्धन के जल जाने पर अग्नि अपने आप शान्त हो जाती है, उसी तरह अद्वितीय रूप से अवस्थित हो जाय ।।३१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१२।।

तेरहवाँ अध्याय

यतिधर्म का निरूपण और अवधूत प्रह्लद संवाद

नारद उवाच

कल्पस्त्वेवं परिव्रज्य देहमात्रावशेषितः । ग्रामैकरात्रविधिना निरपेक्षश्चरेन्महीम् ॥१॥

अन्वयः— कल्पः तु एवं देहमात्रावशेषितः परिव्रज्य गामैकरात्र विधिना, निरपेक्षः महीम् चरेत् ॥१॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— यदि वानप्रस्थी में सामर्थ्य हो तो शरीर मात्र छोड़कर सबों का परित्याग करके संन्यास ग्रहण कर ले । एक ग्राम में एक ही रात्रि निवास करने का नियम करके पृथिवी पर संचरण करे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोदशे यतेर्धर्मः साधकस्योच्यते महान् । अवधूतेतिहासेन सिद्धावस्था च वर्ण्यते । एवं ध्यात्वाऽकल्पोऽनशनादिकं कुर्यात् । आन्वीक्षिक्यां कल्पस्त्वेवं ध्यात्वा परिव्रज्येति संवन्धः । कियदत्र त्याज्यम् । देहव्यतिरिक्तं सर्वमित्याह-देहमात्रेति। तस्य धर्मानाह-ग्रामैकरात्रेति नवभिः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तेरहवें अध्याय में साधक के महन् यतिधर्म का वर्णन किया जा रहा है । अवधूत के इतिहास के द्वारा सिद्धावस्था का वर्णन किया गया है । इस तरह से ध्यान करके असमर्थ वानप्रस्थी अनशन आदि करे । यदि वह आत्मविचार करने में समर्थ हो तो इस प्रकार से ध्यान करके सन्यास ले ले । संन्यास में किसका किसका त्याग करे ? तो इसका उत्तर है कि शरीर छोड़कर सब का । संन्यासी के धर्मो को **ग्रामैकरात्रेति० इत्यादि** नव श्लोकों द्वारा बतलाते हैं ॥१॥

विभृयाद्यद्यसौ वासः कौपीनाच्छादनं परम् । त्यक्तं न दण्डलिङ्गादेरन्यत्किंचिदनापदि ॥२॥

अन्वयः— यदि असौ वासः विभृयत् कौपीनाच्छादनं परम् अनापदि दण्डलिङ्गादेरन्यत् व्यक्तं नं विभृयात् ॥२॥

अनुवाद— यदि वह वस्त्र धारण करे तो केवल कौपीन मात्र जिससे कि उसके गुप्ताङ्ग ढँक जायँ । जब तक कोई आपत्ति न आये तब तक दण्ड आदि संन्यास के चिह्नों को छोड़कर त्यागी हुई किसी वस्तु को न धारण करे॥२॥

भावार्थ दीपिका

कौपीनं गुह्यमाच्छाद्यते यावता तावन्मात्रम् । परं केवलमन्यदिति वा । त्यक्तं प्रेषोच्चारणात्पूर्वमेव ॥२॥

भाव प्रकाशिका

जिससे केवल गुप्ताङ्ग ढँक जाय ऐसा कौपीन धारण करे । प्रेषोच्चारण से पूर्व ही जिसको बतलाया गया है उन परित्यक्त वस्तुओं को न धारण करे ॥२॥

एक एव चरेद्भिक्षुरात्मारामोऽनपाश्रयः । सर्वभूतसुहृच्छान्तो नारायणपरायणः ॥३॥

अन्वयः— अनपाश्रयः आत्मारामः भिक्षुः सर्वभूतसुहृत् शान्तः नारायणपरायणः भिक्षुः एक एव चरेत् ॥३॥

अनुवाद— आश्रयरहित अपने आप में ही रमण करने वाले, समस्त प्राणियों का हितैषी, शान्त तथा भगवान् नारायण का भक्त संन्यासी को अकेले ही विचरण करना चाहिए ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

पश्येदात्मन्यदो विश्वं परे सदसतोऽव्यये । आत्मानं च परं ब्रह्म सर्वत्र सदसन्मये ॥४॥

अन्वयः— सदसतोः परे अव्यये आत्मनि अदो विश्वं पश्येत् सदसन्मये सर्वत्र आत्मानं च परं ब्रह्म ॥४॥

अनुवाद— कार्य और कारण से परे परमात्मा में इस सम्पूर्ण विश्व को अध्यस्त जाने और कार्य कारण रूप इस जगत् में ब्रह्मस्वरूप अपनी आत्मा को परिपूर्ण देखे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

सदसतः परे कार्यकारणव्यतिरिक्ते ॥४॥

भाव प्रकाशिका

कार्य एवं कारण से भिन्न आत्मा में ॥४॥

सुप्तप्रबोधयोः सन्धावात्मनो गतिमात्मदृक् । पश्यन्बन्धं च मोक्षं च मायामात्रं न वस्तुतः ॥५॥

अन्वयः— आत्मदृक् सुप्त प्रबोधयोः सन्धौ आत्मनो गतिम् पश्यन् बन्धं मोक्षं च मायामात्रं वस्तुतः न इति पश्येत्॥५॥

अनुवाद— आत्मदर्शी संन्यासी सुषुप्ति और जागरावस्था की सन्धि में अपने स्वरूप का अनुभव करे । बन्ध तथा मोक्ष दोनों ही मिथ्या है वस्तुतः कुछ नहीं है ऐसा जाने ॥५॥

भावार्थ दीपिका

नन्वात्मानं परं ब्रह्मेति कथं सामानाधिकरण्यनिर्देशः । नहि बद्धमुक्तयोरैक्यं संभवति तत्राह-सुप्तेति । सुषुप्तौ हि तमसावृतमात्मतत्त्वं जाग्रत्स्वप्नयोस्तु विक्षिप्तं प्रकाशते । सन्धौ तु न तमो नापि विक्षेपः । अतस्तदा आत्मदृगात्मानं लक्षीकृत्य स्थितः सन्नात्मनो गतिं तत्त्वं पश्यन् । अतएव बन्धं मोक्षं च मायामात्रं पश्यन् आत्मानं परं ब्रह्म सर्वत्र पश्येदित्यन्वयः । तदुक्तं योगग्रन्थे- 'निद्रादौ जागरस्यान्ते यो भाव उपजायते । तं भावं भावयन्नित्यं मुच्यते नेतरो यतिः ।' इति ॥५॥

योग ग्रन्थ में कहा गया है । **निद्रादौ० इत्यादि** निद्रा के प्रारम्भ में और जागरावस्था के अन्त में जो भाव उत्पन्न होता है, उस भाव का सदा चिन्तन करने वाला मुक्त हो जाता है उससे भिन्न यति (संयमी) नहीं है ।।५।।

नाभिनन्देद्ध्रुवं मृत्युमध्रुवं वाऽस्य जीवितम् । कालं परं प्रतीक्षेत भूतानां प्रभवाप्ययम् ।।६।।

अन्वयः— ध्रुवं मृत्युं न वा अध्रुवं अस्य जीवितम् अभिनन्देत्, भूतानां प्रभवाप्ययं परं कालं प्रतीक्षेत् ।।६।।

अनुवाद— न तो शरीर की होने वाली निश्चित मृत्यु का अभिनन्दन करे और न अनिश्चित जीवन का, केवल सभी प्राणियों की उत्पत्ति और नाश के कारण भूत काल की प्रतीक्ष करे ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अस्य देहस्य । प्रभवोऽप्ययश्च यस्मात्तं कालम् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

इस शरीर की उत्पत्ति और नाश जिसके द्वारा होता है उस काल की प्रतीक्षा करे ।।६।।

नासच्छास्त्रेषु सज्जेत नोपजीवेत जीविकाम् । वादवादांस्त्यजेत्तर्कान्पक्षं कंच न संश्रयेत् ।।७।।

अन्वयः— असत् शास्त्रेष न सज्जेत, जीविकाम् न उपजीवेत् वादवादान् तर्कान् त्यजेत् कञ्चन पक्षं न संश्रयेत् ।।७।।

अनुवाद— असत्शास्त्रों से प्रीति न करे, अपने जीवन के निर्वाह के लिए किसी जीविका को न अपनाये, केवल वाद-विवाद के लिए तर्कों को न अपनाये तथा संसार में किसी का पक्ष न ले ।।७।।

भावार्थ दीपिका

असच्छास्त्रेष्वनात्मपरेषु । जीविकां नक्षत्रविद्यादिवृत्तिम् । वादवादान् जल्पवितण्डादिनिष्ठान् । कंच कमपि पक्षं निर्बन्धेन न संश्रयेत् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

अनात्मा का प्रतिपादन करने वाले शास्त्रों में प्रीति न करे, नक्षत्र विद्या आदि को न अपनाए, जल्प वितण्डादि निष्ठ तर्कों को न अपनाएँ आग्रह पूर्वक किसी पक्ष को न अपनाये ।।७।।

न शिष्याननुबध्नीत ग्रन्थान्नैवाभ्यसेद्बहून् । न व्याख्यामुपयुञ्जीत नारम्भानारभेत्क्वचित् ।।८।।

अन्वयः— शिष्यान् न अनुबध्नीत, बहून ग्रन्थान् न अभ्यसेत् व्याख्यां न उपयुञ्जीत, आरम्भान् न आरभेत् ।।८।।

अनुवाद— अपनी शिष्य मण्डली न जुटाये, बहुत अधिक ग्रन्थों का अभ्यास न करे, व्याख्याओं का उपयोग न करे और मठादि निर्माण जैसे कार्यों को न करें ।।८।।

भावार्थ दीपिका

शिष्यान्नानुबध्नीत प्रलोभनादिना बलान्नापादयेत् । आरम्भान् मठादिव्यापारान् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

प्रलोभन इत्यादि देकर बहुत अधिक शिष्यों को न बनाये । मठादि निर्माणादि जैसे व्यवहारों को न करें ।।८।।

न यतेराश्रमः प्रायो धर्महेतुर्महात्मनः । शान्तस्य समचित्तस्य बिभृयादुत वा त्यजेत् ।।९।।

अन्वयः— शान्तस्य समचित्तस्य महात्मनः यते आश्रमः प्रायः धर्महेतुः न विभृयात् उत वा त्यजेत् ।।९।।

अनुवाद— शान्त समदर्शी महात्मा संन्यासी के लिए किसी आश्रम का बन्धन प्रायः धर्म का कारण नहीं होता है, वह अपने आश्रम के चिह्नों को चाहे धारण करे चाहे छोड दे ।।९।।

भावार्थ दीपिका

परमहंसस्य विशेषमाह-न यतेराश्रमो धर्मार्थः । कथंभूतस्य यतेः । महात्मनः । तस्य लक्षणम्-शान्तस्येत्यादि । प्राय इत्यस्यायं भावः-ज्ञानोत्पत्तिपर्यन्तं बहूदकादिलिङ्गमाश्रित्य सत्त्वशुद्‌यर्थं यमान्नियमांश्चाचरन्नेव ज्ञानोत्पत्तौ यतेत । उत्पन्ने तु ज्ञाने न नियमैः कृत्यमस्ति । यमाश्च स्वत एव स्युः । अतस्तदा लिङ्गादिभिः प्रयोजनाभावाल्लोकसंग्रहार्थं धारयेद्वा त्यजेद्वेति॥९॥

भाव प्रकाशिका

परमहंस की विशेषता को बतलाते हैं । महात्मा संन्यासी का आश्रम धर्म का कारण नहीं होता है । उस संन्यासी का लक्षण **शान्तस्य० इत्यादि** से बतलाते हैं । प्रायः कहने का भाव है, कि जब तक ज्ञान की उत्पत्ति न हो जब तक बहूदक इत्यादि के चिह्ननों को धारण करके अन्तःकरण की शुद्धि के लिए यम नियम आदि का अनुष्ठान करते हुए ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयास करे । ज्ञान उत्पन्न हो जाने पर नियमों के पालन का कोई महत्त्व नहीं होता । यम स्वतः होते ही रहेंगे । अतएव आश्रम के चिह्नों का कोई प्रयोजन नहीं रहने के कारण उन चिह्नों को चाहे धारण करे या त्याग दें ॥९॥

अव्यक्तलिङ्गो व्यक्तार्थो मनीष्युन्मत्तबालवत् । कविर्मूकवदात्मानं स दृष्ट्या दर्शयेन्नृणाम् ॥१०॥

अन्वयः— अव्यक्तलिङ्ग व्यक्तार्थः मनीषी उन्मत्त बालवत् कविः मूकवत् स आत्मानम् नृणाम् दृष्ट्या दर्शयेत् ॥१०॥

अनुवाद— किसी आश्रम के चिह्न से रहित किन्तु आत्मानुसंधान में मग्न, रहे, अत्यन्त विचारशील होकर भी पागल बालक के समान एवं तत्त्ववेत्ता होने पर भी साधारण मनुष्यों की दृष्टि में गूंगे के तरह प्रतीत होए॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तस्यैव ज्ञानदार्ढ्याभावे योगभ्रंशपरिहारार्थमाह-न बहिर्व्यक्तं लिङ्गं यस्य व्यक्तोऽर्थः प्रयोजनमात्मानुसंधानं यस्य स मनीष्यप्युन्मत्तबालवच्च कविरपि मूकवदात्मानं नृणां दृष्ट्या दर्शयेत् । ते यथोन्मत्तादि रूपं मन्येरंस्तथा वर्तेत । स्वदृष्ट्येति पाठे बाह्यानुसंधानाभावेनेत्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उसी के ज्ञान की दृढता के अभाव में योगभ्रंश के परिहार के लिए इस श्लोक को कहते हैं किसी आश्रम के चिह्न से रहित, किन्तु आत्मानुसंधान में मग्न रहे, मनीषी होकर भी पागल बालक के समान, तथा तत्त्वज्ञ होकर भी साधारण लोगों की दृष्टि में गूंगे के समान अपने को दिखाये । साधारण लोग उसको जैसे पागल मानें ऐसा व्यवहार करे । **स्वदृष्ट्या पाठ** होने पर आत्मानुसन्धान का अभाव होने के कारण यह अर्थ होगा ॥१०॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च ॥११॥

अन्वयः— अत्रापि प्रह्लादस्य आजगरस्य मुनेः संवादम् इमं पुरातनम् इतिहासम् उदाहरन्ति ॥११॥

अनुवाद— इस विषय में प्रह्लादजी का तथा आजगर मुनि (दत्तात्रेयजी) के संवाद को महात्मालोग प्राचीन इतिहास के रूप में उपन्यस्त करते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

परमहंसधर्ममेवेतिहासेन स्फुटयति-अत्रापीति यावदध्यायसमाप्ति । आजगरव्रतस्य मुनेश्च ॥११॥

भाव प्रकाशिका

इतिहास के द्वारा परमहंस धर्म को ही स्पष्ट कहते हैं । **अत्रापि० इत्यादि** से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त अजगर मुनि (दत्तात्रेयजी) के संवाद को उपन्यस्त करते हैं ॥११॥

तं शयानं धरोपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि । रजस्वलैस्तनूदेशैर्निगूढामलतेजसम् ॥१२॥
ददर्श लोकान्विचरंल्लोकतत्वविवित्सया । वृतोऽमात्यैः कतिपयैः प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥१३॥

अन्वयः— भगावत्प्रियः प्रह्लादः कतिपयामात्यैः वृतः लोकतत्त्वविवित्सया लोकान् विचरन् सह्यसानुनि धरोपस्थे कावेर्यां शयानं रजस्वलैः तनूदेशैः निगूढामलतेजसम् तंददर्श ॥१२-१३॥

अनुवाद— भगवान् के प्रिय प्रह्लादजी कुछ मन्त्रियों के साथ लोगों के हृदय की वात को जानने के लिए लोकों में विचरण कर रहे थे उन्होंने देखा कि सह्य पर्वत की तलहटी में कावेरी नदी के तट पर एक मुनि पड़े हैं, उनके शरीर की निर्मल ज्योति अङ्गों को धूलि धूसरित होने के कारण ढँकी हुई है ॥१२-१३॥

भावार्थ दीपिका

धरोपस्थे भूपृष्ठे । सह्याद्रेस्तटे । रजोभिर्धूसरैस्तनूदेशैर्देहावयवैर्निगूढममलं तेजो यस्य तम् ॥१२-१३॥

भाव प्रकाशिका

धरोपस्थे अर्थात् पृथिवी पर सह्याचल के तट में अङ्गों के धूलि धूसरित होने के कारण उनके शरीर का निर्मल तेज ढँका हुआ है ॥१२-१३॥

कर्मणाकृतिभिर्वाचा लिङ्गैर्वर्णाश्रमादिभिः । न विदन्ति जना यं वै सोऽसाविति न वेति च ॥१४॥

अन्वयः— यं कर्मणा, अकृतिभिः वाचा, वर्णाश्रमादिभिः लिङ्गैः जना न विदन्ति असौ सः इति न वा इति च॥१४॥

अनुवाद— उनके कर्म, आकार, वाणी, तथा वर्ण एवं आश्रम के चिह्नों से लोग यह नहीं जान पाते थे कि ये सिद्ध हैं कि नहीं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

कर्मादिभिर्जना यं न विदुस्तं पादयोः शिरसा स्पृशन्नत्वा अप्राक्षीदित्युत्तरेणान्वयः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

कर्म आदि के द्वारा लोग उनको नहीं जानते थे । उनके चरणों को अपने शिर से स्पर्श करते हुए नमस्कार करके प्रह्लादजी ने पूछा यह आगे के श्लोक से अन्वय है ॥१४॥

तं नत्वाभ्यर्च्य विधिवत्पादयोः शिरसा स्पृशन् । विवित्सुरिदमप्राक्षीन्महाभागवतोऽसुरः ॥१५॥

अन्वयः— विवित्सुः महाभागवतः असुरः तं नत्वा विधिवत् अभ्यर्च्य पादयोः शिरसा स्पृशन् इदम् अप्राक्षीत् ॥१५॥

अनुवाद— जानने के इच्छुक श्रीभगवान के परम प्रेमी भक्त प्रह्लाद ने उनको नमस्कार करके उनकी सविधि पूजा की और अपने शिर से उनके चरणों को स्पर्श करते हुए पूछा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

बिभर्षि कायं पीवानं सोद्यमो भोगवान्यथा । वित्तं चैवोद्यमवतां भोगो वित्तवतामिह ॥
भोगिनां खलु देहोऽयं पीवा भवति नान्यथा ॥१६॥

अन्वयः— सोद्यमो भोगवान् यथा पीवानं कायं विभर्षि, वित्तं चैवोद्यमवतां इह वित्तवतां भोगः, अयं देहः खलु भोगवतां पीवा भवति अन्यथा न ॥१६॥

अनुवाद— हे भगवन ! आपका शरीर उद्यमी और भोगी पुरुषों के समान हृष्ट पुष्ट है । उद्योगी पुरुषों को ही धन प्राप्त होता है और धनवानों को ही भोग प्राप्त होता है भोगी पुरुषों का ही देह हृष्ट पुष्ट होता है इसका दूसरा कोई कारण नहीं हो सकता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

उद्यमसहित इव भोगवानिव पीवानां स्थूलं देहं धारयसि । तत्र हेतुं वदेति तृतीयेनान्वयः । उद्यमं विनैव मम भोगोऽस्तीति चेत्तत्राह-वित्तं चेति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

उद्योगी पुरुष के समान तथा भोगी पुरुष के समान आप स्थूल शरीर को धारण करते हैं । उसका कारण आप बतलायें इसका आगे के तृतीय श्लोक से अन्वय है । यदि कहें कि उद्योग के बिना ही मुझे भोग प्राप्त है। तो इस पर कहते हैं **वितं चेति० इत्यादि** ।।१६।।

न ते शयानस्य निरुद्यमस्य ब्रह्मन्नु हार्थो यत एव भोगः ।
अभोगिनोऽयं तव विप्र देहः पीवा यतस्तद्वद नः क्षमं चेत् ।।१७।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! निरूद्यमस्य शयानस्य नु ह अर्थो न यतः एव भोगः, हे विप्र अभोगिनः तव अयं देहः यतः पीवा तत् क्षमं चेत् तद् वद ।।१७।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! आप कोई उद्योग नहीं करते हैं पड़े रहते हैं, अतएव आपके पास धन भी नहीं है, और धन से ही भोग की प्राप्ति होती है । भोग के बिना ही आपका यह देह जिस कारण से हृष्ट पुष्ट है, वह यदि हमारे सुनने योग्य है, तो उसे आप मुझे बतलाएँ ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

नु इति निश्चये । ह इति प्रसिद्धौ । तवार्थो नास्तीति प्रसिद्धमेवेत्यर्थः । यतोऽर्थादेव । यतो हेतोः पीवा । क्षमं योग्यं चेत् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

नु यह अव्यय निश्चयार्थक है और ह प्रसिद्धार्थक है । आपके पास यह प्रसिद्ध है । चूकि धन से ही भोग और भोग के बिना भी आपका यह शरीर जिस हेतु से पुष्ट है उस कारण को आप मुझे बतलायें, यदि वह मेरे सुनने योग्य हो तव ।।१७।।

कविः कल्पो निपुणदृक् चित्रप्रियकथः समः । लोकस्य कुर्वतः कर्म शेषे तद्वीक्षितापि वा ।।१८।।

अन्वयः— कविः कल्पः निपुणदृक् चित्रप्रियकथः समः कर्म कुर्वतः लोकस्य विक्षितापि वा शेषे ।।१८।।

अनुवाद— आप विद्वान् समर्थ और चतुर हैं । आपकी बातें अद्भुत और प्रिय हैं । आप संसार को कर्म करते हुए देखकर भी समभाव से क्यों सोए हैं ?।।१८।।

भावार्थ दीपिका

किंच- वित्तार्जनाद्यसमर्थोऽप्ययं जनस्तदर्थमुद्यमं करोति त्वं तु समर्थोऽपि किमिति न करोषीत्याह- कविर्विद्वान् । कल्पो दक्षः । निपुणदृक् चतुरः । चित्राः प्रिया लोकरञ्जनाः कथा यस्य । तथापि लोकस्य कर्म कुर्वतः सतः शेषे । तद्वीक्षितापि तत्सर्वं पश्यन्नपि । पाठान्तरे न द्वेक्षि तत्कर्म न द्वेक्षि नैपि वा न च स्तौषीत्यर्थः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

किञ्च संसार के लोग धनार्जन करने में असमर्थ होकर भी धनार्जन के लिए कर्म करते हैं आप तो समर्थ है फिर भी कर्म क्यों नहीं करते हैं ? इसी बात को **कवि र्विद्वान् इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । कल्पः अर्थात् दक्ष, निपुण दृक् अर्थात् चतुर । आपकी बाते लोक रञ्जक हैं । संसार को कर्म करते हुए देखकर भी आप क्यों समान रूप से सो रहे हैं । पाठान्तर होने पर अर्थ होगा कि उस कर्म से न तो आप द्वेष करते हैं और न उसकी प्रशंसा करते हैं ।।१८।।

नारद उवाच

स इत्थं दैत्यपतिना परिपृष्टो महामुनिः । स्मयमानस्तमभ्याह तद्वागमृतयन्त्रितः ॥१९॥

अन्वयः— इत्थं दैत्यपतिना परिपृष्ट तद्वागामृतयन्त्रितः सः महामुनिः स्मयमानः तम् अभ्याह ॥१९॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से दैत्यों के स्वामी प्रह्लादजी द्वारा पूछे जाने पर उनकी वागामृत के वशीभूत होकर महामुनि दत्तात्रेय ने मुस्कुराते हुए कहा ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तस्य वागेवामृतं तेन यन्त्रितो वशीकृतः सन्नाह ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

प्रह्लादजी की वाणी रूपी अमृत के अधीन होकर दत्तात्रेय जी ने कहा ॥१९॥

ब्राह्मण उवाच

वेदेदमसुरश्रेष्ठ भवान्नन्वार्यसंमतः । ईहोपरमयोर्नृणां पदान्यध्यात्मचक्षुषा ॥२०॥

अन्वयः— हे असुर श्रेष्ठ ! ननु भवान् आर्य सम्मतः, नृणां ईहोपरमयोः पदानि अध्यात्मचक्षुषा वेद ॥२०॥

दत्तात्रेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— दैत्यराज ! तुम्हारा सभी श्रेष्ठ पुरुष सम्मान करते है मनुष्यों की कर्मों की प्रवृत्ति और निवृत्ति के फल को तुम अपने ज्ञान नेत्रों से ही जानते हो ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अध्यात्मचक्षुषाऽन्तर्दृष्ट्या भवान् वेदैव । आर्याणां ज्ञानिनां संमतो ननु भवान् । इदमिति यदुक्तं तदेवाह–नृणामीहोपरमयोः प्रवृत्तिनिवृत्त्योः पदानि स्थानानि फलानीत्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अपनी अन्तर्दृदृष्टि से आप जानते ही हैं । आपका सभी ज्ञानी पुरुष सम्मान करते है । जो उन्होंने कहा उसी को बतलाते है । मनुष्यों की प्रवृत्ति और निवृत्ति के फल को यह **नृणामिहोपरमयोः** का अर्थ है ॥२०॥

यस्य नारायणो देवो भगवान्हृद्गतः सदा । भक्त्या केवलयाऽज्ञानं धुनोति ध्वान्तमर्कवत् ॥२१॥

अन्वयः— केवलया भक्त्या भगवान् नारायणः देवः यस्य सदा हृद्‌गतः ज्ञानम् अर्कवत् ध्वान्तं धुनोति ॥२१॥

अनुवाद— आपकी अनन्या भक्ति के कारण दिव्य गुण सम्पन्न भगवान् नारायण सदा तुम्हारे हृदय में विराजमान रहते हैं जैसे सूर्य अन्धकार को विनष्ट कर देते हैं, वैसे ही वे तुम्हारे अज्ञानान्धकार को विनष्ट करते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

वेदेत्यत्र हेतुः- यस्येति । हृदि प्रविष्टः सन्नज्ञानं धुनोति । अर्को यथा वहिर्ध्वान्तम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

जानने के कारण को **यस्य इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । तुम्हारे हृदय में प्रवेश करके भगवान् नारायण तुम्हारे अज्ञान को उसी तरह विनष्ट करते हैं जिस तरह सूर्य अन्धकार को मिटा देते हैं ॥२१॥

अथापि ब्रूमहे प्रश्नांस्तव राजन्यथाश्रुतम् । संभावनीयो हि भवानात्मनः शुद्धिमिच्छताम् ॥२२॥

अन्वयः— राजन् ! अथापि तव प्रश्नान् यथा श्रुतम् ब्रूमहे आत्मनः शुद्धिमिच्छताम् भवान् हि सम्भावनीयः ॥२२॥

अनुवाद— राजन् ! फिर भी मैं अपने ज्ञान के अनुसार तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देता हूँ क्योंकि अपनी आत्मा की शुद्धि चाहने वालों के लिए आप समादरणीय हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

यथाश्रुतमित्यौद्धत्यपरिहारायोक्तम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

यथाश्रुतम् यह दत्तात्रेय महर्षि ने अपने औद्धत्य के परिहार के लिए कहा है ॥२२॥

तृष्णया भववाहिन्या योग्यैः कामैरपूरया । कर्माणि कार्यमाणोऽहं नानायोनिषु योजितः ॥२३॥

अन्वयः— भववाहिन्या योग्यैः कामैः अपूरया तृष्णया कर्माणि कार्यमाणः अहं नानायोनिषु योजितः ॥२३॥

अनुवाद— संसार के प्रवाह में डालने वाली तथा इच्छानुसार भोगों के प्राप्त होते रहने पर भी कर्मों को करवाने वाली तृष्णा ने मुझे अनेक योनियों में डाल दिया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

लोकः कर्मसु प्रवर्तते त्वं तु निवृत्तः सन्किं शेषे इति यदुक्तं तत्राह– तृष्णयेति चतुर्भिः । भवप्रवाहकारिण्या यथोचितैरपि विषयैः पूरयितुमशक्यया तृष्णया कर्मसु प्रवर्त्यमानोऽहं पूर्वं नानायोनिषु प्रवेशितः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

संसार के लोग कर्मों को करते हैं और आप तो कर्मों से निवृत्त होकर क्यों सोते हैं, जो प्रह्लादजी ने कहा था उसका यह उत्तर **तृष्णया० इत्यादि** चार श्लोकों से दत्तात्रेय महर्षि ने दिया है । संसार चक्र को प्रवृत्त रखने वाली तृष्णा यथोचित (इच्छानुकूल) भी भोगों से पूरी नहीं की जा सकती है । उसके द्वारा कर्मों को करते रहने वाला मैं अनेक योनियों में प्रवेश किया ॥२३॥

यदृच्छया लोकमिमं प्रापितः कर्मभिर्भ्रमन् । स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तिरश्चां पुनरस्य च ॥२४॥

अन्वयः— कर्मभिः भ्रमन् यदृच्छया स्वर्गापवर्गयोः तिरश्चां पुनः अस्य च द्वारम् इमं लोकम् प्रापितः ॥२४॥

अनुवाद— अपने कर्मों के अनेक योनियों में भटकता हुआ मैं दैववश मनुष्य योनि में जन्म लिया । यह योनि स्वर्ग, मोक्ष, तिर्यग योनि और मनुष्य योनि की प्राप्ति का द्वार है । क्योंकि पुण्य कर्मों को करने पर स्वर्ग, पाप करने पर पशु-पक्षी की योनि, पुण्य पाप दोनों प्रकार के कर्मों को करने पर मनुष्य योनि की प्राप्ति होगी और निवृत्त हो जाने पर मोक्ष मिलेगा ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तयैव तृष्णयेमं लोकं मनुष्यदेहं यदृच्छया प्रापितः । कथंभूतं लोकम् । धर्मेण स्वर्गस्य द्वारं साधनम् । अधर्मेण तिरश्चां श्वसूकरादियोनेर्द्वारं । मिश्राभ्यां ताभ्यां पुनरप्यस्य मनुष्यत्वस्य द्वारं । सर्वतो निवृत्त्यापवर्गस्य द्वारमित्यर्थः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

उस तृष्णा के ही द्वारा इस मनुष्य शरीर की प्राप्ति हुई है । इस मानव देह से धर्म करने से स्वर्ग, अधर्म (पाप) करने से कुत्ता सूकर आदि की योनि मिलेगी पुण्य पाप इन दोनों प्रकार के कर्मों को करने से मनुष्य योनि की प्राप्ति होगी और कर्मों से निवृत्ति हो जाने पर मोक्ष की प्राप्ति होगी ॥२४॥

अत्रापि दम्पतीनां च सुखायान्यापनुत्तये । कर्माणि कुर्वतां दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि विपर्ययम् ॥२५॥

अन्वयः— अत्रापि दम्पतीनां च सुखाय अन्यापनुत्तये कर्माणि कुर्वतां विपर्ययम् दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि ॥२५॥

अनुवाद— इस मनुष्य लोक में देखता हूँ कि स्त्री-पुरुष सुख की प्राप्ति के लिए तथा दुःख की निवृत्ति के लिए कर्मो को करते हैं किन्तु उन लोगों को उलटा ही फल होता है, पुनः दुःख में ही पड़ जाते हैं, यह देखकर मैं कर्मो से निवृत्त हो गया हूँ ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अत्रापि मनुष्यत्वेऽपि । अन्यापनुत्तये दुःखनिवृत्त्यै विपर्ययं दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

इस मनुष्य शरीर में मैं देखता हूँ कि लोग दुःख दूर करने के लिए कर्मों को करते हैं किन्तु उनको दुःख ही प्राप्त होता है अतएव मैं कर्मो से निवृत्त हो गया हूँ ॥२५॥

सुखमस्यात्मनो रूपं सर्वेहोपरतिस्तनुः । मनःसंस्पर्शजान्दृष्ट्वा भोगान्स्वप्स्यामि संविशन् ॥२६॥

अन्वयः— अस्य आत्मनः रूपं सुखम् सर्वेहोपरतिः तनुः मनः संस्पर्शजान् भोगान् दृष्ट्वा संविशन् स्वप्स्यामि॥२६॥

अनुवाद— आत्मा का सुख ही स्वरूप है, समस्त कामनाओं की निवृत्ति ही उस आत्मा का शरीर, अर्थात् उसके प्रकाशित होने का स्थान है । समस्त लोकों को मनोराज्य मात्र मानकर मैं सो रहा हूँ ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

ननु प्रवृत्त्या कदाचित्सुखं स्यान्निवृत्त्या तु किं स्यादिति चेत्तत्राह-सुखमस्य जीवस्य स्वरूपमेव । तर्हि किं न प्रकाशते तत्राह- सर्वेति । तनोतीति तनुः । सर्वक्रियानिवृत्तौ स्वत एव प्रकाशत इत्यर्थः । भोगांश्च मनःसंस्पर्शजान् मनोरथमात्रजानशाश्वतान् दृष्ट्वा स्वप्स्यामि । निरुद्यमोऽस्मीत्यर्थ; । तर्हि कदाचित्कथं भुङ्क्ते तत्राह । संविशन् । प्रारब्धभोगान्भुञ्जान इत्यर्थः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि प्रवृत्ति के द्वारा तो कभी सुख भी मिल सकता है निवृत्ति से क्या होगा ? तो इसका उत्तर है कि सुख तो इस जीव का स्वरूप ही है । यदि ऐसी बात है तो फिर वह सुखरूप से क्यों नहीं प्रकाशित होता है । तो इस पर कहते हैं कि सभी चेष्टाओं से उपरत हो जाना ही इसका स्वरूप है । सभी क्रियाओं कि निवृत्ति हो जाने पर यह सुख रूप से स्वयं प्रकाशित होता है । भोग तो केवल मनोरथ मात्र से उत्पन्न होने वाले है । अतएव वे शाश्वत नहीं है । इस बात को जानकर मैं सोता हूँ । अर्थात् कोई भी उद्यम नहीं कर रहा हूँ । तो फिर जीव भोगों को कभी क्यों भोगता है ? इस पर उन्होंने कहा जीव प्रारब्ध कर्मों का फल तो भोगता ही है॥२६॥

इत्येतदात्मनः स्वार्थं सन्तं विस्मृत्य वै पुमान् । विचित्रामसति द्वैते घोरामाप्नोति संसृतिम् ॥२७॥

अन्वयः— पुमान् वै इत्येतत् आत्मनः सन्तं स्वार्थ विस्मृत्य असति द्वैते विचित्राम् घोराम् संसृतिम् आप्नोति ॥२७॥

अनुवाद— इस तरह से पुरुष अपने वास्तविक स्वार्थ (सुख) को भूलकर इस मिथ्या द्वैत को सत्य मान लेता है और अत्यन्त भयङ्कर और विचित्र जन्मों और मृत्युओं के चक्र में पड़ जाता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

एवं चेत्कोऽपि संसारं न प्राप्नुयात्तत्राह-इत्येतदात्मनः सुखात्मकं रूपं स्वार्थं स्वस्मिन्नेव सन्तं पुरुषार्थं विस्मृत्य । असत्यपि द्वैते ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

यदि ऐसी बात है तो कोई भी संसार चक्र में नहीं पड़ेगा । इस पर **इत्येतत० इत्यादि** कहते हैं । पुरुष अपने में ही विद्यमान सुखात्मक स्वरूप पुरुषार्थ को भूलकर मिथ्या द्वैत को सत्य मान लेता है और भयङ्कर संसार चक्र में भटकता रहता है ॥२७॥

जलं तदुद्भवैश्छन्नं हित्वाऽज्ञो जलकाम्यया । मृगतृष्णामुपाधावेद्यथाऽन्यत्रार्थदृक्स्वतः ॥२८॥

अन्वयः— अज्ञः तदुद्भवैः छन्नं जलं हित्वा जलकाम्यया यथा मृगतृष्णामुपाधावेत् स्वतः अन्यत्रार्थदृक् ॥२८॥

अनुवाद— अज्ञानी जीव सेवार इत्यादि से ढँके हुए जल को त्यागकर जैसे जल के लिए मृगतृष्णा की ओर दौड़ता है, उसी तरह आत्मा की स्वाभाविक सुख रूपता को छोड़कर पुरुष आत्मा से भिन्न लोगों में सुख समझकर उसकी ओर अभिमुख होता है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव दृष्टान्तेन स्पष्टयति-जलमिति । तदुद्भवैस्तृणशैवालादिभिः जलकाम्यया जलेच्छया । स्वत आत्मस्वरूपादन्यत्र पुरुषार्थं पश्यन् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

इसी बात को दृष्टान्त के द्वारा **जलम्० इत्यादि** श्लोक में करते हैं । जल से उत्पन्न तृणों और सेवारों से ढँके जल को त्यागकर जैसे अज्ञानी मनुष्य जल को प्राप्त करने के लिए मृगतृणा की ओर दौड़ते हैं उसी तरह यह जीव स्वाभाविक रूप से सुख स्वरूप आत्मा को त्यागकर विषयभोगों में पुरुषार्थ को जानकर उसी की ओर अभिमुख हो जाते हैं ॥२८॥

देहादिभिर्दैवतन्त्रैरात्मनः सुखमीहतः । दुःखात्ययं चानीशस्य क्रिया मोघाः कृताः कृताः ॥२९॥

अन्वयः— दैवतन्त्रै देहादिभिः आत्मनः सुखमीहतः दुःखात्ययं च ईहत अनीशस्य कृताः कृताः क्रियाः मोघाः ॥२९॥

अनुवाद— प्रह्लाद प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त होने वाले शरीर आदि के द्वारा जो दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति करना चाहता है, उसकी सारी क्रियाएँ व्यर्थ हो जाती है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

एवं स्वरूप निरुद्यमत्वे कारणमुक्त्वा विपर्ययं दृष्ट्वेति यदुक्तं तद्विवृणोति-देहादिभिरिति पञ्चभिः । ईहत इच्छतः । अनीशस्य निर्दैवस्य । पुनःपुनः प्रारब्धाः क्रिया मोघा विफला एव भवन्ति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह अपनी उद्यम रहितता का कारण बतलाकर महर्षि दत्तात्रेय ने यह जो कहे थे कि सुख के बदले में दुःख की प्राप्ति को देखकर मैं उद्यम हीन हो गया हूँ । उसी की व्याख्या **देहादिभिः इत्यादि** पाँच श्लोकों में करते हैं । **ईच्छतः** अर्थात् चाहने वाला, **अनीशस्य** अर्थात् मन्दभाग्य की, बार-बार की जाने वाली क्रियाएं व्यर्थ हो जाती हैं ॥२९॥

आध्यात्मिकादिभिर्दु;खैरविमुक्तस्य कर्हिचित् । गर्त्यस्य कृच्छ्रोपनतैरर्थैः कामैः क्रियेत किम् ॥३०॥

अन्वयः— आध्यात्मिकादिभिः दुःखैः अविमुक्तस्य गर्त्यस्य कर्हिचित् कृच्छ्रोपनतैः कामैः अर्थैः किम् क्रियते ॥३०॥

अनुवाद— सदा आध्यात्मिक अधिभौतिक, आधिदैविक दुखों से घिरे ही रहने वाले मनुष्य को कभी बड़ी कठिनाई से धन आदि विषय भोगों की प्राप्ति यदि हो भी जाती है, तो उससे कौन सा लाभ होने वाला है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

क्रियाणां सफलत्वेऽपि फलस्यानुपयोगमाह-आध्यात्मिकादिभिरिति । मर्त्यस्य मरिष्यत; । कृच्छ्रेण दु:खेनोपनतैः प्राप्तैः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

यदि मनुष्य की क्रियाएँ सफल भी हो गयीं तो उनके द्वारा प्राप्त फलों का कोई उपयोग नहीं होता है, इस बात को **आध्यात्मिक० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । मर्त्यस्य अर्थात् मरणशील, **कृछ्रोपनतैः** अर्थात् कष्ट से प्राप्त हुए ।।३०।।

पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनाम् । भयादलब्धनिद्राणां सर्वतोऽभिविशङ्किनाम् ।।३१।।

अन्वयः— लुब्धानाम् अजितात्मनाम् भयादलब्धनिद्राणां सर्वतः अभिविशङ्किनाम् धनिनाम् क्लेशं पश्यामि ।।३१।।

अनुवाद— लोभी और अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रखने वाले, जिन्हे भय के कारण नीदं नहीं आती है और जिनको किसी पर भी विश्वास नहीं होता है, ऐसे धनिक पुरुषों को भी मैं कष्टग्रस्त देखता हूँ ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

कृच्छ्रं विनैव प्राप्तेऽप्यर्थे दुःखं तदवस्थमित्याह-पश्यामीति ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

बिना कष्ट के ही दु:ख की प्राप्ति हो जाने पर भी दु:ख ज्यों के त्यों बना ही रहता है । इस बात को **पश्यामि० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । इसमें कहा गया है कि धनिकों को भी क्लेश होते मैं देखता हूँ ।।३१।।

राजतश्चोरतः शत्रोः स्वजनात्पशुपक्षितः । अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मान्नित्यं प्राणार्थवद्भयम् ।।३२।।

अन्वयः— राजत चोरतः शत्रोः स्वजनात्, पशुपक्षितः अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मात् प्राणवदर्थवद्भयं नित्यम् ।।३२।।

अनुवाद— प्राण एवं धन के लोभियों को राजा, चोर, शत्रु, स्वजन, पशु-पक्षी याचक और काल से तथा अपने भी भय इसलिए बना रहता है कि कहीं भूल से मैं अधिक खर्च न कर दूँ ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

भयं प्रपञ्चयति-राजत इति । स्वस्मान्मत्त एव कथंचित्त्यागभोगविस्मरणादिना नाश; स्यादिति प्राणवतामर्थवतां च भयं नित्यम् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में धनी कों सदैव बने रहने वाले भय का विस्तार से वर्णन है । **स्वस्मात्** का अर्थ है कि धनिकों को यह भय बना रहता है कि हीं भूल से मैं अधिक धन खर्च न कर दूँ । इस तरह से प्राणवानों और धनवानों को सदैव भय वना रहता है ।।३२।।

शोकमोहभयक्रोधरागक्लैब्यश्रमादयः । यन्मूलाः स्युर्नृणां जह्यात्स्पृहां प्राणार्थयोर्बुधः ।।३३।।

अन्वयः— नृणां यन्मूलाः शोकमोहभयक्रोध रागक्लैब्यश्रमादयः स्युः, बुधः प्राणार्थयोः स्पृहां जह्यात ।।३३।।

अनुवाद— मनुष्यों को जिसके कारण शोक, मोह, भय, क्रोध, राग, कायरता तथा श्रम इत्यादि होते हैं, उन प्राण और धन के विषय में होने वाली स्पृहा को बुद्धिमान मनुष्य को त्याग देना चाहिए ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

अतोऽनर्थहेतुत्वात्प्राणेऽर्थे च स्पृहा न कार्येत्याह-शोकेति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

शोक० इत्यादि श्लोक से कहा गया है कि प्राण और धन दोनों अनर्थ के साधन है अतएव इनकी स्पृहा का परित्याग कर देना चाहिए ।।३३।।

मधुकारमहासर्पौ लोकेऽस्मिन्नो गुरूत्तमौ । वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता यच्छिक्षया वयम् ।।३४।।

अन्वयः— अस्मिन् लोके मधुकारमहासर्पौ न गुरुत्तमौ यत् शिक्षया वयम् वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता ।।३४।।

अनुवाद— इस संसार में मधुमक्खी और अजगर हमारे सबसे बड़े गुरु हैं । इनकी शिक्षा से हमें वैराग्य और सन्तोष की प्राप्ति हुई हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेवमनर्थाननुभवन्तोऽपि न केचिद्विरज्यन्ते, नच यथालाभेन तुष्यन्ति, त्वं तु कथं वैराग्यादिकं प्राप्तोऽसि तत्राह- मधुकरेति । मधुमक्षिकाऽजगरौ । ययोः शिक्षया वृत्तपर्यालोचनया ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि इस तरह से अनर्थ का अनुभव करने वाले भी कोई इस विषयों के भोग से विरक्त नहीं होते हैं, और न तो कुछ भी मिल जाय उससे ही सन्तुष्ट होते हैं, आपने कैसे वैराग्य प्राप्त किया है ? इस पर मधुकार इत्यादि श्लोक को कहते है । मधुमक्खी और अजगर हमारे सबसे बड़े गुरु हैं । इन दोनों के चरित को देखकर मुझे वैराग्य और सन्तोष की शिक्षा मिली है ।।३४।।

विरागः सर्वकामेभ्यः शिक्षितो मे मधुव्रतात् । कृच्छ्राप्तं मधुवद्वित्तं हत्वाप्यन्यो हरेत्पतिम् ।।३५।।

अन्वयः— मधुव्रतात् मे सर्वकामेभ्यः विरागः शिक्षितः मधुवत् कृच्छ्राप्तं वित्तं वित्तपतिं हत्त्वा अन्यः हरेत् ।।३५।।

अनुवाद— मधुमक्खी से मुझे सभी काम्य पदार्थों से वैराग्य की शिक्षा मिली है । जिस तरह मधुमक्खी बड़े ही कष्ट से मधु इकट्ठा करती है, उसी तरह धनवान् बड़े ही कष्ट से धन प्राप्त करता है । जिस तरह लोग या भालू मधुमक्खियों को भगाकर मधु ले लेते हैं, उस तरह लोग धन के स्वामी को मारकर उसके धन को ले लेते हैं । इससे मैंने यह शिक्षा ग्रहण की कि विषय भोगों से विरक्त ही रहना चाहिए ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

मधुकाराच्छिक्षितमाह-विराग इति । वित्तपत्तिं हत्वाऽन्यो वित्तं हरेदित्येवम् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

मधुमक्खी से प्राप्त होने वाली शिक्षा को **विराग० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं जिस तरह लोग धनस्वामी को मारकर उसके धन को ले लेते हैं । उसी तरह लोग मधुमक्खियों को मारकर मधु ले लेते हैं । अतएव विषय भोगों से विरक्त ही रहना चाहिए ।।३५।।

अनीहः परितुष्टात्मा यदृच्छोपनतादहम् । नो चेच्छये बह्वहानि महाहिरिव सत्त्ववान् ।।३६।।

अन्वयः— यदृच्छोपनातात् अहम अनीहः परितुष्टात्मा, नोचेत् बहु अहानि महाहिरिव शये ।।३६।।

अनुवाद— दैववश जो कुछ भी मिल जाता है उसी से मैं सन्तुष्ट रहता हूँ और अधिक की इच्छा नहीं करता हूँ । यदि कुछ भी नहीं मिलता है तो हृष्ट-पुष्ट मैं अनेक दिनों तक अजगर के समान सोता रहता हूँ । अजगर से मुझे सन्तोष की शिक्षा मिली है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

अजगराच्छिक्षितमाह-अनीह इति । सत्त्ववान् धैर्यवान् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

अजगर से प्राप्त होने वाली शिक्षा को **अनीह० इत्यादि** श्लोक से कहा है। सत्त्ववान् अर्थात् धैर्ययुक्त है ॥३६॥

क्वचिदल्पं क्वचिद्भूरि भुञ्जेऽन्नं स्वाद्वस्वादु वा। क्वचिद्भूरिगुणोपेतं गुणहीनमुत क्वचित् ॥३७॥

अन्वयः— क्वचिदल्पं अन्नं भुञ्जे क्वचिद बहुस्वादु अस्वादु वा क्वचिद्भूरि गुणोपेतं, क्वचित् उतगुणहीनम् ॥३७॥

अनुवाद— कहीं पर मैं थोड़ा अन्न खाता हूँ, कहीं बहुत अन्न खाता हूँ, कही स्वादिष्ट तो कहीं नीरस। कहीं पर अनेक गुणों से युक्त और कहीं पर गुणहीन ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

पीनत्वे हेतुं वदन् यदृच्छया प्राप्तात्परितोषं प्रपञ्चयति-क्वचिदल्पमिति षड्भिः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

शरीर के मोटा ताजा होने का कारण दैववशात् प्राप्त से ही संतुष्ट रहना बतलाते हुए क्वचिदल्पम्० इत्यादि छह श्लोकों को कहते हैं ॥३७॥

श्रद्धयोपाहृतं क्वापि कदाचिन्मानवर्जितम्। भुञ्जे भुक्त्वाथ कस्मिंश्चिद्दिवार नक्तं यदृच्छया ॥३८॥

अन्वयः— क्वापि श्रद्धया उपहृतं कदाचित् मानवर्जितम्, कस्मिंश्चिद दिवा भुक्त्वा अथ यदृच्छानक्तम् ॥३८॥

अनुवाद— कभी तो श्रद्धा पूर्वक प्राप्त अन्न को खाता हूँ और कभी अपमान पूर्वक प्राप्त अन्न को खाता हूँ किसी दिन, दिन में खाकर यदृच्छा वशात् प्राप्त अन्न को रात में भी खा लेता हूँ ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३८॥

क्षौमं दुकूलमजिनं चीरं वल्कलमेव वा। वसेऽन्यदपि संप्राप्तं दिष्टभुक् तुष्टधीरहम् ॥३९॥

अन्वयः— दिष्टभुक् तुष्टधीरहम् क्षौमं दुकूलं अजिनम्, चीरं बल्कल मेव वा अन्यदपि संप्राप्तम् वसे ॥३९॥

अनुवाद— प्रारब्धानुसार प्राप्त भोग में ही सन्तुष्ट रहने वाला मैं रेशमी, सूती, मृगचर्म, चीर, बल्कल अथवा दूसरा भी जो प्राप्त हो जाता है उसी वस्त्र को मैं पहन लेता हूँ ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

चीरं जीर्णवस्त्र खण्डम्। वसे परिदधे। दिष्टभुक् प्रारब्धकर्मफलभोगी ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

पुराने वस्त्र के टुकड़े को **चीर** कहते हैं **वसे** अर्थात् धारण कर लेता हूँ **दिष्टभुक्** प्रारब्ध कर्म के फल को भोगने वाला ॥३९॥

क्वचिच्छये धरोपस्थे तृणपर्णाश्मभस्मसु। क्वचित्प्रासादपर्यङ्के कशिपौ वा परेच्छया ॥४०॥

अन्वयः— क्वचित् धरोपस्थे तृणपर्णाश्मभस्मसु शये क्वचित् परेच्छया प्रासादपर्यङ्के कशिपौ वा ॥४०॥

अनुवाद— कहीं पर तो मैं पृथिवी पर सोता हूँ, कहीं तृण, पर पत्तों पर, पत्थर पर या भस्म पर सोता हूँ और कहीं पर दूसरों की इच्छा से महल के भीतर पलङ्ग के गद्दे पर सोता हूँ ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

प्रासादमध्ये पर्यङ्के। तत्रापि कशिपौ तूलिकायाम् ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

महल के भीतर पलङ्ग के गद्दे पर सोता हूँ ॥४०॥

क्वचित्स्नातोऽनुलिप्ताङ्गः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः । रथेभाश्वैश्चरे क्वापि दिग्वासा ग्रहवद्विभो ॥४१॥

अन्वयः— हे विभो ! क्वचित् स्नातः अनुलिप्ताङ्गः सुवासा सग्वी अलंकृतः रथेभाश्वैश्चरे क्वापि ग्रहवद् दिग्वासा।।४१।।

अनुवाद— हे राजन् ! कभी मैं स्नान करके, शरीर में चन्दन लगाकर, सुन्दर वस्त्र फूलों की माला और आभूषण धारण करके रथ पर, हाथी घोड़े पर चढ़कर चलता हूँ तो कभी पिशाच के समान नङ्ग धडङ्ग विचरण करता हूँ ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

चरे विचरामि । क्वचिद्ग्रहवद्दिगम्बरो विचरामि ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

चरे अर्थात् विचरण करता हूँ । कभी पिशाच के समान नङ्ग धङ्गग विचरण करता हूँ ।।४१।।

नाहं निन्दे न च स्तौमि स्वभावविषमं जनम् । एतेषां श्रेय आशासे उतैकात्म्यं महात्मनि ॥४२॥

अन्वयः— स्वभाव विषमं जनम् अहं न निन्दे न स्तौमि उत एतेषां महात्मनि ऐकात्म्यं श्रेयः आशासे ।।४२।।

अनुवाद— भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले मनुष्यों की न तो मैं निन्दा करता हूँ और न स्तुति करता हूँ मैं इन सबों की परमात्मा से एकता और परम कल्याण चाहता हूँ ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

नच मानापमानकर्तृषु मम वैषम्यमित्याह-नाहमिति । नाहं निन्दामि नच स्तौमि । महात्मनि विष्णौ ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

मेरा मान और अपमान करने वाले लोगों के प्रति मेरी विषम बुद्धि नहीं है इस बात को वे **नाहम्० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं मैं न तो किसी की निन्दा करता हूँ और न प्रशंसा करता हूँ मैं भगवान् विष्णु से इन सबों की एकता चाहता हूँ ।।४२।।

विकल्पं जुहुयाच्चित्तौ तां मनस्यर्थविभ्रमे । मनो वैकारिके हुत्वा तं मायायां जुहोत्यनु ॥४३॥

अन्वयः— विकल्पं चित्तौ जुहुयात् तां मनसि अर्थविभ्रमे मनसि, मनो वैकारिके हुत्वा तत् मायायां जुहोति अनु।।४३।।

अनुवाद— सत्य का अनुसन्धान करने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह जो अनेक प्रकार के पदार्थ और भेद मालुम पड़ते हैं उन सबों का चित्तवृत्ति में होम करे, चित्तवृत्ति को इन पदार्थों के सम्बन्ध में विविध भ्रम को उत्पन्न करने वाले मन में, मन को सात्त्विकाहङ्कार में और सात्त्विकाहङ्कार को महत्तत्त्व के द्वारा माया में होम कर दें ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

एवंभूतत्वेन स्थितावुपायमाह-विकल्पमिति द्वाभ्याम् । चित्तौ भेदग्राहकमनोवृत्तौ । अर्थरूपो विभ्रममनो यस्मिन्मनसि तन्मनः वैकारिकेऽहंकारे । तमहंकारमन्वनन्तरं महत्तत्त्वद्वारेणेत्यर्थः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से होने का स्थिति के उपाय को **विकल्पम्० इत्यादि** को दो श्लोकों से बतलाते है । **चित्तौ** अर्थात भेद ग्राहक मनोवृत्ति में जिस मन में अनेक प्रकार के पदार्थों के विषय में भ्रम उत्पन्न होता है उस मन को सात्त्विकाहङ्कार में होम करे । उस अहङ्कार को महत् तत्त्व के द्वारा माया में होम करे ।।४३।।

आत्मानुभूतौ तां मायां जुहुयात्सत्यदृङ्मुनिः । ततो निरीहो विरमेत्स्वानुभूत्यात्मनि स्थितः ॥४४॥

अन्वयः— तां मायाम् आत्मानुभूतौ जुहुयात् सत्यदृङ्मुनि ततः निरीहः स्वानुभूत्यात्मनि स्थितः विरमेत् ॥४४॥

अनुवाद— समस्त भेदों आदि का कारण माया है इस प्रकार निश्चय करके उस माया का आत्मानुभूति में होम कर दे । इस तरह आत्मा के साक्षात्कार के द्वारा आत्मस्वरूप में स्थित होकर निष्क्रिय और उपरत हो जाय॥४४॥

भावार्थ दीपिका

सत्यमेव पश्यतीति तथा ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

सत्यदृक् का अर्थ है सत्य को ही देखने वाला ॥४४॥

स्वात्मवृत्तं मयेत्थं ते सुगुप्तमपि वर्णितम् । व्यपेतं लोकशास्त्राभ्यां भवान्हि भगवत्परः ॥४५॥

अन्वयः— इत्थं मया सुगुप्तमपि लोकशास्त्राभ्यां व्यपेतम् स्वात्मवृत्तं ते वर्णितम् भवान् हि भगवत् परः ॥४५॥

अनुवाद— इस प्रकार मैं अत्यन्त गोपनीय भी तथा लोक एवं वेद से परे अपने वृत्त का वर्णन तुमको इसलिए किया कि तुम भगवद् भक्त हो ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

मन्ददृष्ट्या लोकशास्त्राभ्यां व्यपेतं नतु तत्त्वदृष्टया । यतो भवान्भगवत्परः ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

अज्ञान दृष्टि से लोक एवं वेद से अतीत है तत्त्व की दृष्टि से नहीं चूकि आप भगवद् भक्त हैं अतएव मैंने आपको सुनाया ॥४५॥

नारद उवाच

धर्मं पारमहंस्यं वै मुनेः श्रुत्वाऽसुरेश्वरः । पूजयित्वा ततः प्रीत आमन्त्र्य प्रययौ गृहम् ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे यतिधर्मे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अन्वयः— मुनेः पारमहंस्यं धर्मं श्रुत्वा असुरेश्वरः ततः प्रीतः पूजयित्वा आमन्त्र्य गृहम् प्रययौ ॥४६॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— अजगर मुनि से पारमहंस्य धर्म का वर्णन सुनकर प्रह्लादजी प्रसन्न हो गये । वे उनकी पूजा किए उसके पश्चात् उनसे आज्ञा लेकर अपने घर चले गये ॥४६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सप्तम स्कन्ध के युधिष्ठिरनारद संवाद के अन्तर्गत यतिधर्म वर्णन के प्रसङ्ग में तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण की भावार्थदीपिका टीका के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१३॥

* * *

चौदहवाँ अध्याय

गृहस्थ सम्बन्धी सदाचार का वर्णन

युधिष्ठिर उवाच

गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन चाञ्जसा । याति देवऋषे ब्रूहि मादृशो गृहमूढधीः ॥१॥

अन्वयः— हे देवऋषे ! मादृशः गृहमूढधीः गृहस्थः एतां पदवीं येन च विधिना अञ्जसा याति ब्रूहि ॥१॥

महाराज युधिष्ठिर ने कहा

अनुवाद— हे देवर्षे नारदजी ! मुझ जैसा गृह में ही आसक्त रहने के कारण अज्ञानी गृहस्थ जिस प्रकार से इस पदवी को आसानी से प्राप्त कर सकता है उसको आप कृपा करके मुझे बतलावें ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्दशे गृहस्थस्य परमो धर्म ईर्यते । देशकालादिभेदेन पुनः श्रेयोविशेषकृत् । गृहस्थमुल्लङ्घ्य मोक्षं प्रत्यन्तरङ्गत्वेन प्रपन्नं वानस्थयतिधर्मेष्वभिहितेपु, तर्हि गृहस्थस्य मोक्षो न स्यादिति शङ्कितचितः पृच्छति- गृहस्थ इति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौदहवें अध्याय में गृहस्थ के परम धर्म का वर्णन किया गया है । पुनः देश और काल के भेद से उसमें विशेषता (भिन्नता) आती है । गृहस्थ को छोड़कर मोक्ष के प्रति अन्तरङ्ग रूप से वानप्रस्थी और यति के धर्मों का वर्णन किए जाने पर हो सकता है कि गृहस्थ का मोक्ष न होता हो इस प्रकार की शङ्का करके महाराज युधिष्ठिर **गृहस्थ० इत्यादि** लोक से पूछते हैं ॥१॥

नारद उवाच

गृहेष्ववस्थितो राजन् क्रियाः कुर्वन् गृहोचिताः । वासुदेवार्पणं साक्षादुपासीत महामुनीन् ॥२॥

अन्वयः— राजन् गृहेपु अवस्थितः गृहोचिताः क्रियाः कुर्वन् साक्षाद् वासुदेवर्पणं कुर्वन् महामुनीन् उपासीत् ॥२॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— युधिष्ठिर गृहस्थाश्रम में रहते हुए गृहस्थ धर्म के अनुसार सारी क्रियाओं को करते हुए उन सबों को साक्षात् भगवान् वासुदेव को समर्पित करके बड़े-बड़े मुनियों की सेवा करे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तस्य मोक्षधर्मानाह-गृहेष्वित्यादि यावदध्यायसमाप्ति । साक्षाद्वासुदेवार्पणं यथा भवत्येवं कुर्वन्नुपासीत ॥२॥

भाव प्रकाशिका

महाराज युधिष्ठिर को नारदजी मोक्ष धर्म का उपदेश देते हुए कहते हैं- **गृहेष्वित्यादि** इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त उन्होंने मोक्ष धर्म का उपदेश दिया है । साक्षात् भगवान् वासुदेव को जैसे अर्पण हो सके इसी तरह से उपासना करें ॥२॥

शृण्वन्भगवतोऽभीक्ष्णमवतारकथामृतम् । श्रद्दधानोयथाकालमुपशान्तजनावृतः ॥३॥

अन्वयः— यथाकालम् उपशान्तजनावृतः अभीक्ष्णं श्रद्दधानः भगवतः अवतारकथा मृतम् शृण्वन् ॥३॥

अनुवाद— अवकाश के अनुसार विरक्त पुरुषों के साथ रहे और बार-बार श्रीभगवान् के अवतारो की लीलामृत का श्रवण करे ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

सत्सङ्गाच्छनकैः सङ्गमात्मजायात्मजादिषु । विमुच्येन्मुच्यमानेषु स्वयं स्वप्नवदुत्थितः ॥४॥

अन्वयः— स्वप्नवदुत्थितः सत्सङ्गात् शनकैः मुच्यमानेषु आत्मजायागृहादिषु सङ्गम् स्वयं विमुच्येत् ॥४॥

अनुवाद— जिस तरह स्वप्न के टूट जाने पर जगा हुआ मनुष्य स्वप्न के संबन्धियों से आसक्त नहीं होता है जैसे ही सत्सङ्ग के द्वारा धीरे-धीरे अपने आप छूट जाने वाले शरीर, पत्नी, पुत्र धनादि की आसक्ति को छोड़ता जाय॥४॥

भावार्थ दीपिका

स्वयमेव मुच्यमानेषु वियुज्यमानेषु । यथा स्वप्नादुत्थितः पुमान् स्वप्नदृष्टेषु पुत्रादिषु सङ्गं विमुञ्चति तद्वत् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह जगा हुआ पुरुष स्वप्न के संबन्धियों से आसक्त नहीं होता है उसी तरह अपने आप एक दिन छूट जाने वाले आत्मीयों से विरक्त होता जाय ॥४॥

यावदर्थमुपासीनो देहे गेहे च पण्डितः । विरक्तो रक्तवत्तत्र नृलोके नरतां न्यसेत् ॥५॥

अन्वयः— पण्डितः देहे गेहे च यावदर्थमुपासीनः विरक्तः नृलोके रक्तवत् नरतां न्यसेत् ॥५॥

अनुवाद— बुद्धिमान व्यक्ति को आवश्यकता के अनुसार शरीर और गृह की सेवा करनी चाहिए । वह भीतर से विरक्त रहे और बाहर से रागी के समान लोगों में साधारण मनुष्य के समान ही व्यवहार करे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवंभूतस्य दुर्जनैरभिभूयमानस्य कुतो गृहोचिताः क्रियाः स्युस्तत्राह-यावदर्थमिति । अन्तस्त्वनासक्तो बहिस्त्वासक्त इव नृलोके जनमध्ये नरतां मनुष्यतां न्यसेत् । पुरुषकारमाविष्कुर्यादित्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि इस प्रकार के मनुष्य के दुष्ट लोग तङ्ग करने लगते है, ऐसी स्थिति में वह गृहोचित क्रियाओं को कैसे कर सकता है ? इस पर नारदजी **यावदर्थम् इत्यादि** श्लोक कहते हैं । अर्थात् भीतर से अनासक्त रहकर वाहर से आसक्त के ही समान लोगों से व्यवहार करना चाहिए ॥५॥

ज्ञातयः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदोऽपरे । यद्वदन्ति यदिच्छन्ति चानुमोदेत निर्ममः ॥६॥

अन्वयः— ज्ञातयः पितरौ पुत्राः भ्रातरः सुहृदः अपरे यद्वदन्ति यत् इच्छन्ति च निर्ममः सन् अनुमोदेत ॥६॥

अनुवाद— माता-पिता भाई बन्धु पुत्र मित्र तथा दूसरे लोग जो कहें तथा जो चाहें उसका अनासक्त रहकर अनुमोदन कर देना चाहिए ॥६॥

भावार्थ दीपिका

आग्रहं तु क्वापि न कुर्यादित्याह-ज्ञातय इति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

आग्रह किसी भी विषय में न करे इस वात को **ज्ञातयः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ॥६॥

दिव्यं भौमं चान्तरिक्षं वित्तमच्युतनिर्मितम् । तत्सर्वमुपभुञ्जान एतत्कुर्यात्स्वतो बुधः ॥७॥

अन्वयः— बुधः दिव्यं, भौमं अन्तरिक्षं च वित्तम् अच्युतनिर्मितम् तत् सर्वं उपभुञ्जानः एतत् स्वतः कुर्यात् ॥७॥

अनुवाद— बुद्धिमान पुरुष वर्षा से प्राप्त होने वाले अन्न आदि, पृथिवी से प्राप्त सुवर्ण आदि अकस्मात् प्राप्त होने वाले सभी प्रकार की सम्पत्ति को परमात्मा प्रदत्त समझकर उसका उपभोग करे उसका स्वयं संचय न करे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं सर्वानुमोदने वित्तक्षयप्रसङ्गात्कुतो जीवनं कुतो वा कर्मकरणं तत्राह- दिव्यं वृष्ट्यादिभिर्जातं धान्यादि । भौमं निधानादि । आन्तररिक्षमकस्मादेव प्राप्तम् एवं स्वत एवाच्युतनिर्मितदैवलब्धं यत् एतत्पूर्वोक्तं कर्मादि ।।७।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि इस तरह से सबों का अनुमोदन करने पर तो नाश का प्रसङ्ग होगा, ऐसी स्थिति में जीवन अथवा कर्मों को कैसे किया जा सकता है ? इस पर **दिव्यं इत्यादि** श्लोक कहते हैं । आकाश से प्राप्त वर्षा आदि से उत्पन्न अन्न आदि, पृथिवी से प्राप्त खजाना आदि तथा अकस्मात् प्राप्त संपत्ति को परमात्मा प्रदत्त समझकर उसका उपभोग कर उसका संचयन न करे ।।७।।

यावद्भ्रियेत जठरं तावत्स्वत्वं हि देहिनाम् । अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ।।८।।

अन्वयः— देहिनां हि तावदेव स्वत्वं यावत् जठरं भ्रियेत् यः अधिकं अभिमन्येत् स स्तेनः दण्डम् अर्हति ।।८।।

अनुवाद— मनुष्यों का केवल उतने ही धन पर अधिकार है जितने से पेटभर जाय (भूख मिट जाय) उससे अधिक सम्पत्ति को जो अपना समझता है वह चोर है, वह दण्ड का पात्र है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

दैवाद्भूरिलाभे जातेऽपि तत्राभिमानो न कार्य इत्याह- यावदिति । भ्रियेत पूर्येत ।।८।।

भाव प्रकाशिका

भाग्यवशात् अधिक लाभ हो जाने पर भी उस पर स्वत्वाभिमान नहीं करना चाहिए । उस बात को **यावत्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । भ्रियेत् अर्थात् भर जाय ।।८।।

मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः । आत्मनः पुत्रवत्पश्येत्तैरेषामन्तरं कियत् ।।९।।

अन्वयः— मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरी सृप्खगमक्षिकाः अत्मनः पुत्रवत् पश्येत् तैरेषामन्तरं कियत् ।।९।।

अनुवाद— हरिन् ऊँट, गधा, बन्दर, चूहा, सर्प, पक्षी तथा मक्खी इन सबों को अपने पुत्र के समान समझे। पुत्रों तथा इन सभी जीवों में भेद ही कितना है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

अतएव यं कमपि स्वगृहं क्षेत्रं वा प्रविश्य भुञ्जानं न निवारयेदित्याह-मृगेति । मर्को मर्कटः । सरीसृप् सर्पः । मक्षिकाश्च। तैः पुत्रैरेपां मृगादीनां कियदन्तरम् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

अतएव यदि कोई भी अपने घर में अथवा खेत में प्रवेश करके खाने लग जाय तो उसको रोके नहीं । इसी बात को **मृग० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । **मर्क** अर्थात् बन्दर, **सरीसप्** सर्प **मक्षिकाः** मक्खी । उन पुत्रों और इन मृगादिकों से अन्तर ही कितना है ।।९।।

त्रिवर्गं नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि । यथादेशं यथाकालं यावद्दैवोपपादितम् ।।१०।।

अन्वयः— गृहमेधी अपि अतिकृच्छ्रेण त्रिवर्गं न भजेत यथा देशं यथाकालं यावद दैवोपपादितम् ।।१०।।

अनुवाद— गृहस्थ मनुष्यों को भी धर्म, अर्थ और काम के लिए बहुत अधिक कष्ट नहीं उठाना चाहिए देश, काल और प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ मिल जाय उसी से संतोष करना चाहिए ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

अतिकृच्छ्रेणापाद्य न भजेत्किंतु यावद्दैवप्रापितं तावदेव भजेत् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

गृहस्थ को भी धर्म, अर्थ और काम का सम्पादन अत्यधिक कष्ट उठाकर नहीं करना चाहिए। देश, काल और प्रारब्ध के अनुसार जितना ही प्राप्त हो उतने से ही सन्तोष करना चाहिए ।।१०।।

आश्वाघान्तेवसायिभ्यः कामान्संविभजेद्यथा । अप्येकामात्मनो दारां नृणां स्वत्वग्रहो यतः ।।११।।

अन्वयः— आश्वाघान्ते व सायिभ्यः कामान् यथा संविभजेत् एकाम् आत्मनः दाराम् अपि नृणां स्वत्वग्रहः यतः।।११।।

अनुवाद— कुत्ते पतित चाण्डाल पर्यन्त सबों को अपनी भोग सामग्रियों को बाँटकर प्रदान करना चाहिए, अपनी पत्नी जिसे मनुष्य समझता है कि यह मेरी है, उसको भी अतिथियों के सत्कार में नियुक्त करना चाहिए।।११।।

भावार्थ दीपिका

श्वानश्च अघाश्च पतिताः अन्तेवसायिनश्चाण्डालादयस्तानभिव्याप्य यथार्हं कामान्संविभजेत्स्वभोज्याद्विभज्य दद्यात् । यद्यप्येकैवात्मनो द्वारा भार्या तस्यामतिथिशुश्रूषणे नियुक्तायां शुश्रूषा हीयेत । यस्यां च नृणां स्वत्वग्रहो ममैवेयमित्या- ग्रहस्तामेकामपि संविभजेत् । अतिथिशुश्रूषणे नियुञ्जीतेत्यर्थः । नत्वन्यथा मन्तव्यम् । यथार्हं विभजेदित्युक्तत्वात् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

कुत्ता, पतित तथा चाण्डाल प्रभृति को भी यथा योग्य अपनी भोग सामग्रियों का विभाग करके प्रदान करना चाहिए। यद्यपि पत्नी केवल अपनी होती है उसको भी अतिथि सेवा में नियुक्त करने पर अपनी सेवा में कमी हो जायेगी। क्योंकि स्त्री को लोग समझते हैं कि यह मेरी है, अपनी उस एक पत्नी को भी अतिथियों की सेवा में नियुक्त रखना चाहिए। इससे भिन्न अर्थ नहीं मानना चाहिए क्योंकि कहा गया है कि यथायोग्य विभाग करना चाहिए ।।११।।

जह्याद्यदर्थे स्वप्राणान्हन्याद्वा पितरं गुरुम् । तस्यां स्वत्वं स्त्रियां जह्याद्यस्तेन ह्यजितो जितः ।।१२।।

अन्वयः— यदर्थे स्वप्राणान् जह्यात् पितरं गुरुं वा हन्यात् तस्यां स्त्रियां यः स्वत्वं जह्यात् तेन अजितः जितः ।।१२।।

अनुवाद— जिसके लिए लोग अपने प्राणों का भी परित्याग कर देते हैं, माता-पिता को भी मार देते हैं उस स्त्री पर से जिसने अपनी ममता को ही हटा लिया है वह परमात्मा को भी जीत लेता है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

एवं चेत्तेनेश्वरो वशीकृतः स्यादित्याह-जह्यादिति । यदर्थे यन्निमित्तम् । अन्यैरजितोऽपीश्वरस्तेन जित एव ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

अपनी पत्नी को भी अतिथि सेवा में लगा देने वाला ईश्वर को भी अपने वश में कर लेता है। **यदर्थे** अर्थात् जिसके लिए जिन ईश्वर को कोई जीत नहीं सकता उस ईश्वर को भी उसने जीत लिया ।।१२।।

कृमिविड्भस्मनिष्ठान्तं क्वेदं तुच्छं कलेवरम् । क्व तदीयरतिर्भार्या क्वायमात्मा नभश्छदिः ।।१३।।

अन्वयः— कृमिविट भस्म निष्ठान्तं इदं तुच्छं कलेवरं क्व क्वतदीयरतिः भाया क्व अयम् नभः छदिः आत्मा?।।१३।।

अनुवाद— कृमी की विष्ठा तथा राख के रूप में परिणत होने वाला यह तुच्छ शरीर, ओर इस शरीर के लिए जिसमें रति (प्रेम) होता है, वह स्त्री कहाँ तथा कहाँ तो आकाश को भी अपनी महिमा से ढँक लेने वाला आत्मा है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ननु कथमेवं तस्यां स्वत्वाभिमानो हातुं शक्यस्तत्त्वविचारेणेत्याह-कृमिविड्भस्मसु निष्ठा पर्यवसानमन्ते यस्य । तदीया देहार्था रतिर्यस्यां सा स्वमहिम्ना नभोऽपि च्छादयतीति तथा ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि इस तरह से अपनी पत्नी से स्वत्वाभिमान का परित्याग कैसे किया जा सकता है ? तो इसका उत्तर है कि तत्त्व विचार के द्वारा ऐसा किया जा सकता है इसी बात को **कृमिवट्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । इस शरीर का पर्यवसान या तो कीड़ों की विष्ठा के रूप में अथवा भस्म के रूप में होता है, अतएव यह अत्यन्त तुच्छ है । इस शरीर के ही लिए पत्नी में आसक्ति होती है वह आत्मा अपनी महिमा से आकाश को भी ढँक देने वाला है ।।१३।।

सिद्धैर्यज्ञावशिष्टार्थैः कल्पयेद्वृत्तिमात्मनः । शेषे स्वत्वं त्यजन्प्राज्ञः पदवीं महतामियात् ।।१४।।

अन्वयः— सिद्धै यज्ञावशिष्टार्थैः आत्मनः वृत्तिं कल्पयेत् शेषे स्वत्वं त्यजन् प्राज्ञः महतां पदवीम् इयात् ।।१४।।

अनुवाद— प्रारब्धानुसार प्राप्त तथा पञ्च महायज्ञों से अवशिष्ट वस्तुओं से ही जो अपना निर्वाह करता है और उससे अवशिष्ट वस्तुओं में अपना स्वत्व त्याग देता है, वह महापुरुषों की पदवी को प्राप्त करता है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

किंच सिद्धैर्दैवलब्धैर्यज्ञावशिष्टार्थैः पञ्चयज्ञशेषैरन्नादिभिः । महतां निवृत्तानाम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

प्रारब्धानुसार प्राप्त तथा पञ्चमहायज्ञों से अवशिष्ट वस्तुओं से ही अपना निर्वाह करता है और शेष वस्तुओं में वह स्वत्व को त्याग देता है वह परमहंसों की पदवी को प्राप्त करता है ।।१४।।

देवानृषीन्नृभूतानि पितृनात्मानमन्वहम् । स्ववृत्त्यागतवित्तेन यजेत पुरुषं पृथक् ।।१५।।

अन्वयः— स्ववृत्त्यागतवित्तेन देवान् ऋषीन् नृ भूतानि पितॄन् आत्मानम् अन्वहम् पुरुषं पृथक् यजेत ।।१५।।

अनुवाद— अपने वर्ण के अनुसार प्राप्त धन से देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों तथा दूसरे प्राणियों पितरों तथा आत्मा का प्रतिदिन यजन करना चाहिए । यह एक ही परमेश्वर की भिन्न-भिन्न रूपों में आराधना है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

एतद्विवृण्वन्नाह-देवादीन्पञ्चयज्ञदेवताः आत्मानं च । एवं पृथक् पुरुषमन्तर्यामिणमेव यजेत ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

इसी बात की व्याख्या करते हुए कहते हैं **देवान् इत्यादि देवादीन् इत्यादि** से पञ्चमहायज्ञ के देवताओं को तथा आत्मा को कहा गया है । इस तरह से भिन्न-भिन्न रूपों में अन्तर्यामी की ही आराधना है ।।१५।।

यर्ह्यात्मनोऽधिकाराद्याः सर्वाः स्युर्यज्ञसंपदः । वैतानिकेन विधिना अग्निहोत्रादिना यजेत् ।।१६।।

अन्वयः— यर्हि आत्मनः अधिकाराद्या सर्वाः यज्ञसम्पदः स्युः तदा वैतानिकेन विधिना अग्निहोत्रादिना यजेत् ।।१६।।

अनुवाद— जब अपने को अधिकार आदि सभी यज्ञोपयोगी सभी वस्तुएँ प्राप्त हों तो यज्ञ आदि अथवा अग्निहोत्र आदि के द्वारा श्रीभगवान् की आराधना करनी चाहिए ।।१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१६।।

नह्यग्निमुखतोऽयं वै भगवान्सर्वयज्ञभुक् । इज्येत हविषा राजन्यथा विप्रमुखे हुतैः ॥१७॥

अन्वयः— राजन् सर्वयज्ञभुक् भगवान् यथा विप्रमुखैः हुतैः इज्यते तथा अयम् अग्निमुखतः नहि ॥१७॥

अनुवाद— राजन् ! युधिष्ठिर सभी यज्ञों के भोक्त भगवान् ही है, वे ब्राह्मण के मुख में हविष्य अर्पित करने से जितना तृप्त होते हैं उतना अग्नि में होम करने से वे तृप्त नहीं होते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

न पुनरतिनिर्बन्धो यज्ञार्थं कार्य इत्याह-नहीति। विप्रमुखे हुतैरन्नादिभिर्यथा इज्येत पूज्येत न तथाग्निमुखतो हविषा इज्येत॥१७॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञ करने के लिए बहुत अधिक प्रयास नहीं करना चाहिए इस बात को **नहि० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। ब्राह्मणों को हविष्यान्न का भोजन कराने से परमात्मा की जैसी पूजा होती है, वैसी पूजा अग्नि में होम करने या यज्ञ करने से नहीं होती है ॥१७॥

तस्माद्ब्राह्मणदेवेषु मर्त्यादिषु यथार्हतः । तैस्तैः कामैर्भजस्वैनं क्षेत्रज्ञं ब्राह्मणाननु ॥१८॥

अन्वयः— तस्माद् ब्राह्मण देवेषु मर्त्यादिषु यथार्हतः तैस्तैः कामैः एनं क्षेत्रज्ञं ब्राह्मणान् अनु यजस्व ॥१८॥

अनुवाद— अतएव ब्राह्मण देवता मनुष्य आदि सभी प्राणियों में यथायोग्य उनके उपयुक्त सामग्रियों के द्वारा ब्राह्मणों के पूजन के पश्चात् सबों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विराजमान परमात्मा की पूजा करनी चाहिए ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणेषु च देवेषु पञ्चयज्ञदेवतासु च मर्त्यादिष्वन्येष्वपि नरेषु पश्वादिषु च । क्षेत्रज्ञमन्तर्यामिणम् । ब्राह्मणाननु मर्त्यादियजने ब्राह्मणयजनानन्तरमन्येषु यजस्व । पाठान्तरे ब्राह्मणा आननं यस्य तम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों तथा पञ्चयज्ञ के देताओं मनुष्य आदि में तथा पशु आदि में भी मनुष्यों की आराधना में ब्राह्मण की आराधना के पश्चात् मनुष्य आदि में अन्तर्यामी परमात्मा की आराधना करो ॥१८॥

कुर्यादापरपक्षीयं मासि प्रौष्ठपदे द्विजः । श्राद्धं पित्रोर्यथावित्त तद्बन्धूनां च वित्तवान् ॥१९॥

अन्वयः— वित्तवान् द्विजः प्रौष्ठपदे मासि पित्रोः तदबन्धूनां च यथावित्तं अपरपक्षीयं श्राद्धं कुर्यात् ॥१९॥

अनुवाद— धनवान द्विज को चाहिए कि वह आश्विन मास के कृष्ण पक्ष में अपने माता-पिता तथा मातामह आदि का महालय श्राद्ध करे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

प्रौष्ठपदे भाद्रपदे ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

प्रौष्ठपदे अर्थातृ भाद्रपद के महीने में ॥१९॥

अयने विषुवे कुर्याद्व्यतीपाते दिनक्षये । चन्द्रादित्योपरागे च द्वादशीश्रवणेषु च ॥२०॥
तृतीयायां शुक्लपक्षे नवम्यामथ कार्तिके । चतसृष्वप्यष्टकासु हेमन्ते शिशिरे तथा ॥२१॥
माघे च सितसप्तम्यां मघाराकासमागमे । राकया चानुमत्या वा मासर्क्षाणि युतान्यपि॥२२॥

द्वादश्यामनुराधा स्याच्छ्रवणस्तिस्र उत्तराः । तिसृष्वेकादशी वासु जन्मर्क्षश्रोणयोगयुक् ॥२३॥
त एते श्रेयसः काला नृणां श्रेयोविवर्धनाः । कुर्यात्सर्वात्मनैतेषु श्रेयोऽमोघं तदायुषः ॥२४॥

अन्वयः— अयने, विषुवे, व्यतीपाते, दिनक्षये चन्द्रादित्योपरागे द्वादशी श्रवणेषु च, तृतीयायां शुक्ल पक्षे नवम्यां अथ कार्तिके चतसृषु अष्टकासु हेमन्ते शिशिरे माघे चे सित सप्तम्यां, मघाराका समागमे राकया च अनुमत्या वा मासार्क्षाणि युतानि अपि द्वादश्याम् अनुराधा स्यात् श्रवणः तिस्रः उत्तराः तिसृषु एकादशी वासु जन्मर्क्षश्रोणयोगक् ते एते श्रेयसः कालाः नृणां श्रेयः विवर्धनाः एतेषु सर्वात्मना श्रेयः कुर्यात् तत् आयुषः अमोघम् ॥२०-२४॥

अनुवाद— इसके अतिरिक्त अयन (कर्क एवं मकर की संक्रान्ति) विषुव (तुला ओर मेष की संक्रान्ति) व्यतीपात दिनक्षय चन्द्रग्रहण अथवा सूर्य ग्रहण के समय, द्वादशी तिथि को, श्रवण, धनिष्ठा ओर अनुराधा नक्षत्रों में वैशाख शुक्ल तृतीय (अक्षय तृतीया) कार्तिक शुक्ल नवमी (अक्षय नवमी) अगहन, पौष माघ एवं फाल्गुन इन चार मासों की कृष्णाष्टमी, माघ शुक्ल सप्तमी, माघ की माघा नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा, और प्रत्येक मासों की वह पूर्णिमा जो अपने मास नक्षत्र हो जैसे चित्र से युक्त चैत्र पूर्णिमा, विशाखा से युक्त वैशाख पूर्णिमा, ज्येष्ठा से युक्त ज्येष्ठ पूर्णिमा इन सवों में चन्द्रमा पूर्ण हो या अपूर्ण श्राद्ध करना ही चाहिए, द्वादशी तिथि की अनुराधा श्रवण, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपद । एकादशी तिथि की तीनों उत्तरा नक्षत्रों से योग अथवा जन्म नक्षत्र, वा श्रवण नक्षत्र से योग से सभी समय पितृगणों का श्राद्ध करने योग्य एवं श्रेष्ठ हैं । ये योग केवल श्राद्ध के लिए ही नहीं सभी पुण्यकर्मों के लिए उपयोगी हैं ये कल्यण की साधना के लिए उपयोगी एवं शुभ की अभिवृद्धि करने वाले हैं । इन अवसरों पर अपनी शक्ति के अनुसार पुण्य कर्मों को करना चाहिए । इन अवसरों पर किए गये पुण्य कर्म निश्चित रूप से आयु को बढाने वाले होते हैं ॥२०-२४॥

भावार्थ दीपिका

शुक्लपक्षे । अक्षय्यतृतीयायामिथ्यर्थः । हेमन्ते शिशिरे च मार्गशीर्षादिमासचतुष्टयेऽपि याश्चतस्रोऽष्टकास्तासु । संपूर्णचन्द्रा पौर्णमासी राका । न्यूनचन्द्रा सैवानुमतिः तथा मासर्क्षाणि तत्तन्मासनामप्रवृत्तिनिमित्तानि नक्षत्राणि युतानि यदा स्युस्तदा । तदुक्तं त्रिकाण्ड्याम् पुष्ययुक्ता पौर्णमासी पौषी मासे तु यत्र सा नाम्ना स पौषो माघाद्याश्चैवमेकादशापरे ॥' इति अनुराधा श्रवण उत्तराफाल्गुनी उत्तरापाढा उत्तराभाद्रपदा वा द्वादश्यां यदा स्यात् । आसूत्तरास्वेकादशी वा यदा स्यात्तदा च । जन्मर्क्षश्रोणयोगयुक् जन्मनक्षत्रस्य श्रवणस्य वा योगेन युक्तं दिनं यदा तदा । योगग्रहणं संबन्धबाहुल्यार्थम् । न केवलं श्राद्धस्यैवैते कालाः किंतु धर्ममात्रस्येत्याह- त एवं इति द्वाभ्याम् । तदेवायुपः अमोघं साफल्यमित्यर्थः ॥२०-२४॥

भाव प्रकाशिका

शुक्लपक्षे अर्थात् अक्षय तृतीया और अक्षय नवमी **हेमन्ते शिशिरे च** अर्थात् अगहन, पौष, माघ एवं फाल्गुन में होने वाली चार अष्टकाएँ । **राका** जिस पूर्णिमा को चन्द्रमा पूर्ण हो उसे राका कहते है । **अनुमाति** जिस पूर्णिमा को चन्द्रमा अपूर्ण हो उसे अनुमति कहते हैं । **मासार्क्षणि** अर्थात् विभिन्न मासों के नाम वाले नक्षत्र से युक्त पूर्णिमाएँ। त्रिकण्डी में कहा भी गया है । अर्थात् पुण्य मास ये युक्त पौष मास की पूर्णिमा के रहने पर तथा मघा आदि नामों से युक्त दूसरे ग्यारह श्राद्ध के दिन हैं । अनुराधा, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तरापाढा तथा उत्तराभाद्र पद से युक्त द्वादशी तिथि । इन नक्षत्रों से युक्त यदि एकादश हो तो भी जन्म नक्षत्र तथा श्रवण के योग से युक्त दिन जब हो उस समय सवन्ध की अधिकता बतलाने के लिए योग का ग्रहण किया गया है । ये सभी समय केवल श्राद्ध के ही लिए नहीं हैं अपितु सभी धर्मों के लिए उपयोगी हैं । यह **त एते० इत्यदि** दो श्लोकों से कहा गया है। वही जीवन की अमोघ सफलता है ॥२०-२४॥

एषु स्नानं जपो होमो व्रतं देवद्विजार्चनम् । पितृदेवनृभूतेभ्यो यद्दत्तं तद्ध्यनश्वरम् ॥२५॥

अन्वयः— एषु स्नानं, जप होमः, व्रतं देवद्वि जार्चनम्, पितृदेवनृभूतेभ्य यद् दत्तं तदनश्वरम् ॥२५॥

अनुवाद— इन अवसरों पर किया गया, स्नान, जप, होम, व्रत तथा देवों और ब्राह्मणों की पूजा एवं दिया गया दान ये सबके सब अक्षय होते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

संस्कारकालो जायाया अपत्यस्यात्मनस्तथा । प्रेतसंस्था मृताहश्च कर्मण्यभ्युदये नृप ॥२६॥

अन्वयः— नृप जायायः अपत्यस्य तथा आत्मनः संस्कारकालः प्रेत संस्था, मृताहः च तथा अभ्युदये कर्मणि ॥२६॥

अनुवाद— राजन् ! पत्नी के पुंसवान संस्कार काल में, पुत्र के जातकर्म आदि संस्कार काल में तथा अपने यज्ञ की दीक्षा आदि संस्कार काल में, मृत व्यक्ति दग्ध काल में मृताह (पिता आदि की तिथि के दिन) एवं अभ्युदय कर्म के अवसर पर भी दिया गया दान अक्षय होता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

संस्कारकाल इति । जायायाः पुंसवनादि । अपत्यस्य जातकर्मादि । आत्मनो यज्ञदीक्षादि । प्रेतस्य संस्था दहनादि । मृताहश्च सांवत्सरिकं यदा । अन्यस्मिन्नप्यभ्युदयार्थे कर्मणि श्रेयः कुर्यादित्यनुषङ्गः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

पत्नी के पुंसवान इत्यादि के समय, पुत्र के जातकर्मादि के समय, अपने यज्ञ की दीक्षा आदि के समय, मृत के जलाने के समय, एवं सांवत्सरिक श्राद्ध के समय इसी तरह दूसरे भी अभ्युदय कर्म करने के समय पुण्य कर्मों को करना चाहिए ॥२६॥

अथ देशान्प्रवक्ष्यामि धर्मादिश्रेयआवहान् । स वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं यत्र लभ्यते ॥२७॥

अन्वयः— अथ धर्मादि श्रेय आवहान् देशान् प्रवक्ष्यामि स वै पुण्यतमः देशः यत्र सत्पात्रः लभ्यते ॥२७॥

अनुवाद— नारदजी ने कहा कि अब मैं धार्मिक स्थानों को बतलाता हूँ, सर्वाधिक पुण्यवान् देश वही है जहाँ पर सत्पापात्र की उपलब्धि होती है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

यत्र यस्मिन्नेतच्चराचरमस्ति तस्य भगवतो बिम्बं रूपं सत्पात्रं यत्र लभ्यते स वै पुण्यतमो देशः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

जिनमें सम्पूर्ण चराचर स्थित है, उन परमात्मा का बिम्बरूप सत्पात्र की जहाँ उपलब्धि होती है, वह अत्यन्त पुण्यवान् देश हं ॥२७॥

बिम्बं भगवतो यत्र सर्वमेतच्चराचरम् । यत्र ह ब्राह्मणकुलं तपोविद्यादछयान्वितम् ॥२८॥

अन्वयः— यत्र सर्वमेतच्चराचरम् भगवतो बिम्बं, यत्र ह तयोर्विद्या दयान्वितम् ब्राह्मण कुलम् ॥२८॥

अनुवाद— जिनमें यह सम्पूर्ण चराचर स्थित है । उन श्रीभगवान् का बिम्बरूप तप, विद्या, तथा दान से युक्त ब्राह्मण का वंश जहाँ विद्यमान हैं, वहीं पुण्यतम देश है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

यत्र यत्र हरेरर्चा स देशः श्रेयसां पदम् । यत्र गङ्गादयो नद्यः पुराणेषु च विश्रुताः ॥२९॥
सरांसि पुष्करादीनि क्षेत्राण्यर्हाश्रितान्युत । कुरुक्षेत्रं गयशिरः प्रयागः पुलहाश्रमः ॥३०॥

नैमिषं फल्गुनं सेतुः प्रभासोऽथ कुशस्थली । वाराणसी मधुपुरी पम्पाबिन्दुसरस्तथा ॥३१॥
नारायणाश्रमो नन्दा सीतारामाश्रमादयः । सर्वे कुलाचला राजन्महेन्द्रमलयादयः ॥३२॥
एते पुण्यतमा देशा हरेरर्चाश्रिताश्च ये । एतद्देशान्निषेवेत श्रेयस्कामो ह्यभीक्ष्णशः ॥
धर्मो ह्यत्रेहितः पुंसां सहस्राधिफलोदयः ॥३३॥

अन्वयः— राजन् यत्र-यत्र हरेरर्चा सः देशः श्रेयसां पदम् यत्र पुराणेषु विश्रुता गङ्गादयोनद्यः पुष्करादीनि सरांसि, उतअर्हश्रितानि क्षेत्राणि, कुरुक्षेत्रं, गयशिरः, प्रयागः पुलहाश्रमः, नैमिषं, फाल्गुनं, सेतुः, प्रभासः अथ कुशस्थली, वाराणसी, मधुपुरी, पम्पा तथा विन्दुसरः नारायणाश्रमः नन्दा सीतारामाश्रमादयः, सर्वेकुलाचलाः महेन्द्रमलयालयः, एते पुण्यतमा देशाः हरेर्चाश्रिताः च ये, श्रेयस्कामः एतान् देशान् निषेवेत अभीक्ष्णशः, पुंसां हि अत्रेहितः धर्मः सहस्राधिफलोदयः ॥२९-३३॥

अनुवाद— जहाँ-जहाँ भगवान् की पूजा होती है तथा पुराणों में वर्णित गङ्गा आदि नदियाँ हो, वे सभी स्थान परम कल्यणकारी हैं । पुष्कर आदि सरोवर सिद्ध पुरुषों से सेवित, कुरुक्षेत्र, गया, प्रयाग, पुलहाश्रम (शालग्राम क्षेत्र) नैमिशारण्य, फाल्गुन क्षेत्र, सेतुबन्ध, प्रभास, द्वारका, काशी, मथुरा, पम्पासर, विन्दुसरोवर, वदरिकाश्रम, अलकनन्दा भगवान् श्रीसीतारामजी के आश्रम (अयोध्या चित्रकूट आदि) महेन्द्र और मलय आदि सभी कुल पर्वत और जहाँ-जहाँ भगवान् के अर्चावतार हैं वे सभी देश अत्यन्त पवित्र हैं । कल्याणकामी पुरुषों को इन देशों का वार-वार सेवन करना चाहिए। इन स्थानों पर जो पुण्यकर्म किए जाते हैं उनका हजार गुना फल प्राप्त होता है ॥२९-३३॥

भावार्थ दीपिका

अर्हैरुत्तमैराश्रितानि । सीताया रामस्य चाश्रम आदिर्येषाम् । द्वयो; पृथग्ग्रहणं वियोगकालाभिप्रायेण । अर्चाश्रिताश्च स्थिरप्रतिमाश्रिताः । पूर्वं तु शालग्रामशिलाद्यर्चनदेश उक्त इत्यपौनरुक्त्यम् । अत्र एषु देशेषु ईहितः कृतः । सहस्रगुणमधिकस्य फलस्योदयो यस्मात्स तथा ॥२९-३३॥

भाव प्रकाशिका

अर्हाश्रितानि अर्थात् उत्तम पुरुषों के द्वारा सेवित । **सीतारामाश्रमादयः** जहाँ पर सीताजी और रामजी के आश्रम हैं। । दोनों का अलग-अलग ग्रहण वियोग काल के अभिप्राय से किया गया है । **अर्चाश्रिताः** अर्थात् जहाँ पर स्थित प्रतिमाएँ हैं । इससे पहले शालग्राम शिला के पूजन के देश को कहा गया है । अतएव यहाँ पुनरुक्ति नहीं हैं इन स्थानों में किये गये पुण्य का हजार गुना फल होता है ॥२९-३३॥

पात्रं त्वत्र निरुक्तं वै कविभिः पात्रवित्तमैः । हरिरेवैक उर्वीश यन्मयं वै चराचरम् ॥३४॥

अन्वयः— हे उर्वीश ! पात्र वित्तमैः कविभिः तु अत्र एकं पात्रं निरुक्तम् हरि एव एकः यन्मयं वै चराचरम् ॥३४॥

अनुवाद— राजन् युधिष्ठिर पात्रों के अभिज्ञ विवेकी पुरुषों ने एकमात्र श्रीहरि को ही सत्पात्र वतलाया है। यह चराचर जगत् उनका ही स्वरूप है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

अथ पात्रमाह हरिरेव पात्रं निरुक्तं निर्णीतम् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

अब पात्र को वतलाते हैं श्रीहरि को ही सत्पात्र निर्णय किया गया है ॥३४॥

देवर्ष्यर्हत्सु वै सत्सु तत्र ब्रह्मात्मजादिषु । राजन्यदग्रपूजायां मतः पात्रतयाऽच्युतः ॥३५॥

अन्वयः— राजन् ! देवर्ष्यर्हत्सु सत्सु तत्र ब्रह्मात्मजादिषु यदग्र पूजयां अच्युतः मतः ॥३५॥

अनुवाद— राजन् ! देवता, ऋषि सिद्ध और सनकादिकों के रहने पर भी तुम्हारे इस राजसूय यज्ञ में अग्रपू के लिए भगवान् श्रीकृष्ण को ही पात्र समझा गया है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-देवेषु च ऋषिषु चार्हत्सु च तपोयोगादिसिद्धेषु ब्रह्मात्मजादिषु सनकादिष्वपि सत्सु तत्र त्वदीये राजसू यद्यस्मादच्युत एव पात्रतया संमतः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

सत्पात्र को ही बतलाते हैं देवता, ऋषि, तपस्या, योग आदि में सिद्ध ब्रह्माजी के पुत्रों सनकादियों के रह पर भी तुम्हारे इस राजसूय यज्ञ में इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण को अग्रपूजा का पात्र समझा गया है ॥३५॥

जीवराशिभिराकीर्ण आण्डकोशाङ्घ्रिपो महान् । तन्मूलत्वादच्युतेज्या सर्वजीवात्मतर्पणम् ॥३६

अन्वयः— जीव राशिभिः अकीर्णः महान् आण्डकोशाङ्घ्रिपः तन्मूलत्वात् अच्युतेज्या सर्वजीवात्म तर्पणम् ॥३६।

अनुवाद— असंख्य जीव समूह से भरे हुए इस ब्राह्मण्ड कोश रूप वृक्ष के भी मूल भगवान् अच्युत ह हैं, अतएव उनकी पूजा सभी जीवात्माओं के तृप्त करने वाली है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

संमतत्वे हेतुमाह-जीवराशिभिर्व्याप्तो ब्रह्माण्डकोश एव योऽङ्घ्रिपः सर्वजीवानामात्मनश्च तर्पणम् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के सत्पात्रत्व के हेतु को बतलाते हैं जीव समूह से व्याप्त ब्रह्माण्ड कोश रूप वृक्ष के मूल भगवान ही होने के कारण उनकी पूजा से सभी जीवों की तृप्ति हो जाती है ॥३६॥

पुराण्यनेन सृष्टानि नृतिर्यगृषिदेवताः । शेते जीवेन रूपेण पुरेषु पुरुषो ह्यसौ ॥३७।

अन्वयः— अनेन नृतिर्यगृषिदेवताः पुराणि सृष्टानि पुरेषु जीवेन रूपेण असौहि पुरुषः शेते ॥३७॥

अनुवाद— इन्होंने ही मनुष्य, तिर्यक् ऋषि एवं देवताओं के शरीरों की रचना की है । इन सभी शरीर में जीव रूप से परमात्मा ही निवास करते हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव पुरुपनामनिरुक्त्या द्रढयति-पुराणीति । नृतिर्यगादिरूपाणि पुराणि शरीराणि तेष्वन्तर्यामिरूपेण प्रत्यगंशेन च यतः शेतेऽतः पुरुप इति प्रसिद्धः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

पुरुप के नाम की निरुक्ति के द्वारा इसी अर्थ को सुदृढ बनाते हैं मनुष्य तिर्यक् आदि रूप जो शरीर है उन सबों में अन्तर्यामी रूप प्रत्यगंश के द्वारा चूकि परमात्मा शयन करते हैं इसीलिए वे पुरुष शब्द वाच्य हैं ॥३७।

तेष्वेषु भगवान् राजंस्तारतम्येन वर्तते । तस्मात्पात्रं हि पुरुषो यावानात्मा यथेयते ॥३८।

अन्वयः— राजन् तेपु एपु भगवान् तारतम्येन वर्तते, तस्मात् पात्रं हि पुरुषो यावानात्मा यथा इयते ॥३८॥

अनुवाद— उन सबों में भगवान् तपस्या योग आदि के न्यूनाधिक्य के कारण न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमा हैं, अतएव जितने भी जीव प्रतीत होते हैं वे पुरुष ही पात्र हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

तारतम्येन तिर्यगादिभ्य; पुरुपे यस्मादाधिक्येन वर्तते तस्मात्पुरुषः पात्रम् । तत्रापि यावानात्मा ज्ञानांशो यथा यथा ईयर तपआदियोगेन यत्र यत्र प्रतीयते तथा तथासौ पात्रमित्यर्थः । तथा च श्रुतिः- 'पुरुषत्वे चाविस्तरामात्मा' इत्यादि ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

चूंकि पशु पक्षियों आदि की भी अपेक्षा मनुष्य में अधिक ज्ञान रूप परमात्मा है, इसीलिए पुरुय ही पात्र है। उनमें भी जिसमें तप आदि के कारण जितना अधिक ज्ञान प्रतीत होता है, उसी के अनुसार यह पुरुय पात्र होता है श्रुति भी कहती है— **पुरुषत्वे चा विस्तरामात्मा** अर्थात् पुरुपत्वे में भी ज्ञान का अधिक विस्तार है ।।३८।।

दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणामवज्ञानात्मतां नृप । त्रेतादिषु हरेरर्चा क्रियायै कविभिः कृता ।।३९।।

अन्वयः— नृप तेषां नृणां मिथः अवज्ञानात्मतां दृष्ट्वा त्रेतादिषु कविभिः क्रियायै हरेरर्चा कृता ।।३९।।

अनुवाद— राजन् उन मनुष्यों में परस्पर में एक दूसरे को अपमान करते देखकर ऋषियों ने त्रेता आदि युगों में क्रिया की सिद्धि के लिए श्रीहरि की मूर्तियों की प्रतिष्ठा की ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि प्रतिमादौ हरेः किमिति पूजां कुर्वन्ति तत्राह-दृष्ट्वेति द्वाभ्याम् । मिथोऽवज्ञानमसन्मानस्तस्मिन्नात्मा बुद्धिर्येषां तेषां भावं दृष्ट्वा । क्रियायै पूजाद्यर्थम् ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि तो फिर लोग प्रतिमा आदि में क्यों पूजा करते हैं, इसका उत्तर दृष्ट्वा० इत्यादि दो श्लोकों से दिया गया है। पुरुषों में लोगों की अनादर बुद्धि को देखकर पूजा आदि के लिए ऋषियों ने प्रतिमा की प्रतिष्ठा की।।३९।।

ततोऽर्चायां हरिं केचित्संश्रद्धाय सपर्यया । उपासत उपास्तापि नार्थदा पुरुषद्विषाम् ।।४०।।

अन्वयः— ततः केचित् अर्चायाँ हरिं केचित् सश्रद्धाय सपर्यया उपासते पुरुषदिषाम् उपास्तापि नार्थदा ।।४०।।

अनुवाद— उसी समय से कुछ लोग श्रद्धा पूर्वक मूर्ति में ही श्रीहरि की उपासना करते हैं किन्तु जो लोग मनुष्य से द्वेष करते हैं इन लोगों को प्रतिमा की उपासना करने पर भी सिद्धि की प्राप्ति नहीं हो सकती है ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

हरिमुपासते । उपासिताप्यर्चा पुरुषद्वेषिणामर्थदा न भवति । पुरुषेषु द्वेषं हित्वाऽर्चित सती सापि मन्दाधिकारिणां पुरुषार्थप्रदा भवत्येवेत्यर्थः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

मूर्ति में हरि की उपासना करते हैं किन्तु जो लोग मनुष्य से द्वेष करते हैं, उन लोगों को उस उपासित प्रतिमा से सिद्धि नहीं मिलती है । मनुष्यों में द्वेष का परित्याग करके अर्चना करने पर मन्द अधिकारियों को वह मूर्ति भी सिद्धि प्रदान करती है ।।४०।।

पुरुपेष्वपि राजेन्द्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः । तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुम् ।।४१।।

अन्वयः— राजेन्द्र ! पुरुपेपु अपि सुपात्रं ब्राह्मणं विदु यतः तपसा, विद्ययातुष्ट्या हरेः तनुम् वेदं धत्ते ।।४१।।

अनुवाद— हे राजवर्य युधिष्ठिर ! मनुष्यों में ब्राह्मण को सुपात्र कहा गया है क्योंकि वह तपस्या, विद्या और सन्तोप के द्वारा श्रीहरि के शरीर वेद को धारण करता है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

पुरुपेष्वेव जात्या तपआदिभिश्च पुनर्विशेपान्तरमाह-पुरुषेष्वपीति । यो धत्ते तं सुपात्रं विदुः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

मनुष्यों में भी जाति तथा विद्या आदि के कारण दूसरी विशेषता को बतलाया गया है । जो ब्राह्मण वेद को धारण करता है वह सुपात्र है ।।४१।।

नन्वस्य ब्राह्मणा राजन्कृष्णस्य जगदात्मनः । पुनन्तः पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत् ।।४२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे सदाचारनिर्णये चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

अन्वयः— राजन् ननु अस्य जगदात्मनः कृष्णस्य ब्राह्मणा त्रिलोकीं महत् दैवतम् पादरजसा पुनन्तः ।।४२।।

अनुवाद— जो भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं उनके भी उपास्य ब्राह्मण हैं, क्योंकि ब्राह्मणों की चरण धूलि से त्रैलोक्य पवित्र होता है ।।४२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के सदाचार निर्णय नामक चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

तएदेव कैमुत्यन्यायेन द्रढयतिनन्वस्येति ।।४२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बात का ही कैमुत्य न्याय से समर्थन करते हैं ।।१४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के चौदहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्यख्या सम्पूर्ण हुई ।।१४।।

पन्द्रहवँ अध्याय

गृहस्थों के लिए मोक्ष धर्म का वर्णन

नारद उवाच

कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठा नृपापरे । स्वाध्यायेऽन्ये प्रवचने ये केचिज्ज्ञानयोगयोः ॥१॥

अन्वयः— हे नृप केचित् द्विजाः ज्ञाननिष्ठाः, केचित् तपोनिष्ठाः, अन्ये स्वाध्याय प्रवचने च केचित् ज्ञानयोगयोः ॥१॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! कुछ ब्राह्मणों की निष्ठा कर्म में होती है, कुछ की तपस्या में निष्ठा होती है, कुछ की स्वाध्याय एवं प्रवचन में निष्ठा होती है और कुछ ब्राह्मणों की निष्ठा ज्ञान तथा योग में होती हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततः पञ्चदशे सर्ववर्णाश्रमनिबन्धनम् । सारतः संग्रहेणार्थे वर्ण्यते मोक्षलक्षणम् । सर्वेषामपि मोक्षधर्माणां सारसंग्रहार्थमध्यायप्रारम्भः । तत्र श्राद्धगतान्विशेषानाह-कर्मनिष्ठा इति। स्वाध्यायादिषु परिनिष्ठिता इति शेषः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चत् पन्द्रहवें अध्याय में सभी वर्णों और आश्रमों से संबन्ध रखने वाले धर्मों के सरांश का संग्रह के द्वारा मोक्ष धर्म का वर्णन किया जा रहा है । समस्त मोक्ष धर्मों का सार संग्रह करने के ही लिए इस अध्याय को प्रारम्भ किया जा रहा है । उसमें श्राद्ध में होने वाली विशेषताओं को कर्मनिष्ठा इत्यादि श्लोक के द्वारा बतला रहे हैं । ब्राह्मण स्वाध्याय इत्यादि में ही निष्ठित होते हैं ॥१॥

ज्ञाननिष्ठाय देयानि कव्यान्यानन्त्यमिच्छता । दैवे च तदभावे स्यादितरेभ्यो यथार्हतः ॥२॥

अन्वयः— आनन्त्यमिच्छता दैवे ज्ञाननिष्ठाय कव्यानि देयनि तदभावे च यथार्हतः इतरेभ्यःस्यात् ॥२॥

अनुवाद— गृहस्थ पुरुष को चाहिए कि वह श्राद्ध अथवा देवपूजा के अवसर पर अपने कर्म का अक्षय फल प्राप्त करने के लिए ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मण को ही हव्य एवं कव्य का दान करे । यदि वैसा ब्राह्मण ना मिले तो योगी या प्रवचनकारी को यथायोग्य क्रमानुसार दे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

कव्यानि पितृनुद्दिश्य देयानि । दैवे च हव्यान्यपि तस्मै देयानि । यथार्हत इति सर्वत्र ज्ञानादितारतम्येन ॥२॥

भाव प्रकाशिका

पितरों के उद्देश्य से काव्य दे ओर दैव कृत्यों में हव्य भी उसी के दे । यथार्हतः कहने का अर्थ है कि ज्ञान के न्यूनाधिक भाव से दान करे ॥२॥

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा । भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि श्राद्धे कुर्यान्न विस्तरम् ॥३॥

अन्वयः— सुसमृद्ध अपि श्राद्धे दैवे द्वौ पितृकार्य त्रीन वा उभयत्र एकैकम् भोजयेत् विस्तरम् न कुर्यात् ॥३॥

अनुवाद— अत्यन्त समृद्ध पुरुष भी श्राद्ध में देव निमित्तक दो और पितरों के निमित्त तीन ब्राह्मणों को भोजन कराये अथवा देव निमित्तक एवं पितृनिमित्त्क एक-एक ही ब्राह्मण को भोजन कराये इससे अधिक विस्तार न करे ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

देशकालोचितश्रद्धाद्रव्यपात्रार्हणानि च । सम्यग्भवन्ति नैतानि विस्तरात्स्वजनार्पणात् ॥४॥

अन्वयः— विस्तरात् स्वजनार्पणात् देशकालोचित श्रद्धाद्रव्य पात्रार्हणानि एतानि सम्यग्न भवन्ति ॥४॥

अनुवाद— क्योंकि सगे सम्बन्धी आदि स्वजनों को देने से और विस्तार करने से देश कालोचित श्रद्धा, द्रव्य, पात्र और पूजन आदि ठीक से नहीं होते हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

ननु विस्तरः कुतः प्राप्तो येन निषिध्यते तत्राह-स्वजनानामर्पणात् । जामाता चेन्निमन्त्र्यते तत्पित्रादयः कथं वर्ज्या इत्येवं प्राप्ताद्विस्तरादित्यर्थः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि विस्तार कैसे हुआ कि उसका निषेध किया जा रहा है ? इस पर कहते हैं— **स्वजनानामर्पणात्** (स्वजनों को देने) यदि दामाद के निमन्त्रित करते हैं तो उसके पिता को कैसे नहीं निमन्त्रित किया जा सकत है? इस तरह से विस्तार की प्राप्ति होने के कारण ॥४॥

देशे काले च संप्राप्ते मुन्यन्नं हरिदैवतम् । श्रद्धया विधिवत्पात्रे न्यस्तं कामधुगक्षयम् ॥५॥

अन्वयः— देशे काले च सम्प्राप्ते मुन्यन्नं हरिदैवतम् श्रद्धया विधिवत् पात्रे न्यस्तं कामधुक् अक्षयम् ॥५॥

अनुवाद— देश और काल को प्राप्त होने पर श्रुति मुनियों के भोजन करने योग्य अन्न का श्रीहरि को भोग लगाकर सत्पात्र को श्रद्धा एवं विधि पूर्वक प्रदान करने पर कामनाओं को पूर्ण करने वाला और अक्षय होता है॥५॥

भावार्थ दीपिका

मुन्यन्नमारण्यं व्रीह्यादि । हरिदैवतं हरये निवेदितं सत् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

वन में उत्पन्न होने वाले निवार आदि को मुन्यन्न कहते हैं । हरि दैवत अर्थात् श्रीहरि के निवेदित किया हुआ॥५॥

देवर्षिपितृभूतेभ्य आत्मने स्वजनाय च । अन्नं संविभजन्पश्येत्सर्वं तत्पुरुषात्मकम् ॥६॥

अन्वयः— देवर्षि पितृभूतेभ्य आत्मने स्वजनाय च अन्नं संविभजन् सर्वं तत्पुरुषात्मकम् पश्येत् ॥६॥

अनुवाद— देवता, ऋषि, पितर, अन्य प्राणी, स्वजन और अपने आपको भी अन्न का विभाजन करते समय परमात्म स्वरूप ही देखना चाहिए ॥६॥

भावार्थ दीपिका

पुरुषात्मकमीश्वरस्वरूपम् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

पुरुषात्मकम् अर्थात् ईश्वर स्वरूप ॥६॥

न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतत्त्ववित् । मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया ॥७॥

अन्वयः— धर्मतत्त्ववित् श्राद्धे आमिषं न दद्यात् न च अद्यात् यथा मुन्यन्नैः परा प्रीतिः स्यातं पशुहिंसया ॥७॥

अनुवाद— धर्म के तत्त्व को जानने वाले पुरुष के चाहिए कि वह श्राद्ध में मांस अर्पित न करें और न स्वयं खाय पितरों को जितनी प्रसन्नता मुन्यन्न से होती है, उनती पशु की हिंसा से नहीं होती है ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम् । न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः ॥८॥

अन्वयः— सदधर्ममिच्छताम् नृणां एतादृशः परो धर्मोन यः भूतेषु मनोवाक्कायजस्य दण्डस्य न्यासः ॥८॥

अनुवाद— जो लोग सद्धर्म का पालन करना चाहते हैं ऐसे लोगों के लिए इससे बढ़कर कोई धर्म नहीं हैं कि किसी भी प्राणी को मन, वाणी और शरीर से कष्ट न दिया जाय ॥८॥

भावार्थ दीपिका

दण्डस्य न्यासो हिंसायास्त्यागो य एतादृशोऽन्यो धर्मो नास्ति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

हिंसा के परित्याग से बढ़कर कोई भी धर्म नहीं है ॥८॥

एके कर्ममयान्यज्ञान् ज्ञानिनो यज्ञवित्तमाः । आत्मसंयमनेऽनीहा जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥९॥

अन्वयः— एके यज्ञवित्तमा ज्ञानिनः कर्ममयान् यज्ञान् ज्ञानदीपिते आत्मसंयमने अनीहा जुह्वति ॥९॥

अनुवाद— एक प्रकार से यज्ञ तत्त्व के ज्ञाता ज्ञानी पुरुष ज्ञान के द्वारा प्रज्वलित आत्म संयम रूप अग्नि में कर्ममय यज्ञों का होम कर देते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अत ऐवोत्तमाधिकारिणो बाह्यानि कर्माणि त्यजन्तीत्याह-एक इति । अनीहा निष्कर्माः । ज्ञानदीपिते आत्मस्फूर्तिमत्यात्मसंयमने जुह्वति । मनो नियम्य तदन्तरायतया त्यजन्तीत्यर्थः । तदुक्तं सर्वज्ञसूक्तैः- 'प्रत्यक्स्फूर्तिरसस्फूर्तिस्तनुनिष्ठाविघातकम् । सँल्लक्ष्य संत्यजेत्कर्म त्यजन्विघ्नहतोऽन्यथा ।' इति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

अतएव उत्तम अधिकारी पुरुष बाह्य कर्मों का परित्याग कर देते हैं इस बात को **एके० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । अनीहा: कर्म रहित । ज्ञान से प्रज्वलित आत्मा स्फूर्ति का आत्म संयम में प्रेम कर देते हैं । मन का नियमन करके उसके विघ्न रूप से त्याग देते हैं । सर्वज्ञ सूक्तों में कहा भी गया है । प्रत्यक् की स्फूर्ति (प्रतीति) सत्फूर्ति नहीं है । वह शरीर में होने वाली निष्ठा का विघातक है । उसको देखकर कर्म का परित्याग कर देना चाहिए उसका त्याग नहीं करने वाला विघ्न से बाधित हो जाता है ॥९॥

द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति । एष माऽकरुणो हन्यादतज्ज्ञो ह्यसुतृप्ध्रुवम् ॥१०॥

अन्वयः— द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि विभ्यति एष अकरुणः हिः अतज्ज्ञः असुतृप् मा हन्यात् ॥१०॥

अनुवाद— द्रव्य यज्ञों से यजन करने वाले पुरुष से सभी प्राणी डर जाते हैं और सोचते हैं कि यह निर्दयी मूर्ख मुझको अवश्य मार डालेगा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

मा मामेष ध्रुवं हन्यादिति । कुतः, अकरुणः । तत्कुतः, असुतृप् प्राणतर्पकः । तत्किम्, अतज्ज्ञः आत्मतत्त्वानभिज्ञः । तथा च श्रुतिः— 'न तं विदाय य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव । नीहारेण प्रवृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ।' इति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यह निर्दयी मुझको अवश्य मार देगा क्योंकि यह अपने प्राणों का पोषण करने वाला है । क्योंकि यह आत्म तत्त्व का ज्ञाता नहीं है । श्रुति भी कहती है— **न तं विदाय......चरन्तीति** । अर्थात् जो इन द्रव्यज्ञों से यजन करने वाला है वह आत्म तत्त्व को नहीं जनता है । यह दूसरा अपलोगों का विघ्न हुआ । अपने प्राणों का पोषण करने वाले अज्ञानाच्छन्न है जल्प्य है वे उक्थ के अनुसार आचरण करने वाले है ॥१०॥

तस्माद्दैवोपपन्नेन मुन्यन्नेनापि धर्मवित् । संतुष्टोऽहरहः कुर्यान्नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ॥११॥

अन्वयः— तस्मात् धर्मवित् दैवोपपन्नेन मुन्यन्नेन अपि सन्तुष्टः अहरहः नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः कुर्यात् ॥११॥

अनुवाद— इसलिए धर्मज्ञ पुरुष के लिए यही उचित है कि वह प्रारब्धानुसार प्राप्त मुन्यन्न से ही सन्तुष्ट रहकर प्रतिदिन अपनी नित्यनैमित्तिक क्रियाओं को सम्पन्न करे ॥११॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमनुवर्तयति- तस्मादिति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

तस्मात् इत्यादि श्लोक के द्वारा प्रस्तुत का अनुर्वत करते हैं ॥११॥

विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमा छलः । अधर्मशाखाः पञ्चेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत्त्यजेत् ॥१२॥

अन्वयः— इमाः अधर्मशाखाः पञ्च, विधर्मः परधर्मः, आभासः, उपमा, छलः च धर्मज्ञः अधर्मवत् त्यजेत् ॥१२॥

अनुवाद— अधर्म की ये पाँच शाखएँ हैं, विधर्म, अधर्म, आभास, उपमा और छल । धर्मज्ञ व्यक्ति को चाहिए कि वह इन सबों का अधर्म के ही समान त्याग कर दे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अधर्मवत्साक्षान्निपिद्धवत् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अधर्मवत् अर्थात् साक्षात् निषिद्ध के ही समान ॥१२॥

धर्मबाधो विधर्मः स्यात्परधर्मोऽन्यचोदितः । उपधर्मस्तु पाखण्डो दम्भो वा शब्दभृच्छलः ॥१३॥

अन्वयः— धर्मबाध विधर्मस्यात्, अन्य चोदितः परधर्मः, पाखण्डो दम्भो वा उपधर्मः शब्दभृच्छलः ॥१३॥

अनुवाद— जिस कार्य को धर्म की बुद्धि से करने पर भी अपने धर्म में बाधा पड़े उसे विधर्म कहते हैं, किसी अन्य के द्वारा अन्य के लिए किया गया उपदेश परधर्म है । पाखण्ड या दम्भ का नाम उपधर्म है उसे ही उपमा भी कहते है । शास्त्र के वाक्यों का प्रकारान्तर से अर्थ कर देना छल है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

क्रममनादृत्य पञ्चापि व्याचष्टे । धर्मबाधो धर्मबुद्यधापि यस्मिन् । क्रियमाणे स्वधर्मबाधः । अन्यस्य चोदितोऽन्यस्य परधर्मः । उपमेति व्याचष्टे उपधर्मस्त्विति । शब्दस्य भित् भेदोऽन्यथाव्याख्यानं यस्मिन् । यथा दशावरान्भोजयेदित्युक्ते दशम्भोवरानिति शब्दभृदिति पाठे धर्मशब्दमात्रं बिभर्तीति तथा । यथ गां दद्यादित्युक्ते मरिष्यन्त्या गोर्दानम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

क्रम का अनादर करके पाञ्चों की व्याख्या करते हैं । धर्म की बुद्धि से भी जिसको करने पर अपने धर्म का बाध होता है, उस धर्म को विधर्म कहते हैं, दूसरे के लिए विहित धर्म को परधर्म कहते हैं । उपधर्म को ही उपमा कहते हैं । शास्त्र के किसी वाक्य का दूसरे प्रकार से अर्थ करना ही छल है । जैसे— दशवरान्भजयेत् इस कथन का कोई यह अर्थ करे कि दश जो छोटे-छोटे हों उन सबों को भोजन कराये । अथवा **'गांदद्यात्'** इस तरह से कहने पर जो मरने वाली गौ हो उसका गोदान करना छल है ॥१३॥

यस्त्विच्छया कृतः पुम्भिराभासो ह्याश्रमात्पृथक् । स्वभावविहितो धर्मः कस्य नेष्टः प्रशान्तये ॥१४॥

अन्वयः— पुम्भिः यस्तु इच्छया आश्रमात् पृथक् कृतः आभासः । स्वभावविहितः धर्मः कस्य प्रशान्तेय इष्टः न॥१४॥

अनुवाद— मनुष्य अपने आश्रम के विपरीत अपनी इच्छा के अनुसार जिसको करता है, वह आभास है। अपने-अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुसार जो धर्म है उससे किसका कल्याण नहीं होता है ? वे सबों को शान्ति प्रदान करते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

स्वधर्मानुष्ठानानन्तरं धर्मभूयस्त्वार्थमपि परधर्मो नानुष्ठेयोऽनुपयोगादित्याह स्वभावविहित इति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अपने धर्म का अनुष्ठान करने के पश्चात् अधिक धर्म की प्राप्ति के लिए परधर्म का अनुष्ठान नहीं करना चाहिए क्योंकि वैसा करना अनुपयोगी है । इसी बात का प्रतिपादन **स्वाभावविहितः इत्यादि** के द्वारा किया गया है ॥१४॥

धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाऽधनो धनम् । अनीहानीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा ॥१५॥

अन्वयः— निर्धनः अपि धर्मार्थं वा यात्रार्थं वा धनम् न इहेत। अनीहमानस्य अनीहा महाहेः इव वृत्तिदा ॥१५॥

अनुवाद— निर्धन मनुष्य भी धर्म के लिए अथवा शरीर निर्वाह के लिए किसी प्रकार की चेष्टा न करे । जिस तरह बिना भी चेष्टा किए अजगर की वृत्ति पलती ही है उसी तरह, निवृत्ति परायण पुरुष की निवृत्ति उसकी जीविका का निर्वाह कर देती है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

किंच अधनो धर्मार्थं धनं नेहेत नापेक्षेत, धनार्थं न व्याप्रियेति वा । दैवोपपन्नेनैव स्वधर्म सिद्धेरुक्तत्वात् । यात्रार्थमपि नेहेतेत्येतत्प्रपञ्चयति-अनीहेति सार्धैः षड्भिः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

निर्धन पुरुष को भी चाहिए कि वह धर्म करने के लिए अथवा अपने शरीर के निर्वाह के लिए धन प्राप्त करने की चेष्टा न करे। क्योंकि प्रारब्धवशात् प्राप्त वस्तु से भी अपने धर्म की सिद्धि हो ही जाती है। शरीर निर्वाह के लिए भी चेष्टा न करे। इसी अर्थ का विस्तार **अनीहा० इत्यादि** साढे छ: श्लोकों से किया गया है॥१५॥

संतुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत्सुखम्। कुतस्तत्कामलोभेन धावतोऽर्थेहया दिश; ॥१६॥

अन्वयः— यत्सुखम् आत्मारामस्य संस्तुष्टस्य निरीहस्य तत् कामलोभेन अर्थेहयाशि:धावतः कुतः ॥१६॥

अनुवाद— जो सुख अपनी आत्मा में रमण करने वाले निरीह संतोषी पुरुष को प्राप्त होता है, वह सुख कामना और धन के लोभ में दशों दिशाओं में दौड़ने वाले को कैसे प्राप्त हो सकता है ?॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

सदा संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः। शर्कराकण्टकादिभ्यो यथोपानत्पदः शिवम् ॥१७॥

अन्वयः— शर्कराकण्टकादिभ्यः उपानत्पदः शिवम् यथा सदा सन्तुष्ट मनसः सर्वाः दिशः सुखमयाः ॥१७॥

अनुवाद— जिसने पैर में जूता पहन लिया है उसको कङ्कड और कण्टों से कोई डर नहीं रहता है उसी तरह सर्वदा सन्तुष्ट रहने वाले व्यक्ति के लिए सारी दिशाएँ सुखमय ही होती है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

उपानहौ पादयोर्यस्य स उपानत्पात्तस्य ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

जिसके दोनों पैरों में जूता है, उसको कङ्कड और काँटों से डर नहीं होता है ॥१७॥

संतुष्टः केन वा राजन्न वर्तेतापि वारिणा। औपस्थ्यजैह्वयकार्पण्याद्गृहपालायते जनः ॥१८॥

अन्वयः— राजन् केन वा न संतुष्टः जनः वारिणा अपि न वर्तेत औपस्थ्य जैह्वयकार्पण्यात् गृहपालायते ॥१८॥

अनुवाद— राजन् न जाने क्यों मनुष्य संतुष्ट रहकर जलमात्र से ही अपना काम नहीं चला लेता है। वह जाननेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय के अधीन रहकर बेचारा घर की चौकसी करने वाले कुत्ते के समान हो जाता है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

गृहपालः श्वा तद्वदाचरति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

कुत्ते के समान आचरण करता है ॥१८॥

असंतुष्टस्य विप्रस्य तेजो विद्या तपो यशः। स्रवन्तीन्द्रियलौल्येन ज्ञानं चैवावकीर्यते ॥१९॥

अन्वयः— असंतुष्टस्य विप्रस्य तेजः, विद्या, तपः, यशः, इन्द्रियलौल्येन स्रवन्ति ज्ञानं चैव अवकीर्यते ॥१९॥

अनुवाद— जो ब्राह्मण संतुष्ट नहीं रहता है उसके तेज, विद्या, तपस्या तथा यश ये सभी इन्द्रियों की लोलुपता के कारण विनष्ट हो जाते हैं और उसका विवेक भी विनष्ट हो जाता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

कामस्यान्तं च क्षुत्तृड्भ्यां क्रोधस्यफलोदयात् । जनो याति न लोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशो भुवः ॥२०॥

अन्वयः— क्षत्तृड्भ्यां कामस्यान्तं क्रोधस्यैतत् फलोदयात् जनः दिशः जित्वा भुक्त्वा च लोभस्य अन्तं न याति ॥२०॥

अनुवाद— भूख और प्यास के मिट जाने पर भोजन की कामना समाप्त हो जाती है; किन्तु सम्पूर्ण पृथिवी को जीतकर और उसका भोग-भोगकर भी लोभ का अन्त नहीं होता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

क्षुधा तृषा च जनः कामस्यान्तं याति, अन्नोदकातिरिक्तकामान्तराभावात् । क्रोधस्य वाऽन्तं याति । एतस्य क्रोधस्य यत्फलं हिंसा तस्योदयान्निष्पत्तेः । दिशो जित्वाऽपि भुवो भुक्त्वाऽपि लोभस्य नैवान्तं यातीत्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

भूख और प्यास के मिट जाने पर भोजन की कामना समाप्त हो जाती है, क्योंकि भूख और प्यास के समय केवल अन्न जल की ही कामना रहती है । उसका क्रोध भी समाप्त हो जाता है मनुष्य के क्रोध के फल हिंसा आदि भी समाप्त हो जाते हैं । किन्तु सारी दिशाओं को जीत लेने पर भी तथा सम्पूर्ण पृथिवी का भोग भोग लेने पर लोभ का अन्त नहीं होता है ॥२०॥

पण्डिता बहवो राजन्बहुज्ञाः संशयच्छिदः । सदसस्पतयोऽप्येके असंतोषात्पतन्त्यधः ॥२१॥

अन्वयः— राजन् बहवः बहुज्ञाः संशयच्छिदः एके सदसस्पतयः असन्तोषात् अधः पतन्ति ॥२१॥

अनुवाद— राजन् युधिष्ठिर ! अनेक विषयों के ज्ञाता तथा सभी प्रकार के संशयों को दूर करने वाले तथा बड़ी-वड़ी सभाओं के सभापति भी केवल असन्तोष के कारण ही पतित हो जाते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

असंकल्पाज्ञयेत्कामं क्रोधं कामविवर्जनात् । अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात् ॥२२॥

अन्वयः— असंकल्पात् कामं जयेत् काम विसर्जनात् क्रोधं अर्थानर्थेक्षया लोभं तत्त्वावमर्शनात् भयं च जयेत् ॥२२॥

अनुवाद— सङ्कल्प के परित्याग से काम को पराजित करे काम के परित्याग से क्रोध को, जिसे अर्थ शब्द से अभिहित किया जाता है उसमें अनर्थ की दृष्टि करने से लोभ को जीते और तत्त्वों के चिन्तन के द्वारा भय का परित्याग करें ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं कामादिजयोपायानाह-असंकल्पादिति चतुर्भिः। जयेदिति यथापेक्षमन्वेति । अर्थेऽनर्थदर्शनेन । तत्त्वावमर्शनादद्वैतानुसंधानेन ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

असङ्कल्पात् इत्यादि चार श्लोकों के द्वारा काम इत्यादि को अपने वश में करने के उपायों को बतलाते हैं । **जयेत्** इस पद का आवश्यकता के अनुसार अन्वय कर लेना चाहिए । **अर्थेऽनर्थेक्षया** का अर्थ है जिसे अर्थ शब्द से अभिहित किया जाता है उसमें अनर्थ दृष्टि करे । **तत्त्वावमर्शनात्** अर्थात् अद्वैत के अनुसंन्धान के द्वारा॥२२॥

आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महदुपासया । योगान्तरा यान्मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया ॥२३॥

अन्वयः— आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ, महदुपासया दम्भं, मौनेन हिंसां अनीहया कायाद जयेदिति शेषः ॥२३॥

अनुवाद— आत्मा और अनात्मा के विवेक के द्वारा शोक तथा मोह को जीते महापुरुषों की सेवा के द्वारा दम्भ को जीते, मौन के द्वारा योग में होने वाले विघ्नों को जीते तथा शरीर आदि को निश्चेष्ट करके हिंसा को जीते॥२३॥

भावार्थ दीपिका

आन्वीक्षिक्या आत्मानात्मविवेकेन । महतां सात्त्विकानां सेवया । योगस्यान्तरायान् लोकवार्तादीन् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

आत्मा एवं अनात्मा का विवेक के द्वारा यह **आन्वीक्षिक्या** का अर्थ है । **महदुपासया** का अर्थ है महापुरुषों की सेवा के द्वारा **योगस्यान्तरायान्** का अर्थ है लौकिक वार्ताओं को ।।२३।।

कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात्समाधिना । आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्त्वनिषेवया ।।२४।।

अन्वयः— भूतजं दु;खं दयया, दैवं समाधिना, आत्मजं योगवीर्येण निद्रां च सत्त्वनिषेवया जह्यात् ।।२४।।

अनुवाद— आधिभौतिक दु:ख को दया के द्वारा आधिदैविक दु:ख को समाधि के द्वारा आध्यात्मिक दु:ख को प्राणायाम आदि योग के प्रभाव से तथा निद्रा को सात्त्विक आहार आदि के द्वारा दूर करे ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

येभ्यो भूतेभ्यो भयं जायेत तेष्वेव कृपया हिताचरणेन । दैवं देवोपसर्गनिमित्तं वृथा मनःपीडादि । तदुक्तं याज्ञवल्क्येन- 'विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः' इति। आत्मजं देहजम्। योगवीर्येण प्राणायामादिबलेन। सत्त्वनिषेवया सात्त्विकाहारादिना।।२४।।

भाव प्रकाशिका

जिन जीवों से भय उत्पन्न हो, उन्हीं जीवों पर कृपा करके उनका कल्याण करने के द्वारा उस दु:ख को दूर करे, देवताओं के कोप के कारण होने वाले अधिदैविक दु:ख (मन की पीड़ा इत्यादि) संवेदेन की समाधि के द्वारा दूर करे । महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा भी है विमना विफलारम्भ: संसीदत्यनिमित्त: । अर्थात् दैवी कोप के कारण मनुष्य उदास हो जाता है, उसके सारे कार्य व्यर्थ हो जाते है । और वह बिना किसी कारण के ही कष्ट का अनुभव करता है । और आध्यात्मिक अर्थात् शरीर आदि में होने वाले कष्ट को प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाओं के द्वारा दूर करना चाहिए । निद्रा आदि दोष को दूर करने के लिए सात्त्विक आहार का सेवन करना चाहिए ।।२४।।

रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च । एतत्सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत् ।।२५।।

अन्वयः— रजः तमः च सत्त्वेन, सत्त्वं च उपशमेन एतत् सर्वं च गुरौ भक्त्या पुरुषः अञ्जसा हि जायेत् ।।२५।।

अनुवाद— रजोगुण एवं तमोगुण को सत्त्वगुण के द्वारा जीतना चाहिए, सत्त्वगुण को उपरति के द्वारा जीतना चाहिए और इन सबों को अपने गुरुजनों की सेवा के द्वारा पुरुष को अनायास को ही जीत लेना चाहिए ।।२५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२५।।

यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ । मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत् ।।२६।।

अन्वयः— ज्ञानदीपप्रदे साक्षात् भगवति यस्य मर्त्यइति असद् धीः तस्य सर्व श्रुतं कुञ्जरशौचवत् ।।२६।।

अनुवाद— हृदय में ज्ञान रूपी प्रदीप को प्रकाशित करने वाले गुरु में जिसकी मनुष्यत्व विषयिणी दुर्बुद्धि होती है उसका सम्पूर्ण शास्त्र श्रवण जन्य ज्ञान हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

ननु कथं गुरौ भक्त्या सर्वस्य जयः स्यात्तस्यापि मनुष्यत्वेन तदवस्थत्वात्तत्राह-यस्येति । मर्त्यासद्धीर्मनुष्य इति दुर्बुद्धिः। तस्य शास्त्रश्रवणं कुञ्जरस्नानवद्व्यर्थम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहें कि गुरु की भक्ति करने से सबों का जय कैसे हो सकता है ? क्योंकि गुरु भी तो मनुष्य

ही हैं, अतएव वे भी सामान्य मनुष्यों के ही समान होंगे । इस पर नारदजी कहते हैं, गुरु तो भगवान् के ही रूप हैं । उनमें मनुष्य की बुद्धि तो दुर्बुद्धि ही कर सकता है अतएव उसका सम्पूर्ण शास्त्र श्रवण जन्य ज्ञान हाथी के स्नान के समान व्यर्थ ही है ।।२६।।

एष वै भगवान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः । योगेश्वरैर्विमृग्याङ्घ्रिर्लोको वै मन्यते नरम् ।।२७।।

अन्वयः— योगेश्वरैः विमृग्याङ्घ्रिः प्रधानपुरुषेश्वरः एष; साक्षात् भगवान् लोकः नरम् मन्यते ।।२७।।

अनुवाद— बड़े-बड़े योगेश्वर जिनके चरण कमलों का अनुसन्धान करते है जो प्रकृति तथा पुरुष के स्वामी हैं ऐसे साक्षात् भगवान् ही गुरुदेव के रूप में प्रकट होते हैं । संसारी लोग भ्रम के कारण इनको मनुष्य मानते हैं ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

ननु गुरोरपि पुत्रादयस्तं नरमेव मन्यन्तेऽत आह-एष गुरुः साक्षाद्भगवानेव भवेत् । लोकस्य नरोऽसाविति बुद्धिर्भ्रान्तिरित्यर्थ; यद्वा नहि तत्पुत्रादेर्मनुष्यबुद्ध्यद्धा प्रतीयमानोऽपि गुरुर्भगवान्न भवेत् । यथैष श्रीकृष्ण इत्यर्थः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि गुरु के पुत्र आदि भी उनको मनुष्य ही मानते हैं । इस पर नारदजी ने कहा कि जैसे ये भगवान् श्रीकृष्ण हैं ये जगद्गुरु हैं किन्तु ये साक्षात् भगवान् है । सांसारिक मनुष्य भ्रम के कारण इनको मनुष्य मानते हैं। अथवा उनके पुत्रों आदि की मनुष्य बुद्धि के द्वारा गुरु की ही प्रतीति होते हैं । वे भगवान् नहीं प्रतीत होते है जैसे ये भगवान् श्रीकृष्ण हैं ।।२७।।

षड्वर्गसंयमैकान्ताः सर्वा नियमचोदनाः । तदन्ता यदि नो योगानावहेयुः श्रमावहाः ।।२८।।

अन्वयः— सर्वाः नियमचोदनाः षड्वर्गसंयमैकान्ताः तदन्ता यदि नो योगान् आवहेयुः तर्हि श्रमावहाः ।।२८।।

अनुवाद— शास्त्रों में जितने भी नियम सम्बन्धी आदेश बतलाये गये हैं उन सबों का तात्पर्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन छह शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेने में है अथवा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और छठे मन को वश में कर लेने में है । ऐसा होने पर यदि उन नियमों के द्वारा श्रीभगवान् के ध्यान और चिन्तन इत्यादि की प्राप्ति नहीं होती है तो उन नियमों का पालन करना केवल श्रम प्रद ही है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

एवं सर्वैरुपायैः कामादिवेगं जित्वा नियतेन्द्रियो भूत्वा ध्यानपरो भवेत् । अन्यथा तं प्रति सर्वशास्त्रवैफल्यं स्यादित्याह-षड्वर्गेति । सर्वापि नियमचोदना इष्टापूर्तादिविधयः षडिन्द्रियवर्गस्य यः संयमस्तस्मिन्नेवैकस्मिन्नन्तो यासाम् । तदेकपरा इत्यर्थः। न च तावतापि चरितार्था इत्याह- तदन्ताः सत्योऽपि यदि योगान्धारणाध्यानसमाधीन्नो आवहेयुर्न साधयेयुस्तर्हि केवलं श्रमावहा एवेत्यर्थः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से सभी साधनों के द्वारा वशीकृतेन्द्रिय होकर श्रीभगवान् का ध्यान करना चाहिए । यदि कोई श्रीभगवान् का चिन्तन नहीं करता है तो उसके लिए समस्त शास्त्रीय नियमों का पालन व्यर्थ ही है । इसी बात को **षडवर्ग० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । इष्टापूर्त (यागादि का अनुष्ठान तथा कूपादि का निर्माण) सम्बन्धी सभी नियमों का तत्पर्य छहो इन्द्रियों के वशीकृत करने में ही है । वे सबके सब इन्द्रियों को अपने वश में करने का उपदेश देते हैं । किन्तु वे इतने मात्र में चरितार्थ नहीं हो जाते हैं, इन्द्रियों को वशीकृत करके भी धारणा ध्यान और समाधि का अनुष्ठान कोई नहीं करता है तो भी वे सारे नियमों के पालन श्रमप्रद ही हैं ।।२८।।

यथा वार्तादयो ह्यर्था योगस्यार्थं न बिभ्रति । अनर्थाय भवेयुस्ते पूर्वमिष्टं तथाऽसतः ॥२९॥

अन्वयः— यथा वार्तादयो हि अर्थाः योगस्यार्थं न विभ्रति तथा असतः पूर्वम् इष्टम् अनर्थाय भवेयुः ॥२९॥

अनुवाद— जिस तरह खेती व्यापार आदि और उनके फल भगवत् प्राप्ति कराने वाले नहीं होते हैं, उसी तरह दुष्ट पुरुष के द्वारा किए गये सभी इष्ट (यागादि का अनुष्ठान) तथा पूर्त (कूपादि के निर्माण) आदि सभी श्रौत स्मार्त कर्म कल्याणकारी न होकर विपरीत ही फल देते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव दृष्टान्तेनाह यथा वार्तादयः कृष्यादयोऽर्थात्स्वफलानि च योगस्यार्थं मोक्षं न साधयन्ति प्रत्युतानर्थाय संसारायैव। असतो बहिर्मुखस्येष्टापूर्ताद्यपि तथा ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का प्रतिपादन दृष्टान्तोपन्यास द्वारा कहते हैं । जैसी कृषि आदि से प्राप्त होने वाले फल योग के फल मोक्ष की प्राप्ति कराने वाले नहीं होते हैं, बल्कि वे संसारी ही बनाये रखने वाले होते हैं । उसी तरह से जिस मनुष्य की इन्द्रियाँ बहिर्मुख हैं, उन मनुष्यों के द्वारा किए गये समस्त श्रौत एवं स्मार्त कर्म कल्याण प्रद न होकर अनर्थकारी ही हो जाते हैं ॥२९॥

यश्चित्तविजये यत्तः स्यान्निःसङ्गोऽपरिग्रहः । एको विविक्तशरणो भिक्षुर्भिक्षामिताशनः ॥३०॥

अन्वयः— यश्चित्तविजये यत्तः निःसङ्गः अपरिग्रहः एकः विविक्तशरणः भिक्षुः भिक्षामिताशनः स्यात् ॥३०॥

अनुवाद— जो मनुष्य अपने मन को वश में करना चाहे उसे चाहिए कि वह आसक्ति का परित्याग करे, किसी से दान न ले, अकेले और एकान्त में रहे । वह संन्यास ग्रहण करके भिक्षा का थोड़ा सा अन्न भोजन करे॥३०॥

भावार्थ दीपिका

एवं योगं युञ्जतोऽपि यस्य कुटुम्बादिसङ्गेन चित्तं विक्षिप्येत तस्य कृत्यमाह-यश्चित्तस्य विजये यत्त उद्युक्तः स भिक्षुः स्यात् संन्यसेत् । तथा च स्मृतिः— 'द्वन्द्वाहतस्य गार्हस्थ्यं ध्यानभङ्गादि कारणम् । लक्षयित्वा गृही स्पष्टं संन्यसेदविचारयन्।' इति । भिक्षया प्राप्तं मितमशनं यस्य सः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से योग करने वाले व्यक्ति का मन परिवार आदि में आसक्त होने के कारण यदि चञ्चल हो जाय तो उसके द्वारा किए जाने योग्य कर्मों को इस श्लोक में नारदजी बतलाते हैं । जो मनुष्य अपने मन को वश में करने का प्रयास करता है उसे चाहिए कि वह संन्यासी हो जाय । स्मृति भी कहती है— सांसारिक सुख-दुःख अदि से पीड़ित व्यक्ति के लिए गार्हस्थ्य उसके ध्यान आदि को भङ्ग कर देते हैं । इन सारी बातों को देखकर गृहस्थ को चाहिए कि वह बिना सोचे-बिचारे संन्यास ग्रहण कर ले । भिक्षा से प्राप्त थोड़ा सा भोजन करे ॥३०॥

देशे शुचौ समे राजन्संस्थाप्यासनमात्मनः । स्थिरं समं सुखं तस्मिन्नासीतर्ज्वङ्ग ओमिति ॥३१॥

अन्वयः— राजन् ! शुचौ समे देशे आसनः संस्थाप्य तस्मिन् स्थिरं समं सुखं ऋज्वङ्ग आसीत ओमित्युच्चारयनिति शेषः ॥३१॥

अनुवाद— राजन् ! युधिष्ठिर उस योगाभ्यासी को चाहिए कि पवित्र और समतल स्थान पर अपना आसन बिछा कर स्थिर भाव से समान और सुखप्रद आसन से अपने शरीर को सीधा रखकर बैठे और ओम् का जप करें ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

ऋजु सममङ्गं यस्य सः सुखं यथा भवत्येवमासीत। ओमित्युच्चारयन्निति शेषः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

अपने शरीर के अङ्गों को सीधा रखते हुए जिस तरह से सुख मिले वैसे बैठे और ओम् का जप करता रहे ।।३१।।

प्राणापानौ संनिरुन्ध्यात्पूरककुम्भकरेचकैः । यावन्मनस्त्यजेत्कामान्स्वनासाग्रनिरीक्षणः ।।३२।।

अन्वयः— पूरक कुम्भकरेचकैः प्राणापानौ सन्निरुधयात् यावत् मनः कामान् त्यजेत् स्वनासाग्रनिरीक्षणः ।।३२।।

अनुवाद— पूरक, कुम्भक और रेचक के द्वारा प्राण एवं अपान की गति को रोके, और जब तक मन सङ्कल्प विकल्प को न त्यग दे तब तक अपनी नासिका के अग्रभाग को देखता रहे ।।३२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३२।।

यतो यतो निःसरति मनः कामहतं भ्रमत् । ततस्तत उपाहृत्य हृदि रुन्ध्याच्छनैर्बुधः ।।३३।।

अन्वयः— कामहतं भ्रमत् मनः यतः यतः निस्सरति बुधः ततः ततः उपाहृत्य शनैः हृदि रुन्ध्यात् ।।३३।।

अनुवाद— कामना के अधीन होकर मन इधर-उधर भ्रमण करता हुआ जहाँ-जहाँ जाय विद्वान् पुरुष को चाहिए कि वह उसको वहाँ-वहाँ से लौटा लाकर धीरे-धीरे हृदय में रोके ।।३३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३३।।

एवमभ्यसतश्चित्तं कालेनाल्पीयसा यतेः । अनिशं तस्य निर्वाणं यात्यनिन्धनवह्निवत् ।।३४।।

अन्वयः— एवम् अनिशं अभ्यस्तः तस्य यतेः चित्तं अल्पीयसा कालेन अनिन्धन बह्निवत् निर्वाणं याति ।।३४।।

अनुवाद— इस प्रकार से निरन्तर अभ्यास करने वाले उस संन्यासी का चित्त थोड़े ही समय में उसी तरह शान्त हो जाता है जिस तरह इन्धन रहित अग्नि अपने आप शान्त हो जाती है ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

एवमनिशमभ्यस्यतस्तस्य यतेश्चित्तं निर्वाणं शान्तिं याति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से निरन्तर अभ्यास करने वाले यति का चित्त शीघ्र ही शान्त हो जाता है ।।३४।।

कमादिभिरनाविद्धं प्रशान्ताखिलवृत्ति यत् । चित्तं ब्रह्मसुखस्पृष्टं नैवोत्तिष्ठेत कर्हिचित् ।।३५।।

अन्वयः— कामादिभिरनाविद्धं प्रशान्ताखिलवृत्ति यत् चित्तं ब्रह्मसुखं स्पृष्टं कर्हिचित् नैव उत्तेण्ठेत् ।।३५।।

अनुवाद— कामानाओं के संस्पर्श से रहित मन की जब सारी वृत्तियाँ विल्कुल शान्त हो जाती हैं तब वह मन ब्रह्मानन्द का संस्पर्श कर लेता है और पुनः वह कभी भी नहीं उठता है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

नच पुनर्विक्षिप्येतेत्याह-कामादिभिरक्षुभितं यच्चितं तन्नोत्तिष्ठेत् । यतः-प्रशान्ता अखिला वृत्तयो यस्य । कुतः । ब्रह्मसुखेन स्पृष्टम् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

मन के शान्त हो जाने पर वह पुनः कभी भी कामनाओं से क्षुब्ध नहीं होता है, इस प्रकार का मन कभी भी नहीं उठता है क्योंकि उसकी सारी वृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं तथा उसका ब्रह्मसुख से संस्पर्श हो जाता है।।३५।।

यः प्रव्रज्य गृहात्पूर्वं त्रिवर्गवपनात्पुनः । यदि सेवेत तान्भिक्षुः स वै वान्ताश्यपत्रपः ॥३६॥

अन्वयः— यः पूर्वं गृहात् प्रव्रज्य त्रिवर्गविपनात् पुनः यदि तान् सेवेत स वै भिक्षुः वान्ताशी अपत्रपः ॥३६॥

अनुवाद— जो मनुष्य पहले घर से संन्यास लेकर जहाँ त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) उत्पन्न होते हैं उस गृहस्थाश्रम का सेवन करता है वह संन्यासी वमन को खाने वाला कुत्ता है, और निर्लज्ज है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

यस्तु प्रव्रज्यां कृत्वापि भोगमपि भोगमभिलिप्सुः स्यात्तं निन्दति-य इति । त्रयाणां धर्मादीनां वर्ग आ समन्तादुप्यते यस्मिंस्तस्माद्गृहात् तान्धर्मादीन् । वान्ताशी छर्दितभोजी निर्लज्जश्च ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

जो मनुष्य संन्यास ग्रहण करके भी भोगों को प्राप्त करने की इच्छा करता है उसकी निन्दा करते हुए नारदजी कहते हैं कि धर्म, अर्थ और काम की उत्पत्ति स्थान गृह से संन्यास लेकर पुनः उन धर्मादि का सेवन करता है वह संन्यासी वमन को खाने वाला कुत्ता है । तथा निलज्ज भी है ॥३६॥

यैः स्वदेहः स्मृतो नात्मा मर्त्यो विट्कृमिभस्मसात् । त एनमात्मसात्कृत्वा श्लाघयन्ति ह्यसत्तमाः॥३७॥

अन्वयः— स्वदेह मर्त्यः विट् कृमि, भस्मसात् आत्मान इति यैः स्मृतः त एव हि असत्तमाः एनम् आत्मसात् कृत्वा श्लाघयन्ति ॥३७॥

अनुवाद— यह अपना शरीर मृत्युग्रस्त अनात्मा विष्ठा, कृमि और राख की ढेर होने वाला है, इस तरह से जिन लोगों ने यह चिन्तन कर लिया है वे ही अज्ञानी लोग इस शरीर को अत्मा मानकर उसकी प्रशंसा करते हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

न चेदमघटितं दृष्टत्वादित्याह-यैः पूर्वं स्वदेहोऽनात्मादिरूपः स्मृतश्चिन्तितस्त एव पुनरेनमात्मेति मत्वा श्लाघयन्ति स्तावयन्ति हि ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

यह नहीं कहा जा सकता है कि ऐसा नहीं हो सकता है, क्योंकि लोक में यह देखा गया है कि जिन लोगों ने पहले अपने शरीर का चिन्तन अनात्मा रूप से किया है, वे ही अज्ञानी लोग इस शरीर को ही आत्मा मानकर इसकी प्रशंसा करते हैं ॥३७॥

गृहस्थस्य क्रियात्यागो व्रतत्यागो बटोरपि । तपस्विनो ग्रामसेवा भिक्षोरिन्द्रियलौल्यता ॥३८॥

अन्वयः— गृहस्थस्य क्रियात्यागः बटोः अपि व्रतत्यागः, तपस्विनः भिक्षोः ग्रामसेवा इन्द्रियलौल्यता ॥३८॥

अनुवाद— गृहस्थ का कर्मत्याग करना, ब्रह्मचारी का ब्रह्मचर्य त्याग करना और तपस्वी (वानप्रस्थी) तथा संन्यासी का ग्राम सेवन करना यह उन सबों का इन्द्रिय चाञ्चल्य है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

यतिमुपलक्षणीकृत्यान्यानपि स्वधर्मत्यागिनो निन्दिति-गृहस्थस्येति द्वाभ्याम् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

संन्यासी को ही उपलक्षण बनाकर अपने धर्म का त्याग करने वालों की निन्दा गृहस्थस्य० इत्यादि दो श्लेकों से करते हैं ॥३८॥

आश्रमापसदा ह्येते खल्वाश्रमविडम्बकाः । देवमायाविमूढांस्तानुपेक्षेतानुकम्पया ॥३९॥

अन्वयः— एते हि आश्रमापसदाः खलु आश्रमविडम्बकाः देवमायाविमूढान तान् अनुकम्पया उपेक्षेत ॥३९॥

अनुवाद— उपर्युक्त चारो (गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यास) आश्रम के कलङ्क है । ये आश्रम का ढोंग करने वाले है, इन सबों पर अनुकम्पा करके इनकी उपेक्षा कर देनी चाहिए ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

आत्मानं चेद्विजानीयात्परं ज्ञानधुताशयः । किमिच्छन्कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति लम्पटः ॥४०॥

अन्वयः— परं ज्ञान धुताशयः चेत् आत्मानं विजानीयात् किमिच्छन् कस्य हेतोः वा लम्पटः देहं पुष्णाति ॥४०॥

अनुवाद— आत्मज्ञान के द्वारा जिसकी सारी वासनाएँ निर्मूल हो चुकी है तथा जिसने अपनी आत्मा को परब्रह्म स्वरूप जान लिया है, वह किस विषय की इच्छा से तथा किस भोक्ता की तृप्ति के लिए इन्द्रिय लोलुप होकर अपने शरीर का पोषण करेगा ?॥४०॥

भावार्थ दीपिका

नन्वात्मतत्त्वज्ञस्य भिक्षोरिन्द्रियलौल्येऽपि को दोषस्तत्राह-आत्मानं परं ब्रह्म चेज्जनीयात् । ज्ञानेन धुता निरस्ता आशया वासना यस्य, तस्य ज्ञानिनो लौल्यमेव न संभवतीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः- 'आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः । किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्' इति ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि आत्म तत्त्व के ज्ञाता संन्यासी की इन्द्रियों में यदि चाञ्चल्य बना हुआ है तो उसमें उस संन्यासी का क्या दोष है ? तो इसके उत्तर में नारदजी कहते हैं यदि भिक्षु को इस बात का ज्ञान हो जाय कि मैं परब्रह्म स्वरूप हूँ, तथा आत्मज्ञान के कारण यदि उसके हृदय की सारी वासनाएँ निर्मूल हो चुकी हैं, उस ज्ञानी पुरुष की इन्द्रियों में विषय भोग विषयिणी चञ्चलता ही नहीं हो सकती है । श्रुति भी कहती है यदि पुरुष को इस बात का ज्ञान हो जाय कि मेरी आत्मा का वास्तविक स्वरूप यह है तो फिर वह अपनी किस इच्छा की पूर्ति के लिए इस शरीर के पोषण में व्यापृत होगा ॥४०॥

आहुः शरीरं रथमिन्द्रियाणि हयानभीषून्मन इन्द्रियेशम् ।
वर्त्मानि मात्रा धिषणां च सूतं सत्त्वं बृहद्बन्धुरमीशसृष्टम् ॥४१॥

अन्वयः— शरीरं रथम् आहुः इन्द्रियाणि हयान् आहुः इन्द्रियेशम् मन अभीषून, मात्राः, वर्त्मानि, धीषणां च सत्वं बृहद्वन्धुरं ईश सृष्टम् ॥४१॥

अनुवाद— उपनिषदों में शरीर को रथ कह गया है, इन्द्रियों को उस रथ का अश्व कहा गया है, इन्द्रियों का स्वामी मन ही लगाम है, शब्दादि विषय मार्ग है, बुद्धि को सारथि कहा गया है, चित्त को ही परमात्मा के द्वारा निर्मित बाँधने की विस्तृत रस्सी कहा गया है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

अज्ञस्य तु लौल्येन नरकपातापत्तेरप्रमत्तेन सदा तत्त्वज्ञाने यतितव्यमितीममर्थ 'आत्मनं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च' इत्यादिश्रुत्युक्तरथरूपकद्वारेणाह आहुरिति षड्भिः । इन्द्रियेशं मनोऽभीषून् रश्मीनाहुः-मात्राः शब्दादीन्वर्त्मानि गन्तव्यदेशानाहुः। सत्त्वं चित्तं बृहदेहव्यपि बन्धुरं बन्धनम् । चित्तं बिना ह्यनिबद्धमिव शरीरं भवति । ईशसृष्टमिति, बन्धनकर्ता त्वीश एवेत्यर्थः।॥४१॥

भाव प्रकाशिका

अज्ञानी व्यक्ति की इन्द्रियों में यदि विषय भोग की लोलुपता आ जाय तो नरक में जाने का भय होता है अतएव मनुष्य को बड़ी ही सावधानी पूर्वक तत्त्वज्ञान के लिए प्रयास करना चाहिए। इसी अर्थ का प्रतिपादन **आत्मानं रथिनमाहुः इत्यादि** श्रुति के अनुसार शरीर रथ रूपक को **आहुः इत्यादि** छह श्लोक के द्वारा बतलाते हैं **इन्द्रियेशं मनः** अर्थात् इन्द्रियों के स्वामी मन को लगाम कहा गया है। शब्दादि विषयों को मात्रा शब्द से कहा गया है। शब्दादि विषयों के ही मार्ग अर्थात् गन्तव्य देश कहा गया है। चित्त ही विशाल शरीर में व्यापक बन्धन की रस्सी कहा गया है। चित्त के बिना शरीर अनिबद्ध के समान प्रतीत होता है। **ईशसृष्टम्** का अर्थ है बन्धनकर्ता ईश्वर ही हैं ॥४१॥

अक्षं दशप्राणमधर्मधर्मौ चक्रेऽभिमानं रथिनं च जीवम्।
धनुर्हि तस्य प्रणवं पठन्ति शरं तु जीवं परमेव लक्ष्यम् ॥४२॥

अन्वयः— दश प्राणम अक्षम्, अधर्मधर्मौ चक्रे, अभिमानं जीवं च रथिनम् तस्य धनुः हि प्रणवं पठन्ति शरं च जीवम् परमेव लक्ष्यम् ॥४२॥

अनुवाद— प्रण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त एवं धनञ्जय ये दस प्राण ही उस शरीर रथ की धुरी हैं, धर्म और अधर्म ये ही दोनों उस रथ के पहिए हैं, अहङ्कार युक्त जीव ही उस रथ का स्वामी है, उस जीव का प्रणव ही धनुष है और शुद्ध जीव उसका बाण है तथा परमात्मा ही उसके लक्ष्य हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

प्राणादयः पञ्च 'नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनंजयः' इत्येवं दशविधं प्राणमक्षम्। अभिमानं साहंकारं जीवं रथिनम्। शुद्धं जीवं शरम्। परं ब्रह्म लक्ष्यम्। यथा धनुषा शरो लक्ष्ये निपात्यते तथा प्रणवेन जीवो ब्रह्मणि निपात्यत इत्यर्थः ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

पाँच प्रणादि तथा नाग कूर्म, कृकल, देवदत्त एवं धनंजय ये दश शरीर रथ की धुरी है, अहङ्कार युक्त जीव इस रथ का स्वामी है, शुद्ध जीव बाण है और परंब्रह्म लक्ष्य हैं। जिस तरह धनुष के द्वारा बाण से लक्ष्य का वेध किया जाता है उसी तरह प्रणव के द्वारा जीव को ब्रह्म में मिला दिया जाता है ॥४२॥

रागो द्वेषश्च लोभश्च शोकमोहौ भयं मदः। मानोऽवमानोऽसूया च माया हिंसा च मत्सरः ॥४३॥
रजः प्रमादः क्षुन्निद्रा शत्रवस्त्वेवमादय। रजस्तमः प्रकृतयः सत्त्वप्रकृतयः क्वचित् ॥४४॥

अन्वयः— रागः द्वेषः च लोभः च शोकमोहौ भयं मदः, मानः, अवमानः असूया, माया, हिंसा च मत्सरः, रजः प्रमादः क्षुत् निद्रा एवम् आदयः तु शत्रवः रजः तमः प्रकृतयः सत्त्वप्रकृतयः क्वचित् ॥४३-४४॥

अनुवाद— राग, द्वेष, लोभ, शोक, मोह, भय, मद, मान, अपमान, असूया (दूसरों के गुणों में दोष बुद्धि) छल, हिंसा, मत्सर (दूसरों की उन्नति को देखकर जलना) तृष्णा, प्रमाद, भूख, और नींद ये सभी तथा इसी तरह के दूसरे भी जीवों के अनेक शत्रु हैं। उनमें प्रधान रूप से रजोगुणी और तमोगुणी वृत्ति रहती है और कहीं-कहीं कोई-कोई सत्त्वगुण प्रधान भी होती हैं ॥४३-४४॥

भावार्थ दीपिका

रागादयो जेतव्याः शत्रवः। तत्र रजोऽभिनिवेशः। क्वचिदारूढसमाधेः सत्त्वप्रकृतयोऽपि परोपकारादिप्रवृत्तयः शत्रवः ॥४३-४४॥

भाव प्रकाशिका

राग इत्यादि शत्रुओं को जीत लेना चाहिए। रजोगुण अभिनिवेश रूप होता है। कहीं पर आरूढ समाधि वाले की सात्त्विक प्रकृतियाँ की भी परोपकार आदि की प्रवृत्तियाँ शत्रु हैं ।।४३-४४।।

यावन्नृकायरथमात्मवशोपकल्पं धत्ते गरिष्ठचरणार्चनया निशातम् ।
ज्ञानासिमच्युतबलो दधदस्तशत्रुः स्वाराज्यतुष्ट उपशान्त इदं विजह्यात् ।।४५।।

अन्वयः— याावनृकायरथमात्मवशोपकल्पं धते गरिष्ठचरणार्चनया निशातं ज्ञानसिम् अच्युतबलः दधत् अस्तशत्रुः स्वाराज्यतुष्ट उपशान्त इदं विजह्यात् ।।४५।।

अनुवाद— जब तक मानव शरीर रूप रथ अपने वश में है और इसके, इन्द्रिय मन आदि सम्पूर्ण साधन अपनी अच्छी दशा में हैं तब तक ही आचार्य के चरण कमलों की से तीक्ष्ण बनी हुई ज्ञान की तलवार को लेकर श्रीभगवान् के आश्रय से इन शत्रुओं का नाश करके स्वराज्य सिंहासन पर आसीन हो जाय और अत्यन्त शान्त भाव से इस शरीर का भी परित्याग कर दे ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

नृकायरूपं रथमात्मवशः उपकल्प्य इन्द्रियादिपरिकरो यस्मिंस्तथाभूतं यावद्धत्ते तावदेव गरिष्ठानां गुरूणां चरणसेवया निशितं ज्ञानखङ्गं बिभ्रदच्युताश्रयः सन्निरस्तशत्रुरूपशान्तः स्वानन्देन तुष्टो भूत्वेदं रथादिकमुपेक्षेतेत्यर्थः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

जब तक शरीर रूप रथ अपने वश में है तथा वह इन्द्रिय आदि साधनों से सम्पन्न है तब तक ही आचार्य के चरण कमलों की सेवा से तीक्ष्ण बनी हुई ज्ञान रूपी तलवार धारण करके श्रीभगवान् के आश्रय में रहते हुए सम्पूर्ण शत्रुओं का नाश कर दे और आत्मानन्द से सन्तुष्ट होकर इस शरीर रूप रथादि का भी परित्याग कर दे।।४५।।

नो चेत्प्रमत्तमसदिन्द्रियवाजिसूता नीत्वोत्पथं विषयदस्युषु निक्षिपन्ति ।
ते दस्यवः सहयसूतममुं तमोन्धे संसारकूप उरुमृत्युभये क्षिपन्ति ।।४६।।

अन्वयः— नो चेत प्रमत्तम् असदिन्द्रिय वाजिसूता उत्पथं नीत्वा विषयदस्युष निक्षिपन्ति ते दस्यवः सहयसूतममुम् तमोन्धे संसारकूपे उरुमृत्युभये क्षिपन्ति ।।४६।।

अनुवाद— नहीं तो थोड़ी सी भी असावधानी होने पर इन्द्रिय रूप दुष्ट अश्व और उनसे मित्रता रखने वाला बुद्धि रूप सारथि रथ के स्वामी को उलटे रास्ते लेजाकर विषय रूप लुटेरों के बीच में डाल देंगे। और वे लुटेरे घोड़ों और सारथि के साथ इस जीव को मृत्यु जैस अत्यन्त भयङ्कर घोर अन्धकारमय संसारे के कुएँ में गिरा देंगे।।४६।।

भावार्थ दीपिका

अच्युताश्रयाभावे बाधकमाह-नो चेदिति। असन्तो बहिर्मुखा ये इन्द्रियवाजिनः सूतश्च ते उत्पथं प्रवृत्तिमार्गं नीत्वा विषयाख्येषु दस्युषु निक्षिपन्ति। हयैः सूतेन च सह वर्तमानम्। तमोन्धे तमसा व्याप्ते। उरु मृत्युभयं यस्मिन् ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के आश्रय के अभाव में **नो चेत् इत्यादि** श्लोक से बाधक को नारदजी बतलाते हैं कि बहिर्मुख इन्द्रिय रूपी अश्व तथा सारथि दोनों उलटे मार्ग से प्रवृत्ति मार्ग में लाकर विषय रूप लुटेरों के बीच में डाल देंगे और वे लुटेर अश्व का सारथि के साथ रहने वाले जीवों को धोर अन्धकार से व्याप्त भयङ्कर मृत्यु के भय से युक्त संसार में डाल देंगे ।।४६।।

प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म बैदिकम् । आवर्तेत प्रवृत्तेन निवृत्तेनाश्नुतेऽमृतम् ॥४७॥

अन्वयः— वैदिकं कर्म द्विविधम् प्रवृत्तं च निवृत्तं च, प्रवृत्तेन आवर्तेत निवृत्तेन अमृतम् अश्नुते ॥४७॥

अनुवाद— वैदिक कर्म दो प्रकार के हैं । प्रवृत्त (ऐसे कर्म जो वृत्तियों को उनके विषयों की ओर ले जाते हैं) तथा निवृत्त कर्म । ऐसे कर्म जो वृत्तियों को उनके विषयों की ओर से लौटाकर शान्त एवं साक्षात्कार के योग्य बना देते हैं । ये कर्म निवृत्तिपरक होते हैं । प्रवृत्ति परक कर्मों का अनुष्ठान करने वाले को बार-बार जन्म एवं मृत्यु की प्राप्ति होती है ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

ननु वेदविहितेष्टापूर्तादिकारिणः पुंसः कथमेवमनर्थप्राप्तिः स्यादित्याशङ्क्य वेदोक्तकर्मणां द्वैविध्यं दर्शयन्फलभेदमाह-प्रवृत्तं चेति दशभिः ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि वेद विहित इष्टापूर्त आदि कर्मों को करने वाले पुरुषों को इस तरह से अनर्थ की प्राप्ति कैसे होती है ? इस तरह की आशङ्का करके वेदोक्त कर्मों के दो भेदों को बतलाते और उन कर्मों के फलों में होने वाली भिन्नता को भी **प्रवृत्तं च० इत्यादि** दश श्लोकों से बतलाते हैं ॥४७॥

हिंस्रं द्रव्यमयं काम्यमग्निहोत्राद्यशान्तिदम् । दर्शश्च पूर्णमासश्च चातुर्मास्यं पशुः सुतः ॥४८॥
एतदिष्टं प्रवृत्ताख्यं हुतं प्रहुतमेव च । पूर्तं सुरालयारामकूपाजीव्यादिलक्षणम् ॥४९॥

अन्वयः— हिंस्रं, द्रव्यमयं अग्निहोत्रादि दर्शः च पूर्णमासः च, चातुर्मास्यं पशुः सुतः काम्यम् अशान्तिदम् एव प्रवृत्ताख्यं हुतं प्रहुतमेव च सुरालयारामकूपाजीव्यादि लक्षणम् ॥४८-४९॥

अनुवाद— शत्रु मरणार्थ किये जाने वाले श्येन याग इत्यादि हिंसामय कर्म हैं अग्निहोत्र दर्श, पूर्णमास, चातुर्मास्य, पशुयाग, सोमयाग, वैश्वदेव बलिहरण आदि द्रव्यमय कर्म इष्टशब्द वाच्य हैं, देवालय, बगीचा, कूँओं आदि बनवाना प्याउ आदि स्थापित करना आदि पूर्तकर्म हैं । सकाम भाव से युक्त होने पर अशान्ति के ही कारण होते हैं ॥४८-४९॥

भावार्थ दीपिका

हिंस्रं श्येनादिकर्म । अशान्तिदमत्यासक्तियुक्तम् । आदिशब्दार्थविवरणं दर्शश्चेति । पशुः पशुयागः । सुतः सोमयागः । हुतं वैश्वदेवम् । प्रहुतं बलिहरणम् । एतत्सर्वमिष्टमुच्यते-एतदेव यदि काम्यमशान्तिदं च तर्हि प्रवृत्ताख्यमपीत्यर्थः । आजीव्यं प्रपादि ॥४८-४९॥

भाव प्रकाशिका

हिंस्रम् अर्थात् श्येन याग आदि शत्रु के मारण के लिए किये जाने वाले याग । **अशान्तिदम्** अर्थात् अत्यन्त आसक्ति युक्त कर्म । **अग्निहोत्रादि** के आदि शब्द के द्वारा दर्श, पूर्णमास, चातुर्मास्य आदि तिवक्षित हैं । पशुः अर्थात् पशुयाग, **सुतः** अर्थात् सोमयाग **हुतम्** अर्थात् बलिवैश्वदेव, **प्रहुतम्** बलि प्रदान, इन सबों को इष्ट शब्द में अभिहित किया जाता है । ये ही सब यदि किसी कामना विशेष से किए जाते हैं तो प्रवृत्त कहलाते हैं **आजीव्यम्** अर्थात् प्याऊ इत्यादि स्थापित करना ॥४८-४९॥

द्रव्यसूक्ष्मविपाकश्च धूमो रात्रिरपक्षयः । अयनं दक्षिणं सोमो दर्श ओषधिवीरुधः ॥५०॥
अन्नं रेत इति क्ष्मेश पितृयानं पुनर्भवः । एकैकश्येनानुपूर्वं भूत्वा भूत्वेह जायते ॥५१॥

अन्वयः— हे क्ष्मेश ! द्रव्य सूक्ष्म विपाकाश्च धूमोरात्रिरपक्षयः अयनं दक्षिणं सोमो दर्श ओपधि विरुधः एकैकश्येन आनुपूर्वं भूत्वा भूत्वा इह जायते ॥५०-५१॥

अनुवाद— हे राजन् ! प्रवृत्ति परायण पुरुष मरने पर चरु पुरोडाश इत्यादि यज्ञ सम्बन्धी द्रव्यों के सूक्ष्म भाग से बने शरीर को धारण करके धूमाभिमानी देवताओं के पास जाता है । तदनन्तर वह रात्रि, कृष्णपक्ष और दक्षिणायन के अभिमानी देवताओं के पास में जकर चन्द्रलोक में पहुँचता है । भोग के समाप्त हो जाने पर वहाँ आमावश्या के चन्द्रमा के समान क्षीण होकर वृष्टि द्वारा क्रमशः ओषधि लता अन्न और वीर्य होकर पितृयानमार्ग से पुनः इस संसार में उत्पन्न होता है ॥५०-५१॥

भावार्थ दीपिका

प्रवृत्तेन कर्मणा आरोहावरोहाभ्यामावृत्तिप्रकारमाह द्रव्यस्य चरुपुरोडाशादेः सूक्ष्मो विपाकः । परिणामो देहान्तरारम्भको येन संपरिष्वक्तो गच्छति य एव श्रुतौ अप्शब्देनोक्तः । इति तु पञ्चम्यामाहुतावापः पुरुपवचसो भवन्ति' इति । पाठान्तरे द्रव्यशब्देन तेजोमात्राशब्दोक्तानीन्द्रियाणि । ऊष्मविपाकशब्देन हृदयाग्रप्रद्योतः । तथा च श्रुतिः– 'स इमास्तेजोमात्राः समभ्याददानो हृदयमेवान्वक्रामत्' इति, तथा– 'तस्य हैतस्य हृदयाग्रं प्रद्योतते तेनैष आत्मा निष्क्रामति' इति । धूमादिशब्दैस्तत्तदभिमानिन्यो देवताः तत्रापक्षयः कृष्णपक्षः । सोमः सोमलोकः । तत्र भुक्तभोगस्यावरोहणप्रकारमाह–दर्श इत्यादि । विपरीतलक्षणया विशिष्टभोगक्षयशोकाग्निना देहेलयेनादर्शनमुच्यते । एतदुक्तं भवति–भूतसूक्ष्मयुक्तो धूमाद्यातिवाहिकदेवताभिः सोमलोकं प्रापितस्तद्भोगावसाने विलीनदेहो वृष्टिद्वारेणौषधिवीरुधादिसाम्यापत्तिक्रमेण जायते । एवं पुनर्भवहेतुः– पितृयानं प्रवृत्तकर्ममार्गं इति । क्ष्मेश हे भूपते । पुनर्भवमेवाह–एकैकश्येन प्रत्येकं क्रमेण भूत्वा तत्तत्सान्निध्यं प्राप्येह भूमौ जायते ॥५०-५१॥

भाव प्रकाशिका

प्रवृत्त कर्मों को करने वाले जीवों के आरोह और अवरोह के द्वारा (चन्द्रलोक में जाने और वहाँ से आने के) आवृत्ति प्रकार को नारदजी कहते हैं । यज्ञ संबन्धी चरु पुरोडाश आदि द्रव्यों के सूक्ष्म परिणाम से निर्मित शरीर के माध्यम से जीव चन्द्रलोक में जाता है । जिससे युक्त होकर वह जाता है उसे श्रुति में अप् शब्द से कहा गया है। श्रुति कहती है 'इति तु पञ्चध्यामाहुतावापः पुरुषवचसो भवन्ति ।' अर्थात् इस प्रकार से पाँचवीं आहुति में जल ही पुरुष शब्द से कहा जाने लगता है । **द्रव्यमूष्मविपाकश्च** इस तरह का पाठभेद होने पर द्रव्य शब्द से श्रुतियों में जिसे तेजो मात्रा शब्द से कहा गया है वे इन्द्रियाँ कहीं गयी हैं । **उष्मविपाक** शब्द के द्वारा मृत्यु काल में होने वाले हृदय के अगभाग में प्रकाश को कहा गया है । श्रुति भी कहती है— **स इमास्तेजोमात्राः समभ्याददानो हृदयमेवान्वक्रामत्** अर्थात् वह जीव इन इन्द्रियों को लेकर हृदय में ही प्रवेश कर जाता है । तथा दूसरी श्रुति कहती है **तस्य हैतस्य हृदयाग्रं प्रद्योतते तेनैष आत्मा निष्क्रामति** । उस मुमूर्षु जीव के हृदय के अग्रभाग में विद्यमान सुषुम्ना नाड़ी का अग्रभाग प्रकाशित हो जाता है और उसी नाड़ी के माध्यम से विद्याप्राप्त जीव शरीर से निकलता है । **धूमादि** शब्द के द्वारा धूमादि मार्ग के अभिमानिनी देवताओं को कहा गया है । **अपक्षय** शब्द से कृष्ण पक्षाभिमानी देवता को कहा गया है । **सोमः** शब्द से चन्द्रलोक को कहा गया है । **दर्श० इत्यादि** के द्वारा भोगों के समाप्त हो जाने के पश्चात जीव के वहाँ से अवरोहण के प्रकार को कहा गया है । विपरीत लक्षणा के द्वारा विशिष्ट भोगों के क्षय जन्य शोकाग्नि के द्वारा **देहलय** शब्द के द्वारा अदर्शन को कहा गया है । **एतदुक्तं भवति इत्यादि** कहने का अभिप्राय है कि भूत सूक्ष्मों से युक्त होकर प्रवृत्त कर्म करने वाले जीव को धूमादि अतिवाहिक देवता सोम लोक में ले जाते हैं । सोमलोक में जब भोगों की समाप्ति हो जाती है तब उसका वह शरीर विलीन हो जाता है और वह वर्षा के माध्यम से वह पहले ओषधि बन जाता है । फिर वीरुध लता इत्यादि के क्रम से वह क्रमशः अन्न तथा वीर्य होकर माता के गर्भ में प्रवेश करके उत्पन्न होता है । इस तरह पुनर्जन्म के कारणभूत पितृयाग प्रवृत्त कर्म का मार्ग है । क्ष्मेश अर्थात् हे राजन् ! युधिष्ठिर पुनर्जन्म को ही **एकैकश्येन० इत्यादि** के द्वारा कहा गया है । **एकैकश्येन** अर्थात् क्रमशः वर्षा, ओषधि इत्यादि प्रत्येक होकर वह भूलोक में उत्पन्न होता है ॥५०-५१॥

निषेकादिश्मशानान्तै. संस्कारैः संस्कृतो द्विजः । इन्द्रियेषु क्रियायज्ञान्ज्ञानदीपेषु जुह्वति ॥५२॥

अन्वयः— निषेकादिश्मशानान्तैः संस्कारैः संस्कृतो द्विजः क्रिया यज्ञान ज्ञानदीपेषु इन्द्रियेषु जुह्वति ॥५२॥

अनुवाद— गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त जिनके सारे संस्कार किए जाते हैं उनको द्विज कहा जाता है। उन द्विजों में कुछ तो प्रवृत्ति मार्ग के अनुयायी होते हैं और कुछ निवृत्ति मार्ग के अनुयायी होते हैं। जो लोग निवृत्ति मार्ग के अनुयायी होते हैं वे इष्टापूर्त आदि से होने वाले समस्त यज्ञों के ज्ञान को प्रकाशित करने वाली इन्द्रियों में होम कर देते हैं ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

तत्राधिकारिणमाह-निषेकादीति । अन्यस्त्विष्टादिकार्येप्येवं जन्म न लभत इत्यर्थ; । निवृत्तकर्मनिष्ठस्योपासनादिविशेषमुपदिशन्नर्चिरादिमार्गेण ब्रह्मलोकप्राप्तिमाह-इन्द्रियेष्वित्यादिना । यद्वा द्रव्ययज्ञेषु हिंसाया दुर्निवारत्वादतिमुख्यं निवृत्तं कर्मैव दर्शयन्नाह। ज्ञानेन दीप्यन्त इति तथा तेषु। इन्द्रियव्यापाराणामिष्टापूर्तादीनामिन्द्रियतावन्मात्रतां भावयन्तीत्यर्थः। एवमुत्तरत्रापि ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनों प्रकार के कर्मों के अधिकारियों को निषेकादि श्लोक से बतलाते हैं जो निवृत्त कर्माधिकारी हैं वे इष्टादि कर्मों को करके भी इस प्रकार से जन्म नहीं प्राप्त करते हैं। निवृत्त कर्म निष्ठ की विशेष उपासना आदि को बतलाते हुए बतलाते है कि वे अर्चिरादि मार्ग से ब्रह्मलोक में जाते हैं। इस बात को **इन्द्रियेषु० इत्यादि** के द्वारा कहा गया है। **यद्वा० इत्यादि** अथवा द्रव्य यज्ञों में होने वाली हिंसा का रोकना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि उन यज्ञों में हिंसा अत्यन्त मुख्य होती है अतएव यहाँ निवृत्त कर्म को ही यहाँ बतलाते हुए कहा गया है कि ज्ञान को प्रकाशित करने वाली इन्द्रियों में होम कर देते हैं इष्टामूर्त आदि व्यापारों उतने मात्र रूप से इन्द्रियों की भावना कहते हैं इसी तरह आगे भी समझना चाहिए ॥५२॥

इन्द्रियाणि मनस्यूर्मौ वाचि वैकारिकं मनः। वाचं वर्णसमाम्राये तमोङ्कारे स्वरे न्यसेत् ॥
ओङ्कारं बिन्दौ नादे तं तं तु प्राणमहत्यमुम् ॥५३॥

अन्वयः— इन्द्रियाणि ऊर्मौमनसि वैकारिकं मनः वाचि, वाचं वर्णसमाम्नाये तम् स्वरे ओङ्कारे न्यसेत् ओङ्कारं विन्दौ तं नादे तं तु प्राणे अमुम् महति ॥५३॥

अनुवाद— इन्द्रियों को दर्शनादि रूप सङ्कल्प में, वैकारिक मन को परा वाणी में, परा वाणी को वर्ण समुदाय (वर्णसमाम्नाय) में वर्ण समुदाय को अ उ म् इन तीन स्वरों के रूप में रहने वाले ॐकार में, ओङ्कार को विन्दु में विन्दु को नाद में, नाद को सूत्रात्मारूप प्राण में और प्राण को ब्रह्म में लीन कर देता है ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

ऊर्मौ दर्शनादिसंकल्परूपे मनसि। वैकारिकं विकारयुक्तं मनो वाचि। विध्यादिलक्षणया वाचा हि मनः कर्तृत्वादिविकारं भजति। वर्णानां सामाम्राये समुदाये। तद्विशेपत्वाद्वाचः। स्वरे अकारादिस्वरत्रयात्मके। ओङ्कारं विन्दौ, तं च नादे। प्राणे सूत्रात्मनि महति ब्रह्मणि ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

उर्मौ मनसि अर्थात् दर्शनादि सङ्कल्प रूप मन में, विकार युक्त मन को परा वाणी में। विधि आदि रूप वाणी के द्वारा मन में कर्तृत्व आदि विकार होते हैं। **वर्णसमाम्नाये** अर्थात् वर्ण समुदाय में वर्ण समुदाय का ही विशेष रूप वाणी है। **स्वरे** अर्थात् अ, उ, और म् इन तीनों स्वरों का समुदित रूप ओङ्कार में, ओङ्कार के विन्दु में विन्दु को नाद में प्राणे अर्थात् सूत्रात्मा प्राण में **महति** अर्थात् ब्रह्म में ॥५३॥

अग्निः सूर्यो दिवा प्राह्णः शुक्लो राकोत्तरं स्वराट् । विश्वश्च तैजसः प्राज्ञस्तुर्य आत्मा समन्वयात्॥५४॥

अन्वयः— (निवृत्तकर्मनिष्ठज्ञानी) क्रमशः अग्नि, सूर्य, दिवा, प्राह्णः शुक्लः, राकोत्तरम्, स्वराट्, विश्व, तैजसः प्राज्ञः, तुर्यः आत्मा समन्यात् ।।५४।।

अनुवाद— निवृत्तकर्मनिष्ठ ज्ञानी पुरुष शरीर परित्याग करने के पश्चात् सर्वप्रथम अग्न्यभिमानी देवता के पास जाता है । उसके पश्चात् सूर्याभिमानी देवता के पास जाता है, फिर दिनाभिमानी देवता के पास जाता है, तदनन्तर वह सायं कालाभिमानी देवता के पास जाता है, उसके पश्चात् शुक्लपक्षाभिमानी देवता के पास जाता है, उसके पश्चात् पूर्णिमाभिमानी देवता के पास जाता है । उसके पश्चात् वह उत्तरायणभिमानी देवता के पास जाता है । उसके पश्चात वह ब्रह्मलोक में जाता है वहाँ के भोग के समाप्त होने पर वह स्थूलोपाधिक 'विश्व' अपनी स्थूल उपाधि को सूक्ष्म में लीन करके सूक्ष्मोपाधिक तैजस हो जाता है । फिर वह सूक्ष्मोपाधि को कारण में लय करके कारणोपाधिक प्राज्ञ हो जाता है । पुनः सबों के साक्षी रूप से सर्वत्र अनुगत होने से साक्षी के ही स्वरूप में कारणोपाधि का लय करके तुरीय रूप से स्थित होता है । इस तरह दृश्यों का लय हो जाने के कारण वह शुद्ध आत्मा रह जाता है । यही मोक्षपद है ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

अग्निरिति । तत्तदभिमानिन्यो देवतास्ताः । प्राप्नोतीति पूर्ववत् । दिवाऽहः । प्राह्णस्तस्यैवान्तः । राका शुक्लपक्षस्यान्तः। यद्वा प्राह्णो राका इति च पुराणमतम् । उत्तरं त्वयनम् । स्वराट् ब्रह्मा । एवं ब्रह्मलोकं गतस्य भोगावसाने मोक्षप्रकारमाह-विश्व इति । विश्वः स्थूलोपाधि; स स्थूलं सूक्ष्मे विलाप्य सूक्ष्मोपाधिस्तैजसो भवति । सूक्ष्मं कारणे विलाप्य कारणोपाधिः प्राज्ञो भवति। कारणं च सर्वसाक्षित्त्वेनान्वयात्साक्षिस्वरूपे विलाप्य तुर्यो भवति । तेषां च व्यभिचारिणां साक्ष्याणां लये शुद्ध आत्मा भवति । मुच्यत इत्यर्थः ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

अग्निः इत्यादि इस श्लोक में अर्चिरादि मार्ग के विभिन्न अभिमानी देवताओं का वर्णन है । सब जगह प्राप्त करता है का सम्बन्ध होगा । दिवा अर्थात् दिन **प्राह्णः** अर्थात् सायंकाल, **राका** अर्थात् पूर्णिमा, पुराणों के अनुसार सायंकाल को ही राका कहा जाता है । उत्तर शब्द से उत्तरायणाभिमानी देवता को कहा गया है । **स्वराट्** अर्थात् ब्रह्मा । इस तरह ब्रह्मलोक में गये हुए जीव के भोग का अन्त होने पर मोक्ष के प्रकार को नारदजी बतलाते हैं। विश्व शब्द से स्थूलोपाधि को कहा गया है । वह स्थूल का सूक्ष्म में लय करके सूक्ष्मोपाधि तैजस हो जाता है । सूक्ष्म का कारण में लय करके वह कारणोपाधि प्राज्ञ हो जाता है । सबों का साक्षी होने के कारण उस साक्षी के स्वरूप में कारण का लय करके वह तुर्य (तुरीय) हो जाता है । उन सभी व्यभिचरित होने वाली उपाधियों का लय करके वह शुद्ध आत्मा हो जाता है । अर्थात् वह मुक्त हो जाता है ।।५४।।

देवयानमिदं प्राहुर्भूत्वा भूत्वाऽनुपूर्वशः । आत्मयाज्युपशान्तात्मा ह्यात्मस्थो न निवर्तते ।।५५॥

अन्वयः— इदं देवयानं प्राहुः अनुपूर्वशः भूत्वा भूत्वा आत्मयाजी उपशान्तात्मा हि आत्मस्थः न निवर्तते ।।५५।।

अनुवाद— इसको देवयान कहा गया है । इस मार्ग से जाने वाला उपासक एक देवता से दूसरे देवता के पास होते हुए ब्रह्मलोक में जाकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है । वह प्रवृत्तिमार्गानुयायी के समान पुनः इस संसार में नहीं आता है ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

यथेतरो भूत्वा निवर्तते तथा न निवर्तत इत्यर्थः ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

जैसे प्रवृतिमार्गानुयायी चन्द्रलोक में जाने के पश्चात् पुनः इस संसार में आता है, वैसे वह नही आता है।।५५॥

य एते पितृदेवानामयने वेदनिर्मिते । शास्त्रेण चक्षुषा वेद जनस्थोऽपि न मुह्यति ॥५६॥

अन्वयः— ये एते पितृदेवानाम् वेद निर्मिते अयने शास्त्रेण चक्षुषा वेद जनस्थः अपि न मुह्यति ॥५६॥

अनुवाद— ये जो पितृयान और देवयान वेद निर्मित दो मार्ग हैं, उसको शास्त्र की दृष्टि से देखने वाला पुरुष इस शरीर में रहकर भी उसके विषय में मोहित नहीं होता है ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

वेदेन निर्मिते 'ते धूममभिंभवन्ति' इत्यादिना, 'ते अर्चिरभिसंवन्ति' इत्यादिना च निश्चयेन विविच्य ज्ञापिते इत्यर्थः । जनस्थोऽपि देहस्थोऽपि न मुह्यति ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

ते धूमभिसंभवन्ति इस श्रुति के द्वारा धूमादि मार्ग का वर्णन किया गया है । **ते अर्चिरभिसंभवन्ति** अर्थात् वे अर्चिरादिमार्ग को प्राप्त करते हैं, यह श्रुति अर्चिरादिमार्ग (देवयान) का वर्णन करती है । ये श्रुतियाँ निश्चित रूप से दोनों को अलग-अलग रूप से बतलाती हैं । अतएव शास्त्र पुरुष इन दोनों के विषय में शरीर में भी रहकर मोहित नहीं होता है ॥५६॥

आदावन्ते जनानां सद्बहिरन्तः परावरम् । ज्ञानं ज्ञेयं वचो वाच्यं तमो ज्योतिस्त्वयं स्वयम् ॥५७॥

अन्वयः— जानानाम् आदौ अन्ते च सत् बहिरन्तः परावरम्, ज्ञानं, ज्ञेय, वचो वाच्यं तमो ज्योतिः तु अयं स्वयम्॥५७॥

अनुवाद— उत्पन्न होने वाले शरीरों से पहले कारण रूप से तथा इन शरीरों का अन्त हो जाने पर भीअवधि रूप से जो विद्यमान रहता है, बाहर भोग्य रूप से और भीतर भोक्ता रूप से बड़े-छोटे, ज्ञान और ज्ञेय रूप से वाचक और वाच्य रूप से, अन्धकार और प्रकाश रूप से जो कुछ भी उपलब्ध होता है, वह यह तत्त्ववेत्ता ही है । इसीलिए मोह उसका स्पर्श भी नहीं कर सकता है ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुमाह-आदाविति। जनानां देहानामादौ कारणत्वेनान्ते चाऽवधित्वेन यत्सत्तथा बहिर्भोग्यमन्तर्भोक्तृ परमवरं चोच्चनीचम्। तमोऽप्रकाशः। ज्योतिः प्रकाशः। तत्तु सर्वमयं ज्ञानी स्वयमेव न तस्माद्व्यतिरिक्तं वस्तु किंचिदस्ति येन मुह्येदित्यर्थः ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

मोहित न होने के कारण को **आदा इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं उत्पन्न होने वाले शरीरों के पहले कारण रूप से और अन्त में अवधि रूप से जो विद्यमान रहता है । बाहर भोग्य रूप से और भीतर भोक्ता रूप से उच्च एवं नीच रूप से, अन्धकार और प्रकाशरूप से जो कुछ भी उपलब्ध होता है वह ज्ञानी स्वयम् ही है, उससे भिन्न कुछ भी वास्तविक नहीं है अतएव अज्ञान उसका स्पर्श नहीं करता है ॥५७॥

आबाधितोऽपि ह्याभासो यथा वस्तुतया स्मृतः । दुर्घटत्वादैन्द्रियकं तद्वदर्थविकल्पितम् ॥५८॥

अन्वयः— आवाधितः अपि हि आभासः यथा वस्तुतया स्मृतः, दुर्घटत्वादैन्द्रियकं तद्वदर्थ विकल्पितम् ॥५८॥

अनुवाद— दर्पण इत्यादि में दिखने वाला प्रतिबिम्ब युक्ति तथा विचार के द्वारा पूर्ण रूप से बाधित होने पर भी वह वास्तविक रूप से प्रतीत होता है, उसी तरह इन्द्रियों के द्वारा प्रतीत होने वाला भेद भी विचार, युक्ति और आत्मानुभव से असम्भव होने के कारण वास्तविक नहीं होने पर भी सत्य सा प्रतीत होता है ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि कथं पृथगर्थस्तस्यापि प्रतीयते तत्राह- आवाधितस्तर्कविरोधेन सर्वतो वाधितोऽप्याभासः प्रतिबिम्बादिर्वस्तुतया यथा स्मृतस्तद्वदैन्द्रियकं सर्वमर्थत्वेन विकल्पितं नतु परमार्थतः दुर्घटत्वात् ॥५८॥

भाव प्रकाशिका

यदि ज्ञानी को मोह नहीं होता है तो फिर उसको भी भेद की प्रतीति कैसे होती है । इस पर नारदजी कहते है तर्क से विरोध होने के कारण वह पूर्ण रूप से बाधित है फिर भी जिस तरह प्रतिबिम्ब जैसे वास्तविक प्रतीत होता है उसी तरह से इन्द्रियों के द्वारा प्रतीत होने वाला भेद तर्क के विरुद्ध होने के कारण अवास्तविक होने पर भी सत्य के समान प्रतीत होता है उसी तरह क्योंकि वह दुर्घट हैं ।।५८।।

क्षित्यादीनामिहार्थानां छाया न कतमापि हि । न सङ्घातो विकारोऽपि न पृथङ्नान्वितो मृषा ।।५९।।

अन्वयः— इह क्षित्यादीनाम् अर्थानाम् कतमा अपि हि छाया न सङ्घातः विकारो वा न पृथक् न अन्वितः मृषा।।५९।।

अनुवाद— यह शरीर पृथिवी आदि पञ्च महाभूतों से नहीं बना है । यह उन भूतों का सङ्घात भी नहीं है और न तो विकार या परिणाम ही है । क्योंकि यह (शरीर) अपने अवयवों से न तो पृथक है और न तो अनुगत ही हैं अतएव यह मिथ्या है ।।५९।।

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-क्षित्यादीनां पञ्चभूतानां छाया ऐक्यबुद्ध्यालम्बनरूपं देहादिसङ्घातारम्भपरिणामानां मध्ये कतमाप्यन्यतमापि न भवति । न तावत्तेषां सङ्घातो वृक्षाणामिव वनम् ।एकदेशाकर्षणे सर्वाकर्षपानुपपत्तेः । नह्येकस्मिन्वृक्ष आकृष्टे सर्वं वनमाकृष्यते। नच विकार आरब्धोऽवयवी । अपिशब्दान्न परिणामोऽपि कुतः । स किं स्वावयवेभ्य; परिणतेभ्यो वा पृथक् तदन्वितो वा । न तावदत्यन्तं पृथक् । तथाऽप्रतीतेः । न चान्वितः । स किं प्रत्यवयवं सर्वोऽप्यन्वेत्यंशेन वा । आद्ये अङ्गुलिमात्रेऽपि देहबुद्धिः स्यात् । द्वितीये तस्याप्यंशाङ्गीकारे सत्यनवस्था स्यादतो मृषैवेत्यर्थः ।।५९।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बात को ही कह रहे हैं पृथिवी आदि पञ्च महाभूतों की ऐक्य बुद्धि के आलम्बन रूप देह आदि समूह, कार्य तथा परिणाम इन तीनों में से कोई भी नहीं है । जिस तरह वृक्षों का संघात वन होता है उसी तरह पञ्च महाभूतों के सङ्घात देहादि नहीं है । लोक में देखा जाता है कि शरीर के अङ्ग को खीचने पर सम्पूर्ण शरीर खीचने लगता है । किन्तु वन के एक वृक्ष को खींचने पर सम्पूर्ण वन नहीं खींचता अतएव शरीर पञ्च महाभूतों का सङ्घात नहीं है । वह पञ्च महाभूतों का कार्यरूप अवयवी भी नहीं है । अपि शब्द के द्वारा सूचित किया गया है कि यह पञ्चमहाभूतों का परिणाम भी नहीं है । क्योंकि प्रश्न होता है कि क्या वह अपने-अपने परिणत अवयवों से पृथक् है अथवा उन सबों से संबद्ध है । उसको अत्यन्त पृथक् नही माना जा सकता है, और अन्वित भी नहीं माना जा सकता है । यदि अन्वित मानें तो प्रश्न है कि क्या वह शरीर अपने प्रत्येक अवयव में सम्पूर्ण रूप से अन्वित है ? अथवा अंशतः प्रथम पक्ष को मानने पर अङ्गुलि मात्र में भी देह बुद्धि का प्रसङ्ग होगा । दूसरा पक्ष मानने पर उस अंश को भी अंश मानने पर अनवस्था दोष होगा । अतएव यही मानना पड़ता है कि यह शरीर मिथ्या ही है ।।५९।।

धातवोऽवयवित्वाच्च तन्मात्रावयवैर्विना । न स्युर्ह्यसत्यवयविन्यसन्नवयवोऽन्ततः ।।६०।।

अन्वयः— धातवः अवयवित्वाच्च तन्मात्रावयवैः विना न स्युः, सति अवयविनि अवयवः अन्ततः असत् ।।६०।।

अनुवाद— इसी तरह शरीर के कारण रूप पञ्च महाभूत भी अवयवी होने के कारण अपने अवयवों (सूक्ष्म भूतों) से पृथक नहीं है, अपितु वे भी अवयव रूप ही हैं । बहुत अधिक विचार करने पर भी अवयवों से पृथक अवयवी का भी अस्तिव नहीं मिलता है, वह असत् ही सिद्ध होता है । ऐसी स्थिति में यह सिद्ध ही हो जाता है कि ये अवयव भी असत् ही हैं ।।६०।।

भावार्थ दीपिका

एवं देहादेर्मिथ्यात्वमुक्त्वा तद्धेतूनां क्षित्यादीनामपि मिथ्यात्वमाह-धारयन्तीति धातवो महाभूतानि तन्मात्रैः सूक्ष्मैरवयवैर्विना न स्युः । अवयवित्वात्तेषमपि । तर्ह्यवयवः सत्य इति चेत्तत्राह- उक्तप्रकारेणावयविन्यसत्ययवोऽप्यन्ततोऽसन्नेव स्यात् । अवयविप्रतीत्यन्यथानुपपत्तिं विना तत्सद्भावे प्रमाणाभावादित्यर्थः । तदुक्तं पञ्चमस्कन्धे- 'एवं निरुक्तं क्षितिशब्दवृत्तम्' इत्यादि।।६०।।

भाव प्रकाशिका

शरीर के मिथ्यात्व का प्रतिपादन करने के पश्चात् उसके कारणभूत पञ्चमहाभूतों का भी मिथ्यात्व प्रतिपादन करते है । **धारयन्ति** इस व्युत्पत्ति के अनुसार धातु शब्द महाभूतों का बोधक है । ये पञ्चमहाभूत अपने सूक्ष्म अवयवों (तन्मात्रों) के बिना नहीं हो सकते हैं क्योंकि वे भी अवयवी हैं । यदि कहें कि तब तो अवयवों को सत्य मानना चाहिए। तो इसका उत्तर है कि उपर्युक्त प्रकार से अवयवी के असत्य होने पर अवयव भी अन्ततः मिथ्या ही होंगे । अवयवी की प्रतीति रूप अन्यथानुपपति के बिना उसके सत्यत्व के प्रतिपादक प्रमाण का अभाव होने के कारण । इसी बात को पञ्चम स्कन्ध में कहा भी गया है । इस तरह से क्षिति शब्द के वृत्त को निरूपित किया गया है ।।६०।।

स्यात्सादृश्यभ्रमस्तावद्विकल्पे सति वस्तुनः । जाग्रत्स्वापौ यथा स्वप्ने तथा विधिनिषेधता ।।६१।।

अन्वयः— वस्तुनः विकल्पे सतितावत् सादृश्य भ्रमः स्यात् यथा स्वप्ने जाग्रत्स्वापौ तथा विधि निषेधता ।।६१।।

अनुवाद— जब तक अज्ञान के कारण एक ही परमतत्त्व में अनेक वस्तुओं के भेद प्रतीत होते हैं तब तक यह भ्रम भी रह सकता है कि जो वस्तुएँ पहले थीं वे अब भी है और स्वप्न में भी जिस प्रकार जाग्रत् स्वप्न आदि अवस्थाओं के अलग-अलग भेद प्रतीत होते हैं । एवं उनमें भी विधि निषेध के शास्त्र रहते हैं । इसी तरह जब तक इन विभिन्नताओं का मोह बना रहेगा तब तक यहाँ भी विधि एवं निषेध के शास्त्र हैं ही ।।६१।।

भावार्थ दीपिका

नन्ववयविनोऽभावे आगमापायिषु बाल्यादिषु सोऽयं देवदत्त इति प्रत्यभिज्ञानं न स्यात् । तदुक्तं भट्टैः-'आविर्भावतिरोभाव-धर्मकेष्वनपायि यत् । तद्धर्मि, इति तत्राह- स्यादिति । वस्तुतः परमात्मनो विकल्पे भेदेऽसति । यद्वा वस्तुनोऽविद्यया विकल्पे सति पूर्वपूर्वारोपसादृश्यात्स एवेति भ्रमः स्यात् । स च तावदेव यावदविद्यानिवृत्तिः । ननु सर्वमिथ्यात्वे शास्त्रस्य विधिनिषेधकता कथं तत्राह- स्वप्नमध्ये जाग्रत्स्वापव्यवस्था यथेति ।।६१।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि अवयवी का अभाव होने पर सदा बदलते रहने वाली बाल्य, युवा आदि अवस्थाओं के कारण, यह वही देवदत्त है इस तरह की प्रत्यभिज्ञा नहीं हो सकती है । इसी बात को श्रीकुमारिल भट्ट ने कहा भी है **आविर्भावतिरोभाव धर्मकेष्वनपयि यत् तद्धर्मी** । अर्थात् सदा बदलते रहने वाले धर्मों में जो नहीं बदलने वाला होता है उसी को धर्मी कहते है । तो इसके उत्तर में नारदजी कहते हैं परमात्मा में कोई भेद वास्तविक नहीं रहने पर । अथवा अविद्या के कारण ब्रह्म में भेद रहने पर पूर्व-पूर्व आरोप के सादृश्य के कारण ही यह वही है, इस प्रकार का भ्रम होता है । वह भ्रम तब तक ही रहेगा जब तक की अविद्या की निवृत्ति नही हो जाय । प्रश्न होता है कि सवों का मिथ्यात्व स्वीकार करने पर विधि एवं निषेध का प्रतिपादन करने वाले शास्त्रों की स्थिति क्या होगी, क्योंकि वे भी तो सर्व के अन्तर्गत आते हैं । इस पर कहते हैं— जिस तरह स्वप्न में भी जाग्रत् स्वप्न की व्यवस्था होती है उसी तरह विधि शास्त्रों की व्यवस्था होती है । अर्थात् वे भी उसी तरह मिथ्या हैं जिस तरह स्वप्न काल में प्रतीत होने वाले जाग्रत् स्वप्न मिथ्या होते हैं ।।६१।।

भवाद्वैतं क्रियाद्वैतं द्रव्याद्वैतं तथात्मनः । वर्तयन्स्वानुभूत्येह त्रीन्स्वप्नान्धुनुते मुनिः ॥६२॥

अन्वयः— आत्मनः स्वानुभूत्या वर्तयन् मुनिः त्रीन् स्वप्नान् धुनुते तथा भावाद्वैतं क्रियाद्वैतं द्रव्यादैतञ्च ॥६२॥

अनुवाद— जो विचारशील पुरुष अपनी अनुभूति से आत्मा के विविध अद्वैतों का साक्षात्कार करते हैं वे जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति, द्रष्टा, दर्शन तथा दृश्य के भेद रूप स्वप्न को मिटा देते हैं । वे अद्वैत तीन प्रका के है, भवाद्वैत, क्रियाद्वैत और द्रव्याद्वैत ॥६२॥

भावार्थ दीपिका

इदानीमुक्तमेवाद्वैतं भावनात्रयोपदेशेन दृढीकरोति-भावाद्वैतमिति चतुर्भिः । वर्तयन्नालोचयन् । स्वानुभूत्या आत्मतत्वानुभवेन। त्रीन् । जाग्रदादीन । 'त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्राः' इति श्रुतेः । यद्वा वस्तुभेदबुद्धिरेकः स्वप्नः । ततस्तत्तदधिकारभेदेन कर्मभेदवुद्धिर्द्वितीयः । ततो मत्कर्मसाधितमेतत्फलं ममैव भोग्यमिति तृतीयः । तान्धुनुते निवर्तयति ॥६२॥

भाव प्रकाशिका

जिस अद्वैत का प्रतिपादन किया जा चुका है उसी को तीन भावनाओं के उपदेश के द्वारा सुदृढ **भावाद्वैतम् इत्यादि** चार श्लोकों से करते हैं । **वर्तयन्** अर्थात् विचार करते हुए । स्वानुभूत्या अर्थात् आत्मतत्त्व का अनुभव हो जाने के कारण । त्रीन् अर्थात् जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तथा द्रष्टा दर्शन और दृश्य को । श्रुति भी कहती है- त्रय अवस्था: त्रय: स्वप्ना: । तीन निवास स्थान और तीन स्वप्न होते है । अथवा वस्तु भेद विषयक एक पहला स्वप्न हैं । उसके पश्चात् उनके अधिकार भेद के कारण होने वाली कर्मभेदविषयिणी बुद्धि का होना दूसरा स्वप्न है। उसके पश्चात् मेरे कर्म से उत्पन्न होने वाला यह फल मेरा भोग्य है । इस प्रकार की होने वाली प्रतीति तीसरा स्वप्न हैं । मननशील पुरुष इन तीनों स्वप्नों को मिटा देते हैं ॥६२॥

कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्शनं पटतन्तुवत् । अवस्तुत्वाद्विकल्पस्य भावाद्वैतं तदुच्यते ॥६३॥

अन्वयः— पटतन्तुवत् कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्शनम् विकल्पस्य अवस्तुत्वात् तत् भवाद्वैतम् उच्यते ॥६३॥

अनुवाद— जिस तरह वस्त्र तन्तु रूप ही होता है उसी तरह कार्य और कारण दोनों एक ही वस्तु है, क्योंकि भेद तो वास्तविक है ही नहीं इसी को भावाद्वैत कहते हैं ॥६३॥

भावार्थ दीपिका

कार्यकारणयोर्वस्त्वैक्यस्य मर्शनमालोचनं तन्तुरेव न पट इति ॥६३॥

भाव प्रकाशिका

तन्तु और वस्त्र के समान, कार्य एवं कारण एक ही द्रव्य हैं, इस प्रकार का विचार करना भावाद्वैत कहलाता है ॥६३॥

यद्ब्रह्मणि परे साक्षात्सर्वकर्मसमर्पणम् । मनोवाक्तनुभिः पार्थ क्रियाद्वैतं तदुच्यते ॥६४॥

अन्वयः— हे पार्थ ! मनोवाक्तनुभिः यत् सर्वं कर्म, साक्षात् परेब्रह्मणि समर्पणं तत् क्रियाद्वैतं उच्यते ॥६४॥

अनुवाद— हे युधिष्ठिर ! मन, वाणी और शरीर से होने वाले जितने भी कर्म है, उन सभी कर्मों को साक्षात् परब्रह्म को समर्पित किया जाता है, उसे क्रियाद्वैत कहते हैं ॥६४॥

भावार्थ दीपिका

मनोवाक्तनुभिः कृतानां कर्मणां समर्पणं, तैः समर्पणमिति वा । उद्देश्यफलभेदो हि क्रियाभेदे हेतुः-ईश्वरार्पणे च तदभावात्क्रियाणामद्वैतम् ॥६४॥

भाव प्रकाशिका

मन, वाणी और शरीर से हुए कर्मों को परमात्मा को समर्पित करना अथवा मन, वाणी और शरीर से कर्मों को समर्पित करना । क्रियाओं में होने वाले भेदों का कारण उद्देश्य की भिन्नता तथा फल की भिन्नता है । परमात्मा को समर्पित कर देने पर उसका अभाव हो जाता है इसीलिए यह क्रियाद्वैत है ॥६४॥

आत्मजायासुतादीनामन्येषां सर्वदेहिनाम् । यत्स्वार्थकामयोरैक्यं द्रव्याद्वैतं तदुच्यते ॥६५॥

अन्वयः— आत्मजायासुतादीनाम् अन्येषां सर्वदेहिनाम् यत् स्वार्थकामयोः ऐक्यम् तत् द्रव्याद्वैतम् उच्यते ॥६५॥

अनुवाद— अपनी पत्नी, पुत्र आदि तथा दूसरे समस्त प्राणियों का स्वार्थ और भोग एक ही है इस प्रकार का विचार करना द्रव्याद्वैत कहलाता है ॥६५॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनः स्वस्य जायादीनां च स्वार्थश्च कामश्च तयोः देहादीनां पञ्चभूतात्मकत्वेन भोक्तुश्च परमात्मत्वेनाभेदालोचनेनार्थकामयोर्यदैक्यदर्शनमित्यर्थः ॥६५॥

भाव प्रकाशिका

अपना तथा पत्नी आदि का स्वार्थ एवं काम दोनों के शरीर आदि के पञ्चमहाभूतात्मक होने के कारण इन सबों के परमात्मा के होने के कारण अभेद का चिन्तन करने से स्वार्थ एवं काम के अभेद दर्शन ही द्रव्या दर्शन है ॥६५॥

यद्यस्य वाऽनिषिद्धं स्याद्येन यत्र यतो नृप । स तेनेहेत कर्माणि नरो नान्यैरनापदि ॥६६॥

अन्वयः— नृप यस्य, यद यत्र, येन यतः अनिषिद्धं स्यात् स नरः तेन कर्माणि इहेत अनापदि अन्यैः न ॥६६॥

अनुवाद— हे राजन् ! जिस पुरुष के लिए जिस द्रव्य को जिस समय जिस उपाय से जिससे ग्रहण करना शास्त्र सम्मत हो उसको उसी से अपने सभी कार्यों को सम्पन्न करना चाहिए आपत्ति काल के बिना दूसरे साधनों से नहीं सम्पन्न करना चाहिए ॥६६॥

भावार्थ दीपिका

उक्तानाश्रमधर्मान्संक्षिप्याह-यदिति । यद्द्रव्यम् । येनोपायेन । यतः सकाशात् ॥६६॥

भाव प्रकाशिका

उपरिवर्णित आश्रम धर्मों को संक्षेप कहते हैं इस श्लोक से **यत्** अर्थात् जो द्रव्य, **येन** अर्थात् जिस उपाय से **यतः** अर्थात् जिससे ॥६६॥

एतैरन्यैश्च वेदोक्तैर्वर्तमानः स्वकर्मभिः । गृहेऽप्यस्य गतिं यायाद्राजंस्तद्भक्तिभाङ्नरः ॥६७॥

अन्वयः— हे राजन् ! भक्तिभाक् नरः वेदोक्तैः एतैः अन्यैः च स्वकर्मभिः वर्तमानः गृहे अपि अस्य गतिं यायात्॥६७॥

अनुवाद— हे महाराज ! भगवद् भक्त मनुष्य वेदों में वर्णित इन कार्मो के अनुष्ठान से अथवा अन्यान्य स्वकर्मों के अनुष्ठान से अपने घर में रहते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की गति को प्राप्त करता है ॥६७॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमुपसंहरति-एतैरिति । अस्य श्रीकृष्णस्य गतिम् तद्भक्तिभाक् तस्य भक्तः ॥६७॥

भाव प्रकाशिका

एतै० इत्यादि श्लोक से प्रस्तुत प्रकरण का उपसंहार किया गया है । **अस्य गतिम्** अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण की गति को **तद्भक्तिभाक्** श्रीभगवान् का भक्त ॥६७॥

यथा हि यूयं नृपदेव दुस्त्यजादापद्गणादुत्तरतात्मनः प्रभोः ।
यत्पादपङ्केरुहसेवया भवानहारषीन्निर्जितदिग्गजः क्रतून् ॥६८॥

अन्वयः— हे नृपदेव यथा यूयं आत्मनः प्रभोः यत् पादपङ्केरूह सेवया दुस्त्यजादापद्गणात् उत्तरत निर्जितदिग्गजान् क्रतून् भवान् अहार्षीत् ॥६८॥

अनुवाद— हे राजवर्य, जिस प्रकार आपलोग अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा तथा उनकी कृपा से बड़ी-बड़ी विपत्तियों को पार कर लिए हैं तथा जिनकी ही कृपा से भूण्डल को जीतकर आपने राजसूय आदि अनेक यज्ञों को किया है ॥६८॥

भावार्थ दीपिका

एतत्सर्व साधारणमुक्तम्, भक्तस्य तु भक्तिरेव सर्वपुरुषार्थहेतुरिति पाण्डवानेव लक्षीकृत्याह–यथा हीति । हे नृपदेव, नृपैर्देवैश्च सहायैर्दुस्त्यजादिति वा । आत्मनः श्रीकृष्णादेव प्रभोर्हेतोः । अडभाव आर्ष; । उत्कर्षेणातरतेत्यर्थ; । यथा यथावत् तमेव भजतेति शेष; । यद्वा यथा आपद्गणादुत्तीर्णस्त्वम् । यथा च क्रतूनहार्षीत्तथा श्रीकृष्णादेव तारकात्संसारादप्युत्तरतेत्यर्थः॥६८॥

भाव प्रकाशिका

इन सारी बातों को तो समान रूप से सबों के लिए कहा गया है । जो भक्त होता है उसके समस्त पुरुषार्थों की सिद्धि तो भक्ति के ही द्वारा हो जाती है, इस बात को पाण्डवों को लक्ष्य बनाकर **यथा हि० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । हे नृपदेव अर्थात् हे राजवर्य । अथवा राजाओं और देवताओं की सहायता से भी जिन विपत्तियों से नहीं बच सकते थे । **आत्मनः प्रभोः** भगवान् श्रीकृष्ण को ही अपना स्वामी मानने के कारण, यहाँ अट् का अभाव आर्ष है । उत्तरत अर्थात् उत्कृष्टरूप से पार कर गये । यथा अर्थात् उसी तरह आपलोग उनकी सेवा करें। **अथवा** जिस तरह से आपलोग विपत्ति समूह से बच गये तथा जैसे आपने यज्ञों को किया, वह सबकुछ भगवान् श्रीकृष्ण के ही कारण सम्भव हो सका । उन्हीं संसार तारक की कृपा से संसार से भी पार हो जाओ ॥६८॥

अहं पुराऽभवं कश्चिद्गन्धर्व उपबर्हणः । नाम्नाऽतीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सुसंमतः ॥६९॥

अन्वयः— पुरा अहं अतीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सुसंमतः नाम्ना उपबर्हणः गन्धर्वः अभवम् ॥६९॥

अनुवाद— पूर्वजन्म में इससे पहले के महाकल्प में मैं गन्धर्वों के अत्यन्त अभीष्ट उपबर्हण नामक गन्धर्व था ॥६९॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णसेवा महतामवज्ञया भ्रश्यति तत्कृपया च सिध्यतीति दर्शयन्पूर्ववृत्तान्तमाह–अहमिति सार्धैः पञ्चभिः । नाम्ना उपबर्हणः॥६९॥

भाव प्रकाशिका

महापुरुषों का अपमान करने से भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा व्यर्थ हो जाती है और महापुरुषों की कृपा से भगवान् की सेवा सफल होती है, यह बतलाते हुए नारदजी अपने पूर्व जन्म के वृत्तान्त को **अहम् इत्यादि** साढे पाँच श्लोकों से बतलाते हैं । उस जन्म में उनका नाम उपबर्हण था ॥६९॥

रूपपेशलमाधुर्यसौगन्ध्यप्रियदर्शन; । स्त्रीणां प्रियतमो नित्यं मत्तस्तु पुरुलम्पटः ॥७०॥

अन्वयः— रूपपेशलमाधुर्यसौगन्ध्यप्रियदर्शः नित्यं स्त्रीणां प्रियतमः मतः तु पुरुलम्पटः ॥७०॥

अनुवाद— रूप सौकुमार्य तथा सौगन्ध्य के कारण देखनें में बहुत अच्छा लगता था, स्त्रियाँ मुझसे बहुत प्रेम करती थी । मैं सदा मदमत्त बना रहता था और मैं अत्यन्त विलासी था ॥७०॥

भावार्थ दीपिका

पेशलं सौकुमार्यं रूपादिभिः प्रियं दर्शनं यस्य ।।७०।।

भाव प्रकाशिका

पेशलम् सुकुमारता । रूप इत्यादि के कारण जो मैं देखने में बहुत अच्छा लगता था ।।७०।।

एकदा देवसत्रे तु गन्धर्वाप्सरसां गणाः । उपहूता विश्वसृग्भिर्हरिगाथोपगायने ।।७१।।

अन्वयः— एकदा तु देवसत्रे विश्वसृग्भिः हरि गाथोपगायने गन्धर्वाप्सरसांगणाः उपहूताः ।।७१।।

अनुवाद— एक बार देवताओं के ज्ञान सत्र में प्रजापतियों के द्वारा श्रीभगवान् की लीला का गान करने के लिए गन्धर्वों अप्सराओं को बुलाया गया था ।।७१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७१।।

अहं चे गायंस्तद्विद्वांस्त्रीभिः परिवृतो गतः । ज्ञात्वा विश्वसृजस्तन्मे हेलनं शेपुरोजसा ।।
याहि त्वं शूद्रतामाशु नष्ट श्रीः कृतहेलनः ।।७२।।

अन्वयः— अहं तद् विद्वान् स्त्रीभिः परिवृतः गायन् गतः तत् मे हेलनं ज्ञात्वा विश्वसृजः ओजसा शेपुः कृतहेलनः त्वम् आशु नष्ट श्रीः शूद्रतां याहि ।।७२।।

अनुवाद— मैं यह जानता कि यह सभा सत्पुरुषों की है, फिर भी स्त्रियों से घिरा हुआ वहाँ मैं लौकिक गीत गाता हुआ गया । देवताओं ने देखा कि यह हमलोगों का अनादर कर रहा है । उन लोगों ने मुझे अपनी शक्ति से शाप दे दिया कि तुमने हमलोगों का अनादर किया अतएव तुम्हारी सारी सौन्दर्य सम्पत्ति नष्ट हो जाय और तुम शीघ्र ही शूद्र हो जाओ ।।७२।।

भावार्थ दीपिका

तदाह्वानं विद्वान् । उन्मत्तः सन् गायन्नेव गतः ।।७२।।

भाव प्रकाशिका

मैं उस आमन्त्रण के विषय में जानता था फिर भी उन्मत्त मैं वहाँ गाते हुए गया ।।७२।।

तावद्दास्यामहं जज्ञे तत्रापि ब्रह्मवादिनाम् । शूश्रूषयाऽनुषङ्गेण प्राप्तोऽहं ब्रह्मपुत्रताम् ।।७३।।

अन्वयः— तावद् अहं दास्यां जज्ञे तत्रापि ब्रह्मवादिनाम् शुश्रुषया अनुषङ्गेण अहं ब्रह्मपुत्रतां प्राप्तः ।।७३।।

अनुवाद— उस शाप के कारण मैंने दासीपुत्र के रूप में जन्म लिया । उस जन्म में भी मैं ब्रह्मवादी पुरुषों की सेवा के कारण तथा उनकी सङ्गति के कारण मैं ब्रह्माजी का पुत्र हुआ ।।७३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७३।।

धर्मस्ते गृहमेधीयो वर्णितः पापनाशनः । गृहस्थो येन पदवीमञ्जसा न्यासिनामियात् ।।७४।।

अन्वयः— ते पापनाशनः गृहमेधीयः धर्मः वर्णितः येन गृहस्थः अञ्जसा न्यासिनां पदवीम् इयात् ।।७४।।

अनुवाद— इस तरह मैंने पापों का विनाश करने वाले गृहस्थों के धर्म को सुनाया है । उसका पालन करने वाला गृहस्थ भी मृत्यु के पश्चात् उस लोक में जाता है जिस लोक में संन्यासी लोग जाते हैं ।।७४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७४।।

यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ।
येषां गृहानावसतीति साक्षाद्गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥७५॥

अन्वयः— बत यूयं नृलोके भूरिभागाः, येषां गृहान् लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति । येषां गृहान् मनुष्य लिङ्गम् साक्षात् परं ब्रह्म गूढं आवसति ॥७५॥

अनुवाद— निश्चित रूप से आपलोग इस मनुष्य लोक में अत्यधिक भाग्यवान् हैं, क्योंकि आपलोगों के घर संसार को पवित्र बना देने वाले मुनिजन चारो ओर से इसलिए आते हैं कि आपलोगों के घर में मनुष्य शरीरधारी साक्षात् परंब्रह्म परमात्मा छिपकर निवास करते हैं ॥७५॥

भावार्थ दीपिका

त्वं तु कृतार्थ एवेति हर्षेण पुनः पूर्वश्लोकानेव पठति-यूयमिति । शेषं स्पष्टम् ॥७५॥

भाव प्रकाशिका

यूयम० इत्यादि श्लोकों में नारदजी कहते हैं कि तुम तो कृतार्थ हो ही, इस तरह से हर्ष पूर्वक्त श्लोकों में ही पढ़ते है ॥७५॥

स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्यं कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ।
प्रियः सुहृद्वः खलु मातुलेय आत्मार्हणीयो विधिकृद्गुरुश्च ॥७६॥

अन्वयः— स वा अयं महद्विमृग्यं ब्रह्म कैवल्य निर्वाणसुखानुभूतिः प्रियः सुहृद् खलु मातुलेयः, आत्मा, अर्हणीयः विधिकृत् गुरुश्च ॥७६॥

अनुवाद— वे वही ब्रह्म है जिनका बड़े-बड़े महापुरुष अन्वेषण किया करते हैं जो माया के लेश से रहित परम शान्त परमानन्दानुभव स्वरूप हैं । वे ही तुम्हारे प्रिय, हितेषी, ममेरे भाई पूज्य आज्ञाकारी गुरु तथा आत्मा श्रीकृष्ण हैं ॥७६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७६॥

न यस्य साक्षाद्भवपद्मजादिभी रूपं धियो वस्तुतयोपवर्णितम् ।
मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः प्रसीद तामेष स सात्वतां पतिः ॥७७॥

अन्वयः— साक्षात् भवपद्मजादिभिः धिया यस्य रूपंवस्तुतया न उपवर्णितम् स सात्वतं पतिः मौनेन भक्त्या, उपशमेन पूजितः प्रसीदताम् ॥७७॥

अनुवाद— साक्षात् शङ्करजी ब्रह्मा आदि भी अपनी सारी बुद्धि लगाकर भी ये भगवान् ऐसा ही इस तरह से निरूपण नहीं कर सके वे भक्तवत्सल भगवान् मेरे मौन, भक्ति और संयम के द्वारा पूजित होकर हम पर प्रसन्न हों ॥७७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७७॥

श्रीशुक उवाच

इति देवर्षिणा प्रोक्तं निशम्य भरतर्षभः । पूजयामास सुप्रीतः कृष्णं च प्रेमविह्वलः ॥७८॥

अन्वयः— इति देवर्षिणाप्रोक्तं निशम्य सुप्रीतः भरतर्षभः प्रेमविह्वलः कृष्णं च पूजयामास ॥७८॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से देवर्षि नारदजी के प्रवचन को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए महाराज युधिष्ठिर प्रेम विह्वल होकर नारदजे तथा भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा किए ॥७८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७८॥

कृष्णपार्थावुपामन्त्र्य पूजितः प्रययौ मुनिः । श्रुत्वा कृष्णं परं ब्रह्म पार्थः परमविस्मितः ॥७९॥

अन्वयः— कृष्णपार्थौ उपामन्त्र्य पूजितः मुनिः प्रययौ कृष्णं परंब्रह्म श्रुत्वा पार्थः परम विस्मितः ।।७९।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण और राजा युधिष्ठिर से विदा लेकर एवं पूजा प्राप्त करके नारदजी चले गये और भगवान् श्रीकृष्ण ही परंब्रह्म हैं यह सुनकर राजा युधिष्ठिर को अत्यधिक आश्चर्य हुआ ।।७९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७९।।

इति दाक्षायणीनां ते पृथग्वंशाः प्रकीर्तिताः । देवासुरमनुष्याद्या लोका यत्र चराचराः ॥८०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां वैयासिक्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते
युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥
समाप्तोऽयं सप्तमः स्कन्धः ॥७॥

अन्वयः— इति दाक्षायणीनां ते पृथग् वंशाः प्रकीर्तिताः यत्र देवासुर मनुष्याद्याः चराचराः लोकाः सन्तीति शेषः।।८०।।

अनुवाद— इस तरह मैंने तुम्हे दक्ष पुत्रियों के वंशों का अलग-अलग वर्णन सुनाया उन्हीं के वंशो में देवता, असुर तथा मनुष्य आदि सम्पूर्ण चराचर लोक विद्यमान हैं ।।८०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण नामक महर्षि व्यास प्रणीत संहिता के सातवें अध्याय के प्रह्लाद चरित के प्रसङ्ग में युधिष्ठिर नारद संवाद के अन्तर्गत सदाचार निर्णय नामक पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

इस तरह सातवाँ स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

भावार्थ दीपिका

सप्तमस्कन्धगूढार्थपदभावार्थदीपिका । संसेव्यतां सदा सद्भिर्यतिश्रीधरनिर्मिता ।।८०।। ।।१।।

श्रीमद्भागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भागवतभावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः।।१५।।

समाप्तोऽयं सप्तमः स्कन्धः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से यति श्रीधरस्वामी द्वारा प्रणीत सप्तमस्कन्ध की गूढार्थपदभावार्थ दीपिका नामक टीका का सत्पुरुष सेवन करें ।।८०।। १।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के सातवें स्कन्ध के श्रीधर स्वामी प्रणीत भागवतभावार्थ दीपिका नामक टीका के पन्द्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) प्रणीत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुआ।।१५।।

इस तरह सातवाँ स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

।। ओम नमो भगवते वासुदेवाय ।।

आठवाँ स्कन्ध

प्रथम अध्याय

मन्वन्तरों का वर्णन

राजोवाच

स्वायंभुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः । यत्र विश्वसृजां सर्गो मनू

अन्वयः— हे गुरो अयम् इह स्वायम्भुवस्य वंशः विस्तरात् श्रुतः यत्र विश्वसृजां सर्गः न

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— हे गुरुदेव ! यहाँ तक मैंने स्वायम्भुव मनु के वंश का वर्णन विस्त
आप हमें दूसरे मनुओं का वर्णन सुनाइये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अथाष्टमे चतुर्विंशत्यध्यायैर्मनुवर्णनम् । तत्सुतैर्ऋषिदेवेन्द्रैर्मूर्तिभिश्च हरेः सह । प्रतिमन्वन्तरं
प्रवर्तयन्ति सद्धर्मान्पालयन्त्याचरन्ति च । अतो मन्वन्तरस्योक्तं सद्धमं इति लक्षणम् । येन वै
तत्र तु प्रथमे स्वायंभुवः स्वारोचिषस्तथा । उत्तमस्तामसश्चेति चतुर्मनुनिरूपणम् । स्वायंभुवे
मुदितः परिपप्रच्छ सर्वमन्वन्तरस्थितिम् । स्वायंभुवस्येति त्रिभिः यत्र विश्वसृजां मरीच्यादीनां मनु

भाव प्रकाशिका

आठवें स्कन्ध में चौबीस अध्यायों में मनुपुत्रों, उस मन्वन्तर के ऋषियों इन्द्रों
साथ मनुओं का वर्णन है । प्रत्येक मन्वन्तर में मनु, मनु पुत्र, ऋषि, इन्द्र तथा श्रीहरि
अलग होते हैं । ये सद्धर्म का प्रवर्तन और पालन करते हैं तथा आचरण भी करते
सद्धर्म स्वरूप कहा गया है । उन धर्मों का पालन करने वाला मनुष्य नरक में नहीं
में स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम तथा तामस इन चार मन्वन्तरों का निरूपण है । स्वा
कठिन गुणों का वर्णन किए जाने के कारण प्रसन्न होकर राजा परीक्षित् ने सभी मन्व
में पूछा । **स्वायम्भुवस्य० इत्यादि** तीन श्लोकों से स्वायम्भुव मन्वन्तर के विषय में
मन्वन्तर में महाराज मनु की कन्याओं के गर्भ से मरीचि आदि प्रजापतियों के पुत्र पौ

यत्र यत्र हरेर्जन्म कर्माणि च महीयसः । गृणन्ति कवयो ब्रह्मंस्तानि न

अन्वयः— ब्रह्मन् यत्र यत्र महीयसः हरेः जन्म कर्माणि च कवयः गृणन्ति तानि श्

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! जिस-जिस मन्वन्तर में महिमा सम्पन्न श्रीहरि के जन्म
किया करते हैं, उन सबों को हम सुनना चाहते हैं, अतएव उन सबों को आप बत

भावार्थ दीपिका

महीयसोः हरेः । अत्र क्वचिद्वहु पाठान्तरमस्तितदुपेक्षितमस्माभिः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

महीयसः हरेः के बदले में कहीं पर बहुत अधिक पाठान्तर है । उन सबों की मैंने (श्रीधर स्वामी) ने उपेक्षा कर दी है ॥२॥

यद्यस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन्भगवान्विश्वभावनः । कृतवान्कुरुते कर्ता ह्यतीतेऽनागतेऽद्य वा ॥३॥

अन्वयः— हे भगवन् ! विश्वभावनः भगवान् यस्मिन् अतीते अन्तरे यत् कृतवान् अद्यवा कुरुते अनागते कर्ता तन्नो वद इति शेषः ॥३॥

अनुवाद— हे भगवन् ! विश्व कलयाण कर्ता श्रीभगवान् जिस अतीत कालिक मन्वन्तर में जिन लीलाआ को किए, वर्तमान काल में जो कर रहे हैं तथा भविष्यत् कालिक मवन्तर में जिन लीलाओं को करेंगे उन सबों को आप मुझे बतलाएँ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

यस्मिन्नतीते यत्कृतवान्, यस्मिन्ननागते यत्कर्ता करिष्यति, अद्यवा वर्तमाने यत्कुरुते तद्वदेत्यन्वयः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

जिस अतीत कालिक मन्वन्तर में भगवान् ने जो किया, जिस अनागतकालिक मन्वन्तर में जो करने वाले हैं तथा वर्तमान में जो कर रहे हैं उन सबों को आप मुझे बतलाइये ॥३॥

ऋषिरुवाच

मनवोऽस्मिन्व्यतीताः षट् कल्पे स्वायंभुवादयः । आद्यस्ते कथितो यत्र देवादीनां च संभवः ॥४॥

अन्वयः— अस्मिन् कल्पे स्वयम्भुवादयः षट् मनवः व्यतीताः । ते आद्यः कथितः यत्र च देवादीनां सम्भवः ॥४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस कल्प में स्वायम्भुव आदि छह मनु बीत चुके हैं । उनमें से प्रथम मनु का वर्णन मैं तुम्हे सुना चुका हूँ, जिसमें देवताओं आदि की उत्पत्ति हुई थी ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अस्मिन्कल्पे षण्मनवो व्यतीताः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

इस कल्प में छह मनु बीत चुके हैं ॥४॥

आकूत्यां देवहूत्यां च दुहित्रोस्तस्य वै मनोः । धर्मज्ञानोपदेशार्थं भगवान्पुत्रतां गतः ॥५॥

अन्वयः— तस्य मनोः वै आकूत्यां देवहूत्यां च दुहित्रोः धर्मज्ञानोपदेशार्थं भगवान् पुत्रतां गतः ॥५॥

अनुवाद— उन स्वायम्भुव मनु की पुत्री आकूति से धर्म का उपदेश करने के लिए यज्ञ पुरुष के रूप में तथा देवहूति से ज्ञान का उपदेश करने के लिए कपिल के रूप में उनके पुत्र रूप में भगवान् अवतीर्ण हुए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

तस्य मनोर्दुहित्रोः कपिलयज्ञमूर्तिभ्यां पुत्रतां गतः प्राप्तः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

स्वायम्भुव मनु की पुत्रियों से कपिल एवं यज्ञपुरुष के रूप में उनके पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए ॥५॥

कृतं पुरा भगवतः कपिलस्यानुवर्णितम् । आख्यास्ये भगवान्यज्ञो यच्चकार कुरूद्वह ॥६॥

अन्वयः— हे कुरुद्वह कपिलस्य भगवतः कृतम् पुरा अनुवर्णितम् भगवान् यज्ञ; यत् चकार ते आख्यास्ये ॥६॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! भगवान् कपिल ने जो कुछ किया उसका वर्णन मैं तीसरे स्कन्ध में कर चुका हूँ । अब मैं भगवान् यज्ञ ने जो किया उसका वर्णन करूँगा ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापतिः प्रभुः । विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यो वनमाविशत् ॥७॥

अन्वयः— शतरूपापतिः प्रभुः कामभोगेषु विरक्तः राज्यं विसृज्य तपसे सभार्यः वनम् आविशत् ॥७॥

अनुवाद— महारानी शतरूपा के पति भगवान् स्वायम्भुव मनु काम और भोगों से विरक्त होकर राज्य का परित्याग करके तपस्या करने के लिए वन में चले गये ॥७॥

भावार्थ दीपिका नहीं है ॥७॥

सुनन्दायां वर्शशतं पदैकेन भुवं स्पृशन् । तप्यमानस्तपो घोरमिदमन्वाह भारत ॥८॥

अन्वयः— हे भारत ! सुनन्दायां वर्शशतं एकेन पदाभुवंस्पृशन् घोरं तपः तप्यमानः इदम् अन्वाह ॥८॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! सुनन्दा नदी के तट पर सौ वर्ष पर्यन्त एक पैर पर ही खड़ा होकर घोर तपस्या करते हुए कहे ॥८॥

भावार्थ दीपिका

घोरं दुश्चरं तपस्तप्यमानः समाधावनुभूतमिदं वक्ष्यमाणं निद्रितोच्छ्वसितवद्विस्मित इवोपदिशन्निवानुवदन्निव चाष्टभिः श्लोकैरन्वाह ॥८॥

भाव प्रकाशिका

कठोर तपस्या करते हुए समाधियों में अनुभव किए सोए हुए पुरुष के उछ्वास के समान आगे आठ श्लोकों को द्वारा कहे जाने वाली बातों का अनुवाद करते हुए अथवा उपदेश करते हुए के समान कहे ॥८॥

मनुरुवाच

येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम् । यो जागर्ति शयानेऽस्मिन्नायं तं वेद वेद सः ॥९॥

अन्वयः— येन विश्वं चेतयते विश्वं यम् न चेतयते अस्मिन् यः जागर्ति सः वेद अयं तं न वेद ॥९॥

महाराज स्वयम्भुव मनु ने कहा

अनुवाद— जिनकी चेतना के स्पर्श मात्र से यह विश्व चेतन हो जाता है, किन्तु यह विश्व उन्हें चेतन नहीं बनाता है । सम्पूर्ण जगत् के सो जाने पर भी जो जगते रहते हैं जिनको यह जगत् नहीं जानता किन्तु वे इसे जानते हैं वे ही परमात्मा हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

येन चिदात्मना विश्वं चेतयते चेतनीभवति । विश्वं तु यं न चेतयते न चेतनीकरोति । स्वत एव चिद्रूपत्वात् । तत्र हेतुः- अस्मिन् शयाने स्वपति यो जागर्ति साक्षितया वर्तते । अहो चित्रं नायं जनस्तं वेद । स तु इमं वेद ॥९॥

भाव प्रकाशिका

जिन ज्ञानमात्र परमात्मा के द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व चेतन हो जाता है किन्तु यह विश्व उनको चेतन नहीं बनाता।

क्योंकि वे स्वयं ज्ञान स्वरूप हैं। उसका कारण है कि सम्पूर्ण विश्व के सो जाने पर भी वे साक्षी रूप से जागते रहते हैं। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि यह जगत् उनको नहीं जानता किन्तु वे इस जगत् को जानते हैं वे ही परमात्मा हैं ॥९॥

आत्मावास्यमिदं विश्वं यत्किंचिञ्जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥१०॥

अन्वयः— इदं विश्वम् आत्मा वास्यम् यत् किञ्च जगत्यां जगत् तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा कस्यस्विद् धनम् मागृधः ॥१०॥

अनुवाद— इस जगत में जो कुछ भी जगत् है वह सम्पूर्ण परमात्मा की सत्ता और चैतन्य से व्याप्त है। उस परमात्मा ने जो कुछ भी प्रदान किया है उसी से निर्वाह करो किसी दूसरे के धन की आकाङ्क्षा न रखो ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तस्येश्वरत्वं दर्शयन् लोकस्य हितमुपदिशति–आत्मना ईश्वरेणावास्यं सत्ताचैतन्याभ्यां संव्याप्यं विश्वं सर्वं जगत्यां लोके यत्किंचिज्जगद्भूतजातं अतस्तेनैवेश्वरेण यत्किंचित्त्यक्तं दत्तं धनं तेनैव भुञ्जीथाः भोगान्भुङ्क्ष्व। यद्वा तेन हेतुना त्यक्तेनेश्वरार्पणेन भुञ्जीथा न स्वार्थम्। कस्यस्वित्कस्यचिदपि धनं मा गृधो माऽभिकाङ्क्षीः। यद्वा कस्यस्विदिति कस्यान्यस्य धनमस्ति, यतो धनकाङ्क्षा क्रियेतेत्यर्थ;। तथा च श्रुतिः- 'ईशावास्यम्' इति यथाश्लोकमेव ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उस परमात्मा के ईश्वरत्व को बतलाते हुए संसार को महाराज मनु कल्याण का उपदेश करते हैं। इस संसार में जितने भूत समूह हैं वे सबके सब परमात्मा की सत्ता और चैतन्य के द्वारा अच्छी तरह से व्याप्त है। अतएव उन परमात्मा ने ही जो कुछ तुम्हे प्रदान किया है उसके द्वारा ही भोगों को भोगो। अथवा उस परमात्मा को ही अर्पित करके भोगों को भोगों अपने स्वार्थ के लिए नहीं। किसी के भी धन को प्राप्त करने की आकाङ्क्षा न रखो। अथवा परमात्म व्यतिरिक्त किसी दूसरे का है ? जिससे की उसकी आकांक्षा की जाय ? इस श्लोक के समान ही ईशावस्यम् इत्यादि श्रुति हैं ॥१०॥

यं न पश्यति पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति। तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत ॥११॥

अन्वयः— यं पश्यन्तं चक्षुः न पश्यति यस्य (पश्यतः) चक्षुः न रिष्यति भूत निलयं तं देवं सुपर्णम् उपधावत् ॥११॥

अनुवाद— जिस परमात्मा के देखते रहने से यह मनुष्य अथवा नेत्र उसे नहीं देख पाता है, जिस परमात्मा के देखते रहने पर ज्ञान नष्ट नहीं होता है सभी भूतों में अन्तर्यामी रूप से निवास करने वाले उन जीवात्मा के मित्र परमात्मा की शरणागति करो ॥११॥

भावार्थ दीपिका

ननु यदि सर्वं व्याप्नोति तर्हि चक्षुरादिभिः किं न प्रतीयते तत्राह- यं पश्यन्तं जनश्चक्षुर्वा न पश्यति, चक्षुराद्यविषयत्वात्। नहि प्रमातारं प्रमाणं विपयीकरोतीति भावः। तथा च श्रुतिः- 'चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रम्' इत्यादि। ननु तहि घटनाशे देवदत्तस्य तद्विपयं चाक्षुपं ज्ञानमिवेश्वरस्यापि स्वरूपभूतं तद्विषयं ज्ञानं नश्येत्तत्राह यस्य तु पश्यतश्चक्षुर्ज्ञानं न रिष्यति न नश्यति। तत्तदाकारेणोत्पन्नाया वृत्तेरेव नाशो न स्वतः सिद्धज्ञानस्य। नहि सवितृप्रकाशः प्रकाश्यनाशे नश्यतीति भावः। भूतानि निलयो यस्य तं सर्वान्तर्यामिणं, तथापि सुपर्ण शोभनपतनमसङ्गमुपधावत भजध्वम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि परमात्मा सब में व्यापक है तो फिर वे नेत्रादि के द्वारा ज्ञात क्यों नहीं होते हैं, तो इस पर उन्होंने कहा उस देखने वाले परमातमा को मनुष्य अथवा नेत्र नही देखते है क्योंकि परमात्मा चक्षुरादि इन्द्रियों के विषय नहीं है। लोक में भी देखा जाता है कि प्रमाण प्रमाता को अपना विषय नही बनाता है। श्रुति भी कहती

है परमात्मा नेत्र के भी नेत्र हैं तथा कानों के भी कान हैं । प्रश्न होता है कि तब तो जिस तरह घट का नाश हो जाने पर उस घट विषयक देवदत्त का ज्ञान नष्ट हो जाता है, उसी तरह ईश्वर के भी स्वरूप भूत तद्विषयक ज्ञान के नाश का प्रसङ्ग होगा तो इस पर कहते हैं। उस परमात्मा को देखते रहने पर ज्ञान नष्ट नहीं होता है। अपितु विभिन्न रूप से उत्पन्न होने वाली वृत्ति का ही नाश होता है स्वयम्भप्रकाश ज्ञान का नाश नहीं होता है। लोक में देखा जाता है कि प्रकाश्य घटादि का नाश हो जाने पर सूर्य के प्रकाश का नाश नहीं होता है । सर्वान्तर्यामी वे परमात्मा अनासक्त हैं, उनकी ही सेवा करो॥११॥

न यस्याद्यन्तौ मध्यं च स्वः परो नान्तरं बहिः । विश्वस्यामूनि यद्यस्माद्विश्वं च तदृतं महत् ॥१२॥

अन्वयः— यस्य आद्यन्तौ मध्यं च न, न स्वः परः नान्तरः न बहिः विश्वस्य अमूनि यस्मात्, विश्वं च यत्तत् यत् ऋतं महत् ॥१२॥

अनुवाद— जिस परमात्मा का न आदि है न अन्त है और न मध्य है । उसका न कोई अपना है, न पराया है, न बाहर है न भीतर है, जिस परमात्मा से ही विश्व के ये सब होते है, उस परमात्मा से ही विश्व की सत्ता है वे ही अनन्त परम सत्य है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तस्य स्वरूपस्य नित्यत्वमेवोपपादयन्नाह-न यस्येति । अमून्याद्यन्तादीनि विश्वस्य यस्माद्भवन्ति विश्वं च यत् यद्रूपम्। अत एवाव्यभिचारित्वात्तदृतं सत्यम् । महत् परिपूर्णं ब्रह्म ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

न यस्य० इत्यादि इस श्लोक में स्वरूप की नित्यता का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं । ये आदि अन्त इत्यादि सभी विश्व के धर्म उस परमात्मा से ही होते हैं । विश्व की सत्ता भी उन परमात्मा से ही है । अतएव सर्वत्र व्यापक रहने वाले परमात्मा ही परिपूर्ण ब्रह्म हैं ॥१२॥

स विश्वकायः पुरुहूत ईशः सत्यः स्वयंज्योतिरजः पुराणः ।
धत्तेऽस्य जन्माद्यजयात्मशक्त्या तां विद्ययोदस्य निरीह आस्ते ॥१३॥

अन्वयः— सः विश्वकाय, पुरुहूतः ईशः सत्यः स्वयं ज्योतिः अजः पुराणः अजया आत्मशक्त्या अस्य जन्मादि धत्ते विद्यया तां उदस्य निरीह आस्ते ॥१३॥

अनुवाद— वे परमात्मा विश्व शरीर हैं । उनके अनेक नाम हैं, और वे सर्वशक्तिमान हैं, सत्य हैं, स्वयम्प्रकाश हैं, अजन्मा और पुराण पुरुष हैं । वे अपनी माया शक्ति के द्वारा इस जगत् सृष्टि आदि स्थिति और संहार को स्वीकार करते हैं तथा अपनी विद्या शक्ति के द्वारा उसका त्याग करके निष्क्रिय सत्स्वरूप मात्र हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

ननु विश्वं चेत्तद्रूपं तर्हि तस्य कुतो जन्माद्यभावः स्वप्रकाशत्वं वा, कथं वा जगज्जन्मादिकर्तृत्वेन विकारिणः सत्यत्वं पूर्णत्वं च तत्राह- स ईशोऽजः सत्यश्च स्वप्रकाशश्च पुराणश्च निर्विकारः । विश्वं कायो यस्य । पुरूणि हूतानि नामानि यस्य तथाविधोऽपि यतोऽस्य विश्वस्य जन्मादि स्वशक्त्या मायया धत्ते । तां च नित्यसिद्धया विद्ययोदस्य हित्वा निष्क्रिय एवास्ते॥१३॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि यदि विश्व ही उनका रूप (शरीर) है तो फिर उनके जन्मादि का अभाव कैसे हो सकता है ? अथवा वे स्वयम्प्रकाश कैसे हो सकते है ? जगत् के जन्मादि के कर्ता होने के कारण विकार युक्त परमात्मा की सत्यता अथवा पूर्णता कैसे हो सकती है ? इसके उत्तर में कहते हैं वे ईश (सर्वशक्तिमान) अजन्मा, सत्य

स्वयम्प्रकाश पुराण पुरुष और निर्विकार हैं । यद्यपि सम्पूर्ण विश्व उनका शरीर है तथा उनके अनेक नाम हैं, फिर भी वे विश्व के जन्मादि को अपनी माया नामक शक्ति से स्वीकार करते हैं । और उस माया को अपनी नित्य सिद्ध विद्या शक्ति के द्वारा त्यागकर निष्क्रिय एवं सत्स्वरूप बने रहते हैं ॥१३॥

अथाग्रे ऋषयः कर्माणीहन्तेऽकर्महेतवे । ईहमानो हि पुरुषः प्रायोऽनीहां प्रपद्यते ॥१४॥

अन्वयः— अथ अग्रे ऋषयः अकर्म हेतवे कर्माणि ईहन्ते ईहमानः हि पुरुषः प्रायः अनीहां प्रपद्यते ॥१४॥

अनुवाद— इसीलिए ऋषिगण नैष्कर्म्य की स्थिति के लिए अर्थात् ब्रह्म से एकत्व की प्राप्ति के लिए कर्म का अनुष्ठान करते हैं । प्रायः कर्म करने वाला ही पुरुष अन्त में निष्क्रिय होकर कर्मों से रहित हो जाता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

यस्मादेवमीश्वरः कर्म कृत्वा संत्यज्य नैष्कर्म्येणास्ते, अथास्माद्धेतोः ऋषयोऽप्यग्रे आदौ कर्माणि कुर्वन्ति । किमर्थम्। अकर्महेतवे मोक्षार्थम् । पाठान्तरे कर्मनाशाय । हि यस्मात् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

चूकि इस प्रकार से ईश्वर कर्म को करके फिर उसका त्याग करके नैष्कर्म्य को प्राप्त कर लेते हैं, इसीलिए ऋषिगण पहले कर्मों का अनुष्ठान करते हैं । किसलिए करते हैं ? नैष्कर्म्य की प्राप्ति के लिए । अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति के लिए पाठान्तर होने पर कर्मों का नाश के लिए हि अर्थात् चूकि ॥१४॥

ईहते भगवानीशो न हि तत्र विषज्जते । आत्मलाभेन पूर्णार्थो नावसीदन्ति येऽनु तम् ॥१५॥

अन्वयः— ईशः भगवान् ईहते तत्र आत्मलाभेन पूर्णत्वात् तत्र न विषज्जते, ये तम् अनु नावसीदत्ति ॥१५॥

अनुवाद— सर्वशक्तिमान परमात्मा आत्मलाभ होने के कारण पूर्ण है, अतएव वे उन कर्मों में आसक्त नहीं होते हैं । इसीतरह उनका अनुसरण करने वाले अनासक्त रहकर कर्मों को करके भी कर्मों के बन्धन में नहीं पड़ते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

नन्वीहमानः कर्मभिरवगुण्ठितः कोशकार इव बध्येतैव तत्राह ईहत इति । अतस्तमनुवर्तमाना ये ते नावसीदन्ति न विषज्जन्ते ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि कर्म को करने वाले कर्मों के बन्धन में रेशम के कीड़े के समान बन्ध जाते हैं । तो इसके उत्तर में शुकदेवजी कहते हैं जो लोग उन परमात्मा का अनुसरण करते हैं वे कर्मों के बन्धन में नहीं पड़ते है; दूसरे लोग तो पड़ ही जाते हैं ॥१५॥

तमीहमानं निरहंकृतं बुधं निराशिषं पूर्णमनन्यचोदितम् ।
नॄञ्छिक्षयन्तं निजवर्त्मसंस्थितं प्रभुं प्रपद्येऽखिलधर्मभावनम् ॥१६॥

अन्वयः— बुधं निरहंकृतं पूर्णम् निराशिषं अनन्यचोदितम् तम् ईहमानं नॄन् शिक्षयन्तं निजवर्त्म संस्थितं प्रभुं अखिलधर्म भावनम् प्रपद्ये ॥१६॥

अनुवाद— ज्ञान स्वरूप होने के कारण, अहङ्कार से रहित, सर्वतः परिपूर्ण परमात्मा को किसी भी वस्तु की कामना नहीं है । बिना किसी की प्रेरणा के वे स्वच्छन्द रूप से कर्मों को मनुष्यों को शिक्षा देने के लिए कर्म करते हैं वे अपनी ही मर्यादा में स्थित रहते हैं वे ही सभी धर्मों के प्रवर्तक और उनके जीवन दाता हैं मैं उन्हीं प्रभु की शरणागति करता हूँ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं लोकानुग्रहाय विश्वसृष्ट्यादि यः करोति श्रीरामकृष्णाद्यवतारैश्च वेदोक्तमप्याचरति तं शरणं व्रजामीत्याह–तमिति। निजं वर्त्म नरावतारानुरूपो मार्गस्तत्र सम्यक् स्थितम् । अत ईहमानं कर्माचरन्तम् । तथापि जीववैलक्षण्यमाह–निरहंकृतं निराशिषमनन्यचोदितमिति च । निरहंकारत्वे हेतुः बुधम् । निराशीष्ट्वे हेतुः– पूर्णम् अनन्यनियुक्तत्वे हेतुः–प्रभुम् । तथापि कर्मानुष्ठाने हेतुः– नृन्स्वाचारेण शिक्षयन्तम् । तत्किमर्थं तत्राह–अखिलान्धर्मान्भावयति प्रवर्तयतीति तथा तम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह संसारी जीवों पर कृपा करने के लिए जो परमात्मा सृष्टि आदि कर्मों को करते हैं तथा श्रीराम आदि अवतारों के द्वारा जो भगवान् वेदोक्त आचरणों को भी करते है, उन्हीं परमात्मा की शरण में मै जाता हूँ इस बात को **तमीहमानम्० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । वे मनुष्यावतार के अनुरूप मार्ग को अच्छी तरह से अपनाते हैं अतएव कर्म करते हैं, फिर भी जीवों से विलक्षणता अहङ्कार रहित कहकर बतलाया गया है । उन्हें किसी वस्तु की कामना नहीं है तथा वे स्वच्छन्द रूप से कर्मो को करते हैं । उनके अहङ्कार राहित्य का हेतु है कि वे ज्ञानवान् हैं किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं होने का कारण उनका पूर्णत्व है । अनन्य प्रेरितत्व का कारण है कि वे सबों के स्वामी है । फिर भी कर्मो को करने का कारण है कि वे मनुष्यों को कर्मो को करने का उपदेश देते हैं । यदि कोई कहे कि ऐसा वे क्यों करते हैं ? तो इसका उत्तर है कि वे सभी धर्मो के प्रवर्तक हैं ऐसे श्रीभगवान् की मैं शरणागति करता हूँ ।।१६।।

श्रीशुक उवाच

इति मन्त्रोपनिषदं व्याहरन्तं समाहितम् । दृष्ट्वाऽसुरा यातुधाना जग्धुमभ्यद्रवन्क्षुधा ।।१७।।

अन्वयः— इति मन्त्रोपनिषदं व्याहरन्त समाहितं दृष्ट्वा असुरा यातुधाना जग्धुम् क्षुधा अभ्यद्रवन् ।।१७।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् ! एक बार स्वयम्भुव मनु इस मन्त्रमय उपनिषत् श्रुति का एकाग्रचित से पाठ कर रहे हैं उनको नीद में बड़-बड़ाते हुए जानकर भूखे असुर और राक्षस खा डालने के लिए दौड़े ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

समाहितमपि सन्तं मन्त्रोपनिषदं व्याहरन्तं दृष्ट्वा सुप्तोच्छ्वसितवद्विवशमिव मन्वाना असुरा यातुधानाश्च क्षुधानिमित्तेन जग्धुमत्तुमभ्यद्रवन्नभिदुद्रुवुः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

समाधिस्थ होकर भी मन्त्रोपनिषत् श्रुति का उच्चारण करते हुए स्वायम्भुव मनु को देखकर उनको नींद में बड़-बड़ाते हुए समझकर भूखे असुर राक्षस खा जाने के लिए दौड़ पड़े ।।१७।।

तांस्तथावसितान्वीक्ष्य यज्ञः सर्वगतो हरिः । यामैः परिवृतो देवैर्हत्वाऽशासन्त्रिविष्टपम् ।।१८।।

अन्वयः— तथावसितान् तान् वीक्ष्य सर्वगतः यज्ञः हरि यामैः देवैः परिवृतः तान् हत्वा त्रिविष्टपम् शशास ।।१८।।

अनुवाद— उस तरह से उन सबों को प्रयास करते हुए देखकर सर्वान्तर्यामी यज्ञ पुरुष श्रीहरि अपने याम नामक देवताओं के साथ उन राक्षसों और असुरों को मारकर स्वर्ग का पालन किए अर्थात् स्वयम् इन्द्र हो गये।।१८।।

भावार्थ दीपिका

यामैः स्वपुत्रैः । त्रिविष्टपं स्वर्गमपालयत् । स्वयमेवेन्द्रो बभूवेत्यर्थ; । तत्र प्रतिमन्वन्तरं मन्वादयः षडन्येऽन्ये भवन्ति।

तथाहि सूतो द्वादशे वक्ष्यति । 'मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वरः । ऋषयोंऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ।' इति तत्राद्ये स्वायंभुवो मनुः प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ । यामादयो देवाः । मरीचिप्रमुखाः सप्तऋषयः । यज्ञो हरेरवतारः । इन्द्रश्च स एवेति। तन्मन्वन्तरं पञ्चविधमेव तच्चतुर्थस्कन्धोपक्रमे निरूपितम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

अपने पुत्र याम नामक देवों द्वारा असुरों को मारकर त्रिविष्टपम् अर्थात् स्वर्ग का पालन किए । अर्थात् स्वयम् ही इन्द्र हो गये । प्रत्येक मन्वन्तर में मनु आदि छह होते हैं । सूतजी द्वादश स्कन्ध में कहेंगे भी **मन्वन्तरं मनुः इत्यादि** अर्थात् मन्वन्तर, मनु देवता मनुपुत्र इन्द्र ऋषिगण तथा श्रीहरि के ये छह प्रकार के अंशावतार कहे जाते है । प्रथम मन्वन्तर में स्वायम्भुव मनु, प्रियव्रत और उत्तानपाद उनके पुत्र हुए । याम इत्यादि देवता मरीचि आदि सप्तर्षि तथा यज्ञ नामक श्रीहरि के अवतार और वे ही इन्द्र हुए । वह मन्वन्तर पाँच प्रकार का ही था यह चतुर्थ स्कन्ध के प्रारम्भ में कहा गया है ।।१८।।

स्वारोचिषो द्वितीयस्तु मनुरग्नेः सुतोऽभवत् । द्युमत्सुषेणरोचिष्मत्प्रमुखास्तस्य चात्मजाः ।।१९।।

अन्वयः— द्वितीयः तु स्वारोचिषः मनुः अग्नेः आत्मजः अभवत् । तस्य द्युमत्सुषेणरोचिष्मत् प्रमुखाः आत्मजाः।।१९।।

अनुवाद— दूसरे स्वारोचिष मनु हुए । वे अग्नि के पुत्र थे । उनके द्युमान् सुषेण रोचिष्मान इत्यादि पुत्र थे।।१९।।

भावार्थ दीपिका

द्वितीयादिषु त्रिषु मन्वन्तरेषु मन्वादिषटकमाह-स्वारोचिषो द्वितीयस्त्विति यावद्गजेन्द्रमोक्षप्रश्नम् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

द्वितीय आदि तीन मन्वन्तरों में छह मन्वादिकों का वर्णन **स्वारोचिषो द्वितीयस्तु** से लेकर गजेन्द्रमोक्षविषयक प्रश्न पर्यन्त है ।।१९।।

तत्रेन्द्रो रोचनस्त्वासीद्देवाश्च तुषितादयः । ऊर्जस्तम्भादयः सप्तऋषयो ब्रह्मवादिनः ।।२०।।

अन्वयः— तत्र इन्द्रस्तु रोचनः आसीत् देवाः च तुषितादयः ऊर्जस्तम्भादयः ब्रह्मवादिनः सप्त ऋषयः ।।२०।।

अनुवाद— उस द्वितीय मन्वन्तर में रोचन नामक इन्द्र हुए, तुषित आदि देवता हुए ऊर्ज स्तम्भ आदि वेदवादी गण सप्तर्षि हुए ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

ऋषेस्तु वेदशिरसस्तुषिता नाम पत्न्यभूत् । तस्यां जज्ञे ततो देवो विभुरित्यभिविश्रुतः ।।२१।।

अन्वयः— वेदशिरसः ऋषेः तुषिता नाम पत्नी अभूत् । ततः तस्यां विभुः इत्यभिविश्रुतः देवः जज्ञे ।।२१।।

अनुवाद— वेद शिरा नामक ऋषि की पत्नी का नाम तुषिता था उनके ही गर्भ से विभु नाम से विख्यात श्रीभगवान् का अवतार हुआ ।।२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२१।।

अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो ये धृतव्रताः । अन्वशिक्षन्व्रतं तस्य कौमारब्रह्मचारिणः ।।२२।।

अन्वयः— तस्य कौमारब्रह्मचारिणः अष्टाशीति सहस्राणि ये धृतव्रताः मुनयः व्रतं अन्वशिक्षन् ।।२२।।

अनुवाद— वे आजीवन ब्रह्मचारी थे । उनके ही आचरण से शिक्षा ग्रहण करके अट्ठासी हजार व्रत निष्ठ ऋषियों ने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

विभोरसाधारणं चरितमाह-अष्टाशीतिसहस्राणीति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् विभु के असाधारण चरित को शुकदेवजी ने बताया कि अट्ठासी हजार ऋषियों ने उनसे ब्रह्मचर्य व्रत की शिक्षा ग्रहण की ॥२२॥

तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः । पवनः सृंजयो यज्ञहोत्राद्यास्तत्सुता नृप ॥२३॥

अन्वयः— हे नृप तृतीयः मनुः प्रियव्रत सुतः उत्तमः नाम तत्सुताः पवनः सृञ्जयः यज्ञ होत्राद्याः ॥२३॥

अनुवाद— हे राजन् ! तृतीय मनु महाराज प्रियव्रत के पुत्र उत्तम हुए । उनके पवन, सृञ्जय, यज्ञहोत्र आदि पुत्र थे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

वसिष्ठतनयाः सप्त ऋषयः प्रमदादयः । सत्या वेदश्रुता भद्रा देवा इन्द्रस्तु सत्यजित् ॥२४॥

अन्वयः— वसिष्ठ तनयाः प्रमदादयः सप्तऋषय, सत्या वेदश्रुता भद्रा देवाः, इन्द्रस्तु सत्यजित् ॥२४॥

अनुवाद— उस मन्वन्तर में वसिष्ठ के प्रमद इत्यादि सात पुत्र ही सप्तर्षि थे, सत्य, वेदश्रुत और भद्र आदि देवताओं का गण था इन्द्र का नाम सत्यजित् ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

धर्मस्य सूनृतायां तु भगवान्पुरुषोत्तमः । सत्यसेन इति ख्यातो जातः सत्यव्रतैः सह ॥२५॥

अन्वयः— धर्मस्य सुनृतायां तु भगवान् पुरुषोत्तमः, सत्यसेन इति ख्यातः सत्यव्रतैः सह जातः ॥२५।

अनुवाद— धर्म की पत्नी सुनृता के गर्भ से भगवान् पुरुषोत्तम ने सत्य सेन के नाम से अवतार ग्रहण किए उनके साथ सत्यव्रत नामक देवताओं का गण था ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

सोऽनृतव्रतदुःशीलानसतो यक्षराक्षसान् । भूतद्रुहो भूतगणांस्त्ववधीत्सत्यजित्सखः ॥२६॥

अन्वयः— सत्यजित् सखः सः अनृतव्रत दुःशीलान् असतः यक्षराक्षसान् भूतद्रहः भूतगणान् तु अवधीत् ॥२६॥

अनुवाद— उस समय के इन्द्र सत्यजित् के सखा बनकर वे भगवान् असत्यभाषी दुःशील और दुष्ट यक्षो एवं राक्षसों को तथा जीवों से द्रोह करने वाले भूतगणों को मारे ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

सत्यजित इन्द्रस्य सखा सन् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

उस समय के इन्द्र सत्यजीत के सखा रूप से ॥२६॥

चतुर्थ उत्तमभ्राता मनुर्नाम्ना च तामसः । पृथुः ख्यातिर्नरः केतुरित्याद्या दश तत्सुताः ॥२७॥

अन्वयः— चतुर्थे तामसोन्तरे उत्तम भ्राता नाम्नाच तामसः मनुः, पृथुख्यातिर्नरः केतुरित्याद्या दश तत्सुताः ॥२७॥

अनुवाद— चौथे तामस मन्वन्तर में उत्तम के भाई तामस मनु हुए उनके पृथु, ख्याति, नर, केतु इत्यदि दश पुत्र थे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

उत्तमस्तृतीयो मनुस्तस्य भ्राता तामसश्चतुर्थो मनुः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

तीसरे मनु का नाम उत्तम था और उनके भाई तामस चौथे मनु हुए ॥२७॥

सत्यका हरयो वीरा देवास्त्रिशिख ईश्वरः । ज्योतिर्धामादयः सप्त ऋषयस्तामसेऽन्तरं ॥२८॥

अन्वयः— तामसोन्तरे सत्यका, हरयः वीरादेवाः त्रिशिख ईश्वरः ज्योतिः धर्मादयः सप्त ऋषयः ॥२८॥

अनुवाद— तामसमन्वन्तर में, सत्यक, हरि, वीर नामक देवताओं के प्रधान गण थे, इन्द्र का नाम त्रिशिख था और उस मन्वन्तर में ज्योर्तिधाम आदि सप्तर्षि थे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

त्रिशिख ईश्वर इन्द्रः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र का नाम त्रिशिख था ॥२८॥

देवा वैधृतयो नाम विधृतेस्तनया नृप । नष्टाः कालेन यैर्वेदा विधृताः स्वेन तेजसा ॥२९॥

अन्वयः— नृप ! विधृतेः तनयाः वैधृतयः नाम देवाः यैः कालेन नष्टाः वेदाः स्वेन तेजसा विधृताः ॥२९॥

अनुवाद— परीक्षित् उस समय विधृति के पुत्र वैधृति नामक और देवता थे जो काल क्रम से नष्ट हुए वेदों को अपने तेज से धारण किए थे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अन्यानपि विशिष्टपराक्रमान्देवानाह–देवा वैधृतय इति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

तामस मन्वन्तर के दूसरे विशिष्ट पराक्रम सम्पन्न देवताओं को वैधृति शब्द से कहा गया है ॥२९॥

तत्रापि जज्ञे भगवान्हरिण्यां हरिमेधसः । हरिरित्याहृतो येन गजेन्द्रो मोचितो ग्रहात् ॥३०॥

अन्वयः— तत्रापि भगवान् हरिमेधसः हरिण्यां जज्ञे । हरिः इति आहृतः येन ग्रहात् गजेन्द्रः मोचितः ॥३०॥

अनुवाद— उस मन्वन्तर में श्रीभगवान् हरिमेधा ऋषि की पत्नी हरिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए । उन्होंने हरि शब्द का उच्चारण करने वाले गजेन्द्र की रक्षा ग्राह से की ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

हरिरित्याहृतो व्याहृतः । ग्रहात् ग्राहात् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

हरि नाम से पुकारने जाने के कारण उन्होंने ग्राह से गजेन्द्र की रक्षा की ॥३०॥

राजोवाच

बादरायण एतत्ते श्रोतुमिच्छामहे वयम् । हरिर्यथा गजपतिं ग्राहग्रस्तममूमुचत् ॥३१॥

अन्वयः— हे बादरायणे वयम् ते एतत् श्रोतुम् इच्छामह यथा हरिः ग्राहग्रस्तम् गजपतिम् अमूमुचत् ॥३१॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— महर्षि बादरायण के पुत्र बादरायणे हम आप से यह सुनना चाहते हैं कि किस प्रकार भगवान् श्रीहरि ने ग्राह से ग्रस्त गजेन्द्र की रक्षा की ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

अमूमुचत् मोचयामास ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

अमूमुचत अर्थात् छुड़ा दिया ।।३१।।

तत्कथासु महत्पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभम् । यत्र यत्रोत्तमश्लोको भगवान् गीयते हरिः ।।३२।।

अन्वयः— तत् कथासुमहत् पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभम् यत्र यत्र उत्तमश्लोकः भगवान् हरिः गीयते ।।३२।।

अनुवाद— समस्त कथाओं में वही कथा अत्यन्त पुण्यमयी प्रशंसनीय, मङ्गलमय और शुभ है जिसमें पवित्र कीर्ति भगवान् श्रीहरि का गान किया जाता है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

श्रवणेच्छायां हेतुः-तत्कथासु तासु कथासु । सा कथैव वा सुमहत्पुण्यम् । पुण्यस्य विशेषणं धन्यमित्यादि ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

उन कथाओं में वही कथा अत्यन्त पुण्यमयी है । धन्यम् इत्यादि पुण्य के विशेषण है ।।३२।।

सूत उवाच

परीक्षितैवं स तु बादरायणिः प्रायोपविष्टेन कथासु चोदितः ।
उवाच विप्राः प्रतिनन्द्य पार्थिवं मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम् ।।३३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुचरिते प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

अन्वयः— प्रायोपविष्टेन परीक्षिता एवं कथासुचोदितः स तु बादरायणिः हे विप्राः पार्थिवं मुदा प्रतिनन्द्य मुनीनां सदसि शृण्वताम् उवाचस्म ।।३३।।

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— हे शौनकादि ऋषियों अनशन पर बैठे हुए महाराज परीक्षित द्वारा प्रेरित किए जाने पर महर्षि बादरायण के पुत्र श्रीशुकदेवजी प्रसन्न होकर राजा की प्रशंसा सुनने वाले मुनियों की सभा में किए और उसके पश्चात् उन्होंने कहा ।।३३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के मन्वन्तर वर्णन के प्रसङ्ग में प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३३।।

इति श्रीमद्भगवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भवार्थदीपिकायं टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१।।

दूसरा अध्याय

ग्राह के द्वारा गजेन्द्र का पकड़ा जाना

श्रीशुक उवाच

आसीद्गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः । क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्योजनायुतमुच्छ्रितः ।।१।।

अन्वयः— हे राजन् ! क्षीरोदेनावृतः त्रिकूट इति विश्रुत श्रीमान् योजनायुतम् उच्छ्रितः गिरिवरः आसीत् ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! परीक्षित् क्षीरसागर में त्रिकूट नाम से विख्यात अत्यन्त सुन्दर तथा दस हजार योजन ऊँचा श्रेष्ठ पर्वत था ।।१।।

भावार्थ दीपिका

तुर्ये मन्वन्तरे प्रोक्तं गजेन्द्रस्य विमोक्षणम् । द्वितीयादित्रिभिस्तत्तु विस्तरेणोपवर्ण्यते । द्वितीये तु गजेन्द्रस्य गजीभिः क्रीडतो जले । दैवाद्ग्राहगृहीतस्य हरिस्मृतिरुदीर्यते । आसीदस्ति ।।१।।

भाव प्रकाशिका

चौथे मन्वन्तर में गजेन्द्र मोक्ष को बतलाया गया है । इसका दूसर तीसरे और चौथे इन तीन अध्यायों में विस्तार से वर्णन किया गया है । दूसरे अध्याय में हथिनियों के साथ जल क्रीडा करते हुए गजेन्द्र के दैववशात् ग्राह के द्वारा पकड़े गये गजेन्द्र को श्रीहरि की याद का वर्णन है । आसीत् अर्थात् है ।।१।।

तावता विस्तृतः पर्यक् त्रिभिः शृङ्गैः पयोनिधिम् । दिशः खं रोचयन्नास्ते रौप्यायसहिरण्मयैः।।२।।

अन्वयः— तावता पर्यक् विस्तृतः रौप्यायसहिण्मयैः त्रिभिः शृङ्गै पयोनिधिम् दिशः खं च रोचयन्नास्ते ।।२।।

अनुवाद— उसकी लम्बाई और चौड़ाई भी दस-दस हजार योजन थी वह अपने चाँदी लोहा और सुवर्णमय तीन शिखरों के द्वारा क्षीर सागर, दिशाओं और आकाश को प्रकाशित करता था ।।२।।

भावार्थ दीपिका

तावता योजनायुतेन । पर्यक् परितः । त्रिकूटसमाख्याबीजमाह-त्रिभिः शृङ्गैर्मुख्यैः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

दश हजार योजन के द्वारा । पर्यक् अर्थात् चारो ओर । उस पर्वत के त्रिकूट नाम का कारण बतलाते हुए उन्होंने कहा उस पर्वत के तीन मुख्य शिखर थे ।।२।।

अन्यैश्च ककुभः सर्वा रत्नधातुविचित्रितैः । नानाद्रुमलतागुल्मैर्निर्घोषैर्निर्झराम्भसाम् ।।३।।

अन्वयः— अन्यैः च रत्नधातुविचित्रितैः सर्वाः ककुभः नानाद्रुमलतागुल्मैः निर्झराम्भसाम् घोषैः ।।३।।

अनुवाद— दूसरे भी रत्नों तथा चित्रविविधताओं से सुशोभित शिखरों द्वारा वह सभी को प्रकाशित करता । अनेक प्रकार के वृक्ष लताएँ और झड़ियों से वह सुशोभित था, वह झरनों की झर-झर ध्वनि से गुजित होता रहता था ।।३।।

भावार्थ दीपिका

अन्यैश्च शृङ्गैर्निर्झराम्भसां निर्घोषैश्च ककुभः सर्वा रोचयन्नास्त इति पूर्वेणैवान्वयः । कथंभूतैः शृङ्गैः । रत्नैर्धातुभिश्च विचित्रितैः नानाविधानां द्रुमलतानां गुल्मा येषु तैः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

वह दूसरे रत्नों एवं धातुओं से विचित्र वने हुए शिखरों से तथा झरनों की झर-झर ध्वनि से सभी दिशाओं को सुशोभित करता था उन शिखरों पर अनेक प्रकार के वृक्षे, लताएँ और झाड़ियाँ थीं ॥३॥

स चावनिज्यमानाङ्घ्रिः समन्तात्पयऊर्मिभिः । करोति श्यामलां भूमिं हरिन्मरकतरश्मिभिः ॥४॥

अन्वयः— स च समन्तात् पय ऊर्मिभिः अवनिज्यमानाङ्घ्रि हरिन्मरकतरश्मिभिः भूमिं श्यामलां करोति ॥४॥

अनुवाद— चारो ओर से उठने वाली क्षीर सागर की लहरियाँ मानों उस पर्वत का पाँव पखारती थीं । वह पर्वत अपने हरे रङ्ग की मरकत शिलाओं के द्वारा भूमि को श्याम वर्ण का वना रहा थीं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

पयस ऊर्मिभिः समन्तादवनिज्यमाना अङ्घ्रयो मूलप्रान्ता यस्य । हरिद्भिः पलाशवर्णैः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

दुग्ध की लहरियों से क्षीर सागर मानो चार ओर से उसके पाँव को पखार रहा था । पत्तो के समान वर्ण वाले पत्थरों से ॥४॥

सिद्धचारणगन्धर्वविद्याधरमहोरगैः । किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिर्जुष्टकन्दरः ॥५॥

अन्वयः— सिद्धचारण गन्धर्व विद्याधर महोरगैः किन्नरैः अप्सरोभिः च क्रीडद्भिः जुष्ट कन्दरः ॥५॥

अनुवाद— उस पर्वत की गुफाओं में सिद्ध चरण, गन्धर्व, विद्याधर, नाग, किन्नर तथा अप्सराएँ आदि विहार किया करते थे ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

यत्र संगीतसंनादैर्नदद्गुहममर्षया । अभिगर्जन्ति हरयः श्लाघिनः परशङ्कया ॥६॥

अन्वयः— यत्र संगीत संनादैःनदद्गुहम् अमर्षया श्लाधिनः हरयः परशङ्कया अभिगजीन्ति ॥६॥

अनुवाद— वहाँ पर होने वाले सङ्गीत की प्रतिध्वनित ध्वनि को सुनकर वड़े-बड़े सिंह उसे दूसरे सिंह की ध्वनि समझकर उसको भी दवा देने के लिए और जोर से गर्जना करते है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

किन्नरादीनां संगीतसंनादैर्नदन्त्यो गुहा यस्मिन्प्रदेशे तमभिगर्जन्ति । हरयः सिंहाः । अमर्षया असहनेन ॥६॥

भाव प्रकाशिका

किन्नरों आदि की सङ्गीत ध्वनि से जहाँ पर गुफाएँ प्रतिध्वनित होतीं उसी गुफा के समक्ष सिंह उसे नहीं सह सकने के कारण गर्जना करते हैं ॥६॥

नानारण्यपशुव्रातसंकुलद्रोण्यलंकृतः । चित्रद्रुमसरोद्यानकलकण्ठविहङ्गमः ॥७॥

अन्वयः— नानारण्य पशुव्रात सङ्कुलद्रोण्यलंकृतः चित्रद्रुम सरोद्यानकलकण्ठ विङ्गमः ॥७॥

अनुवाद— वह पर्वत अनेक प्रकार के जङ्गली पशुओं के समूह से परिपूर्ण तलहटी से अलंकृत था तथा उस पर विचित्र वृक्ष सरोवर उद्यान तथा मधुर कण्ठों वाले पक्षियों से सुशोभित रहता था ॥७॥

भावार्थ दीपिका

नाना ये आरण्याः पशवस्तेषां व्रातैः सङ्कुलाभिर्द्रोणीभिरलंकृत आस्ते । किंच चित्रा द्रुमा येषु तेषु सुरोद्यानेषु कलकण्ठा मधुरस्वना विहङ्गमा यस्मिन् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

अनेक प्रकार के पशुओं के समूह से भरी तलहटी से अलंकृत उस पर्वत में अद्भुत वृक्षों वाले देवोद्यानों में मधुर ध्वनि वाले पक्षी बोलते रहते थे ॥७॥

सरित्सरोभिरच्छोदैः पुलिनैर्मणिवालुकैः । देवस्त्रीमज्जनामोदसौरभाम्ब्वनिलैर्युतः ॥८॥

अन्वयः— अच्छोदैः सरित्सरोभिः मणिवालुकैः पुलिनैः देवस्त्रीमज्जनामोदसौरभाम्ब्वनिलैः युतः ॥८॥

अनुवाद— वह पर्वत निर्मल जल वाली नदियों और सरोवरों से युक्त था । उनके तटों पर मणियों का बालू चमकता रहता था, देवाङ्गनाओं के स्नान करने के कारण जो आमोद उससे सुगन्धित बने जल की सुगन्धि लेकर वायु चला करती थी ॥८॥

भावार्थ दीपिका

किंच स्वच्छोदकैः सरित्सरोभिर्युतः । मणय इव वालुका येषु तैः पुलिनैश्च युतः । देवस्त्रीणां मज्जनेन य आमोदस्तेन सौरभयुक्तान्यम्बून्यनिलाश्च तैश्च युत आस्ते ॥८॥

भाव प्रकाशिका

स्वच्छ जल वाली नदियों और सरोवरों से युक्त था वह पर्वत उन सबों के तटों पर मणि के समान बालू चमकता रहता था । देवाङ्गनाओं के स्नान करने के कारण सुगन्धित जल की सुगन्धि लेकर वहाँ वायु चला करती थी ॥८॥

तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः । उद्यानमृतुमन्नाम आक्रीडं सुरयोषिताम् ॥९॥

अन्वयः— तस्य द्रोण्यां भगवतः महात्मनः वरुणस्य ऋतुमत् नाम उद्यानम् सुरयोषिताम् आक्रीडम् आस्ते ॥९॥

अनुवाद— उस पर्वतराज की तराई में महात्मा भगवान् वरुण का ऋतुमान नामक उद्यान देवाङ्गनाओं का क्रीडा स्थान था ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तस्य द्रोण्यां वरुणस्योद्यानमास्ते ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उस पर्वत राज की तराई में वरुण का उद्यान था ॥९॥

सर्वतोऽलंकृतं दिव्यैर्नित्यं पुष्पफलद्रुमैः । मन्दारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचम्पकैः ॥१०॥
चूतैः प्रियालैः पनसैराम्रैराम्रातकैरपि । क्रमुकैर्नालिकेरैश्च खर्जूरैर्बीजपूरकैः ॥११॥
मधूकैः सालतालैश्च तमालैरसनार्जुनैः । अरिष्टोदुम्बरप्लक्षैर्वटैः किंशुकचन्दनैः ॥१२॥
पिचुमन्दैः कोविदारैः सरलैः सुरदारुभिः । द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बूभिर्बदर्यक्षाभयामलैः ॥१३॥
बिल्वैः कपित्थैर्जम्बीरैर्वृतो भल्लातकादिभिः । तस्मिन्सरः सुविपुलं लसत्काञ्चनपङ्कजम् ॥१४॥

अन्वयः— नित्यं दिव्यैः पुष्पफलद्रुमैः मन्दारैः पारिजातैः, पाटलाशोकचम्पकैः चूतैः प्रियालैः पनसैः आम्रैः आम्रातकैः क्रमुकैः नालिकेरैः खर्जूरै, बीजपूरकैः मधूकै सालतालैः तमालैः असनार्जुनैः अरिष्टोदुम्बरप्लक्षैः बटैः किंशुक चन्दनै, पिचुमन्दैः कोविदारैः सुरदारुभिः, द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बूभिः बदर्यक्षाभयामलैः बिल्वैः कपित्थैः जम्बीरैः वृतः भल्लात कादिभिः सर्वतः अलंकृत, तस्मिन् सुविपुलं सरः लसत् काञ्चन पङ्कजम् आस्ते ॥१०-१४॥

अनुवाद— उसमें सब ओर ऐसे दिव्य वृक्ष सुशोभित होते थे जो फलों और फूलों से भरे रहते थे । वह उद्यान मन्दार, परिजात, गुलाब, अशोक, चम्पा, तरह-तरह के आम, प्रियाल, कटहल, आमड़ा, सुपारी, नारियल,

खजूर, विजौरा, महुआ, साखू, ताड़, तमाल, असन, अर्जुन, रींठा, गूलर, पाकड़, वरगद, पलाश, चन्दन, नीम, कचनार, साल, देवदारु, दाख, ईख, केला, जामुन, बेर, रुद्राक्ष, हर्रे, आँवला, बेल कैंथ नीबू तथा भिलावे के वृक्ष से समलंकृत था । उस उद्यान में एक सरोवर था उसमें सुनहले कमल ख्लि रहे थे ॥१०-१४॥

भावार्थ दीपिका

गिरिवनादि सर्वं ध्येयमिति वक्ष्यत्यतो गिरिमुपवर्ण्य वनं वर्णयति-सर्वतोऽलंकृतमिति । पुनगिरिं वर्णयति-मन्दारैरिति चतुर्भिः । मन्दारादिभिर्वृत इत्यन्वयः । तस्मिन् गिरौ सर आस्ते । तद्वर्णयति-सुविपुलमित्यादि सार्धैः पञ्चभिः । लसन्ति काञ्चनपङ्कजानि यस्मिन् ॥१०-१४॥

भाव प्रकाशिका

उस पर्वत पर सरोवर है । उसका वर्णन साढे पाञ्च श्लोकों से करते हैं । उसमें स्वर्णिम कमल सुशोभ्ति हो रहे थे ॥१०-१४॥

कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रश्रियोर्जितम् । मत्तषट्पदनिर्घुष्टं शकुन्तैश्च कलस्वनैः ॥१५॥
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि । जलकुक्कुटकोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम् ॥१६॥
मत्स्यकच्छपसंचारचलत्पद्मरजः पयः । कदम्बवेतसनलनीपवञ्जुलकैर्वृतम् ॥१७॥
कुन्दैः कुरबकाशोकैः शिरीषैः कुटजेङ्गुदैः । कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिर्नागपुन्नागजातिभिः ॥१८॥
मल्लिकाशतपत्रैश्च माधवीजालकादिभिः । शोभितं तीरजैश्चान्यैर्नित्यर्तुभिरलं द्रुमैः ॥१९॥

अन्वयः— कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रश्रियोर्जितम्, मत्तषट्पदनिर्घुष्टं, कलस्वनैः शकुन्तैः च, हंसकारण्डवाकीर्णं, चक्राह्वैः सारसैः अपि, जलकुकुटकोयष्टिदत्यूहकुलकूजितम्, मत्स्यकच्छपसंचार चलत्पद्मरजः पयः, कदम्बवेतसनलनीपवञ्जुलकैः वृतम्, कुन्दै कुरबकाशोकैः, शिरीष कुटजेङ्गुदैः कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिः नागपुन्नागजातिभिः, मलिकाशतपत्रैः च माधवी जालकादिभिः अन्यैः तीरजैः नित्यर्तुभिः द्रुमैः अलमशोभितम् ॥१५-१९॥

अनुवाद— वह सरोवर विधिध प्रकार के कुमुद, उत्पल, कह्लर शतदल आदि कमलों की शोभा से सुशोभित था । उन पर मदमत्त भौरें गुनगुना रहे थे और मनोहर पक्षी कलरव कर रहे थे । हंस कारण्डव, चक्रवाक और सारस आदि उसमें भरे पड़े थे । पनडुब्बी, बतख, पपीहा आदि कूज रहे थे । मछली और कुछओं के चलने से कमल के फूल हिल जाते थे । उसके कारण उन सबों का पराग झड़कर जल को सुगन्धित बना देता था । कदम्ब बेंत, नरकुल, कदम्बलता बेन आदि वृक्षों से वह सरोवर घिरा था । कुन्द, कुरबक (कटसरैया) अशोक, सिरिस, वनमल्लिका, लिसोड़ा, हरसिंगार, सोना जूही, नाग, पुन्नाग, जाती, मल्लिका, शतपत्र, माधवी एवं मोगरा आदि सुन्दर वृक्षों तथा तट के अन्य वृक्षों से भी, जो प्रत्येक ऋतुओं में भी हरे-भरे रहते थे । उन सबों से वह सरोवर सुशोभित रहता था ॥१५-१९॥

भावार्थ दीपिका

कुमुदादीनां श्रिया ऊर्जितम् । कलः स्वनो येषां तैः शकुन्तैश्च निर्घुष्टम् । चक्राह्वैः सारसैरप्याकीर्णम् । जलकुक्कुटादीनां कुलैः कूजितम् । मत्स्यानां कच्छपानां च संचारेण चलतां पद्मानां रजसा युक्तं पयो यस्मिंस्तम् । नित्यमृतवः फलपुष्पादिसंपत्तिहेतवो येषां तैरलं शोभितम् ॥१५-१९॥

भाव प्रकाशिका

वह सरोवर कुमुद अदि पुष्पों की शोभा से सम्पन्न था । मनोहर ध्वनि करने वाले पक्षियों से वह कूजित था । वह चक्रवाक एवं सारसों से भी भरा था । जलमूर्ग आदि के समूह से वह सरोवर कूजित था । मछलियों

और कुछओं के चलने से हिलने वाले कमलों के पराग से युक्त था उस सरोवर का जल प्रत्येक ऋतुओं में फलों और पुष्पों से वह सरोवर अत्यन्त सुशोभित था ॥१५-१९॥

तत्रैकदा तद्गिरिकाननाश्रयः कुरेणुभिर्वारणयूथपश्चरन् ।
सकण्टकान्कीचकवेणुवेत्रवद्विशालगुल्मं प्ररुजन्वनस्पतीन् ॥२०॥

अन्वयः— तत्र एकदा तद्गिरिकाननाश्रयः कारेणुभिः वारणयूथपः चरन् सकण्टकान् कीचकवेणु वेत्रवद् विशालगुल्मं वनस्पतीन् प्ररुजन् ॥२०॥

अनुवाद— वहाँ पर एक बार उस पर्व के जङ्गल में रहने वाला अपनी हथिनियों के साथ एक गजेन्द्र घूमता हुआ कँटीले कीचक, बाँस, बेंत बड़ी-बड़ी झाड़ियों और गुल्मों को रौंदता हुआ घूम रहा था ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तत्रैवं सत्येकदा तद्गिरिकाननाश्रयो वारणयूथपः करेणुभिश्चरंस्तृषार्दितेन स्वयूथेन वृतः सरोवरस्याभ्याशं समीपमगमदिति पञ्चमेनान्वयः । किं कुर्वन् । कीचकवेणुवेत्रवन्तं विशालं गुल्मं लतादिसंदर्भं वनस्पतींश्च प्ररुजन्प्रभञ्जन् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

ऐसी स्थिति में एकबार उस पर्वत के वन में रहने वाला हाथियों का सरदार अपनी हथिनियों के साथ घूमता हुआ अपने समूह के साथ उस सरोवर के समीप आया इस तरह आगे के पाँचवें श्लोक से इसका अन्वय है । क्या करते हुए आया ? तो इसका उत्तर है कि कीचक, बांस, बेंत से युक्त विशाल लता समूह को तथा वनस्पतियों को रौंदता हुआ आया ॥२०॥

यद्गन्धमात्राद्धरयो गजेन्द्रा व्याघ्रादयो व्यालमृगाः सखड्गाः ।
महोरगाश्चापि भयाद्द्रवन्ति सगौरकृष्णाः शरभाश्चमर्यः ॥२१॥

अन्वयः— यद् गन्धमात्रात् हरयः गजेन्द्राः व्याघ्रादय व्यालमृगाः सखड्गाः महोरगाः चापि सगौरकृष्णाः शरभाः चमर्यः भयात् द्रवन्ति ॥२१॥

अनुवाद— गजेन्द्र के गन्ध मात्र से सिंह, हाथी बाघ गैंडे आदि हिंस्र जीव नाग और काले गोरे शरभ और चमरीगाय आदि डरकर भाग जाते थे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

कथंभूतः । यस्य गन्धमात्राद्धरयः सिंहा गजेन्द्रादयश्च भयाद्द्रवन्ति पलायन्ते ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

कैसा था वह गजेन्द्र ? तो इसका उत्तर है कि जिसके गन्ध मात्र से सिंह और दूसरे गजेन्द्र आदि डरकर भाग जाते थे ॥२१॥

वृका वराहा महिषर्क्षशल्या गोपुच्छसालावृकमर्कटाश्च ।
अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शशादयश्चरन्त्यभीतायदनुग्रहेण ॥२२॥

अन्वयः— यदनुग्रहेण वृकाः, वराहा, महिषर्क्षशल्या गोपुच्छशालावृक मर्कटाः च अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शशादयः अभीताः चरन्ति ॥२२॥

अनुवाद— उसकी कृपा से भेंड़िये, सूअर, भौंसे ऋच्छशल्य, लङ्गूर कुत्ते, बन्दर, हिरण और खरगोश आदि छोटे-छोटे जीव सर्वत्र निर्भय विचरते थे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

वृकादयः क्षुद्र अल्पाः प्राणिनोऽन्यत्रं तद्दृष्टिपथं त्यक्त्वा चरन्ति ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

भेड़िये आदि छोटे जीव उससे थोड़ी दूरी पर निर्भय होकर विचरण करते थे ।।२२।।

स घर्मतप्तः करिभिः करेणुभिर्वृतो मदच्युत्कलभैरनुद्रुतः ।
गिरिं गरिम्णा परितः प्रकम्पयन्निषेव्यमाणोऽलिकुलैर्मदाशनैः ।।२३।।
सरोऽनिलं पङ्कजरेणुरूषितं जिघ्रन्विदूरान्मदविह्वलेक्षणः ।
वृत्तः स्वयूथेन तृषार्दितेन तत्सरोवराभ्याशमथागमद्द्रुतम् ।।२४।।

अन्वयः— अथ करिभिः करेणुभिःवृतः मदच्युतकलभै अनुद्रुतः गरिम्णा परितः गिरिं प्रकम्पयन् मदाशनैः अलिकुलैः निषेव्यमाणः सः घर्मतप्तः तृषार्दितेन स्वयूथेन वृतः मदविह्वलेक्षणः विदूरात् पङ्कजरेणुरुषितं सरोऽनिलं जिघ्रन् द्रुतम् तत् सरोवराभ्याशम् अगमत् ।।२३-२४।।

अनुवाद— उसके पश्चात् वह बड़े-बड़े हाथी और हथिनियों से घिरा हुआ चल रहा था । उसके पीछे हाथियों के छोटे-छोटे बच्चे चल रहे थे । उसके भार से पर्वत काँप रहा था । उसके गण्डस्थल (गालों) से चूते हुए मद का पान करने वाले भौंरे उसके मद का सेवन कर रहे थे । वह धूप की अधिकता से संतप्त हो गया था । हाथियों का पूरा समूह प्यास से व्याकुल हो गया था । मद के कारण उसके नेत्र विह्वल हो रहे थे । दूर से ही कमल के पराग से सुगन्धित सरोवर की वायु की गन्ध को सूंघकर वह शीघ्रता से उस सरोवर के सन्निकट आ गया ।।२३-२४।।

भावार्थ दीपिका

पुनः कीदृशः घर्मतप्तः । मदच्युन्मदस्रावी । मदमश्नन्तीति तथा तैः ।।२३-२४।।

भाव प्रकाशिका

और कैसा था वह ? उत्तर वह धूप से संतप्त हो गया था मदच्युत अर्थात् जिससे मद चूता था । मदाशनैः अर्थात् मद का पान करने वाले भौरों द्वारा ।।२३-२४।।

विगाह्य तस्मिन्नमृताम्बु निर्मलं हेमारविन्दोत्पलरेणुवासितम् ।
पपौ निकामं निजपुष्करोद्धृतमात्मा नमद्भिः स्नपयन् गतक्लमः।।२५।।

अन्वयः— तस्मिन् विगाह्य, हेमारविन्दोत्पलरेणवासितम् । निर्मलम् अमृताम्बु निजपुष्करोद्धृतम् निकामं पपौ, आत्माननमद्भिः स्नपयन् गतक्लमः ।।२५।।

अनुवाद— उस सरोवर में प्रवेश करके स्वर्णिम कमल तथा लाल कमल के पराग से सुगन्धित स्वच्छ तथा अमृत के समान मधुर जल को अपनी सूंड से उठा उठाकर उसने अपनी इच्छा भर पिया, तदनन्तर उस सरोवर में स्नान करके वह स्वस्थ हो गया ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

निजेन पुष्करेण काराग्रेणोद्धृतम् । गतक्लमः सन्निकामं पपौ ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

निजपुष्करोदधृतम् अर्थात् अपनी सूंड से उठाकर गतक्लमः अर्थात् स्वस्थ होकर अपनी इच्छा भर पिया।।२५।।

स्वपुष्करेणोद्धृतसीकराम्बुभिर्निपाययन्संस्नपयन्यथा गृही ।
घृणी करेणूः कलभांश्च दुर्मदो नाचष्ट कृच्छ्रं कृपणोऽजमायया ॥२६॥

अन्वयः— घृणी गृही यथा स्वपुष्करेण उद्धृतसीकराम्बुभिः करेणूः कलभान च निपाययन् संस्नपयन् अजमायया कृपणः दुर्मदः कृच्छ्रं न आचष्ट ॥२६॥

अनुवाद— वह गजेन्द्र गृहस्थ पुरुषों के समान मोहग्रस्त होकर अपने मुँह से जल की फुहारें छोड़ता था और साथ की हथिनियों और बच्चों को नहलाने लगा और उन सबों के मुँह में सूंड डालकर जल पिलाने लगा । परमात्मा की माया से मोहित उस बेचारे को इस बात का पता नहीं था कि उसके सिर पर विपत्ति मडरा रही है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

तं तत्र कश्चिन्नृप दैवचोदितो ग्राहो बलीयांश्चरणे रुषाऽग्रहीत् ।
यदृच्छयैवं व्यसनं गतो गजो यथाबलं सोऽतिबलो विचक्रमे ॥२७॥

अन्वयः— हे नृप ! तत्र दैवचोदितः कश्चित् बलीयान् ग्राहः रुषा तं चरणे अग्रहीत् । यदृच्छया एवं व्यसनं गतः सः अतिबलः गजः यथा बलं विचक्रमे ॥२७॥

अनुवाद— राजन् वहाँ पर प्रारब्ध से प्रेरित होकर कोई अत्यन्त बलवान् ग्राह क्रोध से भरकर उसका पैर पकड़ लिया । अचानक इस तरह से विपत्ति में पड़ा हुआ अत्यन्त बलवान् उस गजेन्द्र ने भी अपनी शक्तिभर उससे अपने को छुड़ाने का प्रयास किया किन्तु नही छुड़ा सका ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

तथातुरं यूथपतिं करेणवो विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा ।
विचुकुशुर्दीनधियोऽपरे गजाः पार्ष्णिग्रहास्तारयितुं नचाशकन् ॥२८॥

अन्वयः— तरसा बलीयसा विकृष्यमाणं यूथपतिं तथातुरं वीक्ष्य दीनधियः करेणवः विचुक्रुशुः अपरे पार्ष्णिग्रहा गजाः च तारयितुं न अशकन् ॥२८॥

अनुवाद— अधिक बलवान् उस ग्राह के द्वारा वेग पूर्वक खीचे जाने वाले अपने यूथ के स्वामी गजेन्द्र को देखकर दीन बनी हुई हथिनियाँ जोर-जोर से चिग्घाड़ने लगीं ओर दूसरे उसके सहायक हाथी भी उसको जल से बाहर लाने में समर्थ नहीं हो सके ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

दीनधियः करेणवस्तं केवलं विचुक्रुशुः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

दीन बनी हुई हथिनयाँ केवल चिग्घाड़ रही थी ॥२८॥

नियुध्यतोरेवमिभेन्द्रनक्रयोर्विकर्षतोरन्तरतो बहिर्मिथः ।
समाः सहस्रं व्यगमन्महीपते सप्राणयोश्चित्रममंसतामराः ॥२९॥

अन्वयः— हे महीपते ! एवं मिथः नियुध्यतोः इभेन्द्रनक्रयोः अन्तरतः बहिः विकर्षतोः सप्राणयोः समाः सहस्रंव्यगमन् अमराः चित्रममंसत ॥२९॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! इस तरह परस्पर युद्ध करते हुए उस गजेन्द्र और ग्राह के एक हजार वर्ष बीत

गये फिर भी वे दोनों जीवित थे । कभी ग्राह भीतर ले जाता तो कभी गजेन्द्र उसे बाहर खींच लाता था यह देखकर देवता आश्चर्यचकित थे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

ततो गजेन्द्रस्य मनोबलौजसां कालेन दीर्घेण महानभूद्व्ययः ।
विकृष्यमाणस्य जलेऽवसीदतो विपर्ययोऽभूत्सकलं जलौकसः ॥३०॥

अन्वयः— ततः दीर्घेण कालेन जले विकृष्यमाणस्य अवसीदतः गजेन्द्रस्य मनोबलौजसां महान् व्ययः अभूत् जलौकसः सकलं विपर्ययः अभूत् ॥३०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् जलों में खीचे जाने वाले तथा दुःखी गजेन्द्र की उत्साह शक्ति शारीरिक बल और इन्द्रियों का बल अत्यधिक क्षीण हो गया था ग्राह का उत्साह बल एवं ऐन्द्रियिक बल बढ़ता गया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

मन उत्साहशक्तिः, बलं शरीरम्, ओजः ऐन्द्रियं तेषाम् । सकलं बलादि । विपर्ययो विपरीतमधिकम् । जलौकसो ग्राहस्य ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

मनोबलजसाम् अर्थात् उत्साहशक्ति शारीरिक बल और इन्द्रियों को बल का **विपरीतम्** अर्थात् और बढ़ गया । **जलौकसः** ग्राह का ॥३०॥

इत्थं गजेन्द्रः स यदाप सङ्कटं प्राणस्य देही विवशो यदृच्छया ।
अपारयन्नात्मविमोक्षणे चिरंदध्याविमां बुद्धिमथाभ्यपद्यत ॥३१॥

अन्वयः— इत्थं स देही गजेन्द्र यदृच्छया यदा प्राणस्य सङ्कटम् आप, आत्मविमोक्षणे अपारयन् विवशः चिरं दध्यौ अथ इमां बुद्धिम् अभ्यपद्यत ॥३१॥

अनुवाद— इस प्रकार से वह देहाभिमानी गजेन्द्र अचानक जब प्राण सङ्कटापन्न हो गया तथा अपने को छुड़ापाने में असमर्थ बना हुआ विवश होकर अपने छूटने के उपाय का देर तक चिन्तन करके इस निश्चय पर पहुँचा ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

स इत्थं यदा प्राणस्य सङ्कटमाप । यतो देही ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

वह जब इस प्रकार से प्राण सङ्कट में पड़ गया, क्योंकि वह देहाभिमानी था ॥३१॥

न मामिमे ज्ञातय आतुरं गजाः कुतः करिण्यः प्रभवन्ति मोचितुम् ।
ग्राहेण पाशेन विधातुरावृतोऽप्यहं च तं यामि परं परायणम् ॥३२॥

अन्वयः— विधातुः पाशेन ग्राहेण आवृत्तः अपि अहं, इमे ज्ञातयः आतुरं गजाः माम् मोचयंतु न प्रभवन्ति करिण्यः कुतः ? तं परं परायणं यामि ॥३२॥

अनुवाद— विधाता की फाँसी इस ग्राह से धिरा हुआ मैं और मेरे संबन्धी और आतुर बने हुए ये हाथी मुझको इससे मुक्त नहीं कर सकते हैं अतएव मैं सम्पूर्ण विश्व के एक मात्र परमात्मा की शरण में जाता हूँ ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

बुद्धिमेवाह-न मामिति । अहं न च प्रभवामि । यतो ग्राहरूपेण केवलं विधातुः पाशेनावृतः । तथापि तं परं परमेश्वरं परेषां ब्रह्मादीनामयनमाश्रयभूतं शरणं यामि ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बुद्धि को ही बतलाते है मैं स्वयं नहीं समर्थ हूँ क्योंकि ग्राहरूपी विधाता की फाँसी ने मुझे बाँधलिया हैफिर भी ब्रह्माजी आदि के भी आश्रय परमात्मा की शरण में जाता हूँ ।।३२।।

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्प्रचण्डवेगादभि धावतो भृशम् ।
भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ।।३३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुवर्णने गजेन्द्रोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

अन्वयः— बलिनोऽन्तकोरगात् प्रचण्डवेगात् अभिधावतः यः कश्चनेशः भृशं भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयात् मृत्युः अरणं प्रधावति तमीमहि ।।३३।।

अनुवाद— अत्यन्त बलवन् काल रूपी सर्प जो प्रचण्ड वेग से मारने के लिए दौड़ता है उससे बहुत अधिक डरकर शरणागति करने वाले की रक्षा करने वाले जो कोई परमात्मा हैं, जिनके भय से मृत्यु भी भयभीत रहती है और किसी को भी समय से ही काल कवलित करती है उन परमात्मा की मैं शरणागति करता हूँ ।।३३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के मन्वन्तर वर्णन के प्रसङ्ग में गजेन्द्रोपाख्यान के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

भावार्थ दीपिका

कोऽसौ यं शरणं यासि तत्राह यः कश्चनेति । अन्तक एवोरगस्तस्मात् । तं शरणमीमहि व्रजेम । यद्भयादित्यत्र श्रुतिः- 'भीषास्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः । भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पञ्चमः' इति ।।३३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि जिसके शरण में जा रहे हो इस पर कहते है । **यः कश्चनः इत्यादि** काल रूपी सर्प से रक्षा करने वाले की मै शरणागति करता हूँ । श्रुति भी कहती है जिस परमात्मा के भय से वायु सदा चलती रहती है, उनके भयसूर्य समय से उदित होते है । उनके ही भय से अग्नि और इन्द्र ठीक से अपना कार्य करते हैं । एवं मृत्यु किसी को भी समय से ही मारने का काम करती है ।।३३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवे स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के दूसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२।।

तीसरा अध्याय

गजेन्द्र द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति और उसकी सङ्कट से मुक्ति

श्रीशुक उवाच

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि । जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥१॥

अन्वयः एवं बुद्ध्या व्यवसितः मनः हृदि समाधाय प्राग्जन्मनि अनुशिक्षित परमं जाप्यं जजाप ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद राजन् परीक्षित ! इस तरह से अपनी बुद्धि के द्वारा निश्चय करके गजेन्द्र अपने मन को हृदय में समाहित किया और पूर्वजन्म में सिखे हुए श्रेष्ठ स्तुति को करने लगा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तृतीये तु गजेन्द्रेण स्तुतो हरिरुपेत्य तम् । समुद्दधार तं ग्राहाद्ग्राहं देवलशापतः । जाप्यं जप्यं स्तोत्रम् । प्राग्जन्मनि इन्द्रद्युम्नसंज्ञे ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तीसरे अध्याय में इस बात का वर्णन है कि गजेन्द्र के द्वारा स्तुति किए गये श्रीहरि आकर महर्षि देवल के शाप के कारण ग्राह के द्वारा पकड़े गये गजेन्द्र की रक्षा किए । जाप्यं अर्थात् जपने योग्य स्तोत्र को प्राग्जन्मनि अर्थात् इन्द्रद्युम्न संज्ञक पूर्वजन्म में ॥१॥

गजेन्द्र उवाच

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् । पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥२॥

अन्वयः—आदि बीजाय पुरुषाय परेशाय अभिधीमहि यतः एतच्चिदात्मकम् तस्मै भगवते नमः ॥२॥

गजेन्द्र ने कहा

अनुवाद— जो परमात्मा इस सम्पूर्ण जगत् के मूल कारण है एवं सबों के हृदय में पुरुष के रूप में विराजमान हैं उन्हीं परमात्मा का हम ध्यान करते हैं । जिनके द्वारा यह जगत् चेतना से युक्त है उन श्रीभगवान् को हम नमस्कार करते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तस्मै नमो नमनमभिधीमह्यभिध्यायेम केवलम् । ग्राहगृहीतत्वेन कायप्रणतेरशक्यत्वात् । स्वस्य तज्ज्ञानं भावयितुं विशिनष्टि यतश्चिद्रूपादेतद्देहादिचिदात्मकं चेतनं भवति । तदुक्तम् । 'येन चेतयते विश्वम्' इति । तत्र हेतुः- पुरुषाय पूर्षु कारणत्वेन प्रविष्टाय । ननु प्रकृतिपुरुषौ कारणमिति प्रसिद्धं तत्राह- आदि प्रकृतिर्बीजं पुरुषस्तद्रूपाय । प्रविष्टत्वेऽपि जीववत्पारतन्त्र्यं वारयति परेशायेति ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उन श्रीभगवान् को नमस्कार हम केवल ध्यान के द्वारा करते हैं । क्योंकि ग्राह के द्वारा गृहित होने के कारण शरीर को प्रणत करना आशक्य है । अपने उस ज्ञान को भक्ति करने के लिए उसको विशेषित करते हैं । जिन चेतन स्वरूप परमात्मा के द्वारा यह शरीर आदि भी ज्ञानवान् हो जाता है । कहा भी गया है कि जिस परमात्मा के द्वारा सम्पूर्ण जगत् चेतन हो जाता है । उसका कारण बतलाते हैं पुरुषाय अर्थात् समस्त शरीरो में पुरुष रूप जो परमात्मा प्रविष्ट है । यदि कहें कि कारण रूप से तो प्रकृति और पुरुष ही प्रसिद्ध हैं । तो इसका उत्तर है

आदि अर्थात् परमात्मा प्रकृति के भी मूल है वे ही पुरुष स्वरूप हैं । परमात्मा को परेश कहकर गजेन्द्र बतलाता है कि वे सम्पूर्ण जगत् के भीतर प्रविष्ट होने पर भी वे जीवों के समान परतन्त्र नहीं हैं ॥२॥

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् । योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयभुवम् ॥३॥

अन्वयः— इदं यस्मिन्, इदं यतः च, इदं येन, य; स्वयम् इदम् यः अस्मात् परस्मात्च परः तं स्वयम्भुवम् प्रपद्ये॥३॥

अनुवाद— यह सम्पूर्ण जगत् उन परमात्मा में ही है । यह जगत् जिनसे उत्पन्न है जो इस जगत् के मूल कारण है, तथा जो परमात्मा स्वयम् जगत् स्वरूप हैं । वह इस जगत् और इस जगत् के कारण प्रकृति से भी श्रेष्ठ हैं, उन स्वयं प्रकाश, स्वतः सिद्ध सत्ता सम्पन्न परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

परमैश्वर्यं विवृण्वन्नाह यावत्समाप्तिं । यस्मिन्नधिष्ठाने, यत उपादानात्, येन कर्त्रा, यश्च स्वमेवेदं विश्वं भवति । अस्मात्कार्यात्परस्मात्कारणाच्च यः परस्तं स्वयंभुवं स्वतः सिद्धं प्रपद्ये शरणं व्रजामि ॥३॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मा के परम ऐश्वर्य की व्याख्या इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त करते हैं इस जगत् के अधिष्ठान परमात्मा ही हैं । वे ही इस जगत् के उपादान कारण है । वे इस जगत् के कर्ता हैं, तथा जो परमात्मा स्वयम् सम्पूर्ण जगत् है । इस कार्य रूप जगत् और इसके कारण रूप प्रकृति से भी जो श्रेष्ठ है, उन स्वयम् प्रकाश स्वतः सिद्ध सत्ता सम्पन्न परमात्मा की मैं शरणागति करता हूँ ॥३॥

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम् ।
अविद्धदृक्साक्ष्युभयं तदीक्षते स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥४॥

अन्वयः— यः इदं स्वात्मनि निजमाययार्पितं क्वचिद् विभातं क्व च तत् तिरोहितम् अविद्धदृक् उभयं साक्षी तदीक्षते स आत्ममूलः परात्परः मामवतु ॥४॥

अनुवाद— यह सम्पूर्ण प्रपञ्च उनकी ही माया से उनमें ही अध्यस्त है, यह कभी प्रतीत होता है तो कभी नहीं प्रतीत होता है, किन्तु उनकी दृष्टि सदा एक सी बनी रहती है । वे दोनों के साक्षी है और उन दोनों को देखते हैं । वे सबके मूल हैं और अपना मूल भी वे ही हैं । उनका कारण कोई नहीं है । वे सभी कार्यों और कारणों से परे हैं । ऐसे परमात्मा हमारी रक्षा करें ॥४॥

भावार्थ दीपिका

विश्वहेतुत्वं स्वतःसिद्धत्वं चोक्तम्, इदानीं विश्वप्रकाशकत्वं स्वप्रकाशत्वं च वर्णयन्प्रार्थयते-यः स्वात्मनीति। विभातमभिव्यक्तं सत्, क्वचित्प्रलये तिरोहितं लीनं सत्, तदुभयं कार्यं कारणं च साक्षी सन्नीक्षते । साक्षित्वे हेतुः-अविद्धदृगलुप्तदृष्टिः आत्ममूलः स्वयंप्रकाशकः । कुतः परात्प्रकाशकाच्चक्षुरादेरपि परः । तस्यापि प्रकाशक इत्यर्थः । 'चक्षुषश्चक्षुः' इत्यादिश्रुतेः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मा के सम्पूर्ण जगत् के कारणत्व और स्वयं सिद्धत्व का प्रतिपादन किया जा चुका है । इस **यः स्वात्मनि० इत्यादि** श्लोक के द्वारा परमात्मा के विश्व प्रकाशकत्व का एवं स्वयम्प्रकाशकत्व का प्रतिपादन करते हुए गजराज प्रार्थना करते हैं । अभिव्यक्त होते हुए प्रलय काल में तिरोहित लीन रहता है । वे परमात्मा कार्य एवं कारण दोनों के साक्षी होते हुए दोनों को देखते है, क्योंकि उनकी दृष्टि सदा एक जैसी बनी रहती है । वे स्वयम्प्रकाश हैं और प्रकाशक चक्षुरादि के भी प्रकाशक है । श्रुति भी कहती है— **चक्षुषश्चक्षुः** नेत्र के भी नेत्र हैं ॥४॥

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ।
तमस्तदासीद्गहनं गभीरं यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ।।५।।

अन्वयः— कालेन लोकेषु, पालेषु सर्वहेतुषुच कृत्स्नशः पञ्चत्वामितेषु तदा गहनं गभीरं तमः आसीत् । यः प्रभुः तस्य पारे विराजते ।।५।।

अनुवाद— प्रलय काल के आने पर जब सभी लोक एवं लोकपाल पूर्णरूप से विनष्ट हो जाते हैं, उस समय घोर अन्धकार छा जाता है, किन्तु अनन्त परमात्मा उससे परे विराजमान रहते हैं वे ही प्रभु हमारी रक्षा करें।।५।।

भावार्थ दीपिका

तिरोहितमीक्षत इत्येतत्प्रपञ्चपूर्वकं दुर्ज्ञेयत्वं वदन्प्रार्थयते-कालेनेति द्वाभ्याम् । पञ्चत्वमितेषु नाशं प्राप्तेषु गहनं दुरवगाहम्। गभीरमनन्तम् । तस्य तमसः । 'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्' इति श्रुतेः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा प्रलय काल में तिरोहित हुए भी कार्य कारण रूप प्रपञ्च के दुर्ज्ञेयत्व का प्रतिपादन करते हुए दो श्लोकों से प्रार्थना करता हैं । प्रलय काल में सम्पूर्ण प्रपञ्च के नष्ट हो जाने पर उस समय घनघोर अन्धकार बना रहता है । उस अन्धकार से परे अनन्त जो परमात्मा विराजमान रहते हैं, वे ही मेरी रक्षा करें । श्रुति भी कहती हैं— आदित्य वर्णं तमसः परस्तात् वे परमात्मा सूर्य के समान देदीप्यमान और अन्धकार से परे (अतीत) हैं ।।५।।

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुर्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो दुरत्ययानुक्रमणः स माऽवतु ।।६।।

अन्वयः— देवाः ऋषयः यस्य पदं न विदुः पुनः कः जन्तुः गन्तुम् ईरितुम् वा अर्हति आकृतिः विचेष्टतः नटस्य यथा दुरत्ययानुक्रमणःस मा अवतु ।।६।।

अनुवाद— जिस परमात्मा के स्वरूप को न तो कोई देवता अथवा कोई ऋषि जान सकता है, उन परमात्मा के स्वरूप को कोई जीव कैसे जान अथवा बतला सकता है । नट के समान अनेक रूपों को धारण करने वाले परमात्मा का अनुसरण करना भी अत्यन्त कठिन है, वे ही परमात्मा हमारी रक्षा करें ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अतएव देवादयो यस्य स्वरूपं न विदुः । जन्तुरर्वाचीनः कोऽपि गन्तुं ज्ञातुमीरितुं वक्तुं वा । दुरत्ययं दुर्गममनुक्रमणं चरितं कथनं वा यस्य सः । मा माम् अवतु ।।६।।

भाव प्रकाशिका

अतएव देवता आदि भी जिन परमात्मा के स्वरूप को नहीं जान पाते हैं उन परमात्मा के स्वरूप को कोई कैसे जान अथवा कह सकता है ? परमात्मा की लीला को जान पाना अथवा कहना अत्यन्त कठिन है ।।६।।

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ।।७।।

अन्वयः— यस्य सुमङ्गलं पदं दिदृक्षवः सुसाधवः भूतात्मभूताः सुहृदः मुनयः विमुक्तसङ्गाः वने अव्रणं अलोकव्रतं चरन्ति स मे गतिः ।।७।।

अनुवाद— जिनके मङ्गलमय स्वरूप को देखने की इच्छा से साधु स्वभाव वाले सबों के आत्मा स्वरूप तथा स्वाभाविक रूप से भलाई करने वाले मुनिजन सभी प्रकार की आसक्तियों का परित्याग करके वन में जाकर अखण्ड रूप से ब्रह्मचर्य आदि अलौकिक व्रत का अखण्ड रूप से पालन करते हैं वे परमात्मा मेरे एकमात्र गति (प्राप्य) हैं।।७।।

भावार्थ दीपिका

कथं तर्हि– 'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति' इत्यादिश्रुतिरित्याशङ्क्य तज्ज्ञानोपायं कथयन्नाह– दिदृक्षव इति । अलोकव्रतं ब्रह्मचर्यादि । अव्रणमच्छिद्रम् । भूतानामात्मभूता भूतेष्वात्मदृष्टयः सन्तः । स मे गतिरस्तु ।।७।।

भाव प्रकाशिका

यदि परमात्मा के स्वरूप को कोइ नहीं जान सकता है तो फिर 'तमेवविदित्वा' इत्यादि श्रुति कैसे कहती है कि उस परमात्मा को जानकर इस तरह आशङ्का करके परमात्मा के ज्ञान के उपाय को **दिदृक्षवः इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । अलोकव्रतम् अर्थात् ब्रह्मचर्य आदि । अव्रणम् अर्थात् अखण्ड रूप से । **भूतात्मभूताः** सभी भूतों में आत्म दृष्टि करने वाले सत्पुरुष, **स मे गतिरस्तु** वे ही भगवान् मेरा एकमात्र प्राप्य बनें ।।७।।

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपे गुणदोष एव वा ।
तथापि लोकाप्ययसंभवाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ।।८।।

अन्वयः— यस्य जन्म कर्म वा, न नामरूपे गुणदोष एव न विद्यते तथापि लोकप्ययसंभवाय यः स्वमायया तानि अनुकालमृ्ऋच्छति ।।८।।

अनुवाद— जिन परमात्मा का न तो जन्म होता है न कर्म, उनका न तो कोई नाम है न रूप, उनमें कोई गुण अथवा दोष भी नहीं है फिर भी जो जगत् की सृष्टि और संहार के लिए उन सबों को अपनी माया से समय-समय से स्वीकार किया करते हैं ।।८।।

भावार्थ दीपिका

दुरत्ययानुक्रमणत्वं प्रपञ्चयन्प्रणमति–न विद्यत इत्यादिना । लोकानामप्ययः प्रलयः, सम्भवो जन्म, तयोर्द्वन्द्वैक्यम् । तदर्थं यस्तानि जन्मादीनि स्वीकरोति तस्मै नम इत्युत्तरेणान्वयः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा का अनुसरण करना कठिन है इस बात का विस्तार से वर्णन करते हुए गजेन्द्र **न विद्यते० इत्यादि** श्लोक से उनको प्रणाम करते हैं । **लोकानामप्ययः** अर्थात् प्रलय **सम्भवः** अर्थात् सृष्टि, इन दोनों का समाहार द्वन्द होने के कारण लोकाप्ययसम्भवाय में एक वचन प्रयोग है । उसी के लिए जो परमात्मा जन्म आदि को स्वीकार करते हैं । उनको नमस्कार है इस तरह से आगे के श्लोक से अन्वय है ।।८।।

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये । अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ।।९।।

अन्वयः— तस्मै अनन्तशक्तये परेशाय ब्रह्मणे नमः अरूपायोरुरूपाय, आश्चर्य कर्मणे नमः ।।९।।

अनुवाद— जिन परमात्मा की अनन्त शक्ति है तथा जो सर्वैश्वर्यमय परंब्रह्म है उनको नमस्कार है जो रूपहीन होकर भी अनेक रूपों वाले हैं तथा उनके अनन्त आश्चर्यमय रूप हैं, उन परमात्मा को नमस्कार है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मणे अरूपाय । अनन्तशक्तये उरुरूपाय । अत आश्चर्याणि कर्माणि यस्य तस्मै परेशाय नमः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

जो रूप रहित ब्रह्म है, अनन्त शक्ति सम्पन्न उनके अनेक रूप हैं । अतएव आश्चर्यमय जिनके कर्म हैं उन सबों को स्वामी परमात्मा को नमस्कार है ।।९।।

नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने । नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥१०॥

अन्वयः— आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने नमः । गिरां मनसः चेतसाम् अपि विदूराय नमः ॥१०॥

अनुवाद— स्वयम्प्रकाश, सबों के साक्षी परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ । जो मन, वाणी और चित्त से भी बहुत दूर रहते हैं अर्थात् उनके विषय नहीं बनते हैं उन परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

आत्मप्रदीपाय प्रकाशान्तरस्याविषयाय । कुतः । साक्षिणे प्रकाशकाय । परमात्मने जीवनियन्त्रे । अत एव गिरां विदूरायाप्राप्याय । चेतसां चित्तवृत्तीनाम् । तथा च श्रुतिः- 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

आत्मप्रदीपाय अर्थात् जो किसी दूसरे प्रकाश का विषय नहीं बनते हैं क्योंकि वे साक्षी अर्थात् प्रकाशक है। जो परमात्मा अर्थात् जीवों के नियामक हैं । अतएव वे वाणी के अविषय हैं अर्थात् वाणी उनका वर्णन करने में असमर्थ है । चेतसाम् अर्थात् चित की वृत्तियों के भी अविषय हैं । श्रुति भी कहती है **यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह** । अर्थात् जिनका निरूपण करने में असमर्थ होने के कारण मन के साथ वाणी भी लौट जाती है ॥१०॥

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता । नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥११॥

अन्वयः— विपश्चिता नैष्कर्म्येण प्रतिलभ्याय निर्वाण सुख संविदे कैवल्यनाथाय नमः ॥११॥

अनुवाद— विवेकी पुरुष कर्म संन्यास के द्वारा अपने अन्तःकरण को शुद्ध करके जिनको प्राप्त करते हैं, स्वभावतः जो नित्य मुक्त एवं परमानन्द स्वरूप हैं तथा दूसरों को मुक्ति प्रदान करने का सामर्थ्य उनमें ही है, ऐसे परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ ॥११॥

भावार्थ दीपिका

एवमपि विपश्चिता निपुणेन । नैष्कर्म्येण संन्यासेन । सत्त्वेन शुद्धेन । 'संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः' इति श्रुतेः । प्रतिलभ्याय प्रत्यक्तोन प्राप्याय । निर्वाणसुखसंविदे मोक्षानन्दानुभूतये ॥११॥

भाव प्रकाशिका

मन और वाणी का अविषय होकर भी निपुण संन्यास के द्वारा जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है ऐसे सत्पुरुषों द्वारा प्रत्येक रूप से प्राप्त होने वाले हैं परमात्मा । श्रुति भी कहती है- **संन्यास योगाद् यतयः शुद्ध सत्त्वाः** । अर्थात् संन्यासयोग के द्वारा संन्यासियों का अन्तः करण शुद्ध हो जाता है । निर्वाण सुख संविदे अर्थात् मोक्षानन्द की अनुभूति स्वरूप ॥११॥

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे । निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥१२॥

अन्वयः— शान्ताय, घोराय, मूढाय गुणधर्मिणे नमः, निर्विशेषाय साम्याय, ज्ञानघनाय च नमः ॥१२॥

अनुवाद— सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों गुणों के धर्मों को स्वीकार करने के कारण जो क्रमशः शान्त, घोर एव मूढ़ है, अवस्थाओं वाले, सभी भेदों से रहित, तथा साम्यावस्थावस्थित एवं ज्ञानधन प्रभु को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

गुणधर्मिणे सत्त्वादिधर्मानुकारिणे । ज्ञानघनाय चेति निर्विशेषत्वेऽपि प्रधानवैलक्षण्यमुक्तम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

सत्वादि गुणों के धर्मों का अनुकरण करने वाले, निर्विशेष होकर भी ज्ञानघन स्वरूप यह कहकर परमात्मा की प्रकृति से भिन्नता बतलायी गयी है ॥१२॥

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे । पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥१३॥

अन्वयः— सर्वाध्यक्षाय, साक्षिणे, क्षेत्रज्ञाय तुभ्यं नमः, पुरुषाय आत्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥१३॥

अनुवाद— सबों के स्वामी, सबों के साक्षी समस्त क्षेत्रों के एक मात्र ज्ञाता आपको नमस्कार है । स्वयं अपने कारण, पुरुष और मूल प्रकृति भी आप ही हैं ऐसे आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

साक्षिण इति सर्वाध्यक्षत्वेऽपि निर्विकारत्वमुक्तम् । आत्मनां क्षेत्रज्ञानां मूलाय । मूलस्य प्रधानस्यापि प्रकृतये उद्भवहेतवे। तत्र हेतुः- पुरुषाय पूर्वमेव सते । तथा च श्रुतिः- 'पूर्वमेवाहमिहासम्' इति 'तत्पुरुषस्य' पुरुषत्वम् इति 'पूर्णाय' इति वा ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

साक्षिणे कहकर यह कहा गया है कि परमात्मा सबों का स्वामी होकर भी निर्विकार है । सभी क्षेत्रज्ञों के मूल हैं । प्रकृति को भी उत्पन्न करने वाले हैं । क्योंकि वे पुरुष है अर्थात् प्रकृति से भी पहले विद्यमान रहते हैं । श्रुति भी कहती है **पूर्वमेवाहमिहासम्** अर्थात् पहले ही मैं यहाँ था यही पुरुष का पुरुषत्व है तथा परमात्मा पूर्ण हैं ॥१३॥

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे । असता छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥१४॥

अन्वयः— सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे, असता छाययोक्ताय, सदाभासायते नमः ॥१४॥

अनुवाद— प्रभो आप सभी इन्द्रियों के गुणों के द्रष्टा है, सभी प्रतीतियों के आधार हैं, अहङ्कार आदि छाया रूप असत् वस्तुओं के द्वारा आपका ही रूप प्रकट होता है । समस्त वस्तुओं की सत्ता के रूप में केवल आप ही भास रहे हैं । मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

सर्वेन्द्रियाणां ये गुणा विषयास्तेषां द्रष्ट्रे । सर्वे प्रत्यया इन्द्रियवृत्तयो हेतवो ज्ञापका यस्य तस्मै । तदेवाह-असताहंकारादिप्रपञ्चेन। छायया ऽसद्रूपाय उक्ताय प्रतिबिम्बेन बिम्बमिव सूचिताय । तत्र हेतुः- सद्रूपो विषयेष्वाभासो यस्य तस्मै । तदुक्तं तृतीये 'यथा जलस्थ आभासः' इत्यादिना। पाठान्तरे असत्यस्य छाययाऽध्यासेनात्ताय युक्ताय, तदधिष्ठानायेत्यर्थ ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

सभी इन्द्रियों के विषयों को देखने वाले, सभी इन्द्रियों की वृत्तियाँ आपका ही ज्ञापन किया करती हैं । अहङ्कार आदि असत् वस्तुओं के द्वारा उक्त अर्थात् प्रतिबिम्ब के द्वारा बिम्ब के समान सूचित होने वाले, तथा विषयों में भी आपका आभास होता है ऐसे आपको नमस्कार है । तीसरे स्कन्ध में भी कहा गया है जैसे मृगमरीचिका में जल की प्रतीति होती है । असत्यच्छययात्ताय इस तरह का पाठान्तर होने पर अर्थ होगा कि असत्य के अध्यास से युक्त अर्थात् उसके अधिष्ठान स्वरूप ॥१४॥

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय निष्कारणायाद्भुतकारणाय ।
सर्वागमाम्नायमहार्णवाय नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥१५॥

अन्वयः— अखिलकारणाय ते नमो नमः निष्कारणायाद्भुतकारणाय, सर्वागमाम्नाय महार्णवाय अपवर्गाय परायणाय नमः ॥१५॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप सबों के मूलकारण हैं, अपका कोई भी कारण नहीं है, कारण होने पर भी आपमें किसी भी प्रकार अथवा परिणाम नहीं होता है, इसीलिए आप अद्भुत कारण हैं । ऐसे आपको मेरा बार-बार नमस्कार है, जिस तरह समस्त नदियों के परम आश्रय समुद्र है, उसी तरह आप समस्त आगमों और वेदों के परम आश्रय (तात्पर्य) हैं आप मोक्ष स्वरूप हैं और सभी सत्पुरुष आपका आश्रय ग्रहण करते हैं । अतएव मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अखिलकारणाय सर्वकारणरूपाय । अतएव स्वयं निष्कारणाय । कारणत्वेऽपि मृदादिवद्विकारं वारयति–अद्भुतकारणायेति। एवंभूतत्वे प्रमाणमाह सर्वे आगमा: पञ्चरात्रादय आम्नायाश्च वेदास्तेषां महार्णवाय स्रोतसामिव पर्यवसानस्थानाय । अपवर्गाय मोक्षरूपाय । अत: परायणायोत्तमानामाश्रयाय ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

आप सबों के कारण रूप हैं अतएव आपका कोई कारण नहीं है । यद्यपि परमात्मा कारण हैं फिर भी जिस तरह घटादि के कारण मृदादि में विकार होते हैं, उस तरह से परमात्मा में कोई भी विकार नहीं होता है, अतएव आप अद्भुत कारण है । परमात्मा के ऐसा होने में प्रमाण बतलाते हुए कहा जिस तरह से सभी नदियों आदि का आश्रय समुद्र होता है, उसी तरह से सभी वेदों के एक मात्र तात्पर्य परमात्मा ही हैं, अपवर्गाय अर्थात् मोक्ष स्वरूप होने के कारण उत्तम अधिकारियों के आश्रय स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है ॥१५॥

गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ।
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागमस्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥१६॥

अन्वयः— गुणारणिच्छन्नचिदुष्मपाय, तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय, नैष्कर्मभावेन विवर्जितागमस्वयं प्रकाशाय नमस्करोमि॥१६॥

अनुवाद— जिस तरह यज्ञ के काष्ठ अरणि में अग्नि छिपी रहती है उसी तरह आप अपने ज्ञान को गुणों की माया से ढँक रखे हैं । जब गुणों में क्षोभ उत्पन्न होता है तो उनके द्वारा आप विविध प्रकार की सृष्टि का सङ्कल्प करते है जो लोग कर्म सन्यास अथवा आत्म समर्पण के द्वारा आत्मतत्त्व की भावना करके वेदशास्त्रों से ऊपर उठ जाते हैं उनकी आत्मा के रूप में आप स्वयं प्रकाशित हो जाते हैं । ऐसे आप को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

गुणा एवारणिस्तयाच्छन्नश्चिदूष्मपो ज्ञानाग्निस्तस्मै । तेषां गुणानां क्षोभे कार्ये विस्फूर्जितं बहिर्वृत्तिकं मानसं यस्य । 'सोऽकामयत बहु स्याम्' इति श्रुतेः । नैष्कर्म्यमात्मतत्त्वं तस्य भावेन भावनया विवर्जिता आगमा विधिनिषेधलक्षणा यैस्तेषु स्वयमेव प्रकाशो यस्य तस्मै ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

आप अपने ज्ञान रूप अग्नि को गुण रूप अरणि से ढँक रखे हैं । उन गुणों में क्षोभ उत्पन्न होने पर आपका मन बहिर्वृत्ति वाला हो जाता है, ऐसे आप अनेक प्रकार की सृष्टि का सङ्कल्प करते हैं । श्रुति भी कहती है **सोऽक्रामयत बहुस्याम्** अर्थात् परमात्मा ने सङ्कल्प किया मैं अनेक हो जाऊँ । आत्म तत्त्व की भावना से जो लोग विधि निषेध रूप शास्त्रों से ऊपर जाते हैं, उनकी आत्मा रूप से आप प्रकाशित होते हैं । ऐसे आप को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१६॥

मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय ।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीतप्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥१७॥

अन्वयः— मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय, मुक्ताय, भूरिकरुणाय, अलयाय नमः, स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥१७॥

अनुवाद— मुझ जैसे शरणागत जीवों के बन्धन को काट देने वाले, नित्य मुक्त, परमकरुणा सम्पन्न और भक्तों का कल्याण करने में कभी अलस्य नहीं करने वाले आपको मेरा नमस्कार है, समस्त प्राणियों के हृदय में अन्तरात्मा के रूप में अपने अंश के द्वारा उपलब्ध होने वाले आप सर्वैश्वर्य सम्पन्न और अनन्त हैं । आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

मादृक् मद्विधश्चासौ प्रपन्नः पशुस्तस्य पाशोऽविद्या तस्य विशेषेण मोक्षणं येन । तत्र योग्यतामाह-मुक्ताय । मोचने हेतुः- भूरिः करुणा यस्य । अतस्तत्रार्थेऽलयायानलसाय । स्वाशेनान्तर्यामिरूपेण सर्वेषां तनुभृतां मनसि प्रतीता प्रख्याता या प्रत्यग्दृक्तस्मै। तथा च श्रुतिः-'य आत्मनि तिष्ठानात्मानमन्तरो यमयति' इति । भगवते सर्वेषां तनुभृतां नियमने समर्थाय । तेषां मनःस्थितत्वेऽपि बृहतेऽपरिच्छिन्नाय ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

मुझ जैसे शरणागत पशु के अज्ञान रूप पाश को काट देने वाले आप हैं, क्योंकि आप नित्य मुक्त हैं। काटने का कारण यह है कि आप अत्यन्त करुणा सम्पन्न हैं अतएव इस कार्य को आप निरालस होकर करने वाले हैं । आपने अन्तर्यामी रूप अंश के द्वारा सभी शरीरधारियों के मन में प्रख्यात जो प्रत्यग् दृक् (अन्तरात्मा) उसके रूप में आप प्रतीत होते हैं । श्रुति भी कहती हैं जो परमात्मा आत्मा के भीतर रहते हुए आत्मा का नियमन करते हैं । सभी शरीरधारियों का नियमन करने में समर्थ, तथा उन सबों के मन में रहते हुए भी अपरिच्छिन्न स्वरूप आपको नमस्कार है ॥१७॥

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तैर्दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय ।
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥१८॥

अन्वयः— आत्मात्मजाप्त गृहवित्तजानेषु सक्तैः दुष्प्रापणाय, गुणसङ्गविवर्जिताय मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय ज्ञानात्मने भगवते ईश्वराय नमः ॥१८॥

अनुवाद— जो लोग शरीर, पुत्र गुरुजन, गृह, सम्पत्ति और स्वजनों में आसक्त हैं ऐसे लोगों को आपकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, क्योंकि आप स्वयं गुणों की आसक्ति से रहित हैं । जीवन्मुक्त पुरुष आपका अपने हृदय में निरन्तर चिन्तन करते हैं । इस प्रकार से सर्वैश्वर्य सम्पन्न ज्ञान स्वरूप आपको मेरा नमस्कार है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अन्तःस्थत्वेऽपि देहादिष्वासक्तैर्दुष्प्रापणायामुमशक्याय । तत्र हेतुः- गुणसङ्गेन विवर्जिताय । अतएव मुक्तात्मभिर्देहादिष्वनासक्तैश्चिन्तिताय । तैः परिभावितं रूपमाह-ज्ञानात्मन इत्यादि ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि आप शरीर में ही विद्यमान है फिर भी शरीर आदि में आसक्त रहने वाले प्राणियों के लिए आपकी प्राप्ति कठिन है । उसका कारण है कि आप गुणों की आसक्ति से रहित हैं । अतएव जो लोग शरीर आदि में आसक्त नहीं हैं वे लोग आपका अपने हृदय में चिन्तन किया करते हैं । वे लोग आपका ज्ञान रूप से चिन्तन किया करते हैं ॥१८॥

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।
किंत्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥१९॥

अन्वयः— धर्म कामार्थविमुक्तिकामाः यं भजन्तः इष्टां गतिमाप्नुवन्ति किं त्वाशिषोराति अपि देहमव्ययं अदभ्रदयो मे विमोक्षणं करोतु ॥१९॥

अनुवाद— धर्म अर्थ, काम और मुक्ति की प्राप्ति की कामना वाले उनका ही भजन करके अपनी अभीष्ट वस्तु को प्राप्त कर लेते हैं । वे उन लोगों को सभी प्रकार का सुख भी प्रदान करते हैं और अपने ही जैसा अविनाशी पार्षद शरीर भी प्रदान कर देते हैं । वे परम दयालु प्रभु मेरा उद्धार करें ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

इष्टां गतिं कामितं धर्मादिफलं प्राप्नुवन्त्येव, नतु तावदेव, किंतु यास्तैरकामिता अन्या अप्याशिषो राति । देहमप्यव्ययं राति । एवं योऽदभ्रदयः स मे विमोक्षणमेव केवलं करोतु नाधिकं प्रार्थये ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इष्टां गतिम् अर्थात् अभिलषित धर्म आदि फल को प्राप्त करते हैं । इतना ही नहीं अपितु वे लोग जिन वस्तुओं की कामना नहीं करते हैं । उन सबों को भी प्रदान कर देते हैं । वे अपने ही समान अव्यय पार्षद शरीर भी प्रदान कर देते हैं । वे परम दयालु मुझ को इस ग्राह से मुक्त कर दें इससे अधिक प्रार्थना मैं नहीं करता हूँ।।१९।।

एकान्तिनो यस्य न कंचनार्थं वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ।।२०।।

अन्वयः— ये वै भगवत्प्रपन्नाः एकान्तिनः यस्य कञ्चनार्थ न वाञ्छन्ति, सुमङ्गलं अत्यद्भुतं तच्चरित गायन्तः आनन्द समुद्रमग्नाः ।।२०।।

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् के अनन्य प्रेमी एकान्ती भगवद् भक्त उनकी ही शरण में रहते हुए उनसे कोई भी वस्तु नहीं माँगते हैं, वे श्रीभगवान् के मङ्गलमय तथा अत्यन्त अद्भुत चरित का गायन करते हुए आनन्द के समुद्र में मग्न रहते हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

एतावदप्यहं भक्तिसुखानभिज्ञत्वेन वाञ्छामि । यस्यैकान्तभक्ता न कंचिदर्थं वाञ्छन्ति तं परेशं परमेश्वरमीडे स्तौमीत्युत्तरेणान्वयः । तेषां निष्कामत्वे हेतुः- ये वै भगवतः सर्वज्ञान्मुक्तान्प्रपन्नाः सेवितवन्तः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

भक्ति से प्राप्त होने वाले सुख का ज्ञाता नहीं होने के कारण ही मैं इन सब वस्तुओं को चाहता हूँ, उन श्रीभगवन् के एकान्त भक्त तो उनसे कुछ भी नहीं चाहते हैं ऐसे परेश परमेश्वर की मैं स्तुति करता हूँ यह आगे के श्लोक से अन्वय हैं । उन एकान्तिक भक्तों के निष्काम होने कि कारण है कि वे सर्वज्ञ तथा नित्यमुक्तों परमात्मा के शरणागत होते हैं ।।२०।।

तमक्षरं ब्रह्म परं परेशमव्यक्त माध्यात्मिकयोगगम्यम् ।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूरमनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ।।२१।।

अन्वयः— अक्षरम् परेशम् अव्यक्तम्, अतीन्द्रियं अतिसूक्ष्म् अतिदूरमिव आध्यात्मिकयोगगम्यम्, आद्यम् अनन्तम् परिपूर्णम् इडे ।।२१।।

अनुवाद— मैं जो अविनाशी सर्वशक्तिमान, अव्यक्त इन्द्रियातीत तथा अत्यन्त सूक्ष्म तथा अत्यन्त दूर के समान प्रतीत होते हैं । जो ज्ञान योग अथवा भक्तियोग के द्वारा ही प्राप्त होते हैं उन आदि पुरुष अनन्त और परिपूर्ण परंब्रह्म परमात्मा की मैं स्तुति करता हूँ ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

अत्यद्भुतसुमङ्गलत्वप्रदर्शनार्थमक्षरत्वादीनि विशेषणानि ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त अद्भुत मङ्गलमयत्व को बतलाने के लिए अक्षर इत्यादि विशेषणों का प्रयोग किया गया है ।।२१।।

यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः । नामरूपविभेदेन फल्गव्या च कलया कृताः ।।२२।।
यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो निर्यान्ति संयान्त्यसकृत्स्वरोचिषः ।
तथा यतोऽयं गुणसंप्रवाहो बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ।।२३।।
स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ् स्त्री न षण्ढो न पुमान्न जन्तुः ।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्निषेधशेषो जयतादशेषः ।।२४।।

अन्वयः— यस्य फल्गव्या कलया नामरूपविभेदेन ब्रह्मादयो देवाः चराचराः लोकाः च कृताः यथा अग्नेः अर्चिषः सवितुः स्वरोचिषः गभस्तयः असंकृत् निर्यान्ति संयान्ति तथा यत अयं गुणसंप्रवाहः बुद्धिः मनः खानि शरीर सर्गाः । सवै न देवासुरमर्त्यतिर्यक् न स्त्री नषण्ढः न पुमान् न जन्तुः अयं गुणः न कर्म न सत् न असत् च न निषेध शेषः जयतात् अशेषः ।।२२-२४।।

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् की छोटी सी कला से अनेक नाम रूप के भेद से युक्त ब्रह्मा इत्यादि देवता वेद और चराचर लोकों की सृष्टि हुई है । जिस तरह प्रज्वलित अग्नि से चमकती हुई लपटें और सूर्य से किरणें बार-बार निकलती और उन्हीं में लीन हो जाती हैं उसी तरह उन स्वयं प्रकाश परमात्मा से बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ और शरीर जो गुण प्रवाह हैं वे निकलते और लीन होते हैं वे श्रीभगवान् न देवता है, न असुर हैं न मनुष्य है न पशुपक्षी हैं, वे न तो स्त्री हैं न पुरुष हैं न नपुंसक हैं और न तो कोई प्राणी हैं वे न तो गुण हैं न कर्म हैं, न कार्य हैं, न कारण हैं । सब का निषेध हो जाने पर जो कुछ बचता है वही उनका स्वरूप है तथा वे ही सबकुछ हैं वे ही परमात्मा मेरे उद्धार के लिए प्रकट हों ।।२२-२४।।

भावार्थ दीपिका

परिपूर्णत्वं प्रदर्शयन्नाह त्रिभिः- यस्य फल्गव्या च स्वल्पयैव कलयांशेन कृताः स जयतादिति तृतीयेनान्वयः । कथं कृता इत्यपेक्षायां दृष्टान्तौ । यथार्चिषोऽग्नेरिति प्रवाहे दृष्टान्तः- सवितुर्गभस्तय इत्यानन्त्ये । निर्यान्त्युद्गच्छन्ति । संयान्ति लीयन्ते। गुणसंप्रवाहमेवा-बुद्धिर्मन इति । खानि करणानि शरीरसर्गाः कार्यदेहप्रवाहाश्च यतो भवन्ति सः । अतएव देवादीनां मध्ये कोऽपि न भवति । न जन्तुर्लिङ्गत्रयशून्यं प्राणिमात्रमपि । किंतु सर्वस्य निषेधेऽवधित्वेनावशिष्यत इति निशेधशेषो मायया अशेषोऽशेषात्मकश्च जयतान्मद्विमोक्षणायाविर्भवतु ।।२२-२४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की परिपूर्णता का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं तीन श्लोकों से कहते हैं जिन श्रीभगवान् के अत्यन्त छोटे से अंश से चराचर जगत् उत्पन्न होता है वे इस सङ्कट से मुक्त करने के लिए अविर्भूत हों । वे कैसे निर्मित हो गये ? इस विषय में दो दृष्टान्त यहाँ उपन्यस्त हैं । जैसे अग्नि से लपटें निकलती हैं यह प्रवाह में दृष्टान्त है । सूर्य से किरणें निकलती हैं और उन्हीं में लीन हो जाती है यह सृष्टि से दृष्टान्त है । गुण के संप्रवाह को ही बुद्धिर्मन इत्यादि से बतलाते हैं । खानि अर्थात् इन्द्रियाँ । शरीर सर्गाः कार्य देह का प्रवाह भी होता है । अतएव देवों आदि में से कोई भी नहीं है **न जन्तुः** अर्थात् तीनों लिङ्गों से रहित भी नहीं है । किन्तु सबों का निषेध हो जाने पर अवधि रूप से जो बच जाता है । अतएव निषेध शेष हैं । अर्थात् माया के द्वारा वे सबकुछ हैं । ऐसे भगवान् मुझको इस सङ्कट से मुक्त करने के लिए अविभूर्त हों ।।२२-२४।।

जिजीविषे नाहमिहामुया किमन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवस्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥२५॥

अन्वयः— अहम् अन्तर्बाहिश्च आवृतया इभयोन्या न जिजीविषे, अमुयया किम्, आत्मावलोकावरणस्य तस्य मोक्षम् इच्छामि यस्य कालेन विप्लवो न ॥२५॥

अनुवाद— मैं इसे अन्दर बाहर दोनों ओर से अज्ञान रूप से आवरण से ढँकी हुई इस हाथी की योनि में रहकर जीना नहीं चाहता हूँ इस हाथी की योनि से क्या लाभ है ? मैं तो आत्मा के प्रकाश को ढँक देने वाले अज्ञान रूप आवरण मुक्त होना चाहता हूँ । जो कालक्रम से अपने आप नहीं छूटता है । वह तो केवल भगवत्कृपा से ही छूटता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

न च ग्राहाच्छरीरस्य मोक्षणेनाहं जीवितुमिच्छामि । तत्र हेतुः-अमुया अन्तर्बहिश्चाविवेकव्याप्तया गजजात्या किं प्रयोजनम्। आत्मलोकस्यात्मप्रकाशस्य यदा वरणमज्ञानं तस्यैव तु मोक्षमिच्छामि । यस्य मोक्षस्य कालेन नाशो नास्ति । यद्वा देहस्य बन्धो देहनाशे नश्येदेव किं तन्मोक्षप्रार्थनेन । आत्मलोकावरणस्य तु कालेन विप्लवो नास्ति, ज्ञानैकनिवर्त्यत्वात् । अतस्तस्यैव मोक्षमिच्छामीत्यर्थः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

ग्राह से शरीर की मुक्ति मात्र से मैं जीवित नहीं रहना चाहता हूँ । उसका कारण है कि भीतर से तथा बाहर से भी अविवेक व्याप्त इस हाथी के जन्म से कौन सा लाभ है ? आत्मा के प्रकाश को ढँक देने वाले अज्ञान से मैं मुक्ति पाना चाहता हूँ । उस मोक्ष का कभी नाश नहीं होता है । अथवा देह का बन्धन तो देह के नष्ट हो जाने पर नष्ट ही हो जायेगा अतएव उसके लिए प्रार्थना करने से कौन सा लाभ है ? इस आत्मावरण का कालक्रम से नाश नहीं होता है, उसकी निवृत्ति तो केवल ज्ञान से ही होती है । अतएव उसी से मैं मुक्ति प्राप्त करना चाहता हूँ ॥२५॥

सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् । विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥२६॥

अन्वयः— सोऽहं अविश्वं विश्वसृजं विश्वं विश्ववेदसम् विश्वात्मानम् अजं ब्रह्मप्रणतोऽस्मि ॥२६॥

अनुवाद— इसलिए मैं विश्व से भिन्न, विश्व की सृष्टि करने वाले विश्व स्वरूप तथा विश्व रूपी सामग्री से क्रीडा करने वाले सम्पूर्ण जगत् की आत्मा अजन्मा ब्रह्म की शरणागति करता हूँ ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

सोऽहं मुमुक्षुः । विश्वं विश्वरूपम् । अविश्वं विश्वव्यतिरिक्तं च । विश्वं वेदो धनमुपकरणं यस्य तम् । विश्वस्यात्मानं च केवलं प्रणतोऽस्मि न तु तं जानामि ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

मैं मोक्ष प्राप्त करना चाहता हूँ । जो परमात्मा विश्वरूप हैं, विश्व से रहित हैं विश्व रूपी सामग्री से क्रीडा करते हैं । सम्पूर्ण विश्व की आत्मा हैं । उनकी मैं शरणागति करता हूँ मैं उनको जानता नहीं हूँ ॥२६॥

योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते । योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥२७॥

अन्वयः— योगरन्धितकर्माणः योगिनः योग विभाविते हृदि यं पश्यन्ति अहं तं योगेशं नतोऽस्मि ॥२७॥

अनुवाद— योग के द्वारा कर्म की वासना और कर्म के फल को भस्म करके योगिजन योग से शुद्ध बने अपने हृदय में जिस परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं उन योगेश भगवान् की मैं शरणागति करता हूँ ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

योगं विना दुर्ज्ञेयत्वादित्याह-योगेन भगवद्धर्मेण रन्धितानि दग्धानि कर्माणियेषां ते यं प्रपश्यन्ति ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

योग के बिना परमात्मा दुर्ज्ञेय है, इस बात को इस श्लोक में कहा गया है । भगवद् धर्म रूप योग के द्वारा जिनके कर्म दग्ध हो गये है, वे अपेन हृदय में जिस परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं ।।२७।।

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेगशक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ।
प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ।।२८।।

अन्वयः— असह्य वेगशक्तित्रयाय, अखिलधीगुणाय कदिन्द्रियाणामनवाप्य वर्त्मने दुरन्तशक्तये प्रपन्नपालाय तुभ्यं नमो नमः ।।२८।।

अनुवाद— हे प्रभो आपकी तीन शक्तियों सत्त्व, रज एवं तम के रागादि वेग असह्य हैं समस्त इन्द्रियों और मन के भी विषयों के रूप में आप ही प्रतीत होते हैं, अतएव जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं वे लोग तो आपकी प्राप्ति के मार्ग को भी नहीं जान सकते है आपकी शक्ति अनन्त है और आप शरणागत रक्षक हैं ऐसे आप को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि सर्वेऽपि योगमेव किं नास्थितास्तत्राह- नम इति द्वाभ्याम् । असह्यो वेगो रागादिलक्षणो यस्य तथाभूतं शक्तित्रयं यस्य तस्मै । बहि श्चाखिलधियां सर्वेन्द्रियाणां गुणाय शब्दादिरूपेण प्रतीयमानाय । अतः कदिन्द्रियाणां कुत्सितानीन्द्रियाणि येषां तेषामनवाप्यं वर्त्म यस्य ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

तो फिर सबलोग योग को ही क्यों नहीं अपनाते हें तो इसका उत्तर दो श्लोकों से देते हैं । आपका सत्त्व, रज एवं तम रूप तीन शक्तियों का रागादि वेग असह्य हैं । बाहरी सभी इन्द्रियों के शब्दादि रूप से आपकी ही प्रतीति होती है । जिन लोगों की इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं ऐसे लोग आपकी प्राप्ति के मार्ग को भी नहीं जान सकते हैं ।।२८।।

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहंधिया हतम् । तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ।।२९।।

अन्वयः— यच्छक्त्याऽहंधिया हतम् अयं स्वमात्मानं न वेद, तं दुरत्ययमाहात्म्यम् भगवन्तम् इतोऽस्मि अहम्।।२९।।

अनुवाद— आपकी माया अहं शक्ति के द्वारा आत्मा का स्वरूप ढँक गया है, इसलिए यह जीव अपनी आत्मा के स्वरूप को नहीं जान पाता है । आपकी महिमा अपार है । इस प्रकार से सर्वशक्तिमान परमात्मा की मैं शरण में हूँ ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

यच्छक्त्या यस्य मायया या अहंधीस्तया इतमावृतमयं जनो न वेद । दुरत्ययं माहात्म्यं यस्य तमित आश्रितोऽस्मि।।२९।।

भाव प्रकाशिका

आपकी माया की जो अहङ्कार शक्ति है उसके द्वारा आत्मा का स्वरूप ढँक गया इसलिए यह जीव अपने स्वरूप को नहीं जान पाता है । अमित महिमा सम्पन्न आपका मैं आश्रित हूँ ।।२९।।

श्रीशुक उवाच

एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः ।
नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥३०॥

अन्वयः— एवं उपवर्णितानि विशेषं ब्रह्मादयो विविध लिङ्गभिदाभिमानाः एते यदा गजेन्द्रम् न उपसिसृपुः निखिलात्मकत्वात् अखिलामरमयः हरिः तत्र आविरासीत् ॥३०॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से गजेन्द्र के द्वारा सामान्य रूप से बिना किसी भेद-भाव के स्तुति किए जाने के कारण भिन्न-भिन्न नाम और रूप को अपना स्वरूप मानने वाले ब्रह्मा आदि देवता जब उस गजेन्द्र के पास नहीं आये उस समय सम्पूर्ण जगत् की आत्मा और सर्वदेवमय श्रीभगवान् वहाँ प्रकट हो गये ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

उपवर्णितं निर्विशेषं मूर्तिभेदं विना परं तत्त्वं येन तम् । विविधा चासौ लिङ्गभिदा मूर्तिभेदस्तस्यामभिमानो येषां ते । अतएते यदा नोपजग्मुः । तत्र तदा । अखिलामरमयः सर्वदेवमयमूर्तिः॥३०॥

भाव प्रकाशिका

मूर्तिभेद के बिना सामान्य रूप से परंतत्त्व की स्तुति किए जाने के कारण अनेक नामों और रूपों वाले ब्रह्मा आदि देवता गजेन्द्र के पास नहीं आये तब वहाँ सकलदेवमूर्ति श्रीभगवान् प्रकट हो गये ॥३०॥

तं तद्वदार्तमुपलभ्य जगन्निवासः स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः ।
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमानश्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥३१॥

अन्वयः— जगन्निवासः तं तद्वद् आर्तमुपलभ्य, स्तोत्रं निशम्य संस्तुवद्भिः द्विविजैः सह छन्दोमयेन, गरुडेन समुह्यमानः चक्रायुधः आशु अभ्यगमत् यतो गजेन्द्रः ॥३१॥

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र आधार श्रीभगवान् उस तरह से अत्यन्त आर्त बने हुए गजेन्द्र को जानकर तथा उसकी स्तुति को सुनकर श्रीभगवान् की स्तुति करने वाले देवताओं के साथ वेदमय गरुड़ पर सवार होकर चक्र नामक आयुध को धारण किए हुए शीघ्र ही वहाँ आ गये जहाँ पर गजेन्द्र विद्यमान था ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

दिविजैर्देवैः सह । छन्दोमयेनेति शेछयायोक्तम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

द्विविजैः सह देवताओं के साथ । शीघ्रता के लिए छन्दोमयेन पद का प्रयोग किया गया है ॥३१॥

सोऽन्तः सरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रान्नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥३२॥

अन्वयः— अन्तः सरसि उरुबलेन गृहीतः आर्तः सः उपात्तचक्रम् हरिम् खे गरुत्मति दृष्ट्वा साम्बुजकरं उत्क्षिप्य अखिलगुरो भगवान् नारायण नमस्त इति कृच्छ्रात् गिरम् आह ॥३२॥

अनुवाद— सरोवर के भीतर अत्यधिक बलवान् ग्राह के द्वारा पकड़ लिए जाने के कारण आर्त बना हुआ वह गजेन्द्र चक्र धारण किए हुए श्रीहरि को आकाश में गरुड़ पर बैठे देखकर कमल युक्त अपनी सूंड को उठाकर हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् भगवन् आपको नमस्कार हैं इस तरह से अत्यन्त कष्ट पूर्वक कहा ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

खे दृष्ट्वा । उपात्तमुद्यतं चक्रं येन ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

खे दृष्ट्वा अर्थात् आकाश में देखकर चक्र को ऊपर उठाये हुए ।।३२।।

तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ।
ग्राहाद्विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं संपश्यतां हरिरमूमुचदुस्त्रियाणाम् ।।३३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे गजेन्द्रमोक्षणे तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

अन्वयः— तं पीडितं वीक्ष्य अजः सहसावतीर्य सग्राहम् आशु सहसा उज्जहार अरिणा विपाटितमुखात् ग्रहात् हरिः उस्त्रियाणाम् संपश्याताम् गजेन्द्रम् अमूमुचत् ।।३३।।

अनुवाद— गजेन्द्र को पीड़ित देखकर श्रीभगवान् अचानक गरुड से उतर गये और ग्राह के साथ उस गजेन्द्र को कृपा पूर्वक वाहर निकाले । इसके पश्चात् चक्र से ग्राह के मुख को फाड़कर श्रीहरि सभी देवताओं के सामने ही गजेन्द्र की रक्षा किए ।।३३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के गजेन्द्र मोक्ष के प्रसङ्ग में तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

भावार्थ दीपिका

गरुडोऽपि मन्दगतिरिति ततः सहसाऽवतीर्यारिणा चक्रेण विपाटितं मुखं यस्य । उस्त्रियाणां देवानाम् ।।३३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

गरुड़ की गति भी मन्द हैं इस तरह से श्रीभगवान् का अचानक गरुड़ पर से उतकर चक्र से ग्राह का मुँह फाड़ दिए । उस्त्रियाणाम् अर्थात् देवताओं के ।।३३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के तीसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधरचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३३।।

चौथा अध्याय

गज और ग्राह का पूर्व चरित और उनका उद्धार

श्रीशुक उवाच

तदा देवर्षिगन्धर्वा ब्रह्मेशानपुरोगमाः । मुमुचुः कुसुमासारं शंसन्तः कर्म तद्धरेः ॥१॥

अन्वयः— तदा ब्रह्मनेशानुपरोगमाः देवर्षिगन्धर्वाः हरेः तत् कर्म शंसन्तः कुसुमासारं मुमुचुः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् ! उस समय ब्रह्मा शङ्कर आदि देवता ऋषिगण और गन्धर्व श्रीहरि के उस कर्म की प्रशंसा करते हुए उन पर पुष्पों की वर्षा किए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्थे तु तयोर्ग्राहः प्राप गन्धर्वतां पुनः। गजं स्वपार्षदं कृत्वा हरिर्निन्ये निजं पदम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

चौथे अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि ग्राह ने पुनः गन्धर्वत्व को प्राप्त कर लिया और गजेन्द्र को श्रीभगवान् अपना पार्षद बनाकर अपने लोक में लाये ।।१।।

नेदुर्दुन्दुभयो दिव्या गन्धर्वा ननृतुर्जगुः । ऋषयश्चारणाः सिद्धास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ।।२।।

अन्वयः— दिव्या दुन्दुभयो नेदुः गन्धर्वाः ननृतुः जगुः ऋषभः सिद्धाः चारणाः पुरुषोत्तमं तुष्टुवुः ।।२।।

अनुवाद— देवताओं ने दुन्दुभियाँ बजायी गन्धर्व नाचने और गाने लगे ऋषिगण, सिद्ध और चारणगण भगवान् पुरुषोत्तम की स्तुति किए ।।२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२।।

योऽसौ ग्राहः स वै सद्यः परमाश्चर्यरूपधृक् । मुक्तो देवलशापेन हूहूर्गन्धर्वसत्तमः ।।३।।

अन्वयः— यः असो ग्राहः स वै देवलशापेन मुक्तः परमाश्चर्यरूप धृक् हूहूगन्धर्व सत्तम ।।३।।

अनुवाद— जो ग्राह था वह महर्षि देवल के शाप से मुक्त हो गया और परम आश्चर्यमय रूप धारण करके हूहू नामक श्रेष्ठ गन्धर्व हो गया ।।३।।

भावार्थ दीपिका

हूहूसंज्ञो गन्धर्वसत्तमः असौ देवलस्य शापेन ग्राहो जातः । स वै स तु ततः सद्यो मुक्तः सन्नुत्तमश्लोकमगायतेत्यन्वयः। एवं हीतिहासोत्तमे कथा । सरसि स्त्रीभिः क्रीडन्नसौ स्नातुं प्रविष्टं देवलं पादे प्रगृह्य विचकर्ष । स च प्रकुपितो ग्राहो भवेति शशाप, तेन च प्रसादितः सन्नुवाच, एवमेव गजेन्द्र गृह्णीष्व, ततश्च गजेन्द्रमुद्धरन्हरिस्त्वामपि मोचयिष्यतीति ।।३।।

भाव प्रकाशिका

हूहू नामक एक श्रेष्ठ गन्धर्व था । वह महर्षि देवल के शाप से ग्राह हो गया । वह उस शाप से मुक्त होकर भगवान् की स्तुति किया । इस तरह से इतिहासोतम में कथा है । सरोवर में स्त्रियों के साथ क्रीडा करते हुए स्नान करने के लिए सरोवर में प्रविष्ट देवल ऋषि के चरणों को पकड़कर खींचने लगा । क्रुद्ध होकर महर्षि ने शाप दे दिया कि तुम ग्राह हो जाओ । गनधर्व की प्रार्थना से प्रसन्न होकर महर्षि ने कहा कि इसी तरह गजेन्द्र को तुम पकड़ोगे । उस समय गजेन्द्र का उद्धार करते हुए श्रीहरि तुम्हारा भी उद्धार करेगें ।।३।।

प्रणम्य शिरसाधीशमुत्तमश्लोकमव्ययम् । अगायत यशोधाम कीर्तन्यगुणसत्कथम् ।।४।।

अन्वयः— शिरसा अधीशम् उत्तमश्लोकम् अव्ययम् प्रणम्य अगायत यशोधाम कीर्तन्यगुणसत्कथम् ।।४।।

अनुवाद— उसने सर्वेश्वर पवित्र कीर्ति श्रीभगवान् के चरणों में शिर रखकर प्रणाम किया और उनके यश का गान करने लगा । वस्तुतः श्रीभगवान् ही सर्वश्रेष्ठ कीर्ति से सम्पन्न हैं । उन्हीं के गुण और मनोहर लीलाएँ गान करने योग्य हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

कथंभूतम् । यशसो धाम आश्रयम् । अतः कीर्तन्याः कीर्तनीया गुणाः सती कथा च यस्य तम् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

कैसे श्रीहरि के यश का वर्णन किया ? जिनके गुण कीर्तन करने योग्य हैं और जिनकी कथाएँ अच्छी हैं।।४।।

सोऽनुकम्पित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्य तम् । लोकस्य पश्यतो लोकं स्वमगान्मुक्तकिल्बिषः ॥५॥

अन्वयः— ईशेन अनुकम्पितः सः तम् प्रणम्य लोकस्य पश्यतः मुक्तकिल्विषः स्वं लोकम् अगात् ॥५॥

अनुवाद- श्रीभगवान् की कृपा प्राप्त करके श्रीभगवान् को प्रणाम करके उसने उनकी परिक्रमा की और निष्पाप होकर वह सबलोगों के सामने ही अपने लोक में चला गया ॥५॥

भावार्थ दीपिका

स्वं लोकं गन्धर्वलोकम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अपने गन्धर्व लोक में चला गया ॥५॥

गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद्विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात् । प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥६॥

अन्वयः— भगवत्स्पर्शात् अज्ञानबन्धनात् विमुक्तः गजेन्द्रः पीतवासाः चतुर्भुजः भगवतो रूपं प्राप्तः ॥६॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का स्पर्श पाकर अज्ञान के बन्धन से मुक्त हुआ गजेन्द्र पीताम्बरधारी चारभुजाओं वाला श्रीभगवान् के रूप को प्राप्त कर लिया ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

स वै पूर्वमभूद्राजा पाण्ड्यो द्रविडसत्तमः । इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः ॥७॥

अन्वयः— स वै पूर्वम् द्रविडसत्तमः पाण्डयो राजा अभूत् । इन्द्रद्युम्न इति ख्यातः विष्णुव्रतपरायणः ॥७॥

अनुवाद— गजेन्द्र पूर्वजन्म में द्रविड देश का पाण्ड्व वंशीय राजा था । उसका नाम इन्द्रद्युम्न था । वह श्रीभगवान् का श्रेष्ठ उपासक एवं अत्यन्त यशस्वी था ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

स एकदाराधनकाल आत्मवान्गृहीतमौनव्रत ईश्वरं हरिम् ।
जटाधरस्तापस आप्लुतोऽच्युतं समर्चयामास कुलाचलाश्रमः ॥८॥

अन्वयः— एकदा आत्मवान् सः जटाधरः तापसः कुलाचलाश्रमः आप्लुतः आराधनकाले गृहीतमौनव्रतः अच्युतं **ईश्वरं हरिम्** समर्चयामास ॥८॥

अनुवाद— एक बार आत्मज्ञ वह राजा जटाधरण करके तपस्वी वेष बनाये हुए कुलाचल के आश्रम में स्नान किए हुए आराधना के समय में मौन व्रत धारण किए हुए अच्युत भगवान् श्रीहरि की पूजा कर रहा था ॥८॥

भावार्थ दीपिका

कुलाचले मलयाद्रावाश्रमो यस्य ॥८॥

भाव प्रकाशिका

मलयाचल पर उसका आश्रम था ॥८॥

यदृच्छया तत्र महायशा मुनिः समागमच्छिष्यगणैः परिश्रितः ।
तं वीक्ष्य तूष्णीमकृतार्हणादिकं रहस्युपासीनमृषिश्चुकोप ह ॥९॥

अन्वयः— तत्र यदृच्छया शिष्यगणैः परिवृतः महायशाः मुनिः समागमत् तम् अकृतार्हणादिकम् रहसि तुष्णीम् आसीनम् वीक्ष्य ऋषिः चुकोप ॥९॥

अनुवाद— वहाँ पर दैववशात् अपने शिष्य समुह के साथ महायशस्वी अगस्त्य मुनि आये । उस राजा को उनकी पूजा आदि किए बिना मौन एकान्त में बैठे हुए देखकर ऋषि क्रुद्ध हो गये ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तूष्णीं रहस्युपासीनं वीक्ष्य ॥९॥

भाव प्रकाशिका

चुपचाप एकान्त में बैठे हुए देखकर ॥९॥

तस्मा इमं शापमदादसाधुरयं दुरात्माऽकृतबुद्धिरद्य ।
विप्रावमन्ता विशतां तमोऽन्धं यथा गजः स्तब्धमति स एव ॥१०॥

अन्वयः— तस्मैं इमं शापम् अदात् अयम् अकृत बुद्धिः दुरात्मा असाधुः अद्य विप्रावमन्ता गजः यथा स्तब्धमतिः स एव अन्धं तमः विशताम् ॥१०॥

अनुवाद— उन्होंने राजा को यह शाप दिया कि इसने अपने वृद्ध पुरुषों से शिक्षा नहीं प्राप्त की है । अतएव असाधु है दुष्ट है । आज इसने ब्राह्मण का अपमन किया हैं, हाथी के समान जड़ बुद्धि है । इसीलिए इसको वही घोर अन्धकारमयी हाथी की योनि प्राप्त हो ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

शापमेवाह-असाधुरित्यादि । अकृताऽशिक्षिता बुद्धिर्यस्य । गजो यथा स्तब्धमतिस्तथैवायम् । अतः स एव गज एव, भवत्विति शेषः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

ऋषि के द्वारा दिए गये शाप को **असाधुः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । इसने अपने गुरुजनों से शिक्षा नहीं प्राप्त की है । हाथी के समान स्तब्ध बुद्धि वाला है । अतएव यह हाथी ही हो जाय ॥१०॥

श्रीशुक उवाच

एवं श्प्त्वा गतोऽगस्त्यो भगवान्नृप सानुगः । इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिर्दिष्टं तदुपधारयन् ॥११॥

अन्वयः— हे नृप ! एवं शप्त्वा भगवन् अगस्त्यः सानुगः गतः राजर्षि इन्द्रद्युम्नोऽपि तत् दिष्टम् इत्युपधारयन् ॥११॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! इस तरह से शाप देकर ऐश्वर्य सम्पन्न महर्षि अपने शिष्यों के साथ चले चगे । राजर्षि इन्द्रद्युम्न उसको भावी समझकर सन्तोष किए ॥११॥

भावार्थ दीपिका

दिष्टं दैवप्रापितं तदुपधारयन्नालोचयन् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

राजर्षि इन्द्रद्युम्न भी उसे दैव प्रदत्त समझकर सन्तुष्ट हो गये ॥११॥

आपन्नः कौञ्जरीं योनिमात्मस्मृतिविनाशनीम् । हर्यर्चनानुभावेन यद्गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः ॥१२॥

अन्वयः— आत्मस्मृति विनाशनीम् कौञ्जरीं योनिम् आपन्नः हरि अर्चनाऽनुभावेन यद् गजत्वेऽपि अनुस्मृतिः ॥१२॥

अनुवाद— इसके पश्चात् आत्मविस्मृति करा देने वाली हाथी की योनि को प्राप्त करके श्रीहरि की अर्चना के प्रभाव से हाथी होने पर भी उनको श्रीभगवान् की स्मृति बनी रही ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

कौञ्जरीं योनिमापन्नः । तर्हि पश्चात्कथं स्मृतिर्जाता तत्राह-हरेरर्चनस्यानुभावेनेति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

हाथी की योनि को प्राप्त किया राजा ने । तो फिर उसके बाद में स्मृति कैसे हुई तो इसका उत्तर है कि श्रीहरि की अर्चना के प्रभाव से ॥१२॥

एवं विमोक्ष्य गजयूथपमब्जनाभस्तेनापि पार्षदगतिं गमितेन युक्तः ।
गन्धर्वसिद्धविबुधैरुपगीयमानकर्माऽद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात् ॥१३॥

अन्वयः— अब्जनाभः एवं गजयूथपं विमोक्ष्य तेनापि पार्षदगतिं गमितेन युक्तः गरुडासनः गन्धर्वसिद्धविबुधैः उपगीयमान कर्माद्भुतं स्वभवनं अगात् ॥१३॥

अनुवाद— पद्मनाभ भगवान् इस प्रकार से गजेन्द्र का उद्धार करके उसे अपना पार्षद बना दिए । गन्धर्व, सिद्ध और देवगण उनके इस कर्म का गान कर रहे थे । उस पार्षद बने गजेन्द्र को अपने साथ लेकर श्रीभगवान् गरुड़ पर सवार होकर अपने लोक चले गये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अद्भुतं स्वभवनमगात् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

अपने अद्भुत लोक में चले गये ॥१३॥

एतन्महाराज तवेरितो मया कृष्णानुभावो गजराजमोक्षणम् ।
स्वर्ग्यं यशस्यं कलिकल्मषापहं दुःस्वप्ननाशं कुरुवर्य शृण्वताम् ॥१४॥

अन्वयः— महाराज कुरुवर्य, मया गजराज मोक्षणम्, कृष्णानुभाव तव ईरितः एतत् शृण्वताम् स्वर्ग्यं, यशस्यं कलिकल्मषापहं दुःस्वप्नाशम् ॥१४॥

अनुवाद— हे महाराज ! कुरुवंश शिरोमणे ! मैंने गजेन्द्र मोक्ष तथा श्रीभगवान् की महिमा को आपको सुना दिया, यह सुनने वालों को स्वर्ग प्रदान करने वाला, उनके यश को बढ़ाने वाला, कलि के दोषों को दूर करने वाला एवं दुःस्वप्न का नाश करने वाला है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

एतद्गजराजमोक्षणं नाम कृष्णानुभावस्तवेरितः । कथंभूतं तत्राह-स्वर्ग्यमित्यादि । दुःस्वप्नं नाशयतीति तथा ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

इस गजेन्द्र मोक्ष नामक श्रीभगवान् की महिमा को मैंने सुना दिया । यह प्रसङ्ग कैसा है ? तो इसका उत्तर है कि स्वर्गादि को प्रदान करने वाला तथा दुःस्वप्न को मिटाने वाला है ॥१४॥

यथानुकीर्तयन्त्येतच्छ्रेयस्कामा द्विजातयः । शुचयः प्रातरुत्थाय दुःस्वप्नाद्युपशान्तये ॥१५॥

अन्वयः— श्रेयस्कामा द्विजातयः प्रातरुत्थाय शुचयः दुःस्वप्नादि उपशान्तये एतत् यथाऽनुकीर्तयन्ति ॥१५॥

अनुवाद— कल्याणकामी द्विजगण प्रातःकाल जगकर तथा पवित्र होकर दुःस्वप्न इत्यादि की शान्ति के लिए इसका इसी तरह पाठ करते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अत: श्रेयस्कामा ये एतद्यथावदनुकीर्तयन्ति ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अतएव जो लोग कल्याण प्राप्त करना चाहते है वे लोग इसका इसी तरह से पाठ करते हैं ।।१५।।

इदमाह हरिः प्रीतो गजेन्द्रं कुरुसत्तम । शृण्वतां सर्वभूतानां सर्वभूतमयो विभुः ।।१६।।

अन्वयः— हे कुरुसत्तम ! प्रीतः सर्वभूतमयः विभुः हरिः सर्वभूतानां शृण्वताम् गजेन्द्रम् इदम् आह ।।१६।।

अनुवाद— हे परीक्षित् ! गजेन्द्र की स्तुति से प्रसन्न होकर सर्वव्यापक सर्वभूतस्वरूप श्रीहरि सबलोगों के सामने ही गजेन्द्र से यह कहे ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

अनेन श्रेयो भवतीति कुतो ज्ञातम्, साक्षाद्भगवद्वचनादेवेत्याह-इदमाहेत्यादि यावत्समाप्ति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

यह कैसे जाना जाता है कि इससे कल्याण होता है, तो साक्षात् श्रीभगवान् की वाणी से ही यह ज्ञात होता हैं । **स्वर्ग्यम्० इत्यादि** से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त यह बात कही गयी है ।।१६।।

श्रीभगवानुवाच

ये मां त्वां च सरश्चेदं गिरिकन्दरकाननम् । वेत्रकीचकवेणूनां गुल्मानि सुरपादपान्।।१७।।
शृङ्गाणीमानि धिष्ण्यानि ब्रह्मणो मे शिवस्य च। क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम् ।।१८।।
श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम । सुदर्शनं पाञ्चजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ।।१९।।
शेषं च मत्कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं मदाश्रयाम्। ब्राह्मणं नारदमृषिं भवं प्रह्लादमेव च।।२०।।
मत्स्यकूर्मवराहाद्यैरवतारैः कृतानि मे । कर्माण्यनन्तपुण्यानि सूर्यं सोमं हुताशनम् ।।२१।।
प्रणवं सत्यमव्यक्तं गोविप्रान्धर्ममव्ययम् । दाक्षायणीर्धर्मपत्नीः सोमकश्यपयोरपि ।।२२।।
गङ्गां सरस्वतीं नन्दां कालिन्दीं सितवारणम् । ध्रुवं ब्रह्मऋषीन्सप्त पुण्यश्लोकांश्च मानवान् ।।२३।।
उत्थायापररात्रान्ते प्रयताः सुसमाहिताः । स्मरन्ति मम रूपाणि मुच्यन्ते ह्येनसोऽखिलात् ।।२४।।

अन्वयः— ये मां त्वं, इदं सरः गिरिकन्दरकाननम्, वेत्रकीचवेणूनां गुल्मानि सुरपादपान् इमानि शृङ्गाणि, ब्रह्मणः मे, शिवस्य च धिष्ण्यानि, मे प्रियं धाम क्षीरोदं, भास्वरम् श्वेतद्वीपं च, श्रीवत्सं, कौस्तुभं, मालां, मम कौमोदकी गदां, सुदर्शनं पाञ्चजन्यं पतगेश्वरम् सुपर्णं मत्सूक्ष्मां कलाशेषं, मदाश्रयाम् श्रियं देवीं, ब्रह्माणं नारदमृषिं भवं, प्रह्लादमेव च मत्स्यकूर्मवराहाद्यैः अवतारैः मे कृतानि अनन्तपुण्यानि कर्माणि, सूर्यं, सोमं, हुताशनम्, प्रणवं सत्यम् गोविप्रान्, अव्ययं धर्मम् धर्मपत्नीः सोमकश्यपयोः अपि दाक्षायणीः गङ्गां, सरस्वती नन्दां, कलिन्दी सितवारणम् ध्रुवं ब्रह्मऋषीन्सप्त पुण्यश्लोकांश्च मानवान् अपररात्रान्ते उत्थाय प्रयताः सुसमाहिताः, ममरूपाणि स्मरन्ति अखिलात् हि एनसः मुच्यन्ते ।।१७-२४।।

अनुवाद— मेरा, तेरा, इस सरोवर का पर्वत एवं कन्दरा वन बेंत कीचक बाँस के झुरमुट, यहाँ के दिव्य वृक्ष तथा पर्व शिखर, मेरे, ब्रह्माजी एवं शिवजी के निवास स्थान मेरे प्रिय धाम क्षीरसागर, प्रकाशमय श्वेत द्वीप, श्रीवत्स, कौस्तुभ मणि, वनमाला, मेरी कौमदकी गदा, सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्यशंख, पक्षीराजगरुड, मेरी सूक्ष्मकला स्वरूप शेषजी मेरे आश्रय में रहने वाली श्रीदेवी, ब्रह्माजी देवर्षि नारद, शङ्करजी, भक्तराज प्रह्लाद, मत्स्य, कच्छप वाराह आदि अवतारों में किए हुए मेरे अनन्त पुण्यमय चरित्र, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, ओङ्कार, सत्य, मूल प्रकृति,

गौ, ब्राह्मण, अविनाशी, सनातन धर्म, सोम, कश्यप और धर्म की पत्नी दक्षकन्याएँ, गङ्गा, सरस्वती, अलकनन्दा, यमुना, ऐरावत हाथी, भक्त शिरोमणि ध्रुव, सात ब्रह्मर्षि, और पवित्र कीर्ति नल आदि महापुरुषों का जो लोग रात्रि के अन्त में प्रातःकाल जगकर स्मरण करते हैं वे समस्त पापों से छूट जाते हैं, क्योंकि ये सबके सब मेरे रूप है ॥१७-२४॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गादन्यस्यापि स्मरणे फलमुच्यते । सर्वेषां द्वितीयान्तानां स्मरन्तीत्यग्रेणान्वयः । अव्यक्तं मायाम् । अव्ययं धर्म भक्तिलक्षणम् । सोमकश्यपयोरपि पत्नीर्दाक्षायणीः । सितवारणमैरावतम् । सुसमाहिता एकाग्रचित्ताः मम रूपाणि मद्विभूतीः ॥१७-२४॥

भाव प्रकाशिका

अव्यक्तं अर्थात् माया को **अव्ययं धर्मं** अर्थात् भक्ति स्वरूप सनातन धर्म, सोम और कश्यप की पत्नी दक्ष कन्याएँ । **सितवारणम्** अर्थात् ऐरावत हाथी, **सुसमाहिताः** अर्थात एकाग्रचित्त से **ममरूपाणि** अर्थात् मेरी विभूतियाँ है ॥१७-२७॥

ये मां स्तुवन्त्यनेनाङ्ग प्रतिबुध्य निशात्यये । तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां मतिम् ॥२५॥

अन्वयः— हे अङ्ग ये निशात्यये प्रतिबुध्य अनेन स्तुवन्ति, तेषां च अहम् प्राणात्यये विमलां मतिं ददामि ॥२५॥

अनुवाद— हे गजेन्द्र ! जो लोग ब्राह्म मुहूर्त में जगकर इस स्तुति के द्वारा मेरी स्तुति करेंगे मृत्यु के समय उनको निर्मल बुद्धि प्रदान करूँगा ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

श्रीशुक उवाच

इत्यादिश्य हृषीकेशः प्रध्माय जलजोत्तमम् । हर्षयन्विबुधानीकमारुरोह खगाधिपम् ।२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे गजेन्द्रमोक्षणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अन्वयः— हृषीकेशः इत्यादिश्य विबुधानीकमृ हर्षयन् जलजोत्तमम् प्रध्माय खगाधिपम् आरुरोह ॥२६॥

अनुवाद— राजन् श्रीभगवान् इस तरह से कहकर देव समूह को प्रहर्षित करते हुए अपने उत्तम शङ्ख को वजाये और पक्षिराज गरुड पर सवार हो गये ॥२६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के गजेन्द्र मोक्ष नामक चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

जलजोत्तमं शङ्खवरं प्रध्माय वादयित्वा ॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

जलजोत्तमम् अर्थात् श्रेष्ठ शङ्ख को **प्रध्माय** अर्थात् बजाकर ॥२६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।४।।

* * *

पाँचवाँ अध्याय

देवताओं का ब्रह्माजी के पास जाना और ब्रह्माकृत भगवान् की स्तुति

श्रीशुक उवाच

राजन्नुदितमेतत्ते हरेः कर्माऽघनाशनम् । गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं त्वन्तरं शृणु ॥१॥

अन्वयः— राजन् एतत हरेः अघनाशनं ते गजेन्द्रमोक्षणम् कर्म उदितम् रैवतं तु अन्तरं शृणु ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् यह श्रीहरि के समस्त पापों के विनाशक गजेन्द्रमोक्ष की लीला को मैंने तुम्हें सुना दिया अब तुम रैवत मन्वन्तर को सुनो ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अमृताख्यानमष्टाभिरध्यायैरनुवर्ण्यते । स्वभक्तपक्षपातेन यत्र योषायितं प्रभोः । पञ्चमे पञ्चमं चाथ षष्ठं चाकथयन्मनुम्। विप्रशापाच्च निःश्रीकैः कृतां देवैर्हरेः स्तुतिम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

अब आठ अध्यायों से अमृत मन्थन की कथा का वर्णन किया जाता है । उसी के प्रसङ्ग में अपने भक्तों का पक्षपात करने के लिए श्रीभगवान् स्त्री का रूप धारण कर लिए । पाँचवे अध्याय में पाँचवें और छठे मनुओं का वर्णन किया गया है । ब्राह्मण के शाप के कारण श्रीविहीन देवताओं ने श्रीहरि की स्तुति की ॥१॥

पञ्चमो रैवतो नाम मनुस्तामससोदरः । बलिविन्ध्यादयस्तस्य सुता अर्जुनपूर्वकाः ॥२॥

अन्वयः— पञ्चमो मनुः तामस सोदरः रैवतो नाम । तस्य अर्जुन पूर्वकाः बलि विन्ध्यादयः सुता आसन् ॥२॥

अनुवाद— पाँचवे मनु तामस मनु के सगे भाई थे । उनका नाम रैवत मनु था उनके अर्जुन, बलि तथा विन्ध्य आदि कई पुत्र थे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तामसश्चतुर्थो मनुस्तस्य सोदरो भ्राता ॥२॥

भाव प्रकाशिका

चौथे मनु का नाम है तामस मनु उनके भाई हैं रैवत मनु ॥२॥

विभुरिन्द्रः सुरगणा राजन्भूतरयादयः । हिरण्यरोमा वेदशिरा ऊर्ध्वबाह्वादयो द्विजाः ॥३॥

अन्वयः— राजन् ! इन्द्रः विभुः भूतरयादयः सुरगणाः हिरण्यरोमा, वेदशिरा, ऊर्ध्ववाहवादयः द्विजाः ॥३॥

अनुवाद— परीक्षित् उस समय इन्द्र का नाम विभु था भूतरय आदि देवताओं के गण थे । हिरण्यरोमा, वेदेशिरा ऊर्ध्वबाहु आदि सप्तर्षि थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

पत्नी विकुण्ठा शुभ्रस्य वैकुण्ठैः सुरसत्तमैः । तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुण्ठो भगवान्स्वयम् ॥४॥

अन्वयः— शुभ्रस्य पत्नी विकुण्ठा तयोः वैकुण्ठः भगवान् स्वयम्, स्वकलया वैकुण्ठैः सुरसत्तमैः सह जज्ञे ॥४॥

अनुवाद— उन सप्तर्षियों में से शुभ्र नामक ऋषि की पत्नी का नाम विकुण्ठाथा, उन दोनों के पुत्र रूप से भगवान् अपनी कला से वैकुण्ठ नामक देवताओं के साथ वैकुण्ठ नाम से उत्पन्न हुए ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

वैकुण्ठः कल्पितो येन लोकोलोकनमस्कृतः । रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया ॥५॥

अन्वयः— रमया देव्या प्रार्थ्यमानेन येन तत्प्रियकाम्या लोकनमस्कृतः वैकुण्ठः लोकः कल्पितः ॥५॥

अनुवाद लक्ष्मी देवी द्वारा प्रार्थना किए जाने पर वैकुण्ठ भगवान् ने लक्ष्मी जी को प्रसन्न करने के लिए सभी लोकों में श्रेष्ठ वैकुण्ठ लोक की कल्पना की ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

तस्यानुभावः कथितो गुणाश्च परमोदयाः । भौमान्रेणून्स विममे यो विष्णोर्वर्णयेद्गुणान् ॥६॥

अन्वयः— तस्यानुभावः कथितः परमोदयाः गुणाः च यो मौमान् रेणून विममे स स विष्णोः गुणान् वर्णयेत् ॥६॥

अनुवाद— उन वैकुण्ठनाथ भगवान् के प्रभाव तथा कल्याणमय गुणों का वर्णन मैं संक्षेप में तीसरे स्कन्ध में कर चुका हूँ । जो सम्पूर्ण पृथिवी के धूलिकणों को गिन सके वही भगवान् विष्णु के समस्त गुणों का वर्णन कर सकता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

तस्य वैकुण्ठसंज्ञस्य हरेरनुभावः सनकादिशापेन दैत्यतां प्राप्ताभ्यां स्वपार्षदाभ्यां वाराहादिरूपेण युद्धादिलक्षणः, गुणाश्च ब्रह्मण्यतादयः, परमोदयाश्च महर्द्धयः कथिताः तृतीयस्कन्धादिषु ॥६॥

भाव प्रकाशिका

वैकुण्ठ संज्ञक श्रीहरि के सनकादि के शाप से दैत्य बने हुए उनके पार्षदों के साथ वराह आदि रूप से युद्धादि रूप प्रभाव का तथा ब्रह्माण्यता आदि गुणों का एवं अत्यधिक समृद्धि आदि का तृतीय आदि स्कन्धों में वर्णन किया जा चुका है ॥६॥

षष्ठश्च चक्षुषः पुत्रश्चाक्षुषो नाम वै मनुः । पूरुपुरुषसुद्युम्नप्रमुखाश्चक्षुषात्मजाः ॥७॥

अन्वयः— षष्ठः च मनुः चक्षुषः पुत्रः चाक्षुषः तस्य पुरुपुरुषसुद्युम्नप्रमुखाः चाक्षुषात्मजाः ॥७॥

अनुवाद— छठे मनु चक्षुष के पुत्र चाक्षुष हुए उनके पुरु, पुरुष तथा सुद्युम्न आदि पुत्र थे ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

इन्द्रो मन्त्रद्रुमस्तत्र देवा आप्यादयो गणाः । मुनयस्तत्र वै राजन्हविष्मद्वीरकादयः ॥८॥

अन्वयः— तत्र इन्द्रः मन्त्रद्रुमः देवा आप्यादयः गुणाः । राजन् तत्र मुनयः हविष्मद वीरकादयः ॥८॥

अनुवाद— उस मन्वन्तर के इन्द्र का नाम मन्त्रद्रुम था आप्य आदि देवताओं के गण थे । राजन् उस मन्वन्तर में हविष्यमान तथा वीरक आदि सप्तर्षि थे ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

तत्रापि देवः संभूत्यां वैराजस्याभवत्सुतः । अजितो नाम भगवानंशेन जगतः पतिः ॥९॥

अन्वयः— तत्रापि जगतः पतिः देवः भगवान् वैराजस्य सम्भूत्यां अजितो नाम सुतः अभवत् ॥९॥

अनुवाद— उस मन्वन्तर में भी जगत् के स्वामी दिव्यगुण सम्पन्न श्रीभगवान् सम्भूति देवी के गर्भ से वैराज के पुत्र अजितनाभ से अंशावतार ग्रहण किए ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा । भ्रममाणोऽम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मन्दरः ॥१०॥

अन्वयः— येन पयोधिं निर्मथ्य सुराणां सुधा साधिता, अम्भसि भ्रममाणः मन्दरः कूर्मरूपेण धृतः ॥१०॥

अनुवाद— उन्होंने ही समुद्र मन्थन करके देवताओं को अमृत दिलाया था। वे ही जल में घूमते हुए मन्दराचल को कूर्म रूप से धारण किया था ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

राजोवाच

यथा भगवता ब्रह्मन्मथितः क्षीरसागरः । यदर्थ। वा यतश्चाद्रिं दधाराम्बुचरात्मना ॥११॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! यथा भगवता क्षीरसागरः मथितः यदर्थं वा यतः अम्बुचरात्मना अद्रिं दधार ॥११॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! जिस प्रकार से भगवान् ने क्षीर सागर का मन्थन किया और उन्होंने कच्छप रूप धारण करके जिस कारण और जिस प्रयोजन से मन्दराचल धारण किया उसे बतलाएँ ॥११॥

भावार्थ दीपिका

यतो हेतोः । अम्बुचरात्मना कूर्मरूपेण ॥११॥

भाव प्रकाशिका

यतः अर्थात् जिस कारण से, अम्बुचरात्मना अर्थात् कूर्म रूप से ॥११॥

यथाऽमृतं सुरैः प्राप्तं किं चान्यदभवत्ततः । एतद्भगवतः कर्म वदस्व परमाद्भुतम् ॥१२॥

अन्वयः— यथा सुरैः अमृतं प्राप्तं ततः किंच अन्यत् अभवत् एतत् भगवतः परमाद्भुतं कर्म वदस्व ॥१२॥

अनुवाद— जिस तरह देवताओं को अमृत प्राप्त हुआ और उसके पश्चात् वहाँ जो दूसरी बातें हुई उन श्रीभगवान् के अद्भुत कर्मों को आप मुझे सुनाएँ ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

सुराणां साधिता सुधा इत्युक्त्या युद्धाद्यपि सूचितम्, अतः पृच्छति- किं चान्यदिति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं को अमृत पिलाया इस कथन से वहाँ युद्ध इत्यादि का भी होना सूचित है । इसी को राजा पूछते हैं कि वहाँ दूसरा कौन सा कार्य हुआ ॥१२॥

त्वया सकथ्यमानेन महिम्ना सात्वतां पतेः । नातितृप्यति मे चित्तं सुचिरं तापतापितम् ॥१३॥

अन्वयः— त्वया संकथ्यमानेन सात्त्वताम्पतेः महिम्ना सुचिरं तापतापितम् मे चित्तं न अति तुप्यति ॥१३॥

अनुवाद— आपके द्वारा वर्णन किए जाने वाले भक्तवत्सल श्रीभगवान् की महिमा को सुनकर मेरा चित्त तृप्त ही नहीं होता है क्योंकि यह संसार की ज्वालाओं से दीर्घ काल से संतप्त है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

सूत उवाच

संपृष्टो भगवानेवं द्वैपायनसुतो द्विजाः । अभिनन्द्य हरेर्वीर्यमभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥१४॥

अन्वयः— हे द्विजाः ! भगवान् द्वैपायनसुतः एवं सम्पृष्टः अभिनंद्य हरेः वीर्यं अभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥१४॥

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— हे शौनकादि महर्षियों ! राजा परीक्षित् के द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर महर्षि द्वैपायन के पुत्र श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित् की प्रशंसा किए और श्रीभगवान् की समुद्र मन्थन की लीला का वर्णन करना प्रारम्भ किए ।।१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४।।

श्रीशुक उवाच

यदा युद्धेसुरैर्देवा बाध्यमानाः शितायुधैः । गतासवो निपतिता नोत्तिष्ठेरन्स्म भूयशः ।।१५।।

अन्वयः— यदा युद्धे असुरै शितायुधैः बाध्यमानाः देवाः गतासवः निपतिताः भूयशः नोतिष्ठेरन् स्म ।।१५।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जब युद्ध में असुरों के तीक्ष्ण आयुधों के प्रहार से बहुत देवता मरकर गिर पड़े और उठे ही नहीं।।१५।।

भावार्थ दीपिका

नोत्तिष्ठेरत्र पुनर्जीवन्ति स्मेत्यर्थः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

नोत्तिष्ठेरन् अर्थात् पुनर्जीवित नहीं हुए ।।१५।।

यदा दुर्वाससः शापात्सेन्द्रा लोकास्त्रयो नृप । निःश्रीकाश्चाभवंस्तत्र नेशुरिज्यादयः क्रियाः ।।१६।।

अन्वयः— हे नृप ! यदा दुर्वाससः शापात् सेन्द्राः त्रयो लोकाः निःश्रीकाः च अभवन् इज्यादयः क्रियाः नेशुः ।।१६।।

अनुवाद— हे राजन् ! जब दुर्वासा ऋषि के शाप से इन्द्र सहित त्रैलोक्य श्रीविहीन हो गया तथा यज्ञ यागादि क्रियाओं का लोप हो गया ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

दुर्वाससा हि कदाचिन्मार्गे गच्छन्तमिन्द्रं इष्ट्वा स्वकण्ठस्था माला तस्मै दत्ता, तेन च श्रीमदेनानादृत्यैरावतस्य कुम्भयोर्निक्षिप्ता, स च गजो मत्तः पदभ्यां तां मालां चूर्णीचकार, ततः कुपितो दुर्वासास्तं शशाप त्रिभिर्लोकैः सह त्वं निःश्रीको भवेति । तदेतदाह-यदा दुर्वाससः शापा दिति । इज्यादयो यागाद्याः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

एक बार दुर्वासा ऋषि ने मार्ग में जाते हुए इन्द्र को देखा और उन्होंनें अपने गले की माला को इन्द्र को प्रदान किया । ऐश्वर्य मद के कारण इन्द्र ने उस माला का अनादर करके उसे ऐरावत के कुम्भस्थल पर रख दिया। वह मतवाला हाथी उस माला को अपने पैरों से रौंद दिया । यह देखकर क्रुद्ध दुर्वासा महर्षि ने शाप दिया त्रैलोक्य के साथ तुम भी निःश्रीक हो जाओ इसी बात को यदादुर्वाससः शापत् इत्यादि श्लोक से कहा गया है । इज्यादयः अर्थात् यज्ञ याग इत्यादि ।।१६।।

निशाम्यैतत्सुरगणा महेन्द्रवरुणादयः । नाध्यगच्छन्स्वयं मन्त्रैर्मन्त्रयन्तो विनिश्चयम् ।।१७।।

अन्वयः— एतत् निशाम्य महेन्द्रवरुणादयः सुरगणाः स्वयं मन्त्रैः मन्त्रयन्तः विनिश्चियम् नाध्यगच्छन् ।।१७।।

अनुवाद— यह देखकर इन्द्र वरुण आदि देवताओं ने आपस में बहुत विचार किया किन्तु वे किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

ततो ब्रह्मसभां जग्मुर्मेरोर्मूर्धनि सर्वशः । सर्वं विज्ञापयांचक्रुः प्रणताः परमेष्ठिने ॥१८॥

अन्वयः— ततः सर्वशः मेरोः मूर्धनि ब्रह्मसभां जग्मुः प्रणताः परमेष्ठिने सर्वं विज्ञापयाञ्चक्रुः ॥१८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् सभी देवता सुमेरु पर्वत के शिखर पर ब्रह्माजी की सभा मे गये और नम्रता पूर्वक ब्रह्माजी को सारी बातें बतलाये ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

स विलोक्येन्द्रवाय्वादीन्निः सत्त्वान्विगतप्रभान् । लोकानमङ्गलप्रायानसुरानयथा विभुः ॥१९॥

अन्वयः— सः विभुः इन्द्रवायवादीन् निः सत्त्वान् विगतप्रभान् अमङ्गलप्रायान् लोकान् असुरन् अयथा ॥१९॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने इन्द्र तथा वायु आदि देवों को श्रीविहीन तथा सभी लोगों के अमङ्गलमय एवं असुरो को इसके विपरीत समृद्ध देखा ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

असुरान् अयथा देववैलक्षण्येन । बलपुष्ट्यादियुक्तान्विलोक्येत्यर्थः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

असुरों को ब्रह्माजी ने देवताओं के विपरीत बल तथा पुष्टि से युक्त देखकर ॥१९॥

समाहितेन मनसा संस्मरन्पुरुषं परम् । उवाचोत्फुल्लवदनो देवान्स भगवान्परः ॥२०॥

अन्वयः— परः भगवान् समाहितेन मनसा परम् पुरुषं संस्मरन् उत्फुल्लवदनः सः देवान् उवाच ॥२०॥

अनुवाद— समर्थ ब्रह्माजी ने एकाग्रचित्त होकर पहले परं पुरुष श्रीभगवान् का ध्यान किया, उसके बाद वे प्रसन्न होकर देवताओं से कहे ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

हरिं शरणं गताः सन्तो यथापूर्वं सर्वं प्राप्स्याम इति हर्षेणोत्फुल्लं विकसितं वदनं यस्य ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

हमलोग श्रीहरि की शरणागति करके पहले के ही समान सबकुछ प्राप्त कर लेंगे, यह जानकर उन्होंने प्रसन्न होकर देवताओं से कहा ॥२०॥

अहं भवो यूयमथोऽसुरादयो मनुष्यतिर्यग्द्रुमघर्मजातयः ।
तस्यावतारांशकला विसर्जिता व्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम् ॥२१॥

अन्वयः— अहं भवः यूयम् अथो असुरादयः मनुष्यतिर्यग्द्रुमघर्मजातयः तस्यावतारांशकला विसर्जिताः सर्वे तम् अव्ययं शरणं व्रजाम ॥२१॥

अनुवाद— मैं शङ्करजी, तुमलोग तथा असुर इत्यादि मनुष्य पशु-पक्षी स्थावर तथा स्वेदज, सभी जिनके विराट रूप के एक अत्यन्त छोटे-से-छोटे अंश से उत्पन्न हैं, उन्हीं श्रीभगवान् की शरण में हमलोग चलें ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

मनुष्यादयो जरायुजाण्डजोद्भिज्जस्वेदजाः । यस्यावतारः पुरुषस्तस्यांशो ब्रह्मा तस्य कला मरीच्यादयस्ताभिर्विसर्जिताः पुत्रपौत्रादिद्वारा जनिताः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

मनुष्य आदि, जरायुज अण्डज उद्भिज स्वेदज आदि जिनके अवतार पुरुष हैं उनके अंश बह्माजी है उनकी कला मरीचि आदि उन लोगों से उत्पन्न उनके पुत्र पौत्रों द्वारा उत्पन्न हैं ॥२१॥

न यस्य वध्यो न च रक्षणीयो नोपेक्षणीयादरणीयपक्षः ।
अथापि सर्गस्थितिसंयमार्थं धत्ते रजःसत्त्वतमांसि काले ॥२२॥

अन्वयः— यस्य वध्यो न न च रक्षणीयः न उपेक्षणीय आदरणीय पक्षः तथापि सर्ग स्थिति संयमार्थं काले रजः सत्त्वतमांसि धत्ते ॥२२॥

अनुवाद— उनका न तो कोई वध का पात्र है और न तो कोई रक्षा का पात्र है । उनके लिए न तो कोई उपेक्षण योग्य पक्ष है और न तो आदरणीय पक्ष है । फिर भी वे सृष्टि, स्थिति एवं संहार के लिए समय-समय पर सत्त्व, रज एवं तम गुण को स्वीकार करते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि सर्वेष्वसौ समः स्यात्किं तच्छरणाश्रयेण, सत्यम्, यद्यप्येवं तथाप्यस्मत्पक्षपाती भविष्यतीत्याशयेनाह-न यस्येति द्वाभ्याम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहें कि तब तो परमात्मा सबों के लिए एक समान हैं तो ऐसी स्थिति में उनकी शरणागति करने से कौन सा लाभ है ? तो यद्यपि ऐसी बात है फिर भी श्रीभगवान् हमलोगों का पक्षपात करेंगे इस बात को **न यस्य इत्यादि** दो श्लोकों से कहते हैं ॥२२॥

अयं च तस्य स्थितिपालनक्षणः सत्त्वं जुषाणस्य भवाय देहिनाम् ।
तस्माद्व्रजामः शरणं जगद्गुरुं स्वानां स नो धास्यति शं सुरप्रियः ॥२३॥

अन्वयः— अयं च तस्य सत्त्वं जुषाणस्य देहिनाम् भवाय स्थितिपालनक्षणः । तस्मात् जगद्गुरुं शरणं व्रजामः सुरप्रियः सः नो शं धास्यति ॥२३॥

अनुवाद— सभी प्राणियों का कल्याण करने के लिए सत्त्वगुण को स्वीकार किए हुए उस परमात्मा का यह रक्षण और पालन का समय है, अतएव हम सभी उन्ही जगद्गुरु की शरणागति करते है । श्रीभगवान् को देवता प्रिय हैं अतः वे हमलोगों का कल्याण करेंगे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

स्थितिपालनस्य क्षणः कालः । अतः सुरप्रियः सन्स्वीयानां नः शं सुखं करिष्यति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

यह परमात्मा के रक्षण और पालन का काल है । अतएव देवताओं के प्रिय होने के कारण हम आत्मीयों को सुखी बना देंगे ॥२३॥

श्रीशुक उवाच

इत्याभाष्य सुरान्वेधाः सह देवैररिन्दम । अजितस्य पदं साक्षाज्जगाम तमसः परम् ॥२४॥

अन्वयः— हे अरिन्दम् ! वेधाः इति सुरान् आभाष्य देवैः सह तमसः परम साक्षात् अजितस्य पदं जगाम ॥२४॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! ब्रह्माजी देवताओं से इस तरह से कहकर देवताओं के साथ प्रकृति मण्डल से ऊपर विद्यमान साक्षात् श्रीभगवान् के लोक में गये ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

यत्र क्षीराब्धौ हरेर्वासस्तदेव तमसः परं स्थानम् । यद्वा लोकालोकात्परतो यत्तमस्ततः परं स्थानं जगाम ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

क्षीर सागर में जहाँ श्रीहरि का निवास है वही प्रकृति मण्डल से परे है । अथवा लोकालोक के वाद जो घोर अन्धकार है उसके पश्चात् जो श्रेष्ठ स्थान है वहीं ब्रह्माजी गये ॥२४॥

तत्रादृष्टस्वरूपाय श्रुतपूर्वाय वै विभो । स्तुतिमब्रूत दैवीभिर्गीर्भिस्त्ववहितेन्द्रियः ॥२५॥

अन्वयः— हे विभो ! श्रुतपूर्वाय तत्र अदृष्टस्वरूपाय वै अवहितेन्द्रियः दैवीभिः गीर्भिः स्तुतिम् अब्रूत ॥२५॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! जिसको वे पहले से सुन रखे थे, किन्तु ब्रह्माजी वहाँ पर कुछ भी नहीं देखे, ऐसे श्रीभगवान् की स्तुति ब्रह्माजी ने वैदिक वाणी से की ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

दैवीर्भिर्लोकेऽप्रसिद्धाभिर्वैदिकीर्भिर्गीर्भिः स्तुतिमकरोत् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

लोक में अप्रसिद्ध वैदिक वाणी से श्रीभगवानृ की स्तुति की ॥२५॥

ब्रह्मोवाच

अविक्रियं सत्यमनन्तमाद्यं गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम् ।
मनोऽग्रयानं वचसाऽनिरुक्तं नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥२६॥

अन्वयः— अविक्रयं, सत्यम्, अनन्तम् आद्यं, गुहाशयं, निष्कलम्, अप्रतर्क्यम् मनोऽग्रयानं वचसाऽनिरुक्तं देववरं वरेण्यम् नमामहे ॥२६॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! आप निर्विकार, सत्य स्वरूप, अनन्त, आदि पुरुष, सबों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से निवास करने वाले, अखण्ड, एवं अतर्क्य हैं । जहाँ-जहाँ मन जाता है वहाँ-वहाँ पहले से ही आप विद्यमान रहते हैं । वाणी के द्वारा आपका निरूपण नहीं किया जा सकता है, सभी देवताओं में श्रेष्ठ तथा सबों के द्वारा आश्रय रूप से आप वरणीय हैं । ऐसे आपको हमलोग नमस्कार करते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

देववरं त्वां नमामहे नमाम । हे देव, वरं त्वां नमामेति वा । वरत्वे हेतुः- सत्यम् । कुतः अविक्रियम् । तत्कुतः अनन्तमाद्यं चानादिम् । आद्यन्तवन्तो हि वृद्ध्याधादिविक्रियायुक्ता भवन्ति । किंच-गुहाशयं सर्वान्तरम् । कुतः निष्कलं निरूपाधिम्। तत्कुतः अप्रतर्क्यम् । तत्कुतः । मनोग्रयानं मनसोऽपि जविष्ठम्, मनःप्राप्ये स्थाने ततः प्रागेव विद्यमानत्वात् । तथा च श्रुतिः- 'अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्शत् । तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्' इति । वचसा अनिरुक्तम्, अविषयत्वात् 'यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते' इति श्रुतेः । मनोवचसोरगोचरत्वादप्रतर्क्यम् । यथेष्टं वा सर्वेषां हेतुहेतुमद्भावः॥२६॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं में सर्वश्रेष्ठ आपको हम सभी नमस्कार करते हैं । अथवा हे देव आप सबों से श्रेष्ठ हैं अतएव हमलोग नमस्कार करते हैं । श्रेष्ठत्व का कारण है कि आप सत्य स्वरूप हैं क्योंकि आप में कोई भी विकार नहीं होता है क्योंकि आप अनन्त और अनादि है जिसका आदि और अन्त होता है उसमें ही वृद्धि आदि विकार होते हैं । साथ-

भी-साथ आपसभी के भीतर अन्तर्यामी रूप में विद्यमान हैं । क्योंकि आप सभी उपाधियों से रहित हैं वह भी इसलिए कि आप तर्क से परे हैं । वह भी इसलिए कि जहाँ तक मन पहुँच पाता है, वहाँ पहले से ही आप विद्यमान रहते हैं । श्रुति भी कहती है **अनेजदेकं मनसो जयीयो० इत्यादि** अर्थात् परमात्मा नहीं चलते हैं किन्तु मन से भी अधिक वेगवान हैं, पहले से सर्वत्र प्राप्त परमात्मा को चलने वाले देवगण उस परमात्मा को नहीं प्राप्त करते हैं । अपने से भिन्न सभी दौड़ने वालों से परमात्मा आगे निकल जाते हैं । परमात्मा वाणी का विषय है ही नहीं अतएव वाणी आपका निरूपण नहीं कर सकती है । श्रुति कहती है-- **यदवाचा० इत्यादि** अर्थात् वाणी के द्वारा जिनका निरूपण नहीं किया जाता अपितु परमात्मा के द्वारा वाणी बोलने का काम करती है । मन और वाणी का अविषय होने के कारण परमात्मा अतर्क्य है । अथवा इन सभी विशेषण में यथेष्ट हेतु सद्भाव है ॥२६॥

विपश्चितं प्राणमनोधियात्मनामर्थेन्द्रियाभासमनिद्रमव्रणम् ।
छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ तमक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे ॥२७॥

अन्वयः— प्राणमनोधियात्मनाम् विपश्चितं अर्थेन्द्रियाभासम् अनिम् अव्रणम् यत्र गृध्रपक्षौ छपातपौ न तम् अक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे ॥२७॥

अनुवाद— जो प्राण, मन और बुद्धि के ज्ञाता हैं, इन्द्रियों तथा इन्द्रियों के विषयों के जो प्रकाशक हैं, अज्ञान से रहित, देह रहित, जीव के विद्या तथा अविद्या इन दोनों पक्षों से रहित ऐसे अविनाशी आकाश के समान व्यापक, त्रियुग अर्थात् सत्ययुग, त्रेतायुग और द्वापरयुग इन तीनों युगों में प्रकट रहने वाले श्रीभगवान् की हम सभी शरणागति करते हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

किंच-प्राणादीनां विपश्चितं ज्ञातारम् । आत्माहङ्कारो देहो वा । न तु तद्व्यतिरिक्तं ज्ञेयमस्तीत्याह-अर्थो विषयः । इन्द्रियाणि तद्ग्राहकाणि तदुभयरूपेणाभासत इति तथा तम् । तथाप्यनिद्रं स्वप्नवदज्ञानरहितम् । कुतः अव्रणमदेहम् । अत एवाक्षरं खमिव व्यापिनं च । सर्वत्र हेतुः- यत्र यस्मिन्गृध्रपक्षौ जीवपक्षपातिनौ छायातपावविद्या च तन्निवर्तिका विद्या च नास्ति तं त्रियुगं त्रिपु युगेष्वाविर्भवन्तं शरणं व्रजाम ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च, प्राण आदि के ज्ञाता यहाँ पर आत्मा शब्द देह अथवा अहङ्कार का वाचक है । उससे भिन्न कोई ज्ञेय पदार्थ नहीं है । अर्थ शब्द विषयों का वाचक है । इन्द्रियों और उनके विषयों के प्रकाशक, फिर भी अनीन्द्र अर्थात् स्वप्न द्रष्टा के समान अज्ञान से रहित क्योंकि परमात्मा अव्रण अर्थात् देह से रहित हैं अतएव अक्षर तथा आकाश के समान व्यापक । इन सबों का हेतु है कि परमात्मा जीवों के पक्षपाती (गृध्यति भुक्ति मुक्ती अभिकांक्षति) इस व्युत्पत्ति के अनुसार गृध्र शब्द जीव का वाचक है । अविद्या तथा उसकी निवृत्ति विद्या से रहित हैं । ऐसे परमात्मा सत्ययुग, त्रेता एवं द्वापर इन तीनों युगों में प्रकट रहते हैं । हम सभी इन्हीं परमात्मा की शरणागति करते हैं ॥२७॥

अजस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणं मनोमयं पञ्चदशारमाशु ।
त्रिणाभि विद्युच्चलमष्टनेमि यदक्षमाहुस्तमृतं प्रपद्ये ॥२८॥

अन्वयः— अजस्य पञ्चदशारं मनोमयं चक्रं, त्रिणाभि आशु, विद्युच्चलम् अष्टनेमि अजया ईर्यमाणं यदक्षमाहुः तमृतं प्रपद्ये ॥२८॥

अनुवाद— जीव का यह शरीर एक मनोमय चक्र हैं । दश इन्द्रियाँ और पाञ्च प्राण ये इसके पन्द्रह अर हैं । सत्त्व, रजस एवं तमस् ये तीनों गुण इसकी नाभि हैं । पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और

अहङ्कार ये आठ इसकी नेमि हैं । स्वयं माया ही इसका संचालन करती है । यह विद्युत से भी अधिक शीघ्र चलता है । इसके धुरि परमात्मा हैं, उन सत्य परमात्मा की मैं शरणागति करता हूँ ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

तदेवमविक्रियत्वादिभिः सर्वज्ञत्वादिभिश्च सत्यत्वं वरेण्यत्वं चोक्त्वा संसारचक्राधारत्वेनापि तदेव दर्शयन्नाह-अजस्य जीवस्य चक्रं चक्रवदावर्तमानं देहादजस्रं मायया प्रेर्यमाणम् । योऽक्षो यस्य मध्याधिष्ठानमाहुस्तमृतं सत्यं प्रपद्ये । कथंभूतं चक्रम् । मनोमयं मनःप्रधानम् । दशेन्द्रियाणि पञ्चप्राणाश्चेत्येवं पञ्च दश आरा यस्य । आशु शीघ्रगम् । त्रयो गुणा नाभिरिव मध्ये यस्य । विद्युदिव चलम् । अष्टौ प्रकृतयो नेमय इवावरणानि यस्य ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से विकार राहित्य आदि तथा सर्वज्ञत्व आदि के द्वारा परमात्मा के सत्यत्व का एवं वरेण्यत्व का प्रतिपादन किया जा चुका है । संसार चक्र के आधार होने के कारण भी परमात्मा के सत्यत्व आदि का प्रतिपादन करते हैं । जीवात्मा को देव चक्र के ही समान घुमाता रहता है । माया ही इसका संचालन करती है । इस चक्र के अधिष्ठान परमात्मा ही सत्य है । मैं उनकी शरणागति करता हूँ । प्रश्न होता है कि यह कैसा चक्र है ? तो इसका उत्तर है कि यह मनोमय चक्र है । अर्थात् इसमें मन ही प्रधान है । दश इन्द्रियाँ और पाँच प्राण इसके पन्द्रह अर हैं । यह शीघ्रगामी चक्र है । इसके बीच में नाभि के समान रहने वाले सत्त्वादि तीनों गुण हैं । यह विद्युत के समान शीघ्रगामी है । आठ प्रकृतियाँ पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार ये ही इसके आवरण हैं ॥२८॥

य एकवर्णं तमसः परं तदलोकमव्यक्तमनन्तपारम् । आसांचकारोपसुपर्णमेनमुपासते योगरथेन धीराः॥२९॥

अन्वयः— यः एकवर्ण, तमस परं तत् आलोकम् अव्यक्तम्, अनन्तपारम्, उप सुपर्णम् आसाञ्चकार एनं धीराः योगरथेन उपासते ॥२९॥

अनुवाद— जो परमात्मा एकमात्र ज्ञान स्वरूप तथा प्रकृति से परे तथा अदृश्य, अव्यक्त (निर्विकल्प) हैं। वे देश, काल, एवं वस्तु के सीमा से अपरिच्छिन्न हैं । वे जीव के नियामक रूप से जीवन के सन्निकट में ही विद्यमान रहते हैं । योगिजन योगरूपी साधन के द्वारा इनकी उपासना करते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

सर्वजीवनियन्तृत्वादिना च वरिष्ठत्वमाह-य इति । य उपसुपर्ण जीवसमीर्ण तन्नियन्तृत्वेनासांचकारास्ते स्म । 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते' इति श्रुतेः । यद्वा भक्तरक्षणार्थं गरुडस्योपरि य उपविष्ट इत्यर्थः । तर्हि देहस्थत्वाद्भक्तरक्षणादिक्रियावेशाज्जीवसाम्यं स्यात्तत्राह-एकवर्णं ज्ञानैकस्वरूपं, तमसः प्रकृतेः परम्, अलोकमदृश्यमव्यक्तं निर्विकल्पम्, अनन्तपारं कालतो देशतश्चापरिच्छिन्नं तद्ब्रह्मैव यः । अप्रच्युतस्वरूपत्वान्न जीवसाम्यम् । 'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति' इति विशेषश्रवणादित्यर्थः । अतएव यमेनं धीरा योगेन रथेन प्राप्तिसाधनेनोपासते भजन्ते तं नमामेत्युत्तरेणान्वयः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

सभी जीवों के नियामक होने के कारण भी परमात्मा जीवों से श्रेष्ठ हैं इस बात का प्रतिपादन **य एकवर्णम् इत्यादि** श्लोक से करते हैं । जो परमात्मा जीव के सन्निकट में जीवों के नियामक रूप से विद्यमान रहते हैं । श्रुति भी कहती द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते अर्थात् इस शरीर रूपी एक ही वृक्ष पर जीवात्मा और परमात्मा नामक दो सुपर्ण रहते हैं अथवा अपने भक्त की रक्षा करने के लिए परमात्मा गरुड की पीठ पर बैठे हैं । तब तो देह में रहने के कारण तथा भक्तों की रक्षा रूपी क्रिया के आवेश के कारण जीवात्मा और परमात्मा

में समता है। तो इस पर ब्रह्माजी कहते हैं। उनका एक मात्र ज्ञान स्वरूप है। प्रकृति से परे हैं, अदृश्य और निर्विकल्प हैं, देश एवं काल की सीमा से रहित हैं वे ब्रह्म। उसके स्वरूप में कभी कोई भी विकार नहीं आता है। अतएव उनकी जीव से समता नहीं हो सकती है। श्रुति भी कहती है **तयोरन्यः पिप्पलं स्वादक्त्यनश्नन्मन्य अभिचाकशीति**। इन दोनों में से जीवात्मा कर्म फलों का भोग करता है। और परमात्मा कर्म फल से असम्पृक्त रहकर भी देदीप्यमान रहते हैं। यह श्रुति परमात्मा की जीवात्मा से विशेषता बतलाता है। अतएव योगिजन जिस परमात्मा की योग के द्वारा उपासना करते हैं उनको ही हम नमस्कार करते हैं, इस तरह से आगे के श्लोक से अन्वय है ॥२९॥

न यस्य कश्चातितितर्ति मायां यया जनो मुह्यति वेद नार्थम्।
तं निर्जितात्मात्मगुणं परेशं नमाम भूतेश समंचरन्तम् ॥३०॥

अन्वयः- यस्य माया कश्चनाति तितर्ति, यया जनः मुह्यति अर्थ न वेद तं निर्जितामात्मगुणं परेशं भूतेषु समं चरन्तं नमामः ॥३०॥

अनुवाद— जिनकी माया को कोई भी पार नहीं कर सकता है, जिस माया से मोहित होकर जीव अपने लक्ष्य अथवा स्वरूप को भूल जाता है। किन्तु सर्वशक्तिमान परमात्मा उस माया तथा उसके गुणों को वश में करके सभी प्राणियों के हृदय में समान रूप से विचरण करते हैं। परमात्मा की ही कृपा से कोई भी उनको प्राप्त कर सकता है। उन श्रीभगवान् को हम सभी प्रणाम करते हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

मायानियन्तृत्वेनापि जीवसाम्यं परिहरन्वरिष्ठत्वमाह-यस्य मायां कश्च कश्चिदपि नातितितर्ति नातिक्रामति। कथंभूताम्। जनो यया मुह्यति अर्थमात्मस्वरूपं नतु वेद। निर्जित आत्मात्मशक्तिर्माया च तद्गुणाश्च येन तम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् माया के नियामक हैं अतएव भी उनके समान जीव नहीं हो सकता है। परमात्मा जीव से श्रेष्ठ हैं। जिन श्रीभगवान् की माया को कोई भी पार नहीं कर सकता है। वह माया कैसी है ? तो इसका उत्तर है कि उस माया से मोहित जीव अपने स्वरूप को नहीं जान पाता है। वे परमात्मा माया और माया के गुणों को अपने वश में कर लिए हैं ॥३०॥

इमे वयं यत्प्रिययैव तन्वा सत्त्वेन सृष्टा बहिरन्तराविः।
गतिं न सूक्ष्मामृषयश्च विद्महे कुतोऽसुराद्या इतरप्रधानाः ॥३१॥

अन्वयः— वयम् इमे ऋषयश्च यत्प्रिययैव तन्वा सत्त्वेन सृष्टाः, बहिरन्त, आविः सूक्ष्मां गतिं न विद्मः इतरप्रधानाः असुराद्याः कुतः ॥३१॥

अनुवाद— यदि हम सभी देवता और ऋषिगण श्रीभगवान् के प्रिय शरीर सत्त्वगुण से ही उत्पन्न हैं फिर भी परमात्मा के बाहर और भीतर की सूक्ष्मगति वास्तविक स्वरूप को नहीं जानते हैं तो फिर रजोगुण तथा तमोगुण प्रधान असुर आदि उसे क्या जानेंगे। ऐसे श्रीभगवान् को हम सभी नमस्कार करते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

'अर्थं न वेद' इति यदुक्तं तत्प्रपञ्चयन्नाह-इमे वयं देवा ऋषयश्च यस्य प्रियया तन्वा सत्त्वेनैव सृष्टा अपि बहिरन्तश्च सत्ताप्रकाशाभ्यामाविः प्रकटामपि सूक्ष्मां गतिं निरूपाधिस्वरूपं न विद्मः। इतरप्रधाना रजस्तमोमयाः कुतो विदुः। तं नमामेति पूर्वेणान्वयः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

इसके पहले के श्लोक में यह जो कहा गया है कि **अर्थं न वेद** अर्थात् अपने स्वरूप को नहीं जान पाता है उसी का विस्तार से वर्णन इस श्लोक में करते हैं । हमलोग तथा ऋषिगण की सृष्टि श्रीभगवान् के प्रिय शरीर सत्त्वगुण से ही हुई है । फिर भी सत्ता तथा प्रकाश के द्वारा प्रकट भी परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को हमलोग नहीं जानते हैं, तो फिर रजोगुण एवं तमोगुण प्रधान असुर इत्यादि परमात्मा के स्वरूप को क्या जानेंगे ? ऐसे परमात्मा को हमलोग नमस्कार करते है, यह पूर्व श्लोक से अन्वय है ।।३१।।

पादौ महीयं स्वकृतैव यस्य चतुर्विधो यत्र हि भूतसर्गः ।
स वै महापूरुष आत्मतन्त्रः प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ।।३२।।

अन्वयः— इयं स्वकृतैव मही यस्य पादौ यत्र हि चतुर्विधिः भूतसर्गः स वै आत्मतन्त्रः महाविभूतिः ब्रह्म प्रसीदताम्।।३२।।

अनुवाद— उन परमात्मा के द्वारा ही सृष्ट पृथिवी उनके दोनों पैर है, जिस पर जरायुज, अण्डज, उद्भिज तथा स्वेदज चार प्रकार के जीवों का निवास है वे परम स्वतन्त्र तथा महाऐश्वर्य सम्पन्न परंब्रह्म परमात्मा हम पर प्रसन्न हो जायँ ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं वैराजरूपेण स्तुवन्प्रार्थयते । पादौ महीति द्वादशभिः । यत्र मह्यां जरायुजादिभूतसर्गः सा मही यस्य पादौ स नः प्रसीदतु। आत्मतन्त्रः पादादिमत्त्वेऽपि न तत्परतन्त्रः । कुतः । ब्रह्म अप्रच्युतरूपः । तत्कुतः । महती विभूतिरैश्वर्यं यस्य सः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में वैराज रूप से परमात्मा की स्तुति करते हुए प्रार्थना बारह श्लोकों से करते हैं जिस पृथिवी पर जरायुज इत्यादि चार प्रकार के जीवों का निवास है वह पृथिवी जिन परमात्मा का चरण है, वे हम पर प्रसन्न हो जायँ । वे परमात्मा परम स्वतन्त्र है । यद्यपि परमात्मा के पैर इत्यादि हैं किन्तु वे उन सबों के अधीन नहीं हैं । क्योंकि उनके स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता है । क्योंकि वे महाविभूति सम्पन्न हैं ।।३२।।

अम्भस्तु यद्रेत उदारवीर्यं सिध्यन्ति जीवन्त्युत वर्धमानाः ।
लोकास्त्रयोऽथाखिललोकपालाः प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ।।३३।।

अन्वयः— उदारवीर्यम् अम्भस्तु यद्रेतः येन त्रयो लोकाः अखिलोकपालाः सिध्यन्ति, जीवन्ति उतवर्धमानाः महाविभूतिः ब्रह्म प्रसीदताम् ।।३३।।

अनुवाद— यह परम शक्तिशाली जल जिन श्रीभगवान् का रेतस है । उसी से तीनों लोक और उनके लोकपाल उत्पन्न होते हैं बढ़ते हैं और जीवित रहते हैं । वे महा ऐश्वर्यशाली परं ब्रह्म मुझ पर प्रसन्न होएँ ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

उदारं वीर्यं शक्तिर्यस्य तदम्भो यस्य रेतः स नः प्रसीदतु । उदारवीर्यतामाह-यतोऽम्भसो लोकादयः सिध्यन्ति जायन्ते।।३३।।

भाव प्रकाशिका

महती शक्ति सम्पन्न जल जिन परमात्मा का रेतस है वे भगवान् मुझपर प्रसन्न हो जायँ । जल की परम शक्ति सम्पन्नता को बतलाते हुए कहते हैं, कि उस जल से ही सभी लोक उत्पन्न होते हैं ।।३३।।

सोमं मनो यस्य समामनन्ति दिवौकसां वै बलमन्ध आयुः।
ईशो नगानां प्रजनः प्रजानां प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ।।३४।।

अन्वयः— यस्य मन सोमं समामनन्ति, दिवौकसां वै बलम् अन्नम् आयुः नगानाम् ईशः प्रजानां प्रजनः स महाविभूतिः न प्रसीदताम् ।।३४।।

अनुवाद— श्रुतियाँ बतलाती हैं चन्द्रमा परमात्मा का मन है वह देवताओं का बल, अन्न और आयु है । वह वृक्षों का सम्राट है । प्रजाओं की वृद्धि करने वाला है । ऐसे मन को स्वीकार करने वाले प्रभु हम पर प्रसन्न हो जायँ ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

यः सोमो देवानामन्धोऽन्नम् । अतएव बलमायुश्च । नगाना वृक्षाणाम् । प्रकर्षेण जनयति वर्धयतीति प्रजनः । तं यस्य मनः समामनन्ति स नः प्रसीदतु ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

जो चन्द्रमा देवताओं के अन्न हैं अतएव वे बल एवं आयु हैं वृक्षों के सम्राट हैं चन्द्रमा । वे प्रजाओं को बढ़ाने वाले हैं । वे हम पर प्रसन्न हो जायँ ।।३४।।

अग्निर्मुखं यस्य तु जातवेदा जातः क्रियाकाण्डनिमित्तजन्मा ।
अन्तः समुद्रेऽनुपचन्स्वधातून्प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ।।३५।।

अन्वयः— यस्य तु अग्निः मुखम् जातः जातवेदाः क्रियाकाण्ड निमित्त जन्मा जातः समुद्रे अन्तः स्वधातून् अनुपचन् स महाविभूतिः न प्रसीदताम् ।।३५।।

अनुवाद— अग्नि जिन परमात्मा का मुख है तथा जिनसे धन उत्पन्न होते हैं अग्नि की उत्पत्ति ही इसलिए हुई है कि वेद के यज्ञ यागादि कर्मकाण्ड पूर्णरूप से सम्पन्न हो सके । यह अग्नि ही शरीर के भीतर जाठराग्नि रूप से तथा समुद्र के भीतर वाडवाग्नि रूप से उसमें विद्यमान अन, जल आदि धातुओं को पचाने का काम करता है । सभी द्रव्यों की उत्पत्ति भी उसी से हुई हैं । ऐसे परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा हम पर प्रसन्न हों ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

अग्निर्यस्य तु मुखं जातः । कथंभूतः । जातं वेदो धनं यस्मात् । क्रियाकाण्डं तत्प्रतिपाद्यं कर्म तन्निमित्तं जन्म यस्य। अन्तःसमुद्रे उदरमध्ये स्वधातून्पाकार्हानेवान्नादीननुपचन् । प्रसिद्धसमुद्रेऽपि वाडवरूपेणोदकान्येवानुपचन्नग्निः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

जिस परमात्मा का अग्नि मुख बन गया । उसी से सारी संपत्तियाँ होती है कर्मकाण्ड के प्रतिपाद्य समस्त कर्मों की पूर्णता जिससे हो सके एतदर्थ ही अग्नि की उत्पत्ति हुई है । पेट के भीतर तथा समुद्र के भीतर अपने धातुओं को जो पकाने योग्य है । उन सबों को पचाने का काम करते हैं । समुद्र में तो वाडवाग्नि जल को ही पकाने का काम करती है ।।३५।।

यच्चक्षुरासीत्तरणिर्देवयानं त्रयीमयो ब्रह्मण एष धिष्ण्यम् ।
द्वारं च मुक्तेरमृतं च मृत्युः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ।।३६।।

अन्वयः— देवयानं त्रयीमयः ब्रह्मण एषधिष्ण्यम्, मुक्तेः, द्वारम्, अमृतं, मृत्युः तरणिः, यस्य चक्षुः स महाविभूतिः नः प्रसीदताम् ।।३६।।

अनुवाद— जिनके द्वारा जीव देवयान मार्ग से ब्रह्मलोक में जाता है, जो वेदों की साक्षात् मूर्ति है, उन श्रीभगवान् का ध्यान करने योग्य धाम, पुण्यलोकस्वरूप होने के कारण जो मुक्ति के द्वार हैं एवं अमृत हैं तथा कालरूप होने के कारण मृत्यु भी हैं, ऐसे सूर्य जिनके नेत्र हैं वे परमात्मा हमपर प्रसन्न हों ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

एष तरणिर्यस्य चक्षुरासीत् । कथंभूतः । देवयानमर्चिरादिमार्गदेवता । त्रयीमयः 'सैषा त्रय्येव विद्या तपति' इति श्रुतेः। ब्रह्मणो धिष्ण्यमुपासनास्थानम् । 'य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः' इति श्रुतेः । मुक्तेर्द्वारं देवयानत्वात् । अमृतं च पुण्यलोकत्वात् । मृत्युश्च कालात्मकत्वात् । एवंभूतस्तरणिर्यस्य चक्षुः स प्रसीदतु ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

ये सूर्य ही जिनके नेत्र हैं कैसे सूर्य ? जो अर्चिरादिमार्ग के देवता हैं तथा वेदों की साक्षात् मूर्ति हैं । श्रुति भी कहती है— **सैषा त्रय्येव विद्या तपति** अर्थात् यह सूर्य के रूप में त्रयीविद्या ही तपती है परमात्मा की उपासना के स्थान हैं, श्रुति कहती है **य एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः तपति** अर्थात् यह जो आदित्य मण्डल के भीतर हिरण्मय पुरुष चमकते है । देवयान रूप होने के कारण ये मुक्ति के द्वार हैं । पुण्यलोक स्वरूप होने के कारण जो अमृत हैं तथा कालरूप होने के कारण जो मृत्यु भी हैं । इस प्रकार के सूर्य जिनके नेत्र हैं वे परमात्मा मुझ पर प्रसन्न हों ॥३६॥

प्राणादभूद्यस्य चराचराणां प्राणः सहो बलमोजश्च वायुः ।
अन्वास्म सम्राजमिवानुगा वयं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३७॥

अन्वयः— यस्य प्राणात् चराचराणां प्राणः सहो, बलम् ओजश्च वायुः वयं सम्राजम् अनुगा इव अन्वास्म स महाविभूतिः नः प्रसीदताम् ॥३७॥

अनुवाद— जिस परमात्मा के ही प्राण से सम्पूर्ण चराचरों के प्राण तथा उन्हें मानसिक शारीरिक और इन्द्रिय सम्बन्धी बल देने वाला वायु प्रकट हुआ । वह वायु सम्राट है और हम सभी इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता उसके अनुचर हैं । इस प्रकार के परम ऐश्वर्यशाली श्रीभगवान् हम पर प्रसन्न हों ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

कथंभूतो वायुः । चराचराणां सहआदिधर्मवान्प्राणः, यं प्राणं वयं बुद्ध्याद्यधिष्ठातारो देवाः सम्राजं भृत्या इवास्माननुसृत्य स्थिताः । एवंभूतो वायुर्यस्य प्राणादभूत्सः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

किस प्रकार के वायु ? जो वायु चराचरों के सह आदि वाला है । जिस प्राण के बुद्धि आदि के अधिष्ठातृ देवता उसी तरह से अनुसरण करते हैं जैसे भृत्य सम्राट का अनुसरण करते है । इस प्रकार का वायु जिस परमात्मा के प्राण से उत्पन्न हुआ, वे हम पर प्रसन्न हो ॥३७॥

श्रोत्राद्दिशो यस्य हृदश्च खानि प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः ।
प्राणेन्द्रियात्मा सुशरीरकेतं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३८॥

अन्वयः— यस्य श्रोत्राद् दिशः हृदः च खानि प्रजज्ञिरे, पुरुषस्य नाभ्याः खं प्राणेन्द्रियात्मासुशरीरकेतं स महाविभूतिः न प्रसीदताम् ॥३८॥

अनुवाद— जिनके कानों से दिशाएँ और हृदय से इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई । नाभि से आकाश उत्पन्न हुआ;

जो पाँचों प्राणों (प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान) दसो इन्द्रयाँ, मन, असु (नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त एवं धनञ्जय) एवं शरीर का आश्रय है । वे परम ऐश्वर्यशाली भगवान् हम पर प्रसन्न हों ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

खानि देहगतानि च्छिद्राणि, प्राणः पञ्चवृत्तिः, इन्द्रियाणि च, आत्मा मनश्च , असवो नागकूर्मादयः, शरीरं च, तेषां केतमाश्रयभूतं खं यस्य पुरुषस्य नाभ्याः प्रजज्ञे सः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

खानि अर्थात् देह में विद्यमान छिद्र, प्राण, अपान आदि पाँच वृत्तियों वाला प्राण, आत्मा शरीर मन, नाग कूर्म आदि असु, तथा शरीर इन सबों का आश्रय भूत आकाश जिनकी नाभि से उत्पन्न वे महा ऐश्वर्यशाली परमात्मा हम पर प्रसन्न हों ॥३८॥

बलान्महेन्द्रस्त्रिदशाः प्रसादान्मन्योर्गिरीशो धिषणाद्विरिञ्चः ।
खेभ्यश्च छन्दांस्यृषयो मेढ्रतः कः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥३९॥

अन्वयः— बलात् महेन्द्रः प्रसादात् त्रिदशाः मन्योः गिरिशः धिषणात् विरिञ्चः, खेभ्यः च छन्दांसि ऋषयः, मेढ्रतः कः स महाविभूतिः प्रसीदताम् ॥३९॥

अनुवाद— बल से इन्द्र उत्पन्न हुए, प्रसन्नता से देवगण उत्पन्न हुए क्रोध से शङ्कर उत्पन्न हुए, बुद्धि से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, इन्द्रियों से वेद और ऋषिगण पैदा हुए तथा लिङ्ग से प्रजापति उत्पन्न हुए वे महाऐश्वर्यशाली परमात्मा हम पर प्रसन्न हों ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

यस्य बलान्महेन्द्रो जज्ञे । छन्दांसि ऋषयश्च खेभ्य; । कः प्रजापतिः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

जिस परमात्मा के बल से इन्द्र पैदा हुए, इन्द्रियों से वेद और ऋषिगण उत्पन्न हुए और लिङ्ग से प्रजापति उत्पन्न हुए ॥३९॥

श्रीर्वक्षसः पितरश्छायाऽऽसन्धर्मः स्तनादितरः पृष्ठतोऽभूत् ।
द्यौर्यस्य शीर्ष्णोऽप्सरसो विहारात्प्रसीदतां नः सह महाविभूतिः ॥४०॥

अन्वयः— वक्षसः श्रीः छायया पितर आसन्, स्तनात् धर्मः, इतरः पृष्ठतः अभूत् । यस्य शीर्ष्ण द्यौः विहारात् अप्सरसः स महाविभूतिः नः प्रसीदताम् ॥४०॥

अनुवाद— जिनके वक्षस्थल से लक्ष्मी, छाया से पितृगण, स्तन से धर्म, और पृष्ठ से अधर्म उत्पन्न हुआ, जिनके शिरोभाग से द्युलोक उत्पन्न हुआ विहार से अप्सराएँ उत्पन्न हुई वे महाऐश्वर्य शाली परमात्मा हम पर प्रसन्न हों ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

इतरोऽधर्मः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

इतर शब्द से अधर्म को कहा गया है ॥४०॥

विप्रो मुखं ब्रह्म च यस्य गुह्यं राजन्य आसीद्भुजयोर्बलं च ।
ऊर्वोर्विडोजोऽङ्घ्रिरवेदशूद्रौ प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४१॥

अन्वयः— विप्रः गुह्यं ब्रह्म च यस्य मुखम् भुजयोः राजन्यः बलं च, उर्वोः विट् ओजः अंघ्रि अवेदशूद्रौ स महाविभूतिः नः प्रसीदताम् ॥४१॥

अनुवाद— जिनके मुख से ब्राह्मण और रहस्यमय वेद उत्पन्न हुए, दोनों भुजाओं से क्षत्रिय और बल उत्पन्न हुए, दोनों जङ्घाओं से वैश्य एवं उनकी व्यापार कुशलता तथा चरणों से शूद्र तथा उनकी वेदवाह्य सेवा आदि प्रकट हुई वे परम ऐश्वर्य शाली श्रीभगवान् हम पर प्रसन्न हों ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

विड्वैश्यः । ओजो नैपुणं तस्य वृत्तिः अङ्घ्रिः । अङ्घ्रिजावित्यर्थः । अवेदशूद्रौ अवेदो वेदव्यतिरिक्ता शुश्रूषा तद्वृत्तिमान् शूद्रश्च । पाठान्तरं सुगमम् ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

विट् अर्थात् वैश्य, और उसकी व्यापार कुशलता रूप वृत्ति अङ्घ्रि चरण से उत्पन्न हुए अवेदशूद्रौ अर्थात् वेद व्यतिरिक्त सेवा तथा उस वृत्ति को अपनाने वाला शूद्र पाठान्तर का भी यही अर्थ है ॥४१॥

लोभोऽधरात्प्रीतिरुपर्यभूद्द्युतिर्नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः ।
भ्रुवोर्यमः पक्ष्मभवस्तु कालः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४२॥

अन्वयः— अधरात् लोभः उपरिप्रीतिः, अभूत् नस्तः द्युतिः, स्पर्शेन पशव्यः कामः, भ्रुवोः यमः पक्ष्मभवः तु कालः सः महाविभूतिः नः प्रसीदताम् ॥४२॥

अनुवाद— अधर से लोभ और उसके ओष्ठ से प्रीति (प्रेम) उत्पन्न हुई । नाकों से कान्ति तथा स्पर्श से पशुओं को प्रिय काम उत्पन्न हुआ । भौंहों से यम उत्पन्न हुए और पपनियों से काल उत्पन्न हुआ । वे महाऐश्वर्यशाली श्रीभगवान् हम पर प्रसन्न हो जायँ ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

उपर्युत्तरोष्ठात् । नस्तो नासिकातः । द्युतिः कान्तिः । पशव्यः पशूनां हितः कामः स्पर्शेनाभूत् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

ऊपर के ओष्ट से प्रीति उत्पन्न हुई, नस्तः अर्थात् नाक से, द्युतिः अर्थात् कान्ति, परमात्मा के स्पर्श से पशुओं को प्रिय काम उत्पन्न हुआ ॥४२॥

द्रव्यं वयः कर्मगुणान्विशेषं यद्योगमायाविहितान्वदन्ति ।
यद्दुर्विभाव्यं प्रबुधापबाधं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥४३॥

अन्वयः—द्रव्यं वयः कर्म गुणान् विशेषम् । यत् योगमाया विहितान् यद् दुर्विभाव्यं प्रबुधापबाधं वदन्ति स महाविभूतिः नः प्रसीदताम् ॥४३॥

अनुवाद— पञ्चमहाभूत, काल, कर्म सत्त्वादिगुण ये सब के सब भगवान् की योगमाया से ही बने हैं, इन सत्वों में विवेकी पुरुषों द्वारा बाधित किए जाने योग्य निर्वचनीय या अनिर्वचनीय विशेष पदार्थ हैं । ऐसे परम ऐश्वर्यशाली परमात्मा हम पर प्रसन्न हों ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

द्रव्यं भूतानि । वयः कालम् । विशेषं भौतिकप्रपञ्चम् । यद्यस्माद्दुर्विभाव्यम् । कुतः । प्रबुधापबाधं विद्वद्भिरपोह्यमानम्। पाठान्तरे प्रबुधानां मायेत्यवबोधो यस्मिन्नित्यर्थः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

द्रव्य अर्थात् पञ्चमहाभूत, **वयः** अर्थात् काल, **विशेष** अर्थात् भौतिक प्रपञ्च **यददुर्विभ्य** अनिर्वचनीय होने के कारण, क्योंकि **प्रबुधापबाधः** विवेकी पुरुषों द्वारा बाधित किए जाने वाला, **प्रबुधाववबोधम्** पाठभेद होने पर जिनको विवेकी पुरुष ही जान पाते हैं यह अर्थ होगा ।।४३।।

नमोऽस्तु तस्मा उपशान्तशक्तये स्वाराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने ।
गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभिर्नसज्जमानाय नभस्वदूतये ।।४४।।

अन्वयः— माया रचितेषु गुणेषु वृत्तिभिः न सज्जमानाय नभस्वदूतये, स्वाराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने उपशान्तशक्तये तस्मै नमः ।।४४।।

अनुवाद— माया रचित गुणों में जो दर्शन आदि वृत्तियों के द्वारा आसक्त नहीं होते हैं, जो वायु के समान सदा असङ्ग बने रहते हैं, तथा जिनमें सभी शक्तियाँ शान्त हो जाती हैं उन आत्मानन्द लाभ के कारण परिपूर्ण आत्म स्वरूप श्रीभगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं सप्रपञ्चमुपवर्ण्य निष्प्रपञ्चमनुवर्णयन्प्रणमति-नमोऽस्त्विति । वृत्तिभिर्दर्शनादिभिः । नभस्वान्वायुस्तस्येव ऊतिर्लीला यस्य तस्मै ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह सप्रपञ्च परमात्मा का वर्णन करके इस श्लोक से ब्रह्माजी निष्प्रपञ्च परमात्मा का वर्णन करते हुए प्रणाम करते है । **वृत्तिभिः** अर्थात् दर्श आदि वृत्तियों के द्वारा, **नभस्वदूतये** अर्थात् वायु के समान लीला वाले, भगवान् को नमस्कार है ।।४४।।

स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम् । प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम् ।।४५।।

अन्वयः— स त्वम् अस्मत् करणगोचरम् प्रपन्नानां दिदृक्षूणां नः सस्मितं तं मुखाम्बुजम् आत्मानं दर्शय ।।४५।।

अनुवाद— अतएव आप जिसे हमारी इन्द्रियाँ देख सकें ऐसे देखने के इच्छुक तथा आपके शरणागत देवताओं को मन्द मुस्कान से युक्त आप दर्शन दें ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

सस्मितं मुखाम्बुजं दिदृक्षूणां नोऽस्मच्चक्षुरादिकरणगोचरं यथा भवत्येवं चात्मानं दर्शय ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

देखना चाहने वाले हम देवताओं की चक्षुरादि इन्द्रियों के विषय जैसे बन सके वैसे आप अपने मन्दमुस्कान युक्त मुखकमल का अपने शरीर का दर्शन करायें ।।४५।।

तैस्तैः स्वेच्छाधृतै रूपैः काले काले स्वयं विभो । कर्म दुर्विषहं यन्नो भगवांस्तत्करोति हि ।।४६।।

अन्वयः— हे विभो ! यन्नो दुर्विर्षहंकर्म तत् काले काले स्वेच्छा धृतैः रूपैः स्वयं भगवान् करोति हि ।।४६।।

अनुवाद— प्रभो जो हमलोगों के लिए अत्यन्त कठिन कार्य है उसको समय-समय पर आप अपनी इच्छा के अनुसार धारण करके बड़ी आसानी से कर देते हैं ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

भक्तेच्छानुवर्तित्वं च तव बहुशो दृष्टमेवेत्याह-तैस्तैरिति । यन्नो दुर्विषहमशक्यं कर्म तद्भगवान्स्वयमेव करोति हि।।४६।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् आपने भक्तों की इच्छा की पूर्ति करते हैं यह बहुत बार देखा गया है, इस बात को **तैस्तैः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है जिन कार्यों को हमलोग नहीं कर सकते हैं उसको आप स्वयं ही कर देते हैं ।।४६।।

क्लेशभूर्यल्पसाराणि कर्माणि विफलानि वा । देहिनां विषयार्तानां न तथैवार्पितं त्वयि ।।४७।।

अन्वयः— विषयार्तानां देहिनां कर्माणि क्लेशभूर्याल्पसाराणि विफलानि वा त्वयि अर्पितं तथैव न ।।४७।।

अनुवाद— विषयों के लोभ में पड़कर जो सकाम कर्म किए जाते हैं, उनको करने में बहुत अधिक कष्ट होता है, किन्तु उन कर्मों का फल अत्यन्त अल्प होता है अथवा उन कर्मों में विफलता ही मिलती हैं, किन्तु जो कर्म आपको समर्पित कर दिए जाते हैं वे वैसा नहीं होते हैं ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

नच बहिर्मुखानामिव त्वद्भक्तानामस्माकं त्वय्यर्पितानि पूर्वपुण्यानि विपरीतफलानि भवितुमर्हन्तीत्याह-क्लेशो भूरिर्येषु। अल्पं सारं फलं येषु । यद्वा विफलान्येव सकामानां कर्माणि । त्वय्यर्पितं तु नैव तथा ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

वहिर्मुख भोग परायण जीवों के द्वारा किए जाने वाले कर्मों के समान आपके भक्त हमलोगों के द्वारा किए गये तथा आपको समर्पित किए गये पूर्व पुण्य विपरीत फल देने वाले नहीं हो सकते है, इस बात को **क्लेशः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । **अल्पसाराणि** अल्प फल वाले । अथवा सकाम कर्म करने वालों के कर्म विफल ही हो जाते हैं । जिन कर्मों को आपको समर्पित कर दिया जाता है वे कर्म वैसा नहीं होते हैं ।।४७।।

नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः । कल्पते पुरुषस्यैष स ह्यात्मा दयितो हितः ।।४८।।

अन्वयः— अवमः कर्मकल्पोऽपि ईश्वरार्पितः विफलाय न एष हि पुरुषस्य हितः दयितः आत्मा ।।४८।।

अनुवाद— छोटे से छोटे कर्माभास भी यदि ईश्वर को समर्पित कर दिया जाता है तो वह विफल नहीं होता है, क्योंकि ईश्वर जीवात्मा के परम हितैषी परम प्रिय और आत्मा हैं ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

तत्रावैफलल्यमुपपादयति-अवमोऽल्पोऽपि कर्मकल्पः कर्माभासोऽपीश्वरार्पितश्चेद्विफलायायासाय न कल्पते । हि यस्मात्स एष ईश्वरः पुरुषस्यात्मा । अतएव दयितो हितश्च । न ह्यात्मनि दयिते हिते चार्पितं निष्फलं स्यात् ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा को समर्पित कर्म विफल नहीं होते हैं, इस बात का प्रतिपादन करते हैं, छोटा सा भी कर्माभास यदि ईश्वर को समर्पित कर दिया जाता है तो वह विफल नहीं होता है । क्योंकि ईश्वर जीव के प्रियतम हितेषी और आत्मा है । प्रिय आत्मा को समर्पित कर देने पर कर्म निष्फल नहीं होता है ।।४८।।

यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् । एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि ।।४९।।

अन्वयः— यथा हि तरोः मूलावसेचनम् स्कन्ध शाखा हि सेवनम् । एवं विष्णोः आराधनं सर्वेषाम् आत्मनश्च ।।४९।।

अनुवाद— जिस तरह वृक्ष की जड़ को सींचने से वृक्ष की छोटी बड़ी सभी शाखाओं का सींचन हो जाता है, उसी तरह भगवान् विष्णु की आराधना सबों की और अपनी भी आराधना हो जाती है ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

अनन्तफलत्वमाह-यथा हि मूलावसेचनं स्कन्धानां शाखानां च भवति ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा को अर्पित कर्मों का फल अनन्त होता है । जिस तरह से जड़ को सीचने से वृक्ष की छोटी बड़ी **सभी** शाखाएँ सींच जाती हैं, उसी तरह ।।४९।।

नमस्तुभ्यमनन्ताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे । निर्गुणाय गुणेशाय सत्त्वस्थायच सांप्रतम् ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धेऽमृतमथने पञ्चमोऽध्याय: ।।५।।

अन्वयः— अनन्ताय दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे निर्गुणाय गुणेशाय सत्त्वस्थाय च साम्पतम् नमः ।।५०।।

अनुवाद— जो अनन्त स्वरूप है, जिनकी लीलाएँ वितर्क से परे हैं, जो तीनों गुणों के नियामक हैं, जो निर्गुण स्वरूप तथा सत्त्वगुण में स्थित रहते हैं, ऐसे श्रीभगवान् को हम नमस्कार करते हैं ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

भावार्थ दीपिका

एवं सत्यपि त्वदर्पितकर्मणां त्वद्भक्तानामस्माकं किंनिमित्तमिदं दुःखमिति त्वमेव वेत्सीत्याशयेनाह-नम इति । दुर्वितर्क्याण्यात्मकर्माणि स्वभावचेष्टितानि यस्य तस्मै ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

ऐसा होने पर भी आपके भक्त हमलोगों को किस कारण से कष्ट है इस बात को आप ही जानते हैं, इसी अभिप्राय से ब्रह्माजी ने **नमस्तुभ्यम् इत्यादि** श्लोक को कहा है । दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे अर्थात् जिन परमात्मा के कर्म दुर्वितर्क्य हैं ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के पाञ्चवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।५।।

◆

छठा अध्याय

देवताओं और दैत्यों का मिलकर समुद्र मन्थन का उद्योग करना

श्रीशुक उवाच

एवं स्तुतः सुरगणैर्भगवान्हरिरीश्वरः । तेषामाविरभूद्राजन्सहस्त्राकोंदयद्युतिः ।।१।।

अन्वयः— राजन् एवं सुरगणैः स्तुतः ईश्वरः भगवान् हरिः तेषाम् आविर्भूत सहस्त्रकोंदयद्युतिः ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह देवगणों से स्तुति किए जाने पर सम्पूर्ण जगत् के नियामक भगवान श्रीहरि उन देवताओं के बीच में ही प्रकट हो गये उस समय उनका तेज ऐसा था कि जैसे हजारों सूर्य एक साथ उदित हो गये हों।।१।।

भावार्थ दीपिका

षष्ठे पुनः स्तुतिर्विष्णावाविर्भूते सुरैः कृता । तन्मन्त्राच्चासुरैः साकममृतार्थे महोद्यमः । सहस्रार्कोद्भुतैः द्युतिरिव द्युतिर्यस्य ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इस छठे अध्याय में देवताओं ने श्रीभगवान् की पुनः स्तुति की श्रीभगवान् के आदेशानुसार देवताओं ने असुरों के साथ मिलकर अमृत प्राप्ति के लिए प्रयास किया उस समय श्रीभगवान् का तेज इतना था जितना हजार सूर्यों के एक साथ हो जाने पर प्रकाश होता है ।।१।।

तेनैव महसा सर्वे देवाः प्रतिहतेक्षणाः । नापश्यन्खं दिशः क्षोणिमात्मानं च कुतो विभुम् ।।२।।

अन्वयः— तेनैव महसा प्रतिहतेक्षणाः सर्वे देवा, खं दिशः, क्षोणीम् आत्मानं च न अपश्यन् विभुम् कुतः ।।२।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के उस तेज से सभी देवताओं की आँखे चौधियाँ गयीं । वे आकाश, दिशाओं, पृथ्वी और अपने को भी नहीं देख पा रहे थे फिर श्रीभगवान् को कैसे देख सकते थे ।।२।।

भावार्थ दीपिका

महसा तेजसा प्रतिहतानीक्षणानि चक्षूंषि येषाम् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

तेज से देवताओं की आँखें चौंधिया गयी थीं ।।२।।

विरिञ्चो भगवान्दृष्ट्वा सहशर्वेण तां तनुम् । स्वच्छां मरकतश्यामां कञ्जगर्भारुणेक्षणाम् ।।३।।

अन्वयः— शर्वेणसह विरिञ्चः स्वच्छां मरकतश्यामाम् कञ्जगर्भारुणेक्षणाम् तां तनुं दृष्ट्वा ।।३।।

अनुवाद— शङ्करजी के साथ ब्रह्माजी श्रीभगवान् के उस स्वच्छ, मरकतमणि के समान श्याम वर्ण के उस शरीर को जिसके नेत्र कमल के समान लाल थे देखकर स्तुति किए ।।३।।

भावार्थ दीपिका

तामाविर्भूतां तनुं विरिञ्चो दृष्ट्वा तुष्टावेति पञ्चमेनान्वयः । कञ्जगर्भवदरुणे ईक्षणे यस्य ।।३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के उस अविर्भूत शरीर को देखकर ब्रह्माजी ने स्तुति की । उस शरीर के नेत्र कमल में रहने वाली लालिमा से युक्त थे । इस श्लोक के आगे के पाँचवे श्लोक से अन्वय है ।।३।।

सप्तहेयवददातेन पीतेन लसता कौशेयवाससा युक्ताम् ।
प्रसन्नानि चारूणिसर्वाण्यङ्गानि यस्या शोभनं यस्या सुन्दरे भ्रुवौ यस्याः ।।४।।
महामणिकिरीटेन केयूराभ्यां च भूषिताम् । कर्णाभरणनिर्भातकपोलश्रीमुखाम्बुजाम् ।।५।।
काञ्चीकलापवलयहारनूपुरशोभिताम् । कौस्तुभाभरणां लक्ष्मीं बिभ्रतीं वनमालिनीम् ।।६।।
सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपासिताम् । तुष्टाव देवप्रवरः सशर्वः पुरुषं परम् ।।
सर्वामरगणैः साकं सर्वाङ्गैरवनिं गतैः ।।७।।

अन्वयः— तप्त हेमवदातेन लसत् कौशेयवासाम् प्रसन्नचारुसर्वाङ्गीम् सुमुखीं सुन्दरे भ्रुवौ, महामणिकिरीटेन केयूराभ्यां च भूषिताम्, कर्णाभरणनिर्भात कपोलश्रीमुखाम्बुजाम्, काञ्चीकलापवलयहारनूपुरशोभिताम् कौस्तुभाभरणां लक्ष्मी विभ्रताम् वनमालिनीम् मूर्तिमद्भिः स्वास्त्रैः सुदर्शनादिभिः उपासिताम्, दृष्ट्वा सशर्वः सर्वाङ्गैखानिगतैः सर्वामरगणैः साकं सशर्वः देवप्रवरः परम पुरुषं तुष्टाव ।।४-७।।

अनुवाद चमकते हुए सुनहले रेशमी वस्त्र से श्रीभगवान् का वह शरीर सुशोभित सर्वाङ्ग सुन्दर तथा प्रसन्न सुन्दर मुख और सुन्दर भौंहों से युक्त था, सिर पर महामणिमय किरीट था तथा भुजाएँ केयूरों से सुशोभित थीं। कानों के झलकते हुए कुण्डलों की चमक पड़ने से कपोल सुशोभित हो रहे थे, जिनमें मुख कमल विकसित था, कमर में करधनी हाथों में कङ्गन, गले में हार और पैरों में नूपुर सुशोभित हो रहे थे । वक्षः स्थल पर लक्ष्मी तथा गले में कौस्तुभमणि और वनमाला सुशोभित हो रही थी । श्रीभगवान् के अपने अस्त्र सुदर्शन आदि मूर्तिमान होकर उनकी सेवा कर रहे थे । सभी देवताओं ने पृथिवी पर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और सभी देवताओं के साथ शङ्करजी तथा ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् की स्तुति की ॥४-७॥

भावार्थ दीपिका

तप्तहेमवदवदातेन पीतेन लसता कौशेयवाससा युक्ताम् । प्रसन्नानि चारुणि सर्वाण्यङ्गानि यस्याः । शोभनं मुखं यस्याः। सुन्दरे भ्रुवौ यस्याः । महान्तो मणयो यस्मिंस्तेन किरीटेन । कर्णाभरणे कुण्डले ताभ्यां निर्भातौ यौ कपोलौ ताभ्यां श्रीर्मुखाम्बुजे यस्याः। कौस्तुभ आभरणं कण्ठे यस्याः। लक्ष्मीं वक्षसि बिभ्रतीम्। देवप्रवरो ब्रह्मा। सर्वाङ्गैरवनिंगतैः साष्टाङ्गं प्रणतैः।।४-७।।

भाव प्रकाशिका

तप्त सुवर्ण के समान चमकते हुए पीले रेशमी वस्त्र से श्रीभगवान् का वह शरीर सुशोभित था, उनके सारे अङ्ग प्रसन्न तथा मनोहर थे । मुख मनोज्ञ था, तथा भौहें मनोहर थीं उनके किरीट में बड़ी-बड़ी मणियाँ लगी थीं। दोनों कर्ण भूषणों से सुशोभित कपोलों से मुख कमल की शोभा और बढ़ गयी थी । उनके गले में कौस्तुभ मणि लटक रही थी और वक्षस्थल लक्ष्मी जी की शोभा से सम्पन्न था । **देवप्रवरः अर्थात्** ब्रह्माजी, **सर्वाङ्गमवनिंगतैः** पृथिवी पर गिरकर साष्टाङ्ग करने वाले ॥४-७॥

ब्रह्मोवाच

अजातजन्मस्थितिसंयमायागुणाय निर्वाणसुखार्णवाय ।
अणोरणिम्नेऽपरिगण्यधाम्ने महानुभावाय नमो नमस्ते ॥८॥

अन्वयः— अजातजन्मस्थितिसंयमाय, अगुणाय, निर्वाणसुखार्णवाय अणोरणिम्ने, अपरिगण्यधाम्ने महानुभावाय नमोनमस्ते।।८।।

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् का जन्म, स्थिति और संहार नहीं होता, जो प्रकृतिक गुणों से रहित हैं, मुक्तिजन्य सुख के सागर स्वरूप, अणु से भी सूक्ष्म अर्थात् सूक्ष्मातिसूक्ष्म, जिनके स्वरूप अनन्त हैं, ऐसे परम ऐश्वर्यशाली प्रभु को हम लोग बारम्बार प्रणाम करते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

'अनाविराविरासेयं नाभूताभूदिति ब्रुवन् । ब्रह्माऽभिप्रैति नित्यत्वविभुत्वे भगवत्तनोः ।' इति । श्रीमूर्तेरयमाविर्भाव एव न त्वस्मदादिवचन्मादि तवास्तीत्याह-न जाता जन्मादयो यस्य । कुतः । **अगुणाय अतो निर्वाणसुखस्यार्णवाय ।** अपारमोक्षसुखरूपायेत्यर्थः । तथाप्यणोरप्यणिम्नेऽतिसूक्ष्माय, दुर्ज्ञानत्वात् । **वस्तुतस्त्वपरिगण्यमियत्तातीतं धाम मूर्तिर्यस्य तस्मै।** न चैतदसंभावितम् । यतो महानचिन्त्योऽनुभावो यस्य तस्मै ।।८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् आविर्भाव से रहित इस शरीर को कहकर ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् के इस शरीर को नित्य और विभु बतलाते हैं । अर्थात् श्रीभगवान् का यह शरीर आविर्भूत नहीं होता है, हमलोगों के शरीर के समान इसका जन्म आदि नहीं होता है । क्योंकि यह शरीर प्रकृत सत्त्वादिगुणों से रहित है तथा निर्वाणसुख के सागर है । फिर भी यह

अत्यन्त सूक्ष्म है, क्योंकि इसको जानना अत्यन्त कठिन है । श्रीभगवान की मूर्ति की कोई सीमा है ही नहीं । इसे असम्भव इसलिए नहीं कहा जा सकता है कि इसका प्रभाव महान और अचिन्त्य है। ऐसे भगवान को नमस्कार है॥८॥

रूपं तवैतत्पुरुषर्षभेज्यं श्रेयोर्थिभिर्वैदिकतान्त्रिकेण ।
योगेन धातः सह नस्त्रिलोकान्पश्याम्यमुस्मिन्नु ह विश्वमूर्तौ ॥९॥

अन्वयः— हे पुरुषर्षभ ! श्रेयोर्थिभिः वैदिकतान्त्रिकेण च योगेन तव एतत् रूपं इज्यं । हे धातः अमुष्मिन नु ह विश्वमूर्तौ नः सह त्रिलोकान् पश्यामि ।।९।।

अनुवाद— कल्याण चाहने वाले साधकों को आपके इसी रूप की वैदिक एवं पाँच रात्रोक्त विधि से पूजा करनी चाहिए । हे प्रभो ! आपकी इस विश्वमूर्ति में मुझको देवगणों के साथ सम्पूर्ण त्रैलोक्य दिखायी देता है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

तन्मूर्तेः सनातनत्वमपरिमेयत्वं चोपपादयति-रूपमिति । हे पुरुषर्षभ, हे धात; एतत्तव रूपं वैदिकेन तान्त्रिकेण च **योगेनोपायेन** श्रेयोर्थिभिः सदेज्यं पूज्यम् । अतो नेदमिदानीमपूर्वं जातमिति भाव; ननु यूयं देवाः पूज्यत्वेन प्रसिद्धाः सत्यम्, **सर्वेऽप्यत्रैवान्तर्भूता** इत्याह-उ अहो । ह स्फुटम् । अमुष्मिंस्त्वयिनोऽस्मांस्त्रीन् लोकांश्च सह पश्यामि । तत्र हेतुः- विश्वं मूर्तौ **यस्य** । अतस्तवैतद्रूपं परिच्छिन्नमपि न भवतीति भावः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के उस शरीर को ब्रह्माजी इस श्लोक में सनातन तथा अपरिमेय बतलाते हुए कहते हैं हे पुरुषों **में श्रेष्ठ भगवन्** पुरुषोत्तम ! हे प्रभो ! आपका यह रूप कल्याण कामियों के द्वारा सदैव वैदिक एवं तन्त्रिक विधि **से पूजनीय है** । अतएव यह इस समय अपूर्व रूप से उत्पन्न नहीं हुआ है । यदि कहें कि पूज्य रूप से तो आप **सभी देवता में प्रसिद्ध** हैं तो यह भी सत्य है । सभी देवता भी आपके इस रूप में ही अन्तर्भूत है इस बात को **उह इत्यादि से ब्रह्माजी** कहते हैं यह स्पष्ट है कि आपके इस रूप में हमदेव गणों के साथ मैं त्रिलोकी को देखरहा **हूँ, क्योंकि** आपकी इस मूर्ति में सम्पूर्ण विश्व है । अतएव आपका यह रूप परिच्छिन (सीमित) भी नहीं है ।।९।।

त्वय्यग्र आसीत्त्वयि मध्य आसीत्त्वय्यन्त आसीदिदमात्मतन्त्रे ।
त्वमादिरन्तो जगतोऽस्य मध्यं घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात् ।।१०।।

अन्वयः— इदम् आत्मतन्त्रे त्वयि अग्रे आसीत् त्वयि मध्ये आसीत् त्वयि अन्ते आसीत् । अस्य जगतः त्वम् आदिः अन्तः मध्यम् परस्मात् परः त्वम् घटस्य मृत्स्ना इव ।।१०।।

अनुवाद— यह जगत् पहले आप में ही लीन था । मध्य में भी यह आपमें ही स्थित है और अन्त में भी आपमें ही लीन हो जायेगा । आप स्वयम् कार्य एवं कारण से परम स्वतन्त्र है आप ही इस जगत् के आदि मध्य और अन्त है । यह उसी तरह से है जिस तरह घड़े का आदि मध्य और अन्त मिट्टी हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

विश्वमूर्तित्वमेवाह-त्वयीति । घटस्य मृत्तिका यथा आदिरन्तश्च मध्यं च तथा त्वमस्य जगतः । तत्र हेतुः— परस्मात्प्रधानादपि परः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

त्वयि० इत्यादि इस श्लोक में ब्रह्माजी श्रीभगवान् के उस रूप के विश्वमूर्तित्त्व प्रतिपादन करते हैं । जिस तरह घट की आदि, मध्य और अन्त मिट्टी है उसी तरह आप इस जगत् के आदि मध्य और अन्त हैं ।।१०।।

त्वं माययात्माश्रयया स्वयेदं निर्माय विश्वं तदनुप्रविष्टः ।
पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणो गुणव्यवायेऽप्यगुणं विपश्चितः ॥११॥

अन्वयः— त्वं एव या आत्माश्रयया मायया इदं विश्वनिर्माय तदनुप्रविष्टः विपश्चितः गुणव्यवायेऽपि युक्ता मनीषिणः अगुणं त्वां पश्यन्ति ॥११॥

अनुवाद— आप अपने अधीन रहने वाली अपनी माया से इस सम्पूर्ण जगत् का निर्माण करके उसके पश्चात् उसमें प्रवेश करके इसमें अन्तर्यामी रूप से विराजमान रहते हैं । इसीलिए शास्त्र पुरुष बड़ी ही सावधानी से अपने मन को एकाग्र करके इन गुणों के विषयों की भीड़ में आपको निर्गुण रूप से साक्षात्कार करते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

मृत्तिकादृष्टान्तेन परिणामं प्राप्तं वारयतित्वमिति । स्वया स्वाधीनया । अतएव गुणानां व्यवाये परिणामेऽप्यगुणमेव त्वां युक्ताः पश्यन्ति । मनीषिणो विवेकिनः । विपश्चितः शास्त्रज्ञाः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

मिट्टी के दृष्टान्त के द्वारा इस बात को बतलाते हैं कि जगत् परमात्मा का परिणाम नहीं है । स्वाधीन रहने वाली माया के द्वारा गुणों के परिणाम होने पर भी सावधान शास्त्र तथा मनीषी पुरुष आपका निर्गुण रूप से ही साक्षात्कार करते हैं ॥११॥

यथाग्निमेधस्यमृतं च गोषु भुव्यन्नमम्बूद्यमने च वृत्तिम् ।
योगैर्मनुष्या अधियन्ति हि त्वां गुणेषु बुद्ध्या कवयो वदन्ति ॥१२॥

अन्वयः— यथा मनुष्याः एधसि अग्निम् गोषु अमृतं भुवि अन्नम्, उद्यमने अम्बुयोगैः वृत्तिम् अधियन्ति तथा कवयः गुणेषु त्वाम् अधियन्ति वदन्ति च ॥१२॥

अनुवाद— जिस तरह मनुष्य मन्थन के द्वारा कष्ट से अग्नि को, दोहन के द्वारा गौओं से घृत को, कर्षण (जोतने) के द्वारा पृथिवी से अन्न को, खनन रूपी उद्योग के द्वारा पृथिवी से जल को तथा प्रयास के द्वारा जीविका को प्राप्त कर लेते हैं । उसी तरह विवेकी पुरुष अपनी बुद्धि के द्वारा आपको गुणों में प्राप्त कर लेते हैं । और बतलाते हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव सदृष्टान्तमाह- यथाग्निं काष्ठे मंथनेन, अमृतमाज्यं गोषु दोहनादिना, भुव्यन्नं ब्रीह्यादि कर्षणादिना, अम्बु च खननेन, उद्यमने पुरुषकारे वाणिज्यादिना । वृत्तिं जीविकाम् । यद्वा अम्बु उद्यमने घटीयन्त्रादिनोद्धरणे । योगैरुपायैर्मनुष्या अधियन्ति प्राप्नुवन्ति, तथा कवयस्त्वां बुद्ध्या गुणेष्वधियन्ति वदन्ति च ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

इसी बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक बतलाते हैं । जिस तरह मनुष्य मन्थन के द्वारा काष्ठ से अग्नि को प्राप्त कर लेते हैं, दोहन आदि के द्वारा गौओं से घृत को प्राप्त कर लेते हैं, कर्षण (जोतने आदि) के द्वारा पृथिवी से अन्न प्राप्त कर लेते हैं, खनन रूप उद्योग के द्वारा जलप्राप्त कर लेते हैं । तथा व्यापार के द्वारा जीविका प्राप्त कर लेते हैं । अथवा घटीयन्त्र (राहट) के द्वारा निकाल कर मनुष्य उपाय से जल को **प्राप्त कर लेते हैं,** उसी तरह विवेकी पुरुष भी अपनी शुद्ध बुद्धि से भक्तियोग, ज्ञान योग के द्वारा आपको **इन विषयों में ही प्राप्त कर** लेते हैं। तथा अपनी अनुभुति के अनुसार आपका वर्णन भी करते हैं ॥१२॥

तं त्वां वयं नाथ समुज्झिहानं सरोजनाभातिचिरेप्सितार्थम् ।
दृष्ट्वा गता निर्वृतिमद्य सर्वे गजा दवार्ता इव गाङ्गमम्भः ॥१३॥

अन्वयः— हे सरोजनाभ ! दवार्ताःगजा गाङ्गमम्भः इव हेनाथ चिरेप्सितार्थं तं समुज्जिहानं त्वां दृष्ट्वा वयं सर्वे अद्य निर्वृतिं गताः ॥१३॥

अनुवाद— हे पद्मनाभ जिस तरह दवाग्नि से संतप्त हाथी गङ्गाजल में डुबकी लगाकर सुखी हो जाता है, उसी तरह से दीर्घकाल से अभिप्रेत, आपके इस आविर्भाव को देखकर हम सभी देवता सुखी और शान्त हो गये हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

हे नाथ सरोजनाभ, अतिचिरादीप्सितमर्थं तं योगैकप्राप्यं त्वां सम्यगुज्जिहानमाविर्भवन्तं प्रत्यक्षतो दृष्ट्वाऽद्य वयं निर्वृतिं गताः । दवार्ता दावाग्नि पीडिताः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

हे पद्मनाभ प्रभो हमलोग अत्यन्त दीर्घकाल से आपके दर्शन करना चाहते हैं । ऐसे आप योग के द्वारा ही प्राप्य हैं, अच्छी तरह से आविर्भूत हुए आपको देखकर हम सभी देवता उसी तरह से सुखी और शान्त हो गये हैं जिस तरह वनाग्नि से झुलसते हुए हाथी गङ्गाजल में डुबकी लगाकर सुखी और शान्त हो जाते हैं ॥१३॥

स त्वं विधत्स्वाखिललोकपालां वयं यदर्थास्तव पादमूलम् ।
समागतास्ते बहिरन्तरात्मन्किं वान्यविज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः ॥१४॥

अन्वयः— हे बहिरन्तरात्मन् वयम् अखिललोकपालाः यदर्थः तवपादमूलं समागताः स त्वं विधत्स्व अशेषसाक्षिण किं वा अन्य विज्ञाप्यम् ॥१४॥

अनुवाद— आप ही हमारे बाहर और भीतर की आत्मा है । हम सभी लोकपाल जिस उद्देश्य से आपके चरणों की शरण में आये हैं, उसको आप कृपा करके पूरा करें । आप तो सबों के साक्षी है, अतएव आप से दूसरी बातें क्या कहना है ?॥१४॥

भावार्थ दीपिका

यद्विधेयं तत्कथयेति चेत्तत्राह–हे अन्तरात्मन्, अशेषसाक्षिणस्ते बहिः किं वान्यैर्विज्ञाप्यमस्ति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मुझे क्या करना है तो इसका उत्तर है कि आप तो हम सबों की अन्तरात्मा होने के कारण सबकुछ जानते हैं अतएव अन्य दूसरी बातों को क्या कहना है ? आप सबके साक्षी हैं ॥१४॥

अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये दक्षादयोऽग्नेरिव केतवस्ते ।
किं वा विदामेश पृथग्विभाता विधत्स्व शं नो द्विजदेवमन्त्रम् ॥१५॥

अन्वयः— हे ईश, अहं, गिरित्रं च सुरादयः ये दक्षादयः अग्नेः ते केतवः इव पृथग्विभाता किं विदाम द्विजदेव मन्त्रम् नः शं विधत्स्व ॥१५॥

अनुवाद— हे प्रभो ! मैं शङ्करजी ये देवता आदि तथा दक्ष आदि प्रजापति गण अग्नि से अलग हुई चिनगारी के समान आप से ही पृथक् हुए आपके अंश है । अतएव हमलोग क्या जानेंगे कि देवताओं और ब्राह्मणो के कल्याण के लिए क्या करना है ? आप ही हमलोगों का कल्याण करें ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

यूयमेव किंचित्कुरुतेति चेत्तत्राह- अहमिति । अग्नेः केतवो विस्फुलिङ्गा इव ते त्वत्तो वयं पृथग्विभाताः सन्तः आत्मनः शं श्रेयः किं वा विद्मः । अतस्त्वमेव द्विजानां देवानां च मन्त्रं विधत्स्व । इदं कुरुतेत्युपायमुपदिशेत्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तुमलोग ही कुछ करो तो इसके उत्तर में शङ्करजी **अहम्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । अग्नि की चिनगारियों के समान आपसे पृथक हुए आपके हमलोग अंश हैं अतएव हमलोग क्या जानते हैं कि हमलोगों का कल्याण कैसे होगा ? अतएव आप ही ब्राह्मणों और देवताओं के कल्याण का उपदेश करें । अर्थात् आप यह कहें कि तुमलोग यह करो ॥१५॥

श्रीशुक उवाच

एवं विरिञ्चादिभिरीडितस्तद्विज्ञाय तेषां हृदयं तथैव ।
जगाद जीमूतगभीरया गिरा बद्धाञ्जलीन्संवृतसर्वकारकान् ॥१६॥

अन्वयः— एवं विरिञ्चादिभिरीडितः तेषां तद् हृदयं तथैव विज्ञाय, बद्धाञ्जलीन संवृत सर्वकारकान् जीमूतगभीरयागिरा जगाद ॥१६॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से देवताओं द्वारा स्तुति किए जाने पर देवताओं के हृदय की सारी बातें ठीक-ठीक जानकर हाथ जोड़े हुए तथा अपनी सारी इन्द्रियों की वृत्ति को रोके हुए देवताओं से श्रीभगवान् मेघ के समान गम्भीर वाणी से कहे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

हृदयं मन्त्र उपदेष्टव्यं इत्यभिप्रेतं यथा तथैव विज्ञाय जगाद-संवृतानि नियमितानि सर्वाणि कारकाणीन्द्रियाणि यैस्तान्॥१६॥

भाव प्रकाशिका

उपाय का उपदेश करना चाहिए इस तरह से देवताओं के अभिप्रेत अर्थ को उसी तरह से जानकर जिन देवताओं ने अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रित कर लिया था उन सबों से श्रीभगवान् कहे ॥१६॥

एक एवेश्वरस्तस्मिन्सुरकार्ये सुरेश्वरः । विहर्तुकामस्तानाह समुद्रोन्मथनादिभिः ॥१७॥

अन्वयः— तस्मिन् सुरकार्ये एक एव ईश्वरः सुरेश्वरः समुद्रोन्मथनादिभिः विहर्तुकामः तान् आह ॥१७॥

अनुवाद— देवताओं के उस कार्य को करने में अकेले परमात्मा ही समर्थ थे फिर भी समुद्र मन्थन आदि लीलाओं को करने की इच्छा से वे उन देवताओं से कहे ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ईश्वरस्यापि तथैवाभिप्रेतमित्याह-एक एवेश्वरः समर्थोऽपि ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को भी वैसा ही करना अभिप्रेत था इसलिए अकेले ही समर्थ होने पर भी ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

हन्त ब्रह्मन्नहो शंभो हे देवा मम भाषितम् । शृणुतावहिताः सर्वे श्रेयो वः स्याद्यथा सुराः ॥१८॥

अन्वयः— हन्त ब्रह्मन्! अहोशम्भो ! हे देवाः सर्वे अवहिताः मम भाषितम् शृणुत हे सुराः यथा वः श्रेयः स्यात्॥१८॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! हे शङ्करजी ! हे देवताओं, तुम सभी लोग सावधानी से मेरी बात सुनो । हे देवताओं जिससे कि तुमलोगों का कल्याण होगा ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

हे सुराः, हे देवाः, अन्ये च गन्धर्वादयः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

हे देवताओं तथा गन्धर्वों आदि ॥१८॥

यात दानवदैतेयैस्तावत्संधिर्विधीयताम् । कालेनानुगृहीतैस्तैर्यावद्वो भव आत्मनः ॥१९॥

अन्वयः— यात कालेनानुगृहीतैः दानवदैतेयः तावत् सन्धिः विधीयताम् यावत् वः आत्मनः भवः ॥१९॥

अनुवाद— तुम लोग जाओ, इस समय काल की कृपा असुरों और दानवों पर है, उन सबों से तव तक सन्धि किए रहो जब तक तुमलोगों के अभ्युदय का समय नहीं आ जाता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

वः आत्मनः स्वतो यावद्भवो वृद्धिर्भवति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

जब तक तुमलोगों की वृद्धि अपने आप नहीं होती है ॥१९॥

अरयोऽपि हि संधेयाः सति कार्यार्थगौरवे । अहिमूषकवद्देवा ह्यर्थस्य पदवीं गतैः ॥२०॥

अन्वयः— हे देवाः अर्थस्य पदवीं गतैः कार्यागौरवे सति अहिमूषकवद् अरयः अपि सन्धेयाः ॥२०॥

अनुवाद— हे देवताओं अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए जब कोई बड़ा कर्म करना हो तो सर्प एवं चूहे के समान अपने शत्रुओं से भी सन्धि कर लेनी चाहिए ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अर्थस्य प्रयोजनस्य पदवीं सिद्धिं प्राप्तैः पश्चादहिमूषकवद्बध्यघातकभावेन वर्तितव्यमिति शेषः । यद्वा पेटिकायां निरुद्धोऽहिर्यथा निर्गमद्वारविधानार्थं प्रथमं मूषकेण संधिं विधत्ते पश्चात्तमेव कदाचिद्भक्षयति तथाऽर्थमार्गप्रवृत्तैः प्रथमं संधेया इत्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

प्रयोजन की सिद्धि के लिए बाद में सर्प एवं चूहे के समान बध्य घातक भाव को अपना ले । अथवा मदारी की पेटी में बन्द साँप ने भाग निकलने के लिए रास्ते के लिए पहले तो चूहे से सन्धि कर ली बाद में उसी को खा गया । उसी तरह ही अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए पहले शत्रुओं से भी सन्धि कर लेनी चाहिए ॥२०॥

विशेष— किसी मदारी की पटारी में एक साँप बन्द था, संयोग वशात् उसी पिटारी में एक चूहा भी घुस गया । चूहा साँप को देखकर घबरा गया । किन्तु साप ने चूहे से कहा क्यों घबराते हो । यहाँ हम दोनों समान रूप से कैदी हैं । अतएव हम दोनों मित्र है । तुम एक काम करो कि इस पिटारी में छिद्र बनाओ उसी रास्ते हम दोनों भाग जायेंगे । चूहे ने जब पिटारी में छिद्र बना दिया तो सर्प चूहे को खा गया और उसी छिद्र से पिटारी से भाग निकला ॥२०॥

अमृतोत्पादने यत्नः क्रियतामविलम्बितम् । यस्य पीतस्य वै जन्तुर्मृत्युग्रस्तोऽमरो भवेत् ॥२१॥

अन्वयः— अविलम्बितम् अमृतोत्पादने यत्नः क्रियताम् यस्य पीतस्य मृत्युग्रस्तो वै जन्तुः अमरो भवेत ॥२१॥

अनुवाद— तुम लोग शीघ्र ही अमृत उत्पन्न करने का प्रयास करो । उसको पी लेने पर जीव अमर हो जाता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

ततस्तैः सह यत्कार्यं तदाह-अमृतोत्पादन इति । यस्यामृतस्य पीतस्य सतः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उसके बाद श्रीभगवान् दैत्यों के साथ मिलकर किए जाने वाले कार्य को बतलाये उस अमृत को पी लेने के पश्चात् जीव अमर हो जाता है ॥२१॥

क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ सर्वा वीरुत्तृणलवौषधीः । मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम्॥२२॥
सहायेन मया देवा निर्मन्थध्वमतन्द्रिताः । क्लेशभाजो भविष्यन्ति दैत्या यूयं फलग्रहाः॥२३॥

अन्वयः— क्षीरोदधौ सर्वावीरुत् तृणलतौषधीः क्षिप्त्वा, मन्दरं मन्थानं कृत्वा वासुकिम् तु नेत्रं कृत्वा हे देवाः मया सहायेन अतन्द्रिताः निर्मन्थध्वम् दैत्याः क्लेशभाजो भविष्यन्ति, यूयं फलग्रहाः ॥२२-२३॥

अनुवाद— क्षीर सागर में सभी प्रकार के घास, तिनके, लताएँ तथा ओषधियों को डालकर मन्दराचल को मथानी बनाकर तथा वासुकि नाग को नेत्र बनाकर मेरी सहायता से आलस्य एवं प्रमाद को त्यागकर तुमलोग मन्थन करने का काम करो । दैत्यों को तो केवल श्रम करना ही मिलेगा और फल तुम्हीं लोगों को मिलेगा ॥२२-२३॥

भावार्थ दीपिका

नेत्रं रज्जुम् । ननु तर्हि तेऽप्यमृतपानेनामराः स्युस्तत्राह-क्लेशभाज इति ॥२२-२३॥

भाव प्रकाशिका

मथने की रस्सी को नेत्र कहते हैं यदि तुम लोग कहो कि दैत्य भी अमृत को पीकर अमर हो जाएँगें । इस पर श्रीभगवान् ने कहा, उन सबों को केवल परिश्रम करना हाथ लगेगा ॥२२-२३॥

यूयं तदनुमोदध्वं यदिच्छन्त्यसुराः सुराः । न संरम्भेण सिध्यन्ति सर्वेऽर्थाः सान्त्वया यथा ॥२४॥

अन्वयः— हे सुराः असुराः यदिच्छन्ति यूयं तदनुमोदध्वं, यथा सान्त्वया सर्वे अर्थाः सिध्यन्ति संरम्भेण न ॥२४॥

अनुवाद— देवताओं दैत्य जो-जो चाहें तुमलोग उन सबों का अनुमोदन करो जैसे शान्ति से सभी काम बन जाते हैं वैसे क्रोध से नहीं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

बलिभिः सहकारिभिः साध्या अर्थास्तदनुसरणं बिना न सिध्यन्तीति कृत्वा सामादिकमुपदिशति-यूयमिति द्वाभ्याम् । हे सुराः, संरम्भेण संभ्रमेण सान्त्वया साममार्गेण यथा सिध्यन्ति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

बलवान् सहायकों से होने वाला कार्य उनका अनुसरण किए बिना नहीं होता है, इसीलिए देवताओं को शान्ति का उपदेश **यूयम्० इत्यदि** दो श्लोकों से देते हैं । देवताओं ! शान्ति से ही सारे कार्य बनते है, क्रोध से नहीं ॥२४॥

न भेतव्यं कालकूटाद्विषज्जलधिसंभवात् । लोभः कार्यो न वो जातु रोषः कामस्तु वस्तुषु ॥२५॥

अन्वयः— जलाधिसंभवात् कालकूटात् विषात् न भेतव्यम्, लोभः कार्यः न वो जातु रोषः कामस्तु वस्तुषु ॥२५॥

अनुवाद— समुद्र से उत्पन्न हुए कालकूट नामक विष से मत डरना । किसी वस्तु का लोभ भी मत करना न क्रोध करना और न किसी वस्तु की कामना करना ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

वस्तुषु मथनादुत्पन्नेषु ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

मन्थन से उत्पन्न किसी वस्तु की कामना मत करना ॥२५॥

श्रीशुक उवाच

इति देवान्समादिश्य भगवान्पुरुषोत्तमः । तेषामन्तर्दधे राजन्स्वच्छन्दगतिरीश्वरः ॥२६॥

अन्वयः— हे राजन् ! ईश्वरः स्वच्छन्दगतिः इति देवान् समादिश्य भगवान् पुरुषोत्तमः तेषाम् अन्तर्दधे ॥२६॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् परमात्मा स्वच्छन्द है । अतएव इस प्रकार से आदेश देकर भगवान् पुरुषोत्तम देवताओं की आँखों से ओझल हो गये ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

अथ तस्मै भगवते नमस्कृत्य पितामहः । भवश्च जग्मतुः स्वं स्वं धामोपेयुर्बलिं सुराः ॥२७॥

अन्वयः— अथ पितामहः तस्मै भगवते नमस्कृत्य भवश्च स्वं स्वं धाम जग्मतुः सुराः बलिम् उपेयुः ॥२७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् ब्रह्माजी तथा शङ्करजी अपने-अपने स्थान को चले गये और देवता राजा बलि के पास गये ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

सुरास्तु बलिमुपेयुरुपजग्मुः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

देवगण राजा बलि के पास गये ॥२७॥

दृष्ट्वाऽरीनप्यसंयत्तान् जातक्षोभान् स्वनायकान् । न्यषेधद्दैत्यराट् श्लोक्यः संधिविग्रहकालवित् ॥२८॥

अन्वयः— असंयतान् अपि अरीन् दृष्ट्वा जातक्षोभान् स्वनायकान् संधिविग्रहकालवित् श्लोक्यः दैत्यराट् तान न्यषेधत्॥२८॥

अनुवाद— बिना अस्त्र शस्त्र लिए शत्रुओं (देवताओं को) देखकर दैत्य सेनापतियों के मन में क्षोभ उत्पन्न हो गया और वे देवताओं को बन्दी बना लेना चाहे किन्तु संन्धि और विग्रह के काल को जानने वाले पवित्र कीर्ति राजा बलि ने उन सबों को ऐसा करने से मना कर दिया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

असंयत्तानपि दृष्ट्वा । श्लोक्यः कीर्त्यर्हः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

बिना अस्त्र शस्त्र लिए हुए यश के पात्र ॥२८॥

ते वैरोचनिमासीनं गुप्तं चासुरयूथपैः । श्रिया परमया जुष्टं जिताशेषमुपागमन् ॥२९॥

अन्वयः— ते जिताशेषम् असुरयूथपैः गुप्तं, आसीनम् परमयाश्रिया जुष्टं वैरोचनिम् उपागमन् ॥२९॥

अनुवाद— वे देवता जिसने सम्पूर्ण त्रिलोकी को जीत लिया था, असुर सेनापतियों से सुरक्षित सिंहासन पर बैठे हुए तथा समस्त सम्पत्तियों से सम्पन्न राजा बलि के पास गये ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

वैरोचनिं बलिम् । जितमशेषं त्रैलोक्यं येन तम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

विरोचन के पुत्र बलि के पास गये ॥२९॥

महेन्द्रः श्लक्ष्णया वाचा सान्त्वयित्वा महामतिः । अभ्यभाषत तत्सर्वं शिक्षितं पुरुषोत्तमात् ॥३०॥

अन्वयः— महामतिः महेन्द्रः सान्त्वयित्वाश्लक्ष्णयावाचा पुरुषोत्तमात् शिक्षितं तत्सर्वम् अभ्यभाषत् ॥३०॥

अनुवाद— महाबुद्धिमान् इन्द्र ने मधुर वाणी से जो कुछ भगवान् पुरुषोत्तम ने उपदेश किया था उन सारी बातों को राजा बलि से कहा ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तत्सर्वममृतोन्मथनादि ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

तत् सर्वम् अर्थात् अमृत मन्थन आदि की बातें ॥३०॥

तदरोचत दैत्यस्य तत्रान्ये येऽसुराधिपाः । शम्बरोऽरिष्टनेमिश्च ये च त्रिपुरवासिनः ॥३१॥

अन्वयः— दैत्यस्य तदरोचत् तत्र अन्ये ये शम्बर तथा अरिष्टनेमि असुराधिपाः ये चत्रिपुरवासिनः ॥३१॥

अनुवाद— इन्द्र की वह बात राजा बलि को अच्छी लगी और वहाँ जो शम्बर अरिष्टनेमि आदि असुराधिप थे उन सबों को तथा त्रिपुर निवासियों को भी अच्छी लगीं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तत्र ये अन्ये चासुराधिपाः पौलोमकालेयादयः शम्बरादयश्च तेभ्यश्चारोचत ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

वहाँ दूसरे जो पौलोम कालेय आदि शम्बर आदि असुराधिप थे उन लोगों को भी अच्छी लगी ॥३१॥

ततो देवासुराः कृत्वा संविदं कृतसौहृदाः । उद्यमं परमं चक्रुरमृतार्थे परंतप ॥३२॥

अन्वयः— हे परंतप ! ततः कृतसौहृदाः देवासुराः संविदं कृत्वा अमृतार्थे परमं उद्यमम् चक्रुः ॥३२॥

अनुवाद— हे परीक्षित् उसके पश्चात् देवताओं और असुरों ने आपस में समझौता करके सन्धि कर ली और वे मिलकर अमृत के लिए अत्यधिक प्रयास करने लगे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

संविदं समयम् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

सविदम् अर्थात् शर्त करके ॥३२॥

ततस्ते मन्दरगिरिमोजसोत्पाट्य दुर्मदाः । नदन्त उदधिं निन्युः शक्ताः परिघबाहवः ॥३३॥

अन्वयः— ततः दुर्मदास्ते ओजसा मन्दरगिरिम् उत्पाटय ते परिघबाहवः शक्ताः नदन्तः उदधिं निन्युः ॥३३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् मदमत्त अपनी शक्ति से मन्दराचल पर्वत को उखाड़ कर परिध के समान भुजाओं वाले और शक्ति सम्पन्न वे गर्जते हुए उसको समुद्र की ओर लेकर चले ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

परिघा इव बाहवो येषाम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

परिध के समान उन सबों की भुजाएँ सुदृढ और मोटी थी ॥३३॥

दूरभारोद्वहश्रान्ताः शक्रवैरोचनादयः । अपारयन्तस्तं वोढुं विवशा विजहुः पथि ॥३४॥

अन्वयः— दूरभारोद्वहश्रान्ताः शक्रवैरोचनादयः तं वोढुम् अपारयन्तः विवशाः पथि विजहुः ॥३४॥

अनुवाद— देर से भार उठाने के कारण थके हुए इन्द्र तथा बलि आदि उस पर्वत को वहन करने में असमर्थ हो गये और विवश होकर वे उसको रास्ते में छोड़ दिए ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

निपतन्स गिरिस्तत्र बहूनमरदानवान् । चूर्णयामास महता भारेण कनकाचलः ॥३५॥

अन्वयः— स कनकाचलः गिरिः तत्र निपतन् बहून अमरदानवान् महता भारेण चूर्णयामास ॥३५॥

अनुवाद— वह सुवर्ण का पर्वत मन्दराचल गिरते हुए अपने अत्यधिक भार से बहुत अधिक देवताओं और दानवों को चूर-चूर कर दिया ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३५॥

तांस्तथा भग्नमनसो भग्नबाहूरुकन्धरान् । विज्ञाय भगवांस्तत्र बभूव गरुडध्वजः ॥३६॥

अन्वयः— तथा भग्नमनसः भग्नबाहूरुकन्धरान् तान् विज्ञाय तत्र भगवान् गरुडध्वज; बभूव ॥३६॥

अनुवाद— उस तरह से भग्न उत्साह वाले और टूटे हुए हाथ, कमर कन्धे वाले उन देवों एवं दैत्यों को जानकर वहाँ भगवान् गरुड ध्वज आ गये ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

गिरिपातविनिष्पिष्टान्विलोक्यामरदानवान् । ईक्षया जीवयामास निर्जरान्निर्व्रणान्यथा ॥३७॥

अन्वयः— गिरिपात विनिष्पिष्टान् अमरदानवान् विलोक्य ईक्षया जीवयामास निर्जरान् निर्व्रणान् यथा ॥३७॥

अनुवाद— पर्वत के गिरने से पिसे हुए देवताओं को उन्होंने केवल अपनी दृष्टिपात मात्र से जीवित कर दिया जैसे उनके शरीर में चोट लगी ही न हो ॥३७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

गिरिं चारोप्य गरुडे हस्तेनैकेन लीलया । आरुह्य प्रययावब्धिं सुरासुरगणैर्वृतः ॥३८॥

अन्वयः— गिरिं एकेन हस्तेन गरुडे लीलया आरोप्य आरुह्य, सुरासुरगणैः वृतः अब्धिं प्रययौ ॥३८॥

अनुवाद— उन्होंने बिना किसी प्रयास के ही एक हाथ से पर्वत को उठाकर गरुड पर रख लिया और स्वयं भी गरुड पर सवार हो गये । तदनन्तर वे देवों और दैत्यों के साथ समुद्र तट पर गये ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३८॥

अवरोप्य गिरिं स्कन्धात्सुपर्णः पततां वरः । ययौ जलान्त उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे अमृतमन्थने मन्दराचलानयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अन्वयः— पततां वरः सुपर्णः जलान्ते गिरिम् स्कन्धात् अवरोप्य विसृज्य हरिणा विसर्जितः ययौ ॥३९॥

अनुवाद— पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड़जी जल के सन्निकट उस पर्वत को अपने कन्धे पर से उतारकर और उसको वहीं छोड़कर श्रीभगवान् के द्वारा विदा किए जाने पर चले गये ॥३९॥

इस तरह श्रीमद्भागवतमहापुराण के आठवें स्कन्ध के अमृत मन्थन के प्रसङ्ग में मन्दराचल पर्वत को लाया जाना नामक छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

भावार्थ दीपिका

विसर्जितः प्रस्थापितः । सुपर्णे तत्र स्थिते वासुकेरागमनायोगादिति भावः ।।३९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

विसर्जितः अर्थात् भेज दिए जाने पर क्योंकि गरुड़ के वहाँ पर रहने पर डर के कारण वासुकि नाग वहाँ आ नहीं सकते थे ॥३९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के छठे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।६।।

सातवाँ अध्याय

समुद्र मन्थन प्रारम्भ और भगवान् शङ्कर द्वारा विष का पान

श्रीशुक उवाच

ते नागराजमामन्त्र्य फलभागेन वासुकिम् । परिवीय गिरौ तस्मिन्नेत्रमब्धिं मुदान्विताः ॥१॥
आरेभिरे सुसंयत्ता अमृतार्थं कुरूद्वह । हरिः पुरस्ताज्जगृहे पूर्वं देवास्ततोऽभवन् ॥२॥

अन्वयः— हे कुरुद्वह! ते फलभागेन नागराजम् वासुकिम् आमन्त्र्य तस्मिन् गिरौनेत्रं परिवीय मुदान्विताः सुसंयता अमृतार्थम् अब्धिम् आरेभिरे । हरिः पुरस्तात् पूर्वं जगृहे ततो देवा अभवन् ।।१-२।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे परीक्षित् ! वे देवता और दैत्य नागराज को यह वचन देकर कि अमृत रूप फल के भागी आप भी होंगे, नागराज वासुकि को बुलाकर उनको नेती के समान पर्वत में लपेटकर उत्साह पूर्वक उद्यत होकर अमृत के लिए समुद्र का मन्थन प्रारम्भ किए । उस समय पहले पहल भगवान् वासुकि के मुख की ओर लग गये तो देवता भी उसी ओर लग गये ।।१-२।।

भावार्थ दीपिका

सप्तमे मथनोद्भूतविषभीत्याखिलैर्जनैः । स्तुतः सन्कृपया रुद्रः पपौ विषमितीर्यते । फलभागेन तवाप्यमृते भागो भविश्यतीत्यामन्त्र्य संमन्त्रय वासुकिं नेत्रं गिरौ परिवीय संवेष्ट्याब्धिं मथितुमारेभिरे । वासुकेर्मुखं तीव्रं दैत्यान् ग्राहयितुमेवं पूर्वं हरिः पुरस्तान्मुखे जगृहे । ततोऽभवन्मुखं जगृहुः ।।१-२।।

भाव प्रकाशिका

इस सातवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि मन्थन से उत्पन्न विष के भय से सभी लोगों द्वारा स्तुति किए जाने पर भगवान् शङ्कर कृपा करके उसविष को पी गये । देवताओं और दैत्यों ने कहा कि अमृत में तुम्हारा भी हिस्सा होगा इस तरह से आमन्त्रित करके नागराज वासुकि को उस पर्वत में नेति के समान लपेट कर मन्थन का कार्य प्रारम्भ किए । वासुकि के तीव्र मुख को दैत्यों से पकड़वाने के ही लिए भगवान् पहले वासुकि का मुख पकड़े । उसके बाद देवता भी उसी ओर लग गये ॥१-२॥

तन्नैच्छन्दैत्यपतयो महापुरुषचेष्टितम् । न गृह्णीमो वयं पुच्छमहेरङ्गममङ्गलम् ॥३॥

अन्वयः— तत् महापुरुष चेष्टितम् दैत्यपतयः न ऐच्छन् । वयम् अहेः अमङ्गलं पुच्छं न गृह्णीम् ॥३॥

अनुवाद— महापुरुष श्रीभगवान् के उस कार्य को दैत्यों के स्वामियों ने ठीक नहीं माना । उन सबों ने कहा हमलोग सर्प के अमङ्गलमय पुच्छ को नहीं पकड़ेंगे ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

स्वाध्यायश्रुतसंपन्नाः प्रख्याता जन्मकर्मभिः । इति तूष्णीं स्थितान्दैत्यान्विलोक्य पुरुषोत्तमः ॥४॥
स्मयमानो विसृज्याग्रं पुच्छं जग्राह सामरः । कृतस्थानविभागास्त एवं कश्यपनन्दनाः ॥५॥

अन्वयः— जन्मकर्मभिः प्रख्याताः स्वाध्यायश्रुतसम्पन्नाः इति तुष्णीं स्थितान् दैत्यान् विलोक्य पुरुषोत्तमः स्मयमानः अग्रं विसृज्य सामरः पुच्छं जग्राह एवं कृतस्थान विभागाः कश्यप नन्दनाः आसन् ॥४-५॥

अनुवाद— हमलोग भी ऊँचे वंश में जन्म लिए हैं, वेदों और शास्त्रों का विधि पूर्वक अध्ययन किए हैं यह सोचकर मौन खड़े दैत्यों को देखकर भगवान् परुषोत्तम मुस्कुराते हुए सर्प के मुख को छोड़कर देवताओं के साथ पुंछ को पकड़ लिए । इस तरह से स्थान का विभाग उन कश्यप नन्दनों ने कर लिया ॥४-५॥

भावार्थ दीपिका

कृतो धारणे स्थानविभागो यैः ॥४-५॥

भाव प्रकाशिका

सर्प को पकड़ने के स्थान का विभाग कर लिया ॥४-५॥

ममन्थुः परमायत्ता अमृतार्थं पयोनिधिम् । मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ॥६॥

अन्वयः— परमायत्ता अमृतार्थं पयोनिधिम् ममन्थुः अर्णवे मथ्यमाने अनाधारः स अद्रि अपो अविशत् ॥६॥

अनुवाद— वे सब पूर्ण रूप से प्रयास करके क्षीर सागर का मन्थन कर रहे थे । समुद्र मथे जाने के समय आधार रहित वह पर्वत जल में भीतर जाने लगा ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

ध्रियमाणोऽपि बलिभिर्गौरवात्पाण्डुनन्दन । ते सुनिर्विण्णमनसः परिम्लानमुखश्रियः ॥
आसन्स्वपौरुषे नष्टे दैवेनातिबलीयसा ॥७॥

अन्वयः— हे पाण्डुनन्दन बलिभिः ध्रियमाणोऽपि अतिबलीयसा दैवेन स्वपौरुषे नष्टे ते परिम्लानमुखश्रिय सुनिविण्ण मनसः आसन् ॥७॥

अनुवाद— परीक्षित् बलवान् देवताओं और दैत्यों के पकड़े रहने पर भी वह पर्वत जल में डूबता चला

जा रहा था । अत्यन्त बलवान् दैव के द्वारा अपने पौरुष के नष्ट हो जाने से सबों की मुख श्री फीकी पड़ गयी और वे अत्यधिक उदास हो गये ।।७।।

भावार्थ दीपिका

दैवेन हेतुना स्वपौरुषे नष्टे सति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

दैव के द्वारा अपने पौरुष के नष्ट कर दिए जाने पर ।।७।।

विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो दुरन्तवीर्योऽवितथभिसंधिः ।
कृत्वा वपुः काच्छमपद्भुतं महत्प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ।।८।।

अन्वयः— विघ्नेशविधिं विलोक्य तदा दुरन्तवीर्यः अवितथाभिसंधिः ईश्वरः महत् अद्भुतं कच्छपं वपुः कृत्वा तोयं प्रविश्य गिरिम् उज्जहार ।।८।।

अनुवाद— विघ्नेश के उस कार्य को देखकर उस समय परम पराक्रम सम्पन्न जिनका सङ्कल्प कभी व्यर्थ नहीं होता है ऐसे श्रीभगवान् महान् तथा अद्भुत कच्छप का शरीर धारण कर तथा जल में प्रवेश करके पर्वत को ऊपर की ओर उठा दिए ।।८।।

भावार्थ दीपिका

विघ्नेशस्य विधिं तेन रचितं विघ्नम् । अवितथः सत्योऽभिसंधिः सङ्कल्पो यस्य ।।८।।

भाव प्रकाशिका

विघ्नेश के द्वारा रचित विघ्न को देखकर सत्य सङ्कल्प वाले श्रीभगवान् ।।८।।

तमुत्थितं वीक्ष्य कुलाचलं पुनः समुत्थिता निर्मथितुं सुरासुराः ।
दधार पृष्ठेन स लक्षयोजनप्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान् ।।९।।

अन्वयः— उत्थितम् तं कुलाचलं वीक्ष्य सुरासुराः निर्मथितुं पुनः समुत्थिताः । लक्षयोजन प्रस्तारिणा पृष्ठेन अपरः महान् द्वीप इव सः दधार ।।९।।

अनुवाद— ऊपर उठे हुए उस कुलाचल को देखकर देवता और असुर मन्थन करने के लिए पुनः तैयार हो गये । अपने एकलाखयोजन विस्तृत पृष्ठ पर भगवान् कच्छप ने उसे पर्वत को धारण किया ।।९।।

भावार्थ दीपिका

लक्षयोजनः प्रस्तारो विस्तारोऽस्यास्तीति तथा तेन पृष्ठेन ।।९।।

भाव प्रकाशिका

एकलाखयोजन विस्तृत अपने पीठ पर उस पर्वत को धारण किए ।।९।।

सुरासुरेन्द्रैर्भुजवीर्यवेपितं परिभ्रमन्तं गिरिमङ्ग पृष्ठतः ।
बिभ्रत्तदावर्तनमादिकच्छपो मेनेऽङ्गकण्डूयनमप्रमेयः ।।१०।।

अन्वयः— सुरासुरैन्द्रैः भूजवीर्य वेपितम् परिभ्रमन्तम् गिरिम् पृष्ठतः विभ्रत् तदा आवर्तनम् अप्रमेयः आदि कच्छपः अङ्गकण्डूयनम् अमन्यत ।।१०।।

अनुवाद— परीक्षित् जब बड़े-बड़े देवता और असुरों ने अपने बाहुबल से मन्दराचल को घुमाया तब वह

श्रीभगवान् की पीठ पर घूमने लगा। अनन्त पराक्रम सम्पन्न परमात्मा को उस पर्वत का घूमना ऐसा लगा जैसे कोई उनकी पीठ खुजला रहा हो ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

यस्य गिरेरावर्तनं भ्रमणमङ्गकण्डूयनं मेने ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उस पर्वत के घुमने को भगवान् माने कि जैसे कोई उनकी पीठ खुजला रहा हो ॥१०॥

तथाऽसुरानाविशदासुरेण रूपेण तेषां बलवीर्यमीरयन् ।
उद्दीपयन्देवगणांश्च विष्णुर्दैवेन नागेन्द्रमबोधरूपः ॥११॥

अन्वयः— तथा विष्णुः असुरान् तेषां बलवीर्यम् ईरयन् आसुरेण रूपेण देवगणान् च उद्दीपयन् दैवेन, नागेन्द्रम् अबोध रूपः आविशत् ॥११॥

अनुवाद— समुद्र मन्थन रूप कार्य को सम्पन्न करने के लिए भगवान् विष्णु असुरों में उनके बल एवं पराक्रम को बढ़ाते हुए असुर रूप से, वैसे ही देवताओं को उत्साहित करते हुए देवताओं में देवरूप से तथा नागराज वासुकि में निद्रा रूप से प्रवेश किए ॥११॥

भावार्थ दीपिका

आसुरेणासुराकारेण दैवेन देवाकारेण रूपेणाविशत् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

आसुरेण अर्थात् असुर रूप से, दैवेन अर्थात् देवरूप से भगवान् प्रवेश कर गये ॥११॥

उपर्यगेन्द्रं गिरिराडिवान्य आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहुः ।
तस्थौ दिवि ब्रह्मभवेन्द्रमुख्यैरभिष्टुवद्भिः समुनोऽभिवृष्टः ॥१२॥

अन्वयः— अगेन्द्रं उपरि अन्यः गिरिराडिव सहस्रबाहुः हस्तेन आक्रम्य तस्थौ दिवि अभिष्टुवद्भि ब्रह्मभवेन्द्रमुख्यैः सुमनोभिवृष्टः ॥१२॥

अनुवाद— पर्वत के ऊपर दूसरे पर्वत के समान बनकर सहस्रबाहु भगवान् मन्दराचल को अपने हाथों से दबाकर स्थित हो गये। उस समय आकाश में ब्रह्मा शङ्कर तथा इन्द्र आदि देवता उनकी स्तुति करते हुए उन पर पुष्पों की वृष्टि कर रहे थे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

उपर्यधश्चात्मनि गोत्रनेत्रयोः परेण ते प्राविशता समेधिताः ।
ममन्थुरब्धिं तरसा मदोत्कटा महाद्रिणा क्षोभितनक्रचक्रम् ॥१३॥

अन्वयः— उपरि, अधः आत्मनि च गोत्रनेत्रयोः प्राविशता परेण समेधिताः मदोत्कटा ते महाद्रिणा क्षोभितनक्रचम् अब्धिं ममन्थुः ॥१३॥

अनुवाद— पर्वत के ऊपर दबा रखने वाले के रूप में, नीचे उसके आधार कच्छप के रूप में देवताओं और असुरों के शरीर में शक्ति के रूप में, पर्वत में दृढता के रूप में और नेति बने हुए वासुकि में निद्रा के रूप में प्रवेश किए हुए परमात्मा के द्वारा शक्ति सम्पन्न बने देव और मदोत्कट होकर महान् पर्वत मन्दराचल के द्वारा जिसके सभी जल-जन्तु क्षुब्ध हो गये थे उस समुद्र का वेग से मन्थन करने लगे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनि देवदैत्यमध्ये । गोत्रे दाढर्यपेण, नेत्रे अभेद्याबोधरूपेण, परेण हरिणा क्षोभितं नक्राणां चक्रं समूहो यस्मिन्।।१३।।

भाव प्रकाशिका

आत्मनि अर्थात् देवों और दैत्यों के भीतर पर्वत में दृढता रूप से नेत्र बने वासुकि नाग में निद्रा रूप से। परेण, अर्थात् श्रीहरि के द्वारा जिस समुद्र के जल जन्तु समूह क्षुब्ध हो गये थे ।।१३।।

अहीन्द्रसाहस्रकठोरदृङ्मुखशसाग्निधूमाहतवर्चसोऽसुराः ।
पौलामालेयबलील्वलादयो दवाग्निदग्धाः सरला इवाभवन् ।।१४।।

अन्वयः— अहीन्द्रसाहस्र कठोर दृङ् मुख श्वासाग्नि धूमाहतवर्चस; पौलोम कालीय बलील्वलादयः असुराः दावाग्निदग्धाः सरलाः इव अभवन् ।।१४।।

अनुवाद— नागराज वासुकि के हजारों नेत्र मुख और श्वास की अग्नि एवं घूम से पौलोम, कालेय, बली तथा इल्वल आदि असुर निस्तेज हो गये उस समय वे ऐसे मालुम पड़ते थे जैसे दावाग्नि से झुलसे हुए साखू के पेड़ खड़े हों ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

दृशश्च मुखानि च श्वासाश्च । अहीन्द्रस्य साहस्रमपरिमिताः कठोरा ये दृगादयस्तेभ्यो निर्गताभ्यामग्निधूमाभ्यामाहतं वर्चो येषां ते सरला द्रुमविशेषाः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

नागराज के हजारों कठोर नेत्र आदि से निकले हुए धूम तथा अग्नि के द्वारा जिनका तेज समाप्त हो गया था वे असुर दावाग्नि से झुलसे हुए साखू के पेड़ के समान काले हो गये थे ।।१४।।

देवांश्च तच्छ्वासशिखाहतप्रभान्धूम्राम्बरस्रग्वरकञ्चुकानान् ।
समभ्यवर्षन्भगवद्वशा घना ववुः समुद्रोर्म्युपगूढवायवः ।।१५।।

अन्वयः— तच्छ्वास शिखाहत प्रभान् धूम्राम्बरस्रग्वरकञ्चुकाननान् देवान् च, भगवदवश धनाः समभ्यवर्षन् समुद्रोर्म्युपगूढवायवः ववुः ।।१५।।

अनुवाद— उनके श्वास के लपटों से देवताओं के वस्त्र, माला, कवच और मुख धूमिल हो गये । देवताओं की इस दशा को देखकर भगवान् की प्रेरणा से मेघ देवताओं के ऊपर वर्षा करने लगे और वायु समुद्र की तरङ्गों की शीतलता को लेकर बहने लगी ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

देवांस्तु भगवद्वशा घनाः समभ्यवर्षन् । समुद्रोर्मिभिरुपगूढा वायवश्च शीतला ववुर्वान्तिस्म । कथंभूतान् । तस्याहीन्द्रस्य श्वासशिखाभिर्हता प्रभा येषाम् । धूम्राण्यम्बरादीनि येषाम् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा की प्रेरणा से मेघ देवताओं पर वर्षा करने लगे समुद्र की लहरियों के स्पर्श से शीतल बनी वायु बहने लगी । कैसे देवताओं पर ? तो उत्तर है कि वासुकि के श्वास से जिनकी प्रभा धूमिल हो गयी थी तथा जिनके वस्त्र आदि धूमिल हो गये थे ऐसे देवताओं पर ।।१५।।

मथ्यमानात्तथा सिन्धोर्देवासुरवरूथपैः । यदा सुधा न जायेत निर्ममन्थाऽजितः स्वयम् ॥१६॥

अन्वयः— देवासुरवरूथपैः तथा मथ्यमानात् सिन्धोः, यदा सुधा न जायेत स्वयम् अजितः ममन्थ ॥१६॥

अनुवाद— देवताओं और असुरों के सेनापितियों द्वारा मथे जाते हुए समुद्र से जब अमृत नहीं निकला तब स्वयं श्रीभगवान् समुद्र मन्थन करने लगे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

मेघश्यामः कनकपरिधिः कर्णविद्योतविद्युन्मूर्ध्नि भ्राजद्विलुलितकचः स्रग्धरो रक्तनेत्रः ।
जैत्रैर्दोर्भिर्जगदभयदैर्दन्दशूकं गृहीत्वा मथ्नन्मथ्ना प्रतिगिरिवाशोभताऽथो धृताद्रिः ॥१७॥

अन्वयः— मेघश्यामः कनकपरिधिः कर्म विद्योतविद्युन् मूर्ध्नि भ्राजत् विलुलितकचः स्रग्धरोरक्तनेत्रः **जगदभयदैः** जैत्रैः दोर्भिः दन्दशुकं गृहित्वा मथ्ना मथ्नन् प्रतिगिरिवाशोभताथो धृताद्रिः ॥१७॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के मेघ के समान सावले शरीर पर सुनहला पीताम्बर कानों में बिजली के समान चमकते हुए कुण्डल, सिर पर लहराते काले केश, नेत्रों में लाल-लाल रेखायें और गले में बनमाला सुशोभित हो रही थी, सम्पूर्ण संसार के अभयदान देने वाली अपनी भुजाओं से साँप को पकड़कर मन्दराचल रूप मथानी से दूसरे पर्वत राज के समान समुद्र मन्थन करते हुए श्रीभगवान् की अत्यधिक शोभा हो रही थी ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

धृतोऽद्रिर्येन स धृताद्रिर्भगवान्परमपुरुषोऽनन्तरमशोभतेत्यन्वयः । कथंभूतः । कनकपरिधिः पीतवासाः । **कर्णयोर्विद्योतमाना** विद्युत्कुण्डललक्षणा यस्य । तथा मूर्ध्नि भ्राजन्तो विलुलिताः कचा यस्य स तथा । **जैत्रैर्जिष्णुभिः** । **दन्दशूकं सर्पम्** । प्रतिगिरिः । प्रतिद्वन्द्वी पर्वतः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

पर्वत को धारण किए हुए परम पुरुष भगवान् अशोभत अर्थात् सुशोभित हो रहे थे इस तरह से इसका अन्वय है । कैसे भगवान् ? उत्तर है कि पीताम्बर धारण किए हुए उनके कानों के कुण्डल बिजली के समान चमक रहे थे । सिर पर काले घुंघराले केश लहरा रहे थे । **जैत्रैः** विश्वविजयी (भुजाओं से) दन्दशूकम् अर्थात् सर्प को प्रतिगिरिः अर्थात् प्रतिद्वन्दी पर्वत ॥१७॥

निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं महोल्बणं हालहलाह्वमग्रतः ।
संभ्रान्तमीनोन्मकराहिकच्छपात्तिमिद्विपग्राहतिमिङ्गिलाकुलात् ॥१८॥

अन्वयः— संभ्रान्तमीनोन्मकराहिकच्छपात् तिमिद्विपग्राहतिमिङ्गिलाकुलात् निर्मथ्यमानात् उदधेः अग्रतः **हालहलाह्वम्** महोल्वणं विषम् अभूत् ॥१८॥

अनुवाद— जिस समय श्रीभगवान् समुद्र मन्थन कर रहे थे उस समय समुद्र की मछली, मगर, साँप और कच्छप भयभीत होकर ऊपर आ गये, तिमि तिमिगिंल आदि मच्छली समुद्री हाथी और ग्राह व्याकुल हो गये उस समय सर्वप्रथम हलाहल नामक भयङ्कर विष समुद्र से निकला ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

हालाहलमित्याह्वा नाम यस्य । संभ्रान्ता मीना उद्गता मकरादयश्च यस्मिंस्तस्मात् तिम्यादिभिराकुलाच्च ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

हालाहलनामकाविष, डरी हुई मछलियाँ और मगर आदि समुद्र में ऊपर आ गये तथा तिमि आदि से आकुल ने हुए समुद्र से ॥१८॥

तदुग्रवेगं दिशि दिश्युपर्यधो विसर्पदुत्सर्पदसह्यमप्रति ।
भीताः प्रजा दुद्रुवुरङ्ग सेश्वरा अरक्ष्यमाणाः शरणं सदाशिवम् ॥१९॥

अन्वयः— हे अङ्ग उग्रवेगं तत् दिशि दिशि, ऊपरि अधः विसर्पत् उत्सर्पत् असह्यम् अप्रति भीताः सेश्वराः प्रजाः अशरणाः सदा शिवम् शरणं दुद्रुवुः ॥१९॥

अनुवाद— वह अत्यन्त उग्र विष दिशाओं और प्रति विदिशाओं में ऊपर और नीचे फैलेने और उड़ने लगा। उस असह्य विष से बचने का कोई उपाय नहीं था । भयभीत होकर सारी प्रजाएँ और प्रजापति किसी के भी द्वारा त्राण न पाकर सदा कल्याण करने वाले शङ्करजी की शरण में गये ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तद्विषं अप्रति अप्रतिमं प्रतिक्रियाशून्यमिति वा । कुतः । उग्रो वेगो यस्य । तदेवाह-दिशि दिशीति । यद्वा उग्रा वेगा रोमाञ्चस्वेदादयो यस्मात् । अत एवासह्यं विलोक्य भीता अन्येन केनाप्यरक्ष्यमाणाः सदाशिवं शरणं दुद्रुवुर्जग्मुः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

वह विष ऐसा था कि उसकी कोई भी प्रतिक्रिया नहीं की जा सकती थी । क्योंकि उसका वेग अत्यन्त उग्र था अथवा उसके कारण रोमाञ्च पसीना इत्यादि होने लगता था । वह विष प्रत्येक दिशा में फैल रहा था । अतएव उसको असह्य देखकर भयभीत तथा किसी दूसरे के द्वारा रक्षित नहीं होने के कारण सब सदा शिवजी की शरण में गये ॥१९॥

विलोक्य तं देववरं त्रिलोक्या भवाय देव्याभिमतं मुनीनाम् ।
आसीनमद्रावपवर्गहेतोस्तपो जुषाणं स्तुतिभिः प्रणेमुः ॥२०॥

अन्वयः— त्रिलोक्याः भवाय देव्याभिमततं दोषवरं आसीनं मुनीनाम् अपवर्ग हेतोः तपोजुषाणं विलोक्य स्तुतिभिः प्रणमुः ॥२०॥

अनुवाद— त्रैलोक्य का कल्याण करने के लिए सती देवी के अभिमत देवताओं में श्रेष्ठ तथा मुनियों की मुक्ति के लिए तपस्या करने वाले शिवजी को बैठे देखकर प्रजापतियों ने स्तुति करते हुए उनको प्रणाम किया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

त्रिलोक्या उद्भवाय देव्या सहाद्रौ कैलासे आसीनं, तथापि मुनीनामभिमतं तेषामेवापवर्गाय तपोजुषाणम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

त्रिलोकी की अभ्युन्नति के लिए सती देवी के साथ कैलास पर्वत पर बैठे हुए मुनियों के अभिमत और उन सबों की ही मुक्ति के लिए तपस्या करने वाले शिवजी की प्रजापतियों ने स्तुति करते हुए प्रणाम किया ॥२०॥

प्रजापतय ऊचुः

देवदेव महादेव भूतात्मन्भूतभावन । त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद्विषात् ॥२१॥

अन्वयः— हे देव देव महादेव भूतात्मन भूतभावन त्रैलोक्यदहनात् विषात् शरणापन्नान् नः पहि ॥२१॥

प्रजापतियों ने कहा

अनुवाद— हे देवताओं के भी अराध्य महादेव, हे समस्त प्राणियों की आत्मन् और उनको जीवन प्रदान करने वाले त्रैलोक्य को भस्म कर देने वाले विष से हम शरणागतों की आप रक्षा करें ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

निर्गुणं सगुणं चैव शिवं हरिपराक्रमैः । स्तुवन्तस्तु प्रजेशाना नामन्यन्ताऽन्तरं तयोः इति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के पराक्रम से निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार के शिवजी की स्तुति करने वाले प्रजापति दोनों म नाममात्र का ही अन्तर माना ।।२१।।

त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः । तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम्

अन्वयः— सर्वजगतः बन्धमोक्षयोः त्वम् एकः ईश्वरः कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम् तं त्वाम् एकं अर्चन्ति

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् के बन्ध एवं मोक्ष के एक मात्र नियामक आप ही है । इसीलिए ज्ञ शरणागतों के कष्ट को दूर करने वाले सबों के स्वामी आपकी ही अर्चना करते हैं ।।२२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२२।।

गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यप्ययान्विभो । धत्से यदा स्वदृग्भूमन्ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम्

अन्वयः— हे विभो ! गुणमय्या स्वशक्त्या अस्य सर्गस्थित्यप्ययान् यदाधत्से तदा हे भूमन् स्वदृक ब्र शिवाभिधाम् धत्से ।।२३।।

अनुवाद— अपनी गुणमयी माया के द्वारा इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार करने के लिए हे भूमन् हे स्वतः सिद्ध ज्ञानवान् आप ब्रह्मा, विष्णु और शिव की संज्ञा को धारण करते हैं ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेवंभूतो विष्णुरिति प्रसिद्धं तत्राहुः- गुणमय्येति । अस्य जगतो यदा सर्गादीन्धत्से तदा हे भूमन्, स्वद सिद्धज्ञानस्त्वं ब्रह्मादिसंज्ञां धत्से ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि संसार को बन्ध तथा मोक्ष प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु है, यह प्रसिद्ध है पर प्रजापतियों ने कहा-हे विभो ! हे भूमन् हे स्वतः सिद्ध ज्ञानवान् अपनी गुणमयी शक्ति के द्वारा जगत् स्थिति एवं संहार करने के लिए आप ही क्रमशः ब्रह्मा विष्णु एवं शिव की संज्ञा को धारण करते हैं

त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः ।नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः

अन्वयः— त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसदभावभावनः नानाशक्तिभिः आभातः त्वम् आत्मा जगदीश्वरः ।।२

अनुवाद— आप ही ब्रह्म है क्योंकि आप परम रहस्यमय है । जितने भी देवमनुष्य आदि सत् एवं अ है उन सबों को आप ही जीवन प्रदान करते हैं । आप ही आत्मा है आपके अतिरिक्त सृष्टि भी और कुछ आप अपनी अनेक शक्तियों के द्वारा जगत् के रूप में भी प्रतीत होते है । आप ईश्वर और सर्वसमर्थ हैं

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः- त्वं ब्रह्मेति । सदसतो भावान्देवतिर्यगादिरूपान्भावयतीति तथा । सृज्यं तु त्वद्व्यधतिरिक्तं नास आत्मैव त्वं नानाशक्तिभिर्जगद्रूपेणाभातस्तस्मादीश्वरः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त हेतु का कारण **त्वं ब्रह्म० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । देव तिर्यक् इत्यादि सभी सत् ए प्राणियों को आप ही जीवन प्रदान करते हैं । सृष्टि में आप से भिन्न सृज्य कुछ है ही नहीं । आप आत्म अपनी अनेक शक्तियों के द्वारा जगत् के रूप में प्रतीत होते हैं क्योंकि आप ईश्वर और सर्व समर्थ हैं

त्वं शब्दयोनिर्जगदादिरात्मा प्राणेन्द्रियद्रव्यगुणस्वभावः ।
कालः क्रतुः सत्यमृतं च धर्मस्त्वय्यक्षरं यन्त्रिवृदामनन्ति ॥२५॥

अन्वयः— त्वं शब्दयोनिः जगदादिः आत्मा प्राणेन्द्रिय द्रव्य गुण स्वंभावः कालाः क्रतुः मत्यम् ऋतं च धर्मः त्वयि अक्षरं यत् त्रिवृद् आमनन्ति ॥२५॥

अनुवाद— आप से ही वेद प्रकट हुए है, आप जगत् के आदि कारण हैं महत् तत्त्व त्रिविध अहङ्कार है, प्राण, इन्द्रिय पञ्च महाभूत तथा शब्दादि विषयों भिन्न-भिन्न स्वभाव और मूलकारण हैं । आप स्वयं ही प्राणियों की वृद्धि एवं ह्रास को करने वाले काल हैं । उनका कल्याण करने वाले यज्ञ हैं । सत्य एवं मधुर वाणी है । धर्म भी आपका स्वरूप है । आप ही अ उ म् इन तीनों अक्षरों के समुदित रूप ओम् (प्रणव) हैं । अथवा त्रिगुणात्मिका प्रकृति हैं, यह वेदज्ञ पुरुष कहते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

स्वतः सिद्धज्ञानत्वमुपपादयन्तो जगदात्मना आभानप्रकारमाहुः- त्वं शब्दस्य वेदस्य योनिः । अतः स्वतः सिद्धज्ञानः। त्वं जगदादिर्महत्तत्त्वम् । आत्मा चाहंकारः । कथंभूतः । प्राणेन्द्रियद्रव्याणां कारणभूता गुणा यस्य । राजसादित्रिविध इत्यर्थः। स्वभावादयश्च त्वमेव । क्रतुः सङ्कल्पः सत्यमृतं चेति यो धर्मः स त्वम् । महदादिस्वरूपत्वे हेतुः-त्रिवृत् त्रिगुणात्मकं यदक्षरं प्रधानं त्वयि त्वदाश्रयं तदामनन्ति । यद्वा एवंभूते त्वयि त्रिवृदक्षरं प्रणवं प्रकाशकमाहुरित्यर्थः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

प्रजापतिगण शङ्करजी के स्वतः सिद्ध ज्ञानत्व के प्रकार का प्रतिपादन करते हुए जगदात्मा रूप से उनकी प्रतीति के प्रकार को कहते हैं । आप से ही वेद प्रकट हुए हैं अतएव आप स्वयं प्रकाशज्ञान हैं । आप ही जगत् के कारणभूत महत् तत्त्व हैं और अहङ्कार हैं । आपके ही गुण प्राण, इन्द्रिय और पञ्चभूतों के कारण हैं क्योंकि वे राजस आदि तीन प्रकार के हैं । स्वभाव आदि भी आप ही हैं । यज्ञ सङ्कल्प, सत्य एवं ऋत जो धर्म है वह भी आप ही हैं । त्रिगुणात्मिका प्रकृति भी आपके अधीन है । अथवा आप में अ, उ, म् इन तीन अक्षरों वाला प्रकाशक प्रणव है यह वेदज्ञ पुरुष कहते हैं ॥२५॥

अग्निर्मुखं तेऽखिलदेवतात्मा क्षितिं विदुर्लोकभवाङ्घ्रिपङ्कजम् ।
कालं गतिं तेऽखिलदेवतात्मनो दिशश्च कर्णौ रसनं जलेशम् ॥२६॥

अन्वयः— अखिल देवतात्मा अग्निः ते मुखम्, हे लोकभव क्षितिं ते अङ्घ्रिपङ्कजं विदुः, अखिल देवतात्मनः ते कालं गतिम् दिशः कर्णौ रसनं जलेशम् विदु रित्यर्थः ॥२६॥

अनुवाद— सर्वदेवस्वरूप अग्नि आपका मुख है, हे तीनों लोकों का अभ्युदय करने वाले शङ्करजी वैदिकों ने पृथिवी को आपका चरण कमल कहा है । सर्व देव स्वरूप आपका काल ही गति है दिशाएँ दोनों कान है और वरुण आपकी रसेन्द्रिय हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अखिलदेवतात्मा, 'अग्निः सर्वा देवता;' इति श्रुतेः। सोऽग्निस्ते मुखम् । हे लोकभव । द्वितीयान्तेषु विदुरित्यस्य संबन्धः॥२६॥

भाव प्रकाशिका

सर्वदेवस्वरूप अग्नि हैं । श्रुति कहती है **अग्निः सर्वा देवता** अर्थात् अग्नि ही सम्पूर्ण देवता है । इस प्रकार के अग्नि ही आपके मुख हैं । हे त्रैलोक्य का अभ्युदय करने वाले शङ्करजी यह **लोकभव** का अर्थ है सभी द्वितीयन्त पदों के साथ विदुः पद का सम्बन्ध होगा ॥२६॥

नाभिर्नभस्ते श्वसनं नभस्वान्सूर्यश्च चक्षूंषि जलं स्म रेतः ।
परावरात्माश्रयणं तवात्मा सोमो मनो द्यौर्भगवन् शिरस्ते ॥२७॥

अन्वयः— ते नाभिः नभः श्वसनं नभस्वान्, सूर्यः चक्षूंषि, जलं रेतः, परावरात्माश्रयणं तवात्मा, सोमः मनः, हे भगवन् द्यौः ते शिरः ॥२७॥

अनुवाद— आकाश आपकी नाभि है वायु आपका श्वास है, सूर्य नेत्र हैं, जल ही रेतस (वीर्य) है; आपका अहङ्कार छोटे बड़े सभी जीवों का आश्रय है । हे भगवन् द्युलोक ही आपका सिर है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

परे अवरे च ये आत्मानो जीवास्तेषामाश्रयस्तवात्माऽहङ्कारः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

अहङ्कार ही छोटे-बड़े सभी जीवों का आश्रय है ॥२७॥

कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसङ्घा रोमाणि सर्वौषधिवीरुधस्ते ।
छन्दांसि साक्षात्तव सप्तधातवस्त्रयीमयात्मन्हृदयं सर्वधर्मः ॥२८॥

अन्वयः— हे त्रयीमयात्मन्, समुद्राः कुक्षिः, गिरयः अस्थिसङ्घा, सर्वौषधिविरुधः ते रोमाणि, साक्षात् छन्दांसि तव सप्त घातवः हृदयं सर्वधर्मः ॥२८॥

अनुवाद— हे वेद स्वरूप भगवान् समुद्र ही आपके कोंख हैं, पर्वत जी आपके अस्थि समूह हैं, सभी प्रकार की औषधियाँ और लताएँ ही आपके रोम हैं, और वेदों के सातो छन्द ही आपके सात धातु हैं तथा सभी धर्म ही आपका हृदय है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

त्रयीमयात्मन्वेदत्रयमूर्ते ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

हे वेदस्वरूप भगवान् ॥२८॥

मुखानि पञ्चोपनिषदस्तवेश यैस्त्रिंशदष्टोत्तरमन्त्रवर्गः ।
यत्तच्छिवाख्यं परमार्थतत्त्वं देव स्वयंज्योतिरवस्थितिस्ते ॥२९॥

अन्वयः— हे ईश ! पञ्चोपनिषदः तव मुखानि, यै त्रिशंदष्टोत्तरमन्त्रवर्गः हे देव यत् ते स्वयं ज्योतिः अवस्थितिः तत् शिवाख्यं परमार्थतत्त्वम् ॥२९॥

अनुवाद— हे स्वामिन् ! सद्योजातादि पाँच उपनिषद ही आपके तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशान नामक पाँच मुख हैं । उन्हीं के पदच्छेद से अड़तीस कलात्मक मन्त्र समूह निकले हैं जब आप समस्त प्रपञ्च सेउपरत होकर अपने स्वरूप में स्थित होते हैं तो उसी का नाम शिव होता है । वस्तुतः वही स्वयं प्रकाश शिव तत्त्व है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चोपनिषदस्तत्पुरुषाघोरसद्योजातवामदेवेशानरूपा मन्त्राः । यैर्मुखैरष्टोत्तरत्रिंशन्मन्त्राणां वर्गः तेषामेव मन्त्राणां पदच्छेदेनाष्टोत्तरत्रिंशत्कलात्मका मन्त्रा इत्यर्थः । अवस्थितिरुपरतावस्था ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव, ईशान रूप जो मन्त्र हैं उन्हीं के पदच्छेद से अड़तीस वर्णों वाले मन्त्र समूह निकले हैं । आप की प्रपञ्च से उपरतावस्था का ही नाम शिव है ।।२९।।

छाया त्वधर्मोर्मिषु यैर्विसर्गो नेत्रत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि ।
सांख्यात्मनः शास्त्रकृतस्तवेक्षा छन्दोमयो देव ऋषिः पुराणः ।।३०।।

अन्वयः— अधमोर्मिषु तु छाया यैः विसर्गः सत्त्वरजस्तमांसि नेत्रत्रयं देव ! छन्दोमये पुराणः ऋषिः स तवेक्षा, सांख्यात्मनः शास्त्रकृतः ।।३०।।

अनुवाद— अधर्म की दम्भ, लोभ आदि लहरियों में आपकी छाया है, उन सबों से ही विविध प्रकार की सृष्टि होती है । सत्त्वरज और तम ये तीनों गुण ही आपके तीनों नेत्र हैं । हे देव । गायत्री आदिसनातन वेद ही आपका विचार है । आप ही सांख्य आदि समस्त शास्त्रों में स्थित हैं । और उनके कर्ता भी हैं ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

अधर्मस्योर्मिषु दम्भलोभादिषु यैरूर्मिभिर्विसर्गः प्रतिसर्गः संहारः । यद्वा यैः सत्त्वादिभिर्विविधः सर्गस्तानि नेत्रत्रयम्। हे देव छन्दोमय, ऋषिर्वेदः स तवेक्षा ईक्षणम् । साक्षान्मनुरिति पाठे मनुर्वेदः । तमेवाह-छन्दोमय इति ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

अधर्म की दम्भ आदि लहरियों में आपकी छाया है जिससे प्रतिसर्ग अर्थात् संहार होता है । अथवा सत्त्वादिकों से अनेक प्रकार की सृष्टियाँ होती हैं । वे ही आपके तीन नेत्र हैं । हे देव गायत्री आदि छन्दोमय वेद ही आपके नेत्र हैं । **साक्षान्मनुः** इस प्रकार का पाठ भेद होने पर मनु शब्द वेद का बोधक । उसी को छन्दोमय कहा गया है ।।३०।।

न ते गिरित्राखिललोकपालविरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम् ।
ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च सत्त्वं न यद्ब्रह्म निरस्तभेदम् ।।३१।।

अन्वयः— हे गिरित्र ते परं ज्योतिः अखिललोकपालविरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम् न यत्र रजः तमः सत्त्वं न यत् निरस्तभेदं ब्रह्म ।।३१।।

अनुवाद— हे शङ्करजी ! आपकी परं ज्योति को सभी लोकपाल, ब्रह्मा, विष्णु तथा इन्द्र भी नहीं जान सकते है, क्योंकि वह सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण से रहित है । वह सभी प्रकार के भेदों से रहित ब्रह्म स्वरूप हैं ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

हे गिरित्र, ते परं ज्योतिरखिलानां लोकपालादीनां गम्यं न भवति । कुत । यत्र रजआदि नास्ति । किं तज्ज्योतिः । यन्निरस्तभेदं ब्रह्म ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

हे शङ्करजी आपकी परं ज्योति सभी लोकपालो आदि के लिए गम्य नहीं है क्योंकि उसमें सत्त्वादि गुणों का अभाव है । वह सभी भेदों से रहित ब्रह्मस्वरूप है ।।३१।।

कामाध्वरत्रिपुरकालगराद्यनेकभूतद्रुहः क्षपयतः स्तुतये न तत्ते ।
यस्त्वन्तकाल इदमात्मकृतं स्वनेत्रवह्निस्फुलिङ्गशिखया भसितं न वेद ।।३२।।

अन्वयः— कामध्वरत्रिपुर कालगराद्यने कथंभूतद्रुहः क्षपयतः ते तत् स्तुतये न, यस्त्वन्तकाल इदमात्म कृतं स्वनेत्रबह्निस्फुलिङ्गशिखया भसितं न वेद ।।३२।।

अनुवाद— आपने कामदेव, दक्ष के यज्ञ, त्रिपुरासुर और काल कूट विष जिसको आप अभी-अभी पी जाने वाले हैं और अनेक जीव द्रोही असुरों को विनष्ट कर दिया किन्तु यह कहने मात्र से आपकी स्तुति नहीं हो जाती है, क्योंकि यह तो अत्यन्त अल्प है। प्रलय काल के समय आपके द्वारा निर्मित विश्व आपके नेत्रों से निकली हुई चिनगारी से जलकर भस्म हो जाता हैं, आपके ध्यान मग्न रहने के कारण उसे आप जान भी नहीं पाते हैं।।३२।।

भावार्थ दीपिका

कामश्चाध्वरश्च दक्षयज्ञस्त्रिपुरादयश्च ये अनेकभूतद्रुहस्तान् क्षपयतः संहरतस्ते तत्कर्म स्तुतये न भवति। अत्यल्पमेतदित्यर्थः। गरक्षपणस्याप्यवश्यंभावित्वेन सिद्धवन्निर्देशः। स्तुतयेऽलं न भवतीत्यत्र हेतुः- यस्तु भवान्स्वनेत्रवह्निविस्फुलिङ्गस्य शिखयेदं जगद्धसितं भस्मसाज्जातं न वेद नालोचयत्यपि ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

आपने कामदेव, दक्ष के यज्ञ तथा त्रिपुर आदि अनेक जीव द्रोहियों का विनष्ट कर दिया किन्तु इतना ही कथन मात्र से आपकी स्तुति नहीं हो जाती है, क्योंकि यह सब तो बहुत कम है। आप इस कालकूट को भी अवश्य विनष्ट कर दें यह मानकर प्रजापतियों ने कालकूट क्षपण का भी सिद्धवत् निर्देश किया है। स्तुति के लिए पूरा नहीं है इसका कारण है कि क्योंकि आपके नेत्र की अग्नि की चिनगारी से भस्म हुए विश्व को भी इसलिए नहीं जान पाते हैं कि आप सदा ध्यानमग्न रहते हैं ।।३२।।

ये त्वात्मरामगुरुभिर्हृदि चिन्तिताङ्घ्रिद्वन्द्वं चरन्तमुमया तपसाभितप्तम् ।
कत्थन्त उग्रपरुषं निरतं श्मशाने ते नूनमूतिमविदंस्तव हातलज्जाः ।।३३।।

अन्वयः— ये त्वात्मरामगुरुभिहृदि चिन्तताङ्घ्रिद्वन्द्वं उभयाचरन्तम् तपसाभितप्तम् शमशाने निरतं उग्रपरुषं कत्थन्ते ते नूनं तव ऊतिम् अविदन् हातलज्जाः ।।३३।।

अनुवाद— जीवन्मुक्त आत्माराम पुरुष अपने हृदय में जिस आपके दोनों चरणों का ध्यान करते हैं, ऐसे आपको पार्वती देवी के साथ सदा विचरण करने से कामी कहते हैं, सदा तपस्या रत रहने वाले आपको श्मशान में निवास करने के कारण उग्र तथा कठोर बतलाते हैं वे लोग निश्चित रूप से आपकी लीला को नहीं जान पाते हैं; अतएव वे लोग निर्सज्ज हैं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं नित्यं परानुग्रहव्यग्रं त्वां ये निन्दन्ति तेऽतिमूर्खा इत्याहुः- ये तु उमया सह चरन्तं तस्यां नितरां रतं कामिनं कत्थन्ते प्रलपन्ति। तथा श्मशाने चरन्तमुग्रं क्रूरं पुरुषं च हिंस्रं कत्थन्ते। कथंभूतम्। आत्मारामाश्च ते गुरवो विश्वहितोपदेष्टारस्तैर्हृदि चिन्तितमङ्घ्रिद्वन्द यस्य तथाभूतमपि तपसाभितप्तमपि। ते नूनं तवोतिमविदन्निति काकुः। त्वल्लीलां नैव विदुरित्यर्थः। अतो हातलज्जास्त्यक्तत्रपाः । यमात्मारामैः सेवितचरणयुगलस्य ते कामित्वं संभवति, कथं वा तपसाभितप्तस्य शान्तस्योग्रत्वं परुषत्वं वा संभवतीत्यविचार्यैव प्रलापादित्यर्थः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह सदैव दूसरे जीव पर कृपा करने में व्यग्र रहने वाले आपकी जो लोग निन्दा करते हैं। वे लोग अत्यन्त मूर्ख है इस तरह से प्रजापतियों ने कहा ! जो लोग पार्वतीजी के साथ सञ्चरण करने वाले तथा उनसे प्रेम करने वाले आपको कामी कहते है, तथा श्मशान में विचरण करने के कारण क्रूर तथ हिंस्र कहते हैं। अत्यन्त मूर्ख हैं। क्योंकि आत्माराम महापुरुष जो सम्पूर्ण जगत् को कल्याण का उपदेश करते हैं वे आपके दोनों चरणों का अपने हृदय में ध्यान करते हैं। तथा सदा तपस्यारत रहने वाले आपकी निन्दा करते हैं वे निश्चित रूप से

आपकी लीला को नहीं जानते हैं । अतएव वे लोग निर्लज्ज हैं । क्योंकि जिस आपके चरण कमलों का ध्यान आत्माराम पुरुष करते हैं ऐसे आप कामी कैसे हो सकते है ? और सदा तपस्यारत रहने वाले शान्त आप उग्र कैसे हो सकते हैं ? अतएव वे लोग बिना विचार किए ही व्यर्थ ही बोलते रहने वाले हैं ॥३३॥

तत्त्स्य ते सदसतोः परतः परस्य नाञ्जः स्वरूपगमने प्रभवन्ति भूम्नः ।
ब्रह्मादयः किमुत संस्तवने वयं तु तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम् ॥३४॥

अन्वयः— तत् तस्य सदसतोः परतः परस्य भूम्नः ते स्वरूपगमने ब्रह्मादयः अञ्जः न प्रभवन्ति किमुत संस्तवने वयं तु तत्सर्गसर्गविषयाः अपि शक्तिमात्रम् ॥३४॥

अनुवाद— तो इस कार्य कारणात्मक जगत् से परे माया है और माया से भी परे आप हैं । अतएव आपके अनन्त स्वरूप को जानने में ब्रह्मा आदि भी सहसा समर्थ नहीं हो सकते हैं तो फिर वे स्तुति कैसे कर सकते हैं और हमलोग तो उनके पुत्र के पुत्र आदि होने के कारण क्या कर सकते हैं ? फिर भी अपनी शक्ति के अनुसार हमलोगों ने आपकी स्तुति की है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

आस्तां तावन्निन्दकानां वार्ता, महान्तोऽपि तव तत्त्वं न जानन्तीत्याहुः- तत्तस्मात्तव स्वरूपस्य गमने ज्ञाने ब्रह्मादयोऽपि न समर्थाः, संस्तवने तु कुतः शक्ताः स्युः, तत्र वयं कथं प्रभवेम । यतस्तेषां सर्गेऽत्यन्तार्वाचीनाः । तथापि यदेतत्तव स्तवनमेतदात्मशक्तिपरिमितमात्रमित्यर्थः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

निन्दकों की बात छोड़ें बड़े-बड़े लोग भी आपके तत्त्व को नहीं जानते हैं, यह प्रजापतियों ने कहा— आपके स्वरूप को जानने में ब्रह्मा इत्यादि भी जब समर्थ नहीं है तो आपकी स्तुति करने में कैसे समर्थ होंगे। जब ऐसी स्थिति है तो हम प्रजापति गण आपकी स्तुति करने में कैसे समर्थ हो सकते है ? क्योंकि हम लोग तो उन ब्रह्मा आदि की सृष्टि में अत्यन्त नवीन हैं । फिर भी हमलोगों ने यह जो स्तुति की वह हमलोगों की शक्ति के अनुसार है ॥३४॥

एतत्परं प्रपश्यामो न परं ते महेश्वर । मृडनाय हि लोकस्य व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः ॥३५॥

अन्वयः— हे महेश्वर ते एतत् परं प्रपश्यामः परं न, अव्यक्तकर्मणः ते व्यक्तिः लोकस्य मृडनाय हि ॥३५॥

अनुवाद— हे महेश्वर हमलोग तो आपके इसी लीलार्थ रूप को देख पाते हैं, आपका जो परम स्वरूप है उसको हमलोग नहीं देख पाते हैं । आपकी लीलाएँ यद्यपि अव्यक्त हैं फिर भी जगत् का कल्याण करने के लिए आप व्यक्त रूप से भी रहा करते हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाहुः-एतत्परमिति । न परं रूपं तथापि त्वद्दर्शनादेव कृतार्था वयमित्याहुः-मृडनाय हीति ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बातों को **एतत् परम् इत्यदि** श्लोक से कहते हैं । आपके पर रूप को हमलोग नहीं जानते हैं। अपका दर्शन करके हमलोग कृतार्थ हो गये । **मृडनायहि** अर्थात् कल्याण करने के लिए ही ॥३५॥

श्रीशुक उवाच

तद्वीक्ष्य व्यसनं तासां कृपया भृशपीडितः । सर्वभूतसुहृद्देव इदमाह सतीं प्रियाम् ॥३६॥

अन्वयः— तासां तद् व्यसनं वीक्ष्य कृपया भृशपीडितः सर्वभूतसुहृद्देवः प्रियां सतीम् इदम् आह ॥३६॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् प्रजाओं के उस सङ्कट के देखकर सभी जीवों के स्वाभाविक हितैषी भगवान् शङ्कर के हृदय में दया के कारण अत्यधिक पीडा हुई उन्होंने अपनी पत्नी से कहा ।।३६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३६।।

शिव उवाच

अहे बत भवान्येतत्प्रजानां पश्य वैशसम् । क्षीरोदमथनोद्भूतात्कालकूटादुपस्थितम् ।।३७।।

अन्वयः— भवानि अहो बत क्षीरोदमथनोदभूतात् कालकूटात् उपस्थितम् एतत् प्रजानां वैशसं पश्य ।।३७।।

शिवजी ने कहा

अनुवाद— हे भवानि बड़े खेद की बात है, कि क्षीरसागर के मन्थन से उत्पन्न कालकूट के करण प्रजाओं पर आये हुए सङ्कट को देखो ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

मत्प्रभावमविचार्य विषपाने प्रवृत्तं मां कथंचिदियं प्रिया वारयेदिति शङ्कया तामनुज्ञापयन्नाह-अहो बतेति सार्धश्चतुर्भिः। वैशसं दुःखम् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

मेरे प्रभाव को नहीं जान सकने के करण सती देवी मुझे विषपान करने से रोकें नहीं इसी शङ्का से उनको बोधित करते हुए **अहो बत० इत्यादि** साढे चार श्लाकों से कहते हैं । वैशसम् अर्थात् दुख को ।।३७।।

आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे । एतावान्हि प्रभोरर्थो यद्दीनपरिपालनम् ।।३८।।

अन्वयः— प्राणपरीप्सूनाम् आसां हि मया अभयं विधेयम् प्रभो हि एतावानर्थो यत् दीन परिपालनम् ।।३८।।

अनुवाद— अपने प्राणों की रक्षा चाहने वाले इन सबों को मुझे अभय बना देना चाहिए सामर्थ्य सम्पन्न पुरुष के जीवन की यही सफलता है कि वह दीनों की रक्षा करें ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

प्राणपरीप्सूनां प्राणरक्षणेच्छूनाम् । मे मया । प्रभोः समर्थस्य । अर्थः कार्यम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

प्राण परीप्सूनाम् अर्थात् अपने प्राणों की रक्षा चाहने वाले इन प्रजाओं की रक्षा मुझे करनी चाहिए । प्रभोः अर्थात् समर्थ पुरुष की, अर्थः अर्थात् कार्य ।।३८।।

प्राणै स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभङ्गुरैः । बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया ।।३९।।

अन्वयः— साधवः स्वैः क्षणभङ्गुरैः प्राणै प्राणिनः पान्ति आत्ममायया मोहितेषु भूतेषु बद्धबैरेषु ।।३९।।

अनुवाद— साधु पुरुष अपने क्षणभङ्गुर प्राणों की बलि देकर भी दूसरे प्राणियों के प्राणों की रक्षा करते हैं। अपने ही मोह की माया में पड़े हुए संसारी जीव एक दूसरे से बैर की गाँठ-बाँधे रहते हैं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

किंच बद्धवैरेषु भूतेषु परस्परं जिघांसत्सु ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

वे जीव परस्पर में एक दूसरे से बैर करके एक दूसरे को मार डालना चाहते हैं ।।३९।।

पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः । प्रीते हरौ भगवति प्रीयेऽहं सचराचरः ॥
तस्मादिदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे ॥४०॥

अन्वयः— हे भद्रे ! कृपयतः पुंसः सर्वात्मा हरिः प्रीयते भगवति हरौ प्रीते अहं सचराचरः प्रिये । तस्मात् इदं गरं भुञ्जे मे प्रजानां स्वस्तिः अस्तु ॥४०॥

अनुवाद— हे कल्याणि ! कृपा करने वाले पुरुष पर सर्वात्मा श्रीहरिः प्रसन्न हो जाते हैं । श्रीभगवान् के प्रसन्न हो जाने पर सचराचर जगत् के साथ मैं भी प्रसन्न हो जाता हूँ । अतएव इस विष को अभी भक्षण कर जाता हूँ जिससे कि मेरी प्रजाओं का कल्याण हो ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

कृपयतः कृपां कुर्वतः पुंसः मे मत्तः । स्वस्तिः शोभना सत्ता, सुखेन जीवितमस्त्वित्यर्थः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

कृपयतः अर्थात् कृपा करने वाले पुरुष पर मैं अर्थात् मुझसे स्वस्ति अर्थात् प्रजाओं का जीवन सुखी हो जाय॥४०॥

श्रीशुक उवाच

एवमामन्त्र्य भगवान्भवानीं विश्वभावनः । तद्विषं जग्धुमारेभे प्रभावज्ञाऽन्वमोदत ॥४१॥

अन्वयः— विश्वभावनः भगवान् भवानीम् एवम् आमन्त्र्य तद्विषं जग्धुम् आरेभे, प्रभावज्ञा अन्वमोदत ॥४१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— विश्व के जीवन दाता भगवान् शिवजी, सती देवी से इस प्रकार का प्रस्ताव करके उस विश्व को खाने के लिए उद्यत हो गया । उनके प्रभाव को जानने वाली सती देवी ने भगवान् शिव के इस कार्य का अनुमोदन किया ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

जग्घुमत्तुम् ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

जग्धुम् अर्थात् खाने के लिए ॥४१॥

ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम् । अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः ॥४२॥

अन्वयः— ततः व्यापि हालाहलं विषम् करतलीकृत्य भूतभावनः महादेवः कृपया अभक्षयत् ॥४२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस तीक्ष्ण विष को अपने हथेली पर रखकर जीवों पर कृपा करने वाले भगवान् उस विष का भक्षण कर गये ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

करतलीकृत्य करतलपरिमितमात्रं कृत्वा ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

अपनी हथेली भर में ही रखकर ॥४२॥

तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः । यच्चकार गलेनीलं तच्च साधोर्विभूषणम् ॥४३॥

अन्वयः— जलकल्मषः तस्य अपि स्ववीर्यं दर्शयामास, यत् गलेनीलं चकार तत् च साधोः विभूषणम् ॥४३॥

अनुवाद— जल का मलरूप वह विष शङ्करजी पर भी अपना प्रभाव दिखाया ही । उसके कारण उनका

कण्ठ नीला हो गया । किन्तु साधु स्वभाव वाले शङ्करजी का वह भी भूषण बन गया । भगवान् शिव नीलकण् कहलाने लगे ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

जलकल्मषो जलदोषो विषम् । यस्मात्तं गलेनीलं चकार । साधोः कृपालोः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

जल कल्मष: विष जल का दोष था । क्योंकि उसने शङ्करजी के गले नीला बना दिया । साधो: अर्था कृपा करने वाले ।।४३।।

तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः । परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ।।४४

अन्वयः— साधवो जनाः प्रायशः लोकतापने तप्यन्ते तद्धि अखिलात्मनः परमपुरुषस्य परमाराधनम् ।।४४।।

अनुवाद— जो परोपकारी सज्जन पुरुष होते हैं वे प्राय: प्रजाओं के ही दु:ख से दु:खी होते हैं । कि यह दु:ख नहीं होकर सम्पूर्ण जगत् की आत्मा परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ आराधना है ।।४४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४४।।

निशम्य कर्म तच्छम्भोर्देवदेवस्य मीढुष; । प्रजा दाक्षायणी ब्रह्मा वैकुण्ठश्च शशंसिरे ।।४

अन्वयः— देवदेवस्य मीढुषः शम्भोः तत्कर्म निशम्य, प्रजाः, दाक्षायणी, ब्रह्मा वैकुण्ठः च शशंसिरे ।।४५।।

अनुवाद— देवताओं के आराध्य सबों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् शङ्करजी के उस क को सुनकर सारी प्रजाएँ, सतीदेवी, ब्रह्माजी और भगवान् विष्णु भी उनकी प्रशंसा किए ।।४५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४५।।

प्रस्कन्नं पिबतः पाणेर्यत्किंचिज्जगृहुः स्म तत् । वृश्चिकाहिविषौषध्यो दन्दशूकाश्च येऽपरे ।।४६

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे अमृतमन्थने सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

अन्वयः— पाणेः पिबतः यत् किञ्चित् प्रस्कन्नं तत् वृश्चिकाहि विषौषध्य; ये अपरे दन्दशूकाः च जगृहुः स्म ।।४६।

अनुवाद— हाथ पर रखकर उस विष को पीते समय जो कुछ थोड़ा सा भी विष गिरा उसको बिच्छी, सर्प विषैली औषधियाँ थी और दूसरे जो विषैली जीव थे उन सबों ने ग्रहण कर लिया ।।४६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

भावार्थ दीपिका

प्रस्कन्नं गलितम् । अपरे ये सविषास्तेऽपि जगृहुः । अनेन विषस्य तीव्रतोक्ता ।।४६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां सप्तमोऽध्याय; ।।७।।

भाव प्रकाशिका

प्रस्कन्न अर्थात् चुआ हुआ, दूसरे जो विषैले जीव थे उन सबों ने भी ग्रहण कर लिया इस उस विष क तीव्रता बतलायी गयी है ।।४६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के सातवें अध्याय क शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।७।।

आठवाँ अध्याय

समुद्र से अमृत की उत्पत्ति और भगवान् का मोहिनी अवतार

श्रीशुक उवाच

पीते गरे वृषाङ्केण प्रीतास्तेऽमरदानवाः । ममन्थुस्तरसा सिन्धुं हविर्धानी ततोऽभवत् ॥१॥

अन्वयः— वृषाङ्केण गरे पीते ते अमर दानवाः प्रीताः सिन्धुं तरसा ममन्थुः ततः हविर्धानी अभवत ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— शङ्करजी के द्वारा विष के पी लिए जाने पर देवताओं और दैत्य बहुत प्रसन्न हुए और वे नये उत्साह से समुद्र का मन्थन करने लगे तो समुद्र से कामधेनु प्रकट हुई ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टमे मथ्यमानेऽब्धौ लक्ष्म्या विष्णौ वृतेऽसुरैः । धन्वन्तरेर्हृते सोमे मोहिन्युद्भव ईर्यते । हविर्धानी सुरभिः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

आठवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि जब लक्ष्मीजी ने श्रीभगवान् विष्णु का वरण कर लिया और असुरों ने धन्वन्तरि से अमृत का पात्र छिन लिया तब श्रीभगवान् ने मोहिनी अवतार ग्रहण किया । हविर्धानी अर्थात् कामधेनु ॥१॥

तामग्निहोत्रीमृषयो जगृहुर्ब्रह्मवादिनः । यज्ञस्य देवयानस्य मेध्याय हविषे नृप ॥२॥

अन्वयः— हे नृप ! तामग्नि होत्रीम् देवयानस्य यज्ञस्य मेध्याय हविषे ब्रह्मवादिनः ऋषयः जगृहुः ॥२॥

अनुवाद— हे राजन् ! अग्निहोत्र की सामग्री उत्पन्न करने वाली कामधेनु को ब्रह्मलोक तक पहुचाने वाले यज्ञ के पवित्र हविष्य के लिए ब्रह्मवादी ऋषियों ने ले लिया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

देवयानस्य ब्रह्मलोकमार्गप्रापकस्य । यज्ञस्य संबन्धिने हविषे ॥२॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मलोक के मार्ग को प्रदान करने वाले यज्ञ के पवित्र हविष्य के लिए ॥२॥

तत उच्चैःश्रवा नाम हयोऽभूच्चन्द्रपाण्डुरः । तस्मिन्बलिः स्पृहां चक्रे नेन्द्र ईश्वरशिक्षया ॥३॥

अन्वयः— ततः उच्चैः श्रवा नाम चन्द्रपाण्डुरः हयः अभूत् तस्मिन् बलिः स्पृहां चक्रे ईश्वरशिक्षया इन्द्रः न ॥३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उच्चैः श्रवानामक अश्व उत्पन्न हुआ, उसको प्राप्त करने की इच्छा बलि ने की श्रीभगवान् की शिक्षा के अनुसार इन्द्र ने नहीं की ॥३॥

भावार्थ दीपिका

ईश्वरशिक्षया प्रागेव कृतया ॥३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने समुद्र मन्थान से पहले ही उसकी शिक्षा दे दी थी ॥३॥

तत ऐरावतो नाम वारणेन्द्रो विनिर्गतः । दन्तैश्चतुर्भिः श्वेताद्रेर्हरन्भगवतो महिम् ।।४।।

अन्वयः— ततः चतुर्भिः दन्तैः भगवतः श्वेताद्रेः महिम् हरन् ऐरावतो नाम वारणेन्द्रः विनिर्गतः ।।४।।

अनुवाद— उसके पश्चात् चार दाँतों द्वारा भगवान् शङ्कर के कैलास पर्वत की महिमा को अपने शिखाराकार चार दाँतों वाला ऐरावत नामक हाथी प्रकट हुआ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

भगवतो यः श्वेताद्रिः कैलासस्तस्य महिं महिमानम् । दन्तैः शिखरकल्पैर्हरंश्चन्द्रवत्पाण्डुर इत्यनुषङ्गः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् शिव का जो कैलास पर्वत उसकी महिमा को अपने शिखराकर चार दाँतों द्वारा धारण करने वाला चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण का ऐरावत हाथी प्रकट हुआ ।।४।।

कौस्तुभाख्यमभूद्रत्नं पद्मरागो महोदधेः । तस्मिन्हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलङ्करणे मणौ ।।५।।

अन्वयः— ततः महोदधेः पद्मरागः कौस्तुभाख्यं रत्नम् अभूत् तस्मिन् मणौ वक्षोऽलङ्करणे हरिः स्पृहा चक्रे ।।५।।

अनुवाद— उसके पश्चात् उस महासागर से कमल के समान कान्ति वाला कौस्तुभ नामक मणि प्रकट हुआ। उसको श्रीहरि अपने वक्षः स्थल को अलंकृत करने के लिए इच्छा किए ।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५।।

ततोऽभवत्पारिजातः सुरलोकविभूषणम् । पूरयत्यर्थिनो योऽर्थैः शश्वद्भुवि यथा भवान् ।।६।।

अन्वयः— ततः सुरलोक विभूषणम् पारिजातः अभवत् यः अर्थिनः अर्थै पूरयति यथा भुविभवान् ।।६।।

अनुवाद— उसके पश्चात् देवलोक के विशेष भूषण के समान पारिजात नामक वृक्ष प्रकट हुआ जो अपने अर्थियों की कामनाओं को उसी तरह से पूरा करता जिस तरह आप अपने अर्थियों की कामनाओं को इस भूलोक में पूरा करते हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६।।

ततश्चाप्सरसो जाता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः । रमण्यः स्वर्गिणां वल्गुगतिलीलावलोकनैः ।।७।।

अन्वयः— ततः च निष्ककण्ठ्यः सुवाससः वल्गुगीतावलोकनैः स्वर्गिणां रमण्यः अप्सरसः जाताः ।।७।।

अनुवाद— उसके पश्चात् अपने गले में सुवर्ण का हार पहने और सुन्दर वस्त्र धारण की हुई अपनी मनोहर चाल और विलास पूर्ण अवलोकन के द्वारा देवताओं को सुख प्रदान करने वाली अप्सराएँ प्रकट हुई ।।७।।

भावार्थ दीपिका

वल्गुभिर्गत्यादिभिः स्वर्गिणां रमण्यो रतिकर्त्र्यः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

मनोहर चाल आदि के द्वारा देवताओं से प्रेम करने वाली ।।७।।

ततश्चाविरभूत्साक्षाच्छ्री रमा भगवत्परा । रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत्सौदामनी यथा ।।८।।

अन्वयः— ततः विद्युत् सौदामिनी यथा कान्त्यादिशः रञ्जयन्ती भगवत्परा साक्षात् श्रीः रमा आविरभूत् ।।८।।

अनुवाद— उसके पश्चात् जिस तरह बिजली अपनी चमक के द्वारा दिशाओं को सुशोभित करती है, उस तरह अपनी कान्ति से सभी दिशाओं को सुशोभित करने वाली शोभा की मूर्ति भगवत परायण रमादेवी प्रकट हुई।।८।।

भावार्थ दीपिका

सुदामा पर्वतस्तत्रैकस्यां दिशि जाता सौदामनी । स्फटिकादिमयगिरिशृङ्गेष्वधिकं स्फुरन्ती विद्युदिव कान्त्या दिशो रञ्जयन्ती श्रीः संपत् साक्षान्मूर्तिधारिणी सती सैव भगवत्परा रमा आविरभूदित्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

उस क्षीरार्णव में सुदामा नामक पर्वत है, उसकी एक दिशा में विद्युत् प्रकट हुई । स्फटिक आदिमय पर्वत के शिखरों पर अत्यधिक चमकने वाली विद्युत् के समान अपनी कान्ति से दिशाओं को सुशोभित करने वाली साक्षात् मूर्ति के समान भगवत् परायणा रमा देवी प्रकट हुईं ॥८॥

तस्यां चक्रुः स्पृहां सर्वे ससुरासुरमानवाः । रूपौदार्यवयोवर्णमहिमाक्षिप्तचेतसः ॥९॥

अन्वयः— रूपौदार्यवयोवर्णमहिमाक्षिप्तचेतसः सर्वे ससुरासुरमानवाः तस्यां स्पृहां चक्रुः ॥९॥

अनुवाद— उनके सौन्दर्य औदार्य, यौवन, रूप रङ्ग और महिमा से सभी देवताओं, असुरों और मानवों का मन आकृष्ट हो गया सबों ने उनको प्राप्त करने की इच्छा की ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तस्या रूपादिमहिम्ना आक्षिप्तं चेतो येषाम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उनकी रूप आदि की महिमा से उन सबों का चित्त आकृष्ट हो गया ॥९॥

तस्या आसनमानिन्ये महेन्द्रो महदद्भुतम् । मूर्तिमत्यः सरिच्छ्रेष्ठा हेमकुम्भैर्जलं शुचि ॥१०॥

अन्वयः— महेन्द्रः तस्याः महदद्भुतम् आसनम् मूर्तिमत्यः सरिच्छ्रेष्ठा शुचिजलम् आनिन्ये ॥१०॥

अनुवाद— इन्द्र अत्यन्त अद्भुत उनके बैठने के लिए आसन लाये और मूर्तिमयी श्रेष्ठ नदियाँ सुवर्ण के कलशों में पवित्र जल लायीं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

भगवद्वक्षसि स्थितया श्रिया विलोकितानां सुराणां यथापूर्वं संपत्प्राप्तिमसुराणां च तद्विपर्ययं वक्तुमभिषेकादिमहोत्सवपूर्वकं ब्रह्मादिपरिहारेण भगवत्प्राप्तिप्रकारमाह-तस्या आसनमित्यादिना अथासीद्वारुणीत्यतः प्राक्तनेन ग्रन्थेन ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् के वक्ष; स्थल में विराजमान श्रीदेवी के द्वारा देखे जाने से देवताओं को पहले के ही समान सम्पत्ति की प्राप्ति तथा असुरों की अवनत्ति बतलाने के ही लिए अभिषेकादि महोत्सव पूर्वक ब्रह्मा आदि के परिहार से भगवान् की प्राप्ति का प्रकार का वर्णन **आसनम् इत्यादि** से लेकर **अथसीद्वारुणी** यहाँ से पहले तक के ग्रन्थ द्वारा वर्णन करते हैं ॥१०॥

आभिषेचनिका भूमिराहरत्सकलौषधीः । गावः पञ्चपवित्राणि वसन्तो मधुमाधवौ ॥११॥

अन्वयः— भूमिः आभिषेचनिकाः सकलौषधीः अहरत् गावः पञ्चपवित्राणि वसन्तः मधुमाधवौ ॥११॥

अनुवाद— पृथिवी ने अभिषेक के योग्य सभी औषधियाँ प्रदान की गौओं ने पञ्चगव्य प्रदान किया औरवसन्त ऋतु ने चैत्र और वैशाख मास में होने वाले फूलों और फलों को प्रदान किया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अभिषेचनिका आभिर्षकोचिताः । पञ्चपवित्राणि पञ्चगव्यानि । मधुमाधवौ चैत्रवैशाखभवं फलपुष्पादि । पाठान्तरेऽपि द्वन्द्वैक्ये स एवार्थः । मधुमासे भवं मध्विति वा ॥११॥

भाव प्रकाशिका

आभिषेचनिका अर्थात् अभिषेक के लिए उचित, **पञ्चपवित्राणि** अर्थात् पञ्चगव्य **मधुमाधवौ** चैत्र और वैशाख में होने वाले फल पुष्प आदि । पाठान्तर में भी द्वन्द्व समास होने के कारण वही अर्थ होगा । अथवा मधुमास में होने वाली शहद को ।।११।।

ऋषयः कल्पयांचक्रुरभिषेकं यथाविधि । जगुर्भद्राणि गन्धर्वा नट्यश्च ननृतुर्जगुः ।।१२।।

अन्वयः— ऋषयः यथाविधि अभिषेकं चक्रु गन्धर्वा भद्राणि जगु; नट्यः च ननृतुः जगुः ।।१२।।

अनुवाद— ऋषियों ने श्रीदेवी का विधि पूर्वक अभिषेक किया, गन्धर्वों ने मङ्गलमय गीत गाया नर्तकियाँ नाच-नाचकर गाने लगीं ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

अभिषेकं अभिषेकोचितं विधिम् । नट्यो नाटानां स्त्रियः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

अभिषेक अर्थात् अभिषेक की विधि । नट्यः अर्थात् नटों की स्त्रियाँ ।।१२।।

मेघा मृदङ्गपणवमुरजानकगोमुखान् । व्यनादयन् शङ्खवेणुवीणास्तुमुलनिः स्वनान् ।।१३।।

अन्वयः— मेघा मृदङ्गपणवमुरजानकगोमुखान् तुमुलनिःस्वनान् शङ्खवेणुवीणाः व्यनादयन् ।।१३।।

अनुवाद— मेघ देह धारण करके मृदङ्ग डमरु ढोल-नगाड़े नरसिंहे शङ्ख, वेणु और वीणा बड़े जोर से बजाये ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

शङ्खवेणुवीणाश्च व्यनादयन् । तुमुलो निःस्वनो येषां तान् मृदङ्गादीन् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

शङ्ख वेणु और वीणा को और जिन सबों की अत्यधिक ध्वनि थी ऐसे मृदङ्ग आदि को बजाये ।।१३।।

ततोऽभिषिषिचुर्देवीं श्रियं पद्मकरां सतीम् । दिगिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितैः ।।१४।।

अन्वयः— ततः दिगिभाः सूक्तवाक्यद्विजेरितैः पूर्णकलशैः पद्मकरां सतीम् श्रियं देवीम् अभिषिषिचुः ।।१४।।

अनुवाद— उसके पश्चात् जब ब्राह्मण गणवेद पाठ कर रहे थे उस समय दिग्गजों ने जल भरे कलशों से हाथ में कमल लिए हुए श्रीदेवी का अभिषेक किया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४।।

समुद्रः पीतकौशेयवाससी समुपाहरत् । वरुणः स्त्रजं वैजयन्तीं मधुना मत्तषट्पदाम् ।।१५।।

अन्वयः— समुद्रः पीतकौशेय वाससी समुपाहरात् वरुणः मधुना मत्तषटपदाम् वैजयन्तीम् स्त्रजम् समुपाहरत् ।।१५।।

अनुवाद— समुद्र ने उनके पहनने के लिए दो पीले रेशमी वस्त्र दिया और वरुव देव ने जिस पर ऐसी उनको वैजयन्ती माला प्रदान की जिसके पराग के लोभी भौंरे गुञ्जन कर रहे थे ।।१५।।

भावार्थ दीपिका नहीं है ।।१५।।

भूषणानि विचित्राणि विश्वकर्मा प्रजापतिः । हारं सरस्वती पद्ममजो नागाश्च कुण्डले ।।१६।।

अन्वयः— प्रजापति विश्वकर्मा विचित्राणि भूषणानि हारं सरस्वती, अजः पद्मम् नागाश्च कुण्डले ।।१६।।

अनुवाद— प्रजापति विश्वकर्माने विभिन्न प्रकार के भूषणों को, सरस्वती देवी ने हार, ब्रह्माजी ने कमल और नागों ने दो कुण्डल प्रदान किए ।।१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१६।।

ततः कृतस्वस्त्ययनोत्पलस्रजं नदद्द्विरेफां परिगृह्य पाणिना ।
चचाल वक्त्रं सुकपोलकुण्डलं सव्रीडहासं दधती सुशोभनम् ।।१७।।

अन्वयः— ततः कृतस्वस्त्ययनोनदद्द्विरेफां उत्पलस्रजं पाणिना परिगृह्य, वक्त्रं सुकपोलकुण्डलं सव्रीडहासं दधती चचाल ।।१७।।

अनुवाद— उसके पश्चात् ब्राह्मणों के स्वस्त्ययन पाठ कर लेने पर जिस पर भौंरे गुञ्जार कर रहे थे ऐसी कमल की माला अपने हाथ में लेकर चलीं । उनके सुन्दर कपोलों पर कुण्डल लटक रहे थे, कुछ लज्जा युक्त हंसी से युक्त मुख को धारण की हुई वे सर्वगुण सम्पन्न पुरुष का वरण करने चल पड़ीं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

स्तनद्वयं चातिकृशोदरीसमं निरन्तरं चन्दनकुङ्कुमोक्षितम् ।
ततस्ततो नूपुरवल्गुसिञ्जितैर्विसर्पती हेमलतेव सा बभौ ।।१८।।

अन्वयः— अतिकृशोदरी चन्दन कुङ्कुमोक्षितम् निरन्तरं समं च स्तनद्वयं बिभ्रती सा ततस्ततः नूपुरवल्गुसिञ्जितैः विसर्पती हेमलता इव सा बभौ ।।१८।।

अनुवाद— अत्यन्त पतली कमर वाली वे जिन पर चन्दन और केसर का लेप लगा था ऐसे परस्पर में सटे हुए तथा एक बराबर दो स्तनों को धारण की हुई वे जब चलती थीं तब उनके पैरों के नूपुर मधुर झङ्कार करते थे और ऐसा लगता था कि कोई सुवर्ण की लता इधर-उधर धूम रही है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१८।।

विलोकयन्ती निरवद्यमात्मनः पदं ध्रुवं चाव्यभिचारिसद्गुणम् ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धचारणत्रैविष्टपेयादिषु नान्वविन्दत ।।१९।।

अन्वयः— अव्यभिचारिसद्गुणम् ध्रुवं निरवद्यं आत्मनः पदं विलोकयन्ती गन्धर्वयक्षासुरसिद्धचारणत्रैविष्टपेयादिषु नान्वविन्दत ।।१९।।

अनुवाद— समस्त सद्‌गुणों से सम्पन्न अविनाशी निर्दोष अपने आश्रय का अन्वेषण करती हुई वे गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्ध चारण तथा देवताओं में से किसी को भी नहीं पायीं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

पदमाश्रयम्। ध्रुवं नित्यम् । अव्यभिचारिणो नित्याः सन्तो गुणा यस्मिंस्तं नान्वविन्दत । क्वचित्कस्यचिद्दोषस्य सद्भावात्।।१९।।

भाव प्रकाशिका

पदम् अर्थात् आश्रय । ध्रुव अर्थात् अविनाशी, सदैव समस्त सद्गुणों से सम्पन्न वे किसी को नहीं पायीं क्योंकि सबों में कोई-न-कोई दोष मिल ही जाता था ।।१९।।

नूनं तपो यस्य न मन्युनिर्जयो ज्ञानं क्वचित्तच्च न सङ्गवर्जितम् ।
कश्चिन्महांस्तस्य न कामनिर्जयः स ईश्वरः किं परतो व्यपाश्रयः ।।२०।।

अन्वयः— नूनं तपो यस्य न मन्युनिर्जयः ज्ञानं क्वचित् तच्च न सङ्गवर्जितम्, कश्चिन्महान् तस्य न काम निर्जयः स ईश्वरः किं परतो व्यपाश्रयः ।।२०।।

अनुवाद— उन्होंने देखा किसी में तपस्या तो है किन्तु वे अपने क्रोध को नहीं जीत सके हैं, किसी में ज्ञान तो हैं किन्तु वे आसक्ति से रहित नहीं है, कोई महान् तो है किन्तु वह काम पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता है और कोई ईश्वर तो है किन्तु वह भी दूसरे के अधीन है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-नूनमिति त्रिभिः-मन्युनिर्जयो नास्ति दुर्वासःप्रभृतिषु । गुरुशुक्रादिषु सङ्गवर्जितं ज्ञानं नास्ति । महत्त्वेऽपि ब्रह्मसोमादौ न कामनिर्जयः । परतो व्यपाश्रयः परापेक्ष इन्द्रादिः स किमीश्वरः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

उसी का वर्णन **नूनम्० इत्यादि** तीन श्लोकों से करते हैं । दुर्वासा इत्यादि तपस्वी तो हैं किन्तु उन लोगों ने क्रोध पर विजय नहीं प्राप्त किया है, गुरु, शुक्र इत्यादि ज्ञानी तो हैं किन्तु उनमें सङ्ग रहित ज्ञान नहीं है। ब्रह्मा तथा सोम इत्यादि महान् तो हैं किन्तु वे लोग काम को नहीं जीत सके हैं । इन्द्र इत्यादि नियामक तो हैं किन्तु वे भी पराधीन हैं ॥२०॥

धर्म क्वचित्तत्र न भूतसौहृदं त्यागः क्वचित्तत्र न मुक्तिकारणम् ।
वीर्यं न पुंसोऽस्त्यजवेगनिष्कृतं नहि द्वितीयो गुणसङ्गवर्जितः ॥२१॥

अन्वयः— धर्मः क्वचित् तत्र न भूतसौहृदम्, त्यागः क्वचित् तत्र न मुक्तिकारणम् वीर्यं न पुंसः अजवेग निष्कृत न अस्ति नहि द्वितीयः गुणसङ्गवर्जितः ॥२१॥

अनुवाद— किसी में धर्म तो है किन्तु वे सभी जीवों के हितैषी नहीं हैं, किसी में त्याग तो है किन्तु वह मुक्ति का कारण नहीं है, किसी में वीरता तो है किन्तु वे काल के वेग से बचने वाले नहीं है, कोई द्वितीय नहीं हैं किन्तु वे समाधिनिष्ठ होने के कारण गुणसङ्ग से रहित है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

न भूतसौहृदंय परशुरामादिषु । न मुक्तिकारणं त्यागः शिबिप्रभृतिषु । पुंसः कार्तवीर्यादेर्वीर्यमस्ति । अजवेगनिष्कृतं कालवेगेन परिहृतं तु न भवति । गुणसङ्गवर्जितः सनकादिर्द्वितीयो मम वरो नहि, समाधिनिष्ठत्वात् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीपरशुराम इत्यादि सभी भूतों के प्रति सौहार्द नहीं है, शिवजी इत्यादि में त्याग तो है, किन्तु वह मुक्ति का कारण तो नहीं हैं । कार्तवीर्य आदि में वीरता तो है किन्तु वे काल के वेग से बच नहीं सकते । समाधिनिष्ठ रहने के कारण सनकादि द्वितीय गुणसङ्ग से रहित होने के कारण मेरे पति नहीं हो सकते हैं ॥२१॥

क्वचिच्चिरायुर्न हि शीलमङ्गलं क्वचित्तदप्यस्ति न वेद्यमायुषः ।
यत्रोभयं कुत्र च सोऽप्यमङ्गलः सुमङ्गलः कश्च न काङ्क्षते हि माम् ॥२२॥

अन्वयः— क्वचित् चिरायुः नहि शीलमङ्गलम्, क्वचित् तदपि अस्ति नवेद्यमायुषः, यत्र कुत्र च उभयं सोऽपि अमङ्गलः सुमङ्गलः कश्च न माम् काङ्क्षते हि ॥२२॥

अनुवाद— किसी में चिरायु को तो प्राप्त किया है किन्तु उसमें शील मङ्गल नहीं है, किसी में शील मङ्गल तो है किन्तु उसके आयु का कोई ठिकाना नहीं है, किसी में वे दोनों हैं किन्तु वे अमङ्गल रूप है । भगवान् विष्णु सभी मङ्गलमय गुणों के आश्रय हैं किन्तु वे मुझको चाहते ही नहीं है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

चिरायुष्यपि मार्कण्डेयादौ शीलमङ्गलं नास्ति, इन्द्रियदमनशीलत्वात् । क्वचित्तदप्यस्ति हिरण्यकशिपुप्रभृतौ, आयुषः

स्थैर्यं न वेद्यं दुर्ज्ञातम्, भगवद्देषेणाकस्मादेव मृत्युसंभवात। यत्र कुत्र च श्रीरुद्रे मार्कण्डेयादिवदिन्द्रियदमनाद्यभावाच्छीलमङ्गलं चायुर्निश्चयश्चेत्युभयमस्ति न चान्यः पूर्वोक्तः कश्चिद्दोषः । तथापि सोऽप्यमङ्गलः श्मशानवासाद्यमङ्गलचेष्टितः । श्रीमुकुन्दं लक्षीकृत्याह-कश्चेति । कश्चित्सुमङ्गलो निरवद्यश्च स तु मां न हि काङ्क्षते, आत्मारामत्वात् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीलक्ष्मीजी ने देखा मार्कण्डेय महर्षि आदि चिरायु तो हैं, किन्तु उनमें शील मङ्गल नहीं क्योंकि वे तो अपनी इन्द्रियों का दमन करते हैं । हिरण्यकशिपु आदि में शील मङ्गल तो है किन्तु उनकी आयु का कोई ठिकाना नहीं है । क्योंकि भगवान् से द्वेष करने के कारण उसकी कभी भी मृत्यु हो सकती है । श्रीरुद्र में मार्कण्डेय आदि के समान चिरायुष्ट्व तो है तथा वे इन्द्रिय का दमन भी नही करते अतएव उनमें पूर्वोक्त दोष नहीं है किन्तु वे अमङ्गल वेष में रहते हैं । श्रीभगवान् को लक्ष्य करके कहती हैं कि कोई सुमङ्गल और निर्दोष है किन्तु मुझको चाहते ही नहीं है क्योंकि वे आत्माराम हैं ।।२२।।

एवं विमृश्याव्यभिचारिसद्गुणैर्वरं निजैकाश्रयताऽगुणाश्रयम् ।
वव्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षितं रमा मुकुन्दं निरपेक्षमीप्सितम् ।।२३।।

अन्वयः— एवं विमृश्य अव्यभिचारिसदगुणैः वरम् निजै काश्रयताऽगुणाश्रयम् सर्व गुणैः अपेक्षितं निरापेक्षमीप्सितम् मुकुन्दं रमा वरं वव्रे ।।२३।।

अनुवाद— इस तरह विचार करके श्रीदेवी ने जिन में सभी सदगुण सदैव निवास करते हैं प्राकृत गुणों से रहित, अणिमा आदि सभी गुण जिनको प्राप्त करना चाहते हैं किन्तु जो उन सबों की कभी भी अपेक्षा नहीं करते ऐसे लक्ष्मीजी के एकमात्र आश्रय श्रीभगवान् का उन्होंने पति के रूप में वरण किया ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

एवं विमृश्य रमा निरपेक्षमपि मुकुन्दमेव वरं वव्रे । तत्किम् । अव्यभिचारिभिः सद्भिर्धर्मज्ञानादिभिर्गुणैर्निजैकाश्रयतया च नैरपेक्ष्येण वरं सर्वोत्तमम् । तत्र हेतुः-अगुणाश्रयं प्रकृतिगुणातीतम् । पाठान्तरेऽप्ययमेवार्थः । अतएव स्वस्य ईप्सितम् । किंच सर्वैगुणैरणिमादिभिरपेक्षितं वृतम् । अयं भावः- यद्यपि स्वयमात्मारामत्वेनान्यनिरपेक्षस्तथाप्याश्रिता अणिमादिसिद्धीर्यथा नोपेक्षते तद्वन्मामपि नोपेक्षेत । तावतैव तत्सेवयाऽहं कृतार्था स्यां किमन्यैः प्राकृतैरिति तमेव वृतवतीति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से विचार करके निरपेक्ष भी श्रीभगवान् का ही लक्ष्मीजी ने पति रूप से वरण किया । वे भगवन् कैसे है ? वे सदैव सद्धर्म तथा ज्ञान आदि समस्त सद्गुणों के एक मात्र आश्रय हैं तथा सबों से निरपेक्ष होने के कारण सर्वोत्तम हैं । प्राकृत गुणों से वे रहित है । पाठान्तर होने पर भी यही अर्थ होगा । वे भगवान् श्रीलक्ष्मीजी को अभिप्रेत भी हैं । अणिमा इत्यादि सभी गुण उनको प्राप्त करना चाहते हैं । लक्ष्मीजी का भाव है कि स्वात्माराम होने के कारण श्रीभगवान् निरपेक्ष हैं किन्तु जिस तरह वे अणिमा आदि गुणों की उपेक्षा करते हैं उसी तरह मेरी उपेक्षा न करें इतने ही मात्र से उनकी सेवा करके मैं कृतार्थ हो जाऊँगी दूसरे प्रकृत गुणों से मुझे क्या करना है इसलिए उन्होंने भगवान् का वरण किया ।।२३।।

तस्यांसदेश उशतीं नवकञ्जमालां माद्यन्मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टाम् ।
तस्थौ निधाय निकटे तदुरःस्वधाम सव्रीडहासविकसन्नयनेन याता ।।२४।।

अन्वयः— महान्मधुव्रतवरूथ गिरोपघुष्टाम् उशतीं नवकञ्जमालाम् तस्यांश देशे निधाय निकटे तस्थौ तदुरः स्वधाम सव्रीड विकसन् नयनेन याता ।।२४।।

अनुवाद— जिसके चारो ओर मतवाले मधुकर गुञ्जार कर रहे थे मनोहर नवीन कमल की माला श्रीभगवान् गले में डालकर लक्ष्मीजी उनके सन्निकट में खड़ी हो गयीं, और वे अपने निवास स्थान श्रीभगवान् के वक्ष:स्थल को लज्जामिश्रित मुस्कान से विकसित नेत्रों से देखने लगीं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-तस्यांसदेशे कमनीयां नवकञ्जमालां निधाय तदनुग्रहं प्रतीक्षमाणा तूष्णीं तस्य निकटे तस्थौ । कथंभूतां मालाम्। माद्यन्तो ये मधुव्रतास्तेषां वरुथस्य गिरा उपघुष्टां नादिताम् । कथंभूता श्रीः । सव्रीडहासेन विकसन्नयनं तेन तस्योरःस्वधाम याता सती । वक्षःप्रतीक्षमाणा तस्थावित्यर्थः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

तस्यांशदेशे० इत्यादि श्लोक से लक्ष्मीजी द्वारा श्रीभगवन् के वरण का वर्णन करते है । लक्ष्मी श्रीभगवान् के गले में नवीन कमल की माला को डालकर श्रीभगवान् के अनुग्रह की प्रतीक्षा करती हुई वहीं खड़ी हो गयीं । वह माला कैसी थी । मतवाले भौरों का समूह उस पर गुनगुना रहे थे । श्रीदेवी कैसी थी ? लज्जा मिश्रित हँसी से विकसित नेत्रों द्वारा अपने निवास स्थान उनके वक्ष:स्थल को देख रही थीं । श्रीभगवान् के वक्षः स्थल को देखती हुई खड़ी हे गयीं ॥२४॥

तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या वक्षो निवासमकरोत्परमं विभूतेः ।
श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेन निरीक्षणेन यत्र स्थितैधयत साधिपतींस्त्रिलोकान् ॥२५॥

अन्वयः— त्रिजगतः जनकः जन्याः तस्याः श्रियः परमं विभूतेः वक्षः निवास स्थानम् अकरोत् यत्र स्थिता श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेन निरीक्षणेन साधिपतीन् त्रिलोकान् ऐधयत् ॥२५॥

अनुवाद— जगत् पिता श्रीभगवान् ने जगत् की माता श्रीदेवी के अपने वक्ष:स्थल में निवास करने का स्थान दिया । जो लक्ष्मी जी समस्त सम्पत्तियों की अधिष्ठात्री देवता हैं । वहाँ स्थित होकर लक्ष्मीजी ने अपने करुणामय अवलोकन के द्वारा सभी प्रजाओं और लोकाधिपतियों और तीनों लोकों को समृद्ध बना दिया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

भगवानपि त्रैलोक्याभिवृद्धये स्ववक्षस्तस्याः स्थानं ददावित्याह-तस्या इति । विशिष्टा भूतयो विभवा यस्याः तस्यास्त्रिजगतो जनन्याः श्रियः । परमं सुस्थिरम् । ऐधयतावर्धयत् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् भी त्रैलोक्य की अभिवृद्धि के लिए अपने वक्षस्थल को लक्ष्मीजी के निवास स्थान के रूप में प्रदान किया । जिनकी विशिष्ट विभूतियाँ हैं उन त्रिलोक की माता **परमम्** अर्थात् सुस्थिर **ऐधयत्** अर्थात् बढाया॥२५॥

शङ्खतूर्यमृदङ्गानां वादित्राणां पृथुः स्वनः । देवानुगानां सस्त्रीणां नृत्यतां गायतामभूत् ॥२६॥

अन्वयः— सस्त्रीणां नृत्यतां गायताम् देवानुगानाम् शङ्ख तूर्यमृदङ्गानां वादित्राणां पृथुस्वनः अभूत् ॥२६॥

अनुवाद— अपनी स्त्रियों के साथ नाचने और गाने वाले गन्धर्वों के शङ्ख तुरही, मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे । उसकी खूब ध्वनि हुई ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

ब्रह्मरुद्राङ्गिरोमुख्याः सर्वे विश्वसृजो विभुम् । ईडिरेऽवितथैर्मन्त्रैस्तल्लिङ्गैः पुष्पवर्षिणः ॥२७॥

अन्वयः— ब्रह्मरुद्रोङ्गिरो मुख्याः सर्वे विश्वसृजः पुष्पवर्षिणः तल्लिङ्गैः अवितथैः मन्त्रैः विभुम् ईडिरे ॥२७॥

अनुवाद— ब्रह्मा, रुद्र, अङ्गिरा आदि सभी प्रजापति पुष्पों की वर्षा करते हुए श्रीभगवान् के गुण स्वरूप और लीला का यथार्थ वर्णन करने वाले मन्त्रों से श्रीभगवान् की स्तुति किए ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

तल्लिङ्गैर्विष्णुप्रतिपादकैः । अवितथैर्यथार्थैः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

तल्लिङ्गै अर्थात् भगवान् विष्णु के प्रतिपादक । **अवितथैः** यथार्थ ।।२७।।

श्रिया विलोकिता देवाः सप्रजापतयः प्रजाः । शीलादिगुणसंपन्ना लेभिरे निर्वृतिं पराम् ।।२८।।

अन्वयः— श्रिया विलोकिताः देवाः सप्रजापतयः शीलादिगुणसंपन्नाः पराम् निर्वृतिम् लेभिरे ।।२८।।

अनुवाद— श्रीदेवी द्वारा कृपा पूर्वक देखे गये सभी देवता प्रजापतियों के साथ प्रजाएँ शील आदि गुणों से सम्पन्न होकर परम सुखी हो गये ।।२८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२८।।

निःसत्त्वा लोलुपा राजन्निरुद्योगा गतत्रपाः । यदा चोपेक्षिता लक्ष्म्या बभूवुर्दैत्यदानवाः ।।२९।।

अन्वयः— राजन् यदा दैत्यदानवाः श्रिया उपेक्षिता तदा निःसत्त्वा निरूद्योगाः गतत्रपाः बभूवुः ।।२९।।

अनुवाद— राजन् जब लक्ष्मीजी ने दैत्यों और दानवों की उपेक्षा कर दी तब वे बलहीन, उद्योग रहित तथा निर्लज्ज हो गये ।।२९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२९।।

अथासीद्वारुणी देवी कन्या कमललोचना । असुरा जगृहुस्तां वै हरेरनुमतेन ते ।।३०।।

अन्वयः— अथ कमललोचना कन्या वारुणी देवी आसीत् ताम् हरेः अनुमतेन ते वै असुरा जगृहुः ।।३०।।

अनुवाद— उसके पश्चात् कमलनयनी कन्या के रूप में समुद्र मन्थन से वारुणी देवी प्रकट हुई उसको श्रीभगवान् की अनुमति से असुरों ने ग्रहण कर लिया ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

वारुणी वरुणदैवत्यं यदन्नं तन्मयी सुरा ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

वरुण देवताक अन्नों से बनी मदिरा ही वारुणी देवी है ।।३०।।

अथोदधेर्मथ्यमानात्काश्यपैरमृतार्थिभिः । उदतिष्ठन्महाराज पुरुषः परमाद्भुतः ।।३१।।

अन्वयः— हे महाराज अथ अमृतार्थिभिःकाश्यपैः मथ्यमानात् उदधेः परमादभुतः पुरुषः उदतिष्ठत् ।।३१।।

अनुवाद— हे महाराज परीक्षित् उसके पश्चात् अमृत के लिए कश्यप नन्दन देवों और दैत्यों के द्वारा मथे जाने वाले समुद्र से अत्यन्त अद्भुत पुरुष का प्राकट्य हुआ ।।३१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३१।।

दीर्घपीवरदोर्दण्डः कम्बुग्रीवोऽरुणेक्षणः । श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः ।।३२।।
पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणिकुण्डलः । स्निग्धकुञ्चितकेशान्तः सुभगः सिंहविक्रमः ।।३३।।

अन्वयः— दीर्घपीवरदोदण्डः कम्बुग्रीवः अरुणेक्षणः श्यामलः तरुणः सग्वी सर्वाभरणभूषितः, पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणिकुण्डलः स्निग्धकुञ्चितकेशान्तः सुभगः सिंहविक्रमः ।।३२-३३।।

अनुवाद— उस पुरुष की भुजाएँ लम्बी और मोटी थीं, उसका गला शंख के समान उतराव चढावका था, आँखों में लालिम थी, शरीर का रङ्ग श्याम वर्ण का था तथा वह पुरुष युवक था, माला धारण किए हुए सभी भूषणों से भूषित था, पीतम्बर धारण किए हुए उसके कानों में मणियों के कुण्डल चमक रहे थे । चौड़ी छाती थी चिकने घुंघराले केश थे उसका पराक्रम सिंह के समान था ।।३२-३३।।

भावार्थ दीपिका

दीर्घौ पीवरौ दोर्दण्डौ यस्य । कम्बुग्रीवः शङ्खनाभिरिव त्रिरेखा सुवृत्ता ग्रीवा यस्य । स्निग्धः कुञ्चितः केशान्तामन्तो यस्य ।।३२-३३।।

भाव प्रकाशिका

उस पुरुष की भुजाएँ लम्बी और मोटी थीं शङ्ख के समान तीन रेखाओं से युक्त गोल उसकी ग्रीवा थी तथा चमकीले घुघराले उस पुरुष के केश थे ।।३२-३३।।

अमृतापूर्णकलशं बिभ्रद्वलयभूषितः । स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसंभवः ।।३४।।

अन्वयः— अमृतापूर्ण कलशं विभ्रदबलय भूषितः स वै साक्षात् भगवतः विष्णोः अंशाशसंभवः ।।३४।।

अनुवाद— कङ्गन से अलंकृत हाथ में वह अमृत से भरे कलश के लिए था । वह साक्षात् भगवान विष्णु के अंशांवतार था ।।३४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३४।।

धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेददृगिज्यभाक् । तमालोक्यासुराः सर्वे कलशं चामृताभृतम् ।।३५।।
लिप्सन्तः सर्ववस्तूनि कलशं तरसाऽहरन् । नीयमानेऽसुरैस्तस्मिन्कलशेऽमृतभाजने ।।३६।।
विषण्णमनसो देवा हरिं शरणमाययुः । इति तद्दैन्यमालोक्य भगवान्भृत्यकामकृत् ।।
मा खिद्यत मिथोऽर्थं वः साधयिष्ये स्वमायया ।।३७।।

अन्वयः— आयुर्वेददृक इज्यभाक् धन्वन्तरिः इतिख्यातः । तं अमृताभृतम् कलशं अलोक्य सर्वे असुरा सर्व वस्तूनि लिप्सन्तः कलशम् अहरन् । असुरैः तस्मिन् अमृत भाजने कलशे नीयमाने विषण्णमनसः देवाः हरि शरणम् आययुः । इति तद् दैन्यम् आलोक्य भृत्यकामकृत् भगवन् माखिद्यत मिथेऽर्थं वः स्वमायया साधयिष्ये ।।३५-३७।।

अनुवाद— आयुर्वेद शास्त्र के प्रवर्तक वे पुरुष धन्वन्तरि के नाम से विख्यात थे । उस अमृत से भरे कलश को देखकर सभी असुर वस्तुओं को प्राप्त करना चाहते थे । अतएव उन सबों ने उस कलश को बलपूर्वक छिन लिया । असुरों द्वारा अमृत कलश को छिन कर ले जाये जाने पर सभी देवता उदास हो गये और भक्तों की कमनाओं को पूर्ण करने वाले श्रीभगवान् की शरणागति किए । भगवान् ने कहा तुम लोग दुःखी मत हो मैं अपनी माया से उन सबों में आपसी फूट डालकर तुमलोगों का काम करूँगा ।।३५-३७।।

भावार्थ दीपिका

इज्यभाक् यज्ञभागभोक्ता । अमृतेन आभृतं परिपूर्णम् । मिथो दैत्यानां परस्परं कलहोत्पादनेन, योगमायया च मोहिन्या वोऽर्थं साधयिष्यामि अतो मा खिद्यतेत्याहेति शेषः ।।३५-३७।।

भाव प्रकाशिका

इज्यभाक् अर्थात् यज्ञ भागभोक्ता, अमृत से भरे हुए । अपनी मोहिनी योगमाया के द्वारा उन सबों में आपस में फूट डालकर तुमलोगों का काम सिद्ध करूँगा अतएव तुम लोग दुःखी मत होओ यह भगवान् ने कहा ।।३५-३७।।

मिथः कलिरभूत्तेषं तदर्थे तर्षचेतसाम् । अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वमिति प्रभो ॥३८॥

अन्वयः— प्रभो तदर्थे तर्षचेतसाम् तेषां अहं पूर्वम् अहं पूर्वम् न त्वं न त्वम् इति तेषां कलिरभूत ॥३८॥

अनुवाद— राजन् अमृत लोलुप उन सबों में मैं पहले पीऊँगा मैं पहले पीऊँगा, तुम नहीं तुम नहीं इस तरह से कहकर उन सबों में परस्पर में कलह होने लगा ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-मिथ इति । तर्षः कामस्तद्युक्तानि चेतांसि येषाम् । इत्येवं समबलानां कलिरभूत् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

दैत्यों में होने वाले कलह का वर्णन करते हैं। उन सभी समान बल वालों में परस्पर में कलह होने लगा॥३८॥

देवाः स्वं भागमर्हन्ति ये तुल्यायासहेतवः । सत्रयाग इवैतस्मिन्नेष धर्मः सनातनः ॥३९॥

अन्वयः— यो तुल्यायास हेतवः ते देवा सत्रयागा इव स्वभागमर्हन्ति एषः सनातनः धर्मः ॥३९॥

अनुवाद— कुछ दैत्यों ने कहा कि देवताओं ने भी हमलोगों के समान परिश्रम किया है, अतएव देवताओं को भी उसी तरह अपना भाग मिलना चाहिए जिस तरह सत्रयाग में मिलता है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

दुर्बलानां त्वाक्रोशप्रकारमाह-देवा इति द्वाभ्याम् । ये देवास्तुल्येनायासेन हेतवः साधकाः । तुल्य आयासो हेतुश्च धनादिर्येषामिति वा । सत्रयागे यथा सर्वेषां समं फलं तद्वत् । तथा च श्रुतिः— 'ऋद्धिकामाः सत्रमासीरन्' इति, ये 'यजमानास्ते ऋत्विजः' इति च ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

जो कमजोर दैत्य थे उनके आक्रोश के प्रकार का वर्णन **देवा० इत्यादि** दो श्लोकों से करते है । जिन देवताओं ने हमारे ही समान परिश्रम करके इस कार्य को सिद्ध किया अथवा जिन सबों के समान परिश्रम के द्वारा धन आदि प्राप्त होता है । सत्रयाग में जैसे सबों को समान फल मिलता है । उसी तरह अमृत में भी देवताओं का समान हिस्सा है । श्रुति कहती है **ऋद्धि कामाः सत्रम् आसीरन्** । समृद्धि चाहने वालों ने सत्र किया । **ये यजमानास्ते ऋत्विजः** । जो यजमान हैं वे ऋत्विज हैं ॥३९॥

इति स्वान्प्रत्यषेधन्वै दैतेया जातमत्सराः । दुर्बलाः प्रबलान् राजन्गृहीतमकलशान्मुहुः ॥४०॥

अन्वयः— हे राजन् ! इति जात मत्सराः दुर्बलाः दैतेयाः गृहीतकलशान् स्वान् प्रबलान् प्रत्यषेधन् ॥४०॥

अनुवाद— हे राजन् ! इस तरह जिनमें द्वेष की भावना उत्पन्न हो गयी थी वे दुर्बल दैत्य उन प्रबल दैत्यों को जो कलश ले लिए थे उन सबों को बार-बार रोक रहे थे ॥४०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४०॥

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः । योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधार परमाद्भुतम् ॥४१॥

अन्वयः— एतस्मिन्नन्तरे सर्वोपायविदिश्वरः विष्णुः अनिर्देश्यं परमाद्भुतम् योषिद्रूपं दधार ॥४१॥

अनुवाद— इसी बीच सभी उपायों को जानने वालों के स्वामी भगवान् विष्णु अवर्णनीय अत्यन्त अद्भुत स्त्री का रूप बना लिए ॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४१॥

प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं सर्वावयवसुन्दरम् । समानकर्णाभरणं सुकपोलोन्नसाननम् ।।४

अन्वयः— प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं सर्वावयसुन्दरम् समान कर्णाभरणम् सुकपोलोन्नसाननम् ।।४२।।

अनुवाद— शरीर का रङ्ग नील कमल के समान श्याम तथा देखने योग्य था । उनके सारे अङ्ग सुन्दर थे दोनों कान बराबर और कर्णफूल से अलंकृत थे, सुन्दर गाल, ऊँची नाक और मनोज्ञ मुख था ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

तद्रूपं वर्णयति प्रसभ प्रेक्षणीयमुत्पलमिव श्यामम् । सर्वेष्ववयवेषु सुन्दरम् । समानयोः कर्णयोराभरणे यस्मिन् सुकपोलं च तदुत्कृष्टनासिकं चाननं यस्मिन् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवन् के रूप का वर्णन पाँच श्लोकों में किया जा रहा है देखने योग्य नील कमल के समान उनका रङ्ग श्यम वर्ण का था, उनके सारे अङ्ग सुन्दर थे । बार-बार दोनों कान आभूषण से भूषित थे । उनकी गाल सुन्दर थी नाक ऊँची थी और मुख मनोहर था ।।४२।।

नवयौवननिर्वृत्तस्तनभारकृशोदरम् । मुखामोदानुरक्तालिझङ्कारोद्विग्नलोचनम् ।।४

अन्वयः— नव यौवन निर्वृत्त स्तनभार कृशोदरम् मुखामोदानुरतालिझङ्कारोद्विग्नलोचनम् ।।४३।।

अनुवाद— नयी जवानी के कारण स्तन उभरे हुए थे और उन्हीं के भार से कमर पतली हो गयी थी, मुख से निकलने वाली सुगन्धि के प्रेम से गुनगुनाते भौंरे उन पर टूट पड़ते थे । उसके कारण नेत्रों में कुछ घबराहट सी आ जाती थी ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

नवयौवननिर्वृत्तयो; स्तनयोर्भारणे च कृशमुदरं यस्मिन् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

नवीन जवानी के कारण उभड़े हुए स्तनों के भार से जिस रूप में कमर पतली हो गयी थी ।।४३।।

विभ्रत्स्वकेशभारेण मालामुत्फुल्लमल्लिकाम् । सुग्रीवकण्ठाभरणं सुभुजाङ्गदभूषितम् ।।४४।।

अन्वयः— स्वकेशभारेणे उत्फुल्लमल्लिकाम् मालां विभ्रत् सुग्रीवकण्ठाभरणं सुभुजाङ्गदभूषितम् ।।४४।।

अनुवाद— अपने लम्बे केशों में उन्होंने विकसित बेले की माला लगा ली थी, उनका सुन्दर कण्ठाभरण से भूषित था । भुजाओं में बाजूबन्द सुशोभित हो रहे थे ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

सुष्ठु ग्रीवा यस्मिन् कण्ठे आभरणं यस्मिंस्तच्च तच्च । शोभना ग्रीवा येन तत्कण्ठाभरणं यस्मिन्निति वा । सुभुजयोरङ्गदाभ्यां भूषितम् ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

सुन्दर गला कण्ठाभरण से भूषित था । अथवा उनकी सुन्दर ग्रीवा ही उनका कण्ठाभरण था । दोनों भुजाएँ बाजूबन्द से सुशोभित थीं ।।४४।।

विरजाम्बरसंवीतनितम्बद्वीपशोभया । काञ्च्या प्रविलसद्वल्गुचलच्चरणनूपुरम् ।।४५।।

अन्वयः— विरजाम्बरसंवीतनितम्ब द्वीप शोभया काञ्चया प्रविलसदवल्गुचलत् चरण नूपुरम् ।।४५।।

अनुवाद— स्वच्छ साड़ी से ढँके नितम्ब द्वीप की शोभा करधनी द्वारा और बढ़ गयी थी, मनोहर चञ्चल चरणों के नूपुर की ध्वनि झकृंत हो रही थी ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

विरजाम्बरेण संवीतो नितम्ब एव द्वीपो विशालत्वात्तत्र शोभा यस्यास्तया काञ्च्या प्रकर्षेण विलसत् । वल्गु यथा भवत्येवं चलतोश्चरणयोर्नूपुरे यस्मिन् ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

स्वच्छ साड़ी से ढँका नितम्ब ही मानो द्वीप था और करधनी से उसकी शोभा और बढ़ गयी थी । चञ्चलचरणों की नूपुर मनोहर ध्वनि करती थी ।।४५।।

सव्रीडस्मितविक्षिप्तभ्रूविलासावलोकनैः । दैत्ययूथपचेतस्तु काममुद्दीपयन्मुहूः ।।४६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ।।८।।

अन्वयः— सव्रीडस्मितविक्षिप्त भ्रूविलासावलोकनैः दैत्ययूथपचेतस्तु कामम् मुहुरुद्दीपयन् ।।४६।।

अनुवाद— लज्जा युक्त मुस्कान, चञ्चल तिरछी भौंहे और विलासपूर्ण अवलोकनों से मोहिनी रूपधारी भगवान् दैत्यसेना पतियों के मन में बार-बार कामोद्दीपन कर रहे थे ।।४६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवे स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

भावार्थ दीपिका

सव्रीडेन स्मितेन सह विक्षिप्ता कम्पिता या भ्रूस्तस्या विलासेन सह यान्यवलोकितानि तैर्दैत्ययूथपानां चेतस्सु मुहुः काममुद्दीपयत् ।।४६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायांअष्टमोऽध्यायः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

लज्जायुत मुस्कुरान से चञ्चल बनी तिरछी भौहों के विलास के साथ अवलोकन के द्वारा भगवान् दैत्य सेनापतियों के मन में बार-बार कामोद्दीपन कर रहे थे ।।४६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के आठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।८।।

नवाँ अध्याय

मोहिनी रूपधारी भगवान् के द्वारा अमृत का वितरण

श्रीशुक उवाच

तेऽन्योन्यतोऽसुराः पात्रं हरन्तस्त्यक्तसौहृदाः । क्षिपन्तो दस्युधर्माण आयान्तीं ददृशुः स्त्रियम् ॥१॥

अन्वयः— ते असुराः अन्योन्यतः पात्रं हरन्तः व्यक्तसौहृदाः क्षिपन्तः दस्युधर्माणः आयान्ती स्त्रियम् ददृशुः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— वे असुर परस्पर में एक दूसरे के हाथ से अमृत का पात्र छिन ले रहे थे । वे परस्पर के सौहार्द को त्याग दिए थे । वे लुटेरे के तरह आचरण कर रहे थे । उन सबों नें आती हुई उस स्त्री को देखा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

नवमे मोहितैर्दैत्यैरर्पितेऽमृतभाजने । तद्वञ्चनेन देवेभ्योऽमृतं दत्तं तयेर्यते ।।१।।

भाव प्रकाशिका

नवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि मोहित हुए दैत्यों ने जब अमृत का पात्र मोहिनी रूपधारी भगवा को दे दिया तो वे उन दैत्यों को ठगकर अमृत देवताओं को पिला दिए ।।१।।

अहो रूपमहो धाम अहो अस्या नवं वयः । इति ते तामभिद्रुत्य पप्रच्छुर्जातहृच्छयाः ।।२

अन्वयः— अहोरूपम् अहोधाम अहोअस्यानवं वयः इति जात हृच्छयाते ताम अभिद्रुत्य पप्रच्छुः ।।२।।

अनुवाद— वे सोच रहे थे इसका कितना सुन्दर रूप है कैसी इसकी कान्ति है कैसी इसकी नयी जवान हैं, उन सबों के मन में विचार उत्पन्न हो गया था अतएव वे उसके पास जाकर पूछने लगें ।।२।।

भावार्थ दीपिका

अहो रूपं सौन्दर्यं धाम द्युतिरिति वदन्तः का त्वमित्यादि पप्रच्छुः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

इसका रूप और कान्ति कितना सुन्दर है इस तरह से कहते हुए वे उसके पास जाकर तुम कौन हो ? इत्यादि पूछे ।।२।।

का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कुतो वा किं चिकीर्षसि । कस्यासि वद वामोरु मथ्नन्तीव मनांसि नः।।३।।

अन्वयः— हे कञ्जपलाशाक्षित्वं काकुतो वा ? किंचिकीर्षसि हे वामोरु ! कस्यासि वद, नः मनांसि मथ्नतीव ।।३।।

अनुवाद— हे कमलनयनी तुम कौन हो ? कहाँसे आ रही हो ? क्या करना चाहती हो ? सुन्दरी तुम किसकी पुत्री हो ? तुमको देखकर हमारे मन में हलचल मच गयी है ।।३।।

भावार्थ दीपिका

मथ्नन्तीव क्षोभयन्तीव ।।३।।

भाव प्रकाशिका

तुम हमारे मन को क्षुब्ध बना रही हो ।।३।।

न वयं त्वाऽमरैर्दैत्यैः सिद्धगन्धर्वचारणैः । नास्पृष्टपूर्वां जानीमो लोकेशैश्च कुतो नृभिः ।।४।।

अन्वयः— अमरैः दैत्यैः सिद्धगन्धर्वचारणैः लोकेशै च त्वा स्पृष्टपूर्वां वयं न जानीमः नृभिः कुतः ।।४।।

अनुवाद— देवता, दैत्य, सिद्ध, चारण, गन्धर्व अथवा लोकेशों ने भी तुम्हारा अभी तक स्पर्श नहीं किया है तो फिर मनुष्यों की कौन सी बात है ?।।४।।

भावार्थ दीपिका

कस्यासीत्ययुक्तमुक्तमस्माभिः, यतस्त्वं न केनचिद्भुक्तपूर्वेत्याहुः-नेति द्वाभ्याम् । त्वा त्वाममरादिभिरस्पृष्टपूर्वा न जानीम इति न, अपितु जानीम एव ।।४।।

भाव प्रकाशिका

तुम किसकी हो यह हमलोगों ने अनुचित पूछा है क्योंकि अभी तक तुम्हारा किसी ने भी उपभोग नहीं किया है । हम समझते हैं कि देवताओं आदि ने भी तुम्हारा स्पर्श नहीं किया है ।।४।।

नूनं त्वं विधिना सुभ्रूः प्रेषितासि शरीरिणाम् । सर्वेन्द्रियमनःप्रीतिं विधातुं सघृणेन किम् ॥५॥

अन्वयः— हे सुभ्रूः नूनं त्वं सघृणेन विधिना शरीरिणाम् सर्वेन्द्रिय मनः प्रीतिं विधातुं प्रेषिताअसि किम् ॥५॥

अनुवाद— हे सुन्दरि ! निश्चित रूप से तुम कृपालु ब्रह्माजी के द्वारा शरीर धारियों की सभी इन्द्रियों और मन को प्रसन्न करने के लिए भेजी गयी हो ऐसा लगता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अस्तामिदं, त्वद्दर्शनं त्वीश्वरेणैव संपादितमित्याहु:-नूनमिति । सर्वेन्द्रियाणां च मनसश्च प्रीतिं विधातुं सघृणेन प्रेषितासि किम्, वा यदृच्छयागतासि । नैवम्, नूनं प्रेषितैवेत्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अच्छा तो तुम्हारा दर्शन तो परमात्मा ने ही कराया है इस बात को असुरों ने **नूनम्० इत्यादि** श्लोक से कहा है । सभी इन्द्रियों और मन को प्रेम पूर्ण बनाने के लिए दयालु ब्रह्माजी ने तुमको भेजा है क्या ? अथवा अपने आप यहाँ आ गयी हो ? ऐसी बात नहीं है । ब्रह्माजी ने ही तुम्हें भेजा है ॥५॥

सा त्वं नः स्पर्धमानानामेकवस्तुनि मानिनि । ज्ञातीनां बद्धवैराणां शं विधत्स्व सुमध्यमे ॥६॥

अन्वयः— हे सुमध्यमे ! हे मानिनि ! सात्वं एकवस्तुनि स्पर्धमानानां वद्धवैराणां ज्ञातीनां न शं विधत्स्व ॥६॥

अनुवाद— हे सुन्दरी ! तुम एक ही अमृत नामक वस्तु के लिए परस्पर में एक दूसरे से डाह और वैर करने वाले एक ही जाति के हमलोगों में शान्ति स्थापित कर दो ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

वयं कश्यपदायादा भ्रातरः कृतपौरुषाः । विभजस्व यथान्यायं नैव भेदो यथा भवेत् ॥७॥

अन्वयः— वयं कश्यपदायादाः भ्रातरः कृतपौरुषाः यथा न्यायं विभजस्व यथाभेदो नैवभवेत् ॥७॥

अनुवाद— हम सभी महर्षि कश्यप के पुत्र होने के कारण भाई-भाई है । इस अमृत के लिए हमलोगों ने पुरुषार्थ भी किया है, अतएव तुम इसको लेकर ऐसे बाँट दो कि भेद न हो ॥७॥

भावार्थ दीपिका

भेदो विग्रहो यथा न भवेत्तथा ॥७॥

भाव प्रकाशिका

जिससे कि कलह न हो ॥७॥

इत्युपामन्त्रितो दैत्यैर्मायायोषिद्वपुर्हरिः । प्रहस्य रुचिरापाङ्गैर्निरीक्षन्निदमब्रवीत् ॥८॥

अन्वयः— इति दैत्यैः उपामन्त्रितः मायायोषिद् वपुः हरिः प्रहस्य रुचिरापाङ्गैः निरीक्षन् इदम् अब्रवीत् ॥८॥

अनुवाद— इस तरह से दैत्यों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर माया से स्त्री शरीर धारण किए हुए श्रीहरि थोड़ा हँसकर और तिरछी नजरों से उन सबों की ओर देखते हुए उन सबों से कहा ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

श्रीभगवानुवाच

कथं कश्यपदायादाः पुंश्चल्यां मयि सङ्गताः । विश्वासं पण्डितो जातु कामिनीषु न याति हि ॥९॥

अन्वयः— कश्यपदायादाः पुंश्चल्यां मयि कथंसङ्गताः पण्डितः जातु कामिनीषु नहि याति ॥९॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— आपलोग महर्षि कश्यप की सन्तान हैं फिर भी मुझ कुलटा पर कैसे विश्वास कर रहे हैं, पण्डित पुरुष कभी भी स्वेच्छाचारिणी स्त्रियों पर विश्वास नहीं करते हैं ।।९।।

भावार्थ दीपिका

सङ्गता अनुसृताः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

सङ्गताः अर्थात् कैसे विश्वास करते हैं ?।।९।।

सालावृकाणां स्त्रीणां च स्वैरिणीनां सुरद्विषः । सख्यान्याहुरनित्यानि नूत्नं नूत्नं विचिन्वताम् ।।१०।।

अन्वयः— हे सुरद्विषः सालावृकाणां व्यभिचारिणीनां नूत्नं नूत्नं विचिन्वताम् सख्यानि अनित्यानि आहुः ।।१०।।

अनुवाद— हे दैत्यों ! कुत्तों और व्यभिचारिणी स्त्रियों की मित्रता स्थायी नहीं होती है, वे तो सदैव नया-नया शिकार खोजते हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

हे सुरद्विषः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

हे दैत्यों ।।१०।।

श्रीशुक उवाच

इति ते क्ष्वेलितैस्तस्या आश्वस्तमनसोऽसुराः । जहसुर्भावगम्भीरं ददुश्चामृतभाजनम् ।।११।।

अन्वयः— इति तस्याः क्ष्वेलितै ते आश्वस्त मनसः असुराः भावगम्भीरं जहसुः अमृत भजनं च ददुः ।।११।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् ! मोहिनी के परिहास भरे वचनों से असुरों को और अधिक विश्वास हो गया उनलोगों ने रहस्यपूर्ण भाव से हँसकर अमृत का पात्र ही मोहिनी के हाथ में दे दिया ।।११।।

भावार्थ दीपिका

भावेन केनाप्यभिप्रायेण गम्भीरं यथा भवत्येवं जहसुः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

किसी अभिप्राय विशेष से गम्भीरता पूर्वक हँसे ।।११।।

ततो गृहीत्वाऽमृतभाजनं हरिर्बभाष ईषत्स्मितशोभया गिरा ।
यद्यभ्युपेतं क्व च साध्वसाधु वा कृतं मया वो विभजे सुधामिमाम् ।।१२।।

अन्वयः— ततः अमृतभाजनं गृहित्वा हरिः ईषत्स्मित शोभया गिरा बभाषे, क्व च मया कृतं साधु असाधु वा क्व च अभ्युपेत वो इमाम् सुधाम् विभजे ।।१२।।

अनुवाद— उसके पश्चात् अमृत कलश को लेकर श्रीहरि थोड़ा मुस्कुराते हुए मीठी वाणी से कहे मैं उचित या अनुचित जो कुछ भी करूँ वह सब तुमलोगों को यदि स्वीकार हो तो मैं यह अमृत बाँट सकती हूँ ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

ईषत्स्मितेन शोभा यस्यास्तया । मया कृतं साधु वा असाधु यद्यभ्युपेताङ्गीकुरुत तर्हि विभजे ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

मन्द मुस्कान से सुशोभित वाणी मेरे द्वारा किए गये अच्छे बुरे को यदि आपलोग स्वीकार करें तो मैं बाँटू।।१२।।

इत्यभिव्याहृत तस्या आकर्ण्यासुरपुङ्गवाः । अप्रमाणविदस्तस्यास्तत्तथेत्यन्वमंसत ।।१३।।

अन्वयः— इतितस्याः अभिव्याहृतं आकर्ण्य असुरपुङ्कवाः तस्याः तत् अप्रमाण विदः तथा इति अन्वमंसत ।।१३।।

अनुवाद— मोहिनी की इस तरह की बातों को सुनकर बड़े-बड़े असुर श्रेष्ठ उसकी उस बात को हंसी समझकर ठीक हैं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

असुरपुङ्गवा दैत्यश्रेष्ठाः ! प्रमाणमियत्तामजानन्तः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

श्रेष्ठ दैत्य, **प्रमाणमजानन्तः** प्रामाणिक नहीं मानते हुए ।।१३।।

अथोपोष्य कृतस्नाना हुत्वा च हविषाऽनलम् । दत्त्वा गोविप्रभूतेभ्यः कृतस्वस्त्ययना द्विजैः।।१४।।
यथोपजोषं वासांसि परिधायाहतानि ते । कुशेषु प्राविशन्सर्वे प्रागग्रेष्वभिभूषिताः ।।१५।।

अन्वयः— अथ उपोष्य कृतस्नानाः हविषा अनलं चहुत्वा गोविप्रभूतेभ्यः दत्त्वा, द्विजैः कृतस्वस्त्ययनाः यथोपजोषं आह तानि वासांसि परिधाय अभिभूषिता ते प्रागग्रेषु कुशेषु सर्वे प्राविशन् ।।१४-१५।।

अनुवाद— उसके बाद एक दिन का उपवास करके स्नान करके हविष्य से अग्नि में होम करके तथा गौओं, ब्राह्मणों तथा जीवों को घास अन्न आदि दान देकर उन सबों ने ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराया। फिर अपनी-अपनी रुचि के अनुसार नया वस्त्र धारण करके तथा अलंकृत होकर पूर्व की ओर मुख वाले कुशों पर सब बैठे ।।१४-१५।।

भावार्थ दीपिका

यथोपजोषं यथाप्रीति । अहतस्य लक्षणम्- 'अहतं यन्त्रनिर्मुक्तमुक्तं वासः स्वयम्भुवा । शस्तं तन्माङ्गलिकेषु तावन्मात्रे न सर्वदा' इति । प्रागग्रेषु कुशेषु विविशुः ।।१४-१५।।

भाव प्रकाशिका

यथोपजोषम् अर्थात् अपनी रुचि के अनुसार अहत वस्त्र का लक्षण इस प्रकार है । **अहतम्० इत्यादि** यन्त्र से निकले हुए वस्तु को ब्रह्माजी ने अमृत वस्त्र कहा है। वह केवल माङ्गलिक कार्य में श्रेष्ठ है, सर्वदा नहीं।।१४-१५।।

प्राङ्मुखेषूपविष्टेषु सुरेषु दितिजेषु च । धूपामोदितशालायां जुष्टायां माल्यदीपकैः ।।१६।।
तस्यां नरेन्द्र करभोरुरुशद्दुकूलश्रोणीतटालसगतिर्मदविह्वलाक्षी ।
सा कूजती कनकनूपुरसिञ्जितेन कुम्भस्तनी कलशपाणिरथाविवेश ।।१७।।

अन्वयः— हे नरेन्द्र अथ प्राङ्मुखेषु उपविष्टेषु सुरेषु दितिजेषु च माल्यदीपकैः जुष्टायां धूपामोदित शालायां तस्यां साकुम्भस्तनीकलशपाणिः आविवेश करभोरुरुशददुकूलश्रोणीतटालसगतिः मदविह्वलाक्षी कनकनूपुर शिञ्जितेन कुजती ।।१६-१७।।

अनुवाद— हे राजन् ! उसके पश्चात् जब देवता और दैत्य पूर्वाभिमुख बैठे थे, माला दीपक और धूप की सुगन्धि से सुगन्धित बने उस भवन में वह कुम्भ के समान स्तनों वाली हाथ में अमृत कलश लेकर प्रवेश की।

वह सुन्दर साड़ी पहने थी । हथेली के समान उसकी उसकी जङ्घाएँ थीं । नितम्ब के भार के कारण वह धीरे-धीरे चलती थी । मद के कारण उसकी आँखें, विह्वल थीं । उसके सुवर्ण निर्मित नूपुर की ध्वनि से वह भवन मुखरित हो रहा था ॥१६-१७॥

भावार्थ दीपिका

धूपैरामोदितायां सुरभीकृतायां शालायाम् । अथ तस्यां शालायां हे नरेन्द्र सा कलशपाणिराविवेश । कथंभूता । 'मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः' इति । करभसदृशौ सुवृत्तावरू यस्याः सा । उशत् कमनीयं दुकूलं यस्मिंस्तेन श्रोणीतटेन विशालया श्रोण्या अलसा मन्दा गतिर्यस्याः । पाठान्तरे करभसदृशयोरूर्वोर्लसद्दुकूलं यस्याः सा चासौ श्रोणीतटेनालसगतिश्च। मदेन विह्वले अक्षिणी यस्याः ॥१६-१७॥

भाव प्रकाशिका

वह भवन धूप की सुगन्धि से सुगन्धित बना दिया गया था । हे राजन् ! उस भवन में वह हाथ में कलश लेकर प्रवेश की । कैसी थी वह ? हथेली के समान उसके जङ्घे थे । मणिबन्ध से लेकर कनिष्ठा अङ्गुलि पर्यन्त को करभ (हथेली) कहते हैं । वह मनोहर वस्त्र पहने थी । नितम्ब के भार से उसकी गति मन्द थी । पाठान्तर में भी कमर के समान सुन्दर जङ्घाओं पर वस्त्र सुशोभित हो रहा था और नितम्ब के भार से गति मन्द थी यही अर्थ होगा । मद के कारण उसके दोनों नेत्र विह्वल थे ॥१६-१७॥

तां श्रीसखी कनककुण्डलचारुकर्णनासाकपोलवदनां परदेवताख्याम् ।
संवीक्ष्य संमुमुहूरुत्स्मितवीक्षणेन देवासुरा विगलितस्तनपट्टिकान्ताम् ॥१८॥

अन्वयः— कनक कुण्डल चारुकर्णनासाकपोलवदनां पर देवताख्यं श्रीसखीं विगलितस्तनपट्टिकान्तां तां संबीक्ष्य उत्स्मितवीक्षणेन देवासुराः सम्मुमुहुः ॥१८॥

अनुवाद— सुवर्ण के कुण्डल से मनोहर बने कान, नाक तथा मुखड़े वाली वह पर देवता लगता था कि कोई लक्ष्मीजी की सखी ही वह हो । उस समय उसके स्तनों पर से वस्त्र खिसक गया था । उस मोहिनी ने अपनी मुस्कान भरी चिन्तवन से जब देखा तो देवता और दैत्य दोनों मोहित हो गये ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

तां श्रियः सखीं संवीक्ष्य देवासुराः संमुमुहुः । कथंभूताम् । कनकमये कुण्डले यस्याः सा चासौ चारवः कर्णादयो यस्याः सा च ताम् । विगलितः स्रस्तः स्तनपट्टिकाया अन्तो यस्याः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

उस लक्ष्मीजी की सखी को देखकर देवता और असुर दोनों मोहित हो गये । कैसी थी वह मोहिनी उसके कुण्डल सुवर्ण निर्मित थे तथा उसके कान आदि मनोहर थें उसके स्तन का वस्त्र खिसक सा गया था ॥१८॥

असुराणां सुधादानं सर्पाणामिव दुर्नयम् । मत्वा जातिनृशंसानां न तां व्यभजदच्युतः ॥१९॥

अन्वयः— असुराणां सुधादानं सर्पाणाम् इव दुर्नयः जातिनशंसानाम् न तां व्यभजदच्युतः ॥१९॥

अनुवाद— असुरों को अमृत पिलाना सर्पों को दूध पिलाने के समान अन्याय होगा यह सोचकर जाति से ही क्रूर असुरों के अमृत का भाग नहीं दिया ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

एवं तान् मोहयित्वा यत्कृतवांस्तदाह त्रिभिः-असुराणां सुधादानं सर्पाणां क्षीरदानमिव दुर्नयमन्याय्यं मत्वा तां सुधां

तेभ्यो न व्यभजत् । अयं भावः- दैत्यैर्मदीयं साध्वसाधु वा सर्वमनुमतमेव, अतो मद्भक्तान् देवानेव सुधां पाययिष्यामि, किंच तैर्यथान्यायं विभजस्वेटयुक्तम्, न चैतेभ्यो जात्यैव क्रूरेभ्यो दानं न्याय्यम्, अतस्तेभ्यः सुधां न दद्यामिति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से उन सबों को मोहित करके भगवान् ने जो किया उसको तीन श्लोकों से कहते हैं- असुरों को अमृत पिलाना सर्पों को दूध पिलाने के समान अन्याय मानकर उस अमृत को असुरों को नहीं बाँटे । कहने का अभिप्राय है कि दैत्यों ने तो मेरे अच्छे-बुरे सभी कार्यों की अनुमति प्रदान की ही है । अतएव मैं अपने भक्तों देवताओं को ही अमृत पिलाऊँगा । उन सबों ने कहा भी है कि जैसे उचित हो वैसे विभाग करो । ये सभी जाति से ही क्रूर हैं अतएव उन सबों को देना अनुचित है अतएव उन सबों को में अमृत नहीं दूँगा ।।१९।।

कल्पयित्वा पृथक्पङ्क्तीरूभयेषां जगत्पतिः । तांश्चोपवेशयामास स्वेषु स्वेषु च पङ्क्तिषु ।।२०।।

अन्वयः— जगत् पतिः उभयेषां पृथक् पक्तीः कल्पयित्वा तान् च स्वेषु-स्वेषु पंक्तिषु उपवेशयामास ।।२०।।

अनुवाद— जगत् के स्वामी श्रीभगवान् ने असुरों एवं देवताओं की अलग-अलग पंक्ति बना दी और सबों को अपनी-अपनी पंक्ति में बैठाया ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

पङ्क्ती पृथग्विविक्ताः कल्पयित्वा विधाय। तासु पङ्क्तिषु स्वेषु स्वेषु तत्समजातीयेषु तांश्चासुरानपि प्रतारणार्थमेवोपवेशयामास।।२०।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् ने देवता और दैत्य दोनों की अलग-अलग पंक्तियों को बनाया उन पंक्तियों में सबों को अपनी-अपनी पंक्तियों में दैत्यों को ठगने के लिए बैठाया ।।२०।।

दैत्यान्गृहीतकलशो वञ्चयन्नुपसंचरैः । दूरस्थान्पाययामास जरामृत्युहरां सुधाम् ।।२१।।

अन्वयः— गृहीत कलशः उपसंचरैः दैत्यान् मोहयित्वा दूरस्थान् जरामृत्युहरां सुधां पाययामास ।।२१।।

अनुवाद— अमृत का कलश लेकर दैत्यों को समादर तथा प्रिय वाक्यों द्वारा मोहित करके दूरस्थ देवों को जरा और मृत्यु को दूर करने वाली अमृत को पिलाये ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

उपसंचरैर्बहुमानप्रियवाक्यादिना तानतिक्रम्यातिक्रम्य गमनैः दूरस्थानपि देवान् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

बहुमान तथा प्रिय वाक्य आदि से उन सबों को पार करके दूरस्थ देवताओं को अमृत पिलाये ।।२१।।

ते पालयन्तः समयमसुराः स्वकृतं नृप । तूष्णीमासन्कृतस्नेहाः स्त्रीविवादजुगुप्सया ।।२२।।

अन्वयः— हे नृप ते असुराः स्वकृतं समयं पालयन्तः कृतस्नेहाः स्त्रीविवाद जुगुप्सया तुष्णीम् आसन् ।।२२।।

अनुवाद— राजन् असुर अपनी की हुई प्रतिज्ञा का पालन कर रहे थे तथा उनको स्नेह भी हो गया था और स्त्री से विवाद करना वे निन्दा भी समझते थे अतएव चुप रहे ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

तया कृतः स्नेहो येषु । स्त्रिया सह विवादस्य जुगुप्सया ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

उन सबों को स्नेह हो गया तथा स्त्री से विवाद करना निन्दित होने के कारण वे चुप रहे ।।२२।।

तस्यां कृतातिप्रणयाः प्रणयापायकातराः । बहुमानेन चाबद्धा नोचुः किंचन विप्रियम् ॥२३॥

अन्वयः— तस्यां कृतानि प्रणयाः प्रणयापाय कातराः बहुमानेन चाबद्धाः नोचुः किंचन विप्रियम् ।।२३।।

अनुवाद— वे मोहिनी से बहुत प्रेम कर चुके थे अतएव उनको डर था कि उससे हमारा प्रेम टूट न जाय मोहिनी के द्वारा बहुत अधिक प्रेम किए जाने के कारण वे उसमें आबद्ध थे, इसीलिए उन सबों ने मोहिनी को कुछ अप्रिय नहीं कहा ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

कृतोऽतिप्रणयः स्नेहो यैः । प्रणयापायेन कातरा भीताः । एते तावत्कृपणाः पूर्वं किंचित्पिबन्तु, यूयं तु धीराः क्षणं प्रतीक्षध्वमित्यादिबहुमानेनाबद्धा नियन्त्रिताः समयपालनादिभिः षड्भिरेतैः कारणैरप्रियं किंचिदपि नोचुः किंतु तूष्णीमासन्।।२३।।

भाव प्रकाशिका

उन सबों ने मोहिनी से बहुत प्रेम किया था । प्रेम टूट जाने का उनको भय था ये बेचारे पहले कुछ पीलें आपलोग तो धैर्य सम्पन्न है थोड़ी प्रतीक्षा कीजिए इस तरह के बहुमान के बन्धन में वे बँधे थे । तथा प्रतिज्ञा का पालन इन छह कारणों से असुरों ने कुछ अप्रिय नहीं कहा । बल्कि चुप थे ।।२३।।

देवलिङ्गप्रतिच्छन्नः स्वर्भानुर्देवसंसदि । प्रविष्टः सोममपिबच्चन्द्रार्काभ्यां च सूचितः ॥२४॥

अन्वयः— स्वर्भानुः देवलिङ्गपरिच्छन्नः देवसंसदि प्रविष्टः सोमम् अपिबत चन्द्रार्काभ्यां च सूचितः ।।२४।।

अनुवाद— देवता का वेष बनाये हुए राहु देवताओं की पंक्ति में बैठ गया और अमृत पी लिया उसको सूर्य और चन्द्रमा ने बतला दिया ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

देवपङ्क्तौ चन्द्रार्कयोर्मध्ये प्रविष्टः सोमममृतमपिबत् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

देवताओं की पंङ्क्ति में सूर्य और चन्द्रमा के बीच में प्रवेश कर गया ।।२४।।

चक्रेण क्षुरधारेण जहार पिबतः शिरः । हरिस्तस्य कबन्धस्तु सुधयाऽप्लावितोऽपतत् ॥२५॥

अन्वयः— हरिः क्षुरधारेण चक्रेण तस्य पीबत शिरः जहार तस्यकबन्ध तु सुधया अप्लावितः अपतत् ।।२५।।

अनुवाद— श्रीहरि ने अपने तीक्ष्ण धार वाले चक्र से उसका शिर काट दिया किन्तु उसका धड़ अमृत से सम्बन्ध नहीं होने के कारण नीचे गिर गया ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

हरिस्तस्य शिरो जहार । अप्लावितोऽसंस्पृष्टः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि ने उसके शिर को काट दिया । अप्लवित: अर्थात् असंस्पृष्टः ।।२५।।

शिरस्त्वमरतां नीतमजो ग्रहमचीक्लृपत् । यस्तु पर्वणि चन्द्रार्कावभिधावति वैरधीः ॥२६॥

अन्वयः— शिरः तु अमरतां नीतम् अजः ग्रहम् अचीक्लृपत् यस्तु पर्वणि वैरधीः चन्द्रार्कावभिधावति ।।२६।।

अनुवाद— किन्तु शिर अमर हो गया और ब्रह्माजी ने उसको अमर बना दिया । वही पूर्णिमा और अमावस्या के दिन चन्द्रमा और सूर्य पर आक्रमण करता है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

ग्रहं सूर्यादिवद्ग्रहत्वाधिकारिणम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

ग्रह अर्थात् सूर्य आदि के समान उसको ग्रहत्व का अधिकारी बना दिया ब्रह्माजी ने ।।२६।।

पीतप्रायेऽमृते देवैर्भगवाँल्लोकभावनः । पश्यतामसुरेन्द्राणां स्वं रूपं जगृहे हरिः ।।२७।।

अन्वयः— देवैः अमृतं पीतप्राये लोकभावनः भगवान् असुरेन्द्राणां पश्यताम् स्वंरूपं जगृहे ।।२७।।

अनुवाद— जब देवताओं ने अमृत पी लिया तो समस्त लोकों को जीवन दान देने वाले श्रीहरि बड़े-बड़े दैत्यों के सामने ही मोहिनी रूप को त्यागकर अपना रूप धारण कर लिये ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

एवं सुरासुरगणाः समदेशकालहेत्वर्थकर्ममतयोऽपि फले विकल्पाः ।
तत्रामृतं सुरगणाः फलमञ्जसाऽऽपुर्यत्पादपङ्कजरजःश्रयणान्न दैत्याः ।।२८।।

अन्वयः— एवं सुरासुरगणाः समदेशकाल हेत्वर्थ कर्ममतयोऽपि फलेविकल्पाः । यत्पादपङ्कजरजः श्रयणात् सुरगणाः तत्र अमृतं फलं आपुः दैत्याः न ।।२८।।

अनुवाद— परीक्षित् देवता तथा असुरगण एक ही देश, एक ही काल, एक ही प्रयोजन तथा एक ही वस्तु के लिए एक ही विचार से परिश्रम किये किन्तु दोनों के फल में बड़ा ही अन्तर हो गया । श्रीभगवान् के चरण कमलों की शरणागति करने के कारण देवता अमृत की प्राप्ति रूप फल को प्राप्त किए किन्तु दैत्य नहीं प्राप्त कर सके ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

हरिभक्तानामेवोद्यमः फलति, नान्येषामित्येवमाख्यानतात्पर्यमाह-एवमिति । समा देशादयो येषाम् । हेतुर्मन्दराद्रिः । अर्थः समुद्रे क्षिप्तं वीरुदादि । विविधः कल्पः फलं केषांचिज्जातं केषांचिन्नेति वैचित्र्यं येषां ते । फलवैषम्यवन्तो बभूवुरित्यर्थः। तदेवाह-तत्र तेषु यस्य पादपङ्कजरजःश्रयणाद्देवा अमृतं फलमापुः स एव सेव्य इत्यर्थः । यत्तदोर्नित्यसंबन्धात् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के भक्तों का ही प्रयास सफल होता है दूसरों का नहीं इस तरह के इस आख्यान का तात्पर्य **एवम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । देश इत्यादि देवों और दैत्यों का एक था । हेतु अर्थात् मन्दराचल, अर्थ अर्थात् समुद्र में डाली गयी औषधियाँ आदि । किसी को उद्यम का फल मिला और किसी को नहीं मिला यही विचित्रता है । देवों दैत्यों के फल में विषमता हो गयी । उसी को **तत्र इत्यादि** श्लोक के उत्तरार्द्ध से कहा गया है । श्रीभगवान् के चरण कमलों की धूलि का आश्रय लेने के कारण देवताओं को अमृत की प्राप्ति रूप फल मिला । अतएव श्रीभगवान् के चरणों की ही सेवा करनी चाहिए । यत्त्तदोनित्यिसंबन्धः इस नियम के अनुसार यत् अर्थात् जिनके सेवन से देवताओं को फल प्राप्ति हुई इसीलिए (स) वे ही सेव्य हैं । यहाँ पर यत् के प्रतिरूप से तत् (स) का अध्याहार किया गया है ।

यद्युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभिर्देहात्मजादिषु नृभिस्तदसत्पृथक्त्वात् ।
तैरेव सद्भवति यत्क्रियतेऽपृथक्त्वात्सर्वस्य तद्भवति मूलनिषेचनं यत् ।।२९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे अमृतमथने नवमोऽध्यायः ।।९।।

अन्वयः— नृभिः असुवसुकर्ममनोवचोभिः यत् देहात्मजादिषुयुज्यते तत् असत् पृथक्तवात् तैरेव सद्भवति यत् अपृथक्त्वात् क्रियते तत् सर्वस्यभवति मूल निषेचनं यत् ।।२९।।

अनुवाद— मनुष्यों द्वारा जो अपने प्राण, धन, कर्म, मन और वाणी आदिसे अपने शरीर तथा पुत्र आदि के लिए कर्म किया जाता है वह व्यर्थ ही होता है, क्योंकि उसके मूल में भेदबुद्धि बनी रहती है । किन्तु उन प्राण आदि के द्वारा ही श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए जो कुछ किया जाता है वह अपने पुत्र श्ररीर और समस्त संसार के लिए सफल होता है । जैसे वृक्ष की जड़ में जल डालने से उसकी तना अदि सब सिंच जाते हैं । वैसे ही भगवान् की प्रसन्नता के लिए किए जाने वाले कर्म सबके लिए हो जाते हैं ॥२९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महपुराण के आठवें स्कन्ध के अमृत मन्थन नामक नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

एतदेवोपपादयति यदिति । असुः । प्राणः । वसु धनम् । प्राणादिभिर्देहात्मजदिषु नृभिर्यद्युज्यते प्रयुज्यते । देहाद्यर्थं यत्क्रियत इत्यर्थः, तदसद्व्यर्थं भवति । कुतः । पृथक्त्वाद्भेदाश्रयत्वात् । शाखानिषेचनवत् । तैरेव प्राणादिभिरीश्वरोद्देशेन यत्क्रियते तत्तु सत् महाफलं भवति । अपृथक्त्वादीश्वरस्य सर्वत्रानुगतत्वात् । तत्र दृष्टान्तः-यत्तरोर्मूलनिषेचनं तद्यथा सर्वस्य स्कन्धशाखादेरपि भवतीति । यद्वा ल्यब्लोपे पञ्चम्यौ । पृथक्त्वं पर्यालोच्य भेददृष्ट्या देहाद्युद्देशेन यत्क्रियते तदसत् । अपृथक्त्वं पर्यालोच्येश्वरदृष्ट्या तैरेव तेष्वेव च यत्क्रियते तत्सद्भवतीति । शेषं समानम् ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां नवमोऽध्यायः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही प्रतिपादन **यद्युज्यते० इत्यादि** श्लोक से किया जाता है । **असुः** अर्थात् प्राण, वसु धन तथा प्राण आदि के द्वारा जो अपने शरीर तथा पुत्र आदि के लिए जिन कर्मो को किया जाता है, वह असत् (व्यर्थ) होता है । क्योंकि उसमें भेद बुद्धि बनी रहती है । जैसे— वृक्ष की शाखा का सिंचन व्यर्थ होता है । उन प्राण आदि के द्वारा जो कर्म श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए किए जाते हैं तो उन कार्मो का महान फल होता है । क्योंकि ईश्वर सर्वत्र व्यापक है । उसका दृष्टान्त वृक्ष की जड़ का सिंचन है । वृक्ष की जड़ को सिंचने से उसकी शाखा आदि सबों का सिंचन हो जाता है । अथवा **ल्यब्लोपे पञ्चम्यौ** इस नियम के अनुसार पृथक्त्व का विचार करके भेद दृष्टि से देह आदि के लिए जो कर्म किए जाते हैं वह असत् है । अभेद की दृष्टि से ईश्वर की बुद्धि से किए जाने वाले उन्हीं सबों से उन्हीं सबों के लिए किया जाने वाले कर्म सत् होते हैं ॥२९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के नवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिक व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।९।।

दसवाँ अध्याय

देवासुर संग्राम

श्रीशुक उवाच

इति दानवदैतेया नाविन्दन्नमृतं नृप । युक्ताः कर्मणि यत्ताश्च वासुदेवपराङ्मुखाः ॥१॥

अन्वयः— हे नृप वसुदेव पराङ्मुखाः कर्मणि युक्ताः यत्ताश्च दानव दैत्याः अमृतं न अविन्दन् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! श्रीभगवान् के विपरीत होने के ही कारण बड़ी ही सावधानी पूर्वक समुद्र मन्थन का काम करने वाले होने पर भी दैत्य एवं दानव अमृत को नहीं प्राप्त कर सके ॥१॥

भावार्थ दीपिका

दशमे मत्सराद्दैत्यैरारब्धे तु मृधे सुरैः । दैत्यमायाविषण्णेषु देवेष्वाविर्बभौ हरिः । तदेवममृतावाप्तिर्नाभक्तानांमितीरितम्। भक्तमत्सरतः प्राणहानिः पुनरुदीर्यते ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दशवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि द्वेष वशात् दैत्यों द्वारा देवताओं से युद्ध किए जाने पर दैत्यों की माया से दुःखी बने देवताओं के बीच में श्रीहरि आविर्भूत हो गये । इस तरह इस बात का वर्णन किया जा चुका है कि अभक्त दैत्यों को अमृत की प्राप्ति नहीं हुई । भगवद् भक्तों से द्वेष करने के कारण ही दैत्यों के प्राणों की हानि भी हुई ॥१॥

साधयित्वामृतं राजन् पाययित्वा स्वकान्सुरान् । पश्यतां सर्वभूतानां ययौ गरुडवाहनः ॥२॥

अन्वयः— राजन् अमृतं साधयित्वा स्वकान् सुरान् पाययित्वा सर्वभूतनां पश्यतां गरुडवाहनः ययौ ॥२॥

अनुवाद— राजन् श्रीभगवान् समुद्र के द्वारा अमृत को प्रकट करके और अपने भक्त देवताओं को पिलाकर सभी लोगों के सामने ही गरुड़ पर सवार होकर वहाँ से चले गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

सपत्नानां परामृद्धिं दृष्ट्वा ते दितिनन्दनाः । अमृष्यमाणा उत्पेतुर्देवान्प्रत्युद्यतायुधाः ॥३॥

अन्वयः— ते दितिनन्दनाः सपत्नानां परामृद्धिं दृष्ट्वा अमृश्यमाणाः देवान् प्रतिउद्यतायुधाः उत्पेतुः ॥३।

अनुवाद— वे दैत्यगण अपने शत्रुओं देवताओं की अत्यन्त समृद्धि को देखकर उसे सह न सके उन सबों ने आयुध धारण कर देवताओं पर आक्रमण कर दिया ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

ततः सुरगणाः सर्वे सुधया पीतयैधिताः । प्रतिसंयुयुधुः शस्त्रैर्नारायणपदाश्रयाः ॥४॥

अन्वयः— ततः पीतया सुधया ऐधिताः नारायणपदाश्रयाः सर्वे सुरगणाः शस्त्रैःप्रति संयुयुधुः ॥४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् अमृत पान कर लेने के कारण विशेष शक्ति प्राप्त तथा भगवान् नारायण के चरण कमलों को ही अपना आश्रय बनाने वाले देवगण आयुध धारण करके दैत्यों के साथ युद्ध करने लगे ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

तत्र दैवासुरो नाम रणः परमदारुणः । रोधस्युदन्वतो राजंस्तुमुलो रोमहर्षणः ॥५॥

अन्वयः— राजन् तत्र उदन्वतो रोधसि परमदारुणः तुमुलो रोमहर्षणः दैवासुरो नाम रणः ॥५॥

अनुवाद— परीक्षित् उस क्षीर सागर के तट पर ही अत्यन्त भयङ्कर तथा अत्यन्त रोमाञ्चकारी जो युद्ध हुआ उसे ही देवसुर संग्राम कहते हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

रणः संग्रामः । उदन्वतः समुद्रस्य रोधसि तीरे बभूव ॥५॥

भाव प्रकाशिका

वह संग्राम क्षीर समुद्र के तट पर हुआ ॥५॥

तत्रान्योन्यं सपत्नास्ते संरब्धमनसो रणे । समासाद्यासिभिर्बाणैर्निजघ्नुर्विविधायुधैः ॥६॥

अन्वयः— तत्र अन्योन्य सपत्नाःते संरब्धमनसः रणे समासाद्य असिभिः बाणैः विविधायुधैः निजघ्नुः ॥६॥

अनुवाद— वे परस्पर में एक दूसरे के शत्रु बन गये थे और क्रोध से भरे हुए युद्ध में एक दूसरे को अपने सामने पाकर तलवार बाण तथा अनेक प्रकार के आयुधों से प्रहार करने लगे ॥६॥

भावार्थ दीपिका

अन्योन्यं समासाद्य निजघ्नुः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

परस्पर में एक दूसरे को प्राप्त करके प्रहार करने लगे ॥६॥

शङ्खतूर्यमृदङ्गानां भेरीडमरिणां महान् । हस्त्यश्वरथपत्तीनां नदतां निःस्वनोऽभवत् ॥७॥

अन्वयः— शङ्ख तूर्यमृदङ्गानां भेरीडमरिणां हस्त्यश्वरथपत्तीनां नदतां महान् निःस्वनः अभवत् ॥७॥

अनुवाद— शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग, भेरी, डमरु आदि वाद्यों की तथा हाथी, पैदल एवं रथों की अत्यधिक जोर से ध्वनि होने लगी ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः । हया हयैरिभाश्चेभैः समसज्जन्त संयुगे ॥८॥

अन्वयः— तत्र रथिनः रथिभिः, पत्तयः पतिभिः सह, हया हयैः इभाः च इभैः सयुगे समसज्जन्त ॥८॥

अनुवाद— उस युद्ध में रथियों के साथ रथी, पैदलों के साथ पैदल, घुड़सवारों के साथ घुड़सवार और हाथीवानों के साथ हाथीवान युद्ध करने लगे ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

उष्ट्रैः केचिदिभैः केचिदपरे युयुधुः खरैः । केचिद्गौरमृगैर्ऋक्षैर्द्वीपिभिर्हरिभिर्भटाः ॥९॥

अन्वयः— केचित् उष्ट्रैः केचित् इभौः अपरे खरैः केचिद् गौरमृगैः, ऋक्षैः दीपिभिः हरिभिः भटाः युयुधुः ॥९॥

अनुवाद— कुछ वीर ऊँट पर चढ़कर, कुछ हाथी पर चढ़कर कुछ गधे पर चढ़कर, कुछ गौरमृग भालू बाध और सिंहों पर चढ़कर युद्ध कर रहे थे ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

गृध्रैः कङ्कैर्बकैरन्ये श्येनभासैस्तिमिङ्गिलैः । शरभैर्महिषैः खड्गैर्गोवृषैर्गवयारुणैः ॥१०॥

अन्वयः— अन्ये गृध्रै, कङ्कैबकैः, श्येन भासैः तिमिङ्गिलैः, शरभैः महिषैः खड्गैः गोवृषैः गवयारुणैः ॥१०॥

अनुवाद— दूसरे सैनिक गिद्ध, कङ्क, बक, श्येन (बाज) और भास पक्षियों पर चढे हुए थे कुछ तिमिङ्गिल, शरभ, महिष (भैंसा) गैंडे, बैल नीलगाय और जङ्गली सांड़ों पर चढ़े थे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

शिवाभिराखुभिः केचित्कृकलासैः शशैर्नरैः । बस्तैरेके कृष्णसारैर्हंसैरन्ये च सूकरैः ॥११॥

अन्वयः— केचित् शिवाभिः आखुभिः कृकलासैः शशैः नरेः एके बस्तैः अन्ये कृणणसारैः हंसैः सूकरैः च ॥११॥

अनुवाद— कुछ सैनिक शियारिन, चूहे, गिरगिट और खरहों पर चढे थे दूसरे मनुष्य और बस्त (बकरे) कृष्णसार मृग, हंस और सूअरों पर चढे थे ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

अन्ये जलस्थलखगैः सत्त्वैर्विकृतविग्रहैः । सेनयोरुभयो राजन्विविशुस्तेऽग्रतोऽग्रतः ॥१२॥

अन्वयः— राजन् अन्ये जलस्थलखगैः विकृतविग्रहैः सत्त्वैः उभयोः सेनायोः ते अग्रतः विविशुः ॥१२॥

अनुवाद— परीक्षित् जल स्थल एवं आकाश मे रहने वाले तथा देखने में भयङ्कर लगने वाले जीवों पर चढ़कर कई दैत्य दोनों सेनाओं में प्रवेश कर गये ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

चित्रध्वजपटै राजन्नातपत्रैः सितामलैः । महाधनैर्वज्रदण्डैर्व्यजनैर्बार्हचामरैः ॥१३॥
वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैरर्चिर्भिर्वर्मभूषणैः । स्फुरद्भिर्विशदैः शस्त्रैः सुतरां सूर्यरश्मिभिः॥१४॥
देवदानववीराणां ध्वजिन्यौ पाण्डुनन्दन । रेजतुर्वीरमालाभिर्यादसामिव सागरौ॥१५॥

अन्वयः— राजन् चित्रध्वजपटैः सितामलै आतपत्रैः, महाधनैः वज्रदण्डैः, व्यजेनैः बार्हचामरैः, वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैः अर्चिभिः वर्म भूषणैः, सुतरां सूर्यरश्मिभिः स्फुरद्भिः विशदैःशस्त्रैः । हे पाण्डुनन्दन ! देवदानववीराणां ध्वजिन्यौवीरमालाभिःयादसामिव सागरौ ॥१३-१५॥

अनुवाद— राजन् उस समय रङ्ग विरङ्गी पताकाओं स्फटिकमणि के समान निर्मल श्वेत छत्रों, रत्नजटित दण्डों वाले बहुमूल्य पङ्खों, मयूर पङ्खों, चँवरों एवं वायु से उड़ते हुए दुपट्टे, पगड़ी, कलङ्गी, कवच, आभूषण एवं सूर्य के किरणों से चमकते हुए अत्यन्त उज्जवल शस्त्रों एवं वीरों की पंक्तियों के कारण देवों एवं असुरों की सेनाएँ, इस तरह से सुशोभित हो रही थीं जैसे जलजन्तुओं से भरे हुए दो महासागर हों ॥१३-१५॥

भावार्थ दीपिका

चित्रध्वजपटादिभिश्च वीराणां मालाभिश्च राजिभिर्देवदानववीराणां ध्वजिन्यौ यादसां मालाभिः सागराविव रेजतुरिति त्रयाणामन्वयः । यादोभिरिति वा । सितैरमलैरातपतैश्च । बार्हैश्चामरैश्च व्यजनैश्च । वातेनोद्धूतैरुत्तरीयैरुष्णीषैश्च सूर्यरश्मिभिः सुतरां स्फुरद्भिः ॥१३-१५॥

भाव प्रकाशिका

रङ्ग-बिरङ्गी पाताकाओं से वीरों की मलाओं से, देवता एवं दानव वीरों के समूहों वाली सेनाएँ जलचर समूह से युक्त दोनों सेनाएँ जलचरों से भरे दो सागरों के समान सुशोभित हो रही थीं इस तरह से तीनों श्लोकों का एक

साथ अन्वय है । यादोभिः में षष्ठी के अर्थ में तृतीया विभक्ति है । श्वेत तथा निर्मल छत्रों से । वाहनों चँवरो और पङ्खों से उन सबों के दुपट्टे और पगड़ी वायु से उड़ रहे थे । और सूर्य की किरणों से चमक रहे थे ।।१३-१५।।

वैरोचनो बलिः संख्ये सोऽसुराणां चमूपतिः । यानं वैहायसं नाम कामगं मयनिर्मितम् ।।१६।।

अन्वयः— संख्ये वैरोचनो बलिः सः असुराणां चमूपति मयनिर्मितम् कामगं वैहायसम् यानम् आस्थितः ।।१६।।

अनुवाद— उस युद्ध में विरोचन का पुत्र बलि जो असुरों का सेनापति था वह मय नामक दानव द्वारा निर्मित अपनी इच्छा के अनुसार आकाश में चलने वाले रथ पर बैठा था ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

असुराणां या चमूस्तस्याः पतिः स बलिर्यानमास्थितः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

असुरों का सेनापति बलि रथ पर बैठा था ।।१६।।

सर्वसांग्रामिकोपेतं सर्वाश्चर्यमयं प्रभो । अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं दृश्यमानमदर्शनम् ।।१७।।

अन्वयः— प्रभो ! सर्वसांग्रामिकोपेतं सर्वाश्चर्यमयं, दृश्यमानम् अदर्शनम् अप्रतर्क्यम् अनिर्देश्यम् आसीदितिशेषः।।१७।।

अनुवाद— परीक्षित् वह रथ संग्रामोपयोगी सभी सामग्रियों से युक्त था, वइ इतना आश्चर्यमय था कि कभी दिखायी पड़ता था तो कभी अदृश्य हो जाता था अतएव वह कहाँ पर है इस बात का न तो अनुमान किया जा सकता था और न तो उसको बतलाया ही जा सकता था ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

आस्थितस्तद्विमानाग्र्यं सर्वानीकाधिपैर्वृतः । वालव्यजनछत्राग्र्यै रेजे चन्द्र इवोदये ।।१८।।

अन्वयः— सर्वानीकाधिपैः वृतः तद्विमानाग्र्यम् आस्थितः बालव्यजनछत्राग्र्यैः उदये चन्द्र इव रेजे ।।१८।।

अनुवाद— सभी सेनोओं के बड़े-बड़े सेनापति बलि को घेरे हुए थे तथा बलि उस श्रेष्ठ विमान पर बैठे चवरों और छत्र से युक्त ऐसे सुशोभित होते थे जैसे उदयाचल पर चन्द्रमा विद्यमान हों ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

उदये उदयगिरिशिखरे स्थितश्चन्द्र इव रेजे इति त्रयाणामन्वयः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

उदयाचल के शिखर पर जैसे चन्द्रमा विद्यमान हों । इस तरह तीनों श्लोकों का अन्वय है ।।१८।।

तस्यासन्सर्वतो यानैर्यूथानां पतयोऽसुराः । नमुचिः शम्बरो बाणो विप्रचित्तिरयोमुखः ।।१९।।
द्विमूर्धा कालनाभोऽथ प्रहेतिर्हेतिरिल्वलः। शकुनिर्भूतसंतापो वज्रदंष्ट्रो विरोचनः ।।२०।।
हयग्रीवः शङ्कुशिराः कपिलो मेघदुन्दुभिः । तारकश्च क्रदृक् शुम्भो निशुम्भो जम्भ उत्कलः ।।२१।।
अरिष्टोऽरिष्टनेमिश्च मयश्च त्रिपुराधिपः। अन्ये पौलोमकालेया निवातकवचादयः ।।२२।।

अन्वयः— तस्य, सर्वतः यूथानां पतयः नमुचिः शम्बरः बाणः, विप्रचित्तिः अयोमुखः द्विमूर्धा, कालनाभः, प्रहेतिः हेतिः इल्वलः, शकुनिः, भूतसंतापः, वज्रदंष्ट्रः विरोचनः, हयग्रीवः शङ्कुशिराः, कपिलः, मेघदुन्दुभिः, तारकः, चक्रदृक्, शुम्भः, निशुम्भः, जम्भः, उत्कलः, अरिष्टः, अरिष्टनेमिः, मयः, त्रिपुराधिपः, अन्ये पौलोम कालेयाः निवात्त कवचादयः यानैः आसन् ।।१९-२२।।

अनुवाद— उनके (बलि के) चारो ओर अपने छोटी-छोटी टुकड़ियों के स्वामी, नमुचि, शम्बर, बाण, विप्रचित्ति, अयोमुख, द्विमूर्धा, कालनाभ, प्रहेति, हेति, इल्वल, शकुनि, भूतसंताप, वज्रदंष्ट्र, विरोचन, हयग्रीव, शङ्कुशिरा कपिल, मेघदुन्दुभि, तारक, चक्रदृक् शुम्भ, निशुम्भ, जम्भ, उत्कल, अरिष्ट अरिष्टनेमि, मय, त्रिपुराधिप तथा दूसरे पौलोम, कालेय, निवात कवच आदि अपने-अपने विमानों पर विद्यमान थे ।।१९-२२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।१९-२२।।

अलब्धभागाः सोमस्य केवल क्लेशभागिनः । सर्व एते रणमुखे बहुशो निर्जितामराः ।।२३।।

अन्वयः— अलब्धभागाः सोमस्य केवलं क्लेशभगिनः सर्वे एते अमराः रणमुखे बहुशः निर्जिताः ।।२३।।

अनुवाद— जिन सबों ने समुद्र मन्थन में भाग लिया था किन्तु किसी को अमृत नहीं मिला था केवल परिश्रम करना ही इनके हाथ लगा था, इन सबों ने युद्ध में देवताओं को बहुत बार पराजित किया था ।।२३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२३।।

सिंहनादान्विमुञ्चन्तः शङ्खान्दध्मुर्महारवान् । दृष्ट्वा सपत्नानुत्सिक्तान्बलभित्कुपितो भृशम् ।।२४।।

अन्वयः— सिंहनादान् विमुञ्चन्तः, महामखान् शङ्खान् दध्मुः सपत्नान् उत्सिक्तान् दृष्ट्वा बलभित् भृशम् कुपितः।।२४।।

अनुवाद— वे सब शङ्खनाद करते हुए अत्यधिक आवाज करने वाले शङ्खों को बजाए तो शत्रुओं के बढ़ते हुए उत्साह को देखकर इन्द्र बहुत क्रोध किए ।।२४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२४।।

ऐरावतं दिक्करिणमारूढः शुशुभे स्वराट् । यथा स्रवत्प्रस्रवणमुदयाद्रिमहर्पतिः ।।२५।।

अन्वयः— ऐरावतं दिक्करिणम् आरुढः स्वराट् स्रवत् प्रस्रवणम् उदयाद्रिम् अहर्पतिः यथा शुशुभे ।।२५।।

अनुवाद— वे अपने वाहन ऐरावत नामक दिग्गज पर सवार हो गये । उसके कपोलों से मद बह रहा था। अतएव इन्द्र की ऐसी शोभा हुई मानो सूर्य उदयाचल पर आरूढ हों । और उससे अनेक झरने बह रहे हों ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

स्रवन्ति प्रस्रवणानि यस्मिन्निति मदधारासादृश्यम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

जिससे झरने प्रवाहित हो रहे हों यह मद की सदृशता बतलायी गयी है ।।२५।।

तस्यासन्सर्वतो देवा नानावाहध्वजायुधाः । लोकपालाः सह गणैर्वाय्वग्निवरुणादयः ।।२६।।

अन्वयः— नानावाहध्वजायुधाः वाय्वग्निवरुणादयः गणैः सह लोकपाला तस्य सर्वत; आसन् ।।२६।।

अनुवाद— अनेक प्रकार के वाहन ध्वज एवं आयुध धारण किए वायु अग्नि तथा वरुण आदि लोकपाल अपने गणों के साथ इन्द्र के चारो तरफ हो गये ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

नाना वाहनादीनि येषां ते देवा असुराश्च मिथो युयुधुः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

जिनके अनेक प्रकार के वाहन थे वे देवता और असुर युद्ध करने लगे ।।२६।।

तेऽन्योन्यमभिसंसृत्य क्षिपन्तो मर्मभिर्मिथः । आह्वयन्तो विशन्तोऽग्रे युयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः ॥२७॥

अन्वयः— ते अन्योन्यमभिसंसृत्य द्वन्द्वयोधिनः आह्वयन्तः अग्रे विशन्तः मर्मभिः क्षिपन्तः युयुधुः ॥२७॥

अनुवाद— परस्पर में एक दूसरे के साथ मिलकर द्वन्द युद्ध करने वाले वे नाम लेकर बुलाते हुए आगे बढ़ते हुए तथा मर्म भेदी वचनों से एक दूसरे को धिक्कारते हुए युद्ध करने लगे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

युयोध बलिरिन्द्रेण तारकेण गुहोऽस्यत । वरुणो हेतिनाऽयुध्यन्मित्रो राजन्प्रहेतिना ॥२८॥

अन्वयः— हे राजन् बलिः इन्द्रेण युयोध गुहः तारकेण आस्यत, वरुणः हेतिना अयुध्यत् मित्रः प्रहेतिना ॥२८॥

अनुवाद— बलि इन्द्र के साथ युद्ध कर रहे थे, स्वामी कार्तिकेय तारकासुर के साथ युद्ध कर रहे थे। वरुण देवता हेति के साथ युद्ध कर रहे थे तथा मित्र देवता प्रहेति से युद्ध कर रहे थे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

द्वन्द्वान्येवाह-युयोधेति सप्तभिः । अस्यत आस्यत् अयुध्यतेत्यर्थः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

सात श्लोकों से जोड़ों का वर्णन करते हैं। अस्यत का अर्थ है युद्ध करते थे। अस्यत् का शुद्ध रूप आस्यत् है ॥२८॥

यमस्तु कालनाभेन विश्वकर्मा मयेन वै । शम्बरो युयुधे त्वष्ट्रा सवित्रा तु विरोचनः ॥२९॥

अन्वयः— यमः तु कालनाभेन विश्वकर्मा मयेन शम्बरः त्वष्ट्रा, युयुधे, विरोचनः तु सवित्रा ॥२९॥

अनुवाद— यम कालनाभ से युद्ध कर रहे थे, विश्वकर्मा मय से, शम्बरासुर त्वष्टा से युद्ध कर रहा था विरोचन सविता देवता से युद्ध कर रहे थे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

अपराजितेन नमुचिरश्विनौ वृषपर्वणा । सूर्यो बलिसुतैर्देवो बाणज्येष्ठैः शतेन च ॥३०॥

अन्वयः— नमुचिः अपराजितेन, अश्विनौ विषपर्वणा, सूर्येदिवः बलिसुतैः बाणज्येष्ठै शतेन युयुधे ॥३०॥

अनुवाद— नमुचि, अपराजित देवता के साथ, दोनों अश्विनी कुमार वृषपर्वा के साथ और सूर्यदेव बलि के सौ पुत्रों के साथ युद्ध करने लगे। बलि के पुत्रों में बाण ज्येष्ठ थे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

सूर्यो देव एक एव शतेन बलिसुतैः बाणो ज्येष्ठो येषां तैः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

सूर्य देवता अकेले ही बलि के सौ पुत्रों के साथ युद्ध करने लगे बलि के पुत्रों में बाण ज्येष्ठ थे ॥३०॥

राहुणा च तथा सोमः पुलोम्ना युयुधेऽनिलः । निशुम्भशुम्भयोर्देवी भद्रकाली तरस्विनी ॥३१॥

अन्वयः— राहुणा च सोमः अनिलः पुलोम्ना युयुधे, निशुम्भशुम्भयोः तरस्विनी देवी भद्रकाली ॥३१॥

अनुवाद— चन्द्रमा राहु से, अनिल (वायु) देव पुलोम से तथा निशुम्भ एवं शुम्भ से वेग सम्पन्न भद्रकाली देवी युद्ध कर रही थीं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

निशुम्भशुम्भाभ्यां देवी ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

निशुम्भ तथा शुम्भ के साथ भद्रकाली देवी युद्ध करने लगी ।।३१।।

वृषाकपिस्तु जम्भेन महिषेण विभावसुः । इल्वलः सहवातापिर्ब्रह्मपुत्रैररिन्दम ।।३२।।

अन्वयः— हे अरिन्दम् ! वृषाकपिः तु जम्भेन विभावसुः महिषेण इल्वलः सहवातपिः ब्रह्मपुत्रैः ।।३२।।

अनुवाद— हे शत्रुओं का दमन करने वाले परीक्षित वृषाकपि जम्भ के साथ, अग्निदेव महिषासुर के साथ तथा इल्वल और वातापि दोनों ब्रह्मपुत्रों के साथ ।।३२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३२।।

कामदेवेन दुर्मर्ष उत्कलो मातृभिः सह । बृहस्पतिश्चोशनसा नरकेण शनैश्चरः ।।३३।।

अन्वयः— दुर्मर्षः कामदेवेन उत्कलः मातृभिः सह बृहस्पतिः च उशनसा शनैश्चरः नरकेण ।।३३।।

अनुवाद— दुर्मर्ष कामदेव के साथ उत्कल मातृकाओं के साथ, बृहस्पति शुक्राचार्य के साथ तथा शनैश्चर नरकासुर के साथ युद्ध कर रहे थे ।।३३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३३।।

मरुतो निवातकवचैः कालेयैर्वसवोऽमराः । विश्वेदेवास्तु पोलोमै रुद्राः क्रोधवशैः सह ।।३४।।

अन्वयः— मरुतः निवातकवचैः वसवोमराः कालेयैः विश्वेदेवा; तु पौलोमैः रुद्राः क्रोधवशैः सह ।।३४।।

अनुवाद— मरुद्गण निवातकवचों के साथ, वसुदेवगण, कालेय नामक असुरों के साथ विश्वेदेवगण पौलोमों के साथ, रुद्रगण क्रोधवश दैत्यों के साथ युद्ध करने लगे ।।३४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३४।।

त एवमाजावसुराः सुरेन्द्रा द्वन्द्वेन संहत्य च युध्यमानाः ।
अन्योन्यमासाद्य निजघ्नुरोजसा जिगीषवस्तीक्ष्णशरासितोमरैः ।।३५।।

अन्वयः— एवम् ते असुराः सुरेन्द्राः अजो द्वन्द्वेन संहत्य संहत्य च युध्यमानाः अन्योन्यम् आसाद्य जिगीषवः ओजसा तीक्ष्णशरासितोमरैः निजघ्नुः ।।३५।।

अनुवाद— इस तरह से वे असुर एवं देवगण रणभूमि में द्वन्द्व युद्ध एवं सामूहिक आक्रमण द्वारा एक दूसरे से युद्ध करते हुए विजय की प्राप्ति की इच्छा से तीक्ष्ण बाण, तलवार और भालों से प्रहार कर रहे थे ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

भुशुण्डिभिश्चक्रगदर्ष्टिपट्टिशैः शत्तयुल्मुकैः प्रासपरश्वधैरपि ।
निस्त्रिंशभल्लैः परिघैः समुद्गरैः सभिन्दिपालैश्च शिरांसि चिच्छिदुः ।।३६।।

अन्वयः— भुशुण्डिभिः चक्रगदर्ष्टिपट्टिशैः शक्त्युल्मुकैः प्रासपरश्वधैः अपि निस्त्रिंशभल्लैः परिघैः समुद्गरैः सभिन्दिपालैः च शिरांसि चिच्छिदुः ।।३६।।

अनुवाद— भुशुण्डि, चक्र, गदा, ऋष्टि, पट्टिश, शक्ति, उल्मुक, प्रास, फरसा, तलवार, भाले मुद्गर तथा भिन्दिपालों से एक दूसरे का सिर काटने लगे ।।३६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३६।।

गजास्तुरङ्गाः सरथाः पदातयः सारोहवाहा विविधा विखण्डिताः ।
निकृत्तबाहूरुशिरोधराङ्घ्रयश्छिन्नध्वजेष्वासतनुत्रभूषणाः ॥३७॥

अन्वयः— सारोहवाहाः गजाः तुरङ्गाः सरथाः पदातयः विविधाः विखण्डिताः निकृत्तबाहूरुशिरोधराङ्घ्रयः छिन्नध्वजेष्वासतनुत्रभूषणाः ॥३७॥

अनुवाद— उस समय अपने सवारों के साथ हाथी, घोड़े, रथ आदि अनेक प्रकार के वाहन, और पैदल सेना छिन्न-भिन्न होने लगीं, किसी की भुजा, किसी की जङ्घा, किसी की गरदन और किसी के पैर कट गये तो किसी की ध्वजा, धनुष, कवच और आभूषण टुकड़े-टुकड़े हो गये ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

आरोहन्तीत्यारोहास्तैः सहिता अन्ये च वाहाः । पूर्वं तु केवलं गजादय उक्ताः । कथंभूताः । निकृत्ता बाह्वादयो येषाम्। छिन्नानि ध्वजादीनि येषां ते ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

सवारी करने वालों को आरोह कहते हैं उन सवारों के साथ दूसरे वाहन पहले तो केवल हाथी आदि को कहा गया है। वे कैसे है ? जिनकी भुजा आदि कट गये हैं । जिन सबों के ध्वजा आदि कट गये हैं ॥३७॥

तेषां पदाघातरथाङ्गचूर्णितादायोधनादुल्बण उत्थितस्तदा ।
रेणुर्दिशः खं द्युमणिं च छादयन्न्यवर्ततासृक्स्रुतिभिः परिप्लुतात् ॥३८॥

अन्वयः— तदा तेषां पदाघातरथाङ्गचूर्णितात् आयोधनात् उल्बणरेणुः उत्थितः दिशः खं द्युमणिं च छादयत् असृक्स्रुतिभिः परिप्लुतात् न्यवर्तत ॥३८॥

अनुवाद— उस समय उन सबों के चरणों की धमक तथा रथों के पहिए से खुदी हुई रणभूमि से ऐसी धूलि उड़ी कि उसने दिशाओं आकाश और सूर्य को भी ढँक लिया किन्तु उसके बाद खून की धारा से पृथिवी के भींग जाने के कारण सारी धूल शान्त हो गयीं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

तेषां देवादीनां पदाघातैः रथाङ्गैश्च चूर्णितादायोधनाद्रणभूमेरुत्थितो रेणुर्दिशः खं द्युमणिं च सूर्यं छादयंस्तदैव खादेर्न्यवर्तत। कथंभूतात् । असृक्स्रुतिभिः रक्तक्षरणैः परिप्लुतात्सिक्तात् । यद्वा परिप्लवनाद्धेतोन्यवर्तत । भावे क्तः । रक्तधाराणां तत्पर्यन्तमुच्छलनादित्यर्थः । प्रथमान्तपाठे रेणोर्विशेषणम् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं आदि के पैरों की घमक से तथा रथ के चक्कों की रगड़ से रणभूमि से उड़ी हुई धूलि ने दिशाओं, आकाश, सूर्य को भी ढँक लिया किन्तु बाद में वह आकाश से लौट आयी कैसे ? रक्त के बहने से पृथिवी सींच गयी इसलिए **न्यवर्तत** में भाव में क्त प्रत्यय है । रक्त की धारा आकाश पर्यन्त उछलती थी । प्रथमान्त पाठ होने रेणुका विशेषण होगा ॥३८॥

शिरोभिरुद्धूतकिरीटकुण्डलैः संस्म्भदृग्भिः परिदष्टदच्छदैः ।
महाभुजैः साभरणैः सहायुधैः सा प्रास्तृता भूः करभोरुभिर्बभौ ॥३९॥

अन्वयः— उद्धूताकिरीटकुण्डलै शिरोभिः, संरम्भदृग्भिः परिदष्टच्छदैः साभरणै; सहायुधैः महाभुजैः करभोरुभिः प्रास्तृता सा भूः बभौ ॥३९॥

अनुवाद— जिनके किरीट और कुण्डल गिर गये थे ऐसे सिरों से, क्रोध भरे नेत्रों से युक्त शिरों से, क्रोध के मारे जिन सबों ने अपने ओष्ठों को चबा लिया था ऐसे शिरों से, आभूषणों एवं आयुधों से युक्त वीरों की विशाल भुजाओं से, करभ के समान सुगठित जङ्घाओं से पटी हुई रणभूमि सुशोभित हो रही थी ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

शिरोभिर्महाभुजैश्च करभसदृशैरूरूभिश्च सा रणभूः प्रकर्षेणास्तृता सती बभौ । कथंभूतैः शिरोभिः । उद्धूतान्युत्पतितानि किरीटानि कुण्डलानि च येभ्यस्तैः । संरम्भयुक्ताः दृशो येषु तै; । परिदष्टा दच्छदा ओष्ठा येषु तैः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

शिरों, विशाल भुजाओं तथा करभ के समान जङ्घों से पटी हुई रणभूमि सुशोभित हो रही थी । कैसे शिरों से ? जिनके किरीट और कुण्डल गिर गये थे, जिनके नेत्र क्रोध से युक्त थे तथा जिन सबों ने क्रोध के कारण अपने ओष्ठ को चबा लिया था ॥३९॥

कबन्धास्तत्र चोत्पेतुः पतितस्वशिरोक्षिभिः । उद्यतायुधदोर्दण्डैराधावन्तो भटान्मृधे ॥४०॥

अन्वयः— तत कबन्धाः उत्पेतुः पतित स्वशिरोक्षिभिः उद्यतायुध दोर्दण्डैः मृधे भटान् आधावन्त ॥४०॥

अनुवाद— वहाँ धड़ उठ खड़े हुए अपने कटकर गिरे हुए शिर की आँखों से देखकर हाथों में हथियार लेकर वीरों की ओर दौड़ने और उछलने लगे ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

पतितानि यानि स्वशिरांसि तत्रत्यैरक्षिभिस्तैः पश्यन्त इत्यर्थः । उद्यतान्यायुधानि यैस्तैर्दोर्दण्डैर्युक्ताः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

अपने गिरे हुए शिरों के नेत्रों से देखकर आयुध उठाकर वीरों की ओर दौड़ने लगे ॥४०॥

बलिर्महेन्द्रं दशभिस्त्रिभिरैरावतं शरैः । चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकेनारोहमार्च्छयत् ॥४१॥

अन्वयः— बलि दशभिशैरः महेन्द्रं त्रिभिः ऐरावतं चतुर्भिः चतुरोवाहान् एकेन आरोह मर्च्छयत् ॥४१॥

अनुवाद— बलि ने दश बाणों से इन्द्र को तीन बाणों से ऐरावत को चार बाणों से ऐरावत के चार चरण रक्षकों को और एक बाण से महावत को मारा ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

वाहानैरावतपादरक्षकान् । आरोहं गजयन्तारमार्च्छयद्विव्याध ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

वाहन अर्थात् ऐरावत के चरण रक्षकों को । आरोहं अर्थात् महावत को छेदना चाहा ॥४१॥

सतानापततः शक्रस्तावद्भिः शीघ्रविक्रमः । चिच्छेद निशितैर्भल्लैरसंप्राप्तान्हसन्निव ॥४२॥

अन्वयः— तान् आपततः सः शीघ्रविक्रमः इन्द्रः तावद्भिः निशितैः भल्लैः असंप्राप्तान् हसन्निव चिच्छेद ॥४२॥

अनुवाद— उन आते हुए बाणों को देखकर शीघ्रता करने वाले इन्द्र ने उतने ही तीक्ष्ण और भल्ल बाणों से आने से पहले ही बलि के बाणों को हँसते हुए से काटकर गिरा दिया ॥४२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४२॥

तस्य कर्मोत्तमं वीक्ष्य दुर्मर्षः शक्तिमाददे । तां ज्वलन्तीं महोल्काभां हस्तस्थामच्छिनद्धरिः ।।४३।।

अन्वयः— तस्य उत्तमं कर्म वीक्ष्य दुर्मर्षः शक्तिम् आददे । तां महोल्काभां ज्वलन्तीम् हस्तस्थाम् हरिः अच्छिनत्।।४३।।

अनुवाद— इन्द्र के उस प्रशंसनीय कर्म को देखकर बलि और क्रुद्ध हो गये और उन्होंने अपने हाथ में शक्ति को उठा लिया । महान् उल्का के समान जलती हुई उस शक्ति को देखकर बलि के हाथ में विद्यमान ही उसको इन्द्र ने काट दिया ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

दुर्मर्षोऽसहनो बलिः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

दुर्मर्ष अर्थात् नही सह सकने वाले बलि ।।४३।।

ततः शूलं ततः प्रासं ततस्तोमरमृष्टयः । यद्यच्छस्त्रं समादद्यात्सर्वं तदच्छिनद्विभुः ।।४४।।

अन्वयः— ततः शूलं ततः प्रासं ततः तोमरम् ऋष्टयः यत् यत् शस्त्रं समादद्यात् तत् सर्वं विभुः अच्छिनत् ।।४४।।

अनुवाद— उसके बाद त्रिशूल, उसके बाद प्रास, उसके बाद तोमर भाला उसके बाद ऋष्टि इस तरह बलि ने जिन-जिन शस्त्रों को उठाया उन सबों को इन्द्र ने काट दिया ।।४४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४४।।

ससर्जाथासुरीं मायामन्तर्धानगतोऽसुरः । ततः प्रादुरभूच्छैलः सुरानीकोपरि प्रभो ।।४५।।

अन्वयः— हे प्रभो ! अथ अन्तर्धानगतः असुरः आसुरीं माया ससर्ज, ततः सुरानीकोपरिशैलः प्रादुरभूत् ।।४५।।

अनुवाद— हे परीक्षित् ! उसके बाद वह अन्तर्धान होकर असुरी माया की सृष्टि की । और उसके बाद देवताओं की सेना के ऊपर एक पर्वत प्रकट हो गया ।।४५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४५।।

ततो निपेतुस्तरवो दह्यमाना दवाग्निना । शिलाः सटङ्कशिखराश्चूर्णयन्त्यो द्विषद्बलम् ।।४६।।

अन्वयः— दवाग्निनादह्यमानाः तरवो निपेतुः शिलाः सटङ्कशिखरा द्विषद्बलम् चूणर्यन्त्यः ।।४६।।

अनुवाद— उसके पश्चात् दवाग्नि से जलते हुए पेड़ गिरने लगे, फिर उसी पर्वत से टाकी जैसी तीक्ष्णधारा वाले शिखरों के साथ नुकीली शिलाएँ गिरने लगी इससे देवताओं की सेना चकनाचूर होने लगी ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

टङ्कवत्तीक्ष्णाग्रैः शिखरैः सहिताः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

टङ्की जैसी तीक्ष्ण धार वाली शिखरों के साथ ।।४६।।

महोरगाः समुपेतुर्दन्दशूकाः सवृश्चिकाः । सिंहव्याघ्रवराहाश्च मर्दयन्तो महागजान् ।।४७।।

अन्वयः— महोरगाः समुत्पेतुः, दन्दशूकाः सवृश्चिकाः महागजान् मर्दयन्तः सिंहव्याघ्रवराहाः च ।।४७।।

अनुवाद— उसके बाद बड़े-बड़े सर्प, दन्दशूक बिच्छी, और बड़े-बड़े हाथियों का मर्दन करने वाले, सिंह बाघ और वराह भी गिरने लगे ।।४७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४७।।

यातुधान्यश्च शतशः शूलहस्ता विवाससः । छिन्धिभिन्धीति वादिन्यस्तथा रक्षोगणाः प्रभो ॥४८॥

अन्वयः— हे प्रभो शतशः शूलहस्ताः विवाससः यातुधान्यः च छिन्धि भिन्धि इति वादिन्यः रक्षोगणाः च ॥४८॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! उसके पश्चात् हाथ में त्रिशूल लिए नङ्गी तथा मारो, काटो, इस तरह से चिल्लाती हुई सैकड़ो राक्षसियाँ और राक्षस पैदा हो गये ॥४८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४८॥

ततो महाघना व्योम्नि गम्भीरपरुषस्वनाः । अङ्गारान्मुमुचुर्वातैराहताः स्तनयित्नवः ॥४९॥

अन्वयः— ततः व्योम्नि गम्भीरपरुषस्वनाःमहाघनाः वातैराहताः स्तनयित्नवः अङ्गारान् मुमुचुः ॥४९॥

अनुवाद— उसके बाद आकाश में, गम्भीर तथा कठोर शब्द करने वाले मेघों की घटा भर गयी वायु से टकराने से विजली चमकने लगी और अँगारों की वर्षा होने लगी ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

स्तनयित्नवश्चाङ्गारान्मुमुचुरित्यनुषङ्गः ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

बिजलियों से अङ्गार वरसने लगा ॥४९॥

सृष्टो दैत्येन सुमहान्वह्निः श्वसनसारथिः । सांवर्तक इवात्युग्रो विबुधध्वजिनीमधाक् ॥५०॥

अन्वयः— दैत्येन श्वसनसारथिः सुमहान् सांवर्तक इव अत्युग्रःबह्निः सृष्टः विबुध ध्वजिनीम् अधाक् ॥५०॥

अनुवाद— दैत्यराज बलि ने वायु से युक्त प्रलयकालीन अग्नि के समान अत्यन्त भयङ्कर अग्नि की सृष्टि की जो देवसेनाा को जलाने लगी ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

अधाक् आर्षः आधाक्षीदित्यर्थः ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

अधाक् यह आर्ष प्रयोग है, उसका अर्थ है जलाने लगी ॥५०॥

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्रत्यदृश्यत । प्रचण्डवातैरुद्धूततरङ्गावर्तभीषणः ॥५१॥

अन्वयः— ततः समुद्र उद्वेलः प्रचण्डवातैरुद्धूततरङ्गावर्तभीषणः सर्वतः प्रत्यदृश्यत ॥५१॥

अनुवाद— उसके बाद लगा कि प्रबल आँधी के थपेड़ों से समुद्र में बड़ी-बड़ी लहरें और भयङ्कर भँवर उठ रहे हैं । वह अपनी मर्यादा छोड़कर देवसेना को घेर रहा है ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

उद्धूतैस्तरङ्गैरावर्तैश्च भीषण; ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

उत्पन्न तरङ्गों और भँवरों से भयानक ॥५१॥

एवं दैत्यैर्महामायैरलक्ष्यगतिभीषणैः । सृज्यमानासु मायासु विषेदुः सुरसैनिकाः ॥५२॥

अन्वयः— एवं महामायैः अलक्ष्यगतिभीषणैः दैत्यैः सृज्यमानासु मायासु सुरसैनिका विषेदुः ॥५२॥

अनुवाद— इस प्रकार से बड़ी-बड़ी मायाओं को करने वाले तथा जिनकी गति का पता नहीं चलता था ऐसे भयङ्कर दैत्यों द्वारा देवताओं पर जब मायाओं की सृष्टि की जा रही थी तो देव सैनिक विषाद करने लगे ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

एवमन्यैश्च दैत्यैः सृज्यमानासु ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से दूसरे दैत्यों द्वारा मायाओं की सृष्टि किए जाने पर ।।५२।।

न तत्प्रतिविधिं यत्र विदुरिन्द्रादयो नृप । ध्यातः प्रादुरभूत्तत्र भगवान्विश्वभावनः ।।५३।।

अन्वयः— हे नृप ! यत्र इन्द्रादय प्रतिविधिं न विदुः तत्र ध्यातः विश्वभावनः भगवान् प्रादुरभूत् ।।५३।।

अनुवाद— जब इन्द्र आदि देवता उसका कोई भी प्रतिकार नहीं जान सके तो ध्यान करते ही वह सम्पूर्ण जगत् को जीवन दान देने वाले भगवान् वहाँ प्रकट हो गये ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

यत्र यदा । तत्र तदा । तैर्ध्यातः सन् ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

यत्र अर्थात् जब तत्र अर्थात् तब उन सबों के द्वारा ध्यान किए गये ।।५३।।

ततः सुपर्णांसकृताङ्घ्रिपल्लवः पिशङ्गवासा नवकञ्जलोचनः ।
अदृश्यताष्टायुधबाहुरुल्लसच्छ्रीकौस्तुभानर्घ्यकिरीटकुण्डलः ।।५४।।

अन्वयः— ततः सुपर्णासकृताङ्घ्रिपल्ल्वः पिशङ्गवासा नवकञ्जलोचनः, अष्टायुधबाहुरुल्लसत् श्रीकौस्तुभानर्घ्यकिरीटकुण्डलः अदृश्यत ।।५४।।

अनुवाद— श्रीभगवान् गरुड़ के कन्धे पर पैर रखे थे, पीला पीतम्बर धारण किए थे नवीन विकसित कमल के समान उनके नेत्र थे, आठ भुजाओं में आठ आयुध गले में कौस्तुभमणि, सिर पर मुकुट और कानों में कुण्डल सुशोभित हो रहा था । श्रीभगवान् की इसी छवि का देवताओं ने दर्शन किया ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

अष्टावायुधयुक्ता बाहवो यस्य । श्रीश्च कौस्तुभश्च अनर्घ्यं किरीटं च कुण्डले च उल्लसन्ति श्रीकौस्तुभादीनि यस्मिन्।।५४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की आठो भुजाओं में आयुध थे, श्रीदेवी कौस्तुभमणि और उनके बहुमूल्य किरीट और कुण्डल ये सभी सुशोभित हो रहे थे ।।५४।।

तस्मिन्प्रविष्टेऽसुरकूटकर्मजा माया विनेशुर्महिना महीयसः ।
स्वप्नो यथा हि प्रतिबोध आगते हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम् ।।५५।।

अन्वयः— तस्मिन् प्रविष्टे असुरकूट कर्मजा महीयसः महिना माया विनेशुः । यथा हि प्रतिबोध आगते स्वप्नः हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम् ।।५५।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के प्रकट होते ही असुरों की कपट भरी माया विलीन हो गयी । यह वैसे ही हुआ जैसे जग जाने पर स्वप्न समाप्त हो जाता है तथा श्रीहरि का स्मरण करने पर सारी विपत्ति विनष्ट हो जाती है ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

असुराणां कूटकर्म मन्त्रादिप्रयोगस्तस्माज्जाताः । महिना महिम्ना । हरेः स्मृतिरेव सर्वासां विपदां मोक्षणरूपा किमुत हरेः प्रवेश इत्यर्थः ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

असुरों द्वारा किए गये मन्त्र प्रयोग जन्य माया विनष्ट हो गयी । **महिना** अर्थात् महिमा से श्रीहरि का स्मरण विपत्ति से मुक्ति स्वरूप है तो फिर श्रीहरि के प्रवेश के विषय में क्या कहना है ॥५५॥

दृष्ट्वा मृधे गरुडवाहमिभारिवाह आविध्य शूलमहिनोदथ कालनेमिः ।
तल्लीलया गरुडमूर्ध्नि पतद्गृहीत्वा तेनाहनन्नृप सवाहमरिं त्र्यधीशः ॥५६॥

अन्वयः— हे नृप मृधे ! गरुडवाहम् दृष्ट्वा इभारिवाह; कालनेमिः अहिना शूलम् उदथ गरुड मूर्ध्नि पतत् तत् लीलया गृहित्वा त्र्यधीशः तेन सवाहम् अरिम् अहनत् ।।५६।।

अनुवाद— हे राजन् ! परीक्षित् युद्ध के मैदान में श्रीभगवान् को आये हुए देखकर सिंह पर सवार कालनेमि ने जोर से उन पर त्रिशूल चलाया । वह गरुड़ के शिर पर गिरने ही वाला था कि श्रीभगवान् ने उसको लीला पूर्वक पकड़ लिया और उसी से कालनेमि और उसके वाहन को मार दिया ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

इभारिवाहः सिंहवाहः । अहिनोच्चिक्षेप । लीलयैव तद्गृहीत्वा अहनदहन् । हे नृप ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

इभारिवाहः अर्थात् सिंहवाहन, अहिनोच्चिक्षेप अर्थात् जोर से चलाया, लीला पूर्वक उसको पकड़कर उससे वाहन सहित कालनेमि को मार दिए ॥५६॥

माली सुमाल्यतिबलौ युधि पेततुर्यच्चक्रेण कृत्तशिरसावथ माल्यवांस्तम ।
आहत्य तिग्मगदयाऽहनदण्डजेन्द्रं तावच्छिरोऽछिनदरेर्नदतोऽरिणाद्यः ॥५७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे देवासुरसंग्रामे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अन्वयः— अतिबलौ मालीसुमाली युधि पेततुः चक्रेण कृत्त शिरसौ अथ माल्यवान् तम् आहत्य तिग्मगदया अण्डजेन्द्रम् अहनत् तावत् नदतः अरेः अरिणा आद्यः शिरः अच्छिनत् ।।५७।।

अनुवाद— अत्यन्त बलवान् माली और सुमाली युद्ध करने आये तो श्रीभगवान् ने उन दोनों का शिर चक्र से काट दिया । उसके बाद माल्यवान् ने गरुड पर गदा से प्रहार किया किन्तु उससे पहले श्रीभगवान् ने उसके भी सिर को चक्र से काट दिया ॥५७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के देवासुर संग्राम के अन्तर्गत दसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

यस्य चक्रेण कृत्तशिरसौ पेततुस्तं तथाभूतमप्याहत्य संघट्य अण्डजेन्द्रं गरुडमहनत्, तं हन्तुं गदामुन्निन्य इत्यर्थः । आद्यो हरिः ।।५७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां दशमोऽध्यायः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

जिनके चक्र से शिर कट जाने के कारण गिर पड़े ऐसे श्रीभगवान् से मिलकर गरुड पर गदा से मारा उसको मारने के लिए गदा के उठा कर आद्यः अर्थात् श्रीहरि ॥५७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के दसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१०।।

ग्यारहवाँ अध्याय

देवासुर संग्राम की समाप्ति

श्रीशुक उवाच

अथो सुराः प्रत्युपलब्धचेतसः परस्य पुंसः परयानुकम्पया ।
जघ्नुर्भृशं शक्रसमीरणादयस्तांस्तान् रणे यैरभिसंहताः पुराः ॥१॥

अन्वयः— अथो परस्य पुंसः परयानुकम्पया प्रत्युपलब्धचेत्तसः सुराः शक्रसमीरणदयः यैः पुरा अभिसंहताः तान् तान् रणे भृशं जघ्नुः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् उसके पश्चात् परम पुरुष परमात्मा की कृपा से देवताओं की घबराहट समाप्त हो गयी। इन्द्र तथा वायु आदि देवता जिन असुरों द्वारा पहले आहत हुए थे उन सबों पर वे अब पूरी शक्ति से प्रहार करने लगे॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकादशे तु देवेषु दैत्यधातिषु नारदः । देवानवारयञ्छुक्रो मृतान्दैत्यानजीवयत् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

ग्यारहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि जब देवगण दैत्यों को मार रहे थे तो नारदजी ने उन सबों को ऐसा करने से रोका और शुक्राचार्य ने मरे दैत्यों को जीवित कर दिया ॥१॥

वैरोचनाय संरब्धो भगवान्पाकशासनः । उदयच्छद्यदा वज्रं प्रजा हाहेति चुक्रुशुः ॥२॥

अन्वयः— संरब्धः भगवान् पाकशासनः यदावैरोचनाय वज्रम् उदयच्छत् प्रजाहाहेति इति चक्रुशुः ॥२॥

अनुवाद— ऐश्वर्यशाली इन्द्र ने युद्ध करते हुए जब बलि पर वज्र उठाया तो सारी प्रजा हाय-हाय करने लगी ॥२॥

भावार्थ दीपिका

उदयच्छदुन्निन्ये ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उदयछत् अर्थात् उठाया ॥२॥

वज्रपाणिस्तमाहेदं तिरस्कृत्य पुरः स्थितम् । मनस्विनं सुसंपन्नं विचरन्तं महामृधे ॥३॥

अन्वयः— वज्रपाणिः सुसम्पन्नं मनस्विनं महामृधे विचरन्तं पुरः स्थितम् तम् तिरस्कृत्य इदम् आह ॥३॥

अनुवाद— अपने हाथ में वज्र लिए हुए इन्द्र अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर उत्साह पूर्वक युद्धभूमि में निर्भयता पूर्वक विचरण करते हुए तथा अपने सामने स्थित बलि का तिरस्कार करके यह कहे ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

नटवन्मूढ मायाभिर्मायेशान्नो जिगीषसि । जित्वा बालान्निबद्धाक्षान्नटो हरति तद्धनम् ॥४॥

अन्वयः— मूढ नटः यथा मायाभिः निबद्धाक्षान् बालान् जित्वा तद्धनम् हरति, मायेशान् नो जिगीषसि ॥४॥

अनुवाद— मूर्ख नट जिस तरह बालकों की आँखों को जादू से बाँध कर उनके धन को हर लेता है, उसी तरह माया के स्वामी हमलोगों को तुम माया से जीतना चाहते हो ॥४॥

भावार्थ दीपिका

निबद्धान्यक्षीणि येषां तान्बालाञ्जित्वा नटः कपटवृत्तिर्यथा तेषां धनं हरति तथा हे मूढ, मायेशानस्माञ्जेतुमिच्छसि ।।४।।

भाव प्रकाशिका

जैसे नट बालकों के नेत्रों को जादू से बाँध कर कपट वृत्ति से उन सबों के धन का हरण कर लेता है, उसी तरह मूर्ख माया के स्वामी हमलोगों को जीत लेना चाहते है ।।४।।

आरुरुक्षन्ति मायाभिरुत्सिसृप्सन्ति ये दिवम् । तान्दस्यून्विधुनोम्यज्ञान्पूर्वस्माच्च पदादधः ।।५।।

अन्वयः— ये मायाभिः दिवम् आरुरुक्षन्ति, उत्सृप्सन्ति तान् दस्यून् अज्ञान् पूर्वस्मात् च पदात् अधः विधुनोमि ।।५।।

अनुवाद— जो लोग माया के द्वारा स्वर्ग पर अधिकार जमाना चाहते हैं और उससे भी ऊपर के लोकों में जाना चाहते हैं, उन मूर्ख लुटेरों को मैं पहले से भी नीचे ढकेल देता हूँ ।।५।।

भावार्थ दीपिका

मत्प्रभावं शृण्वित्याह–आरुरुक्षन्त्यारोढुमिच्छन्ति । ये चोत्सिसृप्सन्त्युल्लङ्घयितुमिच्छन्ति । मोक्षमिच्छन्तीत्यर्थः । अधो विधुनोमि पातयामि ।।५।।

भाव प्रकाशिका

मेरा प्रभाव सुनो यह इन्द्र ने कहा जो लोग अधिकार जमाना चाहते हैं और उससे ऊपर के लोकों में जाकर मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं उन सबों को मैं नीचे गिरा देता हूँ ।।५।।

सोऽहं दुर्मायिनस्तेऽद्य वज्रेण शतपर्वणा । शिरो हरिष्ये मन्दात्मन्घटस्व ज्ञातिभिः सह ।।६।।

अन्वयः— मन्दात्मन् ते अद्य शतपर्वणा वज्रेण शिरः हरिष्ये ज्ञातिभिः सह घटस्व ।।६।।

अनुवाद— मूर्ख वहीं मैं आज सौ धारों वाले वज्र से तुम्हरा शिर काट लूँगा तुम अपने बान्धवों सहित जो करना है सोकर ।।६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६।।

बलिरुवाच

संग्रामे वर्तमानानां कालचोदितकर्मणाम् । कीर्तिर्जयेऽजयो मृत्युः सर्वेषां स्युरनुक्रमात् ।।७।।

अन्वयः— कालचोदित कर्मणां संग्रामे वर्तमानानां सर्वेषां कीर्तिः जयः, अजयः मृत्युः अनुक्रमात् स्युः ।।७।।

बालि ने कहा

अनुवाद— काल शक्ति से प्रेरित होकर अपने कर्म के अनुसार जो लोग युद्ध करते हैं उन लोगों को तो कीर्ति, जय, पराजय और मृत्यु क्रमशः मिलते ही रहते हैं ।।७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७।।

तदिदं कालरशनं जनाः पश्यन्ति सूरयः । न हृष्यन्ति न शोचन्ति तत्र यूयमपण्डिताः ।।८।।

अन्वयः— सूरयः जना तदिदं कालरशनं पश्यन्ति न हृष्यन्ति नशोचन्ति तत्र यूयम् अपण्डिताः ।।८।।

अनुवाद— ज्ञानी पुरुष इस सम्पूर्ण संसार को काल के अधीन मानते हैं इसीलिए विजय पाकर न तो हर्षित होते हैं और न पराजय को पाकर शोक करते हैं । तुम लोग इस तत्त्व को नहीं जानते हो ।।८।।

भावार्थ दीपिका

कालरशनं कालयन्त्रितम् । अतो न हृष्यन्ति । तत्र एवं विवेके यूयमपण्डिता अनिपिणाः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

कालरशनम् अर्थात् काल के अधीन, अतएव विजय से ज्ञानी जन प्रसन्न नहीं होते । इस विवेक ज्ञान से आपलोग अनभिज्ञ हैं ॥८॥

न वयं मन्यमानानामात्मानं तत्र साधनम् । गिरो वः साधु शोच्यानां गृह्णीमो मर्मताडनाः ॥९॥

अन्वयः— आत्मानं तत्र साधनं मन्यमानानां साधुशोच्यानां वः मर्मताडनाः वचः वयं न गृहणीमः ।।९।।

अनुवाद— जय एवं पराजय का कारण अपने को मानने वाले तथा साधु पुरुषों के लिए शोचनीय तुम्हारे मर्म स्पर्शी वचनों को स्वीकार ही नहीं करते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तत्र कीर्तिजयादावात्मानं साधनं मन्यमानानां वो गिरो न गृह्णीमः मर्मसु ताडनं याभिस्ताः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

कीर्ति तथा विजय आदि का कारण अपने को मानने वाले आप जैसे लोगों की बातों को हम स्वीकार ही नहीं करते । **मर्मताडना** मर्म स्पर्शी ॥९॥

श्रीशुक उवाच

इत्याक्षिप्य विभुं वीरो नाराचैर्वीरमर्दनः । आकर्णपूर्णैरहनदाक्षेपैराहतं पुनः ॥१०॥

अन्वयः— वीर मर्दनः वीरः इति विभुम् आक्षिप्य आक्षेपै आहतं आकर्णपूरैः नाराचैः अहनत् ।।१०।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— वीरों का मर्दन करने वाले वीर बलि ने इस तरह से इन्द्र को फटकार कर आक्षेप से कुछ झेंप से गये इन्द्र को धनुष को कानों पर्यन्त खिंच कर कई बाण मारे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका -

विभुमिन्द्रम् । वीरो बलिः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

विभुम् अर्थात् इन्द्र को, वीरः अर्थात् बलि ने ॥१०॥

एवं निराकृतो देवौ वैरिणा तथ्यवादिना । नामृष्यत्तदक्षिधेपं तोत्राहत इव द्विपः ॥११॥

अन्वयः— एवं तथ्य वादिना वैरिणा निराकृतः देवः तदधिक्षेपं तोत्रहतः द्विप इव न अमृष्यत् ।।११।।

अनुवाद— सत्यवादी शत्रु बलि के द्वारा इस तरह तिरस्कृत हुए इन्द्र उसे उसी तरह वर्दास्त नहीं कर सके जैसे अङ्कुश से मारा गया हाथी ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तोत्रमङ्कुशस्तेनाहत इव ।।११।।

भाव प्रकाशिका

अङ्कुश से मारे गये हाथी के समान ॥११॥

प्राहरत्कुलिशं तस्मा अमोघं परमर्दनः । सयानो न्यपतद्भूमौ छिन्नपक्ष इवाचलः ॥१२॥

अन्वयः— परमर्दन तस्मै अमोघं कुलिशं प्राहरत् सयानोन्यपतत् भूमौ छिन्नपक्षः अचलः इव ।।१२।।

अनुवाद— अपने शत्रु को मारने वाले इन्द्र ने बलि पर कभी भी विफल नहीं होने वाले वज्र का प्रहार किया और उसकी चोट से बलि अपने विमान के साथ पृथिवी पर कटे हुए पङ्ख वाले पर्वत के समान गिर पड़े।।१२।।

भावार्थ दीपिका

सयानो विमानसहितः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

सयानः अर्थात् विमान के साथ ।।१२।।

सखायं पतितं दृष्ट्वा जम्भो बलिसखः सुहृत् । अभ्ययात्सौहृदं सख्युर्हतस्यापि समाचरन् ।।१३।।

अन्वयः— सखायं पतितं दृष्ट्वा बलिसखः सुहृत् जम्भः हतस्यापि सख्युः सौहृदं समचरन् अभ्ययात् ।।१३।।

अनुवाद— अपने मित्र को गिरे हुए देखकर बलि का हितैषी मित्र जम्भ अपने मरे हुए भी मित्र का बदला लेने के लिए इन्द्र के समने आ गया ।।१३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१३।।

स सिंहवाह असाद्य गदामुद्यम्य रंहसा । जत्रावताडयच्छक्रं गजं च सुमहाबलः ।।१४।।

अन्वयः— स सिंहवाहः आसाद्य गदामुद्यम्य रंहसा शक्रं जत्रौ अताडयत् सुमहाबलः गजं च ।।१४।।

अनुवाद— सिंह पर सवार वह जम्भ इन्द्र के पास आकर गदा उठाकर वेगपूर्वक इन्द्र की हँसली पर प्रहार किया और ऐरावत पर उस महाबली गदा का प्रहार किया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४।।

गदप्रहारव्यथितो भृशं विह्वलितो गजः । जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ ।।१५।।

अन्वयः— गदा प्रहारव्यथितः गजः भृशं विह्वलितः जानुभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा परमं कश्मलं ययौ ।।१५।।

अनुवाद— गदा के प्रहार से ऐरावत को बहुत पीड़ा हुई उसने पृथिवी पर घुटने टेक दिए और मूर्छित हो गया ।।१५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१५।।

ततो रथो मातलिना हरिभिर्दशशतैर्वृतः । आनीतो द्विपमुत्सृज्य रथमारुरुहे विभुः ।।१६।।

अन्वयः— ततः मातलिना दशशतैर्हरिभिवृतः रथः आनीतः विभुः द्विपम् उत्सृज्य रथम् आरुरुहे ।।१६।।

अनुवाद— उसके पश्चात् मातलि एक हजार अश्वों वाले एक रथ को लाए और इन्द्र हाथी को छोड़कर रथ पर बैठ गये ।।१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१६।।

तस्य तत्पूजयन्कर्म यन्तुर्दानवसत्तमः । शूलेन ज्वलता तं तु स्मयमानोऽहनन्मृधे ।।१७।।

अन्वयः— दानवसत्तमः तस्य यन्तुः तत् कर्म पूजयन् स्मयमानः तं तु ज्वलता शूलेन अहनत् ।।१७।।

अनुवाद— दानवश्रेष्ठ जम्भ ने मातलि के उस कार्य की सराहना की और उस पर एक जलते हुए त्रिशूल से मुस्कुराते हुए प्रहार किया ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

सेहे रुजं सुदुर्मर्षां सत्त्वमालम्ब्य मातलिः । इन्द्रो जम्भस्य संक्रुद्धो वज्रेणापाहरच्छिरः ॥१८॥

अन्वयः— मातलि सत्त्वम् आलम्ब्य सुदुर्मर्षां रुजं सेहे जम्भस्य संक्रुद्ध इन्द्र वज्रेण शिरः अपाहरत ॥१८॥

अनुवाद— मातलि ने धैर्य के साथ उस असह्य पीड़ा को सह लिया और जम्भ पर क्रुद्ध हुए इन्द्र वज्र से उसका शिर काट दिए ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

जम्भं श्रुत्वा हतं तस्य ज्ञातयो नारदादृषेः । नमुचिश्च बलः पाकस्तत्रापेतुस्त्वरान्विताः ॥१९॥

अन्वयः— नारदात् ऋषे जम्भं हतं श्रुत्वा तस्य ज्ञातयः नमुचिःच बलः पाकः त्वरान्विताः तत्र आपेतुः ॥१९॥

अनुवाद— नारद ऋषि से जम्भ की मृत्यु का समाचार सुनकर नमुचि, बल और पाक जो उसके भाई बन्धु थे शीघ्रता से वहाँ आ गये ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

नमुचिर्बलः पाकश्चेति त्रय आजग्मुः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

नमुचि, बल और पाक ये तीन वहाँ आये ॥१९॥

वचोभिः परुषैरिन्द्रमर्दयन्तोऽस्य मर्मसु । शरैरवाकिरन्मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥२०॥

अन्वयः— परुषैः वचोभिः इन्द्रम् अर्दयन्तः मेघा धाराभिः पर्वतम् इव अस्य मर्मसु शरैः अवाकिरन् ॥२०॥

अनुवाद— अपने कठोर और मर्मस्पर्शी वचनों से इन्द्र को दुखित करते हुए जिस तरह मेघ पर्वत पर मूसलाधार पानी बरसाते हैं, वैसे ही इन्द्र के मर्मस्थल में बाणों की वर्षा किए ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

हरीन्दशशतान्याजौ हर्यश्वस्य बलः शरैः । तावद्भिरर्दयामास युगपल्लघुहस्तवान् ॥२१॥

अन्वयः— लघुहस्तवान् बलः आजौ हर्यश्वस्य दशशतानि हरीन् तवद्भिः शरैः युगपत् अर्दयामास ॥२१॥

अनुवाद— हस्तलाघव द्वारा बल ने युद्ध में इन्द्र के एक हजार अश्वों को एक ही समय में धनुष पर एक हजार बाण चढ़ाकर घायल कर दिया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयाणां पृथग्विक्रमानाह-हरीनिति त्रिभि; । हर्यश्वस्येन्द्रस्य । तावद्भिर्दशभिः शतैः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

तीन श्लोकों से तीनों के पराक्रम का वर्णन करते हैं- हर्यश्वस्य अर्थात् इन्द्र के **तवद्भिः** अर्थात् एक हजार॥२१॥

शताभ्यां मातलिं पाको रथं सावयवं पृथक् । सकृत्सन्धानमोक्षेण तदद्भुतमभूद्रणे ॥२२॥

अन्वयः— पाकः शताभ्यां मातलिम् सावयवं रथं च पृथक् सकृत् सन्धान मोक्षेण तत् रण अद्भुतम् अभूत् ॥२२॥

अनुवाद— पाक ने सौ बाणों से मातलि को और सौ बाणों से रथ के प्रत्येक अङ्ग को एक ही साथ बाण चढाकर छेद दिया यह युद्ध में अद्भुत कार्य हुआ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

नमुचिः पञ्चदशभिः स्वर्णपुङ्खैर्महेषुभिः । आहत्य व्यनदत्संख्ये सतोय इव तोयदः ॥२३॥

अन्वयः— नमुचिः पञ्चदशभिः स्वर्णपुङ्खैः महेषुभिः संख्य आहत्य सतोयः तोयदः इव व्यनदत् ॥२३॥

अनुवाद— नमुचि ने बड़े-बड़े पन्द्रह बाणों से जिनमें सोने के पङ्ख लगे थे । युद्ध भूमि में मारकर जल भरे मेघ के समान गर्जना किया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

आहत्येन्द्रं विद्ध्वा ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

आहत्य अर्थात् इन्द्र को छेदकर ॥२३॥

सर्वतः शरकूटेन शक्रं सरथसारथिम् । छादयामासुरसुराः प्रावृट्सूर्यमिवाम्बुदाः ॥२४॥

अन्वयः— असुराः शक्रं सर्वतः शर कूटेन सरथसारथिम् प्रावृट्सूर्यम् अम्बुदा इव छादयामासुः ॥२४॥

अनुवाद— असुरों ने सारथि सहित रथ को अपने बाणों के जाल से इस प्रकार ढँक दिया जिस तरह वर्षाकाल में मेघ सूर्य को ढँक देते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

प्रावृट्कालीनं सूर्यम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

वर्षाकालीन सूर्य को ॥२४॥

अलक्षयन्तस्तमतीव विह्वला विचुक्रुशुर्देवगणाः सहानुगाः ।
अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिता वणिक्पथा भिन्ननवो यथाऽर्णवे ॥२५॥

अन्वयः— तम् अलक्षयन्तः अतीव विह्वलाः अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिताः सहानुगाः देवगणा अर्णवे भिन्न नवा वणिक्पथा यथा विचुक्रुशुः ॥२५॥

अनुवाद— इन्द्र को नहीं देखकर अत्यन्त व्याकुल नायक विहीन तथा शत्रु सेना से पराजित देवगण और उनके अनुचर उसी तरह चिल्लने लगे जैसे समुद्र में नाव टूट जाने पर व्यापारीगण रोने चिल्लाने लगते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

वणिक्पथा वणिजः । भिन्ना नौर्येषां ते । भिन्ननाव इत्यर्थः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

वणिक्पथा अर्थात् व्यापारीगण **भिन्ननवः** जिसकी नाव टूट गयी हो ॥२५॥

ततस्तुराषाडिषुबद्धपञ्जराद्विनिर्गतः साश्वरथध्वजाग्रणीः ।
बभौ दिशः खं पृथिवीं च रोचयन्स्वतेजसा सूर्य इव क्षपात्यये ॥२६॥

अन्वयः— ततः इषुबद्ध पञ्जरात् तुराषाट् साश्वरथध्वजाग्रणीः विनिर्गतः, क्षपात्यये सूर्यइव स्वतेजसा दिशः खं पृथ्वीं च रोचयन् बभौ ॥२६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् शत्रुओं द्वारा बनाये गये बाणों की पिंजड़े से इन्द्र अपने अश्व, रथ, ध्वजा और सरथि के साथ बाहर निकल आये । रात्रि के समाप्त हो जाने पर जिस तरह सूर्य अपने तेज से दिशाओं आकाश

तथा पृथ्वी को प्रकाशित कर देते हैं। उसी तरह इन्द्र भी अपने तेज से दिशाओं, आकाश और पृथिवी को प्रकाशित करते हुए सुशोभित हुए ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तुराषाडिन्द्रः। अश्वादिसाहितो विनिर्गतः। अग्रणीः सारथिः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र अश्वआदि तथा सारथि के साथ निकल गये ॥२६॥

निरीक्ष्य पृतनां देवः परैरभ्यर्दितां रणे। उदयच्छद्रिपुं हन्तु वज्रं वज्रधरो रुषा ॥२७॥

अन्वयः— परैः रणे अभ्यर्दितां पृतनां निरीक्ष्य वज्रधरः देवः रुषा रिपुं हन्तुं वज्रं उदयच्छत् ॥२७॥

अनुवाद— शत्रुओं द्वारा युद्ध में अपनी सेना को रौंदी जाती हुई देखकर वज्रधारण करने वाले इन्द्र देव क्रोध पूर्वक शत्रु को मारने के लिए वज्र उठाये ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

स तेनैवाष्टधारेण शिरसी बलपाकयोः। ज्ञातीनां पश्यतां राजञ्जहार जनयन्भयम् ॥२८॥

अन्वयः— राजन् स तेनैव अष्टधारेण बलपाकयोः ज्ञातीनां पश्यतां भयं जनयन् शिरसी जहार ॥२८॥

अनुवाद— हे राजन्! इन्द्र उसी आठ धार वाले वज्र से बल और पाक के उनके बन्धुओं के सामने ही उनमें भय का संचार करते हुए सिर काट दिए ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

नमुचिस्तद्वधं दृष्ट्वा शोकमर्षरुषान्वितः। जिघांसुरिन्द्रं नृपते चकार परमोद्यमम् ॥२९॥

अन्वयः— नृपते तद्वधं दृष्ट्वा शोकामर्षरुषान्वितः नमुचिः इन्द्रं जिघांसु परमोद्यमम् चकार ॥२९॥

अनुवाद— राजन्! उन दोनो के वध के देखकर नमुचि शोक, आमर्ष और क्रोध से भरकर इन्द्र को मारने का वहुत अधिक प्रयास किया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

शोकामर्षाभ्यां युक्तया रुषा क्रोधेनान्वित इन्द्रं हन्तुं परमोद्योगं चकार ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

शोक एवं आमर्ष से युक्त क्रोध के द्वारा इन्द्र को मारने का बहुत अधिक प्रयास किया ॥२९॥

अश्मसारमयं शूलं घण्टावद्धेमभूषणम्। प्रगृह्याभ्यद्रवत्क्रुद्धो हतोऽसीति वितर्जयन् ॥
प्राहिणोद्देवराजाय निनदन्मृगराडिव ॥३०॥

अन्वयः— अश्मसारमयं घण्टावद् हेमभूषितम् शूलं प्रगृहय हतोऽसि इति वितर्जयन क्रुद्धः अभ्यद्रवत् मृगराडिव निनदन् देवराजाय प्राहिणोत् ॥३०॥

अनुवाद— फौलाद से बने हुए सुवर्ण के आभूषणों से भूषित और घण्टा से युक्त त्रिशूल को उठाकर इन्द्र अब तुम मारे गये इस तरह से ललकारते हुए इन्द्र पर टूट पड़ा। वह क्रोध के कारण सिंह के समान गरज कर इन्द्र पर उस त्रिशूल को चलाया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

घण्टावद्धण्टाभिर्युक्तम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

घण्टावत् अर्थात् घण्टाओं से युक्त ॥३०॥

तदापतद्गगनतले महाजवं विचिच्छिदे हरिरिषुभिः सहस्त्रधा ।
तमाहनन्नृप कुलिशेन कन्धरे रुषान्वितस्त्रिदशपतिः शिरो हरन् ॥३१॥

अन्वयः— हे नृप ! महाजवं तत् आपतत् हरिः गगनतले इषुभिः सहस्रधा विचिच्छिेद । रुषान्वितः त्रिदशपतिः शिरो हरन् कुलिशेन कन्धरे तम् अहनत् ॥३१॥

अनुवाद— हे राजन् इन्द्र ने देखा कि वह त्रिशूल उनकी ओर बड़े वेग से आ रहा है । उन्होंने अपने बाणों से आकाश में ही उसके हजारो टुकड़े कर दिया उसके पश्चात् इन्द्र क्रोध पूर्वक उसके सिर को काट देने के लिए उसके गर्दन पर वज्र से प्रहार किए ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

न तस्य हि त्वचमपि वज्र ऊर्जितो बिभेद यः सुरपतिनौजसेरितः ।
तदद्भुतं परमतिवीर्यवृत्रभित्तिरस्कृतो नमुचिशिरोधरत्वचा ॥३२॥

अन्वयः— सुरपतिना ओजसाईरितः यः उर्जितः वज्रः तस्य त्वचमपि न विभेद, तत् अद्भुतं यः परमतिवीर्यभित् नमुचि शिरोधरत्वचा तिरस्कृतः ॥३२॥

अनुवाद— इन्द्र द्वारा अत्यन्त वेगपूर्वक चलाया गया तेजस्वी वज्र, नमुचि के चमड़े को भी नहीं काट सका, यह एक आश्चर्य जनक घटना हुई । इन्द्र के इसी वज्र ने महाबली वृत्रासुर को काट दिया था उस वज्र को नमुचि के गरदन की त्वचा ने तिरस्कृत कर दिया ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अतिवीर्यं वृत्रमभिनदिति तथा ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त पराक्रमी वृत्रासुर को काट दिया था ॥३२॥

तस्मादिन्द्रोऽबिभेच्छत्रोर्वज्रः प्रतिहतो यतः । किमिदं दैवयोगेन भूतं लोकविमोहनम् ॥३३॥

अन्वयः— यतः वज्रः प्रतिहतः तस्मात् इन्द्रः शत्रोः अविभेत् दैव योगेन इदं लोकविमोहनम् किम् भूतम् ॥३३॥

अनुवाद— चूकि नमुचि ने वज्र का तिरस्कार कर दिया अतएव उस शत्रु से इन्द्र यह शोचकर डर गये कि यह संसार को आश्चर्य में डाल देने वाली दैवयोग को यह घटना कैसे हो गयी ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

येन मे पूर्वमद्रीणां पक्षच्छेदः प्रजात्यये । कृतो निविशतां भारैः पतत्रैः पततां भुवि ॥३४॥

अन्वयः— येन में पूर्वम् प्रजात्यये अद्रीणां पत्तत्रैः भारैः पतताम् भुविनिविशतां पक्षच्छेदः कृतः ॥३४॥

अनुवाद— इस वज्र से ही पूर्व काल में अपने पङ्खो से उड़ने वाले और भार के कारण पृथिवी पर गिर जाने के कारण प्रजाओं का क्षय होने से पर्वतों के पङ्ख को काट दिया था ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

तथा पतत्रैः पक्षैः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

पङ्खो से उड़ने वाले ॥३४॥

तपः सारमयं त्वाष्ट्रं वृत्रो येन विपाटितः । अन्ये चापि बलोपेताः सर्वास्त्रैरक्षतत्वचः ॥३५॥

अन्वयः— त्वाष्ट्रं तपः सारमयं वृत्रः येन विपाटितः अन्ये चापि सर्वास्त्रैः अक्षतत्वचः बलोपेताः विपाटितः ॥३५॥

अनुवाद— त्वष्टा की तपस्या के सार स्वरूप वृत्रासुर को मैंने जिस वज्रसे काट दिया तथा दूसरे जिनकी त्वचा किसी भी शास्त्र से क्षत नहीं हुई थी उन बलवानों को भी मैंने इससे मार दिया ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

सारमयं वीर्याधिकं त्वाष्ट्रं तप एव वृत्रः स येन वज्रेण मया विपाटितः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

त्वष्टा के तप के सार स्वरूप अत्यन्त बलवान् वृत्रासुर को मैने इसी व्रज से मार दिया ॥३५॥

सोऽयं प्रतिहतो वज्रो मया मुक्तोऽसुरेऽल्पके । नाहं तदाददे दण्डं ब्रह्मतेजोऽपकारणम् ॥३६॥

अन्वयः— सोऽयं वज्र मया अल्पके असुरे मुक्तः प्रतिहतः तद् दण्डं अहं न आददे ब्रह्मतेजोऽपि अपकारणम् ॥३६॥

अनुवाद— वहीं मेरा वज्र इस छोटे से असुर पर मेरे द्वारा प्रहार किए जाने पर भी व्यर्थ हो गया अतएव अब मै इसको धारण नहीं करूँगा । ब्रह्मतेज से युक्त होने पर भी यह व्यर्थ हो गया ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

दण्डं लगुडतुल्यं कुलिशम् । ब्रह्मतेजो दधीचेः सामर्थ्यम् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

लाठी के समान इस वज्र को । **ब्रह्मतेजः** अर्थात् दधीची का सामर्थ्य ॥३६॥

इति शक्रं विषीदन्तमाह वागशरीरिणी । नायं शुष्कैरथो नार्द्रैर्वधमर्हति दानवः ॥३७॥

अन्वयः— इति विषीदन्तं शक्रं अशरीरिणी वाक् आह अथो अयं दानवः नशुष्कैः नार्द्रैः वधम् अर्हति ॥३७॥

अनुवाद— इस तरह से विषाद करने वाले इन्द्र से आकाशवाणी ने कहा यह दानव न तो शुष्क से और न आर्द्र से मर सकता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

मयाऽस्मै यद्वरो दत्तो मृत्युर्नैवार्द्रशुष्कयोः । अतोऽयश्चिन्तनीयस्त उपायो मघवन् रिपोः ॥३८॥

अन्वयः— हे मघवन् मया यत् अस्मैवरः दतः मृत्युः नैवार्द्र शुष्कयोः अतः रिपोः अन्यः उपायः ते चिन्तनीयः॥३८॥

अनुवाद— इन्द्र मैंने इसको वरदान दिया है कि तुम्हारी मृत्यु न तो शुष्क से होगी और न आर्द्र से होगी। अतएव आपको शत्रु को मारने के लिए दूसरा उपाय सोचना चाहिए ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

आर्द्रशुष्काभ्यां मृत्युर्नैवेति ॥३८॥

तां दैवीं गिरमाकर्ण्य मघवान्सुसमाहितः । ध्यायन्फेनमथापश्यदुपायमुभयात्मकम् ।।३९।।

अन्वयः— अथ तां दैवी गिरम् आकर्ण्य सुसमाहितः मघवान् ध्यायन् अथ उभयात्मक उपायम् फेनम् अपश्यत्।।३९।।

अनुवाद— उस आकाशवाणी को सुनकर एकाग्रमन से चिन्तन करते हुए इन्द्र ने फेन को न शुष्कनआर्द्र देखा ।।३९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३९।।

न शुष्केण न चार्द्रेण जहार नमुचेः शिरः । तं तुष्टुवुर्मुनिगणा माल्यैश्चावाकिरन्विभुम् ।।४०।।

अन्वयः— न शुष्केण न चार्द्रेण नमुचेः शिरः जहार । तं विभुम् मुनिगणाः तुष्टुवुः माल्यै च अवाकिरन् ।।४०।।

अनुवाद— इन्द्र ने उस नशुष्क न आर्द्र फेन से नमुचि के शिर को काट दिया । मुनियों ने इन्द्र की स्तुति की और उन पर पुष्पों की वर्षा की ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

उभयात्मकत्वमेवाह-न शुष्केण न चार्द्रेण फेनेन । तथा च श्रुतिः- 'अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवतेयत्' इति ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

सूखा और गीला दोनों बतलाते हैं । न शुष्क न आर्द्र फेन से श्रुति भी कहती है । अपांफेनेन न मुचेः शिर इन्द्रो दवतेयत् । जल के फेन से इन्द्र ने नमुचि के शिर को काटा ।।४०।।

गन्धर्वमुख्यौ जगतुर्विश्वावसुपरावसू । देवदुन्दुभयो नेदुर्नर्तक्यो ननृतुर्मुदा ।।४१।।

अन्वयः— गन्धर्व मुख्यौ विश्वावसुविभावसू जगतुः देवदुन्दुभयोनेदुः नर्तक्यः मुदा ननृतुः ।।४१।।

अनुवाद— गन्धर्वों में मुख्य विश्ववावसु और विभासु दोनों ने गीत गाया, देवताओं ने दुन्दुभि बजायी और नर्तकियों ने नृत्य किया ।।४१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४१।।

अन्येऽप्येवं प्रतिद्वन्द्वान्वाय्वग्निवरुणादयः । सूदयामासुरस्त्रौघैर्मृगान्केसरिणो यथा ।।४२।।

अन्वयः— अन्ये अपि वाय्वग्निवरुणादयः प्रतिद्वन्द्वान् मृगान् केसरिणो यथा अस्त्रत्रौघैः सूद्रयामासुः ।।४२।।

अनुवाद— दूसरे भी वायु, अग्नि तथा वरुण आदि देवता भी जिस तरह सिंह मृगों को मार देते हैं उसी तरह अस्त्र समूह से अपने प्रतिद्वन्द्वियों को मार दिये ।।४२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४२।।

ब्रह्मणा प्रेषितो देवान्देवर्षिर्नारदो नृप । वारयामास विबुधान् दृष्ट्वा दानवसंक्षयम् ।।४३।।

अन्वयः— दानवसंक्षयं दृष्ट्वा ब्रह्मणा नारदः देवान् प्रेषितः विवुधान् वारयामास ।।४३।।

अनुवाद— दानवों का विनाश देखकर ब्रह्माजी ने नारदजी को उनके पास भेजा और उन्होंने देवताओं को युद्ध करने से रोक दिया ।।४३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४३।।

नारद उवाच

भवद्भिरमृतं प्राप्तं नारायणभुजाश्रयैः । श्रिया समेधिताः सर्व उपारमत विग्रहात् ।।४४।।

अन्वयः— नारायण भुजाश्रयैः भवद्भिः अमृतं प्राप्तं श्रिया समेधिताः सर्वे विग्रहात् उपारमत ।।४४।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् नारायण की भुजाओं के आश्रय में रहने वाले आपलोगों ने अमृत प्राप्त किया और लक्ष्मीजी ने भी आपलोगों की समृद्धि कृपा करके की है अब आप सभी युद्ध करना बन्द कर दें ।।४४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४४।।

श्रीशुक उवाच

संयम्य मन्युसंरम्भं मानयन्तो मुनेर्वचः । उपगीयमानानुचरैर्ययुः सर्वे त्रिविष्टपम् ।।४५।।

अन्वयः— मन्युः संरम्भं संयम्य मुनेः वचनं मानयन्तः अनुचरैः उपगीयमानाः सर्वे त्रिविष्टपम् ययुः ।।४५।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— देवताओं ने अपने क्रोध के वेग को शान्त कर दिया और देवर्षि नारदजी की बात मान ली। वे सबके सब स्वर्गलोक में चले गये । उस समय उनके अनुचर उनका यशोगान कर रहे थे ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

अनुचरैरनुगीयमाना इत्यर्थः । उपगीयमानैरनुचरैः सहेति वा ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

अनुचरों द्वारा उन सबों का यशगान किया जा रहा था । अथवा यशोगान करने वाले अनुचरों के साथ ।।४५।।

येऽवशिष्टा रणे तस्मिन्नारदानुमतेन ते । बलिं विपन्नमादाय अस्तं गिरिमुपागमन् ।।४६।।

अन्वयः— ये तस्मिन् रणे अवशिष्टा; नारदानुमतेन विपन्नं बलिम् आदाय अस्तं गिरिम् उपागमन् ।।४६।।

अनुवाद— युद्ध में जो दैत्य बच गये थे वे नारदजी की सम्मति से मरे हुए बलि को लेकर अस्ताचल चले गये ।।४६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४६।।

तत्राविनष्टावयवान्विद्यमानशिरो धरान् । उशना जीवयामास संजीविन्या स्वविद्यया ।।४७।।

अन्वयः— तत्र अविनष्ट अवयवान् विद्यमान शिरोधरान् उशना संजीविन्या विद्यया जीवयामास ।।४७।।

अनुवाद— जिन दैत्यों के अङ्ग विनष्ट नही हुए थे तथा जिनकी गरदन इत्यादि थे उन दैत्यों को शुक्राचार्य ने अपनी संजीवनी विद्या से जीवित कर दिया ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

अविनष्टा अवयवा येषाम् विद्यमाना शिरोधरा येषां तान् ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

जिनके अङ्ग विनष्ट हे गये थे तथा जिन दैत्यों की गरदन थी उन दैत्यों को जीवित कर दिए ।।४७।।

बलिश्चोशनसा स्पृष्टः प्रत्यापन्नेन्द्रियस्मृतिः । पराजितोऽपि नाखिद्यल्लोकतत्त्वविचक्षणः ।।४८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे देवासुरसंग्रामे एकादशोऽध्यायः ।।११।।

अन्वयः— लोक तत्त्वविचक्षणः बलिः उशनसा स्पृष्टः बलिः प्रत्यापन्नेन्द्रियस्मृतिः पराजितः अपि न अखिद्यत।।४८।।

अनुवाद— लोकतत्त्व के निपुण ज्ञाता बलि के शुक्राचार्य के स्पर्श करते ही उनकी इन्द्रियों में चेतना और मन में स्मरण शक्ति आ गयी । वे पराजित होने पर भी शोक संतप्त नहीं हुए ॥४८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के देवासुर संग्राम के प्रकरण में ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११।।

भावार्थ दीपिका

प्रत्यापन्नानि पुनः प्राप्तानीन्द्रियाणि स्मृतिश्च येन सः ।।४८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां एकादशोऽध्यायः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्रियों में चेतना और मन में स्मरण शक्ति फिर आ गयी ॥४८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के ग्यारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।११।।

बारहवाँ अध्याय

श्रीभगवान् के मोहिनी रूप को देखकर शङ्करजी का मोहित होना

श्रीबादरायणिरुवाच

वृषध्वजो निशम्येदं योषिद्रूपेण दानवान् । मोहयित्वा सुरगणान्हरिः सोममपाययत् ॥१॥

अन्वयः— हरिः योषित रूपेण दानवान मोहयित्वा सुरगणान् सोममपाययत् इदं निशम्य वृषध्वजः ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— श्रीहरि ने स्त्री का रूप धारण करके दानवों को मोहित करके देवताओं को अमृत पिला दिया इस बात को सुनकर श्रीशङ्करजी ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशे मोहिनीरूपविभ्रमालोकनोत्सुकम् । भवं संमोहयामास हरिः पुनरसान्त्वयत् । अमुह्यन्नसुरा विष्णुमायया न तदद्भुतम् । इति वक्तुं महादेवमोहोऽयमुपवर्ण्यते । हरिः सोममपाययदितीदं निशम्य स यत्रास्ते तत्र तद्रूपं द्रष्टुं ययावित्युत्तरेणान्वयः।।१।।

भाव प्रकाशिका

बारहवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि भगवान् के मोहिनी रूप के विलास को देखने के लिए उत्सुक शङ्करजी को श्रीहरि ने मोहित कर दिया और बाद में उन्होंने उनको सान्त्वना प्रदान की । भगवान् विष्णु की माया असुर मोहित हो गये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । इस बात को बतलाने के लिए यह शङ्करजी का मोह वर्णित है । श्रीहरि ने देवताओं को अमृत पिलाया इस बात को सुनकर जहाँ भगवान् थे वहाँ उस रूप को देखने के लिए गये । इस तरह से आगे के श्लोक से अन्वय है ॥१॥

वृषमारुह्य गिरिशः सर्वभूतगणैर्वृतः । सह देव्या ययौ द्रष्टुं यत्रास्ते मधुसूदनः ॥२॥

अन्वयः— गिरिशः देव्यासह वृषम् आरुह्य सर्वभूतगणैः वृत यत्र मधुसूदनः आस्ते द्रष्टुं ययौ ॥२॥

अनुवाद— शङ्करजी पार्वती देवी के साथ बैल पर सवार होकर सभी भूतों के साथ जहाँ पर भगवान् मधुसूदन निवास करते थे वहाँ उनका दर्शन करने के लिए गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

सभाजितो भगवता सादरं सोमया भवः । सूपविष्ट उवाचेदं प्रतिपूज्य स्मयन्हरिम् ॥३॥

अन्वयः— सोमया भवः भगवता सभाजितः सूपविष्ट प्रतिपूज्य स्मयन् हरिम् इदम् उवाच ॥३॥

अनुवाद— पार्वतीजी के साथ विद्यमान भगवान् शङ्करजी का श्रीहरि ने बड़े प्रेम पूर्वक समादर किया । शङ्करजी भी बैठकर श्रीभगवान् का समादर करके मुस्कुराते हुए कहे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

सोमया उमया सह ॥३॥

भाव प्रकाशिका

पार्वतीजी के साथ ॥३॥

श्रीमहादेव उवाच

देवदेव जगद्व्यापिन् जगदीश जगन्मय । सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः ॥४॥

अन्वयः— हे देव देव जगद्व्यापिन् जगदीश, जगन्मय सर्वेषाम् अपि भावानाम् त्वम् आत्मा हेतुः ईश्वरः ॥४॥

श्रीमहादेवजी ने कहा

अनुवाद— हे देवताओं के भी आराध्य देव ! आप सम्पूर्ण जगत् में व्यापक, जगत् के स्वामी एवं जगत्स्वरूप हैं । आप सम्पूर्ण चराचर जगत् की आत्मा, कारण और ईश्वर हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

'त्वयि किंचिन्न चाश्चर्यं वयं त्वाश्चर्यमानसाः । इति वक्ष्यन्महादेवस्तुष्टाव हरिमष्टभिः' इति । त्वयि महामायाविनि परमेश्वरे नहि किंचिदघटितमिव, वयं तु परमकौतूहलेन द्रष्टुमागता इति बहुधा संबोधयन्स्तौति । हे देवदेव । कुतोऽहं देव इत्यत आह- हे जगद्यवापिन् । तत्कुतः । हे जगन्मय । तर्हि किं प्रधानम्, हे जगदीश । तच्च कुतस्तत्राह-सर्वेषामपि त्वं हेतुः अत ईश्वरः आत्मत्वाच्च न जडं प्रधानं त्वमित्यर्थः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

आपमें कुछ भी नहीं है यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है किन्तु हमलोगों को आश्चर्य होता है । इस तरह कहते हुए महादेवजी ने आठ श्लोकों से श्रीहरि की स्तुति की है । आप तो महामाया सम्पन्न हैं । आपमें कुछ भी असम्भव नहीं है । हमलोग तो अत्यधिक कौतूहल वशात् आपका दर्शन करने के लिए आये हैं । इस तरह से अनेक प्रकार से संबोधित करते हुए श्रीभगवान् की स्तुति करते हैं । हे देवताओं के देव ! श्रीभगवान् कहें कि मैं कैसे देव हूँ तो इस पर शङ्करजी कहते है हे जगत् में व्यापक रूप से रहने वाले । भगवान् ने कहा यह कैसे? इस पर शङ्करजी कहते हैं हे जगत् स्वरूप ! भगवान् ने कहा क्या मैं प्रधान (प्रकृति) हूँ । शङ्करजी ने कहा नही, आप तो जगत् के स्वामी है । यदि आप कहें कि वह भी कैसे ? इस पर शङ्करजी ने कहा आप सबों के मूल कारण हैं, अतएव ही ईश्वर (सबों के नियामक) हैं । सम्पूर्ण जगत् की आत्मा होने के कारण आप जड़ प्रधान (प्रकृति) नहीं है ॥४॥

दमन्यदहं बहिः । यतोऽव्ययस्य नैतानि तत्सत्यं ब्रह्म चिद्भवान् ॥५॥

आद्यन्तौ मध्यम् इदम् अन्यद् अहं बहिः यतः अव्ययस्य एतानि न तत् सत्यं ब्रह्म चिद् भवान्॥५॥

ात् के आदि, अन्त और मध्य आप से ही होते हैं । किन्तु आप आदि अन्त और मध्य
नाशी स्वरूप में द्रष्टा दृश्य भोक्ता और भोग्य का भाव नहीं है । वस्तुतः आप सत्य

भावार्थ दीपिका

जगत उत्पत्त्यादिनाऽसत्यत्वेन जाड्येन च ममापि किं तथात्वं ब्रूषे-नहि नहीत्याह-आद्यन्तौ मध्यं
न्ति । यस्य चाव्ययस्यैतान्याद्यन्तमध्यानि न सन्ति । यच्च ब्रह्म, इदंकारास्पदं दृश्यम्, अहङ्कारास्पदं
च, तत्सत्यं च चिद्रूपं च ब्रह्मैव भवान् । अतो न तव विकारादिशङ्केत्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

आप मुझे जगन्मय (जगत् स्वरूप) कहते हैं तो जगत् की तो उत्पत्ति इत्यादि होने के
था जड़ है, क्या आप मुझे भी असत्य और जड़ कह रहे हैं ? शङ्करजी ने कहा नहीं-
प्राय है कि इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार आप से ही होते हैं । और आप
ापके आदि मध्य और अन्त नहीं होते हैं । आप ब्रह्म हैं । इदं शब्द से कहे जाने वाला
ब्द से कहा जाने वाला जो द्रष्टा है ये सभी भोक्ता एवं भोग्य आप से बाहर हैं । आप
ज्ञान मात्र) ब्रह्म ही हैं । अतएव आपमें विकार आदि की शङ्का नहीं की जा सकती है॥५॥

श्रेयस्कामा निराशिषः । विसृज्योभयतः सङ्गं मुनयः समुपासते ॥६॥

कामा निराशिषः मुनयः उभयतः सङ्गं विसृज्य तवैवचरणाम्भोजं समुपासते ॥६॥

ग चाहने वाले निष्काम मुनिगण इस लोक और परलोक से आसक्ति का परित्याग करके
ों की उपासना करते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

णामाचारः प्रमाणामित्याह-तवैवेति । उभयत इहामुत्र च सङ्गं त्यक्त्वा ॥६॥

भाव प्रकाशिका

में मुमुक्षु पुरुषों का आचरण ही प्रमाण है । इस बात को **तवैव० इत्यादि** श्लोक से
अर्थात् इस लोक और परलोक की आसक्ति का परित्याग करके आपके चरण कमलों की

पूर्णममृतं विगुणं विशोकमानन्दमात्रमविकारमनन्यदन्यत् ।
हेतुरुदयस्थितिसंयमानामात्मेश्वरश्च तदपेक्षतयाऽनपेक्षः ॥७॥

अमृतं विगुणं विशोकम् पूर्णं ब्रह्म आनन्दमात्रम्, अविकारम् अनन्यदन्यत् विश्वस्य उदय स्थितिं
तदपेक्षतयानपेक्षः ॥७॥

अमृत स्वरूप समस्त प्राकृत गुणों से रहित, शोक से रहित स्वयं परिपूर्ण ब्रह्म हैं । आप
ं तथा निर्विकार हैं । आप से भिन्न कुछ भी नहीं है फिर भी अप सबों से भिन्न हैं । आप
त्त स्थिति एवं संयम के कारण हैं । आप सभी जीवों के शुभाशुभ कर्मों का फल देने

वाले हैं स्वामी है । किन्तु यह भी जीवों की अपेक्षा से ही कहा जाता है । वस्तुत: आप सबों की अपेक्षा रहित और निरपेक्ष हैं ।।७।।

भावार्थ दीपिका

ननु ब्रह्मैव चेदहं तर्ह्यसङ्गोदासीनस्य मम चरणाम्भोजोपासनया किं तेषां तत्राह-त्वमिति । ब्रह्मत्वेऽपि त्वं नात्यन्तमुदासीन: किंतु विश्वस्य प्रपञ्चस्योदयादीनां हेतु:-तदुपाधीनामात्मनां जीवानामीश्वरश्च तत्तत्फलदाता । तर्हि किं राजादिवत्कयाप्यपेक्षया सेवकेभ्य: फलं ददामि, नहि नहि, अनपेक्ष एव त्वम् । तर्हि किमीश्वरत्वेन तत्राह-तैरात्मभिस्तत्फलदानार्थमपेक्ष्यत इति तदपेक्षस्तस्य भावस्तदपेक्षता तया । अनपेक्षत्वमेव दर्शयितुं तदीयं ब्रह्मत्वं विशिनष्टि- पूर्णममृतं च सुखरूपम् । विषयसुखवैलक्षण्यार्थमाह-अविकारं नित्यमानन्दमात्रं च । कुत: विशोकम् । तत्कुत: । विगुणम् । किंच अनन्यत् । न विद्यतेऽन्यद्यस्मात्, ब्रह्मव्यतिरिक्ताभावादपि निरपेक्षस्त्वमित्यर्थ: । तर्हि सर्वात्मकत्वे तत्तद्विकारप्रसङ्गो दुर्वारस्तत्राह-अन्यत्सर्वतो व्यतिरिक्तं च, कारणत्वात् । नह्येवंभूतसुखात्मकब्रह्मस्वरूपस्य तवान्यापेक्षास्ति । अत: केवलं भक्तानुग्रहार्थमेव तवैश्वर्यं न स्वार्थमित्यर्थ: ।।७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा कि यद्यपि मैं ब्रह्म हूँ फिर भी मैं अनासक्त और उदासीन हूँ । इस तरह के मेरे चरणों की उपासना करने से मुमुक्षु पुरुषों को कौन सा लाभ है ? इस पर शङ्करजी **त्वंब्रह्म इत्यादि** श्लोक कहते हैं— ब्रह्म होने पर भी आप अत्यन्त उदासीन नहीं है अपितु आप सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति आदि के कारण हैं और उस उपाधि से युक्त जीवों के शुभाशुभ कर्मो का फल प्रदान करने वाले ईश्वर हैं । तो क्या मैं राजाओं आदि के समान, किसी अपेक्षा से सेवकों को फल प्रदान करता हूँ । इस पर शङ्करजी कहते हैं कि ऐसी बात नहीं है आप निरपेक्ष ही रहकर फल प्रदान करते हैं । तो फिर इस प्रकार के ईश्वरत्व से कौन सा लाभ है ? इस पर कहते हैं— उन आत्माओं को कर्म फल प्रदानार्थ आप अपेक्षित हैं । श्रीभगवान् की अनपेक्षता को ही बतलाने के लिए शङ्करजी श्रीभगवान् के ब्रह्मत्व के विरलेषित करते हैं । आप पूर्ण अमृत अर्थात् सुख स्वरूप हैं । उस सुख की विषय सुख से भिन्नता बतलाने के लिए कहते हैं । आप अविकार अर्थात् नित्य आनन्द स्वरूप है । क्योंकि आप शोक से रहित हैं । वह कैसे ? तो कहते हैं आप प्राकृतिक गुणों से रहित हैं । और आप अनन्यत है अर्थात् आप से भिन्न कुछ भी नही है । ब्रह्म व्यतिरिक्त वस्तु का अभाव होने के कारण भी आप निरपेक्ष हैं । यदि कहें कि तब तो सर्वात्मक होने पर तो उन वस्तुओं में होने वाले विकार भी मुझमें होंगे ? तो इस पर कहते हैं कि सबों का कारण होने से आप सबों से भिन्न हैं । इस प्रकार के सुखस्वरूप आप को किसी दूसरे की अपेक्षा है ही नहीं । अतएव केवल भक्तों पर कृपा करने के लिए आपका ऐश्वर्य है, अपने लिए नहीं ।।७।।

एकस्त्वमेव सदसद्द्वयमद्वयं च स्वर्णं कृताकृतमिवेह न वस्तुभेद: ।
अज्ञानतस्त्वयि जनैर्विहितो विकल्पो यस्माद्गुणव्यतिकरो निरुपाधिकस्य ।।८।।

अन्वय:— त्वमेव एक: सद् असत् इयम् अद्वयं च कृताकृतस्वर्णमिव इह वस्तुभेद: न । जनै: अज्ञानत: त्वयि विकल्प: विहित:, यस्मात् निरुपाधिकस्य गुण व्यतिकर: ।।८।।

अनुवाद—हे प्रभो ! कार्य और कारण, द्वैत और अद्वैत जो कुछ भी है, वह आप ही हैं, यह वैसे ही है जैसे आभूषण के रूप में स्थित सुवर्ण और मूल रूप में स्थित सुवर्ण में कोई भेद नहीं होता है । आपके वास्तविक स्वरूप को नहीं जानने के कारण आपमें अनेक प्रकार के भेदभाव और विकल्पों की कल्प ना लोगों ने कर दी है । यही कारण है कि आपमें किसी भी प्रकार की उपाधि नहीं होने पर भी गुणों को लेकर भेद की प्रतीति होती है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

अन्यत्वमनन्यत्वं चैकस्य कुत इत्याशङ्क्य दृष्टान्तेनोपपादयति-सदसत्कारणरूपं द्वयमद्वयं च परमकारणं त्वमेवैकः । कृतं कुण्डलादिरूपं द्वयमकृतं च केवलमद्वयं स्वर्णं यथैकमेव तद्वदेवेह त्वयि वस्तुतो भेदो नास्ति । कथं तर्हि भेदप्रतीतिस्तत्राह-अज्ञानत इति । कुतः यस्मान्निरूपाधिकस्यैव तवायं गुणैर्व्यतिकरो भेदो न स्वतः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मैं तो एक हूं, मुझमें अन्यता और अनन्यता दोनों कैसे रह सकते हैं ? इस प्रकार की आशङ्का करके शङ्करजी दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहते हैं- एक ही आप कारण रूप और परम कारण रूप भी हैं । जिस तरह दो कुण्डलों के रूप में विद्यमान सुवर्ण और अपने मूल रूप से विद्यमान सुवर्ण में जिस तरह कोई अन्तर नहीं होता है, उसी तरह । तो प्रश्न होता है कि तो फिर भेद की प्रतीति कैसे होती है ? इस पर कहते हैं अज्ञान के कारण क्योंकि उपाधियों से रहित आपका गुणों के भेद के कारण है, स्वाभाविक भेद नहीं है॥८॥

त्वां ब्रह्म केचिदवयन्त्युत धर्ममेक एके परं सदसतोः पुरुषं परेशम् ।
अन्येऽवयन्ति नवशक्तियुतं परंत्वां केचिन्महापुरुषमव्ययमात्मतन्त्रम् ॥९॥

अन्वयः— केचित् त्वं ब्रह्म अवयन्ति उतधर्ममेके एके सदसतोः परं परेशम् पुरुषम् अन्ये नवशक्ति युक्तं परं त्वां अवयन्ति केचित् महापुरुषम् अव्ययम् आत्मतन्त्रम् मन्यन्तेइतिशेषः ॥९॥

अनुवाद— कुछ लोग आपको ब्रह्म जानते है, एक प्रकार के लोग आपको धर्म मानते हैं । कोई आपको प्रकृति एवं पुरुष से परे परमेश्वर मानते हैं । तो कोई आपको नव शक्तियों से युक्त, परम पुरुष मानते हैं, कोई आपको क्लेश, कर्म और उनके परिणाम तथा वासना से रहित परम पुरुष मानते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अतएव त्वां बहुधा वर्णयन्ति तत्त्वतस्तु केऽपि न जानन्तीत्याह द्वाभ्याम् । त्वां ब्रह्म वेदान्तिनोऽवयन्ति मन्यन्ते । त्वामेव धर्मं मीमांसका मन्यन्ते । प्रकृतिपुरुषयोः परं पुमांसं सांख्याः । विमलोत्कर्षणी ज्ञाना क्रिया योगा प्रह्वी सत्या ईशाना अनुग्रहा चेत्येवं नवशक्तियुतं परं पाञ्चरात्राः । महापुरुषं पातञ्जलाः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

यही कारण है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के विचारक आपका वर्णन भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं । वास्तविकता है कि इनमें से कोई भी आपको तत्त्वतः नहीं जानता है । इस बात को **त्वंब्रह्म इत्यादि** दो श्लोकों से कहा गया है । वेदान्ती गण आपको ब्रह्म मानते हैं, मीमांसक आपको ही धर्म कहते हैं, सांख्य मतावलम्बी आपको प्रकृति और पुरुष से परे मानते हैं, पाञ्चरात्रानुयायी आपको विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी सत्या ईशाना और अनुग्रह इन नव शक्तियों से युक्त परं पुरुष मानते हैं । योग मतानुयायी आपको महापुरुष कहते हैं ॥९॥

नाहं परायुर्ऋषयो न मरीचिमुख्या जानन्ति यद्विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः ।
यन्मायया मुषितचेतस ईश दैत्यमर्त्यादयः किमुत शश्वदभद्रवृत्ताः ॥१०॥

अन्वयः— अहं परायुः मरीचिमुख्याः ऋषयः यत् खलु सत्त्वसर्गाः विरचितम् न जानन्ति, यन्मायया मुषितचेतसः दैत्यमर्त्यादयः शश्वदभद्रवृत्ताः, किमुत ॥१०॥

अनुवाद— हे प्रभो ! मैं ब्रह्मा तथा मरीचि आदि ऋषिगण जो सात्त्विक सृष्टि के अन्तर्गत हैं आपको नहीं जान पाते हैं तो जिन लोगों का अन्तःकरण आपकी माया से मोहित है जो असुर और मनुष्य हैं जो सदा राजसी एवं तामसी कर्मों को करते रहते हैं वे क्या आपको जान पायेंगे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

परायुर्ब्रह्मा । सत्त्वसर्गाः सत्त्वगुणेन स्रष्टा अपि येन त्वया विरचितं विश्वमपि खलु तत्त्वतो न जानन्ति, किं पुनस्त्वाम्। हे ईश, अभद्रं राजसं तामसं च वृत्तमुत्पत्तिर्येषां ते न जानन्तीति किमु वक्तव्यम् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

परायु: अर्थात् ब्रह्माजी जो सत्त्वगुण द्वारा सृष्ट हैं, फिर भी आपके द्वारा निर्मित विश्व को भी तत्त्वत: नहीं जान पाते हैं तो फिर अन्य के जानने की कौन बात है । हे भद्र प्रभो जिनकी उत्पत्ति ही राजस एवं तामस हैं वे मनुष्य और आपको क्या जानेंगे ।।१०।।

स त्वं समीहितमदः स्थितिजन्मनाशं भूतेहितं च जागतो भवबन्धमोक्षौ ।
वायुर्यथाविशति खं च चराचराख्यं सर्वं तदात्मकतयाऽवगमोवरुन्त्से ।।११।।

अन्वयः— स त्वं अदः समीहितम् स्थिति जन्मनाशं भूतेहितम् भवबन्धमोक्षौ अवरुत्से, यथावायुः खं च चराचराख्यं विशति तथैव एव चराचराख्यं सर्वं तदात्मकतपा अवगमः अवरुत्से ।।११।।

अनुवाद— इस प्रकार से आप इस सम्पूर्ण जगत् की चेष्टाओं इसकी सृष्टि स्थिति और नाम प्राणियों के कर्म संसार के बन्ध और मोक्ष इन सबों को जानते हैं । जिस तरह वायु अदृश्य रहकर आकाश और सम्पूर्ण जगत् में व्यापक उसी तरह ज्ञान स्वरूप तथा सर्वात्मस्वरूप आप अदृश्य रहकर सबकुछ जानते हैं और सबों में व्यापक हैं ।।११।।

भावार्थ दीपिका

किंतु त्वं तत्सर्वं जानासीत्याह-स त्वं सर्वमवरुत्से व्याप्नोषि जानासि । किं तत्सर्वम् । समीहितं स्वकृतमदः स्थितिजन्मनाशममुष्य जगतो जन्मादि भूतानामीहितं च जगतो भवबन्धमोक्षौ च । व्याप्तौ दृष्टान्तः-चराचराख्यं देहजातं खं च यथा वायुराविशति तथा । कथमवरुत्से। तदात्मकतया तस्य सर्वस्यात्मतयेत्यर्थः। आत्मत्वे हेतुः-अवगमो ज्ञानरूप इति।।११।।

भाव प्रकाशिका

किन्तु आप इन सबों को जानते हैं । ऐसे आप सबमें व्यापक है । सर्व शब्द से कहे जाने वाला क्या है? तो उसे बतलाते है । आपने ही जिसका निर्माण किया है, उस जगत् की सृष्टि स्थिति और नाश को संसार के बन्धन और मोक्ष को परमात्म की व्याप्ति में दृष्टान्त बतलाते हैं चराचर देह समूह तथा आकाश दोनों में जैसे वायु प्रविष्ट है उसी तरह सर्वात्मा होने के कारण आप सबों में व्याप्त हैं और सबों को जानते हैं । आत्मा होने का कारण है कि आप ज्ञान स्वरूप हैं ।।११।।

अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः । सोऽहं तद्द्रष्टुमिच्छामि यत्ते योषिद्वपुर्धृतम् ।।१२।।

अन्वयः— गुणैः रममाणस्य ते अवताराः मया दृष्टाः सोऽहम् तद् द्रष्टुम् इच्छामि यत् ते योषिद् वपुः धृतम् ।।१२।।

अनुवाद— गुणों को स्वीकार करके जब अनेक अवतारों को धारण करते हैं, उन अवतार का मैंने दर्शन किया है, अब मैं आपके उस अवतार को देखना चाहता हूँ जिस अवतार में आपने स्त्री का शरीर धारण किया था ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

एवं स्तुत्वा प्रस्तुतं विज्ञापयति-अवतारा इति द्वाभ्याम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से स्तुति करके जो कहना है उसको **अवतारा० इत्यादि** दो श्लोकों से कहते हैं ।।१२।।

येन संमोहिता दैत्याः पायिताश्चामृतं सुराः । तद्दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः ॥१३॥

अन्वयः— येन दैत्याः संमोहिताः सुराःच अमृतं पायिताः तद् दिदृक्षवः आयाताः नः हि परं कौतूहलम् ॥१३॥

अनुवाद— आपके जिस अवतार से दैत्य मोहित हो गये और देवताओं को आपने अमृत पिला दिया, आपके उसी अवतार को देखने के लिए हम सब आये हैं, उसके विषय में बहुत उत्कण्ठा है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

श्रीशुक उवाच

एवमभ्यर्थितो विष्णुर्भगवान् शूलपाणिना । प्रहस्य भावगम्भीरं गिरिशं प्रत्यभाषत ॥१४॥

अन्वयः— शूलपाणिना एवमभ्यर्थितः भगवान् विष्णु भाव गम्भीरं प्रहस्य गिरिशं प्रहत्यभाषत ॥१४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— शङ्करजी द्वारा इस तरह से प्रार्थना किए जाने पर भगवान् विष्णु गम्भीर भाव से हँसकर कहे॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

श्रीभगवानुवाच

कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो मया कृतः । पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥१५॥

अन्वयः— पीयूष भाजने गते सुर कार्याणि पश्यता मया दैत्यानां कौतूहलाय योषिद्वेषः कृतः ॥१५॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— जब दैत्यों ने अमृत का पात्र छिन लिया था उस समय देवताओं के कार्य को दृष्टि पथ में रखकर मैंने दैत्यों को मोहित करने के लिए स्त्री का वेष बना लिया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

सुराकार्याणि योषिद्वेषेण भविष्यन्तीति पश्यता । अयं भावः-अवश्यं तावदुन्मत्तान्दैत्यान्वञ्चयित्वा देवेभ्योऽमृतं देयम्, न चैवं वैषम्य रूपान्तरेण कर्तुमुचितम्, अतो वञ्चनमोहनादिसारं कामिनीरूपं मया धृतमिति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं के कार्य का होना स्त्री वेष से ही सम्भव है यह सोचकर मैंने स्त्री का वेष बना लिया । कहने का अभिप्राय है कि इन उन्मत्त दैत्यों को ठगकर देवताओं को अमृत देना आवश्यक है । इस तरह का विषम कार्य दूसरे रूप से करना उचित नहीं है अतएव जिसमें प्रवंचन की ही प्रधानता होती है उस कामनी का रूप मैंने धारण कर लिया ॥१५॥

तत्तेऽहं दर्शयिष्यामि दिदृक्षोः सुरसत्तम । कामिनां बहु मन्तव्यं सङ्कल्पप्रभवोदयम् ॥१६॥

अन्वयः— हे सुरसत्तम ! दिदृक्षोः ते तत् दर्शयिष्यामि कामिनां बहुमन्तव्यम् सङ्कल्पप्रभवोदयम् ॥१६॥

अनुवाद— हे देव शिरोमणे ! यदि आप देखना चाहते हैं तो मैं आपको वह रूप दिखाऊँगा, किन्तु वह रूप तो कामी पुरुषों के लिए समादरणीय है क्योंकि वह काम की भावना को उत्तेजित करने वाला है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तद्रूपं दर्शयिष्यामि । सङ्कल्पप्रभवः कामस्तस्योदयो यस्मात् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

उस रूप को मैं दिखाऊँगा । उस रूप से काम की भावना उत्तेजित होती है ॥१६॥

श्रीशुक उवाच

इति ब्रुवाणो भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत । सर्वतश्चारयंश्चक्षुर्भव आस्ते सहोमया ॥१७॥

अन्वयः— इति ब्रुवाणो भगवांस्तत्रैव अन्तरधीयत भवः सर्वतः चक्षुः चारयन् उमया सह आस्ते ॥१७॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से कहते हुए श्रीभगवान् वहीं पर अन्तर्धान हो गये और चारो ओर देखते हुए शङ्करजी पार्वतीजी के साथ वहीं बैठे रहे ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

ततो ददर्शोपवने वरस्त्रियं विचित्रपुष्पारुणपल्ल्वद्रुमे ।
विक्रीडतीं कन्दुकलीलया लसद्दुकूलपर्यस्तनितम्बमेखलाम् ॥१८॥

अन्वयः— ततः विचित्रपुष्पारुणपल्लवद्रुमे उपवने लसद्दुकूलपर्यस्त नितम्बमेखलाम् कन्दुक लीलया विक्रीडतीं वरस्त्रियं ददर्श ॥१८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् विभिन्न प्रकार के पुष्प और लाल-लाल पल्लवों वाले उपवन में सुन्दर साड़ी पहने हुए जिसके कमर में करधनी लटक रही थी ऐसी कन्दुक क्रीडा करती हुई एक सुन्दर स्त्री को शङ्करजी ने देखा॥१८॥

भावार्थ दीपिका

विचित्राणि पुष्पाण्यरुणाः पल्लवाश्च येषां ते द्रुमा यस्मिन् । लसद्दुकूलेन पर्यस्ते परिवृत्ते नितम्बे मेखला यस्यास्ताम्॥१८॥

भाव प्रकाशिका

विविध प्रकार के पुष्प और लाल-लाल पल्लवों से युक्त वृक्ष वाले उपवन में मनोज्ञ साड़ी से ढँकी कमर के ऊपर जिसकी करधनी लटक रही थी ॥१८॥

आवर्तनोद्वर्तनकम्पितस्तनप्रकृष्टहारोरुभरैः पदे पदे ।
प्रभज्यमानामिव मध्यतश्चलत्पदप्रवालं नयतीं ततस्ततः ॥१९॥

अन्वयः— आवर्तनोद्वर्तनकम्पितस्तन प्रकृष्ट हारोरु भरैः पदे पदे मध्यतः प्रभज्यमानामिव चलत् पदप्रवालं इत स्ततः नयतीम् ददर्श इतिशेषः ॥१९॥

अनुवाद— गेंद को उछालने और उसे पकड़ने से उसके स्तन और हार हिल रहे थे । उन सबों के भार से लगता था जैसे उसकी पतली कमर पग-पग पर टूटने से बच जाती है । वह अपने लाल-लाल पल्ल्वों के समान सुकुमार चरणों से इधर-उधर चल रही थी ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

उत्पतपतत्कन्दुकलीलावशेन ये आवर्तनोद्वर्तने नमनोन्नमने ताभ्यां कम्पितयोः स्तनयोः प्रकृष्टहाराणां चोरुभारैः प्रतिपदं मध्ये प्रभज्यमानामिव । चलत्पदमेव प्रवालवत्कोमलं ततस्ततो नयन्तीम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

गेन्द जब उछलती थी और गिरती थी उस कन्दुक क्रीडा के कारण वह जो झुकती थी और फिर सीधा खड़ी होती थी उसके कारण उसके स्तन और हार उनके अधिक भार के कारण लगता था की उसकी पतली कमर टूट जायेगी । लाल-लाल पल्लव के समान कोमल पैरों से वह इधर-उधर दौड़ रही थी ॥१९॥

दिक्षु भ्रमत्कन्दुकचापलैर्भृशं प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम् ।
स्वकर्णविभ्राजितकुण्डलोल्लसत्कपोलनीलालकमण्डिताननाम् ॥२०॥

अन्वयः— दिक्षुभ्रमत् कन्दुकचापलैः भृशं प्रोद्विग्नतारायत लोललोचनाम् स्वकर्ण विभ्राजित कुण्डलोल्लसत् कपोलनीलालकमण्डिताननाम् ददर्श ॥२०॥

अनुवाद— उछलती हुई गेन्द जब इधर-उधर जाती जाती थी तो वह उसे लपककर रोक लेती थी इसके कारण उसकी बड़ी-बड़ी आँखे कुछ उद्विग्न सी हो जाती थी । उसकी गालों पर कानों के कुण्डलों की आभा जगमगा रही थी ओर घुंघराले काले केश उन पर लटक जाते थे तो उससे उसके मुख की शोभा और बढ़ जाती थी ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

दिक्षु भ्रमतः कन्दुकस्य चापलैश्चाञ्चल्यैर्भृशं प्रोद्विग्नतारे आयते लोले चञ्चले लोचने यस्याः । स्वकर्णाभ्यां विभ्राजिते ये कुण्डले ताभ्यामुल्लसन्तौ कपोलौ ताभ्यां नीलालकैश्च मण्डितमाननं यस्याः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इधर-उधर जाते हुए गेंद की चञ्चलता से उसके नेत्रों के तारे कुछ बढ़ जाते थे और दोनो नेत्र चञ्चल हो जाते थे । कानों में सुशोभित कुण्डलों की आभा गालों पर पड़ती थी उन दोनों के साथ काले घुंघराले केश उसके मुख को अलंकृत कर देते थे ॥२०॥

श्लथद्दुकूलं कबरीं च विच्युतां संनह्यतीं वामकरेण वल्गुना ।
विनिघ्नतीमन्यकरेण कन्दुकं विमोहयन्तीं जगदात्ममायया ॥२१॥

अन्वयः— वल्गुना वामकरेण शलथद् दुकूलं विच्युतां कबरीं च सनहयन्तीम् अन्यकरेण कन्दुकं विनिघ्नन्तीम् आत्ममायया जगन्मोहयन्तीम् ॥२१॥

अनुवाद— वह अपने मनोहर बायें हाथ से शिथिल होती हुई अपनी साड़ी को और खुलती चोटी को सम्हालती थी और दाहिने हाथ से गेंद को उच्छालती हुई अपनी माया से संसार को मोहित कर रही थी ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

संनह्यन्तीं वध्नन्तीम् । जगद्विमोहयन्तीम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

संनह्यन्तीम् अर्थात् बाँधती हुई विमोहयन्तीम् विशेष रूप से मोहित करती हुई ॥२१॥

तां वीक्ष्य देव इति कन्दुकलीलयेषद्व्रीडास्फुटस्मितविसृष्टकटाक्षमुष्टः ।
स्त्रीप्रेक्षणप्रतिसमीक्षणविह्वलात्मा नात्मानमन्तिक उमां स्वगणांश्च वेद ॥२२॥

अन्वयः— इति कन्दुकलीलयेषद् व्रीडास्फुटस्मित विसृष्टकटाक्षमुष्टः स्त्री प्रेक्षणप्रतिसमीक्षणविह्वलात्मा देवः तां वीक्ष्य आत्मानम् अन्तिके उमां स्वगणान् च न वेद ॥२२॥

अनुवाद— इस तरह से कन्दुक क्रीडा करती हुई उसने कुछ सलज्ज भाव से मुस्कुराकर तिरछी नजर से शङ्करजी को देखा कि शङ्करजी का मन अपने वश में नहीं रहा । वे उसके देखने और उसके अवलोकन के रस में डूब गये । उनको न तो अपनी सुधि रही और न अपने समीप में विद्यमान उमादेवी की और न अपने गणों की सुधि रही ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तां वीक्ष्य देवः श्रीरुद्र आत्मानमन्तिके स्थितामुमां स्वगणांश्च न वेद । कथंभूतः । इति एवंभूतया कन्दुकलीलया या ईषद्व्रीडा तयाऽस्फुटं स्मितं तेन सह विसृष्टोः यः कटाक्षस्तेन मुष्टो वञ्चितः, अतएव स्वयं यत् स्त्रियाः प्रेक्षणं तया च प्रतिसमीक्षणं ताभ्यां विह्वल आत्मा मनो यस्य ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

उसको देखकर शङ्करजी अपनी समीप में बैठी हुई उमा देवी को तथा अपने गणों को भी भूल गए । कैसे शङ्करजी ? इस प्रकार की कन्दुक क्रीडा से कुछ लज्जायुक्त भाव से थोड़ा मुस्कुरा कर तथा तिरछी नजर से उसने शङ्करजी को देखकर उनका चित्त चुरा लिया । अतएव अपने जो उस स्त्री को देख रहे थे और उसने जो उनको इस प्रकार से देखा, इन दोनों के कारण उनका मन अपने वश में नहीं रहा ।।२२।।

तस्याः कराग्रात्स तु कन्दुको यदा गतो विदूरं तमनुव्रजत्स्त्रियाः ।
वासः ससूत्रं लघु मारुतोऽहरद्भवस्य देवस्य किलानुपश्यतः ।।२३।।

अन्वयः— यदा तस्याः कराग्रात् स कन्दुकः विदूरं गतः तम् अनुव्रजत् स्त्रियाः मारुतः भवस्य देवस्य अनुपश्यतः किल ससूत्रं लघु वासः अहरत् ।।२३।।

अनुवाद— जब उसके हाथ के अग्रभाग से उछलकर गेंद दूर चला गया और उसके पीछे जाती हुई उस स्त्री के सूक्ष्म वस्त्र और कमर की करधनी दोनों को शङ्करजी के देखते-ही-देखते वायु के एक झोकें ने उड़ा लिया ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

तं कन्दुकमनुव्रजन्त्याः स्त्रियाः । लघु सूक्ष्मं वास; । ससूत्रं काञ्चीसहितम् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

उस कन्दुक के तेजी से जाती हुइ उस स्त्री की झीनी साड़ी और करधनी दोनों को वायु ने उड़ा लिया ।।२३।।

एवं तां रुचिरापाङ्गीं दर्शनीयां मनोरमाम् । दृष्ट्वा तस्यां मनश्चक्रे विषज्जन्त्यां भवः किल ।।२४।।

अन्वयः— रुचिरापाङ्गीम् दर्शनीयाम् मनोरमाम् तां एवं दृष्ट्वा विषजन्त्यां तस्यां किल भवः मन; चक्रे ।।२४।।

अनुवाद— रुचिर कटाक्षों वाली देखने में मनोहर उस स्त्री को इस अवस्था में देखकर जो कुछ अधखुली आँखों से अपने को देख रही थी उसमें शङ्करजी ने अपने मन को लगा दिया ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

विपज्जन्त्यां कुञ्चितकटाक्षैरात्मानं निरीक्षमाणायाम् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

विषज्जन्त्याम् तिरछी नजरों से अपने को देखे जाने पर ।।२४।।

तयापहृतविज्ञानस्तत्कृतस्मरविह्वलः । भवान्या अपि पश्यन्त्या गतह्रीस्तत्पदं ययौ ।।२५।।

अन्वयः— तया अपहृत विज्ञानः तत्कृतस्मरविह्वलः, भवान्यापश्यन्त्या अपि गतह्रीः तत्पदं ययौ ।।२५।।

अनुवाद— उसने शङ्करजी कि विवेक को छिन लिया उसके हाव भावों से कामातुर बनें हुए शङ्करजी भवानी के सामने ही लज्जा को त्यागकर उसके पास चले गये ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

तत्पदं तस्याः समीपं ययौ ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

उसके पास चले गये ।।२५।।

सा तमायान्तमालोक्य विवस्त्रा व्रीडिता भृशम् । निलीयमाना वृक्षेषु हसन्ती नान्वतिष्ठत ।।२६।।

अन्वयः— विवस्त्रासा तम् आयान्तम् आलोक्य भृशम् व्रीडिता वृक्षेषु निलीयमाना हसन्ती नान्वतिष्ठत ।।२६।।

अनुवाद— निर्वस्त्र हुई शङ्करजी को आते हुए देखकर बहुत अधिक लज्जित हो गयी वह जाकर वृक्षों की आड़ में छिप जाती थी और हँसने लगती थी वह कहीं ठहरती नहीं थी ।।२६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२६।।

तामन्वगच्छद्भगवान्भवः प्रमुषितेन्द्रियः । कामस्य च वशं नीतः करेणुमिव यूथपः ।।२७।।

अन्वयः— प्रमुषितेन्द्रियः कामस्य च वशंनीतः भगवान् भवः यूथपः करेणुमिव ताम् अन्वगच्छत् ।।२७।।

अनुवाद— जिनकी इन्द्रियाँ अपने वश में नहीं थी और काम के परतन्त्र हुए भगवान् शङ्कर जिस तरह हाथियों का सरदार हाथिनी के पीछे दौड़ता है उसी तरह वे उसके पीछे दौड़ने लगे ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

सोऽनुव्रज्यातिवेगेन गृहीत्वाऽनिच्छतीं स्त्रियम् । केशबन्ध उपानीय बाहुभ्यां परिषस्वजे ।।२८।।

अन्वयः— सः अतिवेगेन अनुव्रज्य केशबन्धे उपानीय अनिच्छतीम् स्त्रियम् गृहित्वा बाहुभ्यां परिषस्वजे ।।२८।।

अनुवाद— वे अत्यन्त वेग से दौड़कर पीछे जूड़ा पकड़ लिए और नहीं चाहने वाली भी उस स्त्री को वे अपनी भुजाओं में कसकर उसको हृदय से लगा लिए ।।२८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२८।।

सोपगूढा भगवता करिणा करिणी यथा । इतस्ततः प्रसर्पन्ती विप्रकीर्णशिरोरुहा ।।२९।।
आत्मानं मोचयित्वाऽङ्ग सुरर्षभभुजान्तरात् । प्राद्रवत्सा पृथुश्रोणी माया देवविनिर्मिता ।।३०।।

अन्वयः— हे अङ्ग करिणा करिणी यथा भगवता उपगूढा विप्रकीर्णशिरोरुहा इतस्ततः प्रसर्पन्ती देव विनिर्मिता सा पृथुश्रोणी माया सुरर्षभ भुजान्तरात् आत्मानं मोचयित्वा प्राद्रवत् ।।२९-३०।।

अनुवाद— हे राजन जिस तरह हाथी हथिनी का आलिङ्गन करता है उसी तरह भगवान् शङ्कर के द्वारा आलिङ्गित उसके केश विखर गये थे और वह इधर-उधर खिसकर अपने को छुड़ाना चाहती थी । वस्तुतः वह भगवान् की रची हुई माया ही थी अतएव उसने किसी तरह अपने को शङ्करजी के भुजपाश से अपने को छुड़ा लिया और वेग से भागी ।।२९-३०।।

भावार्थ दीपिका

अङ्ग हे राजन् !।।२९-३०।।

भाव प्रकाशिका

अङ्ग अर्थात् हे राजन् ।।२९-३०।।

तस्यासौ पदवीं रुद्रो विष्णोरद्भुतकर्मण: । प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणेव विनिर्जित: ॥३१॥

अन्वय:— तस्य अद्भुतकर्मण: विष्णो: पदवीं वैरिणा कामेन विनिर्जित इव रुद्र: प्रत्यपद्यत ॥३१॥

अनुवाद— उस अद्भुत कर्म करने वाले भगवान् विष्णु के पीछे वैरी काम के द्वारा पराजित हुए के समान शङ्करजी दौड़ रहे थे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

तस्यानुधावतो रेतश्चस्कन्दामोघरेतस: । शुष्मिणो यूथपस्येव वासितामनुधावत: ॥३२॥

अन्वय:— वासिताम् अनुधावत: शुष्मिणो यूथपस्य इव तस्य अनुधावत: अमोघरेतस: रेत: चस्कन्द ॥३२॥

अनुवाद— कामुकी हाथिनी के पीछे दौड़ने वाले मदोन्मत हाथी के समान भगवान् विष्णु के पीछे दौड़ने वाले अमोघ वीर्य भगवान् शङ्कर का रेत: स्खलन हो गया ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मन: । तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते ॥३३॥

अन्वय:— हे महीपते यत्र यत्र मह्यां तस्य महात्मन: रेत: अपतन् तानि-तानि रूप्यस्य हेम्न: च क्षेत्राणि आसन्॥३३॥

अनुवाद— हे राजन् भगवान् शङ्कर का रेतस् (वीर्य) पृथिवी पर जहाँ-जहाँगिरा वहाँ-वहाँ सोने और चाँदी के खान हो गये ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

सरित्सरस्सु शैलेषु वनेषूपवनेषु च । यत्र क्वचासन्नृषयस्तत्र संनिहतो हर: ॥३४॥

अन्वय:— सरित् सर:सु शैलेषु वनेषु उपवनेषु यत्र क्वचऋषय: आसन् तत्र हर: सन्निहित: ॥३४॥

अनुवाद— उस स्त्री के पीछे दौड़ते हुए शङ्करजी नदियों, सरोवरों, वनों, उपवनों तथा जहाँ कहीं भी ऋषिगण थे वहाँ-वहाँ गये ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

एवं मामनुधावन् हर: सरित्सरस्सु शैलादिषु च संनिहितो बभूव ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह उस मोहिनी के पीछे दौड़ते हुए शङ्करजी नदियों, सरोवरों तथा पर्वतों आदि पर गये ॥३४॥

स्कन्ने रेतसि सोऽपश्यदात्मानं देवमायया । जडीकृतं नृपश्रेष्ठ संन्यवर्तत कश्मलात् ॥३५॥

अन्वय:— नृपश्रेष्ठ रेतसि स्कन्ने स: देवमायया आत्मानं जड़ीकृतं अपश्यत् कश्मलात् संन्यवर्तत ॥३५॥

अनुवाद— वीर्य स्खलन हो जाने के पश्चात् उन्होंने श्रीभगवान् की माया के द्वारा जड़ बना दिए गये के समान देखे और वे उस दुखद प्रसङ्ग से अलग हो गये ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३५॥

अथावगतमाहात्म्य आत्मनो जगदात्मन: । अपरिज्ञेयवीर्यस्य न मेने तदुहाद्भुतम् ॥३६॥

अन्वय:— अथ आत्मन: अपरिज्ञेय वीर्यस्य जगदात्मन: अवगतमाहात्म्य: तत् उह आरभुतंन मेने ॥३६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् अपने और जिनके पराक्रम को नहीं जान सकता है ऐसे परमात्मा की महिमा को जानकर उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

तदुह देवमायया जडीकरणम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की माया ने उनको जड़ बना दिया था ।।३६।।

तमविक्लवव्रीडमालक्ष्य मधुसूदनः । उवाच परमप्रीतो बिभ्रत्स्वां पौरुषीं तनुम् ।।३७।।

अन्वयः— तम् अविक्लम् अव्रीडम् आलक्ष्य परमप्रीतः मधुसूदनः स्वां पौरुषीं तनुम् विभ्रत् उवाच ।।३७।।

अनुवाद— शङ्करजी को विषाद तथ लज्जा से रहित देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए भगवान् मधुसूदन अपने पुरुष शरीर को धारण करके कहे ।।३७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३७।।

श्रीभगवानुवाच

दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थितः । यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यङ्ग मायया।।३८।।

अन्वयः— हे अङ्ग! विबुधश्रेष्ठ! यत् मे स्त्री रूपया मायया स्वैरं मोहितः अपि दिष्ट्या तं स्वनिष्ठां आत्मना स्थितः ।।३८।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे प्रिय ! देव शिरोमणे मेरी स्त्री रूपिणी माया से बहुत अधिक मोहित होकर भी आप सौभाग्य वशात् स्वयं ही अपनी निष्ठा में स्थित हो गये ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

स्वां निष्ठां प्रकृतिम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

स्वांनिष्ठाम् अपनी प्रकृति में ।।३८।।

को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान् । तांस्तान्विसृजतीं भावान्दुस्तरामकृतात्मभिः ।।३९।।

अन्वयः— त्वद्ऋते कः नु विषक्तः पुमान् तास्तान् भावन् सृजतिं मे अकृतात्मभिः दुस्तरां मायाम् अतिसृजेत्।।३९।।

अनुवाद— अपको छोड़कर कौन ऐसा संसारी पुरुष है जो विभिन्न भावों की रचना करने वाली तथा अजितेन्द्रिय पुरुष के लिए दुस्तर मेरी माया को पार कर जाय ।।३९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३९।।

सेयं गुणमयी माया न त्वमभिभविष्यति । मया समेता कालेन कालरूपेण भागशः ।।४०।।

अन्वयः— सेयं गुणमयी माया त्वाम् न अभिभविष्यति, कालेन मया कालरूपेण भागशः समेता ।।४०।।

अनुवाद— यह गुण स्वरूपिणी मेरी माया अब कभी आपको मोहित नहीं करेगी । सृष्टि आदि के लिए समयानुसार उसको मैं क्षुब्ध करता हूँ । मेरे अधीन रहने वाली यह माया मेरी इच्छा के विपरीत रज आदि की सृष्टि नहीं कर सकती है ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

कालेन सृष्ट्यदिनिमित्तेन । मया कालरूपेण । भागशो रजआद्यंशेन समेता मदधीना सती ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

सृष्टि आदि के कारण भूत काल के द्वारा मुझ काल स्वरूप के द्वारा, भागशः अर्थात् रजोगुण आदि अंश के साथ मेरे अधीन रहने वाली ।।४०।।

श्रीशुक उवाच

एवं भगवता राजन् श्रीवत्साङ्केन सत्कृतः । आमन्त्र्य तं परिक्रम्य सगणः स्वालयं ययौ ।।४१।।

अन्वयः— राजन् श्रीवत्साङ्केन भगवता एवं सत्कृतः तं परिक्रम्य, आमन्त्र्य सगणः स्वालयं ययौ ।।४१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! जिनके वक्षःस्थल में श्रीवत्साङ्क चिह्न है ऐसे श्रीभगवान् के द्वारा समादृत होकर शङ्करजी श्रीभगवान् की परिक्रमा करके उनसे विदा लेकर अपने गणों के साथ कैलास पर चले गये ।।४१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४१।।

आत्मांशभूतां तां मायां भवानीं भगवान्भवः । शंसतामृषिमुख्यानां प्रीत्याचष्टाथ भारत ।।४२।।

अन्वयः— हे भारत ! अथ भगवान् भवः आत्मांशभूतां तां मायाम् शंसताम् ऋषिमुख्यानां भवानीम् प्रीत्या आचष्ट।।४२।।

अनुवाद— हे भरतवंशीय राजन् परीक्षित् भगवान् शङ्कर भगवान् विष्णु के अंशभूत उस माया के विषय में बड़े-बड़े ऋषियों की सभा में अपनी पत्नी उमा देवी को बड़े प्रेम से सुनाते थे ।।४२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४२।।

अपि व्यपश्यस्त्वमजस्य मायां परस्य पुंसः परदेवतायाः ।
अहं कलानामृषभो विमुह्ये यया वशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः ।।४३।।

अन्वयः— त्वम् अजस्य परस्य पुंसः परदेवतायाः मायां अपि व्यपश्यः । अहं कलानाम् ऋषभः यया अवश; विमुह्ये अन्ये अस्वतन्त्राः किमुत ।।४३।।

अनुवाद— देवि तुमने अजन्मा, परम पुरुष परा देवता परमात्मा की उस माया को देखा क्या ? ऐसे तो मैं समस्त कलाओं और विद्याओं का स्वामी और स्वतन्त्र हूँ, फिर भी मैं उस माया से विवश होकर मोहित हो जाता हूँ तो फिर दूसरे अस्वतन्त्र जीव मोहित हो जाते हैं, यह क्या कहना है ?।।४३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४३।।

यं मामपृच्छस्त्वमुपेत्य योगात्समासहस्रान्त उपारतं वै ।
स एव साक्षात्पुरुषः पुराणो न यत्र कालो विशते न वेदः ।।४४।।

अन्वयः— योगात् समासहस्रान्तउपारतं माम् उपेत्य यम् अपृच्छः स एष साक्षात् पुरुषः पुराणः यत्रकलो न विशते न वेदः ।।४४।।

अनुवाद— एक हजार वर्ष के अन्त में समाधि से जगे हुए मेरे पास आकर तुमने यह जो पूछा था कि आप किसका ध्यान करते हैं, वही ये साक्षात् पुराण पुरुष हैं जिनको न तो काल अपनी सीमा में बाँध सकता है और न वेद ही इनका वर्णन करने में समर्थ हो सकता है । इनका वास्तविक स्वरूप अनन्त और अनिर्वचनीय है ।।४४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४४।।

श्रीशुक उवाच

इति तेऽभिहितस्तात विक्रमः शार्ङ्गधन्वनः । सिन्धोर्निर्मथने येन धृतः पृष्ठे महाचलः ॥४५॥

अन्वयः— हे तात ! इतिते शार्ङ्गधन्वनः विक्रमः अभिहितः येन सिन्धोः निर्मथने पृष्ठे महचलः धृतः ॥४५॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे तात ! इस प्रकर से मैने आपको शार्ङ्गधनुर्धारी भगवान् विष्णु के पराक्रम को सुनाया, समुद्र मन्थन की बेला में उन्होंने अपने पीठ पर महान् पर्वत मन्दराचल को धारण किया था ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

अष्टाध्यायार्थनिगमनम्-इतीति ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

इति० इत्यादि श्लोक के द्वारा अमृतमन्थन के सम्बद्ध अष्टाध्यायी का उपसंहार किया गया है ॥४५॥

एतन्मुहुः कीर्तयतोऽनुशृण्वतो न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित् ।
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं समस्तसंसारपरिश्रमापहम् ॥४६॥

अन्वयः— एतत् मुहुः कीर्तयतः अनुशृण्वतः समुद्यमः क्वचित् जातु नरिष्यते यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् समस्त संसार परिश्रमापहम् ॥४६॥

अनुवाद— जो कोई भी मनुष्य इस प्रकरण को बार-बार पढ़ता है अथवा श्रवण करता है उसका कोई भी प्रयास कभी भी विफल नहीं होता है । क्योंकि पवित्र कीर्ति श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन तो सम्पूर्ण संसार के श्रम को दूर करने वाला है ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

एतत्कीर्तनादौ फलमाह-एतदिति ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

इस अमृत मन्थन के प्रकरण का पाठ करने का फल **एतन्मुहुः** इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है ॥४६॥

असदविषयमङ्घ्रिं भावगम्यं प्रपन्नानमृतममरवर्यानाशयत्सिन्धुमथ्यम् ।
कपटयुवतिवेषो मोहयन्यः सुरारीस्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि ॥४७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे शङ्करमायामोहनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥४७॥

अन्वयः— असदविषयम् भावगम्यमङ्घ्रिम् प्रपन्नान् अमरवर्यान् सिन्धु मथ्यम् आशयत् । कपटयुवतिवेष सुरारिं मोहयन् उपसृतानां कामपूरं य तम् अहम् नतोऽस्मि ॥४७॥

अनुवाद— श्रीभगवन् के चरण कमलों की प्राप्ति दुष्ट पुरुषों को नहीं होती है, वे तो भक्तिभाव से युक्त पुरुषों को ही प्राप्त होते हैं । उन्होंने अपने शरणागत देवताओं को समुद्र मन्थन से निकले अमृत को पिलाया, उन्होंने स्त्री का रूप धारण करके देवताओ असुरों को मोहित किया । जो कोई भी श्रीभगवन् की शरणागति करता है उसकी सारी कमनाओं को पूरा करते है । ऐसे श्रीभगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के शङ्करमायामोहन नामक बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

भगवता कृतं भक्तपक्षपातं स्मरन्नमस्करोति –असतामविषयम्। भावो भजनं तेन गम्यमङ्घ्रि प्रपन्नान् शरणागतान्सिन्धुमध्यं सिन्धोर्मथनेन जातममृतं य आशयदभोजयत् ।।४७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भावार्थ दीपिकाया टीकायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् द्वारा भक्तों के किए गये पक्षपात का स्मरण करते हुए श्रीशुकदेवजी उनको नमस्कार करते हैं। श्रीभगवान् के चरण कमल दुष्ट पुरुषों को नहीं प्राप्त होते हैं, उनके चरण कमलों की प्राप्ति तो भक्तिभाव से ही होती है। श्रीभगवान् ने अपने शरणागत् देवताओं को ही समुद्र मन्थन से निकले अमृत को पिलाया ।।४७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावर्थदीपिका नामक व्याख्या के बारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१२।।

तेरहवाँ अध्याय

आगामी सात मन्वन्तरों का वर्णन

श्रीशुक उवाच

मनुर्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः । सप्तमो वर्तमानो यस्तदपत्यानि मे शृणु ॥१॥

अन्वयः— विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः यः वर्तमानः सप्तम मनुः तदपत्यानि मे शृणु ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— विवस्वान् के यशस्वी पुत्र श्राद्धदेव हुए वे ही वर्तमान सातवें मनु है । अब आप उनके पुत्रों को सुनें ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोदशे तु वर्ण्यन्ते सप्तमादीन्यनुक्रमात् । मन्वन्तराणि सर्वाणि षड्विधानि पृथक्पृथक् । सप्तमादिमन्वन्तराण्याह-मनुरित्यादिना यवदध्याय समाप्तिः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इस तेहरवें अध्याय में सातवें मनु से लेकर सभी मनुओं का छह प्रकार से वर्णन किया गया है । सतवें से लेकर चौदहवें मनु पर्यन्त सभी मनुओं का वर्णन **मनु० इत्यादि** से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त किया गया है ॥१॥

इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च । नरिष्यन्तोऽथ नाभागः सप्तमो दिष्ट उच्यते ॥२॥

अन्वयः— इक्ष्वाकुः नमगः धृष्टः शर्याति नरिष्यन्तः अथ नाभागः, सप्तमः दिष्टः उच्यते ॥२॥

अनुवाद— इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, सतवें पुत्र दिष्ट कहे जाते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

करूषश्च पृषध्रश्च दशमो वसुमान्स्मृतः । मनोर्वैवस्वतस्यैते दश पुत्राः परन्तप ।।३।।

अन्वयः— हे परन्तप करूषः च, वृषध्रः च दशमः व सुमान् स्मृतः । वैवस्वतस्य मनोः एते दश पुत्राः ।।३।।

अनुवाद— करुष, पृषध्र और दशवें पुत्र वसुमान कहे जाते हैं । इस तरह वैवस्त मनु के ये दश पुत्र हुए।।३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३।।

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः । अश्विनावृभवो राजन्निन्द्रस्तेषां पुरन्दरः ।।४।।

अन्वयः— राजन् आदित्याः वसवः रुद्राः, विश्वेदेवाः, मरुद्गणाः अश्विनौ, ऋभवः तेषाम् इन्द्रः पुरन्दरः ।।४।।

अनुवाद— परीक्षित् इस मन्वन्तर में आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण और अश्विनी कुमार ये देवताओं के प्रधान गण है । इनके इन्द्र का नाम पुरन्दर है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

आदित्यादयो देवा इत्यन्वयः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

आदित्य आदि देवता है ।।४।।

कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः । जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः ।।५।।

अन्वयः— कश्यपः अत्रिः वसिष्ठः विश्वामित्रः अथ गौतमः जमदग्निः, भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः ।।५।।

अनुवाद— कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्निः तथा भारद्वाज ये इस मन्वन्तर के सप्तर्षि हैं।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५।।

अत्रापि भगवज्जन्म कश्यपाददितेरभूत् । आदित्यानामवरजो विष्णुर्वामनरूपधृक् ।।६।।

अन्वयः— अत्रापि कश्यपात् अदितेः भगवज्जन्म अभूत् । आदित्यानाम् अवरजः वामनरूपधृक् विष्णुः ।।६।।

अनुवाद— इस मन्वन्तर में महर्षि कश्यप की पत्नी अदिति के गर्भ से भगवान् का जन्म हुआ । आदित्यों के छोटे भाई वामन के रूप में वामन के रूप में भगवान् ने अवतार ग्रहण किया ।।६।।

भावार्थ दीपिका

भगवतो जन्म अवतारः । तमेवाह-आदित्यानां विवस्वानर्यमा पूषेत्याद्युक्तानां मध्ये अवरं जन्म यस्य सः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् का जन्म अर्थात् अवतार उसी को बतलाते हुए कहा गया है विवस्वान् अर्यमा, पूषा इत्यादि आदित्यों में सबसे छोटे भाई वामन के रूप में भगवान् का अवतार हुआ ।।६।।

संक्षेपतो मयोक्तानि सप्त मन्वन्तराणि ते । भविष्याण्यथ वक्ष्यामि विष्णोः शत्तयान्वितानि च ।।७।।

अन्वयः— मया ते संक्षेपतः सप्तमन्वन्तराणि उक्तानि अथ भविष्याणि विष्णोः शक्त्या अन्वितानि वक्ष्यामि।।७।।

अनुवाद— मैंने आपको संक्षेप में सात मन्वन्तरों को सुनाया । अब भगवान् विष्णु की शक्ति से युक्त भविष्यत् कालिक मन्वन्तर को बतलाऊँगा ।।७।।

भावार्थ दीपिका

शत्तयाऽवतारेणान्वितानि ।।७।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् के अवतार से युक्त मन्वन्तरों को सुनो ।।७।।

विवस्वतश्च द्वे जाये विश्वकर्मसुते उभे । संज्ञा छाया च राजेन्द्र ये प्रागभिहिते तव ॥८॥

अन्वयः— राजेन्द्र विवस्वतः द्वे जाये विश्वकर्मसुते उभे संज्ञा छायाच ये तव प्रागभिहिते ।।८।।

अनुवाद— हे राजेन्द्र ! विवस्वान् की दो पत्नियाँ थी दोनों विश्वकर्मा की पुत्रियाँ थीं । उनका नाम था संज्ञा और छाया । इन दोनों के विषय में मैं आपको कह चुका हूँ ।।८।।

भावार्थ दीपिका

अष्टमं मनुं वक्तुं कथामाह-विवस्वत इति त्रिभिः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

आठवें मनु का वर्णन करने के लिए **विवस्वतः इत्यादि** तीन श्लोकों से कथा का वर्णन करते हैं ।।८।।

तृतीयां वडवामेके तासां संज्ञासुतास्त्रयः। यमो यमी श्राद्धदेवश्छायायाश्च सुतान् शृणु ॥९॥
सावर्णिस्तपती कन्या भार्या संवरणस्य या। शनैश्चरस्तृतीयोऽभूदश्विनौ वडवात्मजौ ॥१०॥

अन्वयः— एके तृतीयां वडवामितिप्राहुः तासां संज्ञासुताः त्रयः, यमो, यमी, श्राद्धदेवः च छायायाः सुतान् शृणु सावर्णिः तपती कन्या या संवरणस्यभार्या अभूत्, तृतीयः शनैश्चरः अभूत् बडवात्मजौ अश्विनौ ।।९-१०।।

अनुवाद— कुछ लोग विवस्वान् की तृतीय पत्नी बडवा को कहते हैं । उन तीनों पत्नियों में से संज्ञा की तीन सन्तानें हुई, यम, यमी और श्राद्धदेव अब आप छाया की सन्तानों को सुनें सावर्णि, तपती नाम की कन्या जो संवरण की पत्नी हुई और तीसरे शनैश्चर और बडवा के पुत्र दोनों अश्विनी कुमार हैं ।।९-१०।।

भावार्थ दीपिका

एके बडवां तृतीयामाहुः- मम तु संज्ञैव वडवेति मतम् । तदुक्तं षष्ठे- 'सैव भूत्वाथ वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि- इति। यमश्च यमी च यमुना श्राद्धदेवश्चेति त्रयः सुताः । सावर्णिः पुत्रः ।।९-१०।।

भाव प्रकाशिका

कुछ लोग तो विवस्वान की तीसरी पत्नी बड़वा को कहते हैं । मेरे विचारानुसार संज्ञा ही बड़वा हुई। छठे स्कन्धे में कहा गया है कि संज्ञा ही बड़वा होकर पृथ्वी पर दोनों अश्विनी कुमारों को जन्म दी । सावर्णि छाया के पुत्र थे ।।९-१०।।

अष्टमेऽन्तर आयाते सावर्णिर्भविता मनुः । निर्मोकविरजस्काद्याः सावर्णितनया नृप ॥११॥

अन्वयः— अष्टमे अन्तरे आगते सावर्णिः मनुः भविता । हे राजन् ! निर्मोक विरजस्काद्याः सावर्णि तनयाः ।।११।।

अनुवाद— आठवें मन्वन्तर के आने पर सावर्णि मनु होंगे और उनके पुत्र निर्मोक विरज एक आदि होंगे।।११।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।११।।

तत्र देवाः सुतपसो विरजा अमृतप्रभाः । तेषां विरोचनसुतो बलिरिन्द्रो भविष्यति ॥१२॥

अन्वयः— तत्र देवाः सुतपसः विरजा अमृत प्रभाः तेषाम् इन्द्रः विरोचन सुतः बलिः भविष्यति ।।१२।।

अनुवाद— उस आठवें मन्वन्तर सुतपा विरजा इत्यादि देवताओं के गण होगे । उनके इन्द्र विरोचन के पुत्र बलि होंगे ।।१२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१२।।

दत्त्वेमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयम् । राद्धमिन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति ॥१३॥
योऽसौ भगवता बद्धः प्रीतेन सुतले पुनः । निवेशितोऽधिके स्वर्गादधुनास्ते स्वराडिव॥१४॥

अन्वयः— यः पदत्रयं याचमानाय विष्णवे इमां दत्त्वा राद्धम् इन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिम् अवाप्स्यति, योऽसौभगवता बद्धः पुनः प्रीतेन स्वर्गात् अधिके सुतले निवेशितः अधुना स्वराट् इव आस्ते ॥१३-१४॥

अनुवाद— जिस बलि ने तीन पग पृथिवी माँगने वाले भगवान् विष्णु को इस सम्पूर्ण पृथिवी को देकर इन्द्र पद को प्राप्त किया । उस इन्द्र पद का भी परित्याग करके ये बलि मुक्ति को प्राप्त कर लेंगे । इनको भगवान् ने वरुण पाश में बाँध दिया था । फिर प्रसन्न होकर उन्होंने इनके स्वर्ग से भी अधिक सुतललोक का राज्य प्रदान कर दिया, इस समय बलि वहीं पर इन्द्र के समान विराजमान हैं ॥१३-१४॥

भावार्थ दीपिका

पदत्रयं याचमानायेमां सर्वां महीं सप्तमे मन्वन्तरे दत्त्वाऽष्टमे मन्वन्तरे विष्णोः प्रसादेन च राद्धं लब्धमिन्द्रपदं हित्वेत्यर्थः ॥१३-१४॥

भाव प्रकाशिका

तीन पग पृथिवी माँगने वाले भगवान् विष्णु को सातवें मन्वन्तर में सम्पूर्ण पृथिवी को देकर आठवें मन्वन्तर में भगवान् विष्णु की कृपा से प्राप्त इन्द्रपद का परित्याग करके ये मुक्ति को प्राप्त कर लेंगे ॥१३-१४॥

गालवो दीप्तिमान् रामो द्रोणपुत्रः कृपस्तथा। ऋष्यशृङ्गः पितास्माकं भगवान्बादरायणः ॥१५॥
इमे सप्तर्षयस्तत्र भविष्यन्ति स्वयोगतः। इदानीमासते राजन्स्वे स्वे आश्रममण्डले ॥१६॥

अन्वयः— हे राजन् ! तत्र गालवः, दीप्तिमान् रामः, द्रोणपुत्र तथा कृपः, ऋष्यशृङ्गः अस्मकंपिता भगवान्बादरायणः इमे स्वयोगतः सप्तर्षयः भविष्यन्ति इदानीं स्व आश्रम मण्डले आसते ॥१५-१६॥

अनुवाद— हे राजन् ! उस आठवें मन्वन्तर में, गालव, दीप्तिमान, परशुरामजी द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य, ऋष्यशृङ्ग, मेरे (शुकदेवजी के) पिता भगवान् व्यास ये सभी लोग सप्तर्षि होंगे । इस समय ये लोग अपने योग बल से अपने-अपने आश्रमों में विद्यमान हैं ॥१५-१६॥

भावार्थ दीपिका

रामः परशुरामः । द्रोणपुत्रोऽश्वत्थामा । इदानीं तु स्वयोगत आसते ॥१५-१६॥

भाव प्रकाशिका

रामः अर्थात् परशुरामजी, द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा इस समय अपने योग के बल से अपने आश्रम में विराजमान हैं ॥१५-१६॥

देवगुह्यात्सरस्वत्यां सार्वभौम इति प्रभुः । स्थानं पुरन्दरादृत्वा बलये दास्यतीश्वरः ॥१७॥

अन्वयः— देवगुह्यात् सरस्वत्यां सर्वभौम इति श्रुतः ईश्वरः पुरन्दरात् स्थानं हृत्वा बलये दास्यति ॥१७॥

अनुवाद— देवगुह्य की पत्नी सरस्वती के गर्भ से भगवान् का सार्वभौम नाम से अवतार होगा ये ही भगवान् इन्द्र से स्वर्ग का राज्य छिनकर बलि को प्रदान करेंगे ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

नवमो दक्षसावर्णिर्मनुर्वरुणसंभवः । भूतकेतुर्दीप्तकेतुरित्याद्यास्तत्सुता नृप ॥१८॥

अन्वयः— हे नृप ! वरुणसंभवः दक्षसावर्णिः नवमः मनु तत्सुताः भूतकेतुः दीप्तकेतुः इत्याद्याः ॥१८॥

अनुवाद— हे राजन् ! वरुण के पुत्र दक्ष सावर्णि नवें मनु होंगे । उनके पुत्र भूत केतु, दीप्त केतु इत्यादि होंगे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

परामरीचिगर्भाद्या देवा इन्द्रोऽद्भुतः स्मृतः । द्युतिमत्प्रमुखास्तत्र भविष्यन्त्यृषयस्ततः ॥१९॥

अन्वयः— पारा मरीचिगर्भाद्याः देवाः इन्द्रः अद्भुतः स्मृत । तत्र द्युतिमत् प्रमुखाः तत ऋषयः भविष्यन्ति ॥१९॥

अनुवाद— पारा मरीचिगर्भ आदि उस मन्वन्तर में देवताओं का गण होगा उनके इन्द्र का नाम अद्भुत होगा। और उस मन्वन्तर में द्युतिमान इत्यादि सप्तर्षि होंगे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

अद्भुतः इन्द्रः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अद्भुत नामक इन्द्र ॥१९॥

आयुष्मतोऽम्बुधारायामृषभो भगवत्कला । भविता येन संराद्धां त्रिलोकीं भोक्ष्यतेऽद्भुतः ॥२०॥

अन्वयः— आयुष्मतः अम्बुधारायाम् भगवत्कला ऋषभः भविता येन संराद्धां त्रिलोकीं अद्भुतः भोक्ष्यते ॥२०॥

अनुवाद— आयुष्मान की पत्नी अम्बुधारा के गर्भ से ऋषभ के रूप में भगवान् का कला अवतार होगा, इनके द्वारा ही प्रदत्त त्रिलोकी का भोग अद्भुत करेंगे ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

दशमो ब्रह्मसावर्णिरुपश्लोकसुतो महान् । तत्सुता भूरिषेणाद्या हविष्मत्प्रमुखा द्विजाः ॥२१॥

अन्वयः— दशमः उपश्लोकसुतः ब्रह्मसावर्णिः महान् तत्सुताः भूरिषेणाद्याः हविष्मात्प्रमुखाः द्विजाः ॥२१॥

अनुवाद— उपश्लोक के पुत्र ब्रह्म सावर्णि दसवें मन्वन्तर के मनु होंगे । उनमें सभी सद्गुण होंगे उनके पुत्र भूरिषेण आदि होंगे और हविष्मान् इत्यादि सप्तर्षि होंगे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

हविष्मान्सुकृतिः सत्यो जयो मूर्तिस्तदा द्विजाः । सुवासनविरुद्धाद्या देवाः शंभुः सुरेश्वरः ॥२२॥

अन्वयः— हविष्मान् सुकृतिः सत्यः जयः मूर्तिः तदद्विजाः, सुवासन विरुद्धाद्याः देवाः, सुरेश्वरः शम्भुः ॥२२॥'

अनुवाद— हविष्मान् सुकृति, सत्य, जय तथा मूर्ति आदि उस समय सप्तर्षि होंगे सुवासन विरुद्ध आदि देवताओं के गण होंगे और उस मन्वन्तर के इन्द्र का नाम शम्भु होगा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

हविष्मत्प्रमुखा इत्युक्तानामेव कषांचिन्नामान्याह-हविष्मानिति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

हविष्मान् इत्यादि इस श्लोक से **हविष्मत् प्रमुखाः** शब्द से उक्त ही कुछ ऋषियों का नाम इस श्लोक में कहा गया है ॥२२॥

विष्वक्सेनो विषूच्यां तु शम्भोः सख्यं करिष्यति । जातः स्वांशेन भगवान्गृहे विश्वसृजो विभुः॥२३॥

अन्वयः— विश्वसृजः विषूच्यां विश्वसृजः गुहे जातः भगवान् स्वंशेन विष्वक्सेनः विभुः शम्भोः सख्यं करिष्यति॥२३॥

अनुवाद— विश्वसृज की पत्नी विषूची के गर्भ से भगवान् अपने अंश से विष्वक्सेन के रूप में विश्वसृज के गृह में अवतीर्ण होंगे । वे शम्भु नामक इन्द्र से मित्रता करेंगे ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

विषूच्यां जातः सन् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

विषूची के गर्भ से उत्पन्न होकर ।।२३।।

मनुर्वै धर्मसावर्णिरेकादशम आत्मवान् । अनागतास्तत्सुताश्च सत्यधर्मादयो दश ।।२४।।

अन्वयः— एकादशमः मनुःवै आत्मवान् धर्मसावर्णि; तत् सुताः सत्य धर्मादयःदश अनागताः ।।२४।।

अनुवाद— ग्यारहवें मनु धर्म सावर्णि आत्मज्ञ होंगे । उनके सत्य धर्मपी आदि दश पुत्र होंगे ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

एकादशम इत्यादिरार्ष ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

एकादशम इत्यादि आर्ष प्रयोग हैं ।।२४।।

विहङ्गमाः कामगमा निर्वाणरुचयः सुराः । इन्द्रश्च वैधृतस्तेषामृषयश्चारुणादयः ।।२५।।

अन्वयः— विहङ्गमाः कामगमाः निर्वाणरुचयः सुराः तेषाम् इन्द्रश्च वैधृतः । ऋषयश्च अरुणादयः ।।२५।।

अनुवाद— उस मन्वन्तर में विहङ्गम, कामगम, निर्वाण रुचि देवताओं के गण होंगे । उन सबों के इन्द्र का नाम वैधृत होगा । अरुण आदि उस मन्वन्तर के सप्तर्षि होंगे ।।२५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२५।।

आर्यकस्य सुतस्तत्र धर्मसेतुरिति स्मृतः । वैधृतायां हरेरंशस्त्रिलोकीं धारयिष्यति ।।२६।।

अन्वयः— वैधृतायां आर्यकस्य सुतः हरे रंशः धर्मसेतुः इतिस्मृतः त्रिलोकीं धारयिष्यति ।।२६।।

अनुवाद— आर्यक की पत्नी वैधृता के गर्भ से धर्म सेतु के नाम से श्रीहरि का अंशावतार होगा वे त्रिलोकी की रक्षा करेंगे ।।२६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२६।।

भविता रुद्रसावर्णी राजन्द्वादशमो मनुः । देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठादयः सुताः ।।२७।।

अन्वयः— राजन् द्वादशमः मनुः रुद्र सावर्णि भविता देववान् उपदेवाः देवश्रेष्ठादयः सुताः ।।२७।।

अनुवाद— हे राजन् ! बारहवें मनु रुद्र सावर्णि होंगे देववान् उपदेव देवश्रेष्ठ आदि उनके पुत्र होंगे ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

ऋतधामा च तत्रेन्द्रो देवाश्च हरितादयः । ऋषयश्च तपोमूर्तिस्तपस्व्याग्नीध्रकादयः ।।२८।।

अन्वयः— तत्र च ऋतधामा इन्द्रः देवाः च हरितादयः ऋषयः च तपोमूर्तिः तपस्वी आग्नीध्रकादयः ।।२८।।

अनुवाद— उस मन्वन्तर में ऋतधामा इन्द्र होंगे । हरित आदि देवताओं का गण होगा, तपोमूर्ति, तपस्वी तथा आग्नीध्र आदि होंगे ।।२८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२८।।

स्वधामाख्यो हरेरंशः साधयिष्यति तन्मनोः । अन्तरं सत्यसहसः सूनृतायाः सुतो विभुः ॥२९॥

अन्वयः— सत्यसहसः सुनृतायाः सुतः स्वधामाख्यः हरेरंशः तन्मनोः अन्तरं साधयिष्यति ॥२९॥

अनुवाद— सत्यसहा की पत्नी सुनृता के स्वधामानाम पुत्र श्रीहरि के अंशावतार होंगे। वे ही उस मन्वन्तर का पालन करेंगे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तस्य मनोरन्तरं साधयिष्यति-सत्यसहसः सूनृतायाश्च सुतः सन् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

उस मन्वन्तर का पालन करेंगे। सत्यसहा और सृनृता के पुत्र बनकर ॥२९॥

मनुस्त्रयोदशो भाव्यो देवसावर्णिरात्मवान् । चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिदेहजाः ॥३०॥

अन्वयः— त्रयोदशो मनुः आत्मवान देवसावर्णि भव्यः चित्रसेन विचित्राद्याः देवसावर्णि देहजाः ॥३०॥

अनुवाद— तेरहवें मनु आत्मज्ञ देव सावर्णि होंगे उनके पुत्र चित्रसेन विचित्र आदि होंगे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका नहीं है ॥३०॥

देवाः सुकर्मसुत्रामसंज्ञा इन्द्रो दिवस्पतिः । निर्मोकतत्त्वददर्शाद्या भविष्यन्त्यृषयस्तदा ॥३१॥

अन्वयः— सुकर्म सुत्रामा संज्ञाः देवाः इन्द्रो दिवस्पतिः तदा निर्मोक तत्त्वदर्शाद्याः ऋषयः भविष्यन्ति ॥३१॥

अनुवाद— उस मन्वन्तर में सुकर्म, सत्राम संज्ञक देवताओं के गण होंगे। इन्द्र का नाम दिवस्पति होगा निर्मोक तत्त्वदर्श आदि उस मन्वन्तर के सप्तर्षि होंगे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

देवहोत्रस्य तनय उपहर्ता दिवस्पतेः । योगेश्वरो हरेरंशो बृहत्यां संभविष्यति ॥३२॥

अन्वयः— देवहोत्र बृहत्यां तनयः योगेश्वरः दिवस्पते अपहर्ता भविष्यति ॥३२॥

अनुवाद— देवहोत्र की पत्नी के गर्भ से उत्पन्न पुत्र श्रीहरि के अंशावतार योगेश्वर दिवस्पति को इन्द्र पद पदान करेंगे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

दिवस्पतेरिन्द्रस्योपहर्ता संपादकः संभविष्यति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

दिवस्पति के इन्द्र पद के सम्पादक होंगे ॥३२॥

मनुर्वा इन्द्रसावर्णिश्चतुर्दशम एष्यति । उरुगम्भीरबुद्ध्याद्या इन्द्रसावर्णिवीर्यजाः ॥३३॥

अन्वयः— चतुर्दशम मनुः वा इन्द्रसावर्णि एष्यति उरुगम्भीरबुद्धयाद्याः इन्द्रसावर्णिवीर्यजाः ॥३३॥

अनुवाद— चौदहवें मनु इन्द्र सावर्णि होंगे इन्द्र सवर्णि के पुत्र उरु, गम्भीर तथा बुद्धि आदि होंगे ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

पवित्राश्चाक्षुषा देवाः शुचिरिन्द्रो भविष्यति । अग्निर्बाहुः शुचिः शुद्धो मागधाद्यास्तपस्विनः ॥३४॥

अन्वयः— पवित्राः चाक्षुषादेवा इन्द्रः शुचिः भविष्यति । अग्निबाहुः शुचिः शुद्धः मागधाद्याः तपस्विनः ॥३४॥

अनुवाद— उस समय पवित्र तथा चाक्षुष आदि देवताओं के गण होंगे। इन्द्र का नाम शुचि होगा अग्नि, बाहु, शुचि, शुद्ध और मागधआदि सप्तर्षि होंगे ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

सत्रायणस्य तनयो बृहद्भानुस्तदा हरिः । वितानायां महाराज क्रियातन्तून्वितायिता ॥३५॥

अन्वयः— हे महाराज तदा सत्रायणस्य वितानायां तनयः हरिः बृहद्भानुः क्रियातन्तून् वितायिता ॥३५॥

अनुवाद— हे महाराज उस समय सत्रायण की पत्नी विताना के गर्भ से बृहद्भानु नामक पुत्र के रूप में श्रीहरि का अंशावतार होगा वे कर्म काण्ड का विस्तार करेंगे ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

क्रियातन्तून् कर्मसंततीः । वितायिता विस्तारयिष्यति ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

क्रियातन्तूनवितायिता अर्थात् कर्मकाण्ड का विस्तार करेंगे ॥३५॥

राजंश्चतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते । प्रोक्तान्येभिर्मितः कल्पोयुगसाहस्रपर्ययः ॥३६॥

अन्वयः— राजन् एतानि चतुर्दश त्रिकालानुगतानि ते प्रोक्तानि एभिः मितः कल्पः युगसाहस्र पर्ययः ॥३६॥

अनुवाद— हे राजन् ! ये चौदह मन्वन्तर भूत भविष्यत् और वर्तमान काल में होते रहते हैं । इन चौदह मन्वन्तरों का एक कल्प होता है जो एक हजार चतुर्युगी का होता है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

युगसाहस्रेण पर्ययः परिवर्तो यस्य । युगसहस्रप्रमाण इत्यर्थः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

यें चौदह मन्वन्तर एक हजार चतुर्युग के प्रमाण वाले होते हैं ॥३६॥

चतुर्दशमनूनां च कथां यः कीर्तयेन्नरः । शृणुयाद्वापि राजेन्द्र तस्य विष्णुः प्रसीदति ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अन्वयः— हे राजेन्द्र ! चतुर्दशमनूनां कथा यः नरः कीर्तयेत् अपिवा शृणुयात् तस्य विष्णुः प्रसीदति ॥३७॥

अनुवाद— हे राजेन्द्र ! चौदह मनुओं की कथा का जो कीर्तन करता है, अथवा पाठ करता है, उस पर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं ॥३७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के मन्वन्तर वर्णन नामक तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१३।।

* * *

चौदहवाँ अध्याय

मनु आदि के पृथक-पृथक कर्मों का निरूपण

राजोवाच

मन्वन्तरेषु भगवन्यथा मन्वादयस्त्विमे । यस्मिन्कर्मणि ये येन नियुक्तास्तद्वदस्व मे ॥१॥

अन्वयः— हे भगवान् मन्वन्तरेषु इमे ये मन्वादयः येन यस्मिन् कर्मणि नियुक्ताः तद् मे वदस्व ॥१॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— हे भगवान् ! इन मन्वन्तरों में जो ये मनु आदि हैं, इनमें से जो जिसके द्वारा जिस कार्य में नियुक्त हैं, उन सबों को आप मुझे बतलाइये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्दशे तु सर्वेषां मन्वादीनां यथायथम् । पृथक्कर्माणि वर्ण्यन्ते भगवद्वशवर्तिनाम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौदहवें अध्याय में मनु आदियों में से जिसका जो काम है । उसका अलग-अलग वर्णन किया जाता है ये मनु आदि भगवान् के अधीन ही रहकर कर्मों को किया करते हैं ॥१॥

ऋषिरुवाच

मनवो मनुपुत्राश्च मुनयश्च महीपते । इन्द्राः सुरगणाश्चैव सर्वे पुरूषशासनाः ॥२॥

अन्वयः— हे महीपते ! मनवः, मनुपुत्राः च मुनयः च इन्द्राः सुरगणाः चैव सर्वे पुरुषशासनाः ॥२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! मनुगण, मनु के पुत्रगण, सप्तर्षिगण, इन्द्रगण, देवगण ये सबके सब श्रीभगवान् के प्रशासन में रहा करते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

पुरुषेणेश्वरेण यज्ञाद्यवतारैः शास्यन्ते नियुज्यन्ते इति तथा ॥२॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मा यज्ञादि रूप से अवतार ग्रहण करके इन सबों को यथायोग्य कर्मों में नियुक्त करते हैं ॥२॥

यज्ञादयो याः कथिताः पौरुष्यस्तनवो नृप । मन्वादयो जगद्यात्रां नयन्त्याभिः प्रचोदिताः ॥३॥

अन्वयः— हे नृप ! यज्ञादयः याः पौरुष्यः तनवः कथिताः अभिः प्रचोदिताः मन्वादयः जगद्यात्रां नयन्ति ॥३॥

अनुवाद— राजन् मैंने जो परमात्मा के यज्ञ पुरुष इत्यादि अवतारों को कहा है, उन्हीं की प्रेरणा से ये मन्वादि विश्व की व्यवस्था का संचालन करते हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-यज्ञादय इति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उसी को बतलाते हैं कि यज्ञ आदि जो भगवान् के अवतार होते हैं ॥३॥

चतुर्युगान्ते कालेन ग्रस्ताञ्छ्रुतिगणान्यथा । तपसा ऋषयोऽपश्यन्यतो धर्मः सनातनः ॥४॥

अन्वयः— चतुर्युगान्ते कालेन ग्रस्तान् श्रुति गणान् ऋषयः तपसा यथा अपश्यन् यतो सनातनः धर्मः ॥४॥

अनुवाद— चतुर्युगी के अन्त में समय के परिवर्तन के कारण श्रुतियाँ नष्ट प्राय हो जाती हैं, तो ऋषिगण उन सबों की तपस्या के द्वारा साक्षत् करते है । उन्हीं से सनातन धर्म की रक्षा होती है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

ऋष्यादीनां कर्माण्याह-चतुर्युगान्त इति चतुर्भिः- यतो येभ्यः श्रुतिगणेभ्यः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

ऋषियों आदि के कर्मों को चतुर्युगान्ते इत्यादि चार श्लोकों से बतलाते हैं । **यतः** अर्थात् जिन श्रुतियों से॥४॥

ततो धर्मः चतुष्पादं मनवो हरिणोदिताः । युक्ताः संचारयन्त्यद्धा स्वे स्वे काले महीं नृप ॥५॥

अन्वयः— हे नृप ततः हरिणा चोदिताः मनवः स्वे-स्वे काले चतुष्पादं धर्म युक्ताः महीं अद्धा संचारयन्ति ॥५॥

अनुवाद— हे राजन् ! उसके पश्चात् श्रीहरि के द्वारा प्रेरित होकर सभी मनुगण अपने-अपने मन्वन्तर में बड़ी ही सावधानी से चार पैरों से युक्त धर्म का पृथिवी पर पालन करवाते हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

उदिता उक्ताः युक्ताः संयताः सन्तो महीं धर्मं संचारयन्ति । मह्यां धर्मं प्रवर्तयन्तीत्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

कहे गये धर्म का सावधानी पूर्वक पृथिवी पर धर्म को प्रवर्तित करने का काम करते हैं ॥५॥

पालयन्ति प्रजापाला यावदन्तं विभागशः । यज्ञभागभुजो देवा ये च तत्रान्विताश्च तैः ॥६॥

अन्वयः— प्रजापालाः यावदन्तं विभागः येच यज्ञभागभुजो देवाः तत्रन्विताः च तैः सह पालयन्ति ॥६॥

अनुवाद— मनु के पुत्र मन्वन्तर पर्यन्त देश एवं काल का विभाग करके प्रजापालन और धर्मपालन का काम करते हैं । पञ्चमहायज्ञ आदि कर्मों में जिन ऋषि, पितर, भूत और मनुष्य आदि का सम्बन्ध है उनके साथ देवता यज्ञ का भाग स्वीकार करते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

प्रजापाला मनुपुत्रास्तं धर्मं पालयन्ति यावदन्तं यावन्मन्वन्तरावसानम् । विभागशः पुत्रपौत्रादिक्रमेण । ये चान्ये द्यावापृथिव्यादयो यत्र कर्मणि भोक्तृत्वेनान्वितास्तैश्च सह ॥६॥

भाव प्रकाशिका

प्रजापाल शब्द से मनु के पुत्रों को कहा गया है । वे अपने मन्वन्तर पर्यन्त धर्म का पालन करते हैं । विभागशः अर्थात् पुत्र-पौत्रादि क्रम से । दूसरे जो द्युलोक-भूलोक इत्यादि जिस कर्म में भोक्ता रूप से अन्वित है उन सबों के साथ ॥६॥

इन्द्रो भगवता दत्तां त्रैलोक्यश्रियमूर्जिताम् । भुञ्जानः पाति लोकांस्त्रीन्कामं लोके प्रवर्षति ॥७॥

अन्वयः— भगवता दत्ताम् त्रैलोक्यश्रियमूर्जिताम् इन्द्र भुञ्जानः त्रीन् लोकान् पाति लोके कामं प्रवर्षति ॥७॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के द्वारा दी गयी त्रैलोक्य की अतुल सम्पत्ति का इन्द्र उपभोग करते हैं, और तीनों लोकों की रक्षा करते हैं और लोक में अपेक्षित मात्रा में वर्षा करते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

ज्ञानं चानुयुगं ब्रूते हरिः सिद्धस्वरूपधृक् । ऋषिरूपधरः कर्म योगं योगेशरूपधृक् ॥८॥

अन्वयः— हरिः अनुयुगं सिद्धस्वरूपधृक् ज्ञानं ब्रूते ऋषिरूपधरः कर्म, योगेशरूपधृक् योगं च ब्रूते ॥८॥

अनुवाद— श्रीहरि प्रत्येक युग में सनकादि सिद्धों का रूप धारण करके ज्ञान का उपदेश देते हैं, ऋषियों का रूप धारण करके कर्म का उपदेश करते हैं और दत्तात्रेय आदि योगेश्वरों का रूप धारण करके योग का उपदेश देते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गाद्रूपान्तरैरपि जगद्यात्राप्रवर्तनमाह-ज्ञानमिति द्वाभ्याम् । सिद्धाः सनकादयः । ऋषयो याज्ञवल्क्यादयः । योगेशा दत्तात्रेयादयः । तत्तद्रूपः सन् ज्ञानं कर्म च योगं च ब्रूते ॥८॥

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्गवशात् प्रकान्तरों से भी जगत् की व्यवस्था को **ज्ञानम्० इत्यादि** श्लोकों से बतलाते हैं । सिद्ध शब्द से सनकादि को कहा गया है । ऋषि शब्द से यज्ञवल्क्य आदि ऋषियों को और योगेश्वर शब्द से दत्तात्रेय आदि योगेश्वरों को कहा गया है । इन सभी रूपों को धारण करके भगवान् क्रमशः ज्ञान, कर्म और योग का उपदेश देते हैं ॥८॥

सर्गं प्रजेशरूपेण दस्यून्हन्यात्स्वराड्वपुः । कालरूपेण सर्वेषामभावाय पृथग्गुणः ॥९॥

अन्वयः— प्रजेश रूपेण सर्गं, स्वराड्वपुः दस्यून् हन्ति पृथक् गुणः कालरूपेण सर्वेषाम् अभवाय ॥९॥

अनुवाद— मरीचि आदि प्रजापतियों का रूप धारण करके वे सृष्टि का विस्तार करते हैं, राजा का शरीर धारण करके वे लुटेरों का वध करते हैं । और शीत-उष्ण विभिन्न गुणों का रूप धारण करके सबको संहार की ओर ले जाते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

प्रजेशा मरीच्यादयस्तेन रूपेण सर्गं करोतीति शेष; । स्वराड्वपू राजमूर्तिः । सर्वेषामभावाय भवति । पृथग्विधा गुणाः शीतोष्णादयो यस्य ॥९॥

भाव प्रकाशिका

प्रजेश शब्द से मरीचि आदि प्रजापतियों को कहा गया है । स्वराडवपुः अर्थात् राजा का शरीर धारण करके। पृथगुणः अर्थात् शीत उष्ण आदि गुणरूप से सबों को संहार की ओर ले चलते हैं ॥९॥

स्तूयमानो जनैरेभिर्मायया नामरूपया । विमोहितात्मभिर्नानादर्शनैर्न च दृश्यते ॥१०॥

अन्वयः— नाम रूपया मायया विमोहितात्मभिः जनैः स्तूयमानः दर्शनैः च न दृश्यते ॥१०॥

अनुवाद— नाम रूप की माया से मोहित लोगों के द्वारा मनुष्यों के द्वारा उनकी ही स्तुति की जाती हैं, किन्तु वे आखों से नहीं दिखाई देते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

नामरूपात्मिकया मायया विमोहितात्मभिर्जनैर्नानादर्शनैः शास्त्रै स्तूयमानो निरूप्यमाणोऽपि नैव दृश्यत इत्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

नामरूपात्मिका माया के द्वारा मोहित मनुयों के अनेक शस्त्रों द्वारा इनकी ही स्तुति की जाती है, फिर भी परमात्मा आखों से दिखायी नहीं देते हैं ॥१०॥

एतत्कल्पविकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् । यत्र मन्वन्तराण्याहुश्चतुर्दश पुराविदः ॥११॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अन्वयः— एतत् कल्पविकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितं यत्र पुरा विदः चतुर्दशमन्वन्तराणि आहुः ॥११॥

अनुवाद— राजन् ! इस तरह से मैंने आपको महाकल्प और अवान्तर कल्प का परिणाम सुना दिया । पुराण तत्त्व के विद्वानों ने एक अवान्तर कल्प में चौदह मन्वन्तरों को बतलाया है ॥११॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

प्रासङ्गिकं निरूप्य प्रस्तुतमेवोपसंहरति-एतत्कल्पविकल्पस्यावान्तरकल्पस्य ॥११॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे भावार्थ दीपिका टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

प्रासङ्गिक बातों का निरूपण करके प्रस्तुत अर्थ का उपसंहार **एतत्० इत्यादि** से करते हैं । यह मैंने महाकल्प और अवतारकल्प प्रमाण आपको बता दिया ॥११॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के चौदहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१४।।

* * *

पन्द्रहवाँ अध्याय

राजा बलि की स्वर्ग पर विजय

राजोवाच

बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धरिरयाचत । भूत्वेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबन्ध तम् ।।१।।

अन्वयः— हरिः ईश्वरो भूत्वा कृपणवत् बलेः कस्मात् भूमेः पदत्रयम् अयाचत । लब्धार्थः अपितं बबन्ध ।।१।।

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— श्रीहरि सम्पूर्ण जगत् के स्वामी होकर भी दीनहीन के समान राजा बलि से तीन पग पृथिवी की याचना क्यों किए ? और उनको अपने अभिप्रेत वस्तु की प्राप्ति हो जाने पर भी वे बलि को बाँधे क्यों?।।१।।

भावार्थ दीपिका

अत्रेर्यते नवाध्याय्या वामं वामनचेष्टितम् । निग्रहच्छलतो यत्र बलेभूयनुग्रहः । ईश्वरः स्वयं कृपणवत्कस्माद्धेतोरयाचत। लब्धार्थो भूत्वापि तं कस्माद्बबन्ध ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इस पन्द्रहवें अध्यय में इस बत का वर्णन किया गया है कि उनके आचार्य ने बलि से विश्वजित् याग कराया। इसलिए बलि ने सबकुछ जीत लिया और बलि के भय से सभी देवता कहीं छिप गये । यहाँ पर नव अध्यायों द्वारा वामन भगवान् की कपटमयी चेष्टाओं का वर्णन किया गया है । उन्होंने निग्रह के बहाने बलि पर बहुत अधिक

कृपा की । भगवन् तो स्वयं ही सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं फिर भी दीन-हीन के समान वे क्यों याचना किए ? और उन्होंने जब त्रैलोक्य को प्राप्त ही कर लिया तो फिर वे बलि को क्यों बान्धे ?॥१॥

एतद्वेदितुमिच्छामो महत्कौतूहलं हि नः । यज्ञेश्वरस्य पूर्णस्य बन्धनं चाप्यनागसः ॥२॥

अन्वयः— महत् कौतूहलं हि नः परिपूर्णस्य यज्ञेश्वरस्य अनागसः बन्धनं एतत् वेदितुम् इच्छामः ॥२॥

अनुवाद— हमलोगों के मन में यह बड़ा ही कौतूहल है कि परिपूर्ण यज्ञेश्वर भगवान् ने याचना क्यों की तथा उन्होंने निरपराध बलि को वरुणास्त्र से क्यों बाँधा । यह हम जानना चाहते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

श्रीशुक उवाच

पराजितश्रीरसुभिश्च हापितो हीन्द्रेण राजन् भृगुभिः स जीवितः ।
सर्वात्मना तानभजद्भृगून्बलिः शिष्यो महात्मार्थनिवेदनेन ॥३॥

अन्वयः— राजन् ! इन्द्रेण पराजितः श्रीरसुभिः च हापितः भृगुभिः जीवितः सः बलिः शिष्यः महात्मा बलिः सर्वात्मना अर्थ निवे दनेन तान् भृगून् अभजत् ॥३॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् ! जब इन्द्र ने बलि को पराजित करके उनकी सम्पत्ति छिन ली और उनके प्राण भी ले लिए तब शुक्राचार्य ने अपनी संजीवनी विद्या से बलि को जीवित कर दिया । इस पर शुक्राचार्य के शिष्य महात्मा बलि अपना सर्वस्व उनके चरणों में समर्पित करके सभी भृगुवंशियों की सेवा करने लगे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तावद्बलेस्त्रिलोकीमपहर्तुं याच्ञादिच्छलनं कृतवानिति वक्तुं ब्राह्मणाराधनेन बलेरकाण्ड एव स्वर्गविजयक्रममाह-पराजितश्रीरित्यादिना यावदध्यायसमाप्ति । युद्धे पराजिता श्रीर्येन सः । इन्द्रेणासुभिश्च त्याजितः सन् । भृगून् भृगोर्वंश्यान् शुक्रादीन् । महात्मा उदारचित्तः । अर्थानां निवेदनेनार्पणेन ॥३॥

भाव प्रकाशिका

बलि से त्रिलोकी को छिनने के लिए श्रीभगवान् के याचना करके छल किया इस बात को कहने के लिए बलि ने ब्राह्मणों की आराधना की और उनके स्वर्ग पर विजय का क्रम **पराजित श्री इत्यादि** श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त वर्णन करते हैं । इन्द्र ने बलि को युद्ध में पराजित कर दिया और बलि का प्राण भी ले लिया। उदार चित्त वाले बलि ने अपना सर्वस्व अर्पण करके भृगुवंशियों की सेवा की ॥३॥

तं ब्राह्मणा भृगवः प्रीयमाणा अयाजयन्विश्वजिता त्रिणाकम् ।
जिगीषमाणं विधिनाभिषिच्य महाभिषेकेण महानुभावाः ॥४॥

अन्वयः— महानुभवाः प्रीयमाणाः भृगवः ब्राह्मणाः त्रिणाकं जिगीषमाणं ते महाभिषेकेण अभिषित्य विश्वजिता अयाजयन् ॥४॥

अनुवाद— महाप्रभावशाली प्रसन्न भृगुवंशी ब्राह्मणों ने स्वर्ग पर विजय चाहने वाले बलि की अभिषेक विधि से अभिषेक करके विश्वजित् याग कराया ॥४॥

भावार्थ दीपिका

त्रिणाकं स्वर्गं जेतुमिच्छन्तं विश्वजिता यागेनायाजयन् महाभिषेकेणैन्द्रेण बह्वृचब्राह्मणप्रसिद्धेन ॥४॥

भाव प्रकाशिका

स्वर्ग पर विजय चाहने वाले बलि की ऐन्द्र बह्वृच ब्राह्मण के द्वारा अभिषिक्त कर विश्वजित् याग कराया॥४॥

ततो रथः काञ्चनपट्टनद्धो हयाश्च हर्यश्वतुरङ्गवर्णाः ।
ध्वजश्च सिंहेन विराजमानो हुताशनादास हविर्भिरिष्टात् ॥५॥

अन्वयः— ततः हविर्भिः इष्टात् हुताशनात् काञ्चनपट्टनद्धः हर्यश्वतुरङ्ग वर्णाः हयाः च सिंहेन विराजमानो ध्वजश्च आस॥५॥

अनुवाद— यज्ञ किए जाने पर हविष्य के द्वारा पूजित अग्नि कुण्ड से सुवर्ण के चादर से मढ़ा हुआ रथ, इन्द्र के अश्वों के रङ्ग वाले घोड़े और सिंह के चिह्न से युक्त ध्वजा निकली ॥५॥

भावार्थ दीपिका

हर्यश्वस्येन्द्रस्य ये तुरङ्गास्तेषामिव वर्णो हरितो येषाम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र के घोड़ों के समान हरे रङ्ग वालें घोड़े निकले ॥५॥

धनुश्च दिव्यं पुरटोपनद्धं तूणावरिक्तौ कवचं च दिव्यम् ।
पितामहस्तस्य ददौ च मालामम्लानपुष्पां जलजं च शुक्रः ॥६॥

अन्वयः— पुरटोपनद्धं धनुः च अरिक्तौ तूणौ दिव्यंकवचं च, तस्य पितामहः अम्लान पुष्पां मालां शुक्रः जलजं च ददौ ॥६॥

अनुवाद— सुवर्ण के पत्तर से मढा हुआ धनुष कभी भी खाली नहीं होने वाले दो तरकश तथा दिव्य कवच भी अग्नि से प्रकट हुआ । उसके पितामह प्रह्लादजी ने कभी भी कुम्हलाने वाली माला और शुक्राचार्य ने शङ्ख प्रदान किया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

पुरटं सुवर्णम् । तूणाविषुधी अरिक्तावक्षय्यशरौ । पितामहः प्रह्लादः । जलजं शङ्खम् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

पुरट अर्थात् सुवर्ण तूणौ अर्थात् दो तरकश, अरिक्तौ अर्थात् कभी भी खाली नहीं होने वाले पितामहः अर्थात् प्रह्लादजी, जलजम् अर्थात् शङ्ख को ॥६॥

एवं स विप्रार्जितयोधनार्थस्तैः कल्पितस्वस्त्ययनोऽथ विप्रान् ।
प्रदक्षिणीकृत्य कृतप्रणामः प्रह्लादमामन्त्र्य नमश्चकार ॥७॥

अन्वयः— एवं स विप्रार्जितयोधनार्थ; तैः कल्पित स्वस्त्ययनः, अथ विप्रान् प्रदक्षिणीकृत्य कृतप्रणामः प्रह्लादम् आमान्त्र्य नमः चकार ॥७॥

अनुवाद— इस तरह से वह ब्राह्मणों की कृपा से युद्ध की सामग्री प्राप्त करके, उन ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन कर लिए जाने के पश्चात् बलि ने उन ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा करके उन सबों को नमस्कार किया, उसके पश्चात् प्रह्लादजी से मन्त्रणा करके उसने प्रह्लादजी को नमस्कार किया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

विप्रैरर्जितः संपादितो योधनार्थो युद्धपरिकरो यस्य तैरेव कल्पितं कृतं स्वस्त्ययनं मङ्गलवाचनादि यस्य । आमन्त्र्य पृष्ट्वा ॥७॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों ने ही बलि की युद्ध सामग्री सम्पादित कर दी थी तथा उन ब्राह्मणों ने उसका स्वस्तिवाचन भी कर दिया था । आमन्त्र्य अर्थात् पूछकर ॥७॥

अथारुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः । सुस्रग्धरोऽथ संनह्य धन्वी खड्गी धृतेषुधिः ॥८॥
हेमाङ्गदलसद्बाहुः स्फुरन्मकरकुण्डलः । रराज रथमारुढो धिष्ण्यस्थ इव हव्यवाट् ॥९॥

अन्वयः— सुस्रग्धरः महारथः भृगुदत्तं दिव्यं रथम् आरुह्य अथ धन्वी, खड्गी धृतेषुधी हेमाङ्गदलसद्बाहुः स्फुरन्मकरकुण्डलः रथम् आरूढो धिष्ण्यस्थः हव्यवाट् इव रराज ॥८-९॥

अनुवाद— सुन्दर माला धारण किए हुए महारथी बलि, भृगुवंशीय ब्राह्मणें द्वारा दिए गये दिव्य रथ पर सवार होकर उसके पश्चात् धनुष, खड्ग और तरकश से सजकर तैयार हुए उनके हाथों में सुवर्ण के अङ्गद (बाजूबन्द) सुशोभित हो रहे थे, कानों में मकराकृति कुण्डल चमक रहे थे । रथ पर बैठे हुए बलि की ऐसी शोभा हो रही थी जैसे कुण्ड में प्रज्वलित अग्नि की शोभा होती है ॥८-९॥

भावार्थ दीपिका

अथारुह्य रराजेति द्वयोरन्वयः । सुस्रग्धरः शोभनमालाधरः । हेमाङ्गदाभ्यां लसन्तौ बाहू यस्य । धिष्ण्यस्थो वने प्रज्वलितः, कुण्डस्थ आहवनीय इवेति वा ॥८-९॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् रथ पर बैठकर सुशोभित हुए इस तरह से दोनों श्लोकों का अन्वय है । सुस्राधरः अर्थात् सुन्दर माला धारण किए हुए । सुवर्ण के बाजूवन्दों से उनकी भुजाएँ सुशोभित होती थी । **धिष्ण्यस्थः** अर्थात् वन में प्रज्वलित अथवा कुण्ड में प्रज्वलित आहवनीय अग्नि के समान ॥८-९॥

तुल्यैश्वर्यबलश्रीभिः स्वयूथैर्दैत्ययूथपैः । पिबद्भिरिव खं दृग्भिर्दहद्भिः परिधीनिव ॥१०॥
वृतो विकर्षन्महतीमासुरीं ध्वजिनीं विभुः । ययाविन्द्रपुरीं स्वृद्धां कम्पयन्निव रोदसी ॥११॥

अन्वयः— तुल्यैश्वर्यबलश्रीभिः स्वयूथै दैत्ययूथपै दृग्भिः खं पिबद्भिः, महद्भिः परिधीन् इव महतीम् आसुरीं ध्वजिनीम् विकर्षन् रोदसी कम्पयन् इव स्वृद्धां इन्द्रपुरीं ययौ ॥१०-११॥

अनुवाद— बलि के ही समान बल एवं ऐश्वर्य सम्पन्न उनकी अपनी सेना के साथ उनके साथ हो लिये। लगता था वे आकाश के पी जायेंगे । और अपने क्रोध भरे नेत्रों से दिशाओं को भस्म कर देंगे । राजा बलि असुरों की बहुत बड़ी सेना को लेकर उसका युद्ध के ढंग से संचालन किया और पृथिवी तथा अन्तरिक्ष को कँपाते हुए सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से परिपूर्ण इन्द्र की नगरी अमरावती पुरी पर चढ़ाई कर दिए ॥१०-११॥

भावार्थ दीपिका

तुल्यमैश्वर्यं बलं च श्रीश्च येषां तैर्दैत्ययूथपैर्वृतो ययाविति द्वयोरन्वयः । परिधीन्दिशः । स्वृद्धामतिसमृद्धाम् ॥१०-११॥

भाव प्रकाशिका

बलि के ही समान बल एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न उन सेनापतियों से घिरे हुए बलि गये । इस तरह से दोनों श्लोकों का एक साथ अन्वय है । परिधीन् अर्थात् दिशाओं को स्वृद्धाम् अर्थात् समृद्ध ॥१०-११॥

रम्यामुपवनोद्यानैः श्रीमद्भिर्नन्दनादिभिः । कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥१२॥
प्रवालफल्पुष्पोरुभारशाखामरद्रुमैः । हंससारसचक्राह्वकारण्डवकुलाकुलाः ॥१३॥

अन्वयः— उपवनोद्यानैः श्रीमद्भिः नन्दनादिभिः, कूजद्विहङ्ग मिथुनैः गायन्मत्तमधुव्रतैः प्रवालपुष्पोरुभारशाखामरद्रुमैः रम्यम् हंससारसचक्राह्व कारण्डवकुलाकुलाः यत्र नलिन्यः सुरसेविताः प्रमदाः क्रीडन्ति ॥१२-१३॥

अनुवाद— वनों, उपवनों, ऐश्वर्य सम्पन्न नन्दन अदि वन जिनमें पक्षियों के जोड़े चहकते रहते हैं मदमत्त भौंरे गुनगुनाते रहते हैं, लाल-लाल नये-नये पत्तों फलों और पुष्पों से कल्पवृक्ष की शाखाएँ भरी रहती हैं, हंस, सारस, चकवे, और वतखों से भरे-भरे हुए जहाँ के सरोवरों में देवताओं से सेवित देवाङ्गनाएँ क्रीडा करती है, इस तरह की मनोहर नगरी पर बलि ने आक्रमण कर दिया ॥१२-१३॥

भावार्थ दीपिका

धिक् ग्राम्यसुखं तथा तथाविधां पुरीमकस्मादेव परित्यज्येन्द्रादयः पलायिता इति वैराग्यार्थमिन्द्रपुरीमनुवर्णयति-रम्यामिति सार्धैरेकादशभिः- उपवनानि फलप्रधानानि निकटानि वा, उद्यानानि पुष्पप्रधानानि दूरस्थानि वा तैः रम्याम् । कूजन्ति विहङ्गमिथुनानि येषु । गायन्तो मत्ता मधुव्रता येषु । प्रवालादीनामुरुर्भारो यासु ताः शाखा येषां तेऽमरद्रुमा येषु तैः । यत्र यासु सुरसेविताः प्रमदाः क्रीडन्ति ता हंसादिकुलैराकुला व्याप्ता नलिन्यः सरांसि यत्र येषु सन्ति तैरुपवनोद्यानै रम्यामिति पूर्वेणैवान्वयः ॥१२-१३॥

भाव प्रकाशिका

ग्राम्य सुख को धिक्कार है इस प्रकार से विचार करके उस प्रकार की नगरी को छोड़कर इन्द्र इत्यादि देवता पलायन कर गये इस तरह से होने वाले वैराग्य के लिए साढे ग्यारह श्लोकों से इन्द्रपुरी का वर्णन करते हैं । उपवनानि अर्थात् फल प्रधान अथवा निकटस्थ । दूरस्थ एवं पुष्प प्रधान उद्यानों, इन सबों से मनोहर जिनमें पक्षियों के जोड़े चहकते रहते हैं । जिनमें मदमत्त भौंरे गुनगुनाते रहते हैं जिन देव वृक्षों की शाखाओं पर लाल-लाल पल्लव लदे रहते है ऐसे वृक्षों से जहाँ के सरोवरों में देवताओं से सेवित अङ्गनाएँ क्रीडा करती हैं, तथा जो सरोवर हंसों आदि से भरे रहते हैं, इस प्रकार के उपवनों और उद्यानों से मनोहर अमरावती पर बलि ने आक्रमण किया ॥१२-१३॥

आकाशगङ्गया देव्या वृतां परिखभूतया । प्रकारेणाग्निवर्णेन साट्टालेनोन्नतेन च ॥१४॥

अन्वयः— परिखभूतया आकाशगङ्गादेव्या साट्टालेनोन्नतेन अग्निवर्णेन प्रकारेण वृताम् ॥१४॥

अनुवाद— परिखा (खाईं) बनी हुई आकाश गङ्गादेवी के द्वारा तथा बड़ी-बड़ी आट्टाल्लिकाओं से युक्त अग्नि के समान वर्ण वाले परकोटे से घिरी हुई अमरावती पर राजा बलि ने आक्रमण कर दिया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

किंच परिखाभूतया आकाशगङ्गया वृताम् । प्राकारेण सौवर्णेन चावृताम् । अट्टालाः प्राकारोपरि रचितान्युन्नतानि युद्धस्थानानि तत्सहितेन ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

परिखा का काम करने वाली देवी आकाश गङ्गा से तथा जिन पर युद्ध के स्थान बने हुए हैं ऐसे सुवर्ण के परकोटे से घिरी हुई अमरावती पुरी ॥१४॥

रुक्मपट्टकपाटैश्च द्वारैः स्फटिकगोपुरैः । जुष्टां विभक्तप्रपथां विश्वकर्मविनिर्मिताम् ॥१५॥

अन्वयः— रुक्मपट्टकपाटै, द्वारैः स्फटिकगोपुरैः जुष्टाम् विभक्त प्रपथां विश्वकर्म विनिर्मिताम् ॥१५॥

अनुवाद— जहाँ के द्वारों पर सोने के किवाड़ लगे हैं, स्फटिक मणि के गोपुर से सुशोभित विस्तृत तथा अलग-अलग राजमार्गों वाली एवं विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित अमरावती पर राजा बलि ने आक्रमण कर दिया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

रुक्मपट्टानि कपाटानि येषु तैर्द्वारैरवान्तरैः स्फटिकमयै र्गोपुरैश्च पुरद्वारैर्जुष्टाम् विभक्ताः प्रपथा राजमार्गा यस्याम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

जिस नगरी के घर के द्वारों में सुवर्ण के किवाड़ लगे हैं, स्फटिक रचित गोपुर नगर का बाहरी द्वार है, तथा जहाँ के राजमार्ग विस्तृत तथा अलग-अलग हैं ऐसी अमरावती पर राजा बलि ने चढ़ाई कर दी ॥१५॥

सभाचत्वररथ्याढ्यां विमानैर्न्यर्बुदैर्युताम् । शृङ्गाटकैर्मणिमयैर्वज्रविद्रुमवेदिभिः ॥१६॥

अन्वयः— सभाचत्वररथ्याढ्यां न्यर्बुदैःविमानैः युताम् मणिमयैः शृङ्गाटकैः वज्रविद्रुमवेदिभिः ॥१६॥

अनुवाद— सभा के स्थान, आङ्गन तथा उपमार्गों से युक्त दस करोड विमानों से सम्पन्न जहाँ के चौराहे मणियों से निर्मित हैं तथा वेदियाँ हीरे और मूङ्गों से बनी हैं ऐसी अमरावती नगरी पर बलि ने आक्रमण कर दिया ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

सभा उपवेशस्थानानि, चत्वराण्यङ्गनानि, रथ्या उपमार्गास्तैराढ्यां संपन्नाम् । न्यर्बुदं दशकोटयस्तैर्गणनीयैरनन्तैर्विमानैर्युताम्। वज्रविद्रुममय्यो वेदयो येषु तैः । शृङ्गाटकैश्चतुष्पथैर्युताम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

सभा के स्थान चत्वर (आङ्गन) रथ्या (उपमार्ग) इन सबों से सम्पन्न, जिनकी गणना दस-दस करोड़ में की जा सकती है ऐसे अनन्त विमानों से युक्त, जहाँ की वेदियाँ वज्र (हीरे) और विद्रुम (मूङ्गों) की बनी हैं ऐसे चौराहों से युक्त अमरावती नगरी पर आक्रमण किया ॥१६॥

यत्र नित्यवयोरूपाः श्यामा विरजवाससः । भ्राजन्ते रूपवन्नार्य अर्चिर्भिरिव वह्नयः ॥१७॥

अन्वयः— यत्र नार्यः नित्यवयोरूपाः श्यामाः विरजवाससः, रूपवत् अर्चिभिः वह्नय इव भ्राजन्ते ॥१७॥

अनुवाद— उस नगरी की नारियों की अवस्था और सौन्दर्य सदैव बने रहते हैं वे सदा सोलह वर्ष की ही बनी रहती है और निर्मल वस्त्र धारण करती हैं । रूप सम्पन्न वे उस उसीतरह सुशोभित होती हैं जैसे अग्नि अपनी ज्वालाओं से सुशोभित होती है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

नित्यं वयस्तारुण्यं रूपं च सौकुमार्यं यासां ताः रूपवन्नार्यः स्वलंकृताः स्त्रियः यत्र यस्यां भ्राजन्ते ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

जिनकी जवानी और सौन्दर्य सदा ही बने रहते हैं ऐसी सुन्दरी और समलंकृत नारियाँ उस अमरावती में सुशोभित होती है ॥१७॥

सुरस्त्रीकेशविभ्रष्टनवसौगन्धिकस्रजाम् । यत्रामोदमुपादाय मार्ग आवाति मारुतः ॥१८॥

अन्वयः— सुरस्त्री केश विभ्रष्टनव सौगन्धिकस्रजाम् मोदम् उपादाय यत्र मार्गे मारुतः आवाति ॥१८॥

अनुवाद— देवाङ्गनाओं के केशों से गिरी हुई नवीन सौगन्धिक पुष्पों की माला की सुगन्धि को लेकर जहाँ के मार्ग पर वायु सदैव मन्द-मन्द चला करती है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

सुरस्त्रीणां केशेभ्यो विभ्रष्टानां नवसौगन्धिकस्रजामामोदम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

देवस्त्रियों के केश से गिरी हुई नवीन सौगन्धिक पुष्प की माला की सुगन्धि को ॥१८॥

हेमजालाक्षनिर्गच्छद्धूमेनागुरुगन्धिना । पाण्डुरेण प्रतिच्छन्नमार्गे यन्ति सुरप्रियाः ॥१९॥

अन्वयः— हेमजालाक्षनिर्गच्छत पाण्डुरेण अगरुसुगन्धिना धूमेन प्रतिच्छन्नमार्गे सुरप्रिया:यान्तिः ॥१९॥

अनुवाद— सुवर्ण निर्मित खिड़कियों से श्वेत वर्ण की अगरु की सुगन्धि से युक्त धूम से ढँके मार्गों से देवताओं की प्रियतमाएँ चलती हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

हेमगवाक्षेभ्यो निर्गच्छता धूमेन । सुरप्रिया अप्सरसः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

सुवर्णनिर्मित खिड़कियों से निकलने वाले धूम से सुराप्रियाः अर्थात् अप्सराएँ ॥१९॥

मुक्तावितानैर्मणिहेमकेतुभिर्नानापताकावलभीभिरावृताम् ।
शिखण्डिपारावतभृङ्गनादितां वैमानिकस्त्रीकलगीतमङ्गलाम् ॥२०॥

अन्वयः— मुक्तावितानैः मणि हेमकेतुभिः नानापताकावलभीभिः अवृताम् शिखण्डिपारावतभृङ्गनादितां वैमानिक स्त्रीकलगीतमङ्गलम् ॥२०॥

अनुवाद— अमरावती में स्थान-स्थान पर मोतियों के झालरों से अलंकृत चंदोवे टँगे रहते हैं, सुवर्ण की मणिमय पताकाएँ फहराती रहती हैं, छज्जों पर अनेक प्रकार की झंडियाँ लहराती हैं, मयूर कबूतर और भौंरे कलगान करते रहते हैं । तथा जहाँ पर देवताओं की नारियों के गीतों से हमेशा मङ्गल ही बना रहता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

मुक्तामयैर्वितानैर्मणिहेममयैः केतुभिश्च ध्वजैर्नानापताकायुक्ताभिर्वलभीभिश्च विमानानां पुरोभागैरावृतां व्याप्ताम् वैमानिकस्त्रीणां कलगीतैर्मङ्गलाम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

मोतीमयवितानों, मणि तथा सुवर्णमय पताकाओं से युक्त छज्जों वाले विमानों के आगे के भागों से व्याप्त देवताओं की स्त्रियों के मनोहर गीतों से मङ्गलमयी ॥२०॥

मृदङ्गशङ्खानकदुन्दुभिस्वनैः सतालवीणामुरजर्ष्टिवेणुभिः ।
नृत्यैः सवाद्यैरुपदेवगीतकैर्मनोरमां स्वप्रभया जितप्रभाम् ॥२१॥

अन्वयः— मृदङ्गशंखानकदुन्दुभिः स्वकै; सतालवीणामुरजर्ष्टिवेणुभिः सवाद्यैः नृत्यै उपदेवगीतकैः मनोरमाम् स्वप्रभया जितप्रभाम् ॥२१॥

अनुवाद— मृदङ्ग शङ्ख नगाड़े, ढोल वीणा वंशी, मंजीर और ऋष्टियों की ध्वनि से ध्वनित तथा गन्धर्वों कें वाद्यों के साथ नृत्यों से मनोहर बनी अमरावती अपनी प्रभा से प्रभा की अधिष्ठात्री देवी को मानो जींत लेती थी इस प्रकार की अमरावती पर राजा बलि ने आक्रमण कर दिया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

उपदेवानां गन्धर्वादीनां गीतकैश्च मनोरमाम् । जिता प्रभा साक्षाद्दीप्त्यधिष्ठात्री देवता यया ताम् । अन्यैरजितप्रभामिति वा । पाठान्तरे जिता ग्रहाः । सूर्यादयो यया ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

गन्धवों आदि के गीतों से मनोहर बनी हुई अमरावती अपनी प्रभा से प्रभा की अधिष्ठात्री देवी को जींत

ली थी । अथवा दूसरे किसी से उसकी प्रभा को नहीं जीता जा सकता था । **जित ग्रहाम्** पाठ भेद के होने पर जिसने सूर्य इत्यादि ग्रहों को जीत लिया था अर्थ होगा ॥२१॥

यां न व्रजन्त्यधर्मिष्ठाः खला भूतद्रुहः शठाः । मानिनः कामिनो लुब्धा एभिर्हीना व्रजन्ति यत्॥२२॥

अन्वयः— यां अधर्मिष्ठाः खलाः भूतद्रुहः शठाः मानिनः कामिनः लुब्धाः न व्रजन्ति एभिः हीनायत् न व्रजन्ति ॥२२॥

अनुवाद— उस नगरी में अधर्मी दुष्ट, जीवों से द्रोह करने वाले, ठग कामी और लोभी नहीं जा सकते है । जो लोग दोषों से रहित हैं वे ही वहाँ जा सकते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

यत् याम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

जिस नगरी में ॥२२॥

तां देवधानीं स वरूथिनीपतिर्बहिः समन्ताद्रुरुधे पृतन्यया ।
आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं दध्मौ प्रयुञ्जन्भयमिन्द्रयोषिताम् ॥२३॥

अन्वयः— सवरूथिनी पतिः तां देवधानीं बहिः पृतन्यया रुरुधे, इन्द्रयोषितां भयं जनयन् आचार्य दत्तं महास्वनं जलजं दध्मौ ॥२३॥

अनुवाद— उस विशाल आसुरी सेना के पतिराजा बलि ने उस देवताओं की राजधानी को बाहर से चारो ओर से घेर लिया और इन्द्र की पत्नियों को भयभीत करते हुए अपने आचार्य द्वारा प्रदत्त घोर ध्वनि करने वाले शङ्ख को बजाया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

पृतन्यया सेनया ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

पृतन्यया अर्थात् सेन से ॥२३॥

मघवांस्तमभिप्रेत्य बलेः परममुद्यमम् । सर्वदेवगणोपेतो गुरुमेतदुवाच ह ॥२४॥

अन्वयः— मघवान् तम् बलेः उद्यम् अभिप्रेत्य सर्वदेवगणोपेतः गुरुम् एतद् उवाच ह ॥२४॥

अनुवाद— इन्द्र उसे बलि की बहुत बड़ी तैयारी जानकर, सभी देवताओं के साथ जाकर आचार्य बृहस्पति से यह कहे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

भगवन्नुद्यमो भूयान्बलेर्नः पूर्ववैरिणः । अविषह्यमिमं मन्ये केनासीत्तेजसोर्जितः ॥२५॥

अन्वयः— भगवान् नः पूर्ववैरिणः भूयान् उद्यमः इमम् अविषह्य मन्ये केन तेजसा उर्जितः असीत् ॥२५॥

अनुवाद— भगवन् हमारे पुराने शत्रु बलि ने युद्ध की बहुत बड़ी तैयारी की है । मालुम होता है कि हमलोग इसका सामना नहीं कर सकते हैं । न जाने किस शक्ति से यह इतना समृद्ध हो गया है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

केन हेतुनैवं तेजसोर्जित आसीत् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

किस साधन से यह इतना तेजस्वी हो गया ॥२५॥

नैनं कश्चित्कुतो वापि प्रतिव्योढुमधीश्वरः । पिबन्निव मुखेनेदं लिहन्निव दिशो दश ॥
दहन्निव दिशो दृग्भिः संवर्ताग्निरिवोत्थितः ॥२६॥

अन्वयः— नैवं कश्चित् कुतो वापि प्रतिबोढुमधीश्वरः उत्थितः मुखेनेदं पिबन्निव दश दिशः लिहन्निव दृग्भिः दिशो दहन्निवसंवर्ताग्निः इव उत्थितः ।।२६।।

अनुवाद— मुझे लगता है कि कोई भी इनको किसी भी प्रकार रोक सकने में समर्थ नहीं हो सकता है लगता है ये अपने मुख में दिशाओं को पी जायेंगे अपनी जीभ से दशो दिशाओं को चाट जायेंगे । तथा अपने नेत्रों के तेज से दिशाओं को भस्म कर देंगे । ये प्रलय कालीन अग्नि के समान बढ गये हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

प्रतिव्योढुमपाकर्तुम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

प्रति व्योढुम् अर्थात् दूर करने में यानी सामना करने में ।।२६।।

ब्रूहि कारणमेतस्य दुर्धर्षत्वस्य मद्रिपोः । ओजः सहो बलं तेजो यत एतत्समुद्यमः ।।२७।।

अन्वयः— एतस्य महिषो दुधर्षत्वस्य कारणं ब्रूहि यतः ओजः सहो बलं तेज एतत् समुद्यमः ।।२७।।

अनुवाद— आप मुझे यह बतलाइये कि मेरे इस शत्रु की इतनी बढ़ती कैसे हुई जिसके कारण इसको किसी भी प्रकार से दबाया नहीं जा सकता है । इसके शरीर मन और इन्द्रियों में इतना बल कैसे आ गया कि इसने इतनी बड़ी तैयारी करके चढाई की है ?।।२७।।

भावार्थ दीपिका

यतः कारणादेतस्य ओजआदि । यत ओजआदेः एतस्य समुद्यमः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

जिनके कारण इसमें इतना शरीरिक बल आदि आ गया है । जिससे इसने इतनी अधिक तैयारी की है ।।२७।।

गुरुरुवाच

जानामि मघवञ्छत्रोरुन्नतेरस्य कारणम् । शिष्यायोपभृतं तेजो भृगुभिर्ब्रह्मवादिभिः ।।२८।।

अन्वयः— मघवन् तब शत्रोः अस्य उन्नतेः कारणम् जानामि ब्रह्मवादिभिः भृगुभिः शिष्याय तेजः उपभृतम् ।।२८।।

आचार्य बृहस्पति ने कहा

अनुवाद— इन्द्र मैं तुम्हारे शत्रु की इस उन्नति का कारण जानता हूँ । ब्रह्मवादी भृगुवंशी ब्राह्मणों ने अपने इस शिष्य बलि को तेज देकर इतना शक्ति सम्पन्न बना दिया है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

उपभृतं संचितम् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

उपभृतम् अर्थात् शक्ति संचय कर दिया है ।।२८।।

भवद्विधो भवान्वाऽपि वर्जयित्वेश्वरं हरिम् । नास्य शक्तः पुरः स्थातुं कृतान्तस्य यथा जनाः ।।२९।।

अन्वयः— ईश्वरं हरि वर्जयित्वा भवद्विधः भवान् वाऽपि कृतान्तस्य जनः यथा अस्य पुरः स्थातुं न शक्त ।।२९।।

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीहरि को छोड़कर आपके जैसा कोई दूसरा अथवा आप ही इसके सामने उसी तरह नहीं ठहर सकते जैसे काल के सामने कोई भी प्राणी नहीं ठहरता है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

तस्मान्निलयमुत्सृज्य यूयं सर्वे त्रिविष्टपम् । यात कालं प्रतीक्षन्तो यतः शत्रोर्विपर्ययः ॥३०॥

अन्वयः— तस्मात् यूयम् सर्वे त्रिविष्टपम् निलयम् उत्सृज्य यात, कालंप्रतीक्षन्तः यतः शत्रोः विपर्ययः ॥३०॥

अनुवाद— इसलिए तुमलोग सबके सब इस स्वर्ग को छोड़कर कहीं चले जाओ और उस काल की प्रतीक्षा करो जबकि शत्रु का भाग्य पलटे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तत्रोचितं मन्त्रमाह-तस्माद्यूयं त्रिविष्टपमुत्सृज्य निलयमदर्शनं यात । यतः कालात् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

उचित सलाह देते हुए बृहस्पतिजीने कहा कि तुमलोग स्वर्ग को छोड़कर कहीं छिप जाओ । जब तक शत्रु का बुरा दिन न आये ॥३०॥

एष विप्रबलोदर्कः संप्रत्यूर्जितविक्रमः । तेषामेवापमानेन सानुबन्धो विनङ्क्ष्यति ॥३१॥

अन्वयः— एष विप्रबलोदर्कः सम्प्रत्युर्जित विक्रमः तेषामेवापमानेन सानुबन्धः विनङ्क्ष्यति ॥३१॥

अनुवाद— यह ब्राह्मणों के तेजोबल का परिणाम है इस समय इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है । उन ब्राह्मणों का ही अपमान करने के कारण यह सवंश विनष्ट हो जायेगा ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

केनास्य विपर्ययः स्यादित्यत आह-एष इति । विप्राणां बलेनोदर्क उत्तरोत्तरमधिकं फलं यस्य सः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

किस कारण से इसका भाग्य पलटेगा इस पर बृहस्पतिजी ने कहा यह ब्राह्मणों के तेज का फल है इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है ॥३१॥

एवं सुमन्त्रितार्थास्ते गुरुणाऽर्थानुदर्शिना । हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुर्गीर्वाणाः कामरूपिणः ॥३२॥

अन्वयः— अथ दर्शिना गुरुणा सुमन्त्रिताः ते कामरूपिणः गीर्वाणाः त्रिविष्टपं हित्वा जग्मुः ॥३२॥

अनुवाद— सब कुछ जानने वाले बृहस्पतिजी द्वारा सुन्दर सलाह दिए जाने पर अपने मनोऽनुकूल रूप धारण करने वाले, देवता स्वर्ग को छोड़कर चले गये ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

सुमन्त्रितोऽर्थ कार्यं येषां ते । निलयं जग्मुः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

कार्योपयोगी सुन्दर सलाह पाकर देवता कहीं छिप गये ॥३२॥

देवेष्वथ निलीनेषु बलिर्वैरोचनः पुरीम् । देवधानीमधिष्ठाय वशं निन्ये जगत्रयम् ॥३३॥

अन्वयः— अथ देवेषु निलीनेषु वैरोचनः बलिः देवधानीम् पुरीम् अधिष्ठाय जगत्रयं वंश निन्ये ॥३३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् देवताओं के छिप जाने पर विरोचन के पुत्र बलि देवताओं की राजधानी अमरावती पर अधिकार करके त्रैलोक्य को अपने वश में कर लिया ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः । शतेन हयमेधानामनुव्रतमयाजयन् ।।३४।।

अन्वयः— शिष्य वत्सला भृगवः तं विश्वविजयिनं अनुव्रतम् शिष्यं हयमेधानाम शतेन अयाजयन् ।।३४।।

अनुवाद— शिष्य प्रेमी भृगुवंशी ब्राह्मणों ने जब वली विश्व विजयी हो गये तो अपने अनुगात शिष्य से सौ अश्वमेघ याग करवाया ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

एवं प्राप्तमिन्द्रपदं स्थिरीकर्तुमयाजयन् अनुव्रतमनुवर्तिनम् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से प्राप्त हुए इन्द्र पद को स्थिर करने के लिए यज्ञ कराया । **अनुव्रतम्** अनुवर्तन करने वाला।।३४।।

ततस्तदनुभावेन भुवनत्रयविश्रुताम् । कीर्ति दिक्षु वितन्वानः स रेज उडुराडिव ।।३५।।

अन्वयः— ततः तदनुभावेन भुवनत्रयविश्रुताम् कीर्ति दिक्षुवितन्वानः उडुराडिवरेजे ।।३५।।

अनुवाद— उसके पश्चात् उन यज्ञों के प्रभ से त्रैलोक्य में विख्यात राजा बलि की कीर्ति दशो दिशाओं में फैल गयी और वे चन्द्रमा के समान सुशोभित हुए ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

बुभुजे च श्रियं स्वृद्धां द्विजदेवोपलम्भिताम् । कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामनाः ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेअष्टमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

अन्वयः— द्विजोदेवोपलम्भिताम् स्वृद्धां श्रियं महामनाः आत्मानं कृतकृत्यं मन्यमनः बुभुजे ।।३६।।

अनुवाद— ब्राह्मणों एवं देवताओं की कृपा से प्राप्त राज्य लक्ष्मी का महामना बलि ने बड़ी उदारता से उपभोग किया और अपने को कृतकृत्य मानने लगे ।।३६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

द्विजदेवैर्ब्राह्मणैरूपलम्भितां प्रापिताम् ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां पञ्चदशोऽध्याय; ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण रूपी देवताओं से प्राप्त ।।३६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के पन्द्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१५।।

* * *

सोलहवाँ अध्याय

महर्षि कश्यप द्वारा अदिति को पयोव्रत का उपदेश

श्रीशुक उवाच

एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमाताऽदितिस्तदा । हृते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्यतप्यदनाथवत् ।।१।।

अन्वयः— तदा एवं पुत्रेषु नष्टेषु त्रिविष्टपे दैत्यैः हृते देवमाता अदितिः अनाथवत् पर्यतप्यत् ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— उस समय देवताओं के छिप जाने पर दैत्यों द्वारा स्वर्ग पर अधिकार कर लिए जाने पर देवमाता अनाथ के समान संतप्त होने लगी ।।१।।

भावार्थ दीपिका

षोडशे पुत्रनाशेन शोचन्त्या अदितेः पतिः । प्रार्थितः कश्यपः प्राह पयोव्रतमितीर्यते । इदानीं श्रीवामनावतारप्रसङ्गमाह एवमित्यादि यावत्समाप्ति । नष्टेष्वदृष्टेषु सत्सु ।।१।।

भाव प्रकाशिका

सोलहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि अपने पुत्रों के छिप जाने पर शोक करने वाली अदिति द्वारा प्रार्थना किए जाने पर उनके पति महर्षि कश्यप ने उनको पयोव्रत का उपदेश दिया । इस समय श्रीवामनावतार के प्रसङ्ग का वर्णन **एवम् इत्यादि** श्लोक से लेकर अध्याय की समाप्ति पर्यन्त किया जा रहा है। नष्टेषु अर्थात् अदृश्य हो जाने पर ।।१।।

एकदा कश्यपस्तस्या आश्रमं भगवानगात् । निरुत्सवं निरानन्दं समाधेर्विरतश्चिरात् ।।२।।

अन्वयः— एकदा चिरात् समाधेः विरतः भगवान् कश्यपः निरुत्सवं निरानन्दं तस्याः आश्रमं अगात् ।।२।।

अनुवाद— एक बार दीर्घकाल के बाद समाधि टूटने पर भगवान् कश्यप उत्सव और आनन्द रहित अदिति के आश्रम में गये ।।२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२।।

स पत्नीं दीनवदनां कृतासनपरिग्रहः । सभाजितो यथान्यायमिदमाह कुरूद्वह ।।३।।

अन्वयः— हे कुरुद्वह ! कृतासन परिग्रहः यथा न्यायम् सभाजितः स दीनसदनां पत्नीम् इदमाह ।।३।।

अनुवाद— परीक्षित् जब वे वहाँ जाकर आसन पर बैठ गये और अदिति ने उनका विधि पूर्वक सत्कार किया उसके पश्चात् भगवान् कश्यप उदास बनी हुई अपनी पत्नी से कहे ।।३।।

भावार्थ दीपिका

स कश्यपः पत्नीमिदमाह ।।३।।

भाव प्रकाशिका

वे महर्षि कश्यप अपनी पत्नी से कहे ।।३।।

अप्यभद्रं न विप्राणां भद्रे लोकेऽधुनाऽगतम् । न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योश्छन्दानुवर्तिनः ।।४।।

अन्वयः— भद्रे ! अधुना लोके विप्राणां अभद्रं न आगतम् ? मृत्योः छन्दानुवर्तिनः लोकस्य न अधर्मस्य न ।।४।।

अनुवाद— कल्याणी ! इस समय संसार में ब्राह्मणों पर कोई आपत्ति तो नहीं आयी हैं ? मृत्यु के वश में रहने वाले लोगों पर तो आपत्ति नहीं आयी है ? अथवा धर्म पर तो कोई विपत्ति नहीं आयी है ?॥४॥

भावार्थ दीपिका

दीनवदनत्वादिकमालक्ष्य बहुधा विकल्पयन्पृच्छति-अप्यभद्रमिति सप्तभिः- हे भद्रे, मृत्योश्छन्दमिच्छामनुवर्तत इति तथा, मृत्युवशवर्तिनो जनस्येत्यर्थः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

अदिति को उदास देखकर अनेक प्रकार से विकल्प करके **अप्यभद्रम्० इत्यादि** श्लोक से लेकर सात श्लोकों से पूछते हैं । हे कल्याणि मृत्यु के वश में रहने वाले प्राणियों पर कोई आपत्ति नहीं आयी है न ?॥४॥

अपि वाऽकुशलं किंचिद्गृहेषु गृहमेधिनि । धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम् ॥५॥

अन्वयः— हे गृहमेधिनि गृहेषु धर्मस्य, अर्थस्य कामस्य किञ्चित् अकुशलं वा यत्र हि अयोगिनाम् योगः ॥५॥

अनुवाद— हे गृहेश्वरि ! इस गृहस्थाश्रम में धर्म, अर्थ अथवा काम में किसी प्रकार की अकुशलता तो नहीं हैं, क्योंकि गृहस्थाश्रम में तो अयोगियों को भी योग का फल प्राप्त हो जाता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

हे गृहमेधिनि, अपि वा किंवा गृहेषु धर्मादेः-किंचिदकुशलमिति काक्वा प्रश्नः । यत्र येषु गृहेषु । अयोगिनामपि योगः स्वधर्मादिना योगफलं भवति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

हे प्रिये ! गृह में किसी धर्म आदि का कोई अकुशल तो नहीं है ? इस तरह काकु के द्वारा पूछते हैं जिन गृहों में रहने वाले आयोगियों को भी स्वधर्म पालन आदि के द्वारा योग का फल प्राप्त हुआ करता है ॥५॥

अपि वाऽतिथयोऽभ्येत्य कुटुम्बासक्तया त्वया । गृहादपूजिता याता; प्रत्युत्थानेन वा क्वचित् ॥६॥

अन्वयः— अपि वा क्वचित् अतिथयः अभ्येत्य कुटुम्बासक्तया त्वया अभ्युत्थानेन अपूजिता गृहात् याताः ॥६॥

अनुवाद— कहीं ऐसा तो नहीं है कि अतिथि आये हैं और कुटुम्ब में ही आसक्त होने के कारण तुम उनका अभ्युत्थान इत्यादि से समादर नहीं कर पायी हो और अपूजित ही वे लौट गये हों ॥६॥

भावार्थ दीपिका

किंवा त्वया अपूजिता एवाभ्येत्य गृहाद्याताः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

अथवा अतिथि आये हों तुमसे पूजित हुए बिना ही लौट गयें हों ॥६॥

गृहेषु येष्वतिथयो नार्चिताः सलिलैरपि । यदि निर्यान्ति ते नूनं फेरुराजगृहोपमाः ॥७॥

अन्वयः— येषु गृहेषु अतिथयः सलिलै; अपिनार्चिताः यदि निर्यान्ति ते नूनं फेरुराजगृहोपमाः ॥७॥

अनुवाद— जिन गृहों में आये हुए अतिथि का जल से भी समादर नहीं होता है और अतिथि बिना पूजित हुए ही लौट जाते हैं तो वह गृह स्यारिनों के घर के समान हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

नार्चिता अनर्चिताः सन्तो यदि निर्गच्छन्ति ते गृहाः फेरुराजः शृगालराजस्तदीयविवरतुल्याः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

बिना पूजित हुए ही चले जाते हैं तो यह शृगाल राज के बिल के समान है ॥७॥

अप्यग्नयस्तु वेलायां न हुता हविषा सति । त्वयोद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मयि कर्हिचित् ॥८॥

अन्वयः— भद्रे ! मयि प्रेषिते कर्हिचित् उद्विग्नधिया त्वया अग्नयः वेलायां हविषा न हुता सति ॥८॥

अनुवाद— कल्याणि यह भी सम्भव है कि मेरे चले जाने से उद्विग्नमना होने के कारण अग्नियों में मन्द से हविष्य का होम नहीं कर पायी हो इसीलिए तुम उदास हो ॥८॥

भावार्थ दीपिका

वेलायां होमकाले कर्हिचिन्न हुताः किम् ?॥८॥

भाव प्रकाशिका

होम की बेला में होम नहीं करायी हो क्या ?॥८॥

यत्पूजया कामदुघान्याति लोकान्गृहान्वितः । ब्राह्मणोऽग्निश्च वै विष्णोः सर्वदेवात्मनो मुखम् ॥९॥

अन्वयः— गृहान्वितः यत् पूजया कामदुघान् लोकान् याति ब्राह्मणः अग्निः च सर्वदेवात्मनो विष्णोः मुखम् ॥९॥

अनुवाद— गृहस्थ पुरुष जिनकी पूजा करके सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले लोकों में जाता है, वे ब्राह्मण और अग्नि, सर्वदेवातमय भगवान् विष्णु के मुख हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

अपि सर्वे कुशलिनस्तव पुत्रा मनस्विनि । लक्षयेऽस्वस्थमात्मानं भवत्या लक्षणैरहम् ॥१०॥

अन्वयः— हे मनस्विनि भवत्याः सर्वे पुत्रा कुशलिनः अपि सन्ति लक्षणैः अहम् भवत्याः आत्मनम् अस्वस्थम् लक्षये॥१०॥

अनुवाद— हे प्रिये ! तुम्हारे सभी पुत्र कुशल पूर्वक तो हैं न ? लक्षणों के द्वारा मुझे लगता है कि तुम्हारा चित्त अस्वस्थ है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

भवत्या आत्मानं मनः अस्वस्थमप्रकृतिस्थं लक्षणैर्मुखम्लान्यादिभिर्लक्षयामि ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

तुम्हारे मुखमालिन्य इत्यादि को देखकर मुझे प्रतीत होता है तुम्हारा चित्त स्वस्थ नहीं है ॥१०॥

अदितिरुवाच

भद्रं द्विजगवां ब्रह्मन्धर्मस्यास्य जनस्य च । त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रं गृहमेधिन्गृहा इमे ॥११॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! द्विजगवां धर्मस्य अस्य जनस्य च भद्रं हे गृहमेधिन् इमे गृहाः त्रिवर्गस्य परंक्षेत्रम् ॥११॥

अदिति देवी ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! ब्राह्मण, गौ, धर्म और मैं ये सबके सब कुशल पूर्वक हैं । हे भगवन् ! यह गृहस्थाश्रम ही धर्म, अर्थ और काम इन तीनों की साधन में परम सहायक है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अस्वास्थ्यकारणमन्यदस्तीति वक्तुं त्वत्पृष्टमभद्रादिकं नास्तीत्याह-भद्रमिति द्वाभ्याम् । इमे गृहास्त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रमुद्भवस्थानम्। त्रिवर्गोऽपि यथावद्वर्तत इत्यर्थः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

भद्रम्० इत्यादि दो श्लोकों से अदिति देवी अस्वास्थ्य का कारण दूसरा ही है, यह बतलाने के लिए कहती हैं कि आपके द्वारा पूछे गये अभद्र इत्यादि नहीं है । गार्हस्थ्य तो त्रिवंग की उत्पत्ति का स्थान है । त्रिवर्ग भी यथावत् है ॥११॥

अग्नयोऽतिथयो भृत्या भिक्षवो ये च लिप्सवः । सर्वं भगवतो ब्रह्मन्ननुध्यानान्न रिष्यति ॥१२॥

अन्वयः— ब्रह्मन् भगवतः अनुध्ययानात् अग्नयः, अतिथयः भृत्याः भिक्षवः ये लिप्सवः सर्वे न रिष्यति ॥१२॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् मैं सदा आपका ध्यान करती हूँ इसलिए अग्नि, अतिथि, सेवक, भिक्षु तथा दूसरे याचक किसी का भी मैंने तिरस्कार नहीं किया है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

भगवतस्तवानुध्यानं यन्मया क्रियते तस्मादग्रयोऽतिथय इत्यादि सर्वं न रिष्यति न क्षीयते ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

चूकि मैं आपका सदा ध्यान किया करती हूँ इसलिए अग्नि अतिथि आदि सबों का मैंने सत्कार किया ॥१२॥

को नु मे भगवन्कामो न संपद्येत मानसः । यस्या भवान्प्रजाध्यक्ष एवं धर्मान्प्रभाषते ॥१३॥

अन्वयः— हे भगवन् ! मे को नु मानसः कामः न सम्पद्येत यस्या प्रजाध्यक्षो भवान एवं धर्मान प्रभाषते ॥१३॥

अनुवाद— हे भगवन् ! मेरे मन की कौन सी कामना है जो सफल न हो, क्योंकि आप जैसे प्रजापति मुझे इस प्रकार से सदा धर्म का उपदेश देते रहते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतं विज्ञापयितुमाह-को न्विति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

जिसे निवेदित करना है उसका निवेदन करने के लिए आदिति देवी **को नु इत्यादि** श्लोक को कहती हैं॥१३॥

तवैव मारीच मनः शरीरजाः प्रजा इमाः सत्त्वरजस्तमोजुषः ।
समो भवांस्तास्वसुरादिषु प्रभो तथापि भक्तं भजते महेश्वरः ॥१४॥

अन्वयः— हे मरीच इमाः सत्त्वरजस्तमोजुषः प्रजाः मनः शरीरजाः हे प्रभो भवान् तासुअसुरादिषु समः तथापि महेश्वरः भक्तं भजते ॥१४॥

अनुवाद— हे आर्य पुत्र ! ये सात्त्विकी, राजसी एवं तामसी सारी प्रजाएँ आपके सङ्कल्प अथवा शरीर से उत्पन्न हुई हैं । हे प्रभो आप उन असुरादि के प्रति भी देवताओं के समान ही भाव रखते हैं फिर भी भगवान् भी अपने भक्तों की ही अभिलाषा पूर्ण करते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

संपाद्यं काममाह-तवैवेति चतुर्भिः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

तवैव इत्यादि चार श्लोकों से अदिति देवी ने जिस कामना को पूर्ण करना है उसको बतलाया है ॥१४॥

तस्मादीश भजन्त्या मे श्रेयश्चिन्तय सुव्रत । हतश्रियो हतस्थानान्सपत्नैः पाहि नः प्रभो ॥१५॥

अन्वयः— हे ईश तस्मात् भजन्त्याः मे श्रेयः चिन्तय, हे सुव्रतप्रभो ! हतश्रियः हतस्थानान् नः पाहि ॥१५॥

अनुवाद— हे स्वामिन् ! आपका भजन करने वाली मेरे कल्यण का आप चिन्तन करें । जिनके ऐश्वर्य और स्थान दोनों छिन गये हैं ऐसे हमलोगों की आप रक्षा करें ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

सपत्नैर्दैत्यैर्हृता श्रीर्येषाम् । हृतं स्थानं येषामिति पुत्राभिप्रायेण बहुवचनम् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

शत्रु दैत्यों ने जिन सबों के ऐश्वर्य और स्थान दोनों को छिन लिया है ऐसे हमारे पुत्रों की रक्षा आप करें। पुत्रों के अनेक होने से नः यह बहुवचन प्रयोग किया गया है ।।१५।।

परैर्विवासिता साहं मग्ना व्यसनसागरे । ऐश्वर्यं श्रीर्यशः स्थानं हृतानि प्रबलैर्मम ।।१६।।

अन्वयः— परैः विवसिता साहं व्यसने सागरे मग्ना प्रबलैः मम ऐश्वर्य श्रीः यशः स्थानं चहृतानि ।।१६।।

अनुवाद— प्रबल दैत्य शत्रुओं ने मुझे घर से बाहर निकाल दिया और अतएव मैं तो दुःख सागर में पड़ी हुई हूँ । प्रबल शत्रुओं ने मेरे ऐश्वर्य श्री, यश और स्थान को भी छिन लिया है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१६।।

यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन्ममात्मजाः । तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्याणकृत्तम ।।१७।।

अन्वयः— हे कल्याणकृतम प्रभो ममात्मजाः पुनः यथातानि प्रपद्येरन् तथा धिया कल्याणं विधेहि ।।१७।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आपसे बढ़कर मेरा दूसरा कोई भी कल्याण करने वाला नहीं है अतएव मेरे पुत्र जिस तरह से पुनः उन सबों को प्राप्त कर लें वैसा आप बुद्धि से विचार कर अपने सङ्कल्प से ही मेरा कल्याण कीजिए ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

श्रीशुक उवाच

एवमभ्यर्थितोऽदित्या कस्तामाह स्मयन्निव । अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं जगत् ।।१८।।

अन्वयः— एवम् अदित्या अभ्यर्थितः कः स्मयन्निव ताम् आह । अहो माया बलं विष्णोः इदं जगत् स्नेह बद्धम्।।१८।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— अदिति देवी के द्वारा इस प्रकार से प्रार्थना किए जाने पर कश्यप प्रजापति ने मुस्कुराते हुए उनसे कहा । आश्चर्य है । भगवान् विष्णु की माया का बल कैसा है ? कि उसने इस संसार को स्नेह की रस्सी से बाँध रखा हैं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

कः कश्यपः । प्रथमं तावत्पुत्रस्नेहं त्याजयितुं विस्मयव्याजेनैव तत्त्वमुपदिशति-अहो इति सार्धेन ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

कः शब्द से कश्यप महर्षि को कहा गया है । सर्वप्रथम पुत्र का स्नेह त्यागने के लिए विस्मय के बहाने तत्त्व का उपदेश देते हैं ।।१८।।

क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृतेः परः । कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम्।।१९।।

अन्वयः— भौतिकः अनात्मा देहः क्व ? प्रकृतेः परः आत्मा च क्व ? कस्य के पतिपुत्राद्याः मोह एव ही कारणम्।।१९।।

अनुवाद— कहाँ तो भौतिक तथा अनात्मा देह ? और कहाँ प्रकृति से भी परे आत्मा ? किसी का कोई न पति है, न पुत्र है और न सम्बन्धी है । इसका एकमात्र कारण अज्ञान है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१९।।

उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवन्तं जनार्दनम् । सर्वभूतगुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम् ।।२०।।

अन्वयः सर्व भूतगुहावासं जनार्दनं भगवन्तं पुरुषं वासुदेवं जगद्गुरुम् उपतिष्ठस्व ।।२०।।

अनुवाद —सबों के हृदय में निवासकरने वाले भक्तों के भय को दूर करने वाले परम पुरुष श्रीभगवान वासुदेव की आराधना करो वे सम्पूर्ण जगत के स्वामी हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

अत्रापरितुष्यन्तीं प्रत्याह-उपतिष्ठस्वेति द्वाभ्याम ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

उपतिष्ठस्व इत्यादि दो श्लोकों से असन्तुष्ट अदिति देवी के प्रति महर्षि कश्यप ने कहा ।।२०।।

स विधास्यति ते कामान्हरिर्दीनानुकम्पनः । अमोघा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम ।।२१।।

अन्वयः— सः दीनानुकम्पनः हरिः ते कामान् विधास्यति । भगवद् भक्तिः अमोघा इतरा न इति मम मतिः ।।२१।।

अनुवाद— दीन जनों पर कृपा करने वाले श्रीहरि तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगे । भगवान की भक्ति कभी विफल नहीं होती, उससे भिन्न मेरे विचार से दूसरा कोई साधन नहीं है ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेवंभूतकामप्राप्तिहेतुर्देवान्तरसेवा प्रसिद्धा तत्राह-अमोघेति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें की कामना की सिद्धि के लिए दूसरे देवता की उपासना प्रसिद्ध है तो इस पर कहते हैं भगवान् की भक्ति अमोघ साधन है ।।२१।।

अदितिरुवाच

केनाहं विधिना ब्रह्मन्नुपस्थास्ये जगत्पतिम् । यथा मे सत्यसङ्कल्पो विदध्यात्स मनोरथम् ।।२२।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् अहं केन विधिना जगत् पतिम् उपस्थास्ये येन सत्यसङ्कल्पः स मे मनोरथम् विदध्यात् ।।२२।।

देवी अदिति ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! मैं किस विधि से जगत् के स्वामी श्रीभगवान् की आराधना करूँगी जिससे कि वे सत्य सङ्कल्प प्रभु मेरे मनोरथ को सफल बनायेंगे ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

यथा च मे मनोरथं विदध्यात् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

जिससे कि वे प्रभो मेरे मनोरथ को सफल करेंगे ।।२२।।

आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तदुपधावनम् । आशु तुष्यति मे देवः सीदन्त्याः सह पुत्रकैः ।।२३।।

अन्वयः— हे द्विजश्रेष्ठ तदुपधावनं विधिम् त्वं आदिश सीदन्त्याः देवः पुत्रकैः सह मे आशुतुष्यति ।।२३।।

अनुवाद— हे द्विजश्रेष्ठ ! श्रीभगवान् की आराधना की विधि का आप मुझे उपदेश दे जिससे मेरे पुत्रों के साथ दुखिनी मेरे ऊपर भगवान् शीघ्र प्रसन्न हों ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

यथा च मे आशु तुष्यति तथा तत्सेवाप्रकारमादिश ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

जिस तरह से श्रीभगवान् शीघ्र प्रसन्न होते हैं सेवा के उसी प्रकार का हमें उपदेश दें ।।२३।।

कश्यप उवाच

एतन्मे भगवान्पृष्टः प्रजाकामस्य पद्मजः । यदाह ते प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोषणम् ।।२४।।

अन्वयः— प्रजाकामस्य मे एतत् पृष्टः भगवान् पद्मजः यदाह ते केशवतोषणम् व्रतं प्रवक्ष्यामि ।।२४।।

महर्षि कश्यप ने कहा

अनुवाद— सन्तान प्राप्ति की इच्छा से मैंने जब मैंने ब्रह्माजी से पूछा तो उन्होंने श्रीभगवान् को प्रसन्न करने वाले जिस व्रत को बतलाया उसे ही मैं तुमको बतलाता हूँ ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

मे मया पृष्टः पद्मजो मे तद्व्रतमाह एतत्ते तव प्रवक्ष्यामीत्यन्वयः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

सन्तान प्राप्ति की इच्छा से मेरे द्वारा पूछे जाने पर ब्रह्माजी ने जो व्रत मुझको बतलाया उसको मैं तुम्हें बतलाता हूँ ।।२४।।

फाल्गुनस्यामले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतः । अर्चयेदरविन्दाक्षं भक्त्या परमयाऽन्वितः ।।२५।।

अन्वयः— फाल्गुनस्य अमले पक्षे द्वादशाहं पयोव्रतः परमया भक्त्या अन्वितः अरविन्दं अर्चयेत् ।।२५।।

अनुवाद— फाल्गुन के शुक्ल पक्ष में बारह दिनों तक केवल दूध पीकर रहे और परम भक्ति से भगवान् कमल नयन की पूजा करें ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

अमले शुक्ले ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

अमलेपक्षे अर्थात् शुक्ल पक्ष में ।।२५।।

सिनीवाल्यां मृदालिप्य स्नायात्क्रोडविदीर्णया । यदि लभ्येत वै स्रोतस्येतं मन्त्रमुदीरयेत् ।।२६।।

अन्वयः— सिनीवाल्यां यदि लभ्येत वै क्रोडविदीर्णया मृदा लिप्य स्रोतसि स्नायात् एतं वै मन्त्रमुदीरयेत् ।।२६।।

अनुवाद— आमावस्या के दिन मिल सके तो वराह के द्वारा खोदी गयी मिट्टी से देह को मलकर इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए नदी में स्नान करे ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

तत्रादौ पूर्वेद्युःकृत्यमाह-सिनीवाल्यामित्यादिना ब्रह्मचार्यथ तद्रात्र्यामित्यन्तेन ग्रन्थेन । यदि लभ्येत तर्हि क्रोडविदीर्णया वन्यवराहोत्खातया आलिप्य ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

व्रत प्रारम्भ करने से एक दिन पहले का कृत्य बतलाते हैं सिनीवाल्याम् इससे प्रारम्भ करके उस दिन ब्रह्मचारी

रहे इस ग्रन्थ पर्यन्त उस दिन के कृत्य के बतलाये हैं । यदि मिल जाय तो वनैले सूकर के द्वारा खोदी हुई मिट्टी को शरीर में मलकर स्नान करे ॥२६॥

त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता । उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥२७॥

अन्वयः— हे देवि ! स्थानम् इच्छता आदिवराहेण त्वं रसायाः उद्धृता असि मे पाप्मानं प्रणाशय ॥२७॥

अनुवाद— हे देवि ! प्राणियो को स्थान प्रदान करने की इच्छा से आदि वाराह भगवान् ने आपका रसातल से उद्धार किया । आपको मेरा नमस्कार है आप मेरे पापों का नाश कर दें ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

तत्र मन्त्रः-त्वं देवीति । हे देवि, त्वं रसाया उद्धृतासि ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

अपने शरीर में मिट्टी मलने का मन्त्र हे देवि ! आपका भगवान् ने रसातल से उद्धार किया है ॥२७॥

निर्वर्तितात्मनियमो देवमर्चेत्समाहितः । अर्चायां स्थण्डिले सूर्ये जले वह्नौ गुरावपि ॥२८॥

अन्वयः— निर्वर्तितात्मनियमः समाहितः आर्चायां, स्थण्डिले, सूर्ये, बह्नौ गुरौ अपि देवम् अर्चयेत् ॥२८॥

अनुवाद— नित्यनैमितिक कृत्यों को पूरा करके एकाग्रमन से मूर्ति में, अथवा वेदी पर या सूर्य में अथवा गुरु में ही श्रीभगवान् की अर्चना करे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

निर्वर्तित आत्मनियमो नित्यनैमित्तिको येन ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

अपने नित्य नैमित्तिक कृत्यों को पूरा करने के पश्चात् ॥२८॥

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे । सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥२९॥

अन्वयः— भगवते पुरुषाय महीयसे सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे तुभ्यं नमः ॥२९॥

अनुवाद— सम्पूर्ण ऐश्वर्य सम्पन्न सबों में अन्तर्यामी रूप से निवास करने वाले स्वेतर समस्त वस्तुओं से महान, सभी जीवों के भीतर निवास करने वाले तथा वासुदेव तथा सबों के साक्षी हे भगवान् आपको मेरा प्रणाम है॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तत्रावाहनादौ नवमन्त्रानाह-नमस्तुभ्यमिति । पाद्यादौ विशेषतस्तु द्वादशाक्षरं वक्ष्यति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

आवाहन के प्रारम्भ में **नमस्तुभ्यम् इत्यादि** नव मन्त्रों को कहते हैं पाद्य आदि के लिए विशेष रूप से द्वादशाक्षर मन्त्र को महर्षि बतलायेंगे ॥२९॥

नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च । चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे ॥३०॥

अन्वयः— अव्यक्ताय, सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय चतुर्विंशदगुणज्ञाय, गुणसंख्यान् हेतवे नमः ॥३०॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप अव्यक्त और सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं । प्रकृति तथा पुरुष के रूप में आप ही स्थित हैं आप चौबीस गुणों के जानने वाले हैं तथा आप ही सांख्य शस्त्र के प्रवर्तक हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्विंशतिगुणास्तत्त्वानि जानातीति तथा तस्मै । गुणसंख्यानस्य हेतवे सांख्यप्रवर्तकाय ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

चतुर्विंशद्गुणज्ञाय का अर्थ है चौबीस तत्त्वों को जानने वाले आपको **गुणसंख्यानहेतवे** अर्थात् सांख्य शास्त्र के प्रवर्तक आप को नमस्कार है ।।३०।।

नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःशृङ्गाय तन्तवे । सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ।।३१।।

अन्वयः— द्वे शीर्ष्णे त्रिपदे, चतुःशृङ्गाय, तन्तवे, सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयी विद्यात्मने नमः ।।३१।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप यह यज्ञ जिसके प्राणणीय है उदयनीय ये हो कर्म हैं । प्रातः मध्य और सायं ये तीन सवन ही तीन पैर हैं, चारो वेद सींग हैं, गायत्री आदि सात छन्द ही सात हाथ हैं, यह धर्ममय वृषभरूप यज्ञ वेदों के द्वारा प्रतिपादित है और उसकी आत्मा आप हैं । ऐसे आपको मेरा नमस्कार है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

एवं सामान्यतो नत्वा गुणावतारान्प्रणमति त्रिभिः-तत्रादौ मन्त्रोक्तयज्ञरूपेण विष्णोः प्रणामः नम इति । द्वे शीर्षे यस्य। त्रयः पादा यस्य । तन्तवे फल विस्तारकाय । त्रय्यां विद्यायामात्मा यस्येति 'त्रिधा बद्धः' इत्यस्यार्थ उक्तः । तथा च मन्त्रः- 'चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य । त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यांऽआविवेश' इति। 'मार्गमुद्रवदालूनः सोऽयं प्राज्ञैर्यथायथम् । विष्णुस्तु यज्ञरूपेण स्तूयतेऽनेन तत्त्वतः' इति । तथा च यास्कः- 'चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत उक्तास्त्रयोऽस्य पादाः सवनानि त्रीणि द्वे शीर्षे प्रायणीयोदयनीये सप्तहस्तासः सप्तच्छन्दांसि त्रिधा बद्धस्त्रेधा बद्धो मन्त्रब्राह्मणकल्पैर्वृषभो रोरवीति रोरवणमस्य सवनक्रमेण ऋग्भिर्यजुभिः सामभिर्यदेनमृग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामाभिः स्तुवन्ति महो देव इत्येष हि महान्देवो यद्यज्ञो मर्त्यांऽआविवेशेत्येष हि मनुष्यानाविशति यजनाय' इति ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह सामान्यतः नमस्कार करके तीन मन्त्रों से श्रीभगवान् के गुणावतारों को प्रणाम करते हैं । सर्वप्रथम मन्त्रोक्त यज्ञ रूप से भगवान् विष्णु को नमस्कार करते हैं । यज्ञ रूप श्रीभगवान् के दो शिर हैं, तीन चरण हैं, आप फल का विस्तार करने वाले है । त्रयी विद्या में ही आपकी आत्मा है । यह त्रिधाबद्धः का अर्थ है । इसी अर्थ का प्रतिपादक **चत्वारिशृङ्गा इत्यादि** मन्त्र है । मार्गमुद्रवदालूनः इत्यादि इसका अर्थ है कि निवृतिमार्ग से प्राप्त होने वाली मुक्ति को नहीं जानने वाले परमात्मा की प्राप्ति कराने वाले प्रकृति मार्ग में ही आनन्दानुभव करते हैं। ऐसे आचार्यों द्वारा यथोचित भगवान् विष्णु की यज्ञ रूप से इस चत्वारिशृङ्ग इत्यादि मन्त्र से स्तुति की जाती है। यास्क महर्षि ने चत्वारि शृङ्ग इत्यादि मन्त्र की व्याख्या इस तरह से की है । अर्थात् इस यज्ञ स्वरूप परमात्मा के चारो वेद ही चार सींग है । तीनों सवन ही इसके तीन चरण हैं । प्रायणीय और उदयनीय ये दोनों कर्म ही इनके सिर हैं, गायत्री आदि सात वैदिक छन्द ही इनके सात हाथ हैं मन्त्र ब्राह्मण और कल्प भाग रूप तीन वेदभागों से ये बंधे है, इस प्रकार से फलों को प्रदान करने वाले यज्ञ रूप वृषभ शब्द करता है । ऋग्वेद के द्वारा ऋत्विगगण इसका शंसन करते हैं, यजर्वेद से यजन करते हैं और सामवेद से स्तुति करते हैं । यह यज्ञ ही महान देव हैं। सभी पुरुषों में पूजन किए जाने के लिए प्रविष्ट हैं ।।३१।।

नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च । सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ।।३२।।

अन्वयः— शिवाय नमः रुद्राय नमः, शक्तिधराय (नमः) सर्वविद्याधिपतये नमः भूतानां पतये नमः ।।३२।।

अनुवाद— हे प्रभो आप ही लोक कल्याणकारी शिव हैं, आप ही प्रलय करने वाले रुद्र है, आप ही सभी

शक्तियों को धारण करने वाले हैं । आप ही सभी विद्याओं के अधिपति और भूतों के स्वामी है, ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका नहीं है ।।३२।।

नमस्ते आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः । नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ।।३४।।

अन्वयः— हिरण्यगर्भाय, प्राणाय, जगदात्मने योगैश्वर्यशरीराय योगहेतवे ते नमो नमः ।।३४।।

अनुवाद— हे हिरण्यगर्भ प्रभो ! आप ही सबों के प्राण है । योग से मिलने वाला ऐश्वर्य आप ही हैं और आप ही योग स्वरूप भी हैं । ऐसे आप को बारम्बार नमस्कार है ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

प्राणाय सूत्रात्मने । योगैश्वर्यं शरीर यस्य ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

प्राणाय अर्थात् सूत्रात्मक तथा योगैश्वर्य शरीरक आप को बारम्बार नमस्कार है ।।३३।।

नमस्ते आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः । नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ।।३४।।

अन्वयः— आदि देवाय सक्षिभूताय नारायणाय ऋषये नराय हरये नमो नमः ।।३४।।

अनुवाद— हे प्रभो आप आदिदेव को मेरा नमस्कार है । आप सबों के साक्षी नारायण ऋषि तथा नर ऋषि तथा श्रीहरि भी हैं । ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है ।।३४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३४।।

नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये । केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ।।३५।।

अन्वयः— मरकतश्यामवपुषे, अधिगतश्रिये, केशवाय, पीतवासे तुभ्यं नमो नमस्ते ।।३५।।

अनुवाद— मरकतमणि के समाश्याशरीर वाले तथा श्रीलक्ष्मीजी को पत्नी के रूप में प्राप्त करने वाले, केशव स्वरूप पीताम्बरधारी आपको बारम्बार नमस्कार है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

अधिगता प्राप्ता श्रीर्यं तस्मै ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीदेवी को पत्नी के रूप में प्राप्त करने वाले ।।३५।।

त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ । अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते ।।३६।।

अन्वयः— त्वं पुंसां सुर्ववरदः वरेण्यः वरदर्षभ; अतः श्रेयसे धीराः ते पादरेणुम् उपासते ।।३६।।

अनुवाद— आप अपने भक्तों को सभी प्रकार का वरदान देने वाले हैं, अतएव वरेण्य तथा वरदान देने वालों में सर्वश्रेष्ठ हैं। इसीलिए सभी धीर विवेकी पुरुष अपने कल्याण के लिए आपके चरणों के रज की उपासना करते हैं।।३६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३६।।

अन्ववर्तन्त यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः । स्पृहयन्त इवामोदं भगवान्मे प्रसीदताम् ।।३७।।

अन्वयः— तत् पादपद्मयोः आमोदं स्पृहयन्तः देवाः श्रीश्च अन्ववर्तन्त भगवान् मे प्रसीदताम् ।।३७।।

अनुवाद— जिनके चरण कमलों की सुगन्ध प्राप्त करने की लालसा से सभी देव और स्वयं लक्ष्मीजी भी सेवा में संलग्न रहती हैं वे भगवान मुझ पर प्रसन्न हों ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

यत्पादपद्मयोर्गन्धं स्पृहयन्त इव देवाश्च श्रीश्च यमन्ववर्तन्त स मे प्रसीदतु ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

उनके चरण कमलों के पराग की स्पृहा करने वाले के समान देवता और लक्ष्मीजी जिनका अनुसरण करती वे श्रीभगवान मुझपर प्रसन्न हों ॥३७॥

एतैर्मन्त्रैर्हृषीकेशमावाहनपुरस्कृतम् । अर्चयेच्छ्रद्धया युक्तः पाद्योपस्पर्शनादिभिः ॥३८॥

अन्वयः— आवाहन, पुरस्कृतम एतैः मन्त्रैः हृषीकेशम् श्रद्धया युक्तः पाद्य उपस्पर्शनादिभिः आर्चयेत् ॥३८॥

अनुवाद— श्रीभगवान का आवाहन पहले ही करे इन मन्त्रों से भगवान् हृषीकेश की श्रद्धा सम्पन्न होकर अर्चना पाद्य आचमन इत्यादि से करे ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

आवाहनेपुरस्कृतं संमानितम् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

आवहन में ही संमानित ॥३८॥

अर्चित्वा गन्धमाल्याद्यैः पयसा स्नपयेद्विभुम् । वस्त्रोपवीताभरणपाद्योपस्पर्शनैस्ततः ॥
गन्धधूपादिभिश्चार्चेद्द्वादशाक्षरविद्यया ॥३९॥

अन्वयः— गन्धमाल्याद्यैः अर्चित्वा विभुम् पयसा स्नापयेत् वस्त्रोपवीताभरणपाद्योपस्पर्शनैः ततः गन्ध धूपादिभिः च द्वादशाक्षरविद्यया ॥३४॥

अनुवाद— गन्ध माला आदि से पूजा करके श्रीभगवान् को दूध से स्नान कराये । उसके पश्चात् वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूपण, पाद्य, आचमन, गन्ध, धूप आदि द्वारा द्वादशाक्षर मन्त्र (ओम् नमो भगवते वासुदेवाय) से भगवान् की पूजा करे ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

शृतं पयसि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति । ससर्पिः सगुडं दत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥४०॥

अन्वयः— विभवे सति पयसिशृतं शाल्यन्नं ससर्पि स गुडं दत्त्वा, मूलविद्यया जुहुयात् ॥४०॥

अनुवाद— यदि सामर्थ्य हो तो दूध में पकाये हुए साठी के चवाल की गुड और घी मिलाकर नैवेद्य लगावे और द्वादशाक्षर मन्त्र से उसी का होम करे ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

पयसि शृतं पक्कं पायसम् । मूलविद्यया द्वादशाक्षरेणैव ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

दूध में पके हुए पायस का द्वादशाक्षर मन्त्र से ही होम करे ॥४०॥

निवेदितं तद्भक्ताय दद्याद्भुञ्जीत वा स्वयम् । दत्त्वाचमनमर्चित्वा ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥४१॥

अन्वयः— निवेदितं तद्भक्ताय, दद्यात् स्वयं वा भुञ्जीत् आचमनं दत्वा अर्चित्वा ताम्बूलं निवेदयेत् ॥४१॥

अनुवाद— भगवान् को भोग लगाये हुए पायस को भक्तों में बाँट दे अथवा स्वयं खा जाय । आचमन और पूजा के बाद श्रीभगवान् को ताम्बूल निवेदित करे ॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४१॥

जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम् । कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेद्दण्डवन्मुदा ॥४२॥

अन्वयः— अष्टोत्तरशतं जपेत् स्तुतिभिः प्रभुम् स्तुवीत, प्रदक्षिणं कृत्वा भूमौदण्डवत् मुदा प्रणमेत् ॥४२॥

अनुवाद— द्वादशाक्षर मन्त्र को एक सौ आठ बार जप करे स्तुतियों से श्रीभगवान् की स्तुति करे, श्रीभगवान् की प्रदक्षिणा कर भूमि पर दण्डवत् गिरकर प्रसन्नता पूर्वक प्रणाम करें ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वोक्ताभिरन्याभिश्च स्तुतिभि; ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

पहले बतलायी गयी तथा दूसरी स्तुतियों से भी श्रीभगवान् की स्तुति करे ॥४२॥

कृत्वा शिरसि तच्छेषां देवमुद्वासयेत्ततः । द्व्यवरान्भोजयेद्विप्रान्पायसेन यथोचितम् ॥४३॥

अन्वयः— तच्छेषं शिरसि कृत्वा ततः देवम् उदवासयेत् पायसेन द्विवरान् विप्रान् यथोचितम् भोजयेत् ॥४३॥

अनुवाद— निर्माल्य को शिर से लगाकर देवता का विसर्जन करे कम से कम दो श्रेष्ठ ब्राह्मणों को यथोचित रीति से खीर का भोजन कराये ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

तस्य शेषां निर्माल्यम् । द्वाववरौ येषां तान् । असंभवे द्वावपि भोजयेदित्यर्थः ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के निर्माल्य को सिर से लगाकर कम-से-कम दो ब्राह्मणों को भोजन करायें ॥४३॥

भुञ्जीत तैरनुज्ञातः शेषं सेष्टः सभाजितैः । ब्रह्मचार्यथ तद्रात्र्यां श्वोभूते प्रथमेऽहनि ॥४४॥
स्नातः शुचिर्यथोक्तेन विधिना सुसमाहितः। पयसा स्नापयित्वार्चेद्यावदव्रतसमापनम् ॥४५॥

अन्वयः— सभाजितैः तैः अनुज्ञातः शेषं सेष्टं भुञ्जीत तद्रात्र्यां ब्रह्मचारी अथ श्वोभूते प्रथमेऽहनि स्नातः शुचिः सुसमाहितः । यथोक्तेन विधिना पयसा स्नापयित्वा यावद्व्रतसमापनम् अर्चेत् ॥४४-४५॥

अनुवाद— दक्षिणा आदि से ब्राह्मणों का सत्कार करके ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर अवशिष्ट अन्न को अपने इष्ट मित्रों के साथ भोजन करे । उस दिन ब्रह्मचर्य रहे । दूसरे दिन प्रात:काल होने पर स्नान करके पवित्रता पूर्वक पूर्वोक्त विधि से एकग्रमना होकर श्रीभगवान् की पूजा करे । इस प्रकार जब तक व्रत समाप्त न हो तब तक दूध से स्नान कराकर के ही अर्चना करे ॥४४-४५॥

भावार्थ दीपिका

सभाजितैस्तैरनुज्ञातः सन् । सेष्टो बन्धुभिः सहितः तस्यां रात्र्यां ब्रह्मचारी सन् । श्वोभूते प्रभाते सति ॥४४-४५॥

भाव प्रकाशिका

दक्षिणा आदि से समादृत ब्राह्मणों की आज्ञा पाकर अपने बान्धवों के साथ भोजन करे। उस रात को ब्रह्मचर्य का पालन करे और प्रात: काल होने पर ॥४४-४५॥

पयोभक्षो व्रतमिदं चरेद्विष्णवर्चनादृत: । पूर्ववज्जुहुयादग्निं ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥४६॥

अन्वय:— पयोभक्षो इदं व्रतम् विष्ण्वर्चनादृत: चरेत् । पूर्ववत् अग्निं जुहुयत् । ब्राह्मणान् चापि भोजयेत् ॥४६॥

अनुवाद— भगवान् विष्णु की अर्चना में आदर बुद्धि रखकर केवल पयोव्रती रहकर इस व्रत को करे। पहले के समान अग्नि में होम करें और ब्राह्मणों को भी भोजन कराये ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

पय एव भक्ष आहारो यस्य ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

केवल दूध का ही आहार करे ॥४६॥

एवं त्वहरह: कुर्याद्द्वादशाहं पयोव्रत: । हरेराराधनं होममर्हणं द्विजतर्पणम् ॥४७॥

अन्वय:— पयोव्रत: एवं तुअहरह: द्वादशाहं हरेराराधनं होमम् अर्हणम् द्विजतर्पणम् कुर्यात् ॥४७॥

अनुवाद— पयोव्रती को चाहिए कि वह इसीतरह से प्रतिदिन बारह दिनों तक श्रीहरि की आराधना करे, होम और पूजा करे तथा ब्राह्मणों को भोजन कराये ॥४७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४७॥

प्रतिदिनमारभ्य यावच्छुक्लत्रयोदशी । ब्रह्मचर्यमध: स्वप्नं स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥४८॥

अन्वय:— प्रतिपद्दिनम् आरभ्य शुक्लत्रयोदशी यावत् ब्रह्मचर्यम् अध: स्वप्नम् त्रिषवणं स्नानं चरेत् ॥४८॥

अनुवाद— फाल्गुनशुक्ल प्रतिपद् से लेकर त्रयोदशी पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करें भूमि पर सोए और तीनों समय स्नान करे ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

अध: स्वप्नं शयनम् ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

जमीन पर सोए ॥४८॥

वर्जयेदसदालापं भोगानुच्चावचांस्तथा । अहिंस्र: सर्वभूतानां वासुदेवपरायण: ॥४९॥

अन्वय:— असदालापान् तथा उच्चावचान् भोगान् वर्जयेत् सर्वभूतानाम् अहिंस्र: वासुदेवपरायण: ॥४९॥

अनुवाद— झूठन बोले, पापियों से न बोले, छोटे बड़े सभी प्रकार के भोगों का त्याग करें। किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार से कष्ट न दे श्रीभगवान् की ही आराधना में लगा रहें ॥४९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४९॥

त्रयोदश्यामथो विष्णो: स्नपनं पञ्चकैर्विभो: । कारयेच्छास्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदै: ॥५०॥

अन्वय:— अथो त्रयोदश्याम् विभो: विष्णो: स्नपनं पञ्चकै: विधिकोविदौ: शास्त्रदृष्टेन विधिना कारयेत् ॥५०॥

अनुवाद— त्रयोदशी के दिन विधि जानने वाले ब्राह्मणों से शास्त्रोक्त विधि से भगवान् विष्णु को पञ्चामृत स्नान कराये ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

पङ्कैः पञ्चामृतैः ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

पङ्कैः अर्थात् पञ्चामृत से ।।५०।।

पूजां च महतीं कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः । चरुं निरुप्य पयसि शिपिविष्टाय विष्णवे ।।५१।।

अन्वयः— वित्त शाठ्यविवर्जितः महतीं पूजां कुर्यात् पयसि चरुं निरुप्य शिपिविष्टाय विष्णवे निवेदयेत् ।।५१।।

अनुवाद— उस दिन धन का सङ्कोच छोड़कर श्रीभगवान् की बहुत बड़ी पूजा करें दूध में चरु (खीर) पकाकर भगवान् विष्णु को अर्पित करें ।।५१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५१।।

श्रृतेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः । नैवेद्यं चातिगुणवद्दद्यात्पुरुषतुष्टिदम् ।।५२।।

अन्वयः— तेन जितेन सुसमाहितः पुरुषं यजेत पुरुषतुष्टिदम् नैवेद्यं दद्यात् ।।५२।।

अनुवाद— एकाग्रमना होकर उस पकाये हुए चरु से श्रीभगवान् की आराधना करे और उनको सन्तुष्ट करने वाले गुण युक्त एवं स्वादिष्ट नैवेद्य का भोग लगाये ।।५२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५२।।

आचार्यं ज्ञानसंपन्नं वस्त्राभरणधेनुभिः । तोषयेदृत्विजश्चैव तद्विद्ध्याराधनं हरेः ।।५३।।

अन्वयः— ज्ञान संपन्नं आचार्य ऋत्विजः च वस्त्राभरण धेनुभिः तोषयेत् तत् हरेः आराधनं विधि ।।५३।।

अनुवाद— ज्ञान सम्पन्न आचार्य को और ऋत्विजों को वस्त्र आभूषण और गोदान के द्वारा सन्तुष्ट करना चाहिए ।।५३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५३।।

भोजयेत्तान्गुणवता सदन्नेन शुचिस्मिते । अन्यांश्च ब्राह्मणाञ्छक्त्या ये च तत्र समागताः ।।५४।।

अन्वयः— हे शुचिस्मिते तान् गुणवता सदन्नेन भोजयेत् अन्यांश्च ब्राह्मणान् शक्त्या ये च तत्र समागताः ।।५४।।

अनुवाद— हे प्रिये ! आचार्य और ऋत्विजों को शुद्ध सात्त्विक और गुण युक्त भोजन कराना चाहिए । दूसरे वहाँ आये हुए ब्राह्मणों और अतिथियों को भी अपनी शक्ति के अनुसार भोजन कराना चाहिए ।।५४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५४।।

दक्षिणां गुरवे दद्यादृत्विग्भ्यश्च यथार्हतः । अन्नाद्येनाश्वपाकांश्च प्रीणयेत्समुपागतान् ।।५५।।

अन्वयः— गुरवे ऋत्विग्भ्यःच यथार्हतः दक्षिणां दद्यात् समुपागतान् आश्व पाचकान् अन्नाद्येन प्रीणयेत् ।।५५।।

अनुवाद— आचार्य और ऋत्विजों को यथायेग्य दक्षिणा देनी चाहिए । जो चाण्डाल वहाँ अपने आप आ गये हो उन सबों को भी अन्न आदि देकर सन्तुष्ट करें ।।५५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५५।।

भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीनान्धकृपणेषु च । विष्णोस्तत्प्रीणनं विद्वान्भुञ्जीत सह बन्धुभिः ।।५६।।

अन्वयः— सर्वेषु दीनान्धकृपणेषु च भुक्तवत्सु विष्णोः तत् प्रीणनं विद्वान् बन्धुभिः सहभुञ्जीत् ।।५६।।

अनुवाद— सभी, दीनों, अन्धों ओर कृपणों के भोजन कर लेने पर उन सबों की सन्तुष्टि को भी श्रीभगवान् को प्रसन्न करना समझने वाले व्रती को अपने बान्धवों के साथ भोजन करना चाहिए ।।५६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५६।।

नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः । कारयेत्तत्कथाभिश्च पूजां भगवतोऽन्वहम् ।।५७।।

अन्वयः— नृत्य, वादित्र गीतैः च स्तुतिभिः स्वस्ति वाचकैः कथाभिः च भगवतः पूजाम् अन्वहम् कारयेत् ।।५७।।

अनुवाद— नृत्य, गीत, वाद्य, स्तुतियों, स्वस्ति वाचन तथा भगवत् कथाओं से प्रतिदिन भगवन् की पूजा करानी चाहिए ।।५७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५७।।

एतत्पयोव्रतं नाम पुरुषाराधनं परम् । पितामहेनाभिहित तं मया ते समुदाहृतम् ।।५८।।

अन्वयः— एतत् पयोव्रतं नाम परमं पुरुषाराधनम् पितामहेन अभिहितम् मयाते समुदहृतम् ।।५८।।

अनुवाद— यह पयोव्रत नाम का व्रत भगवान् की सर्वश्रेष्ठ आराधना है । इसको ब्रह्माजी ने मुझको बतलाया था, उसे मैंने तुमको (अदिति) को बतला दिया ।।५८।।

भाव प्रकाशिका

मया च ते समुदाहृतम् ।।५८।।

भाव प्रकाशिका

मैंने (कश्यप महर्षि ने) भी तुमको बतला दिया ।।५८।।

त्वं चानेन महाभागे सम्यक्चीर्णेन केशवम् । आत्मना शुद्धभावेन नियतात्मा भजाव्ययम् ।।५९।।

अन्वयः— महाभागे ! त्वं च अनेन सम्यक् चीर्णेन शुद्ध भावेन, आत्मना नियतात्मा अव्ययम् केशवम् भज ।।५९।।

अनुवाद— हे महाभाग्यवती तुम भी शुद्धभाव और श्रद्धापूर्ण चित्त से इस व्रत का अनुष्ठान करो । इसके द्वारा अविनाशी भगवान् की तुम आराधना करो ।।५९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५९।।

अयं वै सर्वयज्ञाख्यः सर्वव्रतमिति स्मृतम् । तपः सारमिदं भद्रे दानं चेश्वरतर्पणम् ।।६०।।

अन्वयः— भद्रे अयं च ईश्वर तर्पणम् सर्वयज्ञाख्य सर्वव्रतम् इति स्मृतम् इदं तपः सारं दानं च ।।६०।।

अनुवाद— कल्याणि, यह श्रीभगवान् को सन्तुष्ट करने वाला है, इसका नाम सर्वयज्ञ और सर्वव्रत है, यह सभी तपस्याओं का सार है । और सबसे बड़ा दान है ।।६०।।

भावार्थ दीपिका

सर्वयज्ञाख्योऽयं यज्ञः । सर्वव्रतमिति च स्मृतमतद्व्रतम् ।।६०।।

भाव प्रकाशिका

यह सर्वयज्ञ नामक यज्ञ है यह सर्वव्रत भी कहा गया है । इसके समान कोई व्रत नहीं है ।।६०।।

त एव नियमाः साक्षात्त एव च यमोत्तमाः तपो दानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यत्यधोक्षजः ।।६१।।

अन्वयः— त एव नियमाः साक्षात् त एव यमोत्तमाः व्रतं दानं तपो यज्ञं येन अधोक्षजः तुष्यति ।।६१।।

अनुवाद— वे ही सच्चे नियम हैं और वे ही उत्तम यम हैं वे ही वस्तुतः तपस्या दान व्रत एवं यज्ञ हैं जिनसे श्रीभगवान् प्रसन्न होते हैं ॥६१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६१॥

तस्मादेतद्व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धया चर । भगवान्परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति ॥६२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे अदितिपयोव्रतं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अन्वयः— भद्रे तस्मात् एतद्व्रतं प्रयता श्रद्धयाचर परितुष्टः भगवान् आशुते वरान् विधास्यति ॥६२॥

अनुवाद— हे देवि ! इसीलिए तुम भी इस व्रत को संयम और श्रद्धा पूर्वक करो । श्रीभगवान् तुम पर शीघ्र ही प्रसन्न होंगे । और तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करेंगें ॥६२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के अदिति पयोव्रत नामक सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमेस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावप्रकाशिका नामक टीका के सोलहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१६।।

सत्रहवाँ अध्याय

श्रीभगवान् का प्रकट होकर अदिति को वर देना

श्रीशुक उवाच

इत्युक्ता साऽदिति राजन्स्वभर्त्रा कश्यपेन वै । अन्वतिष्ठद्व्रतमिदं द्वादशाहमतन्द्रिता ॥१॥

अन्वयः— राजन् इति स्वभर्त्रा कश्यपेन इति उक्ता अदितिः इदं द्वादशाहं व्रतम् अतन्द्रिता अन्वतिष्ठत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! इस प्रकार से अपने पति महर्षि कश्यप के द्वारा कहे जाने पर अदिति ने बड़ी सावधानी पूर्वक इस द्वादशाह व्रत का पालन किया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततः सप्तदशेऽदित्या कृते तस्मिन्व्रते हरिः । तत्कामपूरणायादौ तत्पुत्रोऽभूदितीर्यते ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् सत्रहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि अदिति के द्वारा उस व्रत के किए जाने पर अदिति की कामना पूर्ण करने के लिए श्रीहरि सर्वप्रथम अदिति के पुत्र बन गये ॥१॥

चिन्तयन्त्येकया बुद्ध्या महापुरुषमीश्वरम् । प्रगृह्येन्द्रियदुष्टाश्वान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥२॥
मनश्चैकाग्रया बुद्ध्या भगवत्यखिलात्मनि। वासुदेवे समाधायचचार ह पयोव्रतम् ॥३॥

अन्वयः— एकया बुद्ध्या महापुरुषम् ईश्वरं चिन्तयन्ती बुद्धिसारथिः मनसा इन्द्रियदुष्टाश्वान् प्रगृह्य एकाग्रयाबुद्ध्या मनः च अखिलात्मनि भगवति वासुदेवे समाधाय पयोव्रतम् चचारह ॥२-३॥

अनुवाद— अपनी एकाग्र बुद्धि के द्वारा महापुरुष श्रीभगवान् का चिन्तन करती हुई वह बुद्धि को सारथि बनाकर मन रूप लगाम से इन्द्रिय रूप दुष्ट अश्वों को अपने वश में करके, एकाग्र बुद्धि के द्वारा मन को भी सम्पूर्ण जगत् की आत्मा भगवान् वासुदेव में लगाकर अदिति देवी ने पयोव्रत का अनुष्ठान किया ।।२-३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२-३।।

तस्याः प्रादुरभूत्तात भगवानादिपूरुषः । पीतवासाश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाधरः ।।४।।

अन्वयः— हे तात तस्याः, पीतवासाः चतुबार्हुः शङ्ख चक्रगदाधरः आदि पूरुषः भगवान् प्रादुरभूत् ।।४।।

अनुवाद— हे परीक्षित् ! उनके समक्ष पीताम्बर धारण किए हुए चार भुजाओं वाले तथा शङ्ख, चक्र और गदा धारण किए आदि पुरुष श्रीभगवान् प्रकट हो गये ।।४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४।।

तं नेत्रगोचरं वीक्ष्य सहसोत्थाय सादरम् । ननाम भुवि कायेन दण्डवत्प्रीतिविह्वला ।।५।।

अन्वयः— तं नेत्र गोचरं वीक्ष्य सादरम् सहसोत्थाय प्रीतिविह्वला, कायेन भुवि दण्डवत् ननाम ।।५।।

अनुवाद— श्रीभगवान् को अपने नेत्रों के सामने देखकर अदिति देवी आदरपूर्वक उठकर खड़ी हो गयीं और प्रेमातिरेक के कारण वे पृथिवी पर लेटकर श्रीभगवान् को प्रणाम कीं ।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५।।

सोत्थाय बद्धाञ्जलिरीडितुं स्थिता नोत्सेह आनन्दजलाकुलेक्षणा ।
बभूव तूष्णीं पुलकाकुलाकृतिस्तद्दर्शनात्युत्सवगात्रवेपथुः ।।६।।

अन्वयः— सा उत्थाय बद्धाञ्जलिः रीडितुं स्थिता आनन्दजलाकुलेक्षणा न उत्सेहे पुलकाकुलाकृतिः तद्दर्शनात् उत्सव गात्रवेपथुः तुष्णीं बभूव ।।६।।

अनुवाद— खड़ा होकर वे हाथ जोड़कर श्रीभगवन् की स्तुति करना चाहती थीं आनन्ददातिरेक के कारण उनकी आँखों में आँसू भर गये थे, पूरे शरीर में रोमाञ्च हो रहा था, तथा श्रीभगवान् के दर्शन जन्य आनन्दोंल्लास के कारण उनके शरीर में कम्प हो रहा था अतएव वे चूप ही रहीं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

प्रीतिविह्वलत्वादेव सा बद्धाञ्जलिः सती स्थिता केवलमीडितुं पुनर्नोत्सेहे न शशाक, अपितु तूष्णीं बभूव । कथंभूता। आनन्दजलैराकुले ईक्षणे यस्याः पुलकैराकुला आकृतिर्देहो यस्याः । तस्य दर्शनेन योऽत्युत्सवस्तेन गात्रे वेपथुः कम्पो यस्याः।।६।।

भाव प्रकाशिका

प्रेम में विह्वल होने के कारण वे हाथ जोड़कर केवल खड़ी ही रहीं स्तुति नहीं कर सकी, अपितु वे मौन रहीं । कैसी थी वे ? अनन्दातिरेक के कारण उनके नेत्रों में आनन्दाश्रु भर गये थे । उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो रहा था । दर्शन जन्य आनन्दोल्लास के कारण उनके शरीर में कम्प हो रहा था ।।६।।

प्रीत्या शनैर्गद्गदया गिरा हरिं तुष्टाव सा देव्यदितिः कुरूद्वह ।
उद्वीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा रमापति यज्ञपतिं जगत्पतिम् ।।७।।

अन्वयः— रमापतिं यज्ञपतिं जगत्पति उद्वीक्षती सा हे कुरुद्वह सा देवी अदितिः शनैः प्रीत्या गद्गदया गिरा हरिं तुष्टाव ।।७।।

अनुवाद— हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ परीक्षित् लक्ष्मीपति, यज्ञपति तथा जगत् के स्वामी श्रीभगवान् को देखती हुई वे अदिति देवी धीरे-धीरे प्रेम पूर्वक गद्गद वाणी से श्रीहरि की स्तुति कीं ।।७।।

भावार्थ दीपिका

माणेति च क्रियाभेदात्सेत्यस्य पदस्य द्विरुक्तिरदोषः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

त्र उद्वीक्ष्माणा इस तरह से दो किचाओं का प्रयोंग होने के कारण सा इस पद का दो नरुक्ति दोष नहीं है ।।७।।

अदितिरुवाच

ज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ।
कवृजिनोपशमोदयाद्य शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ।।८।।

, यज्ञपुरुष, अच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गल नामधेय आपन्नलोंक वृजिनोपशम उदय अद्य ननाथः असि ।।८।।

श्रीअदिति देवी ने कहा

के स्वामी, हे यज्ञपुरुष ! हे अच्युत ! आपके चरण कमलों का आश्रय लेकर संसारी हो जाते है, आपके नामों को सुनने मात्र से लोगों का कल्याण हो जाता है हे तीर्थश्रव! ण में जो आ जाता है । उसकी सारी विपत्तियों का आप नाश कर देते हैं । हे भगवन् आप हमारा कल्याण करें ।।८।।

भावार्थ दीपिका

दैत्यानत्यूर्जितानपि । भक्तान्रक्षितुमीशस्त्वमित्यस्तौददितिस्त्रिभि;' इति । यज्ञेशेत्यादिदशभिः नास्तीति वदन्ती प्रार्थयते-शं नः कृधि । यतो दीनानां नाथोऽसि त्वम् । तीर्थंश्रवः कीर्तिर्यस्य। मधेंय यस्य । आपन्नानां शरणागतानां वृजिनोपशमायोदयो यस्य ।।८।।

भाव प्रकाशिका

ाधना करने वाले आत्यधिक बलवान् भी दैत्यों को परास्त करके आप अपने भक्तों की सी अभिप्राय से अदिति ने तीन श्लोकों से श्रीहरि की स्तुति की । आपके लिए कुछ को यज्ञेश इत्यादि दश संबोधनों वाले श्रीभगवान् की इस श्लोक से प्रार्थना करती हैं। कल्याण करें, क्योंकि आप दीनों के स्वामी हैं । आप पवित्र कीर्ति वाले हैं । आपका नाम जाता है । शरणागत जीवों के कष्टों को दूर करने के ही लिए आप प्रकट होते हैं ।।८।।

श्वभवनस्थितिसंयमाय स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय भूम्ने ।
शश्वदुपबृंहितपूर्णबोधव्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ।।९।।

, विश्वभवन स्थिति संयमाय स्वैरं गुहीत पुरुशक्ति गुणाय भूम्ने, स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोध स्ते ।।९।।

! आप विश्वरूप हैं और विश्व की सृष्टि स्थिति और संहार करने वाले हैं, अनन्त होने पूर्वक अनेक शक्तियों और गुणों को स्वीकार कर लेते हैं, आप सदा अपने स्वरूप में निरन्तर बढ़ते हुए आत्म बोध के द्वारा आप हृदय के अन्धकार को दूर किया करते हैं। नमस्कार करती हूँ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

भूम्ने महते नमः । महत्त्वे हेतवः-विश्वाय विश्वस्य भवनस्थितिसंयमार्थं स्वैरं गृहीताः पुरुशक्तेर्मायाया गुणा येन तस्मै। तथापि स्वस्थायाप्रच्युतस्वरूपाय । कुतः । शश्वदुपबृंहितो नित्योर्जितो यः पूर्णबोधस्तेन व्यापादितं नित्यनिरस्तमात्मनि तमो मायालक्षणं येन तस्मै ।।९।।'

भाव प्रकाशिका

भूम्ने उन महान् परमात्मा को नमस्कार । महत्त्व के कारण ये हैं । परमात्मा स्वयं विश्वस्वरूप हैं । सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिए अपनी इच्छा के अनुसार माया के गुणों को स्वीकार करते हैं, फिर भी अपने भक्तों में विद्यमान रहते हैं तथा उनके स्वरूप में किसी भी प्रकार का विकार नहीं है । नित्य ही बढ़ते रहने वाले पूर्ण ज्ञान के द्वारा आत्मा के अज्ञानान्धकार रूप माया है उसको दूर करते रहते हैं ऐसे श्रीभगवान् को नमस्कार है ।।९।।

आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मीद्यौभूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः ।
ज्ञानं च केवलमनन्त भवन्ति तुष्टात्त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ।।१०।।

अन्वयः— हे अनन्त ! त्वत्तः तुष्टात् नृणां आयुः परं, वपुः, अभीष्टम् अतुल्य लक्ष्मीः द्यौभूरसाः सकलयोग गुणाः त्रिवर्गः, केवलं ज्ञानं च भवन्ति, सपत्न जयादिराशीः किमु ।।१०।।

अनुवाद— हे अनन्त ! आपके प्रसन्न हो जाने पर मनुष्यों का ब्रह्माजी के समान आयु, उनके ही समान दिव्य शरीर, सभी अभीष्ट वस्तुएँ, अतुलनीय धन सम्पत्ति स्वर्ग पृथिवी और पाताल तथा योग के समस्त अणिमादि गुण तथा धर्म, अर्थ और काम (त्रिवर्ग) प्राप्त हो जाते हैं तो फिर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना जैसे छोटी कामनाएँ हैं उनके सम्बन्ध में क्या कहना है ?।।१०।।

भावार्थ दीपिका

अस्मदीयमनोरथपूरणमीषत्करमेव तवेति कैमुत्यन्यायेनाह-आयुः परं ब्रह्मायुः । पुनरपि द्यौश्च भूश्च रसातलं च द्योभूरसाः। द्यौरिति पृथक्पाठे भूश्च रसाश्च विलस्वर्गा इति विग्रहः । रसेति पाठे त्रीणि पदानि । सकला योगगुणा अणिमदयः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

अदिति देवी ने यह कैमुत्य न्याय से कहा कि हमारे मनोरथ को पूरा करना आपके लिए तो बहुत छोटी बात है । आयुः परम् अर्थात् ब्रह्माजी की आयुः, तथा स्वर्ग भूलोंक और पाताल भी प्राप्त हो जाते है । द्यौः यह अलग पाठ होने पर भूलोक और पाताल ये विल स्वर्ग हैं । द्यौभूरसा इस तरह विसर्ग रहित पाठ होने पर द्यौः भूः रसा ये तीन पद होंगे । योग के सभी अणिमा आदि गुण ।।१०।।

श्रीशुक उवाच

आदित्यैवं स्तुते राजन्भगवान्पुष्करेक्षणः । क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानामिति होवाच भारत ।।११।।

अन्वयः— हे भारत ! एवं आदित्या स्तुतः भगवान् पुष्करेक्षणः सर्वभूतानां क्षेत्रज्ञः इति ह उवाच ।।११।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! परीक्षित् अदिति देवी के द्वारा इस प्रकार से स्तुति किए जाने पर भगवान् कमल नयन जो सभी जीवों के अन्तर्यामी हैं, वे इस तरह से कहे ।।११।।

भावार्थ दीपिका

क्षेत्रज्ञोऽन्तर्यामी ।।११।।

भाव प्रकाशिका

क्षेत्रज्ञ अर्थात् अन्तर्यामी ।।११।।

श्रीभगवानुवाच

देवमातर्भवत्या मे विज्ञातं चिरकाङ्क्षितम् । यत्सपत्नैर्हृतश्रीणां च्यावितानां स्वधामतः ।।१२।।

अन्वयः— देवमातः भवत्या चिरकाङ्क्षितं मे विज्ञातं यत् सपत्नैर्हृतश्रीणां स्वधमतः च्यावितानाम् ।।१२।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे देवताओं की जननी अपकी चिर कालीन अभिलाषा को मैं जानता हूँ शत्रुओं ने तुम्हारे पुत्रों की सम्पत्ति छीन ली है और उन सबों को स्वर्ग से खदेड़ दिया है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

सपत्नैर्हृता श्रीर्येषां स्वधामतश्च्यावितानां च पुत्राणां संबन्धि यत्तद्भवत्याश्चिरमाकङ्क्षितं मया विज्ञातम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

शत्रुओं ने जिनकी सम्पत्ति छिन ली है तथा स्वर्ग से जिन सबों को दैत्यों ने निकाल दिया है । ऐसे अपने पुत्रों के सम्बन्ध में जो आपकी चिरकालिक आकांक्ष है उसे मै जनता हूँ ।।१२।।

तान्विनिर्जित्य समरे दुर्मदानसुरर्षभान् । प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासितुम् ।।१३।।

अन्वयः— तान् दुर्मदान् असुरर्षभान् समरे निर्जित्य प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैः उपासितुम् इच्छसि ।।१३।।

अनुवाद— उन मदमत्त श्रेष्ठ असुरों को युद्ध में पराजित करके विजय श्रीप्राप्त अपने पुत्रों के साथ तुम मेरी उपासना करना चाहती हो ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

काङ्क्षितमेवाह-तानिति त्रिभिः-प्रतिलब्धो जयश्च श्रीश्च यैस्तैः पुत्रैः सहोपासितुमेकत्र स्थातुमिच्छसि ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

तान्० इत्यादि- तीन श्लोकों से अदिति की अभिलाषा को ही बतलाते हैं प्राप्त विजय श्री पुत्रों के साथ एक साथ रहना चाहती हो ।।१३।।

इन्द्रज्येष्ठैः स्वतनयैर्हृतानां युधि विद्विषाम् । स्त्रियो रुदन्तीरासाद्य द्रष्टुमिच्छसि दुःखिताः ।।१४।।

अन्वयः— इन्द्र ज्येष्ठै स्वतनयैः युधिहतानां विद्विषाम् रुदन्तीः स्त्रियः आसद्य, दुःखिताः द्रष्टुम् इच्छसि ।।१४।।

अनुवाद— इन्द्र इत्यादि अपने पुत्रों द्वारा युद्ध में मारे गये शत्रुओं की पत्नियों को रोती हुई और दुःखी देखना चाहती हो ।।१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४।।

आत्मजान्सुसमृद्धांस्त्वं प्रत्याहृतयशः श्रियः । नाकपृष्ठमधिष्ठाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छसि ।।१५।।

अन्वयः— त्वम् सुसमृद्धान् प्रत्याहृतयशः श्रियः नाकपृष्ठम् अधिष्ठाय क्रीडतः आत्मजान् द्रष्टुम् इच्छसि ।।१५।।

अनुवाद— समृद्धि सम्पन्न पुनः प्राप्त यश एवं ऐश्वर्य वाले स्वर्ग पर अधिकार प्राप्त कर विहार करने वाले अपने पुत्रों को तुम देखना चाहती हो ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

प्रत्याहृतं यशश्च श्रीश्च यैस्तान् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

जिन सबों ने अपने यश और श्री को लौटा लिया है ऐसे अपने पुत्रों को देखना चाहती हो ।।१५।।

प्रायोऽधुना तेऽसुरयूथनाथा अपारणीया इति देवि मे मतिः ।
यत्तेऽनुकूलेश्वरविप्रगुप्ता न विक्रमस्तत्र सुखं ददाति ।।१६।।

अन्वयः— हे देवि ! अधुना ते असुरयूथनाथाः अपारणीयाः इति मे मतिः यत्तेऽनुकूलेश्वरविप्रगुप्ता विक्रमस्तत्र सुखं न ददाति ।।१६।।

अनुवाद— हे देवि ! इस समय वे असुर सेनापति नहीं जीते जा सकते है, ऐसा मेरा मानना है क्योंकि इस समय ईश्वर और ब्राह्मण उन सबों के अनुकूल है, ऐसे में उनके प्रति प्राक्रम का प्रदर्शन सुखद नहीं होगा।।१६।।

भावार्थ दीपिका

अपारणीया अनतिक्रमणीयाः । यद्यस्मात् अनुकूल ईश्वरः कालो येषां तैर्विप्रैर्गुप्ता रक्षिताः । अनुकूलैरीश्वरैः समर्थैर्विप्रैर्गुप्ता इति वा ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

अपारणीया अर्थात् पराजित नहीं किए जा सकते हैं, क्योंकि अनुकूल काल और ब्राह्मणों से वे रक्षित हैं। अथवा अनुकूल काल और समर्थ ब्राह्मणों से वे रक्षित हैं ।।१६।।

अथाप्युपायो मम देवि चिन्त्यः संतोषितस्य व्रतचर्यया ते ।
ममार्चनं नार्हति गन्तुमन्यथा श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात् ।।१७।।

अन्वयः— हे देवि ! अथापि ते व्रतचर्यया संतोषितस्य मे उपायः चिन्त्यः ममार्चनं अन्यथा गन्तुं न अर्हति श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात् ।।१७।।

अनुवाद— हे देवि ! फिर भी तुम्हारे व्रतानुष्ठान से सन्तुष्ट हुए मुझको उपाय शोचना ही होगा क्योंकि मेरी आराधना कभी निष्फल नहीं होती है, वह उपासक की श्रद्धा के अनुसार फल देती ही है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

मम मया चिन्त्य एव । तत्र हेतुः-संतोषितस्येत्यादि । श्रद्धानुरूपमिच्छानुसारेण फलहेतुत्वात् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

मुझको उपाय तो सोचना ही होगा, उसका कारण है कि तुम्हारी व्रतचर्या से मैं सन्तुष्ट हूँ और मेरी आराधना इच्छा के अनुसार फल देती है ।।१७।।

त्वयार्चितश्चाहमपत्यगुप्तये पयोव्रतेनानुगुणं समेधितः ।
स्वांशेन पुत्रत्वमुपेत्य ते सुतान्गोप्तास्मि मारीचतपस्यधिष्ठितः ।।१८।।

अन्वयः— त्वया अहम् अपत्यगुप्तये प्रयोव्रतेन अर्चितः अनुगुणं समेधितः मारीचतपस्यधिष्ठित स्वांशेन ते पुत्रत्वम् उपेत्य ते सुतानगोप्ता अस्मि ।।१८।।

अनुवाद— तुमने प्रयोव्रत के अनुष्ठान द्वारा मेरी आराधना अपने पुत्रों की रक्षा के लिए की है और मैं इसके लिए तैयार भी हूँ । अतएव मैं अपने अंश से महर्षि कश्यप के वीर्य में प्रवेश करके तुम्हरे पुत्र के रूप में उत्पन्न होकर तुम्हारे पुत्रों की मैं रक्षा करूँगा ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

मारीचस्य तपस्यधिष्ठाय स्थितः सन् गोप्तास्मि पालयिष्यामि ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप के वीर्य में अंशरूप से प्रतिष्ठित होकर रक्षा करूँगा ॥१८॥

उपधाव पतिं भद्रे प्रजापतिमकल्मषम् । मां च भावयती पत्यावेवंरूपमवस्थितम् ॥१९॥

अन्वयः— भद्रे प्रजा पतिमकल्मषम् पतिम् मां च एवं रूपम् आवस्थितम् भावयन्ती उपधाव ॥१९॥

अनुवाद— कल्याणि ! तुम अपने पति कश्यप में इसी रूप में अवस्थित मुझको देखती हुई अपने निष्पाप पति महर्षि कश्यप की सेवा करो ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

अतः पतिमुपधाव भजस्व ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अतएव तुम अपने पति की सेवा करो ॥१९॥

नैतत्परस्मा आख्येयं पृष्टयापि कथंचन । सर्वं संपद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृतम् ॥२०॥

अन्वयः— देवि एतत् पृष्टया अपि परस्मै कथञ्चन न आख्येयं देवि देवगुह्यं सर्वं सुसंवृतं सम्पद्यते ॥२०॥

अनुवाद— हे देवि ! किसी के द्वारा पूछे जाने पर तुम किसी दूसरे को मत बतलाना देवताओं का रहस्य जितना ही गुप्त रहता है, उतना सफल होता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

देवानां गुह्यं रहस्यं सर्वं सुसंवृतं सुगुप्तं सत्संपद्यते सिध्यति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

देवता का रहस्य अत्यन्त गुप्त रहने पर ही पूर्ण रूप से सिद्ध होता है ॥२०॥

क्षेपक

अदितिरुवाच

नाहं वोढुं क्षमा देव त्वामाद्यं पुरुषं परम् । ब्रह्माण्डकोटिसाहस्रं रोमकूपे तवाव्यय ॥१॥

अन्वयः— हे देवि त्वम् आद्यं देवं परं पुरुषम् बोढुम् अहम् क्षमा न हे अव्यय तव रोमकूपे ब्रह्माण्डकोटि साहस्रं॥१॥

अदिति देवी ने कहा

अनुवाद— हे देव आप आदि परम पुरुष हैं आपको धारण करने में मैं समर्थ नहीं हूँ। हे निर्विकार आपके रोमकूपों में करोड़ों हजार ब्रह्माण्ड हैं ॥१॥

महापातकयुक्तोऽपि यन्नामस्मृतिमात्रतः । प्रयाति मुक्तिं देवेश तं कथं धारयाम्यहम् ॥२॥

अन्वयः— हे देवेश ! यन्नाम स्मृतिमात्रतः महापातक युक्तोऽपि मुक्तिं प्रयति तं कथम् अहम् धारयामि ॥२॥

अनुवाद— हे देवेश्वर ! आपके नाम का केवल स्मरण करने मात्र से महापातकी मुक्ति को प्राप्त कर लेता है, ऐसे आपको मैं कैसे धारण कर सकती हूँ ॥२॥

श्रीभगवानुवाच

सत्यमुक्तं महाभागे त्वया नास्त्यत्र संशयः । पतिव्रताः पतिप्राणाः पतिभक्तिपरायणाः ॥
वहन्ति सततं बाले स्त्रियोऽपि त्यक्तमत्सराः ॥३॥

अन्वयः— हे महाभागे त्वया सत्यम् उक्तम् अत्र संशयोन पतिप्राणाः पतिभक्तिपरायणाः पतिव्रताः हे वाले त्यक्तमत्सरा स्त्रिय अपि एतते बहन्ति ॥३॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे महाभाग्यवती ! तुमने सत्य कहा है इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । किन्तु पति को अपने प्राण के समान मानने वाली पति की भक्ति करने वाली पतिव्रता नारियाँ सबों से द्वेष का परित्याग करके स्त्री होकर भी मुझको सदा धारण करती है ॥३॥

क्षेपक समाप्त

श्रीशुक उवाच

एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत । अदितिर्दुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभोः ॥२१॥

अन्वयः— भगवान् एतावदुक्त्वा तत्रैव अन्तर्धीयत अदितिः प्रभोः हरेः आत्मनि अतिदुर्लभं जन्मलब्ध्वा कृतकृत्याअभूत्॥२१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवन् इतना मात्र कहकर अन्तर्धान हो गये । अदिति देवी भी अपने ही शरीर में जगत् स्वामी श्रीभगवान् का जन्म पाकर कृत कृत्य हो गयीं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

प्रभोर्हरेरात्मनि जन्म लब्ध्वा ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

जगत् स्वामी श्रीहरि का अपने शरीर से जन्म प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाती है ॥२१॥

उपाधावत्पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् । स वै समाधियोगेन कश्यपस्तदबुध्यत ॥२२॥

अन्वयः— कृतकृत्यवत् परया भक्त्या पतिम् उपाधावत् स वै कश्यपः समाधियेगेन तदबुध्यत ॥२२॥

अनुवाद— सफल मनोरथ के समान अदिति देवी अत्यन्त भक्ति पूर्वक अपने पति की सेवा करने लगी। महर्षि कश्यप भी अपने समाधि योग के द्वारा इस बात के जान गये ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः । सोऽदित्यां वीर्यमाधत्त तपसा चिरसंभृतम् ॥
समाहितमना राजन् दारुण्यग्निं यथानिलः ॥२३॥

अन्वयः— राजन् ! अवितथेक्षणः आत्मनि हरे रंशं प्रविष्टं अनिलः अग्निं दारुणि इव समाहितमना तपसा चिरसंभृतम् वीर्यं अदित्याम् आधत ॥२३॥

अनुवाद— राजन् सत्यदर्शी महर्षि कश्यप ने जान लिया कि मुझमें श्रीहरि का अंश प्रविष्ट कर गया है अतएव वे समाहितमना होकर अदिति के गर्भ में अपने दीर्घकाल से संचित वीर्य का उसी तरह आधान किया जिस तरह वायु काष्ठ में अग्नि आधान कर देती है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

अवितथमीक्षणं दृष्टिर्यस्य सः । अनिलो यथा सर्वत्र समोऽपि दारुणि संघर्षेण वनदाहकमग्निमाधत्ते, एवं स्वयं पुत्रेषु समोऽपि दैत्यक्षपणं वीर्यमाधत्तेत्यर्थः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

सत्यदर्शी महर्षि कश्यप । जैसे वायुसर्वत्र एक समान रहती है फिर भी संघर्षण के द्वारा काष्ठ में वन को जला डालने वाली अग्नि का आधान करती है, इसी तरह से अपने सभी पुत्रों के प्रति एक समान रहकर भी महर्षि कश्यप ने दैत्य विनाशक वीर्य का अदिति के गर्भ में आधान किया ॥२३॥

अदितेर्धिष्ठितं गर्भं भगवन्तं सनातनम् । हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः ॥२४॥

अन्वयः— हिरण्यगर्भः अदितेः गर्भं सनातनम् भगवन्तं अधिष्ठितं विज्ञाय गुह्य नामभिः समीडे ॥२४॥

अनुवाद—ब्रह्माजी ने जब जाना कि अदिति के गर्भ में श्रीभगवान् आ गये है तो वे श्रीभगवान् के रहस्यात्मक नामों से उनकी स्तुति करने लगे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

धिष्ठितमधिष्ठाय स्थितम् । समीडे तुष्टावेत्यर्थः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

अदिति के गर्भ को भगवान् द्वारा अधिष्ठित किए हुए जानकर वे श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ॥२४॥

ब्रह्मोवाच

जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तु ते । नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः ॥२५॥

अन्वयः— हे उरुगाय हे उरुक्रमभगवन ते नमः अस्तु ब्रह्मण्यदेवाय नमः त्रिगुणाय नमो नमः ॥२५॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— हे समस्त कीर्तियों के आश्रय भगवन् आपकी जय हो, हे त्रिविक्रम भगवन् आपको नमस्कार है, हे ब्रह्मण्यदेव हे तीनों गुणों के नियामक प्रभो आपको नमस्कार है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे । त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥२६॥

अन्वयः— पृश्निगर्भाय नमस्ते वेदगर्भाय, वेधसे त्रिनाभाय, त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे नमः ॥२६॥

अनुवाद— पृश्नि (अदिति) के पुत्र रूप में उत्पन्न होने वाले भगवान् को नमस्कार है । वेदों के समस्त ज्ञानों को अपने भीतर रखने वाले प्रभो वस्तुतः आप ही विधाता हैं आपकों मैं नमस्कार करता हूँ । तीनो लोक जिनकी नाभि में हैं तथा तीनों लोकों से ऊपर वैकुण्ठ में रहने वाले आपको नमस्कार है आप सभी जीवों के अन्तःकरण में सदैव विराजमान रहते हैं ऐसे व्यापक प्रभो आपको नमस्कार है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अदितेरेव पूर्वस्मिञ्जन्मनि पृश्निरिति नाम तस्या गर्भायार्भकाय । वेदा गर्भे यस्य । यद्वा वेदानां गर्भाय । वेदेषु प्रकाशमानायेत्यर्थः । त्रयो लोका नाभौ यस्य स त्रिनाभस्तस्मै । त्रयाणां लोंकानां पृष्ठे उपरि स्थिताय । शिपिशब्देन पशवो जीवास्तेष्वन्तर्यामितया प्रविष्टाय 'यज्ञो वै विष्णुः पशवः शिपिर्यज्ञ एव पशुषु प्रतितिष्ठति' इति श्रुतेः । यद्वा शिपयो रश्मयस्तैर्वेष्टितायेत्यर्थः । तथापि

भाव प्रकाशिका

अदिति का ही पूर्वजन्म में पृश्नि नाम था उनके पुत्र रूप में उत्पन्न होने वाले । जिनके गर्भ में भेद हैं अथवा वेदों में प्रकाशित होने वाले यह वेदागम शब्द का अर्थ है । श्रीभगवान् की नाभि में तीनो लोक है अतएव वे त्रिनाम हैं । त्रिपृष्ठाय तीनों लोकों से ऊपर वैकुण्ठ लोक में रहने वाले यह त्रिपृष्ठ शब्द का अर्थ है, शिपिशब्द पशु (जीव) का वाचक है । सभी जीवों के अन्तर्यामी होने के कारण श्रीभगवान् शिपिविष्ट है । तथा सम्पूर्ण जगत् में व्यापक होने के कारण वे विष्णु है । इस तरह के श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥२६॥

त्वमादिरन्तो भुवनस्य मध्यमनन्तशक्तिं पुरुषं यमाहुः ।
कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं स्रोतो यथान्तः पतितं गभीरम् ॥२७॥

अन्वयः— त्वमादिरन्तो भुवनस्यमध्यम् यम् अनन्तशक्तिं पुरुषम् आहुः हे ईश भवान् कालः अन्तः पतितं गभीरम् सोतो यथा विश्वं आक्षिपति ॥२७॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप इस सम्पूर्ण जगत के आदि, अन्त और मध्य है । वेद आपका ही अनन्त शक्ति सम्पन्न पुरुष के रूप में वर्णन करते है, जिस तरह गहरा स्रोत अपने भीतर पड़े तिनके आदि को बहा ले जाता है, उसी तरह आप भी इस सम्पूर्ण जगत् को संचालित करते रहते हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अन्तः पतितं तृणादि यथा गभीरं स्रोत आक्षिपत्याकर्षति, तथा कालात्मा भवान्विश्वमाक्षिपति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह अपने भीतर पड़े हुए तृण आदि को गहरा स्रोत बहा ले जाता है उसी तरह आप भी इस सम्पूर्ण विश्व को संचालित करते रहते हैं ॥२७॥

त्वं वै प्रजानां स्थिरजङ्गमानां प्रजापतीनामसि संभविष्णुः ।
दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अन्वयः— त्वं वै स्थिरजङ्गमानां प्रजानां प्रजापतीनां संभविष्णुः हे देव ! दिवश्च्युतानां दिवौकसां अप्सुमज्जतः नौरिव परायणम् ॥२८॥

अनुवाद— हे प्रभो ! जडजङ्ग सभी प्रजाओं और प्रजापतियों को उत्पन्न करने वाले आप ही हैं, स्वर्ग से निकाल दिए गये देवताओं के लिए एक मात्र सहारा आप उसी तरह से हैं जिस तरह से जल में डूबने वालों के लिए नौका ही सहारा होती है ॥२८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी श्रीधराचार्य कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

प्रजापतीनां च त्वमेव संभविष्णुरुत्पादनशीलोऽसि । अयं भावः । नह्येवंभूतस्य तव जन्मादिसंभवः, किंतु देवानां प्रजापतीनां प्रजानां च परमाश्रयत्वेन तत्कार्यसाधनायावतारोऽयम् । अतस्तान्स्वर्गच्युतान्पुनः स्वर्गे स्थापयेति ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

प्रजापतियों को भी उत्पन्न करने वाले आप ही है। कहने का भाव है कि आपका जन्म [illegible] नहीं होता है बल्कि देवताओं, प्रजापतियों तथा प्रजाओं का सर्वश्रेष्ठ आश्रय होने के कारण उन सबों का कार्य सिद्ध के लिए आपका यह अवतार है। अतएव स्वर्ग से भगाये गये देवताओं को आप पुनः स्वर्ग में स्थापित करें ।।२८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के सत्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१७।।

अठारहवाँ अध्याय

वामन भगवान् का प्रकट होकर राजा बलि की यज्ञशाला में जाना

श्रीशुक उवाच

इत्थं विरिञ्चस्तुतकर्मवीर्यः प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् ।
चतुर्भुजः शङ्खगदाब्जचक्रः पिशङ्गवासा नलिनायतेक्षणः ॥१॥

अन्वयः— इत्थं विरिञ्चस्तुत कर्मवीर्यः प्रादुर्बभूवामृतभूः अदित्याम् । चतुर्भुजः शङ्खगदाब्जचक्रः पिशङ्गवासा नलिनायतेक्षणः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् ! इस प्रकार से जब ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् की शक्ति और लीलाओं का वर्णन किया तब जन्म तथा मृत्यु से रहित श्रीभगवान् अदिति देवी के सामने प्रकट हो गये । श्रीभगवान् की चार भुजायें थीं । वे अपने हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए थे । वे पीताम्बर वस्त्र धारण किए थे और कमल के समान मनोहर उनके नेत्र थे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततस्त्वष्टादशे भूत्वा वामनः सत्कृतोऽखिलैः । यज्ञं गतस्ततस्तेन सत्कृत्योक्तो वरान्वृणु । इत्थं विरिञ्चेन स्तुतं कर्म देवकार्यलक्षणं वीर्य । च प्रभावो यस्य सः । हरिरदित्यां प्रादुर्बभूवेति त्रयाणामन्वयः । अमृतभूर्मृत्युजन्मशून्यः । शङ्खगदाब्जचक्राण्यस्य सन्तीति तथा । अर्शआदित्वेन मत्वर्थीयोऽच्प्रत्ययः । अविसर्गपाठे स चासौ पिशङ्गवासाश्च ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् अठारहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि श्रीभगवान् वामन बनकर तथा सबों के द्वारा समादृत होकर राजा बलि के यज्ञ में गये । राजा बलि ने उनका सत्कार करके कहा आप मुझसे जो माँगना चाहें माँग लें । उपर्युक्त प्रकार से ब्रह्माजी ने श्रीभगवान् के द्वारा किए जाने वाले देवकार्य तथा उनके प्रभाव का वर्णन किया तो श्रीभगवान् अदिति देवी के समक्ष प्रकट हो गये इस तरह से तीन श्लोकों का एक साथ अन्वय है । अमृतभूः अर्थात् जन्म और मृत्यु से रहित, शङ्ख, चक्र, गदा एवं कमल धारण किए हुए । अर्शादि होने के कारण मत्त्वर्थीय अच् प्रत्यय **शैखचगदाब्जचक्रः** में हुआ है । विसर्ग रहित पाठ होने पर अर्थ होगा शङ्ख, गदा, कमल तथा चक्रधारी पीताम्बरधारी अर्थ होगा ॥१॥

श्यामावदातो झषराजकुण्डलत्विषोल्लसच्छ्रीवदनाम्बुजः पुमान् ।
श्रीवत्सवक्षा बलयाङ्गदोल्लसत्किरीटकाञ्चीगुणचारुनूपुरः ॥२॥

अन्वयः— श्यामावदातः झषराजकुण्डलत्विषा उल्लासच्छ्री वदनाम्बुजः पुमान् श्रीवत्सवक्षा बलयांगदोलसत्किरीटकाञ्ची गुण चारुनूपुरः ॥२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का शरीर श्याम वर्ण का था मकराकृति कुण्डलों की कान्ति से मुख कमल की शोभा और बढ़ रही थी ऐसे पुरुष श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न सुशोभित हो रहा था, हाथ में कङ्कन और बाजूबन्द तथा सिर पर किरीट सुशोभित हो रहा था, उनके कमर में करधनी लटक रही थी और पैरों में मनोहर नूपुर शोभा पा रहे थे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

झषराजो मकरस्तदाकारयोः कुण्डलयोस्त्विषा उल्लसन्ती श्रीर्वदनाम्बुजे यस्य । श्रीवत्सो वक्षसि यस्य बलयैरङ्गदैश्च सहोल्लसन्ति किरीटादीनि यस्य ॥२॥

भाव प्रकाशिका

झषराज घड़ियाल को कहते है । श्रीभगवान् के दोनों कुण्डलों का आकार मकरकृति था । उन दोनों से श्रीभगवान् के मुखकमल पर और शोभा बढ़ गयी थी । श्रीभगवान् के वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न सुशोभित हो रहा था । कङ्कन तथा बाजूबन्दों के साथ किरीट आदि सुशोभित हो रहे थे ॥२॥

मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया विराजितः श्रीवनमालया हरिः ।
प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा विनाशयन्कण्ठनिविष्टकौस्तुभः ॥३॥

अन्वयः— मधुव्रत व्रातविघुष्टया स्वया वनमालया विराजितः कण्ठनिविष्टकौस्तुभः हरि स्वरोचिषा प्रजापतेः वेश्मतमः विनाशयन् आसीत् ॥३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् अपने स्वरूप भूत वनमाला को धारण किए वे उस पर भौरें गुञ्जार कर रहे थे, उससे श्रीभगवान् सुशोभित थे । उनके गले में कौस्तुभमणि लटक रही थी । श्रीभगवान् की कान्ति से प्रजापति कश्यप के गृहों का अन्धकार विनष्ट हो गया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

श्रीमत्या वनमालया विराजितः । वेश्मगतं तमः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सुन्दर वनमाला से सुशोभित थे । वेश्मगतं तम अर्थात् घर का अन्धकार ॥३॥

दिशः प्रसेदुः सलिलाशयास्तदा प्रजाः प्रहृष्टा ऋतवो गुणान्विताः ।
द्यौरन्तरिक्षं क्षितिरग्निजिह्वा गावो द्विजाः संजहृषुर्नगाश्च ॥४॥

अन्वयः— तदा दिशः सलिलाशयाः प्रसेदुः प्रजाः प्रहृष्टा; ऋतवः गुणान्विताः द्यौः अन्तरिक्षं क्षितिः अग्निजिह्वाः गावः द्विजाः नगाः च संजहृषुः ॥४॥

अनुवाद— उस समय दिशाएँ निर्मल हो गयी, सरोवरों का जल स्वच्छ हो गया, प्रजाएँ प्रसन्न हो गयी, सभी ऋतुएं एक ही साथ अपना-अपना गुण प्रकट करने लगीं, स्वर्गलोक, अन्तरिक्ष, पृथिवी, देवता गौ, ब्राह्मण तथा पर्वत इन सबों के हृदय में हर्ष का संचार हो गया ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अग्निजिह्वा देवा: । नगा: पर्वता: ।।४।।

भाव प्रकाशिका

अग्निजिह्वा अर्थात् देवगण, नगा: अर्थात् पर्वतगण ।।४।।

श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः । सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ।।५।।

अन्वयः— श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां अभिजिति मुहूर्ते प्रभुः सर्वेनक्षत्रताराद्याः तज्जन्म दक्षिणं चक्रुः ।।५।।

अनुवाद— भाद्रपदमास के शुक्ल पक्ष की श्रवण द्वादशी के दिन अभिजित् मुहूर्त में श्रीवामन भगवान् का प्राकट्य हुआ उस समय सभी नक्षत्र और तारे उनके जन्म को दक्षिण करते हुए मङ्गलमय सूचित कर रहे थे ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तत्प्रादुर्भावसमयमाह–श्रोणायामिति । भाद्रपदशुक्लद्वादशी श्रवणद्वादशीति प्रसिद्धा तस्याम् । तत्रापि श्रोणायां श्रवणस्थे चन्द्र इत्यर्थः । तत्रापि श्रवणस्य प्रथमांशेऽभिजिति नक्षत्रे । तच्चश्रुत्या दर्शितम्– 'अभिजिन्नाम नक्षत्रमुपरिष्टादषाढानामधस्ताच्छ्रोणायाः' इति । एवंविशिष्टे मुहूर्ते प्रभुः प्रादुर्बभूवेत्यर्थः । किंच नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि ताराशब्देन ग्रहा गुरुशुक्रादयस्ते आद्या येषां ते सूर्यादयोऽपि सर्वे तस्य जन्म दक्षिणमुदारं चक्रुः । जन्ममुहूर्ते गुणा बहवो बभूवुरित्यर्थः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के प्राकट्य के समय को **श्रोणयाम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । भाद्रपदशुक्ल द्वादशी श्रवण द्वादशी के नाम से प्रसिद्ध है । उसमें भी चन्द्रमा श्रवण नक्षत्र पर थे । श्रवण नक्षत्र के प्रथम चरण में अभिजित् नक्षत्र में चन्द्रमा था । श्रुति भी कहती है— **अभिजिन्नाम इत्यादि** अभिजित् नामक नक्षत्र से पहले उत्तराषाढा नक्षत्र होता है और उसके बाद श्रवण नक्षत्र होता है । इस प्रकार के विशेषण से विशिष्ट समय में श्रीभगवान् का प्रादुभार्व हुआ । तारा शब्द से अश्विनी इत्यादि नक्षत्रों को तथा ग्रह शब्द से गुरु शुक्र इत्यादि जिनके आदि में होते हैं । ऐसे सूर्य इत्यादि ग्रह सभी श्रीभगवान् के जन्म को उदार बना रहे थे । श्रीभगवान् के जन्म मुहूर्त में बहुत से गुण थे ।।५।।

द्वादश्यां सविताऽतिष्ठन्मध्यन्दिनगतो नृप । विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ।।६।।

अन्वयः— हे नृप मध्यन्दिनगतः सविता द्वादश्यां अतिष्ठत् विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां हरेः जन्म विदुः ।।६।।

अनुवाद— परीक्षित् जिस तिथि में भगवान् का जन्म हुआ उसे विजया द्वादशी कहते हैं जन्म के समय सूर्य आकाश के मध्य में थे ।।६।।

भावार्थ दीपिका

विशेषान्तरमाह- यस्यां द्वादश्यां हरेर्जन्म तत्तस्यामहन्येव विदुः । तदा च मध्यन्दिनगतः सवितातिष्ठत् । सा च द्वादशी विजया नाम प्रोक्तेत्यन्वयः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

दूसरी विशेषताओं को बतलाते हैं जिस द्वादशी को भगवान् का जन्म हुआ वह दिन था । सूर्य उस समय आकाश के मध्य में थे । वह द्वादशी विजया के नाम से कही गयी है ।।६।।

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवानकाः । चित्रवादित्रतूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ।।७।।

अन्वयः— शङ्खदुन्दुभयो नेदुः मृदङ्गपणवानका चित्रवादित्र तूर्याणां तुमुलः निर्घोषः अभवत् ।।७।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के अवतार के समय शङ्ख ढोल मृदङ्ग डफ और नगाड़े बजने लगे विभिन्न प्रकार के वाद्यों और तुरहियों की तुमुल ध्वनि होने लगीं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

शङ्खादयो ये तेषामन्येषां च चित्रतूर्याणां निर्घोषोऽभवत् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

शङ्ख इत्यादि तथा दूसरे विविध वाद्यों की ध्वनि हुई ॥७॥

प्रीताश्चाप्सरसोऽनृत्यन्गान्धर्वप्रवरा जगुः । तुष्टुवुर्मुनयो देवा मनवः पितरोऽग्नयः ॥८॥

अन्वयः— प्रीताः अप्सरसः अनृत्यन् गन्धर्वप्रवराःजगुः मुनयः देवाः मनवः पितरः अग्नयः तुष्टुवुः ॥८॥

अनुवाद— प्रसन्न होकर अप्सराओं ने नृत्य किया, गन्धर्वों ने गीत गाया, मुनिगण, देवगण, मनुगण, पितृगण और अग्नियों ने भी श्रीभगवान् की स्तुति की ॥८॥

भावार्थ दीपिका

देवा मनव इत्यादीनां कुसुमैः समवाकिरन्निति तृतीयेनान्वयः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

देवतागण तथा मनुगण का तीसरे श्लोक के पुष्पों की वर्षा किए के साथ अन्वय है ॥८॥

सिद्धविद्याधरगणाः सकिंपुरुषकिन्नराः । चारणा यक्षरक्षांसि सुपर्णा भुजगोत्तमाः ॥९॥
गायन्तोऽतिप्रशंसन्तो नृत्यन्तो विबुधानुगाः । अदित्या आश्रमपदं कुसुमैः समवाकिरन् ॥१०॥

अन्वयः— सिद्धविद्याधरगणाः सकिंपुरुषं किन्नराः चारणाः यक्ष रक्षांसि सुपर्णाः भुजगोत्तमाः गायन्तः अतिप्रशंसन्तः नृत्यन्तः विवुधानुगा, अदित्या; आश्रमपदं कुसुमैः समवाकिरन् ॥९-१०॥

अनुवाद— सिद्ध विद्याधर किम्पुरुष, किन्नर, चारण, यक्ष, राक्षस, पक्षी, मुख्य नागगण और देवताओं के अनुचर नाचने गाने और बहुत अधिक प्रशंसा करने लगे तथा उन लोगों ने अदिति देवी के आश्रम में पुष्पों की वर्षा की ॥९-१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९-१०॥

दृष्ट्वाऽदितिस्तं निजगर्भसंभवं परं पुमांसं मुदमाप विस्मिता ।
गृहीतदेहं निजयोगमायया प्रजापतिश्चाह जयेति विस्मितः ॥११॥

अन्वयः— अदितिः तं निजगर्भसंभवं परं पुमासं दृष्ट्वा विस्मिता मुदम् आप, निजयोगमायया गृहीतदेहं प्रजापतिः विस्मितः जय इति चाह ॥११॥

अनुवाद— अदिति देवी अपने गर्भ से उत्पन्न हुए उस परम पुरुष को देखकर आश्चर्य चकित और अत्यन्त प्रसन्न हुईं । अपनी योगमाया के द्वारा शरीर धारण किए हुए श्रीभगवन् को प्रजापति कश्यप आश्चर्यित होकर कहे हे भगवन् आपकी जय हो ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

यत्तद्वपुर्भाति विभूषणायुधैरव्यक्तचिद्यवक्तमधारयद्धरिः ।
बभूव तेनैव स वामनो बटुः संपश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः ॥१२॥

अन्वयः— अव्यक्तचित् हरिः यत् तद् वपुः विभूषणायुधैः भाति तेनैव सः सम्यश्यतोः गतिः व्यक्तम् आधारयत् मनः वटु नटः यथा बभूव ॥१२॥

अनुवाद— राजन् ! भगवन् स्वयं अव्यक्त एवं चित्स्वरूप हैं । वे जो परम कान्तिमय आभूषणों एवं आयुधों से युक्त शरीर धारण किए थे उसी शरीर से कश्यप और अदिति के देखते-ही-देखते वामन ब्रह्मचारी का रूप धारण कर लिए । ठीक उसी तरह जैसे कोई नट अपना रूप बदल लेता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

विस्मयान्तरमाह-यत्तदिति । यत्तद्वपुर्हरिरधारयत्प्रकटितवांस्तेनैव वपुषा मातापित्रोः संपश्यतोरेव वामनो बटुर्बभूव । दिव्यगतिरद्भुतचेष्टितः । स्वयं कथं भूतः । अव्यक्तचिद्रूपः । कथमधारयत् । भासितदीप्तिविभूषणानि आयुधानि च तैर्व्यक्तं यथा भवति तथा ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

यत् तत् इत्यादि श्लोक से दूसरे आश्चर्य को बतलाते हैं । जिस शरीर को धारण किए हुए श्रीहरि प्रकट हुए थे उसी शरीर से अपनी माता के देखते ही देखते वामन ब्रह्मचारी बन गये । श्रीभगवान् की अद्भुत चेष्टाएँ होती हैं । स्वयं तो वे अव्यक्त और चित्स्वरूप हैं । उन्होंने कैसा शरीर धारण किया ? जिससे विभूषण और आयुधों से जो प्रकाशित हो ऐसे व्यक्त शरीर को वे धारण कर लिए ॥१२॥

तं बटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः । कर्माणि करयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥१३॥

अन्वयः— तं वामनं वटुंदृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः प्रजापतिं पुरस्कृत्य कर्माणि कारयामासुः ॥१३॥

अनुवाद— श्रीभगवन् को वामन ब्रह्मचारी के रूप में देखकर महर्षियों को बड़ी प्रसन्नता हुए वे लोग कश्यप महर्षि को आगे करके उनके जातकर्म आदि संस्कार कराये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

कर्माणि जातकर्मादीनि ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

कर्म शब्द से जातकर्म आदि संस्कारों को कहा गया है ॥१३॥

तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सविताब्रवीत् । बृहस्पतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात् ॥१४॥

अन्वयः— उपनीयमानस्य तस्य सावित्री सविता अब्रवीत् । बृहस्पतिः ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपः अददात् ॥१४॥

अनुवाद— जिस समय वामन भगवान् का यज्ञोपवीत संस्कार हो रहा था तो साविता देवता ने उनको सावित्री (गायत्री) का उपदेश किया । देवगुरु बृहस्पति ने ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) और महर्षि कश्यप ने उनको मौंजी मेखला प्रदान किया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दण्डं सोमो वनस्पतिः । कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्रं जगतः पतेः ॥१५॥

अन्वयः— भूमिः कृष्णाजिनं ददौ वनस्पतिः सोमः दण्डम्, माता कौपीनाच्छादनम् द्यौः छत्रं जगतः पतेः ॥१५॥

अनुवाद— भूमि ने उनको कालामृगचर्म प्रदान किया वनों के स्वामी चन्द्रमा ने उनको दण्ड प्रदान किया, माता अदिति ने कौपीन और कटिवस्त्र प्रदान किया और स्वर्गाभिमानी देवता ने वामन वेषधारी श्रीभगवान् को छत्र प्रदान किया॥१५॥

भावार्थ दीपिका

वनस्पतिर्वनानां पतिः सोमः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

वनों के स्वामी चन्द्रमा ॥१५॥

कमण्डलुं वेदगर्भः कुशान्सप्तर्षयो ददुः । अक्षमालां महाराज सरस्वत्यव्ययात्मनः ॥१६॥

अन्वयः— महाराज ! वेदगर्भः कमण्डलु सप्तर्षय कुशान् सरस्वती अव्ययात्मनः अक्ष्मालां ददुः ॥१६॥

अनुवाद— हे महाराज ! श्रीभगवान् को ब्रह्माजी ने कमण्डलु और सप्तर्षियों ने कुश दिया तथा अविनाशी प्रभु को सरस्वतीजी ने रुद्राक्ष की माला प्रदान किया ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

तस्मा इत्युपनीताय यक्षराट् पात्रिकामदात् । भिक्षां भगवती साक्षादुमाऽदादम्बिका सती ॥१७॥

अन्वयः— तस्मै इति उपनीताय यक्षराट् पात्रिकाम् अदात्, भिक्षाम् सती अम्बिका सक्षात् भगवती उमा अदात्॥१७॥

अनुवाद— इस प्रकार जब उपनयन संस्कार सम्पन्न हो गया तो यक्षराज कुबेर ने उनको भिक्षा पात्र और भिक्षा सती शिरोमणि जगन्माता साक्षात् भगवती उमादेवी ने दिया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

पात्रिकां भ्क्षिापात्रीम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

पात्रीकाम् भिक्षापात्र ॥१७॥

स ब्रह्मवर्चसेनैव सभां संभावितो बटुः । ब्रह्मर्षिगणसंजुष्टामत्यरोचत् मारिषः ॥१८॥

अन्वयः— स एवं ब्रह्मवर्चसेनैव संभावितः मारिषः ब्रह्मर्षिगण संजुष्टाम् सभाम् अत्यरोचयत् ॥१८॥

अनुवाद— सभी लोगों से इस प्रकार से सम्भावित वे अपने ब्रह्मतेज के द्वारा ब्रह्मर्षियों से भरी हुई सभा को अत्यधिक सुशोभित किए ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

स एवं संभावितो मारिषः श्रेष्ठो बटुर्ब्रह्मवर्चसेन ब्रह्मर्षिगणसंजुष्टां तां सभामतिक्रम्यारोचत ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से सबों द्वारा समादृत मारिष (श्रेष्ठवटु) भगवान् वामन अपने ब्रह्मतेज के द्वारा ब्रह्मर्षियों से परिपूर्ण सभा को अत्यधिक सुशोभित किए ॥१८॥

समिद्धमाहितं वह्निं कृत्वा परिसमूहनम् । परिस्तीर्य समभ्यर्च्य समिद्भिरजुहोद्द्विजः ॥१९॥

अन्वयः— समिद्धम् आहितं बह्निम् परिसमूहनम् कृत्वा परिस्तीर्य समिद्भिः समभ्यर्च्य अजुहोत् ॥१९॥

अनुवाद— इसके पश्चात् वामन भगवान् ने स्थापित और प्रज्वलित अग्नि का कुशों से परिसमूहन और परिस्तरण करके उसकी पूजा की और समिधाओं से होम किया ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

श्रुत्वाश्वमेधैर्यजमनमूर्जितं बलिं भृगूणामुपकल्पितैस्ततः ।
जगाम तत्राखिलसारसंभृतो भारेण गां सन्नमयन्पदे पदे ॥२०॥

अन्वयः— भृगूणाम् उपकल्पितैः अश्वमेधैः यजमानं उर्जित बलिं श्रुत्वा ततः अखिलसारसंभृतः भारेण गां पदे-पदे सन्नमयन् तत्र जगाम ॥२०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने सुना कि भृगुवंशियों के द्वारा प्रवर्ति अश्वमेध याज्ञों के द्वारा राजा महाबलवान् बलि

यजन कर रहे हैं । उसके पश्चात् सम्पूर्ण संसार के भार से सम्पन्न श्रीभगवान् अपने भार से पग-पग पर पृथिवी को झुकाते हुए उस यज्ञ में गये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

यदर्थं बटुर्बभूव तदाह-श्रुत्वेत्यादि यावत्समाप्ति । यजमानं यजन्तम् । भृगूणां भृगुभिः । उपकल्पितैः प्रवर्तितैः । अखिलेन सारेण बलेन संभृतः संपूर्णः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् जिस कार्य के लिए वामन वटु वने थे उस कार्य को **श्रुत्वा० इत्यादि** श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति तक बतलाते हैं । यजमानम् अर्थात् यजन करने वाले, भृगूणा भृगुभिः उपकल्पितैः प्रवर्तितं सम्पूर्ण जगत् के भार से भरे हुए ॥२०॥

तं नर्मदायास्तट उत्तरे बलेर्य ऋत्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके ।
प्रवर्तयन्तो भृगवः क्रतूत्तमं व्यचक्षताराादुदितं यथा रविम् ॥२१॥

अन्वयः— नर्मदायाः उत्तरे तटे बलेः ये ऋत्विजः ते भृगुकक्षसंज्ञके कतूत्तमं प्रवर्तयन्तः भृगवः ये ऋत्विजः आरात् उदितं रविं उदितं यथा व्याचक्षत ॥२१॥

अनुवाद— नर्मदा नदी के उत्तर तट पर भृगुकक्ष नामक स्थान पर उस श्रेष्ठ यज्ञ को प्रवर्तित करने वाले बलि के जो भृगुवंशी ऋत्विज थे वे शीघ्र ही उदित हुए सूर्य के समान श्रीभगवन् को देखे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

नर्मदाया उत्तरे तटे भृगुकच्छसंज्ञके क्षेत्रे क्रतूत्तमं प्रवर्तयन्तो ये बलेर्ऋत्विजो भृगवस्ते तं व्यचक्षतापश्यन् । आरात्समीप एवोदितं रविमिव ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

नर्मदा नदी के उत्तर तट पर भृगुकच्छ नामक क्षेत्र में श्रेष्ठ क्रतुको प्रवर्तित करने वाले जो बलि के ऋत्विज भृगुवंशीय थे वे श्रीभगवान् को शीघ्र ही उदित हुए सूर्य के समान देखे ॥२१॥

तं ऋत्विजो यजमानाः सदस्या हतत्विषो वामनतेजसा नृप ।
सूर्यः किलायात्युत वा विभावसुः सनत्कुमारोऽथ दिदृक्षया क्रतोः ॥२२॥

अन्वयः— हे नृप ते ऋत्विजः यजमानः सदस्याः वामनतेजसाहत त्विषः किल सूर्यः उतविभासुः सनत्कुमरोऽथ क्रतोः दिदृक्षया आयाति इति तर्कयामासुः ॥२२॥

अनुवाद— वे ऋत्विजगण, यजमान, यज्ञ के सदस्य सबों की कान्ति भगवान् वामन के तेज से दब गयीं। वे सोचने लगे कि क्या सूर्यदेव या अग्निदेव अथवा भगवान् सनत्कुमार इस यज्ञ को देखने की इच्छा से आ रहें है क्या ?॥२२॥

भावार्थ दीपिका

त ऋत्विगादयः सूर्यः किलेत्येवमादि व्यतर्कयन्निति शेषः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

वे ऋत्विक् इत्यादि सोचने लगे कि सूर्य ही आ रहे हैं क्या ?॥२२॥

इत्थं सशिष्येषु भृगुष्वनेकधा वितर्क्यमाणो भगवान्स वामनः ।
छत्र सदण्डं सजलं कमण्डलुं विवेश बिभ्रद्धयमेधवाटम् ॥२३॥

अन्वयः— एवं स शिष्येषु भृगुषु अनेकधा वितर्क्यमाणः स भगवान् वामनः छत्रं सदण्डं सजलं कमण्डलुम् बिभ्रत् हयमेधवाटम् विवेश ॥२३॥

अनुवाद— इस प्रकार से भृगुवंशी ब्राह्मण जब अनेक प्रकार तर्क अपने शिष्यों के साथ कर ही रहे थे उसी समय वामन भगवान् छत्र, दण्ड और जलभरा कमण्डलु धारण किए हुए यज्ञशाला में प्रवेश किए ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

हयमेधवाटमश्वमेधमण्डपं विवेश ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

अश्वमेधयज्ञ की यज्ञशाला में प्रवेश किए ॥२३॥

मौञ्ज्या मेखलया वीतमुपवीताजिनोत्तरम् । जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम् ॥२४॥

अन्वयः— मौञ्ज्या मेखलया वीतम् उपवीताजिनोत्तरम् जटिलं वामनं विप्रम् मायामाणवकं हरिम् ॥२४॥

अनुवाद— मौञ्जी मेखला और यज्ञोपवीत तथा मृगचर्म का उत्तरीय धारण किए हुए थे । उनके सिर पर जटा थी बौने ब्राह्मण बने हुए माया से ब्रह्मचारी श्रीहरि को ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

उपवीताजिनमुपवीतवद्धृतमजिनमेवोत्तरमुत्तरीयं यस्य तम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञोपवीत तथा यज्ञोपवीत के ही समान मृगचर्म का उत्तरीय धारण किए हुए श्रीहरि को ॥२४॥

प्रविष्ट वीक्ष्य भृगवः सशिष्यास्ते सहाग्निभिः । प्रत्यगृह्णन्समुत्थाय संक्षिप्तास्तस्य तेजसा ॥२५॥

अन्वयः— प्रविष्ट वीक्ष्य ते भृगवः सशिष्याः अग्निभिः सह तस्य तेजसा संक्षिप्ताः उत्थाय प्रत्यगृह्णन् ॥२५॥

अनुवाद— यज्ञशाला में प्रवेश किए हुए श्रीभगवान् को देखकर अपने शिष्यें के साथ भृगुवंशी ब्राह्मण उनके तेज से हतप्रभ हो गये और उठकर उनका स्वागत सत्कार किए ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

संक्षिप्ता अभिभूताः सन्तः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

संक्षिप्ताः अर्थात् अभिभूत हुए ॥२५॥

यजमानः प्रमुदितो दर्शनीयं मनोरमम् । रूपानुरूपावयवं तस्मा आसनमाहरत् ॥२६॥

अन्वयः— प्रमुदितः यजमानः दर्शनीयं मनोरमम् रूपानुरूपावयवं तस्मै आसनम् आहरत् ॥२६॥

अनुवाद— श्रीभगवान् को देखकर यजमान राजा बलि अत्यन्त प्रसन्न हुए । वे देखने में मनोहर श्रीभगवान् के सभी अङ्ग उनके रूप के अनुरूप ही थे ऐसे श्रीभगवान् के लिए राजा बलि ने आसन प्रदान किया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

रूपस्यानुरूपा अवयवा यस्य तम् । दृष्ट्वेति शेषः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को देखकर श्रीभगवान् के सारे अङ्ग उनके रूप के अनुकूल ही थे ॥२६॥

स्वागतेनाभिनन्द्याथ पादौ भगवतो बलिः । अवनिज्यार्चयामास मुक्तसङ्गमनोरमम् ।।२७।।

अन्वयः— बलिः स्वागतेन अभिनन्द्य भगवतः पादौ अवनिज्य मुक्तसङ्गमनोरमम् अर्चयामासः ।।२७।।

अनुवाद— बलि ने स्वागत वाणी से उनका अनिन्दन किया और उसके श्रीभगवान् के चरणों को धोकर मुक्तसङ्ग महापुरुषों को भी मनोहर लगने वाले श्रीहरि की पूजा किए ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

तत्पादशौचं जनकल्मषापहं स धर्मविन्मूर्ध्न्यदधात्सुमङ्गलम् ।
यद्देवदेवो गिरिशश्चन्द्रमौलिर्दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या ।।२८।।

अन्वयः— यत् देवदेवः चन्द्रमौलि गिरिशः परया भक्त्या मूर्ध्ना दधार तत् सुमङ्गलं जनकल्मषापहं पादशौच धर्मवित् समूर्ध्नि दधार ।।२८।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के जिन चरणें को देवों के भी देव चन्द्रमौलि शङ्करजी ने सर्वोत्कृष्ट भक्ति पूर्वक अपने सिर पर धारण किया था उस चरणोदक को धर्मज्ञ राजा बलि ने अपने शिर पर धारण किया ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

चन्द्रमौलिश्चेत्यन्वयः । अप्यर्थे चकारः । चन्द्रमौलिरपि गङ्गारूपं यन्मूर्ध्ना दधारेत्यर्थः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

चन्द्रमौलि शङ्करजी ने भी गङ्गा रूप चरणोदक को अपने शिर पर धारण किया था ।।२८।।

बलिरुवाच

स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन्किं करवाम ते । ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वार्य वपुर्धरम् ।।२९।।

अन्वयः— ब्रह्मन् ते स्वागतम् तुभ्यं नमः करवाम आर्य त्वा साक्षात् ब्रह्मर्षीणां मूर्तिधरं तपः मन्ये ।।२९।।

राजा बलि ने कहा

अनुवाद— हे ब्राह्मण कुमार ! आपका स्वागत हैं मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे आर्य लगता है कि ब्रह्मर्षियों की साक्षात् तपस्या ही आपके रूप में शरीर धारण करके आयी हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

हे आर्य, त्वा त्वां साक्षात्प्रत्यक्षं ब्रह्मर्षीणां तप एव मन्ये । कथंभूतं तपः । वपुर्धरं मूर्तिधारि ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

हे आर्य आपको मैं शरीधारण करके आयी हुई तपस्या ही मैं मानता हूँ ।।२९।।

अद्य नः पितरस्तृप्ता अद्य नः पावितं कुलम् । अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद्भवानागतो गृहान् ।।३०।।

अन्वयः— अद्य नः पितरः तृप्ताः अद्य नः कुलम् पावितम् अद्य अयं क्रतुः स्विष्टः यद् भवान् गृहान् आगतः ।।३०।।

अनुवाद— आज हमारे पितृगण तृप्त हो गये आज हमारा वंश पवित्र हो गया, आज यह क्रतु भी सफल हो गया, क्योंकि आज आप हमारे घर पधारे हैं ।।३०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३०।।

अद्याग्नयो मे सुहूता यथाविधि द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः ।
हतांहसो वार्भिरियं च भूरहो तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव ॥३१॥

अन्वयः— अद्य मे अगनयः यथाविधि सुहूता हे द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः हतांहसः मे भूः तव तनुभिः पदैः पुनीता॥३१॥

अनुवाद— आज मेरी अग्नियों का विधि पूर्वक होम हो गया तथा हे ब्रह्मण कुमार आपके चरणोदक से निष्पाप बना हुई मेरी यह पृथिवी भी आपके नन्हें-नन्हें चरणों से पवित्र हो गयी ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

त्वच्चरणावनेजनैर्वार्भिर्हतमंहो यस्य तस्य मे पुनीता पवित्रीकृता ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

आपने चरणोदक के जल से निष्पाप बना हुआ मैं, और मेरी पृथिवी भी पवित्र हो गयी ॥३१॥

यद्यद्बटो वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये ।
गां काञ्चनं गुणवद्धाम् मृष्टं तथाऽन्नपेयमुत वा विप्रकन्याम् ॥
ग्रामान्समृद्धांस्तुरगान्गजान्वा रथांस्तथाऽर्हत्तम संप्रतीच्छ ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमे स्कन्धे बलिवामनसंवादेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अन्वयः— हे विप्रसुत ! त्वामर्थिनं अनुतर्कये बटो यत् यत् वाञ्छसि तत्मे प्रतीच्छ गां, काञ्चनम् गुणवद्धाम तथा मृष्टम् अन्नपेयम् हे विप्र उतवा कन्याम्, समृद्धान् ग्रामान्, तुरगान्, गजान् वा तथा हे अर्हततम् रथं प्रतीच्छ ॥३२॥

अनुवाद— हे विप्र प्रभु ! मुझे लगता है कि आप कुछ प्राप्त करना चाहते हैं, हे बटो आप जो कुछ भी प्राप्त करना चाहें मुझसे माँग लें, गौ, सुवर्ण, सामग्रियों से सुसज्जित घर तथा पवित्र अन्न पीने की वस्तु, विवाह के लिए ब्राह्मण की कन्या, सम्पत्तियों से भरे हुए ग्राम, घोड़े, हाथी, रथ ये सभी वस्तुएँ आप मुझसे माँग लें ॥३२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के बलिवामनसंवाद के अन्तर्गत अठारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

मे मत्तः प्रतीच्छ गृहाण । हे अर्हत्तम पूज्यतम ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

में अर्थात् मुझसे, प्रतीच्छ अर्थात् ले लें, अर्हत्तम अर्थात् पूज्यतम ॥३२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के अठारहवें अध्याय की भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

भगवान् का बलिराजा से तीन पग पृथिवी माँगना, बलि का वचन देना, शुक्राचार्य का उनको देने से रोकना

श्रीशुक उवाच

इति वैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तं ससूनृतम् । निशम्य भगवान्प्रीतः प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥१॥

अन्वयः— इति वैरोचनेः धर्मयुक्तं ससुनृतम् निशम्य प्रीतः भगवान् प्रतिनन्द्य इदम् अब्रवीत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजा बलि के धर्म से युक्त तथा मधुर वाणी को सुनकर श्रीभगवान् बहुत प्रसन्न हुए और उनका अभिनन्दन करके कहने लगे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ऊनविंशे तु हरिणा याचिते च पदत्रये । प्रतिश्रुते च बलिना जानन्भृगुरवारयत् । दातुः स्तुतिः स्वयंतुष्टिरित्यादि प्रस्तुतोचितम् । वक्तव्यमिति भिक्षूंस्तु शिक्षयन्नाह वामनः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उन्नीसवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि श्रीहरि द्वारा तीन पग पृथिवी मागने पर तथा राजा बलि के द्वारा देने का वचन दिए जाने पर श्रीभगवान् के जानने वाले भृगुवंशी शुक्राचार्य ने बलि को ऐसा करने से रोका । दान करने वाले बलि की स्तुति तथा याचक की संतोष वृत्ति इत्यादि जो कहना उचित था उसके द्वारा भिक्षुकों को शिक्षा वामन भगवान् ने दिया है ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

वचस्तवैतज्जनदेव सूनृतं कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम् ।
यस्य प्रमाणं भृगवः सांपराये पितामहः कुलवृद्धः प्रशान्तः ॥२॥

अन्वयः— हे जनदेव ! तवैतत् सुनृतं कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम् वचः यस्य सांपराये भृगवः प्रमाणम् कुलवृद्धः प्रशान्तः पितामहः ॥२॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— राजन् ! आपके ये मधुर कुल परम्परा के अनुकूल और धर्म से युक्त तथा यशःप्रद वचन है। क्योंकि परलोक के विषय में आप भृगुपुत्र शुक्राचार्य को तथा अपने कुलवृद्ध पितामह प्रह्लादजी को प्रमाण मानते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

वचस्तवैतदिति षोडशभिः हे जनदेव, सांपराये पारलौकिके धर्मे पितामहश्च प्रह्लादः प्रमाणम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

वचः तवैतत् इत्यादि सोलह श्लोकों द्वारा राजा बलि की प्रशंसा की गयी है । हे राजन् ! आप धर्म के विषय में अपने पितामह प्रह्लादजी को प्रमाण मानते हैं ॥२॥

न ह्येतस्मिन्कुले कश्चिन्निःसत्त्वः कृपणः पुमान् । प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यो वाऽदाता द्विजातये ॥३॥

अन्वयः— एतस्मिन् कुले कश्चित् निःसत्त्वः कृपणः प्रतिश्रुत्य प्रत्याख्याता द्विजातये अदाता वा पुमान् न ह्यभूत् ॥३॥

अनुवाद— इस वंश में कोई भी धैर्य हीन, कृपण अथवा देने की प्रतिज्ञा करके मुकर जाने वाला अथवा ब्राह्मण को नही देने वाला पुरुष नहीं हुआ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

निःसत्त्वस्य लक्षणं यो द्विजातये याचकाय प्रत्याख्याता न ददामीति वक्ता कृपणस्य लक्षणं प्रथमं प्रतिश्रुत्य यो वा न दातेति ।।३।।

भाव प्रकाशिका

निः सत्त्व का लक्षण है कि ब्राह्मण याचक को दान नहीं देने वाला कृपण का लक्षण है कि पहले देने की प्रतिज्ञा करके देने से मुकर जाने वाला ।।३।।

न सन्ति तीर्थे युधि चार्थिनार्थिताः पराङ्मुखा ये त्वमनस्विनो नृपाः ।
युष्मत्कुले यद्यशसाऽमलेन प्रह्लाद उद्भाति यथोडुपः खे ।।४।।

अन्वयः— तीर्थे युधि च अर्थिना अर्थिताः अमनस्विनः पराङ्मुखाः नृपाः युष्मत् कुले न सन्ति, यत् अमलेन यशसा प्रह्लादः खे उडुप इव उद्भाति ।।४।।

अनुवाद— तीर्थ में दान करने के अवसर पर याचकों की याचना सुनकर और युद्ध के अवसर पर शत्रु के ललबारने पर उनकी ओर से पराङ्मुख हो जाने वाला कायर आपके वंश में कोई भी नहीं हुआ। आपके वंश में अपने निर्मल यश से प्रह्लादजी उसी तरह सुशोभित होते है जैसे आकाश में चन्द्रमा सुशोभित होते हैं।।४।।

भावार्थ दीपिका

तीर्थे दानावसरे । यद्यस्मिन्युष्मत्कुले ।।४।।

भाव प्रकाशिका

तीर्थ में दान करने के समय, आपके जिस वंश में ।।४।।

यतो जातो हिरण्याक्षश्चरन्नेक इमां महीम् । प्रतिवीरं दिग्विजये नाविन्दत गदायुधः ।।५।।

अन्वयः— यतो जातः हिरण्याक्षः दिग्विजये गदायुधः इमां महीम् चरन् प्रतिवीरं न अविन्दत ।।५।।

अनुवाद— आपके ही वंश में उत्पन्न हिरण्याक्ष दिग्विजय यात्रा में गदा लेकर निकले और अकेले सम्पूर्ण पृथिवी पर सञ्चरण करते हुए किसी भी अपने सदृश वीर को नहीं पाये ।।५।।

भावार्थ दीपिका

यतो यस्मिञ्जातः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

जिस वंश में उत्पन्न हुए ।।५।।

यं विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णुः क्ष्मोद्धार आगतम् । नात्मानं जयिनं मेने तद्वीर्यं भूर्यनुस्मरन् ।।६।।

अन्वयः— क्ष्मोद्धारे आगतम् यं कृच्छ्रेण विनिर्जित्य विष्णुः तद्वीर्यं भूरि अनुस्मरन् आत्मानं जयिनं नमेने ।।६।।

अनुवाद— पृथिवी का रसातल से उद्धार करने के समय सामने आये हुए उस हिरण्याक्ष को बड़ी कठिनाई से जीतकर भी विष्णु, उसके बहुत अधिक पराक्रम को बार-बार स्मरण करके अपने को विजयी नहीं मानते थे।।६।।

भावार्थ दीपिका

क्ष्मोद्धारे भूम्या उद्धरणे ।।६।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी के उद्धार के समय ।।६।।

निशम्य तद्वधं भ्राता हिरण्यकशिपुः पुरा । हन्तुं भ्रातृहणं क्रुद्धो जगाम निलयं हरेः ॥७॥

अन्वयः— तद्वधं निशम्य क्रुद्धः हिरण्यकशिपुः पुरा भातृहणं हन्तुं हरेः निलयं जगाम ॥७॥

अनुवाद— हिरण्याक्ष के बध का समाचार सुनकर उसका भाई हिरयकशिपु क्रुद्ध होकर अपने भाई को मारने वाले को मारने के लिए श्रीहरि के लोक में गये ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

तमायान्तं समालोक्य शूलपाणिं कृतान्तवत् । चिन्तयामास कालज्ञो विष्णुर्मायाविनां वरः ॥८॥

अन्वयः— तम् शूलपाणिं कृतान्तवत् आयान्तं समालोक्य मायाविनां वरः कलज्ञो विष्णु चिन्तयामास ॥८॥

अनुवाद— हाथ में त्रिशूल लिए हुए काल के समान आते हुए उसको देखकर मायावियों में सबसे श्रेष्ठ तथा समय को जानने वाले विष्णु ने विचार किया ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

यतो यतोऽहं तत्रासौ मृत्युः प्राणभृतामिव । अतोऽहमस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि पराग्दृशः ॥९॥

अन्वयः— प्राणभृताम् मृत्युः इव यतो यतः तत्र असौ अतःअहम् पराग्दृशः अस्य हृदयं प्रवेक्ष्यमि ॥९।

अनुवाद— जैसे संसारी प्राणियों के पीछे मृत्यु लगी रहती है, उसी तरह जहाँ कहीं भी मैं जाऊँगा वहीं यह पहुँच जायेगा । अतएव मैं इसके हृदय में प्रवेश कर जाता हूँ । यह तो बाहर की वस्तुओं को देखता है अपने हृदय में विद्यमान मुझको नहीं देख पायेगा ॥९॥

भावार्थ दीपिका

पराग्दृशो बहिर्दृष्टेः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

बाहर की वस्तुओं को देखने वाला ॥९॥

एवं स निश्चित्य रिपोः शरीरमाधावतो निर्विविशेऽसुरेन्द्र ।
श्वासा निलान्तर्हितसूक्ष्मदेहस्तत्प्राणरन्ध्रेण विविग्नचेताः ॥१०॥

अन्वयः— हे असुरेन्द्र एवं निश्चित्य श्वासानिलान्तार्हितसूक्ष्मदेहः विविग्नचेताः सः तत्प्राणरन्ध्रेण सः आधावतः रिपोः शरीरम् निर्विविशे ॥१०॥

अनुवाद— हे असुरेन्द्र ! इस तरह से निश्चय करके जिस समय हिरण्यकशिपु उन पर झपट रहा था उसी समय डर के मारे काँपते हुए विष्णु अपने शरीर को सूक्ष्म बना लिए और उसके प्राणों द्वारा नासिका रन्ध्र से होकर उसके हृदय में प्रवेश कर गये ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अतो हृदये स्थितं मां न ज्ञास्यतीत्येवं निश्चित्य श्वासानिलेऽन्तर्हितः सूक्ष्मो देहो यस्य । विविग्नमतिकम्पितं चेंतो यस्य। अकम्पितचित्त इति वास्तवोऽर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

अतएव हृदय में विद्यमान मुझको हिरण्यकशिपु नहीं जान पायेगा इस तरह से निश्चय करके उसकी श्वास वायु में छिपकर सूक्ष्म शरीर से हृदय में प्रवेश कर गये । विविग्नचेताः अर्थात् काँपते हुए चित्त वाले । वास्तविकता है कि वे अकिम्पत हृदय वाले हैं ॥१०॥

स तन्निकेतं परिमृश्य शून्यमपश्यमानः कुपितो ननाद ।
क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान्समुद्रान्विष्णुं विचिन्वन्न ददर्श वीरः ॥११॥

अन्वयः— तन्निकेतं परिमृश्य शून्यम्पश्य कुपितो ननाद क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान् समुद्रान् विचिन्यन् स वीरः विष्णुं न ददर्श ॥११॥

अनुवाद— भगवान् विष्णु के निवास स्थान को खूब अच्छी तरह देखा किन्तु वह वहाँ नहीं पाया, इस पर क्रुद्ध होकर उसने सिंह गर्जना की, उसने पृथ्वी, स्वर्ग, दिशा, आकाश, पाताल और समुद्र सर्वत्र खोजा पर वह वीर विष्णु को कही भी नहीं देखा ॥११॥

भावार्थ दीपिका

न ददर्श, अन्तः प्रविष्टत्वात् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

अन्त:करण में प्रवष्टि होने के कारण कहीं भी विष्णु भगवान् को नहीं देखा ॥११॥

अपश्यन्निति होवाच मयान्विष्टमिदं जगत् । भ्रातृहा मे गतो नूनं यतो नावर्तते पुमान् ॥१२॥

अन्वयः— अपश्यन् इति ह उवाच मया इदं जगत् अन्विष्टम् नूनं मे भ्रातृहा गतः यतः पुमान् न आवर्तते ॥१२॥

अनुवाद— भगवान् विष्णु को नहीं देख सकने के कारण उसने कहा मैंने सम्पूर्ण संसार में खोज डाला है, अतएव यह निश्चित है कि मेरे भाई को मारने वला विष्णु मर गया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

पुमान्यतः सकाशान्नावर्तते तद्ब्रह्मैव नूनं गतो नित्यमुक्तत्वादिति वास्तवोऽर्थः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

जहाँ से जीव नहीं लौटता है अर्थात् निश्चित रूप से ब्रह्म के पास चला गया, क्योंकि श्रीभगवन् तो नित्य मुक्त हैं । यही वास्तविक अर्थ है ॥१२॥

वैरानुबन्ध एतावानामृत्योरिह देहिनाम् । अज्ञानप्रभवो मन्यु रहंमानोपबृंहितः ॥१३॥

अन्वयः— देहिनाम् इह वैरानुबन्धः एतावान् आमृत्योः अज्ञान प्रभवः मन्युः अहं मानोप बृहितः ॥१३॥

अनुवाद— शरीरधारियों का इस संसार में मृत्यु पर्यन्त ही वैर भाव रहता है । क्रोध तो अज्ञान से उत्पन्न होता है और अहङ्कार से बढ़ता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

एवं मृत्युपर्यन्तमखण्डं विष्णौ वैरं यत्कृतवांस्तदुचितमेव तस्याप्रतिद्वन्द्वमहाबलपराक्रमस्य शूरोहंमानविजृम्भिक्रोधानुवबन्धस्य कथं नामासौ शूरशिरोमणिर्जीवन्नेव कातरवद्वैरमुपेक्षितवानित्याशङ्क्याह वैरानुबन्ध एतावानामृत्योर्भवति । देहिनां देहे निगूढाभिमानवतां शूराणां तथाऽहंमानेनोपबृंहितो मन्युश्च भवत्येव यतोऽज्ञानप्रभवः, अज्ञाननिवृत्तेः प्राक् पौरुषत्यागो मान्द्यमेवेत्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह अपनी मृत्यु काल पर्यन्त जो उसने विष्णु से वैर किया वह उचित ही है उस महाबलवान् महापराक्रमी का कोई दूसरा प्रतिद्वन्द्वी था ही नहीं । मैं वीर हूँ इस तरह से अहङ्कार से बढ़ने वाले क्रोध को वह वीर शिरोमणि जीते जी कायर के समान कैसे त्याग सकते हैं ? इस प्रकार की आशङ्का होने पर कहते हैं इस प्रकार का वैर भाव मृत्यु पर्यन्त ही होता है । शरीर धारियों के शरीर में छिपे हुए अभिमान युक्त वीरों

का क्रोध अहङ्कार के द्वारा बढ़ता है, क्योंकि वह अज्ञान से उत्पन्न है अतएव अज्ञान की निवृत्ति होने से पहले पौरुष का त्याग मन्दता ही है ।।१३।।

पिता प्रह्लादपुत्रस्ते तद्विद्वान्द्विजवत्सलः । स्वमायुर्द्विजलिङ्गेभ्यो देवेभ्योऽदात्स याचितः ।।१४।।

अन्वयः— प्रह्लाद पुत्रः ते पिता द्विजवत्सलः द्विजलिङ्गेभ्यः देवेभ्यः तद्विद्वान स याचितः स्वम् आयुः देवेभ्यः अदात्।।१४।।

अनुवाद— प्रह्लादजी के पुत्र तुम्हारे पिता विरोचन ब्राह्मण भक्त थे, ब्राह्मण का वेष बनाकर उनकी आयु माँगने वाले देवों को वे जानते थे ये ब्राह्मण नहीं हैं फिर भी वे अपनी आयु प्रदान कर दिये ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं पूर्वजान्स्तुत्वा तत्पितरं स्तौति-पितेति । द्विजवेषधारिणो मद्वैरिणो देवा एते नतु द्विजा इति तद्विद्वानपि स याचितः सन्स्वीयमायुर्देवेभ्यो ददौ ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से बलि के पूर्वजों की स्तुति करके वामन भगवान् बलि के पिता की प्रशंसा पिता इत्यादि श्लोक से करते हैं । ब्राह्मण का वेष बनाये हुए ये मेरे शत्रु देवता हैं यह जानते हुए भी याचना किए जाने पर अपनी आयु देवताओं को दे दिए ।।१४।।

भवानाचरितान्धर्मानास्थितो गृहमेधिभिः । ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैरन्यैश्चोद्दामकीर्तिभिः ।।१५।।

अन्वयः— भवान् आपि गृहमेधिभिः ब्राह्मणैः पूर्वजैः अन्यैः च उददामकीर्तिभिः आचरितान् धर्मान् आस्थितः।।१५।।

अनुवाद— आप भी उन्हीं धर्मों का पालन करते हैं जिन धर्मों का पालन शुक्राचार्य आदि गृहस्थ ब्राह्मण करते हैं, आपके पूर्वजों ने तथा दूसरे यशस्वी वीरों किया है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१५।।

तस्मात्त्वत्तो महीमीषद्वृणेऽहं वरदर्षभात् । पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पदा मम ।।१६।।

अन्वयः— हे दैत्येन्द्र तस्मात् वरदर्षभात् त्वत्तः ईषद् महीं वृणे मम पदा त्रीणि पदानि संमितानि ।।१६।।

अनुवाद— अतएव हे दैत्येन्द्र ! वरदान देने वालों में श्रेष्ठ आप से मैं थोड़ी पृथिवी माँगता हूँ, केवल मेरे पैरों से नापकर तीन पग पृथिवी ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

मम पदा संमितानीति त्रिविक्रमपदाभिप्रायेण न चानृतवादः, तत्रापि स्वपदत्वानपगमात् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

मेरे पैरों से नापकर त्रिविक्रम पद के अभिप्राय से यह कहा गया है, जिससे त्रिविक्रम नाम मिथ्या न हो। उसमें भी अपने चरणों के बने रहने के कारण ।।१६।।

नान्यत्ते कामये राजन्वदान्याज्जगदीश्वरात् । नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थप्रतिग्रहः ।।१७।।

अन्वयः— राजन् ! वदान्यात् जगदीश्वरात् ते अन्यत् न काम ये यावदर्थपतिग्रहो विद्वान् एनः न प्राप्नोति ।।१७।।

अनुवाद— राजन् आप उदार शिरोमणि तथा जगत् के स्वामी हैं आपसे मैं दूसरी चीजें नहीं माँगता हूँ । अपनी आवश्यक्ता से अधिक दान नहीं लेने वाला विद्वान् पुरुष को दान लेने का पाप नहीं लगता है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

यावदर्थमेव प्रतिग्रहो यस्य सः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

आवश्यकता के अनुसार ही दान लेना चाहिए ॥१७॥

बलिरुवाच

अहो ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसंमताः । त्वं बालो लिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा ॥१८॥

अन्वयः— अहो ब्राह्मण दायद ते वाचः वृद्ध संमता त्वं बालः बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा ॥१८॥

राजा बलि ने कहा

अनुवाद— ब्राह्मण कुमार ! तुम्हारी बातें तो वृद्धों जैसी हैं और तुम्हारी बुद्धि बहुत छोटी है, क्योंकि बालक हो इसीलिए तुमको अपने लाभ और हानि का पता ही नहीं है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

ईश्वरस्यापि याञ्चाप्रकारं चोक्त्वा बलेर्बन्धनप्रश्नोत्तरत्वेन तस्य गर्वातिरेकेणाधिक्षेपप्रकारमाह-अहो इति त्रिभिः- ते वाचो वृद्धानां संमतास्त्वं तु बालो बालिशमतिश्च बालिशानामज्ञानामिव मतिर्यस्य । अतएव स्वार्थं प्रति यथावदबुधः । वस्तुतस्तु बाल इवाबालिशमतिश्चेति च्छेदः । स्वार्थं प्रत्यबुधः इति च भक्तानामेवार्थं बुध्यसे न स्वार्थम् । परिपूर्णस्य तव तद्व्यतिरेकेण स्वार्थाभावादित्यर्थः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

तुम्हारा माँगने का प्रकार तो ईश्वर जैसा बलि से कहकर बन्धन विषयक प्रश्न तथा उत्तर होने से बलि के गर्वातिशय्य द्वारा विक्षेप के प्रकार को **अहो० इत्यादि** तीन श्लोकों से बतलाते है । तुम्हारी बात तो वृद्धों जैसी है किन्तु तुम्हारी बुद्धि मूर्खों जैसे है क्योंकि तुम बालक हों अतएव ठीक से अपने स्वार्थ को नहीं समझते हो वस्तुतः बालक के समान बालिश मति नहीं है । स्वार्थं प्रति अबुधः अर्थात् आप अपने भक्तों के ही स्वार्थ को जानते है अपने स्वार्थ को नहीं । आप तो परिपूर्ण है, अतएव भक्तों के स्वार्थ से भिन्न आपका कोई भी स्वार्थ नहीं है ॥१८॥

मां वचोभिः समाराध्य लोकानामेकमीश्वरम् । पदत्रयं वृणीते योऽबुद्धिमान्द्वीपदाशुषम् ॥१९॥

अन्वयः— लोकानाम् एकम् ईश्वर द्वीपदाशुषम्मां वचोभिः समाराध्य यः अबुद्धिमान् पदद्वयं वृणीते ॥१९॥

अनुवाद— सम्पूर्ण लोकों का एक मात्र स्वामी द्वीपों को देने की इच्छा वाले मुझको अपनी बातों से प्रसन्न करके जो मूर्ख तीन पद पृथिवी माँगता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

अबुधत्वमेवाह-मामिति । द्वीपस्य दाशुषं दातारम् । अबुद्धिमान् वस्तुतस्तु बुद्धिमानित्येव छेदः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

वामन भगवान् के अज्ञानित्व को ही **माम् इत्यादि** श्लोक से बलि कहते है । द्वीप का दान करने वाले, अबुद्धिमान वस्तुतः अबुद्धिमान् ही पदच्छेद है ॥१९॥

न पुमान्मामुपव्रज्य भूयो याचितुमर्हति । तस्माद्वृत्तिकरीं भूमिं बटो कामं प्रतीच्छ मे ॥२०॥

अन्वयः— माम् उपव्रज्य पुमान् भूयः याचितुम् न अर्हति अतएव बटो तस्मात् में वृत्तिकरीं भूमिं कामं प्रतीच्छ॥२०॥

अनुवाद— मेरे पास माँगने के लिए आकर कोई पुरुष फिर कहीं याचना नहीं करता है। । अतएव ब्रह्मचारिन् आप अपनी इच्छानुसार जिससे की आपकी वृत्ति चल सके उतनी भूमि माँग लो ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

कामं यथेच्छं सम्यक् पादप्रसारणेनेत्यर्थः । अतएव तथा करिष्यति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अपनी इच्छानुसार जिससे कि तुम पैर फैलाकर सो सको ऐसा ही करो ॥२०॥

श्रीभगवानुवाच

यावन्तो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेन्द्रियम् । न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥२१॥

अन्वयः— नृप त्रिलोक्याम् यावन्तः प्रेष्ठाः विषयाः ते सर्वे अजितेन्द्रियं प्रतिपूरयितुं न शक्नुवन्ति ॥२१॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— राजन् ! इस त्रिलोकी में जितने प्रिय विषय से सब मिलकर किस अजितेन्द्रिय व्यक्ति की इच्छा पूर्ण नहीं कर सकते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

पुनरपि निस्पृहत्वमेवाविष्कुर्वन्नाह यावन्त इति सप्तभिः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

यावन्तः इत्यादि सात श्लोकों से श्रीभगवान् अपनी निस्पृहता को ही अभिव्यक्त करते हैं ॥२१॥

त्रिभिः क्रमैरसंतुष्टो द्वीपेनापि न पूर्यते । नववर्षसमेतेन सप्तद्वीपवरेच्छया ॥२२॥

अन्वयः— त्रिभिः क्रमैः असंतुष्टः सप्तदीपेन अपि, नववर्ष समेतेन सप्तद्वीपवरेच्छया न पूर्यते ॥२२॥

अनुवाद— जो तीन पग से संतुष्ट नहीं होगा वह-वह सात द्वीपों को भी प्राप्त करके नव वर्षों से युक्त सात द्वीपों की प्राप्ति की इच्छा से नहीं सन्तुष्ट हो सकता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

नववर्षसमेतेन द्वीपेनापि सप्तानां द्वीपवराणामिच्छया ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

नव वर्षों से युक्त एक द्वीप को भी प्राप्त कर सातों द्वीपों को प्राप्त करने की इच्छा से सन्तुष्ट नहीं होता है ॥२२॥

सप्तद्वीपाधिपतयो नृपा वैन्यगयादयः । अर्थैः कामैर्गता नान्तं तृष्णाया इति नः श्रुतम् ॥२३॥

अन्वयः— सप्तद्वीपाधिपतयः वैन्यगयादयः नृपा अर्थैः कामेः तृष्णायाः अन्तं न गताः इति नः श्रुतम् ॥२३॥

अनुवाद— सातो द्वीपों के स्वामी वैन्य तथा गय आदि राजा गण धन और भोग की सामग्री के द्वारा अपनी लालच का अन्त नहीं पा सके, यह मैंने सुना ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तृष्णाया अन्तं न गता इत्यस्माभिः श्रुतम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

अपनी तृष्णा के अन्त को नहीं प्राप्त कर सके ॥२३॥

यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टो वर्तते सुखम् । नासंतुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः ॥२४॥

अन्वयः— यदृच्छया उपपन्नेन सन्तुष्टः सुखं वर्तते अजितात्मा असन्तुष्टः त्रिभिः लोकैः उपसादितः असन्तुष्ट सुखं न वर्तत इत्यर्थः ॥२४॥

अनुवाद— प्रारब्धवशात् जो कुछ मिल जाय उसी से सन्तुष्ट रहने वाला पुरुष सुखी रहता है किन्तु जिसकी इन्द्रियाँ अपने वश में नहीं है वह त्रैलोक्य की सामग्री प्राप्त करके असन्तुष्ट ही रहता है और दुःखी रहता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

असंतुष्टप्राप्तैस्त्रिभिर्लोकैरपि न सुखं वर्तते ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

असन्तुष्ट पुरुष को त्रैलोक्य का राज्य भी मिल जाय तो वह सुख में नहीं रहता है ॥२४॥

पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसन्तोषोऽर्थकामयोः । यदृच्छयोपपन्नेन सन्तोषो मुक्तये स्मृतः ॥२५॥

अन्वयः— पुंसः अर्थकामयोः असन्तोषः सं सृतेर्हेतुः यदृच्छया उपपन्नेन संतोषः मुक्तये स्मृतः ॥२५॥

अनुवाद— धन एवं भोगों से सन्तोष का नहीं होना ही जन्म मृत्यु के चक्र में पड़ने का कारण है और प्रारब्ध वशात् प्राप्त से सन्तुष्ट रहना मुक्ति का कारण कहा गया है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्धते । तत्प्रशाम्यत्यसंतोषादम्भसेवाशुशुक्षणिः ॥२६॥

अन्वयः— यदृच्छालाभ तुष्टस्य विप्रस्य तेजः वर्धते तत् असन्तोषात् अम्भसाआशुशुक्षणिः इव प्रशम्यति ॥२६॥

अनुवाद— प्रारब्ध वशात् प्राप्त वस्तुओं से संतुष्ट रहने वाले ब्राह्मण का तेज बढ़ता है, और असन्तोष के कारण उसका तेज उसी प्रकार शान्त हो जाता है जैसे जल से अग्नि शान्त हो जाती है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

आशुशुक्षणिरग्निः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

आशुशुक्षणि अग्नि को कहते हैं ॥२६॥

तस्मात्त्रीणि पदान्येव वृणे त्वद्वरदर्षभात् । एतावतैव सिद्धोऽहं वित्तं यावत्प्रयोजनम् ॥२७॥

अन्वयः— तस्मात् त्वद्वरदर्षभात् अहं त्रीण्येव पदानि वृणे एतावतै व अहंसिद्धः यावत् प्रयोजनम् वित्तम् ॥२७॥

अनुवाद— अतएव आप जैसे दानियों में श्रेष्ठ से भी मैं तीन पग ही भूमि माँगता हूँ । इतने से ही मेरा काम हो जायेगा उतने ही धन का संग्रह करना चाहिए जितने की आवश्यकता हो ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

सिद्धोऽहं कृतार्थः एतावतैव सर्वस्वापहारसिद्धेरिति गूढोऽभिप्रायः । तदेवाह–वित्तं हि यावत्प्रयोजनमेव सुखम् । अधिकस्य क्लेशावहत्वादित्यर्थः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

सिद्धः अर्थात् मैं कृतार्थ हो जाऊँगा इतने ही मात्र से मैं तुम्हारा सर्वस्वापहार कर लूँगा यह भगवान् का गूढ अभिप्राय है । आवश्यकताभर ही धन से सुख होता है । अधिक धन तो दुःख ही देता है ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तः स हसन्नाह वाञ्छातः प्रतिगृह्यताम् । वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥२८॥

अन्वयः— इत्युक्तः स हसन् आह वाञ्छातः प्रतिगृह्यताम् । वामनाय महीं दातुं जलभाजनम् जग्राह ॥२८॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् वामन के इस तरह कहने पर राजा बलि हँस पड़े और कहे जितनी इच्छा हो उतना ही ले लो। इसके पश्चात् राजा बलि वामन भगवान् को पृथिवी देने के लिए सङ्कल्प करने के लिए जल पात्र उठाये॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यन्तमुशना असुरेश्वरम् । जानंश्चिकीर्षितं विष्णोः शिष्यं प्राह विदांवरः ॥२९॥

अन्वयः— विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यन्तम् असुरेश्वरम् विदांवरः उशना विष्णोः चिकीर्षितम् जानन् शिष्यं प्राह ॥२९॥

अनुवाद— ज्ञानियों में श्रेष्ठ शुक्राचार्य जानते थे कि वामन भगवान् क्या करना चाहते हैं, अतएव वामन भगवान् को पृथिवी देने के लिए उद्यत राजा बलि को शुक्राचार्य ने कहा ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

शुक्र उवाच

एष वैरोचने साक्षाद्भगवान्विष्णुरव्ययः । कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः ॥३०॥

अन्वयः— वैरोचने, एषः साक्षात् अव्ययः भगवान् विष्णुः देवानां कार्यसाधकः कश्यपाद् अदितेः जातः ॥३०॥

शुक्राचार्य ने कहा

अनुवाद— विरोचनकुमार बलि ये साक्षात् निर्विकार भगवान् विष्णु है, देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए अदिति के गर्भ से महर्षि कश्यप के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुए हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है। ॥३०॥

प्रतिश्रुतं त्वयैतस्मै यदनर्थमजानता । न साधु मन्ये दैत्यानां महानुपगतोऽनयः ॥३१॥

अन्वयः— अनर्थम् अजानता त्वया एतस्मै यत् प्रतिश्रुतम् साधु न मन्ये, दैत्यानां महान् अनयः उपागतः ॥३१॥

अनुवाद— इससे होने वाले अनर्थ को नहीं जानने वाले तुमने जो प्रतिज्ञा की है, उसे मैं अच्छा नहीं मानता हूँ, यह दैत्यों पर बहुत बड़ा अन्याय होने जा रहा है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

अनयोऽन्यायः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

अनय अर्थात् अन्याय ॥३१॥

एष ते स्थानमैश्वर्यं श्रियं तेजो यशः श्रुतम् । दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणवको हरिः ॥३२॥

अन्वयः— एषः मायामाणवकः हरि ते स्थानम् ऐश्वर्यं श्रियं तेजः यशः श्रुतम् आच्छिद्यशक्राय दास्यन् वर्तत इति शेषः ॥३२॥

अनुवाद— ये अपनी योगमाया से ब्रह्मचारी बने हुए श्रीहरि है । ये तुम्हारे स्थान, ऐश्वर्य, श्री, तेज, यश और सबकुछ तुमसे छिनकर इन्द्र को दे देना चाहते हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अन्यायमेवाह-एष इति ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

एष ते० इत्यादि श्लोक से होने वाले अन्याय को ही बतलाते हैं ।।३२।।

त्रिविक्रमैरिमाँल्लोकान्विश्वकायः क्रमिष्यति । सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढ वर्तिष्यसे कथम् ।।३३।।

अन्वयः— विश्वकायः त्रिभिःक्रामैः इमान् लोकान् क्रमिष्यति । मूढ । सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा कथम् वर्तिष्यसे ।।३३।।

अनुवाद— ये विश्वकाय हैं, तीन पग में तो ये इन सभी लोकों को नाप लेंगे । मूर्ख सब कुछ विष्णु को देकर तुम कैसे रहोगे ?।।३३।।

भावार्थ दीपिका

ननु मया पदत्रयमेव प्रतिश्रुतं नाधिकं तत्राह-त्रिभिरिति । क्रमतामिति चेत्तत्राह-सर्वस्वमिति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहों कि मैं तीन पग ही देने की प्रतिज्ञा की है, इससे अधिक नहीं इस पर शुक्राचार्य **त्रिभिः इत्यादि** श्लोक कहते हैं । यदि कहो कि नाप लें तो इस पर शुक्राचार्य ने कहा सब कुछ विष्णु को देकर तुम जीवन निर्वाह कैसे करोंगे ?।।३३।।

क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभोः । खं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतो गतिः ।।३४।।

अन्वयः— हें विभो ! एकेन पदा गां क्रमतः द्वितीयेन दिवं खंच महता कायेन तार्तीयस्य कुतो गतिः ।।३४।।

अनुवाद— राजन् ! एक पैरसे तो ये सारी पृथिवी को नाप लेंगे दूसरे पग से स्वर्ग को तथा आकाश को अपने विशाल शरीर से भर देंगे तीसरे पग के लिए कहाँ से लाओंगे ?।।३४।।

भावार्थ दीपिका

तथापि प्रतिश्रुतं संपादनीयमेवेति चेत्तत्राह क्रमत इति द्वाभ्याम् । एकेन पदा पादन्यासेन भूमिं क्रममाणस्येत्यर्थः । तार्तीयस्य तृतीयपादन्यासस्य ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

फिर भी प्रतिज्ञात अर्थ का पालन करना चाहिए ही इस पर शुक्राचार्य **क्रमतः इत्यादि** दो श्लोकों से कहते हैं । ये एक पग में सारी पृथिवी को नाप लेंगे तीसरे पग के लिए कहाँ से लाओगे ।।३४।।

निष्ठां ते नरके मन्ये ह्यप्रदातुः प्रतिश्रुतम् । प्रतिश्रुतस्य योऽनीशः प्रतिपादयितुं भवान् ।।३५।।

अन्वयः— प्रतिश्रुतस्य यः भवान् प्रतिपादयितुम् अनीशः प्रतिश्रुतम् अप्रदातुः हि ते नरके निष्ठां मन्ये ।।३५।।

अनुवाद— प्रतिज्ञात अर्थ को पूरा करने में असमर्थ हैं यह मैं मानता हूँ । अतएव प्रतिज्ञात अर्थ को पूरा नहीं करने से आपको नरक में जाना होगा ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते । दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः ।।३६।।

अन्वयः— येन वृत्तिर्विपद्यते तद् दानं न प्रशंसन्ति यतः दानं, यज्ञः तप कर्म लोके वृत्तिमत्तः ।।३६।।

अनुवाद— जिससे जीवन निर्वाह के लिए कुछ बचे हीं नहीं विज्ञ पुरुष उस दान की प्रशंसा नहीं करते हैं । जिसका जीवन निर्वाह ठीक-ठीक चलता है, वही दान, यज्ञ, तपस्या तथा उपकारक कर्म करता है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

तथापि सर्वस्वदानात्कीर्तिस्तावद्भविष्यतीति चेत्तत्राह-न तद्दानमिति । तपश्चित्तैकाग्र्यम् । कर्मपूर्तम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि सर्वस्व देने से यश तो फैलेगा ही, इस पर शुक्राचार्य **न तद् दानम्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । कर्म शब्द से पूर्व कर्म को कहा गया है ।।३६।।

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च । पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते ।।३७।।

अन्वयः— धर्माय, यश से, अर्थाय कामाय, स्वजनस्य च पञ्चधावित्तम् विभजन् इहामुत्र च मोदते ।।३७।।

अनुवाद— जो मनुष्य धर्म, यश, धनाभिवृद्धि, भोगों को भोगना तथा अपने स्वजनों के लिए इसतरह से पाँच भागों में अपने धन का विभाग करता है, वही इस लोक और परलोक में सुखी रहता है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३७।।

अत्रापि बह्वृचैर्गीतं शृणु मेऽसुरसत्तम । सत्यमोमिति यत्प्रोक्तं यन्नेत्याहानृतं हि तत् ।।३८।।

अन्वयः— हे असुरसत्तम अत्रापि वह्वृचैर्गीतम् शृणु ओम् इति यत् प्रोक्तं सत्यम् यत् न इत्याह तत् हि अनृतम् ।।३८।।

अनुवाद— हे असुर शिरोमणे तुमको अपनी प्रतिज्ञा टूट जाने का डर है, इस विषय में मैं ऋग्वेद की कुछ श्रुतियों का अभिप्राय सुनाता हूँ । किसी को कुछ देने की बात को स्वीकार कर लेना सत्य है और नकार जाना असत्य है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि प्रतिश्रुत्य नेति कथमनृतं वाच्यं तत्राह-अत्रापीति सार्धैः षड्भिः । अत्रापि सत्यानृतव्यवस्थायाम् । बह्वृचश्रुत्या हि प्रथमम्- 'ओमिति सत्यं नेत्यनृतम्' इत्यादिना सत्यानृतयोर्लक्षणपूर्वकं स्तुतिनिन्दाभ्यां सत्यं विहितमनृतं च निषिद्धम् । अनन्तरं च 'पराग्वा एतद्रिक्तमक्षरम्' इत्यादिना सत्ये दोषाननृते च गुणानुक्त्वा- तस्मात्काल एव दद्यात्काले न दद्यात्तत्सत्यानृते मिथुनीकरोति' इत्युपसंहारेण वृत्तिसंकटादिष्वनृतमप्यनुज्ञातम्, तमिमं श्रुत्यर्थं दर्शयन्नाह-ओमित्यङ्गीकारेण यत्प्रोक्तं तत्सत्यम्। नेति यदाह तदेवानृतम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि देने की प्रतिज्ञा करके नहीं यह असत्य कैसे कहा जा सकता है ? इसके उत्तर में शुक्राचार्य साढे छह श्लोकों में उत्तर देते हैं । सत्य एवं मिथ्या के विषय में ऋग्वेद श्रुति कहती है हाँ कहना सत्य है और न कहना असत्य है । इत्यादि से सत्य और मिथ्या का लक्षण करके उन दोनों की प्रशंसा तथा निन्दा के द्वारा सत्य को और असत्य को निषिद्ध कहा गया है । उसके पश्चात् **'पराग्वा एतद्रिक्तमक्षरम्' इत्यादि** श्रुति के द्वारा सत्य में होने वाले दोष तथा मिथ्या में होने वाले गुणों को बतलाकर श्रुति कहती हे कि— **''तस्मात् काल एव दद्यात् काले न दद्यात तत् सत्यानृते मिथुनी करोति ।''** इस उपसंहार वाक्य से प्राण सङ्कट इत्यादि कालों में भी मिथ्या भाषण को भी शास्त्र ने अनुमति प्रदान किए है । इसी श्रुति के अभिप्राय को उपन्यस्त करते हुए शुक्राचार्य ने कहा है कि **ओम्** कहकर स्वीकार करना सत्य है और न करना असत्य हैं ।।३८।।

सत्यं पुष्पफलं विद्यादात्मवृक्षस्य गीयते । वृक्षेऽजीवति तन्न स्यादनृतं मूलमात्मनः ।।३९।।

अन्वयः— आत्मवृक्षस्य सत्यं पुष्पफलं विद्यात् गीयते । वृक्षे अजीवतितन्न स्यात् अनृतं आत्मनः मूलम् ।।३९।।

अनुवाद— शरीर रूप वृक्ष का सत्य को मूल जानना चाहिए यह श्रुति ही कहती है । जब वृक्ष ही नहीं रहेगा तो पुष्प और फल कैसे होंगे ? अतएव मिथ्या से भी शरीर की रक्षा करनी चाहिए ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

तत्तु सत्यमीषदनृतं विना न सिध्यतीत्याशयेनाह-सत्यं पुष्पफलं विद्याज्जानीयात् । आत्मवृक्षस्य देहरूपस्य वृक्षस्य । कुतः । गीयते श्रुत्योच्यते इत्यर्थ; । पाठान्तरं तु सुगमम् । यद्यपि श्रुत्या वाचः सत्यं पुष्पफलं चेत्युक्तं तथापि वाचो देहनिर्वाहाधीनत्वादात्मवृक्षस्येति प्रस्तुतानुसारेणोक्तम् । भवतु पुष्पफलस्थानीयं सत्यं, ततः किमत आह-वृक्षे देहे अजीवति तत् पुष्पफलं न स्यात् 'सा न स्यात्' इति पाठे श्रुत्युक्ताया वाचः परामर्शः । देहश्चानृतेन रक्षणीय इत्याह-अनृतं त्वात्मनो देहस्य मूलम् ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

सत्य की सिद्धि थोड़ी मिथ्या के बिना नहीं होती है । इसी अभिप्राय से सत्यं पुष्पफलम् इत्यादि कहते है। सत्य को शरीर रूप वृक्ष का फल एवं पुष्प समझना चाहिए क्योंकि ऐसा श्रुति ही कहती है । **आत्मवृक्षस्य जीवतः** पाठ होने पर यह अर्थ सुगम होगा । यद्यपि श्रुति वाणी के सत्य को पुष्प और फल कहा है फिर भी वाणी का निर्वाह बिना शरीर के नहीं हो सकता है । प्रस्तुत के अनुसार शुक्राचार्य ने कहा कि शरीर रूपी वृक्ष का पुष्प फल है । सत्य पुष्प और फल के स्थानी हो किन्तु जब देह रूप वृक्ष रहेगा ही नहीं तो पुष्प फल कैसे होंगे सा न स्यात् पाठ होने पर सा पद से वाणी का परामर्श किया गया है । देह की रक्षा तो मिथ्या से भी करनी चाहिए। इसी को मिथ्या शरीर की रक्षा का साधन है ।।३९।।

तद्यथा वृक्ष उन्मूलः शुष्यत्युद्वर्ततेऽचिरात् । एवं नष्टानृतः सद्य आत्मा शुष्येन्न संशयः ।।४०।।

अन्वयः— यद् यथा उन्मूलः वृक्षः शुष्यत् अचिरात् उद्वर्तते, एवं नष्टानृतः सद्यः आत्मा शुष्येत न संशय ।।४०।।

अनुवाद— जैसे जड़ के नहीं रहने पर वृक्ष शीध्र ही सूख कर गिर जाता है उसी तरह यदि धन देने से इनकार नहीं किया जाये तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह जीवन सूख जाता है ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

एतदेव दृष्टान्तेन स्पष्टयति तद्यथा वृक्ष उत्पाटितमूलः शुष्यत्यचिरादेवोद्वर्तते पतति च, एवं नष्टमनृतं यस्य स आत्मा देहः शुष्येत् । यद्यपि च श्रुत्या- 'एवमेवानृतं वदन्नात्मानमाविर्मूलं करोति' इत्येवं निन्दयाऽनृतं निषिद्धं तथाप्युपसंहारानुसारेण तत्केवलानृतविषयमित्यभिप्रेत्यैवं व्याख्यातम् । 'दयेत त्वेतेन' इति च तयैवोक्तेः । तथा च श्रुतिः- 'ओमिति सत्यं नेत्यनृतं तदेतत्पेष्पं फलं वाचो यत्सत्यं स हेश्वरो यशस्वी कल्याणकीर्तिर्भविता पुष्पं हि फलं वाचः सत्यं वदत्यथैतन्मूलं वाचो यदनृतं तद्यथा वृक्ष आविर्मूलः शुष्यति स उद्वर्तत एव्मेवानृतं वदन्नाविर्मूलमात्मानं करोति स शुष्यति स उद्वर्तते तस्मादनृतं न वदेद्दयेत त्वेतेन' इति । एतेनानेन त्वनृतेन दयेत सङ्कटेष्वात्मानं रक्षेदिति श्रुत्यर्थः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

इसी अर्थ का दृष्टान्त के द्वारा स्पष्टीकरण करते है । जिस वृक्ष की जड़ उखड़ गयी है वह शीघ्र ही सूखकर गिर जाता है, उसी तरह जिस शरीर का मिथ्या नष्ट हो गया है वह शरीर सूख जाता है । श्रुति भी कहती है **एवमेवानृतं वदन्नत्मानमाविर्मूलंकरोति ।'** अर्थात् इसी तरह मिथ्या भाषण करके मनुष्य पुनः शरीर धारण करने का कारण बना देता है । इस तरह निन्दा के द्वारा मिथ्या भाषण को निषिद्ध किया गया है । फिर भी उपसंहार के अनुसार ही वह केवल मिथ्या विषयक ही इसी अभिप्राय से इस तरह व्याख्या की गयी है । **दयेत त्वेतेन** इस तरह से श्रुति ने ही कहा है । श्रुति कहती है— **ओमिति सत्यम्** ओम यह सत्य है और न ही मिथ्या है । सत्य वाणी का सत्य पुष्प और फल है । जो सत्य है वही ईश्वर यशस्वी कल्याण एवं कीर्ति होगा । वाणी का सत्य पुण्य और फल है । इस सत्य का मूल मिथ्या है । वही वृक्ष के आविर्भाव का कारण है । मिथ्या भाषण करने वाला सूख जाता है, गिर पड़ता है । अतएव मिथ्या भाषण नहीं करना चाहिए । इससे दया करे । अर्थात् इस मिथ्या भाषण से सङ्कटापन्न अवस्था में शरीर की रक्षा करे । यही श्रुति का अर्थ है ।।४०।।

पराग्रिक्तमपूर्णं वा अक्षरं यत्तदोमिति । यत्किंचिदोमिति ब्रूयात्तेन रिच्येत वै पुमान् ॥
भिक्षवे सर्वमोंकुर्वन्नालं कामेन चात्मने ॥४१॥

अन्वयः— यत् अक्षरं ओमिति तत् पराक् रिक्तम् अपूर्णं वा यत् किञ्चित् ओम् इति ब्रूयात् तेन वै पुमान् रिच्येत् भिक्षवे सर्वम् ओम् कुर्वन नालं कामेन च आत्मने ॥४१॥

अनुवाद— **हाँ मैं दूँगा** यह वाक्य ही धन को दूर हटा देता है । अतएव इसका उच्चारण धन से रहित बना देने वाला है । यही कारण है कि जो पुरुष **हाँ मैं दूँगा** ऐसा कहता है वह धन से रहित हो जाता है । जो याचक को सबकुछ देना स्वीकार कर देता है वह अपने लिए कोई भी भोग की सामग्री नहीं रख सकता है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

सर्वथा सत्सेवनेन देहो न निर्वहेदिति स्फुटीकर्तुं सत्यस्य दोषाननृतस्य गुणानाह-परागिति द्वाभ्याम् । यदोमित्यक्षरं तत्पराक् दूरेऽर्थं गृहीत्वाऽञ्चतीति पराक् रिक्तमिति श्रुतिपदस्य व्याख्यानमपूर्णं वै इति । तत्तस्मादर्थिने यंत्किचिदोमिति दास्यामीति ब्रूयात्तेन रिच्येत न्यूनो भवेत् । किंच भिक्षवे सर्वमोंकुर्वन्दास्यामीत्यङ्गीकुर्वन्नात्मने कामेन नालं पर्याप्तो न भवति । तस्य भोगो न सिध्यतीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः- 'पराग्वा एतद्रिक्तमक्षरं यदेतदोमिति तद्यत्किंचोमित्याहात्रैवास्मै तद्रिच्यते स यत्स सर्वमोंकुर्यात् रिच्यादात्मानं स कामेभ्यो नालं स्यात्' इति ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

पूर्ण रूप से सत्य बोलने से तो देह का भी निर्वाह नहीं हो सकता है । इस बात को स्पष्ट करने के लिए सत्य के दोषों और अनृत के गुणों को **पराक् इत्यादि** दो श्लोकों से शुक्राचार्य कहते हैं । जो ओम् यह अक्षर है वह धन को दूर कर देता है । रिक्तम् इस श्रुति के पद का अर्थ अपूर्ण है । अतएव याचक को जो कुछ भी कोई देने की बात कहता है, वह उस धन से खाली हो जाता है । अतएव भिक्षुक को सबकुछ देने की जो बात कहता है, वह अपने भोग के लिए कुछ भी नहीं रख सकता है । उसके भोग की सिद्धि नहीं होती है । इसलिए **पराग्वा एतद्रिक्तमक्षरम् इत्यादि** श्रुति कहती है जो ओम् इस अक्षर का उच्चारण है उसे धन से दूर कर देता है । अतएव जो कुछ देने की बात स्वीकार करता है वह उससे रिक्त हो जाता है । जो सब कुछ देने की बात कहता है वह अपने भोगों के लिए भी कुछ नहीं रख सकता है ॥४१॥

अथैतत्पूर्णमभ्यात्मं यच्च नेत्यनृतं वचः । सर्वं नेत्यनृतं ब्रूयात्स दुष्कीर्तिः श्वसन्मृतः ॥४२॥

अन्वयः— यच्च न इत्यनृतं वचः अथैतत् पूर्णम् अभ्यात्मं, सर्वं न इति अनृतं ब्रूयात् स दुष्कीर्तिः श्वसन् मृतः ॥४२॥

अनुवाद— मैं नहीं दूँगा यह जो अस्वीकारात्मक असत्य वह अपने धन को सुरक्षित रखने तथा पूर्ण करने वाला है जो सबसे सभी वस्तुओं के लिए नहीं कहता उसकी अपकीर्ति हो जाती है वह जीवित रहने पर भी मरे के समान है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

नेति यदनृतं वच एतत्पूर्णमर्थव्ययाभावात् । अभ्यात्मं चेति चकारान्वयः । आत्मनोऽभिमुखमन्यस्यार्थमाकर्षतीत्यभ्यात्मम् । यो हि नित्यं मम किंचिदपि नास्ति सीदामीति ब्रूते स हि तेनानृतेन परेषामर्थानाकर्षतीति प्रसिद्धम् ननु तर्हीदमनृतमेव सर्वदा सेव्यं स्यान्नेत्याहसर्वमिति । तथा च श्रुतिः- 'अथैतत्पूर्णमभ्यात्मं यन्नेति स यत्सर्वं नेति ब्रूयात्पापिकस्य कीर्तिर्जायेत सैनं तत्रैव हन्यात्' इति ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

नहीं यह जो अस्वीकारात्मक असत्य वाणी है वह अर्थ व्यय के अभाव के कारण पूर्ण है । अभ्यात्मं च

इस तरह से चकार का अन्वय है । जो अपने लिए सबों के धन को लेता है, वह **अभ्यात्म** है । जो सैदव यही कहता है कि मेरेपास कुछ भी नहीं है, कष्ट में हूँ यह कहता है, वह सबों के धन को अपने ओर करता है। वही अभ्यात्म है । तो प्रश्न होता कि तब तो सदा असत्य का ही सेवन करना चाहिए । इस पर शुक्राचार्य कहते हैं जो सभी वस्तुओं के लिए नहीं कहता है वह उसकी अपकीर्ति हो जाता है । वह जीवित रहकर भी मरा हुआ है । श्रुति भी कहती है । **अथैतत् पूर्णम् अभ्यात्मं यन्नेति सयत्सर्वं नेति ब्रूयात् पापिवस्य कीर्तिजायेत सैनं तत्रैव हन्यात्** अर्थात् अस्वीकारात्मक न वचन पूर्ण अभ्यात्म है, जो सबों से मैं नहीं दूँगा यही कहता है उसकी कीर्ति पापिनी हो जाती है, वह उसको वहीं पर मार देती है ।।४२।।

स्त्रीषु नर्म विवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसङ्कटे । गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ।।४३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे वामनप्रादुर्भावे एकोनविंशोऽध्याय: ।।१९।।

अन्वयः— स्त्रीषु नर्म विवाहे वृत्यर्थे, प्राण सङ्कटे गोब्राह्मणार्थे हिंसायां अनृतं जुगुप्सितं न स्यात् ।।४३।।

अनुवाद— स्त्रियों को प्रसन्न करने के लिए हास परिहास में, विवाह में, जीविका के लिए प्राण सङ्कटापन्न होने पर अपनी कन्या आदि की प्रशंसा करते समय, गौ और ब्राह्मण के कल्याण के लिए किसी को मृत्यु से बचाने के लिए असत्य भाषण निन्दित नहीं है ।।४३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के वामन प्रादुर्भाव के प्रसङ्ग में उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

अतो वृत्तिसंकटादिष्वनृतं न दोषायेत्युपसंहरति-स्त्रीषु प्रोत्साहनेन वशीकरणे, नर्मणि परिहासे, विवाहे च वरादिस्तुतौ, गवां ब्राह्मणानां च हितार्थम्, हिंसायां च कस्य चित्प्राप्तायाम् । तथा च याज्ञवल्क्यः- 'वर्णिनां हि वधो यत्र तत्र साक्ष्येऽनृतं वदेत्' इति । तथा च श्रुतिः- 'तस्मात्काल एव दद्यात्काले न दद्यात्तत्सत्यानृते मिथुनीकरोति' इति ।।४३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

अतएव जीविका का सङ्कट होने पर मिथ्या भाषण दोष वह नहीं होता है इस तरह से उपसंहार करते हैं स्त्रियों को प्रोत्साहित कर अपने वश में करने में, परिहास करने में, विवाह के अवसर पर ब्राह्मण आदि की प्रशंसा करते समय, गौ और ब्राह्मणों का कल्याण करने के लिए किसी की जान बचाने के लिए इन स्थानों में असत्य भाषण दोष वह नहीं होता है । महर्षि यज्ञवल्क्य भी कहते है वर्णिना हि वधो यत्र तत्र साक्ष्येऽनृतं वदेत् । जहाँपर ब्रह्मचारियों का वध हो वहाँ पर उसे बचाने के लिए झूठी भी गवाही कर दे । श्रुति भी कहती है **तस्मात् काल एव दद्यात् काले न दद्यात् सत्यानृते मिथुनी करोति । इति** । अर्थात् समय देखकर ही दान करे ओर जहाँ अपना सर्वस्वचला जाय वहाँ सत्य एवं असत्य दोनों न मिलाकर न दे ।।४३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के उन्नीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१९।।

बीसवाँ अध्याय

भगवान् वामन का विराट रूप धारण कर दो ही पग में पृथिवी और स्वर्ग को नाप लेना

श्रीशुक उवाच

बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः । तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम् ॥१॥

अन्वयः— राजन् ! कुलाचार्येण एवं भाषितः गृहपतिः बलिः क्षणं तुष्णीं भूत्वा अवहितः गुरुम् उवाच ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! इस प्रकार से कुलगुरु शुक्राचार्य द्वारा कहे जाने पर गृहपति बलि क्षणभर के लिए मौन हो गये और वे सावधान होकर गुरु शुक्राचार्य से कहे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

विंशे त्वनृतभीतोऽसौ ज्ञात्वापि कपटं हरेः । ददावेव ततो विष्णुः सहसाऽवर्धताद्भुतम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बीसवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि श्रीहरि के कपट को जानकर भी असत्य भाषण के भय से भयभीत बलि ने श्रीहरि को दान दे ही दिया उस समय भगवान् विष्णु अद्भुत प्रकार से बढ़े ॥१॥

बलिरुवाच

सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् । अर्थं कामं यशो वृत्तिं यो न बाधेत कर्हिचित् ॥२॥

अन्वयः— भगवता सत्यं प्रोक्तं यत् गृहमेधिनाम् अयं धर्मः अर्थं कामं, यश; वृत्तिं कर्हिचित् न बाधेत् ॥२॥

राजा बलि ने कहा

अनुवाद— आपने सत्य कहा है कि गृहस्थों का यही धर्म है कि जिससे अर्थ, काम, यश और जीविका में किसी प्रकार की बाधा न हो ॥२॥

भावार्थ दीपिका

भगवता त्वया प्रोक्तं सत्यम् । किं तत् । योऽर्थकामादिकं न बाधेत स हि गृहमेधिनां धर्म इति ॥२॥

भाव प्रकाशिका

आपने यह सत्य कहा है कि वह ऐसे धर्म का पालन करे कि उससे अर्थ, काम, यश और जीविका बाधित न हो । यही गृहस्थों का उचित धर्म है ॥२॥

स चाहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजम् । प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्लादिः कितवो यथा ॥३॥

अन्वयः— स च प्राह्लादि अहम् कितवो यथा ददामीति द्विजम् प्रतिश्रुत्य वित्तलोभेन कथं प्रत्याचक्षे ॥३॥

अनुवाद— गुरुदेव ! मैं प्रह्लादजी का पौत्र हूँ । मैं ठग के समान, ब्राह्मण को दूँगा । इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके धन के लोभ के कारण कैसे देने से इनकार करूँ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

कथं प्रत्याचक्षे निराकरोमि ॥३॥

भाव प्रकाशिका

कैसे देने से इनकार करूँ ॥३॥

न ह्यसत्यात्परोऽधर्म इति होवाच भूरियम् । सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम् ।।४।।

अन्वयः— असत्यात् परः अधर्म न इति इयं भूः उवाच ह सर्वं सोढुम् अलं मन्ये ऋते अलीक परं नरम् ।।४।।

अनुवाद— असत्य से बढ़कर कोई अधर्म नहीं यह पृथिवी देवी ने कहा है । मैं सबकुछ सह सकती हूँ किन्तु मृषाभाषी मनुष्य के भार को नहीं सह सकती हूँ ।।४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४।।

नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात् । न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रलम्भनात् ।।५।।

अन्वयः— अहं न निरयात् नाधन्यात, असुखार्णवात् स्थानच्यवनात् न मृत्योः विभेमि यथा विप्रप्रलम्भनात् ।।५।।

अनुवाद— मैं नरक में दरिद्रता से, दुःख के सागर से, राज्य के नाश से तथा मृत्यु से उतना नहीं डरता हूँ जितना किसी ब्राह्मण को धोखा देने से डरता हूँ ।।५।।

भावार्थ दीपिका

नन्वप्रत्याख्याने दोषा उक्तास्तत्राह-नाहमिति । अधन्याद्दारिद्यान्मृत्योरपि ।।५।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि प्रत्याख्यान नहीं करने से होने वाले दोषों को मैं कह चुका हूँ, इस पर राजा बलि ने नाहम् इत्यादि श्लोक कहा अधन्यात् अर्थात् दरिद्रता से और मृत्यु से भी ।।५।।

यद्यद्धास्यति लोकेऽस्मिन्संपरेतं धनादिकम् । तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रस्तुष्येन्न तेन चेत् ।।६।।

अन्वयः— अस्मिन् लोके सम्परेतं यद् यद् धनादिकम् हास्यति तेन चेत् विप्रः न तुष्येत् तस्य त्यागे किं निमित्तम्।।६।।

अनुवाद— मनुष्य मरने के पश्चात् इस लोक में ही जिन धन आदि को छोड़ देता है, उन धनादिकों से यदि ब्राह्मण को नहीं सन्तुष्ट किया जा सका तो उस त्याग से कौनसा लाभ हुआ ?।।६।।

भावार्थ दीपिका

यद्यद्धनादिकं तत्सर्वं संपरेतं मृतं पुरुषं हास्यति त्यक्ष्यत्येव । तत्किमिति जीवतैव स्वयं न देयमिति भाव; । तथापि तावद्वृत्तिसङ्कटपरिहारार्थमर्धं दीयतामिति चेत्तत्राह- तस्येति । विप्रश्चेत्तेनार्थेन दत्तेनापि न तुष्येत्तर्हि तस्यार्थस्य त्यागे दाने किं निमित्तम्, न किंचित्। याचितादल्पस्य दाने विप्रस्यासंतोषेण दानं व्यर्थमेव स्यात्, अतस्तद्याचितं सर्वं देयं न किंचिदिति भावः।।६।।

भाव प्रकाशिका

जितने भी धन आदि हैं, वे सभी मरे पुरुष को त्यागेंगे ही, तो फिर उसको जीतेजी ही क्यों न दे दिया जाय, यदि कहें कि जीविका के सङ्कट को दूर करने के लिए ही उसे देना चाहिए । इस पर बलि कहते है **तस्य० इत्यादि** अर्थात् उसे देने से यदि ब्राह्मण की सन्तुष्टि नहीं हुई तो फिर उस देने से कौन सा लाभ है ? कोई नहीं। याचना किए गये से कम देने से ब्राह्मण का असन्तोष होने से वह दान व्यर्थ ही होगा अतएव ब्राह्मण के द्वारा याचित पूरा ही देना चाहिए ।।६।।

श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः । दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पोधरादिषु ।।७।।

अन्वयः— दध्यङ्शिवि प्रभृतयः साधवः दुस्त्यजासुभिः भूतानां श्रेयः कुर्वन्ति धरादिषु को विकल्पः ।।७।।

अनुवाद— दधीचि तथा शिवि इत्यादि साधु पुरुष ने जिसका त्याग करना बड़ा ही कठिन है । उन प्राणों आदि का दान करके जीवों का उपकार किया है तो फिर पृथिवी आदि के विषय में क्या सोचना है ?।।७।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि न देयमेवेति चेत्तत्राह-श्रेय इति । दुस्त्यजैरसुभिरपि । को विकल्पो विचारः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि तो फिर दान नहीं करना चाहिए । इस पर बलि ने **श्रेयः इत्यादि** श्लोक कहा अर्थात् साधु पुरुष तो अपने प्राणों का भी दान करके प्राणियों का कल्याण करते हैं तो फिर पृथिवी इत्यादि का दान करने में क्या विचार करना है ?॥७॥

यैरियं बुभुजे ब्रह्मन्दैत्येन्द्रैरनिवर्तिभिः । तेषां कालोऽग्रसील्लोकान्न यशोऽधिगतं भुवि ॥८॥

अन्वयः— ब्रह्मन् ! यैः अनिवर्तिभिः दैत्येन्द्रैः इयं बुभुजे तेषां लोकान् कालः अग्रसीत् भुवि अधिगतं यशः न ॥८॥

अनुवाद— गुरुदेव ! जिन युद्ध से कभी भी मुँह नहीं मोड़ने वाले बड़े-बड़े दैत्यों ने प्राचीन काल में इस पृथिवी का भोग किया उनके भोगों तथा लोक और परलोक को काल निगल गया किन्तु पृथिवी पर उन लोगों ने जो यश प्राप्त किया उसको वह नहीं निगल सका अतएव यश का ही अर्जन करना चाहिए ॥८॥

भावार्थ दीपिका

यैर्दैत्येन्द्रैर्युद्धेऽनिवर्तिभिरियं भूर्बुभुजे उपभुक्ता । तेषामिह लोकान्परलोकांश्च भोगानिति वा । कालोऽग्रसीत्संहृतवान्न तु भुवि तैरधिगतं प्राप्तं यशोऽग्रसीत् । अतः कीर्तिरेव साध्या नान्यदिति भावः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

युद्ध से कभी भी पराङ्मुख नहीं होने वाले जिन दैत्येन्द्रों ने इस पृथिवी का भोग किया उनके भी भोगों तथा लोक परलोक को काल ने निगल लिया किन्तु उनके यश को काल नहीं खा सका अतएव यश ही कमना चाहिए और कुछ नहीं ॥८॥

सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनिवृत्तास्तनुत्यजः । न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥९॥

अन्वयः— विप्रर्षे युधि अनिवृत्ताः तनुत्यजः सुलभा तथा तीर्थे आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ते सुलभा न ॥९॥

अनुवाद— आचार्य ! युद्ध में पीठ न दिखाकर अपने शरीर का त्याग करने वाले पुरुषों का मिलना आसान है किन्तु सत्पात्र के आने पर श्रद्धा पूर्वक अपने धन का त्याग करने वाले महापुरुष दुर्लभ हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

देहत्यागादपि धनत्यागे कीर्तिर्भवतीत्याह-सुलभा इति । तनुं त्यजन्तीति तनुत्यजः । तीर्थे पात्रे । अतोऽतिदुष्करो धनत्याग एव मया कार्य इति भावः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

शरीर त्याग की अपेक्षा धन त्याग से अधिक यश होता है इस बात को सुलभा इत्यादि श्लोक से बलि कहते हैं । शरीर त्याग करने वालों को तनुत्यज कहते हैं । सत्पात्र को धन देना अत्यन्त कठिन है । अतएव मुझको धन त्याग ही करना चाहिए ॥९॥

मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं यदर्थिकामोपनयेन दुर्गतिः ।
कुतः पुनर्ब्रह्मविदां भवादृशां ततो बटोरस्य ददामि वाञ्छितम् ॥१०॥

अन्वयः— मनस्विनः कारुणिकस्य यदर्थिकामोपनयेन दुर्गतिः शोभनं कुतः पुनः ब्रह्मविदां भवादृशां ततः अस्य बटोः वाञ्छितम् ददामि ॥१०॥

अनुवाद— यदि उदार और कारुणाशील पुरुष अपात्र याचक की कामना पूर्ण करके दुर्गति भोगता है, तो उसके लिए वह शोभा की बात है। फिर आप जैसे ब्रह्मवेत्ता को दान करने से दुःख प्राप्त होता है तो उसके लिए क्या कहना है ? अतएव मैं इस ब्रह्मचारी को वाञ्छित भूमि प्रदान करता हूँ ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि निर्धनत्वेन दैन्यं स्यादिति चेत्तत्राह-मनस्विन इति । यादृशतादृशानामप्यर्थिनां कामोपनयेन कामपूरणेन दुर्गतिर्दैन्यमिति यत् तच्छोभनं भद्रमेव । भवादृशानां तु कामोपनयेन दुर्गतिः शोभनमिति किं पुनर्वक्तव्यमित्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहे कि निर्धन होने के कारण तुम में दीनता आ जायेगी तो इस पर बलि **मनस्विनः इत्यादि** श्लोक कहते हैं। जैसे-तैसे भी याचक की कामना पूर्ण करने से जो दुर्गति होती है वह भी उसके लिए शोभा ही होती है। और आप जैसे लोगों की कामना पूर्ण करने से यदि दुर्गति होती है तो वह भी शोभा ही है यह क्या कहना है ?॥१०॥

यजन्ति यज्ञक्रतुभिर्यमादृता भवन्त आम्नायविधानकोविदाः ।
स एव विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो दास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने ॥११॥

अन्वयः— मुने आम्नायविधानकोविदाः भवन्तः यम् आदृता यज्ञक्रतुभिः यजन्ति स एव वरदो विष्णु वा परः अस्तु अमुस्मै इप्सिताम् क्षितिम् दास्यामि ॥११॥

अनुवाद— हे महर्षि ! वेद विधि के ज्ञाता आपलोग बड़े आदर के साथ जिनकी आराधना यज्ञों और क्रतुओं से करते हैं, वरदान देने वाले वे भगवान् विष्णु ही हों अथवा कोई दूसरे ये हों मैं इनको अभिप्रेत पृथिवी दूँगा॥११॥

भावार्थ दीपिका

ननु नायं वटुः किंतु विष्णुस्तव शत्रुरित्युक्तं, तर्हि सुतरामेव दास्यामीत्याह-यजन्तीति । परः शत्रुर्वास्तु ॥११॥

भाव प्रकाशिका

ये ब्रह्मचारी नहीं तुम्हारे शत्रु विष्णु हैं तब तो मैं इनको अवश्य दूँगा इस बात को राजा बलि ने **यजन्ति० इत्यादि** श्लोक से कहा है। परः अर्थात् शत्रु ॥११॥

यदप्यसावधर्मेण मां बध्नीयादनागसम् । तथाप्येनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनुं रिपुम् ॥१२॥

अन्वयः— यदपि असौ अनागसं माम् अधर्मेण बहनीयात् तथापि एनं ब्रह्मतनुं रिपुं भीतम् न हिंसिष्ये ॥१२॥

अनुवाद— यदि ये निर्दोष मुझको अधर्म पूर्वक बाँध भी दें तो भी मैं इनको नहीं मार सकता हूँ, क्योंकि ब्राह्मण शत्रु से मैं डरता हूँ ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

एष वा उत्तमश्लोको न जिहासति यद्यशः । हत्वा मैनां हरेद्युद्धे शयीत निहतो मया ॥१३॥

अन्वयः— एष वा उत्तम श्लोकः न जिहासति यदयशः मां युद्धे हत्वा एनां हरेत् शयीत निहतो मया ॥१३॥

अनुवाद— यदि ये पवित्र कीर्ति भगवान् विष्णु ही हैं तो अपना यश नहीं खोना चाहेंगे ये युद्ध में मुझको मारकर इस पृथिवी को ले सकते थे, यदि दूसरे हैं तो मेरे द्वारा मारे जाकर युद्ध के मैदान में सो जाते ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

यद्यदि यशो न जिहासति तर्हि युद्धेऽयं मां हत्वैनां भूमिं हरेच्छयीत वा । सम्यग्ज्ञात; सन्मम चित्ते शयीतेति वास्तवोऽर्थः॥१३॥

भाव प्रकाशिका

यदि ये अपना यश नहीं खोना चाहेंगे। तो फिर मुझे युद्ध में मारकर ये पृथिवी को मुझसे ले लेते, यदि ये कोई दूसरे होते तो मेरे द्वारा मारे जाते। वास्तविक अर्थ है कि अच्छी तरह से जाने जाकर ये हृदय कमल में निवास करते ॥१३॥

श्रीशुक उवाच

एवमश्रद्धितं शिष्यमनादेशकरं गुरुः। शशाप दैवप्रहितः सत्यसन्धं मनस्विनम् ॥१४॥

अन्वयः— एवम् अश्रद्धितम् अनादेशकरं शिष्यं सत्यसन्धः दैवप्रहितः गुरुः मनस्विनम् शशाप ॥१४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से श्रद्धा रहित तथा आदेश का पालन नहीं करने वाले मनस्वी शिष्य बलि को दैव की प्रेरणा से सत्यवादी गुरु शुक्राचार्य शाप दे दिए ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अश्रद्धितमजातश्रद्धम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अश्रद्धितम् अर्थात् श्रद्धा रहित ॥१४॥

दृढं पण्डितमान्यज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया। मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद्भ्रश्यसे श्रियः ॥१५॥

अन्वयः— अज्ञः दृढं पण्डितमानी स्तब्धोऽसि, अस्मद् उपेक्षया यः त्वम् मत् शासनातिगः श्रियः अचिरात् भ्रश्यसे॥१५॥

अनुवाद— मूर्ख तुम अज्ञानी हो और हठी हो, और अपने को पण्डित मानते हो, हमारी उपेक्षा करने के कारण तुम मेरे आदेश का अतिक्रमण करके शीघ्र ही अपनी लक्ष्मी को खो दोगें ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यान्न चलितो महान्। वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम् ॥१६॥

अन्वयः— एवं गुरुणा शप्तः स महान् सत्यात् न चलितः, उदकपूर्वकम् एनां अर्चित्वा वामनाय ददौ ॥१६॥

अनुवाद— इस प्रकार से गुरु के द्वारा अभिशप्त होकर भी महान् राजा बलि सत्य का परित्याग नहीं किए वे विधिवत् वामन की पूजा किए और हाथ में जल लेकर तीन पग पृथिवी का सङ्कल्प कर दिए ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥१६॥

विन्ध्यावलिस्तदागत्य पत्नीं जालकमालिनी। आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम् ॥१७॥

अन्वयः— जालकमालिनी पत्नी विन्ध्यावली आगत्य अवनेजन्यम् अपां भृतम् हैमम् कलशम् आनिन्ये ॥१७॥

अनुवाद— मोती के आभूषणों से भूषित बलि की पत्नी तत्र आगत्य वामन भगवान् के पैरों को धोने के लिए जल से भरे सुवर्ण कलश को लायी ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

जालक मुक्ताभरणविशेषस्तन्मालावती। अवनेजनीनामपां कलशम्। भृतं पूर्णम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

मोती के आभूषण विशेष से भूषित पैर धोने के जल से पूर्ण कलश को ॥१७॥

यजमानः स्वयं तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा । अवनिज्यावहन्मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः ॥१८॥

अन्वयः— स्वयं यजमानः तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा अवनिज्य तत् विश्वपावनीः अपः मूर्ध्नि अवहत् ॥१८॥

अनुवाद— स्वयं यजमान उनके ऐश्वर्य सम्पन्न दोनों चरणों को प्रसन्नता पूर्वक धोकर उस सम्पूर्ण विश्व को पवित्र करने वाले जल को अपने शिर पर धारण कर लिए ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

तदाऽसुरेन्द्रं दिवि देवतागणा गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ।
तत्कर्म सर्वेऽपि गृणन्त आर्जवं प्रसूनवर्षैववृषुर्मुदान्विताः ॥१९॥

अन्वयः— तदा दिवि देवतागाः गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः सर्वे अपि तत् आर्जवं कर्मगृणन्त असुरेन्द्रं मुदान्विताः प्रसून वर्षैः ववृषुः ॥१९॥

अनुवाद— उस समय आकाश में स्थित देवता गण, गन्धर्व, विद्याधर सिद्धचारण सबके सब राजा बलि के उस ऋजुतापूर्ण कर्म की प्रशंसा करते हुए प्रसन्नता पूर्वक असुरों के राजा बलि पर पुष्पों की वर्षा किए ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

नेदुर्मुहुर्दुन्दुभयः सहस्रशो गन्धर्वकिंपूरुषकिन्नरा जगुः ।
मनस्विनाऽनेन कृतं सुदुष्करं विद्वानदाद्यद्रिपवे जगत्त्रयम् ॥२०॥

अन्वयः— सहस्रशःदुन्दुभयः मुहुनेर्दुः गन्धर्वकिंपूरुष किन्नराः जगुः अनेन मनस्विना सुदुष्करं कृतम् विद्वान् रिपवे जगत् अदात् ॥२०॥

अनुवाद— एक साथ ही हजारों दुन्दुभियाँ बार-बार बजने लगीं । गन्धर्व, किम्पुरुष, किन्नर गान करने लगे, अहो धन्य है । उद्धार शिरोमणि महाराज बलि ने यह ऐसा कार्य किया जो दूसरों के लिए दुष्कर है । इन्होंने जानबूझकर अपने शत्रु को त्रैलोक्य का दान कर दिया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

तद्वामनं रूपमवर्धताद्भुतं हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम् ।
भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयोधयस्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत ॥२१॥

अन्वयः— तद्वामनं हरेः अनन्तस्य गुण त्रयात्मकं रूपम् अद्भुतं अवर्धत, भूः खं दिशः द्यौः विवराः पयोधयः तिर्यङ्नृदेवाः ऋषयः यदासत ॥२१॥

अनुवाद— अनन्त श्रीहरि भगवान् का त्रिगुणात्मक वह रूप (शरीर) अद्भुत ढंग से बढ गया और उसी के भीतर पृथिवी, आकाश, दिशाएँ, स्वर्ग, सम्पूर्ण आकाश, समुद्र, पशु-पक्षी, मनुष्य, देवता तथा ऋषिगण भी समा गये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अवर्धत 'वाञ्छातः प्रतिगृह्यताम्' इति बलिना पूर्वमुक्तत्वात् । गुणत्रयमात्मनि यस्य तत् । अतएव भूः खमित्यादयो यद्यस्मिन्नासत स्थितवन्तः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

बढ गया । राजा बलि ने कहा था अपनी इच्छा के अनुसार ग्रहण कीजिए गुणत्रयात्मकम् अर्थात् तीनों गुणों से युक्त अतएव आकाश इत्यादि जिसमें विद्यमान थे ॥२१॥

काये बलिस्तस्य महाभिभूतेः सहर्त्विगाचार्यसदस्य एतत् ।
ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुणात्मके भूतेन्द्रियार्थाशयजीवयुक्तम् ॥२२॥

अन्वयः— तस्य महाविभूतेः त्रिगुणात्मके काये सहर्त्विगाचार्य सदस्यः बलिः भूतेन्द्रियार्थाशयजीवयुक्तम् त्रिगुणं विश्वंददर्श ॥२२॥

अनुवाद— समस्त ऐश्वर्यों के एकमात्र स्वामी श्रीभगवान् के उस त्रिगुणात्मक शरीर में ऋत्विक् आचार्य और आचार्य के साथ बलि ने पंचभूत इन्द्रियाँ उनके विषय अन्त:करण और जीवों के साथ सम्पूर्ण त्रिगुणात्मक विश्व को देखा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

ऋत्विगादिसहितो बलिस्तस्य हरेः काये एतद्विश्वं ददर्श ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के उस शरीर में ऋत्विक् आदि के साथ बलि ने सम्पूर्ण विश्व को देखा ॥२२॥

रसामचष्टाङ्घ्रितलेऽथ पादयोर्महीं महीध्रान्पुरुषस्य जङ्घयोः ।
पतत्रिणो जानुनि विश्वमूर्तेरूर्वोर्गणं मारुतमिन्द्रसेनः ॥२३॥

अन्वयः— इन्द्रसेनः पुरुषस्य अङ्घ्रितले रसाम् अथ पादयो महीम्, महीध्रान् जङ्घयोः विश्वमूर्ते जानुनि पतत्रिणः उर्वोः मरुताम् गणः आचष्ट ॥२३॥

अनुवाद— राजा बलि ने विश्वरूप भगवान् के चरण के तलवें रसातल को चरणों में पृथिवी कों, पिण्डलियों में पर्वतों को घुटनों में पक्षियों को और जङ्घाओं में मरुद्गण को देखा ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तदेव प्रपञ्चयति-रसामिति पादोनैः सप्तभिः-मारुतं गणं वायुसङ्घम् । इन्द्रस्य सेनेव सेना यस्य सः । इन्द्रपदे स्थितत्वात्। अचष्ट ऐक्षत ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् के विश्वरूप का विस्तार से वर्णन पौने सात श्लोक में किया गया है । मारुतं गणम् अर्थात् मरुद्गण इन्द्रसेन अर्थात् बलि । क्योंकि बलि की भी सेना इन्द्र की सेना के ही समान है । बलि इन्द्र के पद पर स्थित भी थे । अचष्ट अर्थात् देखे ॥२३॥

सन्ध्यां विभोर्वाससि गुह्य ऐक्षत्प्रजापतीञ्जघने आत्ममुख्यान् ।
नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्तसिन्धूनुरुक्रमस्योरसि चर्क्षमालाम् ॥२४॥

अन्वयः— विभोः वाससि सन्ध्याम् गुह्येप्रजापतीन् जघने आत्ममुख्यान् नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्तसिन्धून् उरुक्रमस्य उरसि च ऋक्ष्मालाम् ऐक्षत ॥२४॥

अनुवाद— भगवान् के वस्त्रों में सन्ध्याओं को, गुह्य स्थानों में प्रजापतियों को जघनस्थल में अपने सहित समस्त असुरों को नाभि में आकाश को, कोंख में सातो समुद्रों को वक्षः स्थल में नक्षत्र समूह को देखा ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

आत्मा स्वयं बलिर्मुख्यो येषां तानसुरान् । ऋक्षमालां नक्षत्रपङ्क्तिम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

आत्म मुख्यान् अर्थात् बलि आदि सभी असुरों को, ऋक्षमालम् अर्थात् नक्षत्र समूह को ॥२४॥

हृद्यङ्ग धर्मं स्तनयोर्मुरारेर्ऋतं च सत्यं च मनस्यथेन्दुम् ।
श्रियं च वक्षस्यरविन्दहस्तां कण्ठे च सामानि समस्तरेफान् ॥२५॥

अन्वयः— हे अङ्गे मुरारेः हृदि धर्मम् स्तनयोः ऋतं च सत्यं च अथ मनसि इन्दुम् वक्षसि अरविन्द हस्तां श्रियम् कण्ठे च सामानि समस्त रेफान् ।।२५।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ये लोग श्रीहरि के हृदय में धर्म को स्तनों में ऋत (मधुर) और सत्य वचन, मन में चन्द्रमा, वक्षः स्थल में कमल धारण की हुई लक्ष्मीजी को और कण्ठ में सामवेद इत्यादि समस्त शब्दों को देखे ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

अङ्ग हे राजन् ! समस्तान् रेफांश्च शब्दान् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

अङ्ग अर्थात् हे राजन्, समस्त रेफान् अर्थात् सम्पूर्ण शब्द समूह को ।।२५।।

इन्द्रप्रधानानमरान्भुजेषु तत्कर्णयोः ककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि ।
केशेषु मेघाञ्छ्वसनं नासिकायामक्ष्णोश्च सूर्यं वदने च वह्निम् ॥२६॥

अन्वयः— भुजेषु इन्द्रप्रधानान् अमरान् तत्कर्णयोः ककुभः मूर्ध्नि द्यौः केशेषु मेघान् नासिकायाम् श्वसनम्, अक्ष्णोः सूर्यम् वदने च वह्निम् ।।२६।।

अनुवाद— उन लोगों श्रीभगवान् की भुजाओं में इन्द्र इत्यादि देवताओं को कानों में दिशाओं को सिर में द्युलोक (स्वर्ग) को, केशों में मेघों को, नाक में वायु को, नेत्रों में सूर्य को तथा मुख में अग्नि को देखा ।

भावार्थ दीपिका

द्यौश्च द्यां च ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

द्यौः अर्थात् स्वर्ग लोक को ।।२६।।

वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं भ्रुवोर्निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु ।
अहश्च रात्रिं च परस्य पुंसो मन्युं ललाटेऽधर एव लोभम् ॥२७॥

अन्वयः— वाण्यां छन्दांसि रसे जलेशं भ्रुवो निषेधं च विधिम् च पक्ष्मसु अहश्च रात्रिं च, परस्य पुंसः ललाटे मन्युं अधरे एव लोभम् ।।२७।।

अनुवाद— वाणी में वेद को, रसना में वरुण देव को भौहों में विधि एवं निषेध शास्त्र को, पलकों में दिन और रात को, उन परम पुरुष के ललाट में क्रोध को तथा ओष्ठों में लोभ का उन लोगों ने दर्शन किया ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

रसे रसने ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

रसे अर्थात् रसनेन्द्रिय में ।।२७।।

स्पर्शे च कामं नृप रेतसोऽम्भः पृष्ठे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम् ।
छायासु मृत्युं हसिते च मायां तनूरुहेष्वोषधिजातयश्च ॥२८॥

अन्वयः— नृप स्पर्शे च काम रेतसः अम्भः पृष्ठे तु अधर्मम् क्रमणेषु, यज्ञम् छायासु मृत्युम् हसिते च मयाम् तनूरुहेषु ओषधिजातयश्च ॥२८॥

अनुवाद— स्पर्श में काम को, रेतस में जल को, पीठ में अधर्म को, पद विन्यास में यज्ञ को, छाया में मृत्यु को, हंसी में माया को और रोमकूपों में सभी प्रकार की ओषधियों को देखा ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

रेतसो रेतसि । क्रमणेषु पादन्यासेषु । ओषधिजातय ओषधिजातीः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

ओषधिजातयः अर्थात् ओषधियों की जातियों को ॥२८॥

नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु बुद्धावजं देवगणानृषींश्च ।
प्राणेषु गात्रे स्थिरजङ्गमानि सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः ॥२९॥

अन्वयः— नाडीषु नदीः नखेषु शिलाः बुद्धौ अजं देवगणान् ऋषीश्च, प्राणेषु गात्रे स्थिरजङ्गमानि सर्वाणि भूतानि वीरः ददर्श ॥२९॥

अनुवाद— नाड़ियों में नदियों को, नखों में शिलाओं को और बुद्धि में ब्रह्म देवता और ऋषयों को तथा भगवान् की इन्द्रियों और शरीर में समस्त चर एवं अचर प्राणियों को वीर बलि ने देखा ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

प्राणेष्विन्द्रियेषु ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

प्राण शब्द इन्द्रियों का बोधक है ॥२९॥

सर्वात्मनीदं भुवनं निरीक्ष्य सर्वेऽसुराः कश्मलमापुरङ्ग ।
सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो धनुश्च शार्ङ्गं स्तनयित्नुघोषम् ॥३०॥
पर्जन्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी ।
विद्याधरोऽसिः शतचन्द्रयुक्तस्तूणोत्तमावक्षयसायकौ च ॥३१॥
सुनन्दमुख्या उपतस्थुरीशं पार्षदमुख्याः सहलोकपालाः ।
स्फुरत्किरीटाङ्गदमीनकुण्डलश्रीवत्सरत्नोत्तममेखलाम्बरैः ॥३२॥

अन्वयः— अङ्ग ! सर्वात्मनि इदं भुवनं निरीक्ष्य सर्वे असुराः कश्मलम् आपुः असह्य तेजः सुदर्शनं चक्रम् स्तनयित्नुघोषम् शार्ङ्ग धनुः, पर्जन्यघोषः जलजः पाञ्चजन्यः, तरस्विनी विष्णुगदा कोमोदकी, विद्याधरः असिः शतचन्द्र युक्तः अक्षय सायके तूणोत्तमौ, सहलोकपालाः पार्षदमुख्याः सुनन्दमुख्याः ईशं उपतस्थुः । स्फुरत्किरीटाङ्गदमीनकुण्डलश्रीवत्सरत्नोत्तममेखलाम्बरैः शोभतेस्म भगवान् ॥३०-३२॥

अनुवाद— परीक्षित् सर्वात्मापरमात्मा में सम्पूर्ण जगत् को देखकर सभी असुर भयभीत हो गये । उसी समय श्रीभगवान् के पास असह्य तेज वाला सुदर्शन चक्र, गरजते मेघ के समान भयङ्कर टङ्कार करने वाला शार्ङ्ग धनुष, मेघ के समान गम्भीर शब्द करने वाला पाञ्चजन्य शङ्ख, भगवान् विष्णु की अत्यन्त वेगवती कौमोदकी गदा,

सौचन्द्राकार चिह्नो वाली ढाल और विद्याधर नाम की तलवार अक्षय वाणों से भरे दो तरकश तथा लोकपालों के साथ श्रीभगवान् के मुख्य पार्षद सुनन्द आदि श्रीभगवान् की सेवा में उपस्थित हो गये। उस समय श्रीभगवान् की बड़ी शोभा हुई। मस्तक पर मुकुट कानों में मकराकृति कुण्डल, वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न, गले में कौस्तुभमणि कमर में करधनी और पीताम्बर सुशोभित होते थे ॥३०-३२॥

भावार्थ दीपिका

सर्वात्मनीत्यादिवाक्यान्तरम्। सुदर्शनमित्यादीनामीशमुपतस्थुरित्युत्तरेणान्वयः। विद्याधरसंज्ञोऽसिः। मीनकुण्डले मकरकुण्डले। स्फुरन्ति किरीटादीनि यस्य सः ॥३०-३२॥

भाव प्रकाशिका

सर्वात्मनि इत्यादि वाक्यों का एवं सुदर्शन इत्यादि श्रीभगवान् की सेवा में उपस्थित हो गये इसका आगे के वाक्य से अन्वय है। विधाधर नामक तलवार मीन कुण्डल का अर्थ है मकरा कृति दोनों कुण्डल। श्रीभगवान् के किरीट आदि चमक रहे थे ॥३०-३२॥

मधुव्रतस्रग्वनमालयावृतो रराज राजन्भगवानुरुक्रमः।
क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे नभः शरीरेण दिशश्च बाहुभिः ॥३३॥

अन्वयः— राजन्! मधुव्रतस्रग्वनमालयावृतः उरुक्रमः भगवान् रराज, एकेन पदा बलेः क्षितिम् विचक्रमे, शरीरेण नभः, बाहुभिः च दिशः ॥३३॥

अनुवाद— राजन् मधु लोभी भौरों के गुञ्जन से गुञ्जित वनमाला से आवृत तथा बड़े-बड़े पदन्यास करने वाले त्रिविक्रम भगवान् सुशोभित हो रहे थे। उन्होंने एक ही पग में राजा बलि की सम्पूर्ण पृथिवी को नाप लिया शरीर से आकाश को तथा भुजाओं से दिशाओं को भर दिया ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

मधुव्रतानां स्रजो यस्यां तया वनमालया श्रीवत्सादिभिश्चावृतो व्याप्तः। उरुक्रमत्वमेवाह-क्षितिमिति ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की वनमाला पर झूंड के झूंड भौरें मड़रा रहे थे तथा वे श्रीवत्स आदि से व्याप्त थे। क्षितिमित्यादि के द्वारा श्रीभगवान् के उरुक्रमत्व को ही बतलाया गया है। अर्थात् वे बहुत बड़ा पद विन्यास करने वाले थे ॥३३॥

पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि।
उरुक्रमस्याङ्घ्रिरुपर्युपर्यथो महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे विश्वरूपदर्शनं नाम विंशतितमोध्यायः ॥२०॥

अन्वयः— त्रिविष्टपं क्रमतः द्वितीयं पदं तृतीयाय तदीयम् अण्वपि न, उरुक्रमस्याङ्घ्रिःउपर्युपर्यथो महर्जनाभ्यां तपसः परंगतः ॥३४॥

अनुवाद— दूसरे पग से भगवान् ने स्वर्ग लोक को भी नाप लिया तीसरे पग के लिए बलि की अणु मात्र भी कोई वस्तु न बची। श्रीभगवान् का दूसरा पग ऊपर की ओर जाता हुआ, महर्लोक, जन लोक और तपलोक से भी ऊपर सत्य लोक में पहुँच गया ॥३४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के विश्वरूप दर्शन नामक बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

द्वितीयं पदं क्रमतो विक्षिपतस्त्रिविष्टपं तदीयं किंचिन्मात्रं जातम् । तृतीयाय तु न किंचिदपि । तत्र हेतुः- उरुक्रमस्याङ्घ्रिस्त्रिविष्टपादुपर्युपरि गच्छन् महर्जनाभ्यां तपसश्च परं गतः सत्यलोकं गत इति ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां विंशोऽध्यायः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने ऊपर की ओर बढ़ाकर दूसरे पग में स्वर्ग तो बहुत छोटा होने के कारण बलि की कोई भी अपनी वस्तु नहीं बची उसका कारण था कि ऊपर की ओर जाता हुआ भगवान् का चरण महर्लोक, जनलोक और तपलोक से भी ऊपर सत्य लोक में पहुँच गया ॥३४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के बीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

बलि का बाँधा जाना

श्रीशुक उवाच

सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेन्दुभिर्हतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात् ।
मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः सनन्दनाद्या नरदेव योगिनः ॥१॥

अन्वयः— हे नरदेव नखेन्दुभिः हतस्वधामद्युतिरावृतः अब्जभवः सत्यं समीक्ष्य अभ्यगात् मरीचिमिश्राः ऋषयः बृहद्व्रताः सनन्दनाद्याः योगिनः च ॥१॥

अनुवाद— हे परीक्षित् श्रीभगवान् के चरण कमल रूप चन्द्रमा के प्रकाश से सत्य लोक की आत्मा फीकी पड़ गयी और स्वयं भी वे उस आभा से आवृत हो गये, ऐसे सत्य लोक को देखकर ब्रह्माजी मरीचि आदि ऋषियों और सनकादिक नैष्ठिक ब्रह्मचारियों और योगियों के साथ उनकी अगवानी किए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकविंशे पदापूर्तिमिषेण बलिबन्धनम् । विष्णुना कृतमुत्कर्षं तस्य ख्यापयितुं जने । उरुक्रमस्याङ्घ्रिस्तपसः परं गत इत्युक्तं, ततः किं वृत्तं तदाह-सत्यं सत्यलोकं प्राप्तं तमङ्घ्रि समीक्ष्याब्जभवोऽभ्यगात् । तथा मरीचिमिश्रादयश्चेति द्वयोरन्वयः। कथंभूतोऽब्जभवः । हरेरङ्घ्रेर्नखा एवेन्दवस्तैर्हता स्वधाम्नो द्युतिर्यस्य सः । स्वयं च तैरावृतश्छन्नः । हे नरदेव, बृहद्व्रता योगिनश्च ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इक्कीसवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि तीसरे पग की पूर्ति के बहाने भगवान् ने बलि को बाँध दिया। भगवान् विष्णु के द्वारा बलि के उत्कर्ष को लोगों में प्रख्यात करने के लिए भगवान् ने ऐसा किया । बड़े-बड़े पद विन्यास करने वाले भगवान् का चरण तप लोक से भी ऊपर चला गया यह कहा गया है । उसके पश्चात् क्या हुआ? इसको बतलाते है सत्य लोक में गये हुए श्रीभगवान् के चरण को देखकर ब्रह्माजी ने उसकी अगवानी की । मरीचि आदि ऋषियों ने भी किया । कैसे ब्रह्माजी ? श्रीभगवान् के चरण के नखचन्द्र की कान्ति से सत्यलोक की प्रभा फीकी पड़ गयी और स्वयं ब्रह्माजी भी उसमें डूब गये । ब्रह्मचारी और येगिजन भी । हे नरदेव अर्थात् हे राजन् परीक्षित्॥१॥

वेदोपवेदा नियमान्विता यमास्तर्केतिहासाङ्गपुराणसंहिताः ।
ये चापरे योगसमीरदीपितज्ञानाग्निना रन्धितकर्मकल्मषाः ॥
ववन्दिरे यत्स्मरणानुभावतः स्वायंभुवं धाम गता अकर्मकम् ॥२॥

अन्वयः— वेदोपवेदा नियमान्वितायमा कर्मेतिहासाङ्ग पुराण संहिताः, ये च अपरे योगसमीरदीपितज्ञानाग्निना रन्धित कर्मकल्मषा ववन्दिरे । यत् स्मरणानुभावतः अकर्मकम् स्वायंभुवं धाम गताः ॥२॥

अनुवाद— वेद, उपवेद, नियम, यम, तर्क, इतिहास, वेदाङ्ग और पुराण संहिताएँ जो ब्रह्मलोक में मूर्तिमान होकर निवास करते हैं, तथा जो लोग योगरूप वायु से प्रज्वलित ज्ञान रूप अग्नि के द्वारा अपने कर्मो को भस्म कर चुके हैं, उन सभी लोगों ने श्रीभगवान् के चरणों की वन्दना की । श्रीभगवान् के चरणों के स्मरण के प्रभाव से ही कर्म के द्वारा नहीं प्राप्त होने वाले सत्य लोक में पहुँचे हुए हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अङ्गानि शिक्षादीनि । पुराणानि तत्संहिताश्च । योग एव समीरस्तेन दीपितं ज्ञानमेवाग्निस्तेन रन्धितं दग्धं कर्मकल्मषं कर्ममलं येषाम् । ते च सर्वे तमङ्घ्रिववन्दिरे । यस्याङ्घ्रेः स्मरणानुभावतः । अकर्मकं कर्मभिरप्राप्यम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

अङ्गशब्द शिक्षा आदि वेदाङ्गो का वाचक है, पुराण और पुराणों की संहिताएँ । योगरूप वायु से प्रज्वलित ज्ञान रूप अग्नि से जिन लोगों ने अपने कर्म रूप मल को दग्ध कर दिया है । उन लोगों ने भगवन् के चरणों की वन्दना की भगवान् के चरणों के स्मरण के प्रभव से कर्म से अप्राप्य ब्रह्मलोक में गये हैं ॥२॥

अथाङ्घ्रये प्रोन्नमिताय विष्णोरुपाहरत्पद्मभवोऽर्हणोदकम् ।
समर्च्य भत्त्याभ्यगृणाच्छुचिश्रवा यन्नाभिपङ्केरुहसंभवः स्वयम् ॥३॥

अन्वयः— शुचिश्रवाः पद्मभवः स्वयं यन्नाभिपङ्केरुहसंभवः विष्णोः प्रोन्नमिताय अङ्घ्रये अर्हणोदकम् उपाहरत समर्च्य भक्त्या अभ्यगृणात् ॥३॥

अनुवाद— पवित्र कीर्ति वाले ब्रह्माजी स्वयं जिनके नाभि कमल से उत्पन्न हुए है वे अगवानी करने के पश्चात् भगवान् विष्णु के उठे हुए चरणों की पूजा करने के लिए जल लाए और पूजा करके उन चरणों की स्तुति किए ॥३॥

भावार्थ दीपिका

विष्णोरङ्घ्रये स्वयं यस्य नाभिपेङ्केरुहसंभवस्तस्य विष्णोरङिंघ्र समर्च्य ॥३॥

भाव प्रकाशिका

जिनके नाभि कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हैं, उन्हीं भगवान् के चरणों की पूजा के लिए ब्रह्माजी जल लाये। भगवान् विष्णु के चरणों की पूजा करके ॥३॥

धातुः कमण्डलुजलं तदुरुक्रमस्य पादावनेजनपवित्रतया नरेन्द्र ।
स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि लोकत्रयं भगवतो विशदेव कीर्तिः ॥४॥

अन्वयः— हे नरेन्द्र धातुः कमण्डलु जलं तदुरुक्रमस्य पादावनेजन पवित्रतया स्वर्धुन्यभूत् पतती सा भगवतो विशदेव कीर्तिः लोकत्रयं निर्मार्ष्टि ॥४॥

अनुवाद— परीक्षित् ब्रह्माजी के कमण्डलु का जल विश्वरूप भगवान् के चरण धोने के कारण पवित्र हो

गया और गङ्गाजी के रूप में परिणत हो गया । श्रीभगवान् की विशद कीर्ति गङ्गाजी स्वर्ग से गिरती हुई त्रैलोक्य को पवित्र बनाती हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

लोकत्रयं निमार्ष्टि पवित्रयति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

त्रैलोक्य को पवित्र बनाती हैं ।।४।।

ब्रह्मादयो लोकनाथाः स्वनाथाय समादृताः । सानुगा बलिमाजह्रुः संक्षिप्तात्मविभूतये ।।५।।

अन्वयः— ब्रह्मादयो लोकनाथाः सानुगोः संक्षिप्तात्म विभूतये स्वनाथाय समादृताः बलिमाजहुः ।।५।।

अनुवाद— ब्रह्मा आदि भिन्न-भिन्न लोकों को स्वामिगण अपने अनुचरों के साथ, जब श्रीभगवान् अपनी विभूतियों को कुछ समेट लिए तो आदर पूर्वक अपने स्वामी श्रीभगवान् को विभिन्न प्रकार के उपहार प्रदान किए।।५।।

भावार्थ दीपिका

संक्षिप्ता उपसंहृतात्मविभूतिः स्वविस्तारो येन तस्मै । यथापूर्वं वामनरूपेण स्थितायेत्यर्थः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

अपनी विभूति को समेटे हुए तथा पहले के ही समान वामन रूप से स्थित श्रीभगवान् को उपहार प्रदान किए।।५।।

तोयैः समर्हणैः स्रग्भिर्दिव्यगन्धानुलेपनैः। धूपैर्दीपैः सुरभिभिर्लाजाक्षतफलाङ्कुरैः ।।६।।
स्तवनैर्जयशब्दैश्च तद्वीर्यमहिमाङ्कितैः । नृत्यवादित्रगीतैश्च शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः।।७।।
जाम्बवानृक्षराजस्तु भेरीशब्दैर्मनोजवः। विजयं दिक्षु सर्वासु महोत्सवमघोषयत् ।।८।।

अन्वयः— तोयैः समर्हणैः साभिः, दिव्यगन्धानुलेपनैः धूपैः दीपैः सुरभिभिः लाजाक्षत फलाङ्कुरै, तद्वीर्यमहिमाङ्कितैः स्तवनैः जयशब्दैः च नृत्यवादित्रगीतैः च शङ्खदुन्दुभिनिः स्वनैः जाम्बवान् ऋक्षराजस्तु मनोजवः भेरीशब्दैः सर्वासु दिक्षु विजयं महोत्सवम् अघोषयत् ।।६-८।।

अनुवाद— वे लोग जल, उपहार, माला, दिव्य गन्धों से परिपूर्ण अङ्गराग सुगन्धित धूप, दीप, लावा, अक्षत, फल, अङ्कुर भगवान् की महिमा एवं प्रभाव से युक्त स्तोत्र, जयघोष, नृत्य, बाजे गाजे, गान एवं शङ्ख से भगवान् की आराधना किए । उस समय मन के समान वेग वाले ऋक्षराज जाम्बवान् सभी दिशाओं में भेरी बजा-बजाकर श्रीभगवान् के मङ्गलमय विजयमहोत्सव की घोषणा कर दिए ।।६-८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६-८।।

महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपदव्याजयाच्ञया । ऊचुः स्वभर्तुरसुरा दीक्षतस्यात्यमर्षिताः ।।९।।

अन्वयः— त्रिपदव्याजयाच्ञया सर्वां महीं हृतां दृष्ट्वा असुराः दीक्षितस्य स्वभर्तुः अत्यमर्षिताः ऊचुः ।।९।।

अनुवाद— दैत्यों ने देखा कि वामन भगवान् ने तीन पग पृथिवी माँगने के बहाने सारी पृथिवी ही छिन ली है । वे आपस में सोचने लगे कि हमारे स्वामी इससमय यज्ञ की दीक्षा लिए हैं, अतएव कुछ कहेंगे नहीं । अतएव वे अत्यधिक चिढ़कर कहने लगे ।।९।।

भावार्थ दीपिका

त्रिपदविषया या व्याजयाच्ञा कपटयाञ्चा तया स्वभर्तुर्बलेर्महीं हृतां दृष्ट्वा अत्यमर्षिताः सन्त ऊचुः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

तीन पग विषयिणी कपटमयी याचना के द्वारा अपने स्वामी बलि की पृथिवी को अपहत देखकर बहुत चिढ़कर कहने लगे ।।९।।

न वा अयं ब्रह्मबन्धुर्विष्णुर्मायाविना वरः । द्विजरूपप्रतिच्छन्नो देवकार्यं चिकीर्षति ।।१०।।

अन्वयः— अयं वा ब्रह्मबन्धुः न मायाविनां वरः विष्णुः रूप प्रतिछन्नः देवकार्यं चिकीर्षति ।।१०।।

अनुवाद— निश्चित है कि यह ब्राह्मण कुमार नहीं है, ये मायावियों में श्रेष्ठ विष्णु हैं ब्राह्मण का रूप बनाकर देवताओं का कार्य करना चाहते हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

किमूचुस्तदाह- न वै इति सार्धैस्त्रिभिः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

असुरों ने क्या कहा ? इसको वे साढे तीन श्लोकों से कहते हैं ।।१०।।

अनेन याचमानेन शत्रुणा बटुरूपिणा । सर्वस्वं नो हृतं भर्तुर्न्यस्तदण्डस्य बर्हिषि ।।११।।

अन्वयः— न्यस्तदण्डस्य बर्हिर्षि अनेन बटुरूपिणाशत्रुणा याचमानेन नः भर्तुः सर्वस्वं हृतम् ।।११।।

अनुवाद— यज्ञ में दीक्षित होकर किसी को भी दण्ड देने से उपरत हो जाने पर इसने ब्रह्मचारी का वेष बनाकर याचना करके हमारे स्वामी का सबकुछ ले लिया ।।११।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।११।।

सत्यव्रतस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः । नानृतं भाषितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः ।।१२।।

अन्वयः— सततं सत्यव्रतस्य दीक्षितस्य विशेषतः ब्रह्मण्यस्य दयावतः अनृतं भाषितुं न शक्यम् ।।१२।।

अनुवाद— हमारे स्वामी सदा सत्य ही बोलते हैं यज्ञ में दीक्षित होने पर तो विशेष रूप से सत्य का पालन करते हैं, वे ब्राह्मणों के भक्त और दयावान् हैं वे कभी असत्य नहीं बोल सकते हैं ।।१२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१२।।

तस्मादस्य वधो धर्मो भर्तुः शुश्रूषणं च नः । इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचरासुराः ।।१३।।

अन्वयः— तस्मादस्य वधो धर्मः नः भर्तुः शुश्रूषणं च नः इति बले अनुचराः असुराः । आयुधानि जगृहुः ।।१३।।

अनुवाद— अतएव इस वामन का वध कर देना ही धर्म है इससे हमारे स्वामी की सेवा ही होगी, इस तरह से विचार करके बलि के जो अनुचर असुर थे उन सबों ने आयुध धारण कर लिया ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अनुचराश्च ते असुराश्च ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

अनुचर असुर ।।१३।।

ते सर्वे वामनं हन्तुं शूलपट्टिशपाणयः । अनिच्छतो बले राजन्प्राद्रवञ्जातमन्यवः ।।१४।।

अन्वयः— हे राजन् ! बलेः अनिच्छत ते सर्वे जातमन्यवः शूलपट्टिशपाणयः वामनं हन्तुं प्राद्रवन् ।।१४।।

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् ! बलि के नहीं चाहने पर भी वे सबके सब क्रुद्ध होकर हाथ में त्रिशूल और पट्टिश लेकर वामन भगवान को मारने के लिए दौड़ पड़े ।।१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४।।

तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान्नृप । प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः ॥१५॥

अन्वयः— हे नृप ! तान् दितिजानीकपान् अभिद्रवतः दृष्ट्वा विष्णोः अनुचरा प्रहस्य उदायुधा प्रत्यषेधन् ॥१५॥

अनुवाद— हे राजन् ! उन असुर सेनापतियों को आक्रमण करने के लिए दौड़कर आते हुए देखकर भगवान् विष्णु के अनुचरों ने आयुध लेकर जोर से हँसते हुए उन सबों को रोक दिए ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

नन्दः सुनन्दोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः।कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्रिराट् ॥१६॥
जयन्तः श्रुतदेवश्च पुष्पदन्तोऽथ सात्वतः। सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम् ॥१७॥

अन्वयः— नन्दः, सुनन्दोऽथ जयः विजयः प्रबलो बलः कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्रिराट् जयन्तः श्रुतदेवश्च पुष्पदन्तः अथ सात्त्वतः, सर्वेनागायुतप्राणाः ते आसुरीम् चमूं जघ्नुः ॥१६-१७॥

अनुवाद— नन्द, सुनन्द, जय, विजय, प्रबल, बल, कुमुद कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन, गरुड, जयन्त, श्रुतदेव, पुष्पदन्त तथा सात्त्वत ये सबके सब दस हजार हाथियों के समान बलवान थे उन लोगों ने असुरों की सेना को मार दिया ॥१६-१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६-१७॥

हन्यमानान्स्वकान्दृष्ट्वा पुरुषानुचरैर्बलिः । वारयामास संरब्धान्काव्यशापमनुस्मरन् ॥१८॥

अन्वयः— स्वकान् संरब्धान् पुरुषान् अनुचरैः हन्यमाना न दृष्ट्वा बलिः काव्यशापम् अनुस्मरन् वारयामास ॥१८॥

अनुवाद— श्रीभगवान के अनुचरों के द्वारा अपने क्रुद्ध सेनापतियों के मारे जाते हुए देखकर राजा बलि शुक्राचार्य के शाप को याद करते हुए रोक दिए ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

हे विप्रचित्ते हे राहो हे नेमे श्रूयतां वचः । मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालोऽयमर्थकृत् ॥१९॥

अन्वयः— हे विप्रचित्ते, हे राहो, हे नेमे श्रूयतां वचः मा युध्यत, निवर्तध्वं अयं कालः नः अर्थकृत न ॥१९॥

अनुवाद— हे विप्रचित्ति, हे राहु, हे नेमि, मेरी बात सुनो, युद्ध मत करो लौट जाओ यह समय हमलोगों के अनुकूल नहीं है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

अर्थकृदनुकूलः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अर्थकृत अर्थात् अनुकूल ॥१९॥

यः प्रभुः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये । तं नातिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैरीश्वरः पुमान् ॥२०॥

अन्वयः— दैत्याः यः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये प्रभुः तं पौरुषैः अतिवर्तितुम् पुमान् ईश्वरः न ॥२०॥

अनुवाद— दैत्यों जो काल सभी जीवों को सुख-दुःख प्रदान करने वाला है उसको कोई पुरुष अपने पौरुष से नहीं दबा सकता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

पौरुषैस्तं कालमतिवर्तितुं पुमानीश्वरः समर्थो न भवति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

उस काल को पुरुष अपने पौरुष से दबा सकने में समर्थ नहीं हो सकता है ।।२०।।

यो नो भवाय प्रागासीदभवाय दिवौकसाम् । स एव भगवानद्य वर्तते तद्विपर्ययम् ।।२१।।

अन्वयः— यः प्राक् न भवाय वदिवौकसांम् अभवाय आसीत् स एव भगवान् अद्य तद्विपर्य यः वर्तते ।।२१।।

अनुवाद— जो भगवान् कल पहले हमारी उन्नति और देवताओं की अवनति के कारण थे वे ही आज उसके ठीक विपरीत हो गये हैं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२१।।

बलेन सचिवैर्बुद्ध्यद्धा दुर्गैर्मन्त्रौषधादिभिः । सामादिभिरुपायैश्च कालं नात्येति वै जनः ।।२२।।

अन्वयः— बलेन, सचिवै, बुद्ध्या दुर्गैः मन्त्रौषधादिभिः समादिभिरुपायैः च जनः कालं न अत्येति ।।२२।।

अनुवाद— बल, मन्त्र, बुद्धि, दुर्ग, मन्त्र औषधि तथा समादि उपायों में से किसी एक के द्वारा अथवा इन सबों के द्वारा भी मनुष्य काल का अतिक्रमण नहीं कर सकता है ।।२२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२२।।

भवद्भिर्निर्जिता ह्येते बहुशोऽनुचरा हरेः । दैवेनर्द्धैस्त एवाद्य युधि जित्वा नदन्ति नः ।।२३।।

अन्वयः— एते हरेः अनुचराः भवद्भिः बहुशः निर्जिताः दैवेनर्द्धैः ते एव अद्य युधि नः जित्वा नदन्ति ।।२३।।

अनुवाद— इन श्रीहरि के अनुचरों को तुमलोगों ने कई बार जीता है, वे ही आज युद्ध में हमलोगों को जीतकर सिंहनाद कर रहे हैं ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

हरेरनुचरा देवाः । दैवेन ऋद्धैः समृद्धैर्भवद्भिः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के अनुचर देवगण, भाग्य के द्वारा समृद्ध होने के कारण भवद्भिः अर्थात् तुमलोगों के द्वारा ।।२३।।

एतान्वयं विजेष्यामो यदि दैवं प्रसीदति । तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं यो नोऽर्थत्वाय कल्पते ।।२४।।

अन्वयः— यदि दैवं प्रसीदति एतान् वयं विजेष्यामः तस्मात् कालंप्रतीक्षध्वं योनः अर्थत्वाय कल्पते ।।२४।।

अनुवाद— यदि दैव हमारे अनुकूल हो जायेगे तो हमलोग इन देवताओं को जीत लेंगे । अतएव अपने अनुकूल काल की प्रतीक्षा करो ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

अर्थत्वायानुकूल्याय ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

अथत्वाय अनुकूलता के लिए ।।२४।।

श्रीशुक उवाच

त्युर्निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः । रसां निविविशू राजन्विष्णुपार्षदताडिताः ।।२५।।

अन्वयः— राजन् पत्युः निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः विष्णुपार्षद ताडिताः रसां निविविशुः ।।२५।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् अपने स्वामी की वाणी सुनकर दैत्यों एवं दानवों के सेनापति विष्णु पार्षदों से प्रताडित होकर रसातल में प्रवेश कर गये ।।२५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२५।।

अथ तार्क्ष्यसुतो ज्ञात्वा विराट् प्रभु चिकीर्षितम् । बबन्ध वारुणैः पाशैर्बलिं सौत्येऽहनि क्रतौ।।२६।।

अन्वयः— अथ तार्क्ष्यसुतः विराटप्रभुचिकीर्षितम् ज्ञात्वा क्रतौ सौत्ये अहनि बलिं वारुणैः पाशैः बबन्ध ।।२६।।

अनुवाद— उसके पश्चात् गरुडजी विराट् प्रभु के मन की बात जानकर बलि को वरुण पाश से बाँध दिए उस दिन अश्वमेघ यज्ञ में सोमपान होने वाला था ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

विषु पक्षिसु राजत इति विराट् । प्रभोश्चिकीर्षितं ज्ञात्वा । अयमर्थः- अस्य सर्वस्वापहारेण ममेत्यभिमानं संत्याज्येदानीं देहस्वीकारेणाहंकारमपि त्याजयित्वा परमानुग्रहं कर्तुमिच्छति, न चानेन तुल्योऽन्यः कोऽपि सत्यसंधो धीरो वास्तीति तद्यशः प्रख्यापनार्थं किंचित्पातयितुमपीच्छतीति प्रभोरभिप्रायं ज्ञात्वा तं बबन्धेति । सौत्येऽहनि सोमाभिषवदिने ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

विराट् शब्द गरुड का बोधक है । श्रीभगवान् के हार्दिक अभिप्राय को जानकर कहने का अभिप्राय है कि इस बलि के सर्वस्वापहार के द्वारा उसका ममत्वाभिमान समाप्त हो गया है, किन्तु इसके देह को भी स्वीकार करने से इसका अहांवाभिमान भी छुड़वाकर श्रीभगवान् बलि पर सर्वोत्कृष्ट कृपा करना चाहते हैं; इसके समान कोई भी सत्यवादी तथा धैर्य सम्पन्न नहीं हैं इस तरह से बलि के यश को प्रख्यात करने के लिए, बलि को गिराना चाहते हैं इस तरह से जानकर बलि को पाश से बाँध दिए । उस दिन अश्वमेघ यज्ञ में सोमपान होने वाला था ।।२६।।

हाहाकारो महानासीद्रोदस्योः सर्वतोदिशम् । गृह्यमाणेऽसुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना ।।२७।।

अन्वयः— प्रभविष्णुना विष्णुना असुरपतौ गृह्यमाणे रोदस्योः सर्वतोदिशम् महान् हाहाकार आसीत् ।।२७।।

अनुवाद— सर्वसमर्थ भगवान् विष्णु ने इस प्रकार से बलि को बँधवा दिया उस समय पृथिवी और आकाश की सभी दिशाओं में महन् हाहाकार होने लगा ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

रोदस्योर्द्यावापृथिव्योः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

भूलोक और द्युलोक की सभी दिशाओं में ।।२७।।

तं बद्धं वारुणैः पाशैर्भगवानाह वामनः । नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप ।।२८।।

अन्वयः— हे नृप वारुणैः पाशैः बद्धं नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञं उदारयशसं तं भगवान् वामन आह ।।२८।।

अनुवाद— परीक्षित् वरुण के पाश से बाँध हुए जिनकी श्रीनष्ट हो गयी थी किन्तु बुद्धि निश्चयात्मिका थी एवं महायशस्वी राजा बलि से भगवान् ने कहा ।।२८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२८।।

पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेर्मह्यं त्वयाऽसुर । द्वाभ्यां क्रान्ता मही सर्वा तृतीयमुपकल्पय ॥२९॥

अन्वयः— असुर त्वया मह्यं भूमेः त्रीणि पदानि दत्तनि । द्वाभ्यां क्रान्ता महीसर्वा तृतीयम् उपकल्पय ॥२९॥

अनुवाद— असुर तुमने मुझको तीन पग पृथिवी दिया । दो पगों में ही सम्पूर्ण पृथिवी नप गयी अब तीसरे पग की व्यवस्था करो ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥॥२९॥

यावत्तपत्यसौ गोभिर्यावदिन्दुः सहोडुभिः । यावद्वर्षति पर्जन्यस्तावती भूरियं तव ॥३०॥

अन्वयः— यावत् असौ गोभिः तपति यावत् इन्दुः सहोडुभिः, यावत् पर्जन्यः वर्षति तावती इयं तव भूः ॥३०॥

अनुवाद— जहाँ तक सूर्य की गर्मी जाती है, जहाँ तक नक्षत्रों और चन्द्रमा की किरणें जाती हैं, जहाँ तक मेघ बरसते हैं, वहाँ तक पृथिवी तुम्हारी है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

असौ सूर्यः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

असौ पद से सूर्य को कहा गया है ॥३०॥

पदैकेन मया क्रान्तो भूर्लोकः खं दिशस्तनोः । स्वर्लोकस्तु द्वितीयेन पश्यतस्ते स्वमात्मना ॥३१॥

अन्वयः— मया एकेन पदा भूर्लोकः क्रान्तः खं दिशः तनोः द्वितीयेन स्वर्लोकः तु पश्यतः ते स्वमात्मना ॥३१॥

अनुवाद— मैने एक पग से भूलोक के शरीर से आकाश और दिशाओं तथा दूसरें पग से स्वर्ग लोक को नाप लिया है तुम्हारे सामने ही ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

मया आत्मनेत्यन्वयः । व्यापिनेत्यर्थ; । खं च दिशश्च तनोः तन्वा । ते स्वं त्वदीयं सर्वस्वम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

मैंने अपने व्यापक शरीर से आकाश और दिशाओं को तुम्हारा सबकुछ ॥३१॥

प्रतिश्रुतमदातुस्ते निरये वास इष्यते । विश त्वं निरयं तस्माद्गुरुणा चानुमोदितः ॥३२॥

अन्वयः— प्रतिश्रुतम् अदातुः ते निरये वास इष्यते तस्मात् त्वं निरयं गुरुणा च अनुमोदितः विश ॥३२॥

अनुवाद— प्रतिज्ञात अर्थ नहीं दे सकने के कारण तुमको नरक में रहना होगा । अतएव तुम नरक में प्रवेश करो तुम्हारे गुरु की भी इस विषय में अनुमति है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

गुरुणा शुक्रेणानुमोदितः सन् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

तुम्हारे गुरु शुक्राचार्य ने भी इसका अनुमोदन किया है ॥३२॥

वृथा मनोरथस्तस्य दूरे स्वर्गः पतत्यधः । प्रतिश्रुतस्यादानेन योऽर्थिनं विप्रलम्भते ॥३३॥

अन्वयः— प्रतिश्रुतस्य अदानेन यः अर्थिनं विप्रलम्भते वृथामनोरथः तस्य दूरेस्वर्गः अधः पतति ॥३३॥

अनुवाद— जो याचक को देने की प्रतिज्ञा करके मुकर जाता है तथा याचक को ठगता है, उसके सारे मनोरथ व्यर्थ है, स्वर्ग तो दूर रहा उसका अधः पतन हो जाता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

एवमुक्तेऽपि निरयपरिहारार्थं स्वर्गभ्रंशपरिहारार्थं च मनोरथं कुर्वन्तं प्रत्याह-वृथेति । यः प्रतिश्रुतस्यादानेन याचकं विप्रलभते तस्य मनोरथो वृथैव स्वर्गश्च तस्य दूर एव, स चाधः पतत्येव ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से कहे जाने पर भी नरकपात को दूर करने के लिए तथा स्वर्ग से पतन के परिहार के लिए मनोरथ करने वाले बलि से भगवान् ने कहा जो प्रतिज्ञात अर्थ को नहीं देकर याचक को धोखा देता है उसके सारे मनोरथ व्यर्थ है । स्वर्ग मिलना तो दूर रहा अधः पतन हो जाता है ॥३३॥

विप्रलब्धो ददामीति त्वयाहं चाढ्यमानिना । तद्व्यलीकफलं भुङ्क्ष्व निरयं कतिचित्समाः ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे बलिनिग्रहो नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

अन्वयः— आढ्यमानिना त्वया ददामि इति अहं विप्रलब्धः तद्व्यलीकफलं निरये कतिचित् समाः भुक्ष्व ॥३४॥

अनुवाद— अपने को धनवान मानने वाले तुमने मुझे देता हूँ यह कहकर धोखा दिया है इस मिथ्या भाषण का फल नरक में कुछ वर्षों तक भोगो ॥३४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध का बलिनिग्रह नामक इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

त्वया चाहं विप्रलब्धस्तस्माद्व्यलीकस्यानृतस्य फलं निरयं भुङ्क्ष्वेत्यर्थः ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां एकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

तुमने मुझको धोखा दिया है अतएव इस मिथ्या भाषण का फल नरक भोगो ॥३४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के इक्कीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२१।

* * *

बाइसवाँ अध्याय

राजा बलि के द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति और भगवान् का उन पर प्रसन्न होना

श्रीशुक उवाच

एवं विप्रकृतो राजन् बलिर्भगवताऽसुरः । भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः ॥१॥

अन्वयः— राजन् एवं भगवताविप्रकृतः असुरः बलिः भिद्यमानः अपि अभिन्नात्मा अविक्लवं वचः प्रत्याह ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् ! इस तरह से श्रीभगवान् के द्वारा तिरस्कृत किए गये असुर राजा बलि धैर्य से विचलित किए जाने पर भी वे विचलित हुए बिना धैर्य पूर्वक कहे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वाविंशे तु प्रसन्नः सन् प्रस्थाप्य सुतलं बलिम्। दत्त्वा वरान्हरिर्न्यूनं मत्त्वा तद्द्वारपोऽभवत्। समर्पिततनूवित्तनिर्मलाचलभक्तितः। छलितो बलिना चित्रं स्वमेवार्पयदच्युतः । विप्रकृतोऽपकृतः भिद्यमानः सत्त्वाच्चाल्यमानः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बइसवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि बलि पर प्रसन्न हुए श्रीभगवान् वरदान देकर बलि को सुतल लोक में भेज दिये इसको कम मानकर श्रीभगवान् बलि के द्वारपाल बन गये । शरीर सम्पत्ति तथा निर्मल एवं भक्ति को श्रीभगवान् को समर्पित करके बलि के द्वारा छले गये श्रीभगवान् इन सारी वस्तुओं को बलि को समर्पित कर दिए यह अद्भुत बात है । **विप्रकृतः** अर्थात् तिरस्कृत भिद्यमानः अर्थात् धैर्य से डिगाये जाने पर भी धैर्य नहीं छोड़ने वाले ॥१॥

बलिरुवाच

यद्युत्तमश्लोक भवान्ममेरितं वचो व्यलीकं सुरवर्य मन्यते ।
करोम्यृतं तन्न भवेत्प्रलम्भनं पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि में निजम् ॥२॥

अन्वयः— हे उत्तम श्लोक ! हे सुरवर्य ! यदि भवान् मम ईरितं वचः व्यलीकं मन्यते तत् ऋतं करोमि तत प्रलम्भनं न भवेत् निजम् तृतीयं पद मे शीर्ष्णिकरोतु ॥२॥

राजा बलि ने कहा

अनुवाद— हे पवित्र कीर्ते हे देवश्रेष्ठ, यदि आप मेरी वाणी को असत्य मानते हैं तो उसे मैं सत्य कर देता हूँ जिससे कि यह आपके लिए धोखा न हो, आप अपना तीसरा पैर मेरे सिर पर रख दीजिये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

हे उत्तमश्लोकेति कटाक्षः । मम वच ईरितं प्रतिश्रुतं न तावद्यवलीकम् । त्वया कपटेन वामनतया भिक्षित्वा रूपान्तरस्याविष्कृतत्वात् । एवमपि यदि भवान्व्यलीकं मन्यते तथापि ऋतमेवाहं करोमि । मदुक्तं विप्रलम्भनं न भवतु । मे शीर्ष्णि निजं तृतीयं पदं कुरु । न च द्वाभ्यां विश्वं क्रान्तवतो मे तव शिरः पादपर्याप्तं न भवतीति मन्येथाः । वित्तेन चेत्पदद्वयं जातं तर्हीदमधिकमेव स्यात् । वित्तादपि वित्तवतोऽधिकत्वादिति भावः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

हे उत्तम श्लोक इस संबोधन के द्वारा बलि व्यंग्य करते हैं । मेरी प्रतिज्ञा असत्य नहीं है । आपने वामन रूप से माँगा और उसके बाद अपने दूसरा रूप धारण कर लिया । फिर भी यदि आप असत्य मानते हैं तो भी इसे में सत्य कर रहा हूँ । मेरा कथन कपट न बने । आप मेरे शिर पर अपना तीसरा पग रख दें । आप यह न माने कि दो पगों से विश्व को नाप लेने वाले मेरे लिए तुम्हारा सिर पर्याप्त नहीं होगा । वित्त के द्वारा यदि आपके दो पग पूरे हो गये तो वित्तवान तो वित्त की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है । अतएव यह उन दोनों पगों से अधिक ही होगा ॥२॥

बिभेमि नाहं निरयात्पदच्युतो न पाशबन्धाद्यवसनाद्दुरत्ययात् ।
नैवार्थकृच्छ्राद्भवतो विनिग्रहादसाधुवादाद्भृशमुद्विजे यथा ॥३॥

अन्वयः— पदच्युतः अहं निरयात् न विभेमि न पाशबन्धात् नदुर त्ययात् व्यसनात् अर्थकृच्छ्रात् नैव भवतो विनिग्रहात् यथा असाधुवादात् उद्विजे ॥३॥

अनुवाद— मुझे नरक में जाने से भय नहीं है, और न तो राज्य से च्यत होने का भय है, मैं पाश में

बाँधने अथवा अपार दु:ख में पड़ने से भी नहीं डरता हूँ । मेरे पास कुछ भी न रहे अथवा आप मुझे भयङ्कर दण्ड दें, इससे भी मुझे कोई डर नहीं है मैं केवल अपकीर्ति से डरता हूँ ।।३।।

भावार्थ दीपिका

ननु च 'आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि । आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि।' इत्यादिवचनादात्मभयपरिहाराय सर्वस्वं त्यज्यते, त्वं तु कुतो भीतः सन्नात्मानमर्पयस्यत आह-बिभेमीति । असाधुवादादपकीर्तेर्यथाऽहं भृशमुद्विजे, निरयादिभ्यो न तथा बिभेमि ।।३।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि आपत्ति के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए पत्नी की रक्षा धन से भी करनी चाहिए और अपनी रक्षा सदा पत्नी और धन दोनों से करना चाहिए, इत्यादि वाक्यों के अनुसार अपने पर आने वाले भय को दूर करने के लिए सबकुछ त्याग दिया जाता है । तुम भयभीत होकर अपने शरीर को क्यों दे रहे हो? इस पर राजा बलि ने कहा मैं जितना अपकीर्ति से डरता हूँ उतना नरक इत्यादि से नहीं डरता हूँ ।।३।।

पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम् । यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्चादिशन्ति हि ।।४।।

अन्वयः— पुंसां अर्हत्तमार्पितं दण्डं श्लाघ्यतमं मन्ये । यं माता, पिता भ्राता सुहृदः च नहि आदिशन्ति ।।४।।

अनुवाद— अपने गुरुजनों द्वारा दिया गया दण्ड जीव मात्र के लिए जीवमात्र के लिए अत्यन्त वाञ्छनीय है । क्योंकि वैसा दण्ड माता पिता भाई और सुहृद भी मोहवश नहीं दे पाते हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

ननु मया निगृहीतत्वात्तवापकीर्तिर्जातैव, नैवेत्याह-पुंसामिति । अर्हत्तमैरर्पितम् । यं दण्डं मात्रादयोऽपि न ह्यादिशन्ति नैवार्पयन्ति । हितैषिणा त्वया निगृहीतोऽहं श्लाध्य एवास्मीति भावः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि मेरे द्वारा निगृहीत होने के कारण तुम्हारी अपकीर्ति होगी । इस पर बलि ने कहा ऐसी बात नहीं है । जिस दण्ड को माता पिता आदि भी नहीं देते हैं । आप मेरे हितैषी है मैं आपके द्वारा निगृहीत हूँ यह मेरे लिए श्लाध्य ही है ।।४।।

त्वं नूनमसुराणां नः परोक्ष्यः परमो गुरुः । यो नोऽनेकमदान्धानां विभ्रंश चक्षुरादिशत् ।।५।।

अन्वयः— त्वम् नः असुराणां नूनं पारोक्ष्य परमाः गुरुः यो नः अनेक मदान्धानां विभ्रंशं चक्षुः आदिशत् ।।५।।

अनुवाद— आप हम असुरों के परोक्ष रूप से परम गुरु हैं । क्योंकि जब हमलोग बल, कुलीन आदि अनेक प्रकार मदों से मत्त हो जाते हैं तब आप हमलोगों से उन वस्तुओं को छिनकर हमें भ्रंश रूप नेत्र दान दिया करते हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

नन्वहं देवानां हितैषी नासुराणां तत्राह-त्वं नूनमिति । पारोक्ष्यः शत्रुच्छलेन वर्तमानः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मैं तो देवताओं का हितैषी हूँ असुरों का नहीं, तो इस पर बलि त्वं **नूनम् इत्यादि** श्लोक पढ़ते हैं । परोक्ष्यः अर्थात् शत्रु के व्याज से परम गुरु आप हैं ।।५।।

यस्मिन्वैरानुबन्धेन रूढेन विबुधेतराः । बहवो लेभिरे सिद्धिं यामु हैकान्तयोगिनः ॥६॥

अन्वयः— यस्मिन् रूढेन वैरानुबन्धेन बहवः विबुधेतराः सिद्धिं लेभिरे याम् उ एकान्तयोगिनः ॥६॥

अनुवाद— जिस आपसे सुदृढवैर भाव रखने वाले अनेक असुर उसी सिद्धि को प्राप्त किए जिस सिद्धि का अनन्य भाव से योग करने वाले योगियों को प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

शत्रुत्वं पुनर्भक्तानिवास्माननुग्रहीतुमेवेत्याह-यस्मिन्निति । उ अहो । ह प्रसिद्धम् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

आपका शत्रुत्व तो हमलोगों को भक्तों के समान अनुगृहीत करने के लिए है । इस बात को **यस्मिन् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । अर्थात् अहो । ह प्रसिद्ध का वाचक है ॥६॥

तेनाहं निगृहीतोऽस्मि भवता भूरि कर्मणा । बद्धश्च वारुणैः पाशैर्नातिव्रीडे न च व्यथे ॥७॥

अन्वयः— भूरि कर्मणा भवता अहं निगृहीतोऽस्मि वारुणैः पाशैश्च बद्धः नातिव्रीड़े न च व्यथे ॥७॥

अनुवाद— अनेक प्रकार की लीलाओं को करने वाले आपके द्वारा मैं निगृहीत होकर वरुण पाश से बँधा हुआ हूँ, इससे न तो मुझको अधिक लज्जा हो रही है और न तो मुझको कष्ट ही हो रहा है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अतो नात्र मम लज्जा नापि दुःखमित्याह-तेन गुरुणा भवता ॥७॥

भाव प्रकाशिका

आप हमारे गुरु है, अतएव मुझको न तो लज्जा ही है और न दुःख इस तरह से बलि ने वामन भगवान् से कहा ॥७॥

पितामहो मे भवदीयसंमतः प्रह्लाद आविष्कृतसाधुवादः ।
भवद्विपक्षेण विचित्रवैशसं संप्रापितस्त्वत्परमः स्वपित्रा ॥८॥

अन्वयः— मे पितामहः प्रह्लादः भवदीय सम्मतः अविष्कृतसाधुवाद त्वत्परमः भवद्विपक्षेण स्वपित्रा विचित्र वैशसं संप्रापितः ॥८॥

अनुवाद— मेरे पितामह प्रह्लाद आपके भक्तों में श्रेष्ठ है; उनको आपने साधुवाद प्रदान किया वे आपमें ही परायण हैं । आपके विरोधी तथा मेरे पितामह के पिता ने अत्यधिक कष्ट दिया किन्तु आपके परायण ही बने रहे॥८॥

भावार्थ दीपिका

किंच योऽयं दण्डरूपो ममानुग्रहस्त्वया कृतः स तु त्वद्भक्तपौत्रत्वेन, न त्वहमनुग्रहस्य पात्रमित्याशयेनाह-पितामह इति। भवदीयानां संमतः । यत आविष्कृतः साधुवादो यस्य । त्वमेव परम आश्रयो यस्य सः । अतो भवतो विपक्षेण विद्विषा हिरण्यकशिपुना विचित्रं वैशसं हिंसां संप्रापितोऽपि देहादीनामसारतां निश्चित्य, अकुतोभयं ध्रुवं च भवतः पादपद्मेव प्रपेदे । अथ तस्मादहमपि दैवेन तस्यैव भाग्येन तवान्तिकं नीत इति चतुर्णामन्वयः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

यह दण्ड आपने जो मुझ पर कृपा की है, वह इसलिए कि मैं आपके भक्त प्रह्लादजी का पौत्र होने के कारण। वस्तुतः मैं आपके इस अनुग्रह का पात्र नही था । इसी अभिप्राय से बलि ने **पितामह० इत्यादि** श्लोक को कहा है । भवदीयानां सम्मतः अर्थात् आपके भक्तों के अनुकूल । क्योंकि आपने प्रह्लादजी को साधुवाद प्रदान किया है।

आप ही उनके श्रेष्ठ आश्रय है । अतएव आपके विरोधी हिरण्यकशिपु ने यद्यपि उनको तरह-तरह के कष्ट दिया किन्तु वे शरीर की असारता का निश्चय करके निर्भय आपके चरणों की शरणागति किए । अतएव उनके ही भाग्य से मैंने भी आपके सन्निध्य को प्राप्त किया इस तरह से चार श्लोक का एक साथ अन्वय है ।।८।।

किमात्मनाऽनेन जहाति योऽन्ततः किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ।
किं जायया संसृतिहेतुभूतया मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ।।९।।

अन्वयः— यः अनन्तः जहाति, अनेन आत्मना किम् रिक्थहारैः स्वजनाख्य दस्युभिः किम्, संसृतिहेतुभूतया जायया किम् मर्त्यस्य गेहैः किम् इहायुषः व्ययः ।।९।।

अनुवाद— उस शरीर को लेकर वथा करना है जब कि इसे एक दिन अन्त में छोड़ ही देना है । धन सम्पत्ति को लूटने वाले स्वजन शब्द कहे जाने वाले बन्धु बान्धव नामक डाकुओं से क्या मतलब है, उस स्त्री से क्या लाभ है जब कि वह इस संसार चक्र में डालने वाली तथा जब मर ही जाना है तो घर से क्या मोह करना है । इन सबों में तो व्यर्थ में अपनी आयु को ही गँवाना है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

अन्तत आयुषोऽन्ते । रिक्थहारैः पुत्रैः । इह गेहेषु केवलमायुषो व्यय एव नतु सुखं किंचित् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

अन्ततः अर्थात् आयु के अन्त में रिक्थै अर्थात् पुत्रों से । इन गृह आदि में उलझे रहना तो केवल आयु को ही व्यर्थ में विताना हैं इसमें बिल्कुल सुख नहीं है ।।९।।

इत्थं स निश्चित्य पितामहो महानगाधबोधो भवतः पादपद्मम् ।
ध्रुवं प्रपेदे ह्यकुतोभयं जनाद्भीतः स्वपक्षक्षपणस्य सत्तमः ।।१०।।

अन्वयः— इत्थं निश्चित्य अगाध बोधः मे महान् सत्तमः पितामहः जनाद्भीत स्वपक्षक्षपणस्य भवतः हि अकुतोभयं ध्रुवां भवतः पादपद्मम् प्रपैद ।।१०।।

अनुवाद— इस तरह से निश्चय करके अगध ज्ञान सम्पन्न महान् तथा सत्त्विकों में श्रेष्ठ मेरे पितामह श्रीप्रह्लादजी इस संसार से भयभीत होकर दैत्य वंश का विनाश करने वाले आपके सभी प्रकार के भयों से रहित तथा ध्रुव आपके ही चरण कमलों की शरणागति किए ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

स प्रसिद्धो महान् । स्वपक्षं दैत्यकुलं क्षपयतीति तस्यापि ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

सः वे प्रसिद्ध तथा महान् मेरे पितामह । स्वपक्षक्षपणस्य दैत्यकुलविनाशक आपके ।।१०।।

अथाहमप्यात्मरिपोस्तवान्तिकं दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः ।
इदं कृतान्तान्तिकवर्ति जीवितं ययाऽध्रुवं स्तब्धमतिर्न बुध्यते ।।११।।

अन्वयः— अथ अहम् अपि आत्मरिपो तव अन्किम् त्याजितश्रीः दैवेन प्रसभं नीतः यया स्तब्धमतिः कृतान्तान्तिकवर्ति इदं जीवितं न बुध्यो ।।११।।

अनुवाद— अब मैं भी उस दृष्टि से अपने शत्रु आपके चरणों के सन्निकट ऐश्वर्य लक्ष्मी से रहित बन कर उस दैव के द्वारा बलात् पहुँचा दिया गया हूँ । वह ऐश्वर्य लक्ष्मी ऐसी है कि उसके कारण अज्ञानी बना हुआ यह जीव अपने जीवन को काल के पंजें में पड़ हुआ नहीं जानता है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

प्रसभं बलात्त्याजिता श्रीर्यस्य । यया श्रिया स्तब्धमतिः सन्मुमानिदं जीवितमध्रुवं न बुध्यते । कथंभूतम् । कृतान्तस्मान्तिकवर्ति मृत्योः संनिहितम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

बलपूर्वक लक्ष्मी को मुझसे अलग कराकर यह वही ऐश्वर्य लक्ष्मी है जिनके कारण जड़ बना हुआ पुरुष इस जीवन को अनित्य नहीं समझता है । यह जीवन काल के सन्निकटवर्ती नहीं समझता है ॥११॥

श्रीशुक उवाच

तस्येत्थं भाषमाणस्य प्रह्लादो भगवत्प्रियः । आजगाम कुरुश्रेष्ठ राकापतिरिवोत्थितः ॥१२॥

अन्वयः— हे कुरूश्रेष्ठ ! इत्थं भाषमाणस्य तस्य उदितः राकापतिः इव प्रह्लादः भगवत्प्रियः आजगाम ॥१२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे परीक्षित् ! जिस समय राजा बलि इस तरह कह रहे थे उसी समय उदित हुए चन्द्रमा के समान श्रीभगवान् के प्रिय भक्त प्रह्लादजी वहाँ आ गये ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

राकापतिः पूर्णेन्दुः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

राकापतिः अर्थात् पूर्ण चन्द्रमा ॥१२॥

तमिन्द्रसेनः स्वपितामहं श्रिया विराजमानं नलिनायतेक्षणम् ।
प्रांशुं पिशङ्गाम्बरमञ्जनत्विषं प्रलम्बबाहुं सुभगं समैक्षत ॥१३॥

अन्वयः— इन्द्रसेनः तम् श्रियाविराजमानम् नलिनायतेक्षणम् प्रांशुं, पिशङ्गाम्बरम् अञ्जनत्विषं प्रलम्बबाहुः सुभगं स्वपितामहं समैक्षत ॥१३॥

अनुवाद— राजा बलि ने उन श्रीसम्पन्न कमल के समान मनोहर नेत्र वाले लम्बे शरीर वाले, पीताम्बर धारण किए हुए अञ्जन के समान कान्ति वाले लम्बी भुजाओं वाले तथा देखने में सुन्दर अपने पितामह प्रह्लादजी को देखा ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अञ्जनत्विषं श्यामम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

अञ्जनत्विषम् अर्थात् श्यामवर्ण वाले ॥१३॥

तस्मै बलिर्वारुणपाशयन्त्रितः समर्हणं नोपजहार पूर्ववत् ।
ननाम मूर्ध्नाश्रुविलोललोचनः सव्रीडनीचीनमुखो बभूव ह ॥१४॥

अन्वयः— वारुणपाशयन्त्रितः बलिः तस्मै पूर्ववत् समर्हणं नोपजहार अश्रुविलोललोचनः मूर्ध्ना ननाम सव्रीडनीचीन मुखः बभूव ह ॥१४॥

अनुवाद— वरुण पाश में बँधे हुए पहले के समान उनके पूजा के उपहार नहीं ला सके, आसू भरे नेत्रों वाले वे सिर झुकाकर प्रह्लादजी को प्रणाम किए और लज्जा के कारण अपना मुख नीचे कर लिए ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

स्वकृताहंकारादिरूपापराधस्मरणेन सव्रीडं नीचीनमधोमुखं यस्य सः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अपने द्वारा किए गये अहङ्कार रूप अपराध के कारण लज्जा से अपना मुख नीचे कर लिए ॥१४॥

स तत्र हासीनमुदीक्ष्य सत्पतिं सुनन्दनन्दाद्यनुगैरुपासितम् ।
उपेत्य भूमौ शिरसा महामना ननाम मूर्ध्ना पुलकाश्रुविक्लवः ॥१५॥

अन्वयः— तत्र ह आसीनम् सुनन्दनन्दाद्यनुगैरुपासितम् सत्पतिम् उदीक्ष्य स महामनाः पुलकाश्रुविक्लवः स शिरसा नमन्नेव उपेत्य भूमौमूर्ध्ना ननाम ॥१५॥

अनुवाद— वहाँ पर विद्यमान तथा सुनन्द नन्द आदि अनुचरों से सेवित सत्पुरुषों के स्वामी श्रीभगवान् को देखे और उनके शरीर में रोमाञ्च हो गया आँखों में आनन्दाश्रु भर गया, ऐसे महामनस्वी प्रह्लाद सिर झुकाये हुए श्रीभगवान् के सन्निट में आकर उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किए ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

शिरसा नमन्नेवोपेत्य मूर्ध्ना ननाम । बलेस्तत्कृतमनुग्रहं दृष्ट्वा पुलकैरश्रुभिश्च विक्लवो विह्वलः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

सिर झुकाये हुए सन्निकट में आकर साष्टाङ्ग प्रणाम किए और श्रीभगवान् के द्वारा बलि पर किए गये अनुग्रह को देखकर रोमाञ्च और आँसुओं से वे विह्वल हो गये ॥१५॥

प्रह्लाद उवाच

त्वयैव दत्तं पदमैन्द्रमूर्जितं हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम् ।
मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो विभ्रंशितो यच्छ्रिय आत्ममोहनात् ॥१६॥

अन्वयः— त्वयैव उर्जितम् ऐन्द्रं दत्तम् तदेव अद्य हृतम् तथैव शोभनम् मन्ये । यत् आत्ममोहना श्रियः बिभ्रंशितः अस्य महान् अनुगृह कृतः मन्ये ॥१६॥

प्रह्लादजी ने कहा

अनुवाद— प्रभो ! आपने ही बलि को ऐश्वर्य पूर्ण पद प्रदान किया था, अब आज आपने ही उससे छिन लिया । आपका यह कार्य भी मैं वैसा ही सुन्दर मानता हूँ । आत्मा को मोहित करने वाली राज्य लक्ष्मी से अलग करके आपने इस पर कृपा ही किया है यह मैं मानता हूँ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

त्वयैवेति । नह्यैन्द्रं पदमेतदीयं त्वयापहृतं, किंतु स्वीयमेव पुनः स्वीकृतं, तच्च शोभनमेव कृतम् । तत्र हेतुः-मन्य इति। यद्यस्माच्छ्रीरेव यदात्ममोहनं तस्माद्विभ्रंशितः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

आपने इसके इन्द्र पद को नहीं छिना है, अपि अपनी ही वस्तु को आपने ले ली है । **मन्ये० इत्यादि** से उसका कारण बतलाते है । ऐश्वर्य से ही जीव अपने स्वरूप को भूल जाता है । इसीलिए आपने इसको राज्य लक्ष्मी से अलग कर दिया है ॥१६॥

यया हि विद्वानपि मुह्यते यतस्तत्को विचष्टे गतिमात्मनो यथा ।
तस्मै नमस्ते जगदीश्वराय वै नारायणायाखिललोकसाक्षिणे ॥१७॥

अन्वयः— यया हि यतः विद्वानपि मुह्यते तत् कः आत्मनः गतिं यथा विचष्टे तस्मै वै अखिलसाक्षिणे नारायणाय जगदीश्वराय तस्मै नमस्ते ।

अनुवाद— जिस राज्य लक्ष्मी के द्वारा संयमी भी विद्वान मोहित हो जाते है । उस राज्य लक्ष्मी के रहते कौन अपने स्वरूप को ठीक-ठीक समझ सकता है ? उस लक्ष्मी को छिनकर महान् उपकार करने वाले सम्पूर्ण जगत् के साक्षी तथा सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् नारायण आपको मेरा नमस्कार है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

मोहनत्वमेवाह-यया श्रिया विद्वानपि यतः संयतोऽपि मुह्यति तत्तस्यां सत्यां कोऽन्यः पुमानात्मनो गतिं तत्त्वं यथावद्विचष्टे पश्यति । तस्मै महाकारुणिकाय ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

राज्य लक्ष्मी द्वारा किए जाने वाले मोहन कर्म को बतलाते है । जिस राज्य लक्ष्मी के द्वारा ज्ञानी विद्वान् भी मोह मे पड़ जाते हैं और आपने आत्म तत्त्व को ठीक से नहीं समझ पाते है, उस राज्य लक्ष्मी को छिनकर महान् उपकार करने वाले महाकारुणिक आपको नमस्कार है ॥१७॥

श्रीशुक उवाच

तस्यानुशृण्वतो राजन्प्रह्लादस्य कृताञ्जलेः । हिरण्यगर्भो भगवानुवाच मधुसूदनम् ॥१८॥

अन्वयः— हे राजन् तस्य प्रह्लादस्य अनुशृण्वतः कृताञ्जलेः भगवान् हिरण्यगर्भः मधुसूदनम् उवाच ॥१८॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे परीक्षित् हाथ जोड़े हुए प्रह्लादजी के सामने ब्रह्माजी ने भगवान् मधुसूदन से कहा ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

तस्य प्रह्लादस्यानुशृण्वत उवाचेति । किंचिद्वक्तुं प्रवृत्त इत्यर्थः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

प्रह्लादजी के सामने ही ब्रह्माजी कुछ कहना चाहे ॥१८॥

बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत्पत्नी भयविह्वला । प्राञ्जलिः प्रणतोपेन्द्रं बभाषेऽवाङ्मुखी नृप ॥१९॥

अन्वयः— हे नृप ! पतिं बद्धं वीक्ष्य भयविह्वला साध्वी तत्पनी प्रणता बद्धाञ्जलिः अवाङ्मुखी उपेन्द्रं बभाषे ॥१९॥

अनुवाद— हे राजन् ! अपने पति को बन्धा हुआ देखकर भयभीत बलि की पत्नी श्रीभगवान को प्रणाम करके तथा हाथ जोड़कर उनसे कही ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तदैव विन्ध्यावलिरपि वक्तुं प्रवृत्ता, तां च संमानयन् हिरण्यगर्भः क्षणं तूष्णीं स्थितः, अतस्तस्या एव वाक्यं प्रथममवतारयति बद्धं वीक्ष्येति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

उसी समय विन्ध्यावलि भी कहना प्रारम्भ की । उसका संमान करते हुए ब्रह्माजी क्षणभर के लिए चुप हो गये । इसीलिए शुकदेवजी उसकी वाणी को पहले **वद्धं वीक्ष्य० इत्यादि** श्लोक से उपन्यस्त करते हैं ॥१९॥

विन्ध्यावलिरुवाच

क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः।
कर्तुः प्रभोस्तव किमस्यत आवहन्ति त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥२०॥

अन्वयः— हे ईश ! ते क्रीडार्थम् इदं त्रिजगत् कृतम् तत्र कुधियः अपरे स्वाम्यं कुर्युः हे प्रभो ! कर्तुः अस्यतः तव त्यक्त धि त्वद् अवरोपित कर्तृवादाः किम् आवहन्ति ।।२०।।

विन्ध्याबलि ने कहा

अनुवाद— प्रभो आपने अपनी क्रीडा के लिए इस त्रैलोक्य की रचना की है आप ही इस जगत् के कर्ता, पालक और संहर्ता भी है । वे लोग तो अज्ञानी हैं जो अपने को ही इसका स्वामी मान लेते हैं । आपकी माया से मोहित होकर निर्लज्ज हमलोग आपको क्या समर्पित करेंगे ?।।२०।।

भावार्थ दीपिका

त्रिजगतः कर्तुः प्रभोः पालकस्यास्यतः संहर्तुश्चेश्वरस्य तवान्ये किमावहन्ति किं समर्पयन्ति । त्वयावरोपितः कर्तृवादः कर्तारः स्वतन्त्रा वयमिति वादमात्रमपि येषां ते । अयं भावः-लोकत्रयं मयार्पितं तृतीयपादाय देहं समर्प्य प्रतिश्रुतमृतं करोमीति देहादिषु स्वाम्याविष्कारेण ब्रुवन्नयं कुबुद्धिर्निर्लज्जश्च, यतस्त्वमेव सर्वस्यापि स्वामी, अतो मन्दबुद्धिमेनं केवलं कृपया विमुच्य पालयेति ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

त्रलोक्य के कर्ता पालन तथा संहार करने वाले आपको दूसरे लोग क्या समर्पित कर सकते है । आपके ही द्वारा प्रदत ही कर्तृवाद को लेकर दूसरे लोग अपने को कर्ता और स्वतंत्र मानने लगते हैं । कहने का अभिप्राय है कि मैंने त्रैलोक्य तो प्रदान कर दिया अब अपने शरीर को भी समर्पित करके अपनी प्रतिज्ञा मैं सत्य कर देता हूँ इस तरह अपने शरीर स्वामी अपने को मानने वाले ये कुबुद्धि और निर्लज्ज हैं । क्योंकि सबकुछ के स्वामी तो आप हैं । अतएव मन्दबुद्धि इनका कृपा पूर्वक आप पालन करें ।।२०।।

ब्रह्मोवाच

भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय । मुञ्चैनं हृतसर्वस्वं नायमर्हति निग्रहम् ॥२१॥

अन्वयः— हे भूतभावन् भूतेश देवदेव जगन्मय हृतसर्वस्वम् एनं मुञ्च अयम् निग्रहम् न अर्हति ।।२१।।

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— हे समस्त प्राणियों को जीवन प्रदान करने वाले हे सम्पूर्ण प्राणियों के स्वामिन् देवाधिदेव जगत्स्वरूप आपने इसका सबकुछ ले लिया अब आप इसको छोड़ दीजिये यह आपके निग्रह का पात्र नहीं है।।२१।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं प्रह्लादस्य विन्ध्यावलेश्च परमार्थोक्त्या प्रसन्नो हरिः, ब्रह्मा तु लोकदृष्ट्यैव विज्ञापयति भूतभावनेति त्रिभिः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह प्रह्लादजी और विन्धयावलि के परमार्थ युक्त वाणी से श्रीहरि प्रसन्न हो गये । बह्माजी ने तो लोक दृष्टि से हे **भूतभावन इत्यादि** तीन श्लोकों से श्रीभगवान् से कहा ।।२१।।

कृत्स्ना तेऽनेन दत्ता भूर्लोकाः कर्मार्जिताश्च ये । निवेदितं च सर्वस्वमात्माऽविक्लवया धिया ॥२२॥

अन्वयः— अनेन कृत्स्ना भूः कमार्जिताः लोकाः दत्ताः अविक्लवया धिया आत्मा सर्वस्वं च निवेदितम् ।।२२।।

अनुवाद— इसने अपनी सम्पूर्ण पृथिवी सम्पूर्ण कर्मार्जित लोकों तथा अपने शरीर को भी धैर्य पूर्वक समर्पित कर दिया है, यह धैर्यच्युत नहीं हुआ है ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

निग्रहानर्हत्वे हेतुः-कृत्स्नेति । सर्वस्वमेवाह-आत्मेति ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

निग्रह का पात्र न होने का कारण **कृत्स्ना इत्यादि** श्लोक से ब्रह्माजी ने बतलया है । आत्मा पद से ब्रह्माजी ने सर्वस्व को ही कहा है ।।२२।।

यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय दूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् ।
अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत् ।।२३।।

अन्वयः— यत् पादयोः अशठधीः अयं सलिलं प्रदाय दुर्वाङ्कुरैः अपि सतीं सपर्याम् विधाय अपि उत्तमां गतिं भजते असौ अविक्लवमनाः त्रिलोकीं दाश्वान् कथम् आर्तिमृच्छेत् ।।२३।।

अनुवाद— आपके जिन चरणों पर सच्चे मन से जल का अर्ध्य देकर कोई भी उत्तम गति को प्राप्त कर लेता है और इसने तो प्रसन्नता पूर्वक आपको त्रैलोक्य प्रदान किया है फिर यह दुःख का भागी कैसे हो सकता है ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

तदेव कैमुत्यन्यायेनाह- यस्य तव पादयोः सलिलमात्रमपि प्रदाय सर्वोऽपि जन उत्तमां गतिं प्राप्नोति, तस्मै तुभ्यमसौ बलिस्त्रिलोकीं दाश्वान्दत्तवान्स आर्तिं कथं प्राप्नुयात् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बात को ही कैमुत्यन्याय से कहते हैं आपके जिन चरणों पर जल मात्र चढ़ाकर उत्तम गति प्राप्त कर लेता है और इस बलि ने तो आपको त्रिलोकी प्रदान किया है फिर यह दुःख का भागी कैसे हो सकता है ?।।२३।।

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्मन्यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् । यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ।।२४।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् अहम् यम् अनुगृह्णामि तत् विशः विधुनोमि यन्मद स्तब्ध पुरुषः लोकम् माम् च अवमन्यते।।२४।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! मैं जिसको अनुगृहीत करता हूँ उसका धन छिन लेता हूँ । उस धन के ही मद से मदमत्त बना हुआ पुरुष मेरा और लोगों का तिरस्कार करता है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

तस्य विशोऽर्थान् । नन्वर्थापहारः कोऽयमनुग्रहस्तत्राह-यन्मदः यैरर्थैर्मदो यस्य सः । अतएव स्तब्धोऽनम्रः सन् । मदस्तम्भहेतूनामर्थानामपहार एवानुग्रह इत्यर्थः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

विशः अर्थात् धन प्रश्न है कि धन को छिन लेना कौन सा अनुग्रह है ? इस पर कहते हैं उस धन के ही मद से मत्त बना हुआ पुरुष मेरा और लोगों का तिरस्कार करता है । अतएव यह अनुग्रह ही है ।।२४।।

यदा कदाचिज्जीवात्मा संसरन्निजकर्मभिः । नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत् ॥२५॥

अन्वयः— अयं जीवात्मा अनीशः निजकर्मभिः नानायोनिषु संसरन् यदा कदाचित् पौरुषीं गतिम् आव्रजेत् ॥२५॥

अनुवाद— यह जीवात्मा कर्म परतंत्र होकर अपने कर्मों के अनुसार अनेक योनियों में संसरण करता हुआ जब कभी मनुष्य जन्म को प्राप्त करता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

दुर्लभं पुरुषजन्म कथंचिल्लब्धवतो जीवस्य जन्मादिनिमित्तो गर्वो महाहानिकरः, तस्य च नाशे मदनुग्रहादेयेत्याह- यदेति द्वाभ्याम् । अनीशः परतन्त्रः सन्निजैः कर्मभिर्नानायोनिषु कृमिकीटकादिषु संसरन् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

मनुष्य का जन्म प्राप्त करना बड़ा ही कठिन है । जीव जब कभी इस मनुष्य जन्म को प्राप्त करता है तो जन्मादि के कारण होने वाला गर्व अत्यन्त हानिकारक होता है । उसको नष्ट कर देना मेरी कृपा ही है इस बात **यदा० इत्यादि** दो श्लोकों से कहते हैं । जीव अपने कर्मों के परतन्त्र है । उसके कारण वह कृमि तथा कीट आदि अनेक योनियों में संसरण करता है ॥२५॥

जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः । यद्यस्य न भवेत्स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥२६॥

अन्वयः— जन्म कर्म चयो रूप विद्यैश्वर्यधनादिभिः यदि अस्य स्तम्भः न भवेत् तत्र अयं मे अनुग्रहः ॥२६॥

अनुवाद— मनुष्य योनि में जन्म लेकर भी जन्म कर्म, अवस्था, रूप विद्या, ऐश्वर्य तथा धन आदि के कारण मनुष्य को यदि गर्व न हो तो यह मेरा अनुग्रह ही समझो ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तत्र पौरुष्यां गतौ जन्मादिभिरपि यस्य यदि स्तम्भो न भवेत्तर्ह्ययं मदनुग्रह एव ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

उसमें मनुष्य योनि में भी यदि जीव को धनादि के कारण गर्व न हो तो उस पर मेरा अनुग्रह ही जानो॥२६॥

मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः । सर्वश्रेयः प्रतीपानां हन्त मुह्येन्न मत्परः ॥२७॥

अन्वयः— सर्वश्रेयः प्रतीपानाम् मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः मत्परः न मुह्येत् ॥२७॥

अनुवाद— होने वाले सभी प्रकार के कल्याणों के विरोधी हैं मानापरपर्यायभूत गर्व जन्मादि किन्तु जो मेरा भक्त होता है, वह इन सबों से मोहित नहीं होता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

कथं तर्हि ध्रुवादिभ्योऽर्थसंपदो ददासीति चेत्तत्राह-मानएव स्तम्भोऽनम्रता तस्य निमित्तभूतानां समन्ततः सर्वशः सर्वश्रेयःप्रतिकूलानां जन्मादीनां सत्त्वेऽपि जन्मादिभिरिति वा । हन्तेति खेदे । हे ब्रह्मन्, मत्परो न मुह्येत् । अतो भक्तस्येच्छया संपदोऽपि ददामि । अभक्तस्तु मुह्येदिति तदपहाररूपमेव तस्यानुग्रहं करोमीति भावः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि तो फिर ध्रुव आदि को आपने धन संपत्ति क्यों दिया । इस पर श्रीभगवान् कहते हैं । मानरूप अनम्रता के पूर्णरूप से कारण तथा सभी प्रकार के कल्याणों के विरोधी जन्म आदि के रहने पर भी हे ब्रह्मन् जो मेरा भक्त होता है वह उन सबों से मोहित नहीं होता है । अतएव भक्त की इच्छा होने पर सम्पत्ति भी देता हूँ । किन्तु जो अभक्त होता है वह मोहित हो जाता है तब मैं उससे धन आदि को छिनकर उस पर कृपा करता हूँ ॥२७॥

एष दानवदैत्यानामग्रणीः कीर्तिवर्धनः । अजैषीदजयां मायां सीदन्नपि न मुह्यति ॥२८॥

अन्वयः— एषः दानवदैत्यानामग्रणीः कीर्तिवर्धनः अजयां मायाम् अजैषीत् सीदन् अपि न मुह्यति ॥२८॥

अनुवाद— यह बलि दैत्यों और दानवों में श्रेष्ठ हैं यह उन दोनों वंशों की कीर्ति को बढ़ाने वाला है। जिस माया को कोई जीत नहीं सकता उस माया को इसने जीत लिया है। इतना दुःख होने पर भी यह मोहित नहीं हुआ ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अस्य चेदानीं मत्परत्वादन्यैर्दुष्प्रापमपि दास्यामीति वक्तुं तस्य मोहाभावमाह-एष इति त्रिभिः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

यह इस समय मेरा भक्त है अतएव दूसरें को नहीं प्राप्त होने वाली भी वस्तुको इसे मैं दूँगा इस बात को कहने के लिए भगवान् उसके मोह के अभाव को **एष० इत्यादि** तीन श्लोक से कहते हैं ॥२८॥

क्षीणरिक्थश्च्युतः स्थानात्क्षिप्तो बद्धश्च शत्रुभिः। ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनुयापितः ॥२९॥
गुरुणा भर्त्सितः शप्तो जहौ सत्यं न सुव्रतः । छलैरुक्तो मया धर्मो नायं त्यजति सत्यवाक्॥३०॥

अन्वयः— क्षीणरिक्थः च्युतः स्थानात् क्षिप्तः शत्रुभिः बद्धः च ज्ञातिभिः च परित्यक्तः यातनामनुयापितः, गुरुणा भर्त्सितः शप्तः अयं सुव्रतः सत्यं न जहौ, मया छलैः धर्मः उक्तः अयं सत्यवाक् न त्यजति ॥२९-३०॥

अनुवाद— इसका धन छिन लिया, राजपद से हटा दिया, विभिन्न प्रकार के आक्षेप किए, शत्रुओं ने इस बाँध दिया, इसके बन्धुबान्धव छोड़कर चले गये, इसको इतनी यतना दी गयी, इसके गुरु शुक्राचार्य ने इसको डाँटा और अन्त में उन्होंने इसको शाप भी दे दिया किन्तु इस दृढ़व्रती ने अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ी। अपने मन में छल रखकर इसके धर्मोपदेश किया, किन्तु इस सत्यवादी ने अपना धर्म नहीं छोड़ा ॥२९-३०॥

भावार्थ दीपिका

'न ह्येतस्मिन्कुले कश्चिन्निः सत्त्वः कृपणः पुमान्' इत्यादिना छलैरेव मया धर्म उक्तस्तथापि तं धर्ममयं न त्यजति, अतः सत्यवाक् ॥२९-३०॥

भाव प्रकाशिका

छल पूर्वक इसको उपदेश करते हुए मैंने कहा कि इस वंश में कोई कायर अथवा कृपण नहीं होता फिर भी अपनी प्रतिज्ञा पालन रूप की रक्षा करते हुए उस धर्म का परित्यग नहीं किया अतएव सत्य वक्ता है॥२९-३०॥

एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि । सावर्णेरन्तरस्यायं भवितेन्द्रो मदाश्रयः ॥३१॥

अन्वयः— एष मे अमरैः अपि दुष्प्रापं स्थानं प्रापितः । अयं सावर्णेः अन्तरस्य मदाश्रयः इन्द्रो भविता ॥३१॥

अनुवाद— इसको मैंने देवताओं के भी लिए बड़ी कठिनाई से प्राप्त होने वाला स्थान प्रदान किया है। सावणि मन्वन्तर में यह मेरा भक्त इन्द्र होगा ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

मे मया । अहमेवाश्रयः पालको यस्य सः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

मे अर्थात् मेरे द्वारा । मैं ही इसका पालन करने वाला होऊँगा । **यह महाश्रयः** का अर्थ है ॥३१॥

तावत्सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिर्मितम् । यन्नाधयो व्याधयश्च क्लमस्तन्द्रा पराभवः ॥
नोपसर्गा निवसतां संभवन्ति ममेक्षया ॥३२॥

अन्वयः— तावत् विश्वकर्मविनिर्मितां सुतलमध्यास्ताम् यत् निवसतां ममेक्षया आधयः व्याधयः क्लमः तन्द्रा पराभवः नोपसर्गाः भवन्ति ॥३२॥

अनुवाद— तब तक यह विश्वकर्मा के द्वारा निर्मित सुतल लोक में निवास करे । वहाँ रहने वाले जीवों को मेरी कृपा दृष्टि के कारण आधियाँ व्याधियाँ, थकान, तन्द्रा तथा पराजय नहीं होते हैं और न तो उन सबों को किसी प्रकार का विघ्न ही है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

'स्थानं प्रापितः' इति यदुक्तं तदेव स्थानमाह-तावत्सावर्णिमन्वन्तरपर्यन्तं सुतलमध्यास्ताम् । अधिवसत्वित्यर्थः । यद्यस्मिन्वसतामाध्यादयो ममेक्षया न संभवन्ति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

इसको मैंने स्थान प्रदान किया है यह जो भगवान् कहे हैं उसी स्थान को बतलाते हुए कहते हैं कि यह सावर्णि मन्वन्तर तक सुतल लोक में निवास करे । उस लोक में रहने वालों को मेरी कृपा के कारण आधियाँ आदि नहीं होते हैं ॥३२॥

इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते । सुतलं स्वर्गिभिः प्रार्थ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः ॥३३॥

अन्वयः— हे इन्द्रसेन ! महाराज ते भद्रम् अस्तु ज्ञातिभिः परिवारितः स्वर्गिभिः प्रार्थ्यं सुतलं याहि ॥३३॥

अनुवाद— हे इन्द्र की सेना के समान विशाल सेना वाले महाराज बलि ! आपका कल्याण हो आप अपने बन्धु बान्धवों के साथ जिसे देवता भी प्राप्त करना चाहते हैं उस सुतल लोक में चले जाइये ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

एवं ब्रह्माणं प्रत्युक्त्वा करुणापरवशः साक्षाद्बलिं प्रत्याह- इन्द्रसेनेति चतुर्भिः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से ब्रह्माजी को उत्तर देकर करुणापरवश श्रीभगवान् साक्षात् बलि से इन्द्रसेन इत्यादि चार श्लोकों से कहे ॥३३॥

न त्वामभिभविष्यन्ति लोकेशाः किमुतापरे । त्वच्छासनातिगान्दैत्यांश्चक्रं मे सूदयिष्यति ॥३४॥

अन्वयः— त्वाम् लोकेशः न अभिभविष्यन्ति, अपरे किमुत । त्वच्छासनातिगान् दैत्यान् मे चक्रं सूदयिष्यति ॥३४॥

अनुवाद— तुमको लोकपाल भी नहीं पराजित कर सकते हैं तो दूसरों की कौन बात है ? तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन करने वाले दैत्यों को मेरा चक्र काट डालेगा ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

त्वच्छासनमतिगच्छन्त्यतिवर्तन्त इति तथा तान् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन करने वालों को ॥३४॥

रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम् । सदा संनिहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥३५॥

अन्वयः— हे वीर ! अहं त्वां सानुगं सपरिच्छदम् रक्षिष्ये तत्र भवान् सदा मां संनिहिते द्रक्ष्यते ॥३५॥

अनुवाद— हे वीर ! मैं अनुचरों एवं भोग की सामग्रियों की भी हर प्रकार से रक्षा करूँगा । वहाँ तुम मुझको सदैव अपने पास ही देखोगे ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

तथापि भगवद्वियोगात्तदनिच्छन्तं प्रत्याह-सदेति ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का वियोग होने के कारण सुतल लोक को नहीं चाहने वाले बलि से भगवान् ने **सदा० इत्यादि** श्लोक कहा ॥३५॥

तत्र दानवदैत्यानां सङ्गात्ते भाव आसुरः । दृष्ट्वा मदनुभावं वै सद्यः कुण्ठो विनङ्क्ष्यति ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे बलिवामनसंवादोनाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अन्वयः— तत्र दानवदैत्यानां सङ्गात् ते आसुरः भावः मदनुभावं दृष्ट्वा वै सद्यः कुण्ठो विनङ्क्ष्यति ॥३६॥

अनुवाद— दानवों एवं दैत्यों के संसर्ग से तुम्हारा जो कुछ आसु भाव होगा वह मेरे प्रभाव को देखकर शीघ्र ही दब जायेगा ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के बलिवामनसंवाद नामक बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

सङ्गात् य आसुरो भावः स विनङ्क्ष्यति ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टम स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

सङ्ग के कारण उत्पन्न आसुरभाव विनष्ट हो जायेगा ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के बाइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२२।।

तेइसवाँ अध्याय

बलि का सुतल लोक जाना

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तवन्तं पुरुषं पुरातनं महानुभावोऽखिलसाधुसंमतः ।
बद्धाञ्जलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो भक्त्युद्गलो गद्‌गदया गिराऽब्रवीत् ॥१॥

अन्वयः— इति उक्तवन्तं पुरातनं पुरुषं महानुभावः अखिलसाधु सम्मतः वाष्पकलाऽकुलेक्षणः भक्त्युद्‌गलः बद्धाञ्जलिः वाष्पगद्गदया गिरा अब्रवीत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवान् के द्वारा कहे जाने के पश्चात् सनातन पुरुष परमात्मा को सम्पूर्ण साधु पुरुषों द्वारा समादृत महानुभाव महाराज बलि की आँखों में प्रेमाश्रु भर गये और भक्ति के कारण उनका गला रूँध गया वे अपनी गद्गद वाणी से श्रीभगवान् से कहे ।।१।।

भावार्थ दीपिका

त्रयोविंशे बलौ याते सुतलं सपितामहे । उपेन्द्रेण दिवं गत्वा पूर्ववन्मोदते हरिः । वाष्पस्य कलाभिर्बिन्दुभिराकुले ईक्षणे यस्य । भक्त्या उद्गलद उत्कण्ठः।।१।।

भाव प्रकाशिका

तेइसवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि जब राजा बलि अपने पितामह प्रह्लादजी के साथ सुतल लोक में चले गये उसके पश्चात् भगवान् वामन के साथ स्वर्ग लोक में जाकर इन्द्र पहले के ही समान सुशोभित हुए । वाष्पकला कुलेक्षणः अर्थात् जिनके नेत्रों में प्रेमाश्रु भर गये थे भक्त्युद्गालः अर्थात् भक्ति के कारण उत्कण्ठित।।१।।

बलिरुवाच

अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः प्रपन्नभक्तार्थविधौ समाहितः ।
यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहोऽमरैरलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेर्पितः ।।२।।

अन्वयः— अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः प्रपन्न भक्तार्थ विधौ समाहितः लोकपालै; अमरैः यत् त्वदनुग्रहः अलब्धपूर्वः अपसदे असुरे अर्पितः ।।२।।

बलि ने कहा

अनुवाद— आपको प्रणाम करने की महिमा धन्य है, जिस प्रणाम करने की मैंने चेष्टा मात्र की थी और उसी से आपने मुझे उस फल को प्रदान कर दिया जो आपके शरणागत भक्तों को प्राप्त होता है । लोकपालों और देवताओं पर आपने जो कृपा कभी नहीं की वह मुझ जैसे नीच असुर को आपने प्रदान कर दिया ।।२।।

भावार्थ दीपिका

अहो त्वत्प्रणाममहिमा, यदर्थं कृतः समुद्यम एव प्रपन्नानां भक्तानां योऽर्थस्तस्य विधावभक्तेऽपि तस्य संपादने समाहितोऽप्रमत्तः स्थितः । कुतः । यद्येनोद्यमेन लोकपालैरमरैः सत्त्वप्रधानैरप्यलब्धपूर्वस्त्वदनुग्रहोपसदे नीचे राजसे मय्यर्पितः । अयं भावः- परमेश्वराय तुभ्यमहं वराकस्त्रिलोकीं दत्त्वानित्येतदास्ताम्, प्रणामोऽपि न सम्यक्कृतः । किंतु तदर्थमुद्यममात्रं कृतं, तेन च कर्मतपोदानादिकोटिभिरप्यलभ्यस्त्वदनुग्रहः संपादितः अहो त्वत्प्रणामप्रभावाश्चर्यमिति ।।२।।

भाव प्रकाशिका

धन्य है आपको प्रणाम करने की महिमा, जिस प्रणाम को करने के लिए मैने केवल चेष्टा की थी उसके कारण शरणागत भक्तों को जो फल प्राप्त होना चाहिए उसको भक्ति विहिन भी मुझको आपने दे दिया । क्योंकि जिस प्रयास से सात्त्विक देवताओं के भी द्वारा कभी प्राप्त न हुई कृपा को नीच रजोगुणी मुझ असुर को भी आपने प्रदान कर दी । कहने के अभिप्राय है कि आप परमेश्वर हैं । आपको मैने तो तुच्छ त्रिलोकी प्रदान की यह तो दूसरी बात है मैंने अच्छी तरह से आपको प्रणाम भी नहीं किया । उसके लिए मैंने केवल प्रयास मात्र किया था। और उसी के द्वारा करोड़ो कर्म तपस्या दान आदि के द्वारा जिसे नहीं प्राप्त किया जा सकता है आपके उस अनुग्रह को मैंने प्राप्त कर लिया । आश्चर्यमय है आपको प्रणाम करने की महिमा ।।२।।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वा हरिमानम्य ब्रह्माणं सभवं ततः । विवेशं सुतलं प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरैः ॥३॥

अन्वयः— इति उक्त्वा हरिम् सभवं ब्रह्माणं आनम्य ततः मुक्तः असुरैः सह प्रीतः सुतलं विवेश ॥३॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से कहकर श्रीहरि ब्रह्माजी तथा शङ्करजी को प्रणाम करके बलि बन्धन से मुक्त होकर असुरों के साथ प्रसन्नता पूर्वक सुतल लोक में चले गये ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

एवमिन्द्राय भगवान्प्रत्यानीय त्रिविष्टपम् । पूरयित्वाऽदितेः काममशासत्सकलं जगत् ॥४॥

अन्वयः— एवम् भगवान् इन्द्राय त्रिविष्टपम् प्रत्यानीय अदितेः कामम् पूरयित्वा सकलं जगत् अशासत् ॥४॥

अनुवाद— इस प्रकार से श्रीभगवान् इन्द्र के लिए स्वर्ग लोक को बलि से लौटाकर अदिति की कामना को पूरा करके सम्पूर्ण जगत् का प्रशासन किए ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अशासदुपेन्द्रः सन् पालयायास ॥४॥

भाव प्रकाशिका

उपेन्द्र बनकर पालन किए यह अशासत् पद का अर्थ है ॥४॥

लब्धप्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिम् । निशाम्य भक्तिप्रवणः प्रह्लाद इदमब्रवीत् ॥५॥

अन्वयः— प्रह्लादः लब्ध प्रसादं निर्मुक्तं वंशधरं पौत्रं बलिम् निशाम्य भक्ति प्रवणः इदम अब्रवीत् ॥५॥

अनुवाद— प्रह्लादजी श्रीभगवान् की कृपा प्राप्त, बन्धन से मुक्त हुए अपने वंश वर्धक पौत्र बलि को देखकर भक्ति से भर गये और श्रीभगवान् की इस तरह से स्तुति किए ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

प्रह्लाद उवाच

नेमं विरिञ्चो लभते प्रसादं न श्रीर्न शर्वः किमुतापरे ते ।
यन्नोऽसुराणामसि दुर्गपालो विश्वाभिवन्द्यैरपि वन्दिताङ्घ्रिः ॥६॥

अन्वयः— ते इमं प्रसादं विरिञ्चः न श्रीः न शर्वः न लभते अपरे किमुत विश्वाभिवन्द्यैः अपि वन्दिताङ्घ्रिः यतः न असुराणां दुर्गपालःअसि ॥६॥

प्रह्लादजी ने कहा

अनुवाद— प्रभो आप की इस कृपा को न तो ब्रह्माजी, न लक्ष्मीजी और न शङ्करजी प्राप्त किए हैं । विश्ववन्द्यदेवता आपके चरणों की वन्दना करते हैं किन्तु आप हम असुरों के दुर्गपाल बन गये ॥६॥

भावार्थ दीपिका

दुर्गपालोऽसि, 'रक्षिष्ये सर्वतोऽहं त्वाम्' इत्युक्तत्वात् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् बलि को कह चुके है कि मैं तुम्हारी हर प्रकार से रक्षा करूँगा, इसीलिए प्रह्लादजी भगवान् को दुर्गपाल कहते हैं ॥६॥

यत्पादपद्ममकरन्दनिषेवणेन ब्रह्मादयः शरणदाश्नुवते विभूतीः ।
कस्माद्वयं कुसृतयः खलयोनयस्ते दाक्षिण्यदृष्टिपदवीं भवतः प्रणीताः ॥७॥

अन्वयः— यत्पादपद्ममकरन्दनिषेवणेन ब्रह्मादयः शरणादाः श्नुवते विभूतीः वयं कुसृतयः खलयोनयः तेभवतः दक्षिण्यदृष्टि पदवीं कस्मात् प्रणीताः ॥७॥

अनुवाद— हे शरणागत वत्सल प्रभो ! ब्रह्मा आदि लोकपाल आपके चरण कमलों का मकरन्द रस सेवन करने के कारण सृष्टि रचना की शक्ति आदि प्राप्त करते हैं । हमलोग तो जन्म से ही खल और कुमार्गगामी हैं। हम पर आपकी ऐसी अनुग्रहमयी दृष्टि कैसे हुई जिसके कारण आप हमारे द्वारपाल बन गये ॥७॥

भावार्थ दीपिका

हे शरणदाश्रयप्रद, ये कुसृतयो दुर्वृत्ता; खलयोनय उग्रजातयश्च ते वयं तस्य भवतो दाक्षिण्यदृष्टेः पदवीं कस्माद्धेतोः प्रणीताः । बहुमानेन चित्तानुवर्तनं दाक्षिण्यं तेन या दृष्टिस्तद्विषयतां प्रापिताः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

हे आश्रय प्रदान करने वाले प्रभो ! हमलोग तो दुर्वत्त तथा उग्रजाति के जीव हैं । ऐसे हमलोगों का आप अपनी दाक्षिण्य दृष्टि का विषय कैसे बना लिया । बहुमान पूर्वक चित्त का अनुवर्तन करना ही दाक्षिण्य कहलाता है । उस प्रकार की दृष्टि का विषय आपने कैसे बना लिया ॥७॥

चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमायालीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य ।
सर्वात्मनः समदृशो विषमस्वभावो भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः ॥८॥

अन्वयः— अमितयोगमायालीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य सर्वात्मनः समदृशः कल्पतरुस्वभावः यत् भक्तप्रियोऽसि, अहो तवेहितम् चित्रम् ॥८॥

अनुवाद— अपरिमित योगमाया की लीला से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले, सर्वज्ञ, तथा सबों की आत्मा आप सबों के प्रति समदर्शी है । आपका स्वभाव कल्पतरु के समान है चूकि आप भक्त प्रिय हैं, अतएव आपका स्वभाव कभी विषम भी होता है । इस तरह आपकी अद्भुत चेष्टाएँ हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

भक्तप्रियत्वादिति चेत्तर्ह्येवं तवेहितम् । अहो चित्रम् । किं तत् । सर्वात्मनः समदृशश्च स्वभावो विषम इति यत् । सर्वात्मत्वे चित्रचरितत्वे हेतुः- अमिताचिन्त्या योगमाया तस्या लीला तया विसृष्टानि विरचितानि भुवनानि येन तस्य । अहो इत्यत्र सन्धिरार्षः । समदृक्त्वे हेतुः- विशारदस्य सर्वज्ञस्य । अथवा भक्तप्रियत्वेऽपि तव वैषम्यं नास्त्येव । यतः कल्पतरुस्वभावः सन् भक्तप्रियोऽसि नहि कल्पतरुराश्रिता नामेव कामान्पूरयन्नपि विषमो भवतीत्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि भक्तप्रिय होने के कारण मैंने आपको अपनी कृपा दृष्टि का विषय बनाया तो आपकी ये चेष्टाएँ अद्भूत हैं । क्योंकि आप सर्वात्मा है तथा आपका समदर्शी स्वभाव है फिर भी आप विमुखों के प्रति निर्दय होने के कारण विषम भी हैं । सबों की आत्मा होने और अद्भुत चरित वाला होने का कारण है कि आप अपनी अचिन्त्य योगमाया की लीला से सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि कर देते हैं । **अहोऽमित** में सन्धि आर्ष है । आपके समदर्शित्व का हेतु आपकी सर्वज्ञता है । अथवा यद्यपि आप भक्त प्रिय हैं फिर भी आपमें वैषम्य नहीं है । आपका कल्पतरु के समान होकर भी भक्त प्रिय कल्पतरु अपने आश्रितों की ही कामना पूर्ण करने वाला होकर भी विषम स्वभाव वाला नहीं होता है ॥८॥

श्रीभगवानुवाच

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतलालयम् । मोदमानः स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखमावह ॥९॥

अन्वयः— हे वत्स ! प्रह्लाद ते भद्रम् सुतलालयम् प्रयाहि स्वपौत्रेण मोदमानः ज्ञातीनां सुखम् आवह ॥९॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे वत्स प्रह्लाद ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम सुतल लोक में जाओ वहाँ अपने पौत्र के साथ आनन्दानुभव करते हुए अपने बन्धुओं को सुख प्रदान करो ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमवस्थितम् । मद्दर्शनमहाह्लादध्वस्तकर्मनिबन्धनः ॥१०॥

अन्वयः— तत्र नित्यं गदा पाणिम् अवस्थितं मां द्रष्टा असि मद् दर्शनमहाह्लाद ध्वस्त कर्मनिबन्धनः ॥१०॥

अनुवाद— वहाँ तुम मुझे नित्य ही हाथ में गदा लिए हुए खड़ा देखोगे । मेरे दर्शन जन्य परमानन्द में मग्न तुम्हारे सारे कर्म बन्धन नष्ट हो जायेंगे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

मद्दर्शनेन यो महाह्लादस्तेन ध्वस्तं कर्मनिबन्धनमज्ञानं यस्य ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

मेरे दर्शन जन्य महा आनन्द के द्वारा समस्त कर्मों के बन्धन अर्थात् अज्ञान विनष्ट हो जायेंगे ॥१०॥

श्रीशुक उवाच

आज्ञां भगवतो राजन् प्रह्लादो बलिना सह । बाढमित्यमलप्रज्ञो मूर्ध्न्याधाय कृताञ्जलिः ॥११॥
परिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपतिः । प्रणतस्तदनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥१२॥

अन्वयः— राजन् अमलप्रज्ञः सर्वासुरचमूपतिः प्रह्लादः बलिना सह भगवतः आज्ञां बाढम् इति मूर्ध्नि आधाय कृताञ्जलिः आदिपुरुषं परिक्रम्य प्रणतः तदनुज्ञातः महाविलम् प्रविवेश ॥११-१२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! महाबुद्धिमान तथा सम्पूर्ण असुर सेना के सेनापति प्रह्लादजी ने जो आज्ञा कहकर श्रीभगवान् की आज्ञा को शिरोधार्य किया । उसके पश्चात् वे बलि के साथ आदि पुरुष भगवान् की परिक्रमाकिए उन्हें प्रणाम करके सुतल लोक में चले गये ॥११-१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११-१२॥

अथाहोशनसं राजन् हरिर्नारायणोऽन्तिके । आसीनमृत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥१३॥

अन्वयः— राजन् ! अथ ब्रह्मवादिनाम् ऋत्विजां मध्ये सदसि अन्तिके आसीनम् हरिः नारायण उशनसं आह ॥१३॥

अनुवाद— राजन् ! उसके पश्चात् ब्रह्मवादी ऋत्विजों की सभा के बीच में बैठे हुए शुक्राचार्य से श्रीहरि भगवान् नारायण ने कहा ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

ब्रह्मन्संतनु शिष्यस्य कर्मच्छिद्रं वितन्वतः । यत्तत्कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥१४॥

अन्वयः— ब्रह्मन् कर्म वितन्वतः शिष्यस्य यच्छिद्रं तत् संतनु, कर्मसु यद्वैषम्यं तत् ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥१४॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! आपका शिष्य यज्ञकर रहा था उसमें जो न्यूनता रह गयी हो उसको आप पूरा कर दें, क्योंकि कर्म के करने में जो कुछ कमी रह जाती है, वह ब्राह्मणों की कृपा दृष्टि से पूरी हो जाती है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

कर्म वितन्वतः शिष्यस्य यच्छिद्रमन्तरं न्यूनं जातं तत्सतनु विस्तारय संधत्स्व । यजमानं बिना कथं संघातव्यमिति न वाच्यमित्याह-यत्तदिति । ब्रह्मदृष्टं ब्राह्मणैर्दृष्टमेव समं भवेत् । किं पुनरनुष्ठितमित्यर्थः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञ करने वाले शिष्य के कर्म में जो कुछ न्यूनता रह गयी हो उसको आप पूरा कर दें । यह नहीं कहा जा सकता है कि यजमान के बिना कैसे पूरा किया जा सकता है ? क्योंकि ब्राह्मणों को देख लेने मात्र से जो कमी रहती है उसकी पूर्ति हो जाती है, और अनुष्ठान करने पर क्या कहना है ॥१४॥

शुक्र उवाच

कुतस्तत्कर्मवैषम्य यस्य कर्मेश्वरो भवान् । यज्ञेशो यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजितः ॥१५॥

अन्वयः— यस्य कर्मेश्वरो यज्ञेशः यज्ञपुरुषः भवान् सर्वभावेन पूजितः तत् कर्म वैषम्य कुतः ॥१५॥

श्रीशुक्राचार्यजी ने कहा

अनुवाद— जिस कर्म के स्वामी यज्ञों के स्वामी यज्ञ पुरुष आप सर्वतोभावेन पूजित है उस कर्म में न्यूनता कैसे हो सकती है ?॥१५॥

भावार्थ दीपिका

भवान्यस्य सर्वेणापि भावेन वस्तुमात्रेण पूजितस्तस्य कर्मसु कुतो वैषम्यम् । कथंभूतः । कर्मणामीश्वरः प्रवर्तकः । यज्ञेशो यज्ञफलदः यज्ञमयश्च पुरुषः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

आप सर्वतो भावेन वस्तुमात्र से पूजित है उसके कर्म में किसी प्रकार की कमी कैसे हो सकती है ? आप कर्मों के प्रवर्तक है, यज्ञ का फल देने वाले हैं तथा आप ही यज्ञमय पुरुष हैं ॥१५॥

मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः । सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥१६॥

अन्वयः— मन्त्रतः तन्त्रतः देशकालार्हवस्तुतः छिद्रं तवनाम संकीर्तनं निश्छिद्रं करोति ॥१६॥

अनुवाद— मन्त्रं, अनुष्ठान पद्धति की देश काल, पात्र और वस्तु की इन सभी प्रकार की न्यूनताओं की पूर्ति आपका नाम संकीर्तन ही कर देता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

आस्तां तावत्पूजा । यस्मान्मन्त्रतः स्वरादिभ्रंशेन, तन्त्रतो व्युत्क्रमादिना, देशतः कालतश्च, अर्हत; पात्रतः वस्तुतश्च दक्षिणादिना यच्छिद्रं न्यूनं तत्सर्वं तव नामानुकीर्तनमात्रमेव निश्छिद्रं करोतीति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

पूजा की तो बात अलग है, मन्त्रों के उच्चारण स्वर आदि के भ्रंश के कारण अनुष्ठान के क्रम में किसी प्रकार की भूल होने पर देश, काल तथा योग्य वस्तु में भी किसी प्रकार की कमी होने पर उसकी पूर्ति आपका नाम संकीर्तन ही कर देता है ॥१६॥

तथापि वदतो भूमन् करिष्याम्यनुशासनम् । एतच्छ्रेयः परं पुंसां यत्तवाज्ञानुपालनम् ॥१७॥

अन्वयः— तथापि हे भूमन् वदतः अनुशासनम् करिष्यामि एतत् पुंसः परं श्रेयः यत् तवाज्ञानुपालनम् ॥१७॥

अनुवाद— फिर भी हे अनन्त आप जब कह रहे हैं तो आपकी आज्ञा का पालन मैं अवश्य करूँगा । मनुष्य का सबसे बड़ा कल्याण है कि आपकी आज्ञा का पालन किया जाय ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

श्रीशुक उवाच

अभिनन्द्य हरेराज्ञामुशना भगवानिति । यज्ञच्छिद्रं समाधत्त बलेर्विप्रर्षिभिः सह ॥१८॥

अन्वयः— इति हरेः आज्ञाम् अभिनन्द्य भगवान् उशना बलेः विप्रर्षिभिः सह यज्ञच्छिद्रं समाधत्त ॥१८॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— श्रीहरि की आज्ञा को स्वीकार करके भगवान् शुक्राचार्य बलि विप्रर्षियों के यज्ञ की कमी की पूर्ति किए ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

हरेराज्ञां प्रतिनन्द्य बलेर्यज्ञच्छिद्रं समाधत्त संदधे । पाठान्तरे समाधाय तदाज्ञां संपादितवानिति शेषः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीहरि की आज्ञा को स्वीकार करके बलि के यज्ञच्छिद्र का समाधान किये । **अनुसंकीर्तनम्** यह पाठ भेद होने पर अर्थ होगा कि समाधान करके श्रीहरि की आज्ञा को सम्पन्न किए ॥१८॥

एवं बलेर्महीं राजन् भिक्षित्वा वामनो हरिः । ददौ भ्रात्रे महेन्द्राय त्रिदिवं यत्परैर्हृतम् ॥१९॥

अन्वयः— राजन् एवं वामनः हरिः बलेः महीं भिक्षित्वा भ्रात्रे महेन्द्राय त्रिदिवं ददौ यत परैः हृतम् ॥१९॥

अनुवाद— राजन् ! परीक्षित् ! इस प्रकार वामन भगवान बलि से पृथिवी की भिक्षा माँगकर अपने बड़े भाई इन्द्र को स्वर्ग का राज्य प्रदान किए । उनके शत्रुओं ने छिन लिया था ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा देवर्षिपितृभूमिपैः । दक्षभृग्वङ्गिरोमुख्यैः कुमारेण भवेन च ॥२०॥
कश्यपस्यादितेः प्रीत्यै सर्वभूतभवाय च । लोकानां लोकपालानामकरोद्वामनं पतिम् ॥२१॥

अन्वयः— प्रजापतिपतिः ब्रह्मा देवर्षि पितृभूमिपैः दक्ष भृग्वङ्गिरोमुख्यैः कुमारेण भवेन च कश्यपस्यादितेः प्रीत्यै सर्वभूतभवाय च लोकानां लोकपालानाम् वामनं पतिम् अकरोत् ॥२०-२१॥

अनुवाद— प्रजापतियों के भी स्वामी ब्रह्माजी देवता ऋषि, पितृगण तथा राजाओं के साथ दक्ष, भृगु, अङ्गिरा इत्यादि, सनकादि तथा शङ्करजी के साथ महर्षि कश्यप तथा अदिति की प्रसन्नता के लिए लोकों तथा लोकपालों के स्वामी के पद पर अभिषिक्त कर दिया ॥२०-२१॥

भावार्थ दीपिका

देवाश्च ऋषयश्च भूमिपाश्च मनवस्तैः सहितः ॥२०-२१॥

भाव प्रकाशिका

देवता ऋषि, मनु तथा मनुपुत्रों के साथ ॥२०-२१॥

वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः । मङ्गलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्गापवर्गयोः ॥२२॥
उपेन्द्रं कल्पयांचक्रे पतिं सर्वविभूतये । तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप ॥२३॥

अन्वयः— नृप वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः मङ्गलानां व्रतानां च स्वर्गापवर्गयोः कल्पं पतिम् सर्वविभूतये उपेन्द्रं कल्पयाञ्चके तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे ॥२२-२३॥

अनुवाद— परीक्षित वेदों, सभी देवताओं, धर्म, यश, लक्ष्मी, मङ्गल, व्रत, स्वर्ग एवं अपवर्ग सबों के रक्षक के रूप में, सबके परम कल्याण के लिए वामन भगवान् को ब्रह्माजी ने उपेन्द्र का पद प्रदान किया ॥२२-२३॥

भावार्थ दीपिका

ननु लोकादीनां पतिरिन्द्रोऽस्त्येव, सत्यम्, तथापि वेदादीनां कल्पं पालने दक्षं वामनमुपेन्द्रं कल्पयांचक्रे ॥२२-२३॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि यह सत्य है कि लोकों के स्वामी इन्द्र है फिर भी वेदों आदि की रक्षा करने में दक्ष वामन भगवान् को ब्रह्माजी ने उपेन्द्र का पद प्रदान किया ॥२२-२३॥

ततस्त्विन्द्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनम् । लोकपालैर्दिवं निन्ये ब्रह्मणा चानुमोदितः ॥२४॥

अन्वयः— ततः तु इन्द्रः वामनम् पुरस्कृत्य देवयानेन लोकपालैः दिवं निन्ये ब्रह्मणाच अनुमोदितः ॥२४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् इन्द्र वामन भगवान् को विमान पर आगे बैठाकर सभी लोकपालों के साथ स्वर्ग लोक ले गये और ब्रह्माजी ने इसका समर्थन भी किया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

देवयानेन मार्गेण । विमानेनेति वा ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

देवमार्ग से अथवा विमान से यह देवयानेन पद का अर्थ है ॥२४॥

प्राप्य त्रिभुवनं चेन्द्र उपेन्द्रभुजपालितः । श्रिया परमया जुष्टो मुमुदे गतसाध्वसः ॥२५॥

अन्वयः— उपेन्द्रभुजपलितः इन्द्रः त्रिभुवनं प्राप्य परमया श्रिया जुष्टः गतसाध्वसः मुमुदे ॥२५॥

अनुवाद— भगवान् वामन के कर कमलों की छत्र में छाया त्रिलोकी के राज्य को प्राप्त करके इन्द्र निर्भय होकर ऐश्वर्य लक्ष्मी से सुशोभित हुए ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

ब्रह्मा शर्वः कुमारश्च भृग्वाद्या मुनयो नृप । पितरः सर्वभूतानि सिद्धा वैमानिकाश्च ये ॥२६॥
सुमहत्कर्म तद्विष्णोर्गायन्तः परमाद्भुतम् । धिष्ण्यानि स्वानि ते जग्मुरदितिं च शशंसिरे ॥२७॥

अन्वयः— नृप ब्रह्मा, शर्वः, कुमारः च भृग्वाद्याः मुनयः पितरः सर्वभूतानि, सिद्धाः, वैमानिकाः च ये विष्णोः तत् सुमहत् अद्भुतं कर्म गायन्तः स्वानि धिष्ण्यानि जग्मुः अदितिं च शशंसिरे ॥२६-२७॥

अनुवाद— हे राजन् ! ब्रह्माजी, शङ्करजी, सनकादि, भृगु आदि मुनि गण, पितृगण, सभी जीव, सिद्धगण तथा जो देवगण आये थे, वे सभी भगवान् विष्णु के इस महान् और अद्भुत कर्म की प्रशंसा करते हुए, अपने-अपने निवास स्थानों पर चले गये और वे सभी अदिति की प्रशंसा किए ॥२६-२७॥

सर्वमेतन्मयाख्यातं भवतः कुलनन्दन । उरुक्रमस्य चरितं श्रोतॄणामघमोचनम् ॥२८॥

अन्वयः— हे कुलनंदन भवतः मया एतत् उरुक्रमस्य श्रोतॄणामघनाशनं चरितम् आख्यातम् ॥२८॥

अनुवाद— परीक्षित् तुम्हें मैंने यह भगवान् वामन के सम्पूर्ण चरित को सुनाया, यह सुनने वालों के पापों को विनष्ट कर देता है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

एतच्चरितमाख्यातमिति विशेषोक्त्याऽन्यान्यपि सन्तीत्युक्तम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

मैंने इस चरित को सुनाया इसके विशेषोक्ति से ज्ञात होता है कि वामन भगवान् के दूसरे भी चरित हैं ॥२८॥

पारं महिम्न उरु विक्रमतो गृणानो यः पार्थिवानि विममे स रजांसि मर्त्यः ।
किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य इत्याह मन्त्रदृगृषिः पुरुषस्य यस्य ॥२९॥

अन्वयः— ऊरु विक्रमतः महिम्नः पारं यः गृणानःस पार्थिवानि रजांसि विममे, यस्य पुरुषस्य मन्त्रदृग् ऋषिः इत्याह किं जायमान, जात उपैति मर्त्य ॥२९॥

अनुवाद— अनेक प्रकार के पराक्रम सम्पन्न भगवान् विष्णु की सम्पूर्ण महिमा का वर्णन वही मनुष्य कर सकता है जिसने सम्पूर्ण धूलकणों को गिन लिया है । उन परं पुरुष भगवान् की महिमा का अन्त मन्त्र द्रष्टा ऋषि वसिष्ठ ने कहा है कि ऐसा पुरुष न तो कभी हुआ न है और न होगा, क्योंकि श्रीभगवान् की महिमा अनन्त है॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तानि तर्हि निःशेषाणि वर्णनीयानीत्यपेक्षायामाह-पारमिति । उरु बहुधा विक्रमतो विष्णोर्महिम्नः पारं यो गृणानो भवति स मर्त्यः पार्थिवानि रजांस्यपि विममे गणितवान् । यथा पार्थिवपरमाणुगणनमशक्यं तथा विष्णोर्गुणगणनमप्यशक्यमित्यर्थः। तथा च मन्त्रः- 'विष्णोर्नु कं वीर्याणि' इति । एतदेव मन्त्रान्तरार्थं सूचयन्नाह-यस्य पुरुषस्य पूर्णमहिम्नः पारं मन्त्रदृगृषिर्वसिष्ठ इति एवमाह कथम् । किं जायमानो जातो वा उपैति न कोऽपीति वदन्ननन्तत्वेनैवाहेत्यर्थः । तथ च मन्त्रः- 'न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप' इति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

यदि राजा परीक्षित् कहें कि भगवान् की सम्पूर्ण चरित का वर्णन करना चाहिए इस प्रकार की अपेक्षा होने पर **पारम्० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । अनेक प्रकार के पराक्रम सम्पन्न भगवान् विष्णु की महिमा को जो सम्पूर्णतया वही कह सकता है जो पृथिवी के सम्पूर्ण धूल कण को गिन ले । जिस तरह पृथिवी के सम्पूर्ण परमाणुओं को गिनना अशक्य है उसी तरह भगवान् विष्णु के सम्पूर्ण चरितों का वर्णन असम्भव है । इस अर्थ का प्रतिपादन **विष्णोर्नु कं वीर्याणि इत्यादि** मन्त्र करता है । इसी को सूचित करते हुए श्रीभगवान् की महिमा को जानने वाले मन्त्र द्रष्टा ऋषि वसिष्ठ ने इस तरह कहा है । इस तरह का कोई पुरुष न तो है और न हुआ एवं न होगा । क्योंकि भगवान् की महिमा अनन्त है । मन्त्र भी कहता है **न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्न परमन्तमाप** अर्थात् हे भगवन् ! विष्णो आपकी महिमा को पूर्ण रूप से जानने वाला न तो कोई है, न हुआ न होगा ॥२९॥

य इदं देवदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः । अवतारानुचरितं शृण्वन् याति परां गतिम् ॥३०॥

अन्वयः— देवदेवस्य अद्भुतकर्मण हरेः इदं अवतरानुचरितं यः शृण्वन् परांगति याति ॥३०॥

अनुवाद— देवाधिदेव तथा अद्भुत कर्म करने वाले श्रीहरि के इस अवतार के चरित का श्रवण करता है वह मृत्यु के पश्चात् मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

य इदं शृण्वन्भवति स परां गतिं याति ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

जो इसको सुनता है वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ।।३०।।

क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे । यत्र यत्रानुकीर्त्येत तत्तेषां सुकृतं विदुः ।।३१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे वामनावतार चरिते त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

अन्वयः— दैवे, पित्र्ये अथ मानुषे कर्मणि क्रियमाणे यत्र यत्राऽनु कीर्त्येत तत् तेषां सुकृतं विदुः ।।३१।।

अनुवाद— देवयज्ञ, पितृयज्ञ (श्राद्ध) मनुष्य यज्ञ किसी भी कर्म के करते समय श्रीभगवान् के इस चरित का कीर्तन होता है, वह कर्म सफल हो जाता है ।।३१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध के वामन चरित वर्णन नामक तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

सुकृतं यथावत्कृतं विदुः ।।३१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे भवार्थ दीपिकायां टीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

वह कर्म जैसे होना चाहिए वैसे हो गया यह महात्माओं का अनुभव है ।।३१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के तेइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२३।।

चौबीसवाँ अध्याय

भगवान् के मत्स्यावतार की कथा

राजोवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मणः । अवतारकथामाद्यां मायामत्स्यविडम्बनम् ॥१॥

अन्वयः— भगवन् अद्भुत कर्मणः हरेः आद्या मायामत्स्यविडम्बनम् अवतार कथां श्रोतुम् इच्छामि ॥१॥

राजा बलि ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! अद्भुत कर्म करने वाले श्रीहरि उस प्रथम अवतार की कथा सुनना चाहता हूँ जिसमें श्रीभगवान् ने अपनी योगमाया से मत्स्यावतार ग्रहण कर लिया था ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्विंशे प्रसङ्गेन मत्स्यरूपस्य शार्ङ्गिणः । लीलोच्यते यतः सत्यव्रतरक्षा महार्णवे । तनुं तनुं विदर्श्यादौ निजैश्वर्यनिदर्शनात्। मत्स्यं पृच्छति पृथ्वीशो लीलया वामनोपमम् । मायया मत्स्यविडम्बनं मत्स्यरूपानुकरणं यस्यां निरूप्यते ताम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इस चौबीसवे अध्याय में प्रसङ्गवशात् मत्स्य का रूप धारण करने वाले श्रीभगवान् की उस लीला का वर्णन किया गया है जिसके द्वारा श्रीभगवान् ने राजा सत्यव्रत की रक्षा महा समुद्र में की थी। प्रारम्भ में अपने विभिन्न शरीर का दर्शन कराकर अपने ऐश्वर्य का निदर्शन करते हैं। राजा सत्यव्रत मत्स्य भगवान् से वामन भगवान् के समान ही प्रश्न करते हैं। योगमाया से जिसमें मत्स्य का रूप धारण किया उस अवतार की कथा को ॥१॥

यदर्थमदधाद्रूपं मात्स्यं लोकजुगुप्सितम् । तमःप्रकृति दुर्मर्षं कर्मग्रस्त इवेश्वरः ॥२॥

अन्वयः— यदर्थम् लोकजुगुप्सितम्, तम; प्रकृति, दुर्मर्षम् कर्मग्रस्त इव ईश्वरः मात्स्यं रूपम् अदधात् ॥२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् जिस कार्य को करने के लिए लोक में निन्दित, तमोगुणी असह्य कर्म से ग्रस्त के समान मत्स्य का रूप धारण कर लिए उस प्रयोजन को मैं जानना चाहता हूँ ॥२॥

भावार्थ दीपिका

ननु कस्मादकस्मादेव मत्स्यावतारश्रवणेच्छा, श्रीवामनसादृश्यादित्याह-तदर्थमिति द्वाभ्याम्। दुर्मर्ष दुःसहम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है अकस्मात् मत्स्यावतार सुनने की इच्छा राजा की क्यों हो गयी ? इसका उत्तर है कि मत्स्यावतार की वामनावतार से सदृशता होने के कारण इसीलिए इस बात को दो श्लोकों से कहते है ॥२॥

एतन्नो भगवन्सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि । उत्तमश्लोकचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥३॥

अन्वयः— हे भगवन् एतत् सर्वं नो सर्वलोक सुखावहं उत्तमश्लोक चरितं यथावद वक्तुमर्हसि ॥३॥

अनुवाद— हे भगवन् ! सम्पूर्ण लोकों को सुख देने वाले उत्तम यश सम्पन्न श्रीहरि के इस अवतार की सारी बातों को आप यथार्थ रूप से हमलोगों को सुनाएँ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

बलेरनुग्रहाय जुगुप्सितमपि याचकरूपं धृतवानिति युक्तमुक्तम्। यदर्थं तु लोकजुगुप्सितं मात्स्यं रूपमधारयदेतन्नो यथावद्वक्तुमर्हसीत्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् बलि पर कृपा करने के लिए निन्दित याचक का रूप धारण कर लिए यह तो ठीक है। भगवान् किस कार्य को करने के लिए लोक निन्दित मत्स्य का रूप धारण कर लिए इसे आप यथार्थ रूप से बतलाएँ॥३॥

सूत उवाच

इत्युक्तो विष्णुरातेन भगवान्बादरायणिः । उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत्कृतम् ॥४॥

अन्वयः— इति विष्णुरातेन भगवान् वादरायणिः उक्तः विष्णोः यत् चरितं मत्स्यरूपेण कृतं चरितं उवाच ॥४॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से राजा परीक्षित् ने जब पूछा तो भगवान् श्रीशुकदेवजी ने भगवान् विष्णु के उस चरित का वर्णन करना प्रारम्भ किया जिसे उन्होंने मत्स्यावतार में किया था ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

श्रीशुक उवाच

गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः । रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि ॥५॥

अन्वयः— ईश्वरः गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसाम् अपि धर्मस्य अर्थस्य च रक्षाम् इच्छन् तनूर्धत्ते ॥५॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् परमात्मा, गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु पुरुष, वेदों, धर्म तथा अर्थ की रक्षा करने के लिए शरीर को धारण किया करते हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

सामान्येनावतारप्रयोजनमाह-गोविप्रेति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

गोविप्र० इत्यादि श्लोको के द्वारा श्रीभगवान् के अवतार के सामान्य प्रयोजन को बतलाया गया है ॥५॥

उच्चावचेषु भूतेषु चरन्वायुरिवेश्वरः । नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धियो गुणैः ॥६॥

अन्वयः— ईश्वरः उचावचेषुभूतेषु वायुरिव चरन् धियः निगुणत्वात् गुणैः उच्चावचत्वं न भजते निगुणत्वात् ॥६॥

अनुवाद— श्रीभगवान् सर्वशक्ति मान हैं । वे छोटे-बड़े सभी प्रकार के भूतों में वायु के समान अन्तर्यामी रूप से संचरण करते हैं । फिर भी वे उन प्राणियों की बुद्धि में विद्यमान गुणों से छोटे-बड़े इसलिए नहीं होते हैं कि वे वस्तुत: निर्गुण हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

जुगुप्सितत्वं परिहरति-धियो गुणैर्यान्युच्चावचानि भूतानि तेषु नियन्तृत्वेन चरन्नपीश्वरो नोच्चावचत्वं भजते, निर्गुणत्वात्। कुतः पुनः शुद्धसत्त्वमयैर्मत्स्याद्याकारैरुच्चवचत्वशङ्केति भावः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

सबों का अन्तर्यामी होने पर भी संभाव्य निन्दितत्त्व का वारण करते हुए शुकदेवजी कहते हैं, बुद्धि में विद्यमान छोटे-बड़े जीवों में नियामक होने के कारण ये परमात्मा छोटे-बड़े इसलिए नहीं होते हैं कि वे स्वाभाविक रूप से गुणों से रहित हैं । तो फिर शुद्ध सत्त्वमय मत्स्य आदि आकारों के कारण उनमें छोटा-बड़ा होने की शङ्का कैसे की जा सकती है ?॥६॥

आसीदतीव कल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः । समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप ॥७॥

अन्वयः— हे नृप अतीत कल्पान्ते बाह्मः नैमित्तकः लयः आसीत् तत्र भूरादयः लोकाः समुद्रोपप्लुताः आसन् इति शेषः ॥७॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित बीते हुए कल्प के अन्त में ब्राह्म नामक नैमित्तिक लय हुआ था । उस समय भूरादि लोक समुद्र में डूब गये थे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

विशेषतो मत्स्यावतारप्रयोजनमाह-आसीदिति त्रिभिः ब्रह्मणो निद्रायां भवो ब्राह्मस्तेनैव निमित्तेन जातो नैमित्तिकः । समुद्रे उपप्लुता निमग्नाः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

असीत इत्यादि तीन श्लोकों के द्वारा मत्स्यावतार के विशेष रूप से प्रयोजन बतलाते हैं । ब्रह्माजी के सो

जाने पर होने वाले प्रलय को ब्राह्म प्रलय कहते हैं। यही नैमित्तिक लय कहलाता है। उस समय भूलोक इत्यादि समुद्र में डूब जाते हैं ॥७॥

कालेनागतनिद्रस्य धातुः शिशयिषोर्बली । मुखतो निःसृतान्वेदान् हयग्रीवोऽन्तिकेऽहरत् ॥८॥

अन्वयः— कालेन आगतन्द्रिस्य शिशयिषोः धातुः मुखतः निर्गतान् वेदान् अन्तिके बली हयग्रीवः अहरत् ॥८॥

अनुवाद— प्रलय काल के आ जाने पर सोने की इच्छा वाले ब्रह्माजी के सो जाने पर वेद उनके मुख से बाहर निकल गये और ब्रह्माजी के सन्निकट में रहने वाले हयग्रीव नामक राक्षस ने उन वेदों को चुरा लिया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अन्तिके निःसृतान् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

निकट में निकले हुए ॥८॥

ज्ञात्वा तद्दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम् । दधार शफरीरूपं भगवान्हरिरीश्वरः ॥९॥

अन्वयः— दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य तत् चेष्टितं ज्ञात्वा भगवान् हरिः ईश्वरः शफरी रूपं दधार ॥९॥

अनुवाद— दानव राज ह्यग्रीव की उस चेष्टा को जानकर सर्व शक्तिमान भगवान् श्रीहरि ने मत्स्य का रूप धारण कर लिया ॥९॥

भावार्थ दीपिका

शफरीरूपं मत्स्यरूपम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

शफरी रूपम् अर्थात् मत्स्य का रूप ॥९॥

तत्र राजऋषिः कश्चिन्नाम्ना सत्यव्रतो महान् । नारायणपरोऽतप्यत्तपः स सलिलाशनः ॥१०॥

अन्वयः— तत्र कश्चित् सत्यव्रतः नाम महान् राजर्षिः तपः अतप्यत् स सलिलाशनः नारायण परः ॥१०॥

अनुवाद— वहाँ पर कोई सत्यव्रत नामक महान् राजर्षि तपस्या करते थे वे जल पीकर रहते थे और भगवान् नारायण के भक्त थे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

प्रयोजनान्तरं लीलाप्रकारं चाह-तत्र रजऋषिरित्यादि यावत्समाप्ति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इस अवतार के दूसरे प्रयोजन को तथा तत्र इत्यादि श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति तक श्रीभगवान की लीला के प्रकार को बतलाया गया है ॥१०॥

योऽसावस्मिन्महाकल्पे तनयः स विवस्वतः । श्राद्धदेव इति ख्यातो मनुत्वे हरिणाऽर्पितः ॥११॥

अन्वयः— यः असौ अस्मिन् महाकल्पे विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति ख्यातः हरिणा सः मनुत्वे अर्पितः ॥११॥

अनुवाद— वे सत्यव्रत ही इस महाकल्प में विवस्वान् के पुत्र श्रद्धदेव के नाम से विख्यात हुए और श्रीहरि ने उनको वर्तमान महाकल्प का वैवस्वत मनु बना दिया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

स एव श्राद्धदेव इति ख्यातः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

राजर्षि सत्यव्रत ही श्राद्धदेव के नाम से विख्यात हुए ।।११।।

एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम् । तस्याञ्जल्युदके काचिच्छफर्येकाभ्यपद्यत ।।१२।।

अन्वयः— एकदा कृतमालायां जलतर्पणं कुर्वतः तस्य अञ्जल्युदके काचित् एका शफरी अभ्यपद्यत ।।१२।।

अनुवाद— एक बार जब वे राजर्षि कृतमाला नदी में तर्पण कर रहे थे उस समय उनकी अञ्जलि के जल में एक कोई मछली आ गयी ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

कृतमालायां नद्याम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

कृतमाला नदी में ।।१२।।

सत्यव्रतोऽञ्जलिगतां सह तोयेन भारत । उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविडेश्वरः ।।१३।।

अन्वयः— हे भारत द्रविडेश्वरः सत्यव्रतः अञ्जलिगतां शफरीं तोयेन सह नदी तोये उत्ससर्ज ।।१३।।

अनुवाद— हे परीक्षित् ! द्रविडेश्वर सत्यव्रत ने अञ्जलि में आयी हुई उस मछली को जल के साथ ही नदी के जल में डाल दिए ।।१३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१३।।

तमाह सातिकरुणं महाकारुणिकं नृपम् । यादोभ्यो ज्ञातिघातिभ्यो दीनां मां दीनवत्सल ।।
कथं विसृजसे राजन् भीतामस्मिन् सरिज्जले ।।१४।।

अन्वयः— सा अतिकरुणं तम् महाकारुणिकं नृपम् आह हे दीनवत्सल ! राजन् ! ज्ञातिधातिभ्यः दीनां मां कथं सरिज्ञले विसृजसे ।।१४।।

अनुवाद— उसने अत्यधिक करुण होकर उन महाकारुणिक राजा से कहा हे दीनवल्सल राजन् ! अपनी जाति वालों को भी खा जाने वाले जलजन्तुओं से डरी हुई तथा दीन मुझको आप नदी के जल में क्यों छोड़ रहे हैं ?।।१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४।।

तमात्मनोऽनुग्रहार्थं प्रीत्या मत्स्यवपुर्धरम् । अजानन्रक्षणार्थाय शफर्याः स मनो दधे ।।१५।।

अन्वयः— आत्मनोऽनुग्रहार्थं मत्स्य वपुर्धरम् तम् अजानन् सः शफर्याः रक्षणार्थम् प्रीत्या मनो दधे ।।१५।।

अनुवाद— अपने ऊपर कृपा करने के लिए मछली का रूप धारण किए उन श्रीभगवान् को नहीं जानते हुए भी राजा सत्यव्रत मछली की रक्षा करने के लिए प्रेम पूर्वक निश्चय कर लिए ।।१५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१५।।

तस्या दीनतरं वाक्यमाश्रुत्य स महीपतिः । कलशाप्सु निधायैनां दयालुर्निन्य आश्रमम् ।।१६।।

अन्वयः— तस्याः दीनतरं वाक्यम् आश्रुत्य दयालुः समहीपतिः एनां कलशाप्सुनिधाय आश्रमम् निन्ये ।।१६।।

अनुवाद— उस मछली की दीनता भरी वाणी सुनकर वे दयालु राजा उसको कलश के जल में रखकर अपने आश्रम में लाये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

सा तु तत्रैकरात्रेण वर्धमाना कमण्डलौ । अलब्ध्वात्मावकाशं वा इदमाह महीपतिम् ॥१७॥

अन्वयः— तत्र सा तु एकरात्रेण कमण्डलौ वर्धमाना आत्मावकाशं अलब्ध्वा महीपतिम् इदमाह ॥१७॥

अनुवाद— उस कमण्डलु में एक ही रात में वह इतना बढ़ गयी कि उसके रहने के लिए कमण्डलु में स्थान ही नहीं रह गया। उसने राजा ने कहा ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

नाहं कमण्डलावस्मिन्कृच्छ्रं वस्तुमिहोत्सहे । कल्पयौकः सुविपुलं यत्राहं निवसे सुखम् ॥१८॥

अन्वयः— अस्मिन् कमण्डलौ अहं कृच्छ्रं वस्तुम न उत्सहे । सुविपुलं ओकः कल्पय यत्र अहं सुखं निवसे ॥१८॥

अनुवाद— इस कमण्डलु में मैं कष्ट पूर्वक भी नहीं रह सकती अतएव मेरे लिए कोई बड़ा स्थान नियत कर दें जहाँ मैं सुख पूर्वक रह सकूँ ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

यत्राहं सुखं निवसामि तदोकः स्थानं कल्पय ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

जहाँ मैं सुख पूर्वक रहूँ ऐसा स्थान निश्चित कर दें ॥१८॥

स एनां तत आदाय न्यधादौदञ्चनोदके । तत्र क्षिप्ता मुहूर्तेन हस्तत्रयमवर्धत ॥१९॥

अन्वयः— स एनां ततः आदाय औदञ्चनोदके न्यधात् तत्र क्षिप्ता सा मुहूर्तेन हस्तत्रयम् अवर्धत ॥१९॥

अनुवाद— राजा उसको उस कमण्डलु से निकालकर एक बड़े पानी के पात्र में रख दिए और वहाँ वह दो घड़ी में ही तीन हाथ बढ गयी ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

औदञ्चनोदके मणिकस्थे जले ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

औदण्चनोदक अर्थात् मणिक के जवल में डाल दिए ॥१९॥

न म एतदलं राजन् सुखं वस्तुमुदञ्चनम् । पृथु देहि पदं मह्यं यत्त्वाहं शरणं गता ॥२०॥

अन्वयः— राजन् एतत् उदञ्चनं मे सुखं वस्तु अलं न मह्यं पृथु पदं देहि यत् अहं त्वा शरणं गता ॥२०॥

अनुवाद— राजन् यह मेरे सुखपूर्वक रहने के लिए पर्याप्त स्थान नहीं है मेरे लिए कोई बड़ा स्थान दीजिए। मैं आपके शरण में हूँ ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन् सरोवरे । तदावृत्त्यात्मना सोयं महामीनोऽन्ववर्धत ॥२१॥

अन्वयः— राजन् ! तत आदाय सा राजा सरोवरे क्षिप्ता तदा आत्मना आवृत्य सोऽयं महामीनः अन्ववर्धत् ॥२१॥

अनुवाद— राजन् ! वहाँ उस मछली को लेकर राजा ने एक सरोवर में डाल दिया वहाँ वह इतना बढ़ गयी थी कि उसने सम्पूर्ण सरोवर को ही घेर लिया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

नैतन्मे स्वस्तये राजन्नुदकं सलिलौकसः । निधेहि रक्षायोगेन ह्रदे ममविदासिनि ॥२२॥

अन्वयः— राजन् एतत् उदकं सलिलौकसः मे स्वस्तये न माम् रक्षोयोगेन अविदासिनि ह्रदे निधेहि ॥२२॥

अनुवाद— राजन् यह जल मेरे लिए पर्याप्त नहीं है अतएव आप मेरी रक्षा करने के लिए किसी ऐसे अगाध ह्रद में डाल दें जिसका जल कभी नहीं सुखता हो ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

रक्षायोगेन रक्षाया योगेनोपायेन। यथा महाह्रदप्राप्तेरर्वाक् जलं बिना न शुष्येयं तेनोपायेन निधेहि। अविदासिनि अनुपक्षये॥२२॥

भाव प्रकाशिका

रक्षा के उपाय द्वारा, जिससे कि समुद्र में जाने से पहले मैं न सूखूं इस प्रकार के उपाय द्वारा आप मुझे नहीं सूखने वाले ह्रद में डाल दें ॥२२॥

इत्युक्तः सोऽनयन्मत्स्यं तत्र तत्राविदासिनि । जलाशये संमितं तं समुद्रे प्राक्षिपज्झषम् ॥२३॥

अन्वयः— इति उक्तः सः तत्र-तत्र अविदासिनि जलाशये मत्स्यं अनयन् सं मितं तं झषम् समुद्रे प्राक्षिपत् ॥२३॥

अनुवाद— मत्स्य भगवान् के इस तरह से कहने पर वे राजा अनेक परिपूर्ण जल वाले जलाशयों में ले गये। किन्तु वे उन सभी सरोवरों के बराबर हो जाते थे। अन्त में उन मत्स्य भगवान् को समुद्र में डाल दिये॥२३॥

भावार्थ दीपिका

संमितं तत्तज्जलाशयपरिमितम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

उन सभी जलाशयों के बराबर ॥२३॥

क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां मकरादयः । अदन्त्यतिबला वीर मां नेहोत्स्रष्टुमर्हसि ॥२४॥

अन्वयः— क्षिप्यमाणः तम् इदम् आह वीर इह मां अतिबला मकरादयः । अदन्ति । इह मां उत्स्रष्टुं नार्हसि ॥२४॥

अनुवाद— समुद्र में डालते समय मत्स्य भगवान् ने कहा यहाँ पर अत्यन्त बलवान घड़ियाल इत्यादि खा जायेंगे अतएव यहाँ मुझे न डालें ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

एवं विमोहितस्तेन वदता वल्गुभारतीम् । तमाह को भगवानस्मान्मत्स्यरूपेण मोहयन् ॥२५॥

अन्वयः— एवं तेन वल्गुभारतीम् वदता विमोहितः तम् आह अस्मान् मत्स्यरूपेण मोहयन् भवान् कः ? ॥२५॥

अनुवाद— इस तरह से मधुर वाणी बोलने वाले मस्त्य भगवान् के द्वारा मोहित राजा सत्यव्रत ने कहा मत्स्य रूप धारण करके मुझे मोहित करने वाले आप कौन हैं ?॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

नैवंवीर्यो जलचरो दृष्टोऽस्माभिः श्रुतोऽपि च । यो भवान् योजनशतमह्नाऽभिव्यानशे सरः ॥२६॥

अन्वयः— एवं वीर्यः जलचरः मया न तु दृष्टः न वाश्रुतः अपि यो भवान् अह्ना योजनशतम् सरः अभिव्यानशे ॥२६॥

अनुवाद— इस प्रकार का पराक्रमशाली किसी जलचर को मैंने न तो देखा है न सुना है । आप एक ही दिन में सौ योजन सरोवर में व्याप्त हो गये ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अभिव्यानशेऽभितो व्याप्तवान् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

व्यानशे अर्थात् सबो ओर से व्याप्त हो गये ॥२६॥

नूनं त्वं भगवान्साक्षाद्धरिर्नारायणोऽव्ययः । अनुग्रहाय भूतानां धत्से रूपं जलौकसाम् ॥२७॥

अन्वयः— नूनं त्वं साक्षात् अव्यय नारायणः हरिः भगवान्, भूतानाम् अनुग्रहाय जलोकसाम् रूपं धत्से ॥२७॥

अनुवाद— आप निश्चित रूप से साक्षात् अविनाशी नारायण भगवान् श्रीहरि हैं जीवों पर कृपा करने के ही लिए आप मत्स्य का रूप धारण किए हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

नमस्ते पुरुषश्रेष्ठ स्थित्युत्पत्त्यप्ययेश्वर । भक्तानां नः प्रपन्नानां मुख्यो ह्यात्मगतिर्विभो ॥२८॥

अन्वयः— हे पुरुषश्रेष्ठ हे स्थित्युत्पत्यप्ययेश्वर हे विभो ! नः प्रपन्नानां भक्तानां मुख्यः आत्मगतिः ॥२८॥

अनुवाद— हे पुरुषोत्तम ! हे जगत् की सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय को करने वाले सर्वव्यापक विभो आप हम शरणागत भक्तों के आप ही मुख्य आश्रय और प्राप्य हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

मुख्यः सत्य आत्मा च गतिश्चाश्रयः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

मुख्य आत्मा और आश्रय हैं ॥२८॥

सर्वे लीलावतारास्ते भूतानां भूतिहेतवः । ज्ञातुमिच्छाम्यदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ॥२९॥

अन्वयः— ते सर्वे लीलावताराः भूतानां भूतिहेतवः अदो रूपं यदर्थं भवता धृतम् ज्ञातुमिच्छामि ॥२९॥

अनुवाद— आपके सभी लीलावतार तो जीवों का कल्याण करने के लिए होता है आप इस रूप को जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिए आपने धारण किया है, उसे मैं जानना चाहता हूँ ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

न तेऽरविन्दाक्ष पदोपसर्पणं मृषा भवेत्सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ।
यथेतरेषां पृथगात्मनां सतामदीदृशो यद्वपुरद्भुतं हि नः ॥३०॥

अन्वयः— हे अरविन्दाक्षपृथगात्मनाम् इतरेषां पदोपसर्पणम् यथा मृषाभवेत् तथा ते सर्वसुहृत्प्रियात्मनः ते पादोपसर्पणं अदीदृशो हि वपुः अद्भुतं हि नः ॥३०॥

अनुवाद— हे कमलनयन प्रभो जिस तरह देह आदि अनात्म पदार्थों में आत्माभिमान करने वाले संसारी पुरुषों का आश्रय ग्रहण करना व्यर्थ होता है उस तरह आपके चरणों की शरणागति व्यर्थ नहीं हो सकती है, क्योंकि

आप सबों के अहैतुक प्रेमी परम प्रिय और आत्मा हैं । आप इस समय जिस रूप को धारण करके हमें दर्शन दिए है वह अद्भुत है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

हे अरविन्दाक्ष, पृथगात्मनां देहाद्यभिमानिनां सतामितरेषां पदोपसर्पणं यथा मृषा भवेत्तथा सर्वसुहृत्प्रियात्मनस्तव पदोपसर्पणं मृषा न भवेत् । यद्यस्मान्नो भक्तानामद्भुतं वपुरदीदृशो दर्शितवानसि । पाठान्तरे पृथगात्मनो भेददर्शिन पुंसः । असतां परिच्छिन्नानां पदोपसर्पणं यथा मृषेत्यर्थः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

हे कमल नयन प्रभो ! जिस तरह आत्म व्यतिरिक्त देहादि में आत्माभिमान करने वाले दूसरे पुरुषों का आश्रय ग्रहण व्यर्थ होता है उस तरह से सबों के अहैतुक हितैषी परम प्रिय आत्मा आपकी शरणागति व्यर्थ नहीं हो सकती है । आपने यह जो रूप धारण करके हमें दर्शन दिया है वह अद्भुत है । **पृथगात्मनोऽसताम्** पाठभेद होने पर अर्थ होगा भेददर्शी पुरुषों के सीमित हैं ऐसे लोगों की शरणागति जैसे मृषा होती है ॥३०॥

श्रीशुक उवाच

इति ब्रुवाणं नृपतिं जगत्पतिः सत्यव्रतं मत्स्यवपुर्युगक्षये ।
विहर्तुकामः प्रलयार्णवेऽब्रवीच्चिकीर्षुरेकान्तजनप्रियः प्रियम् ॥३१॥

अन्वयः— एकान्तजनप्रियः जगत्पतिः प्रलयार्णवे विहर्तुकामः इति ब्रुवाणं नृपतिं प्रियं चिकीर्षुः अब्रवीत् ॥३१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— अपने एकान्तिक भक्तों के अत्यन्त प्रेमी जगत् स्वामी श्रीभगवान् प्रलय कालीन समुद्र में विहार करने की इच्छा से उपर्युक्त प्रकार से कहने वाले राजा सत्यव्रत का प्रिय कार्य करने की इच्छा से उनसे कहे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

एकान्तजना भक्ताः प्रिया यस्य ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

एकान्तजनप्रियः अर्थात् एकान्तिक भक्तों के अत्यन्त प्रिय ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच

सप्तमेऽद्यतनादूर्ध्वमहन्येतदरिन्दम । निमङ्क्ष्यत्यप्ययाम्भोधौ त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ॥३२॥

अन्वयः— हे अरिन्दम् ! अद्यतनात् ऊर्ध्वम् सप्तमे अहनि एतत् भूर्भुवादिकम् त्रैलोक्यम् अप्ययाम्भोधौ निमङ्क्ष्यति।॥३२॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे अपने शत्रुओं का दमन करने वाले राजन् आज के बाद सातवें दिन यह भूर्भुवः तथा स्वः शब्द वाच्य त्रिलोकी प्रलय कालीन समुद्र में डूब जायेगा ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अप्ययाम्भोधौ प्रलयार्णवे । भूर्भुवआदिकमित्यर्थः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

अप्ययाम्भोधौ अर्थात् प्रलयकालीन समुद्र में । भूर्भुवः आदि त्रैलोक्य ॥३२॥

त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्ताम्भसि वै तदा । उपस्थास्यति नौः काचिद्विशाला त्वां मयेरिता ॥३३॥

अन्वयः— तदा वै संवर्ताम्भसि त्रिलोक्यां लीयमानायां मया ईरिता कचित् विशाला नौ त्वां उपस्थास्यति ।।३३।।

अनुवाद— उस समय जब प्रलयार्णव में त्रिलोकी डूबने लगेगी उस समय मेरे द्वारा प्रेरित एक विशाल नौका तुम्हारे सामने आयेगी ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

संवर्ताम्भसि प्रलयोदके । त्वामुपस्थास्यति प्राप्स्यति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

संवर्ताम्भसि अर्थात् प्रलय के जल में । त्वामुस्थास्यति अर्थात् तुम्हारे सामने जायेगी ।।३३।।

त्वं तावदोषधीः सर्वा बीजान्युच्चावचानि च । सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्वसत्त्वोपबृंहितः ।।३४।।
आरुह्य बृहतीं नावं विचरिष्यस्यविक्लवः । एकार्णवे निरालोके ऋषीणामेव वर्चसा ।।३५।।

अन्वयः— त्वं तावत् सर्वा ओषधीः उच्चावचानि बीजानि, सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्व सत्त्वोपबृंहितः बृहतीं नावं आरुह्य अविक्लवः निरालोके एकार्णवे ऋषीणामेव वर्चसा विचरिष्यसि ।।३४-३४।।

अनुवाद— उस समय तुम सभी ओषधियों और सभी छोटे बड़े बीजों को सप्तर्षियों के साथ तथा सभी प्राणियों के सूक्ष्म शरीर को लेकर उस विशाल नाव पर चढकर प्रकाश रहित एकार्णव में ऋषियों के ही तेज के सहारे बिना किसी विकलता के विचरण करोगे ।।३४-३५।।

भावार्थ दीपिका

ओषधी; आदायेति शेषः । ऋषीणामेवालोकेन विचरिष्यसि ।।३४-३५।।

भाव प्रकाशिका

ओषधियों को लेकर । ऋषियों के तेज के प्रकाश में विचरण करेंगे ।।३४-३५।।

दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा । उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महाहिना ।।३६।।

अन्वयः— बलीयसा समीरेण दोधूयमानां तां नावं उपस्थितस्य मे शृङ्गे महाहिना बध्नीहि ।।३६।।

अनुवाद— प्रचण्ड आँधी के कारण जब नाव डगमगाने लगे तब मैं इस रूप में वहाँ आऊँगा, तुम लोग वासुकि नाग के द्वारा मेरे सींग में नाव को बाँध देना ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

महाहिना वासुकिना ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

वासुकिनाग से ।।३६।।

अहं त्वामृषिभिः साकं सहनावमुदन्वति । विकर्षन्विचरिष्यामि यावद्ब्राह्मी निशा प्रभो ।।३७।।

अन्वयः— हे प्रभो ! अहं ऋषिभिः साकं त्वाम् नावं सह उदन्वति । विकर्षन् यावदब्राह्मी निशा विचरिष्यामि ।।३७।।

अनुवाद— हे राजन् ! मैं ऋषियों के साथ तुमको नाव के साथ ही सागर में खिंचते हुए जब तक ब्रह्माजी की रात होगी तब तक विचरण करूँगा ।।३७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३७।।

मदीयं महिमानं च परं ब्रह्मेति शब्दितम् । वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे संप्रश्नैर्विवृतं हृदि ॥३८॥

अन्वयः— परं ब्रह्मेति शब्दितं मदीयं महिमानं त्वं में अनुगृहीतं संप्रश्नैः विवृतं हृदि वेत्स्यसि ॥३८॥

अनुवाद— पंर ब्रह्म शब्द कही जाने वाली मेरी महिमा को तब जानोगे जब मेरे द्वारा अनुगृहीत तुम प्रश्न करोगे तो मैं उसकी व्याख्या करूँगा । उस समय तुम मेरी महिमा को अपने हृदय में प्रकट हुई जान लोगे ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

मे मयाऽनुगृहीतं प्रसादीकृतं हृदि अपरोक्षं वेत्स्यसि । त्वया कृतैः संप्रश्नैर्मया विवृतं प्रकाशितं सन्तम् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

राजन् तुम्हारे द्वारा प्रश्न किए जाने पर तथा मेरे द्वारा प्रकाशित मेरी महिमा का मेरी कृपा से तुम साक्षात्कार करोगे ॥३८॥

इत्थमादिश्य राजानं हरिरन्तरधीयत । सोऽन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत् ॥३९॥

अन्वयः— राजानम् इत्थम् आदिश्य हरिः अन्तरधीयत । सः तं कालम् अनववैक्षत यं हृषीकेश आदिशत् ॥३९॥

अनुवाद— राजा सत्यव्रत को इस प्रकार का आदेश देकर श्रीहरि अन्तर्धान हो गये और राजा उस समय की प्रतीक्षा करने लगे जिसके लिए श्रीहरि आदेश दिए थे ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

आस्तीर्य दर्भान्प्राक्कूलान्राजर्षिः प्रागुदङ्मुखः । निषसाद हरेः पादौ चिन्तयन्मत्स्यरूपिणः ॥४०॥

अन्वयः— राजर्षि प्राक् कूलान् दर्भान् आस्तीर्य मत्स्य रूपिणः हरेः पादौ चिन्तयन् प्रागुदङ्मुखः निषसाद ॥४०॥

अनुवाद— राजर्षि सत्यव्रत पूर्वाभिमुख कुशों को बिछाकर मत्स्य रूपधारी श्रीभगवान् के चरणों का चिन्तन करते हुए उत्तराभिमुख बैठ गये ॥४०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४०॥

ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्लावयन् महीम् । वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भिः समदृश्यत ॥४१॥

अन्वयः— ततः वर्षद्भिमेघै वर्धमानः समुद्रः उद्वेलः सर्वतः महीम प्लावयन् समदृश्यतः ॥४१॥

अनुवाद— उसके बाद बरसा करते हुए महामेघों से बढा हुआ समुद्र अपने तट को पार करके पूर्ण रूप से पृथिवी को डूबाते हुए दिखाई पड़ा ॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४१॥

ध्यायन्भगवदादेशं ददृशे नावमागताम् । तामारुरोह विप्रेन्द्रैरादायौषधिवीरुधः ॥४२॥

अन्वयः— भगवदादेशं ध्यायन् आगतां नावं ददृशे ओषधि वीरुधः आदाय विप्रेन्द्रैः ताम् आरुरोह ॥४२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के अदेश का ध्यान करते ही राजा ने देखा कि नाव आ गयी हैं । तब राजा ओषधि तथा अन्य बीजों को लेकर सप्तर्षियों के साथ उस नाव पर बैठ गये ॥४२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४२॥

तमूचुर्मुनयः प्रीता राजन्ध्यायस्व केशवम् । स वै नः सङ्कटादस्मादविता शं विधास्यति ॥४३॥

अन्वयः— प्रीताः मुनयः तम् ऊचुः राजन् केशवम् ध्यायस्व आस्मात् सङ्कटात् स वै अविता नः शं विधास्यति॥४३॥

अनुवाद— प्रसन्न हुए सप्तर्षियों ने राजा से कहा राजन् आप भगवान् केशव का ध्यान करें । इस सङ्कट से हमलोगों की रक्षा करने वाले वे ही हैं । वे ही हमलोगों का कल्याण करेंगे ॥४३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४३॥

सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे । एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः ॥४४॥

अन्वयः— ततः राज्ञा अनुध्यातः स; महार्णवे प्रादुरासीत् । नियुतयोजनः हैमो मत्स्यः एकशृङ्गधरः समहार्णवे प्रादुरासीत् ॥४४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् राजा के द्वारा ध्यान किए जाने पर दस लाख योजन विस्तृत सुवर्ण के शरीर वाले मत्स्य भगवान् उस महार्णव में प्रकट हो गये । उनका एक बड़ा सीङ्ग भी था ॥४४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४४॥

निबध्य नावं तच्छृङ्गे यथोक्तो हरिणा पुरा । वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनम् ॥४५॥

अन्वयः— यथा पुरा हरिणा उक्तः तच्छृङ्गे नावं वरत्रेण अहिना निबध्य तुष्टः सन् मधुसूदनं तुष्टाव ॥४५॥

अनुवाद— जैसा श्रीहरि पहले आदेश दिए उसी के अनुसार सर्प रूपी रस्सी से श्रीभगवान् के सींग में नौका बांध दी गयी । उसके पश्चात् राजा सत्यव्रत ने भगवान् मधुसूदन की स्तुति की ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

वरत्रेण दोरकरूपेण ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

वरत्रेण अर्थात् रस्सी स्वरूप ॥४५॥

राजोवाच

अनाद्यविद्योपहतात्मसंविदस्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः ।
यदृच्छयेहोपसृता यमाप्नुयुर्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥४६॥

अन्वयः— अनाद्य विद्योपहतात्म संविदः तन्मूल संसार परिश्रमातुराः, यदृच्छया इहोपसृताः यम् आप्नुयुः विमुक्तिदः नः परमः गुरुर्भवान् ॥४६॥

राजा सत्यव्रत ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! संसारी जीवों का आत्मज्ञान अनादि अविद्या से ढँक गया है, इसी के कारण वे संसार के अनेक क्लेश प्रद भार से पीड़ित हो रहे हैं । जब वे आपके अनुग्रह से अनायास ही आपके चरणों की शरणागति कर लेते हैं तब आपको प्राप्त कर लेते हैं अतएव हमें संसार के बन्धन से छुड़ाकर मुक्ति प्रदान करने वाले परम गुरु आप ही हैं ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

'सागरं तारयिष्यन्तं तरिष्यन्निव सागरम् । सत्यव्रतो गुरुत्वेन तुष्टाव हरिमष्टभिः' । अत्रेदं चिन्त्यम्- किमयं महाप्रलयो दैनन्दिनो वेति । तत्र तावत् ब्राह्मो लय इति 'योऽसावस्मिन्महाकल्पे' इति चोक्तेर्महाप्रलय इति प्राप्तम् । नेति ब्रूमः, महाप्रलये पृथिव्यादीनामवशेषासंभवात्, 'यावद्ब्राह्मी निशा' इत्याद्युक्तिविरोधाच्च । अतो दैनन्दिन इति युक्तम् । न चैतदपि सङ्गच्छते, सांवर्तकैरनावृष्ट्यादिभिर्विना अकस्मादेव सप्तमेऽहनि त्रैलोक्यं निमङ्क्ष्यतीति मत्स्योक्तेरनुपपत्तेः । यच्चोक्तं प्रथमस्कन्धे- 'रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुसन्तरसंप्लवे । नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ।' इति तदपि तदा दुर्घटम्, नहि प्रलयद्वयेऽपि

महीमय्यां नाव्यारोहः संभवति, नच चाक्षुषमन्वन्तरे प्रलयोऽस्ति, तथा च सति सप्तमो मनुर्वैवस्वत इत्यपि दुर्घटं स्यात् । 'त्वं तावदोषधीः सर्वाः' इत्यादिनिर्देशोऽपि न सङ्गच्छते । नहि तदा ओषध्यादीनां सत्त्वानां चावशेषः संभवति । तस्मादन्यथा वर्ण्यते। नैवायं वास्तवः कोऽपि प्रलयः, किंतु सत्यव्रतस्य ज्ञानोपदेशायाविर्भूतो भगवान्वैराग्यार्थमकस्मात्प्रलयमिव दर्शयामास। यथास्मिन्नेव वैवस्वतमन्वन्तरे मार्कण्डेयाय दर्शितवान् । तदपेक्षयैव महाकल्पेऽस्मिन्निति विशेषणं सङ्गच्छते । तथा च- 'ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः समदृश्यत' इति तस्यैव तथा दर्शनमुक्तमित्येषा दिक् । प्रस्तुतं स्तोत्रं व्याख्यास्यामः । तत्र नानायोनिषु संसरतः स्वस्य भगवत्कृपयैव तत्प्राप्तिं दृष्ट्वा मुक्तये तमेव प्रार्थयते-अनादिर्याऽविद्या तयोपहता आवृतात्मनः संविद्येषां ते, अत एवाविद्यामूलैः संसारपरिश्रमैरातुरा इह संसारे यदृच्छया यदनुग्रहादेवोपसृता आश्रिताः सन्तो यमाप्नुयुः प्राप्नुयुः प्राप्नुवन्ति स भवानेव साक्षान्नो गुरुः सन् ग्रन्थिं भिन्द्यादित्युत्तरेणान्वयः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

संसार सागर से पार करने वाले सागर में तैरते हुए के समान राजा सत्यव्रत ने गुरु रूप से श्रीहरि की आठ श्लोकों से स्तुति की । यहाँ पर विचारणीय विषय यह है कि क्या यह दैनन्दिन प्रलय है ? यह इसलिए नहीं कहा जासकता है कि, इस ब्राह्म प्रलय कहा गया है, तथा यह जो इस महाकल्प में कहकर महाप्रलय कहा गया है । तो यह भी नहीं कहा जासकता है; क्योंकि महाप्रलय में पृथिवी इत्यादि बचे नहीं रह सकते । जब तक यह ब्रह्मा की रात रहेगी इस कथन से विरोध भी होगा । अतएव इसे दैनन्दिन लय ही कहना उचित है । किन्तु यह भी इसलिए समन्वित नहीं होता है कि क्योंकि संवर्तक, अनावृष्टि आदि के बिना ही मत्स्य भगवान् ने कहा है कि अकस्मात ही सातवें दिन त्रैलोक्य सागर में डूब जायेगा । इस उक्ति की उपपत्ति नहीं लग सकती है । प्रथम स्कन्ध में कहा गया है कि चाक्षुष् मन्वन्तर में, भगवान् ने मत्स्य शरीर धारण कर लिया । तथा पृथिवी रूपी नौका पर चढकर उन्होंने वैवस्वत मनु की रक्षा की इसका भी समन्वय होना कठिन है, क्योंकि दैनन्दिन तथा महाप्रलय दोनों में ही नौका रोहण नहीं हो सकता है । चाक्षुष मन्वन्तर में प्रयल भी नहीं हुआ । और वैसा होने पर यह भी कहना कठिन है सातवें मनु वैवस्वत हैं । तुम सारे अन्नों को लेकर यह निर्देश भी नहीं समन्वित हो सकता है । क्योंकि प्रलय काल में ओषधियों और जीवों की सत्ता नहीं रह सकती है। । अतएव इससे भिन्न प्रकार से ही यह वर्णन है । यह कोई वास्तविक प्रलय नहीं हैं, अपितु सत्यव्रत को ज्ञानोपदेश करने के लिए आविर्भूत हुए भगवान् अकस्मात् ही उनको प्रलय के समान दिखाये जैसे इस वैवस्वत मन्वन्तर में ही भगवान् ने मार्कण्डेय महर्षि को दिखलाया था । इसी अपेक्षा से इस महाकल्प में इत्यादि विशेषण समन्वित होते हैं । किञ्च उसके पश्चात् राजा ने देखा कि समुद्र चारो ओर से अपने तट को पारकर पृथिवी को डूबा रहा है । इस वाक्य से केवल राजा को ही ऐसा दिखायी दिया । अब प्रस्तुत स्तोत्र की व्याख्या की जारही है । अनेक योनियों में संसरण करने वाले जीव श्रीभगवान् की ही कृपा से परमात्मा की प्राप्ति होती है, इस बात को जानकर अपनी मुक्ति के लिए राजा श्रीभगवान् की प्रार्थना करते हैं । अनादि अविद्या से जिन संसारी जीवों का आत्मज्ञान ढँक गया है, अतएव वे अविद्या मूलक संसार में परिश्रम करते हुए आतुर हो जाते हैं तो इस संसार में ही परमात्मा की ही कृपा से श्रीभगवान् की शरणागति करके श्रीभगवान् को प्राप्त कर लेते हैं ऐसे आप ही हमारे साक्षात् परम गुरु हैं । आप हमारी अविद्या ग्रन्थि को विनष्ट कर दें इस तरह से इस श्लोक का आगे के श्लोक से अन्वय है ।।४६।।

जनोऽबुधो यं निजकर्मबन्धनः सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुखम् ।
यत्सेवया तां विधुनोत्यसन्मतिं ग्रन्थिं स भिन्द्याद्धृदयंस नो गुरुः ।।४७।।

अन्वयः— अबुधः अयं जनः निजकर्म बन्धनः सुखेच्छया असुखं कर्म समीहते, यत्सेवया तां असन्मतिं विधुनोति स नो गुरुः हृदयं ग्रन्थिं भिन्द्यात् ।।४७।।

अनुवाद— यह अज्ञानी जीव अपने ही कर्मों के बन्धन में पड़ा हुआ है । वह सुख प्राप्ति की इच्छा से दुःखद कर्मों का अनुष्ठान करता है । जिसकी सेवा से उसका यह दुःखद अज्ञान विनष्ट हो जाता है, वे ही मेरे परम गुरु आप मेरे हृदय की ग्रन्थि को विनष्ट कर दें ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

ननु वैराग्यं विना कुतो मुक्तिस्तर्हि तस्य त्वत्सेवैकफलत्वात्सेवामादिशेत्याशयेनाह-जन इति । अबुधोऽयं जनः असुखं यथा भवति तथा कर्म समीहते । तां सुखेच्छाम् । नो हृदयरूपं ग्रन्थिं स भिन्द्यात् । यतः स एव परमो गुरुः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि वैराग्य के बिना मुक्ति कैसे हो सकती है ? तो इसका उत्तर है कि वह तो आपकी सेवा से ही सम्भव है आप अपनी सेवा बतलाएँ इसी अभिप्राय से **जन० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । यह अज्ञानी जीव दुःखद कर्मों को करता है । ताम् अर्थात् उस सुख की इच्छा को चूकि आप मेरे परम गुरु हैं । अतएव हमारी हृदयस्थ ग्रन्थि को आप विनष्ट कर दें ।।४७।।

यत्सेवयाऽग्नेरिव रुद्ररोदनं पुमान्विजह्यान्मलमात्मनस्तमः ।
भजेत वर्णं निजमेष सोऽव्ययो भूयात्स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ।।४८।।

अन्वयः— यत् सेवया पुमान् अग्नेः रुद्ररोदनं इव पुमान् आत्मनो मलं तमः विजह्यात् एष निजं वर्णं भजेत सः अव्ययः परमः गुरो गुरुः भूयात् ।।४८।।

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् की सेवा करने से जैसे अग्नि में तपाये गये सोना-चाँदी अपने मल (दोष) क त्यागकर अपने वास्तविक रूप को प्राप्त कर लेते है, उसीसे पुरुष भी अपने अज्ञान रूप दोष को त्यागकर अप वास्तविक स्वरूप में स्थित हो जाता है, वे ही सर्वशक्तिमान अविनाशी प्रभु मेरे गुरुओं के भी गुरु होने के कारण मेरे परम गुरु हो जायँ ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

ननु यज्ञदानादिभिः सत्त्वशुद्धिं विना कथं ग्रन्थिभेदः स्यात्तत्राह- यत्सेवयेति । यस्य सेवयैव पुमानात्मनो मनसो म तमो विजह्यात् । एष हीनमलो निजं वर्णं च स्वरूपं भजेत् । स ईशो नो गुरुर्भूयात् । यतः स एव गुरोरपि परमो गुरुः । मलहा दृष्टान्तः-रुद्ररोदनं रुद्रस्य रोदनं रजतम् । 'यदरोदीत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वं यदश्रुववशीर्यत तद्रजतं हिरण्यमभवत्' इति श्रुतेः तद्यथाग्नेः संपर्कान्मलं जहाति स्वं वर्णं भजते न तु क्षालनादिभिस्तथा न यज्ञादिभिर्मलत्यागः, किंतु त्वत्सेवयैव । तेषां सेवाङ्गत्वमिति भावः ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न हैकि यज्ञ दान इत्यादि के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि हुए बिना ग्रन्थि का भेदन कैसे हो सकता है इस पर राजा सत्यव्रत **यत्सेवया० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । उन श्रीभगवान् की सेवा से जीव अपने अन्तःकर के मल अज्ञान को दूर कर सकता है और वह दोष सेरहित होकर अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है । वे परमात्मा हमारे गुरु बनें । क्योंकि आप गुरुओं के भी परम गुरु हैं । मल की हानि में दृष्टान्त है **यदरोदीतद्रुद्रस्यरुद्रत्व यदश्रूव वशीर्यत तद्रजतं हिरण्यम् ।** अर्थात् रुद्र जो रोए वही रुद्र का रुद्रत्व है । उनके जो आँसू गिरे वे चाँदी और सुवर्ण हो गये । यह श्रुति कहती है । वह सोना-चाँदी जैसे अग्नि के सम्पर्क अपने मल का परित्या कर देता है और अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेता है । धोने से यह कार्य नहीं होता है । उसी तर यज्ञ इत्यादि अनुष्ठान से अन्तःकरण के दोष दूर नहीं होते है । अपितु परमात्मा की सेवा करने से ही यज्ञा तो सेवा के अङ्ग मात्र हैं ।।४८।।

न यत्प्रसादायुतभागलेशमन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ।
कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंसस्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥४९॥

अन्वयः— अन्ये देवाः गुरवः जनाः स्वयं समेताः यत् पुंसः प्रसादा युतभागलेशम् कर्तुम् न प्रभवन्ति तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥४९॥

अनुवाद— यदि विश्व के सम्पूर्ण गुरु तथा दूसरे लोग मिलकर कृपा करें तो भी वह परम पुरुष परमात्मा की कृपा के दश हजारवें अंश के अंश की भी बराबर नहीं कर सकते हैं। प्रभो आप ही सर्वशक्तिमान हैं मैं आपकी शरण ग्रहण करत हूँ ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

परमेश्वरत्वं परमगुरुत्वं च प्रपञ्चयन्नाह-नेति । यत्प्रसादस्यायुतभागस्तस्य लेशमात्रमप्यन्ये देवादयः सर्वे समेता अपि स्वयं तन्निरपेक्षाः सन्तः कर्तुं न प्रभवन्ति ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

न यत् प्रसादा० इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् के परमेश्वरत्व औरपरमगुरुत्व का विस्तार करते हुए कहतें हैं। जिन श्रीभगवान् की कृपा के दश हजारवें भाग के अंश मात्र की भी कृपा देवता इत्यादि करने में समर्थ नहीं होते हैं ॥४९॥

अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृतस्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ।
त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥५०॥

अन्वयः— यथा अन्धस्य अग्रणीः अचक्षुः कृतः तथा अविदुषः जनस्य गुरुः अबुधः त्वम् अर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणः स्वगतिं बुभुत्सताम् नः गुरुः वृतः ॥५०॥

अनुवाद— जिस तरह कोई अन्धा किसी अन्धे को ही अपना पथ प्रदर्शक बना ले वैसे ही संसार के अज्ञानी जीव अज्ञानी कोही अपना गुरु बना लेते हैं। आप सूर्य के समान स्वयं प्रकाश और समस्त इन्द्रियों के प्रेरक हैं। आत्म तत्त्व के जिज्ञासु हम आपको ही अपना गुरु बनाते हैं ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

तदेव दृष्टान्तेन स्पष्टयन्नाह-अचक्षुरिति । अविदुषो जनस्याबुधोऽविद्वान् गुरुस्तथैव । अर्कप्रकाशवत्स्वत एव दृग्ज्ञानं यस्य सोऽर्कदृक् । अतः सर्वदृशां सर्वेन्द्रियाणां समीक्षणः प्रकाशकः । अतएव सुगतिं बोद्धुमिच्छद्भिर्नोऽस्माभिर्गुरुर्वृतोऽसि ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

उसी को दृष्टान्त के द्वारा स्पष्ट करते हुए **अचक्षुः इत्यादि** कहते हैं। जैसे अज्ञानी पुरुष का अज्ञानी गुरु हो जाय उसी तरह से सूर्य के प्रकाश के समान जिनका ज्ञान स्वतः है वह अर्कदृक है। अतएव आप सभी इन्द्रियों के प्रकाशक है। अतएव सुन्दर गति जानने के इच्छुक मैं आपको अपना गुरु बनाता हूँ ॥५०॥

जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः ।
त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥५१॥

अन्वयः— जनः जनस्य असतिं मतिं दिशते यया दुरत्ययं तमः प्रपद्येत । त्वं तु अव्ययं, अमोघं ज्ञानम् येन जनः अञ्जसा निजं पदं प्रपद्यते ॥५१॥

अनुवाद— अज्ञानी मनुष्य अज्ञानियों को अज्ञान का ही उपदेश करता है जिसके द्वारा संसार रूप घोर

अन्धकार की अधिकाधिक रूप से प्राप्ति होती है और आप तो इस अविनाशी और अमोघ ज्ञान का उपदेश करते हैं जिससे अनायास अपने वास्तविक स्वरूप के अनायास ही प्राप्त कर लेता है ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

किंच प्राकृतो गुरुरनर्थहेतुरित्याह-जन इति । आदिशते उपदिशति । असतीं मतिमर्थकामादिमतिम् । तमः संसारम्।।५१।।

भाव प्रकाशिका

प्राकृत गुरु तो अनर्थ का ही कारण होता है इस बात **कोजने० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । **आदिशते** अर्थात् उपदेश देता है । असतीं मतिम् अर्थ एवं कामादि विषयिणी मति को । **तमः** अर्थात् संसार को ।।५१।।

त्वं सर्वलोकस्य सुहृत्प्रियेश्वरो ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः ।
तथापि लोको न भवन्तमन्धधीर्जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ।।५२।।

अन्वयः— त्वं सर्वलोकस्य सुहृत् प्रियेश्वरः आत्मा, गरुः ज्ञानम् अभीष्ट सिद्धिदः । तथापि अन्धधी बद्धकामः हृदिसन्तं भवन्तं न जानाति ।।५२।।

अनुवाद— आप सम्पूर्ण संसार के सुहृत् प्रियतम ईश्वर और आत्मा हैं । गुरु, उसके द्वारा प्राप्त होने वाले ज्ञान और अभीष्ट की सिद्धि भी आपका ही स्वरूप है । फिर भी कामनाओं के बन्धन में जकड़ेहुए लोग अन्धे हो गये है औरअपने हृदय में ही निवास करने वाले आपको नहीं जानते हैं ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि सर्वोऽपि लोको मामेव किं नोपसरति, अज्ञानादित्याह- त्वमिति । प्रियश्चासावीश्वर ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि तो फिर सभी लोग मेरी शरणागति क्यों नहीं करते हैं ? तो इस पर कहते है अज्ञान के कारण इस बात को **त्वम्० इत्यादि** श्लोक से राजा सत्यव्रत ने कहा है प्रिय तथा ईश्वर ।।५२।।

तं त्वामहं देववरं वरेण्यं प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय ।
छिन्ध्यर्थदीपैर्भगवन्वचोभिर्ग्रन्थीन्हृदय्यान्विवृणु स्वमोकः ।।५३।।

अन्वयः— तं देववरं वरेण्यं ईशं त्वाम् अहं प्रतिबोधनाय प्रपद्ये । भगवन् अर्थ दीपैः वचोभिः हृदय्यान् ग्रन्थीन् छिन्धि स्वमोकः विवृणु ।।५३।।

अनुवाद— देवताओं में श्रेष्ठ तथा पूजनीय सम्पूर्ण जगत् के नियामक आपकी मैं ज्ञान की प्राप्ति के लिए शरणागति करता हूँ । आप अपने परमार्थ को प्रकाशित करने वाली वाणी के द्वारा मेरे हृदय की ग्रन्थि को काट दें और अपने स्वरूप को प्रकाशित कर दें ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

अहं तु त्वामेव शरणं यामीत्याह-तं त्वामिति । प्रतिबोधनायोपदेशाय । अर्थदीपैः परमार्थप्रकाशकैः । हृदये भवान् ग्रन्थीनहंकारादीन् । स्वमोकः स्वं रूपं विवृणु प्रकाशय ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

तं त्वाम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा राजर्षि सत्यव्रत कहते हैं कि मैं तो आपकी ही शरणागति करता हूँ। **प्रतिबोधनाय** अर्थात् उपदेश देने के लिए **अर्थ दीपैः** अर्थात् परमार्थ का प्रकाशन करने वाले । हृदय्यान् ग्रन्थीन् अर्थात् हृदय में रहनें वाली ग्रन्थियों अहङ्कार आदि को । **स्वमोकः** अर्थात् अपने स्वरूप को । विवृणु अर्थात् प्रकाशित कर दें ।।५३।।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तवन्तं नृपतिं भगवानादिपूरुषः । मत्स्यरूपी महाम्भोधौ विहरंस्तत्त्वमब्रवीत् ॥५४॥

अन्वयः— इति उक्तवन्तं नृपतिं मत्स्यरूपी आदि पुरुषो भगवान् महाम्भोधौ विहरन् तत्त्वम् अब्रवीत् ॥५४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से कहने वाले राजा को मत्स्य शरीर धारण किए हुए आदि पुरुष भगवान् महासागर में विहार करते हुए तत्त्वोपदेश किए ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

नृपतिं प्रति ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

राजा के प्रति ॥५४॥

पुराणसंहितां दिव्यां सांख्ययोगक्रियावतीम् । सत्यव्रतस्य राजर्षेरात्मगुह्यमशेषतः ॥५५॥

अन्वयः— सत्यव्रतस्य राजर्षेः अशे षतः आत्मगुह्यम् सांख्येयोगक्रियावतीम् दिव्या पुराण संहिताम् उपदिदेशेति यावत् ॥५५॥

अनुवाद— राजर्षि सत्यव्रत को अपने स्वरूप के सम्पूर्ण रहस्य का वर्णन करते हुए ज्ञान भक्ति और कर्म योग से परिपूर्ण दिव्य पुराण संहिता (मत्स्यपुराण) का उपदेश दिए ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

पुराणसंहितां मत्स्यपुराणमशेषतोऽब्रवीदित्यनुषङ्गः ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

पुराणसंहिताम् अर्थात् सम्पूर्ण मत्स्य पुराण का उपदेश दिए ॥५५॥

अश्रौषीदृषिभिः साकमात्मतत्त्वमसंशयम् । नाव्यासीनो भगवता प्रोक्तं ब्रह्म सनातनम् ॥५६॥

अन्वयः— नाव्यासीनः ऋषिभिः साकम् असंशयम् भगवता प्रोक्तं सनातनं ब्रह्म आत्मतत्त्वम् अश्रौषीत् ॥५६॥

अनुवाद— राजा सत्यव्रत नाव में बैठे हुए ऋषियों के साथ संशय रहित होकर श्रीभगवान् के द्वारा उपदिष्ट सनातन ब्रह्म आत्मतत्त्व का श्रवण किए ॥५६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५६॥

अतीतप्रलयापाय उत्थिताय सवेधसे । हत्वाऽसुरं हयग्रीवं वेदान्प्रत्याहरद्धरिः ॥५७॥

अन्वयः— अतीत प्रलयापाये उत्थिताय वेधसे सहरिः हयग्रीवं हत्वा वेदान् प्रत्याहरत् ॥५७॥

अनुवाद— जब पिछले प्रलय का अन्त हो गया और ब्रह्माजी जग गये तब श्रीभगवान् ह्यग्रीव नामक असुर को बधकर वेदों को उसने छिन कर लाये ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

अतीतः पूर्वो यः प्रलयस्तस्यापायेऽवसाने ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

पिछले प्रलय के बीत जाने पर यह **अतीत प्रलयापाये** का अर्थ है ॥५७॥

स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः । विष्णोः प्रसादात्कल्पेऽस्मिन्नासीद्वैवस्वतो मनुः ॥५८॥

अन्वयः— विष्णोः प्रसादात् ज्ञान विज्ञान संयुतः स राजासत्यव्रतः अस्मिन् कल्पे वैवस्तः मनुः आसीत् ।।५८।।

अनुवाद— भगवान् विष्णु की कृपा से ज्ञान विज्ञान से सपन्न वे राजा सत्यव्रत इस कल्प में वैवस्त मनु हुए ।।५८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५८।।

सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मायामत्स्यस्य शार्ङ्गिणः । संवादं महदाख्यानं श्रुत्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥५९॥

अन्वयः— राजर्षेः सत्यव्रतस्य मायामत्स्यस्य शार्ङ्गिण संवादं महदाख्यानं श्रुत्वा किल्विषात् मुच्येत ।।५९।।

अनुवाद— राजर्षि सत्यव्रत का तथा अपनी माया से मत्स्य बने हुए भगवान् विष्णु का आख्यान रूप संवाद को सुनकर मनुष्य पाप मुक्त हो जाता है ।।५९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५९।।

अवतारो हरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहं नरः । सङ्कल्पास्तस्य सिध्यन्ति स याति परमां गतिम् ॥६०॥

अन्वयः— यः नरः अन्वहं अयं हरेः अवतारः कीर्तयेत् तस्य सङ्कल्पाः सिध्यन्ति सः परमां गतिं याति ।।६०।।

अनुवाद— जो मनुष्य प्रतिदिन श्रीहरि के इस अवतार का प्रतिदिन कीर्तन करता है, उसके सम्पूर्ण सङ्कल्प सिद्ध हो जाते हैं और वह परगति को प्राप्त करता है ।।६०।।

भावार्थ दीपिका

योऽयं हरेरवतारस्तं यः प्रकीर्तयेत् ।।६०।।

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि का यह जो अवतार है उसका कीर्तन करता है तो ।।६०।।

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ।
दितिजमकथयद्यो ब्रह्म सत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥६१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां वैयासक्यामष्टमस्कन्धे
मत्स्यावतारचरितानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

समाप्तोऽयमष्टमस्कन्धः ॥८॥

अन्वयः— प्रलयपयसि सुप्तशक्तेः धातुः मुखेभ्यः श्रुतिगणमपनीतम् दितिजम् हत्वा यः प्रत्युपादत्त सत्यव्रतानां यः ब्रह्म अकथयत् तम अखिल हेतुं जिह्ममीनम् अहम् नतोऽस्म् ।।६१।।

अनुवाद— प्रलय कालीन समुद्र में जब ब्रह्माजी सो गये थे तो उनके मुख से निकली हुई श्रुतियों को चुराकर हयग्रीव नामक दैत्य पाताल में चला गया । उस दैत्य को मारकर श्रीभगवान् श्रुतियों को ब्रह्माजी को लौटा दिए एवं सत्यव्रत तथा सप्तर्षियों को जिन्होंने ब्रह्म तत्त्व का उपदेश दिया उन सम्पूर्ण जगत् के कारण भूत लीला मत्स्य भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ।।६१।।

इस तरह महर्षि व्यास प्रणीत अठारह हजार श्लोकों वाली श्रीमद्भागवत् महापुराण नामक परमहंस्य संहिता के आठवें स्कन्ध के मत्स्यावतार चरित का वर्णन नामक चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

सत्यव्रतानां सत्यव्रतस्य ऋषीणां च छत्रिणो गच्छन्तीतिवल्लिङ्गसमवायाद्बहुवचनम् । जिह्ममीनं मायामत

इति श्रीमद्भगवते महपुराणे अष्टमस्कन्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावर्थ दीपिकायां टीकायां चतुर्विंशोऽध्य

समाप्तोऽयमष्टमूस्कन्धः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

यहाँ पर छत्री न्याय से राजा सत्यव्रत तथा उनके ऋषों का ग्रहण लिङ्ग समवाय के करण के बहुवचन के द्वारा होता है । जिह्म मीनम् अर्थात् माया से मत्स्य बने हुए श्रीभगवान् को ।।६१

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के आठवें स्कन्ध की श्रीधरस्वामी प्रणीत भावर्थद

नामक टीका के चौबीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत

भावप्रकाशिका व्यख्या सम्पूर्ण हुई ।।२४।।

इस तरह अठावाँ स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

।। ओम नमो भगवते वासुदेवाय ।।

नवाँ स्कन्ध

प्रथम अध्याय

वैवस्तमनु के पुत्र राजा सुद्युम्न की कथा

राजोवाच

मन्वन्तराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे । वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च ॥१॥

अन्वयः— त्वया उक्तानि सर्वाणि मन्वन्तराणि तत्र अनन्तवीर्यस्य हरेः कृतानि वीर्याणि मे श्रुतानि ।।१।।

अनुवाद— भगवन् आपके द्वारा वर्णित सभी मन्वन्तरों तथा उन मन्वन्तरों में अनन्तशक्तिशाली श्रीहरि के चरित्रों का वर्णन मैंने सुना ।।१।।

भावार्थ दीपिका

गुणा यं गुणतावाप्तयै वृणते करुणानिधिम् । तमहं शरणं यामि परमानन्दमाधवम् । त्रिगुणाष्टभिरध्यायैर्वैवस्वतसुतान्वयः। नवम कृष्णसत्कीर्तिप्रसङ्गाय वितन्यते । एवमुक्तोऽष्टमस्कन्धे सद्धर्मः सत्त्वशोधकः । कर्तृपालकवक्त्रादिमन्वादीनां निरूपणैः। सद्धर्मशुद्धसत्त्वानामन्तरङ्गेशसत्कथा । सूर्यसोमान्वयाख्यानैरधुना सङ्गतोच्यते । तत्र च त्रयोदशभिरध्यायैः सूर्यवंशोऽनुवर्ण्यते। एकादशभिरध्यायैः सोमवंशस्ततः परैः । तत्र तु प्रथमेऽध्याये वैवस्वतसुतान्वये । सोमवंशप्रवेशाय सुद्युम्नस्त्रीत्वमुच्यते । उक्तानुवादपूर्वकं वैवस्वतमनोर्वंशं पृच्छति । मन्वन्तराणीति पञ्चभिः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

गुण अपने गुणत्व की प्राप्ति के लिए जिस करुणा सागर श्रीभगवान् का वरण करते हैं उन परमानन्द स्वरूप लक्ष्मीपति श्रीभगवान् की मैं शरणागति करता हूँ । चौबीस अध्यायों के द्वारा वैवस्वत मनु के पुत्रों के वंश का वर्णन इसलिए नौवें स्कन्ध में किया जा रहा है कि इसी प्रसङ्ग में भगवान् श्रीकृष्ण की सत्कथा का प्रसङ्ग प्राप्त हो जाय । इस तरह आठवें स्कन्ध में कर्ता, पालक तथा वक्ता आदि मनुओं आदि के निरूपण के द्वारा अन्तः करण के शोधक सद्धर्म का वर्णन किया गया है । सद्धर्म और शुद्धसत्त्व वाले श्रीरङ्गेश की सत्कथा इस समय सूर्यवंश एवं सोमवंश के वर्णन के द्वारा इस समय सङ्गति बतलायी जाती है । उसमें भी तेरह अध्यायों द्वारा सूर्यवंश का वर्णन और उसके पश्चात् ग्यारह अध्यायों द्वारा सोमवंश का वर्णन इस स्कन्ध में किया गया है । उसमें भी इस पहले अध्याय में वैवस्वत मनु के पुत्रों के वंश में सोमवंश में प्रवेश के लिए राजा सुद्युम्न के स्त्रीत्व प्राप्ति का वर्णन किया गया है ।।६।। मन्वन्तराणि इत्यादि पाँच श्लोकों द्वारा राजा परीक्षित् उक्तार्थ का अनुवाद करते हुए वैवस्वत मनु के वंश के विषय में शुकदेवजी से प्रश्न करते हैं ।।१।।

योऽसो सत्यव्रतो नाम राजर्षिर्द्रविडेश्वरः । ज्ञानं योऽतीतकल्पान्ते लेभे पुरुषसेवया ।।२।।

अन्वयः— अतीत कल्पान्ते योऽसौ द्रविडेश्वरः राजर्षिः सत्यव्रतः नाम पुरुषसेवया ज्ञानं लेभे ।।२।।

अनुवाद— बीते कल्प के अन्त में द्रविडदेश के स्वामी राजा सत्यव्रत जिन्होंने श्रीभगवान् की सेवा करके ज्ञान प्राप्त किया ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम् । त्वत्तस्तस्य सुताश्चोक्ता इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः ॥३॥

अन्वयः— स वै विवस्वतः पुत्रः मनुः असीत् इति त्वत्तः श्रुतम् । तस्य च इक्ष्वाकु प्रमुखाः नृपाः सुता आसन् इति चोक्ता ॥३॥

अनुवाद— वे विवस्वान् के पुत्र मनु हो गये । यह आपने कहा है । आपने यह भी कहा है कि उन मनु के इक्ष्वाकु इत्यादि राजागुण सम्पन्न पुत्र थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

तेषां वंशं पृथग्ब्रह्मन्वंश्यानुचरितानि च । कीर्तयस्व महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हि नः ॥४॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् तेषां पृथक् वंशं वंश्यानुचरितानि च हे महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हि नः कीर्तयस्व ॥४॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! उन सबों के पृथक्-पृथक् वंश और उनके वंशों में होने वालो का चरित हम सुनना चाहने वालों को आप सुनाएँ ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

ये भूता ये भविष्याश्च भवन्त्यद्यतनाश्च ये । तेषां नः पुण्यकीर्तीनां सर्वेषां वद विक्रमान् ॥५॥

अन्वयः— ये भूता ये भविष्याः ये च अद्यतनाः भवन्ति तेषां सर्वेषां पुण्यकीर्तीनां विक्रमान् वद ॥५॥

अनुवाद— वैवस्वत मनु के वंश में जो हो चुके हैं, जो होने वाले हैं और जो वर्तमान काल में है, उन सभी पवित्र कीर्ति पुरुषों के पराक्रम का आप वर्णन करें ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

श्रीसूत उवाच

एवं परीक्षिता राज्ञा सदसि ब्रह्मवादिनाम् । पृष्टः प्रोवाच भगवाञ्छुकः परमधर्मवित् ॥६॥

अन्वयः— एवं ब्रह्मवादिना सदसि राज्ञा परीक्षिता पृष्टः परमधर्मवित् भगवान् शुकः प्रोवाच ॥६॥

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से ब्रह्मवादी ऋषियों की सभा में राजा परीक्षित् द्वारा पूछे जाने पर धर्म के परम मर्मज्ञ भगवान् श्रीशुकदेवजी ने कहना प्रारम्भ किया ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

श्रीशुक उवाच

श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परंतप । न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि ॥७॥

अन्वयः— हे परन्तप मानवो वंशः प्राचूर्येण श्रूयताम् विस्तरतः वर्षशतैरपि न वक्तुं शक्यते ॥७॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे परीक्षित् ! तुम मनु के वंश का संक्षेप में वर्णन सुनो विस्तार से तो सैकड़ों वर्षों में भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

परावरेषां भूतानामात्मा यः पुरुषः परः । स एवासीदिदं विश्वं कल्पान्तेऽन्यन्न किंचन ॥८॥

अन्वयः— परावरेषां भूतानाम् आत्माय: परः पुरुषः कल्पान्ते स एव आसीत् अन्यत् किञ्चन न ॥८॥

अनुवाद— जो परमात्मा छोटे बड़े सभी जीवों की आत्मा है तथा परम पुरुष कहलाते है, कल्प के अन्त में केवल वे ही थे, उनसे भिन्न कुछ भी नहीं था ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अनुक्तं वंशं वक्तुं पूर्वोक्तमेव तावद्वंशं तत्प्रवर्तकं श्रीनारायणमारभ्यानुस्मारयति-परावरेषामिति पञ्चभिः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

जिस वंश का वर्णन नहीं किया गया उसका वर्णन करने के लिए पूर्वोक्त वंश और उसके प्रवर्तक भगवान् नारायण से ही आरम्भ करके याद परावरेषाम् इत्यादि पाँच श्लोकों से दिलाते हैं ॥८॥

तस्य नाभेः समभवत्पद्मकोशो हिरणमयः । तस्मिञ्जज्ञे महाराज स्वयंभूश्चतुराननः ॥९॥

अन्वयः— हे महाराज ! तस्य नाभेः हिरणमयः पद्मकोशः समभवत् तस्मिन् चतुराननः स्वयम्भूः जज्ञे ॥९॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! उन भगवान् नारायण की नाभि से एक सुवर्णमय कमल कोश उत्पन्न हुआ, उस पर चार मुख वाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

मरीचिर्मनसस्तस्य जज्ञे तस्यापि कश्यपः । दाक्षायण्यां ततोऽदित्यां विवस्वानभवत्सुतः ॥१०॥

अन्वयः— तस्यमनसः मरीचिः जज्ञे, तस्यअपि कश्यपः ततः दाक्षायण्याम् आदित्यां विवस्वान् सुतः अभवत्॥१०॥

अनुवाद— ब्रह्माजी मन से मरीचि महर्षि उत्पन्न हुए उनके पुत्र कश्यप महर्षि हुए उनकी पत्नी तथा दक्ष प्रजापति की पुत्री के गर्भ से कश्यप महर्षि के पुत्र विवस्वान् हुए ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत । श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान्स आत्मवान् ॥११॥

अन्वयः— हे भारत ! ततः श्राद्धदेव मनुः संज्ञायामास स आत्मवान् श्रद्धायां दश पुत्रान् जनयामास ॥११॥

अनुवाद— हे भारत ! विवस्यान् की पत्नी संज्ञा के गर्भ से श्राद्धदेव मनु का जन्म हुआ । मनस्वी श्राद्धदेव ने अपनी पत्नी श्रद्धा से दश पुत्रों को उत्पन्न किया ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरूषकान् । नरिष्यन्तं पृषध्रं च नभगं च कविं विभुः ॥१२॥

अन्वयः— इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरुषकान् नरिष्यन्तं, पृषध्रं च नभगं च कवि विभुः ॥१२॥

अनुवाद— महाराज श्राद्धदेव के पुत्रों के नाम हैं इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त पृषध्र, नभग और कवि ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

नाभागं चेति पाठेऽपि नभग एव नाभागः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

नाभाग पाठ होने पर भी **नभग एव नाभाग** इस व्युत्पति के अनुसार वही अर्थ होगा ॥१२॥

अप्रजस्य मनोः पूर्वं वसिष्ठो भगवान्किल । मित्रावरुणयोरिष्टिं प्रजार्थमकरोत्प्रभुः ॥१३॥

अन्वयः— पूर्वं अप्रजस्यमनोः प्रजार्थम् भगवान् प्रभुः वसिष्ठः किल मित्रावरुणयोः इष्टिम् अकरोत् ॥१३॥

अनुवाद— पहले श्राद्धदेव मनु सन्तानहीन थे उनको सन्तान प्राप्ति के लिए सर्वसमर्थ भगवान् वसिष्ठ मित्रावरुण नामक देवता की इष्टि किये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

सूर्यपौत्रस्य सुद्युम्नस्य स्त्रीत्वे सति बुधात्पुरुरवःपभृतिसोमवंशसंचारं वक्तुं सप्रस्तावमिलोपाख्यानमाह-अप्रजस्य मनोः पूर्वमित्यादिना यावदध्यायसमाप्तिं । पूर्वमिक्ष्वाकुप्रभृतीनामुत्पत्तेः प्राक् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

इक्ष्वाकु इत्यादि की उत्पत्ति से पहले सूर्य के पौत्र सुद्युम्न के स्त्रीत्व प्राप्ति हो जाने पर बुध से पुरुरवा इत्यादि सोमवंश का संचार बतलाने के लिए प्रस्ताव पूर्वक ईलोपाख्यान का वर्णन शुकदेवजी अप्रजस्यमनोः इत्यादि श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त करते है ॥१३॥

तत्र श्रद्धा मनोः पत्नीं होतारं समयाचत । दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ॥१४॥

अन्वयः— तत्र मनोः पयोव्रता पत्नी श्रद्धा होतारम् उपगम्य प्रणिपत्य दुहित्रर्थं समयाचत ॥१४॥

अनुवाद— यज्ञ के समय दूध पीकर रहने वाली श्राद्धदेव मनु की पत्नी श्रद्धा होता के पास आकर प्रणाम करके उनसे पुत्री की प्राप्ति के लिए याचना की ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

दुहित्रर्थं मम कन्या यथा भवेत्तया यजेति होतारं सम्यगयाचत । पय एव व्रतमाहारो नियतो यस्याः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

मुझको जिस तरह से कन्या की प्राप्ति हो उस तरह से यजन करें, इस तरह से होता से याचना की श्रद्धा का दूध ही आहार था ॥१४॥

प्रेषितोऽध्वर्युणा होता ध्यायंस्तत्सुसमाहितः । हविषि व्यचरत्तेन वषट्कारं गृणन्द्विजः ॥१५॥

अन्वयः— अध्वर्युणा प्रेषितः द्विजः होता तेन हविषि तत् ध्यायन् सुसमाहितः वषट्कारं गृणन् व्यचरत् ॥१५॥

अनुवाद— अध्वर्यु के द्वारा प्रेरित होता नामक ब्राह्मण उससे प्राप्त हविष्य में श्रद्धा की बातों का ध्यान करके एकाग्रचित्त से वषट्कार का उच्चारण करते हुए यजन किया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अध्वर्युणा होतर्यजेति प्रेषितो होता तेन गृहीते हविषि सति तत्तया प्रार्थितं ध्यायन्व्यचरदयजत् । पाठान्तरे तत् अध्यायत् वाचा वषट्कारं गृणन्वौषडित्युच्चारयन् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

अधवर्यु के द्वारा यजन करो इस तरह से प्रेरित होता ने अध्वर्यु से प्राप्त हविष्य रानी की बातों का अच्छी तरह से ध्यान करके यजन किया । **होताऽध्यासत् तत्** इस तरह का पाठान्तर होने पर उसका ध्यान करते हुए वाणी से वषट्कार का उच्चारण करते हुए यजन किया यह अर्थ होगा ॥१५॥

होतुस्तद्व्यभिचारेण कन्येला नाम साभवत् । तां विलोक्य मनुः प्राह नातिहृष्टमना गुरुम् ॥१६॥

अन्वयः— होतुः तत् व्यभिचारेण सा इला नाम कन्या अभवत् तां विलोक्य नाति हृष्टमनाः मनुः गुरुम् प्राह ॥१६॥

अनुवाद— होता के विपरीत कार्य करने के कारण यज्ञ के फल रूप से पुत्र के स्थान पर इला नामक पुत्री उत्पन्न हुई उससे महाराज मनु को बहुत प्रसन्नता नहीं हुई और उन्होंने अपने गुरु वसिष्ठजी से कहा ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

भगवन्किमिदं जातं कर्म वो ब्रह्मवादिनाम् । विपर्ययमहो कष्टं मैवं स्याद्ब्रह्मविक्रिया ॥१७॥

अन्वयः— भगवन् इदं किं जातम् वः ब्रह्म वगदिनाम् कर्म अहो विपर्ययम् कष्टं एवं ब्रह्मविक्रिया मास्यात् ॥१७॥

अनुवाद— हे भगवन् ! यह क्या हो गया ? आपलोग ब्रह्मवादी हैं । ब्रह्मवादी के कर्म का विपरीत फल होना यह तो कष्ट की बात है । वैदिक कर्मों का इस तरह से विपरीत फल तो नहीं होना चाहिए ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मविक्रिया मन्त्रान्यथात्वम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मविक्रिया अर्थात् मन्त्रों का विपरीत फल देना ॥१७॥

यूयं मन्त्रविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः । कुतः सङ्कल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव ॥१८॥

अन्वयः— यूयं मन्त्रविद युक्ता तपसा दग्ध किल्विषाः विबुधेषु इव कुतः सङ्कल्पवैषम्यम् ॥१८॥

अनुवाद— आपलोग तो मन्त्रों के पूर्णरूप से ज्ञाता हैं साथ ही आपलोग जितेन्द्रिय भी हैं । तपस्या के द्वारा आपलोगों के सारे पाप नष्ट हो चुके हैं । देवताओं में असत्य की प्राप्ति के समान आपके सङ्कल्प का विपरीत फल कैसे हो गया ?॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

तन्निशम्य वचस्तस्य भगवान्प्रपितामहः । होतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे रविनन्दनम् ॥१९॥

अन्वयः— तस्य तदवचः निशाम्य भगवान् प्रपितामहः होतुः व्यतिक्रमं ज्ञात्वा रविनन्दनं बभाषे ॥१९॥

अनुवाद— मनु श्राद्धदेव की वाणी को सुनकर ऐश्वर्य सम्पन्न हमारे (शुकदेवजी के) प्रपितामह महर्षि वसिष्ठजी होता के विपरीत कर्म को जान गये और उन्होंने सूर्य पुत्र मनु श्राद्धदेव से कहा ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

प्रपितामहो वसिष्ठः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

प्रपितामह शब्द से वसिष्ठ महर्षि को कहा गया है ॥१९॥

एतत्सङ्कल्पवैषम्यं होतुस्ते व्यभिचारतः । तथापि साधयिष्ये ते सुप्रजास्त्वं स्वतेजसा ॥२०॥

अन्वयः— एतत् सङ्कल्प वैषम्यं ते होतुः व्यभिचारतः तथापिते सुप्रजास्त्वं स्वतेजसासाधयिष्ये ॥२०॥

अनुवाद— राजन् आपके होता के विपरीत सङ्कल्प होने के कारण मेरा सङ्कल्प ठीक से पूरा नहीं हुआ फिर भी मैं अपने तेज से आपको मै श्रेष्ठ पुत्र प्रदान करूँगा ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

एवं व्यवसितो राजन्भगवान्स महायशाः । अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥२१॥

अन्वयः— एवं व्यवसित स महायशः भगवान् इलायाः पुंस्त्वकाम्यया अदिपुरुषम् अस्तौषीत् ॥२१॥

अनुवाद— इस तरह से निश्चय करके वे महायशस्वी भगवान् वसिष्ठ इला को पुरुष बना देने के लिए आदि पुरुष श्रीभगवान् की प्रार्थना किए ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

तस्मै कामवर तुष्टो भगवान्हरिरीश्वरः । ददाविलाभवत्तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः ॥२२॥

अन्वयः— भगवान् हरिरीश्वरः तस्मै काम वरं ददौ तेन इला पुरुषर्षभः सुद्युम्नः अभवत् ॥२२॥

अनुवाद— सर्वशक्तिमान भगवान् उन पर संतुष्ट होकर महर्षि वसिष्ठ को मुंहमाँगा वरदान प्रदान किए । उसी के प्रभाव से इला सुद्युम्न नामक श्रेष्ठ पुरुष हो गयी ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

स एकदा महाराज विचरन्मृगया वने । वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य सैन्धवम् ॥२३॥
प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान् । दंशितोऽनु मृगं वीरो जगाम दिशमुत्तराम् ॥२४॥

अन्वयः— हे महाराज ! स एकदा कतिपयामात्यैः वृतः सैन्धवम् अश्वम् आरुह्य दंशितः रुचिरं चापं परमाद्भुतान् शरांश्च प्रगृह्य वीरः मृगया वने चरन् अनुमृगं उत्तराम् दिशम् जगाम ॥२३-२४॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! एक बार राजा सुद्युम्न अपने कुछ मन्त्रियों के साथ सिन्धु देश के घोड़े पर सवार होकर सुन्दर कवच पहनकर अपने हाथ में मनोहर धनुष और बाण लेकर वे वीर एक मृग का पीछा करते हुए उत्तर दिशा में गये ॥२३-२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३-२४॥

सकुमारो वनं मेरोरधस्तात्प्रविवेश ह । यत्रास्ते भगवाञ्छर्वो रममाणः सहोमया ॥२५॥

अन्वयः— स कुमार मेरोरधस्तात् वनं प्रविवेश ह यत्र भगवान् शर्वः उमया सह रममाण आस्ते ॥२५॥

अनुवाद— वे राजकुमार सुद्युम्न सुमेरु पर्वत की तलहटी में एक वन में चले गये । उस वन में भगवान् शङ्कर पार्वतीजी के साथ विहार करते रहते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

तस्मिन्प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्नः परवीरहा । अपश्यत्स्त्रियमात्मानमश्वं च वडवां नृप ॥२६॥

अन्वयः— हे नृप ! तस्मिन् प्रविष्ट एव असौ परवीरहा सुद्युम्नः आत्मानम् स्त्रियं अश्वं च वडवाम् अपश्यत् ॥२६॥

अनुवाद— राजन् ! उस वन में प्रवेश करते ही वीर सुद्युम्न अपने को स्त्री के रूप में और अपने अश्व को घोड़ी के रूप में देखा ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

तथा तदनुगाः सर्वे आत्मलिङ्गविपर्ययम् । दृष्ट्वा विमनसोऽभूवन्वीक्षमाणाः परस्परम् ॥२७॥

अन्वयः— तथा तत् सर्वे अनुगाः आत्मलिङ्गविपर्ययम् दृष्ट्वा परस्परं वीक्षमाणाः विमनसः अभूवन् ॥२७॥

अनुवाद— उसी तरह सुद्युम्न के अनुचरों ने अपने को स्त्री के रूप में देखकर परस्पर में एक दूसरे को देखते हुए उदास हो गये ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

राजोवाच

कथमेवंगुणो देशः केन वा भगवन्कृतः । प्रश्नमेनं समाचक्ष्व परं कौतूहलं हि नः ॥२८॥

अन्वयः— भगवन् ! कथम् एवं गुणों देशः केन वा कृतः, एनं प्रश्नं समाचक्ष्व नः हि परं कौतूहलम् ॥२८॥

राजा परीक्षित् ने पूछा

अनुवाद— हे भगवन् ! वह वन प्रदेश इस प्रकार के गुण वाला कैसे हो गया अथवा किसने उसे ऐसा बनादिया । आप हमारे इस प्रश्न का समाधान करें, इस विषय में मुझे बड़ा ही कौतूहल है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

श्रीशुक उवाच

एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः । दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन् ॥२९॥

अन्वयः— एकदा तत्र गिरिशं द्रष्टुम् सुव्रताः ऋषयः दिशः वितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन् ॥२९॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् एक बार वहाँ शङ्करजी का दर्शन करने के लिए सुन्दर व्रत वाले ऋषिगण दिशाओं को प्रकाशित करते हुए आये ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

विगतं तिमिरमाभासः प्रकाशश्चान्यस्य यासु तथाभूता दिशः कुर्वन्तः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

सभी दिशाओं को प्रकाशित करते हुए ॥२९॥

तान्विलोक्याम्बिका देवी विवासा व्रीडिता भृशम् । भर्तुरङ्कात्समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात् ॥३०॥

अन्वयः— विवासा अम्बिका देवीतान् विलोक्य भृशं व्रीडिता अथ भर्तुं अङ्कात् समुत्थाय आशु नीवीम् पर्यधात्॥३०॥

अनुवाद— निर्वस्त्र अम्बिका देवी उन ऋषियों को देखकर अत्यन्त लज्जित हो गयीं वे अपने पति के गोद से उठ कर शीघ्र ही साड़ी पहन ली ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसङ्गं रममाणयोः । निवृत्ताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥३१॥

अन्वयः— ऋषयः अपिः तयोः रममाणयोः प्रसङ्ग वीक्ष्य निवृता तस्मात् नरनारायणश्रमम् प्रययुः ॥३१॥

अनुवाद— ऋषियों ने भी उन गौरी शङ्कर के विहार का प्रसङ्ग देखकर वहाँ से लौटकर बदरिकाश्रम में चले गये ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गं रत्यभिनिवेशम् । स्त्रीप्रसङ्गदर्शनकलुषितमनसः सन्तस्तत्प्रसङ्गशून्यं नरनारायणाश्रमं ययुः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

रतिकर्म में व्याप्त होने के प्रसङ्ग कहते हैं । स्त्री के प्रसङ्ग को देखकर खिन्न मन वाले ऋषिगण प्रसङ्ग रहित नर नारायणाश्रम (बदरिकाश्रम) चले गये ॥३१॥

तदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया । स्थानं यः प्रविशेदेतत्स वै योषिद्भवेदिति ॥३२॥

अन्वयः— तत् प्रियायाः प्रियकाम्यया भगवान् इदम् आह एतत् स्थानं यः प्रविशेत् स वै योषित् भवेत् ॥३२॥

अनुवाद— इसलिए अपनी प्रियतमा पार्वतीदेवी को प्रसन्न करने के लिए शङ्करजी ने कहा कि मुझको छोड़कर जो कोई इस स्थान पर आयेगा वह स्त्री हो जायेगा ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

तत ऊर्ध्वं वन तद्वै पुरुषा वर्जयन्ति हि । सा चानुचरसंयुक्ता विचचार वनाद्वनम् ॥३३॥

अन्वयः— तत ऊर्ध्वं तद् वनं वै पुरुषा वर्जयन्ति सा च अनुचर संयुक्ता वनाद् वनं विचचार ॥३३॥

अनुवाद— उसके बाद से ही कोई पुरुष उस वन में नहीं जाता है । और स्त्री बने हुए सुद्युम्न भी अपनी अनुचरियों के साथ एक वन से दूसरे वन में विचरण करने लगे ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

प्रासङ्गिकमुक्त्वा प्रस्तुतमनुवर्णयति-अनुचरीसंयुक्तेति वक्तव्ये भूतपूर्वगत्या पुंस्त्वनिदेशः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

प्रासङ्गिक विषय का वर्णन करके प्रस्तुत विषय का वर्णन करते हैं । अनुचरियों के साथ कहना चाहिए किन्तु पहले की गति के अनुसार पुल्लिङ्ग अनुचर पद का प्रयोग किया गया है ॥३३॥

अथ तामाश्रमाभ्याशे चरन्तीं प्रमदोत्तमाम् । स्त्रीभिः परिवृतां वीक्ष्य चकमे भगवान्बुधः ॥३४॥

अन्वयः— अथ ताम् स्त्रीभि परिवृतां आश्रमाभ्याशे चरन्तीम प्रमदोत्तमाम् वीक्ष्य भगवान् बुधः चमके ॥३४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् स्त्रियों के साथ अपने आश्रम के सन्निकट विचरण करती हुई उस श्रेष्ठ सुन्दरी को देखकर भगवान् बुध उसको प्राप्त करना चाहे ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

सापि तं चकमे सुभ्रूः सोमराजसुतं पतिम् । स तस्यां तनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥३५॥

अन्वयः— सापि सुभ्रूः तं सोमराजसुतं पतिं चकमे सः तस्याम् आत्मजम् पुरुरवसं जनयामास ॥३५॥

अनुवाद— वह सुन्दरी चन्द्रमा के पुत्र बुध को पति रूप से प्राप्त करना चाही । बुध ने उसके गर्भ से अपने पुत्र पुरुरवा को उत्पन्न किया ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३५॥

एवं स्त्रीत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नो मानवो नृपः । सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठमिति शुश्रुम ॥३६॥

अन्वयः— एवं मानवो नृपः सुद्युम्नः स्त्रीत्वं प्राप्तः, स्वकुलाचार्यं वसिष्ठं सस्मार इति शुश्रुम ॥३६॥

अनुवाद— इस तरह मनुवंशी राजा सुद्युम्न ने स्त्रीत्व को प्राप्त किया उन्होंने अपने कुलगुरु वसिष्ठजी का स्मरण किया, ऐसा सुना जाता है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

स तस्य तां दशां दृष्ट्वा कृपया भृशपीडितः । सुद्युम्नस्याशयन्पुंस्त्वमुपाधावत शङ्करम् ॥३७॥

अन्वयः— तस्य तां दशां दृष्ट्वा सः कृपया भृशपीडितः, सुद्युम्नस्य पुंस्त्वं आशयन्, शङ्करम् उपधावत ॥३७॥

अनुवाद— सुद्युम्न की उसदश को देखकर कृपा पर वश वसिष्ठजी को बड़ा कष्ट हुआ। सुद्युम्न के पुरुषत्व की प्राप्ति के लिए उन्होंने शङ्करजी की आराधना की ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

आयन्निच्छन् ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

आशयन अर्थात् चाहते हुए ॥३७॥

तुष्टस्तस्मै स भगवानृषये प्रियमावहन् । स्वां च वाचमृतां कुर्वन्निदमाह विशांपते ॥३८॥

अन्वयः— हे विशाम्पते। तस्मै ऋषये तुष्टः स भगवान् प्रियम् आवहन् स्वां च वाचमृतां कुर्वन् इदम् आह ॥३८॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! उन महर्षि वसिष्ठ पर प्रसन्न होकर उनकी अभिलाषा पूर्ण करने के लिए और अपनी भी वाणी सत्य रखते हुए शङ्करजी ने उनसे कहा ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३८॥

मासं पुमान्स भविता मासं स्त्री तव गोत्रजः । इत्थं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नोऽवतु मेदिनीम् ॥३९॥

अन्वयः— स तव गोत्रजः मासं पुमान् भविता मासं स्त्री इत्थं व्यवस्थया सुद्युम्नः मेदिनीम् अवतु ॥३९॥

अनुवाद— आपका यजमान् सुद्युम्न एक माह पुरुष रहेगा और एक माह स्त्री, इसी व्यवस्था के अनुसार वह अपनी इच्छानुसार पृथिवी का पालन करे ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

आचार्यानुग्रहात्कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया । पालयामास जगतीं नाभ्यनन्दन्स्म तं प्रजाः ॥४०॥

अन्वयः— आचार्यानुग्रहात् कामं पुंस्त्वं लब्ध्वा जगतीं पालयामास प्रजाः तं नाभ्यनन्दन् ॥४०॥

अनुवाद— इस तरह वसिष्ठजी की कृपा से सुद्युम्न व्यवस्था पूर्वक अभीष्ट पुरुषत्व को प्राप्त करलिए लेकिन प्रजा उनका अभिनन्दन नहीं करती थी ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

नाभ्यनन्दन्, स्त्रीत्वे लज्जया मासं मासं निलीयावस्थानात् ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

प्रजाओं ने उनका अभिनन्दन नहीं क्योंकि स्त्रीत्व की प्राप्ति होने पर लज्जा के कारण महीने-महीने भर छिप कर रहते थे ॥४०॥

तस्योत्कलो गयो राजन्विमलश्च सुतास्त्रयः । दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मवत्सलाः ॥४१॥

अन्वयः— राजन् तस्य उत्कलः गयः विमलः च त्रयः सुता धर्मवत्सलाः दक्षिणापथराजानः बभूवुः ॥४१॥

अनुवाद— परीक्षित् सुद्युम्न के उत्कल, गय और विमल नामक तीन पुत्र थे वे दक्षिणापथ के धर्म निष्ठ राजा हुए ॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४१॥

ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः । पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम् ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे नवम स्कन्धे इलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अन्वयः— ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः पुरुरवसे गाम् उत्सृज्य वनंगतः ॥४२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् वृद्धावस्था आ जाने पर प्रतिष्ठानपुरी के स्वामी राजा सुद्युम्न अपने पुत्र पुरुरवा का राज्य देकर वन में तपस्या करने के लिए चले गये ॥४२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के इलोपाख्यान के अनतर्गत प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भावार्थदीपिकां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के प्रथम अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१।।

द्वितीय अध्याय

पृषध्र आदि मनु के पाँच पुत्रों का वंश वर्णन

श्रीशुक उवाच

एवं गतेऽथ सुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते । पुत्रकामस्तपस्तेपे यमुनायां शतं समाः ॥१॥

अन्वयः— एवं सुते सुद्युम्ने गते अथः वैवस्वतः मनुः पुत्रकामः यमुनायां शतं समाः तपः तेपे ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इसतरह अपने पुत्र सुद्युम्न के वन में चले जाने पर वैवस्तमनु पुत्र प्राप्ति की इच्छा से यमुना के तट पर सौ वर्षों तक तपस्या किए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वितीये मनुपुत्राणां द्वावपुत्रौ विरागतः । करूषकादिपञ्चानां वंशानाह लघुक्रमात् । वैवस्वतो मनुः श्राद्धदेवः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे अध्याय में मनु के पुत्रों में दो पुत्र वैराग्यवशात् पुत्रहीन हो गये करुषक आदि पाँच पुत्रों के छोटे से क्रम के वंशों का वर्णन किया गया है **वैवस्तो मनुः** अर्थात् श्राद्ध देव ॥१॥

ततोऽयजन्मनुर्देवमपत्यार्थं हरिं प्रभुम् । इक्ष्वाकुपूर्वजान्पुत्राँल्लेभे स्वसदृशान्दश ॥२॥

अन्वयः— ततः मनुः अपत्यार्थम् प्रभुम् हरिं देवम् अयजन् इक्ष्वाकुपूर्वजान् स्वसदृशान् दश पुत्रान् लेभे ॥२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् मनुश्राद्धदेव पुत्र प्राप्ति के लिए सर्वशक्तिमान प्रभु श्रीहरि की आराधना किए और उसके सदृश इक्ष्वाकु इत्यादि दश पुत्रों को प्राप्त किए ॥२॥

भावार्थ दीपिका

इक्ष्वाकुः पूर्वजो येषां तान्दश पुत्रान् लेभे ॥२॥

भाव प्रकाशिका

जिन सबों में इक्ष्वाकु बड़े थे ऐसे दश पुत्रों को प्राप्त किए ॥२॥

पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः । पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥३॥

अन्वयः— मनोः पुत्र पृषध्रः तु गुरुणा गोपालः कृतः रात्र्यां यत्तः वीरासनव्रतः गाः पालयामास ॥३॥

अनुवाद— मनु के पुत्र पृषध्र को वसिष्ठ जी ने गौंओं की रक्षा के कार्य में नियुक्त कर दिया, रात्रि में वह सावधानी पूर्वक वीरासन से बैठकर गौओं की रक्षा करता था ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्र पृषध्रस्य वंशो नाभवदिति सहेतुकमाह-पृषध्रस्त्वित्यादिना कविः कनीयानित्यतः प्राक्तनेन ग्रन्थेन । खड्गपाणेः सतस्तिष्ठतो जागरणं वीरासनं तदेव व्रतं यस्य । यत्तोऽवहितः सन् । गाः पालयामास ॥३॥

भाव प्रकाशिका

पृषध्र का वंश नहीं हुआ इस बात को हेतु निर्देश पूर्वक **पृषध्रस्तु० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कविः अर्थात् छोटे इस पहले के ग्रन्थ से । हाथ में खड्ग लेकर वीरासन से बैठकर करना यही उसका नियम था । वह सावधानी पूर्वक गायों की रक्षा करता था ॥३॥

एकदा प्राविशद्गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति । शयानां गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुर्व्रजे ॥४॥

अन्वयः— एकदा शर्दूलः वर्षति निशि गोष्ठं प्राविशत् । शयाना, भाव उत्थाय भीताः ताः व्रजे बभ्रुमुः ॥४॥

अनुवाद— एक दिन एक बाघ जब की रात में वर्षा हो रही थी गोशाला में घुस आया उसको देखकर भयभीत गौएँ इधर-उधर भागने लगीं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

शार्दूलो व्याघ्रः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

शार्दूल अर्थात् बाघ ॥४॥

एकां जग्राह बलवान्सा चुक्रोश भयातुरा । तस्यास्तत्क्रन्दितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससार ह ॥५॥

अन्वयः— बलवान् एकां जग्राह सा भयातुरा चुक्रोश तस्याः तत् क्रन्दितं श्रुत्वा पृषध्रः अभिससार ह ॥५॥

अनुवाद— वह बलवान् बाघ एक गौ को पकड़ लिया तो वह भयभीत होकर डकारने लगी उसके उस क्रन्दन को सुनकर पृषध्र वहाँ आ गये ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

खड्गमादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि । अजानन्नहनद्बभ्रोः शिरः शार्दूलशङ्कया ॥६॥

अन्वयः— तरसा खड्गम् आदाय प्रलीनोडुगणे निशि अजानन् शार्दूलशङ्कया बभ्रोः शिरः अहनत् ॥६॥

अनुवाद— वेगपूर्वक खड्ग लेकर जब कि तारे भी छिप गये थे रात्रि की बेला में अनजाने में बाघ की शङ्का से एक गौ के शिर को उसने काट दिया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

प्रलीना उडुगणा यस्मिंस्तस्मिन्समये । बभ्रोः कपिलाया गोः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

जबकि तारे छिप गये थे उस समय । बभ्रोः अर्थात् कपिला गौ की ।।६।।

व्याघ्रोऽपि वृक्णश्रवणो निस्त्रिंशाग्राहतस्ततः । निश्चक्राम भृशं भीतो रक्तं पथि समुत्सृजन् ।।७।।

अन्वयः— निस्त्रिशाग्रहतः व्याघ्रोऽपि वृक्णश्रवणः भृशं भीतः पथिरक्तं समुत्सृजन् ततः निश्चक्राम ।।७।।

अनुवाद— तलवार के अग्रभाग से जिसका कान कट गया था वह अत्यन्त भयभीत बाघ रास्ते में खून बहाते हुए वहाँ से भाग गया ।।७।।

भावार्थ दीपिका

गां कामतो न जघानेति ख्यापयितुं वृक्णश्रवण इत्याद्युक्तम् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

उसने जानकर गौ को नहीं मारा इस बात को बोधित करने के लिए उसका कान कट गया था इत्यादि कहा गया है।।७।।

मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा । अद्राक्षीत्स्वहतां बभ्रुं व्युष्टायां निशि दुःखितः ।।८।।

अन्वयः— परवीरहा पृषध्रः व्याध्रं हतं मन्यमानः व्युष्टायां निशि स्वहतां बभ्रु आद्राक्षीत् दुःखितः ।।८।।

अनुवाद— शत्रुदमन् पृषध्र ने मान लिया कि बाघ मर गया किन्तु रात बीतने पर उसने देखा कि उससे गौ की हत्या हो गयी हैं और वह दुःखी हो गया ।।८।।

भावार्थ दीपिका

व्युष्टायां प्रभातायाम् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

प्रातःकाल हो जाने पर ।।८।।

तं शशाप कुलाचार्यः कृतागसमकामतः । न क्षत्रबन्धुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भवितामुना ।।९।।

अन्वयः— अकामतः कृतागसम् तम् कुलाचार्यः शशाप अमुना कर्मणा त्वं क्षत्र बन्धुन् शूद्रः भविता ।।९।।

अनुवाद— अनजाने में जिससे पाप हो गया था उसको कुलगुरु वसिष्ठजी ने शाप दे दिया कि इस कर्म के कारण क्षत्रिय नहीं शूद्र हो जाओगे ।।९।।

भावार्थ दीपिका

क्षत्रबन्धुरपि त्वं न भविता, अपि तु शूद्रो भवितेति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

तुम क्षत्रिय नहीं शूद्र हो जाओगे ।।९।।

एवं शप्तस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णत्कृताञ्जलिः । अधारयद्व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम् ।।१०।।

अन्वयः— एवं गुरुणा शप्तः कृतञ्जलिः प्रत्यगृहह्णत् वीरः मुनिप्रियं ऊर्ध्वरेता व्रतं दधार ।।१०।।

अनुवाद— इस तरह गुरु वसिष्ठ द्वारा अभिशप्त होने पर उसने हाथ जोड़कर उस शाप को स्वीकार किया और उस वीर ने मुनिजनों के प्रिय ऊर्ध्वरेता व्रत को धारण कर लिया ।।१०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१०।।

वासुदेवे भगवति सर्वात्मनि परेऽमले । एकान्तित्वं गतो भक्त्या सर्वभूतसुहृत्समः ॥११॥

अन्वयः— सर्वात्मनि परे अमले भगवति वासुदेवे भक्त्या एकान्तित्वं गतः सर्वसुहृत् समः ॥११॥

अनुवाद— सबों की आत्मा सर्वश्रेष्ठ तथा अखिल हेय प्रत्यनीक भगवान् वासुदेव का एकान्तिक भक्त हो गया और वह सबों के प्रति समदर्शी हो गया ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

विमुक्तसङ्गः शान्तात्मा संयताक्षोऽपरिग्रहः । यदृच्छयोपपन्नेन कल्पयन्वृत्तिमात्मनः ॥१२॥

अन्वयः— विमुक्त सङ्ग शान्तात्मा संयताक्षः अपरिग्रहः यदृच्छपोपपन्नेन आत्मनः वृत्तिम् कल्पयन् ॥१२॥

अनुवाद— आसक्ति रहित उसकी सारी वृत्ति शान्त हो गयी, उसकी इन्द्रियाँ वश में थी वह किसी से कुछ नहीं लेता था । प्रारब्धवशात् प्राप्त वस्तुओं से वह अपनी जीविका चलाता था ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

आत्मन्यात्मानमाधाय ज्ञानतृप्तः समाहितः । विचचार महीमेतां जडान्धबधिराकृतिः ॥१३॥

अन्वयः— आत्मनि आत्मानम् आधाय ज्ञानतृप्तः समाहितः एतां महिम् जडान्धबधिराकृतिः विचचार ॥१३॥

अनुवाद— अपने मन को परमात्मा में लगाकर आत्मज्ञान से सन्तुष्ट तथा सदा समाधिस्थ रहने वाला वह इस पृथिवी पर जड़ अन्धा और बहरे के समान विचरण करता था ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

एवंवृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्निमुत्थितम् । तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥१४॥

अन्वयः— एवं वृत्तः वनं गत्वा उत्थितं दावाग्निं दृष्ट्वा तेन उपयुक्तकरणः मुनिः परं ब्रह्म प्राप ॥१४॥

अनुवाद— इस प्रकार की वृत्ति वाला वह वन में जाकर जलती हुई दावाग्नि को देखकर उसमें अपने शरीर को भस्म करके परब्रह्म को प्राप्त कर लिया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

उपयुक्तकरणो दग्धदेहः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

दग्ध शरीर वाले ॥१४॥

कविः कनीयान्विषयेषु निःस्पृहो विसृज्य राज्यं सहबन्धुभिर्वनम् ।
निवेश्य चित्ते पुरुषं स्वरोचिषं विवेश कैशोरवयाः परं गतः ॥१५॥

अन्वयः— कनीयान् कविः विषयेषु निस्पृहः बन्धुभिः सह राज्यं विसृज्य स्वरोचिषं पुरुषं चित्ते निवेश्य वनं विवेश कैशोरवयाः परं गतः ॥१५॥

अनुवाद— मनु का सबसे छोटा पुत्र कवि विषयों से निस्पृह था वह अपने बान्धवों के साथ-साथ राज्य का परित्याग करके अपने हृदय में परमात्मा को स्थापित कर किशोरावस्था में ही परम पद को प्राप्त कर लिया॥१५॥

भावार्थ दीपिका

कवेरपि वंशो नाभवदित्याह कविरिति । बन्धुभिः सह राज्यं विसृज्य ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

कवि का भी कोई वंश नहीं हुआ इस बात को **कवि० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। वह अपेन बान्धवों के साथ-साथ राज्य के छोड़कर ॥१५॥

करूषान्मानवादासन्कारुषाः क्षत्रजातयः । उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्या धर्मवत्सलाः ॥१६॥

अन्वयः— करूषात् मानवात् धर्मवत्सलाः ब्रह्मण्या उत्तरापथगोपारः कारुषाः क्षत्रजातयः आसन ॥१६॥

अनुवाद— मनु के पुत्र करुष से धर्म प्रेमी ब्रह्मणभक्त तथा उत्तरापथ के रक्षक, क्षत्रिय उत्पन्न हुए ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

धृष्टाद्धार्ष्टमभूत्क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ । नृगस्य वंशः सुमतिर्भूतज्योतिस्ततो वसुः ॥१७॥

अन्वयः— धृष्टात् धार्ष्टम् क्षत्रम् अभूत् क्षितौ ब्रह्मभूय गतम् । नृगस्य वंशः सुमतिः ततः भूतज्योतिः ततः वसुः॥१७॥

अनुवाद— धृष्ट के धार्ष्ट नामक क्षत्रिय हुए, अन्त में वे इसी शरीर से ब्राह्मण हो गये। नृग के पुत्र सुमति हुए, उनके पुत्र भूत ज्योति हुए और उनके पुत्र वसु हुए ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मभूयं ब्राह्मणत्वम् । नृगस्य वंशः पुत्रः समुतिस्ततो भूतज्योतिस्ततो वसुः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्म भूय अर्थात् ब्राह्मणत्व । नृग के पुत्र सुमति हुए, सुमति के पुत्र भूत ज्येति और उनके भी पुत्र वसु हुए ॥१७॥

वसोः प्रतीकस्तत्पुत्र ओघवानोघवत्पिता । कन्या चोघवती नाम सुदर्शन उवाह ताम् ॥१८॥

अन्वयः— वसोः प्रतीकः तत्पुत्रः ओघवान् ओघवत् पिता कन्या च ओघवती नाम ताम् सुदर्शनः उवाह ॥१८॥

अनुवाद— वसु के पुत्र का नाम प्रतीक था उनके पुत्र ओघवान थे और उनके भी पुत्र का नाम ओघवान् था उनकी पुत्री ओघवती थी उसका विवाह सुदर्शन से हुआ ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

ओघवतः पिता, तत्पुत्रोऽप्योघवानेवेत्यर्थः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

ओघवान् के पुत्र का भी नाम ओघवान था ॥१८॥

चित्रसेनो नरिष्यन्ताद्दक्षस्तस्य सुतोऽभवत् । तस्य मीढ़वांस्ततः कूर्च इन्द्रसेनस्तु तत्सुतः ॥१९॥

अन्वयः— नरिष्यन्तात् चित्रसेनः तस्य सुतःदक्षः अभवत् तस्य मीढ्वान् ततः कूर्चः इन्द्रसेनः तु तत्सुतः ॥१९॥

अनुवाद— नरिष्यन्त के पुत्र चित्रसेन थे उनके पुत्र दक्ष हुए, दक्ष के पुत्र मीढवान् हुए मीढवान् के पुत्र कूर्च और कुर्च के पुत्र इन्द्रसेन थे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं त्रिभिः श्लोकैः करूषधृष्टनृगाणां वंशा उक्ताः, नरिष्यन्तस्य वंशमाह-चित्रसेन इति सार्धैस्त्रिभिः-तत इत्यादेर्यत्राधिक्यं स्यात्तत्रानन्तर्ये तत इत्यादिपदं व्याख्येयम् । यत्र तु न्यूनत्वं तत्र पूर्वस्य परस्य वानुषङ्गादिभिर्व्याख्येयम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह तीन श्लोकों से करूष, धृष्ट, और नृग के वंश का वर्णन किया गया । **चित्रसेन० इत्यादि** साढे तीन श्लोक के द्वारा नरिष्यन्त के वंश का वर्णन किया गया हैं । **ततः इत्यादि** से जहाँ पर अधिकता होती है वहाँ पर **ततः इत्यादि** पदों की व्याख्या उसके पश्चात् के अर्थ में करनी चाहिए । जहाँपर न्यूनता होती है, वहाँ पर पूर्वस्य अथवा आदि का अन्वय समझकर व्याख्या करें ।।१९।।

वीतिहोत्रस्त्विन्द्रसेनात्तस्य सत्यश्रवा अभूत् । उरुश्रवाः सुतस्तस्य देवदत्तस्ततोऽभवत् ।।२०।।

अन्वयः— इन्द्रसेनात् तु वीतिहोत्रः तस्य सत्यश्रवा अभूत् तस्य सुतः उरुश्रवा, ततः देवदतः अभवत् ।।२०।।

अनुवाद— इन्द्रसेन के पुत्र वीतिहोत्र हुए, उनके पुत्र सत्यश्रव थे, उनके पुत्र ऊरूश्रवा हुए और उरूश्रवा के पुत्र देवदत्त हुए ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत्सुतः । कानीन इति विख्यातो जातूकर्ण्यो महानृषिः ।।२१।।

अन्वयः— ततः अग्निवेश्यः स्वयं भगवान् अग्निः सुतः अभूत् कानीन इति व्याख्यातः जातूकर्ण्योमहान् ऋषिः।।२१।।

अनुवाद— देवदत्त के पुत्र अग्निवेश्य, वे साक्षात् भगवान् अग्नि ही थे, वे ही आगे चलकर कानीन और महर्षि जातुकार्य के नाम से विख्यात हुए ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

अग्निवेश्य एव कानीन इति जातूकर्ण्य इति च विख्यातः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

अग्निवेश्य ही कानीन और जातूकर्ण्य के नाम विख्यात हुए ।।२१।।

ततो ब्रह्मकुलं जातमाग्निवेश्यायनं नृप । नरिष्यन्तान्वयः प्रोक्तो दिष्टवंशमतः शृणु ।।२२।।

अन्वयः— हे नृप ततः अग्निवेश्यायनं ब्रह्मकुलं जातम् नरिष्यन्तान्वयः प्रोक्त अतः दिष्टवंशं शृणु ।।२२।।

अनुवाद— परीक्षित् अग्निवेश्य से ही ब्राह्मणों का अग्नि वेश्यायन गोत्र चला । इस तरह मैंने नरिष्यन्त के वंश का वर्णन किया अब दिष्ट का वंश सुनो ।।२२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२२।।

नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः । भलन्दनः सुतस्तस्य वत्सप्रीतिर्भलन्दनात् ।।२३।।

अन्वयः— दिष्टपुत्रः नाभागः अन्यः नाभागः कर्मणा वैश्यतां गतः तस्य सुतः भलन्दनः भलन्दनात् वत्सप्रीतिः।।२३।।

अनुवाद— दिष्ट के पुत्र नाभाग हुए । वे उस नाभाग से भिन्न हैं । वे अपने कर्मों के कारण वैश्य हो गये। नाभाग के पुत्र भलन्दन हुए और उनके पुत्र वत्सप्रीति हुए ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

दिष्टस्य पुत्रो नाभागो वक्ष्यमाणनाभागादन्य इति भ्रान्तिव्युदासार्थमनुवादमात्रम् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

दिष्ट के पुत्र नाभाग उस नाभाग से पृथक हैं जिनका आगे वर्णन मैं (शुकदेवजी) करूँगा । भ्रम को दूर करने के लिए उनका यहाँ अनुवाद मात्र किया गया है ।।२३।।

वत्सप्रीतेः सुतः प्रांशुस्तत्सुतं प्रमतिं विदुः । खनित्रः प्रमतेस्तस्माच्चाक्षुषोऽथ विविंशतिः ॥२४॥

अन्वयः— वत्सप्रीतेः, प्रांशुः तत्सुतं प्रमितिं विदुः, प्रमितेः खनित्रः, तस्मात् चाक्षुषः अथ विविंशतिः ॥२४॥

अनुवाद— वत्सप्रीति के प्रांशु, प्रांशु के पुत्र प्रमिति, प्रमिति के पुत्र खनित्र खनित्र के चाक्षुष और चाक्षुष के पुत्र विविंशति हुए ॥२४॥

भावार्थ दीपिका नहीं है ॥२४॥

विविंशतिसुतो रम्भः खनिनेत्रोऽस्य धार्मिकः । करन्धमो महाराज तस्यासीदात्मजो नृप ॥२५॥

अन्वयः— महाराज नृप विविंशति सुतः रम्भः अस्य खनिनेत्रः धार्मिकः तस्य आत्मजः करन्धमः आसीत् ॥२५॥

अनुवाद— हे महाराज परीक्षित् विविंशति के पुत्र रम्भ हुए रम्भ के धार्मिक पुत्र खनिनेत्र हुए और खनिनेत्र के पुत्र करन्धम थे ॥२५॥

भावार्थ दीपिका नहीं है ॥२५॥

तस्यावीक्षित्सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत् । संवर्तोऽयाजयद्यं वै महायोग्यङ्गिरःसुतः ॥२६॥

अन्वयः— तस्य अवीक्षित् यस्य सुत चक्रवर्ती मरुत्त अभूत् । यं वै अङ्गिरः सुतः महायोगी संवर्तः अयाजयत् ॥२६॥

अनुवाद— करन्ध के पुत्र अवीक्षित् हुए । उनके पुत्र चक्रवर्ती राजा मरुत्त हुए । उनसे अङ्गिरा के पुत्र महायोगी संवर्त यज्ञ कराये ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अङ्गिरसः सुतो महायोगी संवर्तो यमयाजयत्स मरुत्तः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अङ्गिरा के पुत्र महायोगी संवर्त जिनसे यज्ञ कराये वे मरुत्त ॥२६॥

मरुत्तस्य यथा यज्ञो न तथान्यस्य कश्चन । सर्वं हिरण्मयं त्वासीद्यत्किंचिच्चास्य शोभनम् ॥२७॥

अन्वयः— मरुत्तस्य यथा यज्ञः तथा अन्यस्य कश्चन न अस्य तत् किञ्चित् शोभनम् आसीत् सर्वं हिरण्मयं त्वासीत् ॥२७॥

अनुवाद— महाराज मरुत्त का जैसा यज्ञ हुआ वैसा यज्ञ किसी का नहीं हुआ । उनके यज्ञ में जो कुछ छोटे बड़े पात्र आदि थे वे सबके सब सुवर्ण के थे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अस्य यत्किंचित्पात्रादिकमस्ति तत्तु सर्वं हिरण्मयं शोभनमासीत् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

इस यज्ञ के जो कुछ भी छोटे-बड़े पात्र आदि थे वे सबके सब सुवर्णमय और सुन्दर थे ॥२७॥

अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः । मरुत्तः परिवेष्टारो विश्वेदेवाः सभासदः ॥२८॥

अन्वयः— इन्द्रः सोमेन आमद्यत् द्विजातयः दक्षिणाभिः, परिवेष्टारः मरुत्तः सभासदः विश्वेदेवाः ॥२८॥

अनुवाद— उनके यज्ञ में इन्द्र सोमपान करके मतवाले हो गये, ब्राह्मण दक्षिणा से तृप्त हो गये, उस यज्ञ में परोसने वाले मरुद्गण थे और सभासद विश्वेदेव थे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अमाद्यदहृष्यत् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

अमाद्यत् अर्थात् प्रसन्न हो गये ॥२८॥

मरुत्तस्य दमः पुत्रस्तस्यासीद्राज्यवर्धनः । सुधृतिस्तत्सुतो जज्ञे सौधृतेयो नरः सुतः ॥२९॥

अन्वयः— मरुत्तस्य पुत्रः दमः तस्य राज्यवर्धनः आसीत् तत्सुतः सुधृतिः जज्ञें सौधृतेयः सुतः नरः ॥२९॥

अनुवाद— मरुत्त के पुत्र दम हुए, दम के पुत्र राज्यवर्धन हुए उनके पुत्र सुधृति और सुधृति के पुत्र नर हुए ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

तत्सुतः केवलस्तस्माद्बन्धुमान्वेगवांस्ततः । बन्धुस्तस्याभवद्यस्य तृणबिन्दुर्महीपतिः ॥३०॥

अन्वयः— तत्सुतः केवलः तस्मात् बन्धुमान् ततः वेगवान् तस्यबन्धुः अभवत् यस्य तृणविन्दुः महीपतिः ॥३०॥

अनुवाद— नर के पुत्र केवल हुए केवल के बन्धुमान् बन्धुमान् के वेगवान् पुत्र हुए, उनके पुत्र बन्धु हुए उनके ही पुत्र राजा तृणबिन्दु हुए ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

तं भेजेऽलम्बुषा देवी भजनीयगुणालयम् । वराप्सरा यतः पुत्राः कन्या चेडविडाभवत् ॥३१॥

अन्वयः— भजनीय गुणालयम् तं वराप्सरा अलम्बुषा देवी भेजे यतः पुत्राः इडविडा कन्या च अभवत् ॥३१॥

अनुवाद— राजा तृणविन्दु आदर्श गुणों के आश्रय थे, अप्सराओं में श्रेष्ठ अलम्बुषा देवी ने उनका वरण किया । उससे उनके कई पुत्र और इडविडा नाम की कन्या उत्पन्न हुई ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

यतो यस्यां तृणविन्दोः पुत्रा अभवन् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

अलम्बुषा के गर्भ से राजा तृणविन्दु के कई पुत्र हुए ॥३१॥

तस्यामुत्पादयामास विश्रवा धनदं सुतम् । प्रादाय विद्यां परमामृषिर्योगेश्वरात्पितुः ॥३२॥

अन्वयः— ऋषिः विश्रवा योगेश्वरात् पितुः परमां विद्यां प्रदाय तस्याम् धनदं सुतम् उत्पादया मास ॥३२॥

अनुवाद— ऋषि विश्रवा अपने योगेश्वर पिता पुलस्त्य से उत्तम विद्या प्राप्त करके इडविडा के गर्भ से धनद (कुबेर) नामक पुत्र को प्राप्त किए ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

विशालः शून्यबन्धुश्च धूम्रकेतुश्च तत्सुताः । विशालो वंशकृद्राजा वैशालीं निर्ममे पुरीम् ॥३३॥

अन्वयः— तत्सुताःविशालः शून्यबधुः धूमकेतुश्च राजा विशालः वंशकृत् वैशाली पुरीम् निर्ममे ॥३३॥

अनुवाद— राजा तृणविन्दु के तीन पुत्र हुए विशाल शून्य बन्धु और धूमकेतु । राजा विशाल वंश वर्धक हुए और उन्होंने विशाला नामक नगरी का निर्माण किया ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तानेवाह-विशाल इति । तस्य तृणबिन्दोः सुताः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

राजा तृणाविन्दु कें पुत्रों का नाम विशाल इत्यादि श्लोक से कहा गया है । ये तीनों तृणविन्दु के पुत्र थे॥३३॥

हेमचन्द्रः सुतस्तस्य धूम्राक्षस्तस्य चात्मजः । तत्पुत्रात्संयमादासीत्कृशाश्वः सहदेवजः ॥३४॥

अन्वयः— तस्य सुतः हेमचन्द्रः धूम्राक्षः तस्य च आत्मजः तत्पुत्रात् संयमात् कृशाश्वः देवजः सह ॥३४॥

अनुवाद— विशाल के पुत्र हेमचन्द्र हुए उनके पुत्र धूम्राक्ष हुए । धूम्राक्ष के पुत्र संयम हुए और संयम के दो पुत्र हुए कृशाश्व और देवज ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

सहदेवजः देवजेन सहितः । पाठान्तरे नामान्तरमात्रम्, अर्थस्तु स एव ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

सहदेवजः अर्थात् देवज के साथ । पाठान्तर में नाम की भिन्नता है अर्थ तो वही है ॥३४॥

कृशाश्वात्सोमदत्तोऽभूद्योऽश्वमेधैरिडस्पतितम् । इष्ट्वा पुरुषमापाग्र्यां गतिं योगेश्वराश्रितः ॥३५॥

अन्वयः— कृशाश्वात् सोमदत्तः अभूत् यः अश्वमेधैः इडस्पतिं इष्ट्वा योगेश्वराश्रितः पुरुषम् आप अग्र्यां गतिम् ॥३५॥

अनुवाद— कृशाश्व के पुत्र सोमदत्त हुए उन्होंने अश्वमेध यज्ञों के द्वारा यज्ञपति श्रीभगवान् की आराधना की और योगेश्वर संतों का आश्रय लेकर परम पुरुष परमात्मा को प्राप्त कर उत्तम गति को प्राप्त किया ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३५॥

सौमदत्तिस्तु सुमतिस्तत्सुतो जनमेजयः। एते वैशालभूपालास्तृणबिन्दोर्यशोधराः ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अन्वयः— सोमदतिः तु सुमतिः तत्सुतः जनमेजयः ऐते वैशालाः भूपाः तृणविन्दोः यशोधराः ॥३६॥

अनुवाद— सोमदत्त के पुत्र सुमति हुए । उनके पुत्र जनमेजय हुए ये सभी विशाल वंशीय राजा हैं और विशाल के यश को बढ़ाने वाले हैं ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

भावार्थ दीपिका

वैशालभूपाला विशालस्यान्वये जाताः ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

विशाल के वंश में उत्पन्न हुए राजा गण हैं ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के दूसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२॥

तीसरा अध्याय

महर्षि च्यवन और सुकन्या का चरित्र राजा शर्याति का वंश

श्रीशुक उवाच

शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह । यो वा अङ्गिरसां सत्रे द्वितीयमह ऊचिवान् ।।१।।

अन्वयः— मानवो राजाशर्यातिः सह ब्रह्मिष्ठः बभूव यः वा अङ्गिरसां सत्रे द्वितीयम् अहः ऊचिवान् ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— मनु के पुत्र राजा शर्याति वेदार्थ के तत्त्वज्ञ थे उन्होंने अङ्गिरा गोत्र के ऋषियों के यज्ञ दूसरे दिन किये जाने वाले कर्मों को बतलाया था ।।१।।

भावार्थ दीपिका

तृतीये मनुपुत्रस्य शर्यातेः कीर्त्यतेऽन्वयः । यत्र सौकन्यमाख्यानं रैवतं च महाद्भुतम् । ब्रह्मिष्ठो वेदार्थतत्त्वज्ञः । तदेवाह-यो वा इति । द्वितीयमहो द्वितीयेऽह्नि क्रियमाणं कर्म ऊचिवानुवाच । तस्य वंशं- 'उत्तनावर्हिरानर्तः' इत्यादिना वक्ष्यति।।१।।

भाव प्रकाशिका

तीसरे अध्याय में मनु के पुत्र शर्याति के वंश का वर्णन किया गया है । इसी में सुकन्योपाख्यान् तथा अद्भुत रैवत का वर्णन है । **ब्रह्मिष्ठः** अर्थात् वेदार्थ के तत्त्वज्ञ । यो वा इत्यादि उत्तरार्द्ध से उसी को कहा गया है । **द्वितीयमहः** अर्थात् दूसरे दिन किए जाने वाले कर्मों को **ऊचिवान् अर्थात्** बतलाये थे । इनके वंश कावर्णन उत्तानवर्हि इत्यादि श्लोक से बतलायेगें ।।१।।

सुकन्या नाम तस्यासीत्कन्या कमललोचना । तया सार्धं वनगतो ह्यगमच्च्यवनाश्रमम् ।।२।।

अन्वयः— तस्य कमललोचना सुकन्या नाम कन्या आसीत् तया सार्धं वनं गतः च्यवनाश्रमम् अगमत् ।।२।।

अनुवाद— राजा शर्याति की कमलनयनी सुकन्या नाम की कन्या थी । एक दिन सुकन्या के साथ राजा वन में घूमते हुए महर्षि च्यवन के आश्रम में गये ।।२।।

भावार्थ दीपिका

आदौ तावत्तत्कन्यावृत्तान्तमाह-सुकन्या नामेत्यादिना ।।२।।

भाव प्रकाशिका

सुकन्या नाम इत्यादि श्लोक राजा शर्याति की कन्या का वृत्तान्त वर्णन करते हैं ।।२।।

सा सखीभिः परिवृता विचिन्वन्त्यङ्घ्रिपान्वने । वल्मीकरन्ध्रे ददृशे खद्योते इव ज्योतिषी ।।३।।

अन्वयः— सखीभिः परिवृता सा वने अङ्घ्रियान् वने विचिन्वती वल्मीकरन्ध्रे खद्योते इव ज्योतिषी ददृशे ।।३।।

अनुवाद— सखियों के साथ घूमती हुई सुकन्या वृक्षों की शोभा देखती हुई, बाँबी में जुगूनू के समान चमकती हुई दो ज्योतियों को देखी ।।३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३।।

ते दैवचोदिता बाला ज्योतिषी कण्टकेन वै । अविध्यन्मुग्धभावेन सुस्त्रावासृक् ततो बहु ।।४।।

अन्वयः— दैवचोदिता बाला ते ज्योतिषी मुग्धभावेन कण्टकेन अविध्यत् ततो बहु असृक् सुस्राव ।।४।।

अनुवाद— दैव की प्रेरणा से प्रेरित वह राज कुमारी बाल सुलभ चपलता के कारण उन दोनों ज्योतियों को कांटे से छेद दी । उससे बहुत अधिक खून बहा ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत्सैनिकानां च तत्क्षणात् । राजर्षिस्तमुपालक्ष्य पुरुषानिवस्मितोऽब्रवीत् ॥५॥

अन्वयः— तत्क्षणात् सैनिकानां शकृन्मूत्र निरोधः अभूत् तम् उपालक्ष्य राजर्षिः विस्मितः पुरुषान् अब्रवीत् ॥५॥

अनुवाद— उसी क्षण सैनिकों के मलमूत्र का निरोध हो गया । यह देखकर राजा शर्याति को बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने सैनिकों से पूछा ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

अप्यभद्रं न युष्माभिर्भार्गवस्य विचेष्टितम् । व्यक्तं केनापि नस्तस्य कृतमाश्रमदूषणम् ॥६॥

अन्वयः— युष्माभिः भार्गवस्य अत्यभद्रं न विचेष्टितम्, व्यक्तं नः केनापि तस्य आश्रम दूषणम् कृतम् ॥६॥

अनुवाद— तुमलोगों में से किसी ने महर्षि च्यवन का अपराध तो नहीं किया है ? निश्चित है हमलोगों में से किसी ने उनके आश्रम को दूषित किया है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

भार्गवस्य च्यवनस्य । अभद्रमपराधः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

भार्गवस्य अर्थात् च्यवन महर्षिका अभद्रम् अर्थात् अपराध ॥६॥

सुकन्या प्राह पितरं भीता किंचित्कृतं मया । द्वे ज्योतिषी अजानन्त्या निर्भिन्ने कण्टकेन वै ॥७॥

अन्वयः— भीता सुकन्या पितरं प्राह मया किञ्चित् कृतम् । अजानन्त्या द्वे ज्योतिषी कण्टकेन निर्भिन्ने ॥७॥

अनुवाद— डरी हुई सुकन्या ने अपने पिता से कहा पिताजी कुछ अपराध मैंने अवश्य किया है । अज्ञानवशात् दो ज्योतियों को मैंने काँटे से छेद दिया है ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥७॥

दुहितुस्तद्वचः श्रुत्वा शर्यातिर्जातसाध्वसः । मुनिं प्रसादयामास वल्मीकान्तर्हितं शनैः ॥८॥

अन्वयः— दुहितुः तदवचः श्रुत्वा जातसाध्वसः शर्याति वल्मीकान्तर्हितमुनिः शनैः प्रसादयामास ॥८॥

अनुवाद— पुत्री की बात सुनकर राजा शर्याति डर गये वे वल्मीक में छिपे हुए महर्षि की स्तुति करके धीरे-धीरे प्रसन्न किया ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

तदभिप्रायमाज्ञाय प्रादाद्दुहितरं मुनेः । कृच्छ्रान्मुक्तस्तमामन्त्र्य पुरं प्रायात्समाहितः ॥९॥

अन्वयः— तत् अभिप्रायम् आज्ञाय मुनेः दुहितरं प्रादात् । कृच्छ्रात मुक्तः तम् आमन्त्र्य समाहितः पुरं प्रायात् ॥९॥

अनुवाद— महर्षि कें अभिप्राय को जानकर उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह महर्षि से कर दिया और कष्ट से मुक्ति पाकर वे सावधानी पूर्वक अपने नगर में गये ॥९॥

भावार्थ दीपिका

मुग्धेयं मम कन्या क्षन्तव्यं त्वयेत्युच्यमाने कति वर्षाण्यस्या विवाहः कृतो न वेत्यादिवाक्यैस्तदभिप्रायं ज्ञात्वा तस्मै तां दुहितरं प्रादात् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

राजा ने कहा मेरी कन्या अनजान है आप क्षमा करें । महर्षि ने कहा यह कितने वर्ष की है, इसका विवाह किये हो कि नहीं ? इस तरह के वाक्यों से मुनि के अभिप्राय को जानकर उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह ऋषि से कर दिया ।।९।।

सुकन्या च्यवनं प्राप्य पतिं परमकोपनम् । प्रीणयामास चित्तज्ञा अप्रमत्तानुवृत्तिभिः ।।१०।।

अन्वयः— चित्तज्ञा सुकन्या परमकोपनं च्यवनं पतिंप्राप्य अप्रमत्ता अनुवृत्तिभिः प्रीणयामास ।।१०।।

अनुवाद— दूसरे के मन की बात को समझने वाली सुकन्या परम क्रोधी महर्षि च्यवन को पति के रूप में प्राप्त करके बड़ी सावधनी पूर्वक व्यवहार करती हुई उनको प्रसन्न करली ।।१०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१०।।

कस्यचित्त्वथ कालस्य नासत्यावाश्रमागतौ । तौ पूजयित्वा प्रोवाच वयो मे दत्तमीश्वरौ ।।११।।

अन्वयः— अथ कस्यचित् तु कालस्य नासत्यौ आश्रमागतौ तौ पूजयित्वा प्रोवाच वयो मे दत्तम् ईश्वरौ ।।११।।

अनुवाद— उसके कुछ समय पश्चात् महर्षि के आश्रम में दोनों अश्विनी कुमार आये । उन दोनों का सत्कार करके उन्होंने कहा आपलोग हमें ऐसी अवस्था प्रदान करे जिसे युवतियाँ चाहती हैं । मैं जानता हूँ आप दोनों समर्थ हैं।।११।।

भावार्थ दीपिका

हे ईश्वरौ सद्वैद्यौ, युवां मह्यं वयस्तारुण्यं दत्तं संपादयतम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

हे सद्वैद्यों आप दोनों मुझे युवा बना दें ।।११।।

ग्रहं ग्रहीष्ये सोमस्य यज्ञे वामप्यसोमपोः । क्रियतां मे वयो रूपं प्रमदानां यदीप्सितम् ।।१२।।

अन्वयः— असोमयोः अपिवाम् यज्ञें सोमस्य ग्रहं ग्रहिष्ये प्रमदानां यदीप्सितम् मे वयो रूपं क्रियताम् ।।१२।।

अनुवाद— यद्यपि आप दोनों सोमपान के अधिकारी नहीं फिर भी मैं यज्ञ में आपलोगों को सोमपूर्ण पात्र प्रदान करूँगा । अतएव युवतियों को अभीप्सित मेरा रूप और मेरी अवस्था आप लोग कर दें ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

असोमपोः सोमपानरहितयोरपि वां युवयोः सोमस्य ग्रहं सोमपूर्णं पात्रं ग्रहीष्ये दास्यामीति । युवां सोमेन यक्ष्य इत्यर्थः। 'ऐन्द्रवायवं गृह्णाति' इत्यादिषु द्रव्यदेवतासंबन्धानुपपत्त्या गृह्णातेर्यागपर्यवसायित्वात् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

सोमपान का अधिकार नहीं होने पर भी आप दोनों को सोम से भरे पात्र को प्रदान करूँगा । अर्थात् आप दोनों याग मैं सोमपान कराऊँगा । **ऐन्द्रावयवं गह्णति इत्यादि** वाक्य में द्रव्य तथा देवता का सम्बन्ध नहीं होने से गृह धातु का पर्यवसान याग में होता है ।।१२।।

बाढमित्यूचतुर्विप्रमभिनन्द्य भिषक्तमौ । निमज्जतां भवानस्मिन्ह्रदे सिद्धविनिर्मिते ॥१३॥

अन्वयः— भिषक्तमौ विप्रम् अभिनन्द्य बाढम् इत्यूचतुः । भवान् अस्मिन् सिद्धविनिर्मित्ते ह्रदे निमज्जताम् ॥१३॥

अनुवाद— वे दोनों श्रेष्ठ वैद्य महर्षि च्यवन का अभिनन्दन करके कहे कि ठीक है । इसके बाद उनसे उन दोनों ने कहा कि सिद्धों के द्वारा निर्मित्त इस ह्रद में डूबकी लगायें ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

बाढमित्यभिनन्द्य भवानस्मिन्निमज्जतामित्यूचतुः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

ठीक है इस तरह से अभिनन्दन करके आप इसमें स्नान करें यह दोनों अश्विनी कुमारों ने कहा ॥१३॥

इत्युक्त्वा जरया ग्रस्तदेहो धमनिसन्ततः । ह्रदं प्रवेशितोऽश्विभ्यां वलीपलितविप्रियः ॥१४॥

अन्वयः— इत्युक्त्वा जरयाग्रस्तदेहः धमनिसन्ततः वलीपलितविप्रियः अश्विभ्यां ह्रदं प्रवेशितः ॥१४॥

अनुवाद— इस तरह से कहकर बुढापे से ग्रस्त शरीर वाले, सभी ओर नसें दिख रही थीं झुरियाँ पड़ जाने और बाल पक जाने के कारण वे देखने में भद्दा लग रहे थे अश्विनी कुमारों ने उनको अपने साथ लेकर कुण्ड में प्रवेश किया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

ह्रदं प्रवेशितः । तावपि तमपि वृद्धं गृहीत्वा प्रविष्टावित्यर्थः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

ह्रदं प्रवेशित: अर्थात् वे दोनों भी उनको लेकर उस कुण्ड में प्रवेश किए ॥१४॥

पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरपीच्या वनिताप्रियाः । पद्मस्रज कुण्डलिनस्तुल्यरूपाः सुवाससः ॥१५॥

अन्वयः— त्रयः पुरुषा उत्तस्थुः अपीच्या, वनिताप्रियाः पद्मस्रजः कुण्डलिनः तुल्यरूपाः सुवाससः ॥१५॥

अनुवाद— उस कुण्ड से तीन पुरुष निकले वे देखने में सुन्दर, स्त्रियों को प्रिय लगने वाले, कमल की माला पहने हुए कुण्डल धारण किए हुए तथा सुन्दर वस्त्र धारण किए थे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

तान्निरीक्ष्य वरारोहा सरूपान्सूर्यवर्चसः । अजानती पतिं साध्वी अश्विनौ शरणं ययौ ॥१६॥

अन्वयः— साध्वी वरारोहा तान् सरूपान् सूर्यवर्चसः निरीक्ष्य पतिं अजानती अश्विनौ शरणं ययौ ॥१६॥

अनुवाद— परम साध्वी सुन्दरी सुकन्या उन तीनों को एक समान रूप वाले तथा सूर्य के समान देदीप्यमान देखकर अपने पति को नहीं पहचान रही थी तो उससे अश्विनी कुमारों की शरणागति की ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

अश्विनौ शरणं ययौ । युवां पृथक्स्थित्वा मत्पतिं दर्शयतमिति प्रार्थयामासेत्यर्थः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

आप दोनों अलग खड़ो होकर मेरे पति को मुझे दिखाइये, इस तरह से प्रार्थना की ॥१६॥

दर्शयित्वा पतिं तस्यै पातिव्रत्येन तोषितौ । ऋषिमामन्त्र्य ययतुर्विमानेन त्रिविष्टपम् ॥१७॥

अन्वयः— पातिव्रत्येनतोषित्वा तस्यै पति दर्शयित्वा ऋषिम् आमन्त्र्य विमानेन त्रिविष्टपम् ययतुः ॥१७॥

अनुवाद— सुकन्या के पाति व्रत्य से प्रसन्न हुए उन दोनों ने उसको उसके पति को दिखाकर तथा ऋषि से विदा लेकर वे दोनों विमान से स्वर्ग लोक चले गये ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

यक्ष्यमाणोऽथ शर्यातिश्च्यवनस्याश्रमं गतः । ददर्श दुहितुः पार्श्वे पुरुषं सूर्यवर्चसम् ॥१८॥

अन्वयः— अथ यक्ष्यमाणः शर्याति च्यवनस्य आश्रमं गतः दुहितुः पार्श्वे सूर्यवर्चसम् पुरुषं ददर्श ॥१८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् यज्ञ करने की इच्छा वाले शर्याति महर्षि च्यवन के आश्रम में गये । वहाँ पर अपनी पुत्री के पास सूर्य की कान्ति के समान कान्ति वाले पुरुष को देखे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

राजा दुहितरं प्राह कृतपादाभिवन्दनाम् । आशिषश्चाप्रयुञ्जानो नातिप्रीतमना इव ॥१९॥

अन्वयः— कृतपादाभिवन्दनाम् दुहितरं आशिषः च अप्रयुञ्जानः नातिप्रीतमना इव प्राह ॥१९॥

अनुवाद— सुकन्या ने उनके चरणों की वन्दना की किन्तु शर्याति उसको आशीर्वाद न देकर कुछ अप्रसन्न से होकर बोले ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

चिकीर्षितं ते किमिदं पतिस्त्वया प्रलम्भितो लोकनमस्कृतो मुनिः ।
यत्त्वं जराग्रस्तमसत्यसंमतं विहाय जारं भजसेऽमुमध्वगम् ॥२०॥

अन्वयः— इदं ते किम् चिकीर्षितम् त्वया लोकनमस्कृतः मुनिः प्रलम्भितः । यत् त्वं जराग्रस्तम् असति असंमतम् विहाय अमुम् अध्वगम् जारं भजसे ॥२०॥

अनुवाद— तुमने यह क्या किया ? जिनको संसार नमस्कार करता है उन महर्षि च्यवन को तुमने धोखा दे दिया है । क्योंकि बृद्धता से ग्रस्त जिनको कुलटा नारियाँ नहीं पसन्द करती हैं उन महर्षि को त्यागकर इस तरह चलते जार पुरुष की सेवा कर रही हो ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

प्रलम्भितो वञ्चितः । हे असति । असंमतमनभीष्टम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

प्रलम्भितः अर्थात् ठगा गया । हे आसति अर्थात् हे कुलटे, असंमतम् अर्थात् अनभिप्रेत ॥२०॥

कथं मतिस्तेऽवगतान्यथा सतां कुलप्रसूते कुलदूषणं त्विदम् ।
विभर्षि जारं यदपत्रपाकुलं पितुश्च भर्तुश्च नयस्यधस्तमः ॥२१॥

अन्वयः— हे सतां कुलप्रसूते ते मतिः कथम् अन्यथाऽवगता, इदं तु कुलदूषणम् यत् अपत्रपा जारं विभर्षि पितुश्च भर्तुश्च कुलं अधः तमः नयसि ॥२१॥

अनुवाद— तुम्हारा जन्म तो सत्पुरुषों के वंश में हुआ था इस तरह की उलटी बुद्धि तुम्हें कैसे प्राप्त हुई, यह कुल के लिए कलङ्क है जो तुम जार पुरुष की सेवा कर रही हो अपने पिता और पति दोनों के वंश को नरक की ओर ले जा रही हो ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

हे सतां कुलप्रसूते, तव मतिरन्यथा तद्विपर्ययेण कथमवगताऽवसन्नाऽध्यवसितेति वा । तदेवाह कुलदूषणं त्विदमित्यादि।।२१।।

भाव प्रकाशिका

हे सत् पुरुषों के वंश में उत्पन्न होने वाली ! तुमने इस विपरीत बुद्धि को कैसे प्राप्त किया ? अथवा तुमने ऐसा निश्चय कैसे किया ? उसी को कहा यह तो वंश के लिए कलङ्क है ।।२१।।

एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता । उवाच तात जामाता तवैष भृगुनन्दनः ।।२२।।

अन्वयः— एवं ब्रुवाणं पितरं शुचि स्मिता स्मयमाना उवाच तात एष तव जामाता भृगुनन्दनः ।।२२।।

अनुवाद— इस तरह से कहने वाले पिता की बात को सुनकर पवित्र मुस्कान वाली सुकन्या मुस्कुरा कर कही पिताजी ! ये ही आपके जामाता महर्षि च्यवन हैं ।।२२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२२।।

शशंस पित्रे तत्सर्वं वयोरूपाभिलम्भनम् । विस्मितः परमप्रीतस्तनयां परिषस्वजे ।।२३।।

अन्वयः— पित्रे सर्वं वयोरूपाभिलम्भनम् शशंस विस्मितः परमप्रीतः तनयां परिषस्वजे ।।२३।।

अनुवाद— इसके पश्चात् सुकन्या ने अवस्था और रूप की प्राप्ति सम्बन्धी सम्पूर्ण वृत्तान्त अपने पिता को उसने बतलाया उसको सुनकर महाराज शर्याति बहुत आश्चर्यित हुए और प्रसन्न होकर अपनी पुत्री को गले से लगा लिए ।।२३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२३।।

सोमेन याजयन्वीरं ग्रहं सोमस्य चाग्रहीत् । असोमपोरप्यश्विनोश्च्यवनः स्वेन तेजसा ।।२४।।

अन्वयः— सोमेन वीरं याजयन असोमयोः अपि अश्विनोः च्यवनः स्वेन तेजसा सोमस्य ग्रहं च अग्रहीत् ।।२४।।

अनुवाद— महर्षि च्यवनने राजा शर्याति से सोमयाग करवाया और सोमपान के अधिकारी नहीं होने पर भी उन्होंने अश्विनी कुमारों को सोमपान कराया ।।२४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२४।।

हन्तुं तमाददे वज्रं सद्योमन्युरमर्षितः । सवज्रं स्तम्भयामास भुजमिन्द्रस्य भार्गवः ।।२५।।

अन्वयः— अमर्षितः सद्योमन्युः तं हन्तुम् वज्रं आददे भार्गवः इन्द्रस्य सवज्रं भुजम् स्तम्भयामास ।।२५।।

अनुवाद— इस कार्य को नहीं कर सकने के कारण बहुत जल्दी क्रोध करने वाले इन्द्र शर्याति को मारने के लिए वज्र उठाये । उस समय महर्षि च्यवन ने वज्र सहित इन्द्र के हाथ को स्तम्भित कर दिया ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

सद्यस्तत्क्षणमेव मन्युर्यस्य स इन्द्रः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

उसी क्षण क्रोध करने वाले इन्द्र, यह **सद्योमन्युः** का अर्थ है ।।२५।।

अन्वजानंस्ततः सर्वे ग्रहं सोमस्य चाश्विनोः । भिषजाविति यत्पूर्वं सोमाहुत्या बहिष्कृतौ ।।२६।।

अन्वयः— ततः सर्वे अश्विनोः सोमस्य ग्रहं अन्वजानन् यत् पूर्वं भिषजौ इति सोमाहुत्या बहिष्कृतौ ।।२६।।

अनुवाद— उसके पश्चात् सभी देवताओं ने अश्विनी कुमारों को सोम का भाग देना स्वीकार कर लिया । उसके पहले उन दोनों के वैद्य होने के कारण सोमवाली आहुति से बहिष्कार कर दिया था ।।२६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२६।।

उत्तानबर्हिरानर्तो भूरिषेण इति त्रयः । शर्यातेरभवन्पुत्रा आनर्ताद्रेवतोऽभवत् ॥२७॥

अन्वयः— शर्यातेः त्रयः पुत्रा अभवान् उत्तानबर्हिः आनर्तः, भूरिषेण इति त्रयः आनर्तात् रेवतः अभवत् ॥२७॥

अनुवाद— शर्याति के तीन पुत्र हुए उत्तानबर्हि: आनर्त और भूरिषेण । आनर्त के पुत्र रेवत हुए ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

सोऽन्तः समुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् । आस्थितोऽभुङ्क्त विषयानानर्तादीनरिन्दम ॥२८॥

अन्वयः— हे अरिन्दम ! सः समुद्रे अन्तः कुशस्थलीं नगरीं विनिर्माय अस्थितः आनर्तादीन् विषयान् भुङ्क्ते ॥२८॥

अनुवाद— हे शत्रुदमन परीक्षित ! रेवत समुद्र के भीतर कुशस्थली नामक नगरी का निर्माण किया । वहाँ रहते हुए वे आनर्त आदि प्रदेशों का प्रशासन किए ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

विषयान्देशानानर्तादीन् अभुङ्क्त अपालयत् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

आनर्त आदि देशों का पालन किया ॥२८॥

तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् । ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः ॥२९॥

अन्वयः— तस्य पुत्रशतं ककुद्मी ज्येष्ठमुतमम् ककुद्मी स्वां कन्यां रेवतीम् आदाय विभुं गतः ॥२९॥

अनुवाद— आनर्त के सौ पुत्र हुए उन सबों ककुद्मी ज्येष्ठ और उत्तम था, वह अपनी कन्या रेवती को लेकर ब्रह्माजी के पास गया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

ककुद्मी जयेष्ठो यस्मिंस्तत् । विभुं ब्रह्मणम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

उन सबों में कुकुद्मी ज्येष्ठ थे । विभुम् अर्थात् ब्रह्माजी के पास गये ॥२९॥

कन्यावरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृतम् । आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितोऽलब्धक्षणः क्षणम् ॥३०॥

अन्वयः— कन्यावरं परिप्रष्टुं अपावृतम् ब्रह्मलोकम् आवर्तमाने गान्धर्वे अलब्धक्षणः क्षणम् स्थितः ॥३०॥

अनुवाद— अपनी कन्या का वर पूछने के लिए वे वहाँ गये । उस समय ब्रह्मलोक का द्वार खुला था । उस समय वह संगीत का आयोजन था अतएव बात-चीत करने का अवसर नहीं मिल पाने के कारण वे वहीं कुछ क्षण बैठ गये ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

न लब्धः क्षणोऽवसरो येन ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अवसर नहीं पायें ॥३०॥

तदन्त आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा भगवान्ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ॥३१॥

अन्वयः— तदन्ते आद्यम् अनम्यस्वाभिप्रायं न्यवेदयत् । तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा प्रहस्य तम् उवाच ह ॥३१॥

अनुवाद— सङ्गीत के अन्त में ब्रह्माजी को प्रणाम करके अपने अभिप्राय को अभिव्यक्त किया । उसको सुनकर ब्रह्माजी जोर से हँसे और राजा ककुद्मी से कहे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

आद्यं ब्रह्माणम् ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

अद्यम् अर्थात् ब्रह्माजी को ।।३१।।

अहो राजन्निरुद्धास्ते कलेन हृदि ये कृताः । तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणं गोत्राणि च न शृण्महे ।।३२।।

अन्वयः— अहो राजन् ये हृदि कृता ते कालेन निरुद्धा तत्पुत्रपौत्रप्तॄणां गोत्राणि च न शृण्महे ।।३२।।

अनुवाद— हे राजन् ! जिन लोगों को अपने अपने हृदय में सोचा है, वे तो मर चुके हैं उनके पुत्र, पौत्र और नातियों का नाम भी नहीं सुनाई पड़ता है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

ते त्वया हृदये ये कृतास्ते सर्वे कलेन निरुद्धाः संहृताः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

आप अपने हृदय में जिनको सोच रखें हैं वे सब मर चुके हैं ।।३२।।

कालोऽभियातस्त्रिणवचतुर्युगविकल्पितः । तद्गच्छ देवदेवांशो बलदेवो महाबलः ।।३३।।

अन्वयः— त्रिनवचतुर्युग विकल्पितः कालः अभियातः तदगच्छ देवदेवांशः महाबलः बलदेवः ।।३३।।

अनुवाद— सत्ताइस चतुर्युग बीत चुके जाइये इस समय श्रीभगवान् के अंशावतार महाबलवान् बलदेवजी हैं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

त्रिणव सप्तविंशतिचतुर्युगानि तैर्विकल्पितो विभक्तः । यो देवदेवस्यांशोऽस्ति तस्मै नररत्नाय देहि ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

सत्ताइस चतुर्युग बीत चुके हैं । जो श्रीभगवान् के अंशावतार हैं उन नररत्न बलदेवजी को अपनी कन्या प्रदान कर दें ।।३३।।

कन्यारत्नमिदं राजन्नररत्नाय देहि भो । भुवो भारावताराय भगवान्भूतभावनः ।।३४।।

अन्वयः— राजन् इदं कन्यारत्नम् नररत्नाय देहि भुवो भारावताराय भगवान् भूतभावनः ।।३४।।

अनुवाद— राजन् ! इस कन्या रत्न को उन्हीं नर रत्न को प्रदान करें । वे प्राणियों को जीवन प्रदान करने वाले भगवान् पृथिवी का भार उतारने के लिए अवतार लिए हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-भुव इति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

भुवः इत्यादि श्लोक से उसी बात को कहा गया है ।।३४।।

अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकीर्तनः । इत्यादिष्टोऽभिवन्द्याजं नृपः स्वपुरमागतः ।।३५।।

अन्वयः— पुण्यश्रवण कीर्तनः निजांशेन अवतीर्णः इति आदिष्ट अजं अभिवन्द्य नृपः स्वपुरम् आगतः ।।३५।।

अनुवाद— जिनके नाम, लीला धाम इत्यादि का श्रवण और कीर्तन पुण्यमय है वे अपने अंश से अवतीर्ण

हो गये है । इस तरह से ब्रह्माजी का आदेश प्राप्त कर राजा ककुद्मी ने ब्रह्माजी को नमस्कार किया और अपने नगर में आ गये ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

त्यक्तं पुण्यजनत्रासाद्भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः । सुतां दत्त्वानवद्याङ्गीं बलाय बलशालिने ॥
वदर्याख्यं गते राजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

अन्वयः— पुण्यजनत्रासात् दिक्ष्ववस्थितैः भ्रार्तृभिः परित्यक्तं स्वपुरमागतः अनवद्यांङ्गी सुतां बलशलिने बलाय दत्त्वा राजा तप्तुं बदर्याख्यं नारायणाश्रमम् गतः ।।३६।।

अनुवाद— यक्षों के भय से उनके वंशज उस नगर को छोड़कर कहीं भाग गये, वहाँ आकर उन्होंने सर्वाङ्ग सुन्दरी अपनी पुत्री का विवाह बलरामजी से करके राजा ककुदमी बदर्याश्रम नामक नारायणाश्रम में तप करने के लिए चले गये ।।३६।।

इस तरह श्रीमद्भगवत महपुराण के नवें स्कन्धे के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

भावार्थ दीपिका

पुण्यजनत्रासाद्यक्षभयात्पूर्वमेव चिरंपुरं तद्भ्रातृभिस्त्यक्तम् ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

यक्षों के भय से उनके भाइयों ने उस नगर को बहुत पहले ही त्याग दिया था ।।३६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के तीसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३।।

* * *

चतुर्थ अध्याय

नाभाग और अम्बरीष की कथा

श्रीशुक उवाच

नाभागो नभगापत्यं यं ततं भ्रातरः कविम् । यविष्ठं व्यभजन्दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥१॥

अन्वयः— नाभागः नभगापत्यं, ब्रह्मचारिणम् आगतम् कविम यविष्ठम् यं प्रति भातरः दायं ततं व्यभजन्

अनुवाद— मनु के पुत्र नभग के पुत्र नाभागथे वे दीर्घकाल तक ब्रह्मचारी रहकर जब लौटे तो उनके भाइयों ने उनके हिस्से को उनके पिता को प्रदान कर दिया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्थे मनुपुत्रस्य नभगस्य कथोच्यते । तत्सूनोश्चाम्बरीषस्य कृत्या प्रतिहता यतः । नभगस्य वंशमाह नभगस्यापत्यं नाभागः । नाभागादम्बरीषो महाभागवतोऽभूदिति वक्ष्यंस्तद्धेतुत्वेन वंशप्रवर्तकस्य नभगस्य निष्कपटं चरितं तेन तु श्रीरुद्रप्रसादमाह-

यं ततमित्यादिना । ब्रह्मचारिणं बहुकालं गुरुकुले वसन्तं नैष्ठिकोऽसाविति मत्वा विभागसमये तस्मै भागमप्रकल्प्यैव भ्रातरः सर्वं दायं विभज्य गृहीत्वा पश्चाद्गुरुकुलादागतं यं भागार्थिनं कविं विद्वांसं यविष्ठं प्रति ततं तातं पितरं दायं व्यभजन्नित्यर्थः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

चौथे अध्याय में मनु के पुत्र नभग की कथा का वर्णन है । उनके पुत्र अम्बरीष की कृत्या जिनके द्वारा विनष्ट कर दी गयी । नभग के वंश का वर्णन करते हैं नभग के पुत्र नाभाग थे । नाभाग के पुत्र अम्बरीष श्रीभगवान् के परम भक्त थे । इस बात को बतलाने के लिए उसके कारण रूप से वंश प्रवर्तक नभग के निष्कपट चरित को तथा उसके कारण श्रीशङ्करजी की कृपा को **यंततम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया हैं । बहुत समय तक ब्रह्मचारी रहकर गुरुकुल में निवास किए । उनको नैष्ठिक ब्रह्मचारी मानकर उनके बड़े भाइयों ने उनके दायभाग दिए बिना ही सम्पूर्ण सम्पत्ति बाँट ली । बाद में जब वे गुरुकुल से आये तो अपना भाग प्राप्त करना चाहे विद्वान् ब्रह्मज्ञ अपने सबसे छोटे भाई उनको भाइयों ने उनके हिस्से में उनके पिता को दे दिया ।।१।।

भ्रातरोऽभाक्त किं मह्यं भजाम पितरं तव । त्वां ममार्यास्तताऽभाक्षुर्मा पुत्रक तदादृथाः ।।२।।

अन्वयः— भातरः किं मह्यम् अभाक्त ? तव पितरं भजाम । हे तत ! ममार्याः त्वां अभाक्षुः पुत्रक तत् मा आदृथाः।।२।।

अनुवाद— नभगने अपने भाइयों से पूछा कि आप लोगों ने मेरे हिस्से में क्या दिया है ? भाइयों ने कहा तुम्हारे हिस्से में हमलोग तुम्हे पिताजी को देते हैं । नभग ने पिता से कहा कि तात् मेरे भाइयें ने मेरे हिस्से में आपको दिया है । पिता ने कहा वत्स तुम उन सबों की बातों का आदर न करो मैं भोग का साधन नहीं हूँ ।।२।।

भावार्थ दीपिका

एतदेव प्रश्नोत्तराभ्यां दर्शयति तत्र नभगः पृच्छति, हे भ्रातरः मह्यं किमभाक्त व्यभजन्त कं भागं मदर्थं यूयं प्रकल्पितवन्तः। भ्रातर आहुः- तदा विस्मृतमस्माभिरिदानीं तु तव पितरं विभजाम, त्वं पितरं गृहाणेत्यर्थः । स च पितरं गत्वाह-तत हे तात, आर्याः श्रेष्ठाः मे मम त्वामभाक्षुर्भागं चक्रुः । मदीयो भागस्त्वमित्यर्थः । पाठान्तरे हे तात, किमिदं ममाभाक्षुः भजाम पितरं तवेत्युक्तवन्तः आर्यास्त्वां मह्यं किमर्थं ददुरित्यर्थः । पिताह- हे पुत्रक, तत्तैरुक्तं मादृथाः प्रतारणमात्रं तैः कृतं तस्मिन्नादरं मा कार्षीः नह्यहं दाय इव भोगसाधनमित्यर्थः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

इस बात को प्रश्नोत्तर के माध्यम से बतलाते है नभग पूछते हैं ऐ भाइयों आपलोग मेरे हिस्से में क्या दिया है ? भाइयों ने कहा दाय विभाग के समय हमलोग भूल गये थे । इस समय तुमको तुम्हारे हिस्से में पिताजी को देते हैं । तुम अपने हिस्से में पिताजी को ले लो । नभग पिता के पास जाकर कहे कि हे पितः मेरे बड़े भाइयों ने आपको मेरे हिस्से में दिया है । मेरे हिस्से में आप है । पाठान्तर में अर्थ होगा कि हे तात ! मुझको यह क्या दिए । उन लोगों ने कहा कि हमलोग तुम्हें पिता को देते हैं । हमारे बड़े भाइयों ने आपको हमे किसलिए दिया है । पिता ने कहा पुत्र ! उन सबों ने तुमको केवल ठगा है । उन सबों की बातों का समादर न करो । मैं दाय के समान भोग का साधन नहीं हूँ ।।२।।

इमे अङ्गिरसः सत्रमासतेऽद्य सुमेधसः । षष्ठं षष्ठमुपेत्याहः कवे मुह्यन्ति कर्मणि ।।३।।

अन्वयः— हे कवे इमे सुमेधसः अङ्गिरसः अद्य सत्रम् आसते षष्ठं षष्ठम् उपेत्य कर्मणि मुहयन्ति ।।३।।

अनुवाद— हे कवे ये अत्यन्त बुद्धिमान् अङ्गिरस गोत्र के ब्राह्मण बहुत बड़ा सत्र (यज्ञ) कर रहे हैं किन्तु वे प्रत्येक छठे दिन कर्म करने में भूल करते हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

तथपि तैर्भागत्वेन दत्तोऽहं तव जीवनोपायमुपदेक्ष्यामीत्याह-इमे इति सपादाभ्यां द्वाभ्याम् । 'अभिप्लवः षडहो भवति' पृक्ष्यः षडहो भवति इति विहितेषु षडहेष्वावर्त्यमानेषु षष्ठं षष्ठमहः कर्मेपित्य प्राप्य कर्मणि तदनुष्ठाने सुमेधसोऽपि ते सूक्तविशेषाज्ञानेन मुह्यन्ति । कवें हे विद्वन् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

फिर भी उन सबों को मुझको भाग के रूप में प्रदान किया है अतएव मैं तुम्हे जीवन उपाय को बतलाऊँगा। यह पिता ने कहा दो बार षष्ठं षष्ठं दो बार प्रयोग किया गया है । **अभ्प्लिवः षडहो भवति**' तथा '**पृष्ठयः षडहो भवति**' इस दोनों सूक्तों में विहित छह-छह दिनों की आवृत्ति होने पर प्रत्येक छठे दिन के कर्म के आने पर उन कर्मों का अनुष्ठान करने में बुद्धिमान होने पर भी सूक्त विशेष का ज्ञान नहीं होने के कारण भूल करते हैं ।।३।।

तांस्त्वं शंसय सूक्ते द्वै वैश्वदेवे महात्मनः । ते स्वर्यन्तो धनं सत्रपरिशेषितमात्मनः ।।४।।
दास्यन्त्यथ ततो गच्छ तथा स कृतवान्यया । तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं ते सत्रपरिशेषितम् ।।५।।

अन्वयः— तान् महात्मनः त्वं द्वेवैश्वदेवे सूक्ते संशय ते स्पर्यन्तः सत्र परिशेषितम् आत्मनः धनं ते दास्यन्ति । अथ तान् गच्छ तथा स कृतवान् यथा ते सत्रपरिशेषितम् तस्मै दत्त्वा स्वर्गं ययुः ।।४-५।।

अनुवाद— उन महात्माओं के पास जाकर उन्हे वैश्वदेव सम्बन्धी दो सूक्तों को बतला दो । तब यज्ञ से बचा हुआ सारा धन वे तुम्हें दे देंगे । अतएव अब तुम उन सबों के ही पास जाओ । उसने अपने पिता की आज्ञा के अनुसार वैसा ही किया । उन अङ्गिरस गोत्रीय ब्राह्मण भी जब स्वर्ग जाने लगे तो यज्ञ से बचा हुआ सारा धन उसको दे दिए और स्वर्ग में चले गये ।।४-५।।

भावार्थ दीपिका

तान्महात्मनोऽपि त्वं 'इदमित्था रौद्रम्' इति च, 'ये यज्ञेन दक्षिणया' इति च वैश्वदेवे द्वे सूक्ते शंसय पाठय । ततः कर्मणि समाप्ते सति ते स्वर्यन्तः स्वर्गं गच्छन्तः स्वसत्रे परिशेषितमवशिष्टमात्मनो धनं तुभ्यं दास्यन्ति । अथ तस्मात्तान्गच्छेति । तथेत्यादि शुकवाक्यम् । यथावत्कृतवान् । सत्रपरिशेषितं सत्रावशिष्टं धनम् ।।४-५।।

भाव प्रकाशिका

उन महात्माओं को भी तुम **इदमित्था रौद्रम्** तथा '**ये यज्ञेन दक्षिण्यां** इन दोनों वैश्वदेव सूक्त को पढाओ। उसके पश्चात् कर्म के समाप्त होने पर स्वर्ग जाते हुए यज्ञ से अपने धन को तुम्हें दे देंगे । अतएव उन सबों के ही पास तुम जाओ । तथा इत्यादि शुकदेवजी का वचन है । उसने वैसा ही किया । यज्ञ से बचे धन को ।।४-५।।

तं कश्चित्स्वीकरिष्यन्तं पुरुषः कृष्णदर्शनः । उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य ममेदं वास्तुकं वसु ।।६।।

अन्वयः— तं स्वीकरिष्यन्तं उत्तरतः कश्चित् कृष्णदर्शनः पुरुषः अभ्येत्य उवाच इदं वास्तुकं वसु मम ।।६।।

अनुवाद— नाभाग जब उस धन को लेने लगे तो उत्तर दिशा से आकर काले रङ्ग के एक पुरुष ने कहा यह यज्ञावशिष्ट धन मेरा है ।।६।।

भावार्थ दीपिका

पुरुषः श्रीरुद्रः । दृश्यत इति दर्शनं शरीरम् कृष्णं दर्शनं यस्य सः । वास्तुकं यज्ञभूमिगतं वसु धनं ममेत्युवाच ।।६।।

भाव प्रकाशिका

पुरुष शब्द से श्रीरुद्र को कहा गया है । उनका रङ्ग काला था । यज्ञ भूमि में विद्यमान धन मेरा है ।।६।।

ममेदमृषिभिर्दत्तमिति तर्हि स्म मानवः । स्यान्नौ ते पितरि प्रश्नः पृष्टवान्पितरं तथा ॥७॥

अन्वयः— ऋषिभिर्दत्तम् इदं मम इति तर्हि मानवः स्म नौ ते पित्तरि प्रश्नः स्यात् तथा पितरं पृष्टवान् ॥७॥

अनुवाद— इस पर नाभाग ने कहा कि ऋषियों ने यह धन मुझें दिया है, अतएव मेरा है । उस पुरुष ने कहा हमारे विवाद के विषय में तुम्हारे पिता से ही प्रश्न किया जाय । तब नाभाग जाकर अपने पिता से पूछा॥७॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि स्म तदैव ममेदमिति मानवो नभग उवाच । पुनश्च रुद्र उवाच । नौ आवयोरस्मिन्विवादे ते पितरि प्रश्नः स्यादिति। पृष्टवानिति शुकोक्तिः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

नाभाग ने कहा कि यह धन मेरा होना चाहिए । रुद्र ने कहा हम दोनों के विवाद के विषय में तुम्हारे पिताजी से प्रश्न किया जाय । उसने जाकर अपने पिता से पूछा । यह शुकदेवजी का वाक्य हैं ॥७॥

यज्ञवास्तुगतं सर्वमुच्छिष्टमृषयः क्वचित् । चक्रुर्विभागं रुद्राय स देवः सर्वमर्हति ॥८॥

अन्वयः— यज्ञवास्तु गतं सर्वमुच्छिष्टं ऋषय क्वचित् विभागं रुद्राय चक्रुः सदेव सर्वमर्हति ॥८॥

अनुवाद— यज्ञ भूमि में विद्यमान सब यज्ञोच्छिष्ट होता है । उसको ऋषियों ने कहीं रुद्र का भाग निश्चित किया है । अतएव उस धन के अधिकारी रुद्र ही है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

पृष्टस्य मनोर्वाक्यं यज्ञवास्तु गतमिति । उच्छिष्टमुर्वरितम् । क्वचिदिति दक्षाध्वरे । 'उच्छेषणभागो वै रुद्रः' इति श्रुतेश्च। किंच स देव ईश्वरः सर्वमप्यर्हति, किं पुनर्यज्ञावशिष्टमित्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

पूछने पर मनु ने कहा यज्ञ भूमि में विद्यमान बचा हुआ सब कुछ रुद्र का होता है । यह ऋषियों ने दक्ष के यज्ञ में निर्णय किया है । श्रुति भी कहती है— **उच्छेषण भागो वै रुद्रः** अतएव वे देव सबकुछ के अधिकारी हैं केवल यज्ञावशिष्ट के ही नहीं ॥८॥

नभगस्तं प्रणम्याह तवेश किल वास्तुकम् । इत्याह मे पिता ब्रह्मञ्छिरसा त्वां प्रसादये ॥९॥

अन्वयः— नभगः प्रणम्य आह ईश ! वास्तुकम् किल तव । इति मे पिता आह त्वां शिरसा प्रसादये ॥९॥

अनुवाद— नभग ने शङ्कर से कहा हे स्वामिन् ! यज्ञ भूमिगत धन आपका है, यह मेरे पिता ने कहा है अतएव मैं शिर झुकाकर आपसे क्षमा माँगता हूँ ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

यत्ते पितावदद्धर्मं त्वं तु सत्यं प्रभाषसे । ददामि ते मन्त्रदृशे ज्ञानं ब्रह्म सनातनम् ॥१०॥

अन्वयः— यत् ते पिता धर्मम् अवदत् त्वं तु सत्यं प्रभाासे मन्त्रदृशे सनातनं ब्रह्मज्ञानं ददामि ॥१०॥

अनुवाद— भगवान् रुद्र ने कहा तुम्हारे पिता ने धर्मानुकूल निर्णय किया है और तुमने भी सत्य ही कहा है, अतएव मन्त्र द्रष्टा तुमको मैं सनतान ब्रह्म का ज्ञान प्रदान करता हूँ ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

श्रीरुद्र आह-यत्ते इति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यत्ते इत्यादि इस श्लोक को श्रीरुद्र ने कहा है ॥१०॥

गृहाण द्रविणं दत्तं मत्सत्रे परिशेषितम् । इत्युक्त्वान्तर्हितो रुद्रो भगवान्सत्यवत्सलः ॥११॥

अन्वयः— मत्सत्रे परिशेषितम् द्रविणं दत्तम् गृहाण इत्युक्त्वा सत्यवत्सलः भगवान् रुद्रः अन्तर्हितः ॥११॥

अनुवाद— यज्ञ से अवशिष्ट धन को तुम ले लो मैंने तुम्हें प्रदान किया है, यह कहकर सत्य प्रेमी भगवान् रुद्र अन्तर्धान हो गये ॥११॥

भावार्थ दीपिका

इदमाख्यानं श्रुतिप्रसिद्धम् । तथा हि बह्वृचब्राह्मणम्- 'नाभानेदिष्टं शंसति नाभानेदिष्टं वै मानवं ब्रह्मचर्यं वसन्तं भ्रातरो निरभजन्त्सोऽब्रवीत्' इत्यादि ॥११॥

भाव प्रकाशिका

यह आख्यान् श्रुति प्रसिद्ध है । बहवच ब्राह्मण में कहा गया है । नाभानेदिष्ठ के कहने पर नाभानेदिष्ठ ब्रह्मचारी मनु के पुत्र हैं । भाइयों ने सब धन बाँट लिया था । उसने कहा इत्यादि ॥११॥

य एतत्संस्मरेत्प्रातः सायं च सुसमाहितः । कविर्भवति मन्त्रज्ञो गतिं चैव तथात्मनः ॥१२॥

अन्वयः— य एतत् प्रातः सायं समाहितः संस्मरेत् मन्त्रज्ञः कविर्भवति तथा आत्मनः गतिं चैव ॥१२॥

अनुवाद— जो पुरुष इस आख्यान को सायं काल और प्रातः काल स्मरण करता है वह मन्त्रज्ञ और ब्रह्मज्ञानी हो जाता है । और मुक्ति को प्राप्त करता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अस्याख्यानस्य स्मरणे फलमाह- य एतदिति । आत्मनो गतिं च प्राप्नोतीति शेषः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

इस आख्यान के स्मरण का फल **य एतत श्लोक** से बतलाते हैं । वह आत्मज्ञ हो जाता है ॥१२॥

नाभागादम्बरीषोऽभून्महाभागवतः कृती । नास्पृशद्ब्रह्मशापोऽपि यं न प्रतिहतः क्वचित् ॥१३॥

अन्वयः— नाभागात् महाभागवतः ·अम्बरीषोऽभूत यं क्वचित् न प्रतिहतः ब्रह्मशापः न अस्पृशत् ॥१३॥

अनुवाद— नाभाग के पुत्र महाभागवत अम्बरीष हुए उनको कभी भी प्रतिहत नहीं होने वाला ब्रह्मशाप छू नहीं सका ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

क्वचिदपि न प्रतिहतो ब्रह्मशापोऽपि ब्राह्मणेन दुर्वाससा निर्मितः कृत्यानलोऽपि यं नास्पृशत् । अतोऽसौ महाभागवतोऽत एव कृती पुण्यवान् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

कभी भी बाधित नहीं होने वाला दुर्वासा ब्राह्मण के द्वारा उत्पादित कृत्याग्नि भी नहीं स्पर्श कर सकी । अतएव वे महाभागवत पुण्यवान थे ॥१३॥

राजोवाच

भगवच्छ्रोतुमिच्छामि राजर्षेस्तस्य धीमतः । न प्राभूद्यत्र निर्मुक्तो ब्रह्मदण्डो दुरत्ययः ॥१४॥

अन्वयः— हे भगवन् तस्य धीमतः राजर्षेः श्रोतुम् इच्छामि यत्र दुरत्ययः निर्मुक्तो ब्रह्मदण्डः न प्राभूत् ॥१४॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! मैं परम ज्ञानी राजर्षि अम्बरीष का चरित्र सुनना चाहता हूँ । ब्राह्मण के द्वारा दिया गया ब्रह्मदण्ड जो किसी भी प्रकार नहीं टल सकता था वह भी उनका कुछ भी नहीं बिगाड सका ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

तस्य श्रोतुमिच्छामि चरितमिति शेषः । ब्रह्मदण्डः कृत्यानलो न प्राभून्न समर्थो बभूव ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

मैं उनका चरित सुनना चाहता हूँ । कृत्याग्नि रूप ब्रह्म दण्ड कुछ भी करने में समर्थ नहीं हो सका ।।१४।।

श्रीशुक उवाच

अम्बरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् । अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ।।१५।।
मेनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत्स्वप्नसंस्तुतम् । विद्वान्विभवनिर्वाणं तमो विशति यत्पुमान् ।।१६।।

अन्वयः— महाभागः अम्बरीषः सप्तद्वीपवती महीम् अव्ययां श्रियं अतुलंविभवं च भुवि लब्ध्वा पुंसां अतिदुर्लभं च तत् सर्वं स्वप्न संस्तुतम् मेने । यत् विभव निर्वाणं विद्वान् पुमान् तमो विशति ।।१५-१६।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— महाभाग्यवान् अम्बरीष, सात द्वीपों वाली पृथिवी, अचल सम्पत्ति, तथा अतुलनीय वैभव को प्राप्त किए थे, जो मनुष्यों के लिए दुर्लभ है । फिर भी वे इन सबों को स्वप्न के समान समझते थे । क्योंकि वे जानते थे कि ऐश्वर्य का नाश हो जाने पर विद्वान पुरुष भी मोह में पड़कर घोर नरक में चला जाता है ।।१५-१६।।

भावार्थ दीपिका

श्रियं संपदम् । विभवमैश्वर्यम् । अतुलं निरुपमम् ।।१५।। पुंसामतिदुर्लभमपि तत्सर्वं स्वप्नत्संस्तुतं निरूपितमनुपादेयं मेने । तत्र हेतुः-विभवस्य निर्वाणं नाशं विद्वान् । यद्येन विभवेन तन्नाशेन वा पुमांस्तमोविशति मोहे निमज्जति ।।१५-१६।।

भाव प्रकाशिका

श्रियम् अर्थात् संपति को, विभवम् ऐश्वर्य को, **अतुलम्** अर्थात् अपरिमेय दूसरे पुरुषों के लिए अत्यनत दुर्लभ भी उन सारी वस्तुओं को राजा अम्बरीष स्वप्न के समान अनुपादेय मानते थे । उसका कारण है कि विद्वान् पुरुष विभव का नाश होने पर घोर अज्ञान में फँसकर घोर नरक में चला जाता है ।।१६।।

वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु । प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्टवत्स्मृतम् ।।१७।।

अन्वयः— भगवति वासुदेवे तद् तत्साधुषुभक्तेषु च परं भावं प्राप्तः योन इदं विश्वं लोष्ठवत् स्मृतम् ।।१७।।

अनुवाद— उनका श्रीभगवान् वासुदेव में और उनके साधु भक्तों में अत्यधिक प्रेम प्राप्त हो गया था, उसी के कारण उनको सारा विश्व मिट्टी के ढेले के समान प्रतीत होता था ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं जानन्तोऽपि विभवैषिणो दृश्यन्ते तत्राह-वासुदेव इति । भावं भक्तिं प्राप्तः । येन भावेनेदं विश्वं लोष्टवदतितुच्छं स्मृतम् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि इस तरह से जानकर भी लोग वैभव को प्राप्त करना चाहते हैं । इस पर **वासुदेवे० इत्यादि** श्लोक होते हैं । भाव शब्द भक्ति का बोधक है । उस भक्ति की प्राप्ति हो जाने पर सारा विश्व मिट्टी के ढेले के समान तुच्छ प्रतीत होता है ।।१७।।

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥१८॥

अन्वयः— स वै मनः यत् कृष्णपदार विन्दयोः वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने, करौ हरेः मन्दिरमार्जनादिषु श्रुति च अच्युत सत्कथोदये चकार ॥१८॥

अनुवाद— वे अपने मन को भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में लगा रखे थे, अपनी वाणी का उपयोग श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन में करते थे, वे अपने हाथों का उपयोग श्रीभगवान् के मन्दिर को साफ करने में करते थे और अपने कानों को श्रीभगवान् की सुन्दर कथाओं को सुनने में लगाये रहते थे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

भक्तिमेव सर्वेन्द्रियाणां भगवत्परत्वकथनेन प्रपञ्चयति-स वा इति त्रिभिः-श्रुतिं श्रोत्रमच्युतस्य सत्कथानामुदये श्रवणे चकारेत्यस्य सर्वत्रान्वयः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

सभी इन्द्रियों के श्रीभगवान् में परायण वर्णन करके भक्ति का ही विस्तार से वर्ण **सवा० इत्यादि** तीन श्लोकों से करते हैं। वे अपने कानों का उपयोग श्रीभगवान् की सुन्दर कथा सुनने में ही करते थे। चकार का सर्वत्र अन्वय है॥१८॥

मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसङ्गमम् ।
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥१९॥

अन्वयः— मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ चकार, तदभृत्यगात्र स्पर्शेङ्गसङ्गमम् चकार, श्रीमत्तुलस्याः तत्पादसरोज सौरभे घ्राणं चकार, तदर्पिते रसनांचकार ॥१९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की मूर्तियों और मन्दिरों के दर्शन में उन्होंने अपने दोनों नेत्रों को लगा दिया था, अङ्ग-सङ्ग श्रीभगवान् के भक्तों के शरीर का स्पर्श करने में, श्रीभगवान् के चरणों पर चढ़ी हुई तुलसी के सौगन्ध्य का अनुभव करने में अपनी नासिका को लगाया था, तथा श्रीभगवान् को निवेदित प्रसाद का रस लेने में अपनी जिह्वा को लगा रखे थे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

मुकुन्दस्य लिङ्गानामालयानि स्थानानि तेषां दर्शने दृशो नेत्रे। श्रीमत्यास्तुलस्यास्तत्पादसरोजेन यत्सौरभं तस्मिन्। तदर्पिते तस्मै निवेदितान्नादौ ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की मूर्तियों के मन्दिरों का दर्शन करने में वे अपने नेत्रों का उपयोग करते थे, श्रीतुलसी का श्रीभगवान् के चरण कमलों पर चढाये जाने से उत्पन्न सुगन्ध का अनुभव करने में अपनी घ्राणेन्द्रिय का उपयोग करते थे। तथा भगवान् को भोग लगाये हुए अन्न का ही वे सेवन करते थे ॥१९॥

पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने ।
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः ॥२०॥

अन्वयः— हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे पादौ कृष्णपदाभिवन्दने शिरः, यथोत्तमश्लोक जनाश्रयारतिः, न तुकाम काम्यया दास्ये कामम् ॥२०॥

अनुवाद— अम्बरीष श्रीभगवान् के क्षेत्र में पैदल जाने में पैरों का उपयोग करते थे, श्रीभगवान् के श्रीचरणों

की वन्दना करने में अपने शिर का उपयोग करते थे, चन्दन माला आदि का सेवन इसलिए वे करते थे कि उनको श्रीभगवान् की दासता की प्राप्ति हो अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए नहीं अपितु उस भक्ति को प्राप्त करने के लिए जो भक्ति भगवद् भक्तों में ही रहा करती है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

कामं स्रक्चन्दनादिसेवां दास्ये निमित्ते तत्प्रसादस्वीकाराय नतु कामकाम्यया विषयेच्छया । कथं चकार । उत्तमश्लोकजनाश्रया रतिर्यथा भवेत्तथा । अनेन तद्भक्तेषु च परं भावं प्राप्त इत्येतत्स्फुटीकृतम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

वे श्रीभगवान् की माला चन्दन आदि का सेवन अपनी कामना की पूर्ति के लिए नहीं करते थे अपितु श्रीभगवान् की उस भक्ति की प्राप्ति के लिए किया करते कि उनको उस भक्ति की प्राप्ति हो जो भगवद् भक्तों में रहा करती है ॥२०॥

एवं सदा कर्मकलापमात्मनः परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ।
सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां तन्निष्ठविप्राभिहितः शसास ह ॥२१॥

अन्वयः— एवं सदा कर्मकलापम् आत्मनः परे अधियज्ञे अधोक्षज सर्वात्मभावं विदधन् विप्राभिहितः इमां महीम् शसास ह ॥२१॥

अनुवाद— इस प्रकार वे सदैव अपने सभी कर्मों को यज्ञपुरुष, इन्द्रियातीत, श्रीभगवान् को सर्वात्मा समझकर भगवद्भक्त ब्राह्मणों की आज्ञा के अनुसार वे इस पृथिवी का प्रशासन करते थे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

सर्वत्रात्मेति भावो भावना यस्मिंस्तमात्मनः स्वस्य कर्मणां कलापं समूहं भगवति विदधत्समर्पयंस्तन्निष्ठैर्भागवतैर्विप्रैरभिहितः शिक्षितः सन् महीं शशास पालयामास । अनेनाधिकृतो धर्मोऽपि यथावद्दर्शितः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

सर्वत्र आत्मभाव की भावना उनकी बनी रहती थी । वे अपने कर्म समूह को श्रीभगवान् को समर्पित करके भगवद् भक्त ब्राह्मणों के कथनानुसार इस पृथिवी का प्रशासन करते थे । इस तरह अधिकृत धर्म का यथार्थ वर्णन किया गया है ॥२१॥

ईजेऽश्वमेधैरधियज्ञमीश्वरं महाविभूत्योपचिताङ्गदक्षिणैः ।
ततैर्वसिष्ठासितगौतमादिभिर्धन्वन्यभिस्रोतमसौ सरस्वतीम् ॥२२॥

अन्वयः— असौ वसिष्ठासितगौतमादिभिः ततैः धन्वनि सरस्वतीम् अभिस्रोतम् महाविभूत्योपचिताङ्गदाक्षिणैः अश्वमेधैः ईश्वरम् ईजे ॥२२॥

अनुवाद— वे राजा अम्बरीष वसिष्ठ असित, तथा गौतम आदि ऋषियों द्वारा प्रवर्तित धन्व नामक निर्जल देश में सरस्वती नदी के प्रवाह के सम्मुख महान् ऐश्वर्य के कारण सर्वाङ्गपूर्ण तथा बड़ी-बड़ी दक्षिणा वाले अनेक अश्वमेध यज्ञों के द्वारा श्रीभगवान् की आराधना किए ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

किंच यज्ञाधिष्ठातारमीश्वरमश्वमेधैरीजै आराधयामास । महाविभूत्योपचितान्यङ्गानि दक्षिणाश्च येषु तैः । वसिष्ठादिभिर्हेतुभूतैस्ततैर्विस्तृतैः । धन्वनि धन्वदेशे निरुदके सरस्वतीमभिस्रोतम् । तस्याः प्रतिलोममित्यर्थः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

राजा अम्बरीष ने यज्ञ के अधिष्ठाता श्रीभगवान् की आराधना अश्वमेध यज्ञों के द्वारा की । महान् ऐश्वर्यों से समृद्ध अङ्गों तथा बड़ी-बड़ी दक्षिणाओं वाले अश्वमेध यागों के द्वारा श्रीभगवान् की आराधना की । वसिष्ठादि आचार्यों द्वारा प्रवर्तित यज्ञों से आराधना की । धन्व नामक जलहीन प्रदेश में सरस्वती नदी के प्रवाह के सम्भुख आयोजित यज्ञों से आराधना की ॥२२॥

यस्य क्रतुषु गीर्वाणैः सदस्या ऋत्विजो जनाः । तुल्यरूपाश्चानिमिषा व्यदृश्यन्त सुवाससः ॥२३॥

अन्वयः— यस्य क्रतुषु सदस्याः ऋत्विजः जनाः सुवाससः गीर्वाणैः तुल्यरूपाः अनिभिषाः च व्यदृश्यन्त ॥२३॥

अनुवाद— उनके यज्ञों में सदस्य,ऋत्विज, और प्रजाएँ सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए देवताओं के साथ समान रूप वाले प्रतीत होते थे और उनकी पलकें नहीं गिरती थीं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

किंच यस्य क्रतुषु सदस्यादयो गीर्वाणैः सह भूषणादिभिस्तुल्यरूपा व्यदृश्यन्त स इत्थमिति चतुर्थेनान्वयः । न च देवानां निमेषाभावाद्वैलक्षण्यम् । यतोऽनिमिषाश्च व्यदृश्यन्त । न निमिषन्तीति तथा । आश्चर्यदर्शनौत्सुक्येन तेषां निमेषोपरमादिति भावः॥२३॥

भाव प्रकाशिका

उनके यज्ञों में सदस्य आदि देवताओं के साथ भूषणादि धारण किए रहने के कारण समान रूप वाले दिखते थे । इस तरह से इस श्लोक का आगे के चौथे श्लोक के साथ अन्वय है । देवताओं का निमेषपात न होने के कारण वे उनसे भिन्न नहीं दिखते थे, क्योंकि वे सदैव देखते रहते थे । आश्चर्य देखने की उत्सुकता के कारण उन लोगों की पपनी नहीं गिरती थी ॥२३॥

स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य मनुजैरमरप्रियः । शृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोकचेष्टितम् ॥२४॥

अन्वयः— उत्तम श्लोक चेष्टितम् शृण्वद्भिः उपगायद्भिः यस्य मनुजै अमरप्रियः स्वर्गः न प्रार्थितः ॥२४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की लीलाओं का श्रवण और महात्माओं के साथ उपगायन करने वाले जिनके प्रजाजन देवताओं को प्रिय स्वर्ग को प्राप्त करना नहीं चाहते थे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

यस्य यदीयैर्मनुजैरपि स्वर्गो न प्रार्थितस्तस्य तु का वार्ता ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

जब उनकी प्रजाएँ भी स्वर्ग प्राप्त करना नहीं चाहती थीं तो राजा अम्बरीष के विषय में क्या कहना है?॥२४॥

समर्धयन्ति तान्कामाः स्वाराज्यपरिभाविताः । दुर्लभा नापि सिद्धानां मुकुन्दं हृदि पश्यतः॥२५॥

अन्वयः— मुकुन्दं हृदिपश्यतः तान् जनान् स्वराज्य परिभाविताः अतएव सिद्धानाम् अपिदुर्लभा; कामा न समर्द्धयन्ति॥२५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का हृदय में साक्षात्कार करने वाले उन प्रजाओं को स्वरूप सुख के कारण अत्युत्कृष्ट अतएव सिद्धों को भी दुर्लभ, विषय प्रहर्षित नहीं कर पाते थे ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

आस्तां स्वर्गप्रार्थनाशङ्कापि । यद्यतः मुकुन्दं हृदिपश्यतस्ताञ्जनान्कामा विषया न समर्धयन्ति न हर्षयन्ति । कथंभूताः। स्वराज्येन स्वरूपसुखेन परिभाविता अतिशायिताः । अतएव सिद्धानामपि दुर्लभाः । यानिति पाठे यान्मनुजान् । स्वाराज्येत्यत्रापि द्वितीयान्तपाठे मनुजानां विशेषणम् । यमिति पाठे यमम्बरीषम् । पश्यतामिति पाठे सिद्धानां विशेषणम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

स्वर्ग प्रर्थना की शङ्का भी नहीं की जा सकती थी। क्योंकि हृदय में श्रीभगवान् का सदा दर्शन करने के कारण आत्मसुख से समृद्ध अतएव सिद्धों को भी दुर्लभ, विषय उनकी प्रजाओं को प्रहर्षित नही कर पाते थे। **यान** पाठ होने पर अर्थ होगा जिन मनुष्यों को। स्वराज्य में भी द्वितीयान्त पाठ होने पर मनुजाणम् का विशेषण होगा। **यम्** पाठ होने पर अर्थ होगा जिस अम्बरीष को **पश्यताम्** पाठ होने पर वह **सिद्धानाम्** का विशेषण होगा ॥२५॥

स इत्थं भक्तियोगेन तपोयुक्तेन पार्थिवः। स्वधर्मेण हरिं प्रीणन्सङ्गान्सर्वाञ्छनैर्जहौ ॥२६॥

अन्वयः— इत्थं तपोयुक्तेन भक्तियोगेन सः पार्थिवः स्वधर्मेण हरिं प्रीणन् सर्वान् सङ्गान् शनैः जहौ ॥२६॥

अनुवाद— इस तरह तपस्या युक्त भक्तियोग के द्वारा राजा अम्बरीष अपने प्रजा पालन रूप धर्म के द्वारा श्रीहरि को प्रसन्न करते हुए धीरे-धीरे सभी प्रकार की आसक्तियों का परित्याग कर दिए ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

एवं भगवदाराधनपरस्य कामाद्युपेक्षा नैव चित्रमित्युपसंहरति-स इत्थमिति द्वाभ्याम् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से सदा भगावदाराधन में सलग्न रहने वाले राजा ने काम आदि की उपेक्षा कर दी इस बात को **स इत्थम् इत्यादि** दो श्लोकों से कहते है ॥२६॥

गृहेषु दारेषु सुतेषु बन्धुषु द्विपोत्तमस्यन्दनवाजिपत्तिषु।
अक्षय्यरत्नाभरणायुधादिष्वनन्तकोशेष्वकरोदसन्मतिम् ॥२७॥

अन्वयः— गृहेषु दारेषु सुतेषु बन्धुषु द्विवोत्तमस्यन्दनवाजिपत्तिषु अक्षयरत्ना भरणा युधादिषु अनन्तकोशेषु असन् मतिम् अकरोत् ॥२७॥

अनुवाद— गृह, स्त्री, पुत्र, बन्धुवर्ग, बड़े-बड़े हाथी, उत्तमरथ, घोड़े एवं पैदल सेना अक्षय रत्न आभूषण एवं आयुध तथा कभी भी नहीं खत्म होने वाले कोष इन सभी पदार्थों को वे असत्य मानते थे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं प्रत्यनीकभयावहम्। एकान्तभक्तिभावेन प्रीतो भृत्याभिरक्षणम् ॥२८॥

अन्वयः— एकान्तभक्तिभावेन प्रीतः हरि तस्मै भृत्याभिरक्षणम् प्रत्यनीकभयावहम् चक्रम् अदात् ॥२८॥

अनुवाद— उनकी अनन्या भक्ति से प्रसन्न होकर श्रीहरि उनकी रक्षा के लिए चक्रराज (सुदर्शन चक्र) को नियुक्त कर दिये थे, जो चक्र भगवद् भक्तों की रक्षा करने वाला तथा विरोधियों को भयभीत करने वाला था ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवंभूतोऽसौ कथं प्रतिपक्षान् जयेत्तत्राह-तस्मा इति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि इस प्रकार के राजा अम्बरीष विरोधियों पर विजय कैसे प्राप्त कर सकते थे। इसका उत्तर **तस्मै० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है ॥२८॥

आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या तुल्यशीलया। युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम् ॥२९॥

अन्वयः— तुल्यशीलया महिष्या युक्त वीर कृष्णं आरिराधयिषुः सांवत्सरम् द्वादशीव्रतं दधार ॥२९॥

अनुवाद— अपने समान ही शील गुण सम्पन्न अपनी रानी के साथ राजा अम्बरीष, भगवान् श्रीकृष्ण की आराधना करने की इच्छा से एक वर्ष तक द्वादशी प्रधान एकादशी व्रत करने का निश्चय किए ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं तस्य वैराग्यादिकं हरिभक्तिं चोक्त्वा ब्रह्मदण्डो यत्र न प्राभूदिति यदुक्तं तदेव द्वादशीव्रतनिष्ठां कथयन्नाह-आरिराधयिषुरित्यादिना यावदध्यायसमाप्ति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से राजा अम्बरीष के वैराग्य का वर्णन तथा श्रीहरि की भक्ति का वर्णन करके, ब्रह्मदण्ड उनका कुछ नहीं विगाड़ सका यहा जो कहा गया है उसी का द्वादशीव्रत निष्ठा का वर्णन आरिराधयिषु इत्यादि श्लोक से लेकर अध्याय की समाप्ति पर्यन्त करते हैं ॥२९॥

व्रातन्ते कार्तिके मासि त्रिरात्रं समुपोषितः । स्नातः कदाचित्कालिन्द्यां हरिं मधुवनेऽर्चयत् ॥३०॥

अन्वयः— व्रतान्ते कार्तिके मासि त्रिरात्रं समुपोषितः कदाचित् कलिन्द्यांस्नात्वामधुवनेः हरिं अर्चयत् ॥३०॥

अनुवाद— व्रत के अन्त में तीन रात का उपवास करके राजा एक दिन यमुनाजी में स्नान करके मधुवन में भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा किए ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

अर्चयत् । अडागमाभाव; आर्षः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अर्चयत् मे अट् के आगम का अभाव आर्ष है । अर्चयत् अर्थात् पूजन किए ॥३०॥

महाभिषेकविधिना सर्वोपस्करसंपदा। अभिषिच्याम्बराकल्पैर्गन्धमाल्यार्हणादिभिः ॥३१॥
तद्गतान्तरभावेन पूजयामास केशवम् । ब्राह्मणांश्च महाभागान्सिद्धार्थानपि भक्तितः ॥३२॥

अन्वयः— महाभिषेक विधिना सर्वोपस्करसंपदा अभिषिच्य अम्बराकल्पैः गन्धमाल्यार्हणादिभिः तद्गतान्तरभावेन केशवम्, महाभागान् सिद्धार्थान् ब्रह्मणान् च भक्तितः पूजयामास ॥३१-३२॥

अनुवाद— उन्होंने महाभिषेक की विधि से सभी सामग्रियों और सम्पत्ति से श्रीभगवान् का अभिषेक करके हृदय से तन्मय होकर वस्त्र भूषण चन्दन, माला इत्यादि से श्रीभगवान् की और महाभाग्यवान तथा जिनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं उन ब्राह्मणों की भक्ति पूर्वक पूजा की ॥३१-३२॥

भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणांश्च पूजयामास । सिद्धार्थानाप्तकामान् पूजानपेक्षानपि ॥३१-३२॥

भाव प्रकाशिका

परिपूर्ण काम होनें के कारण पूजा निरपेक्ष भी ब्राह्मणों की पूजा की ॥३१-३२॥

गवां रुक्मविषाणीनां रुप्याङ्घ्रीणां सुवाससाम्। पयःशीलवयोरूपवत्सोपस्करसंपदाम् ॥३३॥
प्राहिणोत्साधु विप्रेभ्यो गृहेषु न्यर्बुदानि षट्। भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम् ॥३४॥

अन्वयः— रुक्मविषाणीनां रूप्याङ्घ्रीणाम् सुवाससाम् पयःशीलवयोरूपवत्सोपस्करसंपदाम् गवां षट् न्यर्बुदानि अग्रे गुणवत्तमम् स्वाद्वन्नं भोजयित्वा विप्रेभ्यो गृहेषु साधुप्राहिणोत् ॥३३-३४॥

अनुवाद— जिन गौओं का सीङ्ग सुवर्ण से और खुर चाँदी से मढा गया था तथा जिनको सुन्दर वस्त्र ओढा दिया गया था तथा जो गायें दूधारू, सीधी छोटी अवस्था देखने में सुन्दर तथा बछड़ों से युक्त दोहन पात्र आदि सामग्री से युक्त थी ऐसी साठ करोड़ गायों को ब्राह्मणों को गुण युक्त स्वादिष्ट तम अन्न का भोजन कराकर राजा ने विप्रों के घर भेज दिया ॥३३-३४॥

भावार्थ दीपिका

रूप्याङ्घ्रीणां रूप्यखुराणाम् । पयःशीलादिसंपदो यासां तासाम् । न्यर्बुदानि षट् षष्टिकोटीः ॥३३-३४॥

भाव प्रकाशिका

न्यर्बुदानिषट् अर्थात् साठ करोड़ ॥३३-३४॥

लब्धकामैरनुज्ञातः पारणायोपचक्रमे । तस्य तर्ह्यतिथिः साक्षाद्दुर्वासा भगवानभूत् ॥३५॥

अन्वयः— लब्धकामैः अनुज्ञातः पारणायोपचक्रमे तर्हि तस्य साक्षात् भगवान् दुर्वासा अतिथिः अभूत् ॥३५॥

अनुवाद— परिपूर्ण इच्छाओं वाले ब्राह्मणों की आज्ञा प्राप्त करके राजा अम्बरीष् अपने व्रत की पारणा की तैयारी किए । उसी समय उनके अतिथि के रूप में साक्षात् भगवान् दुर्वासा आ गये ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि तदैव दुर्वासा अतिथिः साक्षात्प्रत्यक्षोऽभूत् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

उसी समय महर्षि दुर्वासा अतिथि के रूप में दिखायी पड़े ॥३५॥

तमानर्चातिथिं भूपः प्रत्युत्थानासनार्हणैः । ययाचेऽभ्यवहाराय पादमूलमुपागतः ॥३६॥

अन्वयः— भूपः तम् अतिथिं प्रत्युत्थानार्हणै आनर्च पादमूलम् उपागतः अभ्यवहाराय ययाचे ॥३६॥

अनुवाद— राजा ने उन आये हुए अतिथि महर्षि दुर्वासाजी को खड़ा होंकर आसन प्रदान आदि सामग्रियों से पूजा की तदनन्तर उनके चरणों में प्रणाम करके भोजन करने के लिए प्रार्थना की ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

आनर्चार्चितवान् । अभ्यवहाराय भोजनाय ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

आनर्च अर्थात् पूजा किए । अभ्यवहाराय अर्थात् भोजन करने के लिए ॥३६॥

प्रतिनन्द्य स तद्याच्ञां कर्तुमावश्यकं गतः । निममज्ज बृहद्ध्यायन्कालिन्दीसलिले शुभे ॥३७॥

अन्वयः— तद याच्ञां प्रतिनन्द्य आवश्यकं कर्तुम् गतः । बृहद्ध्यायन् कालिन्दी शुभे सलिले निममज्ज ॥३७॥

अनुवाद— राजा की प्रार्थना को स्वीकार करके वे आवश्यक कर्मों को करने के लिए चले गये परंब्रह्म का ध्यान करते हुए वे यमुनाजी के पवित्र जल में स्नान किए ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

आवश्यकं नैयमिकं माध्याह्निकं कर्म कर्तुं गतः । बृहद्ब्रह्म ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

मध्याह्न कालिक नियम सबन्धी कर्मों को करने के लिए गये बृहत् अर्थात् ब्रह्म ॥३७॥

मुहूर्तार्धावशिष्टायां द्वादश्यां पारणं प्रति । चिन्तयामास धर्मज्ञो द्विजैस्तद्धर्मसङ्कटे ॥३८॥

अन्वयः— मुहूर्तार्धावशिष्टायां द्वादश्यां पारणं प्रति तद धर्म सङ्कटे धर्मज्ञः द्विजै चिन्तयामास ॥३८॥

अनुवाद— पारण का जब केवल एक घड़ी अवशिष्ट रह गया तो धर्मज्ञ राजा ने ब्राह्मणों के साथ पारण के विषय में विचार किया ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३८॥

ब्राह्मणातिक्रमे दोषो द्वादश्यां यदपारणे । यत्कृत्वा साधु मे भूयादधर्मो वा न मां स्पृशेत् ॥३९॥

अन्वयः— ब्राह्मणातिक्रमे दोषः द्वादश्यां यत् अपारणे, यत् कृत्वा मे साधुभूयात् वा अधर्मः मां न स्पृशेत् ॥३९॥

अनुवाद— राजा ने कहा ब्राह्मण को भोजन कराये बिना भोजन कर लेना पाप है और द्वादशी में पारण नहीं करने से भी पाप होगा । अतएव इस समय जैसा करने से मुझे पाप न लगे वैसा ही करना चाहिए ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

धर्मसङ्कटमेवाह-यद्यतो ब्राह्मणातिक्रमे दोषोऽधर्मः । द्वादश्यामपारणेऽपि दोषो व्रतवैगुण्यम् । यत्कृत्वा यस्मिन्कृते॥३९॥

भाव प्रकाशिका

राजा नें धर्मसङ्कट को बतलाते हुए कहा ब्राह्मण का अतिक्रम करने पर दोष होगा द्वादशी में पारण भीनहीं करने पर दोष होगा । जिस कार्य को करने से यह **यत् कृत्वा** का अभिप्राय है ॥३९॥

अम्भसा केवलेनाथ करिष्ये व्रतपारणम् । प्राहुरब्भक्षणं विप्रा ह्यशितं नाशितं च तत् ॥४०॥

अन्वयः— विप्राः केवलेन अम्भसा व्रतपारणं करष्ये अब्भक्षणं अशितं न अशितं च तत् प्राहुः ॥४०॥

अनुवाद— ब्राह्मणों में केवल जल से ही व्रत की पारण करूगाँ, क्योंकि श्रुतियाँ जल को भोजन करना और नहीं करना दोनों कहती हैं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

एवं द्विजैः सह विचार्य निश्चिनोति-अम्भसेति । व्रतस्य पारणं समाप्तिम् । तदशितमाहुरशितं नेति चाहुः-श्रुतिश्च 'अपोऽश्नाति तन्नैवाशितं नैवानशितम्' इति ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से ब्राह्मणों के साथ विचार करके वे निश्चित करते हुए **अम्भसा आदि** श्लोक कहते हैं- जल पी लेने को व्रत की समाप्ति व्रत पराण का अर्थ है । श्रुतियों ने जल पी लेने को भोजन करना और नहीं करना दोनों ही कहा है । श्रुति कहती है । **अपोऽश्नाति तन्नैवाशितं नैवानशितम्** । अर्थात् जल पी लेना भोजन नही है और वह भोजन नहीं करना भी है ॥४०॥

इत्यपः प्राश्य राजर्षिश्चिन्तयन्मनसाच्युतम् । प्रत्याचष्ट कुरुश्रेष्ठ द्विजागमनमेव सः ॥४१॥

अन्वयः— हे कुरुश्रेष्ठ ! इति अपः प्रश्य राजर्षिः मनसा अच्युतं चिन्तयन् सः द्विजागमन मेव प्रत्याचष्ट ॥४१॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! इस तरह से राजर्षि अम्बरीष जल को पीकर मन से भगवान् अच्युत का चिन्तन करते हुए ब्राह्मण के आने की प्रतीक्षा करने लगे ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्यचष्ट प्रत्यैक्षत ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

प्रत्यचष्ट अर्थात् प्रतीक्षा करने लगे ॥४१॥

दुर्वासा यमुनाकूलात्कृतावश्यक आगतः । राज्ञाभिनन्दितस्तस्य बुबुधे चेष्टितं धिया ।।४२।।

अन्वयः— दुर्वासा कृतावश्यकः यमुनाकूलात् आगतः राजाभिनन्दित तस्य चेष्टितं धिया बुबुधे ।।४२।।

अनुवाद—आवश्यक कार्यों को करके महर्षि दुर्वासा यमुना तट से आ गये । राजा ने उनका अभिनन्दन किया तो उनकी चेष्टाओं को ही देखकर वे जान गये कि राजा ने पारण कर लिया है ।।४२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४२।।

मन्युना प्रचलद्गात्रो भ्रुकुटीकुटिलाननः । बुभुक्षितश्च सुतरां कृताञ्जलिमभाषत ।।४३।।

अन्वयः— बुभूक्षितः च सुतरां मन्युनाप्रचलद्गात्रः भृकुटी कुटिलाननः कृताञ्जलिम् अभापत ।।४३।।

अनुवाद— महर्षि दुर्वासाभूखे थे अतएव क्रोध के कारण उनका शरीर काँपने लगा भौंहों के चढ जाने से उनका मुख भयङ्कर हो गया हाथ जोड़े हुए राजा से उन्होंने कहा ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

प्रचलत्कम्पमानं गात्रं यस्य । भ्रुकुटीभ्यां कुटिलमाननं यस्य ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

प्रचलत् अर्थात् काँप रहा था जिनका शरीर। भुकुटियों के चढ जाने से जिनका मुँह टेढा हो गया था ।।४३।।

अहो अस्य नृशंसस्य श्रियोन्मत्तस्य पश्यत । धर्मव्यतिक्रमं विष्णोरभक्तस्येशमानिनः ।।४४।।

अन्वयः— अहो नृशंसस्य श्रियोन्मत्तस्य विष्णोः अभक्तस्य ईशमानिनः, अस्य धर्मव्यतिक्रमं पश्यत ।।४४।।

अनुवाद— क्रूर सम्पत्ति के मद से मत्त तथा भगवान् विष्णु के अभक्त तथा अपने को समर्थ मानने वाले इसके द्वारा किए गये धर्म के अतिक्रमण को तो देखो ।।४४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४४।।

यो मामतिथिमायातमातिथ्येन निमन्त्र्य च । अदत्त्वा भुक्तवांस्तस्य सद्यस्ते दर्शये फलम् ।।४५।।

अन्वयः— यः आयातम् अतिथिम् माम् आतिथ्येन निमन्त्र्य अदत्वा भुक्तवान् तस्य ते फलम् सद्यः दर्शये ।।४५।।

अनुवाद— इसने आये हुए अतिथि मुझको भोजन के लिए निमन्त्रित करके मुझे भोजन कराये बिना खा लिया । इसका फल मैं तुमको तुरन्त देता हूँ ।।४५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४५।।

एवं ब्रुवाण उत्कृत्य जटां रोषविदीपितः । तयास निर्ममे तस्मै कृत्यां कालानलोपमाम् ।।४६।।

अन्वयः— इति ब्रुवण रोषविदीपितः जटां उत्कृत्य तया सः तस्मै कालानलोपमाम् कृत्यां निर्ममे ।।४६।।

अनुवाद— इस तरह से कहने वाले क्रोध से लाल बने महर्षि अपनी एक जटा को उखाड़कर उससे राजर्षि अम्बरीष के लिए कालाग्नि के समान कृत्या को उत्पन्न कर दिए ।।४६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४६।।

तामापतन्तीं ज्वलतीमसिहस्तां पदा भुवम् । वेपयन्तीं समुद्वीक्ष्य न चचाल पदान्नृपः ।।४७।।

अन्वयः— ज्वलन्तीम् असिहस्ताम आपतन्तीं पदा भुवम् वेपयन्तीम् ताम् समुद्वीक्ष्य नृपः पदात् न चचाल ।।४७।।

अनुवाद— आग के समान जलती हुई हाथ में तलवार लेकर आती हुई तथा अपने पैरों की धमक से पृथिवी को कँपाती हुई उसको देखकर राजा एक पग भी पीछे नहीं हटे ।।४७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४७।।

प्राग्दिष्टं भृत्यरक्षायां पुरुषेण महात्मना । ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्धाहिमिव पावकः ॥४८॥

अन्वयः— महात्मना पुरुषेण भृत्यरक्षायां प्राग्दष्टं चक्रम् तां कृत्यां क्रुद्धाहिम् पावकः इव ददाह ।।४८।।

अनुवाद— परम पुरुष परमात्मा के द्वारा पहले से ही अपने भृत्य की रक्षा में नियुक्त चक्रराज ने उस कृत्या को उसी तरह जला दिया जिस तरह क्रुद्ध सर्प को अग्नि जला देती है, उसी तरह जला दिया ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

क्रुद्धमहिं पावको दावाग्निरिव ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

क्रुद्ध सर्प को वनाग्नि के समान जला दिया ।।४८।।

तदभिद्रवदुद्वीक्ष्य स्वप्रयासं च निष्फलम् । दुर्वासा दुद्रुवे भीतो दिक्षु प्राणपरीप्सया ॥४९॥

अन्वयः— तत् अभिद्रवत् स्व प्रयासं च निष्फलम् उद्वीक्ष्य भीतो दुर्वासा प्राण परीप्सया दिक्षु दुद्रुवे ।।४९।।

अनुवाद— चक्रराज को अपनी ओर आते हुए तथा अपने प्रयास को निष्फल देखकर भयभीत महर्षि दुर्वासा अपनी जान वचाने के लिए विभिन्न दिशाओं में भागने लगे ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

निष्फलमुद्वीक्ष्य ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

निष्फल देखकर ।।४९।।

तमन्वधावद्भगवद्रथाङ्गं दावाग्निरुद्धूतशिखो यथाहिम् ।
तथानुषक्तं मुनिरीक्षमाणो गुहां विविक्षुः प्रससार मेरोः ॥५०॥

अन्वयः— उदधूत शिखः दावाग्निः अहिम् यथा तम् भगवद्रथाङ्गम् अन्वधावत् । तथानुसक्तं ईक्षमाणः मुनिः मेरोःगुहा विविक्षुः मेरोः प्रससार ।।५०।।

अनुवाद— जिस तरह ऊँची लपटों वाली दावाग्नि सर्प के पीछे दौड़ती है, उसी तरह महर्षि दुर्वासा के पीछे श्रीभगवान् का चक्र दौड़ने लगा । अपने पीछे चक्र को आते देखकर मुनि गुफा में प्रवेश कर जाने की इच्छा से सुमेरु पर्वत की ओर दौड़े ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

अनुषक्तं पृष्ठतः । संसक्तम् । मेरोर्गुहा विविक्षुरधावत् ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

अनुषक्तम् अर्थात् पीछे आते हुए । सुमेरु पर्वत की गुफा में प्रवेश कर जाने की इच्छा से दौड़े ।।५०।।

दिशो नभः क्ष्मां विवरान्समुद्राँल्लोकान्सपालांस्त्रिदिवं गतः सः ।
यतो यतो धावति तत्र तत्र सुदर्शनं दुष्प्रसहं ददर्श ॥५१॥

अन्वयः— दिशः नभ, क्ष्मां विवरान् समुद्रान् लोकान् सपालान् त्रिदिवं गतः सः यतो यतो धावति तत्र तत्र दुष्प्रसहं सुदर्शनं ददर्श ।।५१।।

अनुवाद— महर्षि दुर्वासा, दिशा, आकाश, पृथिवी, अतल, वितलादि, पाताल, समुद्र, लोकपालों और उनके द्वारा सुरक्षित लोकों तथा स्वर्ग लोक में गये । वे जहाँ कहीं भी गये असह्य तेज वाले सुदर्शन चक्र को देखा ॥५१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५१॥

अलब्धनाथः स यदा कुतश्चित्संत्रस्तचित्तोऽरणमेषमाणः ।
देवं विरिञ्चं समगाद्विधातस्त्राह्यात्मयोनेऽजिततेजसो माम् ॥५२॥

अन्वयः— यदा सः कुतश्चित् अलब्धनाथः अरणमेषमाणः संत्रस्तचित्तः देवं विरिंचं समागात् आत्मयोने विधातः माम् अजिततेजसः त्राहि ॥५२॥

अनुवाद— जब कहीं भी उनको कोई रक्षक नहीं मिला वे और अधिक भयभीत हो गये । अपने लिए त्राण खोजते हुए वे देव शिरोमणि ब्रह्माजी के पास गये और कहे हे ब्रह्माजी आप स्वयम्भू हैं आप मुझे श्रीभगवान के तेजोमय इस चक्र से मेरी रक्षा कीजिए ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

अरणमेषमाणः शरणमिच्छन् । अजिततेजसो हरेश्चक्रात् ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

अरणमेषमाणः रक्षक को चाहते हुए अजित तेजसः अर्थात् श्रीहरि के चक्र से ॥५२॥

ब्रह्मोवाच

स्थानं मदीयं सहविश्वमेतत्क्रीडावसाने द्विपरार्धसंज्ञे ।
भ्रूभङ्गमात्रेण हि संदिधक्षोः कालात्मनो यस्य तिरोभविष्यति ॥५३॥

अन्वयः— द्विपरार्द्धसंज्ञे कालात्मनः की डावसाने संदिधिक्षोः यस्य भ्रूमङ्गमात्रेण विश्वंसह एतत् मदीयं स्थानं तिरोभविष्यति॥५३॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— मेरी परार्द्ध की आयु के समाप्त हो जाने पर काल स्वरूप श्रीभगवान् जब अपनी क्रीडा का संवरण करने लगेंगे और इस जगत् को जला देना चाहेंगे, उस समय उनके भ्रूभङ्ग मात्र से सारा संसार और मेरा यह लोक भी लीन हो जायेगा ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

एतत्सर्वं यस्य भ्रूमङ्गमात्रेण तिरोभविष्यति । कदा । क्रीडाया अवसाने । तदपि कदा । द्विपरार्धसंज्ञे काले ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

यह सम्पूर्ण जगत् जिन श्रीभगवान् के भूमङ्गमात्र से तिरोहित हो जायेगा । कब ? उनकी क्रीडा के समाप्त हो जाने पर उस क्रीडा की भी समाप्ति कब होगी ? द्विपरार्द्ध संज्ञक जब काल होगा ॥५३॥

अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः प्रजेशभूतेशसुरेशमुख्याः ।
सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्ना मूर्ध्न्यर्पितं लोकहितं वहामः ॥५४॥

अन्वयः— अहं भवः दक्ष भृगुप्रधानाः प्रजेशभूतेश सुरेशमुख्याः, सर्वे वयम् यन्नियमं प्रपन्नाः मूर्ध्नि अर्पितं लोकहितं वहामः ॥५४॥

अनुवाद— मैं शङ्करजी दक्ष भृगु आदि प्रजापति, भूतेश्वर देवेश्वर आदि जिनके बनाये नियमों में बँधे है,

उन्हीं के नियमों को शिरोधार्य करके हम सब संसार का कल्याण करते हैं । उनके भक्त से द्रोह करने वाले आपको बचाने में समर्थ नहीं है ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

अतों वयं सर्वे यस्य नियममाज्ञां प्रपन्नाः प्राप्ताः सन्तो लोकहितं यथा भवत्येवं तन्नियमं मूर्ध्न्यर्पितं वहामः । अतस्तद्भक्तद्रोहिणं त्वां रक्षितुं न समर्थोऽहमिति शेषः । यत्तदोर्नित्यसंबन्धात् ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

अतएव हम सभी जिनकी आज्ञा को प्राप्त करके, उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करके जिस तरह से लोक का कल्याण होता है उस तरह से उनकी आज्ञा का पालन करते हैं । अतएव उनके भक्त से द्रोह करने वाले आपकी रक्षा करने मे मैं समर्थ नहीं हूँ । यत् और तत् दोनों का सम्बन्ध नित्य है ॥५४॥

प्रत्याख्यातो विरिञ्चेन विष्णुचक्रोपतापितः । दुर्वासाः शरणं यातः सर्वं कैलासवासिनम् ॥५५॥

अन्वयः— विरिंचेन प्रत्याख्यातः विष्णुचक्रोपतापितः दुर्वासाः कैलासवासिनम् शर्व शरणं यातः ॥५५॥

अनुवाद— ब्रह्माजी के द्वारा निराश कर दिए जाने पर भगवान् विष्णु के चक्र से संतप्त महर्षि दुर्वासा कैलासवासी शङ्करजी के शरण में गये ॥५५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५५॥

श्रीरुद्र उवाच

वयं न तात प्रभवाम भूम्नि यस्मिन्परेऽन्येऽप्यजजीवकोशाः ।
भवन्ति काले न भवन्ति हीदृशाः सहस्रशो यत्र वयं भ्रमामः ॥५६॥

अन्वयः— यस्मिन् परे भूम्नि, अन्ये अपि अजजीवकोशाः इदृशा हि काले भवन्ति न भवन्ति, यत्र वयम् सहस्रशः भ्रमामः तत्र वयं न प्रभवामः ॥५६॥

श्रीशङ्करजी ने कहा

अनुवाद— जिन अनन्त परमेश्वर में ब्रह्माजी जैसे जीव तथा उनके उपाधि कोश इस ब्रह्माण्ड के समान ही अनेक ब्रह्माण्ड समय पर पैदा होते हैं और समय आने पर विलीन हो जाते हैं । जिनमें मुझ जैसे हजारो जीव चक्कर काटते हैं, उन श्रीहरि के विषय में हम कुछ भी नहीं कर सकते ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

श्रीरुद्रोऽपि प्रत्याचष्टे- वयमिति चतुर्भिः-भूम्नि महति । महत्त्वमेवाह-यस्मिन्परमेश्वरे । अजा ब्रह्माणस्त एव जीवास्तेषां कोशा उपाधिभूता ब्रह्माण्डविग्रहा ईदृशा दृश्यमानब्रह्माण्डप्रमाणा अन्येऽपि भवन्ति जायन्ते नश्यन्ति च । यत्र येषु ब्रह्माण्डेषु लोकेशाभिमानिनो वयं भ्रमामः ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीशङ्करजी ने भी उन्हें वयम् इत्यादि चार श्लोकों से निराश कर दिया । भूम्नि अर्थात् महान् परमेश्वर में। श्रीभगवान् की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए शङ्करजी ने कहा जिन परमेश्वर में ब्रह्माजी जैसे जीव तथा उनके कोश अर्थात् उपाधि भूत वर्तमान ब्रह्माण्ड के सदृश अनेक दूसरे ब्रह्माण्ड भी उत्पन्न होते हैं और विनष्ट होते हैं, तथा जिन ब्रह्माण्डों में लोकेश के अभिमानी हम सभी चक्कर काटते हैं ॥५६॥

अहं सनत्कुमारश्च नारदो भगवानजः । कपिलोऽपान्तरतमो देवलो धर्म आसुरिः ॥५७॥
मरीचिप्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशाः पारदर्शिनः । विदाम न वयं सर्वे यन्मायां माययावृताः ॥५८॥

अन्वयः— माययावृताः अहं सनत्कुमारः, नारदः, भगवान् अजः कपिलः अपान्तरतमः, देवलः, धर्मः आसुरिः मरीचि प्रमुखाः अन्ये पारदर्शिनः सिद्धेशा, वयं सर्वे यन्मायां न विदामः ।५७-५८।।

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् की माया से आवृत होकर मैं सनतकुमार नारद, भगवान् ब्रह्माजी, कपिल महर्षि, अपान्तरतम, देवल धर्म, आसुरि तथा मरीचि इत्यादि तथा दूसरे सर्वज्ञ सिद्धेश्वर तथा हम सभी उनकी माया को नहीं जान पाते हैं ।।५७-५८।।

भावार्थ दीपिका

ननु सर्वज्ञस्य तव भ्रमः कुतस्तत्राह अहमिति । पारदर्शिनः सर्वज्ञा अपि यस्य मायां न विद्यः ।।५७-५८।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि आप तो सर्वज्ञ हैं आपको भ्रम कैसे हो सकता है ?इस पर **अहम् इत्यादि** श्लोक कहते हैं। सर्वज्ञ पुरुष होकर भी उनकी माया को हमलोग नहीं जान पाते हैं ।।५७-५८।।

तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः । तमेव शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति ।।५९।।

अन्वयः— तस्य विश्वेश्वस्य इदं शस्त्रं नः दुर्विषहं, तमेव शरणं याहि हरिः तेशं विधास्यति ।।५९।।

अनुवाद— उन्हीं सम्पूर्ण जगत् के स्वामी का यह शस्त्र है यह हमलोगों के लिए असह्य है, उन्हीं के शरण में आप जाइये, वे ही आपका कल्याण करेंगे ।।५९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५९।।

ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ । विकुण्ठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह ।।६०।।

अन्वयः— ततो निरासः दुर्वासाः विकुण्ठाख्यं भगवतःपदं ययौ यत् श्रीनिवासः श्रिया सह अध्यास्ते ।।६०।।

अनुवाद— उसके पश्चात् निरास होकर महर्षि दुर्वासा श्रीभगवान् के वैकुण्ठ नामक धाम में गये जहाँ श्रीभगवान् श्रीलक्ष्मीजी के साथ निवास करते हैं ।।६०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६०।।

संदह्यमानोऽजितशस्त्रवह्निना तत्पादमूले पतितः सवेपथुः ।
आहाच्युतानन्त सदीप्सित प्रभो कृतागसं माऽव हि विश्वभावन ।।६१।।

अन्वयः— अजित शस्त्र वह्निना संदह्यमानः सवेंपथुः तत्पादमूले पतितः आह हे अच्युत, हे अनन्त हे सदीप्सितप्रभो हे विश्वभावन ! कृतागसं मा अव ।।६१।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के शस्त्र की अग्नि से संतप्त महर्षि दुर्वासा काँपते हुए श्रीभगवान् के चरणों में गिर पड़े और कहने लगे हे अच्युत, हे अनन्त, हे सत्पुरुषों द्वारा वांछित प्रभो, हे संसार को प्राण प्रदान करने वाले प्रभो ! मैं अपराधी हूँ आप मेरी रक्षा करें ।।६१।।

भावार्थ दीपिका

हे सतामीप्सित मा मां अव पाहि ।।६१।।

भाव प्रकाशिका

हें सत्पुरुषों द्वारा वांछित प्रभो आप मेरी रक्षा करें ।।६१।।

अजानता ते परमानुभावं कृतं मयाधं भवतः प्रियाणाम् ।
विधेहि तस्यापचितिं विधातर्मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि ॥६२॥

अन्वयः— ते परमानुभावम् अजानता मया भवतः प्रियाणाम् अधं कृतम् । हे विधातः तस्य अपचितिं विधेहि, यन्नम्नि उदिते नारकोऽपि मुच्येत ॥६२॥

अनुवाद— आपके परं प्रभाव को नहीं जानने के कारण ही मैंने आपके प्रिय भक्त का अपराध किया है। प्रभो आप मुझे इससे बचाइये, आपके नाम का उच्चारण करने मात्र से नारकीय जीव भी मुक्त हो जाते हैं ॥६२॥

भावार्थ दीपिका

अपराधं निवेदयन्प्रार्थयते-अजानतेति । अघं दुःखम् । अपर्चितिं निष्कृतिम् । मद्भक्तद्रोहे निष्कृति न पश्यामीति चेत्तत्राह-यस्य तव नाम्नि कीर्तिते नरकस्थोऽपि मुच्यते, तस्य तव किमशक्यमिति भाव; ॥६२॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि दुर्वासा अपने अपराध को बतलाकर **अजानता० इत्यादि** श्लोक से प्रार्थना करते हैं । अधम् अर्थात् दुःख को (पाप को) **अपचितिम्** प्रायश्चित अर्थात् उद्धार । यदि कहें जो मेरे भक्त से द्रोह करता है, उसका कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है । इस पर दुर्वासा जी ने कहा आपके नाम का उच्चारण करने से यदि नारकीय जीव भी मुक्त हो जाता है तो फिर आपके लिए क्या अशक्य है ?॥६२॥

श्रीभगवानुवाच

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज । साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥६३॥

अन्वयः— हे द्विज !अहं भक्तपराधीनः अस्वतन्त्र इव साधुभिः भक्तैः भक्तजनप्रियः ग्रस्त हृदयः ॥६३॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे द्विज ! मैं अपने भक्तो के पराधीन हूँ, मैं बिल्कुल स्वन्तत्र नहीं हूँ । मेरे साधु भक्तों ने मेरे हृदय को अपने हाथ में कर लिया है । । मैं भक्तजनों को प्रिय हूँ और वे मुझको प्रिय हैं ॥६३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६३॥

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना । श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन्येषां गतिरहं परा ॥६४॥

अन्वयः— ब्रह्मन् येषां अहं परागतिः, मत् साधुभिः भक्तैः बिना अहम् आत्मानम् न आशासे न चात्यन्तिकीं श्रियम्॥६४॥

अनुवाद— ब्रह्मन् मैं जिन भक्तों का एकमात्र परम प्राप्य हूँ उन अपने साधु भक्तों के बिना न तो मैं जीना चाहता हूँ और न अविनाशिनी अपनी लक्ष्मी को चाहता हूँ ॥६४॥

भावार्थ दीपिका

न आशासे न स्पृहयामि ॥६४॥

भाव प्रकाशिका

नहीं चाहता हूँ ॥६४॥

ये दारागारपुत्राप्तान्प्राणान्वित्तमिमं परम् । हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥६५॥

अन्वयः— ये दारागार पुत्राप्तान् प्राणान् वित्तम् इमं परमं च हित्वा मां शरणं याताः तान् कथं त्यक्तुम् उत्सहे ॥६५॥

अनुवाद— जो भक्त, स्त्री, पुत्र, गृह, गुरुजन, प्राण, धन, इहलोक और परलोक सब को त्याग कर केवल मेरी शरण में आ गये हैं, उन सबों को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ॥६५॥

भावार्थ दीपिका

इमं परं च लोकं हित्वा ॥६५॥

भाव प्रकाशिका

इह लोक और परलोक को ॥६५॥

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः । वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥६६॥

अन्वयः— मयि निर्बद्ध हृदयाः समदर्शनाः साधव मां सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा वशी कुर्वन्ति ॥६६॥

अनुवाद— जिन भक्तों ने अपने हृदय को मुझमें प्रेम के बन्धन से बाँध दिया है, ऐसे समदर्शी, साधु पुरुष उसी तरह से मुझको अपने वश में कर लेते हैं जिस तरह साध्वी स्त्रियाँ अपने सत्पति को अपने वश में कर लेती हैं ॥६६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६६॥

मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम् । नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविद्रुतम् ॥६७॥

अन्वयः— मत्सेवया प्रतीतं सालोक्यादि चतुष्टयम् नेच्छन्ति, सेवयापूर्णाः, कालविद्रुतम् अन्यत् कुतः ॥६७॥

अनुवाद— मेरे भक्त मेरी सेवा करने के कारण प्राप्त होने वाली सालोक्य सारूप्य आदि मुक्तियों को नहीं प्राप्त करना चाहते हैं क्योंकि वे मेरी सेवा से ही पूर्ण रहते हैं तो फिर काल के उलट फेर से विनष्ट होने वाली वस्तुओं को क्यों प्राप्त करना चाहेंगे ॥६७॥

भावार्थ दीपिका

प्रतीतं प्राप्तमपि ॥६७॥

भाव प्रकाशिका

प्रतीतम् अर्थात् प्राप्त ॥६७॥

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् । मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥६८॥

अन्वयः— साधवः मह्यम् हृदयं अहं तु साधूनां हृदयम् ते मदन्यत् न जानन्ति अहम् तुभ्यः अन्यत् मनाक् अपि न जानामि ॥६८॥

अनुवाद— मेरे भक्त मेरे हृदय है और मैं भी अपने भक्तों का हृदय हूँ । वे मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं जानते हैं और मैं भी उनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं जानता हूँ ॥६८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६८॥

उपायं कथयिष्यामि तव विप्र शृणुष्व तत् । अयं ह्यात्माभिचारस्ते यतस्तं यातु वै भवान् ।
साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् ॥६९॥

अन्वयः— हे विप्र तव उपायं कथयिष्य तत् शृणुष्व अयं ते आत्माभिचारः यतः तं वै भवान् यातु । साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुं अशिवं कुरुते ॥६९॥

अनुवाद— हे विप्र ! आपको मैं उपाय बतलाता हूँ उसे आप सुने, आपको यह विपत्ति जहाँ से प्राप्त हुई है आप उसी के पास जाइये । साधु पुरुषों के प्रति किया गया तेज का प्रयोग, प्रयोग कर्ता का ही अमङ्गल करता है ॥६९॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनस्तवैवाभिचारो हिंसा यत्तोऽभूत्तमेव यातु । अशिवमनर्थम् ।।६९।।

भाव प्रकाशिका

आपकी आत्मा को यह कष्ट जहाँ से प्राप्त हुआ हैं आप उसी के पास जाइये । अशिवम् अर्थात् अनर्थ।।६९।।

तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे । ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ।।७०।।

अन्वयः— तपः विद्या च उभे । विप्राणां निःश्रेयसकरे दुर्विनीतस्य ते अन्यथा कल्प्येते ।।७०।।

अनुवाद— तपस्या और विद्या ये दोनों ब्राह्मणों के कल्याणकारी हैं किन्तु यदि व ब्रह्माण उद्दण्ड हो जाय तो वे विपरीत फल प्रदान करते हैं ।।७०।।

भावार्थ दीपिका

तपोविद्यासंपन्नस्य मम कथमनर्थः समजनीति मा स्म विस्मयं कार्षीरित्याह-तप इति ।।७०।।

भाव प्रकाशिका

तपस्या और विद्या से संपन्न मुझको कैसे अनर्थ हुआ, इस तरह से आश्चर्य न करे इस बात को भगवान् ने **तप० इत्यादि** श्लोक से कहा है ।।७०।।

ब्रह्मंस्तद्गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् । क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति ।।७१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे अम्बरीष चरिते चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

अन्वयः— तत् हे ब्रह्मन् ते भद्रम् नाभागतनयं नृपं गच्छ महाभागं क्षमापय ततः शन्तिर्भविष्यति ।।७१।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन ! आपका कल्याण हो आप नाभाग के पुत्र राजा अम्बरीष के पास जायँ । उन महाभाग से क्षमा माँगें, उसके बाद ही आपको शान्ति मिलेगी ।।७१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के अम्बरीष चरित के प्रसङ्ग के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के चौथे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।४।।

पाँचवा अध्याय

महर्षि दुर्वासा के कष्ट की निवृत्ति

श्रीशुक उवाच

एवं भगवतादिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापितः । अम्बरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत् ॥१॥

अन्वयः— भगवतादिष्टः चक्रतापितः दुर्वासा दुःखितः अम्बरीषम् उपावृत्य तत्पादौ अग्रहीत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से श्रीभगवान् का आदेश पाकर चक्र से संतप्त दुःखी महर्षि दुर्वासा राजा अम्बरीष के पास आकर उनके चरणों को पकड़ लिए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चमे विष्णुचक्रं तु प्रसाद्य प्राणसङ्कटात् । दुर्वासा रक्षितस्तेन तथा तद्वृत्तमीर्यते ॥१॥

भाव प्रकाशिका

पाञ्चवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि भगवान् विष्णु के चक्र को प्रसन्न करके राजा अम्बरीष ने महर्षि दुर्वासा की प्राण सङ्कट से रक्षा की, उन्हीं का वृत्तान्त वर्णन किया गया है ॥१॥

तस्य सोद्यमनं वीक्ष्य पादस्पर्शविलज्जितः । अस्तावीत्तद्धरेरस्त्रं कृपया पीडितो भृशम् ॥२॥

अन्वयः— तस्य सोद्यमनं वीक्ष्य पादस्पर्शविलज्जितः कृपया भृशम् पीडितः तत् हरे अस्त्रं अस्तावीत् ॥२॥

अनुवाद— महर्षि दुर्वासा की यह चेष्टा देखकर तथा उनके चरण पकड़ लेने से अत्यन्त लज्जित होकर राजा अम्बरीष का हृदय अत्यन्त पीड़ित हो गया और वे श्रीहरि के उस अस्त्र की स्तुति करने लगे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

स उ द्यमनमिति छेदः । सुलोपः पादपूरणार्थः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

स उद्यममनम् इस तरह से पदच्छेद है । स के सु का लोप पाद की पूर्ति के लिए है ॥२॥

अम्बरीष उवाच

त्वमग्निर्भगवान्सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः । त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च ॥३॥

अन्वयः— त्वमग्निः भगवान् सूर्यः ज्योतिषां पतिः सोमः त्वम् आपः त्वं क्षितिः व्योम, वायुः मात्रेन्द्रियाणि च ॥३॥

महाराज अम्बरीष ने कहा

अनुवाद— प्रभो सुदर्शन ! आप ही अग्नि, परम समर्थ सूर्य, नक्षत्र मण्डल के स्वामी चन्द्रमा, जल, पृथिवी, वायु, पञ्चतन्मात्राएँ और इन्द्रियाँ हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

ज्योतिषां नक्षत्राणां पतिः सोमस्त्वम् । मात्राणीन्द्रियाणि च । त्वच्छक्त्यैवाग्न्यादयः स्वं स्वं कार्यं कुर्वन्तीत्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

आप ही नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा है, पञ्च तन्मनाएँ इन्द्रियाँ आप ही है । आपकी ही शक्ति से अग्नि आदि अपना-अपना कार्य करते हैं ॥३॥

सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय । सर्वास्त्रघातिन्विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते ॥४॥

अन्वयः— हे सुदर्शन, तुभ्यं नमः अस्तु, हे सहस्रार, हे अच्युतप्रिय, हे सर्वास्त्रघातीन् हे इडस्पते विप्राय स्वस्ति भूयाः॥४॥

अनुवाद— हे सुदर्शन ! आपको नमस्कार है । हे भगवान् अच्युत के प्रिय ! हे सहस्रार, हे सभी अस्त्र शस्त्रों को विनष्ट कर देने वाले, हे पृथिवी के रक्षक आप इस ब्राह्मण के लिए कल्याणकारी हो जायँ ॥४॥

भावार्थ दीपिका

सहस्रमरा यस्य हे सहस्रार । स्वस्ति शरणं भूयाः । इडस्पते पृथ्वीपते ॥४॥

भाव प्रकाशिका

हे हजारों अर वाले ! आप इस ब्राह्मण के रक्षक हो जायँ । हे पृथिवी पते ॥४॥

त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् । त्वं लोकपालः सर्वात्मन् त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥५॥

अन्वयः— त्वं धर्मः, त्वं, ऋतं सत्यं त्वं यज्ञः अखिलयज्ञभुक् त्वंलोकपालः सर्वात्मा, त्वं पौरुषं परं तेजः ॥५॥

अनुवाद— आप ही धर्म हैं, मधुर सत्यवाणी हैं आप यज्ञ स्वरूप तथा सम्पूर्ण यज्ञों के भोक्ता हैं । आप ही लोकों के रक्षक तथा सबों की आत्मा हैं तथ परम पुरुष परमात्मा के तेज हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणरक्षणं तव युक्तमेवेत्याह-त्वं धर्म इति । नच तवेयमतिस्तुतिरित्याह-पौरुषं पुरुषस्येश्वरस्य परं तेजः समर्थ्यं त्वम्। अयं भावः- 'स ऐक्षत' इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धं भगवतः शोभनं दर्शनं सुदर्शनं तत एव सर्वं जातम् । अतस्त्वमेव सर्वात्मेति॥५॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण की रक्षा करना आपके लिए उचित ही है । इस बात को **त्वं धर्म० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । यह आपकी स्तुति नहीं है । अपितु आप परमात्मा के आप श्रेष्ठ सामर्थ्य हैं । कहने का अभिप्राय है कि **स ऐक्षत इत्यादि** श्रुति में प्रसिद्ध श्रीभगवान् का सुन्दर दर्शन ही सुदर्शन है । अतएव आप ही सबों की आत्मा है॥५॥

नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे ह्यधर्मशीलासुरधूमकेतवे ।
त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे मनोजवायाद्भुतकर्मणे गृणे ॥६॥

अन्वयः— सुनाभ ! अखिलधर्म सेतवे, अधर्मशीलासुर धूमकेतवे त्रैलोक्य गोपाय, विशुद्धवर्चसे मनोजवाय,अद्भुत कर्मणे नमः गृणे ॥६॥

अनुवाद— हे सुनाभ (सुदर्शन) सम्पूर्ण धर्मों की मर्यादा रूप धर्म विरोधी असुरों के लिए धूमकेतु स्वरूप, त्रैलोक्य की रक्षा करने वाले, विशुद्धतेजोमय, मन के समान वेग सम्पन्न, तथा अद्भुत कर्मों को करने वाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥६॥

भावार्थ दीपिका

हे सुनाभ, अद्भुतकर्माणं त्वां कः स्तोतुं समर्थः । अतस्तुभ्यं केवलं नमो गृण इत्यन्वयः । अद्भुतकर्मत्वमेवाह- अखिलानां धर्माणां सेतवे मर्यादारूपाय । अत एवाधर्मशीलानामसुराणां धूमकेतवे दाहकाय । त्रैलोक्यं गोपायतीति तथा । विशुद्धमत्युज्ज्वलं वर्चस्तेजो यस्य तस्मै ॥६॥

भाव प्रकाशिका

हे सुनाभ ! अद्भुत कर्म करने वाले आपकी स्तुति करने में कोई भी समर्थ नहीं है । अतएव आपको केवल मैं नमस्कार करता हूँ । सुदर्शन चक्र के अद्भुत कर्मत्व को बतलाते हुए कहते हैं सम्पूर्ण धर्मों को मर्यादा रूप,

अतएव धर्म विरोधी असुरों को भस्म कर देने वाले, त्रैलोक्य की रक्षा करने वाले, तथा अत्यन्त देदीप्यमान तेजः सम्पन्न आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥६॥

त्वतेजसा धर्ममयेन संहृतं तमः प्रकाशश्च धृतो महात्मनाम् ।
दुरत्ययस्ते महिमा गिरां पते त्वद्रूपमेतत्सदसत्परावरम् ॥७॥

अन्वयः— हे गिरां पते ! त्वम् धर्ममयेन तेजसा तमः संहृतं महात्मनाम् प्रकाशः च धृतः, ते महिमा दुरत्ययः, एतत् परावरम् सदसत् त्वद्रूपम् ॥७॥

अनुवाद— हे वेद वाणी के स्वामिन् आपके धर्ममय तेज के द्वारा अन्धकार का नाश होता है तथा सूर्य आदि महापुरुषों के प्रकाश की रक्षा होती है, आपकी महिमा का पार पाना कठिन है, छोटे-बड़े ऊँचे नीचे के भेद भाव से युक्त यह सम्पूर्ण कार्य कारणात्मक जगत् आपका स्वरूप है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तदेव प्रपञ्चयति- त्वत्तेजसेति द्वाभ्याम् । सूर्यादीनां प्रकाशश्च । त्वयैव रूपयते प्रकाश्यत इति त्वद्रूपम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

अद्भुत कर्मत्व का ही विस्तार **त्वत्तेजसा० इत्यादि** दो श्लोकों से करते हैं । सूर्य आदि का प्रकाश आपके ही द्वारा प्रकाशित होता है । रूप्यते प्रकाश्यते यह रूप शब्द की व्युत्पत्ति है ॥७॥

यदा विसृष्टस्त्वमनञ्जनेन वै बलं प्रविष्टोऽजित दैत्यदानवम् ।
बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि वृक्णन्नजस्रं प्रधने विराजसे ॥८॥

अन्वयः— हे अजित् ! यदावै अनञ्जनेन विसृष्टः त्वं दैत्यदानवानाम् बलं प्रविष्टः बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधाराणि अजस्रंविक्णन् प्रधने विराजसे ॥८॥

अनुवाद— हे कभी भी नहीं पराजित होने वाले चक्रराज ! जब निरञ्जन श्रीभगवान् आपको चलाते हैं उस समय आप शत्रुओं की सेना में प्रवेश करके उनके भुजा, उदर, जङ्घा, चरण तथा गरदन को निरन्तर काटते हुए आप युद्ध भूमि में सुशोभित होते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

हे अजित, अनञ्जनेन श्रीहरिणा यदा विसृष्टस्त्वं तदा दैत्यदानवानां बलं प्रविष्टः संस्तेषां बाह्वङ्घ्रिशिरोधराणि । पाठान्तरे ऊर्जिता दैत्यदानवा यस्मिंस्तद्बलम् । पूर्वपदेन सन्धिरार्षः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

हे अजित ! श्रीभगवान् के द्वारा चलाये जाने पर, दैत्यों एवं दानवों की सेना में प्रवेश करके उन सबों की भुजा आदि को काटते हुए सुशोभित होते हैं । पाठान्तर में अर्थ होगा कि महाबलवान् जिस सेना में है उस सेना में प्रविष्टोर्जित में सन्धि आर्ष है ॥८॥

स त्वं जगन्त्राण खलप्रहाणये निरूपितः सर्वसहो गदाभृता ।
विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥९॥

अन्वयः— हे जगत्प्राण सत्वं गदाभृता खलप्रहाणये सर्वसहः निरूपितः अस्मत्कुलदैव हेतवे विप्रस्य भद्रं विधेहितत् हि नः अनुग्रहः ॥९॥

अनुवाद— हे सम्पूर्ण संसार की रक्षा करने वाले गदाधारी, भगवान् ने आपको दुष्टों का नाश करने के

ही लिए नियुक्त किया है, आप सबों के प्रहार को सह लेते हैं । आप हमारे कुल के देवता के भाग्योदय के लिए दुर्वासा महर्षि का कल्याण करें, यही हम पर आपकी कृपा है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

किंच त्वया भगवन्नियुक्तेन खलानामेव दण्ड: कार्य: साधवस्तु रक्षणीया:, अतो विप्रस्य रक्षणेनास्माननुगृहाणेत्याह-स त्वमिति । हे जगत्त्राण, स एवंभूतस्त्वं खलानामेव प्रहारार्थं निरूपितो नियुक्तः । अतोऽस्मत्कुलस्य दैवहेतवे भाग्यलाभाय विप्रस्य भद्रं विधेहि तदेव नोऽनुग्रहः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च श्रीभगवान् के द्वारा नियुक्त आपको दुष्टों को ही दण्डित करना चाहिए साुधओं की तो रक्षा करनी चाहिए अतएव महर्षि दुर्वासा की रक्षा करके आप मुझे अनुगृहीत करें इस बात को **सत्वम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । हे जगत् की रक्षक ! इस प्रकार आपको दुष्टों को ही मारने के लिए श्रीभगवान् ने नियुक्त किया है। अतएव हमारे वंश के देव के भाग्यलाभ के लिए दुर्वासा का कल्याण करे, यही हम पर अनुग्रह है ॥९॥

यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः । कुलं नो विप्रदैवं चेद्द्विजो भवतु विज्वरः ॥१०॥

अन्वयः— यद्यस्ति दत्तम् इष्टं वा स्वधर्मोवा स्वनुष्ठितः कुलं नो विप्रदैवं चेत् द्विजो भवतु विज्वरः ॥१०॥

अनुवाद— यदि मैंने कुछ भी दान किया है, यज्ञ किया है, या अपने धर्म का अच्छी तरह से पालन किया है, यदि हमारे वंश के लोग ब्राह्मण को देवता मानते हों तो दुर्वासा जी की जलन मिट जाय ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

सर्वसुकृतार्पणेन विप्ररक्षां प्रार्थयते-यद्यस्तीति द्वाभ्याम् । विप्रो दैवं यस्मिंस्तत् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

अपने सम्पूर्ण पुण्य प्रदान के द्वारा ब्राह्मण की रक्षा की प्रार्थना **यद्यस्ति० इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा करते हैं । जिसमें ब्राह्मण को ही देवता माना जाता है ॥१०॥

यदिनो भगवान्प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः । सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥११॥

अन्वयः— सर्वभूतात्मभावेन एकः सर्वगुणाश्रयः भगवान् यदि नो प्रीतः द्विजोभवतु विज्वरः ॥११॥

अनुवाद— सभी भूतों की आत्मा रूप से एक मात्र समस्त कल्याण गुणों के आश्रय श्रीभगवान् यदि हम पर प्रसन्न हों तो दुर्वासाजी की जलन मिट जाय ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

श्रीशुक उवाच

इति संस्तुवतो राज्ञो विष्णुचक्रं सुदर्शनम् । अशाम्यत्सर्वतो विप्रं प्रदहद्राजयाच्ञया ॥१२॥

अन्वयः— इति संस्तुवतः राज्ञः विप्रंसर्वतः प्रदहत् विष्णुचक्रं सुदर्शनम् राजयाच्ञया अशाम्यत् ॥१२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से राजा के द्वारा जिनकी स्तुति की गयी थी वे दुर्वासाजी को सब ओर से जलाने वाले भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र शान्त हो गये ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

राज्ञस्तस्यैव याञ्चया ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

राजा की प्रार्थना से ॥१२॥

स मुक्तोऽस्त्राग्नितापेन दुर्वासाः स्वस्तिमांस्ततः । प्रशशंस तमुर्वीशं युञ्जानः परमाशिषः ॥१३॥

अन्वयः— अस्त्राग्नितापेन मुक्तः स दुर्वासाः स्वस्तिमान् ततः तम् उर्वीशं परमाशिषः युञ्जानः प्रशशंस ॥१३॥

अनुवाद— जब महर्षि दुर्वासा अस्त्र की आग से मुक्त हो गये और उनका चित्त स्वस्थ हो गया तो वे राजा अम्बरीष को अनेक उत्तम आशीर्वाद देते हुए उनकी प्रशंसा किए ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

दुर्वासा उवाच

अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे । कृतागसोऽपि यद्राजन्मङ्गलानि समीहसे ॥१४॥

अन्वयः— अहो अनन्तदासानां महत्त्वं अद्य मे दृष्टम् यत् राजन् कृतागमः अपि मङ्गलानि समीहसे ॥१४॥

दुर्वासा महर्षि ने कहा

अनुवाद— धन्य हैं ! श्रीभगवान् के प्रेमी भक्तों की महिमा मैंने आज देखी । क्योंकि राजन् आपका अपराधी होने पर भी आप मेरी मङ्गल कामना करते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम् । यैः संगृहीतो भगवान्सात्वतामृषभो हरिः ॥१५॥

अन्वयः— यैः सात्त्वताम् ऋषभः भगवान् हरिः संगृहितः तेषां साधूनां दुष्करः कः महात्मनां वा दुस्त्यजः कः॥१५॥

अनुवाद— जिन लोगों ने भक्तवत्सल भगवान् श्रीहरि के चरणों को पकड़ रखा है उन साधु पुरुषों के लिए कोई भी कार्य कठिन नहीं और ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जिनका वे त्याग नहीं कर सकें ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान्भवति निर्मलः । तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते ॥१६॥

अन्वयः— यन्नाम श्रुतिमात्रेण पुमान् निर्मलो भवति तस्य तीर्थपदः दासानाम् किं वा अवशिष्यते ॥१६॥

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् के नामों को सुनने मात्र से पुरुष निर्मल हो जाता है उन श्रीभगवान् के भक्तों के लिए कुछ भी करने के लिए अवशिष्ट नहीं रह जाता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

राजन्ननुगृहीतोऽहं त्वयातिकरुणात्मना । मदघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणा यन्मेऽभिरक्षिताः ॥१७॥

अन्वयः— राजन् ! करुणात्मना त्वया अहम् अनुगृहीतः, यत् मदघं पृष्ठतः कृत्वा मे प्राणा अभिरक्षिताः ॥१७॥

अनुवाद— राजन् ! आपका हृदय करुणा से भरा है, आपने मेरे ऊपर महान् अनुग्रह किया है, क्योंकि आपने मेरे द्वारा किए गये अपराध को भूलाकर मेरे प्राणों की रक्षा की है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

राजा तमकृताहारः प्रत्यागमनकाङ्क्षया । चरणावुपसंगृह्य प्रसाद्य समभोजयत् ॥१८॥

अन्वयः— तम् प्रत्यागमनाकाङ्क्षया अकृताहारः राजा चरणौ । उपसंगृहय प्रसाद्य समाभोजयत् ॥१८॥

अनुवाद— महर्षि दुर्वासा के लौटने की आकाङ्क्षा से राजा भोजन नहीं किए थे, उन्होंने महर्षि दुर्वासा के चरण को पकड़ कर उनको प्रसन्न किया और भोजन कराया ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

राजेत्यादिश्लोकद्वयं शुकोक्तिः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

राजा इत्यादि दो श्लोकों को शुकदेवजी ने कहा है ॥१८॥

सोऽशित्वादृतमानीतमातिथ्यं सार्वकामिकम् । तृप्तात्मा नृपतिं प्राह भुज्यतामिति सादरम् ॥१९॥

अन्वयः— आदृतम् आनीतम् सार्पकामिकम् आतिथ्यम् अशित्वा तृप्तात्मा भुज्यताम् इति सादम् नृपतिं प्राह ॥१९॥

अनुवाद— आदर पूर्वक लाई गयी सभी प्रकार की योग्य वस्तुओं का भोजन करके तृप्त हुए महर्षि दुर्वासा ने आदर पूर्वक राजा से कहा अब आप भोजन कीजिए ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

प्रीतोऽस्म्य नुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै । दर्शनस्पर्शनालापैरातिथ्येनात्ममेधसा ॥२०॥

अन्वयः— तव भागवतस्य वै दर्शनस्पर्शनालापैः आत्ममेधसा आतिथ्येन प्रीतः अस्मि अनुगृहीतः अस्मि ॥२०॥

अनुवाद— राजन् आप भगवद् भक्त के दर्शन स्पर्श और बातचित्त से तथा श्रीभगवान् में मन को लगाने वाले आतिथ्य के द्वारा मैं प्रसन्न एवं अनुगृहीत हुआ हूँ ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

प्रीतोऽस्मीति श्लोकद्वयं पुनश्च विप्रोक्तिः । आत्मनि मेधा येन तेनातिथ्येन ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

प्रीतोऽस्मि० इत्यादि दो श्लोक महर्षि दुर्वासाजी की उक्ति हैं जिससे श्रीभगवान् में मन लगे ऐसे आतिथ्य के द्वारा ॥२०॥

कर्मावदातमेतत्ते गायन्ति स्वःस्त्रियो मुहुः । कीर्तिं परमपुण्यां च कीर्तयिष्यति भूरियम् ॥२१॥

अन्वयः— एतत् ते अवदातम् कर्म स्वः स्त्रियः मुहुः गायन्ति, परमपुण्यां कीर्तिं च इयम् भूः कीर्तियिष्यति ॥२१॥

अनुवाद— आपके इस उज्ज्वल कर्म का गायन देवताओं की स्त्रियाँ बार-बार करेंगी और आपकी परम पवित्र यश का कीर्तन यह पृथिवी करेगी ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

भूरियं तत्रस्थो जनः कीर्तयिष्यति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

भू अर्थात् यहाँ के रहने वाले लोग आपकी कीर्ति का गान करेंगे ॥२१॥

श्रीशुक उवाच

एवं संकीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः । ययौ विहायसामन्त्र्य ब्रह्मलोकमहैतुकम् ॥२२॥

अन्वयः— परितोषितः दुर्वासा एवं राजानं संकीर्त्य आमन्त्र्य विहायसा अहैतुकम् ब्रह्मलोकम् ययौ ॥२२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— सन्तुष्ट हुए महर्षि दुर्वासा इस तरह से राजा अम्बरीष की प्रशंसा करके और उनसे अनुमति प्राप्त करके आकाश मार्ग से उस ब्रह्मलोक में चले गये जहाँ निष्काम कर्म से ही जाया जा सकता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

संवत्सरोऽत्यगात्तावद्यावता नागतो गतः । मुनिस्तद्दर्शनाकाङ्क्षो राजाऽब्भक्षो बभूव ह ॥२३॥

अन्वयः— यावता गतः मुनिः नागतः संवत्सरः अत्यगात् तद् दर्शनाकांक्षः राजा अब्भक्षः बभूव ह ।।२३।।

अनुवाद— गये हुए महर्षि जब तक लौटकर नहीं आये, इतने में एक वर्ष बीत गया । महर्षि दुर्वासा के दर्शन की आकांक्षा से उतने दिन राजा केवल जल पीकर रहे ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

तस्य धैर्यातिशयमाह-गतो मुनिर्यावता नागतस्तावत्संवत्सरोऽतिक्रान्त इति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में राजा के अतिशय धैर्य को कहा गया है । गये हुए मुनि जब तक नहीं लौटे तब तक एक वर्ष बीत गया ।।२३।।

गते च दुर्वाससि सोऽम्बरीषो द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत् ।
ऋषेर्विमोक्षं व्यसनं च बुद्ध्वा मेने स्ववीर्यं च परानुभावम् ॥२४॥

अन्वयः— दुर्वाससि गते च सः अम्बरीषः द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत् ऋषेर्विमोक्षं व्यसनं च बुद्ध्वा स्ववीर्यं परानुभावम् मेने ।।२४।।

अनुवाद— महर्षि दुर्वासाजी के चले जाने पर उनके उपयोग से पवित्र बने हुए भोजन को राजा ने ग्रहण किया । ऋषि का सङ्कट में पड़ना और उससे मुक्त होना तथा अपने धैर्य को सोचकर उन्होंने इसे श्रीभगवान् का प्रभाव माना ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

द्विजस्योपयोगेन भोजनेनातिपवित्रमाहरद्बुभुजे । स्ववीर्यं च धैर्यादिलक्षणं परानुभावं भगवतः प्रभावं मेने ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि दुर्वासा के भोजन से अत्यन्त पवित्र बने आहार का उन्होंने ग्रहण किया । अपने धैर्य आदि पराक्रम को उन्होंने श्रीभगवान् का प्रभाव माना ।।२४।।

एवंविधानेकगुणः स राजा परात्मनि ब्रह्मणि वासुदेवे ।
क्रियाकलापैः समुवाह भक्तिं ययाऽऽविरिञ्चान्निरयांश्चकार ॥२५॥

अन्वयः— एवं विधानेक गुणः स राजा क्रिया कलापैः परात्मनि ब्रह्मणि वासुदेव भक्तिमुवाह यया आविरिञ्चान् निरयांश्चकार ।।२५।।

अनुवाद— इस प्रकार के अनेक गुणों से सम्पन्न राजा अम्बरीष अपने क्रिया कलापों द्वारा परब्रह्म परमात्मा श्रीभगवान् में भक्ति भाव की वृद्धि करते रहे । उस भक्ति के प्रभाव से वे ब्रह्मलोक पर्यन्त के लोकों को नरक के ही समान मानते थे ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

एवंविधा अनेके गुणा यस्य सः । आविरिञ्चान्विरिञ्चपदसहितान्भोगान्निरयप्रायानपश्यदित्यर्थः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के अनेक गुणों से सम्पन्न राजा अम्बरीष, ब्रह्मपद की प्राप्ति पर्यन्त के भोगों को नरक के समान अतिहेय मानते थे ।।२५।।

अथाम्बरीषस्तनयेषु राज्यं समानशीलेषु विसृज्य धीरः ।
वनं विवेशात्मनि वासुदेवे मनो दधद्ध्वस्तगुणप्रवाहः ॥२६॥

अन्वयः— अथ धीरः अम्बरीषः आत्मनि वासुदेवे मनोदधत् ध्वस्तगुणप्रवाहः समानशीलेषु तनयेषु राज्यं विसृज्य वनं विवेश ॥२६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् धैर्य सम्पन्न राजा अम्बरीष आत्मा स्वरूप भगवान् वासुदेव में ही मन को लगाये रखने के कारण गुणों के प्रवाह रूप संसार का ध्वंस हो गया था । वे अपने ही समान शील गुण सम्पन्न पुत्रों पर राज्य का भार छोड़कर वन में चले गये ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

इत्येतत्पुण्यमाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः । संकीर्तयन्ननुध्यायन्भक्तो भगवतो भवेत् ॥२७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे अम्बरीषचरितं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अन्वयः— इत्येतत् भूपते अम्बरीषस्य पुण्यमख्यानं संकीर्तयन् अनुध्यायन् भगवतः भक्तो भवेत् ॥२७॥

अनुवाद— उस राजा अम्बरीष के पवित्र उपाख्यान का जो कीर्तन करता है अथवा ध्यान करता हैं, वह श्रीभगवान् का भक्त हो जाता है ॥२७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के अम्बरीषचरित नामक पाञ्चवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवम स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवम स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।५।।

छठा अध्याय

इक्ष्वाकु के वंश का वर्णन मान्धाता और सौभरि ऋषि की कथा

श्रीशुक उवाच

विरूपः केतुमाञ्छम्भुरम्बरीषसुतास्त्रयः । विरूपात्पृषदश्वोऽभूत्तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥१॥

अन्वयः— विरूपः केतुमान् शम्भुः अम्बरीष सुता त्रयः । विरूपात् पृषदश्वः अभूत् तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— विरूप, केतुमान और शम्भु ये तीन पुत्र राजा अम्बरीष के हुए । विरूप के पुत्र पृषदश्व हुए और पृषदश्व के पुत्र रथीतर हुए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षष्ठारम्भेऽम्बरीषस्य वंशमुक्त्वा ततः परम् । षष्ठाद्यष्टभिरध्यायैरिक्ष्वाकोर्वंश उच्यते । तत्र षष्ठे शशादादिर्मान्धात्रन्तो निरूप्यते । प्रसङ्गात्सौभरेराख्या मान्धातृतनयापतेः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

छठे अध्याय के आरम्भ में अम्बरीष के वंश को बतलाकर उसके पश्चात् छठे से प्रारम्भ करके आठ अध्यायों में इक्ष्वाकु के वंश का वर्णन किया गया है । छठे अध्याय में शशाद से लेकर मान्धाता पर्यन्त का निरूपण किया गया है । प्रसङ्गवशात् मान्धाता की पुत्रियों के पति सौभरि की भी कथा का वर्णन है ॥१॥

रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां तन्तवेऽर्थितः । अङ्गिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥२॥

अन्वयः— अप्रजस्य रथीतरस्य भार्याया तन्तवे अर्थितः अङ्गिरा ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् जनयामास ॥२॥

अनुवाद— निःसन्तान रथीतर की पत्नी के गर्भ से सन्तान के लिये प्रार्थना किए जाने पर अङ्गिरा ने ब्रह्मतेज सम्पन्न पुत्रों को उत्पन्न किया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तन्तवे सन्तानार्थम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

तन्तवे अर्थात् सन्तान के लिए ॥२॥

एते क्षेत्रे प्रसूता वै पुनस्त्वाङ्गिरसाः स्मृताः । रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥३॥

अन्वयः— एते क्षेत्रे प्रसूता रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेताः द्विजातयः पुनः तु आङ्गीरसाः स्मृताः ॥३॥

अनुवाद— रथीतर की पत्नी के गर्भ से उत्पन्न ये सब क्षत्रियानुकूल गुण से युक्त ब्राह्मण होने के कारण रथीतरों में श्रेष्ठ थे । बाद में वे आङ्गिरस कहलाए ॥३॥

भावार्थ दीपिका

ये अङ्गिरसा जनिता एते रथीतरस्य क्षेत्रे प्रसूतत्वेन रथीतरगोत्राः सन्तोऽङ्गिरसो वीर्येण प्रसूतत्वादाङ्गिरसाश्च । पुनरपि रथीतराणामन्येषां जातानां प्रवरा मुख्याः स्मृताः । यतः क्षत्रोपेता ब्राह्मणा इत्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

जो अङ्गिरा से उत्पन्न हुए तथा रथीतर के क्षेत्र में उत्पन्न हुए अतएव उन सबों का रथीतर गोत्र हुआ । अङ्गिरा के वीर्य से उत्पन्न होने के कारण आङ्गिरस कहलाए । रथीतर के वंश में उत्पन्न दूसरों की अपेक्षा मुख्य हुए । क्योंकि वे क्षत्रोपेत ब्राह्मण थे ॥३॥

क्षुवतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः । तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदण्डकाः ॥४॥

अन्वयः— क्षुवतः तु मनोः घ्राणतः इक्ष्वाकुः सुतः जज्ञे, तस्य पुत्रशतज्येष्ठाः विकुक्षिदण्डकादयः ॥४॥

अनुवाद— एक बार मनु के छीकने पर उनकी नासिका से इक्ष्वाकु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । इक्ष्वाकु के सौ पुत्र थे उनमें विकुक्षि दण्डका आदि ज्येष्ठ थे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं मनोर्दशसु पुत्रेषु पृषध्रश्च कविश्च विरक्तत्वान्न वंशप्रवर्तकौ । करूषादीनां च सप्तानां वंशास्तारतम्यक्रमेणोक्ताः। इदानीमतिविततमिक्ष्वाकोर्वंशमाह क्षुवतस्त्वित्यादिना यावत्सोमवंशप्रस्तावः । क्षुतं कुर्वतो मनोर्घ्राणतो जज्ञे । श्रद्धायां जनयामास दशपुत्रानिति पूर्वोक्तं बाहुल्याभिप्रायेणेति द्रष्टव्यम् । पुत्राणां शते ज्येष्ठाः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह मनु के दश पुत्रों में पृषध और कवि विरक्त हुए अतएव इन दोनों की कोई सन्तान नहीं हुई ।

उनके करुष इत्यादि सात पुत्रों का वंश का वर्णन तारतम्य क्रम से किया जा चुका है । इस समय शुकदेवजी ईक्ष्वाकु के अत्यन्त विस्तृत वंश का वर्णन कर रहे हैं । **क्षुवतस्तु०** श्लोक से लेकर सोम वंश के प्रस्ताव पर्यन्त इक्ष्वाकु के ही वंश का वर्णन है । मनु के छींकते समय उनकी नाम से इक्ष्वाकु का जन्म हुआ । मनु ने अपनी श्रद्धा नामक पत्नी के गर्भ से दश पुत्रों को उत्पन्न किया । इस तरह बहुतता के अभिप्राय से इस तरह से इक्ष्वाकु के वंश के वर्णन किया गया है । इक्ष्वाकु के सौ पुत्रों में विकुक्षि तथा दण्डक आदि बड़े थे ।।४।।

तेषां पुरस्तादभवन्नार्यावर्ते नृपा नृप । पञ्चविंशतिः पश्चाच्च त्रयो मध्ये परेऽन्यतः ।।५।।

अन्वयः— हे नृप ! तेषां आर्यावत पुरस्तात् पञ्चविंशति च पश्चात् च अन्ये त्रयः मध्ये नृपाअभवन् ।।५।।

अनुवाद— परीक्षित उन सबों से छोटे पच्चीस आर्यावर्त के पूर्वभाग के और पच्चीस पश्चिम भाग के तथा तीन बड़े आर्यावर्त के मध्य भाग में राजा हुए । और बचे हुए उत्तर दक्षिण भाग के राजा हुए ।।५।।

भावार्थ दीपिका

'आर्यावर्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयोः' तस्मिन्पुरस्तात्समुद्रपर्यन्तं मण्डलविभागेन पञ्चविंशतिर्नृपा अभवन् । हे नृप, तथैव पश्चाच्च पञ्चविंशतिः मध्ये तु ज्येष्ठास्त्रयः । अपरे त्वन्यतो दक्षिणोत्तरादिषु ।।५।।

भाव प्रकाशिका

विन्ध्य पर्वत और हिमालय के बीच की पुण्य भूमि को आर्यावर्त कहते हैं । उसके पूर्व भाग में समुद्र पर्यन्त मण्डलों के विभाग पूर्वक पच्चीस राजा हुए । उसी तरह पश्चिम भाग में पच्चीस राजा हुए बीच के भाग में तीन ज्येष्ठ पुत्र राजा हुए और दूसरे आर्यावर्त के उत्तर एवं दक्षिण भागों में राजा हुए ।।५।।

स एकदाष्टकाश्राद्ध इक्ष्वाकुः सुतमादिशत् । मांसमानीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छ मा चिरम् ।।६।।

अन्वयः— स ईक्ष्वाकुः एकदा अष्टकाश्राद्धे सुतम् आदिशत् विकुक्षे मेध्यं मांसम् आनीयताम् चिरम् मा गच्छ ।।६।।

अनुवाद— एक बार इक्षकु अष्टका श्राद्ध के अवसर पर अपने पुत्र को आदेश दिये हे विकुक्षि पवित्र मांस लाओ देर न करो ।।६।।

भावार्थ दीपिका

विकुक्षिरेव शशाद इति विश्रुत इति वक्ष्यति तत्र हेतुमाह-स एकदेति चतुर्भिः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

विकुक्षिका ही नाम शशाद है यह कहेंगे, उसकाकारण बतलाते हैं स एकदा: इत्यादि चार श्लोकों से ।।६।।

तथेति स वनं गत्वा मृगान्हत्वा क्रियार्हणान् । श्रान्तो बुभुक्षितो वीरः शशं चाददपस्मृतिः ।।७।।

अन्वयः— तथा इति स वनं गत्वा क्रियार्हणम् मृगान् हत्वा श्रान्तः बुभुक्षितः वीरः अपस्मृतिः शशं च अदत् ।।७।।

अनुवाद— ठीक है ऐसा कहकर वह वन में जाकर वहाँ उसने बहुत से पशुओं को मारकर वह थक गया था और उसे भूख लगी थी । वह भूल गया कि श्राद्ध के लिए मारे गये पशुओं को खाना नहीं चाहिए । उसमें से उसने एक खरगोश्या को खा लिया ।।७।।

भावार्थ दीपिका

क्रियार्हणान् श्राद्धार्हान् । आददभक्षयत् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

क्रियार्हणान् अर्थात् श्राद्ध के योग्य आददत् अर्थात् खा गया ।।७।।

शेषं निवेदयामास पित्रे तेन च तद्गुरुः । चोदितः प्रोक्षणायाह दुष्टमेतदकर्मकम् ।।८।।

अन्वयः— शेषं पित्रे निवेदयामास तेन च तद्गुरुः प्रोक्षणाय चोदितः आह एतत् अकर्मकम् दुष्टम् ।।८।।

अनुवाद— बचे हुए मांस को विकुक्षि अपने पिता को दे दिया इक्ष्वाकु ने अपने गुरु को उस मांस का प्रोक्षण करने के लिए कहा तो गुरु ने कहा कि यह मांस दूषित और श्राद्ध के योग्य नहीं है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

तद्गुरुर्वसिष्ठः । प्रोक्षणाय श्राद्धोचितसंस्काराय ।।८।।

भाव प्रकाशिका

तद्गुरुः अर्थात् वसिष्ठः प्रोक्षणाय अर्थात् श्राद्धोचित संस्कार करने के लिए ।।८।।

ज्ञात्वा पुत्रस्य तत्कर्म गुरुणाभिहितं नृपः । देशान्निःसारयामास सुतं त्यक्तविधिं रुषा ।।९।।

अन्वयः— गुरुणाभिहितं पुत्रसय तत्कर्म ज्ञात्वा नृपः रुष व्यक्त विधिं सुतं देशान्निस्सारयामास ।।९।।

अनुवाद— गुरु के कहने पर राजा इक्ष्वाकु अपने पुत्र के उस कर्म को जानकर क्रुद्ध होकर शास्त्रीय विधि का उल्लंघन करने वाले उसे अपने देश से निकाल दिए ।।९।।

भावार्थ दीपिका

त्यक्तो विधिः सदाचारो येन तम् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

सदाचार का त्याग करने वाले पुत्र को ।।९।।

स तु विप्रेण संवादं जापकेन समाचरन् । त्यक्त्वा कलेवरं योगी स तेनावाप यत्परम् ।।१०।।

अन्वयः— स तु विप्रेण जापकेन संवादं समाचरन् तेन स योगी कलेवरं त्यक्त्वा यत्परम् अवाप ।।१०।।

अनुवाद— राजा इक्ष्वाकु महर्षि वसिष्ठ के साथ ज्ञान की चर्चा करके उसके पश्चात् शरीर का परित्याग करके परमपद को प्राप्त कर लिए ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

स त्विक्ष्वाकुः । जापकेन वसिष्ठेन । राज्यभोगेन विरक्तो योगी संस्तेन कलेवरं त्यक्त्वा स यत्परं तत्त्वं तदवाप ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

इक्ष्वाकु वसिष्ठ महर्षि के साथ ज्ञान की चर्चा करके संसार से विरक्त योगी हो गये और उसी के कारण शरीर का परित्याग करके परमपद को प्राप्त कर लिए ।।१०।।

पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिः पृथिवीमिमाम् । शासदीजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः ।।११।।

अन्वयः— पितरि उपरते शशाद इति विश्रुतः विकुक्षिः इमाम् पृथिवी शाशत यज्ञैः हरिम् ईजे ।।११।।

अनुवाद— पिता की मृत्यु हो जाने पर शशाद के नाम से विख्यात विकुक्षि आकर इस पृथिवी का प्रशासन किए और यज्ञों के द्वारा श्रीहरि की आराधना किए ।।११।।

भावार्थ दीपिका

शासत्पालयन्हरिमीजे ।।११।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी का पालन करते हुए श्रीहरि की आराधना किए ।।११।।

पुरंजयस्तस्य सुत इन्द्रवाह इतीरितः । ककुत्स्थ इति चाप्युक्तः शृणु नामानि कर्मभिः ॥१२॥

अन्वयः— तस्य सुतः पुरञ्जयः इन्द्रवाह इतीरितिः ककुत्स्थ इति चाप्युक्तः कर्मभि नामानि शृणु ।।१२।।

अनुवाद— विकुक्षि के पुत्र का नाम पुरञ्जय था, वही इन्द्रवाह भी कहा गया है । उसे ही ककुत्स्थ भी कहते हैं । जिन कर्मों के कारण उसके ये नाम हुए उसे सुनो ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

दैत्यपुरस्य जयात्पुरंजयः, इन्द्रो वाहो यस्येतीन्द्रवाहः, ककुदि स्थितत्वात्ककुत्स्थ इति च, शशादसुतस्य त्रीणि नामानि तत्तत्कर्मनिमित्तानि ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

दैत्यों की नगरी पर विजय प्राप्त करने के कारण पुरञ्जय, इन्द्र को वाहन बनाने के कारण इन्द्रवाह और ककुत् पर बैठने के कारण ककुत्स्थ । इस तरह से शशाद के तीन नाम इन तीनों प्रकार के कर्मों को करने के कारण है ।।१२।।

कृतान्त आसीत्समरो देवानां सह दानवैः । पार्ष्णिग्राहो वृतो वीरो देवैर्दैत्यपराजितैः ॥१३॥

अन्वयः— कृतान्ते देवानां दानवैः सह समर आसीत् दैत्य पराजितैः देवैः वीरः पार्ष्णिग्राहः वृतः ।।१३।।

अनुवाद— सत्य युग के अन्त में देवताओं व दैत्यों के साथ युद्ध हुआ उसमें दैत्यों से पराजित देवताओं ने वीर पुरञ्जय अपना सहायक बनाया ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

तान्येव व्याचक्षाण आह-कृतान्त इति सप्तभिः-कृतं विश्वमन्तयतीति तथा पार्ष्णिग्राहः सहायः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

पुरंजय के ही कर्मों की व्याख्या करते हुए **कृतान्त० इत्यादि** सात श्लोकों से कहते हैं ।।१३।।

वचनाद्देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभोः । वाहनत्वे वृतस्तस्य बभूवेन्द्रो महावृषः ॥१४॥

अन्वयः— तस्य वाहनत्वेनवृतः इन्द्रः विश्वात्मनः देवदेवस्य विष्णोः वचनातु इन्द्रोमहावृषोबभूव ।।१४।।

अनुवाद— पुरञ्जन ने कहा कि इन्द्रि यदि मेरा वाहन बन जायाँ तो मैं युद्ध कर सकता हूँ । पहले इन्द्र ने अस्वीकार कर दिया किन्तु विश्वात्मा तथा देवाराध्य भगवान् विष्णु के कहने से इन्द्र महान् वृषभ बन गये ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

इन्द्रो यदि मम वाहनं स्यात्तर्हि दैत्यान्हनिष्यामीति तेन वाहनत्वेन वृतः सन्निन्द्रो लज्जया तदनङ्गीकुर्वन्विष्णोर्वचनात्तस्य वाहनत्वाय महान्वृषो बभूवेत्यर्थः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

पुरञ्जय ने कहा कि यदि इन्द्र मेरे वाहन बन जायँ तो मैं दैत्यों को मार दूँगा । पुरञ्जय के द्वारा वाहन रूप से चुने गये इन्द्र लज्जा के कारण उसे स्वीकार नहीं किए किन्तु भगवान् विष्णु के कहने पर वे पुरंजय के वाहन के लिए महन् वृष (बैल) बन गये ।।१४।।

स सन्नद्धो धनुर्दिव्यमादाय विशिखान् सितान् । स्तूयमानः समारुह्य युयुत्सुः ककुदि स्थितः॥१५॥
तेजसाऽऽप्यायितो विष्णोः पुरुषस्य परात्मनः । प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत्त्रिदशैः पुरम्॥१६॥

अन्वयः— परात्मनः पुरुषस्य विष्णोः तेजसा आप्यायितः स सन्नद्ध दिव्यं धनुः सितान् विशिखान् आदाय स्तूयमानः युयुत्सुः ककुदि स्थितः प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां पुरं न्यरुणत् ।।१५-१६।।

अनुवाद— परम पुरुष भगवान् विष्णु के तेज से आप्यायित पुंरजय कवच धारण करके दिव्य धनुष और तीक्ष्ण बाण धारण करके देवताओं के द्वारा स्तुति किए जाते हुए युद्ध करने की इच्छा से ककुद पर बैठे हुए पुंरजय ने देवताओं की सेना लेकर दैत्यों के नगर को घेर लिया ।।१५-१६।।

भावार्थ दीपिका— नही है ।।१५-१६।।

तैस्तस्य चाभूत्प्रधनं तुमुलं लोमहर्षणम् । यमाय भल्लैरनयद्दैत्यान्येऽभिययुर्मृधे ।।१७।।

अन्वयः— तैः तस्य तुमुलं लोमहर्षणं प्रधनं च अभूत् । मृधे ये अभिययुः, भल्लैः दैत्यान् यमाय अनयत् ।।१७।।

अनुवाद— दैत्यों के साथ पुरञ्जय का घोर रोमाञ्चकारी युद्ध हुआ जो दैत्य उनके सामने युद्ध करने आये उन सबों को उन्होंने भल्ल बाणों से मारकर यमराज के यहाँ भेज दिया ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

येऽभिमुखं ययुस्तान् यमं दर्शयितुं सदेहानेव भल्लैरनयदित्यर्थः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

जो दैत्य उनके सामने युद्ध करने कें लिए उन सबों को वे भल्ल बाणों के द्वारा यमराज का दर्शन करने के लिए भेज दिए ।।१७।।

तस्येषुपाताभिमुखं युगान्ताग्निमिवोल्बणम् । विसृज्य दुद्रुवुर्दैत्या हन्यमानाः स्वमालयम् ।।१८।।

अन्वयः— युगाग्निमिवोल्बणम् तस्येषुपाताभिमुखम् हन्यमानाः दैत्याः विसृज्य स्वमालयम् विविशुः ।।१८।।

अनुवाद— प्रलयाग्नि के समान भयङ्कर पुरञ्जय के बाणपात के सामने आये दैत्य मारे जाते हुए युद्ध करना छोड़कर अपने घरों में घूस गये ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

तच्च दृष्ट्वाऽन्ये द्रुद्रुवुः । स्वमालयं पातालम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

उसे देखकर दूसरे दैत्य अपने निवास स्थान पाताल में चले गये ।।१८।।

जित्वा पुरं धनं सर्वं सश्रीकं वज्रपाणये । प्रत्ययच्छत्स राजर्षिरिति नामभिराहृतः ।।१९।।

अन्वयः— पुरं सश्रीकं धनं सर्वं जित्वा सः वज्रपाणये प्रायच्छत् इति राजर्षिः नामभिः आहृतः ।।१९।।

अनुवाद— दैत्यों के नगर, ऐश्वर्य, सहित सम्पूर्ण धन को जीतकर उन्होंने इन्द्र को दे दिया, इसीलिए वे राजर्षि पुरंजय, इन्द्रवाह और ककुत्स्थ के नाम से अभिहित किए जाते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

इति एतैः कर्मभिः । पुरञ्जयादिनामभिः । आहृतो व्याहृतः । पाठान्तरे आहूत इत्यर्थः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इन्हीं कर्मों के कारण पुरञ्जय आदि नामों से वे राजर्षि कहे जाते हैं । पाठान्तर में अर्थ होगा पुकारे जाते हैं ।।१९।।

पुरंजयस्य पुत्रोऽभूदनेनास्तत्सुतः पृथुः । विश्वरन्धिस्ततश्चन्द्रो युवनाश्वश्च तत्सुतः ।।२०।।

अन्वयः— पुरञ्जयस्य पुत्रः अनेनाऽभूत् तत्सुतः पृथुः ततः विश्वरन्धिः ततः चन्द्र तत्सुतः युवनाश्वः ।।२०।।

अनुवाद— पुरञ्जय के पुत्र अनेना हुए उनके पृथु हुए पृथु के पुत्र विश्वरन्धि हुए विश्वरन्धि के पुत्र चन्द्र और चन्द्र के पुत्र युवनाश्व हुए ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

शाबस्ततत्सुतो येन शाबस्ती निर्ममे पुरी । बृहदश्वस्तु शाबस्तिस्ततः कुवलयाश्वकः ॥२१॥

अन्वयः— तत्सुतः शाबस्तः येन शावस्ती पुरी निर्ममे बृहदश्वः तुशबस्ति ततः कुबलयाश्वक ।।२१।।

अनुवाद— युवनाश्व क पुत्र शाबस्त हुए उन्होंने शाबस्तीपुरी का निर्माण किया शाबस्त के पुत्र बृहदश्व हुए उनके पुत्र कुबलयाश्व हुए ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

शाबस्तिः शाबस्तस्य पुत्रः । कुवलयाश्वक एव धुन्धुमार इति ख्यातः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

शाबस्त के पुत्र शाबस्ति कुबलयाश्व ही धन्धुमार कहलाये ।।२२।।

यः प्रियार्थमुतङ्कस्य धुन्धुनामासुरं बली । सुतानामेकविंशत्या सहस्रैरहनद्वृतः ॥२२॥

अन्वयः— यः बली उतङ्कस्य प्रियार्थम् सुतानाम् एक विंशत्या साहस्रै वृतः धन्धु नामासुरं अहनत् ।।२२।।

अनुवाद— उतङ्क ऋषि की प्रसन्नता के लिए अपने इक्कीस हजार पुत्रों को साथ लेकर धुन्धु नामक असुर का बध किया । ये महाबलवान थे ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

तत्र कारणमाह-य इति । सुतानामेकविंशत्या सहस्रैर्वृतः सन् हतवान् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

धुन्धुमार नाम होने के कारण को इस श्लोक से बतलाया गया है । इन्होंने अपने इक्कीस हजार पुत्रों को साथ लेकर धुन्धु नामक असुर का वध किया था ।।२२।।

धुन्धुमार इति ख्यातस्तत्सुतास्ते च जज्वलुः । धुन्धोर्मुखाग्निना सर्वे त्रय एवावशेषिताः ॥२३॥

अन्वयः— धुन्धुमार इति ख्यातः तत् सर्वे सुताः ते च धुन्धुमार मुखाग्निा जज्वलुः त्रय एवावशोषिताः ।।२३।।

अनुवाद— इसीलिए वे धुन्धुमार के नाम से विख्यात है । धुन्धु के मुख की अग्नि से कुवलयाश्व के सभी पुत्र जल गये तीन ही रह गये ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

धुन्धुमार इति चेति चकारस्यान्धयः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

इसीलिए इनका नाम धुम्धुमार हुआ ।।२३।।

दृढाश्व कपिलाश्वश्च भद्राश्व इति भारत । दृढाश्वपुत्रो हर्यश्वो निकुम्भस्तत्सुतः स्मृतः ॥२४॥

अन्वयः— हे भारत दृढाश्वः, कपिलाश्व भद्राश्व इति दृढाश्वपुत्रः हर्यश्वः तत्सुतः निकुम्भः स्मृतः ।।२४।।

अनुवाद— हे परीक्षित् ! उनके नाम दृढाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व है । दृढाश्व के पुत्र हर्यश्व हुए और उनके पुत्र निकुम्भ कहे गये हैं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२४।।

बर्हणाश्वो निकुम्भस्य कृशाश्वोऽथास्य सेनजित्। युवनाश्वोऽभवत्तस्य सोऽनपत्यो वनं गतः ॥२५॥
भार्याशतेन निर्विण्णऋषयोऽस्य कृपालवः । इष्टिं स्म वर्तयांचक्रुरैन्द्रीं ते सुसमाहिताः ॥२६॥

अन्वयः— निकुम्भस्य बर्हणश्वः कृशाश्वः अथ अस्य सेनजित् । तस्य युवनाश्वोऽभवत् स अनपत्यः निर्विण्णः भार्याशतेन वनं गतः, कृपालवः ऋषयः सुसमाहिताः ते अस्य ऐन्द्रीं इष्टिं वर्तयाञ्चक्रुः ॥२५-२६॥

अनुवाद— निकुम्भ के पुत्र बर्हणाश्व, उसके कृशाश्व, कृशाश्व के सेनजित् सेनजित् के पुत्र युवनाश्व हुए । वे निःसन्तान थे अतएव दुःखी होकर वे अपनी सौ पत्नियां के साथ वन में चले गये । वहाँ पर कृपालु ऋषियों ने एकाग्र मन करके युवनाश्व से इन्द्र का यज्ञ कराया ॥२५-२६॥

भावार्थ दीपिका

अथ तस्मान्निकुम्भात्कृशाश्वः । भार्याणां शतेन सह। अस्य पुत्रार्थमिन्द्रदैवत्यामिष्टिं वर्तयामासुः। स्मेत्याश्चर्ये।।२५-२६।।

भाव प्रकाशिका

निकुम्भ के पुत्र कृशाश्व हुए । अनपत्य युवनाश्व अपनी सौ पत्नियों के साथ वन में चला गया । ऋषियों युवनाश्व के पुत्र के लिए इन्द्र देवताक इष्टि करवाया । स्म यह आश्चर्य के अर्थ में प्रयुक्त है ॥२५-२६॥

राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः । दृष्ट्वा शयानान्विप्रांस्तान्पपौ मन्त्रजलं स्वयम् ॥२७॥

अन्वयः— निशितर्षितः राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टः विप्रान् शयानान् दृष्ट्वा स्वयम् मन्त्रजलं पपौ ॥२७॥

अनुवाद— रात में प्यासे हुए राजा यज्ञशाला में प्रवेश करके ब्राह्मणों को सोए हुए देखे तो स्वयम् मन्त्र के जल को पी लिए ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह- राजेति षड्भिः । तर्षितस्तृषितः सन् जलार्थं प्रविष्टो मन्त्राभिमन्त्रितं जल पत्न्यै देयं स्वयं पपौ ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

उस आश्चर्य को ही **राजा० इत्यादि** छह श्लोकों से बतलाते हैं । प्यासे हुए राजा जल के लिए यज्ञशाला में प्रवेश किए और पत्नी को देने के लिए मन्त्र से अभिमन्त्रित पुंसवन के जल को स्वयं पी लिए ॥२७॥

उत्थितास्ते निशाम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो । पप्रच्छुः कस्य कर्मेदं पीतं पुंसवनं जलम् ॥२८॥

अन्वयः— हे प्रभो ! उत्थिताः ते व्युदकं कलशं निशाम्य पप्रच्छुः कस्येदं कर्म पुंसवनं जलं पीतम् ॥२८॥

अनुवाद— हे परीक्षित् जगकर वे ब्राह्मण जल से रहित कलश को देखकर पूछे कि यह काम किसने किया है । पुंसवन के जल को किसने पिया है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

व्युदकं निरुदकम् । पुंसवनं पुत्रोत्पत्तिकारणम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

व्युदकम् अर्थात् जल रहित । पुंसवनम् अर्थात् पुत्रोत्पत्ति के कारण भूत ॥२८॥

राज्ञा पीतं विदित्वाऽथ ईश्वरप्रहितेन ते । ईश्वराय नमश्चक्रुरहो दैवबलं बलम् ॥२९॥

अन्वयः— अथ ईश्वर प्रहितेन राज्ञा प्रीतम् इति ते विदित्वा ईश्वरं नमश्चक्रुः अहो दैवबलं बलम् ॥२९॥'

अनुवाद— अन्त में यह जानकर की ईश्वर प्रेरित राजा ने ही उस जल को पी लिया है । ऋषियों ने परमात्मा को प्रणाम किया और कहा वस्तुतः ईश्वर का ही बल; बल है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अहो दैवबलमेव मुख्यं बलं पुरुषबलं तु न किंचिदिति वदन्त ईश्वराय नमस्कारं चक्रुः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

ऋषियों ने कहा वस्तुत: दैव का बल ही बल है और ऋषियों ने परमात्मा को नमस्कार किया ।।२९।।

ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम् । युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जजान ह ।।३०।।

अन्वयः— ततः काले उपावृत्ते युवनाश्वस्य दक्षिणंकुक्षिं निभिर्द्य चक्रवर्ती तनयः जजान ।।३०।।

अनुवाद— समय पूरा होने पर युवनाश्व की दाहिनी कोख को फोड़कर उनका चक्रवती पुत्र उत्पन्न हुआ ।।३०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३०।।

कं धास्यति कुमारोऽयं स्तन्यं रोरूयत भृशम् । मां धाता वत्स मा रोदीरितीन्द्रो देशिनीमदात्।।३१।।

अन्वयः— अयं कुमारः कं स्तन्यं धास्यति भृशं रोरूयते । मां धाता वत्स मा रोदीः इति इन्द्र देशिनीम् अदात् ।।३१।।

अनुवाद— ऋषियों ने कहा कि यह बच्चा किसका दूध पियेगा ? बहुत रो रहा है उस समय इन्द्र ने आकर कहा यह मुझको पियेगा यह कहकर अपनी कनिष्ठा अंगुलि को उसके मुख में डाल दिया ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

अयं कं धास्यति पास्यतीति दुःखितैर्विप्रैरुक्ते सति तस्यामिष्ट्यामाराधित इन्द्रो मां धाता पाता हे वत्स, मा रोदीरिति ब्रुवन् देशिनीं तर्जनीमदादित्यर्थः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

जब दु:खी ब्राह्मणों ने कहा कि यह कुमार किसका दूध पियेगा उस समय उस इष्टि में आराधित इन्द्र ने कहा कि यह मुझको पिये । इन्द्र ने कहा वत्स ! रोओं मत । यह कहते हुए उन्होंने अपनी तर्जनी अङ्गुलि बालक के मुख में डाल दिया ।।३१।।

न ममार पिता तस्य विप्रदेवप्रसादतः । युवनाश्वोऽथ तत्रैव तपसा सिद्धिमन्वगात् ।।३२।।

अन्वयः— विप्रदेवप्रसादतः तस्य पिता नममार अथ युवनाश्वः तत्रैव तपसा सिद्धिम् अगात् ।।३२।।

अनुवाद— ब्राह्मणों एवं देवताओं की कृपा से बालक के पिता युवनाश्व मरे नहीं वे वहीं तपस्या के द्वारा सिद्ध हो गये ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

तस्य पिता युवनाश्वो भिन्नकुक्षिरपि न ममार किंतु कालान्तरे तपसा सिद्धिमन्वगात् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

उसके पिता युवनाश्व पेट फट जाने पर भी नहीं मरे अपितु कालान्तर में सिद्धि प्राप्त कर लिए ।।३३।।

त्रसद्दस्युरितीन्द्रोऽङ्ग विदधे नाम तस्य वै । यस्मात्रसन्ति ह्युद्विग्ना दस्यवो रावणादयः ।।३३।।

अन्वयः— हे अङ्ग इन्द्रः तस्य वै नाम त्रसद्दस्युरिति विदधे, यस्मात् रावणादयः दस्यवः उद्विग्ना त्रसन्ति ।।३३।।

अनुवाद— हे राजन् ! परीक्षित् इन्द्र ने उसका नाम त्रसद्‌दस्यु रखा, क्योंकि मान्धाता से रावण आदि लुटेरे काँपते हुए डरते रहते थे ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

मान्धातुर्महिमानमाह-त्रसद्दस्युरिति षड्भिः । अङ्ग हे राजन्, यस्मामान्धातुर्दस्यव उद्विग्राः कम्पिताः सन्तस्त्रसन्त्यत इन्द्रो यस्य त्रसद्दस्युरिति नाम विदधे । स मान्धाताऽवनीमेकः शशासेत्युत्तरेणान्वयः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

त्रसद्दस्यु इत्यादि छह श्लोकों को मान्धाता की महिमा का वर्णन किया गया है । अङ्ग अर्थात् हे राजन् परीक्षित्! उस मान्धाता से रावण इत्यादि लुटेरे काँपते और डरते थे, इसलिए इन्द्र ने उसका नाम, त्रसद्दस्यु रखा । वे मान्धाता सम्पूर्ण पृथिवी के प्रशासक थे, वह आगे के श्लोक से अन्वय है ॥३३॥

यौवनाश्वोऽथ मान्धाता चक्र वर्त्यवनीं प्रभुः । सप्तद्वीपवतीमेकः शशासाच्युततेजसा ॥३४॥

अन्वयः— अथ यौवनाश्वः चक्रवर्ती मान्धाता अच्युततेजसा एकः सप्तद्वीपवतीम् अवनीं शशास ॥३४॥

अनुवाद— युवनाश्व के पुत्र चक्रवती मान्धाता भगवान् अच्युत के तेज से सम्पन्न होकर अकेले सात द्वीपों वाली पृथिवी का प्रशासन करते थे ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

अच्युतस्य तेजसा । अप्रच्युततेजसेति वा ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् अच्युत के तेज से, अथवा कभी तेज के कम न होने के कारण ॥३४॥

ईजे च यज्ञं क्रतुभिरात्मविद्भूरिदक्षिणैः । सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकमतीन्द्रियम् ॥३५॥

अन्वयः— आत्मवित् भूरिदक्षिणैः क्रतुभिः सर्वदेवमयं सर्वात्मकम, अतीन्द्रियम् यज्ञं देवं ईजे ॥३५॥

अनुवाद— आत्मज्ञ महाराज मान्धाता ने बहुत अधिक दक्षिणा वाले यागों के द्वारा सर्वदेवस्वरूप सर्वात्मा तथा अतीन्द्रिय यज्ञ पुरुष श्रीभगवान् की आराधना की ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

आत्मविदपि स यज्ञं विष्णुमीजे । तमेव विशिनष्टि सर्वदेवमयमिति सार्धेन ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

आत्मज्ञ भी राजा मान्धाता ने यज्ञ पुरुष भगवान् विष्णु की आराधना की । भगवान् विष्णु की ही विशेषता सर्वदेवमय इत्यादि दो श्लोक से बतलाते हैं ॥३५॥

द्रव्यं मन्त्रो विधिर्यज्ञो यजमानस्तथर्त्विजः । धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतद्यदात्मकम् ॥३६॥

अन्वयः— द्रव्यम्, मन्त्रः, विधिः यज्ञः यजमानः तथा ऋत्विजः, धर्मः, देशः कालः, च सर्वमेतत् यदात्मकम्॥३६॥

अनुवाद— द्रव्य (यज्ञ सामग्री) मन्त्र, विधियाँ, यज्ञ, यजमान, ऋत्विगगण, धर्म, देश, काल ये सबके सब परमात्मक स्वरूप ही हैं ॥३६॥

अनुवाद— जहाँ से सूर्य उदित होते हैं और जहाँ जाकर वे अस्त हो जाते हैं अर्थात् उदयाचल से अस्ताचल पर्यन्त का सारा क्षेत्र युवनाश्वनन्दन मान्धाता का क्षेत्र कहलाता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

प्रतितिष्ठत्यस्तं गच्छति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

प्रतितिष्ठिति अर्थात् अस्त होते हैं ॥३७॥

शशबिन्दोर्दुहितरि बिन्दुमत्यामधान्नृपः । पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च योगिनम् ॥
तेषां स्वसारः पञ्चाशत्सौभरिं वव्रिरे पतिम् ॥३८॥

अन्वयः— शशविन्दोः दुहितरि विन्दुमत्यां नृपः पुरुकुत्सम् अम्बरीषम् योगिनम् मुचकुन्द च अधात् । तेषां पञ्चशत् स्वसारः सौभारिं पतिम् वव्रिरे ॥३८॥

अनुवाद— शशविन्दु की पुत्री विन्दुमति के गर्भ से महाराज मान्धाता ने तीन पुत्रों को उत्पन्न किया पुरुकुत्स, अम्बरीष और योगी मुचकुन्द को । इन सबों की पचास बहनों ने सौभरि को अपने पति के रूप में वरण किया॥३८॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गात्सौभरेश्चरितमाह-तेषामिति यावत्समाप्ति । तेषां स्वसारो मान्धातुः कन्याः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्गवशात् सौभरि के चरित का वर्णन इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त कर रहे हैं । उन सबों की बहनें अर्थात् मान्धाता की पुत्रियाँ ॥३८॥

यमुनान्तर्जले मग्नस्तप्यमानः परंतपः । निर्वृतिं मीनराजस्य वीक्ष्य मैथुनधर्मिणः ॥३९॥
जातस्पृहो नृपं विप्रः कन्यामेकामयाचत । सोऽप्याह गृह्यतां ब्रह्मन्कामं कन्या स्वयंवरे॥४०॥

अन्वयः— यमुनान्तर्जले मग्नः तप्यमानः परन्तपः मैथुनधर्मिण मीनराजस्य निर्वृतिं वीक्ष्य जातस्पृहः विप्रः नृपं एकां कन्यम् अयाचत । सः अपि आह ब्रह्मन् स्वयम्वरे कामं कन्यां गृहयताम् ॥३९-४०॥

अनुवाद— यमुना नदी के जल के भीतर डूबकर तपस्या करने वाले परम तेजस्वी ऋषि ने देखा कि मैथुन धर्मी मत्स्यराज बहुत सुखी है । उसको देखकर महर्षि सौभरि को भी विवाह करने की इच्छा हुई । उन्होंने राजा मान्धाता से एक कन्या को माँगा । राजा ने कहा भगवन् आपको जो कन्या पसन्द कर ले उसी को आप ले लें ॥३९-४०॥

भावार्थ दीपिका

ननु महातापसस्य कुतो विवाहप्रसङ्गः, कथं वा जराजर्जरं तं राजकन्या वव्रिरे तदाह-यमुनान्तर्जल इति षड्भिः । नृपं मान्धातारम् । सोऽपि मान्धाता स्वयंवरे कामं गृह्यतामित्याह ॥३९-४०॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि महातपस्वी के विवाह का प्रसङ्ग कैसे हुआ तथा वार्द्धक्य से जर्जर शरीर वाले महर्षि का वरण राजा कन्याओं ने किया । उसी का वर्णन **यमुनान्तर्जले० इत्यादि** छह श्लोकों से करते है नृपशब्द से मान्धाता को कहा गया है । मान्धाता ने कहा कि स्वयम्बर में आप कन्या को ग्रहण कर लें ॥३९-४०॥

स विचिन्त्याप्रियं स्त्रीणां जरठोऽयमसंमतः । वलीपलित एजत्क इत्यहं प्रत्युदाहृतः ॥४१॥

अन्वयः— सः मां स्त्रीणाम् अप्रियं जरठोग्यम् असंमतः वलीपलित एजतकः इति अहं प्रत्युदाहृतः ॥४१॥

अनुवाद— ऋषि जान गये किराजा मुझको यह बूढा स्त्रियों को प्रिय नही है, बाल पकजाने और शरीर काँपने के कारण किसी भी स्त्री को ये सम्मत नहीं है । इस तरह से राजा ने मुझे जबाब दे दिया है ।

भावार्थ दीपिका

स विप्रः स्त्रीणामप्रियं मां विचिन्त्यानेनाहं प्रत्युक्तः अत आत्मानं तथा साधयिष्यामीति व्यवसितो निश्चितवानिति द्वयोरन्वयः अप्रियत्वे हेतुः-जरठो वृद्धः । वलीभिर्युक्तः पलितश्च । एजत्कः कम्पमानशिराः । तापसत्वादिना वाऽसंमतोऽहमिति कृत्वा ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

वे महर्षि भी जान गये कि राजा मुझको स्त्रियों के लिए अप्रिय जानकर मुझे जबाब दे दिया । अतएव मैं अपने को ऐसा बना देता हूँ कि सभी स्त्रियाँ मुझे पसन्द करे । इस तरह का उन्होंने निश्चय कर लिया स्त्रियों के अप्रिय होने के कारण है वृद्ध होने के कारण बालों का पकना, शरीर का काँपना, अथवा तपस्वी होने के कारण असम्मत होना।।४१।।

साधयिष्ये तथात्मानं सुरस्त्रीणामपीप्सितम् । किं पुनर्मनुजेन्द्राणामिति व्यवसितः प्रभुः ।।४२।।

अन्वयः— प्रभुः तथा आत्मानं सुरस्त्रीणामपीप्सितम् आत्मानं साधयिष्ये, किं पुनः मनुजेन्द्राणाम् इति व्यवसितः।।४२।।

अनुवाद— समर्थ ऋषि ने मैं अपना शरीर देव स्त्रियों के लिए भी कमनीय बना लेता हूँ तो राजकुमारियों की क्या बात है, इस तरह से निश्चय कर लिया ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

तथेत्यस्य प्रपञ्चः- सुरस्त्रीणामपीप्सितं, किं पुनर्मनुजेन्द्राणां याः स्त्रियस्तासामिति ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त श्लोक के तथा शब्द की व्याख्या है यह श्लोक । देव स्त्रियों के भी लिए कमनीय, राजकुमारियों की क्या बात है ?।।४२।।

मुनिः प्रवेशितः क्षत्रा कन्यान्तः पुरमृद्धिमत् । वृतश्च राजकन्याभिरेकः पञ्चाशता वरः ।।४३।।

अन्वयः— क्षत्रा ऋद्धिमत् कन्यान्तः पुर प्रवेशितः मुनिः पञ्चशता कन्याभिः एक वरः वृतः ।।४३।।

अनुवाद— प्रतिहारी के द्वारा कन्याओं से समृद्धि सम्पन्न अन्तःपुर में प्रवेश कराये गये महर्षि को पचासों कन्याओं ने एक ही महर्षि को वर के रूप में वरण कर लिया ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

ततः किं वृत्तं तदाह-मुनिरिति द्वाभ्याम् । क्षत्रा प्रतीहारेण । पञ्चाशतापि राजकन्याभिः स एक एव वरो वृतः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् क्या हुआ ? उसे मुनिः इत्यादि दो श्लोकों में बतलाते हैं । क्षत्रा अर्थात् प्रतीहारी के द्वारा। पचासों राजकुमारियों ने एक ही मुनि को वर के रूप में वरण कर लिया ।।४३।।

तासां कलिरभूद्भूयांस्तदर्थेऽपोह्य सौहृदम् । ममानुरूपो नायं व इति तद्गतचेतसाम् ।।४४।।

अन्वयः— तद्गतचेतसाम् तासाम् तदर्थे सौहृदम् अपोह्य भूयान् कलिः अभूत् अयं ममानुरूपः वः न इति ।।४४।।

अनुवाद— उन सभी राजकुमारियों का उन मुनि में ऐसा मन लग गया था कि वे उनको पति के रूप में प्राप्त करने के लिए परस्पर के सौहार्द को त्यागकर आपस में बहुत अधिक कलह करने लगीं । वे कहती थीं कि ये ऋषि मेरे ही अनुकूल हैं तुमलोगों के नहीं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४४।।

स बह्वृचस्ताभिरपारणीयतपःश्रियाऽनर्घ्यपरिच्छदेषु ।
गृहेषु नानोपवनामलाम्भःसरस्सु सौगन्धिककाननेषु ॥४५॥
महार्हशय्यासनवस्त्रभूषणस्नानानुलेपाभ्यवहारमाल्यकैः ।
स्वलंकृतस्त्रीपुरुषेषु नित्यदा रेमेऽनुगायाद्द्विजभृङ्गबन्दिषु ॥४६॥

अन्वयः— स वहवृचः नित्सत अपारणीय तपः श्रिया अनर्घ्य परिच्छदेषु नानोपवनामलाम्भस्सरसु सौगन्धिक काननेषु महार्हशय्यासनवस्त्रभूषण स्नानालेपाम्वरारमाल्यकैः स्वलकृंतस्त्रीपुरुषेषु अनुगायदद्विजभृङ्गवन्दिषु गृहेषु ताभिः रेमे ॥४५-४६॥

अनुवाद— वे ऋग्वेदी नित्य ही अपनी अपार तपस्या के प्रभाव से बहुमूल्य सामग्रियों से सुसज्जित अनेक उपवनों और स्वच्छ जल से परिपूर्ण सरोवरों से युक्त एवं सौगन्धिक पुष्पों के बगीचों से घिरे हुए महलों में बहुमूल्य शय्या, आसन और वस्त्र, आभूषण, स्नान, अनुलेपन, स्वादिष्ट भोजन और पुष्पमालाओं से सुसज्जित गृहों में उन पत्नियों के साथ विहार करने लगे। सुन्दर भूषण धारण किए हुए स्त्री-पुरुष उनकी सेवा में लगे रहते थे। उन गृहों में कहीं पक्षी चहकते रहते थे तो कहीं भौरें गुंजार करते थे और कहीं वन्दीजन उनकी विरुदावली का गायन करते थे ॥४५-४६॥

भावार्थ दीपिका

तस्य गार्हस्थ्यं वर्णयति-स इति चतुर्भिः बह्वृच इति मन्त्रसामर्थ्यमुक्तम्। ताभिः सह रेमे इत्युत्तरेणान्वयः। क्व रेमे। अपारणीयं दुरन्तं यत्तपस्तस्य श्रिया समृद्ध्याधाऽनर्घ्याः परिच्छदा येषु तेषु गृहेषु तथा नानाविधेषूपवनेषु च। अमलान्यम्भांसि येषां तेषु सरस्सु च। कथंभूतेषु। सौगन्धिकानां कह्लाराणां च काननानि स्तोमा येषु। कथंभूतेषु गृहादिषु। स्वलंकृताः स्त्रियः पुरुषाश्च येषु। अनु गायन्तो द्विजाश्च पक्षिणो भृङ्गाश्च वन्दिनश्च येषु। कथंभूतः। महार्हशय्यादिभिरुपलक्षितः सन् ॥४५-४६॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि सौमारि के गार्हस्थ्य का वर्णन **स वहवृचः० इत्यादि** चार श्लोकों से शुकदेवजी करते हैं। वह वृचः पद के प्रयोग से उनके मन्त्र सामर्थ्य को कहा गया है। उन सबों के साथ विहार किए यह आगे के श्लोक से अन्वय है। अपार तपस्या के ऐश्वर्य की समृद्धि के द्वारा बहुमूल्य सामग्रियों से युक्त गृहों में तथा अनेक प्रकार के उपवनों तथा स्वच्छ जल से परिपूर्ण सरोवरों जिनमे सौगन्धिक कमल विकसत रहते थे ऐसे गृहों में वे उन सबों के साथ विहार करने लगे। और कैसे गृहों में ? जिनमें अच्छी तरह से अलंकृत सेवक स्त्री पुरुष थे तथा जिनमें कहीं पक्षी चहकते रहते थे तो भौरे गुंजार करते थे और वन्दीजन यशोगायन करते थे वे गृह अत्यन्त मूल्यवान शय्या आदि से युक्त थे ॥४५-४६॥

यद्गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य सप्तद्वीपवतीपतिः । विस्मितः स्तम्भमजहात्सार्वभौमश्रियान्वितम् ॥४७॥

अन्वयः— सप्तद्वीपवतीपतिः सार्वभौम श्रियान्वितम् यद्गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य विस्मितः स्तम्भम् अजहात् ॥४७॥

अनुवाद— सप्तद्वीपा पृथिवी के स्वामी महाराज मान्धाता चक्रवर्ती के ऐश्वर्य से युक्त महर्षि सौभरि के गार्हस्थ्य को देखकर अपने चक्रवर्ती होने के गर्व का परित्याग कर दिए ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

स्तम्भं गर्वम् ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

स्तम्भ अर्थात् गर्व ॥४७॥

एवं गृहेष्वभिरतो विषयान्विविधैः सुखैः । सेवमानो न चातुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः ॥४८॥

अन्वयः— एवं गृहेष्वभिरतः विविधैः । सुखै, विषयान् सेवमानः आज्यस्तोकैः अनल इव च न अतुष्यत् ॥४८॥

अनुवाद— इस तरह की गृहस्थी में अनेक प्रकार के सुखों से युक्त विषयों का सेवन करने वाले महर्षि उसी तरह संतुष्ट नहीं हुए जिस तरह घी की बुन्दों से अग्नि तृप्त नहीं होती है ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

आज्यस्तोकैर्घृतबिन्दुभिः ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

आज्यस्तोकैः अर्थात् घी की बुन्दों से ॥४८॥

स कदाचिदुपासीन आत्मापह्नवमात्मनः । ददर्श बह्वृचाचार्यो मीनसङ्गसमुत्थितम् ॥४९॥

अन्वयः— कदाचित् उपासीनः स वहवृचाचार्यः मीनसङ्गसमुत्थितम् आत्मनः आत्मापह्लनवम् ददर्श ॥४९॥

अनुवाद— एक बार एकान्त में बैठे हुए ऋग्वेदचार्य महर्षि सौभरि मत्स्यराज की सङ्गति से अपनी आत्मा के पतन का विचार करने लगे ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं तस्यानुतापपूर्वकं वानप्रस्थाश्रममाह-स कदाचिदिति सप्तभिः । आत्मनो मनसो हेतोरात्मनोऽपह्नवं तपोहानिं ददर्श ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

इस समय महर्षि सौभरि के पश्चाताप पूर्वक वानप्रस्थाश्रम का वर्णन **स कदाचित् इत्यादि** सात श्लोकों से करते हैं । मन के कारण अपने तपस्या की हानि का विचार किए ॥४९॥

अहो इमं पश्यत मे विनाशं तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य ।
अन्तर्जले वारिचरप्रसङ्गात्प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत् ॥५०॥

अन्वयः— अहो तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य मे विनाशं पश्यत । अन्तर्जले वारिचरप्रसङ्गात् चिरं धृतं ब्रह्म, यत् प्रच्यावितम् ॥५०॥

अनुवाद— अरे तपस्वी ! तथा अच्छी तरह स व्रत का अनुष्ठान करने वाले मेरा यह अधः पतन तो देखो। जल के भीतर जलचर की सङ्गति मात्र से दीर्घकाल से धारण किया हुआ मेरा ब्रह्मतेज विनष्ट हो गया ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

संश्चाया चरितव्रतश्च योऽहं तस्य । ब्रह्म तपः ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

अच्छी तरह से व्रत का अनुष्ठान करने वाला मैं ब्रह्म अर्थात् तप ॥५०॥

सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः सर्वात्मना न विसृजेद्बहिरिन्द्रियाणि ।
एकश्चरन्रहसि चित्तमनन्त ईशे युञ्जीत तद्व्रतिषु साघुषु चेत्प्रसङ्गः ॥५१॥

अन्वयः— मुमुक्षुः मिथुनव्रतीनां सङ्ग त्यजेत् इन्द्रियाणि सर्वात्मना बहिः न विसृजेत् । रहसि एकः चरन् अनन्ते ईशे चित्तम् युञ्जीत् चेत प्रसङ्गः तदव्रतिषु साधुषु ॥५१॥

अनुवाद— मोक्ष चाहने वाले को चाहिए कि वह भोगी प्राणियों का सङ्ग पूर्णरूप से त्याग दे, अपनी इन्द्रियों को कभी भी वहिर्मुख न होने दे एकान्त में अकेले रहते हुए अपने चित्त को अनन्त परमात्मा में लगा दे। यदि सङ्ग करना ही हो तो श्रीभगवान् के अनन्यभक्तों से करे ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

मिथुनव्रतिनां दाम्पत्यधर्मवतां चेद्यदि प्रसङ्गस्तर्हि तद्व्रतिषु ईश्वरार्थधर्मपरेष्वेव कार्य इति शेषः ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

मिथुनव्रतीनाम् अर्थात् दाम्पत्य धर्म वाले गृहस्थों का। यदि संगति करनी हो तो भगवद् भक्तों की ही संगति करें॥५१॥

एकस्तपस्व्यहमथाम्भसि मत्स्यसङ्गात्पञ्चाशतासमुत पञ्चसहस्रसर्गः ।
नान्तं व्रजाम्युभयकृत्यमनोरथानां मायागुणैर्हृतमतिर्विषयेऽर्थभावः ॥५२॥

अन्वयः— अम्भसि एकः तपस्वी अहम् मत्स्यसङ्गात् पञ्चाशदासम् उत पञ्चसहस्रसर्गः मायागुणैः हृतमतिः विषये अर्थभावः उभय कृत्य मनोरथानाम् अन्तम् न व्रजामि ॥५२॥

अनुवाद— जल के भीतर मैं अकेला तपस्वी था मत्स्य की सङ्गति के कारण मैं पचास हो गया पुनः मेरी सृष्टि पाँच हजार की हो गयी। माया के गुणों ने मेरी बुद्धि का हरण कर लिया और विषयों में मेरी सत्यत्व बुद्धि हो गयी, हम दोनों के द्वारा किए जाने वाले मनोरथ इतने हो गये हैं कि मैं इन सबों का किसी भी तरह पार ही नही पा सकता ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

सङ्गाज्जातं दोषं प्रपञ्चयति-एक इति। पञ्चाशता भार्याभिः संबन्धात्पञ्चाशदासम्। अभूवमित्यर्थः। ततश्च सुतैः पञ्चसहस्रसर्ग आसम्। प्रत्येकं तासु पुत्रशतरूपेणोत्पत्तेः। उभयकृत्यान्यैहिकपारत्रिकाणि कर्माणि तद्विषयाणां मनोरथानाम्। अर्थभावः पुरुषार्थबुद्धिमान् ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

सङ्गति से उत्पन्न दोष का विस्तार से वर्णन एकः इत्यादि श्लोक से करते हैं। पचास पत्नियों से विवाह करने के कारण मैं पचास हो गया, अपने पुत्रों के द्वारा मैं पाँच हजार हो गया, क्योंकि प्रत्येक स्त्री के सौ-सौ पुत्र हुए। लौकिक तथा पारलौकिक कर्मों के विषय में होने वाले मनोरथों का तो कोई अन्त ही नहीं है। **अर्थभाव** अर्थात् पुरुषार्थ मानने वाला ॥५२॥

एवं वसन्गृहे कालं विरक्तो न्यासमास्थितः । वनं जगामानुययुस्तत्पत्न्यः पतिदेवताः ॥५३॥

अन्वयः— एवं कालं गृहे वसन् विरक्तः न्यासम् आस्थितः वनं जगाम, पतिदेवताः तत्पत्न्यः अनुययुः ॥५३॥

अनुवाद— इस तरह से विचार करके वे कुछ समय तक घर में ही रहे। फिर विरक्त होकर वे वानप्रस्थ स्वीकार करके वन में चले गये, अपने पति को ही देवता मानने वाली उनकी पत्नियाँ भी उनके साथ चली गयीं ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

न्यासोऽत्र सङ्गत्याग एव। वानप्रस्थधर्म इत्यर्थः ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

न्यास शब्द से यहाँ सङ्ग का त्याग कहा गया है, अर्थात् वानप्रस्थ ॥५३॥

तत्र तप्त्वा तपस्तीक्ष्णमात्मकर्षणमात्मवान् । सहैवाग्निभिरात्मानं युयोज परमात्मनि ॥५४॥

अन्वयः— आत्मवान् तत्र आत्मा कर्षण तीक्ष्णं तपः तप्त्वा अग्निभिसहैव आत्मानं परमात्मनि युयोज ॥५४॥

अनुवाद— परम संयमी महर्षि सौभारि अपने शरीर को सुखाने वाले कठोर तपस्या किए और वे अपनी आहवनीय आदि अग्नियों के साथ आत्मा को भी परमात्मा में लीन कर दिए ॥५४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५४॥

ताः स्वपत्युर्महाराज निरीक्ष्याध्यात्मिकीं गतिम् । अन्वीयुस्तत्प्रभावेन अग्निं शान्तमिवार्चिषः ॥५५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवम स्कन्धे सौभर्याख्याख्याने षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अन्वयः— हे महाराज ! ताः स्वयत्युः आध्यात्मिकी गति निरीक्ष्य शान्तम् अग्निम् अर्चिषः इव तत्प्रभावेन अन्वीयुः॥५५॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! वे सब अपने पति की आध्यात्मिक गति को देखकर सती होकर उनके ही प्रभाव से उनमें उसी तरह लीन हो गयी जिस तरह शान्त अग्नि में उसकी ज्वाला लीन हो जाती है ॥५५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के सौभरिचरित नामक छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

भावार्थ दीपिका

आध्यात्मिकीं गतिं ब्रह्मणि लयम् ॥५५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

आध्यात्मिकी गतिम् अर्थात् ब्रह्म में लय ॥५५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के छठे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥६॥

सातवाँ अध्याय

राजा त्रिशङ्कु और हरिश्चन्द्र की कथा

श्रीशुक उवाच

मान्धातुः पुत्रप्रवरो योऽम्बरीषः प्रकीर्तितः । पितामहेन प्रवृतो यौवनाश्वश्च तत्सुतः ।।
हारीतस्तस्य पुत्रोऽभून्मान्धातृप्रवरा इमे ।।१।।

अन्वयः— मान्धातुः पुत्र प्रवरः यः अम्बरीषः प्रकीर्तितः पितामहेन प्रवृतः यौंवनाश्वः च तत्सुतः । तस्य पुत्रः हारीतः अभूत् इमे मान्धातृप्रवराः ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— मान्धाता के ज्येष्ठ पुत्र जिसे अम्बरीष कहा गया है उसको उसके पितामह युवनाश्व ने पुत्र के रूप में वरण कर लिया । उसका पुत्र यौवनाश्व हुआ और यौवनाश्व का पुत्र हरीत हुआ । मान्धाता के वंश में ये तीन अवतार गोत्र के प्रवर्तक हुए ।।१।।

भावार्थ दीपिका

मान्धातुरन्वयः प्रोक्तः सप्तमे यत्र गीयते । पुरुकुत्सस्य चाख्यानं हरिश्चन्द्रस्य चोत्तमम् । पुत्रप्रवरः पुत्रश्रेष्ठः । स पितामहेन युवनाश्वेन प्रवृतः पुत्रत्वेन स्वीकृतः । अतएव तस्य मान्धातृप्रवर्ग्यत्वम् । तत्सुतोऽम्बरीषस्य सुतः । इमे यौवनाश्वाम्बरीषहारीता मान्धातृगोत्रस्य प्रवरा अवान्तरविशेषप्रवर्तकाः । यद्वा यौवनाश्वविशेषणम् । पितामहेन मान्धात्रा सह आर्षेयवरणे प्रवृतः । मान्धाता प्रवरो येषां ते इमे अम्बरीषयौवनाश्वहारीताः । यथाहाश्वलायनः 'हरितकुत्सपिङ्गदर्भभैमगवतानामाङ्गिरसाम्बरीषयौवनाश्वेति मान्धातारं हैके ब्रुवते । अतीत्याङ्गिरसं मान्धात्रम्बरीषयौवनाश्वेति' इति ।।१।।

भाव प्रकाशिका

मान्धाता के वंश का वर्णन किया जा चुका है । इस सातवें अध्याय में पुरुकुत्स और हरिश्चन्द्र का उत्तम आख्यान वर्णित है । पुत्रप्रवरः अर्थात् श्रेष्ठ पुत्र । अम्बरीष को उसके पितामह युवनाश्व ने अपने पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया । अतएव वह मान्धाता के वंश का प्रवर्ग्य है । अम्बरीष का पुत्र **तत्सुतः** पद से कहा गया है । ये यौवनाश्व, अम्बरीष तथा हारीत तीनो मान्धाता के वंश में श्रेष्ठ हैं, अर्थात् अवान्तर विशेष के प्रवर्तक हैं। अथवा यौवनाश्व का विशेषण है । अपने पितामह मान्धाता के साथ ऋषि संबन्धी वरण में प्रवृत्त है । अर्थात् जिनमें मान्धाता ही श्रेष्ठ हैं ऐसे अम्बरीष यौवनाश्व और हारीत है आश्वलायन महर्षि ने कहा भी है हरित कुत्सपिङ्गदर्भभैम और गव के आङ्गिस अम्बरीष तथा यौवनाश्व इन सबों को एक तरह के विचारक मान्धाता को कहते हैं । अङ्गिरस को छोड़कर मान्धाता, अम्बरीष और यौवनाश्व हैं ।।१।।

नर्मदा भ्रातृभिर्दत्ता पुरुकुत्साय योरगैः । तया रसातलं नीतो भुजगेन्द्रप्रयुक्तया ।।२।।

अन्वयः— उरगैः भ्रातृभिः या नर्मदा, पुरुकुत्साय दत्ता । भुजगेन्द्र प्रयुक्तया तया रसातलं नीतः ।।२।।

अनुवाद— नागों ने अपनी बहन नर्मदा का विवाह पुरुकुत्स से कर दिया और भुजगेन्द्र (नागराज) वासुकि की आज्ञा से नर्मदा पुरुकुत्स को रसतल में ले गयी ।।२।।

भावार्थ दीपिका

पुरुकुत्सस्य वंशं कथयिष्यन्नादौ तावत्तस्य विवाहं प्रभावं चाह- उरगैर्भ्रातृभिर्या दत्ता नर्मदा तया ।।२।।

भाव प्रकाशिका

पुरुकुत्स के वंश का वर्णन करने की इच्छा से पहले उनके विवाह और प्रभाव को बतलाते है । नागो ने अपनी बहन नर्मदा का विवाह पुरुकुत्स से कर दिया और उसी के द्वारा ।।२।।

गन्धर्वानवधीत्तत्र वध्यान्वै विष्णुशक्तिधृक् । नागाल्लब्धवरः सर्पादभयं स्मरतामिदम् ।।३।।

अन्वयः— विष्णु शक्ति धृक् तत्र वध्यान् गन्धर्वान् अवधीत् । नागात् लब्धवरः इदम स्मरताम् सर्पात् अभयदामिति।।३।।

अनुवाद— भगवान् विष्णु की शक्ति से सम्पन्न पुरुकुत्स ने वहाँ मारने योग्य गन्धर्वों को मार दिया।।३।।

भावार्थ दीपिका

वध्यान् वधार्हान् । स च पुरुकुत्सो नागाल्लब्धवरोऽभूत् । वरमाह इदं नर्मदया रसातलानयनादिकं स्मरतां सर्पादभयमिति।।३।।

भाव प्रकाशिका

वध्यान् अर्थात् मारने योग्य । पुरुकुत्स ने नागों से यह वरदान प्राप्त किया कि इस आख्यान का स्मरण करने वाले को सर्पों से भय नहीं होयेगा ।।३।।

त्रसद्दस्युः पौरुकुत्सो योऽनरण्यस्य देहकृत् । हर्यश्वस्तत्सुतस्तस्मादरुणोऽथ त्रिबन्धनः ॥४॥

अन्वयः— पौरुकुत्सः त्रसद्दस्युः यः अनरण्यस्य देहकृत् तत्सुतः हर्यश्वः तस्मात् अरुणः अथ त्रिबन्धनः ॥४॥

अनुवाद— पुरुकुत्स के पुत्र त्रसद्दस्यु हुए, उनके पुत्र अनरण्य हुए, अनरण्य के पुत्र हर्यश्व हुए हर्यश्व के पुत्र अरुण हुए और अरुण के पुत्र त्रिबन्धन हुए ॥४॥

भावार्थ दीपिका

देहकृत्पिता । त्रसद्दस्योः सुतोऽनरण्य इत्यर्थ; ॥४॥

भाव प्रकाशिका

देह कृत् अर्थात् पिता, त्रसद्दस्यु के पुत्र अनरण्य हुए यह अर्थ है ॥४॥

तस्य सत्यव्रतः पुत्रस्त्रिशङ्कुरिति विश्रुतः। प्राप्तश्चाण्डालतां शापाद्गुरोः कौशिकतेजसा ॥५॥
सशरीरो गतः स्वर्गमद्यापि दिवि दृश्यते। पातितोऽवाक्शिरा देवैस्तेनैव स्तम्भितो बलात्॥६॥

अन्वयः— तस्य पुत्रः सत्यव्रतः त्रिशङ्कु इति विश्रुतः गुरोः शापात् चाण्डालतां प्राप्तः कौशिकतेजसा सशरीरः स्वर्गं गतः देवैः अवाक् शिरा पातितः तेनैव बलात् स्तम्भितः अद्यापि दिविदृश्यते ॥५-६॥

अनुवाद— त्रिबन्ध के पुत्र सत्यव्रत हुए । वे त्रिशङ्कु के नाम से प्रख्यात है । अपने गुरु वसिष्ठ महर्षि के शाप से वे चाण्डाल हो गये थे । किन्तु महर्षि विश्वामित्र ने उनको सशरीर स्वर्ग में भेज दिया देवताओं ने उनको नीचे सिर करके स्वर्ग से ढकेल दिया, किन्तु विश्वामित्र महर्षि ने अपनी तपस्या के बल से उनको वहीं स्थिर कर दिया । वे आज भी आकाश में लटके हुए दिखाई पड़ते हैं ॥५-६॥

भावार्थ दीपिका

त्रयः शङ्कव इव दुःखहेतवो दोषा यस्यासौ त्रिशङ्कुः । तदुक्तं हरिवंशे- 'पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च । **अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः ।' इति । परिणीयमानविप्रकन्यापहरणात्क्रुद्धस्य गुरोः पितुः शापात् । कौशिकस्य विश्वामित्रस्य तेजसा प्रभावेण । तेनैव कौशिकेन ॥५-६॥**

भाव प्रकाशिका

तीन कीलों के समान दुःख के कारणभूत जिसमें दोष हो वह त्रिशङ्कु है । हरिवंश पुराण में कहा भी गया है । **पितुश्च इत्यादि** तुममें तीन प्रकार के दोष हैं- १. पिता का संतुष्ट न होना, २. गुरु की गौ को मारना और ३. अप्रोक्षित मांस का उपयोग श्राद्ध में करना । विवाहित ब्राह्मण की कन्या अपहरण के कारण क्रुद्ध गुरु के शाप के कारण त्रिशङ्कु चाण्डाल हो गये थे । विश्वामित्र महर्षि के तेज से । तेनैव अर्थात् महर्षि विश्वामित्र के ही द्वारा ॥५-६॥

त्रैशङ्कवो हरिश्चन्द्रो विश्वामित्रवसिष्ठयोः । यन्निमित्तमभूद्युद्धं पक्षिणोर्बहुवार्षिकम् ॥७॥

अन्वयः— त्रैशङ्कवः हरिश्चन्द्रः यन्निमित्तम् विश्वामित्र वसिष्ठयोः पक्षिणों वहवार्षिकम् युद्धम् अभूत् ॥७॥

अनुवाद— त्रिशङ्कु के पुत्र हरिश्चन्द्र हुए जिनके कारण पक्षी बने हुए विश्वामित्र और वसिष्ठ का बहुत वर्षों तक युद्ध होता रहा ॥७॥

भावार्थ दीपिका

पक्षिणोराडीबकयोः । विश्वामित्रो राजसूयदक्षिणाच्छलेन हरिश्चन्द्रसर्वस्वमपहृत्य यातयामास, तच्छ्रुत्वा कुपितो वसिष्ठोऽपि विश्वामित्रं त्वमाडी भवेति, शशाप, सोऽपि त्वं बको भवेति वसिष्ठं शशाप, तयोश्च युद्धमभूदिति प्रसिद्धम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

पक्षिणोः अर्थात् आडी और बक दोनों पक्षियों का । विश्वामित्र महर्षि राजसूय यज्ञ की दक्षिणा के छल से हरिश्चन्द्र का सर्वस्वापहार कर लिए और हरिश्चन्द्र को वहुत यातना दिए । इस बात को जब महर्षि वसिष्ठ सुने तो उन्होंने विश्वामित्र को शाप दिया कि तुम आडी हो जाओ । विश्वामित्र महर्षि ने भी वसिष्ठ महर्षि को शाप दे दिया कि तुम बक (बगुला) हो जाओ । उन दोनों का बहुत वर्षों तक युद्ध होता रहा यह प्रसिद्ध है ।।७।।

सोऽनपत्यो विषण्णात्मा नारदस्योपदेशतः । वरुणं शरणं यातः पुत्रो मे जायतां प्रभो ।।८।।

अन्वयः— अन्पत्यः विषण्णात्मा सः नारदस्य उपदेशतः वरुणं शरणं जातः प्रभो पुत्रो मे जायताम् ।।८।।

अनुवाद— निःसन्तान हरिश्चन्द्र उदास रहा करते वे नारदजी के उपदेश से वे वरुण देवता की शरणागति किए कि हे प्रभो मुझको पुत्र हो जाय ।।८।।

भावार्थ दीपिका

'हरिश्चन्द्रो ह वैधस ऐक्ष्वाको राजा पुत्र आस' इत्यादिश्रुतिप्रसिद्धं हरिश्चन्द्रस्य चरितमाह- सोऽनपत्य इत्यादि यावत्समाप्ति। कथं शरणं यातस्तदाह-पुत्रो मे जायताम् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

श्रुति कहती है वैधस ईक्ष्वाकुवंशीय राजा त्रिशङ्कु के पुत्र राजा हरिश्चन्द्र हुए । इस श्रुति प्रसिद्ध हरिश्चन्द्र के चरित्र का वर्णन **सोऽनपत्यः इत्यादि** श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त करते हैं । वरुण की शरणागति करके प्रार्थना किए कि प्रभो मुझको पुत्र उत्पन्न हो जाय ।।८।।

यदि वीरो महाराज तेनैव त्वां यजे इति । तथेति वरुणेनास्य पुत्रो जातस्तु रोहितः ।।९।।

अन्वयः— हे महाराज यदि वीरा तेनैव त्वां यजे तथति वरुणेन अस्य पुत्रः रोहितः जातः ।।९।।

अनुवाद— हे परीक्षित् ! उन्होंने कहा कि मेरा वीर पुत्र उत्पन्न होगा तो मैं उसी से आपका यजन करूँगा। वरुण ने कहा ठीक है । उसके पश्चात् वरुण की कृपा से हरिश्चन्द्र की रोहित नामक पुत्र प्राप्त हुआ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

यदि वीरः पुत्रो मे जायेत तर्हि तेनैव पुरुषपशुना त्वां यजे यजामीति भाषया तथेत्युक्तवता वरुणेन निमित्तेनास्य रोहितो नाम पुत्रो जातः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

हरश्चिन्द्र ने कहा कि यदि मुझे वीर पुत्र उत्पन्न हो तो मैं उसी से आपका यजन करूँगा । वरुण ने कहा ठीक है और वरुण की कृपा से उनको रोहित नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ।।९।।

जातः सुतो ह्यनेनाङ्ग मां यजस्वेति सोऽब्रवीत् । यदा पशुर्निर्दशः स्यादथ मेध्यो भवेदिति ।।१०।।

अन्वयः— सुतो जातः अङ्ग अनेन हि मां यजस्व इति सः अब्रवीत् । अथ यदा पशुः निर्दशः मेध्यो भवेत् इति ।।१०।।

अनुवाद— पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर वरुण ने कहा पुत्र उत्पन्न हो गया इसके द्वारा मेरा यजन करो । इस पर हरिश्चन्द्र ने कहा जब पुरुष पशु दश दिनों का हो जाता है तब वह यज्ञ के लिए पवित्र हो जाता है ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

जाते पुत्रे स वरुणो जातः सुतो मामनेन यजस्वेत्यब्रवीत् । यदा पशुर्निर्दशो निर्गतदशदिवसः स्यादित्यत्र स राजाऽब्रवीदित्यनुषङ्गः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर वरुण ने कहा कि पुत्र उत्पन्न हो गया अब मेरा यजन करो। इस पर हरिश्चन्द्र ने कहा पशु जब दश दिन का हो जाता है तब वह यज्ञ के लिए पवित्र होता है ॥१०॥

निर्दशे च स आगत्य यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत्। दन्ताः पशोर्यज्जायेरन्नथ मेध्यो भवेदिति ॥११॥

अन्वयः— निर्दशे च स आगत्य तः अब्रवीत् यजस्व इति। अथ पशोः दन्तायत् जायेरन् अथ मेध्यो भवेत् इति॥११॥

अनुवाद— दश दिन बीत जाने पर वरुण ने आकर कहा अब यजन करो। हरिश्चन्द्र ने कहा जव पशु के दाँत निकल जाते हैं तब वह यज्ञ के योग्य होता है ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

जाता दन्ता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत्। यदा पतन्त्यस्य दन्ता अथ मेध्यो भवेदिति ॥१२॥

अन्वयः— यदा दन्ताः जाताः तदा सः प्रत्याह यजस्व इति अथ स अब्रवीत् यदा यस्य दन्ताः पुतन्ति अथोमेध्यो भवेत् इति ॥१२॥

अनुवाद— जब दाँत जम गये तब वरुण ने कहा कि दाँत जम गये अब यजन करो हरिश्चन्द्र ने कहा जव इसके दूध के दाँत गिर जायेंगे तब यह यज्ञ के योग्य होगा ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

पशोर्निपतिता दन्ता यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत्। यदा पशोः पुनर्दन्ता जायन्तेऽथ पशुः शुचिः ॥१३॥

अन्वयः— पशोः दन्ताः निपतिताः यजस्व इति आह। सः अब्रवीत् यदा पशोः पुनर्दन्ताः जायन्ते अथ मेध्यो भवेत् इति ॥१३॥

अनुवाद— दूध के दाँतों के गिर जाने पर वरुण ने कहा दाँत गिर गये अब यजन करो। हरिश्चन्द्र ने कहा जब पशु के पुनः दाँत जम जायँ तब वह यजन के योग्य होता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

पुनर्जाता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत्। सान्नाहिको यदा राजन्राजन्योऽथ पशुः शुचिः ॥१४॥

अन्वयः— राजन् पुनः जाता यजस्व इति सः प्रत्याह। अथ सः अब्रवीत् राजन् सान्नाहिकः यदा राजन्यः अथ पशुः शुचिः ॥१४॥

अनुवाद— पुनः दाँतों के जम जाने पर वरुण ने कहा दाँत पुनः जम गये यजन करो। हरिश्चन्द्र ने कहा हे वरुण! जब क्षत्रिय पशु कवच बाँधने योग्य हो जाता है तो वह पवित्र होता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

राजन् हे वरुण, राजन्यः पशुर्यदा सान्नाहिकः कवचसंबन्धार्हः संग्रामसमर्थः। अथ तदा शुचिः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

हरिश्चन्द्र ने कहा हे वरुण क्षत्रिय पशु जब कवच बाँधने के योग्य होता है तो वह पवित्र होता है ॥१४॥

इति पुत्रानुरागेण स्नेहयन्त्रितचेतसा। कालं वञ्चयता तं तमुक्तो देवस्तमैक्षत ॥१५॥

अन्वयः— इति पुत्रानुरागेण स्नेह यन्त्रित चेतसा वञ्चयता तं तम् कालं उक्तः देवः तम् ऐक्षत् ॥१५॥

अनुवाद— इस तरह राजा हरिश्चन्द्र पुत्र से प्रेम के कारण आना कानी करके समय बिताते रहे। पुत्र के प्रेम को उनके हृदय को जकड़ रखा था, वे जो समय बतलाते थे वरुण देव उसकी प्रतीक्षा करते थे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

इत्येवं तं तं कालं वञ्चयता राज्ञोक्तः प्रार्थितो देवो वरुणस्तं तं कालं प्रत्यैक्षतेत्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह आनाकानी करते हुए हरिश्चन्द्र जो-जो समय बताते थे वरुण देव उस उस काल की प्रतीक्षा करते थे॥१५॥

रोहितस्तदभिज्ञाय पितुः कर्म चिकीर्षितम् । प्राणप्रेप्सुर्धनुष्पाणिररण्यं प्रत्यपद्यत ॥१६॥

अन्वयः— रोहितः तत् पितुः कर्म चिकीर्षितम् अभिज्ञाय प्राणप्रेप्सुः धनुष्पाणिः अरण्यं प्रत्यपद्यत ॥१६॥

अनुवाद— रोहित जब जान गया कि पिताजी मेरा बलिदान करना चाहते हैं तो वह अपना प्राण बचाने के लिए धनुष धारण करके वन में चला गया ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

चिकीर्षितमात्मना पशुना वरुणयजनम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

मुझ पशु के द्वारा वरुण का यजन करना चाहते हैं ॥१६॥

पितरं वरुणग्रस्तं श्रुत्वा जातमहोदरम् । रोहितो ग्राममेयाय तमिन्द्रः प्रत्यषेधत ॥१७॥

अन्वयः— वरुणग्रस्तं जात महोदरं पितरं श्रुत्वा रोहितः ग्रामम् एयाय तमिन्द्रः प्रत्यषेधत ॥१७॥

अनुवाद— वरुणदेव के क्रोध से ग्रस्त तथा महोदर रोग से पीडित अपने पिता को सुनकर रोहित अपने ग्राम में जा रहा था उस समय इन्द्र ने उसे रोक दिया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च कुपितेन वरुणेन ग्रस्तम्, अतएव जातं महदुदरं यस्य तं पितरं श्रुत्वा ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

क्रुद्ध वरुण से ग्रस्त होने के कारण महोदर रोग से पीडित पिता को सुनकर ॥१७॥

भूमेः पर्यटनं पुण्यं तीर्थक्षेत्रनिषेवणैः । रोहितायादिशच्छक्रः सोऽप्यरण्येऽवसत्समाम् ॥१८॥

अन्वयः— तीर्थक्षेत्र निषेवकैः भूमेः पर्यटनं पुण्यं इति शक्रः रोहिताय आदिशत् सः अपि समाम् अरण्ये अवसत्॥१८॥

अनुवाद— तीर्थों और क्षेत्र के सेवन पूर्वक भूमि पर विचरण करना पुण्य है इस तरह से इन्द्रने रोहित को उपदेश दिया और रोहित भी एक वर्ष तक वन में निवास किया ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

समां वर्षम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

समां अर्थात् एक वर्ष ॥१८॥

एंव द्वितीये तृतीये चतुर्थे पञ्चमे तथा । अभ्येत्याभ्येत्य स्थविरो विप्रो भूत्वाह वृत्रहा ॥१९॥

अन्वयः— एवं द्वितीये, तृतीये, चतुर्थे, पञ्चमे इन्द्रः अभ्येत्य अभ्येत्य स्थविरः विप्रोः भूत्वा आह ॥१९॥

अनुवाद— इस तरह द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पञ्चम वर्षों में इन्द्र वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण करके आकर रोहित को कहे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

द्वितीये च वर्षे वृत्रहा अभ्येत्याभ्येत्य तथैव तं प्रतिषेधन्किंचित्किंचिदाह ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

दूसरे भी वर्ष में आकर इन्द्र उसी प्रकार से राहित को कुछ कहकर रोक देते थे ।।१९।।

षष्ठं संवत्सरं तत्र चरित्वा रोहितः पुरीम् । अपव्रजन्नजीगर्तादक्रीणान्मध्यमं सुतम् ।।२०।।

अन्वयः— षष्ठं वर्षं चरित्वा रोहितः पुरीम् उपव्रजन् अजीगर्तात् मध्यमं सुतम् अक्रीणत् ।।२०।।

अनुवाद— छठे वर्ष संचरण करके रोहित अपने पिता के नगर में जाते समय अजीगर्त के मध्यम पुत्र को खरीद लिए ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

शुनःशेपं पशुं पित्रे प्रदाय समवन्दत । ततः पुरुषमेधेन हरिश्चन्द्रो महायशाः ।।२१।।

अन्वयः— पित्रे शनुःशेप पशुं पित्रे प्रादाय समवन्दत ततः महायशाः हरिश्चन्द्र पुरुषमेधेन अयजत् इति शेषः ।।२१।।

अनुवाद— अपने पिता को शुनः शेप नामक पशु को समर्पित करके रोहित ने अपने पिता को प्रणाम किया उसके पश्चात् महायस्वी हरिश्चन्द्र ने पुरुषमेघ के द्वारा यजन किया ।।२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२१।।

मुक्तोदरोऽयजद्देवान्वरुणादीन्महत्कथः । विश्वामित्रोऽभवत्तस्मिन्होता चाध्वर्युरात्मवान् ।।२२।।
जमदग्निरभूद्ब्रह्मा वसिष्ठोऽयास्यसामगः। तस्मै तुष्टो ददाविन्द्रः शातकौम्भमयं रथम्।।२३।।

अन्वयः— मुक्तोदरः महत्कथः वरुणादीन् देवान् अयजत् तस्मिन् विश्वामित्रः होता अभवत्, आत्मवान् जमदग्निः अध्वर्युः वसिष्ठः ब्रह्मा, अयास्यः सामगः अभूत् । तस्मै तुष्ट इन्द्रः शातकौम्भमयं रथम् ददौ ।।२२-२३।।

अनुवाद— महोदर रोग से मुक्त हरिश्चन्द्र जिनकी कथा महान है वे वरुण आदि देवताओं का यजन किए। उस यज्ञ में विश्वामित्र होता बने परम संयमी जमदग्नि अध्वर्यु, बने, वसिष्ठ महर्षि ब्रह्मा बने और आयास्य सामगान करने वाले उद्गाता बने । हरिश्चन्द्र पर प्रसन्न होकर इन्द्र ने हरिश्चन्द्र को सोने का रथ दिया ।।२२-२३।।

भावार्थ दीपिका

वरुणेन मुक्तमुदरं यस्य । महत्सु कथा यस्य सः । आत्मवान् जगदग्निरध्वर्युरभूत् । अयास्यो मुनिः सामग उद्गाता अभूदित्यर्थः ।।२२-२३।।

भाव प्रकाशिका

वरुण ने हरिश्चन्द्र को रोग मुक्त कर दिया । महान् ग्रन्थों में जिनकी कथा है । परम संयमी जमदग्नि अध्वर्यु हुए । अयास्य मुनि सामग अर्थात् उद्गाता हुए ।।२२-२३।।

शुनः शेपस्य माहात्म्यमुपरिष्टात्प्रचक्ष्यते । सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः।।२४।।
विश्वामित्रो भृशं प्रीतो ददावविहतां गतिम् । मनः पृथिव्यां तामद्भिस्तेजसाऽपोऽनिलेन तत्।।२५।।
खे वायुं धारयंस्तच्च भूतादौ तं महात्मनि । तस्मिन् ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाऽज्ञानं विनिर्दहन् ।।२६।।

अन्वयः— शुनः शेपस्य माहात्म्यम् उपारिष्टात् प्रवक्ष्यते सभार्यस्य भूपतेः सत्यसारां धृति दृष्ट्वा भृशं प्रीतः विश्वामित्रः

अविहतां गतिः ददौ मनः पृथिव्यां ताम् अद्भिः तेजसा आपः अनिलेन तत् वायुं खे धारयन् तच्च भूतादौ तं महात्मनि, तस्मिन् ज्ञान कलां ध्यात्वा तया अज्ञानं विनिर्दहन् ।।२४-२६।।

अनुवाद— शुनः शेप का महात्म्य मैं आगे चलकर वर्णन करूँगा । राजा हरिश्चन्द्र को अपनी पत्नी के साथ सत्य में सुदृढ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए महर्षि उनको उन्होंने उस ज्ञान का उपदेश दिया जिसका कभी नाश नहीं होता है । उसके अनुसार राजा हरिश्चन्द्र ने मन को, पृथिवी में, पृथिवी को जल में, जल को तेज में, तेज को वायु में वायु को आकाश में आकाश को अहङ्कार में लीन कर दिया । अहङ्कार को महत् तत्त्व में लीन करके उसमें ज्ञान कला का ध्यान करके उससे अज्ञान को भस्म कर दिया ।।२४-२६।।

भावार्थ दीपिका

उपरिष्टाद्विश्वामित्रसुताख्यानप्रसङ्गेन । अविहतां गतिं ज्ञानम् । तामेव गतिमाह सार्धाभ्याम् । मनः पृथिव्यां धारयन्ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाऽज्ञानं विनिर्दहंस्तां च हित्वा मुक्त्वा मुक्तबन्धना तस्थावित्यन्वयः । मनोमूलो हि संसारः । मनश्चान्नमयम्-'अन्नमयं हि सोम्य मनः' इति श्रुतेः । अतोऽन्नशब्दवाच्यायां पृथिव्यां मनो धारयन्नेकीकुर्वन् श्नोपृथिवीमद्भिरेकीकुर्वन, अपस्तेजसा, तत्तेजोऽनिलेन । तं च खे आकाशे, तच्च भूतादावहंकारे, तं च भूतादिमहंकारं महात्मनि महत्तत्वे तस्मिविषयाकारं व्यावर्त्य ज्ञानकलां ज्ञानांशमात्मत्वेन ध्यात्वा तया ध्यानवृत्तिरूपयात्मावरकमज्ञानं विनिर्दहन् ।।२४-२६।।

भाव प्रकाशिका

आगे विश्वामित्र के आख्यन के प्रसङ्ग में अविहतां गतिं ज्ञानम् अर्थात् कभी भी नहीं विनष्ट होने वाला ज्ञान। उसी ज्ञान को डेढ श्लोक से बतलाते हैं । मन को पृथिवी में ज्ञान कला का ध्यान करके उस ज्ञान कला से अज्ञान का नाश करे । उसको त्याग कर वह मुक्त बन्धन हो गया इस तरह से अन्वय है । यह संसार मनो मूलक है। और मन अन्नमय है । श्रुति कहती है **अन्नमयं हि सोम्यमनः** अर्थात् हे सोम्य ! मन अन्नमय है । अतएव अन्न शब्द से कही जाने वाली पृथिवी में मन को मिला दे । मन और पृथिवी को जल में मिला दे, जल को तेज में मिला दे और तेज को वायु में लीन करे, वायु को आकाश में लीन करें, आकाश को अहंकार में लीन करे । अहंकार को महत् तत्त्व में लीन करे । उसमें विषयाकार ज्ञान को ज्ञान को अलग करके ज्ञानांश का आत्मा रूप से ध्यान करके ध्यान की वृत्ति के द्वारा आत्मा को ढँक देने वाले अज्ञान को भस्म कर दे ।।२४-२६।।

हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाणसुखसंविदा । अनिर्देश्याप्रतर्क्येण तस्थौ विध्वस्तबन्धनः ।।२७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

अन्वयः— निर्वाणसुखसंविदा स्वेन भावेन तां हित्वा अनिर्देश्या प्रतर्क्येण विध्वस्तबन्धनः तस्थौ ।।२७।।

अनुवाद— उसके पश्चात् निर्वाण सुख की अनुभूति से उस ज्ञान कला का भी परित्याग करके जिसको न तो बतलाया ही जा सकता है और न जिसके विषय में किसी प्रकार का अनुमान ही किया जा सकता है उस अपने स्वरूप में स्थित हो गये ।।२७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के हरिश्चन्द्रोपाख्यान नामक सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

भावार्थ दीपिका

निर्वाणसुखसंविदा तां च हित्वा मुक्तबन्धः सन्ननिर्देश्येनाप्रतर्क्येण स्वेन भावेन स्वस्वरूपेण तस्थौ ।।२७।।

इति श्रीमद्भागवमते महापुरणे नवमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

निर्वाण सुख की अनुभूति के द्वारा उस ज्ञान कला का त्याग करके बन्धन मुक्त होकर जिसका न तो निर्देश किया जा सकता है और न तो किसी तरह से अनुमान ही किया जा सकता है उस अपने स्वरूप में स्थित हो गये।।२७।।

इस तरह श्रीमद्भागवते महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के सातवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।७।।

आठवाँ अध्याय

सगर चरित्र

श्रीशुक उवाच

हरितो रोहितसुतश्चम्पस्तस्माद्विनिर्मिता । चम्पापुरी सुदेवोऽतो विजयो यस्य चात्मजः ॥१॥

अन्वयः रोहित सुतः हरितः तस्मात् चम्पः येन चम्पापुरी विनिर्मिता अतः सुदेवः यस्य चात्मजः विजयः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद - रोहित का पुत्र हरित हुआ, उसका पुत्र चम्प हुआ जिसने चम्पापुरी का निर्माण किया । चम्प के पुत्र सुदेव हुए और उनके पुत्र विजय हुए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टमे रोहितस्योक्तो वंशो यत्राभवन्नृपः । सगरः कपिलाक्षेपान्निर्दग्धा यस्य सूनवः । चम्पस्तस्मादभूत् । येन चम्पापुरी निर्मिता । अतश्चम्पात्सुदेवः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

आठवें अध्याय में रोहित के वंश का वर्णन किया गया है । इसी वंश में सगर हुए महर्षि कपिल के प्रति आक्षेप के कारण राजा सगर के पुत्र भस्म हो गये ॥१॥

भरुकस्तत्सुतस्तस्माद्वृकस्तस्यापि बाहुकः । सोऽरिभिर्हृतभू राजा सभार्यो वनमाविशत् ॥२॥

अन्वयः— तत्सुतः भरुकः तस्मात् वृकः, तस्यापि बाहुकः अरिभिः हृतभूः सः राजा सभार्यः वनम् आविशत् ॥२॥

अनुवाद— विजय के पुत्र भरुक हुए उनके पुत्र वृक हुए वृक के पुत्र बाहुक हुए शत्रुओं ने बाहुक से राज्य छिन लिए अतएव राजा बाहुक अपनी पत्नी के साथ वन में चले गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

हृता भूर्यस्य ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उनके राज्य को छिन लिया ॥२॥

वृद्धं तं पञ्चतां प्राप्तं महिष्यनुमरिष्यती । और्वेण जानतात्मानं प्रजावन्तं निवारिता ॥३॥

अन्वयः— वृद्धं पंचाताप्राप्तं तं अनुमरिष्यती महिपी, आत्मानं प्रजावन्तं जानता और्वेण निवारिता ॥३॥

अनुवाद— वृद्ध राजा की मृत्यु होने से उनकी रानी भी सती होकर मर जाना चाही, किन्तु महर्षि और्व जानते थे कि वह गर्भवती है, इसलिए उन्होंने उसे सती होने से रोक दिया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

और्वेण ऋषिणा । आत्मानं देहम् । प्रजावन्तं सगर्भम् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

और्व महर्षि के द्वारा । आत्मानम् अर्थात् शरीर को । प्रजावन्तम् गर्भयुक्त ।।३।।

आज्ञायास्यै सपत्नीभिर्गरो दत्तोऽन्धसा सह । सह तेनैव संजातः सगराख्यो महायशाः ।।४।।

अन्वयः— आज्ञाय सपत्नीभिः अस्यै अन्धसा सह गरः दतः तेनैव सह संजात सगराख्यः महायशाः ।।४।।

अनुवाद— रानी के गर्भवती होने की बात को जानकर उसकी सौतों ने उसको भोजन के साथ मिलाकर विष दे दिया, किन्तु गर्भ पर उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ बल्कि उस विष को लिए हुए पैदा हुआ । गर (विष) के साथ पैदा होने के कारण उस महायशस्वी का नाम सगर हुआ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

गरो विषम् । तेन गरेण सहैव जातः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

गर अर्थात् विष । विष के साथ उत्पन्न होने के कारण उसका नाम सगर हुआ ।।४।।

सगरश्चक्रवर्त्यासीत्सागरो यत्सुतैः कृतः । यस्तालजङ्घान्यवनाञ्छकान्हैहयबर्बरान् ।।५।।
नावधीद्गुरुवाक्येन चक्रे विकृतवेषिणः । मुण्डान् श्मश्रुधरान्कांश्चिन्मुक्तकेशार्धमुण्डितान् ।।६।।

अन्वयः— सगरः चक्रवर्ती आसीत् यत् सुतैः सगरः कृतः । यः तालजङ्घान् यवनान् शकान् हैहयवर्वरान् गुरुवाक्येन, न अवधीत विकृतवेषिणः कांश्चित् मुण्डान् श्मश्रुधरान् मुक्तकेशार्धमूण्डितान् चक्रे ।।५-६।।

अनुवाद— राजा सगर चक्रवती थे, उनके पुत्रों ने ही सागर का निर्माण किया । उन्होंने अपने गुरुदेव और्व के कहने से ताल जङ्घों, यवनों, शकों, हैहयों तथा बर्वरों को नहीं मारकर विकृत वेष वाला बना दिया । किसी का सिर मुंडा दिया, किसी की दाढ़ी मूंछ बढावा दिया, किसी का केश खोलवा दिया तथा किसी को अर्ध मुण्डित करवा दिया ।।५-६।।

भावार्थ दीपिका

गुरुवाक्येनौर्ववचनेन । कांश्चिदहत्वैव विकृतवेषिणश्चक्रे । तदेवाह-मुण्डानिति । मुक्तकेशानर्धमुण्डितांश्च ।।५-६।।

भाव प्रकाशिका

अपने गुरुदेव और्व के कहने से । कुछों को नहीं मारकर विकृत वेष वाला बना दिए । उसी का मुण्डन इत्यादि से कहते हैं । मुक्त केश तथा अर्ध मुण्डित करवा दिए ।।५-६।।

अनन्तर्वाससः कांश्चिदबहिर्वाससोऽपरान् । सोऽश्वमेधैरयजत सर्ववेदसुरात्मकम् ।।७।।
और्वोपदिष्टयोगेन हरिमात्मानमीश्वरम् । तस्योत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहाराश्वं पुरन्दरः ।।८।।

अन्वयः— कांश्चित्अनन्तर्वाससः कांश्चिद् अपरान् बहिर्वाससः । और्वोपदिष्ट योगेन सः अश्वमेधैः सर्ववेदसुरात्मकम् आत्मानम् ईश्वरम् हरिम् अयजत् । तस्य यज्ञ उत्सृष्टं पशुः अश्वं पुरन्दरः जहार ।।७-८।।

अनुवाद— कुछ लोगों को सगर ने वस्त्र केवल ओढने की ही आज्ञा दी और कुछ लोगों को केवल लंगोटी पहनने की औढने की नहीं । उसके पश्चात् राजा सगर ने और्व ऋषि की आज्ञा के अनुसार अश्वमेध यज्ञों के द्वारा सम्पूर्ण वेदमय तथा देवमय आत्मा स्वरूप परमात्मा श्रीहरि की आराधना की । उनके यज्ञ में छोड़े गये अश्व को इन्द्र ने चुरा लिया ।।७-८।।

भावार्थ दीपिका

और्वेणोपदिष्टो योग उपायस्तेन ।।८।।

भाव प्रकाशिका

और्वमहर्षि के द्वारा उपदिष्ट उपाय के द्वारा ।।७-८।।

सुमत्यास्तनया दृप्ताः पितुरादेशकारिणः । हयमन्वेषमाणास्ते समन्तान्न्यखनन्महीम् ।।९।।

अन्वयः— सुमत्याः दृप्ता पितुरादेशकारिणः तनयाः हयम् अन्वेषमाणा महीम् समन्तात् न्यखनन् ।।९।।

अनुवाद— राजा सगर की पत्नी सुमति के पुत्र गर्वीले थे तथा अपने पिता के आदेश का पालन करने वाले थे । वे अश्व का अन्वेषण करते हुए चारो ओर से पृथिवी को खोद डाले ।।९।।

भावार्थ दीपिका

तस्य द्वे भार्ये सुमतिः केशिनी च । तत्र सुमत्याः पुत्राणां प्रभावं मृत्युं चाह-सुमत्या इति षड्भिः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

राजा सगर की दो पत्नियाँ थी सुमति और केशिनी । सुमति के पुत्रों का प्रभाव और उनकी मृत्यु का वर्णन सुमत्या इत्यादि छह श्लोकों से किया गया है ।।९।।

प्रागुदीच्यां दिशि हयं ददृशुः कपिलान्तिके । एष वाजिहरश्चौर आस्ते मीलितलोचनः ।।१०।।

अन्वयः— प्रागुदीच्यं दिशि कपिलान्तके हयं ददशुः एष वाजिहरः चौरः मीलितलोचनः आस्ते ।।१०।।

अनुवाद— उन सबों ने ईशान कोण में महर्षि कपिल के सन्निकट अश्व को देखा और कहने लगे यही अश्व चुराने वाला चोर है आँखें बन्द किए बैठा है ।।१०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१०।।

हन्यतां हन्यतां पाप इति षष्टिसहस्त्रिणः । उदायुधा अभिययुरुन्मिमेष तदा मुनिः ।।११।।

अन्वयः— हन्यतां हन्यतां पापः इति वदन्तः षष्ठि सहस्त्रिणः उदायुधाः अभिययुः तदा मुनिः उन्मिमेष ।।११।।

अनुवाद— मार डालो ! मार डालो ! यह पापी है, इस तरह से कहते हुए साठ हजार सगर के पुत्र आयुध उठाये हुए महर्षि के सामने आये उस समय मुनि ने अपनी आँखें खोली ।।११।।

भावार्थ दीपिका

एष वाजिहर इति ब्रुवन्तोऽभिययुः । षष्टिसहस्राणि परिच्छेदकतया सन्ति येषाम् । उन्मिमेष लोचनोन्मीलनं चकार।।११।।

भाव प्रकाशिका

यही अश्व चुराने वाला है इस तरह से कहते हुए महर्षि के समक्ष आये उन सबों की संख्या साठ हजार थी । उन्मिमेष अर्थात् अपनी आँखें खोली ।।११।।

स्वशरीराग्निना तावन्महेन्द्रहृतचेतसः । महद्यवातिक्रमहता भस्मसादभवन्क्षणात् ।।१२।।

अन्वयः— महेन्द्रहृतचेतसः महद्व्यतिक्रमहता स्वशरीराग्निना तावत् क्षणात् भस्मासात् अभवन् ।।१२।।

अनुवाद— इन्द्र के द्वारा उनकी बुद्धि हर लिए जाने के कारण महर्षि कपिल जैसे महापुरुष का तिरस्कार करने से उनके ही शरीर में विद्यमान् अग्नि जल उठी और क्षण भर में जलकर भस्म हो गये ।।१२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१२।।

न साधुवादो मुनिकोपभर्जिता नृपेन्द्रपुत्रा इति सत्त्वधामनि ।
कथं तमो रोषमयं विभाव्यते जगत्पवित्रात्मनि खे रजो भुवः ॥१३॥

अन्वयः— नृपेन्द्र पुत्राः मुनिकोप भर्जिता इति साधुवादोन जगत्पवित्रात्मनि सत्त्वधामनि रोषमयं तमः कथं विभाव्यते खे रजो भुवः ॥१३॥

अनुवाद— राजा सगर के पुत्र महर्षि कपिल के क्रोध से भस्म हो गये यह कहना ठीक नहीं है । जगत् को पवित्र करने वाली उनकी आत्मा है । वे सत्त्व गुण के आश्रय हैं । उनमें क्रोध रूप तमोगुण कैसे आ सकता है कहीं पृथिवी की धूल का संवन्ध आकाश से होता है क्या ?॥१३॥

भावार्थ दीपिका

केचित्तु कपिलस्य कोपाग्निना दग्धा इति वर्णयन्ति तन्निराकरोति-नेति । कुत इत्यत आह सत्त्वधामनि शुद्धसत्त्वमूर्तौ। जगतः पवित्रः शुद्धिकर आत्मा यस्य तस्मिन्कथं विभाव्यते संभाव्यते । असंभावनायां दृष्टान्तः-भुवो रजः खे कथं संभाव्यते इति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

कुछ लोगों का कहना है कि महर्षि कपिल के क्रोध से वे दग्ध हो गये । उनका खण्डन करते हुए शुकदेवजी कहते हैं यह कैसे सम्भव है ? शुद्ध सत्त्वगुण सम्पन्न तथा जगत् को पवित्र बनाने वाली आत्मा वाले महर्षि में क्रोध रूप तमोगुण कैसे सम्भव है ? असंभावना का दृष्टान्त वतलाते हैं । पृथिवी की धूल आकाश में कैसे संसक्त हो सकता है ॥१३॥

यस्येरिता सांख्यमयी दृढेह नौर्यया मुमुक्षुस्तरते दुरत्ययम् ।
भवार्णवं मृत्युपथं विपश्चितः परात्मभूतस्य कथं पृथङ्मतिः ॥१४॥

अन्वयः— यस्य ईरिता इह सांख्यमयी दृढानौः यया विपश्चितः मुमुक्षुः मृत्यु पथं दुरत्ययं भवार्णवं तरते परात्मभूतस्य पृथङ्मतिः कथम् ॥१४॥

अनुवाद— उनके द्वारा सांख्य दर्शन रूप सुदृढ नौका है, जिसके सहारे ज्ञानी मुमुक्षु पुरुष, मृत्यु मार्ग स्वरूप जिसको पार करना वड़ा ही कठिन है उस संसार सागर को वड़ी आसानी से पार कर जाते हैं । वे केवल ज्ञानी पुरुष ही नहीं अपितु परमात्मा हैं, उनमें यह भेद वुद्धि कैसे हो सकती है ?॥१४॥

भावार्थ दीपिका

किंच यस्य येनेरिता प्रवर्तिता तस्य विपश्चितः सर्वज्ञस्य कथं पृथङ्मतिररिमित्रादिभेददृष्टिः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

येनेरिता अर्थात् जिनके द्वारा प्रवर्तित । उन ज्ञानी सर्वज्ञ महर्षि की शत्रु तथा मित्र विषयिणी बुद्धि कैसे हो सकती है ?॥१५॥

योऽसमञ्जस इत्युक्तः स केशिन्या नृपात्मजः । तस्य पुत्रोंऽशुमान्नाम पितामहहिते रतः ॥१५॥

अन्वयः— यः केशिन्या नृपात्मजः असमञ्जस इत्युक्तः तत्र पुत्रोंशुमान् नाम सः पितामहहितेरतः ॥१५॥

अनुवाद— राजा सगर की दूसरी पत्नी के नाम केशिनी था उसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र का नाम असमञ्जस था । उसके पुत्र का नाम अंशुमान था वह अपने पितामह की ही सेवा में लगा रहता था ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं सुमत्याः पुत्रेषु मृतेषु केशिन्याः पौत्रेणाश्वः समानीतः पितृव्योद्धरणप्रयत्नश्च कृत इति दर्शयितुमाह-योऽसमञ्जस

इत्युक्तः केवलमज्ञैः, वस्तुतस्तु समञ्जस एव । स तु केशिन्याः सुतः । क्षेत्रजत्वमिव प्रतीतं वारयति-तस्यैव नृपस्यात्मनो देहाज्जातः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह सुमति के पुत्रों के मर जाने पर केशिनी के पौत्र अंशुमान अश्व को लाया और अपने चाचाओं के उद्धार का प्रयत्न भी किया इस बात को कहने के लिए **योऽसमञ्जस० इत्यादि** श्लोक को कहा गया है । जिसको असमञ्जस केवल मूर्खों ने ही कहा है वस्तुतः वह समञ्जस था । वह केशिनी का पुत्र था । केशिन्याः कहने से वह क्षेत्रज जैसा प्रतीत होता है । उसका वरण करने के लिए नृपात्मजः कहा गया है । अर्थात् वह राजा सगर के शरीर से ही उत्पन्न हुआ था ॥१५॥

असमञ्जस आत्मानं दर्शयन्नसमञ्जसम् । जातिस्मरः पुरा सङ्गाद्योगी योगाद्विचालितः ॥१६॥
आचरनगर्हितं लोके ज्ञातीनां कर्म विप्रियम् । सरय्वां क्रीडतो बालान्प्रास्यदुद्वेजयदञ्जनम्॥१७॥

अन्वयः— असमञ्जसः आत्मानं असमञ्ज सदर्शयन् जातिस्मरः पुरा योगी सङ्गात् योगाद्विचालितः । लोके ज्ञातीनां विप्रयं गर्हितं कर्म आचरन् क्रीडतो बालान् जनम् उद्वेजयन् सरय्वां प्रास्यत् ॥१६-१७॥

अनुवाद— असमञ्जस अपने को लोक विपरीत रूप से इसलिए दिखलाते थे कि उनको अपने पूर्वजन्म की यादगारी बनी रहती थी वे पूर्व जन्म में योगी थे और सङ्ग के ही कारण योग मार्ग से विचलित हो गये थे। सङ्ग से बचने के लिए वे लोक में अपने बान्धवों के अप्रिय कार्य को तथा निन्दित कर्म को करते रहते थे । लोगों को उद्विग्न करने के लिए खेलने वाले बालकों को सरयू में डाल देते थे ॥१६-१७॥

भावार्थ दीपिका

तस्य कथामाह चतुर्भिः- असमञ्जसः पुरा पूर्वजन्मनि योगी सन्सङ्गाद्धेतोर्योगाद्विचालितोऽत इदानीं जातिस्मरः सन्सङ्गपरिहाराय जनमुद्वेजयन् । लोकगर्हितं ज्ञातीनां च विप्रियं कर्माचरन् क्रीडतो बालान्सरय्वां प्रास्यत्प्राक्षिपदिति द्वयोरन्वयः ॥१६-१७॥

भाव प्रकाशिका

असमञ्जस की कथा चार श्लोकों में कहते हैं- असमञ्जस पूर्व जन्म में योगी थे वे आसक्ति के ही कारण योगमार्ग से विचलित हो गये थे । इस जन्म में वे जातिस्मर थे । अर्थात् उनको पूर्वजन्म की यादगारी थी । आसक्ति से बचने के लिए वे लोगों को उद्विग्न करते हुए अपने बान्धवों के अप्रिय कार्य को करते थे । खेलते हुए बालकों को सरयू में फेंक देते थे । इस तरह दोनों श्लोकों का अन्वय है ॥१६-१७॥

एवंवृत्तः परित्यक्तः पित्रा स्नेहमपोह्य वै । योगैश्वर्येण बालांस्तान्दर्शयित्वा ततो ययौ ॥१८॥

अन्वयः— एवं वृत्तः वै पित्रा स्नेहम् अपोह्य परित्यक्तः योगैश्वर्येण तान् बालान् दर्शयित्वा ततः ययौ ॥१८॥

अनुवाद— इस तरह के आचरण वाले उनके प्रति पिता ने स्नेह का परित्या गकर के उनका भी परित्याग कर दिया । अपने योग के बल से उन सभी बालकों को जीवित करके वे वन में चले गये ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

एवंविधं वृत्तं कर्म यस्य सः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के कर्म करने वाले ॥१८॥

अयोध्यावासिनः सर्वे बालकान्पुनरागतान् । दृष्ट्वा विसिस्मिरे राजन्राजा चाप्यन्वतप्यत ॥१९॥

अन्वयः— राजन् सर्वे अयोध्यावासिनः पुनः आगतान् बालकान् दृष्ट्वा विसिस्मिरे, राजा अपि च अन्वतप्यत ॥१९॥

अनुवाद— परीक्षित् सभी अयोध्यावासी आये हुए बालकों को देखकर अत्यन्त आश्चर्यित हुए और राजा भी अपने किए हुए पर पछताए ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

अंशुमांश्चोदितो राज्ञा तुरङ्गान्वेषणे ययौ । पितृव्यखातानुपथं भस्मान्ति ददृशे हयम् ॥२०॥

अन्वयः— राजा चोदितः अंशमान् तुंरगान्षेषणे पितृव्यखातानुपथं ययौ भस्मन्ति हयम् ददृशे ॥२०॥

अनुवाद— राजा सगर के द्वारा प्रेरित अंशुमान् अपने चाचाओं के द्वारा खोदे गये मार्ग से अश्व को खोजने के लिए गये । उन्होंने भस्म के सन्निकट अश्व को देखा ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

पितृव्यखातमनु यः पन्थास्तं ययौ । भस्मन्ति भस्मसमीपे ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

पितृव्यों द्वारा खादे गये खात का अनुसरण करने वाले मार्ग से गये । भस्म के सन्निकट में अश्व को देखे॥२०॥

तत्रासीनं मुनिं वीक्ष्य कपिलाख्यमधोक्षजम् । अस्तौत्समाहितमनाः प्राञ्जलिः प्रणतो महान् ॥२१॥

अन्वयः— तत्र अधोक्षजम् कपिलाख्यं मुनिं आसीनं वीक्ष्य महान् प्रणतः समाहितमनाः अस्तौत् ॥२१॥

अनुवाद— वहाँ पर भगवान् के अवतार कपिलमुनि को बैठे हुए देखकर उदार हदय अंशुमान् उनको प्रणाम किए और एकाग्रचित्त से उनकी स्तुति किए ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

अंशुमानुवाच

न पश्यति त्वां परमात्मनोऽजनो न बुध्यतेऽद्यापि समाधियुक्तिभिः ।
कुतोऽपरे तस्य मनः शरीरधीविसर्गसृष्टा वयमप्रकाशाः ॥२२॥

अन्वयः— अजनः आत्मनः परम त्वाम् अद्यापि न पश्यति नसमाधि युक्तिभिः बुध्येत । तस्य मनः शरीरधी विसर्गसृष्टाः अपरे कुतः तत्रापि अप्रकाशा वयम् कुतः ?

अंशुमान ने कहा

अनुवाद— ब्रह्माजी भी अपने से श्रेष्ठ आपको आज भी प्रत्यक्ष नहीं देख पाते हैं । समाधि तथा युक्तियों के द्वारा भी वे आपको नहीं जान पाते हैं । हमलोग तो उनके मन बुद्धि तथा शरीर से होने वाली सृष्टि से बने अज्ञानी जीव हैं अतएव आप को मैं कैसे जान सकता हूँ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

'अजानन्तोऽवजानन्तोऽप्यनुकम्प्या वयं त्विति । तुष्टाव षड्भिरीशानमंशुमानेवमाशयः' इति । अजनोऽजो ब्रह्मापि त्वामद्यापि न पश्यति न च बुध्यते । कथंभूतम् । आत्मनः स्वस्मात्परं परमेश्वरम् । कैर्हेतुभिः । समाधियुक्तिभिः । समाधिनाऽप्यपरोक्षं न पश्यति । युक्तिभिः परोक्षमपि सम्यङ्न बुध्यत इत्यर्थः । अपरेऽर्वाचीनास्तु कुतस्त्वां पश्येयुः । अर्वाचीनत्वे हेतुः-तस्य ब्रह्मणो मनश्च शरीरं च धीश्च सत्त्वतमोरजःकार्याणि ताभिर्ये विविधा देवतिर्यङ्नराणां सर्गास्तेषु सृष्टास्तत्रापि वयमप्रकाशा अज्ञाः कुतः पश्येमेत्यर्थः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

आपको नहीं जानने के कारण यदि किसी प्रकार का हमलोगों से आपका अपमान हो जाय तो भी हम आपके कृपा के ही पात्र हैं इसी अभिप्राय से अंशुमान ने छह श्लोकों से महर्षि कपिल की स्तुति की । ब्रह्माजी भी अपने से परे आपको आज भी नहीं देख पाते है । और समाधि तथा युक्तियों के द्वारा जान भी नहीं पाते हैं । ऐसी स्थिति में उनकी शरीर, इन्द्रिय मन और बुद्धि से रचित शरीर वाले तथा सत्वरजः तथा तमोगुण के कार्यभूत देव मनुष्य तिर्यक् सृष्टि के अज्ञानी जीव आपको कैस जान सकते हैं ?॥२२॥

ये देहभाजस्त्रिगुणप्रधाना गुणान्विपश्यन्त्युत वा तमश्च ।
यन्मायया मोहितचेतसस्ते विदुः स्वसंस्थं न बहिः प्रकाशाः ॥२३॥

अन्वयः— ये देहभाजः त्रिगुणप्रधानाः ते गुणान् विपश्यन्ति उत तमश्च यन्मायया मोहित चेतसः ते बहिप्रकाशाः स्वसंस्थं न विदुः ॥२३॥

अनुवाद— शरीरधारी संसारी जीव त्रिगुण प्रधान हैं वे जाग्रत एवं स्वप्न अवस्थाओं के गुणमय पदार्थों और विषयों को देखते हैं । सुषुप्ति की अवस्थाओं में वे केवल अज्ञान ही अज्ञान देखते है । आपकी माया से मोहित होकर वे बहिर्मुख हो गये हैं और बाहर की ही वस्तुओं को देखते हैं अपने हृदय में स्थित आपको नहीं देख पाते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

अपरे तर्हि किं पश्यन्ति तदाह-ये देहभाजस्ते स्वस्मिन्सम्यक् स्थितमपि त्वां न विदुः, किंतु गुणानेव विपश्यन्ति । अथवा न गुणानपि तु तम एव पश्यन्ति । यतस्त्रिगुणा बुद्धिरेव प्रधानं येषाम्, अतो बहिरेव प्रकाशो ज्ञानं येषाम् । बुद्धिपरतन्त्रतया जाग्रत्स्वप्नयोर्विषयान्पश्यन्ति, सुषुप्तौ तम एव केवलं नतु निर्गुणं त्वाम् । सर्वत्र हेतुः-यद्यतः, यस्य तव माययेति वा मोहितं चेतो येषां ते ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

तो फिर दूसरे क्या देखते हैं ? इस पर कहते हैं जो शरीरधारी जीव हैं वे अपने हृदय में सम्यक्तया स्थित भी आपको नहीं देख पाते हैं । अपितु वे गुणों को ही देखते हैं । अथवा गुणों को नहीं अपितु तमस् को ही देखते हैं । क्योंकि उनमें तीनों गुणों से युक्त बुद्धि ही प्रधान है । अतएव वे बाह्य वस्तुओं को ही देख पाते हैं । बुद्धि के पराधीन होने के कारण वे जाग्रत् कालीन एवं स्वप्न कालीन ही विषयों को देखते हैं । सुषुप्ति में तो वे केवल अज्ञान ही अज्ञान को देखते हैं आपको नहीं देख पाते हैं । उसका कारण है कि वे आपकी माया से मोहित हैं।॥२३॥

तं त्वामहं ज्ञानघनं स्वभावप्रध्वस्तमायागुणभेदमोहैः ।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यं कथं हि मूढः परिभावयामि ॥२४॥

अन्वयः— ज्ञानं धनं स्वभावप्रध्वस्त माया गुण भेदमोहैः सनन्दनाद्यैः मुनिभिः विभाव्यं त्वां मूढः अहं कथं परिभावयामि।॥२४॥

अनुवाद— आप एक मात्र ज्ञान घन है, जिन लोगों ने आत्मा के स्वरूप का अनुभव करने से माया के गुणों के कारण होने वाले भेद भाव को तथा उसके कारण होने वाले अज्ञान को नष्ट कर चुके हैं उन सनन्दन आदि मुनियों द्वारा विचार करने योग्य आपका विचार मैं कैसे कर सकता हूँ क्योंकि मैं तो अज्ञानी जीव हूँ ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तथाप्यहं विचारेण ज्ञास्यामीति चेत्तत्राह-तं त्वामहं विमूढः कथं परिभावयामि विचारयामि । कथंभूतम् । ज्ञानघनं

शुद्धज्ञानमूर्तिम् । स्वत एव प्रध्वस्तौ मायागुणनिमित्तौ भेदमोहौ येषां तैर्विभाव्यं विचिन्त्यम् । अयं भावः ज्ञानघनत्वान्न तावज्ज्ञानविषयत्वं विचारविषयत्वेऽपि मायागुणैरभिभूतोऽहं न विचारे समर्थ इति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

ऐसा भी नहीं है कि मैं आपको विचार के द्वारा जान पाऊँगा, क्योंकि मैं तो अत्यन्त अज्ञानी हूँ विचार करने में समर्थ नहीं हूँ आपका विचार कैसे कर सकता हूँ ? क्योंकि आप तो शुद्ध ज्ञानमूर्ति हैं । आपका विचार तो वे सनन्दनादि महर्षिगण ही कर सकते हैं जिन लोगों ने माया के गुणों और उसके कारण होने वाले भेदमोह को विनष्ट कर चुके हैं । उन लोगों के द्वारा ही आप विचारणीय हैं । कहने का अभिप्राय है कि आप ज्ञान के विषय इसलिए नहीं कि आप एक मात्र ज्ञानघन स्वरूप हैं । यद्यपि आप विचार के विपय हैं । किन्तु माया के गुणों से अभिभूत होने के कारण मैं आपका विचार करने में समर्थ भी नहीं हूँ ॥२४॥

प्रशान्त मायागुणकर्मलिङ्गमनामरूपं सदसद्विमुक्तम् ।
ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं नमाम हे त्वां पुरुषं पुराणम् ॥२५॥

अन्वयः— हे प्रशान्त मायागुणकर्मलिङ्गम् अनामरूपं सदसद्विमुक्तम् । ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहम् पुराणं पुरुषं त्वां नमाम ॥२५॥

अनुवाद— हे प्रशान्त ! माया उसके गुण और गुणों के कारण होने वाले कर्म कर्मों के संस्कार से वना हुआ लिङ्ग शरीर आप में नहीं है, आप नाम एवं रूप से रहित हैं । आप कार्य एवं कारण दोनों से रहित हैं, आप इस शरीर को ज्ञानोपदेश करने के लिए धारण किए हुए है, इस प्रकार के पुराण पुरुष आपको हम नमन करते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

हे प्रशान्त, तस्मात्त्वां पुरुषं पुराणं केवलं नमामेत्यन्वयः । पुराणपुरुषत्वे हेतुः-मायायाः गुणाः, कर्माणि च विश्वसृष्ट्यादीनि, लिङ्गानि च ब्रह्मादिरूपाणि यस्य तम् । प्रशान्तत्वे हेतुः-सदसद्भ्यां कार्यकारणाभ्यां पुण्यपापाभ्यां वा विमुक्तम् । अतोऽनामरूपं तत्तत्कृतनामरूपशून्यं, किंतु ज्ञानोपदेशाय गृहीतः प्रकटितो देहः शुद्धसत्त्वमूर्तियेन तम् । यद्वा हे प्रशान्तमायेति हे अगुणेति च संवोध्य कर्मभिः सृष्ट्यादिकार्यैर्लिङ्गानि यस्येति योज्यम् । यद्वा प्रशान्ता मायागुणादयो यस्मिन्नित्येकमेव पदम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

हे प्रशान्त अर्थात् षडूर्मियों से रहित होने के कारण पुराण पुरुष आपको हम केवल नमस्कार करते हैं । आपके पुराण पुरुष होने का कारण यह है कि माया के गुण उन सबों के कारण होने वाले विश्वसृष्टि आदि कर्म तथा ब्रह्मा इत्यादि लिङ्ग ये सब आपमें नहीं है । आप प्रशान्त इसलिए हैं कि कार्य-कारण अथवा पुण्य पाप से रहित हैं । उसी के कारण आप नाम तथा रूप से रहित हैं । आप ज्ञानोपदेश करने के लिए शुद्ध सत्त्वमय शरीर को प्रकट किए हैं । अथवा हे प्रशान्तमाय, हे अगुण ! इस तरह से संबोधन करके सृष्टि आदि कार्यों के कारण होने वाले लिङ्ग शरीर से रहित आप हैं इस तरह से योजना की जा सकती है । अथवा जिसमें माया इत्यादि के गुण आदि शान्त हो गये हैं इस तरह से एक ही पद मानना चाहिए ॥२५॥

त्वन्मायारचितेलोके वस्तुबुद्ध्या गृहादिषु । भ्रमन्ति कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रान्तचेतसः ॥२६॥

अन्वयः— त्वन्मायारचिते लोके कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रान्त चेतसः वस्तु बुद्ध्या गृहादिषु भ्रमन्ति ॥२६॥

अनुवाद— हे प्रभो यह संसार आपकी माया की रचना है, इसी को सत्य समझकर काम लोभ ईर्ष्या और मोह लोगों का चित्त शरीर तथा गृह आदि में भटकता रहता है । अतएव वे इसी में फँस जाते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

स्वभाग्यं श्लाघते-त्वन्मायेति द्वाभ्याम् । कामादिभिर्विभ्रान्तानि चेतांसि येषां ते इमे सर्वे गृहादिषु भ्रमन्ति ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

त्वमाया० इत्यादि दो श्लोकों से अंशुमान अपने भाग्य की सराहना करते हैं । काम इत्यादि के कारण जिनका चित्त भ्रान्त हो गया है ऐसे संसारी जीव इन गृह एवं शरीर आदि के मोह में भटकते रहते हैं ।।२६।।

अद्य नः सर्वभूतात्मन् कामकर्मेन्द्रियाशयः । मोहपाशो दृढश्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात् ।।२७।।

अन्वयः— हे सर्वभूतात्मन् भगवन् अद्य तव दर्शनात् नः काम्यकर्मेन्द्रियाशय; दृढः मोहपाशः छिन्नः ।।२७।।

अनुवाद— हे सभी भूतों की आत्मा प्रभो हे भगवन् आज अपका दर्शन प्राप्त हो जाने के कारण काम, कर्म और इन्द्रियों को जीवित रखने वाली मोह की सुदृढ फँसी कट गयी है ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

हे सर्वभूतात्मन् नोऽस्माकं त्वत्कृपयैव घटितात्त्वद्दर्शनादतिदृढोऽपि मोहमयः पाशश्छिन्नः । कथंभूतः-कामादीनामाशय आश्रयः । त्वत्प्रसादेन कृतार्थोऽस्मीत्यर्थः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

हे समस्त जीवों की आत्मा स्वरूप भगवन् आपकी कृपा से ही सम्पन्न आपका दर्शन मिल जाने से हमारा अत्यन्त सुदृढ मोहमय पाश (फाँसी) कट गया यही काम इत्यादि का आश्रय है । अतएव मैं अपकी ही कृपा से कृतार्थ हो गया हूँ ।।२७।।

श्रीशुक उवाच

इत्थं गीतानुभावस्तं भगवान्कपिलो मुनिः । अंशुमन्तमुवाचेदमनुगृह्य धिया नृप ।।२८।।

अन्वयः— हे नृप इत्थं गीतानुभावः भगवान् कपिलः मुनिः तम् अंशुमन्तं धिया अनुगृह्य इदमुवा च ।।२८।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! जब अंशुमान ने कपिल मुनि के प्रभाव का इस प्रकार से गान किया तो वे अशुंमान पर अत्यधिक अनुग्रह कर अंशुमान से कहे ।।२८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२८।।

श्रीभगवानुवाच

अश्वोऽयं नीयतां वत्स पितामहपशुस्तव । इमे च पितरो दग्धा गङ्गाम्भोऽर्हन्ति नेतरत् ।।२९।।

अन्वयः— वत्स ! अयं अश्वः तव पितामह पशुः नीयताम् । इमे चपितरः दग्धाः गङ्गाम्भः अर्हन्ति इतरत् न ।।२९।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— वत्स यह अश्व तुम्हरे पितामह का यज्ञ पशु है, इसे ले जाओ, ये तुम्हारा पितृगण दग्ध हो गये है इन सबों का उद्धार गङ्गा जल से ही होगा, दूसरे जल से नहीं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

अश्वं लब्ध्वापि साकाङ्क्षं प्रत्याह-इमे चेति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

अश्व को प्राप्त करके भी आकाङ्क्षा युक्त अंशुमान से कपिल महर्षि ने कहा ये तुम्हारे पितृगण हैं भस्म हो गये हैं, इन सबों का उद्धार गङ्गाजल से ही होगा दूसरे जल से नहीं ॥२९॥

तं परिक्रम्य शिरसा प्रसाद्य हयमानयत् । सगरस्तेन पशुना क्रतुशेषं समापयत् ॥३०॥

अन्वयः— तं परिकम्य शिरसा प्रसाद्य हयम् आनयत् सागरः तेन पशुना क्रतुशेषं समापयत् ॥३०॥

अनुवाद— अंशुमान महर्षि कपिल की परिक्रमा करके तथा उनको पसन्न करके अश्व को लेकर चले आये, सगर भी उस यज्ञ पशु से अश्वमेघ याग के अवशिष्ट कर्मों को पूरा किए ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तं परिक्रम्येति शुकोक्तिः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

तं परक्रम्य यह शुकदेवजी की उक्ति है ॥३०॥

राज्यमंशुमति न्यस्य निःस्पृहो मुक्तबन्धनः । और्वोपदिष्टमार्गेण लेभे गतिमनुत्तमाम् ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सगरोपाख्याने अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अन्वयः— अंशुमति राज्यं न्यस्य निःस्पृहः मुक्तबन्धनः और्वोपदिष्टमार्गेण अनुत्तमाम् गतिं लेभे ॥३१॥

अनुवाद— राजा सगर राज्य का भार अंशुमान को सौंपकर स्वयं विषयों से निःस्पृह होकर बन्धन मुक्त हो गये और औवोंपदिष्ट विधि से परमपद को प्राप्त कर लिए ॥३१॥

इस तरह श्रीमद्भागवतमहापुराण के नवें स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमे स्कन्धे भावार्थ दीपिकायांअष्टमोऽध्यायः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के आठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥८॥

* * *

नवाँ अध्याय

भगीरथ चरित्र और गङ्गावतरण

श्रीशुक उवाच

अंशुमांश्च तपस्तेपे गङ्गानयनकाम्यया । कालं महान्तं नाशक्नोत्ततः कालेन संस्थितः ॥१॥

अन्वयः— अंशुमान च गङ्गानयन काम्यया महान्तं कालंतपः तेपे न अश्क्नोत् ततः कालेन संस्थितः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— अंशुमान भी गङ्गाजी को लाने की कामना से बहुत समय तक तपस्या किए किन्तु नहीं ला सके । इसके पश्चात् समयानुसार उनकी मृत्यु हो गयी ॥१॥

भावार्थ दीपिका

नवमेंऽशुमतो वंशः खट्वाङ्गावधि वर्ण्यते । गङ्गां भूतलमानिन्ये यस्य पौत्रो भगीरथः । यथा सगरः पौत्राय राज्यं दत्त्वा **तपस्तेपे** तथांऽशुमांश्च स्वपुत्राय राज्यं दत्त्वा महान्तं कालं तपस्तेपे इति चकारस्यार्थः । नाशक्नोत्, गङ्गामानेतुमिति शेषः । **संस्थितो** मृतः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

नवें अध्याय में अंशुमान का खट्वाङ्ग पर्यन्त वंश वर्णित है । खट्वाङ्ग के ही पौत्र भगीरथ गङ्गाजी को **पृथिवी** पर लाए जैसे सगर अपने पौत्र अंशुमान को राज्य देकर तपस्या किए उसी तरह अंशुमान भी अपने **पुत्र को** राज्य देकर बहुत समय तक तपस्या किए यह **अंशुमांश्च** के चकार का अर्थ है । किन्तु वे गङ्गाजी को **ला नहीं** सके । उनके पश्चात् उनकी मृत्यु हो गयी ॥१॥

दिलीपस्तत्सुतस्तद्वदशक्तः कालमेयिवान् । भगीरथस्तस्य पुत्रस्तेपे स सुमहत्तपः ॥२॥

अन्वयः— तत् सुतः दिलीपः तद्वदशक्तः कालम् एयिवन् तस्यपुत्रः भगीरथः सुमहत्तपः तेपे ॥२॥

अनुवाद— अंशुमान के ही समान उनके पुत्र दिलीप गङ्गाजी को लाने में असमर्थ रहे और उनकी मृत्यु **हो** गयी । उनके पुत्र भगीरथ घोर तपस्या किए ॥२॥

भावार्थ दीपिका

कालं मृत्युमेयिवान्प्राप्तः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

मृत्यु हो गयी ॥२॥

दर्शयामास तं देवी प्रसन्ना वरदास्मि ते । इत्युक्तः स्वमभिप्रायं शशंसावनतो नृपः ॥३॥

अन्वयः— तं प्रसन्ना देवी दर्शयामास, ते वरदा अस्मि इत्युक्तः अवनतः नृपः एवम् अभिप्रायं शशंस ॥३॥

अनुवाद— प्रसन्न होकर गङ्गा देवी ने उनको दर्शन दिया और कहा कि मैं तुमको वरदान देने आयी हूँ। **उसके** पश्चात् राजा भगीरथ नम्रता पूर्वक अपना अभिप्राय प्रकट किए कि आप पृथिवी पर चलें ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तं प्रत्यात्मानं दर्शयामास । ते वरदास्मीति गङ्गयोक्तः सन्स्वमभिप्रायं पूर्वजोद्धरणं शशंस कथयामास ॥३॥

भाव प्रकाशिका

राजा भगीरथ को दर्शन दिया और कहा तुम्हे वरदान देने आयी हूँ, गङ्गाजी के कहने पर राजा भगीरथ अपने पूर्वजो का उद्धार रूप अभिप्राय बतलाया ॥३॥

कोऽपि धारयिता वेगं पतन्त्या मे महीतले । अन्यथा भूतलं भित्त्वा नृप यास्ये रसातलम् ॥४॥

अन्वयः— नृप महीतले पतन्त्या मे वेगं कोऽपि धारयिता अन्यथा भूतलंभित्वा रसातलं यास्ये ॥४॥

अनुवाद— गङ्गाजी ने कहा कि पृथिवी पर गिरते समय मेरे वेग को धारण करने वाला होना चाहिए नहीं तो पृथिवी को फोड़कर मैं रसातल में चली जाऊँगी ॥४॥

भावार्थ दीपिका

आह गङ्गा । कोऽपि गगनात्पतन्त्या मे वेगं धारयिता धारयिष्यति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

गङ्गाजी ने कहा आकाश से गिरती हुई मेरे वेग को धारण करने वाला होना चाहिए ॥४॥

किंचाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजन्त्यघाम् । मृजामि तदघं कुत्र राजंस्तत्र विचिन्त्यताम् ॥५॥

अन्वयः— किं च अहं भुवं न यास्ये नरा मयि अधम् मृजन्ति तत् अघं कुत्र मृजामि राजन् तत्र विचिन्त्यताम् ॥५॥

अनुवाद—दूसरी बात है कि मैं पृथिवी पर नहीं आऊँगी, क्योंकि मनुष्य मुझमे अपने पापों को धोयेंगे, उस पाप को मैं कहाँ धोऊँगी ? इस बात पर आप विचार करें ॥५॥

भावार्थ दीपिका

किंच आमृजन्ति क्षालयिष्यन्ति तत्रोपायो विचिन्त्यताम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

और लोग मुझमें अपने पापों को धोएँगें इसका भी उपाय आप सोचें ॥५॥

भगीरथ उवाच

साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः । हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात्तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥६॥

अन्वयः— न्यासिनः, शान्ताः ब्रह्मनिष्ठाः लोकपावना साधवः अङ्ग सङ्गात् ते अघं हरन्ति तेषु अघभिद् हरिः आस्ते॥६॥

राजा भगीरथ ने कहा

अनुवाद— जिन लोगों ने सम्पूर्ण आसक्तियों का परित्याग कर दिया है, ऐसा शान्त रहने वाले ब्रह्मनिष्ठ तथा संसार को पवित्र बनाने वाले साधुजन, अपने अङ्गो के स्पर्श मात्र से आपके पापों को हर लेंगे; क्योंकि उनके हृदय में पापों को विनष्ट करने वाले श्रीहरि का निवास है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

अघं हरन्ति हरिष्यन्ति । अघं भिनत्तीत्यघभित् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

अघं हरन्ति अर्थात् पाप को विनष्ट कर देंगे । पापों को विनष्ट करने वाले को अघभित् कहते हैं ॥६॥

धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणाम् । यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तन्तुषु ॥७॥

अन्वयः— शरीरिणाम् आत्मा रुद्रः ते वेगं धारयिष्यति यत्मिन् इदं विश्वं तन्तुषु शाटीव ओतं प्रोतं च ॥७॥

अनुवाद— शरीरधारियों की आत्मा रुद्र तुम्हारे वेग को धारण करेंगे जिस तरह तन्तुओं में साड़ी ओतप्रोत रहती है, उसी तरह रुद्र में ही यह सम्पूर्ण विश्व ओत-प्रोत है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

आत्मा कथंभूतः । यस्मिन्निदं विश्वमोतं ग्रथितमूर्ध्वतन्तुषु शाटीव पट इव । प्रोतं च तिर्यक् तन्तुषु पट इव । असौ सर्वाधारस्त्वद्वेगं धारयिष्यतीत्यर्थः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

रुद्र सभी शरीरधारियों के कैसे आत्मा है ? जिस तरह ऊपर के तन्तुआं में वस्त्र ओतप्रोत होता है उसी तरह रुद्र में सम्पूर्ण विश्व ओत-प्रोत है । सबों के आधार रुद्र ही आपके वेग को धारण करेंगे ॥७॥

इत्युक्त्वा स नृपो देवं तपसाऽतोषयच्छिवम् । कालेनाल्पीयसा राजंस्तस्येशः समतुष्यत ॥८॥

अन्वयः— इति उक्त्वा स नृपः देवं शिवं तपसा अतोषयत् । हे राजन् ! अल्पीयसा कालेन तस्य ईशः समतुष्यत॥८॥

अनुवाद— इस तरह से कह कर राजा भगीरथ शिवजी को प्रसन्न किए । थोड़े ही समय में शिवजी उन पर प्रसन्न हो गये ॥८॥

भावार्थ दीपिका

इत्येवं गङ्गामुक्त्वा । तच्छ्रुत्वेति पाठे श्रावयित्वेत्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से गङ्गाजी को कहकर । तच्छ्रुत्वा पाठ होने पर अर्थ होगा सुनाकर ॥८॥

तथेति राज्ञाभिहितं सर्वलोकहितः शिवः । दधारावहितो गङ्गां पादपूतजलां हरेः ॥९॥

अन्वयः— राज्ञा तथेति राज्ञा भिहितं सर्व लोकहितः शिवः हरेः पादपूतजलां गङ्गां अवहितः दधार॥९॥

अनुवाद— राजा के द्वारा कही हुई बात को स्वीकार करके सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करने वाले शिवजी श्रीहरि के चरणों के संस्पर्श से पवित्र जल वाली गङ्गाजी को उन्होंने सावधानी पूर्वक धारण किया ॥९॥

भावार्थ दीपिका

राज्ञाभिहितं तथेत्यङ्गीकृत्य । हरेः पादेन पूतं जलं यस्याः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

राजा की बात को स्वीकार करके श्रीहरि के चरण स्पर्श से पवित्र जल वाली गङ्गाजी को ॥९॥

भगीरथः स राजर्षिर्निन्ये भुवनपावनीम् । यत्र स्वपितॄणां देहा भस्मीभूताः स्म शेरते ॥१०॥

अन्वयः— स राजर्षिः भगीरथः भुवन पावनीं तत्र निन्य यत्र स्वपितॄणां देहाः भस्मीभूताः शेरते स्म ॥१०॥

अनुवाद— राजर्षि भगीरथ त्रिलोक्य पावनी श्रीगङ्गाजी को वहाँ ले गये जहाँ उनके पितरों के शरीर भस्म होकर पड़े थे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

रथेन वायुवेगेन प्रयान्तमनुधावती । देशान्पुनन्ती निर्दग्धानासिञ्चत्सगरात्मजान् ॥११॥

अन्वयः— वायुवेगेन रथेन अनुधावतीम् देशान् पुनन्ती निर्दग्धान् सगारात्मजान् असिञ्चत् ॥११॥

अनुवाद— वायु के समान वेग वाले रथ से चलते हुए राजा भगीरथ के पीछे दौड़ती हुई तथा बीच के देशों को पवित्र बनाती हुई गङ्गाजी ने सगर के पुत्रों को सिंच दिया ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मदण्डहता अपि । सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः ॥१२॥

अन्वयः— यत् जल स्पर्शमात्रेण ब्रह्मदण्डहताः अपि सगरात्मजाः केवलं देहभस्मभिः दिवं जग्मु ॥१२॥

अनुवाद— जिस गङ्गाजी के जल का स्पर्श हो जाने मात्र से ब्राह्मण का तिरस्कार करने के कारण भस्म हुए सगर के पुत्र केवल उनके देह के भस्म से स्पर्श हो जाने से स्वर्ग चले गये ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गाद्गङ्गामाहात्म्यमाह चतुर्भिः- यस्या जलस्पर्शमात्रेण तच्च केवलं देहभस्मभिरेव न साक्षात् । ब्रह्मणि स्वकृतेन दण्डेन अपि । तां श्रद्धया ये सेवन्ते इति शेषः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्गवशात् चार श्लोकों से गङ्गाजी का माहात्म्य बतलाते हैं । जिस गङ्गाजी के जल का स्पर्श हो जाने मात्र से वह भी केवल देह के भस्म से साक्षात् स्पर्श नहीं हुआ था, ब्रह्म के प्रति अपने द्वारा किए गये तिरस्कार

के कारण भस्म हुए भी । सगर पुत्र स्वर्ग में चले गये । उन गङ्गाजी का जो श्रद्धा पूर्वक सेवन करते हैं उनके विषय में क्या कहना है ॥१२॥

भस्मीभूताङ्गसङ्गेन स्वर्याताः सगरात्मजाः । किं पुनः श्रद्धया देवीं ये सेवन्ते धृतव्रताः ॥१३॥

अन्वयः- भस्मीभूताङ्गसङ्गेन सगरात्मजाः स्वर्याताः ये श्रद्धया धृतव्रताः देवीं सेवन्ते किं पुनः ॥१३॥

अनुवाद - भस्म हुए शरीर की राख से गङ्गा जल का संस्पर्श होने से जब सगर के पुत्र स्वर्ग चले गये तो जो श्रद्धा से नियम पूर्वक गङ्गा जी का सेवन करते हैं उनके विषय में क्या कहना है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

तत्प्रपञ्चयति-भस्मीभूतेनाङ्गेन यः सङ्गस्तेन ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

उसी का विस्तार से वर्णन करते हैं भस्मीभूत शरीर का संबन्ध होने मात्र से ॥१३॥

न ह्येतत्परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम् । अनन्तचरणाम्भोजप्रसूताया भवच्छिदः ॥१४॥

अन्वयः— भवच्छिदः अनन्त चरणाम्भोजप्रसूताया स्वर्धुन्या यत् इहोदितम् एतत् परमाश्चर्यं न ॥१४॥

अनुवाद— संसार के बन्धन को काट डालने वाले श्रीभगवान् के चरण कमल से निकली हुई गङ्गाजी के विषय में यहाँ जो कहा गया है, वह कोई बहुत बड़ा आश्चर्य नहीं है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

संनिवेश्य मनो यस्मिन् श्रद्धया मुनयोऽमलाः । त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो यातास्तदात्मताम्॥१५॥

अन्वयः— अमला मुनयः यस्मिन् मनः संनिवेश्य दुस्त्यजं त्रैगुण्यं हित्वा सद्यः तदात्मताम् याताः ॥१५॥

अनुवाद— निर्मल मन वाले मुनिजन जिन श्रीभगवान् के चरण कमलों में श्रद्धा पूर्वक अपने मन को लगाकर तीनों गुणों के कठिन बन्धन को काट कर शीघ्र ही भगवत्स्वरूप हो गये ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अनन्तस्य विशेषणं संनिवेश्येति । त्रैगुण्यं देहसंबन्धम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

संनिवेश्य यह अनन्त का विशेषण है । त्रैगुण्य अर्थात् देह संबन्ध को ॥१५॥

श्रुतो भगीरथाज्जज्ञे तस्य नाभोऽपरोऽभवत् । सिन्धुद्वीपस्ततस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥१६॥
ऋतुपर्णो नलसखो योऽश्वविद्यामयान्नलात् । दत्त्वाऽक्षहृदयं चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतः॥१७॥

अन्वयः भगीरथात् श्रुतः जज्ञे तस्य अपरः नाभः अभवत् ततः सिन्धुद्वीपः तस्मादयुतायुः ततः नलसखः ऋतुपर्णः अभवत् यः अस्मै अक्षहृदयं दत्त्वा नलात् अश्वविद्याम् अयात् तत्सुतः सर्वकामः ॥१६-१७॥

अनुवाद भगीरथ के पुत्र श्रुत हुए, उनके पुत्र दूसरे नाभ हुए, नाभ के पुत्र सिन्धुद्वीप हुए, उनके पुत्र अयुतायु हुए, आयुतायु के पुत्र ऋतुपर्ण हुए जो नल को पासा फेकने की कला सिखाकर उनसे अश्वविद्या का ज्ञान प्राप्त किए । ये नल के मित्र थे । ऋतुपर्ण के पुत्र सर्वकाम हुए ।

भावार्थ दीपिका

नलस्य सखा अयात्प्राप्तः । तत्सुतः ऋतुपर्णस्य सुतः ॥१६-१७॥

भाव प्रकाशिका

नल के मित्र हो गये । तत्सुतः अर्थात् ऋतुपर्ण के पुत्र ॥१६-१७॥

ततः सुदासस्तत्पुत्रो मदयन्तीपतिर्नृप । आहुर्मित्रसहं यं वै कल्माषाङ्घ्रिमुत क्वचित् ॥
वसिष्ठशापाद्रक्षोऽभूदनपत्यः स्वकर्मणा ॥१८॥

अन्वयः— नृप ततः सुदासः तत्पुत्रः मदयन्ती पतिः सौदासः यं वै मित्रसहं आहुः उतक्वचित् कल्माषाङ्घ्रिः वसिष्ठशापात् रक्षः अभूत् स्वकर्मणा अनपत्य; ॥१८॥

अनुवाद— सर्वकाम के पुत्र सुदास हुए सुदास के पुत्र सौदास हुए । उनकी पत्नी का नाम मदयन्ती था, सौदास को ही मित्रसह कहा गया है, कहीं कहीं उनको कल्भाषाङ्घ्रि कहा गया है । वे महर्षि वशिष्ठ के शाप से राक्षस हो गये और अपने कर्म के कारण निःसन्तान हो गये ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

तत्पुत्रः सौदासः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

सुदास के पुत्र सौदास हुए ॥१८॥

राजोवाच

किंनिमित्तो गुरोः शापः सौदासस्य महात्मनः । एतद्वेदितुमिच्छामः कथ्यतां न रहो यदि॥१९॥

अन्वयः— महात्मनः सौदासस्य शापः किं निमित्तः एतद्वेदितुम् इच्छामः यदिरहो न कथ्यताम् ॥१९॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— महात्मा सौदास को गुरु ने किस कारण से शाप दे दिया ? इसे मैं जानना चाहता हूँ । यदि रहस्य की बात न हो तो बतलाएँ ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

न रहो न रहस्यम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

यदि रहस्य की बात न हो तो ॥१९॥

श्रीशुक उवाच

सौदासो मृगयां कंचिच्चरन् रक्षो जघान ह । मुमोच भ्रातरं सोऽथ गतः प्रतिचिकीर्षया ॥२०॥

अन्वयः— मृगयां चरन् सौदासः कंचित् रक्षोजघान भातरं मुमोच अथ स प्रतिचिकीर्षया गतः ॥२०॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— आखेट करते हुए सौदास किसी राक्षस को मार दिए और उसके भाई को छोड़ दिए है इसका बदला लेने के लिए चला गया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

मृगयां चरन्कंचिद्राक्षसं जघान, तस्य भ्रातरं मुमोच, स भ्राता पलाय्य गतः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

आखेट करते हुए किसी राक्षस को मार दिए और उसके भाई को छोड़ दिए । उसका भाई भाग कर चला गया ॥२०॥

स चिन्त्यन्नघं राज्ञः सूदरूपधरो गृहे । गुरवे भोक्तुकामाय पक्त्वा निन्ये नरामिषम् ॥२१॥

अन्वयः— राज्ञो गृहे सूदरूपधरः अधं चिन्तयन्, भोक्तुकामाय गुरवे नरामिष पक्त्वा निन्ये ॥२१॥

अनुवाद— राजा के घर रसोइये का रूप धारण करके रहने वाला वह राजा का बदला लेने के लिए भोजन करने के लिए आये हुए गुरु वसिष्ठ को मनुष्य का मांस पकाकर दे दिया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अघमनिष्टम् । सूदः पाचकस्तद्रूपधरः सन् राज्ञो गृहे वर्तमानः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

राजा का अनिष्ट करने के लिए, राजा के घर में रसोइये का रूप धारण करके रहने वाला ॥२१॥

परिवेक्ष्यमाणं भगवान्विलोक्याभक्ष्यमञ्जसा । राजानमशपत्क्रुद्धो रक्षो ह्येवं भविष्यसि ॥२२॥

अन्वयः— परिवेक्ष्यमाणं अञ्जसा अभक्ष्यं विलोक्य क्रुद्धः राजानम् अशपत् एवं हि रक्षो भविष्यसि ॥२२॥

अनुवाद— परसे जाते हुए अभक्ष्य मांस को देखकर क्रुद्ध भगवान् वसिष्ठ ने शाप दिया इस तरह से मनुष्य के मांस को खाने करने वाले तुम राक्षस हो जाओ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अभक्ष्यमञ्जसा विलोक्य । एवं नरमांसव्यवहारेण ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अभक्ष्य मांस का देखकर इस तरह से मनुष्य के मांस का व्यवहार करने से ॥२२॥

रक्षःकृतं तद्विदित्वा चक्रे द्वादशवार्षिकम् । सोऽप्यपोऽञ्जलिनादाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥२३॥

अन्वयः— तत् रक्षः कृतं विदित्वा द्वादशवार्षिकम् चक्रे सः अपि अञ्जलिना अपः आदाय गुरूं शप्तुं समुद्यतः ॥२३॥

अनुवाद— वह कार्य राक्षस ने किया है इस बात को जानकर महर्षि ने बारह वर्ष के लिए शाप कर दिया, सौदास भी अपनी अञ्जलि में जल लेकर गुरु को शाप देने के लिए उद्यत हो गये ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

वसिष्ठ एव तं शापं द्वादशवार्षिकं चक्रे ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

वसिष्ठजी ही उस शाप को बारह वर्ष के लिए कर दिए ॥२३॥

वारितो मदयन्त्याऽपो रुशतीः पादयोर्जहौ । दिशः खमवनीं सर्वं पश्यन् जीवमयं नृपः ॥२४॥

अन्वयः— दमयन्त्या वारितः दिशः खम् अवनीं सर्वं जीवमय पश्यन् नृपः रुशतीः आपः पादयोः जहौ ॥२४॥

अनुवाद— ऐसा करने से दमयन्ती द्वारा रोक दिए जाने पर राजा, दिशाओं, आकाश और पृथिवी सब को जीवमय देखकर उस तीक्ष्ण जल को अपने पैरों पर डाल लिए ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

रुशतीस्तीक्ष्णा अपः स्वपादयोर्जहौ नान्यत्र । तत्र हेतुः- दिश इति । एवमनेन मित्रसहत्वमपि दर्शितम् । मित्रस्य कलत्रस्य वाचःसहनात् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

तीक्ष्ण जल को अपने पैरों पर ही डाल लिए उसका कारण था कि दिशाएँ आदि सब के सब जीवमय हैं । इस तरह से राजा के मित्रसहत्व को भी दिखलाया गया है । मित्र पत्नी की बातों को मानने के कारण ॥२४॥

राक्षसं भावमापन्नः पादे कल्माषतां गतः । व्यवायकाले ददृशे वनौकोदम्पती द्विजौ ॥२५॥

अन्वयः— पादे कल्मषतांगतः राक्षसं भावम् आपन्न वनौकोदम्पती द्विजौ व्यवायकाले ददृशे ॥२५॥

अनुवाद— उस जल से उनके पैर काले हो गये । अतएव उनका नाम कलपाषपाद भी है । राक्षस बने हुए राजा ने एक दिन वनवासी ब्राह्मण दम्पती को सहवास काल में देख लिया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं राक्षसत्वे कल्माषाङ्घ्रित्वे च कारणमुक्त्वा स्वकर्मणाऽनपत्य इति यदुक्तं तत्प्रपञ्चयति-व्यवायकाल इत्यादिना कर्मणा अप्रजा इत्यन्वेन । वनमोको निवासो ययोस्तौ वनौकसौ च तौ दम्पती च । पृथक्पदत्वे सकारलोप आर्षः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

राजा सौदास के राक्षस होने और कल्माषपाद होने का कारण बतलाकर यह जो कहा गया है कि वे राजा अपने कर्म के कारण नि:सन्तान हो गये उसका वर्णन **व्यवायकाले** से लेकर **कर्मणा अप्रजा** पर्यन्त करते हैं । वन में रहने वाले ब्राह्मण पति पत्नी को वनौको दम्पती इस तरह से पृथक पद होने पर सकार का लोप आर्ष है ॥२५॥

क्षुधार्तो जगृहे विप्रं तत्पत्न्याहाकृतार्थवत् । न भवान् राक्षसः साक्षादिक्ष्वाकूणां महारथः ॥२६॥

अन्वयः— क्षुधार्तः विप्रं जगृहे अकृतार्थवत् तत्पत्नी आह भवान् राक्षसः न ईक्ष्वकूणां साक्षात् महारथः ॥२६॥

अनुवाद— भूख से व्याकुल राजा ने ब्राह्मण को पकड़ लिया । दीन के समान उसकी पत्नी ने कहा आप राक्षस नहीं ईक्ष्वाकुवंश के महारथी हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अकृतार्थवत्दीनवत् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अकृतार्थवत् अर्थात् दीन के समान ॥२६॥

मदयन्त्याः पतिर्वीर नाधर्मं कर्तुमर्हसि । देहि मेऽपत्यकामाया अकृतार्थं पतिं द्विजम् ॥२७॥

अन्वयः— हे वीर मदयन्साः पतिः अधर्मं कर्तुं न अर्हसि । अपत्यकामायाः मे अकृतार्थं द्विजं पतिं देहि ॥२७॥

अनुवाद— हे वीर ! आप महारानी मदयन्ती के पति हैं । आप पाप कर्म न करें । सन्तान चाहने वाली मुझको मेरे अपूर्ण काम ब्राह्मण पति को मुझे दे दीजिये ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अकृतार्थमसमाप्तरतिम् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

अपूर्णकाम ॥२७॥

देहोऽयं मानुषो राजन् पुरुषस्याखिलार्थदः । तस्मादस्य वधो वीर सर्वार्थवध उच्यते ॥२८॥

अन्वयः— राजन् अयं मानुषः देह पुरुषस्य अखिलार्थदः तस्मात् वीर अस्यवधः सर्वार्थवध उच्यते ॥२८॥

अनुवाद— राजन् ! यह मनुष्य का शरीर पुरुष को चारो पुरुषार्थों को प्रदान करने वाला है, अतएव हे वीर इसको विनष्ट करना चारो पुरुषार्थों की हत्या कही गयी है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

एष हि ब्राह्मणो विद्वांस्तपःशीलगुणान्वितः । आरिराधयिषुर्ब्रह्म महापुरुषसंज्ञितम् ॥
सर्वभूतात्मभावेन भूतेष्वन्तर्हितं गुणैः ॥२९॥

अन्वयः— एष हि विद्वान् ब्राह्मणः तपः शीलगुणान्वितः भूतेषु सर्वभूतात्मभावेन गुणैः अन्तर्हितः महापुरुषसंज्ञितम् ब्रह्म आरिराधयिषुः ॥२९॥

अनुवाद— ये ब्राह्मण विद्वान, तपस्या शील आदि गुणों से सम्पन्न हैं । भूतों में सभी भूतों की आत्मा रूप से अपने गुणों द्वारा छिपे हुए महापुरुषसंज्ञक परं ब्रह्म की आराधना करना चाहते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

सर्वभूतानामात्मेति भावनयाराधयितुमिच्छुः । यद्वा सर्वभूतानामात्मभावेन भूतेषु स्थितमपि गुणैरन्तर्हितं ब्रह्मेति संबन्धः। पाठान्तरे अन्तर्हितः सोऽयमित्युत्तरेणान्वयः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

सभी भूतों की आत्मा रूप से भावना के द्वारा आराधना करना चाहते हैं । अथवा सभी भूतों की आत्मा रूप से भूतों में विद्यमान तथा गुणों के द्वारा छिपे हुए बह्म की अराधना करना चाहते हैं । **अन्तर्हितो गुणैः** इस प्रकार का पाठ भेद होने पर अन्तर्हितः ऐसे आगे के श्लोक से अन्वय है ॥२९॥

सोऽयं ब्रह्मर्षिवर्यस्ते राजर्षिप्रवराद्विभो । कथमर्हति धर्मज्ञ वधं पितुरिवात्मजः ॥३०॥

अन्वयः— हे धर्मज्ञ विभो ! राजर्षि प्रवरात् ते पितुः आत्मजवध इव स अयं ब्रह्मर्षिवर्य कथं वधम् अर्हति ॥३०॥

अनुवाद— हे धर्मज्ञ राजन् आप राजर्षि श्रेष्ठ के हाथों पिता के हाथों पुत्र के वध के समान ये ब्रह्मर्षि प्रवर वध के योग्य कैसे हो सकते हैं ?॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

तस्य साधोरपापस्य भ्रूणस्य ब्रह्मवादिनः । कथं वधं यथा ब्रभ्रोर्मन्यते सन्मतो भवान् ॥३१॥

अन्वयः— भवान् सन्मतः तस्य अपापस्य साधोः ब्रह्मवादिनः भूणस्य ब्रभोः वधं यथा कथं साधुमन्यते ॥३१॥

अनुवाद— आप साधु पुरुषों को सम्मत है इस निरपराध साधु स्वभाव वाले श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ का वध तो गौ के वध के समान है, इसे आप कैसे अच्छा मानते हैं ?॥३१॥

भावार्थ दीपिका

भ्रूणस्य श्रोत्रियस्य गर्भस्य सत इति वा । बभ्रोर्गोः । सतां मतो भवान्वधं कथं साधु मन्यत इत्यर्थः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

भ्रूण अर्थात् श्रोत्रिय या गर्भ का बभ्रोः अर्थात् गौ का । आप सत् पुरुषों को सम्मत है । इनका वध कैसे उचित मानते हैं ॥३१॥

यद्ययं क्रियते भक्षस्तर्हि मां खाद पूर्वतः । न जीविष्ये विना येन क्षणं च मृतकं यथा ॥३२॥

अन्वयः— यदि अयं भक्षः क्रियते तर्हि पूर्वतः मृतकं यथा मां खाद येन बिना क्षणं न जीविष्ये ॥३२॥

अनुवाद यदि आप इनको खाना ही चाहते हैं तो पहले मृतक के समान मुझको पहले खा जाइये, क्योंकि इनके बिना मैं क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकती हूँ ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

क्षणमपि येन विना न जीविष्यामि सोऽयं यदि भक्षः क्रियते तर्हि मृतकं यथा मृतप्रायां मां पूर्वं भक्षय ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

जिनके बिना क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकती, उनको यदि आप खाते हैं तो उनसे पहले मुझको ही खा लीजिये ।।३२।।

एवं करुणभाषिण्या विलपन्त्या अनाथवत् । व्याघ्रः पशुमिवाखादत्सौदासः शापमोहितः ।।३३।।

अन्वयः— एवं करुण भाषिण्या अनाथवत् विलपन्त्या; शापमोहितः सौदासः व्याघ्रः पशुमिव अखादत् ।।३३।।

अनुवाद— इस तरह से करुणा भरी बातें कहने वाली तथा अनाथ के समान विलाप करने वाली, ब्राह्मण पत्नी के सामने ही शाप मोहित सौदास उस ब्राह्मण को उसी तरह से खा लिए जैसे बाघ किसी पशु को खा लेता है ।।३३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३३।।

ब्राह्मणी वीक्ष्य दिधिषुं पुरुषादेन भक्षितम् । शोचन्त्यात्मानमुर्वीशमशपत्कुपिता सती ।।३४।।

अन्वयः— ब्राह्मणी पुरुषादेन दीधषुं भक्षितं वीक्ष्य आत्मानं शोचन्ती क्रुद्धा उर्वीशम् अशपत् ।।३४।।

अनुवाद— गर्भाधान के लिए उद्यत पति को राक्षस के द्वारा खाये हुए देखकर शोक सन्तप्त ब्राह्मणी ने क्रुद्ध होकर राजा को शाप दिया ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

दिधिषुं गर्भाधानकर्तारम् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

गर्भाधान करने वाले ।।३४।।

यस्मान्मे भक्षितः पाप कामार्तायाः पतिस्त्वया । तवापि मृत्युराधानादकृतप्रज्ञ दर्शितः ।।३५।।

अन्वयः— पाप ! यस्मात् कामार्तायाः मे पतिः त्वयाभक्षितः हे अकृतज्ञ तव अपि मृत्युः गर्भाधानात् दर्शितः।।३५।।

अनुवाद— अरे पापी चूकि तुमने मुझ कामार्त की पति को खा लिया है अतएव मूर्ख तुम्हारी भी मृत्यु मैथुन के ही समय होगी यह मैं तुम्हें बतला देती हूँ ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

आधानान्मैथुनात् । हे अकृतप्रज्ञ, मृत्युर्मया दर्शितः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

आधानात् अर्थात् मैथुन से । हे मूर्ख ! तुम्हारी मृत्यु मैंने बता दी ।।३५।।

एवं मित्रसहं शप्त्वा पतिलोकपरायणा । तदस्थीनि समिद्धेऽग्नौ प्रास्य भर्तुर्गतिं गता ।।३६।।

अन्वयः—एवं मित्रसहं शप्त्वा पतिलोकपरायणा समिद्धे अग्नौ तत् अस्थीनि प्रास्य पतिलोक परायणा भर्तुर्गतिं गता।।३६।।

अनुवाद— इस तरह से मित्रसह को शाप देकर ब्राह्मणी अपने पति की अस्थियों को धधकती हुई चित्ता

में डालकर सती हो गयी और उसने भी उसी गति को प्राप्त किया जो गति उसके पति को प्राप्त हुई थी क्योंकि, वह अपने पति के लोक को छोड़कर किसी दूसरे लोक में जाना भी नहीं चाहती थी ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

विशापो द्वादशाब्दान्ते मैथुनाय समुद्यतः । विज्ञाय ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः ॥३७॥

अन्वयः— द्वादशाब्दान्ते विशापः मैथुनाय समुद्यतः ब्राह्मणी शापं विज्ञाय स महिष्या निवारितः ॥३७॥

अनुवाद— बारह वर्ष के बाद सौदास शाप से मुक्त हो गये । जब वे अपनी पत्नी के पास सहवास के लिए गये, तो रानी ने उन्हें रोक दिया क्योंकि उनको ब्राह्मणी के शाप का पता था ॥३७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

तत ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाऽप्रजः । वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयन्त्यांप्रजामधात् ॥३८॥

अन्वयः— ततः ऊर्ध्वं स स्त्री सुखं तत्याज कर्मणा अप्रजः तदनुज्ञातः वसिष्ठः मदयन्त्यां प्रजा अधात ॥३८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् सौदास ने स्त्री सुख का परित्याग कर दिया, इस तरह वे अपने कर्म के कारण सन्तान हीन हो गये । सौदास के कहने से वसिष्ठजी ने मदयन्ती को गर्भधान कराया ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं कर्मणा अप्रजाः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह वे अपने कर्म के कारण निःसन्तान हो गये ॥३८॥

सा वै सप्त समा गर्भमबिभ्रन्न व्यजायत । जघ्नेऽश्मनोदरं तस्याः साऽश्मकस्तेन कथ्यते ॥३९॥

अन्वयः— सा वै सप्तसमाः गर्भम् अबिभ्रन्न व्यजायत तस्याः उदरं अश्मनाजघ्ने तेन सः अश्मक कथ्यते ॥३९॥

अनुवाद— मदयन्ती सात वर्षों तक गर्भ को धारण किए रही किन्तु बच्चा पैदा नहीं हुआ, वसिष्ठजी ने मदयन्ती के पेट पर पत्थर से प्रहार किया इसीलिए वह बालक अश्मक कहलाया ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

अबिभ्रद्धारेत्यर्थ; । न व्यजायत न प्रासूत । अतो वसिष्ठ एव तस्या उदरमश्मना जघान । स उत्पन्नः सुतोऽश्मकः॥३९॥

भाव प्रकाशिका

अबिभ्रत् अर्थात धारण किए नव्यजायत प्रसवन नहीं की । अतएव वसिष्ठ जी ने ही उसके उदर पर पत्थर से प्रहार किया । उससे उत्पन्न पुत्र अश्मक कहलाया ॥३९॥

अश्मकान्मूलको जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः । नारीकवच इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत् ॥४०॥

अन्वयः— अश्मकात् मूलकः जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः नारीकवच इत्युक्तः निःक्षत्रे मूलकः अभवत् ॥४०॥

अनुवाद— अश्मक का पुत्र मूलक हुआ, जब श्रीपरशुरामजी पृथिवी को क्षत्रिय विहीन कर रहे थे उस समय इसको स्त्रियों ने घेरकर बचा लिया था । इसीलिए इसको नारी कवच कहते है । पृथिवी के क्षत्रिय विहीन होने पर मूलक ने ही क्षत्रिय वंश का प्रवर्तन किया इसीलिए इसको मूलक कहते हैं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

स्त्रीभिः संवेष्टय परशुरामात्परिरक्षितः, अतो नारीकवच इत्युक्तः । निःक्षत्रे सति क्षत्रवंशस्य मूलमभवदतो मूलक इति चोक्तः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

स्त्रीयों ने घेरकर अश्मक को बचा लिया इसलिए इनको नारी कवच कहते हैं, और पृथिवी के क्षत्रिय विहीन होने पर मूलक ने क्षत्रिय जाति का प्रवर्तन किया। इस तरह क्षत्रिय वंश का मूल होने के कारण ये मूलक कहलाते हैं ।।४०।।

ततो दशरथस्तस्मात्पुत्र ऐडविडस्ततः । राजा विश्वसहो यस्य खट्वङ्गश्चक्रवर्त्यभूत् ।।४१।।

अन्वयः— ततः दशरथः तस्मात् ऐडविडः ततः राजा विश्वसहः यस्य खट्वाङ्गः चक्रवर्ती अभूत् ।।४१।।

अनुवाद— मूलक के पुत्र दशरथ हुए, दशरथ के पुत्र ऐडविड हुए और ऐडविड के पुत्र राजा विश्वसह हुए और विश्वसह के पुत्र चक्रवर्ती खट्वाङ्ग हुए ।।४१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४१।।

यो देवैरर्थितो दैत्यानवधीद्युधि दुर्जयः । मुहूर्तमायुर्ज्ञात्वैत्य स्वपुरं संदधे मनः ।।४२।।

अन्वयः— यः दुर्जयः देवैः अर्थितः युधि दैत्यान् अवधीत् मुहूर्तमायुर्ज्ञात्वा स्वपुरम् एत्य मनः संदधे ।।४२।।

अनुवाद— महाराज खट्वाङ्ग को कोई युद्ध में नहीं जीत सकता था, देवताओं द्वारा प्रार्थना किए जाने पर इन्होंने युद्ध में दैत्यों का वध कर दिया। जब उनको पता चला कि उनकी आयु एक मुहूर्त है, वे अपनी राजधानी में आकर अपने मन का सन्धान किए ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

प्रसन्नैर्देवैर्वरं वृणीष्वेत्युक्ते खट्वाङ्गेनोक्तं प्रथमं तावन्ममायुः कथ्यतामिति, देवैश्चोक्तं मुहूर्तमात्रमिति, तज्ज्ञात्वा देवैर्दत्तेन विमानेन शीघ्रं स्वपुरमेत्य मनः परमेश्वरे संदधे ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

प्रसन्न होकर देवताओं ने कहा कि आप वर माँगिए, खट्वाङ्ग ने कहा पहले आप मेरी आयु बतलाइये। देवताओं ने कहा आपकी आयु एक मुहूर्त बची है। तब देवताओं द्वारा दिये गये विमान से अपनी नगरी में आकर अपना मन परमेश्वर में लगा दिए ।।४२।।

न मे ब्रह्मकुलात्प्राणाः कुलदैवान्न चात्मजाः । न श्रियो न मही राज्यं न दाराश्चातिवल्लभाः ।।४३।।

अन्वयः— मे कुलदैवात् ब्रह्मकुलात् प्राणाः न आत्मजाः न श्रियो न मही न, राज्यं न दाराश्च न अतिबल्लभाः ।।४३।।

अनुवाद— मुझे मेरे कुल देवता ब्रह्म कुल से प्राण, पुत्र, लक्ष्मी पृथिवी, राज्य और पत्नियाँ अधिक प्रिय नहीं है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

एतदेव स्वसाधुवृत्तानुस्मरणपूर्वकं तत्कृतेन निश्चयेन दर्शयति-नेति सप्तभिः कुलदैवाद्ब्रह्मकुलात्सकाशान्मे प्राणादयो नातिवल्लभा नातिप्रियाः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

अपने इस सदाचार का स्मरण पूर्वक राजा खट्वाङ्ग के द्वारा किए गये निश्चय को **न० इत्यादि** सात श्लोकों से बतलाते हैं मेरे कुल दैवत ब्राह्मण वंश से अधिक मुझे प्राण इत्यादि प्रिय नहीं है ।।४३।।

न बाल्येऽपि मतिर्मह्यमधर्मे रमते क्वचित् । नापश्यमुत्तमश्लोकादन्यत्किंचन वस्त्वहम् ।।४४।।

अन्वयः— बाल्ये अपि मह्यं मतिः क्वचित् अधर्मेन रमते, उत्तमश्लोकात् अन्यत् किञ्चन वस्तु अहम् न अपश्यम्।।४४।।

अनुवाद—बाल्यावस्था में भी मेरी बुद्धि किसी अधर्म में नहीं लगती थी और पवित्र कीर्ति श्रीभगवान् के व्यतिरिक्त और किसी भी वस्तु को मैंने नहीं देखा ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

मह्यं मम ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

मह्यम् अर्थात् मेरी ।।४४।।

देवैः कामवरो दत्तो मह्यं त्रिभुवनेश्वरैः । न वृणे तमहं कामं भूतभावनभावनः ।।४५।।

अन्वयः— त्रिभुवनेश्वरैः देवैः मह्यं कामवरो दत्तः भूत भावनभावनः अहम् तं कामं न वृणे ।।४५।।

अनुवाद— त्रैलोकेश्वर देवताओं ने मुझको मुँह माँगा वरदान देना चाहा किन्तु सम्पूर्ण जीवों के जीवन दाता श्रीभगवान् की ही भावना में मग्न रहा. अतएव देवताओं के द्वारा प्रदत्त भोगों को मैं नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

भूतभावनो हरिस्तस्मिन्नेव भावना यस्य सोऽहं तं कामं न वृणे ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

सभी जीवों के जीवन दाता श्रीहरि हैं उन्हीं में मेरी भावना बनी रहने के कारण मैं उन भोगों को नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ ।।४५।।

ये विक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् । न विदन्ति प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे ।।४६।।

अन्वयः— ये विक्षिप्तेन्द्रियाधियः देवाः ते स्वहृदि स्थितम् शश्वत् प्रियम् आत्मानं न विदन्ति् अपरे किमुत ।।४६।।

अनुवाद— सत्त्वगुण प्रधान होने पर भी जिन देवताओं की इन्द्रियाँ और बुद्धि वश में नहीं हैं वे अपने हृदय में विद्यमान शश्वत प्रिय आत्मा परमात्मा, को जब नहीं जान पाते हैं तो फिर दूसरों की कौन सी बात है?।।४६।।

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः- य इति । विक्षिप्तानीन्द्रियाणि धीश्च येषां ते देवा अपि ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

भोगों का वरण नहीं करने का कारण ये इत्यादि श्लोक से बतलाते है । जिनकी इन्द्रियाँ और बुद्धि विक्षिप्त हैं, वश में नहीं है वे देवता भी ।।४६।।

अथेशमायारचितेषु सङ्गं गुणेषु गन्धर्वपुरोपमेषु । रुढं प्रकृत्यात्मनि विश्वकर्तुर्भावेन हित्वा तमहं प्रपद्ये।।४७।।

अन्वयः— अथ ईशमाया रचितेषु गन्धर्वपुरोपमेषु प्रकृत्या आत्मनि रूढं गुणेषु सङ्गं हित्वा विश्वकतुर्भावेन तम् अहं प्रपद्ये ।।४७।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की माया से ही रचित आकाश में झूठ मूठ प्रतीत होने वाले गन्धर्व नगर के समान स्वभावत: आत्मा में रूढ गुणों में होने वाली आसक्ति का परित्याग करके संसार के सच्चे रचयिता श्रीभगवान् की भावना में लीन होकर मैं विषयों का परित्याग करके परमात्मा की शरणागति करता हूँ ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

अथ तस्मात्प्रकृत्या स्वभावेनात्मनि रूढं गुणेषु सङ्गं विश्वकर्तुर्भावेन हित्वा तमेवाहं प्रपद्ये ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

स्वभावतः आत्मा में रूढ गुणों में होने वाली आसक्ति को जगद् रचयिता परमात्मा की भावना से मैं परमात्मा की शरणागति करता हूँ ।।४७।।

इति व्यवसितो बुद्ध्या नारायणगृहीतया । हित्वाऽन्यभावमज्ञानं ततः स्वं भावमाश्रितः ।।४८।।

अन्वयः नारायण गृहीतया बुद्ध्या इति व्यवसितः अन्यभावम् अज्ञानं हित्वा ततः एवं भावमाश्रितः ।।४८।।

अनुवाद भगवान् नारायण राजा खट्वाङ्ग की पहले से ही अपनी ओर आकृष्ट कर लिए, अतएव वे इस प्रकार का निश्चय कर सके देहाद्यभिमान विषयक अज्ञान का परित्याग करके और अपने स्वरूप में स्थित हो गये ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

अन्यभावं देहाद्यभिमानरूपमज्ञानं हित्वा ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

देहादिविषयक अज्ञान को त्याग कर ।।४८।।

यत्तद्ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम् । भगवान्वासुदेवेति यं गृणन्ति हि सात्वताः ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सूर्यवंशानुवर्णने नवमोऽध्यायः ।।९।।

अन्वयः— यत् तद् ब्रह्म परं सूक्ष्मं अशून्यं शून्य कल्पितम् यं सात्त्वतः भगवान् वासुदेव इति गृणन्ति ।।४९।।

अनुवाद— वह स्वरूप साक्षात् परब्रह्म है वह अत्यन्त सूक्ष्म तथा शून्य व्यतिरिक्त होकर भी शून्य के समान है। भगवद् भक्त उसी को भगवान् वासुदेव कहते है ।।४९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवेंस्कन्ध के सूर्यवंश वर्णन नामक नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

स्वं भावमेवाह यत्तदिति । शून्यविकल्पितं वागाद्यविषयत्वात् । वासुदेव इति यं गृणन्ति । ब्रह्मण एव भक्तानुग्रहार्थमाविष्कृततनोर्वासुदेवत्वात् ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां नवमोऽध्यायः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

यत् तत् इत्यादि श्लोक स्वभाव का वर्णन करते हैं। शून्य के समान कल्पित क्योंकि वह वाणी आदि इन्द्रियों के विषय नहीं हैं जिनको वासुदेव शब्द से अभिहित किया जाता है। भक्तों पर कृपा करने के लिए ब्रह्म ही वासुदेव रूप से अपना शरीर आविष्कृत किए हैं ।।४९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका के नवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।९।।

दसवाँ अध्याय

भगवान् श्रीराम की लीलाओं का वर्णन

श्रीशुक उवाच

खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात्पृथुश्रवाः । अजस्ततो महाराजस्तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥१॥

अन्वयः— खट्वाङ्गात् दीर्घबाहुः तस्मात् पृथुश्रवाः रघुः तत अजः तस्मात् महाराजः दशरथः अभवत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— खट्वाङ्ग के पुत्र दीर्घवाहु हुए उनके पुत्र प्रथित कीर्ति रघु हुए, उनके पुत्र अज हुए और अज के पुत्र महाराज दशरथ हुए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

दशमे प्राह खट्वाङ्गवंशे श्रीराममसंभवम् । तच्चरित्रं च लंकेशं हत्वाऽयोध्यागमावधि । खट्वाङ्गाच्च दीर्घबाहुः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दसवें अध्याय में कहा गया है कि खट्वाङ्ग के ही वंश में श्रीरामचन्द्रजी का अवतार हुआ । उनके चरित्र का भी रावण को मारकर अयोध्या आगमन पर्यन्त वर्णित है । खट्वाङ्ग के पुत्र दीर्घवाहु हुए ॥१॥

तस्यापि भगवानेष साक्षाद्ब्रह्ममयो हरिः । अंशांशेन चतुर्धाऽगात्पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ॥२॥

अन्वयः— सुरैः प्रार्थितः साक्षात् ब्रह्ममयः हरिः एषः भगवान् तस्यापि अंशांशेन चतुर्धा रामलक्ष्मण भरत शत्रुघ्नः इति, संज्ञया पुत्रत्वमगात् ॥२॥

अनुवाद— देवताओं द्वारा प्रार्थना किए जाने पर साक्षात् परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीहरि अपने अंशांश से चार रूप धारण करके पुत्र बन गये । उनके नाम थे राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया । तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः ॥३॥

अन्वयः— राजन् तस्य सीतापतेः अनुचरितं तत्त्वदर्शिभिः ऋषिभिः भूरिवर्णितं त्वया मुहुः श्रुतं हि ॥३॥

अनुवाद— राजन् उन सीतापति भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के चरित वर्णन तत्त्वज्ञ ऋषियों ने बहुत अधिक वर्णन किया और उसे आपने वार-वार सुना भी है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

ऋषिभिर्वाल्मीकिमुख्यैर्भूरि वर्णितं त्वया मुहुः श्रुतं तथापि संक्षेपतः कथ्यमानं शृणु ॥३॥

भाव प्रकाशिका

वाल्मीकि आदि ऋषियों ने वहुत अधिक वर्णन किया है, और तुमने सुना भी है फिर भी संक्षेप्तः वर्णन करता हूँ उसे आप सुनें ॥३॥

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषारोपितभ्रूविजृम्भत्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः ॥४॥

अन्वयः— गुर्वर्थे त्यक्तराज्यः प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां पद्मपद्भ्यां अनुवनं व्यचरत् हरीन्द्रानुजाभ्यां मृदितपथरुजः यः शूर्पणाख्याः वैरूप्यात् प्रिय विररुपाऽशोपितभ्रुविजृम्भत्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रः नः अवतात् ॥४॥

अनुवाद— अपने पिता के सत्य की रक्षा के लिए जिन्होंने राज्य का परित्याग कर दिया, अपनी प्रियतमा श्रीजानकीजी के हाथों का स्पर्श सहन करने में असमर्थ अपने चरण कमलों से जो एक बन से दूसरे वन में विचरण करते रहे, कपीन्द्र श्रीहनुमानजी और लक्ष्मणजी उनके पैरों को दबाकर मार्ग की थकावट को दूर किया करते थे। शूर्पणखा के नाक कान काटकर कुरूप बना देने के कारण उन्हें अपनी प्रियतमा श्रीजानकीजी का वियोग सहना पड़ा। उसके कारण उनकी चढ़ी हुई भौहों को देखकर समुद्र भी भयभीत हो गया और भगवान् श्रीराम ने समुद्र पर पुल बाँध दिया इस तरह के दुष्ट वन को भस्म कर देने वाले को सलाधिपति भगवान् श्रीरामचन्द्र हम सबों की रक्षा करें ।।४।।

भावार्थ दीपिका

'ग्रन्थकोटिभिराकीर्णमद्धुतं रामविक्रमम् । अध्यायद्वयतो वक्ष्यन्नेकश्लोके समस्यति ।' इति । स कोशलेन्द्रः श्रीरामो नोऽस्मानवतात्पातु । कथंभूतः । यो गुर्वर्थे पितुः सत्यस्य पालनार्थं त्यक्तराज्यः सन् पद्मवदतिसुकुमाराभ्यां पद्भ्याम् । तदेवाह-प्रियायाः पाणिनापि स्पर्शे नास्ति क्षमा ययोस्ताभ्यां प्रतिवनं व्यचरत् । हरीन्द्रो हनुमान्सुग्रीवो वाऽनुजो लक्ष्मणस्ताभ्यां मृजितापनीता पथरुजा मार्गश्रमो यस्य । शूर्पणख्या वैरूप्यात्कर्णनासिकाच्छेदाद्धेतोः तथा प्रलोभितेन रावणेनापहारात्प्रियेण कलत्रेण विरहस्तेन रुद् तयारोपितयोर्भ्रुवोर्विजृम्भेणैव त्रस्तोऽब्धिर्यस्मात् । ततस्तद्विज्ञापनेन बद्धः । सेतुर्येन । ततः खला रावणादय एव दवो वनं तस्य दहनः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

करोड़ों श्लोकों में विस्तृत भगवान् श्रीराम का अद्भुत पराक्रम दो अध्यायों में वर्णन किया जा रहा है। वे कोसलाधिपति भगवान् श्रीराम हम सबों की रक्षा करें। वे भगवान् श्रीराम कैसे हैं ? उन्होंने अपने पिता के वचन को सत्य करने के लिए राज्य का परित्याग कर दिया। उनके चरण कमल के समान सुकुमार थे। अपनी पत्नी श्रीजानकीजी के हाथ से स्पर्श को भी सहने में असमर्थ थे। उन्हीं चरणों से वे वनों में विचरण करते रहे। हरिन्द्र शब्द से हनुमान जी को अथवा सुग्रीवजी को कहा गया है तथा अनुज शब्द से लक्ष्मणजी को कहा गया है। हनुमानजी और लक्ष्मणजी श्रीभगवान् के चरणों को दबाकर थकान को दूर किया करते थे। शूर्पणखा के नाम कान काट कर विरूप बना देने के कारण, शूर्पणखा के द्वारा प्रलोभित रावण ने भगवान् श्रीराम की पत्नी का अपहरण कर लिया। इस तरह प्रियतमा का विरह होने के कारण उत्पन्न क्रोध से उनकी भौहें तन गयीं, उसे देखकर समुद्र डर गया। समुद्र की प्रार्थना से भगवान् ने समुद्र पर पुल बाँध दिया। उसके पश्चात् श्रीभगवान् लङ्का में जाकर रावण आदि दुष्ट वन को श्रीभगवान् भस्म कर दिये ।।४।।

विश्वामित्राध्वरे येन मारीचाद्या निशाचराः । पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैर्ऋतपुङ्गवाः ।।५।।

अन्वयः— विश्वामित्राऽध्वरे येन मारीचाद्याः निशाचराः लक्ष्मणस्य पश्यत एव मारीचाद्या निशाचराः नैऋत पुंगवा हताः ।।५।।

अनुवाद— महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ में श्रीभगवान् ने लक्ष्मणजी के सामने ही श्रीभगवान् मारीच आदि बड़े-बड़े निशाचरों को मार दिया ।।५।।

भावार्थ दीपिका

संक्षेपतो वर्णितं रामचरितमादित आरभ्य विस्तरेणाह-विश्वामित्राध्वर इत्यादिना यावदुत्तराध्यायसमाप्ति । पश्यत एव लक्ष्मणस्य । तमप्यनपेक्ष्यैव हता इत्यर्थः । यच्छब्दानां स कोसलेन्द्रोऽवतादित्यनेनैवान्वयः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

संक्षेप में वर्णित राम चरित को आदि से आरम्भ करके विस्तार से **विश्वामित्राध्वरे० इत्यादि** श्लोक से

प्रारम्भ करके इस अध्याय के आगे के अध्याय की समाप्ति पर्यन्त वर्णन करते हैं। पश्यत एव कहकर यह बतलाया गया है कि मारीच आदि राक्षसों को मारने के लिए श्रीभगवान् को लक्ष्मणजी की अपेक्षा नहीं थी। यत् शब्द का कोसलेन्द्र: अवतात् से अन्वय हैं ॥५॥

यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रंसीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम् ।
आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये ॥६॥

अन्वयः— हे नृप ! लोकवीरसमितौ सीतास्वयम्बर गृहे त्रिशतोपनीतम् उग्रं ऐशं धनुः बालगजलीलः यः आदाय इक्षुयष्टिमिव सज्जीकृतं विकृष्य मध्ये बभञ्ज ॥६॥

अनुवाद— हे राजन् ! संसार के वीरों की सभा में सीता स्वयम्बर स्थल पर जिसको तीन सौ लोग मिल करके लाये उस भगवान् शिव के भयङ्कर धनुष को जैसे कोई हाथी का बच्चा क्रीडा करता हो उसी तरह लीला पूर्वक इक्षुदण्ड के समान चढ़ाकर बीच से ही श्रीभगवान् ने तोड़ दिया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

लोके ये वीरास्तेषां समितौ समाजे ऐशं त्रैयम्बकं धनुरिक्षुयष्टिमिव लीलयैवादाय सज्जीकृतमारोपितं विकृष्य मध्ये बभञ्ज। हे नृप, उग्रं कठिन गरिष्ठम्। तदाह-वाहकानां त्रिभिः शतैरुपनीतम्। बालगजस्य लीलेव लीला यस्य सः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

संसार में जितने वीर विद्यमान हैं उन सबों के समाज में शङ्करजी के धनुष को इक्षुदण्ड (ईख) के समान ही लीला पूर्वक (बड़ी आसानी से) उठाकर तथा उसको चढाकर भगवान् श्रीराम ने बीच से ही तोड़ दिया। हे राजन् वह धनुष अत्यन्त कठोर था। उसकी कठोरता को बतलाते हैं उस धनुष को तीन सौ लोग मिल करके स्वयम्बर स्थल में लाये थे। हाथी के बच्चे की लीला के समान जिनकी लीला है, बालगजलीलः पद का विग्रह है ॥६॥

जित्वाऽनुरूपगुणशीलवयोऽङ्गरूपां सीताभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम् ।
मार्गे व्रजन्भृगुपतेर्व्यनयत्प्ररूढं दर्पं महीमकृत यस्त्रिरराजबीजाम् ॥७॥

अन्वयः— उरसि अभिलब्ध मानाम् अनुरूपगुणशील वयोङ्गरूपां सीताभिधां श्रियम् जित्वा मार्गे व्रजन् यस्त्रिः अराजबीजाम् महीम् अकृत तेन प्ररूढं भृगुपतेः दर्पं व्यनयत् ॥७॥

अनुवाद— जिनको श्रीभगवान् ने अपने वक्षस्थल में स्थान प्रदान करके सम्मानित किया था, वे ही लक्ष्मीजी जनकजी के यहाँ सीताजी के नाम से अवतीर्ण हुई थीं और श्रीभगवान् के गुण, शील, अवस्था शरीर के गठन और सौन्दर्य में सर्वथा अनुरूप थीं उनको जीतकर अयोध्या जाते समय मार्ग में जिन्होंने इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रियों के बीज से रहित बना दिया था ऐसे श्रीपरशुरामजी के गर्व को जिन्होने विनष्ट कर दिया वे भगवान् श्रीराम हम सबों की रक्षा करें ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अनुरूपाणिस्वयोग्यानि गुणशीलादीनि यस्यास्तां सीतासंज्ञां पूर्वमुरस्यभिलब्धो मानो यया तां श्रियं जित्वा धनुर्भङ्गमहानादश्रवणक्षुभितस्य भृगुपतेर्दर्पं व्यनयदपनीतवान्। कथंभूतस्य। त्रिःसप्तकृत्वो राजबीजशून्यां महीं योऽकरोत्तस्य॥७॥

भाव प्रकाशिका

जिनके शील आदि गुण श्रीभगवान् के अनुरूप ही थे ऐसी सीता नाम वाली तथा जिनको अपने वक्षस्थल में स्थान प्रदान करके श्रीभगवान् ने सम्मानित किया था उन लक्ष्मीजी को जीतकर धनुष को टूटने के महान् नाद को सुनकर क्षुब्ध हुए श्री परशुरामजी के गर्व को जिन्होंने दूर कर दिया था। कैसे परशुरामजी के गर्व को ? तो

इसका उत्तर है कि जिन्होंने इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रियों के बीज से रहित बना दिया था ऐसे परशुरामजी के गर्व को जिन्होंने दूर कर दिया था वे भगवान् श्रीराम हम सबों की रक्षा करें ॥७॥

यःसत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः ।
राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसङ्गः ॥८॥

अन्वयः— अपि च स्त्रैणस्य सत्यपाश परिवीत पितुः निदेशं यः समार्यः शिरसा जगृहे राज्यं, श्रियं, प्राणयिनः सुहृदः निवासं मुक्तसङ्गः असून इव त्यक्त्वा वनं ययौ ॥८॥

अनुवाद— किञ्च जिन्होंने पत्नी के अधीन होकर सत्य के पाश में बन्धे हुए पिता के आदेश को अपनी पत्नी के साथ शिरोधार्य किया तथा राज्य लक्ष्मी प्रेमी संबन्धी लोगों तथा निवास स्थान आदि का परित्याग करके जिस तरह अनासक्त अपने प्राणों को त्याग कर प्रस्थान करता है उसी तरह श्रीभगवान् भी वन में चले गये वे भगवान् श्रीराम हम सबों की रक्षा करें ॥८॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं गुर्वर्थ इति श्लोकं विवृण्वन्नाह- य इति । कदाचित्कैकेय्यास्तुष्टेन राज्ञा त्वदपेक्षितं दास्यामीति प्रतिश्रुतम्, ततः श्रीरामस्य युवराज्याभिषेकसमये तया भरतस्य राज्यं रामस्य च वने वासः प्रार्थितः, तदा सत्यपाशेन परिवीतस्य पितुर्निदेशमाज्ञां शिरसा जगृहे । ततो राज्यादिकं त्यक्त्वा सभार्यो वनं ययौ । दुस्त्यजस्यापि सहर्षत्यागे दृष्टान्तः- मुक्तसङ्गो योगी असून् प्राणानिवेति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अब **गुवर्थे इत्यादि** श्लोक की व्याख्या **यः लोकवीरसमितौ० इत्यादि** श्लोक से करते है । एक बार कैकेयी से सन्तुष्ट महाराज दशरथ ने यह प्रतिज्ञा की कि तुम जो कहोगी वह मैं दूँगा । उसके पश्चात् भगवान् श्रीराम के युवराज्याभिषेक के समय कैकेयी ने महाराज से प्रार्थना की कि भारत को राज्य तथा श्रीराम को चौदह वर्ष का बनवास दिया जाय । उस समय सत्य के बन्धन में बन्धे हुए अपने पिता की आज्ञा को भगवान् श्रीराम ने शिरोधार्य कर लिया । उसके पश्चात् वे राज्य इत्यादि का परित्याग करके अपनी पत्नी के साथ वन में चले गये । राज्य आदि का त्याग करना कठिन होने पर वह दृष्टान्त बतलाया गया है कि जिसतरह अनासक्त योगी अपने प्राणों का परित्याग करके परमधाम गमन करता है उसी तरह भगवान् भी प्राणों के समान प्रिय राज्यादि का परित्याग करके वन में चले गये ॥८॥

रक्षः स्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धेस्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून् ।
जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीयकोदण्डपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम् ॥९॥

अन्वयः— अशुद्धबुद्धेः रक्षः स्वसुः रूपम् व्यकृत तस्यः खरत्रिशिरदूषणमुख्य बन्धून् चतुर्दशसहस्रमपारणीय कोदण्डरटमानः जघ्ने, कृछ्रम उवास ॥९॥

अनुवाद— काम की वासना से अशुद्ध बुद्धि वाली रावण की बहन शूर्पणखा के नाक कान काटकर भगवान् श्रीराम ने उसको विरूप बना दिया और उसके खरदूषण और त्रिशराआदि बान्धवों जिनकी संख्या चौदह हजार थी उन सबों को महान् धनुष अपने हाथ में धारण करके भगवान् श्रीराम ने विनष्ट कर दिया और वे कठिनाइयों से परिपूर्ण वन में विचरण करते रहे ॥९॥

भावार्थ दीपिका

राक्षसो रावणस्य स्वसुः शूर्पणखाया अशुद्धबुद्धेः सीतां जिघृक्षोः कामातुराया इति वा रूपं व्यकृत विकारमनयत् । तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्या बन्धवो येषु तांश्चतुर्दशसहस्रं जघान । अपारणीयमलङ्घ्यमसह्यं कोदण्डं पाणौ यस्य सः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

राक्षस राज रावण की बहन शूर्पणखा जो सीताजी को पकड़कर खा लेनी चाहती थी अथवा कामातुर होने के कारण अशुद्ध बुद्धि वाली, का रूप भगवान् ने विकृत कर दिया । उसके खरदूषण आदि मुख्य बान्धवों की संख्या चौदह हजार थी उन सबों को भगवान् अपने असह्य धनुष को धारण करके मार डाले ।।९।।

सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण ।
जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाश्रमतोपकृष्टो मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः ॥१०॥

अन्वयः— हे नृपते ! सीताकथाश्रवणदीपित हृच्छयेन दशकन्धरेण सृष्टम् मारीचम् विलोक्य अद्भुतैणवपुषा आश्रमतः अपकृष्टः कम् उग्रो यथा मारीचम् विशिखेन आशुजघ्ने ।।११।।

अनुवाद— हे राजन् ! शूर्पणखा के मुख से सीताजी के सौन्दर्य आदि गुणों को सुनकर कामातुर बने हुए रावण के द्वारा प्रेषित मारीच को देखकर अद्भुत मृग शरीरधारी उसके द्वारा आश्रम से दूर ले जाये गये श्रीभगवान् ने उसको अपने बाणों से उसी तरह शीघ्र ही मार दिए जिस तरह दक्ष प्रजापति को श्रीरुद्र (वीरभद्र) ने मार दिया था ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

सीतायाः कथाश्रवणेन दीपितो हृच्छयो यस्य तेन सीतां हरिष्यता स्वस्माद्भीतेन स्वस्याश्रमादपकर्षणार्थं सृष्टं निसृष्टं मारीचं विलोक्य जघान । कथंभूतम् अद्भुतैणवपुषा स्वर्णहरिणदेहेनोपलक्षितम् । अतएव प्रलोभनेनाश्रमतस्तेनापकृष्टः सन् । कं दक्षं यथा उग्रः श्रीरुद्रः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

सीताजी के सौन्दर्य आदि को सुनकर रावण की कामवासना उदीर्ण हो गयी । श्रीसीताजी का हरण करने से अपने से भयभीत रावण मारीच को उनके आश्रम के सन्निकट भेजा । मारीच को देखकर आश्रम से दूर लाये गये श्रीभगवान् ने मारीच को मार दिया । कैसे मारीच को देखकर ? इस पर कहते हैं स्वर्ण मृग शरीरधारी मारीच के द्वारा प्रलोभित करके आश्रम से दूर लाये गये भगवान् उसको उसी तरह आसानी से मार दिए जिस तरह श्रीरुद्र (वीरभद्र) ने दक्ष प्रजापति को मार दिया था ।।१०।।

रक्षोधमेन वृकवद्विपिनेऽसमक्षं वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् ।
भ्राता वने कृपणवत्प्रियया वियुक्तः स्त्रीसङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार ॥११॥

अन्वयः— रक्षोधमेन विपिने वृकवत् असमक्षम् वैदेहराजदुहितरि अपयापितायाम् प्रियया वियुक्तः, भ्रात्रा वने कृपणवत् स्त्रीसङ्गिनां इति गतिम् प्रथयन् चचार ।।११।।

अनुवाद— भगवान् श्रीराम के दूर चले जाने पर तथा लक्ष्मणजी की अनुपस्थिति में नीच राक्षस रावण वन में रहने वाले भेड़िये के समान श्रीजानकी जी का अपहरण कर लिया । इसके पश्चात् श्रीभगवान् अपनी प्रियतमा से वियुक्त होकर श्रीलक्ष्मणजी के साथ दीन के समान विचरण करने लगे । मानों वे शिक्षा दे रहे थे कि स्त्रियों में आसक्ति रखने वाले लोगों की यही गति होती है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

ततश्च रक्षोधमेन रावणेनासमक्षमपनीतायाम् । प्रियया वियुक्तो भ्रात्रा लक्ष्मणेन सह कृपणवद्वने चचार । किमभिप्रायः सन् । इत्यनेन प्रकारेण स्त्रीसङ्गिनां दुःखोदर्कां गति प्रख्यापयन् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् नीच राक्षस रावण ने श्रीलक्ष्मणजी की अनुपस्थिति में श्रीजानकीजी का अपहरण कर लिया। अपनी प्रियतमा से विलग हुए भगवान् अपने भाई लक्ष्मणजी के साथ वन में दीन के समान विचरण करते हुए। इस तरह वे स्त्रियों में आसक्त लोगों की दु:ख में परिणत होने वाली गति को विख्यात कर रहे थे ।।११।।

दग्ध्वात्मकृत्यहतकृत्यमहत्कबन्धं सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागतिं तैः ।
बुद्ध्वाथ वालिनि हते प्लवगेन्द्रसैन्यैर्वेलामगात्समनुजोऽजभवार्चिताङ्घ्रिः ।।१२।।

अन्वयः— आत्मकृत्यहतकृत्यम् दग्ध्वा कबन्धं अहन् कपिभिः सख्यं विधाय अथ बलिनि हते तै दयितागतिं बुद्धवा अजभवार्चिताङ्घ्रिः स मनुजः प्लवगेन्द्र सैन्यैः वेलाम् अगात् ।।१२।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की सेवा रूप कर्मों को करने से जिसके सारे कर्म भस्म हो गये थे उस जटायु का दाह संस्कार करके, श्रीभगवान् को पकड़ने के लिए भुजा फैलाये हुए कबन्ध का श्रीभगवान् वध किए । तदनन्तर सुग्रीव आदि बन्दरों से मित्रता करके वालि का वध करने के पश्चात् वानर वीरों से अपनी प्रियतमा पत्नी का पता लगवाये । तदनन्तर ब्रह्माजी तथा शङ्करजी जिनके चरणों की वन्दना करते हैं वे भगवान् श्रीराम मनुष्य के समान लीला करते हुए बन्दरों की सेना लेकर समुद्र के तट पर आये ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

आत्मार्थेन कृत्येन कर्मणा रावणेन सह युद्धेन हतं कृत्यं शास्त्रीयं दहनादिकं यस्य तं जटायुषं पुत्र इव दग्ध्वा कबन्धं स्वग्रहणाय प्रसारितबाहुं राक्षसमहन् । अथ वालिनि हते तैः कपिभिर्दयिताया गतिं बुद्ध्वा अजभवाभ्यामर्चितावङ्घ्री यस्य समनुजो वेलां समुद्रतीरमगात् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

भगवत्सेषरूप रावण के साथ युद्ध नामक कर्म करने के कारण मारे गये जिनके सारे कर्म दग्ध हो गये थे उन जटायु का पुत्र के जैसे पिता का दाह कर्म करता है उसी तरह जटायु का भगवान् ने शास्त्रीय दाह कर्म सम्पन्न किया, श्रीभगवान् को पकड़ने के लिए फैलायी गयी भुजा वाले कबन्ध नामक राक्षस का उन्होंने वध किया । तदनन्तर बालि का वध कर देने के पश्चात् वानरों द्वारा श्रीसीताजी का पता लगाकर जिनके चरणों की वन्दना ब्रह्माजी और शिवजी करते हैं वे भगवान् मनुष्यों के समान लीला करते हुए वानरों की सेना लेकर समुद्र तट पर आये ।।१२।।

यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपातमसंभ्रान्तनक्रमकरो भयगीर्णघोषः ।
सिन्धुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी पादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत् ।।१३।।

अन्वयः— यद्रोषविभ्रमविवृत कटाक्षपात संभ्रान्तनक्रमकरः भयगीर्णघोषः सिन्धुः रूपी, शिरसि अर्हणं परिग्रह्य पादारविन्दम् उपगम्य एतत् बभाषे ।।१३।।

अनुवाद— क्रोध की लीला करते हुए श्रीभगवान् द्वारा उग्रकटाक्ष से देखते ही जिसके घड़ियाल एवं मगरमच्छ खलबला गये तथा भयभीत समुद्र की ध्वनि शान्त हो गयी वह समुद्र शरीर धारण करके अपने शिर पर पूजन सामग्री लेकर श्रीभगवान् के चरणों में आकर शरणागति किया और कहा ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

तत्र त्रिराज्युपवासेन प्रतीक्षितोऽपि सिन्धुर्यदा नोपस्थितस्तदा यस्य रोषविभ्रमेण क्रोधलीलया विवृत्तो यः कटाक्षस्तस्य पातेन संभ्रान्ता नक्रा मकराश्च यस्मिन् । भयेन गीर्णो ग्रस्तः स्तम्भितो घोषो येन स सिन्धुरेतद्वक्ष्यमाणं वभाषे । अर्हणमर्घादिकम्। रूपी मूर्तिमान ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

तीन रातों तक उपवास करके प्रतीक्षा करने पर भी जब समुद्र नहीं उपस्थित हुआ उस समय क्रोध की लीला के कारण जिनकी कटाक्षपात विवृत हो गये थे उसके द्वारा देखते ही समुद्र के समस्त घड़ियाल और मगरमच्छ घबरा गये । भय के कारण समुद्र की गर्जना बन्द हो गयी । वह शरीर धारण करके अपने शिर पर पूजन सामग्री लेकर आया और श्रीभगवान के चरणों की शरणागति करके कहने लगा ॥१३॥

न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन्कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम् ।
यत्सत्त्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा मन्योश्च भूतपतयः स भवान्गुणेशः ॥१४॥

अन्वयः— हे भूमन् कूटस्थम् आदि पुरुषं जगतामधीशं त्वां जडधियः वयं त्वां न विदामः । यत्सत्त्वतः सुरगणाः रजसः प्रजेशाः मन्यो च भूतपतयः स भवान् गुणेशः ॥१४॥

अनुवाद— हे अनन्त ! आप कूटस्थ अर्थात् निर्विकार जगत् के आदि कारण तथा संसारी जीवों के स्वामी हैं । इस प्रकार के आपको जड बुद्धि वाले हम अज्ञानी जीव नहीं जान पाते हैं । आपमें जब सत्त्वगुण की वृद्धि होती है तो उस समय देवताओं की, रजोगुण की वृद्धि होने पर प्रजापतियों की और तमोगुण की वृद्धि होने पर क्रोध से रुद्रगण की उत्पत्ति होती है । आप तो गुणों के स्वामी हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

भाषणमेवाह-न त्वामिति द्वाभ्याम् । एतावत्पर्यन्तं नु निश्चितं त्वां न विदाम । न जानीम इत्यर्थः । इदानीं तु ज्ञातोऽसीत्याह-यदिति पृथक्पदम् । यस्येत्यर्थः । यद्वशेभ्यः सत्त्वादिभ्यः सुरगणादयो भवन्ति स भवानिति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

न त्वाम्० इत्यादि दो श्लोकों से समुद्र के कथन को ही बतलाया गया है । अभी तक हमलोग आपको नहीं जान पाते हैं । अब मैंने अपको जान लिया । यत् सत्त्वतः में यत् यह अलग पद है । आपके वश में रहने वाले सत्त्व आदि गुणों से देवताओं आदि की उत्पत्ति होती है । इस प्रकार के आप है ॥१४॥

कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीर पत्नीम् ।
बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥१५॥

अन्वयः— वीर कामं प्रयाहि विश्रवसः अवमेह त्रैलोक्यरावणं जहि, हे वीर पत्नीम् अवाप्नुहि ते यशसः वितत्यै इह सेतुम् बध्नीहिविजयिनः भूपाः यमुपेत्य गायन्ति ॥१५॥

अनुवाद— हे वीर शिरोमणे ! आप अपनी इच्छा के अनुसार जाइये, विश्रवा के मलमूत्र के समान त्रैलोक्य को रुलाने वाले रावण का आप वध करें तथा अपनी पत्नी श्रीसीताजी को प्राप्त करें । आप यहाँ मुझ पर एक पुल बाँध दीजिये, इससे आपके यश का विस्तार होगा । दिग्विजयी राजा गण जब यहाँ आयेंगे और आपके द्वारा किए गये सेतु निर्माण रूप असंभव कर्म को देखेंगे तो वे आपके यश का गायन करेंगे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

कामं यथेच्छं जलमाक्रम्यापि प्रयाहि । अवमेहं पुरीषप्रायम् । त्रैलोक्यं रावयत्याक्रन्दयतीति तथा तं जहि । हे वीर, यद्यपि तव जलं प्रतिबन्धकं न भवति तथापीह सेतुं बध्नीहि । तर्हि किमर्थम् । ते यशसो विस्ताराय । तदेवाह-यं सेतुमुपेत्य दुष्करं कर्मावेक्ष्य त्वद्यशो गास्यन्ति भूपास्तम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

यदि आपकी इच्छा हो तो जल के ऊपर से भी होकर आप जा सकते हैं । त्रैलोक्य के रुलाने वाला रावण

तो विश्रवा के मलमूत्र के समान है अतएव आप उसका वध कर दें। हे वीर आपके जाने में यद्यपि जल प्रतिबन्धक (बाधक) नहीं हो सकता है फिर भी आप यहाँ पर एक सेतु का निर्माण करें। यदि आप कहें कि किसलिए तो इसका उत्तर है कि उससे आपके यश का विस्तार होगा। उसी बात को समुद्र ने कहा इस सेतु पर आकर दिग्विजयी राजागण आपके द्वारा किए गये सेतु निर्माण रूप दुष्कर कार्य को देखकर वे आपके यश का गायन करेंगे ॥१५॥

बद्ध्वोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः सेतुं कपीन्द्रकरकम्पितभूरुहाङ्गैः ।
सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकैर्लङ्कां विभीषणदृशाऽविशदग्रदग्धाम् ॥१६॥

अन्वयः— कपीन्द्र कर कम्पित भूरुहाङ्कैः सुग्रीवनीलहनुमत् प्रमुखैः अनीकैः विविधाद्रि कूटैः उदधौ सेतुं बद्ध्वा रघुपतिः विभीषण दृशा अग्रदग्धाम् लङ्काम् अविशत् ॥१६॥

अनुवाद— बड़े-बड़े बन्दर अपने हाथों से जब पर्वत उठाकर लाते थे तब उनके वृक्ष और चट्टाने काँपने लगती थीं जिनमें सुग्रीवजी हनुमानजी नील आदि वीर प्रमुख थे ऐसी सेना के द्वारा लाये गये अनेक पर्वत शिखरों से सेतु का निर्माण करके भगवान् श्रीराम विभीषणजी के सलाह से जो हनुमान जी द्वारा पहले जलायी जा चुकी थी उस लङ्का में प्रवेश किए ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तद्वाक्यमभिनन्द्य यत्कृतं तदाह-वद्ध्वेति । विविधैरद्रीणां कूटैः शृङ्गैः सेतुं बद्ध्वाऽग्रे सीतान्वेषणे हनुमतैव दग्धां लङ्कामाविशत् । कथंभूतैः शृङ्गैः। कीपन्द्राणां करैः कम्पितानि भूरुहाणामङ्गानि शाखादीनि येषु तैः । विभीषणस्य दृशा बुद्ध्या कैः सहाविशत् सुग्रीवादयः प्रमुखा येषां तैरनीकैः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

समुद्र की बातों का आभिनन्दन करके भगवान श्रीराम ने जो किया उसको वद्ध्वा इत्यादि श्लोक से कहते हैं अनेक पर्वतों के शिखरों से समुद्र पर सेतु का निर्माण करके, श्रीसीताजी के अन्वेषण के प्रसङ्ग में श्रीहनुमानजी जिसको पहले ही जला चुके थे उस लङ्का में प्रवेश किए। कैसे पर्वतों के शिखरों से? तो इसे बतलाते है बड़े-बड़े वानरों द्वारा जिन पर्वतों के वृक्ष और चट्टान कंपा दिए गये थे ऐसे शिखरों से विभिषण के सलाह से सुग्रीव आदि जिनमें प्रधान थे ऐसे वीरों वाली सेना के साथ श्रीभगवान प्रवेश किए ॥१६॥

सा वानरेन्द्रबलरुद्धविहारकोष्ठश्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटङ्का ।
निभज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भशृङ्गाटका गजकुलैर्ह्रदिनीव घूर्णा ॥१७॥

अन्वयः— वानरेन्द्रबलरुद्धविहार कोष्ठ श्रीद्वार गोपुर सदोबलभी विटंका निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भ शृङ्गाटका सा गजकुलै धूर्णाहृदिनी इव ॥१७॥

अनुवाद— वानर राज की सेना के द्वारा लङ्का के विहार (क्रीडा स्थल) कोष्ठ (अन्न गोदाम) श्री (कोश) द्वारा दरवाजे गोपुर (फाटक) सद (सभास्थान) बल भी (छज्जा) विटङ्क (पक्षियों के रहने के स्थान) आदि को घेर लिया और वहाँ की वेदिकाओं ध्वजाएँ सुवर्ण के कलश और चौराहों आदि को तोड़ दिया। इस प्रकार की वह लङ्का उस तरह प्रतीत होती थी जैसे हाथियों के समूह ने किसी नदी को मथ डाला हो ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च सा लङ्का धूर्णा प्रचलिता बभूव । कथंभूता । वानरेन्द्राणां बलैरुद्धा विहारादयो यस्याम् । निर्भज्यमाना धिषणादयो यस्यां सा । तत्र विहारः क्रीडास्थानम्, कोष्ठं धान्यागारादि, श्रीः कोशः, द्वारं गृहादीनाम्, गोपुरं पुरद्वारम्, सदः सभा, बलभी प्रसादादिपुरोभागच्छादिनी, विटङ्कः कपोतपालिका घिषणं वेदिकादि, शृङ्गाटकं चतुष्पथम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् लङ्का जैसे मथ दी गयी । किस प्रकार की लङ्का? तो इसका उत्तर हैकि जिसके कीडास्थल आदि घेर लिए गये थे और वेदिकाएँ आदि तोड़ दी जा रही थी । विहार अर्थात् कीडा स्थल कोष्ठं अर्थात् अन्नागार, कोश (खजाना) गृहों आदि के दरवाजे, गोपुरम् नगर द्वार सदः सभा स्थान बलभी छज्जे विटङ्क पक्षियों के रहने के स्थान, धिषणम् (वेदिकाएँ) शृङ्गाटकम् (चौराहे) ।।१७।।

रक्षःपतिस्तदवलोक्य निकुम्भकुम्भधूम्राक्षदुर्मुखसुरान्तनरान्तकादीन् ।
पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकम्पनादीन्सर्वानुगान्समहिनोदथ कुम्भकर्णम् ।।१८।।

अन्वयः— तदवलोक्यरक्षः पतिः निकुम्भ-कुम्भ-धूम्राक्ष-दुर्मुख-सुरान्तक-नरान्तका दीन्, पुत्रं,प्रहस्तम् अतिकायविकम्पनादीन, सर्वानुगान् समहिनोत् अथकुम्भकर्णम् ।।१८।।

अनुवाद— राक्षस राज रावण यह देख कर निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख सुरान्तक, नरान्तक, प्रहस्त, अतिकाय, विकम्पन आदि सभी अनुचरों तथा पुत्र इन्द्रजित को एवं अन्त में कुम्भकर्ण को भी युद्ध करने के लिए भेजा ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

रक्षःपती रावणः पुत्रमिन्द्रजितं प्रहस्तादींश्च समहिनोत्प्रायुङ्क्त ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

राक्षसराज रावण अपने पुत्र इन्द्रजित तथा प्रहस्त आदि को भी युद्ध करने में लगा दिया ।।१८।।

तां यातुधानपृतनामसिशूलचापप्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमरखड्गदुर्गाम् ।
सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगन्धमादनीलाङ्गदर्क्षपनसादिभिरन्वितोऽगात् ।।१९।।

अन्वयः— असिशूलचापप्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमर खड्गदुर्गाम् तां यातुधानपृतनाम् सुग्रीव लक्ष्मण मरुत्सुतगन्धमाद नीलाङ्गदर्क्षपनसादिभिरन्वितोऽगात् ।।१९।।

अनुवाद— तलवार, त्रिशूल, धनुष, प्रास, ऋष्टि, शक्ति बाण, भाले, खड्ग आदि शास्त्रों से सुरक्षित उस दुर्ग में सेना का सामना करने के लिए भगवान् श्रीराम, सुग्रीव, लक्ष्मण, हनुमान, गन्धमादन, नील, अंगद, जाम्बवान और पनस आदि वीरों के साथ गये ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

असिशूलादिभिर्दुर्गमां तां यातुधानपृतनां सुग्रीवादिभिरन्वितः श्रीरामोऽभ्यगात् । मरुत्सुतो हनुमान् । ऋक्षो जाम्बवान्।।१९।।

भाव प्रकाशिका

तलवार त्रिशूल आदि शस्त्रास्त्रों से सुरक्षित राक्षसों की सेना का सामना करने के लिए भगवान् श्रीराम सुग्रीव आदि के साथ गये । **मरुत्सुतः** अर्थात् हनुमान् ऋक्ष अर्थात् जाम्बवान् ।।१९।।

तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे द्वन्द्वं वरूथमिभपत्तिरथाश्वयोधैः ।
जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरङ्गदाद्याः सीताभिमर्शहतमङ्गलरावणेशान् ।।२०।।

अन्वयः— ते सर्वे रघुपतेरनीकपाः अंगदाद्याः वरुथमभिपत्तिरथाश्वयोधैः अभिपत्य द्रुमैः गिरिगदेषुभिः सीताभिमर्श हतमङ्गलरावणेशान् जघ्नुः।।२०।।

अनुवाद— रघुवंश शिरोमणि श्रीरामचन्द्रजी के वे सभी सेनापति अङ्गद आदि राक्षसों की चतुरंगिणी सेना के हाथी, रथ, घुड़सवार तथा पैदलों के साथ द्वन्द्व युद्ध की रीति से युद्ध करने लगे सीताजी का स्पर्श करने के

कारण जिस रावण का मङ्गल विनष्ट हो गया था उस रावण के स्वामित्व में रहने वाले राक्षस वीरों को पर्वत, गदा, बाण तथा वृक्ष आदि से मारने लगे ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

ते रघुपतेरनीकपा अङ्गदाद्याः सर्वे रावणस्येभादिभिर्यद्वरूथं सैन्यं तत्र द्वन्द्वं यथा भवति तथाभिपत्य सङ्गम्य द्रुमादिभिर्जघ्नुः कान् । सीताया अभिमर्शेन हतं मङ्गलं यस्य स रावण ईशो येषां तान् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीरामचन्द्रजी के अङ्गद आदि सेनापति रावण के हाथी आदि के सेनाओं से द्वन्द्व युद्ध की रीति से युद्ध करते हुए राक्षसों को वृक्ष आदि से मारने लगे । क्योंकि श्रीसीताजी का स्पर्श करने के कारण जिसका मङ्गल विनष्ट हो गया था उस रावण के वे सब अनुचर थे ॥२०॥

रक्षःपतिः स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट आरुह्य यानकमथाभिससार रामम् ।
स्वःस्यन्दने द्युमति मातलिनोपनीते विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरप्रैः ॥२१॥

अन्वयः— रक्षः पति स्वबलनष्टिम् अवेक्ष्य रुष्टः यानकम् अभिरुह्य अथ रामम अभिससार मातलिना द्युमतिस्वः स्यन्दने उपनीते विभ्राजमानम् निशितैः क्षुरप्रैः अहनत् ॥२१॥

अनुवाद— राक्षसराज रावण अपनी सेना के विनाश को देखकर क्रोध में भरकर पुष्पक विमान पर भगवान् के समक्ष आया मातलि के द्वारा स्वर्ग से लाये गये रथपर विराजमान भगवान् श्रीराम पर क्षुरप्र बाणों से प्रहार करने लगा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

स्वबलस्य नष्टिं नाशमवेक्ष्य रुष्टः क्रुद्धः सन् यानकं पुष्पकं विमानं रथं वारुह्य श्रीराममभिससार । अथ तं स्वःस्यन्दने स्वर्गस्थे इन्द्रस्य रथे मातलिनेन्द्रसारथिनोपनीते द्युमति दीप्तियुक्ते विभ्राजमानमहनदहन् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

अपनी सेना का विनाश देखकर क्रुद्ध हुआ रावण पुष्पक विमान पर चढ़कर भगवान् श्रीराम के समक्ष आया, और स्वर्ग में रहने वाले इन्द्र के रथ को मातलि द्वारा लाये गये रथपर विराजमान भगवान् श्रीराम पर क्षुरप्र बाणों से प्रहार करने लगा ॥२१॥

रामस्तमाह पुरुषादपुरीष यन्नःकान्ताऽसमक्षमसतापहृता श्ववृत्ते ।
त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य यच्छामि काल इव कर्तुरलङ्घ्यवीर्यः ॥२२॥

अन्वयः— तम् रामः आह हे पुरुषादपुरीष यन्नःकान्ता असमक्षमअसता श्ववत् अपहृता व्यक्तत्रपस्य जुगुप्सितस्यतेफलम् अद्य काल इव अलङ्ध्यवीर्यः यच्छामि ॥२२॥

अनुवाद— रावण को श्रीरामचन्द्रजी ने कहा अरे नीच राक्षस रावण हमारी अनुपस्थिति में तुमने मेरी प्रियतमा काअपहरण कुत्ते के समान किया । निर्लज्ज और निन्दित रावण जिस तरह से कोई काल का अतिक्रमण नहीं करता उसी तरह अनतिक्रमणीय पराक्रम वाला में तुम्हारे कर्म का फल प्रदान करता हूँ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

हे पुरुषादपुरीष राक्षसपुरीषप्राय, यद्यस्मादपहृता । श्ववत् श्वा यथा असमक्षं गृहं प्रविश्य किमपि हरति तद्वत् । तस्माज्जुगुप्सितस्य कर्मणः कर्तुस्तेऽद्य काल इवालङ्घ्यवीर्योऽहं फलं यच्छामि । अधर्मकर्तुः पुंसः कालो यथा यच्छतीति वा॥२२॥

भाव प्रकाशिका

हे राक्षसों की विष्ठा के समान त्याज्य रावण चूकि तुमने मेरी अनुपस्थिति में कुत्ते के समान मेरे आश्रम से सीता का अपहरण किया है, अतएव तुम निर्लज्ज और निन्दित हो तुम्हारे किए कर्म का फल आज मैं प्रदान करता हूँ । जिस तरह अधर्म करने वाले को काल फल प्रदान करता है उसी तरह ।।२२।।

एवं क्षिपन्धनुषि संधितमुत्ससर्ज बाणं सवज्रमिव तद्धृदयं बिभेद ।
सोऽसृग्वमन्दशमुखैर्न्यपतद्विमानाद्धाहेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः।।२३।।

अन्वयः— एवं क्षिपन् धनुषि संधित वज्रमिव बाणं उत्ससर्ज तद हृदयं विभेद,सः दशमुखैः असृग्वमन् हाहेति विमानात् रक्तः सुकृती इव हाहेति जल्पति जने न्यपतत् ।।२३।।

अनुवाद— इस तरह रावण को फटकारते हुए भगवान् श्रीराम धनुष पर चढ़ाये हुए वज्र के समान बाणों को छोड़े उसने जाकर रावण के हृदय को छेद दिया जिसके कारण रावण अपने दशो मुखों से रक्त वमन करते हुए विमान से उसी तरह गिर पड़ा जिस तरह कोई पुण्यवान् पुण्यों के क्षीण होने पर स्वर्ग से गिर पड़ता है । उस समय रावण के पुरजन परिजन हाय ! हाय !! करके चिल्ला रहे थे ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

रिक्तः क्षीणपुण्यः सुकृती विमानादिव विमानात्पुष्पकान्न्यपतदिति वा ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

पुण्य के नष्ट हो जानेसे वह पुण्यवान् पुष्पक विमान से गिर पड़ा ।।२३।।

ततो निष्क्रम्य लङ्कायाः यातुधान्यः सहस्रशः । मन्दोदर्या समं तस्मिन्प्ररुदत्य उपाद्रवन् ।।२४।।

अन्वयः— ततः सहस्रशः यातुधान्यः लङ्कायाः निष्क्रम्य मन्दोदर्यासमं प्ररुदत्य तस्मिन् उपाद्रवन् ।।२४।।

अनुवाद— उसके पश्चात् हजारों राक्षसियाँ लङ्का से निकलकर मन्दोदरी के साथ रोती हुई उस रणभूमि में आयीं।।२४।।

भावार्थ दीपिका

राक्षसस्त्रीणां विलापमाह-तत इति पञ्चभिः । मन्दं स्वल्पमुदरं यस्यातया रावणभार्यया सह ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

राक्षस स्त्रियों का विलाप वर्णन **तत० इत्यादि** पाञ्च श्लोकों से करते हैं । कमर अत्यन्त क्षीण होने के कारण उसका नाम मन्दोदरी था । उस रावण की पत्नी के साथ ।।२४।।

स्वान्स्वान्बन्धून्परिष्वज्य लक्ष्मणेषुभिरर्दितान् । रुरुदुः सुस्वरं दीना घ्नत्य आत्मानमात्मना ।।२५।।

अन्वयः— लक्ष्मणेषुभिः आर्दितान स्वान् स्वान् बन्धून् परिष्वज्य आत्मानम् आत्मनाध्न्दयः दीनाः सुस्वरं रुरुदुः।।२५।।

अनुवाद— लक्ष्मणजी के बाणो से मारे गये अपने-अपने बान्धवों का आलिङ्गन करके वे अपने हाथों से अपनी छाती पीट-पीट कर रोने लगीं ।।२५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२५।।

हा हताः स्म वयं नाथ लोकरावण रावण । कं यायाच्छरणं लङ्का त्वद्विहीना परार्दिता ।।२६।।

अन्वयः— हा नाथ लोकरावण रावण वयं हताःस्म त्वद्विहीना परै अर्दिता लङ्का कं शरणं यायात् ।।२६।।

अनुवाद— हे नाथ ! हे सम्पूर्ण त्रैलोक्य को रुलाने वाले रावण अब हमलोग बे मौत मारी गयी । आपके अभाव में शत्रुओं द्वारा तोड़-फोड़ दी गयी लङ्का किसके शरण में जाय ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

परैरर्दिता पीडिता ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

शत्रुओं द्वारा पीड़ित ।।२६।।

नैवं वेद महाभाग भवान्कामवशं गतः । तेजोनुभावं सीताया येन नीतो दशामिमाम् ।।२७।।

अन्वयः— हे महाभाग ! कामवशंगतः भवान् सीतायाः तेजोनुभावं एव न वेद येन इमाम दशां गतः ।।२७।।

अनुवाद— हे महाभाग्यवान् आप काम केवशवर्ती होकर सीता के इस प्रकार के तेजोमय प्रमाव को नहीं जान सके, इसीलिए आप इस दशा को प्राप्त कर गये ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

कृतैषा विधवा लङ्का वयं च कुलनन्दन । देहः कृतोऽन्नं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे ।।२८।।

अन्वयः— हे कुलनन्दन एषा लङ्का वयं च विधवा कृताः देहः गृध्रणाम् अन्नं कृतः आत्मानरकहेतवे ।।२८।।

अनुवाद— हे कुलनन्दन ! आपने इस लङ्का को तथा हम सबों को विधवा बना दिया अपने शरीर को गृध्रों का भक्ष्य बना दिया और अपनी आत्मा को नरक का अधिकारी बना दिया ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

गृध्राणामन्नं भक्ष्यः । नरकहेतवे नरकभोगाय ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

गृध्राणामन्नम् अर्थात् गिद्धों का भक्ष्य, नरक हेतवे, अर्थात् नारकीय ।।२८।।

श्रीशुक उवाच

स्वानां विभीषणश्चक्रे कोसलेन्द्रानुमोदितः । पितृमेधविधानेन यदुक्तं सांपरायिकम् ।।२९।।

अन्वयः— कोसलेन्द्रानुमोदितः विभीषणः स्वानाम् पितृमेधविधानेन यत् साम्परायिकं उक्तं चक्रे ।।२९।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— कोसलाधीश के द्वारा अनुमति प्राप्त करके विभीषण ने अपने बान्धवों का पितृयज्ञ की विधि से शास्त्रोक्त प्रक्रिया से अन्त्येष्टि कर्म सम्पन्न किया ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

सांपरायिकमौर्ध्वदेहिकम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

साम्परायिकम् अर्थात् और्ध्वदैहिककर्म ।।२९।।

क्षामां स्वविरहव्याधिं शिंशपामूलमास्थिताम्।।३०।।
ततो ददर्श भगवानशोकवनिकाश्रमे । आत्मसंदर्शनाह्लादविकसन्मुखपङ्कजाम् ।।३१।।
रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्यान्वकम्पत ।

अन्वयः— ततःभगवान रामः अशोकवनिकाश्रमे शिंशपामूलम आस्थिताम् स्वविरहव्याधिंक्षामां दीनां प्रियतमां भार्यां आत्मसंदर्शनाह्लादविकासन्मुखपङ्कजाम् वीक्ष्य अन्वकम्पत ।।३०-३१।।

अनुवाद— उसके पश्चात् भगवान् श्रीराम अशोक वाटिका के आश्रम में शिंशपा वृक्ष के नीचे बैठी हुई भगवान्

ने विरह रूप व्याधि से पीड़ित एवं दुर्बल तथा दीन बनी हुई अपनी प्रियतमा पत्नी श्रीसीताजी को देखे। श्रीभगवान् के दर्शन जन्य आह्लाद से प्रसन्न श्रीसीताजी का मुख कमल विकसित हो गया और श्रीजानकीजी की उस अवस्था को देखकर भगवान् श्रीराम का हृदय कृपा से परिपूर्ण हो गया ॥३०-३१॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनः स्वस्य संदर्शनेन य आह्लादस्तेन विकसन्मुखपङ्कजं यस्यास्ताम् ॥३०-३१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के दर्शनजन्य आह्लाद श्रीजानकीजी का मुखकमल विकसित हो गया ॥३०-३१॥

आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः। विभीषणाय भगवान्दत्त्वा रक्षोगणेशताम् ॥३२॥

अन्वयः— भगवन् विभीषणाय रक्षोगणेशताम् दत्त्वा (सीताम्) यानम् आरोप्य हनुमदयुतः यानं रुरुहे ॥३२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् विभीषणजी को राक्षसों का राजा का पद देकर तथा श्रीजानकीजी को पहले विमान पर बैठकर लक्ष्मणजी तथा सुग्रीवजी इन दोनों भाइयों एवं हनुमानजी के साथ विमान पर चढ़े ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

यानं पुष्पकम्। भ्रातृभ्यां लक्ष्मणसुग्रीवाभ्याम् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

यान शब्द से पुष्पक विमान को और भातृभ्याम् पद से लक्ष्मणजी और सुग्रीवजी के साथ ॥३२॥

लङ्कामायुश्च कल्पान्तं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम्। अवकीर्यमाणः कुसुमैर्लोकपालार्पितैः पथि ॥३३॥

अन्वयः—विभीषणाय लङ्का कल्पान्तमा आयुश्च दत्वा चीर्णव्रत पथिलोकपालार्पितैः कुसुमैः अवकीर्यमाणः पुरीम् ययौ॥३३॥

अनुवाद— विभीषणजी को लङ्का का राज्य और एक कल्प की आयु प्रदान करके श्रीभगवान् व्रत समाप्त हो जाने पर अयोध्या पुरी के लिए प्रस्थान किए। उस समय ब्रह्मा आदि लोकपाल गण उन पर पुष्पों की वर्षा कर रहे थे ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

आयुश्च दत्त्वा तेनापि सहैव ययौ ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

विभीषणजी को आयु भी प्रदान करके उनके साथ अयोध्या गये ॥३३॥

उपगीयमानचरितः शतधृत्यादिभिर्मुदा। गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम् ॥३४॥
महाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थण्डिलेशयम्। भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः ॥३५॥
पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम्। नन्दिग्रामात्स्वशिबिराद्गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥३६॥
ब्रह्मघोषेण च मुहूः पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः। स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमैश्चित्रध्वजै रथैः ॥३७॥
सदश्वै रुक्मसन्नाहैर्भटैः पुरटवर्मभिः। श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्भृत्यैश्चैव पदानुगैः ॥३८॥
पारमेष्ठ्यान्युपादायपण्यान्युच्चावचानि च। पादयोर्न्यपतत्प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः ॥३९॥

अन्वयः— शतधृत्यादिभिः मुदा उपगीयमान चरितः भ्रातरं गोमूत्रयावकं, वल्कलम्बरम् जटिले स्थण्डिलेशयम् श्रुत्वा महाकारुणिकः अतप्यत् भरतः प्राप्तम् आकर्ण्य पौरामात्य पुरोहितैः शिरसि पादुके न्यस्य अग्रजम् रामं प्रत्युद्यतः नन्दिग्रामात्

स्वशिविरात् गीतवादित्रनिःस्वनैः मुहुः पठद्भिः ब्रह्मवादिभिः ब्रह्मघोषेण स्वर्णकक्षपताकाभिः हेमैः चित्रध्वजैः रथैः सदश्वैः रुक्मसन्नाहैः पुरटवर्मभिः भटैः श्रेणीभिः वारमुख्याभिःपदानुगैः भृत्यैः चैव पारमेष्ठयानि उच्चावचानि च वण्यानि उपादाय प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः प्रेम्णा पादयोः न्यपतत् ।।३४-३९।।

अनुवाद— ब्रह्माजी आदि आनन्द पूर्वक श्रीभगवान की लीलाओं का गान कर रहे थे, और श्रीभगवान् ने जब सुना कि भरतजी गो मूत्र में धुले हुए यव की दलिया खाते हैं, वल्कल वस्त्र धारण करते हैं, वे जटा बढा रखे हैं और वेदी पर सोते हैं, तब वे बहुत दुःखी हुए । जब भरतजी को मालुम हुआ कि मेरे बड़े भाई श्रीरामजी आ रहे हैं, तब वे नागरिक, मन्त्रीगण तथा पुरोहितों को साथ लेकर और उनकी पादुकाएँ अपने सिर पर रखकर श्रीभगवान् की अगवानी करने के लिए चल पड़े । जब भरतजी अपने रहने के स्थान नन्दिग्राम से चले तब लोग उनके साथ मङ्गलगान करते हुए तथा बाजा बजाते हुए चले । उस समय वैदिक ब्राह्मण बार-बार वेद मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे । चारो ओर वेदघोष होने लगा । सुनहरी कामदार पताकाएँ फहराने लगीं सुवर्ण जटित रंग-विरंगी ध्वजाएँ, सजे हुए रथ सुनहले साज से सजाये हुये अश्व, सुवर्ण कवच धारण किए हुए सैनिक उनके साथ-साथ चल रहे थे। व्यापरीवर्ग, श्रेष्ठ वाराङ्गनाएँ, पैदल चलने वाले सेवक तथा महाराजाओं के योग्य छोटी बड़ी वस्तुएँ उनके साथ चल रही थीं । श्रीभगवान् को देखते ही प्रेमोद्रेक के कारणा भरतजी का हृदय गद्‌गद हो गया, नेत्रों में आँसू भर गये और भरतजी श्रीभगवान् के चरणों पर गिर पड़े ।।३४-३९।।

भावार्थ दीपिका

गोमूत्र पक्वपवान्नभोजनम् । भ्रातरं भरतम् स्वशिबिराद्रामं विनायोध्यामप्रविशन् । स्वस्य वासं यत्र निर्मितवांस्तस्मात्सकाशाद्गीतादिभिर्युक्तो रामं प्रत्युद्यतोऽभिमुखं ययौ । ब्रह्मघोषेण महता घोषेण पठद्भिः । स्वर्णरसाक्ताः कक्षाः प्रान्ता यासां ताभिः पताकाभिः । हैमैरिति चत्वारि रथविशेषणनि । पारमेष्ठ्यानि राजार्हाणि छत्रचामरादीनि । प्रेम्णा प्रक्लिन्नं हृदयमीक्षणे च नेत्रे यस्य ।।३४-३९।।

भाव प्रकाशिका

गोमूत्रयावकम् अर्थात् गोमूत्र में पकाये हुय यव को भोजन भगवान् श्रीराम के बिना आयोध्या में प्रवेश नहीं करने के कारण भरतजी जहाँ पर अपना निवास स्थान बनाये थे वहाँ से गीत आदि के साथ श्रीरामचन्द्र जी की अगवानी करने के लिए चल पड़े । जोर-जोर से उस समय ब्रह्मघोष हो रहा था । सुवर्ण के पानी चढायी गयीकिनारों वाली पताकाओं से, हैम इत्यादि चार, रथ के विशेषण है । पारमेष्ठायनि अर्थात् राजाओं के योग्य छत्र चमर इत्यादि प्रक्लिन्न हृदयेक्षणः प्रेम से परिपूर्ण हृदय और नेत्रों वाले भरतजी ।।३४-३९।।

पादुके न्यस्य पुरतः प्राञ्जलिर्बाष्पलोचनः । तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन्नेत्रजैर्जलैः ।।४०।।

अन्वयः— पुरतः पादुके न्यस्य प्राञ्जलिः वाष्पलोचनः दोर्भ्यां तं चिरम् अश्लिष्य नेत्रजै जलैः स्नापयन ।।४०।।

अनुवाद— भरतजी श्रीभगवान् के सामने उनकी पादुकाओं को रख दिए और हाथ जोड़कर श्रीभगवान् के सामने खड़े हो गये । उस समय उनकी आँखों में आँसू का जल भर गया था । श्रीभगवान् भरतजी को अपने दोनों हाथों से पकड़कर देर तक हृदय से लगाये रहे भगवान् के आँसुओं से भरतजी का स्नान ही हो गया ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

नेत्रजैर्जलैः स्नापयन्नाश्लिष्य ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

भरतजी को आलिङ्गित करके नेत्रों के जल से स्नान करा दिए ।।४०।।

रामो लक्ष्मणसीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः । तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः ॥४१॥

अन्वयः— प्रजाभिश्च नमस्कृतः रामलक्ष्मणसीताभ्याम् ये अर्हसत्तमाः तेभ्यः विप्रेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे ॥४१॥

अनुवाद— प्रजाओं के द्वारा नमस्कृत होकर भगवान् श्रीराम, श्रीजानकीजी और श्रीलक्ष्मणजी के साथ पूजनीय ब्राह्मणों को नमस्कार किए ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

येऽर्हसत्तमाः कुलवृद्धास्तेभ्योऽपि नमनं चक्रे ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् अपने कुलवृद्ध पुरुषों को भी नमस्कार किए ॥४१॥

धुन्वन्त उत्तरासङ्गान्पतिं वीक्ष्य चिरागतम् । उत्तराः कोशला माल्यैः किरन्तो ननृतुर्मुदा ॥४२॥

अन्वयः— उत्तराः कोशलाः चिरागतम् पतिं वीक्ष्य उत्तरासङ्गान् धुन्वन्तः माल्यैः किरन्तः मुदा ननृतुः ॥४२॥

अनुवाद— उत्तर कोसल की प्रजाएँ दीर्घकाल के पश्चात् आये हुए अपने स्वामी को देखकर अपने दुपट्टे हिला-हिला कर तथा पुष्पों की वर्षा करती हुई आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगीं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४२॥

पादुके भरतोऽगृह्णाच्चामरव्यजनोत्तमे । विभीषणः ससुग्रीवः श्वेतच्छत्रं मरुत्सुतः ॥४३॥
धनुर्निषङ्गाञ्छत्रुघ्नः सीता तीर्थकमण्डलुम् । अबिभ्रदङ्गदः खड्गं हैमं चर्मर्क्षराण्नृप ॥४४॥

अन्वयः— हे नृप भरतः पादुके अगृहणात् चामरव्यजनोत्तमे विभीषणः ससुग्रीवः, श्वेच्छत्रं मरुत्सुतः । धनुर्निषङ्गान् शत्रुघ्न तीर्थकमण्डलुं सीता, अंगदः हैमं खड्गम् अबिभ्रत् ऋक्षराट् च चर्म ॥४३-४४॥

अनुवाद— भरतजी भगवान् की पादुकाओं को ले लिए विभीषणजी जी चमर और सुग्रीव जी पङ्खा तथा श्री हनुमानजी श्वेत छत्र धारण कर लिए सीताजी तीर्थों के जल से भरे कमण्डलु ले लीं, अङ्गद ने सोने का खड्ग और जाम्बवान ने ढाल ले ली ॥४३-४४॥

भावार्थ दीपिका

अयोध्याप्रवेशप्रकारमाह-पादुके इति सार्धैस्त्रिभिः धनुश्च निषङ्गौ च तान् । ऋक्षराट् जाम्बवान् ॥४३-४४॥

भाव प्रकाशिका

साढे तीन श्लोकों से अयोध्या में प्रवेश करने के प्रकार का वर्णन है । धनुर्निषङ्गान् अर्थात् धनुष तथा दोनों निषङ्गो को ॥४३-४४॥

पुष्पकस्थोऽन्वितः स्त्रीभिः स्तूयमानश्च बन्दिभिः । विरेजे भगवान्राजन्ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः ॥४५॥

अन्वयः— राजन् स्त्रीभिः अन्वितः वन्दिभिः स्तूयमानः पुष्पकस्थःभगवान् उदितः चन्द्रः ग्रहैः इव विरेजे ॥४५॥

अनुवाद— स्त्रियों से घिरे हुए तथा वन्दीजनों से स्तुति किए जाते हुए पुष्पक विमान पर बैठे हुए श्रीभगवान उसी तरह सुशोभित हो रहे थे जैसे तारों के बीच में उदित हुए चन्द्रमा सुशोभित होते हैं ॥४५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४५॥

भ्रातृभिर्नन्दितः सोऽपि सोत्सवां प्राविशत्पुरीम्। प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरम् ।।४६।।
गुरून्वयस्यावरजान्पूजितः प्रत्यपूजयत् । वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत्समुपेयतुः ।।४७।।

अन्वयः— भ्रातृभिः नन्दितः सोऽपि सोत्सवां पुरीं प्राविशत् । राजभवनं प्रविश्य गुरुपत्नीः स्वमातरम् गुरून्, वयस्यावरजान् पूजितः प्रत्यपूजयत् । वैदेही लक्ष्मणः चैव यथावत् समुपेयतुः ।।४६-४७।।

अनुवाद— अपने भाइयों द्वारा अभिनन्दित भगवान् श्रीरामजी भी उत्सवों से युक्त अयोध्यापुरी में प्रवेश किए। राज भवन में प्रवेश करके महाराज दशरथ की पत्नियों अपनी माताओं, गुरुजनों, मित्रों तथा छोटों के द्वारा सम्मानित होकर उन लोगों का भी यथायोग्य सम्मान किए । श्रीसीताजी तथा लक्ष्मणजी ने श्रीभगवान् के साथ ही सबों के प्रति यथोचित व्यवहार किया ।।४६-४७।।

भावार्थ दीपिका

गुरुपत्नी कैकेय्याद्याः । वयस्यानवरजांश्च । यथावदनुक्रमेण समुपेयतुः ।।४६-४७।।

भाव प्रकाशिका

गुरुपत्नीः अर्थात् कैकेयी आदि को, **वयस्यान् आवरजांश्च** अर्थात् अपने बराबर उम्र वाले मित्रों तथा कम अवस्था वाले मित्रों को, **यथावत्** अर्थात् यथोचित रूप से, **समुपेयतुः** व्यवहार किए ।।४६-४७।।

पुत्रान्स्वमातरस्तास्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः । आरोपयाङ्केऽभिषिञ्चन्त्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः ।।४८।।

अन्वयः— तन्वे प्राणान् इव उत्थिताः ताःस्वमात्तरः पुत्रान् अङ्क आरोप्य वाष्पौघैः सिंचन्त्यः शुचः विजहुः ।।४८।।

अनुवाद— जिसतरह मृत शरीर में प्राणों का संचार हो जाय उसी तरह वे माताएँ अपने पुत्रों को अपनी गोद में बैठाकर आँसुओं से सींचती हुई अपने सम्पूर्ण शोक को त्याग दीं ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

बाष्पौघैरभिषिञ्चन्त्यः शुचः शोकान्विजहुः। शेषं सपष्टम् ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

अपने आँसुओं में सिञ्चती हुई शोकों का परित्याग कर दीं । शेष बातें स्पष्ट हैं ।।४८।।

जटा निर्मुच्य विधिवत्कुलवृद्धैः समं गुरुः । अभ्यषिञ्चद्यथैवेन्द्रं चतुःसिन्धुजलादिभिः ।।४९।।

अन्वयः— कुलवृद्धैः समं गुरुः विधिवत् जटा निर्मुच्य इन्द्रं यथा चतुः सिन्धु जलादिभिः अभ्यसिंचत् ।।४९।।

अनुवाद— रघुवंश के वृद्ध पुरुषों के साथ गुरु वसिष्ठ भगवान् श्रीराम की जटा को विखेरकर जिस तरह बृहस्पति इन्द्र का अभिषेक किया था उसी तरह भगवान् श्रीराम का चारो समुद्रों के जल से अभिषेक किए ।।४९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४९।।

एवं कृतशिरः स्नानः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः । स्वलंकृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ ।।५०।।

अन्वयः— एवं कृताशिरः स्नानः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः स्वलंकृतैः सुवासोभिः भ्रातृभिः भार्यया बभौ ।।५०।।

अनुवाद— इस तरह सिर से स्नान करके सुन्दर वस्त्र, पुष्प मालाएँ एवं अलंकार धारण किए हुए भगवान् श्रीराम सुन्दर वस्त्रों आदि से अलंकृत अपने भाइयों तथा पत्नी श्रीजानकीजी के साथ सुशोभित हुए ।।५०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५०।।

अग्रहीदासनं भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः। प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ॥
जुगोप पितृवद्रामो मेनिरे पितरं च तम् ॥५१॥

अन्वयः— भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः आसनम् अग्रहीत् वर्णाश्रमगुणान्विताः स्वधर्मनिरताः प्रजाः रामः पितृवत् जुगोप प्रजाः च तं पितरं मेनिरे ॥५१॥

अनुवाद— भरतजी भगवान् के चरणों में प्रणाम करके उन्हें प्रसन्न किया उसके प्रश्चात् श्रीभगवान् राजसिंहासन स्वीकार किए और वर्णाश्रम धर्म का पालन पूर्वक अपने-अपने धर्म का पालन करने वाली प्रजाओं की भगवान् ने पिता के समान रक्षा की तथा प्रजाओं ने उनको अपना पिता माना ॥५१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५१॥

त्रेतायां वर्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत् । रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ॥५२॥

अन्वयः— सर्वभूतसुखावहे धर्मज्ञे रामे राजनिः त्रेतायां वर्तमानायां कालः कृतसमः अभवत् ॥५२॥

अनुवाद— सभी प्राणियों को सुख देने वाले भगवान श्रीराम के राजा हो जाने पर यद्यपि वह समय त्रेता का था किन्तु वह सत्ययुग के समान हो गया ॥५२॥

भावार्थ दीपिका नहीं है ॥५२॥

वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिन्धवः । सर्वे कामदुघा आसन्प्रजानां भरतर्षभ ॥५३॥

अन्वयः— हे भरतर्षभ, वनानि, नद्यो, गिरयः वर्षाणि द्वीप सिन्धवः सर्वे प्रजानां कामदुघा आसन् ॥५३॥

अनुवाद— हे परीक्षित भगवान श्रीराम के राज्य काल में वन, नदियाँ, पर्वत, वर्ष, द्वीप एवं समुद्र सबके सब प्रजाओं की कामनाओं को पूर्ण करने वाले थे ॥५३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५३॥

नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः । मृत्युश्चानिछतां नासीद्रामे राजन्यधोक्षजे ॥५४॥

अन्वयः— अधोक्षजे रामे राजनि अधिव्याधिजराग्लानि दुःख शोक भयक्लमाः न अनिच्छतां मृत्युः च न आसीत्॥५४॥

अनुवाद— भगवान् श्रीराम के राज्य काल में प्रजाओं को आधि (मानसिक चिन्ता) व्याधि (रोग) बुढापा, श्रान्ति, दुःख, शोक, भय, थकान ये सब नहीं होते थे यहाँ तक कि नहीं चाहने वालों की मृत्यु भी नही होती थी ॥५४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५४॥

एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः । स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन्स्वयमाचरन् ॥५५॥

अन्वयः— एक पत्नी व्रतधरः राजर्षिचरितः शुचिः स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयमाचरत् ॥५५॥

अनुवाद— भगवान् श्रीराम एक पत्नी व्रत को धारण किये थे। वे गार्हस्थ्य धर्म की शिक्षा देते हुए स्वयं उसका पालन करते थे ॥५५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५५॥

प्रेम्णाऽनुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती । धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताहरन्मनः॥५६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीरामचरिते दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अन्वयः— भावज्ञा सती सीता प्रेम्णा अनुवृत्या, शीलेन, प्रश्रयावनता धियाह्रिया च भर्तुः मनः हरन् आसीदिति शेषः ॥५६॥

अनुवाद अपने पति भगवान् श्रीराम जी के हार्दिक भावों को जानने वाली सती शिरोमणि सीताजी, प्रेम से, सेवा से, शीलगुण से अत्यधिक विनीतता से अपनी बुद्धि तथा लज्जा से अपने पति के मन को अपनी ओर आकृष्ट कर रखी थीं ।।५६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के दसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

भावार्थ दीपिका नहीं है ।।५६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां दशमोऽध्यायः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवम स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के दशम अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१०।।

ग्यारहवाँ अध्याय

भगवान् श्रीराम की शेष लीलाओं का वर्णन

श्रीशुक उवाच

भगवानात्मनात्मानं राम उत्तमकल्पकैः । सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान्मखैः ॥१॥

अन्वयः— आचार्यवान् भगवान् रामः उत्तम कल्पकैः मखैः सर्वदेवमयम् आत्मनात्मानं देवम् ईजे ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— महर्षि वसिष्ठ को आचार्य बनाकर भगवान् श्रीराम उत्तम सामग्रियों से यज्ञों के द्वारा सर्वदेव अपने ही अपनी आत्मा का यजन किया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततश्चैकादशेऽयोध्यामावसन्ननुजैः सह । यज्ञादि यच्चकारेशो रामस्तदनुवर्ण्यते ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् ग्यारहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि अपने छोटे भाइयों के साथ अयोध्या में निवास करते हुए भगवान् श्रीराम यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान किए ॥१॥

होत्रेऽददाद्दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः । अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः ॥२॥

अन्वयः— होत्रे प्राचीं दिशं अददात् प्रभुः ब्रह्मणे दक्षिणां दिशं, अध्वर्यवे प्रतीचीं च सामगाय च सः उदीचीम्॥२॥

अनुवाद— प्रभु श्रीराम ने होता को पूर्व दिशा, ब्रह्मा को दक्षिण दिशा, अध्वर्यु को पश्चिम दिशा और उदगाता को उत्तर दिशा दे दिया ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदन्तरा । मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निःस्पृहः ।।३।।

अन्वयः— आचार्याय शेषां यावती तदन्तरा भूः ददौ । मन्यमानः इदं कृत्स्नः निःस्पृहः ब्राह्मणः अर्हति ।।३।।

अनुवाद— इसके बीच में जितनी भूमि बची रही उसे उन्होंने आचार्य को यह मानते हुए कि सम्पूर्ण भूमण्डल का एकमात्र अधिकारी निःस्पृह ब्राह्मण ही है ।।३।।

भावार्थ दीपिका

तदन्तरा तासां दिशां मध्ये यावती भूस्तां ब्राह्मण एवार्हतीति मन्यमानः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

उन दिशाओं की जितनी भूमिथी उसको आचार्य को यह मानकर दे दिये थे कि सम्पूर्ण भूमण्डल का अधिकारी निःस्पृह ब्राह्मण ही है ।।३।।

इत्ययं तदलंकारवासोभ्यामवशेषितः । तथा राज्ञयपि वैदेहि सौमङ्गल्यावशेषिता ।।४।।

अन्वयः— इत्ययं तदलङ्कारवासोभ्यामवशेषितः तथा राज्ञी वैदेही अपि सौमङ्गल्यावशेपिता ।।४।।

अनुवाद— इस तरह सम्पूर्ण भूमण्डल का दान करके उन्होंने अपने पास अपने शरीर के वस्त्र और अलङ्कार को ही अपने पास रखा । इसी तरह महारानी श्रीजानकीजी भी अपने पास केवल माङ्गलिक वस्त्र एवं आभूषण को ही रखीं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

अयं श्रीरामः । तत्तदा । सौमङ्गल्यमाभरणादिकं तावन्मात्रमवशेषितं यस्याः । तद्व्यतिरिक्तं हिरण्यादि सर्वं ददावित्यर्थः।।४।।

भाव प्रकाशिका

जिस प्रकार से भगवान् श्रीराम किए उस समय महारानी जानकी जी भी अपने पास माङ्गलिक आभूषण आदि को ही अपने पास रखीं । उसके अतिरिक्त सम्पूर्ण सुवर्ण आदि ब्राह्मण को उन्होंने दान दे दिया ।।४।।

ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम् । प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्येदं बभाषिरे ।।५।।

अन्वयः— ते तु ब्रह्मण्य देवस्य संस्तुत्यं वात्सल्यं वीक्ष्य प्रीताः क्लिन्नधियः तस्मै प्रत्यर्प्य इदं बभाषिरे ।।५।।

अनुवाद— वे आचार्य आदि ब्राह्मणों को ही देवता मानने वाले भगवान् श्रीराम के प्रशंसनीय वात्सल्य को देखकर प्रसन्न हो गये । उन लोगों का हृदय प्रेम से भर गया उन लोगों ने सारी पृथिवी श्रीभगवान् को लौटाकर कहा ।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५।।

अप्रत्तं नस्त्वया किं नु भगवन्भुवनेश्वर । यन्नोऽन्तर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा ।।६।।

अन्वयः— हे भुवनेश्वर भगवन् ! त्वया किं नु नः अप्रत्तम् यत् नः अन्तः हृदयं विश्यस्वरोचिषा तमः हंसि ।।६।।

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् ! भगवन् आपने हम लोगों को क्या नहीं दिया है । क्योंकि आप अन्तर्यामी रूप से हमारे अन्तःकरण में प्रवेश करके हमारे अज्ञानान्धकार को विनष्ट करते हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

किमप्रत्तं किमदत्तम् । सर्वं दत्तमित्यर्थः । विश्य प्रविश्य ।।६।।

भाव प्रकाशिका

किमप्रत्तम् अर्थात् क्या नहीं दिया है अर्थात् सबकुछ दे दिया है विश्य अर्थात् प्रवेश करके ।।६।।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे । उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये ॥७॥

अन्वयः— ब्रह्मण्यदेवाय, अकुण्ठमेधसे, उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये रामाय नमः ॥७॥

अनुवाद— हे ब्राह्मणों के देवता मानने वाले भगवन् आपका ज्ञान अनन्त हैं, पवित्र कीर्ति वाले पुरुषों में आप सर्वश्रेष्ठ है, तथा जो लोग किसी को भी किसी प्रकार की पीड़ा नहीं पहुँचाते ऐसे मुनिजनों को आप अपने दोनों चरणों को प्रदान कर रखे हैं ऐस भगवान् श्रीराम को हमलोग प्रणाम करते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

न्यस्तदण्डैर्मुनिभिरर्पितौ चित्ते न्यस्तावङ्घ्री यस्य तस्मै । तेष्वर्पितावङ्घ्री येनेति वा ॥७॥

भाव प्रकाशिका

किसी को भी पीड़ित नहीं करने वाले मुनियों ने जिनके दोनों चरणों को अपने मन मे वसा रखा है । ऐसे भगवान को नमस्कार है । अथवा उन मुनियों में ही जिन्होंने अपने दोनों चरणों को दे दिया है ऐसे भगवान् राम को नमस्कार है ॥७॥

कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः । चरन्वाचोऽश्रृणोद्रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित् ॥८॥

अन्वयः— कदाचित् लोकजिज्ञासुः रामः गूढः रात्र्याम् अलक्षित; चरन् कस्यचित् भार्याम् उद्दिश्य वाचः अश्रृणोत्॥८॥

अनुवाद— एक बार अपनी प्रजा की स्थिति जानने के इच्छुक भगवान् श्रीराम रात्रि के समय छिपकर किसी को बिना वतलाये घूम रहे थे । उस समय अपनी पत्नी को डाँटते हुए किसी की बात उन्होंने सुना ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् । स्त्रीलोभी बिभृयात्सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥९॥

अन्वयः— परवेश्मगाम् असतीं दुष्टां त्वां अहं न विभर्मि, स्त्रीलोभी रामः सीतां विभृयात् अहं पुनः न भजे ॥९॥

अनुवाद— तुम दूसरे के घर में रहकर आयी हो, अतएव तुम दुष्ट और कुलटा हो, मैं तुमको अब नहीं रख सकता हूँ स्त्री के लोभी राम भले ही सीता को रखें किन्तु अब मैं नहीं रख सकता ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

इति लोकाद्बहुमुखाद्दुराराध्यादसंविदः । पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥१०॥

अन्वयः— दुराराध्यात् बहुमुखात् लोकात् असंविदः भीतेन पत्या सा त्यक्ता प्राचेत साश्रमम् प्राप्ता ॥१०॥

अनुवाद— अज्ञानी संसार के सभी लोगों को प्रसन्न रखना अत्यन्त कठिन हैं । इस तरह के बातें बहुत लोगों के मुख से सुनकर अपयश के भय से भयभीत श्रीरामचन्द्रजी ने श्रीसीताजी का परित्याग कर दिया और वे महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में रहने लगीं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

असंविदोऽज्ञात् । प्राचेतसो वाल्मीकिस्तस्याश्रमं प्राप्ता ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

असंविदः अर्थात् अज्ञानी संसार से । प्राचेतस अर्थात् वाल्मीकि मुनि उनके आश्रम में श्रीजानकी जी रहने लगीं ॥१०॥

अन्तर्वत्न्यागते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ । कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः ॥११॥

अन्वयः— अन्तर्वत्नी सा काले यमौ सुतौ कुशः लव इति ख्यातौ सुषुवे । तयोः क्रियाः मुनिः चक्रे ॥११॥

अनुवाद— गर्भिणी श्रीजानकी समयानुसार कुश एवं लव के नाम से विख्यात् दो जुड़वे पुत्रों को जन्म दी। उन दोनों का जातकर्म आदि संस्कार महर्षि वाल्मीकि ने सम्पन्न किया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अन्तर्वत्नी गर्भिणी क्रिया जातकर्माद्याः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

अन्तर्वत्नी अर्थात् गर्भिणी, क्रियाः अर्थात् जात कर्म आदि संस्कार ॥११॥

अङ्गदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ । तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते ॥१२॥

अन्वयः— हे महीपते ! लक्ष्मणस्य अङ्गदः चित्रकेतुः च आत्मजौ स्मृतौ, भरतस्य तक्षः पुष्कलः च इति आस्ताम्॥१२॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् लक्ष्मण जी के अङ्गद और चित्रकेतु ये दो पुत्र कहे गये है । भरतजी के तक्ष और पुष्कल ये दो पुत्र हुए ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

सुबाहुः श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः । गन्धर्वान्कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम् ॥१३॥

अन्वयः— शत्रुघ्नस्य सुबाहुः श्रुतसेनश्च बभूवतुः दिशाम् विजये भरतः कोटिशः गन्धर्वान् जघ्ने ॥१३॥

अनुवाद— शत्रुघ्नजी के दो पुत्र हुए सुबाहु और श्रुतसेन । भरतजी ने दिग्विजय करते समय करोड़ों गन्धर्वो को मार दिया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत्। शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् ॥
हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम् ॥१४॥

अन्वयः— तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् शत्रुघ्नः च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् हत्वा वै मधुवने मथुरां नाम पुरीं चक्रे ॥१४॥

अनुवाद— भरतजी गन्धर्वों के सम्पूर्ण धन को लाकर राजा श्रीरामचन्द्रजी को प्रदान कर दिए । शत्रुघ्नजी मधु नामक राक्षस के पुत्र लवणासुर को मारकर मधुवन में मथुरा नाम की नगरी का निर्माण किए ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता । ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ॥१५॥

अन्वयः— भर्त्रा विवासिता सीता मुनौ तनयौ निक्षिप्य रामचरणौ ध्यायन्ती विवरं प्रविवेश ह ॥१५॥

अनुवाद— अपने पति के द्वारा परित्यक्त सीताजी अपने दोनों पुत्रों को महर्षि वाल्मीकि को समर्पित करके पाताल में प्रवेश कर गयीं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

तच्छ्रुत्वा भगवान्रामो रुन्धन्नपि धिया शुचः । स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान्नाशक्नोद्रोद्धुमीश्वरः ॥१६॥

अन्वयः— तत् श्रुत्वा भगवान् रामः धिया शुचः रुन्धन् अपि, तस्याः तान् तान् गुणान् स्मरन् ईश्वरः सन् रोद्धम् न अशक्नोत् ॥१६॥

अनुवाद— सीताजी के पृथिवी में प्रवेश का समाचार सुनकर भगवान् श्रीराम अपनी बुद्धि के द्वारा शोक के आवेश को रोकना चाहकर भी श्रीजानकीजी के विविध गुणों को स्मरण करके समर्थ होकर भी नहीं रोक सके॥१६॥

भावार्थ दीपिका

ईश्वरोऽपि शुचो रोद्धुं नाशक्नोत् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

समर्थ होकर भी शोकावेश को नहीं रोक सके ॥१६॥

स्त्रीपुंप्रसङ्ग एतादृक्सर्वत्र त्रासमावहः । अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः ॥१७॥

अन्वयः— स्त्रीपुंप्रसङ्ग सर्वत्र एतादृक् ईश्वराणाम् अपि त्रासमावहः गृहचेतसः ग्राम्यस्य किमुत ॥१७॥

अनुवाद— स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध सर्वत्र समर्थों के लिए भी इस प्रकार का दुःख देने वाला है तो फिर गृहासक्त विषयी पुरुषों के लिए क्या कहना है ?

भावार्थ दीपिका

न चातिचित्रमेतत् । स्त्रीपुंसोः प्रसङ्ग आसक्तिः त्रासमावहतीति तथा । विभक्तेरलुगार्षः । पाठान्तरं सुगमम् । किमुतेति प्रासङ्गिकोक्तिः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, स्त्री और पुरुष की होने वाली परस्पर में आसक्ति दुःखप्रद होती ही है । **त्रासमावहः** में विभक्ति का अलुक आर्ष है । **सर्वत्रैष भयावहः** यह पाठ भेद सुगम है । किमुत यह प्रासङ्गिकोक्ति है ॥१७॥

तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत्प्रभुः । त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखण्डितम् ॥१८॥

अन्वयः— ततः ऊर्ध्वं प्रभुः ब्रह्मचर्यं धारयन् त्रयोदशाब्दसाहस्रम् अखण्डितम् अग्निहोत्रम् अजुहोत् ॥१८॥

अनुवाद—उसके पश्चात् श्रीभगवान् ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए तेरह हजार वर्ष तक अखण्ड अग्निहोत्र किए॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अग्निहोत्रम जुहोत् । प्रभुः रामः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीराम ने अग्निहोत्र किया ॥१८॥

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः । स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात्ततः ॥१९॥

अन्वयः— ततः दण्डककण्टकैः विद्धं स्वपादपल्लवं स्मरतां हृदि विन्यस्य रामः आत्मज्योतिरगात् ॥१९॥

अनुवाद— उसके पश्चात् जो दण्डकारण्य के काँटों से विंध गये थे अपने उन चरण कमलों को अपना स्मरण करने वाले भक्तों के हृदय में स्थापित करके भगवान् अपने स्वयं प्रकाश ज्योतिर्मय धाम में चले गये ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

आत्मज्योतिर्निजं धाम ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

आत्मज्योति: अर्थात् अपने धाम ॥१९॥

नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयात्तलीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ।
रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ॥२०॥

अन्वयः— सुरयाच्ञया अतलीलातनोः अधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः रघुपतेः रक्षोवधः जलधिबन्धनम् इदं यशो न अस्त्र शस्त्रैः शत्रुहनने कपयः सहायाः किम् ?॥२०॥

अनुवाद— देवताओं की प्रार्थना से लीला शरीर को धारण करने वाले जिनके सदृश ही किसी का प्रभाव नहीं है तो उनसे अधिक प्रभाव किसी का कैसे हो सकता है ? ऐसे भगवान् श्रीराम के द्वारा रावण का नाश जान या समुद्र पर सेतु का निर्माण कोई उनका यश नहीं है । तो फिर अस्त्र शस्त्रों के द्वारा शत्रु को मारने में उनको वानरों की कौन सी आवश्यकता थी । ये सारा कार्य भगवान् की लीलामात्र हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

जलधिबन्धनमस्त्रपूगैश्च रक्षसां वध इतीदं कविभिराश्चर्यमिव वर्णितमपि यशः स्तुतिर्न भवति । तत्र हेतुः- अधिकसाम्याभ्यां विमुक्तः धाम प्रभावो यस्य तस्य किं कपयः सहायाः । अतः सुग्रीवाद्याश्रयणं यथा लीलामात्रं तथैवेदमपि । युक्तं चैतदित्याह- सुराणां याच्ञया आत्ता स्वीकृता लीलार्था तनुर्येन तस्य ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

समुद्र पर सेतु का निर्माण करना अस्त्र समूह से राक्षसों का वध करना इन सारी बातों का वर्णन कवियों ने आश्चर्य के समान किया है, किन्तु यह श्रीभगवान् की कोई प्रशंसा नहीं है । उसका कारण है कि श्रीभगवान का प्रभाव साम्याभ्यधिक रहित है । ऐसे श्रीभगवान् के सहायक बन्दर हो सकते हैं क्या ? अतएव सुग्रीव आदि को अपना आश्रय बनाना जैसे उनकी लीला है उसी तरह से ये सब भी कार्य उनकी लीला मात्र है । ऐसा कहना उचित भी है । श्रीभगवान् तो देवताओं की प्रार्थना से लीला करने के ही लिए यह शरीर धारण किए थे ॥२०॥

यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ।
तन्नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टपादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥२१॥

अन्वयः— यस्यामलं अघघ्नं यशः नृपसदस्सु अधुना अपि ऋषयः गायन्ति दिगिभेन्द्रपट्टम् नाकपालवसुपाल किरीटजष्टपदाम्बुजं तं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥२१॥

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् का निर्मल एवं पाप विनाशक यश का वर्णन अब भी युधिष्ठिर इत्यादि महाराजाओं की सभाओं में मार्कण्डेय इत्यादि महान ऋषिगण करते हैं, जो यश दिग्गजों के पट्ट के समान आभरण स्वरूप, अर्थात् दिशाओं के अन्त तक पहुँचा हुआ है । जिन श्रीभगवान् के चरण कमलों के इन्द्रादि देवगण और पृथिवी के राजागण अपने-अपने मनोज्ञ किरीट के ऊपर धारण करते हैं उन्हीं भगवान् श्रीरामचन्द्र जी की मैं शरणागति करता हूँ ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

एवंविधलीलाप्रयोजनं दर्शयन्प्रणमति-यस्य यशो नृपाणां युधिष्ठिरादीनां सदस्सु ऋषयो मार्कण्डेयादयो गायन्ति । दिगिभेन्द्राणां पट्टवदाभरणरूपम् । तत्पर्यन्तं व्याप्तमित्यर्थः । नाकपाला देवाः । वसुपाला वसुधापालाश्च तेषां किरीटैर्जुष्टं पादाम्बुजं यस्य तं रघुपतिम् । पाठान्तरे तत्तस्य रघुपतेर्नाकपालादिभिर्जुष्टं पादाम्बुजं प्रपद्य इत्यर्थः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार की लीला का प्रयोजन बतलाते हुए प्रणाम करते हैं। जिन भगवान् श्रीराम के यश का वर्णन युधिष्ठिर आदि राजाओं की सभा में मार्कण्डेय आदि ऋषिगण किया करते हैं। भगवान् का जो यश दिशाओं के अन्त तक पहुँचा हुआ है तथा जिन भगवान् श्रीराम के चरण कमलों को इन्द्रादि देवगण और पृथिवी के राजा गण अपने किरीट के ऊपर धारण करते थे उन भगवान् श्रीराम की मैं शरणागति करता हूँ। **जुष्टं पादाम्बुजं रघुपतेः** इस प्रकार का पाठभेद होने पर अर्थ होगा कि श्रीभगवान् के देवताओं आदि से सेवित चरण कमल की मैं शरणागति करता हूँ ॥२१॥

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा। कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः॥२२॥

अन्वयः— सः यैः स्पृष्टः अभिदृष्टः वा संविष्टः वा अनुगतः अपि वा ते कोसलाः ययुः स्थानं यत्र योगिनः गच्छन्ति।।२२॥

अनुवाद— जिन लोगों ने भगवान् राम का स्पर्श या दर्शन अथवा सहवास या अनुगमन किया वे कोसल प्रदेशवासी उस स्थान को प्राप्त किए जिस स्थान को योगिजन प्राप्त करते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

स रामः संविष्ट उपवेशितोऽनुगतों वा यैस्ते कोसलदेशवासिनः सर्वेऽपि यत्र योगिनो गच्छन्ति तत्स्थानं ययुः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

वे भगवान् श्रीराम जिन लोगों के साथ बैठे अथवा जिन लोगों ने भगवान् का अनुगमन किया वे सभी लोग उस स्थान को प्राप्त किए जिन स्थान को योगिजन प्राप्त करते हैं ॥२२॥

पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन्। आनृशंस्यपरो राजन्कर्मबन्धैर्विमुच्यते ॥२३॥

अन्वयः— राजन् श्रवणैः रामचरितं उपधारयन् पुरुषः आनृशंस्यपरः कर्मबन्धैः प्रमुच्यते ॥२३॥

अनुवाद— परीक्षित् जो पुरुष भगवान् श्रीराम के चरित को सुनता है वह उपशमनिष्ठ होकर कर्म के वान्धनों से मुक्त हो जाता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

आनृशंस्यपरः उपशमनिष्ठ सन्विमुच्यते ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

शान्त होकर कर्म के बन्धनों से मुक्त हो जाता है ॥२३॥

राजोवाच

कथं स भगवान्रामो भ्रातॄन्वा स्वयमात्मनः। तस्मिन्वा तेऽन्ववर्तन्त प्रजाः पौराश्च ईश्वरे ॥२४॥

अन्वयः— कथं वा भगवान् रामः स्वयम् आत्मनः भ्रातॄन् तस्मिन् ते ईश्वरे ते प्रजाः पौराः च अन्ववर्तन्त ॥२४॥

राजा परीक्षित् ने पूछा

अनुवाद— भगवान् श्रीरामः स्वयम् अपने भाइयों के प्रति कैसा व्यवहार करते थे ? अथवा उनके भातृगण प्रजाएँ तथा नागरिक श्रीभगवान् के प्रति कैसा व्यवहार करते थे ?॥२४॥

भावार्थ दीपिका

स रामः स्वयं कथमवर्तत। भ्रातॄन्प्रति वा कथमवर्तत। कथंभूतान्। आत्मन आत्मांशभूतान्। तस्मिन्वा ईश्वरे ते भ्रात्रादयोऽनु अनन्तरं कथमवर्तन्तेति प्रश्नत्रयम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीराम स्वयम् अपने अंशभूत भाइयों के प्रति कैसा व्यवहार करते थे ? अथवा उन भगवान् के प्रति वे प्रजा आदि कैसा व्यवहार करते थे । इस तरह से यहाँ पर राजा ने तीन प्रश्नों को किया है ॥२४॥

श्रीशुक उवाच

अथादिशद्दिग्विजये भ्रातॄंस्त्रिभुवनेश्वरः । आत्मानं दर्शयन्स्वानां पुरीमैक्षत सानुगः ॥२५॥

अन्वयः— अथ त्रिभुवनेश्वरः भ्रातॄन् दिग्विजये आदिशत् स्वानां आत्मानं दर्शयन् सानुगः पुरीम् ऐक्षत ॥२५॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राज सिंहासन स्वीकार करने के पश्चात् त्रैलोक्याधिपति भगवान् श्रीराम अपने भाइयों को दिग्विजय करने का आदेश दिया और अपने लोगों को दर्शन देते हुए अनुचरों के साथ पुरी की देखरेख स्वयं करने लगे॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तत्र श्रीरामस्य भ्रात्रादिषु प्रवृत्तिप्रकारमाह-अथेति । अनेनैव भ्रातॄणामपि तदाज्ञानुसारितया प्रवृत्तिरुक्ता । अथ सिंहासनस्वीकारानन्तरम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीराम के अपने भाइयों आदि के प्रति प्रवृत्ति के प्रकार का वर्णन **अथ० इत्यादि** श्लोक से करते हैं । इसी से ही यह बात बतलादी गयी कि भ्रातृगण उनकी आज्ञा का आनुसरण करते थे । अथ अर्थात् सिंहासन स्वीकार के पश्चात् ॥२५॥

आसिक्तमार्गां गन्धोदैः करिणां मदसीकरैः । स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव ॥२६॥

अन्वयः— गन्धोदैः करिणां मदसीकरैः आसिक्त मार्गां स्वामिनं प्राप्तां आलोक्य सुतराम् मत्तां वा ॥२६॥

अनुवाद— चन्दनादि के सुगन्धित जल से तथा हाथियों के मदसीकर से सुगन्धित गलियों वाली अयोध्या प्रतीत होती थी कि वह अपने स्वामी को प्राप्त हुए देखकर जैसे मतवाली हो गयी है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

पुरीं वर्णयति त्रिभिः- गन्धोदकैर्मदविन्दुभिश्चासिक्ता मार्गा यस्याम् । सुतरां मत्तामिव समृद्धाम् । वा इति वितर्के । पाठान्तरे वासितगां वासितां कामोन्मत्तां गामिवेत्यर्थः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

तीन श्लोकों से श्रीशुकदेवजी अयोध्यापुरी का वर्णन करते हैं । सुगन्धित जल एवं हाथियों के मदसीकर से सिक्त मार्गों वाली अयोध्या जैसे मतवाली अर्थात् समृद्ध हो गयी है क्या ? वा पद वितर्क के अर्थ में प्रयुक्त है । **मत्तां वासितगाम्** इस तरह का पाठान्तर होने पर अर्थ होगा कामार्त गौ के समान ॥२६॥

प्रासादगोपुरभाचैत्यदेवगृहादिषु । विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मण्डिताम् ॥२७॥

अन्वयः— प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेव गृहादिषु विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मण्डिताम् ॥२७॥

अनुवाद— उसके महल फाटक, सभा भवन विहार तथा और देवालय आदि में सुवर्ण के कलश रखे हुए थे और स्थान-स्थान पर पताकाएँ फहरा रही थीं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

पूगैः सवृन्तै रम्भाभिः पट्टिकाभिः सुवाससाम् । आदर्शैरंशुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम् ॥२८॥

अन्वयः सवृन्तैः पूगैः रम्भाभिः सुवाससाम् पट्टिकाभि;, आदर्शैः अंशुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम् ॥२८॥

अनुवाद डंठल समेत सुपारी के गुच्छों, केले के स्तम्भों तथा सुन्दर वस्त्रों के पट्टिकाओं से सजायी गयी थी । दर्पण, वस्त्र और पुष्पमालाओं से तथा माङ्गलिक चित्रकारियों और बन्दवारों से सम्पूर्ण नगरी सजी हुई थी॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

तमुपेयुस्तत्र तत्र पौरा अर्हणपाणयः । आशिषो युयुजुर्देव पाहीमां प्राक् त्वयोद्धृताम् ॥२९॥

अन्वयः— तत्र तत्र अर्हणपाणयः पौराः तम् उपेयुः आशिषः युयुजुः देव प्राकत्वया उद्धताम् इमां पाहि ॥२९॥

अनुवाद— नगरवासी स्थान-स्थान पर अपने हाथ में उपहार लेकर आते थे और प्रार्थना करते थे कि देव आप ही पहल वाराह रूप धारण करके इस पृथिवी का उद्धार किये थे अब इसकी रक्षा आप ही करें ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

पौराणां तस्मिन्वृत्तिमाह-तमुपेयुरिति । वराहरूपेण त्वयोद्धतामिमां पृथ्वीं पाहीति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

तमुपेयुः इत्यादि श्लोक के द्वारा पुरवासियों का श्रीभगवान् के प्रति व्यवहार बतलाया गया है । वाराह रूप से आपके द्वारा उद्धार की गयी पृथवी की आप ही रक्षा करें ॥२९॥

ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं दिदृक्षयोत्सृष्टगृहाः स्त्रियोनराः ।
आरुह्य हर्म्याण्यरविन्दलोचनमतृप्तनेत्राः कुसुमैरवाकिरन् ॥३०॥

अन्वयः— ततः चिरागतं पतिं वीक्ष्य प्रजाः दिदृक्षया उत्सृष्ट गृहाः स्त्रियः नराः हर्म्याणि आरुह्य अतृप्तनेत्राः अरविन्दलोचनम् कुसुमैः अवकिरन् ॥३०॥

अनुवाद— परीक्षित् प्रजाओं को जब ज्ञात होता कि श्रीभगवान् बहुत दिनों बाद इधर आ रहे हैं तो सभी स्त्री पुरुष अपना घर द्वार छोड़कर उनके दर्शन के लिए दौड पड़ते थे और अटारियों पर चढकर अतृप्त नेत्रों से उनको देखते हुए उन पर पुष्पों की वर्षा करते थे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

प्रजानां तस्मिन्वृत्तिमाह-ततः प्रजा इति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

ततः प्रजाः इत्यादि श्लोक के द्वारा प्रजाओं का उनके प्रति व्यवहार वर्णित है ॥३०॥

अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वराजभिः । अनन्ताखिलकोशाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥३१॥

अन्वयः— अथ स्वैपूर्वराजभिः जुष्टं, अनन्तखिलका ढ्यं अनर्घ्योरुपरिच्छदम् स्वगृहं प्रविष्टः ॥३१॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के प्रजाओं का निरीक्षण करके अपने पूर्णवर्ती राजाओं से सेवित सभी प्रकार के अनन्त कोषों से सम्पन्न बहुत सी बहुमूल्य सामग्रियों से सुसज्जित अपने महल में श्रीभगवांन् प्रवेश कर जाते थे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

स्वयं कथमवर्ततेत्यस्योत्तरमाह-अथेति यावत्समाप्ति । स्वगृहं प्रविष्टः संस्तस्मिन् रेम इति पञ्चमेनान्वयः । गृहं वर्णयति सार्धैस्त्रिभिः-अनन्ता येऽखिलानां रत्नादीनां कोशास्तैराढयम् । अनर्घ्या उरवः परिच्छदा यस्मिन् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् कैसे रहते थे इसका उत्तर **अथा प्रविष्टः इत्यादि** श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त दिया गया है । अपने महल में प्रवेश करके उसमें विहार करते थे इस तरह से आगे के पाँचवें श्लोक के साथ अन्वय है । गृह का वर्णन साढे तीन श्लोकों से करते हैं । अनन्त रत्नों आदि के कोशों से समृद्ध तथा जो बहुमूल्य सामग्रियों से सुसज्जित था ।।३१।।

विद्रुमोदुम्बरद्वारैर्वैदूर्यस्तम्भपङ्क्तिभिः । स्थलैर्मारकतैः स्वच्छैर्भातस्फटिकभित्तिभिः ।।३२।।

अन्वयः— विद्रुमोदुम्बरैः द्वारैः वैदूर्यस्तम्भपंक्तिभिः मारकतैः स्वच्छैः स्थलैः भातस्फटिकभित्तिभिः ।।३२।।

अनुवाद— महलों के द्वार और देहलियां मूंगे की बनी थीं उसके स्तम्भ वैदूर्य मणि के थे और उसका महल के फर्श स्वच्छ मरकत मणि का था और दिवारें उस महल के स्फटिक मणि के बनी थीं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

विद्रुममया उदुम्बरा देहल्यो येषु तैर्द्वारै । स्वच्छैः स्थलैः । तृतीयान्तानां मण्डितामिति तृतीयेनान्वयः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

उस महल की देहलियाँ मूंगे की थीं उसका फर्श स्वच्छ था, इस श्लोक के तृतीयान्त पदों का आगे के तीसरे श्लोक के मण्डिताम् पद के साथ अन्वय है ।।३२।।

चित्रस्रग्भिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः । मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कान्तकामोपपत्तिभिः।।३३।।
धूपदीपैः सुरभिभिर्मण्डितं पुष्पमण्डनैः । स्त्रीपुंभिः सुरसंकाशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः ।।३४।।

अन्वयः— चित्रस्रग्भिः पट्टिकाभिः वासोमणिगणांशुकैः मुक्ताफलैः चिदुल्लासैः कान्तकामोपपत्तिभिः, धूपदीपैः, सुरभिभिः पुष्पमण्डनैः मण्डितम् भूषणभूषणैः सुरसंकाशैः स्त्रीपुंभिः जुष्टं स्वगृहं प्रविष्टः ।।३३-३४।।

अनुवाद— विविध प्रकार की मालाओं, पताकाओं, मणियों की चमक, शुद्ध चेतन के समान उज्ज्वल मोती, सुन्दर-सुन्दर भोग सामग्री सुगन्धित धूपदीप से वह महल सजाया गया था । आभूषणों को भी भूषित करने वाले देवताओं के समान स्त्री पुरुष उस महल को सजाने में लगे रहते थे, इस प्रकार के महल में श्रीभगवान् प्रवेश किए ।।३३-३४।।

भावार्थ दीपिका

वाससां मणिगणानां चांशुकैर्दीप्तिभिः चित् चैतन्यं तद्वदुल्लासैरुज्ज्वलैः । यद्वा चिदिति क्वचित् । वैदूर्यस्तम्भादिपु यथाशोभनमुज्ज्वलैर्मुक्ताफलैर्मण्डितमित्यर्थः । कान्ताः कमनीयाः कामोपपत्तयो भोगसाधनानि ताभिः । भूपणानां भूपणभूतैः ।।३३-३४।।

भाव प्रकाशिका

वस्त्रों एवं मणियों की कान्ति से दीपित चेतन के समान उज्ज्वल मोती अथवा चित् अर्थात् कहीं पर वैदूर्य मणि के स्तम्भ सुन्दर लगने के लिए उजली मोतियों से सुसज्जित, मनोहर भोग सामग्रियों से युक्त भूषणभूषणों आभूषणों को भी अलंकृत करने वाले ।।३३-३४।।

तस्मिन्स भगवान्रामः स्निग्धया प्रिययेष्टया । रेमे स्वारामधीराणामृषभः सीतया किल ।।३५।।

अन्वयः— तस्मिन्सः स्वाराम धीराणां ऋपभः भगवान् रामः स्निग्धया इष्टया प्रियया सीतया किल रेमे ।।३५।।

अनुवाद— उसी महल में आत्माराम जितेन्द्रिय पुरुषों में अग्रगण्य भगवान् श्रीराम प्रेममयी प्राणप्रिय पत्नी श्रीसीताजी के साथ विहार करते थे ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

बुभुजे च यथाकालं कामान्धर्ममपीडयन् । वर्षपूगान्बहून्नृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे श्रीरामोपाख्याने एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अन्वयः— नृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः बहून्वर्षपूगान् यथाकालं धर्मम् अपीडयन् बहून् वर्षपूगान बुभुजे ॥३६॥

अनुवाद— सभी स्त्री पुरुष जिनके चरण कमलों का ध्यान करते थे वे ही भगवान् श्रीराम समयानुसार धर्म की मर्यादा का पालन करते हुए बहुत वर्षों तक भोगों का उपभोग करते रहे ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवम स्कन्ध के श्रीरामचरित के प्रसङ्ग में ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११।।

भावार्थ दीपिका

नृणां मध्ये । यद्वा नृणां नृभिरभिध्यातमङ्घ्रिपल्लवं यस्येति ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां एकादशोऽध्यायः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

लोगों के बीच में अथवा मनुष्य जिनके चरण कमलों का ध्यान करते हैं ॥३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के ग्यारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।११।।

* * *

बारहवाँ अध्याय

इक्ष्वाकुवंश के शेष राजाओं का वर्णन

श्रीशुक उवाच

कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः । पुण्डरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाभवत्ततः ॥१॥
देवानीकस्ततोऽनीहः पारियात्रोऽथ तत्सुतः । ततो बलस्थलस्तस्माद्वज्रनाभोऽर्कसंभवः ॥२॥

अन्वयः— कुशस्य च अतिथिः तस्मात् निषधः तत् सुतः नभः अथ पुण्डरीकः तत्पुत्रः क्षेमधन्वा, ततः देवानीकः, ततः अनीहः, अथ तत् सुतः पारियात्रः ततः बलस्थलः, तस्मात् वज्रनाभः अर्कसंभवः ॥१-२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— कुश के पुत्र अतिथि हुए उनके पुत्र निषध हुए निषध के पुत्र नभ हुए, नभ के पुत्र पुण्डरीक हुए, पुण्डरीक के पुत्र क्षेमधन्वा हुए, क्षेमधन्वा के पुत्र देवानीक हुए, देवानीक के अनीह, अनीह के पारियात्र, पारियात्र के पुत्र बलस्थल और बलस्थल के पुत्र वज्रनाभ हुए, वज्रनाभ सूर्य के अंश थे ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशे रामपुत्रस्य कुशस्यान्वय उच्यते । एवमिक्ष्वाकुपुत्रस्य शशादस्येरितोऽन्वयः । कुशस्य रामपुत्रस्यातिथिः सुतोऽभवत्। अर्कसंभवोऽर्कस्यांशात्संभूतः ॥१-२॥

भाव प्रकाशिका

बारहवें अध्याय में श्रीरामजी के पुत्र कुश के वंश का वर्णन किया गया है । इस तरह से इक्ष्वाकु के पुत्र

शशद के वंश का वर्णन किया गया । श्रीरामजी के पुत्र कुश के पुत्र अतिथि हुए । अर्कसंभव: अर्थात् सूर्य के अंश से उत्पन्न ।।१-२।।

खगणस्तत्सुतस्तस्माद्विधृतिश्चाभवत्सुतः । ततो हिरण्यनाभोऽभूद्योगाचार्यस्तु जैमिनेः ।।३।।

अन्वयः— तत्सुतः खगणः तस्मात् विधृतिः सुतः अभवत् ततः हिरण्यनाभ अभूत योगाचार्यः तु जैमिनेः ।।३।।

अनुवाद— वज्रनाभ के पुत्र खगण हुए खगण के पुत्र विधृति हुए और उनके पुत्र हिरण्यनाभ हुए । ये योगाचार्य और जैमिनि के शिष्य थे ।।३।।

भावार्थ दीपिका

ततो विधृतेर्हिरण्यनाभः । कथंभूतः-जैमिनेः शिष्यो योगाचार्यः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

विधृति के पुत्र हिरण्यनाभ हुए ये योगाचार्य और जैमिनि के शिष्य थे ।।३।।

शिष्यः कौसल्य आध्यात्मं याज्ञवल्क्योऽध्यगाद्यतः । योगं महोदयमृषिर्हृदयग्रन्थिभेदकम् ।।४।।

अन्वयः— कौसल्यः याज्ञवल्क्यः ऋषिः शिष्यः यतः अध्यात्मम् अध्यगात् योगम् महदयम् हृदयगन्थि भेदकम्।।४।।

अनुवाद— कोसलदेशवासी ऋषि याज्ञवल्क्य ने उनकी शिष्यता स्वीकार करके अध्यात्म योग की शिक्षा ग्रहण की । वह योग हृदय की गाँठ को काट देता है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तदाह-यतः सकाशात् कौसल्यो याज्ञवल्क्यऋषिराध्यात्मं योगमध्यगात् । महान्त उदया सिद्धयो यस्मिंस्तम् । हृदयग्रन्थेर्भेदकं च ।।४।।

भाव प्रकाशिका

हिरण्यनाभ का ही वर्णन करते हैं । हिरण्यनाभ से ही, कोसल देशवासी ऋषि याज्ञवल्क्य ने अध्यात्म योग का ज्ञान प्राप्त किया । योग में महान् सिद्धियाँ होती हैं । योग हृदय की ग्रन्थि को विनष्ट कर देता है ।।४।।

पुष्यो हिरण्यनाभस्य ध्रुवसन्धिस्ततोऽभवत् । सुदर्शनोऽथाग्निवर्णः शीघ्रस्तस्य मरुः सुतः ।।५।।

अन्वयः— हिरण्यनाभस्य पुण्यः ततः ध्रुवसन्धिः अभवत् ततः सुदर्शनः अथ अग्निवर्णः तस्य शीघ्रः तस्य सुतः मरुः।।५।।

अनुवाद— हिराण्यनाभ के पुत्र पुष्य हुए, पुष्य के पुत्र ध्रुवसन्धि हुए उनके पुत्र सुदर्शन हुए सुदर्शन के पुत्र अग्निवर्ण हुए अग्नि वर्ण के पुत्र शीघ्र हुए और शीघ्र के पुत्र मरु हुए ।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५।।

योऽसावास्ते योगसिद्धः कलापग्राममाश्रितः । कलेरन्ते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः ।।६।।

अन्वयः— यः असौ योगसिद्धः कलापग्रामम् आस्ते कलेः अन्ते नष्टं सूर्यवंशं पुनः भावयिता ।।६।।

अनुवाद— मरु योग सिद्ध हुए वे इस समय कलापग्राम में रहते हैं कलि के अन्त में सूर्य वंश के नष्ट हो जाने पर वे पुनः उसको प्रवर्तित करेंगे ।।६।।

भावार्थ दीपिका

मरुं विशिनष्टि-योऽसाविति । पुनर्भावयिता भावयिष्यति ।।६।।

भाव प्रकाशिका

मरु की ही विशेषता **योऽसौ० इत्यादि** से बतलाते हैं । पुनर्भावयिता अर्थात् पुनः प्रवार्तित करेंगे ।।६।।

तस्मात्प्रसुश्रुतस्तस्य सन्धिस्तस्याप्यमर्षणः । महस्वांस्तत्सुतस्तस्माद्विश्वासाह्वोऽन्वजायत ॥७॥

अन्वयः— तस्मात् प्रसुश्रुतः तस्य सन्धिः तस्यापि अमर्षणः । तत् सुतः महस्वान् तस्मात् विश्वासाह्वः अन्वजायत।।७।।

अनुवाद— मरु के पुत्र प्रसुश्रुत हुए उनके पुत्र सन्धि हुए, उनके भी पुत्र अमर्षण हुए, अमर्षण के पुत्र महस्वान् हुए और उनके पुत्र विश्वसाह्व हुए ।।७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७।।

ततः प्रसेनजित्तस्मात्तक्षको भविता पुनः । ततो बृहद्बलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः ॥८॥

अन्वयः— ततः प्रसेनजित् तस्मात् तक्षकः पुनः भविता ततः बृहद्बलः यस्तु ते पित्रा समरे हतः ।।८।।

अनुवाद— विश्वसाह्व के पुत्र प्रसेनजित् हुए उनके पुत्र तक्षक और तक्षक के पुत्र बहद्बल हुए जिनको तुम्हारे पिता अभिमन्यु ने युद्ध में मार दिया ।।८।।

भावार्थ दीपिका

पित्राऽभिमन्युना ।।८।।

भाव प्रकाशिका

पित्रा अर्थात् अभिमन्यु ने ।।८।।

एते हीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान् । बृहद्बलस्य भविता पुत्रो नाम बृहद्रणः ॥९॥

अन्वयः— एते हि इक्ष्वाकुभूपालाः अतीताः अनागतान् शृणु, बृहद्बलस्य भविता पुत्रः बृहद्रणः नाम ।।९।।

अनुवाद— ये सभी इक्ष्वाकुवंश के अतीत कालिक राजा हैं अबभविष्यत् कालिक राजाओं का नाम सुनो। बृहद्बल के पुत्र का नाम बृहद्रण होगा ।।९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।९।।

उरुक्रियस्ततस्तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति । प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः ॥१०॥

अन्वयः— ततः उरुक्रियः तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति ततः प्रतिव्योमः, ततः भानुः ततःवहिनीपतिः दिवाकः ।।१०।।

अनुवाद— बृहद्रण के पुत्र उरुक्रिय होंगे, उनके पुत्र वत्सवृद्ध होंगे, वत्स वृद्ध के पुत्र प्रतिव्योम होंगे, प्रतिव्योम के पुत्र भानु होंगे भानु के पुत्र सेनापति दिवाक होंगे ।।१०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१०।।

सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान् । प्रतीकाश्वो भानुमतः सुप्रतीकोऽथ तत्सुतः ॥११॥

अन्वयः— ततः वीरः सहदेवः अथ बृहदश्वः अथ भानुमान् ततः प्रतीकाश्वः, अथ तत्सुतः प्रतीकः ।।११।।

अनुवाद— दिवाक के पुत्र वीर सहदेव, सहदेव के पुत्र बृहदश्व, बृहदश्व के भानुमान् भानुमान के प्रतीकाश्व और प्रतीकाश्व के पुत्र प्रतीक होंगे ।।११।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।११।।

भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः । तस्यान्तरिक्षस्तत्पुत्रः सुतपास्तदमित्रजित् ॥१२॥

अन्वयः— भरुदेवो भविता अथ सुनक्षत्रः अथ पुष्करः तस्य अन्तरिक्षः तत्पुत्रः सुतपाः तत् अमित्रजित् ।।१२।।

अनुवाद— सुप्रतीक के मरुदेव, मरुदेव के सुनक्षत्र, सुनक्षत्र के पुष्कर पुष्कर के अन्तरिक्ष, अन्तरिक्ष के सुतपा और उनके पुत्र अमित्रजित् होंगे ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मादमित्रजित् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

सुतपा के पुत्र अमित्रजित् होंगे ।।१२।।

बृहद्राजस्तु तस्यापि बर्हिस्तस्मात्कृतंजयः । रणंजयस्तस्य सुतः संजयो भविता ततः ।।१३।।

अन्वयः— तस्यापि बृहद्राजः तस्यापि बर्हि, तस्मात् कृतंजयः, तस्य सुतः, रणंजयः ततः संजयः भविता ।।१३।।

अनुवाद— अमित्रजित् के पुत्र बृहद्राज, बृहद्राज के पुत्र बर्हि, बर्हि के पुत्र कृतजय, उनके पुत्र रणञ्जय और रणंजय के पुत्र संजय होंगे ।।१३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१३।।

तस्माच्छाक्योऽथ शुद्धोदो लाङ्गलस्तत्सुतः स्मृतः। ततः प्रसेनजित्तस्मात्क्षुद्रको भविता ततः ।।१४।।
रणको भविता तस्मात्सुरथस्तनयस्ततः । सुमित्रो नाम निष्ठान्त एते बार्हद्बलान्वयाः ।।१५।।

अन्वयः— तस्मात् शाक्यः अथ शुद्धोद तत्सुतः लाङ्गलः स्मृतः, ततः, प्रसेनजित् तस्मात् क्षुद्रकः भविता ततः रणकः भविता, तस्मात् सुरथः तनयः, ततः सुमित्रः नाम निष्ठान्तः एते बार्हदबलान्वयाः ।।१४-१५।।

अनुवाद— संजय से शाक्य, शाक्य से शुद्धोद, उनके पुत्र लङ्गल कहे गये हैं । उनके पुत्र प्रसेनजित् उनके पुत्र क्षुद्रक होंगे, उनके पुत्र रणक होंगे, रणक के पुत्र सुरथ होंगे उनके पुत्र सुमित्र होंगे । ये इस वंश के अन्तिम राजा होंगे । ये सभी बृहदबल के वंश घर होंगे ।।१४-१५।।

भावार्थ दीपिका

निष्ठा वंशस्य स्थितिस्तस्या अन्तः ।।१४-१५।।

भाव प्रकाशिका

वंश की स्थिति को निष्ठा कहते हैं, उसके अन्तिम राजा सुमित्र होंगे ।।१४-१५।।

इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति । यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ।।१६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे इक्ष्वाकुवंशवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

अन्वयः— इक्ष्वाकूणाम् अयं वंशः सुमित्रान्तः भविष्यति यतः तं राजानं प्राप्य वै कलौ संस्था प्रप्स्यति ।।१६।।

अनुवाद— इक्ष्वाकु का यह वंश सुमित्र तक रहेगा । सुमित्र के राजा होने पर यह वंश समाप्त हो जायेगा।।१६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के इक्ष्वाकुवंश वर्णन नामक बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-इक्ष्वाकूणामिति ।।१६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

उसी को कहते हैं इक्ष्वाकु वंश के सुमित्र अन्तिम राजा होंगे ।।१६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका के बारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१२।।

* * *

तेरहवाँ अध्याय

राजा निमि के वंश का वर्णन

श्रीशुक उवाच

निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् । आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग्वृतोऽस्मि भोः ॥१॥

अन्वयः— इक्षकुतनयः निमि वसिष्ठम् ऋत्विजम् अवृत आरभ्य संत्रं सोऽपि आह भोः प्राक् शक्रेण वृतः अस्मि॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इक्ष्वाकु के पुत्र निमि ने यज्ञ प्रारम्भ करके महर्षि वसिष्ठ का ऋत्विज रूप से वरण किया, वसिष्ठजी ने कहा राजन् मैं पहले से ही इन्द्र के द्वारा वृत हूँ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

इक्ष्वाकोरेव पुत्रस्य निमेर्वंशस्त्रयोदशे । वर्ण्यते जज्ञिरे यत्र ब्रह्मज्ञा जनकादयः । निमेरौरसः पुत्रो नाभूदिति दर्शयन्कथामाह- निमिरित्येकादशभिः सत्रमारभ्य वसिष्ठमृत्विजमवृत वव्रे ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तेरहवें अध्याय में इक्ष्वाकु के ही पुत्र निमि के वंश का वर्णन किया जा रहा है । इसी वंश में जनक इत्यादि ब्रह्मज्ञानी हुए । निमि का औरस पुत्र नहीं हुआ इस बात को बतलाते हुए **निमिः इत्यादि** ग्यारह श्लोकों से कथा का वर्णन करते हैं । यज्ञ प्रारम्भ करके वसिष्ठ ऋषि का ऋत्विज रूप से वरण किए ॥१॥

तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां पतिपालय । तूष्णीमासीद्गृहपतिः सोऽपीन्द्रस्याकरोन्मखम् ॥२॥

अन्वयः— तं निर्वत्य आगमिष्यामि तावत् मां प्रतिपालय, गृहपतिः तुष्णीम् आसीत् सः अपि इन्द्रस्य मखम् अकरोत्॥२॥

अनुवाद— उनके उस यज्ञ को पूरा करके मैं आऊँगा तब तक आप मेरी प्रतीक्षा करें यजमान निमि भी मौन रहे, और वसिष्ठजी भी इन्द्र का यज्ञ कराने के लिए चले गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तं शक्रस्य मखं निर्वर्त्य । प्रतिपालय प्रतीक्षस्वेति गृहपतिर्निमिः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उस यज्ञ को पूरा करके **प्रतिपालय** अर्थात् प्रतीक्षा करो । गृहपतिः अर्थात् निमि ॥२॥

निमिश्चलमिदं विद्वान्सत्रमारभतात्मवान् । ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद्यावता गुरुः ॥३॥

अन्वयः— विद्वान् निमिः इदं चलम् इति आत्मवान् तावत् यावत गुरु न अगमत् अपरैः ऋत्विग्भिः सत्रम् आरभत्॥३॥

अनुवाद— यह जीवन चंचल है, इस तरह से विचार करके आत्मज्ञ निमि ने जब तक गुरु लौटकर न आयें तब तक के लिए एक दूसरे ऋत्विजों से यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिए ॥३॥

भावार्थ दीपिका

इदं जीवितं चलमस्थिरं विद्वान् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

यह जीवन अस्थिर है, इस तरह से जानकर ॥३॥

शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य निर्वर्त्य गुरुरागतः । अशपत्पतताद्देहो निमेः पण्डितमानिनः ॥४॥

अन्वयः— निर्वर्त्य आगतः गुरुः शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य अशपत् पण्डितमानिनः निमेः देहः पततात् ॥४॥

अनुवाद— इन्द्र के यज्ञ को समाप्त करके लौटे हुए गुरु वसिष्ठ ने देखा कि उनके शिष्य उनकी बात नहीं मानकर यज्ञ प्रारम्भ कर दिए हैं अतएव उन्होंने क्रोध करके शाप दे दिया कि अपने को पण्डित मानने वाले निमि का शरीर पात हो जाय ॥४॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्रस्य मखं निर्वर्त्यागतो गुरु शिष्यस्य व्यतिक्रममन्यायं वीक्ष्य निमेर्देहः पतत्वित्यशपत् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र के याग को पूरा करके लौटे हुए गुरु वसिष्ठ अपने शिष्य के अन्याय को देखकर शाप दिए कि इन्द्र निमि का शरीरपात हो जाय ॥४॥

निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्तिने । तवापि पतताद्देहो लोभाद्धर्ममजानतः ॥५॥

अन्वयः— निमि अधर्मवर्तिने गुरवे शापं प्रतिददौ लोभाद् धर्मम् अजानतः तवापि देहः पततात् ॥५॥

अनुवाद— अधर्म का पालन करने वाले गुरु को निमि ने भी शाप दे दिया कि लोभ के कारण धर्म का आदर नहीं करने वाले आपका भी शरीर पात हो जाय ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

इत्युत्ससर्ज स्वं देहं निमिरध्यात्मकोविदः । मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥६॥

अन्वयः— अध्यात्म कोविदः निमिः इति स्वं देह उत्ससर्ज, प्रपितामहः मित्रावरणयोः उर्वश्यां जज्ञे ॥६॥

अनुवाद— अध्यात्म को जानने वाले निमि ने यह कहकर अपना शरीर त्याग दिया और हमारे (शुकदेव जी के) प्रपितामह वसिष्ठ जी ने शरीर त्यागकर मित्रावरुण द्वारा उर्वशी के गर्भ से जन्म ग्रहण किया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

उर्वशीदर्शनात्स्कन्नं रेतस्ताभ्यां कुम्भे निषिक्तं तस्मात्प्रपितामहो वसिष्ठो जज्ञे । तदाह-मित्रावरुणयोरिति । तथा च श्रुतिः- 'कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानम्' इति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

उर्वशी को देखने से स्खलित वीर्य को मित्रावरुण देवताओं ने घड़े में रख दिया । उस वीर्य से वसिष्ठजी उत्पन्न हुए । इस बात का वर्णन **मित्रावरुणयोः इत्यादि** श्लोकांश के द्वारा कहा गया है । श्रुति भी कहती है दोनों ने घड़े में अपने वीर्य का सेचन किया ॥६॥

गन्धवस्तुषु तद्देहं निधाय मुनिसत्तमाः । समाप्ते सत्रयागेऽथ देवानूचुः समागतान् ॥७॥

अन्वयः— मुनिसत्तमाः तद्देहं गन्धवस्तुषु निधाय अथ सत्रयागे समाप्ते समागतान् देवानूचुः ॥७॥

अनुवाद— श्रेष्ठ मुनियों ने राजा निमि के शरीर को सुगन्धित वस्तुओं में रख दिया सत्र की समाप्ति होने पर जब देवता लोग आये तो मुनियों ने उनसे प्रार्थना किया ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

राज्ञो जीवतु देहोऽयं प्रसन्नाः प्रभवो यदि । तथेत्युक्ते निमिः प्राह मा भून्मे देहबन्धनम् ॥८॥

अन्वयः— यदि प्रभवः प्रसन्नाः तदा राज्ञः अयं देहः जीवतु तथा इति उक्ते निमिः प्राह मे देहबन्धनम् माभूत् ॥८॥

अनुवाद— यदि आपलोग प्रसन्न हैं तो राजा का यह शरीर जीवित हो जाय । देवताओं के ऐसा ही हो इस तरह से कहने पर निमि ने कहा मुझे देह का बन्धन नहीं चाहिए ॥८॥

भावार्थ दीपिका

यदि प्रसन्नाः प्रभवः समर्थाश्चेत्तर्हि जीवत्वित्यूचुः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

आपलोग समर्थ हैं, अतएव यदि आपलोग प्रसन्न हैं तो फिर राजा जीवित हो जायँ, इस तरह से उन मुनियों ने प्रार्थना किया ॥८॥

यस्य योगं न वाञ्छन्ति वियोगभयकातराः । भजन्ति चरणाम्भोजं मुनयो हरिमेधसः ॥९॥

अन्वयः— हरिमेधसः मुनयः वियोगभयकातराः यस्य योगं न वाञ्छन्ति चरणाम्भोजं भजन्ति ॥९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् में ही जिनकी बुद्धि लगी रहती है, ऐसे मुनिजन जानते हैं कि एक-न-एक दिन शरीर को छूटना ही है, इसी भय से भयभीत होकर वे शरीर का सम्बनध होना नहीं चाहते हैं, सदा श्रीहरि के चरणों का भजन किया करते हैं कि मेरी मुक्ति हो जाय ॥९॥

भावार्थ दीपिका

यस्य देहस्य योगं न वाञ्छन्त्यपि तु मोक्षायैव भजन्ति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

मुनिजन जिस शरीर का संयोग नहीं चाहकर मुक्ति की प्राप्ति के लिए श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करते हैं॥९॥

देहं नावरुरुत्सेऽहं दुःखशोकभयावहम् । सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा ॥१०॥

अन्वयः— अहं दुखशोकभयावहं देहं न अवरुरुत्से यतः मत्स्यानाम् ठदक यथा अस्य सर्वत्र मृत्युः ॥१०॥

अनुवाद— मैं दुःख, शोक और भय के मूलकारण शरीर में प्रवेश करना नहीं चाहता हूँ, क्योंकि जिस तरह जल में मछलियों के लिए सर्वत्र मृत्यु है उसी तरह इस शरीर की सर्वत्र मृत्यु ही मृत्यु है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

देवा ऊचुः

विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम् । उनमेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः ॥११॥

अन्वयः— विदेहः शरीरिणां लोचनेषु कामं उष्यतां उन्मेष निमेषाभ्यां अध्यात्म संस्थितः लक्षितः ॥११॥

देवताओं ने निमि से कहा

अनुवाद— मुनियों, राजा निमि अपने सूक्ष्म शरीर से शरीर धारियों के नेत्रों में निवास करें और भगवच्चिन्तन करते रहें । उनके शरीर में स्थिति का पता पलको के उठने और गिरने से चलता रहेगा ॥११॥

भावार्थ दीपिका

निमिर्विदेह एव सन्नुष्यतां वसतु । कामं यथेच्छम् । एवं सति युष्माभिः प्रार्थितं जीवितमस्य भविष्यति न च देहबन्ध इति भावः । स चाध्यात्मसंस्थितो लोचनयोः स्थितः सन्नुन्मेषणनिमेषाभ्यां तत्प्रवर्तकत्वेन लक्षितो वर्तत इति शेषः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं ने मुनियों से कहा कि देह रहित ही निमि लोगो के नेत्रों में निवास करें । ऐसा होने पर आपलोगों की प्रार्थना के अनुसार निमि जीवित भी रहेंगे किन्तु उनको देह का बन्धन नहीं होगा । वे नेत्रों में है इस बात का पता उन्मेष और निमेष को देखकर उनके प्रवर्तक रूप से चल जायेगा ।।११।।

अराजकभयं नृणां मन्यमाना महर्षयः । देहं ममन्थुः स्म निमेः कुमारः समजायत ।।१२।।

अन्वयः— नृणाम् अराजकभयं मन्यमानाः महर्षय निमेः देहं ममन्थुः स्म कुमारः समजायत ।।१२।।

अनुवाद— राज के अभाव में लोगों में अराजकता न फैल जाय इस भय को देखते हुए महर्षियों ने निमि के शरीर का मन्थन किया उससे एक कुमार उत्पन्न हुआ ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

तदेव मृतादपि निमेर्देहाद्वंशप्रवृत्तिं दर्शयति- अराजकभयमिति ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

मरे हुए भी निमि के देह से वंश चला इस बात को अराजकभयम्० इत्यादि श्लोक से कहा गया है ।।१२।।

जन्मना जनकः सोऽभूद्वैदेहस्तु विदेहजः । मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ।।१३।।

अन्वयः— सः जन्मना जनकः अभूत् विदेहजस्तु वैदेहः मथनात् मिथिलः जातः येन मिथिला निर्मिता ।।१३।।

अनुवाद— जन्म लेने के कारण वह बालक जनक कहलाया, विदेह से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम वैदेह हुआ, मन्थन से उत्पन्न होने के कारण वह मिथिल कहलाया उसी ने मिथिला पुरी को बसाया ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

तस्यान्वर्थानि त्रीणि नामान्याह-जन्मनाऽसाधारणेन । जन एव जनकः । यद्वा स्वदेहद्वारा जनकत्वात्स निमिर्जनकोऽभूदित्यर्थः। मिथिला येन निर्मिता इत्यनेन व्युत्पत्त्यन्तरमर्थादुक्तम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

उस बालक के तीन सार्थक नामों के कहा गया है । असाधारण रूप से जन्म होने के कारण वह जनक कहलाया । जन को ही जनक कहते है । अथवा अपने शरीर से ही उत्पन्न होने के कारण निमि जनक कहलाये । उन्होंने ही मिथिलापुरी को बसाया । इस तरह भिन्न व्युत्पत्ति से अर्थ कहा गया है ।।१३।।

तस्मादुदावसुस्तस्य पुत्रोऽभून्नन्दिवर्धनः । ततः सुकेतुस्तस्यापि देवरातो महीपते ।।१४।।

अन्वयः— हे महीपते ! तस्माद् उदावसु तस्य पुत्रः नन्दिवर्धनः ततः सुकेतुः तस्यापि देवरातः ।।१४।।

अनुवाद— राजन् जनक के पुत्र उदावसु हुए, उदावसु के पुत्र नन्दिवर्धन हुए, नन्दिवर्धन के पुत्र सुकेतु हुए । उनके पुत्र देवरात हुए ।।१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४।।

तस्माद्बृहद्रथस्तस्य महावीर्यः सुधृत्पिता । सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वै हर्यश्वोऽथ मरुस्ततः ।।१५।।
मरोः प्रतीपकस्तस्माज्जातः कृतिरथो यतः । देवमीढस्तस्य सुतो विसृतोऽथ महाधृतिः ।।१६।।

अन्वयः— तस्माद्बृहद्रथस्तस्य महावीर्यः सुधृत पिता, सुधृतः धृष्ट केतुः वै हर्यश्वः अथ मरुः ततः मरोः प्रतीपकः तस्मात् कृतिरथः जातः यतः देवमीढ़ः तस्य सुतः विसृतः अथ महाधृतिः ।।१५-१६।।

अनुवाद— देवरात् के पुत्र बृहदरथ हुए, उनके पुत्र महावीर्य हुए, महावीर्य के पुत्र सुधृत हुए ये सुधिति के पिता थे, सुधृति के पुत्र धृष्टकेतु हुए और धृष्टकेतु के पुत्र हर्यश्व हुए उनके पुत्र मरु हुए और के पुत्र प्रतीपक हुए उनके पुत्र कृतिरथ हुए और उनके पुत्र देवमीढ हुए, उनके पुत्र विसृत हुए और विसृत के पुत्र महाधृति हुए ।।१५-१६।।

भावार्थ दीपिका

सुधृत्सुधृतिस्तस्य पिता ।।१५-१६।।

भाव प्रकाशिका

सुधृत् सुधृति के पिता थे ।।१५-१६।।

कृतिरातस्ततस्तस्मान्महारोमाथ तत्सुतः । स्वर्णरोमा सुतस्तस्य ह्रस्वरोमा व्यजायत ।।१७।।

अन्वयः— ततः कृतिरातः तस्मात् महारोमा अथ तत्सुतः स्वर्णरोमा तस्यह्रस्वरोमा व्यजायत ।।१७।।

अनुवाद— महाधृति के पुत्र कृतिरात हुए उनके पुत्र महारोमा हुए और महारोमा के पुत्र सुवर्ण रोमा हुए और स्वर्ण रोमा के पुत्र ह्रस्वरोमा हुए ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

ततः सीरध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम् । सीता सीराग्रतो जाता तस्मात्सीरध्वजः स्मृतः ।।१८।।

अन्वयः— ततः सीरध्वजः जज्ञे यज्ञार्थं महीम् कर्षतः सीराग्रतः सीता जाता तस्मात् सीरध्वजः स्मृतः ।।१८।।

अनुवाद— ह्रस्वरोमा क पुत्र सीरध्वज हुए । जब वे यज्ञ के लिए भूमि को जोत रहे थे तब उनके सीर (हल) के अग्रभाग से सीताजी प्रकट हुई इसीलिए इनका नाम सीरध्वज हुआ ।।१८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१८।।

कुशध्वजस्तस्य पुत्रस्ततो धर्मध्वजो नृपः । धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ ।।१९।।

अन्वयः— तस्य पुत्रः कुशध्वजः ततः धर्मध्वजः नृपः, धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ ।।१९।।

अनुवाद— सीरध्वज के पुत्र कुशध्वज, कुशध्वज के पुत्र राजा धर्मध्वज हुए, धर्मध्वज के दो पुत्र थे कृतध्वज और मितध्वज ।।१९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१९।।

कृतध्वजात्केशिध्वजः खाण्डिक्यस्तु मितध्वजात् । कृतध्वजसुतो राजन्नात्मविद्याविशारदः ।।२०।।

अन्वयः— कृतध्वजात् केशिध्वजः खाण्डिक्यः तु मितध्वजात् । हे राजन् कृतध्वजसुतः आत्मविद्याविशारदः ।।२०।।

अनुवाद— कृतध्वज के पुत्र केशिध्वज थे और मितध्वज के पुत्र खाण्डिक्य थे । हे राजन् ! कृतध्वज के पुत्र केशिध्वज आत्मविद्या के निपुण ज्ञाता थे ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

खाण्डिक्यः कर्मतत्त्वज्ञो भीतः केशिध्वजाद्द्रुतः । भानुमांस्तस्य पुत्रोऽभूच्छतद्युम्नस्तु तत्सुतः ।।२१।।

अन्वयः— खाण्डिक्य कर्मतत्वज्ञः केशिध्वजातभीतः द्रुतः तत्सुतः भानुमान् अभूत तत्सुत; शतद्युम्नः ।।२१।।

अनुवाद— खाण्डिक्य कर्मकाण्ड के ज्ञाता थे केशिध्वज से डरकर वनो में चले गये केशिध्वज के पुत्र भानुमान हुए, उनके पुत्र शतधुम्न हुए ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

तस्य केशिध्वजस्य भानुमान् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

उन केशिध्वज के पुत्र भानुमान हुए ।।२१।।

शुचिस्ततनयस्तस्मात्सनद्वाजस्ततोऽभवत् । ऊर्ध्वकेतुः सनद्वाजादजोऽथ पुरुजित्सुतः ।।२२।।

अन्वयः— तत् तनयः शुचिः, तस्मात् सनद्वाजः अभवत् सनद्वाजात् ऊर्ध्वकेतुः, तस्मात् अजः, अथ पुरुजित् सुतः।।२२।।

अनुवाद— शतद्युम्न के पुत्र शुचि हुए, शुचि के पुत्र सनद्वाज हुए, सनद्वाज के पुत्र ऊर्ध्वकेतु हुए । उनके पुत्र अज हुए और अज के पुत्र पुरुजित् हुए ।।२२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२२।।

अरिष्टनेमिस्तस्यापि श्रुतायुस्तत्सुपार्श्वकः । ततश्चित्ररथो यस्य क्षेमधिर्मिथिलाधिपः ।।२३।।

अन्वयः— अरिष्टनेमिः तस्यापि श्रुतायुः तत्सुपार्श्वकः, ततः चित्ररथः यस्य क्षेमधिः मिथिलाधिपः ।।२३।।

अनुवाद— पुरुजित् के पुत्र अरिष्टनेमि हुए, उनके भी पुत्र श्रुतायु हुए, उनके पुत्र सुपर्श्व हुए । सुपार्श्व के पुत्र चित्ररथ हुए, उनके पुत्र मिथिला के स्वामी क्षेमधी हुए ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मात्सुपार्श्वकः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

उनके पुत्र सुपार्श्व हुए ।।२३।।

तस्मात्समरथस्तस्य सुतः सत्यरथस्ततः । आसीदुपगुरुस्तस्मादुपगुप्तोऽग्निसंभवः ।।२४।।

अन्वयः— तस्मात् समरथः तस्य सुतः सत्यरथः ततः उपगुरुः आसीत्, तस्मात् अग्निसंभवः उपगुप्तः ।।२४।।

अनुवाद— क्षेमधी के पुत्र समरथ हुए उनके पुत्र सत्यरथ हुए उनके पुत्र उपगुरु हुए और उपगुरु के पुत्र उपगुप्त हुए वे अग्नि के अंश थे ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

अग्निसंभवोऽग्नेरंशात्संभूतः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

अग्निसंभवः अर्थात् अग्नि के अंश से उत्पन्न ।।२४।।

वस्वनन्तोऽथ तत्पुत्रो युयुधो यत्सुभाषणः । श्रुतस्ततो जयस्तस्माद्विजयोऽस्मादृतः सुतः ।।२५।।

अन्वयः— अथ वस्वनन्तः तत्पुत्रः युयुधः यत् सुभाषणः ततः श्रुतः तस्माद्जयः आस्मात् विजयः अस्मात् ऋतः सुतः।।२५।।

अनुवाद— उपगुप्त के पुत्र वस्वनन्त हुए, वस्वनन्त के युयुध, युयुध के सुभाषण, सुभाषण के श्रुत, श्रुत के जय और जय के विजय तथा विजय के पुत्र ऋत हुए ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

यद्यस्मात्सुभाषणः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

जिससे सुभाषण नामक पुत्र हुआ ।।२५।।

शुनकस्तत्सुतो जज्ञे वीतहव्यो धृतिस्ततः । बहुलाश्वो धृतेस्तस्य कृतिरस्य महावशी ॥२६॥

अन्वयः— तत् सुतः शुनको तत्सुतः वीतिहव्यः जज्ञे, ततः धृतिः, ततो धृतेः बहुलाश्वः, तस्य कृतिः अस्यमहावशी॥२६॥

अनुवाद— ऋतक के पुत्र शुनक हुए उनके पुत्र वीतिहव्य हुए वीतिहव्य के पुत्र धृति हुए, धृति के पुत्र वहुलाश्व हुए उनके पुत्र कृति हुए कृति के पुत्र महावशी हुए ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

एते वै मैथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः । योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥२७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे निमिवंशानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अन्वयः— राजन् एते मैथिलाः आत्मविद्याविशारदाः, योगेश्वर प्रसादेन, गृहेष्वपि द्वन्द्वैर्मुक्ताः ॥२७॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ये सभी राजा मैथिल शब्द से कहे जाते है, ये सभी आत्मज्ञान से सम्पन्न थे । क्योंकि इन सवों पर याज्ञवल्क्य आदि बड़े-बड़े योगियों की कृपा थी अतएव गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी ये सभी सुख-दुःख आदि द्वन्दों से रहित थे ॥२७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के निमिवंश वर्णन नामक तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

योगेश्वरा याज्ञवल्क्यादयस्तेषां प्रसादेन ।।२७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

योगेश्वर शब्द से याज्ञवल्क्य आदि महर्षियों को कहा गया है, उन लोगों की कृपा से ॥२७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

चौदहवाँ अध्याय

नन्दवंश का वर्णन

श्रीशुक उवाच

अथातः श्रूयतां राजन्वंशः सोमस्य पावनः । यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥१॥

अन्वयः— राजन् अथातः सोमस्य पावनः वंशः श्रूयताम् यस्मिन् पुण्यकीर्तयः ऐलादयः भूपाः कीर्त्यन्ते ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! अब आप चन्द्रमा के पवित्र वंश का वर्णन सुनें । उस वंश में ऐल (पुरुरवा) आदि पुण्य कीर्ति राजाओं का वर्णन किया जाता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्दशादिभिः सोमवंशमाहासमाप्ति । यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥१॥ चतुर्दशे गुरोः पत्त्न्यां तारायां सोमजाद्बुधात् । जातश्चैलः षड्डुर्वश्यामायुमुख्यानजीजनत् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौदहवें अध्याय से लेकर इस स्कन्ध की सगाप्ति तक चन्द्रवंश का वर्णन किया गया है । इस सोमवंश में ही पुरुरवा अदि पवित्र कीर्ति राजाओं का नर्णन है । चौदहवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा के गर्भ से चन्द्रमा ने बुध नामक पुत्र को उत्पन्न किया । बुध के पुत्र का नाम ऐल (पुरुरवा) था॥१॥

सहस्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात् । जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः ॥२॥

अन्वयः— सहस्रशिरसः पुंसः नाभिह्रदसरोरुहात् जातस्य धातुः सुतः अत्रिः गुणैः पितृसमः आसीत् ॥२॥

अनुवाद— सहस्रों शिर वाले विराट पुरुष भगवान् नारायण के नाभि सरोवर में उत्पन्न कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी के पुत्र महर्षि अत्रि अपने पिता के ही समान गुणवान् थे ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

तस्य दृग्भ्योऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल । विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः ॥३॥

अन्वयः— तस्य दृग्भ्यः अमृतमयः पुत्रः किल सोमः अभवत्, ब्रह्मणा विप्रौषध्युडुगणानां पतिः कल्पितः ॥३॥

अनुवाद— महर्षि अत्रि के नेत्रों से उनके पुत्र अमृतमय चन्द्रमा हुए । ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को ब्राह्मणों, औषधियों और ताराओं का स्वामी बना दिया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

दृग्भ्य आनन्दाश्रुभ्यः । अत एवामृतमयः । किलेत्याश्चर्ये पाठान्तरे दृशो नेत्रात् । वक्ष्यमाणदर्पकारणमाह-विप्रेति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

दृग्भ्यः अर्थात् आनन्दाश्रुओं से अतएव अमृतमय आश्चर्य के अर्थ में किल इस अव्यय का प्रयोग हुआ है। **तस्यदृशः** इस पाठ के होने पर अर्थ होगा कि दृशः अर्थात् नेत्र से । आगे बतलाये जाने वाले चन्द्रमा के दर्प का कारण **विप्रौषधि० इत्यादि** उत्तरार्द्ध के द्वारा कहा गया है ॥३॥

सोऽयजद्राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम् । पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात्तारां नामाहरद्बलात् ॥४॥

अन्वयः— सः भुवनत्रयम् विजित्य, राजसूयेन अयजत्, दर्पात् बृहस्पतेः पत्नीं तारा नाम बलात् अहरत् ॥४॥

अनुवाद— चन्द्रमा ने त्रैलोक्य को जीतकर राजसूय यज्ञ किया और बृहस्पति की पत्नी तारा का बलपूर्वक अपहरण कर लिया ॥४॥

भावार्थ दीपिका

सोमस्य पुत्रो बुध इति कथाद्वारेणाह-पत्नीमिति सार्धैर्नवभिः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

पत्नीम् इत्यादि साढे नव श्लोकों द्वारा कथा के माध्यम से यह बतलाया गया कि चन्द्रमा के पुत्र बुध हुए।॥४॥

यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात् । नात्यजत्तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रहः ॥५॥

अन्वयः— यदा सः देवगुरुणा अभीक्ष्णशः याचितः मदात् न अत्यजत् तत् कृते सुरदानव विग्रहः जज्ञे ॥५॥

अनुवाद— जब देवगुरु बृहस्पति ने चन्द्रमा से बार-बार अपनी पत्नी को माँगा । तो चन्द्रमा ने घमण्ड के कारण बृहस्पति की पत्नी को नहीं लौटाया और उसी के कारण देवासुरसंग्राम हुआ ॥५॥

भावार्थ दीपिका

तत्कृते तन्निमित्तम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

तत्कृते अर्थात् उसी के कारण ।।५।।

शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत्सासुरोडुषम् । हरो गुरुसुतं स्नेहात्सर्वभूतगणावृतः ।।६।।
सर्वदेवगणोपेतो महेन्द्रो गुरुमन्वयात् । सुरासुरविनाशोऽभूत्समरस्तारकामयः ।।७।।

अन्वयः— बृहस्पतेर्द्वेषात् शुक्रः सासुरोडुपम् अग्रहीतः स्नेहात् सर्वभूतगणावृतः हरः गुरु सुतम्, सर्वदेवगणोपेतः महेन्द्रः गुरुम् अन्वयात् सुरासुरविनाशः तारकामयः समरः अभूत् ।।६-७।।

अनुवाद— देवगुरु बृहस्पति से द्वेष होने के कारण शुक्राचार्य असुरों के साथ चन्द्रमा का पक्ष ले लिए और शङ्करजी सभी भूतगणों को साथ लेकर अपने विद्यागुरु अङ्गिरा महर्षि के पुत्र आचार्य बृहस्पति का पक्ष ले लिए । इन्द्र भी सभी देवताओं को साथ लेकर आचार्य बृहस्पति के पक्ष में हो गये । उस तारा को ही लेकर युद्धमें बहुत से देवताओं और असुरों का विनाश हुआ ।।६-७।।

भावार्थ दीपिका

सुराणां दानवानां च विग्रहे कारणमाह-शुक्र इति । असुरैः सहितः । उडुपमग्रहीदित्यर्थः । सन्धिरार्षः । गुरोः सुतं बृहस्पतिमग्रहीत् । अङ्गिरसः सकाशात्प्राप्तविद्यो हर इति प्रसिद्धिः ।।६-७।।

भाव प्रकाशिका

देवताओं में हुए युद्ध का कारण **शुक्र० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । असुरों के साथ चन्द्रमा का पक्ष ले लिए यह **उडुपम् अग्रहीत** का अर्थ है । **सासुरोडुपम्** में सन्धि आर्ष है । गुरु के पुत्र बृहस्पति का पक्ष ले लिए । यह प्रसिद्धि है कि महर्षि अङ्गिरा से शङ्करजी ने विद्या प्राप्त की थी ।।६-७।।

निवेदितोऽथाङ्गिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत् । तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदन्तर्वत्नीमवैत्पतिः ।।८।।

अन्वयः— अथ अङ्गिरसा निवेदिताः विश्वकृत सोमं निर्भस्र्स्य अन्तर्वत्नीं तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छत् । पतिः अवैत् ।।८।।

अनुवाद— उसके पश्चात् बृहस्पति के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को डाँटकर गर्भवती तारा को उसके पति बृहस्पति को दिलवा दिया । बृहस्पतिजी ने जान लिया कि तारा गर्भवती है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

निवेदितो विज्ञापितः । विश्वकृद्ब्रह्मा । अबैदबुध्यत ।।८।।

भाव प्रकाशिका

निवेदितः अर्थात् प्रार्थना किए जाने पर, विश्वकृत् अर्थात् ब्रह्मा अवैत् अर्थात् जान लिया ।।८।।

त्यज त्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः । नाहं त्वां भस्मसात्कुर्यां स्त्रियं सान्तानिकः सति ।।९।।

अन्वयः—हे दुष्प्रज्ञे सान्तानिके असति परैः आहितं मत्क्षेत्रात् आशु त्यज त्यज स्त्रियं त्वाम् आहं भस्मसात् न कुर्याम्।।९।।

अनुवाद—हे दुष्टे, हे सन्तान के साधन भूत कुलटे यह तो मेरे क्षेत्र में किसी दूसरे का गर्भ है, इसे शीघ्र त्याग दो. नहीं तो मैं तुमको भस्म कर दूँगा । किन्तु तुम स्त्री हो इसलिए मैं तुमको भस्म नहीं कर रहा हूँ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

बृहस्पतिराह-त्यज त्यजेति । परैराहितं गर्भम् । गर्भे त्यक्ते भस्मीकरिष्यतीति बिभ्यतीं प्रत्याह-नाहमिति । सान्तानिकः संतानार्थी । सांतानिके इति पाठे हे सत्पुत्रं इत्यर्थः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

बृहस्पति ने कहा त्याग दो त्याग दो । **परैराहितम्** अर्थात् गर्भ का त्याग करने पर बृहस्पति मुझे भस्म कर देंगे इस तरह से डरने वाली तारा से बृहस्पति ने **नाहम् इत्यादि** कहा अर्थात् तुझे भस्म नहीं करूँगा **सान्तानिकः** सन्तान चाहने वाला **सान्तनिक** पाठ होने पर अर्थ होगा हे सत्पुत्र वाली ।।९।।

तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम् । स्पृहामाङ्गिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ।।१०।।

अन्वयः— व्रीडिता तारा कनकप्रभं कुमारं तत्याज । कुमारे आङ्गिरसः सोम एव च स्पृहाम् चक्रे ।।१०।।

अनुवाद— लज्जित तारा ने सुवर्ण के समान कान्ति वाले बालक का परित्याग कर दिया । उस बालक को बृहस्पति और चन्द्रमा दोनों प्राप्त करना चाहे ।।१०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१०।।

ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन्विवदमानयोः । पप्रच्छुर्ऋषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ।।११।।

अन्वयः— अयं मम तव न इति तस्मिन् तयोः उच्चैः विवदमानयोः ऋषय देवाः पप्रच्छुः व्रीडिता सा नैव उच्चे।।११।।

अनुवाद— यह मेरा पुत्र है तुम्हारा नहीं है, इस तरह से दोनों जब दोनों जोर-जोर से विवाद कर रहे थे तो ऋषियों ने तारा से पूछा कि यह किसका पुत्र है ? किन्तु लज्जित होने के कारण तारा कुछ नहीं बोली ।।११।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।११।।

कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया । किं न वोचस्यसद्वृत्ते आत्मावद्यं वदाशु मे ।।१२।।

अन्वयः— कुमारः अलीक लज्जया कुपितः मातरं प्राह हे असद्वृत्ते आत्मावद्यं किं न वोचसि मे आशुवद ।।१२।।

अनुवाद— झूठी लज्जा करने वाली अपनी माता से क्रोध करके उस बालक ने कहा हे दुष्टे तुम अपने कुकर्म को क्यों नहीं बतलाती हो मुझे बतलाओ ।।१२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१२।।

ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सान्त्वयन् । सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ।।१३।।

अन्वयः— तां रहः आहूय ब्रह्मा सान्त्वयन् अप्राक्षीत् शनकैः सोमस्य इति आह तं तावत् सोम अग्रहीत् ।।१३।।

अनुवाद— तारा को एकान्त में बुलाकर ब्रह्माजी ने उसको सान्त्वना प्रदान करते हुए पूछा तो उसने धीरे से कहा कि यह चन्द्रमा का पुत्र है और उस बालक को चन्द्रमा ने ले लिया ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

रहः एकान्ते ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

रहः अर्थात् एकान्त में ।।१३।।

तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्यभिधां नृप । बुद्ध्या गम्भीरया येन पुत्रेणापोडुराण्मुदम् ।।१४।।

अन्वयः— हे नृप आत्मयोनिः तस्य बुध इति अभिधां अकृत येन पुत्रेण गम्भीरया बुद्धयां उडुराट् मुदम् आप ।।१४।।

अनुवाद— हे राजन् ! परीक्षित् ब्रह्माजी ने उसका नाम बुध रखा, क्योंकि उसकी बुद्धि अत्यन्त गम्भीर थी । उस पुत्र को प्राप्त करके चन्द्रमा बहुत प्रसन्न हुए ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

पुरुरवस उर्वश्यामायुप्रमुखाः षट् पुत्रा जाता इति वक्तुं कथामाह-तस्येत्यादिना यावत्समाप्ति ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

पुरुरवा के उर्वशी के गर्भ से आयु इत्यादि छह पुत्र हुए इस बात को बतलाने के लिए तस्य इत्यादि श्लोक से लेकर अध्याय की समाप्ति पर्यन्त इस कथा को बतलाते हैं ।।१४।।

ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः। तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ।।१५।।
श्रुत्वोर्वशीन्द्रभवने गीयमानान्सुरर्षिणा। तदन्तिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता ।।१६।।

अन्वयः— ततः इलायां पुरुरवा जज्ञे य उदाहृतः । इन्द्रभवने सुरर्षिणा तस्य रूप गुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् गीयमानान् श्रुत्वा उर्वशी देवी स्मरशरार्दिता तदन्तिकम् उपेयाय ।।१५-१६।।

अनुवाद— बुध के पुत्र पुरुरवा इला के गर्भ से उत्पन्न हुए । इसका वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ । इन्द्र की सभा में देवर्षि नारदजी द्वारा पुरुरवा के रूप, गुण, औदार्य, शील, सम्पत्ति तथा पराक्रम को सुनकर कामार्त उर्वशी पुरुरवा के पास चली आयी ।।१५-१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१५-१६।।

मित्रावरुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम् । निशम्य पुरुषश्रेष्ठं कन्दर्पमिव रूपिणम् ।।१७।।

अन्वयः— रूपिणम् कन्दर्पमिव पुरुष श्रेष्ठं निशम्य मित्रावरुणयोःशापात् नरलोकताम् इयाय ।।१७।।

अनुवाद— शरीरधारी कामदेव के समान सुन्दर पुरुष श्रेष्ठ पुरुरवा को सुनकर वह मित्र वरुण नामक देवताओं के शाप से मनुष्य लोक में आ गयी ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

ननु देवी कुतो मनुष्यस्यान्तिकमुपागच्छेत्तत्राह-मित्रावरुणयोः शापान्नरलोकतां मनुष्यभावमापन्ना सती ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि उर्वशी तो देवी थी वह मनुष्य के पास क्यो आ गयी । तो इसके उत्तर में कहा गया है कि मित्रावरुण नामक देवताओं के शाप के कारण वह मनुष्य लोक में आयी ।।१७।।

धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तदन्तिके । स तां विलोक्य नृपतिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः।।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवीं हृष्टतनूरुहः ।।१८।।

अन्वयः— ललना धृतिं विष्टभ्य तदन्तिके उपतस्थे तां विलोक्य हर्षेण उत्फुल्ललोचनः सः हृष्टतनूरुहः नृपतिः देवीं श्लक्ष्णया वाचा उवाच ।।१८।।

अनुवाद— वह सुर सुन्दरी धैर्य धारण करके पुरुरवा के पास आयी । उस देवी को देखकर पुरुरवा के नेत्र हर्ष से विकसित हो गये । शरीर में रोमाञ्च हो गया और उसके पश्चात् राजा ने मधुर वाणी से उस देवी से कहा ।।१८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१८।।

राजोवाच

स्वागतं ते वरारोहे आस्यतां करवाम किम् । संरमस्व मया साकं रतिर्नौ शाश्वतीः समाः ॥१९॥

अन्वयः— वरारोहे ते स्वागतं, आस्यताम् किम् करवाम, मया साकं रमस्व, नौरतिः शाश्वतीः समाः ॥१९॥

राजा ने कहा

अनुवाद— सुन्दरी तुम्हारा स्वागत है, बैठो, मैं तुम्हारी कौन सी सेवा करूँ ? मेरे साथ विहार करो, हम दोनों का विहार अनन्त काल तक चलता रहे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

नौ अवयोः रतिरस्त्वति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

हम दोनों का प्रेम बना रहे ॥१९॥

उर्वश्युवाच

कस्यास्त्वयि न सज्जेत मनो दृष्टिश्च सुन्दर । यदङ्गान्तरमासाद्य च्यवते ह रिरंसया ॥२०॥

अन्वयः— हे सुन्दर त्वयि कस्याः मनो दृष्टिश्च न सज्जेत यदङ्गान्तरमासाद्य रिरंसया ह न च्यवते ॥२०॥

उर्वशी ने कहा

अनुवाद— हे सौन्दर्य मूर्ति राजन् ऐसी कौन सुन्दरी होगी जिसका मन और दृष्टि आपमें आसक्त न हो जाय, क्योंकि आपके समीप आकर मेरा मन रमण की इच्छा से धैर्य खो बैठा है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

यस्य तवाङ्गान्तरं वक्ष आसाद्य रिरंसया रन्तुमिच्छया ह स्फुटं न च्यवते नापयाति । यद्यस्मादिति वा ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

आपके वक्षः स्थल को देखकर मेरा मन रमण की इच्छा को नहीं त्यागता है ॥२०॥

एतावुरणकौ राजन्न्यासौ रक्षस्व मानद । संरंस्ये भवता साकं श्लाघ्यः स्त्रीणां वरः स्मृतः ॥२१॥

अन्वयः— हे मानद राजन् एतौ उरणकौ न्यासौ रक्षस्व, भवतासाकं संरंस्ये स्त्रीणां वरः श्लाध्य स्मृतः ॥२१॥

अनुवाद— हे सम्मान प्रदान करने वाले राजन ये दोनों मेरे मेष के बच्चे है इसे धरोहर के रूप मैं आपको सौंपती हूँ । आप इन दोनों की रक्षा करें । आपके साथ में अवश्य विहार करूँगी । अपने गुण आदि के कारण प्रशंसनीय पुरुष ही स्त्रियों को अभीष्ट होता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

शापावसाने भापाभङ्गमिषेण जिगमिषोस्तस्या भाषाबन्धमाह-एताविति द्वाभ्याम् । उरणकौ मेषौ न्यासौ निक्षेपरूपौ रक्षस्व । यः श्लाघ्यः स एव स्त्रीणां वरः स्मृतः । अतो विजातीयत्वं न दोष इति भावः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

शाप की समाप्ति हो जाने से भाषा की भङ्गिमा के बहाने चली जाने की इच्छा वाली उर्वशी के कहने के प्रकार को **एतौ० इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा बतलाते हैं । उरणकौ अर्थात् मेष के बच्चे धरोहर रूप ही इनकी आप रक्षा करेंगे। प्रशंसनीय पुरुष ही स्त्रियों को अभीष्ट होता है । अतएव आपके विजातीय होने पर भी कोई दोष नहीं है ॥२१॥

घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यान्नेक्षे त्वाऽन्यत्र मैथुनात् । विवाससं तत्तथेति प्रतिपेदे महामनाः ॥२२॥

अन्वयः— हे वीर ! मे भक्ष्यं घृतं स्यात् मैथुनात् अन्यत्र त्वा विवाससं नेक्षे, महामनाः तत्तथेति प्रतिपेदे ॥२२॥

अनुवाद— हे वीर ! घृत ही मेरा आहार होगा, मैथुन काल से भिन्न काल में मैं आपको नग्न नहीं देखूँगी। महामनस्वी पुरुरवा ने भी कह दिया ठीक है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

हे वीर, घृतं मे भक्ष्यं स्यात् । 'अमृतं वा आज्यम्' इति श्रुतेः । देवानां चामृताशित्वात् । मैथुनादन्यत्र विवाससं त्वां नेक्षिष्ये । इति प्रतिपेदेऽङ्गीकृतवान् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

हे वीर ! मेरा आहार धृत ही होगा । श्रुति कहती है **'अमृतं वा आज्यम्'** निश्चित रूप से घृत अमृत है। देवता अमृत का भोजन करते हैं । मैथुन काल से भिन्न काल में आपको नग्न नहीं देखूँगी ॥२२॥

अहो रूपमहो भावो नरलोकविमोहनम् । को न सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम् ॥२३॥

अन्वयः— अहो रूपम् अहोभावो नरलोकविमोहनम्, स्वयम् आगताम् देवीं त्वां को मनुजो न सेवेत ॥२३॥

अनुवाद— राजा ने उर्वशी से कहा तुम्हारा यह रूप अत्यन्त सराहनीय है, तुम्हारा भाव अलौकिक है । अपने आप आई तुम देवी का कौन ऐसा मनुष्य होगा जो सेवन न करे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-अहो इति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

अहो० इत्यादि श्लोक से उसी बात को कहा गया है ॥२३॥

तया स पुरुषश्रेष्ठो रमयन्त्या यथार्हतः । रेमे सुरविहारेषु कामं चैत्ररथादिषु ॥२४॥

अन्वयः— रमयन्त्या तया स पुरुष श्रेष्ठ यथार्हतः सुरविहारेषु चैत्ररथदिषु कामं रेमे ॥२४॥

अनुवाद— रमण करती हुई उसके साथ पुरुष श्रेष्ठ पुरुरवा देवताओं के विहार स्थल चैत्ररथ आदि वनों में यथायोग्य रमण किए ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

रममाणस्तया देव्या पद्मकिंजल्कगन्धया । तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान्बहून् ॥२५॥

अन्वयः— पद्मकिञ्जल्कगन्धया तया देव्या रममाणः तन्मुखमोदमुषितः बहून् अहर्गणान् मुमुदे ॥२५॥

अनुवाद— कमल के पराग के समान सुगन्धित शरीर वाली उस उर्वशी देवी के साथ रमण करने वाले राजा पुरुरवा उसके मुख की सुगन्धि से मोहित होकर बहुत वर्षों तक उसके साथ रमण करते हुए आनन्दानुभव किए ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

पद्मकिंजल्कस्य गन्ध इव गन्धो यस्यास्तस्या मुखामोदेन मुषितः प्रलोभितः सन् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

उर्वशी के शरीर से कमल पराग के समान सुगन्धि निकलती थी । उसके मुख की सुगन्धि के लोभ में पड़े

अपश्यन्नुर्वशीमिन्द्रो गन्धर्वान्समनोदयत् । उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते ॥२६॥

अन्वयः— उर्वशीम् अपश्यन्निन्द्रः गन्धर्वान् समनोदयत् उर्वशी रहितं आस्थानं मह्यम् नातिशोभते ॥२६॥

अनुवाद— इन्द्र ने जब उर्वशी को नहीं देखा तो उन्होंने गन्धर्वों से कहा कि उर्वशी के बिना मेरी सभा सुशोभित नहीं होती है, और उन्होंने उर्वशी को लाने के लिए गन्धर्वों को भेजा ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

मह्यं मम ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

मह्यम् अर्थात् मेरी सभा ॥२६॥

त उपेत्य महारात्रे तमसि प्रत्युपस्थिते । उर्वश्या उरणौ जह्रुर्न्यस्तौ राजनि जायया ॥२७॥

अन्वयः— ते महारात्रे उपेत्य तमसिप्रत्युपस्थिते उर्वश्याः उरणौ जह्रुराजनि जायया न्यस्तौ ॥२७॥

अनुवाद— वे गन्धर्व आधी रात के समय घोर अन्धकार में आकर उर्वशी के दोनों मेष के बच्चों का अपहरण कर लिए जिन सबों को उर्वशी ने राजा के पास धरोहर के रूप में रखा था ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

महारात्रे मध्यरात्रे । 'महानिशा द्वे घटिके रात्रौ मध्यमयामयोः' इति स्मृतेः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

महारात्रे अर्थात् आधीरात के समय रात्रि के बीच के दो पहरों की दो घड़ियां महानिशा कही गयी हैं ॥२७॥

निशम्याक्रन्दितं देवी पुत्रयोर्नीयमानयोः । हतास्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना ॥२८॥

अन्वयः— नीयमानयोः पुत्रयोः आक्रन्दितं निशम्य देवी अहं वीरमा निना कुनाथेन पुंसा हतास्मि आहेति शेषः॥२८॥

अनुवाद— चुराकर ले जाते हुए अपने पुत्र के समान प्रिय मेषों का चिल्लाना सुनकर उर्वशी ने कहा अरे मैं तो अपने को वीर मानने वाले कायर पुरुष को अपना स्वामी बनाकर मारी गयी ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

जिगमिषोस्तस्या; परुषोक्तिमाह-हतास्मीति सार्धेन । नपुंसा नुपंसकेन ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

जाने की इच्छा वाली उर्वशी की कठोर वाणी को **हतास्मि०** इस इत्यादि डेढ श्लोकों से कहते हैं । नपुंसा नुपंसक के द्वारा ॥२८॥

यद्विश्रम्भादहं नष्टा हृतापत्या च दस्युभिः । यः शेते निशिसंत्रस्तो यथा नारी दिवा पुमान् ॥२९॥

अन्वयः— यद् विश्रम्भात् दस्युभिः हृतापत्या अहं नष्टा, यः निशि नारीयथा संत्रस्त शेते दिवापुमान् ॥२९॥

अनुवाद— इस पर विश्वास करने के कारण मैं मारी गयी । लुटेरे मेरे बच्चों को लिए जा रहे हैं । यह रात्रि में नारी के समान डर कर सोता है और दिन में वीर बनता है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

यथा नारी तथा संत्रस्तः शेते ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

नारी के समान डरकर सोता है ॥२९॥

इति वाक्सायकैर्विद्धः प्रतोत्रैरिव कुञ्जरः । निशि निस्त्रिंशमादाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद्रुषा ॥३०॥

अन्वयः— इति वाक्सायकैः विद्धः प्रतोत्रैः कुञ्जर इव निशि निस्त्रिंशम् आदाय विवस्त्रःरुषा अभ्यद्रवत् ॥३०॥

अनुवाद— जैसे हाथी को अंकुश से बेध दिया जाय उसी तरह उर्वशी के वाग् बाणों से विद्ध राजा हाथ में तलवार लेकर क्रोध करके नंगे ही दौड़ पडे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

ते विसृज्योरणौ तत्र व्यद्योतन्त स्म विद्युतः । आदाय मेषावायान्तं नग्नमैक्षत सा पतिम् ॥३१॥

अन्वयः— ते तत्र उरणौ विसृज्य विद्युतः व्यद्योतन्त स्म मेषो आदाय नग्नम् आयान्तम् पतिम् सा ऐक्षत ॥३१॥

अनुवाद— वे वही पर मेष के बच्चों को छोड़कर बिजली का प्रकाश कर दिये, दोनों मेषों को लेकर नग्न आते हुए राजा को उर्वशी ने देख लिया ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

विद्युतो विशिष्टद्युतिमन्तो व्यद्योतन्त दीप्तिमकुर्वत । यद्वा तदैव तडितः प्रकाशन्तेत्यर्थः । नग्नमैक्षत । अतो भाषाभङ्गान्निर्जगामेति ज्ञेयम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

विशेष रूप से प्रकाशकर दिए अथवा उसी समय बिजली चमकने लगी । अतएव उर्वशी ने नंगा देख लिया। अतएव शर्त के भङ्ग हो जाने के कारण वह वहाँ से चली गयी ॥३१॥

ऐलोऽपि शयने जायामपश्यन्विमना इव । तच्चित्तो विह्वलः शोचन्बभ्रामोन्मत्तवन्महीम् ॥३२॥

अन्वयः— शयने जायाम् अपश्यन् ऐलोऽपि विमना इव तच्चितः विह्वलः शोचन् महीम् बभ्राम ॥३२॥

अनुवाद— शय्या पर पत्नी को नहीं देखकर पुरुरवा भी उदास से हो गये, उसी में मन लगे रहने के कारण विह्वल बने हुए वे उन्मत्त के समान पृथिवी पर घूमने लगे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां च तत्सखीः । पञ्च प्रहृष्टवदनाः प्राह सूक्तं पुरूरवः ॥३३॥

अन्वयः— स कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां तां पहृष्टवदनाः तत्पञ्च सखीः च वीक्ष्य पुरुरवाः सूक्तं प्राह ॥३३॥

अनुवाद— एक दिन पुरुरव ने कुरुक्षेत्र के सरस्वती नदी के तट पर उर्वशी और उसकी पाँच प्रसन्न सखियों को देखकर मधुर वाणी में कहा ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तस्याः सखीश्च पञ्च वीक्ष्य । सूक्तं शोभनं वचनम् 'हये जाये' इत्यादि ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

उर्वशी की पाँच सखियों को देखकर पुरुरवा ने मीठे शब्दों में ऐ जाये इस तरह से कहा ॥३३॥

अहो जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि । मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै ॥३४॥

अन्वयः— अहो जाये तिष्ठ-तिष्ठ घोरे त्युक्तम् न अर्हसि । मां त्वम् अद्यापि अनिर्वर्त्य वचांसि कृणवाव है ॥३४॥

अनुवाद— प्रिये थोड़ा ठहरो, इस भयङ्कर कष्ट में मुझे मत त्याग आज भी मुझे सुखी बनाये बिना नहीं जा सकती आओ हम दोनों बातें कर लें ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

तदेवार्थत आह-अहो इति द्वाभ्याम् । अनिर्वृत्य मत्कृतां निर्वृतिमप्राप्य । पाठान्तरे मां निर्वृतिमगमयित्वा मन्त्राननुक्त्वेति वा । वचांसि कृणवावहै गोष्ठीः करवावहै ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

अहो० इत्यादि दो श्लोकों को उसी अर्थ को कहते हैं मुझे सुखी बनाये बिना **अनिर्वर्त्य** यह पाठ भेद होने पर मुझे सुख पहुँचाये बिना अर्थ होगा । अथवा मन्त्रों को बिना कहे । हम दोनों बातें करें ॥३४॥

सुदेहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया । खादन्त्येनं वृका गृध्रास्त्वत्प्रसादस्य नास्पदम् ॥३५॥

अन्वयः— हे देवि ! अयं देहः अत्र पतति त्वया दूरं हृतः त्वत् प्रसादस्य नास्पदम् एनं वृकाः गृध्राः खादन्ति ॥३५॥

अनुवाद— हे देवि ! यह सुन्दर शरीर यहीं गिर रहा है क्योंकि अब यह तुम्हारी कृपा का पात्र नहीं रहा। तुम्हारें सामने ही इसे गृध्र और भेंड़िए खा जा रहे हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

सुदेहोऽतिकमनीयोऽयं मम देहः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त मनोहर मेरा यह शरीर ॥३५॥

ऊर्वश्युवाच

मा मृथाः पुरुषोऽसि त्वां मा स्म त्वाऽद्युर्वृका इमे ।
क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा ॥३६॥

अन्वयः— मा मृथाः त्वं पुरुषः असि त्वा इमे वृकाः मा अद्युः वृकाणां हृदयं यथा स्त्रीणां क्वापि सख्यं न ॥३६॥

उर्वशी ने कहा

अनुवाद— तुम मरो मत । तुम पुरुष हो तुम्हे ये भेंड़िये मत खाये जिन सबों का हृदय भेड़ियों के हृदय के समान क्रूर होता है उन स्त्रियों की किसी से मित्रता नहीं होती है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

'पुरूरवो मामृथा' इत्यादि तस्याः सूक्तं तदप्यर्थत आह-मा मृथा इति चतुर्भिः-मा म्रियस्व । पुरुषोऽसि । अतो धैर्यमावहेति भावः । इमे वृकाः प्रसिद्धा इन्द्रियाणि वा त्वा इति त्वां मा स्म अद्युर्भक्षयेयुः । इन्द्रियवशो मा भवेत्यर्थः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

पुरुरवा मरो मत इत्यादि मधुरवाणी से भी उसी अर्थ को कहा गया है । मामृथा इन चार श्लोको से वही बात कही गयी है । तुम पुरुष हो अतएव धैर्य धारण करो । ये प्रसिद्ध भेंडिये अथवा इन्द्रियाँ, आज तुम को नहीं खायें अर्थात् इन्द्रियों के वशीवर्ती मत बन ॥३६॥

स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः । घ्नन्त्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥३७॥

अन्वयः— स्त्रियः अकरुणा क्रूराः दुर्मषाः प्रियसाहसाः अल्पार्थे अपि विश्रब्धं भ्रातरम् पति उत घ्नन्तिः ॥३७॥

अनुवाद— स्त्रियाँ निर्दय, क्रूर चिढ़ जाने वाली और सहस प्रिय होती है वे थोड़े से अपने स्वार्थ के लिए विश्वस्त पति अथवा अपने भाई को मरवा देती हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

प्रिये निमित्ते साहसं यासाम् ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

अपने सुख के लिए साहसिक कार्य करने वाली ॥३७॥

विधायालीकविश्रम्भमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः । नवं नवमभीप्सन्त्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥३८॥

अन्वयः— अज्ञेषु अलीकं विश्रम्भं विधाय त्यक्तसौहृदाः नवं नवम् अभीप्सन्त्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥३८॥

अनुवाद— अज्ञानी पुरुष को मिथ्या विश्वास दिलाकर सौहार्द से रहित स्त्रियाँ नवीन-नवीन पुरुष को प्राप्त करना चाहकर वे कुलटा और स्वच्छन्दाचरण करने वाली होती हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३८॥

संवत्सरान्ते हि भवानेकरात्रं मयेश्वर । वत्स्यत्यपत्यानि च ते भविष्यन्त्यपराणि भोः ॥३९॥

अन्वयः— भो ईश्वर सवत्सरान्ते भवान् एकरात्रं मया सहवत्स्यति, ते अपराणि अपत्यानि भविष्यति ॥३९॥

अनुवाद— हे महाराज प्रत्येक वर्ष के अन्त में आप एक रात मेरे साथ निवास करेंगे आपके दूसरे भी सन्तान होंगे ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

तं सान्त्वयति-संवत्सरान्त इति ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

राजा पुरुरवा को सान्त्वना प्रदान संवत्सरान्ते० इत्यादि श्लोक से करती हैं ॥३९॥

अन्तर्वत्नीमुपालक्ष्य देवीं स प्रययौ पुरम्। पुनस्तत्र गतोऽब्दान्त उर्वशीं वीरमातरम्॥४०॥
उपलभ्य मुदा युक्तः समुवास तया निशाम्। अथैनमुर्वशी प्राह कृपणं विरहातुरम्॥४१॥

अन्वयः— देवीम् अन्तर्वत्नीम् उपालक्ष्य स पुरम् ययौ पुनस्तत्र गतोब्दान्ते वीरमातरम् उर्वशीं उपालभ्य मुदायुक्तः तया सह निशां समुवास अथ कृपणं विरहातुरम् एवम् उर्वशी प्राह ॥४०-४१॥

अनुवाद— राजा ने देखा कि उर्वशी गर्भवती है, अतएव वे अपने नगर में चले गये एक वर्ष के बाद फिर वहाँ गये तब तक उर्वशी वीर पुरुष की माता हो चुकी थी । उर्वशी को वे प्रसन्नता पूर्वक प्राप्त करके उस रात्रि को वे उसी के साथ रहे । अलग होते समय विरह के कारण दुःखी राजा से उर्वशी ने कहा ॥४०-४१॥

भावार्थ दीपिका

अपराणीति वचनादन्तर्वत्नीमुपालक्ष्य ज्ञात्वा ॥४०-४१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे भी सन्तान होंगे, इस बात को सुनकर उसे गर्भवती जानकर ॥४०-४१॥

गन्धर्वानुपधावेमांस्तुभ्यं दास्यन्ति मामिति । तस्य संस्तुवतस्तुष्टा अग्निस्थालीं ददुर्नृप ॥
उर्वशीं मन्यमानस्तां सोऽबुध्यत चरन्वने ॥४२॥

अन्वयः— हे नृप ! गन्धर्वानुपधावेमां तुभ्यंमादास्यन्ति इति संस्तुवतः तस्य तुष्टाः अग्निस्थाली ददुः, तां उर्वशीं मन्यमानः वनेचरन् तांस अबुध्यत ॥४२॥

अनुवाद— राजन् ! तुम गन्धर्वों की स्तुति करो गन्धर्व मुझको तुम्हें दे सकते है । राजा की स्तुति से प्रसन्न गन्धर्वों ने राजा को अग्निस्थाली प्रदान की उसे ही उर्वशी मानकर वन में विचरण करते हुए जान पाये कि यह तो उर्वशी नहीं अग्नि स्थाली है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

अनेनाग्निना कर्म कृत्वा तद्वशादुर्वशीं प्राप्स्यतीत्यभिप्रायेणाग्निस्थालीं ददुः । स तु तां स्थालीमेवोर्वशीं मन्यमानस्तया सहितो वने विचरन्नेयमुर्वशी किंत्वग्निस्यात्यबुध्यत ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

इससे कर्म करके उसी के द्वारा उर्वशी को प्राप्त कर लोगी इसी अभिप्राय से गन्धर्वों ने पुरुरवा को अग्नि स्थाली दिया । राजा उस अग्नि स्थली को ही उर्वशी जानकर उसी के साथ वन में विचरण करते हुए यह जान गये कि यह तो अग्नि स्थली है, उर्वशी नहीं है ॥४२॥

स्थालीं न्यस्य वने गत्वा गृहानाध्यायतो निशि । त्रेतायां संप्रवृत्तायां मनसि त्रय्यवर्तत ॥४३॥

अन्वयः— स्थालीं वने न्यस्य गृहान् गत्वानिशि आध्यायतः त्रेतायां संप्रवृत्तायां मनसि त्रय्यीं अवर्तते ॥४३॥

अनुवाद— राजा उस स्थाली को वन में छोड़कर अपने घर चले गये रात्रि में उर्वशी का ध्यान करते थे। त्रेतायुग के प्रारम्भ में उनके हृदय में तीन वेद प्रकट हो गये ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च तां स्थालीं बने स्थापयित्वा गृहान्गत्वा निशि नित्यं तामेवाध्यायतस्तस्य मनसि त्रेतायां त्रयी अवर्तत कर्मबोधकं वेदत्रयं प्रादुरभूत् ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् स्थाली को वे वन में ही छोड़कर अपने महल में चले गये । रात्रि में जब वे उर्वशी का ध्यान करते थे तो त्रेता युग के प्रारम्भ में कर्मों के प्रबोधक वेदत्रय का प्राकट्य हुआ ॥४३॥

स्थालीस्थानं गतोऽश्वत्थं शमीगर्भं विलक्ष्य सः। तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशीलोककाम्यया ॥४४॥
उर्वशीं मन्त्रतो ध्यायन्नधरारणिमुत्तराम् । आत्मानमुभयोर्मध्ये यत्तत्प्रजननं प्रभुः ॥४५॥

अन्वयः— स्थाली स्थानं गतः सः प्रभुः शमीगर्भम् अश्वत्थं विलक्ष्य तेन उर्वशीलोककाम्यया द्वे अरणी कृत्वा अधरारणिं उर्वशीम् उत्तराम् आत्मानम् उभयोर्मध्ये यत् प्रजननं मन्त्रतः ध्यायन् ॥४४-४५॥

अनुवाद— राजा जहाँ पर अग्नि स्थाली को छोड़े थे वहाँ गये और देखे कि शमी के गर्भ में एक पिप्पल का वृक्ष जम गया है । उससे उन्होंने दो अरणियाँ बनायी अधरारणि और उत्तराणि । उर्वशी के लोक की प्राप्ति की कामना से उन्होंने अधराराणि में उर्वशी का, उत्तरारणि में अपना (पुरूरवा) का ध्यान करते हुए बीच काष्ठ में पुत्र का ध्यान करते हुए अग्नि उत्पादक मात्र से अरणि मन्थन किए ॥४४-४५॥

भावार्थ दीपिका

ततः स्थालीस्थानं गतः सन् शम्या गर्भे जातमश्वत्थं विलक्ष्य अस्मिन्नसावग्निरस्तीति विशेषेण लक्षयित्वा तेनाश्वत्थेन द्वे अरणी कृत्वाऽग्निं ममन्थेति शेषः । 'शमीगर्भादग्निं ममन्थ' इति श्रुतिः । मथनप्रकारमाह-अधरारणिमुर्वशीं ध्यायन्नुत्तरारणिं आत्मानं ध्यायन्नुभयोर्मध्ये यत्काष्ठं तत्प्रजननं पुत्रं ध्यायन् । तथा च मन्त्रः- 'उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवाः' इति ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् जहाँ पर स्थाली रखे थे वहाँ पर जाकर उन्होंने देखा कि शमी के गर्भ में पिप्पल का वृक्ष जम गया है, उसके पश्चात् इसी में वह अग्नि हैं इस तरह से विशेष रूप से लक्षित करके उस पिप्पल से दो अरणियों का निर्माण करके उन्होंने अगिन का मन्थन किया। श्रुति भी कहती है शमी गर्भ से अग्नि का मन्थन किया। उस अग्नि मन्थन के प्रकार को बतलाते हैं, अधरारणि (नीचे की अरणि) में उर्वशी का तथा उत्तरारणि (ऊपर की अरणि) में अपना (पुरूरवा का) तथा उन दोनों के बीच में विद्यमान काष्ठ में पुत्र का ध्यान करते हुए अग्नि उत्पादक मन्त्र से अग्नि मन्थन किया। श्रुति कहती है **'उर्वश्यायुरसि पुरूरवाः'** अर्थात् तुम उर्वशी आयु और पुरुरवा हो ॥४४-४५॥

तस्य निर्मन्थनाज्ञातो जातवेदा विभावसुः । त्र्यया स विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितस्त्रिवृत ॥४६॥

अन्वयः— तस्य निर्मर्थनात् जातः जातवेदाः विभावसुः स राज्ञा त्र्य्या विद्यया त्रिवृत् पुत्रत्वेकल्पितः ॥४६॥

अनुवाद— राजा के द्वारा किए गये मन्थन से जातवेदाः नामक अग्नि की उत्पत्ति हुई। उस अग्नि को राजा ने त्रयी विद्या से आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि इन तीन भागों में विभक्त करके पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

तस्य तेन कृतान्निर्मन्थनाद्विभावसुरग्निर्जातः । कथंभूतः । जातं वेदो धनं भोग्यं यस्मात् । स च त्रय्या विद्यया विहितेनाधानसंस्कारेण त्रिवृदाहवनीयादिरूपः, सन् राज्ञा पुरूरवसा पुत्रत्वे कल्पितः । पुण्यलोकप्रापकत्वात् ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

उस राजा के द्वारा किए गये मंथन से अग्नि की उत्पत्ति हुए। कैसी अग्नि ? इस पर कहते हैं जिस से भोग्य पदार्थ की प्राप्ति है। त्रयी विद्या के द्वारा आधान संस्कार से आहवनीय आदि तीन रूप वाले उस अग्नि को राजा ने पुत्र रूप से स्वीकार कर लिया। क्योंकि पुत्र के द्वारा पुण्य लोकों की प्राप्ति होती है ॥४६॥

तेनाऽयजत यज्ञेशं भगवन्तमधोक्षजम् । उर्वशीलोकमन्विच्छन्सर्वदेवमयं हरिम् ॥४७॥

अन्वयः— तेन यज्ञेशं भगवन्तमधोक्षजम् सवदेवमयं हरिम् उर्वशीलोकम् अन्विच्छन् अयजत ॥४७॥

अनुवाद— उस त्रिवृत अग्नि के द्वारा राजा ने यज्ञों के स्वामी इन्द्रियातीत सर्वदेवमय श्रीहरि का यजन, उर्वशी के लोक की प्राप्ति की इच्छा से किया ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

तदाह-तेनेति ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

तेन इत्यादि श्लोक के द्वारा पुण्य लोक की प्राप्ति की बात कही गयी है ॥४७॥

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः । देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥४८॥

अन्वयः— पुरा एक एव सर्ववाङ्मयः प्रणवः वेदः देवो नारायणः अन्यः न, एकः अग्निः वर्णः एक एव ॥४८॥

अनुवाद— सत्ययुग में सभी बाणियों के बीज भूत एक ही प्रणव वेद था, एक ही देवता भगवान् नारायण थे, एक ही अग्नि थी, और एक ही हंस नामक वर्ण था ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

नन्वनादिर्वेदत्रयबोधितो ब्राह्मणादीनामिन्द्राद्यनेकदेवयजनने स्वर्गप्राप्तिहेतुः कर्ममार्गः कथं सादिरिव वर्ण्यत तत्राह-

एक एवेति द्वाभ्याम् । पुरा कृतयुगे सर्ववाङ्मयः सर्वासां वाचां बीजभूतः प्रणव एक एव वेदः । देवश्च नारायण एक एव। अग्निश्चैक एव लौकिकः । वर्णश्चैक एव हंसो नाम ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि तीन वेद अनादि रूप से बतलाये गये हैं ब्राह्मण आदि इन्द्र आदि अनेक देवताओं की आराधना करने से स्वर्ग प्राप्ति के हेतु कर्म मार्ग है । यह कहा गया है । उसको सादि कैसे कहा जा सकता है । इसके उत्तर में **एक स्व० इत्यादि** दो श्लोकों से कहते हैं-सत्ययुग में सभी वाणियों के सारभूत एक ही प्रणववेद था। देवता भी एक ही थे भगवान् नारायण अग्नि भी एक ही थी लौकिकाग्नि और वर्ण भी हंस नामक एक ही था।।४८।।

पुरूरवस एवासीत्त्रयी त्रेतामुखे नृप । अग्निना प्रजया राजा लोकं गान्धर्वमेयिवान् ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे ऐलोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

अन्वयः— हे नृप पुरव एव त्रेतामुखे त्रयी आसीत् अग्निनाप्रजया राजा गन्धर्व लोकम् एयिवान् ।।१४।।

अनुवाद— हे राजन् ! पुरूरवा के समय से ही वेदत्रयी और अग्नित्रयी का आविर्भाव त्रेतायुग के प्रारम्भ में हुआ । राजा पुरूरवा ने अग्नि के पुत्ररूप से स्वीकार करके गन्धर्व लोक की प्राप्ति की ।।४९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के ऐलोपाख्यान के अन्तर्गत चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

वेदत्रयी तु पुरूरवसः सकाशादासीत् । एयिवान् प्राप । अयं भावः-कृतयुगे सत्त्वप्रधानाः प्रायशः सर्वेऽपि ध्याननिष्ठाः। रजःप्रधाने तु त्रेतायुगे वेदादिविभागेन कर्ममार्गः प्रकटो बभूवेति ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भावार्थदीपियां टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

वेदत्रयी तो पुरूरवा के ही समय से आविर्भूत हुआ । एयिवान् अर्थात् प्राप्त किया । कहने का अभिप्राय है कि सत्ययुग में प्रायः सभी लोग सत्त्वप्रधान होने के कारण ध्याननिष्ठ होते थे । त्रेतायुग के रजोगुण प्रधान होने के कारण वेद आदि का विभाग होने से कर्ममार्ग प्रकट हुआ ।।४८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के चौदहवे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१४।।

पन्द्रहवाँ अध्याय

ऋचीक जमदग्नि और परशुराम जी का चरित्र

श्रीशुक उवाच

ऐलस्य चोर्वशीगर्भात्षडासन्नात्मजा नृप । आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः ॥१॥

अन्वयः— हे नृप ऐलस्य च उर्वशी गर्भात् षट् आत्मजा आसन् । आयुः, श्रुतायुः सत्यायुः रयः अथ विजयः जयः।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे परीक्षित् पुरूरवा के उर्वशी के गर्भ से छह पुत्र हुए, आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय ।।१।।

भावार्थ दीपिका

ततः पञ्चदशे गाधिरैलपुत्रान्वयेऽजनि । गाधिदौहित्रसुतो रामः कार्तवीर्यमहन् रुषा ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् पन्द्रहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि पुरूरवा के वंश में गाधि का जन्म हुआ । उनकी पुत्री के पुत्र श्रीपरशुरामजी हुए जिन्होंने कार्तवीर्य सहस्रार्जुन का वध किया ॥१॥

श्रुतायोर्वसुमान्पुत्रः सत्यायोश्च श्रुतंजयः । रयस्य सुत एकश्च जयस्य तनयोऽमितः ॥२॥
भीमस्तु विजयस्याथ काञ्चनोहोत्रकस्ततः । तस्य जह्नुः सुतो गङ्गां गण्डूषी कृत्ययोऽपिबत्॥
जह्नोस्तुपूरूस्तत्पुत्रो बलाकश्चात्मजोऽजकः ॥३॥

अन्वयः— श्रुतायोः पुत्रः वसुमान् सत्यायोः श्रुतंजयः, रयस्य सुतः एक, जयस्य तनयः अमितः, अथ विजयस्य भीमः अथ काञ्चनः ततः होत्रकः तस्य सुतः जह्नुः यः गङ्गां गण्डूषीकृत्य अपिबत् । जह्नोःतु पुरुः, तत्पुत्रः बलाकः आत्मजः अजकः ॥२-३॥

अनुवाद— श्रुतायु के पुत्र वसुमान हुए, सत्यायु के पुत्र श्रुतंजय, रय के पुत्र एक, जय के पुत्र अमित हुए, और विजय के पुत्र भीम हुए । भीम के पुत्र काञ्चन हुए और काञ्चन के पुत्र होत्रक हुए । होत्रक के पुत्र जह्नु हुए। वे गङ्गाजी को अपनी अंजलि में भरकर पी गये । जह्नु के पुत्र पुरु हुए, पुरु के पुत्र बलक हुए और बलाक के पुत्र अजक हुए ॥२-३॥

भावार्थ दीपिका

सुग्रहत्वायाल्पादिक्रमेण श्रुतायुप्रभृतिषण्णां वंशानाह-श्रुतायोरित्यादिना । एक एकसंज्ञः अमितस्तत्संज्ञः । जह्नोः पूरुस्तस्य बलाकस्तस्याजकः ॥२-३॥

भाव प्रकाशिका

आसनी से समझ में आने के लिए कम-से-कम क्रमशः श्रुतायु आदि छहों के वंशों का वर्णन **श्रृतायोः इत्यादि** श्लोक से करते हैं । एकः एक नाम, अमितः अर्थात् अमित संज्ञक । जह्नु के पुत्र पुरु हुए ओर पुरु के पुत्र बलाक हुए और बलाक के पुत्र अजक हुए ॥२-३॥

ततः कुशः कुशस्यापि कुशाम्बुतनयो वसुः । कुशनाभश्च चत्वारो गाधिरासीत्कुशाम्बुजः ॥४॥

अन्वयः— ततः कुशः कुशस्य अपि कुशाम्बु, तनय, वसु, कुशनाभश्च चत्वारः कुशाम्बुजः गाधिः आसीत् ॥४॥

अनुवाद— अजक के पुत्र कुश हुए, कुश के कुशाम्बु, तनय, वसु और कुशनाभ ये चार पुत्र थे । कुशाम्बुज के पुत्र गाधि थे ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचत द्विजः । वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत् ॥५॥

अन्वयः— द्विजः ऋचीकः तस्य सत्यवतां कन्याम् अपापत । विसदृशं वरं मत्वा गाधिः भार्गवम् अब्रवीत् ॥५॥

अनुवाद— ऋचीक ऋषि ने गाधि की पुत्री सत्यवती को माँगा, इस पर विसदृश बर को मानकर गाधि ने ऋचिक ऋषि से कहा ॥५॥

भावार्थ दीपिका

गाधेः पुत्रो विश्वामित्रो ब्रह्मर्षिरभूदित्युत्तराध्यायान्ते वक्ष्यति-'गाधेरभून्महातेजाः' इत्यादिना, तत्र तावत्तदुपोद्धातत्वेन

भृगुवंशसंभवस्य ऋचीकस्य चरित्रं प्रसक्तानुप्रसक्तेन च परशुरामावतारचरितमाह-तस्य सत्यवतीमित्यादिना । विसदृशमननुरूपम्। भार्गवमृचीकम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

गाधि के पुत्र विश्वामित्र ब्रह्मर्षि इस बात को अगले अध्याय के अन्त में **गाधेरभून्महातेजा० इत्यादि** श्लोकों के द्वारा कहेंगे । उपोद्घात रूप से भृगुवंश में उत्पन्न ऋचीक का चरित्र इसी क्रम में परशुरामावतार का चरित्र भी **तस्य सत्यवतीम् इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । विसदृश अर्थात् कन्या के योग्य नहीं । भार्गवम् अर्थात् ऋचीक ऋषि को ।।५।।

एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् । सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम् ।।६।।

अन्वयः— वयम कुशिकाः एकतः श्यामकर्णानां चन्द्रवर्चसाम् हयानां कन्ययाः शुल्कम् दीयताम् ।।६।।

अनुवाद— हमलोग कुशिक वंश के हैं ऐसी कन्या का मिलना असंभव है अतएव जिनका एक कान श्याम वर्ण का और सम्पूर्ण शरीर श्वेत वर्ण का हो ऐसे एक हजार अश्वों के इसके शुल्क रूप में प्रदान करें ।।६।।

भावार्थ दीपिका

दक्षिणवामयोरेकतः श्यामः कर्णो येषाम् । सर्वस्मिन्नङ्गे चन्द्रस्येव वर्चो येषाम् । न चेदमपि पर्याप्तमस्मत्कनयायाः। यतः कुशिकाः कौशिका वयम् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

दक्षिणा में एक हजार ऐसे अश्वों को आप प्रदान करें जिनका वायें और दायें कानों में से एक कान श्याम वर्ण का हो और उन अश्वों का सारा शरीर चन्द्रमा के समान श्वेत वर्ण का हो । इतना ही नहीं इससे अधिक भी हमलोगों की कन्या का शुल्क हो सकता है क्योंकि हमलोग कौशिक वंश के हैं ।।६।।

इत्युक्तस्तनमतं ज्ञात्वा गतः स वरुणान्तिकम् । आनीय दत्त्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम् ।।७।।

अन्वयः— इत्युक्तः तन्मतं ज्ञात्वा सः वरुणान्तिकम् गतः तान् अश्वान् आनीयदत्त्वा वराननाम् उपयेमे ।।७।।

अनुवाद— इस तरह से कहे जाने पर ऋषि ऋचीक उनके अभिप्राय को समझ गये और वरुण के पास जाकर वैसे ही अश्वों को लाकर दे दिए और सुन्दरी सत्यवती से विवाह किए ।।७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७।।

स ऋषिः प्रार्थितः पत्न्या श्वश्र्वा चापत्यकाम्यया । श्रपयित्वोभयैर्मन्त्रैश्चरुं स्नातुं गतो मुनिः ।।८।।

अन्वयः— सः ऋषिः पत्न्या श्वश्र्वा च अपत्यकाम्यया प्रार्थितः उभयैः मन्त्रै चरुं श्रपयित्वा मुनिः स्नातुं गतः ।।८।।

अनुवाद— ऋचीक ऋषि की पत्नी और सासु ने उनसे पुत्र प्राप्ति की कामना से प्रार्थना किया तो ऋषि दोनों के मन्त्रों से चरुश्रपण करके स्नान करके के लिए गये ।।८।।

भावार्थ दीपिका

उभयैर्मन्त्रै, पत्न्यै ब्राह्मैर्मन्त्रैः श्वश्र्वे तु क्षात्रैरित्यर्थः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

उभयैः मन्त्रो से अर्थात् पत्नी के लिए ब्राह्म मन्त्रों से तथा सासु के लिए क्षत्रिय मन्त्रों से चरु का श्रपण करके स्नान करने के लिए चले गये ।।८।।

तावत्सत्यवती मात्रा स्वचरुं याचिता सती । श्रेष्ठं मत्वा तयाऽयच्छन्मात्रे मातुरदत्स्वयम् ॥९॥

अन्वयः— तावत् मात्रा याचिता सती सत्यवती स्वचरुं श्रेष्ठं मत्त्वा तया मात्रे अयच्छत मातुः स्वयम् अदत् ॥९॥

अनुवाद— सत्यवती की माँ नें यह समझकर कि ऋषि अपनी पत्नी के लिए श्रेष्ठ पकाये होंगे अतएव उससे वह चरु माँग लिया । अतएव सत्यवती ने अपना चरु अपनी माँ को दे दिया और माँ का चरु स्वयम् अपने खा लिया ॥९॥

भावार्थ दीपिका

यावत्स्नात्वा मुनिर्नागतस्तावद्भार्यायां भर्तृस्नेहाधिक्यात्पुत्र्याः सत्यवत्याश्चरुं श्रेष्ठं मत्त्वा तया मात्रा सत्यवती याचिता सती ब्राह्ममन्त्राभिमन्त्रितं स्वचरुं मात्रे अयच्छत्प्रादात् । मातुश्चरुं क्षात्रमन्त्राभिमन्त्रितं स्वयमददादत् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

मुनि ने स्नान करके आने से पहले ही अपनी पत्नी के प्रति स्नेहाधिक्य के कारण सत्यवती के चरु को श्रेष्ठ मान कर सत्यवती की माँ ने उसकी चरु को माँग लिया तो सत्यवती ने ब्राह्ममन्त्र से अभिमन्त्रित चरु को अपनी माँ को दे दिया और माँ के क्षत्रिय मन्त्रों से इति अभिमन्त्रित चरु को स्वयं खा लिया ॥९॥

तद्विज्ञाय मुनिः प्राह पत्नीं कष्टमकारषीः । घोरो दण्डधरः पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः ॥१०॥

अन्वयः— तद्विज्ञाय मुनिः पत्नीं प्राह कष्टमकारषीः घोरो दण्डधरः पुत्रः तेभ्राता ब्रह्मवित्तमः ॥१०॥

अनुवाद— उसे जानकर ऋचीक महर्षि ने अपनी पत्नी से कहा कि तुम्हारा पुत्र लोगों को दण्ड देने वाला भयङ्कर होगा और तुम्हारा भाई ब्रह्म ज्ञानियों में श्रेष्ठ होगा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

कष्टं जुगुप्सितम् । तदेवाह-ते पुत्रो घोरो भविष्यति । भ्राता तु ब्रह्मवित्तमो भविष्यतीति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

कष्टम् अर्थात् निन्दित कर्म । उसी को ऋषि ने कहा तुम्हारा पुत्र लोगों को दण्ड देने वाला भयङ्कर होगा और तुम्हारा भाई श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी होगा ॥१०॥

प्रसादितः सत्यवत्या मैवं भूदिति भार्गवः । अथ तर्हि भवेत्पौत्रौ जमदग्निस्ततोऽभवत् ॥११॥

अन्वयः— एवं माभूत इति सत्यवत्या प्रसादितः भार्गवः अत तर्हि भवेत् पौत्रः जमदग्निः ततः अभवत् ॥११॥

अनुवाद— सत्यवती ने ऐसा न हो कहकर मुनि का प्रसन्न किया तो मुनि ने कहा यदि पुत्र नहीं होगा तो तुम्हारा पौत्र अवश्य होगा । समयानुसार जमदग्नि हुए ॥११॥

भावार्थ दीपिका

एवं मा भूदिति प्रसादितो भार्गव आह-अथ तर्हि पौत्रो घोरो भविष्यति । जमदग्निः पुत्रोऽभवदित्यर्थः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

सत्यवती के द्वारा ऐसा नही होना चाहिए यह कहकर प्रसन्न किए जाने पर मुनि ने कहा तो फिर तुम्हारा पौत्र वैसा होगा । इसके पश्चात् सत्यवती के पुत्र जमदग्नि हुए ॥११॥

सा चाभूत्सुमहापुण्या कौशिकी लोकपावनी । रेणोः सुतां रेणुकां वै जमदग्निरुवाह याम् ॥१२॥

अन्वयः— सा च सुमहा पुण्या लोकपावनी कोशिकी नदी अभूत्, रेंणे सुतां रेणुकां याम् वै जमदग्निः उवाह॥१२॥

अनुवाद— वह सत्यवती अत्यन्तपुण्यमयी लोक को पवित्र बनाने वाली कौशिकी नदी हो गयी । महर्षि जमदग्नि ने रेणु की पुत्री रेणुका से विवाह किया ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

सा च सत्यवती कौशिकी नद्यभूत् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

सत्यवती कौशिकी नाम की नदी हो गयी ।।१२।।

तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमदादयः । यवीयाञ्जज्ञ एतेषां राम इत्यभिविश्रुतः ।।१३।।

अन्वयः— तस्यां वै भार्गव ऋषेः वसुमदादयः सुताः अभूवनितिशेषः। एतेषां यवीयान् राम इत्यभिविश्रुतः जज्ञे ।।१३।।

अनुवाद— रेणुका के गर्भ से महर्षि जमदग्नि के वसुमान आदि पुत्र हुए और उन सबों से छोटे परशुरामजी उत्पन्न हुए ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

भार्गवऋषेर्जमदग्नेः सुताः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

भार्गव ऋषेः अर्थात् जमदग्नि के पुत्र ।।१३।।

यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलान्तकम् । त्रिःसप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम् ।।१४।।

अन्वयः— यम् वासुदेवांशं हैहयानां कुलान्तकम् आहुः यः इमां महीम् त्रिःसप्त कृत्वा निःक्षत्रियां चक्रे ।।१४।।

अनुवाद— उनको महर्षियों ने भगवान् वासुदेव का अंशावतार तथा हैहय वंशीय क्षत्रियों को नष्ट करने वाला कहा है । उन्होंने इस पृथिवी को इक्कीस बार क्षत्रियों से रहित बना दिया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४।।

दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत् । रजस्तमोवृतमहन्फल्गुन्यपि कृतेऽहसि ।।१५।।

अन्वयः— फल्गुनि अपि अंहसि कृते अब्रह्मण्यम् दुष्टं क्षत्रं भुवोभारम् रजस्तमोवृतम् अहन् ।।१५।।

अनुवाद— यद्यपि क्षत्रियों ने उनका बहुत कम अपराध किया फिर भी वे ब्राह्मणों के अभक्त हो गये थे तथा रजोगुणी तथा तमोगुणी होने के कारण दुष्ट प्रकृति के होने से पृथिवी के भार हो गये थे परशुरामजी ने उन सबों को मार कर पृथिवी का भार उतार दिया ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अनीनशन्नाशयामास तदेवाह-रजस्तमोवृतमिति । पाठान्तरे सुगमम् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अनीनशत् अर्थात् नाश कर दिये । इसी बात को कहा गया है कि वे क्षत्रिय रजोगुणी और तमोगुणी हो गये थे । **अब्रह्मण्यमधार्मिकम्** इस पाठ होने पर अर्थ और सुगम हो जायेगा ।।१५।।

राजोवाच

किं तदंहो भगवतो राजन्यैरजितात्मभिः । कृतं येन कुलं नष्टं क्षत्रियाणामभीक्ष्णशः ।।१६।।

अन्वयः— अजितात्मभिः क्षत्रियैः तत् किम् अहं कृतम् येन क्षत्रियाणाम् अभीक्ष्णशः कुलं नष्टम् ।।१६।।

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— अजितेन्द्रिय क्षत्रियों ने भगवान् परशुरामजी का कौन सा अपराध किया था जिसके कारण उन्होंने बार-बार क्षत्रियों के वंश का विनाश किया ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

श्रीशुक उवाच

हैहयानामधिपतिरर्जुनः क्षत्रियर्षभः । दत्तं नारायणस्यांशमाराध्य परिकर्मभिः ॥१७॥
बाहून्दशशतं लेभे दुर्धर्षत्वमरातिषु । अव्याहतेन्द्रियौजः श्रीतेजोवीर्ययशोबलम् ॥१८॥

अन्वयः— हैहयानामधिपतिः अर्जुनः क्षत्रियर्षभः परिकर्मभिः नारायणस्यांशं दत्तं परिकर्मभिः आराध्य दशशतं बाहून लेभे अरातिषुदुर्धर्षत्वम् अव्याहतेन्द्रियौजः श्रीतेजोवीर्ययशोबलम् ॥१७-१८॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— उस समय हैहयवंशीय क्षत्रियों के स्वामी सहस्रार्जन थे, उन्होंने अनेक प्रकार की सेवाओं के द्वारा भगवान् नारायण के अंशावतार भगवान् दत्तात्रेय की आराधना करके एक हजार भुजाओं को प्राप्त किया, साथ ही शत्रुओं के बीच में पराजित न होने का वरदान तथा इन्द्रियों का अबाधित बल, अतुल सम्पत्ति तेजस्विता, वीरता, कीर्ति तथा शरीरिक बल भी उनकी कृपा से प्राप्त कर लिया ॥१७-१८॥

भावार्थ दीपिका

कार्तवीर्यार्जुनेन कृतमपराधं वक्तुं तस्य दर्पहेतुमैश्वर्यादिकमाह-हैहयानामिति षड्भिः परिकर्मभिः परिचर्याभिर्दत्तं दत्तात्रेयमाराध्य । अव्याहतमिन्द्रियादिकं च लेभे ॥१७-१८॥

भाव प्रकाशिका

कृतवीर्य के पुत्र कार्तवीर्यर्जु के द्वारा किए गये अपराध को ही बतलाने के लिए उसके कारणभूत ऐश्वर्य आदि को **हैहयानाम्० इत्यादि** छह श्लोकों से कहते हैं । **परिकर्मभिः** अर्थात् सेवाओं के द्वारा दत्तात्रेय की आराधना करके अव्याहत इन्द्रियों के बल आदि को प्राप्त कर लिया ॥१७-१८॥

योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः । चचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा ॥१९॥

अन्वयः— योगेश्वरत्वम् यत्राणिमादयः गुणाः एतादृशम् ऐश्वर्यम् पवनो यथा अव्याहतगतिः लोकेषु चचार ॥१९॥

अनुवाद— वह योगेश्वर हो गया था तथा जिसमें अणिमा इत्यादि होते हैं ऐसे ऐश्वर्य से सम्पन्न वह सभी लोकों में निर्बाध गति से वायु के समान विचरण किया करता था ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

यत्र यस्मिन्नैश्वर्येऽणिमादयो गुणाः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

जिस ऐश्वर्य में अणिमा आदि गुण विद्यमान थे ॥१९॥

स्त्रीरत्नैरावृतः क्रीडन्रेवाम्भसि मदोत्कटः । वैजयन्तीं स्रजं बिभ्रद्रुरोध सरितं भुजैः ॥२०॥
विप्लावितं स्वशिबिरं प्रतिस्रोतः सरिज्जलैः । नामृष्यत्तस्य तद्वीर्यं वीरमानी दशाननः ॥२१॥

अन्वयः— रेवाम्भसि स्त्रीरत्नैः आवृतः मदोत्कटः क्रीडन् वैजयन्ती स्रजं विभ्रत् सरितं भुजैः रुरोध । प्रतिस्रोतः सरिज्जलैः विप्लावितं स्वशिविरम् वीरमानी दशाननः तस्यतद्वीर्यं न अमृष्यत् ॥२०-२१॥

अनुवाद— एक बार रेवानदी के जल में स्त्री रत्नों के साथ क्रीडा करते हुए तथा वैजयन्ती माला धारण किए हुए मदमत्त सहस्रार्जुन ने अपनी भुजाओं से रेवानदी के जल को रोक दिया, जिससे कि नदी का जल उलटा बहने लगा और इससे रावण का शिविर पानी से भर गया । अपने को वीर मानने वाला रावण सहस्रार्जुन के उस पराक्रम को नहीं सह सका ।।२१-२२।।

भावार्थ दीपिका

रेवाम्भसि नर्मदाजले । सरितं नर्मदाम् । रावणो दिग्विजये माहिष्मत्याः समीपे नर्मदायां देवपूजां कुर्वंस्तेन प्रवाहस्यावरोधात्प्रतिस्रोतसः सत्या स्तस्याः सरितो जलैर्विप्लावितं स्वशिबिरमालक्ष्य तस्य तद्वीर्यं न सेहे ।।२०-२१।।

भाव प्रकाशिका

रेवाम्भसि अर्थात् नर्मदा नदी के जल में । दिग्विजय करता हुआ रावण माहिष्मती नगरी के सन्निकट नर्मदा नदी में भगवान् शिव का पूजन कर रहा था । सहस्रार्जुन के द्वारा नदी के प्रवाह को रोक दिए जाने के कारण उलटी बहती हुई उस नदी के जल धारा से रावण का शिविर जलमग्न हो गया । जल से प्लावित अपने शिविर को देखकर रावण सहस्रार्जुन के पराक्रम को नहीं सह सका ।।२०-२१।।

गृहीतो लीलया स्त्रीणां समक्षं कृतकिल्बिषः । माहिष्मत्यां संनिरुद्धो मुक्तो येन कपिर्यथा ।।२२।।

अन्वयः— कृत किल्विषः स्त्रीणां समक्षं येन कपिर्यथा गृहीतः महिष्मत्यां संनिरुद्धः मुक्तः ।।२२।।

अनुवाद— जलक्रीडा में प्रवृत सहस्रार्जुन को अभिभूत करना चाहने वाले रावण को सहस्रार्जुन ने खेल-खेल में ही पकड़ लिया और अपनी नगरी महिष्मती पुरी में ले जाकर उसको बन्दर के समान कैदकर दिया बाद में पुलस्त्य ऋषि के कहने पर सहस्रार्जुन ने उसे मुक्त कर दिया ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

ततश्च कृतकिल्बिषः क्रीडन्तमभिभवितुं प्रवृत्तः सन्गृहीतो माहिष्मत्यां स्वपुर्यां कपिरिव संनिरुद्धश्च पुनश्चावज्ञया येन मुक्तः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

जल क्रीडा में प्रवृत्त सहस्रार्जुन को अभिभूत करने में प्रवृत्त रावण को सहस्रार्जुन ने उसी तरह से खेल-खेल में पकड़ लिया जिस तरह कोई बन्दर को पकड़ लेता है और अपने माहिष्मतीपुरी में ले जाकर कैद कर लिया । बाद में उसको सहस्रार्जुन ने अनादर पूर्वक छोड़ दिया ।।२२।।

स एकदा तु मृगयां विचरन्विपिने वने । यदृच्छयाश्रमपदं जमदग्नेरुपाविशत् ।।२३।।

अन्वयः— सः एकदा मृगयां विपिने वने विचरन् यदृच्छया जमदग्नेराश्रमपदं उपाविशत् ।।२३।।

अनुवाद— एक दिन आखेट के प्रसङ्ग में वह घोर वन में चला गया और दैववशात् महर्षि जमदग्नि के आश्रम में चला गया ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं तत्कृतमपराधं दर्शयन्नाह-स एकदेत्यादिना ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

अब इस **स एकदा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा सहस्रार्जुन द्वारा किए गये अपराध को बतलाते हैं ।।२३।।

तस्मै स नरदेवाय मुनिरर्हणमाहरत् । ससैन्यामात्यवाहाय हविष्मत्या तपोधनः ॥२४॥

अन्वयः— सः तपोधनः मुनिः स सैन्यामात्यवाहाय तस्मै नरदेवय हविष्मत्या अर्हणम् आहरत् ॥२४॥

अनुवाद— वे तपोधन मुनि ने सेना मन्त्रि, और वाहनों के साथ उस राजा की कामधेनु के प्रभाव से अतिथि सत्कार किया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अर्हणमातिथ्यादि । हविष्मत्या कामधेन्वा ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

अर्हणम् अर्थात् अतिथि सत्कार, हविष्मत्या अर्थात् कामधेनु के द्वारा ॥२४॥

स वीरस्तत्र तद्दृष्ट्वा आत्मैश्वर्यातिशायनम् । तन्नाद्रियताग्निहोत्र्यां साभिलाषः सहैहयः ॥२५॥

अन्वयः— स वीरः तत्र तत्र आत्मैश्वर्यातिशायनम् दृष्ट्वा अग्निहोत्र्यां सामिलाषः सहैहयः तत् न आद्रियत ॥२५॥

अनुवाद— हैहयाधिपित सहस्रार्जुन जमदग्नि मुनि के ऐश्वर्य को अपने ऐश्वर्य से भी अधिक देखकर महर्षि के द्वारा किए गये सत्कार का कोई भी महत्व नहीं दिया और वह उस कामधेनु को ही ले लेनाा चाहा ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तदर्हणं नाद्रियत तस्मिन्नातुष्यत् । यतोऽग्निहोत्र्यां होमधेनौ साभिलाषः । सहैहयो हैहयैः सह वर्तमानः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

उसने उस सत्कार का महत्व नहीं दिया क्योंकि वह कामधेनु को प्राप्त करना चाहता था । वह हैहयों के साथ विद्यमान था ॥२५॥

हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान्हर्तुमचोदयत् । ते च माहिष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रन्दतीं बलात् ॥२६॥

अन्वयः— दर्पात् ऋषेर्हविर्धानीम् हर्तुम् नरान् अचोदयत् ते च बलात् क्रन्दतीं सवत्सां माहिष्मतीं निन्युः ॥२६॥

अनुवाद— घमण्ड के कारण उसने ऋषि की कामधेनु को छिन लेने के लिए अपने अनुचरों को प्रेरित किया और वे सब बछड़े सहित डकारती हुई कामधेनु को बलपूर्वक माहिष्मती ले गये ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

दर्पाद्धेतोः ऋषेर्हविर्धानीमग्निहोत्रधेनुं हर्तुं नरानचोदयत्प्रेरितवान् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

गर्व के कारण उसने ऋषि की अग्निहोत्र धेनु का हरण करने के लिए अपने अनुचरों को आदेश दिया ॥२६॥

अथ राजनि निर्याते राम आश्रम आगतः । श्रुत्वा तत्तस्य दौरात्म्यं चुक्रोधाहिरिवाहतः ॥२७॥

अन्वयः— अथ राजनि निर्याते रामः आश्रमे आगतः तस्यतत् दौरात्म्यं श्रुत्वा आहतः अहिः इव चुक्रोध ॥२७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् राजा के चले जाने पर परशुरामजी अपने आश्रम में आये और राजा की उस दुष्टता को सुनकर चोट खाये हुए सर्प के समान तिलमिला उठे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

घोरमादाय परशुं सतूणं चर्म कार्मुकम् । अन्वधावत दुर्धर्षो मृगेन्द्र इव यूथपम् ॥२८॥

अन्वयः— घोरं परशुं सतूणं चर्म कार्मुकम् आदाय दुर्धर्षः मृगेन्द्रः यूथपम् यथा अन्वधावत ॥२८॥

अनुवाद— वे अपना भयङ्कर फरसा तरकस ढाल एवं धनुष लेकर राजा के पीछे उसी तरह वेग से दौड़े जैसे किसी से नहीं दबने वाला सिंह गजराज पर टूट पड़ता है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

सतूणं कार्मुकं चर्म चादाय ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

तरकस के साथ धनुष तथा ढाल लेकर ॥२८॥

तमापतन्तं भृगुवर्यमोजसा धनुर्धरं बाणपरश्वधायुधम् ।
ऐणेयचर्माम्बरमर्कधामभिर्युतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन् ॥२९॥

अन्वयः— पुरीं विशन् धनुर्धरम् बाणपरश्वधायुधम् ऐणेयचर्माम्बरमर्कधामभिः युतम् तम् भृगुवर्यमोजसा आपतन्तं जटाभिः ददृशे ॥२९॥

अनुवाद— नगर में प्रवेश करते समय राजा ने धनुष, बाण, फरसा, नामक आयुधों से युक्त कृष्णमृगचर्म तथा सूर्य के समान चमकती हुई जटाधारण किए हुए श्रीपरशुरामजी को वेग पूर्वक आते हुए देखा ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

ऐणेयं चर्म कृष्णाजिनमम्बरं यस्य ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

कृष्णमृगचर्म धारण किए हुए ॥२९॥

अचोदयद्धस्तिरथाश्वपत्तिभिर्गदासिबाणर्ष्टिशतघ्निशक्तिभिः ।
अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणास्ता राम एको भगवानसूदयत् ॥३०॥

अन्वयः— हस्तिरथाश्वपत्तिभिः गदासिबाणर्ष्टिशतघ्निशक्तिभिः सप्तदशातिभीषणाः अक्षौहिणीः अचोदयत् ता एकः भगवान् रामः असूदयत् ॥३०॥

अनुवाद— उनको देखकर राजा ने हाथी, घोड़े, रथ, अश्व पैदल सेना को जो गदा, खड्ग, बाण, ऋष्टि, शतघ्नी और शक्ति से लैश थी इस तरह की सत्रह अक्षौहिणी सेना को भेजा, उसको श्रीपरशुरामजी ने अकेले विनष्ट कर दिया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

यतो यतोऽसौ प्रहरत्परश्वधो मनोनिलौजाः परचक्रसूदनः ।
ततस्ततश्छिन्नभजोरुकन्धरा निपेतुरुर्व्यां हतसूतवाहनाः ॥३१॥

अन्वयः— मनोऽनिलौजाः परचक्रसूदनः असौ यतो यतः परश्वधः प्रहरत् ततः ततः छिन्नभुजोरुकन्धराः हतसूतवाहनाः उर्व्यां निपेतुः ॥३१॥

अनुवाद— मन और वायु के समान वेग वाले शत्रु सेना को विनष्ट करने वाले परशुरामजी जहाँ-जहाँ फरसे का प्रहार करते थे वहाँ-वहाँ वीरों के सारथि एवं वाहनों के साथ-साथ भुजा जंघे और गरदन कट कर पृथिवी पर गिर पड़ते थे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

प्रहरन्परश्वधो यस्य । मनश्चानिलश्च तयोरिवौजो वीर्यं यस्य । परेषां चक्रं सैन्यं सूदयतीति तथा । छिन्ना भुजा ऊरवः कन्धराश्च येषाम् । हताः सूता वाहनानि च येषां ते वीरा निपेतुः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

अपने फरसे का प्रहार करने वाले परशुरामजी का पराक्रम मन और वायु के समान था । वे शत्रु सेना के विनाश करने वाले थे, जिनकी भुजा, जंघा, गर्दन कट गये थे वे वीर पृथिवी पर गिर पड़ते थे ॥३१॥

दृष्ट्वा स्वसैन्यं रुधिरौघकर्दमे रणाजिरे रामकुठारसायकैः ।
विवृक्णचर्मध्वजचापविग्रहं निपातितं हैहय आपतद्रुषा ॥३२॥

अन्वयः— रामकुठारसायकैः रणाजिरे विवृक्णचर्मध्वजचापविग्रहं स्वसैन्यं रुधिरौघकर्दमे निपातितं दृष्ट्वा हैहयः रुषा आपतत् ॥३२॥

अनुवाद— श्रीपरशुरामजी के फरसा और बाणों के प्रहार से युद्धभूमि जिनके धनुष ध्वजाएँ और ढाल कटकर खून से लथपथ कीचड़ में गीली कर दी गयी थी इस तरह की अपनी सेना को देखकर हैहयाधिपति अर्जुन क्रोध करके युद्ध करने के लिए आ गये ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

विवृक्णाश्चर्मादयो यस्य ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

जिसकी ढाल इत्यादि कट गये थे ॥३२॥

अथार्जुनः पञ्चशतेषु बाहुभिर्धनुःषु बाणान्युगपत्स संदधे ।
रामाय रामोऽस्त्रभृतां समग्रणीस्तान्येकधन्वेषुभिराच्छिनत्समम् ॥३३॥

अन्वयः— अथ सः अर्जुन बाहुभिः पञ्चशतेषु धनुःषु बाणान् युगपत् रामाय संदधे अस्त्रभृतं समग्रणीरामः तानि एकधन्वेषुभिः समम् आच्छिनत् ॥३३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् सहस्रार्जुन ने अपने हाथों में पाँच सौ धनुषों पर बाण चढ़ाकर श्रीपरशुराजी पर एक ही समय में प्रहार किया किन्तु अस्त्रधारियों में अग्रगण्य श्रीपरशुरामजी ने अपने एक धनुष पर चढ़ाकर छोड़े गये बाणों से उन सभी बाणों को एक ही समय में काट दिए ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चशतेषु धनुःषु सोऽर्जुनो रामाय संदधे । एकमेव धनुर्यस्य सः । पाठान्तरे एक एव बन्धः संधानं येषां तैरिषुभिः। तानि धनूंषि समं सह तत्क्षणमेवाच्छिनत् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

अर्जुन ने पाँच सौ धनुषों पर परशुरामजी पर बाणों का संधान किया एक ही धनुष वाले परशुरामजी **एकबन्धेषुभिः** इस प्रकार पाठ भेद होने पर अर्थ होगा कि एक ही सन्धान वाले बाणों से उन सभी धनुषों को एक ही समय में काट दिए ॥३३॥

पुनः स्वहस्तैरचलान्मृधेऽङ्घ्रिपानुत्क्षिप्य वेगादभिधावतो युधि ।
भुजान्कुठारेण कठोरनेमिना चिच्छेद रामः प्रसभं त्वहेरिव ॥३४॥

अन्वयः— पुनः स्वहस्तैः मृधे अचलान् आङ्घ्रिपान् उत्क्षिप्य मृधे युधि वेगादभिधावतः भुजान् कठोरनेमिना कुठारेण रामः अहेरिव प्रसभं चिक्षेद ॥३४॥

अनुवाद— फिर सहस्रार्जुन समरांगण में अपने हाथों से पर्वतों को उखाड़कर युद्ध में सामने से दौड़कर आने वाले हैहयाधिपति के हाथों को अपने फरसे से साँप के फणों के समान काट दिए ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

मृधे साधनभूतानचलानङ्घ्रिपांश्चोत्क्षिप्याभिधावतस्तस्य भुजांश्चिच्छेद । अहेः फणा इवेत्यर्थः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

युद्ध के साधन भूत पर्वतों और वृक्षों को उखाड़कर सामने आते हुए हैहयाधिपति की भुजाओं को वेग पूर्वक काट डाले ।।३४।।

कृत्तबाहोः शिरस्तस्य गिरेः शृङ्गमिवाहरत् । हते पितरि तत्पुत्रा अयुतं दुद्रुवुर्भयात् ।।३५।।

अन्वयः— कृत्तबाहोः तस्य शिरः गिरेः शृङ्गमिव अहरत् । पितरिहते तत् अयुतं पुत्राः भयात् दुद्रुवुः ।।३५।।

अनुवाद— जिसकी भुजाएँ काट दी गयी थी उस अर्जुन के पर्वत के शिखर के समान शिर को परशुरामजी ने काट दिया । पिता के मर जाने पर उसके दस हजार पुत्र भयभीत होकर भाग गये ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा । समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत् ।।३६।।

अन्वयः— परवीरहा परिक्लिष्टां सवत्सां अग्निहोत्रीं समुपावर्त्य आश्रमं समुपेत्य पित्रे समर्पयत् ।।३६।।

अनुवाद— अपने शत्रुओं को मार देने वो परशुरामजी हैहयों द्वारा पीडित बछड़े से युक्त कामधेनु को लौटाकर अपने आश्रम में आकर उन्होंने पिता को समर्पित कर दिया ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

समर्पयत् समार्पयत् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

समर्पित कर दिए ।।३६।।

स्वकर्म तत्कृतं रामः पित्रे भ्रातृभ्य एव च । वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जमदग्निरभाषत ।।३७।।

अन्वयः— स्वकर्म तत्कृतं रामः पित्रे भातृभ्य एव च वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जदग्निरभाषत ।।३७।।

अनुवाद— अपने द्वारा किए गये उस कर्म को परशुरामजी ने अपने पिता और भाइयों को सुनाया । उसे सुनकर महर्षि जमदग्नि ने कहा ।।३७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३७।।

राम राम महाबाहो भवान्पापमकारषीत् । अवधीन्नरदेवं यत्सर्वदेवमयं वृथा ।।३८।।

अन्वयः— हे महाबाहो राम ! त्वम् पापमकारषीत् यत् सर्वदेवमयं नरदेवं वृथा अवधीत् ।।३८।।

अनुवाद— हाय ! हाय !! परशुराम तुमने पाप किया क्योंकि तुमने व्यर्थ ही राजा का वध कर दिया है।।३८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३८।।

वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतां गताः । यया लोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमगात्पदम् ।।३९।।

अन्वयः— तात वयं हि ब्राह्मणाः क्षमया अर्हणतां गताः यया हि लोकगुरुः देवः पारमेष्ठयं पदम् अगात् ।।३९।।

अनुवाद— वत्स ! हमलोग ब्राह्मण है, क्षमा करने के कारण ही हमलोग पूज्यत्व प्राप्त किए हैं । क्षमा के ही कारण लोकगुरु ब्रह्माजी पारमेष्ठी पद को पद को प्राप्त किए है ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

अर्हणतां पूज्यताम् ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

अर्हणताम् अर्थात् पूज्यत्व को ।।३९।।

क्षमया रोचते लक्ष्मीर्ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा । क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः ।।४०।।

अन्वयः— क्षमया ब्राह्मी लक्ष्मी सौरी प्रभा यथा रोचते क्षमिणां ईश्वरः हरि आशु तुष्यते ।।४०।।

अनुवाद— क्षमा के द्वारा ब्राह्मण का ब्रह्मवर्चस्व सूर्य की प्रभा के समान चमकता है । क्षमाशील पुरुषों पर भगवान् श्रीहरि शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

सौरी सूर्यस्य प्रभेव ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

सौरी अर्थात् सूर्य की प्रभा के समान ।।४०।।

राज्ञो मूर्धावसिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद्गुरुः । तीर्थसंसेवया चांहो जह्यङ्गाच्युतचेतनः ।।४१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवम स्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

अन्वयः— मूर्धावसिक्तस्य राज्ञोवधः ब्रह्मवधाद्गुरुः । अङ्ग अच्युतचेतनः तीर्थ संसेवया च अंहः जहि ।।४१।।

अनुवाद— सर्वभौम राजा का वध ब्राह्मण के बध से भी अधिक पापकारी है अतएव वत्स ! भगवान् अच्युत का स्मरण करते हुए तुम तीर्थयात्रा के द्वारा अपने पापों को धो लो ।।४१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

तीर्थसंसेवया । चकाराद्यमनियमैश्च । अच्युते चेतना चित्तं यस्य सः ।।४१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

तीर्थों के सेवन द्वारा चकार का अर्थ है कि यम तथा नियमों द्वारा भी श्रीभगवान् अच्युत का स्मरण करते हुए ।।४१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१५।।

सोलहवाँ अध्याय

श्रीपरशुरामजी द्वारा क्षत्रिय संहार और विश्वामित्रजी के वंश की कथा

श्रीशुक उवाच

पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनन्दन । संवत्सरं तीर्थयात्रां च रित्वाश्रममाव्रजत् ॥१॥

अन्वयः— हे कुरुनन्दन पित्रा उपाशिक्षितः रामः तथेति संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वा आश्रमम् आव्रजत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे परीक्षित् पिता के द्वारा शिक्षा प्राप्त करके श्रीपरशुरामजी **जो आज्ञा** कहकर स्वीकार किए और एकवर्ष तक तीर्थ यात्रा करके अपने आश्रम पर लौट आये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षोडशेऽथार्जुनसुतैर्जमदग्नौ हते मुहुः । रामात्क्षत्रवधः प्रोक्तो विश्वामित्रस्य चान्वयः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सोलहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि सहस्त्रार्जुन के पुत्रों द्वारा महर्षि जमदग्नि के मार दिए जाने पर परशुरामजी ने बार-बार क्षत्रियों का वध किया तथा महर्षि विश्वामित्र के भी वंश का वर्णन इस अध्याय में किया गया है ॥१॥

कदाचिद्रेणुका याता गङ्गायां पद्ममालिनम् । गन्धर्वराजं क्रीडन्तमप्सरोभिरपश्यत ॥२॥

अन्वयः— कदाचित् गङ्गायां याता रेणुका पद्ममालिनम अप्सरोभिः कीडन्तं गन्धर्वराजम् अपश्यत ॥२॥

अनुवाद— एक बार रेणुका गङ्गा नदी के तट पर गयी और वहाँ पर उन्होंने कमल की माला धारण करके अप्सराओं के साथ जलक्रीडा करते हुए गन्धर्व राज को देखा ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

विलोकयन्ती क्रीडन्तमुदकार्थं नदीं गता । होमवेलां न सस्मार किंचिच्चित्ररथस्पृहा ॥३॥

अन्वयः— उदकार्थं नदीं गता कीडन्तम् विलोकयन्ती किञ्चित् चित्ररथस्पृहा होमबेलां न सस्मार ॥३॥

अनुवाद— वे जल लाने के लिए नदी तट पर गयी थी क्रीडा करते हुए गन्धर्व राज के देखने में उनका मन कुछ चित्ररथ की आकृष्ट भी हो गया था । वे होम की बेला को भूल गयीं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

किंचिदीषच्चित्ररथे गन्धर्वराजे स्पृहा यस्याः सा । किंचिन्न सस्मारेति वा ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उनका कुछ मन चित्ररथ की ओर आकृष्ट भी हो गया था अथवा वे कुछ भी याद नहीं की । सबकुछ भूल गयीं॥३॥

कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशङ्किता । आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृताञ्जलिः ॥४॥

अन्वयः— तं कालात्ययं विलोक्य मुनेः शाप विशङ्किता आगत्य कलशं पुरोधाय कृताञ्जलिः तस्थौ ॥४॥

अनुवाद— होम की बेला के अतिक्रमण को देखकर महर्षि के शाप के भय से भयभीत वे कलश को महर्षि के आगे रखकर हाथ जोड़कर खड़ी हो गयीं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

कलशं पुरोधायाग्रे निधाय ।।४।।

भाव प्रकाशिका

कलश को महर्षि के समक्ष रखकर ।।४।।

व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा पत्न्याः प्रकुपितोऽब्रवीत् । घ्नतैनां पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे ।।५।।

अन्वयः— पत्न्याः व्यभिचारं ज्ञात्वा मुनि प्रकुपितः सन् अब्रवीत् पुत्रकाः एनां पापाम्घ्नत इति उक्ताः ते न चकिरे।।५।।

अनुवाद— अपनी पत्नी के मानसिक व्यभिचार को जानकर क्रुद्ध होकर महर्षि जमदग्नि ने कहा पुत्रों तुमलोग इस पापिनी को मार दो किन्तु उन सबों ने उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया ।।५।।

भावार्थ दीपिका

व्यभिचारं मानसं ज्ञात्वा ।।५।।

भाव प्रकाशिका

मानसिक व्यभिचार को जानकर ।।५।।

रामः संचोदितः पित्रा भ्रातॄन्मात्रा सहावधीत् । प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक् समाधेस्तपसश्च सः ।।६।।

अन्वयः— पित्रा संचोदितः रामः मुनेः तपसः समाधेः च सम्यक् प्रभावज्ञः मात्रा सह भ्रातॄन् अवधीत् ।।६।।

अनुवाद— उसके पश्चात् पिता की आज्ञा से महर्षि की तपस्या और समाधि के प्रभाव को अच्छी तरह से जानने वाले परशुरामजी ने माता के साथ-साथ अपने भाइयो को भी मार दिया ।।६।।

भावार्थ दीपिका

आज्ञातिलङ्घिनां भ्रातॄणां मातुश्च वधे संचोदितः सन् । मुनेर्यः समाधिस्तपश्च तयोः प्रभावज्ञः । यदि न हन्यां तर्हि मामपि शप्तुं समर्थः, यदि तु हन्यां तर्हि मयि संतुष्टः संस्तानपि जीवयितुं समर्थ इति जानन्नित्यर्थः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

पिता की आज्ञा का पालन नहीं करने वाले भाइयों तथा माता को भी अपने पिता की आज्ञा से मार दिए। क्योंकि वे अपने पिता की तपस्या और समाधि के प्रभाव को अच्छी तरह से जानते थे । वे जानते थे कि यदि नहीं मारूँ तो मुझको शाप दे सकते हैं । यदि मैं मार देता हूँ तो मुझ पर प्रसन्न होकर वे सबों का जीवित कर देने में समर्थ हैं ।।६।।

वरेण छन्दयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः । वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं बधे ।।७।।

अन्वयः— प्रीतः सत्यवतीसुतः वरेण छन्दयामास रामोऽपि हतानां जीवितं वधे च अस्मृतिं वव्रे ।।७।।

अनुवाद— प्रसन्न होकर महर्षि जमदग्नि परशुरामजी से अपने मनोनुकूल वरदान माँगने के लिए कहा तो परशुरामजी ने कहा मेरी माता और सभी भाई जीवित हो जायँ और इन लोगों का याद भी नहीं रहे कि हमने उनको मारा है ।।७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७।।

उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवाञ्जसा । पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्वधम् ।।८।।

अन्वयः— ते निद्रापाये इव अञ्जसा कुशलिनः उत्तस्थुः पितुः तपोवीर्यं विद्वानरामः सुहृदवधम् चक्रे ।।८।।

अनुवाद— जैसे कोई निद्रा समाप्त हो जाने के बाद जग जाय उसी तरह वे सब सकुशल उठकर बैठ गये। श्रीपरशुरामजी अपने पिता की तपस्या के प्रभाव को जानते थे, इसीलिए उन्होंने अपने बान्धवों का वध किया था॥८॥

भावार्थ दीपिका

नन्वतिनिन्दितं तत्कथं कृतवांस्तत्राह-पितुर्विद्वानिति । पूर्वोक्त एवाभिप्रायः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि परशुरामजी ने अपने लोगों के वध रूपी कार्य कैसे किए ? इसके उत्तर में **पितुर्विद्वान इत्यादि** कहा गया है । इसका पूर्वोक्त ही अभिप्राय है ॥८॥

येऽर्जुनस्य सुता राजन्स्मरन्तः स्वपितुर्वधम् । रामवीर्यपराभूता लेभिरे शर्म न क्वचित् ॥९॥

अन्वयः— राजन् अर्जुनस्य ये सुताः रामवीर्यपराभूताः स्वपितुः वधम् स्मरन्तः क्वचित् शर्म न लेभिरे ॥९॥

अनुवाद— राजन् अर्जुन के जो पुत्र श्रीपरशुरामजी से पराजित होकर भाग गये थे उन्हें अपने पिता के वध का स्मरण होने के कारण कहीं भी शान्ति नहीं मिलती थी ॥९॥

भावार्थ दीपिका

सर्वक्षत्रियवधे कारणं वक्तुमाह-येऽर्जुनस्य सुता इत्यादिना ॥९॥

भाव प्रकाशिका

येऽर्जुस्य सुताः इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीपरशुरामजी द्वारा सभी क्षत्रियों के वध को किए जाने का कारण बतलाया गया है ॥९॥

एकदाश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते । वैरं सिसाधयिषवो लब्धच्छिद्रा उपागमन् ॥१०॥

अन्वयः— एकदा सभ्रातरिरामे आश्रमात् वनं गते वैरं सिसाधिषवः लब्धच्छिद्राः उपागमन् ॥१०॥

अनुवाद— एक दिन जब परशुरामजी अपने भाइयों के साथ वन में गये थे तो अवसर प्राप्त करके वे वैर साधने के लिए आश्रम में आ गये ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

दृष्ट्वाग्न्यगार आसीनमावेशितधियं मुनिम् । भगवत्युत्तमश्लोके जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः ॥११॥

अन्वयः— अग्न्यागारे आसीनम् उत्तमश्लोके भगवति आवेशितधियं मुनिम् दृष्ट्वाते पापनिश्चयाः जघ्नुः ॥११॥

अनुवाद— अपनी यज्ञशाला में बैठकर पवित्रकीर्ति श्रीभगवान् में अपनी बुद्धि को लगाये हुए महर्षि जमदग्नि को उन पापियों ने मार डाला ॥११॥

भावार्थ दीपिका

भगवत्यावेशिता धीर्येन तम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

जिन्होंने श्रीभगवान् में ही अपने मन को लगा दिया था ऐसे मुनि को ॥११॥

याच्यमानाः कृपणया राममात्रातिदारुणाः । प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युस्ते क्षत्रबन्धवः ॥१२॥

अन्वयः— कृपणया राममात्राते अतिदारुणाः क्षत्रबन्धवाः प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युः ॥१२॥

अनुवाद— परशुरामजी की माता रेणुका द्वारा अत्यन्त दीनता पूर्वक प्रार्थना किए जाने पर भी वे अत्यन्त क्रूर तथा नीच क्षत्रिय बल पूर्वक महर्षि जमदग्नि का शिर काटकर ले गये ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

रेणुका दुःखशोकार्ता निघ्नन्त्यात्मानमात्मना । राम रामेहि तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती ॥१३॥

अन्वयः— सती रेणुका दुःखशोकार्ता आत्मना आत्मानं निघ्नन्ति हे राम हे राम तात ए हि इति उच्चकैः विचुक्रोश॥१३॥

अनुवाद— सती रेणुका दुःख एवं शोक से व्याकुल बनी हुई अपने ही हाथों अपनी छाती पिटती हुई हे परशुराम ! हे राम ! वत्स आ जाओ इस तरह से जोर-जोर से चिल्ला रही थीं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

तदुपश्रुत्य दूरस्थो हा रामेत्यार्तवत्स्वनम् । त्वरयाश्रममासाद्य ददृशे पितरं हतम् ॥१४॥

अन्वयः— दूरस्थः हा राम इति तत् आर्तवत् स्वनम् उपश्रुत्य त्वरया आश्रमम् आसाद्य हतम् पितरं ददर्श ॥१४॥

अनुवाद— परशुरामजी बहुत दूर से '**हा राम**' यह माता का करुण क्रन्दन सुनकर शीघ्र आश्रम में आकर अपने मृत पिता को देखे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

तद्दुःखरोषामर्षार्तिशोकवेगविमोहितः । हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वास्मान्स्वर्गतो भवान् ॥१५॥

अन्वयः— तद दुःखरोषामर्षातिशोकवेगविमोहितः हा साधो तात धर्मिष्ठ अस्मान् त्यक्त्वाभवान् स्वर्गतः ॥१५॥

अनुवाद— उस दुःख रोष, आमर्ष, आर्ति तथा शोक के वेग से अत्यन्त मोहित परशुरामजी कह रहे थे, हे साधुस्वभाव वाले धर्मनिष्ठ पिताजी आप हमलोगों को छोड़कर स्वर्ग चले गये ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

दुःखादीनां वेगेन विमोहितः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

दुःख आदि के वेग के कारण विशेष रूप से मोहित ॥१५॥

विलप्यैवं पितुर्देहं निधाय भ्रातृषु स्वयम् । प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्रान्ताय मनो दधे ॥१६॥

अन्वयः— एवं विलप्य पितुः देहं भ्रातृषु निधाय स्वयं परशुं प्रगृह्य रामः क्षत्रान्ताय मनोदधे ॥१६॥

अनुवाद— इस तरह से विलाप करके पिता के देह की रखवाली का भार अपने भाइयों को सौपकर परशुरामजी स्वयं फरसा लेकर क्षत्रियों का विनाश करने का मन बना लिए ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

गत्वा माहिष्मतीं रामो ब्रह्मघ्नविहतश्रियम् । तेषां स शीर्षभी राजन्मध्ये चक्रे महागिरिम् ॥१७॥

अन्वयः— राजन् रामः ब्रह्मघ्न विहतश्रियम माहिष्मतीं गत्वा सः तेषां शीर्षभिः मध्ये महागिरिं चक्रे ॥१७॥

अनुवाद— परीक्षित् परशुरामजी ब्राह्मण की हत्या करने के कारण जिसका ऐश्वर्य पहले ही नष्ट हो चुका था उस माहिष्मती नगरी के मध्य में उन अर्जुन के पुत्रों के सिरों से उन्होंने एक महान पर्वत बना दिया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मघ्नैर्विहता श्रीर्यस्यास्ताम् । हे राजन्, स रामस्तेषां शीर्षभिर्माहिष्मत्या मध्ये महान्तं गिरिं चक्रे ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण का वध करने वालों के द्वारा जिसका ऐश्वर्य विहत कर दिया गया था, हे परीक्षित् उन अर्जुन के पुत्रों के सिरों से माहिष्मती नगरी के बीच में श्रीपरशुरामजी ने एक महान् पर्वत बना दिया ॥१७॥

तद्रक्तेन नदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम् । हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रेऽमङ्गलकारिणि ॥१८॥
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः। स्यमन्तपञ्चके चक्रे शोणितोदान्ह्रदान्नव ॥१९॥

अन्वयः— नृप तद्रक्तेन अब्रह्मण्यभयावहाम् घोराम् नदीं चक्रे । अमङ्गलकारिणिक्षत्रे पितृवधं हेतुं कृत्वा प्रभुः त्रिसप्तकृत्वः पृथिवीं निःक्षत्रियां कृत्वा समन्त पञ्चके शोणितोदान् ह्रदान् चक्रे ।।१८-१९।।

अनुवाद— राजन् उन सबों के रक्त से श्रीपरशुरामजी ने ब्राह्मण द्रोहियों को भयभीत करने वाली एक भयङ्कर नदी बहा दी । श्रीपरशुरामजी ने देखा कि सभी क्षत्रिय अन्यायी हो गये हैं, अपने पिता के वध को हेतु बनाकर उन्होंने इक्कीस बार पृथिवी को क्षत्रियों से रहित बना दी । और कुरुक्षेत्र के समन्त पञ्चक क्षेत्र में ऐसे पाँच तालाव बना दिया उन्होंने जो रक्त से भरे रहते थे ।।१८-१९।।

भावार्थ दीपिका

तेषां रक्ते नाब्रह्मण्यानां भयावहां घोरां नदी चक्रे । तथापि सर्वक्षत्रियवधे किं कारणं तदाह-हेतुं कृत्वेति सार्धेन । अमङ्गलकारिण्यन्यायवर्तिनि सति । त्रिःसप्तकृत्वो रेणुकया दुःखावेशादुरस्ताडनं कृतम्, ततो रामस्तावत्कृत्वः क्षत्रमुत्सादितवानिति प्रसिद्धिः ।।१८-१९।।

भाव प्रकाशिका

उन सबों के रक्त से ब्राह्मण द्रोहियों को भयभीत करने वाली उन्होंने एक नदी बहा दी फिर भी क्षत्रियों के भय का क्या कारण था? उसके विषय में कहा गया है कि पिता के वध को कारण बनाकर अन्यायकारी क्षत्रियों के हो जाने पर उन्होंने समस्त पृथिवी को इक्कीस बार क्षत्रियों से रहित बना दिया । यह प्रसिद्ध है कि रेणुका देवी ने दुःखवेश के कारण इक्कीस बार अपनी छाती को पीटा इसीलिए परशुरामजी ने पृथिवी को भी इक्कीस बार क्षत्रियों से रहित बनाया ।।१८-१९।।

पितुः कायेन सन्धाय शिर आदाय बर्हिषि । सर्वदेवमयं देवमात्मा नमयजन्मखैः ॥२०॥

अन्वयः— पितुः शिरः आदाय कायेन सन्धाय बर्हिष सर्वदेवमयं देवं आत्मानम् मखैः अयजत् ।।२०।।

अनुवाद— अपने पिता के सिर को लोकर उनके शरीर से जोड़कर यज्ञ में सर्वदेमय श्रीभगवान् की उन्होंने यज्ञों के द्वारा यजन किया ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् । अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम् ॥२१॥

अन्वयः— होत्रे प्राचीं दिशं, ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् अध्वर्यवे प्रतीचीं उद्गात्रे उत्तरां दिशं ददौ ।।२१।।

अनुवाद— उन्होंने पूर्व दिशा को यज्ञ के होता को दान दे दिया, दक्षिण दिशा को ब्रह्मा को पश्चिमा दिशा को अध्वर्यु को तथा उत्तर दिशा को उद्गाता को दान दे दिया ।।२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२१।।

अन्येभ्योऽवान्तरदिशः कश्यपाय च मध्यतः। आर्यावर्तमुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततः परम् ॥२२॥
ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः । सरस्वत्यां ब्रह्मनद्यां रेजे व्यभ्र इवांशुमान्॥२३॥

अन्वयः— अन्येभ्यः अवान्तरदिशः उपदष्ट्रे कश्यपाय च मध्यतः आयावर्तम् सदर्स्येभ्यः ततः परम् । ततः च अवभृथस्नानविधूताशेष किल्विषः ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यां व्यभ्रः अंशुमान इव रेजे ।।२२-२३।।

अनुवाद— इसी तरह अग्निकोण आदि दिशाओं को उन्होंने ऋत्विजां को दे दिया कश्यपजी को बीच की भूमि

दे दी उपद्रष्टा को उन्होंने अर्यावर्त का दान कर दिया दूसरे सदस्यों को अन्यान्य दिशाएँ प्रदान की। यज्ञान्त स्नान करके वे समस्त पापों से मुक्त होकर ब्रह्मनदी सरस्वती के तट पर मेघरहित सूर्य के समान सुशोभित हुए ।।२२-२३।।

भावार्थ दीपिका नहीं है ।।२२-२३।।

स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षणम् । ऋषीणां मण्डले सोऽभूत्सप्तमो रामपूजितः ।।२४।।

अन्वयः— जमदग्निस्तु संज्ञान लक्षणं स्वदेहं लब्ध्वा सः राम पूजितः ऋषीणां मण्डले सप्तमोऽभूत् ।।२४।।

अनुवाद— महर्षि जमदग्नि स्मृति स्वरूप अपने देह को प्राप्त करके तथा श्रीपरशुरामजी से पूजित होकर सप्तर्षि मण्डल में जाकर सातवाँ ऋषि हो गये ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

संज्ञानं स्मृतिस्तदेव लक्षणं चिह्नं यस्य तं स्वदेहं लब्ध्वा स ऋषीणां मण्डले सप्तम ऋषिरभूत् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि जमदग्नि स्मृति स्वरूप देह को प्राप्त करके तथा श्रीपरशुरामजी के द्वारा पूजित होकर सप्तर्षि मण्डल में सातवाँ ऋषि हो गये ।।२४।।

जामदग्न्योऽपि भगवान् रामः कमललोचनः । आगामिन्यन्तरे राजन्वर्तयिष्यति वै बृहत् ।।२५।।

अन्वयः— हे राजन् ! जामदग्न्यः कमललोचनः भगवान् आगामिन्यन्तरे वै बृहत् वर्तयिष्यति ।।२५।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् कमल लोचन जमदग्नि नंदन श्रीपरशुरामजी भी आगामी मन्वन्तर में सप्तर्षि मण्डल में रहकर वेदों का विस्तार करेंगे ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

बृहद्ब्रह्म वेदम् । वेदप्रवर्तकेषु सप्तर्षिष्वेकतमो भविष्यतीत्यर्थः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

बृहद्ब्रह्म वेद को कहते हैं, वेद प्रवर्तक सप्तर्षियों में प्रधान होयेंगे ।।२५।।

आस्तेऽद्यापि महेन्द्राद्रौ न्यस्तदण्डः प्रशान्तधीः । उपगीयमानचरितः सिद्धगन्धर्वचारणैः ।।२६।।

अन्वयः— अद्यापि महेन्द्राद्रौ न्यस्तदण्डः प्रशान्तधीः सिद्धगन्धर्वचारणैः उपगीयमान चरितः आस्ते ।।२६।।

अनुवाद— श्रीपरशुरामजी आज भी किसी को दण्ड नहीं देते हुए प्रशान्त चित्त से महेन्द्र पर्वत पर निवास कर रहे हैं, सिद्ध गन्धर्व और चारणगण उनके चरित का गायन करते हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२६।।

एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः । अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन्बहुशो नृपान् ।।२७।।

अन्वयः— एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान हरिः ईश्वरः अवतीर्य भुवो भारं बहुशः नृपान् अहन् ।।२७।।

अनुवाद— इस तरह से भृगुवंश में सम्पूर्ण जगत् की आत्मा और नियामक भगवान् श्रीहरि अवतार ग्रहण करके पृथिवी के भार स्वरूप बहुत से राजाओं का वध किए ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

भुवो भारमहन् । भारमेवाह-नृपानिति ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी के भार को विनष्ट करके । राजागण ही पृथिवी के भार थे ।।२७।।

गाधेरभून्महातेजाः समिद्ध इव पावकः । तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम् ॥२८॥

अन्वयः— गाधे समिद्धः पावक इव महातेजाः अभूत् यः तपसा क्षात्रम् उत्सृज्य ब्रह्मवर्चसम् लेभे ॥२८॥

अनुवाद— महाराज गाधि के पुत्र प्रज्वलित अग्नि के समान परम तेजस्वी विश्वामित्र जी हुए, उन्होंने तपस्या के द्वारा क्षत्रियत्व का परित्याग करके ब्रह्मतेज को प्राप्त किया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं प्रसक्तानुप्रसक्तं समाप्य प्रस्तुतमाह-गाधेरिति । महातेजा विश्वामित्रः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह प्रसङ्गत प्राप्त को समाप्त करके प्रस्तुत का वर्णन **गाधे० इत्यादि** श्लोक से करते हैं । महातेजः अर्थात् विश्वामित्र ॥२८॥

विश्वामित्रस्य चैवासन्पुत्रा एकशतं नृप । मध्यमस्तु मधुच्छन्दा मधुच्छन्दस एव ते ॥२९॥

अन्वयः— नृप विश्वामित्रस्य चैव एकशतं पुत्रा आसन् मध्यमस्तु मधुच्छन्दा मधुच्छन्दस एवते ॥२९॥

अनुवाद— राजन् ! महर्षि विश्वामित्र के सौ पुत्र थे । उनमें से बीच के पुत्र का नाम मधुच्छन्दा था अतएव सभी पुत्र मधुच्छन्दा के नाम से विख्यात हुए ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

ते सर्वे लिङ्गसमवायन्यायेन प्राणभृत उपदधाति' इतिवन्मधुच्छन्दस एवोच्यन्ते । तथा च श्रुतिः- 'तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्रा आसुः पञ्चाशदेव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः पञ्चाशत्कनीयांसः' इत्यादि । तत्र च विश्वामित्रपुत्रेषु भार्गवस्याजीगर्तस्य देवरातस्य ज्येष्ठत्वमवगम्यते । तथा आश्वलायनबौधायनादिभिः कौशिकानां देवरातप्रवरत्वमुक्तम् । प्रवरश्च तस्मिन्नेव वंशेऽवान्तरभेदो न तु वंशान्तरम् । तथा च स्मृतिः- 'एक एव ऋषिर्यावत्प्रवरेष्वनुवर्तते । तावत्समानगोत्रत्वं बिना भृग्वङ्गिरोगणात् ।' इति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

वे सभी लिङ्गसमवायन्याय के अनुसार **प्राणभृतः उपदधाति** के समान मधुच्छन्दस ही कहे जाते हैं । श्रुति भी कहती है कि विश्वामित्र के एक सौ एक पुत्र थे उनमें पचास मधुच्छन्दस से बड़े थे और पचास छोटे थे । उन विश्वामित्र के पुत्रों में भृगुवंशीय देवरात आजिगर्त की ही श्रेष्ठता प्रतीत होती है । अश्वलयन बौधायन आदि ने विश्वामित्र के पुत्रों में देवरात की ही श्रेष्ठता बतलायी है । जिस वंश का वर्णन किया जाय उसी वंश में होने वाले अवान्तर भेद को प्रवर कहते है । दूसरे वंश को नहीं । स्मृति भी कहती है सभी प्रवरों में एक ही ऋषि की अनुवृत्ति होती है । और उन सबों का गोत्र भी एक ही होता किन्तु भृगु और अङ्गिरा के वंश को छोड़कर॥२९॥

पुत्रं कृत्वा शुनःशेपं देवरातं च भार्गवम् । आजीगर्तं सुतानाह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम् ॥३०॥

अन्वयः— भार्गवं देवरातं आजिगर्तं शुनः शेपं पुत्रं कृत्वा एष ज्येष्ठः प्रकल्प्यताम् इति सुतानाह ॥३०॥

अनुवाद— भृगुवंश में उत्पन्न देवरात अजिगर्त के पुत्र शुनःशेप को पुत्र बनाकर महर्षि विश्वामित्र ने अपने पुत्रों से कहा कि इसको सबसे बड़ा मानो ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तत्कुतो भृगुवंशसंभवस्य देवरातस्य कौशिकप्रवरत्वमित्याशङ्क्य तदुपपादयन्नाह-पुत्रं कृत्वेत्यादि यावत्समाप्ति-पूर्वमजीगर्तसुतत्वे मध्यमत्वेन पितृभ्यां ममतां विहाय विक्रीतत्वात्तस्य कृपया सुतानाह-ज्येष्ठ एव प्रकल्प्यतामिति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि भृगुवंश में उत्पन्न देवरात का कौशिक वंश में प्रवरत्व कैसे हुआ इस प्रकार की आशंका करके उसका प्रतिपादन **पुत्रं कृत्वा** श्लोक से लेकर अध्याय की समाप्ति पर्यन्त करते है । शुनः शेप पहले अजीगर्त का मध्यम पुत्र था । माता-पिता ने ममता का परित्याग करके उसको बेच दिया । महर्षि विश्वामित्र उस पर कृपा करके बचाये और अपने पुत्रों से कहे कि इसको सबसे बड़ा मानो ॥३०॥

यो वै हरिश्चन्द्रमखे विक्रीतः पुरुषः पशुः । स्तुत्वा देवान्प्रजेशादीन्मुमुचे पाशबन्धनात् ॥३१॥

अन्वयः— यो वै हरिश्चन्द्रमखे विक्रीतः पुरुषः पशुः स्तुत्वा देवान् प्रजेशादीन् पाशबन्धनात् मुमुचे ॥३१॥

अनुवाद— यह वही शुनःशेप है जो हरिश्चन्द्र के यज्ञ में खरीदकर पुरुष पशु के रूप में लाया गया था। महर्षि विश्वामित्रजी प्रजापति वरुण आदि देवताओं की स्तुति करके उसे पाशबन्धन से मुक्त कर लिया था ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव स्पष्टयितुं विशिनष्टि-य इति द्वाभ्याम् । मुमुचे अमुच्यत ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

उपुर्यक्त बात को ही स्पष्ट करने के लिए यो **वै० इत्यादि** दो श्लोकों को कहते हैं । मुमुचे अर्थात् छुड़ा लिया॥३१॥

यो रातो देवयजने देवैर्गाधिषु तापसः । देवरात इति ख्यातः शुनः शेपः स भार्गवः ॥३२॥

अन्वयः— यः तापसः देवयजने देवै गाधिषुरातः देवरातः इति ख्यातः सः शनुशेपः भार्गवः ॥३२॥

अनुवाद— जिस तपस्वी को यज्ञ में देवताओं ने महर्षि विश्वामित्र को प्रदान किया वहीं यह भृगुवंशी शुनःशेप हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

भार्गवोऽपि गाधिषु गाधेर्वंशजेषु देवरात इति ख्यातः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

भृगुवंशी भी होकर महाराज गाधि के वंशजों में देवताओं द्वारा प्रदान कर दिया गया था वही देवरात है॥३२॥

ये मधुच्छन्दसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् । अशपत्तान्मुनिः कुद्धो म्लेच्छा भवत दुर्जनाः ॥३३॥

अन्वयः— ये मधुच्छन्दसो ज्येष्ठा तत कुशलं न मेनिरे क्रुद्धः मुनिः तान् अशपत् दुर्जनाः म्लेच्छा भवत ॥३३॥

अनुवाद— मधुच्छन्दा से जो बड़ै पचास थे उन सबों को यह बात अच्छी नहीं लगी इससे क्रुद्ध होकर विश्वामित्रजी ने उन सबों को शाप दे दिया कि दुष्टों तुमलोग म्लेच्छ हो जाओ ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्य ज्येष्ठत्वं कुशलं न मेनिरे मध्यमस्यानर्थावहत्वं दृष्ट्वा नाङ्गीकृतवन्तः । मुनिर्विश्वामित्रः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

मधुच्छन्दा ऋषि से जो बड़े थे वे शुनःशेप की ज्येष्ठता को अच्छा नहीं माने । मध्यमत्व के अनर्थासहत्व देखकर उसे सबसे बड़ा नहीं स्वीकार किए । मुनि शब्द से विश्वामित्रजी को कहा गया है ॥३३॥

स होवाच मधुच्छन्दाः सार्धं पञ्चाशता ततः । यन्नो भवान्संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम् ॥३४॥

अन्वयः— ततः सः मधुच्छन्दा पञ्चशतासार्धं उवाच ह भवान् यत् नः संजानीते वयं तस्मिन् तिष्ठामहे ॥३४॥

अनुवाद— उसके पश्चात मधुच्छन्दा ऋषि ने अपने पचास भाइयों के साथ कहा आप हमलोगों को जो आदेश दें हम उसका पालन करने के लिए तैयार हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चाशता कनिष्ठैः साकं स मध्यमो मधुच्छन्दा उवाच । नोऽस्माकं यज्ज्येष्ठत्वं कनिष्ठत्वं वा भवान्पिता संजानीते मन्यते तस्मिन्वदं तिष्ठामेति ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

अपने पचास छोटे भाइयों के साथ मधुच्छन्दा ऋषि ने कहा आप हमलोगों के पिता हमलोगों की ज्येष्ठता अथवा कनिष्ठता का जो आदेश दें हम उसे मानने के लिए तैयार है ॥३४॥

ज्येष्ठं मन्त्रदृशं चक्रुस्त्वामन्वञ्चो वयं स्म हि । विश्वामित्रः सुतानाह वीरवन्तो भविष्यथ ॥
ये मानं मेऽनुगृह्णन्तो वीरवन्तमकर्त माम् ॥३५॥

अन्वयः— मन्त्रदृशं ज्येष्ठं चक्रुः वयं हि त्वाम् अन्वञ्य; स्म । विश्वामित्रसुतानाह वीरवन्तः भविष्यथा । ये मे मानं अनुगृह्णन्तः माम् वीरवन्तमकर्त ॥३५॥

अनुवाद— उन सबों ने मन्त्रद्रष्टा शुनःशेप को ज्येष्ठ बनाकर कहा कि हमलोग आपके छोटे भाई हैं इससे प्रसन्न होकर महर्षि विश्वामित्र ने मधुच्छन्दा को आर्शीवाद दिया कि तुमलोग ने मेरे सम्मान की रक्षा करके मुझे सुपुत्रवान बना दिया अतएव तुमको सौ पुत्र प्राप्त होंगे ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

एवमुक्त्वा मन्त्रदृशं 'कस्य नूनं कतमस्यामृतानाम्' इत्यादिमन्त्राणां द्रष्टारं शुनःशेपं ज्येष्ठं चक्रुः । तदाह । वयं सर्वे त्वामन्वञ्चः स्म हि अनुगन्तारः । कनिष्ठाः स्म इत्यर्थः । ततः प्रसन्नो विश्वामित्रस्तान्सुतानाह-वीरवन्तः पुत्रवन्तो भविष्यथ। ये यूयं मे मानं पूज्यत्वमनुगृह्णन्तोऽनुवर्तमानाः सन्तो मां वीरवन्तं पुत्रवन्तमकर्त । कृतवन्त इत्यर्थः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से कहकर **कस्य नूनं कतमस्यामृतानाम् इत्यादि** मन्त्रों का साक्षात्कार करने वाले शुनः शेष को ज्येष्ठ बना दिया । हम सभी आपके छोटे भाई और आपके अनुगन्ता है । उसके पश्चात् प्रसन्न होकर महर्षि विश्वामित्र ने उन पुत्रों से कहा तुम सभी पुत्रवान होओगे, क्योंकि तुम सबों ने मेरी आज्ञा को स्वीकार करके हमें सुपुत्रवान बना दिया है ॥३५॥

एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित । अन्ये चाष्टकहारीतजयक्रतुमदादयः ॥३६॥

अन्वयः— हे कुशिकाः एष वः वीरो देवरातः तम् अन्वित अन्ये च अष्टक हारीत जय क्रतुमदादयः ॥३६॥

अनुवाद— हे पुत्रों यह देवरात भी तुमलोगों के ही गोत्र का है । चूकि यह मेरा पुत्र हैं अतएव तुमलोग इसका अनुसारण करो । इसके अतिरिक्त महर्षि विश्वामित्र के अष्टक हरीत जय तथा क्रतुमान इत्यादि पुत्र हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

हे कुशिकाः, एष देवरातो यो युष्मदीय; कौशिक एव । यतो वीरो मत्पुत्रस्तमेनमन्वितानुगच्छत । अन्ये चाष्टकादयस्तस्य सुता आसन् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि ऐ मेरे कुशिक गोत्रीय पुत्रों यह देवरात भी तुम्हारे गोत्र का है यह चूकि मेरा पुत्र है, अतएव तुमलोग इसका अनुसरण करो । इसके अतिरिक्त महर्षि विश्वामित्र के अष्टक आदि भी पुत्र थे ॥३६॥

एवं कौशिकगोत्रं तु विश्वामित्रैः पृथग्विधम् । प्रवरान्तरमापन्नं तद्धि चैवं प्रकल्पितम् ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे नवमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अन्वयः— एवं कौशिकगोत्रं तु विश्वामित्रैः पृथग्विधम् प्रवरान्तरम् आपन्नं तदि च प्रकल्पितम् ॥३७॥

अनुवाद— इस तरह महर्षि विश्वामित्र की सन्तानों से कौशिक गोत्र में कई भेद हो गये तथा देवरात को बड़ा भाई मानने के कारण उसका प्रवर भी दूसरा हो गया ॥३७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-एवमिति । एके शप्ता एकेऽनुगृहीता अन्यस्तु पुत्रत्वेन स्वीकृत इत्येवं कौशिकगोत्रं पृथग्विधं नानाप्रकारं जातं, तच्च प्रवरान्तरमापन्नं प्राप्तम् । हि यस्मादेवं देवरातज्येष्ठत्वेन तत्प्रकल्पितम् ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

इस कथा का उपसंहार **एवम् इत्यादि** श्लोक से करते हैं । एक प्रकार के पुत्र अभिशप्त हैं तथा दूसरे प्रकार के मधुछन्द आदि पुत्र अनुगृहीत हैं । उनसे भिन्न देवरात पुत्ररूप से स्वीकृत है । इस तरह कौशिक गोत्र अलग-अलग अनेक प्रकार का है तथा प्रवरान्त प्राप्त है । चूकि इस तरह देवरात के ज्येष्ठ होने के कारण वह प्रकल्पित है ॥३७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्धकी भावार्थ दीपिका टीका सोलहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१६॥

* * *

सत्रहवाँ अध्याय

क्षत्रवृद्ध रजि आदि राजाओं के वंश का वर्णन

श्रीशुक उवाच

यः पुरूरवसः पुत्र आयुस्तस्याभवन्सुताः । नहुषः क्षत्रवृद्धश्च रजी रम्भश्च वीर्यवान् ।।१।।

अन्वयः— पुरूरवसः यः आयुपुत्रः तस्य सुताः नहुषः क्षत्रवृद्धरजी वीर्यवान् रम्भश्च अभवन् ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— पुरूरवा का जो आयु नामक पुत्र था उसके नहुष क्षत्रवृद्ध, रजी तथा पराक्रमी रम्भ हुए ।।१।।

भावार्थ दीपिका

आयोः सप्तदशे त्वैलज्येष्ठपुत्रस्य पञ्चसु । सुतेषु क्षत्रवृद्धादिचतुर्णां वंशवर्णनम् । इह श्रीकृष्णावतारप्रस्तावाय वंशानुक्रमणमैलादिक्रमेण प्रकान्तमिति यस्य वंशे कृष्णावतारस्तस्य वंशोऽतिविततत्वादन्ते निरूप्यते । अतः पुरूरवसः पुत्राणां पञ्चानां कनिष्ठानां वंशानुक्त्वेदानीं प्रथमस्य वंशमाह-य इति । एवं नहुषययातियदुप्रभृतिष्वपि द्रष्टव्यम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

ऐल (पुरुरवा) के पाञ्च पुत्रों में से ज्येष्ठ आयु के क्षत्रवृद्ध आदि चार पुत्रों का वर्णन किया गया है । यहाँ

पर श्रीकृष्णावतार का प्रस्ताव करने के लिए वंश के वर्णन का प्रारम्भ ऐल आदि के क्रम से किया गया है। जिसके वंश में कृष्णावतार हुआ उस वंश के अत्यन्त विस्तृत होने के कारण उसका अन्त में निरूपण किया जा रहा है। अतएव पुरुरवा के पाँच छोटे पुत्रों के वंश का वर्णन करने के पश्चात् आयु के वंश का वर्णन **यः इत्यादि** श्लोक से करते हैं। इसी तरह नहुष, ययाति इत्यादि के भी विषय में जानना चाहिए ॥१॥

अनेना इति राजेन्द्र शृणु क्षत्रवृधोऽन्वयम्। क्षत्रवृद्धसुतस्यासन्सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः ॥२॥
काश्यः कुशो गृत्समद इति गृत्समदादभूत्। शुनकः शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनिः ॥३॥

अन्वयः— हे राजेन्द्र क्षत्रवृद्धान्वयम् शृणु क्षत्रवृद्धसुतस्य सुहोत्रस्य त्रयः आत्मजा आसन्, काश्यः कुशः गृत्समद इति गृत्समदात् शुनकः यस्य वहवृचप्रवरः शौनकःमुनिः ॥२-३॥

अनुवाद—हे राजेन्द्र परीक्षित् अब आप क्षत्रवृद्ध के वंश का वर्णन सुनें। क्षत्रवृद्ध के पुत्र सुहोत्र थे। उनके तीन पुत्र हुए काश्य कुश और गृत्समद। गृत्समद के ही पुत्र शुनक हुए शुनक के ही पुत्र ऋज्ञवेदीयों में श्रेष्ठ शौनक मुनि हुए ॥२-३॥

भावार्थ दीपिका

क्षत्रवृधः क्षत्रवृद्धस्य ॥२-३॥

भाव प्रकाशिका

क्षत्रवृधः और क्षत्रवृद्ध के ॥२-३॥

काश्यस्य काशिस्तत्पुत्रो राष्ट्रो दीर्घतमः पिता। धन्वन्तरिर्दैर्घतम आयुर्वेदप्रवर्तकः ॥४॥

अन्वयः— काश्यस्य काशिः तत्पुत्रः दीर्घतमः पिता राष्ट्रः दैर्घतमः धन्वन्तरिः आयुर्वेद प्रवर्तकः ॥४॥

अनुवाद— काश्य के पुत्र काशि हुए, काशि के पुत्र राष्ट्र हुए जो दीर्घतम के पिता थ दीर्घतम के पुत्र धन्वन्तरि आयुर्वेद के प्रवर्तक हुए ॥४॥

भावार्थ दीपिका

दीर्घतमसः पिता ॥४॥

भाव प्रकाशिका

दीर्घतम के पिता थे राष्ट्र ॥४॥

यज्ञभुग्वासुदेवांशः स्मृतमात्रार्तिनाशनः। तत्पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीमरथस्ततः ॥५॥

अन्वयः— यज्ञभुग्वासुदेवांश स्मृतमात्रार्तिनाशः तत्पुत्र केतु मानस्य भीरमथः जज्ञे ॥५॥

अनुवाद— धन्वन्तरि यज्ञों के भोक्ता भगवान् वासुदेव के अंश है। उनका स्मरण मात्र से रोगों का नाश हो जाता है। धन्वन्तरि के पुत्र केतुमान हुए और केतुमान के पुत्र भीमरथ हुए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

स्मृतमात्र एवार्तिं रोगदुःखं नाशयतीति तथा ॥५॥

भाव प्रकाशिका

धन्वन्तरि स्मरण करने मात्र से ही रोग दुःख आदि का नाश कर देते हैं ॥५॥

दिवोदासो द्युमांस्तस्मात्प्रतर्दन इति स्मृतः । स एव शत्रुजिद्वत्स ऋतध्वज इतीरितः ॥
तथा कुवलयाश्वेति प्रोक्तोऽलर्कादयस्ततः ॥६॥

अन्वयः— ततः दिवोदासः तस्मात् द्युमान् प्रतर्दन इति स्मृतः, स एव शत्रुजित् वत्सः ऋतध्वज इतीरितः । तथा कुवलयाश्व इति प्रोक्ताः अलर्कादया ॥६॥

अनुवाद— भीमरथ के पुत्र दिवोदास हुए, उनके पुत्र द्युमान् हुए इनका नाम प्रतर्दन है, ये ही शत्रुजित्, वत्स, और ऋताध्वज और कुवलयाश्व भी कहे गये है । द्युमान् के ही पुत्र अलर्क आदि हुए ॥६॥

भावार्थ दीपिका

ततः प्रतर्दनादिशब्दवाच्याद्युमतः सकाशादलर्कादयः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

प्रतर्दन शब्द से कहे जाने वाले द्युमान के ही पुत्र अलर्क आदि हुए ॥६॥

षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च । नालर्कादपरो राजन्मेदिनीं बुभुजे युवा ॥७॥

अन्वयः— हे राजन् ! अलर्कादपरः युवा षष्टिवर्ष सहस्राणि षष्टिवर्ष शतानिच मेदिनीं न बुभुजे ॥७॥

अनुवाद— हे राजन् ! अलर्क को छोड़कर दूसरा कोई भी ऐसा युवक नहीं हुआ जो साठ हजार साठ सौ वर्षों तक पृथिवी का राज्य किया हो ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

अलर्कात्सन्ततिस्तस्मात्सुनीथोऽथ सुकेतनः । धर्मकेतुः सुतस्तस्मात्सत्यकेतुरजायत ॥८॥

अन्वयः— अलर्कात् सन्ततिः तस्मात् सुनीथः अथ सुकेतनः तस्मात् सुतः धर्मकेतुः, तस्मात् सत्यकेतुः अजायत॥८॥

अनुवाद— अलर्क पुत्र सन्तति हुए उनके पुत्र सुनीथ हुए सुनीथ के पुत्र सुकेतन हुए उनके पुत्र धर्मकेतु हुए और धर्मकेतु के पुत्र सत्यकेतु हुए ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अलर्कात्सन्ततिसंज्ञः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अलर्क के पुत्र का नाम संतति था ॥८॥

धृष्टकेतुः सुतस्तस्मात्सुकुमारः क्षितीश्वरः । वीतिहोत्रस्य भर्गोऽतो भार्गभूमिरभून्नृपः ॥९॥

अन्वयः— धृष्टकेतुः सुतः तस्मात् सुकुमारः क्षितीश्वरः वीतिहोत्रस्य भर्गः अतः भार्गभूमिः नृपः अभूत् ॥९॥

अनुवाद— सत्यकेतु के पुत्र धृष्टकेतु हुए, धृष्ट केतु के पुत्र राजा सुकुमार हुए सुकुमार के पुत्र वीतिहोत्र हुए वीतिहोत्र के पुत्र भर्ग हुए और भर्ग के पुत्र राजा भार्गभूमि हुए ॥९॥

भावार्थ दीपिका

सत्यकेतोर्धृष्टकेतुस्तस्मात्सुकुमारस्तस्माद्वीतिहोत्रस्तस्य भर्गः । अतो भर्गाद्भार्गभूमिः ॥९॥'

भाव प्रकाशिका

सत्यकेतु के पुत्र धृष्टकेतु हुए उनके पुत्र सुकुमार हुए उनके पुत्र वीतिहोत्र हुए और वीतिहोत्र के पुत्र भर्ग हुए और भर्ग के पुत्र भार्गभूमि हुए ॥९॥

इतीमे काशयो भूपाः क्षत्रवृद्धान्वयायिनः । रम्भस्य रभसः पुत्रो गम्भीरश्चाक्रियस्ततः ॥१०॥

अन्वयः— इतीमे क्षत्रवृद्धान्वयायिनः काशयः भूपाः रम्भस्य पुत्रः रभसः गम्भीरः ततः च अक्रियः ॥१०॥

अनुवाद— ये सभी क्षत्रवृद्ध के वंश में काशि से उत्पन्न राजा हुए । रम्भ के पुत्र रभस हुए रभस के गम्भीर पुत्र हुए और उनके पुत्र अक्रिय हुए ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

काशयः काशेर्वंश्याः । काशेः प्रपितामहस्य क्षत्रवृद्धस्यान्वयमयन्ते यान्तीति तथा ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

काशि के वंश में होने वाले राजा गण हैं । काशि के प्रपितामह क्षत्रवृद्ध थे उनके वंश में ही ये सभी आते हैं ॥१०॥

तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशमनेनसः । शुद्धस्ततः शुचिस्तस्मात्त्रिककुद्धर्मसारथिः ॥११॥

अन्वयः— तस्य क्षेत्र ब्रह्म जज्ञे अनेनसः वंश शृणु, शुद्धः ततः शुचिः, तस्मात् त्रिककुत् ततः धर्म सारथिः ॥११॥

अनुवाद— अक्रिय की पत्नी से ब्राह्मण वंश चला । अब अनेना का वंश सुनें । अनेना के पुत्र शुद्ध थे शुद्ध के शुचि पुत्र हुए । शुचि के पुत्र त्रिककुत् के पुत्र धर्मसारथि हुए ॥११॥

भावार्थ दीपिका

ततोऽनेनसः शुद्धो जज्ञे ॥११॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् उससे शुद्ध उत्पन्न हुए ॥११॥

ततः शान्तरयो जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान् । रजेः पञ्चशतान्यासन्पुत्राणाममितौजसाम् ॥१२॥

अन्वयः— ततः शान्तरयः जज्ञे स आत्मवान् कृतकृत्यः, रजेः अमितौजसां पुत्राणां पञ्चशतानि आसन् ॥१२॥

अनुवाद— धर्मसारथि के पुत्र शान्तरय आत्मज्ञानी होने के कारण कृत-कृत्य थे । आयु के पुत्र रजि के अत्यन्तः तेजः सम्पन्न पाँच सौ पुत्र थे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

कृतकृत्यः सः । यत आत्मवान् ज्ञानी । अतः पुत्रोत्पादनं न कृतवानित्यर्थः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

आत्मज्ञ (ज्ञानी) होने के कारण वे कृतकृत्य थे अतएव उन्होंने पुत्र उत्पन्न नहीं किया ॥१२॥

देवैरभ्यर्थितो दैत्यान्हत्वेन्द्रायाददाद्दिवम् । इन्द्रस्तस्मै पुनर्दत्त्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः ॥१३॥
आत्मानमर्पयामास प्रह्लादाद्यरिशङ्कितः । पितर्युपरते पुत्रा याचमानाय नो ददुः ॥१४॥
त्रिविष्टपं महेन्द्राय यज्ञभागान्समाददुः । गुरुणा हूयमानेऽग्नौ बलभित्तनयान्रजेः ॥१५॥
अवधीद्भ्रंशितान्मार्गान्न कश्चिदवशेषितः । कुशात्प्रतिः क्षात्रवृद्धात्संजयस्तत्सुतो जयः ॥१६॥

अन्वयः— देवैः अभ्यर्थितः दैत्यान् हत्वा इन्द्राय अददात् । इन्द्रपुनः रजेः चरणौ गृहित्वा तस्मै दत्वा प्रह्लाद्यरिशंकितः आत्मानम् अर्पयामास पितरि उपरते पुत्र याचमानाय महेन्द्राय त्रिविष्टपं नो ददुः यज्ञभागान् समाददुः गुरुणा अग्नौ हूयमाने बलभित् मार्गात् भ्रांशितान् रजेः तनयान् अवधीत् कश्चित् न अवशेषित; क्षात्रबृद्धात् कुशात् प्रतिः प्रतेः संजयः ततो जयः ॥१३-१६॥

अनुवाद— देवताओं के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर रजि ने दैत्यों का वध करके स्वर्ग का राज्य इन्द्र को दे दिया। इन्द्र ने रजि का पैर पकड़ लिया और रजि को ही स्वर्ग का राज्य लौटा दिया। रजि प्रह्लाद आदि से डरते थे अतएव अपनी रक्षा का भार भी रजि को सौंप दिया। रजि की मृत्यु के पश्चात् इन्द्र के द्वारा माँगे जाने पर भी रजि के पुत्रों ने इन्द्र को स्वर्ग का राज्य नहीं दिया और स्वयं ही यज्ञ का भाग भी ग्रहण करने लगे। इन्द्र की प्रार्थना से आचार्य बृहस्पति ने अभिचार कर्म से होम किया। उसके कारण रजि के पुत्र मार्गभ्रष्ट हो गये। तब इन्द्र ने उन सबों को आसानी से मार दिया रजि का कोई भी पुत्र नहीं बचा। क्षात्रवृद्ध के पौत्र कुश के पुत्र प्रति और प्रति के पुत्र संजय तथा संजय के पुत्र जय हुए ॥१३-१६॥

भावार्थ दीपिका

तेषां मतिभ्रंशाय गुरूणा बृहस्पतिनाऽभिचारविधानेनाग्नौ हूयमाने सति। सिंहावलोकनेनाह-क्षात्रवृद्धात्क्षत्रवृद्धपौत्रात्कुशात्प्रतिः। प्रतेः संजयः ॥१३-१६॥

भाव प्रकाशिका

रजि के पुत्रों की मति भ्रष्ट होने के लिए बृहस्पति द्वारा अभिचार विधि से अग्नि में होम करने पर सिंहावलोकन पूर्वक कहते हैं क्षत्रवृद्ध के पौत्र कुश के पुत्र प्रति हुए तथा प्रति के पुत्र संजय हुए ॥१३-१६॥

तत कृतः कृतस्यापि जज्ञे हर्यवनो नृपः। सहदेवस्ततोऽहीनो जयसेनस्तु तत्सुतः ॥१७॥

अन्वयः— ततः कृतः कृतस्यापि नृपः हर्यवनः जज्ञे सहदेवः ततः हीनः तत् सुतः तु जयसेनः ॥१७॥

अनुवाद— जय के पुत्र कृत हुए कृत के पुत्र राजा हर्यवन हुए उनके पुत्र सहदेव हुए। सहदेव के पुत्र हीन हुए और हीन के पुत्र जय सेन हुए ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

संकृतिस्तस्य च जयः क्षत्रधर्मा महारथः। क्षत्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात् ॥१८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे चन्द्रवंशानुवर्णने सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अन्वयः— तस्य च सकृतिः महारथः क्षत्रधर्मा जयः। इति क्षत्रबृद्धान्वयाः भूताः नाहुषात् च वंशं शृणु ॥१८॥

अनुवाद— जयसेन के पुत्र संकृति हुए संकृति के पुत्र महारथी वीर शिरोमणि जय हुए। क्षत्रवृद्ध की वंश परम्परा में इतने राजा हुए हैं अब नहुष वंश का वर्णन सुने ॥१८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के चन्द्रवंश के वर्णन प्रसङ्ग में सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के सत्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१७॥

* * *

अठारहवाँ अध्याय

ययाति चरित

श्रीशुक उवाच

यतिर्ययातिः संयातिरायतिर्वियतिः कृतिः । षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीव देहिनः ॥१॥

अन्वयः— यतिः ययातिः संयातिः आयतिः वियत्तिः कृतिः इमे षद् नहुषस्य देहिनः इन्द्रियाणीव षद् पुत्राः आसन्॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— यति, ययाति, संयाति, आयति, वियत्ति और कृति ये राजा नहुष के शरीरधारी के छह इन्द्रियों के समान छह पुत्र थे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टादशे ययातेस्तु नाहुषस्य कथोच्यते । यस्य पञ्चसु पुत्रेषु कनीयानग्रहीज्जराम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

अठारहवें अध्याय में नहुष के पुत्र ययाति की कथा का वर्णन है । ययाति के पाञ्च पुत्रों में से सबसे छोटे पुत्र ने उनकी बुढापे को स्वीकार किया ॥१॥

राज्यं नैच्छद्यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित् । यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुध्यते ॥२॥

अन्वयः— पित्रादत्तं राज्यं तत्परिणामवित् यतिः न ऐक्षत् । यत्र प्रविष्टः पुरुषः आत्मानं ना वबुध्यते ॥२॥

अनुवाद— पिता के द्वारा दिए जाने वाले राज्य को यति ने इसलिए नहीं स्वीकार किया कि वे राज्य के परिणाम को जानते थे । राज्य को प्राप्त करके उसमें ही व्यस्त रहने वाला पुरुष आत्मा के स्वरूप को नहीं जान पाता है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तस्य राज्यस्य परिणाममनर्थावहत्वं वेत्तीति तथा । तत्र हेतुः- यत्रेति ॥२॥

भाव प्रकाशिका

राज्य अनर्थकारी होता है, इस प्रकार के राज्य के परिणाम को जानने वाले यतिः । उसका कारण **यत्र० इत्यादि** श्लोकांश से कहा गया है ॥२॥

पितरि भ्रंशिते स्थानादिन्द्राण्या धर्षणाद्द्विजैः । प्रापितेऽजगरत्वं वै ययातिरभवन्नृपः ॥३॥

अन्वयः— इन्द्राण्याः धर्षणाद् द्विजैः स्थानात् पितरिभ्रंशिते अजगरत्वं प्रापिते वै, ययातिः नृपः अभवत् ॥३॥

अनुवाद— इन्द्र की पत्नी शची के साथ सहवास के इच्छुक नहुष के हो जाने पर ब्राह्मणों ने शाप देकर नहुष को राज्य भ्रष्ट करके अजगर बना दिया, उस समय ययाति राजा हुए ॥३॥

भावार्थ दीपिका

स्थानात्स्वर्गात् । द्विजैरगस्त्यादिभिः '॥३॥

भाव प्रकाशिका

स्थानात् अर्थात् स्वर्ग से, द्विजैः अर्थात् अगस्त्य आदि ब्राह्मणों द्वारा ॥३॥

चतसृष्वादिशद्दिक्षु भ्रातॄन्भ्राता यवीयसः । कृतदारो जुगोपोर्वी काव्यस्य वृषपर्वणः ॥४॥

अन्वयः— भ्राता चतसृषु दिक्षु यवीयसः भ्रातॄन् आदिशत् काव्यस्य, वृषपर्वणः कृतदारः उर्वीं जुगोप ॥४॥

अनुवाद— ययाति ने अपने चारो छोटे भाइयों को चारो दिशाओं में नियुक्त कर दिये और स्वयं शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी और वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से विवाह करके पृथिवी की रक्षा करने लगे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

यवीयसो भ्रातॄनादिशत् । काव्यस्य शुक्रस्य वृषपर्वणश्च कन्याभ्यां कृतदारः सन् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

अपने छोटे भाइयों को नियुक्त कर दिए तथा शुक्राचार्य एवं वृषपर्वा की पुत्रियों से विवाह करके राज्य करने लगे ॥४॥

राजोवाच

ब्रह्मर्षिर्भगवान्काव्यः क्षत्रबन्धुश्च नाहुषः । राजन्यविप्रयोः कस्माद्विवाहः प्रतिलोमकः ॥५॥

अन्वयः— भगवान् काव्यः ब्रह्मर्षिः नाहुषः क्षत्रबन्धुश्च राजन्य विप्रयोः प्रतिलोमकः विवाहः कस्मात् ॥५॥

राजा परीक्षित् ने पूछा

अनुवाद— हे भगवन् ! भगवान् शुक्राचार्य ब्राह्मण थे और नहुष के पुत्र ययाति क्षत्रिय थे इस तरह ब्राह्मण कन्या का क्षत्रिय वर से प्रतिलोम (उलटा) विवाह कैसे हुआ ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

श्रीशुकउवाच

एकदा दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा नाम कन्यका । सखीसहस्रसंयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥६॥
देवयान्या पुरोद्याने पुष्पितद्रुमसंकुले । व्यचरत्कलगीतालिनलिनीपुलिनेऽबला ॥७॥

अन्वयः— एकदा दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा नाम भामिनी कन्यका सखी सहस्रसंयुक्ता गुरु पुत्र्या देवयान्या च पुष्पितद्रुम संकुले पुरोद्याने कलगीतालिनलिनी पुलिने अबला व्यचरत् ॥६-७॥

अनुवाद— एक बार दानवेन्द्र वृषवर्षा की पुत्री शर्मिष्ठा अपनी हजारों सखियों और गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी के साथ विकसित पुष्पों वाले वृक्षों से भरे हुए नगर के उद्यान में जिसमें विकसित कमलों के ऊपर भौंरे गुंजार कर रहे थे ऐसे सरोवर के तट पर विचरण कर रही थी ॥६-७॥

भावार्थ दीपिका

नात्र प्रतिलोमतादोष ईश्वरघटनादिति दर्शयन्कथामाह-एकदेत्यादिना प्रतिजग्राह तद्वच इत्यन्तेन । गुरोः शुक्रस्य पुत्र्या देवयान्या च व्यचरदिति द्वयोरन्वयः। कलगीता अलयो येषु तानि नलिनीपुलिनानि यस्मिंस्तस्मिन्पुरोद्याने । अबला शर्मिष्ठा ॥६-७॥

भाव प्रकाशिका

इसमें प्रतिलोम दोष इसलिए नहीं है कि ईश्वर ने ही ऐसी घटना घटित कर दी, इस अर्थ को बतलाते हुए कथा **एकदा० इत्यादि** श्लोक से लेकर तेइसवें श्लोक के **प्रतिजग्राहतद्वचः** पर्यन्त कहते हैं । शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी के साथ विचरण कर रही थी । जिसमें विकसित कमल पुष्पों पर मनोहर भौंरे गुञ्जर कर रहे थे उस सरोवर वाले नगर के उद्यान में विचरण कर रही थी । अबला अर्थात् शर्मिष्ठा ॥६-७॥

ता जलाशयमासाद्य कन्याः कमललोचनाः । तीरे न्यस्य दुकूलानि विजह्रुः सिंचतीर्मिथः ॥८॥

अन्वयः— जलाशयम् आसाद्य ताः कमललोचनाः कन्याः तीरे दुकूलानि न्यस्य मिथः सिंचतीः विजह्रुः ॥८॥

अनुवाद— सरोवर पर पहुँचकर वे सभी कमलनयीं कन्याएँ सरोवर के तट पर अपने वस्त्रों को रखकर एक दूसरे पर जलछिड़कती हुई क्रीडाकर रही थीं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

सिंचतीः सिंचन्त्यः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

सिञ्चतीः अर्थात् छिड़कती हुई ॥८॥

वीक्ष्य व्रजन्तं गिरिशं सह देव्या वृषस्थितम् । सरसोत्तीर्य वासांसि पर्यधुर्व्रीडिताः स्त्रियः ॥९॥

अन्वयः— देव्या वृष स्थितम् सह व्रजन्त गिरिशं वीक्ष्य व्रीडिताः स्त्रियः सरस उत्तीर्य वासांसि पर्यधुः ॥९॥

अनुवाद— बैल पर सवार होकर पार्वतीजी के साथ जाते हुए शङ्करजी को देखकर लज्जित हुई सभी स्त्रियाँ सरोवर से निकल वस्त्र धारण कर लीं ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

शर्मिष्ठाऽजानती वासो गुरुपुत्र्याः समव्ययत् । स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानीदमब्रवीत् ॥१०॥

अन्वयः— अजानती शर्मिष्ठा गुरुपुत्र्याः वासः समव्ययत् स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानी इदम् अब्रवीत् ॥१०॥

अनुवाद— नहीं पहचान पाने के कारण शर्मिष्ठा ने अपने गुरु पुत्री के वस्त्र को पहन लिया, यह जानकर क्रुद्ध हुई देवयानी ने कहा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अजानती स्वीयं मत्वा गुरुपुत्र्या वासः समव्ययत्पर्यधात् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

नहीं पहचान पाने के कारण अपना समझकर गुरुपुत्री के वस्त्र को शर्मिष्ठा ने पहन लिया ॥१०॥

अहो निरीक्षतामस्या दास्याः कर्म ह्यसांप्रतम् । अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हविरध्वरे ॥११॥

अन्वयः— अहो अस्याः दास्याः असाम्प्रतम् कर्मनिरीक्ष्यताम् अध्वरे हविः शुनीव अस्मद्धार्य धृतवती ॥११॥

अनुवाद— अरे इस दासी के अनुचित कर्म को तो देखो इसने मेरे वस्त्रों को उसी तरह धारण कर लिया जैसे कोई कुतिया यज्ञ में हविष्य को खा ले ॥११॥

भावार्थ दीपिका

असांप्रतमन्याय्यम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

असाम्प्रतम् अर्थात् अनुचित ॥११॥

यैरिदं तपसा सृष्टं मुखं पुंसः परस्य ये । धार्यते यैरिह ज्योतिः शिवः पन्थाश्च दर्शितः ॥१२॥
यान्वन्दन्त्युपतिष्ठन्ते लोकनाथाः सुरेश्वराः । भगवानपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः ॥१३॥

वयं तत्रापि भृगवः शिष्योऽस्या नः पिताऽसुरः। अस्मद्धार्यं धृतवती शूद्रो वेदमिवासती ॥१४॥

अन्वयः— यैः इदं तपसा सृष्टं येपरस्य पुंसः मुखः यैरिह शिवः ज्योतिः धार्यत पन्थाः च दर्शितः लोकनाथाः सुरेश्वराः यान् वन्दन्ति उपतिष्ठन्ते श्रीनिकेतनः पावनः विश्वात्मा भगवानपि, तत्रापि वयं भृगवः अस्याः असुरः पिता नः शिष्यः अस्मद् धार्यं शूद्रो वेदामिव असती धृतवती ॥१२-१४॥

अनुवाद— जिन लोगों ने अपनी तपस्या से इस जगत् की सृष्टि की है, जो लोग परम पुरुष परमात्मा के मुख हैं, जो लोग कल्याणमयी परम ज्योति परमात्मा को अपने हृदय में धारण करते हैं तथा संसार को वैदिक मार्ग का उपदेश करते हैं। जिनकी वन्दना और अराधना बड़े-बड़े लोकपाल इन्द्रादि देवता किया करते हैं, यहीं नहीं लक्ष्मीजी के एकमात्र आश्रय परम पावन विश्वात्मा श्रीभगवान् भी जिनकी स्तुति करते हैं। उन ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हम भृगुवंशी है। इसका पिता असुर है और हमारा शिष्य है। इस पर भी इस दुष्टा ने जैसे शूद्रवेद पढ़ ले उसी तरह इसने हमारा वस्त्र पहन लिया ॥१२-१४॥

भावार्थ दीपिका

अन्यायमेव ब्राह्मणोत्कर्षवर्णनेन व्यनक्ति-यैरिति त्रिभिः-ये ब्राह्मणाः परस्य पुंसो मुखम्, मुखादुत्पन्नत्वेन तृप्तिद्वारत्वेन श्रेष्ठा इत्यर्थः। ज्योतिर्ब्रह्म। पन्था वेदमार्गः। तदेवं ब्राह्मणमात्रमेव तावत्पूज्यं तत्रापि भृगवः। अस्याश्च पिता नः शिष्यः एवं सत्यप्यस्माभिर्धार्यं वास इयमसती धृतवती ॥१२-१४॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण के उत्कर्ष के वर्णन के द्वारा अन्याय को ही **यै० इत्यादि** तीन श्लोकों द्वारा बतताली है। जो ब्राह्मण परमात्मा के मुख हैं। मुख से उत्पन्न होने के कारण तथा परमात्मा की तृप्ति का साधन होने के कारण श्रेष्ठं हैं। ज्योतिः अर्थात् ब्रह्म, । इस तरह सभी ब्राह्मण मुख्य हैं उसमें भृगुवंशी सर्वाधिक पूज्य हैं। इसके पिता हमारे शिष्य हैं। ऐसा होने पर भी हमारे पहनने के वस्त्र को इस दुष्टा ने पहन लिया ॥१२-१४॥

एवं शपन्तीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीमभाषत । रुषा श्वसन्त्युरङ्गीव धर्षिता दष्टदच्छदा ॥१५॥

अन्वयः— एवं शपन्तीं गुरु पुत्रीम् रुषा श्वसन्ती धर्षिता उरगीव दष्टदच्छदा अभाषत ॥१५॥

अनुवाद— इस तरह से गाली देने वाली गुरुपुत्री को चोट खायी हुई नागिन के समान लम्बी श्वास लेती हुई शर्मिष्ठा अपने ओष्ट को दाँत से दबाकर कहने लगी ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसे बहु भिक्षुकि । किं न प्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान्बलिभुजो यथा ॥१६॥

अन्वयः— भिक्षुकि आत्मवृत्तम् अविज्ञाय बहु कत्थसे किं अस्माकं गृहान् बलिभुजः यथा न प्रतीक्षसे ?॥१६॥

अनुवाद— अरे ! भिखारिन अपनी स्थिति को जाने बिना मुझसे बहुत बोल रही हो। क्या कौए और कुत्ते के समान तुम भी हमारे घरों की ओर नहीं देखती है ?॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

एवंविधैः सुपरुषैः क्षिप्त्वाचार्यसुतां सतीम् । शर्मिष्ठा प्राक्षिपत्कूपे वास आदाय मन्युना ॥१७॥

अन्वयः— एवं विधैः सुपरुषैः सतीं आचार्य सुतां क्षिप्त्वा शर्मिष्ठा मन्युना वासः आदाय कूपे प्राक्षिपत् ॥१७॥

अनुवाद— इस प्रकार से गुरुपुत्री सती देवयानी को अत्यन्त कठोर बातें सुनाती हुई शर्मिष्ठा के मारे उसके वस्त्रों को लेकर देवयानी को कुएँ में धकेल दी ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिर्मृगयां चरन् । प्राप्तो यदृच्छया कूपे जलार्थी तां ददर्श ह ।।१८।।

अन्वयः— तस्यां स्वगृहं गतायां मृगयां चरन् ययातिः यदृच्छया जलार्थी कूपे प्राप्तः तां ददर्श ।।१८।।

अनुवाद— शर्मिष्ठा के अपने घर चले जाने पर आखेट करते हुए ययाति जल के लिए कुएँ पर अचानक आ गये और देवयानी को कुएँ में देखे ।।१८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१८।।

दत्त्वा स्वमुत्तरं वासस्तस्यै राजा विवाससे । गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः ।।१९।।

अन्वयः— विवाससे तस्यै स्वमुत्तरं वासः दत्त्वा पाणिना पाणिं गृहित्वा दया पर उज्जहार ।।१९।।

अनुवाद— नग्न देवयानी को अपना उत्तरीय वस्त्र देकर अपने हाथ से उसके हाथ को पकड़कर दयालु राजा ने उसको कुएँ से बाहर निकाला ।।१९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१९।।

तं वीरमाहौशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा । राजंस्त्वया गृहीतो मे पाणिः परपुरंजयः ।।२०।।

अन्वयः— तं वीरम् औशनसी प्रेमनिर्भर गिरा आह परपुरंजय राजन् त्वया मे पाणिः गृहीतः ।।२०।।

अनुवाद— राजा ययाति से देवयानी ने प्रेमभरी वाणी में कहा वीर शिरोमणि आपने मेरा हाथ पकड़ लिया है ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

हस्तग्राहो परो मा भूद्गृहीतायास्त्वया हि मे । एष ईशकृतो वीर संबन्धो नौ न पौरुषः ।।२१।।

अन्वयः— त्वया गृहीतायाःहि मे परः हस्तग्राहो माभूत् वीर एषः नौ ईशकृतः संबन्धः पौरुषः न ।।२१।।

अनुवाद— राजन् आज आपने मेरा हाथ पकड़ लिया है अतएव अब मेरे इस हाथ को दूसरा कोई मत पकड़े, हमदोनों का यह संबन्ध परमात्मकृत है पुरुषकृत नहीं है ।२१।।

भावार्थ दीपिका

निषिद्धोऽयं प्रतिलोमसंबन्ध इति चेत्तत्राह-एष इति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि यह प्रतिलोम संबन्ध निषिद्ध है तो इस पर देवयानी ने **एष० इत्यादि श्लोक कहा ।।२१।।**

यदिदं कूपलग्नाया भवतो दर्शनं मम । न ब्राह्मणो मे भविता हस्तग्राहो महाभुजा ।।
कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापाद्यमशपं पुरा ।।२२।।

अन्वयः— कूपलग्नायाः मम यद भवतः दर्शनं हे महाभूत ! मे ब्राह्मणः हस्तग्राहः न भविता, यम् अहं पुरा अशपम् कचस्य बार्हपत्यस्य शापः ।।२२।।

अनुवाद— कुएँ में गिरी हुई मुझको जो आपका दर्शन प्राप्त हुआ उसका कारण है कि मेरा हाथ पकड़ने वाला कोई ब्राह्मण नहीं हो सकेगा। यह जिसको मैने पहले शाप दे दिया उस बृहस्पति के पुत्र कच का मुझको शाप दिया है।।२२।।

भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणमेव त्वं वृणीहि किमनेनाग्रहेणेति चेत्तत्राह-न ब्राह्मण इति । बृहस्पतेः सुतः कचः शुक्रान्मृतसंजीवनीं विद्यामध्यगात्, तदा च देवयानी तं पतिं चकमे, स च गुरुपुत्री मम पूज्येति न तामुदवहत, ततश्च कुपिता सती तवेयं विद्या निष्फला भवत्विति तं शशाप, स च तव ब्राह्मणः पतिर्न भवेदिति तां शशाप । तदेतदाह-यमहमशपं तस्य शापात् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तुम ब्राह्मण का वरण करो इस अनुचित संबन्ध से क्या लाभ है ? इस पर देवयानी

ने कहा **न ब्राह्मणः इत्यादि** अर्थात् बृहस्पति के पुत्र कच ने शुक्राचार्य से मृत संजीवनी विद्या को प्राप्त किया। उस समय देवयानी उसको अपना पति बनाना चाही । उसने कहा कि तुम मेरे गुरु की पुत्री हो, मेरी पूज्य हो अतएव उसने देवयानी से विवाह नहीं किया । उस समय क्रुद्ध होकर देवयानी ने उसे शाप दिया कि तुम्हारी यह विद्या सफल नहीं होगी, इस पर कच ने भी देवयानी को शाप दिया कि तुम्हारा पति ब्राह्मण नहीं होगा । उसी को यहाँ उसने कहा है— **यमहमशपम् तस्यशापात्** ।।२२।।

ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहृतमात्मनः । मनस्तु तद्गतं प्रतिजग्राह तद्वचः ।।२३।।

अन्वयः— ययाति अनभिप्रेतं दैवोपहृतम् आत्मनः मनः तु तद्गतं बुद्धवा तद्वचः जग्राह ।।२३।।

अनुवाद— राजा ययाति को यह संबन्ध अभिप्रेत नहीं था किन्तु भाग्य ने उनको यह उपहार प्रदान किया है और अपने मन को भी उसकी ओर आकृष्ट देखकर ययाति ने देवयानी की बात को मान लिया ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

अशास्त्रीयत्वादनभिप्रेतमपि दैवेनोपहृतं प्रापितं बुद्ध्वा तद्गतं तस्यां सकामं स्वं मनश्च बुद्धवा नह्यधर्मे मदीयं मनः प्रविशेदिति तस्या वचः प्रतिजग्रहाङ्गीकृतवान् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

शास्त्रीय न होने के कारण अनभिप्रेत होने पर भी भाग्य प्रदत्त उपहार जानकर और देवयानी में अपने सकाम मन को भी जान कर मेरा मन अधर्म में नहीं लग सकता है, यह सोचकर, देवयानी की बात को ययाति ने स्वीकार कर लिया ।।२३।।

गते राजनि सा वीरे तत्र स्म रुदती पितुः । न्यवेदयत्ततः सर्वमुक्तं शर्मिष्ठया कृतम् ।।२४।।

अन्वयः— वीरे राजनि गते रुदती सा तत्र पितुः न्यवेदयत् ततः शर्मिष्ठया कृतं सर्वमुक्तम् ।।२४।।

अनुवाद— वीर शिरोमणि राजा के चले जाने पर देवयानी अपने पिता के पास जाकर रोती हुई सारी बातें कही । तथा शर्मिष्ठा ने जो कुछ किया था उसे भी कही ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

शर्मिष्ठासंबन्धोऽपि दैववशादेवाभवदिति दर्शयन्नाह-गते राजनीति नवभिः उक्तं भिक्षुकीत्यादि । कृतं कूपे प्रक्षेपादिति।।२४।।

भाव प्रकाशिका

शर्मिष्ठा का संबन्ध भी दैववशात् ही हो गया इस बात को **गते राजानि० इत्यादि** नव श्लोकों से कहा गया है। उक्तम् अर्थात् शर्मिष्ठा ने जो **भिक्षुकि इत्यादि** कहा था और कृतम् अर्थत् शर्मिष्ठा ने जो कुएँ में ढकेल दिया था।।२४।।

दुर्मना भगवान्काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन् । स्तुवन्वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात् ।।२५।।

अन्वयः— दुर्मनाः भगवान् काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन कापोतीं वृत्तिं च स्तुवन् दुहित्रा स पुरात् ययौ ।।२५।।

अनुवाद— शर्मिष्ठा के व्यवहार से भगवान् शुक्राचार्य का भी मन उदास हो गया और वे पौरोहित्य वृत्ति की निन्दा करते हुए एवं अपनी कपोती वृत्ति की प्रशंसा करते हुए अपनी पुत्री के साथ नगर से निकल गये ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

कापोतीमुञ्छवृत्तिम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

कपोतीवृति अर्थात् उञ्छवृत्ति ।।२५।।

वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम् । गुरुं प्रसादयन्मूर्ध्ना पादयोः पतितः पथि ॥२६॥

अन्वयः— वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम् गुरुम् मूर्ध्ना प्रसादयन् पथि पादयोः पतितः ॥२६॥

अनुवाद— वृषपर्वा को जब इस बात का पता चला तो वे गुरुदेव का ही देवताओं को विजयी न बना दें इस भय से रास्ते में अपने गुरु को प्रसन्न करते हुए उनके चरणों पर गिर पड़े ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्यनीका देवास्ते विवक्षिता जयं प्रापणीया इत्यभिप्रेतं यस्य तथाभूतं ज्ञात्वा । प्रत्यनीकानां विवक्षितमिति वा ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं को आचार्य कहीं विजयी न बनायें अथवा देवताओं के ही अभिप्रेत अर्थ को जानकर ॥२६॥

क्षणार्धमन्युर्भगवाञ्छिष्यं व्याचष्ट भार्गवः । कामोऽस्याः क्रियतां राजन्नैनां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥२७॥

अन्वयः— क्षणार्धमन्युः भगवान् भार्गवः शिष्यं व्याचष्ट राजन् अस्याः कामं क्रियताम् एनां त्यक्तुं न उत्सहे ॥२७॥

अनुवाद— भगवान् शुक्राचार्य का क्रोध तो आधे क्षण तक रहने वाला था, उन्होंने शिष्य वृषपर्वा से कहा राजन् इसकी इच्छा पूरी करें इसको मैं नहीं छोड़ सकता हूँ ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

तथेत्यवस्थिते प्राह देवयानी मनोगतम् । पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा यातु मामनु ॥२८॥

अन्वयः— तथा इति अवस्थिते देवयानी मनोगतम् प्राह पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा माम् अनुयातु ॥२८॥

अनुवाद— वृषषर्वा के ठीक है कहने पर देवयानी अपने मन की बात कही पिताजी मुझे जिस किसी को दे दें और मैं जहाँ कहीं जाऊँ वहाँ शर्मिष्ठा अपनी सहेलियों के साथ मेरी सेवा के लिए चले ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

सानुगा सखीसहिता शर्मिष्ठा मामनु यात्विति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

सखियों के साथ शर्मिष्ठा मेरी सेवा के लिए जाय ॥२८॥

स्वानां तत्संकटं वीक्ष्य तदर्थस्य च गौरवम् । देवयानीं पर्यचरत्स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥२९॥

अन्वयः— स्वानां तत्संकटं तदर्थस्य च गौरवं वीक्ष्य स्त्रीसहस्रेण दासवत् पर्यचरत् ॥२९॥

अनुवाद— शर्मिष्ठा अपने परिवार वालों के संकट और उनके कार्य गौरव देखकर अपनी एक हजार सखियों के साथ दासी के समान देवयानी की सेवा करने लगी ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मान्निर्गताच्छुक्रात्संकटं वीक्ष्य । तत्तस्मादवस्थितादर्थस्य प्रयोजनस्य गौरवं च वीक्ष्य ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

वृषपर्वा की नगरी से शुक्राचार्य के निकल जाने पर होने वाले संकट तथा और उस बात के प्रयोजन की गरिमा को देखकर ॥२९॥

नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठयोशनाः । तमाह राजन् शर्मिष्ठामाधास्तल्पे न कर्हिचित् ॥३०॥

अन्वयः— नाहुषाय शर्मिष्ठया सह सुतां दत्त्वा उशनाः तम् आह राजन् शर्मिष्ठाम् तल्पे कर्हिचित् न अधाः ॥३०॥

अनुवाद— नहुष के पुत्र ययाति को शर्मिष्ठा के साथ अपनी पुत्री को प्रदान करके शुक्राचार्य ने कहा राजन् कभी शर्मिष्ठा की शय्या पर मत जाना ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तल्पे नाधाः । नोपगच्छेरित्यर्थः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

तल्पे नाधाः अर्थात् शय्या पर मत जाना ।।३०।।

विलोक्यौशनसीं राजन् शर्मिष्ठा सप्रजां क्वचित् । तमेव वव्रे रहसि सख्याः पतिमृतौ सती ।।३१।।

अन्वयः— राजन् औशनसीं स प्रजां वीक्ष्य शर्मिष्ठा तमेव सख्याः पतिम् ऋतौ रहसि वव्रे ।।३१।।

अनुवाद— राजन् ! परीक्षित् ! देवयानी को पुत्रवती देखकर एक दिन शर्मिष्ठा ने भी अपने ऋतुकाल में देवयानी के पति ययाति से एकान्त में सहवास की याचना की ।।३१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३१।।

राजपुत्र्यार्थितोऽपत्ये धर्मं चावेक्ष्य धर्मवित् । स्मरन् शुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्यपद्यत ।।३२।।

अन्वयः— राजपुत्र्या अपत्ये अर्थितः धर्मं च अवेक्ष्य शुक्रवचः स्मरन् काले दिष्टम् एव अभ्ययद्यत ।।३२।।

अनुवाद— राजकुमारी शर्मिष्ठा के द्वारा सन्तान के लिए प्रार्थना किए जाने पर राजा ययाति उसकी प्रार्थना को धर्मानुकुल जानकर श्रीशुक्राचार्य की बात याद रहने पर भी यह निश्चय किए कि प्रारब्ध के अनुसार जो होगा उसे देखा जायेगा ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

अपत्यार्थमृतुकाले प्रार्थनात्तस्याः कामपूरणं धर्ममवेक्ष्य शुक्रस्य वचश्च स्मरन् दिष्टं दैवप्रापितमेव तत्सङ्गमभ्यपद्यत नतु कामत इत्यर्थः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

सन्तान के लिए ऋतुकाल में प्रार्थना करने के कारण उसकी कामना की पूर्ति को धर्मानुकूल देखकर शुक्राचार्य की बात याद रहने पर भी दैवात् प्राप्त उसके साथ राजा ने संगम किया कामवशात् नहीं ।।३२।।

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत । द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।।३३।।

अन्वयः— देवयानी यदुं च तुर्वसुं चैव व्यजायत वार्षपर्वणी शर्मिष्ठा द्रुह्युं अनुं च पुरुं च ।।३३।।

अनुवाद— देवयानी के दो पुत्र हुए यदु और तुर्वसु तथा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा के तीन पुत्र हुए द्रुह्यु, अनु और पुरु ।।३३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३३।।

गर्भसंभवमासुर्या भर्तुर्विज्ञाय मानिनी । देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्च्छिता ।।३४।।

अन्वयः— आसुर्या गर्भसंभवं भर्तुः विज्ञाय मानिनी देवयानी क्रोधविमूर्छिता पितुर्गेहं ययौ ।।३४।।

अनुवाद— शर्मिष्ठा का भी गर्भ मेरे पति से ही हुआ है इस बात को जानकर मानिनी देवयानी क्रोध से व्याकुल होकर अपने पिता के घर चली गयी ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

आसुर्याः शर्मिष्ठायाः । भर्तुः सकाशात् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

आसुर्याः अर्थात् शर्मिष्ठा का । भर्तु सकाशात् मेरे पति से ही ।।३४।।

प्रियामानुगतः कामी वचोभिरुपमन्त्रयन् । न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः ॥३५॥

अन्वयः— प्रियाम् अनुगतः कामी वचोभिः उपमन्त्रयन् पादसंवाहनादिभिः प्रसादयितुं न शेके ॥३५॥

अनुवाद— प्रियतमा के पीछे-पीछ जाने वाले कामी ययाति अनुनय विनय के द्वारा तथा चरण दवाने आदि के द्वारा भी उसको नहीं प्रसन्न कर सके ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

उपमन्त्रयन्प्रसादयन् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

उपमन्त्रयन् अर्थात् प्रसन्न करके भी ॥३५॥

शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामानृतपूरुष । त्वां जरा विशतां मन्द विरूपकरणी नृणाम् ॥३६॥

अन्वयः— कुपितः शुक्रस्तमाह स्त्रीकामानृतपूरुष मन्दत्वां नृणाम् विरूपकरणी जराविशताम् ॥३६॥

अनुवाद— क्रुद्ध होकर शुक्राचार्य ने ययाति से कहा स्त्रीलम्पट मृषाभाषी मन्द पुरुष मनुष्यों को कुरूप वना देने वाली बुढापा तुम्हारे शरीर में प्रवेश कर जाय ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

विकृतं रूपं करोतीति तथा ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

रूप को विकृत बना देने वाली ॥३६॥

ययातिरुवाच

अतृप्तोऽस्म्यद्य कामानां ब्रह्मन्दुहितरि स्म ते । व्यत्यस्यतां यथाकामं वयसा योऽभिधास्यति ॥३७॥

अन्वयः— ब्रह्मन् ते दुहितरि अद्य कामानाम् अतृप्तोऽस्मि यः वयसा अभिधास्यति यथाकामं व्यत्यस्मताम् ॥३७॥

राजा ययाति ने कहा

अनुवाद— ब्रह्मन् आपकी पुत्री के साथ विषय भोग करने से मेरे तृप्ति नहीं हुई है, इस पर शुक्राचार्य ने कहा जो तुम्हारी बुढापा अपनी इच्छा से स्वीकार करे उसके साथ अपनी बुढ़ापा को बदल लो ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

ते दुहितरि कामैरद्याप्यतृप्तोऽस्मि, कामानां भोगैरिति वा । शुक्र आह-तर्हि योऽभिधास्यत्यभितो धारयिष्यति तस्य वयसा यथाकामं व्यत्यस्यतां यथेच्छं जरा व्यत्ययं यातु । व्यत्ययं नीयतामिति वा । यद्वा व्यत्यसयेति छेदः । तां जरां व्यत्यस्य व्यत्यासं गमयेत्यर्थः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

आपकी पुत्री के साथ भोग विलास से अभी मैं तृप्त नहीं हुआ हूँ । शुक्राचार्य ने कहा जो तुम्हारी बुढापा को अच्छी तरह से धारण करे उसकी अवस्था से बदल लो । व्यस्य इस तरह का पदच्छेद करने पर अर्थ होगा उस बुढाप को बदल लो ॥३७॥

इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत। यदो तात प्रतीच्छेमां जरां देहि निजं वयः ॥३८॥
मातामहकृतां वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम्। वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः ॥३९॥

अन्वयः— इति लब्धव्यवस्थानः ज्येष्ठं पुत्रमवोचत तात यदो मातामहकृतां इमां जरां प्रतीच्छ निजं वयः देहि, वत्स विषयेषु अहम् तृप्तो नास्मि । भवदीयेन वयसा कतिपयाः समाः रंस्ये ॥३८-३९॥

अनुवाद— शुक्राचार्य से इस प्रकार की व्यवस्था प्राप्त करके ययाति ने अपने बड़े पुत्र यदु से कहा वत्स! तुम्हारे नाना के द्वारा प्रदत्त मेरी इस बुढ़ापे को तुम स्वीकार करके मुझे अपनी अवस्था प्रदान कर दो क्योंकि विषयभोगों से मेरी तृप्ति नहीं हुई है । तुम्हारी अवस्था में अभी मैं कुछ वर्षों तक विषयभोग करूँगा ॥३८-३९॥

भावार्थ दीपिका

इति लब्धं व्यवस्थानं जराया व्यवस्थितिर्येन सः ॥३८-३९॥

भाव प्रकाशिका

बुढापा के विषय में इस तरह की व्यवस्था प्राप्त किए हुए ययाति ने ॥३८-३९॥

यदुरुवाच

नोत्सहे जरसा स्थातुमन्तरा प्राप्तया तव । अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पूरुषः ॥४०॥

अन्वयः— अन्तरा प्राप्तया तव जरसा स्थातुं नोत्सहे ग्राम्यं सुखं अविदित्वा पुरुषः वैतृष्ण्यं नैति ॥४०॥

यदु ने कहा

अनुवाद— पिताजी बीच मे ही प्राप्त हुई आपकी बुढापे को लेकर मैं जी भी नहीं सकता हूँ, ग्राम्य सुखों को भोगे बिना पुरुष को उससे विराग नहीं होता है ॥४०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४०॥

तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत । प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्ये नित्यबुद्धयः ॥४१॥

अन्वयः— भारत पित्रा चोदितः तुर्वसुः द्रुह्युः अनुश्च अधर्मज्ञाः अनित्ये नित्यबुद्धयः प्रत्याचख्युः ॥४१॥

अनुवाद— अवस्था बदलने के लिए पिता के द्वारा प्रेरित किये जाने पर तुर्वसु द्रुह्यु और अनु ये तीनों पुत्र धर्मज्ञ नहीं होने के कारण तथा अनित्य जवानी में नित्यता की बुद्धि होने के कारण पिता से बुढापा लेने से इनकार कर दिया ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

यतो न धर्मज्ञाः । अनित्ये च यौवने नित्यबुद्धयः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

धर्मज्ञ नहीं होने और अनित्य युवावस्था में नित्यत्व की बुद्धि होने के कारण ॥४१॥

अपृच्छत्तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम् । न त्वमग्रजवद्वत्स मां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥४२॥

अन्वयः— वयसा ऊनं गुणाधिकम् पुरुं तनयम् अपृच्छत् वत्स ! त्वम् अग्रजवत् मां प्रत्याख्यातुम् नार्हसि ॥४२॥

अनुवाद— राजा ययाति अपने सबसे छोटे तथा सबों से अधिक गुणवान पुत्र पुरु से कहा वत्स तुम अपने बड़े भाइयों के समान इनकार मत कर देना ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

त्वं जरां किं ग्रहीष्यसी त्यपृच्छत् । प्रत्याख्यानं मा कृथा इत्याह-न त्वमिति ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

न त्वम्० इत्यादि श्लोक से राजा ययाति ने कहा क्या तुम मेरी बुढापा लेलो अपने भाइयों के समान इन्कार मत कर देना ॥४२॥

पूरुरुवाच

को नु लोके मनुष्येन्द्र पितुरात्मकृतः पुमान् । प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद्विन्दते परम् ॥४३॥

अन्वयः— हे मनुष्येन्द्र आत्मकृतः पितुः को नु लोके प्रतिकर्तुं क्षमः यस्य प्रसादात् परम् विन्दते ॥४३॥

पूरु ने कहा

अनुवाद— हे राजेन्द्र ! शरीर प्रदान करने वाले पिता के उपकारों का बदला चुका सकने में संसार का कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है । पिता की कृपा से तो मनुष्य परम पद को भी प्राप्त कर सकता है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

आत्मकृतः स्वदेहकर्तुः प्रत्युपकारं कर्तुं को नु क्षमः ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

शरीर प्रदान करने वाले अपने पिता का बदला चुकाने में कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है ? अर्थात् कोई नहीं॥४३॥

उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात्प्रोक्तकारी तु मध्यमः । अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चरितं पितुः ॥४४॥

अन्वयः— उत्तमः पितुः चिन्तितं कुर्यात् प्रोक्तकारी तु मध्यमः अधमः अश्रद्धया कुर्यात् अकर्ता पितुः उच्चरितः॥४४॥

अनुवाद— उत्तम पुत्र तो वह है जो पिता के मन की बात को कर दे । मध्यम वह है जो पिता के कहने पर उसे श्रद्धा पूर्वक करे । अधम पुत्र वह है जो पिता की आज्ञा का पालन अश्रद्धा पूर्वक करता है और पिता की आज्ञा का नहीं पालन करने वाला तो पिता के मल-मूत्र के समान है ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

तथापि पितुर्यच्चिन्तितं कुर्यात्स उत्तमः । यस्तु प्रोक्तकारी स मध्यमः । यस्त्वश्रद्धया कुर्यात्सोऽधमः । अकर्ता पितुरुच्चरितं पुरीषप्रायः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

पिता के चिन्तित कार्य को करने वाला उत्तम पुत्र है, पिता के कहने पर करने वाला मध्यम है, पिता की आज्ञा को अश्रद्धा पूर्वक करने वाला अधम है और नहीं करने वाला तो पिता के मल के समान है ॥४४॥

इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरां पितुः । सोऽपि तद्वयसा कामान्यथावज्जुजुषे नृप ॥४५॥

अन्वयः— नृप इति प्रमुदितः पूरुः पितुः जरां प्रत्यगृहणात् सोऽपि तदवयसा यथावत् कामान् जुजुषे ॥४५॥

अनुवाद— इस तरह से पूरु ने अपने पिता की बुढापा को प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया और राजा ययाति ने भी यथायोग्य भोगों का सेवन किया ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

जुजुषे सेवितवान् ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

जुजुषे अर्थात् सेवन किया ॥४५॥

सप्तद्वीपपतिः सम्यक् पितृवत्पालयन्प्रजाः । यथोपजोषं विषयाञ्जुजुषेऽव्याहतेन्द्रियः ॥४६॥

अन्वयः— सप्तद्वीपपतिः पितृवत् सम्यक् प्रजाः पालयन् अव्याहतेन्द्रियः यथोपजोषं विषयान् जुजुषे ॥४६॥

अनुवाद— सातो द्वीपों के स्वामी राजा ययाति अपने पिता के समान प्रजाओं का अच्छी तरह से पालन करते थे । उनकी इन्द्रियों में शक्ति थी अतएव अपने मनोऽनुकूल वे विषयों का सेवन किए ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

यथोपजोषं यथाप्रीति जुजुषे ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

अपनी इच्छा के अनुसार सेवन किए ॥४६॥

देवयान्यप्यनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः । प्रेयसः परमां प्रीतिमुवाह प्रेयसी रहः ॥४७॥

अन्वयः— प्रेयसी देवयानी अपि अनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः रहः परमां प्रीतिम् उवाह ॥४७॥

अनुवाद— राजा ययाति की प्रियतमा देवयानी भी दिनानुदिन मन, वाणी, देह और वस्तुओं के द्वारा अपने प्रियतम के प्रति अत्याधिक प्रेम करती थी ॥४७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४७॥

अयजद्यज्ञपुरुषं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः । सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम् ॥४८॥

अन्वयः— भूरिदक्षिणै सर्वदेवमयं यज्ञपुरुषं सर्ववेदमयं हरिम् अयजत् ॥४८॥

अनुवाद— महाराज ययाति ने बहुत अधिक दक्षिणा वाले यज्ञों के द्वारा सर्वदेवमय यज्ञ पुरुष सर्ववेदमय दिव्यगुण सम्पन्न श्रीहरि का यजन किया ॥४८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४८॥

यस्मिन्निदं विरचितं व्याम्नीव जलदावलिः । नानेव भाति नाभाति स्वप्नमायामनोरथः ॥४९॥

अन्वयः— व्याम्नि जलदावलिः इव इदम् यस्मिन् विरचितम् स्वप्नमायामनोरथ इव नाना इव भाति, न आमाति॥४९॥

अनुवाद— जिस तरह आकाश में मेघ दल के दल दिखते और कभी नहीं भी दिखते हैं उसी तरह परमात्मा के स्वरूप में यह जगत्, स्वप्न, माया और मनोरथ के समान कल्पित है, अतएव यह कभी अनेक नाम रूपों के रूप में प्रतीत होता है और कभी नहीं प्रतीत होता है ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

नानेव भाति यावदिन्द्रियप्रवृत्तिः । तदुपरमे नाभाति । स्वप्नमायाभ्यां सहितो मनोरथ इवेत्यर्थः ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

जब तक इन्द्रियों में प्रवृत्ति बनी रहती है तब तक यह जगत् नाना रूपों में प्रतीत होता है, इन्द्रियों के उपरत हो जाने पर स्वप्न तथा माया के साथ मनोरथ के समान नहीं प्रतीत होता है ॥४९॥

तमेव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयम् । नारायणमणीयांसं निराशीरयजत्प्रभुम् ॥५०॥

अन्वयः— तमेव गुहाशयम् अणीयांसं नारायणम् वासुदेवं प्रभुम् हृदि विन्यस्य निराशीः अयजत् ॥५०॥

अनुवाद— उन्ही, हृदय गुफा में विद्यमान रहने वाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म वासुदेव भगवान् नारायण को अपने हृदय में स्थापित करके निष्काम होकर सबों के स्वामी श्रीहरि की आराधना किए ॥५०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५०॥

एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनः सुखम् । विदधानोऽपि नातृप्यत्सार्वभौमः कदिन्द्रियैः ॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अन्वयः— एवम् वर्ष सहस्राणि कदिन्द्रियै मनः षष्ठै मनः सुखं विदधानोऽपि न अतृप्यत ॥५१॥

अनुवाद— इस तरह एक हजार वर्ष तक अपनी उच्छृंखल इन्द्रियों के साथ मन को जोड़कर राजा ययाति अपने मनोऽनुकूल सुखों को भोगे फिर भी उनकी तृप्ति नहीं हुई ॥५१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के अठारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

मनः सुखं कामभोगम् । कदिन्द्रियैः कुत्सितैः पराद्मुखैरिन्द्रियैः ॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां अष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

मनःसुखम् अर्थात् विषयों का भाग कदिन्द्रियैः अर्थात् बहिमुख इन्द्रियों के द्वारा ॥५१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के अठारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१८।।

◆

उन्नीसवाँ अध्याय

ययाति का गृहत्याग

श्रीशुक उवाच

स इत्थमाचरन्कामांस्त्रैणोऽपह्नवमात्मनः । बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ।।१।।

अन्वयः— सः स्त्रैणः इत्थं प्रियायै कामान् आचरन् आत्मनः अपह्नवं बुद्ध्वा निर्विण्णः एतां गाथाम् अगायत ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— स्त्री परायण राजा ययाति इस प्रकार अपनी प्रियतमा देवयानी के प्रिय कामोपभोग करते रहे जब उन्हें इस अपने अधः पतन का पता चला तो इनको वैराग्य हो गया उन्होने अपनी पत्नी देवयानी से इस गाथा को सुनाया ।।१।।

भावार्थ दीपिका

ऊनविंशे ययातिः स्वं चेष्टितं नन्वजोपमम् । देवयानीं समाश्राव्य विरक्तो मुक्तिमाप्तवान् । भुक्तभोगामजां हास्यन्नजवद्वृत्तमात्मनः । विडम्बयन्प्रियामाह निर्वेदयितुमात्मवान् । कामानाचरन्नुपभुञ्जानः । गाथामितिहासम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

उन्नीसवें अध्याय में ययाति अपने बकरे के समान कर्म को देवयानी को सुनाकर संसार से विरक्त हो गये और मुक्ति को प्राप्त कर लिए । भुक्तभोगा अजा (प्रकृति) का परित्याग करते हुए अज बकरे के समान अपने व्यवहार का अनुपालन करते हुए पत्नी को भी संसार से उदासीन करने के लिए आत्मज्ञ ययाति ने देवयानी से कहा । कामानाचरन् भोगों का उपभोग करते हुए । गाथा अर्थात् इतिहास को ।।१।।

शृणु भार्गव्यमुं गाथां मद्विधाचरितां भुवि । धीरा यस्यानुशोचन्ति वने ग्रामनिवासिनः ।।२।।

अन्वयः— हे भार्गवि भुविमद्विधाचरितां । अमुं गाथां शृणु वने ग्राम निवासिनः धीराः यस्यानुशोचन्ति ।।२।।

अनुवाद— हे भार्गवनन्दिनि ! संसार में मेरे ही समान आचरण करने वाले लोगों के विषय में गाथा है। ग्राम में रहने वाले धीर पुरुष वन में जाकर यह सोचते हैं कि इन लोगों का कैसे कल्याण होगा ।।२।।

भावार्थ दीपिका

मद्विधेन मत्सदृशेनाचरितामनुष्ठिताम् । मद्विधस्याचरितं यस्यामिति वा । यस्य ग्रामनिवासिनः कामिनो मद्विधस्याचरितं वने स्थिता धीराः शोचन्ति तस्य गाथां शृणु ।।२।।

भाव प्रकाशिका

मेरे ही समान कर्मानुष्ठान करने वाले पुरुषों तथा स्त्रियों के विषय में ग्रामवासी कामी पुरुष वन में रहने वाले ज्ञानी पुरुष शोचते हैं उस गाथा को तुम सुनो ।।२।।

बस्त एको वने कश्चिद्विचिन्वन्प्रियमात्मनः । ददर्श कूपे पतितां स्वकर्मवशगामजाम् ।।३।।

अन्वयः— कश्चित् एकः बस्त वने आत्मनः प्रियम् विचिन्वन् स्वकर्मवशगाम् अजाम् कूपे पतितां ददर्श ।।३।।

अनुवाद— वन में रहने वाला एक बकरा अपने प्रिय का अन्वेषण करता हुआ अपने कर्मों के फलस्वरूप कुएँ में गिरी हुए एक बकरी को देखा ।।३।।

भावार्थ दीपिका

आत्मानमनुलक्ष्याह-बस्त इति । प्रियामनुलक्ष्याह-अजामिति । वने संसारे । प्रियं विषयम् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

अपने को लक्षित करते हुए वस्त (बकरा) इत्यादि कहा । अपनी प्रियतमा को लक्षित करते हुए अजा (बकरी) कहा । बने अर्थात् संसार में प्रिय विषय का ।।३।।

तस्या उद्धरणोपायं बस्तः कामी विचिन्तयत् । व्यधत्त तीर्थमुद्धृत्य विषाणाग्रेण रोधसी ।।४।।

अन्वयः— तस्य उद्धरणोपायं विचिन्त्यत् । विषाणाग्रेण रोधसी उदधृत्य तीर्थं व्यधत्त ।।४।।

अनुवाद— वह कामी बकरा उस बकरी को कुएँ से बाहर निकालने का उपाय सोचने लगा, उसने अपने सींग से कुएँ के पास की मिट्टी को खोदकर रास्ता बना दिया ।।४।।

भावार्थ दीपिका

रोधसी तटे विषाणाग्रेण मृदादिकमुद्धृत्य तीर्थं निर्गमाय मार्गं व्यधत्त ।।४।।

भाव प्रकाशिका

उस कुएँ के पास की मिट्टी को अपनी सींग से खोदकर तीर्थम् अर्थात् निकलने के मार्ग को बना दिया।।४।।

सोत्तीर्य कूपात्सुश्रोणी तमेव चकमे किल । तया वृतं समुद्वीक्ष्यं बह्वयोऽजाः कान्तकामिनीः।।५।।
पीवानं श्मश्रुलं प्रेष्ठं मीढ्वांसं याभकोविदम् । स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्धनः ।।
।।६।।
रेमे कामग्रहग्रस्त आत्मानं नावबुध्यत

अन्वयः— सा सुश्रोणी कूपात् उत्तीर्य तमेव किलचकमे तयावृत्तं समुद्वीक्ष्य बह्वयः कान्तकामिनी अजाः पीवानं श्मश्रुलं प्रेष्ठं मीढ्वांसं याभकोविदम् (तमेव पतिं चक्रुः) स एक अजवृषः तासां बह्वीनां रतिवर्धनः कामग्रहग्रस्तः रेमे आत्मानं नावबुध्यत् ।।५-६।।

अनुवाद— वह सुन्दरी बकरी कुएँ से निकलकर उसी बकरे को अपने पति के रूप में वरण कर ली । उस बकरी के द्वारा पति के रूप में वृत्त बकरे को देखकर बहुत सी पति चाहने वाली बकरियों ने भी उसे पति

बनाना चाहा । दाढ़ी और मूंछ से मण्डित बकरा हृष्ट-पुष्ट जवान, बकरियों को सुख देने वाला विहार कुशल और प्यारा था । दूसरी बकरियों ने जब देखा कि कुएं में गिरी हुई बकरी ने उसे अपना पति बना लिया है तब उन सभी बकरियों ने भी उसे अपना पति बना लिया, क्योंकि वे सब तो पहले से ही पति को प्राप्त करना चाहती थीं, उस बकरे के सिर कामरूपी ग्रह सवार हो गया, वह अकेले ही उन सभी बकरियों के साथ विहार करने लगा और उसी में वह अपनी आत्मा को भी भूल गया ।।५-६।।

भावार्थ दीपिका

बह्व्य इति शर्मिष्ठाप्रमुखाः कामयामासुः । कान्तं प्रति कामिनीः कामवत्यः । पीवानं पुष्टम् । श्मश्रुलं श्मश्रुबहुलम्, रतिसमर्थमित्यर्थः । मीढ्वांसं रेतः सेक्तारम् । याभे कोविदमभिज्ञम् । अत एव प्रेष्ठम् । नावबुध्यत नान्वबुध्यत ।।५-६।।

भाव प्रकाशिका

बह्व्यः अर्थात् शर्मिष्ठा इत्यादि भी उसी को पति बनाना चाहीं । कान्तकामिनीः अर्थात् पति को चाहने वाली। **पीवानम्** अर्थात् पुष्ट । **श्मश्रुलम्** अर्थात् दाढ़ी मूंछ वाला **रति समर्थम्** प्रेम करने में समर्थ **मीढवांसम्** अर्थात् बकरियों को सुख देने वाला, **याभकोविदम्** विहार कुशल, अतएव प्रिय । नावबुध्यत अर्थात् भूल गया ।।५-६।।

तमेव प्रेष्ठतमया रममाणमजान्यया । विलोक्य कूपसंविग्ना नामृष्यद्बस्तकर्म तत् ।।७।।

अन्वयः— प्रेष्ठतमया अनया अजया रममाणं तम् विलोक्य कूपसंविग्ना तत बस्तकर्म नामृष्यत् ।।७।।

अनुवाद— दूसरी प्रियतमा बकरी के साथ रमण करते हुए उस बकरे को देखकर कुएँ से निकाली गयी बकरी उस बकरे के कर्म को सहन नहीं कर सकी ।।७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७।।

तं दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम् । इन्द्रियाराममुत्सृज्य स्वामिनं दुःखिता ययौ ।।८।।

अन्वयः— दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम् इन्द्रियारामं उत्सृज्य दुःखिता स्वमिनं ययौ ।।८।।

अनुवाद— सुहृद बने हुए दुष्ट हृदय वाले कामी तथा क्षणिक प्रेम करने वाले एवं इन्द्रियपरायण उस बकरे को त्याग कर दुःखी बनी हुई अपने स्वामी के पास चली गयी ।।८।।

भावार्थ दीपिका

स्वामिनमिति शुक्राभिप्रायेणाह ।।८।।

भाव प्रकाशिका

शुक्राचार्य के अभिप्राय से स्वामी कहा गया है ।।८।।

सोऽपि चानुगतः स्त्रैणः कृपणस्तां प्रसादितुम् । कुर्वन्निडविडाकारं नाशक्नोत्पथि संधितुम् ।।९।।

अन्वयः— सः स्त्रेणः कृपणः अपिताम् प्रसादितुम् अनुगतः, इडविडाकारं पथि कुर्वन् संधितुम् न अशक्नोत् ।।९।।

अनुवाद— वह दीन कामी बकरा में-में करता हुआ उसे मनाने के लिए उसके पीछे-पीछे चला किन्तु रास्ते में वह उसको मना नहीं सका ।।९।।

भावार्थ दीपिका

इडविडाकारं बस्तजातिशब्दम् । संधितुं प्रसादयितुम् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इडविडकारम् बकरों के में में शब्द को कहते है । संधितुम् अर्थात् मनाने के लिए ।।९।।

तस्यास्तत्र द्विजः कश्चिदास्वाम्यच्छिनद्रुषा । लम्बन्तं वृषणं भूयः संदधेऽर्थाय योगवित् ॥

अन्वयः— तस्याः तत्र अजास्वामी कश्चित् द्विजः रुषा तस्य लम्बन्तं वृषणं अच्छिनत् भूयः अर्थाय योगवित् संदधे॥१०॥

अनुवाद— वहाँ उस बकरी का स्वामी कोई ब्राह्मण था वह क्रोध करके बकरे के लटकते हुए अण्डकोश को काट दिया किन्तु उस बकरी का कल्याण करने के लिए उसने उसे जोड़ भी दिया क्योंकि वह बहुत से उपायों को जानता था ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

वृषणमच्छिनज्जरया संभोगासमर्थमकरोत् । अर्थाय स्वपुत्र्याः कामोपभोगाय । योगविदुपायज्ञः । जराव्यत्ययेन रतिशक्तिं ददावित्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

वृषणमच्छिन्नत् अर्थात् बुढापे के द्वारा रति कर्म में असमर्थ बना दिया । **अर्थाय** अर्थात् अपनी पुत्री के कामोपभोग के लिए, योगवित् अर्थात् उपायों को जानने वाला । बुढापे को बदल देने के रति की शक्ति प्रदान कर दिया ॥१०॥

संबद्धवृषणः सोऽपि ह्यजया कूपलब्धया । कालं बहुतिथं भद्रे कामैर्नाद्यापि तुष्यति ॥११॥

अन्वयः— हे भद्रे ! संबद्ध वृषणः सोऽपि कूपलब्धया हि अजया बहुतिथं कालं कामै अद्यपि न तुष्यति ॥११॥

अनुवाद— हे कल्याणि ! अण्डकोश के जुड जाने पर कुएँ में प्राप्त हुई बकरी के साथ बहुत समयरमण करता हुआ आज तक कामोपभोग से संतुष्ट नहीं हो रहा है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

कूपलब्धया सह कामैः सेव्यमानैर्न तुष्यति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

उस कुएँ में प्राप्त हुई बकरी के साथ कमोपभोग करता हुआ संतुष्ट नहीं हो रहा है ॥११॥

तथाहं कृपणः सुभ्रु भवत्याः प्रेमयन्त्रितः । आत्मानं नाभिजानामि मोहितस्तव मायया ॥१२॥

अन्वयः— हे सुभ्रु तथा कृपणोऽहं भवत्याः प्रेमयन्त्रितः तव मायया मोहितः आत्मानं न अभिजानामि ॥१२॥

अनुवाद— सुन्दरी ! मैं भी उसी तरह तुम्हरे प्रेमपाश में बँधकर और तुम्हारी माया से मोहित होकर आत्मज्ञान से रहित हो गया हूँ ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः । न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥१३॥

अन्वयः— यत् पृथिव्यां व्रीहि यवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ते कामहतस्य पुंसः मनः प्रीतिं न दुह्यन्ति ॥१३॥

अनुवाद— पृथिवी में विद्यमान जितने भी धान, यव, सुवर्ण, पशु तथा स्त्रियाँ हैं वे सबके मिलकर भी कामना से जर्जर बने हुए पुरुष के मन को प्रसन्न नहीं कर सकती हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि पुनरपि बहवो विषयाः सेव्यन्ताम्, ततो मनसि प्रीते सति कामोपशान्त्या मोहो निवर्तेतेति चेत्तत्राह-यदिति द्वाभ्याम् । न दुह्यन्ति न पूरयन्ति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि फिर बहुत से विषयों का सेवन कीजिये उससे मन के प्रसन्न हो जाने पर कामना की शान्ति से मोह दूर हो जायेगा। तो इस पर **यत्० इत्यादि** दो श्लोकों को कहते हैं। **न दुह्यन्ति** अर्थात् वे सब मिलकर भी कामनाओं को पूर्ण नही कर सकते है ॥१३॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥१४॥

अन्वयः— कामानामुपभोगेन न जातुकाम शाम्यति हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एव अभिवर्धते ॥१४॥

अनुवाद— भोगो को भोगने से भोग की इच्छा कभी भी शान्त नहीं हो सकती है अपितु जिस तरह से घी की आहुति डालने पर आग और जलने लगती है उसी तरह भोगों को भोगने से भोग की इच्छा और प्रबल हो जाती है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

हविषा घृतेन कृष्णवर्त्माऽग्निरिव ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

घी की आहुति से बढ़ने वाली अग्नि के समान भोगेच्छा बढ़ती ही है ॥१४॥

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमङ्गलम् । समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥१५॥

अन्वयः— यदा सर्वभूतेषु अमङ्गलं भावं न कुरुते तदा समदृष्टेः पुंसः सर्वाः दिशः सुखमयाः ॥१५॥

अनुवाद— जब मनुष्य किसी भी प्राणी या किसी भी वस्तु के प्रतिराग द्वेष की भावना नहीं करता है, उस समदर्शी पुरुष के लिए सारी दिशाएँ सुखमय हो जाती हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि कदा केनोपायेन वा मनसः संपूर्णा प्रीतिः स्वाद्यया कामोपशमः स्यादित्यत आह-यदेति षड्भिः अमङ्गलं भावं रागद्वेषादिवैषम्यम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

तो फिर प्रश्न है कि किस उपाय से और कब मन की सम्पूर्ण प्रसन्नता होती है ? जिससे कि कामनाओं की शान्ति हो जाय तो इस पर **यदा० इत्यादि** छह श्लोकों को कहते हैं। अमङ्गलभाव अर्थात् रागद्वेष रूपी विषम भावना ॥१५॥

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते । तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥१६॥

अन्वयः— या दुर्मतिः दुस्त्यजा, जीर्यतः या न जीर्यते शर्मकामः दुःखनिवहां तां तृष्णां द्रुत्तं त्यजेत् ॥१६॥

अनुवाद— अज्ञानी जीवों के लिए जिसको त्यागना बड़ा कठिन है, बूढा हो जाने पर भी जो कभी बूढी नहीं होती कल्याणकामी मनुष्यों को चाहिए कि उस दुखों के समूह स्वरूपिणी तृष्णा भोगों को भोगने की इच्छा को शीघ्रति शीघ्र त्याग दे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

दुःखानि नितरां वहतीति तथा ताम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

दुःखनिवहाम् अर्थात् सदैव दुःख ही देन वाली तृष्णा को ॥१६॥

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत् । बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥१७॥

अन्वयः— मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा अविविक्तासनः न भवेत् बलवान् इन्द्रियग्रामः विद्वांसमपि कर्षति ॥१७॥

अनुवाद— एकान्त में अपनी माता, बहिन तथा बेटी के साथ भी एक आसन पर सटकर न बैठे, इन्द्रियाँ इतना बलवान हैं कि वे विद्वान से विद्वान को भी आकृष्ट कर लेती हैं विचलित कर देती हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

स्त्रीसंनिधानं तु सर्वथा त्याज्यमित्याह-मात्रेति । अविविक्तं संकीर्णमासनं यस्य सः । कर्षत्याकर्षति ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

स्त्रियों का सानिध्य सर्वथा त्याग देना चाहिए इस बात को **मात्रा० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । **अविविक्तम्** सटा हुआ आसन कर्षति अर्थात् विचलित कर देती हैं ॥१७॥

पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयान्सेवतोऽसकृत् । तथापि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते ॥१८॥

अन्वयः— विषयान् असकृत् सेवतः मे वर्षसहस्रं पूर्णम् तथापि च अनुसवनं तेषु तृष्णा उपजायते ॥१८॥

अनुवाद— बार-बार विषयों का सेवन करते हुए मेरे एक हजार वर्ष पूरे हो गये फिर भी प्रत्येक समय उन विषयों के सेवन की मेरी लालसा बढ़ती ही जाती है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम् । निर्द्वन्द्वो निरहंकारश्चरिष्यामि मृगैः सह ॥१९॥

अन्वयः— तस्मात् एताम् त्यक्त्वा अहम् ब्रह्मणि मानसम् आधाय निर्द्वन्द्वः निरहंकारः मृगैः सह चरिष्यामि ॥१९॥

अनुवाद— अतएव इस तृष्णा का परित्याग करके मैं परब्रह्म परमात्मा में मन लगाकर शीत उष्ण सुख दुःख इत्यादि से ऊपर उठकर हरिणों के साथ वन में विचरण करूँगा ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

दृष्टं श्रुतमसद्बुद्ध्वा नानुध्यायेन्न संविशेषत् । संसृतिं चात्मनाशं च तत्र विद्वान्स आत्मदृक् ॥२०॥

अन्वयः— दृष्टं श्रुतम् असत् बुद्ध्वा न अनुध्यायेत न संविशेत् संसृतिं च आत्मनाशं च तत्र विद्वान् स आत्मदृक्॥२०॥

अनुवाद— लौकिक एवं पारलौकिक सभी भोग असत् हैं इस तरह से जानकर न तो उनका चिन्तन करे और न उनका भोग ही करे । उनके चिन्तन से जन्म मरण रूप संसार का बन्धन होता है और उनके भोग से आत्मनाश होता है, इस तरह से जानने वाला पुरुष आत्मद्रष्टा है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

ननु तृष्णात्यागस्यातिदुष्करत्वात्कथं ब्रह्मणि मनस आधानं स्यात्तत्राह-दृष्टमिति । यो नानुध्यायेन्न संविशेन्न चोपभुञ्जीत। तत्र दृष्टश्रुतयोरनुध्यानादौ य आत्मदृक् भवति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि तृष्णा को त्यागना अत्यन्त कठिन है अतएव ब्रह्म में मन को कैसे लगायाजा सकता है ? इस पर **दृष्ट श्रुतम् इत्यादि** श्लोक कहते हैं । लौकिक परलौकिक विषयों का न तो चिन्तन करे और न तो उपभोग करे । उन दृष्ट एवं श्रुत विषयों के चिन्तन आदि के दुष्परिणाम को जानने वाला व्यक्ति आत्मद्रष्टा है ॥२०॥

इत्युक्त्वा नाहुषो जायां तदीयं पूरवे वयः । दत्त्वा स्वां जरसं तस्मादाददे विगतस्पृहः ॥२१॥

अन्वयः— इति जायां उक्त्वा विगतस्पृहः नाहुषः पूरवे तदीयं वयः दत्त्वां स्वां जरसं तस्माद विगतस्पृहः आददे॥२१॥

अनुवाद— इस तरह से अपनी पत्नी को कहकर निस्पृह ययाति पूरु को उसकी जवानी देकर और अपनी बुढ़ापे को उससे ले लिए ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां द्रुह्युं दक्षिणतो यदुम् । प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्र उदीच्यामनुमीश्वरम् ॥२२॥

अन्वयः— दक्षिणपूर्वस्यां दिशि द्रुह्युम् दक्षिणतो यदुम्, प्रतीच्यां तुर्वसुं उदीच्याम् अनुम् ईश्वरं चक्रे ॥२२॥

अनुवाद— उसके बाद दक्षिण पूर्व दिशा में द्रुह्यु को, दक्षिण दिशा में यदु को पश्चिम दिशा में तुर्वसु को, तथा उत्तर दिशा में अनु को राजा बना दिए ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

भूमण्डलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम् । अभिषिच्याग्रजांस्तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥२३॥

अन्वयः— सर्वस्य भूण्मडलस्य विशाम् अर्हत्तमं पूरुम् अभिषिच्य अग्रजान् तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥२३॥

अनुवाद— सम्पूर्ण भूमण्डल की सम्पूर्ण सम्पत्तियों के योग्यतम पात्र पूरु को अपने पद पर अभिषिक्त कर तथा उसके सभी बड़े भाइयों के उसकी अधीन करके स्वयं वन में चले गये ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तस्य पुरो वंशे स्थापयित्वा ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

पुरु के अधीन राजा बनाकर ॥२३॥

आसेवितं वर्षपूगान् षड्वर्गं विषयेषु सः । क्षणेन मुमुचे नीडं जातपक्ष इव द्विजः ॥२४॥

अन्वयः— विषयेषु षड्वर्गं वर्ष पूगान् आसेवितं सः जातपक्षः द्विजः नीडम् इव क्षणेन मुमुचे ॥२४॥

अनुवाद— यद्यपि राजा ययाति ने बहुत वर्षों तक छहो इन्द्रियों के सुख को भोगा था किन्तु उन सबों को क्षण भर में उन्होंने उसी तरह त्याग दिया जिस तरह पंख निकल आने पर पक्षी घोसले को छोड़ देता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

विषयेषु शब्दादिष्वासेवितं षड्वर्गं षडिन्द्रियसुखं मुमुचे तत्याज । यद्वा विषयेष्वासेवितं सेवां कारितं षण्णामिन्द्रियाणां वर्गं मुमुचे उपेक्षतेत्यर्थः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

शब्दादि विषयों में सेवित छहो इन्द्रियों के सुख को राजा ने त्याग दिया । अथवा विषयों में पूर्णरूप से सेवित छहो इन्द्रियों के सुख की उन्होंने उपेक्षा कर दी ॥२४॥

स तत्र निर्मुक्तसमस्तसङ्ग आत्मानुभूत्या विधुतत्रिलिङ्गः ।
परेऽमले ब्रह्मणि वासुदेवे लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः ॥२५॥

अन्वयः— सः तत्र निर्मुक्त समस्त सङ्गः आत्मनुभूत्या विधुत त्रिलिङ्गः अमले परे ब्रह्मणि वासुदेवे प्रतीतः भागवतीं गतिं लेभे ॥२५॥

अनुवाद— वन में जाकर राजा ययाति ने सभी प्रकार की आसक्तियों का परित्याग कर दिया और आत्म साक्षात्कार के द्वारा उन्होंने त्रिगुणात्मक लिङ्ग शरीर को नष्ट कर दिया फिर माया रूपी मल से रहित पर ब्रह्म परमात्मा भगवान् वासुदेव से मिलकर भगवद को भक्तों ही प्राप्त होने वाली परमा गति को उन्होंने प्राप्त किया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

विधुतं निरस्तं त्रिगुणात्मकं लिङ्गं येन । प्रतीतः प्रख्यातः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

राजा ययाति ने त्रिगुणात्मक लिङ्ग शरीर को विनष्ट कर दिया प्रतीतः अर्थात् प्रख्यात ॥२५॥

श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभमात्मनः । स्त्रीपुंसोः स्नेहवैक्लव्यात्परिहासमिवेरितम् ॥२६॥

अन्वयः— गाथां श्रुत्वा देवयानी आत्मनः प्रस्तोभं मेने । स्त्रीपुंसोः स्नेहवैक्लव्यात् परिहासमिवेरितम् ॥२६॥

अनुवाद— इस गाथा को सुनकर देवयानी ने जान लिया कि ये मुझे निवृत्ति पथ पर प्रोत्साहित करना चाहते क्योंकि स्त्री और पुरुष में परस्पर में प्रेम होने के कारण विरह होने पर विकलता होती है, इसीलिए राजा ने हँसी-हँसी में इस गाथा को कहा है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तोभमेवाह-परिहासमिवेति । यद्वा प्रस्तोभं निवृत्तिमार्गे प्रोत्साहनं मेने ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

परिहासमिवेरितम् के द्वारा प्रस्तोभ को कहा है। अथवा प्रस्तोभ यानी निवृत्ति मार्ग पर प्रोत्साहन को माना॥२६॥

सा संनिवासं सुहृदां प्रपायामिव गच्छताम् । विज्ञायेश्वरतन्त्राणां मायाविरचितं प्रभोः॥२७॥
सर्वत्र सङ्गमुत्सृज्य स्वप्नौपम्येन भार्गवी। कृष्णे मनः समावेश्य व्यधुनोल्लिङ्गमात्मनः॥२८॥

अन्वयः— सा भार्गवी ईश्वरन्तत्राणां सुहृदां संनिवासं गच्छताम् प्रयायामिव प्रभोः मायाविरचितं विज्ञाय स्वप्नौपम्येन सर्वत्र सङ्गम् उत्सृज्य कृष्णे मनः समावेश्य आत्मनः लिङ्गं व्यधुनोत् ॥२७-२८॥

अनुवाद— वह देवयानी भी अपने संबन्धियों के एक साथ निवास को प्याऊ पर एकत्रित होने वाले पथिकों के तुल्य स्वप्न के समान परमात्मकृत मानकर सभी वस्तुओं से अपनी आसक्ति का परित्याग करके तथा भगवान् श्रीकृष्ण में अपने मन को लगाकर अपने लिङ्ग शरीर का परित्याग कर दी और श्रीभगवान् को प्राप्त कर ली ॥२७-२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७-२८॥

नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे । सर्वभूताधिवासाय शान्ताय बृहते नमः ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकोनविशोऽध्यायः ॥१९॥

अन्वयः— वेधसे भगवते वासुदेवाय तुभ्यं नमः सर्वभूताधिवासाय शान्ताय बृहते नमः ॥२९॥

अनुवाद— उसने श्रीभगवान् को नमस्कार करके कहा समस्त जगत् के स्रष्टा सर्वान्तर्यामी सबों के आश्रय स्वरूप भगवान् वासुदेव को नमस्कार है । जो भगवान् परमतत्त्व एवं अनन्त हैं उनको मैं नमस्कार करती हूँ ॥२९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवम स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

कथं समावेश्य तदाह-नम इति । नमनादिभिः समावेश्येत्यर्थः । शुको वा नमस्करोति ।।२९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवम स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

देवयानी ने कैसे मन को समाविष्ट किया ? तो इस पर कहते हैं नमः इति । अर्थात् नमस्कार आदि के द्वारा मन को समविष्ट किया । अथवा श्रीशुकदेवजी श्रीभगवान् को इस श्लोक के द्वारा नमस्कार करते हैं ।।२९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवम स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के उन्नीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१९।।

बीसवाँ अध्याय

पूरु के वंश राजा दुष्यन्त और भरत के चरित्र का वर्णन

श्रीशुक उवाच

पूरार्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत । य राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे ॥१॥

अन्वयः— हे भारत यत्र जातोसि पूरोर्वशं प्रवक्ष्यामि, यत्र वंश्या राजर्षयः ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित तुम जिस वंश में उत्पन्न हुए उस पूरु के वंश का वर्णन करता हूँ। उस वंश में राजर्षियां का वंश तथा ब्रह्मवंश भी हुआ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

विंशे पितृप्रसादाप्तराजासनमहोन्नतेः । पूरोर्वंशे हि दौष्यन्तेर्भरतस्येर्यते यशः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बीसवें अध्याय में पिता की प्रसन्नता के द्वारा महान् उन्नत राजासन को प्राप्त करने वाले पूरु वंश में दुष्यन्त के पुत्र भरत का यश वर्णन किया जा रहा है ॥१॥

जन्मेजयो ह्यभूत्पूरोः प्रचिन्वांस्तत्सुतस्ततः । प्रवीरोऽथ नमस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत् ॥२॥

अन्वयः— पूरोः जनमेजयः अभूत् यत् सुतः प्राचीन्वान् ततः प्रवीरः अथ नमस्युः तस्मात् चारुपदः अभवत् ॥२॥

अनुवाद— पूरु के पुत्र जनमेजय हुए, उनके पुत्र प्राचीनवान् हुए उनके पुत्र प्रवीर हुए उसक पश्चात् प्रवीर के पुत्र नमस्यु हुए तथा नमस्यु के पुत्र चारुपद हुए ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

तस्य सुद्युरभूत्पुत्रस्तस्माद्बहुगवस्ततः । संयातिस्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्तत्सुतः स्मृतः ॥३॥

अन्वयः— तस्य पुत्रः सुद्युः अभूत् तस्माद् बहुगवः ततः संयातिः तस्य अहंयातिः, तत्सुतः रौद्रश्वः स्मृतः ॥३॥

अनुवाद— चारुपद के पुत्र सुद्यु हुए उनके पुत्र बहुगव हुए उनके पुत्र संयाति हुए और संयाति के पुत्र अहंयाति हुए उनके पुत्र रौद्राश्व हुए ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्सुत: अहंयाते: सुत: ॥३॥

भाव प्रकाशिका

तत्सुत: अर्थात् अहंयाति के पुत्र ॥३॥

ऋतेयुस्तस्य कुक्षेयुः स्थण्डिलेयुः कृतेयुकः। जलेयुः संततेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः ॥४॥
दशैतेऽप्सरसः पुत्रा वनेयुश्चावमः स्मृतः। घृताच्यामिन्द्रियाणीव मुख्यस्य जगदात्मनः ॥५॥

अन्वयः— मुख्यस्यजगदात्मनः इन्द्रियाणीव तस्य घृताच्यां अप्सरसः ऋतेयुः, कुक्षेयुः स्थण्डिलेयुः, कृतेयुः, जलेयुः सन्ततेयुः धर्म सत्यव्रते यवः, अवमः वनेयुः च दशपुत्रा स्मृताः ॥४-५॥

अनुवाद— विश्वात्मा मुख्य प्राण से होने वाली दश इन्द्रियों के समान रौद्राश्व के घृताची नामक अप्सरा के गर्भ से दश पुत्र हुए ऋतेयु, कुक्षेयु, स्थण्डिलेयु, कृतेयु, जलेयु, सन्ततेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु और सबसे छोटे वनेयु ॥४-५॥

भावार्थ दीपिका

धर्मेयुश्च सत्येयुश्च व्रतेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः । वनेयुश्चावमः स्मृतः । एवं दशैते ऋतेयुप्रमुखास्तस्य रौद्राश्वस्य घृताच्यामप्सरसि पुत्रा जाताः । अप्सरस इति षष्ठी सप्तम्यर्थे । वशवर्तित्वे दृष्टान्तः-जगदात्मनो जगत आत्मभूतस्य मुख्यस्य प्राणस्येन्द्रियाणीव ॥४-५॥

भाव प्रकाशिका

धर्म सत्यव्रतेयवः से धर्मेयु, सत्येयु और व्रतेयु इन तीनों को कहा गया है । वनेयु सबसे छोटे कहे गये हैं । इस तरह से रौद्राश्व के ऋतेयु आदि दश पुत्र घृताची नामक अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । अप्सरसः में षष्ठी विभक्ति सप्तमी विभक्ति के अर्थ में है । उन सबों के पिता के वशवर्तित्व का उदाहरण है । विश्वात्मामुख्यप्राण के अधीन रहने वाली दश इन्द्रियों के समान ॥४-५॥

ऋतेयोरन्तिभारोऽभून्त्रयस्तस्यात्मजा नृप । सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः ॥६॥

अन्वयः— ऋतेयोः रन्तिभारः अभूत् हे नृप तस्य त्रयः आत्मजाः सुमतिः, ध्रुवः अप्रतिरथः अप्रतिरथात्मजः कण्वः॥६॥

अनुवाद— ऋतेयु के पुत्र रन्तिभार हुए । हे राजन् ! उनके तीन पुत्र हुए सुमति ध्रुव और अप्रतिरथात्मज। अप्रतिरथात्मज के पुत्र कण्व हुए ॥६॥

भावार्थ दीपिका नहीं है ॥६॥

तस्य मेधातिथिस्तस्मात्प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः । पुत्रोऽभूत्सुमते रैभ्यो दुष्यन्तस्तत्सुतो मतः ॥७॥

अन्वयः— तस्यमेधातिथिः तस्मात् प्रस्कण्वाद्याः द्विजातयः सुमतेः पुत्रः रैभ्यः अभूत् दुष्यन्तः तत् सुतः मतः ॥७॥

अनुवाद— कण्व के पुत्र मेधातिथि हुए उनके पुत्र प्रस्कण्व ब्राह्मण हैं । सुमति के पुत्र रैभ्य हुए, और रैभ्य के पुत्र दुष्यन्त हुए ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

दुष्यन्तो मृगयां यातः कण्वाश्रमपदं गतः। तत्रासीनां स्वप्रभया मण्डयन्तीं रमामिव ॥८॥
विलोक्य सद्यो मुमुहे देवमायामिव स्त्रियम्। बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैर्वृतः॥९॥

अन्वयः— मृगयां यातः दुष्यन्तः कण्वाश्रमपदं गतः तत्र आसीनां स्वप्रभया रमामिव मण्डयन्तीम् देवमायामिव स्त्रियम् विलोक्य सद्यः मुमुहे कतिपयैः भटैः वृतः तां वरारोहां बभाषे ॥८-९॥

अनुवाद— आखेट में गये हुए दुष्यन्त कण्व के आश्रम मे गये। वहाँ पर बैठी हुई अपनी कान्ति से आश्रम को अलंकृत करने वाली लक्ष्मीजी के समान तथा देवताओं की माया के समान स्त्री को देखकर सद्य: मोहित हो गये और कुछ सिपाहियों के साथ विद्यमान् दुष्यन्त ने उस स्त्री से पूछा ॥८-९॥

भावार्थ दीपिका

दुष्यन्तस्य शकुन्तलायां भरतः पुत्रोऽभवदिति कथाद्वारेणाह-दुष्यन्तो मृगयामिति पञ्चदशभिः-तमाश्रमं मण्डयन्तीम् स्त्रिय विलोक्य मुमुहेऽमुहयत् ॥८-९॥

भाव प्रकाशिका

दुष्यन्त का शकुला के गर्भ से भरत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ इस कथा के माध्यम से **दुष्यन्तः मृगयां यात: इत्यादि** पन्द्रह श्लोकों द्वारा कहा गया है ॥८-९॥

तद्दर्शनप्रमुदितः संनिवृत्तपरिश्रमः । पप्रच्छ कामसंतप्तः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा ॥१०॥

अन्वयः— तद् दर्शन प्रमुदितः संनिवृत्तपरिश्रमः कामसंतप्तः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा पप्रच्छ ॥१०॥

अनुवाद— उसको देखने से आनन्दित थकान दूर करने के बाद काम संतप्त राजा ने मधुर वाणी से हँसते हुए पूछा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तस्या दर्शनेन प्रमुदितोऽत एव संनिवृत्तः परिश्रमो यस्य ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उसके देखने से आनन्दित राजा की थकावट मिट गयी ॥१०॥

का त्वं कमलपत्राक्षि कस्यासि हृदयंगमे । किं वा चिकीर्षितं त्वत्र भवत्या निर्जने वने ॥११॥

अन्वयः— हे कमलपत्राक्षि त्वं का ? हृदयं गमे कस्यासि ? अत्रनिर्जने वने भवत्या किं वा चिकीर्षितम् ॥११॥

अनुवाद— हे कमल दल के समान मनोहर नेत्रो वाली तुम कौन हो, और किसकी पुत्री हो, इस निर्जन वन में तुम क्या करना चाहती हो ?॥१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्म्यहं त्वां सुमध्यमे । नहि चेतः पौरवाणामधर्मे रमते क्वचित् ॥१२॥

अन्वयः— हे सुमध्यमे त्वाम् अहं व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्मि । पौरवाणाम् चेतः अधर्मे क्वचित् नहि रमते ॥१२॥

अनुवाद— सुन्दरी स्पष्ट रूप से मैं तुमको किसी क्षत्रिय की कन्या समझता हूँ, क्योंकि पुरु वंशियो का मन कहीं भी अधर्म में रमण नहीं करता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

पौरावाणां चेतो नह्यधर्मे रमते । अतो मच्चेतसस्त्वयि रमणादेवाहं त्वां राजन्यतनयां वेद्मि ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

पुरुवंशियों का मन कही अधर्म में रमण नहीं करता है मेरा मन तुममे रमण करता है अतएव मैं तुमको क्षत्रिय कन्या समझता हूँ ॥१२॥

शकुन्तलोवाच

विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने । वेदैतद्भगवान्कण्वो वीर किं करवाम ते ॥१३॥

अन्वयः— वीर अहं विश्वामित्रस्यात्मजा मेनकया वनेत्यक्ता. एतद् भगवान् कण्वः वेद, ते किं करवाम ॥१३॥

शकुन्तला ने कहा

अनुवाद— हे वीर मैं महर्षि विश्वामित्र की पुत्री हूँ, मेनका नामक अप्सरा ने मुझे वन में छोड़ दिया था। इस बात को भगवान् कण्व जानते हैं मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ?॥१३॥

भावार्थ दीपिका

विश्वामित्रस्यात्मजाऽहं मेनकायां जाता तया च स्वर्गे गच्छन्त्यात्र त्यक्ता । अतो राजकन्यैवाहमित्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

मैं महर्षि विश्वामित्र की पुत्री हूँ, मेनका के गर्भ से उत्पन्न हूँ । स्वर्ग जाती हुई मेनका ने मुझे यहीं छोड़ दिया । अतएव मैं क्षत्रिय कन्या ही हूँ ॥१३॥

आस्यतां ह्यरविन्दाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः । भुज्यतां सन्ति नीवारा उष्यतां यदि रोचते ॥१४॥

अन्वयः— हे अरविन्दाक्ष ! आस्यतां नः अर्हणं च गृह्यताम् निवाराः सन्ति भुज्यतां यदि रोचते उष्यताम् ॥१४॥

अनुवाद— हे कमल नयन ! आप बैठिये, हमारी पूजा स्वीकार कीजिये, निवार है भोजन कीजिये, यदि अच्छा लगे तो निवास कीजिये ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

दुष्यन्त उवाच

उपपन्नमिदं सुभ्रु जातायाः कुशिकान्वये । स्वयं हि वृणते राज्ञां कन्यकाः सदृशं वरम् ॥१५॥

अन्वयः— सुभ्रु कुशिकान्वये जातायाः इदम् उपपन्नम् राज्ञां कन्यकाः स्वयं हि सदृशं वरं वृणुते ॥१५॥

दुष्यन्त ने कहा

अनुवाद— सुन्दरी ! कुशिक वंश में उत्पन्न हुई तुम्हारा इस प्रकार अतिथ्य सत्कार उचित ही है । क्योंकि राजाओं की कन्याएँ स्वयं योग्य पति का वरण करती हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

किं करवामेत्यादिवाक्यात्तदभिप्रायं ज्ञात्वाह-उपपन्नमिति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

आपकी कौन सी सेवा करूँ इस वाक्य के द्वारा उसके अभिप्राय को जानकर राजा ने कहा ऐसा करना उचित ही है ॥१५॥

ओमित्युक्ते यथाधर्ममुपयेमे शकुन्तलाम् । गान्धर्वविधिना राजा देशकालविधानवित् ॥१६॥

अन्वयः— ओमित्युक्ते देशकालविधानवित् राजा यथा धर्मं गान्धर्वविधिना शकुन्तलाम् उपयेमे ॥१६॥

अनुवाद— शकुन्तला की स्वीकृत प्राप्त करके देश तथा काल के विधान को जानने वाले राजा ने शकुन्तला के साथ धर्मानुसार गान्धर्व विधि से विवाह किया ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

गान्धर्वविधिना मिथः समयपूर्वकेण ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

परस्पर में प्रतिज्ञा पूर्वक यह गान्धर्व विधिना का अर्थ है ।।१६।।

अमोघवीर्यो राजर्षिर्महिष्यां वीर्यमादधे । श्वोभूते स्वपुरं यातः कालेनासूत सा सुतम् ।।१७।।

अन्वयः— अमोघवीर्यः राजर्षिः महिष्यां वीर्यम् आदधे । अथ श्वोभूते स्वपुरं यातः सा कालेन सुतम् असूत ।।१७।।

अनुवाद— राजर्षि दुष्यन्त का वीर्य अमोघ था । रात्रि में वहाँ रहकर दुष्यन्त ने शकुन्तला के साथ सहवास किया । प्रातःकाल होने पर राजा अपनी राजधानी में चले गये । समय आने पर शकुन्तला ने पुत्र को जन्म दिया ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

कण्वः कुमारस्य वने चक्रे समुचिताः क्रियाः । बध्वा मृगेन्द्रांस्तरसा क्रीडति स्म स बालकः।।१८।।

अन्वयः— कण्वः कुमारस्य वने समुचिताः क्रियाः चक्रे । स बालकः तस्या मृगेन्द्रान् बद्धवा कीडतिस्म ।।१८।।

अनुवाद— कण्व महर्षि ने उस बालक की सभी क्रियाओं को वन में किया । वह बालक बल पूर्वक सिंह को बाँधकर क्रीडा करता था ।।१८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१८।।

तं दुरत्ययविक्रान्तमादाय प्रमदोत्तमा । हरेरंशांशसंभूतं भर्तुरन्तिकमागमत् ।।१९।।

अन्वयः— प्रमदोत्तमा दुरत्ययविक्रान्तं हरेरंशाशसंभूतम् तम् आदाय भर्तुः अन्तिकम् अगमत् ।।१९।।

अनुवाद— स्त्रियों में श्रेष्ठ शकुन्तला अपरिमिति पराक्रम संपन्न तथा श्रीहरि के अंशावतार उस बालक को लेकर अपने पति के सन्निकट गयी ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

दुरत्ययं विक्रान्तं विक्रमणं यस्य ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

अपरिमित पराक्रम सम्पन्न ।।१९।।

यदा न जगृहे राजा भार्यापुत्रावनिन्दितौ । शृण्वतां सर्वभूतानां खे वागाहाशारीरिणी ।।२०।।

अन्वयः— यदा राजा अनिन्दतौ भार्या पुत्रौ न जगृहे तदा सर्वभूतानां शृण्वताम् खे अशरीरिणी वाक् आह ।।२०।।

अनुवाद— जब राजा दुष्यन्त अपने निर्दोष पत्नी और पुत्र को नहीं स्वीकार किए उस समय आकाशवाणी हुई जिसे सबलोगों ने सुना ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः । भरस्व पुत्रं दुष्यन्त माऽवमंस्थाः शकुन्तलाम्।।२१।।

अन्वयः— माता भस्त्रा पुत्रः पितुः येन जातः स एव हि दुष्यन्त पुत्रं भरस्व शकुन्तलाम् मा अवमंस्थाः ।।२१।।

अनुवाद— माता तो धौंकनी के समान होती है पुत्र तो पिता का ही होता है, क्योंकि वह उससे उत्पन्न होता है । दुष्यन्त शकुन्तला का अनादर मत करो अपने पुत्र का पालन करो ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

भस्त्रा चर्मपात्रं तद्वन्माता आधारमात्रम् । पितुरेव तु पुत्रः । तत्र हेतुः- येनेति । 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इति श्रुतेः । **भरस्व** पुषाण । अनेन भरतनाम निरुक्तम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

माता तो चमड़े की थैली के समान आधार मात्र है पुत्र तो पिता का ही होता है । **येन० इत्यादि** के द्वारा उसका कारण बतलाया गया है श्रुति भी कहती है **आत्मा वै पुत्र नामासि** आत्मा ही पुत्र के नाम से अभिहित किया जाता है। **भरस्व** अर्थात् पालन पोषण करो । इसके द्वारा भरत इस नाम की निरुक्ति भी बतला दी गयी है ॥२१॥

रेतोधाः पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात् । त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥२२॥

अन्वयः— नरदेव रेतोधाः पुत्रो यमक्षयात् नयति अस्य गर्भस्य धातात्वम् शकुन्तला सत्यमाह ॥२२॥

अनुवाद— राजन् वंश की वृद्धि करने वाला पुत्र अपने पिता को नरक से बचा लेना है । शकुन्तला सत्य कह रही है, इस गर्भ को धारण करने वाले तुम ही हो ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

किंच रेतोधा रेतःसेक्ता वंशकृत्पुत्रो यमक्षयात् पितरं नयति तारयति । तथा च श्रुतिः- 'पुनाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः । तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥' इति पाठान्तरे मातापित्रोः पुत्रं प्रति विवादे यमक्षयाद्धर्मनिर्णेतुर्यमस्य सभायाः सकाशाद्रेतोधा रेतःसेक्ता पितैव धर्मेण विजित्य पुत्रं नयति न तु मातेत्यर्थः । ततश्च भार्यापुत्रो स्वीकृतवानिति ज्ञेयम्॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अपने वंश की वृद्धि करने वाला पुत्र पिता को नरक से बचा लेता है । श्रुति भी कहती है **पुं नाम्नोनरकाद् इत्यादि** अर्थात् पिता को पुंनामक नरक से तार देने के कारण पुत्र पुत्र शब्द से कहा जाता है, इस बात को स्वयं ब्रह्माजी ने कहा है । पाठान्तर होने पर तो पुत्र के विषय में माता और पिता में विवाद होने पर धर्म का निर्णय करने वाले यमराज की सभासे रेतः सेक करने वाला पिता पुत्र को जीतकर ले जाता है, माता नहीं उसके पश्चात् दुष्यन्त ने अपनी पत्नी और पुत्र दोनों को स्वीकार किया ॥२२॥

पितर्युपरते सोऽपि चक्रवर्ती महायशाः । महिमा गीयते तस्य हरेरंशभुवो भुवि ॥२३॥

अन्वयः— पितरि उपरते सः अपि महायशाः चक्रवर्ती । तस्य हरेरंशभुवः भुवि महिमा गीयते ॥२३॥

अनुवाद— पिता दुष्यन्त की मृत्यु के पश्चात् वे भरत भी महायशस्वी चक्रवर्ती राजा हुए । श्रीहरि के अंश स्वरूप उनकी महिमा भूलोक में गायी जाती है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

चक्रवर्ती बभूवेति शेषः । तस्य महिमा गीयते-'तदप्येते श्लोका अभिगीताः' इत्यादि बह्वृचश्रुत्या **हरेरंशभुवो**ऽशाज्जातस्य॥२३॥

भाव प्रकाशिका

भरत चक्रवर्ती राजा हुए । उनकी महिमा का गान करते हुए लोका कहते हैं श्रीहरि के अंश से उत्पन्न भरत की **तदप्येते श्लोका अभिगीताः** यह ऋग्वेदीय श्रुति कहती है ॥२३॥

चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः । ईजे महाभिषेकेण सोऽभिषिक्तोऽधिराड्विभुः ॥२४॥

पञ्चपञ्चशता मेध्यैर्गङ्गायामनु वाजिभिः । मामतेयं पुरोधाय यमुनायामनु प्रभुः ॥२५॥

अष्टसप्ततिमेध्याश्वान्बबन्ध प्रददद्वसु । भरतस्य हि दौष्यन्तेरग्निः साचीगुणे चितः।।
सहस्रं बद्वशो यस्मिन्ब्राह्मणा गा बिभेजिरे ।।२६।।

अन्वयः— अस्य दक्षिण हस्ते चक्रम् अस्य पादयोः पद्मकोशः महाभिषेकेण सः अभिषिक्तः अधिराडविभुः मामतेयं पुरोधाय गङ्गायाम् अनुपञ्च पञ्चशता मेध्यैः वाजिभिः । ईजे यमुनायामनु प्रभुः अष्टसप्तति मेध्यश्वान् बबन्ध वसुप्रददत् । दौष्यन्तेः भरतस्य अग्निः साचीगुणेचितः । यस्मिन् ब्राह्मणाः सहसंबद्वशः गाः विभेजिरे ।।२४-२६।।

अनुवाद— राजा भरत के दहिने हाथ में चक्र का चिह्न था उनके पैरों में कमल कोश का चिह्न था । वे महाभिषेक विधि से अभिषिक्त हुये थे । वे सभी राजाओं के अधिराट् थे । उन्होंने ममता के पुत्र दीर्घतमा मुनि को पुरोहित बनाकर गंगातट पर गंगा सागर से गंगोत्री पर्यन्त पचपन अश्वमेध यज्ञ किए और प्रयाग से यमनुनोत्तरी तक यमुना तट पर अठहत्तर अश्वमेध यज्ञ किए । इन सभी यज्ञों में इन्होंने अपार धनराशि का दान किया । दुष्यन्त के पुत्र भरत का यज्ञीय अग्नि स्थान उत्तम गुण सम्पन्न स्थान में किया गया था । उस स्थान में उन्होंने इतनी गौओं का दान किया था कि एक हजार ब्राह्मणों में प्रत्येक ब्राह्मण को एक-एक बद्व (१३०८४) गायें मिली थीं ।।२४-२६।।

भावार्थ दीपिका

तत्र लिङ्गमाह- चक्रमिति । गङ्गायामनुलोमं पञ्चपञ्चाशता वाजिभिरीजे । पुरोधाय पुरोहितं कृत्वा । यमुनायामनु च यमुनायाश्चानुलोमम् । अष्टधिकसप्ततिमेध्यानश्वान्बवन्ध । किं कुर्वन् । वसु धनं प्रकर्षेण ददत् । साचीगुणे प्रकृष्टगुणवति देशेऽग्निश्चितोऽभूत् । यस्मिन्नग्निचयने देशे वा सहस्रं ब्राह्मणा भरतेन भूरिदानेन दत्ता गाः बद्वशः प्रत्येकं बद्वं बद्वं विभेजिरे विभज्य जगृहुः । चतुरशीत्यधिकैस्त्रयोदशसहस्रैरेकं बद्वं भवति । तथाहि- 'हिरण्येन परीवृतान्कृष्णाञ्छुक्लदतो मृगान् । मष्णारे भरतोऽददाच्छतं बद्वानि सप्त च।' इति श्रुत्युक्तानि सप्ताधिकशतं बद्वानि श्रीशुकेनोत्तरश्लोके चतुर्दशलक्षत्वेन संगृहीतानि- 'अदात्कर्मणि मष्णार नियुतानि चतुर्दश' इति । एवं चतुर्दशलक्षणां सप्ताधिकशतभागो बद्वमित्युक्तम् । इयं च बद्वसंख्या श्लोकेन संगृह्यते- 'चतुर्दशानां लक्षाणां सप्ताधिकशतांशकः । बद्वं चतुरशीत्ग्रे सहस्राणि त्रयोदश ।।२४-२६।।

भाव प्रकाशिका

चक्रवर्ती का चिह्न चक्रमित्यादि श्लोक से कहा गया है । गङ्गा नदी तट पर गङ्गा सागर से गङ्गोत्री तक पचपन अश्वमेध यज्ञ किए । पुरोधाय अर्थात् पुरोहित बनाकर । इस तरह यमुना नदी पर भी अनुलोम विधि से प्रयाग से यमुनोत्री तक अठहत्तर अश्वमेध यज्ञ किए । इन सभी यज्ञों में इन्होंने बहुत अधिक धनराशि का दान किया । इनके यज्ञीय अग्नि का चयन उत्कृष्ट गुणों से युक्त स्थान पर हुआ था । उस अग्नि चयन के स्थान अथवा देश में एक हजार ब्राह्मणों में से प्रत्येक ब्राह्मण को एक बद्व गाये प्रदान किया । तेरह हजार चौससी का एक बद्ध होता है । श्रुति कहती है यज्ञ में किए जाने वाले मष्णार यज्ञ में भरत ने एक सौ सात सुवर्णालङ्कारों से अलंकृत श्वेत दाँतों वाले काले रंग के हाथियों का दान किया था । इसी को शुकदेव जी ने आगे के श्लोक में संगृहीत करके चौदह लाख हाथियों का दान कहा है । वह श्लोक है अदात कर्माणि माष्णारे नियुतानि चतुर्दश्या (२८ वाँ श्लोक० इस तरह चौदह लाख के एक सौ सातवाँ भाग बद्व कहलाता है । यह बद्व की संख्या **चतुर्दशानां लक्षणाम्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलायी गयी है ।

त्रयस्त्रिंशच्छतं ह्यश्वान्बध्वा विस्मापयन्नृपान् । दौष्यन्तिरत्यगान्मायां देवानां गुरुमाययौ ।।२७।।

अन्वयः— त्रयस्त्रिंशच्छतं ह्यश्वान् बध्वा दौष्यन्तिः नृपान् विस्मापयन् मायामत्यगात् देवानां गुरुम् आययौ ।।२७।।

अनुवाद— यज्ञों में १३३ अश्वमेघ के घोड़ों को बाँधकर राजा भरत ने सभी राजाओं को आश्चर्य में डाल दिया । वे माया को पार करके भगवान् विष्णु के लोक में चले गये ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

देवानामपि मायां वैभवमत्यगादत्यशेत। यतः गुरुं पूज्यं हरिमायौ प्राप्तः, तदंशभवत्वात् । मायावत्तर इति पाठे ह्रस्वः श्रुत्यनुसारेण । मायावतां श्रेष्ठो हरिरेवासावित्यर्थ; ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

देवताओं के भी ऐश्वर्य का अतिक्रमण कर गये । उसी के कारण वे श्रीहरि को प्राप्त किये । क्योंकि ये श्रीहरि के अंश से उत्पन्न थे । **मायावत्तरः** पाठ भेद होने पर ह्रस्व श्रुति के अनुसार ऐश्वर्यवानों में श्रेष्ठ श्रीहरि ही थे ।।२७।।

मृगान् शुक्लदतः कृष्णान्हिरण्येन परीवृतान् । अदात्कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश ।।२८।।

अन्वयः— मष्णारे कर्मणि हिरण्येन परिवृतान् शुक्लदत्तः कृष्णान् मृगान् चतुर्दश नियुतानि अदात् ।।२८।।

अनुवाद— यज्ञ के मष्णार कर्म में भरत ने सुवर्ण से अलंकृत श्वेत दाँत वाले काले रंग के श्रेष्ठ जाति के चौदह लाख हाथियों का दान दिया ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

मृगान् श्रेष्ठगजान् । भद्रमन्द्रमृगादयो गजजातिभेदाः । मष्णारे इत्यस्य श्रुतिपदस्य व्याख्यानं-कर्मणीति । कस्मिंचित्कर्मविशेषे। केचित्तु मष्णारे तीर्थ इति व्याचक्षते ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

श्रेष्ठ हाथियों का नाम मृग हैं भद्र, मन्द्र तथा मृग आदि हाथियों की जातियाँ हैं । मष्णरे इस श्रुति पद की व्याख्या कर्मणि पद से की गयी है । कुछ लोग मष्णार नामक तीर्थ में व्याख्या करते हैं ।।२८।।

भरतस्य महत्कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः । नैवापुर्नैव प्राप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ।।२९।।

अन्वयः— भरतस्य महत् कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः नैव आपुः नैवप्राप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ।।२९।।

अनुवाद— भरत के महान कर्म को न तो पहले कोई राजा कर सका और न तो कोई आगे कर सकेगा, क्या कोई हाथों को ऊँचा करके स्वर्ग को छू सकता है ।।२९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२९।।

किरातहूणान्यवनानन्ध्रान्कङ्कान्खशान् शकान् । अब्रह्मण्यान्नृपांश्चान्हन्म्लेच्छान्दिग्विजयेऽखिलान् ।।३०।।

अन्वयः— दिग्विजये, अब्रह्मण्यान् किरात् हूणान् यवनान् अन्ध्रान् कङ्कान् खशान् शकान् म्लेच्छान् अखिलान् नृपान् अहन् ।।३०।।

अनुवाद— दिग्विजय के प्रसंग में ब्राह्मण द्रोही किरात् हूंण, यवन, अन्ध्र, कङ्क, खश, शक, म्लेच्छ आदि सभी राजाओं को भरत ने मार दिया ।।३०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३०।।

जित्वा पुराऽसुरा देवान्ये रसौकांसि भेजिरे । देवस्त्रियो रसां नीताः प्राणिभिः पुनराहरत् ।।३१।।

अन्वयः— पुरा देवान् जित्वा ये असुरा रसौकांसि भेजिरे देवस्त्रियः रसां नीताः प्राणिभिः पुनराहसत् ।।३१।।

अनुवाद— पहले काल में देवताओं को जीतकर असुर रसातल में रहने लगे थे । वे बहुत सी देवाङ्गनाओं को रसातल में ले गये थे । राजा भरत पुनः उन सबों को छुड़ा लाए ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

पुरा देवान् जित्वा येऽसुरा रसौकांसि रसातलादिस्थानानि भेजिरे तैः प्राणिभिर्बलिभिर्देवस्त्रियो रसातलं नीताः सतीः पुनराहरदानिन्ये । प्राणिभिरन्यैर्मनुष्यादिभिः सह नीता इति वा । 'पाणिभिः' इति पाठे पणयोऽसुरास्तैर्नीताः सतीः । यद्वा पणयो दूतास्तैर्दूतान्प्रस्थाप्याहरदित्यर्थः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

पहले के समय में देवताओं को जीतकर असुर रसातल आदि स्थानों में रहने लगे थे, बलवान् असुर देव स्त्रियों को भी रसातल में ले गये थे । भरत उन सबों को लौटा लाए । अथवा मनुष्यों आदि के साथ ले आये यह भी अर्थ है । पणिभिः पाठभेद होने पर पाणि देवताओं को कहते हैं, वे सभी लौटा लाये । अथवा पणि दूतों को कहते हैं दूतों को भेजकर लिवा लाये ।।३१।।

सर्वकामान्दुदुहतुः प्रजानां तस्य रोदसी । समास्त्रिणवसाहस्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् ।।३२।।

अन्वयः— तस्य रोदसी सर्वकामान् प्रदुदुहतुः त्रिणवसाहस्रीः समा दिक्षुचक्रमवर्तयत् ।।३२।।

अनुवाद— उनकी सारी कामनाओं की पूर्ति पृथिवी और आकाश करते थे । वे सत्ताइस हजार वर्ष तक समस्त दिशाओं पर एक छत्र राज्य किए ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

त्रिणवसाहस्रीः समाः सप्तविंशतिसहस्रं वत्सरान् । चक्रं सेना आज्ञा वा ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

सताइस हजार वर्ष त्रिणव साहस्री समाः का अर्थ है चक्र शब्द सेना अथवा आज्ञा का बोधक है ।।३२।।

स सम्राड् लोकपालाख्यमैश्वर्यमधिराट्श्रियम् । चक्रं चास्खलितं प्राणान्मृषेत्युपरराम ह ।।३३।।

अन्वयः— स सम्राट् लोकपालाख्यम् ऐश्वर्यं, अधिराट् श्रियम् अस्खलितं चक्रं प्राणान् मृषा इत्युपरराम ह ।।३३।।

अनुवाद— सार्वभौम सम्राट भरत ने यह निश्चय किया कि लोकपालों का ऐश्वर्य सार्वभौम सम्पत्ति अखण्ड प्रशासन, और जीवन भी मिथ्या ही है । यह मानकर वे संसार से उदासीन हो गये ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

तस्य वैराग्येण मोक्षप्रकारमाह-स इति । मृषेति निचायेति शेषः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

स सम्राट् इत्यादि श्लोक के द्वारा वैराग्य पूर्वक मोक्ष के प्रकार को कहा गया है । मिथ्या सोचकर ।।३३।।

तस्यासन्नृप वैदर्भ्यः पत्न्यस्तिस्रः सुसंमताः । जघ्नुस्त्यागभयात्पुत्रान्नानुरूपा इतीरिते ।।३४।।

अन्वयः— हे नृप ! तस्य वैदभ्यः तिस्रः सुसम्मताः पत्न्यः आसन् नानुरूपा इति ईरिते त्याग भयात् पुत्रान् जघ्नुः।।३४।।

अनुवाद— परीक्षित् भरत की विदर्भ राज की तीन पत्नियाँ उनकी सुसम्मत स्त्रियाँ थी । जब भरत ने कहा कि तुमलोगों के पुत्र मेरा अनुरूप नहीं है तो उन सबों ने त्याग के भय से अपने पुत्रों को मार दिया ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

नानुरूपा मत्सदृशा न भवन्तीति भर्त्रा ईरिते सति व्यभिचारशङ्कया स्मांस्त्यक्ष्यतीति भयात्पुत्रान् जघ्नुः । पुनः पुत्राणां दर्शने वैसादृश्यानुसन्धानेन त्यजेन्नान्यथेत्याशयेन हतवत्यः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

भरत द्वारा तुमलोगों के पुत्र मेरे समान नहीं है, इस तरह से कहे जाने पर भरत व्यभिचार की शंका से

कहीं हमलोगों का त्याग न कर दें, इस भय से उन सबों ने पुत्रों को मार दिया। पुत्रों को अपने विसदृश सोचकर ये हमलोगों को त्याग सकते हैं इस भय से पुत्रों को मार दिया ॥३४॥

तस्यैवं वितथे वंशे तदर्थं यजतः सुतम् । मरुत्स्तोमेन मरुतो भरद्वाजमुपाददुः ॥३५॥

अन्वयः— एवं तस्य वितथे वंशे तदर्थं मरुत्स्तोमेन यजतः मरुतः भरद्वाजम् सुतम् उपाददुः ॥३५॥

अनुवाद— इस तरह से भरत के वंश के विच्छिन्न होने लगने पर उन्होंने मरुत्स्तोम यज्ञ किया तो मरुद्गण प्रसन्न होकर उनको भरद्वाज नामक पुत्र प्रदान किए ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

वितथे व्यर्थे सति तदर्थं पुत्रार्थं मरुत्स्तोमेन यागेन यजतस्तस्य प्रसन्नाः सन्तो मरुतो भरद्वाजं नाम पुत्रमुपाददुः समर्पयामासुः॥३५॥

भाव प्रकाशिका

वंश के व्यर्थ होने पर पुत्र प्राप्ति के लिए मरुतस्तोम, याग के द्वारा यजन करने पर मरुद्गणों ने उनको भरद्वाज नामक पुत्र समर्पित कर दिया ॥३५॥

अन्तर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः । प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥३६॥

अन्वयः— अन्तर्वन्यां भ्रातृपत्न्यां प्रवृत्तः वारितः बृहस्पतिः गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥३६॥

अनुवाद— अपने छोटे भाई उतथ्य की गर्भवती पत्नी के साथ मैथुन करने के लिए उद्यत बृहस्पति को जब गर्भ ने रोका तो वे उसको तुम अन्धा हो जाओ इस तरह से शाप देकर बलपूर्वक गर्भाधान किए ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

मरुतां भरद्वाजागमप्रकारं प्रदर्शयन्नाह–अन्तर्वत्न्यामिति चतुर्भिः–अन्तर्वत्न्यां गर्भिण्यां भ्रातरुतथ्यस्य पत्न्यं ममतायां चौर्येण मैथुनाय कदाचित्प्रवृत्तो बृहस्पतिस्तदा द्वितीयगर्भस्यावकाशाभावादाक्रोशपूर्वकं गर्भस्थेन वारितस्ततः क्रुद्धो बृहस्पतिरन्धो भवेति तं गर्भं शप्त्वा बलाद्वीर्यं न्यषिञ्चत्ततो बृहस्पतेः शापाद्गर्भस्थो दीर्घतमा अन्धो बभूव तेन च तद्वीर्यं पार्ष्णिप्रहारेण योनेर्वहिर्निःसारितं भूमौ पतितं सद्य एव कुमारोऽभवत् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

अन्तर्वत्न्याम्० इत्यादि चार श्लोकों से मरुद्गणों को भरद्वाज की प्राप्ति का प्रकार बतलाया गया है। अपने छोटे भाई उतथ्य की पत्नी ममता जब गर्भवती थी उस समय चोरी से बृहस्पति उसके साथ मैथुन करना चाहे। उस समय दूसरे गर्भ के लिए अवकाश का अभाव होने से गर्भस्थ शिशु ने बृहस्पति को आक्रोश पूर्वक रोका। उससे क्रुद्ध होकर बृहस्पति ने उस शिशु को शाप दे दिया कि तुम **अन्धा हो जाओ** और उन्होंने बलपूर्वक गर्भाधान कर दिया। बृहस्पति के शाप से गर्भस्थ दीर्घतमा अन्धे हो गये। गर्भस्थ शिशु के पैर के प्रहार से बृहस्पति का वीर्य योनि से बाहर गिर पड़ा और गिरते ही वह बालक हो गया ॥३६॥

तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तृत्यागविशङ्किताम् । नामनिर्वचनं तस्य श्लोकमेनं सुरा जगुः ॥३७॥

अन्वयः— भर्तृत्यागविशंकिताम् तं त्यक्तुकामांममतां तस्य नाम निर्वचनं एनं श्लोकं सुरा जगुः ॥३७॥

अनुवाद— उतथ्य की पत्नी ममता को भय था कि मेरे पति मेरा त्याग कर देंगे अतएव उसने बृहस्पति जी के द्वारा होने वाले बच्चे को त्याग देना चाहा। उस समय देवताओं ने उस बालक के नाम का निर्वचन करते हुए कहा ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तं च परवीर्यजं भर्तुस्त्यागाद्विशङ्कितां सतीं त्यक्तुकामां ममतां प्रति सुरा एवं बृहस्पतेर्ममतायाश्च विवादरूपं श्लोकं जगुः। किमर्थं जगुरत आह-तस्य नाम निरुच्यते येन तत् । तन्नामनिर्वचनेनैव भर्तुस्त्यागशङ्कामपाकर्तुमित्यर्थः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

उस दूसरे के वीर्य से उत्पन्न बालक के कारण पति मेरा त्याग कर दे सकते है इस भय से भयभीत ममता उस बालक को त्याग देना चाहती थी । अतएव बृहस्पति और ममता के विवाद रूप इस श्लोक को देवताओं ने गाया । देवताओं ने क्यों गाया ? इसलिए कि उस श्लोक से बालक के नाम निर्वचन हो जाता है । उसी से पति के त्याग की शङ्का को दूर करने के लिए श्लोक कहा ।।३७।।

मूढे भर द्वाजमिमं भर द्वाजं बृहस्पते । यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ।।३८।।

अन्वयः— मूढे इमं द्वाजं भर बृहस्पते द्वाजं भर यदुक्त्वा पितरौ यातौ ततः तु आयम् भरद्वाजः ।।३८।।

अनुवाद— बृहस्पति कहते थे कि अरे मूढे डरो मत यह मेरा औररस और मेरे भई का क्षेत्रज पुत्र है, अतएव डरो मत इसका भरण पोषण करो, इस पर ममता ने कहा कि हे बृहस्पते यह पुत्र मेरे पति का नहीं अपितु हम दोनों का है अतएव आप इसका भरण पोषण करें । इस प्रकार आपस में विवाद करते हुए दोनों उस बालक को छोड़कर चले गये अतएव उसका नाम भरद्वाज है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

तत्र पुत्रं त्यक्त्वा यान्तीं ममतां बृहस्पतिराह-हे मूढे, इमं पुत्रं भर पुषाण । भर्तुर्बिभेमीति चेत्तत्राह- द्वाजमेकस्य क्षेत्रेऽन्य वीजादित्येवं द्वाभ्यां जातम्, अतस्तस्याप्ययं पुत्र इति न तस्माद्भयशङ्केत्यर्थ; । एवमुक्ता सती तं प्रत्याह-हे बृहस्पते, त्वमिमं भर । यतो द्वाभ्यामावाभ्यामन्यायतो जातम् । अतो नाहमेकाकिनी भरामीत्यर्थः । यद्यस्मादेवमुक्त्वा पितरौ ममताबृहस्पती विवदमानौ पुत्रं परित्यज्य यातौ ततो हेतोरयं भरद्वाज इति । पाठान्तरे यस्य त्यागदुःखात्पितरौ यातावित्यर्थः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

पुत्र को छोड़कर जाती हुई ममता से बृहस्पति ने कहा हे मूढे इस पुत्र का भरण पोषण करो । यदि कहो कि मैं अपने पति से डरती हूँ, तो इस पर बृहस्पति ने कहा एक के क्षेत्र में दूसरे के बीज से उत्पन्न होने के कारण यह द्वाज है अतएव डरो मत । इस पर मामता ने कहा हे बृहस्पते आप इसका भरण पोषण करें । क्योंकि हम दोनों से यह अन्याय पूर्वक उत्पन्न हुआ है । अतएव अकेली मैं इसका पोषण नहीं कर सकती हूँ, इस तरह से विवाद करके उस बालक को छोड़कर ममता और बृहस्पति दोनों चले गये । अतएव इसका नाम भरद्वाज है। पाठान्तर के अनुसार त्याग जन्य दुःखपूर्वक दोनों चले गये ।।३८।।

चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् । व्यसृजन्मरुतोऽबिभ्रन्दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ।।३९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ।।२०।।

अन्वयः— सुरैः एवं चोद्यमाना वितथम् आत्मजम् मत्त्वा व्यसृजत् मरुतः अविभ्रन् अयं वितथे अन्वये दत्तः ।।३९।।

अनुवाद— देवताओं के द्वारा इस प्रकार से प्रेरित किए जाने पर भी वितथ को ही अपना पुत्र मानने वाली ममता भरद्वाज को छोड़कर चली गयी । तब भरद्वाज का पालन पोषण मरुद्गणों ने किया, इसी भरद्वाज को देवताओं ने वितथ को व्यर्थ होने वाले भरत के वंश में दत्तक रूप से प्रदान किया ।।३९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

वितथं व्यभिचारंभवात्तमात्मजं वितथं निरर्थकं मस्वा ममता व्यसृजत्तत्याज । पाठान्तरे आदिजं प्रथमजं भर्तुवीर्याज्जातमेव मुख्यमात्मजं मत्वा बृहस्पतेर्जातं तत्याजेत्यर्थः । एवं तया त्यक्तं मरुतोऽविभ्रन्नविभरुः । तदेवं मरुद्भिः प्राप्तोऽयं भरतस्यान्वये वितथे सति दत्तः ।।३९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां विंशोऽध्यायः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

व्यभिचार की संभावना से उस भरद्वाज नामक पुत्र को निरर्थक मानकर ममता ने उसको त्याग दिया पाठान्तर होने पर पहले के पति की वीर्य से उत्पन्न को ही मुख्य पुत्र मानकर बृहस्पति के वीर्य से उत्पन्न पुत्र को ममता ने त्याग दिया । उस परित्यक्त बालक का पोषण मरुतों किया । इस तरह से मरुद्गणों ने उस प्राप्त बालक को भरत के वंश के व्यर्थ होने पर प्रदान किया ।।३९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२०।।

इक्कीसवाँ अध्याय

भरत के वंश का वर्णन राजा रन्तिदेव की कथा

श्रीशुक उवाच

वितथस्य सुतो मन्युर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः । महावीर्यो नरो गर्गः संकृतिस्तु नरात्मजः ॥१॥

अन्वयः— वितस्य सुतः मन्युः बृहत्क्षत्रः जयः महावीर्यः नरः गर्गः संकृतिस्तु नरात्मजः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— वितथ अथवा भरद्वाज के पुत्र मन्यु हुए मन्यु के पाँच पुत्र हुए, बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग । नर के पुत्र संकृति थे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकविंशे तु दौष्यन्तेः सुतस्यान्वय उच्यते । रन्तिदेवाजमीढादेर्यत्र कीर्तिः प्रतन्यते । भरतस्यान्वये वितथे सति दत्तत्वाद्वितथसंज्ञो भरद्वाजः । स च ब्राह्मणोपि भरतस्य दत्तः पुत्रो जात इति तद्वंशोऽनुक्रम्यते । वितथस्य सुतो मन्युस्तस्माद्बृहत्क्षत्रजयमहावीर्यनरगर्गाः पञ्च पुत्रा बभूवुः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इक्कीसवें अध्याय में दुष्यन्त के पुत्र भरत के वंश का वर्णन किया जाता है । इस वंश के रन्तिदेव और अजमीढ इत्यादि के यश का विस्तृत वर्णन किया गया है । भरत के वंश के वितथ अर्थात् व्यर्थ हो जाने पर दत्तक होने के कारण वितथ संज्ञक भरद्वाज हैं । ब्राह्मण होने पर भरद्वाज भरत के दत्तक पुत्र हुए । इस तरह से भरत के वंश का वर्णन किया जाता है । वितथ के पुत्र मन्यु हुए उनके पाँच पुत्र हुए बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य नर और गर्ग ॥१॥

गुरुश्च रन्तिदेवश्च संकृतेः पाण्डुनन्दन । रन्तिदेवस्य हि यश इहामुत्र च गीयते ॥२॥

अन्वयः— हे पाण्डुनन्दन संकृते गुरुश्च रन्तिदेवश्च रन्तिदेवस्य हि यशः इह अमुत्र च गीयते ॥२॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! संकृति के दो पुत्र हुए संकृति और रन्तिदेव, रन्तिदेव का यश इस लोक में और परलोक में भी गाया जाता है ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

वियद्वित्तस्य ददतो लब्धं लब्धं बुभुक्षतः । निष्किंचनस्य धीरस्य सकुटुम्बस्य सीदतः ॥३॥

अन्वयः— वियद्वित्तस्य लब्धं लब्धं बुभुक्षतः ददतः निष्किञ्चनस्य धीरस्य सुकुटुम्बस्य सीदतः ॥३॥

अनुवाद— वे आकाश के समान विना उद्योग किए ही जो कुछ मिल जाता था उसे ही खाते थे । इस तरह उनकी पूँजी घटती जाती थी । जो कुछ मिल जाता था उसे भी वेदान कर देते थे और स्वयं भूखे रह जाते थे । वे किसी भी वस्तु में स्वकीयत्व की भावना से रहित धैर्य सम्पन्न और अपने परिवार के साथ कष्ट भोगते रहते थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

वियद्वित्तस्य वियतो गगनादिवोद्यमं विना दैवादुपस्थितमेव वित्तं भोग्यं यस्य । यद्वा वियद्वयं प्राप्नुद्वित्तं भोग्यं यस्य। तदेवाह बुभुक्षतोऽपि सतो लब्धं लब्धं ददतः । तत्प्रपञ्चयति-निष्किंचनस्येत्यादिसार्धैः पञ्चदशभिः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

आकाश के समान बिना उद्योग किए जो कुछ मिल जाता था उसका ही उपभोग करते थे अथवा आकाश में प्राप्त वित्त का वे भोग करते थे । भूखे रहने पर भी प्राप्त वस्तुओं का वे दान करते रहते थे । इसी का विस्तार से वर्णन निष्किञ्चनस्य इत्यादि साढे पन्द्रह श्लोकों से करते हैं ॥३॥

व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपिबतः किल । घृतपायससंयावं तोयं प्रातरुपस्थितम् ॥४॥

अन्वयः— अपिबतः अष्टचत्वारिशत् अहानि व्यतीयु किल । प्रातः घृतपायस संयावं तोयम् उपस्थितम् ॥४॥

अनुवाद— एक बार उनको अड़तालिस दिनों तक पीने के लिए पानी भी नहीं मिला, उनचासवें दिन प्रातःकाल उनको खाने के लिए घी, खीर, हलवा और पानी मिला ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अपिबतो जलपानमप्यकुर्वतः । घृतादित्रयाणां द्वन्द्वैक्यम् तोयं च ॥४॥

भाव प्रकाशिका

जल भी पिए बिना रहते हुए । घृत पाचससंयावं में घी पायस और संयाव इन तीनों में समाहार द्वन्द्व होने के कारण एक वचनान्त प्रयोग है । तोयम् अर्थात् जल ॥४॥

कृच्छ्रप्राप्तकुटुम्बस्य क्षुत्तृड्भ्यां जातवेपथोः । अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागमत् ॥५॥

अन्वयः— कृछ्रात् प्राप्त कुटुम्बस्य क्षुततृड्भ्यां जातवेपथोः भोक्तकामस्य काले ब्राह्मणः अतिथिः च अगमत् ॥५॥

अनुवाद— इन वस्तुओं के बड़ी कठिनाई से प्राप्त होनें के कारण उनका परिहार भूख और प्यास के कारण काँप रहा था, जब वे भोजन करना ही चाहते थे उसी समय एक अतिथि ब्राह्मण आ गये ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

तस्मै संव्यभजत्सोऽन्नमादृत्य श्रद्धयान्वितः । हरिं सर्वत्र संपश्यन्स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः ॥६।

अन्वयः— सर्वत्र हरि संपश्यन् सः आदृत्य श्रद्धयान्वितः तस्मै अन्नं संव्यभजत् सः द्विजः भुक्त्वा ययौ ॥६॥

अनुवाद— सर्वत्र सबों में श्रीहरि का दर्शन करने वाले राजारन्तिदेव उस अतिथि का आदर सत्कार करवे श्रद्धा पूर्वक भोजन कराये । भोजन करके वह ब्राह्मण चला गया ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

अथान्यो भोक्ष्यमाणस्य विभक्तस्य महीपते । विभक्तं व्यभजत्तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन् ॥७।

अन्वयः— महीपते अथ विभक्तस्य भोक्ष्यमाणस्य अन्यः तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन् विभक्तं व्यभजत् ॥७॥

अनुवाद— राजन् ! बचे हुए अन्न को रन्तिदेव ने आपस में बाँट लिया और भोजन करना चाहा उसी समय एक दूसरा शूद्र आ गया । राजा रन्तिदेव ने उस विभक्त अन्न में से ही श्रीहरि का स्मरण करते हुए उस शूद्र अतिथि को भोजन करा दिया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अथान्यो वृषलोऽतिथिरागमत् । विभक्तस्य कुटुम्बार्थमन्नादिकं विभक्तवतः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् दूसरा शूद्र अतिथि आ गया । विभक्तस्य अर्थात् परिवार के लिए अन्न आदि को बाटे हुए॥७॥

याते शूद्रे तमन्योऽगादतिथिः श्वभिरावृतः । राजन्मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षते ॥८॥

अन्वयः— शूद्रे याते तम् अन्यः श्वभिः आवृतः अन्यः अतिथिः अगात् राजन् सगणाय बुभुक्षते मे अन्नं दीयताम् ॥८॥

अनुवाद— उस शूद्र के चले जाने पर एक दूसरा कुत्तों को लिए अतिथि आ गया । उसने कहा राजन् मैं अपने इन कुत्तों के साथ बहुत भूखा हूँ मुझे खाने के लिए आप अन्न दे दें ॥८॥

भावार्थ दीपिका

सगणाय श्वयूथसहिताय ॥८॥

भाव प्रकाशिका

सगणाय अर्थात् कुत्तों के समूह से युक्त ॥८॥

स आदृत्यावशिष्टं यद्बहुमानपुरस्कृतम् । तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे श्वभ्यः श्वपतये विभुः ॥९॥

अन्वयः— सः विभुः अदृत्य बहुमानपुरस्कृतम् यद् अवशिष्टं तच्चदत्त्वा श्वभ्य; स्वपतये नमश्चक्रे ॥९॥

अनुवाद— राजा ने उसका आदर करके बहुमान पूर्वक जो बचा अन्न था उसे देकर उस कुत्ते के स्वामी और कुत्तों को नमस्कार किए ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

पानीयमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम् । पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभस्य मे ॥१०॥

अन्वयः— पानीयं मात्रम् उच्छेषं तच्च एकपरितर्पणम् पास्यतः पुल्कस; अभ्यगात् अशुभस्य मे अपः देहि ॥१०॥

अनुवाद— अब केवल जल बच गया था, वह भी केवल एक आदमी के पीने भर था, राजा पीना चाहते थे उस समय एक चाण्डाल आ गया उसने कहा मैं अत्यन्त नीच हूँ मुझे जल पिला दीजिये ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

उच्छेषमुर्वरितम् । एकमेव तर्पयतीति तथा ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

उच्छेषं अर्थात् बचा हुआ और वह भी एक ही आदमी के पीने भर ।।१०।।

तस्य तां करुणां वाचं निशम्य विपुलश्रमाम् । कृपया भृशसंतप्त इदमाहामृतं वचः ।।११।।

अन्वयः— तस्य तां विपुलश्रमाम करुणावाच निशम्य कृपया भृशसंतप्तः इदम् अमृतं वचः आह ।।११।।

अनुवाद— उस चाण्डाल की अत्यन्त कठिनाई पूर्वक उच्चारित वाणी को सुनकर करुणा से अत्यन्त सन्तप्त राजा ने इस अमृतमयी वाणी को कहा ।।११।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।११।।

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात्परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा ।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः ।।१२।।

अन्वयः— अहम् ईश्वरात् अष्टद्धियुक्ता पराम् गति अपुनर्विवा नहि कामये, अखिलदेह भाजामन्तः स्थितः अर्ति प्रपद्ये येन अदुःखाः भवन्ति ।।१२।।

अनुवाद— मैं परमात्मा से आठों सिद्धियों से युक्त परमा गति अथवा मुक्ति को नहीं चाहता हूँ मैं तो केवल सभी प्राणियों के हृदय में प्रवेश करके उन सबों के कष्ट को प्राप्त कर लेना चाहता हूँ, जिससे कि सभी लोग सुखी हो जायँ ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

परदुःखासहिष्णुतया सर्वेषां दुःखं स्वयं भोक्तुमाशास्ते-नेति । अणिमाद्यष्टसमृद्धियुक्तां गतिमपि मोक्षमपि चाहं न कामये । तर्हि किं कामयसे तदाह-अखिलदेहभाजामर्तिं दुःखं तत्तद्भोक्तृरूपेणान्तःस्थितः सन्नहं प्रपद्ये प्राप्नुयामित्येवं कामये। येन तद्दुःखभोक्त्रा मया हेतुभूतेन ते सर्वेऽदुःखा भवन्ति ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

दूसरों के दुःख को नहीं सह सकने के कारण सबों के दुःखों को स्वयं भोगना चाहता हूँ । अणिमा आदि आठ सिद्धयों से युक्त मोक्ष भी नहीं प्राप्त करना चाहता हूँ । प्रश्न होता है कि आप क्या चाहते है ? तो इसका उत्तर है कि सभी शरीर धारियों के अन्तःकरण में स्थित होकर उनके दुःखों को मैं स्वयं भोगना चाहता हूँ । जिससे कि उनके दुःखों के भोक्ता रूप से मेरे द्वारा सभी लोग सुखी हो जायँ ।।१२।।

क्षुत्तृट्श्रमो गात्रपरिश्रमश्च दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः ।
सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तोर्जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ।।१३।।

अन्वयः— कृपणस्य अस्य जिजीविषोर्जीवजलार्पणात् मे क्षुत्तृट्श्रमः गात्रपरिश्रमश्च दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः सर्वेनिवृत्ताः ।।१३।।

अनुवाद— यह दुःखी प्राणी जल पीकर जीना चाहता था उसको जीवन जल प्रदान करने से उसकी रक्षा हो गयी इसके कारण मेरे भूख, प्यास, परिश्रम दीनता, थकान, शोक विषाद और मोह सबके सब समाप्त हो गये ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ननु दुःखं किमिति प्रार्थयसे । परदुःखनिवृत्त्यैव मम सर्वदुःखनिवृत्तिरित्याह-क्षुत्तृडिति । कृपणस्य जन्तोर्जीवनहेतोर्जलस्यार्पणान्मे सर्वे क्षुत्तृडादयो निवृत्ताः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि आप दुःख क्यों चाहते है ? तो इस पर कहते है कि दूसरों के दुःख को दूर करने से ही मेरा दुःख दूर हो जाता है । इस बात को **क्षुत्तृट् इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । इस दुःखी जीव के जीवन के कारण भूत जल प्रदान करने से मेरे भूख प्यास आदि सभी दुःख दूर हो जाये ॥१३॥

इति प्रभाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया । पुल्कसायाददाद्धीरो निसर्गकरुणो नृपः ॥१४॥

अन्वयः— निसर्गकरुणो नृपः इति प्रभाष्य पिपासया मृयमाणः धीरः पुल्कसाय पानीयं अदात् ॥१४॥

अनुवाद— राजा रन्तिदेव स्वभावतः दयालु थे, यद्यपि वे स्वयं प्यास से मरे जा रहे थे किन्तु यह कहकर उन्होंने वह जल चाण्डाल को दे दिया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

इत्येवं प्रभाष्य ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से कहकर ॥१४॥

तस्य त्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम् । आत्मानं दर्शयांचक्रुर्माया विष्णुविनिर्मिताः ॥१५॥

अन्वयः— फलम् इच्छताम् फलदाः त्रिभुवनाधीशाः तस्य आत्मानं दर्शयाञ्चक्रुः । विष्णुविनिर्मिताः ॥१५॥

अनुवाद— फल चाहने वालों को फल प्रदान करने वाले त्रैलोक्य के स्वामी ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रकट होकर के राजा रन्तिदेव को दर्शन दिए । वे सभी भगवान् विष्णु के द्वारा निर्मित मायायें थीं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

त्रिभुवनाधीशा ब्रह्मादयः । मायास्तदीयधैर्यपरीक्षार्थं प्रथमं मायया वृषलादिरूपेण प्रतीताः सन्त इत्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

त्रिभुवनाधीशाः अर्थात् ब्रह्मा विष्णु एवं शिव । पहले राजा के धैर्य की परीक्षा करने के लिए मायया के द्वारा वृषल इत्यादि रूप से प्रतीत हुए थे ॥१५॥

स वै तेभ्यो नमस्कृत्य निःसङ्गो विगतस्पृहः । वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे नमः परम् ॥१६॥

अन्वयः— निःसङ्गः, विगतस्पृहः तेभ्यः नमस्कृत्य सः भगवति वासुदेवे परम भक्त्या नमश्चक्रे ॥१६॥

अनुवाद— सबों से अनासक्त और निःस्पृह राजा रन्तिदेव ने उन लोगों को नमस्कार करके भगवान् वासुदेव में परमा भक्ति होने के कारण नमस्कार किए ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

परं केवलं वासुदेवे भक्त्या नमश्चक्रे नतु तान्किमपि याचितवान् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् वासुदेव में पराभक्ति होने से उन्होंने केवल नमस्कार किया कोई याचना नहीं की ॥१६॥

ईश्वरालम्बनं चित्तं कुर्वतोऽनन्यराधसः । माया गुणमयी राजन्स्वप्नवत्प्रत्यलीयत ॥१७॥

अन्वयः— राजन् अनन्याराधसः ईश्वरालम्बनं चित्तं कुर्वतः गुणमयी माया स्वप्नवत् प्रत्यतीयत ॥१७॥

अनुवाद— परीक्षित् परमात्म व्यतिरिक्त किसी दूसरे फल की इच्छा नहीं होने के कारण उन्होंने अपने मन

को परमात्मा में लगा दिया, उसके कारण गुणमयी त्रिगुणात्मिका उसी तरह से समाप्त हो गयी जैसे जगने पर स्वप्न समाप्त है जाता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अनन्यराधस ईश्वरातिरिक्तफलान्तरानपेक्षस्य । प्रत्यलीयतात्मन्येव लीना बभूव ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

परमात्मव्यतिरिक्त किसी वस्तु की इच्छा नहीं होने से । प्रत्यलीयत अर्थात् आत्मा में ही लीन हो गयी ॥१७॥

तत्प्रसङ्गानुभावेन रन्तिदेवानुवर्तिनः । अभवन्योगिनः सर्वे नारायणपरायणाः ॥१८॥

अन्वयः— तत्प्रसङ्गानुभावेन सर्वे रन्तिदेवानुयायिनः नारायणपरायणाः योगिनः अभवन् ॥१८॥

अनुवाद— राजा की सङ्गति के कारण सभी रन्तिदेवानुयायी भगवान् नारायण के आश्रित योगी हो गये॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

गर्गाच्छनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद्ब्रह्म ह्यवर्तत । दुरितक्षयो महावीर्यात्तस्य त्रय्यारुणिः कविः ॥१९॥

अन्वयः— गर्गाच्छनिः ततः गार्ग्य क्षत्रात् ब्रह्म (ह अवर्तत) महावीर्यात् दुरितक्षयः तस्य त्रय्यारुणिः कविः ॥१९॥

अनुवाद— मन्युपुत्र गर्ग के पुत्र शनि हुए शनि के पुत्र गार्ग्य हुए गार्ग्य क्षत्रिय थे किन्तु उनसे ब्राह्मण वंश चला । महावीर्य के पुत्र दुरितक्षय हुए । दुरितक्षय के तीन पुत्र हुए त्रय्यारुणिः कविः और पुष्करारुणि ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

मन्युसुतस्य नरस्य वंशमुक्त्वा तत्सुतस्यैव गर्गस्य वंशमाह-गर्गादिति । महावीर्यस्य वंशमाह-दुरितक्षयस्तस्य त्रय्यारुणिः कविः पुष्करारुणिश्चेति त्रयः पुत्राः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

मन्यु के पुत्र नर के वंश का वर्णन करते हुए उसके पुत्र गर्ग के वंश को गर्गादित्यादि के द्वारा कहे हैं। महावीर्य के वंश को बतलाते है महावीर्य के पुत्र दुरितक्षय हुएउनके तीन पुत्र हुए त्रय्यारुणि कवि और पुष्करारुणि॥१९॥

पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः । बृहत्क्षत्रस्य पुत्रोऽभूद्धस्तीयद्धस्तिनापुरम् ॥२०॥

अन्वयः— पुष्करारुणिः इत्यत्र ये ब्राह्मण गतिं गताः बृहत्क्षत्रस्य पुत्रः हस्ती अभूत् यत् हस्तिनापुरम् ॥२०॥

अनुवाद— पुष्करारुणि इत्यादि दुरितक्षय के तीनों पुत्र ब्राह्मण हो गये । बृहत्क्षत्र के पुत्र हस्ती हुए उन्होंने हस्तिनापुर को बसाया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

कथंभूताः-ये अत्र क्षत्रवंशे ब्राह्मणगतिं ब्राह्मणरूपतां गतास्ते । मन्युपुत्राणां पञ्चानां ज्येष्ठस्य वंशमाह-बृहत्क्षत्रस्येति। यद्येन हस्तिनापुरं कृतमित्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

ये तीनों कैसे थे । तो इस पर कहते हैं कि ये तीनों इस क्षत्रिय वंश में ब्राह्मण के समान हो गये । मन्यु के पाञ्च पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र के वंश को बतलाते हुए कहे । बृहत्क्षत्र के पुत्र हस्ती हुए उन्होंने हस्तिनापुर का निर्माण किया ॥२०॥

अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च हस्तिनः । अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः ॥२१॥

अन्वयः— हस्तिनः अजमीढः द्विमीढः पुरुमीढश्च प्रियमेधादयः द्विजाः अजमीढ़स्य वंश्याः ॥२१॥

अनुवाद— हस्ती के तीन पुत्र थे अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ, प्रियमेधा इत्यादि ब्राह्मण अजमीढ के ही वंशज हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अजमीढादयस्त्रयो हस्तिनः पुत्राः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

हस्ती के अजमीढ इत्यादि तीन पुत्र हुए ॥२१॥

अजमीढाद्बृहदिषुस्तस्य पुत्रो बृहद्भानुः । बृहत्कायस्ततस्तस्य पुत्र आसीज्जयद्रथः ॥२२॥

अन्वयः— अजमीढात् बृहदिषुः तस्य पुत्रः बृहद्भानुः ततः बृहत्कायः तस्य पुत्रः जयद्रथ आसीत् ॥२२॥

अनुवाद— अजमीढ के पुत्र बृहदिषु हुए उनके पुत्र बृहद्भानु हुए उनके पुत्र बृहत्काय हुए तथा उनके पुत्र जयद्रथ हुए ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अजमीढादेवान्यः पुत्रो बृहदिषुर्नामाभवत् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अजमीढ के ही दूसरे पुत्र बृहदिषुनाम वाले हुए ॥२२॥

तत्सुतो विशदस्तस्य सेनजित्समजायत । रुचिराश्वो दृढहनुः काश्यो वत्सश्च तत्सुताः ॥२३॥

अन्वयः— तत्सुतः विशदः तस्य सेनजित् समजायत । रुचिराश्वः दृढहनुः काश्यः, वत्सः च तत्सुताः ॥२३॥

अनुवाद— जयद्रथ के पुत्र विशद, विशद के पुत्र सेनजित हुए, उनके चार पुत्र हुए रुचिराश्व, दृढहनु काश्य और वत्स ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

रुचराश्वसुतः पारः पृथुसेनस्तदात्मजः । पारस्य तनयो नीपस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥२४॥

अन्वयः— रुचिराश्वसुतः पारः तदात्मजः पृथुसेनः पारस्य तनयः नीपः तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥२४॥

अनुवाद— रुचिराश्व के पुत्र पार हुए, उनके पुत्र पृथुसेन हुए । पार के पुत्र नीप हुए उनके सौ पुत्र हुए॥२४॥

भावार्थ दीपिका

पारस्य तनयो नीपः । नीपस्य पुत्रशतम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

पार के पुत्र नीप हुए और नीप के सौ पुत्र हुए ॥२४॥

स कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तमजीजनत् । स योगीगवि भार्यायां विष्वक्सेनमधात्सुतम् ॥२५॥

अन्वयः— सः शुककन्यायां कृत्व्यां ब्रह्मदत्तमजीजनत् । स योगी गवि भार्यायां विष्वक्सेनं सुतम् अधात् ॥२५॥

अनुवाद— नीप ने ही छाया शुक की पुत्री कृत्वी के गर्भ से ब्रह्मदत्त को उत्पन्न किया । ब्रह्मदत्त योगी थे। उन्होंने सरस्वती नामक पत्नी के गर्भ से विष्वक्सेन नामक पुत्र को उत्पन्न किया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

स एव कृत्व्यां कृत्वीसंज्ञायां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तं च जनयामास । तदुक्तं हरिवंशादिषु–'पराशरकुलोत्पन्नः शुको नाम

महायशाः । व्यासादरण्यां संभूतो विधूमोऽग्निरिवोज्ज्वलन् । स तस्यां पितृकन्यायां वीरिण्यां जनयिष्यति । कृष्णं गौरप्रभं शंभुं तथा भूरिश्रुतं जयम् । कन्यां कीर्तिमतीं षष्ठीं योगिनीं योगमातरम् । ब्रह्मदत्तस्य जननीं महिषीमणुहस्य च । इति । यद्यपि शुक उत्पत्त्यैव विमुक्तसङ्गो निर्गतस्तथापि विरहातुरं व्यासमनुयान्तं दृष्ट्वा छायाशुकं निर्माय गतवांस्तदभिप्रायेणैव गार्हस्थ्यादिव्यवहार इत्यविरोधः । स ब्रह्मदत्तो योगी । गवि वाचि सरस्वत्याम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

नीप ने ही छायाशुक की पुत्री कृत्वी के गर्भ से ब्रह्मदत्त को उत्पन्न किया । हरिवंशादि पुराणों में कहा गया है कि महर्षि पराशर के ही वंश में महायशस्वी शुक उत्पन्न हुए थे । व्यास के पुत्र के रूप में अरणि मंथन से धूम रहित जलती हुई अग्नि के समान उत्पन्न हुए थे । वे पितरों की कन्या के गर्भ से कृष्ण गौरप्रभ, शम्भु भूरिश्रुत, जय छठवे कीर्तिमती कन्या को उत्पन्न करेंगे । कीर्तिमती योगिनी और योग की माता है । वह ब्रह्मदत्त की माता और अणुह की रानी है । यद्यपि शुकदेव जन्म से ही अनासक्त थे किन्तु विरह से व्याकुल तथा पीछे-पीछे आने वाले व्यासजी को देखकर वे छाया शुक का निर्माण करके चले गये । उन्हीं के अभिप्राय से गार्हस्थ्य आदि का व्यवहार मानने में किसी का विरोध नहीं है ।।२५।।

जैगीषव्योपदेशेन योगतन्त्रं चकार ह । उदक्स्वनस्ततस्तस्माद्भल्लादो बार्हदीषवाः ।।२६।।

अन्वयः— जैगीषव्योपदेशे योगतन्त्रं चकार ततः उदक्स्वनः तस्मात् भल्लादः बार्हदीषवः ।।६।।

अनुवाद— जैगीषव्य के उपदेश से विष्वक्सेन ने योगशास्त्र का निर्माण किया । विष्वक्सेन के पुत्र उदक्स्वन और उनके पुत्र भल्लाद ये सब बृहदीषव के वंशज हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

स एव योगतन्त्रं चकार । बार्हदीषवा बृहदिषोर्वंश्या इमे, दीर्घत्वमार्षम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

विष्वक्सेन ने ही योगशास्त्र का निर्माण किया । बार्हदीषवा: अर्थात् बृहादिषव के वंशज है । बार्हदश्वा: में दीर्घ आर्ष है ।।२६।।

यवीनरो द्विमीढस्य कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः । नाम्ना सत्यधृतिर्यस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत् ।।२७।।

अन्वयः— द्विमीढस्य यवीनर तत्सुतः कृतिमान स्मृतः, सत्यधृति नाम्ना यस्य दृढनेमि सुपार्श्वकृत् ।।२७।।

अनुवाद— द्विमीढ के पुत्र यवीनर हुए, उनके पुत्र कृतिमान हुए, कृतिमान के पुत्र सत्यधृति हुए सत्य धृति के पुत्र दृढनेमि सुपार्श्व के पिता हुए ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

सुपार्श्वकृत्सुपार्श्वस्य पिता ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

सुपार्श्वकृत् का अर्थ है सुपार्श्व के पिता ।।२७।।

सुपार्श्वात्सुमतिस्तस्य पुत्रः सन्नतिमांस्ततः । कृतिर्हिरण्यनाभाद्यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट् ।।२८।।

अन्वयः— सुपार्श्वात् सुमतिः तस्य पुत्रः संनतिमान् ततः कृतिः यः हिरण्यनाभात् योगं प्राप्य षट् जगौस्म ।।२८।।

अनुवाद— सुपार्श्व के सुमति हुए उनके पुत्र संनतिमान हुए उनसे कृति का जन्म हुआ कृति ने हिरण्यनाभ से योग की शिक्षा प्राप्त करके **प्राच्यसाम** नामक ऋचाओं की छह संहिताओं का गान किया ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

प्राच्यसाम्नां षट्संहिता जगौ विभज्या ध्यापितवान् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

प्राच्यसामों की छह संहिताओं को विभक्त करके अध्यापन किया ।।२८।।

संहिता प्राच्यसाम्नां वै नीयो ह्युग्रायुधस्ततः । तस्य क्षेम्यः सुवीरोऽथ सुवीररुय रिपुंजयः ।।२९।।

अन्वयः— प्राच्यसाम्नां वै नीपः ततः हि उग्रायुधः तस्यक्षेम्य अथ सुधीरः सुधीरस्य रिपुंजय ।।२९।।

अनुवाद— कृति के पुत्र नीप हुए, उनके पुत्र उग्रायुध हुए, उग्रायुध के पुत्र क्षेम्य हुए । क्षेम्य के सुधीर और सुधीर के पुत्र रिपुंजय हुए ।।२९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२९।।

ततो बहुरथो नाम पुरुमीढोऽप्रजोऽभवत् । नलिन्यामजमीढस्य नीलः शान्तिः सुतस्ततः ।।३०।।

अन्वयः— ततः बहुरथः नाम पुरुमीढः अप्रजः अभवत् नलिन्याम् अजमीढस्य नीलः ततः शान्तिः सुतः ।।३०।।

अनुवाद— रिपुंजय के पुत्र बहुरथ हुए । अजमीढ के भाई पुरुमीढ की कोई सन्तान नही थी । अजमीढ की दूसरी पत्नी का नाम नलिनी के गर्भ से नील का जन्म हुआ नील के पुत्र शान्ति थे ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

अजमीढस्य वंश्याः प्रियमेधादयः केचिद्ब्राह्मणा बभूवुर्बृहदिषुप्रभृतयः क्षत्रियाश्चेति वंशद्वयमुक्तम् । तस्यैव वंशान्तरमाह–नलिन्यामिति यावत्समाप्ति ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

अजमीढ के ही वंश में हाने वाले प्रियमेधा इत्यादि ब्राह्मण हो गये और बृहदिषु इत्यादि क्षत्रिय थे । इस तरह अजमीढ के दो प्रकार के वंशज हुए । अजमीढ के तीसरे वंश का नलिन्याम् से लेकर अध्याय की समाप्ति पर्यन्त वर्णन किया गया है ।।३०।।

शान्तेः सुशान्तिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत् । भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पञ्चासन्मुद्गलादयः ।।३१।।

अन्वयः— शान्ते सुशान्तिः तत्पुत्रः पुरुजः ततः अर्कः अभवत् तस्य तनयः भर्म्याश्वः, तस्य मुद्गलादय पञ्च आसन्।।३१।।

अनुवाद— शान्ति के पुत्र सुशान्ति थे, सुशान्ति के पुत्र पुरज हुए उनके पुत्र हुए अर्क के पुत्र भर्म्याश्व हुए और उनके मुद्गल इत्यादि पाञ्च पुत्र थे ।।३१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३१।।

यवीनरो बृहदिषुः काम्पिल्यः संजयः सुताः । भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पञ्चानां रक्षणाय हि ।।३२।।

अन्वयः— यवीनरः बृहदिषुःकाम्पिल्यः संजयः, भर्म्याश्वः प्राह मे पुत्राः पञ्चानां देशानां हि रक्षणाय ।।३२।।

अनुवाद— यवीनर, बृहदिषु, काम्पिल्य, सञ्जय और मुद्गल ये भर्म्याश्व के पाञ्च पुत्र है । भर्म्याश्व ने कहा मेरे पाञ्च पुत्र पाँच देशों का प्रशासन करने में समर्थ हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

मुद्गल एको यवीनरादयश्चत्वार इत्येवं पञ्च ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

यवीनर इत्यादि चार और एक मुद्गल इस तरह से भर्म्याश्व के पाँच पुत्र थे ।।३२।।

विषयाणामलमिमे इति पञ्चालसंज्ञिताः । मुद्गलाद्ब्रह्म निर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम् ॥३३॥

अन्वयः— इमे विषयाणामलम् इति पञ्चाल संज्ञिताः । मुद्गलाद् मौङ्गल्यसंज्ञितम् ब्रह्मगोत्रं निर्वृत्तम् ॥३३॥

अनुवाद— ये मेरे पुत्र पाञ्च देशों के प्रशासन में समर्थ है इसीलिए वे पाञ्चाल कहलाये । मुद्गल से ही ब्राह्मणों का मौद्गल्य गोत्र प्रारम्भ हुआ ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

मिथुनं मुद्गलाद्भार्म्याद्दिवोदासः पुमानभूत् । अहल्या कन्यका यस्यां शतानन्दस्तु गौतमात् ॥३४॥

अन्वयः— भार्म्याद मुद्गलात् मिथुनं दिवोदासः पुमान् अभूत् कन्यका अहल्या यस्यां गौतमात् शतानन्दः ॥३४॥

अनुवाद— भर्म्याश्व के पुत्र मुद्गल की जुड़वी सन्तान हुई पुरुष का नाम दिवोदास और कन्या का नाम अहल्या हुई । अहल्या के गर्भ से गौतम महर्षि के पुत्र शतानन्द हुए ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

भार्म्याद्भर्म्याश्वपुत्रात् मिथुनं चाभूत् । तदेवाह-दिवोदासः पुमानहल्या च कन्यकेति ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

भर्म्याश्व के पुत्र मुद्गल की जुड़वी सन्तान हुई । पुत्र का नाम दिवोदास और कन्या का नाम अहल्या जो गौतम ऋषि की पत्नी थी । गौतम ऋषि के अहल्या के गर्भ से शतानन्द की उत्पत्ति हुई ॥३४॥

तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेदविशारदः । शरद्वास्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात्किल ॥३५॥
शरस्तम्बेऽपतद्रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् । तद्दृष्ट्वा कृपयाऽगृह्णाच्छन्तनुर्मृगयां चरन् ॥
कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत्कृपी ॥३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे एकविंशतितमोऽध्यायः ॥२१॥

अन्वयः— तस्य सध्यधृतिः पुत्रः धनुर्वेद विशारदः तत् सुतः शरद्वान् यस्मात् उर्वशीदर्शनात् किल शरस्तम्बे रेतः अपतत् तत् शुभम् मिथुनम् अभूत् । तद् दृष्ट्वा मृगयां चरन् शन्तनुः कृपया अगृह्णात् । कुमारः कृपः कन्या च द्रोण पत्नी कृपी ॥३५-३६॥

अनुवाद— शतानन्द के पुत्र सत्यधृति हुए वे धनुर्विद्या में दक्ष थे । उनके पुत्र शरद्वान हुए । उर्वशी को देखने से उनका वीर्य स्खलित होकर शरपत की झाड़ी में गिरा । उससे दो जुड़वे बच्चे हुए । उन दोनों को आखेट के प्रसङ्ग मे शन्तनु ने देखा और कृपा पूर्वक उठा लाये । पुत्र का नाम कृप हुआ कन्या का नाम द्रोण की पत्नी कृपी हुआ ॥३५-३६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३५-३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्न्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां एकविंशतितमोऽध्यायः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के इक्कीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।

बाइसवाँ अध्याय

पाञ्चाल कौरव और मगध देशीय राजाओं का वर्णन

श्रीशुक उवाच

मित्रेयुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तत्सुतो नृप । सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जन्तुजन्मकृत् ॥१॥

अन्वयः— नृप ! दिवोदासात् मित्रेयुः तत्सुतः च्यवनः सुदासः सहदेवः जन्तुकृत् सोमः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् दिवोदास के पुत्र मित्रेयु हुए उनके चार पुत्र हुए, च्यवन, सुदास, सहदेव और जन्तु के पिता सोम ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वाविंशे तु दिवोदासवंशमुक्त्वाथ वर्णिताः । ऋक्षवंशे जरासन्धपार्थदुर्योधनादयः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बाइसवें अध्याय में दिवोदास के वंश का वर्णन करके ऋक्ष के वंश में उत्पन्न जरासंध आदि का पाण्डवों का तथा दुर्योधन आदि का वर्णन किया गया है ॥१॥

तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान्पृषतः सुतः । द्रुपदो द्रौपदी तय धृष्टद्युम्नादयः सुताः ॥२॥

अन्वयः— तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान् सुतः पृषतः । द्रुपदः तस्य द्रौपदी धृष्टद्युम्नादयः सुताः ॥२॥

अनुवाद— सोमक के सौ पुत्र थे उनमें सबसे बड़ा और सबसे छोटा पृषत थे । पृषत के पुत्र द्रुपद थे । द्रुपद की पुत्री द्रौपदी तथा धृष्टद्युम्न इत्यादि पुत्र हुए ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तस्य सोमकस्य पुत्राणां शतं बभूव । तेषां जन्तुर्ज्येष्ठो यवीयान्पृषतः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

सोमक के सौ पुत्र हुए उनमें सबसे बड़ा जन्तु और सबसे छोटे पृषत थे ॥२॥

धृष्टद्युम्नाद्धृष्टकेतुर्भार्म्याः पञ्चालका इमे । योऽजमीढसुतो ह्यन्य ऋक्षः संवरणस्ततः ॥३॥

अन्वयः— धृष्टद्युम्नात् धृष्टकेतुः भार्म्याः इमे पञ्चलकाः य हि अन्यः अजमीढ सुतः ऋक्षः ततः संवरणः ॥३॥

अनुवाद— धृष्टद्युम्न के पुत्र धृष्टकेतु हुए । भर्म्यश्व के वंश में उत्पन्न ये राजा पाञ्चाल कहलाये । अजमीढ के दूसरा पुत्र ऋक्ष थे उनके पुत्र संवरण हुए ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अजमीढस्यैव वंशान्तरमाह-य इति । ततः संवरणात्कुरुः ॥३॥

अनुवाद— सूर्य कन्या की पुत्री तपती के गर्भ से संवरण के पुत्र कुरु हुए । कुरु के चार पुत्र हुए परीक्षित, सुधनु: जह्नु: और निषधाश्च ।।४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४।।

सुहोत्रोऽभूत्सुधनुषश्च्यवनोऽथ ततः कृती । वसुस्तस्योपरिचरो बृहद्रथमुखास्ततः ।।५।।

अन्वयः— सुधनुषः सुहोत्रोऽभूत् च्यवनोऽथततः कृती तस्य उपरिचरवसुः ततः बृहद्रथ मुखाः सुताः ।।५।।

अनुवाद— सुधन्वा के पुत्र सुहोत्र हुए उनके पुत्र च्यवन हुए, च्यवन के पुत्र कृती हुए । कृति के पुत्र उपरिचर बसु हुए और उपरिचर वसु के बृहद्रथ इत्यादि कई पुत्र हुए ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तस्य कृतिनः उपरिचरो वसुः । ततो वसोः बृहद्रथो मुखमादिर्येषाम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

कृति के पुत्र उपरिचर वसु हुए, उपरिचर वसु के अनेक पुत्रों में बृहद्रथ बड़े थे ।।५।।

कुशाम्बमत्स्यप्रत्यग्रचेदिपाद्याश्च चेदिपाः । बृहद्रथात्कुशाग्रोऽभूदृषभस्तस्य तत्सुतः ।।६।।
जज्ञे सत्यहितोऽपत्यं पुष्पवांस्तत्सुतो जहुः । अन्यस्यां चापि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात्।।७।।

अन्वयः— कुशाम्बमत्स्य प्रत्यग्रचेदियाद्याः चेदियाः, बृहद्रथात् कुशाग्रः अभूत् तस्य ऋषयः, तत्सुतः सत्यहितः जज्ञेसत्यहितोऽपत्यं पुष्पवान् तत् सुतः जह्नुः अन्यस्याम् अपि भार्यायां बृहाद्रथात् द्वे शकले ।।६-७।।

अनुवाद— बृहद्रथ कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिप ये चेदि देश के राजा हुए । बृहद्रथ के पुत्र कुशाग्र हुए, उनके पुत्र ऋषभ हुए, ऋषभ के पुत्र सत्यहित हुए, सत्यहित के पुत्र पुष्पवान् हुए, पुष्पवान के पुत्र जह्नु हुए। बृहद्रथ की दूसरी पत्नी के गर्भ से एक शरीर के दो टुकड़े उत्पन्न हुए ।।६-७।।

भावार्थ दीपिका

तानेवाह-कुशाम्बेति । तत्सुतः पुष्पवान् जज्ञे । तस्यापत्यं सत्यहित इति योज्यम् ।।६-७।।

भाव प्रकाशिका

कुशाम्ब इत्यादि श्लोक के द्वारा उपरिचर वसु के ही पुत्रों को बतलाये हैं । ऋषभ के पुत्र पुष्पवान हुए और पुष्पवान् के पुत्र सत्यहित हुए इस तरह से जोड़ना चाहिए ।।६-७।।

ते मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभिसन्धिते । जीव जीवेति क्रीडन्त्या जरासन्धोऽभवत्सुतः ।।८।।

अन्वयः— ते शकले मात्रा बहि उत्सृष्टे जरया अभिसंधिते जीव जीव इति क्रीडन्त्या जरासन्धः इति पुत्रः अभवत्।।८।।

अनुवाद— उन दोनों टुकड़ों को माता ने बाहर फेंकवा दिया । उस समय जरा नामकी राक्षसी ने उसे जियो जियो कहकर क्रीड़ा करती हुई जोड़ दिया । उस जोड़ै हुए बालक का नाम जरासन्ध हुआ ।।८।।

भावार्थ दीपिका

जरया राक्षस्या ।।८।।

भाव प्रकाशिका

जरा नाम की राक्षसी के द्वारा ।।८।।

ततश्च सहदेवोऽभूत्सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः । परीक्षिदनपत्योऽभूत्सुरथो नाम जाह्नवः ।।९।।

अन्वयः— ततश्च सहदेवः अभूत् सोमापिः यत् श्रुतश्रवाः । परीक्षित् अनपत्योऽभूत् सुरथो नाम जाह्नवः ।।९।।

अनुवाद— जरासन्ध के पुत्र सहदेव हुए, सहदेव के सोमापि सोमापि के पुत्र श्रुतश्रवा हुए। परीक्षित् अनपत्य हुए। जह्नु के पुत्र सुरथ हुए ॥९॥

भावार्थ दीपिका

यद्यस्मात्सोमापेः श्रुतश्रवाः कुरोः पुत्रः परीक्षिदनपत्यः। जाह्नवो जह्नोः पुत्रः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

सोमापि के पुत्र श्रुतश्रवा हुए। कुरु के पुत्र परीक्षित् निःसन्तान थे। जाह्नवः अर्थात् जह्नु के पुत्र ॥९॥

ततो विदूरथस्तस्मात्सार्वभौमस्ततोऽभवत्। जयसेनस्तत्तनयो राधिकोऽतोऽयुतो ह्यभूत् ॥१०॥

अन्वयः— ततो विदूरथः तस्मात् सार्वभौमः ततः जयत्सेनः अभवत्, तत्तनयः राधिकः अतः अयुतः अभूत् ॥१०॥

अनुवाद— सुरथ के पुत्र विदूरथ हुए उनके पुत्र सार्वभौम हुए उनके पुत्र जयत्सेन हुए जयत्सेन के पुत्र राधिक हुए और राधिक के पुत्र अयुत हुए ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अतो राधिकादयुतोऽभूदित्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

राधिक के पुत्र अयुत हुए ॥१०॥

ततश्च क्रोधनस्तस्माद्देवातिथिरमुष्य च। ऋष्यस्तस्य दिलपोऽभूत्प्रतीपस्तस्य चात्मजः ॥११॥

अन्वयः— ततः क्रोधनः तस्मात् देवातिथिः अनुष्य च ऋषयः तस्य दिलीपः अभूत् तस्य च आत्मजः प्रतीपः ॥११॥

अनुवाद— अयुत के पुत्र क्रोधन हुए क्रोधन के पुत्र देवातिथि थे। देवातिथि के पुत्र ऋष्य थे, ऋष्य के पुत्र दिलीप थे, दिलीप के पुत्र प्रतीप हुए ॥११॥

भावार्थ दीपिका नहीं है ॥११॥

देवापिः शन्तनुस्तस्य बाह्लीक इति चात्मजाः। पितृराज्यं परित्यज्य देवापिस्तु वनं गतः ॥१२॥

अन्वयः— तस्य देवापिः शन्तनुः वाह्लीक इति चात्मजाः देवापि तु पितृराज्यं परित्यज्य वनं गतः ॥१२॥

अनुवाद— प्रतीप के तीन पुत्र थे देवापि शन्तनु और वाह्लीक। देवपि अपने पिता के राज्य का परित्याग करके वन में चले गये ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तस्य प्रतीपस्य देवापिशन्तनुबाह्लीकाः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

प्रतीप के तीन पुत्र थे देवापि, शन्तनु और वाह्लीक ॥१२॥

यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः॥१३॥
अभवच्छन्तनू राजा प्राङ्महाभिषसंज्ञितः। यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः॥१३॥

शान्तिमाप्नोति चौवाग्र्यां कर्मणा तेन शन्तनुः। समा द्वादश तद्राज्ये न ववर्ष यदा विभुः ॥१४॥
शन्तनुर्ब्राह्मणैरुक्तः परिवेत्ताऽयमग्रभुक्। राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये॥१५॥

अन्वयः— प्राक् महाभिषसंज्ञितः शन्तनुः राजा अभूत् यं यं जीर्णं कराभ्यां स्पृशति सः यौवनमेति अग्र्यां शान्तिमाप्नोति तेन कर्मणा शन्तनुः यदा तद् राज्ये विभुः द्वादश समाः न ववर्ष, शन्तनुः बाह्मणैरुक्तः अयम् अग्रभुक् परिवेत्ता, पुरराज्य विवृद्धये अग्रजाय आशु राज्यं देहि ॥१३-१५॥

अनुवाद— पूर्व जन्म में जिनका महाभिष नाम था वे शन्तनु राजा हो गये । शन्तनु जिस बूढे को भी अपने हाथों से छू लेते थे वह युवा हो जाता था और उसे श्रेष्ठ शान्ति प्राप्त होती थी । इसी कर्म के कारण वे शन्तनु कहलाये । जब उनके राज्य में इन्द्र ने बारह वर्षों तक वर्षा नहीं किया तब ब्राह्मणों ने कहा कि तुम परिवेत्ता हो गये हो क्योंकि अपने बड़े भाई से पहले ही विवाह करके राजा बन गये हो अतएव तुम नगर और राष्ट्र की समृद्धि के लिए अपने बड़े भाई को राज्य प्रदान कर दो ॥१३-१५॥

भावार्थ दीपिका

प्राक् पूर्वजन्मनि महाभिष इति संज्ञा यस्य सः । यदा देवो न ववर्ष तदा शन्तनुस्तत्र कारणं ब्राह्मणान्पप्रच्छ । ब्राह्मणैश्चैवमुक्तः- 'दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ।' इति स्मृतेर्योऽग्रभुक् भुवमग्रतो भुनक्ति अयं त्वादृशोऽपि परिवेत्तैव भवति । अतस्तद्दोषपरिहाराय राज्यमग्रजाय देहि ततो वृष्टिर्भविष्यतीत्येवमुक्तः शन्तनुर्वनं गत्वा ज्येष्ठं छन्दयामास राज्ञः प्रजापालनादिः परो धर्मोऽतस्त्वं राज्यं स्वीकुर्विति प्रार्थितवान् । ततः पूर्वमेव तस्य मन्त्रिणा अश्मरावसंज्ञेन देवापिं पाखण्डीकृत्य राज्यानर्हं कर्तुं ये प्रहिता विप्रास्तैः पाखण्डमताश्रयया गिरा वेदाद्विभ्रंशितः सन्, वेदवादस्यातिवादान्निन्दावचनानि सोऽब्रवीत्, ततस्तस्य पातित्येन राज्यानर्हत्वे जाते शन्तनोर्दोषाभावाद्देवो ववर्षेत्यर्थः ॥१३-१५॥

भाव प्रकाशिका

पूर्व जन्म में उनका महाभिष नाम था जब शन्तनु के राजय में इन्द्र ने बारह वर्षों तक वर्षा नहीं किया तो शन्तनु ने उसका कारण ब्राह्मणों से पूछा । ब्राह्मणों ने कहा **दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते इत्यादि** अर्थात् बड़े भाई के रहते हुए जो उनसे पहले विवाह, तथा अग्निहोत्र आदि का संयोग करता है वह परिवेत्ता हो जाता है औरउसका बड़ा भाई परिवित्ति कहलाता है । इस स्मृति के अनुसार जो बड़े भाई से पहले पृथिवी का राजा होता है जैसे तुम वह परिवेत्ता होता है । अतएव उस दोष को दूर करने के लिए तुम राज्य बड़े भाई को दे दो तो वर्षा होगी। इस तरह से कहे जाने पर शन्तनु वन में जाकर बड़े भाई से राज्य लेने के लिए प्रार्थना किए । उन्होंने कहा कि प्रजा का पालन करना सबसे बड़ा धर्म है अतएव आप राज्य स्वीकार करें । उससे पहले ही शन्तनु के अश्मराज नामक मन्त्री ने वन में ब्राह्मणों को इस लिए भेज दिया था कि वे देवापि को पाखण्डी बनाकर राज्य के अयोग्य बना दें । वे ब्राह्मण पाखण्डमतानुकूल वाणी से वैदिक मार्ग से भ्रष्ट कर दिए थे । अतएव देवापि ने वेदों की निन्दा की इस तरह उनके पतित हो जाने से वे राज्य के अयोग्य हो गये । फलतः शन्तनु का दोष दूर हो गया और वर्षा हुई ॥१३-१५॥

एवमुक्तो द्विजैर्ज्येष्ठं छन्दयामास सोऽब्रवीत्। तन्मन्त्रिप्रहितैर्विप्रैर्वेदाद्विभ्रंशितो गिरा ॥१६॥
वेदवादातिवादान्वै तदा देवो ववर्ष ह। देवापिर्योगमास्थाय कलापग्राममाश्रितः ॥१७॥

अन्वयः— एवं द्विजैः उक्तो ज्येष्ठं छन्दयामास सः तन्मन्त्रिप्रहितैः विप्रैः वेदवादात् विभ्रंशितः गिरा वेदवादातिवादान् अब्रवीत् तदा देवो ववर्ष । देवापिः योगम् आस्थाय कलापग्रामम् आश्रितः ॥१६-१७॥

अनुवाद— ब्राह्मणों द्वारा इस तरह से कहे जाने पर शन्तनु ने अपने बड़े भाई को राज्य लेने के लिए प्रार्थना किया किन्तु मन्त्री के द्वारा वन में भेजे गये ब्राह्मणों द्वारा वे वेदमार्ग से भ्रष्ट बना दिए गये थे और वे वेदमार्ग की निन्दा किए तब जाकर शन्तनु के राज्य में वर्षा हुई । देवापि योगमार्ग अपनाकर योगियों के कलाप ग्राम में विद्यमान हैं ॥१६-१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६-१७॥

सोमवंशे कलौ नष्टे कृतादौ स्थापयिष्यति । बाह्लीकात्सोमदत्तोऽभूद्भूरिर्भूरिश्रवास्ततः ॥१८॥

अन्वयः— कलौ सोमवंशे नष्टे कृतादौ स्थापयिष्यति । बह्लीकात् सोमदतः अभूत् । ततः भूरिः भूरिश्रवाः शलश्च॥१८॥

अनुवाद— कलियुग में जब सोमवंश नष्ट हो जायेगा उस समय वे सत्ययुग की स्थापना करेंगे । बह्लीक के पुत्र सोमदत्त हुए उनके तीन पुत्र हुए भूरि, भूरिश्रवा और शल ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

ततः सोमदत्ताद्भूरिर्भूरिश्रवाः शलश्चेति त्रयः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

सोमदत्त के तीन पुत्र हुए भूरि, भूरिश्रवा और शल ॥१८॥

शलश्च शन्तनोरासीद्गङ्गायां भीष्म आत्मवान् । सर्वधर्मविदां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः ॥१९॥

अन्वयः— शन्तनोः गङ्गायां आत्मवान् सर्वधर्मविदां श्रेष्ठः, महाभागवतः कविः आसीत् ॥१८॥

अनुवाद— शन्तनु के गङ्गा के गर्भ से आत्मज्ञानी, सभी धर्मज्ञों में श्रेष्ठ, महाभागवत तथा ब्रह्मज्ञानी भीष्म नामक पुत्र हुए ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

वीरयूथाग्रणीर्येन रामोऽपि युधि तोषितः। शन्तनोर्दाशकन्यायां जज्ञे चित्राङ्गदः सुतः ॥२०॥
विचित्रवीर्यश्चावरजो नाम्ना चित्राङ्गदो हतः। यस्यां पराशरात्साक्षादवतीर्णो हरेः कला ॥२१॥
वेदगुप्तो मुनिः कृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम् । हित्वा स्वशिष्यान्पैलादीन्भगवान्बादरायणः ॥२२॥
मह्यं पुत्राय शान्ताय परं गुह्यमिदं जगौ । विचित्रवीर्योऽथोवाह काशिराजसुते बलात् ॥२३॥

अन्वयः— वीरयूथाग्रणीः येन युधि रामोऽपि तेषितः शन्तनोः दाशकन्यायां चित्राङ्गदः सुतः जज्ञे । अवरजः विचित्रवीर्यश्च। चित्राङ्गदः चित्रांगदनाम्ना गन्धर्वेण हतः । यस्यां पराशरात् साक्षात् हरेः कला वेद गुप्तः कृष्णो मुनिः अवतीर्णः यतः इदम् अहम् अध्यगाम् । भगवान् बादरायण स्वशिष्यान् पैलादीन् हित्वा, शान्ताय पुत्राय मह्यम् इदं परं गुह्यं जगौ विचित्रवीर्यः अथ बलात् काशिराजसुते उवाह ॥२०-२३॥

अनुवाद— भीष्मजी वीर समूह में अग्रणी थे । उन्होंने युद्ध में अपने गुरु परशुरामजी को सन्तुष्ट कर दिया था । शन्तनु के दाशराज की पुत्री सत्यवती के गर्भ से चित्राङ्गद और विचित्र वीर्य नामक दो पुत्र हुए । चित्रांगद को चित्रांगद नामक गन्धर्व ने मार दिया । उन्ही सत्यवती के गर्भ से महर्षि पराशर के पुत्र के रूप में श्रीहरि के साक्षात् कला वेद गुप्त कृष्ण द्वैयापन मुनि मेरे पिता जन्म लिए । उनसे ही मैंने (शुकदेवजी ने) इस भागवत संहिता का अध्ययन किया । भगवान् बादरायण अपने पैल आदि शिष्यों को छोड़कर इस परं गोप्य श्रीमद्भागवत पुराण को शान्त्यादि गुण सम्पन्न मुझे अपने पुत्र को पढाये । विचित्रवीर्य ने बल पूर्वक लायी गयी काशिराज की दो पुत्रियों अम्बिका और अम्बालिका से विवाह किया ॥२०-२३॥

भावार्थ दीपिका

रामो जामदग्न्यः । दाशकन्यायामिति । उपरिचरस्य वसोर्वीर्येण मत्स्यगर्भादुत्पन्ना दाशैः कैवर्तैः पालिताऽतो दाशकन्येति प्रसिद्धायां सत्यवत्याम् । नाम्ना तत्समाननाम्ना चित्राङ्गदेन गन्धर्वेण युद्धे हतः । यस्यां सत्यवत्यां शन्तनुपरिग्रहात्पूर्वमेव । वेदा गुप्ता येन । यतोऽहं जात इदं भागवतम् चाध्यगामधिगतवानस्मि ॥२०-२३॥

भाव प्रकाशिका

चित्राङ्गद के ही समान नाम वाले गन्धर्व ने चित्राङ्गद को मार दिया । शन्तनु से विवाह होने से पूर्व ही जिस सत्यवती के गर्भ से मेरे पिता का जन्म हुआ था । उन्होंने वेदों की रक्षा की अतएव वेदगुप्त मुनि हैं । उन्ही का पुत्र मैंने उनसे श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया ॥२०-२३॥

स्वयंवरादुपानीते अम्बिकाम्बालिके उभे । तयोरासक्तहृदयो गृहीतो यक्ष्मणा मृतः ॥२४॥

अन्वयः— अम्बिकाम्बालिके उभे स्वयम्बरादुपानीते तयोः आसक्त हृदयः विचित्रवीर्यः यक्ष्मणा मृतः ॥२४॥

अनुवाद— अम्बिका अम्बालिका दोनों स्वयम्बर से ही लायी गयी थी । उन दोनों में आसक्त हृदय विचित्र वीर्य को यक्ष्मा हो गया और वे मर गये ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

स्वयंवराद्भीष्मेण बलादुपानीते ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

भीष्मजी बल पूर्वक इन दोनों को स्वयम्बर से लाये थे ॥२४॥

क्षेत्रेऽप्रजस्य वै भ्रातुर्मात्रोक्तो बादरायणः । धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥२५॥

अन्वयः— अप्रजस्य वै भ्रातुः मात्रोक्तः बादरायणः धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं च अजीजनत् ॥२५॥

अनुवाद— सन्तानहीन अपने भाई के क्षेत्र में अपनी माता की आज्ञा से महर्षि बादरायण ने धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

मात्रा सत्यवत्योक्त इति निषेधाभावमाह- 'अपतिरपत्यलिप्सुर्देवराद्गुरुप्रयुक्ता ऋतुमतीयात्' इत्यादिवचनात् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

माता की आज्ञा से कहकर निषेधाभाव बतलाया गया है । कहा भी गया है । निःसन्तान स्त्री अपने गुरुजनों के द्वारा प्रेरित होकर ऋतुमती होने पर देवर के साथ सहवास करे ॥२५॥

गान्धार्यां धृतराष्ट्रस्य जज्ञे पुत्रशतं नृप । तत्र दुर्योधनो ज्येष्ठो दुःशला चापि कन्यका ॥२६॥

अन्वयः— हे नृप धृतराष्ट्रस्य गान्धार्यां पुत्रशतं जज्ञे । तत्र दुर्योधनः ज्येष्ठः कन्या च दुःशला ॥२६॥

अनुवाद— हे राजन् ! धृतराष्ट्र के गान्धारी के गर्भ से एक सौ पुत्र हुए उन सबों में दुर्योधन बड़ा था । धृतराष्ट्र की पुत्री का नाम दुःशला था ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

दुःशला नाम कन्या च जज्ञे ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

धृतराष्ट्र की एक पुत्री कन्या भी उत्पन्न हुई थी ॥२६॥

शापान्मैथुनरुद्धस्य पाण्डोः कुन्त्यां महारथाः । जाता धर्मानिलेन्द्रेभ्यो युधिष्ठिरमुखास्त्रयः ॥२७॥

अन्वयः— शापात् मैथुनरुद्धस्य पाण्डोः कुन्त्यां धर्मानिलेन्द्रेभ्यः युधिष्ठिर प्रमुखाः महारथाः जाताः ॥२७॥

अनुवाद— शाप के कारण पाण्डु स्त्री सहवास नहीं कर सकते थे अतएव कुन्ती के गर्भ से धर्म वायु और इन्द्र के अंश से पाण्डु के युधिष्ठिर आदि तीन महारथी पुत्र उत्पन्न हुए ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अरण्ये मृगशापान्मैथुनेन रुद्रस्य प्रतिबद्धस्य ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

वन में मृग के शाप के कारण पाण्डु स्त्री सहावास नहीं कर सकते थे ॥२७॥

नकुलः सहदेवश्च माद्र्यां नासत्यदस्रयोः । द्रौपद्यां पञ्च पञ्चभ्यः पुत्रास्ते पितरोऽभवन् ॥२८॥

अन्वयः— नकुलः सहदेवश्च माद्रयां नासत्यद्रस्रयोः द्रौपद्यां पञ्चभ्यः पञ्चपुत्रातेपितरः अभवन् ॥२८॥

अनुवाद— पाण्डु की दूसरी पत्नी माद्री के गर्भ से अश्विनी कुमारों के अंश से नकुल और सहदेव हुए। द्रौपदी के गर्भ से इन पाञ्चों पाण्डवों के पाञ्चपुत्र हुए । वे सब तुम्हारे चाचा थे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

नासत्यदस्राभ्यामश्विनीकुमाराभ्याम् । पञ्चम्यो युधिष्ठिरादिभ्यः पञ्चाभवन् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

नासत्यदस्राभ्याम् अर्थात् दोनों अश्विनी कुमारों से युधिष्ठिर आदि पाञ्चों से द्रौपदी के गर्भ से पाँच पुत्र हुए॥२८॥

युधिष्ठिरात्प्रतिविन्ध्यः श्रुतसेनो वृकोदरात् । अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥२९॥

अन्वयः— युधिष्ठिरात् प्रतविन्ध्यः वृकोदरात् श्रुतसेनः, अर्जुनात् श्रुतकीर्तिः नाकुलिः शतानीकः ॥२९॥

अनुवाद— द्रौपदी के गर्भ से युधिष्ठिर के पुत्र प्रतिविन्ध्य हुए भीम के पुत्र श्रुतसेन हुए, अर्जुन के पुत्र श्रुतकीर्ति हुए और नकुल के पुत्र शतानीक हुए ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

सहदेवसुतो राजन् श्रुतकर्मा तथापरे। युधिष्ठिरात्तु पौरव्यां देवकोऽथ घटोत्कचः॥३०॥
भीमसेनाद्धिडिम्बायां काल्यां सर्वगतस्ततः। सहदेवात्सुहोत्रं तु विजयाऽसूत पार्वती॥३१॥

अन्वयः— राजन् सहदेव सुतः श्रुतकर्माः तथा अपरे पौरवयां युधिष्ठिरात् देवकः अथ घटोत्कचः हिडित्बायां, ततः काल्या सर्वगतः सहदेवात् सुहोत्रं तु विजया असूत पार्वती ॥३०-३१॥

अनुवाद— हे राजन् ! सहदेव के पुत्र श्रुतकर्मा थे । इनके अतिरिक्त युधिष्ठिर के पुत्र पौरवी नामक पत्नी से देवक हुए भीमसेन के पुत्र हिडिम्बा नामक पत्नी से घटोत्कच हुए और काली नामक पत्नी से सर्वगत हुए, सहदेव के पर्वत की पुत्री विजया नामक पत्नी से सुहोत्र हुए ॥३०-३१॥

भावार्थ दीपिका

तथापरे भार्यान्तरेषु । काली चान्या भीमस्य भार्या तस्यां ततो भीमसेनात्सर्वगतो नाम पुत्रोऽभवदित्यर्थः ॥३०-३१॥

भाव प्रकाशिका

तथा परे अर्थात् दूसरी पत्नियों के गर्भ से । भीम की दूसरी पत्नी काली थी । उसके गर्भ से भीमसेन का सर्वगत नामक पुत्र हुआ ॥३०-३१॥

करेणुमत्यां नकुलो निरमित्रं तथार्जुनः । इरावन्तमुलूप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम् ॥
मणिपूरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥३२॥

अन्वयः— करेणुमत्यां नकुलः निरमित्रं, तथा अर्जुनः इरावन्तम् उलूप्यां मणिपूरपतेः सुतायां बभ्रुवाहनम् सोऽपि तत्सुतः पुत्रिका सुतः ॥३२॥

अनुवाद— नकुल के करेणुमती के गर्भ से निरमित नामक पुत्र हुए अर्जुन के नागकन्या उलूपी के गर्भ से इरावान् नामक पुत्र हुए तथा मणिपूराधिपति की पुत्री के गर्भ से बभ्रुवाहन नामक पुत्र हुए । वह भी पुत्र अपने नाना का ही माना गया क्योंकि पहले से ही यह तय था ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

उलूप्यां नागकन्यायाम् । मणिपूरपतेः सुतायां पुत्रिकाधर्मेण दत्तायां बभ्रुवाहनमसूत । अतस्तत्पुत्रः सन्नपि स पुत्रिकासुतः मातामहसुत इत्यर्थः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

नागकन्या उलूपी के गर्भ से पुत्रिका धर्म से प्रदत्त मणिपुर पति की पुत्री के गर्भ से बभ्रुवाहन उत्पन्न हुए और वह पुत्र भी अपने नाना का ही पुत्र माना गया ।।३२।।

तव तातः सुभद्रायामभिमन्युरजायत । सर्वातिरथजिद्वीर उत्तरायां ततो भवान् ।।३३।।

अन्वयः— तव तातः सर्वातिरथजित् वीर अभिमन्युः सुभद्रायाम् अजायत ततो भवान् उत्तरायाम् ।।३३।।

अनुवाद— सभी अतिरथों को जीत लेने वाले तुम्हारे पिता अभिमन्यु सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए और उनके पुत्र तुम (परीक्षित्) उत्तरा के गर्भ से उत्पन्न हुए ।।३३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३३।।

परिक्षीणेषु कुरुषु द्रौणेर्ब्रह्मास्त्रतेजसा । त्वं च कृष्णानुभावेन सजीवो मोचितोऽन्तकात् ।।३४।।

अन्वयः— कुरुषु परिक्षीणेषु द्रौणेः अस्त्रतेजसा त्वं च कृष्णानुभावेन, अन्तकात् सजीवः मोचितः ।।३४।।

अनुवाद— जब कि कुरुवंश विनष्ट हो चुका था उस समय द्रोण पुत्र अश्वत्थामा के अस्त्र के तेज से तुम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव से काल से बचा लिए गये ।।३४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३४।।

तवेमे तनयास्तात जनमेजयपूर्वकाः । श्रुतसेनो भीमसेन उग्रसेनश्च वीर्यवान् ।।३५।।

अन्वयः— हे तात तव इमे जनमेजय पूर्वकाः श्रुतसेनः भीमसेनः उग्रसेनः च वीर्यवान् ।।३५।।

अनुवाद— हे परीक्षित् तुम्हारे ये पुत्र जनमेजय, श्रुतसेन भीमसेन और उग्रसेन पराक्रमी हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

जनमेजयस्त्वां विदित्वा तक्षकान्निधनं गतम् । सर्पान्वै सर्पयागाग्नौ स होष्यति रुषान्वितः ।।३६।।

अन्वयः— त्वां तच्छकान्निधनं गतमं ज्ञात्वा जनमेजयः रुषान्वितः सर्पयागाग्नैसर्पान् वै होष्यति ।।३६।।

अनुवाद— तुमको तच्छक के काटने से मरा हुआ जानकर जनमेजय क्रुद्ध होकर सर्प याग की अग्नि में सर्पों का होम करेंगे ।।३६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३६।।

कावषेयं पुरोधाय तुरं तुरगमेधयाट् । समन्तात्पृथिवीं सर्वां जित्वा यक्ष्यति चाध्वरैः ।।३७।।

अन्वयः— कावषेयं तुरं पुरोधाय समन्तात् पथिवीं सर्वां जित्वा तुरगमेधयाट् अध्वरैः यक्ष्यति ।।३७।।

अनुवाद— कावषेय तुर को पुरोहित बनाकर सम्पूर्ण पृथिवी को सभी प्रकार से जीतकर वह अश्वमेघ यागों के द्वारा श्रीभगवान् की आराधना करेगा ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

तुरसंज्ञं पुरोहितं कृत्वा ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

तुरको पुरोहित बनाकर ।।३७।।

तस्य पुत्रः शतानीको याज्ञवल्क्यात्त्रयीं पठन् । अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात्परमेष्यति ॥३८॥

अन्वयः— तस्य पुत्रः शतनीकः याज्ञवल्क्यात् त्रयीं पठन् किया ज्ञानं परम् शौनकात् परम अस्त्र ज्ञानं च एष्यति॥३८॥

अनुवाद— जनमेजय का पुत्र शतानीक याज्ञवल्क्य महर्षि से त्रयीविद्या कर्मकाण्ड की शिक्षा प्राप्त करेगा शौनक महर्षि से आत्मज्ञान प्राप्त करेगा और कृपाचार्य से अस्त्रों का ज्ञान प्राप्त करेगा ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

भविष्यानाह-तस्य पुत्र इति यावत्समाप्ति । याज्ञवल्क्यात्क्रियाज्ञानं परं चात्मानं शौनकात्प्राप्स्यत्यस्त्रज्ञानं च कृपाचार्यादिति द्रष्टव्यम् । याज्ञवल्क्यात्त्रयीमधीत्य कृपादस्त्राण्यवाप्येति वैष्णवोक्तेः । क्वचित्तु- 'अस्त्रज्ञानं कृपाचार्यात्' इत्येव पाठः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

भविष्यत् कालिक राजाओं का वर्णन तस्य पुत्रः से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त करते हैं । महर्षि यज्ञवल्क्य से क्रिया ज्ञान आत्मज्ञान शौनक महर्षि से और अस्त्रज्ञान कृपाचार्य से प्राप्त करेगा । विष्णु पुराण में कहा गया है कि याज्ञवल्क्य महर्षि से त्रयीविद्या का अध्ययन करके कृपाचार्य से अस्त्र ज्ञान प्राप्त करेगा । कहीं पर तो अस्त्रज्ञानं कृपाचार्यात् यही पाठ है ॥३८॥

सहस्रानीकस्त्पुत्रस्ततश्चैवाश्वमेधजः । असीमकृष्णस्तस्यापि नेमिचक्रस्तु तत्सुतः ॥३९॥

अन्वयः— तत्पुत्रः सहस्रानीकः ततश्च अश्वमेधजः तस्यापि असीमकृष्णः तत्सुतः नेमिचक्रः ॥३९॥

अनुवाद— शतानीक का पुत्र सहस्रनीक होगा उसका पुत्र अश्वमेधज होगा, उसका भी पुत्र असीम कृष्ण होगा और असीम कृष्ण का पुत्र नेमिचक्र होगा ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

गजाह्वये हृते नद्या कौशाम्ब्यां साधु वत्स्यति । उक्तस्ततश्चित्ररथस्तस्मात्कविरथः सुतः ॥४०॥
तस्माच्च वृष्टिमांस्तस्य सुषेणोऽथ महीपतिः । सुनीथस्तस्य भविता नृचक्षुर्यत्सुखीनलः ॥४१॥
परिप्लवः सुतस्तस्मान्मेधावी सुनयात्मजः । नृपंजयस्ततो दूर्वस्तिमिस्तस्माज्जनिष्यति ॥४२॥

अन्वयः— गजाह्वये नद्या हृते कौशाम्ब्यां साधुवत्स्यति । ततः चित्ररथः उक्तः तस्मात् कविरथः सुतः तस्माच्च वृष्टिमान् तस्य महीपतिः सुषेणः तस्य सुनीथः भविता, नृचक्षुः यत् सुखीनलः, तस्मात् परिप्लवः सुतः तस्मात् सुनयात्मजः मेधावी, ततः नृपंजयः ततो दूर्वः तस्मात् तिमि जनिष्यति ॥४०-४२॥

अनुवाद— जब हिस्तनापुर गंगा नदी में बह जायेगा तब नेमिचक्र कौशाम्बी में सुख पूर्वक निवास करेगा। नेमिचक्र का पुत्र चित्ररथ होग, उसका पुत्र कविरथ होगा, उसका पुत्र वृष्टिमान होगा, वृष्टिमान का पुत्र राज सुषेण होगा । सुषेण का पुत्र सुनीथ होगा । उसका पुत्र नृचक्षु हागा नृचक्षु का पुत्र सुखीनल होगा, सुखीनल का पुत्र परिप्लवः होगा, उसका पुत्र सुनय होगा और उसका पुत्र मेधावी होगा । मेधावी का पुत्र नृपंजय होगा, उसका पुत्र दूर्व होगा तथा दूर्व का पुत्र तिमिः होगा ॥४०-४२॥

भावार्थ दीपिका

यद्यस्मात्सुखीनलः पुत्र । तस्मात्परिप्लवात्सुनयस्तस्यात्मजो मेधावीत्यर्थः ॥४०-४२॥

भाव प्रकाशिका

नृचक्षु का पुत्र सुखीनल होगा । उसका पुत्र परिप्लव होगा परिप्लव का पुत्र सुनय होगा और उसका पुत्र मेधावी होगा ॥४०-४२॥

तिमेर्बृहद्रथस्तस्माच्छतानीकः सुदासजः । शतानीकाद्दुर्दमनस्तस्यापत्यं बहीनरः ॥४३॥

अन्वयः— तिमेः बृहद्रथः तस्मात् सुदासजः शतानीकः शतानीकात् दुर्दमनः तस्यापत्यं बहीनरः ॥४३॥

अनुवाद— तिमिका का पुत्र बृहद्रथ होता, उसका पुत्र सुदास होगा । सुदास का पुत्र शतनीक होगा, शतानीक का पुत्र दुर्दमन होगा, उसका पुत्र वहीनर होगा ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

तस्मात्सुदासस्ततः शतानीक इत्यर्थः ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

बृहद्रथ का पुत्र सुदास होगा सुदास का पुत्र शतानीक होगा ॥४३॥

दण्डपाणिर्निमिस्तस्य क्षेमको भविता नृपः । ब्रह्मक्षत्रस्य वै प्रोक्तो वंशो देवर्षिसत्कृतः ॥४४॥

अन्वयः— दण्डपाणिः तस्य निमिः तस्य क्षेमकः नृपः भविता देवर्षि सत्कृतः ब्रह्म क्षत्रस्य वंश प्रोक्तः ॥४४॥

अनुवाद— वहीनर का पुत्र दण्डपाणि होगा उसका पुत्र क्षेमक नामक राजा होगा देवता और ऋषियों द्वारा समादृत ब्राह्मणों और क्षत्रियों के वंश का मैंने वर्णन किया ॥४४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४४॥

क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ । अथ मागधराजानो भवितारो वदामि ते ॥४५॥

अन्वयः— क्षेमकं राजानं प्राय कलौ संस्थामेष्यति अथ भवितारः मगध राजनः ते वदामि ॥४५॥

अनुवाद— क्षेमक राजा के साथ ही कलियुग में वंश समाप्त हो जायेगा मैं तुम्हें मगध के भविष्यत् कालिक राजाओं को बतलाता हूँ ॥४५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४५॥

भविता सहदेवस्य मार्जारिर्यच्छ्रुतश्रवाः । ततोऽयुतायुस्तस्यापि निरमित्रोऽथ तत्सुतः ॥४६॥

अन्वयः— सहदेवस्य मार्जारिः भविता यत् श्रुतश्रवाः ततः अयुतायुः तस्यापि निरमित्रः तत्सुतः ॥४६॥

अनुवाद— सहदेव का पुत्र मार्जारि होगा, उसका पुत्र श्रुतश्रवा होगा, श्रुतश्रवा का पुत्र अयुतायु होगा, और उसका भी पुत्र निरमित्र होगा ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

बृहद्रथस्य जरासन्धस्तस्य सहदेवस्तस्य मार्जारिः । यस्मान्माजरिः श्रुतश्रवाः ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

बृहद्रथ का पुत्र जरासंध हुआ, उसके पुत्र सहदेव हुए सहदेव के पुत्र मार्जारि और मार्जारि का पुत्र श्रुतश्रवा होगा॥४६॥

सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद्बृहत्सेनोऽथ कर्मजित् । ततः सृतंजयाद्विप्रः शुचिस्तस्य भविष्यति ॥४७॥

अन्वयः— निरमित्रस्य पुत्र सुनक्षत्र सुनक्षगत् बृहत्सेनः अथकर्मजित् ततः श्रितंजयः तस्मात् विप्रः, तस्य शुचिः भविष्यति ॥४७॥

अनुवाद— निरमित्र का पुत्र सुनक्षत्र होगा, सुनक्षत्र का पुत्र बृहत्सेन होगा, उसका पुत्र कर्मजित होगा उसका पुत्र श्रितंजय होगा और श्रितंजय का पुत्र शुचि होगा ॥४७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४७॥

क्षेमोऽथ सुव्रतस्तस्माद्धर्मसूत्रः शमस्ततः । द्युमत्सेनोऽथ सुमतिः सुबलो जनिता ततः ॥४८॥

अन्वयः— अथक्षेमः तस्मात् सुव्रतः तस्मात् धर्मसूत्रः ततः, शमः, अथद्युमत्सेनः अथ सुमतिः ततः सुबलः जनिता॥४८॥

अनुवाद— शुचि का पुत्र क्षेम होगा, उसका पुत्र सुव्रत होगा, इस प्रकार धर्म सूत्र होगा, धर्म सूत्र का पुत्र शम होगा, उसका पुत्र द्युमत्सेन होगा, द्युमत्सेन का पुत्र सुमति होगा । सुमति का पुत्र सुबल होगा ॥४८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४८॥

सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद्यद्रिपुंजयः । बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्या; साहस्रवत्सरम् ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवम स्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अन्वयः— सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजित् यद्रिपुंजयः बार्हद्रथाभूपालाः सहस्रवत्सरं भाव्याः ॥४९॥

अनुवाद— सुबल का पुत्र सुनीथ, उसका पुत्र सत्यजित् उसका पुत्र विश्वजित् होगा । विश्वजित् का पुत्र रिपुंजय होगा । बृहद्रथ के वंश में होने वाले राजा एक हजार वर्ष तक होंगे ॥४९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

सहस्रसंवत्सरमेते भाव्या भूपालास्ततः परं भाव्यान् द्वादशस्कन्धे वक्ष्यति ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवम स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

ये सभी राजा हजार वर्ष तक होंगे उसके बाद वे सभी राजाओं का वर्ण बारहवें स्कन्ध में करेंगे ॥४९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवम स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के बाइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२२॥

* * *

तेइसवॉं अध्याय

अनु, द्रह्यु, तुर्वसु और यदु के वंश का वर्णन

श्रीशुक उवाच

अनोः सभानरश्चक्षुः परोक्षश्च त्रयः सुताः । सभानरात्कालनरः सृंजयस्तत्सुतस्ततः ॥१॥
जनमेजयस्तस्य पुत्रो महाशीलो महामनाः । उशीनरस्तितिक्षुश्च महामनस आत्मजौ ॥२॥

अन्वयः— अनोः सभानरः चक्षुः परोक्षः च त्रयः सुता सभानरात् कालनरः तत् सुतः सृंजय ततः जनमेजयः तस्य पुत्रः महाशीलः महामनाः उशीनरः तितिक्षुः च महामनस आत्मजौ ॥१-२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— अनु के तीन पुत्र हुए समानर, चक्षु ओर परोक्ष, समानर के पुत्र कालनर हुए और उनके पुत्र सृंजय हुए । सृंजय के पुत्र जनमेजय हुए उनके दो पुत्र हुए । महाशील और उनके पुत्र महामना हुए महामना के दो पुत्र हुए उशीनर और तितिक्षु ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोविंशे त्वनोर्द्रुह्योस्तुर्वसोश्चान्वय; क्रमात् । यदोश्च वंशोऽनुक्रान्तो यावज्ज्यामघसंभवः । तदेवं ययातेः पुत्राणां पञ्चमस्य पूरोवंशोऽनुक्रान्तः, इदानीं चतुर्थस्य वंशमनुक्रामति-अनोरिति कर्णस्य जगतीपतेरित्यन्तेन । तस्य जनमेजयस्य महाशीलस्तस्य महामनाः ।।१-२।।

भाव प्रकाशिका

तेइसवें अध्याय मे अनु और द्रुहसु तथा तुर्वसु के वंश का वर्णन किया गया है । युदवंश का वर्णन ज्यामघ की उत्पत्ति पर्यन्त वर्णित है । इस प्रकार से ययाति के पाँच पुत्रों में से पाँचवें पुरु के वंश का वर्णन किया जा चुका है । सम्प्रति चौथे पुत्र अनु के वंश का वर्णन **अनोः इत्यादि** श्लोक से लेकर **कर्णस्य जगतीपते** पर्यन्त करते है । जनमेजय के पुत्र महाशील और उनके पुत्र महामना हुए ।।१-२।।

शिबिर्वनः शमिर्दक्षश्चत्वारोशीनरात्मजाः । वृषादर्भः सुवीरश्च मद्रः कैकेयं आत्मजाः ।।३।।
शिबेश्चत्वार एवासंस्तितिक्षोश्च रुशद्रथः । ततो हेमोऽथ सुतपा बलिः सुतपसोऽभवत् ।।४।।

अन्वयः— शिविः वनः शमीः दक्षा चत्वार उशीनरस्य आत्मजाः शिवेः चत्वार आत्मजाः आसन् वृषादर्भः, सुवीरः, मद्रः, कैकेयः च । तितिक्षोः च रुशद्रथः, ततोहेमः अथ सुतपा सुतपसः बलिः भवत् ।।३-४।।

अनुवाद— उशीनर के चार पुत्र थे, शिवि, वन, शमी और दक्ष । शिवि के भी चार पुत्र थे वृषादर्भ, सुवीर, मद्र और कैकेय । उशीनर के भाई तितिक्षु के पुत्र रुशद्रथ थे, रुशद्रथ के पुत्र हेम थे, हेम के सुतपा थे और सुतपा के पुत्र बलि हुए ।।३-४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३-४।।

अङ्गवङ्गकलिङ्गाद्याः सुह्मपुण्ड्रान्ध्रसंज्ञिताः । जज्ञिरे दीर्घतमसो बलेः क्षेत्रे महीक्षितः ।।५।।

अन्वयः— बलेः क्षेत्रे दीर्घतमसः अङ्गवङ्गकलिङ्गाद्याः सुह्म पुण्ड्राम्ध्रसंज्ञिता महिक्षितः जज्ञिरे ।।५।।

अनुवाद— बली की पत्नी के गर्भ से दीर्घतमा मुनि ने छह पुत्रों को उत्पन्न किया, अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र और आन्ध्र ।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५।।

चक्रुः स्वनाम्ना विषयान्षडिमान्प्राच्यकांश्च ते । खनपानोऽङ्गतो जज्ञे तस्माद्दिविरथस्ततः ।।६।।
सुतो धर्मरथो यस्य जज्ञे चित्ररथोऽप्रजाः । रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ।।७।।
शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छदृष्यशृङ्ग उवाह ताम् । देवेऽवर्षति यं रामा आनिन्युर्हरिणीसुतम् ।।८।।
नाट्यसङ्गीतवादित्रैर्विभ्रमालिङ्गनार्हणैः । स तु राज्ञोऽनपत्यस्य निरूप्येष्टिं मरुत्वतः ।।९।।
प्रजामदाद्दशरथो येन लेभेऽप्रजाः प्रजाः । चतुरङ्गो रोमपादात्पृथुलाक्षस्तु तत्सुतः ।।१०।।

अन्वयः— ते स्वनाम्ना प्राच्यकान् षड्विषयान चक्रुः । अङ्गतः खनपानजज्ञे तस्मात् दिविरथः ततः सुतो धर्मरथः, यस्य अप्रजाः चित्ररथः रोमपाद इति ख्यातः जज्ञे । सखा दशरथः तस्मै शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छत् ताम् ऋष्यऋङ्ग उवाह। देवे अवर्षति यं हरिणी सुतम् रामाः नाट्य सङ्गीत वादित्रैः विभ्रमालिङ्गनार्हणैः आनिन्युः । स तु अनपत्यस्य राज्ञः मरुत्वतः इष्टिं निरूप्य प्रजामदात् येन अप्रजाः दशरथः प्रजा लेभे । रोमपदात् चतुरङ्गः तत्सुतः तु पृथुलाक्षः ।।६-१०।।

अनुवाद— वे छहों पूर्वदिशा में अपने नाम से छह देशों को बसाये । अङ्ग के पुत्र खनपान हुए उनके पुत्र दिविरथ हुए दिविरथ के पुत्र धर्मरथ हुए । धर्मरथ के पुत्र चित्ररथ हुए वे ही रोमपाद के नाम से प्रख्यात हुए।

उनको कोई सन्तान नही थी । उनके मित्र राजा दशरथ ने उनको अपनी पुत्री शान्ता को गोद दे दिया । शान्ता का विवाह ऋष्य शृङ्ग से हुआ । रोमपाद के राज्य में अवर्षण हो जाने पर । ऋष्य शृङ्ग विभाण्डक ऋषि के द्वारा हरिणी के गर्भ से पैदा हुए थे । उस समय गणिकाएँ अपने नृत्य, संगीत, वाद्य, हाव-भाव आलिङ्गन और विविध उपहारों से मोहित करके ऋष्य शृङ्ग को उनके राज्य में लायी तो वर्षा हो गयी । उन्होंने इन्द्र देवता का यज्ञ कराकर राजा रोमपाद को सन्तान प्रदान किया । उन्हीं के प्रयत्न से राजा दशरथ ने भी चार पुत्रों को प्राप्त किया । रोमपाद के पुत्र चतुरङ्ग हुए और चतुरङ्ग के पृत्र पृथुलाक्ष हुए ॥६-१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६-१०॥

बृहद्रथो बृहत्कर्मा बृहद्भानुश्च तत्सुताः । आद्याद्बृहन्मनास्तस्माज्जयद्रथ उदाहृतः ॥११॥

अन्वयः— तत्सुताः बृहद्रथ; बृहत्कर्मा बृहद्भानुः च आद्यात् बृहन्मनाः तस्मात् जयद्रथ उदाहृतः ॥११॥

अनुवाद— पृथुलाक्ष के तीन पुत्र हुए बृहद्रथ बृहत् कर्मा और बृहदभानु । बृहद्रथ के पुत्र बृहन्मना हुए और बृहन्मना के पुत्र जयद्रथ हुए ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

विजयस्तस्य संभूत्यां ततो धृतिरजायत । ततो धृतव्रतस्तय सत्कर्माधिरथस्ततः ॥१२॥

अन्वयः— तस्य सम्भूत्यां विजयः ततः धृतिः अजायत, ततः धृतव्रतः तस्य सत्कर्मा ततः अधिरथः ॥१२॥

अनुवाद— जयद्रथ की पत्नी सम्भूति के गर्भ से उनके पुत्र विजय हुए, विजय के पुत्र धृति हुए, धृति के पुत्र धृतव्रत हुए धृतव्रत के सत्कर्मा और सत्कर्मा के पुत्र अधिरथ हुए ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

योऽसौ गङ्गातटे क्रीडन्मञ्जूषान्तर्गतं शिशुम् । कुन्त्यापविद्धं कानीनमनपत्योऽकरोत्सुतम् ॥१३॥

अन्वयः— यः असौ गङ्गातटे अनपत्य कीडन् मञ्जूषान्तर्गतम् कुन्त्या अपविद्धम् कानीनम् शिशुम् सुतम् अकरोत्॥१३॥

अनुवाद— अधिरथ नि;सन्तान था गङ्गा तट पर क्रीडा करते हुए उसने मञ्जूषा में बहते हुए शिशु को देखा, जिसको कन्यावस्था में पैदा होने के कारण कुन्ती ने बहा दिया था उस कानीन शिशु को उसने अपना पुत्र बना लिया॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

वृषसेनः सुतस्तस्य कर्णस्य जगतीपतेः । द्रुह्योश्च तनयो बभ्रुः सेतुस्तस्यात्मजस्ततः ॥१४॥
आरब्धस्तस्य गान्धारस्तस्य धर्मस्ततो धृतः । धृतस्य दुर्मनास्तस्मात्प्रचेताः प्राचेतसं शतम्॥१५॥
म्लेच्छाधिपतयोऽभूवन्नुदीचीं दिशमाश्रिताः । तुर्वसोश्च सुतो वह्निर्वह्नेर्भर्गोऽथ भानुमान् ॥१६॥
त्रिभानुस्तत्सुतोऽस्यापि करन्धम उदारधीः । मरुतस्तत्सुतोऽपुत्रः पुत्रं पौरवमन्वभूत ॥१७॥

अन्वयः—ंजगतीपतेः कर्णस्य सुत; वृषसेनः । दुह्योश्च तनयः बभ्रुः तस्यात्मजः सेतुः ततः आरब्धः तस्य गान्धार; तस्य धर्मः ततः धृतः, धृतस्य दुर्मनाः, तस्मात् प्रचेता, प्राचेतसं शतम् म्लेच्छाधिपतयः अभूवन्य तुर्वसोः च सुतः बह्निः, वहनेः भर्गः, अथ भानुमान् तत्सुतः त्रिभानुः, अस्य अपि उदारधी करन्धमः, तत्सुतः अपुत्रो मरुत्तमः पौरवं पुत्रम् अन्वभूत् ॥१४-१७॥

अनुवाद— राजा कर्ण के पुत्र का नाम वृषसेन था । द्रुह्यु के पुत्र का नाम बभ्रु था, बभ्रु के आत्मज सेतु हुए, उनके पुत्र आरब्ध हुए, आरब्ध के पुत्र गान्धार हुए, गान्धार के पुत्र धर्म हुए और धर्म के पुत्र धृत हुए । धृत के पुत्र दुर्मना हुए उनके पुत्र प्रचेता हुए प्रचेता के सौ पुत्र हुए जो म्लेच्छों के अधिपति हो गये । तुर्वसु के पुत्र वह्नि

हुए, वह्नि के पुत्र भर्ग हुए, भर्ग के पुत्र भानुमान हुए, उनके पुत्र त्रिभानु हुए त्रिभानु के पुत्र उदारबुद्धि वाले करन्धम हुए उनके पुत्र मरुत हुए । वे नि:सन्तान थे उन्होंने पुरुवंशी दुष्यन्त को ही अपना पुत्र बनाया ।।१४-१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४-१७।।

दुष्यन्तः स पुनर्भेजे स्वं वंशं राज्यकामुकः। ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशं नरर्षभ ।।१८।।
वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम्। यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।१९।।

अन्वयः— राज्य कामुकः सः दुष्यन्तः पुनः स्वं वंशं भेजे । नरर्षभ ! ययातेः ज्येष्ठ पुत्रस्य यदोः महापुण्यं नृणाम् सर्वपापहरं वंशं वर्णयमि यदोः वंशं श्रुत्वा नरः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।१८-१९।।

अनुवाद— राज्य प्राप्ति की इच्छा वाले दुष्यन्त पुनः अपने पुरुवंश में ही लौट गये । परीक्षित् अब मैं ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु के अत्यन्त पुण्यमय तथा मनुष्यों के समस्त पापों के दूर करने वाले यदु के वंश का वर्णन करना चाहता हूँ । यदु के वंश का श्रवण करने वाला मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।।१८-१९।।

भावार्थ दीपिका

स दुष्यन्तः स्वं वंशं पौरवं वंशम् ।।१८-१९।।

भाव प्रकाशिका

दुष्यन्त पुनः अपने वंश में लौट गये ।।१८-१९।।

यत्रावतीर्णो भगवान्परमात्मा नराकृतिः। यदोः सहस्रजित्क्रोष्ट नलो रिपुरिति श्रुताः।।२०।।
चत्वारः सूनवस्तत्र शतजित्प्रथमात्मजः। महाहयो वेणुहयो हैहयश्चेति तत्सुताः।।२१।।

अन्वयः— यत्र भगवान् परमात्मा नराकृतिः अवतीर्णः यदोः सहस्रजित् क्रोष्टा नलः रिपुः इति श्रुताः चत्वारः सुनवः तत्र शतजित् पचमात्मजः, तत्सुताः महाहयः, वेणु हयः, हैहयश्चेति ।।२०-२१।।

अनुवाद— यदु के ही वंश में भगवान परंब्रह्म मनुष्य रूप से अवतार लिए । यदु के प्रख्यात चार पुत्र थे सहस्रजित्, क्रोष्टा, नल और रिपु । सहस्रजित् के पुत्र शतजित हुए उनके तीन पुत्र हुए महाहय, वेणुहय और हैहय ।।२०-२१।।

भावार्थ दीपिका

प्रथमस्य सहस्रजित आत्मजः ।।२०-२१।।

भाव प्रकाशिका

यदु के प्रथम पुत्र सहस्रजित के पुत्र शतजित हुए ।।२०-२१।।

धर्मस्तु हैहयसुतो नेत्रः कुन्तेः पिता ततः । सोहञ्जिरभवत्कुन्तेर्महिष्मान्भद्रसेनकः ।।२२।।

अन्वयः— हैहयसुतः धर्मनेत्र कुन्तेः पिता ततः कुन्तेः सोहञ्जिः अभवत् सोहञ्जेः महिष्मान तस्य भद्रसेनः ।।२२।।

अनुवाद— हैहय के पुत्र धर्म हुए हैहय के पुत्र नेत्र हुए, नेत्र के पुत्र कुन्ति हुए कुन्ति के पुत्र सोहञ्जि सोहञ्जि के पुत्र महिष्मान हुए और महिष्मान के पुत्र भद्रसेनक हुए ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

कुन्तेः सोहञ्जिः, सोहञ्जेर्महिष्मान्, महिष्मतो भद्रसेनकः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

कुन्ति के पुत्र सोहञ्जि हुए, सोहञ्जि के महिष्मान हुए और महिष्मान के पुत्र भद्रसेन हुए ।।२२।।

दुर्मदो भद्रसेनस्य धनकः कृतवीर्यसूः । कृताग्निः कृतवर्मा च कृतौजा धनकात्मजाः ॥२३॥

अन्वयः— भद्रसेनस्य दुर्मदः धनकः कृतवीर्य सूः कृताग्निः कृतवर्मा च, कृतौजा धनकात्मजाः ॥२३॥

अनुवाद— भद्रसेन के दो पुत्र हुए दुर्मद और धनक । धनक के पुत्र कृतवीर्य हुए । धनक के चार पुत्र हुए कृतवीर्य, कृतवर्मा और कृतौजा ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

भद्रसेनस्य दुर्मदो धनकश्चेति द्वौ पुत्रौ । कृतवीर्यस्य जनकः । कृतवीर्यादयश्चत्वारो धनकस्यात्मजा इत्यर्थः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

भद्रसेन के दो पुत्र हुए दुर्मद और धनक । धनक कृतवीर्य के पिता थे धनक के चार पुत्र हुए कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजाः ॥२३॥

अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् । दत्तात्रेयाद्धरेरंशात्प्राप्तयोगमहागुणः ॥२४॥

अन्वयः— कृतवीर्यस्य अर्जुन हरेः अंशात् दत्तत्रेयात् प्राप्तयोगमहागुणः सप्तद्वीपेश्वर अभवत् ॥२४॥

अनुवाद— कृतवीर्य के अर्जुन, श्रीहरि के अंशभूत दत्तात्रेय से योगविद्या आदि गुणों से सप्तद्वीपा पृथिवी का सर्वभौम समान हुए ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः । यज्ञदानतपोयोगश्रुतवीर्यजयादिभिः ॥२५॥

अन्वयः— कार्तवीयस्य पार्थिवाः यज्ञदानतपोयोगश्रुतवीर्यजयादिभिः गतिं नून न यास्यन्ति ॥२५॥

अनुवाद— निश्चित रूप से पृथिवी का कोई भी राजा यज्ञ, दान, तप, योग, शास्त्र ज्ञान, पराक्रम और विजय इत्यादि के विषय कार्तवीर्य अर्जुन की बराबरी नहीं कर सकता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

पञ्चाशीतिसहस्राणि ह्यव्याहतबलः समाः । अनष्टवित्तस्मरणो बुभुजेऽक्षय्यषड्वसु ॥२६॥

अन्वयः— पञ्चाशीति सहस्राणि समाः हि अव्याहत बलः अनष्ट वित्तस्मरणः अक्षय्यषड्वसु बुभुजे ॥२६॥

अनुवाद— अर्जुन ने पच्चीस हजार वर्षों तक छहो इन्द्रियों से अक्षय विषयों का भोग करता रहा । इतने दिनों में न तो उसके शरीर का बल ही क्षीण हुआ और न तो उसने कभी यही स्मरण किया कि मेरे धन का नाश हो जायेगा ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अनष्टविनाशं वित्तं येन तथाविधं स्मरणं यस्य सः । अक्षय्यं षड्वसु षडिन्द्रियविषयं बुभुजे ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

उसने अपने धन का नाश का स्मरण भी नहीं किया । उसने अक्षय छहो इन्द्रियों के विषयों का भोग किया॥२६॥

तस्य पुत्रसहस्रेषु पञ्चैवोर्वरिता मृधे । जयध्वजः शूरसेनो वृषभो मधुरूर्जितः ॥२७॥

अन्वयः— तस्य पुत्रसहस्रेषु मृधे पञ्च एव उर्वरिताः जयध्वजः शूरसेनः, वृषभः मधुः उर्जितः ॥२७॥

अनुवाद— अर्जुन के एक हजार पुत्रों में से युद्ध में केवल पाँच ही बचे रहे । उनके नाम हैं जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु एवं उर्जित शेष सबों को परशुरामजी ने नष्ट कर दिया था ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

जयध्वजात्तालजङ्घस्तस्यपुत्रशतं त्वभूत् । क्षत्रं यत्तालजङ्घाख्यमौर्वतेजोपसंहृतम् ॥२८॥

अन्वयः— जयध्वजात् तालजङ्घः तस्य पुत्र शतं त्वभूत् । यत् तालजंघा रूपं क्षत्रं और्वतेजसा उापसंहृतम् ॥२८॥

अनुवाद— जयध्वज के पुत्र तालजंघ थे । उनके सौ पुत्र थे । उनताल जंघ नामक क्षत्रियों को महर्षि और्व के तेज से सगर ने मार दिया था ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

और्वस्य तेजसा सगरेणोपसंहृतमित्यर्थः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि और्व के तेज से सगर ने मार दिया ॥२८॥

तेषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रो वृष्णिः पुत्रो मधोः स्मृतः । तस्य पुत्रशतं त्वासीद्वृष्णिज्येष्ठं यतः कुलम्॥२९॥

अन्वयः— तेषां ज्येष्ठः वीतिहोत्रः वृष्णिः पुत्रः मधोः स्मृतः । तस्य पुत्रशतम् आसीत् वृष्णि ज्येष्ठं यतः कुलम् ॥२९॥

अनुवाद— उन सौ पुत्रों में बीतिहोत्र सबसे बड़े थे । वीतिहोत्र के पुत्र मधु हुए । मधु के सौ पुत्र थे उनमें सबसे बड़े वृष्णि थे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तेषां तालजङ्घपुत्राणां ज्येष्ठः । तस्य मधोः पुत्रशतम् । वृष्णिर्ज्येष्ठो यस्मिन् । यतो मधोर्वृष्णेर्यदोश्च हेतोरिदं कुलम्॥२९॥

भाव प्रकाशिका

तालजङ्घ के पुत्र में बड़े वीतिहोत्र थे । मधु के सौ पुत्र थे । उन सबों में वृष्णि बड़े थे । मधु और वृष्णि के द्वारा ही यदु का वंश बना रहा ॥२९॥

माधवा वृष्णयो राजन्यादवाश्चेति संज्ञिताः । यदुपुत्रस्य च क्रोष्टोः पुत्रो वृजिनवांस्ततः ॥३०॥

अन्वयः— हे राजन् ! माधवाः, वृष्णयः यादवाः च इति संज्ञिताः यदुपुत्रस्य क्रोष्टोः पुत्रः वृजिनवान् ॥३०॥

अनुवाद— मधु, वृष्णि और यदु के नाम पर ये माधव, वृष्णि और यादव कहलाये । यदु के पुत्र क्रोष्टु के पुत्र का नाम वृजिनवान् था ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

श्वाहिस्ततो रुशेकुर्वै तस्य चित्ररथस्ततः । शशबिन्दुर्महायोगी महाभोजो महानभूत् ॥३१॥

अन्वयः— ततः श्वाहि ततः रुशेकुः, तस्य चित्ररथः, ततः महायोगी शशविन्दुः महाभोजः महानभूत् ॥३१॥

अनुवाद— वृजिनवान के पुत्र श्वाहि हुए, श्वाहि के रुशेकु हुए, रुशेकु के पुत्र चित्ररथ हुए, चित्ररथ के पुत्र महायोगी शशविन्दु हुए वे महान भोगैश्वर्य सम्पन्न थे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

चतुर्दशमहारत्नश्चक्रवर्त्यपराजितः । तस्य पत्नीसहस्राणां दशानां सुमहायशाः ॥३२॥
दशलक्षसहस्राणि पुत्राणां तास्वजीजनत् । तेषां तु षट्प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजः ॥३३॥
धर्मो नामोशना तस्य हयमेधशतस्य याट् । तत्सुतो रुचकस्तस्य पञ्चासन्नात्मजाः शृणु ॥३४॥

अन्वयः— चतुर्दशमहारत्नचक्रवत्यपराजितः महायशाः तस्य दशानां पत्निसहस्राणां तासु पुत्राणां दशलक्ष सहस्राणि अजीजनत् । तेषां षट प्रधानानां पृथुश्रवसः आत्मजः धर्मः तस्य उशना नाम हयमेधशतस्यायाट् तत्सुतः रुचकः, तस्य पञ्चआत्मजाः आसन् तान् शृणु ॥३२-३४॥

अनुवाद— शशविन्दु चौदह महारत्नों का स्वामी चक्रवती, कभी पराजित नहीं होने वाला तथा महायशस्वी था। उसकी दश हजार पत्नियाँ थी। उनमें से प्रत्येक के एक लाख पुत्र थे, इस तरह उसके एक अरब पुत्र थे। उन सबों में पृथुश्रवा आदि प्रधान थे। पृथुश्रवा के पुत्र का नाम धर्म था। धर्म के पुत्र उशना हुए। उशना के पुत्र रुचक हुए उन्होंने सौ अश्वमेघ याग किया। रुचक के पाँच पुत्र थे उनके नाम सुनो ॥३२-३४॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्दशमहारत्नानि तत्तज्जातिश्रेष्ठानि यस्य सः। तानि च मार्कण्डेयपुराणे वर्णितानि–'गजवाजिरथस्त्रीषु निधिमाल्याम्बरद्रुमाः। शक्तिपाशमणिच्छत्रविमानानि चतुर्दश।' इति। दशानां पत्नीसहस्राणां भार्यायुतस्य प्रत्येकं लक्षं लक्षमित्येवं तासु पुत्राणां दशलक्षसहस्राणि जनयामास। पृथुश्रवाः पृथुकीर्तिः पृथुयशा इत्यादयः षट्प्रधानाः श्रेष्ठा येषां तेषां मध्ये। पञ्च आत्मजा आसंस्तान् शृणु ॥३२-३४॥

भाव प्रकाशिका

चौदह महारत्न जो अपनी-अपनी जाति में श्रेष्ठ थे। उन सबों का वर्णन मार्कण्डेय पुराण में किया गया है। **गजवाजिरथस्त्रीषु० इत्यादि** अर्थात् हाथी, घोड़ा, रथ, स्त्री, बाण, खजाना, माला, वस्त्र, वृक्ष, शक्तिपाश, मणि, छत्र और विमान ये चौदह महारत्न हैं। उसकी दश हजार पत्नियों में से प्रत्येक के एक-एक लाख पुत्र थे। इस तरह उन्होंने एक अरब पुत्रों को उत्पन्न किया। उनके पुत्रों में पृथु श्रवाः पृथुकीर्ति, पृथुयश इत्यादि छह पुत्र प्रधान थे। रुचक के पाँच पुत्र थे उन सबों क नाम सुनो ॥३२-३४॥

पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषुपृथुज्यामघसंज्ञिताः । ज्यामघस्त्वप्रजोऽप्यन्यां भार्यां शैब्यापतिर्भयात् ॥३५॥
नाविन्दच्छत्रुभवनाद्भोज्यां कन्यामहारषीत् । रथस्थां तां निरीक्ष्याह शैब्या पतिममर्षिता ॥३६॥
केयं कुहक मत्स्थानं रथमारोपितेति वै । स्नुषा तवेत्यभिहिते स्मयन्ती पतिमब्रवीत् ॥३७॥

अन्वयः— पुरुचित् रुक्म रुक्मेषु पृथु ज्यामघसंज्ञिताः अप्रज अपिज्यामथः शैव्यापतिः भयात् अन्यां भार्यां नाऽविन्दत्। शत्रुभवनात् भोज्यं कन्याम् आहारषीत्। तां रथस्थां निरीक्ष्य अमर्षिता शैव्या पतिमब्रवीत्। कुहक केयं मत्स्थाने रथम् अरोपिता? तव स्नुषा इति अभिहिते स्मयन्ती पतिम् अब्रवीत् ॥३५-३७॥

अनुवाद— पुरुजित्, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु तथा ज्यामघ। ज्यामघनिः सन्तान थे फिर भी अपनी पत्नी शैव्या के भय से दूसरी पत्नी से विवाह नहीं किये। एक बार वह अपने शत्रु के घर से भोज्या नाम की कन्या का हरण करके ले आये। पति के रथ पर भोज्या को देखकर वह चिढकर अपने पति से कही, कपटी तुम मेरे स्थान पर किसको अपने रथ पर बैठाकर लाए हो ? ज्यामघ ने कहा यह तुम्हारी पुत्र वधू है। शैव्या ने मुस्कुराकर कहा ॥३५-३७॥

भावार्थ दीपिका

तानेवाह-पुरुजिदिति। भार्याभयादेवैकभार्यस्य बन्ध्यापतेर्ज्यामघस्यापुत्रस्य तद्भयमेव पुत्रप्रदमभवदिति दर्शयन्नाह-ज्यामघस्त्विति ॥३५-३७॥

भाव प्रकाशिका

पुरुजित् इत्यादि श्लोक से उन सबों को कहा गया है। पत्नी के भय से ही एक पत्नी वाले बन्ध्या के पति निस्सतानज्यामघ को पत्नी का भय ही पुत्र प्रद हो गया, इस बात को ज्यामघस्तु इत्यादि से कहा गया है ॥३५-३७॥

अहं वन्ध्याऽसपत्नी च स्नुषा मे युज्यते कथम् । जनयिष्यसि यं राज्ञि तस्येयमुपयुज्यते ॥३८॥

अन्वयः— अहं बन्ध्या असपत्नी च मेस्नुषा कथं युज्यते राज्ञि यं जनयिष्यसि तस्येयमुपयुज्यते ॥३८॥

अनुवाद— मैं बन्ध्या हूँ, मेरी कोई सौत भी नहीं है अतएव यह कैसे मेरी पुत्र वधू हो सकती है । ज्यामध ने कहा रानी तुम जिसको जन्म दोगी उसी की यह पत्नी होगी ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

यदि मे सपत्नी स्यात्तर्हि स्नुषेयं युज्येतापि, न त्वेतदस्तीत्याह-असपत्नी चेति । अतिभयव्याकुल आह-जनयिष्यतीति॥३८॥

भाव प्रकाशिका

यदि मेरी सौत भी होती तो यह मेरी पुत्रबधू हो सकती थी, मेरी कोई सौत भी नहीं है । अत्यन्त भयभीत ज्यामघने कहा कि जिसको तुम जन्म दोगी उसी की यह पत्नी होगी ॥३८॥

अन्वमोदन्त तद्विश्वेदेवाः पितर एव च । शैब्या गर्भमधात्काले कुमारं सुषुवे शुभम्॥
स विदर्भ इति प्रोक्त उपयेमे स्नुषां सतीम् ॥३९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे यदुवंशानुवर्णने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अन्वयः— तद्विश्वेदेवाः पितर एव अन्वमोदन्त, शैव्या गर्भम् अधात् काले शुभम् कुमारं सुषुवे । स विदर्भ इति प्रोक्तः सतीं स्नुषां उपयेमे ॥३९॥

अनुवाद— उसका अनुमोदन विश्वेदेवों और पितरों ने किया शैव्या ने गर्भधारण किया और समयानुसार सुन्दर पुत्र को जन्म दिया । उसका नाम विदर्भ हुआ उसी ने उस पतिव्रता स्नुषा से विवाह किया ॥३९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध के यदुवंश वर्णन के प्रसङ्ग में तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

भार्याभयप्रकम्पमानस्विन्नसर्वाङ्गस्य राज्ञः प्राणसंकटमालोक्यानुकम्पितास्तेन पूर्वं बहुकालमाराधिताश्च विश्वेदेवाः पितरश्च तथेत्यन्वमोदन्त । ततश्च देवताप्रसादेन जनयिष्यसीति प्रतिवचनमुहूर्तगुणेन च निवृत्तरजस्कापि शैब्या गर्भमधात् । तस्य च महिमा पराशरादिभिरुक्तः । यथोक्तम्- 'भार्यावश्यास्तु ये केचिद्भविष्यन्त्यथ वा मृताः । तेषां तु ज्यामघः श्रेष्ठः शैब्यापतिरभून्नृपः।' इति।।३९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नमवस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

पत्नी के भय से भयभीत ज्यामघ का शरीर काँप रहा था और उसके शरीर में पसीना हो गया था । राजा के प्राण संकट को देखकर तथा उसके द्वारा बहुत समय तक आराधित विश्वेदेवों और पितरों ने राजा पर कृपा करके ज्यामघ का अनुमोदन किया देवता की कृपा से जिसका रज समाप्त हो गया था उस शैव्या ने गर्भ धारण किया । उसी महिमा का वर्णन पराशर आदि ने किया है । **भार्यावश्याः इत्यादि** जो पत्नी के अधीन होते हैं अथवा मरने वाले होते हैं उन लोगों में ज्यामघ श्रेष्ठ थे । वे शैव्या के पति थे ।

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका के तेइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२३।।

* * *

चौबीसवाँ अध्याय

विदर्भ के वंश का वर्णन

श्रीशुक उवाच

तस्यां विदर्भोऽजनयत्पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ । तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनन्दनम् ॥१॥

अन्वयः— विदर्भः तस्यां कुशक्रथौ नाम्ना पुत्रौ विदर्भ कुल नन्दनं तृतीयं रोमपादं च अजनयत् । ॥१॥

अनुवाद— विदर्भ ने उसके गर्भ से कुश क्रथ नामक दो पुत्रों को तथा विदर्भ वंश को आनन्दित करने वाले तीसरे पुत्र रोमपाद को उत्पन्न किया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्विंशे विदर्भस्य पुत्रत्रपसमुद्भवाः । वंशा नानामुखाः प्रोक्ता रामकृष्णोद्भवावधि ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौबीसवें अध्याय में विदर्भ के तीन पुत्रों के वंश में उत्पन्न होने वाले अनेक वंशों का वर्णन भगवान् कृष्ण एवं बलरामजी के जन्म पर्यन्त का वर्णन है ॥१॥

रोमपादसुतो बभ्रुर्बभ्रोः कृतिरजायत । उशिकस्तत्सुतस्तस्माच्चेदिश्चैद्यादयो नृप ॥२॥

अन्वयः— हे नृप रोमपादसुतः बभ्रुः बभ्रोः कृतिः अजायत तत्सुतः उशिकः तस्माचेदि चैद्यादयः नृपाः ॥२॥

अनुवाद— रोमपाद के पुत्र वभ्रु हुए वभ्रु के पुत्र कृति कृति के उशिक और उशिक के पुत्र चेदि हुए । चेदि के ही वंश में दमघोष और शिशुपाल आदि हुए ॥२॥

भावार्थ दीपिका

चैद्यादयो दमघोषादयः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

चैद्यादि अर्थात् दमघोष इत्यादि ॥२॥

क्रथस्य कुन्तिः पुत्रोऽभूद्वृष्टिस्तस्याथ निवृतिः । ततो दशार्हो नाम्नाभूत्तस्य व्योमः सुतस्ततः ॥३॥

अन्वयः— क्रथस्य पुत्रः कुन्तिः अभूत् तस्य वृष्टिः अथ तस्य निवृतिः ततो दशार्हः नाम्ना अभूत् तस्य व्योम सुतः ततः॥३॥

अनुवाद— क्रथ के पुत्र कुन्ति हुए, उनके पुत्र वृष्टि हुए वृष्टि के पुत्र निर्वृत्ति हुए उनके पुत्र का नाम दशार्ह हुआ, दशार्ह के पुत्र व्योम हुए ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

जीमूतो विकृतिस्तस्य यस्य भीमरथः सुतः । ततो नवरथः पुत्रो जातो दशरथस्ततः ॥४॥

अन्वयः— जीमूतः तस्य विकृतिः यस्य भीमरथः सुतः ततः नवरथः पुत्रः जातः दशरथ स्ततः ॥४॥

अनुवाद— व्योम के पुत्र जीमूत हुए जीमूत के विकृति और विकृति के पुत्र भीमरथ हुए । भीमरथ के पुत्र नवरथ और नवरथ के पुत्र दशरथ हुए ॥४॥

भावार्थ दीपिका

ततो दशरथाच्छकुनिः पुराणान्तरादेवमादिविशेषो द्रष्टव्यः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे पुराण में दशरथ के पुत्र शकुनि को बतलाया गया है ॥४॥

करम्भिः शकुनेः पुत्रो देवरातस्तदात्मजः । देवक्षत्रस्ततस्तस्य मधुः कुरुवशादनुः ॥५॥

अन्वयः— दशरथात् शकुनि तस्य पुत्रः करम्भिः तदात्मजः देवरातः ततः देवक्षत्रः तस्य मधुः ततः कुरुवशः तस्मात् अनुः ॥५॥

अनुवाद— दशरथ के पुत्र शकुनि हुए शकुनि के करम्भि उनके पुत्र देवरात हुए और देवरात के पुत्र देवक्षत्र हुए उनके पुत्र अनु हुए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

ततः कुरुवशादनुः । अनोः पुत्र; पुरुहोत्रः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् कुरुवंश के पुत्र अनु हुए और अनु के पुत्र पुरुहोत्र हुए ॥५॥

पुरुहोत्रस्त्वनोः पुत्रस्तस्यायुः सात्वतस्ततः । भजमानो भजिर्दिव्यो वृष्णिर्देवावृधोऽन्धकः॥६॥

अन्वयः— अनोः पुत्रः पुरुहोत्रः तस्या आयुः ततः सात्वतः भजमानः भजिः दिव्यः वृष्णिः देवावृधोन्धक महाभोजश्चेमे सात्वतस्य सप्त पुत्राः ॥६॥

अनुवाद— अनु के पुत्र पुरुहोत्र हुए उनके पुत्र आयु हुए, आयु के पुत्र सात्वत हुए सात्वत के सात पुत्र हुए भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि देवावृध अन्धक और महाभोज ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजश्च मारिष । भजमानस्य निम्लोचिः किङ्किणो धृष्टिरेव च॥७॥
एकस्यामात्मजाः पत्न्यामन्यस्यां च त्रयः सुताः। शतजिच्च सहस्राजिदयुतजिदिति प्रभो ॥८॥

अन्वयः— हे मारिष ! सात्वतस्य सप्तपुत्राः तेषु महाभोजश्च हे प्रभो भजमानस्य एकस्याः पत्न्याः निम्लोचिः किंकिणः धृष्टिः एवं च । अन्यस्यां च शताजित् च सहस्रजित् अयुतजि च त्रयः सुताः आसन् ॥७-८॥

अनुवाद— हे आर्य ! भजमान को लेकर सात्वत के सात पुत्र थे । भजमान की एक पत्नी के निम्लोचि, किंकिण और धृष्टि ये तीन पुत्र थे । हे राजन् ! दूसरी के पत्नी के गर्भ से भी तीन पुत्र हुए शतजित् सहस्रजित और अयुतजित् ॥७-८॥

भावार्थ दीपिका

महाभोजश्चेत्येवं सप्त । मारिष हे आर्य ॥७-८॥

भाव प्रकाशिका

और महाभोज के इस तरह से सात पुत्र थे । हे मारिष अर्थात् हे आर्य ॥७-८॥

बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठन्त्यमू । यथैव शृणुमो दूरात्सम्पश्यामस्तथान्तिकात् ॥९॥

अन्वयः— देवावृध सुतः बभ्रुः तयो अमू श्लोकौ पठन्ति यथैव दूरात् शृणुमः तथा अन्तिकात् पश्यामः ॥९॥

अनुवाद— देवावृध और उनके पुत्र बभ्रु के विषय में ये दो श्लोक पढ़े जाते हैं जैसा हमलोग दूर से सुनते है, वैसा ही नजदीक से देखते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः । पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च षट्सहस्राणि चाष्ट च॥१०॥
येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि । महाभोजोऽपि धर्मात्मा भोजा आसंस्तदन्वये॥११॥

अन्वयः— बभ्रुः मनुष्याणां श्रेष्ठः देवावृधः देवैः समः पञ्चषष्टि षटसहस्राणि च अष्ट च ये बभ्रोः देवावृधात् अपि अमृतत्वम् अनुप्राप्ताः महा भेजोऽपि धर्मात्मातदन्वये भोजाः आसन् ॥१०-११॥

अनुवाद— बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं और देवावृद्ध देवताओं के समान, इन दोनों से शिक्षा प्राप्त करके चौदह हजार पैंसठ मनुष्य मुक्ति को प्राप्त कर लिए । महाभोज भी धर्मात्मा थे । उनके वंश में भोज वंशीय क्षत्रिय हुए थे ॥१०-११॥

भावार्थ दीपिका

ततस्तदुपदेशेन ये पञ्चपष्ट्यादिसंख्याः पुरुषास्तेऽमृतत्वं मोक्षं प्राप्ताः ॥१०-११॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनों के उपदेश से चौदह हजार पैंसठ जो मनुष्य थे मोक्ष प्राप्त कर लिए ॥१०-११॥

वृष्णेः सुमित्रः पुत्रोऽभूद्युधाजिच्च परन्तप । शिनिस्तस्यानमित्रश्च निम्नोऽभूदनमित्रतः ॥१२॥

अन्वयः— हे परन्तप ! वृष्णेः सुमित्रः युधाजित् च पुत्रः अभूत तस्य शिनिः अनामित्रः च अनमित्रतः निम्नः अभूत्॥१२॥

अनुवाद— हे अपने शत्रुओं को संतप्त करने वाले परीक्षित् वृष्णि के पुत्र सुमित्र और युधाजित् नामक दो पुत्र हुए । युधाजित् के पुत्रों का नाम शिनि और अनमित्र था । अनमित्र के पुत्र निम्न हुए ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तस्य युधाजितः शिनिरनमित्रश्च ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

युधाजित् के दो पुत्र हुए शिनि और अनमित्र ॥१२॥

सत्राजितः प्रसेनश्च निम्नस्याप्यासतु सुतौ । अनमित्रसुतो योऽन्यः शिनिस्तस्याथ सत्यकः ॥१३॥

अन्वयः— निम्नस्यापि सत्राजितः प्रसेनश्च सुतौ आसतुः अनमित्रस्य य अन्यः सुत; शिवि तस्याथ सत्यः ॥१३॥

अनुवाद— निम्न के भी दो पुत्र थे सत्राजित् और प्रसेन । अनमित्र का एक दूसरा पुत्र शिनि था उसका पुत्र सत्यक था ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

युयुधानः सात्यकिर्वै जयस्तस्य कुणिस्ततः । युगन्धरोऽनमित्रस्य वृष्णिः पुत्रोऽपरस्ततः॥१४॥
श्वफल्कश्चित्ररथश्च गान्दिन्यां च श्वफल्कतः । अक्रूरप्रमुखा आसन्पुत्रा द्वादश विश्रुताः॥१५॥
आसङ्ग सारमेयश्च मृदुरो मृदुविद्गिरिः । धर्मवृद्धः सुकर्मा च क्षेत्रोपेक्षोऽरिमर्दनः॥१६॥
शत्रुघ्नो गन्धमादश्च प्रतिबाहुश्च द्वादश । तेषां स्वसा सुचीराख्या द्वावक्रूरसुतावपि ॥१७॥
देववानुपदेवश्च तथा चित्ररथात्मजाः । पृथुर्विदूरथाद्याश्च बहवो वृष्णिनन्दनाः ॥१८॥

अन्वयः— युयुधानः सात्यकिः वै तस्य जयः तत; कुणिः युगन्धरः अनमित्रस्य ततः अपरः पुत्रः वृष्णिः श्वफल्कः चित्ररथः च गान्दिन्यां स्वफल्कतः अक्रूर प्रमुखाः विश्रुताः द्वादश पुत्रा आसन् असंगः, सारमेयः च मृदुरः, मृदुविद् गिरिः,

धर्मवृद्धः सुकर्मा च क्षेत्रः उपेक्षः अरिमर्दनः शत्रुघ्नः, गन्धमादश्च, प्रतिबाहुः च द्वादश । तेषां स्वसा सुधीराख्या, द्वौ अक्रूर सुतौ अपि, देववान् उपदेवः च तथा पृथु विदूरथाद्याः च बहवः चित्ररथात्मजाः वृष्णिनंदनाः ।।१४-१८।।

अनुवाद— सत्य के पुत्र युयुधान ये ही सात्यकि भी हैं, सात्यकि के पुत्र जय हुए, जय के पुत्र कुणि, कुणि के युगन्धर पुत्र हुए, अनमित्र के दूसरे पुत्र वृष्णि थे । वृष्णि के दो पुत्र हुए श्वफल्क और चित्ररथ । गान्दिनी के गर्भ से श्वफल्क के अक्रूर इत्यादि बारह विख्यात पुत्र हुए । उनके नाम हैं- असङ्ग, सारमेय, मृदुर, मृदुविद, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षेत्र, उपेक्ष अरिमर्दन, शत्रुघ्न, गन्धमाद, तथा प्रतिबाहु । इन सबों की बहिन का नाम सुधीरा था । अक्रूर के भी दो पुत्र हुए, देववान् और उपदेव । चित्ररथ के पृथु विदूरथ आदि बहुत से पुत्र हुए। ये सबके सब वृष्णि के वंशज हैं ।।१४-१८।।

भावार्थ दीपिका

सत्यकस्य पुत्रो युयुधानस्तस्य जयस्तस्य कुणिस्ततः कुणेर्युगन्धरः । अनमित्रस्यैवापरो वृष्णिर्नाम पुत्रः । अक्रूरः प्रमुखो येषामित्येतद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः । अतोऽक्रूरातिरिक्तान् द्वादश दर्शयति आसङ्ग । पृथुरेकः । विदूरथाद्या अन्ये च बहवः । विपृथुधामाद्या इति पाठे आद्यशब्देन विदूरथोऽप्युक्तस्ततश्च- 'शूरो विदूरथादासीत्' इति वक्ष्यमाणनिर्देशोपपत्तिः ।।१४-१८।।

भाव प्रकाशिका

सत्यक के पुत्र युयुधान हुए उनके पुत्र जय, जय के पुत्र कुणि और कुणि के पुत्र युगन्धर हुए । अनमित्र के ही दूसरे पुत्र वृष्णि थे । अक्रूर प्रमुखा में अतद्गुण संविज्ञान बहुब्रीहि है । अतएव अक्रूर से अतिरिक्त आसङ्ग इत्यादि बारह पुत्रों को बतलाया गया है ।।१४-१८।।

कुकुरो भजमानश्च शुचिः कम्बलबर्हिषः । कुकुरस्य सुतो वह्निर्विलोमा तनयस्ततः ॥१९॥
कपोतरोमा तस्यानुः सखा यस्य च तुम्बुरुः । अन्धको दुन्दुभिस्तस्य दरिद्योतः पुनर्वसुः॥२०॥

अन्वयः— अन्धकस्य चत्वारः पुत्रा अभूवन् कुकुरः, भजमानः, शुचिः कम्बलार्हिषः कुकुरस्य सुतो बहिनः तनयः विलोम ततः कपोतरोमा तस्य अनुः, यस्य सखा तुम्बुरुः, अन्धकः दुन्दुभि; तस्मात् अरिद्योतः पुनर्वसुः ।।१९-२०।।

अनुवाद— सात्वत के पुत्र अन्धक के चार पुत्र हुए कुकुर, भजमान शुचि तथा कम्बलबर्हिष, कुकुर के पुत्र बह्नि हुए बह्नि के पुत्र बिलोमा हुए, उनके पुत्र कपोतरोमा हुए कपोतरोमा के पुत्र अनु हुए । अनु की तुम्बुरु नामक गन्धर्व से मित्रता थी । अनु के पुत्र अन्धक हुए उनके पुत्र दुन्दुभि थे । दुन्दुभि के पुत्र अरिद्योत हुए और अरिद्योत के पुत्र पुनर्वसु हुए ।।१९-२०।।

भावार्थ दीपिका

कुकुरादयश्चत्वारोऽन्धकस्य सुता इति ज्ञेयम् । तथा च पराशरः- 'कुकुरभजमानशुचिकम्बलबर्हिषाख्यास्तथान्धकस्य पुत्राः' इति । अनोरन्धकोऽन्धकाद्दुन्दुभिरित्यपि तद्वचनादेव ज्ञेयम् ।।१९-२०।।

भाव प्रकाशिका

कुकुर इत्यादि चारो अन्धक के पुत्र हैं। पराशर ने भी कहा है- कुकुर, भजमान, शुचि और कम्बलबर्हिष ये अन्धक के पुत्र हैं। अनु के पुत्र अन्धक हुए, अन्धक के पुत्र दुन्दुभि हुए, इसे भी पराशर के कथनानुसार जानना चाहिए ॥१९-२०॥

तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या चौवाहुकात्मजौ । देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः ॥२१॥

अन्वयः— तस्य आहुकश्च आहुकीच देवकः च उग्रसेन आहुकात्मजौ देवकात्मजाः चत्वारः ।।२१।।

अनुवाद— पुनर्वसुका आहुक नामक एक पुत्र था और आहुकी नाम की एक कन्या थी । आहुक के दो पुत्र थे देवक और उग्रसेन देवक के चार पुत्र हुए ।।२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२१।।

देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धनः । तेषां स्वसारः सप्तासन्धृतदेवादयो नृप ॥२२॥

अन्वयः— नृप देववान् उपदेवः च सुदेवः देववर्धन तेषां धृतदेवादयः सप्तस्वसारः आसन् ॥२२॥

अनुवाद— राजन् ! देवक के पुत्रों के नाम हैं देववान, उपदेव, सुदेव और देववर्धन इन सबों की धृतदेवा आदि सात बहने थीं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

धृतदेवा आदिर्यासां शान्तिदेवादीनां षण्णां ताः सप्त ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

शान्ति आदि छहाँ से बड़ी धृतदेवा थी । इस प्रकार उन सबों की संख्या सात थी ॥२२॥

शान्तिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता । सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥२३॥

अन्वयः— शान्तिदेवा उपदेवा च श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा देवकी च ताः सर्वाः वसुदेव उवाह ॥२३॥

अनुवाद— धृतदेवा की बहनों का नाम था शान्ति देवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षित, सहदेवा और देवकी। इन सबों के साथ वसुदेव जी ने विवाह किया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

ताः सप्त ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह देवक की सात पुत्रियाँ थीं ॥२३॥

कंसः सुनामा न्यग्रोधः कङ्कः शङ्कुः सुहूस्तथा । राष्ट्रपालोऽथ सृष्टिश्च तुष्टिमानौग्रसेनयः ॥२४॥

अन्वयः— कुसः सुनामा, न्यग्रोधाः कङ्कः शङ्कुः सुहुः राष्ट्रपालः अथ सृष्टिः च तुष्टिमान इमे औग्रसेनयः ॥२४॥

अनुवाद— उग्रसेन के नव पुत्र थे, कंस, सुनामान्य ग्रोध, कङ्क, शङ्कु, सुहु, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान ये सभी उग्रसेन के पुत्र थे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

औग्रसनेय उग्रसेनस्य सुताः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

औग्रसनेयः अर्थात् उग्रसेन के पुत्र ॥२४॥

कंसा कंसवती कङ्का शूरभू राष्ट्रपालिका । उग्रसेनदुहितरो वसुदेवानुजस्त्रियः ॥२५॥

अन्वयः— कंसा, कंसवती कङ्का शरभूराष्ट्रपालिका उग्रसेन दुहितरः वसुदेवानुजस्त्रियः ॥२५॥

अनुवाद— कंसा, कंसवती, कङ्का, शरभू, राष्ट्रपालिका ये सभी उग्रसेन की पुत्रियाँ और वसुदेव जी के छोटे भाईयों की स्त्रियाँ थीं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

वसुदेवस्य येऽनुजा देवभागादयस्तेषां स्त्रियो भार्याः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

वसुदेवजी के जो देवगण इत्यादि अनुज थे उन सबों की वे पत्नियाँ थीं ॥२५॥

शूरो विदूरथादासीद्भजमानः सुतस्ततः । शिनिस्तस्मात्स्वयम्भोजो हृदीकस्तत्सुतो मतः ॥२६॥

अन्वयः— चित्ररथस्य पुत्रात् विदूरथ; आसीत् ततः भजमानः सुतः तस्मात् शिनिः ततः स्वयम्भोजः तत्सुतः हृदीकः मतः ॥२६॥

अनुवाद— चित्ररथ के पुत्र विदूरथ थे विदूरथ के पुत्र भजमान हुए, उनके पुत्र शिनि हुए शिनि के पुत्र स्वयम्भोज हुए, स्वयम्भोज के पुत्र हृदीक हुए ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अन्धकसुतानां चतुर्णां प्रथमस्य कुकुरस्य वंश उक्तः, द्वितीयस्य भजमानस्य वंशमाह-शूरो विदूरथादिति । 'भजमानाच्च विदूरथः पुत्रोऽभूद्विदूरथाच्च शूरः' इति पराशरादिवचनात् । यद्वा पृथुर्विदूरथाद्याश्चेति पूर्वोक्तचित्ररथात्मजाद्विदूरथात् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अन्धक के चार पुत्रों में से प्रथम कुकुर के वंश का वर्णन किया जा चुका है । अब द्वितीय पुत्र भजमान का वंश शूरो विदूरथात् इत्यादि श्लोक से बतलाते हैं । भजमान के पुत्र विदूरथ हुए । विदूरथ के पुत्र शूर हुए यह पराशर महर्षि ने कहा है । अथवा पृथु के पुत्र विदूरथ आदि जो चित्ररथ के पुत्र बतलाये गये है उस विदूरथ के पुत्र शूर हुए ॥२६॥

देवबाहुः शतधनुः कृतवर्मेति तत्सुताः । देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत् ॥२७॥

अन्वयः— तत्सुताः (हृदीकस्यसुताः) देवबाहुः शतधनुः कृतवर्माच, देवमीढस्य शूरस्य मारिषानाम पत्न्यभूत् ॥२७॥

अनुवाद— हृदीक के तीन पुत्र थे देववाहु, शतधनु और कृतवर्मा देवमीढ के पुत्र शूर की पत्नी का नाम मारिषा था ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

देवमीढस्य यः शूरो नाम पुत्रस्तस्य । देवमीढो हृदीकस्यैव सुतः । यथाह पराशर;- 'तस्यापि कृतवर्मशतधनुर्देवमीढुषाद्याबभूवुः। देवमीढुषस्य शूरस्यापि मारिषा नाम पत्न्यभवत्तस्यां चासौ दश पुत्रानजनयद्वसुदेवपूर्वान्' इति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

देवमीढ के जो शूरनामक का पुत्र थे उनकी पत्नी का नाम मारिषा था । देवमीढ हृदीक के ही पुत्र थे । जैसा कि पराशर ने कहा हृदीक के भी कृतवर्मा, शतधनु, देवमीढुष आदि पुत्र हुए । देवमीढुष के भी पुत्र शूर की पत्नी का नाम मारिषा था । उसके गर्भ से देवमीढुष ने दश पुत्रों को उत्पन्न किया । उनमे वसुदेव सबसे बड़े थे ॥२७॥

तस्यां स जनयामास दश पुत्रानकल्मषान् । वसुदेवं देवभागं देवश्रवसमानकम् ॥२८॥
सृञ्जयं श्यामकं कङ्कं शमीकं वत्सकं वृकम् । देवदुन्दुभयो नेदुरानका यस्य जन्मनि ॥२९॥
वसुदेवं हरेः स्थानं वदन्त्यानकदुन्दुभिम् । पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥३०॥
राजाधिदेवी चैतेषां भगिन्यः पञ्च कन्यकाः । कुन्तेः सख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात् ॥३१॥

अन्वयः— तस्यां सः अकल्मषान् दश पुत्रान् जनयामास वसुदेवं देव भागं, देवश्रवसम्, आनकम्, सृंजयं, श्यामकं, कङ्कं, शमीक, वासकं, वृकम्, यस्य जन्मनि आनकाः देवदुन्दुभयः नेदुः वसुदेवं हरेः स्थानं वदन्त्यानकदुन्दुभिम् । पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः, श्रुतश्रवाः, राजाधिदेवी च एतेषां पञ्चकन्यकाः भगिन्याः, पिताशूरः अपुत्रस्य सख्युः कुन्तेः पृथाम् अदात् ॥२८-३१॥

अनुवाद— शून ने अपनी पत्नी मारिषा के गर्भ से दश निर्दोष पुत्रों को उत्पन्न किया । उनके नाम हैं वसुदेव,

देवभाग, देवश्रव, आनक, सृंजय, श्यामक, कंक, शमीक, वत्सक और वृक। वसुदेवजी के जन्म के समय देवताओं के नगाड़े और नौवत स्वयं बजने लगे थे। इसी लिए वे आनक दुन्दुभि भी कहलाते हैं। वसुदेव आदि की पाँच बहनें थी। पृथा श्रुतदेवा श्रुतिकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधि देवी। वसुदेवजी के पिता शूरसेन के मित्र कुन्तिभोज थे। कुन्तिभोज की कोई सन्तान नहीं थी; अतएव शूर ने अपनी बड़ी पुत्री पृथा को उनको गोद दे दी ॥२८-३१॥

भावार्थ दीपिका

आनकाश्च नेदुः। हरेः प्रादुर्भावस्य स्थानम्। पृथायाः कन्यकावस्थायां कर्णोत्पत्तिप्रकारमाह-कुन्तेरिति पञ्चभिः॥२८-३१॥

भाव प्रकाशिका

नगाड़े बजने लगे। श्रीहरि के प्रादुर्भाव स्थान। पृथा के कन्यावस्था में ही कर्ण की उत्पत्ति के प्रकार को **कुन्तेः इत्यादि** पाँच श्लोकों से कहा गया है ॥२८-३१॥

साऽऽप दुर्वाससो विद्यां देवहूतीं प्रतोषितात्। तस्या वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिम् ॥३२॥

अन्वयः— प्रतोषितात् दुर्वास सा देवहूतीं विद्यां आप तस्य वीर्य परीक्षार्थं शुचिं रविम् आजुहाव ॥३२॥

अनुवाद— सेवासे प्रसन्न हुए दुर्वासा ऋषि से पृथा ने देवताओं को बुलाने की विद्या सीख ली और उस विद्या के प्रभाव की परीक्षा करने के लिए उसने पवित्र भगवान् सूर्य का आवाहन किया ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

कदाचिद्गृहमागतं दुर्वाससं पृथा परिचर्यादिना तोषयामास, ततश्च सा तस्माद्देवहूतीं देवाह्वानहेतुं विद्यामवाप, तदाहसापेति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

एक बार उसके घर पधारे हुए दुर्वासा ऋषि को पृथा ने सेवा इत्यादि के द्वारा प्रसन्न कर लिया उसके पश्चात् उसने देवताओं को आवाहित करने की विद्या को सीख लिया। उसी को **साऽप० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है॥३२॥

तदैवोपागतं देवं वीक्ष्य विस्मितमानसा। प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥३३॥

अन्वयः— तदैव उपागतं देवं वीक्ष्य विस्मितमानसा प्राह देव मेक्षमस्व मे प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता याहि ॥३३॥

अनुवाद— उसी समय आये हुए सूर्य को देखकर पृथा आश्चर्यित हो गयी उसने कहा भगवन्! आप मुझे क्षमा करें, मैंने तो विद्या की परीक्षा के लिए प्रयोग किया था अब आप चले जायँ ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

देवमुपागतं वीक्ष्य सा प्राह-प्रत्ययार्थं परीक्षार्थं मया विद्या प्रयुक्ता, नतु त्वया किंचित्कार्यमित्यभिसंधिना-अतो याहीति॥३३॥

भाव प्रकाशिका

आये हुए सूर्य को देखकर पृथा ने कहा। मैंने तो परीक्षा के लिए विद्या का प्रयोग किया था आपसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। अतएव आप चले जायँ ॥३३॥

अमोघं दर्शनं देवि आधत्से त्वयि चात्मजम्। योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताऽहं ते सुमध्यमे ॥३४॥

अन्वयः— देवि मे दर्शनं अमोघं त्वयि आत्मज आधत्से, तेयोनिः यथा न दुष्येत सुमध्यमे अहं ते कर्ता ॥३४॥

अनुवाद— देवि मेरा दर्शन कभी विफल नहीं होता है। अब मैं तुमसे एक पुत्र उत्पन्न करूँगा। तुम्हारी योनि दूषित न हो वैसा उपाय मैं करूँगा ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

एवमुक्तो रविरुवाच-अमोघं दर्शनमिति । कन्याहमिति चेत्तत्राह-यथा योनिर्न दुष्येत तथाहं कर्ता करिष्यामि ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

पृथा द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सूर्य ने कहा मेरा दर्शन कभी विफल नहीं होता । यदि कहो कि मैं कन्या हूँ तो इस पर सूर्य ने कहा जिस तरह से तुम्हारी योनि न दूषित हो वैसा मैं करूँगा ।।३४।।

इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्यो दिवं गतः । सद्यः कुमारः संजज्ञे द्वितीय इव भास्करः ।।३५।।

अन्वयः— इति तस्यां गर्भम् आधाय सूर्यः दिवंगतः सद्यः द्वितीयः भास्कर कुमारः संजज्ञे ।।३५।।

अनुवाद— इस तरह से कहकर सूर्य ने गर्भस्थापित किया और स्वर्गलोक चले गये । उसी समय दूसरे सूर्य के समान एक बालक ने जन्म लिया ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

तं सात्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती । प्रपितामहस्तामुवाह पाण्डुर्वै सत्यविक्रमः ।।३६।।

अन्वयः— लोकात् विभ्यती सा तं नदीतोये कृच्छ्रात् अत्यजत् सत्यविक्रमः प्रपितामहः पाण्डु ताम् उवाह ।।३६।।

अनुवाद— लोक निन्दा के डर से डरती हुई पृथा उस बालक को नदी में अत्यन्त कष्ट पूर्वक बहा दिया। तुम्हारे सत्य पराक्रम प्रपितामह पाण्डु ने पृथा से विवाह किया ।।३६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३६।।

श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत् । यस्यामभूद्दन्तवक्र ऋषिशप्तो दितेः सुतः ।।३७।।

अन्वयः— श्रुतदेवां तु कारुषः वृद्धशर्मा समग्रहीत यस्याम् ऋषिशप्तः दितेः सुतः अभूत् ।।३७।।

अनुवाद— पृथा की छोटी बहन श्रुतदेवा का विवाह कारूष देश के अधिपति वृद्धशर्मा से हुआ, उसके गर्भ से सनकादि ऋषियों द्वारा शप्त दिति के पुत्र ने दन्तवक्त्र के नाम से जन्म लिया ।।३७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३७।।

कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविन्दत । सन्तर्दनादयस्तस्यां पञ्चासन्कैकेयाः सुताः ।।३८।।

अन्वयः— कैकेयः धृष्टकेतुः श्रुतिकीर्ति अविन्दत यस्या संतर्दनादयः पञ्च कैकेयाः सुताः आसन् ।।३८।।

अनुवाद— कैकेय देशाधिपति धृष्टकेतु ने श्रुतकीर्ति से विवाह किया । उसके गर्भ से संतर्दन आदि पाँच पुत्र कैकेय देशाधिपति के हुए ।।३८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३८।।

राजाधिदेव्यामावन्त्यौ जयसेनोऽजनिष्टह । दमघोषश्चेदिराजः श्रुतश्रवसमग्रहीत् ।।३९।।

अन्वयः— राजाधिदेव्याम् आवन्त्यौ जयसेनः अजनीष्ट । चेदिराजः दमघोषः श्रुतश्रवसम् अग्रहीत् ।।३९।।

अनुवाद— राजाधिदेवी के गर्भ से अवन्तीदेशाधिपति जयसेन ने विन्द और अनुविन्द को उत्पन्न किया । ये दोनों अवन्ती देश के राजा हुए । श्रुतश्रवा का विवाह चेदिदेशाधिपति दमघोष से हुआ ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

अवन्त्यौ विन्दानुविन्दौ ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

अवन्ती देश के राजा विन्द और अनुविन्द को ।।३९।।

शिशुपालः सुतस्तस्याः कथितस्तस्य संभवः । देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुबृहद्बलौ ॥४०॥

अन्वयः— तस्या सुतः शिशुपालः तस्य संभवः कथितः । देवभागस्य कंसायां चित्रकेतु बृहद्वलौ ॥४०॥

अनुवाद— उसका (श्रुतश्रवा का) का पुत्र शिशुपाल हुआ । उसके जन्म का वर्णन सातवें स्कन्ध में किया जा चुका है । वसुदेवजी के छोटे भाई देवभाग के कंसा के गर्भ से चित्रकेतु और बृहद्बल ये दो पुत्र हुए ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं वसुदेवस्य भगिनीनां पतीन्पुत्रांश्चोक्त्वा तद्भ्रातॄणां नवानां पत्नीः पुत्रांश्चाह-देवभागस्येति नवभिः श्लोकार्धैः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह वसुदेवजी की बहनों के पतियों और पुत्रों का वर्णन करके अब वसुदेवजी के भाइयों की पत्नियों का वर्णन साढे चार श्लोकों से करते हैं ॥४०॥

कंसवत्यां देवश्रवसः सुवीर इषुमांस्तथा । कङ्कायामानकाज्जातः सत्यजित्पुरुजित्तथा ॥४१॥

अन्वयः— कंसवत्यां देवश्रवसः सुवीरः इषुमां न् तथा कंकायाम् अनकात् जातः सत्यजित् पुरुजित् तथा ॥४१॥

अनुवाद— कंसवती के गर्भ से देवश्रवा के सुधीर और इषुमान नामक दो पुत्र हुए और कङ्का के गर्भ से आनक के भी दो पुत्र सत्यजित् और पुरुजित् ॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४१॥

सृंजयो राष्ट्रपाल्यां च वृषदुर्मर्षणादिकान् । हरिकेशाहिरण्याक्षौ शूरभूम्यां च श्यामकः ॥४२॥

अन्वयः— सृंजयः राष्ट्रपाल्यां च वृष दुर्मर्षणदिकान् श्यामकः शूरभूम्यां हरिकेश हिरण्याक्षौ पुत्रौ उत्पादयामास॥४२॥

अनुवाद— संजय ने अपनी पत्नी राष्ट्रपाली के गर्भ से वृष तथा दुर्मषण इत्यादि पुत्रों को तथा श्यामक ने शूरभूमि नामक अपनी पत्नी के गर्भ से हरिकेश तथा हिरण्याक्ष नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया ॥४२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४२॥

मिश्रकेश्यामप्सरसि वृकादीन्वत्सकस्तथा । तक्षपुष्करशालादीन्दुर्वाक्ष्यां वृक आदधे ॥४३॥

अन्वयः— वत्सकः मिश्रकेश्याम् अप्सरसि वृकादीन् तथा वृकः दुर्वाक्ष्यां तक्ष पुष्कर शालादीन् आदधे ॥४३॥

अनुवाद— वत्सक ने मिश्र केशी नामक अप्सरा के गर्भ से वृक आदि पुत्रों को उत्पन्न किया और वृक के दुर्वार्क्षी नामक पत्नी के गर्भ से तक्ष तथा पुष्कर आदि को उत्पन्न किया ॥४३॥

भावार्थ दीपिका नहीं है ॥४३॥

सुमित्रार्जुनपालादीन् शमीकात्तु सुदामिनी । कङ्कश्च कर्णिकायां वै ऋतधामजयावपि ॥४४॥

अन्वयः— सुदामिनी तु शमीकात् सुमित्रार्जुनपालादीन कङ्कश्च कर्णिकायां वै ऋतधामा जयावपि ॥४४॥

अनुवाद— शमीक की पत्नी सुदामिनी ने सुमित्र तथा अर्जुन पाल आदि पुत्रों को जन्म दिया तथा कङ्क ने अपनी कर्णिका नाम पत्नी के गर्भ से ऋतधाम तथा जय इन दो पुत्रों को उत्पन्न किया ॥४४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४४॥

पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला । देवकी प्रमुखा आसन्पत्न्य आनकदुन्दुभेः ॥४५॥

अन्वयः— पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला देवकी प्रमुखा आनकदुन्दुभेः पत्न्यः आसन् ॥४५॥

अनुवाद— पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला तथा देवकी ये वसुदेवजी की सात पत्नियाँ थीं। इन सबों में देवकी प्रधान थीं ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

वसुदेवस्य पत्नीः पुत्रांश्चाह-पौरवीत्येकादशभिः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

पौरवी इत्यादि ग्यारह श्लोकों द्वारा वसुदेव की पत्नियों और पुत्रों का वर्णन किया गया है ।।४५।।

बलं गदं सारणं च दुर्मदं विपुलं ध्रुवम् । वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत् ।।४६।।

अन्वयः— वसुदेवस्तु रोहिण्यां बलं, इदं, सारणं चदुर्मद, विपुलं ध्रुवम्, कृतादीनुत्पादयामास ।।४६।।

अनुवाद— वसुदेवजी ने रोहिणी के गर्भ से बल, गद, सारण दुर्मद, विपुल ध्रुव और वृत्त आदि बहुत पुत्रों को उत्पन्न किया ।।४६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४६।।

सुभद्रो भद्रवाहाश्च दुर्मदो भद्र एव च । पौरव्यास्तनया ह्येते भूताद्या द्वादशाभवन् ।।४७।।

अन्वयः— पौरव्याः सुभद्रः भद्रवाहः, दुर्मदः, भद्र एव च भूताद्याः एते द्वादशतनयाः आसन् ।।४७।।

अनुवाद— पौरवी के सुभद्र, भद्रवाह, दुर्मदभद्र, तथा भूत आदि ये बारह पुत्र थे ।।४७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४७।।

नन्दोपनन्दकृतकशूराद्या मदिरात्मजाः । कौशल्या केशिनं त्वेकमसूत कुलनन्दनम् ।।४८।।

अन्वयः— नन्दोपनन्दकृतक शूराद्याः मदिरात्मजाः आसन् । कौशल्यातु एकम् कुलनन्दनं केशिनम् असूत ।।४८।।

अनुवाद— नन्द, उपनन्द, कृतक तथा शूर आदि मदिरा के पुत्र थे । कौशल्या ने एक ही वंश को समृद्ध करने वाले केशी नामक पुत्र को जन्म दिया था ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

कौशल्या भद्रा ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

कौशल्याजी का दूसरा नाम भद्रा था ।।४८।।

रोचनायामतो जाता हस्तहेमाङ्गदादयः । इलायामुरुवल्कादीन्यदुमुख्यानजीजनत् ।।४९।।

अन्वयः— अतः रोचनायाम् हस्त हेमाङ्गदादयः जाता इलायामुरुवल्कादीन् अजीजनत् ।।४९।।

अनुवाद— रोचना नामक पत्नी के गर्भ से केशी के हस्त और हेमाङ्ग आदि पुत्र हुए और इला नामक दूसरी पत्नी के गर्भ से उरुवल्क आदि प्रधान यदुवंशी पुत्रों को उत्पन्न किया ।।४९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४९।।

विपृष्ठो धृतदेवायामेक आनकदुन्दुभेः । शान्तिदेवात्मजा राजन् श्रमप्रतिश्रुतादयः ।।५०।।

अन्वयः— आनकदुन्दुभेः घृतदेवायाम् एकः विपृष्ट एव । हे राजन् शान्तिदेवात्मजाः श्रमप्रतिश्रुतादयः ।।५०।।

अनुवाद— वसुदेवजी के धृतदेवा के गर्भ से एक ही पुत्र विपृष्ठ उत्पन्न हुआ । हे परीक्षित् श्रम तथा प्रतिश्रुत आदि शान्तिदेवा नामक पत्नी के पुत्र थे ।।५०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५०।।

राजानः कल्यवर्षाद्या उपदेवासुता दश । वसुहंससुवंशाद्याः श्रीदेवायास्तु षट् सुताः ॥५१॥

अन्वयः— कल्पवर्षादयः राजानः दश उपदेवा सुताः । वसु हंससुवंशाद्याः श्रीदेवायाः तु षट् सुताः ॥५१॥

अनुवाद— कल्पवर्ष आदि राजागण उपदेवा के दश पुत्र थे । वसु हंस सुवंश आदि श्रीदेवा के छह पुत्र थे ॥५१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५१॥

देवरक्षितया लब्धा नव चात्र गदादयः । वसुदेवः सुतानष्टावादधे सहदेवया ॥५२॥

अन्वयः— देवरक्षितया गदादयः नव लब्धाः सहदेवया वसुदेवः अष्टौ सुतान् आदधे ॥५२॥

अनुवाद— वसुदेवजी ने देवरक्षिता नामक पत्नी से गद आदि नव पुत्रों को प्राप्त किया तथा सहदेवा नामक पत्नी से उन्होंने छह पुत्रों को प्राप्त किया ॥५२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५२॥

पुरुविश्रुतमुख्यांस्तु साक्षाद्धर्मो वसूनिव । वसुदेवस्तु देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत् ॥५३॥

अन्वयः— वसुदेवस्तु देवक्याम् साक्षात् धर्म; वसून् इव अष्टौ पुत्रान् अजीजनत् ॥५३॥

अनुवाद— वसुदेवजी ने देवकीजी के गर्भ से उसी तरह आठ पुत्रों को उत्पन्न किया जिस तरह साक्षात् धर्म ने आठ वसुओं को उत्पन्न किया ॥५३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५३॥

कीर्तिमन्तं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः । ऋजुं संमर्दन भद्रं संकर्षणमहीश्वरम् ॥५४॥

अन्वयः— कीर्तिमन्तं सुषेणं भद्रसेनम् उदारधीः भद्रं संकर्षणम् अहीश्वरम् ॥५४॥

अनुवाद— कीर्तिमान, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, भद्र और शेषावतार सङ्कर्षण वसुदेवजी के सात पुत्रों के नाम हैं॥५४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५४॥

अष्टमस्तु तयोरासीत्स्वयमेव हरिः किल । सुभद्रा च महाभागा तव राजन्पितामही ॥५५॥

अन्वयः— राजन् तयोः अष्टमः तु साक्षात् हरिः किल, तव पितामही महाभागा सुभद्रा च ॥५५॥

अनुवाद— उन दोनों के आठवें पुत्र स्वयं श्रीभगवान् ही थे । राजन् परम सौभाग्यवती तुम्हारी दादी सुभद्रा भी देवकी जी की कन्या थीं ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

अष्टमस्तु स्वयमेवासीन्नतु कर्मादीना हेतुना ताभ्यां जनितो वा, यतोऽसौ हरिः ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

देवकी वसुदेवजी के आठवें पुत्र तो स्वयम् श्रीभगवान् ही थे । वे कर्मादि के कारण उन दोनों से उत्पन्न नहीं थे ॥५५॥

यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः । तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः ॥५६॥

अन्वयः— यदा यदा इह धर्मस्य क्षय पाप्मनः वृद्धिश्च तदा तु ईशोभगवान् हरिः आत्मानं सृजते ॥५६॥

अनुवाद— जब जब संसार में धर्म क्षीण हो जाता है पाप बढ़ जाता है तब तब सम्पूर्ण जगत् के नियामक श्रीहरि अवतार ग्रहण करते हैं ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

तदेवोपपादयति यदेति त्रिभिः ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही प्रतिपादन यदा-यदा इत्यादि तीन श्लोकों से करते हैं ॥५६॥

न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते । आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः ॥५७॥

अन्वयः— महीपते अस्य द्रष्टुः परस्य ईशस्य जन्मनः हेतुः आत्ममायां विना अस्य कर्मणः न ॥५७॥

अनुवाद— श्रीभगवान् सबों के द्रष्टा परम पुरुष और नियामक है इनके जन्म का कारण इनकी माया के अतिरिक्त कर्म आदि नहीं हैं ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

ईशस्य मायानियन्तुः । परस्यासङ्गस्य । द्रष्टुः साक्षिणः । आत्मनः सर्वगस्य । नह्येवंभूतस्य मायाविनोदं विना जन्मनः कर्मणो वा हेतुः संभवतीत्यर्थः ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् माया के नियामक हैं, वे असङ्ग, साक्षी, सर्वव्यापक हैं । इस प्रकार के श्रीभगवान् का माया से विनोद के अतिरिक्त उनके जन्म का कारण कर्म नहीं हो सकता है ॥५७॥

यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि । अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥५८॥

अन्वयः— यन्माया चेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि अनुग्रहः तन्निवृतेः आत्मलाभाय च इष्यते ॥५८॥

अनुवाद— उनकी माया का विलास ही जीव की उत्पत्ति स्थिति और संहार का कारण होता है । उनका अनुग्रह ही माया को दूर करके आत्मलाभ कराने वाला है ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

किंच यस्य मायाचेष्टितं पुंसों जीवस्यानुग्रहस्तस्य जीवानुग्राहकस्य कुतः कर्मादिपारतन्त्र्येण जन्मादिसंभवः । अनुग्रहमेवाह-हि यस्मात्तदेव स्थित्यादये इष्यते । प्रलये लीनोपाधेर्जीवस्य धर्माद्यसंभवादुपाधिसृष्ट्यादिना धर्मादिसंपादनेनानुग्रहः । तथात्मलाभाय मोक्षाय चेष्यते । तत्र हेतुः-तेनैव श्रूयमाणेन तस्य स्थित्यादेर्निवृत्तेः ॥५८॥

भाव प्रकाशिका

जिन श्रीभगवान् की माया का विलास जीव का अनुग्रह है, उन जीवों के अनुग्राहक श्रीभगवान् का जन्म कर्मादि के अधीन कैसे हो सकता है । श्रीभगवान् के अनुग्रह को ही बतलाते हैं । जीवों की स्थिति आदि के लिए श्रीभगवान् की कृपा वाँछित होती है । प्रलय काल में जीव जब लीनोपाधि हो जाता है । उस समय वह धर्म इत्यादि नही कर सकता है। अतएव सृष्टि रूप उपाधि के द्वारा धर्मादि का संपादन करवाना अनुग्रह ही है । भगवान् का अनुग्रह मोक्ष के लिए भी अपेक्षित है । उसका कारण है कि वह परमात्मा श्रवणादि के द्वारा ही जीव के जन्म स्थिति आदि की निवृत्ति होती है ॥५८॥

अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलाञ्छनैः । भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यमः ॥५९॥
कर्माण्यपरिमेयाणि मनसाऽपि सुरेश्वरैः । सहसंकर्षणश्चक्रे भगवान्मधुसूदनः ॥६०॥

अन्वयः— अक्षौहिणीनां पतिभिः नृपालाञ्छनैः असुरैः आक्रम्यमाणायाः भुवः अभाराय कृतोद्यमः सहसंकर्षणः भगवान् मधुसूदनः सुरेश्वरैः मनसा अपि अपरिमेयाणि कर्माणि चक्रे ॥५९-६०॥

अनुवाद— अक्षौहिणी सेनाओं के स्वामी बने हुए असुर जब राजाओं का रूप धारण करके पृथिवी को रौदनें

लगे उस समय पृथिवी का भार उतारने के लिए भगवान् मधुसूदन बलरामजी के साथ अवतार ग्रहण किए। श्रीभगवान् ऐसी लीलाओं को किए जिनके विषय में बड़े-बड़े देवता अनुमान भी नहीं लगा सकते हैं ।।५९-६०।।

भावार्थ दीपिका

तस्य चेष्टितं भूमेरनुग्रह इत्याह- अक्षौहिणीनामिति द्वाभ्याम् । अभाराय भारपरिहाराय । सुरेश्वरैरपि मनसाप्यपरिमेयाण्यवितर्क्याणि । संकर्षणसहितश्चक्रे ।।५९-६०।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की लीलाएँ पृथिवी पर अनुग्रह ही है । इसी बात को **अक्षौहिणीनाम् इत्यादि** दो श्लोकों से श्रीशुकदेवजी ने कहा है । अभाराया अर्थात् भार दूर करने के लिए । श्रीभगवान् की लीलाओं का अनुमान देवगण मन से तर्क करके भी नहीं कर सकते हैं । श्रीभगवान् ने इन लीलाओं को बलरामजी के साथ किया ।।५९-६०।।

कलौ जनिष्यमाणानां दुःखशोकतमोनुदम् । अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद्यशः ।।६१।।

अन्वयः— कलौ जनिष्यमाणानां भक्तानां अनुग्रहाय दुःखशोकतमोनुदम् सुपुण्यं यशः व्यतनोत् ।।६१।।

अनुवाद— श्रीभगवान् ने कलियुग में उत्पन्न होने वाले भक्तों पर कृपा करने के लिए तथा उन सबों के दुःख शोक तथा अज्ञान का नाश करने वाले यश का विस्तार किया ।।६१।।

भावार्थ दीपिका

संकल्पमात्रेण भूभारहरणसमर्थस्यापि कर्मकरणं यशोविस्तारद्वारा भक्तानुग्रहार्थमित्याह-कला विति द्वाभ्याम् । दुःखशोकतमांसि नुदतीति तथा तद्यशो व्यतनोत् ।।६१।।

भाव प्रकाशिका

अपने संकल्प मात्र से पृथिवी के भार दूर करने में समर्थ होन पर भी श्रीभगवान् कर्मों को अपने यश का विस्तार पुरस्सर भक्तों पर कृपा करने के लिए करते हैं । इस बात को **कलौ० इत्यादि** श्लोकों से करते हैं । श्रीभगवान् का यश ऐसा है कि उसका कीर्तन करने मात्र से भक्तों के दुःख शोक और अज्ञान दूर हो जाते हैं ।।६१।।

यस्मिन्सत्कर्णपीयूषे यशस्तीर्थवरे सकृत् । श्रोत्राञ्जलिरुपस्पृश्य धुनुते कर्मवासनाम् ।।६२।।

अन्वयः— यस्मिन् सत्कर्णपीयूषे यश; तीर्थवरे सकृत् श्रोत्राञ्जलिः उपस्पृश्य कर्मवासनाम् धुनुते ।।६२।।

अनुवाद— श्रीभगवान् का यश लोगों को पवित्र करने वाला तीर्थ और सत्पुरुषों के कानों के लिए अमृत है, यदि एक बार भी अपने कान रूप अंजलि से उसका आचमन कर लिया जाय तो सारी कर्म की वासनाएँ निर्मूल हो जाती हैं ।।६२।।

भावार्थ दीपिका

यस्मिन्सतां कर्णपीयूषे यशोरूपे तीर्थवरे श्रोत्रमेवाञ्जलिः पानसाधनं यस्य स पुरुषः । सकृदप्युपस्पृश्याचमनमात्रं कृत्वा तत्सौन्दर्याकृष्टचित्तः कर्मवासनां धुनुते ।।६२।।

भाव प्रकाशिका

सत्पुरुषों के कानों के लिए अमृत के समान श्रीभागवान् के यशरूपी श्रेष्ठ तीर्थ में श्रोत्र रूप अञ्जलि से जो मनुष्य एक बार भी आचमन करके उसके सौन्दर्य से आकृष्ट चित्त वाला वह मनुष्य अपने कर्मों की वासना को विनष्ट कर देता है।।६२।।

भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकैः । श्लाघनीयेहितः शश्वत्कुरुसृंजयपाण्डुभिः ।।६३।।
स्निग्धस्मितेक्षितोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया । नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्गरम्यया ।।६४।।

अन्वयः— भोजवृष्णि अन्धक-मधु-शूरसेन-दशार्हकैः कुरु'सृञ्जय-पाण्डुभिः शाश्वतश्लाघनीय इहितः सर्वाङ्ग रम्यया मूर्त्या स्निग्धस्मितेक्षितोदारेः वाक्यैः विक्रमलीलया नृलोकं रमयामास ।।६३-६४।।

अनुवाद— भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन, दशार्ह, कुरु, सृंजय और पाण्डवंशी निरन्तर जिन श्रीभगवान् की लीलाओं की आदर पूर्वक सराहना किया करते थे वे श्रीभगवान् अपने सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर अपने स्नेह भरी मुस्कान चितवन, औदार्य पूर्ण वचन तथा पराक्रम पूर्ण लीला के द्वारा सम्पूर्ण मनुष्यों को आनन्द सागर में सराबोर कर दिए ॥६३-६४॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह द्वाभ्याम् । भोजादिभिः श्लाघनीयमीहितं यस्य । सर्वैरङ्गैः रम्यया मूर्त्या च ॥६३-६४॥

भाव प्रकाशिका

पूर्वोक्त बातों का वर्णन दो श्लोकों से करते हैं । भोजवंशीय आदि उनके कर्मों को सदा प्रशंसा किया करते थे । सर्वाङ्ग सुन्दर श्रीविग्रह के द्वारा भी ॥६३-६४॥

यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्णभ्राजत्कपोलसुभगं सविलासहासम् ।
नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबन्त्यो नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च ॥६५॥

अन्वयः— मकरकुण्डलचारुकर्ण भ्राजत्कपोलसुभगं सविलासहासम् नित्योत्संव यस्याननम् दृशिभिः पिबन्त्यः नार्यः नाराश्च मुदिता निमेः च कुपिताः ॥६५॥

अनुवाद— मकराकृति कुण्डलों से मनोहर लगने वाले कानों की कान्ति से सुशोभित गालों विलासपूर्ण हँसी तथा मुख पर सदैव विराजमान रहने वाले आनन्द से सम्पन्न श्रीभगवान् के मुख की शोभा को अपनी आखों रूपी प्याले से पान करके सभी नर नारियाँ आनन्दातिरेक का अनुभव करती हुई कभी तृप्त नहीं होती थीं और आँखों की पलकों को गिराने वाले निमि पर क्रोध भी करती थीं ॥६५॥

भावार्थ दीपिका

तत्प्रदर्शनार्थं मुखशोभामाह । यस्याननं दृशिभिर्नेत्रैः पिबन्त्यो नार्यो नराश्च न ततृपुर्न तृप्ताः । निमेषोन्मेषमात्रव्यवधानमप्यसहमानास्तत्कर्तुर्निमेः कुपिताश्च बभूवुः । कथंभूतमाननम् । मकरकुण्डलाभ्यां चारू कर्णौ भ्राजन्तौ कपोलौ च तैः सुभगम्। सविलासो हासो यस्मिन् नित्यमुत्सवो यस्मिन् ॥६५॥

भाव प्रकाशिका

लोगों के आनन्द को प्रदर्शित करने के लिए श्रीभगवात् के मुख की शोभा का वर्णन इस श्लोक से करते हैं । जिन श्रीभगवान् के मुख की शोभा का अपने नेत्रों से पान करने वाले नरनारी कभी तृप्त नहीं होते थे । पलकों के उठने और गिरने के समय में होने वाले व्यवधान को वे सह नहीं कर पाते थे । और पलकों को गिराने वाले निमि पर वे क्रोध करते थे । भगवान् का कैसा मुखमण्डल था ? वे मकरा कृति कुण्डल से सुशोभित कानों की प्रभा से श्रीभगवान् के दोनों गाल प्रकाशित होते थे । इसे गालों से मनोहर मुख मण्डल में विलास पूर्ण मुस्कान तथा आनन्द सदा बना रहता था ऐसा था श्रीभगवान् का मनोहर मुख ॥६५॥

जातो गतः पितृगृहाद्व्रजमेधितार्थो हत्वा रिपून्सुतशतानि कृतोरुदारः ।
उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे आत्मानमात्मनिगमं प्रथयन् जनेषु ॥६६॥

अन्वयः— जातः पितृगृहात् व्रजम् गतः, एधितार्थः रियून् हत्वा, उदारः तेषु पुरुषु सुतशतानि उत्पाद्य, जनेषु आत्मनिगमं प्रथयन् क्रतुभिः आत्मनं समीजे ॥६६॥

अनुवाद— श्रीभगवान् मथुरा में वसुदेवजी के घर जन्म लिए और अपने पिता के घर से व्रज में चले गये। वहाँ गोप बालों गोपियों तथा गोपों गौओं को सुखी बनकर वे मुथरा में लौट आये गोकुल, मथुरा एवं द्वारका में रहकर उन्होंने अपने शत्रुओं का विनाश किया । पुनः हजारों स्त्रियों से विवाह करके श्रीभगवान् हजारों पुत्रों को

उत्पन्न किए। लोगों में अपने स्वरूप का साक्षात्कार कराकर श्रुतियों की मर्यादा स्थापित करने के लिए अनेक यज्ञों के द्वारा स्वयं अपना ही यजन किए ॥६६॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णस्य चरितं समासतो वर्णयति-जात इति द्वाभ्याम्। जातो निजेन रूपेण पश्चात्पुरुषो मनुष्याकारः सन् व्रजं गतः। व्रजवासिनामेधिता अर्था येन तेषु दारेषु सुतानां शतान्युत्पाद्य। आत्मनिगमं स्वकीयं वेदमार्गम् ॥६६॥

भाव प्रकाशिका

जातः इत्यादि दो श्लोकों द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण का चरित का संक्षेप में वर्णन करते हैं। पहले वे अपने रूप में प्रकट हुए फिर वे मनुष्य का रूप धारण कर लिए। उसके पश्चात् वे व्रज में चले गये। उन्होंने व्रजवासियों के प्रयोजन को समृद्ध किया। उसके पश्चात् हजारों पत्नियों के गर्भ से हजारों पुत्रों को उत्पन्न किया। आत्मनिगमम् अर्थात् अपना वैदिक मार्ग ॥६६॥

पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन्कुरूणामन्तः समुत्थकलिना युधि भूपचम्वः।
दृष्टया विधूय विजये जयमुद्विघोष्य प्रोच्योद्धवाय च परं समगात्स्वधाम ॥६७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायामष्टादशसाहस्र्यां नवमस्कन्धे
श्रीसूर्यसोमवंशानुकीर्तने यदुवंशानुवर्णनं नाम चतुर्विशोऽध्यायः ॥२४॥

समाप्तश्चायं नवमः स्कन्धः ॥९॥

अन्वयः— कुरूणामन्तः समुत्थकलिना स वै पृथ्व्याः गुरुभारं क्षपयन् युधि दृष्टयाभूपचम्वः विधूय विजये जयम् उदविघोष्य उद्धवाय च प्रोच्य स्व परं धाम समगात् ॥६७॥

अनुवाद— कौरवों और पाण्डवों के बीच उत्पन्न हुए कलह के माध्यम से पृथ्वी के बहुत अधिक भार को दूर करके, युद्ध में अपनी दृष्टि मात्र से राजाओं की सेना को विनष्ट करके युद्ध में अर्जुन को विजयी उद्घोषित करके तथा उद्धवजी को आत्मापदेश करके श्रीभगवान् अपने पंर धाम में चले गये ॥६७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के जो महर्षि व्यास प्रणीत अठारह हजार श्लोकों वाली पारमहंस्य संहिता है उसके नवे स्कन्ध के सोमवंश एवं सूर्यवंश के वर्णन के प्रसङ्ग में यदुवंश वर्णन नामक चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अन्तःसमुत्थेन कलिना निमित्तेन गुरुभारं क्षपयन् दृष्ट्यैव भूपचमूर्विधूय विजये जयमर्जुनेन जितमित्येवमुद्घोषं कृत्वा परं तत्त्वमुद्धवायोपदिश्य स्वधाम सम्यक्स्वेनैव रूपेण जगामेति ॥६७॥

इति श्रीधरस्वामिविरचितायां श्रीमद्भागवतभावार्थदीपिकायां नवमस्कन्धटीकायां चतुर्विशोध्यायः ॥२४॥

समाप्तश्चायं नवम स्कन्धः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

कौरवों एवं पाण्डवों के बीच उत्पन्न कलह के माध्यम से पृथिवी के भार को दूर करते हुए, अपनी दृष्टि मात्र से राजाओं की सेना का विनाश करके, अर्जुन के विजय का उद्घोष करके तथा उद्धवजी को परंतत्व का उपदेश करके अच्छी तरह अपने ही रूप को धारण करके अपने परंधाम में श्रीभगवान् चले गये ॥६७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के नवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के चौबीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२४॥

यहाँ नवाँ स्कन्ध सम्पूर्ण हुआ ॥९॥

।। ओम नमो भगवते वासुदेवाय ।।

दसवाँ स्कन्ध (पूर्वार्ध)

प्रथम अध्याय

श्रीभगवान् के द्वारा पृथिवी को आश्वासन, वसुदेव देवकी का विवाह, और कंस के द्वारा देवकी के छह पुत्रों की हत्या

राजोवाच

कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः । राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥१॥

अन्वयः— भवता सोमसूर्ययोः वंशवितारः कथितः उभयवंश्यानां राज्ञां परमाद्भुतम् चरितं च वर्णितम् ॥१॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— आपने सोमवंश और सूर्यवंश का विस्तार से वर्णन किया तथा दोनों वंशों के राजाओं का भ अत्यन्त अद्भुत चरित का आपने वर्णन किया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

विश्वसर्गविसर्गादिनवलक्षणलक्षितम् । श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमाम तत् । दशमे दशमं लक्ष्यमाश्रिताश्रयविग्रहम्। क्रीडद्यदुकुलाम्भोधौ परानन्दमुदीर्यते । दशमे कृष्णरात्कीर्तिवितानायानुवर्ण्यते । धर्मग्लानिनिमित्तस्तु निरोधो दुष्टभूभुजाम् । प्राकृतादिश्चतुर्धा यो निरोधः स तु वर्णितः । तत्तत्प्रसङ्गतः सृष्टिसंहारादिनिरूपणैः । कृता नवतिरध्याया दशमे कृष्णकीर्तये । आद्यैश्चतुर्भिरध्यायैर्ब्रह्मप्रार्थनयाऽवनेः । भारं हर्तुं हरेर्जन्म सप्रसङ्गं निरूप्यते । गोकुले मथुरायां च द्वारवत्यां ततः क्रमात् । कृष्णलीला त्रिधा प्रोक्ता तत्तद्भेदैस्त्वनेकधा सपञ्चत्रिंशताऽध्यायैर्बृहद्वृन्दावनादिषु । गोकुले वसतो लीला वर्ण्यते सुरदुष्करा। एकेन यमुनावारिण्यक्रूरेण कृता स्तुतिः । एकादशभिराख्याता लीला मधुवने कृता । शेषैर्द्वारवतीलीला तन्निर्माणादि वर्ण्यते । एवं नवतिरध्याया दशमे विशदार्थकाः । तत्र तु प्रथमे कंसः स्वमृत्युं देवकीसुतात् । श्रुत्वा भीतोऽवधीत्तस्याः षड्गर्भानिति वर्ण्यंते । कृष्णावतारचरितश्रवणामृतनिर्वृतः उक्तानुवादेनौत्सुक्याद्राजा पृच्छति तत्पुनः । कथितो वंशविस्तार इति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सम्पूर्ण जगत की सृष्टि एवं समृद्धि इत्यादि नव लक्षणों से लक्षित भगवान् श्रीकृष्ण का परमधाम ही विश्व का आश्रय है । दसवें स्कन्ध में दसवाँ जो आश्रय तत्त्व है वह आश्रिताश्रय विग्रह स्वरूप है उसका यदुवंशरूप सागर में क्रीडा जन्य परमानन्द का वर्णन किया गया है । दसवें स्कन्ध में भगवान् श्रीकृष्ण की सत्कीर्ति का विस्तार करने के लिए धर्म के ह्रास के कारणभूत दुष्ट राजाओं का विनाश वर्णित है । प्राकृत आदि जो चार प्रकार के प्रलय होते हैं उनका तो वर्णन किया जा चुका है । उसी के प्रसङ्ग में सृष्टि और संहार आदि का भी निरूपण किया गया है । भगवान श्रीकृष्ण का यश वर्णन करने के लिए दसवें स्कन्ध में नब्बे अध्याय किए गये है । पहले के चार अध्यायों में ब्रह्माजी की प्रार्थना से पृथिवी के भार को दूर करने के लिए श्रीभगवान् का प्रसङ्ग पूर्वक जन्म

वर्णित है । गोकुल से मथुरा में तथा द्वारका में अनेक भेदों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण की तीन प्रकार की लीला वर्णित है । पैंतिस अध्यायों में वृन्दावन आदि तथा गोकुल में रहने वाले श्रीभगवान् की बृहद् लीला का वर्णन है जो देवताओं के लिए अत्यन्त दुष्कर है । यमुना में अक्रूरजी के द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति का वर्णन एक अध्याय में किया गया है और मधुवन में भगवन् के द्वारा की गयी लीलाओं का वर्णन ग्यारह अध्यायों में किया गया है। शेष अध्यायों के द्वारा द्वारका के निर्माणादि विषयक लीलाओं का वर्णन है । इस तरह दशम स्कन्ध के नब्बे अध्याय विशद अर्थ के प्रकाशक है । प्रथम अध्याय में देवकी पुत्र से अपनी मृत्यु को सुनकर कंस भयभीत हो गया और देवकी के छह पुत्रों को मार दिया इस बात का वर्णन है । श्रीकृष्णावतार के चरित के श्रवण से कृत-कृत्य राजा परीक्षित् प्रोक्त अर्थों का अनुवाद पूर्वक कथितोवंश विस्तार इत्यादि श्लोक के द्वारा पुन: पूछते हैं ।।१।।

यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम । तत्रांशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ।।२।।

अन्वय:— हे मुनिसत्तम ! नितराम् धर्मशीलस्य यदोश्च । तत्र अंशेन अवतीर्णस्य विष्णो: वीर्याणि न: शंस ।।२।।

अनुवाद— हे मुनियों में श्रेष्ठ ! स्वभावत: धर्मशील यदु के वंश का अभी अपने वर्णन किया है अब आप यदुवंश में अपने अंशभूत बलरामजी के साथ अवतीर्ण हुए श्रीभगवान् की लीलाओं का भी आप हमलोगों को सुनाइये।।२।।

भावार्थ दीपिका

अंशनेति प्रतीत्यभिप्रायेणोक्तम् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

बलरामजी में भी भगवदंश की प्रतीति हो एतदर्थ अंशेन कहा गया है ।।२।।

अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान्भूतभावनः । कृतवान्यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ।।३।।

अन्वय:— भूतभावन: विश्वात्मा भगवान् यदो: वंशे अवतीर्य यानि कृतवान् तानि न: विस्तरात् ब्रूहि ।।३।।

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् को जीवन प्रदान करने वाले श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् की आत्मा है । ये यदु के वंश में अवतार ग्रहण करके जिन लीलाओं को किए उनको हमलोगों को आप विस्तार पूर्वक सुनाएँ ।।३।।

भावार्थ दीपिका

ननूक्तानि 'जातो गत: पितृगृहाद्व्रजमेधितार्थ:' इत्यादिना, सत्यम्, पुनर्विस्तरेण वदेत्याह-अवतीर्येति ।।३।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मैने उसका वर्णन तो **जातो गत० इत्यादि** दो श्लोकों से किया ही है । इस पर राजा कहते हैं कि आपने कहा अवश्य है; किन्तु वह वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है अब उसे विस्तार से कहिए । इस बात को उन्होंने **अवतीर्य० इत्यादि** श्लोक से कहा है ।।३।।

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोभिरामात् ।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्पुमान्विरज्येत विना पशुघ्नात् ।।४।।

अन्वय:— निवृत्ततर्षै: उपगीयमानात् भवौषधात् श्रोत्रमनोभिरामात्, उत्तम श्लोकगुणानुवादात् पशुघ्नात् विना क: विरज्येत।।४।।

अनुवाद— जिनकी तृष्णा की प्यास हमेशा के लिए मिट चुकी है ऐसे जीवन्मुक्त जीव जिसका पूर्ण प्रेम से अतृप्त रहकर सदा गायन किया करते, तथा मुक्ति चाहने वाले मुमुक्षु जीवों के लिए संसाररूपी रोग से मुक्ति प्रदान करने वाले, तथा संसारी जीवों के लिए उनके मन और कानों को परमानन्द प्रदान करने वाले, भगवान् श्रीकृष्ण के गुणानुवाद में आत्मघाती जीवों को छोड़कर कौन ऐसा मनुष्य होगा जो पराङ्मुख हो जाय अर्थात् कोई नहीं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

अत्र लोके त्रिविधा जनाः मुक्ता मुमुक्षवो विषयिणश्च, तेषां मध्येऽत्र न कस्याप्यलंप्रत्यय इत्याह-निवृत्ततर्षैरिति । गततृष्णैर्मुक्तैरित्यर्थः मुमुक्षूणामयमेवोपाय इत्याह-भवौषधादिति । विषयिणां परमो विषयोऽयमेवैत्याह-श्रोत्रमनोभिरामादिति। अपगता शुग्यस्मात्तमात्मानं हन्तीत्यपशुघ्नस्तस्मात् पशुघातिन इति वा ।।४।।

भाव प्रकाशिका

इस संसार में तीन प्रकार के लोग हैं, मुक्त (जीवन्मुक्त) मुमुक्षु और विषयी । इन तीनों प्रकार के जीवों में से किसी भी प्रकार के जीव के लिए श्रीभगवान् का गुणानुवाद जी उबाने वाला नहीं है । इसी बात को **निवृत्ततर्षैः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । अर्थात् जिनकी सारी तृष्णा समाप्त हो गयी है ऐसे जीवन्मुक्त इसके रसास्वादन से कभी भी तृप्त नहीं होने के कारण इसका सदा गायन किया करते है । मुमुक्षु जीवों के लिए श्रीभगवान् का गुणानुवाद संसार रूपी रोग से मुक्ति दिलाने वाली औषधि है । विषयी जीवों के लिए यह भगवद् गुणानुवाद उनके मन और कानों को आनन्द प्रदान करने वाला है । अतएव आत्मघाती अथवा पशुघाती पापी जीवों को छोड़कर कोई भी ऐसा जीव नहीं है; जो भगवद् गुणों के गायन से विरक्त हो जाय ।।४।।

पितामहा मे समरेऽमरंजयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गिलैः ।
दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं कृत्वाऽतरन्वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ।।५।।

अन्वयः— यत्प्लवाः मे पितामहाः समरे अमरंजयैः देवव्रताद्यैः अतिरथैः तिमिङ्गिलै दुरत्यं कौरवसेन्यसागरं वत्सपदं कृत्वा अतरन् स्म ।।५।।

अनुवाद— हमारे पितामहगण जिन भगवान् श्रीकृष्ण को युद्ध सागर को पार करने के लिए जलयान बनाकर भीष्म इत्यादि अतिरथियों रूपी तिमिङ्गिलों के कारण जिसको पार करना अत्यन्त कठिन था उस कौरवों की सेना को श्रीकृष्ण भगवान् की कृपा से गोवत्स के खुर के समान आसानी से पार कर गये उनके चरित का आप विस्तार के साथ वर्णन करें।।५।।

भावार्थ दीपिका

किंचास्मत्कुलदैवतं कृष्णः, अतस्तत्कथैव नित्यं श्रोतव्येत्याशयेनाह-पितामाह इति । अमरान् जयन्ति ये तैर्देवव्रतो भीष्मस्तदाद्यैरतिरथैस्तिमिङ्गिलैस्तिमिङ्गिलतुल्यैर्दुरत्ययं वत्सपदमिवात्यल्पं कृत्वा तुच्छीकृत्यातरन्स्म । यः श्रीकृष्ण एव प्लवो येषां ते । तस्य वीर्याणि वदस्वेति तृतीयश्लोकगतेनान्वयः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण तो हमारे कुल देवता हैं अतएव उनकी कथा तो सदैव सुनने योग्य है इसी अभिप्राय से राजा परीक्षित् ने **पितामहा० इत्यादि** श्लोक से कहा है । भीष्म इत्यादि देवताओं को भी जीत लेने वाले थे ऐसे अतिरथी से युक्त कौरव सैन्यसागर को दुस्तर बना देने वाले तिमिङ्गिल के समान थे; किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण को ही सैन्य सागर को पार करने का साधन बनाकर हमारे पितामहों ने बछड़ें के खुर से बने हुए गड्ढे के समान अत्यल्प बनाकर कौरवी सेना को आसानी से जीत लिया । उन भगवान् की श्रीकृष्ण की लीलाओं को आप बतलायें । इस तरह से तीसरे श्लोक के वदस्व पद के साथ अन्वय है ।।५।।

द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं सन्तानबीजं कुरुपाण्डवानाम् ।
जुगोप कुक्षिंगत आत्तचक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः ।।६।।

अन्वयः—शरणं गतायाः मे मातुः आत्तचक्रः यः कुक्षिंगतः कुरूपाण्डवानां सन्तानबीजम् द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टं मदङ्गं जुगोप।।६।।

अनुवाद— शरण में आयी हुयी मेरी माता की कुक्षि में चक्र लिए हुए प्रवेश करके जो भगवान् श्रीकृष्ण

कुरुवंशी पाण्डवों की सन्तान के लिए बीज के समान तथा अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से दग्ध मेरे शरीर की जिन्होंने रक्षा की उन श्रीभगवान् की कथा मुझे सुनायें ।।६।।

भावार्थ दीपिका

न केवलं पाण्डवानेवारक्षदिदं मम शरीरमपि यो रक्षितवानित्याह-द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिति । द्रौणेरश्वत्थाम्नो ब्रह्मास्त्रेण दग्धमिदं मच्छरीरं च कुरूणां पाण्डवानां च सन्तानस्य निदानं मम मातुः कुक्षौ प्रविष्टो धृतचक्रो यो जुगोपेति ।।६।।

भाव प्रकाशिका

द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टम् इत्यादि श्लोक के द्वारा राजा परीक्षित् ने कहा कि श्रीभगवान् केवल पाण्डवों की ही रक्षा नहीं किए अपितु मेरे इस शरीर की भी उन्होंने रक्षा की । अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से दग्ध मेरा यह शरीर कुरुवंशीय पाण्डवों की सन्तान का कारण था । श्रीभगवान् चक्र धारण करके मेरी माता की कुक्षि में प्रवेश करके मेरी रक्षा किए।।६।।

वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजामन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः ।
प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन् ।।७।।

अन्वयः— हे विद्वन् ! अखिल देहभाजामन्तर्बहिः पुरुषैः कालरूपैः अमृतम् उत मृत्युं प्रयच्छतः मायामनुष्यस्य वीर्याणि वदस्व ।।७।।

अनुवाद— हे विद्वन् ! सम्पूर्ण शरीरधारी जीवों के भीतर तथा बाहर व्याप्त रहने वाले भगवान् शरीर धारियों के भीतर अन्तर्यामी रूप से रहकर अमृत प्रदान करते हैं तथा बाहर रहकर कालरूप से मृत्यु प्रदान करते हैं । वे माया को स्वीकार करके मनुष्यलीला करते हैं । ऐसे श्रीभगवान् की लीलाओं को आप मुझे सुनाएँ ।।७।।

भावार्थ दीपिका

अखिलदेहभाजां सर्वप्राणिनामंतश्च बहिश्च पुरुषरूपेण कालरूपैश्च । अंशाभिप्रायेण बहुवचनम् । मृत्युं संसारम् अपि अमृतमपि प्रयच्छतो वीर्याणि वदस्व ब्रूहि । अयं भावः-अन्तर्यामिरूपेणान्तर्दृष्टीनां बहिर्दृष्टीनां च कालरूपेण मृत्युं ददाति यतः, अतोऽन्र्दृष्ट्या तद्वीर्याण्येव श्रोतव्यानीति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

सभी शरीर धारियों के भीतर पुरुष रूप से रहकर अमृत प्रदान करने वाले तथा बाहर कालरूप से रहकर मृत्यु (संसार) प्रदान करने वाले श्रीभगवान् की लीलाओं का आप वर्णन करें । कहने का अभिप्राय है कि अन्तर्यामी रूप से अन्तर्दृष्टि वाले पुरुषों को श्रीभगवान् जो मुक्ति प्रदान करते हैं और बहिर्दृष्टि से पुरुषों को काल रूप से मृत्यु प्रदान करते हैं । अतएव अन्तर्दृष्टि से श्रीभगवान् की लीलाओं को सुनना चाहिए ।।७।।

रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः सङ्कर्षणस्त्वया । देवक्या गर्भसंबन्धः कुतो देहान्तरं विना ।।८।।

अन्वयः— त्वया रोहिण्याः तनयः रामः सङ्कर्षणः प्रोक्तः देवक्यागर्भसंबन्धः कुतः देहान्तरं विना ।।८।।

अनुवाद— आपने कहा है कि बलरामजी रोहिणी के पुत्र हैं, उनका देवकीजी के गर्भ से सम्बन्ध दूसरे देह के बिना कैसे सम्भव हुआ ?।।८।।

भावार्थ दीपिका

ननु 'बलं गदं सारणं च दुर्मदं विपुलं ध्रुवम् । वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत् ।' इति रोहिण्यास्तनय रामः प्रोक्तः 'वसुदेवस्तु देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत् । कीर्तिमन्तं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः । मृदुं संतर्दनं भद्रं सङ्कर्षणमहीश्वरम् । अष्टमस्तु तयोरासीत्स्वयमेव हरिः किल' इति पुनर्देवक्या गर्भसंबन्धस्तस्यैवोक्तः स कुतो घटत इत्याक्षेपः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि आपने **बलं गदं सारणं इत्यादि** श्लोक में कहा है कि वसुदेवजी ने रोहिणी के गर्भ से बलराम, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव तथा कृत आदि पुत्रों को उत्पन्न किया । इस श्लोक से स्पष्ट है कि बलरामजी रोहिणीजी के पुत्र थे । वसुदेवस्तु देवक्याम् इत्यादि श्लोक में आपने कहा है कि वसुदेवजी ने देवकीजी के गर्भ से आठ पुत्रों को उत्पन्न किया । कीर्तिमान, सुषेण, भद्र उदार बुद्धि भद्रसेन, मृदु संतर्दन, भद्र और शेषावतार बलरामजी आठवाँ स्वयम् श्रीहरि के अंश बलरामजी रोहिणी और देवकीजी दोनों के पुत्र थे । वसुदेवजी के दोनों पत्नियों के गर्भ से संबन्ध कैसे सम्भव है ?॥८॥

कस्मान्मुकुन्दो भगवान्पितुर्गेहाद्व्रजं गतः । क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान्सात्वतांपतिः ॥९॥

अन्वयः— भगवान् मुकुन्द कस्मात् पितुः गोहात्व्रजं गतः । सात्वतां पतिः ज्ञातिभिः सार्धं क्ववासं कृतवान् ॥९॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण किस कारण से अपने पिता के घर से व्रज में चले गये । भक्तों के स्वामी श्रीभगवान् अपने ज्ञातियों के साथ कहाँ निवास किए ॥९॥

भावार्थ दीपिका

कस्मादिति । भगवतः कंसभयशङ्काया असंभवादित्यर्थः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् अपने पिता के घर से व्रज में क्यो गये ? क्योंकि उनको कंस से भय होना तो असम्भव था ॥९॥

व्रजे वसन्किमकरोन्मधुपुर्यां च केशवः । भ्रातरं चावधीत्कंसं मातुरद्धाऽतदर्हणम् ॥१०॥

अन्वयः— व्रजे मधुपुर्यां च वसन् केशवः किम् अकरोत् । अद्धा मातुः भ्रातरं कंसं च कथम् अवधीत् ॥१०॥

अनुवाद— व्रज में तथा मधुपुरी में रहकर ब्रह्माजी और शङ्करजी का भी प्रशासन करने वाले भगवान् ने कौन-कौन सी लीलाएँ की तथा अपनी माता के भाई कंस को उन्होंने अपने हाथों से क्यों मार दिया ? उन्हें अपने मामा को अपने हाथ नहीं मारना चाहिए था ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

मातुर्भ्रातरं कंसं तस्माद्वधानर्हमद्धा साक्षात्कस्मादवधीत् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

अपनी माता के भाई कंस को अपने हाथ उनको मारने योग्य नहीं था ॥१०॥

देहं मानुषमाश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः । यदुपुर्यां सहावात्सीत्पत्न्यः कत्यभवन्प्रभोः ॥११॥

अन्वयः— मानुषं देहम् आश्रित्य मधुपूर्यां वृष्णिभिः सह कतिवर्षाणि अवात्सीत् । प्रभोः कति पत्न्यः अभवन्॥११॥

अनुवाद— मानव शरीर धारण करके मधुपुरी में भगवान् वृष्णि वंशीयों के साथ कितने वर्ष तक निवास किये तथा श्रीभगवान् की कितनी पत्नियाँ थीं ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम् । वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम् ॥१२॥

अन्वयः— एतत् अन्यच्च, हे सर्वज्ञ मुने सर्वं कृष्णविचेष्टितम् श्रदधानाय मे वक्तुमर्हसि ॥१२॥

अनुवाद— इन सारी बातों को तथा दूसरी लीलाओं को हे सर्वज्ञ शुकदेवजी ? जिन सबों को भगवान् श्रीकृष्ण ने किया उन सभी लीलाओं को श्रद्धा सम्पन्न मुझको आप सुनाएँ ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

नैषातिदु:सहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते । पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥१३॥

अन्वयः— त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् पिबन्तम् त्यक्तोदम् अपि मां एषाअति दु:सहा क्षुत् न बाधते ॥१३॥

अनुवाद— आपके मुख कमल से निस्सृत श्रीहरि की कथा रूपी अमृत का पान करने वाले मुझको जल का परित्याग कर देने पर भी दु:सह भूख बाधित नहीं करती है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

ननु क्षुत्तृड्भ्यां पीडितस्य तव कुतः श्रवणावकाशस्तत्राह–नैषेति । त्यक्तोदकस्यापि मम जीवनं हरिकथामृतपाननिमित्तं तदुपरमे सद्य एव जीवितं न स्यादित्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि भूख और प्यास से पीड़ित तुमको इन कथाओं को सुनने की अवकाश ही कहाँ है । इसके उत्तर में **नैव० इत्यादि** श्लोक कहते है । जल का भी परित्याग कर देने वाले मेरा जीवन श्रीहरि की कथामृत का पान करने के कारण है । उसको समाप्त होने पर मेरा जीवन शीघ्र ही समाप्त हो जायेगा ॥१३॥

सूत उवाच

एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम् ।
प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ॥१४॥

अन्वयः— हे भृगुनन्दन ! एवं साधुवादं निशम्य सः भगवान भागवत प्रधानः वैयासकिः विष्णुरातम् प्रत्यर्च्य कलिकल्मषघ्नं कृष्णचरितं व्याहर्तुम् आरभत् ॥१४॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— हे शौनकजी इस प्रकार से राजा परीक्षित् के सुन्दर प्रश्नों को सुनकर भगवद् भक्तों में प्रधान भगवान् श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित् का अभिनन्दन किए तथा कलिजन्य पापों को विनष्ट करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के चरित को कहना प्रारम्भ किए ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

एवं साधुवादं समीचीनं प्रश्नम् । भागवतप्रधनो भागवतेषु श्रेष्ठः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से साधुवादम् अर्थात् समीचीन (सुन्दर) प्रश्न को सुनकर । भागवतप्रधान: अर्थात् भगवद् भक्तों में श्रेष्ठ ॥१४॥

श्रीशुक उवाच

सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम । वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः ॥१५॥

अन्वयः— हे राजार्षिसत्तम ! तव बुद्धिः सम्यग्व्यवसिता यत् वासुदेवकथायां ते नैष्ठिकी रतिः जाता ॥१५॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजर्षियों में श्रेष्ठ तुम्हारी बुद्धि ने जो कुछ भी निश्चय किया है वह बहुत सुन्दर है क्योंकि तुम्हारा श्रीभगवान् की कथाओं को सुननें में सुदृढ प्रेम हो गया है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

व्यवसिता कृतनिश्चया । यद्यतो बुद्धेः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

व्यवसिता अर्थात् जिसने निश्चय कर लिया है । क्योंकि तुम्हारी बुद्धि का ।।१५।।

वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनाति हि । वक्तारं श्रोतॄंस्तत्पादसलिलं यथा ।।१६।।

अन्वयः— वासुदेवकथा प्रश्नः हि वक्तारं पृच्छकं श्रोतॄन् त्री पुरुषान् तत्पादसलिलं यथा पुनाति ।।१६।।

अनुवाद— भगवान् वासुदेव की कथा विषयक प्रश्न अपने पूछने वाले, उन प्रश्नों का उत्तर देने वाले तथा उन कथाओं को सुनने वाले पुरुषों नारियों को उसी तरह पवित्र करती है; जैसे श्रीभगवान् के चरणोदक से प्रसूत श्रीगङ्गाजी का जल अपने समस्त अवगाहन करने वाले लोगों को पवित्र बना देता है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१६।।

भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः । आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ ।।१७।।

अन्वयः— दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः भूरिभारेण आक्रान्ता भूमिः ब्रह्माणं शरणं ययौ ।।१७।।

अनुवाद— उस समय असंख्य दैत्यों के दल ने घमण्डी राजाओं का रूप धारण करके अपने अत्यधिक भार से पृथिवी को आक्रान्त कर रखा था । उनसे त्राण पाने के लिए वह ब्रह्माजी के शरण में गयी ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तावत्प्रथमं भगवदवतारकारणमाह-भूमिरित्यादिनवभिः श्लोकैः । दृप्तनृपव्याजा ये दैत्यास्तेषामनीकशतानामयुतैर्यो भूरिभारस्तेनाक्रान्ता ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

भूमि इत्यादि नव श्लोकों के द्वारा श्रीभगवान् के अवतार का कारण बतलाते हैं । घमण्डी राजाओं के बहाने दैत्यों का असंख्य दल अपने अत्यधिक भार से पृथिवी को आक्रान्त कर दिया था ।।१७।।

गौर्भूत्वाश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः । उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत् ।।१८।।

अन्वयः— अश्रुमुखी खिन्ना करुणं क्रन्दन्ती विभोः अन्तिके उपस्थिता स्वव्यसनम् अवोचत् ।।१८।।

अनुवाद— जिसकी आँखों से आँसू बहा जा रहा था । मन और शरीर अत्यन्त खिन्न था एवं करुण स्वर से रम्भाती हुई गौ का रूप धारण करके ब्रह्माजी के समीप जाकर अपने कष्ट को स्वयम् बतलाया ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

विभोरन्तिके उपस्थिता सती ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी के पास उपस्थित हुई ।।१८।।

ब्रह्मा तदुपधार्याथ सह देवैस्तया सह । जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ।।१९।।

अन्वयः— तदुपधार्य सत्रिनयनः ब्रह्मा देवैः तया सह च क्षीरपयोनिधेः तीरं जगाम ।।१९।।

अनुवाद— पृथिवी की बातों का श्रवण करके ब्रह्माजी निश्चय किए और उसके पश्चात् शङ्करजी तथा अन्य स्वर्ग के देवताओं तथा पृथिवी को साथ लेकर ब्रह्माजी क्षीर सागर के तट पर गये ।।१९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१९।।

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् । पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥२०॥

अन्वयः— तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् पुरुषं पुरुषसूक्तेन समाहितः उपतस्थे ॥२०॥

अनुवाद— वहाँ जाकर जगत् के स्वामी, देवताओं के आराध्य तथा अपने भक्तों के समस्त कष्टों को विनष्ट करने वाले परम पुरुष परमात्मा की समाधिस्थ होकर पुरुषसूक्त से ब्रह्माजी ने स्तुति की ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह ।
गां पौरुषीं शृणुतामराः पुनर्विधीयतामशु तथैव मा चिरम् ॥२१॥

अन्वयः— समाधौ गगने समीरितां वाणीं निशम्य वेधा ह त्रिदशान् उवाच । अमराः मे पौरुषीं गां शृणुत पुनः आशु तथैव विधीयताम् मा चिरम् ॥२१॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने समाधि की अवस्था में आकाशवाणी सुना । उसके बाद उन्होंने देवताओं से कहा देवताओं मेरे द्वारा आपलोग श्रीभगवान् की वाणी को सुनें और शीघ्र ही उसके अनुसार कार्य करें । इसमें देर नहीं होनी चाहिए ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

पौरुषीं पुरुषस्य भगवत इयं पौरुषीं तां गां वाचं मे मत्तः आशु शृणुत । मा चिरमविलम्बितं तथैव विधीयतां चेति॥२१॥

भाव प्रकाशिका

आप लोग मेरे द्वारा श्रीभगवान् की वाणी को सुनें और अविलम्ब उसके अनुसार कार्य करें ॥२१॥

पुरैव पुंसावधृतो धराज्वरो भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ।
स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि ॥२२॥

अन्वयः— धराज्वरः पुंसा पुरैव अवधारितः स्वकाल शक्त्या स ईश्वरः यावत् उर्व्यां भरम् क्षपयन् भुवि चरेत् तावद् भवद्भिः अंशैः, यदुषु उपजन्यताम् ॥२२॥

अनुवाद— पृथिवी के कष्ट का पता श्रीभगवान् को पहले से ही हैं वे भगवान् कालशक्ति के द्वारा पृथिवी के भार का विनाश करके पृथिवी पर जब तक विराजमान रहें तब तक आपलोग भी अपने-अपने अंशों से यदुवंश में अवतीर्ण होकर श्रीभगवान् की लीला में सहयोग करें ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

विज्ञापनात्पुरैव पुंसा ईश्वरेण ज्वरस्तापोऽवधृतोऽवधारितः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

हमलोगों के द्वारा विज्ञापित करने से पूर्वही श्रीभगवान् को पृथिवी के कष्ट का पता लग गया था ॥२२॥

वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान्पुरुषः परः । जनिष्यते तत्प्रियार्थं संभवन्तु सुरस्त्रियः ॥२३॥

अन्वयः— वसुदेव गृहे साक्षात् परः पुरुषः भगवान् जनिष्यते तत्प्रियार्थं सुरस्त्रियः संभवन्तु ॥२३॥

अनुवाद— श्रीवसुदेवजी के घर परम पुरुष साक्षात् श्रीभगवान् अवतार लेंगे । उनकी प्रियतमा श्रीराधाजी की सेवा के लिए देवताओं की स्त्रियाँ भी वहाँ जन्म लें ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

वासुदेवकलाऽनन्तः सहस्रवदनः स्वराट् । अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥२४॥

अन्वयः— वासुदेवकला सहस्रवदनः स्वराट् अनन्तः देवः हरेः प्रियचिकीर्षया अग्रतो भविता ॥२४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की कला हजार मुखों वाले स्वयम्प्रकाश अनन्त शेषनाग भी श्रीहरि के प्रिय कार्य करने के लिए वहाँ पहले ही श्रीभगवान् के बड़े भाई के रूप में अवतार ग्रहण करेंगे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितं जगत् । आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे संभविष्यति ॥२५॥

अन्वयः— भगवती विष्णोः माया यया जगत् संमोहितम् प्रभुणा आदिष्टा अंशेन कायार्थे संभविष्यति ॥२५॥

अनुवाद— ऐश्वर्यशालिनी भगवान् विष्णु की माया जो सम्पूर्ण जगत् को सम्मोहित कर रखी है वह भी श्रीभगवान् के द्वारा आदिष्ट होकर श्रीभगवान् का कार्य सम्पन्न करने के लिए वहाँ अवतरित होगी ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

देवकीगर्भसङ्कर्षणयशोदामोहनादिकार्यार्थे यशोदायां संभविष्यति ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

देवकीजी के गर्भ को खींचकर रोहिणीजी के गर्भ में पहुँचाने के लिए तथा यशोदाजी को मोहित करने के लिए माया भी जन्म ग्रहण करेगी ॥२५॥

श्रीशुक उवाच

इत्यादिश्यामरगणान्प्रजापतिपतिर्विभुः । आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥२६॥

अन्वयः— प्रजापतिपतिर्विभुः इति अमरगणान् आदिश्य महीं च गीर्भिः आश्वास्य परमं स्वधाम ययौ ॥२६॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् प्रजापतियों के स्वामी ब्रह्माजी इस प्रकार से देवताओं को आदेश देकर तथा पृथिवी को भी अपने वचनों से आश्वस्त करके उसके पश्चात् अपने परम धाम में चले गये ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन्पुरीम् । माथुरान् शूरसेनांश्च विषयान्बुभुजे पुरा ॥२७॥

अन्वयः— यदुपतिः शूरसेनः मथुराम् आवसन् माथुरान् शूरसेनान् च विषयान् बुभुजे ॥२७॥

अनुवाद— यदुवंशियों के राजा शूरसेन मथुरापुरी में रहकर मथुरा और शूरसेन इन दोनों राज्यों का प्रशासन करते थे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

भोजेन्द्रबन्धनागारेऽवताराय प्रस्तावकथामाह-शूरसेन इत्यादिना यावदध्यायसमाप्ति । मथुरामावसन्मथुरायां वसन् । विषयान देशान् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

भोजाधिपति उग्रसेन को बन्धनागार में डालने के कारण अवतरण के लिए इस श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त प्रस्ताव कथा को उपन्यस्त करते हैं । **मथुरामावसन्** अर्थात् मथुरा में निवास करते हुए । **विषयान्** अर्थात् देश को ॥२७॥

राजधानी ततः साभूत्सर्वयादवभूभुजाम् । मथुरा भगवान्यत्र नित्यं संनिहितो हरिः ॥२८॥

अन्वयः— ततः सर्वयादवभूभुजाम् सा मथुरा राजधानी अभूत् यत्र हरिः नित्यं संनिहितः ॥२८॥

अनुवाद— उसी समय से मथुरा समस्त यदुवंशी राजाओं की राजधानी हो गयी थी । मथुरा में श्रीहरि सर्वदा विराजमान रहते है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः । देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥२९॥

अन्वयः— तस्यां तु कर्हिचित् शौरिः कृतोद्वाहः वसुदेवः सूर्यया देवक्या सार्धं प्रयाणे रथम् आरुहत् ॥२९॥

अनुवाद— उस मथुरा में एक बार शूर के पुत्र वसुदेवजी विवाह करके अपनी नवोढ़ा पत्नी देवकी के साथ प्रस्थान करने के लिए रथ पर बैठे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

सूर्यया नवोढया । प्रयाणे प्रयाणार्थम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

सूर्यया अर्थात् नवविवाहिता पत्नी के साथ । प्रयाणे अर्थात् प्रस्थान करने के लिए ॥२९॥

उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया । रश्मीन्हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥३०॥

अन्वयः— उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया रौक्मैः रथशतैः वृतः हयानां रश्मीन् जग्राह ॥३०॥

अनुवाद— उग्रसेन का पुत्र कंस था, वह अपनी बहन का प्रिय करने के लिए स्वयं ही घोड़ों की लगाम पकड़कर रथ चलाने लगा यद्यपि उसके साथ सैकड़ों सुवर्ण निर्मित रथ चल रहे थे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

रश्मीन् प्रग्रहान् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

रश्मीन् अर्थात् लगामों को ॥३०॥

चतुःशतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम् । अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च त्रिषट्शतम् ॥३१॥
दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलंकृते । दुहित्रे देवकः प्रादाद्याने दुहितृवत्सलः ॥३२॥

अन्वयः— दुहितृवत्सलः देवकः दुहित्रे याने पारिवर्हम् हेममालिनां गजानां चतुः शतम्, अश्वानां सार्धम् अयुतम्, रथानां च त्रिषटशतम् समलंकृते सुकुमारीणां दासीनां द्वे शते प्रादाद् ॥३१-३२॥

अनुवाद— देवकी के पिता देवक थे वे देवकी से बहुत स्नेह करते थे उन्होंने देवकी को दहेज में सुवर्ण की माला पहने चार सौ हाथियों को पन्द्रह हजार अश्वों को, अठारह सौ रथों एवं दो सौ समलंकृत सुकुमारी दासियों को दिया ॥३१-३२॥

भावार्थ दीपिका

पारिबर्हमुपस्करम् ॥३१-३२॥

भाव प्रकाशिका

पारिवर्ह अर्थात् दहेज ॥३१-३२॥

शङ्खतूर्यमृदङ्गाश्च नेदुर्दुन्दुभयः समम् । प्रयाणप्रक्रमे तावद्वरबध्वोः सुमङ्गलम् ॥३३॥

अन्वयः— वरबध्वोः प्रयाणप्रक्रमे तावत् समम् सुमङ्गलम् शङ्खतूर्यमृदङ्गा दुन्दुभयः च नेदुः ॥३३॥

अनुवाद— वर-वधू के प्रस्थान के समय (विदाई के समय) एक ही साथ मङ्गलमय शङ्ख तुरही, मृदङ्ग और दुन्दुभियाँ बजने लगीं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याहाशरीरवाक् । अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध ॥३४॥

अन्वयः— पथि प्रग्रहिणं कंसम् आभाष्य अशरीरवाक् आह अबुध यां वहसे अस्याः अष्टमः गर्भः त्वाम् हन्ता॥३४॥

अनुवाद— रास्ते में रास पकड़कर कंस रथ हाँक रहा था उस समय कंस को सम्बोधित करके आकाशवाणी ने कहा- मूर्ख ! जिसे तुम पहुचाने जा रहे हो, उस देवकी का आठवाँ पुत्र तुमको मारेगा ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

आभाष्य रे रे कंसेति संबोध्य । हन्ता हनिष्यति ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

आभाष्य अर्थात् अरे कंस । इस तरह से संबोधित करके हन्ता अर्थात् मारेगा ॥३४॥

इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः । भगिनीं हन्तुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत्॥३५॥

अन्वयः— खलः पापः भोजानां कुलपांसनः सः इत्युक्तः खड्गपाणिः हन्तुमारब्धः भगिनीं कचेऽग्रहीत् ॥३५॥

अनुवाद— दुष्ट, पापी, भोजकुलकलङ्क वह कंस इतना सुनते ही हाथ में तलवार लेकर अपनी बहन की चोटी पकड़कर उसको मारने के लिए तैयार हो गया ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

कुलापांसनः कुलदूषणः आरब्ध उद्युक्तः । कचे केशबन्धे ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

कुलपांसनः कुल का कलङ्क । **आरब्धः** अर्थात् तैयार हो गया । **कचे** अर्थात् चोटी को ॥३५॥

तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम् । वसुदेवो महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥३६॥

अन्वयः— जुगुप्सितकर्माणं, नृशंसं, निरपत्रपम् तम् परिसान्त्वयन् महाभागः वसुदेवः उवाच ॥३६॥

अनुवाद— निन्दित कर्म करने वाले, क्रूर तथा निर्लज्ज उस कंस को सान्त्वना प्रदान करते हुए महाभाग्यवान वसुदेवजी ने कहा ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

नृशंसं क्रूरम् । महाभाग इति । अथं भावः-स्वजन्मनि हर्षेण देवैरानकदुन्दुभिघोषणोद्भाविभगवदवतारेण शक्यप्रतीकारता संभवतीति सान्त्वयन्स्तुत्या कृपाविषयत्वेनोपपत्तिभिश्च साममार्गेण संबोधयन् । (किंच । समाभेदाभ्यां संबोधयन् । तत्र साम पञ्चविधम् । भेदो द्विविधः तदुक्तम् 'संबन्धलाभोपकृतिर्ह्यभेदो गुणकीर्तनम् । साम पञ्चविधं भेदो दृष्टादृष्टभयं वचः ।' श्लघनीयगुण इति गुणकीर्तनम् । भगिनीमिति संबन्धकथनम् । पुत्रिकोपमेत्यभेदं वक्ष्यति । हन्यादिति स्त्रीवधनिवृत्या यशोलाभं दर्शयति । उद्वाहपर्वणीति संतानवृद्ध्योपकारं दर्शयति) ॥३६॥'

भाव प्रकाशिका

नृशंसम् अर्थात् क्रूर, महाभाग-महाभाग्यवान् कहने का अभिप्राय है कि जिस समस वसुदेवजी ने जन्म लिया उस समय हर्षपूर्वक देवताओं ने नगाड़ा बजाकर यह सूचित किया कि श्रीभगवान् के होने वाले अवतार से कंस का प्रतिकार करना सम्भव होगा । अतएव वे स्तुति के द्वारा उन्होंने कंस को ऐसा बना दिया कि वह देवकी पर कृपा करे । साम पाँच प्रकार का होता है । सम्बन्ध, लाभ, उपकार, अभेद और गुणों का वर्णन । वह दृष्ट और अदृष्ट लौकिक और पारलौकिक स्वरूप होता है । गुण कीर्तनम् अर्थात् प्रशसनीय गुणों का वर्णन । वसुदेवजी ने **भगिनीम्** पद के द्वारा सम्बन्ध बतलाया । **हन्यात्** पद के द्वारा स्त्री का वध नहीं करने से यश की प्राप्ति बतलाया। **उद्वाहपर्वणि** पद से सन्तान वृद्धि रूप उपकार उन्होंने बतलाया॥३६॥

वसुदेव उवाच

श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान्भोजयशस्करः । स कथं भगिनीं हन्यात्स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥३७॥

अन्वयः— भवान् शूरैः श्लाधनीय गुणः भोजयशस्करः, सः स्त्रियम् भगिनीम् उद्वाहपर्वणि कथं हन्यात् ॥३७॥

वसुदेवजी ने कहा

अनुवाद— आपके गुणों की प्रशंसा बड़े-बड़े वीर करते हैं, आप भोजवंश के यश को बढ़ाने वाले हैं ऐसे आप स्त्री उसमें भी आपकी बहन उसमें भी विवाह की बेला में इसको आप कैसे मार सकते है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते । अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः ॥३८॥

अन्वयः— वीर ! जन्मवतां मृत्युः देहेन सह जायते । अद्य वा अब्दशतान्ते वा मृत्युः वै प्राणिनां ध्रुवः ॥३८॥

अनुवाद— वीरवर्य, जो जन्म लेते है, उनके शरीर के साथ ही मृत्यु भी जन्म लेती है । वह आज हो अथवा सौ वर्ष बाद हो, जो प्राणी है उसकी मृत्यु निश्चित है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

मरणभयेन हन्मीति चेत्तथापि मरणस्यापरिहरणीयत्वाद्देहान्तरस्यावश्यं भावित्वात्तत्रापि च । भोगप्रेमास्पदत्वाददीनामविशेषात्तद्भयेन पापाचरणमयुक्तमित्यभिप्रेत्याह- मृत्युर्जन्मवतामित्यादि । देहेन सहेति विधात्रा ललाटे लिखितत्वादिति । तथापि कालविलम्बार्थं हन्मीति चेत्तत्राह-अद्य वेति । अवश्यंभाविनि मरणे विलम्बमात्राय न पापाचरणं युक्तमिति भावः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि मृत्यु के भय से मैं इसको मार रहा हूँ तो भी मृत्यु को कोई टाल नहीं सकता है । मृत्यु होने पर दूसरा कोई शरीर मिलेगा ही । उस जन्म में इसी तरह भोग प्रेमास्पद की प्राप्ति होगी ही । अतएव मृत्यु के भय से पाप करना ठीक नहीं है । इसी अभिप्राय से वसुदेवजी ने **मृत्युर्जन्मवताम्० इत्यादि** श्लोक कहा है। देह के साथ ब्रह्मा ललाट में मृत्यु लिख देते है । यदि कहो कि मेरी मृत्यु देर से हो इसलिए इसे मार रहा हूँ। इस पर वसुदेवजी ने कहा आज हो या सौ वर्ष बाद मृत्यु तो अवश्यंभाविनी है । मृत्यु देर से हो उसके लिए पाप करना उचित नहीं ॥३८॥

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः । देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥३९॥

अन्वयः— देहे पञ्चत्वम् आपन्ने कर्मानुगः अवशः देही देहान्तरम् अनुप्राप्य प्राक्तनं वपुः त्यजते ॥३९॥

अनुवाद— जब शरीर का अन्त हो जाता है उस समय कर्म के अधीन रहने वाली आत्मा दूसरे शरीर को प्राप्त करके अपने पुराने शरीर को विवश होकर छोड़ देती है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

किंच अस्मिन्देहे गते यदिदेहान्तरं न स्यात्तदा युज्येत पापेनापि तत्पालनम्, न तु तदस्तीत्याह–पञ्चत्वमापन्न इति । आपन्ने आपन्नप्राये । कर्मवशादयत्नत एव प्रथमं देहान्तरं प्राप्य पश्चात्पूर्वं वपुस्त्यजति ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

यदि इस देह के समाप्त हो जाने पर दूसरा शरीर न मिले तब तो पाप करके भी देह को बनाये रखना उचित हो सकता है किन्तु ऐसी बात नहीं है इसी बात को **पञ्चत्वमापन्ने० इत्यादि** से कहा गया है । **आपन्ने** अर्थात् प्राप्य प्राय । कर्मानुसार विना प्रयास के दूसरे देह को प्राप्त करके ही जीव पहले के शरीर को त्याग देता है ।।३९।।

व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति । यथा तृणजलूकैवं देही कर्मगतिं गतः ।।४०।।

अन्वयः— व्रजन् यथा एकेन पदा तिष्ठन् एव एकेन गच्छति यथा तृणजलौका एवं देही कर्म गतिं गतः ।।४०।।

अनुवाद— जैसे चलने वाला मनुष्य एक पैर जमा कर ही दूसरे पैर से चलता है जैसे जोंक किसी दूसरे तृण को पकड़ लेती है तब ही वह पहले के तृण को छोड़ती है । इसी तरह यह जीव अपने कर्म के अनुसार किसी दूसरे शरीर को प्राप्त करके पहले शरीर को त्यागता है ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

अत्र दृष्टान्तः-व्रजन्निति । एकेनाग्रतो निहितेन पदा तिष्ठन्भुवमवष्टभ्य देहं विभ्रत्पश्चादन्येन पूर्वप्रदेशादुत्थाप्य पुरो निहितेन गच्छति तद्वत् । अत्र च स्वीकारपरित्यागौ नात्यन्तभिन्नविपयाविति स्पष्टं दृष्टान्तान्तरमाह-यथा तृणजलूकेति । सा हि यथा तृणान्तरमवष्टभ्य पूर्वं तृणं त्यजति, एवं कर्मपथे वर्तमानोऽन्यो जीवोऽपि ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

व्रजन्० इत्यादि श्लोक के द्वारा उपर्युक्त कथन में दृष्टान्त दिया गया है । जिस पैर को आगे पृथिवी पर रखा गया है उसे पृथिवी पर जमा कर ही शरीरधारी दूसरे पैर को जो पहले स्थान पर था उससे चलने का काम करता है। यहाँ पर स्वीकार और परित्याग ये दोनों परस्पर में अत्यन्त भिन्न विषय नहीं है । इसीलिए दूसरा स्पष्ट उदाहरण बतलाते है । जैसे— जोंक दूसरे तृण को पकड़ लेने के पश्चात् ही पहले तृण को छोड़ती है । यह लोक में देखा जाता है । इसी तरह कर्ममार्ग पर चलता हुआ जीव भी देहान्तर को प्राप्त करके ही पूर्व शरीर को त्यागता है ।।४०।।

स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं मनोरथेनाभिनिविष्टचेतनः ।
दृष्टश्रुताभ्यां मनसानुचिन्तयन्प्रपद्यते तत्किमपि ह्यपस्मृतिः ।।४१।।

अन्वयः— यथा दृष्टश्रुताभ्यां आहितसंस्कारेण मनसा अनुचिंतयन् स्वप्ने इदृशं देहं पश्यति अपगत स्मृति हि प्रपद्यते, यद्वा मनारथेन दृष्ट श्रुताभ्यां अभिनिविष्ट चेतनः मनसा अनुचिन्तयन् इदृशं देंह पश्यति अपगत स्मृतिः तत् किमपि प्रपद्यते।।४१।।

अनुवाद— जैसे जाग्रदावस्था में राजा के ऐश्वर्य को देखकर और इन्द्रादि के ऐश्वर्य को सुनकर मनुष्य जैसे उस राजा अथवा इन्द्र का ही मन से चिन्तन करता है । चिन्तन करता हुआ वह उसी में अभिनिविष्ट हो जाता है । और स्वप्न में राजा अथवा इन्द्र को देखता है और क्षणभर पश्चात् वह अपने को ही इन्द्र अथवा राजा समझने लगता है । उसे पूर्व शरीर की यादगारी भी नहीं रह जाती हैं । इसी तरह जाग्रदावस्था में वह दृष्ट राजा अथवा श्रुत इन्द्र का मनोरथ के द्वारा चिन्तन करते-करते उसमें इतना रम जाता है कि वह अपने को ही इन्द्र अथवा राजा समझने लगता है । उस समय वह इस शरीर को भी भूल जाता है । इसी तरह जीव भी अपने कर्मानुसार नये शरीर को प्राप्त करके पहले के शरीर को भूल जाता है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

देहविषयावेव स्वीकारपरित्यागौ दर्शयितुं दृष्टान्तान्तरमाह-स्वप्न् इति । इष्टं राजादिदर्शनम्, श्रुतमिन्द्रादिश्रवणम्, ताभ्यामाहितसंस्कारेण मनसा तदेवानुचिन्तयन्नीदृशं जाग्रन्दृष्टश्रुतसदृशं देहं राजादिरूपं किमप्यनिरुक्तं पश्यति । क्षणान्तरे च तदेवाहमति प्रपद्यते मन्यते । ततश्च जाग्रद्देहादपगतस्मृतिर्भवति पुरुषो यथेति । जाग्रत्येव दर्शयितुं दृष्टान्तान्तरमाह-मनोरथेनेति। अत्रापि दृष्टश्रुताभ्यामित्यादि सर्वं योज्यम् । तथाच वक्ष्यति 'जन्तोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः । जन्म त्वात्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद । विषयस्वीकृतिं प्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथः । स्वप्नं मनोरथं चेत्थं प्राक्तनं न स्मरत्यसौ । इत्यादि । तद्वदत्रापि कर्मवशाद्देहान्तरं प्राप्य प्राक्तनं त्यजतीति ।।४१।। '

भाव प्रकाशिका

देह विषयक ही स्वीकार और परित्याग को बतलाने के लिए दूसरा दृष्टान्त स्वप्ने यथा इत्यादि श्लोक से बतलाते हैं । दृष्ट राजा आदि के ऐश्वर्य को देखकर तथा श्रुत इन्द्र आदि के ऐश्वर्य को सुनकर । उन दोनों का जो संस्कार पड़ जाता है, उसको ही मन से चिन्तन करने वाला मनुष्य जाग्रदावस्था में दृष्ट और श्रुत राजादि रूप अनिर्वचनीय शरीर को स्वप्न में देखता है और क्षणभर बाद उस शरीर को ही अपना शरीर समझने लगता है तथा अपने वर्तमान शरीर को भूल जाता है । जाग्रदावस्था में भी बतलाने के लिए दूसरा दृष्टान्त बतलाते है । जाग्रदावस्था में भी दृष्ट और श्रुत राजा इन्द्रादि का मनोरथ के द्वारा चिन्तन करते-करते अपने को राजा और इन्द्र समझने लगता है अपने वर्तमान शरीर को भूल जाता है । यहाँ पर भी दृष्ट श्रुत आदि सबों का अन्वय करना चाहिए। आगे कहेंगे भी **जन्तोर्वै० इत्यादि** अर्थात् जीव किसी कारणवश अपनी मृत्यु को बिल्कुल भूल जाता है। हे बहुत अधिक दान देने वाले परीक्षित् ! अपने जन्म को आत्मारूप से पूर्णतया अनुभव करता है । इस तरह से स्वप्न और मनोरथ को विषय स्वीकृति नामक साम कहते हैं । इस तरह यहाँ भी कर्मवशात् जीव दूसरे शरीर को प्राप्त करके पूर्व कालिक शरीर को भूल जाता है ।।४१।।

यतो यतो धावति दैवचोदितं मनो विकारात्मकमाप पञ्चसु ।
गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ प्रपद्यमानः सह तेन जायते ।।४२।।

अन्वयः— दैव चोदितं विकारात्मकं मनः यतो यतो धावति मायारचितेषु पञ्चसु गुणेषु यम् आप प्रपद्यमानः तेन सह जायते ।।४२।।

अनुवाद— विकारों का पुञ्जभूत मन मृत्यु के समय परमात्मा के द्वारा प्रेरित पाञ्च भौतिक शरीरों में से जिस शरीर को अपना समझता है, उसी शरीर के साथ वह जन्म लेता है ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

ननु विचित्रदेहहेतूनां कर्मणां कृतत्वाद्देहविशेषप्राप्तौ । किं कारणमत आह-यतो यत इति । देहस्य पञ्चत्वसमये पञ्चसु गुणेषु भूतेषु मायारचितेषु मायया नानादेहरूपेण रचितेषु दैवेन फलाभिमुखेन कर्मणा चोदितं नानाविकारात्मकं मनो यं यं देहं देवतिर्यगादिरूपं प्रति धावति । धावश्च सद्यं यमापाऽभिनिवेशेन प्राप्तं तत्र तत्रासौ देही जायते । ननु मनसः कर्तृत्वात्तदेव जायतां न त्वकर्तात्मेत्यत आह-प्रपद्यमान इति तदेवाहमिति मन्यममानस्तेन सह जायत इति ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि शरीरों की प्राप्ति के कारण पूर्वकृत कर्म हैं, किन्तु देह विशेष की प्राप्ति का कारण क्या है? अतएव वसुदेवजी **यतो यतः इत्यादि** श्लोक को कहते है । देहान्तर के समय मायारचित पाँच भौतिक शरीरों में परमात्मा प्रेरित मन देवतिर्यक् आदि जिन शरीरों के प्रति दौड़ता है और दौड़ता हुआ सद्यः जिस शरीर को प्राप्त करके उसमें अभिनिविष्ट हो जाता है उसी शरीर के साथ वह जन्म लेता है । प्रश्न होता है कि यहाँ कर्ता

होने के कारण मन को ही जन्म लेना चाहिए अकर्ता आत्मा को नहीं ? इसके उत्तर में कहते है कि जिस शरीर को मै हूँ यह मानते है उसी शरीर के साथ आत्मा जन्म लेता है ।।४२।।

ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः समीरवेगानुगतं विभाव्यते ।
एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ।।४३।।

अन्वयः— अदः ज्योतिः यथैव उदकपार्थिवेषु समीरवेगन अनु गतं विभाव्यते, एवं स्वमायारचितेषु गुणेषु असौ पुमान् रागानुगतः विमुह्यतिः ।।४३।।

अनुवाद— जैसे दूरस्थ सूर्य आदि चमकीली वस्तुएँ जल से भरे हुए अथवा तेल से भरे हुए पात्र में प्रतिबिम्बित होती हैं तथा वायु के झोंके से जल आदि को हिलने पर वे वस्तुएँ भी चञ्चल प्रतीत होती हैं, उसी तरह जीव अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होने से शरीर विशेष में राग करके अपने आपको वही समझने लगता है और अज्ञानवशात् उसके आने-जाने को अपना आनाजाना मानने लगता है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

ननु सत्यं, भविष्यत्येव किमपि देहमात्रं, तथाप्यस्यातिप्रियस्य राजदेहस्य रक्षणायाकृत्यमपि क्रियत इति चेत्तत्राह–ज्योतिरिति। अतश्चन्द्रादिज्योतिः उदकयुक्तेषु पार्थिवेषु घटादिषु । यद्वा उदकेषु पार्थिवेषु तैलघृतदिषु च प्रतिबिम्बेन स्थितं समीरस्य वायोर्वेगमनुगतं कम्पादियुक्तं प्रतीयते यथा, एवं स्वाविद्यारचित्तेषु गुणेषु देहेष्वसौ रागेणानुगतः प्रविष्टो मुह्यत्यभिनिवेशं प्राप्नोति । अयं भावः– आत्मनस्तावद्देहाद्यध्यासाज्जन्मोक्तं सह तेन जायते इति । ततश्चान्योन्यधर्माघ्यासाद्यथा देहादिधर्माः कार्श्यादय आत्मनि प्रतीयन्ते, एवमात्मधर्माः प्रेमास्पदत्वादयोऽपि देहादिष्विति राजसूकरदेहयोर्विशेषाभावाद्व्यर्थो मृत्युप्रतीकार इति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

ठीक है देह कई भी हो सकता है फिर भी इस जीव का अत्यन्त प्रिय जो राजा आदि के शरीर की रक्षा करने के लिए मनुष्य अकृत्य पापादि कर्म को करता ही है । तो यदि ऐसा कहें तो इस पर कहते हैं **ज्योतिर्यथा इत्यादि** जैसे दूरस्थ चन्द्रमा आदि प्रकाशमय वस्तुएँ जल से भरे पार्थिव घटादिकों में । अथवा जल में तथा पार्थिव़ तेल अथवा घी में प्रतिबिम्बित होती हैं । वायु के वेग से जल आदि के हिलने से वे चन्द्रादि भी हिलते हुए प्रतीत होते हैं । इसी तरह अपने अज्ञान के द्वारा रचित शरीरों में वह राग के द्वारा अभिनिविष्ट होकर मोहित हो जाता है । कहने का अभिप्राय है कि **सहतेन जायते० इत्यादि** के द्वारा कहा गया है कि देह के अध्यास के ही कारण आत्मा का जन्म कहलाता है । अतः उन दोनों का परस्पर में एक दूसरे का अध्यास होने से जैसे देह के धर्म स्थौल्य एवं कार्श्य प्रतीत होते है । इसी तरह आत्मा के प्रेमास्पदत्व आदि आत्मा के धर्म शरीर में प्रतीत होते है । राजा अथवा सूकर के शरीर में कोई भी विशेषता नहीं होने के कारण मृत्यु का प्रतिकार करना व्यर्थ है ।।४३।।

तस्मान्न कस्यचिद्द्रोहमाचरेत्स तथाविधः । आत्मनः क्षेममन्विच्छन्द्रोग्धुर्वै परतो भयम् ।।४४।।

अन्वयः— तस्मात् आत्मनः क्षेमम् अन्विच्छन् कस्यचित् द्रोहम् न आचरेत् तथाविधः सः द्रोग्धुः परतः वै भयम्।।४४।।

अनुवाद— अतएव अपना कल्याण चाहने वाले को चाहिए कि वह किसी से द्रोह न करे । क्योंकि द्रोह करने वाले को इस लोक में शत्रु का भय होता है और मृत्यु के पश्चात् यमराज से भय होता है ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

एवमुक्तं सामोपायमुपसंहरन्भेद माह–तस्मादिति । परा इति । अभिद्रुह्यमाणात्तत्संबन्धिनश्च यमादपीहमुत्र च भयमिति भेदो दर्शितः ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से वर्णित साम नामक उपाय का उपसंहार करते हुए **तस्मात् इत्यादि** श्लोक से भेद बतलाते है। जिससे द्रोह किया जाता है उस सम्बन्धी से तथा यमराज से भी भय होता है ॥४४॥

एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा । हन्तुं कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः ॥४५॥

अन्वयः— एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा इमाम् कल्याणीम् दीनवत्सलः त्वं हन्तुं नार्हसि ॥४५॥

अनुवाद— यह तुम्हारी छोटी बहिन है, बच्ची और दीन है यह तो तुम्हारी पुत्री के समान है। अभी-अभी इसका विवाह हुआ है। आप तो दीन वत्सल हैं अतएव आपको इसे नहीं मारना चाहिए ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

पुनः सामैवाह एषेति। पुत्रिकोपमा दारुमयीव अचेतनप्राया ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

एषा इत्यादि श्लोक से पुनः साम का ही वर्णन करते हैं। पुत्रिकोपमा कहकर उसको कठपुतली के समान अचेतन कहा गया है ॥४५॥

श्रीशुक उवाच

एवं स समाभिर्भेदैर्बोध्यमानोऽपि दारुणः । न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः ॥४६॥

अन्वयः— कौरव्य एवं पुरुषादान् अनुव्रतः दारुणः सः समभिः भेदैः बोध्यमानः अपि न न्यवर्तत ॥४६॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे परीक्षित् इस तरह राक्षसों का अनुगामी तथा क्रूर प्रकृति वाला कंस अनेक प्रकार के सामों द्वारा समझाये जाने पर भी जब अपने सङ्कल्प को नहीं छोड़ा ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

बोध्यमान उपदिश्यमानः स्वयं दारुणः। पुनः पुरुषादान् दैत्याननुव्रतोऽनुसृत इति ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

बोध्यमान अर्थात् समझाये जाने पर भी स्वयं कठोर प्रकृति वाला दैत्यों का अनुगामी था ॥४६॥

निर्बन्धं तस्य तं ज्ञात्वा विचिन्त्यानकदुन्दुभिः । प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥४७॥

अन्वयः— तस्य तं निर्बन्धं ज्ञात्वा आनकदुन्दुभिः विचिन्त्य प्राप्तकालं प्रतिव्योढुम् तत्र इदम् अन्वपद्यत ॥४७॥

अनुवाद— कंस के उस हठ को देखते हुए वासुदेवजी सोच विचारकर समयानुकूल उसको रोकने के लिए इस निश्चय पर आ गये ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

आनकदुन्दुभिरिति पदं महाभाग इत्यत्रोक्ताभिप्रायम्। प्रतिव्योढुं प्रतिकर्तुम्। वञ्चयितुमित्यर्थः। इदं वक्ष्यमाणमपत्यार्पणमन्वपद्यत ज्ञातवान् ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

आनकदुन्दुभि पद उनकी महाभाग्यवता के अभिप्राय से कहा गया है। **प्रतिव्योढुम्** अर्थात् उसको वञ्चित करने के लिए आगे कहे जाने वाले पुत्रसमर्पण रूप उपाय का निश्चय किए ॥४७॥

मृत्युर्बुद्धिमताऽपोह्यो यावद्बुद्धिबलोदयम् । यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥४८॥

अन्वयः— बुद्धिमता यावत् बुद्धिबलोदयः मृत्युः यद्यसौ न निवर्तेत देहिनः अपराधो नास्ति ॥४८॥

अनुवाद— बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि जहाँ तक बुद्धि का बल चले वहाँ तक मृत्यु को टालना चाहिए। उपाय करने पर भी यदि वह न टल सके तो उसमें शरीरधारी का कोई अपराध नहीं होता है ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

ननु खलोऽयमेतन्न मन्येतेत्याशङ्क्याह स्वयमेव मृत्युरिति ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

मृत्युर्बुद्धिमता० इत्यादि श्लोक से यह बतलाया गया है कि यह दुष्ट है मानेगा नहीं इस तरह की आशङ्का करके वसुदेवजी स्वयं यह श्लोक कहे हैं ॥४८॥

प्रदाय मृत्यवे पुत्रान्मोचये कृपणामिमाम् । सुता मे यदि जायेरन्मृत्युर्वा न म्रियेत चेत् ॥४९॥

अन्वयः— मृत्यवे पुत्रान् प्रदाय कृपणाम् इमाम् मोचये सुताः मे यदि जायेरन् मृत्युर्वा न म्रियेत् चेत् ॥४९॥

अनुवाद— मृत्यु रूप कंस को प्रदान करने की प्रशंसा करके इस दीन देवकी को मैं बचा लूँ यदि मेरे पुत्र हों और तब तक यह कंस न मरे तो फिर क्या होगा ?॥४९॥

भावार्थ दीपिका

तस्मादुपेक्षादोषपरिहारायैवं करिष्यामीत्याह-प्रदायेति । मृत्यवे कंसाय । नन्विदमपि नैव न्याय्यमित्याशङ्क्याह सुता इति । अस्यां यदि में जायरंस्तदा यद्भावि तद्भवतु, जीवितं तु तावद्भवेदेव । तदन्तरा यद्ययमेव म्रियेत तदा न किंचिदन्याय्यम्॥४९॥

भाव प्रकाशिका

अतएव उपेक्षा रूप दोष को दूर करने के लिए मैं ऐसा करता हूँ इस बात को **प्रदाय० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । **मृत्यवे** अर्थात् कंस को हो सकता है यह भी उचित न हो इस तरह की आशङ्का करके वे **सुता० इत्यादि** उतरार्द्ध कहते हैं । जब तक इसके गर्भ से मेरे पुत्र होंगे, तब तक चाहे जो हो जब तक यह जीवित रहेगी ही । उसके बीच यदि कंस ही मर जाता है तो फिर कोई भी अनर्थ नहीं होगा ॥४९॥

विपर्ययो वा किं न स्याद्गतिर्धातुर्दुरत्यया । उपस्थितो निवर्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥५०॥

अन्वयः— वा विपर्ययः किं न स्यात् धातुः गतिः दुरत्यया, उपस्थितः निवर्तेत निवृत्तः पुनः आपतेत् ॥५०॥

अनुवाद— यह भी सम्भव है कि उल्टा ही हो जाए । मेरा पुत्र ही इसको मार दे, क्योंकि विधाता के विधान को पार पाना कठिन है । मृत्यु सामने आकर भी टल जाती है और टली हुई भी लौट आती हैं ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

यदि च सुता भविष्यन्ति न चायं म्रियेत तदा मत्पुत्रादेवास्य मरणमिति विपर्यया वा किं न स्यात् । ननु प्रौढस्य कंसस्य तव बालकात्कथं मृत्युः स्यात्तत्राह- गतिरिति । धातुः 'अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता' इत्युक्तवतः । अत इदानीमपत्यार्पणप्रतिज्ञैव मन्त्रः । तथा सति उपस्थितो मृत्युरयं तावन्निवर्तेत । निवृतः पुनः कालान्तरे आपत्तेच्चेतदा नापराधो ममेत्यर्थः । अथवास्य मत्पुत्रादुपस्थितो मृत्युरस्य वधाय निवर्तेत स पुनरनेन सन्मन्त्रेण भवेदेवेति। यद्वा गतिर्धातुर्दुरत्ययेत्येतस्य प्रपञ्च उपस्थित इति॥५०॥

भाव प्रकाशिका

यदि मेरे पुत्र हों और इसकी मृत्यु न हो तो; हो सकता है कि मेरा पुत्र ही इसको मार दे यह भी सम्भव है । यदि कहें कि प्रौढ कंस की तुम्हारे बालकों से मृत्यु कैसे सम्भव है ? इस पर कहते हैं **गतिधातुर्दुरत्यया**

विधाता के विधान का पार पाना कठिन है । विधाता ने कहा है इसका आठवाँ गर्भ तुम्हें मारेगा । अतएव इस समय पुत्र समर्पण की प्रतिज्ञा ही उपाय है । ऐसा करने से इसकी उपस्थित मृत्यु टल जायेगी । टली हुई मृत्यु भी यदि लौट आये तो उसमें मेरा कोई दोष नहीं । अथवा मेरे पुत्र से उपस्थित इसकी मृत्यु इसके वध से ही तो भी यह अच्छा उपाय होगा ही । अथवा **गतिर्धातुर्दुरत्यया** इस सूक्ति का उपस्थित इत्यादि विस्तार है ॥५०॥

अग्नेर्यथा दारुवियोगयोगयोरदृष्टतोऽन्यत्र निमित्तमस्ति ।
एवं हि जन्तोरपि दुर्विभाव्यः शरीरसंयोगवियोगहेतुः ॥५१॥

अन्वयः— यथा अग्नेः दारुवियोगयोगयोः अदृष्टतः अन्यत् निमितं नास्ति । एवं हि जन्तोः अपिसंयोगवियोग हेतुः दुर्विभाव्यः ॥५१॥

अनुवाद— जिस तरह वन में लगी हुई आग के वृक्षों से होने वाले संयोग और वियोग का कारण अदृष्ट के अतिरिक्त दूसरा नहीं है । देखा जाता है कि नजदीक का वृक्ष बच जाता है और दूर का वृक्ष जल जाता है। उसीतरह से प्राणी का कौन सा शरीर बना रहेगा और कौन विनष्ट हो जायेगा इसको कोई नहीं जान पाता है ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

प्राणिनामदृष्टं चदुर्वितर्क्यमिति सदृष्टान्तमाह–अग्नेरिति । वने वृक्षान्प्रदहन्नग्निः संनिहितानपि वृक्षान्परित्यज्य कदाचिद्दूरस्थानपि दहति ग्रामे गृहान्वा, नह्यस्य प्राण्यदृष्टव्यतिरेकेण किंचिन्नियामकमस्ति यथा, एवं जन्तोर्जन्ममरणयोरपि हेतुर्दुर्विभाव्योऽचिन्त्यः ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

प्राणियों के अदृष्ट को जान पाना अत्यन्त कठिन है इसी बात को **अग्नेर्यथा० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । वन में वृक्षों को जलाने वाली वनाग्नि नजदीक के भी वृक्षों को छोड़कर दूर के वृक्षों को जला देती है । अथवा गाँव में लगी हुई अग्नि नजदीक के गृह को छोड़कर दूरस्थ घर को जला देती है, यह देखा जाता है । इसमें प्राणियों के अदृष्ट से भिन्न कोई दूसरा नियामक नहीं है । इसी तरह से जीव के जन्म और मृत्यु का भी कारण क्या है ? यह विषय अचिन्त्य है ॥५१॥

एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्शनम् । पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुरः सरम् ॥५२॥

अन्वयः— एवं विमृश्य शौरि बहुमानपुरस्सरम् यावदात्मनिदर्शनम् तं पापं पूजयामास ॥५२॥

अनुवाद— इस प्रकार से विचार करके वसुदेवजी अत्यन्त सम्मान पूर्वक अपनी बुद्धि के अनुसार उस पापी कंस की बहुत अधिक प्रशंसा किए ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

यावदात्मनिदर्शनं स्वप्रज्ञावधि विचार्य ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

जहाँ तक अपनी बुद्धि चली वहाँ तक विचार करके ॥५२॥

प्रसन्नवदनाम्भोजो नृशंसं निरपत्रपम् । मनसा दूयमानेन विहसन्निदमब्रवीत् ॥५३॥

अन्वयः— प्रसन्नवदनाम्भोजः दूयमानेन मनसा नृशंसं निरपत्रपम् विहसन् इदम् अब्रवीत् ॥५३॥

अनुवाद— कंस के विश्वास के लिए अपना मुख कमल प्रसन्न कर दुःखी मन से उस क्रूर और निर्लज्जा कंस से हँसते हुए वसुदेवजी ने कहा ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

तस्य विश्वासाय विकसितमुखाम्भोजो विहसन्नब्रवीत् ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

कंस के विश्वास के लिए प्रसन्नमुख तथा हँसते हुए वसुदेवजी ने कंस से कहा ।।५३।।

वसुदेव उवाच

न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद्वै साहाशरीरवाक् । पुत्रान्समर्पयिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ।।५४।।

अन्वयः— सौम्य ! अस्याः ते भयं नहि आस्ते यद्वैसा अशरीर वाक् आह । यतः ते भयम् उत्थितम् अस्याः पुत्रान् समर्पयिष्ये ।।५४।।

वसुदेवजी ने कहा

अनुवाद— सौम्य आपको देवकी से तो कोई भय है नहीं, जैसा कि आकाशवाणी ने कहा है- इसके पुत्रों से आपको भय है तो मैं इसके पुत्रों को आपको समर्पित कर दूँगा ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

यद्यथा अशरीरिणी वागाह तथा हि निश्चितमस्याः सकाशात्ते भयं नास्ति । यतो येभ्यः पुत्रेभ्यस्ते भयमुत्थितम् । अष्टमो हन्तेत्युक्तेऽन्योन्यापेक्षया सर्वेऽप्यष्टमा भवेयुरित्यद्भूतं तेनास्याः पुत्रान्यमर्पयिष्ये ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

जैसा कि आकाशवाणी ने कहा है उसके अनुसार आपको देवकी से कोई भय नहीं है । क्योंकि इसके पुत्रों से आपको भय है । आकाशवाणी ने कहा है कि आठवाँ पुत्र मारेगा किन्तु एक की अपेक्षा सब आठवाँ हो सकते हैं अतएव इसके सभी पुत्रों को समर्पित कर दूँगा ।।५४।।

श्रीशुक उवाच

स्वसुर्वधान्निववृते कंसस्तद्वाक्यसारवित् । वसुदेवोऽपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशद्गृहम् ।।५५।।

अन्वयः— तद्वाक्यसारवित् कंसः स्वसुः वधात् निववृते वसुदेवः अपि प्रीतः तं प्रशस्य गृहम् प्राविशत् ।।५५।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— वसुदेवजी के वाक्य सत्य होते है, इस बात को जानने वाले कंस ने अपने बहिन के वध के हठ को छोड़ दिया । प्रसन्न वसुदेवजी भी उसकी प्रशंसा किए और अपने घर चले गये ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

निववृते निवृत्तः । तद्वाक्ये सार उपपत्तिस्तद्वित् ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

निववृते छोड़ दिया । क्योंकि वह वसुदेवजी की बातों की सत्यता को जानता था ।।५५।।

अथ काल उपावृते देवकी सर्वदेवता । पुत्रान्प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम् ।।५६।।

अन्वयः— अथ काले उपावृत्ते सर्वदेवता देवकी अनुवत्सरम् अष्टौ पुत्रान् कन्यां चैव प्रसषुवे ।।५६।।

अनुवाद— समय आने पर सर्वदेवमयी देवकी ने प्रत्येक वर्ष एक-एक करके आठ पुत्रों और एक कन्या को जन्म दिया ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

प्रसूतिकाले प्राप्ते । सर्वः सर्वात्मा भगवानेव देवता यस्याः सा, तथा सर्वदेवतामयीति वा भगवदाश्रयत्वात् ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

प्रसव की बेला आने पर श्रीभगवान् को ही देवता मानने वाली देवकी अथवा भगवदाश्रित सर्वदेवतामयी देवकी ।।५६।।

कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः । अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः ।।५७।।

अन्वयः— अनृतात् अतिविह्वलः आनकदुन्दुभिः प्रथमजं कीर्तिमन्तं अति कृछ्रात् कंसाय अर्पयामास ।।५७।।

अनुवाद— मृषा भाषण से अत्यन्त डरने वाले वसुदेवजी अपने प्रथम उत्पन्न कीर्तिमान् नामक पुत्र को अत्यन्त कष्ट पूर्वक समर्पित किए ।।५७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५७।।

किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् । किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं कि धृतात्मनाम् ।।५८।।

अन्वयः— साधूनां किं नु दुःसहम्, विदुषां किम् अपेक्षितम्, कदर्याणां किमकार्यम् धृतात्मनाम् किं दुस्त्यजम्।।५८।।

अनुवाद— परीक्षित् सत्यसन्ध पुरुष सब कुछ सह लेते हैं, ज्ञानी पुरुष को किसी की भी अपेक्षा नहीं होती है । नीच पुरुष बुरा से भी बुरा काम कर सकते हैं और जितेन्द्रिय पुरुष सब कुछ त्याग सकते हैं ।।५८।।

भावार्थ दीपिका

मृत्यवे पुत्रं कथमर्पितवानित्यपेक्षायामाह-किं दुःसहमिति । साधूनां सत्यसन्धानाम् । पुत्रलालनसुखापेक्षा कथं त्यक्तेत्यत आह-विदुषामिति । भगवानेव तत्त्वं नान्यदिति जानतामित्यर्थः । ननु स्वयं नीते सति कंसो बालं न हन्यादिति मत्त्वा नीतवानिति किं न स्यादिति नेत्याह-किमकार्यमिति । ननु देवकी कथं पुत्रं तत्याजेत्य आह-दुस्त्यजमिति । चित्ते धृत आत्मा हरिर्यैस्तेषाम्।।५८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि वसुदेवजी अपने पुत्र को मृत्यु रूप कंस को कैसे समर्पित कर दिए ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर **किं दुःसहम् इत्यादि** श्लोक कहते हैं । साधूनाम् अर्थात् सत्यवक्ता पुरुषों के लिए । पुत्र का पालन जन्य सुख की अपेक्षा उसका क्यों त्याग किए इस पर कहते हैं । **विदुषम् इत्यादि** श्रीभगवान् ही तत्त्व है उनसे भिन्न सब कुछ मिथ्या है इस बात को जानने वाले को किसी की अपेक्षा नहीं होती है । जब वसुदेवजी स्वयं ला दिए तो उसे कंस को नहीं मारना चाहिए । तो इस पर कहते हैं **किमकार्यम् इत्यादि** नीच पुरुष के लिए कुछ भी अकरणीय नहीं होता । वे बड़ा से बड़ा पाप कर सकते हैं । प्रश्न होता है कि देवकी उस पुत्र को क्यों दे दी इस पर कहते है, **दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम्** जिन लोगों ने अपने चित्त में श्रीहरि को धारण कर लिया है उनलोगों के लिए दुस्त्यज कुछ भी नहीं है ।।५८।।

दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितम् । कंसस्तुष्टमना राजन्प्रहसन्निदमब्रवीत् ।।५९।।

अन्वयः— राजन् शौरेः तत् समत्वं सत्ये व्यवस्थितिम् च दृष्ट्वा तुष्टमनः कंसः प्रहसन् इदम् अब्रवीत् ।।५९।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् वसुदेवजी की उस समता बुद्धि को तथा सत्य में पूर्ण निष्ठा को देखकर कंस बहुत प्रसन्न हुआ और हँसकर उसने कहा ।।५९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५९।।

प्रतियातु कुमारोऽयं न ह्यस्मादस्ति मे भयम् । अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे विहितः किल ।।६०।।

अन्वयः— अयं कुमारः प्रतियातु अस्मात् मे भयं नहि युवयोः अष्टमात् गर्भात् मे मृत्युः विहितः किल ।।६०।।

अनुवाद— आप इस बालक को ले जायँ, इससे मुझको भय नहीं है। आप दोनों के आठवें गर्भ से मेरी मृत्यु विहित है ।।६०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६०।।

तथेति सुतमादाय ययावानकदुन्दुभिः । नाभ्यनन्दत तद्वाक्यमसतोऽविजितात्मनः ।।६१।।

अन्वयः— तथेति सुतम् आदाय आनकदुन्दुभि ययौ । असतः अविजितात्मनः तद्वाक्यम् न अभ्यनन्दत ।।६१।।

अनुवाद— ठीक है, यह कहकर वसुदेवजी अपने उस पुत्र को लेकर चले गये किन्तु वे उस दुष्ट और अजितेन्द्रिय की बात को बहुत अच्छा नहीं समझे। वे जानते थे कि अजितेन्द्रिय कंस कभी भी बदल सकता है।।६१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६१।।

नन्दाद्या ये व्रजे गोपा याश्चामीषां च योषितः । वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः ।।६२।।
सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत । ज्ञातयो बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ।।६३।।
एतत्कंसाय भगवान् शशंसाभ्येत्य नारदः । भूमेर्भारायमाणानां दैत्यानां च बधोद्यमम् ।।६४।।

अन्वयः— नन्दाद्याः ये व्रजे गोपाः अमीषां याः च स्त्रियः वसुदेवाद्याः वृष्णयः देवक्याद्याः यदुस्त्रियः, उभयोःअपि ज्ञातयः सुहृदः ये च कंसम् सर्वे वै देवताप्रायाः । भगवान् नारदः कंसम् अभ्येत्य शशंस भूमेः भारायमाणानां दैत्यानां च वधोद्यमः क्रियत इति शेषः ।।६२-६४।।

अनुवाद— हे परीक्षित् ! नारदजी कंस के पास आकर उससे कहे कि व्रज में रहने वाले जो नन्द आदि गोप है उनकी स्त्रियाँ, वसुदेव इत्यादि वृष्णिवंशी, तथा देवकी आदि यदुवंशियों की स्त्रियाँ, उन दोनों के बन्धु बान्धव सजातीय, और सगे संबन्धी ये सबके सब देवता हैं। इस समय जो तुम्हारी सेवा कर रहे हैं वे भी देवता ही हैं। दैत्यों के कारण पृथिवी पर भार बढ़ गया है अतएव देवताओं की ओर से दैत्यों के विनाश के लिए उनके वध की तैयारी की जा रही है ।।६२-६४।।

भावार्थ दीपिका

कंसस्य शान्तिर्देवकार्यानुगुणा न भवतीति नारदस्य प्रत्यवस्थानं तदाह-नन्दाद्या इत्यादित्रयेण । उभयोर्वसुदेवनन्दकुलयोः। वधोद्यमं देवकृतमिति शेषः ।।६२-६४।।

भाव प्रकाशिका

कंस की शान्ति देवताओं के कार्य के अनुकूल नहीं है इसीलिए नारदजी कंस के पास आये। उन्होंने **नन्दाद्याः इत्यादि** तीन श्लोको से इसी बात को कहा है। देवता दैत्यों के वध की तैयारी कर रहे हैं ।।६२-६४।।

ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून्मत्वा सुरानिति । देवक्या गर्भसंभूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ।।६५।।

अन्वयः— ऋषेः विनिर्गमे कंसः यदून् सुरान् इति मत्त्वा देवक्याः गर्भसंभूतं स्ववधं प्रति विष्णुं च मत्त्वा ।।६५।।

अनुवाद— नारदजी के चले जाने पर कंस ने मान लिया कि सभी यदुवंशी देवता हैं और मेरा वध करने के लिए देवकी के गर्भ से विष्णु उत्पन्न होने वाले हैं ।।६५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६५।।

देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैर्गृहे । जातं जातमहन्पुत्रं तयोरजनशङ्कया ।।६६।।

अन्वयः— देवकीं वसुदेवं च गृहे निगडै निगृह्य तयोः जातं जातं पुत्रं अजनशङ्कया अहन् ।।६६।।

अनुवाद— उसने देवकी और वसुदेव को हथकड़ी और बेड़ी में जकड़कर जेल में डाल दिया। और उन दोनों को जो-जो पुत्र होते गये उन सबों को वह मारता गया। उसको इस बात की शङ्का बनी रहती थीं कि किसी पुत्र के रूप में विष्णु न आ जायँ ॥६६॥

भावार्थ दीपिका

निगडैः शृङ्खलैः। अजनो विष्णुस्तच्छङ्कया ॥६६॥

भाव प्रकाशिका

निगडैः हथकड़ी वेणी के द्वारा अजनशङ्कया अर्थात् विष्णु की शङ्का से ॥६६॥

मातरं पितरं भ्रातॄन्सर्वांश्च सुहृदस्तथा। घ्नन्ति ह्यसुतृषो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥६७॥

अन्वयः— भुवि प्रायशः हि असुतृषः लुब्धाः राजानः मातरं, पितरं भ्रातॄन् तथा सर्वान् सुहृदश्चः घ्नन्ति ॥६७॥

अनुवाद— संसार में प्रायः यह देखा जाता है कि अपने प्राणों के लोभी राजागण, माता-पिता, भाई तथा अपने सगे सम्बन्धियों को भी मरवा देते हैं ॥६७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६७॥

आत्मानमिह संजातं जानन्प्राग्विष्णुना हतम्। महासुरं कालनेमिं यदुभिः स व्यरुध्यत ॥६८॥

अन्वयः— इह आत्मानं महासुरं कालनेमिं संजातं प्राक् विष्णुना हतम् जानन् सः यदुभिः। व्यरूध्यत ॥६८॥

अनुवाद— कंस इस बात को जानता था कि मैं पूर्वजन्म में कालनेमि नामक महा असुर था और विष्णु ने मुझे मार दिया था अतएव उसने यदुवंशियों से विरोध ठान लिया ॥६८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६८॥

उग्रसेनं च पितरं यदुभोजान्धकाधिपम्। स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान्महाबलः ॥६९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे श्रीकृष्णावतारोपक्रमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अन्वयः— महाबलः यदुभोजान्धकाधिपं पितरं उग्रसेनं च निगृह्य स्वयं शूरसेनान् बुभुजे ॥६९॥

अनुवाद— महाबलवान् कंस यदु, भोज तथा अन्धक वंश के अधिनायक और अपने पिता उग्रसेन को बन्दी बना लिया और शूरसेन देश का राजा बनकर स्वयम् उसका प्रशासन करने लगा ॥६९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के श्रीकृष्णावतारोपक्रम नामक प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां प्रथमोऽधयायः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१॥

* * *

द्वितीय अध्याय

श्रीभगवान् का गर्भप्रवेश और देवताओं द्वारा गर्भस्तुति

श्रीशुक उवाच

प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः । मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥१॥
अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः । यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥२॥

अन्वयः— मागधसंश्रयः बली प्रलम्ब-बक-चाणूर-तृणावर्त-महाशनैः, मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः अन्यैः च असुर भूपालैः बाणभौमादिभिः युतः यदूनां कदनं चक्रे ॥१-२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— मगध के राजा जरासंध की सहायता प्राप्त महाबलवान् कंस, प्रलम्बासुर, बकासुर, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशि, धेनुकासुर तथा दूसरे असुर राजाओं से बाणासुर, भौमासुर आदि के माध्यम से यदुवंशियों को नष्ट करने लगा ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

द्वितीये कंसघाताय देवक्या गर्भगो हरिः । ब्रह्मादिभिः स्तुतः सा च सान्त्वितेति निरूप्यते ॥

'यदुभिः स व्यरुध्यत' इत्युक्तं तमेव विरोधं प्रपञ्चयति त्वरया देवकीगर्भस्यान्यत्र संचारेण भगवतः प्रवेशं वक्तुम् प्रलम्बेत्यादिसार्धश्लोकत्रयेण । महाशनोऽघासुरः ॥१-२॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे अध्याय में इस बात का निरूपण किया गया है कि कंस को मारने के लिए श्रीभगवान् देवकी के गर्भ में प्रवेश कर गये ब्रह्मा आदि देवताओं ने श्रीभगवान् की स्तुति की और देवकी को सान्त्वना प्रदान किया। पीछे के अध्याय में कहा गया है कि कंस यदुवंशियों से विरोध करने लगा, इसी का विस्तार इन दोनों श्लोकों से किया गया है । शीघ्रता से देवकीजी के गर्भ से अन्यत्र संचरण के द्वारा श्रीभगवान् के प्रवेश को बतलाने के लिए **प्रलम्ब इत्यादि** साढ़े तीन श्लोकों के द्वारा वर्णन किया गया है । **महाशनः** शब्द से अघासुर को कहा गया है ॥१-२॥

ते पीडिता निविविशुः कुरुपञ्चालकेकयान् । शाल्वान्विदर्भान्निषधान्विदेहान्कोसलानपि ॥३॥

अन्वयः— पीडिता ते कुरुपञ्चाल शाल्वान् विदर्भान् निषधान् विदेहान् कोसलान् अपि निविविशुः ॥३॥

अनुवाद— कंस के भय से भयभीत यदुवंशी कुरु, पंचाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह तथा कोसल देश में जाकर बस गये ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

एके तमनुरुन्धाना ज्ञातयः पर्युपासते । हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥४॥
सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते । गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धनः ॥५॥

अन्वयः— एके ज्ञातयः अनुरुन्धाना तम् पर्युपासते, औग्रसेनिना देवक्याः षट्सु बालेषु हतेषु वैष्णवं धाम यम् अनन्तं प्रचक्षते देवक्याः हर्षशोकविवर्धनः सप्तमः गर्भः बभूव ॥४-५॥

अनुवाद— कुछ यदुवंशी उसी का अनुसरण करते हुये कंस की ही सेवा में लगे रहे । जब कंस ने देवकी के छह गर्भों (बालको) को मार दिया तब देवकी के सातवें गर्भ के रूप में भगवान् के अंश स्वरूप शेषजी जिनको

अनन्त भी कहते हैं, वे आये । उनके गर्भ में आने से देवकीजी को स्वाभाविक रूप से हर्ष हुआ किन्तु इस डर से कि कंस कहीं इनको भी न मार दे उनका शोक भी बढ़ गया ।।४-५।।

भावार्थ दीपिका

अनुरुन्धाना अनुवर्तमानाः । धाम कला तदेव सप्तमो गर्भो वभूव । किं तद्धामेत्यत आह-यमनन्तमिति । हर्षशोकविवर्धनः। आनन्दरूपस्यावतीर्णत्वाद्धर्षः पूर्वगर्भसाधारणदृष्ट्या शोक इति ।।४-५।।

भाव प्रकाशिका

धाम अर्थात् कला (अंश) वही देवकीजी का सतवाँ गर्भ हुआ । श्रीभगवान् का वह धाम क्या है ? तो इस पर कहते हैं जिनको अनन्त शव्द से अभिहित किया जाता है । आनन्द स्वरूप से अवतीर्ण होने से देवकीजी को हर्ष हुआ और पहले के गर्भों के ही समान सोचकर देवकीजी को शोक हुआ ।।४-५।।

भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् । यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ।।६।।

अन्वयः— विश्वात्मा भगवान् अपि निजनाथानाम् यदूनां कंसजं भयं विदित्वा योगमायां समादिशत् ।।६।।

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् की आत्मा श्रीभगवान् भी, श्रीभगवान् को ही अपना स्वामी मानने वाले यदुवंशियों को कंस से होने वाले भय को जानकर अपनी योगमाया को आदेश दिए ।।६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६।।

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलंकृतम् । रोहिणी वसुदेवस्य भार्यास्ते नन्दगोकुले ।।
अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ।।७।।

अन्वयः— देवि ! भद्रे गोपगोभिरलङ्कृतं व्रजं गच्छ, वसुदेवस्य भार्या रोहिणी नन्दगोकुले आस्ते । अन्याः च कंस संविग्ना विवरेषु हि बसन्ति ।।७।।

अनुवाद— हे देवि कल्याणी ! तुम गोपो तथा गौओं से अलंकृत व्रज में जाओ । वसुदेवजी की पत्नी रोहिणी नन्दगोकुल में रहती है । उनकी दूसरी पत्नियाँ कंस के भय से किसी गुप्त स्थान में रहती हैं ।।७।।

भावार्थ दीपिका

ननु सा गोकुले किमित्यास्तेऽत आह-अन्याश्चेति । न केवलं सैवान्या अपीति । विवरेष्वलक्ष्यस्थानेषु ।।७।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि रोहिणी गोकुल में क्यों रहती हैं ? इस पर श्रीभगवान् ने कहा केवल वही नहीं उनकी दूसरी पत्नियाँ किसी गुप्त स्थान में रहती हैं ।।७।।

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् । तत्संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय ।।८।।

अन्वयः— देवक्याः जठरे मामकम् शेषाख्यं धाम गर्भं तत्संनिकृष्य रोहिण्याः उदरे संनिवेशय ।।८।।

अनुवाद— देवकी के उदर में मेरा शेष नामक तेज गर्भ विद्यमान है । उसको खींचकर तुम रोहिणी के गर्भ में पहुँचा दो ।।८।।

भावार्थ दीपिका

जठरे सन्तम् । ननु गर्भ आकृष्यमाणः कथं जीवेदित्यत आह-मामकं धामेति । तततः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

उदर में विद्यमान् यदि कहो कि गर्भ के आकर्षित करने पर वह जीवेगा कैसे ? इस पर भगवान् ने कहा वह मेरा तेज है । अतएव उसको वहाँ से आकर्षित करके रोहिणी गर्भ में पहुँचा दो ।।८।।

अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे । प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि ।।९।।

अन्वयः— शुभे अथ अहम् अंशभागेन देवक्याः पुत्रतां प्राप्स्यामि त्वं नन्दपत्न्यां यशोदायां भविष्यसि ।।९।।

अनुवाद— कल्याणी उसके पश्चात् मैं समस्त अपने ज्ञान बल आदि अंशो के साथ देवकी का पुत्र बनूँगा और तुम नन्दजी की पत्नी यशोदाजी के गर्भ से जन्म लोगी ।।९।।

भावार्थ दीपिका

किमर्थमेवं कार्यमित्यत आह-अथेति । अनन्तरमेवेत्यर्थः । अंशभागेनेति अंशैः शक्तिभिर्भजतेऽधितिष्ठति सर्वान्ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानित्यंशभागस्तेन । परिपूर्णेन रूपेणेत्यर्थः । यद्वा अंशैर्ज्ञानैश्वर्यबलादिभिर्जाजयति योजयति स्वीयानिति तथा तेनेति । यद्वा अंशेन पुरुषरूपेण मायाया भागो भजनमीक्षणं यस्य तेन । यद्वा अंशेन मायया गुणावतारादिरूपा भागा भेदा यस्य तेन । यद्वा अंशा एव मत्स्यकूर्मादिरूपा भजनीया नतु साक्षात्स्वरूपं यस्य तेन । यद्वा अंशैर्ज्ञानबलादिभिर्भजनमनुवर्तनं भक्तेषु यस्य तेन । सर्वथा परिपूर्णेन रूपेणेति विवक्षितम् । 'कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्' इत्युक्तत्वादिति । तां प्रोत्साहयति-त्वं यशोदायामिति त्र्यक्षरोनसार्धचतुष्टयेन ।।९।।

भाव प्रकाशिका

यदि पूछो कि ऐसा किस लिए करना है ? इस पर भगवान् **अथ० इत्यादि** श्लोक को कहे अर्थात् उसके पश्चात् ही अंश भागेन अर्थात् अंशों यानि शक्तियों के द्वारा श्रीभगवान् ब्रह्माजी से लेकर एक तृण पर्यन्त का नियमन करते हैं, अतएव वे अंशभाग हैं । उन परिपूर्ण रूप से अथवा ज्ञान, शक्ति, बल आदि से जो अपने भक्तों को संपन्न बना देते हैं, ऐसे मेरे द्वारा । अथवा अंश अर्थात् पुरुष रूप से माया को जो देखते हैं । ऐसे भगवान् के द्वारा अथवा माया के गुणावतार रूप भेद जिनके है उसके द्वारा । अथवा मत्स्य कूर्म इत्यादि रूप से जिनके अंश ही उपास्य हैं स्वरूप नहीं ऐसे मेरे द्वारा, अथवा जो ज्ञान बल इत्यादि के द्वारा भक्तों का अनुवर्तन करते हैं ऐसे मेरे द्वारा हर प्रकार से परिपूर्ण रूप से अर्थ यहाँ पर विवक्षित है । कहा भी गया है **कृष्णात्तु भगवान् स्वयम्** अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् ही हैं । उनके अंश नहीं है । योगमाया को प्रोत्साहित करते हुए श्रीभगवान् ने कहा तुम यशोदा के गर्भ से उत्पन्न होओगी । भगवान् योगमाया को तीन अक्षर कम साढ़े चार श्लोकों से प्रोत्साहित करते हैं यहाँ अंशभाग शब्द का श्रीधरस्वामी ने छह प्रकार से अर्थ किया है ।।९।।

अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम् । धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ।।१०।।

अन्वयः— सर्वकामवरप्रदाम् सर्वकामवरेश्वरीम त्वाम् मनुष्या धूपोपहारबलिभिः अर्चिष्यिन्ति ।।१०।।

अनुवाद— सभी कामनाओं को पूर्ण होने का वरदान देने वाली तथा सभी कामनाओं का वरदान देने वालों की स्वामिनी तुमको जानकर मनुष्य धूप उपहार और बलि के द्वारा तुम्हारी पूजा करेंगे ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

सर्वान्पुत्रादीन्कामन्ते ये तेषां वरामीश्वरीं श्रेष्ठं नियन्त्रीम् । अर्चकानां सर्वान्कामवरान्प्रददाति या ताम् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

सभी पुत्र इत्यादि को जो लोग प्राप्त करना चाहेंगे उनके वरदानों का नियमन करने वाली एवं अपना पूजन करने वालों की सभी कामनाओं की पूर्ति का वरदान देने वाली तुम्हारी लोग पूजा करेंगे ।।१०।।

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि। दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च॥११॥
कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च। माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च॥१२॥

अन्वयः— नरा भुवि स्थानानि कुर्वन्ति । दुर्गेति भद्रकालीति, विजया, वैष्णवीति च, कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यका इति च । माया नारायणी ईशानी, शारदा अम्बिका इति च नामधेयानि करिष्यन्ति ॥११-१२॥

अनुवाद— संसार में लोग तुम्हारा बहुत से स्थान बनायेंगे और दुर्गा, भद्रकाली, विजया वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका इत्यादि नामों से तुम्हें अभिहित करेंगे ॥११-१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११-१२॥

गर्भसङ्कर्षणात्तं वै प्राहुः सङ्कर्षणं भुवि । रामेति लोकरमणाद्बलं बलवदुच्छ्रयात् ॥१३॥

अन्वयः— गर्भसङ्कर्षणात् तं भुवि सङ्कर्षणं प्राहुः लोकरमणात् राम इति, वलवदुच्छ्रयात् बलम् ॥१३॥

अनुवाद— तुम्हारे द्वारा गर्भ का आकर्षण किए जाने के कारण उनका नाम संसार में सङ्कर्षण होगा, लोकरंजन के कारण उनको लोग राम कहेंगे, तथा बलवानों में श्रेष्ठ होने के कारण उनका नाम बलराम होगा ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

त्वद्विक्रमेण च तस्य व्यपदेशा भविष्यन्तीत्याह-गर्भसंकर्षणादित्यादिना । रामेति च संबोधनं करिष्यन्ति । त्वया संकृष्टेन तेन लोकस्य रमणाद्रत्युत्पादनात् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

तुम्हारे पराक्रम को लेकर उनके नाम होंगे । इस बात को भगवान् ने गर्भ सङ्कर्षणादित्यादि श्लोक से कहा है । उनको लोग राम शब्द से संबोधित करेंगे । तुम्हारे द्वारा गर्भ के आकृष्ट किए जाने के कारण उनका नाम सङ्कर्षण होगा । लोकरंजन करने के कारण उनका नाम राम होगा ॥१३॥

संदिष्टैव भगवता तथेत्योमिति तद्वचः । प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाकरोत् ॥१४॥

अन्वयः— भगवता एवं संदिष्टा तथेति ओम् इति च तद्वचः प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तथा अकरोत् ॥१४॥

अनुवाद— श्रीभगवन् के आदेश को प्राप्त कर योगमाया ने कहा जो आज्ञा इस तरह से कहकर उसने श्रीभगवान् की आज्ञा को शिरोधार्य करके उनकी परिक्रमा की और भूलोक में चली आयी तथा श्रीभगवान् ने जैसा कहा था वैसा ही उसने किया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तथेति पुनरप्योमित्यादरेण प्रतिगृह्य । गां पृथ्वीम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

पहले योगमाया ने कहा जो आज्ञा फिर श्रीभगवान् की आज्ञा के प्रति आदर विशेष के कारण उसने कहा ओम् । और भूलोक में चली गयी ॥१४॥

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया । अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥१५॥

अन्वयः— योगनिद्रया देवक्याः गर्भे रोहिणी प्रणीते पौराः अहो गर्भो विस्रंसितः इति विचुक्रुशुः ॥१५॥

अनुवाद— जब देवकीजी के गर्भ को योगमाया ने रोहिणीजी के उदर में स्थापित कर दिया तब नगरवासी लोग कहने लगे हाय उस बेचारी का गर्भस्राव हो गया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

विस्रंसितो विभ्रष्टो विस्रस्त इत्यर्थः । इति विचुक्रुशुर्नतु तद्विदुरित्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

गर्भ गिर गया । इस तरह से लोग चिल्लाने लगे न कि जाने ॥१५॥

भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयङ्करः । आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥१६॥

अन्वयः— भक्तानाम् भयङ्करः विश्वात्मा भगवान् अपि आनक दुन्दुभेः मनसि अंशांशेन आविवेश ॥१६॥

अनुवाद— श्रीभगवान् भक्तों को अभय बना देने वाले हैं तथा सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं । वे अपने सभी अंशों के साथ वसुदेवजी के मन में प्रकट हो गये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

मन आविवेश मनस्याविर्बभूव । जीवानामिव न धातुसंबन्ध इत्यर्थः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् वसुदेवजी के मन में प्रकट हो गये । जीवों के समान उनका धातु से सम्बन्ध नहीं हुआ ॥१६॥

स बिभ्रत्पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः । दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां संबभूव ह ॥१७॥

अन्वयः— पौरुषं धाम विभ्रत् सः रविः यथा भ्राजमानः भूतानां दुरासदः दुराधर्षः संबभूव ॥१७॥

अनुवाद— परमात्मा के तेज से सम्पन्न वसुदेवजी सूर्य के समान सुशोभित हुए वे सभी जीवों के लिए दुष्प्राप्य और अनभिभवनीय हो गये ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

धाम श्रीमूर्तिम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के मूर्तमान ऐश्वर्य ॥१७॥

ततो जन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी ।
दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथानन्दकरं मनस्तः ॥१८॥

अन्वयः— ततः जगन्मङ्गलम् अच्युतांशं शूरसुतेन समाहितं देवी दधार काष्ठा आनन्दकरं यथा सर्वात्मकम् आत्मभूतं मनस्तः दधारः ॥१८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् श्रीभगवान् उस ज्योतिर्मय अंश को जो सम्पूर्ण जगत् का मङ्गल करने वाला है वसुदेवजी के द्वारा आहित किए जाने पर देवी देवकी ने धारण किया । जिस तरह पूर्वदिशा सबों को आनन्दित करने वाले चन्द्रमा को धारण करती है, उसी तरह से देवकी देवी ने विशुद्ध मन से सर्वात्मक तथा सबों की आत्मा स्वरूप श्रीभगवान् को धारण किया ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

जगन्मङ्गलम् अर्थात् जगत् के मूर्तिमान मङ्गल स्वरूप, **अच्युतांशम्** अर्थात् श्रीभगवान् के सम्पूर्ण ऐश्वर्यादि रूप अंश विद्यमान थे उसको । अथवा अच्युत के अंश के समान अंश । भक्तों पर कृपा करने के लिए सीमित शरीर वाले श्रीभगवान् समाहितम् अर्थात् अच्छी तरह से आहित वेध अर्थात् ध्येय की दीक्षा पूर्वक आहित । देवी शुद्धसत्त्वस्वरूप वाली । सर्वात्मकम् अर्थात् सवों की आत्मा स्वरूप । अतएव अपने में पहले से ही अन्तर्यामी रूप से विद्यमान मनस्तः अर्थात् मन से ही दधार अर्थात् धारण की । इसके अनुरूप ही दृष्टान्त है- जिस तरह पूर्व दिशा जगदानन्दप्रद चन्द्रमा को धारण करती है, उसी तरह ॥१८॥

सा देवकी सर्वजगन्निवासनिवासभूता नितरां न रेजे ।
भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥१९॥

अन्वयः— सर्वजगन्निवास निवासभूता सा देवकी भोजेन्द्रगेहे रुद्धा आग्निशिखा इव ज्ञान खले सती सरस्वती यथा नितरां न रेजे ॥१९॥

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र आश्रय भगवान् श्रीनिवास का निवास स्थान बन गयी थी जिस तरह घड़े इत्यादि के भीतर स्थापित दीपक की शिखा नहीं प्रकाशित होती है, अथवा अपने पूर्ण विद्या दूसरों के नहीं देने वाले ज्ञानखल में पवित्र सरस्वती जिस तरह संसार में नहीं प्रकाशित होती है, उसी तरह से श्रीदेवकीजी कंस के गृह में सुशोभित नहीं होती थीं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

सर्वजगन्निवासस्य श्रीहरेर्निवासभूता सत्यपि नितरां सर्वजनाह्लादकतया न रेजे, किंतु स्वयमेवानन्दमन्वभवत् । यतः कंसस्य गृहे रुद्धाऽन्यैर्न दृश्यते । घटादिषु रुद्धाग्निशिखा दीपकलिकेव । तथा सती शोभमाना सरस्वती ज्ञान खले ज्ञानवञ्चके रुद्धा यथाऽन्येषामनुपकारिणी न राजते तद्वत् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि सम्पूर्ण जगत् के एक मात्र आश्रयस्थान (निवास स्थान) हैं उनका भी निवास स्थान बनी हुई देवकीजी सभी लोगों के आह्लादक रूप से नहीं सुशोभित होती थीं अपितु वे स्वयं ही उस आनन्द का अनुभव कर रही थीं । क्योंकि वे कंस के कैद खाने में कैद थीं । दूसरा कोई उनको देख भी नहीं पाता था । जिस तरह घट आदि में स्थापित दीपक की प्रभा चारो ओर नहीं प्रकाशित होती है, अथवा अपनी विद्या पूर्ण रूप से दूसरे को नहीं देने वाले ज्ञानखल की पवित्र सरस्वती सबों की उपकारिणी रूप से जैसे नहीं प्रकाशित होती है । उसी तरह देवकीजी भी नहीं प्रकाशित हो रही थीं ॥१९॥

तां वीक्ष्य कंसः प्रभयाऽजितान्तरां विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मितात् ।
आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी ॥२०॥

अन्वयः— शुचिस्मितात् प्रभया भवनं विरोचयन्तीं अजितान्तरांतां वीक्ष्य कंसः प्राह ध्रुवं एष मे प्राणहरः हरिः गुहांश्रितः यत् इयम् पुरा इदृशी न ॥२०॥

अनुवाद— पवित्र मुस्कान वाली, अपनी कान्ति से भवन को भी प्रकाशित करने वाली जिनके गर्भ में श्रीभगवान् विराजमान हो गये थे, उन देवकीजी को देखकर कंस ने कहा निश्चित रूप से मेरा प्राणापहार करने वाले श्रीहरि इस देवकी रूपी गुफा में प्रवेश कर गये हैं क्योंकि इसमें पहले ऐसी यह कभी नहीं दिखती थी ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

प्रभया भवनं विरोचयन्तीम् । अजितोऽन्तरा कुक्षिमध्ये यस्मात्ताम् । एष विरोचमानो ध्रुवं हरिरेव । यद्यस्मादीदृशीयं पुरा पूर्वं नासीत् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

अपनी कान्ति से भवन को प्रकाशित करने वाली देवकी को **अजितान्तराम्** जिनके गर्भ में श्रीहरि विराजमान थे । ये प्रकाशित होने वाले निश्चित रूप से श्रीहरि ही हैं । क्योंकि इससे पहले यह ऐसी कभी नहीं हुई ।।२०।।

किमद्य तस्मिन्करणीयमाशु मे यदर्थतन्त्रो न विहन्ति विक्रमम् ।
स्त्रियाः स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयं यशः श्रियं हन्त्यनुकालमायुः ।।२१।।

अन्वयः— अद्य तस्मिन् विषये मे आशु किं करणीयम्, यत् अर्थतन्त्रः विक्रमं न विहन्ति । स्त्रियाः स्वसुः गुरुमत्याः अयं वधः यशः श्रियम् अनुकालमायुः हन्ति ।।२१।।

अनुवाद— तो अब इसके विषय में मुझे शीघ्रातिशीघ्र क्या करना चाहिए क्योंकि वीर पुरुष स्वार्थ वश भी अपने पराक्रम को कलंकित नहीं करते है । एक तो यह स्त्री है, दूसरे बहिन है तीसरे गर्भवती है । इसको मारने से तो तत्काल मेरी कीर्ति लक्ष्मी और आयु नष्ट हो जायेगी ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

ननु सन्ति सामादाय उपायाः, नेति स्वयमेवाह । अयमर्थतन्त्रो देवकार्यप्रधानो विक्रमं न विहन्ति । मद्वधे पराक्रमं करिष्यत्येवेत्यर्थः । यद्वा तर्हीदानीमेवेयं हन्यतामिति विचिन्त्याह-अर्थतन्त्रोऽपि पुमान्स्वं विक्रमं न विहन्ति न नाशयन्ति । स्त्रीवधे तन्नाशः स्यादिति भावः । तदेवाह-स्त्रिया इति । गुरुमत्या गुर्विण्याः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि साम इत्यादि उपाय है, तो यह भी नहीं कहा जा सकता यह स्वयं कंस ने कहा क्योंकि ये श्रीहरि तो प्रधान रूप से देवताओं का कार्य करने वाले हैं । अतएव ये अपने पराक्रम का परित्याग नहीं कर सकते हैं । मुझे मारने के लिए ये अपना पराक्रम तो प्रकट करेंगे ही । अथवा इस देवकी को इसी समय मार दें क्या? इस तरह से विचार करके कंस ने कहा स्वार्थवश भी कोई वीर पुरुष अपने पराक्रम को कलंकित नहीं करता है । स्त्री का वध करने पर तो मेरे पराक्रम का नाश ही हो जायेगा । इसी बात को **स्त्रियाः इत्यादि** से कहा गया है । **गुरुमत्याः** अर्थात् गर्भिणी का ।।२१।।

ए एष जीवन्खलु संपरेतो वर्तेत योऽत्यन्तनृशंसितेन ।
देहे मृते तं मनुजाः शपन्ति गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम् ।।२२।।

अन्वयः— यः खलु अत्यन्तनृशंसितेन वर्तेत स एष जीवनखलु संपरेतः । देहे मृते तं मनुजाः शपन्ति तनुमानिनः अन्धंतमः ध्रुवम् गन्ता ।।२२।।

अनुवाद— जो मनुष्य अत्यन्त क्रूरता का व्यवहार करता है वह जीवित रहकर भी मरा हुआ है । क्योंकि उसके मर जाने पर लोग उसकी निन्दा करते है और वह देहाभिमानियों को प्राप्त होने वाले घोर नरक में अवश्य जाता है ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

किंच स एष जीवन्नपि मृतः स्यात् । नृशंसितेन क्रौर्येण यो वर्तेत तं जीवन्तमेव मनुजाः शपन्ति दुर्वाक्यैर्धिक्कुर्वन्ति। स च देहे मृते तनुमानिनः पापिनो नरकं गच्छति । अथवा शापप्रकारमेवाह-तनुमानिनोऽस्य देहे मृतेऽयं ध्रुवमधंतमो गमिष्यतीति।।२२।।

भाव प्रकाशिका

वह मनुष्य जीवित भी रहकर मरा हुआ ही है जो अत्यन्त क्रूरता का व्यवहार करता है, क्योंकि जीते ही जी लोग उसकी निन्दा करते हैं और मर जाने पर तो उसको देहाभिमानियों को प्राप्त होने वाले नरकादि लोकों की प्राप्ति अवश्य होती है ॥२२॥

इति घोरतमाद्भावात्संनिवृतः स्वयं प्रभुः । आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबन्धकृत् ॥२३॥

अन्वयः— स्वयं प्रभु इति घोरतमात् भावात् संनिवृतः । हरिवैरानुबन्धकृत् तज्जन्म प्रतीक्षन् आस्ते ॥२३॥

अनुवाद— कंस अपने आप में स्वतंत्र था वह देवकी को मारना चाहता तो मार सकता था किन्तु वह स्वयं इस अत्यन्त क्रूरता के विचार से विरत हो गया । अब वह श्रीहरि से वैर की भावना लिए हुए श्रीभगवान् के जन्म की प्रतीक्षा करने लगा ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

आसीनः संविशंस्तिष्ठन्भुञ्जानः पर्यटन्महीम् । चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत्तन्मयं जगत् ॥२४॥

अन्वयः— आसीनः संविशन्, तिष्ठन्, भुञ्जानः महीं पर्यटन् हृशीकेशं चिन्तयानः तन्मयं जगत् अपश्यत् ॥२४॥

अनुवाद— बैठे हुए, सोए हुए, ठहरे हुए, खाते हुए, पृथिवी पर घूमते हुए सर्वदा श्रीभगवान् का ही चिन्तन करता हुआ कंस सम्पूर्ण जगत् को परमात्मक रूप से देखता था ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

संविशन् शयानः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

संविशन् अर्थात् सोते समय ॥२४॥

ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः । देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥२५॥

अन्वयः— ब्रह्मा, भवश्च नारदादि मुनिभिः सानुचरैः देवैः साकं तत्र एत्य वृषणम् गीर्भिः ऐडयन् ॥२५॥

अनुवाद— ब्रह्माजी तथा शङ्करजी नारद आदि मुनियों तथा अनुचरों सहित देवों के साथ कंस के कैद खाने में आकर अपनी मधुर वाणियों से श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

रम्याभिर्गीर्भिर्वृषणं कामवर्षिणमैडयंस्तुष्टुवुः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

मनोज्ञवाणियों से श्रीभगवान् की वन्दना करते हुए स्तुति करने लगे ॥२५॥

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥२६॥

अन्वयः— हे प्रभो ! सत्यव्रतं त्रिसत्यं योनिं निहितं च सत्ये, सत्यस्य सत्यम् ऋतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥२६॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप सत्य सङ्कल्प हैं, आपकी प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन सत्य ही है, आप सृष्टि से पूर्व प्रलय के पश्चात् तथा वर्तमान इन तीनों कालों में सदैव वर्तमान रहने से त्रिसत्य हैं, आप सत्य शब्द वाच्य

पञ्च महाभूतों के कारण हैं, आप सत्य के भीतर अन्तर्यामी रूप से विद्यमान है । आप सत्य का नाश हो जाने पर भी पारमार्थिक होने के कारण बने ही रहते हैं । ऋत शब्द वाच्य सुनृत वाणी और समदर्शन ये दोनों आपके नेत्र हैं, इस तरह सत्य स्वरूप आपकी हमलोग शरणागति करते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिश्रुतं सत्यं कृतमिति हृष्टाः सन्तः सत्यत्वेनं प्रथमं स्तुवन्ति-सत्यव्रतमिति । सत्यं व्रतं सङ्कल्पो यस्य तम् । सत्यं परं श्रेष्ठं प्राप्तिसाधनं यस्मिंस्तम् । त्रिसत्यम् त्रिष्वपि कालेषु सृष्टेः पूर्वं प्रलयानन्तरं च स्थितिसमये च सत्यमव्यभिचारेण वर्तमानम् । तदेवाहुः-सत्यस्य योनिमिति । सच्छब्देन पृथिव्यप्तेजांसि, त्यच्छब्देन वाय्यवाकाशौ, एवं सच्च त्यच्च सत्त्वं भूतपञ्चकम् । 'तत्सत्यमित्याचक्षते' इति श्रुतेः । तस्य योनिं कारणम् । अनेन पूर्व वर्तमानतोक्ता । तथा सत्ये तस्मिन्नेव निहितमन्तर्यामितया स्थितम् । अनेन स्थितिसमयेऽपि सत्यत्वमुक्तम् । तथा सत्यस्य सत्यं तस्यैव सत्यस्य सत्यं पारमार्थिकं तन्नाशेऽप्यवशिष्माणरूपम् । अनेन प्रलयेऽप्यवधित्वेन सत्यत्वं दर्शितम् । एवं त्रिसत्यत्वमुपपादितम् । तथा ऋतसत्यनेत्रं ऋतं सूनृतावाणी, सत्यं समदर्शनम् । तथा भगवता व्याख्यास्यमानत्वात् । 'सत्यं च समदर्शनम् । ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकर्तिता' इति । तयोर्नेत्रं नयनसाधनं नेतारम्, प्रवर्तकमिति यावत् । एवं सर्वप्रकारेण सत्यात्मकं त्वां हे भगवन्, वयं शरणं प्रपन्नाः प्राप्ता इति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने जो प्रतिज्ञा की थी उसको सत्य कर दिया इसलिए देवगण श्रीभगवान् की स्तुति पहले सत्य रूप से करते हैं । वे कहते हैं कि हे भगवन् आप सत्यसङ्कल्प हैं यह सत्यव्रत शब्द का अर्थ है । **सत्यं परम्** अर्थात् आपकी प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन सत्य ही है, **त्रिसत्यं** अर्थात् आप सृष्टि के पूर्व और प्रलय के पश्चात् एवं वर्तमान में भी अव्यभिचरित रूप से सदा बने रहते हैं, इसी बात का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं- **सत्यस्ययोनिम्** अर्थात् आप सत् शब्द वाच्य पृथिवी जल और तेज तथा त्यत् शब्द वाच्य वायु और आकाश इस तरह पञ्च महाभूतों के कारण है, सत्य शब्द की व्युत्पत्ति है, **सच्च त्यच्च सत्यम्** अर्थात् पञ्च महाभूत । श्रुति भी कहती हैं- **'तत्सत्यमित्याचक्षते'** इस कथन के द्वारा श्रीभगवान् की सत्य शब्द वाच्य पञ्च महाभूतों की कारणता सिद्ध होती है । इस तरह से सृष्टि से पूर्व श्रीभगवान् की वर्तमानता बतलायी गयी है । **निहितं च सत्ये** का अर्थ है कि श्रीभगवान् सत्य शब्द वाच्य पञ्च भूतों में भी अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहते है । इसके द्वारा स्थिति के समय में भी परमात्मा के सत्यत्व को कहा गया है । **सत्यस्यसत्यम्** के द्वारा श्रीभगवान् की पारमार्थिकता बतलायी गयी है । क्योंकि जगत् का नाश हो जाने पर भी परमात्मा बने ही रहते है । इसके द्वारा प्रलयकाल में भी उनकी सत्यता बतलायी गयी है । इस तरह से श्रीभगवान् की त्रिकाल में सत्यता बतलायी गयी है । **ऋतसत्यनेत्रम्** सुनने में मनोहर लगने वाली वाणी को ऋत कहते हैं । सत्य समदर्शन को कहते हैं । अर्थात् सुनृतावाणी और समदर्शन ये ही दोनों श्रीभगवान् के नेत्र हैं । इसी तरह से ऋत और सत्य की श्रीभगवान् व्याख्या करेंगे । उन्होंने कहा भी है **'सत्यं समदर्शनं। ऋतं च सुनृतावाणी कविभिः परिकीर्तितः'** अर्थात् तत्वज्ञ पुरुषों ने समदर्शन को ही सत्य और सुनृतावाणी को ही ऋत कहा है । श्रीभगवान् ऋत और सत्य दोनों के प्रवर्तक है । इस तरह से हर प्रकार से सत्यात्मक आपके शरण में हमलोग आये हैं ॥२६॥

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा ।
सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥२७॥

अन्वयः— असौ आदिवृक्षः एकायनः द्विफलः त्रिमूलः, चतूरसः, पञ्चविधः षडात्मा, सप्तत्वक् अष्टविटपः नवाक्षः दशच्छदी, द्विखगः ॥२७॥

अनुवाद— इस शरीर रूपी वृक्ष की एक मात्र प्रकृति ही आश्रय है, इसके सुख और दु:ख दो प्रकार के फल है। इसके मूल सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीन है, इसके अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ये चार रस है, पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान के प्रकार हैं, पैदा होना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना और नष्ट हो जाना ये छह उर्भियाँ ही इसका स्वभाव हैं इस शरीर रूपी वृक्ष के सात छाल है- रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र: इसके आठ विटप हैं (विस्तृत शखायें हैं) पञ्च महाभूत और मन, बुद्धि तथा अहङ्कार, इस शरीर रूपी वृक्ष के मुख आदि नवछिद्र हैं, प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय ये दस प्राण ही इस शरीर वृक्ष के दस पत्ते हैं, इस वृक्ष पर रहने वाले दो पक्षी हैं जीवात्मा और परमात्मा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

ननु भवन्तोऽपि लोकेश्वरा मत्तुल्या एव किमिति मां शरणं प्रपद्यन्ते, नैवं वाच्यम्, त्वमेवैक: सर्वेश्वर:, सर्वसृष्ट्यादिकारणत्वात्, वयं तु त्वदेकरशरणा एव, लोकादिरूपं द्वैतं च सर्वं त्वद्व्यतिरेकेण नास्तीति वक्तुं द्वैतप्रपञ्चं वृक्षरूपकेण निरूपयन्ति। एकायन: इति। असौ प्रपञ्च आदिवृक्ष: वृश्च्यत इति वृक्ष: समष्टिव्यष्टिदेहरूप:। कथंभूत: एकायन: एका प्रकृतिरयनमाश्रयो यस्य स:। द्वे सुखदु:खे फले यस्य स:। त्रयो गुणा मूलानि यस्य स:। चतूरसो धर्मार्थकाममोक्षाश्चत्वारो रसा यस्य स:। पञ्चेन्द्रियाणि विधा ज्ञानप्रकारा यस्य स:। षडूर्मय: कोशा वा आत्मन: स्वभावा यस्य स:। सप्त धातवस्त्वचो यस्य। पञ्च भूतानि मनोबुद्ध्यहङ्काराश्चेत्यष्टौ विटपा: शाखाविस्तारा यस्य स:। नव द्वाराण्यक्षाश्छिद्राणि यस्य स:। दश प्राणाश्छदा: पत्राणि विद्यन्ते यस्य स दशच्छदी। द्वौ जीवश्वरौ खगौ यस्मिन्स द्विखग: ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि आप लोग भी लोकेश्वर होने के कारण मेरे समान ही है, अतएव आपलोग किसलिए मेरे शरणागत हो रहे हैं तो ऐसा नहीं कहा जा सकता है। आप ही केवल सर्वेश्वर हैं, क्योंकि आप सम्पूर्ण सृष्टि के एक मात्र कारण हैं। हमलोगों के एकमात्र रक्षक आप ही हैं। लोकादिरूप द्वैत (भेद) आपसे भिन्न होने के कारण नहीं हैं। इस बात को बतलाने के लिए द्वैत प्रपञ्च को वृक्षरूपक के द्वारा निरूपित **एकायन इत्यादि** श्लोक से करते है। यह प्रपञ्च ही आदि वृक्ष, यहाँ समाष्टि व्यष्टि देह रूप है। जो विनष्ट होता है उसे वृक्ष कहते है। **एकायन:** इस वृक्ष का एक मात्र प्रकृति ही आश्रय है, इसके सुख और दु:ख दो फल है। सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीनों इस वृक्ष के जड़े हैं, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये ही इस वृक्ष के रस हैं, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ ही इसके ज्ञान के प्रकार हैं, रहना, पैदा होना, बढ़ना, बदलना, घटना और विनष्ट होना ये छह उर्मियाँ अथवा स्नायु, अस्थि, मज्जा, शुक्र, चमड़ा और मांस ये छह कोश ही इस वृक्ष के स्वभाव है। रस, रुधिर, मांस, भेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात धातुएँ ही इसके छाल है, पञ्चमहाभूत मन, बुद्धि और अहङ्कार ये आठ इस वृक्ष की मोटि डालियाँ हैं। शरीर के मुख आदि नव छिद्र ही इसके कोटर हैं, प्राण अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंञ्जय ये दस प्राण ही इसके पत्ते हैं। इस शरीर पर रहने वाले दो पक्षी हैं जीव और ईश्वर ॥२७॥

त्वमेक एवास्य सत: प्रसूतिस्त्वं संनिधानं त्वमनुग्रहश्च ।
त्वन्मायया संवृतचेसस्त्वां पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥२८॥

अन्वय:— अस्य सत: एक: त्वमेव प्रसूतिं त्वं संनिधानं त्वमनुगह: च, ये त्वन्मायया संवृत चेतस: ते त्वामेव नाना पश्यन्ति, विपश्चित: न ॥२८॥

अनुवाद— इस संसार रूपी वृक्ष की उत्पत्ति स्थान एकमात्र आप ही हैं। यह प्रपञ्च आपके ही आधार पर टिका हुआ है, तथा आपकी ही कृपा से यह संरक्षित है। आपकी माया से जिन लोगों की बुद्धि मोहित हो चुकी

हैं वे लोग आपको ही ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप में देखते हैं। जो ज्ञानी लोग हैं वे तो एक मात्र आपको ही देखते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

एवंरूपस्य संसारवृक्षस्य सतः कार्यस्य त्वमेक एव प्रसूतिः प्रकर्षेण सूतिर्जन्म यस्मात्स त्वम्। कारणमित्यर्थः। त्वमेव सन्निधानं सम्यङ्निधीयतेऽस्मिन्निति लयस्थानम्। त्वमेवानुग्रहश्च अनुगृह्णातीति पालकः। ननु ब्रह्मविष्णुरुद्रा एवंभूताः प्रसिद्धा कथमहमेवेति चेत्तत्राहुः-त्वन्माययेति। संवृतं विहितं चेतो ज्ञानं येषां ते त्वामेव नाना पश्यन्ति। ये तु विपश्चितो विद्वांसस्ते तथा न पश्यन्ति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार का यह जो संसार वृक्ष है उसका जन्म केवल आपसे ही होता है। अर्थात् इस संसार के स्रष्टा आप ही हैं। इस संसार का लय भी आपमें ही होता है। आप ही कृपा करके इस संसार का पालन करते हैं। यदि कहें कि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ही इस जगत् के सृष्टा आदि रूप से प्रसिद्ध हैं कैसे मैं ही इन सबों को करने वाला हूँ इस पर कहते हैं **त्वन्मायया० इत्यादि** आपकी माया के द्वारा जिन लोगों का ज्ञान आच्छादित हो गया है, वे ही लोग आपको नाना रूपों में देखते हैं। जो लोग विज्ञ पुरुष हैं वे आपको नाना रूपों में नहीं देखते हैं ॥२८॥

बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य।
सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥२९॥

अन्वयः— आवबोध आत्मा चराचरस्य लोकस्य क्षेमाय रूपाणि विभर्पिः सताम् सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि खलानाम् मुहुः अभद्राणि रूपाणि विभर्षि ॥२९॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप ज्ञान स्वरूप आत्मा है, इस चराचर संसार का कल्याण करने के ही लिए आप अनेक रूपों को धारण करते हैं। आपके वे रूप शुद्ध सत्त्वमय होते हैं तथा सत्पुरुषों को वे सुख प्रदान करते है और दुष्ट पुरुषों को वे अत्यधिक दुखप्रद होते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

ननु देवकीपुत्रं मां कथमेवं वर्णयथेति चेत्तत्राहुः-विभर्षीति। अवबोधैकस्वरूप आत्मा त्वमेव रूपाणि मूर्तीर्विभर्षि धत्से। नतु त्वं कस्यापि पुत्र इत्यर्थः। क्षेमाय पालनाय। सतां धर्मवर्तिनां सुखकारिण। खलानामभद्राणि नाशकानि ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् यदि कहें कि मैं तो देवकी पुत्र हूँ आपलोग मेरा ऐसा वर्णन कैसे करते हैं, इस पर देवताओं ने **विभर्षि इत्यादि** श्लोक कहा- प्रभो आप ज्ञान स्वरूप आत्मा हैं आप ही अनेक शरीरों को धारण करते है। आप किसी के पुत्र नहीं हैं बल्कि चराचरात्मक जगत् का पालन करने के लिए रूपों को धारण करते हैं। आपके ये रूप सत्पुरुषों को सुख प्रदान करते हैं, तथा दुष्टों का विनाश करने वाले होते हैं ॥२९॥

त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि समाधिनावेशितचेतसैके।
त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥३०॥

अन्वयः— हे अम्बुजाक्ष अखिल सत्वाधाम्नित्वयि एके समाधिना आवेशितचेतसः त्वम् पादपोतेन महत्कृतेन भवाब्धिम् गोवत्सपदं कुर्वन्ति ॥३०॥

अनुवाद— हे कमल के समान मनोज्ञ ! तथा कोमल नेत्रों वालें प्रभो ! आप समस्त पदार्थों तथा प्राणियों के आश्रय स्वरूप हैं आपमें विरले ही लोग अपने मन को समाहित करके लगा पाते हैं, आपके चरण कमल रूपी

महान् जलयान के द्वारा वे इस संसार सागर को बछड़े के खुर से बने गढ़े के समान अनायास ही पार कर जाते हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

न केवलमेतावद्भक्तानां मोक्षार्थमपीत्याहु:-त्वयीति । त्वयि समाधिना आवेशितचेतसा निमित्तेन त्वत्पादपोतेनाश्रितेन। एके मुख्या विवेकिनः । महद्भिः कृतेन सेव्यतया संपादितेन । यद्वा इदमपि मायामयमित्यनादरं परित्यज्येदमेव महत्सर्वोत्कृष्टमिति मनसि कृतेन । बहुमतेनेत्यर्थः । भवाब्धिं तुच्छीकुर्वन्ति । अनायासेनैव भजनानुनिष्पादिनी तेषां मुक्तिरित्यर्थः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं ने कहा भगवन् इतना ही नहीं भक्तों को मोक्ष प्रदान करने के लिए आप विविध रूपों को धारण करते हैं- कुछ ही लोग समाधि के द्वारा अपने चित्ता को आपके रूप में आवेशित करके तथा आपके चरण कमलों को ही आश्रय रूप से अपनाकर विवेकी पुरुष जिनको महापुरुष अपना सेव्य बनाये रहते हैं । अथवा यह जगत् भी मायामय है ऐसा समझकर जगत् का परित्याग करके तथा श्रीभगवान् का रूप ही सर्वोत्कृष्ट है यह सोच कर इस संसार को अनायास ही पार कर जाते हैं और भजन के पश्चात् उनको मुक्ति मिल जाती है ॥३०॥

स्वयं समुतीर्थ सुदुस्तरं द्युमन् भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥३१॥

अन्वयः— हे द्युमन् अदभ्रसौहृदाः भीमम् सुदुस्तरं भवार्णवं समुतीर्य ते भवत्पदाम्भोरुह नावम् अत्र विधाय याताः, भवान् सदनुग्रहः ॥३१॥

अनुवाद— हे प्रकाश स्वरूप भगवन् सम्पूर्ण जगत् आपका स्वाभाविक प्रेमी है, वे स्वयम् भयङ्कर और कठिनाई से पार किए जाने योग्य संसार सागर को पार तो कर ही जाते हैं, और लोगों के भी कल्याण के लिए वे आपके चरण कमल रूपी नौका को स्थापित कर जाते हैं । वस्तुतः आप की सत्पुरुषों पर महती कृपा है । उन लोगों के लिए आप अनुग्रह स्वरूप हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

ननु तेन पोतेन पूर्वे चेत्पारं गतास्तर्हीदानीन्तनानां का गतिस्तत्राहु:-स्वयमिति । अयमर्थः-हे द्युमन्स्वप्रकाश, त्वत्पादपोतसामीप्यमात्रेण भवाम्बुधौ वत्सपदमात्रे जाते, अतस्तन्निरपेक्षं स्वयमेवान्येषां भीमं दुस्तरमपि भवार्णवं समुत्तीर्य भवत्पदाम्भोरुहरूपां नावमत्रैव निधाय । भक्तिमार्गसंप्रदायं प्रवर्त्येत्यर्थः । पारं याताः । तत्किम् । यतोऽदभ्रसौहृदाः सर्वभूतेष्वतिप्रीतियुक्ताः । अतस्तेऽन्येषां तरणाय निधायेति । कथं मत्पादपोताश्रयणमात्रेण तीर्णा अत उक्तम्- भवान्सदनुग्रहः सतो भक्ताननुगृह्णातीति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि उस चरण रूपी नौका से वे तो पार चले गये किन्तु इस समय जो लोग विद्यमान हैं उनके संसार सागर को पार जाने का कौन सा साधन है ? इस पर देवताओं ने **स्वयमित्यादि** श्लोक कहा हे प्रकाशस्वरूप भगवन् आपके चरण कमल रूपी नौका के सामिप्य मात्र से ही उन लोगों ने भवार्णव को गोवत्सपादवत् तुच्छ बना दिया । अतएव उसके पार जाने के लिए उनको उस नौका की आवश्यकता नहीं रही । वे उस नौका को यही स्थापित कर दिए । अर्थात् वे भक्ति मार्ग के सम्प्रदाय को प्रवर्तित करके संसार सागर के पार चले गये । प्रश्न है कि वे भक्तिमार्ग का सम्प्रदाय क्यों प्रवर्तित किए तो इसका उत्तर है कि वे सभी जीवों पर अत्यधिक कृपा करने वाले हैं । अतएव वे दूसरों को संसार सागर पार करने के लिए ऐसा किए । यदि आप कहें कि मेरे चरण

कमल रूपी नौका का आश्रयण करने मात्र से वे कैसे पार हो गये । इस पर कहते हैं कि आप अपने भक्तों को अनुगृहीत करने वाले हैं ।।३१।।

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण पदं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ।।३२।।

अन्वयः— हे अरविन्दाक्ष ये अन्ये त्वयि अस्तभावात् अविशुद्धबुद्धयः अनादृतयुष्मदङ्घ्रयः विमुक्तमानिनः कृच्छ्रेण परं पदं आरुह्य ततः अधः पतन्ति ।।३२।।

अनुवाद— दूसरे जो आपकी भक्ति भावना से रहित हैं, अतएव उनकी बुद्धि भी शुद्ध नहीं है, वे आपके चरणों के प्रति आदर नहीं रखते हैं, ऐसे लोग यदि कठिन तपस्या के द्वारा उन्नति को भी प्राप्त कर लेते हैं, तो वे अपने को मिथ्या ही मुक्त मानने वाले उस पद से पतित हो जाते हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

ननु विवेकिनां किं मद्भजनने मुक्ता एव हि ते तत्राहुः-येऽन्य इति । विमुक्तमानिनो विमुक्तां वयमिति मन्यमानाः त्वयि अस्तो निरस्तोऽत एवासन् यो भावस्तस्मात् । भक्तेरभावादित्यर्थः । न विशुद्धा बुद्धिर्येपां ते तथा । यद्वा त्वयि अस्तभाः इति च्छेदः । अस्तमतयो वादेष्वेव विशुद्धबुद्धयः । कृच्छ्रेण बहुजन्मतपसा परं पदं मोक्षसंनिहितं सत्कुलतपः श्रुतादि । पतन्ति विघ्नैरभियूयन्ते । न आदृतौ युष्मदङ्घ्री यैस्ते ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि जो विवेकी पुरुष हैं उन लोगों को मेरा भजन करने की क्या आवश्यकता है ? वे तो मुक्त है ही । इस पर देवताओं ने **येऽन्ये० इत्यादि** श्लोक कहा जो लोग यह मानते हैं कि मैं तो विमुक्त हूँ। उनमें आपकी भक्ति की भावना नहीं होती है, उनमें भक्ति का अभाव होता है । उनकी बुद्धि भी शुद्ध नहीं होती । उनकी वाद-विवाद में भी विशुद्ध बुद्धि होती है आपमें नहीं । वे अनेक जन्मों की तपस्या से यदि मोक्ष के सभी सदवंश ज्ञान इत्यादि को प्राप्त करके भी उससे नीचे गिर जाते हैं ।।३२।।

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः ।
त्वयाऽभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ।।३३।।

अन्वयः— हे माधव प्रभो ! ये त्वयि बद्ध सौहृदाः ते क्वचिद् मार्गात् न भ्रश्यन्ति, त्वयाभिगुप्ताः निर्भया विनायकानीकपमूर्धसु विचरन्ति ।।३३।।

अनुवाद— हे लक्ष्मीपते प्रभो ! जो लोग आपके चरणों में अपनी सच्ची प्रीति जोड़ रखे हैं ऐसे जो आपके अपने जन हैं वे उन ज्ञानाभिमानियों के समान अपने साधन पथ से कभी भी पतित नहीं होते हैं । विघ्न डालने वालों की सेना के अधिपतियों के भी सिर पर पैर रखकर निर्भय विचरते हैं । कोई भी विघ्न उनके मार्ग में रुकावट नहीं डालते हैं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

त्वदीयास्तु न कदाचिदपि पतन्तीत्याहुः-तथा नेति । विनायका विघ्नहेतवस्तेषामनीकानि स्तोमास्तानि पान्ति ये तेषां मूर्धसु विचरन्ति । विघ्नान् जयन्तीत्यर्थः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

जो आपके भक्त जन हैं उनका कभी भी पतन नहीं होता है इस बात को **न ते माधव० इत्यादि** श्लोक

से कहा गया है कि विघ्न करने वालों की सेना के सरदारों के सिर पर पैर रखकर निर्भय विचरण करते हैं अर्थात् विघ्नों को जीत लेते हैं ॥३३॥

सत्त्वं विशुद्ध श्रयते भवान् स्थितौ शरीरिणां श्रेयउपायनं वपुः ।
वेदक्रियायोगतपः समाधिभिस्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥३४॥

अन्वयः— स्थितौ भवान् शरीरिणां श्रेयः उपायनं वपुः विशुद्धं सत्त्वं श्रयते येन जनः वेदक्रिया योगतपः समाधिभिः तवार्हणं समीहते ॥३४॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप संसार की स्थिति काल में समस्त शरीरधारियों को परम कल्याण प्रदान करने वाले विशुद्ध सत्त्वमय शरीर धारण करते हैं । आपके उस रूप की आराधना आपके भक्तजन वेद, कर्मकाण्ड, अष्टाङ्गयोग, तपस्या तथा समाधि के द्वारा करते है, बिना किसी आश्रय के वे किसकी आराधना करेंगे ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

सतां सुखावहानि रूपाणि धारयसीत्युक्तं बिभर्षि रूपाणीति, तत्केन प्रकारेण सुखावहत्वमित्यपेक्षायामाहुः- सत्त्वं विशुद्धमिति । सत्त्वं वपु श्रयत इत्यन्वयः । श्रेयउपायनं कर्मफलदातृ । कथम् येन वपुषा जनस्तवार्हणं पूजामीहते करोति । कैः वेदाश्च क्रियायोगाश्च तपश्च समाधिश्च तैश्चतुराश्रमधर्मैरित्यर्थः । वपुषोऽनाश्रयणेऽर्हणासंभवान्न कर्मफलसिद्धि स्यादिति।।३४।।

भाव प्रकाशिका

इससे पहले के श्लोक में कहा जा चुका है कि आप सत्पुरुषों को सुखप्रदान करने वाले शरीर को धारण करते हैं । प्रश्न होता है कि श्रीभगवान् के वे रूप किस प्रकार से सुखद होते हैं ? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर देवताओं ने **सत्त्वं विशुद्धम् इत्यादि** श्लोक को कहा है । श्लोक का मुख्य वाक्य है- **सत्वंवपुः श्रयते । श्रेय उपायनम्** अर्थात् वह शरीर कर्मों के फल को प्रदान करने वाला होता है । कैसे फलप्रद होता है ? तो इसका उत्तर है कि उसी शरीर के माध्यम से आपके भक्त आपकी आराधना करते हैं । फिर प्रश्न होता है कि किन साधनों से आराधना करते है ? तो इसका उत्तर है कि वेद, कर्मकाण्ड, तपस्या और समाधि के द्वारा करते है उन चारो आश्रमों के धर्मों के द्वारा करते हैं । यदि आप शरीर धारण न करें तो आश्रय के अभाव में न तो कोई आराधना कर पायेगा और न कर्मफलों की सिद्धि ही हो सकती है ॥३४॥

सत्त्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् ।
गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥३५॥

अन्वयः— हे धातः चेत् यदि इदं विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनं सत्त्वं न स्यात् गुणप्रकाशैः भवान् अनुमीयते येन यस्य वा गुणः प्रकाशते ॥३५॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप सबके विधाता है । यदि आपका यह विशुद्ध सत्त्वमय रूप न रहे तो, अज्ञान तथा उसके द्वारा होने वाले भेद को विनष्ट करने वाला अपरोक्ष ज्ञान किसी को भी नहीं हो पायेगा । जगत् में प्रतीत होने वाले तीन गुण आपके ही हैं और आपके ही द्वारा प्रकाशित भी होते हैं, फिर भी इन गुणों की प्रकाशक वृत्तियो से आपके स्वरूप का केवल अनुमान ही होता है, आपके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है । आपके स्वरूप का साक्षात्कार तो आपके इस विशुद्ध सत्त्वमय स्वरूप की सेवा करने से आपकी कृपा से होता है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

त्वय्यम्बुजाक्षेत्यादिना श्लोकत्रयेण भगवद्भक्तानामेव मोक्षो नान्येषामित्युक्तम्, तत्र कर्मफलं भक्तिं विना मा भून्मोक्षस्य तु ज्ञानैकसाध्यत्वात्किं भक्त्येति सानुशयान्प्रत्याहुः-सत्त्वं न चेदित । हे धातः, इदं सत्त्वं निजं तव वपुर्न भवेच्चेत्तर्हि विज्ञानं

विशिष्टमपरोक्षं ज्ञानं न भवेदित्यनुपङ्गः । कथंभूतम् । अज्ञानभिदापमार्जनम्, अज्ञानं च तत्कृतभिदा च तयोरपमार्जनं निवर्तकम्। यद्वा अज्ञानं भिनत्तीत्यज्ञानभिद्विज्ञानं मार्जनं नाशमाप प्राप्तमेवेति । ननु जडानां बुद्यादीनां यतः प्रकाशस्तद्ब्रह्मेति ज्ञानं भवेदेवेति चेन्न । गुणप्रकाशैर्गुणावच्छिन्नैः प्रकाशैर्भवान्सर्वसाक्षी परिपूर्णः केवलमनुमीयते कल्प्यते नतु साक्षात्क्रियत इत्यर्थः । अनुमानप्रकारमाहुः। प्रकाशते यस्य च येन वा गुण इति । यस्य संवन्धी अयं बुद्‌ध्या दिगुणः प्रकाशते यो गुणसाक्षीत्येवं, येन वा बुद्‌ध्यारूढेन प्रमात्रा बुद्‌ध्याधिष्ठात्रा वाह्यो गुणः प्रकाशते इत्यनुमीयते इत्यर्थः । शुद्धसत्त्ववपुपि त्वयि सेव्यमाने तु तदाकारेऽन्तःकरणे त्वत्प्रसादेन साक्षात्कारो भवेदिति भावः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

त्वय्यबुजाक्ष इत्यादि तीन श्लोकों के द्वारा देवताओं ने कहा है कि भगवद् भक्तों को ही मोक्ष की प्राप्ति होती है दूसरे लोगों को नहीं । उसमें भी कर्मो के फल की प्राप्ति भक्ति के बिना नहीं होती, किन्तु मोक्ष तो केवल ज्ञान से ही होता है उसमें भक्ति की क्या आवश्यकता है ? इस तरह से वासना से युक्त लोगों के प्रति देवताओं ने **सत्त्वं न चेत्० इत्यादि** श्लोक कहा अर्थात् हे परमात्मन् यदि यह सत्त्व यदि आपका अपना शरीर नहीं होता तो फिर विशिष्ट अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता यह इस श्लोक का अन्वय है । प्रश्न है कि वह ज्ञान कैसा है तो इसका उत्तर है **अज्ञानभिदापमार्जनम्** अर्थात् अज्ञान और अज्ञान जन्य भेद दोनों को दूर करने वाला है । अथवा अज्ञान को विनष्ट करने वाला जो विज्ञान है वह तो नष्ट हो ही गया है । यदि कहें कि जड़ों की बुद्धि इत्यादि का जिससे प्रकाश होता है वह ब्रह्मज्ञान तो रहता ही है, तो ऐसा नहीं कहा जा सकता है । क्योंकि देवकी इत्यादि की प्रभा आदि रूप गुण प्रकाशों के द्वारा केवल इसका अनुमान ही किया जा सकता है कि आप सर्वसाक्षी अर्थात् परिपूर्ण है । अनुमान किया जा सकता है अर्थात् कल्पना की जा सकती है आपका साक्षात्कार नहीं किया जा सकता है। अनुमान के प्रकार को बतलाते हुए देवों ने कहा जिसके द्वारा अथवा जिसका गुण प्रकाशित होता है । जिसके सम्बन्धी रूप से ये बुद्धयादि गुण प्रकाशित होते हैं, जो गुणों का साक्षी हैं, इस प्रकार से अनुमान होता है । जिस बुद्धि रूप प्रभा के द्वारा बाह्य गुण प्रकाशित होता है अर्थात् अनुमित होता हैं । शुद्ध सत्त्व शरीरक आपकी सेवा से प्रसन्न होकर जब आप कृपा करते है तब कहीं जाकर अन्तःकरण में आपका साक्षात्कार होता है यही इस श्लोक का भाव है ।।३५।।

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ।
मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो देव क्रियायां प्रतियन्त्यथापि हि ।।३६।।

अन्वयः— मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनः तस्य साक्षिणः तव गुणजन्म कर्मभिः नामरूपे निरूपितव्येन अथापि देव। क्रियायां प्रतियन्ति हि ।।३६।।

अनुवाद— हे प्रभो ! मन तथा वेदवाणी के द्वारा आपके स्वरूप का केवल अनुमान ही किया जा सकता है, क्योंकि आप उनके साक्षी है उनके द्वारा दृश्य नहीं है । अतएव आपके गुण, जन्म और कर्म के द्वारा आपके नाम और रूप का निरूपण नहीं किया जा सकता है । फिर भी हे देव ! आपके जो भक्त होते हैं वे आपकी जो उपासना रूपी क्रिया योग है उसके द्वारा आपका साक्षात्कार तो करते ही हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

एवं तावद्भक्तानामभ्युदयापवर्गार्थं रूपाणि विभर्षीत्युक्तं तान्यपि भजनीयानि केवलं नतु ज्ञातुं शक्यन्ते अनन्तत्वादतर्क्यत्वाच्च मनोवचसोरगोचरत्वादित्याहुः-न नामरूपे इति । गुणाश्च जन्मानि च कर्माणि च तैर्निरूपितव्ये निरूपणार्हे न भवतः । कुतः। अनुमेयं वर्त्म मार्गो यस्य तवेति तत्रापि हेतुः-तस्य साक्षिण इति । नहि साक्षिणस्तत्वं मनोवचोगोचरमित्यर्थः । हे देव बहुधा द्योतमान अथापि क्रियायामुपासनादिलक्षणायां त्वां प्रतियन्त्युपासकाः साक्षात्पश्यन्ति । हि प्रसिद्धम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से यह कहा जा चुका है कि भक्तों के अभ्युदय तथा मुक्ति के लिए आप विभिन्न रूपों को धारण करते हैं । आपके वे रूप केवल भजन करने योग्य हैं उन रूपों को जाना नहीं जा सकता है । क्योंकि आपके रूप अनन्त तथा अतर्क्य हैं । अतएव वे मन और वाणी के अविषय हैं इस अर्थ को **न नामरूपे० इत्यादि** से कहा गया है । अर्थात् आपके नाम और रूप का निरूपण गुण, जन्म और कर्मों के द्वारा नहीं किया जा सकता है । क्योंकि आपका मार्ग तो अनुमेय है, उसका कारण यह है कि आप **तस्य** अर्थात् उस मन आदि के साक्षी हैं । साक्षितत्व जो परमात्म तत्त्व है वह मन और वाणी का विषय नहीं है । हे अनेक प्रकार से प्रकाशित होने वाले भगवन् फिर भी जो आपके भक्तजन है, वे उपासना रूप क्रिया के द्वारा आपका साक्षात्कार करते ही हैं ।।३६।।

शृण्वन्गृणन्संस्मरयंश्च चिन्तयन्नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ।।३७।।

अन्वयः— यः ते मङ्गलानि ते रूपाणि नामानि शृण्वन्, गृणन् संस्मरयन् चिन्तयन् क्रियासु च त्वच्चरणारविन्दयोः आविष्ट चेता सः भवाय न कल्पते ।।३७।।

अनुवाद— जो पुरुष आपके मङ्गलमय रूपों तथा नामों का श्रवण, कीर्तन तथा दूसरों को याद दिलाते हुये तत्-तत् देवताओं का पूजन भी करते हुये आपके चरणों में ही अपना चित्त लगाये रखता है, वह पुनः इस संसार के जन्म मरण के चक्र में नहीं पड़ता है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

तस्माद्भक्त्यैव मोक्ष इत्युपसंहरन्ति-शृण्वन्निति । अन्यानपि संस्मारयन् । क्रियासु देवार्चनादिकर्मसु ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

अतएव भक्ति के द्वारा ही मुक्ति होती है इस कथन का उपसंहार करते हुए देवगण शृणवन् इत्यादि श्लोक को कहते हैं । संस्मारयन् अर्थात् दूसरों को याद दिलाते हुए, क्रियासु अर्थात् देवार्चन आदि क्रियाओं को करते समय में भी ।।३७।।

दिष्टया हरेऽस्या भवतः पदोभुवो भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः ।
दिष्टयाङ्किता त्वत्पदकैः सुशोभनैर्द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकम्पिताम् ।।३८।।

अन्वयः— हे हरे दिष्ट्या तव पदः भुवः इशितुः तव जन्मना भारः अपनीतः दिष्ट्या तव सुशोभनैः पदकैः गां द्यां च अंकिताम् तवानुकम्पिताम् द्रक्ष्यामः ।।३८।।

अनुवाद— हे सभी पापों और कष्टों को दूर करने वाले श्रीहरे ! यह पृथिवी आपका चरण स्वरूप है । सम्पूर्ण जगत् के नियामक आपके जन्म से ही इसका भार दूर हो गया । सौभाग्यवशात् हमलोग इस पृथिवी और द्युलोक को आपके मनोहर नन्हें चरणों से अंकित तथा आपकी कृपा का पात्र बनी हुई देखेंगें ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

विशेषतः श्रीकृष्णावतारमभिनन्दन्ति-दिष्टयेति । दिष्ट्या भद्रम् । तव पदः पादभूतायाः । ईश्वरस्य तव जन्मात्रेणापनीत एव । किंच त्वत्पदकैः कोमलैः पदैः सुशोभनैर्वज्राङ्कुशादिशुभलक्षणैः गां पृथ्वीं द्यां स्वर्गं च तव त्वयानुकम्पिताम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

दिष्टया इत्यादि श्लोक के द्वारा विशेष रूप से श्रीकृष्णावतार का देवगण अभिनन्दन करते है, दिष्टया अर्थात् सौभाग्यवशात् आपके चरण स्वरूपिणी इस पृथिवी का भार तो सम्पूर्ण जगत् के नियामक आपके जन्म (अवतार)

ग्रहण करने मात्र से दूर हो गया किञ्च सौभाग्यवशात ही हमलोग आपके नन्हे-नन्हें अत्यन्त मनोहर वज्र अङ्कुश आदि शुभ लक्षणों वाले चरणों से अङ्कित इस पृथिवी को तथा स्वर्ग लोक को देख सकेंगे, क्योंकि पृथिवी आपकी कृपा का विषय हो चुकी है ।।३८।।

न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं विना विनोदं बत तर्कयामहे ।
भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया कृपा यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ।।३९।।

अन्वयः— हे ईश अभवस्य बत ते विनोदं बिना ते भवस्य कारणं न तर्कयामहे । हे अभयाश्रय यतः आत्मनि त्वयि भवः निरोधः स्थितिः अविद्यया कृता ।।३९।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप तो अजन्मा हैं, अतएव आपके जन्म का कारण आपकी लीला मात्र है, क्योंकि आप स्वयम् अभय के एकमात्र आश्रय है । सृष्टि स्थिति और संहार ये सबके सब अविद्या के द्वारा आपमें आरोपित हैं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

तव जन्मना भारोऽपनीत इत्युक्त्या ममापि किं जीववत्संसार उक्तो नहि नहीत्याहुः-नेति । बत हे ईश, असंसारिणस्ते जन्मनः कारणं क्रीडां विना न तर्कयामः । किंच हे अभयाश्रय, न भयमाश्रयत, इति तथा तत्संबोधनम् । हे नित्यमुक्तेत्यर्थः। तव जन्मकारणं नास्तीति किं वक्तव्यम्, यतो जीवात्मन्यपि भवादयस्त्वयि विषये या अविद्या तया कृता न परमार्थतः सन्तीति।।३९।।

भाव प्रकाशिका

यह देवताओं ने कहा है कि आपके जन्म से ही पृथिवी का भार दूर हो गया । यदि आप कहे कि मेरा भी जीव के समान संसार तुमलोगों ने कहा है ? तो ऐसी बात नहीं है, इसी अर्थ का **नतेऽभवस्येश० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । हे सम्पूर्ण जगत् के नियामक प्रभो ! आप तो असंसारी हैं, आपके जन्म का कारण क्रीडा को छोड़कर कोई दूसरा नहीं है, ऐसा हमलोग समझते हैं । किञ्च हे अभयाश्रय भय तो आपको अपना आश्रय बनाता ही नहीं है । आप नित्यमुक्त है इस बात को क्या कहना है ? जीव में भी भय आदि जो पाये जाते हैं वे आपके विषय में होने वाले अज्ञान के कारण ही है वे परमार्थिक नहीं हैं ।।३९।।

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ।
त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाऽधुनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ।।४०।।

अन्वयः— हे ईश मत्स्यश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस राजन्य विप्रविवुधेषु कृतावतारः त्वं यथा नः त्रिभुवनं च पासि हे यदूत्तम अधुना भुवो भारं हर ते वन्दनम् ।।४०।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप जिस तरह मत्स्य, कच्छप, नृसिंह वराह, हंस, श्रीराम, परशुराम तथा देवताओं में अवतार लेकर त्रैलोक्य तथा हम देवताओं और त्रिभुवन की रक्षा करते हैं, उसी तरह हे यदुवंश शिरोमणि इस समय आप जन्म ग्रहण करके पृथिवी के भार को दूर करें ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतं प्रार्थयन्ते-मत्स्याश्वेति । नोऽस्मांस्त्रिभुवनं चान्यदा यथा पासि तथाऽधुनापि पाहीति वन्दनं ते इति च वदन्तः सर्वे शिरोभिः प्रणमन्ति ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

देवताओं ने जो प्रस्तुत बात है उसको **मत्स्याश्व इत्यादि** श्लोक से कहा हैं । जैसे आप अन्य अवतारों में हम देवता और त्रैलोक्य की रक्षा करते हैं उसी तरह आप हमलोगों की रक्षा करें । आपको हमलोगों का नमस्कार है इस तरह से सब सिर झुकाकार श्रीभगवान् को प्रणाम करते हैं ।।४०।।

मा भूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षोर्गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥४१॥

अन्वयः— हे अम्ब ! दिष्ट्या यः पुमान् साक्षात् भगवान् नः भवाय अंशेन ते कुक्षिगतः मुमूर्षोः भोजपतेः भयं माभूत् तवात्मजः यदूनां गोप्ता भविता ॥४१॥

अनुवाद— हे माँ ! सौभाग्य की बात है कि परंपुरुष साक्षात् श्रीभगवान् हमलोगों का कल्याण करने के लिए आपके उदर में प्रवेश किए हुए हैं । कंस तो अब मरने ही वाला है । आपको इससे डरना नहीं चाहिए। आपके पुत्र श्रीभगवान् यदुवंशियों की रक्षा करेंगे ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

देवकीं प्रत्याहुः-दिष्ट्येति । नोऽस्माकं भवायोद्भवाय साक्षात्परः पुमांस्ते कुक्षिं गतः अतो भयं मा भूदिति ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं ने माता देवकी से **दिष्ट्या० इत्यादि** श्लोक से कहा है कि हम देवताओं की रक्षा के लिए साक्षात्परंपुरुष तुम्हारे उदर में प्रवेश किए हुए हैं अतएव आपको भय नहीं करना चाहिए ॥४१॥

श्रीशुक उवाच

इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा । ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गर्भगतविष्णोर्ब्रह्मादिकृतस्तुतिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अन्वयः— इति यत् यथा अनिदं रूपंपुरुषम् अभिष्टूय ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः दिवम् प्रतिययुः ॥४२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवान् का जैसा जो रूप है इस बात को कोई नहीं जानता है ऐसे परंपुरुष परमात्मा की स्तुति करके ब्रह्माजी और शिवजी को आगे करके देवगण स्वर्गलोक में चले गये ॥४२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के गर्भ में प्रवेश किए हुए भगवान् की ब्रह्मा आदि देवकृत स्तुति नामक दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

भावार्थ दीपिका

यस्य रूपमिदं सर्वप्रत्यक्षभूतम् । यथा यथावत् । अस्मान्वञ्चयित्वा एताविह स्थास्येते इति मन्यमाना ब्रह्मेशानौ पुरोधाय पुरतः कृत्वा ययुरिति ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे दशमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का रूप अलौकिक तथा सर्वात्मस्वरूप है उसको ठीक-ठीक नहीं जाना जा सकता है । देवताओं ने सोचा कि ब्रह्मा और शङ्करजी हमलोगों को ठग कर यहीं रह जा सकते हैं ? अतएव उन दोनों देवताओं को आगे करके सभी देवगण स्वर्ग चले गये ॥४२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के दूसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२॥

तीसरा अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण का प्रकाट्य

श्रीशुक उवाच

अथ सर्वगुणोपेतः कालः पारमशोभनः । यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम् ॥१॥

अन्वयः— अथ सर्वगुणोपेतः परमशोभनः कालः यर्हि अजनजन्मर्क्ष शान्तर्क्षगहतारकम् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् जब मङ्गलमय सभी शुभगणों से युक्त समय आया, उस समय रोहिणी नक्षत्र था। आकाश के सभी नक्षत्र ग्रह और तारे सौम्य हो गये थे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तृतीये निजरूपेण संभूतस्तु हरिः स्वयम् । पितृभ्यां संस्तुतो नीतः पित्रा भीतेन गोकुलम् ॥

अथेति मङ्गलार्थम् । यर्हि सर्वगुणोपेतः कालो बभूव तदा देवक्यां विष्णुराविरासीदित्यष्टमश्लोकगतेनान्वयः । परम शोभनत्वमेवाह-यर्हीत्यादिना । अजनान्नारायणाज्जन्म यस्य प्रजापतेस्तस्य ऋक्षं रोहिणीनक्षत्रम् । कथंभूतम्-शान्तानि ऋक्षाण्यश्विन्यादीनि ग्रहाश्च तारकाश्च यस्मिंस्तत् । यर्हीति सर्वत्रानुषज्ज्यते ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तीसरे अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि स्वयं श्रीहरि अपने रूप से प्रकट हो गये । माता-पिता ने उनकी प्रार्थना की । कंस से भयभीत होने के कारण पिता वसुदेवजी उनको गोकुल लाए । श्लोक के प्रारम्भ में अथ शब्द मङ्गलार्थक है । जब सभी शुभ गुणों से युक्त समय आया तब देवकीजी के गर्भ से श्रीहरि प्रकट हो गये । इस तरह आठवें श्लोक से उसका अन्वय है । **यर्हि इत्यादि** श्लोक के द्वारा काल के परम मनोज्ञता को ही बतलाया गया है । **अजनजन्मर्क्षं** का अर्थ है अजन अर्थात् भगवान् नारायण से जिनका जन्म हुआ उस ब्रह्माजी के द्वारा अधिष्ठित रोहिणी नक्षत्र । कैसा काल था वह ? इस पर कहते हैं जिस समय अश्विनी इत्यादि सभी नक्षत्र ग्रह तथा तारे शान्त थे । यहाँ का सर्वत्र अन्वय होगा ॥१॥

दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम् । मही मङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥२॥

अन्वयः— दिशः प्रसेदुः गगनं निर्मलोडुगणोदयम् मही मङ्गलभूयिष्ठपुरग्राम व्रजाकरा ॥२॥

अनुवाद— जब दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं, स्वच्छ आकाश में तारे चमक रहे थे, पृथिवी के नगर, ग्राम, अहीरों की बस्तियों और हीरों आदि की खदानें बहुत अधिक मङ्गलमय हो गयी थीं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

निर्मलानामुडुणानामुदयो यस्मिंस्तत्तथा । मङ्गलभूयिष्ठा; पुरादयो यस्यां सा ॥२॥

भाव प्रकाशिका

जिस समय स्वच्छ आकाश में स्वच्छ तारे चमक रहे थे । पृथिवी पर नगर आदि बहुत अधिक मङ्गलमय हो गये थे ॥२॥

नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः । द्विजालिकुलसन्नादस्तबका वनराजयः ॥३॥

अन्वयः— नद्यः प्रसन्नसलिलाः, ह्रदा; जलरुहश्रियः द्विजालिकुसन्नादस्तवकाः वनराजयः ॥३॥

अनुवाद— जिस समय नदियों का जल स्वच्छ हो गया था, सरोवरों में विकसित कमल सुशोभित हो रहे थे, वनों में वृक्षों की डालियाँ पुष्पों से भर गयी थीं और उन पर पक्षीगण चहक रहे थे तथा भौंरे गुनगुना रहे थे ।।३।।

भावार्थ दीपिका

जलरुहैः श्रीः शोभा येषां ते । द्विजालिकुलानां सन्नादो येषु ते स्तबका यासु ताः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

जिन सरोवरों की शोभा कमलों के द्वारा हो रही थीं । जिन वन पंक्तियों के पुष्प गुच्छों पर पक्षियों के चहकने की और भौरों के गुनगुनाने की ध्वनि हो रही थी ।।३।।

ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः । अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत ।।४।।

अन्वयः— यर्हि सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः वायुः ववौ यर्हि द्विजानां शान्ताः अग्नयः तत्र समिन्धत ।।४।।

अनुवाद— जब शीतल मन्द सुगन्ध पवित्र वायु सुगन्धि लिए हुई बहने लगी, कंस के भय से अग्निहोत्री ब्राह्मणों की बुझी हुई अग्नियाँ प्रज्ज्वलित हो गयीं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

समिव्धत । आडागमोऽत्र द्रष्टव्यः । समिन्धतोति । सम्यग्दीप्ता बभूवुरित्यर्थः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

समन्धित अर्थात् अच्छी तरह से प्रज्जवलित हो गयीं । समिन्धत का विग्रह है- **सम ऐन्धत** । यहाँ पर आर्ष प्रयोग होने के कारण आट् का आगम हुआ है ।।४।।

मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् । जायमानेऽजने तस्मिन्नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ।।५।।

अन्वयः— तस्मिन् अजने जायमाने असुरद्रुहाम् साधूनाम् मनांसि प्रसन्नानि आसन् दिवि दुन्दुभयः नेदुः ।।५।।

अनुवाद— जिस समय श्रीभगवान् के अवतार की बेला आयी उस समय असुरों से द्रोह करने वाले सन्त पुरुषों के मन प्रसन्न हो गये और स्वर्ग में दुन्दुभियाँ बजने लगीं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

असुरद्रुहां कंसादिव्यतिरिक्तानां सर्वप्राणिनां देवानां चेति । स्वर्गे तु विशेषमाह-जायमान इति । अजने जायमाने ।।५।।

भाव प्रकाशिका

कंस आदि राक्षसों से भिन्न सभी प्राणियों के तथा देवताओं के मन प्रसन्न हो गये । **जायमाने० इत्यादि** से स्वर्ग की विशेषता बतलायी गयी है । श्रीभगवान् के अवतार काल में स्वर्ग में दुन्दुभियाँ अपने आप बजने लगीं ।।५।।

जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवु; सिद्धचारणाः । विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा ।।६।।

अन्वयः— तदा किन्नरगन्धर्वाः जगुः सिद्धचारणाः तुष्टुवुः अप्सरोभिः समं विद्यायर्यश्च ननृतुः ।।६।।

अनुवाद— उस समय किन्नर और गन्धर्व सङ्गीत करने लगे, सिद्ध और चारणगण श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे तथा अप्सराओं के साथ किन्नरियाँ नृत्य करने लगीं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

तदा आसन्नः प्रसवो यस्मिंसतस्मिन्समये ।।६।।

भाव प्रकाशिका

जब श्रीभगवान् के प्रकट होने की बेला जब सन्निकट आ गयी उस समय ।।६।।

मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः । मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनु सागरम् ।।७।।

अन्वयः— देवाः मुनयः मुदान्विताः सुमनांसि मुमुचु जलधराः मन्दं मन्दं अनुसागरम् जगर्जुः ।।७।।

अनुवाद— देवता और मुनिगण प्रसन्नता पूर्वक पुष्पों की वर्षा किए और जल भरे मेघ सागर के सन्निकट जाकर गर्जने लगे ।।७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।७।।

निशीथे तम उद्भूते जायमाने जनार्दने । देवक्यां देवरूपियां विष्णुः सर्वगुहाशयः ।।
आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ।।८।।

अन्वयः— निशीथे तम उद्भूते जनार्दने जायमाने देवरूपिण्यां देवक्यां सर्वगुहाशयः विष्णुः पूर्वस्यां दिशि पुष्कलः इन्दुरिव अविरासीत् ।।८।।

अनुवाद— आधी रात की बेला में जबकि घोर अन्धकार छाये हुए था वही भगवान् जनार्दन के अवतार की बेला थी । उसी समय देवस्वरूपिणी देवकी के गर्भ से सभी प्राणियों के हृदय में निवास करने वाले भगवान् विष्णु उसी तरह प्रकट हुए जैसे पूर्व दिशा में अपने सम्पूर्ण कलाओं से युक्त चन्द्रमा उदित हो गये हों ।।८।।

भावार्थ दीपिका

तमसोद्भूते घनतमसि निशीथे यथा यथावदैश्वरेणैव रूपेण ।।८।।

भाव प्रकाशिका

घोर अन्धकार से युक्त आधी रात की बेला में श्रीभगवान् का जैसा ऐश्वर रूप है उसी तरह से श्रीभगवान् प्रकट हुए ।।८।।

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ।।९।।
महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् ।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ।।१०।।

अन्वयः— वसुदेवः तम् अद्भुतं बालकम् ऐक्षत् अम्बुजेक्षणं चतुर्भुम् शङ्ख गदार्युदायुधम् श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्, महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलं त्विषा परिष्वक्त सहस्रकुन्तलं, उद्दामकाच्यङ्गद-कंकणादिभिः विरोचमानम् ।।९-१०।।

अनुवाद— वसुदेवजी ने उस अद्भुत बालक को देखा जिसके नेत्र कमल के समान मनोहर और बड़े-बड़े थे । वह अपनी चार भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए था । उसके वक्षः स्थल में श्रीवत्स चिह्न था, गले में कौस्तुभमणि लटक रही थीं, कमर में पीताम्बर धारण किए था, वर्षा कालीन जल भरे श्याम वर्ण के मेघ के समान उस बालक का श्याम वर्ण का शरीर था । बहुमूल्य वैदूर्यमणि के किरीट और कुण्डलों की कान्ति से उसके काले घुंघराले केश चमक रहे थे । कमर में करधनी की लड़ियाँ चमक रही थीं । भुजाओं में बाजूबन्द और कलाई में कङ्गन वह बालक धारण किए था । इन समस्त आभूषणों से सुशोभित उस बालक के सभी अङ्ग शोभायमान थे ।।९-१०।।

भावार्थ दीपिका

तमद्भुतं बालकं वसुदेव ऐक्षतेति द्वितीयश्लोकेनान्वयः । अद्भुतत्वे हेतुगर्भाणि विशेषणान्यम्बुजेक्षणमित्यादीनि । श्रीवत्सलक्ष्मं

श्रीवत्सलक्ष्माणम् । गलेन शोभत इति गलशोभी च कौस्तुभो यस्मिन् । परिष्वक्तसहस्रकुन्तलं किरीटकुण्डलादीनां त्विषा स्फुरदपरिमितकेशमित्यर्थः ॥९-१०॥

भाव प्रकाशिका

उस अद्भुत बालक को वसुदेवजी ने देखा इस तरह से दूसरे श्लोक के साथ अन्वय है । उस बालक के अद्भुतत्व के हेतु रूप से **अम्बुजेक्षणम् इत्यादि** विशेषणों को उपन्यस्त किया गया है । उस बालक के वक्षः स्थल में श्रीवत्स नामक सुनहरी रेखा थी । श्रीभगवान् के गले में लटकने वाली कौस्तुभमणि श्रीभगवान् की सुन्दर गला से ही सुशोभित हो रही थी । चारो ओर फैले हुए काले-काले घुंघराले अपरिमित केश श्रीभगवान् के वैदूर्यमणि किरीट और कुण्डलों की कान्ति से चमक रहे थे ॥९-१०॥

स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं सुतं विलोक्यानकदुन्दुभिस्तदा ।
कृष्णावतारोत्सवसंभ्रमोऽस्पृशन्मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥११॥

अन्वयः— हरिं सुतं विलोक्य सः आनकदुन्दुभिः विस्मयोत्फुल्लविलोचनः तदा कृष्णावतारोत्सवसंभ्रमः मुदाद्विजेभ्यः गवाम् अयुतम् अस्पृशत् ॥११॥

अनुवाद— वसुदेवजी ने देखा कि श्रीहरिः मेरे पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए हैं यह देखकर उनको आश्चर्य हुआ और उसके पश्चात् वे आनन्द मग्न हो गये और उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार का जन्मोत्सव मनाने के लिए ब्राह्मणों को दस हजार गायों को दान करने का सङ्कल्प कर दिए ॥११॥

भावार्थ दीपिका

विस्मयेनोत्फुल्ले विकसिते लोचने यस्य सः । गवामयुतस्पृशन्मनसा दत्तवान्, कंसनिगृहीतस्य दानासंभवात् । स्पृष्टौ हेतुः-कृष्णाावतारेति । मुदा आप्लुतो व्याप्तः स्नात इति वा ॥११॥

भाव प्रकाशिका

आश्चर्य से उनके दोनों नेत्र विकसित हो गये । दस हजार गौओं का मन से दान कर दिए वसुदेवजी । कंस ने उनके कैद कर रखा था अतएव वे दान तो नहीं दे सकते थे । उस दान के सङ्कल्प का कारण था कृष्णावतार महोत्सव । **मुदाप्लुतः** अर्थात् आनन्द से भर गये अथवा आनन्द से वे स्नान कर लिए ॥११॥

अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं परं नताङ्गः कृतधीः कृताञ्जलिः ।
स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं विरोचयन्तं गतभीः प्रभाववित् ॥१२॥

अन्वयः— हे भारत ! स्वरोचिषासूतिकागृहं विरोचयन्तम् एनं परं पुरुषम् अवधार्य गतभी प्रभाववित् कृताञ्जलिः नताङ्गः कृतधीः अस्तौत् ॥१२॥

अनुवाद— हे परीक्षित् अपनी कान्ति से प्रसूति गृह को प्रकाशित करने वाले उस बालक को ये परम पुरुष परंब्रह्म हैं इस तरह से मन में निश्चित करके वसुदेवजी का भय समाप्त हो गया क्योंकि वे श्रीभगवान् के प्रभाव को जानते थे । वे हाथ जोड़कर श्रीभगवान् के चरणों में सिर झुकाकर स्तुति करने लगे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

कृतधीः शुद्धवुद्धिः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

कृतधीः अर्थात् शुद्धबुद्धि वाले वसुदेवजी ॥१२॥

वसुदेव उवाच

विदितोऽसि भवान्साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः । केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥१३॥

अन्वयः— भवान् प्रकृतेः परः पुरुष, केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् विदित असि ।।१३।।

वसुदेवजी ने कहा

अनुवाद— आप प्रकृति से अतीत साक्षात् परं पुरुष पुरुषोत्तम, केवल अनुभवानन्द स्वरूप तथा सबों की बुद्धियों के साक्षी हैं यह मैं जानता हूँ ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

वसुदेवः प्रथमं पुत्रबुद्ध्या पश्यंस्तां परित्यज्याह-विदितोऽसीति । कथं विदितोऽसि, भवान् प्रकृतेः परः पुरुष इति। ननु किमाश्चर्यं, पुरुषस्य प्रकृतेरन्यत्वादेवेत्यत आह-साक्षादिति । प्रत्यक्षत इत्यर्थः । नन्वक्षिसंनिकृष्टं प्रत्यक्षत उपलभ्यते किं चित्रमित्यत आह-केवलेति । केवलश्चासावनुभवाश्चानदश्च ताविव स्वरूपं यस्य सः । किंच सर्वबुद्धिदृक् । नह्येवंभूतो दृश्यो भवतीत्यर्थः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

वसुदेवजी पहले श्रीभगवान् को पुत्र रूप से देख रहे थे । उस बुद्धि का परित्याग करके वे **विदितोऽसि० इत्यादि** श्लोक को कहे । यदि आप कहें कि मैं कैसा ज्ञात होता हूँ ? वसुदेवजी ने कहा आप प्रकृति से परे परं पुरुष हैं । यदि कहें कि इसमें क्या आश्चर्य है ? यही की आप पुरुष की प्रकृति से भिन्न है इसलिए उन्होंने कहा साक्षात् । आप प्रत्यक्ष हो रहे हैं । यदि कहें कि जो नेत्रों के सन्निकट होता है उसका प्रत्यक्ष होता ही है। इसमें कौन आश्चर्य है ? इस पर वसुदेवजी ने कहा कि आपका स्वरूप केवल अनुभव स्वरूप और आनन्द स्वरूप है । तथा आप समस्त बुद्धियों के साक्षी हैं । अतएव आप इस प्रकार से किसी को नहीं दिखायी देते हैं ॥१३॥

स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम् । तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥१४॥

अन्वयः— स एव स्वप्रकृत्या अग्रे इदं त्रिगुणात्मकं सृष्ट्वातदनुह्यप्रविष्टः त्वं प्रविष्ट इव भाव्यसे ।।१४।।

अनुवाद— वही आप अपनी प्रकृति के द्वारा सृष्टि के प्रारम्भ में इस त्रिगुणात्मक जगत् की सृष्टि करके उसके पश्चात् इसमें प्रविष्ट नहीं होने पर भी प्रविष्ट के समान प्रतीत होते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

ननु देवकीजठरे प्रविष्टस्य किमियमतिस्तुतिः क्रियतेऽत आह-स एवेति । स एव उक्तस्वरूप एव त्वं न देवकीजठरे प्रविष्ट इत्यर्थः । ननु विश्वं सृष्ट्वा तदनुप्रविष्टस्य किमेतद्ब्रह्वत आह-स्वप्रकृत्येति । स्वमायया सृष्ट्वा वा तदनु त्वमप्रविष्ट एवेति। ननु तर्हि कथं श्रुत्योच्यते- 'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्' इत्यत आह-प्रविष्ट इवेति । भाव्यसे निरूप्यसे । प्रत्यक्षतो वा सद्रूपेण वा प्रविष्ट इव लक्ष्यसे ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि देवकी के उदर में प्रविष्ट मेरी इस तरह से बहुत स्तुति क्यों करते हैं ? इस पर वसुदेवजी ने कहा **स एव इत्यादि** आपका उक्त ही स्वरूप है । आप देवकी के उदर में प्रविष्ट नहीं हुए । यदि कहें कि जगत् की सृष्टि करके उसके पश्चात् उसमें प्रविष्ट हुए मेरी इस तरह बहुत स्तुति श्रुति क्यों करती है तो इस पर वसुदेवजी ने कहा आपने अपनी माया से इस त्रिगुणात्मक विश्व की सृष्टि की उसके पश्चात् उसमें प्रविष्ट हुए बिना भी आप प्रविष्ट के समान प्रतीत होते हैं । यदि कहें कि तो फिर श्रुति कैसे कहती है कि जगत् की सृष्टि करके उसमें प्रवेश कर गये । इस पर वसुदेवजी ने कहा आप प्रविष्ट के समान प्रतीत होते हैं । प्रत्यक्ष अथवा सद्रूप से प्रतीत के तरह प्रतीत होते हैं ॥१४॥

यथेमेऽविकृता भावास्तथा ते विकृतैः सह। नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयन्ति हि ॥१५॥
संनिपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्तेऽनुगता इव । प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह संभवः ॥१६॥

अन्वयः— यथा इमे अविकृता भावाः नानावीर्याः पृथग्भूताः तथा विकृतैः विराजं जनयन्ति हि सन्निपत्य समुत्पाद्य अनुगताः इव दृश्यन्ते, प्रागेव विद्यमानत्वात् तेषामिह सम्भवः न ॥१५-१६॥

अनुवाद— जिस तरह ये महदादि कारण तत्त्व पृथक-पृथक रहते हैं तब तक उनकी शक्ति भी पृथक्-पृथक् रहती है । जब वे इन्द्रिय आदि सोलह विकारों से मिलते हैं तो ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं । और इसको उत्पन्न करके मन में प्रविष्ट के समान प्रतीत होते है । किन्तु वास्तविकता यह है कि वे किसी भी पदार्थ में प्रवेश नहीं करते हैं, क्योंकि उनसे बनी हुई जो भी वस्तु हैं, उनमें वे पहले से ही विद्यमान रहते हैं ॥१५-१६॥

भावार्थ दीपिका

अत्र दृष्टान्तः-यथेति । इमेऽविकृता भावा महदादयो यथा तथेति । दृष्टान्तं विवृणोति-ते विकृतैरिति । ते विकृतैः षोडशविकारैः सह संनिपत्य विराजं ब्रह्माण्डं जनयन्ति । संनिपतने हेतुः-यतः पृथग्भूताः सन्तो नानावीर्या विशिष्टकार्यसमर्था न भवन्ति । अतः, संनिपत्येति । एवं समुत्पाद्यानुगताः प्रविष्टा इव दृश्यन्ते न पुनः प्रविष्टाः । कुतः । उत्पत्तेः प्रागेव कारणतया विद्यमानत्वान्न तेषामिह सृष्टे कार्ये पश्चात्संभवः प्रवेश इति ॥१५-१६॥

भाव प्रकाशिका

यथेमे० इत्यादि दो श्लोकों द्वारा उपर्युक्त कथन में दृष्टान्त उपन्यस्त किया गया है । चूकि महदादि कारण पदार्थ जब तक पृथक् रहते हैं अनेक प्रकार की शक्ति से सम्पन्न होकर भी किसी विशिष्ट पदार्थ के रचना नहीं कर पाते है । जब वे इन्द्रिय आदि सोलह विकारों से मिल जाती हैं तो वे ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं । इसी तरह से जगत् की सृष्टि करके उनमें प्रविष्ट के समान प्रतीत होते हैं किन्तु वे उनमें प्रविष्ट नहीं होते हैं, क्योंकि वे तो उनमें पहले से ही विद्यमान रहते हैं ॥१५-१६॥

एवं भवान्बुद्ध्यनुमेयलक्षणैर्ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः ।
अनावृतत्वाद्बहिरन्तरं न ते सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥१७॥

अन्वयः— एवम् बुद्ध्यनुमेयलक्षणैः ग्राह्यैः गुणैः सह सन्नपि भवान् तद्गुणाग्रहः अनावृतत्वात् सर्वात्मनः सर्वस्य आत्मवस्तुनः ते बहिरन्तरं न ॥१७॥

अनुवाद— इस तरह बुद्धि के द्वारा केवल गुणों के लक्षणों का ही अनुमान किया जाता है, तथा इन्द्रियों के द्वारा केवल गुणमय विषयों का ही ज्ञान होता है । यद्यपि आप उन सबों में रहते हैं फिर भी उन गुणों के ग्रहण से आपका ग्रहण नहीं हो पाता है । इसका कारण है कि आप सबकुछ हैं, सबके अन्तर्यामी और परमार्थ सत्य हैं, आत्मस्वरूप हैं । गुणों का आवरण आपको ढँक नहीं पाता है । अतएव आपमें बाहर-भीतर नहीं है । अतएव आप किसी में प्रवेश नहीं करते । फलतः प्रवेश नहीं करने पर भी आप प्रवेश किए हुए के समान प्रतीत होते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

दार्ष्टान्तिकेऽतिदिशति एव । भवानिति । ननु यद्यहमप्रच्युतस्वरूप एव कारणतया कार्येषु वर्ते तर्हि तेष्विन्द्रियैर्गृह्यमाणेषु मम ग्रहणं किं नास्ति तत्राह-बुद्ध्यनुमेयलक्षणैरिति । बुद्ध्या रूपादिज्ञानेनानुमेयं लक्षणं स्वरूपं येषां तैगुणैरन्द्रियेर्ग्राह्यैगुणैः सह सन्नपि वर्तमानोऽपि तद्गुणाग्रहस्तैगुणैः सह न गृह्यते । अयं भावः-नहि ग्राह्यैः सह भावमात्रं ग्रहणे कारणं कित्विन्द्रियाणां शक्तिः । सा च कार्यैकसमधिगम्यायथाकार्यमेव कल्प्यते । अतो यथा चक्षुषा रूपग्रहणे रसादिग्रहणं नास्ति तथैव विषयग्रहणे त्वद्ग्रहणमपीति । अविषयत्वेन च ग्रहणानर्हत्वमुक्तमेव सर्वबुद्धिदृगित्यत्र । एवं तावत्प्रागेव विद्यमानत्वात्प्रवेशो नास्तीत्युक्तम्।

किंच परिच्छिन्नस्य नीडे पक्ष्यादेरिव प्रवेशो भवेत्तव त्वनावृतत्वादपरिच्छिन्नत्वेन बहिरन्तर्भेदो नास्ति, कुतः प्रवेश इत्याह-अनावृतत्वादिति । अनावृतत्वे हेतूनाह-सर्वस्येति । नहि सर्वरूपस्यान्यदावरकमस्ति सर्वात्मनः, नह्येकेनावृतोऽन्यस्यात्मा भवेत्। आत्मवस्तुन इत्यात्मनो वस्तुनश्चेति हेतुद्वयम् । अत सातत्यगमन इत्यस्मादतति व्याप्नोतीत्यात्मा, नहि व्यापकस्यावरणं घटते। तथा वस्तुनः परमार्थवस्तुन आवरणं न घटत इत्यर्थः । तस्मात्त्वान्तर्यामितया प्रवेशो न मुख्योऽस्ति कुतस्तरां गर्भे प्रवेशः । अतः केवलानुभवानन्दस्वरूप एव त्वं विदितोऽसीत्याश्चर्यं मम भाव्यमित्यर्थः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त दृष्टान्त को यहाँ दार्ष्टान्तिक में समन्वित **एवं भवान् इत्यादि** श्लोक के द्वारा करते हैं । यदि आप पूछें कि यदि मैं अपने स्वरूप से ही कारण रूप से कार्यों में विद्यमान रहता हूँ तो फिर इन्द्रियों के द्वारा उन कार्यों का ग्रहण होने पर मेरा ग्रहण क्यों नहीं होता है ? इस पर वसुदेवजी **बुद्ध्यनुमेय लक्षणै**: कहते हैं । बुद्धि के द्वारा रूपादि ज्ञान होने से उन गुणों के द्वारा इन्द्रिय ग्राह्य गुणों के साथ वर्तमान उनके गुणों का ग्रहण उन गुणों के साथ नहीं होता है । कहने का अभिप्राय है कि सद्भाव मात्र ही ग्रहण का कारण नहीं है, अपितु उसके ग्रहण में इन्द्रियों की शक्ति का भी होना आवश्यक है । उस शक्ति का ज्ञान उसके कार्यों को ही देखकर हो सकता है। उन कार्यों को देखकर उस शक्ति की कल्पना की जाती है । अतएव जिस तरह चक्षुरिन्द्रिय की शक्ति रूप के ही ग्रहण में है उसके द्वारा शब्दादि का ग्रहण नहीं हो सकता है । उसी तरह विषयों का ग्रहण होने पर भी उसमें विद्यमान आपका ग्रहण नहीं हो पाता है । ग्रहण का विषय नहीं होने के कारण परमात्मा के ग्रहणानर्हत्व को कहा जा चुका है । परमात्मा सभी बुद्धियों के साक्षी हैं । इस कथन से इस अर्थ का प्रतिपादन किया गया कि पहले से ही विद्यमान रहने के कारण आप सबों अनुप्रविष्ट नहीं है । किञ्च जैसे सीमित पक्षी अपने घोसले में प्रवेश करता है । आप तो अपरिच्छिन्न हैं, अतएव अपरिच्छिन्न आपका परिच्छिन्न कार्यों में कैसे प्रवेश हो सकता है । अतएव आपमें बाहर भीतर नामक कोई भी भेद नहीं है । इसी बात को वसुदेवजी ने **अनावृतत्वात्** पद से कहा है । अनावृतत्व का कारण बतलाते हुए वसुदेवजी ने कहा **सर्वस्य** अर्थात् सर्वस्वरूप हैं । सर्व स्वरूप सर्वात्मा का कोई दूसरा आवरक नहीं हो सकता है । एक के द्वारा दूसरों की आत्मा अवृत नहीं होती है । आत्म वस्तुनः पद से आत्मनः और वस्तुनः दो हेतुओं को बतलाया गया है । **अतसातत्यगमने** धातु से व्याप्त के अर्थ में आत्मा शब्द व्युत्पन्न होता है जो व्यापक होता है उसका कोई आवरक नहीं होता । **वस्तुनः परमार्थ वस्तुनः** अर्थ है। परमार्थ वस्तु का भी कोई आवरक नहीं होता है । अतएव आपका अन्तर्यामी रूप से भी प्रवेश मुख्य नहीं है। फिर गर्भ में प्रवेश कैसे मुख्य हो सकता है ? अतएव आप केवल अनुभवानन्द स्वरूप ही है । इसी रूप से आप मुझको ज्ञात हैं।।१७।।

य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः ।
विनानुवादं न च तन्मनीषितं सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत्पुमान् ।।१८।।

अन्वयः— यः आत्मनः दृश्येषु गुणेषु स्वव्यतिरेकतः सन्निति व्यवस्यते सः अबुधः । यतः मनीषितं च तत् विनाऽनुवादं न सम्यक् यतः त्यक्तं उपाददत्पुमान् ।।१८।।

अनुवाद— जो मनुष्य अपने दृश्य देह, गेह आदि गुणों को अपने से भिन्न जानकर भी सत्य मानता है, वह अज्ञानी पुरुष है । क्योंकि विचार करने पर ये देह गेह आदि पदार्थ अविद्या के विलास मात्र ही प्रतीत होते हैं । विचार के द्वारा जिस वस्तु का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता है, वह बाधित होता है । उसी को सत्य मानने वाला बुद्धिमान कैसे हो सकता है ?।।१८।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेतद्धेतुचतुष्टयं प्रपञ्चस्यावस्तुतत्वे घटेत, तत्तु न संभवति, सत्यत्वेन प्रतीतेरित्याशङ्क्याह-य इति । आत्मनो दृश्येषु

गुणेषु देहादिषु स्वव्यतिरेकत आत्मव्यतिरेकेण पृथक् सन्नयं देहादिरिति व्यवस्यते निश्चिनोति यः पुमान्सोऽबुधोऽविद्वान् । व्यतिरेकदर्शनात् । किंच मनीषितं विचारितं तद्देहादि सर्वं यतो विनाऽनुवादं वाचारम्भणमात्रं विना न सम्यग्भवति । अतोऽवस्तुत्वेन त्यक्तं बाधितमेव वस्तुबुद्ध्या उपाददत्स्वीकुर्वन्नबुध इत्यर्थः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि उपर्युक्त चार हेतुओं के द्वारा प्रपञ्च के मिथ्यात्व की सिद्धि हो जाती है । किन्तु यह इसलिए सम्भव नहीं है कि प्रपञ्च सत्य रूप से प्रतीत होता है । इस प्रकार की आशङ्का करके वसुदेवजी **यः इत्यादि** श्लोक कहते हैं जो मनुष्य आत्मा के दृश्य गुण देह-गेह इत्यादि को आत्मा से भिन्न जानकर भी उसको सत्य मानता है वह अज्ञानी है । क्योंकि देखा जाता है कि देह गेह इत्यादि आत्मा से भिन्न है । जो-जो आत्मा से भिन्न है वह-वह मिथ्या है घटादि के समान क्योंकि विचार करने पर पता चलता है कि देह गेह इत्यादि सबके सब वागालम्बन (वागविलास मात्र) हैं, सत्य नहीं हैं । अतएव अवस्तु होने के कारण वे बाधित हैं बाधित वस्तु को सत्य मानने वाला अज्ञानी नहीं है तो और क्या है ?।।१८।।

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात् ।
त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ।।१९।।

अन्वयः— विभो अनीहात् अगुणात् अविक्रियात् त्वत्तः अस्य जन्मस्थिति संयमान् वदन्ति, ईश्वरे ब्रह्मणि त्वयि नोविरुध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते ।।१९।।

अनुवाद— हे प्रभो ! समस्त क्रियाओं और गुणों तथा विकारों से रहित आप कहे जाते हैं फिर भी इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार आपसे ही होते हैं यह शास्त्र बतलाते हैं । आप परम ऐश्वर्य सम्पन्न परंब्रह्म परमात्मा हैं अतएव यह आपके लिए असम्भव नहीं है । क्योंकि तीनों गुणों के आश्रय आप हैं इसीलिए उन गुणों के कार्यों का आपमें ही आरोप होता है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

एवं परमेश्वरदृश्यस्य तद्व्यतिरेकेणासत्त्वमुक्तम्, परमेश्वरोपादानत्वादपि तद्व्यतिरेकेणासत्त्वमित्याह-त्वत्तोऽस्येति । नचैवं सत्यपि विकारित्वमित्याह-अनीहादिति । अगुणत्वादनीहत्वं ततोऽविकारित्वमित्यर्थः । नन्वनीहत्वे कथं कर्तृत्वं, कर्तृत्वे वा कुतोऽविकारित्वं तत्राह-त्वयीश्वर इति । ब्रह्मत्वादविकारित्वमीश्वरत्वात्कर्तृत्वमिति । नन्वेतदपि विरुद्धमेव नेत्याह-त्वदाश्रयादिति। गुणैः कुर्वद्भिस्त्वयि सृष्ट्यादिकर्तृत्वमुपचर्यते गुणाश्रयत्वात् यथा भृत्यकृत्यं राजनीतिः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह परमेश्वर के दृश्य वस्तुएँ परमात्मा व्यतिरिक्त होने के कारण मिथ्या है यह कहा जा चुका है । परमेश्वर का जगदुपादनत्व भी परमेश्वर से भिन्न होने के कारण असत् है इस बात को **त्वत्तोऽस्य० इत्यादि** श्लोव के द्वारा कहा जा रहा है । ऐसा होने पर भी परमात्मा विकारवान नहीं है इस बात को **अनीहात्० इत्यादि** वे द्वारा कहा गया है । गुणों से रहित होने के कारण ही परमेश्वर अनीह है और अनीह ही होने के कारण वे विका रहित भी हैं । प्रश्न होता है कि यदि परमात्मा सभी अभीप्साओं से रहित है तो फिर उनमें जगत् कर्तृत्व कै हो सकता है ? यदि उनमें जगत् कर्तृत्व है तो उनमें विकार राहित्य कैसे कहा जा सकता है ? इस पर वसुदेवज ने कहा **त्वयीश्वरे इत्यादि** अर्थात् आप परमेश्वर ब्रह्म है अतएव अविकारी है तथा ईश्वर होने के कारण आप जग के कर्ता है । यदि आप कहें कि यह भी विरुद्ध ही है तो ऐसी बात नहीं है । क्योंकि आप ही सभी गुणों आश्रय हैं । यद्यपि कर्तृत्व तो गुण हैं, किन्तु आपमें कर्तृत्व का उपचार होता है । उदाहरणार्थ जैसे सिपाहियों द्वारा विजय प्राप्त किए जाने पर वह विजय राजा का है माना जाता है वैसे ही ।।१९।।

स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ।
सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥२०॥

अन्वयः— सः त्वं स्वमायया त्रिलोकस्थितये आत्मनः खलु शुक्लं वर्णम्, सर्गाय रजसोपबृंहितम् रक्तम्, जनात्यये तमसा च कृष्णं वर्णं विभर्षि ।।२०।।'

अनुवाद— आप ही अपनी माया से त्रैलोक्य की रक्षा के लिए सत्त्वगुणोपबृंहित शुक्ल वर्ण को, सृष्टि करने के लिए रजोगुण विशिष्ट रक्त वर्ण को तथा तमोगुण विशिष्ट कृष्ण वर्ण को जगत् संहार करने के लिए धारण करते हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

एवंभूतस्यैव तव यथा विश्वस्थितिसर्गप्रलयार्थं त्रिवर्णा गुणावतारा: एवमयं भूभारापनयनार्थमिति ज्ञातमित्याह-स त्वमिति श्लोकद्वयेन ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह के ही आपके जैसे विश्व की स्थिति सृष्टि और प्रलय के लिए तीन रूपों वाला गुणावतार होता है उसी तरह यह पृथिवी के भार को दूर करने के लिए आपका अवतार हुआ है, यह मैंने जान लिया है, इस बात को वसुदेवजी ने **सत्वम्० इत्यादि** दो श्लोकों से कहा है ।।२०।।

त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषुर्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर ।
राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैर्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥२१॥

अन्वयः— हे विभो ! एवं त्वम्अस्य रिरक्षिषुः मम गृहेअवतीर्णोऽसि, हे अखिलेश्वर ! राजन्यसंज्ञासुरकोटि यूथपैः निर्व्यूह्यमाना चमूः निहनिष्यसे ।।२१।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप इस जगत् की रक्षा करने की इच्छा से हमारे गृह में अवतीर्ण हुए हैं । हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् । आजकल करोड़ों असुर सेनापतियों ने राजाओं का रूप धारण करके अपने अन्दर बड़ी-बड़ी सेनाओं को बना रखा है । मैं यह भी जानता हूँ कि आप उन सबों का संहार करेंगे ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

रिरक्षिषु रक्षितुमिच्छुरवतीर्णोऽसि कृष्णेन वर्णेन । अतः साधूनां रक्षणार्थं राजन्यसंज्ञा येऽसुरकोटियूथपास्तैर्निर्व्यूह्यमाना इतस्ततश्चाल्यमानाश्चमूः सेना निहनिष्यसे संहरिष्यसि ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

रक्षा करने की इच्छा से कृष्णवर्ण को धारण करके आप अवतीर्ण हुए हैं । अतएव साधुपुरुषों की रक्षा करने के लिए राजाओं का रूप धारण किए हुए जो असुरों के करोड़ों सेनापति हैं, उन सबों के द्वारा संचालित की जाने वाली सेना का आप संहार करेंगे ।।२१।।

अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे श्रुत्वाऽग्रजांस्ते न्यवधीत्सुरेश्वर ।
स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं श्रुत्वाधुनै वाभिसरत्युदायुधः ॥२२॥

अन्वयः— हे सुरेश्वर ! अयंतु असभ्यः असुरेश्वरः तव जन्मनौ गृहे श्रुत्वा ते अग्रजान् न्यवधीत् सः पुरुषै समर्पित ते अवतारं श्रुत्वा उदायुधः अधुनैव अभिसरति ।।२२।।

अनुवाद— हे देवताओं के भी स्वामिन् ! यह असुरेश्वर कंस महादुष्ट है । इसने जब सुना कि आपका जन्म हमलोगों के गृह में होने वाला है तो इसने आपके सभी बड़े भाइयों को मार डाला । जब यह अपने भृत्यों के माध्यम से जानेगा कि आपका अवतार हो गया है तो यह तुरन्त आयुध धारण करके आ जायेगा ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

किंतु तथाप्यप्रमत्तेन त्वया भाव्यमित्याह-अयं त्विति । असभ्यः खलः । समर्पितं कथितम् । अभिसरत्यागमिष्यति।।२२।।

भाव प्रकाशिका

अतएव आपको सावधान होना चाहिए इस बात को वसुदेवजी ने **अयं तु० इत्यादि** श्लोक से कहा है। **असभ्यः** अर्थात् दुष्ट । समर्पितम् अर्थात् कहे जाने पर । अभिसरति आयेगा ।।२२।।

श्रीशुक उवाच

अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुषलक्षणम् । देवकी तमुपाधावत्कंसाद्भीता शुचिस्मिता ।।२३।।

अन्वयः— अथ एनं महापुरुषलक्षणम् आत्मजं वीक्ष्य कंसाद्भीता शुचिस्मिता देवकी तम् उपाधावत् ।।२३।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद—उसके पश्चात् महापुरुष के समस्त लक्षणों से सम्पन्न अपने पुत्र को देखकर कंस के भय से भयभीत देवकीजी ने उनकी स्तुति की ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

उपाधावदस्तौत् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

उपाधावत् अर्थात् स्तुति की ।।२३।।

देवक्युवाच

रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्मज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् ।
सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः ।।२४।।

अन्वयः— यत् अव्यक्तम् आद्यं ब्रह्म, ज्योतिः निर्गुणं निर्विकारं सत्तामात्रं, निर्विशेषं निरीहं वेदा आहुः त्वं सः अध्यात्मदीपः साक्षाद्विष्णुः ।।२४।।

देवकीजी ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! आपके जिस रूप को वेदों ने अव्यक्त, सबों का कारण स्वरूप ब्रह्म, ज्योति स्वरूप निर्गुण निर्विकार, सत्तामात्र, सभी विशेषणों से रहित, अनिर्वचनीय कहा है वही आप बुद्धि आदि के प्रकाशक साक्षात् विष्णु हैं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

त्वयि भयशङ्कैव तावन्नास्तीति श्लोकचतुष्टयेनाह देवकीं किंचिद्विज्ञापयितुम् रूपमिति । यत्तत्किमपि रूपं वस्तु प्राहुर्वेदाः। किं तद्वस्तु तदाह-अव्यक्तम् । अत्र हेतुः आद्यं कारणम् । किं परमाणवः, न, ब्रह्म बृहत् । किं प्रधानम्, न, ज्योतिश्चेतनम्। किं वैशेषिकाणामिव ज्ञानगुणम्, न निर्गुणम् । किं मीमांसकानामिव ज्ञानपरिणामि, न, निर्विकारम् । किं पुष्कराक्षादीनामिव शक्तिविक्षेपपरिणामि, न, सत्तामात्रम् । तर्हि किं सामान्यम्, न निर्विशेषम् । तर्हि किं कारणत्वात्सक्रियम्, न, निरीहम् । संनिधिमात्रेण कारणम् । एवंभूतं किमपि कार्यकलापं यद्वस्तु स एव साक्षात्त्वं विष्णुरिति । अपरोक्षश्चेत्याह-अध्यात्मदीप इति। बुद्ध्यादिकरणसंघातप्रकाशक इत्यर्थः । अथवा अव्यक्तं, न केनापि प्रकारेण व्यज्यत इत्यव्यक्तम् । कथम् उत्पत्त्या तावन्न व्यज्यत इत्याह-आद्यं सर्वस्य कार्यस्याद्यम् । अनादीत्यर्थः । तथा ब्रह्म ज्योतिनिर्गुणं निर्विकारमिति चतुर्भिः पदैर्देशेन प्रकाशेन च गुणेन च विकारेण च व्यक्तिं निराकरोति-तथा सत्तामात्रमिति विशेषेण, निर्विशेषमिति सामान्येन निरीहमिति क्रियया च व्यक्तिं निराकरोति-अन्यत् समानम् । एवंभूतस्य तव न भयशङ्केति भावः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

रूपमित्यादि चार श्लोकों से देवकीजी ने कहा कि आपके विषय में कोई भय की शङ्का है ही नहीं। इस बात को उन्होंने कुछ निवेदित करने के लिए कहा। आपका जो रूप वेदों ने बतलाया है वही आपका रूप है। वह वस्तु क्या है ? जिसे वेदों ने कहा है उसे कहती हैं कि वह अव्यक्त है। यहाँ अव्यक्त होने का कारण आदि कारण होना है। क्या वह आदि कारण परमाणु है क्या ? तो इस पर कहती हैं, बृहत् अर्थात् वह महत्त्वगुण सम्पन्न है तो फिर वह प्रकृति है क्या ? तो ऐसी भी बात नहीं है, वह ज्योति स्वरूप चेतन है। क्या ज्ञान के रूप में परिणत होने वाला है ? तो ऐसी भी बात नहीं है वह निर्विकार है। उसमें कोई भी विकार नहीं होता है। क्या पुष्करादि के समान शक्ति विक्षेप का परिणाम वाला वह है ? तो ऐसी भी बात नहीं है, वह सत्तामात्र है तो फिर क्या वह जाति रूप है ? तो ऐसी भी बात नहीं है वह निर्विशेष है। तो फिर क्या कारण होने के कारण सक्रिय है ? तो ऐसी भी बात नहीं है। वह निरीह है। अर्थात् अनिर्वचनीय है। अपने संनिधान विष्णु है। अध्यात्म दीप कहकर देवकीजी ने अपरोक्ष एवं बुद्धि आदि कारण समूह का प्रकाशक बतलाया है। जो किसी भी प्रकार से व्यक्त न हो उसे अव्यक्त कहते हैं। क्योंकि उनकी उत्पत्ति से अभिव्यक्ति नहीं होती है। आद्य कहकर उनको सम्पूर्ण कार्य वस्तु का कारण बतलाया गया है। अर्थात् अनादि। तथा ब्रह्म, ज्योति, निर्गुणं एवं निर्विकारम् इन चार पदों के द्वारा देश, प्रकाश, गुण तथा विकार के द्वारा श्रीभगवान् की अभिव्यक्ति का निषेध किया गया है। इसी तरह सत्ता मात्रम् इस विशेषण के द्वारा निर्विशेष इस सामान्य के द्वारा तथा निरीहम् इस पद से क्रिया के द्वारा उनकी अभिव्यक्ति का निरास किया गया है। अन्य सारी बातें सामान्य हैं। इस प्रकार के आपको भय की शङ्का है ही नहीं। यह देवकीजी का भाव है ॥२४॥

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु ।
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते भवानेकः शिष्यतेऽशेषसंज्ञः ॥२५॥

अन्वयः— द्विपरार्धावसाने लोके नष्टे कालवेगेन महाभूतेषु आदिभूतं गतेषु व्यक्ते अव्यक्तं याते अशेष संज्ञः एकः भवान् शिष्यते ॥२५॥

अनुवाद— जब ब्रह्माजी की दो परार्ध की आयु समाप्त हो जाती है तथा सारा संसार विनष्ट हो जाता है काल के वेग से पञ्चमहाभूत जब अहङ्कार से मिल जाते हैं, अहङ्कार महत् तत्त्व से मिल जाता है और महत् तत्त्व प्रकृति में लीन हो जाता है उस समय अशेष संज्ञक एकमात्र आप ही रह जाते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

किंच महाप्रलयेऽप्यवशिष्यमाणस्य कुतो भयमित्याह-नष्टे लोके इति। चराचरे लोके। महाभूतेषु लीनेष्वप्यादिभूतं भूतसूक्ष्मं प्रविष्टेषु तस्मिन्नपि व्यक्तेऽव्यक्तं प्रधानं प्राप्ते। अशेषात्मके प्रधाने संज्ञा प्रज्ञा यस्य। एवं मयि लीनमिदमस्ति पश्चादेवमुद्बोधनीयमिति सोऽशेषसंज्ञः। शेषसंज्ञ इति वा ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च जब आप महाप्रलय में भी बचे रहते हैं, इस प्रकार के आपके भय की शङ्का नही हो सकती है इस बात को **नष्टे लोके० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। लोके अर्थात् चराचरात्मक लोक के। महाभूतों के आदि भूत अर्थात् भूतसूक्ष्म में प्रवेश कर जाने पर उसके भी व्यक्त में तथा व्यक्त के भी अव्यक्त में लीन हो जाने पर सम्पूर्ण जगदात्मक प्रधान में जिनकी संज्ञा अर्थात् ज्ञान है ऐसे मुझमें यह जगत् लीन हो गया है। इस तरह से जिसको संबोधित किया जाता है ऐसे एक मात्र अशेष संज्ञक आप अवशिष्ट रह जाते हैं। अथवा शेष संज्ञक आप रह जाते हैं ॥२५॥

योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् ।
निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयांस्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ॥२६॥

अन्वयः— हे अव्यक्तबन्धो योऽयं निमेषादिः वत्सरान्तः महीयान् कालः येन विश्वं चेष्टते तस्य ते चेष्टाम् आहुः तं क्षेमधाम ईशानं त्वा प्रपद्ये ॥२६॥

अनुवाद— हे प्रकृति के एक मात्र प्रवर्तक प्रभो निमेष से लेकर वर्ष पर्यन्त जिसका विभाग है, जिसके द्वारा सम्पूर्ण जगत् चेष्टाएँ करता है वह काल निस्सीम है । उस काल को वेदों ने आपकी लीला बतलाया है । आप सर्वशक्तिमान, कल्याण के एकमात्र आश्रय हैं । मैं आपकी शरणागति करती हूँ ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

किंच एवं प्रलयहेतुर्योऽयं काल एनम् । हे अव्यक्तबन्धो प्रकृतिप्रवर्तक, तस्य प्रलयावधिभूतस्य ते तव चेष्टां लीलाम्। चेष्टते विपरिवर्तते पुनः पुनर्वत्सरावृत्त्या। महीयान् द्विपरार्धरूपः । यस्य चेष्टामाहुस्तं त्वा त्वां क्षेमधामाभयस्थानं प्रपद्ये शरणं व्रजामि॥२६॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रलय का कारण जो यह काल है, हे प्रकृति के प्रवर्तक प्रभो प्रलय के कारणभूत काल को वेदों ने आपकी लीला कहा है । **चेष्टते** अर्थात् यह बार-बार वत्सर की आवृत्ति के द्वारा अत्यन्त महान् द्विपरार्ध रूप हो जाता है । इस काल को भी जिस आपकी लीला कहा गया है ऐसे अभय स्थान रूप आपकी मैं शरण में हूँ ॥२६॥

मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायँल्लोकान्सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत् ।
त्वत्पादब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥२७॥

अन्वयः— हे आद्य मृत्यु व्यालभीतः मर्त्यः सर्वान् लोकान् पालयन् निर्मयं न अध्यगच्छत् यदृच्छया त्वत् पादाब्जं प्राप्य अद्य स्वस्थः शेते । अस्मात् मृत्यु दूरम् अपैति ॥२७॥

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् के कारण रूप भगवान् मृत्यु रूपी सर्प से भयभीत बना हुआ मानव समस्त लोकों का पालन करता हुआ भी निर्भय नहीं हो सका । सौभाग्यवशात् आज आपके चरणों की छाया प्राप्त करके वह स्वस्थ होकर सो रहा है । मृत्यु उससे दूर भाग जा रही है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

क्षेमधामत्वमेवाह- मर्त्य इति लोकान् प्रति यदृच्छया के नापि भाग्योदयेन हे आद्यः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

मर्त्य इत्यादि श्लोक के द्वारा देवकीजी श्रीभगवान् को क्षेम का आश्रय बतलाती हैं । लोगों को किसी भाग्यों के कारण हे आद्य ! अर्थात् हे सम्पूर्ण जगत् के कारण स्वरूप भगवान् ॥२७॥

सत्त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्नस्त्राहि त्रस्तान्भृत्यवित्रासहासि ।
रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥२८॥

अन्वयः— स त्वं भृत्यवित्रासहा असि घोरात् उग्रसेनात्मजात् त्रस्तान् नः त्राहि ध्यानधिष्ण्यं चेदं पौरुषं रूपं मांसदृशां प्रत्यक्षं मा कृषीष्ठाः ॥२८॥

अनुवाद— आप भक्तों के भय को विनष्ट करने वाले है, इस अत्यन्त दुष्ट कंस से भयभीत बने हुए हमलोगों की आप रक्षा करें । आपका यह दिव्य चतुर्भुज रूप ध्यान का विषय है । मांसमय शरीर को ही अपनी आत्मा मानने वाले हम देहाभिमानियों को आपने इस रूप का दर्शन न कराइये ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतं विज्ञापयति-स त्वमिति । भृत्यानां वित्रासं हन्तीति भृत्यवित्रासहा । भृत्यविदिति वा छेदः । पौरुषमैश्वरम् । ध्यानधिष्ण्यं ध्यानास्पदम् । मांसदृशां मांसचक्षुषां प्रत्यक्षं मा कृथाः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

प्रस्तुत विषय को **सत्वम्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा निवेदित करती हैं । आप भक्तों के भय को विनष्ट करते हैं । अथवा अपने भक्तों को जानते हैं इस तरह से भी पदच्छेद किया जा सकता है । आपका यह ऐश्वर रूप ध्यान का विषय है । इसको इन देहाभिमानियों के नेत्र का विषय न बनायें ।।२८।।

जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन । समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ।।२९।।

अन्वयः— हे मधुसूदन ! असौ पाप ते जन्म मयि मा विद्यात् । अधीर धीः अहम् भवद्हेतो कंसात् समुद्विजे ।।२९।।

अनुवाद— हे मधुसूदन ! यह पापी कंस इस बात को न जान सके कि आपका जन्म मेरे गर्भ से हुआ है । मेरा धैर्य टूट रहा है । आपके लिए मैं कंस से बहुत डर रही हूँ ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

भवत एव हेतोर्निमित्तात्कंसात्समुद्विजे विभेमि, यतोऽधीरचिता ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

आपके ही कारण मैं कंस से बहुत डर रही हूँ । मेरा धैर्य छूट रहा है ।।२९।।

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् । शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ।।३०।।

अन्वयः— हे विश्ववात्मन् शङ्खचक्रगदापद्मश्रियाजुष्टं चतुर्भुजम् अदः अलौकिकं रूपम् उपसंहार ।।३०।।

अनुवाद— हे विश्वात्मन् प्रभो ! शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म के शोभा से युक्त अपने इस अलौकिक चतुर्भुज रूप को आप छिपा लें ।।३०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३०।।

विश्वं यदेतत्स्वतनौ निशान्ते यथावकाशं पुरुषः परो भवान् ।
बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभूदहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत् ।।३१।।

अन्वयः— परः पुरुषो भगवान् निशान्ते यदेतत् विश्वं भवान् स्वतनौ यथावकाशं विभर्ति सोऽयं भवान् मम गर्भगोऽभूत् अहो तत् नृलोकस्य विडम्बनं हि ।।३१।।

अनुवाद— आप परम पुरुष हैं । प्रलय काल में यह सम्पूर्ण जगत् आपके उदर में बिना किसी सङ्कोच के निवास करता है । वही आप मेरे गर्भ में आये, यह तो मनुष्य लोक की बहुत बड़ी विडम्बना है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

किमित्युपसंहर्तव्यमेवंभूतेन मया पुत्रेण तव महतीं श्लाघा स्यादिति तत्राह-विश्वमिति । निशान्ते प्रलयावसाने । यथावकाशमसङ्कोचतः । असंभावितत्वादुपहास्यतैव स्यादित्यर्थः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि इस रूप को मैं क्यों छिपाऊँ इस प्रकार का मैं तुम्हारा पुत्र बन गया इस तरह से तुम्हारी प्रशंसा ही होगी । इस पर देवकीजी ने **विश्वम् इत्यादि** श्लोक कहा । **निशावसाने** अर्थात् प्रलय के अन्त में **यथावकाशम्** अर्थात् बिना किसी सङ्कोच के । असम्भव होने के कारण उपहास ही होगा ।।३१।।

श्रीभगवानुवाच

त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायंभुवे इति । तदाऽयं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥३२॥

अन्वयः— त्वमेव स्वायम्भुवे सति पूर्वे सर्गे पृश्निः अभूः अयं सुतपा नाम अकल्मषः प्रजापतिः ॥३२॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— देवि ! स्वायम्भुव मन्वन्तर में जब तुम्हारा पहला जन्म हुआ था उस समय तुम्हारा नाम पृश्नि था और ये वसुदेव सुतपा नामक शुद्ध हृदय वाले प्रजापति थे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्भुजेन रूपेणाविर्भावे कारणं तावदाह-त्वमेवेत्यादिचतुर्दशभिः । पूर्वसर्गे प्रथमजन्मनि । अभूः आसीः । पृश्निर्नाम स्वायम्भुवे मन्वन्तरे तदा अयं वसुदेवः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

त्वमेव इत्यादि चौदह श्लोकों से चतुर्भुज रूपसे अवतीर्ण होने का कारण श्रीभगवान् बतलाते हैं । प्रथम जन्म में तुम पृश्नि थीं । उस समय स्वायम्भुव मन्वन्तर में वसुदेव जी सुतपा नामक प्रजापति थे ॥३२॥

युवां वै ब्रह्मणादिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः । संनियम्येन्द्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥३३॥

अन्वयः— यदा वै युवां प्रजासर्गे ब्रह्मा आदिष्टौ ततः इन्द्रियग्रामं संनियम्य परमं तपः तेपाथे ॥३३॥

अनुवाद— जब ब्रह्माजी ने तुम दोनों को सन्तान उत्पन्न करने की आज्ञा दी उस समय तुम दोनों ने अपनी समस्त इन्द्रियों को संयमित करके उत्कृष्ट तपस्या की ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तेपाथे तपः कृतवन्तौ ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

तेपाथे अर्थात् तपस्या किया ॥३३॥

वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु । सहमानौ श्वासरोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥३४॥

अन्वयः— ननु वर्षवाततप हिमघर्मकालगुणा सहमानौ श्वासरोधविनिर्धूतमनो मलौ ॥३४॥

अनुवाद— तुम दोनों वर्षा, वायु, धाम, शीत, उष्ण कालों के विभिन्न गुणों को सहते हुए प्राणायाम के द्वारा अपने मन के मल को धो डाले ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

शीर्णपर्णानिलाहारावुपशान्तेन चेतसा । मत्तः कामानभीप्सन्तौ मदाराधनमीहतुः ॥३५॥

अन्वयः— शीर्णपर्णानिलाहारौ उपशान्तेन चेतसा मत्तः कामानभीप्सन्तौ मदाराधनम् ईहतुः ॥३५॥

अनुवाद— गिरे हुए पत्ते तथा वायु का आहार करके शान्त मन से अपनी अभीष्ट कामना की पूर्ति के लिए तुम दोनों ने मेरी आराधना की ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३५॥

एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परमदुष्करम् । दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥३६॥

अन्वयः— एवं मदात्मनो परमदुष्करं तपः तप्यतोः मदात्मनोः वां द्वादशदिव्यवर्ष सहस्राणि ईयुः ॥३६॥

अनुवाद— इस तरह से मुझमें मन लगाकर कठोर तपस्या करते हुए तुम दोनों देवताओं के बारह हजार वर्ष बीत गये ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

तप्यतोराचरतोः ईयुर्गतानि । मदात्मनोर्मच्चित्तयोः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

तप्यतोः अर्थात् तपस्या करते हुए । **ईयुः** अर्थात् बीत गये । **मदात्मनोः** अर्थात् मुझमें चित्त लगाये हुए।।३६।।

तदा वां परितुष्टोऽहममुना वपुषानघे । तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः।।३७।।
प्रादुरासं वरदराड् युवयोः कामदित्सया । व्रियतां वर इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः।।३८।।

अन्वयः— हे अनघे तदा तपसा श्रद्धया, नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः वां परितुष्टः अमुना वपुषा वरदराट् अहं युवयोः कामदित्सया प्रादुरासम्, वरः व्रियतां इत उक्ते वां मादृशः सुतः वृतः ।।३७-३८।।

अनुवाद— हे पुण्यमयी देवि ! उस समय तपस्या श्रद्धा तथा भक्ति पूर्वक अपने हृदय में मेरी भावना करते हुए आप दोनों पर प्रसन्न होकर वरदान देने वालों में श्रेष्ठ मैं इसी शरीर से आप दोनों के सामने आप दोनों को अभिलषित वरदान देने के लिए प्रकट हुआ । जब मैंने वरदान माँगने के लिए कहा तो आपलोगों ने मेरे ही सदृश पुत्र को माँगा ।।३७-३८।।

भावार्थ दीपिका

अमुना वपुषा प्रादुर्भूतोऽस्मि । वरदराट् वरदेषु श्रेष्ठ इत्यर्थः । तेन सकृद्वरेण च वारंवारमाविर्भावे कारणमुक्तम् । कामस्य दित्सया दातुमिच्छया । मादृशो मया सदृशः ।।३७-३८।।

भाव प्रकाशिका

इसी शरीर में प्रकट हुआ । वरद्राट् अर्थात् वरदान देने वालों में श्रेष्ठ । उस एक बार के वरदान के कारण बार-बार आविर्भूत होने का कारण बतलाया गया है । अभिलषित वरदान देने की इच्छा से **मादृशः** अर्थात् मेरे ही समान ।।३७-३८।।

अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दम्पती । न वव्राथेऽपवर्गं मे मोहितौ देवमायया ।।३९।।

अन्वयः— अजुष्टग्राम्यविषयौ अनपत्यौ च दम्पती मममायामोहितौ मे अपवर्गं न वव्राथे ।।३९।।

अनुवाद— उस समय तक आपलोगों ने ग्राम्यविषयों का सेवन नहीं किया था और आप दोनों निःसन्तान थे, अतएव मेरी माया से मोहित होने के कारण मुझसे आपलोगों ने मुक्ति का वरदान नहीं माँगा ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

मे मत्तोऽपि युवामपवर्गं न वव्राथे न वृतवन्तौ ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

मुझसे भी मोक्ष नहीं माँगे ।।३९।।

गते मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम् । ग्राम्यान्भोगानभुञ्जाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ।।४०।।

अन्वयः— मयि गते युवां मत्सदृशं सुतं लब्ध्वा प्राप्त मनोरथौ युवां ग्राम्यान् भोगान् अभुञ्जाथां ।।४०।।

अनुवाद— मेरे चले जाने पर मेरे सदृश पुत्र का वरदान प्राप्त करके आप दोनों का मनोरथ पूर्ण हो गया। आप दोनों ही ग्राम्य सुख का अनुभव करने लगे ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

वरं दत्त्वा मयि गते ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

वरदान देकर मेरे चले जाने पर ॥४०॥

अदृष्ट्वाऽन्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम् । अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥४१॥

अन्वयः— शीलौदार्यगुणैः समम् अन्यतमं लोके अदृष्ट्वा पृश्निगर्भ इति श्रुतः वाम् अहं सुतः अभवम् ॥४१॥

अनुवाद— शील, उदारता तथा अन्य गुणों के विषय में संसार में दूसरे किसी को नहीं देखकर मैं ही आप दोनों का पुत्र पृश्निगर्भ के नाम से विख्यात हुआ ॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४१॥

तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् । उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥४२॥

अन्वयः— तयोः वा अहम् पुनः एव आदित्यां कश्यपात् उपेन्द्र इति विख्यातः वामनत्वाच्च वामनः अस ॥४२॥

अनुवाद— उन्हीं आप दोनों का फिर मैं अदितिमाता के गर्भ से महर्षि कश्यप के पुत्र उपेन्द्र नाम से विख्यात हुआ और वामन होने के कारण वामन के नाम से विख्यात हुआ ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

अदित्या कश्यपाद्वामन आसेति यत्तदपि तद्रूपयोर्युवयोरहमेव पुनरासमित्यर्थः ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

अदिति माता के गर्भ से कश्यप महर्षि के पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ । उस रूप में आप ही दोनों का मैं पुत्र हुआ ॥४२॥

तृतीयेऽस्मिन् भवेऽहं वै तेनैव वपुषाथ वाम् । जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥४३॥

अन्वयः— अथ हे सति अस्मिन् तृतीये भवे अहं वै तेनैव वपुषा भूयस्तयोरेव जातः सत्यं मेव्याहृतम् ॥४३॥

अनुवाद— हे सती देवकी ! इस तीसरे जन्म में भी मैं आप दोनों का उसी रूप से पुत्र हुआ हूँ मेरी वाणी सदा सत्य होती है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४३॥

एतद् वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे । नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते ॥४४॥

अन्वयः— मे प्राग्जन्मस्मराणाय वां एतद् रूपं दर्शितं अन्यथा मद्भावं मर्त्यलिङ्गेन न जायते ॥४४॥

अनुवाद— मैंने आपलोगों को अपने इस रूप को इसलिए दिखाया है कि आपलोगों को मेरे अवतारों का स्मरण हो जाय । यदि मैं ऐसा नहीं करता तो मनुष्य शरीर से मेरे अवतार की पहचान नहीं हो पाती ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

प्राक्प्रथमं तावदेतद्रूपं मे जन्मेति स्मरणाय ज्ञानाय दर्शितम् । मद्भावं मद्विषयम् । अनन्तरं त्वदिच्छया बालोऽपि भविष्यामीति भावः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

मेरा पहला यह रूप आप लोगों को इसलिए है कि मेरे पूर्वजन्म का स्मरण हो जाय । **मद्भावम्** अर्थात् मेरा जन्म । अब आपकी इच्छा से मैं बालक भी हो जाता हूँ ॥४४॥

युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत् । चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्‌गतिं पराम् ॥४५॥

अन्वयः— युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन च असकृत्‌चिन्तयन्तौ कृत स्नेहौ परां गतिं यास्येथे ।।४५।।

अनुवाद— आप दोनों मेरा प्रेम पूर्वक पुत्र रूप से तथा ब्रह्म रूप से बार-बार चिन्तन करके मुक्ति को प्राप्त कर लेंगे ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

ननु त्वयि प्रसन्नेऽपि कथमावयोः पुनः पुनर्जन्मेत्यतः परं न भविष्यतीत्याह-युवामिति ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि आपके प्रसन्न हो जाने पर भी हम दोनों का बार-बार जन्म क्यों होता है, तो इसका उत्तर है कि अब नहीं होगा । इस बात को **युवाम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ॥४५॥

क्षेंपक

यदि कंसाद्बिभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय । मन्मायामानयाशु त्वं यशोदागर्भसंभवाम् ॥१॥

अन्वयः— यदि त्वं कंसाद् बिभेषि तर्हि मां गोकुलं नय यशोदा गर्भसंभवाम् मम मायाम् आशु आनय ।।१।।

अनुवाद— यदि आप कंस से डरते हैं तो मुझे गोकुल पहुँचा दें और यशोदा के गर्भ से उत्पन्न मेरी माया को शीघ्र लायें ॥१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१।।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वासीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया । पित्रोः संपश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः ॥४६॥

अन्वयः— इत्युक्त्वा हरिः तुष्णीं आसीत् आत्ममायया भगवान् पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यः प्राकृतः शिशुः बभूव ।।४६।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— यह कहकर श्रीहरि मौन हो गये और अपनी माया से अपने माता-पिता के देखते ही देखते साधारण बालक बन गये ॥४६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४६।।

ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः सुतं समादाय स सूतिकागृहात् ।
यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा या योगमायाऽजनि नन्दजायया ॥४७॥

अन्वयः— ततश्च सः भगवत्प्रचोदितः शौरिः सुतं समादाय सूतिकागृहात् यदा बहिर्गन्तुम् इयेष तर्हि अजाया योगमाया नन्द जायया अजनि ।।४७।।

अनुवाद— उसके पश्चात् वे वसुदेवजी श्रीभगवान् के द्वारा प्रेरित होकर अपने पुत्र को लेकर प्रसूती गृह से जब बाहर जाना चाहे उसी समय वह भगवान् के द्वारा आदिष्ट माया नन्दपत्नी यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुई ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

यदि कंसाद्बिभेषि तर्हि मां गोकुलं नय यशोदायाश्च तां कन्यां मन्मायामानयेति प्रथममेव भगवता प्रचोदितो वसुदेवो यदा गन्तुमैच्छत्तदैव अजापि या योगमाया सा नन्दजायया निमित्तमात्रभूतया अजनि जाता ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कंस से डरते हैं तो मुझे गोकुल पहुँचा दें और वहाँ यशोदा के गर्भ से कन्या के रूप में उत्पन्न मेरी माया को ले आयें, इस तरह से भगवान् ने वसुदेवजी को पहले ही प्रेरित किया था । अतएव जिस समय श्रीभगवान् को लेकर वसुदेवजी गोकुल जाना चाहे उसी समय श्रीभगवन् की योगमाया निमित्त मात्र ही बनी हुई यशोदाजी के गर्भ से उत्पन्न हुई ।।४७।।

तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु द्वाः स्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ ।
द्वारस्तु सर्वाः पिहिता दुरत्यया बृहत्कपाटायसकीलशृङ्खलैः ।।४८।।
ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्यन्त यथा तमो रवेः ।
ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः शेषोऽन्वगाद्वारि निवारयन्फणैः ।।४९।।

अन्वयः— अथ तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु द्वाः स्थेषु पौरष्वपि शायितेषु सर्वाः दुरत्ययाः बृहत्कपाटायसकीलशृङ्खलैः पिहिताः द्वारः तु ताः कृष्णवाहे वसुदेवे आगते स्वयं तमो रवेः यथा स्वयं व्यवर्यन्त उपांशु गर्जितः ववर्ष, शेषः फणैः वारिन्यवारयन् अन्वगात् ।।४८-४९।।

अनुवाद— उस समय योगमाया ने द्वारपालों और पुरवासियों की चेतना को हर ली, वे सबके सब अचेत होकर सो गये । बन्दी गृह के सभी दरवाजे बन्द थे । उनमें बड़े-बड़े किवाड़ और ताले लगे थे । परन्तु वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्ण को गोद में लेकर ज्यों ही उनके सन्निकट आये त्यों ही वे सब-के-सब दरवाजे अपने आप उसी तरह खुल गये जिस तरह सूर्योदय के होते ही अन्धकार दूर हो जाता है । इस समय मेघ धीरे-धीरे गरजते हुए फूहारें छोड़ रहे थे । शेषजी अपने फणों से जल को रोकते हुए श्रीभगवान् के पीछे चलने लगे ।।४८-४९।।

भावार्थ दीपिका

हृताः प्रत्ययार्थाः सर्वा वृत्तयो येषाम् । अथवा हृताः प्रत्यया अन्याश्च सर्वां वृत्तयो येषां जाग्रतामपि तथाभूतेषु द्वारपालेषु सत्सु । बृहत्सु कपाटेषु लोहकीलकयुक्तशृङ्खलैर्बृहद्भिः कपाटादिभिर्दुरत्यया इति वा । स्वयमेव व्यवर्यन्त विवृता इत्यर्थः । व्यव्रियन्तेन्ति वक्तव्ये गुणश्छान्दसः । रवेर्निमित्तात् ।।४८-४९।।

भाव प्रकाशिका

सबों कि ज्ञानों को हर लिया अथवा जिन सबों के समस्त ज्ञान और सारी वृत्तियाँ हर ली गयी थीं । जागने वाले द्वारपाल भी वैसे ही सो गये । लोहे ही कीलों वाले जंजीरों से बधे किवाड़ों को पार करना कठिन था । वे सबके सब अपने आप खुल गये । व्यव्रियन्त यह कहना चाहिए किन्तु व्यवर्यन्त यह छन्दस प्रयोग है के कारण ।।४८-४९।।

मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा गम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला ।
भयानकावर्तशताकुला नदी मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः ।।५०।।

अन्वयः— मघोनि असकृत् वर्षति गम्भीरतोयौघजवोर्मि फेनिला, भयानकावर्तशताकुला यमानुजा नदी श्रियः पतेः सिन्धुरिव मार्गं ददौ ।।५०।।

अनुवाद— बार-बार वर्षा होते रहने के कारण बढ़ी हुई यमुना नदी का प्रवाह गहरा और तेज हो गया था । चंचल तरङ्गों के कारण जल पर फेन ही फेन दिखता था सैकड़ों भयानक भँवर पड़ रहे थे फिर भी जिस तरह समुद्र ने श्रीभगवान् श्रीराम को मार्ग दे दिया था उसी तरह यमुनाजी ने उनको मार्ग दे दिया ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

गम्भीरो यस्तोयौघस्तस्य जवेन य ऊर्मयस्तैः फेनिला फेनव्याप्ता । भयानकैरावर्तशतैर्व्याप्तापि । श्रियःपतेः सीतापतेः ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

गम्भीर जल के तेज प्रवाह की लहरियों के कारण यमुना नदी फेन से व्याप्त थीं । भयानक सैकड़ों भँवरों से व्याप्त भी यमुना नदी ने उसी तरह वसुदेवजी को मार्ग प्रदान कर दिया जिस तरह समुद्र ने श्रीरामचन्द्रजी को मार्ग प्रदान कर दिया था ।।५०।।

नन्दव्रजं शौरिरूपेत्य तत्रतान् गोपान्प्रसुप्तामुपलभ्य निद्रया ।
सुतं यशोदाशयने निधाय तत्सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात् ।।५१।।

अन्वयः— शौरि नन्दव्रजम् उपेत्य तत्र तान् गोपान् निद्रया सुप्तान् उपलभ्य सुतं यशोदाशयने निधाय तत्सुताम् उपादाय पुनः गृहान् अगात् ।।५१।।

अनुवाद— वसुदेवजी नन्दव्रज में जाकर वहाँ पर निद्राग्रस्त गोपों को देखकर अपने पुत्र को यशोदाजी की शय्या पर रखकर यशोदा की पुत्री को लेकर फिर अपने घर आ गये ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

निद्रया अजया ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

माया के द्वारा ।।५१।।

देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम् । प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः ।।५२।।

अन्वयः— अथ वसुदेवः देवक्याः शयने दारिकाम् न्यस्य पदोः लोहम् प्रतिमुच्य पूर्ववद् आवृत आस्ते ।।५२।।

अनुवाद— बन्दीगृह में आकर वसुदेवजी उस बालिका को देवकीजी की शय्या पर सुलाकर अपने पैरों में बेड़ियाँ डाल दी और पहले के ही समान बन्दीगृह में बन्द हो गये ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

प्रतिमुच्य बद्ध्वा । पदोः पादयोः लोहं निगडम् । आस्ते स्म ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

प्रतिमुच्य अर्थात् बाँधकर । पदोः अर्थात् पैरों में **लोहम्** अर्थात् बेणी को । **आस्ते** अर्थात् हो गये ।।५२।।

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत । न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयापगतस्मृतिः ।।५३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे कृष्ण जन्मनि तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

अन्वयः— नन्दपत्नी यशोदा जातम् परम अबुध्यत् परिश्राता निद्रया अपगतस्मृतिः तल्लिङ्गं न अबुध्यत् ।।५३।।

अनुवाद— नन्दजी की पत्नी को इतना तो पता था कि उनको कोई सन्तान हुई है किन्तु वह पुत्र है कि पुत्री इस बात को वे नहीं जान पायी थीं । क्योंकि इसमें उनको बहुत श्रम हुआ था और निद्रा ने उन्हें अचेत बना दिया था ।।५३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के अन्तर्गत श्रीकृष्ण जन्म के प्रसङ्ग में तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

भावार्थ दीपिका

जातं किंचिदिति केवलमबुध्यत नतु तल्लिङ्गं पुत्रः कन्या वेति । योगनिद्रया च मोहितेति ।।५३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

यशोदाजी को यह तो पता था कि कोई सन्तान हुई है, किन्तु वे इस बात को नहीं जान सकीं की पुत्र है कि पुत्री ? क्योंकि योगनिद्रा ने उनको मोहित कर रखा था ।।५३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के तीसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

* * *

चौथा अध्याय

कंस के हाथ से छूटकर योगमाया का आकाश में जाकर भविष्यवाणी करना

श्रीशुक उवाच

बहिरन्तः पुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः । ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥१॥

अन्वयः— बहिरन्तः पुनद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुथिताः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— वसुदेवजी के लौट जाने पर नगर के सभी द्वार पहले के ही समान बन्द हो गये थे । उसके पश्चात् बालक की ध्वनि सुनकर सभी द्वारपालों की नींद खुल गयीं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्थे चण्डिकावाक्यमाकर्ण्यातिभयाकुलः । दुर्मन्त्रिभिर्हितं मेने कंसो बालादिहिंसनम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौथे अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि चण्डिका की वाणी को सुनकर भयभीत बना हुआ कंस दुष्ट मन्त्रियों के सलाह के अनुसार बालकों आदि की हिंसा को हितकर समझा ॥१॥

ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् । आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥२॥

अन्वयः— ते तु तूर्णम् उपव्रज्य देवक्याः तत् गर्भ जन्म भोजराजाय आचख्युः यद् उद्विग्न प्रतीक्षते ॥२॥

अनुवाद— वे शीघ्र ही जाकर देवकी के बालक के जन्म का समाचार कंस को सुनाये जिसकी प्रतीक्षा बड़ी व्याकुलता के साथ कंस कर रहा था ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तदष्टमं जन्म ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उस आठवें गर्भ का जन्म ॥२॥

स तल्पात्तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः । सूतीगृहमगात्तूर्णं प्रस्खलन्मुक्तमूर्धजः ॥३॥

अन्वयः— सः तल्पात् तूर्णम् उत्थाय अयं कालः इति विह्वलः प्रस्खलन् मुक्तमूर्धजः तूर्णं सूतीगृहम् अगात् ॥३॥

अनुवाद— वह अपने शय्या से शीघ्रता से उठकर यह तो मेरा काल है, यह सोचकर घबराया हुआ कंस रास्ते में गिरते पड़ते सूतिका गृह में शीघ्र आया । उस समय उसके केश खुले हुए थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

कालो मृत्युः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

कालः अर्थात् मृत्यु ॥३॥

तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती । स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हन्तुमर्हसि ॥४॥

अन्वयः— दीना सती देवी तं भ्रातरम् करुणं आह, कल्याण इयं तव स्नुषा स्त्रियं हन्तुम् मा अर्हसि ॥४॥

अनुवाद— दीन बनी हुई सती देवकी देवी ने अत्यन्त करुणा पूर्वक अपने उस भाई से कहा मेरे हितैषी भाई ! यह तुम्हारी पुत्र वधू के समान है, स्त्री है । इसको न मारो ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

बहवो हिंसिता भ्रातः शिशवः पावकोपमाः । त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम् ॥५॥

अन्वयः— भ्रातः दैवनिसृष्टेन त्वया बहवः पावकोपमाः शिशवः हिंसिताः एका पुत्रिका प्रदीयताम् ॥५॥

अनुवाद— भैया ! तुमने दैववश मेरे बहुत से अग्नि के समान तेजस्वी बालकों को मार दिया । अब इस बच्ची को तो मुझे दे दो ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो । दातुमर्हसि मन्दाया अङ्गेमां चरमां प्रजाम् ॥६॥

अन्वयः— ननु अहं ते हि अवरजा, हे प्रभो ! दीना हतसुता, हे अङ्ग मन्दायाः इमां चरमां प्रजाम् मां दातुम् अर्हसि॥६॥

अनुवाद— मैं तो तुम्हारी छोटी बहिन हूँ हे प्रभो ! मैं दीन हूँ । मेरे बहुत से बच्चे मर चुके हैं । अब इस अन्तिम मेरी सन्तान को तुम मुझे दे दो ॥६॥

भावार्थ दीपिका

अङ्ग हे भ्रातः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

अङ्ग अर्थात् हे भइया ॥६॥

श्रीशुक उवाच

उपगुह्यात्मजामेवं रुदत्या दीनदीनवत् । याचितस्तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः ॥७॥

अन्वयः— एवं आत्मजाम् उपगुह्य दीनदीनवत् रुदत्याः याचितः खलः तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे ॥७॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

भावार्थ दीपिका

दीनदीनवत् दीनादपि दीनवत्नतु तथा, पुत्रस्यान्यत्र नीतत्वात्सा च योगमायेति ज्ञातत्वात् । याचितोऽप्याचिच्छिदे हस्तादाकृष्य जग्राह ।।७।।

भाव प्रकाशिका

दीनदीनवत् अर्थात् अत्यधिक दीन के समान किन्तु उतना दीन नहीं, क्योंकि उनका पुत्र तो अन्यत्र चला गया था, वे जानती थी कि वह योगमाया है । देवकीजी के द्वारा याचना करने पर भी उनके हाथ से छिन लिया।।७।।

तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम् । अपोथयच्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ।।८।।

अन्वयः— जातमात्रां तां स्वसुः सुताम् चरणयोः गृहित्वा स्वार्थोन्मूलितसौहृदः शिलापृष्ठे अपोथयत् ।।८।।

अनुवाद— नवजात अपनी बहिन की इस पुत्री का चरण पकड़कर जोर से पत्थर पर पटका । स्वार्थ ने उसके हृदय से सौहार्द को उखाड़ फेंका था ।।८।।

भावार्थ दीपिका

अपोथयद्बलेन चिक्षेप ।।८।।

भाव प्रकाशिका

अपोथायत् अर्थात् बलपूर्वक पटक दिया ।।८।।

सा तद्धस्तात्समुत्पत्य सद्यो देव्यम्बरं गता । अदृश्यतानुजा विष्णोः सायुधाष्टमहाभुजा ।।९।।

अन्वयः— तद्हस्तात् समुपत्य सा देवी सद्यः अम्बरं गता विष्णोः अनुजा सायुधाष्टमहाभुजा अदृश्यत ।।९।।

अनुवाद— उसके हाथ से छूटकर वह देवी शीघ्र ही आकाश में चली गयी और भगवान् श्रीकृष्ण की वह छोटी बहिन अपनी विशाल आठ भुजाओं में आयुध धारण किए हुई दिखायी पड़ी ।।९।।

भावार्थ दीपिका

सद्य एव देवी भूत्वा ।।९।।

भाव प्रकाशिका

शीघ्र ही देवी होकर ।।९।।

दिव्यस्रगम्बरालेपरत्नाभरणभूषिता । धनुःशूलेषुचर्मासिखगचक्रगदाधरा ।।१०।।
सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरः किन्नरोरगैः । उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ।।११।।

अन्वयः— दिव्य स्रगम्बरालेपरत्नाभरण भूषिता धनुः शूलेषुचर्मासिशंखचक्रगदाधरा सिद्धचारण गन्धर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमाना इदम् अब्रवीत् ।।१०-११।।

अनुवाद— वह दिव्य माला वस्त्र, चन्दन तथा मणिमय आभूषणों से भूषित थी, अपने आठो हाथों में धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, खड्ग, शंख, चक्र तथा गदा धारण किए हुई थी, बड़े-बड़े सिद्ध चारण, गन्धर्व, अप्सराएँ, किन्नर उसको उपहार प्रदान करके उसकी स्तुति कर रहे थे, उस देवी ने कंस से कहा ।।१०-११।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१०-११।।

किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत् । यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान्वृथा ।।१२।।

अन्वयः— मन्द मया हतया किम् यत्र क्व वा पूर्वशत्रुः तवान्तकृत् खलु जातः कृपाणान् वृथा मा हिंसीः ।।१२।।

अनुवाद— मूर्ख ! मुझे मारने से तुम्हें क्या मिलेगा कहीं पर तुमको मारने वाला तुम्हारा पूर्वशत्रु उत्पन्न हो चुका है । अब तुम बेचारे निर्दोष बालकों की व्यर्थ में हत्या न करो ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

कृपणानिति । अन्यान् शिशून्हनिष्यमीति ज्ञात्वा वारयति । पाठान्तरे मा मां कृपणां वृथाऽहिंसीहिंसितवानसीति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे बच्चों को यह मारेगा, यह जानकर उस देवी ने कृपाणान् इत्यादि के द्वारा रोका । पाठान्तर होने पर तो अर्थ होगा कि मुझको तुमने व्यर्थ ही मारा हैं ॥१२॥

इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि । बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥१३॥

अन्वयः— माया भगवती देवी इति तं प्रभाष्य भुवि बहुनाम निकेतेषु बहुनामा बभूव ॥१३॥

अनुवाद— भागवती योगमाया इस प्रकर से कंस से कहकर पृथिवी के अनेक नामों वाले मन्दिरों में अनेक नामों वाली हो गयी ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

बहूनामनिकेतेषु वाराणस्यादिस्थानेषु ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

बहुत से निवास रहित वाराणसी इत्यादि स्थानों में ॥१३॥

तथाभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः । देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥१४॥

अन्वयः— तया अभिहितम् आकर्ण्य परम विस्मितः कंसः देवकीं वसुदेवं च विभुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥१४॥

अनुवाद— उस देवी की बातों को सुनकर अत्यन्त आश्चर्यित बना हुआ कंस देवकीजी और वसुदेवजी को बन्धन मुक्त कर अत्यन्त नम्रता से कहा ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

परमविस्मितः कथं दैवी वागनृता जातेति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं की वाणी भी कैसे झूठ हो गयी यह सोचकर कंस अत्यन्त विस्मित हो गया था ॥१४॥

अहो भगिन्यहो भाम मया वां बत पाप्मना । पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥१५॥

अन्वयः— अहो भगिनि अहो भाम ! मया पाप्मना बत पुरुषादः अपत्यं इव वां बहवः सुताः हिंसिताः ॥१५॥

अनुवाद— हे बहिन ! हे बहनोई जी ! मैं पापी हूँ जिस तरह राक्षस अपनी ही सन्तान को मार देता है उसी तरह मैंने भी आपके बहुत से पुत्रों को मार दिया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

भाम हे भगिनीभर्त, पुरुषादो राक्षसो यथा स्वापत्यमेव हिनस्ति तद्वत् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

हे बहनोई जी ! जिस तरह राक्षस अपनी ही सन्तान को मार देता है उसी तरह ॥१५॥

स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत्खलः । काँल्लोकान्वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥१६॥

अन्वयः— सोऽहं तु त्यक्तकारुण्यः त्यक्तज्ञाति सुहृत् खलः कान् वै लोकान् गमिष्यसि ब्रह्म हा इव मृतः श्वसन्॥१६॥

अनुवाद— अत्यन्त दुष्ट मैने करुणा का परित्याग कर दिया है । मैंने अपने बान्धवों तथा सुहृदों का परित्याग कर दिया । अतएव मैं अत्यन्त दुष्ट हूँ । मुझे न जाने किस नरक में जाना पड़ेगा । वस्तुतः मैं ब्रह्मघाती के समान जीवित होने पर भी मरा हुआ सा हूँ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम् । यद्विश्रम्भादहं पापः स्वसुर्निहतवान् शिशून् ॥१७॥

अन्वयः— केवलं मर्त्या एव न दैवमपि अनृतं वक्ति यद् विश्रम्भात् अहं पापः स्वसुः शिशून् निहतवान् ॥१७॥

अनुवाद— केवल मनुष्य ही नहीं देवता भी झूठ बोलते हैं, उनके ही विश्वास से अपनी बहिन के बच्चों को मार दिया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

मा शोचतं महाभागावात्मजान्स्वकृतंभुजः । जन्तवो न सदैकत्र दैवाधीनास्तदासते ॥१८॥

अन्वयः— महाभागौ आत्मजान् मा शोचतं जन्तवो हि स्वकृतं भुजः सदा एकत्र न दैवाधीनास्तदासते ॥१८॥

अनुवाद— आप दोनों महात्मा हैं अपने पुत्रों के विषय में न सोचें । सभी प्राणी अपने प्रारब्ध कर्मों का फल भोगते हैं, वे सर्वदा एक साथ नहीं रह सकते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

हे महाभागौ, स्वकृतंभुजः स्वारब्धकर्मभोक्तॄन् स्वात्मजान् मा शोचतम् । किंच जन्तवः प्राणिनः सदा नासते किंत्वल्पकालमेव। तदाप्येकत्र नासते किंतु वियुज्यन्ते । यतो दैवाधीनाः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

हे महात्माओं अपने प्रारब्ध कर्म का फल भोगने वाले अपने पुत्रों के विषय में आपलोग न सोचें । किञ्च प्राणी सदा एक ही साथ नहीं रहते हैं बल्कि वे अल्पकाल तक ही रहते हैं । क्योंकि सब कुछ दैव के अधीन ही होता है ॥१८॥

भुवि भौमानि भूतानि यथा यान्त्यपयान्ति च । नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥१९॥

अन्वयः— भौमानि भूतानि भुवि यथा यान्ति अपयान्तिच, तथा अयम् आत्मा एतेषु भूः यथा न विपर्येति ॥१९॥

अनुवाद— जिस तरह मिट्टी से बने पदार्थ बनते और बिगड़ते रहते है, किन्तु मिट्टी में कोई भी परिवर्तन नहीं होता है, इसी तरह शरीर तो बनता बिगड़ता रहता है, किन्तु आत्मा में कोई भी परिवर्तन नहीं होता है, वह सदा एक समान बना रहता हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

सदा नासत इत्यनेन यदुक्तं जन्ममरणादि देहानामेव नात्मन इत्याह-भुवीति । भूतानि देहा एव यान्त्यपयान्ति च भवन्ति न भवन्ति चेत्यर्थः । यथा भुवि भौमानि घटादीनि तद्वत् । एतेषु भूतेषु जन्मादिभिर्विक्रियमाणेष्वयमपरोक्षतया प्रत्यभिज्ञायमानो न विपर्येति विपर्ययं न प्राप्नोति । एकरूप एव वर्तत इत्यर्थः । भौमेषु विक्रयमाणेषु यथा भूतस्तथेति । एवं विचार्यमाणे सति न शोकाद्यवकाशः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

सदानासते इससे जो जन्म मरण बतलाये गये है वह भी शरीरों का ही होता है आत्मा का नहीं होता है। इस बात को **भुवि० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । देह ही उत्पन्न होते हैं, और विनष्ट होते हैं, मिट्टी से बनने वाले घटादि के समान । इन भूतों में जन्म आदि के होते रहने पर भी यह अपरोक्ष रूप से प्रतीत होने वाली आत्मा में कोई भी विकार नहीं होता है । सदा एक समान ही आत्मा हमेशा रहती है । बनने विगड़ने वाले घटादि में रहने वाली मिट्टी के समान इस तरह से विचार करने पर शोक इत्यादि के लिए भी कोई अवसर नहीं है ॥१९॥

यथाऽनेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः । देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्तते ॥२०॥

अन्वयः— यथा अनेवं विदः भेदः यतः आत्मविपर्ययः देहयोगवियोगौ च संसृतिः न निवर्तते ॥२०॥

अनुवाद— जो लोग इस तत्त्व को नहीं जानते हैं अनात्मा शरीर को ही आत्मा मानते है यही उल्टी बुद्धि है जब तक वह अज्ञान विनष्ट नहीं होता है तब तक संसार बना ही रहता है । इसी के कारण जन्म और मृत्यु होते ही रहते हैं । इस अज्ञान के मिटे बिना सुखदुःख रूप संसार भी नहीं छूटता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अज्ञानतस्तु न निवर्तत इत्याह-यथेति । यथा यथावत् अनेवंविद एवमजानत आत्मविपर्ययो देहात्मबुद्धिर्भवति यतो विपर्ययाद्भेदो भवति । देहाहंकारेण ह्यात्मनि परिच्छिन्ने सतीदंकारास्पदं भिन्नं भवति यतो भेदात्पुत्रादिदेहैर्योगो वियोगश्च ततः संसृतिः सुखदुःखे इति यावदज्ञानं न निवर्तते इत्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अज्ञान के कारण संसार की निवृत्ति नहीं होती इस बात को **यथाऽनेवं विदः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । आत्मा और शरीर के स्वभाव को यथार्थ रूप से नहीं जानने के कारण देह में आत्म बुद्धिहो जाती हैं । देहाहङ्कार से आत्मा के सीमित होने पर यह अहङ्कारास्पद भिन्न होता है । उसी से भेद के कारण पुत्रादि का देह से संयोग और वियोग होता रहता है । उसी के कारण सुख और दुःख भी होते है । यह तब तक होता रहता है जब तक कि अज्ञान दूर नहीं हो जाता है ॥२०॥

तस्माद्भद्रे स्वतनयान्मया व्यापादितानपि । माऽनुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विन्दतेऽवशः ॥२१॥

अन्वयः— तस्मात् हे भद्रे मया व्यापदितान् स्वतन्यान् माऽनुशोच यत सर्वं स्वकृतं अवशः विन्दते ॥२१॥

अनुवाद— अतएव हे भद्रे मेरे द्वारा मारे गये अपने पुत्रों के विषय में शोक न करो क्योंकि सबों को विवश होकर अपने किए हुए कर्मों का फल भोगना होता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

एवमुक्तप्रकारेण नैते तव तनया अहं तु तावन्न घातितवांस्तथाऽप्यज्ञानदृष्ट्या स्वतनयान्मया व्यापादितानपि माऽनुशोचेति सान्त्वयति-तस्मादिति । अज्ञानाश्रयमेव कर्मवादमाह-यत इति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

ये सभी न तो तुम्हारे पुत्र हैं और मैं इन सबों को मारने वाला भी नहीं हूँ । फिर भी अज्ञान की दृष्टि से मेरे पुत्रों को कंस ने मार दिया इस तरह से मत सोचो । इस तरह से **तस्मात् इत्यादि** के द्वारा सान्त्वना प्रदान करते है । अज्ञानाश्रयण को ही कर्म वाद कहते हैं । इस बात को **यतः इत्यादि** से कहा गया है ॥२१॥

यावद्धतोऽस्मि हन्तास्मीत्यात्मानं मन्यतेऽस्वदृक् । तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥२२॥

अन्वयः— यावत् अस्वदृक यावत् हतोऽस्मि हन्ताअस्मि इति आत्मानं मन्यते तावत् तदभिमान्यज्ञः वाध्य बाधकताम् इयात् ॥२२॥

अनुवाद— अनात्मज्ञ जीव जब तक यह मानता है कि मैं मारा गया हूँ अथवा मैं मारने वाला हूँ तब तक शरीर के जन्म और मृत्यु का अभिमान करने वाला वह अज्ञानी बाध्य बाधक भाव को प्राप्त होता है । अर्थात् वह दूसरों को दुःख देता है । और स्वयं दुःख भोगता भी है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

कथं तर्हि ब्राह्मणादिहन्तुस्तद्वध्यस्य च प्रायश्चित्तश्रवणम्, अज्ञानमूलमेवेत्याह-यावदिति । अस्वदृक् देहाभिमानी । तावत्तदभिमानी तस्य देहस्य हननमात्मन्यभिमन्यमान इत्यर्थः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

तो फिर ब्राह्मण आदि को मारने वाले को ब्राह्मण आदि का वध करने के कारण श्रुतियाँ उसके प्रायश्चित का उपदेश क्यों करती हैं ? तो इसके उत्तर में कंस ने कहा अज्ञानवशात् । इस बात को **यावत्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । अस्वदृक् अर्थात् देहाभिमानी देह को ही आत्मा मानने वाले जब तक जीव को अज्ञान बना रहता है तब तक वह अपने को मारने वाला और अपने से भिन्न को मारा जाने वाला मानता है ॥२२॥

क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः । इत्युक्त्वाश्रुमुखः पादौ श्यालः स्वस्रोरथाग्रहीत् ॥२३॥

अन्वयः— मम दौरात्म्यं क्षमध्वं साधवः दीनवत्सलाः इत्युक्त्वा श्यालः अश्रुमुखः अथ स्वस्रोः पादौ अग्रहीत्॥२३॥

अनुवाद— कंस ने कहा आप लोग मेरे अपराध को क्षमा कर दें । क्योंकि साधु पुरुष तो दीन जनों पर कृपा करने वाले होते हैं । इस तरह कहकर कंस ने अपनी बहन और बहनोई का चरण पकड़ लिया उस समय उनकी आँखों के आँसू मुख पर्यन्त आ गये थे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

श्यालः कंसः । स्वस्रोरिति स्वसृशब्देन द्विवचनानुपपत्त्या मिथुनगणद्वारा मिथुनिलक्षणया स्वसृतत्पत्योरभिधानं लिङ्गसमावायन्यायेन प्राणभृत उपदधाति इतिवत् देवकीवसुदेवयोः प्रत्येकं पादमग्रहीदित्यर्थः । श्यालशब्देन वा कथंचिद्वसुदेवाभिधानम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

श्यालः अर्थात् कंस । स्वसृ शब्द से द्विवचन का होना अनुपपन्न होने के कारण मिथुन गण में पाठ होने के कारण मिथुन् में लक्षणा वृत्ति के द्वारा बहन और बहनोई दोनों का अभिधान स्वस्रोः पद के द्वारा हो गया है। यह लिङ्ग समवाय न्याय से हुआ है । प्राणभृतः उपदधाति इस प्रयोग के समान कंस ने देवकी और वसुदेव दोनों का पैर पकड़ लिया । अथवा श्याल शब्द से किसी प्रकार वसुदेव का अभिधान हो जाता है ॥२३॥

मोचयामास निगडाद्विश्रब्धः कन्यकागिरा । देवकीं वसुदेवं च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥२४॥

अन्वयः— कन्यका गिरा विश्रब्धः आत्मसौहृदम् दर्शयन् देवकीं वसुदेवं च मोचयामास ॥२४॥

अनुवाद— उस योगमाया की बातों पर विश्वास करके कंस उनके प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करते हुए देवकी और वसुदेव को कैद खाने से मुक्त कर दिया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

आत्मसौहृदं प्रियवादादिना दर्शयन् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

प्रियवाणी इत्यादि के द्वारा अपना सौहार्द प्रकट करते हुए ॥२४॥

भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षान्तरोषा च देवकी । व्यसृजद्वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥२५॥

अन्वयः— समनुतप्तस्य भ्रातुः क्षान्तरोषा देवकी व्यसृजत् वसुदेवश्च प्रहस्य तम् उवाच ॥२५॥

अनुवाद— पश्चात्ताप करने वाले अपने भाई कंस को देखकर देवकीजी का क्रोध शान्त हो गया और वे उसके द्वारा किए गये पहले के अपराधों को भूल गयीं । वसुदेवजी ने भी हंसकर कंस से कहा ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

एवमेतन्महाभाग यथा वदसि देहिनाम् । अज्ञानप्रभवाऽहंधीः स्वपरेति भिदा यतः ॥२६॥

अन्वयः— महाभाग एवम् एतत् यथा वदसि । अज्ञानप्रभवाऽहंधी यतः स्व पर इतिभिदा ॥२६॥

अनुवाद— मनस्वी कंस आप जैसा कह रहे हैं ठीक वैसा ही है । अज्ञान के कारण शरीर में अहंत्वाभिमान हो जाता है । मनुष्य शरीर को ही आत्मा मानने लगता है । उसी के कारण स्वकीयत्व और परत्व का भेद होता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः । मिथो घ्नन्तं न पश्यन्ति भावैर्भावं पृथग्दृशः ॥२७॥

अन्वयः— पृथग्दृशः शोकहर्ष-भयद्वेष-लोभ-मोहमदान्विताः भावैर्भावं मिथः घ्नन्तं न पश्यन्ति ॥२७॥

अनुवाद— भेद बुद्धि के हो जाने पर शोक हर्ष भय, द्वेष, लोभ, मोह और मद से युक्त होकर वे इस बात को भी नहीं जान पाते हैं कि परमात्मा ही एक भाव से दूसरे भाव का और एक वस्तु से दूसरी वस्तु को नष्ट कर देते हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

स्वपरभेददर्शने किं भवति तदाह-शोकहर्षेति । भावैरेव निमित्तभूतैर्मिथो भावान् घ्नन्तं भावमीश्वरम् । पृथग्दृशस्ते न पश्यन्ति किंत्वहमेव हन्ता हतश्चेति मन्यन्त इत्यर्थः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

अपने और पराये की भेद बुद्धि हो जाने पर क्या होता है ? इस बात को **शोक हर्ष इत्यादि** श्लोक से बतलाते है एक वस्तु से दूसरे वस्तु को विनष्ट करने वाले परमात्मा को वे नहीं जान पाते हैं । भेद दृष्टि वाले यही जानते हैं कि मैं ही मरने वाला हूँ और मैं मारा जाने वाला हूँ ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः । देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोऽविशद्गृहम् ॥२८॥

अन्वयः— एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः देवकी वसुदेवाभ्यां अनुज्ञातः कंसः गृहम् अविशत् ॥२८॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से प्रसन्न हुए तथा निष्कपट भाव से बातचीत करने पर कंस देवकी और वसुदेवजी से आज्ञा लेकर अपने महल मे प्रवेश कर गया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

विशुद्धं यथा भवति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

निष्कपट भाव से ॥२८॥

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंस आहूय मन्त्रिणः । तेभ्य आचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥२९॥

अन्वयः— कंसः तस्या रात्र्या व्यतीतायां कंसः मन्त्रिणः आहूय तेभ्यः सर्वं आचष्ट यद् योगनिद्रया उक्तम् ॥२९॥

अनुवाद— उस रात के बीत जाने पर कंस ने अपने मंत्रियों को बुलाकर उन सारी बातों को कहा जिन बातों को योग माया ने कहा था ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः । देवान्प्रति कृतामर्षा दैतेया नातिकोविदाः ॥३०॥

अन्वयः— भर्तुः गदितं आकर्ण्य देवान् प्रतिकृतामर्षाः नातिकोविदाः देवशत्रवः दैतेयाः तम् ऊचुः ॥३०॥

अनुवाद— अपने स्वामी कंस की बातों को सुनकर देवताओं से बैर करने वाले नीति के ज्ञान से रहित, देवताओं को शत्रु दैत्यों ने कंस से कहा ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

नातिकोविदा दृष्टमात्रमतयो न दीर्घदर्शनाः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

नातिकोविदाः अर्थात् नीति के ज्ञान से रहित अज्ञानी ॥३०॥

एवं चेत्तर्हि भोजेन्द्र पुरग्रामव्रजादिषु । अनिर्दशान्निर्दशांश्च हनिष्यामोऽद्य वै शिशून् ॥३१॥

अन्वयः— हे भोजेन्द्र ! यद्येवं तर्हि अद्यवै पुर ग्रामव्रजादिषु अनिर्दशान् निर्दशान् च हनिष्यामः ॥३१॥

अनुवाद— हे भोजराज ! यदि ऐसी बात है तो हमलोग आज ही बड़े-बड़े नगरों में गावों में तथा अहीरों की बस्तियों में जाकर जो बच्चे दस दिन के हो गये हों अथवा दश दिन से कम के हों उन सबों को मार डालेंगे॥३१॥

भावार्थ दीपिका

न निर्गतानि दश दिनानि येषां तानन्यांश्च ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

अनिर्दशान् अर्थात् जिन बच्चों के हुए दस दिन नहीं हुए हो और दूसरे भी बच्चों को ॥३१॥

किमुद्यमैः करिष्यन्ति देवाः समरभीरवः । नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥३२॥

अन्वयः— तव धनुषः ज्याघोषैः नित्यम् उद्विग्नमनसः समरभीरवः देवाः उद्यमैः किम् करिष्यन्ति ॥३२॥

अनुवाद— आपके धनुष के टङ्कार को ही सुनकर सदा घबराये रहने वाले देवगण उद्योग करके ही क्या कर लेंगे ?॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समन्ततः । जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥३३॥

अन्वयः— ते अस्यतः शरव्रातैः हन्यमानाः जिजीविषव उत्सृज्यः पलयनपराः समन्ततः ययुः ॥३३॥

अनुवाद— आपके द्वारा छोड़े जाते हुए बाण समूह से घायल होकर अपने प्राणों की रक्षा करने की इच्छा से जिधर-तिधर भाग जाते हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अस्यतो विध्यतः सतः । उत्सृज्य रणं त्यक्त्वा ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

अस्यतः अर्थात् छोड़े जाते हुए । उत्सृज्य अर्थात् युद्ध करना छोड़कर ॥३३॥

केचित्प्राञ्जलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः । मुक्तकच्छशिखाः केचिद्भीताः स्म इति वादिनः।।३४।।

अन्वयः— केचित् दिवौकसः न्यस्त शस्त्राः दीनाः प्राञ्जलयः केचित् मुक्तकच्छशिखाः भीताः स्म इति वादिनः।।३४।।

अनुवाद— कुछ देवता अपने अस्त्र-शस्त्र को पृथिवी पर रखकर आपके सामने हाथ जोड़ लेते हैं और कुछ देवता अपनी शिखा और कच्छ के खोले हुए आपसे कहते हैं, हमलोग भयभीत हैं, आप हमलोगों की रक्षा कीजिए।।३४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३४।।

न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान्विरथान्भयसंवृतान् । हंस्यन्यासक्तविमुखान्भग्नचापानयुध्यतः ।।३५।।

अन्वयः— विस्मृतशस्त्रास्त्रन् विरथान् भयसंवृतान् अन्यासक्तान् विमुखान् भग्नचापान् अयुध्यतः त्वं न हंसि ।।३५।।

अनुवाद— जो अपने अस्त्र को भूल गये हों, जिनका रथ टूट गया हों जो भयभीत हो गये है, जो युद्ध का परित्याग करके अन्यमना हो गये हों, जो युद्ध से विमुख हो गये हों, जिनके धनुष टूट गये हो तथा जो युद्ध करना नहीं चाहते हों ऐसे लोगों को आप नहीं मारते हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

अन्यासक्तन्विमुखांश्चेति न हंसि न हिनत्सि ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

अन्यमनस्क तथा युद्धपराङ्मुखों को आप नहीं मारते ।।३५।।

किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकत्थनैः। रहोजुषा किं हरिणा शम्भुना वा वनौकसा।।
किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ।।३६।।

अन्वयः— क्षेमशूरैः असंयुगविकत्थनैः विबुधैः किम् रहोजुषा हरिणा वा वनौकसा शम्भुना किम् । अल्पवीर्येण इन्द्रेण वा तपस्यता ब्रह्मणा किम् ।।३६।।

अनुवाद— निर्भय स्थान में ही वीर कहाने वाले, युद्ध व्यतिरिक्त स्थान में ही आत्म प्रशंसा करने वाले देवताओं से, एकान्त में रहने वाले विष्णु से, वनवासी शङ्कर से, निर्बल इन्द्र से तथा तपस्वी ब्रह्मा से हमलोगों को क्या भय हो सकता है ?।।३६।।

भावार्थ दीपिका

क्षेमे निर्भये देशे शूरैः । संयुगादन्यत्र विकत्थनं प्रौढिवादो येषां तैः । ननु हरेर्विभेमि शंभोश्चेति चेत्तत्राहुः-रहोजुषेति। सर्वस्याप्यन्तः प्रविष्टेन क्वचिदपि बहिरदृष्टेनेत्यर्थः । पुरुषप्रवृत्तिरहितमिलावृतवनमोको यस्य तेन शंभुना वा ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

क्षेमशूरैः अर्थात् निर्भय स्थान में वीर बनने वाले, **असंयुगविकत्थनैः** अर्थात् संग्राम व्यतिरिक्त स्थल में आत्म श्लाघा करने वाले । यदि कहें कि मैं विष्णु तथा शिव से डरता हूँ तो इस पर दैत्यों ने कहा- सबों के भीतर प्रविष्ट तथा कहीं भी बाहर नहीं दिखाई देने वाली विष्णु से तथा जहाँ पर कोई पुरुष जाता ही नहीं, ऐसे इलावृत वन में निवास करने वाले शङ्कर से हमलोगों को क्या भय हो सकता है ।।३६।।

तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे । ततस्तन्मूलखनने नियुङ्क्ष्वास्माननुव्रतान् ।।३७।।

अन्वयः— तथापि सापत्न्यात् देवाः उपेक्ष्या न इति मन्महे । तत्तः तन्मूलखनने, अस्मान् अनुव्रतान् नियुंक्ष्व ।।३७।।

अनुवाद— फिर भी यह हमलोग मानते हैं कि देवता हमलोगों के शत्रु हैं, अतएव उन सबों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। अतएव आपके अनुयायी हमलोगों को उन देवताओं की जड़ खोदने में आप नियुक्त कर दीजिये।।३७।।

भावार्थ दीपिका

यद्यप्युद्यमैर्देवा न किंचिदपि कर्तुं समर्थास्तथापि नीतिरनुसर्तव्येत्याहु:-तथापीति ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि प्रयास करके भी देवता हमलोगों का कुछ भी नहीं विगाड़ सकते हैं, फिर भी हम लोगों को नीति से काम लेना चाहिए इस बात को **तथापि० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ।।३७।।

यथाऽऽमयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभि शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम् ।
यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा रिपुर्महान्बद्धबलो न चाल्यते ।।३८।।

अन्वय:— यथा नृभि: समुपेक्षित: आमय: अङ्गे रूढपद: चिकित्सितुम् न शक्यते यथावा उपेक्षित: इन्द्रियग्राम: तथा बद्धबल: महान् रिपु: न चाल्यते ।।३८।।

अनुवाद— जिस तरह शरीर में हुए रोग को मनुष्यों द्वारा उपेक्षा कर दिया जाता है तब वह रोग शरीर में जड़ जमा लेता है तब वह असाध्य हो जाता है । अथवा जैसे इन्द्रियों की उपेक्षा कर देने पर उनको वशीकृत करना कठिन हो जाता है । वैसे उपेक्षा कर देने पर शत्रु भी महान् बलवान् हो जाता है और उसको परास्त करना कठिन हो जाता है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

रूढपदो बद्धमूल: ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

रूढपद: अर्थात् जिसने अपनी जड़ जमा ली है ।।३८।।

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्म: सनातन: । तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तपो यज्ञा: सदक्षिणा: ।।३९।।

अन्वय:— देवनां मूलं हि विष्णु: यत्र धर्म: सनातन:, तस्य च ब्रह्मणो विप्रा:, तपो यज्ञा: सदक्षिणा: यज्ञा: ।।३९।।

अनुवाद— देवताओं की जड़ भगवान् विष्णु है । वे वहाँ ही रहते है जहाँ सनातन धर्म रहता है । सनातन धर्म की जड़ वेद, गौ, विप्र, तपस्या तथा जिनमें दक्षिणा दी जाती है ऐसे यज्ञ हैं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

देवानां मूलं विष्णु: स च यत्र धर्मस्तत्रास्ते । धर्मस्य मूलं वेदादय इति ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

देवताओं के मूल भगवान् विष्णु हैं वे वही रहते हैं जहाँ पर धर्म का पालन किया जाता है । धर्म के मूल वेद इत्यादि हैं ।।३९।।

तस्मात्सर्वात्मना राजन्ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिन: । तपस्विनो यज्ञशीलान्गाश्च हन्मो हविर्दुघा: ।।४०।।

अन्वय:— तस्मात् राजन् वेदवादिन: ब्राह्मणान् यज्ञशीलान् तपस्विन:, हविर्दुघा: गाश्च सर्वात्मना हन्म: ।।४०।।

अनुवाद— अतएव हे भोजराज कंस ! वेदज्ञ ब्राह्मणों, यज्ञ करने वाले तपस्वियों, तथा हविष्य के लिए घी तथा दूध प्रदान करने वाली गायों को हमलोग पूर्णरूप से विनष्ट कर देंगे ।।४०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४०।।

विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः । श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥४१॥

अन्वयः— विप्राः गावश्च, वेदाश्च, तपः, सत्यं, दमः, शमः, श्रद्धा, दया, तितिक्षा च क्रतवश्च हरेः तनूः ॥४१॥

अनुवाद—ब्राह्मण, गौ, वेद, तपस्या, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, दया, सहिष्णुता तथा यज्ञ श्रीहरि के शरीर हैं॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४१॥

स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विड् गुहाशयः । तन्मूलाः देवताः सर्वाः सेश्वराः सचतुर्मुखाः॥
अयं वै तद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥४२॥

अन्वयः— स हि सर्वसुराध्यक्षः असुरद्विट् हि गुहाशयः सेश्वराः सचतुर्मुखाः सर्वाः देवता तन्मूलाः अयं वै तद्वधोपायः, यदृषीणाम् विहिंसनम् ॥४२॥

अनुवाद— वे विष्णु हि सभी देवताओं के स्वामी हैं, और वे असुरों के प्रधान शत्रु हैं, वे किसी गुफा में रहते हैं, शङ्करजी तथा ब्रह्माजी के साथ-साथ सभी देवताओं के मूल विष्णु ही हैं । उनको मारने का उपाय यही है कि सभी ऋषियों को मार दिया जाय ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

किञ्च विप्रादयो हरेरेव तनवो यस्मात्तस्मादयमेवोपाय इत्याहुः-अयमिति ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण आदि चूकि श्रीहरि के शरीर है अतएव उनको मारने का यही उपाय है, इस तरह से दैत्यों ने कंस से कहा ॥४२॥

श्रीशुक उवाच

एवं दुर्मन्त्रिभिः कंस सह संमन्त्र्य दुर्मति । ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥४३॥

अन्वयः— कालपाशाबृतोऽसुरः दुर्मतिः कंसः एवं दुर्मन्त्रिभिः सह संमन्त्र्य ब्रह्म हिसां हितं मेने ॥४३॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— काल के बन्धन में बँधा हुआ दुर्मति (दुष्ट) कंस इस प्रकार से अपने दुष्ट मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा करके यह मान लिया कि ब्राह्मणों को मार देना ही मेरे लिए कल्याणकारी है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४३॥

संदिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान् । कामरूपधरान्दिक्षु दानवान् गृहमाविशत् ॥४४॥

अन्वयः— कदनप्रियान् कामरूपधरान् दानवान् साधुलोकस्य कदने दिक्षु संदिश्य गृहम् आविशत् ॥४४॥

अनुवाद— हिंसा प्रेमी, अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाले दानवों को संत पुरुषों को मारने का आदेश देकर तथा उन सबों को विभिन्न दिशाओं में भेजकर कंस अपने गृह में प्रवेश कर गया ॥४४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४४॥

ते वै रजःप्रकृतयस्तमसा मूढचेतसः । सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥४५॥

अन्वयः— रजः प्रवृतयः तमसामूढचेतसः आरात् आगत मृत्यवः ते वै, सतां विद्वेषमाचेरुः ॥४५॥

अनुवाद— रजोगुणी स्वभाव वाले तथा तमोगुण के कारण विवेक विहीन अन्तःकरण वाले, तथा जिनकी मृत्यु सन्निकट में आ गयी थी इस प्रकार के वे दैत्यगण सत्पुरुषों से विद्वेष करने लगे ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

आरात्समीपमागतो मृत्युर्येषां ते ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

जिन सबों की मृत्यु सन्निकट आ गयी थी ।।४५।।

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च । हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो मोहदतिक्रमः ।।४६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्द्धे चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

अन्वयः— महदतिक्रमः पुंसः आयुः यशः श्रियम् धर्मम्, लोकान् आशिष एव सर्वाणि श्रेयांसि हन्ति ।।४६।।

अनुवाद— महापुरुषों का अनादर मनुष्य की आयु, यश, लक्ष्मी, धर्म, लोक-परलोक तथा सभी प्रकार के भोग्य विषयों के भोग्य पदार्थ इन सभी प्रकार के कल्याण के साधनों को विनष्ट कर देता है ।।४६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दशवें स्कन्ध के पूर्वार्द्ध के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

सतां विद्वेषो न मृत्युमात्रहेतुः किंतु बह्वनर्थकारीत्याह-आयुः श्रियमिति ।।४६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

सत्पुरुषों का विद्वेष केवल मृत्यप्रद ही नहीं होता है अपितु वह अनेक अनर्थों को करने वाला होता है, इस बात को **आयुः श्रियम इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ।।४६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के चौथे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।४।।

पाँचवाँ अध्याय

गोकुल में श्रीभगवान् का जन्ममहोत्सव

श्रीशुक उवाच

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः । आहूय विप्रान्दैवज्ञान्स्नातः शुचिरलंकृतः ॥१॥
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै । कारयामास विधिवत्पितृदेवार्चनं तथा ॥२॥

अन्वयः— महामनाः नन्दस्तु आत्मजे उत्पन्ने जाताह्लादः स्नातः शुचिः अलंकृतः दैवज्ञान् विप्रान् आहूय, स्वस्त्ययनं वाचयित्वा वै आत्मजस्य विधिवत् जातकर्म, तथा पितृदेवार्चनं कारयामास ॥१-२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— महामनस्वी नन्दजी को पुत्र के उत्पन्न होने पर बड़ी प्रसन्नता हुई । वे स्नान करके पवित्र होकर सुन्दर वस्त्रों एवं आभूषणों को धारण किए । उसके पश्चात् दैवज्ञ ब्राह्मणों को बुलाकर स्वस्तिवाचन कराये तथा विधिपूर्वक अपने पुत्र का जातकर्म संस्कार और देवताओं और पितरों की सविधि पूजा कराये ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चमे जातकं नन्दः सूनोः कृत्वा महोत्सवम् । गत्वाथ मथुरां प्राप वसुदेवागमोत्सवम् । महामना उदारचित्तः ॥१-२॥

भाव प्रकाशिका

पाञ्चवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि नन्दजी अपने पुत्र का जातकर्म संस्कार करके महोत्सव को आयोजित किए । उसके पश्चात् मथुरा जाकर वसुदेवजी को अपने महोत्सव के विषय में बतलाये **महामना:** अर्थात् उदारचित वाले ॥१-२॥

धेनूनां नियुते प्रादाद्विप्रेभ्यः समलंकृते । तिलाद्रीन्सप्त रत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान् ॥३॥

अन्वयः— विप्रेभ्यः धेनूनां नियुते रत्नौघ शातकौम्भाम्बरावृतान् सप्त तिलाद्रीन् प्रादात् ॥३॥

अनुवाद— उन्होंने वस्त्रों एवं आभूषणों से अलंकृत दो लाख गौओं का ब्राह्मणों को दान दिया तथा रत्नों एवं सुनहले वस्त्रों से ढँके तिलों के पर्वतों का दान दिया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

नियुते द्वे लक्षे ! सप्ततिलपर्वतांश्च प्रादात् । कथंभूतान् । रत्नौघैः रत्नसमूहैः । शातकौम्भाम्बरैः सुवर्णरसाक्तैरम्बरैश्चावृतान्॥३॥

भाव प्रकाशिका

नियुते अर्थात् दो लाख । तथा रत्न समूहों तथा सुनहले वस्त्रों से ढँके तिल में सात पर्वतों का दान दिया॥३॥

कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया । शुध्यन्ति दानैः संतुष्ट्या द्रव्याण्यात्मात्मविद्यया ॥४॥

अन्वयः— कालेन (भूम्यादि) स्नानेन (देहादि) शौचेन (अमेध्यलिप्तादि) संस्कारैः (गर्भादि) तपसा (इन्द्रियादि) इज्यया (ब्रह्मणादि) दानैः (द्रव्यादि) संतुष्ट्या (मनः) आत्मविद्यया आत्मा च शुध्यन्ति ॥४॥

अनुवाद— समय से (पृथिवी की) स्नान करने से (देह आदि की) शौच से (अपवित्रलेप आदि की) संस्कारों से (गर्भ आदि की) तपस्या से (इन्द्रियों आदि की) यज्ञ से (ब्राह्मण आदि की) दान से (द्रव्य आदि की) संतोष से (मन की) एवं आत्मविद्या से आत्मा की शुद्धि होती है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

द्रव्याणां गोहिरण्यादीनां मध्ये केषांचिद्दानैरेव शुद्धिर्यथा तथान्नदानादियुक्तजातकर्मादिसंस्कारैरेव गर्भाणां शुद्धिरिति दर्शयितुं प्रतिनियतानि शोधकानि दृष्टान्तत्वेनोदाहरति-कालेनेति । कालेन भूम्यादि, स्नानेन देहादि, शौचेनामेध्यलिप्तादि, संस्कारैर्गर्भादि, तपसा इन्द्रियादि, इज्यया ब्राह्मणादि, दानैर्द्रव्यादि, संतुष्ट्या मनः, आत्मा आत्मविद्यया इति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

गौ, सुवर्ण इत्यादि द्रव्य में से कुछ की शुद्धि दान से ही जैसे होती है उसी तरह से अन्न दानादि युक्त जातकर्म आदि संस्कारों से ही गर्भों की शुद्धि होती है, इस बात को बतलाने के लिए जिसकी जिससे शुद्धि नियत है उन शोधकों को दृष्टान्त **कालेन इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । काल (समय) से पृथिवी तथा नवीन जल आदि की शुद्धि होती है । स्नान से देह आदि की, शौच से आवित्र लेप इत्यादि की, संस्कारों से गर्भ आदि की, तपस्या से, इन्द्रियों इत्यादि की, यज्ञ से ब्राह्मणों आदि की, दान से द्रव्यों आदि की, संतोष से मन की तथा आत्मविद्या से आत्मा की शुद्धि होती है ॥४॥

सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सूतमागधबन्दिनः । गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः ॥५॥

अन्वयः— सौमङ्गल्यगिरः विप्राः सूत, मागधवन्दिनः गायकाः च जगुः भेर्यः दुन्दुभयः मुहुः नेदुः ॥५॥

अनुवाद— उस समय ब्राह्मणों ने स्वस्ति वाचन किया सूतों, मागधों बन्दी जनों तथा गायको ने गायन किया बार-बार भेरियाँ तथा दुन्दुभियाँ बजने लगीं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

सौमङ्गल्यागिरः स्वस्तिवाचका विप्रादयो बभूवुः । तत्र “सूताः पौराणिकाः प्रोक्ता मागधा वंशशंसकाः । वन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रास्तावसदृशोक्तयः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

उस समय ब्राह्मण स्वस्तिवाचन करने लगे । सूतों को पौराणिक कहा गया है । वंश का वर्णन करने वाले मागध कहलाते है, बन्दीजन शुद्ध बुद्धि वाले होते है तथा समयानुकूल बातों को कहते हैं ।।५।।

व्रजः संमृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः । चित्रध्वजपताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः ।।६।।
गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः । विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिनः ।।७।।
महार्हवस्त्राभरणकञ्चुकोष्णीषभूषिताः । गोपाः समाययू राजन्नानोपायनपाणयः ।।८।।

अन्वयः— हे राजन् ! व्रजः ! संमृष्ट संसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः चित्रध्वजपताकास्रक् चैलपल्लवतोरणैः, विचित्र धातुबर्हस्रक् वस्त्रकाञ्चन मालिनः, गावः, वृषा, वत्सतरा, हरिद्रातैलरूषिताः महार्हवस्त्राभरणकञ्चुकोष्णीष भूषिताः उपायनपाणयः गोपाः समाययुः ।।६-७।।

अनुवाद— व्रज मण्डल के सभी घरों के द्वार, आँगन और गृहों के भीतरी भाग स्वच्छ कर दिया गया उनमें सुगन्धित जल का छिड़काव किया गया, चित्र-विचित्र ध्वजा पताका पुष्पों की मालाओं, रङ्ग, बिरङ्गे, वस्त्र और पल्लवों के बन्दनवारों से सजाया गया । गौ, बैल तथा बछड़ों के अङ्गों में हल्दी तथा तेल का लेप लगाया गया तथा उन सबों को गेरु आदि धातुओं, मयूर पङ्ख, पुष्पों के हार तरह-तरह के सुन्दर वस्त्र तथा सुवर्ण के जंजीरों से सजाया गया । सभी ग्वाल बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, अङ्गरखा तथा पगड़ियों से सुसज्जित होकर अपने हाथ में वहुत सी भेंट की समग्रियों को लेकर नन्दजी के घर आये ।।६-८।।

भावार्थ दीपिका

संमृष्टानि संसिक्तानि च द्वाराण्यजिराण्यङ्गनानि गृहान्तराणि गृहमध्यानि च यस्मिन्स तथा । चित्रध्वजेषु पताकानां स्रजश्च चैलपल्लवतरोणानि च तैर्भूषिताः । हरिद्रातैलै रूषिता लिप्ताः । विचित्रधातवश्च बर्हस्रजश्च वस्त्राणि च काञ्चनमालाश्चालङ्कारतया विद्यन्ते येषां ते । तथाभूता गवादयो बभूवुरित्यर्थः ।।६-८।।

भाव प्रकाशिका

व्रज मण्डल के सभी गृहों के द्वार आँगन और गृह के भीतरी भाग को स्वच्छ करके उनमें सुगन्धित जल का छिड़काव कर दिया गया । चित्र-विचित्र ध्वजों और पताकाओ को माला वस्त्र तथा पल्लवों को सजाया गया। हल्दी और तेल का लेप लगाया गया । गौओं, बैलो तथा बछड़ों को चित्र-विचित्र धातुओं, मयूरपङ्ख की माला, वस्त्र तथा सुवर्ण के भूषणों से सजा दिया गया ।।६-८।।

गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् । आत्मानं भूषयांचक्रुर्वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः ।।९।।

अन्वयः— यशोदायाः सुतोद्भवम् आकर्ण्य मुदिताः गोप्यः आत्मानं वस्त्राकल्पाञ्जनादिभिः भूषयाञ्चक्रुः ।।९।।

अनुवाद— यशोदाजी की पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुनकर गोपियाँ प्रसन्न होकर अपने को वस्त्र आभूषण तथा आंजन आदि से अलंकृत की ।।९।।

भावार्थ दीपिका

आकल्पा अलङ्कारा: ।।९।।

भाव प्रकाशिका

आकल्प: अर्थात् आभूषण ।।९।।

नवकुङ्कुमकिंजल्कमुखपङ्कजभूतय: । बलिभिस्त्वरितं जग्मु: पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचा: ।।१०।।

अन्वय:— पृथुश्रोण्य: चलत्कुचा:, नवकुङ्कुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतय: बलिभि: त्वरितं जग्मु: ।।१०।।

अनुवाद— विशाल नितम्बों तथा चञ्चल पयोधरों वाली गोपियों के मुख में कमल लगे हुए कुङ्कुम कमल के पराग के समन सुशोभित होते थे । वे उपायन हाथ में लेकर यशोदाजी के घर जा रही थीं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

नवकुङ्कुमकिंजल्कैर्मुखपङ्कजेषु भूति: श्रीर्यासां ता: ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

नवीन कुङ्कुम के पराग गोपियों के मुख पर कमल के पराग के समान सुशोभित होते थे ।।१०।।

गोप्य: सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्यश्चित्राम्बरा: पथि शिखच्युतमाल्यवर्षा: ।
नन्दालयं सवलया ब्रजतीर्विरेजुर्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभा: ।।११।।

अन्वय:— सुमृष्टमणिकुण्डलानिष्ककण्ठ्य:, चित्राम्बरा: पथि शिखाच्युतपुष्पवर्षा: सवलया: व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभा: नन्दालयं व्रजती: गोप्य: विरेजु: ।।११।।

अनुवाद— जिन सबों के कानों में मणि निर्मित कुण्डल, चमक रहे थे, जो गले में हार धारण की हुई थीं, जो रङ्ग-विरङ्गे वस्त्र धारण की थी, जिनके केशों में गुथी चोटी के पुष्प रास्ते में गिरते जाते थे, जिनकी कलाई का कङ्गन सुशोभित होता था, हिलते हुए कुण्डल, पयोधर और हार की शोभा से युक्त नन्दजी के घर जाती हुई गोपियाँ सुशोभित होती थीं ।।११।।

भावार्थ दीपिका

सुमृष्टान्युज्ज्वलितानि मणिमयानि कुण्डलानि यासाम् । निष्कानि पदकानि कण्ठेषु चासां ताश्च । शिखाभ्यश्च्युतानि माल्यवर्षाणि यासां ता: । नन्दालयं व्रजतीर्व्रजन्त्य: । पथि विरेजु: । सवलया: कङ्कणभूषिता: व्यालोलै: कुण्डलादिभि: शोभा यासां ता: ।।११।।

भाव प्रकाशिका

जिनके मणि निर्मित कुण्डल चमक रहे थे, तथा जिनके गले के हार शुद्ध सुवर्ण के थे, जिनकी चोटी में गुंथे पुष्प गिरते जाते थें नन्दजी के घर जाती हुई गोपियाँ मार्ग में सुशोभित होती थीं । वे सभी कङ्गन धारण की थीं । हिलते हुए कुण्डलों आदि से उन सबों की शोभा होती थी ।।११।।

ता आशिष: प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके । हरिद्राचूर्णतैलाद्भि: सिंचन्त्योऽजनमुज्जगु: ।।१२।।

अन्वय:— आशिष: प्रयुञ्जाना: ता:, हरिद्राचूर्ण तैलाद्भि: सिञ्चन्त्य: बालके चिरं पाहि इति अजनम् उज्जगु: ।।१२।।

अनुवाद— वे सब बालक को आशीर्वाद प्रदान करती थीं, लोगों पर हल्दी के चूर्ण तेल और पानी छिड़क देती थीं और श्रीभगवान् से प्रार्थना करती थीं, कि हे भगवन् ! इस बालक की आप चिरकाल तक रक्षा करें ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

जनं सिंचन्त्यः । अजनमुज्जगुरिति वा ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

गोपियों ने हल्दी चूर्ण, तेल और जल से लोगों को सींचा अथवा उन सबों ने अजन (परमात्मा) की प्रार्थना की ।।१२।।

अवाद्यन्त विचित्राणि वादित्राणि महोत्सवे । कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते ।।१३।।

अन्वयः— विश्वेश्वरे अनन्ते, कृष्णे नन्दस्य व्रजमागते महोत्सवे विचित्राणि वादित्राणि अवाद्यन्त ।।१३।।

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण अनन्त स्वरूप हैं, ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण के नन्द बावा के व्रज में आने पर महान् उत्सव मनाया गया और उस समय विचित्र प्रकार के वाद्य बजाये गये ।।१३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१३।।

गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः । आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ।।१४।।

अन्वयः— हृष्टाः गोपाः परस्परं दधिक्षीरघृताम्बुभिः आलिम्पन्तः आसिञ्चन्तः नवनीतैः च चिक्षिपुः ।।१४।।

अनुवाद— प्रसन्न होकर गोपों ने एक दूसरे को दधि, दूध, घी तथा जल से नहवा दिया, तथा एक दूसरे पर इन सबों का लेप लगा दिया एवं एक दूसरे पर मक्खन फेंका ।।१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४।।

नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोऽलङ्कारगोधनम् । सूतमागधबन्दिभ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ।।१५।।
तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् । विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्योदयाय च ।।१६।।

अन्वयः— माहामनाः नन्दः तेभ्यः वासोलङ्कारगोधनम् सूतमागधवन्दिभ्यः अन्ये ये विद्योपजीविनः तेभ्यः अदीनात्मा तैः तैः कामैः यथोचितम् अपूजयत् विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्य उदयाय च ।।१५-१६।।

अनुवाद— महामनस्वी नन्दजी ने उन सभी गोपों को वस्त्र, अलङ्कार एवं गौएँ प्रदान किया, सूतों मागधों वन्दिजनों तथा विभिन्न विद्याओं के द्वारा अपनी जीविका चलाने वाले दूसरे लोगों को मुँह माँगी वस्तुएँ प्रदान करके उन्हें सन्तुष्ट किया क्योंकि नन्दजी स्वभाव से ही उदार प्रकृति के थे इन वस्तुओं को प्रदान करने का यही उद्देश्य कि श्रीभगवान् की उन वस्तुओं से आराधना की जाय और उनके इस नवजात शिशु का अभ्युदय हो ।।१५-१६।।

भावार्थ दीपिका

तेभ्यः प्रादात् पथोचितमन्यानप्यपूजयत् ।।१५-१६।।

भाव प्रकाशिका

दूसरे लोगों का नन्दजी ने यथोचित रीति से सम्मान किया ।।१५-१६।।

रोहिणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता । व्यचरद्दिव्यवासस्रक्कण्ठाभरणभूषिता ।।१७।।

अन्वयः— नन्दगोपाभिनन्दिता महाभागा रोहिणी दिव्यवासस्रक् कण्ठाभरण भूषिता व्यचरत् ।।१७।।

अनुवाद— नन्द बाबा के द्वारा अभिनन्दित परमसौभाग्यवती रोहिणीजी दिव्य वस्त्र माला और गले के विविध आभूषणों से भूषित होकर गृहस्वामिनी के समान आने वाली स्त्रियों का सम्मान करती हुइ, विचरण कर रही थीं।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् । हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥१८॥

अन्वयः— हे नृप ततः आरभ्य सर्वसमृद्धिमान् नन्दस्य व्रजः हरेर्निवासात्मगुणैः रमा आक्रीडम् अभूत् ॥१८॥

अनुवाद— हे राजन् ! परीक्षित् उसी समय से सभी प्रकार की समृद्धियों से सम्पन्न नन्द बाबा का व्रज श्रीभगवान् के निवास और अपने स्वाभाविक गुणों के कारण श्रीलक्ष्मीजी का क्रीडा स्थल बन गया ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

हरेर्निवासेन ये आत्मनि गुणाः सर्वप्रियत्वादयस्तैः । रमाया आक्रीडं विहारस्थानम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के निवास करने के कारण आत्मा के सबों का प्रिय होना आदि गुणों के द्वारा । लक्ष्मीजी का विहार स्थान बन गया नन्द बाबा का व्रज ॥१८॥

गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः । नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥१९॥

अन्वयः— हे कुरुद्वहः ! गोकुलरक्षायां गोपान् निरूप्य नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं मथुरां गतः ॥१९॥

अनुवाद— हे कुरुवंश भूषण परीक्षित् गोकुल की रक्षा करने के काम में गोपों को नियुक्त करके नन्दजी कंस के वार्षिक कर को चुकाने के लिए मथुरा गये ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

वार्षिक्यं प्रतिवर्षं देयम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

प्रत्येक वर्ष दिए जाने वाले कर को वार्षिक्य कर कहते हैं ॥१९॥

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम् । ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥२०॥

अन्वयः— वसुदेवः भातरं नन्दम् आगतम् उपश्रुत्य दत्तकरं च ज्ञात्वा तदवमोचनम् ययौ ॥२०॥

अनुवाद— अपने मित्र नन्दजी को आये हुए सुनकर तथा नन्द बाबा ने कंस को कर प्रदान कर दिया है, इस बात को जानकर, वसुदेवजी उनसे मिलने के लिए नन्दजी जहाँ पर रुके थे उस स्थान पर गये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

भ्रातरं सखायम् । तदवमोचनं तस्य नन्दस्य वसतिस्थानम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

भ्रातरम् अर्थात् मित्र । **तदवमोचनम्** अर्थात् नन्दजी के रुकने के स्थान पर गये ॥२०॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम् । प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥२१॥

अन्वयः— तं दृष्ट्वा सहसा उत्थाय देहः प्राणमिव आगतम् प्रीतः प्रेमविह्वलः दोर्भ्यां प्रियतमं सस्वजे ॥२१॥

अनुवाद— वसुदेवजी को आये हुए देखकर नन्दबाबा जैसे मृतशरीर में प्राण का संचार हो गया हो उसी तरह से उठकर अत्यधिक प्रेम पूर्वक उनको दोनों हाथों से पकड़कर अपने हृदय से लगा लिए ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वाऽनामयमादृतः । प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशांपते ॥२२॥

अन्वयः— हे विशांपते ! आदृतः पूजितः सुखमासीनः, अनामयं पृष्ट्वा स्वात्मजयोः प्रसक्तधीः इदम् आह ॥२२॥

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् ! आदरपूर्वक समादृत होकर जब वसुदेवजी सुख पूर्वक बैठ गये तब वे उनसे कुशल पूछे, उस समय वसुदेवजी का मन अपने दोनों पुत्रों के ही विषय में लगा हुआ था । इसके पश्चात् वसुदेवजी ने नन्दबाबा से कहा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

दिष्ट्या भ्रात; प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते । प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत्समपद्यत ॥२३॥

अन्वयः— भ्रातः दिष्टया प्रवयशः प्रजाशाया निवृत्तस्य इदानीं प्रजा यत् समपद्यत ॥२३॥

अनुवाद— हे भाई यह बड़े सौभाग्य की बात है आप बूढे हो गये थे । आपकी प्रजा प्राप्ति की कोई आशा नहीं रह गयी थी । किन्तु भगवान् की कृपा से आपको इस अवस्था में सन्तान की प्राप्ति हुई है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानः पुनर्भवः । उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥२४॥

अन्वयः— दिष्ट्या भवान् अद्य उपलब्धः अस्मिन् संसारचक्रे प्रियदर्शनं दुर्लभं, वर्तमानं पुनर्भवः ॥२४॥

अनुवाद— यह बड़े ही आनन्द का विषय है कि आज आपसे मेरी भेंट हो गयी इस संसार चक्र में दो प्रेमियों का मिलना ही दुर्लभ है । यह तो पुनर्जन्म के समान है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

पुनर्भवः पुनर्जात इव । तत्र हेतुगर्भं विशेषणं संसारचक्रे वर्तमान इति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

पुनर्भव अर्थात् पुनर्जन्म । यहाँ पर हेतु युक्त विशेषण है कि वर्तमान संसार चक्र में ॥२४॥

नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् । ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा ॥२५॥

अन्वयः— स्रोतसः ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां यथा चित्रकर्मणाम् सुहृदां एकत्र प्रियसंवासः न ॥२५॥

अनुवाद— जिस तरह नदी के प्रवाह में बहने वाले तृण तथा काष्ठ आदि एक साथ नहीं बहते हैं उसी तरह जीवों से भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्मों के होने के कारण दो प्रेमी जन एक साथ नहीं रह पाते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

दुर्लभत्वमेवाह-नैकत्रेति । प्रियश्चासौ संवासश्च प्रियसंवासः । हे प्रियेति वा । स्रोतस ओघेन नीयमानानां प्लवन्तीति प्लावास्तृणकाष्ठादयस्तेषां यथैकत्र स्थितिर्नास्ति तद्वत् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में वसुदेवजी प्रेमियों के मिलन की दुर्लभता को बतलाते हैं । प्रिय निवास यह **प्रियसंवास** का अर्थ है अथवा हे प्रिय यह भी अर्थ हो सकता है । नदी के प्रवाह में बहने वाले तृण तथा काष्ठ आदि जैसे एक साथ नहीं रहते हैं उसी तरह ॥२५॥

क्वचित्पशव्यं निरुजं भूर्यम्बुतृणवीरुधम् । बृहद्वनं तदधुना यत्रास्से त्वं सुहृद्वृतः ॥२६॥

अन्वयः— यत्र त्वं आस्ये तत् बृहद्वनं अधुना क्वचित् भूर्यम्बुतृणवीरधम् क्विचत् पशव्यम् निरुजम् ॥२६॥

अनुवाद— जहाँ आप अपने बन्धु बान्धवों के साथ रहते हैं उस विशाल वन में पशुओं के खाने-पीने के लिए परिपूर्ण मात्रा में जल, घास और लतायें हैं क्या ? क्या आपका पशुधन निरोग है न ?॥२६॥

भावार्थ दीपिका

क्वचिदिति । पशव्यादिरूपे तस्मिन्वने निर्दोषगोपयोदध्यादिप्रभूतगोपिकास्तन्यादिना पुत्रक्षेमविवक्षया पृच्छति, प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरित्युक्तत्वात् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

क्वचित् इस प्रश्न के द्वारा पशुओं के रहने के स्थान रूप उस वन में आपका पशुधन निरोग होने से गोदुग्ध, दधि, आदि तथा गोपी यशोदा के स्तन के दुग्ध इत्यादि के विषय में पुत्र के कल्याण की विवक्षा से वसुदेवजी पूछते हैं । क्योंकि कहा जा चुका है कि उस समय वसुदेवजी का मन अपने दो पुत्रों बलरामजी और श्रीकृष्णजी में ही लगा था ।।२६।।

भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे । तातं भवन्तं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ।।२७।।

अन्वयः— हे भ्रातः मम सुत मात्रा सह भवद्व्रजे भवन्तं तातं मन्वानः भवद्भ्याम् उपलालित कच्चित् ।।२७।।

अनुवाद— हे भाई ! मेरा पुत्र बलराम अपनी माता (रोहिणी) के साथ आपके वज्र में रहकर आपको ही अपना पिता मानते हुए आप दोनों के द्वारा पाला-पोषा जा रहा है क्या ?।।२७।।

भावार्थ दीपिका

भवद्भ्यांमुपलालितः सन्कच्चिद्वर्तत इति शेषः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

आप दोनों के द्वारा पालित पोषित हो रहा है क्या ?।।२७।।

पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः । न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ।।२८।।

अन्वयः— पुंसः सुहृदो अनुभावितो हि त्रिवर्गः विहितः तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गः अर्थाय न कल्पते ।।२८।।

अनुवाद— मनुष्यों के लिए वही धर्म, अर्थ और काम शास्त्र विहित है जिससे कि उनके स्वजनों को सुख की प्राप्ति हो । जिससे केवल अपने को ही सुख मिले और स्वजनों को दुःख ही प्राप्त हो वह त्रिवर्ग हितकर नहीं होता है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

पुत्रादर्शनक्लेशानाह-पुंस इति । सुहृदो बन्धून्प्रत्यनुभावितः संपादितो यस्त्रिवर्गः स हि पुंसो विहितो युक्तः शास्त्रेण वा प्रोक्तो न स्वमात्रपर्यवसितः । अतस्तेषु क्लिश्यमानेषु सुखाय न भवतीत्यर्थः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

पुत्र के अदर्शन से होने वाले क्लेश का वर्णन **पुंसः इत्यादि** श्लोक से कहते हैं अपने बन्धुओं के प्रति संपादित ही त्रिवर्ग उचित है अथवा शास्त्र विहित कहा गया जो केवल अपने भर में ही सीमित न रहे बल्कि बान्धवों को भी सुखप्रद हो । बान्धवों के कष्ट में रहने पर तो वह सुखप्रद नहीं होता है ।।२८।।

नन्द उवाच

अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः । एकावशिष्टाऽवरजा कन्या सापि दिवं गता ।।२९।।

अन्वयः— अहो ते देवकीपुत्राः बहवः कंसेन हताः एका अवरजा कन्या अवशिष्टा सा अपि दिवं गता ।।२९।।

नन्दजी ने कहा

अनुवाद— यह बड़े कष्ट की बात हैं कि आपके तथा देवकी के बहुत से पुत्रों को कंस ने मार दिया एक सबसे छोटीं कन्या बची भी तो स्वर्ग लोक में चली गयीं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

नन्दो वसुदेवं सान्त्वयन्नाह-अहो इति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

अहो इत्यादि श्लोक के द्वारा नन्दजी ने वसुदेवजी को सान्त्वना प्रदान की है ।।२९।।

नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः । अदृष्टमात्मनस्तत्वं यो वेद न स मुह्यति ।।३०।।

अन्वयः— नूनम् अयं हि जनः अदृष्टनिष्ठः अदृष्ट परमः यः आत्मनः तत्त्वं अदृष्टं वेद स न मुह्यति ।।३०।।

अनुवाद— मनुष्य भाग्य पर ही निर्भर है । भाग्यानुसार ही उसको सुख-दु:ख आदि की प्राप्ति होती है । भाग्य ही प्राणी का एकमात्र आश्रय है । जो मनुष्य इस बात को जान लेता है कि जीवन में प्राप्त होने वाले सुखों और दु:खों का कारण भाग्य ही है, वह सुख दु:ख आदि के प्राप्त होने पर मोहित नहीं होता है ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

अदृष्टे एव निष्ठा समाप्तिर्यस्य सः । यदैव पुत्रादिसुखप्रदमदृष्टं हीयते तदैव ते पुत्रादयो न भवन्तीत्यर्थः । अदृष्टपरमः तथा अदृष्टमेव परमं यस्य सः । यद्यपि पुत्रादयो वियुक्तास्तथापि तानदृष्टमेव पुनः सङ्गमयतीत्यर्थः । एवमदृष्टमात्मनस्तत्त्वमव्यभिचारिकारणं सुखदुःखयोर्यो वेद स न मुह्यति । तस्मादिदानीं त्वया न दु:खं भावनीयम् । मृतानामपि वियुक्तानामपि च कालान्तरे दर्शनयोगयोः संभवत् । अस्मदादिभिरपि कालान्तरे तद्वियोगे सत्यपीति नन्दस्य दैवी वागेषा भाविसूचिका ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

अदृष्ट में ही मनुष्य की समाप्ति होती है । जब पुत्र आदि के द्वारा सुख प्राप्ति का अदृष्ट समाप्त हो जाता है तब पुत्र आदि का विप्रयोग हो जाता है अथवा वे नहीं रहते हैं । अदृष्ट ही सबसे बलवान् होता है । अदृष्टवशात् वियुक्त पुत्रादि के होने पर भी अनुकूल अदृष्ट के होने पर पुत्रादि मिल भी जाते हैं । यह अदृष्ट ही आत्मा का निश्चित कारण है अथवा सुख दु:खादि का कारण है जो इस बात को जानता है वह सुख दु:ख के प्राप्त होने पर मोहित नहीं होता है । अतएव इस समय आपको दु:ख नहीं होना चाहिए मरे हुए तथा वियुक्त भी पुत्रों का संयोग सम्भव है । हमलोगों के भी कालान्तर में वियोग होने पर भी, इस तरह की दैवी वाणी भविष्य की सूचिका है ।।३०।।

वसुदेव उवाच

करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः । नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले ।।३१।।

अन्वयः— राज्ञे वै वार्षिकः करः दत्तः वयं च वः दृष्टाः इह बहुतिथं न स्थेयं, गोकुले च उत्पाताः सन्ति ।।३१।।

वसुदेवजी ने कहा

अनुवाद— आपने राजा को सालाना कर चुका दिया, हम दोनों की भेंट भी हो गयी । आपको यहाँ बहुत दिनों तक नहीं रहना चाहिए, इस समय गोकुल में उत्पात हो रहे हैं ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

तां बुद्ध्वा वसुदेवो दु:खं त्यक्त्वा नन्दमाह-करो वै इति । वो युष्माभिः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

नन्दजी की वाणी को जानकर वसुदेवजी दु:ख का परित्याग कर दिए और नन्दजी से **करो वै इत्यादि** श्लोक कहे । अर्थात् आपको ।।३१।।

श्रीशुक उवाच

इति नन्दादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः । अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्दवसुदेवसङ्गमो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अन्वयः— इति शौरिणा प्रोक्ताः ते नन्दादयः गोपाः तम् अनुज्ञाप्य अनुडुद् युक्तैः अनोभिः गोकुलं ययुः ॥३२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से वसुदेवजी के कहने पर वे नन्द इत्यादि गोप उनसे विदा लेकर बैलगाड़ियों से गोकुल चले गये ॥३२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के नन्दवसुदेव संगम नामक पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धपूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूवार्ध की भावर्थि दीपिका नामक टीका के पाञ्चवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।५।।

* * *

छठा अध्याय

पूतना का उद्धार

श्रीशुक उवाच

नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन् । हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशङ्कितः ॥१॥

अन्वयः— नन्दः पाथि शौरेः वचः मृषा न इति विचिन्तयन् उत्पातागमशङ्कितः हरिं शरणं जगाम ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— रास्ते में जाते हुए नन्दजी विचारने लगे कि वसुदेवजी की वाणी मिथ्या नहीं होती है । अतएव उनको गोकुल में उत्पात होने की शङ्का हो गयी और वे गोकुल की रक्षा के लिए श्रीहरि की शरणागति किए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षष्ठे सख्युर्गिरा नन्दो व्रजे गच्छन्मृतां पथि । दृष्ट्वा तु राक्षसीं तस्या मृत्युं श्रुत्वाथ विस्मितः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

छठे अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि अपने मित्र वसुदेवजी के कहने के अनुसार व्रज में जाते हुए नन्दजी ने मार्ग में मरी हुई पूतना नामक राक्षसी को देखकर और उसकी मृत्यु को सुनकर आश्चर्यित हो गये ॥१॥

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी । शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु ॥२॥

अन्वयः— कंसेन प्रहिता घोरा बालघातिनी पूतना पुरग्रामव्रजादिषु शिशून् निध्नन्ति चचार ॥२॥

अनुवाद— कंस के द्वारा प्रेषित भयङ्कर बालकों को मारने वाली पूतना नगरों, ग्रामों तथा व्रजों आदि में बालकों को मारती हुई विचरण कर रही थी ।।२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२।।

न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु । कुर्वन्ति सात्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि ।।३।।

अन्वयः— यत्र स्वकर्मसु रक्षोघ्नानि सात्त्वतां भर्तुः श्रवणादीनि न कुर्वन्ति तत्र हि यातुधान्यश्च ।।३।।

अनुवाद— जहाँ के लोग अपने प्रतिदिन के कामों में राक्षसों को विनष्ट करने वाले श्रीभगवान् के नामों तथा कथाओं का श्रवण एवं कीर्तन नहीं करते हैं, वहीं पर राक्षसों एवं राक्षसियों का वश चलता है ।।३।।

भावार्थ दीपिका

कृष्णविषये शङ्कमानं राजानं प्रत्यविषये प्रवृत्ता सैव मरिष्यतीति सूचयन्नाह–न यत्रेति । यत्र श्रीकृष्णस्य श्रवणादीनि न सन्ति तत्रैव तासां शक्तिः, साक्षात्तस्मिन्नेव सति का शङ्केति भावः ।।३।।'

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में शङ्का करने वाले राजा के प्रति अपने विषय में भिन्न-भिन्न ग्रामों में बालकों को मारने का काम करने वाली पूतना स्वयं ही मर जायेगी इसी अर्थ को सूचित करते हुए शुकदेवजी कहते हैं- जहाँ पर भगवान् श्रीकृष्ण की कथा का श्रवण तथा उनके नामों आदि का कीर्तन नहीं किया जाता है, वहीं पर राक्षसों एवं राक्षसियों की शक्ति काम करती है । जहाँ पर भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं विराजमान हैं, वहाँ पर इनकी शक्ति के काम करने की शङ्का का कोई अवसर ही नहीं है ।।३।।

सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम् । योषित्वा माययात्मानं प्राविशत्कामचारिणी ।।४।।

अन्वयः— एकदा खेचर्या सा कामचारिणी पूतना नन्दगोकुलम् उपेत्य मायया आत्मानं योषित्वा नन्द गोकुलं प्राविशत्।।४।।

अनुवाद— एक दिन खेचरी विद्या से नन्द बाबा के गोकुल के पास आकर वह अपनी इच्छा के अनुसार संचरण करने वाली पूतना माया से अपने को एक सुन्दरी युवती स्त्री बना लिया और नन्द बाबा के गोकुल में प्रवेश कर गयी ।।४।।

भावार्थ दीपिका

योषित्त्वा वेषतो वरां नारीमिवात्मानं विधाय । ननु निर्लज्जा निर्विशङ्का च सती कथं परसद्मनि प्रविष्टाऽत आह कामचारिणीति । नहि कामचारिणीष्विदं चित्रमित्यर्थः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

योषित्वा अर्थात् श्रेष्ठ नारी के समान अपना वेष बनाकर यदि कोई कहें कि निर्लज्ज होकर बिना किसी शङ्का के ही वह दूसरे के गृह में प्रवेश कर गयी ? तो इसके उत्तर में कहते है कि वह कामचारिणी थी । अपनी इच्छा के अनुसार घूमने वाली औरतों के लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।।४।।

तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् ।
सुवाससं कम्पितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम् ।।५।।

अन्वयः— केशबन्धव्यतिसक्तमल्लिकाम्, बृहन्नितम्बस्तन कृछ्रमध्यमाम्, सुवासं, कम्पितकर्णभूषणत्विषोल्लसकुन्तलमण्डिताननाम् ताम् ।।५।।

अनुवाद— वह अपनी चोटी में बेले का फूल गूंथी थी उसके नितम्ब और स्तन बड़े-बड़े थे तथा कमर

पतली थी, सुन्दर साड़ी पहनी थी, उसके कानों के भूषण हिल रहे थे। कर्णफूलों की कान्ति से मुख की ओर लटकी हुई अलकें और अधिक सुन्दर लगती थीं, इस प्रकार की वेष वाली उसको ॥५॥

भावार्थ दीपिका

तां वनितां पतिं द्रष्टुमागतामतिरूपवतीं श्रियमिव गोप्योऽमंस्तेत्युत्तरश्लोकेनान्वयः। श्रीसाम्यार्थानि विशेषणानि। केशबन्धव्यतिशक्तमल्लिकां धम्मिल्लसंसक्तमल्लिकाकुसुमाम्। बृहता नितम्बेन स्तनाभ्यां चोभयत आक्रान्तमिव कृच्छ्रं कृशं मध्यममुदरं यस्यास्ताम्। सुवाससं शोभने रमणीये वाससी यस्यास्ताम्। कम्पितयोः कर्णभूषणयोस्त्विषोल्लसद्भिः कुन्तलैर्मण्डितमाननं यस्यास्ताम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

उस नारी को अपने पति को देखने के लिए आई हुई लक्ष्मी गोपियों ने माना इस तरह से इस श्लोक का इसके बाद वाले श्लोक के साथ अन्वय है। इस श्लोक में लक्ष्मीजी की समता बोधक विशेषण इस प्रकार के है- वह अपनी चोटी में बेले के पुष्प को गूंथे हुई थी, विशाल नितम्ब तथा उन्नत स्तनों के द्वारा दोनों ओर से आक्रान्त होने के कारण उसकी कमर मानो पतली हो गयी थी। वह सुन्दर दो वस्त्रों को धारण की थीं। हिलते हुए कर्ण फूलों की कान्ति से मुख पर लटक कर चमकने वाले केशों से उसका मुख सुशोभित हो रहा था ॥५॥

वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितैर्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम्।
अमंसताम्भोजकरेण रूपिणीं गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥६॥

अन्वयः— वल्गुस्मितापाङ्ग विसर्गवीक्षितैः व्रजौकसां मनोहरन्तीम् वनिताम् गोप्यः अम्भोजकरेण गोप्यः पतिं द्रष्टुम् आगतां रूपिणीं श्रियम् अमंसत ॥६॥

अनुवाद— मधुर मुस्कान और कटाक्ष पूर्ण चितवन के द्वारा व्रजवासियों के चित्त को चुराने वाली तथा अपने हाथ में कमल धारण की हुई नारी को गोपियों ने माना कि अपने पति का दर्शन करने के लिए श्रीलक्ष्मीजी शरीर धारण करके आयी हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितैः वल्गु रम्यं स्मितं येषु ते तथाभूता अपाङ्गविसर्गा येषु तैर्वीक्षितैर्व्रजौकसां मनो हरन्तीम्। अतो गोपा हृतमनस्त्वेन तां न निवारितवन्त इत्युक्तं भवति। गोप्यश्च श्रियमिव मत्त्वा तूष्णीमासन्। अतः केनाप्यनिवारिता सती प्रविवेशेति भावः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

मनोहर मुस्कान से युक्त कटाक्षपात पूर्ण चितवनों से व्रजवासियों के मन को चुराने वाली उसको किसी गोप ने नहीं रोका और गोपियाँ उसको लक्ष्मीजी मानकर चुपचाप थीं। अतएव किसी के भी द्वारा नहीं रोके जाने के कारण गोकुल में वह प्रवेश कर गयी ॥६॥

बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्यदृच्छया नन्दगृहेऽसदन्तकम्।
बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ॥७॥

अन्वयः— तत्र शिशून विचिन्वती बालग्रहः यदृच्छया नन्दगृहे असदन्तकं प्रतिच्छन्न निजोरुतेजसं भसि आहितं अग्निम् इव तल्पे बालं ददर्श ॥७॥

अनुवाद— गोकुल में बच्चों का अन्वेषण करती हुई वह बालग्रह पूतना, अचानक नन्दजी के गृह में, दुष्टों के लिए काल स्वरूप अपने महान् तेज को छिपाये हुए राख में छिपी हुई अग्नि के समान शय्या पर सोये हुए बालक भगवान् श्रीकृष्ण को देखी ॥७॥

भावार्थ दीपिका

बालग्रहः पूतना असदन्तकं बालं ददर्श । असदन्तकं दृष्ट्वा कथं न विभेति तत्राह । प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसम्, वालनाट्येन प्रतिच्छन्नं तिरोहितं निजमुरु तेजो येन तम् । कमिव । भसि भस्मन्याहितमग्निमिवेति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

पूतना बालकों के लिए ग्रह है । उसने दुष्टों के विनाश करने वाले बालक को देखा । दुष्टों का विनाश करने वाले श्रीभगवान् को देखकर वह डरीं क्यों नहीं ? तो इसके उत्तर में कहते हैं श्रीभगवान् अपने महान तेज को छिपाये हुए थे, क्योंकि वे बाल लीला कर रहे थे वे भस्म में छिपी हुई अग्नि के समान थे ।।७।।

विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं चराचरात्माऽऽस निमीलितेक्षणः ।
अनन्तमारोपयदङ्कमन्तकं यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ।।८।।

अन्वयः— चराचरात्मा तां बालमारिकाग्रह विबुध्य निमीलितेक्षणः आस । अबुद्धिरजुधीः सुप्तम् उरगं यथा अन्तकम् अनन्तम् अङ्कम् आरोपयत् ।।८।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण चराचर प्राणियों की आत्मा है, उन्होंने जान लिया कि यह बालकों को मारने वाली पूतना ग्रह है । अतएव उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर ली, जैसे कोई अज्ञानी पुरुष सोए हुए साँप को रस्सी समझकर उठा ले उसी तरह अपने काल स्वरूप श्रीभगवान् को उसने अपनी गोद में रख लिया।।८।।

भावार्थ दीपिका

चराचरात्मत्वादेव तां विबुध्य निमीलितेक्षण आस । स्वयमनन्तं दुष्टानामन्तकं बालं मत्वा सा अङ्कमारोपयत् । यथोरगं सुप्तमबुद्धिश्चासौ रज्जुधीश्च सोऽज्ञानतो रज्जुबुद्ध्या गृह्णाति तद्वत् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

चराचर की आत्मा होने के कारण ही श्रीभगवान् उसको बालकों को मारने वाला ग्रह पूतना जान गये और उन्होंने अपनी आँखे बन्द कर ली । श्रीभगवान् स्वयम् अनन्त हैं और दुष्टों को मारने वाले हैं । उनको बालक मानकर उसने अपनी गोद में रख लिया । जिस तरह कोई अज्ञानी पुरुष सोए हुए सर्प को रस्सी समझकर उठा ले ।।८।।

तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां वीक्ष्यान्तरा कोशपरिच्छदासिवत् ।
वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते निरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठताम् ।।९।।

अन्वयः— अन्तराकोशपरिच्छदासिवत् तीक्ष्णचित्ताम् अतिवामचेष्टिताम् वरस्त्रियंताम् वीक्ष्य तत्प्रभया च धर्षिते निरीक्षमाणे जननी अतिष्ठताम् ।।९।।

अनुवाद— मखमली म्यान के भीतर छिपी हुई तलवार के समान अत्यन्त क्रूर हृदय वाली और ऊपर से अत्यन्त मनोहर व्यवहार करने वाली उस श्रेष्ठ स्त्री को देखकर भी उसकी कान्ति से हतप्रतिभ रोहिणी और यशोदा दोनों माताएँ देखती हुई खड़ी रही ।।९।।

भावार्थ दीपिका

ननु यशोदारोहिण्यौ तां कथं न न्यवारयेतां तत्राह-तामिति । वामं वल्गु जनन्या इव चेष्टितं यस्यास्तां वरस्त्रियं च सहसैवान्तरा गृहमध्ये वीक्ष्य । अन्तस्तैक्ष्ण्ये बहिर्मार्दवे च दृष्टान्तः-कोशपरिच्छदासिवत् । मृदुचित्रचर्ममयः कोशः परिच्छद आवरणं यस्यासेः खड्गस्य तद्वत् । तत्प्रभया च धर्षितेऽभिभूते । अहमस्य जननी इयं वेति मोहिते च सत्यौ जननी जनन्यौ निरीक्षमाणे एव केवलमतिष्ठतां, नतु निवारितवत्यौ ।।९।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि यशोदा और रोहिणी इन दोनों माताओं ने उसको क्यों नहीं रोका ? इसके उत्तर में **ताम्०** **इत्यादि** श्लोक कहते हैं वह माता के समान मनोहर व्यवहार कर रही थी । ऐसी श्रेष्ठ महिला को अचानक अपने घर के भीतर देखकर भीतर से तीक्ष्ण और बाहर मृदु व्यवहार का दृष्टान्त है, सुन्दर म्यान में छिपी हुई तीक्ष्ण धार वाली तलवार के समान । उसकी कान्ति से अभिभूत मैं इसकी माँ हूँ कि यह है, इस तरह से मोहित हुई दोनों माताएँ उसको देखती हुई चुपचाप खड़ी रहीं उसे रोकी नहीं ॥९॥

तस्मिन्स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं घोराङ्कमादाय शिशोर्ददावथ ।
गाढं कराभ्यां भगवान्प्रपीड्य तत्प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥१०॥

अन्वयः— अथ घोराङ्कम् आदाय तस्मिन् दुर्जरवीर्य मुल्बणं स्तनं शिशोः ददौ तत् कराभ्यां गाढं प्रपीड्य रोषसमन्वितः अपिबत् ॥१०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् भयानक राक्षसी पूतना भयङ्कर, जिसे पचाया नहीं जा सकता ऐसा विष जिसमें लगा था अपने उस स्तन को उसने बालक के मुख में डाल दिया क्रोध से युक्त श्रीभगवान् भी उसके स्तन को जोर से दबाकर उसके प्राणों के साथ ही पीने लगे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तस्मिन्स्थाने दुर्जरं वीर्यं विषं यस्मिंस्तं स्तनं श्रीकृष्णमङ्कमादाय तस्मै शिशवे ददौ । अथानन्तरमेव प्रपीड्य केवलं विषमपथ्यमिति मत्वेव तस्याः प्राणैः सहापिबत् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

जिस स्तन में भयङ्कर जिसको पचाया नहीं जा सकता है ऐसा विष लगा था उस स्तन को भगवान् श्रीकृष्ण को गोद में लेकर उसने उनके मुख में डाल दी । उसके पश्चात् उसके स्तनों को दबाकर केवल विष अपथ्य है यह मानकर श्रीभगवान् उसके प्राणों के साथ उसे पीने लगे ॥१०॥

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि ।
विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा क्षिपति रुरोद ह ॥११॥

अन्वयः— निष्पिड्यमानाखिलजीवमर्मणि मुञ्च-मुञ्च इति अलम् प्रभाषिणी सा प्रस्विन्नगात्रा नेत्रे विवृत्य चरणौ भुजौ मुहुः क्षिपती रुरोद ॥११॥

अनुवाद— पूतना के प्राणों के आश्रय भूत सभी मर्मस्थल फटने लगे वह छोड़ रे छोड़ कहकर चिल्लाने लगी उसका सारा शरीर पसीने-पसीना होने लगा । उसके नेत्र उलट गये वह अपने दोनों हाथों तथा दोनों पैरों को पटक-पटक कर रोने लगी ॥११॥

भावार्थ दीपिका

चरणौ भुजौ च मुहुर्मुहुः क्षिपन्ती । प्रस्विन्नानि स्वेदयुक्तानि गात्राणि यस्याः सा ॥११॥

भाव प्रकाशिका

अपनी भुजा और चरणों को बार-बार पटक रही थी । उसका शरीर पसीना-पसीना हो गया था ॥११॥

तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा साद्रिर्मही द्यौश्च चचाल सग्रहा ।
रसा दिशश्च प्रतिनेदिरे जनाः पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशङ्कया ॥१२॥

अन्वयः— तस्याः अतिगभीर रंहसा स्वनेन साद्रिमही, द्यौः सग्रहाः रसा चचाल दिशः च प्रतिनेदिरे, वज्रनिपातशङ्कया जनाः क्षितौ निपेतुः ॥१२॥

अनुवाद— उसके चिल्लाने के अत्यन्त भयङ्कर वेग से पर्वतों के साथ पृथिवी तथा ग्रहों के साथ द्युलोक, और सातो पाताल काँपने लगे तथा सभी दिशाएँ प्रतिध्वनित हो गयीं। वज्रपात की शङ्का से लोग पृथिवी पर गिर पड़े ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

रसाः रसातलानि च ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

रसाः अर्थात् सातो पाताल ॥१२॥

निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसुर्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि ।
प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥१३॥

अन्वयः— नृप ! इत्थं निशाचरी व्यथितस्तना व्यसुः व्यादाय केशान् चरणौ भुजौ अपि प्रसार्य निजरूपम् आस्थिता वज्रहतः वृत्रः इव गोष्ठे अपतत् ॥१३॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् इस तरह से स्तनों की पीड़ा के कारण उस निशाचरी के प्राण निकल गये, उसका मुँह खुल गया था। वह अपने रूप को धारण करके हाथों और पैरों को फैलाकर जिस तरह वज्र से मारा गया वृत्रासुर गिर पड़ा था उसी तरह वह गोष्ठ में आकर गिर पड़ी ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

व्यादाय मुखं विवृत्य। निजरूपमास्थिता मरणसमये कपटमयुक्तमितीव ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

व्यादाय अर्थात् मुख को खोलकर। मृत्यु के समय कपट करना अनुचित है मानो यह सोचकर उसने अपना रूप धारण कर लिया था ॥१३॥

पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् । चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत्तदद्भुतम् ॥१४॥

अन्वयः— राजेन्द्र पतमानः अपि तद्देह त्रिगव्यूत्यन्तर द्रुमान् चूर्णयामास। तन्महद् अद्भुतम् आसीत् ॥१४॥

अनुवाद— राजश्रेष्ठ परीक्षित् ! गिरते समय उसके शरीर ने छह कोश के वृक्षों को चूर-चूर कर दिया। यह अत्यन्त अद्भुत बात थी ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

पतन्नपि तस्या देहः षट्कोशमध्यवर्तिनो द्रुमांश्चूर्णीचकार ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

गिरते समय उसके देह ने छह कोश के अन्तराल में रहने वाले वृक्षों को चूर-चूर कर दिया ॥१४॥

ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्य गिरिकन्दरनासिकम् । गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥१५॥
अन्धकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम् । बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रि शून्यतोयह्रदोदरम् ॥१६॥
संतत्रसुः स्म तद्वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम् । पूर्वं तु तन्निः स्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥१७॥

अन्वयः— ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं, गिरिकन्दर नासिकम् गण्ड शैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् अन्धकूपगभीराक्षम् पुलिनारोह भीषणम् बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रिशून्यतोयह्रदोदरम्, पूर्वं तु तनिः स्वनितभिन्नहृत्कर्ण मस्तकाः गोपाः गोप्यः तत्कलेवरं वीक्ष्य तत्रसुः॥१५-१७॥

अनुवाद— उसका मुख हल के जुए के समान लम्बे दाँतो वाला था, उसकी नाक पर्वत की गुफा के समान गहरी थी, उसके स्तन पर्वत से गिरे बड़ी-बड़ी शिला के समान भयङ्कर थे, उसके लाल केश विखर गये थे। अन्धकूप के समान उसके गहरे नेत्र थे, सेतु के समान ऊँचे उसके दोनों जङ्घे थे, उसके पैर, जङ्घे और भुजाएँ बंधे हुए पुल के समान थे, सूखे जलाशय के समान उसका पेट था। उसकी चिल्लाहट को सुनकर गोपों और गोपियों के हृदय, कान और शिर तो पहले ही फटे से हो गये थे, उसके शरीर को देखकर वे सब डर गये ॥१५-१७॥

भावार्थ दीपिका

ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्याम्, ईषा लाङ्गलदण्डस्तत्प्रमाणोग्रा दंष्ट्रा यस्मिस्तत्तथाभूतमास्यं यस्मिंस्तत्तस्याः कलेवरं वीक्ष्य गोपा गोप्यश्च संतत्रसुः । संत्रासहेतुत्वेन पुनरष्टभिः पदैर्विशिनष्टि । गिरिकन्दरवन्नासिके यस्मिंस्तत् । गिरेश्च्युतौ स्थूलोपलौ ताविव स्तनो यस्मिंस्तत् । रौद्रं घोरम् । प्रकीर्णा अरुणा मूर्धजा यस्मिंस्तत् । अन्धकूपाविव गभीरे अक्षिणी यस्मिंस्तत्। पुलिनवदारोहौ जघने ताभ्यां भीषणम् । बद्धाः सेतव इव भुजौ ऊरू अङ्घ्री च यस्मिंस्तत् । शून्यतोयह्लद इवोदरं यस्मिंस्तत् । पूर्वमेव तस्याः शब्देन भीताः पुनर्दर्शनेनातितत्रसुरित्याह-पूर्वं त्विति । तस्याः निःस्वनितं शब्दस्तेन निर्भिन्नानि हृत्कर्णमस्तकानि येषां ते ॥१५-१७॥

भाव प्रकाशिका

हल के जुए (हरिस) के समान लंबे दाँतों वाला उसका मुख था, पूतना के शरीर को देखकर गोप और गोपियाँ भयभीत हो गयीं। फिर उसकी शरीर की विशेषताएँ आठ पदों से बतलायी गयी हैं। उसकी नाक पर्वत की कन्दरा के समान थी, पर्वत से गिरे बड़े-बड़े पत्थर के समान भयङ्कर उसके दोनों स्तन थे। उसके लाल-लाल केश विखर गये थे। औंधे कुएँ के समान गहरे उसके नेत्र थे, पूल के समान आरोह वाले उसके जङ्घे थे। वन्धे पूल के समान उसकी दोनों भुजाएँ दोनों जङ्घे और दोनों पैर थे। सूखे तलाब के समान उसका पेट था। पहले उसके चिल्लाहट से ही डरे हुए गोप आदि उसके शरीर को देखकर डर गये। उसके चिल्लाहट से गोपों आदि के हृदय, कान और सिर फट से गये थे ॥१५-१७॥

बालं च तस्या उरसि क्रीडन्तमकुतोभयम् । गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसंभ्रमाः ॥१८॥

अन्वयः— तस्याः उरसि क्रीडन्तं अकुतोभयं बालं तु जातं संभ्रमाः गोप्यः तूर्णं समभ्येत्य जगृहुः ॥१८॥

अनुवाद— पूतना की छाती पर खेलते हुए निर्भय बाल को घबराई हुई गोपियाँ शीघ्रता से आकर उठा लीं॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः । रक्षां विदधिरे सम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥१९॥

अन्वयः— यशोदा रोहिणीभ्यां ताः समं गोपुच्छभ्रमणादिभिः बालस्य सर्वतः सम्यगरक्षां विदधिरे ॥१९॥

अनुवाद— यशोदाजी तथा रोहिणीजी के साथ गोपियों ने गौ के पुंच्छ घुमाने आदि उपायों से बालक श्रीकृष्ण के सभी अङ्गों को अच्छी तरह से रक्षा की ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसाऽर्भकम् । रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशाङ्गेषु नामभिः ॥२०॥

अन्वयः— अर्भकम् गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनः गोरजसा द्वादशाङ्गेषु द्वादशनामभिः रक्षां चक्रुः ॥२०॥

अनुवाद— उन लोगों ने पहले बालक श्रीकृष्ण को गोमूत्र से स्नान कराया फिर उनके सभी अङ्गों में गोरज लगाया उसके पश्चात् श्रीभगवान् के केशव आदि द्वादश नामों से बालक के ललाट आदि बारहो अङ्गों में गोवर लगाकर रक्षा की ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशाङ्गेषु ललाटादिषु केशवादिद्वादशनामभिः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

बालक के ललाट आदि बारह अङ्गों में श्रीभगवान् के केशव आदि बारह नामों से गोबर लगाकर उसकी सबों ने रक्षा की ॥२०॥

गोप्यः संस्पृष्टसलिला अङ्गेषु करयोः पृथक् । न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यासमकुर्वत ॥२१॥

अन्वयः— संस्पृष्टसलिलाः गोप्यः अङ्गेषु करयोः पृथक् आत्मनि न्यस्य अथ बालस्य बीजन्यासमकुर्वत ॥२१॥

अनुवाद— गोपियाँ आचमन करके अज इत्यादि ग्यारह बीज मन्त्रों से अपने शरीर में तथा हाथ में अलग-अलग न्यास किया उसके पश्चात् उन सबों ने बालक के शरीर में बीज न्यास किया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अनाचान्ता एव प्रथममतिसंभ्रमेणैवं रक्षां कृत्वा किंचिल्लब्ध श्वासाः पुनस्तात्पर्येण बीजन्यासमकुर्वतेत्याह-गोप्य इति। संस्पृष्टसलिला आचान्ताः आत्मनि प्रथममङ्गेषु करयोश्च पृथक् । अजाद्येकादशबीजानां मध्ये करशुद्धौ त्रीणि, करयोः सन्धिषु चत्वारि चत्वारि, तथा अङ्घ्र्यादावेकैकस्मिन्नङ्गे अजाद्येकैकं बीजं न्यस्य बालस्याप्यङ्गेषु तथैवाकुर्वत ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

पहले घबरायी हुई गोपियाँ बिना आचमन किए ही संक्षेप में रक्षा करके बाद में थोड़ी श्वास लेकर फिर तात्पर्य पूर्वक बीज न्यास की इस बात को **गोप्यः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। आचमन करके उन सबों ने पहले अपने अङ्गों में तथा हाथों में न्यास करके अज आदि ग्यारह बीजों में हाथ की शुद्धि में तीन, दोनों हाथ की सन्धियों में चार-चार तथा पैर इत्यादि के प्रत्येक अङ्गों में अज इत्यादि एक-एक बीज का न्यास करके बालक श्रीकृष्ण के भी अङ्गों में उसी प्रकार से न्यास किया॥२१॥

अव्यादजोऽङ्घ्रि मणिमांस्तव जान्वथोरू यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः ।
हृत्केशवस्त्वदुद ईश इनस्तु कण्ठं विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥२२॥

अन्वयः— अजः तव अङ्घ्री अव्यात् मणिमान् तव जानु, अथ यज्ञः उरू, अच्युतः कटितटं, हयास्यः जठरं, हृत्केशवः, त्वत् उरः ईशः, कण्ठं इनः, विष्णुः भुजं उरुक्रमः मुखम् ईश्वरः कम् ॥२२॥

अनुवाद— अजन्मा भगवान् तेरे पैरों की रक्षा करे, मणिमान घुटनों की रक्षा करें, यज्ञ भगवान् तुम्हारे दोनों जङ्घों की, अच्युत भगवान् कमर की, हयग्रीव भगवान् पेट की, भगवान् केशव हृदय की, ईश भगवान् वक्षस्थल की, सूर्य कण्ठ की, विष्णु बाहों की, उरुक्रम मुख की और ईश्वर सिर की रक्षा करें ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अङ्घ्रि अङ्घ्रि । जानु जानुनी । भुजं भुजौ । कं शिरः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अङ्घ्रि शब्द से दोनों पैरों को, जानु शब्द से दोनों घुटनों को, भुजम् शब्द से दोनों भुजाओं को तथा कम् शब्द से सिर को कहा गया है ॥२२॥

चक्र्यग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहाऽजनश्च ।
कोणेषु शङ्ख उरुगाय उपर्युपेन्द्रस्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् ॥२३॥

अन्वयः— चक्री अग्रतः सहगदो हरिःतु पश्चात् त्वत् पार्श्वयोः धनुरसी मधुहाजनश्च, शङ्खं उरुगायः कोणेषु उपरि उपेन्द्रः तार्क्ष्यः क्षितौ, हलधरः पुरुषः समन्तात् ॥२३॥

अनुवाद— चक्रधर भगवान् तुम्हारी आगे से रक्षा करे गदाधर श्रीहरि तुम्हारी पीछे से रक्षा करें, तुम्हारे दोनों बगल में क्रमशः धनुर्धर भगवान् मधुसूदन तथा खड्गधर भगवान् अजन रक्षा करें, चारो कोणों में शङ्खधारी भगवान् उरुगाय रक्षा करें ऊपर की ओर उपेन्द्र रक्षा करें और पृथिवी पर गरुड़ रक्षा करें तथा हर ओर से भगवान् हलधर तुम्हारी रक्षा करें ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

तथा दिक्षु रक्षामकुर्वन्नित्याह-चक्र्यग्रत इति । चक्रसहितो हरिस्तवाग्रतोऽस्तु । सहगदो गदासहितो हरिस्तव पश्चादस्तु। त्वत्पार्श्वयोर्धनुर्धरो मधुहाऽसिधरोऽजनश्चैतावास्ताम् । शङ्खधर उरुगायश्चतुष्कोणेषु । क्षितावधस्तात् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

उसी तरह दिशाओं में भी रक्षा करते हुए इस तरह से उन सबों ने **चक्रयग्रतः इत्यादि** श्लोक को कहा चक्रधारण किए हुए भगवान् तुम्हारे आगे रहे, गदाधर श्रीहरि तुम्हारे पीछे रहें, तुम्हारे दोनों बगल में धनुर्धरभगवान् मधुसूदन और खड्गधारी अजन रहें, शङ्खधर उरुगाय भगवान् तुम्हारे चारो कोणों में रहे, और नीचे की ओर गरुड़ रहें ।।२३।।

इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान्नारायणोऽवतु । श्वेतद्वीपपतिश्चित्त मनो योगेश्वरोऽवतु ।।२४।।

अन्वयः— इन्द्रियाणि हृषीकेशः, प्राणान् नारायणः अवतु, श्वेतद्वीपपतिः चित्तं मनोयोगेश्वरः अवतु ।।२४।।

अनुवाद— तुम्हारी इन्द्रियों की रक्षा भगवान् हृषीकेश प्राणों की रक्षा भगवान् नारायण करें चित्त की रक्षा श्वेतद्वीपपति करें तथा मन की रक्षा भगवान् योगेश्वर करें ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

एवं बही रक्षां कृत्वाऽन्तरङ्गामकुर्वन्नित्याह-इन्द्रियाणीति ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से बाहरी रक्षा करने के पश्चात् अन्तरङ्ग (भीतरी) रक्षा गोपियों ने **इन्द्रियाणि० इत्यादि** श्लोक से किया ।।२४।।

पृश्निगर्भस्तु ते बुद्धिमात्मानं भगवान्परः । क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः ।।२५।।

अन्वयः— ते बुद्धिम् तु पृश्निगर्भः आत्मानम् भगवान् परः क्रीडन्तं गोविन्दः पातु शयानम् माधवः पातु ।।२५।।

अनुवाद— तुम्हारी बुद्धि की रक्षा पृश्निगर्भ करें, अहङ्कार की रक्षा, भगवान् परमात्मा करें खेलते समय तुम्हारी रक्षा भगवान् गोविन्द करें और सोते समय तुम्हारी रक्षा भगवान् माधव करें ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

आत्मानमहङ्कारम् ।।२५।।

डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः। भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥२७॥
कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः। उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेन्द्रियद्रुहः ॥२८॥
स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये। सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥२९॥

अन्वयः— डाकिन्यः, यातुधान्यः च कुष्माण्डा ये अर्भकग्रहाः भूत, प्रेत पिशाचाः च यक्षरक्षोविनायकाः, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृकादयः, उन्मादाः अपस्माराः ये देहेन्द्रियद्रुहः, स्वप्नदृष्टाः महोत्पाताः, वृद्धबालग्रहाः च ये, विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ते सर्वे नश्यन्तु ॥२७-२९॥

अनुवाद— डाकिनियाँ, राक्षसियाँ, कुष्माण्ड ये जो बालकों के ग्रह हैं, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, विनायक, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृकाएँ आदि उन्माद (पागलपन) अपस्मार (मृगी) ये सब जो प्राण, देह एवं इन्द्रियों से द्रोह करने वाले रोग हैं, स्वप्न में देखे गये उत्पात तथा वृद्धों एवं बालकों के ग्रह ये सभी भगवान् के नामोच्चारण करने मात्र से डरने वाले हैं, वे सब विनष्ट हो जायँ ॥२७-२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७-२९॥

श्रीशुक उवाच

इति प्रणयबद्धाभिर्गोपीभिः कृतरक्षणम्। पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयदात्मजम् ॥३०॥

अन्वयः— इति प्रणयबद्धाभिः गोपीभिः कृतरक्षणम् आत्मजम् माता स्तनं पाययित्वा संन्यवेशयत् ॥३०॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से प्रेमपाश में बँधी हुई गोपियों के द्वारा रक्षा कर लिए जाने के पश्चात् माता यशोदा ने अपने पुत्र को दूध पिलाकर सुला दिया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

संन्यवेशयच्छादयामास ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

सन्यवेशयत् अर्थात् ढँक दिया ॥३०॥

तावन्नन्दादयोगोपा मथुराया व्रजं गताः। विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः ॥३१॥

अन्वयः— तावत् मथुरायाः व्रजंगताः नन्दादयः गोपाः पूतना देहं विलोक्य अतिविस्मिताः बभूवुः ॥३१॥

अनुवाद— तब तक मथुरा से व्रज में लौटे हुए नन्द आदि गोप पूतना के शरीर को देखकर अत्यन्त आश्चर्यित हुए ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

नूनं बतर्षि संजातो योगेशो वा समास सः। स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहानकदुन्दुभिः ॥३२॥

अन्वयः— नूनं बत सः ऋषिः योगेशः वा समास यद् आनकदुन्दुभिः आह स एव उत्पातः ॥३२॥

अनुवाद— निश्चित रूप से वसुदेवजी कोई ऋषि है अथवा वे पूर्वजन्म के योगेश्वर हैं, क्योंकि जिसको वसुदेवजी ने कहा था वही यह उत्पात है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

विस्मयमेवाह-नूनमिति। बत विस्मये। सांप्रतं स ऋषिस्तपः प्रभाववान् योगेशो ज्ञानी वा सम्यगास। यतः स एव दृष्ट इति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

गोपों के विस्मय का ही वर्णन **नूनम्० इत्यादि** श्लोक से किया गया है । **बत** यह विस्मय बोधक अव्यय है । इस समय वसुदेवजी तपस्या के प्रभाव से सम्पन्न हैं । अथवा ये पूर्वजन्म के योगेश्वर अथवा पहुँचे हुए ज्ञानी है । क्योंकि उन्होंने जो कहा वहीं यहाँ दिखाई पड़ा ॥३२॥

कलेवरं परशुभिश्छित्त्वा तत्ते व्रजौकसः । दूरे क्षिप्त्वाऽवयवशो न्यदहन्काष्ठधिष्ठितम् ॥३३॥

अन्वयः— ते व्रजौकसः तत् कलेवरं परशुभिः अवयवशः छित्वा, दूरे क्षिप्त्वा कष्ठाधिष्ठितम् न्यदहन् ॥३३॥

अनुवाद— उन व्रजवासियों ने पूतना के शरीर के अङ्गों को कुल्हाड़ियों से काटकर अलग-अलग कर चित्ता पर रखकर जलाया ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः । उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः ॥३४॥

अन्वयः— कृष्णनिर्भूक्तसपद्याहत पाप्मनः दह्यमानस्य देहस्य अगुरूसौरभः धूमः उत्थितः ॥३४॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा जिसका उपभोग किया गया था उसके कारण उसके सारे पाप शीघ्र ही विनष्ट हो गया । अतएव जलाते समय उससे धूम अगुरु की सुगन्धि से युक्त निकलता था ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

विस्मयान्तरमाह-दह्यमानस्येति । कृष्णेन निर्भुक्तोऽत एव सपद्याहतः पाप्मा यस्य ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

दूसरा आश्चर्य **दह्यमानस्य० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । श्रीभगवान् के द्वारा उपभोग किए जाने के कारण उसके सारे पाप शीघ्र ही विनष्ट हो गये थे ॥३४॥

पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना । जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाप सद्गतिम् ॥३५॥

अन्वयः— रुधिराशना राक्षसी लोकबालघ्नी, जिघांसया अपि हरये स्तनं दत्त्वा सद्गतिम् आप ॥३५॥

अनुवाद— रक्त पीने वाली राक्षसी पूतना संसार के बालकों को मारने वाली थी । वह श्रीभगवान् को मारने की इच्छा से भी अपना स्तन पान कराकर सद्गति को प्राप्त कर ली ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गात्कैमुत्यन्यायेन भक्तिवैभवमाह-पूतनेति ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्गवशात् कैमुत्य न्याय से भक्ति की महिमा का वर्णन, इस **पूतना० इत्यादि** श्लोक से किया गया है॥३५॥

किं पुनः श्रद्धया भक्तया कृष्णाय परमात्मने । यच्छन्प्रियतमं किं नु रक्तास्तन्मातरो यथा ॥३६॥

अन्वयः— पुनः कृष्णाय परमात्मने भक्त्या प्रियतमं यच्छन् मातरः यथा रक्ता किंनु ॥३६॥

अनुवाद— जो व्यक्ति परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण को अपनी सबसे प्रिय वस्तु को जो श्रीभगवान् को भी प्रिय हो उसे माताओं के समान प्रेम तथा भक्ति पूर्वक समर्पित करता है, उसके विषय में क्या कहना है? वह तो सद्गति अवश्य ही प्राप्त कर लेगा ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

श्रद्धया आस्तिक्येन भक्त्या प्रेम्णा । रक्ताः स्निग्धाः । तन्मातर इति वत्साहरणलीलाभिप्रायेण बहुवचनम् । गोगोपिकास्तदा मातरोऽभवन्निति ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

श्रद्धा अर्थात् आस्तिक्य बुद्धि पूर्वक । **भक्त्या** अर्थात् प्रेम पूर्वक । **रक्ताः** अर्थात् स्नेहिल, **तन्मातर** यह बहुवचनान्त प्रयोग ब्रह्माजी के वत्साहरण करने पर जो भगवान् बछड़े बन गये उस लीला की दृष्टि से कहा गया है । उस समय गायें तथा गोपिकाएँ श्रीभगवान् की माताएँ बन गयीं ।।३६।।

पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वन्द्याभ्यां लोकवन्दितैः । अङ्गं यस्याः समाक्रम्य भगवानपिबत्स्तनम् ।।३७।।

अन्वयः— भक्तहृदिस्थाभ्यां, लोकवन्दितैः वन्दिताभ्यां पद्भ्यां यस्याः अङ्गं समाक्रम्य भगवान् स्तनम् अपिबत्।।३७।।

अनुवाद— जो लोक वन्द्य हैं, ऐसे ब्रह्माजी, शिवजी इत्यादि देवताओं के भी जो वन्द्य हैं तथा जो भक्तों के हृदय में विद्यमान रहते हैं, उन अपने दोनों चरणों से पूतना के शरीर को दबाकर श्रीभगवान् पूतना के स्तनों का पान किए ।।३७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३७।।

यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम् । कृष्णभुक्तस्तनक्षीरां किमु गावो नु मातरः ।।३८।।

अन्वयः— सा यातुधान्यपि, जननी गतीं, स्वर्गमवाप, कृष्णभुक्त स्तनक्षीरां गावः मातरः नु किम् ।।३८।।

अनुवाद— राक्षसी होकर भी वह पूतना ने माता को प्राप्त होने वाली गति मुक्ति को प्राप्त किया तो फिर जिन गायों और माताओं का स्तनपान श्रीभगवान् ने प्रेम पूर्वक किया उन माताओं की सद्गति के विषय में क्या कहना है ?।।३८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३८।।

पयांसि यासामपिबत्पुत्रस्नेह स्तनान्यलम् । भगवान् देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः ।।३९।।
तासामविरतं कृष्णे कुर्वतीनां सुतेक्षणम् । न पुनः कल्पते राजन्संसारोऽज्ञानसंभवः ।।४०।।

अन्वयः— राजन् ! देवकीपुत्रः भगवान् कैवल्यादि अखिलप्रदः यासाम् पुत्रस्नेहस्नुतानि पयांसि अलम् अपिबत् अविरतं कृष्णे सुतेक्षणं कुर्वतीनां तासाम् पुनः अज्ञानसम्भवः संसारः न कल्पते ।।३९-४०।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! माता देवकी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण कैवल्य आदि सम्पूर्ण पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले हैं । उन्होंने जिन गोपियों और गायों का पुत्र स्नेह के कारण अपने आप प्रवाहित होने वाले दुग्ध का अपनी इच्छा भर पान किया किञ्च जो भगवान् श्रीकृष्ण को सदा पुत्र की ही भावना से देखती थी उन गोपियों और गायों को पुनः इस संसार में आने की कोई सम्भावना ही नहीं है क्योंकि संसार तो अज्ञान के कारण होता है ।।३९-४०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३९-४०।।

कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः । किमिदं कुत एवेति वदन्तो व्रजमाययुः ।।४१।।

अन्वयः— व्रजौकसः कटधूमस्य सौरभ्यम् अवघ्राय इदं कुतः एव इति वदन्तः व्रजम् आययुः ।।४१।।

अनुवाद— चिता के धूम की सुगन्धि का अवघाण करके व्रजवासी यह सुगन्धि कहाँ से आ रही है ? इस तरह से बातें करते हुए व्रज में आयें ।।४१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४१।।

ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् । श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोश्चासन्सुविस्मिताः ॥४२॥

अन्वयः— तत्र गोपैः वर्णितं पूतनागमनादिकं तन्निधनं शिशोः स्वस्ति च श्रुत्वा ते सुविस्मिताः आसन् ॥४२॥

अनुवाद— व्रज में गोपों के द्वारा पूतना के आगमन आदि, उसकी मृत्यु तथा बालक भगवान् श्रीकृष्ण की कुशलता को सुनकर वे गोप बहुत अधिक आश्चर्यित हुए ॥४२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४२॥

नन्दः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः । मूर्घ्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह ॥४३॥

अन्वयः— हे कुरुद्वह । उदारधीः नन्दः प्रेत्यागतम् स्वपुत्रम् आदाय मूर्ध्न्याधाय परमां मुदं लेभे ॥४३॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! उदाराग्रगण्य नन्दजी मृत्यु के मुखसे लौटकर आये हुए अपने पुत्र को उठाकर अपनी गोद में ले लिए और उसके शिर को सूंघ कर वे बहुत अधिक आनन्द का अनुभव किए ॥४३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४३॥

य एतन्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् । शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम् ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अन्वयः— यः मर्त्यः एतत् पूतना मोक्षं कृष्णस्य अद्भुतम् आर्भकम् श्रद्धया शृणुयात् गोविन्दे रतिम् लभते ॥४४॥

अनुवाद— जो मनुष्य पूतना के इस मोक्ष की कथा का तथा भगवान् श्रीकृष्ण के अद्भुत चरित को श्रद्धा पूर्वक बाल चरित को सुनता है उसका श्रीभगवान् श्रीकृष्ण से प्रेम हो जाता है ॥४४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६॥

भावार्थ दीपिका

एतदार्भकमर्भकचरितम् । किं तत् पूतनामोक्षमिति ॥४४॥

अत्तुं दैत्यकुलानीशः पूतनायाः शिशुच्छलात् । स्तन्यापोशनतः प्राणैः प्राणाहुतिमकल्पयत् ॥१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

एतादार्भकम् अर्थात् इस बाल चरित को, कौन सा वह बाल चरित है ? तो इसका उत्तर है पूतना मोक्ष की कथा रूप बालचरित ॥४४॥ दैत्यवंश का विनाश करने के लिए श्रीभगवान् बालक के व्याज से पूतना के स्तन्य पान रूपी आपोशन के द्वारा उसके प्राणों से अपनी प्राणाहुति कर लिए ॥१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥६॥

सातवाँ अध्याय

शकटभंजन और तृणावर्त उद्धार

राजोवाच

येन येनावतारेण भगवान्हरिरीश्वरः । करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥१॥

अन्वयः— हे प्रभो ! येन-येन अवतारेण भगवान् ईश्वरः हरिः नः मनोज्ञानि, कर्णरम्याणि करोति ॥१॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि जिन-जिन अवतारों को धारण करके हमलोगों को प्रिय लगने वाले तथा सुनने में प्रिय लगने वाली लीलाओं को करते हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

उत्क्षिपन्शकटं व्योम्नि तृणावर्तमधः क्षिपन् । दर्शयन्विश्वमास्ये च कृष्णः क्रीडति सप्तमे । कृष्णार्भकसुधासिन्धुसंप्लवानन्दनिर्भरः । भूयस्तदेव संप्रष्टुं राजाऽन्यदभिनन्दति । येन येनेति । येन-येन मत्स्याद्यवतारेणापि यानि-यानि कर्माणि करोति तानि नः कर्णसुधवहानि मनः प्रीतिकराणि च भवन्त्येव ॥१॥

भाव प्रकाशिका

शकटासुर को ऊपर की ओर आकाश में फेंककर तथा तृणावर्त को नीचे की ओर फेंककर तथा माता यशोदा का अपने मुख में विश्व का दर्शन कराकर श्रीभगवान् सातवें अध्याय में क्रीडारस का अनुभव करते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण के बालचरित रूप सुधा सागर में गोता लगाने से उत्पन्न आनन्द से परिपूर्ण राजा परीक्षित् श्रीभगवान् के दूसरे बालचरित को जानने के लिए श्रीशुकदेवजी का अभिनन्दन किए हैं । श्रीभगवान् मत्स्य आदि अवतारों के द्वारा जिन-जिन कर्मों को करते हैं वे हमारे कानों को अत्यधिक सुख प्रदान करते हैं । उन सबों को सुनकर मन में प्रसन्नता होती हैं ॥१॥

यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा सत्त्वं च शुद्ध्यत्यचिरेण पुंसः ।
भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥२॥

अन्वयः— यत् शृण्वतः अरतिः वितृष्णा च अपैति, सत्त्वं च अचिरेण शुद्ध्यति पुंसः हरौ भक्तिः तत्पुरुषे सख्यं च तदेव हारं चेत् मन्यसे वद ॥२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के जिस बाल चरित को सुनने से, श्रीभगवान् की कथाओं में होने वाली अरुचि तथा अनेक प्रकार की तृष्णाएँ समाप्त हो जाती हैं, मनुष्य की श्रीभगवान् में भक्ति बढ़ती है, भगवद भक्तों में प्रेम होता है, यदि आप मुझे उसका अधिकारी समझें तो श्रीहरि की उन्हीं मनोज्ञ लीलाओं को सुनाएँ ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तथापि तच्छृण्वतः पुंसः पुरुषमात्रस्यारतिर्मनोग्लानिस्तन्मूलभूता विविधा तृष्णा चापगच्छति तथा सत्त्वशुद्धिहरिभक्तिहरिदाससख्यानि च भवन्ति । तदेव हारं हरेश्चरितं, मनोहरं वा वद मन्यसे चेत् अनुग्रहं यदि करोषीति ॥२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की उन लीलाओं को सुनने मात्र से पुरुष की श्रीभगवान् की कथा में होने वाली अरुचि और उसके कारण स्वरूप तृष्णा समाप्त हो जाती है । उसके सुनने से अन्तःकरण की शुद्धि श्रीभगवान् की भक्ति तथा भगवद् भक्तों में प्रेम होता है । यदि आपकी मुझ पर कृपा है तो आप उस श्रीहरि के मनोहर चरित को ही मुझे सुनाएँ ॥२॥

अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम् । मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुन्धतः ॥३॥

अन्वयः— मानुषं लोकम्आसाद्य तज्जातिम् । अनुरुन्धत कृष्णस्य अन्यदपि अद्भुतम् तोकाचरितम् वद ॥३॥

अनुवाद— इस मनुष्य लोक में अवतीर्ण होकर मनुष्य जाति का अनुसरण करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की दूसरी भी अद्भुत बाल लीलाओं को आप मुझे सुनाएँ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अत्यौत्सुक्येन पुनर्विशिनष्टि-अथेति । अनुरुन्धतोऽनुकुर्वतः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की लीलाओं को जानने की अत्यधिक उत्सुकता होने के कारण राजा परीक्षित् **अथ० इत्यादि** श्लोक से पुन: उसको विशेषित करते है । **अनुरुन्धतः** अर्थात् अनुसरण **कुर्वतः** अर्थात् करने वाला ॥३॥

श्रीशुक उवाच

कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् ।
वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकैश्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥४॥

अन्वयः— कदाचित् औत्थानिक कौतुकाप्लवे जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकैः सती सूनोः अभिषेचनं चकार ॥४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— एक बार जब बालक के अपने आप करवट बदलने का उत्सव मनाया जा रहा था उसी दिन श्रीभगवान् का जन्म नक्षत्र भी था स्त्रियों का समूह एकत्रित था । बाजे बजाये जा रहे थे और स्त्रियाँ गीत गाती थीं, ब्राह्मण मन्त्रों को पढ़कर बालक को आशीर्वाद दे रहे थे उसी समय सती यशोदाजी ने अपने पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण का अभिषेक कराया ॥४॥

भावार्थ दीपिका

उत्थानं शिशोरङ्गपरिवर्तनं तत्र करणीये कौतुकाप्लवे उत्सवाभिषेके तथा तस्मिन्नेव दिने जन्मर्क्षस्यापि योगेऽतिमहोत्सवे समवेतयोषितां मिलितपुरन्ध्रीणां मध्ये वादित्रादिभिः शोभितमभिषेचनं सती यशोदा चकार ॥४॥

भाव प्रकाशिका

बालक के सर्वप्रथम अपने आप करवट बदलने को उत्थान कहते हैं । उस समय किए जाने वाले उत्सव और अभिषेक के अवसर पर तथा उसी दिन श्रीभगवान् का जन्म नक्षत्र भी था उस समय पर बाजे आदि से शुशोभित महोत्सव में एकत्रित वनिताओं के बीच में खड़ी होकर माता यशोदा ने अपने पुत्र का अभिषेक कराया ॥४॥

नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः ।
अन्नाद्यवासः स्रगभीष्टधेनुभिः संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥५॥

अन्वयः— नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं अन्नाद्यवासः स्रगभिष्टधेनुभिः सुपूजितैः विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं संजातनिद्राक्षम् शनैः अशीशयत् ॥५॥

अनुवाद— नन्दजी की पत्नी श्रीयशोदाजी बालक के स्नान इत्यादि कर लेने पर तथा अन्न, वस्त्र, माला तथा अभिष्ट गौ आदि के प्रदान द्वारा पूजित ब्राह्मणों द्वारा स्वस्ति वाचन कर लिए जाने पर देखीं की उनके पुत्र की आँखों में नींद आ रही हें, और उन्होंने धीरे से बालक को शय्या पर सुला दिया ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अन्नादिभिः सुपुजितैर्विप्रैः कृतमङ्गलम् । संजातनिद्रे अक्षिणी यस्य तमशीशयच्छायितवती, शकटस्याधस्तात्प्रेङ्खे ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अन्न इत्यादि के प्रदान से सुपूजित ब्राह्मणों द्वारा मङ्गल कर लिए जाने पर जिनकी आँखों में नींद आ गई थी उन बालक श्रीकृष्ण को गाड़ी के नीचे शय्या पर सुला दिया ।।५।।

औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी समागतान्पूजयती व्रजौकसः ।
नैवाशृणोद्वै रुदितं सुतस्य सा रुदन्स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ।।६।।

अन्वयः— औत्थानिकौत्सुक्यमना समागतान् व्रजौकसः पूजयती सा मनस्विनी सुतस्य रुदितं नैव अशृणोत् स्तनार्थी रुदन् चरणौ उदक्षिपत् ।।६।।

अनुवाद— औत्थानिक उत्सव में तन्मय मनस्विनी यशोदाजी उस उत्सव में आये हुए व्रजवासियों के सत्कार में व्यस्त होने के कारण सोने वाले अपने पुत्र के रुदन को नहीं सुनीं । स्तनपान करने के लिए रोने वाले श्रीभगवान् अपने दोनों पैरों को ऊपर उछालने लगे ।।६।।

भावार्थ दीपिका

उदक्षिपदूर्ध्वं चालितवान् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

ऊपर की ओर उछाले ।।६।।

अधः शयानस्य शिशेरनोऽल्पकं प्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत ।
विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ।।७।।

अन्वयः— अनोः अधः शयानस्य शिशोः अल्पकप्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत विध्वस्त नानारसकुप्यभाजनं विध्वस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ।।७।।

अनुवाद— गाड़ी के नीचे सोए हुए बालक के छोटे-छोटे पल्लव के समान लाल पावों के प्रहार से वह गाड़ी उलट गयी, उस पर रखे हुए दूध-दही आदि रसों के मटके और दूसरे पात्र गिरकर फूट गये । गाड़ी के पहिए और धूरे-टूट गये और उसका जूआ फट गया ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तदधः शयानस्य शिशोरल्पकश्चासौ प्रवालवन्मृदुश्च योऽङ्घ्रिस्तेन हतमनः शकटं व्यवर्तत विपरीतमपतत् । कथम् । विध्वस्तानि नानारसवन्ति कुप्यभाजनानि स्वर्णरजतातिरिक्तकांस्यादिमयानि यथा भवन्ति तथा । चक्रे च अक्षश्च चक्राक्षाः व्यत्यस्ताश्चक्राक्षा यस्मिन्, विभिन्नः कूबरो युगन्धरो यस्य तच्च-तच्च यथा भवति तथा व्यवर्ततेति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

उस गाड़ी के नीचे सोए हुए बालक के लाल पल्लवों के समान कोमल तथा छोटे पैरों से प्रहत गाड़ी उलट गयी । उस पर रखे हुए अनेक दूध-दधी के मटके और पात्र फूट गये । वे सुवर्ण रजत व्यतिरिक्त कांसे आदि के पात्र थे । उसका पहिया और धूरा टूट गया और जूआ फट गया ।।७।।

दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा व्रजस्त्रिय औत्थनिके कर्मणि याः समागताः ।
नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ।।८।।

अन्वयः— यशोदाप्रमुखाः औत्थानिके कर्मणि याः सगागताः व्रजस्त्रियः नन्दादयश्च दृष्टवा शकटं वै कथं स्वयं विपर्यगात् इत्यदभुतदर्शनाकुलाः अभूवन् ।।८।।

अनुवाद— यशोदाजी आदि उस औत्थानिक उत्सव में आयी हुई व्रज की स्त्रियाँ नन्दजी आदि गोपगण यह गाड़ी अपने आप कैसे उलट गयी इस अद्भुत घटना को देखकर घबरा गये ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अद्भुतदर्शनेनाकुला बभूवुः तदेवाह-कथमिति । विपर्यगाद्विपरीतमपतदिति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

सब लोग उस अद्भुत घटना को देखकर घबरा गये इस बात को **कथम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। विपर्यगात् अर्थात् उलट गया ॥८॥

(इति ब्रुवन्तोऽतिविवादमोहिता जनाः समन्तात्परिवव्रुरार्तवत्) ॥
ऊचुरव्यवसितमतीन्गोपान्गोपीश्च बालकाः । रुदतानेन पादेन क्षिप्तामेतन्न संशयः ॥९॥

अन्वयः— इति ब्रुवन्तः अतिविवादमोहिताः जनाः आर्तवत् समन्तात् परिवव्रुः, अव्यवसित मतीन् गोपान् गोपीः च बालकाः ऊचुः रूदता एतत् पादेन क्षिप्तम् संशयः न ॥९॥

अनुवाद— इस तरह से बोलते हुए लोगों ने अत्यन्त विवाद के कारण लोग घबराये हुए चारो ओर बातें कर रहे थे । जिनकी बुद्धि निश्चित नहीं कर पा रही थी उस समय बालकों ने कहा इसने रोते-रोते अपने पैर से इस गाड़ी को उलट दिया है । इसमें संशय नहीं है ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमित्युत । अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥१०॥

अन्वयः— ते गोपाः बालभाषितम् इति उत न श्रद्दधिरे ते तस्य बालकस्य अप्रमेयं बलं न विदुः ॥१०॥

अनुवाद— किन्तु गोपों ने बालकों की बात समझकर उस पर विश्वास नहीं किया क्योंकि वे सब उस बालक के निस्सीम बल को नहीं जानते थे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

न श्रद्दधिरे विश्वासं न जग्मुः, उत अपि बालस्यैतन्न संभवति एते च बालाः किं जानन्तीति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

गोपों ने यह सोचकर बालकों की बातों पर विश्वास नहीं किया बालक क्या जानते हैं, यह कर्म इस बालक का नहीं हो सकता है ॥१०॥

रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशङ्किता । कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥११॥

अन्वयः— ग्रहशङ्किता यशोदा रुदन्तं सुतमादाय विप्रैः सूक्तैः कृतस्वस्त्यनम् स्तनमपाययत् ॥११॥

अनुवाद— यशोदाजी ने समझा कि यह किसी ग्रह का उत्पात है । उन्होंने रोते हुए अपने पुत्र को उठा लिया, ब्राह्मणों से उसका स्वस्ति वाचन कराया और उसके पश्चात् वे अपने पुत्र को स्तन पान कराने लगीं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

रक्षोध्नैः सूक्तैः कृत्वा ॥११॥

भाव प्रकाशिका

रक्षोध्न सूक्तों से उस बालक श्रीकृष्ण का मङ्गल कराया ॥११॥

पूर्ववत्स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् । विप्रा हुत्वाऽर्चयांचक्रुर्दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ॥१२॥

अन्वयः— बलिभिः गोपैः सपरिच्छदम् पूर्ववत् स्थापितम् विप्रैः हुत्वा दध्यक्षत कुशाम्बुभिः अर्चयां चक्रुः ॥१२॥

अनुवाद— बलवान् गोपों ने सामग्रियों के साथ गाड़ी को पहले के ही समान सीधा कर दिया और ब्राह्मणों ने होम करके श्रीभगवान् की तथा गाड़ी की दहि, अक्षत तथा कुश के जल से पूजा की ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

भगवत्प्रभावानभिज्ञविप्रचेष्टितं विडम्बयन्नाह–पूर्ववदित्यादिना । बलिभिः शक्तैः । यद्वा अष्टदिक्षु बलिभिः सहितं सपरिकरं यथापूर्वं स्थापितं विप्रा दध्यादिभिरर्चयामासुः । हुत्वा ग्रहादिहोमं विधाय ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के प्रभाव को नहीं जानने वाले ब्राह्मणों के कर्मों का अनुकरण करते हुए उसको **पूर्ववत् इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहते हैं । **बलिभिः** अर्थात् बलवान अथवा आठों दिशाओं में स्थापित उपहारों के साथ समग्रियों के साथ पहले के ही समान स्थापित शकट की ब्राह्मणों ने दधि आदि से उसकी पूजा की तथा ग्रहों का होम किया॥१२॥

येऽसूयानृतदम्भेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः । न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥१३॥

अन्वयः— असूया अनृत दम्भेर्ष्याहिंसामान विवर्जिताः ये तेषाम् सत्यशीलानाम् आशिषः विफलाः न ॥१३॥

अनुवाद— जो किसी के गुणों में दोष नहीं निकालते हैं, झूठ नहीं बोलते, दम्भ, ईर्ष्या, तथा हिंसा नहीं करते एवं मान (अभिमान) से रहित होते हैं ऐसे ब्राह्मणों का आशीर्वचन कभी विफल नहीं होता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

असूया गुणे दोषाविष्करणम् । ईर्ष्या अक्षान्तिः । तेषामाशिषः कृतास्तैः प्रयुक्ताः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे के गुणों में दोष निकालने को असूया कहते है । ईर्ष्या अर्थात् नहीं सह सकना । ऐसे ब्राह्मणों के द्वारा दिया गया आशीर्वाद कभी व्यर्थ नहीं होता है ॥१३॥

इति बालकमादाय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः । जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥१४॥
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः । हुत्वा चाग्निं द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम्॥१५॥

अन्वयः— इति बालकम् आदाय समाहितः नन्दगोपः सामर्ग्यजुरुपाकृतैः जलैः पवित्रौषधिभिः द्विजोत्तमैः बालकम् अभिषिच्य स्वस्त्ययनं वाचयित्वा अग्निं च हुत्वा दिजातिभ्यः महागुणम् अन्नम् प्रादात् ॥१४-१५॥

अनुवाद— यह सोचकर नन्दजी ने बालक को अपनी गोद में उठा लिया और ब्राह्मणों से ऋग्, यजुः और सामवेद के मन्त्रों से संस्कृत जल और औषधियों से श्रीभगवान् का अभिषेक कराया तथा ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर ब्राह्मणों को उत्तम गुणों से युक्त अन्न का भोजन कराया ॥१४-१५॥

भावार्थ दीपिका

इत्येवमभिप्रेत्य सामर्ग्यजुर्भिरुपाकृतैः संस्कृतैः । पवित्रा ओषधयो येषु जलेषु तैः कृत्वा द्विजोत्तमैः कर्तृभिरभिषिच्याभिषेकं कारयित्वा । हुत्वा हावयित्वा ॥१४-१५॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से सोचकर नन्दजी ऋग्यजुः एवं सामवेदों के मन्त्रों से संस्कृत पवित्र ओषधियाँ जिसमें डाली गयी थीं उस जल से श्रीभगवान् का अभिषेक कराकर तथा होम कराकर ब्राह्मणों को उत्तमगुण युक्त अन्न का भोजन कराये ॥१४-१५॥

गाव: सर्वगुणोपेता वास: स्रग्रुक्ममालिनी: । आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात्ते चान्वयुञ्जत ॥१६॥

अन्वय:— आत्मजाभ्युदयार्थाय: वास: स्रग्रुक्ममालिनी: सर्वगुणोपेता: गाव प्रादात् ते च अन्वयुंजत ॥१६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् नन्दजी ने अपने पुत्र के अभ्युदय और अभिवृद्धि के लिए वस्त्र माला तथा सुवर्ण की माला से अलंकृत सभी गुणों से युक्त गायों का दान दिया और ब्राह्मणों ने बालक भगवान् श्रीकृष्ण को आशीर्वाद दिया ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

गावो गाश्च प्रादात् । अन्वयुञ्जत आशिषो युयुजु: ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

गायों का दान दिया और ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिया ॥१६॥

विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्या: प्रोक्तास्तथाशिष: । ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम्॥१७॥

अन्वय:— मन्त्रविद: युक्ता: विप्रा: तै: या आशिष: प्रोक्ता: कदाचिदपि विफला: न भविष्यन्तीति स्फुटम् ॥१७॥

अनुवाद— मन्त्रों के ज्ञाता और सदाचारी ब्राह्मणों द्वारा जो आशीर्वाद दिए जाते हैं वे कभी भी व्यर्थ नहीं होते हैं, यह स्पष्ट है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तास्तथैव वभूवुरित्यर्थ: ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

वे आशीर्वाद वैसा ही हुए ॥१७॥

एकदारोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती । गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥१८॥

अन्वय:— एकदा आरोहम् आरूढम् सुतं लालयन्ती सती गिरिकूटवत् शिशो: गरिमाणं बोढु न सेहे ॥१८॥

अनुवाद— एक बार यशोदा माता अपनी गोद में लेकर भगवान् श्रीकृष्ण को दुलार कर रही थीं । सहसा भगवान् श्रीकृष्ण पर्वत समूह के समान भारी हो गये । वे उनके भार को नहीं सह सकीं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

'उत्क्षिप्य मृदुपादेन शकटं व्योम्नि लीलया । तृणावर्तं पदापीड्य भुव्यपातयदर्भक:।' आरोहमुत्सङ्गम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

अपने कोमल पैरों से शकटासुर को आकाश में लीला पूर्वक फेंककर तथा तृणावर्त को अपने पैरों से दबाकर बालक श्रीकृष्ण ने उसे पृथिवी पर गिरा दिया । आरोहम् अर्थात् गोद में ॥१८॥

भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता । महापुरुषमादध्यौ जगतामास कर्मसु ॥१९॥

अन्वय:— विस्मिता भारपीडिता गोपी तं भूमौ निधाय महापुरुषम् आदध्यौ जगताम् कर्मसु आस ॥१९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के भार से पीडित श्रीयशोदाजी अत्यन्त आश्चर्यित थी, उन्होंने बालक श्रीकृष्ण को भूमि पर बैठा दिया । फिर उन्होंने महापुरुष परंब्रह्म परमात्मा का ध्यान किया और वे घर के कार्यों में लग गयीं॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तृणावर्तात्स्वमृत्युपरिहाराय कृष्णेनैवात्मन उत्सङ्गादुत्ताराय कृतं भारमजानत्युत्पातशङ्कया महापुरुषमादध्यौ। श्रीकृष्णोदरवर्तिनां जगतां भारेण पीडिता विस्मिता च सती । यद्वा जगतां मध्ये कर्मसु आस बभूव नतु जगदुदंर तं वेदेत्यर्थ: ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

तृणावर्त से अपने को मृत्यु से बचाने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण को अपने गोद से उतार देने के लिए भार बढ़ाये हैं, इस बात को नहीं जानने वाली यशोदाजी किसी उत्पात की शङ्का से परब्रह्म परमात्मा का ध्यान की। भगवान् श्रीकृष्ण के उदर में वर्तमान जगत् के भार से आश्चर्यित थीं यशोदाजी । अथवा संसारियों के बीच में कार्मों में लग गयीं । वे यह नहीं जानीं की श्रीभगवान् के उदर में ही जगत् है ॥१९॥

दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः । चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥२०॥

अन्वयः— कंसभृत्यः कंसेन प्रणोदितः नाम्ना तृणावर्तः दैत्यः चक्रवात एव रूपेण आसीनम् अर्भकम् जहार ॥२०॥

अनुवाद— कंस का भृत्य तथा कंस के द्वारा प्रेषित तृणावर्त नामक दैत्य चक्रवात का रूप धारण करके उस बैठे हुए बालक श्रीकृष्ण को उठा लिया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

गोकुलं सर्वमावृण्वन्मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः । ईरयन्सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः ॥२१॥

अन्वयः— सर्वं गोकुलं रेणुभिः आवृण्वन् चक्षूंषि मुष्णन् सुमाहाघोर शब्देन प्रदिशोदशः ईरयन् आसीदित्यर्थः॥२१॥

अनुवाद— उसने सम्पूर्ण गोकुल को धूल से भर दिया । किसी की भी आँखें कुछ भी नहीं देख पा रही थीं । उसने अपने भयङ्कर शब्द से दशों दिशाओं को ध्वनित कर दिया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

ईरयन्निनादयन्नित्यर्थः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

ईरयन् अर्थात् ध्वनित कर दिया ॥२१॥

मुहूर्तमभवद्गोष्ठं रजसा तमसा वृतम् । सुतं यशोदा नापश्यत्तस्मिन्न्यस्तवती यतः ॥२२॥

अन्वयः— गोष्ठम् मुहूर्तम् रजसा तमसा च आवृतम् अभवत् । यशोदा यतः सुतं न्यस्तवती तस्मिन् न अपश्यत्॥२२॥

अनुवाद— सारा गोकुल एक मुहूर्त के लिए धूल और अन्धकार से भर गया माता यशोदा जहाँ पर बालक को रखी थीं वहाँ पर बालक को नहीं देखीं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

यतो यत्र न्यस्तवती तस्मिन्स्थाने नापश्यत् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

जहाँ पर बालक को बैठायी थीं वहाँ पर उसे वे नहीं देखीं ॥२२॥

नापश्यत्कश्चनात्मानं परं चापि विमोहितः । तृणावर्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥२३॥

अन्वयः— तृणावर्त निसृष्टाभिः शर्कराभिः उपद्रुतः मोहितः कश्चित् आत्मानं परं चापि न अपश्यत् ॥२३॥

अनुवाद— तृणावर्त के द्वारा उड़ाई गयी बालू से उद्विग्न होने के कारण कोई भी न तो अपने को और न दूसरे को देख पा रहा था ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

इति खरपवनचक्रपांसुवर्षे सुतपदवीमबलाऽविलक्ष्य माता ।
अतिकरुणमनुस्मरन्त्यशोचद्भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ॥२४॥

अन्वयः— इति खरपवनचक्रपांसुवर्षे सुतपदवीम् अविलक्ष्य अबला माता अतिकरुणम् अनुस्मरन्ती मृतवत्सागौ यथा अशोचत् भुवि पतिता ॥२४॥

अनुवाद— इस तरह की आँधी और धूल की वर्षा में अपने पुत्र का पता न पाकर यशोदा माता को अत्यधिक शोक हुआ । वे अपने पुत्र को याद करके अत्यन्त दीन हो गयीं और बछड़े के मर जाने पर गौ की जो दशा होती है उसी तरह उनकी दशा हो गयी और पृथिवी पर गिर पड़ीं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

खरपवनचक्रात्पांसुवर्षे सति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

जोर की आँधी और धूल की वर्षा होने के कारण ॥२४॥

रुदितमनु निशम्य तत्र गोप्यो भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ।
रुरुदुरनुपलभ्य नन्दसूनुं पवन उपारतपांसुवर्षवेगे ॥२५॥

अन्वयः— उपरतपवनपांसुवर्षवेगे रुदितम् अनुनिशम्य तत्र गोप्यः भृशम् अनुतप्तधियः अश्रूपूर्णमुख्यः नन्दसुनूमनुपलभ्य, रुरुदुः ॥२५॥

अनुवाद— जब वायु का वेग समाप्त हो गया और धूल की वर्षा भी शान्त हो गयी तब माता यशोदा के रोने का शब्द सुनकर दूसरी गोपियाँ वहाँ आयी नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण को वहाँ नहीं देखकर उन सबों को भी हृदय में संताप हुआ । उनकी भी आँखों से आँसू प्रवाहित होने लगा और वे भी रोने लगीं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

उपारतः पांसुवर्षस्य वेगो यस्मिंस्तथाभूते पवने सति । तत्र तस्या रुदितमनु निशम्य गोप्यो रुरुदुः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

जव धूलि की वर्षा समाप्त हो गयी इस तरह की वायु के होने पर, यशोदा माता के रोने की आवाज को सुनकर गोपियाँ भी रोने लगीं ॥२५॥

तृणावर्तः शान्तरयो वात्यारूपधरो हरन् । कृष्णं नभोगतो गन्तुं नाशक्नोद्भूरिभारभृत् ॥२६॥

अन्वयः— वात्यारूपधरः तृणावर्तः कृष्णं हरन् नभोगतः भूरिभारभृत् शान्तरयः गन्तुं न अशक्नोत् ॥२६॥

अनुवाद— बवंडर का रूप धारण किए हुए तृणावर्त भगवान् कृष्ण को उठाकर आकाश में ले गया, किन्तु भगवान् के बहुत अधिक भार के कारण उसका वेग शान्त हो गया और वह अधिक चल न सका ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

वात्या चक्रवातस्तद्रूपधरः कृष्णं हरन् शान्तरयः कथंचिन्नभोगतस्ततः परं नाशक्नोदित्यर्थः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

बवंडर का रूप धारण करके भगवान् श्रीकृष्ण का हरण करने वाले तृणवर्त का वेग शान्त हो गया । वह श्रीकृष्ण को लेकर आकाश में गया किन्तु उसके बाद वह आगे नहीं जा सका ॥२६॥

तमश्मानं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया । गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥२७॥

अन्वयः— आत्मनो गुरुमत्तया तम् आश्मानं मन्यमानः गले गृहीतः अद्भुतार्भकम् उत्स्रष्टुं न अशक्नोत् ॥२७॥

अनुवाद— अपने से भी अधिक भारी होने के कारण तृणावर्त अब बालक श्रीकृष्ण को पर्वत के समान मानने लग गया था, श्रीभगवान् ने उसका गला पकड़ लिया था किन्तु वह उस अद्भुत बालक से अपनी गला नहीं छुड़ा सका ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

गुरुमत्तयाऽतिगौरवेण तं तथा अश्मानमश्मवन्तं पर्वतप्रायं मन्यमानस्तेनैवात्मनो गले गृहीतत्वात्तं त्यक्तुमिच्छन्नपि नाशक्नोदित्यर्थः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

अत्यधिक भारी होने के कारण तृणावर्त बालक भगवान् श्रीकृष्ण को पर्वत के समान मानने लगा, भगवान् ने उसका गला पकड़ लिया था और चाहकर भी वह उनसे अपना गला नहीं छुड़ा सका ॥२७॥

गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः । अव्यक्तरावो न्यपतत्सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥२८॥

अन्वयः— गलग्रहणनिश्चेष्टः निर्गतलोचनः, अव्यक्तरावः, व्यसुः सहबालः व्रजेन्यपतत् ॥२८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् तृणावर्त का गला पकड़ लिए थे अतएव उसकी सारी चेष्टाएँ समाप्त हो गयीं, उसकी आँखें बाहर निकल आयीं वह बोल भी नहीं पा रहा था, उसके प्राण निकल गये और बालक को लिए हुए वह व्रज में ही गिर पड़ा ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

तमन्तरिक्षात्पतितं शिलायां विशीर्णसर्वावयवं करालम् ।
पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं स्त्रियो रुदत्यो ददृशुः समेताः ॥२९॥

अन्वयः— समेताः रुदत्यः स्त्रियः अन्तरिक्षात् शिलायां पतितं, विशीर्ण सर्वावयवं करालं तं रुद्रशरेण विद्धं पुरं यथा ददृशुः ॥२९॥

अनुवाद— एकत्रित होकर रोती हुई स्त्रियों ने अन्तरिक्ष से शिला पर गिरने से जिसके सारे अङ्ग चूर-चूर हो गये थे ऐसे भयङ्कर दैत्य को उसी तरह देखा जिस तरह भगवान् शङ्कर के बाणों से आहत त्रिपुरासुर गिरकर चूर-चूर हो गया था ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

प्रादाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः कृष्णं च तस्योरसि लम्बमानम् ।
तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं विहायसा मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥
गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या लब्ध्वा पुनः प्रापुरतीव मोदम् ॥३०॥

अन्वयः— तस्योरसि लम्बमानं कृष्णं विस्मिताः प्रतिहृत्य मात्रे प्रादाय, पुरुषादनीतं विहायसा मृत्युमुखात् प्रमुक्तम् स्वस्तिमन्तं तं पुनः लब्ध्वा, गोप्यश्च नन्दमुख्याः, गोपाश्च अतीव मोदम् प्रापुः ॥३०॥

अनुवाद— तृणावर्त के वक्षस्थल पर लटके हुए भगवन् श्रीकृष्ण को देखकर उन्हें लाकर माता यशोदा को प्रदान किया, राक्षस के द्वारा आकाश में ले जाने पर भी मृत्यु के मुख से बचे हुए सकुशल बालक को प्राप्त करके यशोदाजी प्रभृति गोपियाँ और नन्दजी इत्यादि गोप अत्यधिक आनन्द का अनुभव किए ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तस्योरसि लम्बमानं कृष्णमादाय मात्रे प्रतिहृत्य समर्प्य विस्मिताश्च बभूवुरिति । विहायसा गगनमार्गेण पुरुषादेन नीतं तथापि मृत्युमुखात्प्रमुक्तं पुनर्लब्ध्वा मोदं प्रापुरिति ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

उस राक्षस के वक्षस्थल पर लटके हुए भगवान् श्रीकृष्ण को लाकर यशोदा माता को समर्पित करके गोपियाँ वहुत आश्चर्यित हुई । राक्षस श्रीभगवान् को आकाश में ले गया फिर भी बालक श्रीकृष्ण मृत्यु के मुख से बच कर पुनः प्राप्त हो गये । उनको प्राप्त कर सबों ने आनन्द का अनुभव किया ।।३०।।

अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात्पुनः ।
हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते ।।३१।।

अन्वयः— अहो वत अत्यद्भुतम् एषः वालः रक्षसा निवृतिं गमितः पुनः अभ्यगात् । खलः हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः साधुः समत्वेन भयात् विमुच्यते ।।३१।।

अनुवाद— वे आपस में कहने लगे यह वड़े ही आश्चर्य की बात है, इस बालक को राक्षस ने मृत्यु के मुख में डाल दिया था किन्तु यह सकुशल लौट आया । उस दुष्ट पापी को तो उसका पाप ही खा गया । सत्य है । साधु पुरुष अपनी समता बुद्धि से ही बच जाता है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

परस्परं हर्षकथामाहुः अहो वतेति । निवृत्तिं गमितो मृत्युं प्रापितः कोऽत्र विस्मयो युज्यत एवैतदिति तेष्वेव केचिदाहुः- हिंस्र इति ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

वे सभी हर्ष पूर्वक वातें करते थे निश्चित रूप से इसको मृत्यु के मुख में राक्षस ने डाल दिया था । इस कथन में कोई आश्चर्य की वात नहीं है । उन सबों में से कुछ लोगों ने हिंस्रः इत्यादि सूक्ति कहा ।।३१।।

किं नस्तपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं पूर्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम् ।
यत्संपरेतः पुनरेव बालको दिष्ट्या स्वबन्धून्प्रणयन्नुपस्थितः ।।३२।।

अन्वयः— किं नस्तपश्चिर्णम् अधोक्षजार्चनं, पूर्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम् यत् संपरेतः बालकः पुनरेव दिष्ट्या स्वबन्धून् प्रणयन् उपस्थितः ।।३२।।

अनुवाद— हम लोगों ने कौन सी तपस्या की थी ? भगवान् की अर्चना की थी ? या कूप बावली आदि का निर्माण कराया था ? या दान दिया था जीवों की भलाई की थी कि मृत्यु के मुख में गया हुआ भी बालक हमलोगों के सौभाग्यवशात् पुनः अपने वान्धवों को आनन्द प्रदान करने के लिए जीवित चला आया ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

नोऽस्माभिः चीर्णं कृतम् । पूर्तं वापीकूपादिनिर्माणम्, इष्टं पञ्चयज्ञाग्निहोत्रादि, दत्तं दानम्, यद्यस्मात्तपआदेः । प्रणयन्हर्षयन्।।३२।।

भाव प्रकाशिका

हमलोगों ने कौन सी तपस्या की थी, वावली कूप आदि के निर्माण को पूर्त कर्म कहते है । पञ्चयज्ञ तथा अग्निहोत्र आदि को इष्ट कहते हैं । दान को दत्त कहते हैं । जिस तप आदि के कारण प्रणयन् अर्थात् प्रहर्षित करने के लिए ।।३२।।

दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने । वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥३३॥

अन्वयः— बृहद्वने बहुशः अद्भुतं दृष्ट्वा विस्मितः नन्दगोपः वसुदेववचः मानयामास ॥३३॥

अनुवाद— जब नन्दजी ने उस विशाल वन में बार-बार अद्भुत घटनाएँ देखा तो उन्होंने वसुदेवजी की बात का समर्थन किया ॥३३॥

भावार्थ दीपिका-- - नहीं है ॥३३॥

एकदार्भकमादाय स्वाङ्कमारोप्य भामिनी । प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥३४॥

अन्वयः— एकदा भामिनी अर्भकम् आदाय स्वाङ्कमारोप्य स्नेह परिप्लुता प्रस्नुतं स्तनं पाययामास ॥३४॥

अनुवाद— एक दिन यशोदा माता बालक श्रीकृष्ण को अपनी गोद में लेकर स्नेह पूर्वक अपने आप प्रवाहित होने वाले स्तन को पिला रही थीं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

पीतप्रायस्य जननी सा तस्य रुचिरस्मितम् । मुखं लालयती राजन् जृम्भतो ददृशे इदम् ॥३५॥

अन्वयः— हे राजन् ! पीतप्रायस्य तस्य रुचिरस्मितम् मुखं लालयती सा जननी जृम्भतः इदं ददृशे ॥३५॥

अनुवाद— राजन् ! जब श्रीभगवान् प्रायः दुग्ध पी चुके थे उस समय मधुर मुस्कान से युक्त उनके मुख को वे चूम रही थीं । उस समय जम्भाई लेते हुए श्रीभगवान् के मुख में उन्होंने यह देखा ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

'तृणावर्तागमे दृष्टगौरवाशङ्किनी प्रसूम् । बोधयन् दर्शयामास जृम्भमाणो मुखे जगत्' पीतप्रायस्य पीतः प्रायः स्तनो येन तस्य ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

तृणावर्त के आने के समय अपने पुत्र के भारीपन को देखकर उसके विषय में शङ्का करने वाली माता को बोधित करते हुए श्रीभगवान् जम्भाई लेते समय अपने मुख में सम्पूर्ण जगत् को दिखलाये । **पीतप्रायस्य** अर्थात् जब भगवान् प्रायः स्तन पान कर चुके थे उनके ॥३५॥

खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च ।
द्वीपान्नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि ॥३६॥

अन्वयः— खं रोदसी ज्योतिः अनीकम्, आशाः सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधीन् च द्वीपान् नगान् तद्दुहितृ बनानि यानि स्थिर जङ्गमानिभूतानि ददृशे इति शेषः ॥३५॥

अनुवाद— यशोदाजी ने उनके मुख में आकाश, अन्तरिक्ष ज्योतिमण्डल, दिशाएँ, सूर्य चन्द्रमा अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियाँ वन, और समस्त चर एवं अचर प्राणियों को देखा ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

नगान्गिरीन् तद्दुहितॄर्नदीः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

नगान् अर्थात् पर्वतों और उनकी पुत्रियाँ नदियों को ॥३६॥

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन्संजातवेपथुः । संमील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत्सुविस्मिता ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे तृणावर्त मोक्षोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अन्वयः— हे राजन् ! सा मृगशावाक्षी सहसा विश्वं वीक्ष्य संजातवेपथुः नयने संमील्य सुविस्मिता आसीत् ॥३७॥

अनुवाद— राजन् मृगशावकनयनी यशोदाजी सहसा अपने पुत्र के मुँह में सारा विश्व देखकर काँपने लगीं। अत्यन्त विस्मित (आश्चर्यित) होकर उन्होंने अपनी आँखें मूँद लीं ॥३७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के तृणावर्तमोक्ष नामक सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के सातवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥७॥

आठवाँ अध्याय

श्रीभगवान् के नामकरण संस्कार और बाल लीला

श्रीशुक उवाच

गर्गः पुरोहितो राजन्यदूनां सुमहातपाः । व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥१॥

अन्वयः— राजन् ! यदूनां पुरोहितो सुमहातपाः गर्गः वसुदेवप्रचोदितः नन्दस्य व्रजम् जगाम ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् ! परीक्षित ! यदुवंशियों के पुरोहित महतपस्वी महर्षि गर्ग वसुदेवजी के द्वारा प्रेरित होकर नन्दजी के व्रज में गये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टमे नामकर्मास्य बालक्रीडाकुतूहले । मृद्भक्षणाभियोगे च विश्वरूपं निरूप्यते । विश्वरूपादि बालस्य निशम्याशङ्किनः पितुः । नामकृद्गर्गवाक्येन निजं तत्त्वमसूसुचत् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

आठवें अध्याय में श्रीभगवान् के नामकरण संस्कार, बालक्रीडा विषयक कौतूहल बालक द्वारा मृद्भक्षण तथा विश्वरूप दर्शन का वर्णन किया गया है । बालक के विश्वरूप को सुनकर शङ्कित रहने वाले पिता नन्दजी को नामकरण संस्कार करने वाले महर्षि गर्ग के वाक्यों द्वारा श्रीभगवान् ने अपने तत्त्व की सूचना दी ॥१॥

तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः । आनर्चाधोक्षजधिया प्रणिपातपुरः सरम् ॥२॥

अन्वयः— तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः अधोक्षजधिया प्रणिपात् पुरस्सरम् आनर्च ॥२॥

अनुवाद— महर्षि गर्ग को देखकर नन्दजी को बड़ी ही प्रसन्नता हुई, उनको देखकर वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये । उन्होंने महर्षि गर्ग की परमात्मा की दृष्टि से पूजा की ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम् । नन्दयित्वाऽब्रवीद्ब्रह्मन्पूर्णस्य करवाम किम् ॥३॥

अन्वयः— सूपविष्टम् सुनृतया गिरा कृतातिथ्यं मुनिम् नन्दयित्वा अब्रवीत् ब्रह्मन् पूर्णस्य किम् करवाम ॥३॥

अनुवाद— महर्षि के बैठ जाने पर नन्दजी ने उनका अतिथि सत्कार किया और अत्यन्त मधुर वाणी से उनका अभिनन्दन करके उन्होंने कहा भगवन् आप तो स्वयं पूर्णकाम हैं, मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ॥३॥

भावार्थ दीपिका-- नहीं है ॥३॥

महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम् । निःश्रेयसाय भगवन्कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥४॥

अन्वयः— हे भगवन् ! महद्विचलनं दीनचेतसाम् गृहिणां नृणां निःश्रेयसाय कल्पते अन्यथा क्वचित् ॥४॥

अनुवाद— हे भगवन् ! महापुरुषों का अपने आश्रम से अन्यत्र कहीं जाना अपने लिए नहीं होता है, अपितु दीनचित वाले गृहस्थों का परम कल्याण करने के लिए वे जाते हैं, इसके अतिरिक्त उनका दूसरा कोई भी प्रयोजन नहीं होता है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

पूर्णश्चेत्कथं धनिनां गृहमागतस्तत्राह-महद्विचलनमिति । महतां स्वाश्रमादन्यत्र विचलनं न स्वार्थं, किंतु गृहिणां मङ्गलाय। ननु तर्हि त एव महद्दर्शनार्थं किमिति-नागच्छन्ति तत्राह-दीनचेतसां कृपणानां क्षणमपि गृहं त्यक्तुमशक्नुवतामित्यर्थः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि पूर्ण ही होते हैं तो धनिकों के घर जाते ही क्यों है ? इस पर नन्दजी **महद्विचलनम् इत्यादि** श्लोक कहते है- महापुरुषों का अपने आश्रम से अन्यत्र किसी दूसरे के यहाँ जाना स्वार्थ नहीं होता है, अपितु वे उन गृहस्थों का परम कल्याण करने के लिए वे जाते हैं, जो गृह में अत्यन्त आसक्त होने के कारण दीन चित्त वाले होते हैं । जो आश्रमों तक जा नहीं पाते हैं, उन गृहस्थों का कल्याण करने के लिए जाते हैं ॥४॥

ज्योतिषामयनं साक्षाद्यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम् । प्रणीतं भवता येन पुमान्वेद परावरम् ॥५॥

अन्वयः— साक्षात् ज्योतिषाम् अयनं यत् ज्ञानमतीन्द्रियं तत येन भवताप्रणीतम् येन पुमान् परावरम् वेद ॥५॥

अनुवाद— आप साक्षात् ज्योतिषशास्त्र के आश्रय है जो अतीन्द्रिय ज्ञान, उस ज्ञान का आपने प्रणयन किया है । जिस ज्योतिष् शास्त्र के द्वारा मनुष्य परमात्मतत्त्व को जान सकता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

त्वया बालयोर्नामकरणादि करणीयमिति वक्तुं तस्य ज्ञानातिशयमाह-ज्योतिषामयनमिति । यदतीन्द्रियज्ञानसाधनं ज्योतिषामयनं तत्प्रतिपादकं ज्योतिः शास्त्रमित्यर्थः । तत्साक्षाद्भवता प्रणीतम् । येनान्योऽपि पुमान्परावरं परं कारणं पूर्वजन्मकृतं कर्म, अवरं कार्यं तस्मिन् जन्मनि भाविफलं तद्वेद । उक्तं च जातके- 'यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः प्राप्तिम् । व्यञ्जयति शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव ।' इति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

आप मेरे दोनों बच्चों का नामकरण कर दें इसी बात को कहने के लिए नन्दजी महर्षि के ज्ञानातिशय का ही वर्णन **ज्योतिषामयनम् इत्यादि** श्लोक से करते हैं । जो अतीन्द्रिय विषयों के ज्ञान का साधन है उस ज्योतिषशास्त्र का आपने प्रणयन किया है । उस ज्योतिष शास्त्र के द्वारा दूसरा भी पुरुष परं कारण तत्त्व को, अपने पूर्वजन्म के कर्मों को, अपने हीन कोटि के कर्मों को तथा उसके होने वाले फल को जान लेता है । जातक माला ग्रन्थ में कहा भी गया है **यदुप० इत्यादि** यह ज्योतिष शास्त्र पूर्व जन्म के बढ़े हुए पुण्य पाप रूपी कर्मों के फल की

प्राप्ति को उसी तरह प्रकाशित करता है जिस तरह अन्धकार में विद्यमान घट-पट आदि को दीपक प्रकाशित करने का काम करता है ॥५॥

त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान्कर्तुमर्हसि । बालयोरनयोर्नृणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ॥६॥

अन्वयः— ब्रह्मविदां श्रेष्ठः त्वं हि अनयोः बालयोः संस्कारान् कर्तुम् अर्हसि ब्राह्मणः जन्मना नृणां गुरुः ॥६॥

अनुवाद— आप ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं, अतएव इन दोनों बालकों का नामकरण संस्कार कर दें। ब्राह्मण तो जन्म से ही सभी मनुष्यों का गुरु होता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

विविक्षतमाह-त्वं हीति। दैवज्ञो मन्त्रविच्च त्वम्, अतो नामकरणादिसंस्कारान्कर्तुमर्हसीत्यर्थः। नन्वेतद्गुरुणा करणीयमिति चेत्तत्राह-नृणामिति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

त्वं इत्यादि श्लोक के द्वारा अपने विवक्षित अर्थ को नन्दजी ने कहा है। आप दैवज्ञ तथा मन्त्रज्ञ भी है। अतएव इन दोनों बालकों का आप नामकरण आदि संस्कारों को कर दें यदि कहें कि इसे तो गुरु को ही करना चाहिए, इस पर कहते हैं, ब्राह्मण तो जन्म से ही सभी मनुष्यों का गुरु होता है ॥६॥

गर्ग उवाच

यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वदा। सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥७॥

अन्वयः— अहं यदूनाम्आचार्यः सर्वदा भुवि ख्यातः च मया संस्कृतं ते सुतं देवकी सुतं मन्यते ॥७॥

गर्ग महर्षि ने कहा

अनुवाद— संसार में यह सदा से विख्यात है कि मैं यदुवंशियों का आचार्य हूँ। मेरे द्वारा तुम्हारे, पुत्रों का संस्कार किए जाने पर कंस मानेगा कि यह देवकी का पुत्र है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अत्युत्साहिनं नन्दं प्रति गुप्तमेतत्कार्यमित्यभिप्रायेण प्रत्याचक्षाण इवाह-यदूनामिति। भवतु तथापि त्वमत्रागत इति को विद्यादिति चेदत आह-ख्यातश्चेति। ततः किमत आह-सुतमिति। कंसो मन्यते मन्येत। कल्पयेदित्यर्थः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त उत्साहित नन्दजी के प्रति यह कार्य गुप्त रूप से करना चाहिए भी इसी अभिप्राय से नन्दजी की बातों का खण्डन करते हुए के समान गर्ग महर्षि ने कहा कि मैं यदुवंशियों का आचार्य हूँ। यदि आप कहें कि आप यहाँ आये हैं इस बात को कौन जानता है ? मै विख्यात महर्षि हूँ। यदि कहें कि तो इससे क्या हुआ तो गर्ग महर्षि ने कहा कि कंस मान लेगा कि यह देवकी का पुत्र हैं ॥७॥

कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः। देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥८॥
इति संचिन्तयन् श्रुत्वा देवक्या दारिकावचः। अपि हन्तागताशङ्कस्तर्हि तन्नोऽनयो भवेत् ॥९॥

अन्वयः— कंसः पापमतिः तव आनकदुन्दुभेः सख्यं जानाति। देवक्याः अष्टमः गर्भः स्त्री नहि भवितुम् अर्हति। इति संचिन्तयन् देवक्याः दारिकावचः श्रुत्वा हन्त आगत शङ्कः अपि तर्हि तत् नः अनयः भवेत् ॥८-९॥

अनुवाद— कंस पाप बुद्धि है, वह आपके और वसुदेवजी की मित्रता को भी जानता है, वह सोचेगा कि

देवकी का आठवाँ गर्भ स्त्री नहीं हो सकता है । देवकी की पुत्री की वाणी को सुनकर उसको यदि शङ्का हो गयी तो फिर हमलोगों के लिए अनर्थ हो सकता है ॥८-९॥

भावार्थ दीपिका

ननु यदुकुमार इति कथंचिज्जानातु । तत्र वसुदेवस्य सुतस्तत्रापि देवक्यां जात इति कुतो जानीयात्तत्राह-पापमतिरित्यादि। 'किं मया हतया मन्द' इत्यादि देवकीकन्यावचः श्रुत्वा' 'देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति' इति नित्यं संचिन्तयन्सामान्येन क्वचिदस्तीति ज्ञात्वा युवयोश्च संख्यं संचिन्तयंस्त्वदृगहे भवेदिति संभाव्य मत्संस्कारलिङ्गेन चागताशङ्कः आगता आशङ्काः यस्य सः अपि यदि हन्ता हनिष्यति तर्हि तत्तदा नो महाननयः स्यादिति ॥८-९॥

भाव प्रकाशिका

यदि किसी तरह इस बात का पता चल ही जाय कि यह यदुवंश का बालक है, किन्तु वह यह कैसे जानेगा कि यह देवकी के गर्भ से उत्पन्न वसुदेव का पुत्र है ? इस पर महर्षि गर्ग कहे कंस पाप बुद्धि वाला है । देवकी की पुत्री की अरे मूर्ख मुझे मारने से तुम्हें क्या मिलेगा तुमको मारने वाला कहीं उत्पन्न हो चुका है । इत्यादि वाणी को सुनकर वह सदा सोचता है कि देवकी का आठवाँ गर्भ स्त्री नहीं हो सकता है । सामान्य रूप से वह कहीं है, इस तरह से जानकर तथा आप दोनों (नन्दजी और वसुदेवजी) की मित्रता को सोचकर वह तुम्हारे घर में हो सकता है, इस तरह की सम्भावना करके, तथा मेरे द्वारा संस्कार किया जाना रूप लिङ्ग के द्वारा यदि उसकी शङ्का हो गयी तो वह इसे मार देगा । ऐसी स्थिति में हमलोगों का तो महान् अनर्थ हो जायेगा ॥८-९॥

नन्द उवाच

अलक्षितोऽस्मिन्रहसि मामकैरपि गोव्रजे । कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥१०॥

अन्वयः— मामकैः अपि अलक्षितः अस्मिन् रहसि गोव्रजे स्वस्तिवाचन पूर्वकं द्विजाति संस्कारं कुरु ॥१०॥

श्रीनन्दजी ने कहा

अनुवाद— मेरे भी सगे संबन्धियों से अज्ञात रहकर आप इस एकान्त में विद्यमान गोशाले में इन दोनों का स्वस्तिवाचन पूर्वक द्विजाति संस्कार कर दें ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

द्विजातिसंस्कारं द्विजातीनामवश्यं कर्तव्यं संस्कारमात्रं केवलं स्वतिवाचनपूर्वकं कुर्विति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

द्विजातियों के लिए किए जाने वाले आवश्यक संस्कार को केवल स्वस्तिवाचन पूर्वक कर दें ॥१०॥

श्रीशुक उवाच

एवं संप्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् । चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥११॥

अन्वयः— एवं संप्रार्थितः विप्रः स्वचिकीर्षितम् एव रहसि गूढः बालयोः नामकरणं चकार ॥११॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से प्रार्थना किए जाने पर महर्षि जिसको करना उनको भी अभिप्रेत था उस बालकों के नाम करण संस्कार को एकान्त में छिपकर ही संपन्न किए ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

गर्ग उवाच

अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन्सुहृदो गुणैः। आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद्बलं विदुः॥
यदूनामपृथग्भावात्सङ्कर्षणमुशन्त्युत ॥१२॥

अन्वयः— अयं हि रोहिणी पुत्रः गुणैः सुहृदः रमयन् राम इति आख्यास्यते, बलाधिक्यात् बलं विदुः, यदूनाम् अपृथग्भावात् सङ्कर्षणम् उशन्त्युत ।।१२।।

श्रीगर्ग महर्षि ने कहा

अनुवाद— यह जो रोहिणी का पुत्र है यह अपने गुणों के द्वारा अपने हितैषियों को आनन्दित करने के कारण राम कहलायेगा । सबों से अधिक बलवान् होने के कारण इसे लोग बलराम नाम से जानेंगे । यादवों और तुमलोगों में भेदभाव नहीं रखने के कारण यह फूट होने पर दोनों में मेल कराने वाला होने के कारण इसका नाम सङ्कर्षण भी होगा ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

यदूनामपृथग्भावात्कुश्चिद्धेतोर्विप्रतिपद्यमानानां यदूनामपृथग्भावात् । भावो भावनं तस्मात् अन्योन्यशिक्षया सर्वैकमत्य-करणादित्यर्थः । सम्यक्कर्षत्येकीकरोतीति सङ्कर्षणमप्युशन्ति मन्यन्ते, वक्ष्यन्तीत्यर्थः । गर्भसङ्कर्षणं तु न प्रकाशयति ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

यदुवंशियों के साथ भिन्नता का भाव नहीं रखने के कारण किसी तरह फूट पड़ जाने पर एक दूसरे को समझा बुझाकर एक करने का काम करने के कारण इसे लोग सङ्कर्षण के नाम से भी अभिहित करेंगे । गर्भ के सङ्कर्षण के कारण इसका नाम सङ्कर्षण होगा, इस बात को महर्षि ने प्रकाशित नहीं किया ।।१२।।

आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः । शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः।।१३।।
प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्ञातस्तवात्मजः । वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ।।१४।।

अन्वयः— अनुयुगं तनूः गृह्णतः अस्य शुक्लः रक्तः तथा पीतः त्रयः वर्णाः आसन् इदानीं कृष्णतां गतः अयं तवात्मजः क्वचित् वसुदेवस्य आत्मनः जातः इति अभिज्ञाः श्रीमान् वासुदेवः इति संप्रचक्षते ।।१३-१४।।

अनुवाद— प्रत्येक युग में शरीर धारण करने वाले इसके तीन वर्ण हुए श्वेत, लाल और पीत, इस समय यह कृष्ण वर्ण का है, अतएव इसका कृष्ण भी नाम होगा । तुम्हारा यह पुत्र कभी वसुदेव का भी पुत्र हुआ था। अतएव इस रहस्य को जानने वाले लोग इसे श्रीमन् वासुदेव भी कहेंगे ।।१३-१४।।

भावार्थ दीपिका

अस्य तव पुत्रस्य । अतः कृष्ण इत्येकं नाम भविष्यति । प्रागयमिति सामान्योक्तया ऋषिरयं जन्मान्तरगतं नाम कथयतीति नन्दो मन्यते स्म । अतएनं वासुदेव इति संप्रचक्षत इति ।।१३-१४।।

भाव प्रकाशिका

अस्य अर्थात् तुम्हारे इस पुत्र का । अतएव इसका एक नाम कृष्ण भी होगा । **प्रागयम्** इस तरह से सामान्य रूप से कहने के कारण नन्दजी समझे कि ये महर्षि इसके जन्मान्तर के नाम को बतला रहे है अतएव इसे लोग वासुदेव भी कहेंगे ।।१३-१४।।

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते । गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ।।१५।।

अन्वयः— ते सुतस्य बहूनि नामानि रूपाणि च सन्ति तानि अहं वेद, जनाः नु नो ।।१५।।

अनुवाद— तुम्हारे इस पुत्र के बहुत से नाम और रूप हैं। उन सबों को मैं जानता हूँ दूसरे लोग नहीं जानते हैं।।१५।।

भावार्थ दीपिका

गुणानुरूपाणि ईश्वरः सर्वज्ञ इत्यादीनि, कर्मानुरूपाणि गोपतिर्गोवर्धनोद्धरण इत्यादीनि तानि सर्वाण्यहमपि नो वेद, जना अपि नो विदुरिति ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

इसके गुणों के अनुसार ईश्वर, सर्वज्ञ इत्यादि नाम हैं, तथा कर्मो के अनुसार गोपति, गोवर्धनोद्धरण इत्यादि बहुत से नाम हैं, उन सभी नामों को मैं भी नहीं जानता हूँ, और दूसरे लोग भी नहीं जानते हैं ।।१५।।

एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः । अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ।।१६।।

अन्वयः— गोपगोकुलनन्दनः एषः वः आधास्यत् अनेन यूयम् सर्वाणि दुर्गाणि अञ्जः तरिस्यथ ।।१६।।

अनुवाद— गोपों और गोकुल को आनन्दित करने वाला यह आपलोगों का बहुत कल्याण करके इसके सहारे आपलोग सभी विपत्तियों को बड़ी आसानी से पार कर लेंगे ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

जातकफलमाह-एष इति आधास्यदाधास्यति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

जातक का फल बतलाते हुए महर्षि ने कहा कि यह आपलोगों का बहुत कल्याण करेगा ।।१६।।

पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः । अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः ।।१७।।

अन्वयः— हे व्रजपते पुरा अराजके दस्युपीड़िताः रक्ष्यमाणाः समेधिताः साधवः दस्यून् जिग्युः ।।१७।।

अनुवाद— हे व्रजपते नन्दजी ! पूर्व युग में एक बार पृथिवी का कोई राजा नहीं था, उस समय लुटेरों ने सज्जनों को पीड़ित किया । तो तुम्हारे इस पुत्र के द्वारा रक्षा किए जाने के कारण समृद्ध होकर सज्जनों ने उन दस्युओं (लुटेरों) पर विजय प्राप्त कर ली ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

अनेन रक्ष्यमाणाः समेधितश्च दस्यून्विजिग्युरिति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

इनके द्वारा संरक्षित किए जाने के कारण समृद्ध होकर लुटेरों पर विजय प्राप्त कर लिया ।।१७।।

य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः । नारयोऽभिभवन्त्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ।।१८।।

अन्वयः— ये महाभागाः मानवाः एतस्मिन् प्रीतिं कुर्वन्ति विष्णु पक्षान् असुरा इव एतान् अरयः न अभि भवन्ति।।१८।।

अनुवाद— जो महाभाग्यवान मनुष्य इससे प्रेम करेंगे, उन लोगों को शत्रु उसी तरह नहीं परास्त कर पायेंगे जिसतरह से भगवान् विष्णु के पक्ष वालों को असुर नहीं अभिभूत कर पाते हैं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१८।।

तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः । श्रिया कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः ।।१९।।

अन्वयः— तस्मात् नन्द अयं ते आत्मजः गुणैः श्रिया, कीर्त्या अनुभावेन नारायण समः समाहितः गोपायस्व ।।१९।।

अनुवाद— अतएव नन्द तुम्हारा यह पुत्र गुणों से, ऐश्वर्य से, यश से तथा प्रभाव से भगवान् नारायण के समान है । इसकी सावधानी पूर्वक रक्षा करो ।।१९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१९।।

इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते । नन्दः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम् ॥२०॥

अन्वयः— इति आत्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते प्रमुदितः नन्दः आत्मानं आशिषां पूर्णम् मेने ॥२०॥

अनुवाद— इसतरह सम्पूर्ण जगत् की आत्मा भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में बातों को बतलाकर जब महर्षि गर्ग अपने घर चले गये तब अत्यन्त प्रसन्न नन्दजी अपने को माने कि मेरी सारी कामनाएँ पूर्ण हो गयीं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

इति चात्मानं प्रति समादिश्य । आत्मानं कृष्णं वा । आशिषामाशीर्भिः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से आत्मा अथवा भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में आशीर्वादों से परिपूर्ण ॥२०॥

कालेन व्रजताल्पेन गोकुले रामकेशवौ । जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्तुः ॥२१॥

अन्वयः— अल्पेन कालेन व्रजता रामकेशवौ पाणिभ्यां सह जानुभ्यां गोकुले रिङ्गमाणौ विजह्तुः ॥२१॥

अनुवाद— थोड़े समय बीत जाने पर बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण दोनों घुटनों और हाथों के सहारे (बकैंया) चल चलकर गोकुल में खेलने लगे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

'बालक्रीडाचमत्कारैः कृष्णो रामेण संयुतः । परमानन्दमाधत्त व्रजं नन्दयशोदयोः ।' पूर्णत्वमेव दर्शयन्नाह-कालेनेति॥२१॥

भाव प्रकाशिका

बाल क्रीड़ा के चमत्कारों के द्वारा बलरामजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण व्रज में नन्दजी तथा यशोदा माता को परमानन्द प्रदान किए । **कालेन० इत्यादि** श्लोक के द्वारा नन्दजी के आनन्द की पूर्णता को बतलायी गयी है ॥२१॥

तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ।
तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः ॥२२॥

अन्वयः— अङ्घ्रियुग्मम् अनुकृष्य घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु सरीसृपन्तौ तन्नादहृष्टमनसौ तौ लोकम् अनुसृत्य मुग्धप्रभीतवत् मात्रोः अन्ति उपेयतुः ॥२२॥

अनुवाद— वे दोनों भाई गोकुल के कीचड़ में अपने पैरों को घसीटते हुए चलते थे । उस समय उनके पावों और कमर के घुंघुरु बजने लगते थे । वह शब्द बड़ा ही मनोहर लगता था । उन घुंघरुओं के शब्द को सुनकर वे स्वयं प्रसन्न, होते थे । रास्ते में वे किसी अज्ञात व्यक्ति के पीछे चल देते थे । और जब यह जान जाते कि यह कोई दूसरा है तो वे डरकर अपनी रोहिणी और यशोदा माताओं के पास आ जाते थे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अनुकृष्य पुनः पुनराकृष्य । सरीसृपन्तावतिशयेन चलन्तौ । कथम् घोषाः कटिपादभूषणकिङ्किण्यस्तेषां प्रघोषेण रुचिरं यथा तथा । तेषां घोषाणां नादेन हृष्टं मनो ययोस्तौ । लोकमितस्ततो गच्छन्तं जनमनुसृत्य । त्रिचतुराणि पदान्यनुगम्य मुग्धवत्प्रभीतवन्मात्रोरन्ति समीपे उपेयतुरुपजग्मतुः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अनुकृष्य अर्थात् बार-बार घसीटकर, सरीसृपन्तौ = अर्थात् अत्यधिक चलते थे । घोषा: = अर्थात् कमर तथा पैरों में बँधे घुंघरु की मनोहर ध्वनि । उन घुंघुरुओ की ध्वनि से उन लोगों का मन प्रसन्न हो जाता था । इधर-उधर जाने वाले लोगों का अनुसरण करके कुछ दूर जाकर डरे हुए के समान लौट आते थे और अपनी दोनों माताओं के पास चले जाते थे ॥२२॥

तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगुह्य दोर्भ्याम् ।
दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य मुग्धस्मिताल्पदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥२३॥

अन्वयः— तन्मातरौ निजसुतौ पङ्काङ्गरागरुचिरौ दोर्भ्यामुपगुह्य घृणया स्नुवन्त्यौ स्तनं दत्त्वा प्रपिवतोः मुग्धस्मिताल्पदशनं मुखं निरीक्ष्य प्रमोदम् ययतुः स्म ॥२३॥

अनुवाद— उन दोनों बालकों की माताएँ कीचड़ रूपी अङ्गराग से मनोहर बने अपने बच्चों को दोनों हाथों से पकड़कर अपनी छाती से लगा लेती थीं । स्नेह के कारण उनके स्तनों से दुग्ध की धारा प्रवाहित होने लगती थी । वे अपने बालकों के मुख में स्तन डाल देती थीं । स्तन पान करते समय जब वे बालक कभी मुस्कुरा देते तो उन दोनों के मुख में विद्यमान छोटे-छोटे दाँतों से युक्त मुख को देखकर अत्यधिक आनन्द का अनुभव करती थीं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तदा च तन्मातरौ निजसुतौ दोर्भ्यामुपगुह्य प्रमोदं ययतुः । कथंभूते । घृणया कृपया स्नुवन्त्यौ पयः पूर्णपयोधरे सत्यौ। पङ्केनाङ्गरागेण च रुचिरौ । कथंभूतं मुखं निरीक्ष्य । मुग्धं मन्दं स्मितं यस्मिन् अल्पा दशनाश्च यस्मिंस्तच्च तच्च ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

उस समय उन बालकों की माताएँ, अपने-अपने पुत्रों को दोनों हाथ से पकड़कर अपनी छाती से लगाकर प्रमोदातिशय का अनुभव करती थीं । कैसी माताएँ ? वात्सल्य के कारण जिन दोनों के स्तनों से दुग्ध प्रवाहित होने लगता था । कीचड़ रूप अङ्गराग से मनोहर बने । कैसे मुख को देखकर ? जिस पर मधुर मनोहर मुस्कान छिटक जाती और जिसमें छोंटे-छोटे दाँत रहते थे ॥२३॥

यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीलावन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः ।
वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः ॥२४॥

अन्वयः— यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीलौ अन्तर्व्रजे प्रगृहीत पूछैः वत्सैः इतस्ततः अनुकृष्यमाणौ उभौ तत् प्रेक्षन्त्यः उज्झितगृहाः अबलाः हसन्त्यः जहृषुः ॥२४॥

अनुवाद— जब स्त्रियों के लिए देखने योग्य लीला करने वाले दोनों बालक हो गये तो वे व्रज के भीतर ऐसी लीला करने लगे, वे बैठे हुए बछड़ों की जाकर पूँछ पकड़ लेते थे । उस समय बछड़े जब इधर-उधर भागने लगते थे तो वे और जोर से उन बछड़ों की पूँछ पकड़ लेते और बछड़े उन दोनों की पूँछ पकड़े हुए घसिटते जाते थे । इस तरह की उनकी लीलाओं को घर का काम छोड़कर गोपियाँ तो देखती ही रह जाती थीं हँसती हुई आनन्द का अनुभव करती थीं घर का काम पड़ा ही रह जाता था ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

यर्ह्यङ्गनानां दर्शनीया कुमारलीला ययोस्तथाभूतौ जातौ तदान्तर्व्रजे व्रजस्य मध्ये तदबला व्रजाङ्गनास्तौ प्रेक्षन्त्य प्रेक्षमाणा विस्मृतगृहकृत्या हसन्त्यो जहृपुर्हृष्टा बभूवुः । कथंभूतौ । ताभ्यां प्रगृहीतानि पुच्छानि येषां तैर्वत्सैरितस्ततोनुकृष्यमाणौ ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

जब स्त्रियों के देखने योग्य वे दोनों कुमार हो गये उस समय व्रज के भीतर लीला करने वाले उन दोनों को व्रज की गोपियाँ देखती हुई गृह के सारे कार्य को भूल जाती थीं और गृह कृत्यों को छोड़कर हँसती हुई आनन्दानुभव करती थीं । कैसे बालकों को ? जो बछड़ों की पूछ को पकड़ लेते थे, वे बछड़े इधर-उधर भागते रहते थे और उन सबों के साथ ही ये दोनों घसिटते जाते थे ॥२४॥

शृङ्ग्यग्निदंष्ट्र्यसिजलद्विजकण्टकेभ्यः क्रीडापरावतिचलो स्वसुतौ निषेद्धुम् ।
गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥२५॥

अन्वयः— यत्र क्रीडापरौ अतिचलौ स्वसुतौ शृङ्ग्यग्निदंष्ट्रच सिजलद्विजकण्टेकेभ्यः निषेद्धुम् तज्जनन्यौ गृह्याणि कर्तुम् अपि न शेकाते मनसो अनवस्थानम् अलम् आपतुः ॥२५॥

अनुवाद— क्रीडा करने में ही लगे रहने वाले अत्यन्त चञ्चल अपने दो पुत्रों को सीङ्ग वाले पशुओं, आग, दाँत वाले पशुओं के पास जाने तथा अचानक आँख बचाकर तलवार उठा लेने पर उनको रोकने के लिए अधिक व्यस्त रहने के कारण उनकी मातायें घर का काम भी नहीं कर पाती थीं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अतिचपलौ तौ शृङ्ग्यादिभ्यो निषेद्धु गृहोचितानि कर्माणि च कर्तुं यत्र यदा तज्जनन्यौ न शेकाते तदाऽलं मनसोऽनवस्थामापतुरिति गृहसौख्यस्य पराकाष्ठा दर्शिता ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त चञ्चल उन दोनों को सींग वाले पशुओं के पास जाने से रोकने के लिए अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण उनकी माताएँ जब घर का काम भी नहीं कर पाती तो उन दोनों माताओं का मन अत्यन्त चञ्चल हो जाता था । इस तरह यहाँ गृह के सुख की पराकाष्ठा दिखाई गयी हैं ॥२५॥

कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले । अधृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥२६॥

अन्वयः— राजर्षे ! अल्पेन कालेन रामकृष्णः च अधृष्टजानुभिः पद्धिः गोकुले अंजसा विचक्रमतुः ॥२६॥

अनुवाद— हे राजर्षि परीक्षित् कुछ ही दिनों में बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण अपने घुटनों का सहारा लिए बिना ही अनायास खड़ा होकर गोकुल में विचरण करने लगे ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

ततस्तु भगवान्कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः । सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन्मुदम् ॥२७॥

अन्वयः— ततः तु भगवान् कृष्णः वयस्यैः व्रज बालकैः सहरामः व्रजस्त्रीणां मुदम् जनयन् चिक्रीडे ॥२७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण अपनी ही उम्र के व्रज बालकों (ग्वाल बालों) बलरामजी के साथ व्रज की गोपियों को आनन्दित करते हुए क्रीडा करने लगे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् । शृण्वत्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः॥२८॥

अन्वयः— गोप्यः कृष्णस्य रुचिरं कौमारचापलम् वीक्ष्य समागताः किल तन्मातुः शृण्वत्याः इति होचुः ॥२८॥

अनुवाद— गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के मनोहर कुमारावस्था की चञ्चलता को देखकर एकत्रित होकर उनकी माता यशोदाजी से कहने लगीं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

वत्सान्मुञ्चनक्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः ।
मर्कान्भोक्ष्यन्विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान्॥२९॥

अन्वयः— क्वचित् असमये वत्सान् मुञ्चन् क्रोशसंजात हासः, कल्पितैः स्तेययोगैः स्तेयं अथ दधिपयः स्वादवन्ति मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति, सचेत् नात्ति भाण्डं भिनत्ति द्रव्यालाभे

अनुवाद— यशोदा माँ आपका यह कन्हैया बिना समय के ही बछड़ों को खोल देता है, डाँटने पर यह जोर-जोर से हँसने लगता है, यह चोरी करने के अनेक उपायों को जानता है चोरी से दही और दूध को खा लेता है । यह बन्दरों को भी दधी दूध बाँटकर खिला देता है । यदि वे नहीं खाते है तो यह हमारे मटके को फोड देता है । घर में यदि कोई वस्तु इसको नहीं मिलती है तो गृह स्वामी पर क्रोध करता है और छोटे बच्चों को रुलाकर भाग जाता है।।२९।।

भावार्थ दीपिका

'कृष्णचापलचौर्याणि सहैवाखिलसद्मतः । प्रजल्पन्त्यः समागत्य गोप्यो गोप्यै मुदं ददुः' असमयेऽदोहकाले । क्रोशे संजातहासः । स्तेयं चौर्यार्जितम् नतु दत्तम् । तत्रापि स्वादु नेतरत् । दधि च पयश्चात्ति । किंच भोक्ष्यन्मर्कान्मर्कटान्प्रति विभज्य ददाति । तेषां मध्ये तृप्तत्वेन कोपि नात्ति चेत्तर्हि भाण्डं भिनत्ति । क्वचिद्द्रव्यस्यालाभे सति सः गृहाय धक्ष्यामीति कुपितो याति। यद्वा सगृहा गृहिणस्तेभ्यः कुपितस्तेषां तोकान्पर्यङ्कादिषु सुप्तानुपक्रोश्य रोदयित्वा यातीति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

सभी घरों से एक साथ आकर बालक श्रीकृष्ण भगवान् की चपलता और चोरी कों यशोदा माता को बतलाती हुई गोपियों ने उन्हें प्रसन्नता प्रदान की । असमय दुहने का समय नहीं होने पर ही **क्रोशे संजात हासः** डाँटने पर ठठा कर हँसता है । यह चोरी करके, दी हुई नही, दही दूध को खाता है । उसमें भी स्वादिष्ट दही-दूध को खाता है । साथ ही स्वयं खाते समय बन्दरों को भी बाँटता रहता है । उन सबों में से कोई बन्दर तृप्त हो जाता है तो मटके को फोड़ देता है । घर में अभिप्रेत वस्तु को नहीं मिलने पर घर को जला दूँगा इस तरह कहकर चला जाता है । अथवा गृहिणियों पर क्रोध करके उन सबों के बच्चों को रुलाकर चला जाता है ।।२९।।

हस्ताग्राह्यो रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यैश्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित् ।
ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपं काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ।।३०।।

अन्वयः— हस्ताग्राह्ये पीठकोलूखलाद्यैः विधिं रचयति, अन्तर्निहित वयुनः शिक्भाण्डेषु तद्वित् छिद्रं रचयति, ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपं रचयति, यर्हि गोप्यः गृहकृत्येषु सुव्यग्रचिताः तदैव एतत् सर्वं करोति ।।३०।।

अनुवाद— जब हमलोग ऊँचे पर वस्तुओं को रख देती हैं तो यह पीढों तथा उखलों पर चढ़कर चुराने का काम करता है । इसके भीतर ऐसा ज्ञान है कि छीके पर रखे किस मटकें में क्या है ? इस बात को जान लेता है और उस मटके में छिद्र कर देता है । अन्धेरे में अपने धारण किए गये मणियों के प्रकाश के द्वारा अपने शरीर के प्रकाश को प्रदीप बनाकर सभी वस्तुओं को ढूँढ लेता है । यह इन सभी कामों को उस समय करता है जबकि गोपियाँ घर के कामों में व्यस्त रहती हैं ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

कल्पितैः स्तेययोगैरित्युक्तं तत्प्रपञ्चयति–हस्ताग्राह्य इति तुङ्गशिक्यस्थभाण्डेष्वन्तर्हिते दध्यादौ वयुनं ज्ञानं यस्ये स छिद्रं रचयति । तद्विच्छिद्ररचनादिवित् । ध्वान्तयुक्ते गृहे स्वाङ्गमेवार्थप्रदीपं रचयति । विशेषतो धृतमणिगणम् । यर्हि यस्मिन्काले।।३०।।

भाव प्रकाशिका

कल्पितैः स्तेय योगैः कहा जा चुका है, उसी का विस्तार इस श्लोक में किया गया है । ऊँचे छीके पर रखे गये दही के मटके के भीतर क्या रखा है ? इस बात को स्वयं हे जान जाता है । उन सबों को जानकर यह उन मटकों में छिद्र बना देता है । अन्धेरे घर में अपने अङ्गों को ही दीपक बना लेता है । अथवा तुमने जो इसे मणियाँ पहना दी है, उसी के प्रकाश में देख लेता है । जिस समय गोपियाँ गृह कार्यों में व्यस्त रहती हैं उसी समय यह इन सब कामों को करता है ।।३०।।

एवं धार्ष्ट्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ स्तेयोपायेर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथास्ते ।
इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिर्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी नह्युपालब्धुमैच्छत् ॥३१॥

अन्वयः— एवं धार्ष्टयानि, उशति कुरुते वास्तौ मेहनदीनि कुरुते, स्तेयोपाये विरचित कृतिः सुप्रतीकः यथा आस्ते इत्थं सभयनयनश्रीमुखा लोकिनीभिः स्त्रीभिः, व्यारव्यातार्था प्रहसितमुखी उपालब्धुम् न ऐच्छत् ॥३१॥

अनुवाद— तुम चोर हो इस तरह से कहने पर कहता है कि तुम चोर हो मैं घर का स्वामी हूँ इस तरह से कहता है । यही नहीं हमारे स्वच्छ घरों में मल-मूत्र त्याग कर देता है । अनेक प्रकार से चोरी के उपायों को करने वाला यह आपके सामने साधु के समान दिखाई देता है । इसतरह श्रीभगवान् के भयभीत मनोहर नेत्र और मुख को देखने वाली गोपियों द्वारा सारी बातों को बतलाये जाने पर हँसने वाली यशोदाजी श्रीभगवान् को डाँटना नहीं चाहीं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

रेरे चोरेत्याक्षिप्तः सन्नुशति जल्पति त्वमेव चोरोऽहं गृहस्वामीत्यादीनि धाष्टर्यानि प्रागल्भ्यानि । अथवा उशति हे कमनीये यशोदे । यद्वा उशति वास्तौ स्वर्चिते गृहे मेहनादीनि पुरीषोत्सर्गादीनि कुरुते । एवं स्तेयोपायैर्विरचिता कृतिः कर्म येन सः । त्वत्समीपे सुप्रतीकः साधुरिवास्ते । सभये नयने यस्मिंस्तवच तच्छ्रीयुक्तं मुखं च तदालोकिनीभिर्व्याख्यातार्था प्रख्यापितजन्मफला तत्तकर्मफला वा उपालब्धुमाक्षेप्तुं नैच्छत् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

गोपियाँ कहती हैं कि अरे चोर इस तरह से डाँटने पर यह कहता है कि तुम चोर हो मैं इस घर का स्वामी हूँ अथवा हे मनोहर यशोदे, अथवा हमलोगों के उशति अर्थात् मनोहर गृह में मलमूत्र त्याग कर देता है । इस तरह के चोरी के उपायों को करने वाले ये आपके पास तो बिल्कुल सज्जन के समान दिखते हैं । इस तरह से भयभीत नेत्रों से युक्त श्रीभगवान् के मुख को देखने वाली गोपियों के द्वारा सारी बातें कहीं जाने पर हँसने लगने वाली यशोदा माता श्रीभगवान् को डाँटना नहीं चाहीं ॥३१॥

एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्य गोपदारकाः । कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥३२॥

अन्वयः— एकदा क्रीडमानाः ते रामाद्याः दारकाः कृष्णः मृदं भक्षितवान् इति मात्रे न्यवेदयन् ॥३२॥

अनुवाद— एक दिन खेलते हुए बलरामजी आदि सभी बालकों ने माता यशोदाजी से कहा कि श्रीकृष्ण ने मिट्टी खाया है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

कदाचिदपराधान्तरे उपालभत तदा तु महदाश्चर्यमभूदिति कथयन्नाह-एकदेति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

एक बार श्रीभगवान् के दूसरे अपराध के विषय में बालकों ने उलाहना दी उस समय तो महान् आश्चर्य हुआ इसी बालक को **एकदा इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ॥३२॥

सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी । यशोदा भयसंभ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥३३॥

अन्वयः— हितैपिणी यशोदा सा कृष्णं करे गृहित्वा उपालभ्य भय संभ्रान्त प्रेक्षणाक्षमभाषत ॥३३॥

अनुवाद— श्रीभगवन् का कल्याण चाहने वाली यशोदा माता ने भगवान् श्रीकृष्ण के हाथ को पकड़ लिया उस समय डर के मारे भगवान् श्रीकृष्ण के नेत्र चञ्चल हो गये थे । माता ने डाँटकर कहा ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

उपालभ्य निर्भर्त्स्य । भयेन संभ्रान्तप्रेक्षणे चपलनिरीक्षणे अक्षिणी यस्य तम् ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

उपालभ्य अर्थात् डाँटकर । उस समय भगवान् के नेत्र भय के मारे अत्यन्त चञ्चल हो गये थे ।।३३।।

कस्मान्मृदमदान्तात्मन् भवान्भक्षितवान् रहः । वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ।।३४।।

अन्वयः— हे अदान्तात्मन् भवान् रहः कस्मात् मृदम् भक्षितवान् एतेहि तावका कुमाराः अयमृतव अग्रजः अपि वदति।।३४।।

अनुवाद— अरे नटखट तुम बहुत ही ढीठ हो गये हो तुमने अकेले में मिट्टी क्यों खायी ? ये तुम्हारे सभी साथी बच्चे कह रहे हैं और तुम्हारा यह बड़ा भाई भी कह रहा है ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

अदान्तात्मन् चपलगात्र । रहः एकान्ते ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

अदान्तात्मन् अर्थात् अरे चञ्चल, **रहः** अर्थात् एकान्त में ।।३४।।

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः । यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ।।३५।।

अन्वयः— हे अम्ब ! अहं न भक्षितवान्, यदि सत्यगिरः तर्हि मे मुखं समक्षं पश्य ।।३५।।

अनुवाद— मैंने मिट्टी नहीं खाया है । यदि ये सत्य बोलते हैं तो सबों के सामने मेरा मुख देख लो ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

नाहं भक्षितवानिति । नहि वाह्यं किंचिन्मया भक्ष्यते मत्कुक्षावादावेव सर्वमस्तीति भावः । समक्षं प्रत्यक्षम् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

नाहं भक्षितवान्० इत्यादि इस श्लोक से भगवान् ने बतलाया कि मैं किसी भी बाहर की वस्तु को नहीं खाता हूँ । पहले से ही ये सब मेरे पेट में हैं । **समक्षम्** अर्थात् प्रत्यक्ष ।।३५।।

यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान्हरिः । व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ।।३६।।

अन्वयः— यदि एवम् तर्हि व्यादेहि इत्युक्तः अव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः सभगवान् हरि व्यादत्त ।।३६।।

अनुवाद— यदि ऐसी बात है तो तुम अपना मुख खोलो । इस तरह से माता यशोदा के कहने पर अव्याहत ऐश्वर्य सम्पन्न सम्पूर्ण जगत् के नियामक तथा सर्वशक्तिमान, केवल लीला करने के लिए मनुष्य बालक बने हुए श्रीहरि ने अपना मुख खोल दिया ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

व्यादेहि मुखं प्रसारयेति । व्यादत्त प्रसारितवान् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

व्यादेहि अर्थात् मुख फैलाओ । **व्यादत्त** और श्रीभगवान् ने अपना मुख फैला दिया ।।३६।।

सा तत्र ददृशे विश्वं जगत्स्थास्नु च खं दिशः। साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ।।३७।।
ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान्वियदेव च। वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनो मात्रा गुणास्त्रयः।।३८।।

अन्वयः— सा तत्र जगत् स्थास्नु च खं दिशः साद्रिद्वीपाब्धि भूगोलं सवायवग्नीन्दुतारकम् ज्योतिश्चक्रम् जलं, तेजो, नभस्वान्, वियदेव च, वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनः मात्रा त्रयः गुणाः विश्वं ददृशे ।।३७-३८।।

अनुवाद— यशोदा माता ने श्रीभगवान् के मुख में चराचर जगत्, आकाश, दिशाएँ, पर्वत द्वीप तथा समुद्रों के साथ पृथिवी, वायु, विद्युत्, अग्नि, चन्द्रमा, तारे, ज्योतिश्चक्र, जल, तेज, वैकारिक, अहङ्कार के कार्य इन्द्रियाँ मन, पञ्च तन्मात्राएँ, तथा सत्त्वादिक तीनों गुण, इस तरह से सम्पूर्ण विश्व को देखा ।।३७-३८।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तस्मिन्मुखे विश्वं ददृशे ददर्श । तत्प्रपञ्चयति-जगज्जङ्गमम् । स्थास्नु स्थावरम् । खमन्तरिक्षलोकम् । साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं पर्वतद्वीपसमुद्रसहितं भूगोलं भूर्लोकम् । वायुः प्रवहः अग्निर्वैद्युतः, इन्दुश्च तारकाश्च तत्सहितम् । ज्योतिश्चक्रं स्वर्लोकम् । वैकारिकाणि देवाः । मन इति वैकारिकशब्देन गृहीतमपि देववैलक्षण्यात्पुनरुक्तम् । इन्द्रियाणि च तैजसानि । मात्रास्तामसाः शब्दादयः ।।३७-३८।।

भाव प्रकाशिका

उस मुख में माता यशोदा ने सम्पूर्ण विश्व को देखा । उसी का विस्तार करते हुए कहा गया है, स्थावर, जङ्गम, अन्तरिक्ष, पर्वतों द्वीपों के साथ भूगोल पृथ्वी को, वायु वैद्युताग्नि, चन्द्रमा, तारे, स्वर्गलोक, वैकारिक, इन्द्रियाधिष्ठातृ देवता, तैजस इन्द्रियाँ तमोगुण के कार्य पञ्चतन्मात्राएँ तथा शब्द आदि को देखा ।।३७-३८।।

एतद्विचित्रं सह जीवकालस्वभावकर्माशयलिङ्गभेदम् ।
सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये व्रजं सहात्मानमवाप शङ्काम् ।।३९।।

अन्वयः— जीव काल स्वभाव कर्माशय लिङ्ग भेदम् सह एतद्विचित्रं विदारितास्ये सूनो तनौ आत्मानं सह व्रजं वीक्ष्य शङ्काम् अवाप ।।३९।।

अनुवाद— जीव, काल, स्वभाव, कर्म, उनकी वासना और शरीर आदि के द्वारा विभिन्न रूपों में दिखने वाला यह सारा विचित्र संसार सम्पूर्ण व्रज अपने आपको भी यशोदाजी ने श्रीभगवान् के मुख में देखा । यह देखकर वे शङ्कित हो गयीं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

एवमेतद्विचित्रं विश्वं सहैकदैव वीक्ष्य विचित्रमाह-जीवश्च गुणक्षोभकः, कालश्च परिणामहेतुः स्वभावश्च जन्महेतुः, कर्म च तत्संस्कारः, आशयश्च, एतैर्लिङ्गानां चराचरशरीराणां भेदो यस्मिंस्तत् । तत्र व्रजं च सहात्मानं स्वसहितं क्वचिद्वीक्ष्य । सूनोस्तनावल्पे विदारिते आस्ये शङ्कामवाप ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से विचित्र जगत् को एक ही साथ देखकर उसकी विचित्रता को बतलाते हैं गुणों में क्षोभ उत्पन्न करने वाला जीव, सभी परिणामों का कारणभूत काल, जन्म का कारणभूत स्वभाव, कर्म ओर उसका संस्कार तथा आशय इन सबों के द्वारा लिङ्ग शरीर जिससे कि चराचर जीवों का भेद होता है तथा अपने सहित व्रज को देखकर। अपने पुत्र के छोटे से मुख में देखकर यशोदा माता शङ्कित हो गयीं ।।३९।।

किं स्वप्न एतदुत देवमाया किंवा मदीयो बत बुद्धिमोहः ।
अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ।।४०।।

अन्वयः— किं एतत् स्वप्नः उतदेव माया, किंवा मदीयः बुद्धिमोह बत, अथ अमुष्यैव मम अर्भकस्य यः कश्चन औत्पत्तिक आत्मयोगः ।।४०।।

अनुवाद— माता यशोदा सोचने लगीं क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ ? यह भगवान् की माया है क्या ? मेरी बुद्धि में कोई भ्रम तो नहीं उत्पन्न हो गया है ? यह भी संभव है कि इस मेरे बालक में ही कोई जन्मजात योग सिद्धि हो ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

तामेवाह-किं स्वप्न इति । परितो विलोक्याह-नायं स्वप्नः । तर्हि किं देवस्य हरेर्माया । तथा चेदन्ये किं न पश्यन्ति तर्हि, किंवा मदीय एव कश्चिबुद्धिमोहो विपर्यासो दर्पणे मुखवत् । एवं तर्ह्ययं कृष्णोऽपि कथमन्तः प्रतीयते । अन्तर्बहिश्चैकरूपेण च कथं जगत्प्रतीयते । तथा सति विम्बप्रतिबिम्बयोरिव परस्परं वैपरीत्येन प्रतीतिः स्यादित्याशङ्क्यान्यथा वितर्कयति-अथो इति। अथवा ममामुष्यार्भकस्यापि सतो यः कश्चानाचिन्त्य आत्मयोगः स्वीयमैश्वर्यम् । औत्पत्तिकः स्वाभाविकः ।।४०।।"

भाव प्रकाशिका

किं स्वप्न इत्यादि श्लोक के द्वारा यशोदाजी की शङ्का का ही वर्णन किया गया है । चारो तरफ देखकर यशोदाजी ने कहा यह स्वप्न नहीं है । तो फिर क्या है ? तो उन्होंने सोचा भगवान् की माया है । किन्तु यदि माया है तो दूसरे लोग इसे क्यों नहीं देखते हैं, यह सम्भव है कि यह मेरी बुद्धि का भ्रम है जैसे दर्पण में मुख दिखने लगता हे । यदि ऐसी बात है तो फिर यह कृष्ण भी उसके भीतर कैसे प्रतीत होता है ? भीतर बाहर समान रूप से जगत् कैसे प्रतीत होता है ? यदि ऐसी बात होती तो विम्ब एवं प्रतिब्रिम्ब के समान परस्पर में विपरीत प्रतीत होती । इस तरह से शङ्का करके दूसरे प्रकार के तर्क करती हैं । यह भी हो सकता है कि मेरे इस बालक का ही कोई जन्मजात स्वाभाविक अपना ऐश्वर्य हो ।।४०।।

अथो यथावन्न वितर्कगोचरं चेतोमनः कर्मवचोभिरञ्जसा ।
यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते सुदुर्विभाव्यं प्रणतास्मि तत्पदम् ।।४१।।

अन्वयः— अथो चेतोमनः कर्म, वचोभि; अंजसा यथावत् वितर्क गोचरं न, यदाश्रयं, येन यतः प्रतीयते, तत् सुदुर्विभाव्यं पदं प्रणता अस्मि ।।४१।।

अनुवाद— जो चित्त, मन, कर्म और वाणी के द्वारा ठीक-ठीक तथा सुगमता से अनुमान के विषय नहीं बनते हैं, यह सम्पूर्ण जगत् जिनके अधीन है, जो इसके प्रेरक हैं और जिसकी ही सत्ता से इसकी प्रतीति होती है, जिनका स्वरूप सर्वथा अचिन्त्य है उन प्रभु को मैं प्रणाम करती हूँ ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

चरमं पक्षमाश्रित्यायमीश्वर इति निश्चित्याह-अथो इति । चेतश्चित्तम् । चित्तादिभिर्न वितर्कगोचरम् । जगद्यदाश्रयं यदधिष्ठानम् । येन करणाधिष्ठात्रा । यतो बुद्धिवृत्त्यभिव्यक्तात् । नन्विदमवितर्क्यं भवतु, तत्पदं कीदृगत आह-सुदुर्विभाव्यमिति। इदमत्यन्तमचिन्त्यमित्यर्थः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

अन्तिम पक्ष को स्वीकार करके वे कहती है **अथो इत्यादि** । **चेतः** अर्थात् चित्त इत्यादि के द्वारा जिनको नहीं जाना जा सकता है । जो जगत् के अधिष्ठान हैं । जिनके द्वारा जगत् प्रेरित होता है । जिनके ही ज्ञान से यह जगत् प्रतीत होता है । वे कैसे हैं, इस पर कहती है, वे अचिन्त्य है । मैं उनको प्रणाम करती हूँ ।।४१।।

अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ।
गोप्यश्च गोपाः सहगोधनाश्च मे यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः ।।४२।।

अन्वयः— यन्मायया अहं, मम, असौ मम पतिः मे सुतः व्रजेश्वरस्याखिल वित्तया सती, सह गोधनाः गोप्यः च गोपाः मे इत्थं कुमतिः स मे गतिः ।।४२।।

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् की माया के कारण यह मैं हूँ, ये मेरे पति, यह मेरा पुत्र है मैं व्रजेश्वर की सम्पूर्ण सम्पत्ति की रक्षा करने वाली उनकी गृह स्वामिनी हूँ अपने गोधन के साथ सभी गोप और गोपी मेरे अधीन है इस प्रकार की कुमति मुझे घेरे है, वे ही मेरे एक मात्र रक्षक हैं ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

एवं प्रपञ्चप्रतीत्योन्नीतं तत्त्वं पुनर्जीवसंसृतिहेतुमायाश्रयत्वेनोन्नयन्त्याह-अहमिति । यशोदा नामाहमसौ मम पतिः । अमुष्य व्रजेश्वरस्याखिलवित्ताधिष्ठात्र्यहं सती जाया, एष कृष्णो मे सुतः, गोप्यादयश्च मदीयाः, इतीत्थं कुमतिर्यन्मायया स एष मे शरणमिति ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से प्रपञ्च की प्रतीति से ज्ञात होने वाले तत्त्व और जीव के संसरण का कारण माया के अधीन रूप से कल्पना करती हुई यशोदाजी **अहम् इत्यादि** श्लोक कहती हैं । मैं यशोदा नाम वाली हूँ मेरे पति व्रजेश्वर की सारी सम्पत्ति की स्वामिनी मैं उनकी पत्नी हूँ । ये कृष्ण मेरे पुत्र हैं । गोपियाँ आदि भी मेरी हैं इस प्रकार की मेरी कुमति जिनकी माया के द्वारा है, वे ही श्रीभगवान् मेरे शरण हैं ।।४२।।

इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः । वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ।।४३।।

अन्वयः— इत्थं विदित तत्त्वायं गोपिकायां सः विभुः ईश्वर पुत्र स्नेहमयीं वैष्णवीं मायां व्यतनोत् ।।४३।।

अनुवाद— इस प्रकार जब यशोदा माता श्रीकृष्ण तत्त्व को जान गयीं तो सर्व व्यापक सर्वशक्तिमान् श्रीभगवान् ने उनके हृदय में पुत्र स्नेहमयी वैष्णवी माया का संचार कर दिया ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

वैष्णवीं स्वीयाम् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

वैष्णवी अर्थात् अपनी ।।४३।।

सद्योनष्टस्मृतिर्गोपी सारोप्यारोहमात्मजम् । प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयासीद्यथा पुरा ।।४४।।

अन्वयः— सद्यः नष्टस्मृतिः सा गोपी आत्मजम् आरोहम् आरोप्य पुरा, यथा प्रवृद्धस्नेह कलिलासीत् ।।४४।।

अनुवाद— यशोदाजी शीघ्र ही उस घटना को भूल गयीं । वे अपने पुत्र को अपनी गोद में उठा लीं । पहले जैसे ही उनके हृदय में पुत्र स्नेह उमड़ने लगा ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

प्रवृद्धेन स्नेहेन कलिलं व्याप्तं हृदयं यस्याः सा पुरेवासीत् ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

बढ़े हुए स्नेह रूपी कीचड़ से उनका हृदय पहले के ही समान व्याप्त हो गया ।।४४।।

त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्वतैः । उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम् ।।४५।।

अन्वयः— त्रय्या च उपनिषद्भिः च सांख्य योगैः सात्त्वतैः च उपगीयमानमाहात्म्यम् हरिम् सा आत्मजम् अमन्यत्।।४५।।

अनुवाद— सम्पूर्ण वेद, उपनिषदें, सांख्य, योग तथा भक्तजन जिनकी महिमा का गान करते हैं, उन श्रीहरि को अपना पुत्र मानती थीं ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

मायाबलोद्रेकमाह-त्रय्येति । त्रय्या कर्मकाण्डरूपया इन्द्रादिरूपेण, उपनिषद्भिर्ब्रह्मेति, सांख्यैः पुरुष इति, योगैः परमात्ममतिः, सात्वतैर्भगवानित्युपगीयमानं माहात्म्यं यस्य तम् ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

माया के बल की उद्रिक्तता का वर्णन **त्रय्या० इत्यादि** श्लोक से किया गया है । सम्पूर्ण संहिता भाग इन्द्रादि रूप से सभी उपनिषद् ब्रह्म रूप से. सांख्य मतावलम्बी पुरुषरूप से. योगीजन परमात्मा रूप से और भक्त भगवान् रूप से जिनकी महिमा का गायन करते है. उन श्रीभगवान् को यशोदाजी पुत्र मानती थीं ॥४५॥

राजोवाच

नन्दः किमकरोद्ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम् । यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥४६॥

अन्वयः— ब्रह्मन् नन्दः महाभाग यशोदा च किम् महोदयम् श्रेयः अकरोत हरिः यस्याः स्तनं पपौ ॥४६॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् नन्दजी ने ऐसा कौन सा श्रेष्ठ साधना किया था तथा महाभाग्यवती यशोदाजी ने कौन सी तपस्या की थीं जिनके स्तन का पान श्रीहरि ने किया ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

अतिविस्मयेन पृच्छति-नन्द इति । महोदयं महानुदय उद्भवो यस्य तत् ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त आश्चर्य से राजा परीक्षित् **नन्दः इत्यादि** श्लोक से पूछते हैं । जिसकी उत्पत्ति महान् है ॥४६॥

पितरौ नान्वविन्देतां कृष्णोदारार्भकेहितम् । गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥४७॥

अन्वयः— कृष्णोदारार्भकेहितम् पितरौ न अन्वविन्देताम् यत् लोकशमलापहम् अद्यापि कवयः गायन्ति ॥४७॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण की औदार्यमयी बाल लीलाओं का उनके माता-पिता अनुभव नहीं कर पाये तथा श्रीभगवान् की संसार के पाप को विनष्ट करने वाली उन लीलाओं का गायन आज भी त्रिकालदर्शी ज्ञानीपुरुष करते हैं । श्रीभगवान् की उन लीलाओं का अनुभव जन्य आनन्द नन्द और यशोदाजी कर रहे है, उन लोगों का कौन सा पुण्य है ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

ययोः प्रसन्नोऽवतीर्णस्तौ पितरावपि यं नान्वविन्देतां न प्राप्नुताम् । कृष्णस्योदारं महदर्भकेहितं बाललीलाम् । यच्च कवयो गायन्ति तद्योऽविन्दत्स किं श्रेयोऽकरोदिति ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

जिन पर प्रसन्न होकर श्रीभगवान् अवतीर्ण हुए वे माता-पिता भी श्रीभगवान् की बाल लीला का अनुभव नहीं कर पाये तथा ज्ञानी जिन लीलाओं का गान करते हैं उन लीला जन्य आनन्द का अनुभव नन्दजी और यशोदा माता किस पुण्य के कारण करते हैं ॥४७॥

श्रीशुक उवाच

द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया । करिष्यमाण आदेशान्ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥४८॥

अन्वयः— वसूनां प्रवरः द्रोणः धरया भार्यया सह ब्रह्मणः आदेशान् करिष्यमाणः उवाच ॥४८॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— नन्दजी पूर्व जन्म में द्रोण नामक श्रेष्ठ वसु थे अपनी पत्नी धरा के साथ ब्रह्माजी के आदेशों का पालन करने की इच्छा से उनसे कहा ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मण आदेशान्गोपालनादिलक्षणान् ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

गोपालन आदि ब्रह्माजी के आदेश को ।।४८।।

जातयोर्नौ महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ । भक्तिः स्यात्परमा लोके ययाऽञ्जो दुर्गतिं तरेत् ।।४९।।

अन्वयः— नौ भुवि जातयोः महादेवे विश्वेश्वरे हरौ परमा भक्ति स्यात् लोके यम् अञ्जः दुर्गतिं तरेत् ।।४९।।

अनुवाद— भगवन् जब हम दोनों का भूलोक में जन्म हो तब परा देवता सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीहरि में हमदोनों की सर्वोत्कृष्ट भक्ति हो । जिस भक्ति के द्वारा लोग अनायास दुर्गति को पार कर जाते हैं ।।४९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४९।।

अस्त्वित्युक्तः स भगवान् व्रजे द्रोणो महायशाः । जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराऽभवत्।।५०।।

अन्वयः— अस्तु इति उक्तः स भगवान् महायशाः द्रोणः नन्द इति ख्यातो जज्ञे । सा धरा यशोदा अभवत् ।।५०।।

अनुवाद— ऐसा ही होगा इस तरह से ब्रह्माजी के कहने पर यशस्वी ऐश्वर्य सम्पन्न द्रोण ही नन्द के नाम से जन्म लिए और वह धरा भी यशोदा हुई ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

स एवेह द्रोणो जज्ञे । स च नन्द इति ख्यातः सा च धरा यशोदाऽभवत् ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

वे ही द्रोण संसार में जन्म लिए और नन्द के नाम से विख्यात हुए । और वह धरा यशोदा हुई ।।५०।।

ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने । दम्पत्योर्नितरामासीद्गोपगोपीषु भारत ।।५१।।

अन्वयः— हे भारत ततः भगवति जनार्दने पुत्रीभूते ततः गोपगोपीदम्पत्योः नितराम् भक्तिः आसीत् ।।५१।।

अनुवाद— हे परीक्षित् इसीलिए जब भगवान् जनार्दन उनके पुत्र हो गये । उन दोनों पति-पत्नी की भगवान् में सभी गोपों और गोपियों की अपेक्षा अधिक भक्ति थीं ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

गोपगोपीनामपि वस्तुस्वभावादस्त्येव भक्तिस्तयोः पुनर्नितरामिति ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

वस्तु के स्वभाव के ही कारण गोपों और गोपियों की अपेक्षा उन दोनों की श्रीभगवान् में अधिक भक्ति थी ।।५१।।

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः । सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ।।५२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे विश्वरूपदर्शनेऽष्टमोऽध्यायः ।।८।।

अन्वयः— ब्रह्मणः आदेशं सत्यं कर्तुं विभुः कृष्णः व्रजे वसन् तेषां प्रीतिं स्वलीलया चक्रे ।।५२।।

अनुवाद—ब्रह्माजी के वरदान को सत्य करने के ही लिए ही सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण व्रज में निवास करते हुए अपनी लीला के द्वारा उन सबों को आनन्द प्रदान किए ।।५२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के विश्वरूपदर्शन नामक आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

भावार्थ दीपिका

स्वलीलया पुत्रभावानुकारिण्या ।।५२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूवार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां अष्टमोऽध्यायः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

पुत्रभाव का अनुकरण करने वाली अपनी लीला के द्वारा ।।५२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के आठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।८।।

नवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण का ऊखल में बाँधा जाना

श्रीशुक उवाच

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगोहिनी । कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ॥१॥

अन्वयः— एकदाकर्मान्तर नियुक्तासु गृहदासीषु नन्दगोहिनी यशोदा दधि स्वयं निर्ममन्थ ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— एक बार नन्दजी की पत्नी यशोदाजी गृह की दासियों को दूसरे कर्मों में लगाकर स्वयं दधि मन्थन का काम कर रही थीं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

नवमें पयउत्सिक्ते गत्वा गोप्यथ तत्कृतम् । विलोक्य भाण्डभङ्गादि कृष्णं दाम्ना बबन्ध तम् । तनूदराश्रितं विश्वं दृष्ट्वा विस्मितचेतसः । बन्धनद्वयङ्गुलापूर्त्या पूर्णतामन्वदर्शयत् । स्वयं दधि निर्ममन्थ ॥१॥

भाव प्रकाशिका

नवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि दूध के उबलने लगने पर उसको संभालने के लिए यशोदा माता चली गयी और लौटकर उन्होंने देखा कि उनका दधिभाण्ड फूटा पड़ा है । माता यशोदा समझ गयीं की यह काम श्रीकृष्ण का ही है । उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण को रस्सी से बाँध दिया । पतली कमर के अन्दर ही विश्व को देखकर माता आश्चर्यित हो गयी । बन्ध की सारी रस्सी मिलकर भी दो अङ्गुल कम पड़ गयी । उसके पश्चात् उन्होंने रस्सी की पूर्णता प्रदर्शित की । यशोदाजी स्वयं ही दधि मन्थन करने लगी ॥१॥

यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च । दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत ॥२॥

अन्वयः— इह यानि यानि गीतानि तद्बाल चरितानि दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तानि अगायत ॥२॥

अनुवाद— यहाँ पर श्रीभगवन् के जिन-जिन बाल चरित्रों का वर्णन किया गया है, उन सबों को याद करके वे गा रही थीं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तदा चागायतेति चकारान्वयः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

चकार का अन्वय करके उस समय गाती थीं ऐसा कहना चाहिए ॥२॥

क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धं पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्पं च सुभ्रूः ।
रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डले च स्विन्नं वक्त्रं कबरविगलन्मालती निर्ममन्थ ॥३॥

अन्वयः— क्षौमं वासः पृथु कटितटे सूत्रनद्धं विभ्रती, पुत्रस्नेहस्नुत कुचयुगं जात कम्पं च सुभ्रूः रज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डलेच स्विन्नं वक्त्रं कमर विगलत् मालती निर्ममन्थ ॥३॥

अनुवाद— माता यशोदा रेशमी साड़ी पहनी थी । वे अपने स्थूल कमर में करधनी धारण की हुई थीं, पुत्र के प्रति स्नेह के कारण उनके स्तनों से दुग्ध प्रवाहित हो रहा था तथा सुन्दर भौहों वाली यशोदा माता के स्तन भी हिल रहे थे । रस्सी के खीचने से उत्पन्न श्रम के कारण हाथों के कङ्गन और कानों के दोनों कुण्डल भी हिल रहे थे। उनके मुख पर पसीने की बुन्दें छा गयी थीं तथा चोटी में गुंथी हुई मालती की माला गिर पड़ी थीं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

सूत्रनद्धं काञ्चीबद्धम्। रज्जोराकर्षेण श्रमो ययोस्तयोर्भुजयोश्चलन्तौ कङ्कणौ च। कबराद्विगलन्त्यो मालत्यो यस्याः सा॥३॥

भाव प्रकाशिका

सूत्रनद्धम् अर्थात् करधनी धारण की थी । रस्सी खींचने से उत्पन्न परिश्रम के कारण उनकी भुजाओं के कङ्गन हिल रहे थे, तथा उनकी चोटी में गुथी मालती की माला भूमि पर गिर पड़ी थी ॥३॥

तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः । गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत्प्रीतिमावहन् ॥४॥

अन्वयः— स्तन्यकामः तां आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः प्रीतिम् आवहन् दधिमन्थानं गृहित्वा न्यषेधत् ॥४॥

अनुवाद— उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण स्तनपान करने की इच्छा से अपनी माता के पास आये और उनके हृदय में और अधिक प्रेम का संचार करते हुए दही की मथानी को पकड़ लिए तथा उनको दधिमन्थन करने से रोक दिये ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥४॥

तमङ्कमारूढमपाययत्स्तनं स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम् ।
अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा ययावुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते ॥५॥

अन्वयः— अङ्कम् आरूढं तम् सस्मितंमुखम् ईक्षती स्नेहस्नुतं स्तनम् अपाययत् अधिश्रिते पयसि तु उत्सिच्यमाने अतृप्तं तं उत्सृज्यं जवेन ययौ ॥५॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण माता की गोद में चढ़ गये । वात्सल्य स्नेह के कारण माता के स्तनों से दुग्ध प्रवाहित हो रहा था और वे श्रीभगवान् के मन्द-मन्द मुस्कान से युक्त उनका मुख देखते हुए श्रीभगवान् को स्तन पान कराने लगीं । इतने में ही अंगीठी पर रखे हुए दूध में उफान आया और वे उसे संभालने के लिए श्रीभगवान् को अतृप्त ही छोड़कर शीघ्र ही चली गयीं ॥५॥

संजातकोपः स्फुरितारुणाधरं संदश्य दद्भिर्दधिमन्थभाजनम् ।
भित्त्वा मृषाश्रुर्दृषदश्मना रहो जघास हैयङ्गवमन्तरं गतः ॥६॥

अन्वयः संजात कोपः स्फुरितारुणाधरं दद्भिः संदश्य दधिमन्थ भाजनम दृषदश्मना भित्वा मृषाश्रुः रहः अन्तरं गतः हैयङ्गवम् जघास ॥६॥

अनुवाद माता के चले जाने से श्रीभगवान को बड़ा ही क्रोध हुआ उनके लाल-लाल ओष्ठ काँपने लगे, उन्होंने अपने दाँतों से ओष्ठ को चबा लिया, तथा लोढ़े से दधि मन्थन भण्ड को मारकर फोड़ दिया, झूठ-मूठ के आँख में आँसू भरकर वे भीतर एकान्त में जाकर मखन खाने लगे ॥६॥

भावार्थ दीपिका

हृषदश्मना शिलापुत्रेण । अन्तरं गृहमध्यं गतः । रह एकान्ते नवनीतमभक्षयत् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

हृषदश्मना अर्थात् लोढ़े से अन्तर गतः घर में गये हुए वे एकान्त में मगन खा रहे थे ॥६॥

उत्तार्य गोपी सुशृतं पयः पुनः प्रविश्य संदृश्य च दध्यमत्रकम् ।
भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म तज्जहास तं चापि न तत्र पश्यती ॥७॥

अन्वयः— गोपी सुशृतं पयः उतार्य पुनः प्रविश्य दध्यमत्रकं च संदृश्य भग्नं विलोक्य अपि चं तं तत्र न पश्यती तत् सुत स्यकर्म जहास ॥७॥

अनुवाद— यशोदा माता दूध को अच्छी तरह से गर्म करके अंगीठी पर से उतारकर वहाँ आयीं और दधि पात्र को फूटा हुआ देखकर और भगवान् श्रीकृष्ण को वहाँ नहीं देखकर वे हँसने लगी क्योंकि वे यह जान गयीं की यह काम उनके पुत्र ने किया है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

सुश्रितं सुतप्तम् । दधिमन्थनस्थानं प्रविश्य भिन्नं संदृश्य दृष्ट्वा ॥७॥

भाव प्रकाशिका

अच्छी तरह से गर्भ हुए दुध को अंगीठी पर से उतार कर दधि मंथन स्थान पर आकर उन्होंने देखा कि दधि पात्र फूटा पड़ा हुआ है ॥७॥

उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितं मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितम् ।
हैयङ्गवं चौर्यविशङ्कितेक्षणं निरीक्ष्य पश्चात्सुतमागमच्छनैः ॥८॥

अन्वयः— उलूखलाङ्घ्रे उपरिव्यवस्थितं शिचि स्थितम् हैयङ्गवं मर्काय कामं ददतं चौर्य विशङ्कितेक्षणं निरीक्ष्य सुतं पश्चात् शनैः अगमत् ॥८॥

अनुवाद— यशोदाजी ने देखा कि बालक श्रीकृष्ण उखल को उलटा करके उस पर खड़े हैं और छिंके पर टंगे हुए मक्खन को बन्दरों को बाँट रहे हैं । मेरी यह चोरी कोई जान ले इसलिए इधर-उधर देखते भी रहते हैं । माता यशोदा धीर-धीर भगवान् श्रीकृष्ण के पास पहुँच गयीं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

उलूखलाङ्घ्रेः परिवर्तितस्योलूखलस्योपरि । शिचि शिक्ये । चौर्येण विशङ्कितं चञ्चलमीक्षणं यस्य तं सुतम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

ऊखल को उलटा करके उस पर खड़े हुए **शिचि** अर्थात् छींके पर, **चौर्यविशङ्कितम्** अर्थात् अपनी चोरी के विषय में सावधान इधर-उधर देखते हुए ऐसे अपने पुत्र बालक श्रीकृष्ण के पास आयीं ॥८॥

तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वरस्ततोऽवरुह्यापससार भीतवत् ।
गोप्यन्वधावन्न यमाप योगिनां क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः ॥९॥

अन्वयः— आत्तयष्टिं ताम् प्रसमीक्ष्य सत्त्वरः तत अवरुह्य भीतवत् ततः अपससार यम् योगिनां तपसा ईरितं मनः प्रवेष्टुं न क्षमं गोपी तम् अन्वधावत् ॥९॥

अनुवाद— अपनी माता को हाथ में छड़ी ली हुई देखकर भगवान् शीघ्रता से ऊखल के ऊपर से उतर कर डरे हुए के समान वहाँ से भाग चले । तपस्या से शुद्ध बना हुआ भी योगियों का मन जिन भगवान् को अपना विषय नहीं बनाता है उन श्रीभगवान् के पीछे माता यशोदा दौड़ पड़ीं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तपसा ऐकाग्र्येणेरितं तदाकारतां नीतमत एवं क्षमं प्रवेष्टुं योगिना मनोऽपि यं नाप तम् । अथवा अन्वधावत्केवलं नत्वाप, यतो योगिनां मनोऽपि यं प्रवेष्टुं न क्षममिति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

ऐकाग्र्य के द्वारा तदाकाराकारित योगियों का मन भी जिन श्रीभगवान् को अपना विषय नहीं बना पाता है। अथवा यशोदाजी श्रीभगवान्के पीछे केवल दौड़ीं किन्तु वे उनको प्राप्त नहीं कर सकीं । क्योंकि योगियों का मन भी जिन श्रीभगवान् में प्रवेश नहीं कर पाता है ॥९॥

अन्वञ्चमाना जननी बृहच्चलच्छ्रोणीभराक्रान्तगतिः सुमध्यमा ।
जवेन विस्रंसितकेशबन्धनच्युतप्रसूनानुगतिः परामृशत् ॥१०॥

अन्वयः— सुमध्यमा, बृहच्चलच्छ्रोणीभराक्रान्तगतिः जवेन विस्रंसितकेशबन्धनच्युतप्रसूनानुगतिः जननी अन्वञ्चमाना परामृशत् ॥१०॥

अनुवाद— सौन्दर्य सम्पन्न तथा हिलते हुए विशाल नितम्बों के कारण जिनकी गति धीमी पड़ गयी थी तथा वेग के कारण जिनके शिथिल हुए केशबन्धों से पुष्प गिरते जा रहे थे इस प्रकार की माता यशोदा भगवान् श्रीकृष्ण के पीछे दौड़ती हुई किसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण को पकड़ लीं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अन्वञ्चमाना एवं कृष्णमनुगच्छन्ती । बृहत्योश्चलन्त्योः श्रोण्योर्भारेणाक्रान्ता स्तब्धा गतिर्यस्याः सा, विस्रंसितात्केशबन्धाच्चयुतैः प्रसूनै रनुगतिरनुगमनं यस्याः सा । यद्वा जवेन कम्पितात्केशबन्धात्पुरः पतितानि प्रसूनान्यनु पश्चाद्गतिर्यस्याः सा । परामृशद्धृतवती ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के पीछे दौड़ती हुई हिलते हुये विशाल नितम्बों के भार से जिनकी गति मन्द हो गयी थी तथा शिथिल केश पाश के गिरे हुए पुष्प जिनका मानो अनुसरण कर रहे थे इस प्रकार की माता यशोदा, अथवा वेग के कारण केश बन्ध से आगे गिरे हुए पुष्प पीछे जिनकी गति थी इस प्रकार की माता यशोदा ने भगवान श्रीकृष्ण को पकड़ लिया ॥१०॥

कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी कषन्तमञ्जन्मषिणी स्वपाणिना ।
उद्वीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं हस्ते गृहीत्वा भिषयन्त्यवागुरत् ॥११॥

अन्वयः कृतागसम् प्ररुदन्तम् अञ्जनमषिणी अक्षिणी स्वपाणिना कषन्तम् भयविह्वलेक्षणं उद्वीक्षमाणं तं हस्ते गृहित्वा भिषयन्ती अवागुरत् ॥११॥

अनुवाद अपराध करके के कारण, जोर-जोर से रोते हुए अञ्जन लगी हुई आँखों को अपने हाथों से मसलते हुए, भयभीत आखों से देखने वाले भगवान् श्रीकृष्ण का हाथ पकड़कर उन्हें डराती हुई माता यशोदा ने बालक श्रीकृष्ण को डाँटा ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अञ्जन्मषिणी, अञ्जन्ती सर्वतः प्रसरन्ती मषी ययोस्ते अक्षिणी स्वपाणिना कषन्तं संमर्दयन्तम् । भिषयन्ती ह्रसवश्छान्दसः। भीषयन्ती भयमुत्पादयन्ती । अवागुरदभर्त्सवत् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

जिनकी आँखों का अंजन मुख पर चारो ओर फैल रहा था ऐसी आँखों को अपने हाथों से मसलते हुए। **भिषयन्ती** में ह्रस्व छान्दस है । **भीषयन्ती** अर्थात् डराती हुई, **अवागुरत्** अर्थात् डाँटा धमकाया ॥११॥

त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला । इयेष किल तं बद्धुं दाम्नाऽतद्वीर्यकोविदा ॥१२॥

अन्वयः— सुतं भीतं विज्ञाय अर्भक वत्सला यष्टिं त्यक्त्वा अतद्वीर्य कोविदा तं दाम्ना बद्धुम् इयेष ॥१२॥

अनुवाद— अपने पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण को भयभीत जानकर अपने पुत्र के प्रति वात्सल्यातिरेक के कारण माता यशोदा ने छड़ी फेंक दी, श्रीभगवान् के प्रभाव को नहीं जानने के कारण वे उनको रस्सी से बाँध देना चाही ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

इयेष ऐच्छत् । अतद्वीर्यकोविदा तत्प्रभावानभिज्ञा ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

इयेष अर्थात् चाहा । श्रीभगवान् के प्रभाव को नहीं जानने वाली माता यशोदा ॥१२॥

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्। पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः॥१३॥
तं मत्वात्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम्। गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥१४॥

अन्वयः— यस्य न अन्तः न च बहिः न पूर्वं न च अपरम् यः जगतः पूर्वापरं बहिः चान्तः यः जगत् च तं अव्यक्तं मर्त्यलिङ्गम्, अधोक्षजम् आत्मजम् मत्त्वा गोपिका उलूखले प्राकृतं यथा दाम्ना बबन्ध ॥१३-१४॥

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् में न भीतर है बाहर है, न आदि है न अन्त है, जो जगत् के पहले भी थे और अन्त में भी रहेंगे, जो जगत् के भीतर भी हैं और बाहर भी हैं, स्वयं जो जगत् स्वरूप हैं, जो समस्त इन्द्रियों के अविषय भूत अतएव अव्यक्त हैं, मनुष्य शरीर धारण किए है ऐसे श्रीभगवान् को अपना पुत्र मानकर माता यशोदा ने, साधारण बालक के समान रस्सी से ऊखल में बाँध दिया ॥१३-१४॥

भावार्थ दीपिका

अकोविदत्वमाह-न चान्तरिति पञ्चभिः । बन्धनं हि बहिःपरिवृतेन दाम्ना अन्तरावृतस्य भवति । तथा च पूर्वापरविभागवतो वस्तुनः पूर्वतो दाम धृत्वा परितः परिवेष्टनेन भवति न त्वेतदस्तीत्याह-न चान्तरिति । किंच व्यापकेन व्याप्यस्य बन्धो भवति तच्च विपरीतमित्याह-पूर्वापरमिति । किंच तद्व्यतिरिक्तस्य चाभावान्न बन्ध इत्याह-जगच्च य इति । तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजमात्मजं मत्वा बबन्धेति ॥१३-१४॥

भाव प्रकाशिका

न चान्तः इत्यादि पञ्च श्लोकों के द्वारा यह बतलाया गया है कि माता यशोदा बालक श्रीकृष्ण के प्रभाव को नहीं जानती थीं। रस्सी से बाहर से लपेट कर किसी को बाँध देने को बन्धन कहते हैं। जिसका पूर्व और पर विभाग हो ऐसी वस्तु के पूर्व भाग में रस्सी रखकर उसके चारो ओर लपेट देने से बन्ध हो जाता है। किन्तु भगवान में पूर्व पर विभाग है ही नहीं। वे सर्वत्र व्यापक हैं। व्याप्य व्यापक से व्याप्त होता है। और वह तो विलक्षण है इस बात को पूर्वापरम् इत्यादि से कहा गया है। किञ्च परमात्म व्यतिरिक्त कुछ है नहीं अतएव उनका बन्धन नहीं हुआ। इस बात को **जगच्वसः** से कहा गया है। मानव शरीर धारण किए हुए श्रीभगवान् को अपना पुत्र मानकर यशोदा माता ने बाँध दिया ॥१३-१४॥

तद्दाम बध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः । द्व्यङ्गुलोनमभूत्तेन संदधेऽन्यच्च गोपिका ॥१५॥

अन्वयः— कृतागसः बध्यमानस्य स्वार्भकस्य तद्दाम द्व्यङ्गुलोनम् अभूत् तेन अन्यच्च गोपिका संदधे ॥१५॥

अनुवाद— अपराधी तथा बाँधे जाने वाले अपने पुत्र के लिए वह रस्सी दो अंगुल कम हो गयी और माता यशोदा ने दूसरी रस्सी उसमें जोड़ दी ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

द्व्यङ्गुलोनं द्वाभ्यामङ्गुलाभ्यामूनमपूर्णम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

दो अङ्गुल छोटी हो गयी रस्सी ॥१५॥

यदासीत्तदपि न्यूनं तेनान्यदपि संदधे । तदपि द्व्यङ्गुलं न्यूनं यद्यदादत्त बन्धनम् ॥१६॥
एवं स्वगेहदामानि यशोदा संदधत्यपि । गोपीनां सुस्मयन्तीनां स्मयन्ती विस्मिताभवत् ॥१७॥

अन्वयः— यदासीत् तदपि न्यूनं तेन अन्यदपि संदधे यद्-यद् बन्धनम् आदत्त तदपि द्व्यङ्गुलंन्यूनम् । एवं स्वगेह दामानि संदधती अपि यशोदा सुस्मयन्तीनां गोपीनां स्मयन्ती विस्मिता भवत् ॥१६-१७॥

अनुवाद— जोड़ने पर भी वह रस्सी छोटी पड़ गयी। उसके साथ दूसरी भी रस्सी जोड़ी गयी। इस तरह से यशोदा माता ने जितनी रस्सियाँ जोड़ी उसके बाद भी वह दो अङ्गुल कम पड़ गयीं। इस तरह से माता यशोदा ने घर की सारी रस्सियों का जोड़ा किन्तु दो अङ्गुल की कमी रह ही गयी। सभी गोपियों के बीच में स्वयं भी मुस्कुराती हुई यशोदा माता को अत्यन्त आश्चर्य हुआ ॥१६-१७॥

भावार्थ दीपिका

स्मितं कुर्वतीनां मध्ये स्वयमपि हसन्ती विस्मयमाप ॥१६-१७॥

भाव प्रकाशिका

मुस्कुराती हुई गोपियों के बीच में स्वयं भी हँसती हुई माता यशोदा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ ॥१६-१७॥

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः । दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयासीत्स्वबन्धने ॥१८॥

अन्वयः— विस्रस्तकबरस्रजः स्विन्नगात्रायाः स्वमातुः परिश्रमं दृष्ट्वा कृष्णः कृपया स्वबन्धने आसीत् ॥१८॥

अनुवाद— जिनकी चोटी में गूंथी हुई माला गिर गयी थी तथा शरीर पसीने से भर गया था ऐसी अपनी माता के परिश्रम को देखकर भगवान् कृष्ण कृपा पूर्वक बन्धन में पड़ गये ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

एवं संदर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भृत्यवश्यता । स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥१९॥

अन्वयः— हे अङ्ग यस्य इदं सेश्वरं वशे स्ववशेनापि कृष्णेन एवं हरिणा भृत्यवश्यता संदर्शिता ॥१९॥

अनुवाद— हे परीक्षित् जिन श्रीभगवान् के वश में इन्द्र, ब्रह्मा आदि लोकपालों के साथ यह सम्पूर्ण जगत् है वे श्रीभगवान् स्वतन्त्र है । उन स्वतन्त्र भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी भृत्य वश्यता का प्रदर्शन किया । अपनी माता के बन्धन में पड़कर भगवान् ने स्पष्ट कर दिया कि मैं अपने प्रेमी भक्तों के परतन्त्र हूँ ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

न चैवं स्वातन्त्र्यभङ्ग इत्याह-एवं संदर्शितेति । सेश्वरमिदं विश्वं यस्य वशे यदधीनमित्यर्थः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से श्रीभगवान् की स्वतंत्रता का भंग नहीं होता है इसी बात को **संदर्शिता० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । श्रीभगवान् के ही अधीन अपने लोकपालों के साथ यह जगत् हैं ॥१९॥

नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया । प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात् ॥२०॥

अन्वयः— इमं प्रसादं विरिञ्चो, भवः न अङ्गसंश्रया श्रीः अपि न लेभिरे यत् विमुक्तिदात् तत् गोपी प्राप ॥२०॥

अनुवाद— इस कृपा को न तो पुत्र होने पर भी ब्रह्माजी न प्राप्त किया और न आत्मा होने पर भी शङ्करजी ने प्राप्त किया और न तो श्रीभगवान् वक्षस्थल में निवास करने वाली श्रीलक्ष्मीजी ने प्राप्त किया जिस कृपा प्रसाद को माता यशोदाजी ने प्राप्त किया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

भगवत्प्रसादमन्येऽपि भक्ता लभन्ते, इदं त्वतिचित्रमिति सरोमाञ्चितमाह-नेममिति । विरिञ्चः पुत्रोऽपि भवः स्वात्माऽपि श्रीर्जायापि ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की कृपा को यद्यपि दूसरे भी भक्त प्राप्त करते हैं किन्तु जो कृपा श्रीभगवान ने यशोदाजी पर किया वह तो विचित्र ही है । इस बात को रोमाञ्चित होकर श्रीशुकदेवजी ने **एवम्० इत्यादि** श्लोक से कहा । पुत्र होकर ब्रह्माजी भी, आत्मा होकर भी शङ्करजी भी तथा पत्नी भी होकर लक्ष्मीजी ने भी नहीं प्राप्त की ॥२०॥

नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिकासुतः । ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥२१॥

अन्वयः— अयं गोपिकासुतः भगवान् देहिनां सुखायषो न यथा आत्मभूतानां भक्तिमतां इह ज्ञनिनाम् ॥२१॥

अनुवाद— ये यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्ण शरीरधारियों को उतना आसानी से प्राप्त होने वाले नहीं जितना आत्म स्वरूप भक्ति सम्पन्न ज्ञानी भक्तों को प्राप्त होते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

फलितमाह-नायमिति । देहिनां देहाभिमानिनां तापसादीनां ज्ञानिनां निवृत्ताभिमानानामपि ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

नायम् इत्यादि श्लोक से कहा गया है कि **देहिनाम्** अर्थात् देहाभिनियों और तपस्वी आदि ज्ञानियों जिनका देहाभिमान समाप्त हो गया है उनका भी ॥२१॥

कृष्णास्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः । अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ॥२२॥

अन्वयः— मातरि गृहकृत्येषु व्यग्रायां प्रभुः कृष्णस्तु पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ अनुजौ अद्राक्षीत् ॥२२॥

अनुवाद— माता यशोदाजी घर के काम काजों में व्यस्त हो गयीं उस समय भगवान् श्रीकृष्ण जो पहले यक्ष और कुबेर के पुत्र थे उन अर्जुन वृक्ष बने हुओं को मुक्ति प्रदान करना चाहे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

भक्तैर्बद्धस्याप्यन्यमोचकत्वमाह-कृष्णस्त्विति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

कृष्णस्तु० इत्यादि श्लोक के द्वारा भक्तों के द्वारा बद्ध किये गये दूसरों को मुक्त श्रीभगवान् बना देते हैं, इस बात को बतलाया गया है ॥२२॥

पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् । नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गोपीप्रसादो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

अन्वयः— पुरा नारदशापेन श्रियान्वितौ नलकूबरमणिग्रीवौ इति ख्यातो मदात् वृक्षतां प्राप्तौ ॥२३॥

अनुवाद— पूर्वकाल में नारदजी के शाप के कारण ऐश्वर्य सम्पन्न नलकूबर और मणिग्रीव के नाम से विख्यात कुबेर के पुत्र मदमत्त होने के कारण वृक्ष हो गये थे ॥२३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध पूर्वाध के गोपी प्रसाद नामक नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां नवमोऽध्यायः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इसतरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के नवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।९।।

* * *

दसवाँ अध्याय

यमलार्जुन का उद्धार

राजोवाच

कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् । यत्तद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥१॥

अन्वयः— हे भगवन् एतत् तपोः शापस्य कारणं कथ्यताम्, यत् तत् विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेः तमः ॥१॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् आप यह बतलाएँ कि नलकूबर और मणिग्रीव को नारदजी का शाप क्यों मिला। उन दोनों ने कौन सा ऐसा निन्दित कर्म किया था जिसके कारण नारदजी को क्रोध हो गया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

दशमेऽपातयद्रिङ्गन्नन्तरा यमलार्जुनौ । तत्रत्याभ्यां च देवाभ्यां कृष्णः स्तुत इतीर्यते । यद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेर्भागवतोत्तमस्यापि तमः क्रोधस्तदेतत्कथ्यतामिति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दसवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि घुटनों के बल चलते हुए भगवान् श्रीकृष्ण दोनों अर्जुन के वृक्षों के बीच में प्रवेश करके दोनों को गिरा दिए। उन वृक्षों में विद्यमान देवताओं के द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति की गयी। उन दोनों के जो निन्दित कर्म था उसको अथवा उस कर्म के कारण भागवत श्रेष्ठ नारदजी को भी क्रोध हो गया ॥१॥

श्रीशुक उवाच

रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ। कैलासोपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मदोत्कटौ ॥२॥
वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ। स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने ॥३॥

अन्वयः— सुदृप्तौ धनदात्मजौ रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णित लोचनौ मदोत्कटौ कैलासोपवनेरम्ये मन्दाकिन्यां पुष्पिते वने अनुगायद्भिः स्त्रीजनैः चेरतुः ॥२३॥

अनुवाद— अत्यधिक अभिमान से युक्त कुबेर के पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव भगवान् शंकरजी के अनुचर होकर वारुणी मदिरा पीकर कैलास पर्वत के उपवन में मन्दाकिनी के बीच विकसित कमलों के वन में मदोन्मत्त हो गये थे। नशे के कारण उनकी आँखे धूर्णित हो रही थीं। बहुत सी स्त्रियाँ उन दोनों के साथ गा रही थीं। इस तरह पुष्पों से पूर्ण उस कमल वन में वे विहार कर रहे थे ॥२-३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२-३॥

अन्तः प्रविश्य गङ्गायामम्भोजवनराजिनि। चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः ॥४॥

अन्वयः— गङ्गायाम् अन्तः प्रविश्य अम्भोजवनराजिनि युवतिभिः करेणुभिः गजौ इव चिक्रीडितुः ॥४॥

अनुवाद— गङ्गा के भीतर प्रवेश करके कमल वन पंक्ति में प्रवेश करके वे स्त्रियों के साथ उसी तरह क्रीडा कर रहे थे जिस तरह मादाहाथियों के साथ हाथी क्रीडा करते हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

गङ्गायामन्तर्मध्ये। कथंभूते। अम्भोजानां वनानि तेषां राजयस्ता विद्यन्ते यस्मिंस्तस्मिन् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

गङ्गा नदी के बीच में विद्यमान कमलवन पंक्ति में ॥४॥

यदृच्छया च देवर्षिर्भगवांस्तत्र कौरव। अपश्यन्नारदो देवौ क्षीबाणौ समबुध्यत ॥५॥

अन्वयः— हे कौरव ! यदृच्छया तत्र भगवान् देवर्षिः नारदः अपश्यत्, क्षीबाणौ देवौ समबुध्यत ॥५॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! संयोगवशात् वहाँ परम समर्थ देवर्षि नारदजी आये और उन दोनों को देखकर उन्होंने जान लिया कि ये मदमत्त है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अपश्यत् दृष्ट्वा च क्षीबाणौ मत्तौ समबुध्यत ॥५॥

भाव प्रकाशिका

देखा और देखकर जान गये कि ये दोनों नशे में चूर हैं ॥५॥

तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशङ्किताः । वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ ॥६॥

अन्वयः— तं दृष्ट्वा विवस्त्राः देव्यः व्रीडिताः शापशङ्कया शीघ्रं वासंसि पर्यधुः, विवस्त्रौ गुह्यकौ नैव ॥६॥

अनुवाद— देवर्षि नारदजी को देखकर निर्वस्त्र स्त्रियाँ लज्जित होकर शाप के भय से शीघ्र ही वस्त्र धारण कर लीं किन्तु वे दोनों यक्ष वस्त्र नहीं ही धारण किए ॥६॥

भावार्थ दीपिका

कुत इत्यत आह-तं दृष्ट्वेति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

नारदजी कैसे उन दोनों को मदमत्त जाने इस पर **तौ० दृष्ट्वा इत्यादि** श्लोक कहते हैं ॥६॥

तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदान्धौ सुरात्मजौ । तयोरनुग्रहार्थाय शापं दस्यन्निदं जगौ ॥७॥

अन्वयः— तौ श्रीमदान्धौ, सुरात्मजौ मदिरामत्तौ दृष्ट्वा तयोः अनुग्रहार्थाय शापं दास्यन् इदं जगौ ॥७॥

अनुवाद— उन दोनों को ऐश्वर्य मद से अन्धे बने हुए कुबेर के पुत्रों को मदिरा के नशे में धूत बने हुए देखकर उन दोनों पर कृपा करने के लिए शाप देते हुए उन्होंने कहा ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अनुग्रहार्थाय अनुग्रहश्च मदनाशोऽर्थश्च श्रीकृष्णदर्शनं तदर्थम् । इदं वक्ष्यमाणं नह्यन्य इत्यादि ॥७॥

भाव प्रकाशिका

कृपा करने के लिए मद का नाश तथा भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन इन दोनों कार्यों के लिए **नह्यन्यः इत्यादि** श्लोक से शाप उन्होंने दिया ॥७॥

नारद उवाच

नह्यन्यो जुषतो जोष्यान्बुद्धिभ्रंशो रजोगुणः । श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्रीद्यूतमासवः ॥८॥

अन्वयः— जोष्यान् जुषतः श्रीमदात् अन्यः रजोगुणः न यत्र अभिजात्यादिः स्त्रीद्यूतमासवः ॥८॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— अपने प्रिय विषयों का सेवन करने वालों का श्रीमद् (ऐश्वर्य के मद) से बढ़कर दूसरा कुलीनता आदि कामद रजोगुण नहीं होता है क्योंकि श्रीमद के साथ स्त्री, जूआ और मदिरा भी रहा करती है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

जोष्यान्प्रिया'न्विषयान् जुषतः सेवमानस्य पुंसः श्रीमदादन्य आभिजात्यादिः सत्कुलविद्यादिजनितो मदः । अन्यो वा रजोगुणो रजःकार्यहास्यहर्षादिरूपो नहि । तथा बुद्धिभ्रंशो बुद्धिं भ्रंशयतीति तथा किंतु श्रीमद एवेति । तदाह-यत्रेत्यादिचतुर्भिः। यत्र श्रीमदे॥८॥

भाव प्रकाशिका

अपने प्रिय विषयों का सेवन करने वाले पुरुषों का श्रीमद (सम्पत्ति के मद) से बढकर कुलीनता आदि का मद, अथवा दूसरा रजोगुण जन्य हर्ष आदि रूप मद नहीं होता है । श्रीमद ही सर्वाधिक बुद्धि का नाश करने वाला है। क्योंकि जहाँ मद होता है वह स्त्री, जूआ और मदिरा भी रहा करती है । ये चारो बुद्धि का नाश करने वाले हैं ॥८॥

हन्यन्ते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः । मन्यमानैरिमं देहमजरामृत्यु नश्वरम् ॥९॥

अन्वयः— इमं नश्वरम् देहम् अजरामृत्यु मन्यमानैः अजितात्मभिः निर्दयः यत्र पशवः हन्यन्ते ॥९॥

अनुवाद— इस श्रीमद् (ऐश्वर्यमद) से मोहित होकर ही लोग अपने इस नश्वर शरीर को जरा मृत्यु से रहित मानने लगते हैं । इस तरह के लोग अजितात्मा हैं । अर्थात् इन्द्रियों के ही वश में हो जाते हैं, और वे निर्दय लोग दूसरे पशुओं को मारने का काम करते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

इमं नश्वरं देहमजरामृत्यु अजरश्च अमृत्युश्च यथा तथा मन्यमानैः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इस नश्वर शरीर को जरा और मृत्यु से रहित मानने लगते हैं ॥९॥

देवसंज्ञितमप्यन्ते कृमिविड्भस्मसंज्ञितम् । भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥१०॥

अन्वयः— देवसंज्ञितमप्यन्ते कृमिविड्भस्म संज्ञितम् तत्कृते भूतध्रुक् यतो निरयः किं स्वार्थं वेद ?॥१०॥

अनुवाद— भूदेव, नरदेव आदि शब्दों से कहाजाने वाला शरीर भी अन्त में सड़कर कृमि बन जाता है, कुत्ते, पक्षी आदि द्वारा खाये जाकर विट् (मल) बन जाता है या जलकर राख की ढेर बन जाता है, उसी शरीर के लिए जीवों, से द्रोह करने वाले पुरुष को अन्त में नरक में जाना पड़ता है । वह अपने स्वार्थ को जानता है क्या ? नहीं जानता है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

नरदेवभूदेवसंज्ञितमपि श्वादिभिर्भक्षितं विट्संज्ञितं दग्धं भस्मसंज्ञितमन्यदा कृमिसंज्ञितम् । तत्कृते तदर्थं यो भूतध्रुक् भूतद्रोग्धा । यतो भूतद्रोहान्निरयो भवति स किं स्वार्थं वेद । नैव वेदेत्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

नरदेव (राजा) भूदेव (ब्राह्मण) आदि शब्दों से कहा जाने वाला इस शरीर को मृत्यु के पश्चात् कुत्ते आदि खाकर या तो विट् कर देते हैं या जला दिए जाने पर भस्म (राख) की ढेर के रूप में परिणत हो जाता है । इसी शरीर के लिए जीवों से द्रोह करने वाला नरक में जाता है । अतएव वह पुरुष अपने वास्तविक स्वार्थ को जानता है क्या ? नहीं जानता है ॥१०॥

देहः किमन्नदातुः स्वं निषेक्तुर्मातुरेव च । मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा ॥११॥

अन्वयः— देहः अन्नदातुः किम्, स्वनिषेक्तुकिम् मातुरेववा ? मातु पितुः वा ? बलिनः वा, क्रेतुः वा, अग्नेः वाः शुनः अपि वा ?॥११॥

अनुवाद— प्रश्न है कि यह शरीर किसका है, यह अन्न देकर इसका जो पालन करता है उसका है क्या? अथवा गर्भाधान करने वाले पिता का है ? या इस शरीर को अपन पेट में नव महीने रखने वाली माता का है? या माता को भी उत्पन्न करने वाले नाना का है ? अथवा जो बलपूर्वक इससे अनेक प्रकार का काम करवा लेता है उसका है ? या जो इसको खरीद लेता है उसका है ? या जो इस शरीर को जलाकर भस्म बना देगी उस अग्नि का है ? अथवा इसको खा जाने के लिए घात लगाकर बैठै हुए कुत्तों और सियारों का है ?॥११॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं देहेऽहंभावोपि न घटत इत्याह-देह इति । निषेक्तुः पितुः । मातुःपितुर्वा मातामहस्य पुत्रिकाकरणे ॥११॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में यह बतलाया जा रहा है कि इस देह में अहं भाव भी करना उचित नहीं है । निषेक्तुः अर्थात् पिता का । अथवा नाना का है जिन्होंने अपनी पुत्री के रूप में माता के शरीर को उत्पन्न किया है ॥११॥

एवं साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् । को विद्वानात्मसात्कृत्वा हन्ति जन्तूनृतेऽसत ॥१२॥

अन्वयः— एवं साधारणं देहम् अव्यक्तप्रभवाप्ययम् असतः जन्तून् ऋते कः विद्वान् आत्मसात् कृत्वा हन्ति ॥१२॥

अनुवाद— इस तरह यह शरीर एक साधारण वस्तु है, यह प्रकृति से ही उत्पन्न अन्त में उसी में लीन हो जाता है । ऐसी स्थिति में मूर्ख पशुओं को छोड़कर कौन ज्ञानी पुरुष होगा जो इस शरीर के लिए दूसरे प्राणियों को मारेगा ?॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अव्यक्तप्रभवाप्ययमव्यक्तात्प्रभवस्तस्मिन्नेवाप्ययो यस्य तमात्मसात्कृत्वा आत्मेति मत्वा । असतो मूढादृते ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अव्यक्त प्रभवाप्ययम् प्रकृति से ही उत्पन्न होकर प्रकृति में ही लीन हो जाने वाले शरीर को ही आत्मा मानकर **असतः** मूर्ख से भिन्न ॥१२॥

असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमञ्जनम् । आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥१३॥

अन्वयः— असतः श्रीमदान्धस्य परमञ्जनम् दारिद्र्यम्, दरिद्रः भूतानि आत्मौपम्येन परमीक्षते ॥१३॥

अनुवाद— जो दुष्ट श्रीमद से अन्धा बना रहता है उसके लिए दरिद्रता सबसे श्रेष्ठ अञ्जन है । दरिद्र सभी जीवों को अपने ही समान देखता है, अतएव वह किसी भी जीव को कष्ट नहीं देता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

एवं श्रीमदविचेष्टितमुक्त्वा तत्प्रतीकारं निश्चिनोति-असत इति । परं श्रेष्ठं, दारिद्र्यमेव केवलमिति वा । कुत इत्यत आह-आत्मौपम्येनेति । ततो न द्रुह्यतीति भावः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीमद् से मूर्ख की चेष्टाओं को बतलाकर उस मद को दूर करने के उपायों को **असतः इत्यादि** श्लोक से निश्चित करते हैं । परम् अर्थात् श्रेष्ठ । अथवा केवल दरिद्रता ही, क्योंकि दरिद्र सबों को अपने समान समझ कर किसी से द्रोह नहीं करता है ॥१३॥

यथा कण्टकविद्धाङ्गो जन्तोर्नेच्छति तां व्यथाम् । जीवसाम्यं गतो लिङ्गैर्न तथाऽविद्धकण्टकः ॥१४॥

अन्वयः— यथा कण्टकविद्धाङ्गः जीव साम्यं गतो लिङ्गं जन्तोः ता व्यथाम् नेच्छति अविद्ध कण्टकः तथा न ॥१४॥

अनुवाद— जिसके पैर में काँटा गड़ गया है वह सभी जीवों को एक समान समझकर चाहता है कि किसी को काण्टे गड़ने का कष्ट न हो, किन्तु जिसको काण्टागड़ा ही नहीं वह वैसा नहीं चाहता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

सदृष्टान्तमाह-यथेति । मुखम्लान्यादिलिङ्गैः सर्वेषां जीवानां सुखदुःखे समे इति ज्ञानज्ञवानित्यर्थः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त कथन में दृष्टान्त के उपन्यस्त **यथा० इत्यादि** श्लोक से करते हैं । मुख की म्लानता आदि चिह्नों से सभी जीवों को सुख और दुःख एक समान होते हैं, इस बात का ज्ञान वाला ॥१४॥

दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह । कृच्छ्रं यदृच्छयाप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ॥१५॥

अन्वयः— दरिद्रः निरहंस्तम्भः इह सर्वमदैः मुक्तः यदृच्छया कृच्छ्रं आप्नोति तत् हि तस्य परं तपः ॥१५॥

अनुवाद— दरिद्र अहंकार और हठ से रहित होता । वह इस संसार में सभी प्रकार के मदो से रहित होता है । वह भाग्यवशात् कष्ट को भोगता । उसका यह कष्ट भोगना ही उसकी तपस्या है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

किंच दारिद्रं मोक्षमपि साधयतीत्याह-दरिद्र इति श्लोकचतुष्टयेन । निरहंस्तम्भो निर्गतोऽहंकाररूपः स्तम्भो यस्मात्सः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

दरिद्रता के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है, इस बात को दरिद्र इत्यादि चार श्लोकों से कहते हैं । दरिद्र के भीतर से अहंकार रूपी दुराग्रह निकल जाता है ॥१५॥

नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकाङ्क्षिणः । इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति हिंसापि विनिवर्तते ॥१६॥

अन्वयः— नित्यं क्षुत्क्षामदेहस्य अन्नकांक्षिणः दरिद्रस्य इन्द्रियाणि अनुशुष्यन्ति, हिंसा अपि विनिवर्तते ॥१६॥

अनुवाद— सदैव भूख प्यास से संतप्त शरीर वाला दरिद्र पुरुष अन्न प्राप्त करना चाहता है, उसके कारण उसकी इन्द्रियाँ भी सुख जाती हैं, इसके कारण वह हिंसा करना भी छोड़ देता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः । सद्भिः क्षिणोति तं तर्षं तत आराद्विशुध्यति ॥१७॥

अन्वयः— समदर्शिनः साधवः दरिद्रस्यैव युज्यन्ते, सद्भिः तं तर्षं क्षिणोति ततः आरात् विशुद्ध्यति ॥१७॥

अनुवाद— साधु पुरुष समदर्शि होते वे सबके लिए एक समान होते हैं फिर भी संत पुरुषों का समागम दरिद्र पुरुष को ही प्राप्त होता है । सत्पुरुषों की संगति दरिद्र पुरुष की सारी तृष्णाएँ भी क्षीण हो जाती है और उसके पश्चात् वह शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

युज्यन्ते स्वत एव सङ्गच्छन्ते । तर्षं तृष्णाम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

युज्यन्ते अर्थात् स्वयं प्राप्त हो जाते हैं । तर्षम् अर्थात् तृष्ण को ॥१७॥

साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम् । उपेक्ष्यैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रयैः ॥१८॥

अन्वयः— समचित्तानां साधूनां मुकुन्दचरणैषिणाम्, धनस्तम्भैः असदाश्रयैः उपेक्ष्यैः असद्भिः किम् ॥१८॥

अनुवाद— साधु पुरुषों के चित्त में सबके लिए समानता होती है, वे तो सदा श्रीभगवान् के चरण कमलों के मकरन्द का ही पान करना चाहते हैं, उन्हे दुर्गुणों के खजाने अथवा असत् पुरुषों के आश्रय धन के मद से मत्त असत् पुरुषों से क्या मतलब है ? वे तो उसके लिए सदा उपेक्ष्य ही हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

ननु साधूनामपि धनिकः प्रियः स्यान्न दरिद्र इति तत्राह-साधूनामिति । धनेन स्तम्भो गर्वो येषां तैः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि साधु पुरुषों को भी धनिक ही प्रिय होते हैं, दरिद्र नहीं इस पर नारद जी साधूनाम् इत्यादि श्लोक कहते हैं- **धनस्तम्भैः** अर्थात् धन के गर्व से गर्वीले बने हुए ॥१८॥

तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदान्धयोः । तमोमदं हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः ॥१९॥

अन्वयः— तदहं माध्व्याः वारुण्याः मत्तयोः श्रीमदान्धयोः स्त्रैणयोः अजितात्मनोः तमोमदं हरिष्यामि ॥१९॥

अनुवाद— अतएव मैं वारुणी मदरा के पान करने से नशे में चूर हुए तथा ऐश्वर्य के मद से मत्त बने इन दोनों यक्षों के जो स्त्री लम्पट हैं तथा जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं है, इन सबों के अज्ञान जन्य मद को विनष्ट कर दूँगा ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तमोमदमज्ञानकृतं मदम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अर्थात् अज्ञान जन्य मद को ॥१९॥

यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमः प्लुतौ । न विवाससमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ ॥२०॥

अन्वयः— सुदुर्मदौ इमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वातमः प्लुतौ विवासम् आत्मानं न विजानीतः ॥२०॥

अनुवाद— अत्यधिक मद से मत्त बने हुए ये दोनों लोकपाल के पुत्र होकर भी अज्ञानान्धकार से परिपूर्ण हैं, इन दोनों को इस बात का भी पता नहीं है कि ये दोनों नग्न हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तमःप्लुतौ तमोव्याप्तौ ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

तमःप्लुतौ अर्थात् अज्ञानान्धकार से व्याप्त ॥२०॥

अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः । स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥२१॥
वासुदेवस्य सांनिध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते। वृत्ते स्वर्लोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः॥२२॥

अन्वयः— अतः स्थावरतां अर्हतः यथा पुनः एवं न स्याताम् तत्रापिमत प्रसादेन स्मृतिः स्यात्, मदनुग्रहात् दिव्यशरच्छते वृत्ते वासुदेवस्य सांनिध्यं लब्ध्वा भूय; लब्धभक्ती स्वर्लोकतां भविष्यतः ॥२१-२२॥

अनुवाद— अतएव ये वृक्ष हो जाने के योग्य हैं, जिससे कि इनको पुनः इस प्रकार का ऐश्वर्याभिमान न हो । वृक्ष योनि में जाने पर भी मेरी कृपा से इन दोनों को ये सारी बातें याद रहेंगी । उस वृक्ष योनि में भी मेरी कृपा से ये दोनों देवताओं के सौ वर्ष बीत जाने पर भगवान् वासुदेव के सांनिध्य को प्राप्त करके भगवद् भक्ति को प्राप्त करके अपने लोक में चले जायेंगे ॥२१-२२॥

भावार्थ दीपिका

शपति-अतोऽर्हत इति । अनुगृह्णाति-स्यातां नैवमित्यादिना । मत्प्रसादेन स्मृतिः स्यात् । स्वर्लोकतां देवत्वं पुनर्लब्ध्वा मदनुग्रहाल्लब्धभक्ती भविष्यत इति ॥२१-२२॥

भाव प्रकाशिका

अतोर्हतः० इत्यादि श्लोक द्वारा शाप देते हैं । उन सबों अनुग्रह करते हुए कहते हैं जिससे ये दोनों पुनः इस तरह मदमत्त नहीं होंगे । मेरी कृपा से इन दोनों को इन सारी बातों की स्मृति बनी रहेगी । फिर ये देवत्व को प्राप्त करके मेरी कृपा से श्रीभगवान् की भक्ति को प्राप्त कर लेंगे ॥२१-२२॥

श्रीशुक उवाच

एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् । नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ।।२३।।

अन्वयः— एवम् उक्त्वा सदोवर्षिः नारायणाश्रमम् गतः, नलकूबरमणिग्रीवौ यमलार्जुनौ आसतुः ।।२३।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से कहकर देवर्षि नारायणाश्रम में चले गये और नलकूबर और मणिग्रीव जुड़वे अर्जुन के वृक्ष हो गये ।।२३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२३।।

ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः । जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ।।२४।।

अन्वयः— भागवतमुख्यस्य ऋषेः वचः सत्यं कर्तुम् हरिः शनकैः तत्र जगाम यत्र यमलार्जुनौ आस्ताम् ।।२४।।

अनुवाद— भगवद् भक्तों में प्रधान देवर्षि नारद की वाणी को सत्य करने के लिए श्रीहरि धीरे-धीरे उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ पर जुड़वे अर्जुन के वृक्ष थे ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमाह-ऋषेरिति ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

ऋषेः इत्यादि श्लोक के द्वारा शुकदेवजी वर्तमान स्थिति का वर्णन किए हैं ।।२४।।

देवर्षि में प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ । तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ।।२५।।

अन्वयः— देवर्षिः मे प्रियतमः इमौ यद् धनदात्मजौ तत् महात्मना यथा गीतम् तत् तथा साधयिष्यामि ।।२५।।

अनुवाद— देवर्षि नारद मेरे प्रियतम हैं और ये दोनों मेरे भक्त कुबेर के पुत्र है । अतएव देवर्षि ने जैसा कहा है उसे मैं उसी तरह पूरा करूँगा ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

किमिति सत्यं कर्तव्यं तत्राह-देवर्षिरिति । यद्यतः । तत्ततः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि क्या सत्य करना है ? इस पर देवर्षि इत्यादि श्लोक कहते हैं । जो जैसा वह वैसे ही ।।२५।।

इत्यन्तरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ । आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ।।२६।।

अन्वयः— इति यमयोः अर्जुनयोः अन्तरेण कृष्णः तु आत्म निवेश मात्रेण ययौ उलूखलम् तिर्यग् गतम् ।।२६।।

अनुवाद— इस तरह जुड़वे अर्जुन वृक्षों के बीच से भगवान् अपने तो बिना किसी प्रयास के दोनों के बीच से निकल गये किन्तु ऊखल तिरछा होकर अँटक गया ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

यमयोर्यमलयोः सहजातयोः । आत्मनः कृष्णस्य तन्मध्यप्रवेशमात्रेण ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

जुड़वे अर्जुन वृक्षों के बीच से भगवान् श्रीकृष्ण के प्रवेश कर जाने मात्र से ।।२६।।

बालेन निष्कर्षयताऽन्वगुलूखलं तद्दामोदरण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ ।
निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेपस्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ ॥२७॥

अन्वयः— अन्वगुलूखलं निष्कर्षयता बालेन दामोदरेण तरसा उत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ परम विक्रामितातिवेपस्कन्धप्रवालविटपौ कृतचाण्डशब्दौ निष्पेततुः ॥२७॥

अनुवाद— बालक श्रीकृष्ण के कमर में रस्सी थी । अपने पीछे लुढकने वाले ऊखल को ज्यों हि तनिक जोर लगाकर खींचा, त्योंहि दोनों वृक्षों की सारी जड़ें उखड़ गयीं समस्त बलों के आश्रय भगवान् का तनिक सा बल लगते पेड़ों की तनें शाखायें डालियाँ और पत्ते सब काँप गये । दोनों पेंड़ जोर से शब्द करते हुए गिर पड़े॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अनु अञ्चतीत्यन्वक् । तत्र हेतुः- दामोदरेणेति । उत्कलितः उत्पाटितोऽङ्घ्रिबन्धो मूलबन्धो ययोस्तौ । परमस्य श्रीकृष्णस्य विक्रमितं विक्रमस्तेनातिवेपः कम्पो येषु ते स्कन्धप्रवालविटपा ययोस्तौ ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

अन्वञ्चति अर्थात् पीछे लुढ़कने वाले । दामोदरेण पद के द्वारा उसके कारण को बतलाया गया है । उन दोनों वृक्षों की जड़ उखड़ गयी। भगवान् श्रीकृष्ण के पराक्रम से उन दोनों वृक्षों के सारे अवयव काँप गये ॥२७॥

तत्र श्रियापरमया ककुभः स्फुरन्तौ सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः ।
कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽखिललोकनाथं बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥२८॥

अन्वयः— तत्र परमया श्रिया ककुभः स्फुरन्तौ कुजयोः जातवेदाः इव सिद्धौ उपेत्य अखिललोकनाथं कृष्णं शिरसा प्रणम्य बद्धाञ्जली विरससौ इदम् ऊचतुः ॥२८॥

अनुवाद— उन वृक्षों से अग्नि के समान परम तेजस्वी दो सिद्ध निकले उनके तेज से दिशाएँ प्रकाशित हो रही थीं, वे दोनों ने सम्पूर्ण लोकों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण को शिर झुकाकार प्रणाम किया और हाथ जोड़कर इस तरह से कहा ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

ककुभः प्रति सर्वतः स्फुरन्तावित्यर्थः । यद्वा दिशः प्रकाशयन्ताविति । कुजयोर्वृक्षयोः स्थितोऽग्निर्यथा मूर्तिमानुपैति तथोपेत्य । विरजसौ निर्मदौ निरहंकारिणौ नष्टगर्वाविति यावत् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

वे दोनों सभी दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे । अथवा वे दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे । दोनों वृक्षों से स्थित अग्नि जैसे मूर्तिमान होकर निकलती हो उसी तरह दोनों भगवान् के सन्निकट आकर हाथ जोड़कर श्रीभगवान् को प्रणाम किए । उस समय उन दोनों में किसी प्रकार का अहंकार नहीं था ॥२८॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः । व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥२९॥

अन्वयः— हे कृष्ण हे कृष्ण हे महायोगिन् त्वम् आद्यः परः पुरुषः व्यक्ताव्यक्तामिदं विश्वं ते रूपम् इति ब्राह्मणा विदुः॥२९॥

अनुवाद— हे भगवान् कृष्ण ! हे महायोगीन् ! आप ही आदि परम पुरुष हैं यह कारणावस्थावस्थित तथा कार्यावस्थावस्थित विश्व आपका शरीर है । इस तरह से ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण जानते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

गोपालं मां युवां देवौ किमिति प्रणताविति चेत्तत्राहतुः-हे कृष्णकृष्ण महायोगिन्, अचिन्त्यप्रभावस्त्वं न गोपालः, किंतु

परः पुरुषः । यत आद्यः कारणभूतः । तत्रापि न निमित्तमात्रं किंतूपादानमपि त्वमेवेत्याशयेन तुष्टुवतुः-व्यक्ताव्यक्तमिति ! स्थूलसूक्ष्ममिदं ते रूपं विदुः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मैं तो गोपाल हूँ और आप दोनों देवता है अतएव आप दोनों मुझे क्यों प्रणाम करते हैं ? इस पर उन दोनों ने कहा- हे भगवन् कृष्ण ! आप महायोगी हैं । आपका प्रभाव अचिन्त्य है आप गोपाल नहीं हैं । आप इस सम्पूर्ण जगत् के कारण भूत परम पुरुष हैं । आप सम्पूर्ण जगत् के अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं । इसलिए उन दोनों ने प्रणाम करते हुए कहा यह सूक्ष्म तथा स्थूल जगत् आपका शरीर है ॥२९॥

त्वमेकः सर्वभूतानां देहास्वात्मेन्द्रियेश्वरः । त्वमेव कालो भगवान्विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥३०॥

अन्वयः— त्वमेकः सर्वभूतानां देह-असु-आत्मेन्द्रियेश्वरः, त्वमेवकालः भगवान् विष्णुः अव्ययः ईश्वरः ॥३०॥

अनुवाद— केवल आप ही सम्पूर्ण जीवों के देह, प्राण, आत्मा, इन्द्रिय तथा नियामक है । आप ही काल है, भगवान् विष्णु है और निर्विकार ईश्वर हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

नियन्तापि त्वमेवेत्यूचतुः- त्वमेक इति । देहः, असवः प्राणाः, आत्माऽहंकारः, इन्द्रियाणि च तेषामीश्वरः । नन्वस्यकालो निमित्तं प्रकृतिरूपादानं प्रकृतेर्जातो महान्विश्वात्मतया परिणमते पुरुषः कर्ता नियन्ता च किमत्राहमत आहतुः-त्वमेव काल इत्यादिना सार्धेन । यतो भगवानीश्वरो विष्णुस्त्वमतः कालो नाम तव लीला ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनों ने कहा कि आप ही इस सम्पूर्ण जगत् के नियामक हैं । आप ही देह, प्राण, अहंकार इन्द्रियों के नियामक हैं । यदि आप कहें कि इस जगत् का निमित्त कारण काल है तथा प्रकृति ही उपादान कारण है । प्रकृति से महान उत्पन्न हुआ । सम्पूर्ण विश्व की आत्मा रूप से परिणत होती है । पुरुष ही कर्ता और नियन्ता है । इसमें मैं क्या करता हूँ ? इस पर उन दोनों ने **त्वमेव कालः इत्यादि** डेढ श्लोक से कहा है । चूकि आप ही भगवान् विष्णु है अतएव काल तो आपकी लीला है ॥३०॥

त्वं महान्प्रकृतिः सूक्ष्मा रजःसत्त्वतमोमयी । त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥३१॥

अन्वयः— त्वं महान् रजः सत्वतमोमयी सूक्ष्मा प्रकृतिः । त्वमेव अध्यक्षः पुरुषः सर्वक्षेत्रज्ञ विकारवित् ॥३१॥

अनुवाद— आप ही महत् तत्त्व तथा रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुणमयी सूक्ष्म प्रकृति हैं । आप ही सम्पूर्ण स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरों के कर्म, भाव, धर्म और सत्ता के ज्ञाता साक्षी पुरुष हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

प्रकृतिः शक्तिः, पुरुषोंऽशः, महान्कार्यम्, अतस्त्वमेव सर्वमित्यर्थः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

आप ही प्रकृति (शक्ति) पुरुष (अंश) और महान् (कार्य) सब कुछ आप ही हैं ॥३१॥

गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः । को न्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ॥३२॥

अन्वयः— प्राकृतैः गुणैः गृह्यमाणैः विकारैः त्वम् अग्राह्यः इह कोऽनुगुणसंवृतः प्राक् सिद्धं विज्ञातुम् अर्हति ॥३२॥

अनुवाद— वृत्तियों द्वारा जिनका ग्रहण होता है उन प्रकृति के विकारों तथा गुणों से आपका ग्रहण नहीं हो सकता है, स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर से ढँका हुआ ऐसा कौन पुरुष है जो आपको जान सके, क्योंकि आप उन शरीरों के पहले भी एक रस विद्यमान थे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

नन्वहमेत च्चेत्सर्वं तर्हि घटादिज्ञाने मज्ज्ञानं किं न भवति, भवतीति चेत्सर्वोऽपि ब्रह्मवित्स्यादत आहतुः-गृह्यमाणैरिति। दृश्यत्वेन वर्तमानैर्बुद्ध्यहंकारेन्द्रियादिभिर्द्रष्टा त्वं न गृह्यसे इति भावः । ननु तर्हि जीवो जानातु नैवेत्याहतुः-को न्विहेति । जीवाद्युत्पत्तेः प्रागेव स्वप्रकाशतया सिद्धं त्वां को वा जानाति । गुणसंवृतो देहाद्यावृतः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि यदि मैं ही सब कुछ हूँ तो फिर घट का ज्ञान होने पर सबों को मेरा ज्ञान क्यों नहीं होता है ? यदि सबों को मेरा ज्ञान होता तो फिर सबों को ब्रह्मवेत्ता होना चाहिए इस पर उन दोनों ने **गृह्यमाणैः इत्यादि** श्लोक कहा । दृश्य रूप से विद्यमान बुद्धि, अहंकार तथा इन्द्रियों आदि से आपका ग्रहण इसलिए नहीं होता है कि आप द्रष्टा हैं । यदि कहें कि जीव को मेरा ज्ञान होना चाहिए इस पर दोनों ने कहा जीव इत्यादि की उत्पत्ति से पहले एक मात्र स्वप्रकाश रूप से रहने वाले आपको स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर से आवृत कौन जीव है जो आपको जान सके ।।३२।।

तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे । आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ।।३३।।

अन्वयः— वेधसे भगवते वासुदेवाय तुभ्यं नमः आत्मद्योतगुणैः छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ।।३३।।

अनुवाद— समस्त प्रपञ्च के विधाता हे भगवन् वासुदेव आपको नमस्कार है । हे प्रभो ! आपके द्वारा प्रकाशित होने वाले गुणों से आप अपनी महिमा को छिपाये हुए परब्रह्म है आपको मेरा नमस्कार है ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

अतो दुर्ज्ञेयत्वात्केवलं प्रणमतः- तस्मै तुभ्यमिति । आत्मनः स्वस्मात् द्योतः प्रकाशो येषां तैर्गुणैश्छन्नो महिमा यस्य। अभ्रैरिव रवेस्तस्मै ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के दुर्ज्ञेय होने के कारण दोनों केवल नमस्कार **तस्मै० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । आपसे ही प्रकाशित होने वाले गुणों से आप अपने को छिपा रखे हैं । जिस तरह मेघों से सूर्य छिप जाते हैं उसी तरह।।३३।।

यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशरीरिणः । तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसङ्गतैः ।।३४।।

अन्वयः— यस्य शरीरेषु अशरीरिणः अवताराः तैः तैः अतुल्यातिशयैः देहिषु असङ्गतैः वीर्यैः ज्ञायन्ते ।।३४।।

अनुवाद— सभी शरीरों के भीतर अन्तर्यामी रूप से रहने वाले आपके अवतारों का तब पता चलता है जबकि आप ऐसे पराक्रमों को प्रदर्शित करते है, जिसे कोई भी शरीरधारी नहीं कर सकता । उसके सदृश ही कोई पराक्रम नहीं कर सकता है, उससे बढ़कर कहाँ से कोई पराक्रम प्रदर्शित करेगा ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

अहोऽहमीश्वर इति कुतो ज्ञानं तत्राहतुः यस्येति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

अरे मैं ईश्वर हूँ इस बात का पता तुम लोगों को कैसे चला तो इस पर दोनों ने **यस्यावताराः इत्यादि** श्लोक कहा।।३४।।

स भवान्सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च । अवतीर्णोऽशभागेन सांप्रतं पतिराशिषाम् ।।३५।।

अन्वयः— सः भवान् सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च सांप्रतम् अंश भागेन अवतीर्णः अशिषांपतिः ।।३५।।

अनुवाद— वे ही आप सम्पूर्ण जगत् के अभ्युदय और कल्याण के लिए इस समय अपने एक अंश से अवतीर्ण हुए है । आप ही समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

भवायोद्भवाय । विभवाय विगतो भवो यस्मिंस्तस्मै । कैवल्यायेत्यर्थः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

जगत् के अभ्युदय और मोक्ष प्रदान करने के लिए ।।३५।।

नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल । वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ।।३६।।

अन्वयः— हे परम कल्याण नमः परममङ्गल नमः वासुदेवाय, शान्ताय यदूनां पतये नमः ।।३६।।

अनुवाद— हे सर्वोत्कृष्ट कल्याण स्वरूप, हे परम मङ्गल स्वरूप भगवान् आपको नमस्कार है । सम्पूर्ण जगत् के आश्रय तथा सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त शान्त स्वरूप यदुवंशियों के स्वामी आपको नमस्कार है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३६।।

अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिङ्करौ । दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ।।३७।।

अन्वयः— हे भूमन् तवानुचरकिङ्करौ नौ अनुजानीहि भगवतः नौ दर्शनं ऋषेः अनुग्रहात् आसीत् ।।३७।।

अनुवाद— हे अनन्त प्रभो, हमदोनों आपके दास कुबेर अथवा नारदजी के अनुचर हैं आप हमदोनों पर कृपा करें । आप श्रीभगवान् का दर्शन देवर्शन देवर्षि नारदजी की कृपा से हमलोगों को मिला ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

नौ आवाम् । अनुचरः कुबेरो नारदो वा तस्य किङ्करौ । भगवतस्तव दर्शनम् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

हम दोनों आपके दास श्रीनारदजी तथा कुबेर के अनुचर है । नारदजी की ही कृपा से हमलोगों को आपका दर्शन प्राप्त हुआ ।।३७।।

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ।
स्मृत्यां शिरस्तवनिवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ।।३८।।

अन्वयः— नः वाणी गुणानुकथने, श्रवणौ कथायां, हस्तौ च कर्मसु, मनः तव पादयोः स्मृत्याम्, शिरः तवनिवास जगत्प्रणामे, दृष्टिः भवत्तनूनाम् सतां दर्शने अस्तु ।।३८।।

अनुवाद— प्रभो ! हमलोगी की वाणी आपके गुणों के वर्णन में लगी रहे, हम अपने कानों से आपकी कथाओं को सुनते रहें, हम अपने हाथों से सदा आपकी अर्चना आदि किया करें, हम अपने मन से आपके चरणों को सदा स्मरण किया करें, हम अपने शिरों से आपके निवास स्थान सम्पूर्ण जगत् को प्रणाम किया करें, हम अपनी दृष्टि से आपके शरीर भूत सन्तों का दर्शन किया करें ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

तत्र गतयोरावयोः पूर्वस्वभावो मा भूत् किंतु वाणी गुणानुकथन इत्यादि । नः 'अस्मदो द्वयोश्च' इति द्विवचनस्थाने बहुवचनम्, अस्मत्सङ्गिनां सर्वेषामपीति बहुवचनं वा । तव निवासभूतं यज्जगत्तस्य प्रणामे । त्वन्निवासभूतमिति बहुमानेन जगतः प्रणामे शिरोऽस्त्वित्यर्थः । भवत्तनूनां भवतो मूर्तीनाम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

यहाँ से अपने लोक में चले जाने पर हमलोगों का स्वभाव पहले के समान न हो, बल्कि हम अपनी वाणी से आपके गुणों का वर्णन करते रहें, **'अस्मदो द्वयोश्च'** इस सूत्र से द्विवचन के स्थान पर बहुवचन प्रयोग हुआ

है । अथवा हमारे साथ रहने वाले सभी लोगों की वाणी आपके गुणों के वर्णन में लगी रहे इस दृष्टि से **नः** यह बहुवचनात प्रयोग हुआ है । आपके निवास स्थान जगत् को हम सदा प्रणाम करते रहें । आपका निवास भूत यह जगत् अतएव बहुमान के पात्र भूत जगत् के समक्ष हमलोगों का सिर झुका रहे, सन्त पुरुष तो आपके साक्षात् शरीर हैं, हम अपने नेत्रों से सन्त पुरुषों का दर्शन करते रहें ।।३८।।

श्रीशुक उवाच

इत्थं संकीर्तितस्ताभ्यां भगवान् गोकुलेश्वरः । दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ ।।३९।।

अन्वयः— एवं ताभ्यां संकीतितः गोकुलेश्वरः दाम्नाचउलूखले बद्धः गुह्यकौ प्रहसन्नाह ।।३९।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— नलकूबर और मणि ग्रीव इन दोनों यक्षों के द्वारा इस प्रकार से स्तुति किए जाने पर सौन्दर्य एवं माधुर्य के सागर गोकुल के स्वामी, तथा जिनके कमर में रस्सी कसकर बाँध दी गयी थी वे भगवान् हँसकर उन दोनों यक्षों से कहे ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

संकीर्तितः संस्तुतः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

संकीर्ततः अर्थात् स्तुति किए गये ।।३९।।

श्रीभगवानुवाच

ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना । यच्छ्रीमदान्धयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः ।।४०।।

अन्वयः— मया पुरैव एतत् ज्ञातं यत् करुणात्मना ऋषिणा श्रीमदान्धयोः वाग्भिः विभ्रंश अनुग्रहः कृतः ।।४०।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— मैं पहले से ही जानता था कि करुणा करने वाले देवर्षि नारद ने ऐश्वर्य के मद में अन्धे बने हुए तुम दोनों के ऐश्वर्य नाश रूप अनुग्रह किया ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

वाग्भिः- 'न ह्यन्यो जुषतोजोष्यान्' इत्यादिभिः । श्रीविभ्रंशरूपोऽनुग्रहः कृत इति।।४०।।

भाव प्रकाशिका

नह्यन्यो० अर्थात् अपने प्रिय पदार्थों का सेवन करने वाले पुरुषों की श्रीमद् से बढ़कर कोई दूसरा रजोगुण नहीं हैं इत्यादि वाक्यों से ऐश्वर्य भ्रष्ट बना देना रूप कृपा किया है ।।४०।।

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् । दर्शनान्नो भवेद्बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ।।४१।।

अन्वयः— समचित्तानां साधूनां मत्कृतात्मनाम् दर्शनात् सुतरां बन्धों नो भवेत् यथा सवितुः पुंसः अक्ष्णोः ।।४१।।

अनुवाद— समदर्शी बुद्धि वाले सत्पुरुषों जिन लोगों ने अपनी आत्मा को मुझे समर्पित कर दिया है, उनके दर्शन से संसार का बन्धन उसी तरह से संभव नहीं है जिस तरह सूर्य के उदित हो जाने पर पुरुष की आँखों के सामने अन्धकार नहीं आता है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

युक्तमेवैतदित्याह-साधूनां स्वधर्मवर्तिनां समचित्तानामात्मविदां सुतरां मत्कृतात्मनां मयिर्पितचित्तानाम् । तेषां कृपातिरेकात्सुतरामित्युक्तम् । सवितुर्दर्शनादक्ष्णोर्यथा बन्धो न भवेत्तद्वत् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा ऐसा होना उचित ही है, भागवत धर्म का पालन करने वाले समदर्शी आत्मज्ञ खासकर वे जो जिनका मन सदैव मुझमें लगा रहता है । उनके कृपाधिक्य के कारण संसार का बन्धन उसी तरह नहीं होता हे जिस तरह सूर्योदय के हो जाने पर पुरुषों की आँखों के सामने अंधेरा नहीं आता है ।।४१।।

तद्गच्छतं मत्परमौ नलकूबर सादनम् । संजातो मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः ।।४२।।

अन्वयः— तत् नलकूबर मत्परमौ सादनम् गच्छतम् । वाम् अभीप्सितः अभवः मयि परमोभावः संजातः ।।४२।।

अनुवाद— अतएव हे नलकूबर तुम दोनों मेरे परायण होकर जाओ तुमलोगों को अभिप्रेत मुक्ति के साधनभूत मुझमें भक्ति की प्राप्ति हो गयी है ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

प्राधान्यादेकस्य संबोधनम् । हे नलकूबर, युवां तत्तस्मात्सादनं स्वनिकेतं मत्परमौ सन्तौ गच्छतम् । वां युवयोरपेक्षितो मयि प्रेमा जात एव । अभवः न भवो यस्मिन्सः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

नलकूबर ही प्रधान है, इसलिए श्रीभगवान् ने नलकूबर को ही सम्बोधित किया । हे नलकूबर अतएव तुम दोनों अपने-अपने घर जाओ । तुम दोनों को मुझमें भक्ति प्राप्त होगयी है अतएव तुम लोगों को संसार का बन्धन नहीं होगा।।४२।।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः । बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ।।४३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नारदशापो नाम दशमोऽध्यायः ।।१०।।

अन्वयः— इति उक्तौ तौ परिक्रम्य पुनः पुनः प्रणम्य च बद्धोलूखलम् आमन्त्र्य उत्तराम् दिशम् जग्मतुः ।।४३।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवान् के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर वे दोनों श्रीभगवान् की परिक्रमा करके तथा बार-बार प्रणाम करके ऊखल में बन्धे हुए श्रीभगवान् से आज्ञा लेकर उत्तर दिशा में प्रस्थान किए ।।४३।।

इस तरह श्रीमद्भावत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के नारद शाप नामक दसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

बद्धोलूखलं बद्धमुलूखलं यस्मिंस्तम् ।।४३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां दशमोऽध्यायः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

बद्धोलूखलम् अर्थात् जिनकी कमर में ऊखल बँधा था ऐसे श्रीभगवान् को ।।४३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के दसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१०।।

ग्यारहवाँ अध्याय

श्रीभगवान् का गोकुल से वृन्दावन जाना तथा वत्सासुर और वकासुर का उद्धार

श्रीशुक उवाच

गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् । तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशङ्किता ॥१॥

अन्वयः— हे कुरुश्रेष्ठ ! पततोः द्रुमयोः खम् श्रुत्वा निर्घातभयशंकिताः नन्दादयः गोपाः तत्र आजग्मुः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् ! वृक्षों के गिरते समय जो भयङ्कर शब्द हुआ उसको सुनकर नन्द आदि गोपों को लगा कि कहीं बिजली गिरी है, और वे सब वृक्षों के सन्निकट आ गये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकादशे समागत्य वृन्दावनमथार्भकैः । वत्सान्पालयताऽनेन हतौ वत्सबकासुरौ । निर्घातो वज्रपात इति भयेन शङ्किताः॥१॥

भाव प्रकाशिका

ग्यारहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया कि वृन्दावन में आकर श्रीभगवान् ग्वाल बालों के साथ वत्सों का पालन करते हुए वत्सासुर और बकासुर इन दो राक्षसों को मारे । निर्घातभयशंकिता: अर्थात् वज्रपात के भय से शंकित होकर ॥१॥

भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ । बभ्रमुस्तदविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ॥२॥
उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं च बालकम् । कस्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥३॥

अन्वयः— तत्र भूम्या निपतितौ यमलार्जुनौ ददृशुः तत् पतनकारणं लक्ष्यम् अविज्ञाय बभ्रमुः दाम्ना बद्धं उलूखलं विकर्षन्तं बालकम् इदं कस्य कुतः आश्चर्यम् इति उत्पातभयकातरा अभूवन् ॥२-३॥

अनुवाद— वहाँ पर उन लोगों ने पृथिवी पर गिरे हुय दोनों अर्जुन के वृक्षों को देखा, किन्तु उन दोनों वृक्षों के गिरने का कारण क्या है ? इस बात को नहीं जानकर उन लोगों को भ्रम हो रहा था । उन लोगों के सामने रस्सी में बँधे ऊखल धसीटते हुए बालक भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर यह आश्चर्य किसके द्वारा कैसे हुआ उन लोगों का लगा कि यह कोई न कोई उत्पात है । अतएव वे लोग भयकातर भी हो गये ॥२-३॥

भावार्थ दीपिका

तल्लक्ष्यं प्रत्यक्षत: पुरतो दृश्यमपि पतनकारणमविज्ञाय बभ्रमुः । लक्ष्यं कारणं दर्शयति-उलूखलमिति । भ्रमकारणमाह-कस्येदं राक्षसादेः कर्म कुतो वा कारणादाश्चर्यमुत्पात इति कातरा भीताः सन्तो बभ्रमुरित्यर्थः ॥२-३॥

भाव प्रकाशिका

सामने गिरे हुए दोनों दृश्य वृक्षों के पतन का कारण क्या है, इस तरह से उन लोगों को भ्रम हो रहा था। लक्ष्य कारण को **ऊलूखलम् इत्यादि** के द्वारा बतलाते हैं । भ्रम का कारण है कि यह किसी राक्षस आदि ने किया है क्या ? अथवा किसी दूसरे कारण से यह हुआ है । या यह उत्पात है, इस तरह सोचकर वे सब कातर हो गये ॥२-३॥

बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखलम् । विकर्षता मध्यगेन पुरुषावच्यचक्ष्महि ॥४॥

अन्वयः— बालाः ऊचुः तिर्यग्गतम् उलूखलं विकर्षता मध्यगेह्न अनेन, पुरुषौ अपि अचक्ष्महि ॥४॥

अनुवाद— वहाँ पर खेलने वाले बालकों ने कहा कि तिरछा हुए ऊखल को दोनों पेड़ों के बीच से निकलकर

इस कन्हैया ने खींचा उसी से ये दोनों पेड़ उखड़ गये, यह इसी का काम है । हमलोगो ने तो इससे निकले हुए दो पुरुषों को भी देखा है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

मध्यगेन वृक्षयोर्मध्यगतेन । न केवलमेतावत् । वृक्षाभ्यां निर्गतौ दिव्यौ पुरुषावप्यचक्ष्महि दृष्टवन्तो वयमिति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

दोनों वृक्षों के बीच से निकलते हुए इसी ने इन वृक्षों को गिराया है । यही नहीं हमलोगों ने इस दोनों वृक्षों से निकले हुए दो दिव्य पुरुषों को भी देखा है ।।४।।

न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति तस्य तत् । बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित्संदिग्धचेतसः ।।५।।

अन्वयः— ते तदुक्तं न जगृहुः तर्वोः बालस्य उत्पाटनं तत तस्य न घटेत । केचित् संदिग्ध चेतसः ।।५।।

अनुवाद— बालकों को उस कथन को लोगों ने इसलिए नहीं स्वीकार किया कि इतना नन्हा सा बच्चा इन विशाल वृक्षों को कैसे उखाड़ सकता है, यह सर्वथा असंभव, कुछ लोगों को श्रीभगवान् की पीछे की बात लीला का स्मरण करके संदेह भी हो गया ।।५।।

भावार्थ दीपिका

केवलं तार्किका न जगृहुरेव । अन्येतु संदेहयुक्तचित्ता बभूवुरिति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

जो तार्किक थे, वे लोग बालकों की बात नहीं माने दूसरे लोगों को तो श्रीभगवान् की अन्य बाल लीलाओं का स्मरण करके यह संदेह हुआ कि इस कन्हैया ने ही इन वृक्षों को तोड़ दिया हो ।।५।।

उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम् । विलोक्य नन्दः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ।।६।।

अन्वयः— दाम्नाबद्धं उलूखलं निकर्षन्तं एवम् आत्मजम् विलोक्य प्रहसद् वदनः नन्दः प्रमुमोच ह ।।६।।

अनुवाद— रसी से बँधे हुए तथा ओखली को धसीटते हुए अपने पुत्र को देखकर नन्दजी हँसने लगे और जल्दी से भगवान् श्रीकृष्ण की कमर से रस्सी को खोल दिया ।।६।।

भावार्थ दीपिका

भगवन्मायाविमोहितस्य नन्दस्याचरितमाह-उलूखलमिति ।।६।।

भाव प्रकाशिका

उलूखलम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् की माया से मोहित श्रीनन्दजी के चरित का वर्णन किया गया है ।।६।।

गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद्भगवान्बालवत्क्वचित् । उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो दारुयन्त्रवत् ।।७।।

अन्वयः— गोपीभिः स्तोभितः भगवान् क्वचित् अनृत्यत् क्वचित् उद्गायति, क्वचित् दारुयन्त्रवत् तद्वशः ।।७।।

अनुवाद— गोपियों के द्वारा फुसलाये जाने पर कभी भगवान् नाचने लगते थे, कहीं गाने लगते थे और कहीं पर कठपुतली के समान उन सबों के अधीन हो जाते थे ।।७।।

भावार्थ दीपिका

ज्ञास्यन्ते मामिति शङ्कमानोऽतीव बाल्यमनुकरोति स्म तदाह-गोपीभिरिति । स्तोभितः करतालादिना प्रोत्साहितः ।।७।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से तो लोग मुझे जान जायेंगे इस तरह से शङ्का करके श्रीभगवान् अत्यधिक बालकों के समान चरित करने लगे इस बात को **गोपीभिः इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । **स्तोभित** अर्थात् हाथ की ताली बजाने से प्रोत्साहित होकर ।।७।।

बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् । बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमावहन् ।।८।।

अन्वयः— स्वानां च प्रीतिमा वहन् क्वचित् आज्ञप्तः सन् पीठकम् क्वचित् उन्मानम्, क्वचित् पादुकाम् बिभर्ति क्वचित् बाहुक्षेपं च कुरुते ।।८।।

अनुवाद— आत्मीय लोगों को प्रसन्न करने के लिए श्रीभगवान् कहीं पर आज्ञा प्राप्त करके पीढा उठा लाते थे, कहीं पर तौलने के साधन बटखरा उठा लाते थे तो कहीं पर खडाऊँ उठा लाते थे और कभी-कभी ताल ठोकने लगते थे ।।८।।

भावार्थ दीपिका

इदमानयेत्याज्ञप्त आनेतुमसमर्थ इव बिभर्ति केवलं पीठादि । बाहुक्षेपं करचालनं च । तद्विदां चति चकरान्वयः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

यह उठा लाओ इस प्रकार की आज्ञा प्राप्त करके श्रीभगवान् लाने में असमर्थ के समान केवल पीढ़ा आदि उठा लाते थे । **बाहुक्षेपं** अर्थात् ताल ठोकना । उसको जानने वालों का यह चकार का अर्थ है ।।८।।

दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम् । व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान्बालचेष्टितैः ।।९।।

अन्वयः— बालचेष्टितैः वै भगवान् व्रजस्य हर्षं उवाह तद्विदां आत्मनः भृत्यवश्यताम् दर्शयन् हर्षम् उवाह ।।९।।

अनुवाद— श्रीभगवान् अपनी बाल लीला के द्वारा व्रजवासियों को आनन्दित करने लगे तथा जो लोग श्रीभगवान् के रहस्य को समझते थे, उन लोगों को वे यह बतलाते थे कि मैं अपने भक्तों के परतन्त्र रहता हूँ।।९।।

भावार्थ दीपिका

तदैश्वर्यं विदन्ति ये तेषाम् । एवं व्रजस्य हर्षमुवाहेति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

जो लोग श्रीभगवान् के ऐश्वर्य को जानते थे उन लोगों को इस तरह से श्रीभगवान् ने व्रजवासियों को प्रहर्षित किया ।।९।।

(क्रीणीहि भो फलानीति श्रुत्वा सत्वरमच्युतः । फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः ।।१०।।)

अन्वयः— भो फलानि कृणीहि इति श्रुत्वा, फलार्थी अच्युतः सत्वरम् धान्यम् आदाय सर्वफलप्रदः ययौ ।।१०।।

अनुवाद— फल बेचने वाली की इसी बात को सुनकर फल की कामना से शीघ्र ही धान उठाकर गये। यद्यपि श्रीभगवान् सभी फलों को प्रदान करने वाले थे ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

(तोषणी । इत आरभ्यैकादशश्लोकी श्रीधरस्वाम्यनादृतापि पुस्तकेषु दृश्यमानत्वाञ्चित्सुखाचार्यैर्व्याख्यातत्वाच्च व्याख्यायते। तत्र क्रीणीहीति पद्यद्वयं काचित्कं । किं वाच्यं व्रजस्य हर्षदातृत्वं पुलिन्दजातीनामपीत्याह–क्रीणीहीति द्वाभ्याम् । सर्वफलप्रदः सर्वपुरुषार्थदोऽपि धान्यमेवादाय ययावेव । नतु स्वल्पहस्तधृतमत्यल्पमिदमिति विचारितवान् बाललीलत्वात् ।।१०।।)

भाव प्रकाशिका

(इस श्लोक से लेकर ग्यारह श्लोकों की व्याख्या श्रीधर स्वामी ने नहीं की है । फिर भी ये श्लोक पुस्तकों में पाये जाते हैं, और चित्सुखाचार्य ने इन श्लोकों की व्याख्या की है । अतएव इन श्लोकों की व्याख्या की जाती है । **क्रीणीहि० इत्यादि** दो श्लोक सभी ग्रन्थों में नहीं पाये जाते हैं, अतएव क्षेपक हैं, श्रीभगवान् व्रज के लोगों कों प्रसन्न करते थे । इस विषय में क्या कहना हैं वे पुलीन्द जातीयों को भी आनन्दित करते थे। इन सारी बातों को क्रीणीहि० इत्यादि दो श्लोकों के द्वारा कहा गया है । **सर्वफलप्रद:** अर्थात् सभी पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले । धान ही लेकर गये । बाल लीला करने के कारण श्रीभगवान् इस बात का विचार नहीं किए कि छोटे हाथ में लिया गया यह धान बहुत कम है ।।१०।।

फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यं करद्वयम् । फलैरपूरयद्रत्नैः फलभाण्डमपूरि च ।।११।।

अन्वयः— फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यं करद्वयं फलैः अपूरयत् फलभाण्डम् । रत्नैः अपूरि ।।११।।

अनुवाद— फल बेचने वाली श्रीभगवान् के उन दोनों हाथों को फल से भर दिया जिन हाथों का सारा धान गिर चुका था । और फल का पात्र रत्नों से अपने आप भर गया ।।११।।

भावार्थ दीपिका

सत्वरगत्या पथ्येव च्युतानि धान्यान्यपि यस्मात् । तदपि अच्युतस्य करद्वयं विक्रयिण्यद्भुतस्नेहफलैर्नानावत्वाद्रत्नाकारैः । अपूरयत् । च्युतधान्यकरेणापि अच्युतेन सा संपन्ना कृतेत्याह-स्वयमुद्भूतैः सर्वरत्नैस्तस्याः फलभाण्डं पूर्णमिति ।।११।।

भाव प्रकाशिका

शीघ्रता से जाने के कारण हाथ का सारा धान रास्ते में ही गिर चुका था । फिर भी फल बेचने वाली ने भगवान् के दोनों हाथों को रत्नों के समान फलों से भर दी । यद्यपि श्रीभगवान् के हाथों से सारा धान गिर चुका था । फिर भी भगवान् अच्युत ने फल बेचने वाली को संपन्न बना दिया । इसी बात को शुकदेवजी ने कहा कि स्वयम् उत्पन्न रत्नों से फल का पात्र भर गया ।।११।।

सरित्तीरगतं कृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत् । रामं च रोहिणी देवी क्रीडन्तं बालकैर्भृशम् ।।१२।।

अन्वयः— अथ भग्नार्जुनम् सरित्तीरगतं कृष्णं रामं च बालकैः भृशम् क्रीडन्तं रोहिणी देवी आह्वयत् ।।१२।।

अनुवाद— उसके पश्चात् जिन श्रीभगवान् कृष्ण ने अर्जुन का वृक्ष तोड दिया था वे और बलराम जी नदी के तट पर जाकर बालकों के साथ क्रीडा कर रहे थे। उस समय रोहिणी देवी ने भगवान् कृष्ण और बलरामजी को बुलाया।।१२।।

भावार्थ दीपिका

अथ दामोदरलीलानन्तरैकदिनकृत्यमाह–सारिदित्यष्टभिः । कृष्णं क्रीडाकृष्टचित्तम् । अथेति कात्स्न्र्ये । सर्वैरेव नामभिरित्यर्थः । अत्र रोहिणीति कर्त्रध्याहारो यशोदां प्रेषयामासेत्युत्तरात् । अत्र रामाह्वानमप्यूह्यम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

दामोदर लीला के पश्चात् हुए एक दिन के कृत्य को सरित् इत्यादि आठ श्लोकों से बतलाते हैं भगवान् का मन क्रीडा में लगा था । अथ शब्द का प्रयोग पूर्ण के अर्थ में है । अर्थात् सभी नामों से रोहिणीजी ने भगवान् श्रीकृष्ण को पुकारा । चूकि यशोदाजी ने रोहिणीजी को भेजा था अतएव रोहिणीजी ने पुकारा यह अर्थ किया जायेगा। रोहिणीजी ने बलरामजी को भी पुकारा यह तर्क के द्वारा जानना चाहिए ।।१२।।

नोपेयातां यदाहूतौ क्रीडासङ्गेन पुत्रकौ । यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् ॥१३॥

अन्वयः— यदा आहूतौ पुत्रौ क्रीडासङ्गेन नोपेयाताम् रोहिणी पुत्रवत्सलाम् यशोदां प्रेषयामास ॥१३॥

अनुवाद— जब रोहिणीजी द्वारा बुलाये जाने पर भी क्रीडामग्न दोनों बच्चे नहीं आये तो तब पुत्रों पर वात्सल्य स्नेहमयी, यशोदाजी को रोहिणीजी ने भेजा ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च नोपेति यशोदामिति द्वयोरपि तस्या वात्सल्याधिक्यात्तदाकर्षणसामर्थ्याच्च । तदाह-पुत्रयोर्वात्सल्यमिति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

जब वे दोनों नहीं आये तो रोहिणीजी ने यशोदाजी को भेजा क्योंकि उनका दोनों बच्चों पर अधिक वात्सल्य था । अतएव उनमें दोनों को आकृष्ट करने का सामर्थ्य था । इसी बात को **पुत्रयोर्वात्सल्यम्** के द्वारा बतलाया गया॥१३॥

क्रीडन्तं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम् । यशोदाऽजोहवीत्कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥१४॥

अन्वयः— पुत्र स्नेहस्नुतस्तनीः सा यशोदा बालैः सहाग्रजाम् अतिबेलं क्रीडन्तं सुतं कृष्णं अजोहवीत् ॥१४॥

अनुवाद— पुत्र के प्रति अत्यधिक स्नेह होने के कारण जिनके स्तन से दूध बहा जा रहा था इस तरह की यशोदा माता ने अपने अग्रज बलरामजी के साथ ही बालकों के साथ बहुत देर से क्रीडा करते हुए अपने पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण को बुलाया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

सातिवत्सला सरामं कृष्णमजोहवीत् पुनःपुनरुच्चैराजुहाव । सरित्तीरे नानोपद्रवशङ्कया स्तनपानभोजनाय चेति भावः । तत्र हेत्वन्तरं-स्नुतस्तनीति । अत एवाग्रे स्तनं पिबेति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

यशोदाजी का अपने बच्चों पर अत्यधिक वात्सल्य मय प्रेम था उन्होंने बलरामजी और श्रीकृष्ण भगवान् को पुकारा । उन्होंने बार-बार जोर से पुकारा । नदी के तट पर अनेक प्रकार के उपद्रव होने की शङ्का से तथा स्नान एवं भोजन करने के लिए पुकारा । इसका दूसरा कारण था कि उनके स्तनों से दूध बहा जा रहा था । इसलिए उन्होंने आगे कहा है कि आओ और स्तनपान करो ॥१४॥

कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष तात एहि स्तनं पिब । अलं विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रान्तोऽसि पुत्रक॥१५॥

अन्वयः— हे कृष्ण ! हे अरविन्दाक्षकृष्ण तात एहि स्तनं पिब विहारैः अलम्, पुत्रक क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रान्तोऽसि॥१५॥

अनुवाद— हे कृष्ण ! हे कमल के सदृश नेत्रों वाले कृष्ण ! वत्स ! आओ और स्तन पान कर लो, अब खेलना बन्द करो, बेटे भूखे होगे, खेलते खेलते थक गये होगे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्ण एव रामादीनाकृष्ण क्रीडति तदागमने रामोऽप्यायास्यतीति धिया प्रथमं श्रीकृष्णमाह्वयति-कृष्णेति । वीप्सा प्रेम्णा । यद्वा हे क्रीडया सर्वबालाकर्षक । किंच सौन्दर्येणापीत्याह-अरविन्दाक्षेति । कृष्णारविन्दाक्ष नीलोत्पलनेत्रेति वा । स्तनं पिबेति स्तनपाने तत्प्रेमातिशयस्य पिबतस्त्यागे क्रोधातिशयदर्शनेन अनुभूतत्वात् स्नुतस्तनीत्वाच्च ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीकृष्ण ही बलराम इत्यादि को खींचकर ले जाता है और खेलता है । अतएव श्रीकृष्ण के आने पर बलराम भी आयेगा यह सोचकर यशोदा माता पहले भगवान् श्रीकृष्ण को **कृष्णा॰ इत्यादि** श्लोक से बुलाती हैं । प्रेमाधिक्य

के कारण कृष्ण ! कृष्ण !! इस तरह से दो बार बुलाती हैं । अथवा हे क्रीडा के द्वारा सभी बालकों को आकृष्ट करने वाले और सौन्दर्य के द्वारा इस बात को अरविन्दाक्ष यह संबोधन करती हैं । अथवा हे नील कमल के समान नेत्र वाले श्रीकृष्ण **स्तनंपिब** कहने का अभिप्राय है कि श्रीकृष्ण का स्तनपान करने में अत्यधिक प्रेम है । स्तन पान करते समय उनको छोड़ देने पर वे बहुत अधिक क्रोध करते हैं, यह यशोदाजी को खूब अनुभव है ॥१५॥

हे रामागच्छ ताताशु सानुजः कुलनन्दन । प्रातरेव कृताहारस्तद्भवान् भोक्तुमर्हति ॥१६॥

अन्वयः— हे कुलनन्दन राम ! हे तात आशु सानुजः आगच्छ । प्रातरेव कृताहारः तद् भवान् भोक्तुम् अर्हति ॥१६॥

अनुवाद— हे अपने वंश को आनन्दित करने वाले राम ! हे वत्स शीघ्र ही अपने छोटे भाई को लेकर आ जाओ । तुमने प्रातःकाल ही भोजन किया था अतएव आओ और भोजन करो ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

आह्वानमशृण्वन्तमिव दृष्ट्वा राम एव नूनमेनं रमयतीत्याशयेन द्वाभ्यां राममाह्वयति-हे रामेति । सानुज इति च । अनुजत्वात्त्वदधीन एव स इति भावः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीकृष्ण जैसे बुलाना सून ही नहीं रहे हों, यह देखकर राम ही श्रीकृष्ण को आनन्द प्रदान करते हैं, इसी अभिप्राय से दो सम्बोधनों के द्वारा बलरामजी को पुकारती हैं । हे राम ! अपने अनुज के साथ शीघ्र आ जाओ! कृष्ण तुम्हारे अनुज होने के कारण तुम्हारे अधीन हैं ॥१६॥

प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः । एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान् यात बालकाः ॥१७॥

अन्वयः— दाशार्हः ! भोक्ष्यमाणः व्रजाधिपः त्वां प्रतीक्षते एहि आवयोंः प्रियं धेहि, बालकाः ? स्वगृहान् यात॥१७॥

अनुवाद— हे बलराम ! तुम्हारे बाबा नन्दजी भोजन करते हुए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं । आओ, हम दोनों को आनन्द प्रदान करे । बच्चों तुमलोग भी अपने-अपने घर जाओ ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

उपविष्टपात्रो व्रजनाथस्त्वां विना न भुङ्क्ते इत्याह-प्रतीक्षत इति । आवयोः पित्रोर्मात्रोर्वा ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

वज्र के स्वामी तुम्हारे बाबा नन्दजी भोजन करने के लिए थाली पर बैठे हैं किन्तु तुम्हारे बिना वे भोजन नहीं कर रहे हैं, तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं । **आवयोः** अर्थात् अपनी माता-पिता को अथवा हम दोनों माताओं को ॥१७॥

धलिधूसरिताङ्गस्त्वं पुत्रमज्जनमावह । जन्मर्क्षं तेऽद्य भवति विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः ॥१८॥

अन्वयः— हे पुत्र ! त्वं धूलिधूसरिताङ्गः मज्जनम् आवह । अद्य ते जन्मर्क्षं भवति शुचिः विप्रेभ्यः गाः देहि ॥१८॥

अनुवाद— वत्स ! तुम्हारा शरीर धूल से भर गया है । आओ स्नान कर लो । आज तुम्हारा जन्म नक्षत्र है, पवित्र होकर ब्राह्मणों को गोदान करो ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

पश्य पश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान्स्वलंकृतान् । त्वं च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलंकृतः ॥१९॥

अन्वयः— मातृमृष्टान् ते वयस्यान् पश्य, पश्य । त्वंच स्नातः कृताहारः स्वलंकृत विहरस्व ॥१९॥

अनुवाद— देखो अपने मित्रों को उनकी माताएँ उन्हें स्नान कराकर तथा चमका दिया है । तुम भी स्नान करके तथा भोजन करके अच्छे वस्त्र आदि को धारण कर लो फिर खेलो ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

उभौ प्रत्यपि साधारण्येनाह-पश्येति । पदावृत्तिरुभयं प्रत्युक्तेः सर्वस्याप्यावृत्तिसूचनाय । वीप्सा वा खेदेन । मातृमृष्टान् स्नपनादिना निर्मलीकृतान् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

माता यशोदा ने दोनों के प्रति समान रूप से कहा **पश्य० इत्यादि** पश्य इस पद की आवृति दोनों को बुलाने के लिए की गयी हैं । अथवा खेद के अर्थ में दो बार **पश्य, पश्य** कहा गया है । **मातृमृष्टान्** अर्थात् माताओं द्वारा स्नान आदि कराकर स्वच्छ बनाये गये ।।१९।।

इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं मत्त्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप ।
हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ।।२०।।

अन्वयः— हे नृप इत्थं यशोदा अशेष शेखरं सुतं मत्वा स्नेह निबद्ध धीः सहराममच्युतं हस्तेगृहित्वा स्ववाटं नीत्वा अथ उदयम् कृतवती ।।२०।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! इस प्रकार माता यशोदा सम्पूर्ण जगत् के सर्वोत्कृष्ट तत्व भगवान् श्रीकृष्ण को अपना पुत्र मानकर उनमें ही उनका स्नेह पूर्ण मन लगा रहता था । वे श्रीबलरामजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का हाथ पकड़कर अपने घर लायीं और अपने पुत्रों के मङ्गल के लिए जो कुछ भी उन्हें करना था वह किया ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-इत्थमिति । अशेषशेखरमपि सुतत्वेनानुभूव अतएव क्रीडन्तमपि हस्ते गृहीत्वा स्ववाटं स्वगृहस्थानं । स्नपनभोजनालंकारादिमङ्गलं जन्मर्क्षमद्येत्युक्तिसत्यापनाय तद्योग्याभ्युदयमेव वा । अथ कात्स्न्ये ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

इत्थम्० इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् की इस लीला का उपसंहार करते हैं । चराचरात्मक जगत् के सर्वोत्कृष्ट तत्व भगवान् श्रीकृष्ण को अपने पुत्र रूप में मानकर खेलते हुए भी श्रीभगवान् का हाथ पकड़कर अपने घर लायीं। स्नान भोजन अलंकरण आदि मङ्गल करके माता यशोदा पहले कह चुकी हैं कि आज तुम्हारा जन्म नक्षत्र है, उसको सत्य सिद्ध करने के लिए, उसके अनुकूल अभ्युदय आदि कार्य करके । श्लोक में अथ शब्द सम्पूर्ण के अर्थ में प्रयुक्त है ।।२०।।

गोपवृद्धा महोत्पाताननुभूय बृहद्वने । नन्दादयः समागम्य व्रजकार्यममन्त्रयन् ।।२१।।

अन्वयः— नन्दादयः गोपवृद्धा बृहद बने महोत्पातान् अनुभूय समागम्य व्रजकार्यम् अमन्त्रयन् ।।२१।।

अनुवाद— नन्दजी इत्यादि बड़े बड़े सभी गोप यह अनुभव करने लगे थे कि, इस महावन में तो बहुत से उत्पात हो रहे हैं, अतएव सभी एकात्रित होकर क्या करना चाहिए इस विषय पर विचार करने लगे ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

रन्तुं वृन्दावनं गन्तुमन्तः कृष्णेन यन्त्रिताः । स्वतन्त्रा इव नन्दाद्या मन्त्रमेतममन्त्रयन् । व्रजकार्यं गोकुलस्य हितकृत्यम्।।२१।।

भाव प्रकाशिका

वृन्दावन में जाकर विहार करने की इच्छा से श्रीभगवान् ने सबों को अन्त:करण को प्रेरित किया । नन्दजी इत्यादि सभी गोप स्वतन्त्र के समान व्रज के विषय में यह विचार करने लगे । व्रजकार्यम् अर्थात् गोकुल के लिए हितकर कार्य ।।२१।।

तत्रोपनन्दनामाह गोपो ज्ञानवयोधिकः । देशकालार्थतत्त्वज्ञः प्रियकृद्रामकृष्णयोः ॥२२॥

अन्वयः— तत्र ज्ञानवयोधिकः, देशकालार्थतत्वज्ञः उपनन्द नामा गोपः रामकृष्णयोः प्रियकृत् आह ॥२२॥

अनुवाद— उस विचार गोष्ठी में ज्ञान वृद्ध तथा वयोवृद्ध देश तथा के तत्त्व को जानने वाले उपनन्द नामक गोप जो श्रीबलरामजी और श्रीकृष्ण भगवान् के हितकारी कार्यों को करने वाले थे, उन्होंने कहा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्य हितैषिभिः । आयान्त्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥२३॥

अन्वयः— गोकुलस्य हितैषिभिः अस्माभिः इतः उत्थातव्यम् अत्र बालानां नाशहेतवः महोत्पाताः आयान्ति ॥२३॥

अनुवाद— गोकुल का कल्याण चाहने वाले हमलोगों का यहाँ से अन्यत्र चले जाना चाहिए । यहाँ पर बालकों का विनाश करने वाले बड़े-बड़े उत्पात होते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

मुक्तः कथंचिद्राक्षस्या बालघ्न्या बालको ह्यसौ । हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरि नापतत् ॥२४॥

अन्वयः— असौ बालकः कथंचित् बालध्न या राक्षस्या मुक्तः । नूनम् हरेः अनुग्रहात् अनः च उपरि न अपतत्॥२४॥

अनुवाद— वह बालक श्रीकृष्ण किसी तरह बालकों को मारने वाली पूतना राक्षसि से बचा । निश्चित रूप से श्रीहरि की कृपा होने के ही कारण गाड़ी (शकट) इस बच्चे के ऊपर नहीं गिरी ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

चक्रवातेन नीतोऽयं दैत्येन विपदं वियत् । शिलायां पतितस्तत्र परित्रातः सुरेश्वरैः ॥२५॥

अन्वयः— चक्रवातेन दैत्येन वियत् नीतोऽयं विपदं नीतः, शिलायां पतितः तत्र सुरेश्वरैः परित्रातः ॥२५॥

अनुवाद— बवण्डर का रूप धारण करने वाले दैत्य तो इसको आकाश में ले जाकर इसको विपत्ति में डाल दिया था, किन्तु शिला पर गिरकर वह चकना चूर हो गया । उस समय बड़े-बड़े देवताओं ने इसकी रक्षा की ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

विपदं वीनां पक्षिणां पदं विहारस्थानम् । वियन्नभः । विगतप्रतिष्ठं वा ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

विपदं पद का वीनां पक्षिणां पदम् इस विग्रह के अनुसार पक्षियों के विहार स्थान अर्थ है । अथवा प्रतिष्ठा रहित अर्थ है ॥२५॥

यत्र म्रियेत द्रुमयोरन्तरं प्राप्य बालकः । असावन्यतमो वापि तदप्यच्युतरक्षणम् ॥२६॥

अन्वयः— द्रुमयोः अन्तरं प्राप्य असौ बालकः अन्यतमः वापि यत्र म्रियेत तदपि अच्युतरक्षणम् ॥२६॥

अनुवाद— अर्जुन वृक्षों के बीच में जाकर यह बालक अथवा दूसरा बालक दबकर नहीं मरा वह भी श्रीभगवान् ने ही रक्षा की ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अन्यतमो वा कश्चिद्बालः अच्युतेनैव रक्षणमासीत् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अथवा कोई दूसरा बालक यह भी भगवान् अच्युत के रक्षण करने से ही हुआ ॥२६॥

यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः । तावद्बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्र सानुगाः ।।२७।।

अन्वयः— यावत् औत्पातिकः अरिष्टः व्रजं न अभिभवेत् तावत् बालान् उपादाय सानुगः इतः अन्यत्र यास्यामः।।२७।।

अनुवाद— अतएव जब तक कोई बहुत बड़ा अरिष्ट हमें और व्रज को बहुत बड़ी हानि न कर सके उससे पहले ही बच्चों को लेकर अपने समस्त अनुचरों के साथ यहाँ से अन्यत्र हमलोग चले जायेंगे ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

अरिष्टोऽनर्थः । इतः स्थानात् ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

अरिष्ट अर्थात् अनर्थ । इस स्थान से ।।२७।।

वनं वृन्दावनं नामपशव्यं नवकाननम् । गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ।।२८।।

अन्वयः— वृन्दावनं नाम पशव्यं नव काननं वनम्, गोपगोपी गवां सेव्यं पुण्याद्रितृण वीरुधम् ।।२८।।

अनुवाद— वृन्दावन नामक एक वन है, वह पशुओं के लिए हितकारी है । वह नवीन अनेक वनों वाला है । वह गोपों, गोपियों तथा गौओं के लिए सेवनीय हैं, तथा पवित्र, पर्वत, तृण तथा लताओं से युक्त हैं ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

पशव्यं पशुभ्यो हितम् । नवानि काननान्यवान्तराणि विद्यन्ते यस्मिंस्तत् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

पशव्यम् अर्थात् पशुओं के लिए हितकारी । उसमें दूसरे भी नवीन वन हैं ।।२८।।

तत्राद्यैव यास्यामः शकटान्युङ्क्त मा चिरम् । गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते ।।२९।।

अन्वयः— यदि भवतां रोचते तत्र अद्यैव तत्र यास्यामः माचिरम् शकटान् युंक्त गोधनानि अग्रातः यान्तु ।।२९।।

अनुवाद— यदि तुमलोगों को यह मेरी बात अच्छी लगे तो आज ही हमलोग वहाँ चले । शीघ्र ही तुमलोग गाड़ी नाधो, हमारी गायें आगे आगे चलें ।।२९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२९।।

तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधु साध्विति वादिनः । व्रजान्स्वान्स्वान्समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः ।।३०।।

अन्वयः— तच्छ्रुत्वा, साधु साधु इति वादिनः एकधियः गोपाः स्वान् स्वान् व्रजान् समायुज्य रूढपरिच्छदाः ययुः।।३०।।

अनुवाद— उपनन्दजी की बातों को सुनकर एक स्वर से बहुत अच्छा, बहुत अच्छा कहने वाले, तथा किसी के मतभेद से रहित सभी गोप अपनी अपनी गायों को एकत्रित करके, तथा घर की सामग्री को गाड़ियों पर लादकर वृन्दावन के लिए चल दिए ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

एकधियो विप्रतिपत्तिरहिताः । व्रजान् शकटव्यूहान् । रूढाः शकटादिष्वारोपिताः परिच्छदा यैस्ते ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

एकधियः बिना किसी मतभेद के । व्रजान् अर्थात् गाड़ियों के समूह को **रूढपरिच्छदाः** उन लोगों ने सारी सामग्रियों को गाड़ियों पर लाद लिया था ।।३०।।

वृद्धान्बालान् स्त्रियो राजन्सर्वोपकरणानि च । अनस्स्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः ॥३१॥
गोधनानि पुरस्कृत्य शृङ्गाण्यापूर्य सर्वतः । तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः ॥३२॥

अन्वयः— राजन् बृद्धान्, बालान् स्त्रियः 'सर्वोपकरणानि च अनस्सु आरोप्य यत्ताः आतशरासनाः गोपालाः गोधनानि पुरस्कृत्य, सर्वतः शृङ्गाणि अपूर्य, महता तूर्यघोषेण, सहपुरोहिताः ययुः ॥३१-३२॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! बूढों, बच्चों तथा स्त्रियों एवं घर की सारी सामग्रियों को गाड़ियों पर (छकड़ों) पर चढाकर सावधानी पूर्वक, धनुष बाण धारण करके चलने लगे । उन लोगों ने गौओं को सबसे आगे कर दिया, उन सबों के पीछे सींगीं तुरही बजाते हुए जोर-जोर से तुरही की ध्वनि करते हुए अपने पुरोहितों को साथ लेकर चल दिए ॥३१-३२॥

भावार्थ दीपिका

यत्ताः कृतप्रयत्नाः ॥३१-३२॥

भाव प्रकाशिका

यत्ताः अर्थात् प्रयास पूर्वक ॥३१-३२॥

गोप्यो रूढरथा नूत्नकुचकुङ्कुमकान्तयः । कृष्णलीला जगुः प्रीता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ॥३३॥

अन्वयः— नूत्नकुचकुंकुम कान्तयः रूढरथाः सुवाससः निष्ककण्ठ्यः गोप्यः प्रीताः कृष्ण लीलाजगुः ॥३३॥

अनुवाद— अपने-अपने वक्षस्थल पर नारी केसर लगाकर रथ पर चढ़कर सुन्दर वस्त्र धारण की हुई और गले में सुवर्ण का हार धारण की हुई गोपियाँ प्रसन्नता पूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं की गीत गाती हुई जा रही थीं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

नूत्नैः कुचगतैः कुङ्कुमैः कान्तिर्यासां ताः । नूत्नेषु कुचेषु यत्कुङ्कुमं तेन कान्तिर्यासामिति वा ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

स्तन पर लगे हुए नवीन केसरों से जिनकी कान्ति बढ़ गयी थी, अथवा नवीन स्तनों पर विद्यमान कुकुंम के द्वारा जिनकी कान्ति बढ गयी थी ऐसी गोपियाँ ॥३३॥

तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते । रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ॥३४॥

अन्वयः— तथा यशोदारोहिण्यौ रामकृष्णाभ्याम् एकं शकटम् आस्थिते तत्कथा श्रवणोत्सुके रेजतुः ॥३४॥

अनुवाद— उसी तरह माता यशोदा तथा रोहिणीजी बलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् को अपने साथ लेकर एक ही छकड़े पर बैठी थी । वे दोनों भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी की तोतली बोली सुनकर और अधिक सुनने के लिए उत्सुक थीं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

वृन्दावनं संप्रविश्य सर्वकालसुखावहम् । तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्धचन्द्रवत् ॥३५॥

अन्वयः— सर्वकालसुखावहं वृन्दावनं सम्प्रविश्य तत्र शकटैः अर्धचन्द्रवत् व्रजावासं चक्रुः ॥३५॥

अनुवाद— सभी समयों में सुखद रहने वाले वृन्दावन में प्रवेश करके ग्वालों ने अपने-अपने छकड़ों से अर्द्धचन्द्रकार मण्डल बाँधकर खड़ा कर दिया और अपने गोधन के साथ रहने योग्य स्थान बना लिया ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

व्रजावासं गोकुलवसतिस्थानम् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

व्रजावासम् अर्थात् गायों के रहने योग्य निवास स्थान ।।३५।।

वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च । वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ।।३६।।

अन्वयः— हे नृप ! वृन्दावनम्, गोवर्धनम्, यमुना पुलिनानि च वीक्ष्य राममाधवयोः उत्तमा प्रीतिः आसीत् ।।३६।।

अनुवाद— राजन् ! परीक्षित् ! वृन्दावन, गोवर्धन पर्वत, तथा युमना नदी के तट को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी को अत्यधिक प्रसन्नता हुई ।।३६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३६।।

एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितैः । कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ।।३७।।

अन्वयः— एवं बालचेष्टितैः कलवाक्यैः व्रजौकसां प्रीति यच्छन्तौ स्व कालेन वत्सपालैः बभूवतुः ।।३७।।

अनुवाद— इस तरह अपनी बाल लीलाओं तथा मनोहर तोतली बोलियों से व्रजवासियों को आनन्द प्रदान करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों बड़े होकर बछड़ों के चरवाहे बन गये ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

स्वकालेन तद्योग्यकालेन ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

बछड़ों को चराने के योग्य जब हो गये तब ।।३७।।

अविदूरे व्रजभुवः सह गोपालदारकैः । चारयामासतुर्वत्सान्नानाक्रीडापरिच्छदौ ।।३८।।

अन्वयः— नानाक्रीडापरिच्छदौ गोपालदारकैः सह ब्रजभुवः अविदूरे वत्सान् चारयामासतुः ।।३८।।

अनुवाद— क्रीडा की अनेक सामग्रियों से युक्त श्रीबलरामजी और श्रीकृष्ण भगवान् दूसरे ग्वाल बालकों के साथ गायों के निवास स्थान के सन्निकट में बछड़ों को चराने लगे ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

कौमारलीलां निरूपयति-अविदूर इत्यादिना ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

अब यहाँ से श्रीभगवान् की कुमारावस्था की लीलाओं का वर्णन **अविदूरे० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया जाता है ।।३८।।

क्वचिद्वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् । क्वचित्पादैः किङ्किणीभिः क्वचित्कृत्रिमगोवृषैः ।।
वृषायमाणौ नर्दन्तौ ययुधाते परस्परम् ।।३९।।

अन्वयः— क्वचित् वेणुं वादयतः क्वचित् क्षेपणैः क्षिपतः, क्वचित् पादैः किङ्किणीभिः क्वचित् कृत्रिम गोवृषैः वृषायमाणौ नर्दन्तौ परस्परं ययुधाते ।।३९।।

अनुवाद— कहीं परतो वे वांसुरी बजाते थे, कहीं पर क्षेपणी से आँवले अथवा विल्लव को फेंकते थे, कहीं पर अपने पैरों के घुंघुरूपर तान छेड़ते थे तो कहीं पर बनावटी गाय और बैल बनकर खेलते थे, कभी वे सांड बनकर हँकडते हुए लड़ते थे ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

क्षेपणैर्बिल्वामलकादि क्षिपतो दूरे चालयतः । किङ्किणीयुक्तैः पादैः क्षिपतस्ताडयतः । वत्सपाला द्वित्राः कम्बलादिपिहिता वृषरूपमनुकुर्वन्ति तैः सह स्वयमपि तथैव वृषायमाणौ नर्दन्तौ तदनुकारिशब्दान्कुर्वन्तौ युयुधाते इत्यर्थः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

क्षेपणी से बिल्व अथवा आँवले को दूर फेंकते थे । घुंघरु युक्त पैर से पृथ्वी पर ठोकते थे, बछड़े के दो तीन चरवाहे कम्बल आदि को ओढ़कर बैल बनकर जाते तो बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण उन सबों के साथ साड़ का रूप धारण कर हकड़ते हुए युद्ध करते थे ।।३९।।

अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ।।४०।।

अन्वयः— रुतैः जन्तून् अनुकृत्य प्राकृतैर्यथा चेरतुः ।।४०।।

अनुवाद— विविध प्रकार की बोलियाँ बोलकर वे पशुओं पक्षियों का अनुकरण प्राकृत बालकों के समान करते थे ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

रुतैः शब्दैः । जन्तून् हंसमयूरादीन् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

शब्दों के द्वारा हंस मयूर आदि पक्षियों आदि का अनुकरण करते थे ।।४०।।

कदाचिद्यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः । वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत् ।।४१।।

अन्वयः— कदाचित् यमुनातीरे स्वकैः वयस्यैः सह वत्सान् चारयतः कृष्णबलयोः जिघांसुः दैत्यः आगतः ।।४१।।

अनुवाद— एक बार जब बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण यमुना तट में अपने मित्रों के साथ बछड़ों को चरा रहे थे उस समय बलरामजी और श्रीकृष्ण भगवान् को मारने के लिए एक दैत्य आया ।।४१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४१।।

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः । दर्शयन्बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ।।४२।।

अन्वयः— वत्सरूपिणं वत्सयूथगतं तं वीक्ष्य हरिः शनै बलदेवाय दर्शयन् हरिः मुग्ध इव असदत् ।।४२।।

अनुवाद— बछड़े का रूप बनाये हुए तथा बछड़ों के समूह में विद्यमान उस दैत्य को देखकर श्रीहरि उसे पहचान लिए और इशारे से उसको बलदेवजी को दिखाकर उस पर आकृष्ट हुए के समान उसके पास आये ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

मुग्ध इवाजानन्निव । आसदत् समीपमागमत् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

जैसे वे उसको जानते नहीं हो, उसके पास आए ।।४२।।

गृहीत्वाऽपरपादाभ्यां सहलाङ्गूलमच्युतः । भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद्गतजीवितम् ।।
स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह ।।४३।।

अन्वयः— अच्युतः लाङ्गूलम् सह अपरपादाभ्यां गृहित्वा भ्रामयित्व, गतजीवितम् कपित्थाग्रे प्राहिणोत् महाकायः सः पात्यमानैः कपित्थैः पपात ह ।।४३।।

अनुवाद— श्रीभगवान् उसकी पूंछ के साथ दोनों पैरों को पकड़कर उसको घुमाये जब वह मर गया तो उसको कैंथ के पेड़े पर पटक दिए उसका वह विशालकाय शरीर अनेक कैंथ के वृक्षों को गिराते हुए नीचे गिर पड़ा॥४३॥

भावार्थ दीपिका

अपरपादाभ्यां सह लाङ्गूलं यथा भवति तथा गृहीत्वा ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

दोनों पैरों के साथ पूंछ को भी पकड़कर ।।४३।।

तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति । देवाश्च परिसंतुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥४४॥

अन्वयः— तं वीक्ष्य विस्मिताः बालाः साधु साध्विति शशंसुः परिसंतुष्ट देवाश्च पुष्पवषिणः बभूवुः ।।४५।।

अनुवाद— उसे देखकर सभी बालकों ने बहुत अच्छा कहकर उनकी प्रशंसा की और अत्यन्त सन्तुष्ट देवताओं ने श्रीभगवान् पर पुष्पों की वर्षा की ।।४४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४४।।

तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ । सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः ॥४५॥

अन्वयः— सर्वलोकैक पालकौ तौ वत्सपालकौ भूत्वा सप्रातराशौ गोवत्सान् चारयन्तौविचेरतुः ।।४५।।

अनुवाद— सम्पूर्ण लोकों के एकमात्र पालक श्याम और बलरामजी अब बछड़ों को चराने वाले हो गये हैं। वे प्रातःकाल ही कलेवे की सामग्री लेकर एक वन से दूसरे वन पर्यन्त बछड़ों को चराते चलते थें ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

सर्वेषां लोकानामेकौ मुख्यौ पालकौ । प्रातराशः प्रातर्भोज्यमन्नं तत्सहितौ ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीबलरामजी दोनों सम्पूर्ण लोकों के मुख्य पालक हैं । प्रातः कालीन भोज्य अन्नों के साथ ।।४५।।

स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यन्त एकदा । गत्वा जलाशयाभ्याशं पाययित्वा पपुर्जलम् ॥४६॥

अन्वयः— एकदा स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वे पाययिष्यन्तः जलाशयाभ्याशं गत्वा जलं पाययित्वा पपुः ।।४६।।

अनुवाद— एकदिन सभी ग्वाल वाल अपने अपने बछड़ों के समूह को पानी पिलाने की इच्छा से जलाशय के पास तट पर गये और पहले बछड़ों को जल पिलाकर फिर वे सब जल पिए ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

अभ्याशं समीपम् ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

अभ्याशम् अर्थात् सन्निकट ।।४६।।

ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्त्वमवस्थितम् । तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृङ्गमिव च्युतम् ॥४७॥

अन्वयः— ते बाला तत्र अवस्थितम् महा सत्त्वं वज्रनिर्भिन्नं च्युतम् गिरेः शृङ्गमिव ददृशुः तत्रसुः ।।४७।।

अनुवाद— वे बालक वहाँ पर एक बहुत बड़े जीव को बैठे हुए देखा । लगता था कि जैसे इन्द्र के वज्र से कटकर कोई पहाड़ का टुकड़ा गिरा हो । यह देखकर वे बालक डर गये ।।४७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४७।।

स वै बको नाम महानसुरो बकरूपधृक् । आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद्बली ॥४८॥

अन्वयः— बको नाम महान् असुरः बकरूप धृक् सहसा आगत्य सवै वली कृष्णं तीक्ष्ण तुण्डो अग्रसत् ॥४८॥

अनुवाद—बक नाम का महान् असुर बगुले का रूप धारण करके, अचानक आकर वह बलवान् राक्षस आया । उसकी चोंच नुकीली थी वह भगवान् श्रीकृष्ण को निगल लिया ॥४८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४८॥

कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोऽर्भकाः । बभूवुरिन्द्रियाणीव विना प्राणं विचेतसः ॥४९॥

अन्वयः— महाबकग्रस्तं कृष्णं दृष्ट्वा रामादयोऽर्भकाः प्राणं बिना इन्द्रियाणी व विचेतसः बभूवुः ॥४९॥

अनुवाद—उस बहुत बड़े बगुले के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण को निगल लिए गये देखकर बलरामजी आदि सभी बालक प्राण से रहित इन्द्रियों के समान अचेत (निःसंज्ञ) हो गये ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

राम आदिर्येषां ते नतु रामः ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

जिनमें बलरामजी प्रधान थे वे बालक अचेत हो गये बलरामजी ॥४९॥

तं तालुमूलं प्रदहन्तमग्निवद्गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः ।
चच्छर्द सद्योऽतिरुषाऽक्षतं बकस्तुण्डेन हन्तुं पुनरभ्यपद्यत ॥५०॥

अन्वयः— तालुमूलं अग्निमिव प्रदहन्तम् जगद्गुरोः पितरं गोपालसूनुं तं चच्छर्द्य, अक्षतं सद्यः अतिरुषा तुण्डेन हन्तुम् अभ्यपद्यत ॥५०॥

अनुवाद— तालु के नीचे जाकर भगवान् उसके तालुमूल को अग्नि के समान जलाने वाले जगत् के एकमात्र स्वामी तथा जगत् के पिता तथा लीला से गोपाल बालक बने हुए भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर पर किसी प्रकार का चोट किए बिना ही उगल दिया और शीघ्र ही अत्यधिक क्रोध करके अपनी चोंच से उन पर प्रहार करने के लिए आया॥५०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५०॥

तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयोर्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां पतिः ।
पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुदावहो वीरणवद्दिवौकसाम् ॥५१॥

अन्वयः— आपतन्तं तं दोर्भ्याः तुण्डयोः निगृह्य कंससखं बकम् सतां पतिः दिवौकसां मुदावहः पश्यत्सु बालेषु वीरणवत् लीलया ददार ॥५१॥

अनुवाद— आते हुए उस कंस के मित्र बकासुर की चोंचों को दोनों हाथों से पकड़कर देवताओं को आनन्द प्रदान करने वाले सत्पुरुषों के स्वामी श्रीभगवान् बालकों को देखते ही देखते खेल-खेल में वीरण के समान चीर डाले ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

तुण्डयोश्चञ्च्वोः । वीरणवदग्रन्थितृणविशेषवत् ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

तुण्डयाः अर्थात् दोनों चोंचों को । वीरणवत् एक प्रकार का तृण विशेष जिसके जड़ की खश बनता है॥५१॥

तदा बकारिं सुरलोकवासिनः समाकिरन्नन्दनमल्लिकादिभिः ।
समीडिरे चानकशङ्खसंस्तवैस्तद्वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे ॥५२॥

अन्वयः— तदा सुरलोकवासिनः बकारिम् नन्दनपुष्पमल्लिकादिर्भिः समाकिरन् आनकशंखसंस्तवैः च समीडिरे तद्वीक्ष्य गोपालसुताः विसिस्मिरे ॥५२॥

अनुवाद— उस समय सभी देवता भगवान् श्रीकृष्ण पर नन्दन वन के चमेली आदि पुष्पों की वर्षा किए तथा नगाड़े, शंख आदि बजाकर श्रीभगवान् की स्तुति किए यह देखकर सभी ग्वाल बाल आश्चर्यित हो गये ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

समीडिरे तुष्टुवुः । आनकैः शङ्खैरन्यैश्च संस्तवैः सह ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

समीडिरे अर्थात् स्तुति की । नगाड़े, शंख तथा दूसरे बाद्यों से स्तुतियों से ॥५२॥

मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका रामादयः प्राणमिवैन्द्रियो गणः ।
स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः प्रणीय वत्सान् व्रजमेत्य तज्जगुः ॥५३॥

अन्वयः— बकास्याद् मुक्तं स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः ऐन्द्रियोगणः प्राणम् इव रामादयः बालकाः वत्सान् प्रणीय व्रजम् एत्य तज्जगुः ॥५३॥

अनुवाद— बकासुर के मुख से निकले हुए तथा अपने स्थान पर आये हुए भगवान् श्रीकृष्ण का आलिङ्गन करके प्रसन्न, जिस तरह प्राण के आ जाने पर इन्द्रियाँ प्रसन्न हो जाती हैं, उसी तरह बलरामजी आदि सभी बालक अपने सभी बछड़ों को एकत्रित करके व्रज में आये और सारी घटना लोगों को सुनाए ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

स्वस्थानमागतं प्राणमिव कृष्णम् । प्रणीय एकीकृत्य ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

अपने स्थान पर आये हुए भगवान् श्रीकृष्ण को । प्रणीय अर्थात् एकत्रित करके ॥५३॥

श्रुत्वा तद्विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः । प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षन्त तृषितेक्षणाः ॥५४॥

अन्वयः— तत् श्रुत्वा विस्मिताः अतिप्रिया दृताः गोपाः गोप्यः च एत्यागतम् इव तृषितेक्षणाः औत्सुक्यात् ऐक्षन्त॥५४॥

अनुवाद— बकासुर के बध की घटना सुनकर सभी गोप और गोपियाँ आश्चर्यित हो गयीं । वे अपने अत्यन्त प्रिय भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति आदर की भावना से सम्पन्न हो गयीं । उन्हें लगा कि जैसे कन्हैया मृत्यु के मुख से निकलकर आये हैं । वे सब भगवान् श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्यासे नेत्रों से उत्सुकता पूर्वक देखने लगीं ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

अतिप्रियेण प्रीत्या आदृताः सादराः प्रेत्यागतमिव लोकान्तरादागतमिव। तृषितान्यतृप्तान्यमृतं पिबन्तीवेक्षणानि येषां ते।॥५४॥

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त प्रेमपूर्वक तथा आदर पूर्वक मृत्यु के मुख से लौटे हुए के समान जैसे उनकी अतृप्त आँखें जैसे अमृत का पान कर रही हों, उस तरह से देखने लगे ॥५४॥

अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवम् । अप्यासीद्विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ।।५५।।

अन्वयः— अहो बत अस्य बालस्य बहवो मृत्यवः अभवन् तेषाम् अपि विप्रियं आसीत् यतः पूर्वं भयं कृतम् ।।५५।।

अनुवाद— नन्दजी आदि आपस में बातें करने लगे कि अरे भाई इस बालक को कई बार मृत्यु के मुख में जाना पड़ा किन्तु उन लोगों का ही अनिष्ट हुआ, क्योंकि उन लोगों ने पहले से ही दूसरों का अनिष्ट किया था ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

अहो वतेत्यादिश्लोकत्रयस्य इति नन्दादय इत्यनेनान्वयः । अपि एवमपि तेषामेवानिष्टमासीत् । यतस्तैः पूर्वमन्येषां भयं कृतम् ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

अहो बत इत्यादि तीन श्लोकों का नन्द इत्यादि के साथ अन्वय है । ऐसा होने पर भी उन लोगों का ही अनिष्ट हुआ, क्योंकि उन सबों ने पहले से ही दूसरों को भय उत्पन्न किया था ।।५५।।

अथाप्यभिभवन्त्येनं नैव ते घोरदर्शनाः । जिघांसयैनमासाद्य नश्यन्त्यग्नौ पतङ्गवत् ।।५६।।

अन्वयः— अथापि ते घोरदर्शनाः एनं नैव अभिभवन्ति, एनं जिघांसया आसाद्य अग्नौ पतङ्गवत् नश्यन्ति ।।५६।।

अनुवाद— फिर भी वे भयंकर असुर इस बालक कर कुछ भी नहीं विगाड़ पाते हैं, वे ही इसके पास आकर स्वयं उसी तरह नष्ट हो जाते हैं जिस तरह अग्नि के पास आकर कीड़े नष्ट हो जाते हैं ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

अथ घोरदर्शना अपि नाभिभवन्ति न धर्षयन्ति ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

किञ्च भयङ्कर दोनों पर इस बालक को अभिभूत नहीं कर पाते हैं ।।५६।।

अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित् । गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ।।५७।।

अन्वयः— अहो बह्मविदां वाचः कर्हिचित् असत्याः न सन्ति, भगवान् गर्ग यदाह तत् तथैव अन्वभावि ।।५७।।

अनुवाद— यह सत्य है कि ब्रह्मज्ञानी पुरुषों की वाणी कभी मिथ्या नहीं होती है । महात्मा गर्ग ने जैसा कहा था वे सारी बातें ज्यों के त्यों सत्य उतरती हैं ।।५७।।

भावार्थ दीपिका

गर्गो यदाह-'तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः' इत्यादि ।।५७।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि गर्ग ने यह जो कहा था कि तुम्हारा पुत्र भगवान् नारायण के समान गुणों से सम्पन्न होगा ।।५७।।

इति नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा । कुर्वन्तो रममाणाश्च नाविन्दन्भववेदनाम् ।।५८।।

अन्वयः— इति नन्दादयः गोपाः मुदा रामकृष्णकथां कुर्वन्तः रममाणाः च भववेदनाम् नाविन्दन् ।।५८।।

अनुवाद— इस तरह से नन्दजी इत्यादि गोपगण बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण की प्रसन्नता पूर्वक चर्चाए करते हुए संसार की वेदना का अनुभव नहीं किए ।।५८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५८।।

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे । निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥५९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूवार्धे वत्सबकवधोनाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अन्वयः— एवं निलायनैः सेतुबन्धैः मर्कटोत्पलवनादिभिः कौमारै बिहारे व्रजे कौमारं जहतुः ॥५९॥

अनुवाद— इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी, आखँ मिचौनी, पुल बाधना तथा बन्दरों के समान उछलना आदि कुमारावस्थोचित विहारों को करते हुए व्रज में अपनी कौमारावस्था को बिताये ॥५९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के वत्सासुर एवं बकासुर वध नामक ग्यारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।११।।

भावार्थ दीपिका

वत्सयूथगतं हत्वा वत्सदम्भासुरं हरिः । मुनियूथगतं चाहन्नग्रण्यं दम्भिनां बकम् ॥१॥ ॥५९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वाधें भावार्थदीपिकायां टीकायां एकादशोऽध्यायः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

बछड़ों के समूह में मिले हुए वत्सासुर को मारकर जो अभिमानियों में अग्रणी था बकासुर को भी श्रीहरि ने मार दिया ॥१॥ ॥५९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के ग्यारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।११।।

बारहवाँ अध्याय

अधासुर का वध

श्रीशुक उवाच

क्वचिद्वनाशाय मनो दधद्व्रजात्प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ।
प्रबोधयन् शृङ्गरवेण चारुणा विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥१॥

अन्वयः— क्वचित् वनाशाय मनोदधत् प्रातः समुत्थाय व्यस्यवत्सपान् चारुणा शृङ्गीरवेण प्रबोधयन् हरिः व्रजात् वत्स पुरससरः विनिर्गतः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् एक दिन वन में ही कलेवा करने की इच्छा से श्रीनन्दनन्दन श्रीहरिः, प्रातः काल ही जगकर सिंगी नामक वाद्य की मधुर ध्वनि से अपने मित्र वत्स चराने वालों को जगाकर बछड़ों को आगे करके व्रजमण्डल से बाहर निकल गये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशे तु महासर्पवपुर्धरमघासुरम् । वत्सपालगिलं क्रुद्धो गलेऽहन्निति वर्ण्यते । महाबकगलक्रीडा केवलस्य न कौतुकम्। इतीवाघासुरमुखे ससखः प्राविशद्धरिः । क्वचित्कदाचिद्वनाशाय वने एव प्रथमं भोजनं कर्तुम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बारहवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि महासर्प (अजगर) का शरीर धारण किए हुए अघासुर जो सभी बछड़ों के चरवाहों को निगल गया था उस पर क्रुद्ध हुए भगवान् श्रीकृष्ण उसके गले में अपना आकार बढ़ाकर उसको मार डाले । बकासुर के गले में जाकर भगवान् ने जो लीला की वह तो अकेले की थी वह कौतुक पूर्ण नहीं थी मानो इसी बात को सोचकर श्रीभगवान् अपने मित्रों के साथ अधासुर के मुख मे प्रवेश करके गलक्रीडा के द्वारा उसका विनाश किए । एक दिन वन में प्रात:कालीन भोजन करने की इच्छा से ॥१॥

तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः ।
स्वान्स्वान्सहस्रोपरिसंख्ययान्वितान्पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥२॥

अन्वयः— तेनैव साकं सुसिग्वेत्र विषाण बेणवः स्निग्धः सहस्रः पृथुकाः स्वान् स्वान् सहस्रोपरिसंख्ययान्वितान् वत्सान् पुरस्कृत्य मुदाविनिर्ययुः ॥२॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के साथ ही उनके प्रेमी सहस्रों ग्वाल बाल सुन्दर छीके, बेंत सिंगी, और वंशी लेकर अपने हजारों बछड़ों को आगे करके प्रसन्नता पूर्वक अपने घर से निकल पड़े ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तेनैव शृङ्गरवेण श्रीकृष्णेन वा सह । पृथुका बालाः स्निग्धाः स्नेहयुक्ताः । शिक् शिक्यम् । रम्याः शिग्वेत्रादयो येषां ते । सहस्राधिकसंख्यायुक्तान्वत्सान् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उस सिंगी की ध्वनि के साथ अथवा भगवान् श्रीकृष्ण के साथ, उनके प्रेमी ग्वाल बाल शिक अर्थात् घी के, मनोहर छींके बेंत आदि लेकर हजारों की संख्या में बछड़ों को ॥२॥

कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान् । चारयन्तोऽर्भलीलाभिर्विजह्रुस्तत्र तत्र ह ॥३॥

अन्वयः— असंख्यातैः कृष्णवत्सैः स्ववत्सकान् यूथीकृत्य चारयन्तः तत्र तत्र अर्भलीलाभिः विजहुः ॥३॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के असंख्य बछड़ों में अपने बछड़ों को मिलाकर चराते हुए स्थान स्थान पर बाल लीलाओं को करते हुए विचरण करने लगे ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

फलप्रवालस्तबकसुनमः पिच्छधातुभिः । काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥४॥

अन्वयः— काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अपि फलप्रवालस्तवकसुमनःपिच्छधातुभिः अभूषयन् ॥४॥

अनुवाद— यद्यपि वे सब ग्वाल बाल काँच, घुघली, मणि और सुवर्ण के भूषणों से भूषित थे फिर भी उन सबों ने अपने को फलों कोपलों गुच्छों से रंग विरंगे फूलों मयूर पंङ्खों से तथा गेरु आदि धातुओं से अपने को सजाया ॥४॥

भावार्थ दीपिका

काचादिभिः पूर्वं मातृभिर्भूषिता अपि फलादिभिरात्मानमभूषयन्नित्यर्थः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि ग्वाल बालों की माताओं ने कंघों आदि से अलंकृत किया था फिर भी वे सब अपने को फल आदि से अलंकृत किए ॥४॥

मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन् ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः । तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः ।।५।।

अन्वयः— अन्योन्यशिक्यादीन् मुष्णन्तः ज्ञातान् आरात् च चिक्षिपुः तत्रत्याश्च पुनर्दूरात् पुनः हसन्तः च ददुः ।।५।।

अनुवाद— परस्पर में एक दूसरे का छिंका चुरा लेता था, जब उसका पता चल जाता तो वह दूसरे के पास फेंक देता वहाँ वाला बालक उससे भी दूर बालक के पास फेंक देता और अन्त में हँसते हुए वह उसको दे देते थे ।।५।।

भावार्थ दीपिका

मुष्णन्तश्चोरयन्तः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

मुष्णान्तः अर्थात् चुरा लेते थे ।।५।।

यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् । अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ।।६।।

अन्वयः— यदि कृष्णः वनशोभेक्षणाय दूरं गतः तदा अहं पूर्वम् अहं पूर्वम् इति तं संस्पृश्य रेमिरे ।।६।।

अनुवाद— यदि भगवान् श्रीकृष्ण बन की शोभा को देखने के लिए दूर चले जाते थे तो पहले मैं छूऊँगा, पहले मैं छूऊँगा इस तरह से सब दौड़कर उनके पास जाते थे और उनका स्पर्श करके आनन्दमग्न हो जाते थे।।६।।

भावार्थ दीपिका

यदि दूरं गतः कृष्णो भवति तर्हि ।।६।।

भाव प्रकाशिका

यदि भगवान् कृष्ण दूर चले जाते थे तब ।।६।।

केचिद्वेणून्वादयन्तो ध्मान्तः शृङ्गाणि केचन । केचिद्भृङ्गैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ।।७।।

अन्वयः— केचित् वेणून् वादयन्तः केचन शृङ्गाणि ध्मान्तः केचित् भृङ्गैः गायन्तः, परे कोकिलैः कूजन्तः ।।७।।

अनुवाद— कोई बाँसुरी बजाता था तो कोई सिंगी ही फूंकता था, कोई भौरों के साथ गुनगुनाता था तो कोई कोयलों के साथ स्वर मिलाकर कुहू-कुहू करता था ।।७।।

भावार्थ दीपिका

ध्मान्तो वादयन्तः । भृङ्गैः सह ।।७।।

भाव प्रकाशिका

ध्मान्तः अर्थात् बजाता था । भ्रमरों के साथ ।।७।।

विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधुहंसकैः । बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः ।।८।।

अन्वयः— विच्छायाभिः प्रभावन्तः हंसकैः साधु गच्छन्त बकैः उपविशन्तः च कलापिभिः नृत्यन्तश्च ।।८।।

अनुवाद— कोई पछियों की छाया के साथ दौड़ता था, कोई हंसों के साथ चाल मिलाकर मनोहर गति से चलता था, तो कोई बकों के साथ उन्हीं के तरह आँख बंद करके बैठ जाता था, और कोई मूयरों के साथ उन्हीं के समान नाचता था ।।८।।

भावार्थ दीपिका

विच्छायाभिः पक्षिच्छायाभिः । कलापिभिर्मयूरैः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

विच्छायाभिः अर्थात् पक्षियों की छाया के साथ कलापिभिः अर्थात् मयूरों के साथ ।।८।।

विकर्षन्तः कीशवालानारोहन्तश्च तैर्द्रुमान् । विकुर्वन्तश्च तैः साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु ॥९॥

अन्वयः— कीश बालान् विकर्षन्तः तैः द्रुमान् आरोहन्तः तैः साकं विकुर्वन्तः पलाशिषु प्लवन्तः च ॥९॥

अनुवाद— कोई बन्दरों के बच्चों की पूंछ पकड़कर खींचता था, तो कोई बन्दरों के साथ ही पेड़ों पर चढ़ता था, कोई बन्दरों के साथ मुँह बनाता था और कोई बन्दरों के ही साथ एक डाल से दूसरी डाल पर छलांग लगाता था॥९॥

भावार्थ दीपिका

कीशवालान् वृक्षशाखासु लम्बमानानि वानरलाङ्गूलान्याकर्षन्तो लाङ्गूलममुञ्चन्तस्तैः सह द्रुमानारोहन्तः । विकुर्वन्तो दन्तदर्शनभ्रूविजृम्भादिभिस्तैः सह विकारान्कुर्वन्तः । पलाशिषु वृक्षेषु प्लवन्तः शाखायाः शाखान्तरमुद्गच्छन्तः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

बन्दर के बच्चों की पूंछे वृक्ष की शाखाओं पर लटकती थीं उनको खीचता था । पूंछ को छोड़े बिना ही उन सबों के साथ पेड़ों पर कोई चढ़ता था । विकुर्वन्तः अर्थात् बन्दरों के ही समान दाँत दिखाता था तथा भौहे मटकाता था, इस तरह से बन्दर का अनुकरण करता था । पलाशिषु अर्थात् वृक्षों पर एक शाखा से दूसरी शाखा पर छलांग लगाता था ॥९॥

साकं भेकैर्विलङ्घन्तः सरित्प्रस्रवसंप्लुताः । विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रतिस्वनान् ॥१०॥

अन्वयः— केचित् सरित्प्रस्रवसंप्लुताः भेकैः विलङ्घन्तः, प्रतिच्छायाः विहसन्तः प्रतिस्वनान् शपन्तः च ॥१०॥

अनुवाद— कुछ ग्वाल बाल नदी की पानी में छपका खेलते थे, कोई मेढ़कों के साथ उछलता था, कोईअपनी छाया को देखकर हंसता था तो कोई अपनी ही प्रतिध्वनि को बुरा भला कहता था ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिच्छायाः प्रतिबिम्बानि ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

प्रतिच्छायाः आर्थात् प्रतिबिम्बों को ॥१०॥

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन ।
मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥११॥

अन्वयः— इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या, दास्यं गतानां परदैवतेन, मायाश्रितानां नरदारकेण साकं कृतपुण्यपुञ्जाः विजह्रुः॥११॥

अनुवाद— इस तरह ब्रह्मज्ञानी सत्पुरुषों के लिए ब्रह्मानन्द के मूर्तिमान अनुभव स्वरूप, दास्य भाव सम्पन्न भगवद् भक्तों के लिए परा देवता स्वरूप, माया से मोहित अज्ञानी जीव के लिए, मनुष्य बालक स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण के साथ, अत्यधिक पुण्यवान् वे सभी ग्वाल बाल, अनेक प्रकार की क्रीडा किया करते थे ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तानतिविस्मितः श्लोकद्वयेनाभिनन्दति-इत्थमिति । सतां विदुषां ब्रह्म च तत्सुखं चानुभूतिश्च तया । स्वप्रकाशपरमसुखेनेत्यर्थः। भक्तानां परदैवतेनात्मप्रदेन नाथेन मायाश्रितानां तु नरदारकतया प्रतीयमानेन सह विजह्रुः । कृतानां पुण्यानां पुञ्जा राशयो येषां ते । ब्रह्मविदां तदनुभव एव भक्तानामतिगौरवेणैव भजनम् । एते तु तेन सह सख्येन विजहुः । अहो भाग्यमिति भावः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

उन ग्वाल बालों के निस्सीम पुण्यमय सौभाग्य का अनुभव करके अत्यधिक आश्चर्यित श्रीशुकदेवजी उन सबों का वर्णन **इत्थम् इत्यादि** दो श्लोकों से करते हैं— सत् पुरुषों के ब्रह्म, ब्रह्मानन्द तथा अनुभव स्वरूप अर्थात्

स्वयम्प्रकाश परमसुख स्वरूप के साथ, भगवद् भक्तों के परदैवत अर्थात् आत्म प्रदान करने वाले नाथ स्वरूप के साथ, माया से मोहित अज्ञान जीवों के लिए मनुष्य बालक रूप से प्रतीत होने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के साथ वे सब बिहार करते थे। जिन सबों के अपने पूर्व जन्म में किए गये पुण्यों के अनेक समूह हैं ऐसे ग्वाल बाल श्रीभगवान् के साथ विहार करते थे। ब्रह्मज्ञानियों का वह अनुभव ही भक्तों के अत्यन्त गौरव स्वरूप होने के कारण भजन के विषय हैं, ये ग्वाल बाल उनके साथ मित्र भाव से विहार करते हैं। अहो भाग्य है इन ग्वाल बालों का॥११॥

यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो धृतात्मभिर्योगिभिरप्यगम्यः ।
स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टमतो व्रजौकसाम् ॥१२॥

अन्वयः— यत् पादपांसुः बहुजन्मकृच्छ्रतः धृतात्मभिः योगिभिः अपि अलभ्यः स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः व्रजौकसाम् अतः दिष्टम् किं वर्ण्यते ॥१२॥

अनुवाद— अनेक जन्मों तक कठोर तपस्या करके जिन योगि पुरुषों ने अपनी इन्द्रियों तथा अन्तःकरण को वश में कर लिया है, उन योगियों के लिए भी जिन श्रीभगवान के चरण कमलों की धूलि अप्राप्य है, वे ही श्रीभगवान् जिन व्रजवासियों ग्वाल बालों की आँखों के सामने रहकर सदा क्रीडा करते है, इससे बढ़कर उनके सौभाग्य की अधिक महिमा क्या हो सकती है ?॥१२॥

भावार्थ दीपिका

बहुजन्मभिः कृच्छ्रेण धृत आत्मा मनो यैस्तैरपि ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अनेक जन्मों तक कठोर तपस्या के द्वारा जिन लोगों ने अपने मन को वश में कर लिया है यह बहु जन्म कृच्छ्रतो धृतात्मभिः का अर्थ है ॥१२॥

अथाघनामाभ्यपतन्महासुरस्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः ।
नित्यं यदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते ॥१३॥

अन्वयः— अथ निजजीवतेप्सुभिः पीतामृतैः अमरैः अपि नित्यं यदन्तः प्रतीक्ष्यते, एतादृशः तेषां सुखकीडनवीक्षणाक्षमः, अधनामामहासुरः अभ्यपतत् ॥१३॥

अनुवाद— अपने जीवन की रक्षा करने के इच्छुक, जिन लोगों ने अमृत पान कर लिया है, इस प्रकार के देवता भी सदा जिसकी मृत्यु की प्रतीक्षा करते थे, इस प्रकार का महाअसुर उन ग्वाल बालों की क्रीडा देखने में असमर्थ, अर्थात् उन ग्वाल बालों की क्रीडा देखकर जिसको जलन होने लगी इस प्रकार का अघ नामक महाअसुर वहाँ पर आया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

सुखक्रीडनवीक्षणेन क्षमा यस्य सः। कथंभूतः। यस्यान्तरन्तरं छिद्रं पीतामृतैरपि ततो मृत्युभीतैरमरैः प्रतीक्ष्यते कथं मरिष्यति कदा वेति। यद्वा कथंभूतं सुखक्रीडनम्। यदन्तर्हृदये अमरैः प्रतीक्ष्यते विचिन्त्यते पीतामृतैरपि पुनर्निजजीवितेप्सुभिः। अयं भावः-नामृतपानमात्रेण जीवनं सफलं भवति किंतु भगवल्लीलानुस्मरणेनेति तदेव नित्यमन्तश्चिन्त्यत इति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

उन ग्वाल बालों की सुख पूर्वक की जाने वाली क्रीडा को देखकर जो जलने लगा, जिसकी मृत्यु की प्रतीक्षा वे देवता भी सदा किया करते थे जिन लोगों ने अमृतपान कर लिया था। वे अघासुर के द्वारा होने वाली मृत्यु से भयभीत रहते थे। वे यही सोचते रहते थे कि यह कब मरेगा। अथवा कैसी सुखमयी क्रीडा ? जिसकी प्रतीक्षा

अमृत पान किए हुए देवता भी अपने अन्तः करण में किया करते थे । किं पुनः जीवन प्राप्त करने की इच्छा करते थे देवगण । कहने का अभिप्राय है कि अमृतपान कर लेने मात्र से जीवन सफल नहीं होता है, अपितु श्रीभगवान् की स्मरण करने से ही सफल होता है । वही नित्य है इस तरह से देवता नित्य चिन्तन करते थे ॥१३॥

दृष्ट्वार्भकान्कृष्णमुखानघासुरः कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः ।
अयं तु मे सोदरनाशकृत्तयोर्द्वयोर्ममैनं सबलं हनिष्ये ॥१४॥

अन्वयः— कंसानुशिष्टः बकीवकानुजः अघासुरः कृष्णमुखान् अर्भकान् दृष्ट्वा अयं तु मे सोदर नाशकृत् मम तयोः द्वयोः एनं सबलं हनिष्ये ॥१४॥

अनुवाद— कंस के द्वारा प्रेषित अघासुर बकी (पूतना) और बकासुर दोनों का छोटा भाई था वह भगवान् श्रीकृष्ण आदि बालकों को देखकर मन में सोचने लगा मेरे उन दोनों के बदले में मैं श्रीकृष्ण इनकी सेना (बछड़े और बछड़ों के चरवाहों) सबों को मार डालूँगा ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

कृष्णप्रमुखानर्भकान् दृष्ट्वा स इति व्यवस्य निश्चित्याजगरं वपुर्धृत्वा तेषां ग्रसनाशया पथि व्यशेतेति तृतीयेनान्वयः । कंसेनानुशिष्टः प्रहितः । बकी पूतना । कथं व्यवस्य तदाह-अयं त्विति सार्धेन । मम तयोर्द्वयोः सोदरयोः स्थाने एनं कृष्णं सबलं ससैन्यं वत्सतत्पालसहितं हनिष्यामि ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

कृष्ण इत्यादि सभी बालकों को देखकर अघासुर ने निश्चित कर लिया कि यह वही है, और उसने अजगर का शरीर धारण करके उन सबों को निगल जाने की आशा से रास्ते में सो गया । आगे के तीसरे श्लोक में आये हुए व्यशेत पद के साथ इसका अन्वय है । **कंसानुशिष्टः** अर्थात् कंस के द्वारा प्रेषित, बकी (पूतना) उसने कैसा निश्चय किया इसको **अयं तु इत्यादि** श्लोक के उत्तरार्द्ध के द्वारा कहा गया है । मेरा उन दोनों सोदरों के स्थान पर इस श्रीकृष्ण को मैं इसके बछड़े और बछड़ों के चरवाहों के साथ मार डालूँगा ॥१४॥

एते यदा मत्सुहृदोस्तिलापः कृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः ।
प्राणे गते वर्ष्मसु का नु चिन्ता प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ॥१५॥

अन्वयः— एते यदा मम सुहृदोः तिलापः कृताः तदा व्रजौकसः नष्टसमाः ये हि प्राणभृतः ते प्रजासवः प्राणे गते वर्ष्मसु का नु चिन्ता ॥१५॥

अनुवाद— जब ये सब मेरे भाई और बहन के मृत तर्पण की तिलांजलि बन जायेंगे तब सभी ब्रजवासी अपने आप मरे जैसे हो जायेंगे । प्राणियों के प्राण उनके सन्तान ही होते हैं, जब प्राण ही नही रहेगा तो फिर शरीर कैसे रहेगा ? अतएव इस कृष्ण के मर जाने से वज्रवासी अपने आप मर जायेंगे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

ननु तथापि व्रजस्थास्त्ववशिष्येरन्नेत्याह-एत इति । तिलापः कृतास्तिलोदकतया कल्पिताः । वर्ष्मसु देहेषु । प्रजा एवासवो येषां ते तथा ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि कृष्ण के मर जाने पर व्रजवासी तो बचे ही रहेंगे, इस पर वह **एते० इत्यादि** श्लोक से कहता है । **तिलापः कृताः** अर्थात् मृततर्पण की तिलाञ्जलि बन जायेंगे । वर्ष्मसु अर्थात् निष्प्राण शरीरों के विषय में **प्रजासवाः** अर्थात् सन्तान ही प्राण होते हैं ॥१५॥

इति व्यवस्याजगरं बृहद्वपुः सयोजनायाममहाद्रिपीवरम् ।
धृत्वाद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा पथि व्यशेत ग्रसनाशया खलः ।।१६।।

अन्वयः— तदा इति व्यवस्य स खलः योजनायाममहाद्रिपीवरं आजगरं बृहद्वपुः धृत्वा अद्भुतं व्यात्त गुहाननं ग्रसनाशय पथिव्यशेत ।।१६।।

अनुवाद— उस समय वह दुष्ट इस प्रकार से निश्चय करके एक योजन लम्बा तथा पर्वत के समान मोटा अजगर का शरीर धारण करके तथा गुफा के समान अद्भुत अपना मुँह खोलकर सबों को निगल जाने की इच्छा से रास्ते में लेट गया ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

सयोजनायामं योजनप्रमाणेन दैर्घ्येण युक्तं च तन्महाद्रिवत्पीवरं च । व्यात्तं प्रसारितं गुहातुल्यमाननं यस्मिंस्तत् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

एक योजन लम्बा तथा महापर्वत के समान मोटा । वह अपना अद्भुत मुँह गुफा के समान खोले हुए था।।१६।।

धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो दर्याननान्तो गिरिशृङ्गदंष्ट्र ।
ध्वान्तान्तरास्यो वितता ध्वजिह्वः परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ।।१७।।

अन्वयः—धराधरोष्ठः जलदोत्तरष्ठः दर्याननान्तः गिरिशृङ्ग दंष्ट्रः, ध्वान्तान्तरास्यः वितताध्व जिह्वः परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ।।१७।।

अनुवाद— वह अपना नीचे का ओष्ठ पृथिवी से लगा रखा था, और ऊपर का ओष्ठ मेघों से लगा रखा था, उसके जबड़े कन्दराओं के समान थे, और उसके दाँत पर्वत के शिखर के समान प्रतीत होते थे, उसके मुख के भीतर घोर अन्धकार था उसकी जीभ चौड़ा लाल मार्ग के समान थी, और आँखे दावाग्नि के समान दहक रही थीं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

अद्भुतमिति यदुक्तं तद्दर्शयितुं विशिनष्टि । धरायामधरोष्ठो यस्य सः । जलदेषूत्तरोष्ठो यस्य सः । दर्याविवाननस्यान्तौ सृक्किणी यस्य सः । गिरेः शृङ्गाणीव दंष्ट्रा यस्य सः । ध्वान्तवदन्तरास्यं यस्य सः । वितताध्ववज्जिह्वा यस्य सः । परुषानिलवच्छ्वासो यस्य सः । दववदीक्षणयोरुष्णः, दाववद्दृष्टिरित्यर्थः । परुषानिलश्वासश्चासौ दवेक्षणोष्णश्च तथा ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

अधासुर के मुँह को सोलहवे श्लोक में अद्भुत कहा गया है, उसी का विश्लेषण इस श्लोक में किया जारहा है । उसका अधरोष्ठ पृथिवी से लगा था और ऊपर का ओष्ठ मेघों से सटा था । उसके जबड़े गुफा के समान थे, मुख के भीतरी भाग में घोर अन्धकार था, उसकी जीभ चौड़े मार्ग के समान थी, उसकी श्वास रुक्ष आँधी के समान था, उसके नेत्र दावाग्नि के समान दहक रही थी । उसका श्वास रुक्ष वायु के समान था । उसके नेत्र दवाग्नि के समान उष्ण थे ।।१७।।

दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावनश्रियम् । व्यात्ताजगरतुण्डेन ह्युत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया ।।१८।।

अन्वयः— तं तादृशं दृष्ट्वा सर्वे वृन्दावनश्रियं मत्वा लीलया, व्यात्ताजगरतुण्डेन हि उत्प्रेक्षन्ते स्म ।।१८।।

अनुवाद— अघासुर को उस प्रकार का देखकर उन बालकों को लगा कि यह भी कोई वृन्दावन की शोभा है । लीला वशात् वे सब परस्पर में कहने लगें कि लगता है कि जैसे यह किसी अजगर का मुँह है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

वस्तुतोऽजगरमेव व्यात्ततुण्डं दृष्ट्वा वृन्दावनस्य श्रीः संपदेषेति भ्रान्त्या मत्त्वा विपरीतं व्यात्ताजगरतुण्डसादृश्येनोत्प्रेक्षितवन्तः।।१८।।

भाव प्रकाशिका

वस्तुतः मुँह खोले हुए अजगर के ही देखकर उन सबों ने मान लिया कि यह भी वृन्दावन की कोई शोभा है इस भ्रम के कारण उसके ठीक विपरीत मुँह खोले हुए अजगर के मुँह के रूप में उसकी उत्प्रेक्षा करने लगे।।१८।।

अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरः स्थितम् । अस्मत्संग्रसनव्यात्तव्यालतुण्डायते न वा ।।१९।।

अन्वयः— अहो मित्राणि गदत पुरः स्थितम् सत्त्व कूटम् अस्मत् संग्रसन व्यात्त व्यालतुण्डायते न वा ।।१९।।

अनुवाद— किसी ने कहा अरे मित्रों बतलाओं हमारे सामने यह कोई जीव सा बैठा है यह हमलोगों को निगलने के लिए खुले हुए किसी अजगर के मुँह जैसा नहीं है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

उत्प्रेक्षामेव प्रश्नोत्तराभ्यामाहुः-अहो इति । सत्त्वकूटं सत्त्वाभासमिदं वा न वा । तत्राप्यस्मत्संग्रसनाय व्यात्तं यद्यवालतुण्डं तद्वा दाचरति वा न वा ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्नोत्तर के माध्यम से उन सबों ने उत्प्रेक्षा को ही बतलाया । यह जीव जैसा लगता है कि नहीं उसमें भी हमलोगों को निगल लेने के लिए सर्प के मुख जैसा लगता है कि नहीं ।।१९।।

सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद्घनम् । अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रतिच्छाययाऽरुणम् ।।२०।।

अन्वयः— सत्यम् अर्ककरारक्तम् उत्तराहनुवद् घनम् अधराहनुवद्ररोधः तत् प्रतिच्छायया अरुणम् ।।२०।।

अनुवाद— दूसरे ने कहा ठीक कहते हो, सूर्य की किरणों के पड़ने से ये मेघ जो लाल-लाल हो गये हैं, वह मालुम पड़ता है जैसे यह सर्प का ऊपरी ओष्ठ हो, उन बादलों की छाया से यह नीचे की भूमि लालसी दिख रही है । वह नीचे का ओष्ठ मालुम पड़ता है ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

निश्चितं तथैवेत्याहुः-सत्यमिति । अर्ककरैरारक्तं घनमुत्तरोष्ठवत्पश्यत । तस्य घनस्य प्रतिच्छाययाऽरुणं रोधः स्थलमधरोष्ठवत्पश्यत । पश्यतेति सर्वत्रान्वेति ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

दूसरो ने कहा निश्चित रूप से वैसा ही लगता है । देखो सूर्य की किरणों से लाल बना हुआ मेघ उसका ऊपर ओठ लगता है । उस मेघ की छाया से नीचे लाल प्रतीत होने वाली भूमि अधरोष्ठ सी लगती है पश्यत पद का सर्वत्र अन्वय होगा ।।२०।।

प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे । तुङ्गशृङ्गालयोऽप्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत ।।२१।।

अन्वयः— सव्यासव्ये नगोदरे सृक्विभ्यां प्रतिस्पर्धेते तुङ्गशृङ्गालय अपि एताः तद् दंष्ट्राभिः प्रतिस्पर्धेतं इति पश्य।।२१।।

अनुवाद— इस पर्वत की दायीं और बायीं गुफाएँ सर्प के जबड़ों जैसी लगती हैं और ये ऊँची-ऊँची शिखरे सर्प के दाँत जैसी लगती हैं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

सृक्किभ्यामोष्ठप्रान्ताभ्यां प्रतिस्पर्धेते तुल्यतया वर्तेते । नगोदरे गिरिदर्यौ । एतास्तुङ्गशृङ्गालयस्तस्य दंष्ट्राभिः स्पर्धमानाः।।२१।।

भाव प्रकाशिका

सृक्विभ्यां अर्थात् ओष्ठों के अन्त में रहने वाले जबड़ों से प्रतिस्पर्धा करते हैं । नगोदरे अर्थात् पर्वत की गुफाएँ । ये ऊँचे पर्वत शिखर सर्प के दाँतों जैसे लगते हैं ॥२१॥

आस्तृतायाममार्गोऽयं रसनां प्रति गर्जति । एषामन्तर्गतं ध्वान्तमेतदप्यन्तराननम् ॥२२॥

अन्वयः— अयम् आस्तृतायाममार्गः रसनां प्रतिगर्जति एकामन्तर्गतं ध्वान्तं मेतदप्यन्तराननम् ॥२२॥

अनुवाद— किसी ने कहा कि यह लम्बा, चौड़ा मार्ग सर्प के जीभ जैसी लगती है और इन सबों के भीतर विद्यमान अन्धकार सर्प के मुख के भीतर विद्यमान अन्धकार जैसा लगता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

आस्तृतायाममार्गो विस्तृतो दैर्ध्यवान्मार्गः । प्रतिगर्जति प्रतिस्पर्धते । एषां शृङ्गाणामन्तर्गतं मध्यगतं ध्वान्तमेतदन्तराननमाननस्य मध्यं प्रति गर्जति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

विस्तृतायाम मार्गः अर्थात् चौड़ा और लम्बा मार्ग, प्रति गर्जति अर्थात् प्रतिस्पर्धा करता है । इन शिखरों के भीतर बीच में विद्यमान अन्धकार सर्प के मुख के भीतर विद्यमान अन्धकार के समान मालुम पड़ता है ॥२२॥

दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद्भाति पश्यत । तद्दग्धसत्त्वदुर्गन्धोऽप्यन्तरामिषगन्धवत् ॥२३॥

अन्वयः— पश्यत अयं दावोष्ण खरवात श्वासवद्भाति, तद् दग्धसत्व दुर्गन्धः अपिअन्तरमिषगन्धवत् भातीत्यर्थ॥२३॥

अनुवाद— वनाग्नि की गर्मी से युक्त गर्म-गर्म और तीक्ष्ण आने वाली हवा ही लगती कि यह अजगर के श्वास की हवा और वनाग्नि में दग्ध मांस के सड़ जाने से आने वाली दुर्गन्ध ही लगता है कि जैसे अजगर के पेट में मरे हुए जीवों के मांस की दुर्गन्धि हो ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

दावेनोष्णः खरो वातोऽयम् । तेन दावाग्निनां दग्धानां सत्त्वानां यो दुर्गन्धः स एव सर्पान्तर्गतामिषगन्धवद्भाति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

दावाग्नि की उष्ण और तीक्ष्ण वायु है । दावाग्नि से जले हुए जीवों के दुर्गन्धि ही सर्प के भीतर विद्यमान मांस की दुर्गन्ध के समान प्रतीत होती है ॥२३॥

अस्मान्किमत्र ग्रसिता निविष्टानयं तथा चेद्बकवद्विनङ्क्ष्यति ।
क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं वीक्ष्योद्धसन्तः करताडनैर्ययुः ॥२४॥

अन्वयः— निविष्टान् अस्मान् अयं अत्र ग्रसिता किम् तथा चेत् क्षणादनेन विनङ्क्ष्यति इति बकारिउशन् मुखं वीक्ष्य हसन्तः करताडनैः ययुः ॥२४॥

अनुवाद— इसमें प्रवेश किए हुए हमलोगों को यह निगल जायेगा क्या, और यदि ऐसा किया तो क्षणभर में ही यह इस कन्हैया के द्वारा विनष्ट हो जायेगा । इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण के मनोहर मुख को देखते हुए वे सब ताली बजाकर उसके भीतर घुस गये ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

एवं सन्तमेवाजगरमन्यथोत्प्रेक्ष्य निर्भया ययुः। किं ग्रसिता ग्रसिष्यति। अनेन श्रीकृष्णेन हन्त्रा। बकारेरुशत्कमनीयं मुखम्॥२४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह विद्यमान अजगर के ही अन्यथा उत्प्रेक्षा करके वे सब निर्भय होकर घुस गये। किं ग्रसिता अर्थात् क्या निगल लेगा ? इस मारने वाले श्रीकृष्ण के द्वारा, बकरेरुशन्मुखम् अर्थात् बकासुर के शत्रु भगवान् श्रीकृष्ण के कमनीय (मनोज्ञ) मुख को देखकर ॥२४॥

इत्थं मिथोऽतथ्यमतज्ज्ञभाषितं श्रुत्वा विचिन्त्येत्यमृषा मृषायते ।
रक्षो विदित्वाऽखिलभूतहृत्स्थितः स्वानां निरोद्धुं भगवान्मनो दधे ॥२५॥

अन्वयः— इत्थं मिथः अतथ्यम् अतज्ज्ञं भाषितं श्रुत्वा विचिन्त्य अमृषामृषायते अखिलभूत हृतस्थितः रक्षोविदित्वा भगवान् स्वानां निरोद्धुं मनोदधे ॥२५॥

अनुवाद— इस तरह परस्पर में की हुई भ्रमपूर्ण बातों को सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने सोचा कि इन सबों को तो सत्य सर्प भी मिथ्या प्रतीत होता है, सभी जीवों के अन्तःकरण में निवास करने वाले भगवान् उसको राक्षस जानकर अपने ग्वाल बालों को उससे बचाने को सोचे ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अमृषा वस्तुतः सर्पवपुरसुर एव मृषायते स्वानां सर्पसादृश्यगोचरत्वेन प्रतीयते इति तान्निरोद्धुं वारयितुं यावन्मनो दधे तावत्प्रविष्टा इत्युत्तरेणान्वयः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

सत्य सर्प शरीरधारी असुर मिथ्या के समान लगता है यह सर्प के सदृश प्रतीत होने वाला यह सर्प है इस तरह से अपने ग्वाल बालों को जब तक भगवान् रोकना चाहे तब तक तो वे सब उसमें प्रवेश कर चुके थे, इस तरह से अगले श्लोक से इसका अन्वय है ॥२५॥

तावत्प्रविष्टास्त्वसुरोदरान्तरं परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः ।
प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं हतस्वकान्तस्मरणेन रक्षसा ॥२६॥

अन्वयः— तावत् सवत्साः शिशवः तु असुरोदरान्तरं प्रविष्टाः परं बकारिवेशनं प्रतीक्षमाणेन हत स्वकान्त स्मरणेन रक्षसा गीर्णा न ॥२६॥'

अनुवाद— जब तक श्रीभगवान् इस तरह से रोकना चाहे तब तक तो अपने बछड़ों के साथ उस अधासुर के पेट में वे सब प्रवेश कर चुके थे। किन्तु बकासुर को मारने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के प्रवेश की प्रतीक्षा करने तथा अपने मरे बान्धवों का स्मरण करके उन सबों को निगला नहीं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तावत्प्रविष्टा एवं केवलं, नतु तेन गीर्णा गिलिताः 'जीर्णाः' इति पाठेऽपि स एवार्थः। कथंभूतेन। हतयोः स्वकयोरन्तं स्मरत्यनुध्यायतीति तथा तेन। अत एव बकारेः श्रीकृष्णस्य प्रवेशं प्रतीक्षमाणेन ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

तब तक वे केवल प्रवेश ही किए थे उन सबों को निगल कर पचाया नहीं था। इस तरह से पाठ होने पर अर्थ वही होगा। क्योंकि वह अपने मरे हुए लोगों का स्मरण करके बकारि भगवान् श्रीकृष्ण के प्रवेश करने की प्रतीक्षा कर रहा था ॥२६॥

तान्वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो ह्यनन्यनाथान्स्वकरादवच्युतान् ।
दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान्घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥२७॥

अन्वयः— सकला भयप्रदः कृष्णः अनन्यनाथान् स्वकरादवच्युतान् मृत्योः जठराग्नि घासान् तान् दीनान् वीक्ष्य घणर्दिताः दिष्टकृतेन विस्मितः ॥२७॥

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् के अभय प्रदान करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण सोचे कि इन सबों का एक मात्र रक्षक मैं ही हूँ और अब ये सब मेरे हाथ से निकल चुके हैं तथा अधासुर की जाठराग्नि के इन्धन बने हुए दीन हो गये हैं, दैव की इस विचित्र लीला पर भगवान् श्रीकृष्ण को आश्चर्य हुआ और उनका हृदय दया से द्रवित हो गया ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

स्वकरादवच्युतान्विनिःसृतान् । विस्मितः सत्कृत्यं किमत्रेत्यादि विचिन्तय तत्रोपायं ज्ञात्वा स्वयमप्यविशदित्यन्वयः॥२७॥

भाव प्रकाशिका

वे सभी ग्वाल बाल श्रीभगवान् के हाथ से निकल चुके थे । दैव के कृत्यों पर आश्चर्यित श्रीभगवान् विचार करके और उपाय को जानकर स्वयं भी अघासुर के मुख में प्रवेश कर गये ॥२७॥

कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं न वा अमीषां च सतां विहिंसनम् ।
द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्य तज्ज्ञात्वाऽविशत्तुण्डमशेषदृग्घरिः ॥२८॥

अन्वयः— अत्र किं कृत्यम् येन अस्य खलस्य जीवनं न, वा अमीषां सतां विहिंसनम् न द्वयं कथं स्यात् इति संविचिन्त्य, तज्ज्ञात्वा अशेष दृक्हरिः तुण्डम् अविशत् ॥२८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् यह सोचने लगे कि अब यहाँ पर कौन सा काम किया जाय जिससे कि इस दुष्ट का जीवन भी न बचे और सत् स्वभाव वाले ग्वाल बालों की हिंसा भी न हो ये दोनों काम कैसे हो सकते हैं? इन दोनों बातों का अच्छी तरह से विचार करके सबकुछ जानने वाले श्रीभगवान् उसके मुख में प्रवेश कर गये॥२८॥

भावार्थ दीपिका

कथं विचिन्त्य । अस्य जीवनममीषां च विहिंसनमिति द्वयं वै निश्चितं कथं न स्यादिति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

किस प्रकार से विचार करके ? तो इसका उत्तर है कि इस दुष्ट का जीवन और इन ग्वाल बालों की हिंसा दोनों नहीं हो सकते हैं ॥२८॥

तदा घनच्छदा देवा भयाद्धा हेति चुक्रुशुः । जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवाः ॥२९॥

अन्वयः— तदा घनच्छदा देवा भयात् हा हेति चुक्रुशुः, ये च कंसाद्याः अघबान्धवाः कौणयाः ते जहृषुः ॥२९॥

अनुवाद— उस समय बादल में छिपे हुए देवता भय के कारण हाय ! हाय !! करने लगे और कंस आदि जो अघासुर के राक्षस बान्धव थे प्रसन्न हो गये ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

घनच्छदा मेघान्तरिताः । कौणपाः कुणपाशिनो राक्षसाः, कौणपो निर्ऋतिस्तदीया इति वा ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

घनच्छदाः अर्थात् मेघ में छिपे हुए, कौणपाः अर्थात् मुर्दों को खाने वाले राक्षस, अथवा दैत्य जो अधासुर के बान्धव थे वे सब ॥२९॥

तच्छ्रुत्वा भगवान्कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् । चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥३०॥

अन्वयः— तत् श्रुत्वा अव्ययः भगवान् कृष्णः सार्भवत्सकम् चूर्णीचिकीर्षोः गले अत्मानं तरसा ववृधे ॥३०॥

अनुवाद— भयभीत देवताओं के हाय ! हाय !! शब्द को सुनकर निर्विकार भगवान् श्रीकृष्ण बच्चों के साथ-साथ चूर-चूर करने की इच्छा वाले अघासुर के गले में अपने शरीर को शीघ्रता से बढाने लगे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

चूर्णीकर्तुमिच्छोस्तस्य गले आदावेव तरसा ववृधे अवर्धत ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

चूर-चूर करने के इच्छुक अधासुर के गले में उससे पहले ही बड़ी तेजी से बढ़े ॥३०॥

ततोऽतिकायस्य निरुद्धमार्गिणो ह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतस्त्वितस्ततः ।
पूर्णोऽन्तरङ्गे पवनो निरुद्धो मूर्धन्विनिष्पाट्य विनिर्गतो बहिः ॥३१॥

अन्वयः— ततः निरुद्धमार्गिणः उद्गीर्ण दृष्टेः इतस्ततः भ्रमतः अतिकायस्य निरुद्धः पवनः अन्तरङ्गे पूर्णः मूर्धन् विनिष्पाट्य बहिः विनिर्गतः ॥३१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् जिसकी सांस रूक गयी थी, आँखे बाहर निकल आयी थीं तथा जो इधर-उधर छटपटा रहा था उसके पूरे शरीर में वायु भर गयी और वह उसके ब्रह्मरन्ध्र को फोड़कर बाहर निकल गयी ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

निरुद्धो मुखादीनां मार्गभूतः कण्ठो यस्यास्ति तस्योद्गीर्णदृष्टेर्बहिर्निर्गतलोचनस्यान्तरङ्गे देहमध्ये पूर्णः परिभृतो मूर्धन् मूर्धनि ब्रह्मरन्ध्रं निर्भिद्य बहिर्विनिर्गतः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

मुख आदि के मार्ग भूत कण्ठ अघासुर का रुँघ गया था, उसकें आँखे बाहर निकल गयी थीं । उसके सम्पूर्ण शरीर में वायु भर गयी और अन्त में वह वायु उसके ब्रह्मरन्ध्र को फोड़कर बाहर निकल गयी ॥३१॥

तेनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु प्राणेषु वत्सान्सुहृदः परेतान् ।
दृष्ट्या स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुनर्वक्त्रान्मुकुन्दो भगवान्विनिर्ययौ ॥३२॥

अन्वयः— तेनैव सर्वेषु प्राणेषु बहिर्गतेषु परेतान् वत्सान् सुहृदः स्वया दृष्ट्या उत्थाप्य तदन्वितः भगवान् मुकुन्दः पुनः वक्त्रात् विनिर्ययौ ॥३२॥

अनुवाद— उसी मार्ग से सभी प्राणों के भी बाहर निकल जाने पर श्रीमुकुन्द भगवान् अपनी अमृतमयी दृष्टि से देखकर मरे हुए अपने साथियों और बछड़ों को जीवित करके फिर उसके मुख के मार्ग से बाहर निकल आये॥३२॥

भावार्थ दीपिका

प्राणेष्विन्द्रियेषु । स्वयाऽमृतवर्षिण्या दृष्ट्यैव ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

प्राणेषु अर्थात् इन्द्रियों के भी, अपनी अमृत वर्षिणी दृष्टि से ही ॥३२॥

पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महज्ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयद्दिशो दश ।
प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं विवेश तस्मिन्मिषतां दिवौकसाम् ॥३३॥

अन्वयः— पीनाहिभोगोत्थितमद्भुत महज्ज्योतिः स्वधाम्ना दशदिशः ज्वलयत् खे अवस्थितं ईशनिर्गमं प्रतीक्ष्य दिवौकस मिषतां तस्मिन् विवेश ॥३३॥

अनुवाद— उस मोटे सर्प के शरीर से निकली हुई एक महान् ज्योति अपने प्रकाश से दशो दिशाओं को प्रकाशित करती हुई आकाश में स्थित होकर अघासुर के शरीर से श्रीभगवान् के निकलने की प्रतीक्षा करके देवताओं के सामने ही श्रीभगवान् में प्रवेश कर गयी ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

अहिदेहे स्थितं शुद्धसत्त्वमयं ज्योतिर्निर्गत्य खेऽवस्थितम् । तस्मिन्नीशे विवेश ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

इस अजगर के शरीर में स्थित शुद्धसत्त्वमय ज्योति उससे निकलकर आकाश में स्थित हो गयी और । श्रीभगवान् में प्रवेश कर गयी ।।३३।।

ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतोऽकृतार्हणं पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः ।
गीतैः सुगा वाद्यधराश्च वाद्यकैः स्तवैश्च विप्रा जयनिः स्वनैर्गणाः ।।३४।।

अन्वयः— ततः अतिहृष्टाः सुराः पुष्पैः अप्सरसः च नर्तनैः सुगाः गीतैः, वाद्यधराः च वाद्यकैः विप्राः स्तवैः गणाः जय निःस्वनैः स्वकृतः अर्हणं अकृत ।।३४।।

अनुवाद— उसके पश्चात् अत्यन्त प्रसन्न होकर श्रीभगवान् पर पुष्पों की वर्षा के द्वारा अप्सरायें नृत्य के द्वारा, गन्धर्व गण संगीत के द्वारा विद्याधर बाजे बजाकर विप्रगण स्तुतियों के द्वारा तथा भगवत पार्षदगण जय-जयकार की ध्वनि के द्वारा अपना कार्य करने वाले श्रीभगवान् की आराधना किए ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

स्वकृतः स्वकार्यकृतः श्रीकृष्णस्यार्हणमकृताकुर्वन् पूजामकुर्वन् । सुगाः सुष्ठु गायन्तीति गन्धर्वादयः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

अपना कार्य करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा किए सुगाः अर्थात् सुन्दर गायन करने वाले गन्धर्व आदि।।३४।।

तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिकाजयादिनैकोत्सवमङ्गलस्वनान् ।
श्रुत्वा स्वधाम्नोऽन्त्यज आगतोऽचिराद्दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम् ।।३५।।

अन्वयः— तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिकाजयादि नैकोत्सवमङ्गल स्वनान् स्वनान् श्रुत्वा अजः अचिरात् आगतः ईशस्य महि दृष्ट्वा विस्मयं जगाम ।।३५।।

अनुवाद— उन अद्भुत स्तुतियों, सुन्दर बाजों, मङ्गलमय गीतों जय जयकार और आनन्दोत्सव की मङ्गल ध्वनि को अपने लोक के सन्निकट में सुनकर ब्रह्माजी वहाँ शीघ्र आ गये और भगवान् श्रीकृष्ण की उस महिमा को देखकर अत्यन्त आश्चर्यित हुए ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

किंच तेषां यान्यद्भुतस्तोत्रादीनि तेषां नैकोत्सवा ये मङ्गलस्वनास्तान्स्वधाम्नोऽन्ति समीपे श्रुत्वाऽजो ब्रह्माऽचिरादागत ईशस्य श्रीकृष्णस्य महि महिमानं दृष्ट्वा विस्मयं प्रापेति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

और उन सबों की अद्भुतस्तोत्र आदि तथा अनेक प्रकार के उत्सवों मङ्गलमय ध्वनियों को अपने लोक के सन्निकट में सुनकर ब्रह्मजी वहाँ शीघ्र आये और भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा को देखकर आश्चर्यचकित हो गये।।३५।।

राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृन्दावनेऽद्भुतम् । व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम् ॥३६॥

अन्वयः— वृन्दावने शुष्कं आजगरं अद्भुतं चर्म व्रजौकसां बहुतिथं आक्रीडगह्वरं बभूव ।।३६।।

अनुवाद— वृन्दावन में अजगर का सूखा हुआ चपड़ा व्रजवासियों के लिए बहुत समय तक क्रीड़ा की गुफा बना रहा ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

बहुतिथं बहुकालम् । आक्रीडगह्वरं क्रीडार्थं महाबिलम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

बहुतिथं अर्थात् बहुत समय तक । आक्रीडगह्वरम् अर्थात् क्रीडा की गुफा ।।३६।।

एतत्कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् । मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ॥३७॥

अन्वयः— हरेः आत्माहि मोक्षणम् एतत् कौमारजं कर्म, मृत्योः पौगण्डके दृष्ट्वा विस्मिता वालाः व्रजे ऊचुः ।।३७।।

अनुवाद— श्रीहरि द्वारा अधासुर की मोक्ष लीला उनकी कौमारावस्था अर्थात् उनके पाञ्चवें वर्ष में हुई । उसे देखकर आश्चर्य चकित बालकों ने व्रज में आकर उस लीला का वर्णन उनकी पौगण्डावस्था अर्थातृ छठे वर्ष में लोगों से कहा ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

अन्यच्चातिचित्रं वृत्तमित्याह-एतदिति । 'कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पौगण्डं दशमावधि । कैशोरमापञ्चदशाद्यौवनं तु ततः परम् ।' हरेः कौमारजं पञ्चमाब्दकृतं कर्म तदैव दृष्ट्वा पौगण्डके षष्ठेऽब्दे बाला अद्यैतद्वृत्तमित्यूचुः । किं तत्कर्म । मृत्योः सकाशादात्मनामहेश्च मोक्षणम् । आत्मनां प्रसिद्धान्मृत्योरहेस्तु संसारलक्षणात् । अघासुरस्य ज्योतिषः श्रीकृष्णे प्रवेशमपि तदा दृष्टं कथितवन्त इत्यर्थः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

दूसरी भी भगवान् की अत्यन्त विचित्र लीला को **एतत् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । बालक की पाँच वर्ष तक कौमारावस्था होती है, दर्श वर्ष की अवस्था तक पौगण्डावस्था बतलायी गयी है। पन्द्रह वर्ष की अवस्था पर्यन्त किशोरावस्था और उसके पश्चात् युवावस्था होती है । श्रीहरि द्वारा यह लीला अपने पाँचवे वर्ष में की गयी। उस लीला को उसी समय देखकर श्रीहरि के छठे वर्ष में बालकों ने व्रजवासियों को यह कहकर बतलाया कि आज हमलोगों ने यह देखा । वह कौन सा कर्म था ? तो इसे बतलाते हैं । अधासुर रूपी मृत्यु से अपनी तथा अधासुर की मुक्ति की लीला । अधासुर की आत्मा रूपी महाज्योति का भगवान् श्रीकृष्ण में प्रवेश को भी उसी समय देखकर पौगण्डावस्था में बालकों ने बतलाया ।।३७।।

नैतद्विचित्रं मनुजार्भमायिनः परावराणां परमस्य वेधसः ।
अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः प्रापात्मसाम्यं त्वसतां सुदुर्लभम् ॥३८॥

अन्वयः— यत्स्पर्शनात् अघोऽपि धौतपातकः असतां सुदुर्लभम् आत्मसम्यं प्राप । परावराणां परमस्यवेधसः मनुजार्भमायिनः एतद्विचित्र न ।।३८।।

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् के स्पर्श से अधासुर जैसे पापी के पापों के विनष्ट हो जाने से जिस आत्मसाम्य रूपी मुक्ति प्राप्त हुई, जो पापियों के लिए अत्यन्त दुर्लभ है, वह माया को स्वीकार करके मानव बालक बने हुए श्रीभगवान् के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है । वे तो परम पुरुष है और समस्त कार्यों एवं कारणों के नियामक हैं ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

नैतद्विचित्रमिति । किं तदित्यपेक्षायामाह-अघोऽपीति । आत्मसाम्यं स्वसमानरूपताम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

यह श्रीभगवान् के लिए कोई भी आश्चर्य की बात नहीं है । वह क्या है इस प्रकार की शङ्का होने पर बतलाते हैं **अघोऽपि इत्यादि** आत्म साम्यम् अपने समान रुप प्रदान ।।३८।।

सकृद्यदङ्गप्रतिमाऽन्तराहिता मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम् ।
सएव नित्यात्मसुखानुभूत्यभिव्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः ।।३९।।

अन्वयः— सकृत् यदङ्गप्रतिमान्तराहिता मनोमयी भागवतीं गतिं ददौ स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभिव्युदस्तमायाः अन्तर्गतः हि किं पुनः ।।३९।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के किसी भी अङ्ग को अपने अन्तःकरण में स्थापित कर लेने से वह श्रीभगवान की मनोमयी मूर्ति यदि मुक्ति प्रदान कर देती है, वे हीं भगवान् आत्मानन्द के नित्य ही साक्षात्कार स्वरूप हैं, माया उनके पास आ नहीं सकती है, वे ही अधासुर के शरीर में प्रवेश कर गये, तो अब भी उसकी मुक्ति के विषय में सन्देह है क्या ?।।३९।।

भावार्थ दीपिका

यस्याङ्गं मूर्तिस्तस्य प्रतिमा प्रतिकृतिस्तत्रापि केवलं मनोमयी साऽपि बलादन्तराहिता सती भगवतीं गतिं ददौ प्रह्लादादिभ्यः स एव साक्षातस्वयमन्तर्गतः किं पुनः नित्या चासावात्मसुखानुभूतिश्च तयाभितो व्युदस्ता माया येन सः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

जिन श्रीभगवान् की मनोमयी प्रतिकृति को अपने अन्तःकरण में स्थापित कर लेने मात्र से वे प्रह्लाद इत्यादि को मुक्ति प्रदान किए, वे ही श्रीभगवान् जिस अघासुर के शरीर में साक्षात् प्रवेश कर गये । जो भगवान् नित्य ही आत्मसुखानुभवस्वरूप है, उनसे माया दूर ही रहती है ।।३९।।

सूत उवाच

इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम् ।
पप्रच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ।।४०।।

अन्वयः— हे द्विजाः यादवदेवदत्तः स्वरातुः इत्थं विचित्रं चरितं श्रुत्वा भूयः अपि तदेव पुण्यं वैयासिकिं प्रप्रच्छ यत् निगृहीतचेताः ।।४०।।

श्रीसूत जी ने कहा

अनुवाद— हे शौनकादि महर्षियों राजा परीक्षित् अपने रक्षक श्रीभगवान् के इस प्रकार के चरित को सुनकर पुनः उन श्रीभगवान् की ही लीला के विषय में श्रीशुकदेवजी से पूछे; क्योंकि श्रीभगवान् की अमृतमयी लीला ने राजा परीक्षित् के चित्त को अपने वश में कर लिया था ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

येन श्रवणेन निगृहीतं वशीकृतं चेतो यस्य सः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

भगवान की लीला के श्रवण ने महाराज परीक्षित् के चित्त को अपने वश में कर लिया था ।।४०।।

राजोवाच

ब्रह्मन्कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत् । यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगण्डकेऽर्भकाः ॥४१॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत, यत् कौमारे हरिकृतं अर्भकाः पौगण्डके जगुः ॥४१॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! दूसरे समय में की गयी लीला दूसरे समय में वर्तमान कालि की कैसे हो सकती है ? कि श्रीहरि द्वारा कुमारावस्था में की गयी लीलाको ग्वाल बालों ने पौगण्डावस्था में लोगों को बतलाया ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

कालान्तरे कौमारे कृतं पौगण्डके कथं ज्ञात्वोचुरित्यर्थः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

कुमारावस्था रूप कालान्तर में की हुई श्रीभगवान् की लीला को पौगण्डावस्था में जानकर ग्वाल बालों ने लोगों को बतलाया ॥४१॥

तद्ब्रूहि मे महायोगिन्परं कौतूहलं गुरो । नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ॥४२॥

अन्वयः— हे महायोगीन् हे गुरो ! तद्ब्रूहि मे परं कौतूहलं नूनम् एतद हरेः एव माया भवति अन्यथा न ॥४२॥

अनुवाद— हे महायोगी गुरुदेव ! आप मुझे इसे अवश्य बतलायें इसके विषय में जानने की मुझे अत्यधिक उत्कण्ठा है । इसमें निश्चित रूप से विचित्र घटनाओं को घटित कराने वाली माया का हाथ अवश्य होगा, अन्यथा ऐसा नहीं हो सकता है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४२॥

वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबन्धवः । यत्पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम् ॥४३॥

अन्वयः— हे गुरो ! वयं क्षत्रबन्धवः अपि लोके धन्यतमाः यत् त्वतः पुण्यं कृष्णकथामृतम् मुहुः पिबाम ॥४३॥

अनुवाद— हे गुरुदेव मैं क्षत्रबन्धु हूँ, क्योंकि क्षत्रियोचित ब्राह्मण सेवा से रहित हूँ, फिर भी मैं संसार में धन्यतम हूँ, क्योंकि आपके श्रीमुख से भगवान् श्रीकृष्ण की कथा रूप अमृत पान कर रहा हूँ ॥४३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४३॥

सूत उवाच

इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणिस्तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः ।
कृच्छ्रात्पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तम ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽघासुरवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अन्वयः— हे भागवतोत्तम् इत्थं पृष्टः सः बादरायणिः तु तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः पुनः कृच्छ्रत शनैः लब्धबहिदृशिः तं प्रत्याह स्म ॥४४॥

श्रीसूततजी ने कहा

अनुवाद— हे भगवद् भक्तों में श्रेष्ठ श्रीशौनक महर्षे इस तरह से राजा परीक्षित् द्वारा पूछे जाने पर श्रीशुकदेवजी को वह लीला स्मरण हो गयी और उनकी समस्त इन्द्रियाँ और अन्तःकरण विवश होकर श्रीभगवान्

की लीला में आकृष्ट हो गयी। कुछ देर के बाद धीरे-धीरे बड़े कष्ट से उनको बाह्य विषयों का ज्ञान हुआ। और वे उसके पश्चात् वे राजा परीक्षित् से श्रीभगवान् की लीलाओं का वर्णन करना प्रारम्भ किए ॥४४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के अधासुर वध नामक बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

तेन यः स्मारितोऽनन्तस्तेन हृतान्यखिलेन्द्रियाणि यस्य सः। तथाभूतोऽपि कथंचिल्लब्धबहिर्दृष्टिः हे भागवतोत्तमोत्तम हे शौनक ।।४४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमे स्कन्धे पूर्वार्द्धे भावार्थ दीपिकायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् के प्रश्न सुनने से श्रीशुकदेवजी को अनन्त श्रीभगवान् का स्मरण हो आया, उसके कारण उनकी सारी इन्द्रियाँ श्रीभगवान् में जाकर लग गयीं। ऐसा होने पर भी किसी तरह उनको धीरे-धीरे वाह्य विषयों का ज्ञान हुआ। हे भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ श्रीशौनक महर्षि ॥४४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के बारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१२।।

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी को मोह और उसका नाश

श्रीशुक उवाच

साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम । यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहूः ॥१॥

अन्वयः— हे महाभाग ! हे भागवतोत्तम त्वया साधु पृष्टं यत् ईशस्य मुहुः कथां शृण्वन् अपि नूतनयसि ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे महाभाग्यवान् राजन् परीक्षित् ! हे भवगद् भक्तों में श्रेष्ठ आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया है क्योंकि बार-बार श्रीभगवान् की कथाओं को सुनकर भी उसके विषय में पुन: प्रश्न करके उन कथाओं को नवीन बना देते हो ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोदशेऽहरद्ब्रह्मा वत्सान्पालांश्च मायया । तदा तत्सर्वरूपोऽब्दं कृष्णः पूर्ववदाचरत् । नूतनयसि नव्यवत्करोषि ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तेरहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि ब्रह्माजी ने माया करके बछड़ों और उनके चरवाहों का हरण कर लिया, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण उन सबों का रूप धारण करके एक वर्ष तक पहले के ही समान आचरण करते रहे । **नूतनयसि** अर्थात् नवीन के समान बना देते हो ॥१॥

सतामयं सारभृतां निसर्गो यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ।
प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्स्त्रिया विटानामिव साधु वार्ता ॥२॥

अन्वयः— सारभृतां सताम् अयं निसर्गः यत् अर्थ वाणी श्रुतिचेतसामपि यत् अच्युतस्य साधुवार्ता विटानाम् स्त्रियाः इव प्रतिक्षणं नव्यवत् भवति ।।२।।

अनुवाद— सारग्राही सत्पुरुषों का यह स्वभाव होता है कि, उनकी वाणी श्रवण तथा अन्त: करण का प्रयोजन, श्रीभगवान् अच्युत की कथाओं का कीर्तन करना, श्रवण करना और चिन्तन करना होता है । अर्थात् वे अपनी वाणी से सदा श्रीभगवान् की लीलाओं आदि का वर्णन तथा कीर्तन करते है, कानों से सुनते हैं और मन से श्रीभगवान् की लीलाओं का चिन्तन करते हैं, उन सत्पुरुषों को श्रीभगवान् की कथा प्रत्येक क्षण उसी तरह से नवीन-नवीन सी प्रतीत होती है जिस तरह लम्पट पुरुषों को स्त्रियों की चर्चा नवीन जैसी आकर्षक प्रतीत होती है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तथा हि सारभृतां सारग्राहिणामयं निसर्गः स्वभावः । कोऽसौ । अच्युतस्य वार्ता प्रतिक्षणं साधु नव्यवद्भवतीति यत्सः। विटानां स्त्रैणानां स्त्रियाः कामिन्या वार्तेव । कथंभूतानामपि सताम् । या अच्युतवार्तैव अर्थो येषां तानि वाणीश्रुतिचेतांसि येषां तथाभूतानामपि ।।२।।

भाव प्रकाशिका

सारग्राही सत्पुरुष का यह स्वभाव होता है । कौन सा स्वभाव होता है ? उनके लिए भगवान् अच्युत की सुन्दर लीलाओं की चर्चा प्रत्येक क्षण नवीन सी होती है । यह उसी तरह से होता है जिस तरह स्त्री लम्पटों को स्त्रियों की चर्चा नवीन सी प्रतीत होती है । कैसे सत्पुरुषों को ? जिन लोगों की वाणी, श्रवण और अन्तःकरण का प्रयोजन भगवान् अच्युत की कथा का श्रवण, कीर्तन और चिन्तन होता है ॥२॥

शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते । ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥३॥

अन्वयः— राजन् अवहितः शृणुष्व ते गुह्यम् अपि वदामि । गुरवः उत स्निग्धस्य शिष्यस्य गुह्यम् अपि ब्रूयुः ।।३।।

अनुवाद— राजन् आप सावधान होकर मेरी बातों को सुने । मैं आपको अत्यन्त गोपनीय भी कथा बतलाता हूँ, क्योंकि गुरुजनों को चाहिए कि वे अपने अत्यन्त प्रिय शिष्य को गोपनीय बातों को बतला दें ।।३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३।।

तथाऽघवदनान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान् । सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥४॥

अन्वयः— मृत्योः अघवदनात् तथा वत्सपालकान् रक्षित्वा भगवान् सरित् पुलिनम् आनीय इदमब्रवीत् ।।४।।

अनुवाद— श्रीभगवान् मृत्यु स्वरूप अधासुर के मुख से वत्स पालक ग्वाल बालों की उस प्रकार से रक्षा करके उन सबों को यमुना के तट में लाये और उन सबों से उन्होंने कहा ।।४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४।।

अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वकेलिसंपन्मृदुलाच्छवालुकम् ।
स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिकध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥५॥

अन्वयः— अहो वयस्याः स्वकेलिसम्पन्मृदुलाच्छ बालुकम्, स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिकध्वनि प्रतिध्वानलसद् द्रुमाकुलं पुलिनम् अतिरम्यम् ।।५।।

अनुवाद— प्रियमित्रो ! हमलोगों की क्रीड़ा के लिए अपेक्षित सभी सामग्रियों से युक्त कोमल और स्वच्छ

बालू से युक्त विकसित कमलों की सुगन्धि से आकृष्ट भ्रमरों की गुंजन तथा पक्षियों के कलरव से प्रतिध्वनित होने वाले वृक्षों से युक्त यह यमुनाजी का तट अत्यन्त मनोहर है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

भोजनविधानाय पुलिनं स्तौति-अहो इति । स्वीयानां केलीनां संपदो विद्यन्ते यस्मिंस्तत् । मृदुला अच्छा बालुका यस्मिस्तत् । किंच स्फुटद्विकसत् सरः । सरोजबाहुल्येनोपचारतः सर एव विकसदित्युक्तम् । तस्य गन्धस्तेन हृता आकृष्टा अलयः पत्रिणश्च ये तेषां के उदके ध्वनयस्तेषां प्रतिध्वानास्तैर्लसन्तो द्रुमास्तैराकुलं व्याप्तम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

भोजन का विधान करने के लिए श्रीभगवान् **अहो० इत्यादि** श्लोक से यमुनाजी के तट की प्रशंसा करते हैं। हमलोगों की खेल की सामग्रियाँ यहाँ विद्यमान हैं । यहाँ कोमल और स्वच्छ बालू है, विकसित कमलों की सुगन्धि से युक्त सरोवर है । कमलों की सुगन्धि से आकृष्ट होकर भौरे गुंजन करते हैं और जल पक्षी कलरव करते हैं । और उन सबों की ध्वनि से प्रतिध्वनित होने वाले वृक्ष सुशोभित होते है । अतएव यमुनाजी का तट अत्यन्त मनोहर है ॥५॥

अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवारूढं क्षुधार्दिताः । वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम् ॥६॥

अन्वयः— अत्र अस्माभिः भोक्तव्यम् दिवा रूढम्, क्षुधार्दिताः वत्साः समीपे अपः पीत्वा शनकै तृणम् चरन्तु ॥६॥

अनुवाद— यहाँ हमलोगों को भोजन कर लेना चाहिए, दिन भी चढ गया है, हमलोगों को भी भूख लग गयी है । बछड़े भी सन्निकट में ही जल पीकर धीरे-धीरे घासों को चरें ॥६॥

भावार्थ दीपिका

दिवारुढं बेलातीतेत्यर्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

दिवारूढम् अर्थात् दिन बहुत चढ आया है, अतएव भोजन की बेला बीत चुकी है ॥६॥

तथेति पाययित्वाऽर्भा वत्सानारुध्य शाद्वले । मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥७॥

अन्वयः— तथेति अर्भाः वत्सान् पाययित्वा शाद्वले आरुध्य, शिक्यानि मुक्त्वा भगवता समं मुदा, बुभुजुः ॥७॥

अनुवाद— सभी ग्वाल बालों ने कहा ठीक है । उन सबों ने बछड़ों को पानी पिलाकर उन सबों को हरी-हरी घासों में छोड़ दिया और अपने-अपने छीके खोलकर श्रीभगवान् के साथ प्रसन्नता पूर्वक खाने लगे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

आरुध्य संरुध्य । शाद्वले हरिततृणे देशे ॥७॥

भाव प्रकाशिका

शाद्वले, अर्थात् हरी-हरी धासों में **आरुध्य** अर्थात् रोककर ॥७॥

कृष्णस्य विष्वक् पुरुराजिमण्डलैरभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः ।
सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः ॥८॥

अन्वयः— कृष्णस्य विष्वक् पुरूराजिमण्डले अभ्याननाः फुल्लदृशः व्रजार्भकाः विपिने सहोपविष्टाः अम्भोरुहकर्णिकयाः छदा यथा विरेजुः ॥८॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण बीच में बैठ गये और उनके चारों ओर ग्वाल बालों ने बहुत सी मण्डलाकार पंक्तियाँ बना ली । सबों का मुँह भगवान् श्रीकृष्ण की ओर था । सबकी दृष्टि आनन्द से विकसित हो गयी थीं।

वनभोज के समय भगवान् श्रीकृष्ण के साथ बैठे हुए ग्वाल बाल ऐसे सुशोभित होते थे जैसे कमल की कर्णिका के चारो ओर उसकी छोटी बड़ी पंखुड़ियाँ सुशोभित हो रही हों ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तदा ते विरेजुः कृष्णस्य विष्वक् परितः पुरुराजिमण्डलैर्बहुभिः पङ्क्तिमण्डलैः सह नैरन्तर्येणोपविष्टाः । श्रीकृष्णाभिमुखान्याननानि येषां ते । फुल्लदृशो विकसिततनयनाः । कमलकर्णिकायाः परितः पत्राणि यथेति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के चारो ओर अनेक मण्डलाकार पंक्तियों में भगवान् के साथ बैठे हुए वे ग्वाल बाल सुशोभित हो रहे थे । वे सब एक दूसरे से सट-सट कर बैठे थे । उन सबों का मुख भगवान् श्रीकृष्ण के सामने था । सबों के नेत्र आनन्द से विकसित थे । वे कमल की कर्णिका की पंखुडियों के समान सुशोभित होते थे ॥८॥

केचित्पुष्पैर्दलैः केचित्पल्लवैरङ्कुरैः फलैः । शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥९॥

अन्वयः— केचित् पुष्पैः, केचित् दलै, केचित् पल्लवैः, केचित् अङ्कुरै, केचित् फलैः केचित् शिग्भिः, केचित् त्वगभिः, केचित् दृषद्भिः कृतभाजनः बुभुजः ॥९॥

अनुवाद— कोई पुष्पों से, कोई पत्ते से, कोई पल्लव से कोई अङ्कुर से कोई फल से, कोई छीके से, कोई छाल से, तो कोई पत्र से, पात्र बनाकर सबके सब भोजन करने लगे ॥९॥

भावार्थ दीपिका

पुष्पैस्तद्दलैः । अन्यैश्च पत्रैः कृतानि भाजनानि यैस्ते ॥९॥

भाव प्रकाशिका

पुष्पों दलों तथा पत्तों आदि से सबों ने अपना-अपना भोजन पात्र बना लिया था ॥९॥

सर्वे मिथो दर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक् । हसन्तो हासयन्तश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥१०॥

अन्वयः— सर्वे मिथः स्व-स्व भोज्य रुचिं पृथक् दर्शयन्तः सहेश्वराः हसन्तः हासयन्तश्च अभ्यजह्रुः ॥१०॥

अनुवाद— सबके सब अपनी अलग-अलग भोज्य पदार्थ की अलग-अलग रुचि प्रदर्शित करते हुए श्रीभगवान् के साथ हँसते हुए तथा दूसरों को हँसाते हुए भोजन कर रहे थे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

रुचिं स्वादविशेषम् । अभ्यवजह्रुर्बुभुजिरे । सहेश्वराः श्रीकृष्णसहिताः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

रुचिम् अर्थात् स्वाद विशेष को, **अभ्यजह्रुः** अर्थात् भोजन कर रहे थे, **सहेश्वराः** अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण के साथ॥१०॥

बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु ।
तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥११॥

अन्वयः— वेणुं जठरपटयोः विभ्रत् शृङ्गवेत्रे च कक्षे विभ्रत् वामेपाणौ मसृणकवलं विभ्रत् तत्फलानि अङ्गुलीषुविभ्रत् मध्ये तिष्ठन् स्वैनर्मभिः स्वपरिसुहृदः हासयन् स्वर्गे लोके मिषति बालकेलिः यज्ञभुक् बुभुजे ॥११॥

अनुवाद— भोजन करते समय भगवान् श्रीकृष्ण की अद्भुत छटा थी, वे मुरली को अपने कमर की फेटे में खोंसे थे, सींगी और बेंत बगल में दबाये थे, बायें हाथ में धृतमिश्रित दही और भात का ग्रास था, वे अपनी अङ्गुलियों में अद्रक नीबू इत्यादि दबाये थे । उनके चारो ओर घेरकर बैठे हुए ग्वाल बालों को अपने परिहास भरे वाक्यों से हँसाते रहते थे, यह सारा दृश्य स्वर्ग के देवता देख रहे थे और बालक्रीडा करने वाले सम्पूर्ण यज्ञों के भोक्ता श्रीभगवान् इस तरह से भोजन कर रहे थे ॥११॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञभुगपि तेषु बुभुजे । बालानामिव केलिर्यस्य सः । तदाह-उदरवस्त्रयोर्मध्ये वेणुं बिभ्रद्दघदिति सर्वत्र संवध्यते । वाम इति कक्षपाण्योर्विशेषणम् । मसृणं स्निग्धं दध्योदनकवलम् । तदुचितानि बिल्वादिफलान्यङ्गुलिसन्धिषु । कर्णिकेव सर्वाभिमुखो मध्ये तिष्ठन् । स्वस्य परित उपविष्टान् सुहृदः स्वैर्नर्मभिः परिहासवाक्यैः स्वर्गे स्वर्गवासिनि जने मिषत्याश्चर्येण पश्यति सति लोके जनानां मध्ये बुभुजे ॥११॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञभोक्ता होकर भी उन ग्वाल बालों के बीच में भोजन कर रहे थे । वे बालकों के समान क्रीडा करते थे, उसी को बतलाते हैं वे कमर के फेटे में मुरली खोंसे थे । वाम शब्द कक्ष (बगल) और हाथ दोनों का विशेषण है । मसृणंकवलम् अर्थात् दही और भात का ग्रास । उसके लिए उपयोगी आदि फल अङ्गुलियों में दबाये थे। सबों के बीच में स्थित रहकर । अपने चारो ओर बैठे मित्रों को परिहास वाक्यों से हँसा रहे थे । स्वर्ग के देवता यह सबकुछ आश्चर्य पूर्वक देख रहे थे । इसी तरह से वे ग्वाल बालों के बीच में भोजन कर रहे थे ॥११॥

भारतैवं वत्सपेषु भुञ्जानेष्वच्युतात्मसु । वत्सास्त्वन्तर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिताः ॥१२॥

अन्वयः— हे भारत एवं अच्युतात्मसु वत्सपेषु भुञ्जानेषु तृणलोभिताः वत्साः दूरम् अन्तर्वने विविशुः ॥१२॥

अनुवाद— हे भरतवंशी राजन् परीक्षित् ! अच्युत ही जिनकी आत्मा हैं इसतरह से बछड़ों के चरवाहों के भोजन करते-करते देर हो जाने के कारण तृणों के लोभी बछड़े दूसरे वन में प्रवेश कर गये ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

तान्दृष्ट्वा भयसंत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् । मित्राण्याशान्मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम् ॥१३॥

अन्वयः— तान् भयत्रस्तान् दृष्ट्वा अस्यभीभयम् कृष्णः तान् ऊचे, मित्राणि, आशान् मा विरमत अहम् इह वत्सान् नेष्ये ॥१३॥

अनुवाद— यह देखकर भयभीत ग्वाल बालों से भय को भी भयभीत बना देने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, मित्रों भोजन करना बन्द न करो मैं बछड़ों को यहाँ ला देता हूँ ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

भीभयं भयहेतुभ्यो भयमस्यापास्य । यद्वा अस्य विश्वस्य भियोऽपि भयं यः श्रीकृष्णः । आशाद्भोजनात् । अस्मिन्पादे अक्षराधिक्यमार्षम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

भीभयम् अर्थात् भय के हेतुओं ग्वाल बालों के भय को दूर करके । अथवा इस संसार के भय को भी जिनसे भय है, ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण **आशात्** अर्थात् भोजन से । इस श्लोक के इस तीसरे पाद में एक अधिक अक्षर आर्ष है ॥१३॥

इत्युक्त्वाद्रिदरीकुञ्जगह्वरेष्वात्मवत्सकान् । विचिन्वन्भगवान्कृष्णः सपाणिकवलो ययौ ॥१४॥

अन्वयः— इत्युक्त्वा सापाणिकवलः भगवान् कृष्ण आत्मवत्सकान् अद्रिदरीकुञ्जगह्वरेषु विचिन्वन् ययौ ॥१४॥

अनुवाद— इस तरह से कहकर अपने हाथ में दही और भात का ग्रास लिए भगवान् श्रीकृष्ण अपने बछड़ों को खोजते हुए पर्वतों, गुफाओं, कुञ्जों एवं अन्यान्य भयंकर स्थानों में गये ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अद्रिषु तद्दरीषु, कुञ्जेषु लतादिपिहितोदरविवरेषु । गह्वरेषु संकटस्थानेषु ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

पर्वतों, पर्वतों की गुफाओं, कुञ्जों तथा संकटमय स्थानों में ।।१४।।

अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो मायार्भकस्येशितुर्द्रष्टुं मञ्जु महित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् ।
नीत्वान्यत्र कुरूद्वहान्तरदधात्खेऽवस्थितो यः पुरा दृष्ट्वाघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम्।।१५।।

अन्वयः— हे कुरुद्वह अम्भोजन्मजनिः यः पुरा खे अवस्थितः प्रभवतः अधासुरमोक्षणं दृष्ट्वा परं विस्मये प्राप्तः सन् तदन्तर्गतः मायार्भकस्य ईशितुः अन्यदपिः मञ्जुमहित्वं द्रष्टुं तद्वत्सान् वत्सपान् इतः अन्यत्र नीत्वा अन्तर्दधात् ।।१५।।

अनुवाद— हे कुरुवंश शिरोमणि परीक्षित् ! ब्रह्माजी जो पहले ही आकाश में स्थित होकर अघासुर की मुक्ति को देखकर अत्यन्त आश्चर्यित हुए थे वे उस समय वहाँ आकर माया से मनुष्य बालक बने हुए सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण की दूसरी मनोहर लीला को देखने की इच्छा से उनके बछड़ों तथा बछड़ों के चरवाहों को यहाँ से उठाकर कही अन्यत्र रख दिए और स्वयं छिप गये ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अम्भोजन्मनः पद्माज्जनिर्यस्य स ब्रह्मा । तदन्तरे तस्मिन्नवसरे गत आगतस्तच्छिद्रं प्राप्तो वा मञ्जु मनोहरमन्यदपि महित्वं महिमानं द्रष्टुं तस्य वत्सानितः स्थानाद्वत्सपांश्चान्यत्र नीत्वा स्वयं तिरोबभूव । प्रभवतः श्रीकृष्णस्य ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

जिनका कमल से जन्म हुआ है वे ब्रह्माजी, उस समय अवसर पाकर भगवान श्रीकृष्ण की दूसरी भी मनोहर लीला को देखने की इच्छा से इस स्थान से बछड़ों और ग्वालबालों को अन्यत्र रख दिए और स्वयं छिप गये। प्रभवतः अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण की ।।१५।।

ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान् । उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समन्ततः ।।१६।।

अन्वयः— ततः वत्सान् अदृष्ट्वा एत्य च पुलिने वत्सपान् कृष्णः वने उभौ अपि समन्ततः विचिकाय ।।१६।।

अनुवाद— उसके पश्चात् बछड़ों को न पाकर भगवान् कृष्ण यमुना तट पर आये और वहाँ से ग्वाल बालों को भी नहीं पाये । भगवान् श्रीकृष्ण दोनों को वन में चारो ओर खोजे ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

उभावपि वत्सान्वत्सपांश्च । विचिकायान्वीक्षितवान् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

उभावपि अर्थात् बछड़ों तथा बछड़ों के रखवालों को, **विचिकाय,** अर्थात् खोजे ।।१६।।

क्वाप्यदृष्ट्वान्तर्विपिने वत्सान्पालांश्च विश्ववित् । सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसावजगाम ह ।।१७।।

अन्वयः— वत्सान् वत्सपालांश्च क्वापि अन्तर्वने अदृष्ट्वा विश्ववित् कृष्णः सर्वंधिकृतं सहसा अवजगाम ।।१७।।

अनुवाद— बछड़ों और बछड़ों के चरवाहों को कहीं भी वन में नहीं पाकर सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण यह जान गये कि यह सबकुछ ब्रह्माजी की करतूत है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

विधिकृतं ब्रह्मणा कृतम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

विधिकृतम् अर्थात् ब्रह्मा के द्वारा किया गया ॥१७॥

ततः कृष्णो मुदं कर्तुं तन्मातृणां च कस्य च । उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥१८॥

अन्वयः— ततः कृष्णः तन्मातृणां च कस्य च मुदं कर्तुं, विश्वकृदीश्वरः आत्मानं उभयायितं चक्रे ॥१८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण बछड़ों तथा वत्सपालों की माताओं को तथा ब्रह्माजी को आनन्दित करने के लिए बछड़ों तथा वात्सपालों के रूप में अपने को ही बना लिया, क्योंकि वे तो सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

उभयायितं वत्सत्पालरूपेण वर्तमानमित्यर्थः । अयं भावः-यदि तूष्णीमासे तर्हि तन्मातृणां विषादः स्याद्यदि च तानेवानयिष्यामि तर्हि ब्रह्मणो मोहो न स्यादिति तदुभयप्रीतये तथा चक्रे इति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

उभयायितं अर्थात् बछड़ों और बछड़ों के चरवाहों के रूप में परिणत कर लिया। कहने का अभिप्राय है कि श्रीभगवान् ने सोचा यदि मैं ऐसे ही बना रहूँ तो बछड़ों और वत्सपालों की माताओं को विषाद होगा। यदि मैं उन सबों को ही लादूं तो फिर ब्रह्मा को मोह नहीं होगा इसलिए दोनों को प्रसन्न करने के लिए श्रीभगवान् वैसा किए।।१८॥

यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषाम्बरम् ।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं सर्वं विष्णुमयं गिरोङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥१९॥

अन्वयः— यावद् वत्सपवत्सकाल्पकवपुः यावत् करङ्छयादिकं, यावद् यष्टि विषाणवेणुदलशिग् यावद्विभूषाम्बरम्, यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयः यावद् विहारादिकं सर्वं विष्णुमयं गिरोङ्गवद् अजः सर्वस्वरूपः बभौ ॥१९॥

अनुवाद— परीक्षित् जितने बछड़े और बछड़ों के चरवाहे थे, उनका जितना छोटा बड़ा शरीर था, जैसे उनके हाथ पैरे थे, उनके पास जितनी और जैसे छड़ियाँ, सिंगी, बाँसुरी, पत्ते, छींके थे जैसे जितने वस्त्र तथा आभूषण थे, उनके शील, स्वभाव, गुण, नाम, रूप, अवस्थाएँ जैसी थीं, जिस प्रकार वे खाते पीते और चलते थे, ठीक वैसे ही और उतने ही रूपों में सर्वस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये । उस समय यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुमय यह वेदवाणी मानों मूर्तरूप में प्रकट हो गयी ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तदेव दर्शयति-यावदिति । वत्सपानांवत्सकानां चाल्पकं वपुः प्रमाणमनतिक्रम्य । एवमुपर्यपि योज्यम् । यद्वा यावद्वत्सपादिवपुस्तावत्सर्वस्वरूपोऽजः कृष्णो बभावित्यर्थः । उत्तरत्राप्येवम् । 'सर्वं विष्णुमयं जगत्' इति प्रसिद्धा या गीस्तस्या अङ्गवत् सा गीरेवार्थस्वरूपेण प्रत्यक्षा यथा तथा बभूवेत्यर्थः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

उसी का वर्णन यावत् इत्यादि श्लोक से करते हैं । वत्सपालों का जितना छोटा शरीर था । उतना ही बड़ा शरीर धारण कर लिए आगे भी ऐसी ही योजना करनी चाहिए अथवा जितना बत्सपाओं का शरीर था उन सबों के रूप में श्रीभगवान् हो गये । आगे भी ऐसा ही अर्थ करना चाहिए । सर्वं विष्णुमयं जगत् यह जो प्रसिद्ध वाणी है उसी के अङ्ग के समान । मानो वह वाणी ही जैसे प्रत्यक्ष हो गयी हो ऐसे भगवान् बन गये ॥१९॥

स्वयमात्मात्मगोवत्सान्प्रतिवार्यात्मवत्सपैः । क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद्व्रजम् ॥२०॥

अन्वयः— सर्वात्मा स्वयमात्मगोवत्सान् आत्मवत्सपैः प्रतिवार्चं, आत्मविहारैः च क्रीडन् व्रजम् प्राविशत् ॥२०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् की आत्मा है, वे ही स्वयं बछड़े और स्वयं हि बछड़ों के चरवाहों द्वारा घेरकर, अपने ही साथ अनेक प्रकार की क्रीडा करते हुए श्रीभगवान् व्रज में प्रवेश किए ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

एवं सर्वात्मा सन्व्रजं प्राविशत् । कथं स्वयमात्मैव प्रयोजकः । आत्मरूपान् गोवत्सानिति कर्मापि स्वयमेवेत्युक्तम् । आत्मरूपैर्वत्सपैः प्रतिवार्य । प्रयोज्यकर्तापि स्वयमेव । आत्मविहारैः क्रीडन्निति क्रियापि कारकाण्यपि स्वयमेवेत्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

स्वयं सर्वात्मा श्रीभगवान् व्रज में प्रवेश किए कैसे ? वे श्रीभगवान् स्वयं ही प्रयोजक कर्ता हैं । और आत्मस्वरूप बछड़े भी स्वयं ही कर्म भी हैं । आत्म स्वरूप ग्वाल बालों द्वारा रोककर । इस तरह प्रयोज्य कर्ता भी स्वयं भगवान् ही बन गये । **आत्म विहारैः** अर्थात् अपने ही साथ क्रीडा करते हुए, इस तरह क्रिया भी और कारक भी भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं हो गये ॥२०॥

तत्तद्वत्सान्पृथङ्नीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः । तत्तदात्माभवद्राजंस्तत्तत्सद्म प्रविष्टवान् ॥२१॥

अन्वयः— राजन् तत् तत् वत्सान् पृथक् नीत्वा तत्-तत् गोष्ठे निवेश्य सः तत तत् आत्माभवत् तत् तत् सद्म प्रविष्टवान् ॥२१॥

अनुवाद— परीक्षित् ! जिस ग्वाल बाल के जो बछड़े थे उन्हें उसी ग्वाल बाल के रूप में अलग-अलग ले जाकर उसके गोष्ठ में प्रवेश करा दिए और भिन्न-भिन्न बालकों के रूप में उनके भिन्न-भिन्न घरों में चले गये॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तत्तदात्मा तत्तद्गोपबालरूपोऽभवत् । ततस्तत्तत्सद्म प्रविष्टः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

तत्तदात्मा विभिन्न बालक स्वरूप हो गये तथा भिन्न-भिन्न गृहों में चले गये ॥२१॥

तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम् ।
स्नेहस्नुतस्तन्यपयः सुधासवं मत्त्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन् ॥२२॥

अन्वयः— तन्मातरः वेणुरवत्वरोत्थिता दोर्भिः उत्थाप्य निर्भरम् परिरभ्य, स्नेहस्नुतस्तन्यपयःसुधासवं परं ब्रह्ममत्वा सुतान् अपायत् ॥२२॥

अनुवाद— ग्वाल बालों की माताएँ वंशी की ध्वनि सुनते ही शीघ्रता से दौड़ आई और ग्वाल बाल बने भगवान् श्रीकृष्ण को अपना पुत्र समझकर दोनों हाथों से उठाकर गले लगालीं । वात्सल्यातिरेक के कारण उनके स्तनों से दूध बह रहा था । उन लोगों ने अमृत के समान अपने स्तन्य दूध का पान कराया ।

भावार्थ दीपिका

गोपिकामोहमाह-तन्मातर इति । तन्मातरो वेणुरवेण त्वरयोत्थिताः सत्यः सुतान्मत्वा परं ब्रह्मैव दोर्भिरुत्थाप्योद्गृह्य। पयःसुधासवं पयः एव सुधावत्स्वादु आसववन्मादकं पाययामासुरित्यर्थः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

तन्मातरः इत्यादि श्लोक से गोपिकाओं का मोह का वर्णन करते है । ग्वाल बालों की माताएँ वंशी की

ध्वनि सुनते ही ग्वाल बाल बने हुए भगवान् को अपना पुत्र मानकर अपने दोनों हाथों से उठाकर हृदय से लगा लिया । स्नेहातिरेक के कारण माताओं के स्तनों से दूध बहा जा रहा था । उस अमृत से भी अधिक मधुर अपने दूध को श्रीभगवान् को पिलाया ॥२२॥

ततो नृपोन्मर्दनमञ्जलेपनालंकाररक्षातिलकाशनादिभिः ।
संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्सायं गतो यामयमेन माधवः ॥२३॥

अन्वयः— हे नृप ततः उन्मर्दनमञ्जलेपनालङ्कार रक्षातिलकाशनादिभिः संचालितः माधवः सायं गतः यामयमेन स्वाचरितैः मातृः प्रहर्षयन् ।

अनुवाद— परीक्षित् उसके बाद उनकी माताएँ उन्हें उबटन लगाती नहलातीं चन्दन का लेप लगातीं और उन्हें अच्छे-अच्छे गहनों से सजाती, दोनों आखों के बीच में डिठौना, लगाती तथा भोजन कराकर उनको तरह-तरह से प्यार करतीं, उसके पश्चात् सायं काल आये हुए भगवान् विभिन्न कालों में की जाने वाली क्रीडा रूप आचरण से अपनी माताओं को प्रसन्न करते थे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

एवं यामयमेन तत्तत्कालक्रीडानियमेन सायं गतः प्राप्तः स्वाचरितैः स्वस्याचरितैः, शोभनैराचरितैर्वा मातृः प्रहर्षयंस्ततस्ताभिरुन्मर्दनादिभिरुपलालित इति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह तत् तत् काल में की जाने वाली क्रीडाओं के अनुष्ठान द्वारा अपनी माताओं को आनन्दित करते थे और उसके पश्चात् वे माताएँ उनको उबटन लगाने आदि के द्वारा श्रीभगवान् का लालन पालन करती थीं ॥२३॥

गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं हुंकारघोषैः परिहूतसंगतान् ।
स्वकान्स्वकान्वत्सतरानपाययन्मुहुर्लिहन्त्यः स्रवदौधसं पयः ॥२४॥

अन्वयः— ततः गावः सत्त्वरं गोष्ठम् उपेत्य हुंकारघोषैः परिह्वतसंगतान् स्वकान् स्वकान् वत्सतरान् मुहुः लिहन्त्यः स्रवदौधसं पयः अपाययन् ॥२४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् गौएँ भी सायंकाल चरकर जब जंगल से जल्दी-जल्दी लौटकर अपनी हुङ्कार की ध्वनि से अपने बच्चों को बुलातीं और बच्चे भी दौड़कर उन सबों के पास आ जाते थे । इस तरह से वे अपने-अपने बछड़ों को बार-बार चाटती हई अपने स्तन से चूते हुए दूध को पिलाती थीं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

गवां मोहनमाह-गाव इति । परिहूता आहूताश्च ते सङ्गताश्च तान् ॥२४॥

के ही समान था किन्तु वह माया से युक्त नहीं था। वे यह नहीं समझते थे कि मैं इनका पुत्र हूँ और ये सब मेरी माताएँ हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

एतावत्तु वैषम्यं कृष्णस्यापि दुर्निवारमासीदित्याह-गोगोपीनामिति। गवां गोपीनां चास्मिन्कृष्णे मातृता उपलालनादिरूपा पुरोवदेवासीत्किंतु स्नेहर्धिकां विना। स्नेहाधिक्यं त्विदानीं विशेष इत्यर्थः। आसु गोगोपीषु हरेस्तोकता च बालभावनादि पूर्ववदेवासीत्किंतु मायया विना, मयेयं माता अहमस्याः पुत्र इति मोहं विनेत्यर्थः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

इतना तो वैषम्य कृष्ण में भी दुर्निवार था इस बात को गोगोपीनां इत्यादि श्लोक से कहा गया है। गौओं और गोपियों का भगवान् श्रीकृष्ण में लालन पालन आदि रूप मातृत्व पहले के ही समान था किन्तु स्नेह पहले की अपेक्षा अधिक था। इन गायों और गोपियों का भगवान् श्रीकृष्ण को बाल भावना आदि तो पहले के ही समान थी किन्तु वह माया से रहित ही थी। यह मेरी माता है और मैं इसका पुत्र हूँ इस प्रकार का मोह भगवान् श्रीकृष्ण में नहीं था ॥२५॥

व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्याब्दमन्वहम्। शनैर्निःसीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत् ॥२६॥

अन्वयः— व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहबल्ली आब्दं अन्वहम् शनैः कृष्णे तु अपूर्ववत् निःसीम ववृधे ॥२६॥

अनुवाद— व्रजवासियों का अपने बालकों में स्नेह लता वर्षपर्यन्त प्रतिधीन धीरे-धीरे, अपूर्व के समान जैसा उनका प्रेम भगवान् श्रीकृष्ण मे था उसी तरह बढ़ता हुआ निःसीम हो गया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

स्नेहर्धिमेव दर्शयति-व्रजौकसामिति। यथा कृष्णे यशोदानन्दने स्वपुत्रेभ्योऽपि स्नेहाधिक्यं पूर्वमासीत्। इदानीं स्वतोकेष्वपि तथैवावर्धतेत्यर्थः। आ अब्दं यावत्संवत्सरम्। निःसीम यथा भवति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

व्रजौकसाम् इत्यादि श्लोक से स्नेह की वृद्धि ही बतलाते हैं। जैसे पहले व्रजवासियों का भगवान् श्रीकृष्ण में अपने पुत्रों की अपेक्षा अधिक प्रेम था, वैसा ही प्रेम इस समय अपने बच्चों में बढ़ गया था। वर्ष पर्यन्त यह स्नेह बढ़ता हुआ निस्सीम हो गया ॥२६॥

इत्थमात्मात्मनात्मानं वत्सपालमिषेण सः। पालयन्वत्सपो वर्षं चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥२७॥

अन्वयः— इत्थम् वत्सपालमिषेण आत्मात्मनात्मानम् पालयन् वनगोष्ठयोः वर्षं चिक्रीडे ॥२७॥

अनुवाद— इस तरह सम्पूर्ण जगत् की आत्मा भगवान् श्रीकृष्ण बछड़ों और ग्वाल बालों के बहाने गोपाल बनकर अपने बालक रूप से वत्सरूप का पालन करते हुए वन और गोष्ठ में एक वर्ष तक क्रीडा करते रहे ॥२७॥

एकदा चारयन्वत्सान्सरामो वनमाविशत् । पञ्चषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥२८॥

अन्वयः— एकदा पञ्चषासु हायनापूरणीषु त्रियामासु अजः सरामः वत्सान् चारयन् वनम् आविशत् ।।२८।।

अनुवाद— एक दिन जब वर्ष पूरा होनें में पाँच या छह रात्रियाँ अवशिष्ट थीं उस समय बलरामजी के साथ बछड़ों को चराते हुए वन में गये ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

एतावत्पर्यन्तं रामस्यापि मोह एवासीत्संवत्सरान्ते तु कथंचिज्ज्ञातवानिति दर्शयन्नाह-एकदेति । पञ्चषासु पञ्चसु वा षट्सु वा रात्रिषु हायनस्याऽपूरणीषु पूरकतयाऽवशिष्टस्वित्यर्थः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

इतने समय तक बलरामजी मोह में ही थे वर्ष के अन्त में वे किसी तरह जान सके इस बात को वे किसी तरह जान सके इस बात को । **एकदा० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । **पञ्चषासुत्रियामासु** अर्थात् पाँच या छह रात्रियाँ वर्ष के पूरा होने में कम थीं ।।२८।।

ततो विदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् । गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणम् ॥२९॥

अन्वयः— गोवर्धनाद्रिशिरसि तृणम् चरन्त्यः गावः ततः विदूरात् उपव्रजम् चरतः वत्सान् ददृशुः ।।२९।।

अनुवाद— गायें गोवर्धन पर्वत के ऊपर घास चर रही थीं, वहाँ से उन सबों ने दूर व्रज के सन्निकट में चरते हुए अपने बछड़ों को देखा ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

ततो दूरत एवं गावर्धनशिखरे चरन्त्यो गावो व्रजसमीपे चरतो वत्सान् ददृशुः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

वहाँ से दूर से ही गोवर्धन के शिखर पर चरती हुई गायों ने व्रज के सन्निकट चरते हुए बछड़ों को देखा।।२९।।

दृष्ट्वाथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा स गोव्रजोऽत्यात्मपदुर्गमार्गः ।
द्विपात्ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छोऽगाद्धुंकृतैरास्नुपया जवेन ॥३०॥

अन्वयः— अथ दृष्ट्वा तत्स्नेहवशः अस्मृतात्मा स गोव्रजः अत्यात्मपदुर्गमार्गः ककुद्ग्रीवः उदास्यपुछद्विपात् हुंकृतै आस्नुपयाः जवेन अगात् ।।३०।।

अनुवाद— बछड़ों को देखकर गौओं का वात्सल्य स्नेह उमड़ पड़ा । वे अपने आपकी सुध बुध खो बैठीं, ग्वालों के रोकने की परवाह किए बिना जिस मार्ग से वे नहीं जा सकती थीं उसी मार्ग से हुङ्कार करती हुई दौड़ पड़ी । उस समय उनके स्तनों से दूध बहा जा रहा था, उनकी गर्दन सिकुड़ कर डील से सट गयी थी । वे पूंछ तथा मुहँ उठाकर इतने वेग से दौड़ रही थीं कि लगता था कि उनके दोही पैर हैं ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

तदैव स गोव्रजो गवां कलापस्तत्स्नेहवशस्तेषां वत्सानां स्नेहेनाकृष्टोऽत एव न स्मृत आत्मा येन स जवेनोपव्रजमगात्। कथंभूतः । अत्यात्मपदुर्गमार्गः अतिक्रान्त आत्मपान् गोपालान्यः सोऽत्यात्मपः, तथा दुर्गो दुर्गमो मार्गो यस्य सः स च स च। तथा युक्ताभ्यां पद्भ्यां धावन् द्विपादिव प्रतीयमानः । ककुद्याकुञ्चिता ग्रीवा यस्य सः । उदास्यपुच्छः उन्नमितान्यास्यानि पुच्छानि च येन सः । आस्नुपयाः सर्वतः स्रवन्ति पयांसि यस्य सः । 'आस्नुपयाः' इत्यपि पाठे स एवार्थः । गोव्रज इत्यनेन वृषभादयोऽप्यगुरित्युक्तम् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

उसी समय वह गौओं का समूह, उन बछड़ों के स्नेह से आकृष्ट होकर अपना सुध बुध खो बैठीं । वे वेग से व्रज के सन्निकट में आ गयीं । वे कैसे मार्ग से आयीं ? तो इस पर कहते हैं जिस मार्ग से गौओं के रखवालों को जाना कठिन था उसी मार्ग से आयीं । ते इतनी वेग से दौड़ रही थीं कि लगता था जैसे उनके दो ही पैर हों । उन सबों की गरदन सिकुड़ कर डील में मिल गयी थी । उस समय वे अपना मुख और पूंछ उठायीं थीं । उनके स्तनों से दुग्ध बहता जा रहा था । आस्नुतपया पाठ होने पर भी वहीं अर्थ होगा । गोव्रज पद के द्वारा बैल भी आदि भी आये यह कहा गया है ॥३०॥

समेत्य गावोऽधोवत्सान्वत्सवत्योऽप्यपाययन् । गिलन्त्य इव चाङ्गानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः ॥३१॥

अन्वयः— गावः अधः समेत्य वत्सवत्यः अपिवत्सान् गिलन्त्य इव अङ्गानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः अपाययन्॥३१॥

अनुवाद— गायें नीचे आकर जिन गायों के दूसरे बच्चे भी हो गये थे वे अपने पहले के वच्चे को अपने स्तन के दूध को पिलाने लगी वे उस समय अपने बच्चों को इस तरह से चाट रही थीं जैसे वे उन सवों को अपने पेट में रख लेंगी ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तत्र विशेषतो धेनूनां चेष्टितमाह–समेत्येति । गोवर्धनस्याधः । वत्सवत्य; पुनः प्रसूता अपि ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

उसमें भी गायों की चेष्टाओं का वर्णन **समेत्य० इत्यादि** श्लोक से किया गया है । गोवर्धन पर्वत के नीचे। वत्सत्य: जो गायें पुन: बच्चा दे चुकी थीं वे भी ॥३१॥

गोपास्तद्रोधनायासमौध्यलज्जोरुमन्युना । दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ॥३२॥

अन्वयः— गोपाः तदरोधनायासमौध्यलज्जोरुमन्युना दुर्गाध्वकृच्छ्रतः अभ्येत्य, गोवत्सैः सह सुतान् ददृशुः ॥३२॥

अनुवाद— ग्वाले अपने रोकने के प्रयास को व्यर्थ हुए देखकर लज्जित हुए और दुर्गम मार्ग से आने में हुए कष्ट के कारण उनकों गौओं पर क्रोध भी हुआ । यहाँ आकर उन लोगों ने बछड़ों के साथ अपने पुत्रों को भी देखा ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

रामेण दृष्टं वत्सेषु गवां स्नेहातिशयमुक्त्वा गोपानामपि दर्शयितुमाह–गोपा इति । तासां गवां रोधने य आयासस्तस्य मौघ्येन मोघत्वेन लज्जया सहोरुमन्युना दुर्गमार्गजनितक्लेशेन चाभ्येत्य गोवत्सैः सह सुतान् ददृशुः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

बलरामजी के द्वारा देखे गये गौओं का अपने बछड़ों पर स्नेह को बतलाकर गोपों को भी दिखाने के लिए **गोपाः इत्यादि** श्लोक कहा गया है । गौओं को रोकने के लिए किए गये प्रयास के वैयर्थ्य के कारण लज्जा के साथ क्रोध के कारण दुर्गम मार्ग जनित क्लेश पूर्वक आकर गोपों ने बछड़ों के साथ अपने पुत्रों को भी देखा ॥३२॥

तदीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशया जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान् ।
उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्धनि घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते ॥३३॥

अन्वयः— तदीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशयाः जातानुरागाः गतमन्यवः अर्भकान् दोर्भिः उदुध्य परिरभ्य मूर्धनि घ्राणैः ते परमां मुद अवापुः ॥३३॥

अनुवाद— अपने बच्चों के देखने से उन सबों का अन्त:करण प्रेमरस से सराबोर हो गया, उनका बालकों के प्रति अनुराग उमड़ आया और क्रोध समाप्त हो गया, वे अपने हाथों से बालकों को उठाकर छाती से लगा लिए और उन सबों के सिर को सूंघकर आनन्द का अनुभव किए ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

ततश्च तेषामीक्षणेनोद्गतो यः प्रेमरसस्तस्मिन्नाप्लुता निमग्ना आशया येषां ते । लज्जामन्युकृच्छ्रैस्तानपि ताडयितुमागताः सन्तोऽपि गतमन्यवः प्रत्युत जातोऽनुरागो येषां ते मूर्धनि घ्राणैरवघ्राणैः परमां मुदमवापुः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् उन बालकों को देखनें से उनके अन्त:करण में जो प्रेम उत्पन्न हुआ उस प्रेम रस से वे सराबोर हो गये। लज्जा क्रोध और कष्ट के कारण उन गौओं को मारने के लिए आये हुए उन सबों का क्रोध समाप्त हो गया और बच्चों के प्रति उत्पन्न अनुराग से उन गोपों ने अपने बालकों के सिर को सूंघा और आनन्द का अनुभव किया ।।३३।।

ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः । कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ।।३४।।

अन्वयः— ततः प्रवयसः गोपाः तोकाश्लेषसुनिर्वृताः कृछ्रात् शनैः अपगता अनुस्मृत्य उदश्रवः ।।३४।।

अनुवाद— उसके पश्चात् वृद्धगोपों को अपने बालकों के आलिंगन से जो सुख मिला उससे वे कृतकृत्य हो गये, बड़े कष्ट से वे उन्हें छोड़कर धीरे-धीरे वहाँ से गये । जाने के पश्चात् भी बालकों और उनके आलिगन का स्मरण हो आने से उनकी आँखों में आँसू आ जाते थे ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

कृच्छ्रात्ततोऽपगता निवृत्ताः । तेषां सुतानामनुस्मृत्योद्गच्छन्त्यश्रूणि येषां ते ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

कष्ट पूर्वक से वहाँ से गये । पुत्रों की याद आ जाने से उनकी आँखों में आँसू भर जाते थे ।।३४।।

व्रजस्य रामः प्रेमर्धेर्वीक्ष्यौत्कण्ठ्यमनुक्षणम् । मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिन्तयत् ।।३५।।

अन्वयः—रामः व्रजस्य प्रेमर्धेः मुक्तस्तनेषु अपत्येषु अपि अनुक्षणम् औत्कण्ठयम् वीक्ष्य अहेतुविद् अचिन्तयत्।।३५।।

अनुवाद— बलरामजी व्रजवासियों गोपियों तथा गोपों का उनकी जो सन्तान स्तन पान छोड़ दिए थे उन पर भी प्रतिक्षण प्रेम तथा उत्कण्ठा को देखकर विचार करने लगे क्योंकि उनको इसके कारण का पता नहीं था।।३५।।

भावार्थ दीपिका

प्रेमर्धेरौत्कण्ठ्यमतिशयं मुक्तस्तनेष्वपत्येषु वीक्ष्य हेतुमजानन्नचिन्तयत् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

प्रेम की समृद्धि तथा स्तन पान करना जिन बच्चों ने छोड़ दिया था उन सबों के प्रति अत्यधिक उत्कण्ठा को देखकर विचार करने लगे ।।३५।।

किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि । व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ।।३६।।

अन्वयः— किमेतदद्भुतमिव अखिलात्मनि वासुदेवे व्रजस्य, सात्मनः तोकेषु अपूर्वं प्रेम वर्धते ।।३६।।

अनुवाद— यह कैसी विचित्र बात है, सम्पूर्ण जगत् की आत्मा श्रीकृष्ण में व्रजवासियों तथा मेरा भी जैसा स्नेह है वैसा ही इन ग्वाल बालों में भी अपूर्व प्रेम बढ रहा है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

चिन्तामेवाह-किमेतदिति द्वाभ्याम् । वासुदेवे यथा पुरा प्रेम तथा स्वतोकेष्वपि व्रजस्य प्रेम वर्धते किमेतदद्भुतमिति। किंच सात्मनो मत्सहितस्य व्रजस्य । मम तेषु प्रेमकारणं किमिति भावः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

किमेतत् इत्यादि दो श्लोकों से बलरामजी की चिन्ता का ही वर्णन करते हैं । व्रजवासियों का जैसे भगवान् श्रीकृष्ण में पहले प्रेम था वैसा ही इन लोगों का तथा मेरा भी इन ग्वाल बालों में भी प्रेम बढ रहा है । मेरा इन ग्वाल बालों में प्रेम क्यों बढ़ रहा है ?।।३६।।

केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी । प्रायो मायाऽस्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी।।३७।।

अन्वयः— इयं मायाका, वा कुतः आयाता, दैवी वा नारि वा उत आसुरी, प्रायः मे भर्तुः अन्या में अपि विमोहिनी न ।।३७।।

अनुवाद— यह माया कैसी है कहाँ सेआयी है ? किसी देवता की है क्या, अथवा किसी मनुष्य की है, या किसी असुर की है, ऐसी माया तो मेरे प्रभु श्रीकृष्ण की ही हो सकती दूसरे की माया मुझको भी मोहित नहीं कर सकती है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

केयं माया देवानां वा नराणां वा असुराणां कुतो वा कस्मात्प्रयुक्ता । तत्रान्यमाया न संभवति । यतो ममापि मोहो वर्तते, अतः प्रायशो मत्स्वामिनः श्रीकृष्णस्यैव मायेयमस्त्विति संभावयति ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

यह कौन सी माया है ? यह देवताओं की माया है क्या ? या मनुष्यों की है ? असुरों की है ? यह कहाँ से आयी हैं, इसके प्रयोग का कारण क्या है ? यह दूसरों की माया नहीं हो सकती है क्योंकि यह मुझको भी यह माया मोहित कर रही है । अतएव प्रायः यह मेरे स्वामी श्रीकृष्ण की ही माया हो सकती है, इस तरह से बलरामजी संभावना करते हैं ।।३७।।

इति संचिन्त्य दाशार्हो वत्सान्सवयसानपि । सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ।।३८।।

अन्वयः— दाशार्हः इति संचिन्त्य वयुनेन चक्षुषा सः वत्सान् सवयसानपि सर्वान् वैकुण्ठं आचष्टे ।।३८।।

अनुवाद— बलरामजी इस तरह से विचार करके जब अपने ज्ञान नेत्रों से देखे तो वे बछड़ों तथा अपने मित्रों को भी श्रीकृष्ण रूप ही देखे ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

सवयसान्सखीनपि वयुनेन ज्ञानमयेन चक्षुषा वैकुण्ठं श्रीकृष्णमेवापश्यत् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

अपने मित्रों को भी अपने ज्ञानमय नेत्रों के द्वारा श्रीकृष्ण रूप में ही देखे ।।३८।।

नैते सुरेशा ऋषयो न चैते त्वमेव भासीश भिदाश्रयेऽपि ।
सर्वं पृथक्त्वं निगमात्कथं वदेत्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ।।३९।।

अन्वयः— हे ईश ! इमे सुरेशा, न च एते ऋषयः भिदाश्रयेऽपि त्वमेव भासि, सर्वं पृथक्त्वं कथं निगमात् वद इति प्रभुणा उक्तेन बलः वृत्तम् अवैत् ।।३९।।

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् के नियामक प्रभो ये बछड़े और उनके चरवाहे न तो देवता हैं और न तो ऋषि है, बल्कि विभिन्न रूपों में आप ही प्रतीत हो रहे है, इसतरह से अलग-अलग विभिन्न रूप धारण करने का कारण क्या है ? यह मुझे संक्षेप में बतलायें । इस तरह से पूछने पर श्रीभगवान् ने ब्रह्माजी की करतूत को बतलाया, तब बलरामजी उसको जान सके ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

एवं कृष्णरूपान्सामान्यतो ज्ञात्वा कृष्णं पृष्ट्वा कृष्णोपदेशेन विशेषतो ज्ञातवानित्याह-नैत इति । अयमर्थः-पाल्यमानास्तावद्वत्सा ऋषीणामंशाः पालाश्च देवानामंशा इति तावदहं वेद्मि, इदानीं तु न तथा, किंत्वस्मिन् भिदाश्रयेऽपि त्वमेव भासि, अतस्त्वं सर्वं पृथक् विविच्य कथं वृत्तमिति वदेत्युक्तेन प्रभुणा वक्त्रा निगमात्संक्षेपत एवोक्तं वृत्तं बलोऽवैद्विदितवानित्यर्थः।।३९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह सामान्य रूप से सबों को श्रीकृष्ण रूप से जानकर बाद में भगवान् श्रीकृष्ण के उपदेश से वे विशेष रूप से जान सके । इस बात को **नैते० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । मैं यह जानता हूँ कि पाले जाने वाले ये बछड़े ऋषियों के अंश हैं और सभी वत्सपाल देवताओं के अंश हैं । किन्तु इस समय ऐसी बात नहीं है । इन सभी भेदों में मैं आपको ही देखता हूँ । अतएव आप मुझे संक्षेप में यह बतलायें कि यह सब कुछ अलग-अलग आप ही क्यों बने हुए हैं ? इस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा संक्षेप में कहे जाने पर सारी बातों को बलराम जान सके ।।३९।।

तावदेत्यात्मभूरात्ममामेन त्रुट्यनेहसा । पुरोवदब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम् ।।४०।।

अन्वयः— तावद् आत्मभूः आत्ममानेन त्रुटि अनेहसा एत्य पुरोवद् अब्दं कीडन्तं सकलं हरिम् ददृशे ।।४०।।

अनुवाद— तब तक ब्रह्माजी ब्रह्मलोक से लौटकर व्रज में आये । उनके काल मान से केवल एक त्रुटि का ही समय बीता था । उन्होंने देखा कि भगवान् ग्वाल बाल और बछड़ों के साथ एक वर्ष से पहले के ही समान क्रीडा कर रहे हैं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

ततः किं वृत्तमित्यपेक्षायामाह-तावदिति । वर्षे जाते आत्मनो मानेन त्रुट्यनेहसा त्रुटिमात्रेण कालेन सकलं सानुचरं हरिं ददर्श ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् क्या हुआ ? इस तरह की अपेक्षा होने पर **तावत्० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं- एक वर्ष बीत जाने पर अपने काल मान से एक त्रुटि के पश्चात् ब्रह्माजी अपने अनुचरों के साथ सब कुछ श्रीहरि ही देखे हैं।।४०।।

यावन्तो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि । मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ।।४१।।

अन्वयः— गोकुले यावन्तः सवत्साः बालाः गोकुले सर्वे एवहि मे मायाशये शयानाः पुनः अद्यापि नोत्थिताः ।।४१।।

अनुवाद— गोकुल में जितने बछड़े और ग्वाल बाल वे सब मेरी मायामयी शय्या पर सो रहे हैं और अब तक भी वे नहीं जगे हैं ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

दृष्ट्वा च व्यतर्कयदित्याह-यावन्त इति द्वाभ्याम् । मे मायाशये मायातल्पे ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी उपर्युक्त प्रकार से तर्क करने लगे इस बात को **यावन्तः इत्यादि** दो श्लोकों से कहते है । **मे मायाशये** अर्थात् मेरी मायामयी शय्या पर ॥४१॥

इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे । तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम् ॥४२॥

अन्वयः— मान्मायामोहितेतरे इतः एते कुतः तावन्त एव तत्राब्दं विष्णुना समं क्रीडन्तः ॥४२॥

अनुवाद— तो फिर मेरी माया से मोहित बछड़ो और ग्वाल बाल से भिन्न ये सब यहाँ कहाँसे आ गये और एक वर्ष से भगवान् विष्णु के साथ क्रीडा कर रहे हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

मन्मायामोहितेभ्य इतरे कुत्रत्याः ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

मेरी माया से मोहितों से भिन्न ये कहाँ से आ गये ॥४२॥

एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभूः । सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथंचन ॥४३॥

अन्वयः— स आत्मभूः एवम् एतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा के सत्याः कतरे न इति कथंचन ज्ञातुं नेष्टे ॥४३॥

अनुवाद— वे ब्रह्माजी इस प्रकार से इन दोनों स्थानों पर भेदों को देखकर बहुत देर तक विचार करके भी यह नहीं जान सके कि इनमें से कौन सत्य हैं और कौन सत्य नहीं है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

इति वितर्कयन्नमुह्यदित्याह-एवमिति द्वाभ्याम् । (एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभूः इति पाठः) ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

एवमित्यादि दो श्लोको से यह बतलाया गया है कि इस तरह से तर्क-वितर्क करते हुए ब्रह्माजी मोहित हो गये । (इस प्रकार के भेदों के विषय में दीर्घकाल तक विचार करके ब्रह्माजी यह पाठ भेद है।) ॥४३॥

एवं संमोहयन्विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् । स्वयैव माययाऽजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥४४॥

अन्वयः— एवंविश्वमोहनम्विष्णुसंमोहयन् अजोऽपि स्वयैव मायया मोहितः ॥४४॥

अनुवाद— इस तरह सम्पूर्ण जगत् को अपनी माया से मोहित करने वाले भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण) को मोहित करने वाले ब्रह्माजी अपनी ही माया से मोहित हो गये ॥४४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४४॥

ताभ्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि । महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः ॥४५॥

अन्वयः— तभ्यां नैहारं तमोवत् अहनि खद्योतार्चिः इव महति इतर माया युञ्जतः ऐश्यं आत्मनि निहन्ति ॥४५॥

अनुवाद— जिस तरह अन्धेरी रात में कुहरे के अन्धकार का तथा दिन में जुगनू के प्रकाश का प्रकाश नहीं चलता है, उसी तरह महापुरुषों पर जब क्षुद्र पुरुष अपनी माया का प्रयोग करता है तो उससे महापुरुषों का तो कुछ भी नहीं विगड़ता है अपितु वह माया अपना ही प्रभाव खो बैठती है ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

ननु मायाश्रयस्य तस्य कुतो मोह इत्यत आह-तस्यामिति । महामायाविनि भगवत्यन्यमायाया आवरणविक्षेपकत्वाभावे दृष्टान्तद्वयम् ताभ्यां तमिस्रायां रात्र्यां नैहारं हिमकणप्रभवं तम इव । तद्धितार्थोपसर्जनस्यापि तमसो नैहारमिति विशेषणं छान्दसम्। तत्तमो यथा पृथगावरणं न करोति किंतु तत्रैव लीयते । यथा च खद्योतार्चिरहनि पृथक् प्रकाशं न करोति । एवं महति पुंसि मायां युञ्जतः पुंस इतरा नीचा माया तत्र न किंचित्करोति किंत्वात्मनि स्वस्मिन्नेव ऐश्यं सामर्थ्यं निहन्तीति ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि ब्रह्माजी तो स्वयं माया करने वाले हैं उनको कैसे मोह हो सकता है ? इस पर ताभ्यां इत्यादि श्लोक कहते है । महामायावी श्रीभगवान् पर दूसरे की माया के आवरण विक्षेप से रहित होने में इस श्लोक में दो दृष्टान्त उपन्यस्त किए गये हैं जिस तरह से अन्धेरी रात में हिम के कण से उत्पन्न होने वाले निहार का अन्धकार अलग से आवरण करने का काम नहीं करता है । यहाँ तद्धितार्थ के कारण उपर्सजन (गौण) हुए भी तमस को नैहार विशेषण छान्दस है । निहार जन्य अन्धकार रात्रि के अन्धकार में प्रभावहीन हो जाता है । इसी तरह से दिन में सूर्य के प्रकाश में ही जुगनू का प्रकाश जैसे अलग से प्रकाश नहीं करता है । उसी तरह महापुरुष पर क्षुद्र परुष द्वारा माया का प्रयोग किए जाने पर वह नीच कोटि की माया कुछ भी नहीं कर पाती है, बल्कि उसकापरमात्मा का सामर्थ्य अपने में ही लीन कर लेता है ।।४५।।

तावत्सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात्। व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ।।४६।।
चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदाराजीवपाणयः। किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः।।४७।।

अन्वयः— तावत् अजस्य पश्यतः तत्क्षणात् सर्वे वत्सपालाः घनश्यामाः पीतकौशेय वाससः चतुर्भुजाः शंखचक्र गदाराजीव पाणिनः किरीटिनः कुण्डलिनः हरिणः वनमालिनः व्यदृश्यन्त ।।४६-४७।।

अनुवाद— जब तक ब्रह्माजी विचार ही कर रहे थे उसी सयम ब्रह्माजी के देखत ही देखते उसी क्षण, सजल मेघ के समान श्याम वर्ण के, रेशमी पीताम्बर धारण किए हुए चतुर्भुज तथा अपनी भुजाओं में शंख चक्र, गदा एवं पद्म धारण किए हुए, किरीट, कुण्डल, हार तथा वनमाला धारण किए हुए दिखाई देने लगे ।।४६-४७।।

भावार्थ दीपिका

अन्यदप्याश्चर्यमाह-तावदिति । वत्सपालाः वत्साः पालाश्च । सर्वे यष्टिविषाणादयश्च ।।४६-४७।।

भाव प्रकाशिका

दूसरा भी आश्चर्य **तावत्० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । वत्सपालाः अर्थात् बछड़े और बछड़ों के चरवाहे। **सर्वे** शब्द का अर्थ है, यष्टि, सिंगी इत्यादि ।।४६-४७।।

श्रीवत्साङ्गददोरत्नकम्बुकङ्कणपाणयः । नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्राङ्गुलीयकैः ।।४८।।

अन्वयः— श्रीवत्साङ्गदोरत्न कम्बुकङ्कण पाणयः, नूपुरैः कटकैः कटिसूत्राङ्गु लीयकैः भाताः ।।४८।।

अनुवाद— उन सबों के वक्षःस्थल में सुवर्ण की सुनहली रेखा (श्रीवत्सचिह्न) भुजाओं में बाजूबन्द, कलाइयों में शंखाकार रत्नों से जड़े कङ्गन, चरणों में नूपुर और कड़े, कमर में करधनी, तथा अङ्गुलियों में अङ्गूठियाँ चमक रही थीं ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

श्रीवत्सप्रभायुक्तान्यदङ्गानि दोष्षु येषाम्, रत्नमयानि कम्बुवन्त्रिधाराणि कङ्कणानि पाणिषु येषां, ते च ते च ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

उन सबों की भुजाओं में श्रीवत्स चिह्न की कान्ति से बाजूबन्द चमक रहे थे । रत्नमय शंख के समान तीन धार वाले उन सबों के हाथों में कङ्गन थे ।।४८।।

आङ्घ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः । कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ।।४९।।

अन्वयः— अङ्घ्रिमस्तकम् कोमलैः तुलसी नवदामभिः भूरि पुण्य वदर्पितैः आपूर्णा ।।४९।।

अनुवाद— नख से लेकर शिखापर्यन्त कोमल तुलसी की नवीन मालाओं से जो अत्यधिक पुण्यवान पुरुषों के द्वारा उन्हें पहनाई गयी थी उसे वे सब धारण किए थे ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

तथा भूरि बहुजन्मार्जितं पुण्यं तद्युक्तैर्जनैरर्पितैः ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

अनेक जन्मों में अर्जित अत्यधिक पुण्यवान् पुरुषों द्वारा समर्पित ।।४९।।

चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापाङ्गवीक्षितैः । स्वकार्थानामिव रजःसत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ।।५०।।

अन्वयः— चन्द्रिका विशदस्मेरैः सारुणापाङ्ग वीक्षितैः स्वकार्थानाम् रजःसत्त्वाभ्याम् स्रष्टृपालका इव व्यदृश्यन्त।।५०।।

अनुवाद— उनकी मुस्कान चाँदनी के समान उज्ज्वल थी, अरुणिमा लिए नेत्रों की कटाक्षपूर्ण चितवन अत्यन्त मधुर थी । ऐसा प्रतीत होता था जैसे वे इन दोनों के द्वारा सत्त्वगुण एवं रजोगुण को अपनाकर भक्तों के हृदय में शुद्ध कामनाएँ उत्पन्न करके उनको पूर्ण कर रहे हों ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

चन्द्रिकाविशदस्मितयुक्तैः सहारुणगुणेन च वर्तमाना येऽपाङ्गास्तैर्वीक्षितैः । स्वकार्थानां स्वभक्तमनोरथानां रजःसत्त्वाभयां स्रष्टृपालका इव व्यदृश्यन्त । सत्त्ववद्विशदस्मितेन पालका इव, रजोवदरुणगुणेन च स्रष्टार इव तादृक्कटाक्षैर्द्योतमाना इत्यर्थः।।५०।।

भाव प्रकाशिका

चन्द्रमा की चन्द्रिका के समान स्वच्छ मुस्कान से युक्त आरुणिमगुण सम्पन्न नेत्रों के कटाक्षपूर्ण चितवन अपने भक्तों के मनोरथों को रजोगुण से उत्पन्न कर सत्त्वगुण से उसको पूर्ण कर रहे हो ऐसा ब्रह्माजी को दिखाई पड़े। सत्त्वगुण के समान उज्ज्वलिस्मत से युक्त अरुण गुण से युक्त वे प्रकाशित हो रहे थे ।।५०।।

आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः । नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक्पृथगुपासिताः ।।५१।।

अन्वयः— आत्मादिस्तम्बपर्यन्तै मूर्तिमद्भिः चराचरैः नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक् पृथगुपासिताः ।।५१।।

अनुवाद— ब्रह्माजी ने देखा कि उनके ही समान एक दूसरे ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सभी चराचरजीव मूर्तिमान होकर नाचते-गाते हुए उनके प्रकार की पूजा सामग्री लेकर अलग-अलग भगवान् के उन सभी रूपों की उपासना कर रहे हैं ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

आत्मा ब्रह्मा तदादि स्तम्बपर्यन्तैः अनेकार्हैरनेकार्हणैः ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी से लेकर एक तृण पर्यन्त के सभी जीव उनकी अनेक प्रकार की पूजा सामग्री से पूजा कर रहे हैं ।।५१।।

अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः । चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिभिः ॥५२॥

अन्वयः— अणिमाद्यैः महिमाभिः अजाद्याभिः विभूतिभिः महदादिभिः चतुर्विंशतिभिः तत्त्वैः परीताः ॥५२॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने देखा कि अणिमा आदि सिद्धियाँ, माया विद्या आदि विभूतियाँ, महदादि चौबीसों तत्त्व उन सबों को घेरे हुए हैं ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

अजाद्याभिर्मायाविद्यादिभि विभूर्तिभि शक्तिभिः। महदादिभिरिति महत्सूत्रयोः पृथक्त्वविवक्षया चतुर्विंशति तत्वैर्जगत्कारणैः॥५२॥

भाव प्रकाशिका

माया विद्या आदि शक्तियाँ तथा महत् तत्त्व इत्यादि चौबीसों जो जगत् के कारण स्वरूप हैं वे सभी अलग-अलग घेरे हुए हैं। महत् तत्व और सूत्र में पृथक्त्व की विवक्षा से **महदादिभिः** पद का प्रयोग किया गया है॥५२॥

कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः । स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥५३॥

अन्वयः— कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः स्वमहिध्वस्तमहिभिः मूर्तिमद्भिः उपासिताः ॥५३॥

अनुवाद— प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न करने वाला काल, उसके परिणाम का कारण स्वभाव वासनाओं को उद्बुद्ध करने वाला संस्कार, कामनाएँ, कर्म विषय और फल सभी मूर्तिमान होकर श्रीभगवान् के सभी रूपों की उपासना कर रहे हैं और श्रीभगवान् की सत्ता एवं महत्ता के समक्ष वे सभी अपनी सत्ता और महत्त को खो बैठी हैं ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

कालदिभिश्च तत्सहकारिभि; । तत्र कालः क्षोभकः । स्वभावः परिणामहेतुः । संस्कारो वासनाया उद्बोधकः । स्वमहिध्वस्तमहिभिर्भगवन्महिम्ना तिरस्कृतस्वातन्त्र्यैरुक्तैः सर्वैरणिमाद्यैः ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

काल आदि और उनके सहकारियों के द्वारा । काल प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न करने वाला है । परिणाम का कारण स्वभाव है । संस्कार वासना को जागृत करता है । श्रीभगवान् की महिमा से अणिमा आदि का स्वातन्त्र्य समाप्त हो चुका है ॥५३॥

सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्तयः । अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ॥५४॥

अन्वयः— सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैक रसमूर्तयः, उपनिषददृशाम् आपि अस्पृष्टभूरिमाहात्म्याः ॥५४॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने देखा कि वे सबके सब सत्य स्वरूप, ज्ञान स्वरूप अनन्त स्वरूप एवं आनन्द स्वरूप हैं, वे सबके सब विजातीय भेद से रहित हैं । उनकी मूर्ति सदा एक समान रहने वाली है । अतएव आत्मज्ञान रूपी दृष्टि से सम्पन्न भी पुरुष, उनकी महिमा को नहीं जान सकते । उनकी महान् महिम स्पर्श योग्य है ही नहीं। इस प्रकार के वे सब हैं ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

सर्वेषां मूर्तिमत्त्वेऽपि विशेषमाह-सत्यज्ञानेति । सत्याश्च ज्ञानरूपाश्चानन्ताश्चानन्दरूपाश्च तत्रापि तदेकमात्रा विजातीयसंभेदरहितास्तत्रापि चैकरसाः सदैकरूपा मूर्तयो येषां ते । यद्वा सत्यज्ञानादिमात्रैकरसं यद्ब्रह्म तदेव मूर्तयो येषामिति। अत एवोपनिषदात्मज्ञानं सैव दृक् चक्षुर्येषां तेषामपि हि निश्चितमस्पृष्टभूरिमाहात्म्या न स्पृष्टं स्पर्शयोग्यं भूरि माहात्म्यं येषां ते तथाभूताः सन्तो व्यदृश्यन्तेति ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

सबों के मूर्तिमान होने पर भी उनकी विशेषता **सत्यज्ञान० इत्यादि** श्लोक से बतलायी गयी है । वे सब

के सब सत्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप अनन्त स्वरूप औंर आनन्द स्वरूप हैं । वे सभी एक समान विजातीय भेद से रहित उसमें भी उन सबों की मूर्ति (शरीर) एक समान है । अथवा सत्य ज्ञानादि मात्रैकरस जो ब्रह्म वे ही उन सबों के शरीर हैं । अतएव उपनिषदों में वर्णित ज्ञान रूप चक्षु से सम्पन्न ज्ञानियों के ज्ञान के विषय नहीं बनने वाले हैं । इस प्रकार से वे सब ब्रह्माजी को दिखाई पड़े ।।५४।।

एवं सकृद्ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् । यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ।।५५।।

अन्वयः— एवं अजः परब्रह्मात्मनः अखिलान् सकृदेव ददर्श, यस्यभासा सर्वम् इदं अखिलं सचाराचरं विभाति।।५५।।

अनुवाद— इस तरह से ब्रह्माजी ने सबों का परब्रह्म श्रीकृष्ण स्वरूप एक ही बार देखा, जिन भगवान् श्रीकृष्ण के ही प्रकाश से यह चराचरात्मक जगत् प्रकाशित होता है ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

एवं सकृदेकदैव ददर्श । परब्रह्मणो विशेषणं यस्येति ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से ब्रह्माजी ने एक ही बार देखा । **यस्य** यह परब्रह्म पद का विशेषण है ।।५५।।

ततोऽतिकुतुकोद्बृत्य स्तिमितैकादशेन्द्रियः । तद्धाम्नाऽभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्रिका ।।५६।।

अन्वयः— ततः स्तिमितैकादशेन्द्रियः अजः अति कुतुकोद्धृत्य पूः देवी अन्ति पुत्रिका इव तद्धाम्ना तुष्णीं बभूव।।५६।।

अनुवाद— यह अत्यन्त आश्चर्यमय दृश्य देखकर आर्श्चचकित ब्रह्माजी की ग्यारहों इन्द्रियाँ (पाँचकर्मेन्द्रियाँ) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और (मन) क्षुब्ध एवं स्तब्ध रह गयीं । वे श्रीभगवान् के तेज से निस्तेज होकर मौन हो गये, वे इस प्रकार से निस्तेज होकर खड़े थे जैसे व्रज की अधिष्ठातृ देवता के पास कोई पुतली खड़ी हो ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

अतिकुतुकेनाश्चर्येणोद्बृत्य दृष्टीः परावृत्य हंसपृष्ठे निपत्येति वा । कुतुकशब्दे तृतीयायाश्छान्दसो लुक् । यद्वा उद्बृत्यः इति छेदः । अतिकुतुकेन उद्वृत्यो विलोड्यो विपर्यस्तः स्वस्मिन्निति यावत् । पाठान्तरे त्वतिकुतुकेनोद्वृत्तः । क्षुभितः । तेषां धाम्ना तेजसा स्तब्धसर्वेन्द्रियो ब्रह्मा तूष्णीं निश्चलोऽभूत् । अत्र दृष्टान्तः-पूर्देवी व्रजाधिष्ठात्री काचिद्देवता तस्या अन्ति समीपे पुत्रिका चतुर्मुखीकृतकप्रतिमेव ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त आश्चर्य से आखों को खोलकर अथवा पीछे घूमकर हसके ऊपर दृष्टि करके कुतुक शब्द में तृतीय विभक्ति का छन्दस लुक् हुआ है । अथवा उद्ध्यः इस प्रकार से पदच्छेद हुआ है । अर्थात् अत्यन्त आश्चर्य के कारण उनकी दृष्टि अपने में ही विपर्यस्त हो गयी । **उदधृत्तः** इस प्रकार का पाठ भेद होने पर तो अर्थ होगा कि अत्यन्त आश्चर्य के कारण क्षुभित । उन सबों के तेज से ब्रह्माजी की सारी इन्द्रियाँ स्तब्ध हो गयी वे चुपचाप मौन खड़े हो गये । इस विषय में दृष्टान्त है कि जैसे व्रज की अधिष्ठातृ देवी के सन्निकट में कोई चार मुखों वाली निर्मित पुतली खड़ी हो ।।५६।।

इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमनि स्वप्रमितिके परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ।
अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति वा मुह्यति सति चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम् ।।५७।।

अन्वयः— अतर्क्ये निजमहिमनि, स्वप्रमितिके, अनातः परत्र अतन्निरसनमुखब्रह्म कमितौ किमिदमिति मुह्यति द्रष्टुमपि अनीशे इतीरेशे ज्ञात्वा परमः सपदि अजाजवनिकाम् चच्छाद ।।५७।।

अनुवाद— परीक्षित् श्रीभगवान् का स्वरूप तर्कातीत है उनकी महिमा असाधारण वह स्वप्रकाश आनन्दस्वरूप और माया से परे है, वेदान्त भी साक्षात् रूप से उसका वर्णन करने में असमर्थ है, इसीलिए उससे भिन्न का निरास करके किसी प्रकार कुछ संकेत करते है, सभी विद्याओं के अधिपति होकर भी श्रीभगवान् के दिव्य रूपों को बिल्कुल नहीं समझ सके यहाँ तक कि वे उन रूपो को देखने में भी असमर्थ थे, उनकी आँखें मुंद गयी, भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मा के मोह और असमर्थता को देखकर बिना किसी प्रयास के अपनी माया की परदा को हटा दिए ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

एवं मोहमग्नमजमुज्जहारेत्याह–इतीति । इरेशे इरा सरस्वती तस्या ईशे ब्रह्मणि किमिदमिति मुह्यति सति पश्चात्तद्द्रष्टुमप्यनीशे सति परमोऽजः श्रीकृष्णः सपद्यजाजवनिकां मायारूपां तिरस्करिणीं ययाद्भुतं दर्शितं तां चच्छाद तिरोधत्त । अपसारितवानित्यर्थः। अथवा अयं लोकाभिमानी ममैश्वर्यं द्रष्टुमयोग्य इति तस्योपरि मायां प्रसारितवानिति । क्क मुह्यति सति । अतर्क्ये तर्कागोचरे। निजोऽसाधारणो महिमा यस्य तस्मिन्निति मोहे हेतुरुक्तः । दर्शनायोग्यत्वाय त्रीणि विशेषणानि स्वप्रमितिके स्वप्रमिति स्वप्रकाशं च तत्कं सुखं च यस्मिन्। अत एवाजातः प्रकृतेः परत्र परस्मिन्। अतन्निरसनमुखेन ब्रह्मकैः श्रुतिशिरोभिर्मितिर्ज्ञानं यस्मिंस्तस्मिन्स्वरूपे।।५७।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से मोहमग्न ब्रह्माजी के मोह को भगवान् ने दूर कर दिया इस बात को **इतीरेशे० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । इरा सरस्वतीजी का नाम है उनके स्वामी ब्रह्माजी श्रीभगवान् के महिम के विषय में मोहित हो रहे थे । वे यह नहीं समझ रहे थे कि यह सब क्या है ? और बाद में जब ब्रह्माजी श्रीभगवान् के उन रूपों को देखने में भी जब असमर्थ हो गये तब भगवान् श्रीकृष्ण शीघ्र अपनी माया रूपी परदे को उनकी आँखों के सामने से हटा लिया । अथवा यह अपने लोक का अभिमानी है । अतएव मेरा ऐश्वर्य देखने योग्य नहीं है, इस विचार से श्रीभगवान् ने ब्रह्माजी पर अपनी माया को फैलाया, किन्तु ब्रह्माजी श्रीभगवान् के तर्कातीत तथा असाधारण महिमा के विषय में मोहग्रस्त हो गये । भगवान् की महिमा को देखने में अयोग्यता के हेतु भूत महिमा के तीन विशेषण यहाँ दिए गये हैं- १. श्रीभगवान् की महिमा स्वयम्प्रकाश एवं आनन्द स्वरूप है । २. अतएव वह प्रकृति से परे है । ३. ब्रह्म व्यतिरिक्त का निषेध करती हुई वेदान्त श्रुतियाँ उसका वर्णन करती हैं इस प्रकार के ब्रह्म के स्वरूप के विषय में ब्रह्माजी मोहित हो गये थे ॥५७॥

ततोऽर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदुत्थितः । कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना ॥५८॥

अन्वयः— ततः अर्वाक् प्रतिलब्धाक्षः कः परेत वद् उत्थितः कृच्छ्राद वै दृष्टीः उन्मील्य आत्मना सह इदम् आचष्ट।।५८।।

अनुवाद— इससे ब्रह्माजी को बाह्य ज्ञान हुआ, जैसे वे मरकर जी उठे हों । उन्होंने बड़ी कठिनाई से अपनी आँखें खोली । तब उनको अपना शरीर और जगत् दिखाई दिया ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

अर्वाक् बहिः प्रतिलब्धान्यक्षीणि येन सः । परेतवन्मृतो यदि कंथचित्पुनरुत्तिष्ठानि तथा । दृष्टीर्नेत्राणि ।।५८।।

भाव प्रकाशिका

अर्वाक् अर्थात् बाहरी विषयों का ज्ञान हुआ । जैसे कोई मरकर पुनः जी जाय उस तरह वे जंगे ॥५८॥

सपद्येवाभितः पश्यन्दिशोऽपश्यत्पुरः स्थितम् । वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥५९॥

अन्वयः— सपदि एवं अभितः पश्यन् दिशः अपश्यत् पुरः स्थितं वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् अपश्यत्।।५९।।

अनुवाद— शीघ्र ही अपने चारो ओर देखते हुए उन्होंने सर्व प्रथम दिशाओं को देखा । उसके पश्चात् शीघ्र ही उन्होंने सामने वृन्दावन को देखा । वृन्दावन सबों के लिए एक समान प्रिय है । चारो ओर जीवो को जीवन प्रदान कराने वाले फलों एवं फूलों से लदे हुए हरे-हरे पत्तों वाले वृक्षों की पंक्ति विद्यमान है ॥५९॥

भावार्थ दीपिका

जनानामाजीव्यैर्द्रुमैराकीर्णम् । समाप्रियं संततान्यासमन्तात्प्रियाणि यस्मिंस्तत् ।।५९।।

भाव प्रकाशिका

जीवों को जीवन प्रदान करने वाले वृक्षों से परिपूर्ण है वृन्दावन । **समाप्रियम्** अर्थात् जिसमें चारो ओर प्रिय वस्तुएँ भरी हुई है ऐसा है वृन्दावन ।।५९।।

यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन्नृमृगादयः । मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्तर्षकादिकम् ।।६०।।

अन्वयः— यत्र नैसर्ग दुर्वैराः नृ मृगादयः मित्राणीव आसन् अजितावासद्रुतरुट्तर्षादिकम् यत्र ।।६०।।

अनुवाद— जिस वृन्दावन में स्वभाव से ही दुस्त्यज वैर रखने वाले मनुष्य, पशु-पक्षी भी मित्र के समान रहते है । श्रीभगवान् का निवास स्थान होने के कारण क्रोध लोभ इत्यादि जहाँ से भाग गये हैं, इस प्रकार के वृन्दावन को ब्रह्माजी ने देखा ।।६०।।

भावार्थ दीपिका

तदाह-यत्रेति । नैसर्गदुर्वैराः स्वाभाविकाप्रतिकार्यवैरवन्तोऽपि नराः सिंहादयश्च मित्राणीव यत्र सहैवासन् । अजितस्यावासेन द्रुताः पलायिताः रुट्तर्षादयः क्रोधलोभादयो यस्मात्तथाभूतं वृन्दावनमपश्यदिति ।।६०।।

भाव प्रकाशिका

वृन्दावन के सर्वप्रियत्व का वर्णन करते हुए **यत्र इत्यादि** श्लोक कहते हैं । **नैसर्ग दुर्वैराः** अर्थात् स्वाभाविक दुस्त्यज वैर रखने वाले मनुष्य तथा सिंह आदि भी उस वृन्दावन में मित्र के समान निवास करते हैं । श्रीभगवान् का निवास स्थान होने के कारण वहाँ से क्रोध लोभ इत्यादि पलायन कर गये हैं, ऐसे वृन्दावन को ब्रह्माजी ने देखा ।।६०।।

तत्रोद्वहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम् ।
वत्सान्सखीनिव पुरा परितो विचिन्वदेकं सपाणिकवलं परमेष्ठ्याचष्ट ।।६१।।

अन्वयः— अद्वयं च वत्सान् विचिन्वत् एकं च सखीन् अगाधबोधं च विचिन्वत् अनन्तं च परितोविचिन्वत् परं च शिशुत्वम् उद्वहत्, ब्रह्म च सपाणि कवलं इति नाट्यम् उद्वहत् इत्थं अद्वितीयं परब्रह्म गोपवंश शिशुत्वम् उद्वहत पुरा इव परमेष्ठी आचष्ट ।।६१।।

अनुवाद— वृन्दावन के देखने के पश्चात् ब्रह्माजी ने अद्वितीय होने पर भी बछड़ों को खोजते हुए, सबसे महान् होने पर शिशुत्व को धारण किए हुए, ब्रह्म होकर भी हाथ में दही और भात का कवल लिए हुए इस तरह अद्वितीय परंब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण गोपवंश के शिशुत्व का नाटक कर रहे हैं ।।६१।।

भावार्थ दीपिका

तत्र च परमेष्ठी ब्रह्मा इव पुरा पूर्ववदेव ब्रह्म अचष्टापश्यत् । कथंभूतम् । पशुपवंशशिशुत्वं नाट्यमुद्वहत् । नाट्यमित्यत्र हेतुः- अद्वयमित्यादि । अद्वयं च वत्सान्विचिन्वत्, एकं च सखीन् अगाधबोधं च विचिन्वत्, अनन्तं च परितो विचिन्वत्, परं च शिशुत्वमुद्वहत्, ब्रह्म च सपाणिकवलमिति नाट्यमेवोद्वहदित्यर्थः ।।६१।।

भाव प्रकाशिका

वहाँ पर ब्रह्माजी ने पहले के ही समान परंब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण को देखा । कैसे परंब्रह्म को ? तो इस पर कहते हैं- गोपवंश के बालक होने का नाटक कर रहे हैं । नाट्य में अद्वयम् इत्यादि हेतु हैं । वे अद्वितीय होकर भी बछड़ों को खोज रहे हैं । एक होने पर भी उनके सखा हैं, अगाध ज्ञान सम्पन्न होने पर भी खोजने का काम कर रहे हैं, अनन्त होकर भी चारो ओर खोज रहे हैं, सबसे महान् होकर भी शिशुत्व को धारण किए

हुए हैं, बछ होकर भी अपने हाथ में दही और भात का ग्रास लिए हुए हैं। इस तरह नाट्य करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण को उन्होंने देखा ॥६१॥

दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोऽवतीर्य पृथ्व्यां वपुः कनकदण्डमिवानिपात्य ।
स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरङ्घ्रियुग्मं नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥६२॥

अन्वयः— दृष्ट्वा च निज धोरणतः त्वरया अवतीर्य, पृथिव्यां कनकदण्डवद वपुः निपात्य, चतुर्मुकुटकोटिभिःअङ्घ्रियुग्मं स्पृष्ट्वा नत्वा मुदश्रुजलैः अभिषेकम् अकृत ॥६२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् को देखते ही ब्रह्माजी अपने वाहन पर से शीघ्रता पूर्वक उतर कर और सोने के समान चमकते हुए अपने शरीर से पृथिवी पर गिर पड़े। वे अपने चारो मुकुटों के अग्रभाग से श्रीभगवान् के दोनों चरणों का स्पर्श करके श्रीभगवान् को नमस्कार किये, और आनन्द के आँसुओं की धारा से उन चरणों को नहलवा दिये ॥६२॥

भावार्थ दीपिका

निजधोरणतः स्ववाहनात्त्वरेण वेगेनावतीर्य दण्डवन्नत्वा चतुर्णां मुकुटानामग्रैरङ्घ्रियुग्मं स्पृष्ट्वा मुदश्रुसुजलैरानन्दाश्रुरूपैः सुजलैरभिषेकमकरोदिति ॥६२॥

भाव प्रकाशिका

अपनें वाहन से शीघ्रता से उतरकर ब्रह्माजी दण्ड के समान पृथिवी पर गिरकर श्रीभगवान् को नमस्कार करके, अपने चारो मुकुटों के अग्रभाग से श्रीभगवान् के दोनों चरणों का स्पर्श करके आनन्द जन्य आँसुओं के सुन्दर जल से उन्होंने श्रीभगवान् के दोनों चरणों का अभिषेक कर दिया ॥६२॥

उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् । आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः॥६३॥

अन्वयः— प्राग्दृष्टं महित्वं स्मृत्वा स्मृत्वा, पुनः पुनः उत्थाय उत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् आस्ते ॥६३॥

अनुवाद— वे भगवान् श्रीकृष्ण की पहले देखी हुई महिमा का स्मरण करके भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों पर बार-बार गिरते और उठ-उठकर फिर गिर पड़ते, इस तरह बहुत देर तक श्रीभगवान् के चरणों में ही पड़े रहे॥६३॥

भावार्थ दीपिका

चिरस्य चिरं पादयोः पतन्नास्ते ॥६३॥

भाव प्रकाशिका

दीर्घ काल तक भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में पड़े रहे ॥६३॥

शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकन्धरः ।
कृताञ्जलि प्रश्रयवान्समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥६४॥

इति श्रीमद्भावते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अन्वयः— अथ शनैः उत्थाय लोचने विमृज्य मुकुन्दम् उद्वीक्ष्य विनम्र कन्धरः कृताञ्जलिः पश्रयवान् समाहितः सवेपथुः गद्गदया इलया ऐलत ॥६४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् ब्रह्माजी धीरे-धीरे उठकर अपनी आँखों को पोंछकर भोग तथा मोक्ष को प्रदान करने वाले श्रीभगवान् को देखकर उनका माथा झुक गया वे हाथ जोड़कर अत्यन्त नम्रता एवं एकाग्रता के साथ काँपते हुए अपनी गद्गद वाणी से श्रीभगवान् की स्तुति किए ॥६४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के तेरहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

सवेपथुः सकम्पः । अत एव गद्गदया । अनुकरणमेतत् । इलया वाचा । ऐलत अस्तौत् ।।६४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

सवेपथुः अर्थात् काँपते हुए अतएव गद्गद वाणी से, यह अनुकरण है । इलया अर्थात् वाणी से ऐलयत् स्तुति की ।।६४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१३।।

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्माजी द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति

ब्रह्मोवाच

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥१॥

अन्वयः— हे इडय अभ्र वपुषे तडिदम्षरग्य गुञ्जावतंसपरिच्छिलसन्मुखाय, वन्यस्रजे, कवलवेत्रविषाणवेणु लक्ष्मश्रिये पशुपाङ्गजाय ते मृदुपदे नौमि ॥१॥

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— हे स्तुति करने योग्य प्रभो ! सजल मेघ के समान शरीर की कान्ति से सम्पन्न बिजली के समान चमकते हुए पीताम्बर को धारण करने वाले, गले में घुंघची की माला कानों में कुण्डल सिर पर मोर मुकुट से सुशोभित मुख वाले, वक्षःस्थल पर वनमाला धारण किए हुए, हाथ में दही और भात का ग्रास लिए हुए, बगल में सिंगी तथा वेत्र दबाये हुए कमर में खोंसी हुई वंशी की शोभा से सम्पन्न नन्दनन्दन आपके कोमल चरणों में मेरा नमस्कार है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्दशेऽद्भुतं दृष्ट्वा पूर्वागन्तुकनिश्चयम् । अनीशः कर्तुमस्तौषीत्कृष्णं ब्रह्मा विमोहितः । स्वकृतापराधेन भिया सकम्पतया भगवन्महिमानमनवगाहमानो यथादृष्टस्वरूपमेव कीर्तयन्नाह–नौमीति । हे ईड्य स्तुत्य, ते तुभ्यं नौमि । द्वितीयार्थे चतुर्थीः, अथवा नौमीत्युक्त्वा प्रस्तुतस्य भगवतः कर्मत्वे ज्ञाते प्रयोजनापेक्षायामेवंभूतो भगवानेव प्रयोजनमिति तादर्थ्ये चतुर्थी । यद्वा, तुभ्यं त्वामेव प्रसादयितुं त्वामेव स्तौमीत्यर्थः । अभ्रवद्वपुर्यस्य तस्मै । तडिद्वदम्बरं यस्य तस्मै । गुञ्जाभिरवतंसौ कर्णभूषणे परिपिच्छं च बर्हापीडं तैर्लसन्मुखं यस्य तस्मै । वन्याः स्रजो यस्य तस्मै । कवलादिभिर्लक्ष्मभिः श्रीः शोभा यस्य तस्मै । मृदू पादौ यस्य तस्मै पशुपस्याङ्गजाय ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौदहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि श्रीभगवान् के पहले तथा बाद के रूपों का निश्चय करने में असमर्थ तथा मोहग्रस्त ब्रह्माजी भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति किए । अपने किए गये अपराध जन्य भय

के कारण काँपते हुए श्रीभगवान् की महिमा का पता नहीं लगा सकने वाले ब्रह्माजी श्रीभगवान् के दिखने वाले स्वरूप का ही **नौमि० इत्यादि** श्लोक के द्वारा वर्णन करते हैं। हे स्तुत्य प्रभो ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। **ते** पद में द्वितीया के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है। अथवा नमस्कार करता हूँ प्रस्तुत श्रीभगवान् के कर्मत्व का ज्ञान हो जाने पर उसके प्रयोजन को जानने की अपेक्षा होने पर इस तरह के श्रीभगवान् ही प्रयोजन हैं, इस तरह से तादर्थ्य के अर्थ में चतुर्थी विभक्ति है। अथवा आपको ही प्रसन्न करने के लिए मैं आपको ही नमस्कार करता हूँ यह अर्थ है। सजल मेघ के समान शरीर वाले तथा बिजली के समान चमकने वाले पीताम्बर धारण किए हुए एवं कोमल दोनों चरण कमलों वाले नन्दनन्दन आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य नतु भूतमयस्य कोऽपि ।
नेशे महि त्ववसितुं मनसान्तरेण साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ॥२॥

अन्वयः— हे देव ! मदनुग्रहस्य, स्वेच्छामयस्य, नतुभूतमयस्यवपुषः महित्ववसितुं कोऽपि नेशे । साक्षात् तवैव आत्मसुखानुभूते; किमुत ॥२॥

अनुवाद— हे स्वयप्रकाश, प्रभो मुझ पर कृपा करने के ही लिए आपका यह जो अपनी इच्छा के अनुसार दिव्य विग्रह है, वह पाञ्चभौतिक नहीं है ऐसे आपके इस श्रीकृष्णावतार के शरीर की महिमा को न तो मैं जानने में समर्थ हूँ और न तो कोई दूसरा ही समर्थ है जब इसी शरीर के विषय में ऐसी बात है तो फिर आत्मानन्दानुभव रूप आपकी जो साक्षात् महिमा है, उसको कोई एकाग्रमन से भी कैसे जान सकता है ?॥२॥

भावार्थ दीपिका

ननु नौमीति प्रतिज्ञाय किं स्वरूपानुवादमात्रं क्रियते अत आह–अस्यापीति । भो देव, अस्यापि सुलभत्वेन प्रकाशितस्यापि तव वपुषोऽवतारस्य महि महिमानमवसितुं ज्ञातुं कोऽपि को ब्रह्मा अहमपि नेशे न शक्नोमि । यद्वो कश्चिदपि नेशे न समर्थ आसीत्। सुलभत्वाय विशेषणद्वयम् । मदनुग्रहस्य ममानुग्रहो यस्मात्तन्मदनुग्रहं तस्य । किंच स्वेच्छामयस्य स्वीयानां भक्तानां यथा यथेच्छा तथा तथा भवतः । तर्हि किमिति ज्ञातुं न शक्यतेऽत आह–नतु भूतमयस्याचिन्त्यशुद्धसत्त्वात्मकस्य । यदाऽस्यैवं तदा कथं पुनः साक्षात्तव केवलस्यात्मसुखानुभूतेरेव स्वसुखानुभवमात्रस्यावतारिणो गुणातीतस्य महिमानमान्तरेण निरुद्धेनापि मनसा को वा ज्ञातुं समर्थो भवेत् । अथवा भूतमयस्यापि तु विराड्रूपस्य तव त्वन्नियम्यस्य वपुषो महिमानमेवावसितुं कोऽपि नेशे तदा साक्षात्तवैवासाधारणस्य नियम्यनियन्तृभेदरहितस्योक्तलक्षणस्यास्य महिमानमवसितुं कोऽपि नेश इति किमु वक्तव्यमित्यर्थः॥२॥

भाव प्रकाशिका

अब प्रश्न होता है कि **नौमि०** इस तरह से प्रतिज्ञा करके स्वरूप मात्र का अनुवाद करते हैं क्या तो इस पर **अस्यापि इत्यादि श्लोक** कहते हैं— हे दिव्य गुण संपन्न प्रभो ! आपका यह जो सुलभ रूप से प्रकाशित इस अवतार का शरीर है इसकी महिमा को जान पाने में मैं समर्थ नहीं हूँ अथवा इस शरीर की महिमा को जान सकने में कोई दूसरा भी समर्थ नहीं है। इसके सुलभत्व को बतलाने के लिए दो विशेषण हैं— १. **मदनुग्रहस्य** अर्थात् मुझ पर कृपा करने के लिए आपने यह शरीर धारण किया है। २. **स्वेच्छामयस्य** आपके भक्तों की जैसी इच्छा उसी के अनुसार आपने यह शरीर धारण किया है। तो प्रश्न होता है कि इसे क्यों नहीं जान सकते हैं? इस पर कहते हैं आपका यह शरीर पाँच भौतिक नहीं है अपितु यह अचिन्त्य तथा शुद्ध सत्त्व गुणमय है। अथवा पाञ्चभौतिक भी होकर विराट् रूप हैं। यह आपका नियम्य है, ऐसे आपके इस शरीर की महिमा का ठीक-ठीक पता लगा पाने में कोई भी समर्थ नहीं है। इस बात को क्या कहना है ?॥२॥

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम् ।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम् ॥३॥

अन्वयः— ज्ञाने प्रयासम् उदपास्य, सन्मुखरितां भवदीय वार्तां, स्थाने स्थिताः श्रुति गतां तनुवाङ्मनोभिः ये नमन्तः एव जीवन्ति हे अजित त्रिलोक्याम् प्रायशः अजितः अपि जितः असि ॥३॥

अनुवाद— हे प्रभो ! जो लोग ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रयास करना त्यागकर अपने स्थान में ही रहकर केवल सत्सङ्ग करते हैं और उन सत्पुरुषों द्वारा श्रुतियों में वर्णित आपकी कथाओं का श्रवण करते हुए आपको मन, वाणी और शरीर से नमस्कार करते हुए अपना जीवन यापन करते हैं, हे अजित प्रभो ! यद्यपि त्रिलोकी में आपको कोई भी नहीं जीत सकता है, उन लोगों के द्वारा आप जीत लिए जाते हैं । अर्थात् आप उनके प्रेम के अधीन हो जाते हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तर्ह्यज्ञाः कथं संसारं तरेयुरत आह- ज्ञान इति । उदपास्य ईषदप्यकृत्वा सद्भिर्मुखरितां स्वत एव नित्यं प्रकटितां भवदीयवार्तां स्वस्वस्थान एव स्थितास्तत्सन्निधिमात्रेण स्वत एव श्रुतिगतां श्रवणं प्राप्तां तनुवाङ्भनोभिर्नमन्तः सत्कुर्वन्तो ये जीवन्ति केवलं यद्यपि नान्यत्कुर्वन्ति तैः प्रायशस्त्रिलोक्यामन्यैरजितोऽपि त्वं जितः प्राप्तोऽसीति किं ज्ञानश्रमेणेत्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई मेरे स्वरूप को जान ही नहीं सकता है तो फिर अज्ञानी जीव इस संसार का संतरण कैसे कर सकते हैं ? इस पर ब्रह्माजी **ज्ञाने० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं अर्थात् जो लोग ज्ञान प्राप्ति के लिए विल्कुल प्रयास नहीं करते सत् पुरुषों के द्वारा जिसका नित्य ही वर्णन किया जाता है, जो आपकी कथाएँ श्रुतियों में वर्णित हैं, उन कथाओं को अपने स्थान पर ही रहकर सुनते हैं । तथा आपके प्रभाव को जानकर मन वाणी और शरीर से आपको सदा नमस्कार करते हुए अपना जीवन बिताते हैं, ऐसे आपके प्रेमी भक्त आपको अपने प्रेम के बन्धन में बाँध लेते हैं । यद्यपि आपको त्रिलोकीं में कोई भी नहीं जीत सकता है, फिर भी वे प्रेमी भक्त आपको जीत लेते हैं ॥३॥

श्रेयः स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥४॥

अन्वयः— हे विभो श्रेयः स्रुतिं भक्ति मुदस्य केवल बोधलब्धये क्लिश्यन्ति तेषाम् असौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यत् यथा स्थूल तुषावघातिनाम् ॥४॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आपकी भक्ति सभी प्रकार के कल्याण का साधन है जो लोग उसका परित्याग करके केवल ज्ञान की प्राप्ति के ही लिए तपस्या आदि के द्वारा कष्ट उठाते हैं और दुःखों को भोगते हैं । उनको केवल क्लेश ही क्लेश हाथ लगता है और कुछ नहीं । जैसे केवल भूसी कूटने वालों को केवल श्रम ही मिलता है चावल नहीं॥४॥

भावार्थ दीपिका

भक्तिं विना ज्ञानं तु नैव सिध्येदित्याह-श्रेयःस्रुतिमिति । श्रेयसामभ्युदयापवर्गलक्षणानां स्रुतिः स्रवणं यस्याः सरस इव निर्झराणाम् तां ते तव भक्तिमुदस्य त्यक्त्वा । श्रेयसां मार्गभूतामिति वा । तेषां क्लेशलः क्लेश एवावशिष्यते । अयं भावः- यथा अल्पप्रमाणं धान्यं परित्यज्य अन्तःकरण ही तान् स्थूलधान्याभासास्तुषानेवावघ्नन्ति तेषां न किंचित्फलम्, एवं भक्तिं तुच्छीकृत्य ये केवलबोधाय प्रयतन्ते तेषामपीति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

भक्ति के बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती है इस बात को **श्रेयः स्रुतिम्० इत्यादि** श्लोक से कहते

हैं मुक्ति रूपी कल्याण का उद्गम स्थान भक्ति उसी तरह से है जिस तरह निर्झरों का उद्गम स्थान महासरोवर है। आपकी उस भक्ति का परित्याग करके, जो भक्ति कल्याण प्राप्ति का मार्ग है, उस भक्ति का परित्याग करके जो ज्ञान प्राप्ति के लिए नाना प्रकार का कष्ट उठाते हैं, उन लोगों के लिए वह क्लेश ही प्राप्त होता है और कुछ नहीं मिलता है । कहने का भाव है कि जो लोग थोड़ा सा धान को छोड़कर जिसमें चावल का कण भी नहीं है उस धान के तरह प्रतीत होने वाली भूसी को ही कूटते है उनको केवल परिश्रम करना ही हाथ लगता है, चावल नहीं मिलता उसी तरह जो लोग भक्ति की उपेक्षा करके केवल ज्ञान की प्राप्ति का प्रयास करते हैं उनको आत्मकल्याण की प्राप्ति नहीं होती है ॥४॥

पुरेह भूमन्बहवोऽपि योगिनस्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया ।
विबुध्य भक्त्यैव कथोपनीतया प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥५॥

अन्वयः— हे भूमन् इह पुरा बहवः अपि योगिनः त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया कथोपनीतया विबुध्य हे अच्युत ते परां, गतिम् अञ्ज प्रपेदिरे ॥५॥

अनुवाद— हे अनन्त प्रभो ! इस लोक में पहले भी ऐसे बहुत से योगी हो चुके है जो अपने समस्त लौकिक एवं वैदिक कर्मों को आपको समर्पित करके उन समर्पित कर्मों तथा आपकी लीला कथाओं से अपकी भक्ति को प्राप्त करके उस भक्ति के ही आपके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लिए और हे अच्युत वे बिना किसी प्रयास के ही आपके परम पद की प्राप्ति कर लिए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

भक्त्यैव ज्ञानं नान्यथेत्यत्र सदाचारं प्रमाणयति–पुरेति । हे भूमन्नपरिच्छिन्न, इह लोके पूर्वं योगिनोऽपि सन्तो योगैर्ज्ञानमप्राप्य पश्चात्त्वदर्पितेहास्त्वय्यर्पिता लौकिक्यपीहा चेष्टा यैस्ते निजकर्मलब्धया, त्वदर्पितैर्निजैः कर्मभिर्लब्धया । त्वय्यर्पिता ईहा निजानि कर्माणि च तैर्लब्धयेत्येकं पदं वा । कथोपनीतया कथया त्वत्समीपं प्रापितया भक्त्यैव विबुध्यात्मानं ज्ञात्वा अञ्जः सुखेनैव ते परां गतिं प्राप्ताः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

भक्ति के द्वारा ही ज्ञान की प्राप्ति होती है, किसी दूसरे साधन से नहीं इस विषय में सत्पुरुषों के आचरण रूप प्रमाण को ब्रह्माजी **पुरेह० इत्यादि** श्लोक से उपन्यस्त करते हैं । हे अनन्त ! इस लोक में पहले भी बहुत से योगी पुरुष हो चुके हैं जो योग के द्वारा ज्ञान की प्राप्ति नहीं कर सके । वे लोग अपने समस्त लौकिक एवं वैदिक कर्मों को आपके चरणों में समर्पित कर दिए । उन अपने कर्मों के समर्पण तथा आपकी कथाओं के द्वारा भक्ति को प्राप्त करके उनके अपने स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लिए और बिना किसी प्रयास के आपके परमपद को प्राप्त कर लिए ॥५॥

तथापि भूमन्महिमाऽगुणस्य ते विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः ।
अविक्रियात्स्वानुभवादरूपतो ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ॥६॥

अन्वयः— हे भूमन् अगुणस्य ते महिमा अमलान्तरात्मभिः प्रत्याहृतेन्द्रियैः अविक्रियात् स्वानुभावात् अरूपतः अनन्यबोध्यात्मतया, विबोद्धम् अहेति, अन्यथा न ॥६॥

अनुवाद— हे भूमन् ! आपके निर्गुण एवं सगुण दोनों स्वरूपों का ज्ञान कठिन है । फिर भी आपके निर्गुण स्वरूप की महिमा को इन्द्रियों का प्रत्याहार करके विशेष आकार का परित्याग आत्माकार अन्तःकरण के साक्षात्कार पूर्वक जाना जा सकता है, इसके अतिरिक्त किसी दूसरे प्रकार से नहीं जाना जा सकता ॥६॥

भावार्थ दीपिका

एवं तावत्सगुणनिर्गुणयोरुभयोरपि ज्ञानं दुर्घटमिति त्वत्कथाश्रवणादिनैव त्वत्प्राप्तिर्नान्यथेत्युक्तम्, इदानीं यद्यप्युभयोरविशेषेण दुर्ज्ञेयत्वमुक्तं तथापि गुणातीतस्य ज्ञानं कथंचिद्भवेन्नतु सगुणस्य तव अचिन्त्यानन्तगुणत्वादिति श्लोकद्वयेन स्तौति-तथापीति। हे भूमन्, अपरिच्छन्नगुणस्य ते महिमा अमलैरन्तरात्मभिः प्रत्याहृतेन्द्रियैर्विबोद्धुं बोधगोचरीमवितुमर्हति योग्यो भवति । अथवा विबोद्धुं ज्ञातुमर्हति अर्ह्यते शक्यत इत्यर्थः । यद्वा महिमेति महिमानं कश्चिद्वोद्धुमर्हतीत्यर्थः । कथम् स्वानुभवादात्माकारान्तःकरणसाक्षात्कारात् । नन्वन्तः करणमपि सविकारमेव विषयीकरोतीति कथमात्माकारता तस्येत्यत आह-अविक्रियादिति । विक्रिया विशेषाकारस्तद्रहितात् । विशेषपरित्याग एवात्माकारतेत्यर्थः । नन्वन्तः करणसाक्षात्कारविषयत्वेऽनात्मत्वप्रसङ्गः स्यादत आह-अरूपत इति । रूपं विषयः । अविषयात् । वृत्तिविषयत्वमेवात्मनो न फलविषयत्वम् । अतो नायं दोष इति भावः । कथं तर्हि स्फूर्तिः । अनन्यबोध्यात्मतया स्वप्रकाशत्वेनैव, नत्वन्यथा इदं तदिति विषयत्वेनेत्यर्थः । अथवा मा सर्वतोऽन्तरङ्गा लक्ष्मीरप्यगुणस्य ते महि महिमानममलैरन्तर्वृत्तिभिारिन्द्रियैरपि तथा यादृग्वस्तुतस्तेन रूपेण विबोद्धुं किमर्हति, नार्हत्येवेत्यर्थः। कथं तर्ह्यर्हति तदाह-स्वानुभवादित्यादिना । उक्तार्थमेवैतत् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार आपके सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का ज्ञान अत्यन्त कठिन है, अतएव आपकी कथाओं आदि के श्रवण इत्यादि के ही द्वारा आपकी प्राप्ति सम्भव है, किसी दूसरे प्रकार से नहीं, यह कहा जा चुका है, अब यह बतलाया जा रहा है कि यद्यपि दोनों ही रूप दुर्ज्ञेय हैं फिर भी आपके गुणातीत रूप को तो किसी प्रकार से जाना भी जा सकता है, लेकिन आपके सगुण रूप को किसी भी प्रकार नहीं जाना जा सकता है, क्योंकि आपके गुण अचिन्त्य एवं अनन्त हैं, इसतरह से ब्रह्माजी **तथापि० इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति करते हैं । हे अनन्त ! आपके गुण निस्सीम है । ऐसे आपकी महिमा वे ही अमलात्मा महापुरुष जान सकते हैं, जिन लोगों ने अपनी इन्द्रियों का प्रत्याहार कर लिया है । अब प्रश्न होता है कि कैसे जाना जा सकता है तो इस पर कहते हैं- आत्माकार अन्तःकरण के साक्षातकार के द्वारा । प्रश्न है कि अन्तःकरण भी विकार युक्त ही विषयों को अपना विषय बनाता है, अतएव वह आत्माकाराकारित कैसे हो सकता है ? इस पर कहते हैं **अविक्रियात्** विक्रिया शब्द विशेषाकार का बोधक हैं उससे रहित अन्तःकरण के द्वारा विशेष का परित्याग ही आत्माकारता है । अब प्रश्न होता है कि यदि आत्मा का अन्तःकरण के द्वारा साक्षात्कार होगा तब तो उसके अनात्मा होने का प्रसङ्ग होगा, तो इस पर कहते हैं **अरूपतः** रूप विषय को कहते हैं । अर्थात् आत्म वृत्ति का ही विषय होती है फल का नहीं । अतएव इसमें कोई दोष नहीं है । फिर प्रश्न होता है तो आत्मा की स्फूर्ति कैसे होती है ? चूकि आत्मा अनन्य बोध है अतएव आत्मा स्वप्रकाश रूप से ही उसकी स्फूर्ति रूप ही होती है । अथवा पूर्ण रूप से वह अन्तरङ्ग नहीं है निगुर्ण आपकी महिमा निर्मल अन्तःकरण वाले महापुरुष अपनी अन्तः वृत्ति वाली इन्द्रियों के द्वारा भी आत्मा जिस प्रकार की है उसे प्रकार से उसको जान सकते हैं क्या ? नहीं जान सकते । तो फिर प्रश्न होता है कि वे जिस तरह से जान सकते हैं तो इस पर **स्वानुभवात् इत्यादि** अर्थात् अपने निर्विषय अनुभव के द्वारा ही ।।६।।

गुणात्मनस्तेऽपि गुणान्विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य ।
कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पैर्भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ।।७।।

अन्वयः— यैः सुकल्पैः कालेन भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः विमिताः अपि के हितावतीर्णस्य अस्य गुणात्मनः ते गुणान् बिमातुं ईशिरे ।।७।।

अनुवाद— हे प्रभो जिन अत्यन्त निपुण पुरुषों ने अनेक जन्मों तक परिश्रम करके, पृथिवी के एक-एक कणों को, आकाश के तुषार बूंदों को तथा आकाश के तारों को एक-एक करके गिन डाला है, उन लोगों में भी

भला कौन ऐसा पुरुष हो सकता है जो आपके सगुण स्वरूप के समस्त गुणों को गिन सके ? प्रभों आप तो केवल संसार का कल्याण करने के लिए ही अवतीर्ण होते हैं । आपकी महिमा को जान पाना अत्यन्त कठिन है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

गुणात्मनो गुणानामात्मनो गुणाधिष्ठातुस्ते तव पुनर्गुणान्विमातुमेतावन्त इति गणयितुमपि के ईशिरे समर्था बभूवुः दूरतस्तद्विशेषवार्ता । कथंभूतस्य तव । अस्य विश्वस्य हिताय पालनाय बहुगणाविष्कारेणावतीर्णस्य । ननु कालेन निपुणैः किमशक्यमत आह-कालेनेति । वाशब्दो वितर्के । सुकल्पैरतिनिपुणैर्बहुजन्मना कालेन भूपरमाणवो विमिता विशेषेण गणिता भवेयुः । तथा खे मिहिका हिमकणा अपि । तथा द्युभासो दिवि नक्षत्रादिकिरणपरमाणवोऽपि ।।७।।

भाव प्रकाशिका

अनन्त गुणों के एकमात्र अनन्य आपके गुणों को कौन ऐसा है जो गिनकर यह कह सके कि इतने ही गुण है ऐसा कोई भी नहीं हो सकता है । आप कैसे है ? तो इस पर ब्रह्मा जी कहते हैं कि विश्व का पालन (रक्षण) करने के ही लिए आप अनेक गुणों के आविष्कार पूर्वक अवतार लिए है । यदि कोई कहे कि निपुण पुरुष के द्वारा बहुत काल में सबकुछ किया जा सकता है तो ब्रह्माजी कहते हैं **कालेन० इत्यादि** वा शब्द वितर्क के अर्थ में प्रयुक्त है । अत्यन्त निपुण पुरुष जिन लोगों को अनेक जन्मों में प्रयास करके पृथिवी के परमाणुओं, आकाश के ओस की बूँदों तथा आकाश के तारों को गिन लिया है, वे भी आपके समस्त गुणों को गिनकर बतला सकते है क्या ?।।७।।

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ।।८।।

अन्वयः— तत् ते अनुकम्पां सुसमीक्षमणः आत्मकृतं विपाकं भुञ्जान एव हृद्वाग्वपुभिः नमस्ते विदधन् एव यः जीवेत स मुक्तिपदे दायभाक् ।।८।।

अनुवाद— जो सत्पुरुष प्रत्येक क्षण आपकी कृपा का अनुभव करता है, अपने किए हुए कर्मों के फलस्वरूप सुख अथवा दुःख को निर्विकार मन से प्रसन्नता पूर्वक भोग लेता है, तथा जो मन, वाणी तथा शरीर से आपको सदा नमस्कार करता रहता है, वह मुक्ति का अधिकारी उसी प्रकार होता है जैसे पिता की सम्पत्ति का अधिकारी उसका सत्पुत्र होता है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

तस्माद्भक्तिरेव सङ्गच्छत इत्याह-तत्तेऽनुकम्पामिति । सुसमीक्षमाणस्तव कृपा कदा भविष्यतीति बहुमन्यमानः स्वार्जितं च कर्मफलमनासक्तः सन् भुञ्जान एव नातीव तप आदिना क्लिश्यन्नेवं यो जीवेत स मुक्तौ दायभाग्भवति । भक्तस्य जीवनव्यतिरेकेण दायप्राप्ताविव मुक्तौ नान्यदुपयुज्यत इति भावः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

अतएव भक्ति ही मुक्ति की प्राप्ति का साधन है, इस बात को **तत्तेऽनुकम्पां० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । आपकी कृपा कब होगी इस तरह से आपका बहुत सम्मान करने वाले और अपने पूर्वकृत कर्मों के सुख दुःख इत्यादि फलों को अनासक्त मना होकर अनुभव करने वाला व्यक्ति जो उसको तप आदि से कष्ट का अनुभव करता हुआ, जीवन यापन करता है वही मुक्ति का वास्तविक अधिकारी होता है । दूसरा कोई नहीं ।।८।।

पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि ।
मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ।।९।।

अन्वयः— हे ईश मे अनार्थं पश्य, अनन्ते आद्ये परात्मभि मायिमायिनि त्वयि अपि मायां वितत्य आत्मवैभवं विक्षितुं हि अहं अग्नौ अर्चिः इव कियान् ऐच्छम् ।।९।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप मेरी कुटिलता तो देखिए आप अनन्त आदि पुरुष परमात्मा है । बड़े-बड़े मुझ जैसे मायावी भी आपकी माया के चक्र में फंस जाते हैं फिर भी मैं आप पर अपनी माया को फैलाकर अपना ऐश्वर्य देखना चाहा । हे प्रभो आपके समक्ष मैं क्या हूँ । क्या अग्नि के समक्ष उसकी चिनगारियों की गणना होती हैं ?॥९॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं स्तुत्वा भगवन्तं क्षमापयितुं स्वापराधं निवेदयति-पश्येति । हे ईश, मेऽनार्यं दौर्जन्यं पश्य । यदहं मायिनामपि मायिनि विमोहके त्वय्यपि स्वमायां प्रसार्यात्मैश्वर्यमीक्षितुमैच्छमभिलषितवान् । अहो एवं कर्तुं त्वय्यहं कियान् न किंचित् । यथाऽग्नेरुद्भूता ज्वाला अग्नौ न किंचित्तदिति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से श्रीभगवान् की प्रार्थना करके ब्रह्माजी उनसे क्षमा प्रार्थना करने के लिए अपने अपराध को **पश्य० इत्यादि** श्लोक से निवेदित करते हैं- हे प्रभो १ मेरी दुर्बलता तो आप देंखे । आप मायावियों को भी मोहित कर देने वाले हैं, ऐसे आप पर अपनी माया को फैलाकर अपने ऐश्वर्य को देखना चाहता था, इस तरह से करने वाला मैं अपके समक्ष मेरी क्या तुलना है ? जिस तरह से उत्पन्न होने वाली चिनगारी की अग्नि से कोई तुलना नहीं होती उसी तरह आपसे उत्पन्न होने वाले आपसे मेरी कौन सी तुलना है ?॥९॥

अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः ।
अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥१०॥

अन्वयः— हे अच्युत ! रजोभुवः अजानतः त्वत्पृथक् ईशमानिनः अजावलेपान्धतमोन्धचक्षुषः एषो मे अनुकम्प्यः मयि नाथवानिति अतः क्षमस्व ।।१०।।

अनुवाद— अच्युत प्रभो मैं रजोगुण से उत्पन्न अतएव आपके स्वरूप को मैं ठीक से नहीं जानता हूँ, इसीलिए मैं अपने को आपसे अलग जगत् का स्वामी मानने लगा । मैं अजन्मा और जगत् का कर्ता हूँ इस माया कृत अज्ञान के कारण मैं अन्धा हो गया । इसलिए आप यह समझकर कि यह मेरा भृत्य है । इस पर मुझे कृपा करनी चाहिए यह समझकर आप मेरे अपराध को क्षमा कर दें ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

रजोभुवो रजसो जातस्य, अतोऽजानतः, अत एवाजावलेपान्धतमोन्धचक्षुषः अजो जगत्कर्ताहमिति मदेन गाढतमोरूपेणान्धीभूते नेत्रे यस्यातस्त्वत्तः पृथगीशमानिनः । अन्यत्र प्रभुत्वेन वर्तमानोऽपि मयि नाथे सति नाथवान्मद्भृत्य एवात एषोऽनुकम्प्य इति मत्त्वा क्षमस्वेत्यर्थ; ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

रजोगुण से उत्पन्न होने के कारण मैं आपको नहीं जान सका, फलतः अपने को अजन्मा मानकर आपकी माया जन्य घोर अज्ञानान्धकार के कारण अन्धा बना हुआ मैं अपने को आपसे अलग जगत् का स्वामी मानने लगा। यद्यपि यह अन्यत्र स्वामी है, फिर भी यह तो मेरा भृत्य है, अतएव यह मेरी कृपा का विषय है, यह सोचकर आप मेरे अपराध को क्षमा करें ॥१०॥

क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भूसंवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः ।
क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचयवाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥११॥

अन्वयः— तमोमहहंकारखचराग्निवार्भूसंवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः अहं क्व इदग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्यावाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् क्व ।।११।।

अनुवाद— हे प्रकृति, महान् अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथिवी रूप आवरणों से वेष्टित ब्रह्माण्ड शरीरक साढे तीन हाथ के शरीर वाला मैं और कहाँ तो आपके एक-एक रोम के छिद्र में इस तरह के असंख्य ब्रह्माण्ड उस तरह उड़ते रहते हैं जिस तरह खिड़की जाली से होकर आने वाली सूर्य की किरणों में रज के परमाणु उड़ते हुए दिखते हैं । अतएव मेरी और आपकी अनन्त महिमा से कौन सी तुलना है ?॥११॥

भावार्थ दीपिका

ननु ब्रह्माण्डविग्रहस्त्वमपीश्वर एवेति चेत्तत्राह-क्वाहमिति । तमः प्रकृतिः महान् महत्तत्वम्, अहङ्कारः, खमाकाशः चरो वायुः, अग्निः, वार्जलं, भूश्च । प्रकृत्यादिपृथिव्यन्तैरेतैः संवेष्टितो योऽण्डघटः स एव तस्मिन्वा स्वमानेन सप्तवितस्तिः कायो यस्य सोऽहं क्व क्व च ते महित्वम् । कथंभूतस्य । ईदृग्विधानि यान्यविगणितान्यण्डानि त एव परमाणवस्तेषां चर्या परिभ्रमणं तदर्थं वाताध्वानो गवाक्षा इव रोमविवराणि यत्र तस्य तव । अतोऽतितुच्छत्वात्त्वयाऽनुकम्प्योऽहमिति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि ब्रह्माण्ड शरीर वाले तुम भी ईश्वर ही हो तो इस पर ब्रह्माजी **क्वाहमित्यादि** श्लोक कहते हैं । प्रकृति महान् अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथिवी के आवरणों से वेष्टित घटके समान ब्रह्माण्ड शरीर वाला और अपने-अपने मान से सात वित्ते का शरीर वाला कहाँ मैं और कहाँ तो आपके अनन्त शरीर के प्रत्येक रोम में उसी तरह से उड़ते रहने वाले ब्रह्माण्ड जैसे खिड़की की जाली के छिद्र से होकर आने वाली सूर्य की किरणों में उड़ते हुए रज के परमाणु दिखते हैं । अतएव आपकी अनन्त महिमा के समक्ष मेरी कौन तुलना है । फलतः आप मेरे अपराध को क्षमा कर दें ॥११॥

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे ।
किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः ॥१२॥

अन्वयः— हे अधोक्षज ! गर्भगतस्य पादयोः उत्क्षेपणं कि मातुः आगसे कल्पते किम्, अस्ति नास्ति व्यपदेशभूषितं कियत् अपि तव कुक्षेः अनन्तः अस्ति किम् ?॥१२॥

अनुवाद— हे अधोक्षज प्रभोः गर्भ में विद्यमान बालक यदि अपने पैर को ऊपर उठाता है, तो वह माता का अपराध करना माना जाता है क्या, इस संसार में है या नहीं है इस तरह से कहीं जाने वाली कोई भी ऐसी वस्तु है क्या ? जो आपकी कुक्षि में विद्यमान न हो ?॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अपि च गर्भगतस्य शिशोः पादयोरुत्क्षेपणं मातुः किमपराधाय भवति लोके । अस्तिनास्तिव्यपदेशाभ्यां भावाभावशब्दाभ्यां स्थूलसूक्ष्मकार्यकारणशब्दैर्वा भूषितमभिहितम् । एतेषां शब्दानां भुवि विषये उषितं स्थितमिति वा । सर्वं वस्त्वित्यर्थः । हे अधोक्षज, तव कुक्षेरनन्तर्बहिः कियदपि किंचिन्मात्रमपि किमस्ति । न किंचिदस्तीत्यर्थः । अतः सर्वस्य तव कुक्षिगतत्वेन ममापि तथात्वान्मातृवदपराधः सोढव्य इति भावः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च गर्भ में विद्यमान शिशु जो अपना पैर ऊपर की ओर उठाता है, वह माता के प्रति उसका अपराध माना जाता है क्या ? तथा नहीं है, शब्द से कहा जाने वाला कोई भी ऐसी वस्तु है क्या, अथवा तत् तत् शब्दों से कहा जाने वाला कोई ऐसा पदार्थ है क्या ? हे अधोक्षज प्रभो आपकी कुक्षि से बाहर कोई किचिन्मात्र भी वस्तु है क्या ? अतएव सभी वस्तुएँ आपकी कुक्षि में ही विद्यमान है तो फिर मैं भी आपकी कुक्षि में ही हूँ । अतएव जिस तरह माता शिशु के अपराध को क्षमा करती है उसी तरह आप भी मेरे अपराध को क्षमा कर दें ॥१२॥

जगत्त्रयान्तोदधिसंप्लवोदे नारायणस्योदरनाभिनालात् ।
विनिर्गतोऽजस्विति वाङ्न वै मृषा किंत्वीश्वर त्वन्न विनिर्गतोऽस्मि ॥१३॥

अन्वयः— जगत्त्रयान्तोदधिसम्प्लवोदे नारायणस्योदरनभिनालात् अजः विनिर्गतः इति वै वाक् मृषा नस्यात् ईश्वर! किन्तु त्वत् विनिर्गतः न अस्मि ॥१३॥

अनुवाद— जिस समय तीनो लोक प्रलय कालिक समुद्र के जल में लीन थे, उस समय भगवान् नारायण की नाभि से उत्पन्न कमल के नाल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए यह श्रुतियाँ कहती हैं । हे प्रभो ! तब आप ही बतलाइये कि मैं आपका पुत्र नहीं हूँ । जिस तरह पिता अपने पुत्र के अपराध को क्षमा कर देता है उसी तरह आप भी मेरे अपराध को क्षमा कर दें ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

किंच विशेषतोऽपि त्वत्तो मम जन्म प्रसिद्धमित्याह-जगत्त्रयेत्यादि । जगत्त्रयस्यान्ते प्रलये य उदधीनां संप्लवः संश्लेषस्तस्मिन्नुदरे उदके नारायणस्योदे नाभिस्तस्य नालादजो विनिर्गत इति या वाक्सा तावन्मृषा न भवति । वै निश्चितम् । तथापि तु हे ईश्वर, त्वत्तोऽहं किं न विनिर्गतो नोत्पन्नोऽस्मि । अपि तु त्वत्त एवोत्पन्न इत्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

और मैं तो विशेष रूप से आपका पुत्र हूँ । आपसे ही मेरा जन्म हुआ है यह लोक में प्रसिद्ध है । इस बात को **जगत्त्रयस्य० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । जब तीनों लोक प्रलय कालीन समुद्र के जल में लीन हो गया था, उस समय भगवान् नारायण के उदर में विद्यमान नाभि सें उत्पन्न कमल के नाल से ब्रह्मा की उत्पति हुई, यह जो वेदवाणी है वह मृषा नहीं हो सकती हैं । अतएव हे ईश्वर इस तरह मैं आपसे उत्पन्न नहीं हुआ हूँ क्या ?॥१३॥

नारायणस्त्वं नहि सर्वदेहिनामात्माऽस्यधीशाऽखिललोकसाक्षी ।
नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात्तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥१४॥

अन्वयः— त्वं नारायणः सर्वदेहिनाम् आत्मा नहि ? अस्य अस्याधीशाखिलोकसाक्षी नरभूजलायनात् तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥१४॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप सम्पूर्ण जगत् की आत्मा होने के कारण नारायण नहीं है क्या ? आप समस्त जीवों के अधीश्वर है इसलिए नारायण हैं । नर से उत्पन्न वाले जल में निवास करने के कारण भी आपको नारायण कहा जाता है । वे भी आपके अंश हैं यह अंश रूप से दिखना भी सत्य नहीं है । आपकी माया है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि नारायणस्य पुत्रः स्यास्त्वं, मम किमायातं तत्राह-नारायणस्त्वमिति । नहीति । काक्का त्वमेव नारायण इत्यापादयति। कुतोऽहं नारायण इति चेदत आह-सर्वदेहिनामात्माऽसीति । एवमपि किं नारायणो न भवसि । नारं जीवसमूहोऽयनमाश्रयो यस्य स तथेति । त्वमेव सर्वदेहिनामात्मत्वान्नारायण इति भावःहे अधीश, त्वं नारायणो नहीति पुनः काकुः । अधीशः प्रवर्तकः । ततश्च नारस्यायनं प्रवृत्तिर्यस्मात्स तथेति पुनस्त्वमेवासाविति । किंच त्वमखिललोकसाक्षी अखिलं लोकं साक्षात्पश्यसि । अतो नारमयसे जानासीति त्वमेव नारायण इत्यर्थः । नन्वेवं नारायणपदव्युत्पत्तौ भवेदेवं तत्त्वन्यथाप्रसिद्धमित्याशङ्क्याह-नारायणोऽङ्गमिति। नराज्जातानि नरादुद्भूता येऽर्थास्तथा नराज्जातं यज्जलं तदयनाद्यो नारायणः प्रसिद्धः सोऽपि तवैवाङ्गं मूर्तिः । तथा च स्मर्यते- 'नराज्जातानि तत्त्वानि नाराणीति विदुर्बुधाः । तस्य तान्ययनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।' इति, तथा-'आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ।' इति च । ननु मन्मूर्तेरपरिच्छिन्नायाः कथं जलाश्रयत्वमत आह-तच्चापि सत्यं नेति।॥१४॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तुम नारायण के पुत्र हो सकते उनसे मेरा क्या संबन्ध है ? इस पर ब्रह्माजी **नारायणस्त्वम्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । नहि इस पद के द्वारा ब्रह्माजी कहते हैं कि आप ही नारायण हैं यह काकु के द्वारा प्रतिपादित करते हैं । यदि आप कहें कि मैं नारायण कैसे हूँ तो इस पर ब्रह्माजी कहते हैं कि आप सभी शरीर धारियों की आत्मा हैं इससे आप नारायण नहीं सिद्ध होते हैं क्या ? जीवों के समूह को नार कहते हैं । नार ही जिसका अयन अर्थात् निवास हो उसको नारायण कहते हैं । चूकि आप सभी शरीरधारियों की आत्मा हैं, अतएव आप नारायण हैं । हे अधीश ! आप नारायण नहीं हैं क्या ? अधीश अर्थात् प्रवर्तक । अतएव जीव समूह के प्रवर्तक होने के कारण आप नारायण हैं । किञ्च आप सम्पूर्ण जगत् को साक्षात् देखने के कारण जगत् के साक्षी हैं । अतएव नार अर्थात् जीव समूह को आप जानते हैं अतएव आप नारायण हैं । यदि आप कहें कि नारायण पद की व्युत्पत्ति ऐसी हो सकती है, किन्तु नारायण तो इससे भिन्न प्रकार से ही प्रसिद्ध है, इस प्रकार की आशङ्का करके ब्रह्माजी कहते हैं- **नारायणोङ्गम्** अर्थात् नर से वस्तु उत्पन्न हो उस प्रकार के । नर से उत्पन्न जल ही जिनका निवास स्थान हैं, वे ही वह भी आप ही हैं । स्मृतियों में कहा भी गया है **नराज्जातानि तत्त्वानि नारायणः स्मृतः** विज्ञ पुरुषों ने नर से उत्पन्न तत्त्वों को नार कहा है । वे ही उनके निवास स्थान है, इसलिए वह नारायण शब्द से कहा जाता है । इसी तरह दूसरा स्मृति वाक्य है **'आपोनारा०' इत्यादि** अर्थात् जल को ही नार शब्द से कहा जाता है । जल की उत्पत्ति नर से हुई है अतएव वे नर के पुत्र हैं । चूकि नारायण का प्रथम निवास स्थान वह जल ही था अतएव वे नारायण शब्द से कहे जाते हैं । यदि कहें कि मेरा शरीर निःसीम है अतएव उसका आश्रय जल कैसे हो सकता है ? तो इस पर ब्रह्माजी कहते हैं **तच्चापि सत्यंन** अर्थात् वह भी सत्य नहीं है ॥१४॥

तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ।
किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव किं नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥१५॥

अन्वयः— हे भगवन् ! तच्चेज्ज लस्थं तव सत् जगद्वपुः तदैव किं मे न दृष्टं, किं वा तदैव मे हृदि सुदृष्टं सपदि एव पुनः किं नो व्यदर्शि ॥१५॥

अनुवाद— हे भगवान् यदि आपका वह विराट शरीर यदि जल में ही था तो जिस समय मैं कमल नाल के माध्यम से जाकर खोज रहा था उस समय मुझको क्यों नहीं दिखाई दिया ? जब मैंने तपस्या की उस समय उसका दर्शन अपने हृदय में ही कैसे हो गया ? फिर कुछ क्षणों के बाद वह पुनः क्यों नहीं दिखा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अपरिच्छेदमेवोपपादयति-तच्चेदिति । जगदाश्रयभूतं तव तद्वपुर्जलस्थमित्येवं यदि तत्सत्यं स्यात्तर्हि तदैव कमलनालमार्गेणान्तःप्रविश्य संवत्सरशतं विचिन्वतापि मया हे भगवन्नचिन्त्यैश्वर्य, तत्र किमिति न दृष्टम् । हृद्यपि किमिति नो व्यदर्शि न दृष्टम् । तदैव तपः करणानतरं सपद्येव सुदृष्टम्, अतो मायैव । अतस्त्वन्मूर्तेर्देशविशेषपरिच्छेदः सत्यो न भवतीत्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

तच्च० इत्यादि इस श्लोक से निःस्सीमता का ही प्रतिपादन करते हैं सम्पूर्ण जगत् का आश्रयभूत आपका विराट शरीर यदि जल में ही था तो जब मैं कमल नाल के माध्यम से भीतर घूसकर सौ वर्षो तक ढूंढता रहा तो उस समय वह क्यों नहीं मिला, हृदय में भी वह क्यों नहीं दिखाई दिया ? वही जब मैंने तपस्या की तो वह स्पष्ट रूप से कैसे शीघ्र ही दिखाई दिया ? अतएव आपकी वह मूर्ति माया ही है । फलतः आपकी मूर्ति देश-विशेष के परिच्छेद से युक्त होने के कारण वह माया ही है सत्य नहीं है ॥१५॥

अत्रैव मायाधमनावतारे ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिः स्फुटस्य ।
कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्यामायात्वमेव प्रकटीकृतं ते ॥१६॥

अन्वयः— हे मायाधमन ! अत्रैव अवतार हि बहिः स्फुटस्य कृत्स्नस्य प्रपञ्चस्यते अन्तः जठरे जनन्या माया त्वमेव प्रकटी कृतम् ॥१६॥

अनुवाद— हे माया का नाश करने वाले प्रभो ! इसी श्रीकृष्णावतार में ही आपने बाहर दिखने वाले सम्पूर्ण प्रपञ्च को अपने पेट में अपनी माता को अपने दिखा दिया । इससे ही स्पष्ट होता है कि यह सम्पूर्ण प्रपञ्च आपकी माया है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

अपि च यदि जलादिप्रपञ्चः सत्यः स्यात्तर्हि तेन तव परिच्छेदो भवेत् । स तु मायाविलसित इति त्वयैव दर्शितमित्याह श्लोकत्रयेण-हे मायाधमन मायोपशमन, अत्रैवावतारे बहिः स्फुटस्यापि स्वजठरमध्ये जनन्याः प्रदर्शनेन ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

यदि यह जलादिप्रपञ्च सत्य होता तब तो उससे आपका परिच्छेद (परिसीमन) होता, किन्तु यह आपकी माया का विलास है, इस बात को अपने ही स्पष्ट कर दिया है, इस बात को तीन श्लोकों से बतलाया गया है। हे मायाधमन ! (माया के विनष्ट करने वाले) भगवन् इस श्रीकृष्णावतार में ही अपने पेट के भीतर सम्पूर्ण विश्व को अपनी माता को दिखाकर जगत् के मायात्व को अपने ही सिद्ध कर दिया ॥१६॥

यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा । तत्त्वय्यपीह तत्सर्वं किमिदं मायया विना ॥१७॥

अन्वयः— यस्य कुक्षौ सात्मं इदं सर्वं यथा तथा विभाति तत् सर्वं त्वयि अपि सर्वं किं मायया बिना विभाति ॥१७॥

अनुवाद— जिस आपके उदर में जड़ चेतनात्मक जगत् जैसा है वैसा ही दिखाई दिया तब क्या यह सब आपकी माया के ही विना दिखाई दिया ?॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ननु बहिः सत एवान्तर्जठरे प्रतिबिम्बोऽस्तु, कुतः सर्वथा मायात्वं तत्राह-यस्येति । यस्य तव कुक्षौ सर्वमिदं यथा भाति तत्सर्वमिहापि वहिरपि तथैव भाति । किंच सात्मं त्वत्सहितं तदिदं सर्वं त्वयि मायया विना किं घटते । अयं भावः-त्वयि प्रतिबिम्बश्चेद्बाह्याद्विलोमतया प्रतीयेत नतु तदस्ति, तव चादर्शस्थानीयस्य त्वयि प्रतीतिर्न स्यात् अतः सर्वथा मिथ्यात्वमेवेति॥१७॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि बाहर सत्य ही यह विश्व पेट में प्रतिबिम्बि होता है अतएव इसको पूर्ण रूप से माया कहा जा सकता है । इस पर ब्रह्माजी **यस्य० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । आपकी कुक्षि में जैसा यह है बाहर भी प्रपञ्च वैसा ही प्रतीत होता है । किञ्च आत्मा युक्त यह सम्पूर्ण आपकी माया के बिना कैसे समन्वित हो सकता है कहने का भाव है कि यह जगत् आपके पेट में प्रतिबिम्बित होता तो फिर बाहर यह उलटा दिखता किन्तु ऐसा नही प्रतीत होता है । किञ्च दर्पण स्थानीय आपके भीतर यह प्रतीत नहीं होता अतएव यह पूर्ण रूप से मिथ्या ही है॥१७॥

अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शितमेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि।
तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासितास्तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते॥१८॥

अन्वयः— अद्यैव त्वदृतेअस्य मम मायात्वं न दर्शितम् किम्, प्रथमं एकः असि, ततः व्रज सुहृद् वत्साः समस्ताः अपि, तावन्तः चतुर्भुजाः असि । तदखिलैः साकं मया अपि उपासिताः तावन्त्य एव जगन्त्यअभू तद् ब्रह्माद्वयं शिष्यते ॥१८॥

अनुवाद— आज ही आपने मेरे समक्ष अपने से भिन्न सम्पूर्ण विश्व को अपनी माया का खेल नहीं दिखलाया

है ? पहले आप अकेले थे फिर आप ग्वाल बाल बछड़े छड़ी छीके भी आप ही हो गये । उसके पश्चात् मैंने देखा कि आपके वे सब रूप चतुर्भुज हैं और मेरे सहित सभी तत्व उनकी सेवा कर रहे हैं । आपने अलग-अलग उतने ब्रह्माण्डों का रूप भी धारण कर लिया, किन्तु इस समय आप केवल अपरिमित अद्वितीय ब्रह्म रूप ही रह गये ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अपि च न केवलं जनन्या ममापि तथैव दर्शितमित्याह-अद्यैवेति । त्वदृते त्वां विना अस्य विश्वस्य मायात्वं त्वया ममैव च, तदप्यद्यैव किं न दर्शितं , किंतु दर्शितमेव । तथा हि-एकोऽसीत्यादि । तत्ततो मया सहाखिलैस्तत्त्वादिभिरुपासितास्तावन्तश्चतुर्भुजा असि, जगन्ति ब्रह्माण्डानीति प्रागनुक्तमपि दृष्टमिति ज्ञातव्यम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

और केवल अपनी माता को ही नहीं बल्कि मुझको भी उसी तरह से आपने दिखाया इस बात को ब्रह्माजी ने **अद्यैव० इत्यादि** श्लोक से कहा है आपको छोड़कर यह सारा विश्व माया है, इस बात को आपने आज ही मुझे नहीं दिखाया है क्या ? आपने दिखाया ही है । इस बात को **एकोऽसि० इत्यादि** से ब्रह्माजी ने कहा है। उसके पश्चात् मैं तथा मेरे साथ सभी तत्त्वों के द्वारा उतने चतुर्भुज बने हुआ उपासना किए जाते हैं । तथा जिनको पहले नहीं कहा गया है, उन सभी ब्रह्माण्डों को मैंने देखा ॥१८॥

अजानतां त्वत्पदवीमनात्मन्यात्मात्मना भासि वितत्य मायाम् ।
सृष्टाविवाह जगतो विधान इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः ॥१९॥

अन्वयः— त्वत् पदवीमजानताम् मायां वितत्य अनात्मनि आत्मात्मना भासि जगतः सृष्टौ अहं इव, विधाने एष इव अन्ते त्रिनेत्र इव भासि ॥१९॥

अनुवाद— जो लोग आपके स्वरूप को नहीं जानते हैं उन लोगों पर ही आप माया का पर्दा डालकर प्रकृति में स्थित जीव रूप से प्रतीत होते हैं । किञ्च जगत् की सृष्टि के समय आप मुझ ब्रह्मा के रूप में, पालन के समय स्वयं विष्णु के रूप में तथा संहार के समय शङ्करजी के रूप में प्रतीत होते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ननु ब्रह्मंस्तव मया दर्शितं शुद्धमेव चैतन्यं कथं प्रपञ्चवन्मायेत्युच्यते, सत्यम्, किंत्वद्वितीये त्वयि नानात्वं गुणावतारमत्स्याद्यवतारेष्विव कार्यवशेन स्वतन्त्रमायानिबन्धनमित्याह श्लोकद्वयेन-अजानतामिति । त्वत्पदवीं तव स्वरूपजानतामनात्मनि प्रकृतौ स्थित आत्मैव त्वमात्मनैव स्वातन्त्र्येण मायां वितत्य भासि । कथम् । जगतः सृष्टावहमिव ब्रह्मेव विधाने पालने च एष त्वमिव । अन्ते त्रिनेत्र इवेति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि हे ब्रह्मन् ! आपको मैनें शुद्ध चैतन्य ही दिखाया है प्रपञ्च के समान माया क्यों कहते हैं आप ? तो ठीक है किन्तु अद्वितीय आप में नानात्व गुणावतार तथा मत्स्य आदि अवतारों के समान कार्यवशात् स्वतन्त्र माया के कारण ही प्रतीत होता है । इस बात को ब्रह्माजी ने **अजानताम् इत्यादि** दो श्लोकों से कहा है। जो लोग आपके स्वरूप को नहीं जानते हैं जडा प्रकृति में स्थित होकर आत्मा रूप आप अपने से ही अपनी माया का विस्तार करके प्रतीत होते है । प्रश्न है कि कैसा प्रतीत होते हैं ? तो इस पर कहते हैं जगत् की सृष्टि के समय मुझ ब्रह्मा के समान, जगत की रक्षा के समय आप विष्णु भगवान् के समान तथा जगत् के संहार के समय शङ्करजी के समान प्रतीत होते हैं ॥१९॥

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य ।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च ॥२०॥

अन्वयः— हे ईश हे विधातः प्रभो सुरेषु ऋषिषु तथैव नृषु अपि, तिर्यक्षु, यादस्सु अपि अजनस्यते जन्म असतां दुर्मदनिग्रहाय, सदनुग्रहाय भवतीतिशेषः ॥२०॥

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् के नियामक, स्वामी तथा विधाता प्रभो यद्यपि आप अजन्मा हैं फिर भी आपका देवताओं में उपेन्द्र रूप से अथवा यज्ञादि रूप से, ऋषियों में परशुराम रूप से अथवा नारदादि रूप से, मनुष्यों में श्रीराम रूप से अथवा पृथु आदि रूप से, पशुओं में वराह आदि रूप से, जलचरों में मत्स्य कूर्म आदि रूप से जन्म दुष्टों के दुर्मद को विनष्ट करने के लिए तथा सत्पुरुषों पर कृपा करने के लिए होता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

को वेत्ति भूमन्भगवन्परात्मन्योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥२१॥

अन्वयः— हे भूमन् ! भगवान् परात्मन् योगेश्वर त्रिलोक्याम् भवतः उतीः काः वेत्ति योगमायां विस्तारयन् क्व वा, कथं वा कति वा, कदा वा क्रीडसि ॥२१॥

अनुवाद— हे अनन्त ! हे भगवान् ! हे परमात्मन् हे योगेश्वर, इस त्रिलोकी में कौन जानता है कि आप अपनी माया का विस्तार करके कहाँ पर कैसे कितनी तथा कब लीलाओं को करते हुए क्रीडा करते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

ननु च स्वातन्त्र्ये कथं कुत्सितेषु मत्स्यादिषु जन्म, कथं वा वामनाद्यवतारे याच्ञादि कार्पण्यं, कथं बास्मिन्नेव कदाचिद्भयपलायनादि, अत आह- को वेत्ततीति । अन्वर्थैः संबोधनैर्दुर्ज्ञेयत्वमेवाह-भूमन्नित्यादिभिः । भवत ऊतीर्लीलास्त्रिलोक्यां को वेत्ति क्व वा, कथं वा, कदा वा, कति वेति । अचिन्त्यं तव योगमायावैभवमिति भावः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि यदि मैं स्वतन्त्र हूँ तो फिर निन्दित मत्स्य आदि योनियों में मेरा जन्म क्यों होता है? अथवा वामन आदि अवतरों में मुझे याचना आदि कर्पण्यमय कार्यों को क्यों करना पड़ता है ? अथवा इस श्रीकृष्णावतार में भयभीत होकर भागना क्यों पड़ता है ? इस पर ब्रह्माजी **को वेत्ति० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । इस श्लोक में वे सार्थक श्लोकों के द्वारा श्रीभगवान् की दुर्ज्ञेयता को ही बतलाते हैं वे कहते हैं कि इस त्रिलोकी में कौन जानता है कि आप कहाँ पर कैसी, कब तथा कीतनी लीलाएँ करेंगे । आपकी योगमाया का ऐश्वर्य अचिन्त्य है ॥२१॥

तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिष्णं पुरुदुःखदुःखम् ।
त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते मायात उद्यदपि यत्सदिवावभाति ॥२२॥

अन्वयः— तस्मात् इदं स्वप्नाभ अशेषं जगत् असत् स्वरूपम्, अस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम, नित्यसुख बोधतनौ त्वयि अनन्ते एव मायात उद्यदपि यत् मार्दवावभाति ॥२२॥

अनुवाद— अतएव यह सम्पूर्ण जगत् स्वप्न के समान है असत्य, अज्ञान रूप, एवं सदा दुःख पर दुःख देते रहता है । आप परमानन्द, परम ज्ञान स्वरूप एवं अनन्त हैं । यद्यपि यह माया से ही उत्पन्न होकर माया में ही विलीन हो जाता है, फिर भी आपकी सत्ता से यह सत्य के समान प्रतीत होता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

ननु भवत्ववताराणामचिन्त्यो महिमा, प्रपञ्चस्य ह्यसत्त्वे कथं सत्त्वप्रतीतिरितीमामाशङ्कां सपरिकरमुपसंहरन्परिहरति-तस्मादिति अस्तधिषणं निरस्तप्रतिभासम् । त्वय्येवोद्यदुद्भवदपि यन्नश्यत । सदिवेत्युपलक्षणमेतत् । नित्यमिव, सुखमिव, चेतनमिव, चाधिष्ठानभूतस्य तव गुणैस्तथा तथा भातीत्यर्थः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

आपके अवतारों की महिमा अचिन्त्यतो है ही यह प्रपञ्च यद्यपि असत्य है फिर भी इसकी सत्य के समान प्रतीति कैसे होती ? इस प्रकार की होने वाली शङ्का का सपरिकर उपसंहार करते हुए ब्रह्माजी **तस्मात्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं अस्तधिषणम् अर्थात् अज्ञान रूप । आपमें ही उत्पन्न होकर विलीन हो जाता है । सदिव अर्थात् सत्य के समान यह उपलक्षण है, नित्य सुख के समान, अधिष्ठान स्वरूप आपके ही गुणों से गुणावान के समान प्रतीत होता है ।।२२।।

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ।
नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ।।२३।।

अन्वयः— एकः त्वम् आत्मा, पुराणः पुरुषः सत्यः स्वयं ज्योतिः अनन्तः आद्यः नित्यः अक्षरः, अजस्रसुखः, निरञ्जनः पूर्णः, अद्वयः, उपाधितेः मुक्तः अमृतः ।।२३।।

अनुवाद— हे प्रभो ! एकमात्र आप ही आत्मा होने के कारण सबों की आत्मा हैं, आप पुराण पुरुष हैं अतएव आपमें जन्मादि का अभाव है। स्वयम्प्रकाश होने के कारण आपको पर प्रकाश वस्तुएँ सीमित नहीं कर सकती है । आप आदि पुरुष होने के कारण अनन्त हैं अर्थात् देश काल एवं वस्तु की सीमा से परे हैं । आप नित्य है क्योंकि आप अविनाशी हैं । आपका आनन्द अखण्ड है, आप सतत सुख स्वरूप हैं, आप निरञ्जन अर्थात् दोष से रहित हैं । आप पूर्ण एवं अद्वितीय हैं, आप सभी उपाधियों से मुक्त होने के कारण अमृत हैं ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

त्वमेव तु सत्य इत्याह-एकस्त्वं सत्यः । कुतः । आत्मा । दृश्यमसत्यं दृष्टं न चात्मा दृश्यः, अतः सत्यः । किंच यद्विकारवत्तदसत्यं, नच त्वयि जन्मादयो विकाराः सन्तीत्याह-आद्यः कारणम्, अतो न जन्म । आद्यत्वे हेतुः- पुराणः पुरापि नवः । कार्यात्पूर्वमपि वर्तमान इत्यर्थः । अत्र हेतुः-पुरुष इति । तथा च श्रुतिः-'पूर्वमेवाहमिहासमिति तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम' इति । जन्मानन्तरास्तित्वलक्षणं विकारं वारयति-नित्य इति । सनातन इत्यर्थः । पूर्णोऽजस्रसुखोऽक्षरोऽमृत इति चतुर्भिः पदैः क्रमेण वृद्धिविपरिणामापक्षयविनाशान्वारयति । पूर्णत्वे हेतुः-अनन्तोऽद्वय इति च । देशकालपरिच्छेदरहितो वस्तुपरिच्छेदरहितोऽपि अमृतत्वोपपादनाय चतुर्विधक्रियाफलत्वं वारयति । स्वयंज्योतिर्निरञ्जन उपाधितो मुक्त इति पदत्रयेण । अयं भावः-तत्रोत्पत्तिराद्य इत्यनेनैव निराकृता, प्राप्तिरपि क्रियया ज्ञानेन वा भवेत्, क्रियया प्राप्तिरात्मपदेनैव निराकृता, ज्ञानतः प्राप्ति वारयति स्वयंज्योतिरिति। विकृतिरपि तुषापाकरणेनावघातेन ब्रीहीणामिवोपाध्यपाकरणेन भवेत्, तत्त्वसङ्गत्वान्न संभवतीत्याह-मुक्त उपाधित । इति । संस्कारोऽपि किमप्यतिशयाधानेन मलापाकरणेन वा । तत्रातिशयाधानं पूर्णत्वेनैव निराकृतम् । मलापाकरणं निवारयति-निरञ्जन इति । निर्मल इत्यर्थः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

एकस्त्वम्० इत्यादि श्लोक से बतलाते हैं कि केवल आप ही सत्य है । क्योंकि आप आत्मा हैं जो दृश्य तथा असत्य वे आत्मा नहीं होते यह लोक में देखा जाता है । किञ्च जो विकारवान् होता है वह असत्य होता है । ब्रह्माजी कहते हैं कि आपमें जन्मादि विकार नहीं होते हैं क्योंकि आप आदि और जगत् के कारण हैं । पुराण पुरुष होने के कारण ही आप आद्य हैं । पुराण का अर्थ हैं पहले भी नवीन । अर्थात् इस कार्य जगत् से पहले विद्यमान रहते हैं । इसका कारण है कि आप पुरुष हैं । श्रुति भी कहते हैं— **पूर्वमेवाहम्० इत्यादि** अर्थात् पहले

भी मैं यह था यही पुरुष का पुरुषत्व है । जन्म के पश्चात् होने वाले अस्तित्व रूप विकार का खण्डन नित्य कहकर करते हैं । नित्य अर्थात् सनातन पूर्ण अजस्रसुख, अक्षर और अमृत इन चार पदों के द्वारा श्रीभगवान् क्रमशः वृद्धि, परिणाम, अपक्षय और विनाश रूप चारों विकारों का निरास किया गया है । श्रीभगवान् पूर्ण इसलिए हैं कि वे अनन्त और अद्वितीय हैं, स्वयं ज्योति, निरञ्जन तथा उपाधिरहित इन तीन पदों के द्वारा बतलाया गया है कि देश तथा काल के परिच्छेद से रहित श्रीभगवान् वस्तु परिच्छेद से रहित होने पर भी अमृतत्व का प्रतिपादन करने के लिए भी भगवान् में चतुर्विध क्रिया फलत्व का वरण करते हैं । **अयं भावः इत्यादि आद्यः** पद के द्वारा श्रीभगवान् की उत्पत्ति का निरास किया गया है । प्राप्ति भी क्रिया अथवा ज्ञान के द्वारा होती है क्रिया के द्वारा प्राप्ति का निरास **आत्मनेपद** के द्वारा किया गया है । **स्वयं ज्योतिः** पद के द्वारा ज्ञान के द्वारा प्राप्ति का निरास किया गया है । विकृति भी धानों का तुषापकरण कूटने के द्वारा ही हो सकता है, उसके अमंगत होने से असंभव होने के कारण ब्रह्माजी ने कहा आप उपाधि से मुक्त हैं । संस्कार भी किसी प्रकार से विशेषता लाकर अथवा मलाप करण के द्वारा होता है । पूर्ण होने के कारण अतिशयाधान का निराकरण किया गया है । **निरञ्जन** कहकर मलापकरण का वरण किया गया है । **निरञ्जन** अर्थात् निर्मल ।।२३।।

एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते ।
गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम् ।।२४।।

अन्वयः— गुर्वर्कलब्धोपनिषत् सुचक्षुषा ये एवं विधं त्वां स्वात्मानम् सकलात्मनामपि आत्मतया विचक्षते ते अनृतम्बुधिम् तरन्तीव ।।२४।।

अनुवाद— गुरु रूपी सूर्य से तत्त्वज्ञान रूपी सुन्दर नेत्र को प्राप्त करके जो लोग इस प्रकार के आपको अपनी आत्मा तथा सबों की आत्म रूप से जो लोग देखते हैं वे लोग इस मिथ्या संसार सागर को पार कर जाते हैं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

तस्मादेवंभूतज्ञानान्मुच्यन्त इत्याह-एवंविधमिति । त्वां ये विचक्षते सम्यक् पश्यन्ति । कथम् । आत्मात्मतया आत्मा प्रत्यक् तस्य स्वरूपेण । न चैतत्पुत्रादिष्विव गौणमित्याह । सकलात्मनामपि स्वात्मानम् । केन । गुरुरेवार्कस्तस्माल्लब्धा उपनिषज्ज्ञानं तदेव सुचक्षुस्तेन । भव एवानृताम्बुधिस्तं ते तरन्तीव ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

अतएव इस प्रकार के ज्ञान से ज्ञानी जन संसार से मुक्त हो जाते हैं इस बात को **एवंविधम्ः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । आपको जो लोग अच्छी तरह से जानते हैं । कैसे जानते हैं ? तो इस पर कहते हैं कि आत्मा की आत्मारूप से जानते हैं, अर्थात् प्रत्यक् रूप से जानते हैं । यहाँ आत्मा शब्द पुत्र आदि के भी अर्थ में प्रयुक्त होने वाले आत्मा शब्द के समान गौण नहीं है । इस बात को **सकलात्मनामपि** सभी आत्माओं को भी जो लोग अपनी आत्मा जानते हैं । किसके द्वारा जानते हैं । इस पर कहते हैं गुरु रूपी सूर्य से प्राप्त उपनिषत् प्रतिपादित ज्ञान रूपी नेत्र के द्वारा ।।२४।।

आत्मानमेवात्मतयाऽविजानतां तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम् ।
ज्ञानेन भूयोऽपि च तत्प्रलीयते रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ।।२५।।

अन्वयः— आत्मानमेव आत्मतया अविजानतां, तेनैव निखिलं प्रपञ्चितम् जातम्, ज्ञानेन च तद् भूयः अपि रज्ज्वाम् अहे भोगभवाभवौ यथा ।।२५।।

अनुवाद— जो लोग परमात्मा को ही आत्मा नहीं जानते है, उनको उस अज्ञान के ही कारण सम्पूर्ण प्रपञ्च

की उत्पत्ति का भ्रम हो जाता है । किन्तु ज्ञान होते ही उसका उसी तरह से आत्यन्तिक लय हो जाता है जिस तरह रस्सी का ज्ञान हो जाने पर रस्सी में होने वाले सर्प भ्रम का नाश हो जाता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तत्र च ज्ञानेन तरन्तीति, तच्च तरन्तीवेति, तच्चात्मात्मतया ज्ञानेन, इत्यर्थत्रयं प्रतिज्ञातं क्रमेणोपपाद्यते । तत्रात्मानमेवात्मतयेत्यनेन श्लोकेन ज्ञानेन तरन्तीत्युप पाद्यते । अज्ञानसंज्ञावित्यनेन तरन्तीवेत्येतत् । त्वामित्यादिश्लोकद्वयेन त्वात्मात्मतयेत्येतदुपपाद्यते । ननु ज्ञानेन कथं भवं तरन्तीति तस्याज्ञानमूलत्वादित्याह-आत्मानमेवेति । तेनैवाज्ञानेनैव प्रपञ्चितं प्रपञ्चः । रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ सर्पशरीरस्याध्यासापवादौ। यथेति ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

कहा जा चुका है कि ज्ञान से ही संसार सागर को पार कर जाते है, उसके विषय में कहा गया है कि ज्ञान से मानो मिथ्या संसार सागर को पार कर जाते है । इस श्लोक में प्रतिपादित तीन अर्थो को क्रमशः प्रतिपादित किया गया है । **आत्मानमेव आत्मतया०** इस श्लोक के द्वारा इस बात का प्रतिपादन किया गया है कि ज्ञान के द्वारा संसार से पार हो जाते हैं । **अज्ञान संज्ञौ० इत्यादि** श्लोक से मानों पार कर जाते हैं, यह कहा गया है। **त्वाम्० इत्यादि** दो श्लोकों से आत्मा रूप से इस अर्थ का उपपादन किया गया है । प्रश्न है कि ज्ञान से संसार को कैसे पार कर जाते हैं, इस पर कि संसार के मिथ्या होने के कारण इस बात को **आत्मानमेव शब्द** से कहा गया है । उस अज्ञान से ही प्रपञ्च फैला है । जिस तरह से रस्सी में सर्प शरीर का अध्यास और उसका बाध होता है उसी तरह ॥२५॥

अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात् ।
अजस्रचिन्त्यात्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहनी ॥२६॥

अन्वयः— भवबन्धमेक्षौ द्वौ अज्ञान संज्ञौ नाम नान्यौ स्तः ऋतज्ञ भावात् अजस्रचित्यात्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणौ अहनी इव ॥२६॥

अनुवाद— संसार संबन्धी बन्धन और उससे मोक्ष ये दोनों ही अज्ञान के दो नाम हैं । ये सत्य एवं ज्ञान स्वरूप परमात्मा अलग अस्तित्व वाले नहीं है । जिस तरह सूर्य में रात और दिन का भेद नहीं होता है उसी तरह विचार करने पर अखण्ड चित्स्वरूप केवल शुद्ध आत्म तत्त्व में न बन्ध है और न मोक्ष ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

ननु ज्ञानेन तरन्त्येव किमिदमुच्यते तरन्तीवेति तत्राह-अज्ञानसंज्ञाविति । अज्ञानेन संज्ञा ययोस्तौ भवबन्धमोक्षौ भवेन बन्धस्तन्मोक्षश्च तौ द्वौ नाम प्रसिद्धौ ऋतज्ञभावात् ऋतश्चासौ ज्ञश्च यो भावस्तस्मादन्यौ न स्तः । ननु कथं महानपलापः क्रियते, परमार्थविचारादित्याह-अजस्रेति । अखण्डानुभवरूपे परे शुद्धे आत्मन्यज्ञानं न च बन्धः । अत एव न ज्ञानं न च मोक्षः । तरणौ सूर्ये रात्र्यहनी इवेति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

ज्ञान से मुक्ति ही है, मानो तर जाते हैं यह क्यों कहा गया है । इस पर **अज्ञानसंज्ञौ०** यह श्लोक कहते है अज्ञान के ही कारण संसार संबन्धी बन्ध और उससे मोक्ष ये दो नाम प्रसिद्ध हैं । ये दोनों सत्य और ज्ञान स्वरूप परमात्मा से अभिन्न है । यह बहुत बड़ा झूठ आप कैसे कहते हैं तो इसका उत्तर है कि परमार्थ विचार के द्वारा यह ज्ञात होता है । इस बात को **अजस्र० इत्यादि** से कहा गया है । अखण्डानुभवरूप शुद्ध परमात्मा में न तो अज्ञान होता है और न बन्ध होता है । अतएव उसमें न तो ज्ञान होता हैं और न मोक्ष होता है । यह उसी तरह होता है जिस तरह सूर्य में दिन और रात का भेद नहीं होता है ॥२६॥

त्वामात्मानं परं मत्त्वा परमात्मानमेव च । आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताऽज्ञता ॥२७॥

अन्वयः— त्वाम् परमानमेव आत्मानं परं मत्त्वा पुनः आत्मा वहिःमृग्य अहो अज्ञ जनताज्ञता ॥२७॥

अनुवाद— आप परमात्मा को आत्मा से भिन्न मानकर जो लोग बाहर परमात्मा की खोज करते यह उन अज्ञानियों की कितनी बड़ी अज्ञता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

ननु परमार्थज्ञानादज्ञानकृतो वन्धो निवर्तताम्, आत्मात्मतयैव ज्ञानादिति कोऽयमाग्रह इत्याशङ्क्य, यदध्यासादात्मनः पररूपास्फूर्तिस्तदपवादेन तत्रैव ज्ञानं युक्तमितीममर्थं विस्मयेनाक्रोशन्निवाह-त्वामिति । त्वामात्मानं परं देहादिं मत्वा आत्मनि देहादिमध्यस्य तथापरं देहादिमात्मानं मत्वा देहादावात्मानमध्यस्यात्र नष्ट आत्मा वहिर्मृग्य इति चित्रम् । नहि गृहे नष्टं वने मृग्यत इत्यर्थः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि परमार्थ ज्ञान मे अज्ञान जन्य वन्ध की निवृत्ति माननी चाहिए आत्मा की आत्मा रूप से परमात्मा के ज्ञान से संसार वन्ध की निवृत्ति क्यों मानी जाय ? इस तरह की आशंका करके कहते हैं जिसके अध्यास से आत्मा की पररूप से प्रतीति नहीं होती है, उसी के विषय में ज्ञान का होना उचित है, इसी वात को आश्चर्य पूर्व अक्रोशित करते हुए कहते हैं । हे भगवान आप ही आत्मा हैं । आपको देह आदि मानकर आत्मा में देह आदि का अध्यास करके तथा देहादि को आत्मा मानकर देह आदि में आत्मा का इसमें आत्मा नष्ट हो गयी है अतएव इसका अन्वेषण बाहर करना यह आश्चर्य की वात है । घर में नष्ट हुई वस्तु को वाहर नहीं खोजा जाता है ॥२७॥

अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव ह्यतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः ।
असन्तमप्यन्त्यहिमन्तरेण सन्तं गुणं तं किमु यन्ति सन्तः ॥२८॥

अन्वयः— हे अनन्तः सन्तः अतत त्यजन्तः सन्त भवे अन्तः भवन्तमेव मृगयन्ति अन्ति असन्तम् अपि अहिम् अन्तरेंप तं सततं गुणं सन्तः यन्ति किम् ॥२८॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप सबोंके अन्तःकरण में विद्यमान हैं अतएव सन्त पुरुष आपके अतिरिक्त जो कुछ प्रतीत हो रहा है उसका परित्याग करके अपने भीतर ही आपको ढूँढते हैं । यद्यपि रस्सी में सर्प नहीं है फिर भी उस प्रतीयमान सर्प को मिथ्या निश्चय किए विना कोई भी पुरुष सत्य रस्सी को जान सकता है क्या ?॥२८॥

भावार्थ दीपिका

विवेकिनस्तु प्रत्यक्स्वरूपे एव परमात्मानं विचिन्वन्तीत्याह-अन्तर्भव इति । भवतीति भविश्चिज्जडात्मकं शरीरं तन्मध्य एव त्वां मृगयन्ति । अतज्जडं त्यजन्तोऽपवदन्तः । ननु सतो ज्ञानेनालं, किमसतोऽपवादेनेत्याशङ्क्यं अध्यस्तापवादं विना अधिष्ठानतत्त्वं न ज्ञायत इति सतां व्यवहारेणाह असन्तमिति । अन्ति समीपे असन्तमप्यहिमन्तरेण तन्निषेधं विनेत्यर्थः । सन्तं गुणं रज्जुं सन्तः किमु यन्ति जानन्ति । अन्ति सन्तमपि गुणमिति वा । न जानन्तीत्यर्थः । तस्मादात्मात्मतयैव ज्ञानान्मुक्तिरिति भावः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

विवेकी पुरुष तो प्रत्यक् स्वरूप आत्मा में ही परमात्मा का अन्वेषण करते हैं । इस बात को **अन्तर्भवे०** **इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । यहाँ पर भव शव्द से शरीर को कहा गया है । उस शरीर में ही आत्मा का अन्वेषण करते हैं । शरीर व्यतिरिक्त वस्तु का परित्याग कर देते हैं । यहाँपर यदि कोई कहे कि सत् पदार्थ के ज्ञान से ही मुक्ति हो जायेगी, असत् के बाध से क्या लाभ है ? इस तरह की आशङ्का करके बतलाते हैं कि अध्यस्तापवाद के विना अधिष्ठान तत्त्व का ज्ञान नहीं हो सकता है, इस वात का सत्पुरुषों के व्यवहार से **असन्तमपि० इत्यादि**

उत्तरार्द्ध से बतलाते हैं । रस्सी में अविद्यमान भी सर्प का निषेध हुए बिना सत्य रस्सी के स्वरूप को जाना जा सकता है क्या ? अतएव परमात्मा का आत्मा रूप से होने वाले ज्ञान से ही मुक्ति होती है ॥२८॥

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि ।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥२९॥

अन्वयः— अथापि हे देवते पदाम्बुजद्वय प्रसादलेशानुगृहीत एव भगवन्महिम्नः तत्त्वं जनाति अन्यः च एकोऽपि चिरंविचिन्वन् न ॥२९॥

अनुवाद— हे भक्तों के हृदय में प्रकाशित होने वाले प्रभों वो भक्त आपके दोनों चरणों के प्रसाद लेश के द्वारा अनुगृहीत हो जाते हैं वे आपकी महिमा तथा स्वरूप को जान पाते है । इसके अतिरिक्त ज्ञान वैराग्य आदि के द्वारा आपका दीर्घकाल तक चिन्तन करके भी लोग आपके स्वरूप को नहीं जान पाते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं ज्ञानैकसाध्ये मोक्षे किमिति भक्तिरुद्बोधिताऽत आह–अथापीति । यद्यपि हस्तप्राप्यमिव ज्ञानमुक्तं तथापि हे देव, तव पादाम्बुजद्वयमध्ये एकदेशस्यापि यः प्रसादलेशोऽपि तेनानुगृहीत एव भगवतस्तव महिम्नस्तत्त्वं जानाति । हे भगवन्, ते महिम्नस्तत्त्वमिति वा । एकोऽपि, कश्चिदपि, चिरमपि, विचिन्वन्नपि, अतदंशापवादेन विचारयन्नपीत्यर्थः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि मुक्ति प्राप्ति तो केवल ज्ञान से ही होती है, बीच में आप इस भक्ति को क्यों उद्बोधित करते हैं ? इस पर **अथापि० इत्यादि** श्लोक कहते हैं यद्यपि ज्ञान को हस्त प्राप्य के समान कहा गया है, तथापि हे भक्तों के हृदय में स्फुरित होने वाले प्रभो ? आपके दोनों चरणों में से किस अंश की भी कृपा के लेश से भी अनुगृहीत पुरुष आपकी महिमा के तत्व को जान पाता है । अथवा हे भगवन् आपकी महिमा के तत्व को। आपके चरणों के कृपा प्रसाद से रहित कोई भी पुरुष आपका दीर्घ काल तक अन्वेषण करके भी नहीं प्राप्त कर पाता है ॥२९॥

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम् ।
येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥३०॥

अन्वयः— तत् हे नाथ मे स भूरिभागः अस्तु, अत्र भवे, अन्यत्र वा तिरश्चाम् तु वा येन अहम् भवज्जनानाम् एकः अपिदासो भूत्वा तव पादपल्लवम् निषेवे ॥३०॥

अनुवाद— हे नाथ ! मेरा यही परम सौभाग्य होगा कि मैं, इस जन्म में या दूसरे जन्म में या पशु-पक्षियों का जन्म पाकर किसी जन्म में आपके किसी एक भी भक्त का दास बनकर आपके चरण कमलों की सेवा करूँ।॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मात् भूरिभागो महद्भाग्यम् । अत्र भवे ब्रह्मजन्मनि तिरश्चामपि मध्ये यज्जन्म तस्मिन्वा येन भाग्येन भवदीयानां जनानामेकोऽपि यः कश्चिदपि भूत्वा निषेवेऽत्यर्थं सेवेयेति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अतएव मेरा महान् सौभाग्य होगा कि इस ब्रह्मा के जन्म में अथवा पशु पक्षियों का जो जन्म उसमें से किसी जन्म में अपने उस सौभाग्य के कारण आपके किसी एक भी भक्त का मैं कोई दास इत्यादि बन कर आपके चरण कमलों की मैं सेवा कर सकूँ ॥३०॥

अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ।
यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न चालमध्वराः ॥३१॥

अन्वयः— हे विभो ! अहो व्रजगोरमण्यः अति धन्याः यासां वत्सतरात्मजात्मना स्तन्यामृतं अतीव मुदाते पीतम् । यत् तृप्तये च अध्वराः अद्यापि अलम्न ॥३१॥

अनुवाद— हे प्रभो ! वे व्रज की गौए तथा रमणियाँ अत्यन्त धन्य है जिन सबों के छोटे-छोटे बछड़े और पुत्र बनकर आप उन सबों स्तन्यामृत का बड़ी ही प्रसन्नता पूर्वक पान करके तृप्त हुए । उसी आपको सृष्टि के प्रारम्भ से किए जाने वाले बड़े-बड़े यज्ञ तृप्त करने में आज तक भी समर्थ नही हो सके हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

देवादिजन्मनोऽपि यत्र कुत्रचित्त्वद्भक्तिमज्जन्मैव श्रेष्ठमित्यौत्सुक्येन सप्तभिः श्लोकैरभिनन्दति-अहोऽतिधन्या इत्यादिभिः। व्रजगोरमण्यः व्रजस्था गावो रमण्यो गोप्यश्च । ते त्वया वत्सतरात्मजात्मना वत्सानामात्मजानां च रूपेण । यस्य तव तृप्तये सर्वेऽपि यज्ञा अद्यापि न शक्तास्तेन त्वया प्रतिक्षणं तृप्यता यासां स्तन्यममृतरूपं पीतमिति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं आदि के भी जन्म से जिस किसी भी योनि में भक्ति सम्पन्न रूप से जन्म होना श्रेष्ठ है इस बात को ब्रह्माजी उत्सुकता पूर्वक **अहोति धन्याः इत्यादि** सात श्लोकों से बतलाते हैं। व्रज की गायें और गोपियाँ भी धन्य हैं क्योंकि उन सबों के बछड़ों तथा पुत्रों का रूप धारण करके आप उन सबों के स्तन्यामृत का पान किए हैं । जिस आपको आज तक किए गये यज्ञ आपको तृप्त न कर सके, वही आप उन गौओं और गोपियों के स्तन्यामृत पीकर तृप्त हो गये ॥३१॥

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् । यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥३२॥

अन्वयः— नन्दगोपव्रजौकसाम् अहोभाग्यम् अहोभाग्यम् यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं सनातनं ब्रह्म ॥३२॥

अनुवाद— नन्दगोप के व्रज में रहने वालों का अत्यन्त सराहनीय भाग्य हैं क्योंकि उन लोगों के मित्र परमानन्द स्वरूप परिपूर्ण सनातन ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अहो इति पुनरुक्त्या भाग्यस्य सर्वथाऽपरिच्छिन्नत्वमुक्तम् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

अहो इस पुनरुक्ति के द्वारा ब्रह्माजी ने व्रजवासियों के सौभाग्य की निस्सीमता बतलायी है ॥३२॥

एषां तु भग्यमहिमाऽच्युत तावदास्तामेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः ।
एतद्धृषीकचषकैरसकृत्पिबामः शर्वादयोङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते ॥३३॥

अन्वयः— हे अच्युत ! एषां तु भाग्यमहिमा तावदास्तां एतद् हृषीकचषकैः शर्वादयः एकादशैव भूरिभागाः वयं ते अंघ्रिदजमध्वमृतासवं असकृत् पिबामः ॥३३॥

अनुवाद— हे अच्युत ! इन व्रजवासियों के सौभाग्य की महिमा अलग रहे । इन व्रजवासियों के एकादश इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता के रूप में रहने वाले हम शङ्कर ब्रह्मादि ग्यारह देवता ही धन्य है कि इन सबों की इन्द्रिय रूपी प्यालों से अमृत से भी मीठा और मदिरा से भी अधिक मादक आपके चरण कमलों के मकरन्द का बार-बार पान करते हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

किंच एषां भाग्यस्य तावन्महिमा आस्तां, कस्तं वक्तुं शक्नोति । शर्वादयः शर्वोऽहंकाराधिष्ठाता आदिर्येषां चन्द्रादीनामेकादशानां ते तथा वयं च । वयमित्यात्मानमेव बहुमन्यमान आह-एवं मनोबुद्ध्यधहंकारचक्षुराद्यधिष्ठातारस्त्रयोदशदेवा एवं तावद्भताऽहो भूरिभागाः यस्मादेतेषां हृषीकाणीन्द्रियाण्येव चषकाणि पानपात्राणि तैस्ते चतुर्दशस्य चित्ताधिष्ठातुरङ्घ्री एवं उदजे वारिजे तयोर्मधु मकरन्दस्तदेवामृतं स्वाद्वासवं मादकं पिबामः । एतदुक्तं भवति- यदा प्रत्येकमिन्द्रियाभिमानिनो वयं कीर्तिसौन्दर्यसौगन्ध्याद्येक-देशसेविनोऽपि कृतार्थास्तदा सर्वेन्द्रियैः सर्वसेविनामेतेषां किं वर्ण्यते भाग्यमिति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

इन व्रजवासियों के सौभाग्य की महिमा तो रहने दीजिए, उसका वर्णन कोई भी नहीं कर सकता है । इन सबों के अहङ्कार के अधिष्ठातृ देवता शङ्कर जी तथा मैं इत्यादि तो मन के अधिष्ठाता चन्द्रमा आदि ग्यारह देवताओं में मैं तो अत्यन्त धन्य हूँ । मेरे ही समान मन बुद्धि अहंकार तथा चक्षु आदि इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता भी निशिचित रूप से अत्यन्त भाग्यवान् हैं । क्योंकि इन व्रजवासियों की इन्द्रियाँ रूपी प्यालों उनमें भी चौदहवें चित्त के अधिष्ठाता श्रीभगवान् के दोनो चरण ही उदज (कमल) हैं, उन चरण कमलों के पराग अमृत से भी मधुर तथा मदिरा से भी अधिक मादक है, उसका हमलोग बार-बार पान करते हैं । कहने का अभिप्राय है कि एक-एक इन्द्रिय के अभिमानी हमलोग आपको कीर्ति, सौन्दर्य, सौभाग्य का सेवन करके जब कृत-कृत्य हैं तो फिर अपनी सभी इन्द्रियों से इन सबों का सेवन करने वाले व्रजवासियों के सौभाग्य का क्या कहना है ।।३३।।

तद्भूरिभग्यमिहजन्म किमप्यटव्यां यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोभिषेकम् ।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान्मुकुन्दस्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ।।३४।।

अन्वयः— इह अटव्यं यत् जन्म, यद् गोकुले अपि तद्भूरिभाग्यम् यत् कतमाङ्घ्रिरजोभिषेकम्, यत निखिलं जन्म तु भगवान् मुकुन्दः यत् पादरजः तु अद्यपि श्रुति मृत्यु एव ।।३४।।

अनुवाद— हे प्रभो ! इस व्रजभूमि की किसी अटवी में विशेष रूप से गोकुल में किसी प्रकार से जन्म प्राप्त कर लेना बड़े सौभाग्य की बात है। क्योंकि यहाँ जन्म होने पर आपके किसी न किसी प्रेमी के चरणों की धूलि मुझ पर पड़ ही जायेगी । इन व्रज वासियों का जीवन आपका ही जीवन है, क्योंकि वे सब आपके परम प्रेमी हैं । उनके चरणों की धूलि मिलना आपके ही चरणों की धूलि मिलना है । आपके चरणों की धूलि को तो आज तक श्रुतियाँ भी ढूँढ ही रही हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

अतो मया प्रार्थितं- 'तदस्तु मे नाथ स भूरिभागः' (१४/२९) इति यत्तदेवेत्याह-तद्भूरिभाग्यमिति । किं तत् इह मनुष्यलोके यत्किमपि जन्म, तद्यापयटव्यां यत्, तत्रापि गोकुले यत् । अहो सत्यलोकं विहायात्र जन्मनि जाते को लाभोऽत आह-अपि कतमाङ्घ्रिरजोभिषेकमिति । गोकुलवासिनां मध्येऽपि कतमस्य यस्य कस्याप्यङ्घ्रिरजसाऽभिषेको यस्मिंस्तत् । ननु कुतो गोकुलवासिन एव धन्यास्तत्राह-यदिति । येषां जीवितं निखिलं भगवान्मुकुन्दः । मुकुन्दपरमेव जीवनमित्यर्थः। दुर्लभतामाह-अद्यापीति । श्रुतिमृग्यं वेदैरपि मृग्यत एव नतु दृश्यत इत्यर्थः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

अतएव मैंने जो प्रार्थना की है हे नाथ मेरा वही परम सौभाग्य होगा, यह जो कहा गया है उसी को इस श्लोक में भी कहते हैं- वह परम सौभाग्य क्या है ? इस मनुष्य लोक में किसी भी योनि में जन्म प्राप्त कर लेना। उसमें भी गोकुल की किसी वन में जन्म प्राप्त कर लेना । यदि कोई पूछे कि सत्य लोक को छोड़कर यहाँ जन्म लेने में कौन सा लाभ है ? तो इस पर ब्रह्माजी कहते है— भगवान् के किसी भी प्रेमी के चरणों की धूलि से

अभिषेक ही लाभ है । यदि कहें कि गोकुलवासी ही क्यों धन्य हैं ? तो इसका उत्तर **यत्० इत्यादि** से देते है— क्योंकि गोकुल वासियों का जीवन ही भगवत परक है । अतएव उनके चरणों की धूलि श्रीभगवान् के चरणों की ही धूलि है । श्रीभगवान् के चरणों की धूलि आज भी श्रुतियाँ ढूंढ ही रही हैं पायी नहीं ॥३४॥

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देव रातेति नश्चेतो विश्वफलात्फलं त्वदपरं कुत्राप्ययन्मुह्यति ।
सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवापिता यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥३५॥

अन्वयः— हे देव एषां घोष निवासिनां भवान् किमुत राता इति विश्वफलात् फलं त्वदपरं कि इति कुत्रापि अयन् न श्चेतः मुहयति । सद्वेषादिव सकुला पूतना अपि देव त्वामेव आपिता यद् धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयाः त्वत्कृते ॥३५॥

अनुवाद— हे देवताओं के भी अराध्य देव भगवन् ! इन व्रजवासियों को आप इनकी सेवा के बदले में क्या । फल देंगे ? सभी फलों के फलस्वरूप आपसे बढ़कर दूसरा कोई फल नहीं हो सकता है । इस तरह से सोचकर मेरा चित्त मोहित हो रहा है । आप इन लोगों को अपना स्वरूप भी प्रदान करके उनका नहीं हो सकते हैं, क्योंकि आपके स्वरूप को तो वह पूतना भी अपने संबन्धियों अधासुर, बकासुर आदि के साथ प्राप्त कर ली जो जिसका केवल वेष ही साध्वी स्त्री का था किन्तु उसके हृदय में अत्यन्त क्रूरता थी जिन लोगों ने अपना गृह धन सुहृत परिवार पुत्र, प्राण और मन सबकुछ आपको समर्पित कर दिया है उन व्रजवासियों को भी उसी फल को प्रदान करके आप उऋण नहीं हो सकते हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

अपि च किं वर्ण्यते कृतार्थत्वमेतेषां भक्त्या भवानपि ऋणीवास्ते । ननु किं दातुमसमर्थोऽहं येन ऋणी स्यामत आह-उत अपि भवानपि एषां कुत्रापि किं विश्वफलात्सर्वफलात्मकात्त्वत्त्वत्तः परं फलं राता दास्यतीति नश्चेतः अयत्सर्वत्र गच्छद्विचारयत् मुह्यति । ननु मामेव दत्त्वाऽनृणः स्यामिति चेन्नहि नहि । सद्वेषादिव सतां भक्तानां यो वेषस्तदनुकरणमात्रेण पापिष्ठा पूतनापि त्वामेवापिता प्रापिता तर्हि तत्संबन्धिनामपि दास्यामीति चेत्तत्राह-सकुलेति बकाघासुरसहिता । एषामपि तावदेव चेदपर्याप्तमित्याह-यदिति । येषां धामादयस्त्वत्कृते त्वदर्थमेवेत्यर्थः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च इन सबों की कृत कृत्यता का क्या वर्णन करना है ? इन व्रजवासियों की भक्ति के ऋणी आप भी हैं। यदि आप कहें कि मैं इन सबों को क्या देने में असमर्थ हूँ कि तुम अपने विचारानुसार मुझे ऋणी कहते हैं । इस पर ब्रह्माजी ने कहा- संसार में सभी फलों से बड़ा फल आपकी प्राप्ति से बढ़कर दूसरा कोई फल नहीं हो सकता है, वही आप यदि इन व्रजवासियों को देते हैं तो यह सोचकर मेरा मन मोहित हो रहा है । यदि कहें कि मैं इन सबों को अपना स्वरूप दे दूँ तो आपके स्वरूप को तो आपके भक्तों का वेष बनाने वाली पूतना भी अपने संबन्धियों के साथ प्राप्तकर ली । यदि कहें कि इन सबों के संबन्धियों को भी अपना स्वरूप प्रदान कर दूँ तो, इस पर ब्रह्माजी ने कहा कि पूतना के भी संबन्धियों ने भी उसे प्राप्त कर लिया । अतएव इन सबों के लिए केवल स्वरूप प्रदान ही पर्याप्त नहीं है । क्योंकि ये व्रजवासी अपना सर्वस्व आपके चरणों में समर्पित कर चुके हैं ॥३५॥

तावद्रागादयः स्तेनास्तावत्कारागृहं गृहम् । तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत्कृष्ण न ते जनाः ॥३६॥

अन्वयः— हे कृष्ण ! तावद्रागादयः स्तेजाः तवत् गृहं कारागृहम् तावत् मोहः अङ्घ्रिनिगडः यावत् जनाः ते न।

अनुवाद— हे श्याम सुन्दर प्रभो ! राग इत्यादि तब तक ही चोरों के समान मनुष्यों के सर्वस्व को लूटते रहते हैं यह गृह कारागृह (कैदखाने) के समान रहता है तथा राग इत्यादि दोनों पैरों की वेणी बने रहते हैं जब तक कि मनुष्य आपका भक्त नहीं बन जाता है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

ननु वीतरागादिदोषाणां संन्यासिनामपि न मत्तः परं किंचिदस्ति कथमेषामपर्याप्तमित्यत आह-तावदिति । हे कृष्ण, रागादयस्तावदेव स्तेनाश्चोरा भवन्ति । तथा तावद्गृहमपि कारागृहं बन्धनागारम् । मोहोऽपि तावदेवाङ्घ्रिनिगडः पादशृङ्खला । यावत्ते त्वदीया जना न भवन्ति । त्वदीयानां तु रागादयोऽपि त्वन्निष्ठा मोचका एवेति न यतिभ्यो विशेषो भजनं त्वधिकमिति भावः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि जिन लोगों में रागादि दोष है ही नहीं उन संन्यासियों के भी लिए मुझसे बढ़कर कोई दूसरा फल नहीं है तो इन व्रजवासियों के लिए मेरी प्राप्ति कैसे अपर्याप्त होगी ? इस पर ब्रह्माजी कहते हैं हे कृष्ण भगवन राग आदि तब तक ही चोर का काम करते हैं, **कि मनुष्य** तथा गृह कैद खाने का काम करता है एवं मोह पैरों की लौह शृङ्खला बना रहता है, जब तक कि लोग आपके भक्त नहीं बन जाते हैं । आपके भक्तों का आपमें होने वाला राग भी इस संसार के बन्धन को काटने वाला ही है । संन्यासियों के द्वारा किया जाने वाला भजन आपसे अधिक नहीं है ॥३६॥

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले । प्रपन्नजनतानन्दसंदोहं प्रथितुं प्रभो ॥३७॥

अन्वयः— हे प्रभो ! निष्प्रपञ्चोऽपि भवान् प्रपन्नजनतानन्दसंदोहं प्रथितुं भूतले प्रपञ्चं विडम्बयसि ॥३७॥

अनुवाद— हे प्रभो आप प्रपञ्च से रहित हैं फिर भी अपने शरणागत जीवों के समूह को आनन्द प्रदान करने के लिए आप इस भूलोक में विश्व के समान ही अपनी लीला का विस्तार करते हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

नन्वत एवाहमेषां पुत्रादिरूपेण वर्ते इति चेत्तत्राह-प्रपञ्चमिति । प्रपन्ना या जनता जनसमूहस्तस्या आनन्दानां संदोहं समूहं प्रथयितुमिति । नहि कपटपुत्रत्वादिना तादृग्भक्तेरानृण्यं संपद्यत इत्यर्थ; ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि इसीलिए मैं इन लोगों के पुत्र आदि के रूप से व्यवहार करता हूँ तो इसके उत्तर में ब्रह्माजी **प्रपञ्चम्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं, अपने शरणागत जीव समूह को आनन्द प्रदान करने के ही लिए आप इस प्रपञ्च का विस्तार करते है । माया पुत्र होकर इन लोगों से आप आनृण्य को नहीं प्राप्त कर सकते हैं ॥३७॥

जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो । मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥३८॥

अन्वयः— हे प्रभो ! जानन्तः एवजानन्तु, बहूक्त्या किम् ? तव वैभवं मे मनसः वपुषाः वाचः गोचरः न ॥३८॥

अनुवाद— जो लोग आपको जानते हैं वे लोग जानते रहें किन्तु हे प्रभो आपका ऐश्वर्य मेरे मन शरीर तथा वाणी का विषय नहीं हो सकता है । अतएव जो लोग कहते हैं कि मैंने परमात्मा को जान लिया यह उनका भ्रम मात्र है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

तदेवमादित आरभ्याचिन्त्यानन्तगुणत्वेन स्वयं दुर्ज्ञेयत्वमुक्तम्, केचितु जानीम इति स्थितास्तानुपहसन्निवाह-जानन्त इति । नतु मे मनआदीनां तव वैभवं विषय इति ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह प्रारम्भ से ही लेकर आपका ऐश्वर्य दुर्ज्ञेय है, क्योंकि आप अचिन्त्य अनन्त गुणों से सम्पन्न है जो कोई यह कहते हैं कि मैंने परमात्म तत्त्व को अच्छी तरह जान लिया उन लोगों का उपहास करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं **जानन्तः इत्यादि** आपकी महिमा मेरे मन आदि का विषय नहीं है । अर्थात् मैं मन आदि से भी आपकी महिमा को नहीं जान सकता ॥३८॥

अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् । त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत्तवार्पितम् ॥३९॥

अन्वयः— हे कृष्ण ! त्वं माम् अनुजानीहि, सर्वदृक् त्वं सर्वं वेत्सि त्वमेव जगतां नाथः एतत् जगत् तवार्पितम्॥३९॥

अनुवाद— हे सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् कृष्ण, आप सबके साक्षी हैं, सब कुछ जानते हैं । आप मुझको स्वीकार करें और मुझे अपने लोक में जाने की आज्ञा दें । यह जगत् आपमें ही स्थित है । आप ही इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

जगदीशत्वाद्यभिमानं परित्यज्याह-अनुजानीहिति । स्वमहिमानमस्मदादीनां च ज्ञानबलादि सर्वं त्वमेव वेत्सि । यतः सर्वदृक् जगतां नाथस्तु त्वमेवेत्येतावज्ज्ञातम्, अतो ममतास्पदं जगदेतच्छरीरं च तवार्पितम् ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्माजी मैं जगत् का स्वामी हूँ, इस प्रकार के अपने अभिमान का परित्याग करके **अनुजानीहि० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । अपनी महिमा तथा हम संसारियों के ज्ञान बल आदि को आप ही जानते हैं, क्योंकि आप सर्ववेत्ता हैं । मैं यही जानता हूँ कि आप ही जगत् के स्वामी हैं । अतएव आपकी ममता का विषय भूत यह शरीर रूपी जगत् आप पर ही स्थित है ॥३९॥

श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन् क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ।
उद्धर्मशार्वरहरे क्षितिराक्षसध्रुगाकल्पमार्कमर्हन्भगवन्नमस्ते ॥४०॥

अन्वयः— हे श्रीकृष्ण वृष्णिकुल पुष्कर जो षदायिन ! क्ष्मा निर्जराद्विज पशूदधिवृद्धिकारिन् उद्धर्मशार्वर हरे ! क्षितिराक्षस ध्रुक् आकल्पमार्कमर्हन् भवन् नमस्ते ॥४०॥

अनुवाद— अपने सौन्दर्य माधुर्य से सबके मन को अपनी ओर आकृष्ट करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण, हे वृष्णिवंश रूपी कमल को विकसित करने वाले सूर्य, हे पृथिवी, देवता, ब्राह्मण तथा पशु रूप सागर की वृद्धि करने वाले चन्द्र, पाखण्डियों के धर्मजन्य रात्रि के अन्धकार को विनष्ट करने वाले चन्द्रमा और सूर्य, हे पृथिवी पर रहने वाले राक्षसों को विनष्ट करने वाले भगवान् सूर्य इत्यादि सभी देवताओं के पूज्य भगवन् कल्प पर्यन्त आपको मेरा नमस्कार है ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं किङ्करं प्रस्थापयेत्यत्यादरेण नमस्करोति-श्रीकृष्णेति। वृष्णिकुलपद्मस्य प्रीतिदातृत्वेन हे सूर्योपम। क्ष्मा चावनिर्निर्जरा देवाश्च द्विजश्च पशवश्च त एवोदधयस्तेषां वृद्धिकारित्वेन हे चन्द्रोपम । उद्धर्मः पाखण्डधर्मस्तदेव शार्वरं तमस्तद्धरतीति तथा, अनेन द्वयोपम । हे क्षितिराक्षसध्रुक् क्षितौ राक्षसाः कंसादयः उद्यन्नेव तेभ्यो द्रुह्यतीति पुनः सूर्योपम । सूर्याद्युपमापि न्यूनेति मत्वाह-आर्कमर्कमभिव्याप्य सर्वेषामर्हन् पूज्य भगवन्, आकल्पं कल्पपर्यन्तं ते तुभ्यं नम इति ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

हे भगवन् ! मैं तो आपका किङ्कर हूँ आप मुझे जाने की आज्ञा दें, इस तरह से ब्रह्मा आदर पूर्वक श्रीभगवान् को नमस्कार श्रीकृष्ण इत्यादि श्लोक से करते हैं । हे वृष्णिवंश रूपी कमल को आनन्द प्रदाता सूर्य, यहाँ भगवान् की सूर्य से उपमा दी गयी है, पृथ्वी देवता, ब्राह्मण और गौ रूपी सागर की अभिवृद्धि करने वाले चन्द्रमा, पाखण्ड धर्म रूपी शार्वर रात्रि के अन्धकार को दूर करने वाले हे चन्द्रमा और सूर्य यहाँ सूर्य तथा चन्द्रमा दोनों से उपमा दी गयी है । हे पृथ्वी पर रहने वाले रावण तथा कंस आदि के उदय से द्रोह करने वाले सूर्य, यह सूर्य आदि से दी गयी उपमा भी न्यून है इस तरह से मानकर ब्रह्माजी ने कहा— सूर्य इत्यादि सभी देवताओं के पूज्य भगवान् आपको कल्प पर्यन्त हम नमस्कार करते हैं ॥४०॥

श्रीशुक उवाच

इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः । नत्वाऽभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ।।४१।।

अन्वयः— जगद्धाता इति अभिष्टूय, भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः नत्वा अभीष्ट स्वधाम प्रत्यपद्यत ।।४१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जगत् के रचयिता श्रीब्रह्माजी इस प्रकार की इस तरह से स्तुति करके श्रीभगवान् की तीन परिक्रमा किए और श्रीभगवान् के चरणों में नमस्कार करके अपने धाम ब्रह्मलोक में चले गये ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

ससखिवत्सकमोक्षणकौतुकद्रुतविलम्बितपुत्रमुदेऽद्भुतम् । निखिलरूपमतो दधदच्युतोऽवतु स वः कलयन् व्रजमङ्गलम्।।१।। पादयोर्नत्वा । अभीष्टं सर्वतः पूजितमभिप्रेतं वा ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

अपने मित्र ग्वाल बालों तथा बछड़ों को मोक्ष प्रदान रूपी कौतुक से युक्त द्रुत विलम्बित अपने पुत्र ब्रह्माजी को आनन्द प्रदान करने वाले, ग्वाल बालों तथा बछड़ों का रूप धारण करने वाले भगवान् अच्युत आप सबों को व्रज में मङ्गल प्रदान करते हुए आप सबों की रक्षा करें ।।४१।।

ततोऽनुज्ञाप्य भगवान्स्वभुवं प्रागवस्थितान् । वत्सान्पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम् ।।४२।।

अन्वयः— ततः भगवान् स्वभुवं अनुज्ञाप्य प्रागवस्थितान् वत्सान् यथापूर्वं सखं स्वकम् पुलिनम् आनिन्ये ।।४२।।

अनुवाद— उसके पश्चात् श्रीभगवान् ब्रह्माजी को आज्ञा प्रदान करके, अपने सामने ही विद्यमान बछड़ों को पहले के ही समान अपनें सखाओं के साथ श्रीयमुनाजी के तट पर लाए ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

अनुज्ञाप्यानुज्ञां प्रदाप्य, पृष्ट्वेत्यर्थः । स्वभुवं ब्रह्माणम् । यथापूर्वं सखायो यस्मिंस्तत्स्वकं पुलिनम् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

अनुज्ञाप्य अर्थात् आज्ञा प्रदान करके, स्वभुवम् ब्रह्माजी को जहाँ पर पहले उनके मित्र थे वहीं पर बछड़ों को लाए।।४२।।

एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चान्तरात्मनः । कृष्णमायाहता राजन् क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः ।।४३।।

अन्वयः— हे राजन् ! प्राणेशं बिना एकस्मिन् अब्देयातेअपि अन्तरात्मनः कृष्ण माया हताः अर्भकाः क्षणार्धं मेनिरे।।४३।।

अनुवाद— श्रीशुकदेवजी ने कहा राजन् परीक्षित् ! अपने प्राणबल्लभ भगवान् श्रीकृष्ण के बिना एकवर्ष का समय बीत जाने पर भी सबों की अन्तरात्मा भगवान् श्रीकृष्ण की माया से मोहित होने के कारण ग्वाल बालों को लगा कि श्रीकृष्ण के गये हुए तो आधाक्षण ही जैसे बीते हों ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेतावन्तं कालं कथं तत्रैवोपविष्टाः कथं च क्षुत्पिपासादिविस्मरणमत आह-एकस्मिन्निति श्लोकद्वयेन । अब्देऽपि याते प्राणेशं कृष्णमन्तरा च विनापि । प्रियविरहे क्षणोऽपि वर्षाधिको भवति, तथापि मायाहताः क्षणार्धं मेनिरे ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि इतने समय तक वे सभी ग्वाल बाल वहाँ पर कैसे बैठे रहे और उन सबों को भूख प्यास का विस्मरण कैसे हो गया, इस पर शुकदेवजी **एकस्मिन्० इत्यादि** दो श्लोकों को कहते हैं अपने प्राणेश भगवान् श्रीकृष्ण के बिना एक वर्ष बीत जाने पर भी अपने प्रियतम के विरह में जब कि एक क्षण भी एक वर्ष से अधिक लगता है फिर भी माया से मोहित ग्वाल बालों को लगा कि अभी तो आधा ही क्षण बिता है ।।४३।।

किं किं न विस्मरन्तीह मायामोहितचेतसः । यन्मोहितं जगत्सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम् ॥४४॥

अन्वयः— यन्माया मोहितं अभीक्ष्णं विस्मृतात्मकं सर्वं जगत् माया मोहित चेतसः इह किं किं न विस्मरन्ति ॥४४॥

अनुवाद— जिस माया से मोहित होकर शास्त्रों तथा आचार्यों द्वारा बार-बार उपदेश दिए जाने पर भी अपनी आत्मा तक को भूल जाने वाला यह सम्पूर्ण जगत् के माया से मोहित अन्तःकरण वाले मनुष्य इस जगत् में क्या नहीं भूल जाते हैं ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

यद्यया मायया मोहितं जगदभीक्ष्णं पुनःपुनर्विस्मृतात्मकं विस्मृतं आत्मैव येन तत्तथा ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

जिस माया से मोहित होकर यह सम्पूर्ण जगत् अपनी आत्मा को ही भूल जाता है ॥४४॥

ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा । नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम् ॥४५॥

अन्वयः— सुहृदः च कृष्णं अतिरंहसा ऊचुः ते स्वागतम्, एकः अपि कवलः न अभोजि, एहि इतः साधुं भुज्यताम्॥४५॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण को देखते ही सभी ग्वाल बालों ने बड़ी उतावली से कहा आओ मित्र ! आपका स्वागत है । अभी तक किसी नें भी एक ग्रास भी नहीं खाया है । आओ और अब भोजन करो ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

अत एवमूचुश्च-ते त्वयाऽतिवेगेन स्वागतं सम्यगागतम् । एकोऽपि ग्रासस्त्वां विनास्माभिर्नाभोजि न भुक्तः । इत एहि, साधु अविक्षेपेण भुज्यतामिति ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

अतएव उन सबों ने श्रीभगवान् से इस प्रकार से कहा आपका अत्यन्त वेग पूर्वक स्वागत है । ठीक समय से आ गये । आपके बिना हमलोगों ने एक ग्रास भी भोजन नहीं किया है । इधर आइये बिना किसी विघ्न के अच्छी तरह से भोजन कीजिए ॥४५॥

ततो हसन् हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहार्भकैः । दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्तत वनाद्व्रजम् ॥४६॥

अन्वयः— ततः हृषीकेशः हसन् अर्भकैः सह अभ्यवहृत्य, आजगरं चर्म दर्शयन् वनात् वनम् न्यवर्तत ॥४६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण हँसते हुए बालकों के साथ भोजन करके, अजगर के सूखे चमड़े को दिखाते हुए वन से व्रज में लौट आये ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

अभ्यवहृत्य भुक्त्वा ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

अभ्यवहृत्य अर्थात् भोजन करके ॥४६॥

बर्हप्रसूननवधातुविचित्रिताङ्गः प्रोद्दामवेणुदलशृङ्गरवोत्सवाढ्यः ।
वत्सान्गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्तिर्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥४७॥

अन्वयः— बर्हप्रसूननवधातु विचित्रिताङ्गः प्रोद्दामवेणु, दलशृङ्गरवोत्सवाद्यः गृणननुगीतपवित्र कीर्ति गोपीदृगुत्सवदृशि प्रविवेश गोष्ठम् ॥४७॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के सिर पर मोर पंख का मनोज्ञ मुकुट और घुंघराले केशों में सुगन्धित मनोहर पुष्प गूंथे थे, उनके श्याम वर्ण के शरीर पर नवीन धातुओं से चित्रकारी की गयी थी मार्ग में चलते हुए वे कभी ऊँचे स्वर से वंशी बजाते थे तो कभी पतों को और कभी सिंगी को बजाते थे। उनके पीछे चलने वाले ग्वाल बाल उनकी पावन कीर्ति का गान करते थे। कभी वे नाम लेकर अपने बछड़ों को पुकारते थे तो कभी मार्ग में खड़ी गोपियों को अपनी तिरछी नजर से देख लेते थे तो गोपियाँ आनन्दमग्न हो जाती थीं। इस तरह भगवान श्रीकृष्ण गोष्ठ में प्रवेश किए ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

प्रोद्दामो वेण्वादिस्तस्य रुवैरुत्सवस्तेनाढ्यः संपन्नः। गृणन्नुपलालनैराह्वयन्। गोपीदृशामुत्सवरूपा दृशिर्दर्शनं यस्य सः॥४७॥

भाव प्रकाशिका

उत्कृष्टवंशी आदि की ध्वनि से सम्पन्न। गृणान् अर्थात् प्रेमपूर्वक बुलाते हुए। गोपी दृगुत्सव दृशिः अर्थात् श्रीभगवान् का देख लेना ही गोपियों के नेत्रों के उत्सव के समान आनन्दप्रद था ॥४७॥

अद्यानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना। हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला व्रजे जगुः ॥४८॥

अन्वयः— अद्य अनेन यशोदानन्दसूनुना महाव्यालः हतः वयं च अस्मद् अविता इति बाला व्रजे जगुः ॥४८॥

अनुवाद— आज इन यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्ण ने बहुत बड़े सर्प को मार दिया और उससे इन्होंने हमलोगों को बचा लिया ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

यशोदानन्दसूनुनति बहूनामुक्तिः सहैव दर्शिता, केचिदाहुर्यशोदासूनुना अपरे नन्दसुनुनेति। यद्वा यशोदां नन्दयतीति यशोदानन्दः स चासौ सूनुश्चेति तथा तेन। अस्मान्महाव्यालाद्वयं चाविता रक्षिताः॥४८॥

भाव प्रकाशिका

यशोदानन्दसूनुना इसके द्वारा बहुत से ग्वाल बालों की उक्ति को एक साथ दिखाया गया है, किसी ने यशोदा सूनु कहा तो कुछ ग्वाल बालों ने नन्द सूनु कहा, यही **यशोदानन्दसूनुना** पद का अभिप्राय है। अथवा यशोदा को आनन्दित करने वाले को यशोनन्दः कहेंगे। यशोदानन्द ही सूनु हैं, उनके द्वारा इस अर्थ में **यशोदानन्दसूनुना** व्युत्पन्न है। इन्होंने हमलोगों की महासर्प से रक्षा की इस प्रकार से ग्वाल बालों ने व्रज में लोगों से कहा ॥४८॥

राजोवाच

ब्रह्मन्परोद्भवे कृष्णे इयान्प्रेमा कथं भवेत्। योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥४९॥

अन्वयः— ब्रह्मन् परोद्भवे कृष्णे इयान् प्रेमा कथं भवेत् यः स्वोद्भवेषु अपि लोकेषु अभूतपूर्वः कथ्यताम् ॥४९॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन्! दूसरे की सन्तान भगवान् श्रीकृष्ण में व्रजवासियों का इतना प्रेम कैसे हो गया। इतना प्रेम तो पहले उनको अपने पुत्रों पर भी नहीं था। इसका कारण आप मुझे बतलायें ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

'ब्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्लयाऽब्दमन्वहम्। शनैर्निःसीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत्।' इत्यादिना स्वतोकेभ्योऽपि परपुत्रे कृष्णे प्रेमाधिक्यमुक्तं तत्र पृच्छति ब्रह्मन्निति॥४९॥

भाव प्रकाशिका

व्रजवासियों के छोटे बच्चों के समान प्रतिदिन धीरे-धीरे सीमातीत मात्रा में कृष्ण के समान ही बढ़ गया जो अपूर्व के समान था । इत्यादि शब्द के द्वारा अपने छोटे बच्चों से भी दूसरे के पुत्र कृष्ण पर प्रेमाधिक्य को देखकर बलरामजी पूछते हैं ।।४९।।

श्रीशुक उवाच

सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः । इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि ।।५०।।

अन्वयः— नृप सर्वेषामपि भूतानां स्वात्मा एवबल्लभः, इतरे अपत्य वित्ताद्याः तद्वल्लभतयैव हि ।।५०।।

अनुवाद— राजन् संसार के सभी प्राणी अपनी आत्मा से ही सर्वाधिक प्रेम करते हैं । अत्मव्यतिरिक्त पुत्र, धन या किसी को जो प्रेम होता है वह इसलिए होता है कि वे वस्तुएँ अपनी आत्मा को प्रिय लगती हैं ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णस्य साक्षादात्मत्वात्तस्मिन्नात्मीयेभ्यः प्रेमाधिक्यं युज्यत इति वक्तुं प्रथमं तावदात्मनः स्वतः प्रेष्ठत्वमन्येषां तु तदुपाधिकमिति दर्शयति पञ्चभिः-सर्वेषामपीति ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण सबों की साक्षात् आत्मा हैं, अतएव उनकी अपेक्षा अपने आत्मीयों से कम प्रेम होना उचित ही है, इस बात को कहने के लिए पहले यह कहते हैं कि आत्मा स्वभावत: सर्वाधिक प्रिय होती है । आत्मव्यतिरिक्त में होने वाला प्रेम औपाधिक होता है । इस बात को **सर्वेषामपि० इत्यादि** पाँच श्लोकों से बतलाते हैं ।।५०।।

तद्राजेन्द्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् । न तथा ममतालम्बि पुत्रवित्तगृहादिषु ।।५१।।

अन्वयः— तत् राजेन्द्र देहिनाम् यथा स्नेह स्वस्व कात्मनि तथा ममतालम्बि पुत्रवित्त गृहादिषु न ।।५१।।

अनुवाद— अतएव हे राजेन्द्र सभी शरीर धारियों का अपनी आत्मा के प्रति जैसा प्रेम होता है, वैसा प्रेम अपने पुत्रधन तथा गृह आदि में नहीं होता है ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

कुतः । तथादर्शनादित्याह-तदिति । तस्मादेव कारणात्स्वस्वकात्मन्यहंकारास्पदे देहे ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

क्योंकि ऐसा देखा जाता है कि इस बात को **तद्राजेन्द्र०** इस श्लोक से कहा गया है । इसीलिए अपने अपने देह में सबों का सर्वाधिक प्रेम होता है ।।५१।।

देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम । यथा देहः प्रियतमस्तथा नह्यनु ये च तम् ।।५२।।

अन्वयः— हे राजन्य सत्तम देहात्मवादिनां पुंसामपि यथा देहः प्रियतमः तथा ये च तमनु न ।।५२।।

अनुवाद— हे राजवर्य देह को ही आत्मा मानने वाले पुरुषों को जितना अपना देह प्रिय होता है, उतना प्रेम उस शरीर के संबन्धियों से नहीं होता है ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

आत्माध्यासतारतम्येन प्रेमतारतम्यं दृश्यमानं तन्निबन्धनमेवेति दर्शयितुं मूढामूढभेदेन विशेषमाह-देहात्मवादिनामिति द्वाभ्याम् । तं देहमनु भवन्ति ये पुत्रादयस्ते तु न तथा प्रियतमा इत्यर्थः ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

आत्माध्यास के तारतम्य से प्रेम तारतम्य उस अध्यास निमित्तक ही होता है इस बात को बतलाने के लिए ही **देहात्मवादिनाम्० इत्यादि** दो श्लोकों से मूढ एवं अमूढ के भेद से विशेषता बतलायी गयी हैं। उस देह के पश्चात् होने वाले पुत्र इत्यादि उतना प्रिय नहीं होते हैं जितना शरीर प्रिय होता है ॥५२॥

देहोऽपि ममताभाक्चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत्प्रियः। यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिन् जीविताशा बलीयसी ॥५३॥

अन्वयः— देहः अपि चेत् ममताभाक् तर्हि असौ आत्मवत् प्रियः न यत् जीर्यति अपि अस्मिन् देहे जीविताशाबलीयसी भवतीति शेषः ॥५३॥

अनुवाद— जब मनुष्य आत्मतत्त्व का विचार करके यह जान लेता है कि शरीर आत्मा नहीं है, उसके पश्चात् भी शरीर में जो ममता होती है, वह आत्मा में होने वाली ममता के तुल्य नहीं होती है। यही कारण है कि शरीर के जीर्ण हो जाने पर भी जीने की बलवान आशा बनी रहती है ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

अद्यस्माज्जीर्यत्यप्यासन्नमरणेऽपि जीविताशा भवति। अयं भावः। न जीविष्यतीति निश्चितेऽपि देहे यत्प्रेमास्पदत्वं तदात्मगतमेव सङ्गच्छत इति। अथवा यद्यस्मिन्देहे जीर्यत्यपि जीविताशा अविवेकदशायामासीत्सापि विवेकिनो यदा ममताभाग्भवति तदात्मवत्प्रियो न भवति, अतस्तत्र नातीवास्थेति ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

मृत्यु के अत्यन्त सन्निकट होने पर जीने की आशा बनी रहती है। अब यह नहीं जीयेगा इस प्रकार का निश्चय होने पर भी देह में जो प्रेम होता है, वह आत्मा में होने वाले प्रेम को लेकर ही होता है। अथवा जिस शरीर के जीर्ण हो जाने पर भी जीने की आशा अविवेक दशा में होती है, वह मतता आदि विवेकी पुरुष का भी यदि शरीर में प्रेम होता है, वह आत्मा के प्रति होने वाले प्रेम के समान नहीं होता है। अतएव विवेकी पुरुष की शरीर में बहुत अधिक आस्था नहीं होती है ॥५३॥

तस्मात्प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम्। तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम् ॥५४॥

अन्वयः— तस्मात् सर्वेषाम् अपि देहिनाम् स्वात्मा प्रियतमः एतत् चराचर जगत् तदर्थ मेव ॥५४॥

अनुवाद— इसीलिए सभी शरीरधारियों को अपनी आत्मा सर्वाधिक प्रिय होती है, यह सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् आत्मा के ही लिए है ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

तदर्थमेव सकलं प्रियमित्यर्थः ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

आत्मा के ही लिए यह सम्पूर्ण जगत् प्रिय है ॥५४॥

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्। जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥५५॥

अन्वयः— अखिलात्मनाम् आत्मानं त्वं एनं कृष्णम् अवेहि सोऽपि अत्र जगद्धिताय मायया देहीव आभाति ॥५५॥

अनुवाद— सम्पूर्ण आत्माओं की आत्मा इन भगवान् श्रीकृष्ण को ही आप जानें। वे भी भगवान् श्रीकृष्ण जगत् को कल्याण करने के लिए अपनी माया के द्वारा शरीरधारी के समान प्रतीत होते हैं ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमाह-कृष्णमेनमिति ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

जिस बात को कहना अभिप्रेत है उसको उन्होंने इन भगवान् श्रीकृष्ण को ही तुम सम्पूर्ण आत्माओं की आत्मा जानो कहा ॥५५॥

वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च । भगवद्रूपमखिलं नान्यद्वस्त्विह किंचन ॥५६॥

अन्वयः— वस्तुतः कृष्णं जानतामत्र स्थास्नु चरिष्णु च अखिलम् भगवद्रूपम् इह अन्यत् किञ्चित् न ॥५६॥

अनुवाद— जो लोग भगवान् श्रीकृष्ण के वास्तविक स्वरूप को जानते हैं उनके लिए तो इस जगत् में जो कुछ चराचर पदार्थ है, वह सब श्रीकृष्ण रूप ही है । भगवान् श्रीकृष्ण से भिन्न यहाँ कुछ भी नहीं है ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

न केवलमात्मनामात्मा, अपि तु जडानामपीत्याह-वस्तुत इति । सर्वजगत्कारणमिति कृष्णं जानतां पुंसां स्थावरं जङ्गमं च सर्वं भगवद्रूपं भगवानेव स्वरूपं यस्य तन्नान्यत् ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् केवल आत्माओं की आत्मा नहीं है, वे जड़ों की भी आत्मा हैं । इस बात को **वस्तुतः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । जो लोग जानते हैं कि सम्पूर्ण जगत् के कारण भगवान् कृष्ण ही हैं, उन लोगों के लिए सभी स्थावर पदार्थ श्रीभगवान् का रूप है । उससे भिन्न कुछ भी नहीं है ॥५६॥

सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः । तस्यापि भगवान्कृष्णः किमतद्वस्तु रूप्यताम् ॥५७॥

अन्वयः— सर्वेषाम् अपि वस्तूनाम् भावार्थः स्थितो भवति तस्यापि भगवान् कृष्णः अतद्वस्तु रूपताम् किम् ॥५७॥

अनुवाद— सभी वस्तुओं का अन्तिम रूप अपने कारण में स्थित होता है, उस कारण के भी परम कारण भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं अतएव किस वस्तु को भगवान् श्रीकृष्ण से भिन्न माना जाय ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

कुत इति तदाह-सर्वेषामिति । भवार्थः परमार्थः । भवतीति भवत्परिणामं प्राप्नुवत्कारणं तस्मिन् । तस्यापि भवतः कारणस्यापि भवान्कृष्णो भवत्कारणम् । अतः किमेतत् श्रीकृष्णव्यतिरिक्तं वस्तु रूप्यताम् ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

यह कैसे कहा जा सकता है ? इसके उत्तर में शुकदेवजी ने **सर्वेषाम्० इत्यादि** भावार्थ अर्थात् परमार्थ, सभी वस्तुओं का कारण में ही पर्यवसान होता है । उस कारण का भी कारण भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं । अतएव किस वस्तु को श्रीकृष्ण व्यतिरिक्त रूप से जाना जाय ॥५७॥

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद्विपदां न तेषाम् ॥५८॥

अन्वयः— ये पुण्यपशो मुरारेः महत्पदं पदपल्लवप्लवं समाश्रिताः तेषाम् भवाम्बुधिः वत्सपदं परं पदं पदं यद्विपदां पदं न ॥५८॥

अनुवाद— जिन लोगों ने पुण्यकीर्ति भगवान् श्रीकृष्ण के पदपल्लव को महान् नौका बना लिया है, उनके लिए यह संसार सागर बछड़े के खुर के गढ़े के समान हो जाता है । उनको परम पद की प्राप्ति हो जाती है और उनके लिए विपत्तियों का घर यह संसार नहीं रह जाता है ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

तस्माच्छ्रीकृष्णस्यैव परमार्थत्वात्तदेकशरणानामयत्नसिद्धो मोक्ष इति प्रकरणार्थमुपसंहरति-समाश्रिता इति । पुण्यं यशो यस्य स पुण्ययशाः स चासौ मुरारिश्च तस्य पदपल्लव एव प्लवस्तं ये सम्यगाश्रिताः । महत्पदं महतां पदमाश्रयम् । यद्वा महच्च तत्पदं चेति तथा । तेषां भवाम्बुधिर्वत्सपदमात्रं भवति । किंच परं पदं श्रीवैकुण्ठाख्यं पदं स्थानं भवति । विपदां यत्पदं विषयस्तत्पुनः कदाचिदपि तेषां न भवति । न ततः पुनरावर्तन्त इत्यर्थः ।।५८।।

भाव प्रकाशिका

अतएव भगवान् श्रीकृष्ण के ही परमार्थ होने से उनकी शरणागति करने वालों की मुक्ति अपने आप हो जाती है । यह कहकर इस प्रकरण का उपसंहार करते हैं । पवित्र कीर्ति मुरारि के पदपल्लव को ही जिन लोगों ने नौका बनाया है जो महापुरुषों का आश्रय है । उन लोगों के लिए संसार सागर बछड़ें के खुर के गढे के समान हो जाता है । उनकी मुक्ति हो जाती है और संसार छूट जाता है ।।५८।।

एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया । यत्कौमारे हरिकृतं पौगण्डे परिकीर्तितम् ।।५९।।

अन्वयः— यत् त्वया इह पृष्टम् एतत् सर्वम् ते आख्यातं यत् कौमारे हरिकृतम् पौगण्डे च प्रकीर्तितम् ।।५९।।

अनुवाद— तुमने जो कुछ पूछा था उन सारी बातों को मैंने तुमको बतलाया दिया । श्रीहरि ने कौमारावस्था में तथा पौगण्डावस्था में किया उसका वर्णन मैंने कर दिया ।।५९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५९।।

एतत्सुहृद्भिश्चरितं मुरारेरघार्दनं शाद्वलजेमनं च ।
व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवं शृण्वन् गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् ।।६०।।

अन्वयः—मुरारेः एतत् अघार्दनं चरितं शाद्वल जेमनं च व्यक्तेतरद्रूपम् अजीर्वभिष्टवं शृण्वन् गृणम् नरः अखिलर्थान्एति।।६०।।

अनुवाद— मुर नामक दैत्य को मारने वाले श्रीभगवान् के पाप विनाशक इस चरित को श्रीभगवान् का शाद्वल भूमि पर भोजन करना इन सबों का अपने हितैषियों के साथ सुनने और कहने वाला मनुष्य अपने समस्त अर्थों को प्राप्त कर लेता है ।।६०।।

भावार्थ दीपिका

सुहृद्भिश्चरितं 'मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन्' इत्यादिनोक्तम् । अघार्दनं च शाद्वले जेमनं भोजनं च । व्यक्तेतरत् व्यक्ताज्जड-प्रपञ्चादितरच्छुद्धसत्त्वात्मकं वत्सवत्सपालरूपम् । यद्वा व्यक्तेतरश्चिद्विलासस्तद्रूप्यत इति रूपम् । अजस्य उरुर्महानभिष्टवः स्तवस्तं ब्रह्मकृतां स्तुतिम् । एतच्छृण्वन्गृणन्गायन्नरः सर्वपुरुषार्थान्प्राप्नोति ।।६०।।

भाव प्रकाशिका

अपने सुहृदों के साथ **मुष्णन्तोऽन्योन्य शिक्यादीन इत्यादि** श्लोकों से वर्णित । अघार्दनम् अर्थात् पाप विनाशक शाद्वलभूमि पर भोजन करना व्यक्तेतरत् अर्थात् जड़ प्रपञ्च से भिन्न शुद्ध सत्त्वात्मक अथवा चिद् विलास रूप चरित तथा श्रीब्रह्माजी की महान् स्तुति, इन सबों को कहने तथा सुनने वाला मनुष्य अपने समस्त पुरुषार्थों को प्राप्त कर लेता है ।।६०।।

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे । निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ।।६१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

अन्वयः— एवं निलायनैः सेतुबन्धैः मर्कटोल्प्लवनादिभिः कौमारैः विहारैः व्रजे कौमारं जहतुः ।।६१।।

अनुवाद— परीक्षित् इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी आँख मिचौनी, सेतुबन्धन, बन्दरों के समान

उछलना कूदना आदि कुमारावस्था के अनुरूप अनेक लीलाओं को करते हुए अपनी कुमारावस्था को व्रज में ही बिता दिए ।।६१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवे स्कन्ध के पूर्वार्द्ध के ब्रह्मस्तुति नामक चौदहवे अध्याय के शिवप्रसाद (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

इति श्रीपरमानन्दनृसिंहपदषट्पदः । व्याकरोच्छ्रीधर स्वामी यथामति विधिस्तुतिम् ।।१।। ।।६१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह परमानन्द स्वरूप भगवान् नृसिंह के चरणों के सेवक श्रीधर स्वामी ने अपनी बुद्धि के अनुसार ब्रह्माजी की स्तुति की व्याख्या किए हैं ।।१।। ।।६१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के चौदहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१४।।

पन्द्रहवाँ अध्याय

धेनुकासुर का उद्धार और कालीयनाग के विष से ग्वाल बालो को बचाना

श्रीशुक उवाच

ततश्च पौगण्डवयःश्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसंमतौ ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥१॥

अन्वयः— ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ तो पशुपालसंमतौ बभूवतुः सखिभिः समं गाः चारयन्तौ पदैः वृन्दावनम् अतीव पुण्यं चक्रतुः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् पौगण्डावस्था में विद्यमान भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों गायों को चराने के योग्य व्रज में हो गये । अतएव अपने मित्रों के साथ गौओं को चराते हुए, पैदल चलते हुए उन दोनों ने वृन्दावन को अत्यन्त पुण्यमय (पवित्र) बना दिया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततः पञ्चदशे धेनुपालनं धेनुकार्दनम् । कालियक्ष्वेडतो गोपरक्षणं च निरूप्यते । अहिवक्त्रप्रवेशेन वृथा खिन्नान्सखीनतः। कृष्णः प्रावेशयत्पक्वफलं तालालिकाननम् । पशुपालस्तमतौ पशुपालने संमतौ, पशुपालनां वा संमतौ । ईषद्वयोबलातिरेकमनुकृतवन्तावित्यर्थः अतीव चक्रतुः सर्वतः प्रसर्पणेन ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् इस पन्द्रहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि गौओं का पालन, धेनुकासुर का वध गोपालों की कलीय नाग के विष से रक्षा का वर्णन किया गया है । कालीय के मुख में प्रवेश कर जाने के कारण व्यर्थ ही खिन्न होने वाले अपने मित्रों को भगवान् श्रीकृष्ण का पके हुए फलों वाले ताल बन में प्रवेश

करा दिए । **पशुपालसंमतौ** अर्थात् पशुओं का पालन करने योग्य । अल्प बल के बढ़े हुए गोपों के अनुकूल दोनों हो गये । **अतीव चक्रतुः** अर्थात् अपने संचरण के द्वारा अत्यन्त पवित्र बना दिए ॥१॥

तन्माधवो वेणुमुदीरयन्वृतो गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ।
पशून्पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद्विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥२॥

अन्वयः— स्वयशोगृणद्भिः गोपगणैः वृतः बलान्वितः विहर्तुकामः माधवः वेणुमुदीरयन् पशून् पुरस्कृत्य पशव्यं तत् कुसुमाकरं वनम् आविशत् ॥२॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के यश का गान करने वाले गोपगणों से घिरे हुए बलरामजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण वंशी को बजाते हुए गायों को आगे करके पशुओं के चराने योग्य उस वन में प्रवेश किए जो वन रंग विरंगे पुष्पों से भरा था ॥२॥

भावार्थ दीपिका

स्वयशोगृणद्भिर्गोपैर्वृतस्तद्वनं प्राविशत् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

अपने यश का गान करने वाले गोपों के समूह से घिरे हुए भगवान् उस वन में प्रवेश किए ॥२॥

तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं महन्मनः प्रख्यपयः सरस्वता ।
वातेन जुष्टं शतपत्रगन्धिना निरीक्ष्य रन्तुं भगवान्मनो दधे ॥३॥

अन्वयः— मञ्जुघोषालिमृगद्विजकुलं महन्मनः प्रख्यपयः सरस्वता शतपत्र गन्धिना वातेन जुष्टं तत् वनं निरीक्ष्य भगवान् रन्तुं मनो दधे ॥३॥

अनुवाद— मनोज्ञ गुञ्जन करने वाले भ्रमरों की गुञ्जन ध्वनि वाले पक्षियों से तथा मृगों से भरे हुए महापुरुषों के मन के समान स्वच्छ जल से भरे सरोवर तथा उसमें विकसित कमल की सुगन्धि से सम्पन्न उस मनोहर वन को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण उस वन में विहार करने का मन बनाये ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तद्वनं निरीक्ष्य रन्तुं मनो दधे । कथंभूतम् । मञ्जुघोषा येऽलिमृगद्विजा भ्रमरमृगपक्षिणस्तैराकुलं व्याप्तं महन्मनःप्रख्यपयः सरस्वता महतां मनसा प्रख्यं तुल्यं स्वच्छं पयो यस्मिंस्तत्सर आश्रयत्वेनास्ति यस्य तेन वातेनेति शैत्यमुक्तम् । शतपत्रगन्धिनेति परिमलवत्त्वम् । जुष्टं वनमिति मान्द्यं सूचितम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उस वन को देखकर श्रीभगवान् उसमें विहार करने का मन बनाये । कैसे वन को ? जो वन मनोहर ध्वनि करने वाले भ्रमरों मृगों तथा पक्षियों से भरा हुआ था, महापुरुषों के मन के समान स्वच्छ जल से भरे सरोवर शीतलता को लेकर वायु चल रही थी । कमल की सुगन्धि को लेकर वायु धीरे-धीरे चल रही थी । ऐसे वन में रमण करने का मन श्रीभगवान् बनाये ॥३॥

स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः ।
स्पृशच्छिखान्वीक्ष्य वनस्पतीन्मुदा स्मयन्निवाहाग्रजमादिपूरुषः ॥४॥

अन्वयः— तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया फल प्रसूनोरुभरेण पादयोः स्पृशन् शिखान् वनस्पतीन् वीक्ष्य मुदा स्मयन्निव सः आदिपूरुषः अग्रजम् आह ॥४॥

अनुवाद— स्थान-स्थान पर नवीन लाल-लाल पल्लवों की शोभा से परिपूर्ण फलों एवं पुष्पों के भार से झुकी हुई डालियों के अग्रभाग को पैरों से स्पर्श करते हुए के समान वनस्पतियों को देखकर प्रसन्नता पूर्वक मुसकुराते हुए आदि पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई बलरामजी से कहे ।।४।।

भावार्थ दीपिका

अरुणपल्लवश्रिया सह । स्पृशन्त्यः शिखाः शाखाग्राणि येषां तान् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

लाल-लाल पल्लवों की शोभा के साथ । जिन सबों की डालियों का अग्रभाग स्पर्श कर रहा था उन वनस्पियों को ।।४।।

श्रीभगवानुवाच

अहो अमी देववरामरार्चितं पादाम्बुजं ते सुमनः फलार्हणम् ।
नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मनस्तमोपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ।।५।।

अन्वयः— देववर ! अमी आत्मनः यत् कृतं तरुजन्म तमोपहत्यै अमरार्चितं ते पदाम्बुजं सुमनः फलार्हणं उपादाय शिखाभिः नमन्ति ।।५।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे देवश्रेष्ठ ! ये वृक्ष अपने वृक्ष जन्म के कारण भूत अज्ञान को विनष्ट करने के लिए देवताओं के द्वारा पूजित आपके चरण कमलों में पुष्पों तथा फलों का उपहार समर्पित करके अपनी शिखाओं (अग्रभाग) से आपको प्रणाम करते हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तरुजन्म येन तमसा कृतं तस्य तमसः पापास्यापहत्यै नाशाय । अथवा येन त्वयेश्वरेण सर्वोपकारकं तरुजन्म कृतं तं त्वां नमन्ति । एवं श्लाघ्येऽपि जन्मनि यदज्ञानरूपं तमोऽस्ति तस्यापहत्यै ।।५।।

भाव प्रकाशिका

जिस अज्ञानान्धकार के कारण इनको वृक्ष की योनि मिली है उस अज्ञान रूप पाप को विनष्ट करने के लिए । अथवा आप परमात्मा ने सबों का उपकारक इनको वृक्ष जन्म प्रदान किया हैं ऐसे आपको ये वृक्ष नमस्कार करते हैं। इस प्रकार के प्रशंसनीय जन्म में भी जो अज्ञान रूप तमस् है उसको विनष्ट करने के लिए ।।५।।

एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं गायन्त आदिपुरुषानुपदं भजन्ते ।
प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम् ।।६।।

अन्वयः—हे अनघ ! एते अलिनः अखिल लोकतीर्थं यशःगायन्तः आदि पुरुषानुपदं भजन्ते । प्रायः अमीभवदीयमुख्या मुनिगणः गूढम् वने अपि आत्मदैवं न जहति ।।६।।

अनुवाद— हे अनघ ये सभी भौंरे सम्पूर्ण जगत् को पवित्र बना देने वाले आपके यश का गान करते हुए पद-पद पर आदि पुरुष आपका भजन कर रहे हैं । लगता है कि ये सभी आपके मुख्य मुनिगण हैं जो अपने रूप को छिपा कर वन में बालक के समान विचरण करने वाले अपने देवता का परित्याग नहीं कर रहे हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

हेऽनघ, वने गूढमपि त्वां न त्यजन्ति । त्वयि मनुष्यवेषेण निगूढे सति मुनयोऽप्यलिवेषेण निगूढास्त्वां भजन्तीत्यर्थः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

हे अनघ वन में अपना रूप छिपाकर विचरण करने वाले आपका परित्याग नहीं कर रहे हैं। आप जब मनुष्य रूप से अपने को छिपा लिए तो मुनिगण भी भ्रमर का रूप बनाकर छिपे रुस्तम आपका भजन करते हैं॥६॥

नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन ।
सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः ॥७॥

अन्वयः— हे ईड्य अमी शिखिनः मुदा नृत्यन्ति हरिण्यः गोप्य इवते ईक्षणेन प्रियं कुर्वन्ति, कोकिलगणाः सूक्तैः च प्रियं कुर्वन्ति, धन्या वनौकसः गृहमागताय इयान् निसर्गः ॥७॥

अनुवाद— हे स्तुत्य बलरामजी, ये मयूर आपको देखकर प्रसन्नता से नृत्य कर रहे है। ये हरिणियाँ अपने प्रेम भरे नत्रों से देखकर उसी तरह से आपको आनन्दित करती हैं। जिस तरह गोपियाँ अपने प्रेम भरे नेत्रों से देखकर आनन्दित करती हैं कोयलों का समूह अपनी कुहू-कुहू की सुन्दर ध्वनी से आपको आनन्दित करती है। धन्य है ये वन में रहने वाले सत् पुरुषों का यह स्वभाव होता है कि वे अपने घर आये हुए अतिथि को अपनी सबसे सुन्दर वस्तुएँ प्रदान करते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

इयान् हि सतां निसर्गं इति। यदस्ति स्वस्मिंस्तद्गृहमागताय महते महापुरुषाय समर्पयन्तीति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

सत्पुरुषों का यह स्वभाव होता है कि वे अपने घर आये महापुरुष अतिथि को अपना सर्वस्व समर्पित कर देते हैं ॥७॥

धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत्पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ।
नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकैर्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥८॥

अन्वयः— त्वत्पादस्पृशः इयं धरणी अद्य धन्या, करजाभिमृष्टाः तृणवीरधः द्रुमलताः धन्याः सदयावलोकैः नद्योद्रयः खगमृगाः धन्याः यत्स्पृहाक्षीः त्वत्भुजयोः अन्तरेण गोप्यः धन्याः ॥८॥

अनुवाद— आपके चरणों का स्पर्श प्राप्त करके यहाँ धरणी (भूमि) धन्य हो गयी, आपकी अङ्गुलियों का स्पर्श प्राप्त कर यहाँ के तृण, वीरुध, वृक्ष और लताएँ धन्य हो गयीं, अपके सदय चितवन से ये नदियाँ पर्वत औरपक्षी एवं मृग धन्य हो गये तथा जिसको लक्ष्मी जी भी प्राप्त करना चाहती हैं आपके उस वक्षःस्थल का स्पर्श करके गोपियाँ धन्य हो गयीं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तृणवीरुधश्च तव पादौ स्पृशन्तीति तथा। करजाभिमृष्टा नखैः स्पृष्टाः। सदयैरवलोकनैः। श्रीरपि यस्मै स्पृहयति केवलं तेन भुजयोरन्तरेण वक्षसा गोप्यो धन्या इति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

तृण, वीरुध आपके पैरों का स्पर्श करके धन्य होते हैं, करजाभिमृष्टाः अर्थात् नखों से स्पृष्ट। दया पूर्वक देखने से जिसको लक्ष्मीजी भी प्राप्त करना चाहती है ऐसे केवल आपके वक्षःस्थल के स्पर्श से गोपियाँ धन्य हो गयीं ॥८॥

श्रीशुक उवाच

एवं वृन्दावनं श्रीमत्कृष्णः प्रीतमनाः पशून् । रेमे संचारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ॥९॥

अन्वयः— एवं श्रीमद्वृन्दावनं प्रीतमनाः सानुगः कृष्णः अद्रेः सरित् रोधस्तु पशून संचारयन् कृष्णः रेमे ॥९॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से सुन्दर वृन्दावन को देखकर प्रसन्नमना भगवान् कृष्ण अपने अनुगामियों के साथ गोवर्धन की तराई में यमुना के तट पर गौओं को चराते हुए अनेक प्रकार की लीलाएँ करने लगे ॥९॥

भावार्थ दीपिका

एवं श्रीमद्वृन्दावनं प्रति प्रीतः सन्नद्रेः समीपवर्तिसरित्तटेषु पशून्संचारन्सानुगो गोपैः सह वर्तमानः प्रीतमना रेमे ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से सुन्दर वृन्दावन को देखकर प्रसन्नमना भगवान् श्रीकृष्ण पर्वत के समीपवर्ती यमुना तट पर अपने अनुगामियों के साथ गायों को चराते हुए अनेक प्रकार की लीलाएँ करने लगे ॥९॥

क्वचिद्गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतैः । उपगीयमानचरितः स्रग्वी संकर्षणान्वितः ॥१०॥

अन्वयः— उपगीयमानचरितः स्रग्वी संकर्षणान्वितः मदान्धालिष्वन्नुव्रतैः गायत्सु क्वचित् गायति ॥१०॥

अनुवाद— जिनके चरित का गान ग्वाल बाल किया करते थे ऐसे वनमाला धारण किए हुए भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी के साथ मदमत्त भौरों के गुञ्जन के स्वर में स्वर मिलाकर गाने वाले ग्वाल बालों के साथ गाने लगते थे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तामेव रतिमाह-क्वचिदित्यादिदशभिः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के उपर्युक्त प्रेम का वर्णन क्वचित् इत्यादि दस श्लोकों से करते हैं ॥१०॥

क्वचिच्च कलहंसानामनुकूजति कूजितम् । अभिनृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन् क्वचित् ॥११॥

अन्वयः— क्वचित् च कलहंसानाम् कूजितम् अनुकूजति, क्वचित् नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन् अभिनृत्यति ॥११॥

अनुवाद— कहीं पर श्रीभगवान् कलहंसों के साथ-साथ स्वयम् भी कूजन करने लगते थे तथा कहीं पर नाचते हुए मयूर को देखकर उसके साथ वे भी नृत्य करने लगते थे जिसे देखकर सभी ग्वाल बाल हंसने लगते थे ॥११॥

भावार्थ दीपिका

बर्हिणं नृत्यन्तमनु अभिनृत्यति । बर्हिणमभिमुखो नृत्यतीति वा । सखीन्हासयन् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

नाचते हुए मयूर के समान नृत्य करने लगते थे अथवा मयूर के सामने नाचने लगते थे । अपने सखाओं को हँसाते हुए ॥११॥

मेघगम्भीरया वाचा नामभिर्दूरगान्पशून् । क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥१२।

अन्वयः— क्वचित् गोगोपालमनोज्ञयामेघगम्भीरया वाचा, दूरगान् पशून् प्रीत्या नामभिः अह्वयति ॥१२॥

अनुवाद— कहीं परवे गोऔं और गोपालों को अच्छी लगने वाली मेघ के समान गम्भीर वाणी से दूर गए हुए पशुओं को उनका नाम लेकर प्रेम पूर्वक पुकारने लगते थे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

चकोरक्रौञ्चचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः । अनुरौति स्म सत्त्वानां भीतवद्व्याघ्रसिंहयोः ॥१३॥

अन्वयः— चकोर क्रौञ्च चक्राह्वभारद्वाजां वर्हिणः च अनुरौति, क्वचित् व्याघ्रसिंहयोः भीतवत् सत्त्वानाम् अनुरौति॥१३॥

अनुवाद— कहीं पर वे चकोर, क्रौञ्च, चकवा, भरदूल तथा मयूर की बोली सुनकर उन सबों का अनुकरण करने लगते थे तो कभी वे व्याघ्र तथा सिंह से डरे हुए जीवों के समान बोलने लगते थे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

चकोरादीननुकृत्य रौति । कदाचिच्च सत्त्वानां मध्ये व्याघ्रसिंहयोस्ताभ्यां भीतवद्द्रवति । सत्त्वेषु पलायमानेषु पलायत इत्यर्थः । तयोः सत्त्वानां बलोद्रेकाणां भीतवद्द्रवतीति वा ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

चकोर आदि पक्षियों की बोली का अनुकरण करते थे तथा जीवों में व्याघ्र और सिंहों से डरे हुए के समान बन जाते थे । जीवों के भागने पर भागते थे । जिनके बल का उद्रेक होने पर वे भयभीत हो जाते थे ॥१३॥

क्वचित्क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपबर्हणम् । स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः ॥१४॥

अन्वयः— क्वचित् क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपवर्हणम् आर्यं पादसंवाहनादिभिः विश्रामयति ॥१४॥

अनुवाद— कहीं पर क्रीडा करते करते बलरामजी थककर किसी गोप की गोद रूपी तकिया पर सिर रखकर लेट जाते तो उनके पैर आदि दबाकर उनकी थकान दूर करने का काम करते थे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

आर्यमग्रजम् । विश्रमयति विगतश्रमं करोति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

आर्यम् अर्थात् बलरामजी को । विश्रामयति थकान दूर करते ॥१४॥

नृत्यतो गायतः क्वापि बल्गतो युध्यतो मिथः । गृहीतहस्तौ गोपालान्हसंतौ प्रशशंसतुः ॥१५॥

अन्वयः— क्वापि नृत्यतः गायतः वल्गतः मिथः युध्यतः गोपालान् गृहीतहस्तौ हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥१५॥

अनुवाद— नाचने गाने अथवा ताल ठोककर परस्पर में कुश्ती लड़ने वाले गोपालों की हाथ में हाथ डाले हँसते हुए दोनों भाई उन सबों की प्रशंसा करने लगते थे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

मिथो नृत्यादीन्कुर्वतो गोपान्प्रशशंसतुः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

परस्पर में नृत्य आदि करने वाले गोपों की प्रशंसा करने लगते थे ॥१५॥

क्वचित्पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः । वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्सङ्गोपबर्हणः ॥१६॥

अन्वयः— क्वचित् नियुद्धश्रमकर्शितः पल्लवतल्पेषु वृक्षमूलाश्रयः गोपोत्सङ्गोपबर्हणः शेते ॥१६॥

अनुवाद— कहीं पर भगवान् श्रीकृष्ण भी गोपों के साथ कुश्ती लड़कर थक जाते तो किसी वृक्ष के नीचे पल्लवों से रचित शय्या पर ग्वालों की गोद रूपी तकिया पर सिर रखकर सो जाते थे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

पादसंवाहनं चक्रुः केचित्तस्य महात्मनः । अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥१७॥

अन्वयः— तस्य महात्मनः केचित् पादसंवाहनं चक्रुः अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥१४॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण का कोई ग्वाल पैर दबाने लगता था कोई निष्पाप गोप पत्र निमित पङ्खे से उनको हवा करने लगता था ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

व्यजनैः पल्लवादिनिर्मितैः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

पत्र निर्मित पङ्खों से ॥१७॥

अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः । गायन्ति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः ॥१८॥

अन्वयः— हे महाराज अन्ये महात्मनः स्नेह क्लिन्नधियः तदनुरूपाणि मनोज्ञानि शनैः गायन्ति स्म ॥१८॥

अनुवाद— महाराज परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति स्नेह सिंचित बुद्धि वाले दूसरे गोप श्रीभगवान् की लीलाओं के अनुरूप उनको प्रिय प्रतीत होने वाला गीत धीरे-धीरे गाने लगता था ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन् ।
रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥१९॥

अन्वयः— एवं स्वमायया निगूढात्मगतिः चरितैः गोपात्मजत्वं विडम्बयन् रमालालितपादपल्लवः ईशचेष्टितैः ग्राम्यैः समं ग्राम्यवद् रेमे ॥१९॥

अनुवाद— इस तरह अपनी माया के द्वारा अपने स्वरूप के छिपाकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी लीलाओं के द्वारा गोप बालक के समान लीला करते हुए श्रीलक्ष्मीजी के द्वारा सेवित अपने पद पल्लवों के द्वारा परमात्म लीलाओं के द्वारा गोपों के साथ साम्य बालक के समान लीला किए ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ईशचेष्टित इति निगूढस्वभावत्वेऽप्यन्तरान्तरा ईशस्यैव चेष्टितानि दृश्यन्तेऽस्मिन्सः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

ईश्चेष्टितैः अर्थात् वे सब भीतर से परमात्मा चेष्टाएँ हुआ करती थीं ॥१९॥

श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा । सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन् ॥२०॥

अन्वयः— रामकेशवयोः सखा श्रीदामानामगोपालः सुबलस्तोककृष्णाद्याः गोपाः प्रेम्णा इदम् अब्रुवन् ॥२०॥

अनुवाद— बलरामजी और भगवान् कृष्ण के प्रधान मित्रों में एक श्रीदामाजी थे वे सुबल तथा स्तोक कृष्ण (छोटा कृष्ण) आदि गोपों ने प्रेम पूर्वक भगवान् कृष्ण और बलरामजी से कहा ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

ईशचेष्टितत्वमेव दर्शयितुमाह-श्रीदामेति । स्तोककृष्णः क्वचित् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के परमात्म चेष्टितत्व को ही बतलाने के लिए **श्रीदामा० इत्यादि** श्लोक कहा गया है । किसी प्रति में स्तोक कृष्ण भी पाठ है ॥२०॥

राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिबर्हण । इतोऽविदूरे सुमहद्वनं तालालिसंकुलम् ॥२१॥

अन्वयः— हे राम ! हे राम ! हे महाबाहो ! दुष्ट निबर्हण कृष्ण ! इतः अविदूरे तालालिसंकुलम् महद्वनम् वर्तत इतिशेषः ॥२१॥

अनुवाद— हे बलरामजी तथा हे महाबाहो ! श्रीकृष्ण, यहाँ सें सन्निकट में ताड़ वृक्ष की पंक्तियों से भरा हुआ बहुत बड़ी वन है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तालालिसंकुलं तालपङ्क्तिभिर्व्याप्तम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

तालालिसंकुलम् अर्थात् ताड़ वृक्ष की पंक्तियों से व्याप्त ॥२१॥

फलानि तत्र भूरीणि पतन्ति पतितानि च । सन्ति किंत्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना ॥२२॥

अन्वयः— तत्र भूरीणि फलानि पतन्ति पतितानि च सन्ति किन्तु दुरात्मना धेनुकेन अवरुद्धानि सन्ति ॥२२॥

अनुवाद— वहाँ पर बहुत से ताड़के पके फल गिरते रहते है और बहुत से पहले से ही गिरे हुए हैं, किन्तु दुष्ट धेनुक उस पर रोक लगा रखा है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक् । आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ॥२३॥

अन्वयः— हे राम ! हे कृष्ण ! सः असुरः अतिवीर्यः खररूपधृक् आत्मतुल्यबलैः अन्यैः ज्ञातिभिः वृतः ॥२३॥

अनुवाद— हे बलरामजी ! हे कृष्ण वह असुर अत्यन्त बलवान् है तथा अपने ही समान सेनाओं, साथियों और अपने बान्धवों के साथ रहता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

तस्मात्कृतनराहाराद्भीतैर्नृभिरमित्रहन् । न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसङ्घैर्विवर्जितम् ॥२४॥

अन्वयः— हे अमित्रहन् तस्मात् कृतनराहारात् नृभिः न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसङ्घैः विवर्जितम् ॥२४॥

अनुवाद— हे अपने शत्रुओं को मारने वाले उसके द्वारा मनुष्यों के खा लिए जाने के कारण कोई मनुष्य उस वन में नहीं जाता है और उस वन में कोई पशु अथवा पक्षी भी नहीं रहता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

विद्यन्तेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च । एष वै सुरभिर्गन्धो विषूचीनोऽवगृह्यते ॥२५॥

अन्वयः— अभुक्त पूर्वाणि सुरभीणि च फलानि सन्ति, एष वै विषूचीनः सुरभिः गन्धः अवगृह्यते ॥२५॥

अनुवाद— उसके फल सुगन्धित हैं और हमलोगों ने कभी खाया नहीं है । उसका ही यह सुगन्धित गन्ध चारो ओर फैल रहा है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

विषूचीनः सर्वतः प्रसृतः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

विषूचीन अर्थात् सर्वत्र व्याप्त ॥२५॥

प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गन्धलोभितचेतसाम् । वाञ्छास्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते ॥२६॥

अन्वयः— कृष्ण गन्धलोभित चेतसाम् नः तानि प्रयच्छ, नः महती वाञ्छा अस्ति हे राम यदि रोचते तर्हि गम्यताम्॥२६॥

अनुवाद— हे कृष्ण ! उनकी सुगन्धि से हमलोगों का मन मोहित हो गया है, उन सबों को प्राप्त करने की हमलोगों की प्रबल इच्छा है । उन फलों को आप हमें खिलाइये । हे बलरामजी यदि आपको अच्छ लगे तो वहाँ चलिए ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया । प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू ॥२७॥

अन्वयः— एवं सुहत्वचः श्रुत्वा सुहृतप्रियचिकीर्षया, प्रभू प्रहस्य गोपैवृतौ तालवनं जग्मतुः ॥२७॥

अनुवाद— इस तरह अपने मित्रों की वाणी को सुनकर अपने मित्रों के प्रिय कार्य करने के लिए गोपों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी उस ताल वन में गये ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान्संपरिकम्पयन् । फलानि पातयामास मतङ्गज इवौजसा ॥२८॥

अन्वयः— बलः प्रविश्य ओजसा मतङ्गज इव बाहुभ्यां तालान् सं परिकम्पयन् फलानि पातयामास ॥२८॥

अनुवाद— उस तालवन में प्रवेश करके मदमत्त गजराज के समान बलपूर्वक अपनी दोनों भुजाओं से झकझोरते हुए फलों को गिराये ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

फलानां पततां शब्दं निशम्यासुररासभः । अभ्यधावत्क्षितितलं सनगं परिकम्पयन् ॥२९॥

अन्वयः— पततां फलानां शब्दं निशम्य असुररासभः सनगं क्षितितलं परिकम्पयन् अभ्यधावत् ॥२९॥

अनुवाद— गिरने वाले फलों के शब्द को सुनकर वह गधे के रूप में रहने वाला राक्षस वृक्षों के साथ पृथिवी को कँपाते हुए दौड़ा ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

सनगं सवृक्षम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

समगम् अर्थात् वृक्षों से युक्त ॥२९॥

समेत्य तरसा प्रत्यग्द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली । निहत्योरसि काशब्दं मुञ्चन्पर्यसरत्खलः ॥३०॥

अन्वयः— तरसा समेत्य बलीप्रत्यग्द्वाभ्यां पद्भयाम् उरसि निहत्य का शब्दं मुञ्चन् खलः पर्यसरत् ॥३०॥

अनुवाद— बड़े वेग से बलराम जी के पास आकर अपने पिछले दोनों पैरों से वह बलवान् राक्षस बलरामजी की छाती में दुलत्ती मारा और रेंकता हुआ वहाँ से हट गया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्यग्द्वाभ्यां पश्चिमाभ्याम् । काशब्दमिति गर्दभजातिशब्दानुकरणम् पर्यसरत्परितोऽधावदित्यर्थः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

पीछे के दोनों पैरों से, का शब्दम् अर्थात् रेंकता हुआ, **पर्यसरत्** अर्थात् चारो ओर दौड़ने लगा ॥३०॥

पुनरासाद्य संरब्ध उपक्रोष्टा पराक् स्थितः । चरणावपरौ राजन्बलाय प्राक्षिपद्रुषा ॥३१॥

अन्वयः— राजन् संरब्धः पुनः आसाद्य उपक्रोष्टा पराक् स्थितः अपरौ चरणौ बलाय रुषा प्राक्षिपत् ॥३१॥

अनुवाद— राजन् क्रोध में भरा हुआ वह रेंकता हुआ पुनः बलरामजी के पास पहुँच गया और उनकी ओर पीठ करके फिरअपने पैरों की दुलत्ती चलाया ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

उपक्रोष्टा गर्दभः । पराक् प्रतिमुखः । अपरौ पश्चिमौ । बलाय बलं हन्तुम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

उपक्रोष्टा अर्थात् गधा, पराक् अर्थात् पीछे की ओर पीछे करके, अपरौ अर्थात् पीछले, बलरामजी को मारने के लिए ॥३१॥

स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना । चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥३२॥

अन्वयः— स तं प्रपदोः गृहीत्वा एकेन पाणिना भ्रामयित्वा भ्रामणात् त्यक्तजीवितम् तृण राजाग्रे प्राक्षिपत् ॥३२॥

अनुवाद— बलरामजी अपने एक ही हाथ से उसके दोनों पैर पकड़ लिए और चारो तरफ घुमाये । घुमाते-घुमाते जब वह मर गया तो उसको एक ताड़ के पेड़ पर फेंक दिए ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

तृणराजस्तालः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

तृणराज अर्थात् ताड़ का पेड़ ॥३२॥

तेनाहतो महातालो वेपमानो बृहच्छिराः । पार्श्वस्थं कम्पयन् भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम् ॥३३॥

अन्वयः— तेन आहतः बृहच्छिरःमहातालः वेपमानः पार्श्वस्थं कम्पयन् भग्नः स चायं सः अपि च अपरम् ॥३३॥

अनुवाद— उसके गिरने के चोट से वह महान ताड़ का वृक्ष जिसका ऊपर का भाग बहुत बड़ा था वह स्वयं गिर पड़ा । वह अपने से सटे हुए दूसरे वृक्ष को तोड़ डाला, उसने तीसरे को और तीसरे ने चौथे वृक्ष को तोड़ दिया ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः । तालाश्चकम्पिरे सर्वे महावातेरिता इव ॥३४॥

अन्वयः— बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः सर्वे तालाः महावातेरिताः इव चकम्पिरे ॥३४॥

अनुवाद— बलरामजी के द्वारा खेल खेल में फेंके हुए गधे के शरीर से टकराकर सभी ताड़के वृक्ष उसी तरह काँप गये जैसे उन सबों को झंझावात ने झकझोर दिया हो ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

उत्सृष्टेन खरदेहेन हतैराहताः । चकम्पिरे अकम्पन्त ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

फेंके गये गधे के शरीर से टकराया हुआ । चकम्पिरे अर्थात् काँप गये ॥३४॥

नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे । ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तन्तुष्वङ्ग यथा पटः ॥३५॥

अन्वयः— हे अङ्ग जगदीश्वरे अनन्ते भगवति हि एतच्चित्रं न यस्मिन् । तन्तुषु पटः यथा इदं ओत-प्रोतम् ॥३५॥

अनुवाद— हे राजन् ! जगत् के स्वामी भगवान् अनन्त के विषय में यह कोई आश्चर्य की वात नहीं है। जिस तरह तन्तुओं में वस्त्र ओत-प्रोत रहता है उसी तरह भगवान् अनन्त में यह जगत् ओतप्रोत है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

यस्मिन्निदं विश्वमोतमूर्ध्वतन्तुषु पट इव ग्रथितम्, प्रोतं तिर्यक्तन्तुषु पटवदेव संग्रथितम् । सर्वतोऽनुस्यूतं वर्तत इत्यर्थः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

जिन श्री अनन्त भगवान् में यह जगत् ऊपर के तन्तुओं में ग्रथित पट के समान तीर्यक् तन्तुओं में ग्रथित पट के समान ग्रथित है । हर प्रकार से ओतप्रोत ॥३५॥

ततः कृष्णं च रामं च ज्ञातयो धेनुकस्य ये । क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन्सर्वे संरब्धा हतबान्धवाः ॥३६॥

अन्वयः— ततः धेनुकस्य ये ज्ञातयः क्रोष्टारः ते हतवान्धवाः संरव्धाः सर्वे कृष्णं च रामं च अभ्यद्रवन् ॥३६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् धेनुक के जो वान्धव थे वे सबके सव अपने वन्धु धेनुक के मार दिए जाने के कारण क्रोध करके भगवान् श्रीकृष्ण पर तथा वलरामजी पर टूट पड़े ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृप लीलया । गृहीतपश्चाच्चरणान्प्राहिणोत्तृणराजसु ॥३७॥

अन्वयः— हे नृप ! तान् तान् आपतः कृष्णः रामः च लीलया गृहीतपश्चात् चरणान् तृणराजसु प्राहिणात् ॥३७॥

अनुवाद— राजन् उनमें से जो-जो पास आये उन सबों के खेल-खेल में पिछले पैर को पकड़कर ताल वृक्षों पर दे मारे ॥३७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

फलप्रकरसंकीर्ण दैत्यदेहैर्गतासुभिः । रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ॥३८॥

अन्वयः— गतासुभिः दैत्यदेहैः सतालाग्रेः घनैः फलप्रकर संकीर्णं नभः तलम् इव भूः रराज ॥३८॥

अनुवाद— मरे हुए दैत्यों के शरीरों से तथा ताड़ के फलों से युक्त मेघों से ढँके हुए आकाश तल के समान वहाँ की भूमि सुशोभित हुई ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

घनैर्नभ इव भुवस्तलं रराज। तत्र फलप्रकरसंकीर्णमिति दैत्यदेहैश्च सतालाग्रैः संकीर्णमित्यरुणश्वेतनीलघनसादृश्यसंपादनम्॥३८॥

भाव प्रकाशिका

मेघों से भरे हुए आकाश के समान वहाँ की पृथिवी सुशोभित हुई । वहाँ पर फल समूह से पटी हुई, दैत्यों के देहों तथा ताड़ वृक्ष के अग्रभागों से पटी हुई, यह कहकर पृथिवी की लाल, श्वेत तथा नीले मेघ की सदृशता वतलायी गयी है ॥३८॥

तयोस्तत्सुमहत्कर्म निशाम्य विबुधादयः । मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः ॥३९॥

अन्वयः— तयोः तत् सुमहत् कर्म निशाम्य विवुधादयः पुष्पवर्षाणि मुमुचु, वाद्यानि चक्रुः तुष्टुवुः ॥३९॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलराम के द्वारा किए गये उस अत्यन्त महान् कर्म को देखकर देवताओं ने पुष्पों की वर्षा की, बाजे बजाये और स्तुति की ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

अथ तालफलान्यादन्मनुष्या गतसाध्वसाः । तृणं च पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने ॥४०॥

अन्वयः— अथ गतसाध्वसाः मनुष्या; तालफलानि आदन् हतधेनुककानने पशवः च तृणं चेरुः ॥४०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् भय रहित होकर मनुष्यों ने ताड़ के फल को खाया और धेनुकासुर के मार दिए जाने के कारण उस वन में गायों ने घास चरा ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

आदन्नभक्षयन् ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

आदन् अर्थात् खाया ॥४०॥

कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः । स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो व्रजमाव्रजत् ॥४१॥

अन्वयः— पुण्यश्रवण कीर्तनः कमल पत्राक्षः कृष्णः अनुगैः गोपैः स्तूयमानः साग्रजः व्रजम् आव्रजत् ॥४१॥

अनुवाद— जिनकी लीलाओं का श्रवण और कीर्तन अत्यन्त पुण्यमय है वे कमल दल के समान मनोहर नेत्र वाले भगवान् श्रीकृष्ण जिनके पीछे चलने वाले गोप उनकी स्तुति कर रहे थे ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई बलरामजी के साथ व्रज में आये ॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४१॥

तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ।
वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन्समेताः ॥४२॥

अन्वयः— गोरजश्छुरित कुन्तल बद्धवर्हवन्य प्रसून रुचिरेक्षण चारुहासम् वेणुं क्वणन्तं, अनुगैः अनुगीतकीर्तिम् तं दिदृक्षितदृशः समेताः गोप्यः अभ्यगमन् ॥४२॥

अनुवाद— उस समय भगवान् श्रीकृष्ण के काले घुंघराले केशों पर गौओं के खुर से उड़ी धूल पड़ी हुई थी उनके सिर पर मोर मुकट बँधा था, केशों में मनोहर पुष्प गुंथे थे, उनका मुख मण्डल मनोहर चितवन और मधुर मुस्कान से मण्डित था, वे वंशी बजा रहे थे तथा उनके पीछे चलने वाले गोप उनकी कीर्ति का गान कर रहे थे । ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन की आश लगायी गोपियाँ उनकी वंशी की ध्वनि सुनकर एक साथ व्रज से बाहर आ गयीं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

गोरजोभिश्छुरितेषु कुन्तलेषु बद्धं बर्हं वन्यानि प्रसूनानि च यस्य । रुचिरमीक्षणं चारुहासश्च यस्य तं च तं च । दिदृक्षितदृशो दिदृक्षिता दर्शनोत्कण्ठायुक्ता दृशो यासां ताः ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

गौओं की खुर से उड़ी धूल जिनके घुंघराले केशों पर पड़ी थी उनका चितवन मनोहर था और वे मुस्कुरा रहे थे । भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए उत्कठिण्त जिनके नेत्र थे ऐसी गोपियाँ ॥४२॥

पीत्वामुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गैस्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि ।
तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम् ॥४३॥

अन्वयः— मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गैः पीत्वा व्रजयोषितः अह्निविरहजं तापं जहुः सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षं तत्सत्कृतिं समधिगम्य गोष्ठं विवेश ॥४३॥

अनुवाद— गोपियों ने अपने नेत्र रूपी भ्रमरों से श्रीभगवान् के मुखारविन्द के मकरन्दरस का पान कर श्रीभगवान् के दिन भर की विरह ज्वाला को शान्त किया । श्रीभगवान् भी उनकी लज्जा मिश्रित हँसी तथा विनय से युक्त प्रेमपूर्ण कटाक्षपात रूपी सत्कार को स्वीकार करकें व्रज में प्रवेश किए ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

मुकुन्दस्य मुखपद्मगतं सारघं मधु । अक्षि यो विरहस्तस्माज्जातं तापम् । स च तासां सत्कृतिं पूजाम् । कां सत्कृतिं कथं वा कृतां तामाह-सव्रीडेति । सव्रीडेन सलज्जेन हासेन विनयो यथा भवति तथा यदेतत् कि तत् । अपाङ्गमोक्षं कटाक्षदर्शनम् तथा तां सत्कृतिं प्राप्येति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के मुख कमल का मकरन्द यह मुकुन्दमुख सारघम् का अर्थ है । दिन भर के विरह जन्य संताप को । वही गोपियों द्वारा की गयी पूजा थी । कैसे की गयी कौन सी पूजा ? तो उसको बतलाते हैं । लज्जमिश्रित हँसी तथा नम्रता युक्त पक्षपात रूपी पूजा । इस प्रकार के सत्कार को प्राप्त करके ।।४३।।

तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले । यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ।।४४।।

अन्वयः— तयोः पुत्रयोः पुत्रवत्सले यशोदारोहिण्यौ यथाकामं यथा कालं परमाशिषः व्यधत्तम् ।।४४।।

अनुवाद— अपने राम और कृष्ण नामक पुत्रों के प्रति वात्सल्य गुण सम्पन्न यशोदाजी तथा रोहिणी जी दोनों माताएँ समयानुसार अपनी इच्छा के अनुसार वस्तुओं को खिलायी पिलायीं और वस्त्रालय आदि पहनाईं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४४।।

गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः । नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ ।।४५।।

अन्वयः— तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभि; गताध्वानश्रमौ रुचिरां नीवीं वसित्वादिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ ।।४५।।

अनुवाद— माताओं ने तेल उबटन लगाकर स्नान काराया उससे उन दोनों के मार्ग का श्रम समाप्त हो गया । उसके पश्चात् सुन्दर वस्त्र पहनाकर पुष्पों की माला पहनायीं और चन्दन लगाया ।।४५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४५।।

जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ । संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे ।।४६।।

अन्वयः— जनन्युपहृतं स्वादु अन्नम् प्राश्य वरशय्यायां संविश्य उपलालितौ व्रजे सुखं सुषुपतुः ।।४६।।

अनुवाद— माताओं द्वारा परोसा गया स्वादिष्ट भोजन करने के पश्चात् प्यार पूर्वक श्रेष्ठ शय्या पर सुलाये गये बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण व्रज में सुखपूर्वक सो गये ।।४६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४६।।

एवं स भगवान्कृष्णो वृन्दावनचरः क्वचित् । ययौ राममृते राजन्कालिन्दीं सखिभिर्वृतः ।।४७।।

अन्वयः— राजन् एवं वृन्दावनचरः स भगवान् कृष्णः क्वचित् रामं बिना सखिभिः वृतः कालिन्दीं ययौ ।।४७।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावन में अनेक लीलाएँ करते थे । एक दिन वे बलरामजी को अपने साथ लिए बिना अपने मित्रों के साथ यमुना तट पर गये ।।४७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४७।।

अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः ।
दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृषार्ता विषदूषितम् ॥४८॥

अन्वयः— अथनिदाघातपपीडिताः गावश्च गोपाश्च तृषार्ताः विषदूषितम् दुष्टं जलं पपुः ॥४८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् ग्रीष्म ऋतु के घूप से सन्तप्त एवं प्यास से व्याकुल गायों और गोपोंने विष से दूषित यमुनाजी के दूषित जल को पी लिया ॥४८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४८॥

विषाम्भस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः ।
निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलान्ते कुरूद्वह ॥४९॥

अन्वयः— हे कुरुद्वह तत् विषाम्भः उपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः व्यसवः सर्वे सलिलान्ते निपेतुः ॥४९॥

अनुवाद— हे कुरुवंशशिरोमणे परीक्षित् उस विषैले जल को पीकर होनहार वशात् गौएँ और ग्वाल बाल प्राणहीन होकर जल के सन्निकट ही गिर पड़े ॥४९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४९॥

वीक्ष्य तान्वै तथाभूतान्कृष्णो योगेश्वरेश्वरः । ईक्षयाऽमृतवर्षिण्या स्वनाथान्समजीवयत् ॥५०॥

अन्वयः— तथाभूतान् तान् स्वनाथान् वीक्ष्य योगेश्वरेश्वरः कृष्णः अमृतवर्षिण्या ईक्षया समजीवयत् ॥५०॥

अनुवाद— जिनके स्वामी और जीवन सर्वस्व भगवान् श्रीकृष्ण ही थे ऐसे उन सबों को देखकर योगेश्वरों के भी स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टि के द्वारा देखकर उन सबों को जीवित कर दिए ॥५०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५०॥

ते संप्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलान्तिकात् ।
आसन्सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ॥५१॥

अन्वयः— ते सम्प्रतीत स्मृतयः जलन्तिकात् समुत्थाय परस्परम् वीक्षमाणाः सर्वे सुविस्मिता आसन् ॥५१॥

अनुवाद— चेतना प्राप्त वे सभी जल के सन्निकट से उठकर परस्पर में एक दूसरे को आश्चर्य चकित होकर देखने लगे ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

संप्रति सद्य एव इता प्राप्ता स्मृतिर्यैस्ते संप्रतीतस्मृतयः यद्वा सम्यक्प्रतीता प्रतिप्राप्ता स्मृतिर्यैस्ते तथेति ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

सम्प्रतीत स्मृतयः का ही दो प्रकार से अर्थ किया गया है । जिन सबों नें शीघ्र ही स्मृति प्राप्त कर ली थी । अथवा जिन सबों ने अच्छी तरह से स्मृति प्राप्त कर ली थी ॥५१॥

अन्वमंसत तद्राजन् गोविन्दानुग्रहेक्षितम् ।
पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे धेनुकवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अन्वयः— राजन् विषं पित्वा परेतस्य आत्मनः पुनरुत्थानं गोविन्दानुग्रहेक्षितम् अन्वमंसत ॥५२॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् विष पीकर मरे हुए अपने आपको पुन: जीवित होना उन सबों ने यह जान लिया कि यह श्रीगोविन्द की कृपा पूर्ण दृष्टि का फल है ।।५२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वाधे भावार्थ दीपिकायां टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका टीका के पन्द्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१५।।

* * *

सोलहवाँ अध्याय

कालिय पर कृपा

श्रीशुक उवाच

विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः ।तस्या विशुद्धिमन्विच्छन्सर्पं तमुदवासयत् ॥१॥

अन्वयः— कृष्णः विभुः कृष्णाहिना दूषितां कृष्णां विलोक्य तस्याः विशुद्धिम् अन्विच्छन् तं सर्पं उदवासयत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि महाविषैले कलिया नाग के विष से श्रीयमुनाजी दूषित हो गयी हैं। अतएव यमुनाजी की शुद्धि करने के लिए उन्होंने उस सर्प को वहाँ से निकाल दिया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षोडशे कालियस्योक्तो निग्रहो यमुनाह्रदे । तत्पत्नीभिः स्तुतेनाथ कृष्णेनानुग्रहः कृतः । हत्वा रासभदैतेयान् जग्ध्वा तालफलान्यलम् । प्रीतोऽनृत्यत्फणारङ्गे कालियस्य कलानिधिः । उदवासयन्निः सारितवान् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सोलहवें अध्याय में यमुना नदी के ह्रद में कालियानाग का निग्रह वर्णन किया गया है। उसके पश्चात् कालिय की पत्नियों द्वारा स्तुति किए जाने पर श्रीभगवान् ने कालिय पर कृपा किया । गधे का रूप धारण करके रहने वाले दैत्यों को मारकर और गोपों को इच्छानुसार ताड़ फल को खिलाकर कला सागर भगवान श्रीकृष्ण कलिय की फणारूपी रङ्ग पर प्रसन्नता पूर्वक नृत्य किए । उदवासयत् अर्थात् निकला दिए ॥१॥

राजोवाच

कथमन्तर्जलेऽगाधे न्यगृह्णाद्भगवानहिम् । स वै बहुयुगावासं यथासीद्विप्र कथ्यताम् ॥२॥

अन्वयः—हे विप्र भगवान् अगाधे अन्तर्जले अहिम् कथं न्यगृह्णात् स वै बहुयुगावासं यथा आसीत् कथ्यताम्॥२॥

राजा ने कहा

अनुवाद—हे विप्र ! भगवान् श्रीकृष्ण यमुनाजी के अगाध जल के भीतर उस सर्प का कैसे दमन किए और वह सर्प उस जल में अनेक युगों से जिस कारण से रहता था उसे आप बतलायें ॥२॥

भावार्थ दीपिका

बहूनि युगान्यावासो यस्य तमहिम् । स वै अहिरजलचरोऽपि तस्मिन्नन्तर्जले यथा येन प्रकारेणासीत् । अथवा बहूनि युगान्यावासो यथा भवति तथा येन प्रकारेण स वै तत्रासीदिति कथ्यतामिति ।।२।।

भाव प्रकाशिका

बहुत युगों से जिसका वहाँ निवास था उस सर्प का उन्होंनें कैसे दमन किया । वह सर्प जलचर तो था नहीं फिर भी वह उस जल के भीतर जिस कारण से रहता था, अथवा उसका वहाँ अनेक युगों से निवास जिस कारण से होता था उसे आप बतलायें ।।२।।

ब्रह्मन्भगवतस्तस्य भूम्नः स्वच्छन्दवर्तिनः । गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन् ।।३।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! स्वच्छन्दवर्तिनः तस्य भगवतः गोपालोदार चरितमां जुषन् कः तृप्येत् ।।३।।

अनुवाद— हे ब्रह्मस्वरूप भगवान् अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने वाले उन भगवान् श्रीकृष्ण के उदार चरित रूपी अमृत के सेवन से कौन तृप्त हो सकता है ।।३।।

भावार्थ दीपिका

गोपालेन यदुदारं चरितमाचरितं तदेवामृतम् । अतः कथ्यतामिति ।।३।।

भाव प्रकाशिका

गोपालावस्था में भगवान् ने जो उदार लीला की वह अमृत स्वरूप है । अतएव आप उसका वर्णन करें ।।३।।

श्रीशुक उवाच

कालिन्द्यां कालियस्यासीद्ध्रदः कश्चिद्विषाग्निना । श्रप्यमाणपया यस्मिन्पतन्त्युपरिगाः खगाः ।।४।।

अन्वयः— कलिन्द्यां कालियस्य विषाग्निनाश्रप्यमाणपयाः कश्चिद् हूदः आसीत् यस्मिन् उपरिगाः खगाः पतन्ति।।४।।

अनुवाद— यमुनाजी में कालिय के विष रूपी अग्नि से जिसका जल खौलता रहता था ऐसा एक ह्रद (कुण्ड) था । यहाँ तक कि उसके ऊपर से जाने वाले पक्षी भी झुलस कर उसमें गिर जाते थे ।।४।।

भावार्थ दीपिका

श्रप्यमाणं पच्यमानं पयो यस्य सः । अत उपरि गच्छन्तः खगा यस्मिन्पतन्ति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

श्रप्यमाणपया अर्थात् जिसका जल खौलता रहता था । अतएव उसके ऊपर से जाने वाले पक्षी उसमें गिर जाते थे ।।४।।

विप्रुष्मता विषोदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः । म्रियन्ते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरजङ्गमाः ।।५।।

अन्वयः— विप्रुष्मता विषोदोर्मिमारुतेन अभिमर्शिताः यस्यतीरगा स्थिरजङ्गमाः प्राणिनः म्रियन्ते ।।५।।

अनुवाद— उस ह्रद की लहरों के जल कण को लेकर चलने वाली वायु के स्पर्श से उसके तट में रहने वालें सभी स्थिर और जङ्गम जीव मर जाते थे ।।५।।

भावार्थ दीपिका

किंच विप्रुष्मता अम्बुकणयुक्तेन विषोदतरङ्गस्पर्शिमारुतेन स्पृष्टा यस्य तीरगा म्रियन्ते स ह्रद आसीदिति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

विषैले तरङ्ग का स्पर्श करने वाले जलकण से युक्त वायु का जिससे स्पर्श हो जाता था वे उस तट पर रहने वाले तृण विरुध आदि भी जीव मर जाते थे, इस प्रकार का वह ह्रद था ।।५।।

तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः ।
कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुङ्गमास्फोट्य गाढरशनो न्यपतद्विषोदे ।।६।।

अन्वयः— तं चण्डवेग विषवीर्यम् तेन दुष्टां नदीं च अवेक्ष्य खलसंयमनावतारः कृष्णः ततः अतितुङ्गंकदम्बम् अधिरुह्य, गाढरशनः आस्फोट्य विषेदे न्यपतत् ।।६।।

अनुवाद— उस कलिय के प्रचण्ड वेग वाले विष के वेग को तथा इसका विष ही बल है इस बात को जानकर और उस विष के वेग से दूषित यमुना नदी को भी देखकर दुष्टों का दमन करने के ही लिए अवतरित होने वाले भगवान् श्रीकृष्ण एक अत्यन्त ऊँचे कदम्ब के ऊपर चढ़कर अपनी ताल ठोककर उस विषैले पानी में कूद गये ।।६।।

भावार्थ दीपिका

तं कालियम् । चण्डो वेगो यस्य तद्विषमेव वीर्यं यस्य तम् । कदम्बमिति । भाविना श्रीकृष्णचरणस्पर्शभाग्येन स एकस्तत्तीरे न शुष्कः । अमृतमाहरता गरुत्मता क्रान्तत्वादिति च पुराणान्तरम् । आस्फोट्य बाहुं करतलेनाहत्य । गाढा दृढं बद्धा रशना कटिबन्धनवस्त्रं येन सः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

तम् पद से कालिय का परामर्श किया गया है उस कालिय के विष के प्रचण्ड वेग को तथा उसके विष रूपी पराक्रम को भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का स्पर्श मुझसे होगा अतएव उस नदी के तीर पर विद्यमान एक कदम्ब का वृक्ष था । दूसरे पुराण के अनुसार अमृत का हरण करके जब गरुडजी ले जा रहे थे, तो उस वृक्ष पर उस अमृत कलश को रखे थे । उस अमृत का स्पर्श होने से वह कदम्ब वृक्ष नहीं सूखा था । भगवान् अपनी भुजाओं पर ताल ठोककर तथा कसकर कमर पर फेटा करके ।।६।।

सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेगसंक्षोभितोरगविषोच्छ्वसिताम्बुराशिः ।
पर्यक् प्लुतो विषकषायविभीषणोर्मिर्धावन्धनुःशतमनन्तबलस्य किं तत् ।।७।।

अन्वयः— पुरुष सार निपात वेग संक्षोभितोरग विषोच्छ्वासितम्बुराशिः सर्पह्रदः विषकषाय विभीषयोर्मितत धनुः शतम् धावन् पर्यक् प्लुतः अनन्तबलस्य तत् किम् ।।७।।

अनुवाद— यमुनाजी का जल सर्प के विष के कारण पहले से ही खौल रहा था उसकी भयङ्कर लहरें उठ रही थी भगवान् पुरुषोत्तम के कूदने से उसका जल और उच्छलने लगा । उस ह्रद का जल उछल कर चार सौ हाथ दूर तक चारो ओर फैल गया अनन्त बलशाली श्रीभगवान् के लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तदा सर्पस्य ह्रदः । पुरुषश्रेष्ठस्य पतनभारेण संक्षोभितानामुरगाणां विषैरुन्नतोऽम्बुराशिर्यस्यसः । विषेण कषायीकृता भयंकरा ऊर्मयो यस्य सः । पर्यक् परितो धावन् धनुःशतं प्लुतः प्रसृतः । नैतच्चित्रमित्याह-अनन्तबलस्येति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

उस समय सर्प का ह्रद । श्रीभगवान् के कूदने के भार से संक्षुब्ध सर्पो के विष से वह जल समूह ऊपर की ओर उछला । विष के कारण उस जल का रङ्ग लाल पीला हो गया था । उसकी लहरें भयङ्कर थी । वह उछलता

हुआ जलचारो ओर सौ धनुष (चार सौ हाथ) तक दूर फैल गया। भगवान् अनन्त बल संपन्न हैं उनके लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थीं ॥७॥

तस्य ह्रदे विहरतो भुजदण्डघूर्णवार्घोषमङ्ग वरवारणविक्रमस्य ।
आश्रुत्य तत्स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य चक्षुःश्रवाः समसरत्तदमृष्यमाणः ॥८॥

अन्वयः— हे अङ्ग ह्रदे विहरतः वरवारण विक्रमस्य तस्य भुजदण्डघूर्ण वार्घोषम् आश्रुत्य तत् स्वसदनाभिभवम् निरीक्ष्य अमृष्यमाणः चक्षुः श्रवाः समसरत् ॥८॥

अनुवाद— हे परीक्षित् उस ह्रद में विहार करने वाले मदमत्त गजराज के समान बलशाली श्रीभगवान् की भुजाओं से टकराकर जल की ध्वनि को सुनकर तथा अपने उस निवास स्थान के तिरस्कार को देखकर उसे वर्दास्त नहीं कर सकने के कारण वह सर्प भगवान् श्रीकृष्ण के सामने आ गया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

ह्रदे विहरतो भुजदण्डाहतोदकघोषं श्रुत्वा ततः स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य तदसहमानः सर्पः समसरत् समाजगाम ॥८॥

भाव प्रकाशिका

उस ह्रद में विहार करने वाले श्रीभगवान् की भुजाओं से आहत जल की ध्वनि को सुनकर उसके पश्चात् अपने निवास स्थान का तिरस्कार देखकर उसको नहीं सह सकने के कारण वह सर्प सामने आ गया ॥८॥

तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुन्दरास्यम् ।
क्रीडन्तमप्रतिभयं कमलोदराङ्घ्रिं संदश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद ॥९॥

अन्वयः— प्रेक्षणीय सुकुमारघनावदातं श्रीवत्सपीतवसनं स्मित सुन्दरास्यम् अप्रतिभयं क्रीडन्तं कमलोदराङ्घ्रिम् तम् रुषामर्मसु संदश्य भुजया चछाद ॥९॥

अनुवाद— देखने में अत्यन्त सुन्दर सुकुमार तथा मेघ के समान श्याम वर्ण वाले, श्रीवत्स चिह्न के चिह्न से अलंकृत तथा पीताम्बर धारण किए हुए मन्दमुस्कान से मनोहर मुखमण्डल वाले, बिना किसी भय के उस विषैले जल में क्रीडा करने वाले, कमल के भीतरी भाग के समान कोमल चरणों वाले उन भगवान् के मर्मस्थल में क्रोध पूर्वक डसकर उनको अपने शरीर के बन्धन से जकड़ लिया ॥९॥

भावार्थ दीपिका

प्रेक्षणीयश्च सुकुमारश्च घनवदुज्ज्वलश्च तम्। श्रीवत्सपीतवसनं ह्रदे विहरतः श्रीवत्सेन संयुक्तमुज्ज्वलत्पीतं वस्त्रं यस्य तम्। भुजया भोगेन चछादावेष्टयत् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

मनोहर सुकुमार तथा मेघ के समान श्यामवर्ण के श्रीभगवान् को, श्रीवत्स चिह्न से भूषित पीताम्बर धारण किए हुए उस विषैले ह्रद में विहार करने वाले, श्रीवत्स चिह्न से उछलते हुए पीले वस्त्र वाले श्रीभगवान् को कालिय ने अपने शरीर से लपेट लिया ॥९॥

तं नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्टमालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्ताः ।
कृष्णेर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः ॥१०॥

अन्वयः— नागभोगपरिवीतम् अदृष्टचेष्टम् तं आलोक्य तत्प्रियसखाः पशु आमृशार्ता कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामाः दुखानुशोक भयमूढधियः भृशार्ताः पशुपाः निपेतुः ॥१०॥

अनुवाद— उस नाग के पाश में बँधे हुए भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर उनके सभी प्रिय सखा सभी ग्वाल बाल बहुत डर गये, क्योंकि वे लोग अपने शरीर, सुहृद धन सम्पत्ति, स्त्री, पुत्र, भोग तथा सभी कामनाएँ सब कुछ भगवान् श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिये थे। उस समय वे लोग दुःख शोक और भय से मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

स प्रियो येषां ते तत्प्रियास्ते च ते सखायश्चेति तथा ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों को भगवान् श्रीकृष्ण प्रिय थे ऐसे भगवान् के प्रिय सखा जो थे वे ॥१०॥

गावो वृषा वत्सतर्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिता । कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीता रुदत्य इव तस्थिरे ॥११॥

अन्वयः— गावः वृषा, वत्सतर्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिताः कृष्णे न्यस्तेक्षणाः भीताः रुदत्य इव तस्थिरे ॥११॥

अनुवाद— गायें, बैल बछड़े बछिया सबके सब डकारने लगे वे सब अत्यन्त दुःखी हो गये। वे एक टक से भगवान् श्रीकृष्ण को देख रहे थे, और भयभीत तथा रोते हुए के समान होकर खड़े रहे ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

अथ व्रजे महोत्पातास्त्रिविद्या ह्यतिदारुणाः । उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥१२॥

अन्वयः— अथ व्रजे भुवि दिवि, आत्मनि आसन्न भयशंसिनः त्रिविधाः अतिदारुणाः महोत्पाताः उत्पेतुः ॥१२॥

अनुवाद— इधर व्रज में पृथिवी, आकाश और शरीर में अत्यन्त भयङ्कर उत्पात होने लगे जो इसबात को सूचित करते थे कि सन्निकट में कोई अशुभ घटना घटने वाली है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

भुवि भूकम्पादयः। दिवि उल्कापातादयः। आत्मनि वामनेत्रस्फुरणादयः। आसन्नं भयं शंसितुं शीलं येषां ते ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी में भूकम्प होने लगा, आकाश में उल्कापात आदि होने लगे और शरीर में बायीं आँख आदि फड़कने लगे। ये सभी शीघ्र ही किसी होने वाले भय को सूचित कर रहे थे ॥१२॥

तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा नन्दपुरोगमाः । विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ॥१३॥

अन्वयः— नन्दपुरोगमाः गोपाः तान् आलक्ष्य, रामेण बिना गाः चारयितुं कृष्णं ज्ञात्वा भयोद्विग्नाः ॥१३॥

अनुवाद— उन उत्पातों को देखकर नन्दजी प्रभृति सभी गोप यह जानकर कि बलरामजी के बिना ही अकेले भगवान् श्रीकृष्ण गायों को चराने गये हैं, भयभीत हो गये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

तानालक्ष्य गोकुलान्निर्जग्मुरिति तृतीयेनान्वयः। भयोद्विग्ना भयहेतुभ्यो भीताः। भयेन कम्पमाना इति वा ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

उन उत्पातों को देखकर इसका आगे के तीसरे श्लोक के साथ अन्वय है। भयोद्विग्नाः अर्थात् भय के हेतुओं से डर गये। अथवा भय से काँपने लगे ॥१३॥

तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वा प्राप्तमतद्विदः । तत्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ॥१४॥

अन्वयः— तैःदुर्निमित्तैः अतद्विदः निधनं प्राप्तं मत्वा तत्प्राणाः तन्मनस्काः ते दुःख शोकभयातुराः ॥१४॥

अनुवाद— उन अपशकुनों को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव को नहीं जानने वाले उन लोगों ने यह मान लिया कि आज श्रीकृष्ण की मृत्यु हो गयी, चूकि उन लोगों का प्राण और मन भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा रहता था अतएव दुःख शोक और भय से व्याकुल हो गये ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

न तं विदन्तीत्यतद्विदः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण को नहीं जानने वाले ॥१४॥

आबालवृद्धवनिताः सर्वेऽङ्ग पशुवृत्तयः । निर्जग्मुर्गोकुलाद्दीनाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥१५॥

अन्वयः— हे अङ्ग सर्वे पशुवृत्तयः आबालवृद्धवनिताः दीना, कृष्णदर्शनलालसाः गोकुलात् निर्जग्मुः ॥१५॥

अनुवाद— हे राजन् ! परीक्षित् सभी बालक के समान अत्यन्त प्रेममय वृत्ति वाले बालक, वृद्ध तथा वनिताएँ यह सोचकर दीन हो गये, अब उनकी लालसा भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन की थी। वे सब गोकुल से निकल पड़े॥१५॥

भावार्थ दीपिका

पशुवृत्तयोऽतिवत्सलाः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

पशुवृत्तयः अर्थात् अत्यन्त वात्सल्य गुण सम्पन्न ॥१५॥

तांस्तथा कातरान्वीक्ष्य भगवान्माधवो बलः । प्रहस्य किंचिन्नोवाच प्रभावज्ञोऽनुजस्य सः ॥१६॥

अन्वयः— भगवान् माधवो बलः अनुजस्य प्रभावज्ञः तान् तथा कातरान् वीक्ष्य प्रहस्य किञ्चित्न उवाच ॥१६॥

अनुवाद— बलरामजी भी भगवान् ही थे, वे अपने छोटे भाई का प्रभाव जानते थे, वे उन लोगों को इस तरह से देखकर हँस पड़े किन्तु कुछ बोले नहीं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

कातरान् भीतान् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

कातरान् अर्थात् भयभीत ॥१६॥

तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः । भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥१७॥

अन्वयः— दयितं कृष्णं अन्वेषमाणा ते भगवल्लक्षणैः पदै सूचितया पदव्या यमुनातटं जग्मुः ॥१७॥

अनुवाद— अपने प्रियतम कृष्ण का अन्वेषण करते हुए भगवत्व के द्योतक जौ, अंकुश, कमल आदि के चिह्नों से युक्त श्रीभगवान् के चरण चिह्नों को देखते हुए वे लोग उसी मार्ग से यमुना तट पर आये ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

भगवन्तं लक्षयन्ति यानि पदानि तैः पदैः सूचितया पदव्या मार्गेण ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को लक्षित करने वाले चिह्नों से युक्त श्रीभगवन् के चरण चिह्नों से यक्त मार्ग से ॥१७॥

ते तत्र तत्राब्जयवाङ्कुशाशनिध्वजोपपन्नानि पदानि विश्पते ।
मार्गे गवामन्यपदान्तरान्तरे निरीक्षमाणा ययुरङ्ग सत्वराः ॥१८॥

अन्वयः— हे अङ्ग ते तत्र तत्र विश्पते अब्जयवाङ्कुशशनिध्वजोपपन्नानि, पदानि मार्गे गवाम् अन्य पदान्तरान्तरे निरीक्षमाणाः सत्वराः ययुः ॥१८॥

अनुवाद— हे राजन् ! परीक्षित् स्थान स्थान पर भगवान् श्रीकृष्ण के कमल, यव, अङ्कुश, वज्र, ध्वजा, से युक्त पदचिह्नों को रास्ते में गौओ और दूसरों के चरण चिह्नों के बीच बीच में देखते हुए वे लोग शीघ्रता से यमुना तट पर पहुँचे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

पदैर्मार्गज्ञानप्रकारमाह-त इति । विश्पतेः श्रीकृष्णस्यान्येषां पदानामन्तरान्तरे मध्ये मध्ये तत्तदपोहेन । गवां श्रुतीनां मार्गे सत्वरा अप्रमत्ता योगिनस्तत्तदुपाध्यपवादेन यथा परं तत्त्वं मृगयन्ते तद्वदिति भावः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

ते० इत्यादि श्लोक से चरण चिह्नों के द्वारा भगवान् के मार्ग के जानने के प्रकार को कहा गया है । भगवान् श्रीकृष्ण और दूसरे चरण चिह्नों के बीच में विभिन्न अपोह के द्वारा । श्रुति प्रोक्त मार्ग पर चलने वाले सावधान योगिजन जैसे विभिन्न उपाधियों का बाध करके जैसे परंतत्त्व का अन्वेषण करते हैं उसी तरह ॥१८॥

अन्तर्ह्रदे भुजगभोगपरीतमारात्कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयान्ते ।
गोपांश्च मूढधिषणान्परितः पशूंश्च संक्रन्दतः परमकश्मलमापुरार्ताः ॥१९॥

अन्वयः— आरात् अन्तर्ह्रदे जलाशयान्ते भुजगभोग परितं निरीहं कृष्णाम् उपलभ्य मूढधिषणान् गोपांश्च परितः पशून् संक्रन्दतः उपलभ्य आर्ताः परं कश्मलम् आपुः ॥१९॥

अनुवाद— दूर से ही ह्रद के भीतर जलाशय में सर्प शरीर में बँधे हुए कुछ भी करने में असमर्थ विश्वेष्ट भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर तथा कुण्ड के किनारे अचेत पड़े हुए ग्वाल बालों को तथा गौओं आदि के आर्त स्वर से डकारते हुए देखकर वे सब गोप अत्यन्त व्याकुल होकर मूर्छित हो गये ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च सर्पशरीरवेष्टितं कृष्णं दूरान्निरीक्ष्य गोपांश्च पशूंश्च तथा निरीक्ष्य, आर्ता; परमकश्मलं परं मोहं प्रापुः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् सर्प के शरीर में वेष्टित भगवान् श्रीकृष्ण को दूर से ही देखकर तथा उस प्रकार से गोपों और गौओं को देखकर व्याकुल सभी गोपगण मूर्छित हो गये ॥१९॥

गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनन्ते तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरन्त्यः ।
ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम् ॥२०॥

अन्वयः— भगवति अनन्ते अनुरक्तमनसः गोप्यः तत्सौहृदस्मित विलोक गिरः स्मरन्त्यः अहिना ग्रस्ते प्रियतमे भृशदुख तप्ताः प्रियव्यतिहृतं त्रिलोकम् शून्यं ददृशुः ॥२०॥

अनुवाद— गोपियों का मन अनन्त भगवान् में अनुरक्त था, वे उनके श्रीभगवान् के सौहार्द, मधुर मुस्कान, प्रेम भरी चितवन तथा उनकी मीठी वाणी का स्मरण करती हुई, अपने प्रियतम श्याम सुन्दर को सर्प शरीर में जकड़े हुए देखकर अत्यन्त दु:खी हो गयीं । उन सबों को भगवान् श्रीकृष्ण के बिना त्रैलोक्य शून्य दिखाई देने लगा ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

प्रियेण श्रीकृष्णेन व्यतिहृतं विरहितं त्रैलोक्यं शून्यं ददृशुः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

प्रियतम श्रीकृष्ण से रहित त्रिलोक शून्य दिखने लगा ॥२०॥

ताः कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां तुल्यव्यथाः समनुगृह्य शुचः स्त्रवन्त्यः ।
तास्ता व्रजप्रियकथाः कथयन्त्य आसन्कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः ॥२१॥

अन्वयः— कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां समनुगृह्य तुल्यव्यथाः ताः शुचःस्त्रवन्त्यः तास्ताः व्रजप्रियकथाः कथयन्त्यः कृष्णानने अर्पित दृशः मृतक प्रतीकाः आसन् ॥२१॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के लिए कालिय ह्रद में कूदने के लिए तैयार यशोदाजी को गोपियों ने पकड़ लिया। गोपियों को भी यशोदाजी के समान ही कष्ट था, वे अपनी आँखों से आँसू बहा रही थीं। तथा व्रज के प्रिय भगवान् श्री की विभिन्न कथाओं को कहकह कर उनको सान्त्वना दिला रही थी। वे सब भगवान् श्रीकृष्ण के मुख को देख रहीं थीं। किन्तु अधिक गोपियाँ तो मूर्दे के समान पड़ी थीं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

कृष्णप्राणान्निर्विशतो नन्दादीन्वीक्ष्य तं ह्रदम् । प्रत्यषेधत्स भगवान्रामः कृष्णानुभाववित् ॥२२॥

अन्वयः— कृष्ण प्राणान् नन्दादीन् तं ह्रदम् विशतः वीक्ष्य, कृष्णानुभावित् सः भगवान् रामः प्रत्यषेधत् ॥२२॥

अनुवाद— जिनके भगवान् श्रीकृष्ण प्राण के समान प्रिय थे ऐसे नन्दजी आदि गोपों को कालिय ह्रद में प्रवेश करते हुए देखकर भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव को जानने वाले भगवान् बलराम उन लोगों को रोके ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

इत्थं स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः ।
आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्तमानः स्थित्वा मुहूर्तमुदतिष्ठदुरङ्गबन्धात् ॥२३॥

अन्वयः— आत्महेतोः सस्त्रीकुमारम् अनन्यगतिम् स्वगोकुलम् अतिदुःखितम् आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्तमानः इत्थं मुहूर्तम् स्थित्वा उरङ्गवन्धात् उदतिष्ठत् ॥२३॥

अनुवाद— अपने लिए स्त्री बालकों सहित सम्पूर्ण गोकुल को अत्यन्त दुःखी तथा अनन्य गति देखकर भगवान् श्रीकृष्ण मुहूर्त भर उसी तरह पड़े रहे इसके बाद वे सर्प के बन्धन से बाहर निकल आये ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

अनन्यगतिमात्मानमित्थं निरीक्ष्यात एवात्महेतोः स्वगोकुलमतिदुःखितमाज्ञायोरङ्गवन्धादुदतिष्ठदित्यन्वयः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवन् के अतिरिक्त जिसका कोई दूसरा सहारा नहीं था ऐसे अपने गोकुल को अपने लिए अत्यन्त दुःखी जानकर भगवान् श्रीकृष्ण सर्प के शरीर के वन्धन से बाहर निकल गये ॥२३॥

तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोगस्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः स्वफणान् भुजङ्गः ।
तस्थौ श्वसन् श्वसनरन्ध्रविषाम्बरीषस्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः ॥२४॥

अन्वयः— तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोगः त्यक्त्वा भुजङ्गः कुपितः स्वफणान् उन्नमय्य श्वसन रन्ध्रविषाम्बरीषः स्तब्धेक्षणः उल्मुकमुखः हरिमीक्षमाणः श्वसन् तस्थौ ॥२४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के बढ़ते हुए शरीर के कारण सर्प का शरीर टूटने लगा वह नाग पाश छोड़कर अलग खड़ा हो गया । वह अत्यधिक क्रोध करके अपना फण उठाकर फुफकारने लगा । वह भगवान् श्रीकृष्ण पर चोट करने के लिए उनको एक टक से देख रहा था । उस समय उनके नथुना से विष की फुहारें निकल रही थी। उसकी आँखें इतनी लाल हो गयी थी जैसे भट्ठी पर तपाया गया खपड़ा हो । उसके मुँह, से आग की लपटें निकल रही थीं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

तस्य प्रथ्यमानेन वपुषा व्यथितात्मशरीरो भुजङ्गः कुण्डलीमुन्मुच्य तं त्यक्त्वा कुपितः स्वफणानुन्नमय्य श्वसन्केवलमीक्षमाणस्तस्थौ । कथंभूतः । श्वसनरन्ध्रेषु नासाविवरेषु विषं यस्य स तथा, अम्बरीषो मण्डकपाकभाजनं तद्वत्संतप्तानि स्तब्धानीक्षणानि यस्य स तथा, उल्मुकानि मुखेषु यस्य सच सच सच ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के बढ़ते हुए शरीर से सर्प का शरीर फटने लगा वह अपनी कुण्डलाकृति को छोड़कर क्रोध के मारे अपना फण उठाकर श्वास लेते हुए श्रीभगवान् को देखते हुए स्थित रहा । कैसा था वह सर्प ? उसके नाक की छिद्रों से विष की फुहारें निकल रही थीं, और उसकी आँखे ऐसी लाल हो गयी थी जैसे भट्ठी पर चढ़ाया लाल खपड़ा हो और उसके मुख से उल्मुक के समान आग की लपटें निकल रही थीं इस प्रकार का वह सर्प था वाक्य के अन्त में तीन विशेषणों को ही लेकर सच, सच, सच यह तीन बार कहा गया है ।।२४।।

तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं द्वे सृक्किणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम् ।
क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेन्द्रो बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणः ।।२५।।

अन्वयः— द्विशिखया जिह्वया द्वे सृक्किणी परिलेलिहानं अतिकराल विषाग्निदृष्टिम् तम् अमुं क्रीडन परिससार सोऽपि अवसरं प्रसमीक्षमाणः खगेन्द्रो यथा बभ्राम ।।२५।।

अनुवाद— उस समय कालिय नाग अपनी दुहरी, जीभ से अपनी ओष्ठ के दोनों किनारों को चाट रहा था और अपनी भयङ्कर आँखों से भयङ्कर विष की ज्वाला उबल रहा था भगवान् श्रीकृष्ण भी गरुड़ के समान उसके साथ क्रीड़ा करते हुए अपना पैंतरा बदल रहे थे और वह सर्प भी उन पर चोट करने का अवसर देखते हुए पैंतरा वदल रहा था ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

हरिश्च क्रीडंस्तममुं सर्वं परिससार परितो बभ्राम । अतिकरालविषाग्नियुक्ता दृष्टिर्यस्य तम् । जिह्वया द्विशिखयेति प्रतिमुखम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि भी क्रीडा करते हुए उस सर्प के चारो तरफ घूमने लगे और उस समय उसकी दृष्टि विकराल और विषाग्नि से युक्त थी । वह अपनी दुहरी जीभ से अपने मुख के किनारों को चाट रहा था ।।२५।।

एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांसमानम्य तत्पृथुशिरस्स्वधिरूढ आद्यः ।
तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्रपादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त ।।२६।।

अन्वयः— एवं परिभ्रमहतौजसं उन्नतां समम् उन्नमय आद्यः तत् पृथु शिरस्सु अधिरूढः तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्रपादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुः ननर्त ।।२६।।

अनुवाद— इस तरह पैंतरा बदलते रहने के कारण उसका बल क्षीण हो गया, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण

उसके बड़े बड़े सिर को झुका दिए और उस पर चढ गये। कलिय नाग के लाल-लाल रत्नों की किरणों से श्रीभगवान् का चरण कमल अत्यधिक लाल हो गया। उस पर समस्त कलाओं के आदि गुरु भगवान् नृत्य करने लगे ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

एवं परिभ्रमणेनैव हतमोजो यस्य तम्। उन्नतावंसौ यस्य तम्। तस्य मूर्धसु ये रत्ननिकरास्तेषां स्पर्शेनात्यरुणं पादाम्बुजं यस्य सः। ननु कथं चञ्चलेषु शिरस्सु ननर्त तत्राह-अखिलकलानामादिगुरुः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से पैंतरा बदलने कारण कालिय का ओज समाप्त हो गया था। उसकी फणाओं के पार्श्व भाग उठे थे। कालिय के शिरों में जो रत्न थे उन सबों के स्पर्श से श्रीभगवान् के चरण कमल अत्यधिक लाल दिखते थे। प्रश्न है कि कलिय के शिर तो चञ्चल थे, उन सबों पर श्रीभगवान् कैसे नृत्य किए तो इस पर कहते हैं कि भगवान् तो सारी कलाओं के आदि गुरु हैं अतएव उनके लिए यह असंभव नहीं था ।।२६।।

तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीयगन्धर्वसिद्धसुरचारणदेववध्वः ।
प्रीत्या मृदङ्गपणवानकवाद्यगीतपुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः ।।२७।।

अन्वयः— तदातम् नर्तुम् उद्यतम् अवेक्ष्य तदोय गन्धर्व सिद्ध सुरचारण देवबध्वः प्रीत्या मृदङ्ग पणवानक वाद्यगीत पुष्पोपहारनुतिभिः सहसा उपसेदुः ।।२७।।

अनुवाद— उस समय श्रीभगवान् को नृत्य करने के लिए तैयार देखकर उनके जो भक्त गन्धर्व, सिद्ध, देवता, चारण तथा देवताओं की पत्नियाँ थी वे सब प्रेम पूर्वक मृदङ्ग, ढोल, नगाड़े आदि बाजाओं को बजाते हुए, सुन्दर गीत गाते हुए पुष्पों की वर्षा करते हुए तथा श्रीभगवान् को प्रणाम करते हुए विविध प्रकार के उपहार लेकर श्रीभगवान् के सन्निकट आ गये ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

उपसेदुः प्राप्ताः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

उपसेदुः अर्थात् पास में आ गये ।।२७।।

यद्यच्छिरो न नमतेऽङ्ग शतैकशीर्ष्णस्तत्तन्ममर्द खरदण्डधरोऽङ्घ्रिपातैः ।
क्षीणायुषो भ्रमत उल्बणमास्यतोऽसृङ्नस्तो वमन्परमकश्मलमाप नागः ।।२८।।

अन्वयः— हे अङ्ग शतैकशीर्ष्णः यत् यत् शिरः न नमते तत् तत् खरदण्डधरः अङ्घ्रिपातैः ममर्द, क्षीणायुषोनागः भ्रमतः आस्यतः नस्तोः उल्बणम् असृक् वमन परम कश्मलम् आप ।।२८।।

अनुवाद— हे परीक्षित्! कालिय नाग के सौ सिर थे, वह अपने जिस जिस शिर को नहीं झुकाता था, उसके उस उस शिर को कठोर दण्ड धारण करने वाले श्रीभगवान् अपने चरणों के प्रहारों से मसल देते थे, इस तरह उस नाग की जीवन शक्ति क्षीण हो गयी थी वह चारो तरफ घूमता हुआ अपने मुखों और नाकों से रक्त वमन करने लगा और अन्त में वह बेहोश हो गया ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

शतैकशीर्ष्णः शतमेकानि मुख्यानि शीर्षाणि यस्य तस्य क्षीणायुषोऽपि पुनर्भ्रमतो यद्यच्छिरो न नमते स्तब्धतां न जहाति। नृत्यच्छलेनाङ्घ्रिपातैस्तत्तन्ममर्द तदा चास्यतो मुखेभ्यो नस्तो नासाविवरेभ्यश्चासृग्वमन् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

कालिय के एक सौ मुख्य सिर थे । उसकी जीवन शक्ति क्षीण हो गयी । फिर भी उस पर भ्रमण करते हुए श्रीभगवान् वह जिस सिर को नहीं झुकाता था उसको नृत्य के बहाने अपने चरणों के प्रहार से कुचल देते थे । इसके कारण अपने मुखों से तथा नाकों से रक्त वमन करने लगा ॥२८॥

तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु यद्यत्समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः ।
नृत्यन्पदानुनमयन्दमयाम्बभूव पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान्पुराणः ॥२९॥

अन्वयः— अक्षिभिः गरलम् उद्वमतः तस्य उच्चैः रुषा निःश्वसतः शिरस्सु यतयत् शिरः समुन्नमति पुराण पुरुषः इह पुष्पैः प्रपूजितः इव नृत्यन् पदानुनमयन दमयाम्बभूव ॥२९॥

अनुवाद— आँखों से विष को उगलता हुआ वह क्रोध पूर्वक जोर से फुफकारता हुआ अपने जिस सिर को ऊपर उठाता था उस शिर को भगवान् श्रीकृष्ण, पुष्पों से पूजित के समान नृत्य करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण पुष्पों से पूजित अपने रक्त रंजित पैरों से मार कर मर्दित कर देते थे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

पुनरपि रुषा उच्चैर्निःश्वसतो यद्यत्समुन्नमति तत्तत्पदाघाते नानुनमयन्निहास्मिन्नवसरे हृष्टैर्गन्धर्वादिभिः शेषासन; पुराणः पुरुष इव यशोदानन्दनः पुष्पैः प्रपूजितः । यद्वा तदा गन्धर्वादिभिः पुष्पैः प्रपूजितो गोपैः पुराण पुमानिव इष्ट इति । यद्वा पुष्पैः प्रपूजित इव प्रसन्नः सन्दमयाम्बभूव । हितं कृतवानित्यर्थः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

फिर भी क्रोध से जोर से फुफकारता हुआ वह अपने जिस सिर को ऊपर उठाता था उस शिर को अपने पैरों के प्रहार से झुकाते हुए इस समय गधर्वों आदि द्वारा शेषशय्या पर विद्यमान पुराण पुरुष भगवान् यशोदानन्दन पुष्पों से पूजित हुए । अथवा उस समय गन्धर्वों से पुष्पों आदि से पूजित श्रीभगवान् को गोप गण पुराण पुरुष परमात्मा के समान देखे । अथवा पुष्पों से पूजित के समान प्रसन्न होकर श्रीभगवान् उसका दमन करके गुण से सम्पन्न बनाकर उसका कल्याण किए ॥२९॥

तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणातपत्रो रक्तं मुखैरुरु वमन्नृप भग्नगात्रः ।
स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥३०॥

अन्वयः— हे नृप ! तच्चित्र ताण्डव विरुग्ण फणातपत्रः मुखैः उरु रक्तं वमन् भग्नगात्रः चराचरगुरु पुराण पुरुषं नारायणं स्मृत्वा मनसा अरणं जगाम ॥३०॥

अनुवाद— राजन् ! उस विचित्र ताण्डव से कालिय का फण रूपी छत्र छिन्न भिन्न हो गया उसका सारा शरीर चूर-चूर हो गया और वह मुँह से खून वमन करने लगा । अचानक उसे जगत् के आदि गुरु भगवान् नारायण की याद आयी । वह मन ही मन परम पुरुष परमात्मा की मन से शरणागति किया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

अरणं शरणम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अरणम् अर्थात् शरण ॥३०॥

कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्णफणातपत्रम् ।
दृष्ट्वाऽहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः ॥३१॥

अन्वयः— गर्भ जगतः कृष्णस्य अतिभरावसन्नं पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्णफणतपत्रम् अहिम् दृष्ट्वा अस्य श्लथ द्वसनभूषणकेश बन्धाः आर्ताः पत्न्यः अद्यम् उपसेदुः ॥३१॥

अनुवाद— जिनके उदर में सम्पूर्ण जगत् निवास करता है ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण के भार से जिसका सारा शरीर शिथिल पड़ गया था, तथा पैरों के प्रहार से जिसका फण रूपी छत्र छिन्न भिन्न हो गया था इस तरह के कलिय नाग को देखकर अत्यन्त आर्त उसकी पत्नियों ने श्रीभगवान् की शरणागति की । भयभीत उन नाग पत्नियों के वस्त्राभूषण अस्तव्यस्त हो गये थे । उनके केश विखरे हुए थे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

गर्भे जगन्ति यस्य तस्यातिभारेणावसन्नमाक्रान्तम् । पार्ष्णिः पादपृष्ठम् । आद्यं श्रीकृष्णम् । श्लथन्तो विस्रंसमाना वसनादयो यासां ताः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के उदर में सारा जगत् निवास करता है उनके अत्यधिक भार से आक्रान्त । एड़ी यह पार्ष्णि पद का अर्थ है । आद्यम् अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण की, जिन नागपत्नियों के वस्त्रादि अस्त व्यस्त थे । उन नाग पत्नियों ने भगवान् श्रीकृष्ण की शरणागति की ॥३१॥

तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृतार्भाः कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः ।
साध्व्यः कृताञ्जलिपुटाः शमलस्य भर्तुर्मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥३२॥

अन्वयः— अथ सुविग्न मनसः पुरस्कृतार्भाः कायं भुविनिधाय तं भूतपतिं प्रणेमुः । कृताञ्जलिपुटा; साध्व्यः शमलस्य भर्तुः मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥३२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् अत्यन्त घबरायी हुई वे नाग पत्नियाँ अपने बच्चों को आगे करके पृथिवी पर लोट गयीं और हाथ जोड़कर सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्री भगवान् को प्रणाम की और वे साध्वी नाग पत्नियाँ अपने पापी पति को छुड़ाने की इच्छा से शरणागतवत्सल श्रीभगवान् के शरणापन्न हो गयीं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

ताः शरणं प्रपन्नाः सत्यस्तं प्रणेमुः । सुविग्नमनसोऽतिविह्वलचित्ताः । भुवीति तस्मिन्स्थाने जलाधस्ताद्वा तीरे वा । शमलस्य पापात्मनोऽपि भर्तुर्मोक्षेप्सवः । भर्तुर्यच्छमलं तस्य वा । भूतपतिं प्राणिमात्रस्य पतिम् शरणदमाश्रयप्रदम् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

वे शरणागत होकर श्रीभगवान् को प्रणाम कीं । सुविग्नचित्ताः अर्थात् अत्यन्त घबरायी हुई । भुवि अर्थात् उस स्थान पर या जल के नीचे अथवा यमुना के तट पर । शमलस्य भर्तुः अर्थात् अपराधी अपने पति को **मोक्षेप्सवः** छुड़ाने की इच्छा से । अथवा अपने पति के अपराध को क्षमा करने की इच्छा से । **भूतपतिम्** अर्थात् सभी जीवों के स्वामी **शरणदम्** अर्थात् आश्रय प्रदान करने वाले ॥३२॥

नागपत्न्य ऊचुः

न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिंस्तवावतारः खलनिग्रहाय ।
रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेर्धत्से दमं फलमेवानुशंसन् ॥३३॥

अन्वयः— कृत किल्विषे अस्मिन् दण्डः न्याय्यः रिपोः सुतानाम् अपितुल्यदृष्टेः तव अवतारः खलनिग्रहाय । फलमेवानुशंसन् दमं धत्से ॥३३॥

नाग पत्नियों ने कहा

अनुवाद— अपराध करने वाले इस नाग को आपने जो दण्ड दिया है वह उचित है। आपकी दृष्टि से शत्रु और पुत्र में कोई भी भेद नहीं है। आपका अवतार दुष्टों को दण्ड देने के ही लिए हुआ है। आप जो किसी को दण्ड देते हैं वह उसअपराध का प्रायश्चित होता है और वह परम कल्याणकारी होता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

प्रथमं तावत्कुपितं भगवन्तं दण्डानुमोदनेनोपशमयन्त्यः स्तुवन्ति-न्याय्यो हीति। तत्र 'दण्डानुमोदनं षड्भिर्दशभिश्च हरेर्नतिः। प्रार्थनं पञ्चभिः श्लोकैस्ततः पन्नगयोषिताम्। नच निग्रहानुग्रहलक्षणं वैषम्यं तवास्तीत्याहुः-धत्से दममिति। अनुशंसन्नालोचयन् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम क्रुद्ध श्रीभगवान् को उनके द्वारा प्रदत्त दण्ड का अनुमोदन करके उनका क्रोध शान्त करती हैं। फिर स्तुति करती हुई **न्यायो हि० इत्यादि** श्लोक कहती हैं। नागपत्नियों ने श्रीभगवान् के द्वारा प्रदत्त दण्ड का समर्थन छह श्लोक से किया है। दश श्लोकों से श्री भगवान् को प्रणाम करती हैं तथा पाञ्च श्लोकों से किया है। आप में निग्रह और अनुग्रह रूप विषमता नहीं है। इस बात को नाग पत्नियों ने **धत्से दमम्** पद से कहा है। **अनुशंसन्** अर्थात् विचार करते हुए ॥३३॥

अनुग्रहोऽयं भवतः कृतो हि नो दण्डोऽसतां ते खलु कल्मषापहः।
यद्दन्दशूकत्वममुष्य देहिनः क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव संमतः ॥३४॥

अन्वयः— अयं नो भवतः अनुग्रहः कृतः ते असतां दण्डः खलु कल्मषापहः, अस्य देहिनः यद् दन्दशूकत्वम् तेक्रोधोऽपि अनुग्रहस्थ संमतः ॥३४॥

अनुवाद— आपने यह हमलोगों पर अनुग्रह किया है। आप जिसको दण्ड देते हैं उसका पाप विनष्ट हो जाता है। इस सर्प को जो सर्प योनि मिली है यही इसके पापी होने में प्रमाण है। आपका क्रोध भी आपकी कृपा के ही समान माना जाता है।

भावार्थ दीपिका

'निग्रहोऽप्यनुग्रहाय' इत्युक्तम्, इदानीमनुग्रह एवायं न निग्रह इत्याहुः- अनुग्रह इति। नोऽस्माकम्। यस्मादमुष्य सर्पत्वं दृश्यते, अतस्तन्मूलपापनिवर्तको दण्डोऽनुग्रह एव क्रोधत्वेन प्रतीयमानोऽपीत्यर्थः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

आप निग्रह भी कृपा करने के ही लिए करते हैं। इस समय आपने जो दण्ड दिया है, वह आपकी कृपा ही है। इसी बात को नाग पत्नियों ने **अनुग्रहोऽयम् भवतः** इत्यादि श्लोक से कहा है। चूकि यह सर्प है। इसके सर्प योनि का कारण पाप ही है। उसको दूर करने के लिए आपने जो दण्ड दिया हैं वह अनुग्रह ही है यद्यपि यह क्रोध रूप से प्रतीत होता है ॥३४॥

तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं निरस्तमानेन च मानदेन।
धर्मोऽथवा सर्वजनानुकम्पया यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः ॥३५॥

अन्वयः— निरस्तमानेन, मानदेन च अनेन पूर्वं किं तपः सुतप्तं वा अथ सर्वजनानुकम्पया धर्मः कृतः यतः सर्वजीवः भवान् तुष्यति ॥३५॥

अनुवाद— निश्चित रूप से उसने अभिमान का परित्याग करके दूसरों को सम्मान देते हुए अपने पूर्व जन्म

में कोई बहुत बड़ी तपस्या की होगी अथवा सभी जीवों पर दया करते हुए कोई बहुत बड़ा पुण्य किया होगा जिसके कारण आप इस पर प्रसन्न हुए हैं, क्योंकि सर्वजीव स्वरूप आपकी प्रसन्नता के ही ये उपाय हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

महांश्चायमनुग्रह इति तस्य पूर्वपुण्यमभिनन्दन्ति-तप इति । स्वयं मानरहितेनान्येभ्यो मानदेन च । सर्वं जीवयतीति सर्वजीव: ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

यह आपका बहुत बड़ा अनुग्रह है यह कहकर वह कालिय के पूर्व पुण्य का अभिनंदन **तपः सुतप्तम्०** **इत्यादि** श्लोक से करती हैं । स्वयं मान रहित होकर और दूसरों को मान देकर । जो सबों को जिलाये उसको सर्वजीव कहते है ।।३५।।

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ।
यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत्तपो विहाय कामान्सुचिरं धृतव्रता ।।३६।।

अन्वय:— हे देव अस्य तवाङ्घ्रिरेणु स्पर्शाधिकार: कस्यानुभाव: इति न विद्महे । यद्वाञ्छया श्री ललना कामान विहाय सुचिरं धृतव्रता: तप: अचरत् ।।३६।।

अनुवाद— हे देव इसको आपके चरणों की धूलि स्पर्श का अधिकार किस तपस्या का फल है, इसको हमलोग नहीं जानती हैं । आपकी जिस चरण धूलि को प्राप्त करने के लिए श्री देवी को सारी कामनाओं का परित्याग करके दीर्घकाल तक व्रत धारण करके तपस्या करनी पड़ी थी ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

न तप आदिनिमित्त एष भाग्योदय:, किंत्वचिन्त्यं तव कृपावैभवमित्याहु: श्लोकत्रयेण-कस्यानुभाव इति । तपआदिना ब्रह्मादयोऽपि यस्या: श्रिय: प्रसादमिच्छन्ति सा श्रीर्ललना उत्तमा स्त्री यस्य त्वदङ्घ्रिस्पर्शाधिकारस्य वाञ्छया तप आचरत्। अस्य सर्पस्य । स किंकृत इति को वेत्तीत्यर्थ: ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

यह भाग्योदय किसी तपस्या का फल नहीं है अपितु यह आपकी अचिन्त्य कृपा का ही फल है, इस तरह से **कस्यानुभावः इत्यादि** तीन श्लोकों से कहती हैं । तपस्या आदि के द्वारा ब्रह्माजी आदि भी जिस श्रीदेवी की कृपाप्राप्त करना चाहते हैं, वे श्रीदेवी भी आपके चरण धूलि का स्पर्श करने का अधिकार प्राप्त करने की इच्छा से तपस्या कीं, वही अधिकार इस सर्प को मिला है क्या ? इस बात को कौन जानता है ?।।३६।।

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठयं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः ।।३७।।

अन्वय:— यत्पादरज: प्रपन्ना:, नाकपृष्ठंन, सार्वभौमं च न, पारमेष्ठयंन, रसाधिपत्यम् न, योगसिद्धी: न अपुनर्भवं वान वाञ्छन्ति ।।३७।।

अनुवाद— जो लोग आपके चरणों की धूल का शरण ले चुके हैं वे लोग, स्वर्ग का राज्य, या पृथिवी पतित्व, भी नहीं प्राप्त करना चाहते हैं । वे लोग न तो रसातल का राज्य चाहते हैं और न तो ब्रह्माजी का पद ही प्राप्त करना चाहते हैं । उन महापुरुषों को योगों की अणिमादि सिद्धियों की भी प्राप्ति की इच्छा नहीं होती है । यहाँ तक कि वे जन्म और मृत्य के चक्र से छुड़ाने वाले मोक्ष को भी नहीं प्राप्त करना चाहते हैं ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

यत्तव पादरजः प्रपन्नाः प्राप्ताः पारमेष्ठ्याद्यपि तुच्छं मन्यन्ते ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

जो लोग आपके चरणों की धूलि को शरण रूप से अपना लिए हैं वे लोग ब्रह्माजी के भी पद को नहीं प्राप्त करना चाहते हैं ।।३७।।

तदेष नाथाप दुरापमन्यैस्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः ।
संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो यदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः ।।३८।।

अन्वयः— हे नाथ एषः तमोजनिः क्रोधवशः अहीशः अन्यैः दुरापम् अपि आप, यदिच्छतः संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणः विभवः समक्षः स्यात् ।।३८।।

अनुवाद— हे नाथ यह यद्यपि तमोगुणी योनि में उत्पन्न हैं, यह अत्यन्त क्रोधी और सर्पों का स्वामी है, फिर भी जिसको प्राप्त करना दूसरों के लिए अत्यन्त कठिन है उस आपके चरणों की धूलि को इसने प्राप्त कर लिया है । जिसको प्राप्त करने की इच्छा मात्र होनें से संसार के समस्त वैभवों की बात क्या है मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

अहो तदेषः अयत्नत एव प्राप । अन्यैः श्र्यादिभिरपि । कथंभूतं पादरजः । यदिच्छतः सेव्यं मे भवत्विति प्रार्थयमानस्यैव समक्षः प्रत्यक्ष एव विभवोऽपेक्षिता संपद्भवति ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

यह अत्यन्त आश्चर्य का विषय है कि इस सर्प ने बिना किसी प्रयास के ही आपके चरणों की धूलि को प्राप्त कर लिया है । वह तो लक्ष्मीजी इत्यादि के भी लिए दुष्प्राप्य है । कैसी चरण धूल ? तो इस पर बतलाती है- जो व्यक्ति यह चाहता है कि मुझे परमात्मा के चरणों की धूल मिल जाय उसकी इस इच्छा मात्र से उसके समक्ष अपेक्षि संसार के सारे ऐश्वर्य प्राप्त हो जाते हैं ।।३८।।

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने । भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ।।३९।।

अन्वयः— तुभ्यं भगवते महात्मने पुरुषाय भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने नमः ।।३९।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप अचिन्त्य ऐश्वर्य गुण सम्पन्न हैं, सबों के शरीर में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहते हैं, आप देशकाल एवं वस्तु की सीमा से रहित महान् आत्मा अनन्त स्वरूप हैं । आप आकाश आदि समस्त भूतों के एक मात्र आश्रय हैं, आप सृष्टि से पहले भी सदादि रूप से विद्यमान रहते है । आप सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं और स्वयं कारण रहित हैं । ऐसे आपको हमलोग नमस्कार करती हैं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

नमस्तुभ्यं भगवतेऽचिन्त्यैश्वर्यादिगुणाय । तदुपपादनाय दशभिः । श्लोकैर्विशेषणानि । पुरुषाय पूर्ष्वन्तर्यामिरूपेण वर्तमानाय । महात्मने एवमपि नातिपरिच्छिन्नाय । कुतः । भूतावासायाकाशाद्याश्रयाय । एतदपि कुतः । भूताय पूर्वमपि सते। कुतः । पराय कारणाय । किंच परमात्मने कारणातीताय ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

अचिन्त्य ऐश्वर्य गुण सम्पन्न आपको नमस्कार है । इस अर्थ का प्रतिपादन करने के लिए नाग पत्नियों ने दश श्लोकों के द्वारा श्रीभगवान् की विशेषताओं को उपन्यस्त करती है । पुरुषाय अर्थात् सभी शरीरों में अन्तर्यामी रूप

से विराजमान रहने वाले आपको नमस्कार है । **महात्मने** अर्थात् ऐसा होने पर भी आप किसी सीमा को अन्तर्गत नहीं है; क्योंकि **भूतावासाय** आकाशादि समस्त भूतों के एकमात्र आश्रय है । यह भी कैसे ? तो इस पर कहती है- भूताय सभी भूतों से उनके कारण रूप से आप विद्यमान रहते हैं । क्योंकि **पराय** आप सम्पूर्ण जगत् के अभिन्न निमित्तोपादान कारण हैं । **किञ्च परमात्मने** आप कारणातीत हैं । आपका कोई कारण नहीं है । ऐसे आप को नमस्कार है ॥३९॥

ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये । अगुणायाविकाराय नमस्ते प्राकृताय च ॥४०॥

अन्वयः— ज्ञानविज्ञाननिधये, ब्रह्मणे, अनन्तशक्तये, अगुणाय, अविकाराय, प्राकृताय च ते नमः ॥४०॥

अनुवाद— आप ज्ञान और विज्ञान से परिपूर्ण हैं, क्योंकि आप ब्रह्म हैं तथा अनन्त शक्ति सम्पन्न है, आप विकारों से रहित हैं आप प्रकृति के प्रवर्तक हैं, अथवा अप्राकृत अनन्त शक्तियों से युक्त हैं । ऐसे आपको हमलोग नमस्कार करती हैं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

कारणत्वं कारणातीतत्वं च समर्थयितुमाहुः-ज्ञानविज्ञाननिधये । ज्ञानं ज्ञप्तिः, विज्ञानं चिच्छक्तिः, उभयोर्निधये ताभ्यां पूर्णाय कथं तथात्वमत उक्तं ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये कथंभूताय ब्रह्मणे अगुणायाविकाराय । कथंभूताय । अनन्तशक्तये । प्राकृताय प्रकृतिप्रवर्तकाय, अप्राकृतायेति वा । अप्राकृतानन्तशक्ति युक्ताय । अयमर्थः-अगुणत्वाद्वानिर्विकारं ब्रह्मज्ञप्तिमात्रत्वात्कारणातीतं प्रकृतिप्रवर्तकोऽनन्तशक्तिर्विज्ञाननिधित्वादीश्वरः कारणं तदुभयात्मने नम इति ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

नाग पत्नियों ने श्रीभगवान् के जगत् कारणत्व तथा करणातीत्व का प्रतिपादन करने के लिए कहा **ज्ञानविज्ञाननिधये** ज्ञान ज्ञप्ति को कहते है तथा विज्ञान चित् शक्ति को कहते हैं इन दोनों से आप परिपूर्ण हैं । ऐसा कैसे सम्भव हैं तो इस पर वे कहती हैं- क्योंकि आप ब्रह्म हैं और अनन्त शक्ति सम्पन्न हैं । आप कैसे ब्रह्म हैं ? तो इस पर कहती हैं प्राकृतिक गुणों से रहित तथा सभी प्रकार के होने वाले विकारों से रहित हैं । और कैसे हैं- अनन्त शक्ति रूप हैं । आप प्रकृति के प्रवर्तक हैं अथवा अप्राकृत अनन्त शक्ति सम्पन्न हैं । **अयमर्थः इत्यादि** प्राकृत गुणों से रहित होने के कारण आप निर्विकार हैं । ज्ञान मात्र ब्रह्म होने के कारण आप कारणातीत हैं । प्रकृति के प्रवर्तक तथा अनन्त शक्ति सम्पन्न तथा ज्ञाननिधि होने के कारण ईश्वर एवं जगत् के कारण स्वरूप आप को नमस्कार है ॥४०॥

कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे । विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥४१॥

अन्वयः— कालाय, कालनाभाय कालावयव साक्षिणे, विश्वाय, तदुपद्रष्ट्रे, तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥४१॥

अनुवाद— आप काल स्वरूप हैं, आप काल शक्ति के आश्रय हैं, सृष्टि आदि कालों के आप साक्षात् द्रष्टा हैं । आप विश्व स्वरूप हैं, आप विश्व के उपद्रष्टा हैं, केवल द्रष्टा मात्र ही नहीं अपितु आप विश्व के कर्ता भी हैं, तथा सम्पूर्ण कारक स्वरूप हैं ऐसे आपको नमस्कार है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

अनन्तशक्तित्वात्कालशक्त्या विश्वस्रष्टृत्वादिरूपेण नमस्यन्ति । कालाय कालस्वरूपाय । कालनाभाय कालशक्त्याश्रयाय। कालावयवानां सृष्ट्यादिसमयानां साक्षिणे । ततश्च विश्वाय विश्वरूपाय । तर्हि किं जडोऽहम् । नहि, तदुपद्रष्टे । न च द्रष्टमात्राय, किंतु तत्कर्त्रे । नच कर्तृमात्राय, विश्वहेतवे सर्वकारकरूपाय ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

अनन्त शक्ति सम्पन्न होने के कारण, काल शक्ति तथा जगत् के स्रष्टा रूप से श्रीभगवान् को नाग पत्नियाँ

इस श्लोक से नमस्कार करती हैं। **कालाय** अर्थात् काल स्वरूप, **काल नाभाय** अर्थात् काल शक्ति के भी आधार, काल के अवयव भूत जो सृष्टि आदि काल हैं, उन सबों के सवों के साक्षात् द्रष्टा आप हैं। और **विश्वाय** विश्व स्वरूप हैं, यदि आप कहें कि क्या मैं जगत् के समान जड़ हूँ तो इस पर नागपत्नियाँ कहती हैं, कि नहीं आप जगत् के उपद्रष्टा हैं। तथा जगत् के कर्ता तथा विश्व के सम्पूर्ण कारक स्वरूप हैं। ऐसे आपको हम सब नमस्कार करती हैं ॥४१॥

भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने । त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥४२॥

अन्वयः— भूतमात्रेन्द्रियप्रणमनोवुद्धयात्मने त्रिगुणेन अभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये नमः ॥४२॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप पञ्चभूत, उनकी तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि और इन सबों की खान चित्त भी आप ही हैं। सत्त्वादि तीनों गुण और उन सबों में होने वाले अभिमान के द्वारा आप अपने स्वरूप को छिपा रखे हैं। ऐसे आपको हमलोगों का नमस्कार है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाहुः-भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने, आशयश्चित्तम्, भूतादिरूपाय। अतः सर्वकारकरूपायेति। अहंकारात्मतया नमस्यन्ति-त्रिगुणेनेति। एवं स्रष्टे कार्ये यस्त्रिगुणोऽभिमानस्तेन गूढा स्वांशभूतानामात्मनां जीवानामनुभूतिर्येन तस्मै ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में नागपत्नियाँ श्रीभगवान् को विश्व के सर्वकारक स्वरूप बतलाती हैं। पञ्चभूत, उनकी तन्मात्राएँ इन्द्रियाँ प्राण मन बुद्धि तथा आशय शब्द वाच्य चित्त स्वरूप आप को नमस्कार है। ऐसे आप सर्वकारक स्वरूप हैं। त्रिगुणेन इत्यादि के द्वारा वे श्रीभगवान् को अहंकारात्मा रूप से नमस्कार करती हैं। इस तरह आपके द्वारा सृष्ट जो यह कार्य जगत् इसमें विद्यमान जो सत्त्वादि त्रिगुण उसके द्वारा आप अपने अंशभूत जीवात्माओं की अनुभूति को छिपा रखे हैं, ऐसे आपको हमलोगों का नमस्कार है ॥४२॥

नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते । नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥४३॥

अन्वयः— अनन्ताप, सूक्ष्माय, कूटस्थाय, विपश्चिते, नानावादानुरोधाय, वाच्यवाचकशक्तये नमः ॥४३॥

अनुवाद— आप देश, काल और वस्तु की सीमा से बाहर होने के कारण अनन्त स्वरूप हैं, अदृश्य होने के कारण सूक्ष्माति सूक्ष्म हैं, आप उपाधि कृत विकारों से रहित होने के कारण कूटस्थ (सदा एकरस रहने वाले) हैं, अतएव आप सर्वज्ञ हैं। आप अस्तित्व, नास्तित्व इत्यादि को लेकर होने वाले अनेक प्रकार के वादों का अनुवर्तन करते हैं। किञ्च आप अभिधान एवं अभिधेय रूप शक्ति के भेद से नाना रूप से प्रतीत होते हैं। ऐसे आप को हमलोगों का नमस्कार है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

त्वं त्वहंकारानावृत इति स्तुवन्ति। नमोऽनन्ताय, अहंकारापरिच्छेदात्। अतः सूक्ष्माय, अदृश्यत्वात्। अत एव कूटस्थाय, उपाधिकृतविकाराभावात्। अत एव विपश्चिते सर्वज्ञाय। एवं वस्तुतः स्तुत्वाऽचिन्त्यमायात्वेन स्तुवन्ति-नानावादानुरोधाय। अस्ति नास्ति सर्वज्ञः किंचिज्ज्ञो बद्धो मुक्त एकोऽनेक इत्यादिनानावादाननुरुणद्धि माययाऽनुवर्तते यस्तस्मै। किंच वाच्यवाचकशक्तये। अभिधानाभिधेयशक्तिभेदादपि नानात्वेन प्रतीयमानायेत्यर्थः ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में नाग पत्नियाँ श्रीभगवान् की स्तुति यह कहकर करती हैं कि आप अहङ्कार से आवृत नहीं हैं। वे कहती हैं, कि अहङ्कार से परिच्छिन्न नहीं होने के कारण आप अनन्त स्वरूप हैं। अतएव अदृश्य होने

से आप अत्यन्त सूक्ष्म है । आप में उपाधि जन्य कोई भी विकार नहीं हैं अतएव आप कूटस्थ (सदा एक रस रहने वाले) हैं इन्हीं सब कारणों से आप सर्वज्ञ हैं । इस तरह से वस्तुतः स्तुति करके वे सव श्रीभगवान् को अचिन्त्य माया वाले रूप से स्तुति करती हैं । **नानावादानुरोधाय** अस्तित्व, नास्तित्व, सर्वज्ञत्व, अल्पज्ञत्व, वद्ध, मुक्त, एक तथा अनेक होने के वादों का आप अपनी माया के द्वारा अनुवर्तन करते हैं । किञ्च अभिधान तथा अभिधेयशक्ति भेद के कारण भी अनेक रूप से प्रतीत होते हैं, ऐसे आपको नमस्कार है ॥४३॥

नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये । प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥४४॥

अन्वयः— प्रमाणमूलाय, कवये शास्त्रयोनये नमः । प्रवृत्ताय, निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥४४॥

अनुवाद— प्रत्यक्षादि समस्त प्रमाणों को प्रमाणित करने वाले उनके मूल आप हैं, आप कवि अर्थात् इन्द्रियादि निरपेक्ष ज्ञान स्वरूप हैं । चूकि वेद आपके निःश्वास हैं अतएव आप शास्त्रयोनि हैं । अर्थात् आपका ज्ञान स्वत:सिद्ध है । आप ही प्रवृत्तिमार्ग तथा निवृत्तिमार्ग स्वरूप हैं । इन दोनों के मूलभूत वेदस्वरूप आप हैं । ऐसे आपको हमलोगों का बारम्बार नमस्कार है ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

अनावृतत्वमेव हेत्वन्तरेणापिसूचयन्त्यः स्तुवन्ति-नमः प्रमाणमूलाय चक्षुरादीनां चक्षुरादिरूपाय । अत एव कवये स्वयं तन्निरपेक्षज्ञानाय । कुतः । शास्त्रयोनये वेदात्मकनिःश्वासाय । किंच प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

नमः प्रमाणमूलाय इत्यादि श्लोक में नागपत्नियों श्रीभगवान् के अनावृतत्व का प्रतिपादन दूसरे हेतु के द्वारा करती हैं । आप चक्षुरादि इन्द्रियों को भी प्रकाशित करते हैं, इस बात को नागपत्नियों ने प्रमाणमूलाय पद से कहा है । स्वयं आप इन्द्रियादि निरपेक्ष ज्ञान वाले हैं क्योंकि आप शास्त्रयोनिः अर्थात् वेदात्मक निःश्वास वाले हैं । ऐसे आप को हमलोगों का नमस्कार है । किञ्च प्रवृत्तिमार्ग, निवृत्तिमार्ग तथा उन दोनों के मूलभूत वेद स्वरूप हैं । ऐसे आपको बारम्बार नमस्कार है ॥४४॥

नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥४५॥

अन्वयः— कृष्णाय, रामाय वसुदेवसुताय च नमः । प्रद्युम्नाय, अनिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥४५॥

अनुवाद— आप ही शुद्ध सत्त्वमय वसुदेवजी के पुत्र वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भी आप ही हैं । अतएव आप अपने चतुर्व्यूह के रूप में अपने भक्तों तथा यादवों के स्वामी हैं । हे भगवान् श्रीकृष्ण हम सब आपको नमस्कार करती हैं ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

किंच अनावृतैश्वर्यत्वादेव चतुर्मूर्तिरूपेण सर्वोपास्यत्वेन नमन्ति-नमः कृष्णायेति श्लोकेन । रामाय संकर्षणाय । वसुदेवसुताय च । वसुदेवशब्दितं शुद्धं सत्त्वं तत्र प्रकाशमानाय वासुदेवायेत्यर्थः । सात्वतामुपासकानां पतये सालोक्यादिपालकाय। एवं चतुर्मूर्तये कृष्णाय तुभ्यं नम इति ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

नागपत्नियाँ कहती हैं कि आपका ऐश्वर्य निस्सीम है । वे श्रीभगवान् की चतुर्मूर्ति रूप से तथा सर्वोपास्य रूप से नमस्कार करती हैं । राम शब्द से यहाँ पर संकर्षण को कहा गया है । वसुदेव सुताय के वसुदेव शब्द से शुद्धसत्त्व को कहा जाता है । शुद्धसत्त्व में प्रकाशित होने वाले वसुदेव है । आप उपासकों के सालोक्य आदि के पालक है । इस तरह चार शरीरों वाले आप श्री कृष्ण भगवान् को हम सब नमस्कार करती हैं ॥४५॥

नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय च । गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ।।४६।।

अन्वयः— गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छादनाय गुणवृत्युपलक्ष्याय, गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे नमः ।।४६।।

अनुवाद— आप अन्त:करणों को प्रकाशित करने वाले हैं । उन अन्त:करणों के ही द्वारा उपासकों को भिन्न-भिन्न प्रकार का फल प्रदान करने के लिए अपने स्वरूप को आच्छादित करके अनेक प्रकार से आप प्रकाशित होते हैं, चित्त आदि के चेतनाध्यवसाय आदि वृत्तियों से आप उपलक्षित होती हैं । आप चित्तादि के साक्षात् द्रष्टा है। आप किसी भी इन्द्रिय के विषय नहीं बनते हैं, ऐसे आपको नमस्कार है ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

कथं चतुर्मूर्तितेति तदाहुः-नमो गुणप्रदीपायेति । गुणा अन्त;करणानि तानि प्रदीपयति प्रकाशयतीति तथा तस्मै । चित्ताद्यधिष्ठातृत्वेन चतुर्मूतितेत्यर्थः । ननु तथाप्येकस्यैव कथं चतुष्ट्वमत आहुः-गुणात्मच्छादनाय तैरेव गुणैरूपासकानां फलवैचित्र्यायात्मानमाच्छाद्य नानात्वेन प्रकाशमानायेत्यर्थः । ननु तर्हि कथं प्रतीतिरत उक्तम्-गुणवृत्त्युपलक्ष्याय चित्तादीनां चेतनाध्यवसायादिवृत्तिभिरुपलक्ष्याय । उपलक्षणमेवाहुः-गुणद्रष्ट्रे तत्साक्षिणे । कथंचिदुपलक्ष्य एव न ज्ञेय इत्याहुः-स्वसंविदे,अगोचरायेत्यर्थः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

नाग पत्नियाँ कहती हैं कि यदि आप कहें कि मैं चार शरीर वाला कैसे हूँ इस पर उन सबों ने कहा आप गुण प्रदीप हैं । यहाँ पर गुण शब्द से अन्त: करणों मन, बुद्धि अहङ्कार और चित्त को कहा गया है । उन चारों को आप चार रूपों से प्रकाशित करते हैं । चित्त इत्यादि चारों के अधिष्ठाता होने के कारण भी आप चतु:शरीरक हैं । प्रश्न है कि मैं तो एक हूँ चार कैसे हो सकता हूँ ? नागपत्नियों ने कहा आप गुणात्मच्छादक हैं । अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त तथा अहङ्कार के द्वारा उपासना करने वाले उपासकों को भिन्न-भिन्न फल प्रदान करने के लिए अपने स्वरूप को आच्छादित करके अनेक रूप से प्रकाशित होते हैं । यदि कहें कि तो फिर प्रतीति कैसे होती है ? नागपत्नियों ने कहा— **गुणवृत्युपलक्ष्याय** अर्थात् चित्त आदि गुणों की चेतनाध्यवसाय आदि वृत्तियों के द्वारा आप उपलक्षित होते हैं । उपलक्षण को ही नागपत्नियों ने कहा **गुणद्रष्टे** अर्थात् आप चित्तादि के साक्षात् द्रष्टा साक्षी हैं । आप किसी तरह उपलक्ष्य ही हैं ज्ञेय नहीं हैं— इस बात को बतलाते हुए उन सबों ने कहा कि आप किसी का विषय नहीं बनते हैं ।।४६।।

अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये । हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ।।४७।।

अन्वयः— अव्याकृत विहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये, मुनये मौनशीलिने हृषीकेश ते नमः अस्तु ।।४७।।

अनुवाद— आपकी महिमा को कोई भी तर्क के द्वारा नहीं जान सकता है, सभी कार्यों की उत्पत्ति तथा प्रकाश की सिद्धि के लिए उपलक्षण के योग्य आप हैं । हे इन्द्रियों के प्रवर्तक, आप आत्माराम हैं तथा आत्मारामता आपका स्वभाव है, ऐसे आपको नमस्कार है ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

अगोचरत्वमुपलक्ष्यत्वं च दर्शयन्त्यो नमन्ति-अव्याकृतविहाराय, अतर्क्यमहिम्न इत्यर्थः । सर्वव्याकृतसिद्धये सर्वकार्योत्पत्तिप्रकाशहेतुत्वेनोपलक्षणयोग्यायेत्यर्थः । उपलक्षणान्तरमाहुः-हे हृषीकेश करणप्रवर्तक । किं विषयलिप्सया, न, मुनये आत्मारामाय । किं साधनवशेन वा, नहि, मौनशीलिने मौनमात्मारामता तत्स्वभावाय ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रीभगवान् की अगोचरता तथा उपलक्ष्यता को बतलाती हुई नागपत्नियाँ श्रीभगवान् को नमस्कार

करती हैं । वे कहती हैं **अव्याकृतविहारय** अर्थात् आपकी महिमा को तर्क के द्वारा नहीं जाना जा सकता है, **सर्वव्याकृत सिद्धये** अर्थात् सभी कार्यों की उत्पत्ति तथा उनके प्रकाश के कारण रूप से उपलक्षण के आप योग्य हैं । ऐसे आपको हमलोगों का नमस्कार है । दूसरे उपलक्षण को वे बतलाती हैं हृषीकेश अर्थात् हे इन्द्रियों के प्रवर्तक विषयों को प्राप्त करने की इच्छा से नही है ? आप आत्माराम है किसी साधन के द्वारा क्या ? नहीं आत्मारामता आपका स्वभाव ही है । ऐसे आपको हमलोगों का नमस्कार है ।।४७।।

परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः । अविश्वाय च विश्वाय तद्रष्ट्रेस्य च हेतवे ।।४८।।

अन्वयः— परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय, अविश्वाय, विश्वाय, तद् द्रष्ट्रे, अस्य हेतवे च नमः ।।४८।।

अनुवाद— आप स्थूल सूक्ष्म सभी गतियों के ज्ञाता है, आप नाम रूपात्मक विश्व निषेध की अवधि (अन्तिम सीमा) तथा उसके अधिष्ठान होने के कारण विश्व स्वरूप भी हैं, आप विश्व के अध्यास और उसके अपवाद के साक्षी हैं, अज्ञान के द्वारा उसके सत्यत्वभ्रान्ति एवं स्वरूप ज्ञान के द्वारा उसकी आत्यन्तिक निवृत्ति के कारण भी हैं । आपको हमारा नमस्कार है ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

कुतःपरावरगतिज्ञाय । स्थूलसूक्ष्माणां गतिज्ञत्वेन क्वापि सज्जमानायेत्यर्थः । अपि च सर्वाध्यक्षाय सर्वस्याधिष्ठात्रे । कुत एतत् । अविश्वाय न विश्वं यस्मिंस्तन्निषेधावधये । विश्वाय च तद्विवर्ताधिष्ठानायेत्यर्थः । किंच तद्द्रष्ट्रे अध्यासापवादसाक्षिणे। अपि च अस्य विश्वाध्यासस्य तदपवादस्य चाविद्याविद्याभ्यां हेतवे । यद्वा अविश्वाय विश्वतैजसाद्यवस्थारहिताय । विश्वाय च मायया स्वांशैस्तत्तदवस्थाय तद्द्रष्ट्रे तासामवस्थानां भावाभावसाक्षिणे । अन्यत्समानम् । तस्मात्सर्वगतिज्ञत्वसर्वाधिष्ठातृत्वात्मारामत्वादिभिर्निरतिशयैश्वर्याय तुभ्यं नम इति । 'विशेषणैरसंकीर्णैः पञ्चपञ्चाशतानतः । अहिस्त्रीभिः प्रसन्नो वस्तासामिव भवेद्धरिः'।।४८।।

भाव प्रकाशिका

क्योंकि आप स्थूल एवं सूक्ष्म गतियों के ज्ञाता होने से कहीं पर आसक्त होते हैं, किञ्च आप इस सम्पूर्ण प्रपञ्च के अधिष्ठाता हैं । यह कैसे ? आप नाम रूपात्मक विश्व निषेध की पराकाष्ठा हैं । आप विश्व के विवर्त के अधिष्ठान हैं । आप विश्व के अध्यास तथा उसके अपवाद के साक्षी हैं और इस सम्पूर्ण अध्यास और उसके अपवाद के आप अविद्या तथा विद्या के द्वारा कारण हैं । अथवा **अविश्वाय** अर्थात् विश्व तथा तैजस आदि की अवस्था से रहित हैं आप **विश्वाय** अर्थात् माया के द्वारा अपने अंशों से आप विभिन्न अवस्था रूप हैं । **तद्द्रष्ट्रे** उन अवस्थाओं के भाव एवं अभाव के आप साक्षी हैं । दूसरी सारी बाते सामान्य हैं । अतएव सर्वगतिज्ञत्व, सर्वाधिष्ठातृत्व, और आत्मारामत्व आदि के द्वारा आप निस्सीम ऐश्वर्य सम्पन्न हैं ऐसे आपको नमस्कार है । **विशेषणैः इत्यादि** इन परस्पर में एक दूसरे से पृथक् पचपन विशेषणों के द्वारा नाग पत्नियों पर प्रसन्न श्रीहरि उन्हीं सभी के समान आप लोगों (पाठकों) और (श्रोताओं) पर श्रीहरि प्रसन्न होएँ ।।४८।।

त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान्प्रभो गुणैरनीहोऽकृतकालशक्तिधृक् ।
तत्तत्स्वभावान्प्रतिबोधयन्सतः समीक्षयाऽमोघविहार ईहसे ।।४९।।

अन्वयः— हे प्रभो ! गुणैः अनीहः कालशक्तिधृक् त्वं हि अस्य जन्मस्थितिसंयमान् अकृत । तत् स्वभावान् प्रतिबोधयन् सतः समीक्षया अमोघविहार ईहसे ।।४९।।

अनुवाद— हे प्रभो ! यद्यपि आप कर्ता न होने के कारण कोई कर्म भी नहीं करते हैं, अतएव निष्क्रिय हैं, फिर भी अनादि काल शक्ति को स्वीकार करके प्रकृति के गुणों के द्वारा इस चेतना चेतनात्मक जगत् की सृष्टि, स्थिति और संहार को करते हैं, क्योंकि आपकी लीलाएँ अमोघ हैं । आप सत्य संकल्प है अतएव जीवों के संस्कार रूप से छिपे हुए स्वभावों को अपनी दृष्टि से जागृत कर देते हैं ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

एवं तावद्दण्डानुमोदनेन नमस्कारैश्च भगवन्तं प्रसाद्येदानीं त्वदधीनानां प्राणिनां कोऽपराध इत्याशयवत्यः प्रार्थयन्ते-त्वं हीति । अस्य लोकस्य जन्मादि त्वमेव अकृताऽकरोः ततश्च तांस्तान्संस्काररूपेण सतः स्वभावान्घोरत्वादीन्प्रतिबोधयन्नीहसे क्रीडसि। यद्वा अस्य जन्मादींस्त्वमीहस इत्यन्वयः । कथंभूतः । अकृताऽनादिर्या कालशक्तिस्तां धारयतीति तथा । अन्यत्समानम्।।४९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीभगवान् द्वारा दिए गये दण्ड का अनुमोदन करके तथा नमस्कारों के द्वारा श्रीभगवान् को प्रसन्न करके अब प्रार्थना करती हुई कहती हैं कि आपके अधीन रहने वाले प्राणियों का कौन अपराध है । यही उन नाग पत्नियों का अभिप्राय है । वे कहती हैं इस संसार के जन्मादि करने वाले आप ही हैं, उसके कारण विभिन्न संस्कार रूप से उन सबों के घोर आदि स्वभावों को जगाकर आप क्रीड़ा करते हैं । अथवा इस जगत् के जन्मादि करके इसके द्वारा आप क्रीडा करते हैं । कैसे आप हैं ? इस पर कहती हैं कि आप अनादि काल शक्ति को धारण करते है । अन्य सारी बातें स्पष्ट हैं ।।४९।।

तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां शान्ता अशान्ता उत मूढयोनयः ।
शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनाऽवितुं सतां स्थातुश्च ते धर्मपरीप्सयेहतः ।।५०।।

अन्वयः— तस्यैव ते त्रिलोक्यां अमूः शान्ताः अशान्ताः उत मूढयोनय शान्ताः ते प्रियाः अधुना सतां अवितुम् स्थातुः च ते धर्म परीप्सया ईहतः ।।५०।।

अनुवाद— उसी आपकी ये तीन प्रकार के शरीर हैं सत्त्व गुण प्रधान शान्त, रजोगुण प्रधान अशान्त एवं तमोगुण प्रधान मूढ । फिर भी इस समय आपको शान्त प्रधान विशेष रूप से प्रिय हैं । आपके ये अवतार और लीलाएँ विशेष रूप से साधु पुरुषों की रक्षा और धर्म के विस्तार के लिए हैं ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

अतस्तस्य तवैवामूस्तनवस्तन्यन्त इति क्रीडोपस्कराः । तथापि तवाधुना शान्ताः प्रियाः । कुतः । सतां धर्मपरिपालनेच्छया ईहतः प्रवर्तमानस्य, अतस्तानवितुं स्थातुम् स्थितस्य ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

अतएव आपके ही ये तीन प्रकार के शरीर हैं जो आपके क्रीडा के साधन हैं फिर भी इस समय आपको सत्त्वगुण प्रधान सत्पुरुषों का ही शरीर प्रिय है, क्योंकि सत्पुरुषों तथा धर्म की रक्षा एवं विस्तार ही आप करना चाहते हैं । अतएव सत् पुरुषों की रक्षा करने के ही लिए आप स्थित हैं ।।५०।।

अपराधः सकृद्भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः । क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन्मूढस्य त्वामजानतः ।।५१।।

अन्वयः— हे शान्तात्मन् मूढस्य, त्वाम् अजानतः स्वप्रजाकृतः अपराधः भर्त्रा सोढव्यः अतः क्षन्तुम् अर्हसि ।।५१।।

अनुवाद— हे शान्तात्मन् अज्ञान् आपको नहीं जानने वाले अपनी प्रजा के अपराध को स्वामी को चाहिए कि एक बार क्षमा कर दे। अतएव आप इसको क्षमा कर दें ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

एवं तवाप्रियाचरणाद्यपराधस्तर्हि सोढव्य इति ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

अतएव इसने आपका जो अप्रिय आचरण किया है उसे आप क्षमा कर दें ।।५१।।

अनुगृह्णीष्व भगवन्प्राणांस्त्यजति पन्नगः । स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥५२॥

अन्वयः— हे भगवन् अनुगृह्णीष्व पन्नगः प्राणाम् त्यजति, साधुशोच्यानां नः प्राणः पति प्रदीयताम् ॥५२॥

अनुवाद— हे भगवन् आप कृपा कीजिये यह सर्प अब मरने ही वाला है । साधुजन स्त्रियों पर सदैव दया करते हैं अतएव हमलोगों के प्राण स्वरूप हमारे पति को आप दे दीजिए ॥५२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५२॥

विधेहि ते किङ्करीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया । यच्छ्रद्धयाऽनुतिष्ठन्वै मुच्यते सर्वतो भयात् ॥५३॥

अन्वयः— ते किङ्करीणाम् अनुष्ठेयं तवज्ञया विधेहि । यत् श्रद्धया अनुतिष्ठन् वै सर्वतोभयात् मुच्यते ॥५३॥

अनुवाद— हमलोग आपकी दासियाँ है । आप हमें आज्ञा दीजिये । हम आपकी कौन सी सेवा करें । क्योंकि जो श्रद्धा के साथ आपकी आज्ञा का पालन करता है, वह सभी प्रकार के भयों से मुक्त हो जाता है ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

युष्मदनुग्रहेऽन्येषां मृत्युरेवेति चेत्तन्नेत्याहुः-विधेहीति । त्वदाज्ञया प्राणिनो नाद्यामेति भावः ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

आपके अनुग्रह होने पर दूसरे की मृत्यु नहीं होती है तो ऐसी बात नहीं है । इस बात को नागपत्नियों ने विधेहि इत्यादि श्लोक से कहा । आपकी आज्ञा से जीव मरता नहीं है । यह उन सबों का भाव है ॥५३॥

श्रीशुक उवाच

इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान्समभिष्टुतः । मूर्च्छितं भग्नशिरसं विससर्जाङ्घ्रिकुट्टनैः ॥५४॥

अन्वयः— इत्थं नागपत्नीभिः समभिष्टुतः स भगवान् मूर्छितं भग्नशिरसं अङ्घ्रिकुट्टनैः विससर्ज ॥५४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से नाग पत्नियों द्वारा स्तुति किए जाने पर श्रीभगवान् मूर्छित तथा जिसका सिर फूट गया था उस कालिय नाग के शिरों को कुचलना छोड़ दिए ॥५४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५४॥

प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम् । कृच्छ्रात्समुच्छ्वसन्दीनः कृष्णं प्राह कृताञ्जलिः ॥५५॥

अन्वयः— प्रतिलब्धेन्द्रियप्राणः दीनः कालियः कृताञ्जलिः कृच्छ्रात् समुच्छ्वसन् शनकैः कृष्णं हरिम् प्राह ॥५५॥

अनुवाद— धीरे-धीरे कालिय नाग की इन्द्रियों और प्राणों में चेतनता आ गयी वह कठिनाई से श्वास ले रहा था । उसने बड़ी दीनता के साथ हाथ जोड़कर भगवान् श्रीकृष्ण से कहा ॥५५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५५॥

कालिय उवाच

वयं खलाः सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः । स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥५६॥

अन्वयः— हे नाथ ! वयं उत्पत्त्या सह खलाः तामसा दीर्घमन्यवः स्वभावः दुस्त्यजः यत् लोकानां असद्ग्रहः ॥५६॥

कालिय नाग ने कहा

अनुवाद— हे स्वामिन् हमलोग जन्म से दुष्ट प्रकृति के तमोगुणी और बहुत दिन बीत जाने पर भी बदला

लेने वाले हैं । स्वभाव को त्यागना बड़ा ही कठिन होता है । स्वभाव के ही कारण संसार के लोग दुराग्रहों में फँस जाते हैं ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

यदसद्ग्रह इति । यतः स्वभावोऽसद्ग्रहरूपः । यद्वा यत; स्वभावादसति देहादौ ग्रहः, स दुस्त्यज इति ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

चूकि स्वभाव असद्ग्रह रूप होता हैं । अथवा चूकि स्वभाव से खराब होने पर देह आदि में उसका ग्रहण होता है वह दुस्त्यज होता है ॥५६॥

त्वया सृष्टमिदं विश्वं धातर्गुणविसर्जनम् । नानास्वभाववीर्यौजोयोनिबीजाशयाकृति ॥५७॥

अन्वयः— हे धातः त्वया इदं गुणविसर्जनम् विश्वम् नाना स्वभाववीर्यौजोयोनि बीजाशयाकति ॥५७॥

अनुवाद— हे विश्वविधातः प्रभो आपने गुणों के भेद से अनेक प्रकार के स्वभाव, वीर्य बल, योनि, बीज,चित्त और आकृतियों से युक्त इस विश्व का निर्माण किया है ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

गुणैर्विविधतया सृज्यत इति गुणविसर्जनम् । तत्रापि नानास्वभावादयो यस्य तत् ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

गुणों के अनेक भेदों से युक्त सृष्टि जो की जाती है उसे गुण विसर्जन कहते । उसमें भी इस जगत् के जीव अनेक स्वभाव वाले होते हैं ॥५७॥

वयं च तत्र भगवन्सर्पा जात्युरुमन्यवः । कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥५८॥

अन्वयः— हे भगवन् तत्र सर्पा वयम् जात्युरुमन्यवः माया मोहिताः स्वयम् दुस्त्यजां त्वन्मायां कथं त्यजामः?॥५८॥

अनुवाद— हे भगवान् उसमें हम सर्प जाति के जीव बहुत अधिक क्रोधी होते हैं, स्वयं माया से मोहित होने के कारण आपकी दुस्त्यज माया को कैसे त्याग सकते हैं ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

जात्या जन्मनैवोरुर्मन्युर्येषां ते वयं स्वयं कथं त्यजामः ॥५८॥

भाव प्रकाशिका

जन्म से ही बहुत अधिक क्रोधी हमलोग उसका कैसे त्याग कर सकते हैं ?॥५८॥

भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः । अनुग्रहं निग्रहं वा मन्यसे तद्विधेहि नः ॥५९॥

अन्वयः— तत्र सर्वज्ञः जगदीश्वरः भवान् कारणं, अनुग्रहं निग्रहं वा यत् मन्यसे तत् नः विधेहि ॥५९॥

अनुवाद— आप सर्वज्ञ तथा सम्पूर्ण जगत् के स्वामी एवं सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं आप अनुग्रह अथवा निग्रह जो भी उचित समझें वही कीजिये ॥५९॥

भावार्थ दीपिका

हि यस्मात्तत्र त्वन्मायात्यागे भवानेव कारणमित्यनुग्रहं विधेहि ममाज्ञया खादन्तीति । ईश्वरत्वान्निग्रहं वा विधेहीति॥५९॥

भाव प्रकाशिका

क्योंकि आपकी माया के त्याग में आप ही कारण है अतएव आप हमलोगों पर कृपा करें । यह समझकर कि मेरी ही आज्ञा से ही काटने का काम करते है । अथवा आप हमलोगों का निग्रह करें ॥५९॥

श्रीशुक उवाच

इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान्कार्यमानुषः । नात्र स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम् ॥
स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यते नदी ॥६०॥

अन्वयः— इति वर्चः आकर्ण्य कार्यमानुषः भगवान् प्राह सर्प त्वया अत्र न स्थेयं माचिरम् स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यः समुद्रं याहि नदी गोनृभिः भुज्यते ॥६०॥

अनुवाद— कालिय की बातों को सुनकर कार्य विशेष के लिए मनुष्य रूप धारण किए हुए भगवान् उससे कहे सर्प तुम अपने जाति भाई पत्नी आदि के साथ यहाँ से शीघ्र ही समुद्र में चले जाओ । तुम्हें यहाँ नहीं रहना चाहिए । इस नदी का उपभोग गौएँ और मनुष्य करते हैं ॥६०॥

भावार्थ दीपिका

यतो गोभिर्नृभिश्च नदी भुज्यत इति ॥६०॥

भाव प्रकाशिका

क्योंकि इस नदी का उपभोग गौ और मनुष्य करते हैं ॥६०॥

य एतत्संस्मरेन्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् । कीर्तयन्नुभयोः सन्ध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात् ॥६१॥

अन्वयः— यः मर्त्यः एतत् तुभ्यं मदनुशासनम् उभयोः संध्ययोः कीर्तयन् संस्मरेत् युष्मद्भयं न आप्नुयात् ॥६१॥

अनुवाद— जो मनुष्य तुमको मेरे द्वारा दिये गये आज्ञा का दोनों संध्याओं में कीर्तन करते हुए स्मरण करे उसको तुमलोगों का भय नहीं होना चाहिए ॥६१॥

भावार्थ दीपिका

न युष्मत्तो भयमाप्नुयात् । तस्य युष्माभिर्भयं नोत्पादनीयमित्याज्ञा ॥६१॥

भाव प्रकाशिका

तुमलोगों से भय नहीं होना चाहिए। उसको तुमलोगों को भय नहीं उत्पन्न करना चाहिए, यह मेरी आज्ञा है॥६१॥

योऽस्मिन्स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः । उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६२॥

अन्वयः— यः अस्मिन् मदाक्रीडे स्नात्वा जलैः देवादीन् तर्पयेत् उपोष्य मां स्मरन् अर्चेत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६२॥

अनुवाद— जो मनुष्य मेरे इस क्रीडा स्थल कालिय ह्रद में स्नान करके देवताओं आदि का तर्पण करेगा तथा उपवास करके मेरी अर्चना करेगा वह समस्त पापों से मुक्त हो जायेगा ॥६२॥

भावार्थ दीपिका

इतोऽपि त्वया निर्गन्तव्यमित्याह-योऽस्मिन्निति । त्वयि स्थिते तन्न संभवतीति भावः ॥६२॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ से तुम्हें चला जाना चाहिए, इस बात को श्रीभगवान् ने **योऽस्मिन्० इत्यादि** से कहा है जब तक तुम यहाँ रहोगे तब तक कोई इसमें स्नान नहीं कर पायेगा ॥६२॥

द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः । यद्भयात्स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलाञ्छितम् ॥६३॥

अन्वयः— रमणकं द्वीपं हित्वा यत् भयात् एतत् ह्रदम् उपाश्रितः सः सुपर्णः मत्पादलाञ्छितं त्वां न अद्यात् ॥६३॥

अनुवाद— रमणक द्वीप को छोड़कर तुम जिस गरुड के डर से इस ह्रद में निवास करते हो वह गरुड़ अब तुमको नहीं खायेगा क्योंकि तुम्हारे सिर में मेरे चरणों का चिह्न से चिह्नित हो गये हो ॥६३॥

भावार्थ दीपिका

नच तव गरुडभयं भवेदित्याह-द्वीपमिति ।।६३।।

भाव प्रकाशिका

द्वीपं रमणकं इत्यादि श्लोक से भगवान् ने कालिय को बतलाया कि अब तुमको गरुड का भय नहीं होगा।।६३।।

श्रीशुक उवाच

एवमुक्तो भगवता कृष्णेनाद्भुतकर्मणा । तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ।।६४।।

अन्वयः— अद्भुत कर्मणा भगवता कृष्णेन एवमुक्तः मुदा तं पूजयामास सादरम् नागपत्न्यश्च ।।६४।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— अद्भुत कर्म करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा इस तरह से कहे जाने पर कालिय ने श्रीभगवान् की पूजा की और नाग पत्नियों ने भी आदर पूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा की ।।६४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६४।।

दिव्याम्बरस्रङ्मणिभिः परार्ध्यैरपि भूषणैः । दिव्यगन्धानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ।।६५।।
पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम् । ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवन्द्य तम्।।६६।।

अन्वयः— दिव्याम्बरस्रग्मणिभिः परार्ध्यैः भूषणैः अपि दिव्य गन्धानुलेपैः च महत्यउत्पलमालया जगन्नाथं पूजयित्वा गरुडध्वजम् प्रसाद्य ततः प्रीतः अभ्यनुज्ञातः तम् परिक्रम्य अभिवन्द्य ।।६५-६६।।

अनुवाद— उसने जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य वस्त्र, माला मणियों तथा अत्यन्त मूल्यवान भूषणों तथा उत्तम कमलों से तथा गन्धों से पूजा की और गरुडध्वज भगवान् को उसने प्रसन्न किया । उसके पश्चात् प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने उसको जाने की आज्ञा प्रदान की फिर उसने भगवान् की परिक्रमा की और उनकी बन्दना की ।।६५-६६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६५-६६।।

सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमब्धेर्जगाम ह । तदैव साऽमृतजला यमुना निर्विषाभवत् ।।
अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ।।६७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे कालियनिर्यापणं नाम षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

अन्वयः— सकलत्र सुहृत् पुत्रः अब्धेः द्वीपं जगम ! तदैव क्रीडामानुषरूपिण भगवतः अनुग्रहात् सा यमुना निर्विषा अमृतजला अभवत् ।।६७।।

अनुवाद— कालिय अपनी पत्नयों हितैषियों और पुत्रों के साथ समुद्र के रमणक द्वीप में चला गया, उसी समय क्रीडा करने के लिए मनुष्य शरीर धारण किए हुए श्रीभगवान् की कृपा से यमुना नदी विष से रहित तथा अमृत के समान जलवाली हो गयी ।।६७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के कालिय निर्यापण नामक सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वाधे भावार्थदीपिकायां टीकायां षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दशवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१६

* * *

सत्रहवाँ अध्याय

कालिय के कालियह्रद में आने की कथा और श्रीभगवान् का व्रजवासियों को दावानल से बचाने की कथा

राजोवाच

नागालयं रमणकं कस्मात्तत्याज कालियः । कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम् ॥१॥

अन्वयः— कालियः नागालयं रमणकं कस्मात् तत्याज ? तेन एकेन सुपर्णस्य, किंवा असमंजसं कृतम् ॥१॥

राजा परीक्षित ने कहा

अनुवाद— कालिय नागों के रहने के स्थान रमणक द्वीप को कालिय ने क्यों छोड़ा, तथा उस केवल कालिय ने ही गरुड़ का कौन सा अपराध किया था ?॥१॥

भावार्थ दीपिका

नागं सप्तदशे नागालयं तं निरयापयत् । बन्धूंस्त्वदुःखतः श्रान्तान् सुप्तांस्तत्र दवानलात् । असमञ्जसमप्रियम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सत्रहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि श्रीभगवान् ने कालिय नाग को नागों के रहने के स्थान रमणक द्वीप में भेज दिया, और भगवान् श्रीकृष्ण के दुख से थके हुए तथा सोये हुए अपने बान्धवों का दावाग्नि से बचा लिया । असमञ्ज अर्थात् अप्रिय ॥१॥

श्रीशुक उवाच

उपहार्यैः सर्पजनैर्मासि मासीह यो बलिः । वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ्निरूपितः ॥२॥

अन्वयः— हे महाबाहो ! पाङ्निरूपितः मासिमासि उपहार्यैः सर्वजनैः नागानां वानस्पत्यो यो बलिः ॥२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे महाबाहो परीक्षित् पूर्वकाल में गरुड़ जी को उपहार स्वरूप प्राप्त होने वाले सर्पों ने यह नियम कर लिया था कि प्रत्येक मास में निर्दिष्ट वृक्ष के नीचे एक सर्प की बलि दी जायेगी ॥२॥

भावार्थ दीपिका

उपहार्यैर्भक्ष्यैः । सर्पजनैः सर्पायत्तैर्जनैः । वानस्पत्यो वनस्पतेर्मूले देयो नागानां तद्बाधापरिहाराय यो बलिर्निरूपित उपकल्पितः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उपहार्य अर्थात् भक्ष्य, सर्पजनैः सर्पों के अधीन रहने वाले सर्प वानस्पत्यः अर्थात् वनस्पति के नीचे बलि देय थी । जिससे कि गरुड़ जी सर्पों को बाधित न करें ।.वह बलि पहले से ही निश्चित थी ॥२॥

स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति नागाः पर्वणि पर्वणि । गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥३॥

अन्वयः— सर्वे नागाः आत्मनः गोपीथाय महात्मने, सुपय पर्वणि पर्वणि स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति ॥३॥

अनुवाद— सभी नाग अपनी रक्षा के लिए महात्मा गरुडजी को प्रत्येक आमावस्या को अपना अपना भाग प्रदान करते थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

ते च नागाः स्वं स्वं भागं जनैर्दत्तं सुपर्णाय प्रयच्छन्ति ततो भीताः । गोपीथाय रक्षणाय ।।३।।

भाव प्रकाशिका

वे सभी नाग अपने आश्रितों से प्राप्त होने वाले अपने अपने भाग को उस दिन गरुड़जी को दे दिया करते थे अपनी रक्षा के लिए ।।३।।

विषवीर्यमदाविष्टः काद्रवेयस्तु कालियः । कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम् ।।४।।

अन्वयः— तु काद्रवेयः कालियः विषवीर्यं मदाविष्टः गरुडं कदर्थी कृत्य तं बलिं स्वयं बुभुजे ।।४।।

अनुवाद— किन्तु कद्रु का पुत्र कालिय अपने विष तथा पराक्रम के मद से मत्त होकर गरुड़ का तिरस्कार करके उस बलि को स्वयं खा लिया ।।४।।

भावार्थ दीपिका

विषवीर्याभ्यां यो मदस्तेनाविष्टः । काद्रवेय; कद्रूपुत्रः । गरुडं कदर्थीकृत्य अविगणय्य । यद्वा उपहार्यैः सुपर्णभक्ष्यैः सर्पा एव जनास्तैर्नागानां संबन्धी यस्मिन्नेकैको नागो दीयते तथाभूतो यो बलिः सुपर्णाय निरूपितस्तत्र स्वं स्वं भागं सर्वे नागाः प्रयच्छन्ति, कालियस्तु न प्रयच्छति, किंत्वन्यैर्दत्तमपि तं बलिं स्वयमेव बुभुजे ।।४।।

भाव प्रकाशिका

विष तथा पराक्रम जन्य मद के अविष्ट होकर । काद्रवेयः अर्थात् कद्रू का पुत्र, गरुडं कदर्थीकृत्य अर्थात् गरुड की परवाह किए बिना । अथवा गरुड़ के भक्ष्य भूत सर्प ही जन शब्द वाच्य हैं उन सबों के द्वारा नागों का संबन्धी एक-एक नाग दिया जाता था, इस प्रकार की बलि गरुड़जी के लिए निश्चित थी । उसमें से सभी नाग अपना-अपना भाग गरुड़जी को देते थे कलिय उसे नहीं देता था, अपितु दूसरों के द्वारा प्रदत्त भी बलि को स्वयं खा लिया करता था ।।४।।

तच्छ्रुत्वा कुपितो राजन्भगवान्भगवत्प्रियः । विजिघांसुर्महावेगः कालियं समुपाद्रवत् ।।५।।

अन्वयः— राजन् तच्छ्रुत्वा महावेगः भगवतः प्रियः भगवान् कलियं जिघांसु समुपाद्रवत् ।।५।।

अनुवाद— राजन् यह सुनकर महावेगशाली श्रीभगवान् के प्रिय ऐश्वर्य सम्पन्न गरुडजी कालिय को मार देने की इच्छा उस पर टूट पड़े ।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५।।

तमापतन्तं तरसा विषायुधः प्रत्यभ्ययादुच्छ्रितनैकमस्तकः ।
दद्भिः सुपर्णं व्यदशद्ददायुधः करालजिह्वोच्छ्वसितोऽग्रलोचनः ।।६।।

अन्वयः— तरसा तम् आपतन्तं विषायुधः उच्छ्रतनैकमस्तकः प्रत्यम्ययात् कराल जिह्वोच्छ वसितोग्रलोचनः ददायुधः दद्भिः सुपर्णं व्यदशत् ।।६।।

अनुवाद— वेग पूर्वक गरुड़जी को आक्रमण करते हुए देखकर विष रूपी आयुध से सम्पन्न अपने सैकड़ों मस्तकों को उठाये हुए, उनका सामना किया । भयङ्कर जीभों वाले वह फुफकारने लगा उसकीं आखें क्रोध से लाल हो गयीं । दाँत रूपी आयुध वाले उसने गरुडजी को दाँतों से काट लिया ।।६।।

भावार्थ दीपिका

विषमेवायुधं यस्य सः । प्रत्यभ्ययाद्योद्धुं प्रतिजगाम उच्छ्रितनैकमस्तक उन्नमितानेकफणः । ददायुधो दन्तायुधः करालजिह्वश्चासावुच्छ्वसितोग्रलोचनश्च उच्छ्वसितान्युज्जृम्भितान्युग्राणि लोचनानि यस्य सः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

कालिय का आयुध विष था। **प्रत्यभ्ययात्** अर्थात् युद्ध करने के लिए गया। **उच्छ्रितनैक मस्तकः** अपने अनेक फणों को उठाकर ददायुधः अर्थात् दाँत रूपी आयुध वाला कालिय, उसकी जीभ भयंकर और वह फुफकार रहा था। क्रोध से नेत्र भी भयंकर हो गये थे ॥६॥

तं तार्क्ष्यपुत्र स निरस्य मन्युमान्प्रचण्डवेगो मधुसूदनासनः।
पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा जघान कद्रूसुतमुग्रविक्रमः ॥७॥

अन्वयः— प्रचण्डवेगः मधुसूदनासनः उग्रपराक्रमः मन्युमान् सः तार्क्ष्यपुत्र तं निरस्य हिरण्यरोचिषा सव्येन पक्षेण तं कद्रुसुतम् जघान ॥७॥

अनुवाद— प्रचण्डवेग सम्पन्न भगवान् मधुसूदन के वाहन उग्र पराक्रम वाले गरुडजी उसको झटक कर फेंक दिए एवं अपने सुनहले पङ्ख से उस कालिय को मारे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तार्क्ष्यपुत्रो गरुडः। मधुसूदनस्यासनं यस्मिन्सः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

तार्क्ष्य पुत्र अर्थात् गरुडजी। वे भगवान् मधुसूदन के वाहन हैं ॥७॥

सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीव विह्वलः। ह्रदं विवेश कालिन्द्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥८॥

अन्वयः— सुपर्णपक्षाभिहतः कालियः अतिविह्वलः तदगम्यं दुरासदम् कालिन्द्या ह्रदं विवेश ॥८॥

अनुवाद— गरुडजी के पङ्ख से प्रताडित होकर कालिय अत्यन्त घबरा गया वह जहाँ गरुडजी नहीं जा सकते उस यमुना जी के ह्रद में प्रवेश कर गया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तस्य गरुडस्यागम्यमगाधतया च दुरासदम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

गरुड वहाँ जा नहीं सकते थे तथा अगाध होने के कारण वह ह्रद दुरासद था ॥८॥

तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम्। निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत् ॥९॥

अन्वयः— तत्र एकदा क्षुधितः गरुडः सौभरिणा निवारितः इप्सितं भक्ष्यं प्रसह्य अहरत् ॥९॥

अनुवाद— वहीं पर एक दिन गरुड़ भूख होने के कारण गरुड महर्षि सौभरि के मना करने पर भी अपने प्रिय भक्ष्य एक मत्स्य को बलपूर्वक पकड़ कर खा लिए ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तदगम्यत्वे कारणमाह-तत्रेति। निवारितोऽपि ॥९॥

भाव प्रकाशिका

गरुड़ के वहाँ नहीं जाने का कारण **तत्र० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है। निवारितोऽपि अर्थात् रोके जाने पर भी ॥९॥

मीनान्सुदुःखितान्दृष्ट्वा दीनान्मीनपतौ हते । कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥१०॥

अन्वयः— मीनपतौ हते सुदुःखितान मीमान् दीनान् दृष्ट्वा तत्रत्य क्षेममाचरन् सौभरिः कृपया प्राह ॥१०॥

अनुवाद— मत्स्य राज के मारे जाने पर वहाँ के मछलियों को अत्यन्त दुःखी देखकर वहाँ के जीवों का कल्याण करते हुए दया से द्रवित होकर सौभरि ऋषि ने कहा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान्स खादति । सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥११॥

अन्वयः— अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान् खादति सः सद्यः प्राणै विर्युज्येत अहम् एतत् सत्यम् ब्रवीमि ॥११॥

अनुवाद— यहाँ आकर गरुड यदि मत्स्यों को खायेगा तो वह शीघ्र ही अपने प्राणों से हाथ धो देगा ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः । अवात्सीद्गरुडाद्भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥१२॥

अन्वयः— कालियः लेलिहः तं परं वेद अन्यः कश्चन न अतः गरुडात् भीतः अवात्सीत् कृष्णेन च विवासितः ॥१२॥

अनुवाद— कालिय नामक सर्प उसको जानता था दूसरा कोई नहीं जानता था । अतएव कलिय यहाँ आकर निवास करने लगा और भगवान् श्रीकृष्ण ने उसको वहाँ से निर्भय बनाकर रमणक द्वीप भेज दिया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

लेलिहः सर्पः । अतस्तत्रावात्सीत् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

लेलिहः अर्थात् सर्प वहाँ रहने लगा ॥१२॥

कृष्णं ह्रदाद्विनिष्क्रान्तं दिव्यस्रग्गन्धवाससम् । महामणिगणाकीर्णं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥१३॥
उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इवासवः । प्रमोदनिभृतात्मानो गोपाः प्रीत्याऽभिरेभिरे ॥१४॥

अन्वयः— दिव्य स्रग्गन्धवाससं हृदात् विनिष्क्रान्तं महामणिगणाकीर्णं जाम्बूनद परिष्कृतम् कृष्णम् उपलभ्य लब्धप्राणाः असवः इव सर्वे उत्थिताः, प्रमोदनिभृतात्मानः गोपाः प्रीत्या अभिरेमिरे ॥१३-१४॥

अनुवाद— दिव्य माला चन्दन तथा दिव्य वस्त्र धारण किए हुए दिव्य मणियों से अलंकृत सुवर्ण मय आभूषणों से भूषित जब भगवान् श्रीकृष्ण उस हृद से बाहर आये, उनको देखकर सभी व्रजवासी उसी तरह खड़े हो गये जिस तरह प्राणों को पाकर इन्द्रियाँ सचेत हो गयी हों । वे सबके सब गोप आनन्द से भर गये और प्रेम पूर्वक उन सबों ने भगवान् श्रीकृष्ण का आलिङ्गन किया ॥१३-१४॥

भावार्थ दीपिका

जाम्बूनदं सुवर्णं तेनालंकृतम् । असव इन्द्रियाणि । प्रमोदनिभृतात्मान आनन्दपूर्ण मानसः ॥१३-१४॥

भाव प्रकाशिका

जाम्बूनदपरिष्कृतम् अर्थात् सुवर्णमय अलंकारों से अलंकृत असवः अर्थात् इन्द्रियाँ, **प्रमोद निभृत मानसः** अर्थात् आनन्द भरे मन से ॥१३-१४॥

यशोदा रोहिणी नन्दो गोप्यो गोपाश्च कौरव । कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसँल्लब्धमनोरथाः ॥१५॥

अन्वयः— हे कौरव ! यशोदा, रोहिणी नन्दः गोप्यः गोपाश्च कृष्णं समेत्य लब्धेहाः लब्ध मनोरथाः आसन् ॥१५॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! यशोदा, रोहिणी, नन्द गोपियाँ तथा गोपगण भगवान् श्रीकृष्ण से मिलकर सफल मनोरथ वाले हो गये थे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

लब्धेहा लब्धचेष्टाः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

लब्धेहाः अर्थात् चेष्टाएँ करने लगे ॥१५॥

रामाश्चाच्युतमालिङ्ग्य जहासास्यानुभाववित् । नगा गावो वृषा वत्सा लेभिरे परमां मुदम् ॥१६॥

अन्वयः— अस्यानुभाववित् रामः च अच्युतम् आलिङ्ग्य जहास नगा, गाव; वृषाः वत्साः परमां मुदम् लेभिरे॥१६॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव को जानने वाले बलरामजी उनसे मिलकर हँसने लगे । पर्वत, वृक्ष, गौ, बैल, बछड़े अत्यन्त आनन्दित हुए ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

नगा वृक्षा अपि पूर्वं शुष्काः सन्तः सद्य एव विरूढा इत्यर्थः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

वृक्ष जो पहले सुख गये थे वे शीघ्र ही हरे हो गये ॥१६॥

नन्दं विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः । ऊचुस्ते कालियग्रस्तो दिष्ट्या मुक्तस्तवात्मजः ॥१७॥

अन्वयः— सकलत्रकाः गुरवः विप्राः नन्दं समागत्य ऊचुः दिष्ट्या तवात्मजः कालियग्रस्तः मुक्तः ॥१७॥

अनुवाद— गुरुजन और ब्राह्मण अपनी पत्नियों के साथ आकर नन्दजी से कहे कि कालिय से ग्रस्त तुम्हारा पुत्र सौभाग्यवशात् बच गया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ते विप्रा ऊचुः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

उन ब्राह्मणों ने कहा ॥१७॥

देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे । नन्दः प्रीतमना राजन् गाः सुवर्णं तदादिशत् ॥१८॥

अन्वयः— कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे द्विजातीनां दानं देहि, राजन् तदा प्रीतमनाः नन्दःगाः सुवर्णं आदिशत् ॥१८॥

अनुवाद— (ब्राह्मणों ने कहा) श्रीकृष्ण के मृत्यु के मुख से लौटने के उपलक्ष्य में आप ब्राह्मणों को दान दें । उस समय नन्दजी प्रसन्न मन से गौओं और सुवर्ण का दान दिया ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

यशोदापि महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती । परिष्वज्याङ्कमारोप्य मुमोचाश्रुकलां मुहूः ॥१९॥

अन्वयः— महाभागा यशोदा अपि नष्टलब्धप्रजा सती अङ्कम् आरोप्य परिष्वज्य अश्रुकलां मुमोच ॥१९॥

अनुवाद— महाभाग्यवती यशोदाजी भी काल के गाल से बचे हुए भगवान् श्रीकृष्ण को अपनी गोद में बैठाकर अपनी छाती से लगा लीं और उनकी आँखों से आँसू बहा जा रहा था ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

नष्टलब्धप्रजा नष्टप्राया पुनर्लब्धा प्रजा यया सा ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

नष्ट प्राय अपनी सन्तान को यशोदाजी ने पुनः प्राप्त कर लिया ॥१९॥

तां रात्रिं तत्र राजेन्द्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्षिताः । ऊषुर्व्रजौकसो गावः कालिन्द्या उपकूलतः ॥२०॥

अन्वयः— हे राजन् ! तां रात्रिं क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्षिताः व्रजोकसः गावः तत्र कालिन्द्याः उपकूलतः ऊषुः ॥२०॥

अनुवाद— हे राजन् ! उस दिन-रात को भूख प्यास से श्रान्त हुए सभी व्रजवासी तथा गायें, वहीं यमुना के तट पर निवास किए ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

श्रमेण च कर्षिताः उपकूलतः कूलप्रान्ते ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

श्रम के कारण थके हुए तट पर ही ॥२०॥

तदा शुचिवनोद्भूतो दावाग्निः सर्वतो व्रजम् । सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुमुपचक्रमे ॥२१॥

अन्वयः— तदा शुचि वनोद्भूतः दावाग्निः निशीथे सर्वतः सुप्तं आवृत्य प्रदग्धुम् उपचक्रमे ॥२१॥

अनुवाद— उस समय ग्रीष्म ऋतु में आधी रात को वन में आग लग गयी और वह वनाग्नि व्रजवासियों को चारो ओर से घेर कर जलाने लगी ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

तत उत्थाय संभ्रान्ता दह्यमाना व्रजौकसः । कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामनुजमीश्वरम् ॥२२॥

अन्वयः— ततः संभ्रान्ता उत्थाय, दह्यमानाः व्रजौकसः माया मनुजम् ईश्वरं कृष्णं शरणं ययुः ॥२२॥

अनुवाद—उसके पश्चात् घबराये हुए वे सब व्रजवासी उठकर खड़े हो गये और लीला मनुष्य भगवान् श्रीकृष्ण की सबों ने शरणागति की ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

कृष्ण कृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम । एष घोरतमो वह्निस्तावकान् ग्रसते हि नः ॥२३॥

अन्वयः— हे कृष्ण हे कृष्ण हे महाभाग अमितविक्रम राम ! एषः घोर तमो बह्निः तावकान् नः ग्रसते ॥२३॥

अनुवाद— श्रीकृष्ण हे अमित बल पराक्रम सम्पन्न राम यह भयङ्कर अग्नि तुम्हारे संबन्धी हम सबों को जला देना चाहती है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

सुदुस्तरान्नः स्वान्पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो । न शक्नुमस्त्वच्चरणं संत्यक्तुमकुतो भयम् ॥२४॥

अन्वयः— प्रभो सुदुस्तरात् स्वान् सुहृदः कालाग्नेः नः पाहि अकुतोभयं त्वच्चरणं संत्यक्तुम् न शक्नुमः ॥२४॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप इस भयङ्कर कालाग्नि से हम लोगों की रक्षा कीजिये । हमलोग मृत्यु से नहीं डरते हैं किन्तु अकुतोभय आपके चरणों को हमलोग नहीं छोड़ना चाहते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

कालाग्नेर्मृत्युरूपादेन । न मृत्योर्बिभीमः किंतु त्वच्चरणवियोगादित्याहुः-न शक्नुम इति ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

कालाग्नेः अर्थात् मृत्यु रूप अग्नि से हमलोग नहीं डरते हैं किन्तु आपके चरणों के वियोग से हमलोग डरते हैं । इसी बात को उन लोगों ने **नशक्नुमः इत्यादि** से कहा है ।।२४।।

इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः । तमग्निमपिबत्तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ।।२५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे दावाग्निमोचनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

अन्वयः— अनन्तशक्ति धृक् अनन्तः जगदीश्वर इत्थं स्वजन वैक्लव्यं निरीक्ष्य तम् तीव्रं अग्निम् अपिबत् ।।२५।।

अनुवाद— श्रीभगवान् अनन्त शक्ति सम्पन्न होने के कारण जगत् के स्वामी और अनन्त हैं । उन्होंने अपने लोगों की इस प्रकार की व्याकुलता को देखकर उस भयङ्कर अग्नि को पी लिया ।।२५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दशवे स्कन्ध के पूर्वार्ध के दावाग्निमोचन नामक सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

विमोहानहिदण्डेन ततः स्वं शरणागतान् । गोपानपादनन्तोऽसावनन्तवनवह्नितः ।।१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

सर्प को दण्ड के कारण जिन सबों का मोह समाप्त हो गया था उसके पश्चात् अपने शरणागतों की श्रीभगवान् ने अनन्त वनाग्नि से गोपों की रक्षा की ।।१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका टीका के सत्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१७।।

* * *

अठारहवाँ अध्याय

प्रलम्बासुर का वध

श्रीशुक उवाच

अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः । अनुगीयमानो न्यविशद्व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥१॥

अन्वयः— अथ मुदितात्मभिः ज्ञातिभिः परिवृतः अनुगीयमानः कृष्णः गोकुलमण्डितम् व्रजं न्यविशत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् उसके पश्चात् आनन्द भरे स्वजन संबन्धियों से घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण जिनके पीछे-पीछे गोप उनका यशोगान कर रहे थे गौ समुदाय से मण्डित व्रज में प्रवेश किए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टादशे ततो ग्रीष्मे वसन्तगुणलक्षिते । अघातयद्बलेनालं प्रलम्बं लीलया हरिः । कृत्वा नृत्यं फणाग्रेषु कालियस्य सकौतुकम् । बलं प्रलम्बतुङ्गांसमारोहयदरातिहा ॥१॥

भाव प्रकाशिका

अठारहवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि कालिय मर्दन के पश्चात् वसन्त गुण से सम्पन्न ग्रीष्म ऋतु में श्रीभगवान् बलरामजी के द्वारा खेल-खेल में प्रलम्बासुर को मरवा दिए । कालिय नाग के फणों के अग्रभाग में कौतुक पूर्वक नृत्य करके शत्रुओं को मारने वाले भगवान् श्रीकृष्ण अलम्बासुर के ऊँची गर्दन पर बलरामजी को चढा दिए ॥१॥

व्रजे विक्रीडतोरेवं गोपालच्छद्ममायया । ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयाञ्छरीरिणाम् ॥२॥

अन्वयः— एवं व्रजे गोपालछद्ममायया विक्रीडितोः शरीरिणाम् नातिप्रेयान् ग्रीष्मो नामर्तुः अभवत् ॥२॥

अनुवाद— इस तरह अपनी योगमाया से गोपाल का शरीर धारण करके व्रज में भगवान् श्रीकृष्ण क्रीडा करते रहे, उसी समय शरीर धारियों को बहुत अच्छा नहीं लगने वाली ग्रीष्म ऋतु आ गयी ॥२॥

भावार्थ दीपिका

गोपालच्छद्ममायया गोपालनमेव च्छद्म यस्यां तया मायया ॥२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की योगमाया का गोपलन ही बहाना था ॥२॥

स च वृन्दावनगुणैर्वसन्त इव लक्षितः । यत्रास्ते भगवान्साक्षाद्रामेण सह केशवः ॥३॥

अन्वयः— यत्र साक्षात् भगवान् केशवः रामेण सह आस्ते स च वृन्दवनगुणै वसन्त इवलक्षितः ॥३॥

अनुवाद— जहाँपर साक्षात् भगवान् केशव बलरामजी के साथ निवास करते थे वह वृन्दावन अपने गुणों के द्वारा वसन्त के समान प्रतीत होता था ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

यत्र निर्झरनिर्ह्लादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम् । शश्वत्तच्छीकरर्जीषद्रुममण्डलमण्डितम् ॥४॥

अन्वयः— यत्र निर्झरनिह्रद निवृत्त स्वनझिल्लिकम् शश्वत्तच्छीकरर्जीषद्रुममण्डलमण्डितम् ॥४॥

अनुवाद— उस वृन्दावन में झरनों की झर-झर ध्वनि से झिगुरों का तीक्ष्ण स्वर छिप गया था । उन झरनों से सदैव निकलने वाली जलकण की फूहियों से वहाँ की सदैव बने रहने वाली वृक्षीं के समूह की हरियाली से वह वृन्दावन अलंकृत था ॥४॥

भावार्थ दीपिका

वसन्तसाम्यमाह चतुर्भिः-यत्र ग्रीष्मेऽपि निर्झराणां निर्ह्लादिन घोषेण निवृत्तस्वनाच्छन्नध्वनयो झिल्लिकाः कठोरध्वनिसूक्ष्मकीटा यस्मिंस्तथाभूतं वृन्दावनं भवति । किंच शश्वत्तेषां निर्झराणां शीकरैरम्बुकणैर्ऋजीषाः स्निग्धा ये द्रुमास्तेषां मण्डलैर्मण्डितम्॥४॥

भाव प्रकाशिका

चार श्लोकों से वृन्दावन की वसन्त से समता बतलाते हैं जिस वृन्दावन में ग्रीष्मऋतु में भी झरनों की ध्वनि से झिंगुरों की तीक्ष्ण ध्वनि छिप जाती थी ऐसा वृन्दावन था । किञ्च उन झरनों के जल कणों की फूहियों से वहाँ के वृक्ष सदैव हरे बने रहते थे । उन वृक्ष समूह से मण्डित था वृन्दावन ॥४॥

सरित्सरः प्रस्रवणोर्मिवायुना कह्लारकञ्जोत्पलरेणुहारिणा ।
न विद्यते यत्र वनौकसां दवो निदाघवह्न्यर्कभवोऽतिशाद्वले ॥५॥

अन्वयः— कह्लारकंजोत्पलरेणुहारिणा सरित्सरः प्रस्रवर्णोर्मि वायुना यत्र वनौकसां दवो निदाघवहून्यर्कभवः न विद्यते॥५॥

अनुवाद— विकसित कह्लार कमल नीलकमल के पराग को लेकर बहने वाली नदी सरोवर एवं झरनों की लहरों का स्पर्श करके चलने वाली वायु के कारण वृन्दावन में रहने वाले लोगों को वहाँ की हरी-हरी घासों से युक्त भूमि पर गर्मी तथा दावाग्नि का संताप नहीं सहना पड़ता था ।।५।।

भावार्थ दीपिका

यत्र ग्रीष्मे वने वा । निदाघो ग्रीष्मस्तेन तत्कालीनवह्न्यर्काभ्यां च भवति यो दवस्तापः । अतिशाद्वलेऽतिहरिततृणाकीर्णे। यद्वा अतिक्रान्तशाद्वलेऽपि स्थाने ।।५।।

भाव प्रकाशिका

जिस ग्रीष्म अथवा वन में ग्रीष्म कालीन अग्नि तथा सूर्य से उत्पन्न सन्ताप । अत्यन्त हरे घासों से भरे। अथवा जहाँ की भूमि हरी नहीं थी वहाँ भी ।।५।।

अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः ।
न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्वणा भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ।।६।।

अन्वयः— अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिः समन्ततः द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः यत्र चण्डांशुकरा विषोल्बणा भुवः शाद्वलितं रसं च न गृह्णते ।।६।।

अनुवाद— अगाध जल वाली नदी की तटों को चूम जाया करती थी । तटों से टकराकर उनको स्वच्छ बना देती थी । उसके कारण आस-पास की भूमि सदा गीली बनी रहती थी । सूर्य की अत्यन्त उग्र तथा तीखी किरणें भी वहाँ की भूमि तथा हरी भरी घास को नहीं सुखा पाती थीं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

ननु शाद्वलमेव कुतस्त्वं तत्राह-अगाधेति । अगाधानि तोयानि यासां तासां ह्रदिनीनां तटस्पर्शिभिरूर्मिभिः पुलिनैः सह द्रवत्पुरीषं पङ्को यस्यास्तस्या भुवः रसं शाद्वलितं शाद्वलरूपतां च विषवदुल्बणा अपि सूर्यरश्मयो न गृह्णते न हरन्ति ।।६।।

भाव प्रकाशिका

वहाँ की भूमि हरी-हरी घासों से युक्त कैसे रहती थी ? इस पर कहते हैं जिन नदियों में अगाध जल बना रहता था, उन नदियों की लहरियाँ तटका स्पर्श करती थीं उसके कारण वहाँ की भूमि गीली तथा हरी बनी रहती। सूर्य की तीक्ष्ण किरणे भी वहाँ की भूमि तथा घासों को नहीं सूखा पाती थी ।।६।।

वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् । गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ।।७।।

अन्वयः— वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् गायन् मयूरभ्रमरं, कूजत्कोकिलसारसम् ।।७।।

अनुवाद— वन के समस्त वृक्ष विकसित पुष्पों से भर गये थे, उस अत्यन्त सुन्दर वन में कहीं पर पक्षी चहक रहे थे तो कहीं पर मृग दौड़ रहे थे, कहीं पर मोर बोल रहे थे तो कहीं पर पुष्पपरागों को पान करके मदमत्त भौंरे गुनगुना रहे थे । कहीं पर कोयलों की कुहु-कुहू की ध्वनि सुनाई पड़ रही थी तो कहीं पर सारसों की आवाज सुनाई पड़ती थी । उस वन में श्रीभगवान् प्रवेश किए ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तद्वनम्। नदन्तश्चित्रा मृगा द्विजाश्च यस्मिन्। गायन्तो मयूरा भ्रमराश्च यस्मिन्। कूजन्तः कोकिलाः सारसाश्च यस्मिंस्तदविशत्।।७।।

भाव प्रकाशिका

वह वन ऐसा था कि उसमें तरह-तरह के मृग और पक्षी विद्यमान थे, मोरों तथा भैरों की मधुर ध्वनि सुनाई ती थी । कही पर कोयलों और सारस पक्षियों की कूजन सुनाई दे रही थी ।।७।।

क्रीडिष्यमाणस्तत्कृष्णो भगवान्बलसंयुतः । वेणुं विरणयन् गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥८॥

अन्वयः— बल संयुतः कीडिष्यमाणः भगवान् कृष्णः वेणुं विरणयन् गोपैर्गोधनैः संवृतः तद् वनं अविशत् ॥८॥

अनुवाद— बलरामजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण वंशी को बजाते हुए गोपों के साथ उस मनोहर वन में क्रीडा करने की इच्छा से प्रवेश कर गये ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

प्रवालबर्हस्तबकस्रग्धातुकृतभूषणाः । रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥९॥

अन्वयः— रामकृष्णादयः गोपा प्रवालस्तवकस्रग्धातुकृतभूषणाः ननृतुः युयुधुः जगु ॥९॥

अनुवाद— राम, श्याम तथा सभी गोपगण नव पल्लवों, मयूर पङ्खों, गुच्छों, सुन्दर-सुन्दर पुष्पों के हारों तथा गेरु आदि से अपने को सजाकर कोई आनन्द मग्न होकर नाचने लगा, तो कोई कुश्ती लड़ने लगा तो कोई गीत गाने लगा ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन् । वेणुपाणितलैः शृङ्गैः प्रशशंसुरथापरे ॥१०॥

अन्वयः— कृष्णस्यनृत्यतः केचित् जगु, केचित् वेणुपाणितलैः शृङ्गैः अवादयन्, अथ अपरे प्रशशंसुः ॥१०॥

अनुवाद— जब भगवान् श्रीकृष्ण नाचने लगते तब कोई तो गाने लगता, कोई बासुरी तो कोई ताली और कोई शृङ्गी बजाने लगता तो कोई वाह वाह कहकर उनकी प्रशंसा करने लगता था ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

गोपजातिप्रतिच्छन्ना देवा गोपालरूपिणः । ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥११॥

अन्वयः— हे नृप नटा नटं इव गोप जाति प्रतिच्छन्ना गोपाल रूपिणः देवाः कृष्णरामौ इडिरे ॥११॥

अनुवाद— राजन् जिस तरह नट अपने नायक नट की प्रशंसा करते हैं उसी तरह देवता भी गोपाल का रूप धारण करके वहाँ आते तथा बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते थे ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

भ्रामणैर्लङ्घनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः । चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥१२॥

अन्वयः— क्वाचित् काकपक्षधरौ भ्रामणैः लङ्घनैः क्षेपैः आस्फोटनविकर्षणैः नियुद्धे चिक्रीडितुः ॥१२॥

अनुवाद— कहीं पर श्याम सुन्दर बलरामजी जो घुंघराले काले केशों वाले थे वे भ्रामण (घुमरी परता का खेल) लङ्घन (ऊँची कूद कूदने का खेल) क्षेपैः (होड़ लगाकर ढेला फेंकने का खेल) आस्फोटन विकर्षणैः (ताल ठोक कर रस्सा कसी करने का खेल) तथा कभी एक दूसरे से कुश्ती लड़ने का खेल खेलते थे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

काकपक्षाश्चूडाकरणात्प्राकतनकेशाः । भ्रामणादिप्रकारैर्नियुद्धेन बाहुयुद्धेन चिक्रीडतुः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

चूडाकरण संस्कार से पहले के केशों को काक पक्ष शब्द से अभिहित किया जाता है । एक दूसरे को घुमाना हाथ पकड़कर बाहुयुद्ध अर्थात् कुश्ती के द्वारा बाल कीडा किया करते थे ॥१२॥

क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम् । शशंसतुर्महाराज साधु साध्विति वादिनौ ॥१३॥

अन्वयः— क्वचित् अन्येषु नृत्यत्सु च स्वयं गायकौ वादकौ महाराज साधु साध्वित वादिनौ शशंसतुः ॥१३॥

अनुवाद— जब कभी दूसरे गवाल बाल नाचने लगते थे तो श्रीकृष्ण भगवान् तथा बलरामजी गाने लगते थे और बाजा बजाने लगते थे तथा बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहकर वे दोनों उन सबों की प्रशंसा करने लगते थे॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नही हैं ।

क्वचिद्बिल्वैः क्वचित्कुम्भैः क्व चामलकमुष्टिभिः । अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया ॥१४॥

अन्वयः— क्वचित् बिल्वैः क्वचित् कुम्भैः क्वचित् च आमलक मुष्टिभिः अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः क्वचिन्मृगखगेहया॥१४॥

अनुवाद— कभी वे विल्व के फल को एक दूसरे पर या जायफल के फल को या आँवले के फल को हाथ में लेकर एक दूसरे पर फेंकते थे तो कभी-कभी एक दूसरे की आँख बन्द करके छिप जाने का खेल खेलते थे, तो कभी वे पशुओं और पक्षियों की चेष्टाओं का अनुकरण करते थे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

कुम्भैः कुम्भवृक्षफलैः अस्पृश्यत्वं नेत्रबन्धश्च तदाद्यैः । मृगाणां खगानां च चेष्टया ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

कुम्भैः अर्थात् जायफल । आँख बन्द करके आँख मिचौनी का खेल, इत्यादि पशुओं तथा पक्षियों की चेष्टाओं से ॥१४॥

क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरूपहासकैः । कदाचित्स्पन्दोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया ॥१५॥

अन्वयः— क्वचित् च दर्दुरप्लावैः विविधैः उपहासकैः क्वचित् स्पन्दोलिकया कर्हिचित् नृपचेष्टया च ॥१५॥

अनुवाद— कहीं पर वे मण्डूकप्लुति का खेल खेलते थे, तो कही-कहीं पर अनेक प्रकार के मुँह बनाकर एक दूसरे का मजाक उड़ाते थे, कभी-कभी वृक्षों की डालियों पर रस्सी डालकर झूला झूलने का खेल खेलते थे तो कहीं पर वे राजा की नकल करते थे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

दर्दुरप्लावैर्मण्डूकप्लुतिभिः । स्पृन्दोलिकया दोलालम्बनेन । नृपाणामिव लीलया ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

दर्दुरप्लावैः अर्थात् मण्डूकप्लुतिकाखेल, स्पन्दोलिकया अर्थात् झूला झूलने का खेल, तथा कहीं पर राज की नकल करने का खेल ॥१५॥

एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने । नद्याद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरस्सु च ॥१६॥

अन्वयः— एवं तौ नद्याद्रिणिकुञ्जेषु काननेषु सरस्सु व च लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिः वने चेरतुः ॥१६॥

अनुवाद— इस तरह से बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण वृन्दावन की नदी, पर्वत, घाटी कुञ्ज वन एवं सरोवरों में उन सभी खेलों को खेलते थे जो सामान्य बच्चे खेला करते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

नद्योऽद्रिद्रोण्यः कुञ्जानि च एतेषु ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

नदी, पर्वत, घाटी और कुञ्जों में ॥१६॥

पशूंश्चारयतो गोपैस्तद्वने रामकृष्णयोः । गोपरूपी प्रलम्बोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥१७॥

अन्वयः— राम कृष्णयोः गोपैः तद्वने पशून् चारयतो असुरः प्रलम्बः तज्जिहीर्षया गोपरूपः अगात् ॥१७॥

अनुवाद— गोप बालकों के साथ जब बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण उस वन में गायों को चरा रहे थे उस समय गोप का रूप धारण करके उन दोनों का हरण करने की इच्छा से प्रलम्ब नामक असुर आया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

चारयतोः सतोः तद्वने तस्मिन्वने । तयोर्जिहीर्षया ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

चराते समय उस वन में बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण का हरण करने की इच्छा से आया ॥१७॥

तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान्सर्वदर्शनः । अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन् ॥१८॥

अन्वयः— दाशार्हः भगवान् सर्वदर्शनः तं विद्वान् अपि तस्य वधं विचिन्तयन् तत्सख्यं अन्वमोदत ॥१८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् सर्वज्ञ हैं वे उसको पहचानते भी थे किन्तु उसके वध का विचार करते हुए उसकी मित्रता स्वीकार कर लिए ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

तत्रोपाहूय गोपालान्कृष्णः प्राह विहारवित् । हे गोपा विहरिष्यामो द्वन्द्वीभूय यथायथम् ॥१९॥

अन्वयः— तत्र विहारवित् कृष्णः गोपालान् उपाहूयप्राह तपोपायथायथम् द्वन्द्वीभूय विहरिष्यामः ॥१९॥

अनुवाद— वही खेलों के जानकार भगवान् श्रीकृष्ण सभी गोपालों को अपने पास बुलाकर कहे मित्रों हमलोग आज अपने को दो दलों में बाँटकर खेल खेलेंगे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

यथायथं वयोबलाद्यनुरूपं द्वन्द्वीभूय ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

उचित रीति से अवस्था और बल के अनुसार दो दलों में बँटकर ॥१९॥

तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ । कृष्णसंघट्टिनः केचिदासन्रामस्य चापरे ॥२०॥

अन्वयः— तत्र गोपाः रामजनार्दनौ परिवृढौचक्रुः । तत्र केचित् कृष्णस्य संघट्टिन आसन् अपरे च रामस्य ॥२०॥

अनुवाद— उस खेल में ग्वाल बालों ने बलरामजी को और भगवान् श्रीकृष्ण को नायक बनाया और कुछ ग्वाल बाल भगवान् श्रीकृष्ण के साथ हो लिए और कुछ बलरामजी के साथ ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

परिवृढौ नायकौ । तत्र केचन कृष्णसंघट्टिनः कृष्णपक्षीयाः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

परिवृढौ अर्थात् नायक । उनमें से कुछ ग्वाल बाल भगवान् श्रीकृष्ण के पक्ष में हो गये ॥२०॥

आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः । यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिताः ॥२१॥

अन्वयः— वाह्य वाहक लक्षणाः विविधाः क्रीडा चेरुः यत्र जेतारः आरोहन्ति पराजिताः वहन्ति च ॥२१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उन लोगों ने बहुत से ऐसे खेलों को खेले जिसमें जितने वाले को हराने वाला अपनी पीठ पर चढाकर एक निर्दिष्ट स्थान तक ले जाता था ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

वहन्तो वाह्यमानाश्च चारयन्तश्च गोधनम् । भाण्डीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥२२॥

अन्वयः— वहन्तः वाह्यमानाः च गोधनम् चारयन्तः कृष्णपुरोगमाः भाण्डीरकं नाम वटं जग्मुः ॥२२॥

अनुवाद— इस तरह एक दूसरे के पीठ पर चढते चढाते श्रीकृष्ण आदि ग्वाल बाल गौएँ चराते हुए भाण्डीर नामक वट के पास पहुँचे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

वाह्यमानाः पृष्ठेनोह्यमानाः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

पीठ पर चढ़ाकर ढोते हुए ॥२२॥

रामसंघट्टिनो यर्हि श्रीदामवृषभादयः । क्रीडायां जयिनस्तांस्तानूहुः कृष्णादयो नृप ॥२३॥

अन्वयः— राम संघट्टिनः यर्हि श्रीदामवृषभादयः क्रीडायां जयिनः हे नृप तान् कृष्णादयः ऊहुः ॥२३॥

अनुवाद— जब बलरामजी के पक्ष वाले श्रीदामा वृषसेन इत्यादि विजयी हो गये उस समय हे परीक्षित् उस समय श्रीकृष्ण इत्यादि श्रीबलरामजी को पीठ पर ढोने का काम किए ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः । वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम् ॥२४॥

अन्वयः— पराजितः भगवान् कृष्णः श्रीदामानं भद्रसेनस्तु वृषभं प्रलम्बः रोहिणी सुतम् उवाह ॥२४॥

अनुवाद— हारे हुए भगवान् श्रीकृष्ण श्रीदामा को, भद्रसेन वृषभ को, ओर प्रलम्बासुर रोहिणी माता के पुत्र श्रीबलरामजी को अपनी पीठ पर चढाकर वहन करने का काम किए ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुङ्गवः । वहन्द्रुततरं प्रागादवरोहणतः परम् ॥२५॥

अन्वयः— दानवपुंगवः कृष्णं अविषह्यं मन्यमानः वहनद्रुततरं प्रगात् अवरोहणतः परम् ॥२५॥

अनुवाद— दानव श्रेष्ठ प्रलम्बासुर यह मानकर कि मैं कृष्ण को नहीं वहन कर सकता हूँ, इसलिए बलरामजी को अपनी पीठ पर चढाकर बड़ी तेजी से पीठ पर से उतरने के स्थान से आगे निकल गया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

कृष्णदृष्टिवञ्चनाय अवरुह्यतेऽस्मिन्नित्यवरोहणं मर्यादा ततः परं दूरमगात् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की दृष्टि को धोखा देने के लिए निश्चित स्थान से दूर निकल गया ॥२५॥

तमुद्वहन्धरणिधरेन्द्रगौरवं महासुरो विगतरयो निजं वपुः ।
स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ तडिद्द्युमानुडुपतिवाडिवाम्बुदः ॥२६॥

अन्वयः— धरणि धरेन्द्रगौरवं तमुद्वहन् महासुरः विगतरयः सः निजं वपुः आस्थितः पुरटपरिच्छदः तडिद्द्युमान् उडुपतिवाट् अम्बुद इव बभौ ॥२६॥

अनुवाद— पर्वत के समान भारी बलरामजी को अपनी पीठ पर ले जाता हुआ प्रलम्बासुर अधिक दूर नही ले जा सका उसका वेग समाप्त हो गया । उस समय वह अपने (दैत्य के) रूप को धारण कर लिया । उसके काले शरीर पर सुवर्ण के आभूषण चमक रहे थे और गौर सुन्दर बलरामजी को धारण करने से उसकी ऐसी शोभा हो रही थी जैसे विद्युत् से युक्त काला मेघ चन्द्रमा को धारण किए हुए हो ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

धरणिधरेन्द्रवद्गौरवं यस्य तन्निजमासुरं वपुरास्थितः । पुरटपरिच्छदः सुवर्णालंकारः । तडिद्द्युमान्विद्युद्दीप्तिमानित्यलंकारोपमा। उडुपतिवाडिति रामोपमा । उडुपतिं वहतीत्युडुपतिवाट् । यदि यथोचितस्थानेषु स्थिता विद्युतो भवन्त्युपरि चोडुपतिस्तदा सोऽम्बुदो यथा भाति तद्वद्बभावित्यर्थः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

पर्वत राज के समान गौरव सम्पन्न बलरामजी, **तन्निज वपु रास्थितः** अर्थात् अपना (दैत्य का) शरीर धारण कर लिया । **पुरटपरिच्छदः** अर्थात् सोने के गहने । तडिद्द्युमान विद्युत् के समान देदीप्यमान यह अलंकार की उपमा दी गयी है । उडुपतिवाट् चन्द्रमा को वहन करने वाले, यहाँ पर बलरामजी को चन्द्रमा से उपमा दी गयी है । यदि अपने उचित स्थान पर स्थित बिजलियाँ अर्थात् मेघ के नीचले भाग में बिजली चमक रही हो और उसके ऊपर चन्द्रमा विद्यमान हों ऐसे काले काले सुवर्णालङ्कार से अलंकृत अघासुर के ऊपर बैठे हुए बलरामजी की शोभा हो रही थी ॥२६॥

निरीक्ष्य तद्वपुरलमम्बरे चरत्प्रदीप्तदृग्भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ।
ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुण्डलत्विषाद्भुतं हलधर ईषदत्रसत् ॥२७॥

अन्वयः— प्रदीप्तदृग् भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुण्डलत्विषाद्भुतं अम्बरे चरत् तद वपुः निरीक्ष्य हलधरः ईषदत्रसत् ।।२७।।

अनुवाद— उसकी आँखें आग की तरह धधक रही थीं और दाँत भौहों तक पहुँचे भयानक थे, जलती हुई अग्नि के समान उसके लाल-लाल केश विखरे हुए थे कड़ों किरीट और कुण्डल की कान्ति अद्भुत लगने वाले उस भयानक दैत्य के आकाश में तेजी से चलने से उस दैत्य के शरीर को देखकर बलरामजी थोड़ा सा डर गये ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अलमतिवेगेन । प्रदीप्ते दृशौ यस्मिन्वपुषि तत् । भ्रुकुटितटसँल्लग्ना उग्रा दंष्ट्रा यस्मिंस्तत् । प्रदीप्तदृक् भ्रुकुटितटं यस्मिन्, उग्रा दंष्ट्रा यस्मिंस्तच्च तच्चेति वा । ज्वलन्त्यः शिखाः केशा यस्मिंस्तत् ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

अलमति अर्थात् अत्यन्त वेग पूर्वक प्रदीप्त दृक् अर्थात् जिसके आँखे जलती हुई अग्नि के समान थीं उसके भयङ्कर दाँत भौहों को छू रहे थे । जिसकी अग्नि के समान जलती हुई आखों वाले तथा जिसके बड़े-बड़े दाँत भौहों तक पहुँचे थे, इस प्रकार के उस दैत्य को, तथा जिसके लाल-लाल केश जलती अगिन के समान विखरे हुए थे ॥२७॥

अथागतस्मृतिरभयो रिपुं बलो विहाय सार्थमिव हरन्तमात्मनः ।
रुषाहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ॥२८॥

अन्वयः— अथ आगत स्मृतिः अभयः बलः सार्थं विहाय आत्मनःहरन्तं रिपुं सुराधिपः वज्ररंहसा गिरिमिव रुषा दृढेन मुष्टिना शिरसि अहनत् ।।२८।।

अनुवाद— किन्तु दूसरे क्षण ही अपने स्वरूप के याद आ जाने से बलरामजी निर्भय हो गये । वे देखे कि जैसे कोई चोर दूसरे का धन चुराकर ले जा रहा हो उसी तरह यह शत्रु मुझको चुराकर आकाश मार्ग से ले जा रहा है । उन्होंने क्रोध करके एक मुक्का कसकर उसके शिर पर मारा । यह उसी तरह से मारे जैसे अपने वज्र के वेग से इन्द्र ने पर्वतों पर प्रहार किया था ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

आगतस्मृतिरभय इवात्मनः सार्थं गोपसमूहं विहाय हरन्तं रिपुमहनत् । यद्वा विहायसाऽऽकाशमार्गेणात्मनः प्राप्तमर्थमिव हरन्तमिति । वज्ररंहसा वज्रवेगेन मुष्टिना ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

अपने स्वरूप की याद आते ही वे अभय हो गये । अपने को गोप समूह को छोड़कर हरण करते हुए शत्रु को बलरामजी मारे । अथवा आकाश मार्ग से अपने प्राप्त अर्थ का हरण करते हुए चोर के समान । वज्र रंहसा अर्थात् व्रज के वेग वाले अपने मुक्का से मारे ॥२८॥

स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको मुखाद्वमन्रुधिरमपस्मृतोऽसुरः ।
महारवं व्यसुरपतत्समीरयन् गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ॥२९॥

अन्वयः— आहतः सः असुरः सपदि विशीर्णमस्तकः मुखाद्रुधिरम् वमन् अपस्मृतः महारवम् ईरयन् मघवतः आयुधाहतः गिरिमिव व्यसुः अपतत् ॥२९॥

अनुवाद— बलराम के द्वारा मुक्के का प्रहार करते ही उस असुर का सिर चूर-चूर हो गया वह मुख से रक्त वमन करने लगा । उसकी चेतना समाप्त हो गयी । वह जोर से भयङ्कर शब्द करता हुआ उसी तरह पृथिवी पर गिर पड़ा जैसे इन्द्र के वज्र के प्रहार से कोई पर्वत गिर पड़ा हो ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अपस्मृतो गतस्मृतिः । महारवं समीरयन् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

उसकी चेतना समाप्त हो गयी । जोर से शब्द करता हुआ ॥२९॥

दृष्ट्वा प्रलम्बं निहतं बलेन बलशालिना । गोपाः सुविस्मिता आसन्साधु साध्विति वादिनः ॥३०॥

अन्वयः— बलशालिना बलेन प्रलम्बं निहतं दृष्ट्वा साधु साध्वितिवादिनः गोपाः सुविस्मिताः आसन् ॥३०॥

अनुवाद— महाबलवान् बलरामजी के द्वारा मारे गये प्रलम्बासुर को देखकर आश्चर्यित गोपों ने कहा बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

आशिषोऽभिगृणन्तस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम् । प्रेत्यागतमिवालिङ्ग्य प्रेमविह्वलचेतसः ॥३१॥

अन्वयः— प्रेम विह्वल चेतसः ते तं आशिषः अभिगृणन्तः प्रेत्यागतमिवालिङ्ग्य तदर्हणम् प्रशशंसुः ॥३१॥

अनुवाद— समस्त ग्वाल बालों का चित्त प्रेम से विह्वल हो गया था । वे उनके लिए शुभकामनाओं की वर्षा कर रहे थे, जैसे वे मरकर लौटे हों सबों ने उनका प्रेम पूर्वक आलिङ्गन किया और उनकी सबों ने प्रशंसा की, क्योंकि वे प्रशंसा के योग्य थे ही ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तदर्हणं प्रशंसार्हम् ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

तदर्हणम् अर्थात् प्रशंसा के योग्य ।।३१।।

पापे प्रलम्बे निहते देवाः परमनिर्वृताः । अभ्यवर्षन्बलं माल्यैः शशंसुः साधु साध्विति ।।३२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे प्रलम्बवधो नामाष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

अन्वयः— पापे प्रलम्बेनिहते परम निर्वृताः देवाः बलं माल्यैः अभ्यवर्षन् साधु साधु इति प्रशशंसुः ।।३२।।

अनुवाद— पापी प्रलम्ब के मरते देवता अत्यन्त सुखी हो गये वे बलरामजी पर फूलों की वर्षा किए और बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहकर उनकी प्रशंसा किए ।।३२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थ दीपिकायामष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्द्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के अठारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१८।।

उन्नीसवाँ अध्याय

गायों और गोपों की दावानल से रक्षा

श्रीशुक उवाच

क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः । स्वैरं चरन्त्यो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम् ॥१॥

अन्वयः— गोपेषु क्रीडासक्तेषु दूरचारिणीः तद्गावः स्वैरं चरन्त्यः तृणलोभेन गह्वरं विविशुः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जब सभी गोप खेलकूद में लग गये उस समय उनकी गाये बेरोकटोक चरती हुई बहुत दूर निकल गयीं और हरी-हरी घास के लोभ में एक गहन वन में प्रवेश कर गयीं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ऊनविंशे निविष्टं तु गोपगोकुलमच्युतः । मुञ्जारण्यमरण्याग्ने ररक्ष तन्निपानतः । दूरचारिणीः दूरचारिण्यः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उन्नीसवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि मुञ्जाटवी में प्रवेश किए हुए गोपों और गौ समुदाय की रक्षा भगवान् अच्युत ने दावाग्नि को पीकर दावाग्नि से रक्षा की । दूरचारिणीः अर्थात् दूर गयी हुई ॥१॥

अजा गावो महिष्यश्च निर्विशन्त्यो वनाद्वनम् । इषीकाटवीं निर्विविशुः क्रन्दन्त्यो दावतर्षिताः ॥२॥

अन्वयः— अजा गावो महिष्यश्च वनाद्वनम् निविशन्त्यः दावतर्षिताः क्रन्दन्त्यः इषीकाटवीं निर्विविशुः ॥२॥

अनुवाद— बकरियाँ, गायें और भैंसे एक वन से दूसरे वन में प्रवेश करती हुई आगे बढ़ गयीं और गर्मी के सन्ताप से सन्तप्त होकर वे डकारती हुई मुञ्जाटवी में प्रवेश कर गयीं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

। दावेन तर्षितास्तृषिताः क्रन्दन्त्य इषीकाटवीमत्युच्छ्रितघनतृणविशेषारण्यं निर्विविशुः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

में प्रवेश करती हुई धूप से संतप्त होकर प्यासी होने के कारण डकारती हुई मुञ्जाटवी

कृष्णरामादयस्तदा । जातानुतापा न विदुर्विचिन्वन्तो गवां गतिम् ।।३।।

रामादयः ते गोपाः पशून् अपश्यन्त जातानुतापाः विचिन्वन्तः गवां गतिं न विदुः ।।३।।

। श्रीकृष्ण भगवान बलरामजी तथा जितने ग्वाल बाल थे वे अपने पशुओं के नहीं दिखायी ताने लगे तथा बहुत अधिक अन्वेषण करके वे अपनी गायों का पता नहीं पाये ।।३।।

भावार्थ दीपिका

न तु तौ ।।३।।

भाव प्रकाशिका

रामजी जिनकी आदि थे वे गोपगण पछताने लगे न कि भगवान कृष्ण और बलरामजी।।३।।

दैरङ्कितैर्गवाम् । मार्गमन्वगमन्सर्वे नष्टाजीव्या विचेतसः ।।४।।

ः विचेतसः सर्वे तत्खुरदच्छिन्नैः तृणैः अङ्कितैः गोष्पदैः गवाम् मार्गम् अन्वगमन् ।।४।।

ीविका के साधन गौओं के भूल जाने से अचेत से बने हुए वे सब गायों के खुर तथा सों तथा गायों के खुरों के चिह्नों से उनका पता लगाते हुए वे सब आगे बढे ।।४।।

भावार्थ दीपिका

च्छिन्नैस्तृणैर्गोष्पदैरङ्कितैश्च भूप्रदेशैस्तृणैर्वा गवां मार्गमन्वगमन्। नष्टाजीव्या गतजीविकासाधनः।।४।।

भाव प्रकाशिका

ाँतों से कटे हुए घासों तथा पृथिवी पर पड़े हुए उनके खुरों के चिह्नों तथा तृणों से करने लगे । अपनी जीविका के साधन गायों के भूल जाने से वे अचेत हो गये थे।।४।।

न्दमानं स्वगोधनम् । संप्राप्य तृषिताः श्रान्तास्ततस्ते संन्यवर्तयन् ।।५।।

ं भ्रष्टमार्गं क्रन्दमानम् स्वगोधन संप्राप्य तृषिताः श्रान्ताः ते संन्यवर्तयन् ।।५।।

में आकर जो अपना मार्ग भूल गयी थीं तथा जो डकार रही थी उन गायों को प्राप्त वे गोपगण उन गायों को लौटाने की चेष्टा करने लगे ।।५।।

भावार्थ दीपिका

काटवी ।।५।।

भाव प्रकाशिका

ो इषीकाटवी कहलाती है ।।५।।

घगम्भीरया गिरा । स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ।।६।।

मेघगम्भीरया गिरा आहूताः स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रहर्षिताः प्रतिनेदुः ।।६।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के द्वारा मेघ के समान गम्भीर वाणी से बुलाये जाने पर वे अपने नाम की ध्वनि को सुनकर प्रसन्न हो गयीं और डकारने लगीं ।।६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६।।

ततः समन्ताद्वनधूमकेतुर्यदृच्छयाऽभूत्क्षयकृद्वनौकसाम् ।
समीरितः सारथिनोल्बणोल्मुकैर्विलेलिहानः स्थिरजङ्गमान्महान् ।।७।।

अन्वयः— ततः यदृच्छया वनौकसाम् क्षयकृत् वनधूमकेतुः, सारथिना समीरितः उल्बणोल्मुकै स्थिरजङ्गमान् विलेलिहानः समन्तात महान् वन धूमकेतुः अभूत ।।७।।

अनुवाद— जबकि भगवान् श्रीकृष्ण अपनी गायों को पुकार रहे थे उसी समय अचानक उस वन में चारो ओर से आग लग गयी तथा जोर से आँधी चलने के कारण वह चारो ओर से फैल गयी जो अग्नि वनवासियों का विनाश करने वाली होती है वह अपनी प्रचण्ड ज्वालाओं से समस्त चराचर जीवों को जलाने लग गयी ।।७।।

भावार्थ दीपिका

गोगोपानां नाशहेतुर्वनवह्निः सर्वतः प्रादुरभूत् । सारथिना वायुना ।।७।।

भाव प्रकाशिका

गौओं और गोपों को जला देने वाली वनाग्नि चारो ओर से उत्पन्न हो गयी । सारथिना अर्थात् वायु के द्वारा ।।७।।

तमापतन्तं परितो दवाग्निं गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ।
ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना यथा हरिं मृत्युभयार्दिता जनाः ।।८।।

अन्वयः— तम् आपतन्तं परितः अग्निं प्रसमीक्ष्य गावः गोपाः च भीताः मृत्युभयार्दिताः हरिं यथा सबलं कृष्णं प्रपन्नाः ऊचुश्च ।।८।।

अनुवाद— चारो ओर से बढ़ती हुई उस अग्नि को देखकर भयभीत गायें और गोप उसी तरह से बलरामजी और भगवान् के शरणागत हो गये जिस तरह मृत्यु के भय से भयभीत मनुष्य श्रीभगवान् की शरणागति करता है । उन सबों ने श्रीभगवान् से कहा ।।८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।८।।

कृष्ण कृष्ण महावीर हे रामामितविक्रम । दावाग्निना दह्यमानान्प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः ।।९।।

अन्वयः— हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महावीर ! हे अमितविक्रम राम दावाग्निना दह्यमानान् प्रपन्नान् त्रातुम् अर्हथ।।९।।

अनुवाद— हे महावीर भगवान् श्रीकृष्ण ! हे निस्सीम पराक्रम सम्पन्न श्रीबलरामजी हमलोग दावाग्नि से जलने ही वाले हैं, हमलोग आपके शरणागत हैं । आप दोनों हम दोनों की रक्षा करें ।।९।।

भावार्थ दीपिका— नही हैं ।।९।।

नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण न चार्हन्त्यवसीदितुम् । वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः ।।१०।।

अन्वयः— हे कृष्ण ! नूनं त्वद् बान्धवा अवसीदितुम् न अर्हन्ति । हे सर्वधर्मज्ञ वयं हि त्वन्नाथा त्वत्पारायणाः ।।१०।।

अनुवाद— हे श्रीकृष्ण ! आपके जो बन्धु हैं उनको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होना चाहिए यह निश्चित है । आप तो सभी धर्मों के ज्ञाता है । हम लोगों के स्वामी आप ही हैं और हमलोगों के एकमात्र आश्रय आप हैं।।१०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१०।।

श्रीशुक उवाच

वचो निशम्य कृपणं बन्धूनां भगवान्हरिः । निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥११॥

अन्वयः— भगवान् हरिः बन्धूनां कृपणं वचो निशम्य मा भैष्ट, लोचनानि निमीलयत इत्यभाषत ॥११॥

अनुवाद— भगवान् श्रीहरि अपने सखा ग्वालबालों के दीन वचन को सुनकर कहे । तुम लोग डरो मत अपने नेत्रों को बन्द कर लो ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

तथेति मीलिताक्षेषु भगवानग्निमुल्बणम् । पीत्वा मुखेन तान्कृच्छ्राद्योगाधीशो व्यमोचयत् ॥१२॥

अन्वयः— तथेति मीलिताक्षेषु योगाधीशोभगवान् मुखेन वानाग्नि पीत्वा तान् कृच्छ्राद् व्यमोचयत् ॥१२॥

अनुवाद— ठीक है ऐसा कहकर सबों ने जब अपनी आँखें बन्द कर ली उस समय योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुख से अग्नि को पीलिया और उन सबों को भयङ्कर सङ्कट से बचा लिया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

कृच्छ्राद्गह्वरप्रवेशक्षुत्तृड्श्रमादिजनितात् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

गहन वन में प्रवेश तथा भूख प्यास एवं श्रम जन्य कष्ट से ॥१२॥

ततश्च तेऽक्षीण्युन्मील्य पुनर्भाण्डीरमापिताः । निशाम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः ॥१३॥

अन्वयः— ततः अक्षीणि उन्मील्य पुनः भाण्डीरम् आपिताः आत्मानं गाश्च मोचिताः निशाम्य विस्मिताः आसन्॥१३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् वे अपनी आँखें खोलकर देखे कि वे सब तथा गौएँ भण्डीर बट के समीप हैं, और दावाग्नि से बच गये हैं । यह देखकर वे सब आश्चर्य चकित हो गये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

क्षणेनैव भाण्डीरं प्रापिताः । ततोऽक्षीण्युन्मील्य विस्मिताः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

क्षणभर में ही वे भाण्डीर वट के पास पहुँचा दिए गये । उसके पश्चात् वे अपनी आँखें खोलकर आश्चर्यित हो गये ॥१३॥

कृष्णस्य योगवीर्यं तद्योगमायाऽनुभावितम् । दावाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम् ॥१४॥

अन्वयः— कृष्णस्यतत् योगवीर्यं योगमायानुभावितम् आत्मनः दावाग्नेः क्षेमं वीक्ष्य ते अमरम् मेनिरे ॥१४॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण की उस योगसिद्धि तथा योगमाया के प्रभाव को तथा दावाग्नि से अपनी रक्षा को देखकर ग्वाल बालों ने मान लिया कि श्रीकृष्ण कोई देवता हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका नहीं है ॥१४॥

गाः संनिवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः । वेणुं विरणयन्गोष्ठमगाद्गोपैरभिष्टुतः ॥१५॥

अन्वयः— सायाह्नेगाः सन्निवर्त्य सहरामः जनार्दनः वेणुं विरणयन् गोपैरभिष्टुतः गोष्ठमगात् ॥१५॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् सायंकाल होने पर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी गायों को लौटाकर बलरामजी के साथ वंशी बजाते हुए व्रज में आ गये, उस समय गोपगण उनकी स्तुति कर रहे थे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

गोपीनां परमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने । क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत् ॥१६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे दावाग्निपानं नामैकोनविंशोध्याय: ॥१९॥

अन्वयः— गोविन्ददर्शने गोपीनां परमानन्दः अभवत् यासां येन विना क्षणं युगशतं अभवत् ॥१६॥

अनुवाद— भगवान् गोविन्द का दर्शन मिलने पर गोपियों को परमानन्द की प्राप्ति हुई। उन सबों को भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन के बिना एक-एक क्षण सौ युगों के बराबर प्रतीत होता था ॥१६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्द्ध के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

श्रीदामादिरव गोपानां स्वाङ्गमारुह्य हृव्यताम् । स्वैश्वर्यमाविरकरोद्वुनह्निनिपानतः ॥१॥॥१६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वाधे भावार्थ दीपिकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीदामा आदि अपने गोपों के अपने शरीर पर चढ़कर प्रसन्न होने वाले श्रीभगवान् ने अपने ऐश्वर्य को आविष्कृत किया ॥१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें अध्याय के पूर्वार्ध की भावार्थदीपिका के उन्नीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१९

* * *

बीसवाँ अध्याय

वर्षा एवं शरद् ऋतु का वर्णन

श्रीशुक उवाच

तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः । गोपाः स्त्रीभ्यःसमाचख्युः प्रलम्बवधमेव च ॥१॥

अन्वयः— गोपाः तयोः तत् अद्भुतं कर्म आत्मनः दावाग्नेः मोक्षम् प्रलम्बवधम् एव च स्त्रीभ्य समाचख्युः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— ग्वाल बालों ने श्रीकृष्ण भगवान् एवं श्रीबलरामजी के उस अद्भुत कार्य को उन सबों को स्वयं दावाग्नि से बचाने और बलरामजी द्वारा प्रलम्बासुर के वध से सम्बद्ध थे उन सबों को स्त्रियों को बतलाया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

विंशे प्रावृट्शरच्छोभावर्णनेन वनोचिताः । प्रावृट्क्रीडा निरूप्यन्ते गोपरामयुजो हरेः । हेयादेयोपमानेन प्रावृट्शरदृतुश्रियोः । वर्णनं त्वद्भुतैश्वर्यकृष्णलीलाविवक्षया ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बीसवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि वर्षा ऋतु और शरद ऋतु के वर्णन के द्वारा श्रीभगवान की गोपों तथा बलरामजी के साथ श्रीहरि की वनोचित वर्षकालीन क्रीडा का निरूपण किया गया है। संग्राह्य एवं त्याज्य उपमान के द्वारा वर्षा ऋतु और शरद् ऋतु की शोभा का वर्णन भगवान् श्रीकृष्ण की लीला के अद्भुत ऐश्वर्य का वर्णन करने की इच्छा से किया गया है ॥१॥

गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः । मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ॥२॥

अन्वयः— गोपवृद्धाः च गोप्यः च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः व्रजं गतौ कृष्णरामौ देवप्रवरौ मेनिरे ॥२॥

अनुवाद— बड़े बूढे गोप तथा गोपियाँ उन सारी बातों को सुनकर आश्चर्यित हो गयीं । उन लोगों ने माना कि व्रज में किन्हीं दो श्रेष्ठ देवताओं का अवतार हो गया है ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

ततः प्रावर्तत प्रावृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा । विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥३॥

अन्वयः— ततः सर्वसत्त्व समुद्भवा विद्योतमानपरिधिः विस्फूर्जितनभस्तला प्रावृट् प्रावर्तत ॥३॥

अनुवाद— ग्रीष्म ऋतु के बीतने के बाद वर्षा ऋतु आ गयी । इस ऋतु में सभी जीवों की वृद्धि हो जाती है । उस समय बार-बार सूर्य और चन्द्रमा पर बार-बार मण्डल बैठने लगता हैं तथा आकाश मेघ, हवा,चमक तथा कड़क आदि से क्षुब्ध सा दिखने लगता है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रावृड्वर्णनं-तत इत्यादि द्वाविंशत्या । सर्वेषां प्राणिनां समुद्भव उत्पत्तितो जीवनतश्च यस्यां सा प्रावृट् । विद्योतमानाः परिधयः परिवेषादिशोभा यस्यां सा । विस्फूर्जितं संक्षुभितं नभस्तलं यस्यां सा ॥३॥

भाव प्रकाशिका

सर्व प्रथम वर्षा ऋतु का वर्णन **ततः इत्यादि** बाइस श्लोकों द्वारा किया गया हैं जिसमें सभी जीवों की उत्पत्ति तथा जीवन की दृष्टि से समृद्धि हो जाती है, ऐसी वर्षा ऋतु तथा जिस में प्रकाशमय सूर्य चन्द्रमा में मण्डल बैठ जाते हैं ऐसी वर्षा ऋतु । जिसमें आकाश क्षुब्ध हो जाता है, वह वर्षा ऋतु आ गयी ॥३॥

सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः । अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मेव सगुणं बभौ ॥४॥

अन्वयः— सान्द्रनीलाम्बुदैः सविद्युत्स्तनयित्नुभिः अस्पष्टज्योतिः आच्छनं व्योम सगुणं ब्रह्म इव बभौ ॥४॥

अनुवाद— नीले और घने मेघों से विद्युत् के चमकने और उसके गड़गड़ाहट पूर्ण ध्वनियों से तथा सूर्य, चन्द्रमा और तारों के ढ़के रहने से आकाश की शोभा सगुण ब्रह्म के समान होती थी ॥४॥

भावार्थ दीपिका

सान्द्रानिबिडैर्नीलाम्बुदैर्विद्युद्गर्जितसहितैराच्छन्नम्। सगुणं गुणैराच्छन्नं जीवाख्यम्। विद्युद्गर्जिताम्बुदानां सत्त्वरजस्तमोभिरुपमा॥४॥

भाव प्रकाशिका

जल भरे घने तथा काले मेघों बिजलियों तथा उनकी कड़कडाहट से ढँका हुआ आकाश गुणों से अच्छन्न जीव शब्दवाच्य ब्रह्म के समान, विजली उसकी कड़कड़ाहट तथा मेघों की क्रमश सत्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण से उपमादी गयी है ॥४॥

अष्टौ मासान्निपीतं यद्भूम्याश्चोदमयं वसु । स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ॥५॥

अन्वयः— भूम्याः उदमयं वसु यद् अष्टौ मासान् स्वगोभिः निपीतं काले आगते तत् पर्जन्यः मोक्तुम् आरेभे ॥५॥

अनुवाद— सूर्य रूप राजा ने आठ महीनों तक पृथिवी रूप प्रजा से जल रूप सम्पत्ति लिया था वह समय आने पर अपनी किरण रूप हाथों से देना प्रारम्भ कर दिया ॥५॥

भावार्थ दीपिका

पर्जन्यः सूर्यः । स्वगोभिर्निजरश्मिभिः । काले यथोचितसमये । अत्र राजोपमा करादानतः समये पुनर्दानतश्च सूचिता।।५।।

भाव प्रकाशिका

पर्जन्यः अर्थात् सूर्य, **स्वगोभिः** अपनी किरणों से, काले अर्थातृ यथोचित् समय आने पर । राजा की उपमा की सूचना न कर लेने और समय आने पर उसको देने से मिलती है ।।५।।

तडित्त्वन्तो महामेघाश्चण्डश्वसनवेपिताः । प्रीणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव ।।६।।

अन्वयः— पण्डश्वसनवेपिताः तडित्वन्तोमहामेघाः करुण इव अस्य हि प्रीणनं जीवनं मुमुचुः ।।६।।

अनुवाद— प्रचण्ड वायु से प्रेरित होकर बिजली की चमक से युक्त घनघोर मेघ प्राणियों की प्रसन्नता के लिए जीवन (जल) उसी तरह बरसाने लगे जिस तरह दयालु पुरुष प्रजा को कष्ट में देखकर उनके कल्याण के लिए अपने जीवन को भी दे देते हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अस्य विश्वस्य प्रीणनमाप्यायनकरं जीवनमुदकं मुमुचुः । कृपालवो यथा तप्तं जनं निरीक्ष्यानुकम्पमानास्तदाप्यायनाय स्वजीवनमपि त्यजन्ति तद्वन्महान्तो मेघास्तडिन्नेत्रैर्विश्वं तप्तं निरीक्ष्य वायुभिर्वेपिता जीवनं मुमुचुरिति ।।६।।

भाव प्रकाशिका

इस विश्व को आप्यायित करने वाला जीवन (जल) को मेघों ने बरसाया । जिस तरह दयालु पुरुष जिस तरह किसी दुखी व्यक्ति को देखकर उस पर कृपा करते हुए उसके आप्यायन (प्रीणन) के लिए अपने जीवन को भी त्याग देते हैं उसी तरह मेघों ने अपने विद्युत् रूपी नेत्र से विश्व को सन्तप्त देखकर वायु के द्वारा प्रेरित होकर जल बरसाने लगे ।।६।।

तपः कृशा देवमीढा आसीद्वर्षीयसी मही । यथैव काम्यतपसस्तनुः संप्राप्य तत्फलम् ।।७।।

अन्वयः— तपः कृशा मही काम्यतपसः तत्फलम् संप्राप्य यथैव वर्षीयसी तनुः ।।७।।

अनुवाद— जैसे सकाम भाव से तपस्या करने से पहले तो शरीर दुर्बल हो जाता है और उसका फल प्राप्त कर लेने पर शरीर पुष्ट हो जाता है उसी तरह ज्येष्ठ आषाढ़ के महीनों में सूखी हुई पृथिवी जल से सिंचित होकरपुनः हरी भरी हो गयी ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तपसा ग्रीष्मेण कृशा । देवमीढा पर्जन्यसिक्ता । वर्षीयसी उच्छूना पुष्टा । काम्यं तपो यस्य तस्य तनुः कामान्संप्राप्य यथेति।।७।।

भाव प्रकाशिका

तपसा अर्थात् ग्रीष्म से कृश बनी हुई पृथिवी वर्षा से सिञ्चित होकर पुष्ट (हरी भरी) हो गयी । यह उसी तरह से हुआ जिस तरह कामना वशात् तपस्या करने वाला अपनी तपस्या के फल को प्राप्त करके हृष्ट पुष्ट हो जाता है।।७।।

निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति न ग्रहाः । यथा पापेन पाखण्डा नहि वेदाः कलौ युगे ।।८।।

अन्वयः— निशामुखेषु खद्योताः भान्ति तमसा गहान भान्ति यथा कालौ युगे पापेन पाखण्डाः भान्ति वेदान ।।८।।

अनुवाद— सायंकाल अन्धेरा छा जाने से तारे आदि तो नहीं दिखते किन्तु जुगुनू चमकने लगते हैं । यह उसी तरह होता है जिस तरह कलियुग में पाप के बढ जाने से पाखण्ड मतों का प्रचार हो जाता है और वैदिक सम्प्रदाय लुप्त से हो जाते हैं ।।८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।८।।

श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका व्यसृजन्गिरः । तूष्णीं शयानाः प्राग्यद्वद्ब्रह्मणा नियमात्यये ॥९॥

अन्वयः— पर्जन्य निनदं श्रुत्वा तुष्णीं शयानाः मण्डूकाः गिरः व्यसृजन् नियमात्यये प्राग्यद्वद ब्राह्मणाः ॥९॥

अनुवाद— मेघ की ध्वनि को सुनकर पहले सोये हुए मेढक उसी तरह टर्र-टर्र करने लगते हैं, जिस तरह नियम के समाप्त हो जाने पर गुरु का आदेश पाकर ब्राह्मण ब्रह्मचारी वेद पाठ करने लगते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

नित्यकर्मावसाने आचार्यनिनदं श्रुत्वा तच्छिष्या यथाऽधीयते तद्वदिति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

नित्य कर्म के समाप्त हो जाने पर आचार्य के आदेश को सुनकर वेद पढ़ने वाले ब्रह्मचारी जैसे वेद पढ़ने लगते हैं, उसी तरह ॥९॥

आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः । पुंसो यथाऽस्वतन्त्रस्य देहद्रविणसम्पदः ॥१०॥

अन्वयः— अनुशुष्यतीः क्षुद्रनद्यः उत्पथवाहिन्यः आसन् यथा अस्वतन्त्रस्य पुंसः देहद्रविणसम्पदः ॥१०॥

अनुवाद— जो नदियाँ ज्येष्ठ के महीने में सूख सी गयी थीं वे अब अपनी मर्यादा को लाँघकर बाहर भी उसी तरह से बहने लगी थीं जिस तरह अजितेन्द्रिय पुरुष का शरीर और सम्पत्ति कुमार्ग में व्यय होने लगता है॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अनुशुष्यतीरनुशुष्यन्त्यः । अस्वतन्त्रस्येन्द्रियपरतन्त्रस्य । स्वतन्त्रस्य निरङ्कुशस्येति वा ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

अनुष्यतीः सूख जाने की ही स्थिति वाली, अस्वतन्त्रस्य अर्थात् अजितेन्द्रिय पुरुष की, अथवा स्वतन्त्रस्य अर्थात् निरङ्कुश पुरुष की ॥१०॥

हरिता हरिभिः शष्पैरिन्द्रगोपैश्च लोहिता । उच्छिलीन्ध्रकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभूत् ॥११॥

अन्वयः— हरभिः शष्पै भूः हरिता, इन्द्रगोपैः च लोहिता उच्छिलीन्ध्रकृतच्छाया नृणां श्रीरिवाभूत् ॥११॥

अनुवाद— पृथिवी कहीं हरी घासों से हरी-हरीं, कहीं पर वीर वधूटियों से लाल तथा कहीं पर बरसाती छत्तों (कुकुरमुत्तों) से वह सफेद प्रतीत होती थी । इस प्रकार वह किसी राजा की रंग विरंगी सेना के समान प्रतीत होती थी ॥११॥

भावार्थ दीपिका

हरिभिर्नीलैः शष्पैर्बालतृणैर्नीलवर्णा । क्वचिदिन्द्रगोपैः कीटविशेषैर्लोहिता । तत्र तत्रोच्छिलीन्ध्रैश्छत्राकारैरुद्भिदैः कृतच्छाया नृणां राज्ञां श्रीः सेनासम्पदिव ॥११॥

भाव प्रकाशिका

हरी-हरी छोटी घासों से पृथिवी हरी प्रतीत होती थी, वह कहीं पर लाल-लाल वीरवधूटियों से लाल प्रतीत होती थी और कहीं पर जमे हुए उजले कुकुरमुत्तों से उजली प्रतीत होती थी । इस तरह वह राजाओं की रङ्गबिरङ्गी सेनाओं अथवा सम्पत्ति के समान सुशोभित होती थी ॥११॥

क्षेत्राणि सस्यसम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः । धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम् ॥१२॥

अन्वयः— क्षेत्राणि सस्यसम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः दैवाधीनम् अजानताम् धनिनामुपतापं च ॥१२॥

अनुवाद— सस्य सम्पत्ति से हरे भरे खेत कृषकों को आनन्द प्रदान कर रहे थे और सब कुछ परमात्माधीन

होता है इस बात को नहीं जानने वाले धनिकों को वे सन्ताप दे रहे थे, क्योंकि वे सोचते थे कि मैं अब इन सबों को अपने पंजे में कैसे रखूंगा ?॥१२॥

भावार्थ दीपिका

क्षेत्राणीति । तदा हि वृष्टेरविच्छेदे लसन्तः प्रियंग्वादयो मुदं ददति, विच्छेदे शुष्यन्तोऽनुतापं चेति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

क्षेत्राणि इत्यादि श्लोक के द्वारा बतलाया गया है कि बरसात के दिनों में वर्षा हमेशा होते रहने पर प्रियंगु इत्यादि की फसल सुशोभित होकर आनन्द प्रदान करती हैं और समय पर वर्षा नहीं होने पर सूखकर सन्ताप प्रदान करती हैं॥१२॥

जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया । अबिभ्रद्रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया ॥१३॥

अन्वयः— नववारिनिषेवया सर्वे जलस्थलौकसः हरिनिषेवया यथा रुचिरं रूपं अविभ्रत् ॥१३॥

अनुवाद— नवीन जल के सेवन से सभी जलचर और पृथिवी पर रहने वाले जीवों की शोभा उसी तरह से बढ़ गयी जिस तरह श्रीहरि की सेवा करने से श्रीभगवान् कीसेवा करने वाले का अन्तः करण और बाह्य रूप सुन्दर हो जाते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अबिभ्रदबिभरुः यथा हरिनिषेवयेति । हरिसेवायां प्रवृत्ता हि सद्य एव सर्वे रुचिरा भवन्ति । तस्याः परमधर्मत्वात्परमसुखत्वाच्च तद्वदिति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

अविभ्रत् अर्थात् धारण किया । श्रीहरि की सेवा करने वाले पुरुष का सबकुछ मनोहर हो जाता है । क्योंकि श्रीहरि की सेवा ही परम धर्म है और परम सुख स्वरूप है । उसी तरह नवीन जल का सेवन करने वालों की शोभा बढ़ गयी ॥१३॥

सरिद्भिः सङ्गतः सिन्धुश्चुक्षुभे श्वसनोर्मिमान् । अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग्यथा ॥१४॥

अन्वयः— श्वसनोर्मिमानसिन्धुः सरिद्भिः संगतः चुक्षुभे । यथा अपक्व योगिनः कामाक्तं चित्तं गुणयुक् ॥१४॥

अनुवाद— वायु का संयोग प्राप्त करके ऊँची लहरियों से युक्त समुद्र नदियों का संयोग पाकर और अधिक उसी तरह क्षुब्ध हो गया जिस तरह वासना युक्त योगी का चित्त विषयों का सम्पर्क प्राप्त करके कामनाओं से भर जाता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

कामाक्तं कामवासनायुक्तमिति श्वसनोर्मिसाम्यम् । गुणैर्विषयैर्युज्यत इति सरित्सङ्गतिसाम्यम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

कामाक्तम् अर्थात् कामवासना से युक्त यह कहकर वायु से प्रेरित लहरों की समता बतलायी गयी है । विषयों से युक्त होकर यह कहकर सरितसङ्गति की समता बतलायी गयी है ॥१४॥

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः । अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजचेतसः ॥१५॥

अन्वयः— वर्षधाराभिः हन्यमाना गिरयः व्यासनैः अभिभूयमानाः अधोक्षजचेतसः यथा न विव्यथुः ॥१५॥

अनुवाद— वर्षा की धारा की चोट खाकर पर्वत उसी तरह दुःखी नहीं हुए जिस तरह जिसका मन श्रीभगवान् में लगा है, वह दुःखों के द्वारा आक्रान्त होकर भी दुःखी नहीं होता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अधोक्षज एव चेतो येषां ते ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों का मन श्रीभगवान् में ही लगा रहता है वे लोग ॥१५॥

मार्गा बभूवुः संदिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः । नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव ॥१६॥

अन्वयः— असंस्कृताः तृणैः छन्नाः मार्गाः संदिग्धा बभूवुः द्विजैः नाभ्यस्यमानाः कालहताः श्रुतय इव ॥१६॥

अनुवाद— जो कभी साफ नहीं किए जाते है ऐसे घास से ढँक जाने के कारण मार्गों को पहचान पाना कठिन उसी तरह हो गया जैसे ब्राह्मणों द्वारा अभ्यास नहीं की जाने वाली श्रुतियाँ कालक्रम से भूल जाती हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

असंस्कृता अक्षुण्णा नाभ्यस्यमाना इत्यसंस्कृतसाम्यम् । कालेन चाहता इति तृणाच्छादनसाम्यम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

असंस्कृताः का उन श्रुतियों से समता बतलायी गयी जिनका ब्राह्मण गण अभ्यास नहीं करते हैं । कालेन च आहताः अर्थात् बहुत समय बीत जाने पर भूल जाने वाली श्रुतियों की समता मार्गों के तृण से ढँक जाने के साथ बतलायी गयी है ॥१६॥

लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः । स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥१७॥

अन्वयः— लोकबन्धुषु मेघेषु चलसौहृदाः विद्युतः स्थैर्यं न चक्रुः गुणीषु पुरुषेषः कामिन्यः इव ॥१७॥

अनुवाद— लोकोपकारी मेघों के साथ चंचल सौहार्द वाली विजलियाँ उसी तरह से स्थित नहीं रहती हैं जिस तरह गुणवान् पुरुष के साथ कुलटायें स्थिर नहीं रहती हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

यथा कामिन्यः पुंश्चल्यः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

जैसे कुलटा नारियाँ ॥१७॥

धनुर्वियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् । व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान्पुरुषो यथा ॥१८॥

अन्वयः— गुणिनिवियति निर्गुणं माहेन्द्रं धनुः गुणव्यतिकरे व्यक्ते यथा अगुणवान् पुरुषः ॥१८॥

अनुवाद— शब्दगुण से युक्त आकाश में निर्गुण (बिना डोरी के) इन्द्रधनुष उसी तरह से सुशोभित होता है जिसतरह गुणों के सम्मिश्रण युक्त प्रपञ्च में निर्गुण ब्रह्म सुशोभित होते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

निर्गुणं ज्यारहितमपि गुणिनि गर्जितशब्दवति अभादशोभत । गुणव्यतिकरात्मके व्यक्ते प्रपञ्चेऽगुणवान्निर्गुणः पुरुषो यथेति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

मेघ की गर्जना के शब्द से युक्त गुणवान आकाश में गुण से रहित (प्रत्यञ्चा से रहित) इन्द्र धनुष उसी प्रकार सुशोभित होता था जिस तरह गुणों के व्यतिकर से युक्त प्रपञ्च में निर्गुण ब्रह्म सुशोभित होते हैं ॥१८॥

न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्घनैः । अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥१९॥

अन्वयः— स्वज्योत्स्नाराजितैः धनैः छन्न उडुपः अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा न रराज ॥१९॥

अनुवाद— चन्द्रमा की चाँदनी से प्रकाशित होने वाले मेघों, से ढँके हुए चन्द्रमा उसी तरह नहीं सुशोभित हुए जिस तरह स्वयं प्रकाश आत्मा से प्रकाशित होने वाले अहङ्कार से आच्छन्न स्वयम्प्रकाश पुरुष (आत्मा) की शोभा नहीं होती है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

स्वभासा भासितयाऽहंमत्येति स्वचैतन्येनैव प्रकाशितेनाहङ्कारेण च्छन्नो जीवो यथा । यद्वा अहं विद्वान् दाता वेत्ता शूर इति स्वप्रतीत्यैवारोपितया इति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

स्वयं प्रकाश आत्मा के द्वारा प्रकाशित होने वाले अहङ्कार से आच्छन्न जीव उसीतरह नहीं प्रकाशित होता है। जिस तरह मैं विद्वान् अथवा वीर हूँ इस तरह से आरोपित अहङ्कार के द्वारा जीव प्रकाशित नहीं होता है ॥१९॥

मेघागमोत्सवा हृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः । गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाच्युतजनागमे ॥२०॥

अन्वयः— मेघागमोत्सवाहृष्टाः शिखण्डिनः प्रत्यनन्दन् यथा गृहेषु तप्ता निर्विण्णा अच्युतजनागमे ॥२०॥

अनुवाद— मेघों के शुभागमन से मयूर प्रसन्न हो गये । वे अपनी कुहक के द्वारा और नृत्य के द्वारा उसी तरह से आनन्दोत्सव मना रहे थे जैसे गार्हस्थ्य के जाल में फँसकर संतप्त होने वाले और उदास लोग भगवद् भक्तों के आगमन से प्रसन्न होकर आनन्द मग्न हो जाते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

मेघागमेनोत्सवो येषामतो हृष्टाः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

मेघों के आने से जो उत्सव मनाने लगते हैं अतएव प्रसन्न मयूर ॥२०॥

पीत्वापः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः । प्राक्क्षामास्तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया ॥२१॥

अन्वयः— पादपाः पद्भिः अपः पीत्वा नानात्ममूर्तयः आसन् यथा तपसा प्राक्क्षामाः श्रान्ताः कामानुसेवया ॥२१॥

अनुवाद— गर्मी के दिन में सूख जाने के कारण सन्तप्त वृक्ष अपनी जड़ों से जल पीकर पत्ते, फूल तथा डालियों से उसी तरह सज गये जिस तरह तपस्या करने के कारण जो लोग दुर्बल एवं श्रान्त हो जाते हैं किन्तु कामनाओं की पूर्ति हो जाने पर वे भोग्य पदार्थों का सेवन करके हृष्ट पुष्ट हो जाते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

नानात्ममूर्तयः अनेकरूपदेहाः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

नानात्ममूर्तयः अर्थात् अनेक रूप वाले शरीरों वाले ॥२१॥

सरस्स्वशान्तरोधस्सु न्यूषुरङ्गापि सारसाः । गृहेष्वशान्तकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥२२॥

अन्वयः— हे अङ्ग अशान्तरोधस्सु सरस्सु सारसाः अशान्तकृत्येषु दुराशया ग्राम्या इव व्यूषुः ॥२२॥

अनुवाद— हे परीक्षित तलाबों के तट यद्यपि कांटे तथा कीचड़ एवं जल के बहाव के कारण अशान्त ही

रहते हैं फिर भी सारस पक्षी उनका साथ उसी तरह नहीं छोड़ते है जिस तरह अशुद्ध हृदय वाले विषयी पुरुष अपने काम धन्धों से छूटकारा नहीं पाते और घर में ही पड़े रह जाते हैं ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

अशान्तानि पङ्ककण्टकादियुक्तानि रोधांसि तटानि येषां तेष्वपि न्यूषुर्नितरामवसन् । सारसाश्चक्रवाकाः । अशान्तानि घोराण्यनुपरतानि वा कृत्यानि येषु तेष्वपि गृहेषु ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

कीचड़ कण्टक आदि के कारण अशान्त तटों वाले सरोवरों में भी सारस पक्षी कभी उनका साथ उसी तरह से नहीं छोड़ते हैं । जिस तरह से समाप्त नहीं होने वाले काम धन्धों में लगा हुआ विषयी पुरुष घरों में ही पड़ा रह जाता है । व्यूषुः अर्थात् हमेशा बने रहते हैं । सारसा अर्थात् चक्रवाक पक्षी ।।२२।।

जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे । पाखण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ।।२३।।

अन्वयः— वर्षतीश्वरे सेतवः जलौघैः निरभिद्यन्त पाखण्डिनामसद्वादैः कलौ वेदमार्गाः यथा ।।२३।।

अनुवाद— इन्द्र के वर्षा करते रहने पर उससे नदियों के बाँध और खेतों के मेड़ टूट जाते हैं । यह उसी तरह से होता है जिस तरह कलियुग में पाखण्डियों के तरह-तरह के मिथ्या मतवाद के कारण वैदिक मर्यादा शिथिल हो जाती है ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

ईश्वरे इन्द्रे ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

ईश्वर अर्थात् इन्द्र ।।२३।।

व्यमुञ्चन्वायुभिर्नुन्ना भूतेभ्योऽथामृतं घनाः । यथाशिषो विश्पतयः काले काले द्विजेरिताः ।।२४।।

अन्वयः— अथ वायुभिर्नुन्नाः घनाः भूतेभ्यः अमृतं व्यमुञ्चन् यथा द्विजेरिताः विश्पतयः काले–काले आशिषः ।।२४।।

अनुवाद— वायु के द्वारा प्रेरित होकर मेघ प्राणियों के लिए अमृतमय वर्षा करने लगते हैं । यह उसी तरह से होता है जैसे ब्राह्मणों की प्रेरणा से धनिक पुरुष प्रजाओं को अभिलाषाओं को समय-समय पर दान के द्वारा पूर्ण करते हैं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

नुन्नाः प्रेरिताः । आशिषः कामान् । विश्पतयो राजानः, वणिजां पतयो वा । द्विजेरिताः पुरोहितैरुक्ताः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

नुन्नाः अर्थात् प्रेरित । **आशिषः** कामनाओं को **विश्पतयः** अर्थात राजागण, अथवा बड़े-बड़े व्यापारी **द्विजेरिताः** अर्थात् पुरोहितों के कहने से ।।२४।।

एवं वनं तद्वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत् । गोगोपालैर्वृतौ रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः ।।२५।।

अन्वयः— एवं पक्व खर्जूरजम्बूमत वर्षिष्ठं वनं रन्तुं गोगोपालैः वृतः सबलः हरिः प्राविशत् ।।२५।।

अनुवाद— इस तरह से पके हुए खजूर और जामुन से सुशोभित वृन्दावन में विहार करने के लिए गौओं तथा ग्वाल बालों एवं बलरामजी के साथ श्रीहरि प्रवेश किए ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

प्रावृषि कृतां क्रीडां वर्णयति-एवं वनमिति सप्तभिः । वर्षिष्ठं समृद्धम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

एवं वनम्० इत्यादि सात श्लोकों द्वारा वर्षाकाल में श्रीहरि के द्वारा की गयी लीला का वर्णन किया गया है । **वर्षिष्ठम्** अर्थात् समृद्ध ॥२५॥

धेनवो मन्दगामिन्य ऊधोभारेण भूयसा । ययुर्भगवताहूता द्रुतं प्रीत्या स्नुतस्तनीः ॥२६॥

अन्वयः— भूयसा ऊधोभारेण मन्दगामिन्यः धेनवः भगवता हूताः प्रीत्या स्नुतस्तनीः द्रुतं ययुः ॥२६॥

अनुवाद— अपने थन के अधिक भार के कारण धीरे-धीरे चलने वाली गायों को उनका नाम लेकर जब श्रीभगवान् पुकारते तो वे तेजी से प्रेम के कारण चलने लगती थीं और उनके थन से दूध चूता जाता था ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

वनौकसः प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः । जलधारा गिरेर्नादानासन्ना ददृशे गुहाः ॥२७॥

अन्वयः— वनौकसः प्रमुदिताः वनराजिः मधुच्युतः गिरेः जलधारा नादान् आसन्नाः गुहा ददृशे ॥२७॥

अनुवाद— श्रीभगवान् देखे के वन में रहने वाले भिल्ल आदि प्रसन्न हैं, वन वृक्षों की पक्तियों से मधु की धारा चू रही हैं, पर्वतों से गिरने वाले झरनों की मधुर ध्वनि हो रही है, और वर्षा होने पर छिपने के लिए गुफाएँ भी सन्निकट में ही हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

वनौकसः पुलिन्दीः प्रमुदिता भगवान्ददृशे । तथा वनराजीर्मधुच्युतो मधुस्रवा ददृशे । गिरेः सकाशाज्जलधाराश्च तासां नादानासन्ना निकटवर्तिनीर्गुहाश्च । यद्वा वनौकसः प्रमुदिता आसन् । तथा वनराजीर्वनराजयो वनपरम्परा मधुच्युत आसन् । गिरेर्जलधारा आसन् । तानेवंभूतानाददृशे सर्वतो ददर्श भगवान् । तथा धाराणां नादान्गुहाश्चेति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने देखा कि भिल्लों की पत्नियाँ प्रसन्न हैं, वन पंक्ति से मधु चू रहा है, यह भी श्रीभगवान् ने देखा । पर्वत से प्रवाहित होने वाले झरनों के मधुर शब्दों को श्रीभगवान् सुने और सन्निकट में विद्यमान गुफाओं को भी उन्होंने देखा अथवा वन में रहने वाले प्रसन्न थे । वन पंक्ति मधुस्राविणी थी । वहाँ पर पर्वत से झरना प्रवाहित हो रहा था इस तरह से इन सारी वस्तुओं को श्रीभगवान् सब ओर देखे । वे झरनों की ध्वनि को सुने तथा गुफाओं को भी देखे ॥२७॥

क्वचिद्वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति । निर्विश्य भगवान्रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥२८॥

अन्वयः— अभिवर्षति क्वचिद् वनस्पति क्रोडे गुहायां च निर्विश्य, कन्दमूल फलाशनः भगवान् रेमे ॥२८॥

अनुवाद— जब वर्षा होने लगती थी तो श्रीभगवान् किसी वनस्पति के कोटर में ही छिप जाते थे या गुफा में प्रवेश करके कन्द मूल तथा फल को खाते हुए ग्वाल बालों के साथ खेलते रहते थे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

दध्योदनं समानीतं शिलायां सलिलान्तिके । संभोजनीयैर्बुभुजे गोपैः संकर्षणान्वितः ॥२९॥

अन्वयः— समानीतं दध्योदनं सलिलान्तिके शिलायां सङ्कर्षणान्वितः गोपैः संभोजनीयैः बुभुजे ॥२९॥

अनुवाद— कभी घर से ही लाये हुए दध्योदन को जल के ही सन्निकट में शिला पर बलरामजी तथा गोपो के साथ बैठकर अन्य भोज्य पदार्थों के साथ मिलाकर भोजन करते थे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान् । तृप्तान्वृषान्वत्सतरान्गाश्च स्वोधोभरश्रमाः ॥३०॥
प्रावृट्श्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूतमुदावहाम् । भगवान्पूजयांचक्रे आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ॥३१॥

अन्वयः— तृप्तान् वृषान् वत्सतरान् स्वोधीभरश्रमाः गाश्च शाद्वलोपरिसंविश्य मिलितेक्षणान् चर्वतः सर्वभूतमुदावहाम् आत्मशक्त्युपवृंहिताम् तां प्रावृट्श्रियं च वीक्ष्य भगवान् पूजयाञ्चक्रे ॥३०-३१॥

अनुवाद— घासों को चरकर तृप्त हुए बैलों बछड़ों तथा अपने थन के भार से श्रान्त गायों को जो हरी-हरी घासों पर बैठकर अपनी आँखें मूंद कर जुगाली करते थे देखकर तथा सभी जीवों को सुख प्रदान करने वाली उस वर्षा ऋतु की शोभा को जो श्रीभगवान् की लीला के विलास मात्र हैं उन सबों को देखकर श्रीभगवान् बहुत अधिक प्रसन्नता का अनुभव करते थे और बार-बार उसकी प्रशंसा करते थे ॥३०-३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०-३१॥

एवं निवसतोस्तस्मिन्रामकेशवयोर्व्रजे । शरत्समभवद्व्याभ्रा स्वच्छाम्ब्वपरूषानिला ॥३२॥

अन्वयः— एवं तस्मिन् व्रजे निवसतोः राम केशवयोः व्यभ्रा स्वच्छाबु अपरुषानिलाशरत् समभवत् ॥

अनुवाद— इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी सुख पूर्वक व्रज में रह रहे थे, कि वर्षा ऋतु बीत गयी और शरद् ऋतु आ गयी । उस समय आकाश बादलों से रहित हो गया नदियों का जल स्वच्छ हो गया एवं वायु धीरे-धीरे चलने लगी ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

शरदं वर्णयति-एवं निवसतोरित्यष्टादशभिः । विगतान्यभ्राणि यस्यां सा, स्वच्छान्यम्बूनि यस्यां सा, अपरुषः शान्तोऽनिलो यस्यां सा च सा च ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

एवं निवसतोः इत्यादि अठारह श्लोकों से शरद ऋतु का वर्णन करते हैं । उस शरद् ऋतु में आकाश मेघों से रहित हो गया, नदियों का जल स्वच्छ हो गया तथा धीरे-धीरे हवा चलने लगी ॥३२॥

शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः । भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥३३॥

अन्वयः— नीरजोत्पत्त्या शरदा नीराणि भ्रष्टानां चेतांसि पुनः योगनिषेवया इव प्रकृतिं ययुः ॥३३॥

अनुवाद— कमलों की उत्पत्ति होने से शरद ऋतु में जलाशयों के जल उसी तरह से प्रकृतिस्थ हो गये जिस तरह योग भ्रष्टों का मन पुनः योग का सेवन करने से निर्मल हो जाता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

नीरजानामुत्पत्तिर्यया तया शरदा कृत्वा । नीरजानामुत्पत्त्या वा ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

जिस शरद ऋतु के आते ही कमल उत्पन्न हो जाते हैं उस शरद ऋतु के द्वारा जल प्रकृतिस्थ हो गया। अथवा कमलों की उत्पत्ति होने से जल प्रकृतिस्थ हो गया ॥३३॥

व्योम्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पङ्कमपां मलम् । शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाऽशुभम् ॥३४॥

अन्वयः— शरद व्योम्नः अब्दं, भूतशाबल्यं, भुव पङ्कम् अपां मलं शरत् शरत् जहार यथा आश्रमिणां कृष्णेभक्तिः अशुभं हरतीति शेषः ॥३४॥

अनुवाद— शरद ऋतु ने आकाश के मेघ को, जीवों के सांकर्य को, पृथिवी के कीचड़ को तथा जल के

गदले पन को उसी तरह से दूर कर दिया जिस तरह तत्-तत् आश्रमों में रहने वाले मनुष्यों के अशुभों का नाश भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति कर देती है ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

व्योम्नोऽब्दमिति व्योमादीनां चतुर्णां चतुरो मलान् शरदहरत्, आश्रमिणां चतुर्णां कृष्णे जाता भक्तिर्यथाऽशुभमसुखं हरति। तथा हि-ब्रह्मचारिणो गुर्वर्थोदकाहरणादिकष्टं यथा भक्तिर्हरति । तया पूर्णस्य तेनानुपयोगात् । गुरुभिरपि कृतार्थस्य तस्यानियोगात् । एवं व्योम्नोऽब्दं शरज्जहार । यथा च गृहिणोऽपत्यादिसांकर्यं भक्तिर्हरति, विविक्तवासरुच्युत्पत्तेः । तथा भूतानां शाबल्यं सांकर्यं शरत् । वर्षासु वृष्टिभिया संकुलानि वसन्ति । यथा च वनस्थस्य मलधारणक्लेशं भक्तिर्हरति एवं भुवः पङ्कं शरत् । यथाच यतीनां कामादिवासनामलं श्रीकृष्णभक्तिर्हरति एवमपां मलं शरदिति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

व्योम्नोऽब्दम् इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है कि आकाश आदि चार पदार्थों के चार प्रकार के दोषों को शरद ऋतु ने दूर कर दिया । यह उसी तरह से किया जिस तरह से चारो आश्रम (ब्रह्मचार्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास) नामक आश्रमों के मनुष्यों के कष्टों को भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति दूर कर देती है । वह इस प्रकार से है- ब्रह्मचारियों को जो अपने गुरु के लिए जल लाने में कष्ट होता है उसको भगवान् की भक्ति दूर कर देती है । क्योंकि भक्ति से परिपूर्ण ब्रह्मचारी का उपयोग जल लाने के काम में नहीं होता है । गुरुजन भी कृतार्थ ब्रह्मचारी को ऐसा आदेश नहीं देते । इसीतरह से शरद् ऋतु ने अनुपयोगी मेघों को आकाश से दूर कर दिया। जिस तरह गृहस्थ के सन्तानों के सांकर्य को भगवान् की भक्ति दूर कर देती है । क्योंकि भक्ति सम्पन्न व्यक्ति की रुचि अकेले रहने में हो जाती है । उसी तरह से जीवों के सांकर्य को शरद् ऋतु ने दूर कर दिया । वर्षा ऋतु में वर्षा के भय से जीव एक दूसरे से सटकर निवास करते हैं । जिस तरह भगवान् की भक्ति वानप्रस्थ पुरुषके मलधारण जन्य क्लेश को दूर कर देती है, उसी तरह शरद ऋतु ने भी पृथिवी के मल (कीचड़) को हर लिया । भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति संन्यासियों की कामादि वासना रूपी मल को दूर करती है शरद ऋतु ने भी जल के गदले पन रूपी मल को दूर कर दिया ।।३४।।

सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः । यथा त्यक्तैषणाः शान्ता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ।।३५।।

अन्वयः— जलदाः सर्वस्वं हित्वा शुभ्रवर्चसः यथा त्यक्तैषणाः शान्ताः मुक्तकिल्विषाः मुनयः विरेजुः ।।३५।।

अनुवाद— मेघ अपना सारा जल बरसा करके अपनी उज्ज्वल कान्ति से उसी तरह से सुशोभित होने लगे जिस तरह लोकैषणा वित्तैषणा इत्यादि का त्याग करके संसार के बन्धन से मुक्त बने हुए परम शान्त तत्त्वचिन्तन परायण मुनिजन सुशोभित होते हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

त्यक्तैषणाः त्यक्ताः पुत्रवित्तलोकैषणा यैस्ते ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों ने लोकैषणा, पुत्रैषणा वितैषणा इन तीनों प्रकार की एषणाओं का परित्याग कर दिया है वे मुनिजन।।३५।।

गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम् । यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ।।३६।।

अन्वयः— यथा ज्ञानिनः काले ज्ञानामृतं ददते नवाददते, एवं गिरयः क्वचित् शिवं तोयं मुमुचुः क्वचिन्न ।।३६।।

अनुवाद— जिस तरह ज्ञानी पुरुष कहीं पर योग्य अधिकारी को प्राप्त करके उसे ज्ञान रूपी अमृत प्रदान

कर देते हैं और कहीं पर नहीं भी करते हैं। उसी तरह पर्वत भी अब कहीं पर अपने कल्याणकारी जल को प्रवाहित करते थे और कहीं पर नहीं करते थे ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

गिरय इति। अयं भावः- नह्युपाध्यायाः कर्मविद्यामिव ज्ञानिनो ज्ञानामृतं सर्वतो वितरन्ति, अपितु कृपया क्वचिदेव। एवं गिरयः शिवं निर्मलं तोयं क्वचिन्मुमुचुः क्वचिन्न। न पुनः प्रावृषीव सर्वत इति ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

गिरयः इत्यादि श्लोक का भाव यह है कि जिस तरह से अध्यापक सबों को कर्म विद्या का उपदेश समान रूप से देते हैं उस तरह से ज्ञानी पुरुष अपने ज्ञान रूपी अमृत का वितरण सबों को नहीं करते हैं अपितु कृपा परतन्त्र होकर कहीं पर किसी को ही करते हैं। इसी तरह पर्वत भी शरद् ऋतु में अपने स्वच्छ जल को कहीं-कहीं पर ही बहाते हैं न कि वर्षा ऋतु के समान सर्वत्र प्रवाहित करते हैं ॥३६॥

नैवाविन्दन्क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः। यथायुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ॥३७॥

अन्वयः— गाधजलेचराः क्षीयमाणं जलं नैवाविन्दन् यथा मूढाः कुटुम्बिनः नराः अन्वहं क्षय्यं आयुः ॥३७॥

अनुवाद— छोटे-छोटे गढों में भरे जल के जलचर प्रतिदिन सुखने वाले जल को उसी तरह नहीं समझ पा रहे थे जिस तरह प्रतिदिन क्षीण होने वाली अपनी आयु को अज्ञानी कुटुम्बी पुरुष नहीं जान पाता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

गाधे क्षुद्रे जले चरन्तीति तथा ते मीनादयः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

गाध जलेचराः अर्थात् थोड़े जल में रहने वाली मछलियाँ आदि ॥३७॥

गाधवारिचरास्तापमविन्दन् शरदर्कजम्। यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥३८॥

अन्वयः— गाधवारिचराः शरदर्कजम् तापम् अविन्दन् यथा अविजितेन्द्रिय कृपणः दरिद्रः कुटुम्बी ॥३८॥

अनुवाद— थोड़े जल में रहने वाले प्राणियों का शरत् कालीन सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से ताप उसी तरह से होने लगा जिस तरह अपनी इन्द्रियों के वश में रहने वाले दरिद्र कुटुम्बी को विभिन्न प्रकार के संताप सताते है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

अविन्दन् लेभिरे ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

अविन्दन अर्थात् प्राप्त किए ॥३८॥

शनैः शनैर्जहुः पङ्कं स्थलान्यामं च वीरुधः। यथाहंममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥३९॥

अन्वयः— स्थलानि शनैः शनैः पङ्कं वीरुधः च आमं धीरः शरीरादिषु अनात्मसु अहं ममतां यथा जहुः ॥३९॥

अनुवाद— पृथिवी धीरे-धीरे अपने पंक को तथा वीरुध अपने कच्चे पन को उसी तरह छोड़ने लगीं जिस तरह ज्ञानी पुरुष शरीर आदि अनात्म पदार्थ में होने वाली अहंत्व एवं ममत्व की बुद्धि का परित्याग कर देते हैं॥३९॥

भावार्थ दीपिका

शनैः शनैरिति। तत्र ममतामिव पङ्कमहन्तामिव आमतामपक्वतां जहुरिति ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

शनैः शनैः के द्वारा बतलाया गया है कि ममता के समान कीचड़ को और अहन्ता के समान अपक्वता को त्याग दिये ॥३९॥

निश्चलाम्बुरभूत्तूष्णीं समुद्रः शरदागमे । आत्मन्युपरते सम्यङ्मुनिर्व्युपरतागमः ॥४०॥

अन्वयः— शरदागमे समुद्रः निश्चलाम्बुःतूष्णीं अभूत् सम्यक् आत्मनि उपरते व्युपरतागमः मुनिः यथा ॥४०॥

अनुवाद— शरद् ऋतु के आने पर समुद्र का जल स्थिर गम्भीर और शान्त हो गया जैसे मन के निः सङ्कल्प हो जाने पर मुनि जन कर्म वेदघोष रूपी कर्मकाण्ड का परित्याग कर देते हैं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

आत्मन्युपरते त्यक्तक्रिये मुनिरिव निश्चलाम्बुः स एव व्युपरतागमो निवृत्तवेदघोष इव तूष्णीमभूदिति ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

मन के निष्क्रिय हुए मुनि के समान समुद्र स्थिर जल वाला हो गया और वही मुनि वेदपाठ रूप कर्मकाण्ड का परित्याग जैसे कर देता है उसी तरह समुद्र भी शान्त हो गया ॥४०॥

केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन्कर्षका दृढसेतुभिः । यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ॥४१॥

अन्वयः— कर्षकाः दृढसेतुभिः केदारेभ्यः तु अपः अगृह्णन् यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ॥४१॥

अनुवाद— किसान मेड़ों को मजबूत बनाकर खेतों के पानी को बहने से उसी तरह रोकने लगे जिस तरह योगिजन अपनी इन्द्रियों को विषय की ओर जाने से रोककर प्रत्याहार के द्वारा क्षीण होने वाले ज्ञान की रक्षा करते हैं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

केदारेभ्यो बद्धे सेतुशालिक्षेत्रेभ्यो दृढैः सेतुभिरपोऽगृह्णन्। ततः परं वृष्ट्यभावात्। प्राणैरिन्द्रियैः। तन्निरोधेनेन्द्रियप्रत्याहारेण।।४१॥

भाव प्रकाशिका

घान के खेत में बाँधें गये मेंड़ों को सुदृढ बनाकर किसान उसी तरह से खेत के पानी को रोकने लगे जिस तरह इन्द्रियों को रोककर उनके द्वारा क्षीण होते हुए ज्ञान की प्रत्याहार के द्वारा योगिजन ज्ञान की रक्षा करते हैं ॥४१॥

शरदर्कांशुजांस्तापान्भूतानामुडुपोऽहरत् । देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम् ॥४२॥

अन्वयः— भूतानाम् शरदर्कांशुजं तापान् उडुपः अहरत् यथा व्रजयोषितां देहाभिमानजं बोधः मुकुन्दः ॥४२॥

अनुवाद— शरद ऋतु में होने वाले सूर्य की किरणों से लोगों के सन्ताप को चन्द्रमा ने उसी तरह हर लिया जिस तरह देहाभिमान के कारण होने वाले कष्ट को ज्ञान तथा श्रीभगवान् के विरह से होने वाले कष्ट को भगवान् मुकुन्द ने हर लिया ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

देहाभिमानजं बोध इव व्रजयोषितां मुकुन्द इव चेत्यर्थः ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

जैसे देहाभिमान जन्य कष्ट को ज्ञान हर लेता है तथा जैसे व्रजवनिताओं के भगवद् वियोग जन्य कष्ट को भगवान् श्रीकृष्ण हर लिए ॥४२॥

खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् । सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥४३॥

अन्वयः— निर्मेघं शरद्विमलतारकम् खम् शब्द ब्रह्मार्थ दर्शनम् सत्त्वयुक्तं चित्तं यथा अशोभत ।।४३।।

अनुवाद— मेध से रहित शरत् कालीन स्वच्छ ताराओं से युक्त आकाश उसी तरह सुशोभित हुआ जिस तरह वेदों के अर्थ को ठीक-ठीक जानने वाले का सत्त्वगुण सम्पन्न चित्त सुशोभित होता है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

शरदा विमलास्तारका यस्मिंस्तत् । शब्दब्रह्मणो वेदस्यार्थान् पूर्वोत्तरमीमांसानिर्णीतान्दर्शयतीति तथा तद्वत् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

शरत् कालीन स्वच्छ तारों से भरा हुआ आकाश उसी तरह से सुशोभित हुआ जिस तरह पूर्वमीमांसा एवं उत्तर मीमांसा में निर्णीत वेदों के मन्त्रों को जानने वाले पुरुष का चित्त निर्मल (वासना रहित) हो जाता है ।।४३।।

अखण्डमण्डलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी । यथा यदुपतिः कृष्णो वृष्णिचक्रावृतो भुवि ॥४४॥

अन्वयः— अखण्डमण्डलः शशी उडुगणैः व्योम्नि भुवि वृष्णिचक्रावृतः यदुपतिः कृष्णः रराज ।।४४।।

अनुवाद— अपने पूर्णमण्डल से युक्त चन्द्रमा तारों से युक्त होकर उसी तरह सुशोभित हुए जिस तरह यदुवंशियों के बीच यदुपति भगवान् इस पृथिवी पर सुशोभित होते हैं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४४।।

आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम् । जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः ॥४५॥

अन्वयः— समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम् आश्लिष्य जनाः तापं जहुः कृष्णहृतचेतसः गोप्यो न ।।४५।।

अनुवाद— विकसित पुष्पों वाले वन से होकर आने वाली समशीतोष्ण (जो न तो अधिक गर्म होती है और न अधिक ठंढी) वायु सेवन करके लोगों ने अपना संताप त्याग दिया किन्तु उससे गोपियों के जी की जलन और बढ़ जाती, उनका मन सदा भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा रहता था ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

समोऽन्यूनाधिकः शीतश्चोष्णश्च तम्, नतु गोप्यः । कृष्णापहृतचेतस्त्वेन तासां संतापो दुःसह इति । यद्वा नकार उपमार्थः। तदा कृष्णहृतचेतस इति चेतसा कृष्णमाश्लिष्य यथेत्यर्थः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

समशीतोष्णम् अर्थात् जिसमें बराबर मात्रा में ठंढी एवं गर्मी हो अर्थात् जो न तो अधिक ठंढी हो और न अधिक गर्म हो ऐसी हवा । उससे लोगों का तो सन्ताप दूर हो गया, किन्तु उससे गोपियों का सन्ताप दूर नहीं हुआ । क्योंकि गोपियों के मन को तो भगवान् श्रीकृष्ण ने चुरा लिया था अतएव उस वायु से गोपियों के जी की जलन और बढ गयी । अथवा नकार उपमार्थक है । तब अर्थ होगा कि जिन गोपियों का मन निरन्तर भगवान् श्रीकृष्ण में लगा रहता था उन सबों को उस वायु से उसी तरह आनन्दानुभूति हुई जिस तरह भगवान् श्रीकृष्ण का आलिङ्गन करके उनको आनन्दानुभूति होती थी ।।४५।।

गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यः शरदाभवन् । अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलैरीशक्रिया इव ॥४६॥

अन्वयः— शरदा स्ववृषैः अन्वीयमानाः गावः मृगाः खगाः नार्यः फलैः आशीक्रिया इव पुष्पिण्यः अभवन् ।।४६।।

अनुवाद— शरद ऋतु में सांड, हरिण, पक्षी तथा पुरुष के द्वारा अनुसरण की जाती हुई गायें, हरिणियाँ, चिड़ियाँ तथा नारियाँ ऋतुमती अर्थात् सन्तानोत्पत्ति की कामना से युक्त हो गयीं । यह उसी तरह से हुआ जिस तरह समर्थ पुरुष के द्वारा की गयी क्रियाएँ फलवती ही होती हैं ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

पुष्पिण्यो गर्भिण्यः । अन्वीयमानाः स्ववृषैः स्वपतिभिरनिच्छन्त्योऽपि बलादनुगम्यमानाः । ईश्वराराधनार्थाः क्रियाः बलात्फलैरनुगम्यमानाः समस्तभोगगर्भा यथेति ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

पुष्णिपण्यः अर्थात् गर्भिणियाँ । क्योंकि उन सबों को नहीं चाहने पर भी उन सबों के पतिगण, उन सबों का बलपूर्वक अनुगमन करते थे । परमात्माराधन के लिए की गयी क्रियायें समस्त फल भोगों से युक्त फल बल पूर्वक प्रदान करती हैं ।।४६।।

उदहृष्यन्वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद्विना । राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून्विना नृप ।।४७।।

अन्वयः— हे नृप राज्ञा यथा दस्यून् विना समस्ता निर्भयाः तथा सूर्योत्थाने कुमुद् विना वारिजानि उदहृष्यन् ।।४७।।

अनुवाद— हे राजन् ! जिस तरह लुटेरों को छोड़कर सभी लोग राजा के आने पर प्रसन्न हो जाते हैं उसी तरह सूर्योदय के होने पर कुमुदिनी (कोई) को छोड़ सभी पुष्प विकसित हो जाते हैं ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

कुमुत् कुमुदम् । कुत्सितां मुत् यस्येति दस्युसाम्यम् ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

कुत्सिता मुत् यस्य इस विग्रह के अनुसार कुमुद शब्द को डकैतों के समान बतलाया गया ।।४७।।

पुरग्रामेष्वाग्रयणैरैन्द्रियैश्च महोत्सवैः । बभौ भूः पक्वसस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ।।४८।।

अन्वयः— पुरग्रामेश्वाग्रायणै ऐन्द्रियैश्च महोत्सवैः पक्वसस्याढ्या हरेः कलाभ्यां भूः नितरां बभौ ।।४८।।

अनुवाद— नगरों एवं ग्रामों में नवान्न प्राशन तथा इन्द्र सम्बन्धी यज्ञ होने लगे । पकी हुई सस्य सम्पत्ति पृथ्वी धनवती हो गयी तथा भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी की उपस्थिति में अत्यन्त सुशोभित होने लगी ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

आग्रायणैर्नवान्नप्राशनार्थैर्वैदिकैरैन्द्रियैरिन्द्रियार्थैर्लौकिकैश्च महोत्सवैः । कलाभ्यां रामकृष्णाभ्यां दर्शनादिमहोत्सवाभ्याम्।।४८।।

भाव प्रकाशिका

नवान्नप्राशन के लिए अग्रायणनामक वैदिक तथा इन्द्रियों सम्बन्धी लौकिक यज्ञों वाले महोत्सवों तथा श्रीकृष्ण भगवान् बलरामजी के द्वारा दर्शन आदि महोत्सवों द्वारा पृथिवी सुशोभित होने लगी ।।४८।।

वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान्प्रपेदिरे । वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान्काल आगते ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे शरदवर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ।।२०।।

अन्वयः— यथा काल आगते सिद्धाःस्वपिण्डान् तथा वर्षारुद्धा वणिग्ङ्मुनिनृपस्नाताः निर्गम्य अर्थात् प्रपेदिरै ।।४९।।

अनुवाद— जिस तरह साधना करके सिद्ध हुए पुरुष समय आने पर जिस तरह अपने देवता आदि के शरीर को प्राप्त करते हैं उसी तरह वर्षा के कारण एक स्थान पर रुके हुए व्यापारी, संन्यासी, राजा और स्नातक अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए निकलकर अपने काम काज में लग गये ।।४९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्द्ध के बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

वणिजो यतयो नृपाः स्नातकाश्च दृष्टादृष्टाभ्यां वर्षरुद्धाः सन्तो निर्गम्यार्थान्वाणिज्यस्वाच्छन्द्यदिग्विजयविद्यादीन्प्रपेदिरे प्रापद्यन्त । यथा मन्त्रयोगादिसिद्धाः । आयुषा रुद्धाः काले आगते स्वपिण्डान्योगादिप्राप्यान्देवादिदेहानिति ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां विंशतितमोऽध्यायः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

व्यापारी संन्यासी, राजा और स्नातक अपने लौकिक तथा पारलौकिक लक्ष्य की प्राप्ति के प्रयास से वर्षा के कारण रुक गये थे वे लोग निकलकर, वाणिज्य स्वच्छन्दता, दिग्विजय तथा विद्या आदि को प्राप्त कर लिए। सिद्ध पुरुष अपनी आयु के कारण रुके हुए थे आयु के समाप्त हो जाने पर योग के द्वारा प्राप्य भूत देवादि देहों को प्राप्त कर लेते हैं ।।४९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दशवे स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका का टीका के बीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२०।।

इक्कीसवाँ अध्याय

वेणुगीत

श्रीशुक उवाच

इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना । न्यविशद्वायुना वातं स गोगोपालकोऽच्युतः ॥१॥

अन्वयः— इत्थं शरत् स्वच्छजलं पद्माकर सुगन्धिना वायुना वातं वनं स गो गोपालकः अच्युतः न्यविशत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह शरद् ऋतु के कारण स्वच्छ जल वाले तथा विकसित कमलों से भरे हुए जलाशय की सुगन्धि को लेकर चलने वाली वायु से युक्त उस वन में श्रीभगवान अपनी गौओं और ग्वाल बालों के साथ प्रवेश किए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकविंशे शरद्रम्यवृन्दावनगते हरौ । तद्वेणुस्वनमाकर्ण्य गोपीभिर्गीतमीर्यते । इत्थमेवंभूतं वनम् । तदेवाह-शरदा स्वच्छानि जलानि यस्मिंस्तत् । वायुना वातमनुगतं तदेकव्याप्तमित्यर्थः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इक्कीसवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि शरद् ऋतु के आने पर मनुष्य वने वृन्दावन में श्रीहरि के प्रवेश करने पर उनकी वंशी की ध्वनि सुनकर गोपियाँ गीत गाने लगीं । इस प्रकार के वन में यह **इत्थम्** शब्द का अर्थ है। जिस वन में जल स्वच्छ हो गया था, उस सम्पूर्ण वन में कमलों की सुगन्धि से युक्त वायु व्याप्त हो गयी थी ॥१॥

कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्गद्विजकुलघुष्टसरः सरिन्महीध्रम् ।
मधुपतिरवगाह्य चारयन्गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥२॥

अन्वयः— कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्गद्विजकुलघुष्टसर; सरिन्महीध्रम् मधुपतिरवगाह्य गाः चारयन् सहपशुपालबलः वेणुम् चुकूज ॥२॥

अनुवाद— मनोहर पुष्पों से परिपूर्ण वन वृक्षों की पंक्तियों में मदमत भौंरे गुन गुना रहे थे, विभिन्न प्रकार के पक्षियों का समूह कलरव कर रहा था, जिससे कि उस वन के सरोवर, नदियाँ और पर्वत सबके सब ध्वनित हो रहे थे। उसी समय मधुपति भगवान श्रीकृष्ण उस वन में प्रवेश करके गोपों तथा बलरामजी के साथ गाओं को चराते हुए अपनी वंशी बजाने लगे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च कुसुमितवनराजिषु शुष्मिणो मत्ता भृङ्गा द्विजाः खगाश्च तेषां कुलानि तैर्घुष्टाः सरांसि सरितो महीध्राश्च यस्मिंस्तद्वनं कृष्णोऽवगाह्य प्रविश्य वेणुमवादयत् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् जिन वन पंक्तियों के सभी वृक्ष विकसित पुष्पों से भर गये थे, मदमत्त भौरों से तथा विविध प्रकार के पक्षियों के समूह के गुञ्जन तथा कलरव की ध्वनि से सरोवर, नदियाँ और पर्वत प्रति ध्वनित हो रहे थे। उस वन में भगवान् श्रीकृष्ण प्रवेश करके अपनी वंशी को बजाये ॥२॥

तद्व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् । काश्चित्परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥३॥

अन्वयः— स्मरोदयम् तद् वेणुगीतं आश्रुत्य काश्चित् व्रजस्त्रियः कृष्णस्य परोक्षं स्वसखीभ्यः अन्ववर्णयन् ॥३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की वह वंशी की ध्वनि गोपियों की काम भावना को उद्रिक्त करने वाली थी, उसको सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेम से परिपूर्ण कुछ व्रज वनिताएँ एकान्त में अपनी सखियों से श्रीभगवान् के रूप, गुण तथा वंशी की ध्वनि के प्रभाव का वर्णन करने लगीं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्कृष्णवेणुगीतं स्मरस्योदयो यस्मात्तदाश्रुत्य श्रुत्वा परोक्षं यथा भवति तथा, व्रजे स्थितत्वात् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की उस कामोद्रेचक वंशी की ध्वनि को सुनकर ब्रज स्थित रहने के कारण श्रीभगवान् के परोक्ष में ॥३॥

तद्वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम् । नाशकन्स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥४॥

अन्वयः— नृपः कृष्ण चेष्टितम् स्मरन्त्याः तद्वर्णयितुम् आरब्धाः स्मरवेगेन विक्षिप्त मनसः न अशकन् ॥४॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् भगवान् की श्रीकृष्ण की लीलाओं का स्मरण करने वाली वे गोपियाँ उनका वर्णन तो करना चाहती थीं किन्तु भगवान् की वंशी को सुनते ही श्रीभगवान् से मिलन की इच्छा में उनका मन उन सबों के वश में नहीं रहा वे श्रीभगवान् का मन ही मन चिन्तन करती उनका वर्णन नहीं कर सकीं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

विक्षिप्तमनसो व्याकुलचित्ताः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

विक्षिप्तमनसः अर्थात् उन सबों का चित्त व्याकुल हो गया ॥४॥

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः ॥५॥

अन्वयः— वर्हापीडं, कर्णयोः कणिकारं, कनककापिशं वासः वैजयन्तीं मालां च विभ्रत् नटवर वपुः अधरसुधया वेणोः रन्ध्रान् पूरयन् गतिकीर्तिः स्वपदरमणं गोपैः वृन्दारण्यं प्राविशत् ॥५॥

अनुवाद— गोपियाँ अपनी आँखों से जैसे देख रही हैं कि श्रीभगवान् के सिर पर पिच्छ हैं, कानों में कनेर (कनइल) के पीले पीले पुष्प लगा रखे हैं, पीत पीताम्बर वस्त्र पहने हैं, गले में वनमाला धारण किए है। इस प्रकार का श्रीकृष्ण का वेष श्रेष्ठ नट वेष के समान अत्यन्त मनोज्ञ है। वे अपनी अधरामृत के द्वारा वंशी के छिद्रों को भर दे रहे हैं और ग्वाल बाल उनकी लीला रूपी यश का गान कर रहे। इस प्रकार के श्रीकृष्ण अपने वैकुण्ठ नामक स्थान से भी सुन्दर इस वृन्दावन में ग्वाल बालों के साथ प्रवेश कर गये ॥५॥

भावार्थ दीपिका

यादृशं कृष्णस्मरणं तासां मनसः क्षोभकं जातं तदाह-बर्हापीडमिति। नटवर वपुर्बिभ्रद्वृन्दावनं प्राविशत्। कथंभूतं वनम्। स्वपदैरङ्कितै रमणं रतिजनकम्। गोपवृन्दैर्गीतकीर्तिः। तथा बर्हमयमापीडं शिरोभूषणं बिभ्रत्। बर्हमापीडो यस्मिन्निति वपुषो विशेषणं वा। वेणुवादनमुत्प्रेक्षते-रन्ध्रान्वेणोरिति। अतो नूनमधरसुधैव पूर्णाद्वेणोरुच्चलन्ती गीतवत्प्रसर्पितुमर्हतीति भावः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

उन सबों के मन में क्षोभ उत्पन्न हो गया था। उसके कारण भगवान् श्रीकृष्ण का जैसा स्मरण वे सब अपने मन से उसी का वर्णन **वर्हापीड इत्यादि** श्लोक से किया गया है। श्रीभगवान् का शरीर नट के समान अत्यन्त श्रेष्ठ कोटि का है। इस प्रकार के श्रीभगवान् वृन्दावन में प्रवेश कर गये हैं। वह वन कैसा है ? उनके अपने चरण चिह्नों से अंकित होने के कारण अत्यन्त मनोहर है। गोप समुदाय उनके यश का गान कर रहा है। वे मयूरपिच्छ से वने शिरोभूषण को धारण किए हैं। अथवा उनके सिर का आपीड भूषण विशेष है। श्रीभगवान् की वंशी वादन की उत्प्रेक्षा करती हुई कहती हैं। निश्चत रूप से अधरामृत से जिसके छिद्र भर गये है ऐसी वह वंशी ही गीत के समान प्रसृमर (फैलती हुई) हो रही है ॥५॥

इति वेणुरवं राजन्सर्वभूतमनोहरम्। श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेभिर ॥६॥

अन्वयः— राजन् इति सर्वभूतमनोहरम् वेणुरवं श्रुत्वा सर्वाः व्रजस्त्रियः वर्णयन्त्यः अभिरेमिरे ॥६॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् इस तरह सभी जीवों के मन का हरण करने वाली वंशी की ध्वनि को सुनकर सभी व्रज की स्त्रियाँ श्रीभगवान् का वर्णन करती हुई तन्मय हो गयीं और कल्पना लोक में ही श्रीभगवान् को प्राप्त करके उनका गाढालिङ्गन कीं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

अभिरेभिरे वर्णयन्त्यः पदे पदे परमानन्दमूर्तिं कृष्णं परिरब्धवत्यः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

अभिरेभिरे अर्थात् वर्णन करती हुई पग-पग पर परमानन्द स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण का आलिङ्गन कीं ॥६॥

गोप्य ऊचुः

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥७॥

अन्वयः— हे सख्यः अक्षण्वतां इदं फलं विदामः परं न, वयस्यै पशून् अनु विवेशयतोः व्रजेश सुतयोः अनुवेणु जुष्टं अनुरक्तकटाक्षमोक्षं वक्त्रं निपीतम् ॥७॥

गोपो ने कहा

अनुवाद— (वे आपस में बातें करती हुई कहने लगी) हे सखियों मैं तो आँख वालों के जीवन की और

उनकी आखों का सबसे बड़ा लाभ यही समझती हूँ कि जब श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण और गौरसुन्दर बलरामजी ग्वाल बालों के साथ गायों को हाँककर चाहे बन में ले जाते हों चाहे लौटकर व्रज में ला रहे हों और अपने अधरो मुरली धर रखे हों तथा अपनी प्रेमपूर्ण तिरछे चितवन से हमलोगों को देख रहे हो उस समय हमलोग उनकी मधुरिमा का अपने नेत्रों से पान करते रहें ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अनुवर्णनमेवाह-अक्षण्वतामिति त्रयोदशभिः । अक्षण्वतां चक्षुष्मतां तावदिदमेव फलं प्रियदर्शनं परमन्यत्र विदामः, न विद्म इत्यर्थः । तच्च फलं सखिभिः सह पशून्वनं प्रवेशयतो रामकृष्णयोर्वक्त्रं यैर्निपीतं तैरेव जुष्टं सेवितं, नान्यैरित्यर्थः । कथंभूतं वक्त्रम् । अनुवेणु वेणुमनुवर्तमानं तं वादयत् । तथाऽनुरक्तकटाक्षमोक्षं स्निग्धकटाक्षविसर्गम् । अथवा यैर्निपीतं तयोर्वक्त्रं तैर्यज्जुष्टमिदमेवाक्षण्वतामक्ष्णोः फलमिति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

अक्षण्वतामित्यादि तेरह श्लोकों के द्वारा गोपियों के द्वारा किए गये भगवान् श्रीकृष्ण के वर्णन को ही कहा गया है। नेत्रवालों के जीवन का हम यही सबसे प्रिय दर्शन जानती हैं, इससे भिन्न कोई नहीं जानती। वह फल यही है कि अपने मित्रों के साथ पशुओं को वन में ले जाते समय श्याम सुन्दर और गौर सुन्दर श्रीकृष्ण और बलरामजी के मुख का जिन लोगों ने अपनी आखों से देखा उन लोगों ने ही अपने प्रिय पदार्थ का सेवन किया है, दूसरे लोग नहीं । कैसे मुख को ? तो बतलाती हैं जबकि वे वंशी बजा रहे हों तथा अपने प्रेम पूर्ण कटाक्षों से देख रहे हों । अथवा जिन लोगों ने उन दोनों नन्द नन्दनों को मुख की मधुरिमा का अपने नेत्रों से पान किया है, उन लोगों ने ही अपनी आँखों का सर्वप्रिय फल प्राप्त किया है ।।७।।

चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालानुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ।
मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां रङ्गे यथा नटवरौ क्वच गायमानौ ॥८॥

अन्वयः— चूतप्रवालबर्हस्तवको पलाब्जमालानुपृक्तपरिधानं विचित्र वेषौ क्वच पशुपालगोष्ठ्यां मध्ये गायमानौ रङ्ग नटवरौ यथा अलं विरेजतुः ।।८।।

अनुवाद— (दूसरी सखी ने कहा) सखी जब वे आम की नई कोपलें मयूरों के पङ्ख, पुष्पों के गुच्छे, विभिन्न रङ्ग के कमलों और कुमुदों की मालाएँ धारण करके श्रीकृष्ण के श्याम शरीर पर पीताम्बर बलरामजी के गौर शरीर पर नीलाम्बर सुशोभित होने लगता है तब तो उन दोनों का वेष अतुलनीय मनोहर हो जाता है । ग्वाल बालों की गोष्ठी के बीच में बैठकर जब वे गीत गाने लगते हैं तो लगता है कि दो चतुर नट रङ्गमंच पर अभिनय कर रहे हों । उस समय उन दोनों की जो शोभा होती है, वह अवर्णनीय ही है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

अन्या आहुः-चूतेति । चूतप्रवालादीनां चित्राभिर्मालाभिरनुपृक्ते ईषदन्तरान्तरतः संयुक्ते परिधाने नीलपीताम्बरे ताभ्यां विचित्रो वेषो ययोस्तौ क्वच कदाचित्पशुपालगोष्ठ्यां गोपालसभायां मध्ये अलमत्यर्थं विरेजतुः । अहो गोपानां पुण्यमितो भावः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

चूतप्रवाल० इत्यादि श्लोक को दूसरी सखी ने कहा है आम की कोमल आदि की विचित्र मालाओं को थोड़ें-थोड़े अन्तराल पर धारण किए हुए तथा नीलाम्बर एवं पीताम्बर धारण करने से विचित्र वेष वाले राम और श्याम दोनों कभी ग्वाल बालों की गोष्ठी के बीच में बैठे हुए अत्यधिक सुशोभित होते है । यह गोपों के पुण्यों का ही फल है ।।८।।

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यां हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथार्याः ॥९॥

अन्वयः— हे गोप्यः अयं वेणुः किम् कुशलम् आचरतस्म यत् गोपिकानाम् दामोदराधरसुधामपि स्वयं भुंक्ते यदवशिष्ट रसं हृदिन्यः हृष्त्वचः तरवश्च आर्याः यथा अश्रुमुमुचु ॥९॥

अनुवाद— तीसरी सखी ने कहा हे गोपियों यह वेणु न जाने कौन सा पुण्य कर्म है कि वह हम गोपिकाओं की सम्पत्ति दामोदर के अधरों का रस स्वतंत्र रूप से पीता जा रहा है । लगता है कि यह उनके अधरों का सारा रस पी जायेगा । हमलोगों के लिए कुछ भी नहीं छोड़ेगा, इस वेणु को अपने रस से सीचिंत करने वाली हृदिनियाँ (सरोवर) कमलों के बहाने रोमाञ्चित हो रही हैं । अपने वंश में उत्पन्न भगवद् भक्त को देखकर जैसे श्रेष्ठ पुरुष आनन्द के आँसू बहाते हैं उसी तरह वृक्ष भी इसके साथ अपना संबन्ध जोड़कर आनन्दाश्रु बहाते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अन्या ऊचुः-हे गोप्यः, अयं वेणुः किं स्म पुण्यमाचरत्कृतवान् । कथम् । यद्यस्माद्गोपिकानामेव भोग्यां सतीमपि दामोदराधरसुधां स्वयं स्वातन्त्र्येण यथेष्टं भुङ्क्ते । कथम् । अविशिष्टरसं केवलमवशिष्टं रसमात्रं यथा भवति तथा । यतो यासां ह्रदिनीनां पयसा पुष्टस्ता मातृतुल्या ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचो विकसितकमलवनमिषेण रोमाञ्चिता लक्ष्यन्ते । येषां वंशे जातास्ते तरवो मधुधारामिषेणानन्दाश्रु मुमुचुः । यथा आर्याः कुलवृद्धाः स्ववंशे भगवत्सेवकं दृष्ट्वा हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुञ्चन्ति तद्वदिति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी सखियों ने कहा हे गोपियों ! इस वेणु ने न जाने कौन सा पुण्य किया था । क्यों ? क्योंकि जो केवल गोपिकाओं का ही है दामोदर की अधर सुधा उसका यह स्वयं स्वतंत्र रूप से पान कर रहा है लगता है कि यह तो सम्पूर्ण सुधा को पीकर अवशिष्ट राग मात्र को छोड़ेगा । क्योंकि जिन सरोवरों के रस से यह सीचा गया है वे इसकी माता के समान हृदिनियाँ लगता है कि वे इसको देखकर कमलों के विकास के माध्यम से रोमाञ्चित हो रही हैं। जिन वृक्षों के वंश में यह वेणु उत्पन्न हुआ वे वृक्ष भी मधुधारा के व्याज से उसी तरह से आनन्दाश्रु बहा रहे है जिस तरह से अपने वंश में उत्पन्न भक्त को देखकर उसके कुलवृद्ध पुरुष आनन्दाश्रु बहाते हैं ॥९॥

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ।
गोविन्दवेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥१०॥

अन्वयः— हे सखि ! वृन्दावनभुवः कीर्तिं वितनोति, यद्देवकी सुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि, गोविन्द वेणुमनुमत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्य अद्रिसान्वपरतान्यसमस्त सत्त्वम् ॥१०॥

अनुवाद— दूसरी सखी कहती हैं कि हे सखि यह वृन्दावन पृथिवी के यश का विस्तार स्वर्गादि लोकों पर्यन्त कर रहा है । क्योंकि माता देवकी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों के चिह्नों से यह शोभा रूपी संपत्ति को प्राप्त कर लिया है । किञ्च गोविन्द की मुरली की ध्वनि को सुनकर वह जब मदमत्त मयूर श्रीभगवान् के श्याम विग्रह को देखता है तो उसे लगता है कि जलभरा नीला मेघ मन्द-मन्द गर्जना कर रहा है, और वह नृत्य करने लगता है । उस मयूर के नृत्य को देखकर पर्वत शिखर पर रहने वाले सभी जीव अपनी सारी क्रियाओं का परित्याग करके चुपचाप उसे देखते रहते हैं । ऐसा किसी भी लोक में नहीं होता है । अतएव यह पृथिवी के यश का विस्तार सभी लोकों में फैला रहा है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

काश्चिदाहुः- हे सखि, वृन्दावनं भुवः कीर्तिं स्वर्गादपि विशेषेण वितनोति । कथंभूतम् । यद्देवकीसुतस्य पदाम्बुजाभ्यां

लव्धा लक्ष्मीः शोभासंपद्येन तत् । किंच गोविन्दस्य वेणुमनु वेणुनिनादं श्रुत्वाऽनन्तरं मन्दगर्जितं नीलमेघं तं मत्वा मत्ता ये मयूरास्तेषां नृत्यं प्रेक्ष्य सङ्कशस्तत्र तत्राद्रिसानुष्वपरतान्युपरतक्रियाण्यन्यानि समस्तानि सत्त्वानि यस्मिंस्तत् । नैतदन्येषु लोकेषु विद्यते । अतो भुवः कीर्ति वितनोतीत्यर्थः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

कुछ सखियों ने कहा हे सखि ! वृन्दावन आज पृथिवी के यश का स्वर्ग से भी अधिक सभी लोकों में विस्तार कर रहा हैं । कैसा है यह वृन्दावन ? क्योंकि इसने माता देवकी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण के दोनों चरण कमलों से उनकी छाप जन्य शोभा रूपी संपत्ति को प्राप्त कर लिया है । किञ्च श्री गोविन्द की वेणु (वंशी) की ध्वनि को सुनकर मदमत्त मयूर जब श्रीभगवान् के श्याम वर्ण के शरीर को देखता है तो उसे लगता है कि यह श्याम वर्ण का सजलमेघ मन्द-मन्द गर्जना कर रहा है और वह मदमत्त होकर नृत्य करने लगता है । उस समय पर्वत शिखर पर रहने वाले जितने भी जीव हैं वे अपनी सारी क्रियाओं का परित्याग करके उस नृत्य को शान्त मना होकर देखते रह जाते हैं । इस प्रकार की शोभा किसी भी लोक में नहीं है । अतएव यह वृन्दावन पृथिवी के यश का सभी लोकों में विस्तार कर रहा है ।।१०।।

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् ।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ।।११।।

अन्वयः— एताः मूढमतयः हरिण्य अपि धन्याः स्म याः उपात्तविचित्रवेषम् नन्दनन्दनम् वेणुरणितं आकर्ण्य सहकृष्णसारा प्रणयावलोकैः विरचितां पूजां दधुः ।।११।।

अनुवाद— दूसरी सखियों ने कहा सखियों ये तिर्यग्योनि में उत्पन्न हरिणियाँ भी धन्य हैं ये विचित्र वेष धारण किए हुए नन्दनन्दन श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का सबकुछ भूलकर अवलोकन करती हैं । उनकी वंशी की ध्वनि को सुनकर अपने पति कृष्णसार मृग के साथ भगवान् श्रीकृष्ण की अपने प्रेमपूर्ण अवलोकन के द्वारा उनकी पूजा करती हैं । तथा श्रीभगवान् के भी प्रेम पूर्ण चितवन के आनन्द का अनुभव करती हैं ।।११।।

भावार्थ दीपिका

अपरा आहुः-हे सखि, मूढमतयस्तिर्यग्जातयोऽप्येता हरिण्यो धन्याः कृतार्थाः । या वेणुरणितं वेणु नादमाकर्ण्य नन्दनन्दनं प्रति प्रणयसहितैरवलोकनैर्विरचितां पूजां संमानं दधुः कृतवत्यः । किंच कृष्णसारैः स्वपतिभिः सहिता एव दधुः । अस्मत्पतयस्तु गोपाः क्षुद्राः समक्षं तन्न सहन्त इति भावः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

दूसरी सखियों ने कहा हे सखि ! ये तिर्यग्योनि में उत्पन्न ये हरिणियाँ भी धन्य हैं । वे श्रीकृष्ण की वंशी की ध्वनि को सुनकर उनके पति अपने पति कृष्णसार मृग के साथ प्रेम पूर्वक दर्शन के द्वारा उनका सत्कार करती हैं । हमलोगों के पति जो क्षुद्र गोप हैं वे हमलोगों का श्रीकृष्ण को प्रेमपूर्वक देखना देखकर जलने लगते हैं, उसको बर्दास्त नहीं कर पाते हैं ।।११।।

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम् ।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ।।१२।।

अन्वयः— वनितोत्सवरूपशीलं कृष्णं निरीक्ष्य तत्क्वणितवेणु विचित्रगीतम् श्रुत्वा च विमानगतयः देव्य स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत् प्रसून कवराः विनिव्यः मुमुहुः ।।१२।।

अनुवाद— युवतियों को आनन्दित करने वाले रूप और शील के एकमात्र आश्रय श्रीकृष्ण को देखकर उनकी

बाँसुरी पर उनके द्वारा गाये गये गीत को जब विमान से चलने वाली देवियाँ सुनती हैं तो वे कामार्त होकर अपना धैर्य खो देती हैं और बेहोश हो जाती है । उन्हें इस बात का पता भी नहीं चलता है कि उनकी चोटी के पुष्प पृथिवी पर गिर रहे हैं यहाँ तक कि उनको अपनी साड़ी का भी पता नहीं रहता है, वह कमर से खिसककर पृथिवी पर गिर जाती है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अन्या ऊचुः-हे गोप्यः, आश्चर्यं शृणुत । वनितानामुत्सवो यस्मात्तद्रूपं शीलं च यस्य तं कृष्णं निरीक्ष्य तेन वादितवेणोरसंकीर्णं गीतं च श्रुत्वा विमानैर्गच्छन्त्यो देव्यो देवानामङ्केषु स्थिता अपि स्मरेण नुन्नसाराः परिक्षिप्तधैर्या मुमुहुः । मोहे लिङ्गमाहुः-भ्रश्यत्प्रसूनाः कबराश्चूडा यासां ताः । विगता नीव्यो यासां ताः । अत्र सर्वत्र वक्तृभेदान्नातीव सङ्गतिर्वक्तव्या ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी गोपियों ने कहा हे सखियों आश्चर्य की बात सुनों वनिताओं को आनन्दित करने वाले रूप और शील के एक मात्र आश्रय श्रीकृष्ण को देखकर तथा उनके द्वारा बाँसुरी पर बजाये गये स्पष्ट गीत ध्वनि को सुनकर विमानों से चलने वाली देवियाँ भी काम संतप्त हो जाती हैं । देवताओं की गोद में बैठी हुई भी वे सब अपना धैर्य खो देती हैं और बेहोश हो जाती हैं । उनके मोह के चिह्न को बतलाती हुई सखियों ने कहा उन देवियों को इसका पता भी नहीं रहता है कि उनके केशों में गूथे हुए पुष्प पृथिवी पर गिर रहे हैं । तथा उनके कमर की साड़ी खिसक कर पृथिवी पर गिर पड़ी है । इस अध्याय में सर्वत्र भिन्न-भिन्न वक्ता हैं अतएव उनकी सङ्गति को बतलाना कोई आवश्यक नहीं है ॥१२॥

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्तम्भितकर्णपुटैः पिबन्त्यः ।
शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥१३॥

अन्वयः— कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत पीयूषमुत्तम्भितकर्णपुटैः पिबन्त्यः गावश्च स्नुतपय कवलाः शावाः आत्मनि दृशानुकलाः स्पृशन्त्यः तस्थुस्म ॥१३॥

अनुवाद— श्रीकृष्ण के मुख से निस्सृत वेणुगीत रूपी अमृत का पान करने के लिए अपने दोनों कान रूपी दोने को संभाल कर खड़ा कर देती है और आनन्द मग्न होकर उसका पान करती हैं । बछड़ें भी गायों के थनों को चूते हुए दूध के कवल को श्रीकृष्ण की वंशी की ध्वनि को सुनकर न तो उगल पाते हैं और न निगल पाते हैं । गायें अपने नेत्रों के द्वार से गोविन्द को अपने हृदय में ले जाकर बैठा लेती हैं और वहीं उनका आलिङ्गन करती रहती हैं । यही कारण है कि उनके नेत्रों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

क्षरणशङ्कयैवोत्तम्भितैरुन्नमितैः कर्णपुटैः पिबन्त्यः सत्यः । तथा शावाश्च वत्साश्च स्तनपाने प्रवृत्ताः । समनन्तरमेव गीतं श्रुत्वा तदेव पीयूपमुत्तम्भितकर्णपुटैः पिबन्तः स्नुतस्तनपयः कवलाः केवलं स्तनेभ्यः क्षरितक्षीरग्रासा मुखेषु येषां ते तस्थुः, विस्मृतक्रिया वभूवुरित्यर्थः । तत्र हेतुः-गोविन्दं दृशा मार्गेणात्मनि मनसि स्पृशन्त्य आलिङ्गन्त्यः । अत एवाश्रूणां कला लेशा लोचनयोर्यासां ता गावस्ते च शावाः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

गौएँ भगवान् श्रीकृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनकर अपने दोनों कानों को इसलिए खड़ा कर लेते हैं कि गीत रूपी अमृत कहीं इधर-उधर गिर न जाय और वे उस अमृत का पान अपने कर्णपुटों से करती हैं । बछड़े भी जब गायों का दुग्ध पान करते रहते हैं तो उस वंशी की ध्वनि को सुनते हैं तो वे भी उसी पीयूष का उपने उठाये

हुए कानों के माध्यम से पान करने लग जाते हैं । अपने मुख में विद्यमान दूध के ग्रास को निगलना भी भूल जाते हैं । उसका कारण है कि वे अपनी आँखों के माध्यम से गोविन्द को अपने हृदय में बैठा लेती हैं और उनका वहीं आलिङ्गन करती रहती हैं । यही कारण है कि उनकी आँखों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होता रहता है ।।१३।।

प्रायो बताम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन्कृष्णोक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ।
आरुह्य ये द्रुमभुजान्रुचिरप्रवालान् शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ।।१४।।

अन्वयः— हे अम्ब ! बत अस्मिन् वने विहगाः प्रायः मुनयः ये रुचिर प्रवालान् द्रुमभुजान् आरुह्य आमीलिता दृशः कृष्णेक्षितं विगतान्यवाचः तदुदितं कलवेणुगीतम् शृण्वन्ति ।।१४।।

अनुवाद— हे सखि ! इस वन में रहने वाले पक्षी भी प्रायः ऋषि मुनि ही हैं । वे वृक्षों की नवीन कोपलों वाली मनोज्ञ डालियों पर बैठकर अपनी आखें खोलकर एक टक से श्रीभगवान् की रूप-माधुरी का अवलोकन करते हैं और दूसरी बातों को करना छोड़कर श्रीभगवान् द्वारा वाँसुरी पर गाये गये त्रिभुवन-मोहन गीत को सुनते रहते हैं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

भो अम्ब मातः, अस्मिन्वने ये विहगाः पक्षिणस्ते प्रायेण मुनयो भवितुमर्हन्ति । कुतः । कृष्णेक्षितं कृष्णदर्शनं पुष्पफलाद्यन्तरं विना यथा भवति तथा रुचिराः प्रवाला येषां तान्द्रुमभुजान् वृक्षाणां शाखा आरुह्य तेन श्रीकृष्णेनोदितं प्रकटितं कलवेणुगीतं केनापि सुखेनाऽमीलितदृशोवाचश्च सन्तो ये शृण्वन्तीति । तथा हि–मुनयः श्रीकृष्णदर्शनं यथा भवति तथा वेदोक्तकर्मफलपरित्यागेन वेदद्रुमशाखारूढा रुचिरप्रवालस्थानीयानि कर्माण्येवोपाददानाः सुखिनः सन्तः श्रीकृष्णगीतमेव शृण्वन्ति। अतस्त एवैते भवितुमर्हन्तीति भावः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

हे सखियों, इस वन में रहने वाले जो पक्षी हैं वे प्रायः मुनिजन ही हो सकते हैं क्योंकि वे वृक्षों की उन डालियों पर बैठते हैं जो पुण्य और फल से रहित नवीन कोपलों वाली होती है । अतएव वे डालियाँ देखने में अत्यन्त मनोज्ञ होती हैं । वे भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा गाये गये त्रैलोक्य मोहन गीतों को सुनते रहते हैं । वे किसी की कोई दूसरी बात नहीं करते हैं । और वे अपनी आँखे खोलकर लगातार भगवान् श्रीकृष्ण को देखते रहते हैं। मुनिजन भी जिससे कि भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन हो सके वेदोक्त समस्त कर्मों को निष्काम भावना से करते हैं। वे वेद रूपी वृक्ष की शाखा पर आरूढ होकर रूचिर प्रवाल स्थानी निष्काम कर्मों को ही करते हैं तथा सुखी रहकर भगवान श्रीकृष्ण से ही संबन्धित गीतों को सुनते हैं । अतएव ये सभी पक्षी मुनिगण हैं ।।१४।।

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ।
आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ।।१५।।

अन्वयः— नद्यः तत् मुकुन्दगीतमुपधार्य आवर्तलक्षित मनोभव भग्नवेगाः आलिङ्गनस्थगितमूर्मि भुजैः मुरारेः कमलोंपहाराः पादयुगलं गृह्णन्ति ।।१५।।

अनुवाद— चेतनों की बात दूर की है अचेतन नदियाँ भी श्रीकृष्ण के गीतों को अपने हृदय में धारण करके अपने आवर्त (चकोह) के द्वारा काम के वेग को लक्षित करती हैं, इसलिए तो इन सबों का वेग रुक गया है। ये अपनी लहर रूपी हाथों से श्रीकृष्ण के चरणों पर कमल का पुष्प चढ़ाकर उनका आलिङ्गन कर रही हैं । लगता है जैसे ये उनके चरणों पर अपने हृदय को न्योछावर कर रही हों ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

आस्तां चेतनानां कथा, नद्योऽप्यावर्तैः परिभ्रमैर्लक्षितेन सूचितेन मनोभवेन कामेन भग्नो वेगो यासां ता आलिङ्गनेन स्थगितमाच्छादितं यथा भवति तथा ऊर्मय एव भुजास्तैः; कमलोपहारा कमलान्युपहरन्त्यो मुरारेः पादयुगलं गृह्णन्ति धारयन्ति।।१५।।

भाव प्रकाशिका

चेतनों की बात छोड़ो नदियाँ अपने आवर्तो (चकोहों) के द्वारा काम के वेग को सूचित कर रही हैं और इसीलिए तो इन सबों का वेग रुक गया है । ये अपनी लहर रूपी हाथों से श्रीकृष्ण का आलिङ्गन करके अपनी उन भुजाओं से इनको कमल पुष्प का उपहार प्रदान करके इनके चरण युगल को पकड़ रही हैं ॥१५॥

दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून्सह रामगोपैः संचारयन्तमनुवेणुमुदीरयन्तम् ।
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात्स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम् ॥१६॥

अन्वयः— आतपे सहरामगोपै व्रज पशून् संचारयन्तम् अनु वेणुमुदीरयन्तम् दृष्ट्वा सख्युः प्रेमप्रवृद्धउदितः अम्बुदः कुसुमावलीभिः स्ववपुषा आतपत्रम् व्यधात् ॥१६॥

अनुवाद— धूप में बलरामजी तथा श्रीकृष्ण गोपों के साथ व्रज के पशुओं को चराते हुए तथा साथ ही मुरली को बजाते हुए श्रीकृष्ण को देखकर अपने मित्र प्रेम के उदीर्ण हो जाने के कारण ये मेघ उनके ऊपर मंडराते हुए तथा अपनी फूही रूपी पुष्पों को बरसाते हुए अपने शरीरको ही उनके ऊपर छाते के रूप में तान देते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

लोकार्तिहरणशीलत्वादिसाम्यात्सख्युः श्रीकृष्णस्याम्बुदस्तदुपर्युदितः पुनः प्रेम्णा प्रवृद्धः सन् कुसुमावलीभिः पुष्पसमूहैस्तत्तुल्यैस्तुषारैर्वा सह स्ववपुषा छत्रं विहितवान् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह श्रीकृष्ण भगवान् संसार के कष्टों को दूर करते हैं उसी तरह ये मेघ भी अमृतमय जल प्रदान के द्वारा संसार के कष्ट को दूर करने का काम करते हैं । इस तरह इन दोनों में समानता होने के कारण श्रीकृष्ण भगवान् को मेघ का मित्र कहा गया है । अपने मित्र श्रीकृष्ण के ऊपर मेघ अपने शरीर को ही छाता बनाकर तान देते हैं और अपनी फुहियाँ रूपी श्वेत पुष्पों की उन पर बरसा भी करते हैं ॥१६॥

पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन ।
तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥१७॥

अन्वयः— पुलिन्द्यः पूर्णाः उरूगायपदाब्जराग श्रीकुङ्कुमेनदयितास्तनमण्डितेन तृणरुषितेन आनन कुचेषु लिम्पत्यः तद्दर्शनरुजः तदाधिम् जहुः ॥१७॥

अनुवाद— सखियों मेरे विचार से तो ये वनों में रहने वाली भिलिनियाँ ही कृतकृत्य हैं, क्योंकि, इनकी प्रियतमा व्रज गोपियों के स्तनों में लगा हुआ केसर का पराग श्रीकृष्ण के चरणों में लगा होता है जब श्रीकृष्ण वृन्दावन के घासों पर चलते हैं तो इनके चरणों का केसर उन घासों पर लग जाता है । ये भिलिनियाँ उसको छुड़ाकर अपने-अपने स्तनों और मुख पर मल लेती हैं । और उसी के द्वारा श्रीकृष्ण को देखकर इनकी जो श्रीकृष्ण से मिलने की इच्छा होती है तथा तज्जन्य जो काम व्याधि होती है उसको शान्त करती हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

साहंकारमाहुः-पूर्णाः कृतार्थाः । पुलिन्द्यः शबराङ्गनाः । कथमित्यत आहुः-प्रथमं दयितानां स्तनेषु मण्डितेनानुलिप्तेन पुनश्च रतिसमये उरुगायस्य श्रीकृष्णस्य पदाब्जयो रागेणारूण्येन श्रीः कान्तिर्यस्य तेन कुङ्कुमेन पुनस्तस्य वनस्थलीषु चंक्रमणेन तृणेषु रूषितेन लग्नेन तद्दर्शनेन तथाभूतस्य कुङ्कुमस्य दर्शनेन स्मरकृता रुक् तापो यासां तास्तेन कुङ्कुमेनाननेषु कुचेषु च कामतप्तेषु लिम्पन्त्यस्तदाधिं कामव्यथां जहुः । अतस्ताः कृतार्थाः, धिगन्या मादृश्यो या एवंभूतमप्याधिशमनं न लभन्त इति भावः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

गोपियाँ अहङ्कार पूर्वक कहती हैं वन में रहने वाली भिलीनियाँ ही कृतकृत्य है । वह कैसे तो उसे बतलाती हैं । श्रीकृष्ण की प्रियतमा प्रेमिका गोपियाँ केसरों से अपने स्तनों को अलंकृत करती है । वह केसर श्रीकृष्ण के चरण कमलों में रतिकाल में लग जाता है । उन केसरों की कान्ति से लाल बने पैरों से श्रीकृष्ण जब वृन्दावन के घासों पर चलते हैं तो घासों में लग जाता है । श्रीकृष्ण को देखकर तथा उस केसर को देखकर वे भिलिनियाँ तृणों पर से उस केसर को छुड़ाकर अपने स्तनों तथा मुखों पर मल लेती हैं । और अपनी कामव्याधि को शान्त करती हैं । अतएव वे भिलनियाँ कृतकृत्य हैं । और मुझ जैसी अन्य गोपियाँ तो इस प्रकार से भी अपनी मनोव्याधि को शान्त नहीं कर पाती है । अतएव इन सबों को धिक्कार है ।।१७।।

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद्रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत्पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ।।१८।।

अन्वयः— हन्त अबलाः अयम् अद्रिः हरिदासवर्यः यत् रामकृष्ण चरणस्पर्शप्रमोदः मानं तनोति यत् सहगोगणयोः तयोः पानीय सुयवस कन्दरकन्द मूलैः मानं तनोति ।।१८।।

अनुवाद— सखियों हर्ष का विषय है कि यह गोवर्धन पर्वत हमारे प्रियतम श्रीहरि के दासों में श्रेष्ठ है । क्योंकि यह श्रीकृष्ण और बलरामजी के चरणों का स्पर्श करके अत्यन्त प्रमुदित होता है । इस तरह यह अपने भाग्य की बहुत सराहना करता है । क्योंकि यह श्रीरामकृष्ण को स्नान करने के लिए झरनों का स्वच्छ जल प्रदान करता है । गायों के लिए सुन्दर हरी घासों को प्रदान करता है तथा श्रीकृष्ण और बलरामजी को खाने के लिए कन्दमूल प्रदान करता है । इस तरह से यह गोपों एवं गायों के साथ-साथ श्रीरामकृष्ण दोनों का बहुत सम्मान करता है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

हन्तेति हर्षे । हे सख्यः, अयमद्रिर्गोवर्धनो ध्रुवं हरिदासेषु श्रेष्ठः । कुत इत्यत आहुः- यस्माद्रामकृष्णयोश्चरणस्पर्शेन प्रमोदो यस्य सः । तृणाद्युद्गमनिभेन रोमहर्षदर्शनात् । किंच यद्यस्मान्मानं तनोति सह गोभिर्गणेन सखिसमूहेन च वर्तमानयोस्तयोः। कैः । पानीयैः सूयवसैः शोभनतृणैः कन्दरैश्च कन्दमूलैश्च यथोचितम् । अतोऽयमतिधन्य इत्यर्थः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

हन्त यह अव्यय हर्षार्थक है । हे सखियों ! यह गोवर्धन पर्वत भगवद् भक्तों में श्रेष्ठ है । यह कैसे ? तो इस पर उन सबों ने कहा क्योंकि श्रीबलरामजी और कृष्ण भगवान् के चरण स्पर्श से इसका प्रमोद होता है क्योंकि तृणों के उत्पन्न होने के माध्यम से इसका रोमाञ्च देखा जाता है । तथा यह गायों के समूह से सम्मान का विस्तार करता है । सखियों के समूह के साथ वर्तमान उन दोनों का कैसे ? तो इसका उत्तर है पानी, सुन्दर घासों कन्दराओ, कन्दमूलों के द्वारा यथोचित रूप से बलराम और श्रीकृष्ण का सम्मान करता है । अतएव यह अत्यन्त धन्य है ।।१८।।

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ।।१९।।

अन्वयः— हे सख्यः गोपकैः अनुवनं गाः न यतोःउदारवेणुस्वनैः कलपदैः तनुभृत्सु गतिमतां अस्पन्दनं तरूणाम् पुलकः निर्योगपाशकृत लक्षणयोः विचित्रम् ।।१९।।

अनुवाद— हे सखियो ! ग्वाल बालों के साथ गायों को एक वन में ले जाते हुए इन दोनों की मधुर वंशी की ध्वनि के मनोहर पदों को सुनकर मनुष्य व्यतिरिक्त भी शरीर धारियों पशुपक्षियों की भी गति रुक जाती है

अर्थात् उन सबों में जड़ धर्म आ जाता है और स्थावर वृक्षों में भी रोमाञ्च होने लगता है जो चेतनों का धर्म है। इस तरह सिर पर निर्योग (गायों को दूहते समय उनके पैर बाँधने की रस्सी) बाँधे हुए तथा कन्धे पर पाश (भागने वाली गायों को पकड़ने की रस्सी) धारण किए हुए इन दोनों राम एवं श्याम की गति ही विचित्र है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

हे सख्यः, इदं त्वतिचित्रम् । गोपैः सह वने वने गाः संचारयतोस्तयो रामकृष्णयोर्मधुरपदैर्महावेणुनादैः । शरीरिषु ये गतिमन्तस्तेषामस्पन्दनं स्थावरधर्मः, तरूणां पुलको जङ्गमधर्म इति । नियुज्यन्ते गाव आभिरिति निर्योगाः पादबन्धरज्जवोऽधृष्यगवां कर्षणार्थाः पाशाश्च तैः कृतं लक्षणं चिह्नं ययोः । शिरसि निर्योगवेष्टनेन स्कन्धस्थपाशेन च गोपपरिवृढश्रिया विराजमानयोरित्यर्थः।।१९।।

भाव प्रकाशिका

हे सखियों यह तो अत्यन्त विचित्र बात है एक वन से दूसरे वन में गायों को चराते हुए गौरसुन्दर राम तथा श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण की मधुर पदों से युक्त वंशी की ध्वनियों से शरीर धारियों में जो गतिमान पशु-पक्षी इत्यादि है उनमें गति का अभाव रूप जड़ धर्म आ जाता है और स्थावर वृक्षों में चेतन का धर्म रोमाञ्च होने लगता है । निर्योग जिससे गायों के पैर को बाँधा जाता है तथा भागने वाली गायों को रोकने की रस्सी को धारण करने वाले गायों की शोभा से सम्पन्न इन दोनों की गति ही विचित्र है ।।१९।।

एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः । वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥२०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकविंशतितमोऽध्यायः ।।२१।।

अन्वयः— वृन्दावनचारिणः भगवतः एवं विधाः याः क्रीडाः ताः मिथः वर्णयन्त्यः गोप्यः तन्मयतां ययुः ।।२०।।

अनुवाद— परीक्षित् वृन्दावन विहारी भगवान् श्रीकृष्ण की इस प्रकार की लीलाओं का परस्पर में वर्णन करती हुई गोपियाँ तन्मय हो गयीं ।।२०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वाधे भावार्थदीपिकायां टीकायां एकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका के इक्कीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२१।।

* * *

बाइसवाँ अध्याय

चीरहरण लीला

श्रीशुक उवाच

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः । चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥१॥

अन्वयः— हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः हविष्यं भुञ्जानाः कात्ययन्र्चन व्रतम् चेरुः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् हेमन्त ॠतु के पहले महीने में नन्द व्रज की कुमारियाँ हविष्य का भोजन करके कात्यायनि पूजन का व्रत कर रही थीं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

गोपीनां कामतः कृष्णे निःसीमप्रेमसङ्गमः । कात्यायन्यर्चनोद्भूततत्प्रसादमहोदयः । द्वाविंशे गोपकन्यानां वस्त्राहरणलीलया। वरं दत्त्वा गतः कृष्णो यज्ञशालामितीर्यते । प्रथमे मासि मार्गशीर्षे ॥१॥

भाव प्रकाशिका

गोपियाँ कामना से भगवान श्रीकृष्ण में निःसीम प्रेम से कात्यायनी की अर्चना से ही श्रीभगवान् की कृपा रूपी महान उत्कर्ष उत्पन्न हुआ । बाइसवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि गोपकन्याओं के वस्त्र हरण लीला के द्वारा श्रीभगवान् गोपियों को वरदान देकर यज्ञशाला में चले गये **पथमेमासि** अर्थात् मार्गशीर्ष के महीने में ॥१॥

आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदितेऽरुणे । कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥२॥

अन्वयः— हे नृप कालिन्द्या अम्भसि आप्लुत्य, अरुणे उदिते जलान्ते सैकतीम् प्रतिकृति कृत्वा देवीम् आनर्चुः ॥२॥

अनुवाद— राजन् यमुनाजी के जल में स्नान करके, अरुणोदय हो जाने पर वे गोपकुमारियाँ जल के सन्निकट में वालू की मूर्ति बनाकर देवी की पूजा करती थीं ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

गन्धैर्माल्यैः सुरभिभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः । उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः ॥३॥

अन्वयः— गन्धैः सुरभिभिः माल्यैः वलिभिः धूमदीपकै उच्चवचोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः ॥३॥

अनुवाद— वे सब देवी की पूजा चन्दन, फूलों के सुगन्धित हार, तरह-तरह के नैवेद्य धूप दीप, तरह-तरह के उपहार की सामग्री, पल्लव, फल और चावल आदि से करती थीं ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि । नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥
इति मन्त्रं जपन्त्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥४॥

अन्वयः— हे कात्यायनि, हे महामाये, हे महायोगिनि, हे अधीश्वरि नन्दगोपसुतं मे पतिं कुरु ते नमः, इति मन्त्रं जपन्त्यः ताः कुमारिकाः पूजां चक्रुः ॥४॥

अनुवाद— वे देवी की प्रार्थना करती हुयी कहती थी हे कात्यायनि, हे महामाये, हे महायोगिनि, हे सबों की एकमात्र अधीश्वरि, आप नन्दनंदन श्रीकृष्ण को हमारा पति बना दीजिए । हम सब आपके चरणों में नमस्कार करती हैं । वे कुमारियाँ इसी मन्त्र का जप करती थीं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

महामाये इत्यादिसंबोधनैस्तव न किंचिदशक्यमिति सूचयन्त्यः प्रत्येकं प्रार्थयन्ते ।।४।।

भाव प्रकाशिका

महामाये इत्यादि संबोधनों से वे इस बात को सूचित करती थीं कि आपके लिए कुछ भी अशक्य नहीं है। इस तरह से वे प्रत्येक गोपियाँ प्रार्थना करती थीं ।।४।।

एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः । भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः ।।५।।

अन्वयः— कृष्णचेतसः कुमार्यः एवं मासं व्रत चेरुः, नन्दसुतः पतिः भूयात् भद्रकालीं समानर्चुः ।।५।।

अनुवाद— उन कुमारियों का मन भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा था । इसी सङ्कल्प के साथ उन कुमारियों ने श्रीभगवान् की एक मास तक विधिपूर्वक पूजा की । उन सबों का उद्देश्य था कि भगवान् श्रीकृष्ण ही हमलोगों के पति बनें ।।५।।

भावार्थ दीपिका

कृष्णचेतस्त्वमाह-भूयान्नन्दसुतः पतिरित्यानर्चुरिति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

उन सबों का मन भगवान श्रीकृष्ण में ही लगा था इस बात को **भूयान्नन्दसुतः पतिः** इस वाक्यांश से कहा गया है । यही सङ्कल्प करके उन सबों ने भद्रकाली की अर्चना की ।।५।।

उषस्युत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योन्याबद्धबाहवः । कृष्णमुच्चैर्जगुर्यान्त्यः कालिन्द्यां स्नातुमन्वहम् ।।६।।

अन्वयः— अन्वहम् उषसि उत्थाय स्वैः गोत्रैः अन्योन्यबद्धबाहवः कालिन्द्यां स्नातुम् यान्त्यः कृष्णम् उच्चैः जगुः।।६।।

अनुवाद— प्रतिदिन उषःकाल में जगकर अपना नाम लेकर एक दूसरे को जगा लेतीं । परस्पर में हाथ डालकर वे यमुनाजी में स्नान करने के लिए जाती हुई जोर-जोर से भगवान् कृष्ण की लीलाओं का गान करती थीं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

व्रतस्य पूर्वाङ्गमाह-उषसीति । गोत्रैर्नामभिः । अन्योन्याबद्धबाहवः परस्परं गृहीतपाणयः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

उषसि० इत्यादि श्लोक से व्रत के पूर्वाङ्ग का वर्णन किया गया है । गोत्रैः अर्थात् नामों से । अन्योन्य वाद्धवाहवः अर्थात् परस्पर में एक दूसरे का हाथ पकड़कर ।।६।।

नद्यां कदाचिदागत्य तीरे निक्षिप्य पूर्ववत् । वासांसि कृष्णं गायन्त्यो विजह्रुः सलिले मुदा ।।७।।

अन्वयः— कदाचित् नद्यां आगत्य पूर्ववत् वासांसि तीरे निक्षिप्य कृष्णं गायन्त्यः सलिले विजह्रुः ।।७।।

अनुवाद— एक दिन सभी कुमारियाँ यमुनाजी के तट पर आकर पूर्व दिनों की भाँति अपने-अपने वस्त्रों को उतार कर रख दीं और भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों का गान करती हुई आनन्द पूर्व जलक्रीडा करने लगीं ।।७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७।।

भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः । वयस्यैरावृतस्तत्र गतस्तत्कर्मसिद्धये ।।८।।

अन्वयः— योगेश्वरेश्वरः भगवान् कृष्णः तदभिप्रेत्य वयस्यैरावृतः तत्कर्म सिद्धिये तत्र गतः ।।८।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्ण योगेश्वरों के भी स्वामी हैं, वे गोपियों की अभिलाषा को जानकर उन सबों के उस कर्म की सिद्धि के लिए अपने सखा ग्वाल बालों के साथ यमुना तट पर गये ।।८।।

भावार्थ दीपिका

योगेश्वराणामीश्वर इति प्रत्येकं तादृङ्भनोरथपूरणसामर्थ्यं दर्शयति-तासां कर्मणः सिद्धये फलदानायेति ।।८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को योगेश्वरों का भी स्वामी कहकर यह बतलाया गया है कि उनमें प्रत्येक गोपियों के उस प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने का सामर्थ्य है । उन सबों को फल प्रदान करने के लिए भगवान् यमुना तट पर गये ।।८।।

तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः । हसद्भिः प्रहसन्बालैः परिहासमुवाच ह ।।९।।

अन्वयः— तासां वासांसि आदाय सत्वरः नीपम् आरुह्य बालैर्हसद्भिः हसन् परिहासम् उवाच ह ।।९।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण अकेले ही उन गोपियों के सारे वस्त्र उठा लिए और तेजी से कदम्ब वृक्ष पर चढ गये । उनके साथी ग्वाल बाल जोर-जोर से हँसने लगे और भगवान् श्रीकृष्ण भी हँसने लगे और गोपियों से हँसी की बात कहने लगे ।।९।।

भावार्थ दीपिका

नीपं कदम्बम् । बालैः सह ।।९।।

भाव प्रकाशिका

नीप अर्थात् कदम्ब । बालकों के साथ ।।९।।

अत्रागत्याबलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यताम् । सत्यं ब्रवाणि नो नर्म यद्यूयं व्रतकर्शिताः ।।१०।।

अन्वयः— हे अबलाः अत्र आगत्य स्वं स्वं वासः कामं प्रगृह्यताम् सत्यं ब्रवाणि नो नर्म यत् यूयं व्रतकर्शिताः ।।१०।।

अनुवाद— कुमारियाँ तुमलोग यहाँ आकर आपने अपने वस्त्र को ले जाओ । मैं सत्य कहता हूँ, हँसी नहीं करता, क्योंकि व्रत करने के कारण तुम लोग दुर्बल हो गयी हो ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

हे अबलाः, नो नर्म न परिहासः । यस्माद्यूयं व्रतश्रान्ताः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

हे अबलाओं मैं हँसी नहीं कर रहा हूँ क्योंकि तुमलोग व्रत करने के कारण थक गयी हो ।।१०।।

न मयोदितपूर्वं वा अनृतं तदिमे विदुः । एकैकशः प्रतीच्छध्वं सहैवोत सुमध्यमाः ।।११।।

अन्वयः— हे सुमध्यमाः मया पूर्वं वा अनृतं न उदितं तत् इमे विदुः । एकैकशः प्रतीच्छध्वम् उत सहैव ।।११।।

अनुवाद— हे सुन्दरियों इससे पहले मैंने कभी भी झूठ नहीं बोला है, यह ये मेरे मित्र जानते हैं, चाहो तो एक-एक करके आकर लो लो अथवा एक ही साथ आ कर लो ।।११।।

भावार्थ दीपिका

एकैकशो वा आगत्य स्वीकुरुत सहैव वा, न तत्रास्माकमाग्रह इत्यर्थः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

एक-एक करके आकर ले लो अथवा एक ही साथ आकर लों, इसमें हमारा कोई भी आग्रह नहीं है ।।११।।

तस्य तत्क्ष्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः । व्रीडिताः प्रेक्ष्य चान्योन्यं जातहासा न निर्ययुः।।१२।।

अन्वयः— तस्य तत् क्ष्वेलितं दृष्ट्वा प्रेमप्लुताः गोप्यः व्रीडिता अन्योन्यं वीक्ष्य जातहासा न निर्ययुः ।।१२।।

अनुवाद— भगवान् की हंसी की बात सुनकर प्रेमरस में सराबोर गोपियाँ लज्जित हो गयीं और एक दूसरे को देखकर मुस्कुराने लगीं किन्तु वे जल से बाहर नहीं निकलीं ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

क्ष्वेंलितं परिहासः । प्रेमपरिप्लुताः प्रेमरसनिमग्नाः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

क्ष्वेलित अर्थात् मजाक **प्रेमपरिप्लुताः** प्रेम रस में निमग्न ।।१२।।

एवं ब्रुवति गोविन्दे नर्मणा क्षिप्तचेतसः । आकण्ठमग्नाः शीतोदे वेपमानास्तमब्रुवन् ।।१३।।

अन्वयः— गोविन्दे एवं ब्रुवति नर्मणाक्षिप्तचेतसः शीतोदे आकण्ठमग्ना वेपमानाः तम् अब्रुवन् ।।१३।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के इस तरह से कहने पर श्रीभगवान् द्वारा हँसी की बात कहें जाने से जिनका अन्तःकरण श्रीभगवान् की ओर और आकृष्ट हो गया था, वे गोपियाँ गले भर ठंढे पानी में खड़ी होने से काँप रही थीं । उन सबों ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा ।।१३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१३।।

माऽनयं भोः कृथास्त्वां तु नन्दगोपसुतं प्रियम् । जानीमोऽङ्ग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपिताः ।।१४।।

अन्वयः— भो अङ्ग त्वम् अनयं माकृथाः व्रजश्लाघ्यं त्वां तु प्रियम् नन्दगोपसुतं जानीमः वेपिताः वासांसि देहि।।१४।।

अनुवाद— हे प्रियतम श्रीकृष्ण ! आप अनीति मत कीजिये, हमलोग जानती हैं कि आप नन्दजी के प्रिय पुत्र हैं तथा व्रज में प्रशंसनीय हैं । हमलोग काँप रही हैं । अतएव आप हमलोगों का वस्त्र दे दें ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

तत्र मुग्धा ऊचुः-अङ्ग भो; कृष्ण, अनयमन्याय्यं सा कृथाः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

मोहित हुई उन व्रजकुमारियों ने कहा ऐ प्रियतम कृष्ण ! आप अन्याय न करें ।।१४।।

श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितम् । देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद्राज्ञे ब्रुवामहे ।।१५।।

अन्वयः— हे श्याम सुन्दर ते दास्यःतवोदितम् करवाम । हे धर्मज्ञ नो वासांसि देहि नो चेद्राज्ञे ब्रुवामहे ।।१५।।

अनुवाद— हे श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण हमलोग आपकी दासियाँ है आप जो कहेंगे वह हम लोग करेंगी । हे धर्म को जानने वाले श्रीकृष्ण ! आप वस्त्र दे दें अन्यथा हमलोग बाबा नन्दजी से कह देंगी ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

प्रौढा ऊचुः- नो चेद्राज्ञे नन्दाय कंसाय वा ब्रुवाम । हे कृष्णेति ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

प्रौढा नायिका गोपियों ने कहा अन्यथा हे कृष्ण नन्द बाबा अथवा कंस से हमलोग कह देंगी ।।१५।।

श्रीभगवानुवाच

भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ । अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छन्तु शुचिस्मिताः ।।१६।।

अन्वयः— भवत्यः यदि मे दास्यः मयोक्तं वा करिष्यथ, हे शुचिस्मिताः अत्र आगत्य स्ववासांसि प्रतीच्छन्तु ।।१६।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे पवित्र मुस्कान वाली कुमारियों, आपलोग यदि मेरी दासियाँ हैं मेरा कहा हुआ मानेंगी । तो यहाँ आकर अपना वस्त्र ले लो ।।१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१६।।

ततो जलाशयात्सर्वा दारिका: शीतवेपिता: । पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरु: शीतकर्शिता: ।।१७।।

अन्वय:— तत: शीतवेपित: सर्वा: दारिका: पाणिभ्यां योनिम् आच्छाद्य शीतकर्षिता: जलाशयात् प्रोत्तेरु: ।।१७।।

अनुवाद— उसके पश्चात् ठंढ़ से काँपती हुई सभी कुमारियाँ अपने दोनों हाथों से योनि को ढँककर, ठंढी से पीडित वे सब जलाशय से बाहर निकलीं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

प्रोत्तेरुर्निर्गता: ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

प्रोत्तेरु: अर्थात् निकलीं ।।१७।।

भगवानाहता वीक्ष्य शुद्धभावप्रसादित: । स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीत: प्रोवाच सस्मितम् ।।१८।।

अन्वय:— शुद्ध भाव प्रसादित: भगवान् आहता वीक्ष्य स्कन्धे वासांसि निधाय सस्मितम् प्रीत: प्रोवाच ।।१८।।

अनुवाद— कुमारियों के शुद्ध भाव से प्रसन्न हुए भगवान् उन सबों को अपने सन्निकट हुई देखकर उन सबों के वस्त्र को अपने कन्धे पर रखकर मुस्कुराते हुए प्रसन्न होकर कहें ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

आहता: ईषदक्षतयोनीर्वीक्ष्य ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

अक्षत योनि देखकर ।।१८।।

यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम् ।
बद्ध्वाञ्जलिं मूर्ध्न्यर्यपनुत्तयेऽहस: कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ।।१९।।

अन्वय:— यूयं धृतव्रता: यदपो विवस्त्रा व्यगाहत एतद् देव हेलनम् मूर्ध्नि अंजलिं वद्ध्वा अंहस: अपनुत्तये अधो नम: कृत्वा वसनं प्रगृह्यताम् ।।१९।।

अनुवाद— तुम लोगों ने व्रत किया है, किन्तु तुम लोगों ने नंगी होकर जो जल में स्नान किया वह जल के देवता वरुण का अपराध है, अतएव अपने पाप का अपनोदन करने के लिए तुमलोग हाथ जोड़कर सिर से लगाओ और उनको झुककर प्रणाम करो और अपना-अपना वस्त्र ले लो ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

धृतव्रता: सत्यो विवस्त्रा अपो व्यगाहताप्सु स्नाता इति यत्तदेतत् उ एव देवहेलनं, अपराध एवेत्यर्थ: । व्रतवैगुण्यभीतानां प्रायश्चित्तमिवाह-अस्यांहस: पापस्य निवृत्तये मूर्ध्नर्यञ्जलिं बद्ध्वाऽधो नम: प्रणामं कृत्वेति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

तुम व्रत धारण की थी किन्तु निर्वस्त्र होकर जल में तुम लोगों ने जल में स्नान किया यह जलाधिष्ठातृ

देवता के प्रति अपराध है । व्रत में संभावित दोष से भयभीत कुमारियों से भगवान् ने प्रायश्चित बतलाया कि वह दोष दूर हो जाय । तुमलोंग हाथ जोड़कर सिर से लगाओं और झुककर प्रणाम करके ॥१९॥

इत्यच्युतेनाभिहितं व्रजाबला मत्त्वा विवस्त्राप्लवनं व्रतच्युतिम् ।
तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां साक्षात्कृतं नेमुरवद्यमृग्यतः ॥२०॥

अन्वयः— इति अच्युतेन अभिहिताः व्रजाबलाः विवस्त्राप्लवनं व्रतच्युतिं मत्त्वा तत्पूर्तिकामाः तदशेष कर्मणा साक्षात्कृतं अवद्यमृग्यः नेमुः ॥२०॥

अनुवाद— भगवान् कृष्ण के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर व्रजकुमारियों ने मान लिया कि नग्न होकर जल में स्नान करना अपराध है । उसकी पूर्ति तथा अपने समस्त कर्मों की पूर्ति के लिए समस्त कर्मों के साथी भगवान् श्रीकृष्ण को उन सबों ने नमस्कार किया । श्रीभगवान् को नमस्कार करने से सभी कर्मों की पूर्तिहो जाती है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

इति दोषत्वेनाच्युतेनाभिहितं विवस्त्राप्लवनं व्रतस्य च्युतिहेतुं मत्वा तस्य पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां तस्य व्रतस्यान्येषामशेषकर्मणां च साक्षात्कृतं फलभूतं तमेव नेमुः । स एवावद्यमृक् पापमार्जकः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से भगवान् अच्युत के द्वारा कहे जाने पर नङ्गा जल में स्नान करना उससे व्रत में त्रुटि का कारण मानकर उसकी पूर्ति के लिए तथा उन सबों के द्वारा किए गये समस्त कर्मों की पूर्ति के लिए साक्षात् जानने वाले और सभी कर्मों के फल स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण को उन सबों ने नमस्कार किया । क्योंकि श्रीभगवान् ही सभी पापों को दूर करने वाले हैं ॥२०॥

तास्तथाऽवनता दृष्ट्वा भगवान्देवकीसुतः । वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत्करुणस्तेन तोषितः ॥२१॥

अन्वयः— ताः तथा अवनताः दृष्ट्वा तेन तोषितः करुणः ताभ्यः वासांसि प्रायच्छत् ॥२१॥

अनुवाद— उन सबों को उसी तरह से प्रणाम करते हुए देखकर प्रसन्न हुए श्रीभगवान् करुणा करके उन सबों को वस्त्र प्रदान कर दिया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

दृढं प्रलब्धास्त्रपया च हापिताः प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः ।
वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं ता नाभ्यसूयन्प्रियसङ्गनिर्वृताः ॥२२॥

अन्वयः— दृढं प्रलब्धाः लज्जया च हापिताः प्रस्तोभिता; क्रीडनवच्च कारिताः वस्त्राणि चैव अपहृतानि अथापि ता प्रियसङ्गनिर्वृताः अमुं न अभ्यसूयन् ॥२२॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण ने कुमारियों से बहुत छल भरी बातें की, उनकी लज्जा को भी छुड़ा दिया, हँसी भी की, और कठपुतलियों के समान नचाया भी, और उन सबों के वस्त्र को भी हर लिया, फिर भी अपने प्रियतम सङ्ग के कारण कृतकृत्य बनी वे कुमारियाँ श्रीभगवान् से रुष्ट नहीं हुईं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

दृढमत्यर्थं प्रलब्धा वञ्चिताः 'यूयं विवस्त्राः' इत्यादिना, त्रपया लज्जया हापितास्त्याजिताः 'अत्रागत्य स्ववासांसि' इत्याग्रहेण प्रस्तोभिता उपहसिताः 'सत्यं ब्रवाणि नो नर्म' इत्यादिना, क्रीडनवत्कारिताश्च 'बद्धाञ्जलिं, इत्यादिप्रायश्चित्तच्छलेन । ता नाभ्यसूयन् दोषदृष्ट्या नापश्यन् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने **'यूयं विवस्त्राः'** **इत्यादि** कहकर कुमारियों को खूब ठगा, **अत्रागत्य स्ववासांसि** अर्थात् यहाँ आकर अपना वस्त्र ले लो कहकर उनकी लज्जा को भी छुड़ा दिया, वे यह कहकर उन सबों से मजाक भी किए कि **'सत्यं ब्रवाणि नो नर्म'** अर्थात् मैं सत्य कह रहा हूँ मैं हँसी नहीं कर रहा हूँ और यह कहकर वे कुमारियों को कठपुतली के समान नचाये भी कि हाथ जोड़कर तथा उसे सिर से लगाकर प्रणाम करो । इतना होने पर भी वे कुमारियाँ इससे भगवान् से रुष्ट नहीं हुईं ।।२२।।

परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठ संगमसज्जिताः । गृहीतचित्ता नो चेलुस्तस्मिंल्लज्जायितेक्षणाः ।।२३।।

अन्वयः— स्ववासांसि परिधाय प्रेष्ठसंगमसज्जिताः गृहीत चित्ताः लज्जायितेक्षणाः नो चेलुः ।।२३।।

अनुवाद— कुमारियों ने अपना-अपना वस्त्र पहन लिया और अपने प्रिय के सङ्ग के लिए सजधज कर तैयार हो गयी । उनके चित्त को भगवान् कृष्ण अपने वश में ऐसे कर लिए थे कि वे वहाँ से एक डग भी नहीं चल सकीं । वे अपनी लज्जा मिश्रित नेत्रों से भगवान् श्रीकृष्ण को ही देखेती रहीं ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

प्रेष्ठसङ्गमेन सज्जिता वशीकृता अतो गृहीतचित्ताः सत्यो नो चेलुः । गृहीतचित्तत्वमाह-तस्मिन्कृष्णे लज्जायितेक्षणाः-लज्जाविलसितमीक्षणं यासां ता इत्यर्थः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

प्रियतम की सङ्गति मिलने वे सज धज गयी थी । उन सबों का चित्त भगवान् श्रीकृष्ण के अधीन हो गया था । अतएव वे वहीं खड़ी रहीं । उन सबों के चित्त के श्रीकृष्णाधीनत्व को ही बतलाते हैं । वे अपनी लज्जा युक्त नेत्रों से भगवान् को देखती रहीं ।।२३।।

तासां विज्ञाय भगवान्स्वपादस्पर्शकाम्यया । धृतव्रतानां सङ्कल्पमाह दामोदरोऽबलाः ।।२४।।

अन्वयः— तासां स्वपादस्पार्शकाम्यया धृतव्रतानां सङ्कल्पम् विज्ञाय भगवान् दामोदरः अबलाः आह ।।२४।।

अनुवाद— श्रीभगवान् जान लिए कि ये कुमारियाँ हमारे चरणों का स्पर्श करने की ही कामना से व्रत किया है, वे उन कुमारियों से कहे ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

दामोदर इति भक्तवात्सल्यं दर्शयति-अबलाः प्रति ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

दामोदर इस नाम से श्रीभगवान् के भक्तवासल्य नामक गुण को प्रदर्शित किया गया है । कुमारियों से भगवान् ने कहा ।।२४।।

सङ्कल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम् । मयानुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति ।।२५।।

अन्वयः— हे साधव्यः भवतीनां मदर्चनं संकलपः विदितः मया अनुमोदित, सत्यः भवितुमर्हति ।।२५।।

अनुवाद— ऐ मेरी प्रियतमाओं मैं तुमलोगों के इस सङ्कल्प को जानता हूँ कि तुमलोग मेरी पूजा करना चाहती है । मैं तुम लोगों के सङ्कल्प का अनुमोदन करता हूँ । तुमलोगों का सङ्कल्प सत्य होगा ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

भोः साध्व्यः, भवतीनां मदर्चनमेव सङ्कल्पो मनोरथः, स च लज्जया युष्माभिरकथितोऽपि मया विदितः, स मयानुमोदितः। अतः सत्यो भवितुमर्हति । अर्हतीति संभावनोक्त्या आत्यन्तिको न भविष्यतीति सूचितम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

हे प्रियतमाओं मैं, तुमलोगों का मनोरथ हैं कि तुम लोग मेरी पूजा करो, उसे तुमलोग लज्जा के कारण नहीं कह पा रही हो, किन्तु मैं उसे जानता हूँ, उसका मैंने अनुमोदन भी कर दिया अतएव वह सत्य भी हो सकता है। हो सकता है इस संभावनामयी उक्ति के द्वारा उसकी आत्यन्तिक सत्यता नहीं होगी यह भी श्रीभगवान् ने सूचित कर दिया ॥२५॥

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते । भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेशते ॥२६॥

अन्वयः— मयि आवेशितधियां कामः कामाय न कल्पते, क्वथिताः भर्जिताः धानाः बीजाय नेशते ॥२६॥

अनुवाद— जिन लोगों ने अपनी बुद्धि को मुझमें लगा दिया है, उनकी कामना उन्हें सांसारिक कामनाओं की ओर नहीं ले जाता है, यह उसी तरह से होता है जिस तरह उबाले गये अथवा भूंजे गये बीज पुनः अङ्कुर उत्पन्न करने के योग्य नहीं होते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तत्कुत इत्यत आह-न मयीति । कामाय पुनः कामभोगाय । विषयमहिम्ना कामस्यापि शान्तिहेतुत्वादिति भावः । कामाप्ररोहे दृष्टान्तः-भर्जिता दग्धा क्वथिता पक्वा धाना यवादिबीजायाङ्कुरोद्गमाय । प्राय इति स्वेच्छया पुनः प्ररोहमपि सूचयति ध्रुवादीनां तथा दर्शनात् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

यदि पूछो क्यों तो इसका उत्तर **न मयि० इत्यादि** श्लोक से देते हैं **कामाय** अर्थात् **पुनः** काम भोग का साधन नहीं बनता । **प्रायः** पद के द्वारा यह भी सूचित है कि अपनी इच्छा से उसका प्ररोह भी सम्भव है क्योंकि धुव्रा इत्यादि के विषय में ऐसा देखा जाता है ॥२६॥

याताबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः । यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ॥२७॥

अन्वयः— हे अबलाः व्रजं यात सिद्धाः मया इमाः क्षपाः रंस्यथ । यदू उद्दिश्य आर्याः सतीः इदं व्रतं चेरु ॥२७॥

अनुवाद— कुमारियों तुमलोग व्रज में जाओ । तुम लोग सिद्ध हो गयी हो । तुमलोग इन रात्रियों में मेरे साथ रमण करोगी ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

सिद्धाः पूर्णमनोरथाः । तदाह-इमा आगामिनी रात्रीर्मया रंस्यथेति । आर्या कात्यायनी । सतीः सत्यः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

सिद्धाः अर्थात् तुमलोगों का मनोरथ पूर्ण हो गया है । उसी को बतलाते हैं आगामी रात्रियों में तुमलोग मेरे साथ विहार करोगी । हे सतियों तुमलोगों ने इसी उद्देश्य से कात्यानी देवी की पूजा की है ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

इत्यादिष्टा भगवता लब्धकामाः कुमारिकाः । ध्यायन्त्यस्तत्पदाम्भोजं कृच्छ्रान्निर्विविशुर्व्रजम् ॥२८॥

अन्वयः— भगवता इत्यादिष्टाः लब्धकामाः कुमारिकाः तत्पदाम्भोजं ध्यायन्तः कृच्छ्रात् व्रजं विविशुः ॥२८॥

अनुवाद— राजन् इस प्रकार से श्रीभगवान् का आदेश प्राप्त करके जिनकी कामना पूर्ण हो गयी थी वे कुमारियाँ श्रीभगवान् के चरण कमलों का ध्यान करती हुई बड़े ही कष्ट से व्रज में गयीं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

अथ गोपैः परिवृतो भगवान्देवकीसुतः । वृन्दावनाद्गतो दूरं चारयन्गाः सहाग्रजः ॥२९॥

अन्वयः— अथ गोपैः परिवृतः भगवान् देवकी सुतः सहाग्रजः गाः चारयन वृन्दावनात दूरं गतः ।।२९।।

अनुवाद— इसके पश्चात् ग्वालों से घिरे हुए श्रीभगवान कृष्ण अपने बड़े भाई बलरामजी के साथ गायों को चराते हुए वृन्दावन से दूर चले गये ।।२९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२९।।

निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः । आतपत्रायितान्वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजौकसः ॥३०॥

अन्वयः— तिग्मे विदाघार्कातपे स्वाभिः छायाभिः आतपत्रायितान् द्रुमान् वीक्ष्य व्रजौकसः आह ।।३०।।

अनुवाद— ग्रीष्म ऋतु के तीक्ष्ण धूप में अपनी छाया से छाते का काम करने वाले वृक्षों को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने व्रजवासियों से कहा ।।३०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३०।।

हे स्तोककृष्ण हे अंशो श्रीदामन्सुबलार्जुन । विशालर्षभ तेजस्विन्देवप्रस्थ वरूथप ॥३१॥
पश्यतैतान्महाभागान्परार्थैकान्तजीवितान् । वातवर्षातपहिमान्सहन्तो वारयन्ति नः ॥३२॥

अन्वयः— हे स्तोककृष्ण, हे अंशो, हे श्रीदामन्, हे सुबल, हे अर्जुन, हे तेजस्विन्, हे देवप्रस्थ, हे वरूथप, एतान् परार्थैकान्तजीवितान् वातवर्षातपहिमान् सहन्तः महाभागान् पश्यत नः वारयन्ति ।।३१-३२।।

अनुवाद— हे स्तोककृष्णः हे अंशु, हे श्रीदामा, हे सुबल, हे अर्जुन, हे तेजस्वी, हे देवप्रस्थ, हे वरुथप, इन केवल दूसरों का कल्याण करने के लिए जीने वाले, स्वयं वायु, वर्षा धूप एवं शीत को सहकर, हमलोगों को इन सबों से बचाने वाले इन महाभाग्यवान् वृक्षों को तो देखो ।।३१-३२।।

भावार्थ दीपिका

'भक्तयानुकम्प्य कन्यास्तास्तद्विवर्जितयज्वनाम् । पत्न्यनुग्रहतस्तेषामहन्कर्ममहामदम् । विप्रभार्यानुग्रहाय यज्ञवाटं गच्छन्विप्राणां काठिन्यमभिप्रेत्य तेभ्योऽपि द्रुमाः श्रेष्ठा इति तानभिनन्दति चतुर्भिः-पश्यतेति । हे स्तोककृष्णा दयो गोपाः, एतान् द्रुमान्पश्यत । परार्थमेवैकान्तेन जीवितं येषां तान् । तदाह-वातवर्षादीन्स्वयं सहन्तः सहमाना अस्माकं वारयन्ति ।।३१-३२।।

भाव प्रकाशिका

भक्ति सम्पन्न कन्याओं पर कृपा करके, भक्ति विहीन तथा यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों पत्नियों पर कृपा करके ब्राह्मणों के महान् मद को तथा उनके कर्मों को श्रीभगवान् विनष्ट कर दिये । ब्राह्मण पत्नियों पर कृपा करने के लिए यज्ञशाला में जाते हुए ब्राह्मणों की कठोरता को ध्यान में रखकर उन सबों से ये वृक्ष भी श्रेष्ठ हैं इसी अभिप्राय से वृक्षों की बड़ाई **पश्यत० इत्यादि** चार श्लाकों से करते हैं । वे कहते हैं हे स्तोककृष्ण आदि गोपों इन वृक्षों को देखो । इन सबों के जीवन का एक मात्र उद्देश्य दूसरों का उपकार करना है । उसी को बतलाते हैं कि ये सब स्वयं तो वायु, वर्षा धूप आदि स्वयं सहते हैं किन्तु हमलोगों को उन सबों से बचाते हैं ।।३१-३२।।

अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम् । सुजनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः ॥३३॥

अन्वयः— एषां सर्व प्राण्युपजीवनम् जन्म येषां वै अर्थिनः विमुखान यान्ति, सुजनस्येव जन्म वम ।।३३।।

अनुवाद— इन वृक्षों का सर्व जीवोपकारक जन्म उस सज्जन पुरुष के जन्म के समान श्रेष्ठ है, जिनके यहाँ से याचक जन निराश होकर नहीं जाते हैं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

सुजनस्य कृपालोरर्थिन इव ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

जिस तरह कृपालु सज्जन पुरुष के यहाँ से कोई याचक पुरुष खाली हाथ नहीं लौटता है ।।३३।।

पत्रपुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः । गन्धनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान्वितन्वते ।।३४।।

अन्वयः— पत्र पुष्प फलच्छायामूलवल्कलदारुभिः गन्धनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान् वितन्वते ।।३४।।

अनुवाद— ये पत्ते, फल, फूल, छाया, जड़, छाल, लकड़ी, गन्ध, राख, कोयला, अङ्कुर और कोंपलों से भी लोगों की कामना पूर्ण किया करते हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

निर्यासो घनरसः । तोक्याः पल्लवाङ्कुराः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

निर्यास अर्थात् वृक्ष का रस, **तोक्याः** अर्थात् पल्लव आदि अङ्कुर ।।३४।।

एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु । प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत्सदा ।।३५।।

अन्वयः— इह देहिनाम् देहिषु एतावज्जन्मसाफल्यं यत् प्राणैः अर्थैः धिया वाचा सदा श्रेयः एव आचरेत् ।।३५।।

अनुवाद— संसार में प्राणियों के जीवन की सफलता इसी में है कि वे अपने से भिन्न प्राणियों का धन, बुद्धि और वाणी से सदा कल्याण ही करें ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

इति प्रवालस्तबकफलपुष्पदलोत्करैः । तरूणां नम्रशाखानां मध्येन यमुनां गतः ।।३६।।

अन्वयः— इति प्रवालस्तवक फल पुष्पं दलोत्करैः नम्रशाखानां तरूणां मध्येन यमुनां गतः ।।३६।।

अनुवाद— इस तरह वृक्षों की नयी-नयी कोपलों गुच्छों, फलों, फूलों तथा पत्तों के समूह के बीच से होकर श्रीभगवान् यमुना तट पर निकल आये ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

इत्यभिनन्दन् प्रवालादिसमूहैर्नतशाखानां तरूणां मध्येन यमुनां प्राप्तः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से वृक्षों की प्रशंसा करते कोपलों आदि के समूहों से झुकी हुई शाखाओं वाले वृक्षों के बीच से भगवान् यमुनाजी के तट पर चले आये ।।३६।।

तत्र गाः पाययित्वाऽपः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः । ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम्।।३७।।

अन्वयः— नृप तत्र गाः सुमृष्टाः शीताला: शिवाः आपः पाययित्वा ततः गोपाः स्वयं स्वादुजलम् कामं पपुः ।।३७।।

अनुवाद— हे राजन् ! वहाँ पर गोयों को मधुर शीतल एवं स्वच्छ जल पिलाने के पश्चात् गोपों ने भी स्वयं यमुनाजी के स्वादिष्ट जल इच्छा भर पिया ।।३७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३७।।

तस्या उपवने कामं चारयन्तः पशून्नृप । कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अन्वयः— हे नृप तस्याः उपवने पशून् कामं चारयन्तः क्षुधार्ताः कृष्ण रामावुपगम्य इदमब्रुवन् ॥३८॥

अनुवाद— राजन् यमुनाजी के उपवन में पशुओं को स्वच्छन्दता पूर्वक चराते हुए भूख से व्याकुल गोपों ने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी के पास आकर कहा ॥३८॥

इस तरह श्रीमद्भभागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

कुमारिकाभ्यः पूर्वमेव तन्नर्माकुलतया अगृहीतभोज्यानामेव निर्गमात्क्षुधार्ता इत्युक्तम् ॥३८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वाविंशतितमोध्यायः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

कुमारिकाओं से पहले ही अपने घर से आकर उनके साथ हंसी में व्यस्त रहने के कारण वे सब भूख से व्याकुल होकर कहे ॥३८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका टीका के बाइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२२।।

* * *

तेइसवाँ अध्याय

यज्ञपत्नियों पर कृपा

गोपा ऊचु

राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण । एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः ॥१॥

अन्वयः— हे राम ! हे राम ! हे महावीर्य दुष्ट निवर्हण कृष्ण ! नः एषा क्षुत् बाधते तत् शान्तिं कर्तुम् अर्हथः ॥१॥

गोपों ने कहा

अनुवाद— हे बलरामजी और हे महापराक्रमी तथा दुष्टों को मारने वाले श्रीकृष्ण हमलोगों को भूख पीड़ित कर रही है । अतएव आप दोनों इसको मिटाने का उपाय करें ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोविंशे ततो गोपैरन्नयाच्ञापदेशतः । तत्पत्न्यनुग्रहात्कृष्णो दीक्षितानन्वतापयत् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् तेइसवें अध्याय में श्रीभगवान् ने गोपों द्वारा अन्न की याचना के व्याज से, उनकी पत्नियों पर कृपा करके यज्ञ की दीक्षा से दीक्षित ब्राह्मणों से पश्चात्ताप कराया ॥१॥

श्रीशुक उवाच

इति विज्ञापितो गोपैर्भगवान्देवकीसुतः । भक्ताया विप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥२॥

अन्वयः— इति गोपैः विज्ञापितः भगवान् देवकी सुतः भक्तायाः भार्यायाः प्रसीदन् इदम् अब्रवीत् ॥२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् जब ग्वाल बालों ने इस तरह से कहा तब अपने भक्त ब्राह्मण की पत्नियों पर कृपा करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने यह कहा ॥२॥

भावार्थ दीपिका

भक्तायाः इत्येकवचनं सद्यः सायुज्याभिप्रायेण ॥२॥

भाव प्रकाशिका

भक्तायाः में एकवचनान्त प्रयोग शीघ्र सायुज्य प्राप्ति के अभिप्राय से किया गया है ॥२॥

प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः । सत्रमाङ्गिरसं नाम ह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥३॥

अन्वयः— देवयजनं यात ब्रह्मवादिन ब्राह्मणा स्वर्गकाम्यया आङ्गिरसं नाम सत्रम् आसते ॥३॥

अनुवाद— मित्रों ! यहाँ से थोड़ी दूरी पर ब्राह्मण स्वर्ग प्राप्ति की कामना से आङ्गिरस नामक यज्ञ कर रहे हैं । तुम लोग उन सबों की यज्ञशाला में जाओ ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

तत्र गत्वौदनं गोपा याचतास्मद्विसर्जिताः । कीर्तयन्तो भगवत आर्यस्य मम चाभिधाम् ॥४॥

अन्वयः— हे गोपाः मद्विसर्जिताः तत्र गत्वौदनं याचत भगवतः आर्यस्य मम चाभिधाम् कीर्तयन्तः ॥४॥

अनुवाद— हे गोपों मेरे द्वारा भेजे गये वहाँ जाकर उन लोगों से थोड़ा भात मेरे बड़े भाई बलरामजी का और मेरा नाम लेते हुए माँगना ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अस्मद्विसर्जिता आवाभ्यां प्रहिताः सन्तो याचध्वम् । युष्माकं का तत्र लज्जा । ननु तथाप्यपात्रत्वादस्मभ्यं किमिति दास्यन्तीति चेत्तत्राह-कीर्तयन्त इति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

मेरे द्वारा भेजे गये तुमलोग माँगना । तुमलोगों को इसमें कौन सी लाज है ? यदि कहो कि हमलोग उसके योग्य अधिकारी नहीं है अतएव हमलोगों को कैसे देंगे ? तो इस पर भगवान् कीर्तयन्तः हमारा और श्रीबलरामजी का नाम लेकर माँगना ॥४॥

इत्यादिष्टा भगवता गत्वाऽयाचन्त ते तथा । कृताञ्जलिपुटा विप्रान्दण्डवत्पतिता भुवि ॥५॥

अन्वयः— इति भगवता आदिष्टाः ते तथा कृताञ्जलिपुटा दण्डवत् भुवि पतिता च अयाचन्त ॥५॥

अनुवाद— इस तरह श्रीभगवान् के द्वारा आदिष्ट होकर वे गोपगण वहाँ गये ब्राह्मणों को साष्टाङ्ग प्रणाम किये और हाथ जोड़कर माँगे भी ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्यादेशकारिणः । प्राप्तान् जानीत भद्रं वो गोपान्नो रामचोदितान् ॥६॥

अन्वयः— हे भूमिदेवा शृणुत वो भद्रं रामचोदितान् कृष्णस्य आदेशकारिणः गोपान् नः जानीत ॥६॥

अनुवाद— हे ब्राह्मणों सुनो, आपलोगों का कल्याण हो, हमलोग बलरामजी से प्रेरित होकर तथा भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा का पालन करने वाले आपके यहाँ आये हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

गाश्चारयन्तावविदूर ओदनं रामाच्युतौ वो लषतो बुभुक्षितौ ।
तयोर्द्विजा ओदनमर्थिनोर्यदि श्रद्धा च वो यच्छत धर्मवित्तमाः ॥७॥

अन्वयः— अविदूरे गाः चारयन्तौ रामाच्युतौ बुभुक्षितौ ओदनं वः लषतः । हे धर्मवित्तमाः द्विजाः ओदनम् अर्थिनोः तयोः हे धर्मवित्तमाः यदिवः श्रद्धा यच्छत ॥७॥

अनुवाद— यहाँ से थोड़ी दूर पर गौओं को चराने वाले श्रीबलरामजी भूखे है और भगवान् श्रीकृष्ण भूखे हैं और आपलोगों से वे भात प्राप्त करना चाहते हैं हे धर्मज्ञों में श्रेष्ठ ब्राह्मणों यदि आप लोगों की श्रद्धा हो तो आप लोग दें ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अविदूरे वर्तमानौ सन्तौ वो यदन्नं तल्लषतोऽभिलषतः । वः ओदनं श्रद्धा च यद्यस्ति तर्हि यच्छतेति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

थोड़ी ही दूरी पर विद्यमान वे दोनों आपलोगों से अन्न की अभिलाषा करते हैं । यदि आपलोगों के पास अन्न तथा श्रद्धा हो तो दीजिये ॥७॥

दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्च सत्तमाः । अन्यत्र दीक्षितस्यापि नान्नमश्नन् हि दुष्यति ॥८॥

अन्वयः— हे सत्तमाः पशुसंस्थाया सौत्रामण्याः च दीक्षायाः अन्यत्र दीक्षितस्य अन्नमश्नन अपि हि न दुष्यति ॥८॥

अनुवाद— हे श्रेष्ठ पुरुषों जिस यज्ञ दीक्षा में पशु की बलि दी जाती हो तथा सौत्रामणी यज्ञ को छोड़कर दूसरे यज्ञों में दीक्षित पुरुषों का अन्न खाने में किसी भी प्रकार का दोष नहीं होता है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

दीक्षिता वयमभोज्यान्न इति वदिष्यन्तीति स्वयमेवाशङ्क्याहुः-दीक्षाया आरभ्याग्नीषोमीयपश्वालम्भनात्पूर्वं दोषः । न ततोऽन्यत्र । तथा सौत्रामण्याश्चान्यत्रान्यदा ॥८॥

भाव प्रकाशिका

हो सकता है कि ये ब्राह्मण कहें कि हमलोग दीक्षित है हमलोगों का अन्न नहीं खाना चाहिए यह स्वयं शङ्का करके गोपों ने कहा कि दीक्षा से लेकर अग्नीषोमीय पशु के वध से पूर्व तक का अन्न खाने से पाप होता है ऐसे यज्ञों तथा सौत्रामणी यज्ञ को छोड़कर एक दूसरे यज्ञों में दीक्षितों का अन्न खाने में कोई दोष नहीं है ॥८॥

इति ते भगवद्याच्ञां शृण्वन्तोऽपि न शुश्रुवुः । क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥९॥

अन्वयः— क्षुद्राशा भूरिकर्माणः बालिशा बृद्धमानिनः ते भगवद्याच्ञा शृण्वन्तोऽपि न शुश्रुवुः ॥९॥

अनुवाद— वे ब्राह्मण क्षुद्र स्वर्ग की प्राप्ति करना चाहते थे, इसीलिए बड़े-बड़े कर्मों में उलझे हुए थे, वस्तुतः वे अज्ञानी ही थे फिर भी वे अपने को ज्ञानवृद्ध मानते थे । अतएव इस प्रकार से श्रीभगवान् की याचना को सुनकर भी उस पर ध्यान नहीं दिए ॥९॥

भावार्थ दीपिका

क्षुद्रे स्वर्गादावाशामात्रं येषाम् । भूरीणि क्लेशाधिकानि कर्माणि येषाम् । अतोऽज्ञा वृक्षा ज्ञानवृद्धा इति मानवन्तः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

वे क्षुद्र केवल स्वार्गादि की प्राप्ति की आशा लगाये थे । अतएव उन सबों के द्वारा किए जाने वाले कर्मों में क्लेश बहुत अधिक था । अतएव अज्ञानी होकर भी अपने को ज्ञानवृद्ध मानने वाले थे ।।९।।

देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः । देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ।।१०।।

अन्वयः— देशः कालः पृथग्द्रव्यम्, मन्त्रतन्त्रर्त्विजः अग्नयः देवता, यजमानः च क्रतुः धर्मः च यन्मयः ।।१०।।

अनुवाद— राजन् देश, काल, अनेक प्रकार की सामग्रियाँ भिन्न-भिन्न कर्मों में विनियुक्त होने वाले मन्त्र, तथा तन्त्र (उन कर्मों के अनुष्ठान की पद्धति) ब्रह्मा आदि यज्ञ कराने वाले ऋत्विक् अग्नियाँ, देवता, यजमान, यज्ञ तथा धर्म ये सबके सब परमात्मक ही है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

ननु कर्मक्रममुल्लङ्घ्य आदेशकालेऽन्यार्थमन्नमन्यस्मै कथं देयं तत्राह-देश इति । पृथक् चरुपुरोडाशादिद्रव्यम् । तन्त्रं प्रयोगः । धर्मोऽपूर्वम् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

कर्मों के क्रम का अतिक्रमण करके दूसरे के लिए तैयार किया गया अन्न दूसरों को कैसे दिया जा सकता है ? इस पर शुकदेवजी **देशः कालः इत्यादि** श्लोक कहते हैं । पृथक् अर्थात् चरु पुरोडाश इत्यादि द्रव्य तन्त्र अर्थात् अनुष्ठान की पद्धति धर्म अर्थात् अपूर्व ।।१०।।

तं ब्रह्म परमं साक्षाद्भगवन्तमधोक्षजम् । मनुष्यदृष्ट्या दुष्प्रज्ञा मर्त्यात्मानो न मेनिरे ।।११।।

अन्वयः— मर्त्यात्मानः दुष्प्रज्ञाः मनुष्यदृष्ट्या तं साक्षात् परमं ब्रह्म भगवन्तम् अधोक्षजम् न मेनिरे ।।११।।

अनुवाद— अपने को शरीर ही मानने वाले अज्ञानी वे ब्राह्मण श्रीभगवान् में मनुष्य दृष्टि रखने के कारण साक्षात् परब्रह्म परमात्मा इन्द्रियातीत श्रीभगवान् को परमात्मा नहीं माने ।।११।।

भावार्थ दीपिका

मनुष्योऽयमिति दृष्ट्या मर्त्यात्मानो ब्राह्मणा वयं महान्त इति मन्यमानाः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

श्रीकृष्ण भी मनुष्य हैं इस तरह से शरीर को ही आत्मा मानने वाले ब्राह्मण अपने को महान मानते हुए।।११।।

न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च परन्तप । गोपा निराशाः प्रत्येत्य तथोचुः कृष्णरामयोः ।।१२।।

अन्वयः— हे परन्तप यदाते न ओमिति प्रोचुः न इति च निराशाः गोपाः प्रत्येत्य कृष्णरामयोः तथा ऊचुः ।।१२।।

अनुवाद— जब वे ब्राह्मण न तो हाँ कहे और न तो न कहे तो निराश होकर वे गोप लौट उसी तरह श्रीभगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी को सारी बातें बतला दिए ।।१२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१२।।

तदुपाकर्ण्य भगवान्प्रहस्य जगदीश्वरः । व्याजहार पुनर्गोपान्दर्शयँल्लौकिकीं गतिम् ।।१३।।

अन्वयः— जगदीश्वरः भगवान् तत् उपाकर्ण्य लौकिकीं गतिं दर्शयन् पुनः गोपान् व्याजहार ।।१३।।

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण गोपों की बातों को सुनकर हँसने लगे । उन्होंने उन सबों को समझाया कि संसार में तो विफलता बार-बार मिलती ही रहती है फिर भी प्रयास करते रहने पर सफलता मिल ही जाती है । और उन्होंने गोपों से कहा ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

लौकिकीं गतिं नहि कार्यार्थिनो निर्विद्यन्ते को वा याचको न पराभूयत इत्यादि लोकस्थितिं दर्शयन् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

लाकिकी गतिम् अर्थात् कार्य करने वाले को चाहिए कि विफलता को देखकर निराश नहीं होना चाहिए। याचक को तो अपमान सहना पड़ता ही है । यही संसार की स्थिति है ॥१३॥

मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणमागतम् । दास्यन्ति काममन्नं वः स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥१४॥

अन्वयः— ससंकर्षणम् आगतं मां पत्नीभ्य; ज्ञापयत, मय्युषिता धिया स्निग्धाः व; कामम् अन्नम् दास्यन्ति ॥१४॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि ब्राह्मणों की पत्नियों से जाकर कहो कि बलरामजी और श्रीकृष्ण आये हैं। वे सब मुझसे प्रेम करती है उनका मन मुझमें लगा रहता है । तुमलोग जितना चाहोगे उतना अन्न वे सब देंगी ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

केवलं देहेन गृहे वसन्ति धिया च मय्येवोषिताः । यतो मयि स्निग्धा अतो दास्यन्तीति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

वे सब देह से ही अपने घर में रहती हैं, उन सबों का मन तो मुझमें ही लगा रहता है । चूकि वे मुझसे प्रेम करती हैं अतएव वे सब तुमलोगों को अन्न देंगी ॥१४॥

गत्वाथ पत्नीशालायां दृष्ट्वासीनाः स्वलंकृताः । नत्वा द्विजसतीर्गोपाः प्रश्रिता इदमब्रुवन् ॥१५॥

अन्वयः— अथ पत्नीशालायां गत्वा स्वलंकृताः आसीनाः दृष्ट्वा द्विजसतीः गोपाः प्रश्रिताः इदम ब्रुवन् ॥१५॥

अनुवाद— उसके बाद वे सब पत्नीशाला में जाकर देखे कि ब्राह्मणों की अलंकृत पत्नियाँ बैठी है । गोपों ने ब्राह्मणों की पत्नियों को नमस्कार किया और नम्रता पूर्वक कहा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि नः । इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥१६॥

अन्वयः— वः विप्रपत्नीभ्यः नमः नः वचांसि निबोधत इतः अविदूरे चरता कृष्णेन इहवयम् इषिता ॥१६॥

अनुवाद— आप विप्र पत्नियों को हम नमस्कार करते हैं, आप लोग हमारी बातों को सुनें । यहाँ से थोड़ी दूर पर भगवान् श्रीकृष्ण आये हैं, उन्होंने हमें आपके पास भेजा है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

ईषिताः प्रेषिताः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

इषिताः अर्थात् भेजा है ॥१६॥

गाश्चारयन्स गोपालैः सरामो दूरमागतः । बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥१७॥

अन्वयः— गोपालैः सहगाःचारयन् सरामः सः दूरम् आगतः बुभुक्षितस्य सानुगस्य तस्य अन्नम् प्रदीयताम् ॥१७॥

अनुवाद— गोपालों के साथ गौओं को चराते हुए वे बलरामजी के साथ दूर आ गये हैं, वे अपने साथियों के साथ भूखे हैं, अतएव उनको और उनके साथियो के लिए आपलोग भोजन दे दें ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

स कृष्णो गोपालैः सह ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

वे कृष्णगोपालों के साथ ।।१७।।

श्रुत्वाच्युतमुपायान्तं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः । तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसंभ्रमाः ।।१८।।

अन्वयः— अच्युतम् उपायान्तं श्रुत्वा नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः, तत्कथाक्षिप्त मनसः जातसंभ्रमाः बभूवुः ।।१८।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण सन्निकट में आये है, इस बात को सुनकर सदैव भगवान के दर्शन के लिए उत्सुक वे सब श्रीभगवन् के आने की बात सुनकर उतावली हो गयीं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

तत्कथाक्षिप्तमनस्त्वात्तद्दर्शनोत्सुकाः । अतएव तमुपागतं श्रुत्वा जातसंभ्रमा बभूवुः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् की कथा सुनने के कारण वे सब भगवान् का दर्शन करने के लिए उत्कण्ठित रहती थीं । भगवान् के सन्निकट आये हुए सुनकर वे उतावली हो गयीं ।।१८।।

चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः । अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ।।१९।।

अन्वयः— भाजनैः चतुर्विधम् बहुगुणम् अन्नम् आदाय निम्नगाः समुद्रामिव सर्वाः प्रियम् अभिसस्रु ।।१९।।

अनुवाद— वे सब बर्तनों में अत्यन्त तथा हितकारी चारो प्रकार के भोजन पात्रों में लेकर अपने प्रिय भगवान् श्रीकृष्ण के पास उसी तरह आयीं जिस तरह सभी नदियाँ समुद्र के पास जाती हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

भक्ष्यभोज्यलेह्यचोष्यभेदैश्चतुर्विधम् । बहुगुणं संस्कारविशेषैर्बहवो गुणा रससौरभ्यादयो यस्मिंस्तत् । भाजनैरमत्रैर्भाण्डैर्वा। पत्यादिभिर्वार्यमाणा अपि प्रियं श्रीकृष्णमभिसस्रुरभिजग्मुः । अप्रतिबन्धे दृष्टान्तः-समुद्रं निम्नगा नद्य इवेति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

भक्ष्य, भोज्य, लेह्य एवं चोष्य चारो प्रकार के संस्कार विशेष के कारण जिनमें बहुत से गुण रस सुगन्धि इत्यादि से युक्त भोजन को पात्रों में अपने पतियों आदि से रोके जाने पर भी वे अपने भगवान् श्रीकृष्ण के पास गयीं ।।१९।।

निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बन्धुभिः सुतैः । भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ।।२०।।

अन्वयः— उत्तमश्लोके भगवति दीर्घश्रुतिधृताशयाः पतिभिः भ्रातृभिः सुतैः निषिध्यमानाः ।।२०।।

अनुवाद— पवित्रकीर्ति श्रीभगवान् के विषय में दीर्घकाल से उनके गुणों आदि के सुने रहने के कारण उनका अन्तःकरण श्रीभगवान् में ही लगा था अतएव पतियों, भाइयों, बान्धवों और पुत्रों द्वारा रोके जाने पर भी वे, श्रीभगवान् के पास चली गयीं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

अत्र हेतुः-भगवतीति । दीर्घं बहुकालं श्रुतेन श्रवणेन धृत आशयो याभिस्ताः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

पतियों आदि से रोके जाने पर भी जाने का कारण **भगवति० इत्यादि** श्लोक के उत्तरार्ध के द्वारा कहा गया है। बहुत समय से उनके गुणों आदि के श्रवण करने के कारण उन सबों का मन भगवान् में लगा था ॥२०॥

यमुनोपवनेऽशोकनवपल्लवमण्डिते । विचरन्तं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥२१॥

अन्वयः— यमुनोपवने शोकनवपल्लव मण्डिते गोपैः वृतं साग्रजं विचरन्तं स्त्रियः ददृशुः ॥२१॥

अनुवाद— नवीन कोपलों से अलंकृत यमुना नदी के तट पर अशोक वन में गोपों के साथ बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण को विचरण करते हुए स्त्रियों ने देखा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तथागताः सत्यो ददृशुः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उन सती स्त्रियों ने आकर भगवान को देखा ॥२१॥

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥२२॥

अन्वयः— श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्य बर्हधातुप्रवाल नटवेशम् अनुव्रतांसे विन्यस्त हस्तम् इतरेण अब्जं धुनानं, कर्णोत्पलालकपोलमुखाब्जहासम् ददर्शेति शेषः ॥२२॥

अनुवाद— उन स्त्रियों ने जाकर देखा कि श्रीभगवान् के श्याम वर्ण के शरीर पर पीला पीताम्बर सुशोभित हो रहा है। वे वनमाला धारण किए हुए हैं। सिर पर मोर मुकुट धारण किए हैं। अङ्गों में रङ्गीन धातुओं से चित्रकारी किए हुए है। कोपलों के गुच्छों से नट का वेष बनाये हुए हैं। वे एक हाथ अपने सखा ग्वाल के कन्धे पर रखे हैं और दूसरे हाथ से कमल के पुष्प को नचा रहे हैं। कानों में कमल का कुण्डल पहने हैं और कपोलों पर काले घुंघराले केश लटक रहे हैं। श्रीभगवान् का मुख मधुर मुस्कान की रेखा से सुशोभित है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

हिरण्यवत्परिधिः परिधानं यस्य तं पीताम्बरमित्यर्थ; । वनमाल्यैर्बर्हैर्धातुभिः प्रवालैश्च नटवद्वेषो यस्य तम् । अनुव्रतस्य सख्युरंसे विन्यस्तो निहितो हस्तो येन तम् । इतरेण हस्तेन लीलयाऽब्जं धुनानं भ्रामयन्तम् । कर्णयोरुत्पले यस्य, अलकाः कपोलयोर्यस्य, मुखाब्जे हासो यस्य, तं च तं च तं च ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

श्री भगवान् के श्याम शरीर पर पीला पीताम्बर सुवर्ण के समान चमक रहा था। वनमालाओं, मोर मुकुट, रङ्गविरङ्गी चित्रकारी तथा कों पल्लवों से उनका वेष नट के समान सुन्दर था, वे अपने सखा ग्वाल के कन्धे पर अपना हाथ रखे हुए थे, दूसरे हाथ से कमल पुष्प को नचा रहे थे। उनके कानों में कमल का कुण्डल था। काले घुंघराले केश गालों पर लहरा रहे थे। उनका मुख कमल मन्दमुस्कान से सुशोभित था। ऐसे भगवान को स्त्रियों ने देखा ॥२२॥

प्रायः श्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरैर्यस्मिन्निमग्नमनसस्तमथाक्षिरन्ध्रैः ।
अन्तः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं प्राज्ञं यथाभिमतयो विजहुर्नरेन्द्र ॥२३॥

अन्वयः— हे नरेन्द्र प्रायः श्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरैः यस्मिन् निमग्नमनसः तम् अथ अक्षिरन्धैः अन्तः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य प्राज्ञं यथाभिमतयो तापं विजहुः ॥२३॥

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् अब तक अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की लीलाओं और गुणों को अपने कानों से सुनसुन कर वे स्त्रियाँ अपने मन को उनके ही प्रेम के रङ्ग में रङ्गकर उसी में सराबोर करा दिया था । अब नेत्रों के मार्ग से उन श्रीभगवान् को अपने हृदय में ले जाकर वे दीर्घकाल तक उनका आलिङ्गन करती रहीं । इस प्रकार अपने हृदय के ताप को उसी प्रकार शान्त किया जिस तरह जाग्रत एवं स्वप्न की अवस्था की वृत्तियाँ अहंत्व और ममत्व की भावना से जलती रहती है किन्तु सुषुप्ति की अवस्था में उसके अभिमानी प्राज्ञ को प्राप्त करके उसी में लीन हो जाती है और उनकी सारी जलन मिट जाती है ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

वृत्तेरपि लयेन सामरस्यमाह-प्राय इति । बहुशः श्रुता ये प्रियतमस्योदया उत्कर्षास्त एवं कर्णपूराः कर्णौ पूरयन्ति कृतार्थौ कुर्वन्तीति तथा तैः, कर्णाभरणैरिति वा । यस्मिन्कृष्णे निमग्नमनस आविष्टचेतसस्तं लोचनद्वारैरन्तः प्रवेश्य सुचिरमुपगुह्य तापं जहुः । अभिमतयोऽहंवृत्तयः प्राज्ञं सुषुप्तिसाक्षिणं पारिरभ्य तस्मिन् लयं प्राप्य यथेति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

प्रायः इत्यादि श्लोक से वृत्ति के भी लय के द्वारा सामरस्य का प्रतिपादन किया गया है । अभी तक जो वे स्त्रिया प्रियतम भगवान श्रीकृष्ण की उत्कृष्टता को सुन रखी थीं उसी से उनके कान कृतार्थ हो गये थे । अथवा सुने गये भगवान् के गुण उनके कर्णालङ्कार हो गये थे । उसी के कारण उन स्त्रियों का मन भगवान् श्रीकृष्ण में लगा था उन्हीं श्रीभगवान् को अपनी आँखों के द्वार से अपने अन्तःकरण में प्रवेश कराकर तथा उनका दीर्घकाल तक आलिङ्गन करके उन सबों ने अपने संताप को शान्त किया । यह उसी तरह हुआ जिस तरह अहंकार की वृत्तियों सुषुप्ति काल के साक्षी प्राज्ञ का आलिङ्गन करके उसी में लीन हो जाती हैं ।।२३।।

तास्तथा त्यक्तसर्वाशाः प्राप्ता आत्मदिदृक्षया । विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा प्राह प्रहसिताननः ।।२४।।

अन्वयः— अखिलदृग्दृष्टा ताः तथा त्यक्त सर्वाशाः आत्मदिदृक्षया प्राप्ताः विज्ञाय प्रहसिताननः प्राह ।।२४।।

अनुवाद— श्रीभगवान् सबों के हृदय की बात जानते हैं । उन्होंने जब यह जान लिया कि ये ब्राह्मण पत्नियाँ अपने पतियों और पुत्रों को रोकने पर भी अपने सभी सगे संबन्धियों और पुत्रों की आशा को त्यागकर मेरे दर्शन की अभिलाषा से मेरे पास आयी हैं तो वे हँसते हुए उन सबों से कहे ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

अखिलदृग्द्रष्टा सर्वबुद्धिसाक्षी । तास्तथा प्राप्ता विज्ञायापि । तथेत्येतद्विवृणोति-त्यक्तसर्वाशास्त्यक्ताः सर्वा आशा याभिस्ताः। केवलमात्मनः स्वस्यैव दिदृक्षयेति ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

अखिलदृग्द्रष्टा अर्थात् सबों की बुद्धि के साक्षी श्रीभगवान् उन सबों के उस तरह से आये हुए जानकर भी **तथा** पद की व्याख्या करते हैं- सभी आशाओं को इन स्त्रियों ने त्याग दिया है और केवल मुझको ही देखने की इच्छा से आयी हैं ।।२४।।

स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम् । यन्नो दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ।।२५।।

अन्वयः— हे महाभागाः वः स्वागतं आस्यताम् किम् करवाम ? यत् नः दिदृक्षया प्राप्ताः इदं वः उपपन्नम् ।।२५।।

अनुवाद— श्रीभगवान् ने कहा हे महाभाग्यवती देवियों ! आपलागों का स्वागत है । आप लोग बैठिये । मैं आपसबों का कौन सा स्वागत करूँ । आपलोग मेरे दर्शन की इच्छा से यहाँ आयी हैं । यह आप लोगों जैसे प्रेमपूर्ण हृदय वालों के लिए उचित ही है ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

हे महाभागाः, वः स्वागतं शुभमागमनम् । तदेवाह–यद्यस्मात्प्रतिबन्धतिरस्कारेणास्माकं दिदृक्षया प्राप्ता इति । इदं व उपपन्नं संपन्नं युक्तमिति वा ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

हे महाभाग्यवती देवियों आपलोगों का स्वागत है । उसी को बतलाते हैं क्योंकि आपलोग सभी समस्त प्रतिबन्धकों का तिरस्कार करके मुझको देखने के लिए यहाँ आयी हैं । यह आप लोगों के लिए उचित ही है ।।२५।।

नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शनाः । अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ।।२६।।

अन्वयः— ननु अद्धा कुशलाः स्वार्थदर्शनाः मयि अहैतुकीं अव्यवहितां आत्मप्रिये यथा भक्तिं कुर्वन्ति ।।२६।।

अनुवाद— निश्चित रूप से संसार में अपनी वास्तविक भलाई चाहने वाले बुद्धिमान पुरुष ही अपने प्रियतम के समान ही मुझसे प्रेम करते हैं, उनकी वह भक्ति कामना व्यवधान तथा सङ्कोच से रहित होती है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

युक्तत्वमाह-नन्विति । आत्मप्रिये आत्मा च प्रियश्च तस्मिन्मयि कुशला विवेकिनोऽत एव स्वस्यात्मनोऽर्थं पुरुषार्थं पश्यन्ति ये ते यथा यथावद्भक्तिं कुर्वन्ति । यथावत्त्वमाह-अद्धा साक्षात् । अत्र हेतुः-अहैतुक्यव्यवहितां फलाभिसंधिरहितामत एवाव्यवहितां निरन्तराम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

उन सबों के आगमन के औचित्य को **ननु० इत्यादि** से कहा गया है । मैं सबों की आत्मा और प्रिय हूँ। इस प्रकार के मुझमें विवेकी पुरुष ही अपने वास्तविक पुरुषार्थ को जानते हैं । वे ही लोग मेरी वास्तविक भक्ति करते हैं । उनकी भक्ति मुझसे साक्षात् होती है । उसका कारण है कि उन विवेकी पुरुषों की भक्ति अहैतुकी (स्वाभाविकी) और कामना आदि व्यवधानों से रहित निष्काम होती है । अतएव वह अन्तराय अन्तराय रहित होती है ।।२६।।

प्राणबुद्धिमनः स्वात्मदारापत्यधनादयः । यत्संपर्कात्प्रिया आसंस्ततः कोन्वपरः प्रियः ।।२७।।

अन्वयः— प्राणबुद्धिमनःस्वात्मदारापत्यधनादयः यत्संपर्कात् प्रियाः आसन् ततः अपरः कः नु प्रियः ।।२७।।

अनुवाद— प्राण, बुद्धि, मन, अपनी आत्मा, पत्नी, पुत्र तथा धन आदि जिसके सन्निधान से प्रिय होते हैं, वह मुझ परमात्मा श्रीकृष्ण से भिन्न कौन प्रिय हो सकता है ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनः सर्वतः प्रेष्ठत्वमुपपादयति–प्राणेति। स्वा ज्ञातयः आत्मा देहः। एते सर्वे यत्संपर्काद्यस्याध्यासेनोपकरणत्वेन वा।।२७।।

भाव प्रकाशिका

प्राण इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् बतलाते हैं कि सबसे प्रिय मैं ही हूँ स्व शब्द से संबन्धियों को कहा गया है । आत्माशब्द से शरीर को कहा गया है । ये सब के सब जिसके आध्यास अथवा उपकरण से प्रिय होते हैं, वह मुझसे भिन्न दूसरा कोई कौन हो सकता है ।।२७।।

तद्यात देवयजनं पतयो वो द्विजातयः । स्वसत्रं पारयिष्यन्ति युष्माभिर्गृहमेधिनः ।।२८।।

अन्वयः— तत देवयजनं यात वः द्विजातयः पतयः गृहमेधिनः युष्माभिः स्वसत्रं पारयिष्यन्ति ।।२८।।

अनुवाद— अतएव आपलोगों का आना उचित है, मैं आपलोगों के आने का अभिनदंन करता हूँ । आपलोग यज्ञशाला में चले जायँ । आपलोगों के पति ब्राह्मण गृहस्थ है, वे आपलोगों के साथ ही मिलकर अपना यज्ञ पूरा कर सकते हैं ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मात्कृतार्था यूयं देवयजनं यज्ञवाटं यात गच्छत । ननु कृतार्थाः किमिति यास्याम इति चेदत आह-पतय इति । पारयिष्यन्ति समापयिष्यन्ति । पतीनामनुग्रहायेत्यर्थः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

आपलोग कृतकृत्य हैं । आपलोग यज्ञशाला में लौट जायँ । यदि कहें कि यदि हमलोग कृतार्थ हैं तो किसलिए जायँ तो इस पर कहते हैं आपलोगों के पति आपलोगों से मिलकर ही यज्ञ पूरा कर सकेंगे । उन पर कृपा करने के लिए जायँ ।।२८।।

पत्न्य ऊचुः

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम् ।
प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदावसृष्टं केशैर्निवोढुमतिलङ्घ्य समस्तबन्धून् ।।२९।।

अन्वयः— हे विभो भवान् एवं नृशंसं गादितुं नार्हति, तथ पादमूलं निगमं सत्यं कुरुष्व, समस्त बन्धून अतिक्रम्य वयम् पदावसृष्ट तुलसिदाम केशैनिव्योढुं प्राप्ताः ।।२९।।

ब्राह्मण पत्नियों ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो आप इस तरह की कठोर वाणी न बोलिए, श्रुतियाँ कहती हैं कि जो एक बार आपके चरणों को शरण रूप से अपना लेता है वह पुनः इस संसार में नहीं लौटता है । आप इस वेदवाणी को सत्य करे । हमलोग अपने समस्त बान्धवों का तिरस्कार करके यहाँ इसलिए आयी हैं कि आपके चरणों में चढी हुई तुलसी की माला को अपने केशों में धारण करेंगी ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

नृशंसं परुषम् । निगमं प्रतिज्ञां-'न मे भक्तः प्रणश्यति' इति । वेदं वा- 'न स पुनरावर्तते' इति । पदावसृष्टमवज्ञयापि दत्तम् । बहुमानेन केशैर्निवोढुं दासीभवितुम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

नृशंस अर्थात् कठोर । आपकी प्रतिज्ञा है कि **न मे भक्तः प्रणश्यति** अर्थात् मेरे भक्त का कभी भी प्रणाश नहीं होता है । वेद भी कहता है न सपुनरावर्तते । अर्थात् मुक्त हुआ जीव कभी संसार में नहीं लौटता है । पदावसृष्टम् अर्थात् अनादर पूर्वक भी दी गयी माला को समादर पूर्वक अपने केशों में बाँधने के लिए अर्थात् आपकी दासी होने के लिए ।।२९।।

गृह्णन्ति नो न पतयः पितरौ सुता वा न भ्रातृबन्धुसुहृदः कुत एव चान्ये ।
तस्माद्भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो नान्या भवेद्गतिररिन्दम तद्विधेहि ।।३०।।

अन्वयः— हे अरिन्दम ! नः पतयः सुताः पितरौ, भ्रातृबन्धुसुहृदः न गृह्णन्ति अन्ये चकुत एव । तस्मात् भवत् प्रपदयोः पतितात्मनां नः अन्यागतिः नो भवेत् तद्विधेहि ।।३०।।

अनुवाद— हे अपने शत्रुओं का दमन करने वाले भगवान अब हमारे पति-पुत्र, माता-पिता, भाई-बन्धु तथा स्वजन संबन्धी हमें नहीं स्वीकार करेंगे । तो फिर दूसरों की क्या बात है ? अब हमलोग आपके चरणों की शरण में आयी हैं अतएव आप ऐसा करें कि हमलोगों को किसी दूसरों की शरण में नहीं जाना पड़े ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

किंच न गृह्णन्ति नोऽस्मान् । हे अरिन्दम कामलोभपापादिदमन, भवतः प्रपदयोः पादाग्रयोः पतितदेहानामन्या स्वर्गादिगतिरपि न भवेन्मा भूत् । तत्तस्माद्दास्यमेव विधेहीति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

हमलोगों के पति आदि हमलोगों को नहीं स्वीकार करेंगे हे काम-लोभ पाप आदि का दमन करने वाले भगवन् आपके चरणों के समक्ष अपने शरीर को समर्पित करने वाली हमलोगों की स्वर्गादि गति भी न हो अतएव आप हमलोगों को अपनी दासी ही बना लीजिए ॥३०॥

श्रीभगवानुवाच

पतयो नाभ्यसूयेरन्पितृभ्रातृसुतादयः । लोकाश्च वो मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते ॥३१॥

अन्वयः— मयोपेताः पतयः पितृभ्रातृसुतादयः लोकाः च वः न अभ्यसूयेरन् देवा अप्यनुमन्वते ॥३१॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— देवियों अब तुमलोग हमारी हो गयी हो अतएव तुमलोगों का तुम्हारे पति पिता, भाई पुत्र तथा सगे संबन्धी यहाँ तक कि सारा संसार भी तिरस्कार नहीं कर सकता है, देखो मेरी इस बात का देवता भी समर्थन करते हैं॥३१॥

भावार्थ दीपिका

मयोपेता अनुज्ञाताः । प्रत्यक्षं देवान् प्रदर्श्याह-देवा अपीति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

मयोपेताः अर्थात् मेरे द्वारा अनुगत हो तुमलोग, प्रत्यक्षतः देवताओं को दिखाकर भगवान् कहते हैं कि ये देवता भी मेरी बातों का समर्थन करते हैं ॥३१॥

न प्रीयतेऽनुरागाय ह्यङ्गसङ्गो नृणामिह । तन्मनो मयि युञ्जाना अचिरान्मामवाप्स्यथ ॥३२॥

अन्वयः— नृणाम् इह अङ्गसङ्गः प्रीतये अनुरागाय न तत् मयि मनोयुंजानाः अचिरात् माम् अवाप्स्यथ ॥३२॥

अनुवाद— मनुष्यों का मेरे अङ्ग का सङ्ग संसार में प्रीति अथवा अनुराग के लिए नहीं होता है । अतएव तुमलोग मुझमें अपने मन को लगा है, तुमलोगों को शीघ्र ही मेरी प्राप्ति हो जायेगी ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

तथपि त्वां त्युक्तं न शक्नुम इति चेत्तत्राह-नेति । प्रीतये सुखाय अनुरागाय स्नेहवृद्धये । अङ्गसङ्गोऽङ्गाभ्यां सङ्गः॥३२॥

भाव प्रकाशिका

यदि तुमलोग कहो कि फिर भी हमलोग आपको नहीं त्याग सकती है । इस पर श्रीभगवान् ने कहा कि मेरे अङ्गों का सङ्ग सुख अथवा स्नेहवृद्धि का कारण नहीं होता है ॥३२॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्ता मुनिपत्न्यस्ता यज्ञवाटं पुनर्गताः । ते चानसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्रमपारयन् ॥३३॥

अन्वयः— इत्युक्ताः ताः मुनिपत्न्यः पुनः यज्ञवाटं गताः अनसूयवः ते स्वाभिः स्त्रीभिः सत्रम् अपारयन् ॥३३॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवान् के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर वे ब्राह्मणों की पत्नियाँ: पुनः यज्ञशाला में गयीं किन्तु उन ब्राह्मणों ने अपनी पत्नियों में दोषदृष्टि बिल्कुल नहीं की और वे अपनी पत्नियों के साथ मिलकर उस यज्ञ को पूरा किये ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अनसूयवः अदोषदृष्टयः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

अनसूयवः अर्थात् दोष की दृष्टि से रहित ॥३३॥

तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवन्तं यथाश्रुतम् । हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम् ॥३४॥

अन्वयः— तत्र एका भर्त्रा विधृता, यथा श्रुतं भगवन्तं हृदा उपगुह्य कर्मानुबन्धनम् देहं विजहौ ॥३४॥

अनुवाद— उन स्त्रियों में से एक का पति उसे श्रीभगवान् के पास जाने से रोक दिया । वह जैसा श्रीभगवान् के विषय में सुनी थी वैसे ही श्रीभगवान् को अपने हृदय में धारण करके उनका आलिङ्गन करके अपने कर्मजन्य शरीर को उसने त्याग दिया ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

देहमिति । तदीयं देहं तत्र विहाय चैतन्येन भगवन्तं प्रापेत्यर्थः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

अपने के स्वभूत शरीर को वहीं त्यागकर ज्ञान के द्वारा श्रीभगवान् को प्राप्त कर ली ॥३४॥

भगवानपि गोविन्दस्तेनैवान्नेन गोपकान् । चतुर्विधेनाशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥३५॥

अन्वयः— प्रभुः भगवान् गोविन्दः तेनैव चतुर्विधेन अन्नेन गोपकान् आशयित्वा स्वयं च बुभुजे ॥३५॥

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीभगवान् उन्हीं चार प्रकार के अन्न से गोपों को भोजन कराकर स्वयं उसको खाये ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३५॥

एवं लीलानरवपुर्नृलोकमनुशीलयन् । रेमे गोगोपगोपीनां रमयन् रूपवाक्कृतैः ॥३६॥

अन्वयः— एवं लीलानरवरवपुः नृलोकम् अनुशीलयन् गोगोपगोपीनां रूपवाक्कृतैः रमयन् रेमे ॥३६॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् इस प्रकार लीला के लिए श्रेष्ठ मनुष्य शरीर धारण किए हुए भगवान् मनमोहक रूप मधुरवाणी और अतिमानुष कर्मों के द्वारा गौओं, गोपों और गोपियों को आनन्दित करते हैं, उन सबों के अलौकिक प्रेम रस का आस्वादन करते हुए आनन्दित हुए ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

अनुशीलयन्ननुकुर्वन् । गोगोपगोपीनामिति कर्मणि षष्ठी । रूपवाक्कृतैः रूपेण वाचा कृतैश्चरित्रैश्च रमयन् । ता रमयितुं रेम इत्यर्थः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

अनुशीलयन् अर्थात् अनुसरण करते हुए, गोगोपगोपीनाम् इस पद में कर्म के अर्थ में षष्ठी विभक्ति हुई है । अर्थात् गौओं, गोपों तथा गोपियों को अपने मनोज्ञ रूप से, मधुर वाणियों से तथा अपने लीलाओं से अनुरञ्जित करते हुए उन सबों को रञ्जित करने के लिए स्वयं विहार किए ॥३६॥

अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वतप्यन्कृतागसः । यद्विश्वेश्वरयोर्याच्ञामहन्म नृविडम्बयोः ॥३७॥

अन्वयः— अथ ते कृतागसः विप्राः अनुस्मृत्य अन्वतप्यन् यत् नृविडम्बनयोः विश्वेश्वरयोः याच्ञामहन्म ॥३७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् वे अपराधी ब्राह्मण अपने द्वारा किए गये अपराध का स्मरण करके पछताने लगे। वे सोच रहे थे कि मनुष्यों का अनुकरण करने वाले श्रीबलरामजी तथा श्रीकृष्ण ये दोनों सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। और उन लोगों की याचना को नहीं स्वीकार करके हमलोगों ने बहुत बड़ा पाप किया है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

अनुस्मृतिप्रकारमाहनरानुकरणवतोर्विश्वेश्वरयोर्याच्ञां यदहन्म हतवन्तस्तत्कृतागसो वयमित्यनुस्मृत्येति ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों के पछताने का प्रकार इस श्लोक से बतलाया गया है। मनुष्यों का अनुसरण करने वाले सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीकृष्ण और बलरामजी की याचना का हमलोगों ने जो तिरस्कार किया है उसके कारण हम सभी अपराधी है। इस तरह से याद करके वे सभी पछता रहे थे ।।३७।।

दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् । आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन् ।।३८।।

अन्वयः— स्त्रीणां कृष्णे अलौकिकीं भक्तिं दृष्ट्वा तया हीनं च आत्मानं दृष्ट्वा अनुतप्ता व्यगर्हयन् ।।३८।।

अनुवाद— अपनी स्त्रियों की भगवान् श्रीकृष्ण में अलौकिक भक्ति को देखकर और अपने को भगवद् भक्ति से रहित देखकर वे सभी ब्राह्मण संताप करने लगे और मन ही मन अपनी निन्दा भी करने लगे ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

तदा च भार्या गुरूनिव मानयन्तो भगवद्भक्तिरहितमात्मानं व्यनिन्दन्नित्याह–दृष्ट्वेति। अलौकिकीं लोकातीताम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

उस समय अपनी पत्नियों को गुरुओं के समान मानते हुए तथा अपने को भगवद् भक्ति से रहित देखकर वे सभी अपने आपकी निन्दा करने लगे ।।३८।।

धिग्जन्मनस्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञताम् । धिक्कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे।।३९।।

अन्वयः— न त्रिवृत् जन्मधिक् विद्या धिक् व्रतंधिक बहुज्ञताम् धिक् कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं धिक् येवयं तु अधोजे विमुखाः ।।३९।।

अनुवाद— हमलोगों के त्रिवृत् जन्म को धिक्कार है, अर्थात् एक बार हमारा उच्च वंश में जन्म हुआ, उसके बाद सावित्री उपदेश के पश्चात् हमलोग द्विज हुए और पुनः वेदाध्ययन करके हमलोगों ने दक्षता प्राप्त की यही हमलोगों का त्रिवृत् जन्म हैं। इस त्रिवृत् जन्म को धिक्कार है, हमारी विद्या को धिक्कार है, हमलोगों ने जो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया उसको धिक्कार है, हमलोगों की बहुज्ञता को धिक्कार है, हमारे उच्च कुल को धिक्कार है तथा हमलोगों को जो क्रिया में दक्षता प्राप्त हुई है, उसको धिक्कार है क्योंकि इनके रहने पर हम श्रीभगवान् की भक्ति से पराङ्मुख ही रहे ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

त्रिवृत् शौक्लं सावित्रं दैक्षमिति त्रिगुणितं जन्म। व्रतं ब्रह्मचर्यम्। क्रियाः कर्माणि दाक्ष्यं च। क्रियादाक्ष्यमित्येकं वा पदम्। धिगित्यधिक्षेपे। ये वयं त्वधोक्षजे विमुखास्तेषां जन्मादि तत्सर्वं धिगिति व्यगर्हयन्नित्यर्थः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

मन ही मन पछताते हुए वे सभी ब्राह्मण अपनी निन्दा कर रहे थे कि हमलोगों का सद्वंश में जो जन्म हुआ यह पहला जन्म है, सावित्री की दीक्षा प्राप्त करके जो हम द्विज बने यह हमारा दूसरा जन्म है तथा हमलोगों

ने वेदाध्ययन करके जो दक्षता प्राप्त की यह तीसरा जन्म है । इसी को त्रिवृत् जन्म कहा गया है । व्रत शब्द से ब्रह्मचर्य को और दाक्ष्य शब्द से कर्मों की निपुणता को कहा गया है । अथवा **क्रियादाक्ष्यम्** यह एक पद है और इसका अर्थ है कि क्रिया की निपुणता धिक् यह निन्दार्थक अव्यय है । हमलोग अभी तक भगवत् पराङ्मुख ही रहे अतएव हम सबों के जन्म आदि सब व्यर्थ हैं इस तरह से वे अपनी निन्दा कर रहे थे ।।३९।।

नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी । यद्वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ।।४०।।

अन्वयः— नूनं भगवतो माया योगिनामापि मोहिनी यत् वयं नृणांगुरवः द्विजाः स्वार्थे मुह्यामहे ।।४०।।

अनुवाद— निश्चित् ही श्रीभगवान् की माया योगियों को भी मोहित कर दिया करती है । क्योंकि हमलोग गुरु ब्राह्मण कहलाते हैं, किन्तु अपने वास्तविक स्वार्थ का हमलोगों को ज्ञान नहीं है ।।४०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४०।।

अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ । दुरन्तभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान्गृहाभिधान् ।।४१।।

अन्वयः— अहो नारीणामपि जगद्गुरौ कृष्णे दुरन्तभावं पश्यत् । यो गृहाभिधान् मृत्यु पाशान् अविध्यन् ।।४१।।

अनुवाद— यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इन स्त्रियों का भी जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण अगाध प्रेम है, और उसी के बल पर इन सबों ने गार्हस्थ्य की उस सुदृढ फाँसी को भी काट दिया जो मृत्यु के साथ भी नहीं कटती है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

योऽविध्यदच्छिनत्तं दुरन्तं भावं भक्तिं पश्येति ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

जिसने मृत्यु के पाश को भी काट दिया उस भक्ति को देखो ।।४१।।

नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि । न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ।।४२।।
अथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे । भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ।।४३।।

अन्वयः— आसां द्विजातिसंस्कारो न गुरावपि निवासः न तपः न आत्ममीमांसा न, शौचं न शुभाः क्रिया न अथापि हि उत्तमश्लोके योश्वरेश्वरे कृष्णेदृढ़ा भक्तिः अस्माकं च संस्कारादिमतामपि न ।।४२-४३।।

अनुवाद— इन सबों का द्विजाति के योग्य न तो यज्ञोपवीतादि संस्कार हुआ है और न इन सबों नें गुरुकुल में निवास किया है, इनसबों ने तपस्या भी नहीं की है और न तो इन सबों ने आत्मतत्त्व का विचार ही किया है, इन सबों में शरीर की पवित्रता भी नहीं है और न तो इनका कोई शुभ कर्म ही है । फिर भी समस्त योगेश्वरों के भी स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण में इन सबों की सुदृढ भक्ति है, जो संस्कारादिकों से सम्पन्न भी हमलोगों में नहीं हैं ।।४२-४३।।

भावार्थ दीपिका

द्विजातिसंस्कार उपनयनम् । क्रियाः सन्ध्योपासनादयः ।।४२-४३।।

भाव प्रकाशिका

इन सबों का न तो द्विजातितत्वप्रद यज्ञोपवीतादि संस्कार हुआ है और न तो ये सन्ध्योपासनादि क्रियाओं को करती हैं ।।४२-४३।।

ननु स्वार्थविमूढानां प्रमत्तानां गृहेहया । अहो नः स्मारयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः ।।४४।।

अन्वयः— ननु स्वार्थ विमूढानां गृहेहया प्रमत्तानां अहो नः गोपवाक्यैः सतां गतिः स्मारयामास ।।४४।।

अनुवाद— हमलोग अपने स्वार्थ के विषय में प्रमादग्रस्त है, गृहस्थी के कर्मों में मदमत्त बने हैं। यह श्रीभगवान् की बहुत बड़ी कृपा है कि ग्वालबालों को भेजकर हमलोगों को उन्होंने अपने सन्मार्ग की याद दिलायी है ।।४४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४४।।

अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्याद्याशिषां पतेः। ईशितव्यैः किमस्माभिरीशस्यैतद्विडम्बनम् ।।४५।।

अन्वयः— अन्यथापूर्णकामस्य कैवल्याद्याशिषांपतेः ईशितव्यैः अस्माभिः किम् एतद् ईशस्य विडम्बनम् ।।४५।।

अनुवाद— श्रीभगवान् तो पूर्णकाम है, इच्छा करते ही उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, वे कैवल्य मोक्ष पर्यन्त समस्त पुरुषार्थों को प्रदान करने वाले हैं। यदि उनको हमलोगों को सचेत नहीं करना होता तो वे हमलोगों के पास गोपों को क्यों भेजते। गोपों को माँगने के लिए भेजना तो एक बहाना था, वस्तुतः हमलोगों को उपदेश देना ही उनका उदेश्य था ।।४५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४५।।

हित्वान्यान्भजते यं श्रीः पादस्पर्शाशयासकृत् । आत्मदोषापवर्गेण तद्याच्ञा जनमोहिनी ।।४६।।

अन्वयः— अन्यान् हित्वा श्रीः यं आत्मदोषापवर्गेणसकृत् पादस्पर्शाशया भजते तद्‌याच्ञा जनमोहिनी ।।४६।।

अनुवाद— दूसरे देवताओं को त्यागकर स्वयं लक्ष्मीजी अपने चांचल्य आदि दोषों का परित्याग करके एक बार उनके चरणों के स्पर्श की आशा से सेवा करती हैं उन श्रीभगवान् की याचकता तो केवल लोगों को मोहित करने के लिए है ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनो दोषापवर्गेण चाञ्चल्यगर्वादित्यागेन ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

अपने दोषों के परित्याग पूर्वक का अर्थ है अपने चञ्चलता आदि दोषों के त्याग पूर्वक ।।४६।।

देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः । देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ।।४७।।

अन्वयः— देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्र तन्त्रर्त्विजोऽग्नयः देवता यजमानः च क्रतुः धर्मः च यन्मयः ।।४७।।

अनुवाद— देश, काल, पृथक-पृथक सामग्रियाँ, उन कर्मों में विनियुक्त होने वाले मन्त्र, उनके अनुष्ठान की विधि ब्रह्मा आदि ऋत्विक् अग्नि देवता और यज्ञ सबके सब यदात्मक हैं। अर्थात् श्रीहरि ही इन सभी रूपों में प्रतीत हो रहे हैं ।।४७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४७।।

स एष भगवान्साक्षाद्विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः । जातो यदुष्वित्यश्रृण्म ह्यपि मूढा न विद्महे ।।४८।।

अन्वयः— स एषः योगेश्वरेश्वरः साक्षात् विष्णुः यदुषु जातः इति हि शृण्म अपि मूढाः न विद्महे ।।४८।।

अनुवाद— वे यह योश्वरों के भी स्वामी साक्षात् भगवान् विष्णु ही है, यह हमलोग सुनते भी हैं फिर भी हमलोग अज्ञानी है अतः उनको जानते नहीं है ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

इत्यश्रृण्म एवं सर्वत्र श्रुतवन्तो वयं हि तथाऽपीति ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

यह हमलोग यद्यपि सर्वत्र सुनते हैं किन्तु उनको हमलोग जानते नहीं हैं ।।४८।।

अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः । भक्त्या यासां मतिर्जाता अस्माकं निश्चला हरौ॥४९॥

अन्वयः— अहो वयं धन्यतमाः येषां नः तादृशीः स्त्रियः यासां भक्त्या अस्माकं मतिः हरौ निश्चला जाता ॥४९॥

अनुवाद— फिर भी हमलोग धन्यातिधन्य है, क्योंकि हमलोगों को इस तरह की पत्नियाँ मिली उन सबों की ही भगवद् भक्ति के कारण हमलोगों को भी श्रीहरि में निश्चल बुद्धि हो गयी ॥४९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४९॥

नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुष्ठमेधसे । यन्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मवर्त्मसु ॥५०॥

अन्वयः— अकुण्ठमेधसे भगवते कृष्णाय तुभ्यं नमः यन्मायया मोहितधियः कर्मवर्त्मसु भ्रमामः ॥५०॥

अनुवाद— जिनकी बुद्धि न तो कहीं कुण्ठित होती है और न बाधित होती है ऐसे हे भगवान् श्रीकृष्ण आपको हमलोग नमस्कार करते हैं । आपकी ही माया से हमलोगों की बुद्धि मोहित हो गयी है और हमलोग इस कर्म मार्ग में चक्कर काट रहे हैं ॥५०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५०॥

स वै न आद्यः पुरुषः स्वमायामोहितात्मनाम् । अविज्ञातानुभावानां क्षन्तुमर्हत्यतिक्रमम् ॥५१॥

अन्वयः— स वै आद्य पुरुषः स्वमायामोहितात्मनाम् अविज्ञातानुभावानां अतिक्रमम् क्षन्तुम् अर्हति ॥५१॥

अनुवाद— निश्चित रूप से वे ही भगवान् श्रीकृष्ण आद्य पुरुष है उनकी ही माया से जिन हमलोगों की बुद्धि मोहित हो गयी है, ऐसे हमलोग उन श्रीभगवान् की महिमा को नहीं जान सकने वाले हमलोगों के अपराधों को क्षमा करेंगे ॥५१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५१॥

इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः । दिदृक्षवोऽप्यच्युतयो; कंसाद्भीता न चाचलन् ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे यज्ञपत्न्युद्धरणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

अन्वयः— इति स्वाघमनुमृत्य कृष्णे कृतहेलनाः ते अच्युतयोः दिदृक्षवः अपि कंसाद्भीताः न च अचलन् ॥५२॥

अनुवाद— इस तरह से अपने अपराध को स्मरण करके भगवान् श्रीकृष्ण का अनादर करने वाले वे चाहे कि हमलोग भी भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी का दर्शन कर लें किन्तु कंस के भय से दर्शन करने नहीं जा सके ॥५२॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्द्ध के तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

न चाललन् तयोर्दर्शनाय न जग्मुः ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकयां टीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

वे नहीं जा सके यह न चाचलन् का अर्थ है ॥५२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्द्ध की भावार्थ दीपिका टीका के तेइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।

चौबीसवाँ अध्याय

इन्द्रयज्ञ निषेध

श्रीशुक उवाच

भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः । अपश्यन्निवसन्गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ।।१।।

अन्वयः— बलदेवेन संयुत भगवान् तत्रैव निवसन् इन्द्रयागकृतोद्यमान् गोपान् अपश्यत् ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— बलरामजी के साथ वृन्दावन में ही निवास करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण देखे कि सभी गोप इन्द्रयाग के लिए तैयारी कर रहे हैं ।।१।।

भावार्थ दीपिका

चतुर्विंशे महेन्द्रस्य मखं व्यावर्त्य हेतुभिः । कृष्णः प्रवर्तयामास गोवर्धनमखोत्सवम् । भूसुराणां क्रियागर्वं निरस्य स्वःसुरेषु च । माघवन्मदभङ्गाय तन्मखं समवारयत् । ब्राह्मणाः कंसाद्भीताः स्वाश्रमस्था एवं भगवन्तमभजन् । भगवानपि तत्रैव निवसन्निन्द्रयागकृतोद्यमान्गोपानपश्यदिति संबन्धः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

चौबीसवें अध्याय में श्रीभगवान् तर्कों के द्वारा इन्द्र के याग को रोककर गोवर्धन याग महोत्सव को प्रवर्तित किए । ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड के गर्व को विनष्ट करके स्वर्गलोक के देवताओं में से इन्द्र के मद को विनष्ट करने के के लिए इन्द्र के यज्ञ को रोकवा दिए । कंस के भय से भयभीत रहने वाले ब्राह्मण अपने ही आश्रम में रहकर भगवान् का भजन करते थे । भगवान् भी वृन्दावन में ही रहकर इन्द्रयाग की तैयारी करते हुए गोपों को देखे इस तरह से इसका संबन्ध है ।।१।।

तदभिज्ञोऽपि भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः । प्रश्रयावनतोऽपृच्छद्वृद्धान्नन्दपुरोगमान् ।।२।।

अन्वयः— सर्वज्ञः सर्वात्मा भगवान् तदभिज्ञः अपि प्रश्रयावनतः नन्दपुरोगमान् वृद्धान् गोपान अपृच्छत् ।।२।।

अनुवाद— श्रीभगवान् तो सर्वज्ञ हैं, सब कुछ जानते हैं तथा वे सबों की आत्मा भी हैं, अतएव वे जानते थे कि यह इन्द्र यज्ञ की तैयारी हो रही है, फिर भी वे बड़ी ही नम्रता से नन्द आदि गोपों से पूछे ।।२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२।।

कथ्यतां मे पितः कोऽयं संभ्रमो व उपागतः । किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः।।३।।

अन्वयः—हे पितः अयं वः कः संभ्रमः उपागतः ? अस्य फलं किम् उद्देशः कः वा केन मखः साध्यते कथ्यताम्।।३।।

अनुवाद—हे पिताजी यह आपलोगों के समक्ष कौन सा बड़ा काम आ गया है, इसका फल क्या होता है, किस उद्देश्य से ? किन लोगों द्वारा ? तथा किस साधन के द्वारा ? यह यज्ञ किया जाता है ? इसे आप मुझे बतलाइये ।।३।।

भावार्थ दीपिका

वृथासंभ्रमो न भवति । मखोऽयमित्येवं चेत् किमत्र फलं, का देवता, केनाधिकारिणा, केन वा साधनेन साध्यते ।।३।।

भाव प्रकाशिका

कोई भी तैयारी व्यर्थ नहीं होती है । यदि आप कहें कि यह ही ऐसा है तो इसका फल क्या होता है ? किस अधिकारी के द्वारा तथा किन साधनों के द्वारा यह किया जाता है ?।।३।।

एतद्ब्रूहि महान्कामो मह्यं शुश्रूषवे पितः । नहि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनामिह ॥४॥

अन्वयः— हे पितः महान् कामः शुश्रूषवे मह्यं ब्रूहि । सर्वात्मनां साधूनां कृत्यं इह गोप्यं नहि ॥४॥

अनुवाद— हे पिताजी मेरी बहुत बड़ी इच्छा है, इसे मैं जानना चाहता हूँ । आप मुझे बतलाइये, क्योंकि जो लोग सबों को अपने ही समान जानते है ऐसे सन्त पुरुषों की तो कोई भी बात छिपाने योग्य होती ही नहीं है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

एतद्ब्रूहि महान्कामो मम श्रवणे वर्तते । यद्वा तव महान्कामो दृश्यत इति । तूष्णीं स्थितं प्रत्याह-नेति । सर्वात्मनां सर्वत्रात्मदृष्टीनाम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

आप मुझे इस बात को बतलाइये । इसे जानने की मेरी बहुत बड़ी इच्छा है । अथवा मैं आपकी बहुत बड़ी कामना देखता हूँ । अपने मौन पिता से भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा— समदर्शी साधुपुरुषों का तो कोई भी कार्य छिपाने योग्य होता ही नहीं है ॥४॥

अस्त्यस्वपरदृष्टीनाममित्रोदास्तविद्विषाम् । उदासीनोऽरिवद्वर्ज्य आत्मवत्सुहृदुच्यते ॥५॥

अन्वयः— अस्वपरदृष्टीनाम् अमित्रोदास्तविद्विषाम् गोप्यं न अस्ति, उदासीनोरिवद्वर्ज्यः सुहृत् आत्मवत् उच्यते॥५॥

अनुवाद— जिनकी दृष्टि में न तो कोई अपना है न पराया है ऐसे लोगों का कोंई न तो मित्र होता है न उदासीन होता है, और न शत्रु होता है । ऐसे लोगों के पास कोई भी छिपाने की बात होती ही नहीं है । यदि ऐसी बात नहीं है तो फिर रहस्य की बात शत्रु की भाँति उदासीन को भी नहीं बतलाना चाहिए । और मित्र तो अपने ही समान होता है, अतएव उससे कोई भी बात नहीं छिपाना चाहिए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अतएव न विद्यते स्वः पर इति दृष्टिर्येषामिति । स्वपरदृष्ट्यभावादेव तत्तद्भेदा अमित्रादयोऽपि तेषां न सन्तीत्याह-अमित्रेति । न मित्रमुदास्त उदासीनो विद्विड्येषां तेषां कृत्यं सर्वं कर्म न गोपनीयं किंचिदस्तीत्यर्थः । सत्यपि भेददर्शने उदासीनः शत्रुवद्वर्ज्य आत्मतुल्यत्वात्सुहृन्मन्त्रेषु न वर्जनीय इत्याह-उदासीन इति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

जिनकी अपने और पराये की भेद दृष्टि नहीं है, इसीलिए उन पुरुषों का कोई शत्रु आदि भी नहीं होता है । इस बात को **अमित्र० इत्यादि** के द्वारा कहा गया है । मूल का उदास्त शब्द उदासीन का वाचक है । जिन सन्त पुरुषों का कोई उदासीन अथवा शत्रु नहीं है, उन लोगों का कोई भी कार्य गोपनीय नहीं होता है । यद्यपि शत्रु और उदासीन में भेद होता है, फिर भी शत्रु के ही समान उदासीन को भी कोई बात नहीं बतलाना चाहिए। किन्तु जो मित्र होता है वह तो अपने ही समान होता है, उससे कोई भी बात नहीं छिपाना चाहिए । इस बात को **उदासीनः अरिवदवर्ज्यः इत्यादि** वाक्यांश से कहा गया है ॥५॥

ज्ञात्वाऽज्ञात्वा च कर्माणि जनोऽयमनुतिष्ठति । विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात्तथा नाविदुषो भवेत् ॥६॥

अन्वयः— अयं जनः ज्ञात्वा अज्ञात्वा च कर्माणि अनुतिष्ठते विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात् अविदुषः तथा न भवेत् ॥६॥

अनुवाद— यह संसारी पुरुष कार्यों को जानकर (सोचकर समझकर) भी करता है और बिना सोचे समझे भी करता है । किन्तु सोच-समझकर कामों को करने वाले पुरुष को अपने कार्यों में सफलता मिलती है किन्तु सोचे समझे बिना कार्यों को करने वाले पुरुषों को अपने कार्यों में सफलता नहीं मिलती है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

किंच सुहृद्भिः सह विचार्य ज्ञात्वैव कर्म कर्तव्यं, नतु गतानुगतिकत्वमात्रेणेत्याह-ज्ञात्वेति । अज्ञात्वा च । तत्र विदुषो यथा तत्कर्मफलं स्यात्तथा नाविदुषः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

और अपने मित्रों के साथ विचार करके ही काम करना चाहिए, केवल गतानुगतिक होकर काम नहीं करना चाहिए । इस बात को श्रीभगवान् ने ज्ञात्वा और अज्ञात्वा पदों के द्वारा कहा है । जानकर कर्म करने वाले को जैसे सफलता मिलती है वैसे बिना विचार किए ही कर्म करने वाले को सफलता नहीं मिलती है ॥६॥

तत्र तावत्क्रियायोगो भवतां किंविचारितः । अथवा लौकिकस्तन्मे पृच्छतः साधु भण्यताम् ॥७॥

अन्वयः— तत्र तावत् क्रियायोगः विचारितः किम् ? अथवालौकिकः तत् मे साधुभण्यताम् ॥७॥

अनुवाद— अतएव आपलोग जिस कार्य को करने जा रहे हैं, उसके विषय में आप लोगों ने ठीक से विचार कर लिया है क्या ? अथवा यह कार्य कोई लौकिक परम्परा से प्राप्त है ? इसे आपलोग मुझे बतलाएँ ॥७॥

भावार्थ दीपिका

भवतामयं क्रियायोगः शास्त्रतोऽपि किंविचारितः प्रवृतो लौकिकाचारप्राप्तो वेति साधु सोपपत्तिकं भण्यतां कथ्यतामिति।॥७॥

भाव प्रकाशिका

आपलोगों द्वारा किया जाने वाला यह कार्य शास्त्रानुसार विचार करके किया जा रहा है अथवा यह लौकिक परम्परा से प्राप्त कार्य है, यह आपलोग मुझे उपपत्ति निरूपण पूर्वक बतलाएँ ॥७॥

नन्द उवाच

पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः । तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः ॥८॥

अन्वयः— भगवान् इन्द्रः पर्जन्यः मेघाः तस्यात्ममूर्तयः ते भूतानां प्रीणनं जीवनं पयः अभिवर्षन्ति ॥८॥

नन्दजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् इन्द्र मेघों के स्वामी हैं और मेघ उन्हीं के अपने रूप हैं ? वे ही सभी प्राणियों को तृप्त करने वाले तथा जीवन प्रदान करने वाले जल की वर्षा करते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

आचारप्राप्त एवेति सहेतुकमाह-पर्जन्य इति । आत्ममूर्तय; प्रियमूर्तय; ॥८॥

भाव प्रकाशिका

आचार प्राप्त ही है इस बात को **पर्जन्यः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । **आत्ममूर्तयः** अर्थात् प्रियमूर्ति॥८॥

तं तात वयमन्ये च वार्मुचां पतिमीश्वरम् । द्रव्यैस्तद्रेतसा सिद्धैर्यजन्ते क्रतुभिर्नराः ॥९॥

अन्वयः— हे तात वयम् अन्ये च नराः तं वार्मुचां पतिमीश्वरं तद्रेतसासिद्धैः द्रव्यैः क्रतुभिः यजन्ते ॥९॥

अनुवाद— हे वत्स हमलोग तथा दूसरे लोग भी मेघों के स्वामी भगवान् इन्द्र की यज्ञों के द्वारा पूजा करते हैं । जिन द्रव्यों से भगवान् इन्द्र की पूजा करते वे द्रव्य भी उन्हीं के द्वारा बरसाये जल से उत्पन्न होते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

ततः किमित्यत आह तमिति । तमिन्द्रं वार्मुचा मेघानां पति स्वामी तमीश्वरं नियन्तारम् । तद्रेतसा तद्वृष्टि पयसा ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उससे क्या हुआ ? इस बात पर **तम्० इत्यादि** श्लोक को कहते है । इन्द्र वर्षा करने वाले मेघों के नियामक हैं । तद्रेतसा अर्थात् उनके द्वारा बरसाये गये जल से ॥९॥

तच्छेषेणोपजीवन्ति त्रिवर्गफलहेतवे । पुंसा पुरुष काराणां पर्जन्यः फल भावनः ॥१०॥

अन्वयः— तत् शेषेण त्रिवर्गफल हेतवे उपजीवन्ति पुंसा पुरुष काराणां पर्जन्यः फल हेतवः ॥१०॥

अनुवाद— उनके यज्ञ से बचे हुए अन्न से हमलोग धर्म, अर्थ एवं काम रूप त्रिवर्ग की सिद्धि के लिए अपना जीवन निर्वाह करते हैं । मनुष्यों द्वारा की जाने वाली खेती का भी फल वे ही प्रदान करते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

उपजीवन्त्युपजीविकां कल्पयन्ति । धर्मार्थकामसिद्धये । ननु कृष्यादिभिर्जीवन्ति, किमिन्द्रेण तत्राह- पुंसामिति । फलभावनः फलसाधकः । पर्जन्यं विना कृष्यादिवैफल्यादित्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उपजीवन्ति अर्थात् अपनी जीविका चलाते हैं, यह क्यों करते हैं ? इस पर कहते हैं धर्म, अर्थ और काम रूप त्रिवर्ग की प्राप्ति के लिए । यदि कहो कि लोग तो कृषि इत्यादि से अपनी जीविका चलाते हैं इन्द्र से क्या मतलब है ? तो इस पर नन्दजी कहते हैं **पुंसाम् इत्यादि** फलभावनः अर्थात् फल प्रदाता । वर्षा के बिना तो की हुई खेती भी विनष्ट हो जाती है ॥१०॥

य एवं विसृजेद्धर्मं पारम्पर्यागतं नरः । कामाल्लोभाद्भयाद्द्वेषात्स वै नाप्नोति शोभनम् ॥११॥

अन्वयः— यः नरः एवं पारम्पर्यागतं धर्म कामात् लोभात् भयात् द्वेषात् विसृजेत् स वैश्शोभनम् न आप्नोति ॥११॥

अनुवाद— जो मनुष्य इस प्रकार से परम्परा प्राप्त धर्म का, कामना विशेष, लोभ, भय अथवा द्वेष वशात् परित्याग कर देता है उसका कभी भी मङ्गल नहीं होता है ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

श्रीशुक उवाच

वचो निशम्य नन्दस्य तथान्येषां व्रजौकसाम् । इन्द्राय मन्युं जनयन्पितरं प्राह केशवः ॥१२॥

अन्वयः— नन्दस्य तथा अन्येषाम् व्रजौकसां वचो निशम्य केशवः इन्द्रं प्रति मन्युं जनयन् केशवः पितरम् प्राह॥१२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— नन्दजी की तथा दूसरे व्रजवासियों की वाणी को सुनकर भगवान् केशव इन्द्र के प्रति क्रोध को प्रदर्शित करते हुए अपने पिता नन्दजी से कहे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्राय मन्युं जनयन्निति । कोपजननद्वारा गर्वपर्वतादिन्द्रमवतारयितुं देवतानिराकरणं न त्वयमेवाभिप्राय इत्यर्थः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्रायमन्युंजनयन् इस कथन का अभिप्राय है कि इन्द्र जो अपने गर्व रूपी पर्वत पर आसीन थे उस पर से उनको उतारने के लिए है न कि इन्द्र उनके शत्रु थे और उन पर क्रोध करने के लिए ॥१२॥

श्रीभगवानुवाच

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव निलीयते । सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥१३॥

अन्वयः— जन्तुः कर्मणा जायते, कर्मणैव निलीयते, सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैव अभिपद्यते ॥१३॥

अनुवाद— जीव अपने कर्मों के अनुसार तत् तत् योनियों में जन्म लेता है और कर्म से ही वह मर जाता है । उसके कर्म के ही अनुसार सुख दुःख भय तथा कल्याण प्राप्त होता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

प्रथमं तावत्कर्मवादेन देवान्निराकरोति–कर्मणेति । ननु जडात्कर्मणः केवलात्कथं फलसिद्धिः स्यादिति चेत्, अहो अशीलितमीमांसानां स्वमतिविलसिता श्रद्धा । कर्मणां फलकारणत्वे वचनतोऽवगते किं ततोऽनुपपन्नं नाम ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सर्वप्रथम कर्मवाद के द्वारा देवताओं का निराकरण करते हैं । यदि कहें कि कर्म तो जड हैं अतएव केवल कर्म से फल की प्राप्ति कैसे होती है ? तो इस पर कहते हैं मीमांसा का ज्ञान प्राप्त नहीं करने के कारण आपलोगो ने अपने मन से कल्पना करके श्रद्धा करते हैं । मीमांसा शास्त्र बतलाता है कि कर्मों के द्वारा फल की प्राप्ति होती है । इसमें कोई भी अनुपपत्ति नहीं है । कर्मों के फल प्रदातृत्व में शास्त्रों के वाक्य ही प्रमाण हैं ॥१३॥

अस्ति चेदीश्वरः कश्चित्फलरूप्यन्यकर्मणाम् । कर्तारं भजते सोऽपि नह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः ॥१४॥

अन्वयः— चेत् कर्मणाम् फलरूपी अन्यत् ईश्वरः अस्ति, सोऽपि कर्तारं भजते सः हिः अकर्तुः प्रभुः नही ॥१४॥

अनुवाद— यदि कर्मों से भिन्न कोई कर्मों का फल देने वाला ईश्वर है तो वह भी कर्म करने वालों को ही फल देगा जो कर्म-कर्म करने वाले नहीं हैं वह उनका तो नियामक नहीं हो सकता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

केचित्पुनरतिसाहसभीताः कर्मपरतन्त्रमीश्वरं मन्यन्ते तन्मतमनूद्य निराकरोति–अस्ति चेदिति । स्वयं कर्मभिरलिप्तोऽन्येषां जीवानां कर्मणां फलरूपी फलदाता कर्तारं भ़जते तत्तत्कर्मफलदानेन ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

कुछ लोग जो बहुत अधिक साहस करने से डरते हैं वे कर्म परतन्त्र ईश्वर को मानते हैं । उन सबों के मत का अनुवाद करके उनका खण्डन करते हुए श्रीभगवान् कहते है वह ईश्वर कर्म से असंबद्ध है दूसरे जीवों के कर्मों का वह फल प्रदान करता है । वह कर्म करने वालों को ही फल देता है ॥१४॥

किमिन्द्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम् । अनीशेनान्यथा कर्तुं स्वभावविहितं नृणाम् ॥१५॥

अन्वयः— स्व स्वकर्मानुवर्तिनाम् भूतानाम् नृणां स्वभावविहितम् अन्यथा कर्तुम् अनीशेन इह इन्द्रेण किम् ?॥१५॥

अनुवाद— अपने-अपने किए हुए कर्मों का अनुसरण करने वाले जीवों द्वारा अपने स्वभावानुसार किए हुए कर्मो के फल में कोई भी परिवर्तन करने में समर्थ नहीं है इन्द्र से इस विषय में इन्द्र को स्वीकार करने से कौन सा लाभ है॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अतः कर्मण एव फलसिद्धेस्तत्पारतन्त्र्ये चाजागलस्तनतुल्यत्वान्न देवतया कृत्यमित्याह–किमिन्द्रेणेति । ननु कर्मणोऽपि प्रवृत्तिरन्तर्याम्यपेक्षैव कथं सर्वथा देवताया अनुपयोग इत्याशङ्क्याहस्वभावविहितमिति । स्वभावेन प्राक्तनसंस्कारेणैव विहितं यत्कर्म तदन्यथाकर्तुमनीशेन ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

चूकि कर्म से फल की प्राप्ति होती है, अतएव कर्म के परतंत्र रहने वाले बकरी के गले में लटकने वाला स्तनाकार मांस के समान व्यर्थ बीच में देवता को स्वीकार करने की क्या आवश्यकता है ? यदि कोई कहे कि कर्म में फल दानार्थ प्रवृत्ति अन्तर्यामी सापेक्ष ही होता है, अतएव देवता का सर्वथा अनुपयोग कैसे कहा जा सकता है ? इसके उत्तर में श्रीभगवान् ने **स्वभावविहित कहा** है अर्थात् प्राचीन संस्कार के द्वारा किया गया जो कर्म उसमें कोई भी परिवर्तन देवता नहीं कर सकता इन्द्र भी इस कार्य को नहीं कर सकते हैं ।।१५।।

स्वभावतन्त्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते । स्वभावस्थमिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ।।१६।।

अन्वयः— स्वभावतन्त्रो हि जनः स्वभावम् अनुवर्तते सर्वम् इदं सदेवासुरमानुषम्स्वभावस्थम् ।।१६।।

अनुवाद— मनुष्य अपने स्वभाव (संस्कार) के अधीन है, वह अपने संस्कार का ही अनुसरण करता है, देवता, मनुष्य तथा असुरों से युक्त यह सम्पूर्ण जगत अपने स्वभाव में ही स्थित है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

एतद्विवृणोति-स्वभाव तन्त्र इति । प्रवृत्तेः संस्काराधीनत्वात्किमन्तर्यामिणेत्यर्थः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

स्वभावतन्त्रः इत्यादि श्लोक से जगत् के स्वाभावाधीनत्व का प्रतिपादन करते हैं । मनुष्य में होने वाली सारी प्रवृत्तियाँसंस्कार के अधीन ही होती हैं, अतएव अन्तर्यामी को स्वीकार करने से कौन सा लाभ है ?।।१६।।

देहानुच्चावचान् जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा । शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ।।१७।।

अन्वयः— जन्तुः उच्चावचान् देहान् कर्मणा प्राप्यउत्सृजति, अतः शत्रुः, मित्रम्, उदासीनः गुरुः, ईश्वरः कर्मैव।।१७।।

अनुवाद— जीव अपने प्राचीन कर्म के अनुसार ही अच्छे-बुरे शरीर को प्राप्त करके अपने कर्मों के अनुसार ही उसका परित्याग कर देता है । कर्म ही मनुष्य का शत्रु, मित्र, उदासीन गुरु और ईश्वर (नियामक) भी है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

तस्मात्स्वभावतो निष्पन्नस्य कर्मण एव सर्वकारणत्वात्कर्मैव पूज्यमित्याह-देहानिति सार्धेन ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

देहान्० इत्यादि डेढ श्लोकों द्वारा इस बात का प्रतिपादन किया गया है कि स्वभाव से सम्पन्न कर्म ही सबों का कारण है अतएव कर्म ही पूज्य है ।।१७।।

तस्मात्संपूजयेत्कर्म स्वभावस्थः स्वकर्मकृत् । अञ्जसा येन वर्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ।।१८।।

अन्वयः— तस्मात् स्वभावस्थः स्वकर्मकृत् कर्म संपूजयेत् येन अञ्जसा वर्तेत तदेव हितस्य दैवतम् ।।१८।।

अनुवाद— अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह पूर्व संस्कारों के अनुसार ही अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुकूल धर्म का पालन करता हुआ कर्म का ही समादर करे मनुष्य की जिसके द्वारा जीविका चलती है, वही उसका इष्ट देव होता है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

संपूजयेत्संमानयेत् । ननु देवतोद्देशेन द्रव्यत्यागात्मकत्वात्कर्मणः कथं देवतां बिना सिद्धिरित्याशङ्क्य कर्माङ्गमात्रं देवतेति पक्षमुपसंहरन्निव हेतुवादमाश्रित्यान्यामेव देवतां समर्थयते-अञ्जसेति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

संपूजयेत् अर्थात् समादर करे । यदि कहें कि देवतोद्देश पूर्वक द्रव्य का त्याग रूप ही कर्म होता है । अतएव देवता के बिना कर्म की सिद्धि कैसे हो सकती है ? इस तरह की आशंका करके देवता कर्म के अङ्ग मात्र है, इस पक्ष का जैसे उपसंहार कर रहे हो, हेतुवाद (तर्क के द्वारा) को अपनाकर **अञ्जसा० इत्यादि** के द्वारा दूसरे ही देवता का समर्थन करते हैं ।।४८।।

आजीव्यैकतरं भावं यस्त्वन्यमुपजीवति । न तस्माद्विन्दते क्षेमं जारं नार्यसती यथा ।।१९।।

अन्वयः— एकतरं भावं आजीव्य यः अन्यम् उपजीव्यति तस्मात् असतीनारी जारं यथा क्षेमं न विन्दते ।।१९।।

अनुवाद— जो मनुष्य अपनी जीविका चलाने वाले एक देवता को छोड़कर किसी दूसरे की उपासना करता है, वह उसी तरह उससे शन्ति नहीं प्राप्त कर सकता है जिस तरह से अपने पति को छोड़कर जार को अपनाने वाली कुलटा नारी शान्ति नहीं प्राप्त करती है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

हेतुबलेनैव विपक्षे दोषमाह-आजीव्येति । उपजीवति सेवते ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् तर्क को ही अपनाकर कर्म व्यातिरिक्त दूसरे किसी को अपनाने में होने वाले दोष को इस श्लोक से बतलाये हैं ।।१९।।

वर्तेत ब्रह्मणा विप्रो राजन्यो रक्षया भुवः । वैश्यस्तु वार्तया जीवेच्छूद्रस्तु द्विजसेवया ।।२०।।

अन्वयः— विप्रः ब्राह्मणावर्तेत, राजन्यः भुवः रक्षया, वैश्यः तु कर्तया जीवेत् शूद्रस्तु द्विजसेवया ।।२०।।

अनुवाद—ब्राह्मण को चाहिए कि वह वेदाध्ययन और अध्यापन से अपने जीवन का निर्वाह करे । क्षत्रिय पृथिवी के पालन से, वैश्य वार्तावृत्ति से और शूद्र द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) की सेवा से अपनी जीविका चलाये ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

स्ववृत्तिं वक्तुं दृष्टान्तत्वेन वर्णानां वृत्तिभेदमाह-वर्तेतेति । ब्रह्मणा वेदाध्यापनादिना ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

अपनी वृत्ति (जीविका का साधन) बतलाने के लिए भिन्न-भिन्न वर्णो की वृत्ति के भेद को **वर्तेत० इत्यादि** शब्द से वतलाते है । ब्रह्मणा अर्थात् वेदाध्यापनादि के द्वारा ।।२०।।

कृषिवाणिज्यगोरक्षा कुसीदं तुर्यमुच्यते । वार्ता चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम् ।।२१।।

अन्वयः— कृषिवाणिज्यगोरक्षाकुसीदं तुर्यम् उच्यते वार्ताचतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयः अनिशम् ।।२१।।

अनुवाद— कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा और कुसीद (व्याज लेना) यह चौथी वृत्ति है । इस तरह वैश्यों की वृत्तिचार प्रकार की बतलायी गयी है । उसमें भी हम सब केवल गोपालन ही सदा से करते आये हैं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

वैश्यवृत्तेश्चातुर्विध्यमाह-कृषीति । कृषिवाणिज्यसहिता गोरक्षा एवं त्रयम् । कुसीदं वृद्धिजीवनं चतुर्थम् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

वैश्यों की जीविका की वृत्ति चार प्रकार की होती है, कृषि करना, गोपालन करना, व्यापार करना और चौथी

सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः । रजसोत्पद्यते विश्वमन्योन्यं विविधं जगत् ॥२२॥

अन्वयः— स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतव; सत्त्वंरजस् तम इति, रजसा विश्वम् उत्पद्यते अन्योन्यं विविधं जगत् ॥२२॥

अनुवाद— जगत् की स्थिति, उत्पत्ति और लय के कारण क्रमशः सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण है। यह विविध प्रकार का सम्पूर्ण जगत् पुरुष एवं स्त्री के संयोग रूपी रजोगुण से उत्पन्न है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

ननु गवामपि वृत्तिर्महेन्द्राधीनैवेत्याशङ्क्य निरीश्वरसांख्यमताश्रयेण निराकरोति-सत्त्वमिति श्लोंकद्वयेन । अन्योन्यं स्त्रीपुरुषयोगेन ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि गोपालन वृत्ति भी इन्द्र के अधीन ही है । इसकी आशंका करते हुए निरीश्वसांख्यमत को अपनाकर उसका खण्डन **सत्त्वम्० इत्यादि** दो श्लोकों से करते हैं । परस्पर में स्त्री तथा पुरुष के संयोग से ॥२२॥

रजसा चोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बूनि सर्वतः । प्रजास्तैरेव सिध्यन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति ॥२३॥

अन्वयः— रजसा चोदिता मेधाः सर्वत्रः अम्बूनि वर्षन्ति तैः एव प्रजाः सिध्यन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति ॥२३॥

अनुवाद— रजोगुण से ही प्रेरित होकर मेघ सर्वत्र वर्षा करते हैं, उससे ही अन्न उत्पन्न होता है और अन्न से प्रजा उत्पन्न है, बीच में इन्द्र की कौन सी आवश्यकता है ?॥२३॥

भावार्थ दीपिका

सर्वत इति । समुद्रशिलोषरादिष्वपि वृष्टिदर्शनान्न प्रेक्षावत्पूर्वकत्वं वृष्टेरिति भावः । तैरेव मेघैरेव । सिध्यन्ति जीवन्ति॥२३॥

भाव प्रकाशिका

सर्वतः अर्थात् सब जगत् । क्याकि समुद्र शिला तथा उषर आदि स्थानों में भी वर्षा होते देखी जाती हैं। अतएव वृष्टि की प्रेक्षावत् प्रवृत्ति होती है । उन्हीं से मेघ बनता है सिध्यन्ति अर्थात् जीवित रहते हैं ॥२३॥

न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् । वनौकसस्तात नित्यं वनशैलनिवासिनः ॥२४॥

अन्वयः— हे तात् ! नः पुरः न, न जनपदा, न ग्रामा न गृहा, वयं नित्यं वनौकसः वनशैलनिवासिनः ॥२४॥

अनुवाद— हे पिताजी, न तो हमलोगों का कोई नगर है, न जनपद है, न तो गाँव है, और न तो हमलोगों के पास कोई घर ही है । हमलोग तो सदा वनों एवं वनों में रहने वाले वनवासी हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तथापि योगक्षेमार्थं देवतापेक्षेति चेदत आह-न नः पुर इति । पुरः पत्तनानि । जनपदा देशाः । अस्माकं योगक्षेमहेतुर्वनशैलादय एवेति भावः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें कि योगक्षेम के लिए किसी देवता का होना तो अपेक्षित ही है तो इसके उत्तर में श्रीभगवान् कहते हैं हमलोगों का कोई नगर भी नहीं है, न कोई जनपद (देश) हैं, हमलोगों का योगक्षेम तो वनों और पर्वत से ही होता है ॥२४॥

तस्माद्गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः । य इन्द्रयागसंभारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥२५॥

अन्वयः— तस्माद्गवां ब्राह्मणानां अद्रेः च मखः आरभ्यतां ये इन्द्रयाग संभारा; तैः अयं मखः आरभ्यताम् ॥२५॥

अनुवाद— इसलिए, गौओं, ब्राह्मणों तथा पर्वत का ही याग आप शुरू करें, इन्द्रयाग की जो सामग्री है उसी से आपलोग इस याग को कीजिये ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणानपि संगृह्णन्निगमयति-तस्मादिति । स्वयमुत्प्रेक्षितयागप्रयोगकल्पनामाह-य इन्द्रयागसंभारा इति सार्धपञ्चभिः संभाराः साधनानि ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों का भी संग्रह करके अपने कथन का निष्कर्ष **य इन्द्रयाग संभाराः इत्यादि** साढे पाञ्च श्लोकों से बतलाते हैं । सम्भाराः अर्थात् सामग्रियां ॥२५॥

पच्यन्तां विविधाः पाका सूपान्ताः पायसादयः । संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्चगृह्यताम् ॥२६॥

अन्वयः— विविधाः सूपान्ताः पायसादयः पाकाः संयावापूप शाष्कुल्यः पच्यन्तां सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥२६॥

अनुवाद— अनेक प्रकार के पकवान खीर, हलवा, पूआ, पूड़ी, अच्छी तरह से पकाये जायँ, व्रज का सारा दूध एकत्रित कर लिया जाय ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

सूपं मौद्गम् । पायसं केवले पयसि पक्वम् । संयावादयो गोधूमादिविक्रियाः । क्रमश्च सूपपायसयोः श्रुत्या दोहस्यार्थतोऽन्येषां पाठतः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

मूङ्ग का हलवा, केवल दूध में बनायी हुई खीर आदि गेहूँ के आँटे से बने हलवा, पूआ-पूड़ी आदि । दोह को सुनने से अर्थानुसार दूसरों के भी दूध का संग्रह कर लेना चाहिए ॥२६॥

हूयन्तामग्नयः सम्यक् ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः । अन्नं बहुविधं तेभ्यो देयं वो धेनुदक्षिणाः ॥२७॥

अन्वयः— ब्रह्मवादिभिः ब्राह्मणैः अग्नयः सम्यक् हूयन्ताम्, वः तेभ्यः बहुविधम् अन्नं धेनुदक्षिणा च देयम्॥२७॥

अनुवाद— ब्रह्मवादी ब्राह्मणों से अच्छी तरह से अग्नि में होम कराये जायँ, और उनको अनेक प्रकार के अन्न, गौएँ और दक्षिणा दी जाय ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

यागशोभार्थं श्रद्धोत्पादनार्थं चाह-हूयन्तामिति । धेनुदक्षिणाः धेनुसहिता दक्षिणाः, ता एव वा दक्षिणाः । वो युष्माभिः॥२७॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञ की शोभा के लिए तथा श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए श्रीभगवान् ने कहा धेनु के साथ दक्षिणा अथवा गौ रूपी दक्षिणा आपलोग दें ॥२७॥

अन्येभ्यश्चाश्वचाण्डालपतितेभ्यो यथार्हतः । यवसं च गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ॥२८॥

अन्वयः— अन्येभ्य आश्वचाण्डालपतितेभ्यः यथार्हतः गवां च यवसं, दत्त्वा, गिरये बलि दीयताम् ॥२८॥

अनुवाद— दूसरे भी जो चाण्डाल, पतित तथा कुत्तों को भी यथायोग्य वस्तुएँ प्रदान की जायँ गौओं को चारा दिया जाय उसके पश्चात् गिरिराज को भोग लगाया जाय ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

यवसं तृणम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

यवस अर्थात् घास ॥२८॥

स्वलंकृता भुक्तवन्तः स्वनुलिप्ताः सुवाससः । प्रदक्षिणं च कुरुत गोविप्रानलपर्वतान् ॥२९॥

अन्वयः— स्वलंकृताः भुक्तवन्तः स्वनुलिप्ताः सुवाससः गोविप्रालनपर्वतान् प्रदाक्षिणां कुरुत ॥२९॥

अनुवाद— प्रसाद को खा पीकर सुन्दर वस्त्र धारण करके तथा आभूषणों से सज-धजकर तथा चन्दन लगाकर गौ ब्राह्मण, अग्नि और गिरिराज गोवर्धन की प्रदक्षिणा की जाय ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

एतन्मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते । अयं गोब्राह्मणाद्रीणां मह्यं च दयितो मखः ॥३०॥

अन्वयः— हे तात ! एतत् मम मतम् अयं गोंब्रह्मणद्रीणां मह्यं च मखः दयितः यदि रोचते क्रियताम् ॥३०॥

अनुवाद— हे पिताजी, यह मेरा विचार है और यह यज्ञ गौओं, ब्राह्मणों तथा पर्वत को प्रिय यज्ञ है। यदि आपलोगों को अच्छा लगे तो इस यज्ञ को आप लोग कीजिए ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

सर्वान् शिरः कम्पेनानुमोदयन्नाह-गोब्राह्मणाद्रीणामिति । मह्यं मम च ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

सिर झुकाकर सबों का अनुमोदन करते हुए श्रीभगवान् ने कहा गौओं, ब्राह्मणों और पर्वत को भी तथा मुझको भी प्रिय है ॥३०॥

श्रीशुक उवाच

कालात्मना भगवता शक्रदर्पं जिघांसता । प्रोक्तं निशम्य नन्दाद्या साध्वगृह्णन्त तद्वचः ॥३१॥

अन्वयः— शक्रदर्पं जिघांसता कालात्मना भगवता प्रोक्तं निशम्य तद्वचः नन्दाद्याः साध्वगृह्णन्त ॥३१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इन्द्र के दर्प का दलन करने के लिए श्रीभगवान् के द्वारा कही गयी बातों को सुनकर सभी नन्द आदि गोपों ने उनकी वाणी का बहुत अच्छा कहकर समर्थन किया ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

तथा च व्यदधुः सर्वं यथाह मधुसूदनः । वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान् ॥३२॥
उपहृत्य बलीन्सर्वानादृता यवसं गवाम् । गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम्॥३३॥

अन्वयः— मधुसूदनः यथा आह तथा च सर्वं व्यदधुः स्वस्त्ययनं वाचयित्वा तद् द्रव्येण गिरिद्विजान् सर्वान् आदृताः बलीन् उपहृत्य गवां यवसं उपहृत्य गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं प्रदक्षिणं चक्रुः ॥३२-३३॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण जिस तरह से यज्ञ करने को कहे थे, उसी तरह से सबों ने यज्ञ प्रारम्भ किया, ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराकर उसी सामग्री से गिरिराज और ब्राह्मणों का सादर भेंट दी गयी, गौओं को हरी-हरी घास खिलाया गया, उसके पश्चात् नन्दजी इत्यादि गोपगण गायों को आगे करके गोवर्धन पर्वत की पद्रक्षिणा किए ॥३२-३३॥

भावार्थ दीपिका

तद्द्रव्येण तेन महेन्द्रमखद्रव्येण गिरिं द्विजान्प्रति यथायथम् । बलीनुपहृत्य दत्त्वा । आदृताः सादराः ॥३२-३३॥

भाव प्रकाशिका

तदद्रव्येण अर्थात् इन्द्रयज्ञ के द्रव्य से पर्वत और ब्राह्मण को यथोचित रूप से उपहार प्रदान किया गया। बलीन् उपहृत्य अर्थात् पूजा करके, आदृता: अर्थात् आदर पूर्वक ॥३२-३३॥

अनांस्यनडुद्युक्तानि ते चारुह्य स्वलंकृताः । गोप्यश्च कृष्णवीर्याणि गायन्त्यः सद्विजाशिषः ॥३४॥

अन्वयः— स द्विजाशिष; स्वलङ्कृताः अनुडुदयुक्तानि अनांसि आरुह्य कृष्णवीर्याणि गायन्त्यः गोप्यश्च गोवर्धनप्रदक्षिणं चक्रुरितिशेषः ॥३४॥

अनुवाद— ब्राह्मणों का आशीर्वाद प्राप्त करके अच्छी तरह से अलंकृत गोपियाँ बैलगाड़ी पर चढकर भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं को गाती हुई गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा कीं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

अनडुद्युक्तान्युत्तमानडुद्भिर्युक्तानि । सद्विजाशिषो द्विजाशीर्भिः सहिताः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

जिनमें उत्तम कोटि के बैल जुते थे । ब्राह्मणों के आशीर्वाद से युक्त ॥३४॥

कृष्णास्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः । शैलोऽस्मीति ब्रुवन्भूरि बलिमादद्बृहद्वपुः ॥३५॥

अन्वयः— कृष्णस्तु गोपविश्रम्भणं, बृहद्वपुः रूपं गतः शैलः अस्मि इति ब्रुवन् भूरि बलिम् आददत् ॥३५॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण गोपों में विश्वास उत्पन्न करने के लिए विशालकाय रूप धारण करके मैं पर्वत हूँ इस तरह कहते बहुत मात्रा में सारी सामग्री का भोग लगाये ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

गोपविश्रम्भणं गोपानां विश्वासजनकं रूपं गतः प्राप्तः सन् बलिमुपहारमाददभक्षयत् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

गोपविश्रम्भणम् अर्थात् गोपों में विश्वास उत्पन्न करने वाले रूप को धारण करके सामग्री को खाये ॥३५॥

तस्मै नमो ब्रजजनैः सह चक्रेऽऽत्मनात्मने । अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात् ॥३६॥

अन्वयः— तस्मै व्रजजनैः सह आत्मना आत्मने नमः चक्रे । अहो असौ रूपी शैलः नः अनुग्रहं व्यधात् पश्यत॥३६॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण दूसरे व्रजवासियों के साथ अपने उस दूसरे रूप को स्वयं प्रणाम किए और कहने लगे कितना आश्चर्य है साक्षात् गिरिराज प्रकट होकर हमलोगों पर कृपा किए हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

तस्मै आत्मने आत्मना स्ययं व्रजजनैः सह नमश्चक्रे । अहो इति सार्धश्लोकं पठन् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

व्रजवासियों के साथ अपने उस दूसरे रूप को **अहोपश्यत० इत्यादि** डेढ श्लोक को पढ़ते हुए प्रणाम किए॥३६॥

एषोऽवजानतो मर्त्यान्कामरूपी वनौकसः । हन्ति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मनो गवाम् ॥३७॥

अन्वयः— काम रूपी एषः अवजानतः वनौकसः मर्त्यान् हन्तिहि आत्मनः गवाम् शर्मणे च अस्मै नमस्यामः ॥३७॥

अनुवाद— ये अपनी इच्छानुसार रूप धारण कर लेते हैं । और अपमान करने वाले वनवासी को विनष्ट कर देते हैं, आइये अपने और गौओं के कल्याण के लिए इनको हमलोग नमस्कार करें ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

कामरूपी सर्पादिरूपः । अस्मै अद्रये । शर्मणे क्षेमाय ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

कामरूपी अर्थात् सर्प आदि का रूपधारण करके, इस पर्वत को । शर्मणे अर्थात् कल्याण के लिए ।।३७।।

इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रणोदिताः । यथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः ।।३८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।।२४।।

अन्वयः— श्रीकृष्णप्रचोदिताः ते गोपा इति अद्रिगोद्विजमखं यथा विधाय सहकृष्णाः व्रजं ययुः ।।३८।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा प्रेरित होकर वे गोपगण इस तरह से पर्वत, गौओं तथा ब्राह्मणों का यज्ञ विधि पूर्वक करके भगवान् श्रीकृष्ण के साथ व्रज में चले गये ।।३८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्द्ध के चौबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

कर्मैवालं प्राक् स्वभावो गुणो वा कर्माङ्गं वा तद्वशो वा महेशः । वार्ताकर्त्री देवतेतीयमुक्ता देवक्षोभे षण्मती नत्वभीष्टा।।३८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

पूर्व जन्म के किए हुए कर्म ही स्वभाव अथवा गुण बन जाता है । महेश कर्मों के अधीन हैं अथवा कर्मों के अङ्ग हैं । इस तरह से बातें करने वाली यह देवता कही गयी है । षण्मती अभीष्ट नहीं है ।।३८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थदीपिका टीका के चौबीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३८।।

पचीसवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण

श्रीशुक उवाच

इन्द्रस्तदात्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप । गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः ॥१॥

अन्वयः— हे नृप ! तदा स इन्द्रः आत्मनः पूजां विहतां विज्ञाय कृष्णनाथेभ्यः गोपेभ्यः नन्दादिभ्यः चुकोप ॥१॥

श्रीशुकदेव जी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् ! उस समय जब इन्द्र ने यह जाना कि मेरी पूजा बन्द कर दी गयी तब वे नन्दजी आदि गोपों जिनके स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण थे उन सबों पर बहुत क्रोध किए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चविंशे रूषा शक्रे व्रजनाशाय वर्षति । उद्धृत्य गिरिमासारादरक्षद्गोकुलं प्रभुः । कृष्णो नाथो येषां तेभ्यः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

पचीसवें अध्याय में यह कहा गया है कि जब क्रोध करके इन्द्र व्रज का नाश करने के लिए वर्षा कर रहे थे उस समय गोवर्धन पर्वत को उठाकर भगवान् श्रीकृष्ण ने वर्षा से गोकुल की रक्षा की । जिन सबों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण थे यह **कृष्णानाथेभ्यः** का अर्थ है ॥१॥

गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चान्तकारिणाम् । इन्द्रः प्राचोदयत्क्रुद्धो वाक्यं चाहेशमान्युत ॥२॥

अन्वयः— ईशमानी क्रुद्धः इन्द्रः अन्तकारिणाम् मेघानाम् सांवर्तकं नामगणं प्राचोदयत् वाक्यं आह च ॥२॥

अनुवाद— अपने को ईश्वर मानने वाले इन्द्र क्रुद्ध होकर प्रलयकारी सांवर्तक नाम मेघों के गण को गोकुल पर वर्षा करने के लिए प्रेरित किए और उन सबों से कहे भी ॥२॥

भावार्थ दीपिका

क्रुद्धः सन्निन्द्रः सांवर्तकं नाम संवर्तः प्रलयस्तत्कर्तारं मेघानां प्रसिद्धं गणं प्राचोदयत्प्रेषयामास । ननु कृष्णनाथानां घाते कथं प्रवृत्त इत्याशङ्क्य आत्म संभावनया निरस्तविवेकत्वादित्याशयेनाह-वाक्यं चाहेत्यादिपञ्चभिः-ईशमानी अहमेवेश्वर इति गर्ववान् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र क्रुद्ध होकर प्रलय करने वाले संवर्तक नामक मेघों के प्रसिद्ध गण को गोकुल पर वर्षा करने के लिए भेजे । प्रश्न है कि इन्द्र जिन गोपों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण थे उन गोपों को मारने के लिए इन्द्र क्यों प्रवृत्त हुए इस प्रकार की आशङ्क करके कहते हैं कि अभिमानी होने के कारण उनका विवेक नष्ट हो गया था इसी अभिप्राय से शुकदेवजी ने वाक्यं चाह इत्यादि पाँच श्लोकों से कहा है । मैं ही ईश्वर हूँ इस प्रकार का इन्द्र को गर्व था॥२॥

अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् । कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम् ॥३॥

अन्वयः— अहो काननौकसां गोपानां श्रीमदमाहात्म्यंये कृष्णं मर्त्यम् उपाश्रित्य देव हेलनं चक्रुः ॥३॥

अनुवाद— अरे वनवासी गोपों के धन का घमण्ड तो देखो, कृष्ण नामक मनुष्य का आश्रय प्राप्त करके मुझ देवराज का भी अपमान इन सबों ने किया है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

देवहेलनं देवस्य ममावज्ञाम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

देव हेलनम् अर्थात् मुझ देवराज का भी अपमान ॥३॥

यथाऽदृढैः कर्ममयै क्रतुभिर्नामनौनिभैः । विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षन्ति भवार्णवम् ॥४॥

अन्वयः— यथा अन्विक्षिकीं विद्याम् हित्वा अदृढ़ैः कर्ममयैः क्रतुभिः नामनौनिभैः भवार्णवम् तितीर्षन्ति ॥४॥

अनुवाद— इस पृथिवी पर रहने वाले बहुत से ऐसे अज्ञानी जीव हैं जो मुक्ति प्राप्ति के वास्तविक साधन ब्रह्मविद्या का परित्याग करके टूटी नौका के समान, कर्म प्रधान यज्ञों के द्वारा इस दुस्तर संसार सागर को पार करना चाहते हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अदृढैरसमर्थैः कर्ममयैः क्रियानिर्वर्त्यैरत एव नामनौनिर्भर्नाममात्रेण या नौरिति व्यवह्रियते तत्सदृशैः । आन्वीक्षिकीमात्मानुस्मृतिरूपाम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

असमर्थ तथा नाम मात्र की नौका के समान जो कर्मों के द्वारा संपादित किए जाते हैं होने वाले यज्ञों के द्वारा आन्वीक्षिकीम् अर्थात् आत्मानुस्मृति स्वरूप आत्म विद्या को ।।४।।

वाचालं बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम् । कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ।।५।।

अन्वयः— वाचालं, बालिशं स्तब्धं अज्ञं, पण्डितमानिनं मर्त्यं कृष्णम् उपाश्रित्य गोपाः मे अप्रियम् चक्रुः ।।५।।

अनुवाद— बकवादी, मूर्ख, दुर्विनीत, अज्ञानी, तथा अपने को पण्डित मानने वाले, मृत्यु का ग्रास भूत कृष्ण नामक मनुष्य का सहारा लेकर गोपों ने मेरा अपमान किया है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तथा वाचालं बहुभाषिणं बालिशं शिशुं, पण्डितमानिनं पण्डितंमन्यम्, अतः स्तब्धमविनीतमिति निन्दायां योजितापीन्द्रस्य भारती कृष्णं स्तौति । तथा हि-वाचालं शास्त्रयोनिम् । बालिशमेवमपि शिशुवन्निरभिमानिनम् । स्तब्धमन्यस्य वन्द्यस्याभावादनम्रम् अज्ञं नास्ति ज्ञो यस्मात्तं । सर्वज्ञमित्यर्थः । पण्डितमानिनं ब्रह्मविदां बहुमाननीयम् । कृष्णं सदानन्दरूपं परं ब्रह्म । मर्त्यं तथापि भक्तवात्सल्येन मनुष्यतया प्रतीयमानमिति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

और वाचाल बहुत बोलने वाले, बालिश बच्चा, अपने को पण्डितमानने वाले अतएव दुर्विनीत इस तरह यद्यपि इन्द्र निन्दा के ही लिए इन शब्दों का प्रयोग किए हैं फिर इन्द्र की इस वाणी से श्रीभगवान् की प्रशंसा ही होती है । वह इस प्रकार से है वाचालम् अर्थात् शास्त्रैक वेद्य, वालिशम् अर्थात् बच्चे के समान अभिमान रहित, अपने से भिन्न किसी दूसरे के वन्द्य नहीं होने से अनम्र, अज्ञम अर्थात् जिनसे बढ़कर कोई ज्ञानी नहीं है अर्थात् सर्वज्ञ, **पण्डितमानिनम्** अर्थात् ब्रह्मज्ञानियों के द्वारा बहुत अधिक समादर किए जाने योग्य, कृष्णं अर्थात् सदा अनन्द स्वरूपं परंब्रह्म, मर्त्यम् इतना सब कुछ होने पर भी भक्त वत्सल होने के कारण मनुष्य रूप से प्रतीत होने वाले।।५।।

एषां श्रियाऽवलिप्तानां कृष्णेनाध्मायितात्मनाम् । धुनुत श्रीमदस्तम्भं पशून्नयत संक्षयम् ।।६।।

अन्वयः— कृष्णेनाध्मायितानां श्रियावलिप्तानां एषां श्रीमदस्तम्भं धुनुत पशून संक्षयम् नयत ।।६।।

अनुवाद— श्रीकृष्ण के बल पर फूले हुए धन के मद से मदमत्त इन सबों के धन के मद को चूर-चूर कर दो इनके पशुओं को विनष्ट कर दो ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अवलिप्तानां मत्तानाम् । आध्मायितात्मनां बृंहितदेहानाम् । धुनुतापनयत । श्रीमदेन यः स्तम्भो गर्वस्तम् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

अवलिप्तानाम् मदमतों का, आध्मायितानाम् अर्थात् गर्व में फूले हुए । धुनत अर्थात् विनष्ट कर दो । धन के मद से होने वाले गर्व को यह **श्रीमदस्तम्भम्** का अर्थ है ।।६।।

अहं चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम् । मरुद्गणैर्महावीर्यैर्नन्दगोष्ठजिघांसया ।।७।।

अन्वयः— अहं नन्दगोष्ठ जिघांसया ऐरावतं नागम् आरुह्य महावीर्यैः मरुद्गणैः व्रजम् अनुव्रजे ।।७।।

अनुवाद— मैं भी नन्द के गोष्ठ को विनष्ट करने के लिए तुम्हारे पीछे-पीछे, अत्यन्त पराक्रमी मरुद्गणों के साथ ऐरावत हाथी पर चढ़कर आ रहा हूँ ।।७।।

भावार्थ दीपिका

बिभ्यतस्तान्प्रत्याह-अहं चेति । अनुव्रजे अन्वनन्तरमेवागमिष्यामि । मरुद्गणैर्देवगणैः सह ।।७।।

भाव प्रकाशिका

डरने वाले मेघों से इन्द्र ने कहा मै तुम्हारे पीछे ही देवताओं के साथ आऊँगा ।।७।।

श्रीशुक उवाच

इत्थं मघवताज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबन्धनाः । नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ।।८।।

अन्वयः— इत्थं मघवता आज्ञप्तैः निर्मुक्तबन्धनाः मेघाः नन्दगोकुलम् आसारैः पीडयामासुः ।।८।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से इन्द्र के द्वारा आज्ञप्त तथा बन्धन रहित मेघ श्रीनन्दजी के व्रज पर चढ गये और मुसलाधार पानी बरसाकर सम्पूर्ण व्रज को पीड़ित करने लगे ।।८।।

भावार्थ दीपिका

मघवता इन्द्रेण निर्मुक्तं बन्धनं येषां ते । प्रलयाभिप्रायेण बद्धा आसन् । तदा निर्मुक्तबन्धनाः सन्त आसारैर्धारासंपातैः पीडयामासुः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्र के द्वारा जिन सबों का खोल दिया गया था । ये कहीं प्रलय न कर दें इस अभिप्राय से उन मेघों को इन्द्र बाँधकर रखे थे । वे अपनी मुसलाधार वर्षा से वज्र को पीडित करने लगे ।।८।।

विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनन्तः स्तनयित्नुभिः । तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ।।९।।

अन्वयः— विद्युद्भिः विद्योतमानाः स्तनयित्नुभिः स्तनन्तः, तीव्रैः मरुद्गणैः नुन्नाः जलशर्कराः ववृषुः ।।९।।

अनुवाद— विजलिाँः चमकने लगी, मेघ आपस में टकराकर कड़कने लगे, तेज आँधी की प्रेरणा से मेघ ओले वरसाने लगे ।।९।।

भावार्थ दीपिका

स्तनयित्नुभिरशनिभिः । स्तनन्तो गर्जन्तः । मरुद्गणैरावहप्रवहादिवायुसमूहैर्नुन्नाः प्रेरिताः । जलशर्करा जलोपलान् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

स्तनयित्नुभिः अर्थात् व्रजों से, **स्तनन्तः** अर्थात् गरजते हुए, मरुद्गणों अर्थात् आवहप्रवह आदि वायु समूहों से, जलशार्करा अर्थात् ओले ।।९।।

स्थूणास्थूला वर्षधारा मुञ्चत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः । जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ।।१०।।

अन्वयः— अभ्रेषु स्थूणास्थूलावर्षधारा अभीक्ष्णशः मुञ्चत्सु जलौघै; प्लाव्यमाना भूः नतोन्नतम् न अदृश्यत ।।१०।।

अनुवाद— जब बार-बार खम्भे के समान मोटी जलधारा बार-बार गिराने लगी तब सम्पूर्ण व्रजभूमि पानी से भर गयी कहाँ ऊँचा है और कहाँ नीचा यह पता नहीं चल रहा था ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

स्थूणावत्स्थूलाः । अभ्रेषु मुञ्चत्सु सत्सु । नतोन्नतं निम्नमुन्नतं तद्विपरीतं यथा भवति तथा भूर्नादृश्यत ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

खम्भे के समान मोटी, मेघ वरसा रहे थे ऊँचा खाला कहीं पृथिवी दिखायी नहीं पड़ रहीं थी ।।१०।।

अत्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः । गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः ॥११॥

अन्वयः— अत्यासारातिवातेन पशवः जातवेपनाः, शीतार्ताः गोप्यः गोपाश्च गोविन्दं शरणं ययुः ॥११॥

अनुवाद— अत्यधिक वर्षा और अत्यधिक हवा के कारण पशुगण काँपने लगे ठंढी से घबराये हुए गोपों और गोपियों ने भगवान् श्रीकृष्ण की शरणागति की ॥११॥

भावार्थ दीपिका

जातवेपना जातकम्पाः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

काँपने लगे यह **जातवेपनाः** का अर्थ है ॥११॥

शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः । वेपमाना भगवतः पादमूलमुपाययुः ॥१२॥

अन्वयः— आसारपीडिताः शिरः सुतान् च कायेन आच्छाद्य वेपमना भगवतः पादमूलमुपाययौ ॥१२॥

अनुवाद— मुसलाधार वर्षा से पीडित होने के कारण अपने शिर तथा बच्चों को अपने शरीर से ढँककर काँपते हुए श्रीभगवान् के चरणों में आ गये ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तत्र पशूनां यानं विशिनष्टि-शिर इति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

पशुओं के गमन का शिरः इत्यादि श्लोक से वर्णन करते हैं ॥१२॥

कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो । त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद्भक्तवत्सल ॥१३॥

अन्वयः— हे कृष्ण हे कृष्ण हे भक्तवत्सल हे महाभाग हे प्रभो गोकुलं त्वन्नाथं कुपितात् देवात् नः त्रातुम् अर्हसि॥१३॥

अनुवाद— हे कृष्ण हे कृष्ण हे भक्तवत्सल प्रभो, हे महाभाग्यवान् सम्पूर्ण गोकुल के स्वामी आप ही हैं। क्रुद्ध हुए इन्द्र के कोप से आप हमारी रक्षा करें ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

गोपगोपीनां प्रार्थनामाह-कृष्ण कृष्णेति। त्वमेव नाथो यस्य तद्गोकुलं गवां कुलं वंशं नोऽस्मांश्च देवादिन्द्रात्त्रातुं रक्षितुमर्हसि॥१३॥

भाव प्रकाशिका

कृष्ण कृष्ण इत्यादि श्लोक से गोपों तथा गोपियों की प्रार्थना को कहा गया है । आप ही जिसके स्वामी हैं उस गायों के वंश की तथा हमलोगों की रक्षा इन्द्र के कोप से करें ॥१३॥

शिलावर्षनिपातेन हन्यमानमचेतनम् । निरीक्ष्य भगवान्मेने कुपितेन्द्रकृतं हरिः ॥१४॥

अन्वयः— शिलावर्षनिपातेन हन्यमानम् अचेतनम् निरीक्ष्य भगवान् श्रीहरिः कुपितेन्द्रकृतं मेने ॥१४॥

अनुवाद— ओलातथा वर्षा के मार से बेहोश होते हुए सबको देखकर भगवान् श्रीहरि ने जान लिया कि क्रुद्ध इन्द्र ही यह सबकुछ कर रहा है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

विज्ञापनात्पूर्वमेव कुपितेनेन्द्रेण कृतं तद्वर्षं मेने ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

विज्ञापन से पहले ही क्रुद्ध इन्द्र की यह करनी है यह श्रीभगवान जान गये ॥१४॥

अपर्त्वत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम् । स्वयागे निहतेऽस्माभिरिन्द्रो नाशाय वर्षति ॥१५॥

अन्वयः— स्वयागे अस्माभि: निहते इन्द्रः अपर्त्वत्युल्वणं अतिवातं शिलामयम् वर्षम् नाशाय वर्षति ॥१५॥

अनुवाद— अपने यज्ञ के हमारे द्वारा रोक दिये जाने के कारण इन्द्र ऋतु के समाप्त हो जाने पर अत्यन्त भयंकर बहुत अधिक हवा से युक्त ओलेमय वर्षा इन्द्र हमलोगों का नाश करने के लिए कर रहे हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

कथं मेने तदाह-अपर्त्विति । अपगत ऋतुर्यस्य तद्वर्षमतिशयितो वातो यस्मिंस्तदतिवातम् । शिलामयं शिलाप्रचुरम्॥१५॥

भाव प्रकाशिका

कैसे माने भगवान् इसको कहते हैं जिसका ऋतु बीत गया था उस वर्षा को तथा जो अत्यधिक वायु से युक्त थी । अत्यधिक ओलों से युक्त वर्षा को ॥१५॥

तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये । लोकेशमानिनां मौढ्याद्धरिष्ये श्रीमदं तमः ॥१६॥

अन्वयः— तत्र तावत् आत्मयोगेन सम्यक् प्रतिविधिं साधये, मौद्यत्तं लोकेशमानिनं मौद्यात् हरिष्ये श्रीमदं तमः॥१६॥

अनुवाद— तो मैं इसका अच्छी तरह से उत्तर दूँगा । मैं अपने को संसार के स्वामी मानने वाले इन्द्र के मद को मैं चूर-चूर कर दूँगा ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रतिज्ञापूर्वं गोवर्धनोद्धरणमाह-तत्रेति। तत्र प्रतिविधिं प्रतीकारं स्वसामर्थ्येन साधयिष्यामि । तेन च मौढ्याल्लोकेशमानिनं श्रीमदलक्षणं तमो हरिष्यामि । बहुवचनेन वरुणादीनभिप्रैति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् द्वारा प्रतिज्ञा पूर्वक गोवर्धन धारण का वर्णन करते है । इसका उत्तर मैं अपने सामर्थ्य के द्वारा दूँगा । इसी के द्वारा अपने को सम्पूर्ण जगत् के स्वामी मानने वालों के धन के मद को मैं विनष्ट कर दूगा । **लोकेशमान्निनां** अपने को लोकों का स्वामी मानने वालों के यहाँ पर बहुवचनान्त प्रयोग से वरुण आदि अभिप्रेत हैं ॥१६॥

न हि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः । मत्तोऽसतां मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥१७॥

अन्वयः— सद्भावयुक्तानां सुराणां ईश विस्मयः नहि । असतः मत्तः मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥१७॥

अनुवाद— सत्त्वगुण से सम्पन्न देवताओं को अपने को लोकेश होने के मद से युक्त होना ठीक नहीं । यह उचित ही है कि मैं सत्त्वगुण सम्पन्न देवताओं के दर्प को मैं दूर कर दूँ ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

ननु देवाः सात्विकास्त्वद्भक्ताश्च कुतस्तेषां तमस्तत्राह-न हीति । सद्भावः सत्त्वं मद्भक्तिर्वा तद्युक्तानां सुराणामीशा वयमिति विस्मयो गर्वो हि यस्मान्न घटतेऽतोऽसन्तस्ते । किंच तेषां मानभङ्गोऽनुग्रह एवेत्याह-मत्त इति ॥१७॥'

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि देवता तो सत्त्वगुण प्रधान होने के कारण आपके भक्त हैं, उनको अज्ञानान्धकार हो ही कैसे सकता है ? सद्भाव शब्द से सत्त्वगुण को अथवा भगवद् भक्ति को कहते हैं । मेरी भक्ति से युक्त होने वाले देवताओं को मैं लोंक का स्वामी हूँ इस प्रकार का गर्व होना ठीक नहीं है । इसके कारण वे दुष्ट प्रकृति के हो जाते हैं । अतएव उन सबों के घमण्ड को दूर करने से उन सबों को शान्ति ही प्राप्त होगी ॥१७॥

तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् । गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥१८॥

अन्वयः— तस्मात् गोष्ठं मच्छरणं मन्नाथं मत्परिग्रहं, स्वात्मयोगेन गोपाये, सोऽयं मेव्रत आहितः ।।१८।।

अनुवाद— यह सारा व्रज मेरे आश्रित है, यह मेरे द्वारा स्वीकृत भी है और मैं इसका स्वामी भी हूँ । अतएव मैं इसकी रक्षा अपनी योगमाया से करूँगा । सन्तों की रक्षा करना मेरा व्रत है । इसके पालन का अवसर आ गया है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

गोपाये रक्षिष्यामि । किंच सोऽयं मे मया व्रतो नियमः संकल्पो वा आहितो धृत इत्यर्थः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

गोपाये अर्थात् रक्षा करूँगा । इसका मैंने व्रत लिया है ।।१८।।

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् । दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥१९॥

अन्वयः— इत्युक्त्वा एकेन हस्तेन गोवर्धनाचलम् कृत्वा कृष्णः छत्राकमिव बालकः दधार ।।१९।।

अनुवाद— इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्ण खेल में गिरिराज गोवर्धन को अपने एक ही हाथ से उखाड़ लिए । जिस तरह बच्चे वरसाती पुष्प को उखाड़ कर अपने हाथ में ले लेते हैं उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण भी उस पर्वत को अपने एक हाथ में धारण कर लिए ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

कृत्वा उत्कृत्य । छत्राकमुच्छिलीन्ध्रम् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

कृत्वा अर्थात् उखाड़कर, छत्राकम् अर्थात् उच्छिलिन्ध्र नामक वरसाती पुष्प को ।।१९।।

अथाह भगवान्गोपान् हेऽम्ब तात व्रजौकसः । यथोपजोषं विशत गिरिगर्तं सगोधनाः ॥२०॥

अन्वयः— अथ भगवान् कृष्णः गोपान् प्राह हे अम्ब ! हे तात, हे व्रजौकसः गिरिगर्तं यथोपजोषं सगोधनाः विशत।।२०।।

अनुवाद— उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण गोपों से कहे, हे माताजी हे पिताजी हे व्रजवासियों आपलोग अपनी सम्पूर्ण सामग्री तथा गोधन को लेकर इस पर्वत के गढ़े में प्रवेश कर जायँ ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

यथोपजोषं यथासुखम् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

यथोपजोषम् अर्थात् सुखपूर्वक ।।२०।।

न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्रिनिपातने । वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि वः ॥२१॥

अन्वयः— मदहस्ताद्रिनिपातने इहवह त्रासः न कार्यः वातवर्ष भयेन अलं वः तत् त्राणं विहितम् ।।२१।।

अनुवाद— आपलोग यह नहीं डरे कि मेरे हाथ से पर्वत गिर जायेगा, इस आँधी पानी के डर से आपलोगों को बचाने के लिए ही मैंने यह कार्य किया है ।।२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२१।।

तथा निर्विविशुर्गर्तं कृष्णाश्वासितमानसाः । यथावकाशं सधनाः सव्रजाः सोपजीविनः ॥२२॥

अन्वयः— तथा कृष्णश्वासितमानसाः सधनाः सव्रजा, सोपजीविनः यथावकाशं गर्तं निर्विविशुः ।।२२।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के उस प्रकार से आश्वासन दिए जाने पर सवके सब ग्वाल-बाल अपने गोधन छकड़ां अपने आश्रितों तथा पुरोहित को लेकर उस गढे में सुख पूर्वक प्रवेश कर गये ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

सव्रजाः शकटमण्डलसहिताः सोपजीविनो भृत्यपुरोहितादिसहिताः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

सव्रजा अर्थात् अपने सभी गाड़ी समूह के साथ **सोपजीविनः** अर्थात् अपने भृत्य पुरोहित आदि के साथ॥२२॥

क्षुत्तृड्व्यथां सुखापेक्षां हित्वा तैर्व्रजवासिभिः । वीक्ष्यमाणो दधावद्रिं सप्ताहं नाचलत्पदात् ॥२३॥

अन्वयः— क्षत्तृड्व्यथां सुखापेक्षां हित्वा तैः व्रजवासिभिः वीक्षमाणः सप्ताहं अद्रिं दधौ पदात् न अचलत् ॥२३॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण भूख प्यास की पीड़ा और सुख की अपेक्षा को त्यागकर व्रजवासियों द्वारा देखे जाते हुए श्रीभगवान् एक सप्ताह तक गोवर्धन पर्वत को धारण किए रहे वे अपने स्थान से हिले भी नहीं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

पदात्स्थानात् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

पदात् स्थान से ॥२३॥

कृष्णयोगानुभावं तं निशाम्येन्द्रोऽतिविस्मितः । निस्तम्भो भ्रष्टसङ्कल्पः स्वान्मेघान्संन्यवारयत् ॥२४॥

अन्वयः— तं कृष्णयोगानुभावं निशाम्य अतिविस्मितः निस्तम्भः भ्रष्टसङ्कल्पः इन्द्रः स्वान् मेघान् संन्यवारयत् ॥२४॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण की योगमाया के उस प्रभाव को देखकर अत्यन्त आश्चर्यित इन्द्र किं कर्तव्य विमूढ हो गये उनका सङ्कल्प विफल हो चुका था, वे अपने आप अपने मेघों को वर्षा करने से रोक दिए ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

खं व्यभ्रमुदितादित्यं वातवर्षं च दारुणम् । निशाम्योपरतं गोपान्गोवर्धनधरोऽब्रवीत् ॥२५॥

अन्वयः— व्यभ्रं खं उदितम् आदित्यं दारुणं वातवर्षं च उपरतं निशाम्य गोवर्धनः धरः अब्रवीत् ॥२५॥

अनुवाद— मेघों से रहित आकाश को, उदित हुए सूर्य को और भयङ्कर वायु एवं वर्षा को बन्द हुए देखकर गोवर्धन पर्वत को धारण किए हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने गोपों से कहा ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः । उपारतं वातवर्षं व्युदप्रायाश्च निम्नगाः ॥२६॥

अन्वयः— हे गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः निर्यात, त्रासं त्यजत, वातवर्षं उपरतं निम्नगाः व्युदप्रायश्च ॥२६॥

अनुवाद— हे गोपों अपनी स्त्री, धन और बच्चों के साथ आपलोग बाहर निकलिए, आपलोग डरें नहीं, हवा और वर्षा बन्द हो गये, नदियों में बहुत कम पानी रह गया है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

व्युदप्राया विगतोदकप्रायाः । स्वल्पजला इत्यर्थः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

व्युदप्रायाः अर्थात् प्रायः सूख चली हैं, उनमें पानी बहुत कम रह गया है ॥२६॥

ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वं स्वमादाय गोधनम् । शकटोढोपकरणं स्त्रीबालस्थविराः शनैः ॥२७॥

अन्वयः— ततः ते गोपाः स्वं स्वं गोधनम् शकटोढोपकरणं स्त्रीबालस्थविराः शनैः निर्ययुः ॥२७॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की आज्ञा प्राप्त कर सभी गोपगण अपने-अपने गोधन स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों के साथ अपनी सारी सामग्री गाड़ी पर लादकर वे धीरे-धीरे वहाँ से निकल आये ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

शकटोढोपकरणं शकटैरूढमुपकरणं यथा भवति तथा ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

गाड़ी पर सारा सामान लादकर ॥२७॥

भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत्प्रभुः । पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥२८॥

अन्वयः— प्रभुः भगवान् अपि तं शैलं लीलयास्वस्थाने सर्वभूतानां पश्यतां स्थापयामास ॥२८॥

अनुवाद— सर्वसमर्थ श्रीभगवान भी उस पर्वत को खेल खेल में ही उसके अपने स्थान पर सब लोगों के सामने ही रख दिए ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

तं प्रेमवेगान्निभृता व्रजौकसो यथा समीयुः परिरम्भणादिभिः ।
गोप्यश्च सस्नेहमपूजयन्मुदा दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥२९॥

अन्वयः— व्रजौकसः प्रेमवेगात् निभृताः तं यथा समीयुः, गोप्यश्च सस्नेहं मुदा परिरम्भणादिभिः अपूजयन् दध्यक्षताद्भिः सदाशिषः ययुजुः ॥२९॥

अनुवाद— व्रजवासियों का हृदय प्रेम के आवेग से परिपूर्ण हो गया था, वे श्रीभगवान् के पास आये और उनको हृदय से लगा लिया । कुछ गोपियों ने भी श्रीभगवान् का आलिङ्गन किया तथा बड़ी बूढी गोपियों ने स्नेह पूर्वक उनको दही चावल और जल से तिलक लगाया तथाउनको आशीर्वाद दिया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

निभृताः पूर्णाः । यथा यथोचितं परिरम्भणादिभि; समीयुरुपजग्मुः । सदाशिषः श्रेष्ठानाशीर्वादान् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

निभृताः अर्थात् परिपूर्ण, जिसके लिए जैसा करना उचित था उस तरह से लोगों ने श्रीभगवान् का आलिङ्गन इत्यादि किया । **समीयुः** अर्थात् सन्निकट में गये । **सदाशिषः** अर्थात् श्रेष्ठ आशीर्वाद ॥२९॥

यशोदा रोहिणी नन्दो रामश्च बलिनां वरः । कृष्णमालिङ्ग्य युयुजुराशिषः स्नेहकातराः ॥३०॥

अन्वयः— स्नेहकातराः यशोदा, रोहिणी, नन्द, वलिनां वरः रामश्च, कृष्णम् आलिङ्ग्य आशिषः युयुजुः ॥३०॥

अनुवाद— स्नेहातुर यशोदाजी, रोहिणीजी, नन्दजी तथा बलवानों में श्रेष्ठ बलरामजी इन लोगों ने भगवान् श्रीकृष्ण को हृदय से लगा लिया और श्रीभगवान् को अशीर्वाद दिया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

दिवि देवगणाः साध्याः सिद्धगन्धर्वचारणाः । तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव ॥३१॥

अन्वयः— हे पार्थिव ! दिविदेवगणाः, साध्याः सिद्धगन्धर्व चारणाः तुष्टाः तुष्टुवुः पुष्पवर्षाणि मुमुचुः ॥३१॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् उस समय आकाश में विद्यमान देवगण साध्यगण, सिद्धगन्धर्व और चारण गण प्रसन्न होकर श्रीभगवान् की स्तुति किए और उन पर पुष्पों की वर्षा किए ।।३१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३१।।

शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवप्रणोदिताः । जगुर्गन्धर्वपतयस्तुम्बुरुप्रमुखा नृप ।।३२।।

अन्वयः— हे नृप दिवि देवप्रणोदिताः शंख दुन्दुभयः नेदुः तुम्बुरुप्रमुखाः गन्धर्वपतयः जगुः ।।३२।।

अनुवाद— हे राजन् ! आकाश में देवताओं के द्वारा प्रेरित होकर शङ्ख, दुन्दुभि बजने लगे और तुम्बुरु इत्यादि गन्धर्व गण संगीत करने लगे ।।३२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३२।।

ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो राजन्सगोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः ।
तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका गायन्त्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः ।।३३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ।।२५।।

अन्वयः— हे राजन् ततः अनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितः सबलः हरिः गोष्ठं अव्रजत् । अस्य तथा विधानि हृदिस्पृशः कृतानि गायन्त्यः गोपिकाः मुदिता ईयुः ।।३३।।

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् उसके पश्चात् अपने में अनुरक्त गोपों से सेवित श्रीभगवान् बलरामजी के साथ व्रज में आये । उनके साथ ही गोपियाँ भी अपने हृदय को आकृष्ट करने वाली गोवर्धन धारण इत्यादि लीलाओं का गान करती हुई गोपियाँ भी आनन्द पूर्वक व्रज में लौट आयी ।।३३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दशवें स्कन्ध के पूवार्ध के पचीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी श्रीधराचार्य कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

ततो गोवार्धनस्थानात् । अस्य श्रीकृष्णस्य तथाविधानि गोवर्धनोद्धरणादिरूपाणि कृतानि कर्माणि गायन्त्य ईयुर्ययुः । कथंभूताः । एवं प्रेम्णा हृदि स्पृशन्तीति हृदिस्पृशस्ताः । यद्वा कथंभूतस्य प्रेष्ठत्वेन तासां हृदि स्पृशतीति हृदिस्पृक् तस्य ।।३३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थ दीपिकायाँ पञ्चविंशोऽध्यायः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् उस गोवर्धन धारण के स्थान से भगवान् श्रीकृष्ण की गोवर्धन धारण आदि लीलाओं का गान करती हुई गोपियाँ भी व्रज में चली गयीं । कैसी लीलाएँ ? जो प्रेम के कारण हृदय का स्पर्श करने वाली थीं। अथवा कैसे श्रीकृष्ण के ? जो भगवान् प्रियतम होने के कारण गोपियों के हृदय को आकृष्ट करने वाले हैं उनकी लीलओं का ।।३३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसंवे स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के पचीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२५।।

* * *

छबीसवाँ अध्याय

श्रीनन्दजी से भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव के विषय में गोपों की बातचीत

श्रीशुक उवाच

एवंविधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते । अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥१॥

अन्वयः— कृष्णस्य एवं विधानि कर्माणि वीक्ष्य अतद्वीर्यविदः सुविस्मिताः गोपाः समभ्येत्य प्रोचुः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के इस प्रकार के कर्मों को देखकर श्रीभगवान के प्रभाव से अनभिज्ञ गोपगण आश्चर्यित हो गये और वे सभी एकत्रित होकर आपस में बातें करने लगे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षड्विंशे विस्मितान्गोपान्कृष्णस्याद्भुतकर्मभिः । नन्दो गर्गोक्तिमाश्राव्य तदैश्वर्यमवर्णयत् । समभ्येत्य नन्दमभिगम्य॥१॥

भाव प्रकाशिका

छबीसवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है । कि भगवान् श्रीकृष्ण के चरित से आश्चर्यित गोपों को नन्दजी गर्ग महर्षि के द्वारा कही गयी बातों को सुनाकर भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव का वर्णन किए । समभ्येत्य अर्थात् नन्दजी के पास आकर ॥१॥

बालकस्य यदेतानि कर्माण्यत्यद्भुतानि वै । कथमर्हत्यसौ जन्म ग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम् ॥२॥

अन्वयः— बालकस्य यदेतानि अत्यद्भुतानि कर्माणि, कथम् असौ ग्राम्येषु आत्म जुगुप्सितम् जन्म अर्हति॥२॥

अनुवाद— इस प्रकार के अद्भुत कर्मों को करने वाले इस बालक का हमलोगों जैसे गँवार लोगों के यहाँ जन्म लेने इसके लिए अत्यन्त निन्दा की बात है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

यदूचुस्तदाह–बालकस्येति । यद्यस्मादद्भुतानि कर्माणि तस्माद्ग्राम्येषु गोपालेषु कथं जन्मार्हति। आत्मजुगुप्सितमात्मानर्हम्॥२॥

भाव प्रकाशिका

उन लोगों ने जो बात कही उसे **बालकस्य० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है चूकि इसके कर्म अद्भुत हैं अतएव इसका गोपालों के यहाँ जन्म लेने योग्य नहीं था । यह इसके लिए आयोग्य जन्म हैं ॥२॥

यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया । कथं बिभ्रद्गिरिवरं पुष्करं गजराडिव ॥३॥

अन्वयः— यः सप्तहायनो बालः एकेन करेण पुष्करं गजराडिव कथं गिरिवरं बिभ्रत् ॥३॥

अनुवाद— जो सात वर्ष का बालक अपने एक ही साथ से जैसे गजराज अपने हाथ में कमल पुष्प लिए हो उसी तरह खेल ही खेल में गोवर्धन पर्वत को कैसे धारण कर सकता था ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अद्भुतानि कर्माण्याहुः-यः सप्तहायन इति । कथं बिभ्रत्स्थित इति । पुष्करं पद्मं गजराण्महागज इव ॥३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के अद्भुत कर्मों का वर्णन करते हुए उन लोगों ने **यः सप्त हायनः इत्यादि** श्लोक से कहा कैसे धारण किए हुए रह सकता था । उसी तरह जैसे गजराज अपनी सूंड़ में कमल पुष्प को धारण किए हो ॥३॥

तोकेनामीलिताक्षेण पूतनाया महौजसः । पीतः स्तनः सह प्राणैः कालेनेव वयस्तनोः ॥४॥

अन्वयः— आमीलिताक्षेण तोकेन महौजसः पूतानायाः कालेन तनोः वयः इव प्राणैः सह स्तनः पीतः ॥४॥

अनुवाद— जब यह बालक छोटा था उस समय अपनी आँखें बन्द किए हुए ही भयङ्कर पूतना के स्तनों को पीते-पीते उसके प्राणों को वैसे ही पी लिया जिस तरह काल शरीर आयु को भी विनष्ट कर देता है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

महौजसो महाबलायाः तनोर्वय आयुर्यौवनं वा कालेन यथा पीयते तद्वत् । कथमित्यनुवर्तते ॥४॥

भाव प्रकाशिका

महाबलवती पूतना के प्राणों को इसी तरह पी लिया जिस तरह काल शरीर की युवावस्था अथवा आयु को भी निगल जाता है ॥४॥

हिन्वतोऽधः शयानस्य मास्यस्य चरणावुदक् । अनोऽपतद्विपर्यस्तं रुदतः प्रपदाहतम् ॥५॥

अन्वयः— अनोऽधः शयानस्य मास्यस्य उदक्चरणौ हिन्वतः प्रपदा हतम् अनः विपर्यस्तं अपतत् ॥५॥

अनुवाद— गाड़ी के नीचे सोए हुए तीन महीने का यह बालक ऊपर की ओर उछालते हुए इसपैर से टकराकर गाड़ी उलट गयी ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अनसोऽधः शयानस्य । मास्यस्य मासास्त्रयः परिच्छेदका यस्य । उदगूर्ध्वं चरणौ हिन्वतश्चालयतः । प्रपदेन पादाग्रेण हतं विपर्यस्तमनः कथमपतत् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

गाड़ी के नीचे सोए हुए तीन महीने का यह बालक रोते हुए जब अपने पैरों को जो अपने चरणों को ऊपर की ओर उछाला । उसके अग्रभाग से टकराकर गाड़ी कैसे उलट गयी ?॥५॥

एकहायन आसीनो ह्रियमाणो विहायसा । दैत्येन यस्तृणावर्तमहन्कण्ठग्रहातुरम् ॥६॥

अन्वयः— एकहायन आसीनः दैत्येन विहायसा ह्रियमाणः यः कण्ठग्रहातुरम् तृणावर्तम् अहन् ॥६॥

अनुवाद— एक वर्ष का यह बच्चा जब बैठा था उस समय दैत्य तृणावर्त इसको उठाकर आकाश में ले गया उस समय इसने तृणावर्त का गला घोंट कर मार दिया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

यः कृष्णो दैत्येन ह्रियमाणः संस्तं तृणावर्तं दैत्यं कथमहन्नित्यर्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

जिस कृष्ण को दैत्य आकाश में उठा ले गया उस तृणावर्त को इसने कैसे मार दिया ?॥६॥

क्वचिद्धैयंगवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले । गच्छन्नर्जुनयोर्मध्ये बाहुभ्यां तावपातयत् ॥७॥

अन्वयः— क्वचित् हैयं गवस्तैन्ये मात्रा उलूखले बद्धः अर्जुनयोः मध्ये गच्छन् तौ बाहुभ्याम् आपातयत् ॥७॥

अनुवाद— जब एक बार यह माखन की चोरी कर रहा था उस समय इसकी माँ ने इसको ऊखल में बाध दिया उन दोनों वृक्षों के बीच में जाता हुआ यह अपनी दोनों भुजाओं से दोनों अर्जुन के वृक्षों को ही तोड़ दिया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

हैयंगवस्तैन्ये नवनीतचौर्ये । बाहुभ्यां गच्छन् रिङ्गन्नित्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

नवनीत की चोरी करने पर अपनी दोनों भुजाओं से रेगता हुआ ॥८॥

वने संचारयन्वत्सान्सरामो बालकैर्वृतः । हन्तमुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतोऽरिमपाटयत् ॥८॥

अन्वयः— वने बालकैः वृतः सरामः वत्सान् संचारयन् हन्तुकामं वकं मुखतः अपाटयत् ॥८॥

अनुवाद— वन में बालकों के साथ तथा बलरामजी के साथ जब यह बछड़ों को चरा रहा था उस समय इनको मारने की इच्छा वाले बकासुर का इन्होंने मुँह ही चीर दिया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

मुखतो हन्तुं कामो यस्य तं बकवेषमरिं बाहुभ्यां मुखतः कथमपाटयत् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

मुख से मार डालने की इच्छा वाले बकवेषधारी शत्रु बकासुर के मुख को ही इन्होंने कैसे चीर दिया ?॥८॥

वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशन्तं जिघांसया । हत्वा न्यपातयत्तेन कपित्थानि च लीलया ॥९॥

अन्वयः— जिघांसया वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशन्तं हत्वा तेन कपित्थानि च लीलया न्यपातयत् ॥९॥

अनुवाद—रामकृष्ण को मार डालनें की इच्छा से बछड़ों के बीच में बछड़े का रूप बनाकर प्रवेश किए हुए वत्सासुर को इस बालक ने मारकर कैंथ के पेड़ पर खेल-खेल में पटक दिया उससे कई कैंथ के पेड़ भी गिर पड़े ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

हत्वा रासभदैतेयं तद्बन्धूंश्च बलान्वितः । चक्रे तालवनं क्षेमं परिनपक्वफलान्वितम् ॥१०॥

अन्वयः— रासभदैतेयं, तद्बंन्धूंश्च बलान्वितः हत्वा परिनपक्वफलान्वितम् तालवनं क्षेमं चक्रे ॥१०॥

अनुवाद— गधे का रूप बनाकर रहने वाले धेनुकासुर और उसके बान्धवों को बलरामजी के साथ मिलकर मारकर पके हुए फलों से परिपूर्ण तालवन को इस बालक ने सबों के लिए भोग्य बना दिया ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

प्रलम्बं घातयित्वोग्रं बलेन बलशालिना । अमोचयद्व्रजपशून्गोपांश्चारण्यवह्नितः ॥११॥

अन्वयः— उग्रं प्रलम्बं बलशालिना बलेन घातयित्वा व्रजपशून् गोपांश्च अरण्यवह्नितः अमोचयत् ॥११॥

अनुवाद— दुष्ट प्रलम्बासुर को बलरामजी द्वारा मरवाकर इस बालक ने गोपों तथा गायों को बनाग्नि से बचा लिया ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

आशीविषतमाहीन्द्रं दमित्वा विमदं ह्रदात् । प्रसह्योद्वास्य यमुनां चक्रेऽसौ निर्विषोदकाम् ॥१२॥

अन्वयः— असौ आशीविषोतमं अहीन्द्रं दमित्वा विमदं प्रसह्य उद्वास्य यमुनां निर्विषोदकाम् चक्रे ॥१२॥

अनुवाद— यह बालक सर्पों के स्वामी तथा अतिक्रूर विष से युक्त कालिय का दमन करके उसे मद से रहित बना दिया तथा कालिय को बलपूर्वक ह्रद से निकालकर यमुनाजी को विष रहित जल वाली बना दिया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

आशीविषतमोऽतिक्रूरविषश्चासावहीन्द्रश्च तम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

आशीविषोतम: अर्थात् अतिक्रूर विष वाला कालिय सर्पों का राजा था उसको ।।१२।।

दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन्सर्वेषां नो व्रजौकसाम् । नन्द ते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् ।।१३।।

अन्वयः— हे नन्द ते अस्मिन नः सर्वेषम् व्रजौकसाम् अनुरागः दुस्त्यजः तस्यापि अस्मासु औत्पत्तिकः कथम्?।।१३।।

अनुवाद— हे नन्दजी आपके इस श्याम सुन्दर पुत्र पर हम सभी व्रजवासियों का दुस्त्यज अनुराग है, और उसका भी हमलोगों पर उसी प्रकार का प्रेम है, ऐसा क्यों है ?।।१३।।

भावार्थ दीपिका

औत्पत्तिकः स्वाभाविकः कथमिति किं सर्वेषामात्मायं स्यादिति शङ्का ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

औत्पत्तिकः अर्थात् स्वाभाविक । क्या यह सबों की आत्मा है ?।।१३।।

क्व सप्तहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम् । ततो नो जायते शङ्का व्रजनाथ तवात्मजे ।।१४।।

अन्वयः— क्व सप्तहायनो बाल क्वमहाद्रिविधारणम् ततः हे व्रजनाथ तवात्मजे नः शङ्का जायते ।।१४।।

अनुवाद— कहाँ तो यह सात वर्ष का बालक और कहाँ इस विशाल पर्वत को धारण करना, अतएव हे व्रज के स्वामिन् नन्दजी, इसी कारण हमलोगों को आपके इस बालक के विषय में शङ्का होती है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

उक्तमप्यतिविस्मयेनाभिनयेन वदन्ति-क्व सप्तहायन इति ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

क्वसप्तहायनः इत्यादि श्लोक के द्वारा पहले कहे हुए भी अर्थ का अत्यन्त विस्मय से अभिनय पूर्वक वर्णन करते हैं ।।१४।।

नन्द उवाच

श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शङ्का च वोऽर्भके । एनं कुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह ।।१५।।

अन्वयः— एनं कुमारम् उद्दिश्य गर्गः यत् उवाच मे वचः श्रूयताम् अर्भके वः शङ्का च व्येतु ।।१५।।

नन्दजी ने कहा

अनुवाद— इस कुमार के विषय में महर्षि गर्ग ने जो मुझको कहा उसे आपलोग मुझसे सुनें, जिससे कि इसके विषय में आपलोगों की शङ्का दूर हो जाय ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

प्राक्श्रुतमेव गर्गाचार्यवाक्यं तच्चरितपरिशीलनेन निवृत्तासंभावनस्य नन्दस्य कृष्णतत्त्वावबोधकं जातं स इदानीं तेनैव वाक्येन गोपानुपदिशति-श्रूयतामिति ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

पहले सुने हुए ही गर्गाचार्य की वाणी को उनके चरित का परिशीलन करने के द्वारा जिनकी

असंभावना दूर हो गयी थी ऐसे नन्दजी श्रीकृष्ण तत्त्वाव बोधक वाक्य समूह को इस समय उसी वाक्य से गोपों को उपदेश देते हैं ॥१५॥

वर्णास्त्रयः किलास्यासन् गृह्णतोऽनुयुगं तनूः । शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥१६॥

अन्वयः— अनुयुगं तनूः गृह्णतः अस्य त्रयः वर्णा आसन शुक्लः, रक्तः तथा पीतः इदानीं कृष्णतां गतः॥१६॥

अनुवाद— प्रत्येक युग में शरीर धारण करने वाले इसके तीन रूप हो चुके हैं, श्वेत, रक्त और पीत। इस समय इसका काला वर्ण है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः । वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥१७॥

अन्वयः— अयंतवात्मजः क्वचित् वसुदेवस्य पुत्रः जातः इति अभिज्ञाः श्रीमान् वासुदेवः प्रचक्षते ॥१७॥

अनुवाद— यह आपका पुत्र पहले कहीं वसुदेवजी के पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ था अतएव अभिज्ञ पुरुष इसको श्रीमान वासुदेव शब्द से कहते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते । गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥१८॥

अन्वयः— ते सुतस्य गुण कर्मानुरूपाणि ब्रहूनि नामनि रूपाणि च सन्ति, तानि अहं वेद जनः न ॥१८॥

अनुवाद— तुम्हारे इस श्याम सुन्दर पुत्र के उसके गुणों और कर्मों के अनुसार बहुत से नाम और रूप हैं, उन सबों को मैं जानता हूँ, सामान्य मनुष्य उसे नहीं जानते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः । अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥१९॥

अन्वयः— एषः गोपगोकुलनन्दनः वः श्रेयः आधास्यत्, अनेन यूयं सर्वं दुर्गाणि अञ्जः तरिष्यथ ॥१९॥

अनुवाद— यह गोपों और गोकुल (गायों के समूह) को आनन्दित करने वाला है और यह आपलोगों का वहुत ही कल्याण करेगा, इसके द्वारा आपलोग सभी कठिनाइयों को बड़ी आसानी से पार कर लेंगे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः । अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥२०॥

अन्वयः— हे व्रजपते पुरा अराजके दस्युपीडिताः, अनेन रक्ष्यमाणाः समेधिताः साधवः दस्यून् जिग्युः ॥२०॥

अनुवाद— हे व्रज के स्वामी नन्दजी, प्राचीन काल में राजा के अभाव में लुटेरों द्वारा पीड़ित, राजन पुरुष इसके द्वारा रक्षित हुए। इसी के द्वारा रक्षाकिये जाने से बलपाकर साधु पुरुष दस्युओं पर विजय प्राप्त कर लिए॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः । नारयोऽभिभवन्त्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥२१॥

अन्वयः— ये मानवाः एतस्मिन् प्रीतिं कुर्वन्ति, एतान् विष्णु पक्षान् असुरा इव अरयः नहि अभिभवन्ति ॥२१॥

अनुवाद— जो महाभाग्यवान् मनुष्य इससे प्रेम करेंगे, जिस तरह भगवान् विष्णु के पक्ष में रहने वाले देवताओं को असुर नहीं पराजित कर पाते हैं, उसी तरह उन सबों को शत्रु भी नहीं पराजित कर पायेंगे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

तस्मान्नन्द कुमारोऽयं नारायणसमो गुणैः । श्रिया कीर्त्याऽनुभावेन तत्कर्मसु न विस्मयः ॥२२॥

अन्वयः— हे नन्द अतएव यह कुमार गुणैः श्रिया कीर्त्या, अनुभावेन नारायण समः तत्कर्मसु विस्मयः न ॥२२॥

अनुवाद— हे नन्द यह बालक अपने गुणों से, ऐश्वर्य और सौन्दर्य से, यश और प्रभाव से श्रीभगवान् नारायण के ही समान होगा अतएव इसके कार्यों को देखकर आश्चर्य नहीं करना चाहिए ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तस्मात्तस्य कर्मसु विस्मयो नास्तीति नन्दस्योक्तिः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

हे नन्द ! इसीलिए इसके कर्मों को देखकर आश्चर्य नहीं करना चाहिए यह नन्दजी की उक्ति हैं ॥२२॥

इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते । मन्ये नारायणस्यांशं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥२३॥

अन्वयः— इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते अक्लिष्टकारिणम् कृष्णं नारायणांशम् मन्ये ॥२३॥

अनुवाद— इस तरह से मुझको साक्षात् आदेश देकर गर्ग महर्षि अपने घर चले गये तबसे मैं इसको नारायण का अंश मानता हूँ क्योंकि ये कृष्ण अलौकिक तथा सुखद करने वाले हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

इत्यद्धा साक्षान्मां प्रति समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते सति तदानीं तथा मन्यमानोऽपि इदानीं कृष्णं नारायणस्यांशं मन्ये। अत्र हेतुः-अक्लिष्टकारिणमिति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से साक्षात मुझको आदेश देकर गर्ग महर्षि के अपने घर चले जाने पर उस समय वैसा मानने पर भी इस समय मैं कृष्ण को भगवान नारायण का अंश मानता हूँ। उसका कारण है कि ये कृष्ण अलौकिक और सुखद कार्यों को करते हैं ॥२३॥

इति नन्दवचः श्रुत्वा गर्गगीतं व्रजौकसः। (दृष्टश्रुतानुभावास्ते कृष्णस्यामिततेजसः) ॥
मुदिता नन्दमानर्चुः कृष्णं च गतविस्मयाः ॥२४॥

अन्वयः— इति गर्गगीतं नन्दवचः श्रुत्वा व्रजौकसः अमिततेजसः कृष्णस्य श्रुतदृष्टानुभावाः ते मुदिताः गतविस्मयाः नन्दम् कृष्णं च आनर्चुः ॥२४॥

अनुवाद— इस तरह से महर्षि गर्ग के द्वारा कही गयी बातों को जब व्रजवासियों ने सुना तो उन लोगों का आश्चर्य समाप्त हो गया, क्योंकि अब वे निःसीम तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव को पूर्ण रूप से देख और सुन चुके थे। वे सब आनन्दित होकर श्रीनन्दजी की और भगवान श्रीकृष्ण की बहुत अधिक प्रशंसा किए।॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मपर्षानिलैः सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वानुकम्प्युत्स्मयन् ।
उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलीन्ध्रं यथा बिभ्रद्गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित्प्रीयान्न इन्द्रो गवाम्॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥२६॥

अन्वयः— यज्ञविप्लवरुषा देवेवर्षति वज्रश्मपर्षानिलैः सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वानुकम्प्युत्स्मयन् उत्पाट्यैककरेण अबलो लीलोच्छिलीन्ध्रं यथा विभ्रत् गोष्ठम् अपात् महेन्द्र मदभित् गवाम् इन्द्रः न प्रीयात् ॥२६॥

अनुवाद— अपना यज्ञ भंग हो जाने के कारण जब इन्द्र वर्षा कर रहे थे। जिसमे वज्र के समान कठोर ओलों की वर्षा हो रही थी और तेज हवा चल रही थी। जिसके कारण गौएँ, गोपाल और स्त्रियाँ काँप रही थी। अपने ही शरण में रहने वाले उन सबों के कष्ट को देखकर अनुकम्पा पूर्वक मुस्कुराते हुए श्रीभगवान् अपने एक ही हाथ से गोवर्धन पर्वत को उसी तरह उखाड़ लिए जिस तरह कोई निर्बल भी बच्चा बरसाती छत्रक को खेल ही खेल में उखाड़ लेता है। उस गोवर्धन पर्वत को धारण करके श्रीभगवान् सम्पूर्ण व्रज की रक्षा किए और इन्द्र के मद को चूर कर दिए वे ही गोविन्द भगवान् हम पर (शुकदेवजी पर) प्रसन्न हों ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के छबीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

गोवर्धनोद्धरणं सपरिकरमनुस्मरन् प्रकटितैश्वर्यस्य श्रीकृष्णस्य प्रीतिं प्रार्थयते–देवि इति। यज्ञविप्लवेन या रुट् तया देवे इन्द्रे वर्षति सति। वज्राश्मवर्षानिलैरशनिजलशर्करातीव्रवायुभिः सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं सीदन्तः पालाः पशवः स्त्रियश्च यस्मिंस्तत्तथा, आत्मा स्वयमेव शरणं यस्य तद्गोष्ठं दृष्ट्वा अनुकम्पी उत्स्मयन् हसन्प्रौढिमाविष्कुर्वन् शैलमुत्पाट्यावलो बालो लीलार्थमुच्छिलीन्ध्रं यथा तथैकेन करेण बिभ्रद्दधद्गोष्ठमपात्पालितवान्। एवं महेन्द्रमदभित् गवामिन्द्र इत्युत्तराध्यायार्थं च स्मरति। स एवंभूतः श्रीकृष्णो नः प्रीयात् प्रीयतामिति। 'षड्विंशे दशमे व्यक्तः षड्विंशो दशमो हरिः। व्यनक्तु पञ्चविंशं मां चतुर्विशतितः पृथक्' ।।२५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां षड्विंशोऽध्यायः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

दसवें स्कन्ध में छबीसवें अध्याय में छबीसवे तत्त्व तथा अवतारों के क्रम में दसवाँ श्रीहरि भगवान् श्रीकृष्ण मुझ (श्रीधर स्वामी) को प्राकृतिक चौबीस तत्त्वों से अलग पचीसवें जीव तत्त्व के रूप को प्रकाशित करें ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवे स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के छबीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२६।।

* * *

सत्ताइसवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण का अभिषेक

श्रीशुक उवाच

गोवर्धने धृते शैल आसाराद्रक्षिते व्रजे । गोलोकादाव्रजत्कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥१॥

अन्वयः— गोवर्धने शैले धृते आसारात् व्रजे रक्षिते कृष्णं गोलोकात् सुरभिः स्वर्गात् शक्र एव च आव्रजत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित से कहा

अनुवाद— राजन् परीक्षित् जब श्रीभगवान् गोवर्धन पर्वत को धारण करके सम्पूर्ण व्रज की रक्षा वर्षा से कर लिए तब गोलोक से कामधेनु भगवान् श्रीकृष्ण को बधाई देने के लिए तथा स्वर्ग लोक से इन्द्र अपने अपराध को क्षमा कराने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण के पास आये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तविंशे तदालक्ष्य कृष्णस्य प्राभवं परम् । वर्ण्यते सुरभीन्द्राभ्यामभिषेकमहोत्सवः । गोवर्धने धृते शैल इति शक्रस्य भयेनागमने हेतुः-आसाराद्रक्षिते व्रज इति सुरभेर्हर्षेणागमने ।।१।।

भाव प्रकाशिका

सताइसवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण के उस परमोत्कृष्ट प्रभाव को देखकर सुरभि (कामधेनु) तथा इन्द्र के द्वारा अभिषेक महोत्सव का वर्णन किया गया है भय के कारण इन्द्र के आने का कारण है कि भगवान् ने गोवर्धन पर्वत धारण किया और श्रीभगवान् ने वर्षा से सम्पूर्ण व्रज की रक्षा कि यही कामधेनु के हर्ष पूर्वक आने का कारण है ।।१।।

विविक्त उपसंगम्य व्रीडितः कृतहेलनः । पस्पर्श पादयोरेनं किरीटेनार्कवर्चसा ।।२।।

अन्वयः— कृतहेलनः व्रीडितः विविक्ते उपसंगम्य अर्कवर्चसा । कीरीटेन एनं पादयोः पस्पर्श ।।२।।

अनुवाद— श्रीभगवान् का इन्द्र ने तिरस्कार किया था अतएव वे बहुत लज्जित थे । इस तरह से इन्द्र एकान्त में आकर सूर्य के समान अपने मुकुट से श्रीभगवान् के चरणों का स्पर्श किए । और भगवान् से क्षमा माँगे । अर्थात् भगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम किए ।।२।।

भावार्थ दीपिका

तत्रेन्द्र आगत्य किं कृतवांस्तदाह-विविक्त उपसंगम्येत्यादिना अथाह सुरभिरित्यतः प्राक्तनेन ग्रन्थेन । विविक्ते एकान्ते। पादयोः पस्पर्श नमश्चकार ।।२।।

भाव प्रकाशिका

वहाँ आकर इन्द्र ने जो किया इसे **विविक्ते० इत्यादि अथाह सुरभि इत्यादि** अठारहवें श्लोक से पहले के ग्रन्थ के द्वारा बतलाया गया है । **विविक्ते** अर्थात् एकान्त में **पादयोः पस्पर्श** अर्थात् नमस्कार किए ।।२।।

दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्यामिततेजसः । नष्टत्रिलोकेशमद इन्द्र आह कृताञ्जलिः ।।३।।

अन्वयः— अस्य अमिततेजसः कृष्णस्य दृष्टश्रुतानुभावः इन्द्रः नष्टत्रिलोकेशमदः कृताञ्जलिः आह ।।३।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के निःसीम प्रभाव को इन्द्र ने देखा भी तथा सुना भी । उनका त्रिलोकी के स्वामी होने का गर्व समाप्त हो गया था । उन्होंने हाथ जोड़कर भगवान् श्रीकृष्ण से कहा ।।३।।

भावार्थ दीपिका

अस्य श्रीकृष्णस्य श्रुतश्चासावनुभावश्च श्रुतानुभावः दृष्टः श्रुतानुभावो येन स इन्द्रः । नष्टस्त्रिलोकेशोऽहमिति मदो यस्य सः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव को इन्द्र ने सुना भी था और देखा भी । मैं त्रिलोक का स्वामी हूँ उनका इस प्रकार का मद नष्ट हो गया था ।।३।।

इन्द्र उवाच

विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमसकम् ।
मायामयोऽयं गुणसंप्रवाहो न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ।।४।।

अन्वयः— तव धाम शान्तं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कं विशुद्धसत्त्वं अयं गुणसम्प्रवाहः मायामयः ते ग्रहणानुबन्धः न विद्यते ।।४।।

इन्द्र ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो आपका स्वरूप परम शान्त है, यह तपोमय है । इसके रजोगुण और तमोगुण विनष्ट हो गये है, अतएव विशुद्ध सत्त्वगुणमय है । गुणों के प्रवाह रूप से प्रतीत होने वाला प्रपञ्च केवल मायामय है। आपके स्वरूप का ज्ञान नहीं होने के कारण ही यह आपमें प्रतीत होता है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तत्र ममापराधं क्षमस्वेति वक्तुं तव तावदपराधो नास्त्येव त्वयानुग्रह एव कृत इत्याह चतुर्भिः-विशुद्धसत्त्वमिति । धाम स्वरूपं शान्तमेकरूपमतश्च तपोमयं प्रचुरज्ञानं सर्वज्ञमित्यर्थः । कुतः । ध्वस्तरजस्तमस्कं ध्वस्ते अविद्यमाने रजस्तमसी यस्मिन्। अत एवायमस्मदादिषु दृश्यमानो मायाकार्यरूपो गुणसंप्रवाहः गुणैः संप्रोह्यत इति तथा, संसार इत्यर्थः । स ते तव न विद्यते। यतः अग्रहणेनाज्ञानेनानुबध्यत इति तथा स सर्वज्ञस्य ते नास्तीत्यर्थः । अज्ञानसंबन्धो वा ।।४।।

भाव प्रकाशिका

आप मेरे अपराध को क्षमा करें इस बात को कहने के लिए, आपका अपराध नहीं है आपने तो मुझ पर कृपा ही किया है, इस बात को इन्द्र **विशुद्धसत्त्वम्० इत्यादि** चार श्लोकों से कहते हैं । आपका स्वरूप शान्त स्वरूप होने के कारण तपोमय है अर्थात् ज्ञान प्रचुर होने के कारण सर्वज्ञरूप है । आपके स्वरूप से रजोगुण और तमोगुण विनष्ट हो गये हैं । अतएव हमलोग जो यह मायामय । इस तरह से आप सर्वज्ञ से माया का संबन्ध नहीं होता है, क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं । अथवा आपसे अज्ञान का संबन्ध नहीं है ।।४।।

कुतो नु तद्धेतव ईश तत्कृता लोभादयो येऽबुधलिङ्गभावाः ।
तथापि दण्डं भगवान्बिभर्ति धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ।।५।।

अन्वयः— हे ईश तत्कृता तद्धेतवः अबुधलिङ्गभावा; कुतो नु तथापि भगवान् धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय च दण्डं विभर्ति ।।५।।

अनुवाद— हे प्रभो जब आपके सबन्ध अज्ञान और उसके कारण प्रतीत होने वाले हैं ही नहीं तो फिर देह आदि की प्राप्ति के कारण और उन्हीं से होने वाले क्रोध लोभ आदि दोष कैसे हो सकते हैं । इन दोनों का होना ही अज्ञान का लक्षण है । यद्यपि आपका अज्ञान और उससे होने वाले जगत् से संबन्ध नहीं है फिर भी आप धर्म की रक्षा करने के लिए और दुष्टों का दमन करने के लिए अवतार ग्रहण करते हैं और अनुग्रह निग्रह करते रहते हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

यदा अज्ञानतत्कृतदेहसंबन्धौ न स्तस्तदा तत्कृतानां लोभादीनां का वार्तेत्याह-कुतो नु इति । तत्कृता देहसंबन्धकृताः तद्धेतवः पुनरन्यस्य देहस्य हेतवः । ननु ज्ञानिनामपि ते दृश्यन्तेऽत आह-अबुधलिङ्गभावा अज्ञानिनां गमकाः । यावद्रागादिमत्त्वं तावज्ज्ञानित्वमेव न सिद्धमित्यर्थः । लोभाद्यभावेऽपि मन्मानभङ्गो दण्डार्थमित्याह-तथापीति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

जब आपमें अज्ञान और अज्ञान जन्य देह का संबन्ध है ही नहीं तो फिर देह संबन्ध जन्य क्रोध लोभ आदि आपमें कहाँ से हो सकते हैं ? तत्कृता अर्थात् देह सम्बन्ध जन्य दूसरे देह के कारणभूत क्रोध लोभ आदि । यदि कहें कि ज्ञानी पुरुषों में भी क्रोध लोभ आदि देखे जाते हैं तो इस पर कहते हैं वे क्रोध आदि तो अज्ञानियों के लक्षण हैं । जब तक राग आदि किसी में पाये जाते हैं तब तक वह मनुष्य अज्ञानी ही है । यद्यपि आपमें लोभ आदि का अभाव है फिर भी आप मेरे घमण्ड को चूर करने के लिए दण्ड धारण किए ।।५।।

पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः ।
हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे मानं विधुन्वञ्जगदीशमानिनाम् ॥६॥

अन्वयः— हे जगदीश त्वं जगताम् पिता गुरुः अधीशः उपात्तदण्डः दुरत्ययः कालः मानिनां हिताय मानं स्वेच्छा तनुभिः विधुन्वन् समीहसे ॥६॥

अनुवाद— हे प्रभो आप जगत् के पिता गुरु और स्वामी हैं आप जगत् को नियन्त्रित करने के लिए दण्ड धारण किए हुए दुस्तर काल हैं । आप अपने भक्तों का कल्याण करने के लिए और मुझ (इन्द्र) जैसे दृप्तों का दर्प दलन करने के लिए अपनी इच्छा के अनुसार विविध शरीरों को धारण करके अनेक प्रकार की लीलाओं को करते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

ननु त्वद्दण्डे च मम गोपपुत्रस्य का शक्तिः, किं वा कारणं, को वा दण्डो मया कृत इत्यत आह-पितेति । त्वं पिता जगतां जनकः, गुरुरुपदेष्टा, अधीशो नियन्ता, इति दण्डधारणे हेतुत्रयम् । कालत्वात्समर्थः, तस्मादुपात्तदण्डो हिताय कल्याणाय स्वेच्छातनुभिर्लीलावतारैः समीहसे । तव समीहा लीलैव जगदीशमानिनामस्माकं मानविधूननमित्यर्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें तुम जैसे लोगों को दण्ड देने के लिए मुझ गोप पुत्र में शक्ति कैसे हो सकती है ? किस कारण से मैंने कौन सा दण्ड दिया है ? इस पर इन्द्र **पिता० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । आप सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाले पिता है, उपदेष्टा गुरु हैं और सम्पूर्ण जगत् के नियामक स्वामी हैं । इस तरह से दण्ड धारण के ये तीन कारण हैं । आप काल स्वरूप होने के कारण समर्थ है अतएव आप दण्ड धारण करते हैं । अपने भक्तों का कल्याण करने के लिए आप अपनी इच्छा के अनुसार विविध अवतारों को धारण करके विभिन्न प्रकार की लीलाओं को करते हैं । अपने को जगत का स्वामी मानने वाले हम जैसे अभिमानियों के अभिमान को चूर्ण करना भी आपकी लीला ही है ॥६॥

ये मद्विधाज्ञा जगदीशमानिनस्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम् ।
हित्वाऽऽर्यमार्गं प्रभजन्त्यपस्मया ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् ॥७॥

अन्वयः— ये मद्विधाज्ञाः जगदीशमानिनः काले त्वां अभयं वीक्ष्य, तन्मदम् आशु, हित्वा, अपस्मयाः आर्य मार्गं प्रभजन्ति ईहा खलानाम् अपि ते अनुशासनम् ॥७॥

अनुवाद— हे प्रभो ! जो मुझ जैसे अज्ञानी और अपने को जगत् का स्वामी मानने वाले हैं, वे आपको भय के समय भी अभय ही देखकर अपने घमण्ड का परित्याग करके गर्व रहित हो जाते हैं और सत् पुरुषों के द्वारा सेवित भक्ति का मार्ग अपना लेते हैं । हे प्रभो आपकी सारी चेष्टाएँ दुष्टों के दण्ड विधान स्वरूप हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

कथमेतदित्यत आह-य इति । मद्विधाश्च ते अज्ञाश्च ते, अतो जगदीशमानिनः काले भयकालेऽपि यथाधुनैवातिवृष्टौ त्वामभयं भयमगणयन्तं वीक्ष्याशु तन्मदं जगदीशा इति मदं हित्वा विगतगर्वाः सन्तः आर्यमार्गं त्वद्भक्तिलक्षणं भजन्ति । अतस्तवेहैव खलानामनुशासनं दण्ड इत्यर्थः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि यह सब कैसे सम्भव हैं तो इस पर **ये मद्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं जो मेरे समान अज्ञानी हैं और अपने को ही जगत् का स्वामी मानने लगते हैं और भय के समय में भी जैसे अभी-अभी ही अतिवृष्टि होने पर आपको उसकी परवाह न करके अभय देखकर शीघ्र ही अपने को जगत् का स्वामी होने के घमण्ड को

त्यागकर गर्व रहित हो जाते हैं और सत्पुरुषों के द्वारा सेवित भक्तिमार्ग को अपनाकर आपका भजन करने लगते हैं । अतएव आपकी प्रत्येक चेष्टाएँ दुष्टों के लिए दण्ड स्वरूप होती हैं ॥७॥

स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम् ।
क्षन्तुं प्रभोऽथार्हसि मूढचेतसो मैवं पुनर्भून्मतिरीश मेऽसती ॥८॥

अन्वयः— ऐश्वर्यमदप्लुतस्य, कृतागसः ते प्रभावम् अविदुषः मूढचेतसः अथ हे प्रभो क्षन्तुम् अर्हसि, हे ईश पुनः एवं मे असती मति मा भूत् ॥८॥

अनुवाद— मैंने अपने ऐश्वर्य के मद में मत्त होकर आपका अपराध किया है, क्योंकि मैं आपके प्रभाव को नहीं जानता था । हे स्वामिन् आप मुझ मूर्ख अपराधी के अपराध को क्षमा कर दें और आप मुझ पर ऐसी कृपा करें कि पुनः मेरी बुद्धि इस तरह की दोष दूषित न हो ॥८॥

भावार्थ दीपिका

एवं भगवत्स्वरूपमभिप्रायं चानुवर्ण्य क्षमापयति-स त्वमिति । एवंभूता असती मतिर्मे पुनर्मा भूदिति प्रार्थनान्तरम्॥८॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से श्रीभगवान् के स्वरूप तथा अभिप्राय का वर्णन करके इन्द्र **सत्वम्० इत्यादि** श्लोक से अपने अपराध को क्षमा कराते है । अब पुनः कभी मेरी बुद्धि प्रकार की दोष दूषित न हो इस प्रकार से इन्द्र दूसरी प्रार्थना करते हैं ॥८॥

तवावतारोऽयमधोक्षजेह स्वयंभराणामुरुभारजन्मनाम् ।
चमूपतीनामभवाय देव भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥९॥

अन्वयः— हे अधोक्षज इह अयं तव अवतारः स्वयं भराणाम् उरुभारजन्मनाम चमूपतीनाम् अभवाय, हे देव ! युष्मत् चरणानुवर्तिनाम् भवाय ॥९॥

अनुवाद— हे इन्द्रियातीतप्रभो ! आपका यह अवतार इसलिए हुआ है कि जो असुर सेनापति अपना पेट भरने में लगे हैं और जो पृथिवी पर अत्यधिक भार के कारण बने हुए है उन सबों का वध करके उनको मोक्ष प्रदान के लिए तथा जो आपके चरणों के सेवक हैं उन सबों का अभ्युदय करने के लिए हुआ है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

महानयमपराधः कथं क्षन्तव्य इति चेदत आह-तवेति । स्वयंभराणां पुनश्चोरुभारजन्मनां बहूनां भाराणां जन्म येभ्यस्तेषामभवाय नाशाय, युष्मच्चरणसेविनां तु भवाय । अतो मम त्वत्सेवकत्वादत्यन्तापराधिनोऽपि क्षन्तव्यमिति भावः॥९॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि यह बहुत बड़ा अपराध है, इस को कैसे क्षमा किया जा सकता है ? तो इस पर इन्द्र **तव इत्यादि** श्लोक कहते हैं वे तो स्वयं भार स्वरूप हैं तथा वे पृथिवी पर बहुत बड़े बोझ बने हुए हैं । उन असुर सेनापतियों का नाश करने के लिए यह आपका अवतार हुआ है । जो लोग आपके चरणों की सेवा करने वाले हैं, उन सबों का तो कल्याण करने के लिए आपका अवतार है । अतएव मैं तो आपका सेवक हूँ । अतएव अत्यन्त अपराध होने पर भी आपको क्षमा कर ही देनी चाहिए ॥९॥

नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने । वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां पतये नमः ॥१०॥

अन्वयः— वासुदेवाय कृष्णाय पुरुषाय महात्मने सात्त्वतां पतये तुभ्यं भगवते नमः ॥१०॥

अनुवाद— सबों में निवास करने वाले, सबों के चित्त को आकर्षित करने वाले, सबों के अन्तःकरण में रहते हुए असीमित स्वरूप तथा यदुवंशियों के स्वामी आप श्रीभगवान् को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

क्षमापयन्नमस्करोति–नम इति । तुभ्यं भगवते कृष्णाय नमः । पुरुषाय सर्वान्तर्यामिणे । महात्मनेऽन्तस्थत्वेऽप्यपरिच्छिन्नाय। कुतः । वासुदेवाय सर्वनिवासाय । सात्वतां यादवानां पतये ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र **नमस्तुभ्यं इत्यादि** श्लोक से श्रीभगवान् से क्षमा की प्रार्थना करते हुए कहते है, हे भगवन् ! आप वासुदेव हैं अर्थात् सबों के भीतर निवास करते हैं । सबों के चित्त को आकर्षित करने के कारण आप कृष्ण शब्द से अभिहित किए जाते हैं । सबों के अन्तर्यामी होने के कारण आप पुरुष शब्द वाच्य है, सबों के अन्तःकरण में विद्यमान रहकर आपका स्वरूप असीमित हैं अतएव आप महात्मा हैं, और आप यादवों के स्वामी हैं, ऐसे आपको मेरा बार-बार नमस्कार है ॥१०॥

स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये । सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥११॥

अन्वयः— स्वच्छन्दोपात्तदेहाय, विशुद्धज्ञानमूर्तये, सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥११॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप अपने कर्मों के अनुसार शरीर नहीं धारण करते हैं । अपितु आप अपनी इच्छा के अनुसार ही तत्-तत् शरीरों को धारण कर लेते हैं, आप विशुद्ध ज्ञान शरीरक हैं, आप सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हैं तो सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं । इस तरह से सबों की आत्मा स्वरूप आप श्रीभगवान् को मेरा नमस्कार है॥११॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि किमहं यादवः, न, स्वच्छन्दोपात्तदेहाय स्वेषां भक्तानां छन्देनेच्छया स्वीकृतदेहाय । तत्रापि विशुद्धं ज्ञानमेव मूर्तिर्यस्य तस्मै । मायया सर्वस्मै सर्वरूपाय । कुतः । सर्वस्य बीजाय कारणाय । अत एव सर्वभूतात्मने नम इति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि क्या मैं यदुवंशी नहीं हूँ तो ऐसी बात नहीं है । आपके भक्तों की जैसी इच्छा होती है, उसी तरह का आप शरीर धारण कर लेते हैं । उसमें भी आप का यह शरीर शुद्ध ज्ञान स्वरूप है। आप अपनी माया को स्वीकार करके सम्पूर्ण जगत् स्वरूप हो जाते है तथा सम्पूर्ण जगत् के आप एकमात्र कारण है । अतएव आप सबों की आत्मा परमात्मा है । आपको मेरा नमस्कार है ॥११॥

मयेदं भगवन्गोष्ठनाशायासारवायुभि; । चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥१२॥

अन्वयः— हे भगवन् विहिते यज्ञे तीव्रमन्युना मानिना मया गोष्ठनाशाय आसार वायुभिः इदं चेष्टितं ॥१२॥

अनुवाद— इन्द्र श्रीभगवान् से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवान् जब मेरा यज्ञ विहत हो गया तब अत्यन्त क्रोध मैंने किया, क्योंकि मैं तो अपने को जगत् का स्वामी मानता था अतएव मैं इस व्रज को ही नष्ट कर देने के लिए, तीब्र आन्धी के साथ वर्षा करना शुरु कर दिया यह मेरा अपराध है, इसे आप क्षमा कर दें ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

कृतागस इत्यनेनोक्तमपराधं निवेदयति–मयेदमिति । आसारवायुभिर्गोष्ठानाशाय मयेदमकृत्यं चेष्टितं कृतम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र इससे पहले अपने को अपराधी कह चुके हैं । **मयेदम्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा अपने द्वारा किए

गये अपराध को बतलाते हैं कि आँधी से भरी वर्षा के द्वारा इस व्रज को ही नष्ट कर देने का प्रयास किया यह मेरा अपराध है, इसको आप क्षमा कर दें ।।१२।।

त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तम्भो वृथोद्यमः । ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः ।।१३।।

अन्वयः— ध्वस्तस्तमभो वृथोद्यमः त्वया इशा अनुगृहीत अस्मि, ईश्वरं गुरुम् आत्मानम् त्वाम् अहं शरणं गतः।।१३।।

अनुवाद— अब मेरा अहङ्कार समाप्त हो गया है, मेरा प्रयास भी व्यर्थ हो गया, किन्तु आप मुझ पर अपनी कृपा बनाये रहें । अब तो आप ही मेरे स्वामी है, उपदेष्टा गुरु हैं तथा हमारी आत्मा भी आप ही हैं, मैं आपकी शरण में हूँ ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

तथापि भो ईश, त्वयानुगृहीतोऽस्मि । अनुग्रहं दर्शयति-ध्वस्ततम्भ इति, वृथोद्यम इति च ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

फिर भी हे स्वामिन् ! मैं आपके द्वारा अनुगृहीत हूँ । श्रीभगवान् के अनुग्रह को बतलाते हुए इन्द्र कहते हैं कि मेरा अहङ्कार विनष्ट हो गया और मेरा प्रयास व्यर्थ हो गया यह भी आपकी कृपा का ही फल है ।।१३।।

श्रीशुक उवाच

एवं संकीर्तितः कृष्णो मघोना भगवानमुम् । मेघगम्भीरया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ।।१४।।

अन्वयः— एवं मघोना संकीर्तितः भगवान् कृष्ण अमुम् मेघगम्भीरया वाचा प्रहसन् इदम् अबवीत् ।।१४।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जब इन्द्र ने भगवान् श्रीकृष्ण की इस प्रकार से स्तुति की तो मेघ के समान गम्भीर वाणी में हँसते हुए भगवान् कृष्ण इन्द्र को कहे ।।१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४।।

श्रीभगवानुवाच

मया तेऽकारि मघवन् मखभङ्गोऽनुगृह्णता । मदनुस्मृतये नित्य मत्तस्येन्द्रश्रिया भृशम् ।।१५।।

अन्वयः— मघवन् इन्द्रश्रिया भृशम् मत्तस्य ते मखभङ्गः अनुगृह्णता नित्यं मदनुस्मृतये अकारि ।।१५।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— इन्द्र ! तुम धन सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य के मद में मदमत्त हो गये थे, अतएव तुमको अनुगृहीत करते हुए (अपनी कृपा का विषय बनाते हुए) मैंने तुम्हारे यज्ञ को इसलिए भङ्ग किया कि तुम सदैव ही मेरा स्मरण करते रहो ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

इन्द्रेण स्वाभिप्राये निवेदिते भगवानपि तथैवाह—मयेति । इन्द्रश्रिया देवराज्येन ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्र ने जब अपने अभिप्राय को प्रकट कर दिया तब श्रीभगवान् भी अपने अभिप्राय को **मया० इत्यादि** श्लोक से प्रकट करते हुए कहे । **इन्द्रश्रिया** देवताओं के राज्य को प्राप्त करके ।।१५।।

मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्डपाणिं न पश्यति । तं भ्रंशयामि संपद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥१६॥

अन्वयः— ऐश्वर्यश्रीमदान्धः दण्डपाणिं माम् न पश्यति यस्य च अनुग्रहम् इच्छामि तं सम्पद्भ्यो भ्रशयामि ॥१६॥

अनुवाद— जो ऐश्वर्य एवं धन सम्पत्ति के मद से अन्धा हो जाता है वह यह नहीं देखता है कि मैं कालरूपी दण्ड को लेकर उसके सिर पर सवार हूँ । मैं जिस पर कृपा करता हूँ उसको ऐश्वर्य भ्रष्ट बना देता हूँ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम् । स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तम्भवर्जितैः ॥१७॥

अन्वयः— शक्र गम्यताम् वः भद्रम् मे अनुशासनं क्रियताम् युक्तैः स्तम्भवर्जितै स्वाधिकारेषु स्थीयताम् ॥१७॥

अनुवाद— हे इन्द्र ! अब तुम अपनी राजधानी अमरावती में चले जाओ और मेरी आज्ञा का पालन करो। सावधानी पूर्वक तथा अहङ्कार रहित होकर अपने अधिकार के अनुसार मर्यादा का पालन करना ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

वो युष्माभिः । बहुवचनं वरुणाद्यभिप्रायेण । क्वगन्तव्यं स्वर्गेऽपि तवैवेश्वरत्वादिति चेत्तत्राह- क्रियतामिति । मदनुशासनेन यथापूर्वं तत्र स्थीयतामित्यर्थः । युक्तैरप्रमत्तैः । स्तम्भवर्जितैर्निरहंकारैः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

तुम लोग वः में बहुवचनान्त प्रयोग वरुण आदि के अभिप्राय से किया गया है । अर्थात् तुम्हारे साथ-साथ वरुण इत्यादि भी । यदि तुम पूछो कि मैं कहा जाऊँ, स्वर्ग के भी स्वामी तो आप ही हैं, तो इस पर श्रीभगवान् ने कहा तुमलोग मेरी आज्ञा का पालन करो । मेरी आज्ञा के अनुसार अपने-अपने पद पर बने रहो । तुम लोगों को सदा सावधान रहना चाहिए तथा अहङ्कार रहित होना चाहिए ॥१७॥

अथाह सुरभिः कृष्णमभिवन्द्य मनस्विनी । स्वसन्तानैरुपामन्त्र्य गोपरूपिणमीश्वरम् ॥१८॥

अन्वयः— अथ मनस्विनी सुरभिः स्वसन्तानैः उपामन्त्र्य गोपरूणिम् ईश्वरम् कृष्णम् अभिवन्द्य आह ॥१८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् मनस्विनी कामधेनु गोपरूपधारी सम्पूर्ण जगत् के नियामक भगवान् श्रीकृष्ण को अपनी सन्तानों के साथ संबोधित करके तथा उनको प्रणाम करके कहने लगी ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

स्वसन्तानैर्गोभिः सहोपामन्त्र्य कृष्णकृष्णेत्यादिसंबोध्य ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

अपनी सन्तान गौओं के साथ उपामन्त्र्य अर्थात् हे कृष्ण भगवान् इस तरह से संबोधित करके ॥१८॥

सुरभिरुवाच

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसंभव । भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत ॥१९॥

अन्वयः— हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् हे विश्वात्मन् ! हे विश्वसंभव ! हे अच्युत ! लोकनाथेन भवता वयम् सनाथाः ॥१९॥

कामधेनु ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् श्रीकृष्ण ! हे सच्चिदानन्द स्वरूप ! आप महायोगेश्वर हैं । आप ही सम्पूर्ण जगत् की आत्मा है और आपने ही इस जगत् की सृष्टि की है । हे अच्युत आपको अपने रक्षक के रूप में प्राप्त करके हमलोग सनाथ हो गयी हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्रेण हता अपि भवता सनाथा वयं कृताः । रक्षिता इत्यर्थः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्र ने तो वर्षा एवं आँधी के द्वारा हमलोगों को मार ही दिया था किन्तु आपने हमलोगों की रक्षा कर ली।।१९।।

त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते । भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः ।।२०।।

अन्वयः— हे जगत्पते त्वं नः परमकं दैवं गोविप्रदेवानां ये च अन्ये साधवः तेषां भवाय नः इन्द्रो भव ।।२०।।

अनुवाद— हे जगत् के स्वामिन् आप ही हमारे सर्वश्रेष्ठ देवता हैं इस संसार में जितनी भी गायें, ब्राह्मण, देवता और दूसरे सत् पुरुष हैं उन सबों के इन्द्र ! आप ही हो जायँ ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

त्वं नः परमं दैवं देवता । अतो हे जगत्पते, गोविप्रदेवानां येऽन्ये च साधवस्तेषां भवायाभ्युदयायाद्य त्वमेव नोऽस्माकमिन्द्रो भव ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

आप ही हमसबों के सर्वश्रेष्ठ देवता हैं । अतएव हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् गौओं, ब्राह्मणों, देवताओं और दूसरे जो सज्जन पुरुष हैं उन सबों का कल्याण करने के लिए आप ही इन्द्र हो जाइये ।।२०।।

इन्द्रं नस्त्वाभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा नोदिता वयम् । अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये ।।२१।।

अन्वयः— हे विश्वात्मन् ! ब्रह्मणानोदिता वयम् त्वां नः इन्द्रं अभिषेक्ष्यामः भूमेर्भारापनुत्तये अवतीर्ण असि ।।२१।।

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् की आत्मा प्रभो ब्रह्माजी के द्वारा प्रेरित होकर हम सभी आपको अपने इन्द्र पद पर अभिषिक्त करेंगी । आप पृथिवी का भार दूर करने के ही लिए अवतीर्ण हुए हैं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

ननु भवतामिन्द्रोऽस्तीति चेदत आह-इन्द्रमिति । अलं पुरन्दरस्येन्द्रतयेत्यर्थः । ननु देव एवेन्द्रो भवति, कथमहं भवेयमिति चेदत आह-अवतीर्णोऽसीति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तुमलोगों के इन्द्र तो हैं ही तो इसका उत्तर है **इन्द्रम्० इत्यादि** श्लोक है । छोड़िये पुरन्दर इन्द्र को । यदि आप कहें कि इन्द्र तो देवयोनि का होता है । मैं तो मनुष्य हूँ अतएव कैसे इन्द्र हो सकता हूँ ? इस पर कामधेनु ने कहा आप पृथिवी का भार उतारने के लिए ही मनुष्य रूप से अवतीर्ण हुए हैं।।२१।।

श्रीशुक उवाच

एवं कृष्णमुपामन्त्र्य सुरभिः पयसात्मनः। जलैराकाशगङ्गाया ऐरावतकरोद्धृतैः ।।२२।।
इन्द्रः सुरर्षिभिः साकं नोदितो देवमातृभिः। अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात् ।।२३।।

अन्वयः— एंव कृष्णम् उपामन्त्र्य सुरभिः आत्मनः पयसा देवमातृभिः नोदितः इन्द्र महर्षिभिः साकं ऐरावतकरोद्धतैः आकाश गङ्गायाः जलैः दाशार्हं अभ्यषिञ्चत् गोविन्द इति च अभ्यधात् ।।२२-२३।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण को संबोधित करके कामधेनु अपने दूध से तथा देवताओं के द्वारा प्रेरित होकर इन्द्र ऐरावत के सूंड से लायें गये आकाश गङ्गा के साथ देवताओं तथा ऋषियों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का अभिषेक किए तथा श्रीभगवान् को गोविन्द के नाम से अभिहित किए ।।२२-२३।।

भावार्थ दीपिका

सुरभिरात्मनः पयसाभ्यषिञ्चदिन्द्रश्चाकाशगङ्गाया जलैरभ्यषिञ्चत् देवमातृभिरदित्यादिभिः, देवैर्मातृभिश्चेति च । गाः पशून्, गां स्वर्ग वा इन्द्रत्वेन विन्दतीति कृत्वा गोविन्द इत्यभ्यधात् नाम कृतवानित्यर्थः ।।२२-२३।।

भाव प्रकाशिका

कामधेनु ने अपने दूध से श्रीभगवान् का अभिषेक किया और इन्द्र ने आकाश गङ्गा के जल से श्रीभगवान् का अभिषेक किया । **देवमातृभिः** अर्थात् देवताओं की माता अदिति आदि से । अथवा देवताओं और मातृकाओं से प्रेरित होकर इन्द्र ने भगवान् का अभिषेक किया । इन्द्र रूप से गौओं अथवा स्वर्ग को जो प्राप्त करे उसे गोविन्द कहते हैं । इन्द्र इत्यादि ने श्रीभगवान् को गोविन्द के नाम से अभिहित किया ।।२२-२३।।

तत्रागतास्तुम्बुरुनारदादयो गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ।
जगुर्यशो लोकमलापहं हरेः सुराङ्गनाःसंननृतुर्मुदान्विताः ।।२४।।

अन्वयः— तत्र तुम्बुरुनारदादयः गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः आगताः, हरेः लोकमलापहं यशः जगुः मुदान्विताः सुराङ्गनाः ननृतुः ।।२४।।

अनुवाद— वहाँ उस समय तुम्बुरु तथा नारद आदि गन्धर्व, विद्याधर सिद्ध और चारण पहले से ही आ गये थे। वे श्रीभगवान् के लोक पापप्रणाशक यश का गान करने लगे और अप्सराएँ आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगीं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२४।।

तं तुष्टुवुर्देवनिकायकेतवो व्यवाकिरंश्चाद्भुतपुष्पवृष्टिभिः ।
लोकाः परां निर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयो गावस्तदा गामनयन्पयोद्रुताम् ।।२५।।

अन्वयः— देव निकायकेतवः तं तुष्टुवः अद्भुतपुष्पवृष्टिभिः व्यवाकिरन् च त्रयोलोकाः परां निवृतिम् आप्नुवन् तदा गावः गाम् पयोद्रुताम् अनयन् ।।२५।।

अनुवाद— मुख्य मुख्य देवता भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे, और श्रीभगवान् पर नन्दन वन के पुष्पों की वृष्टि किए । तीनों लोक आनन्द प्रवाह से आप्लवित हो गया और उस समय गायों ने अपने स्तनों से इतना दूध प्रवाहित किया कि पृथिवी गीली हो गयी ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

देवनिकायेषु केतव इव दर्शनीया मुख्या इत्यर्थः । गावो गां पृथ्वी पयोभिर्द्रुतामार्द्रामनयन् । अकुर्वन्नित्यर्थः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

देव समूहों में ध्वज के समान दर्शनीय मुख्य देवता । गायों ने अपने दुग्ध से पृथिवी को पंकिल बना दिया।।२५।।

नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसन्मधुस्रवाः । अकृष्टपच्यौषधयो गिरयो बिभ्रदुन्मणीन् ।।२६।।

अन्वयः— सरितः नाररसौघाः, वृक्षाः मधुस्रवाः आसन् अकृष्टपच्यौषधयः गिरयः मणीन् अविभ्रत् ।।२६।।

अनुवाद— नदियों में दूध आदि अनेक प्रकार के रस प्रवाहित होने लगे, वृक्षों से मधु की धारा प्रवाहित होने लगी, बिना जोते-बोए खेतों में अनेक प्रकार के अन्न पैदा हो गये और पर्वतों के भीतर जो मणियाँ थी वे ऊपर दिखाई देने लगीं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

नानारसौघाः क्षीरादिवाहिन्यः । अकृष्टपच्याः कर्षणं विनैव पक्वा ओषधयो व्रीह्यादय आसन् । यद्वा अकृष्टपच्या ओषधयो येषु ते गिरय उन्मणीन्गर्भगतान्मणीन् उत् उद्गतान्बहिः प्रकटानबिभ्रदबिभरुः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

नदियों मे अनेक प्रकार के रस दूध आदि प्रवाहित होने लगे। बिना जोते ही खेतों में धान इत्यादि अन्न पैदा हो गये। अथवा जहाँ पर बिना जोते ही अन्न पैदा होता है उन पर्वतों के भीतर विद्यमान मणियाँ बाहर आकर दिखाई पड़ने लगीं ॥२६॥

कृष्णेऽभिषिक्त एतानि सत्त्वानि कुरुनन्दन। निर्वैराण्यभवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः ॥२७॥

अन्वयः— हे कुरुनन्दन ! कृष्णे अभिषिक्ते एतानि निसर्गतः क्रूराण्यपि सत्वानि निर्वैराणि अभवन् ॥२७॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण के अभिषिक्त हो जाने पर परस्पर में स्वभावतः वैर रखने वाले भी जीव वैर का परित्याग कर दिए ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

इति गोगोकुलपतिं गोविन्दमभिषिच्य सः। अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे इन्द्रस्तुतिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अन्वयः— इति गोगोकुलपतिं गोविन्दमभिषिच्य अनुज्ञातः सः शक्रः देवादिभिः वृतः दिवम् ययौ ॥२८॥

अनुवाद— इस तरह से गौओं तथा गोकुल के स्वामी भगवान् गोविन्द का अभिषेक करके श्रीभगवान् के आज्ञा प्राप्त करके इन्द्र देवताओं आदि के साथ स्वर्ग लोक में चले गये ॥२८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के इन्द्रस्तुति नामक सत्ताइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थ दीपिकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के सताइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२७॥

* * *

अठाइसवाँ अध्याय

वरुण लोक से नन्दजी को छुडाकर लाना

श्रीशुक उवाच

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् । स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥१॥

अन्वयः— नन्दस्तु एकादशयां निराहारः जनार्दनम् समभ्यर्च्य द्वादश्यां स्नातुं कालिन्द्याःजलम् आविशत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— नन्दजी एकादशी के दिन उपवास करके तथा भगवान् जनार्दन की आराधना करके द्वादशी के दिन स्नान करने के लिए यमुनाजी के जल में प्रवेश किए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टविंशे ततो नन्दानयनं वरुणालयात् । वैकुण्ठदर्शनं चाथ गोपानामनुवर्ण्यते । गोवर्धनं समुद्धृत्य वशे कृत्वाऽमरेश्वरम्। नन्दानयनतः कृष्णो वरुणं च वशेऽनयत् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

अठाइसवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा नन्दजी को वरुण लोक से ले आने का तथा गोपों को वैकुण्ठ लोक का दर्शन कराने का वर्णन किया गया है । श्रीभगवान् गोवर्धन पर्वत को उखाड़कर तथा इन्द्र को अपने अधीन करके तथा नन्दजी को वरुण लोक से लाकर भगवान् वरुण देवता को अपने वश में किए ।।१।।

तं गृहीत्वाऽनयद्भृत्यो वरुणस्यासुरोऽन्तिकम् । अविज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ।।२।।

अन्वयः— आसुरीं वेलाम् अविज्ञाय निशि उदके प्रविष्टम् तम् गृहित्वा वरुणस्य भृत्यः असुरोऽन्तिकम् अनयत् ।।२।।

अनुवाद— नन्दजी को इस बात का ज्ञान नहीं था कि यह असुरों की बेला है अतएव वे रात के समय में ही यमुनाजी के जल में प्रवेश कर गये उस समय वरुण के एक असुर भृत्य ने उनको पकड़ लिया और उनको वरुण के पास लाया ।।२।।

भावार्थ दीपिका

कलामात्रायां द्वादश्यां पारणादराभिनिवेशेनासुरीं वेलामविज्ञायारुणोदयात्पूर्वमेव शास्त्रबलेन निश्युदकं प्रविष्टं तदनभिज्ञो वरुणस्य भृत्योऽनयदिति । तथा च शास्त्रम्- 'कलार्धां द्वादशीं दृष्ट्वा निशीथादूर्ध्वमेव हि । आमध्याह्नाः क्रियाः सर्वाः कर्तव्याः शम्भुशासनात् । इत्यादि वक्ष्यति च वरुणः 'अजानता मामकेन' इति, भगवद्धर्ममजानतेत्यर्थः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

दूसरे दिन द्वादशी कला मात्र अवशिष्ट थी, अतएव पारण के विषय में समादर रखने के कारण आसुरी बेला का ज्ञान नहीं होने से अरुणोदय से पहले ही शास्त्रानुसार रात्रि में जल में प्रवेश किए हुए नन्दजी को उनके विषय में नहीं जानने वाला वरुण का भृत्य नन्दजी को पकड़कर वरुणदेव के पास ले गया । शास्त्र बतलाता है कि **कलार्धां द्वादशीं दृष्ट्वा० इत्यादि** दूसरे दिन द्वादशी तिथि के आधी कला ही रहने पर आधी रात के बाद ही दोपहर पर्यन्त की सारी क्रियाओं को कर लेना चाहिए यह शम्भु का आदेश है । और आगे वरुण भी कहेंगे कि न जानने के कारण मेरे इत्यादि अर्थात् मेरा भृत्य भगवद् धर्म को नहीं जानता था, इसलिए वह नन्दजी को पकड़कर ले आया ।।२।।

चुक्रुशुस्तमपश्यन्तः कृष्ण रामेति गोपकाः । भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ।।
तदन्तिकं गतो राजन् स्वानामभयदो विभुः ।।३।।

अन्वयः— राजन् तम् अपश्यन्तः गोपकाः कृष्ण रामेति चुक्रुशुः तत् वरुणाहृतम् पितरमुपश्रुत्यं स्वानाम् अभयदः भगवान् तदन्तिक गतः ।।३।।

अनुवाद— हे राजन् नन्दजी के खो जाने से सभी गोप कहने लगे, हे बलरामजी ! श्रीकृष्ण अब आप ही अपने पिता को ला सकते हैं । भगवान् उसको सुनकर जान गये कि वरुण ने ही मेरे पिता का अपहरण किया है । अपने आश्रित लोगों को अभय प्रदान करने वाले श्री भगवान् वरुण के पास गये ।।३।।

भावार्थ दीपिका

स्वानां भगवद्धर्मपराणामभयदो मा भैष्टेत्यभयं ददत् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

भगवद् धर्म का पालन करने वाले गोपों को भगवान् ने कहा तुमलोग डरो मत ।।३।।

प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया । महत्या पूजयित्वाह तद्दर्शनमहोत्सवः ॥४॥

अन्वयः— हृषीकेशं प्राप्तं वीक्ष्य लोकपालः महत्या सपर्यया पूजयित्वा तद्दर्शनमहोत्सवः प्राह ॥४॥

अनुवाद— लोकपाल वरुणजी ने देखा कि हमारे यह आभ्यन्तरेन्द्रियां और बहिरिन्द्रियों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण आये हुए है वे बहुत आनन्दित हुए और उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण की बहुत बड़ी पूजा की । और उसके पश्चात वरुणजी ने भगवान् श्रीकृष्णजी से कहा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

सपर्ययाऽर्हणेन ॥४॥

भाव प्रकाशिका

सपर्यया अर्थात् पूजन सामग्री के द्वारा ॥४॥

वरुण उवाच

अद्य मे निभृतो देहोऽद्यैवार्थोऽधिगतः प्रभो । त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः ॥५॥

अन्वयः— अद्य मे देहः निभृतः हे प्रभो अद्यैवार्थः अधिगतः, हे भगवन् त्वत् पादभाजः अध्वनः पारम् अ वापुः॥५॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आज मेरा देह धारण करना सफल हो गया । आज ही मुझको समस्त पुरुषार्थों की प्राप्ति हो गयी । क्योंकि आज मुझे आपके चरणों का दर्शन मिला है । हे प्रभो ! जिन-जिन लोगों ने आपके चरणों को प्राप्त किया वे परमपद को प्राप्त कर लिए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अद्येदानीं मे मया देहो निभृतो धृतः । यदा त्वद्दर्शनं जातं तदैव देहसाफल्यं प्राप्तमित्यर्थः । यद्वा निभृतः पूर्णमनोरथ इत्यर्थः । किंच अद्यैवार्थोऽधिगतः सर्वरत्नाकरपतिना पीतः पूर्वं नैवंविधोऽर्थः प्राप्त इत्यर्थः । किंच संसारोऽपि निवृत्त एवेत्याशयेनाह-त्वत्पादभाज इति । अध्वनः पारं मोक्षम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

सम्पूर्ण रत्नकार समुद्रों के स्वामी वरुण अभी तक इस प्रकार के पुरुषार्थ को नहीं प्राप्त किए थे । किञ्च आज मेरा संसार भी निवृत्त हो गया इसी अभिप्राय से वरुणजी ने **त्वत्पादभाजः इत्यादि** कहा । अर्थात् जिन-जिन लोगों ने आपके चरणों को प्राप्त किया वे मोक्ष भी प्राप्त कर लिए । पारमध्वनः अर्थात् मोक्ष ॥५॥

नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने । न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना ॥६॥

अन्वयः— ब्रह्मणे परमात्मने भगवते तुभ्यं नमः यत्र लोकविसृष्टि विकल्पनाः माया न श्रूयते ॥६॥

अनुवाद— हे भगवन् आप वेदान्तियों के ब्रह्म है योगियों के परमात्मा हैं और भक्तों के भगवान् है । आपके स्वरूप में सृष्टि के कल्पना नहीं है यह श्रुतियाँ बतलाती हैं आपको मेरा नमस्कार है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

भगवते निरतिशयैश्वर्याय । ब्रह्मणे पूर्णाय । परमात्मने सर्वजीवनियन्त्रे इति । तत्र हेतुः- न यत्रेति । लोकसृष्टिं विकल्पयति या माया सा यत्र न श्रूयते । अविद्यमानेव तिष्ठतीत्यर्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

भगवते अर्थात् निःसीम ऐश्वर्य सम्पन्न है । सर्वात्मने अर्थात् सभी जीवों के नियामक । उसका कारण है कि आपके स्वरूप में माया का संस्पर्श नहीं है । जो माया लोकों की सृष्टि रूप भेदों को उत्पन्न करती हैं, वह माया आपके स्वरूप में नहीं है । अर्थात् अविद्यमान है ॥६॥

अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना । आनीतोऽयं तव पिता तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ।।७।।

अन्वयः— अजानता, मूढेन, अकार्यवेदिना मामकेन अयं तवपिता आनीतः तत् भवान् क्षन्तुम् अर्हति ।।७।।

अनुवाद— हे भगवन् मेरा यह सेवक अत्यन्त अज्ञानी है यह अनजान है । यह अपने कर्तव्य को भी नहीं समझता है । इसीने आपके पिताश्री को लाया है । इसे आप क्षमा कर दे ।।७।।

भावार्थ दीपिका

अजानता मद्भृत्येन त्वत्पित्राहरणं यत्कृतं तदिति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

अनजान मेरे इस भृत्य के द्वारा आपके पिताजी यहाँ लाये गये हैं । अतएव इसके इस अपराध को आप क्षमा कर दें ।।७।।

ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक् । गोविन्द नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ।।८।।

अन्वयः— हे अशेषदृक् कृष्ण मम अप्यनुग्रहं कार्यं हे पितृवत्सल ! गोविन्द एष ते पिता नीयताम् ।।८।।

अनुवाद— हे सर्वज्ञ सबों के साक्षी भगवन् श्रीकृष्ण आप मुझ पर भी कृपा करें । आप अपने पिता से बहुत प्रेम करते हैं यह मैं जानता हूँ । अतएव आप अपने पिताजी को ले जायँ ।।८।।

भावार्थ दीपिका

नन्दं विमुच्य समर्पयति-गोविन्देति ।।८।।

भाव प्रकाशिका

गोविन्द० इत्यादि वाक्य के द्वारा नन्दजी को मुक्त करके वरुण देवता उनको समर्पित करते हैं ।।८।।

श्रीशुक उवाच

एवं प्रसादितः कृष्णो भगवानीश्वरेश्वरः । आदायागात्स्वपितरं बन्धूनां चावहन्मुदम् ।।९।।

अन्वयः— एवं प्रसादितः ईश्वरेश्वरः भगवान कृष्णः पितरामआदाय अगात् एवबन्धूनां मुदं च अवहत् ।।९।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्माजी आदि ईश्वरों के भी ईश्वर (नियामक) हैं । लोकपाल वरुण देव उनकी उपर्युक्त प्रकार से स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किए । उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण अपने पिताजी को लेकर व्रज में आये और अपने व्रजवासी भाई बन्धुओं को प्रसन्न किए ।।९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।९।।

नन्दस्त्वतीन्द्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् । कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत् ।।१०।।

अन्वयः— नन्दस्तु अतीन्द्रियं लोकपाल महोदयं, तेषां कृष्णे च सन्नतिं दृष्ट्वा विस्मितः ज्ञातिभ्यः अब्रवीत् ।।१०।।

अनुवाद— नन्दजी ने लोकपाल वरुण के अतीन्द्रिय ऐश्वर्य को तथा उन सबों द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार किया जाना देखकर आश्चर्य चकित थे । वे अपने भाई बन्धुओं को सारी बातों को बतलाये ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

अतीन्द्रियमदृष्टपूर्वं लोकपालस्य महोदयमैश्वर्यम् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

अतीन्द्रियम् अर्थात् इससे पहले वैसा ऐश्वर्य वे कभी नहीं देखे थे । महोदयम् अर्थात् ऐश्वर्य ।।१०।।

ते त्वौत्सुक्यधियो राजन् मत्त्वा गोपास्तमीश्वरम् । अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥११॥

अन्वयः— राजन् औत्सुक्यधियः ते गोपाः तु तम् ईश्वरम् मत्त्वा ईश्वरः अपिनः सूक्ष्मां स्वगतिं उपाधास्यत ॥११॥

अनुवाद— राजन् जब गोपों ने नन्दजी के मुख से उन सारी बातों को सुना तो वे यह मान लिए कि श्रीकृष्ण ईश्वर हैं । वे मन ही मन विचार करने लगे कि क्या वे अपने उस परमपद का दर्शन करायेंगे जहाँ पर केवल श्रीगवान् के अत्यन्त प्रेमी भक्तजन ही जाते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

औत्सुक्ययुक्ता धीर्येषां ते । अपि किं स्वगतिं स्वस्थानं सूक्ष्मां ब्रह्माख्यां चोपाधास्यदुपाधास्यति । नोऽस्मान्प्रापयिष्यतीति संकल्पितवन्त इत्यर्थः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में गोपों की बुद्धि उत्सुकता युक्त थी । क्या भगवान् श्रीकृष्ण अपने धाम को जिसे परमपद कहा जाता है, उसका दर्शन हमलोगों को करायेंगे अर्थात् उस लोक की प्राप्ति हमलोगों को भी करायेंगे। इस तरह से सभी गोपमन ही मन सङ्कल्प कर रहे थे ॥११॥

इति स्वानां स भगवान् विज्ञायाखिलदृक् स्वयम् । सङ्कल्पसिद्धये तेषां कृपयैतदचिन्तयत् ॥१२॥

अन्वयः— इति अखिलदृक् स भगवान् स्वानां विज्ञाय तेषां सङ्कल्पसिद्धये कृपया एतदचिन्तयत् ॥१२॥

अनुवाद— इस तरह भगवान् तो सर्वज्ञ हैं, वे सबकुछ जानते हैं । वे अपने आश्रित सभी जीवों के सङ्कल्प को जान गये और उन गोपों के सङ्कल्प की सिद्धि करने के लिए इस तरह से विचार किए ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

इत्येवंभूतं स्वानां तेषां सङ्कल्पमखिलदृक् सर्वज्ञः स्वयमेव विज्ञाय तेषां सङ्कल्पसिद्धये कृपयैतद्वक्ष्यमाणमचिन्तयत्॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अपने आश्रित रहने वाले गोपों के इस प्रकार के सङ्कल्प को जानने वाले सर्वज्ञ भगवान् स्वयं ही जानकर, उन सबों के सङ्कल्प की पूर्ति के लिए आगे कहे जाने वाली युक्ति का विचार किए ॥१२॥

जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः । उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥१३॥

अन्वयः— जनो वै एतस्मिन् लोके अविद्याकाम कर्मभिः उच्चावचासु गतिषु भ्रमन् स्वां गतिं न वेद ॥१३॥

अनुवाद— इस संसार में जीव देह में आत्मबुद्धि करके अज्ञानवशात् अनेक प्रकार की कामनाओं को करता है और उन सबों की पूर्ति के लिए विविध प्रकार के कर्मों को करता है । उन कर्मों के फलरूप से वह देव, मनुष्य आदि ऊँची नीची योनियों में जन्म लेता है । वह अपनी वास्तविक गति को नहीं जानता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अविद्या देहाद्यहंबुद्धिस्ततः कामस्ततः कर्म तैरुच्चावचासु देवतिर्यगादिषु भ्रमन् स्वीयां गतिं न वेद ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

अज्ञान के कारण जीव देह में ही आत्मबुद्धि करके वह अनेक प्रकार की कामनाएँ करता है और उन सबों की पूर्ति के लिए वह अनेक प्रकार के कर्मों को करता है । उसके फलस्वरूप उसको देव मनुष्य तथा तिर्यग् आदि योनियों में जन्म लेता है । वह देहादि से भिन्न ब्रह्म के स्वरूप को नहीं जानता है ॥१३॥

इति संचिन्त्य भगवान् महाकारुणिको हरिः । दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥१४॥

अन्वयः भगवान् महाकारुणिकः श्रीहरिः इति संचिन्त्य गोपानां तमसः परम् स्वं लोकं दर्शयामास ॥१४॥

अनुवाद– महाऐश्वर्य सम्पन्न भगवान अत्यन्त दयालु हैं, वे उपर्युक्त प्रकार से विचार करके गोपों को अपने लोक का दर्शन कराये जो श्रीभगवान् का लोक प्रकृति मण्डल के ऊपर है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

स्वं ब्रह्मस्वरूपं लोकं वैकुण्ठाख्यं च । तमसः प्रकृतेः परम ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अपने ब्रह्म स्वरूप का तथा वैकुण्ठ नामक लोक का दर्शन श्रीभगवान कराये ॥१४॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं यद्ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः ॥१५॥

अन्वयः— सत्यं ज्ञानम् अनन्तं यत् सनातनम् ज्योतिः यद्धि समाहिताः मनुयः गुणापाये पश्यन्ति ॥१५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् गोपों को पहले उस ब्रह्म का दर्शन कराये जिसका स्वरूप सत्य ज्ञान, अनन्त, सनातन और ज्योतिः स्वरूप है तथा समाधिनिष्ठ गुणातीत पुरुष ही जिसे देख पाते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

देहादिपिहितानां दर्शनमशक्यमिति प्रथमं देहादिव्यतिरिक्तं ब्रह्मस्वरूपं दर्शयामास। तदाह-सत्यमिति। सत्यमबाध्यं ज्ञानमजडमनन्तमपरिच्छिन्नं ज्योतिः स्वप्रकाशं सनातनं शश्वत्सिद्धं ब्रह्म गुणापाये गुणापोहे ज्ञानिनो यत्पश्यन्ति तत्कृपयैव दर्शयामास॥१५॥

भाव प्रकाशिका

प्राकृतिकदेहादि से आच्छन्न जीव चूकि श्रीभगवान् के उस लोक का दर्शन नहीं कर सकता है, इसलिए श्रीभगवान् गोपों को देहादि से भिन्न ब्रह्म स्वरूप का दर्शन कराये । उसी बात को **सत्यम्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । **सत्यम्** अर्थात् जिसका बाध नहीं होता है, **ज्ञानम्** अर्थात् अजड तथा अनन्तम् अर्थात् अपरिच्छिन्न, **ज्योतिः** प्रकाश स्वरूप **सनातनम्** अर्थात् सदा बने रहने वाले ब्रह्म, गुणों का नाश हो जाने पर जिस ब्रह्म का दर्शन योगिजन करते हैं । उसका दर्शन कृपा पूर्वक श्रीभगवान् कराये ॥१५॥

ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः । ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राक्रूरोऽध्यगात्पुरा ॥१६॥

अन्वयः— ते तु ब्रह्महृदं नीताः मग्नाः कृष्णेन च उद्धता यत्र पुरा अक्रूरः अगात् तत् ब्रह्मणो लोकं ददृशुः ॥१६॥

अनुवाद— उन गोपों को भगवान् उस ब्रह्महृद में ले गये जिसमें पहले श्रीभगवान् अक्रूरजी को अपना स्वरूप दिखलाये थे । उन सबों ने उस हृद में डुबकी लगाई और भगवान् उसमें से उन सबों को निकाले और अपने परमधाम का दर्शन कराये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

एवं ब्रह्महृदं ब्रह्मैव हृदवद्धृदः । तत्र निमग्नस्य विशेषविज्ञानाभावात्तं ब्रह्महृदं ते तु नीताः प्रापितास्तस्मिन्मग्नाश्च । तुशब्दोक्तं विशेषमाह-पुनः कृष्णेनोद्धृताः समाधेरिवोत्थापिता सन्तो ब्रह्मणस्तस्यैव लोकं वैकुण्ठाख्यं ददृशुरिति । ननु ब्रह्मनिमग्नानां पुनर्लोकदर्शनमघटितमेवेत्याशङ्क्याह-यत्रेति । यत्र यस्मिन्कृष्णे निमित्ते सति पूर्वमक्रूरोऽध्यगादृष्टवान् । शुकपरीक्षित्संवादात्मकत्वाद्भूतनिर्देशः । नह्यतर्क्यैश्वर्ये भगवति किंचिदप्यसंभावितमिति भावः । अथवा अक्रूरो यत्र दृष्टवांस्तस्य यमुनाहृदस्य ब्रह्महृद इति नाम । तं हृदं नीताः सन्तो ब्रह्मणो लोकं ददृशुः । पुनश्च कृष्णेनोद्धृताः पूर्ववत्तं दृष्ट्वा विस्मिता बभूवुः। व्यवहितान्वयोऽप्रसिद्धकल्पना च सोढव्येति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्म ही ह्रद के समान ह्रद हैं। उसमें डुबकी लगाने वाले को विशेष विज्ञान का अभाव होने से उन सबों को श्रीभगवान् ब्रह्मह्रद पर लाये और वे सभी गोप उस ब्रह्म ह्रद में डुबकी लगाये। तु शब्द के द्वारा कथित विशेषता को बतलाते हैं। उसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण ही उन सबों को निकाले। जैसे उन सबों को समाधि लग गयी और उन सबों को समाधि से जगाए। उसके बाद उन सबों ने श्रीभगवान् के वैकुण्ठ नामक लोक को देखा। प्रश्न है कि ब्रह्म में जब वे सब निमग्न थे तो फिर उन लोगों द्वारा लोक का दर्शन तो अनुचित ही है, इस प्रकार की आशंका करके कहते हैं। **यत्र० इत्यादि** जिन श्रीकृष्णभगवान् के द्वारा अक्रूरजी ने पहले जिसका दर्शन किया था। चूकि यह शुक परीक्षित् संवाद है। अतएव प्राचीन होने के कारण उसे अद्भत कहा गया है। कहने का अभिप्राय है कि श्रीभगवान् के ऐश्वर्य को तर्क के द्वारा नहीं जाना जा सकता है। अतएव उनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। अथवा जहाँ पर अक्रूरजी ने उस लोक का दर्शन किया था उस यमुनाजी के ह्रद का नाम ब्रह्म ह्रद है। उस ह्रद पर ले जाने पर गोपों ने ब्रह्मलोक का दर्शन किया। **पुनः कृष्णो न उद्धृता** कहने का अभिप्राय है कि वे जब पहले के ही समान भगवान् कृष्ण को देखे तो आश्चर्यित हो गये। इस तरह से होने वाले व्यवहितान्वय तथा अप्रसिद्ध कल्पना को स्वीकार करना चाहिए ॥१६॥

नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः। कृष्णं च तत्र च्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥१७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥२८॥

अन्वयः— नन्ददयः तु तं दृष्ट्वा परमानन्द निर्वृताः छन्दोभिः स्तूयमानं कृष्णं दृष्ट्वा सुविस्मिताः ॥१७॥

अनुवाद— नन्द आदि उस लोक को देखकर परमानन्द में मग्न हो गये। वे वहाँ पर मूर्तिमान वेदों द्वारा श्रीकृष्ण भगवान् की स्तुति की जाती हुई देखकर अत्यन्त आश्चर्यित हुए ॥१७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के अठाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थ दीपिकायामष्टाविंशति तमोऽध्यायः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्द्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के अठाइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥२८॥

उनतीसवाँ अध्याय

रासलीला का आरम्भ

श्रीशुक उवाच

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः । वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥१॥

अन्वयः— योगमायामुपाश्रित भगवान् अपि शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ताः रात्रीः वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— योगमाया को अपनाकर श्रीभगवान् ने देखा कि इस शरद ऋतु की रात्रि में बेला चमेली आदि के फूल विकसित हो गये हैं । यह देखकर श्रीभगवान् ने भी उन रात्रियों में रमण (बिहार) करने का मन बना लिया॥१॥

भावार्थ दीपिका

ऊनत्रिंशे तु रासार्थमुक्तिप्रत्युक्तयो हरेः । गोपीभी राससंरम्भे तस्य चान्तर्धिकौतुकम् । ब्रह्मादिजयसंरूढदर्पकन्दर्पदर्पहा। जयति श्रीपतिर्गोपीरासमण्डलमण्डनः । ननु विपरीतमिदम्, परदारविनोदेन कन्दर्पविजेतृत्वप्रतीतेः । मैवम्, 'योगमायामुपाश्रितः', 'आत्मारामोऽप्यरीरमत्', 'साक्षान्मन्मथमन्मथः', 'आत्मन्यवरुद्धसौरतः' इत्यादिषु स्वातन्त्र्याभिधानात् । तस्माद्रासक्रीडाविडम्बनं कामविजयख्यापनायेत्येव तत्त्वम् । किंच शृङ्गारकथापदेशेन विशेषतो निवृत्तिपरेयं पञ्चाध्यायीति व्यक्तीकरिष्यामः । ता रात्रीः 'याताबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः' इति प्रतिश्रुता इत्यर्थः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इन उनतीसवें अध्याय में तो श्रीहरि की गोपियों के साथ रास रचाने के लिए रास के प्रारम्भ में श्रीभगवान् की उक्ति प्रत्युक्तियों का वर्णन है । यह उनके अन्तःकरण में विद्यमान औदार्य विषयक कौतुक है । ब्रह्माजी आदि पर भी विजय प्राप्त कर लेने के कारण कामदेव का दर्प अत्यधिक बढ गया था । कामदेव के उस दर्प का दलन करने के लिए श्रीभगवान् ने रास का आरम्भ किया । श्रीभगवान और गोपियों के रास मण्डल को अलंकृत करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण सर्वोत्कृष्ट रूप से विजयी हो । प्रश्न है कि परस्त्रियों के साथ मनोविनोद के द्वारा कामदेव पर विजय प्राप्त करना शास्त्र प्रतिकूल है ? तो ऐसा नहीं कहा जा सकता है क्योंकि श्रीभगवान् योगमाया को अपनाकर रास प्रारम्भ किए हैं । कहा गया है कि भगवान् तो आत्माराम हैं फिर भी उन्होंने रमण किया । भगवान श्रीकृष्ण का सौन्दर्य तो कामदेव के मन को भी मथ देने वाला था । वे अपने में ही सुरत क्रीडा को अवरुद्ध कर लिए थे । इन सारी सूक्तियों के द्वारा श्रीभगवान् के स्वातन्त्र्य का वर्णन किया गया है । अतएव रासक्रीडा की लीला श्रीभगवान् की कामदेव पर विजय प्राप्ति के ख्यापनार्थ है । यही नही शृङ्गार कथा के व्याज से यह पञ्चाध्यायी विशेष रूप से निवृत्ति परक है, इस बात का प्रतिपादन करेंगे । किञ्च व्रजकुमारियों के सामने भगवान् ने यह प्रतिज्ञा की कि कुमारियों तुम लोग व्रज में जाओ । तुमलोगों का मनोरथ सफल हुआ । तुमलोग शरद ऋतु की रात्रियों में मेरे साथ रमण करोगी ॥१॥

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः ।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥२॥

अन्वयः— तदा उडुराजः प्राच्याः ककुभः शन्तमैः करैः मुखम् दीर्घदर्शनः प्रियः प्रियायाः मुखम् अरुणेन विलिम्पन् शुचः मृजन इव चर्षणीनाम् शुचः मृजन् उदगात् ॥२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के सङ्कल्प करते ही चन्द्र देव ने पूर्व दिशा रूपी नायिका के मुख मण्डल पर अपनी

शीतल किरण रूपी हाथों से लालिमा की रोली केसर को उसी तरह मल दिया जिस तरह बहुत दिनों के बाद अपनी प्रियतम पत्नी के पास आकर उसके प्रियतम ने उसे आनन्दित करने के लिए ऐसा किया हो । इस तरह उदित होकर चन्द्रदेव न केवल पूर्व दिशा का अपितु संसार के सभी प्राणियों का सन्ताप जो दिन में शरत् कालीन प्रखर सूर्य रश्मियों का बढ़ गया था उसे दूर कर दिया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तदा तस्मिन्नेव क्षणे तत्प्रीतये उडुराजश्चन्द्र उदगादुदितः । किं कुर्वन् । दीर्घकालेन दर्शनं यस्य स प्रियः स्वप्रियाया मुखमरुणेन कुङ्कुमेन यथा विलिम्पति तथा प्राच्याः ककुभो दिशो मुखं शन्तमैः सुखतमैः करै रश्मिभिररुणेनोदयरागेण विलिम्पन्नरुणीकुर्वन्नित्यर्थः । स प्रसिद्ध उडुराजः । तथा चर्षणीनां जनानां शुचस्तापग्लानीर्मृजन्नपनयन् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उसी क्षण श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए चन्द्रमा उदित हो गये । क्या करते हुए ? दीर्घकाल के पश्चात् आये हुए प्रियतम ने जैसे अपनी प्रियतमा के मुख पर कुङ्कुम मल दिया हो उसी तरह चन्द्रमा भी पूर्व दिशा के मुख पर अपने सुखद किरण रूपी हाथों से अरुणोदय के राग रूपी कुङ्कुम को मल दिया । वे प्रसिद्ध चन्द्रमा ने लोगों के सन्ताप को भी अपनोदन किया ॥२॥

दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम् ।
वनं च तत्कोमलगोभिरञ्जितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥३॥

अन्वयः— नवकुङ्कुमाभं रमाननाभं अखण्डमण्डलं कुमुदवन्तम् तत्कोमलगोभि रञ्जितम् दृष्ट्वा वामदृशां मनोहरम् कलं जगौ ॥३॥

अनुवाद— नवीन केसर के समान अरुण वर्ण वाले, लक्ष्मीजी के मुख मण्डल के समान देखने में अत्यन्त मनोहर, पूर्ण मण्डल वाले चन्द्रमा को देखकर तथा चन्द्रमा की कोमल किरणों से रञ्जित वन को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी वंशी पर सुन्दरियों के मन को अपने वश में करने वाले तान का गायन किए ॥३॥

भावार्थ दीपिका

कुमुत्कुमुदं विकसनीयं विद्यते यस्य तं कुमुद्वन्तम् । न खण्डं मण्डलं यस्य तम् । रमाया आननस्याभेव आभा यस्य तम् । नवकुङ्कुममिवारुणमेवंविधं चन्द्रं दृष्ट्वा । तथा वनं च तस्य कोमलैर्गोभी रश्मिभी रञ्जितं दृष्ट्वा कलं मधुरं जगौ अगायत। कथम् । वामदृशां वामा मनोहरा दृशो यासां तासां मनोहरं यथा ॥३॥

भाव प्रकाशिका

कुमुद को विकसित करने वाले चन्द्रमा को भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा । उस दिन पूर्णिमा की रात्रि थी अतएव चन्द्र मण्डल अखण्ड था, अतएव वह देखने में अत्यन्त सुन्दर लक्ष्मी के मुखमण्डल के समान मनोहर लगता था चन्द्रमण्डल नवीन केसर की लालिमा के समान लाल-लाल चन्द्रमण्डल को कोमल किरणों से सम्पूर्ण वन जैसे रंग गया था ऐसी रात्रि में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी वंशी पर उस तान को गाना प्रारम्भ कर दिया जो सुन्दरियों के मन को हर लेने वाला था ॥३॥

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥४॥

अन्वयः— अनङ्गवर्धनं तत् गीतं निशम्य कृष्ण गृहीत मानसाः अन्योन्य अलक्षितोद्यमाः जव लोलकुण्डलाः व्रजस्त्रियः आजग्मुः यत्र सः कान्तः ॥४॥

अनुवाद— काम के वेग को बढ़ाने वाले उस गीत को सुनकर जिनके मन को भगवान् श्रीकृष्ण अपने वश में कर लिए थे वे गोपियाँ अपनी किसी सखी को कुछ बतलाये बिना ही जहाँ पर उन सबों के अनन्य प्रेमी भगवान् श्रीकृष्ण विद्यमान थे। वे वेगपूर्वक चूकि भगवान् के पास आयीं अतएव उन सबों के कानों के कुण्डल झूल रहे थे ।।४।।

भावार्थ दीपिका

असापत्न्यायान्योन्यमलक्षितो न ज्ञापित उद्यमो याभिस्ताः । सकान्तो यत्र तत्र गीतध्वनिमार्गेण आजग्मुः । जवेन वेगेन लोलानि चञ्चलानि कुण्डलानि यासां ताः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

मेरे साथ मेरी दूसरी कोई सौत न रहे इसलिए उन गोपियों ने किसी दूसरी गोपी को कुछ भी बतलाये बिना ही, जहाँ से उस गीत की ध्वनि आ रही थी उसी मार्ग से वहाँ आ गयीं जहाँ पर उन सबों के प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण विद्यमान थे। वे सब वेग पूर्वक वहाँ आयीं अतएव उन सबों के कानों के कुण्डल आते समय झूल रहे थे ।।४।।

दुहन्त्योऽभिययु काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः । पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ।।५।।

अन्वयः— समुत्सुकाः दुहन्त्यः कश्चित् दोहं हित्वा अभिययु; काश्चित् पयः अधिश्रित्य, काश्चित् संयावम अनुद्वास्य ययुः।।५।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की वंशी की ध्वनि को सुनकर उत्सुक हुई गोपियाँ जो दूध दुह रहीं थी वे दूध दूहना बीच में ही छोड़कर चल पड़ीं कुछ गोपियाँ दूध गर्म होने के लिए आग पर चढ़ाई थीं उसे उसी तरह छोड़कर चल पडीं, और कुछ गोपियाँ जो लप्सी बना रही थीं उसे नीचे उतारे बिना ही उत्सुकता वशात् चल पडीं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णसूचकशब्दश्रवणेन तत्प्रवणचित्तानां तत्क्षणमेव त्रैवर्गिककर्मनिवृत्तिं द्योतयन्त्य इवार्धावसितं कर्म विहाय ययुः। तदाह-दुहन्तय इति। पयः स्थालीथं चुल्ल्यामधिश्रित्यैतत्क्वाथमप्रतीक्षमाणाः काश्चिद्ययुः। संयावं गोधूमकणान्नं पक्कमनुद्वास्यानुत्तार्य।।५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के सूचक शब्द को सुनने मात्र से ही वे गोपियाँ जिनका मन भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा था वे उसी क्षण जैसे उन सबों की धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों से निवृत्ति हो गई हो जो गोपी जिस काम को कर रही वह उस काम को बीच में ही छोड़कर भगवान् श्रीकृष्ण के पास चली गयी । इसी बात को दुहन्त्यः इत्यादि श्लोक से कहा गया है । दूध के वर्तन में दूध रखकर गर्म होने के लिए चूल्हे पर चढ़ाये गये दूध के उबलने की प्रतीक्षा किए बिना ही कुछ गोपियाँ चल दीं । जो लप्सी बना रही थीं वे उसके पकने की प्रतीक्षा किए बिना ही छोड़कर चल दीं ।।५।।

परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून्पयः । शुश्रूषन्त्यः पतीन्काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ।।६।।

अन्वयः— परिवेषयन्त्य; तद्हित्वा, शिशून् पयः पाययन्त्यः हित्वा, पतीन् शूश्रूयन्त्य; हित्वा, काश्चित् अश्नन्त्यः भोजनम् अपास्य समुत्सुकाः ययुः ।।६।।

अनुवाद— कुछ गापियाँ जो भोजन परोस रही थीं वे भोजन परोसने के काम को छोड़कर जो बच्चों को दूध पिला रही थीं वे दूध पिलाना छोड़कर, जो अपने पतियों की सेवा कर रही थीं वे अपने पतियों की सेवा करना छोड़कर तथा जो भोजन कर रही थी वे भोजन करना छोड़कर श्रीभगवान् के पास चल दीं ।।६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।६।।

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने । व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित्कृष्णान्तिकं ययुः॥७॥

अन्वयः— लिम्पन्त्यः अन्याः प्रमृजन्त्यः काश्च लोचने अञ्जन्त्यः कश्चित् व्यत्स्तवस्त्राभरणाः कृष्णान्तिकं ययुः ॥७॥

अनुवाद— कुछ गोपियाँ अपने शरीर में अङ्गराग लगा रही थी, कुछ उबटन लगा रही थीं, कुछ अपनी आँखों में अञ्जन लगा रही थीं, कुछ उल्टा सीधा वस्त्र एवं आभूषण पहनी हुई ही भगवान् श्रीकृष्ण के पास चली गयीं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अन्याः प्रमृजन्त्यः अङ्गोद्वर्तनादि कुर्वत्यः । काश्च काश्चित् कृष्णतुष्ट्यर्थं कर्म तदासक्तमनसामन्यथा कृतमपि फलत्येवेति द्योतयन्नाह-व्यत्यतेति । स्थानतः स्वरूपतश्चोर्ध्वाधोधारणेन विपर्ययं प्राप्तानि वस्त्राभरणानि यासां ताः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी गोपियाँ जो अपने अङ्गों में उबटन लगा रही थी वे सब भी बीच में ही सब छोड़कर चली गयी । भगवान् श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए जो कर्म किए जाते हैं, श्रीभगवान् में ही मन के लगे रहने के कारण यदि उलटा भी किया जाता है तो उनका भी फल होता ही है इस बात को द्योतित करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि कुछ गोपियाँ उनके वस्त्र के नीचे और नीचे के वस्त्र ऊपर एवं आभूषण को धारण की हुई ही भगवान् श्रीकृष्ण के पास चली गयीं ॥७॥

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः । गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥८॥

अन्वयः— पतिभिः, पितृभिः भ्रातृबन्धुभिः वार्यमाणाः ताः गोविन्दापहृतात्मानः मोहिताः न न्यवर्तन्त ॥८॥

अनुवाद— अपने पतियों, माता-पिता, भाई बन्धु आदि के द्वारा रोके जाने पर भी वे चूकि उन सबों के मन को भगवान् श्रीकृष्ण ने अपहृत (चुरा) कर लिया था अतएव वे सब के सब मोहित थी उन लोगों के द्वारा मना किए जाने पर भी वे नहीं मानीं चली ही गयीं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

नच कृष्णाकृष्टमनसां विध्नाः प्रभवन्तीत्याह-ता वार्यमाणा इति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

जिसका मन भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा होता है, उसका विघ्न कुछ भी नही विगाड़ पाता है इस बात को **ताः वार्यमाणाः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ॥८॥

अन्तर्गृहगताः काश्चिद्गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः । कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः ॥९॥

अन्वयः— अन्तर्गृहगताः अलब्धविनिर्गमाः काश्चित् गोप्यः मीलितलोचनाः तद्भावना युक्ताः कृष्णं दध्युः ॥९॥

अनुवाद— कुछ गोपियाँ जो घर के भीतर थीं अतएव वे घर से बाहर नहीं निकल पाईं । वे भगवान् की भावना से भूषित अपने अन्तःकरण में अपनी आँखों को बन्द करके श्रीभगवान् का ध्यान करने लगीं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

न लब्धो निर्गमो याभिस्ताः । प्रागपि तद्भावनायुक्तास्तदा नितरां दध्युरित्यर्थः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

जो घर से बाहर निकलने का मौका नहीं पायीं । चूकि वे पहले से ही भगवान् श्रीकृष्ण की भावना से युक्त थीं वे सब अपनी आँखें बन्द करके भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगी ॥९॥

दु:सहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः । ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥१०॥

अन्वयः— दु:सहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः ध्यानप्राप्तध्युताश्लेषनिवृत्या क्षीणमङ्गलाः ॥१०॥

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् ! अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण के असह्य विरह की वेदना से उनके हृदय में इतनी व्यथा हुई कि उनके जितने भी अशुभ संस्कार थे वे सब के सब भस्म हो गये । उसके कारण उनका ध्यान लग गया उस ध्यान काल में उनके सामने भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये । उन गोपियों ने मन ही मन भगवान् का ऐकान्तिक आलिङ्गन किया । उस आलिङ्गन के कारण प्राप्त नि:सीम सुख के कारण उनके समस्त मङ्गलमय संस्कार भी विनष्ट हो गये ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

किंच तदानीमेवं तं परमात्मानं कृष्णं ध्यानतः प्राप्ताः सत्यो गुणमयं देहं जहुरित्याह श्लोकद्वयेन–दु:सहेति । ननु कथं जहुः परमात्मेति ज्ञानाभावादित्याशङ्क्याह–जारबुद्ध्याधापीति । नहि वस्तुशक्तिर्बुद्धिमपेक्षते । अन्यथा मत्वापि पीतामृतवदिति भावः । ननु तदपि प्रारब्धकर्मबन्धने सति कथं जहुस्तत्राह–सद्यःप्रक्षीणबन्धना इति । ननु कथं भोगमन्तरेण प्रारब्धं कर्म क्षीणं भोगेनैव सद्यः क्षीणमित्याह–दु:सहेति । दु;सहो यः प्रेष्ठविरहस्तेन तीव्रस्तापस्तेन धुतानि गतान्यशुभानि यासाम् । तदप्राप्तिपरमदु:खभोगेन पापं क्षीणमित्यर्थः । तथा ध्यानेन प्राप्ता अच्युतस्य आश्लेषेण या निर्वृतिः परमसुखभोगस्तया क्षीणं मङ्गलं पुण्यबन्धनं यासां ताः । अतो ध्यानेन परमात्मप्राप्तेस्तत्कालसुखदु:खाभ्यां नि;शेषकर्मक्षयाद्गुणमयं देहं जहुरिति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

और वे सब उसी समय इस प्रकार से परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण को ध्यान के माध्यम से प्राप्त करके अपने प्राकृतिक शरीर का परित्याग कर दीं इस बात को **दु:सह इत्यादि** दो श्लोकों के द्वारा कहा गया है । प्रश्न है कि उन गोपियों को तो इस बात का ज्ञान नहीं था कि भगवान् श्रीकृष्ण परमात्मा हैं अतएव उन सबों ने कैसे अपने शरीर का परित्याग किया ? इस प्रकार की आशङ्का करके कहते हैं- **जारबुद्ध्या० इत्यादि** वस्तु की शक्ति ज्ञान की अपेक्षा नहीं रखती हैं । यदि ऐसा नहीं होता तो कोई यह जान लेता कि मैंने अमृत पी लिया तो वह अमर हो जाता किन्तु ऐसा नहीं होता है । यदि कहें कि वह भी प्रारब्ध कर्मों के बन्धन के चलते कैसे शरीर का त्याग कर सकती हैं ? इस पर कहते हैं श्रीभगवान् का ध्यान करने के कारण उनके प्रारब्ध कर्म का बन्धन भी समाप्त हो गया । फिर भी प्रश्न है कि भोगे बिना कैसे प्रारब्ध कर्म समाप्त हो गया । इस पर कहते हैं कि भोग के द्वारा ही समाप्त हुआ । असह्य जो प्रियतम का विरह था उसके तीव्र संताप से उनके सभी अशुभ कर्मों के संस्कार समाप्त हो गये । भगवान् श्रीकृष्ण की अप्राप्ति रूपी परम दु:ख को भोगने के कारण उन सबों के पाप विनष्ट हो गये । तथा ध्यान से प्राप्त भगवान् के आलिङ्गन से प्राप्त नि:सीम सुख की प्राप्ति के कारण समस्त शुभ कर्मों के संस्कार विनष्ट हो गये । अतएव ध्यान के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति जन्य तत्काल सुख दु:ख से उन सबों के समस्त कर्मों का क्षय हो गया। उसके फल स्वरूप उन सबों ने अपने शरीर का परित्याग कर दिया॥१०॥

तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि संगताः । जहुर्गुणमयं देहं सद्यःप्रक्षीणबन्धनाः ॥११॥

अन्वयः— जारबुद्ध्यापि तमेव परमात्मानं संगताः प्रक्षीणबन्धनाः गुणमयं देहं जहुः ॥११॥

अनुवाद— राजन् उस समय उन सबों की श्रीभगवान् में जार बुद्धि ही थी फिर भी वे परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण से मिल गयीं अतएव उन सबों के प्रारब्ध कर्मों के बन्धन समाप्त हो गये और वे शीघ्र ही अपने इस प्राकृतिक शरीर को त्याग दीं ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

राजोवाच

कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने । गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥१२॥

अन्वयः— हे मुने ! कृष्णं परंकान्तं विदु न तुब्रह्मतया, गुणधियां तासां परमः प्रवाहः कथम् ॥१२॥

राजा परीक्षित् ने पूछा

अनुवाद— हे मुने ! गोपियाँ तो भगवान् कृष्ण को अपना परमा प्रियतम मानती थीं वे उनको परंब्रह्म नहीं मानती थीं अतएव उन सबों की दृष्टि तो प्राकृत गुणों में ही आसक्त थी ऐसी स्थिति में उनकी गुणों के प्रवाह रूप संसार की निवृत्ति कैसे हुई ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

ननु यथा पतिपुत्रादीनां वस्तुतो ब्रह्मत्वेऽपि न तद्भजनान्मोक्षस्तथा बुद्ध्यभावादेवं कृष्णेऽपि ब्रह्मबुद्ध्यभावेन तत्सङ्गतिः कथं मोक्षहेतुरिति शङ्कते-कृष्णं विदु रिति । परं केवलं कान्तं कमनीयम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

जैसे पतिपुत्र इत्यादि भी वस्तुत: ब्रह्म ही है फिर भी उनका भजन करने से मोक्ष नहीं होता हैं । उसी तरह भगवान् कृष्ण में भी ब्रह्म बुद्धि का अभाव होने के कारण उनकी संगति से कैसे मोक्ष हुआ इस बात की शङ्का राजा परीक्षित् **कृष्णं० विदुः इत्यादि** श्लोक से करते हैं । **परं कान्तम्** अर्थात् केवल कमनीय ॥१२॥

श्रीशुक उवाच

उक्तं पुरस्तादेतत्ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः । द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥१३॥

अन्वयः— एतत् ते पुरस्तात् उक्तं यथा हृषीकेशं द्विषन् अपि चैद्यः सिद्धिं गतः अधोक्षजप्रियाः किमुत ॥१३॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— पहले मैं तुम्हें बतला चुका हूँ कि भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करने वाला भी शिशुपाल मुक्त हो गया, तो फिर जो गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्ण से अत्यधिक प्रेम करती थीं, उनकी मुक्ति में कौन सी शङ्का हैं ?॥१३॥

भावार्थ दीपिका

परिहरति-उक्तमिति । अयं भावः-जीवेष्वावृतं ब्रह्मत्वं कृष्णस्य तु हृषीकेशत्वादनावृतमतो न तत्र बुद्यधपेक्षेति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् की शङ्का का परिहार करते हुए श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि जीवों में ब्रह्मत्व अज्ञान से आच्छन्न रहता है और भगवान् श्रीकृष्ण तो साक्षात् परंब्रह्म हैं । अतएव उनमें मुक्ति के लिए ब्रह्मत्व बुद्धि की अपेक्षा नहीं है ॥१३॥

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप । अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥१४॥

अन्वयः— हे नृप ! नृणां निःश्रेयसार्थाय अव्ययस्य, अप्रेमयस्य, निर्गुणस्य गुणात्मनः भगवतो व्यक्तिः ॥१४॥

अनुवाद— हे राजन् ! मनुष्यों का परम कल्याण करने के ही लिएं सभी विकारों से रहित, अप्रमेय, निर्गुण अर्थात् समस्त हेय गुणों से रहित तथा गुणों का नियमन करने वाले हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

ननु देही कथमनावृतः स्यादत आह-नृणामिति । गुणात्मनो गुणनियन्तुः । भगवत एवंरूपा अभिव्यक्तिरतोन देहिसादृश्यमत्र वक्तुं युज्यत इति भावः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि जीवात्मा के स्वरूप पर जो माया का आवरण पड़ा है, उस आचरण को कैसे दूर किया जा सकता है तो इस पर **नृणाम्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। श्रीभगवान् सत्वादि गुणों के नियामक हैं। श्रीभगवान् की इस प्रकार की अभिव्यक्ति है। अतएव जीवात्मा से परमात्मा की समानता बतलाना उचित नहीं है॥१४॥

कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च । नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हिते ॥१५॥

अन्वयः— कामं, क्रोधं, भयं, स्नेहं, सौहृदमेव च हरौ नित्यं ऐक्यं विदधतः ते हि तन्मयतां यान्ति ॥१५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् से काम का सम्बन्ध हो, चाहे क्रोध का संबन्ध हो चाहे भय का संबन्ध हो या स्नेह का संबन्ध या सौदार्ह का सम्बन्ध हो चाहे जिस तरह से संबन्ध जुड़ जाय जिसके कारण उस संबन्ध करने वाले व्यक्ति की वृत्तियाँ श्रीहरि से सदैव जुड़ी रहें ऐसा पुरुष परमात्ममय हो जाता है। और वे पुरुष में श्रीभगवान् का निरन्तर चिन्तन करते रहने के कारण संसार के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अतो यथाकथंचित्तदासक्तिर्मुक्तिकारणमित्याह-काममिति । ऐक्यं संबन्धम् । सौहृदं भक्तिम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

कामम्० इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है कि चाहे जिस प्रकार से परमात्मा में आसक्ति हो जाय वह मुक्ति का कारण होती है। ऐक्य अर्थात् संबन्ध। सौहृदम् अर्थात् भक्ति ॥१५॥

न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे । योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद्विमुच्यते ॥१६॥

अन्वयः— भवता योगेश्वरेश्वरे अजे भगवति कृष्णे एवं विस्मय; न कार्यः यतः एतद् विमुच्यते ॥१६॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् श्रीभगवान् तो योगेश्वरों के भी स्वामी हैं। वे अजन्मा और षड्विध ऐश्वर्य सम्पन्न है। ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में कभी ऐसा आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्योंकि भगवान् का संबन्ध हो जाने पर तो स्थावर आदि भी मुक्त हो जाते हैं और गोपियाँ तो उनकी परम प्रेयसी हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

न च भगवतोऽयमतिभार इत्याह-न चैवमिति । यतः श्रीकृष्णादेतत्स्थावरादिकमपि विमुच्यते ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

गोपियों को मुक्ति प्रदान भगवान् पर कोई अत्यन्तभार नहीं है। भगवान् कृष्ण का संबन्ध हो जाने पर तो स्थावर भी मुक्त हो जाते हैं ॥१६॥

ता दृष्ट्वान्तिकमायाता भगवान् व्रजयोषितः । अवदद्वदतां श्रेष्ठो वाचः पेशैर्विमोहयन् ॥१७॥

अन्वयः— ताः व्रज योषितः अन्तिकम् आयाताः दृष्ट्वा वदतांश्रेष्ठः वाचः पेशैः विमोहयन् अवदत् ॥१७॥

अनुवाद— उन व्रजवनिताओं के अपने सन्निकट में आये हुए देखकर बोलने वालों में श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण अपनी वाक् चातुरी के द्वारा उन गोपियों को मोहित करते हुए कहने लगे ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमाह-ता दृष्ट्वेति । वाचःपेशैर्वाग्विलासैः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

ता दृष्ट्वः इस श्लोक के द्वारा प्रस्तुत अर्थ का वर्णन किया गया है। **वाचः पैशेः वाक्चातुरी** के द्वारा॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः । व्रजस्यानामयं कच्चिद्ब्रूतागमनकारणम् ॥१८॥

अन्वयः— हे महाभागाः वः स्वागतं वः किं प्रियं करवाणि, कच्चिद् व्रजस्य अनामयं, आगमन कारणं ब्रूता ॥१८॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे महाभाग्यवती गापियों आपलोगों का स्वागत हैं, मैं तुमलोगों का कौन सा प्रिय कार्य करूँ। व्रज में कोई उपद्रव तो नहीं है ? आपलोगों के आगमन का कारण क्या है ?॥१८॥

भावार्थ दीपिका

सर्वाः ससंभ्रममागता विलोक्य सभयमिवाह-व्रजस्येति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

सभी गोपियों को शीघ्रता पूर्वक आये हुए देखकर श्रीभगवान् भयभीत के समान पूछें कि व्रज में शान्ति तो है न॥१८॥

रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता । प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥१९॥

अन्वयः— हे सुमध्यमाः एषा घोरसत्त्वनिषेविता । घोररूप रजनी, इह स्त्रीभि न स्थेयं व्रजं प्रतियात ॥१९॥

अनुवाद— हे सुन्दरियों ! यह भयङ्कर जीवों से सेवित भयङ्कर रात्रि की बेला है । इस समय स्त्रियों को यहाँ नहीं रुकना चाहिए अतएव तुमलोग व्रज में लौट जाओ ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

लज्जया मन्दहसितमालक्ष्याह-रजन्येषेति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

लज्जामिश्रित मन्दमुस्कान करती हुई गोपियों को देखकर श्रीभगवान् ने रजन्येषा इत्यादि श्लोक से कहा॥१९॥

मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः । विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृध्वं बन्धुसाध्वसम् ॥२०॥

अन्वयः— वः मातरः पितरः पुत्राः भ्रातरः पतयः च अपश्यन्तः विचिन्वन्ति बन्धुसाध्वसम् मा कृध्वम् ॥२०॥

अनुवाद— तुमलोगों के माता, पिता, पुत्र, भाई तथा पति तुमलोगों को नहीं देखकर तुमलोगों को खोजते होंगे । उन लोगों को भयाक्रान्त न बनाओ ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

किंच मातर इति । विचिन्वन्ति मृगयन्ते । बन्धूनां साध्वसं कृच्छ्रं मा कृध्वं मा कुरुतेत्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

तुमलोगों के माता-पिता इत्यादि तुमलोगों को खोजते होंगे अपने बन्धुओं को भयाक्रान्त न बनाओ ॥२०॥

दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम् । यमुनानिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥२१॥

अन्वयः— राकेशकररञ्जितम् कुसुमितं वनं दृष्टं यमुनानिललीलै जत् तरुपल्लव शोभितम् ॥२१॥

अनुवाद— तुमलोगों ने चन्द्रमा की शीतल किरणों से रञ्जित विकसित रंग-विरंगे फूलों से परिपूर्ण यमुना के जल का स्पर्श करके चलने वाली शीतल मन्द समीर से हिलने वाले वृक्ष के पल्लवों से सुशोभित इस वन की शोभा को देख लिया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

ईषत्प्रणयकोपेनान्यतो विलोकयन्ती प्रत्याह-दृष्टमिति । राकेशस्य पूर्णचन्द्रस्य करै रञ्जितम् । यमुनास्पर्शिनोऽनिलस्य लीला मन्दगतिस्तया एजन्तः कम्पमानास्तरूणां पल्लवास्तैः शोभितम् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

थोड़ प्रणय कोप के कारण दूसरी ओर देखने वाली गोपियों से भगवान् ने कहा पूर्णचन्द्रमा की किरणों से रञ्जित, यमुना के जल का स्पर्श करके मन्द गति से चलने वाली वायु के द्वारा कम्पित पल्लवों की शोभा से सम्पन्न वन की शोभा को तुमलोगों ने देख लिया ।।२१।।

तद्यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन्सतीः । क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान्पाययत दुह्यत ।।२२।।

अन्वयः— तत् माचिरं गोष्ठं यात सतीः पतीन् शुश्रुषध्वं वत्साः बालाः च क्रन्दन्ति तान् पाययत दुह्यत ।।२२।।

अनुवाद— अतएव तुमलोग शीघ्रातिशीघ्र व्रज में चली जाओ । तुमलोग साध्वी नारियाँ अतएव अपने पतियों और सतियों की सेवा करो । देखो तुमलोगों के बच्चे और बछड़े रो रहे हैं उन सबों को दूध पिलाओं और गायों को दूहो ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

सतीः हे सत्यः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

हे सतियों ।।२२।।

अथवा मदभिस्नेहाद्भवत्यो यन्त्रिताशयाः । आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः ।।२३।।

अन्वयः— अथवा मदभिस्नेहात् यन्त्रिताशयाः भवत्यः आगताः वः हि उपपन्नं मयि जन्तवः प्रीयन्ते ।।२३।।

अनुवाद— यदि तुमलोग मेरे प्रति प्रेम के परतन्त्र होकर यहाँ आयी हो तो यह तुमलोगों के लिए उचित ही है । मुझसे तो पशु और पक्षी भी प्रेम करते हैं ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

संरम्भक्षुभितदृष्टीः प्रत्याह-अथवेति । यन्त्रिताशया वशीकृतचित्ताः । उपपन्नं युक्तम् । प्रीयन्ते प्रीता भवन्ति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

प्रणयकोप के कारण क्षुब्ध दृष्टि वाली गोपियों से भगवान् ने अथवा इत्यादि श्लोक कहा । यन्त्रिताशयाः अर्थात् मेरे वश में अपने चित्त को करने वाली । उपपन्नं अर्थात् उचित । प्रीयन्ते अर्थात् प्रसन्न होते हैं ।।२३।।

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया । तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ।।२४।।

अन्वयः— हे कल्याण्यः स्त्रीणां परः धर्मः अमायया हि तद्बन्धूनां य शुश्रूषणं प्रजानां च अनुपोषणम् ।।२४।।

अनुवाद— हे कल्याणियों स्त्रियों का सबसे बड़ा धर्म अपने पतियों की तथा उनके बान्धवों की सेवा करना तथा उनके सन्तानों का पालन करना है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

दृष्टादृष्टभय प्रदर्शनेन निवर्तयति-भर्तुरित्यादिश्लोकत्रयेण ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

भर्तुः इत्यादि तीन श्लोकों के द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक भय दिखलाकर उन सबों को भगवान् लौदाते हैं ।।२४।।

दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा । पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥२५॥

अन्वयः— अपातकी दुःशीलः दुर्भगः वृद्धः रोगी अधन; अपि वा पतिः लोकेप्सुभिः स्त्रीभिः न हातव्यः ॥२५॥

अनुवाद— उत्तम लोकों की प्राप्ति की इच्छा वाली स्त्रियों को चाहिए कि वे पातकी को छोड़कर बुरे स्वभाव वाले, भाग्यहीन, वृद्ध, रोगी तथा निर्धन भी पति का परित्याग न करें ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् । जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः॥२६॥

अन्वयः— कुलस्त्रियाः औपपत्यं अस्वर्ग्यं, अयशस्यं फल्गु, कृच्छ्रं भयावहम्, सर्वत्र जगुप्सितं च ॥२६॥

अनुवाद— कुल स्त्रियों के लिए जार (उपपति) की सेवा करना सर्वथा निन्दित है । इससे उनका परलोक विगड़ जाता है, स्वर्ग नहीं मिलता, अपयश होता है, यह अत्यन्त तुच्छ कर्म है, और इसमें कष्ट ही कष्ट हैं । यह महाभयावह है । इससे मुक्ति नहीं मिलती यह नरक प्राप्ति का साधन हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

फल्गु तुच्छम् । कृच्छ्रं दुःसंपाद्यम् । औपपत्यं जारसौख्यम् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

फल्गु अर्थात् तुच्छ, कृच्छ्रं अर्थात् कष्टमय, औपपत्यम् जार पति की सेवा करना ॥२६॥

श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् । न तथा संनिकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥२७॥

अन्वयः— श्रवणात् दर्शनात् ध्यानात् अनुकीर्तनात् मयि यथा भावः तथा सन्निकर्षेण न । ततः गृहान् प्रतियात ॥२७॥

अनुवाद— मेरी लीलाओं और गुणों के श्रवण से तथा मेरे रूप के दर्शन से उन सबों का ध्यान एवं कीर्तन करने से जिस तरह मेरे प्रति अनन्य प्रेम की प्राप्ति होती है, वैसा प्रेम मेरे सन्निधान से नहीं होता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

किंच श्रवणादिति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

और सुनने मात्र से ॥२७॥

श्रीशुक उवाच

इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविन्दभाषितम् । विषण्णा भग्नसंकल्पाश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥२८॥

अन्वयः— गोविन्दभाषितम् इति विप्तियम् आकर्ण्य विषण्णाः भग्नसङ्कल्पाः दुरत्ययाम् चिन्ताम् आपुः ॥२८॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् भगवान् गोविन्द के द्वारा कही गयी इन अप्रिय बातों को सुनकर वे उदास (खिन्न) हो गये । उनकी आशा टूट गयी, वे सब चिन्ता के अथाह सागर में डूबने लगीं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

कृत्वा मुखान्यव शुचः श्वसनेन शुष्यद्बिम्बाधराणि चरणेन भुवं लिखन्त्यः ।
अस्त्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुङ्कुमानि तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुःखभराः स्म तूष्णीम् ॥२९॥

अन्वयः— श्वसनेन शुष्यद् बिम्बाधराणि मुखानि अवशुचः कृत्वा चरणेन भुवः लिखन्त्यः उपात्तमषिभिः अस्त्रै कुचकुङ्कुमानि मृजन्त्यः उरुदुखभराः तुष्णीम् तस्थुस्म ॥२९॥

अनुवाद— उनके बिम्बाफल के समान लाल अधर शोक के कारण गर्म-गर्म श्वास से सूख गये । उन सबों ने अपना मुँह नीचे की ओर लटका लिया और अपने चरणों से भूमि को कुरेदने लगीं, नेत्रों से बहने वाले दुःख के आँसू आँखों के काजल से मिलकर काले हो गये और प्रवाहित होते हुए उन सबों के स्तनों के कुङ्कुम राग को धोने लगे । उनका हृदय दुख से इतना भर गया कि वे सबकुछ बोल न सकीं और चुपचाप खड़ी रह गयीं॥२९॥

भावार्थ दीपिका

चिन्तां प्राप्तानां स्थ्शितिमाह-कृत्वेति । शुचः शोकादुद्गतेन श्वसनेन शुष्यन्तो बिम्बफलसदृशा अधरा येषु मुखेषु तानि अव अवाञ्चि कृत्वा तथाऽङ्गुष्ठेन महीं लिखन्त्यः । तथा गृहीतकज्जलैरश्रुभिः कुचकुङ्कुमानि क्षालयन्त्यस्तुष्णीं स्थिता; । यत उरुदुःखस्य भरो भारो यासां ताः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

कृत्वा इत्यादि श्लोक से चिन्ताग्रस्त गोपियों की स्थिति का वर्णन शुकदेवजी करते हैं । शोक के कारण निकलने वाले गर्म-गर्म श्वास से बिम्बफल के समान अधर सूख गये थे ऐसे मुखों को गोपियों ने नीचे कर लिया । अपने पैर के अंगूठे से भूमि को कुरेदने लगीं । कज्जलों को अपने साथ लेकर प्रवाहित होने वाले दुखाश्रु उनके स्तनों में लगे कुङ्कुमराग को धोने लगे । इस प्रकार की गोपियाँ चुपचाप खड़ी रह गयीं । उनका हृदय दुःख से भर गया था ॥२९॥

प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ।
नेत्रे विमृज्य रुदितोपहते स्म किंचित्संरम्भगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥३०॥

अन्वयः— तदर्थविनिवर्तिसर्वकामाः रुदितोपहते नेत्रे प्रमृज्य किञ्चित् संरम्भाद् गदगद् गिरः प्रियेतरामिव प्रतिभाषमाणं कृष्णं अनुरक्ताः गोप्यः अब्रुवत ॥३०॥

अनुवाद— गोपियाँ अपने प्रियतम श्याम सुन्दर के ही लिए अपनी सम्पूर्ण कामनाओं का परित्याग कर चुकी थीं । सभी भोगों का उन सबों ने त्याग कर दिया था । उन सबों का श्रीभगवान् में अपार प्रेम था । उनकी रोते-रोते आँखें लाल हो गयी थीं । आँसुओं के कारण उनका गला रुँध गया था । उन सबों न कुछ रोष भरी वाणी से निष्ठूरता भरी बातों को कहने वाले अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण से कहा ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

किंच प्रेष्ठमिति । किंचित्संरम्भेण कोपावेशेन गद्गदा गिरो यासां ता अब्रुवत स्म । संरम्भे कारणं-प्रेष्ठमित्यादि । प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं प्रत्याचक्षाणम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण गोपियों के प्रियतम हैं । कुछ क्रोध के कारण उनकी वाणी भर्रा गयी थी । क्योंकि वे श्रीभगवान् की प्रियतमा थीं । क्रोध का कारण यह था कि भगवान उन सबों के प्रेष्ठ (प्रियतम) थे और वे प्रियव्यतिरिक्त समान उन सबों का प्रत्याख्यान कर रहे थे ॥३०॥

गोप्य ऊचुः

मैवं विभोऽर्हति भवान्गदितुं नृशंसं संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान्देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥३१॥

अन्वयः— हे विभो भवान् एवं नृशंसं गदितुम् मा अर्हति, सर्वविषयान् संत्यज्य तवपादमूलं भक्ताः भजस्व । हे दुरवग्रह! अस्मान् मात्यज यथा आदिपुरुष; देवः मुमुक्षून् भजते अस्मान् भजस्व ॥३१॥

गोपों ने कहा

अनुवाद— हे सर्वव्यापक प्रभो आप इस तरह की निष्ठुर बाते न कहें । हमलोग समस्त विषयभोगों का परित्याग करके आपके चरण मूल की उपासना करती हैं । हमलोग आपके भक्त हैं अतएव हमलोगों को आप अपना ले । हे स्वच्छन्द प्रभो जिस तरह आदि देव भगवान् नारायण मुमुक्षु जीवों को अपना बना लेते हैं, उसी तरह से आप भी हमलोगों को अपना बना लें ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

नृशंसं क्रूरम् । हे दुरवग्रह स्वच्छन्द, तव पादमूलं भक्ता; सेवितवतीरस्मान्भजस्व मा त्यजेति ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

नृशंसम् अर्थात् क्रूरता पूर्ण । हे स्वच्छन्द हमलोग आपके चरणमूल की भक्ता है । हमलोगों को आप अपना लें । त्यागे नहीं ।।३१।।

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ।।३२।।

अन्वयः— हे अङ्ग धर्मविदा त्वया यत्पत्यपत्य सुहृदामनुवृत्ति; त्वया स्त्रीणं स्वधर्म इति उक्तम् एतत् उपदेश पदे ईशे त्वयि एवास्तु भवान् किल तनुभृतां प्रेष्ठः बन्धुः आत्मा ।।३२।।

अनुवाद— हे प्रियतम श्याम सुन्दर आप सभी धर्मों के रहस्यों के ज्ञाता हैं । आपने यह जो कहा है कि स्त्रियों का सबसे बड़ा धर्म अपने पति बान्धव, पुत्र आदि की सेवा करना ही है, यह बिल्कुल सही है । किन्तु शास्त्रोंपदेश के अनुसार हमें आपकी ही सेवा करना उचित है, क्योंकि आप साक्षात् भगवान् हैं । आप सभी शरीरधारियों के प्रियतम, आत्मा और बन्धु हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

अपि च यदुक्तं 'पत्यपत्य-' इत्यादि त्वया धर्मविदेति सोपहासमेवम्, एतदुपदेशानां पदे विषये त्वय्येवास्तु । उपदेशपदत्वे हेतुः-ईश इति । विविदिषावाक्येन सर्वोपदेशानामीशपरत्वावगमादिति भावः । ईशत्वे हेतुः-आत्मा किल भवानिति । भोग्यस्य हि सर्वस्य भोक्ता आत्मैवेश इत्यतः प्रेष्ठो बन्धुश्च भवानेवेति सर्वबन्धुषु करणीयं त्वय्येवास्त्वित्यर्थः । अथवा धर्मोपदेशानां पदे स्थाने धर्मोपदेष्टरि त्वयि सत्यस्मासु च धर्मं जिज्ञासमानासु सतीषु त्वया धर्मविदा यदुक्तमेवमेतदस्तु । नतु त्वं धर्मोपदेष्टा किंतु भवानत्मेति । अथवा यदुक्तमेतदुपदेशपदे तद्गोचरे पुरुषेऽस्तु नाम, त्वयि तु ईशे स्वामिनि सत्येवम् । काक्वा नैवमित्यर्थः। यतस्तनुभृतां त्वमात्मा फलरूप इति । यद्वा यदुक्तं 'पत्यादिशुश्रूषणं धर्म' इति एवमेतत्त्वय्येवास्तु । कुतः । उपदेशपदे शुश्रूषणीयत्वेनोपदिश्यमानानां पत्यादीनां पदेऽधिष्ठाने । कुतः ईशे । नहीश्वरमधिष्ठानं विना कोऽपि पतिपुत्रादिर्नामेति । अन्यत्समानम्। अलमतिविस्तरेण ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

आपने यह जो कहा है कि स्त्रियों को अपने पति, पुत्र इत्यादि की सेवा करनी चाहिए । आप तो सभी धर्मों के ज्ञाता हैं । किन्तु आपका यह कथन उपहासास्पद है । इस उपदेश के विषय तो आप ही है । श्रीभगवान् के उपदेश के विषयत्व का कारण है कि आप ईश अर्थात् परमात्मा हैं । क्योंकि विविदिषा वाक्य के अनुसार शास्त्रों में जितने भी उपदेश दिए गये हैं वे सबके सब परमात्मा परक ही हैं । आप ईश इसलिए है कि आप सभी शरीर धारियों की आत्मा हैं । समस्त भोग्य पदार्थों के भोक्ता आत्मा ही ईश हैं । अतएव आप ही प्रियतम और बन्धु भी हैं । अतएव समस्त बन्धुओं के लिए जो कुछ भी करना चाहिए वह सब आपके ही लिए करना चाहिए ।

अथवा धर्मोपदेश करने वाले उपदेष्टा के पद पर यदि आप हों और हमलोगों की धर्म के विषय में जिज्ञासा हो तब तो आपने जो धर्मोपदेश किया है वह बिल्कुल ठीक है, किन्तु आप धर्मोपदेष्टा नहीं है बल्कि आप आत्मा हैं । अथवा आपने यह जो कहा है वह उपदेश के विषय भूत पुरुष के लिए हैं । आप यदि स्वामी हों तब ऐसा हो । अर्थात् ऐसी बात है ही नहीं । क्योंकि आप तो शरीरधारियों की आत्मा फलस्वरूप हैं । अथवा आपने यह जो कहा है कि पति आदि की सेवा करना ही धर्म है, तो यह सब कुछ आप में ही है । क्योंकि उपदेश वाक्यों द्वारा उपदिश्यमान सेवनीय रूप से जो पति आदि कहे गये हैं, वह आप ही पति आदि से अधिष्ठान हैं । क्योंकि आप ईश है । अधिष्ठान स्वरूप ईश्वर से भिन्न कोई पतिपुत्र इत्यादि है ही नहीं । दूसरी सारी बातें समान है । बहुत अधिक विस्तार करना व्यर्थ है ॥३२॥

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ।
तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या आशां भृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥३३॥

अन्वयः— हे अरविन्दनेत्र ! हे स्वआत्मन् कुशलाः नित्याप्रिये त्वयि रतिं कुर्वन्ति आर्तिदैः पतिसुतादिभिः किम् तत् हे परमेश्वर, नः प्रसीद त्वयि चिरात् भृतां आशां मा छिन्द्याः ॥३३॥

अनुवाद— हे कमलनयन हे सबों की आत्मन् शास्त्र निपुण पुरुष आपसे ही प्रेम करते हैं क्योंकि नित्य प्रिय आप ही हैं । ये दुःख देने वाले पति पुत्रादि से कौन सा लाभ है ? अतएव आप हमलोगों पर प्रसन्न हो जाइये । चिरकाल से संजोई हुई आशा लता को काटिये मत ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

एतत्सदाचारेण द्रढयन्त्यः प्रार्थयन्ते–कुर्वन्तीति । कुशलाः शास्त्रनिपुणाः । तथा च शास्त्रम् । किं प्रजया करिष्यामो येषां नोऽयमात्माऽयं च लोकः' इति ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

सदाचार के द्वारा इस अर्थ को सुदृढ बनाती हुई गोपियाँ प्रार्थना **कुर्वन्ति० इत्यादि** श्लोक से करती हैं। **कुशलाः** अर्थात् शास्त्र पुरुष । शास्त्र कहता है **किं प्रजया करिष्यामः येषां नोऽयमात्मा अयं च लोकः** । अर्थात् उन सन्तानों को लेकर मैं क्या करूँगी जिससे न तो परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है और न उस लोक की प्राप्ति हो सकती है ॥३३॥

चित्तं सुखेन भवताऽपहृतं गृहेषु यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥३४॥

अन्वयः— यत् गृहकृत्येषु चित्तं सुखेन निर्विशति तत् भवता अपहृतम् गृहकृत्ये करौ अपि पादौ तव पादमूलात् पदं न चलतः कथं व्रजं यामः अथ किं वा करवाम ॥३४॥

अनुवाद— हे श्याम सुन्दर पहले हमलोगों का चित्त घर के कार्यों में सुख पूर्वक लगा रहता था, उसका तो आपने बड़ी आसानी से अपहरण कर लिया घर के कामों में लगे रहने वाले हाथों को भी आपने अपने वश में कर लिया । अब हमारे पैर आपके चरण मूल को छोड़कर एक पग भी नहीं चलना चाहते हैं । हम व्रज में कैसे जायँ और वहाँ जाकर भी क्या करेंगी ?॥३४॥

भावार्थ दीपिका

किंच 'प्रतियात' इति यदुक्तं तदशक्यं, त्वयैव । चित्तादीनामपहृतत्वादित्याहुः-चित्तमिति । यदस्माकं चित्तमेतावन्तं कालं सुखेन गृहेषु निर्विशति तत्त्वयापहृतम् । करावपि यौ गृहकृत्ये निर्विशतस्तावपि । सुखात्मना त्वयेति वा ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

आपने यह जो कहा है कि तुमलोग लौटकर चली जाओ यह असम्भव है । क्योंकि आपने ही हमलोगों के चित्त को अपहृत कर लिया है । इस बात को चित्तम् इत्यादि श्लोक से कहा गया है । अब तक हमलोगों का मन सुख पूर्वक गृह कार्यों में लगा रहता था उसको आपने अपहृत कर लिया हमारे हाथों को भी आपने अपने वश में कर लिया है । आप तो सुख स्वरूप हैं ।।३४।।

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ।
नो चेद्वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ।।३५।।

अन्वयः— हे अङ्ग नः हासावलोक कलगीतजदृच्याग्निम् अधरामृतपूरकेण सिञ्च, नो चेद् वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहाः ध्यानेन हे सखे तव पदयोः पदवीं यामः ।।३५।।

अनुवाद— हे प्राण बल्लभ आपके मधुर प्रेमपूर्ण देखने की कला, तथा मनोहर संगीत ने हमारे हृदय में आपके प्रेम और मिलन की अग्नि को प्रदीप्त कर दिया है, उसे आप अपने अधरामृत की रसधारा से शान्त कर दें । अन्यथा हमसब आपकी विरह व्यथा की अग्नि में अपने शरीर को जला देंगी और ध्यान के द्वारा आपके चरण कमलों को प्राप्त कर लेंगी ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

अतोऽङ्ग हे कृष्ण, नोऽस्माकं तवाधरामृतपूरकेण तवैव हाससहितेनावलोकेन कलगीतेन च जातो यो हृच्छयाग्निः कामाग्निस्तं सिञ्च । नो चेद्वयं तावदेकोऽग्निस्तथा विरहाज्जनिष्यते योऽग्निस्तेन चोपयुक्तदेहा दग्धशरीरा योगिन इव ते पदवीमन्तिकं ध्यानेन याम प्राप्नुयामः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

अतएव हे श्रीकृष्ण हमलोगों की आपके ही मन्द मुस्कान युक्त प्रेमपूर्ण अवलोकन की कला तथा मनोहर संगीत ने हमलोगों के हृदय में कामाग्नि को प्रदीप्त कर दिया है । उसको आप अपने अधरामृत के रस प्रवाह से सिञ्च कर शान्त कर दें । अन्यथा हमलोग आपके विरहव्यथा से एक ऐसे अग्नि को उत्पन्न करेंगी कि उसमें हमलोगों का शरीर दग्ध हो जायेगा और योगियों के समान ध्यान के माध्यम से आपके चरण कमलों के सान्निध्य को प्राप्त कर लेंगी ।।३५।।

यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ।
अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः ।।३६।।

अन्वयः— हे अम्बुजांक्ष अरण्य जनप्रियस्य तव पादतलं रमायाः क्वचित् दत्तक्षणम् यर्हि तव पादतलं अस्प्रक्ष्म हे अङ्ग तत्प्रभृति अन्यसमक्षं स्थातुम् बत त्वयाभिरमिता न पारयामः ।।३६।।

अनुवाद— हे प्रियतम कमलनयन ! आप वन वासियों के प्रिय है और वे भी आपसे बहुत प्रेम करते हैं। इसलिए प्रायः आप वनवासियों के ही पास रहा करते हैं । आपके चरण कमलों की सेवा करने का अवसर लक्ष्मीजी को भी कभी-कभी ही मिल पाता है । आपके उन्हीं चरण कमलों की सेवा करने का अवसर हमें प्राप्त हुआ है। जबसे आपने हमें स्वीकार करके आनन्दित किया है । तब से ही हमलोग किसी के समक्ष एकक्षण के भी लिए ठहरने में असमर्थ हो गयी हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

ननु स्वपतीनेवोपगच्छत त एनमग्निं सिञ्चेयुरिति चेत्तत्राहुः-यर्हीति । रमाया लक्ष्म्या दत्तक्षणं दत्तोत्सवं दत्तावसरं वा।

तदपि क्वचिदेव न सर्वदा । अरण्यजनाः प्रिया यस्य तस्य तव । अरण्यजनप्रियत्वादरण्ये क्वचिद्यर्ह्यस्प्राक्ष्म स्पृष्टवत्यो वयं तत्र च त्वयाभिरमिता आनन्दिताः सत्यस्तदारभ्यान्यसमक्षं स्थातुमपि न पारयामः । तुच्छास्ते न रोचन्त इत्यर्थः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

यर्हि० इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है कि यदि आप यह कहें कि तुमलोग अपने पतियों के पास जाओ, वे लोग तुमलोगों की इस अग्नि को शान्त कर देंगे । अर्थात् आपके चरणों की सेवा करने का अवसर लक्ष्मीजी भी कभी-कभी ही प्राप्त करती है । हमेशा नहीं । आपेको तो वनवासी लोग ही प्रिय है । ऐसे आपके वनवासी लोगों के प्रिय होने के कारण वन में जबसे हमलोगों ने आपके चरणों को स्पर्श किया, हम लोगों को आपने उसी समय से आनन्दित कर दिया । उसी समय से हमलोग दूसरों के समक्ष ठहर पाने में भी असमर्थ हो गयी है । वे तुच्छ लोग हमलोगों को अच्छे लगते ही नहीं है ।।३६।।

श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या लब्ध्वाऽपि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ।
यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्तद्वद्वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः ।।३७।।

अन्वयः— यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासः साश्रीः किल वक्षसि पदंलब्ध्वा अपि तुलस्या (सह) यत्पदम्बुज रजश्चकमे भृत्यजुष्टम् तद्वद् वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः ।।३७।।

अनुवाद— जिस लक्ष्मीजी का कृपा कटाक्ष प्राप्त करने के लिए दूसरे देवता सदा प्रयासरत रहा करते हैं, उन लक्ष्मीजी ने आपके वक्षःस्थल में स्थान प्राप्त कर लिया किन्तु वे भी तुलसीजी के ही साथ अपके चरण धूलि को प्राप्त करना चाहती हैं आपके वे चरण रज आपके भक्तो द्वारा सेवित हैं । उन भक्तो के ही समान हमलोग भी आपके चरण रज के शरणागत हैं ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

त्वत्पादसौभाग्यं त्वतिचित्रमित्याहुः-श्रीरिति । वक्षस्ययापत्न्यं स्थानं लब्ध्वापि तुलस्या सपत्न्या सह तव पादाम्बुजरजः कामयते स्म । भृत्यैः सर्वैर्जुष्टमिति सौभाग्यातिरेकोक्तिः । यस्याः स्ववीक्षणकृते श्रीरात्मानं विलोकयत्वित्येतदर्थमन्येषां ब्रह्मादीनां तपोभिः प्रयासः सा तद्रजस्तद्वद्वयमपि प्रपन्ना इति ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीयर्त० इत्यादि श्लोक से गोपियाँ कहती हैं कि आपके चरणों का सौभाग्य अत्यन्त विचित्र है । श्रीदेवी आपके वक्षस्थल में सपत्नी के स्थान को प्राप्त करके अपनी सौत तुलसीजी के साथ आपके चरणों की धूल को प्राप्त करना चाहती हैं । आपके चरणरज सभी भक्तों के द्वारा सेवित है यह आपके चरणों के सौभाग्य का अतिशय्य है । लक्ष्मीजी की कृपा कटाक्ष मुझ पर हो जाय एतदर्थ ब्रह्मा इत्यादि देवता सदा लालायित रहते है । वे लक्ष्मीजी आपके चरणों के रज को प्राप्त करना चाहती हैं । आपके भक्तों के ही समान हमलोग आपके चरण के ही शरणागत हैं ।।३७।।

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।
त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ।।३८।।

अन्वयः— हे वृजिनार्दन ! तन्नः प्रसीद त्वदुपासनाशाः वसतीः विसृज्य त्वदङ्घ्रिमूलं प्राप्तः हे सुन्दर ! त्वत्स्मित निरीक्षण तीव्र कामतप्तात्मनां हे पुरुषभूषण दास्यम् देहि ।।३८।।

अनुवाद— प्रभो ! अब तक जिसने आपके चरणों की शरणागति की उसके समस्त कष्टों को आपने दूर कर दिया । अब आप हमलोगों पर प्रसन्न हो जाइये । अपनी कृपा प्रसाद का पात्र हमें आप बनायें । आपके चरणों की सेवा करने की अभिलाषा से हमलोग अपने गृहों कुटुम्बों का परित्याग करके आपके चरणों की शरण में आयी

हैं । वहाँ तो आपके चरणों की सेवा का अवकाश ही नहीं है । हे पुरुषश्रेष्ठ आपके मधुर मुस्कान मिश्रित प्रेमपूर्ण प्रेक्षण की अद्भूत कला ने हमारी आपसे मिलन की कामाग्नि को प्रज्वलित कर दिया है । हे पुरुषभूषण आप हमें अपनी दासी बना लें ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

हे वृजिनार्दन दु:खहन्तः, त्वदुपासने त्वद्भजन एवाशा यासां ता वयं वसतीर्गृहान्विसृज्य हित्वा योगिन इव प्राप्ताः । तव सुन्दरस्मितविलसितनिरीक्षणेन यस्तीव्रः कामस्तेन तप्तचित्तानाम् । हे पुरुषरत्न, दास्यं देहि ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

हे अपने शरणागत जनों के कष्ट को विनष्ट करने वाले श्रीकृष्ण ! आपकी सेवा प्राप्त करने की ही आशा से हमलोग अपने गृहों का परित्याग करके योगी के समान यहाँ आपके पास वन में आयी हैं, आपके मनोज्ञ मुस्कान मिश्रित निरीक्षण के द्वारा हमलोगों की कामाग्नि तीव्र हो गयी है, उसके कारण हमलोगों का चित्त संतप्त है । हे पुरुष रत्न आप मुझे अपनी दासी बना लें ॥३८॥

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्रीगण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ।
दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ॥३९॥

अन्वयः— तव अलकावृतं मुखं वीक्ष्य कुण्डल श्रीगण्डस्थलं अधरसुधं हसितावलोकम् दत्ताभयं च भुजदण्डयुगम् श्रियैकरमणं च वक्षः विलोक्य तव दास्यः भवामः ॥३९॥

अनुवाद— आपके काले घुंघराले केशों से आवृत मुखमण्डल को देखकर सुन्दर कुण्डलों की शोभा से अलंकृत आपके कपोल, आपके ये मधुर अधर, जिसकी सुधा देव सुधा को भी फीकी बना देने वाली है उसको, मधुर मुस्कान संवलित प्रेमपूर्ण प्रेक्षण की कला, अपने शरणागत जीवों को अभय प्रदान करने वाले आपके ये भुजदण्ड युगल, तथा लक्ष्मी का एक मात्र क्रीडा स्थल आपका विस्तृत वक्षःस्थल इन सबों को देखकर हमलोग आपकी दासियाँ बन गयी हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

ननु गृहस्वाम्यं विहाय दास्यं किमिति प्रार्थ्यतेऽत आहुः-वीक्ष्येति । अलकावृतमुखं केशान्तरैरावृतमुखम् । तथा कुण्डलयोः श्रीर्ययोस्ते गण्डस्थले यस्मिन्, अधरे सुधा यस्मिंस्तच्च तच्च तव मुखं वीक्ष्य दत्ताभयं भुजदण्डयुग्मं वक्षश्च श्रिया एकमेव रमणं रतिजनकं वीक्ष्य दास्य एव भवामेति ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तुमलोग अपने घर की स्वामिनी हो उसको त्यागकर तुमलोग दासी क्यों बनना चाहती हो ? तो इस पर गोपियाँ **वीक्ष्य० इत्यादि** श्लोक कहती हैं । काले घुंघराले केशों से आवृत आपके मुख को तथा चमचमाते कुण्डलों की शोभा से समन्वित कपोलों की शोभा को, अमृतमय अधरों से मण्डित आपके मुख, अपने भक्तों को अभय प्रदान करने वाले आपके भुजदण्ड युगल और शोभा के द्वारा सर्वोत्कृष्ट रति को उत्पन्न करने वाले मनोहर वक्षः स्थल को देखकर हमलोग आपकी दासियाँ हो गयी हैं ॥३९॥

का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन संमोहितार्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम् ।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥४०॥

अन्वयः— हे अङ्ग त्रिलोक्याम् का स्त्री कलपदायतमूर्छितेन सम्मोहिता आर्पयर्थात् त्रैलोक्य सौभगमिदं रूपं च निरीक्ष्य नचलेत् यद (वीक्ष्य) गोद्विजद्रुममृगाः पुलकानि अविभ्रन् ॥४०॥

अनुवाद— हे प्रियतम श्यामसुन्दर त्रिलोकी में दूसरी कौन ऐसी स्त्री होगी जो मनोज्ञ पद और आरोहावरोह से युक्त एवं अनेक प्रकार की मूर्छनाओं से युक्त आपकी वंशी की धुन को सुनकर तथा आपके इस त्रिलोक सुन्दर मोहक मूर्ति जो अपने सौन्दर्य के एक बूंद से त्रिलोकी को सौन्दर्य सम्पन्न बनाती है, उसको देखकर अपनी आर्य मर्यादा से विचलति न हो जाय। आपकी इस कमनीय विग्रह को देखकर तो गौ, पक्षी, वृक्ष और हरिण भी रोमाञ्चित हो जाते हैं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

ननु जुगुप्सितमौपपत्यमित्युक्तम्, तत्राहुः- का स्त्रीति। अङ्ग हे कृष्ण, कलानि पदानि यस्मिंस्तदायतं दीर्घं मूर्च्छितं स्वरालापभेदस्तेन। पाठान्तरे कलपदामृतमयं वेणुगीतं तेन संमोहिता का वा स्त्री आर्यचरितान्निजधर्मान्न चलेत्। यन्मोहिताः पुरुषा अपि चलिताः, किंच त्रैलोक्यसौभगमिति यद्यतः अविभ्रन्नबिभरुः त्वद्द्योतकशब्दश्रवणमात्रेणापि तावन्निजधर्मत्यागो युक्तः, किं पुनस्त्वदनुभवेनेति भावः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें कि जारपति की सेवा करना अत्यन्त निन्दित है यह मैं कह चुका हूँ। इस पर गोपियों ने **कास्त्री० इत्यादि** श्लोक कहा। हे कृष्ण मनोज्ञ पदों के आरोहावरोह तथा विविध मूर्छनाओं से युक्त स्वरालापों के भेदो से युक्त अमृतमय वेणुगीत के द्वारा सम्मोहित कौन ऐसी स्त्री होगी जो अपनी आर्य मर्यादा से विचलित न हो जाय। उसके द्वारा मोहित होकर पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। आपका यह त्रैलोक्य मोहन जो रूप है उसको देखकर कौन स्त्री मोहित नहीं हो जायेगी। आपके इस रूप को देखकर तो गौएँ, पक्षी, वृक्ष और मृग भी रोमाञ्चित हो जाते हैं। आपके द्योतक केवल शब्द के ही सुनने मात्र से अपने धर्म का त्याग उचित है। और आपका अनुभव कर लेने पर क्या कहना है ?॥४०॥

व्यक्तं भवान्व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो देवो यथादिपुरुषः सुरलोकगोप्ता।
तन्नो निधेहि करपङ्कजमार्तबन्धो तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किङ्करीणाम् ॥४१॥

अन्वयः— यथा आदिपुरुषो देवः सुरलोकगोप्ता भवान् व्रजभर्यातिहरः जातः व्यक्तम्। हे आर्तबन्धो नः किङ्करीणाम् तप्तस्नेषु शिरस्सु च करपङ्कजं निधेहि ॥४१॥

अनुवाद— जिस तरह आदि पुरुष भगवान् नारायण देव समूह के रक्षक हैं, उसी तरह आप व्रजवासियों के भय तथा कष्ट को दूर करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं, यह निश्चित है। अतएव हे आर्त बन्धो हमलोग आपकी किङ्करिणियाँ हैं। आपके मिलन की आकाङ्क्षा से हमारा वक्षःस्थल संतप्त है, अतएव आप अपने कोमल स्पर्श वाले अपने कर कमलों को हमारे वक्षोजों और शिरों पर रख दीजिए ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

व्यक्तं निश्चितम् ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

व्यक्त अर्थात् निश्चित रूप से ॥४१॥

श्रीशुक उवाच

इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः। प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥४२॥

अन्वयः— इतितासां विक्लवितं श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः सदयं प्रहस्य आत्मारामोऽपि गोपीः अरीरमत् ॥४२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्ण सनकादि योगियों और शिवादि योगेश्वरों के भी स्वामी हैं, वे उन गोपियों की व्यथा एवं व्याकुलता से परिपूर्ण वाणी को सुने तो उनका हृदय दया से भर गया । यद्यपि वे आत्माराम है, अपनी आत्मा में ही रमण करते हैं फिर भी वे हँसकर उन गोपियों के साथ क्रीडा करना प्रारम्भ किये ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

विक्लवितं पारवश्यप्रलपितम् । गोपीः अरीरमद्रमयामास ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

विक्लवितम् अर्थात् काम परतंत्र प्रार्थनाएँ । गोपियों को रमण कराये ॥४२॥

ताभिः समेताभिरुदारचेष्टितः प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ।
उदारहासद्विजकुन्ददीधितिर्व्यरोचतैणाङ्क इवोडुभिर्वृतः ॥४३॥

अन्वयः— प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिः समेताभिः ताभिः उदारचेष्टितः अच्युतः उदारहास द्विज कुन्ददीधिति उडुभि; वृतः एणांक इव व्यरोचत ॥४३॥

अनुवाद— अपने प्रियतम श्रीकृष्ण को देखने के कारण उन व्रजवनिताओं का मुखकमल विकसित हो गया था । उन सबों ने भगवान् श्रीकृष्ण को चारो ओर से घेर लिया था । भगवान् श्रीकृष्ण अपनी चेष्टाओं को गोपियों के मनोऽनुकूल बना दिए थे । फिर भी वे अपने स्वरूप में ही स्थित थे क्योंकि वे अच्युत हैं । व जब हँसते थे तो उनकी दन्तपंक्ति कुन्दकली के समान चमकती थी । गोपियों से घिरे हुए श्रीभगवान् ऐसे प्रतीत हो रहे थे जिस तरह चन्द्रमा अपनी प्रियतमा तारिकाओं से घिरे हुए सुशोभित हो रहे हों ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

प्रियस्येक्षणेनोत्फुल्लानि मुखानि यासां ताभिः उदारहासश्च द्विजाश्च तेषु कुन्दकुसुमवद्दीधितिर्यस्य सः एणाङ्कश्चन्द्रः॥४३॥

भाव प्रकाशिका

अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के देखने से गोपियों का मुख कमल विकसित हो गया था । श्रीभगवान् की उन्मुक्त हँसी से उनकी दन्त पंक्ति कुन्दकली की पंक्ति के समान सुशोभित होती थी । **एणाङ्क** अर्थात् चन्द्रमा ॥४३॥

उपगीयमान उद्गायन्वनिताशतयूथपः । मालां बिभ्रद्वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन्वनम् ॥४४॥

अन्वयः— वनिताशत यूथपः वैजयन्तीं मालां विभ्रद् वनम् मण्डयन् उपगीयमानः उद्गायन् ॥४४॥

अनुवाद— सैकड़ों गोपी समूह के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण वनमाला धारण किए हुए वन को सुशोभित करते हुए विचरण करने लगे । उस समय गोपियाँ कभी उनकी लीलाओं का गान करती थीं तो कभी भगवान् श्रीकृष्ण गोपियों के सौन्दर्य तथा प्रेम का गीत गाने लगते थे ॥४४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४४॥

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् । रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना ॥४५॥

अन्वयः— नद्याः पुलिनम् गोपीभिः आविश्य तत्तरलानन्द कुमुदामोदवायुना हिमबालकम् गोपीभिः रेमे ॥४५॥

अनुवाद— उसके पश्चात् श्रीभगवान् यमुनाजी के तट पर आये । वहाँ गोपियों के साथ तट में प्रवेश करके यमुनाजी के चञ्चलत तरङ्गों का स्पर्श करके तथा कुमुद की सुगन्धि से सुगन्धित शीतल वालू पर गोपियों के साथ भगवान् रमण किए ॥४५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४५॥

बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।
क्ष्वेल्याऽवलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तम्भयन्रतिपतिं रमयांचकार ॥४६॥

अन्वयः— बाहुप्रसार परिरम्भकरालकोरुनीवी स्तनालभननर्मनखाग्रपातैः क्ष्वेल्या अवलोकहसितैः व्रजसुन्दरीणाम् रतिपतिम् उत्तम्भयन् रमयाञ्चकार ॥४६॥

अनुवाद— हाथ फैलाना, आलिङ्गन करना, हाथ दबाना, चोटी पकड़ना जङ्घा का स्पर्श करना नीवी बंधन, और स्तन का स्पर्श करना हँसी करना तथा नखक्षत करना, क्रीडा के द्वारा चितवन एवं हँसी के द्वारा व्रज सुन्दरियों के काम को उत्तेजित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उन सबों को रमण कराये ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

बाहुप्रसारश्च परिरम्भश्च करादीनामालभनं स्पर्शश्च नर्म परिहासश्च नखाग्रपातश्च तैः । क्ष्वेल्या क्रीडया । अवलोकैश्च हसितैश्च कामं तासामुद्दीपयंस्ता रमयामास ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

हाथों के फैलाने, आलिङ्गन करने हाथ आदि का स्पर्श करने हँसी करने नखक्षत करने आदि के द्वारा तथा क्रीडा के द्वारा अवलोकन तथा हँसी के द्वारा उन सबों के काम को उद्दीपित करते हुए श्रीभगवान् उन सबों को रमण कराये ॥४६॥

एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः । आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥४७॥

अन्वयः— एवं महात्मनः भगवतः कृष्णात् लब्धमानाः मनिन्यः आत्मानं भुवि स्त्रीणाम् अभ्यधिकं मेनिरे ॥४७॥

अनुवाद— इस तरह से महापुरुष भगवान् श्रीकृष्ण से सम्मान प्राप्त वे गोपियाँ अपने को संसार की सभी स्त्रियों से अधिक सौभाग्य सम्पन्न मानने लगीं ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

महात्मनो विमुक्तचित्तात् ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

सबों से अनासक्त रहने वाले ॥४७॥

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः । प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥४८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भगवतो रासक्रीडावर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अन्वयः— केशवः तासां तत् सौभगमदं मानं च वीक्ष्य केशवः प्रशमाय प्रसादाय तत्रैव अन्तरधीयत ॥४८॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण उन गोपियों के सौभाग्य के मद को तथा मान को देखकर उन सबों के उस मद एवं मान को शान्त करने के लिए तथा उन सबों पर कृपा करने के लिए उन सबों के बीच से ही अन्तर्धान हो गये ॥४८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के श्रीभगवान की रास क्रीड़ा वर्णन नामक उनतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तत्सौभगेन मदमस्वाधीनताम् । मानं गर्वम् । केशवः कश्च ईशश्च तौ वशयतीति तथा सः ॥४८॥

श्रीमद्भागवत महापुराणे दशम स्कन्धे पूवार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

तत् सौभगेन अर्थात् उस सौभाग्य के कारण जो उत्पन्न मद अर्थात् अस्वाधीनता को । मान अर्थात् गर्व। **केशवः** अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण **के** शब्द वाच्य ब्रह्माजी को तथा **ईश** शब्द वाच्य शङ्करजी को अपने वश में रखते हैं अतएव केशव शब्द से अभिहित किए जाते हैं ॥४८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के उनतीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२९।।

तीसवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण के विरह में गोपियों की दशा

श्रीशुक उवाच

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः । अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ।।१।।

अन्वयः— भगवति सहसा एवं अन्तर्हिते यूथपम् अचक्षाणाः करिण्यः इव व्रजाङ्गनाः तम् अचक्षाणाः अतप्यन् ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवान् गोपियों के बीच से एकवायेक अन्तर्धान हो गये, ऐसी स्थिति जिस तरह हथिनियाँ अपने समूह के संरक्षक गजराज को नहीं देखकर संतप्त हो जाती हैं उसी तरह वे गोपियाँ भी श्रीभगवान् को नहीं देखकर उनकी विरह की ज्वाला से संतप्त हो गयी ।।१।।

भावार्थ दीपिका

त्रिंशे विरहसंतप्तगोपीभिः कृष्णमार्गणम् । उन्मत्तवन्नियतं भ्रमन्तीभिर्वनेवने । अचक्षाणा अपश्यन्त्यः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

तीसवें अध्याय में श्रीभगवान् की विरहाग्नि में संतप्त होकर गोपियाँ उन्मत के समान इधर-उधर एक वन से दूसरे वन में भटकती हुई भगवान् श्रीकृष्ण को खोजने लगीं इसी बात का वर्णन है । अचक्षाणा अर्थात् नहीं देखकर।।१।।

गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ।।२।।

अन्वयः— गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितै; मनोरमालापविहारविभ्रमैः आक्षिप्तचित्ताः तदात्मिकाः प्रमदाः रमापतेः ताः ताः विचेष्टाः जगृहुः ।।२।।

अनुवाद— भगवान श्रीकृष्ण अपनी मदमत्त गजराज के समान चाल, प्रेमपूर्ण मुस्कान, विलासपूर्ण प्रेक्षण (देखना) मनोहर प्रेमपूर्ण आलाप, विभिन्न प्रकार की लीलाओं तथा शृङ्गारमय भाव भंगिमाओं के द्वारा गोपियों के चित्त को चुरा लिए थे । वे प्रेम की मतवाली गोपियाँ श्रीकृष्णमय हो गयी थीं वे सब भगवान् श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं का अनुकरण करने लगीं ।।२।।

भावार्थ दीपिका

गत्या चानुरागस्मिताभ्यां विभ्रमेक्षितानि सविलासनिरीक्षणानि तैश्च मनोरमा आलापाश्च विहाराः क्रीडाश्च विभ्रमा अन्ये

च विलासास्तैश्च रमापतेर्गत्यादिभिरेतैराक्षिप्तान्याकृष्टानि चित्तानि यासां ताः अतस्तस्मिन्नेवात्मा यासां तास्तस्य विविधाश्चेष्टा जगृहुस्तदनुकरणेनाक्रीडन् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण अपनी मनोरम चाल तथा अनुराग पूर्ण मधुर मुस्कान युक्त सविलासावलोकन, मनोज्ञ आलापों विहारों तथा दूसरे विलासों के द्वारा गोपियों के चित्त को आकृष्ट कर लिए थे । अतएव उन गोपियों का मन सदा भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगे रहने के कारण कृष्णमय हो गयी थीं वे गोपियाँ श्रीभगवान् की विविध लीलाओं का अनुकरण करने लगीं ॥२॥

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः ।
असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥३॥

अन्वयः— प्रियस्य गतिस्मित प्रेक्षणभाषणादिषु प्रतिरूढ मूर्तयः प्रियाः तदात्मिकाः कृष्ण विहारविभ्रमाः अबला तु असौ अहं इति न्यवेदिषुः ॥३॥

अनुवाद— अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण की चाल, मधुर मुस्कान, प्रेमपूर्ण देखने की मनोज्ञ कला तथा प्रेमपूर्ण बोलना आदि की साक्षात् मूर्तिमती गोपियाँ श्रीभगवान् की प्रियतमा गोपियाँ भगवत्स्वरूप ही हो गयी थी । भगवान् श्रीकृष्ण की विहार के विलास से तादात्म्या क्षेप करके कहने लगी मैं श्रीकृष्ण ही हूँ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अपिच गतिस्मितेति । प्रियस्य गत्यादिषु प्रतिरूढा आविष्टा मूर्तयो यासां ता; । अतः कृष्णविहारविभ्रमाः कृष्णस्येव विहारविभ्रमाः क्रीडाविलासा यासां ताः । अहमेव कृष्ण इति परस्परं निवेदितवत्यः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की गति आदि में जिनका का शरीर आवेश युक्त हो गया था । अतएव भगवान् श्रीकृष्ण के ही समान क्रीडा करने वाली गोपियाँ परस्पर में एक दूसरे से कहने लगीं कि मैं ही श्रीकृष्ण हूँ ॥३॥

गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम् ।
पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥४॥

अन्वयः— संहताः उच्चैः अमुमेव गायन्त्यः उन्मत्तकवत् बनाद वनम् विचिक्युः आकाशवदन्तरं बहिः भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् पप्रच्छुः ॥४॥

अनुवाद— वे परस्पर में एक साथ मिलकर भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान करती हुई, पागल के समान एक वन से दूसरे वन में श्रीभगवान् का आन्वेषण करने लगीं तथा आकाश के समान सभी भूतों के भीतर तथा बाहर विद्यमान परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में वनस्पतियों से पूछने लगीं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

किंच गायन्त्य इति । वनाद्वनान्तरं गच्छन्त्यो विचिक्युरमृगयन् । उन्मत्ततुल्यत्वमाह-वनस्पतीन्पप्रच्छुः भूतेष्वन्तरं मध्ये सन्तं पुरुषं बहिश्च सन्तमिति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के विरह में व्याकुल गोपियाँ एक वन से दूसरे वन में जाकर श्रीभगवान् का अन्वेषण करने लगीं। वे उन्मत्त के समान वनस्पतियों से श्रीभगवान् का पता पूछने लगीं । वे भगवान् सभी भूतों के भीतर भी हैं, और बाहर भी हैं ॥४॥

दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः । नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥५॥

अन्वयः— हे अश्वत्थ, हे प्लक्ष, हे न्यग्रोध प्रेमहासावलोकनैः नः मनः हृत्वा गतः नन्दसूनु कच्चिद् वः दृष्टः ॥५॥

अनुवाद— हे अश्वथ वृक्ष ! हे पाकड़ हे वटवृक्ष ! प्रेमपूर्ण हँसी के विलास से मनोहर बने अपने मनोहर अवलोकन की कला से हमारे मन को चुराकर गये हुए नन्दनन्दन श्रीकृष्ण को तुमलोगों ने कहीं देखा है क्या?॥५॥

भावार्थ दीपिका

तत्प्रपञ्चयति नवभिः-तत्र महत्त्वादेते पश्येयुरित्याशयाऽश्वत्थादीन्पृच्छन्ति-दृष्ट इति । प्रेमहासविलसितरवलोकनैरस्माकं मनो हृत्वा चोर इव गतो वो युष्माभिः किं दृष्ट इति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

गोपियों की उन्मत्तता का ही विस्तार से वर्णन करते हैं वन के महान् वृक्ष होने के कारण ये सब हो सकता है कि श्रीकृष्ण को देखे हों इसलिए वे पिप्पल के वृक्ष आदि से पूछती हैं । प्रेमपूर्ण हँसी से युक्त देखने की मनोहर कला से उन्होंने हमारे मन को चुरा लिया है । जिस तरह चोर किसी की सम्पत्ति चुराकर भाग जाता है, उसी तरह श्रीकृष्ण हमलोगों के मन को ही चुराकर चोर के ही समान कहीं चले गये क्या तुमलोगों ने श्रीकृष्ण को देखा है ?॥५॥

कच्चित्कुरबकाशोकनागपुन्नागचम्पकाः । रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मितः ॥६॥

अन्वयः— हे कुरबकाशोकनागपुन्नागचम्पकाः मानिनीनाम् दर्पहरस्मितः रामानुजः कच्चित् इतः ॥६॥

अनुवाद— हे कुरबक ! हे अशोक हे पुंनाग ! हे चम्पक ! अपनी मधुर मुस्कान से मानिनियों को मान का मर्दन करने वाले बलरामजी के छोटे भाई श्रीकृष्ण इधर गये हैं क्या ?॥६॥

भावार्थ दीपिका

महान्तः स्वपुष्पैर्बहूपकारिणश्चेति कुरबकादीन्पृच्छन्ति-कच्चिदिति । हे कुरबकादयः, दर्पहरं स्मितं यस्य स इतो गतः कच्चिद्दृष्ट इति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

अपने पुष्पों से बहुत लोगों का उपकार करने के कारण महान् कुरवक आदि से वे सब पूछती हैं । हे कुरबक आदि अपने मुस्कान मात्र से मानिनियों के मान का अपहरण करने वाले श्रीकृष्ण इधर गये हैं, क्या आपलोगों ने देखा है ?॥६॥

कच्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये । सह त्वाऽलिकुलैर्बिभ्रद्दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥७॥

अन्वयः— हे गोविन्द चरण प्रिये कल्याणि तुलसि सहत्वा लिकुलैः विभ्रद् ते अतिप्रियः अच्युतः दृष्टः कच्चित् ॥७॥

अनुवाद— हे भगवान् गोविन्द के चरणों से प्रेम करने वाली, सबों का कल्याण करने वाली तुलसी भ्रमर समूह से युक्त तुम्हारी माला को धारण करने वाले तथा तुम्हारे अत्यन्त प्रिय अपने स्वभाव में सदा स्थित रहने वाले श्रीकृष्ण को तुमने कहीं देखा है क्या ?॥७॥

भावार्थ दीपिका

अलिकुलैः सह त्वा त्वां बिभ्रत्तवातिप्रियस्त्वया किं दृष्ट इति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

भ्रमर समूह के साथ तुम्हारी माला को धारण करने वाले तथा तुम्हारे अत्यन्त प्रिय श्रीकृष्ण को तुमने देखा है क्या ?॥७॥

मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके । प्रीतिं वो जनयन्यातः करस्पर्शेन माधवः ॥८॥

अन्वयः— हे मालति, हे मल्लिके, हे जाति हे यूथिके ? कच्चित् करस्पर्शेन वः प्रीतिं जन्यन् माधवः यातः ॥८॥

अनुवाद— हे मालती, हे मल्लिके, हे जाति, हे जूही क्या अपने हाथों के स्पर्श के द्वारा तुमलोगों को आनन्दित करते श्रीमाधव इधर से गये हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

गुणातिरेकेऽपि नम्रत्वादिमाः पश्येयुरिति पृच्छन्ति- मालतीति । हे मालति मल्लिके, जाति, यूथिके, वो युष्माभिः किमदर्शि दृष्टः । करस्पर्शेन वः प्रीतिं जनयन् किं यात इति । अत्र मालतीजात्योरवान्तरविशेपो द्रष्टव्यः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अधिक गुण से युक्त होने पर नम्र बनी रहने वाली ये सब हो सकता है कि देखी हो अतएव पूछती हैं हे मालति, मल्लिके, जाति यूथिके (जूही) क्या तुम लोगों ने देखा कि अपने हाथों से तुमलोगों का स्पर्श करके तुमलोगों को आनन्दित बनाते हुए श्रीकृष्ण इधर से गये हैं ?॥८॥

चूतप्रियालपनसासनकोविदारजम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः ।
येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥९॥

अन्वयः— हे चूतप्रियल पनसासनकोविदारजम्ब्वर्क विल्वबकुलाम्र कदम्बनीपाः येऽन्ये परार्थभवकाः यमुनोपकूलाः रहितात्मनां नः कृष्णपदवीं शंसन्तु ॥९॥

अनुवाद— हे रसाल प्रियाल, कटहल, पीतशाल, कचनार, जामुन, आक, बिल्व, मौलसिरी, आम, कदम्ब, नीप तथा दूसरे वृक्ष परोपकारी वृक्ष जो यमुनातट पर विद्यमान हैं शून्य अन्तःकरण वाली हमलोगों को श्रीकृष्ण के मार्ग को बतलाओ ॥९॥

भावार्थ दीपिका

फलादिभिः सर्वप्राणिनां संतर्पका एते पश्येयुरिति पृच्छन्ति-चूतेति । चूताम्रयोरवान्तरजातिभेदः कदम्बनीपयोश्च । हे चूतादयः, येऽन्ये च परार्थभवकाः परार्थमेव भवो जन्म येषां ते । यमुनोपकूलास्तस्या; कूलसमीपे वर्तमानः । तीर्थवासिन इत्यर्थः । ते भवन्तो रहितात्मनां शून्यचेतसां नः कृष्णपदवी कृष्णस्य मार्गं शंसन्तु कथयन्तु ॥९॥

भाव प्रकाशिका

यह सोचकर कि अपने फल आदि के द्वारा दूसरों को तृप्त करने वाले हो सकता है कि ये वृक्ष श्रीकृष्ण को देखे हों अतएव इन वृक्षों से वे पूछती हैं आम का अवान्तर भेद है चूत संज्ञक आम, ऐसे ही कदम्ब और नीप में भी अवान्तर जाति का भेद है । हे रसाल आदि तथा जो दूसरों का उपकार करने के ही लिए जन्म लेने वाले दूसरे प्रकार के वृक्ष यमुनाजी के तट पर विद्यमान अर्थात् तीर्थवासी गण, आपलोग शून्य अन्तःकरण वाली हमलोगों को श्रीकृष्ण की प्राप्ति का मार्ग हमें बतलाओ ॥९॥

किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रिस्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैर्विभासि ।
अप्यङ्घ्रिसंभव उरुक्रमविक्रमाद्वा आहो वराहवपुषः परिरम्भणेन ॥१०॥

अन्वयः— हे क्षिति ते किं तपः कृतं बत केशवाङ्घ्रिस्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैः विभासि ?अप्यङ्घ्रि उरुक्रमविक्रमात् वा आहो वराहवपुषः परिरम्भणेन ॥१०॥

अनुवाद— हे श्रीभगवान् की प्रियतमे भूदेवि ! तुमने ऐसी कौन सी तपस्या की है कि श्रीकृष्ण के चरण कमलों

का स्पर्श प्राप्त करके तुम आनन्द से परिपूर्ण हो गयी हो । तथा तृणलता आदि के रूप में अपने रोमाञ्च को प्रकट कर रही हो । तुम्हारा यह हर्षातिरेक श्रीकृष्ण के चरण स्पर्श के कारण है क्या ? अथवा वामनावतार में त्रिविक्रम होकर के उन्होंने जो तुम पर पाद विक्षेप किया उसके कारण तुम्हारा यह उल्लास-विलास है ? अथवा उससे भी पहले वे वराह शरीर धारण करके तुम्हारा जो आलिङ्गन किया उसके कारण तुम्हारी यह दशा हो रही हैं ?॥१०॥

भावार्थ दीपिका

हे क्षिति क्षिते, त्वया किं तपः कृतं या त्वं केशवाङ्घ्रिस्पर्शोत्सवा केशवस्याङ्घ्रिस्पर्शेनोत्सवो यस्याः सा । कुतः अङ्गरुहैरुत्पुलकिता रोमाञ्चिता विभासि शोभसे । तत्र विशेषं पृच्छन्ति–अपि किमयमुत्सवोऽङ्घ्रिसंभवोऽधुना तवैकदेशाङ्घ्रिस्पर्शसंभूतः । यद्वा नैतावत्किंतु उरुक्रमविक्रमात्पूर्वमेव त्रिविक्रमस्य पदा सर्वाक्रमणात् । आहो अथवा । नैतावदेव, अपि तु ततोऽपि पूर्वं वराहस्य वपुषः परिरम्भणेनेति । अतस्त्वया नूनं दृष्टस्तं दर्शयेतिं ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी को संबोधित करके गोपियाँ कहती है कि हे भूदेवि ! आप तो श्रीभगवान् की प्रियतमा हैं । आपने कौन सा ऐसा तप किया है जिसके कारण श्रीकृष्ण के चरणों का स्पर्श पाकर इतना अधिक आनन्दित हो रही हो ? और लगता है कि तुम रोमाञ्चित हो रही हो । वे पृथिवी देवी से विशेष रूप से पूछती हैं आपका यह जो आनन्दाभिव्यक्ति है, भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का स्पर्श हो जाने से हो रही है क्या अथवा यह नहीं अपितु इससे भी पहले जब वामनावतार में श्रीभगवान् त्रिविक्रम होकर के पूर्णरूप से नाप लिए थे उसके कारण तुम्हारा हर्षातिरेक है ? या उससे भी पहले वराहरूप धारण करके उन्होंने जो तुम्हारा आलिङ्गन किया था उसके कारण तुम इतना आनन्दमग्न होकर उत्सव मना रही हो। निश्चय ही तुमने श्रीकृष्ण को देखा है अतएव तुम उनको हमें बतला दो॥१०॥

अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैस्तन्वन्दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ।
कान्ताङ्गसङ्गकुचकुङ्कुमरञ्जितायाः कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥११॥

अन्वयः— सखि ! एण पत्नि ! इह प्रियया गात्रैः वः दृशां सुनिवृत्तिं तन्वन् । अच्युतः इहउपगतः, कान्ताङ्गसङ्ग कुचकुङ्कुमरं जितायाः कुलपतेः कुन्दस्रजः गन्धः वाति ॥११॥

अनुवाद— हे सखी ! हरिणियों श्रीकृष्ण के अङ्गों से सुषमा की धारा प्रवाहित होती है, क्या अपनी प्रियतमा के साथ वे तुम सबों के नेत्रों को परमानन्द प्रदान करते हुए नन्दनन्दनइधर से गये हैं क्या ? अपनी परम प्रेयसी के अङ्ग सङ्ग से उनके स्तनों में लगे कुङ्कुम की सुगन्धि से सुगन्धित श्रीकृष्ण की कुन्द कली की माला की इधर से सुगन्धि आ रही है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

हरिण्या दृष्टिप्रत्यासत्त्या कृष्णदर्शनं संभाव्याहुः- अपीति । हे सखि एणपत्नि, अपि किमुपगतः समीपं गतः । गात्रैः सुन्दरैर्मुखबाह्वादिभिः । प्रियया सहेति यदुक्तं तत्र द्योतकम् । कान्ताया अङ्गसङ्गस्तेन तत्कुचकुङ्कुमेन रञ्जितायाः कुन्दकुसुमस्रजो गन्धः । कुलपतेः श्रीकृष्णस्य वात्यागच्छति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

हरिणी की दृष्टि सा दृश्य को देखकर उन सबों द्वारा श्रीकृष्ण दर्शन की संभावना करके गोपियों ने हरिणियों से पूछा हे सखि ! हरिणी क्या तुम्हारे सन्निकट से होकर श्रीकृष्ण गये हैं क्या ? अपने सुन्दर मुख तथा भुजाओं आदि अङ्गों से युक्त अपनी प्रियतमा के साथ श्रीकृष्ण इधर से गये हैं क्या ? प्रियतमा के अङ्ग संश्लेष के कारण उसके स्तनों में लगे केसर की सुगन्धि से रञ्जित श्रीकृष्ण की कुन्दकली की माला की सुगन्धि इधर से आ रही है ॥११॥

बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः ।
अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं किं वाभिनन्दति चरन्प्रणयावलोकैः ।।१२।।

अन्वयः— हे तरवः प्रियांसे बाहुं उपधाय गृहीतपद्मः तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः अन्वीयमानः इहरामानुजः चरन् वः प्रणामं प्रणयावलोकै किं अभिनन्दति वा ।।१२।।

अनुवाद— हे वृक्षों ! अपनी एक भुजा प्रियतमा के कन्धे पर रखकर दूसरे हाथ में कमल पुष्प धारण किए हुए तथा तुलसी की माला की सुगन्ध से मदमत्त बने भ्रमर समूह जिनके पीछे-पीछे चलते रहते हैं इस तरह से बलरामजी के छोटे भाई श्रीकृष्ण विचरण करते हुए तुमलोगों द्वारा किए गये प्रणाम का अपने प्रेमपूर्ण वीक्षण के द्वारा अभिनन्दन किए कि नहीं ?।।१२।।

भावार्थ दीपिका

फलभारेण नतांस्तरून्कृष्णं दृष्ट्वा प्रणता इति मत्वा प्रियया सह तस्य गतिविलासं संभावयन्त्यः पृच्छन्ति-वाहुमिति। तुलसिकाया अलिकुलैरतस्तदामोदमदान्धैरन्वीयमानोऽनुगम्यमान इह चरन्निति ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

फलों के भार से झुके हुए वृक्षों को देखकर गोपियों को लगा कि सभी वृक्ष झुक कर श्रीकृष्ण को प्रणाम किए हैं। यह मानकर वे वृक्षों से पूछती हैं कि अपनी प्रियतमा के साथ भगवान् श्रीकृष्ण की गति विलास का समादर करती हुई पूछती हैं तुलसी की सुगन्धि से मदान्ध बने भ्रमर समूह से अनुगत श्रीकृष्ण विचरण करते हुए।।१२।।

पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा वनस्पते । नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ।।१३।।

अन्वयः— इमा लताः पृच्छत बाहून् अपि वनस्पतेःअश्लिष्ट नूनं तत् करजस्पृष्टाः उत्पुलकानि विभ्रति अहो ।।१३।।

अनुवाद— अरी सखी इन लताओं से पूछो ये अपने पति वृक्षों को अपने भुजपाश मे बाँधकर रखी हैं, इसको क्या हुआ ? इन सबों के शरीर में जो रोमाञ्च हो रहा है वह तो श्रीकृष्ण के नख के स्पर्श के कारण ही है । कितना सौभाग्य इन सबोंका है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

काश्चिदाहुः हे सख्यः, इमा लताः कृष्णेन सङ्गता नूनम्, अत इमाः पृच्छत । ननु स्वपतिसङ्गतौ तत्सङ्गतिर्दुर्घटा, न। वनस्पतेः पत्युर्बाहुनाश्लिष्टा अपि अहो भाग्यं नूनं तन्नरवैः स्पृष्टा यत उत्पुलकानि बिभ्रति । नहि स्वपतिसङ्गतावीदृक्पुलकसंभव इति भावः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

दूसरी कुछ गोपियों ने कहा हे सखी इन लताओं से तो पूछो । ये लताएँ निश्चित रूप से श्रीकृष्ण से मिली हैं । अतएव इन सबों से पूछो । यदि कहो कि ये तो अपने पति वृक्षों के साथ है, अतएव श्रीकृष्ण इनसे मिले हैं तो ऐसी बात नहीं है । यद्यपि ये अपने पति वृक्षों का आलिङ्गन किए हुई है, किन्तु इन सबों का यह सौभाग्य श्रीकृष्ण के नखों से स्पृष्ट होने के ही कारण है । क्योंकि ये सब रोमाञ्चित हो रही हैं अपने पति वृक्षों से संगत होने पर भी इनका इस तरह से रोमाञ्चित होना संभव नहीं है ।।१३।।

इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषकातराः । लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ।।१४।।

अन्वयः— इत्युन्मत्त वचः गोप्य कृष्णान्वेषण कातराः, तदात्मिकाः भगवतः ताः ताः लीला हि अनुचक्रु ।।१४।।

अनुवाद— इस तरह उन्मत्त गोपियाँ प्रलाप करती हुई भगवान् श्रीकृष्ण को खोजते-खोजते कातर हो गयी

थीं । उनके भीतर भगवद् विषयक गाढ आवेश हो गया और भगवनमय हो गयी थीं । इसके बाद उन सबों ने भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का अनुकरण करना प्रारम्भ कर दिया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

उन्मत्तवत्पप्रच्छुरित्येतत्प्रपञ्चितमिदानीं-'रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिका:' इति यदुक्तं तत्प्रपञ्चयति-इतीति । उन्मत्तवचो गोप्य: उन्मत्तवचसश्च ता गोप्यश्च । कृष्णान्वेषणेन कातरा अतिविह्वला: । अनुचक्रुरनुकृतवत्य: ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

वे उन्मत्त के समान वनस्पतियों से पूछने लगीं, पीछे शुकदेवजी कहें है उसका तो विशद वर्णन किया जा चुका । अब शुकदेवजी ने यह जो कहा है कि परमात्मात्मक होने के कारण वे श्रीभगवान् की लीलाओं का अनुकरण करने लगीं । अपनी इसी सूक्ति का वे विस्तार से वर्णन प्रारम्भ करते हुए **इत्युन्मत्त० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । पागल के समान बोलने वाली गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्ण का अन्वेषण करते-करते अत्यन्त विह्वल हो गयी थीं । अतएव वे भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का अनुकरण करने लगीं ।।१४।।

कस्याश्चित्पूतनायन्त्या: कृष्णायन्त्यपिबत्स्तनम् । तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाहन् शकटायतीम् ।।१५।।

अन्वय:— पूतनायन्त्या: कस्याश्चित् कृष्णायन्ती स्तनमपिबत् । अन्या तोकयित्वा रुदती शकटायतीम् पदा अहन्।।१५।।

अनुवाद— कोई गोपी जब पूतना का अनुकरण कर रही थी दूसरी गोपी कृष्ण बनकर उसका स्तनपान करने लगी । कोई गोपी जब छकड़े का रूप धारण की थी तो दूसरी छोटे बच्चे का अनुकरण करके रोती हुई उसे अपने पैर से मारी ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

कस्याश्चिदित्यादिभिश्चतुर्भिरनुकरणं प्रपञ्च्यते, ततश्चतुर्भिस्तन्मयत्वं पुनरेकेनानुकरणमिति विवेक: । पूतनायन्त्या; पूतनावदाचरन्त्या; कृष्णवदाचरन्ती स्तनमपिबत् । तोकायित्वा तोकवदात्मानं कृत्वा ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

कस्याश्चित् इत्यादि चार श्लोकों से गोपियों द्वारा श्रीभगवान् की लीलाओं के अनुकरण का वर्णन किया गया है उसके पश्चात् चार श्लोक से गोपियों के परमात्म मयत्व का वर्णन है और तदनन्तर पुन: एक श्लोक के द्वारा अनुकरण का वर्णन किया गया है । पूतनायन्त्या: अर्थात् पूतना के समान आचरण करने वाली का कृष्ण के समान आचरण करने वाली दूसरी गोपी. उसका स्तनपान करने लगी। तोकयित्वा अर्थात् छोटे बाल के समान अपने को बनाकर ।।१५।।

दैत्यायित्वा जहारान्यामेका कृष्णार्भभावनाम् । रिङ्गयामास काप्यङ्घ्री कर्षन्ती घोषनि: स्वनै: ।।१६।।

अन्वय:— दैत्यायित्वा अन्या एका अन्या कृष्णार्भभावनाम् अन्याम् जहार, कापि घोषनि: स्वनै अङ्घ्रीकर्षन्ती रिङ्गयामास ।।१६।।

अनुवाद— कोई गोपी कृष्ण बन कर बैठ गयी तो दूसरी तृणावर्त दैत्य का रूप धारण करके उसे हर ले गयी । कोई गोपी अपने पैरों को घसटती हुई घुटरु चलने लगी तो उसके पाय जेब के घुघुरु बजने लगे ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

दैत्यायित्वा दैत्यवत्तृणावर्तवदात्मानं कृत्वा एका कृष्णार्भभावनां कृष्णस्यार्भं बाल्यं भावयति या तामन्या जहार ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

एक गोपी जब कृष्ण के समान बालक बन कर बैठ गयी तो दूसरी तृणावर्त दैत्य बनकर उसका अपहरण कर ली ॥१६॥

कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन । वत्सायन्तीं हन्ति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥१७॥

अन्वयः— द्वे कृष्ण रामायित तु काश्चन गोपायन्त्यः अन्याच वत्सायन्तीं हन्ति एकाबकायतीम् हन्ति ॥१७॥

अनुवाद— जब दो गोपियाँ अलग-अलग बलराम और कृष्ण बन गयीं तो अन्य गोपियाँ ग्वाल बाल बन गयीं। दूसरी गोपी ने वत्सासुर बनी हुई गोपी को मारने की लीला की तो उससे भिन्न गोपी ने बकासुर बनी हुई गोपी को कृष्ण बनकर मारने की लीला की ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

आहूय दूरगा यद्वत्कृष्णस्तमनुवर्ततीम् । वेणुं क्वणन्तीं क्रीडन्तीमन्याः शंसन्ति साध्विति ॥१८॥

अन्वयः— यद्वत् दूरगाः आहूय कृष्णः तमनुवर्ततीम् वेणुं क्वणन्तिम् क्रीडन्तीम् अन्याः साधु इति शंसन्ति ॥१८॥

अनुवाद— जिस तरह भगवान् श्रीकृष्ण दूर गयी हुई गायों को बुलाते थे उसी तरह उनका अनुकरण करके वंशी बजाकर क्रीडा करती हुई गोपी की दूसरी गोपियों ने बहुत अच्छा कहकर प्रशंसा की ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

दूरगाः दूरे वर्तमाना गाः । यद्वद्यथा कृष्णस्तथाहूय तं कृष्णमनुवर्तमानाम् । अनुकुर्वतीमिति वा पाठः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

दूर गयी गायों को जैसे श्रीकृष्ण भगवान् नाम से पुकारते थे, उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण के समान बुलाकर श्रीकृष्ण भगवान् का अनुकरण करने वाली गोपी को । अनुवर्ततीम् के स्थान पर अनुकुर्वतीम् भी पाठ हो सकता है ॥१८॥

कस्यांचित्स्वभुजं न्यस्य चलन्त्याह पराननु । कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥१९॥

अन्वयः— कस्यांचित् स्वभुजं न्यस्य तन्मना चलन्ती पराननु आह, अहं कृष्णः ललितां गतिं पश्यत ॥१९॥

अनुवाद— अपने को श्रीकृष्ण समझकर कोई गोपी दूसरी गोपी के कन्धे पर हाथ रखकर कही मित्रों ! मैं श्रीकृष्ण हूँ मेरी सुन्दर चाल तो देखों ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहितं मया । इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निद धेऽम्बरम् ॥२०॥

अन्वयः— वातवर्षाभ्यां मा भैष्ट मया तत् त्राणं विहितम् इत्युक्त्वा एकेन हस्तेन यतन्ती अम्बरम् उन्निदधे ॥२०॥

अनुवाद— एक गोपी अपने को श्रीकृष्ण समझकर कहने लगी आँधी पानी से डरो मत, उससे बचने का उपाय मैंने निकाल लिया यह कहकर सप्रयास अपने एक हाथ से अपनी ओढ़नी को तान ली ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

यतन्ती प्रयत्नं कुर्वती अम्बरमुत्तरीयं वस्त्रमुन्निदधे उर्ध्वं धृतवती ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

प्रयास पूर्वक एक हाथ से ही अपने उत्तरीय को ऊपर तान दी ॥२०॥

आरुह्यैका पदाक्रम्य शिरस्याहापरां नृप । दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं खलानां ननु दण्डधृक्॥२१॥

अन्वयः— नृप! एका शिरसि आरुह्य अपरां पदा आक्रम्य आह, दुष्ट! अहे! गच्छ अहं ननु दुष्टानां दण्डधृक् जातः॥२१॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् कालिय बनी हुई गोपी के सिर पर चढकर तथा उसे पैर से दबाकर किसी गोपी ने कालिय बनी गोपी से कही दुष्ट नाग तुम यहाँ से चले जाओ मैं दुष्टों का दमन करने के ही लिए जन्म लिया हूँ ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम् । चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममञ्जसा ॥२२॥

अन्वयः— तत्र एका उवाच हे गोपाः उल्बणम् दावाग्निम् पश्यत आशु चक्षूंषि अपिदध्वम् वः अञ्जसाक्षेमम् विधास्ये॥२२॥

अनुवाद— एक गोपी ने कहा गोपों भयङ्कर वनाग्नि को देखो । शीघ्र अपनी आँखों को बन्द कर लो मैं अनायास तुमलोगों की रक्षा कर लूँगा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अपिदध्वं निमीलयत ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अपिदध्वम् अर्थात् बन्द कर लो ॥२२॥

बद्धान्यया स्रजा काचित्तन्वी तत्र उलूखले । भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडम्बनम् ॥२३॥

अन्वयः— तत्र उलूखले स्रजा अन्यया बद्धा काचित् भीता सुदृक् आस्यं पिधाय भीतिविडम्बनम् भेजे ॥२३॥

अनुवाद— यशोदा बनी हुई किसी गोपी ने कृष्ण बनी हुई दूसरी गोपी को फूल की माला से ऊखल में बाँध दिया और दूसरी भयभीत कृष्ण बनी हुई गोपी अपने सुन्दर मुख को ढँककर भय की नकल करने लगी ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

सुदृक् सुनयनमास्यं पिधाय । सुदृक् वराक्षीति वा । भीतिविडम्बनं भयानुकरणम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

सुदृक आस्यम् अर्थात् सुन्दर नेत्रं वाले मुख को अथवा सुदृक् अर्थात् सुन्दर नेत्रों वाली **भीतिविडम्बनम्** भय की नकल ॥२३॥

एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून् । व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥२४॥

अन्वयः— एवं वृन्दावनलतातरुन् कृष्णं पृच्छऽमानाः वनोद्देशे परमात्मनः पदानि व्यचक्षत ॥२४॥

अनुवाद— इस तरह वृन्दावन की लताओं और वृक्षों से श्रीकृष्ण भगवान् को पूछती हुई गोपियों ने वन में एक स्थान पर भगवान् श्रीकृष्ण के पैरों का चिह्न देखा ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

एवं पुनरपि वृन्दावने लतास्तरूंश्च कृष्णं पृच्छन्त्यो वनोद्देशे वनप्रदेशे । व्यचक्षतापश्यन् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से पुनः वृन्दावन में लताओं और वृक्षों से अपने प्रियतम श्रीकृष्ण को पूछती हुई गोपियों ने वन में भगवान् श्रीकृष्ण के पैरों का चिह्न देखा ॥२४॥

पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः । लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥२५॥

अन्वयः— व्यक्तम् एतानि पदानि महात्मनः नन्दसूनोः, ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुश यवादिभिः हि लक्ष्यन्ते ॥२५॥

अनुवाद— वे आपस में कहने लगीं निश्चित रूप से ये चरणचिह्न उदार शिरोमणि श्रीकृष्ण के हैं इस बात का पता इनमें विद्यमान ध्वजा, कमल, वज्र, अङ्कुश तथा यव आदि के चिह्नों से चलता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका-- - नहीं है ॥२५॥

तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः । वध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥२६॥

अन्वयः— अग्रतः तैः तैः पदेः तत्पदवीम् अन्वीच्छन्त्य अबलाः बध्वाः पदैः सुपृक्तानि विलोक्य आर्ताः समबुवन्॥२६॥

अनुवाद— आगे-आगे श्रीभगवान् के उन चरण चिह्नो के सहारे श्रीभगवान् का अन्वेषण करती हुई गोपियों ने उनके चरण चिह्नों के साथ किसी व्रजाङ्गना के चरण चिह्न को देखकर व्याकुल बनी हुई गोपियों ने कहा॥२६॥

भावार्थ दीपिका

सुपृक्तानि संमिश्राणि ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

सुपृक्तानि अर्थात् मिले हुए ॥२६॥

कस्याः पदानि चैतानि याताया नन्दसूनुना । अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ॥२७॥

अन्वयः— करेणोः करिणा यथा अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः नन्दसूनुना यातायां एतानि च पदानि कस्याः ॥२७॥

अनुवाद— जिस तरह हथिनी अपने प्रियतम गजराज के साथ गयी हो उसी तरह अपने श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण के कन्धे पर हाथ रखकर गई हुई यह किस व्रज सिमन्तिनी के चरण चिह्न हैं ?॥२७॥

भावार्थ दीपिका

तेनांसे न्यस्तः प्रकोष्ठो यस्याः । करेणोर्हस्तिन्याः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

जिसका हाथ भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने कन्धे पर रखा है । करेणो; हथिनी के ॥२७॥

अनयाराधितो नूनं भगवान्हरिरीश्वरः । यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥२८॥

अन्वयः— नूनम् ईश्वरः भगवान् हरिः अनया आराधितः यत् नः विहाय प्रीतः गोविन्दः याम् रहः अनयत् ॥२८॥

अनुवाद— निश्चित रूप से सम्पूर्ण जगत् के नियामक सर्वैश्वर्य सम्पन्न श्रीहरिः की इसने आराधना की है। जिसके कारण हम सबों को छोड़कर गोविन्द अकेले उसको ही एकान्त स्थान में लाये हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

रहः एकान्तस्थानम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

रहः अर्थात् एकान्त स्थान में ॥२८॥

धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः । यान्ब्रह्मेशो रमादेवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥२९॥

अन्वयः— हे आल्यः इमाः गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः धन्याः यान् अघनुत्तये ब्रहेशः रमादेवी मूर्ध्नि दधुः ॥२९॥

अनुवाद— हे सखियों ये गोविन्द के चरण कमलों की धूल भी धन्य हैं, जिन सबों को अपने पापापनोदनार्थ ब्रह्माजी, शङ्करजी तथा लक्ष्मी भी अपने शिर पर धारण करती हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

हे आल्यः सख्यः, अहो धन्या अतिपुण्या गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः । तत्र हेतुः- यानिति । अस्माभिरप्येतद्रेण्वभिषेकेण तथैव कृष्णः प्राप्तुं शक्य इति भावः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

सखियों ने आपस में कहा हे सखियों भगवान् गोविन्द के चरण कमलों की धूल भी धन्य हैं । उसका कारण है **यान्० इत्यादि** उत्तरार्ध के द्वारा गोपियों ने बतलाया है । अतएव हमलोग भी उनके चरण कमलों की धूल को अपने सिर पर धारण करके श्रीकृष्ण को प्राप्त कर सकती हैं ।।२९।।

तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वन्त्युच्चैः पदानि यत् । यैकापहृत्य गोपीनां रहो भुङ्क्तेऽच्युताधरम् ।।३०।।

अन्वयः— तस्याः अमूनि पदानि नः उच्चैः क्षोभं कुर्वन्ति, या एका गोपीनां अपहृत्य रहः अच्युताधरम् भुंक्ते ।।३०।।

अनुवाद— दूसरी गोपियों ने कहा उसके ये चरण चिह्न तो हमारे हृदय में अत्यधिक क्षोभ उत्पन्न करते हैं जो अकेले हम सभी गोपियों के सर्वस्व श्रीकृष्ण का अपहरण करके एकान्त में उनके अधरों के अमृत रस का अकेले में पान कर रही है ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

अन्या आहुः-तस्या इति । गोपीनां सर्वस्वम् । अयं भावः-भवेदेवं यदि तस्याः पदानि संपृक्तानि न भवेयुस्तानि तु नो दुःखं कुर्वन्तीति ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

दूसरी सखियों ने **तस्याः इत्यादि** श्लोक कहा **गोपीनां सर्वस्वम्** अर्थात् हम सभी गोपियों का सर्वस्व, कहने का अभिप्राय है कि यदि उस सुन्दरी के चरण चिह्न श्रीकृष्ण के चरण चिह्नों से सम्पृक्त नहीं होते तब तो श्रीकृष्ण के चरण कमलों की धूल को अपने सिर पर धारण करने से हमलोग भी श्रीकृष्ण को प्राप्त कर सकती थी । किन्तु उस सुन्दरी के चरण चिह्न इनके चरणों से संपृक्त होकर तो हमलोगों को दुखी बनाते ही हैं ।।३०।।

न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणाङ्कुरैः । खिद्यत्सुजाताङ्घ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ।।३१।।

अन्वयः— अत्र तस्याः पदानि न लक्ष्यन्ते नूनं तृणाङ्कुरैः खिद्यत्सुजातांघ्रितलाम् प्रियः उन्निन्ये ।।३१।।

अनुवाद— यहाँ उसके चरण चिह्न नहीं दिखायी देते हैं । निश्चित रूप से श्रीकृष्ण ने देखा होगा कि मेरी प्रियतमा के सुकोमल चरणों में घासों की नोक गड़ती होगी और यह सोचकर वे उसको अपने कंधे पर बैठा लिए होंगे ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

तदसंपृक्तान्केवलं कृष्णपादरेणूनेव विचिन्वत्यस्तान्दृष्ट्वा पुनरत्यन्तं समतपन् तदाह श्लोकत्रयेण-न लक्ष्यन्त इति । खिद्यती सुजाते सुकुमारे अङ्घ्रितले यस्यास्तामुन्निन्ये स्कन्धमारोपितवान् ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

उस सुन्दरी के चरण चिह्नों से असम्पृक्त केवल श्रीकृष्ण के ही चरण चिह्नों को देखकर उन गोपियों के मन में अत्यन्त संताप हुआ । उसका वर्णन उन सबों ने **न लक्ष्यन्ते० इत्यादि** तीन श्लोकों से किया है । इसके सुकोमल चरणों के तलवों को अत्यधिक कष्ट होता होगा, अतएव उसको प्रियतम श्रीकृष्ण अपने कन्धे पर बैठा लिए होंगे ।।३१।।

इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् । गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः ॥
अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना ॥३२॥

अन्वयः— हे गोप्यः वधुम् वहतः कामिनः भाराक्रान्तस्य कृष्णस्य इमानि पदानि अधिकमग्नानि पश्यत ॥३२॥

अनुवाद— हे गोपियों अपनी प्रियतमा को कन्धे पर लेकर चलने वाले कामी भाराक्रान्त श्रीकृष्ण के चरण अधिक गहरे हैं देख लो ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः । प्रपदाक्रमणे एते पश्यतासकले पदे ॥३३॥

अन्वयः— महात्मना पुष्पहेतोः अत्र कान्ता अवरोपिता । अत्र प्रेयसा प्रियार्थे पुष्पावचयः कृतः एते प्रपदाक्रमणे असकले पदे पश्यत ॥३३॥

अनुवाद— यहाँपर प्रियतम श्रीकृष्ण ने पुष्प चुनने के लिए अपनी प्रियतमा को कन्धे पर से उतार दिए होंगे । यहाँ पर प्रेमी श्रीकृष्ण ने अपनी प्रेयसी के पुष्पों को चूना होगा । उचक-उचक कर फूल तोड़ने के कारण यहाँ पर उनके पंजे तो धरती में गड़े हैं किन्तु एड़ी का पता नहीं है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

प्रपदाभ्यामाक्रमणं क्षोणीमर्दनं ययोः । अत एवासकले पदे पश्यतेति ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

पंजों के बल खड़ा होने से उनके दोनों पैर अधिक गड़े हैं । किन्तु उनकी एड़ी नहीं दिखने से ये उनके अपूर्ण ही पद चिह्न हैं । देख लो ॥३३॥

केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् । तानि चूडयता कान्तामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥३४॥

अन्वयः— अत्र तु कामिना कामिन्या केश प्रसाधनं कृतम् कान्ताम् चूडयता तेन इह ध्रुवम् उपविष्टम् ॥३४॥

अनुवाद— यहाँ पर कामी श्रीकृष्ण ने उस कामिनी की चोटी को गूंथा होगा और उसके केशों में पुष्पों को सजाने के लिए वे यहाँ पर अवश्य बैठे होंगे ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

तस्याः कृष्णजान्वन्तरुपविष्टायाश्चिह्नं दृष्ट्वाहुः-केशप्रसाधनमिति । कान्तामधिकृत्य तानि प्रसूनानि चूडयता चूडानुकारेण बध्नता ध्रुवमुपविष्टम् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीकृष्ण की घुटनों के बीच में उस सुन्दरी के बैठने के चिह्न को देखकर वे सब कहीं कि यहाँ पर वे उसकी चोटी गूंथे होंगे । उस प्रेयसी को बैठाकर उसकी चोटी के अनुसार पुष्पों को गूंथते हुए श्रीकृष्ण यहाँ अवश्य बैठे हुए होंगे ॥३४॥

रेमे तया चात्मरत आत्मारामोऽप्यखण्डितः । कामिनां दर्शयन्दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥३५॥

अन्वयः— आत्मरतः अखण्डितः आत्मारामः अपि कामिनां दैन्यं स्त्रीणां च कुटिलता दर्शयन् तया रेमे ॥३५॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण अपने आप में सन्तुष्ट, आत्मा में ही रमण करने वाले तथा स्वयं परिपूर्ण हैं फिर भी कामियों की दीनता और स्त्रियों की कुटिलता का प्रदर्शन करते हुए वे वहाँ उसके साथ रमण किए होंगे॥३५॥

भावार्थ दीपिका

रेमे इत्यादिशुकोक्तिः । आत्मरतः स्वतस्तुष्टः । आत्मारामः स्वक्रीडः । अखण्डितः स्त्रीविभ्रमैरनाकृष्टोऽपि तथा चेत्किमिति रेमेऽत आह-कामिनामिति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

रेमे इत्यादि श्रीशुकदेवजी की उक्ति है । आत्मरतः अर्थात् अपने आप में संतुष्ट, आत्मारामः अपने मे ही रमण करने वाले, अखण्डितः स्त्रियों के विलास को देखकर आकृष्ट नहीं होने वाले होकर भी कामियों की दीनता का प्रदर्शन करते हुए ।।३५।।

इत्येवं दर्शयन्त्यस्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतसः । यां गोपीमनयत्कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने।।३६।।
सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम् । हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः।।३७।।

अन्वयः— इत्येवं दर्शयन्त्याः ताः विचेतसः गोप्यः चेरुः, कृष्णः अन्याः स्त्रियः वने विहाय कृष्णः यां गोपीम् अन्यत् सा च आत्मानं सर्वयोषितम् वरिष्ठ मेने कामयानाः गोपीः हित्वा असौ प्रियः माम् भजते ।।३६-३७।।

अनुवाद— इस तरह गोपियाँ मत्तवाली सी होकर तथा अपना सुध-बुध खोकर भगवान् श्रीकृष्ण के चरण चिह्नों को दिखाती हुई वन में भटक रही थीं, इधर भगवान श्रीकृष्ण सभी गोपियों को छोड़कर जिस सौभाग्यशालिनी को एकान्त में ले आये थे, वह मानने लगी कि मैं सभी गोपियों में श्रेष्ठ हूँ, इसीलिए तो श्रीभगवान् जो गोपियाँ उनको चाहती थी उन सबों को छोड़कर मुझे यहाँ लाये हैं और मेरा उपभोग करते हैं ?।।३६-३७।।

भावार्थ दीपिका

स्त्रीणां दुरात्मतामाह-सा चेति द्वाभ्याम् । कामो यानमागमनसाधनं यासां ता गोपीर्हित्वा मां भजत इति हेतोरात्मानं वरिष्ठं मेने इति ।।३६-३७।।

भाव प्रकाशिका

सा: च० इत्यादि दो श्लोकों से स्त्रियों की कुटिलता का वर्णन करते हैं । जिन गोपियों का काम ही आने का साधन है, उन गोपियों को छोड़कर श्रीभगवान् मेरा सेवन करते हैं । अतएव वह अपने को सभी गोपियों में श्रेष्ठ मानने लगी ।।३६-३७।।

ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत् । न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः ।।३८।।

अन्वयः— ततो वनोद्देशं गत्वा सा केशवम् अब्रवीत् । अहं चलितुं न पारये यत्र ते मनः मां नय ।।३८।।

अनुवाद— उसके पश्चात् एकान्त स्थान में आकर उस गोपी ने जो भगवान् ब्रह्माजी और शंकरजी के स्वामी हैं, उनसे कहा, अब मुझसे नही चला जा रहा है । अतएव आप जहाँचाहे हमें अपने कन्धे पर चढ़ाकर ले चलें।।३८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३८।।

एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्ध आरुह्यतामिति । ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत ।।३९।।

अन्वयः— एवमुक्तः प्रियाम् आह स्कन्धे आरुह्यताम् इति ततः च अन्तर्दधे, सा वधू अन्वतप्यत ।।३९।।

अनुवाद— इस तरह से गोपी के कहने पर श्रीभगवान् ने कहा प्रिये तुम मेरे कन्धे पर चढ जाओ । इसके पश्चात् ज्यों ही वह श्रीभगवान् के कन्धे पर चढ़ना चाही कि श्रीभगवान् अन्तर्धान हो गये और वह गोपी भी अपने किए पर पछताने लगी ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

कामिनां दैन्यं दर्शयति-एवमुक्त इति । अखण्डितत्वमाह-ततश्चेति । तस्यां सकन्धारोहोद्यतायामन्तर्हित इत्यर्थः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

एवमुक्तः इत्यादि श्लोक से कामियों की दीनता का वर्णन किया गया है । जब वह श्रीभगवान् के कन्धे पर चढ़ने को तैयार हुई तो भगवान् अन्तर्धान हो गये ।।३९।।

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज । दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय संनिधिम्।।४०।।

अन्वयः— हा नाथ, रमण ! प्रेष्ठ, हे महाभुज ! क्वासि ? क्वासि ? ते कृपणायाः दास्या हे सखे ! मे संनिधिम् दर्शय ।।४०।।

अनुवाद— पछताती हुई वह कहने लगी हे नाथ ! हे रमण ! हे प्रियतम ! हे विशाल भुजाओं वाले श्रीकृष्ण आप कहाँ है ? मैं तुम्हारी दीन-हीन दासी हूँ । आप शीघ्र मुझे अपने सांनिध्य का अनुभव करायें ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

अनुतापमाह-हा नाथेति ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

हा नाथ० इत्यादि श्लोक से उस गोपी के पछिताव का वर्णन किया गया है ।।४०।।

अन्विच्छन्त्यो भगवतो मार्गं गोप्योऽविदूरतः । ददृशुः प्रियविश्लेषमोहितां दुःखितां सखीम् ।।४१।।

अन्वयः— भगवतो मार्गं अन्विच्छन्त्यः गोप्यः अविदूरतः प्रिय विश्लेष मोहिताम् दुःखिताम् सखीम् ददृशुः ।।४१।।

अनुवाद— परीक्षित् श्रीभगवान् के चरण चिह्नों के सहारे श्रीभगवान् के मार्ग का अन्वेषण करती हुई गोपियाँ थोड़ी दूर से ही अपने प्रियतम के विश्लेष व्यथा के कारण मूर्छित अपनी दुखिता सखी को देखा ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

अन्विच्छन्त्यो मृगयमाणाः । अविदूरतः समीपे ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

अन्विच्छन्त्यः अन्वेषण करती हुई अविदूरतः समीप में ।।४१।।

तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् । अवमानं च दौरात्म्याद्विस्मयं परमं ययुः ।।४२।।

अन्वयः— तया कथितम् माधवात् मानप्राप्ति, दौरात्म्यादवमानं च आकर्ण्य परमं विस्मयं ययुः ।।४२।।

अनुवाद— गोपियों ने जब उसको जगाया तो उसने बतलाया कि श्रीभगवांन् ने उसका कितना सम्मान किया और उसने जो कुटिलता की उसके कारण श्रीभगवान् ने उसका अपमान किया ।।४२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४२।।

ततोऽविशन्वनं चन्द्रज्योत्स्ना यावद्विभाव्यते । तमः प्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः ।।४३।।

अन्वयः— स्त्रियः ततो वनं अविशन् यावत् चन्द्र ज्योत्स्ना विभाव्यते । तमः प्रविष्टम् आलक्ष्य ततो निववृतुः ।।४३।।

अनुवाद— जहाँ तक चन्द्रमा की चाँदनी से प्रकाश दिखता था वहाँ तक वे श्रीभगवान् का अन्वेषण करती हुई गयी और यह जानकर कि श्रीभगवान् घने वन में चले गये हैं वे वहाँ से लौट गयीं ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

ततस्तयापि सहिताः कृष्णान्वेषणाय वनमविशन् । ततो हरेरन्वेषणान्निवृत्ताः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् उसको भी साथ लेकर वे भगवान् श्रीकृष्ण का अन्वेषण करती हुई वन में प्रवेश की । जहाँ से वन में घना अन्धकारथा वे वहाँ से लौट गयीं ।।४३।।

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः । तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ।।४४।।

अन्वयः— तन्मनस्काः तदालापाः तद्विचेष्टाः तदात्मिकाः तदगुणान् एव गायन्त्यः आत्मा गाराणि न सस्मरुः ।।४४।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् गोपियों का मन भगवान् श्रीकृष्ण में लगा था, वे श्रीभगवान् विषयक ही बातें करती थीं, वे सब श्रीकृष्ण की ही चेष्टाएँ कर रही थीं तथा उन सबों का रोम-रोम भगवान् मय हो रहा था । वे केवल श्रीभगवान् के ही गुणों का गायन करती थी । वे श्रीभगवान् में इतना तन्मय थी कि उन सबों को न अपने शरीर का ख्याल था और न अपने घर का ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

एवं तमप्राप्ता अपि स्वगृहान्नैव स्मृतवत्यः । तदात्मिकाः स एवात्मा यासां ताः । तन्मय्य इत्यर्थः ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीभगवान् के नहीं मिलने पर भी उन सबों को अपने घर की याद नहीं आयी । श्रीभगवान् ही उन सबों की आत्मा बन गये थे और वे सब भगवन्मय हो गयी थीं ।।४४।।

पुनः पुलिनमागत्य कालिन्द्याः कृष्णभावनाः । समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकाङ्क्षिताः ।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां कृष्णान्वेषणं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।।३०।।

अन्वयः— कृष्णभावनाः पुनः कलिन्द्याः पुलिनम् आगत्य तदागमनकाङ्क्षिता समवेताः कृष्णमेव जगुः ।।४५।।

अनुवाद— गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्ण की भावना में डूबी थीं वे पुनः उस यमुनाजी के तट पर आयीं जहाँ उन सबों को भगवान् श्रीकृष्ण मिले थे । वे चाहती थीं कि उनको भगवान् श्रीकृष्ण शीघ्रातिशीघ्र मिल जायँ । सबके सब एकत्रित होकर भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों का गायन करने लगी ।।४५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के रासक्रीडा के प्रसङ्ग में गोपियों द्वारा श्रीकृष्ण भगवान् का अन्वेषण नामक तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

किंतु पूर्वं यत्र श्रीकृष्णेन सङ्गतिरासीत्तदेव कालिन्द्याः पुलिनमागत्य कृष्णं भावयन्ति ध्यायन्तीति तथा ताः कृष्णस्यागमनं काङ्क्षितं यासां ताः मिलिताः सत्यः कृष्णमेव जगुरिति ।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रिंशत्तमोऽध्यायः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

जहाँ पर पहले वे भगवान् श्रीकृष्ण से मिली थीं, यमुनाजी के उसी तट पर आकर भगवान् श्रीकृष्ण का ी ध्यान करती हुई वे सब भगवान् श्रीकृष्ण के मिलन की प्रतीक्षा करती हुई सबके सब भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों ा गायन करने लगीं ।।४५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका टीका के तीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३०।।

इकतीसवाँ अध्याय

गोपी गीत

गोप्य ऊचुः

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥१॥

अन्वयः— हे दयित ! ते जन्मना व्रजः अधिकं जयति, अत्र हि इन्दिरा शाश्वत् श्रयते । त्वयि धृतासवः तावकाः दिक्षुत्वां विचिन्वते हे दयित दृश्यताम् ।।१।।

श्रीभगवान् के विरहावेश में गोपियाँ गाने लगीं

अनुवाद— हे प्रियतम ! श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण आपके जन्म के कारण वैकुण्ठ आदि लोकों से भी व्रज की महिमा बढ़ गयी है । आपके जन्मकाल से श्रीलक्ष्मीजी भी अपने निवास स्थान श्रीवैकुण्ठ को छोड़ कर सदा यहीं निवास करने लगी हैं । प्रियतम श्रीकृष्ण ये सभी आपकी गोपियाँ आपके चरणों में अपने प्राणों को न्योछावर कर रखी हैं और विभिन्न दिशाओं में वे आपका ही अन्वेषण कर रही हैं । हे प्रियतम आप अब दर्शन दीजिये ।।१।।

भावार्थ दीपिका

एकत्रिंशे निराशास्ताः पुनः पुलिनमागताः । कृष्णमेवानुगायन्त्यः प्रार्थयन्ते तदागमम् । जयतीति । हे दयित, ते जन्मना व्रजोऽधिकं यथा भवति तथा जयत्युत्कर्षेण वर्तते । यस्मात्त्वमत्र जातस्तस्मादिन्दिरा लक्ष्मीरत्र हि श्रयते व्रजमलंकृत्य वर्तते एवं व्रजे सर्वस्मिन्मोदमानेऽत्र तु तावकास्त्वदीया गोपीजनास्त्वयि त्वदर्थमेव कथंचिद्धृता असवो यैस्ते त्वां विचिन्वते । अतस्त्वया दृश्यतां प्रत्यक्षीभूयतामिति । यद्वा अस्माभिर्भवान् दृश्यताम् । यद्वा एवं त्वया दृश्यतामेते विचिन्वत इति ।।१।।

भाव प्रकाशिका

एकतीसवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि भगवान् के नहीं मिलने से निराश गोपियाँ लौटकर पुनः श्रीयमुनाजी के तट पर आ गयीं और भगवान् श्रीकृष्ण के ही गुणों का गान करती हुई गोपियाँ उनके आगमन की प्रार्थना करने लगीं । **जयति० इत्यादि** श्लोक के द्वारा गोपियाँ कहती हैं कि हे प्रियतम श्रीकृष्ण ! आपके जन्म से इस व्रज की महिमा सभी लोकों से बढ़ गयी है । चूकि आपने व्रज में जन्म लिया है अतएव श्रीदेवी भी इस व्रज को अलंकृत कर रही हैं । इस तरह से व्रज में सब लोग आनन्दानुभव कर रहे हैं, किन्तु इसी व्रज में आपकी गोपियाँ आपके लिए ही अपने को धारण की हुई हैं । वे आपका ही अन्वेषण कर रही है । अतएव हे प्रियतम आप प्रत्यक्ष होकर हमलोगों को दर्शन दीजिए । अथवा हमलोगों के द्वारा आप दिखायी दीजिए । अथवा इस प्रकार से आप दर्शन दीजिए ये सभी गोपियाँ आपको ही खोज रही हैं ।।१।।

शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ।।२।।

अन्वयः— हे सुरतनाथ ! हे वरद ! ते अशुल्कदासिकाः शरदुदाशये साधुजातसत् सरसिजोदर श्रीमुषादृशा, इह निघ्नतः वधः किम् न ?

अनुवाद— हे हमारे प्रेमपूर्ण हृदय के स्वामिन् आप तो वरदान देने वालों में श्रेष्ठ है । हमलोग आपकी बिना मोल की दासियाँ हैं । शरत् कालीन सरोवर में विकसित अत्यन्त मनोहर कमल की कर्णिका को भी चुरालेने वाले हे कमल नयन प्रभो ! आप अपने नेत्रों से हम सबों को घायल कर चुके हैं । इस संसार में नेत्रों से किसी को मारने से वध नहीं होता है क्या ? क्या अस्त्र शस्त्रों से ही किसी को मारना बध होता है ?।।२।।

भावार्थ दीपिका

अत्र स्वतन्त्राणां बहूनां वक्तृत्वादपरा आहुरिति सर्वश्लोकेष्ववतारणा, अथापि सङ्गतिरुच्यते । तत्र विचिन्वन्तु मम किमिति चेत्तत्राहुः- शरदिति । शरदुदाशये शरत्कालीने सरसि साधु जातं सम्यक् जातं यत्सरसिजं विकसितं पद्मं तस्योदरे गर्भे या श्रीस्तां मुष्णाति हरतीति तथा तया दृशा नेत्रेण हे सुरतनाथ संभोगपते वरदाभीष्टप्रद, अशुल्कदासिका अमूल्यदासीर्नो निघ्नतो मारयतस्ते तव त्वया क्रियमाण इह लोकेऽयं वधो न भवति किम् । शस्त्रेणैव वधो वधः किं दृशा वधो न भवति, किंतु भवत्येव। अतस्तव दृशाऽपहृतप्राणप्रत्यर्पणाय त्वया दृश्यतामिति भावः । त्वया दृश्यतामिति यथासंभवं सर्वत्र वाक्यशेषः॥२॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ पर स्वतंत्र रूप से बहुत सी गोपिकाएँ बोलने वाली हैं दूसरी गोपियों ने कहा इस तरह से सभी श्लोकों की अवतारिका है । फिर भी यहाँ श्लोक की सङ्गति कही जाती है । यदि आप कहें कि गोपियाँ खोजती रहें इससे मेरा क्या मतलब है ? तो इस पर गोपियाँ कहती हैं- शरत् कालीन सरोवर में अच्छी तरह से विकसित कमल की कर्णिका की सुषमा को भी चुरा लेने वाले आपके जो नेंत्र हैं । उन नेत्रों के द्वारा आपने हमारे हृदय का हरण कर लिया है । हे भोगपते ! हे अभीष्ट वरदान प्रदान करने वाले प्रियतम श्रीकृष्ण हमलोग तो आपकी बिना मूल्य की दासियाँ हैं । आप अपने नेत्रों के बाण से जो हम सबों को मार रहे है वह इस संसार में वध नहीं कहलाता है क्या ? क्या अस्त्र-शस्त्र से मारने को ही बध कहा जाता है ? अतएव आपने जो हमसबों के प्राणों का अपहरण किया है उसको लौटाने के लिए आप दर्शन दीजिये आप दर्शन दे का संबन्ध सभी श्लोकों से है ॥२॥

विषजलाप्ययाद्व्यालराक्षसाद्वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् ।
वृषमयात्मजाद्विश्वतो भयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥३॥

अन्वयः— हे ऋषभ ! विषजलाप्ययात् व्यालराक्षसात् वर्षमारुतात् वैद्युतानलात् वृषमयात्मजात् विश्वतोभयात् वयं ते मुहु रक्षिताः ॥३॥

अनुवाद— हे पुरुषाग्रगण्य प्रियतम श्रीकृष्ण ! यमुनाजी के विषैले जल से होने वाली मृत्यु से, अजगर के रूप में रहने वाला अधासुर से होने वाली मृत्यु से, इन्द्र द्वारा की जाने वाली वर्षा, आँधी तथा बिजली से वृषभासुर एवं व्योमासुर आदि से तथा विभिन्न अवसरों पर आने वाले विभिन्न प्रकार के भयों से आपने हमलोगों की बार-बार रक्षा की है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

किंच बहुभ्यो मृत्युभ्यः कृपया रक्षित्वा किमितीदानीं दृशा मन्मथं प्रेष्य घातयसीत्याहुः- विषेति । हे ऋषभ श्रेष्ठ, विषमयाज्जलाद्योऽप्ययो नाशस्तस्मात्तथा व्यालराक्षसादघासुराद्वर्षान्मारुताद्वैद्युतानलादशनिपातात् वृषोऽरिष्टस्तस्मान्मयात्मजाद्-व्योमाद्विश्वतोऽन्यस्मादपि सर्वतो भयाच्च कालियदमनादिना रक्षिताः किमिदानीमुपेक्षस इति भावः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

आपने अनेक प्रकार से होने वाली मृत्यूओं से हम सबों की रक्षा की इस समय अपने मनोज्ञ नेत्रों द्वारा कामदेव को प्रेषित करके आप हमलोगों को क्यों मार रहे हैं ? इस तरह से गोपियों ने कहा हे पुरुष शिरोमणि श्रीकृष्ण यमुनाजी के विषैले जल से होने वाली मृत्यु से, अजगर का शरीर धारण करके मारने वाले अधासुर से होने वाली मृत्यु से, इन्द्र के द्वारा क्रोध करके की जाने वाली मुसलाधार वर्षा, वायु तथा अशनिपात (व्रजपात) की अग्नि से अरिष्टासुर तथा व्योमासुर से एवं अनेक प्रकार के होने वाले भयों से आपने हम सबों की रक्षा की है, आपने कालिय नाग का दमन करके हमलोगों की रक्षा की, इस समय आप हमलोगों की उपेक्षा क्यों करते हैं ?॥३॥

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ।
विखनसाऽर्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥४॥

अन्वयः— भवान् खलु गोपिकानन्दनो न, अखिल देहिनाम् अन्तरात्मदृक् हे सखे विंखनसा भवान् विश्वगुप्तये अर्थितः सखे भवान् सात्वतां कुले उदेयिवान् ॥४॥

अनुवाद— श्रीकृष्ण आप केवल यशोदानन्दन नहीं है, आप समस्त शरीर धारियों के अन्तःकरण में रहकर उनके साक्षी अन्तर्यामी हैं । हे प्रियतम ब्रह्माजी ने जब सम्पूर्ण संसार की रक्षा करने के लिए आपसे प्रार्थना की तो आप यदुवंशियों के वंश में अवतीर्ण होने वाले पुरुषोत्तम हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अपि च विश्वपालनायावतीर्णस्य तव भक्तोपेक्षाऽत्यन्तमनुचितेत्याशयेनाहुः-न खल्विति । हे सखे, भवान्खलु निश्चितं यशोदासुतो न भवति, किंतु सर्वप्राणिनां बुद्धिसाक्षी । ननु स किं दृश्यो भवति तत्राहुः-विखनसा ब्रह्मणा विश्वपालनाय प्रार्थितः सन्सात्वतां कुले उदेयिवानुदित इति ॥४॥'

भाव प्रकाशिका

गोपियों ने कहा कि आप तो सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं, अतएव आपके द्वारा अपने भक्तों की उपेक्षा अत्यन्त अनुचित है । इस बात को गोपियों ने **न खलु गोपिका० इत्यादि** श्लोक से कहा है । हे प्रियतम ! आप केवल यशोदानन्दन नहीं हैं आप तो सभी प्राणियों की बुद्धि के साक्षी हैं । यदि आप कहें कि साक्षी भी दृश्य होता है क्या ? इस पर गोपियों ने कहा ब्रह्माजी ने विश्व का पालन करनें के लिए आपसे प्रार्थना की तो आप यदुवंशियों के वंश में अवतीर्ण हुए ॥४॥

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥५॥

अन्वयः— हे वृष्णिधूर्य संसृतेर्भयात् चरणम् ईयुषाम् विरचिताभयम् ते कामदं कर सरोरुहं हे कान्त श्रीकरग्रहं नः शिरसि धेहि ॥५॥

अनुवाद— हे यदुवंश शिरोमणि ! जो लोग संसार के भय से डरकर, आपके चरण कमलों की शरणागति कर लेते हैं, उन लोगों को अभय बना देने वाले जो आपके कर कमल हैं वे उन लोगों की समस्त कामनाओ को पूर्ण कर देने वाले हैं । हे प्रियतम श्रीकृष्ण आपने अपने जिन हाथों से लक्ष्मीजी के हाथों को पकड़ा था अपने उन्हीं हाथों को आप हमलोगों के शिर पर रख दीजिये ॥५॥

भावार्थ दीपिका

तस्मात्त्वद्भक्तानामस्माकमेतत्प्रार्थनाचतुष्टयं संपादयेत्याहुः विरचिताभयमित्यादिचतुर्भिः । हे वृष्णिधुर्य, संसृतेर्भयात्ते चरणमीयुषां शरणं प्राप्तानां प्राणिनां विरचितं दत्तमभयं येन तत्तथा हे कान्त, कामदं वरदं तथा श्रियः करं गृह्णातीति तथा तद्भवत्करसरोरुहं न शिरसि धेहि ॥५॥

भाव प्रकाशिका

हमलोग आपकी भक्ता हैं, अतएव आप हमलोगों की ये चार प्रार्थनाएँ हैं उन सबों की आप पूर्ति कर दें। इस बात को गोपियाँ **विरचिताभयम् इत्यादि** चार श्लोकों से कहती हैं । हे यदुवंशियों में अग्रगण्य भगवन् ! संसार के भय से भयभीत होकर आपके चरणों की शरण में आ जाने वाले प्राणियों को अभयत्व का वरदान देने वाले तथा उन लोगों की सारी कामनाओं को पूर्ण कर देने वाले, एवं श्रीदेवी के हाथों को ग्रहण करने वाले जो आपके हस्तकमल हैं उन्हीं कर कमलों को आप हमलोगों के सिर पर रख दें ॥५॥

व्रजजनार्तिहन्वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ।
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय ॥६॥

अन्वयः— हे व्रजजनार्तिहन् वीर ! निजजनस्मय ध्वंसन स्मित ! हे सखे भवत् किङ्करीः नः भज स्म, जलरुहाननं चारु योषितां नः दर्शय ॥

अनुवाद— हे व्रजवासियों के समस्त कष्ट को विनष्ट कर देने वाले वीर, यदुवंश शिरोमणि ! आपकी मन्द-मन्द मधुर मुस्कान तो आपके आपके प्रेमी जनो के सम्पूर्ण मान-मद को विनष्ट कर देने वाली है । हे सखे आप हमलोगों से रुठें नहीं, हमसे आप प्रेम कीजिए, हम तो आपकी दासियाँ हैं । सर्वप्रथम आप हम व्रजवनिताओं को अपने श्यामवर्ण के मुख का दर्शन करा दें ॥६॥

भावार्थ दीपिका

हे व्रजजनार्तिहन् हे वीर, निजजनानां यः स्मयो गर्वस्तस्य ध्वंसनं नाशकं स्मितं यस्य तथाभूत हे सखे, भवत्किङ्करीर्नोऽस्मान् भज आश्रय । स्मेति निश्चितम् । प्रथमं तावज्जलरुहाननं चारु योषितां नो दर्शय ॥६॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में गोपियाँ श्रीभगवान् से प्रार्थना करती हैं कि वे उनको दर्शन दें । वे कहतीं है कि हे व्रजवासियों की समस्त आपदाओं को विनष्ट करने वाले प्रियतम श्रीकृष्ण, आपकी मधुर मुस्कान तो अपने लोगों के समस्त मान को मर्दित कर देने वाली हैं । हे प्यारे श्रीकृष्ण ! आप हमलोगों को अपना बना लें, हमलोगों से नाराज न होएँ हमलोग तो आपकी दासियाँ हैं, अतएव कृपा करके हम व्रज वनिताओं को सर्वप्रथम आप अपने मनोहर मुख कमल का दर्शन करा दें ॥६॥

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥७॥

अन्वयः— ते पदाम्बुजम् प्रणतदेहिनं पापकर्शनं तृणचरानुगं, श्रीनिकेतनम् । फणिफणार्पितम् नः कुचेषु कृणु हृच्छयम् कृन्धि ॥७॥

अनुवाद— आपके चरण कमल अपने शरणागत जीवों के पाप को विनष्ट कर देने वाले है । उन्हीं चरणों से आप हमारी गायों को चराने का काम करते हैं । आपके वे चरण तो लक्ष्मी जी के निवास स्थान हैं । आपने उन्हीं चरणों को हमारे लिए कालिय नाग के सिर पर रख दिया, अपने उन्हीं चरणों को आप हमारे वक्षःस्थल पर रख दें । आपकी विरह व्यथा से हमलोग संतप्त हैं । आप हमारे हृदय की विरहाग्नि की ज्वाला को शान्त कर दें ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अविशेषेण प्रणतानां देहिनां पापकर्शनं पापहन्तृ तृणचरान्पशूनप्यनु गच्छति कृपयेति तथा सौभाग्येन श्रियो निकेतनं वीर्यातिरेकेण फणिनः फणास्वर्पितं ते पदाम्बुजं नः कुचेषु कृणु कुरु । किमर्थम् । हृच्छयं कामं कृन्धि छिन्धि ॥७॥

भाव प्रकाशिका

जो कोई भी शरीरधारी आपकी शरण में आ जाता है आप उसके पापों को विनष्ट कर देते है ऐसे आप हमारी गायों और बछड़ों को चराने का काम करते हैं, यह सब आप अपनों के अधीन होकर करते हैं । आपके चरण तो लक्ष्मीजी का निवास स्थान है । अपने पराक्रमाति शय्य के कारण आपने हमलोगों की रक्षा करने के लिए कालिय नाग के सिर पर अपने पैरों को रख दिया । अब आप अपने उन्हीं चरणों को हमारे वक्षः स्थल पर रख दें जिससे कि विरह व्यथा की अग्नि जो हमलोगों के हृदय में जल रही हैं, वह शान्त हो जाय ॥७॥

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाप्याययस्व नः ।।८।।

अन्वयः— हे पुष्करेक्षण वीर ! मधुरया गिरा, वल्गुवाक्यया, बुधमनोज्ञया, इमाः मुह्यती नः विधिकरीः अधरसीधुना आप्यायस्व ।।८।।

अनुवाद— हे कमल के समान नेत्रों वाले ! प्रियतम श्रीकृष्ण ! आपकी वाणी मधुरिमा से परिपूर्ण होती है, आपकी वाणी के प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक पद एवं प्रत्येक वाक्य माधुर्य से भरे होते हैं । आपकी उस वाणी को सुनकर विद्वान् लोग उसमें रम जाते हैं, आपकी अपनी उसी वाणी से मोहित होने वाली हमलोग तो आपकी आज्ञाकारिणी गोपियाँ हैं । हे प्रियतम आप अपने माधुर्य भरे ओष्ठों के मादक अमृत रस से हम सबों को आप्यायित कर दें ।।८।।

भावार्थ दीपिका

हे पुष्करेक्षण, तवैव मधुरया गिरा बल्गूनि वाक्यानि यस्यां तया बुधानां मनोज्ञया हृद्यया गम्भीरयेत्यर्थः । मुह्यतीरिमा नो विधिकरीः किङ्करीरधरसीधुना आप्याययस्व संजीवयेति ।।८।।

भाव प्रकाशिका

गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्ण को कमल नयन शब्द से संबोधित करती है क्योंकि उनके नेत्र कमल के समान अत्यन्त मनोहर हैं । वे कहती हैं कि आपकी वाणी माधुर्य से परिपूर्ण है । उस वाणी के द्वारा उच्चरित अत्यन्त मनोहर है । आपकी वाणी विद्वानों के ही मन द्वारा जाना जानने योग्य होती क्योंकि वह अर्थ गाम्भीर्यसे परिपूर्ण होती है । आपकी उस वाणी को सुनकर हमलोंग आपकी आज्ञाकारिणी दासियाँ हो गयी हैं, और आपकी विरह व्यथा से संतप्त है । आप अपने अधरों के मादक अमृत रस से हम सबों को आप्यायित करने की कृपा करें ।।८।।

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ।।९।।

अन्वयः— तव कथामृतम् तप्तजीवनं, कविभिरीडितं कल्मषापहम्, श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततम् ये जनाभुवि गृणन्ति ते भूरिदाः ।।९।।

अनुवाद— गोपियाँ कहती हैं कि हे प्यारे श्रीकृष्ण आपकी लीला का विरह से संतप्त हमारे जीवन के लिए अमृत के समान है । आपकी इन लीला कथाओं का गान भक्त कवियों ने तथा ब्रह्मज्ञानी पुरुषों ने किया । समस्त पापों को विनष्ट कर देने वाली है आपकी लीला कथा । आपकी लीला कथा को सुनने मात्र से ही मङ्गल हो जाता है । आपकी लीला कथा ऐश्वर्य सम्पन्न तथा विस्तृत है । जो लोग आपकी उस लीला कथा का गान करते हैं वे ही लोग इस संसार में बहुत अधिक दान करने वाले हैं ।।९।।

भावार्थ दीपिका

किंच अस्माकं त्वद्विरहे प्राप्तमेव मरणं किंतु त्वत्कथामृतं पाययद्भिः सुकृतिभिर्वञ्चितमित्याहुः-तवेति । कथैवामृतम्। अत्र हेतुः-तप्तजीवनम् । प्रसिद्धामृतादुत्कर्षमाहुःकविभिर्ब्रह्मविद्भिरपीडितं । स्तुतम् । देवभोग्यं त्वमृतं तैस्तुच्छीकृतम् । किंच कल्मषापहं कामकर्मनिरसनम् । तत्त्वमृतं नैवंभूतम् । किंच श्रवणमङ्गलं श्रवणमात्रेण मङ्गलप्रदम् । तत्त्वनुष्ठानापेक्षम् । किंच श्रीमत्सुशान्तम् । तत्तु मादकम् । एवंभूतं त्वत्कथामृतमाततं यथा भवति तथा ये भुवि गृणन्ति निरूपयन्ति ते जना भूरिदा बहुदातारः। जीवितं ददतीत्यर्थः । यद्वा एवंभूतं त्वत्कथामृतं ये भुवि गृणन्ति ते भूरिदाः पूर्वजन्मसु बहु दत्तवन्तः सुकृतिन इत्यर्थः । एतदुक्तं भवति-ये केवलं कथामृतं गृणन्ति तेऽपि तावदतिधन्याः किं पुनर्ये त्वां पश्यन्ति, अतः प्रार्थयामहे त्वया दृश्यतामिति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

किञ्च आपके वियोग में हमलोगों की तो मृत्यु प्राप्त ही हो गयी थी किन्तु आपकी लीला कथा का पान करने वाले सुकृती (पुण्यवान्) लोगों ने तो हमलोगों को ठग ही दिया । इस बात को गोपियाँ **तव कथामृतम्० इत्यादि** श्लोक से कहा है । आपकी लीला कथा ही अमृत है । क्योंकि हमलोगों का जीवन तो आपकी वियोग व्यथा से व्यथित है । अर्थात् जो प्रसिद्ध अमृत है उससे भी उत्कृष्ट है इस बात को ब्रह्मज्ञानियों तथा भक्त कवियों ने कहा है । और वे लोग आपकी लीला कथा की ही प्रशंसा करते हैं । उन ज्ञानी पुरुषों ने उस अमृत का तिरस्कार कर दिया है । आपकी लीला कथा पापों की प्रणाशिका है । अर्थात् काम तथा कर्म का विनाश करने वाली है। वह देवभोग्य अमृत इस काम को नहीं कर सकता है । वह आपकी लीला कथा सुनने मात्र से मङ्गल प्रदान करती है । देवभोग्य अमृत तो पान करने की अपेक्षा रखती है । आपकी लीला कथा ऐश्वर्य सम्पन्न तथा शान्तिमय है। प्रसिद्ध आमृत तो मद प्रदान करने वाला है । इस प्रकार की जो आपकी लीला कथा है उसका विस्तार करने के लिए जो लोग बहुत दान करने वाले है । अर्थात् वे जीवन प्रदान करते हैं । **यद्वा० इत्यादि** अथवा इस प्रकार की जो आपकी लीला कथा है उसका वर्णन जो लोग भूलोक में करते हैं, उन लोगों ने पूर्व जन्म में बहुत अधिक दान देने वाले है । कहने का अभिप्राय है कि जो लोग आपकी कथा का केवल वर्णन करते हैं वे लोग भी धन्य है । और जो लोग आपका दर्शन करते हैं उन लोगों के विषय में क्या कहना है ? इसीलिए हमलोग प्रार्थना करती हैं कि आप दर्शन दीजिए ।।९।।

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम् ।
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ।।१०।।

अन्वयः— हे प्रिय ! ते प्रहसितं प्रेमवीक्षणं विहरणं च ध्यान मङ्गलम्, रहसि याहृदिस्पृशः संविदः हे कुहक नो मनः हि क्षोभयन्ति ।।१०।।

अनुवाद— हे प्रियतम श्रीकृष्ण आपकी प्रेमभरी हँसी तथा प्रेमपूर्ण अवलोकन तथा आपकी विविध प्रकार की क्रीडाओं का ध्यान करके हम सभी आनन्द मग्न हो जाया करती थीं । प्रियतम जब एकान्त में आप मिले और आपने जब हृदयस्पर्शी हँसी ठिठोलियाँ की उन प्रेम भरी बातों की हम सबों को याद आती है । हे कपटी मित्र उन बातों की जब हमें याद आती है तो हमलोगों का मन क्षुब्ध हो जाता है ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

ननु मत्कथाश्रवणेनैव निर्वृता भवत किं मद्दर्शनेन, न, त्वद्विलासक्षुभितचित्ता वयं तत्रापि शान्तिं न विन्दाम इत्याहुः- प्रहसितमिति । हे प्रिय, कुहक कपट, संविदः संकेतनर्माणि ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि हमारी लीला कथा सुनने मात्र से ही तुमलोगों ने परमानन्द को प्राप्त कर लिया मेरे दर्शन से क्या लाभ है ? तो ऐसी बात नहीं है । आपके विलासों से हमलोगों का चित्त क्षुब्ध हो गया है । कथा श्रवण मात्र से हमें शान्ति नहीं मिल रही है । इसी बात को गोपियों ने **प्रहसितं च० इत्यादि** श्लोक से कहा है । हे प्रिय ! कुहक अर्थात् कपटी मित्र । **संविदः** अर्थात् संकेत पूर्वक हँसी की बातें ।।१०।।

चलसि यद्व्रजाच्चारयन्पशून्नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति ।।११।।

अन्वयः— हे कान्त हे नाथ ! यत् वजात् पशून् चारयन् चलसि तदा ते नलिन सुन्दरम् पदं शिलतृणाङ्कुरैः सीदति इति नः मनः कलिलतां गच्छति ।।११।।

अनुवाद— हे प्रियतम ! हे स्वामिन् ! जब आप व्रज से पशुओं को चराने के लिए निकलते हैं उस समय हमलोगों का मन यह सोचकर अत्यन्त बेचैन हो जाता है कि कमल से भी अत्यधिक सुन्दर तथा अत्यन्त सुकोमल आपके चरणों में कंकड़, तृण तथा काण्टे आदि गड़ जाते होंगे और आपकी इन चरणों में अत्यधिक कष्ट होता होगा ॥११॥

भावार्थ दीपिका

किंच त्वयि वयमतिप्रेमार्द्रचित्तास्त्वं पुनरस्मासु केन हेतुना कपटमाचरसीत्याहुः श्लोकद्वयेन-चलसीति । हे नाथ हे कान्त, यत् यदा व्रजाच्चलसि पशूंश्चारयंस्तदा तन्नलिनसुन्दरं कोमलं ते पदं शिलैः कणिशैस्तृणैरङ्कुरैश्च सीदति क्लिश्येदिति नो मनः कलिलतामस्वास्थ्यं गच्छति प्राप्नोति । एवंभूतास्त्वद्दुःखशङ्कितचित्ता वयम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

गोपिकाएँ निवेदित करती हैं कि हे प्रियतम आप ही हम लोगों के स्वामी है । आपके प्रति हमलोगों का अगाध प्रेम है फिर भी आप हमलोगों से कपट पूर्ण आचरण क्यों करते हैं । इस वात को गोपियों ने **चलसि यत्० इत्यादि** दो श्लोकों से कहती हैं वे कहती हैं कि हे मेरे प्रियतम आप हमारे स्वामी हैं । जब आप पशुओं को चराने के लिए निकलते हैं उस समय हमलोगों का मन यह सोचकर अत्यन्त बेचैन हो जाता है कि आपके ये चरण तो कमल से भी अधिक सुन्दर और कमल से भी अधिक कोमल हैं वन में आपके इन चरणों में जब कंकड़ घास तथा अङ्कुर चुभ जाते होंगे उस समय में आपके इन चरणों में असह्य वेदना होती होगी ॥११॥

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम् । घनरजस्वलं दर्शयन्मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि॥१२॥

अन्वयः— हे वीर दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैः आवृतं विभृत् घनरजस्वलं दर्शयन् नः मनसि स्मरं यच्छसि ॥१२॥

अनुवाद— हे वीर प्रियतम ! सायंकाल जब आप गायों को चराकर लौटते हैं उस समय आपके मुखकमल पर आपके काले घुंघराले केश लटके रहते हैं और आपके मुखमण्डल पर गौओं के खुर से उड़ी हुई धूल बहुत अधिक पड़ी रहती है । आप अपने उस मनोज्ञ मुख मण्डल को दिखाकर हमलोगों के भीतर कामोद्रेक कर देते है और आपसे मिलते ही हमारी कामना दृढ से दृढतर होती जाती है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

त्वं तु दिनपरिक्षये सायंकाले नीलकुन्तलैरावृत्तं घनरजस्वलं गोरजश्छुरितं वनरुहाननंमलिमालाकुलपरागच्छुरितपद्मतुल्यमाननं बिभ्रत्तश्च मुहुर्मुहुर्दर्शयन्नो मनसि केवलं स्मरं यच्छस्यर्पयसि । नतु सङ्गं ददासीति कपटस्त्वमिति भावः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

आप जब सायं काल अपने काले घुघराले केशा से घिरे हुए, तथा गौओं के खुर से उड़ी हुई धूल से घूसरित आपका मुख कमल भ्रमर समूह से तथा पराग से मण्डित के समान देखने में अत्यन्त मनोहर लगता है । आप अपने इस प्रकार के मुखकमल को हमें बार-बार दिखा कर हमारे मन में केवल कामोद्रेक ही किया करते हैं, अपना सङ्ग कभी नहीं प्रदान करते । अतएव आप हमलोगों से कपट करते हैं ॥१२॥

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ।
चरणपङ्कजं शन्तमं च ते रमणः नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥१३॥

अन्वयः— हे रमण ते चरणपङ्कजं प्रणत कामदं, पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं, आपदि ध्येयम् शन्तमं च अभिहन् च न स्तनेषु अर्पय ॥१३॥

अनुवाद— हे प्रियतम श्रीकृष्ण ! आपके चरण कमल अपने शरण में आये सभी लोगों की कामनाओं को पूर्ण कर देने वाले हैं । आपके इन चरणों की पूजा ब्रह्माजी ने तथा श्रीदेवी ने भी की है । आपके ये चरण भूदेवी

को महिमा मण्डित बना देने वाले हैं । यही नहीं आपके ये चरण तो आपत्ति काल में ध्यान करने योग्य हैं । आपके ये ऐसे चरण है कि इन चरणों की सेवा करते समय भी सुख की प्राप्ति हो जाती है । समस्त मानसिक व्यथाओं को विनष्ट करने वाले अपने इन चरणों को आप हमारे वक्षोजों पर रख दें ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अतोऽधुना कपटं विहायैवं कुर्विति प्रार्थयन्ति श्लोकद्वयेन-प्रणतकामदमिति । हे आधिहन् हे रमण, पद्मजेन ब्रह्मणार्चितमापदि ध्येयं ध्यानमात्रेणापन्निवर्तकं शन्तमं च सेवासमयेऽपि सुखतमं ते चरणपङ्कजं कामतापशान्तये नः स्तनेष्वर्पयेति ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

अतएव आप इस समय कपट को त्यागकर ऐसा करे । इस तरह गोपियाँ **प्रणत कामदम्० इत्यादि** दो श्लोकों से प्रार्थना करती हैं । हे हमारे मन के समस्त वेदनाओं को विनष्ट करने वाले प्रियतम ! आपके इन चरणों की अर्चना तो ब्रह्माजी ने तथा श्रीदेवी ने भी की है । आपके ये चरण कमल ऐसे हैं कि इन चरण कमलों का ध्यान करने मात्र से ही सारी विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं । जब कोई भी आपके इन चरणों की सेवा करता है तो उसको इन चरणों की सेवा करते समय भी अत्यधिक सुखानुभूति होती है । अतएव आप अपने इन चरणों को हमारे वक्षोजों पर इसलिए रख दीजिये कि हमारा काम जन्य संताप विनष्ट हो जाय ।।१३।।

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ।।१४।।

अन्वयः— हे वीर सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु, चुम्वितम्, नृणाम् इतररागविस्मारणं ते अधरामृतं वितर।।१४।।

अनुवाद— हे वीर शिरोमणे ! आपका अधरामृत मिलन की आशा को बढ़ाने वाला है, वह विरह जन्य समस्त शोक सन्ताप को विनष्ट करने वाला है । बजने वाली आपकी बाँसुरी आपके उस अधरामृत को निरन्तर चुम्बन करती रहती है, यह आपका अधरामृत ऐसा है कि वह पुरुषों के भी समस्त भौमराज्यादि प्राप्ति की भी इच्छा को विस्मृत करा देती है तो फिर स्त्रियों के विषय में क्या कहना है ? हे वीर अपने उसी अधरामृत को आप हम सभी व्रज युवतियों को वितीर्ण करें ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

अपि च हे वीर, तेऽधरामृतं नो वितर देहि । स्वरितेन नादितेन वेणुना सुष्ठु चुम्बितमिति नादामृतवासितमिति भावः। इतररागविस्मारणं नृणामितरेषु सार्वभौमादिसुखेषु रागमिच्छां विस्मारयति विलापयतीति तथा तत् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक से व्रज युवतियाँ श्रीभगवान् से प्रार्थना करती हैं कि हे वीर शिरोमणे श्रीकृष्ण ! आप हमलोगों को अपना अधरामृत प्रदान करे । आप जिस वाँसुरी के बजाती हैं वह बाँसुरी आपके उस अधरामृत का स्वच्छन्द रूप से उपभोग करते रहने के कारण अत्यन्त सुवासित है उस अधरामृत का ऐसा प्रभाव है कि पुरुष भी उस अमृत का अनुभव करने की इच्छा से संसार के समस्त सुख भोगादि इच्छा को भूल जाते हैं तो फिर हम नारियों के विषय में क्या कहना है ? इस प्रकार के अधरामृत को आप हमें प्रदान कर दें ।।१४।।

अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्दृशाम् ।।१५।।

अन्वयः— यद् भवान् अह्नि काननं अटति तदा त्वाम् पश्यताम् त्रुटिः युगायते कुटिलकुन्तलं ते श्रीमुखं उदीक्षताम् दृशाम् पक्ष्मकृत जडः ।।१५।।

अनुवाद— हे प्रियतम ! श्रीकृष्ण जब आप दिन में विहार करने के लिए वन में चले जाते हैं उस समय आपके मनोज्ञ मुख कमल को नहीं देख पाने के कारण हम गोपियों का आधाक्षण युग के समान बड़े ही कष्ट से बितता है, और शाम को जब आप वन से लौटते हैं तो आपके काले घुंघराले केशों से सुशोभित आपके मधुरतम मुख सौन्दर्य को देखकर परमानन्द की प्राप्ति होती है । उस समय आपको देखते समय जब हमारी पलकें गिरती हैं तो लगता है कि इन पलकों को बनाने वाले ब्रह्मा भी जड़ हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

किंच क्षणमपि त्वददर्शने दुःखं दर्शने च सुखं दृष्ट्वा सर्वसङ्गपरित्यागेन यतय इव वयं त्वामुपागतास्त्वं तु कथमस्मांस्त्यक्तुमुत्सहसे इति सकरुणमूचुः-अटतीति द्वयेन । यद्यदा भवान् काननं वृन्दावनं प्रत्यटति गच्छति तदा त्वामपश्यतां प्राणिनां त्रुटिः क्षणार्धमपि युगवद्भवति । एवमदर्शने दुःखमुक्तम् । पुनश्च कथंचिद्दिनान्ते ते तव श्रीमन्मुखमुदुच्चैरीक्षमाणानां तेषां दृशां पक्ष्मकृद्ब्रह्मा जडो मन्द एव । निमेषमात्रमप्यन्तरमसह्यमिति दर्शने सुखमुक्तम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

गोपियाँ कहती है आपके मुख कमल का यदि क्षणभर भी हमें दर्शन नहीं मिलता है तो हमलोगों को अत्यधिक दुःख की अनुभूति होती है और आपके मुखकमल को देखने से परमानन्द की प्राप्ति होती हैं । इसी लिए जिस तरह यतिजन संसार के सभी सुख भोगों से विरक्त होकर ब्रह्मानुभव में मग्न हो जाते हैं उसी तरह से हमलोग भी संसार से विरक्त होकर आपके पास आयी हैं अतएव आप अपनी इस शरणागत गोपियों की कैसे उपेक्षा करने का साहस करते हैं, इस तरह से अत्यन्त करुण होकर गोपियों ने **अटति यद्भवान् इत्यादि** दो श्लोकों से कहा है । वे कहती है जब आप दिन में विहार करने के लिए वन में विचरण करते हैं उस समय आपका दर्शन नहीं पाने के कारण हम सबों का क्षणार्ध भी एक युग के समान अत्यन्त कष्ट से बितता है । इस तरह से गोपियों ने श्रीकृष्ण प्रियतम का दर्शन नहीं होने पर दुख बतलाया । तथा जब आप सायंकाल वन से लौटते है उस समय आपके शोभासम्पन्न कोमल मुखों देखकर हमें अत्यन्त सुख मिलता है । आपके मनोज्ञतम मुख को देखते समय जब हमारी पलकें गिरती हैं तो लगता है इन पलकों को बनाने वाले ब्रह्मा भी जड़ है । अर्थात् आपके दर्शन में निमेष मात्र का भी अन्तराय असह्य हो जाता है । इस तरह से गोपियों ने अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के दर्शन से सुखानुभूति को बतलाया ॥१५॥

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥१६॥

अन्वयः— हे अच्युत ! पति सुतान्वयभ्रातृबान्धवान तिविलङ्घ्य ते अन्ति आगताः तव गतिविदः तव गीतमोहिताः हे कितव निशियोषितः कः त्यजेत् ॥१६॥

अनुवाद— हे प्रियतम श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण ! हमलोग अपने पतियों, पुत्रों, कुल परिवार, भाई-बन्धु इन सबों की आज्ञाओं का उल्लंघन करके आपके पास आयी हैं, क्योंकि हमलोग आपके प्रत्येक गति और सङ्केतों को समझती हैं । आपके इस त्रैलोक्य मोहक वंशी के गीत से मोहित होकर हमलोग आपके पास आई हैं । हे धूर्त! आपको छोड़कर दूसरा कौन होगा जो इस प्रकार अपने आप पास आई हुई स्त्रियों को रात्रि के समय परित्याग कर दे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तस्मात् हे अच्युत, पतीन्सुतानन्वयांस्तत्संबन्धिनो भ्रातॄन्बान्धवांश्चातिविलङ्घ्य तव समीपमागता वयम् । कथंभूतस्य। गतिविदोऽस्मदागमनं जानतः, गीतगतीर्वा जानतः, गतिविदो वयं वा । तवोद्गीतेनोच्चैर्गीतेन मोहिताः हे कितव शठ, एवंभूता योषितो निशि स्वयमागतास्त्वामृते कस्त्यजेत् । न कोऽपीत्यर्थः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

अतएव हे अच्युत हे श्रीकृष्ण हमलोग अपने पतियों पुत्रों कुल परिवार तथा इनसे संबन्ध रखने वाले भाइयों और बान्धवों की आज्ञाओं का उल्लंघन करके आपके सन्निकट आयी हैं । आप भी हमारे आगमन को जानते हैं। अथवा आप अपने गीत तथा हम सबों के आगमन को जानते हैं । आपके उत्कृष्ट गीत से सोहित होकर हमलोग यहाँ आयी हैं । हे धूर्त ! इस तरह की नारियाँ जो रात्रि के समय स्वयम् आयी हों उन सबों का रात्रि की बेला में आपको छोड़कर दूसरा कौन होगा जो त्याग दे ऐसा कोई नहीं हो सकता है ॥१६॥

रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥१७॥

अन्वयः— ते रहसि संविदं, हृच्छयोहितं, प्रहसिताननं, प्रेमवीक्षणं श्रियोधाम बृहदुरः मुहुः वीक्ष्य अतिस्पृहा मनः मुह्यते॥१७॥

अनुवाद— हे प्रियतम जब आप एकान्त में मिलते थे उस समय आप हँसी और ठिठोलियाँ करते थे, उस समय हमलोगों की आपसे मिलन की इच्छा उद्रिक्त हो जाती थी । आपके प्रहास शोभित मुख कमल को तथा आप जो प्रेम पूर्वक हमलोगों को देखते थे, तथा जहाँ लक्ष्मीजी का नित्य निवास बना रहता है आपके उस विशाल वक्षस्थल को बार-बार देखकर हमारी आपसे मिलन की आकाङ्क्षा अत्यधिक बढ चुकी है, उसके कारण हमारा मन अत्यन्त मोहित होता जा रहा है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अतस्त्वया त्यक्तानामस्माकं प्राक्तनत्वद्दर्शननिदानहृद्रोगस्य त्वत्सङ्गत्यैव चिकित्सां कुर्वित्याशयेनाहुद्वेयेन-रहसीति । श्रियो धाम ते बृहद्विशालमुरश्च वीक्ष्यातिस्पृहा भवति । तथा च मुहुर्महुर्मनो मुह्यति ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

अतएव आपने जो हमलोगों को त्याग दिया है, उसके कारण पूर्व काल से ही जो हमलोगों को हृदरोग हो गया है । उसकी चिकित्सा तो आपके मिलने से ही संभव है । अतएव हमलोगों से मिलकर हमारे हृदय के रोग की चिकित्सा कर दें, इसी अभिप्राय से गोपियों ने **रहसि० इत्यादि** दो श्लोकों को कहा है । वे कहती हैं कि आपका विशाल वक्षः स्थल लक्ष्मीजी का निवास स्थान है । आपके उस वक्षस्थल को देखकर हमारी आपसे मिलन की स्पृहा अत्यधिक बढ चुकी है । उसके कारण हमारा मन बार-बार मोहित होता है ॥१७॥

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ।
त्यज मनाक्च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥१८॥

अन्वयः— हे अङ्ग ते व्यक्तिः व्रज वनौकसां अस्त्रं वृजिन हन्त्री । विश्वमङ्गलम् स्वजनहृद्रुजां त्वत् स्पृहात्मनां नः यन्निषूदनम् मनाक्च त्यज ॥१८॥

अनुवाद— हे प्रियतम ! आपकी यह अभिव्यक्ति हम व्रज तथा वन में रहने वालों के समस्त कष्टों को दूर करने वाला है तथा संसार का मङ्गल करने वाला है । अतएव हमलोगों की आपसे मिलने की लालसा अत्यधिक बढ़ रही है । हम सभी आपके ही स्वजन हैं । अपने स्वजनों के इस हृदय रोग को दूर करने की थोड़ी सी औषधि आप प्रदान करें ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

तव च व्यक्तिरभिव्यक्तिर्व्रजवनौकसां सर्वेषामविशेषेण वृजिनहन्त्री दुःखनिरसनीति विश्वमङ्गलं सर्वमङ्गलरूपा च । अतस्त्वत्स्पृहात्मनां त्वत्स्पृहारूढमनसां नो मनागीषत्किमपि त्यज मुञ्च । कार्पण्यमकुर्वन्देहीत्यर्थः । किं तत् । स्वजनहृद्रोगाणां यदतिगोप्यं निषूदनं निवर्तकमौषधं तत्त्वमेव वेत्सीति गूढाभिप्रायम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में गोपियाँ कहती हैं कि आपकी अभिव्यक्ति हम वन में रहने वाले व्रजवासियों के समस्त कष्टों को दूर करने वाली है । और वह सम्पूर्ण विश्व के लिए मङ्गल स्वरूपिणी है । हमारी आपसे मिलने की लालसा अत्यधिक बढ़ गयी है । हमारे इस हृदय के रोग को दूर करने वाली जो औषधि है उसे आप थोड़ा सा ही प्रदान कर दें । आप अपनी कृपणता का परित्याग करें । यदि आप पूछें कि वह कौन सी औषधि है । इस पर गोपियाँ कहती हैं कि उस औषधि को तो आप ही जानते हैं । वह औषधि अत्यन्त गोपनीय है । इस तरह से गोपियों का इस कथन में अभिप्राय गूढ़ हैं ॥१८॥

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित्कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥१९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे पूवार्धे रासक्रीडायां गोपीगीतं नामैक त्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

अन्वयः— हे प्रिय ! ते यत् सुजातचरणाम्बुरुहं भीताः कर्कशेषु स्तनेषु शनैः दधीमहि तेन अटवीम् अटसि तत् किं स्वित् कूर्पादिभिः न व्यथते ? इति भवदायुषां न धीः भ्रमति ॥१९॥

अनुवाद— हे हमारे जीवन सर्वस्वप्रियतम् आपके ये जो अत्यन्त कोमल चरण कमल हैं, उसको हमलोग अपने कठोर स्तनों पर अत्यधिक धीरे-धीरे इस भय से रखती हैं कि आपके चरण कमल को कहीं चोट न लग जाय । उन्हीं चरण कमलों से आप इस रात्रि के समय हमलोगों से छिपकर भटक रहे हैं । क्या आपके इन चरण कमलों में कङ्कड, पत्थर की चोट नहीं लगती है ? इस भय से भयभीत हमलोगों का मन चक्कर काट रहा है। प्रियतम हमारा जीवन तो आपके के ही लिए हैं ॥१९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के रासक्रीडा के प्रसङ्ग में गोपीगीत नामक इकतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

अतिप्रेमधर्षिता रुदत्य आहुः-यदिति । हे प्रिय, यत्ते तव सुकुमारं पदाब्जं कठिनेषु कुचेषु संमर्दनशङ्किताः शनैर्दधीमहि धारयेम वयम् । त्वं तु तेनाटवीमटसि । 'नयसि' इति पाठे पशून्वा कांचिदन्यां वा आत्मानमेव वा नयसि प्रापयसि । तत्ततः तत्पदाम्बुजं वा कूर्पादिभिः सूक्ष्मपाषाणादिभिः किंस्विन्न व्यथते कथं नु नाम न व्यथेतेति भवानेवायुर्जीवनं यासां तासां नो धीर्भ्रमति मुह्यतीति ॥१९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

प्रेमातिशय के कारण व्याकुल गोपियाँ रोती हुई कहती हैं कि आपके चरण कमल अत्यन्त कोमल हैं । आपके उन चरण कमलों को हमलोग अपने कठोर स्तनों पर इस भय से धीरे-धीरे रखती हैं कि कहीं आपके इन चरणों को चोट न लग जाय । आप उन्हीं चरण कमलों से इस समय वन में भ्रमण कर रहे हैं । जहाँ पर **नयसि** है उसका संबन्ध होगा कि पशुओं को, अथवा अपनी किसी दूसरी प्रिय तमाको, अथवा स्वयं ही इधर-उधर ले जा रहे हैं । ऐसा करने में आपके चरणों को कंकड़ पत्थर से चोट नही लगती है ? लगती ही होगी । हमलोगों का जीवन तो आप ही हैं । इस तरह की हम गोपियों की बुद्धि भ्रमित हो रही है ॥१९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थदीपिका टीका के एकतीसवें अध्याय की भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥३१॥

* * *

बतीसवाँ अध्याय

श्रीभगवान् का प्रकट होकर गोपियों को सान्त्वना प्रदान करना

श्रीशुक उवाच

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा । रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥१॥

अन्वयः— हे राजन् कृष्णदर्शनलालसा; गोप्यः चित्रधाः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा रुरुदुः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन की लालसा से भरी हुई गोपियाँ श्रीभगवान् की व्यथा से व्याकुल होने के कारण अनेक प्रकार से अनेक प्रकार से गाती हुई तथा प्रलाप करती हुई अन्त में वेचैन होकर अत्यन्त करुण स्वर से फूट-फूटकर रोने लगीं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वात्रिंशे विरहालापविक्लिन्नहृदयो हरिः । तत्राविर्भूय गोपीस्ताः सान्त्वयामास मानयन् । स्वप्रेमामृतक्ल्लोलविह्वलीकृतचेतसः। सदयं नन्दयन् गोपी रुद्गतो नन्दनन्दनः । इति गोप्य इतिं । इत्येवंप्रभृति । चित्रधा अनेकधा सुस्वरमुच्चैः कृष्णदर्शने लालसातिस्पृहा यासां ताः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बत्तीसवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया गया है कि विरह की व्यथा से व्याकुल गोपियों के आलाप को सुनकर करुण से द्रवित श्रीभगवान् प्रकट होकर गोपियों का सम्मान करते हुए प्रकट हो गये और उन सबों को सान्त्वना प्रदान किए । गोपियों की प्रेमामृत सागर की लहरों से विह्वल हृदय भगवान् श्रीकृष्ण दया पूर्वक गोपियों को आनन्दित करते हुए प्रकट हो गये । **इति गोप्यः इत्यादि** श्लोक का अभिप्राय है कि गोपियों की भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन की लालसा अत्यन्त उत्कट हो गयी थी । वे श्रीभगवान् के विरह की व्यथा से व्याकुल होकर जोर-जोर से अनेक प्रकार से विलाप करती हुई रोने लगीं ॥१॥

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः । पीताम्बरधरः स्त्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥२॥

अन्वयः— स्मयमानमुखाम्बुजः शौरिः तासाम् आविरभूत् । पीताम्बरधरः स्त्रावी, साक्षान्मन्मथ मन्मथः ॥२॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण उन गोपियों के ही बीच में प्रकट हो गये । उस समय श्रीभगवान् मुस्कुरा रहे थे । पीताम्बर पहने हुए थे, तथा वनमाला धारण किए हुए थे । उस समय उनका सौन्दर्य इतना मोहक था कि ब्रह्मादि देवताओं को भी मोहित करने वाला काम श्रीभगवान् के उस रूप को देखकर मोहित हो जाय ॥२॥

भावार्थ दीपिका

साक्षान्मन्मथमन्मथो जगन्मोहनस्य कामस्यापि मनस्युद्भूतः कामः साक्षात्तस्यापि मोहक इत्यर्थः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

कामदेव अपने सौन्दर्य से सबों को मोहित कर देने का काम करता है । श्रीभगवान् का इतना सुन्दर रूप था कि उसको देखकर कामदेव भी मोहित हो जाय ॥२॥

तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः । उत्तस्थुर्युगपत्सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥३॥

अन्वयः— तं प्रेष्ठम् आगतं विलोक्य पीत्युत्फुल्लदृशः सर्वाः अबलाः तन्वः प्राणम् आगतम् इव युगपत् उत्तस्थुः॥३॥

अनुवाद— अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण को आये हुए देखकर जैसे मरे हुए शरीर में प्राण का संचार

हो गया हो, उसी तरह सारी व्रज गोपियाँ उठकर खड़ी हो गयी । उस समय उन सभी गोपियों के नेत्र प्रेम और आनन्द से खिल उठे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तन्वः करचरणादयः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

तन्वः अर्थात् हाथ पैर इत्यादि ॥३॥

काचित्कराम्बुजं शौरेर्जगृहेऽञ्जलिना मुदा । काचिद्दधार तद्बाहुमंसे चन्दनभूषितम् ॥४॥

अन्वयः— काचित् शौरेः कराम्बुजं मुदा अञ्जलिना जगृहे, काचित् चन्दनभूषितं तद्बाहुम् अंशेदधान ॥४॥

अनुवाद— एक गोपी ने भगवान् श्रीकृष्ण के कर कमल को प्रसन्नता पूर्वक अपनी अञ्जलि में धारण कर लिया और किसी गोपी ने श्रीभगवान् के चन्दन चचित भुजाओं को अपने कन्धे पर रख लिया ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

काचिदञ्जलिनाऽगृह्णात्तन्वी ताम्बूलचर्वितम् । एका तदङ्घ्रिकमलं संतप्ता स्तनयोरधात् ॥५॥

अन्वयः— काचित् तन्वी ताम्बूलचर्वितम् अञ्जलिना अगृह्णत् एका संतप्ता तदङ्घ्रिकमलं स्तनयोरधात् ॥५॥

अनुवाद— कोई सुन्दरी श्रीभगवान् के चबाए हुए पान को अपनी अञ्जलि में रोक ली और कोई सुन्दरी जिसके हृदय में श्रीभगवान् की विरहाग्नि जल रही थी वह श्रीभगवान के पैरों को अपने वक्षोजों पर रख ली ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अञ्जलिना संहतहस्तद्वयेन ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अञ्जलिना अर्थातृ अञ्जलि में ॥५॥

एका भ्रुकुटिमाबध्य प्रेमसंरम्भविह्वला । घ्नन्तीवैक्षत्कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा ॥६॥

अन्वयः— प्रेमसंरम्भविह्वलाएका संदष्टदशच्छदा भ्रुकुटिमाबध्य कटाक्षेपैः ध्नन्ती इव ऐच्छत् ॥६॥

अनुवाद— प्रणय कोप से विह्वल होकर एक गोपी अपनी भौहों को चढ़कार अपने दाँतों से ओष्ट को दबाली और अपने कटाक्ष रूपी बाणों से जैसे उनको बिंधती हुई श्रीभगवान् की ओर देखने लगी ॥६॥

भावार्थ दीपिका

भ्रुकुटिं भ्रुवमाबध्य कुटिलीकृत्य प्रेमसंरम्भेण प्रणयकोपावेशेन विह्वला विवशा दष्टाधरोष्ठा कटाः कटाक्षास्तैर्ये आक्षेपाः परिभवास्तैस्ताडयन्तीवैक्षत ॥६॥

भाव प्रकाशिका

कोई गोपी अपने भौहों को चढ़ाकर प्रणय कोप के कारण अपने ओष्ट को अपने दाँतों तले दबा ली और अपने कटाक्ष रूपी बाणों से जैसे उनपर प्रहार करती हुई के समान श्रीभगवान् को देखने लगी ॥६॥

अपराऽनिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखाम्बुजम् । आपीतमपि नातृप्यत्सन्तस्तच्चरणं यथा ॥७॥

अन्वयः— अपरा अनिमषद दृग्भ्यां तन्मुखाम्बजं जुषाणा सन्तःतच्चरणं यथा आपीतमपि न अतृप्यत् ॥७॥

अनुवाद— दूसरी गोपी अपने निर्मिमेष नेत्रों से श्रीभगवान् के मुख कमल के मकरन्द का पान करती हुई

जिस तरह सन्त पुरुष श्रीभगवान् के चरणों की सेवा से कभी तृप्त नहीं होते हैं, उसी तरह वह भी श्रीभगवान् के मुखकमल मकरन्द का पान करती हुई भी तृप्त नहीं हुई ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अनिमिषन्तीभ्यामनिमीलन्तीभ्यां दृग्भ्यामापीतमपि सम्यग्दृष्टमपि पुनः पुनर्जुषाणा नातृप्यत् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

अपने निर्निमेष नेत्रों से श्रीभगवान् के मुख कमल को देखकर भी संतुष्ट नहीं हो पा रही थी ॥७॥

तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदिकृत्य निमील्य च । पुलकाङ्ग्युपगुह्यास्ते योगीवानन्दसंप्लुता ॥८॥

अन्वयः— काचित् नेत्र रन्ध्रेणतंहृदिकृत्य निमील्य च उपगुह्य पुलकाङ्गी योगी इव आनन्दसंप्लुता आस्ते ॥८॥

अनुवाद— एक गोपी अपने नेत्र मार्ग से भगवान् श्रीकृष्ण को अपने हृदय में स्थापित करके अपने नेत्रों को बन्द कर ली और अपने हृदयस्थ श्रीभगवान् का आलिङ्गन करके रोमाञ्चित हो गयी जिस तरह कोई योगी आनन्दमग्न हो जाता है उसी तरह वह भी आनन्दमग्न हो गयी ॥८॥

भावार्थ दीपिका

हृदिकृत्य हृदयं नीत्वेत्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

हृदिकृत्य अर्थात् हृदय में स्थापित करके ॥८॥

सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः । जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥९॥

अन्वयः— ताः सर्वाः केशवालोक परमोत्सवनिवृताः प्राज्ञं प्राप्य जनाः यथा विरहजं तापं जहुः ॥९॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन से परमानन्द प्राप्त गोपियों को श्रीभगवान् के विरह के कारण जो अत्यन्त सन्ताप उत्पन्न हो गया वह समाप्त हो गया और वे उसी तरह आनन्दमग्न हो गयीं जिस तरह कोई मुमुक्षु पुरुष परमात्मा को प्राप्त करके जीवन के संतापों से मुक्त हो जाता है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

प्राज्ञमीश्वरं प्राप्य यथा मुभुक्षवो जनाः । यद्वा प्राज्ञं ब्रह्मज्ञं प्राप्य यथा संसारिणः । यद्वा प्राज्ञं सौषुप्तं प्राप्य यथा विश्वतैजसावस्था जीवाः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह ईश्वर को प्राप्त करके जैसे मुमुक्षु जीव अथवा जैसे ब्रह्मज्ञानी को प्राप्त करके जैसे संसारी जीव अथवा सुषुप्तिकाल के साक्षी परमात्मा को प्राप्त करके जैसे विश्व एवं तैजसावस्था के जीव ।

ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः । व्यरोचताधिकं तात पुरुषः शक्तिभिर्यथा ॥१०॥

अन्वयः— हे तात ! विधूतशोकाभिः ताभिः वृतः अच्युतः शक्तिभिः पुरुषो यथा अधिकं व्यरोचत ॥१०॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! जिन सबों का शोकसन्ताप समाप्त हो गया था उन गोपियों से घिरे हुए श्रीभगवान् श्रीकृष्ण की उसी तरह से अत्यधिक शोभा हो रही थी जिस तरह परमा शक्ति अपनी सत्त्वादि शक्तियों से सुशोभित होते हैं॥१०॥

भावार्थ दीपिका

पुरुषः परमात्मा शक्तिभिः सत्त्वादिभिर्यथा । यद्वा उपासकः पुरुषो ज्ञानबलवीर्यादिभिः । यद्वा पुरुषोऽनुशायी प्रकृत्याद्युपाधिभिर्वृतो यथाऽधिकं विरोचते तद्वत् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह परमात्मा अपनी सत्त्वादि शक्तियों के साथ सुशोभित होते हैं । अथवा जैसे उपासक पुरुष अपनी ज्ञान, बल तथा पराक्रम आदि से जैसे सुशोभित होता है अथवा जिस तरह अनुशायी पुरुष अपनी प्रकृति आदि उपाधियों से युक्त होकर अधिक सुशोभित होता है उसी तरह ॥१०॥

ताः समादाय कालिन्द्या निर्विश्य पुलिनं विभुः । विकसत्कुन्दमन्दारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥११॥

अन्वयः— विभुः ताः समादाय कालिन्द्याः विकसत् कुन्दमन्दारभ्यनिलषट्पदम् पुलिनं निर्विश्य अधिकं व्यरोचत, इति पूर्वेणन्वभः ॥११॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण उन सभी गोपियों को अपने साथ लेकर खिले हुए कुन्द एवं मन्दार पुष्पों की सुगन्धि लेकर चलने वाली वायु की सुगन्धि के कारण मँडराते हुए भ्रमरों से युक्त यमुनाजी के तट में प्रवेश करके अधिक सुशोभित हुए ॥११॥

भावार्थ दीपिका

विकसत्कुन्दमन्दारैः सुरभिर्योऽनिलस्तस्मात्षट्पदा यस्मिंस्तत् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

खिले हुए कुन्द और मन्दार से सुगन्धित वायु के कारण जहाँ भौरे मँडरा रहे थे इस प्रकार के यमुना तट में श्रीभगवान् प्रवेश कर गये ॥११॥

शरच्चद्रांशुसंदोहध्वस्तदोषातमः शिवम् । कृष्णाया हस्ततरलाचितकोमलवालुकम् ॥१२॥

अन्वयः— शरच्चन्द्रांशुसंदोहध्वस्त दोषातमः शिवम् कृष्णायाः हस्ततरलापितकोमलबालुकम् पुलिनं निविश्य अधिकं व्यरोचत्त इति पूर्व श्लोकेन सहान्वयः ॥१२॥

अनुवाद— शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की चाँदनी अपना मोहक सौन्दर्य विखेर रही थी, उसके कारण रात्रि का अन्धकार विनष्ट हो गया था । अतएव वह रात्रि अत्यन्त सुखद हो गयी थी । लगता था कि यमुनाजी ने जैसे अपने चंचल तरङ्ग रूपी हाथों से श्रीभगवान् के लीला के लिए कोमल बालुकाओं का रङ्गमञ्च बना दिया हो ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

शरच्चन्द्रांशूनां संदोहैः समूहैर्ध्वस्तं दोषातमो रात्रिगतं तमो यंस्मिस्तत् । अतः शिवं सुखकरम् । हस्तरूपैस्तरलैस्तरङ्गैराचिता आस्तृता कोमला बालुका यस्मिन् । एवंभूतं पुलिनं ताः समादाय निर्विश्य ताभिर्वृतोऽधिकं व्यरोचतेति पूर्वेणान्वयः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

शरद् ऋतु की चन्द्रमा के किरणों के समूह से रात्रि का अन्धकार विनष्ट हो गया था । वह रात्रि मङ्गलमयी हो गयी थी । लगता था कि जैसे श्रीयमुनाजी अपने हाथ रूपी चञ्चल तरङ्गों से कोमल बालुका को बिछा दी हों। इस प्रकार के यमुनाजी के तट में उन सभी व्रजवनिताओं को लेकर श्रीभगवान् आ गये । और उन सभी गोपियों से घिरे हुए श्रीभगवान् अत्यधिक सुशोभित हुए ॥१२॥

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ।
स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कुमाङ्कितैरचीक्लृपन्नासनमात्मबन्धवे ॥१३॥

अन्वयः— तद्दर्शना ह्लाविधूत हृद्रुजः श्रुतयो यथा मनोरथान्तं ययुः । आत्मबन्धवे कुचकुंकुमाङ्कितैः स्वैः उत्तरीयैः आसनम् अचीक्लृपन् ॥१३॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन हो जाने से गोपियों के हृदय में इतना आनन्द का उल्लास बढ़ा कि श्रीभगवान् के विरह में उनके हृदय में जो सन्ताप बढ़ा था वह समाप्त हो गया, और जिस तरह कर्मकाण्ड भाग में श्रीभगवान् के दर्शन के लिए प्यासी हुई श्रुतियाँ वेदान्त भाग में श्रीभगवान् का पूर्ण रूप से वर्णन करके कृतकृत्य हो जाती हैं, उनका सारा मनोरथ परिपूर्ण हो जाता है। उसी तरह गोपियों का सारा मनोरथ पूर्ण हो गया था। अब वे अपने आप में पूर्णरूप से सन्तुष्ट थीं। उन सबों ने अपने स्तनों में लगे हुए कुकुम के राग से अंकित ओढ़नी से अपने परम बन्धु भगवान् श्रीकृष्ण को बैठने के लिए आसन बना दिया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

ताश्च मनोरथानामन्तं ययुः पूर्णकामा बभूवुः। श्रुतयो यथेति। अयमर्थः-यथा कर्मकाण्डे श्रुतयः परमेश्वरमपश्यन्त्यस्तत्कामानुबन्धैरपूर्णा इव भवन्ति, ज्ञानकाण्डे तु परमेश्वरं दृष्ट्वा तदाह्लादपूर्णाः कामानुबन्धं जहति तद्वदिति। आप्तकामा अपि प्रेम्णा तमभजन्नित्याह-स्वैरिति। अचीक्लृपत् रचयामासुः। आत्मबन्धवेऽन्तर्यामिणे ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

अब गोपियों का सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो गया था अतएव वे वे सब पूर्णकाम हो गयी थीं। जिस तरह कर्मकाण्ड भाग में श्रुतियाँ परमात्मा का दर्शन नहीं कर सकने के कारण परमात्म दर्शन की कामना अपूर्ण ही रह गयी और वेदान्त भाग में वे सब परमात्मा का दर्शन करके, तज्जन्य आह्लाद से परिपूर्ण हो जाती हैं और कामना की अपूर्ति रूपी कष्ट का परित्याग कर देती हैं उसी तरह से गोपियों के भी हृदय का सन्ताप समाप्त हो गया, वे आप्तकाम हो चुकी थी, फिर भी वे प्रेम पूर्वक अपने आत्मबन्धु की सेवा करने लगीं। और अपने परम बान्धव श्रीकृष्ण को बैठने के लिए अपने उत्तरीय का आसन बना दीं ॥१३॥

तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो योगेश्वरान्तर्हृदिकल्पितासनः ।
चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चितस्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥१४॥

अन्वयः— योगेश्वरान्त र्हृदिकल्पितासनः स ईश्वरः भगवान् तत्रोपविष्टः गोपी परिषद्गतः अर्चितः त्रैलोक्यलक्ष्म्येक पदं वपुर्दधत् चकास ॥१३॥

अनुवाद— बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदय रूपी आसन पर श्रीभगवान् को बैठाने का प्रयास करके भी नहीं बैठा पाते है, वे ही सम्पूर्ण जगत् के नियामक श्रीभगवान् गोपियों द्वारा निर्मित आसन पर बैठ गये तथा गोपियों के बीच में बैठे हुए श्रीभगवान् त्रैलोक्य के सम्पूर्ण सौन्दर्य से सुशोभित शरीरधारण किए हुए सुशोभित होने लगे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

गोपीसभागतस्ताभिः संमानितः सन् चकास शुशुभे। त्रैलोक्ये या लक्ष्मीः शोभा तस्या एकमेव पदं स्थानं तद्वपुर्दधद्दर्शयन्॥१४॥

भाव प्रकाशिका

गोपियों के बीच में विराजन श्रीभगवान् सुशोभित हुए। सम्पूर्ण त्रैलोक्य के सौन्दर्य से सम्पन्न शरीर को धारण किए हुए श्रीभगवान् सुशोभित हुए ॥१४॥

सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा ।
संस्पर्शनेनाङ्ककृताङ्घ्रिहस्तयोः संस्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे ॥१५॥

अन्वयः— अनङ्गदीपनं तम् सहासलीलेक्षण विभ्रमभ्रुवा सभाजयित्वा संस्पर्शनेनाङ्ककृताङ्घ्रिहस्तयोः संस्तुतय ईशत्कुपिताः बभाषिरे ॥१५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् अपने अलौकिक सौन्दर्य के द्वारा गोपियों के प्रेम और आकाङ्क्षा को और अधिक उद्दीपित कर रहे थे। गोपियों ने भी अपने मन्द मुस्कान विलास पूर्वक प्रेक्षण तथा कटाक्षपात के द्वारा श्रीभगवान् का सम्मान किया। किसी ने श्रीभगवान् के चरण कमलों को तो किसी ने उनके हाथों को अपनी गोद में रख लिया तथा श्रीभगवान् के अङ्गों को दबाती हुई उनके अङ्गों के सौन्दर्य की प्रशंसा करती हुई श्रीभगवान् के छिप जाने के कारण प्रणय कोप सी करती हुई कहने लगी ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

सहासलीलेक्षणेन विभ्रमो विलासो यस्यां तया भ्रुवोपलक्षिताः। संस्पर्शनेन संमर्दनेन ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

हँसी और विलासपूर्ण कटाक्षपात के द्वारा। संस्पर्शनेन अर्थात् दबाती हुई ॥१५॥

गोप्य ऊचुः

भजतोऽनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम्। नोभयांश्च भजन्त्येक एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥१६॥

अन्वयः— एके भजतः अनुभजन्ति, एके एतद् विपर्ययम्, एके नोभयांश्च भजन्ति भोः एतत् नः साधु ब्रूहि ॥१६॥

गोपियों ने श्रीभगवान् से कहा

अनुवाद— कुछ लोग तो प्रेम करने वालों से ही प्रेम करते हैं, कुछ लोग प्रेम नहीं करने वालों से भी प्रेम करते हैं, कुछ लोग तो दोनों में से किसी से भी प्रेम नहीं करते हैं। हे प्रियतम! आपको इन तीनों में से कौन अच्छे लगते हैं ?॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तत्र भगवतोऽकृतज्ञतां तद्वचनेनैवापादयितुकामा गूढाभिप्राया लोकवृत्तान्तमिव पृच्छन्ति-भजत इति। भजतः प्राणिनः। अनु अनन्तरं। केचित्तद्भजनानुसारेण भजन्ति। केचिदेतद्विपर्ययं यथा भवति तथा। तद्भजनानपेक्षमभजतोऽपि भजन्ति। अन्ये तु नोभयानिति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की ही बातों से उनकी अकृतज्ञता का प्रतिपादन करने के अभिप्राय से गोपियाँ अपने अभिप्राय को छिपाये रखकर सांसारिक वृत्तान्त के समान उनसे पूछती है **भजतः इत्यादि** कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपने से प्रेम करने वालों से ही प्रेम करते हैं। और कुछ लोग नहीं प्रेम करने वालों से भी प्रेम करते हैं। तथा कुछ लोग न तो प्रेम करने वालों से प्रेम करते हैं और न प्रेम नहीं करने वालों से प्रेम करते हैं ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच

मिथो भजन्ति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते। न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा॥१७॥

अन्वयः— हे सख्यः ये मिथो भजन्ति ते हि स्वार्थैकान्तोद्यमाः तत्र न सौहृदं न धर्मः तद्धि स्वार्थार्थं अन्यथा न ॥१७॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे सखियों जो लोग परस्पर में एक दूसरे से प्रेम करते हैं, उन लोगों का सारा प्रयास केवल स्वार्थ की पूर्ति के लिए होता है। उनमें न तो प्रेम होता है और न तो धर्म वहाँ तो केवल स्वार्थ की पूर्ति ही प्रयोजन होता है और कुछ नहीं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

विदिताभिप्राय उत्तरमाह–मिथ इति । हे सख्यः, उपकारप्रत्युपकारतया ये मिथो भजन्ति तेऽन्यं न भजन्ति किंत्वात्मानमेव। कुतः । हि यस्मात्स्वार्थ एवैकान्त उद्यमो येंषा ते । तत्र च न सौहृदमतो न सुखं, न च धर्मो दृष्टोद्देशाद्गोमहिष्यादिभजनवदित्यर्थः।।१७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् गोपियों के अभिप्राय को समझ लिये और उन्होंने उसका उत्तर दिया हे सखियों उपकार के बदले में उपकार रूप से जो लोग एक दूसरे से प्रेम करते हैं, वे दूसरे से नहीं केवल अपने से प्रेम करते हैं । क्योंकि उनका वह प्रेम भी केवल स्वार्थ की पूर्ति के लिए ही है । उसमें सौहार्द का अभाव होने से सुख नहीं मिलता है । उसमें धर्म भी नहीं होता, क्योंकि उस प्रेम का उद्देश्य तो दृष्ट की पूर्ति मात्र है जैसे गौ की सेवा या भैंस की सेवा ।।१७।।

भजन्त्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा । धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ।।१८।।

अन्वयः— हे सुमध्यमाः ये करुणाः अभजतोऽपि पितरो यथा भजन्ति अत्र निरपवादः धर्मः सौहृदं च ।।१८।।

अनुवाद— हे सुन्दरियों जो स्वभाव से ही माता-पिता के समान करुणा करने वाले पुरुष प्रेम नहीं करने वालों से भी प्रेम करते हैं, उनमें स्वाभाविक प्रेम है और धर्म है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

ये त्वभजतो भजन्ति ते द्विविधाः। करुणाः स्निग्धाश्च । तत्र तु यथाक्रमं धर्मकामौ भवत–इत्याह–भजन्त्यभजत इति।।१८।।

भाव प्रकाशिका

जो लोग प्रेम नहीं करने वालों से भी प्रेम करते हैं ऐसे लोग दो प्रकार के होते हैं- करुण (दयालु) और स्निग्ध (प्रेमी) । करुण पुरुषों को धर्म की प्राप्ति होती है और स्निग्ध पुरुषों को काम की इस बात को भजन्त्यभजतः श्लोक से कहा गया है ।।१८।।

भजतोऽपि न वै केचिद्भजन्त्यभजतः कुतः । आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ।।१९।।

अन्वयः— केचिद् वै भजतोऽपि न भजन्ति अभजतः कुतः ते आत्मारामाः ह्याप्त कामाः अकृतज्ञाः गुरुद्रुहः ।।१९।।

अनुवाद— कुछ लोग ऐसे होते हैं जो प्रेम करने वालों से भी प्रेम नहीं करते हैं वे लोग चार प्रकार के होते हैं १. आत्माराम (अपने में ही रमण करने वाले), २. आप्तकाम (जिनकी सारी इच्छाएँपूरी हो चुकी हैं), ३. अकृतज्ञ (किए हुए उपकार को नहीं मानने वाले) तथा ४. गुरुद्रोही (अपने गुरुजनों से भी द्रोह करने वाले)।।१९।।

भावार्थ दीपिका

तृतीयप्रश्नोत्तरं भजतोऽपीति । अयमर्थः–ते तु चतुर्विधाः । एके आत्मारामा अपराग्दृशः, केचिदाप्तकामा विषयदर्शिनोऽपि पूर्णकामत्वेन भोगेंच्छारहिताः, अन्येऽकृतज्ञा मूढाः, अन्ये तु गुरुद्रुहोऽतिकठिनाः, 'स पिता यस्तु पोषकः' इति न्यायादुपकर्ता गुरुतुल्यस्तस्मै द्रुह्यन्तीति तथा ते ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

अभजतोऽपि यह तीसरे प्रश्न का उत्तर है । उसका अर्थ है कि ऐसे लोग चार प्रकार के होते है- १. आत्माराम वे जड़ पदार्थों को देखते ही नहीं । २. आप्तकाम- इच्छा को पूर्ण होने से भोग की इच्छा से रहित। ३. अकृतज्ञ अर्थात् अज्ञानी और ४. गुरुद्रोही अत्यन्त कठोर स्वभाव वाले पालन करने वाला ही पिता कहलाता है । उपकार करने वाले से भी द्रोह करने वाले ।।१८।।

नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून्भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ।
यथाऽधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिन्तयान्यन्निभृतो न वेद ॥२०॥

अन्वयः— हे सख्यः अहं तु भजतः अपि जन्तून् न भजामि, अमीषाम् अनुवृत्ति वृत्तये, यथा अधनः लब्धधने विनष्टे तच्चिन्तया अन्यत् निभृतो न वेद ॥२०॥

अनुवाद— सखियों मैं अपने से प्रेम करने वाले भी जीवों से उस तरह का प्रेम इसलिए नहीं करता हूँ कि उसकी चित्त की वृत्ति मुझमें लगी रहे । वह मेरा ही निरन्तर उसी तरह से चितन करता रहे जिस तरह किसी निर्धन व्यक्ति को धन मिलकर नष्ट हो जाय तो वह उस धन की ही चिन्ता करता रहता है, उसके अतिरिक्त वह किसी दूसरे को नहीं सोचता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अत्र चरमकोटिगतमात्मानं मत्वा, अक्षिसंकोचैः परस्परं गूढस्मितमुखीस्ता दृष्ट्वा आह-नाहं त्विति । हे सख्यः, अहं तेषां मध्ये न कोऽपि, किंतु परमकारुणिकः परमसुहृच्च । कथम् । अमीषां भजतामनुवृत्तिवृत्तये निरन्तरध्यानप्रवृत्त्यर्थं तान्न भजामि । एतत्सदृष्टान्तमाह-यथेति । तस्य धनस्यैव चिन्तया निभृतः पूर्णः । व्याप्त इति यावत् । अन्यत् क्षुत्पिपासाद्यपि न वेद ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अपने को अन्तिम कोटि में मानकर नेत्रों के इशारे से परस्पर में हँसी को छिपाये रखने वाली गोपियों को देखकर श्रीभगवान् ने कहा **नाहंतु इत्यादि** सखियों मैं उन सबों में कोई नहीं हूँ । मैं तो सबों का परम हितैषी और परम कारुणिक हूँ । यदि पूछो कि कैसे ? तो इसका उत्तर है कि जो लोग मेरा भजन करते हैं उन लोगों का ध्यान मुझमें निरन्तर बना रहे एतदर्थ उन सबों से प्रेम नहीं करता है । इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक श्रीगवान् ने कहा किसी निर्धन व्यक्ति को धन प्राप्त होकर फिर भूल जाय तो वह जैसे उसी की चिन्ता में पड़ा रहता है। उसे अपने भूख-प्यास की परवाह नहीं रहती हैं ॥२०॥

एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ।
मया परोक्षं भजता तिरोहितं माऽसूयितुं माऽर्हथ तत्प्रियं प्रियाः ॥२१॥

अन्वयः— हे अबलाः एवं मदर्थोज्झित लोकवेदस्वानां वः मयि अनुवृत्तये, परोक्षं भजता मया तिरोहितं प्रियमा प्रियाः असूयितुम् मा अर्हथ ॥२१॥

अनुवाद— हे गोपियों, तुमलोगों ने मेरे लिए लोक मर्यादा तथा वेद मर्यादा दोनों का परित्याग कर दिया, यहाँ तक कि तुम लोगों ने अपने सगे संबन्धियों का भी परित्याग कर दिया है । इस तरह से मुझसे प्रेम करने वाली तुमलोगों का मन मुझमें ही लगा रहा घर परिवार की चिन्ता नहीं किया एतदर्थ यद्यपि मैं तुमलोगों से प्रेम करता था फिर भी अपने को तिरोहित कर लिया था । अतएव तुमलोगा मेरी प्रियतमा हों । मुझसे तुमलोगों को असूया (द्वेष बुद्धि) नहीं करनी चाहिए ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां मदर्थे उज्झितो लोको युक्तायुक्ताप्रतीक्षणात्, वेदश्च धर्माधर्माप्रतीक्षणात्, स्वा ज्ञातयश्च स्नेहत्यागात् याभिस्तासां वो युष्माकं परोक्षमदर्शनं यथा भवति तथा भजता युष्मत्प्रेमालापान् शृण्वतैव तिरोहितमन्तर्धानेन स्थितम् । तत्तस्मात् हे अबला हे प्रियाः, मा मामसूयितुं दोषारोपेण द्रष्टुं यूयं मार्हथ न योग्याः स्थ ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

तुमलोगों ने मुझको प्राप्त करने के लिए उचित अनुचित विचार रूप लोक की मर्यादा का परित्याग कर

दिया है तथा धर्म एवं अधर्म का विचार रूप वैदिक मर्यादा का परित्याग कर दिया है । यही नहीं तुमलोगों ने मुझे प्राप्त करने के लिए अपने सगे संबन्धियों का परित्याग कर दिया है । ऐसे तुमलोगों से परोक्ष में रहकर प्रेम करने वाला मैं तुमलोगों से तिरोहित हो गया था । और तुमलोग जो मेरे विषय में बातें करती थी उस प्रेमालाप को मैं सुनता रहता था । अतएव हे गोपियों तुमलोग मेरी प्रियतमा हो । अतएव तुमलोगों को मुझमें दोष बुद्धि नहीं करनी चाहिए ।।२१।।

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ।
या माऽभजन्दुर्जरगेहशृङ्खलाः संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ।।२२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां गोपीसान्त्वनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ।।३२।।

अन्वयः— निरवद्यसंयुजां वः यादुर्जरगेहशृंखलाः संवृश्चय मा अभजन् अहं विवुधायुषा अपि स्वसाधुकृत्यं न पारये तद् वः साधुना प्रतियातु ।।३२।।

अनुवाद— गोपियों तुमलोगों का यह जो आत्मिक संयोग है वह निर्मल है । घर परिवार का संबन्ध दुर्जन है । इसका छूटना बड़ा ही कठिन है । तुमलोगों ने घर परिवार के इस अत्यन्त कठिन शृंखला को काटकर मुझसे प्रेम किया है । यदि मैं देवताओं की भी आयु प्राप्त करके आजीवन पुण्य कर्मों को करता रहूँ, और उस पुण्य से तुमलोगों का बदला चुकाना चाहूँ तो भी मैं तुमलोगों को बदला नहीं चुका सकता हूँ मैं तुमलोगों का ऋणी ही बना रहूँगा । तुमलोग यदि अपने सौम्यशील तथा स्वभाव के द्वारा मुझे उऋण करना चाहो तो मैं उऋण हो सकता हूँ, अन्यथा मैं ऋणी ही बना रहूँगा ।।२२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के रासलीला के प्रसङ्ग में गोपियों को सान्त्वना प्रदान नामक बत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

अस्तामिदं, परमार्थं तु शृणुतेत्याह-नेति । निरवद्या संयुक् संयोगो यासां तासां वो विबुधानामायुषापि चिरकालेऽपि स्वीयं साधु कृत्यं प्रत्युपकारं कर्तुं न पारये न शक्नोमि । कथंभूतानाम् । या भवत्यो दुर्जरा अजरा या गेहशृङ्खलास्ताः संवृश्च्य निःशेषं छित्त्वा मा मामभजंस्तासाम् । मच्चितं तु बहुषु प्रेमयुक्ततया नैकनिष्ठम् । तस्माद्वो युष्माकमेव साधुना साधुकृत्येन तत् युष्मत्साधु कृत्यं प्रतियातु प्रतिकृतं भवतु । युष्मत्सौशील्येनैव ममानृण्यं, नतु मत्कृतप्रत्युपकारेणेत्यर्थः ।।२२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

अतएव इन सारी बातों को छोड़ों मैं वास्तविक बात बतलाता हूँ वह सुनो । तुमलोगों का मुझसे यह जो मिलन है, यह बिल्कुल निर्दोष है । यदि मैं दीर्घकाल पर्यन्त पुण्य कार्यों को करके, तुमलोगों का प्रत्युपकार करना चाहूँ तो भी मैं तुमलोगों का प्रत्युपकार करने में समर्थ नहीं हो पाऊँगा । क्योंकि तुम लोगों ने गृह और परिवार की अत्यनत कठोर वेड़ी को काटकर मेरा भजन किया । मेरा चित्त तो अनेक गोपियों में लगे रहने के कारण अनेक निष्ठ रहा । अतएव तुम लोग ही अपने सत्कर्मों के द्वारा अपने ऋण से उऋण करो तो मैं उऋण हो सकता हूँ।।२२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के बत्तीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३२।।

तैंतिसवाँ अध्याय

महारास

श्रीशुक उवाच

इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः । जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥१॥

अन्वयः— गोप्यः भगवतः इत्थं सुपेशलाः वाचः श्रुत्वा विरहजं तापं जहुः तदङ्गोपचिताशिषः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् गोपियाँ श्रीभगवान् की इस प्रकार की सुमधुर वाणी को सुनकर भगवद् विरहजन्य सन्ताप का परित्याग कर दीं तथा सौन्दर्य सागर श्रीभगवान् के आङ्गसङ्ग को प्राप्त करके सफल मनोरथ हो गयीं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयस्त्रिंशे ततो गोपीमण्डलीमध्यगो हरिः । प्रियास्ता रमयामास ह्रदिनीवनकेलिभिः । तत्तदा अङ्ग हे राजन्, यद्वा तस्य भगवतोऽङ्गेन वपुषा करचरणाद्यवयवैर्वोपचिताः समृद्धा आशिषो यासां ताः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तैंतिसवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि गोपियों की मण्डली में विद्यमान श्रीहरि अपनी प्रियतमा उन गोपियों को यमुनाजी के वन में क्रीडा आदि के द्वारा रमण कराये । उस समय हे राजन् अथवा श्रीभगवान् के हाथ पैर आदि अङ्गों के संबन्ध से जिनका मनोरथ सफल हो गया था ॥१॥

तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः । स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥२॥

अन्वयः— प्रीतै अन्योन्यावद्धवाहुभिः अनुव्रतैः स्त्रीरत्नैः अन्वितः गोविन्दः तत्र रासक्रीडाम् आरभत ॥२॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेयसी गोपियाँ प्रसन्नतापूर्वक एक दूसरे के हाथ में हाथ डाले खड़ी थीं। उन स्त्री रत्नों से युक्त भगवान् श्रीकृष्ण रासक्रीडा करना प्रारम्भ किए ॥२॥

भावार्थ दीपिका

रासक्रीडां रासो नाम बहुनर्तकीयुक्तो नृत्यविशेषस्तां क्रीडाम् । अन्योन्यमावद्धाः संग्रथिता बाहवो यैस्तैः सह ॥२॥

भाव प्रकाशिका

अनेक नर्तकियों के साथ किये जाने वाले नृत्य विशेष को रास क्रीडा कहते हैं । उस रास क्रीडा का करना प्रारम्भ किया भगवान् श्रीकृष्ण ने जो परस्पर में एक दूसरे के हाथ में हाथ डाल रखी थीं उन स्त्री रत्नों के साथ रास क्रीडा करना प्रारम्भ किया ॥२॥

रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः । योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ॥
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥३॥
यं मन्येरन्नभस्तावद्विमानशतसंकुलम् । दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥४॥

अन्वयः— गोपी मण्डलमण्डितः रासोत्सवः सम्प्रवृत्तः तासां द्वयोः द्वयोः मध्ये प्रविष्टेन योगेश्वरेण कृष्णेन कण्ठे गृहीतानां स्त्रियः यं स्वनिकटं मन्येरन् तावद्नभः औत्सुवयापहृतात्मनाम् सदाराणम् दिवौकसां विमानशतसंकुलम् ॥३-४॥

अनुवाद— सम्पूर्ण योगों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण उन दो-दो गोपियों के बीच में एक-एक कृष्ण प्रकट होकर उन सबों के गले में हाथ डाल दिए । इस तरह एक गोपी के बाद एक श्रीकृष्ण हो गये । फलतः

सभी गोपियाँ यही समझती थीं कि हमारे श्रीकृष्ण हमारे साथ हैं। इस तरह गोपियों के मण्डल से सुशोभित भगवान् श्रीकृष्ण ने रासोत्सव प्रारम्भ किया। उस समय रासोत्सव के दर्शन की लालसा से उत्किण्ठत सभी देवता अपनी पत्नियों के साथ अपने विमान में बैठकर वहाँ आ गये। इस तरह देवताओं के सैकड़ों विमानों से वहाँ का आकश भर गया ॥३-४॥

भावार्थ दीपिका

तत्साहित्यमभिनयेन दर्शयति-रासोत्सव इत्यक्षरचतुष्टयाधिकेन सार्धेन। तासां मण्डलरूपेणावस्थितानां द्वयोर्द्वयोर्मध्ये प्रविष्टेन तेनैव कण्ठे गृहीतानामुभयत आलिङ्गितानाम्। कथंभूतेन। यं सर्वाः स्त्रियः स्वनिकटं मामेवाश्लिष्टवानिति मन्येरंस्तेन एतदर्थं द्वयोर्द्वयोर्मध्ये प्रविष्टेनेत्यर्थः। नन्वेकस्य कथं तथा प्रवेशः, सर्वसन्निहितत्वे वा कुतः स्वैकनिकटत्वाभिमानस्तासामित्यत उक्तं-योगेश्वरेणेति। अचिन्त्यशक्तिनेत्यर्थः। तावत्तत्क्षणमेवौत्सुक्यव्याप्तमनसां सस्त्रीकाणां देवानां विमानशतैः संकुलं संकीर्णं नभो वभूव ॥३-४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के सन्निधान को श्रीशुकदेवजी **रासोत्सव** ये चार अक्षर जिसमें अधिक हैं ऐसे डेढ श्लोक से वतलाते हैं जो मण्डल रूप से खड़ी थीं उन दो-दो गोपियों के वीच में प्रविष्ट तथा उन्हीं के द्वारा उन दोनों गोपियों के गले में अपना हाथ डाल दिया था। अतएव सभी गोपियाँ श्रीभगवान् के द्वारा आलिङ्गित थीं। उसके कारण सभी स्त्रियाँ यही मानती थीं कि मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण मुझे ही अलिङ्गित किए हुए हैं। इसीलिए भगवान् दो दो गोपियों के वीच में प्रकट हुए थे। प्रश्न है कि श्रीकृष्ण तो एक थे वे सभी दो गोपियों के बीच में कैसे प्रवेश कर गये। किञ्च जव वे सवों के सन्निकट थे तव वे कैसे उनको प्रतीत होता था कि मेरे श्रीकृष्ण मेरे ही सन्निकट हैं। इसके उत्तर में शुकदेवजी ने कहा कि भगवान् श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं फलतः वे अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न हैं। उस समय देवताओं के मन में उस रास को देखने की उत्सुकता व्याप्त हो गयी। फलतः अपनी पत्नियों के साथ विद्यमान देवताओं के विमानों से वहाँ का आकाश भर गया ॥३-४॥

ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः। जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥५॥

अन्वयः— ततः दुन्दुभयः नेदुः पुष्पवृष्टयः निपेतुः स्त्रीकाः गन्धर्वपतयः तद्यशः जगुः ॥५॥

अनुवाद— उस समय देवताओं की दुन्दुभियाँ बजने लगीं देवताओं ने पुष्पों की बार-बार वर्षा की और बड़े-वड़े गन्धर्व अपनी पत्नियों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण के निर्मल यश का गान किया ॥५॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्य भगवतः श्रीकृष्णस्यामलं निर्मलं यशो जगुरिति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के निर्मल यश का गान किया ॥५॥

वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम्। सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥६॥

अन्वयः— रासमण्डले सप्रियाणाम् योषितानां बलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च तुमुलः शब्द अभूत् ॥६॥

अनुवाद— उस रासमण्डल में अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के साथ विद्यमान सभी गोपियाँ नृत्य कर रही थीं अतएव उनकी कलाइयों के कङ्गन पैरों के नूपुर तथा करधनी के छोटे-छोटे घुंघरु ये सब एक साथ शब्द करने लगे, इसलिए उन सबों की बड़े-ही जोर से ध्वनि हुई ॥६॥

भावार्थ दीपिका

सप्रियाणां कृष्णसहितानाम् । तुमुलः संकीर्णः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

सप्रियाणाम् अर्थात् अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के साथ विद्यमान तुमुलः अर्थात् सबों की संमिश्रत जोर से ध्वनि।।६।।

तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान्देवकीसुतः । मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ।।७।।

अन्वयः— तत्र ताभि भगवान् देवकीसुतः हैमानां मणीनां मध्ये महामरकताः यथा अतिशुशुभे ।।७।।

अनुवाद— उस रास क्रीड़ा में उन गौर वर्ण की गोपियों के बीच में विद्यमान श्याम वर्ण के भगवान् की उसी तरह से अत्यधिक शोभा हो रही थी जैसे पीतवर्ण के सुवर्णमणियों के बीच में विद्यमान नीले महामरकत मणि की शोभा होती है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

महामरकतो नीलमणिरिव हैमानां मणीनां मध्ये मध्ये ताभिः स्वर्णवर्णाभिराश्लिष्टाभिः शुशुभे । गोपीदृष्ट्यभिप्रायेण वा विनैव मध्यपदावृत्तिमेकवचनम् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

नीलमणि के समान सुवर्ण मणियों के समान गोपियों के बीच में उन गोपियों से आलिङ्गित होकर सुशोभित हुए । अथवा गोपियों की दृष्टि के अभिप्राय से यह बात कही गयी है । यहाँ मध्यपाद के बिना ही एक वचन है ।।७।।

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासैर्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ।
स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ।।८।।

अन्वयः— पादन्यासैः भुजविधुतिभिः सस्मितैः भ्रूविलासैः भज्यमानमध्यैः, चलकुचपटैः गण्डलोलैः कुण्डलैः स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः तं गायन्त्य ताः कृष्णवध्वः मेघचक्रे तडित इव विरेजुः ।।८।।

अनुवाद— कभी तो अपने पैरों को आगे बढ़ाती थीं और कभी अपने पैरों को पीछे कर लेती थीं वे अपने हाथों को इधर-उधरन चमका कर विभिन्न प्रकार के भावों को बतलाती थीं, कभी वे मुस्कुराती हुई कलापूर्ण ढंग से कटाक्ष पात करती थीं, तो कभी अपनी पतली कमर को इतना लचकाती थीं कि लगता था जैसे उनकी कमर टूट ही गई, चूकि वे बार-बार, झुकती थी, उठती थीं बैठाती थी, उसके कारण उनके स्तनहिल रहे थे, तथा उनके स्तनों के वस्त्र उड़ जाते थे । उनके हिलते हुए कानों के कुण्डल गालों पर आ जाते थे, परिश्रम होने के कारण उनके मुख पर पसीने की बूंदे चमकने लग जाती थीं और उनकी चोटी तथा करधनी की गन्थिः शिथिल हो जाती थी, इस तरह की भगवान् श्रीकृष्ण की प्रियतमा गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के साथ गा-गाकर नाच रही थीं । उस समय ऐसा मालुम पड़ता था जैसे श्यामवर्ण के अनेक श्याम सुन्दर रूपी श्याम वर्ण के मेघों के बीच में अनेक प्रकार की गौरवर्ण गोपियों रूप बिजलियाँ चमक रही हों ।।८।।

भावार्थ दीपिका

स यथा ताभिः शुशुभे, तथा ता अपि तेन विरेजुरित्याह-पादन्यासैरिति । भुजविधुतिभिः करचालनैर्भज्यमानैर्मध्यैश्चलद्भिः कुचैश्च पटैश्च । गण्डलोलैर्गण्डेषु चञ्चलैः । स्विद्यन्मुख्यः स्विद्यन्ति स्वेदमुद्गिरन्ति मुखानि यासां ताः । कबरेषु रशनासु च ग्रन्थयो दृढा यासाम् । यद्वा तेषु तासु चाग्रन्थयः, शिथिलग्रन्थय इत्यर्थः । तत्र नानामूर्तिः कृष्णो मेघचक्रमिव, तास्तु बहुविधास्तडित इव स्वेदस्तुषार इव, गीतं गर्जितमिवेति यथासंभवमूह्यम् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

जिस तरह गोपियों के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण सुशोभित हुए उसी तरह गोपियाँ भी भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा सुशोभित हुई । इस बात को **पादन्यासै इत्यादि** श्लोक के द्वारा श्रीशुकदेवजी ने कहा । **भुजविधुतिभिः** अर्थात् हाथों के इधर-उधर संचालित करने के कारण, **भज्यमानैर्मध्यैः** अर्थात् कमर को अत्यधिक लचकाने के कारण लगता था कि जैसे उनकी कमर टूट ही गयी, । चलभिः कुच पटैः अर्थात् गोपियों के स्तन हिल रहे थे और उनका वस्त्र उड़ रहा था । **गण्डलोलैः** अर्थात् गालों पर झूलने वाले । **स्विद्यन्मुख्यैः** परिश्रम करने के कारण उनके मुख पर पसीना आ जाने से, **कवरशनाग्रन्थयः** गोपियों की चोटी और करधनी की गांठे शिथिल हो जाने से । उस रास में अनेक शरीर धारण किए श्याम वर्ण के भगवान् श्रीकृष्ण मेघ समूह के समान थे । गोपियाँ अनेक वर्ण की गोपियाँ मेघों में चमकने वाली विद्युत् के समान थी । उन सबों के गीत मेघ की गर्जन ध्वनि के समान थी इस तरह से अन्य भी कल्पनाएँ की जा सकती हैं ।।८।।

उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः । कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ।।९।।

अन्वयः— रतिप्रियाः रक्तकण्ठ्यः कृष्णाभिभर्शमुदिताः नृत्यमानाः उच्चैर्जगुः यद्गीतेनेदमावृतम् ।।९।।

अनुवाद— गोपियाँ स्वभाव से ही श्रीभगवान् से प्रेम करने वाली हैं, यही उन सबों का जीवन है । उन सबों का गला अनेक रागों से अनुरञ्जित है । भगवान् श्रीकृष्ण का संस्पर्श प्राप्त होने के कारण वे सब अत्यन्त प्रसन्न हैं । वे सब नृत्य करती हुई जोर-जोर से गाने लगीं । उन सबों के गीत से यह सम्पूर्ण जगत् अब भी गूंज रहा है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

नृत्यमाना नृत्यन्त्यः । रक्तकण्ठ्यो नानारागैरनुरञ्जितकण्ठ्यः । कृष्णस्याभिमर्शेन संस्पर्शेन मुदिताः । इदं विश्वम् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

नृत्यमानाः अर्थात् नृत्य करती हुई । रक्तकण्ठ्यः अर्थात् उन सबों का कण्ठ (गला) अनेक राग रागिनियों से अनुरञ्जित है । **कृष्णाभिमर्शेन मुदिताः** अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण का संस्पर्श प्राप्त होने के कारण अत्यन्त प्रसन्न। इदम् अर्थात् सम्पूर्ण जगत् ।।९।।

काचित्समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः । उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति।।
तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् ।।१०।।

अन्वयः— काचित् मुकुन्देन समं स्वजातीः अमिश्रिताः उन्नित्ये, प्रीयता तेन साधु साधु इति पूजिता, तदेव ध्रुवम् उन्निन्ये तस्यै च बहु मानम् अदात् ।।१०।।

अनुवाद— कोई गोपी भगवान् श्रीकृष्ण के साथ स्वर में स्वर मीलाकर गा रही थी वह भगवान् श्रीकृष्ण के अपेक्षा और अधिक ऊँचे स्वर से गाने लगी । उस गोपी के विलक्षण और उत्तम स्वर को सुनकर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहकर उसकी प्रशंसा किए । उसी राग को एक गोपी ने ध्रुपद में गाया तो भगवान् ने उसका भी बहुत अधिक समादर किया ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

मुकुन्देन सह स्वरजातीः षड्जादिस्वरालापगतीः । अमिश्रिताः कृष्णोन्नीताभिरसंकीर्णाः । प्रीयमाणेन संमानिता तज्जात्युन्नयनमेव ध्रुवं ध्रुवाख्यं तालविशेषं कृत्वा उन्निन्ये उन्नीतवती ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के साथ अपने स्वरालाप को मिलाये बिना और जोर से गायी । प्रसन्न भगवान् के द्वारा

सम्मानित की गयी । उस गोपी के ही द्वारा जोर से गाये गये राग को ही ध्रुव नामक ताल विशेष से और जोर से गायी ॥१०॥

काचिद्रासपरिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः । जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥११॥

अन्वयः— रासपरिश्रान्ता काचित् श्लथद् वलयमल्लिका पार्श्वस्थस्य गदाभृतः स्कन्धं बाहुना जग्राह ॥११॥

अनुवाद— एक गोपी रास करते करते थक गयी थी । उसकी कलाई के कङ्गन और केशों में गुथे बेल्ला के फूल शिथिल हो गये थे । उसने अपने हाथ से भगवान् श्रीकृष्ण के कन्धे को पकड़ लिया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

एवं नृत्यगीतादिना श्रीकृष्णसंमानितानां तासामतिप्रीतिविलसितं वृत्तमाह-काचिदिति । श्लथन्ति वलयानि मल्लिकाश्च यस्याः सा ॥११॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से नृत्य गीत आदि के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के साथ सम्मानित स्नेह परिपूर्ण आचरण का वर्णन **काचित् इत्यादि** श्लोक से श्रीशुकदेवजी करते हैं । जिसकी कलाइयों के कङ्गन और केश में गूंथे बेला के फूल शिथिल हो रहे थे ॥११॥

तत्रैकासंगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम् । चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥१२॥

अन्वयः— तत्र एका कृष्णस्य उत्पलसौरभम् चन्दनलिप्तं अंसगतं बाहु आघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ॥१२॥

अनुवाद— उन गोपियों में से एक गोपी भगवान् श्रीकृष्ण की कमल की सुगन्धि से युक्त तथा चन्दन चर्चित भुजा को, जिसको भगवान् उस गोपी के कन्धे पर रखे हुए थे, उसको सूघंकर रोमाञ्चित हो गयी और उसने उस भुजा को चूम लिया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

उत्पलस्य सौरभं यस्य तं बाहुम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

कमल की सुगन्धि से युक्त भुजा को ॥१२॥

कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तकुण्डलत्विषमण्डितम् । गण्डं गण्डे संदधत्या अदात्ताम्बूलचर्वितम् ॥१३॥

अन्वयः— कस्याश्चित् नाट्यविक्षिप्त कुण्डलत्विषमण्डितं गण्डं गण्डे संदध्याः चर्वितं ताम्बूलम् अदात् ॥१३॥

अनुवाद— एक गोपी नृत्य कर रही थी, उसके कारण उसके कानों के कुण्डल हिल रहे थे । कुण्डल की कान्ति से उसकी गाल चमक रही थी । उसने अपनी गाल भगवान् श्रीकृष्ण के गाल से सटा दी तो श्रीभगवान् अपने चबाए हुए पान को उसके मुख में डाल दिए ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

नाट्येन नृत्येन विक्षिप्तयोश्चलयोः कुण्डलयोस्त्विषेण त्विषा मण्डितं गण्डं कपोलं तथाभूते स्वगण्डे संदधत्याः संयोजयन्त्याः॥१३॥

भाव प्रकाशिका

नृत्य करते रहने के कारण उस गोपी के कानों के कुण्डल हिल रहे थे । कुण्डल की कान्ति से उस गोपी की गाल सुशोभित हो रही थी । उसने अपनी गाल जब भगवान् श्रीकृष्ण की गाल से सटा दिया तो उसके मुख में भगवान् अपने चबाये हुए पान को डाल दिये ॥१३॥

नृत्यन्ती गायती काचित्कूजन्नूपुरमेखला । पार्श्वस्थाऽच्युतहस्तान्तं श्रान्ताऽधात्स्तनयोः शिवम् ॥१४॥

अन्वयः— कूजन् नूपुरमेखला काचित् नृत्यन्ती गायती श्रान्ता पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जं शिवम् स्तनयोः अधात् ॥१४॥

अनुवाद— अपनी करधनी और नूपुर की घुंघुरुओं का झनकारती हुई एक गोपी नाचती और गाती हुई जब थक गयी तो उसने अपने बगल में खड़े भगवान् श्रीकृष्ण के मङ्गलमय हस्त कमल को अपने दोनों स्तनों पर रख लिया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

कूजती नूपुरे मेखला च यस्याः सा ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

जिसके दोनों पायजेब और करधनी बज रही थी वह ॥१४॥

गोप्यो लब्ध्वाच्युतं कान्तं श्रिय एकान्तवल्लभम् । गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजह्रिरे ॥१५॥

अन्वयः— श्रियः एकान्तबल्लभम् अच्युतम् कान्तं लब्ध्वा तद्दोर्भ्यां गृहीत काण्ठ्यः गोप्यः गायन्त्यः तं विजह्रिरे॥१५॥

अनुवाद— श्रीलक्ष्मीजी के परमैकान्त प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण को अपने प्रियतम के रूप में प्राप्त करके गोपियाँ जिन सबों के कण्ठ को भगवान अपने दोनों हाथों से पकड़े हुए थे, उन गोपियों ने भगवान् श्रीकृष्ण के साथ विहार किया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

एवमन्या अपि गोप्यो यथायथं नानाविभ्रमैर्विजहुरित्याह-गोप्य इति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह दूसरी गोपियों ने भी अपने मनोनुकूल ढंग से अनेक प्रकार के विलासों के साथ विहार किया इस बात को श्रीशुकदेवजी ने **गोप्य० इत्यादि** श्लोक से कहा है ॥१५॥

कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलघर्मवक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ।
गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेशस्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥१६॥

अन्वयः— कर्णोत्पलालकविटङ्क कपोलघर्मबक्त्रश्रियः स्वकेशस्रस्तस्रजः भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् गोप्यः भगवतासमं वलयनूपुरघोषवाद्यैः ननृतुः ॥१६॥

अनुवाद— जिनके कानों में कमल का कुण्डल था और घुंघराले केशों से जिनके गालों की शोभा बढ़ गयी थी, यही नहीं जिन सबों के मुख पर पसीनें की बूंदे चमक रही थी । इस प्रकार से मुखश्री की शोभा से युक्त गोपियों के केशों में गूंथे तथा मालाओं के पुष्प विखर रहे थे उस रास की गोष्ठी में वे सभी गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के साथ नृत्य कर रही थीं । उस रास गोष्ठी में गाने का काम गुनगुनाते हुए भौरे कर रहे थे तथा गोपियों के कङ्गन और नूपुर की ध्वनि ही बाजे का काम कर रही थी ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तत्र वादकेषु गायकेषु गन्धर्वकिन्नरादिषु रसावेशेन मुह्यत्सु चान्यामेव वाद्यादिसम्पत्तिं दर्शयन् राससंभ्रममाह-कर्णोत्पलैरिति। कर्णोत्पलैश्चालकविटङ्कैरलकालंकृतैः कपोलैश्च धर्मैश्च वक्त्रेषु श्रीः शोभा यासां ताः । घोषाः किङ्किण्यः । वलयनूपुरघोषैर्वाद्यैर्वादित्रैः स्वकेशेभ्यः स्रस्ताः स्रजो यासां ताः । एतेन तालगतिसंतुष्टाः केशाः सशिरःकम्पं पादेषु पुष्पवृष्टिमिवाकुर्वन्नित्युत्प्रेक्षितम् । भगवता सह ननृतुः । क्व । भ्रमरा एव गायका यस्यां राससभायाम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

उस रास गोष्ठी में बादकों तथा गायकों का काम करने वाले गन्धर्व किन्नर आदि रस के आवेश के कारण जब मोहित हो गये तब उस रास गोष्ठी के दूसरे ही वादक और गायक काम करने लगे, इसी बात को **कर्णोत्पलालक० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है, कमल विरचित कुण्डलों तथा अलकालंकृत कपोलों तथा पसीने की बूंदों से सुशोभित मुख श्री से जो सुशोभित थी, ऐसी गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के साथ उस रास गोष्ठी में नृत्य कर रही थीं । गोपियों के हाथों के कङ्गन की ध्वनि तथा नूपुर की घुंघुरुओं की ध्वनि ही मिलकर उस रास गोष्ठी में वाद्य का करते थे । इस ताल गति से संतुष्ट होकर काले घुंघराले केश मानो अपने पुष्पों को अपना सिर हिल हिलाकर गोपियों और भगवान् श्रीकृष्ण के पैरों पर बरसा रहे थे । उस रास सभा में भौंरे अपने गुनगुनाहट के द्वारा गाने का काम कर रहे थे ।।१६।।

एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ।
रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ।।१७।।

अन्वयः— एवं परिष्वङ्ग कराभिमर्श स्निधेक्षणोद्दाम विलासहासैः रमेशः व्रज सुन्दरीभिः स्वप्रति बिम्बविभ्रमः रमेशः अर्भकः यथा रेमे ।।१७।।

अनुवाद— परीक्षित् ! इस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण कभी तो गोपियों का आलिङ्गन करते थे, कभी उन सबों के हाथों को दबाते थे, कभी प्रेम भरे तिरछे नेत्रों को गोपियों को देखते थे, और कभी लीलापूर्वक उन्मुक्त रूप से हँसने लगते थे, इस प्रकार से लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण उन व्रजसुन्दरियों के साथ विहार करते रहे जिस तरह कोई बालक अपने परिछाई के साथ ही क्रीडा करने लगता है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

यथा गोप्यो नानाविभ्रमैर्भगवता सह विजहुरेवं भगवानपि स्वविलासैस्ताभिः सह रेम इत्याह-एवमिति । तद्विलासानभिभूतस्यैव रतौ दृष्टान्तः-यथार्भक इति । स्वप्रतिबिम्बैर्विभ्रमः क्रीडा यस्य स इव । अनेनैतद्दर्शितम्- स्वीयमेव सर्वकलाकौशलं सौगन्ध्यलावण्यमाधुर्यादि च तासु संचार्य ताभिः सह रेमे यथार्भकः स्वप्रति बिम्बैरिति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

जिस तरह गोपियाँ अनेक प्रकार के विलासों के साथ विहार करती थीं उसी तरह श्रीभगवान् भी उन सबों के अपने विलास युक्त हावभावों द्वारा उन सबों के साथ विहार किए । इसी बात को **एवम्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । श्रीभगवान् गोपियों के हाव भाव भंगिमाओं से अभिभूत हुए बिना ही उन सबों के साथ रमण किए। इस विषय में दृष्टान्त के रूप में कहा गया है कि जैसे कोई बालक निर्विकार रूप से अपनी परिछाई के साथ क्रीडा करने लगता है, उसी तरह भगवान् भी निर्विकार रहकर ही गोपियों के साथ विहार किए ।।१७।।

तदङ्गसङ्गप्रमुदाकुलेन्द्रियाः केशान्दुकूलं कुचपट्टिकां वा ।
नाञ्जः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो विस्रस्तमालाभरणाः कुरूद्वह ।।१८।।

अन्वयः— हे कुरुद्वह ! तदङ्गसङ्गप्रमदाकुलेन्द्रियाः विस्रस्तमालाभरणाः व्रजस्त्रियः अञ्जः केशान् दुकूलं कुचपट्टिकां वा प्रतिव्योढुम् अलं न ।।१८।।

अनुवाद— हे परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण के अङ्गों का संस्पर्श प्राप्त करके गोपियों की इन्द्रियाँ आनन्द से व्याकुल हो गयीं । उन सबों की मालाएँ और हार टूट गये थे और वे व्रज सुन्दरियाँ अपने बिखरे हुए केशों, वस्त्रों और कंचुकी को भी अच्छी तरह नहीं संभाल पा रही थीं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

तास्तु भगवद्विलासैराकुला बभूवुरित्याह-तदङ्गेति । तस्याङ्गसङ्गेन प्रकृष्टा मुत्प्रीतिस्तया आकुलान्यवशानीन्द्रियाणि यासां ताः विश्लथबन्धान्केशादीनञ्जसा प्रतिव्योढुं यथापूर्वं धर्तुं नालं न समर्था बभूवुः । विस्रस्ता माला आभरणानि च यासां ताः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

वे गोपियाँ श्रीभगवान् के विलासों से व्याकुल हो गयी थीं इस बात को **तदङ्ग इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । श्रीभगवान् के अङ्गों के संस्पर्श से उत्पन्न आनन्द विशेष के कारण गोपियों की इन्द्रियाँ अपने वश में नहीं थीं उसके कारण वे अपने खुले हुए केशों आदि को पहले के समान सम्हाल पाने में समर्थ नहीं थीं । उन गोपियों के अलङ्कार और मालाएँ टूट सी गयी थीं ।।१८।।

कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः । कामार्दिताः शशाङ्कश्च सगणो विस्मितोऽभवत् ।।१९।।

अन्वयः— कृष्णविक्रीडितंवीक्ष्य कामार्दिताः खेचरस्त्रियः मुमुहुः शशाङ्कः च सगणः विस्मितः अभवत् ।।१९।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण की इस रास क्रीडा को देखकर देवताओं की स्त्रियाँ कामार्त होकर मोहित हो गयीं और चन्द्रमा भी इस रास क्रीडा को देखकर अपने गणों के साथ आश्चर्यचकित हो गये ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

न केवलं ता एवाकुलेन्द्रियाः किंतु देव्योऽपीत्याह-कृष्णविक्रीडितमिति । किंच शशाङ्कश्चेति । अनेनैतत्सूचितम्-शशाङ्केन विस्मितेन गतौ विस्मृताया ततः प्राक्तनाः सर्वेऽपि ग्रहास्तत्र तत्रैव तस्थुस्ततश्चातिदीर्घासु रात्रिषु यथासुखं विजहुरिति।।१९।।

भाव प्रकाशिका

केवल गोपियाँ व्याकुलेन्द्रियों वाली हो गयी हों ऐसी बात नहीं है अपितु देवताओं की पत्नियाँ भी व्याकुल इन्द्रियों वाली हो गयीं । इस बात को **कृष्ण विक्रीडित० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । चन्द्रमा भी अपने गण के साथ विस्मित हो गये । इससे यह सूचित किया गया है कि चन्द्रमा के आश्चर्यित हो जाने से उनके पहले के सभी ग्रह वहीं रूक गये। और वे सब भी उन अत्यन्त बड़ी रात्रियों में अपने मनोऽनुकुल ढंग से विहार किए।।१९।।

कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः । रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ।।२०।।

अन्वयः— यावतीः गोपयोषितः तावन्तम् आत्मानं कृत्वा सः आत्मारामः अपि भगवान् लीलया ताभिः रेमे ।।२०।।

अनुवाद— परीक्षित् जितनी गोपियाँ थीं आत्माराम भी होकर भगवान् श्रीकृष्ण कीडा करने के ही लिए उतने शरीर धारण करके उन सबों के साथ विहार किए ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

किंच कृत्वेति । अयं भावः-'कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि । नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः।' इति प्रत्येक ताभिः प्रार्थनाद्भगवतापि-'याताबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः' इति तथैव प्रतिश्रुतत्वात्तावन्तमात्मानं कृत्वा रेमे इति । यावतीर्यावत्यः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

कृत्वा० इत्यादि श्लोक का अभिप्राय है कि सभी गोपियों ने कात्यायनी देवीं से यह प्रार्थना किया था कि हे देवि, हे महाभागे आप नन्दगोप के पुत्र श्रीकृष्ण को हमारा पति बना दें । और भगवान् भी इन सबों से कहा था कि तुमलोग व्रज में चली जाओ । अतएव सभी गोपियों की इच्छा पूरी करने करने के लिए भगवान् को भी गोपियों की संख्या के बराबर शरीर धारण करना पड़ा । और उतने शरीरों को धारण करके वे उन सभी गोपियों के साथ रमण किए । यावतीः का अर्थ है जितनी ।।२०।।

तासामतिविहारेण श्रान्तानां वदनानि सः । प्रामृजत्करुणः प्रेम्णा शन्तमेनाङ्ग पाणिना ॥२१॥

अन्वयः— हे अङ्ग अतिविहारेण श्रान्तानां तासाम् वदनानि करुणः सः प्रेम्णा शन्तमेन पाणिना प्रामृजत् ॥२१॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! अत्यधिक विहार के कारण थकी हुई गोपियों के मुख को दयालु भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रेम पूर्वक पोंछा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

कृपातिशयमाह-तासामिति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

तासाम्० इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् की अत्यन्त दयालुता का वर्णन किया गया है ॥२१॥

गोप्यः स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विङ्गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन ।
मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि पुण्यानि तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः ॥२२॥

अन्वयः— तत् कररुहस्पर्शकृतप्रमोदाः स्फुरत् पुरट कुण्डल कुन्तल त्विङ् गण्डश्रिया सुधितहास निरीक्षणेन मानं दधत्यः गप्यः ऋषभस्य पुण्यानि कृतानि जगुः ॥२२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के नख स्पर्श से तथा कर कमल से गोपियों को अत्यधिक आनन्द की प्राप्ति हुई, जिन पर सुवर्ण के कुण्डल चमक रहे थे तथा घुंघराले केश लटक रहे थे ऐसे तथा प्रेम पूर्ण प्रेक्षण से जो सुधा से भी अधिक मधुर हो गयी थी ऐसी अपने कपोलों की शोभा से युक्त गोपियों ने श्रीभगवान् के द्वारा किए गये सम्मान को धारण करके श्रीभगवान् की पवित्र लीला का गान किया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

ततोऽतिहृष्टानां गोपीनां चरितमाह-गोप्य इति । स्फुरतां स्वर्णकुण्डलानां कुन्तलानां च त्विषा गण्डेषु या श्रीस्तया सुधितेनामृतायितेन हाससहितेन निरीक्षणेन च ऋषभस्य पत्युः कृष्णस्य मानं दधत्यः पूजां कुर्वत्यस्तत्कर्माणि जगुः । तस्य कररुहैर्नखैः स्पर्शेन प्रमोदो यासां ताः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् अत्यन्त प्रसन्न गोपियों के चरित का वर्णन **गोप्यः इत्यादि** श्लोक से करते हैं । सुवर्ण के कुण्डलों तथा काले घुंघराले केशों की कान्ति से जो गालों की शोभा हो रही थी उससे तथा अमृत के समान मुस्कान युक्त प्रेम पूर्ण अवलोकन के द्वारा गोपियों ने अपने प्रियतम के परम पवित्र लीलाओं का गान किया । श्रीभगवान् ने अपने नखों से जो स्पर्श किया था उससे गोपियों को अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति हुई ॥२२॥

ताभिर्युतः श्रममपोहितुमङ्गसङ्गघृष्टस्रजः सकुचकुङ्कुमरञ्जितायाः ।
गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद्वाः श्रान्तो गजीभीरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥२३॥

अन्वयः— श्रान्तः भिन्नसेतुः इभराट् गजीभिः इव ताभिः युतः श्रमम् अपोहितुम् अङ्ग सङ्गघृष्ट स्रजः कुच कुङ्कुमरञ्जितायाः गन्धर्वपालिभिः अनुद्रुतः भिन्नसेतु वाः आविशत् ॥२३॥

अनुवाद— जिस तरह थका हुआ गजराज किनारों को तोड़ता हुआ गजराज अपनी हथिनियों के साथ जल में प्रवेश करके जलक्रीडा करता है, वैसे ही उन सभी गोपियों के साथ रास क्रीडा जन्य श्रम को दूर करने के लिए जिनकी वनमाला गोपियों के अङ्गों के घर्षण से कुछ मसल सी गयी थी तथा जो गोपियों के स्तनों में लगे केसर के रङ्ग से रङ्ग भी गयी थी जिनके पीछे पीछे गुञ्जार करने वाले भ्रमर पंक्ति रूपी गन्धर्व समूह चल रहे थे वे श्रीभगवान् लौकिक तथा वैदिक सभी मर्यादाओं को तोड़कर यमुनाजी के जल में प्रवेश कर गये ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

अथ जलकेलिमाह–ताभिरिति । तासामङ्गसङ्गेन घृष्टा संमर्दिता या स्रक् तस्याः अतएव तासां कुचकुङ्कुमेन रञ्जितायाः संबन्धिभिर्गन्धर्वपालिभिर्गन्धर्वपा गन्धर्वपतय इव गायन्तो येऽलयस्तैरनुद्रुतोऽनुगतः स कृष्णोः वाः उदकमाविशत् । भिन्नसेतुर्विदारितवप्रः स्वयं चातिक्रान्तलोकवेदमर्यादः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

ताभिर्युतः इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् के द्वारा की गयी जल क्रीड़ा का वर्णन किया गया है । गोपियों के अङ्गों के रगड़ से जो कुछ मसल सी गयी थी तथा गोपियों के स्तनों पर लगे केसर के राग से जो रङ्ग भी गयी थी उस वनमाला पर मँडराने वाले गन्धर्व पतियों के समान गुञ्जन करता हुआ भौरों का समूह जिनके पीछे चल रहा था ऐसे भगवान् गोपियों के साथ यमुनाजी के जल में लौकिक वैदिक दोनों प्रकार की मर्यादाओं को तोड़कर जलक्रीड़ा करने के लिए प्रवेश कर गये ।।२३।।

सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग ।
वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ।।२४।।

अन्वयः— हे अङ्ग प्रेम्णां ईक्षितः प्रहसतीभिः युवतिभिः अभ्यसि इतस्ततः अलं परिषिच्यमानः, कुसुमवर्षिभिः वैमानिकैः ईड्यमानः स्वरति अत्र गजेन्द्रलीलः रेमे ।।२४।।

अनुवाद— हे परीक्षित् गोपियाँ श्रीभगवान् को प्रेमपूर्वक देखकर जोर-जोर से हँसती हुई उन पर इधर-उधर से जल उलीच-उलीच कर नहलाती थीं । उस समय देवगण विमानों में बैठे हुए श्रीभगवान् पर पुष्पों की वर्षा कर रहे थे । इस तरह आत्मरति भी होकर श्रीभगवान् गजेन्द्र के समान क्रीडा करते हुए विहार किए ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

स्वरतिरात्मारामोऽपि अत्र गोपीमण्डलेऽम्भसि वा ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान आत्माराम हैं, उन्हें मनोविनोद के लिए किसी की आवश्यकता नहीं होती । फिर भी वे गोपियों के समूह में अथवा जल में विहार किए ।।२४।।

ततश्च कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे ।
चचार भृङ्गप्रमदागणावृतो यथा मदच्युद्द्विरदः करेणुभिः ।।२५।।

अन्वयः— ततः कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगन्धानिल जुष्टदिक्तटे, भृङ्ग प्रमदागणावृतः करेणुभिः मदच्युत् द्विरद करणुभिः यथाः चचार ।।२५।।

अनुवाद— उसके पश्चात् श्रीभगवान् यमुनाजी के उपवन में गये वहा जल में तथा पृथिवी पर खिलने वाले पुष्पों की सुगन्धि लेकर बहने वाली वायु चल रही थी । उसमें भ्रमरों तथा युवतियों से घिरे हुए श्रीभगवान् उस तरह विचरण करने लगे जैसे अपनी हथिनियों के साथ कोई गजराज विचरण करता है ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

स्थलजलक्रीडे दर्शिते वनक्रीडां दर्शयति–ततश्चेति। यमुनाया उपवने जलस्थलप्रसूनानां गन्धो यस्मिंस्तेनानिलेन जुष्टानि दिशां तटान्यन्ता यस्मिन् । यद्वा दिशश्च तटं स्थलं च यस्मिन्नुपवने । भृङ्गाणां प्रमदानां च गणैरावृतः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की स्थल और जल की क्रीडा का वर्णन करके **ततश्च० इत्यादि** श्लोक के द्वारा वनक्रीड़ा का वर्णन करते हैं । यमुनाजी के उस उपवन में जिसमें जल और स्थल में उत्पन्न होने वाले पुष्पों की सुगन्धि लेकर चलने वाली वायु दिगन्त तक जाती है, उस उपवन में भ्रमरों एवं युवतियों से घिरे भगवान विचरण करने लगे।।२५।।

एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः स सत्यकामोऽनुरताबलागणः ।
सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ।।२६।।

अन्वयः— एवं शशांकांशुविराजिताः सर्वाः निशाः शरतकाव्य कथा रसाश्रयाः अनुरताबलागणः सत्यकामः सः आत्मनि अवरुद्ध सौरतः सिषेवे ।।२६।।

अनुवाद— चन्द्रमा की चाँदनी से सुशोभित, सभी रात्रियों के पुञ्ज रूप वह रात्रि उन सभी सामग्रियों से सम्पन्न थी जिन सबों का काव्यों में शरत् ऋतु की रस सामग्री के रूप में वर्णन मिलता है । उस रात्रि में अपनी प्रेयसी अबला से युक्त सत्यकाम भगवान अपनी आत्मा में ही कामभाव की सारी चेष्टाओं को निरुद्ध कर लिए थे । वे उन रात्रियों का सेवन किए ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

रासक्रीडां निगमयति-एवमिति । स कृष्णः सत्यसंकल्पोऽनुरागिस्त्रीकदम्बस्थ एवं सर्वा निशाः सेवितवान् । शरत्काव्यकथारसाश्रयाः शरदि भवाः काव्येषु कथ्यमाना ये रसास्तेषामाश्रयभूता निशाः । यद्वा निशा इति द्वितीयाऽत्यन्तसंयोगे। शृङ्गाररसाश्रयाः शरदि प्रसिद्धाः काव्येषु याः कथास्ताः सिषेवे इति । एवमप्यात्मन्येवावरुद्धः सौरतश्चरमधातुर्नतु स्खलितो यस्येति कामजयोक्तिः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

एवम् इत्यादि श्लोक के द्वारा रास क्रीडा का उपसंहार करते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण सत्यसंकल्प है । प्रेयसी स्त्री समूह के बीच विद्यमान इस तरह से सम्पूर्ण रात्रियों का उपभोग किए । शरद ऋतु में होने वाले रस विषयक जो काव्यों में वर्णन किए गये हैं उन सबों से सम्पन्न वे रात्रियाँ थीं । अथवा अत्यन्त संयोग के अर्थ में निशाः में द्वितीया विभक्ति है । शरद ऋतु में प्रसिद्ध शृङ्गार रस विषयक जो वर्णन काव्यों में हैं उन सबों का सेवन श्रीभगवान् ने किया । श्रीभगवान् अपने वीर्य को अपने भीतर ही रोके रहे उनका वीर्य स्खलन नहीं हुआ । अतएव श्रीभगवान् ने काम पर विजय प्राप्त कर ली ।।२६।।

राजोवाच

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च । अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ।।२७।।

अन्वयः— भगवान् जगदीश्वरः धर्मस्य संस्थापनाय इतरस्य प्रशमाय च अंशेन अवतीर्णः ।।२७।।

राजा परीक्षित ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवान् जगत् के स्वामी हैं । वे धर्म को स्थापित करने के लिए और अधर्म का नाश करने के लिए अपने एक अंश से श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लिए हैं ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता । प्रतीपमाचरद्ब्रह्मन्परदाराभिमर्शनम् ।।२८।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् धर्मसेतूनाम् वक्ता, कर्ता अभिरक्षिता च स परदाराभिमर्शनं प्रतीपं कथम् आचरत् ।।२८।।

अनुवाद— हे भगवन् श्रीभगवान् तो धर्म की मर्यादाओं के उपदेशक, कर्ता और रक्षक है वे कैसे परस्त्री संस्पर्श रूप धर्म विरुद्ध आचरण किए ?॥२८॥

भावार्थ दीपिका

प्रतीपं प्रतिकूलाधर्ममित्यर्थः । आचरत् कृतवान् । न चेदमधर्ममात्रं कलञ्जभक्षणादिवत्किंतु महासाहसमित्याह- परदाराभिमर्शनमिति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार के श्रीभगवान् धर्म के प्रतिकूल अधर्म का आचरण कैसे किए और यह कलञ्ज भक्षण के समान केवल अधर्म ही नहीं है, अपितु परस्त्री संस्पर्श तो महा साहसिक कार्य है ॥२८॥

आप्तकामो यदुपतिः कृतवान्वै जुगुप्सितम् । किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥२९॥

अन्वयः— अप्तकामः वै यदुपतिः जुगुप्सितं कृतवान् किमभिप्रायः हे सुव्रत नः एतत् संशयं छिन्धि ॥२९॥

अनुवाद— हे सुव्रत यदुवंश शिरोमणि भगवान् तो आप्त काम हैं, यह निश्चित है फिर भी उन्होंने यह निन्दित कर्म किया, हे सुन्दर व्रत वाले श्रीशुकदेवजी उनके ऐसा करने में कौन सा अभिप्राय है । मेरे इस संशय को आप दूर करें ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

आप्तकामस्य नायमधर्म इति चेद्यद्येवं कामाभावन्निन्दितं केनाभिप्रायेण कृतवानिति पृच्छति-आप्तकाम इति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि आप्तकाम श्रीभगवान् के लिए यह अधर्म नहीं है यदि ऐसी बात है तो भी यदि उनमें किसी भी प्रकार की कामना का अभाव होने के कारण यह निन्दित कर्म उन्होंने किस अभिप्राय से किया ? इस प्रकार से राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजी से **आप्तकाम० इत्यादि** श्लोक से पूछते हैं ॥२९॥

श्रीशुक उवाच

धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् । तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥३०॥

अन्वयः—ईश्वराणां धर्मव्यतिक्रमः साहसं च दृष्टम् तत् सर्वभुजः वह्नेः यथा तेजीयसां दोषाय न भवतीति शेषः॥३०॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— समर्थ पुरुषों द्वारा धर्म को उल्लंघन रूप साहसिक कर्म करते देखा जाता है, किन्तु उनके ऐसा करने से उनमें दोष नहीं लगता है । उदाहरणार्थ अग्नि सर्वभोक्तां है पवित्र तथा अपवित्र वस्तुओं को भी वे जलाने का काम करते हैं, फिर भी अग्नि को पवित्र ही माना जाता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

परमेश्वरे कैमुतिकन्यायेन परिहंर्तु सामान्यतो महतां वृत्तमाह-धर्मव्यतिक्रम इति । साहसं च दृष्टं प्रजापतीन्द्रसोम- विश्वामित्रादीनाम् । तच्च तेषां तेजस्विनां दोषाय न भवतीति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

कैमुत्यन्याय से परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण में दोष का परिहार करने के लिए सामान्य रूप से महापुरुषों का वृत्तान्त बतलाते हैं । प्रजापति (ब्रह्मा० इन्द्र, सोम, विश्वामित्र आदि के निन्दित कर्म के करने पर ब्रह्माजी, इन्द्र, चन्द्रमा तथा विश्वामित्र को दोषी कोई नहीं मानता है । इसी बात को **नैतत्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ॥३०॥

नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः । विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथा रुद्रोऽब्धिजं विषम् ॥३१॥

अन्वयः— अनीश्वरो हि जातु एतत् मनसा अपि न समाचरेत् मौढ्यात् आचरन् विनश्यति यथा रुद्रः अब्धिजम् विषम्॥३१॥

अनुवाद— किन्तु जिसमें सामर्थ्य न हो उसको इस तरह का साहसिक कर्म मन से भी कभी भी नहीं करना चाहिए । यदि वह अपनी मूर्खता के कारण ऐसा कर्म करता है तो उसका विनाश हो जायेगा । उदाहरणार्थ सामर्थ्य सम्पन्न शिवजी ने हालाहल विष का पान कर लिया किन्तु यदि दूसरा कोई ऐसा साहस करता तो वह जलकर भस्म हो जाता ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि :यद्यदाचरति श्रेष्ठः' इति न्यायेनान्योऽपि कुर्यादित्याशङ्क्याह–नैतदिति । अनीश्वरो देहादिपरतन्त्रः यथा रुद्रव्यतिरिक्तो विषमाचरन्भक्षयन् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि श्रेष्ठ पुरुष जैसा-जैसा कर्म करते है, उसी का अनुसरण करना चाहिए इस सूक्ति के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण के समान आचरण करने में क्या दोष है ? तो ऐसा नहीं किया जा सकता है, इस बात को **नैतत्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । सामर्थ्य हीन, देहधारी यदि कोई दूसरा व्यक्ति शङ्करजी के समान हालाहल विष पीने का काम करता तो वह जलकर भस्म ही हो जाता है ॥३१॥

ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् । तेषां यत्स्ववचोयुक्तं बुद्धिमांस्तत्समाचरेत् ॥३२॥

अन्वयः— ईश्वराणां वचः सत्यं तथैव क्वचित् समाचरेत् । तेषां यत् स्ववचोयुक्तं बुद्धिमान् तत् समाचरेत् ॥३२॥

अनुवाद— समर्थ महापुरुषों की वाणी सत्य होती है, अतएव कहीं कहीं पर अपने अधिकार के अनुसार उसका आचरण करना चाहिए । महापुरुषों के आचरण का अनुष्ठान न करे । अतएव महापुरुषों के उपदेशानुसार ही बुद्धिमान पुरुष को आचरण करना चाहिए ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

कथं तर्हि सदाचारस्य प्रामाण्यमत आह-ईश्वराणामिति । तेषां वचः सत्यम्, अतस्तदुक्तमाचरेदेव । आचरितं तु क्वचित्सत्यम् । अतः स्ववचोयुक्तं तेषां वचसा यद्यद्युक्तमविरुद्धं तत्तदेवाचरेत् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि तो फिर सदाचार की क्यों प्रामाणिकता स्वीकार की जाती है ? तो इस पर **ईश्वराणाम्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं समर्थ पुरुषों की वाणी सत्य होती है, अतएव सत् पुरुषों के उपदेशों का आचरण करना चाहिए । उनका आचरण तो कहीं-कहीं पर सत्य होता है । अतएव उन महापुरुषों की वाणी के अनुसार ही आचरण करना चाहिए ॥३२॥

कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो न विद्यते । विपर्ययेण वाऽनर्थो निरहंकारिणां प्रभो ॥३३॥

अन्वयः— हे प्रभो ! निरहंकारिणाम् एषामिह कुशलाचरितेन स्वार्थो न विद्यते विपर्ययेण वा अनर्थो न विद्यते॥३३॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् महापुरुष अहङ्कार रहित होते हैं । वे यदि कोई पुण्य कार्य करते हैं तो इस लोक में उनका उन कर्मों से कोई स्वार्थ नहीं होता है । इस तरह यदि कोई अशुभ कर्म वे करते हैं तो उससे उनका कोई अनर्थ भी नहीं होता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि तेऽपि किमेवं साहसमाचरन्ति तत्राह-कुशलेति । प्रारब्धकर्मक्षपणमात्रमेव तेषां कृत्यं नान्यदित्यर्थः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

अच्छा तो फिर महापुरुष भी इस तरह के साहसिक कार्यों को क्यों करते हैं ? तो इस प्रश्न का उत्तर **कुशला० इत्यादि** श्लोक से देते हैं- उन लोगों के द्वारा किए जाने वाले ऐसे कर्मों का उदेश्य केवल प्रारब्ध कर्मों का नाश करना होता है, दूसरा कुछ नहीं ।।३३।।

किमुताखिलसत्त्वानां तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् । ईशितुश्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ।।३४।।

अन्वयः— तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् अखिलसत्त्वानां इशितव्यानाम् ईशितुः कुशला कुशलान्वयः किमुत ।।३४।।

अनुवाद— जब उपर्युक्त प्रजापति, इन्द्र विश्वामित्र इत्यादि के विषय में ऐसी बात है तो फिर पशु-पक्षी मनुष्य, देवता आदि समस्त नियाम्य जीवों के स्वामी श्रीभगवान् के साथ शुभ एवं अशुभ का संबन्ध कैसे संभव है ?।।३४।।

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमाह-किमुतेति । कुशलाकुशलान्वयो न विद्यत इति किं पुनर्वक्तव्यमित्यर्थः।।३४।।

भाव प्रकाशिका

प्रस्तुत अर्थ को बतलाते है कि श्रीभगवान् से पुण्य तथा पाप रूप कर्मों का संबन्ध नहीं होता है इसके विषय में क्या कहना है ?।।३४।।

यत्पादपङ्कजपरागनिषेवतृप्ता योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः ।
स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमानास्तस्येच्छयात्तवपुषः कुत एव बन्धः ।।३५।।

अन्वयः— यत्पादपङ्कजपराग निषेव तृप्ता, योगप्रभावविधुताखिलकर्म बन्धाः मुनयोऽपि न नह्यमाना स्वैरं चरन्ति इच्छयात्तंवपुषः तस्य बन्धः एव कुतः ।।३५।।

अनुवाद— जिनके चरण कमलों के पराग (धूल) का सेवन करके भक्तजन तृप्त हो जाते हैं, जिनके साथ प्राप्त योग के प्रभाव से योगिजन अपने सम्पूर्ण कर्म के बन्धनों को काट डालते हैं, तथा मननशील ज्ञानी पुरुष जिनके तत्त्वका विचार करके संसार के बन्धन से रहित हो जाते है, अपनी इच्छा के अनुसार विभिन्न शरीर को धारण करने वाले श्रीहरि को कर्मों का बन्धन कैसे सम्भव है ?।।३५।।

भावार्थ दीपिका

एतदेव स्फुटीकरोति-यस्य पादपङ्कजपरागस्य निषेवणेन तृप्ताः, यद्वा यस्य पादपङ्कजपरागे निषेवा येषां ते च ते तृप्ताश्चेति भक्ता इत्यर्थः । तथा ज्ञानिनश्च न नह्यमाना बन्धनमप्राप्तवन्तः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को कर्मों का बन्धन संभव नहीं है इसी बात को और स्पष्ट करते हैं । जिन श्रीभगवान् के चरण कमलरज का सेवन करके श्रीभगवान् के भक्तजन तृप्त हो जाते हैं, अथवा जिन श्रीभगवान् के चरण कमलरज में जिनकी सेवा सदा बनी रहती हैं और उसके कारण तृप्त हुए जो भक्तजन है, तथा मननशील ज्ञानी जन भी जब कर्मों के बन्धन में नहीं बन्धते हैं ।।३५।।

गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् । योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ।।३६।।

अन्वयः— यः गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम् अन्तः चरति सः अध्यक्षः इह क्रीडनेन देहभाक् ।।३६।।

अनुवाद— गोपियों तथा उनके पतियों के अन्त:करण में जो श्रीभगवान् अन्तर्यामी रूप से सञ्चरण करते हैं । जो सबों के साक्षी हैं, वे ही अपना दिव्य विग्रह प्रकट करके इस लीला को करते हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

परदारत्वं गोपीनामङ्गीकृत्य परिहृतम्, इदानीं भगवत: सर्वान्तर्यामिण: परदारसेवा नाम न काचिदित्याह-गोपीनामिति। योऽन्तश्चरत्यध्यक्षो बुद्‌यधादिसाक्षी स एव क्रीडनेन देहभाक् नत्वस्मदादितुल्यो येन दोष: स्यादिति ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

गोपियों के परपत्नीत्व को स्वीकार करके श्रीभगवान् में दोषाभाव का प्रतिपादन किया जा चुका है । इस **गोपिनामित्यादि** श्लोक के द्वारा शुकदेवजी बतलाते हैं । कि श्रीभगवान् सबों के अन्तर्यामी है अतएव उनके लिए परदार सेवन नामक कुछ है ही नहीं । जो परमात्मा सबों की बुद्धि आदि के साक्षी हैं । वे ही श्रीभगवान् क्रीडा करने के लिए शरीर धारण किए हैं । वे हम लोगों के समान कर्म परतन्त्र नहीं हैं । अतएव उनमें दोष लगने का कोई प्रश्न ही नहीं है ।।३६।।

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थित: । भजते तादृशी: क्रीडा या: श्रुत्वा तत्परो भवेत् ।।३७।।

अन्वय:— भूतानाम् अनुग्रहाय मानुषं देहम् आस्थित: तादृशी क्रीडा: भजते या: श्रुत्वा तत्पर: भवेत् ।।३७।।

अनुवाद— श्रीभगवान् तो सभी जीवों पर कृपा करने के लिए मानव शरीर धारण किए हुए हैं । वे ऐसी क्रीडाओं को करते है जिनको सुनकर ही मनुष्य श्रीभगवान् का भक्त हो जाता है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं चेदाप्तकामस्य निन्दिते कुत: प्रवृत्तिरित्यत आह-अनुग्रहायेति । शृङ्गाररसाकृष्टचेतसोऽतिबहिर्मुखानपि स्वपरान्कर्तुमिति भाव: ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि श्रीभगवान् तो आप्तकाम है, उनकी सारी इच्छाएँ पूर्ण हैं, ऐसी स्थिति में उनकी निन्दित कर्म में प्रवृत्ति क्यों होती है, तो इस पर **अनुग्रहाय० इत्यादि** श्लोक कहते हैं- जिनका अन्त:करण शृङ्गाररसाकृष्ट है, जो अत्यन्त परमात्मा पराङ्मुख हैं ऐसे जीवों को भी अपना भक्त बनाने के लिए श्रीभगवान् शृङ्गार रस की लीला करते हैं ।।३७।।

नासूयन्खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया । मन्यमाना: स्वपार्श्वस्थान् स्वान्स्वान्दारान्व्रजौकस: ।।३८।।

अन्वय:— तस्य मायया मोहिता: व्रजौकस: स्वान् स्वान् दारान् स्वपार्श्वस्थान मन्यमाना: कृष्णाय खलु न असूयन्।।३८।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की माया से मोहित होने के कारण व्रजवासियों को लगा कि उन सबों की अपनी पत्नियाँ उनके बगल में ही सोयी हैं, अतएव किसी भी व्रजवासी ने भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति द्वेष की बुद्धि नहीं की ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

ननुयेऽपि भिन्नाचारा: स्वचेष्टितमेवमेवेति वदन्ति तत्राह–नासूयन्निति। एवंभूतैश्वर्याभावे तथा कुर्वन्त: पाप ज्ञेया इति भाव:।।३८।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि दूसरे भी भिन्न-भिन्न प्रकार के आचरण करने वाले अपनी चेष्टाओं के विषय में ऐसी ही बातें करते हैं । इस पर श्रीशुकदेवजी **नासूयनित्यादि** श्लोक कहते हैं । श्रीभगवान् के समान ऐश्वर्य के अभाव में उस तरह के आचरण करने वालों को पापी ही समझना चाहिए ।।३८।।

ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः । अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान्भगवत्प्रियाः ॥३९॥

अन्वयः— ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः भगवत्प्रियाः गोप्यः स्वगृहान् ययुः ॥३९॥

अनुवाद— ब्रह्माजी की रात्रि के बराबर वह रात्रि बीत गयी और जब ब्रह्म मुहूर्त की बेला हुई उस समय यद्यपि गोपियाँ अपने घर नहीं जाना चाहती थीं। फिर भी श्रीभगवान् की आज्ञा से वे अपने-अपने घर चली गयी। उसका कारण था कि वे अपनी समस्त चेष्टाओं से श्रीभगवान् के प्रिय कार्य को करना चाहती थीं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मरात्रे ब्राह्मे मुहूर्ते उपावृत्ते प्राप्ते ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्ममुहूर्त की बेला हो जाने पर ॥३९॥

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

अन्वयः— यः श्रद्धान्वितः विष्णोः व्रजवधूभिः इदं विक्रीडितं शृणुयात् अथ वर्णयेत् सः धीरः भगवति परां भक्तिं प्रतिलभ्य हृद्रोगं कामं आशु अचिरेण अपहिनोति ॥४०॥

अनुवाद— जो मनुष्य श्रद्धा पूर्वक व्रजवनिताओं के साथ भगवान् श्रीकृष्ण इस चिन्मय रास विलास का श्रवण करता है अथवा वर्णन करता है, उसकी श्रीभगवान् के चरणों में पराभक्ति की प्राप्ति होती है तथा शीघ्र ही वह धैर्य सम्पन्न पुरुष हृदय के रोग काम विकारों से मुक्त हो जाता है ॥४०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें अध्याय के पूर्वार्ध के रासलीला वर्णन नामक तैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

भगवतः कामविजयरूपरासक्रीडाश्रवणादेः कामविजयमेव फलमाह–विक्रीडितमिति। अचिरेण धीरः सन् हृद्रोगं काममाशु अपहिनोति परित्यजतीति ॥४०॥

'सेयं श्रीपरमानन्दसेविश्रीधरनिर्मिता । श्रीयगवतभावार्थदीपिका दशमाश्रया' ॥१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के काम विजय रूप रास क्रीडा के श्रवण आदि का फल काम विजय ही **विक्रीडितम् इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया गया है। शीघ्र ही धैर्य सम्पन्न होकर हृदय के रोग का काम का शीघ्र ही परित्याग कर देता है ॥४०॥

इस तरह परमानन्द का सेवन करने वाले श्रीधरस्वामी ने दशम स्कन्ध की इस भावार्थदीपिका नामक टीका का निर्माण किया है ॥१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥३३॥

चौतीसवाँ अध्याय

सुदर्शन और शंखचूड का उद्धार

श्रीशुक उवाच

एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः । अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥१॥

अन्वयः— एकदा देवयात्रायां जातकौतुकातेगोपालाः अनडुदयुक्तैः अनोभिः अम्बिका वनम् प्रययुः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— एक बार शिवरात्रि के अवसर पर अत्यधिक उत्सुकतावशात् नन्द बाबा इत्यादि गोपगण बैलगाड़ी पर बैठकर अम्बिका वन की यात्रा किए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुस्त्रिंशेऽहिना ग्रस्तं नन्दं हरिरमूमुचत् । विद्याध्रं चाङ्गिरःशापाच्छङ्खचूडं तथाऽवधीत् । रासोपदेशतः कामं किङ्करीकृत्य कामतः । अनुगृह्णन्वशं निन्ये तथा विद्याधराधिपम् । तदेव कामानुग्रहमुखेन कामजयं प्रतिपाद्य तथैव विद्याधरजयं प्रतिपादयितुं तत्प्रसङ्गं दर्शयति-एकदेति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौंतीसवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि सर्प के द्वारा ग्रस्त नन्दबाबा को श्रीभगवान् ने छुड़ाया तथा अङ्गिरा महर्षि के शाप से ग्रस्त शङ्खचूड का वध श्रीभगवान् ने किया । श्रीभगवान् रास के उपदेश के द्वारा कामदेव को अपना किङ्कर बना दिया । उन्होंने विद्याधरों के स्वामी को अपने वश में करके उसका उद्धार किया। इस तरह से कामदेव पर कृपा करने के माध्यम से काम पर विजय का प्रतिपादन करके उसी प्रकार से विद्याधर पर विजय प्रतिपादन करने के लिए **एकदा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा उसके प्रसङ्ग को उपन्यस्त करते हैं ।

तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम् । आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेऽम्बिकाम् ॥२॥

अन्वयः— हे नृपते ! तत्र सरस्वत्यां स्नात्वा विभुं देवं पशुपतिम् भक्त्या अम्बिकां देवीं च अर्हणैः आनर्चुः ॥२॥

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् वहाँ पर सरस्वती नदी में स्नान करके सर्वान्तर्यामी भगवान् शङ्करजी की तथा भक्ति पूर्वक अनेक प्रकार की सामग्रियों से अम्बिका देवी की भी पूजा कीं ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥२॥

गावो हिरण्यं वासांसि मधुमध्वन्नमादृताः । ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ॥३॥

अन्वयः— सर्वे गावः हिरण्यं वासांसि, मधु मध्वन्नम् ब्राह्मणेभ्यःआदृता ददुः । देवो नःप्रीयताम् इति ॥३॥

अनुवाद— वहाँ पर सबों ने गायें, सुवर्ण, वस्त्र, मधु और मधुर अन्न आदर पूर्वक ब्राह्मणों को दान दिया। इन सबों का उद्देश्य था कि भगवान् शिव हमलोगों पर प्रसन्न हों ॥३॥

भावार्थ दीपिका

गावो गाः । मधु मधुरम् । मध्वन्नं मधुना सहितमन्नम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः । रजनीं तां महाभागा नन्दसुनन्दकादयः ॥४॥

अन्वयः— धृतवताः महाभागाः नन्दसुनदादयः तां रजनीं जलं प्राश्य सरस्वती तीरे ऊषुः ॥४॥

अनुवाद— उस दिन व्रत धारण किए हुए महाभाग्यवान् नन्द सुनन्द इत्यादि उस दिन रात को केवल जल पीकर सरस्वती नदी के तट पर सो गये ॥४॥

भावार्थ दीपिका

जलमात्रं प्राश्योपोषितास्तां निशां तत्र ऊषुर्न्यवसन् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

केवल जल पीकर तथा उपवास करके उस रात को निवास किए ॥४॥

कश्चिन्महानहिस्तस्मिन् विपिनेऽतिबुभुक्षिताः । यदृच्छयागतो नन्दं शयानमुरगोऽग्रसीत् ॥५॥

अन्वयः— तस्मिन् वने कश्चित् महान् अहिः बुभुक्षितः आसीत् यदृच्छया आगतः शयानं नन्दं उरगः अग्रसीत् ॥५॥

अनुवाद— इस अम्बिका वन में एक बहुत बड़ा अजगर रहता था, उस दिन वह भूखा था दैव वशात् वह उधर ही आया और सोए हुए नन्दजी को उस सर्प ने पकड़ लिया ॥५॥

भावार्थ दीपिका

महानहिरजगरः । उरगः उरसा गच्छन्नित्यलक्षिततत्वमुक्तम् । अग्रसीत् जग्रास ॥५॥

भाव प्रकाशिका

महान अहिः अर्थात् अजगर, उरगः कहकर बतलाया गया है कि वह चूकि छाती के बल चलता था अतएव उसको कोई नही देख सका । अग्रसीत् अर्थात् ग्रस लिया ॥५॥

स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम् । सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय ॥६॥

अन्वयः— अहिना ग्रस्तः स चुक्रोश कृष्ण ! कृष्ण ! अयं महान् सर्पः माम् ग्रसते तात प्रपन्नं मां परिमोचय ॥६॥

अनुवाद— उस सर्प से ग्रस्त नन्दजी चिल्लाये हे कृष्ण मुझको यह अजगर ग्रसित कर लिया है । हे तात मैं आपके शरण में हूँ, मुझे इस सर्प से बचाओ ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

तस्य चाक्रन्दितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः । ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः सर्प विव्यधुरुल्मुकैः ॥७॥

अन्वयः— तस्य च आक्रन्दितं श्रुत्वा सहसा गोपालाः उत्थिताः, ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः उल्मुकैः सर्पं विव्यधुः ॥६॥

अनुवाद— नन्दजी का चिल्लाना सुनकर अचानक सभी गोप जग गये, तथा नन्दजी को सर्प के द्वारा ग्रस्त देखकर घबरा गये । उन लोगों ने लुकठियों से उस सर्प को मारा ॥७॥

भावार्थ दीपिका

विव्यधुस्ताडयामासुः । उल्मुकैर्ज्वलत्काष्ठैः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

विव्यधु अर्थात् मारा **उल्मुकैः** अर्थात् जलती हुई लकड़ियों से ॥७॥

अलातैर्दह्यमानोऽपि नामुञ्चत्तमुरङ्गमः । तमस्पृशत्पदाऽभ्येत्य भगवान्सात्वतांपतिः ॥८॥

अन्वयः— आलातैर्दह्यमानोऽपि उरङ्गमः न अमुञ्चत् सात्त्वताम् पतिः भगवान् अभ्येत्य तम् पदा अस्पृशत् ॥८॥

अनुवाद— लुकाठियों से मारे जाने पर भी वह सर्प नन्दजी को नहीं छोड़ा इतने में आकर भगवान् श्रीकृष्ण उसको अपने पैरों से छू दिए ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अलातैरेवोल्मुकैः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

आलातैः अर्थात् लुकाठीओं से ॥८॥

स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः । भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥९॥

अन्वयः— भगवतः श्रीमत् पादस्पर्शहताशुभः वै सः सर्पवपुः हित्वा विद्याधरार्चितम् रूपं भेजे ॥९॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीचरणों का स्पर्श होते ही उसके सारे पाप विनष्ट हो गये और वह अपने सर्प शरीर का परित्याग करके विद्याधरार्चित सुन्दर रूप धारण कर लिया ॥९॥

भावार्थ दीपिका

विद्याधरेष्वर्चितं पूजितम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

विद्याधरों में पूजित ॥९॥

तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतं समुपस्थितम् । दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥१०॥

अन्वयः— दीप्यमानेन वपुषा हेममालिनं तम् पुरुषम् प्रणतं समुपस्थितम् तम् हृषीकेश अपृच्छत् ॥१०॥

अनुवाद— उस पुरुष के शरीर से ज्योति निकल रही थी, वह पुरुष सुवर्ण की माला पहने था । जब वह पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करके खड़ा था उससे भगवान् श्रीकृष्ण ने पूछा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

गोपेष्वात्मन ऐश्वर्यं प्रकाशयितुमविद्वानिव तमपृच्छत् । दीप्यमानेन वपुषा समवस्थितम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

ग्वालों में अपने ऐश्वर्य को प्रकाशित करने के लिए अज्ञात के समान श्रीभगवान् ने उससे पूछा । प्रकाशमान शरीर धारण करके खड़े उस पुरुष से ॥१०॥

को भवान्परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः । कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ॥११॥

अन्वयः— भवान् क ? परया लक्ष्म्या अद्भुतदर्शनः रोचते, कथं वा एतां जुगुप्सितां योनिम् ? अवशः वां प्रापितः ॥११॥

अनुवाद— तुम कौन हो ? तुम देखने में अत्यन्त सुन्दर हो देखने में तो तुम अद्भुत लगते हो ? तुम इस निन्दित योनि को कैसे प्राप्ति किए ? तुम विवश होकर इस शरीर को धारण किए हो क्या ? ॥११॥

भावार्थ दीपिका

यः परया शोभया प्रकाशते भवान् क इति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

अत्यधिक कान्ति से सुशोभित होने वाले आप कौन है ?॥११॥

सर्प उवाच

अहं विद्याधर कश्चित्सुदर्शन इति श्रुतः । श्रिया स्वरूपसंपत्त्या विमानेनाचरं दिशः ॥१२॥

अन्वयः— अहं कश्चित् विद्याधरः सुदर्शन इति श्रुतः श्रिया स्वरूपसंपत्त्या विमानेन दिशः आचरम् ॥१२॥

सर्प ने कहा

अनुवाद— मैं एक सुदर्शन नाम वाला विद्याधर हूँ । मैं ऐश्वर्य, सुन्दरता तथा सम्पत्ति से सम्पन्न होने के कारण विमान द्वारा सभी दिशाओं में विचरण करता था ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

ऋषीन्विरूपानङ्गिरसः प्राहसं रूपदर्पितः । तैरिमां प्रापितो योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना ॥१३॥

अन्वयः— रूप दर्पितः अङ्गिरसः विरूपान् ऋषीन् प्राहसं, प्रलब्धैः तैः स्वेन पाप्मना इमां योनि प्रापितः ॥१३॥

अनुवाद— अपने रूप के घमण्ड में भरकर मैंने एक दिन अङ्गिरा गोत्र के ऋषियों का उपहास किया । उससे नाराज होकर उन ऋषियों ने मुझे अजगर हो जाने का शाप दे दिया । यह मेरे ही पाप का फल है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

प्राहसम् उपहसितवानस्मि । प्रलब्धैरुपहसितैः । मदीयेनैव पापेन निमित्तेन ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

प्राहसम् अर्थात् उपहास किया, उपहास किए जोने के कारण उन लोगों ने यह मेरे ही पाप का फल है॥१३॥

शापो मेऽनुग्रहायैवं कृतस्तैः करुणात्मभिः । यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः ॥१४॥

अन्वयः— तैः करुणात्मभिः शापो मे अनुग्रहाय एव कृतः यत् अहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टः हताशुभः ॥१४॥

अनुवाद— उन दयालु ऋषियों ने मुझ पर कृपा करने के ही लिए मुझे शाप दिया है । क्योंकि उसका फल है कि सम्पूर्ण जगत् के स्वामी आपके चरणों से स्पृष्ट होकर मेरे सारे पाप विनष्ट हो गये ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

यद्यतः शापात् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

उसी शाप के कारण ॥१४॥

तं त्वाहं भवभीतानां प्रपन्नानां भयापहम् आपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन् ॥१५॥

अन्वयः— हे अमीवहन ! तं प्रपन्नानां भवभीतानां भयापहम् त्वां पादस्पर्शात् शाप निर्मुक्तः आपृच्छे ॥१५॥

अनुवाद— हे कष्टों को दूर करने वाले प्रभो, संसार के भय से डर शरण में आने वाले जीवों के भय को विनष्ट करने वाले आपके चरणों का स्पर्श होने से शाप मुक्त मैं अपने लोक में जाने की आज्ञा चाहता हूँ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

आपृच्छे स्वं लोकं गन्तुमनुज्ञां याचे । हे अमीवहन् दुःखनाशन ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

हे दुःखों को विनष्ट करने वाले प्रभो मैं आप से अपने लोक में जाने की आज्ञा चाहता हूँ ॥१५॥

प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन् महापुरुष सत्पते । अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥१६॥

अन्वयः— हे महायोगिन्, हे महापुरुष, सत्पते अहं प्रपन्नः अस्मि, हे सर्वलोकेश्वरेश्वर हे देव ! मां अनुजानीहि॥१६॥

अनुवाद— हे महायोगेश्वर ! हेमहापुरुष हे सत्पुरुषों के स्वामिन् प्रभों मैं आपके शरणागत हूँ, हे समस्त लोकों के स्वामियों के स्वामिन् हे देव आप मुझे जाने की आज्ञा प्रदान करें ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

ब्रह्मदण्डाद्विमुक्तोऽहं सद्यस्तेऽच्युत दर्शनात् । यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄनात्मानमेव च ॥
सद्यःपुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥१७॥

अन्वयः— हे अच्युत ! ते दर्शनात् अहं सद्यः ब्रह्मदण्डात् विमुक्तः यत्नाम गृह्णनआत्मानम् अखिलान् श्रोतॄन् सद्यः पुनाति तस्य पदा स्पृष्टः हि भूयः किम् ॥१७॥

अनुवाद— सदैव अपने स्वरूप में स्थित रहने वाले भगवन् ! आपका दर्शन होते हीं मैं शीघ्र ही ब्राह्मणों के शाप से मुक्त हो गया, जिस आपके नामों का उच्चारण करने वाला पुरुष अपने को तथा उन नामों को सुनने वालों को भी पवित्र बना देता है, और आपने मुझे तो अपने चरणों से छू दिया है, अतएव मेरी मुक्ति में कौन सा सन्देह है ?॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्याभिवन्द्य च । सुदर्शनो दिवं यातः कृच्छ्रान्नन्दश्च मोचितः ॥१८॥

अन्वयः— सुदर्शनः इति दाशार्हम् अनुज्ञाप्य परिक्रम्य, अभिवन्द्य च दिवं यातः नन्दश्च कृच्छ्रात् मोचितः ॥१८॥

अनुवाद— सुदर्शन नाम का वह विद्याधर इस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना करके उनकी परिक्रमा किया और श्रीभगवान् को प्रणाम करके स्वर्ग चला गया तथा नन्द बाबा भी कष्ट से मुक्त हो गये ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

निशाम्य कृष्णस्य तदात्मवैभवं व्रजौकसो विस्मितचेतसस्ततः ।
समाप्य तस्मिन्नियमं पुनर्व्रजं नृपाययुस्तत्कथयन्त आदृताः ॥१९॥

अन्वयः— हे नृप कृष्णस्य तत् आत्मवैभवं निशाम्य विस्मितचेतसः व्रजौकसः ततः तन्नियमं समाप्य आदृताः तत् कथयन्तः व्रजं आययुः ॥१९॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के उस अद्भुत प्रभाव को आश्चर्यचकित व्रजवासी उसके पश्चात् उस नियम को समाप्त करके आदर पूर्वक श्रीभगवान् के उस प्रभाव का वर्णन करते हुए पुनः व्रज में आ गये ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः । विजह्रतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥२०॥

अन्वयः— अथ कदाचित् गोविदः अद्भुत विक्रमः रामश्च व्रजयोषिताम् मध्यगौ रात्र्यां वने विजह्रतुः ॥२०॥

अनुवाद— एक बार भगवान् श्रीकृष्ण और अद्भुत पराक्रम सम्पन्न बलरामजी तथा व्रज गोपियों के साथ रात्रि में विचरण कर रहे थे ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

'अहिदेहं निहत्यैव प्रागुन्मत्तं सुदर्शनम् । तद्वदुन्मादिनं कृष्णः शङ्खचूडमताडयत्' । तत्प्रसङ्गमाह-कदाचिदिति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

पहले उन्मत्त बने रहने वाले अजगर का शरीर धारण करने वाले सुदर्शन के सर्प शरीर को विनष्ट करके उसी के समान उन्मत्त रहने वाले शंखचूड़ को भी भगवान् श्रीकृष्ण ने मारा । इस बात को **कदाचित्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ।।२०।।

उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः । स्वलंकृतानुलिप्ताङ्गौ स्रग्विणौ विरजोम्बरौ ।।२१।।

अन्वयः— विरजोम्बरौ स्राग्विणौ स्वलंकृतानुलिप्ताङ्गौ बद्धसौहृदैः स्त्री जनैः ललितम् उपगीयमानौ ।।२१।।

अनुवाद— वे दोनों स्वच्छ वस्त्रधारण किए थे, फूलों की माला तथा अलंकारों से वे अलंकृत थे । उनके शरीर में अङ्गराग के रूप में सुगन्धित चन्दन लगा था और गोपियाँ अत्यन्त मनोहर स्वर से उनके गुणों का गान कर रही थीं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

विरजोम्बराविति । विरजसी निर्मले अम्बरे ययोस्तौ ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

उन दोनों लोगों का वस्त्र बिल्कुल स्वच्छ था ।।२१।।

निशामुखं मानयन्तावुदितोडुपतारकम् । मल्लिकागन्धत्तालिजुष्टं कुमुदवायुना ।।२२।।
जगतुः सर्वभूतानां मनःश्रवणमङ्गलम् । तौ कल्पयन्तौ युगपत् स्वरमण्डलमूर्च्छितम्।।२३।।

अन्वयः— उदितोडुपतारकम्, मल्लिकागन्धमत्तालिजुष्टं कुमुदबायुना निशामुखमायन्तौ सर्वभूतानां मनः श्रवणमङ्गलम् कल्पयन्तौ तौ स्वरमण्डलमूर्छितौ युगपत् जगतुः ।।२२-२३।।

अनुवाद— अभी-अभी शाम हुई थी, चन्द्रमा और तारे उदित हो गये थे । विकसित बेला के फूल तथा कुमुदनी की सुगन्धि लेकर वायु चल रही थी, उस समय उन सबों का सम्मान करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों ही सभी जीवों के मन को तथा श्रोत्रेन्द्रिय को सुख देने वाले मङ्गलमय गीत गाने लगे । उन दोनों का वह गीत आरोह तथा अवरोह से युक्त होने के कारण अत्यन्त सुन्दर था ।।२२-२३।।

भावार्थ दीपिका

किंच निशाप्रवेशं सत्कुर्वन्तौ । उदित उडुपस्तारकाश्च यस्मिंस्तत् । मल्लिकागन्धेन मत्ता अलयो यस्मिंस्तत् । अनिबद्धत्वादन्यैर्युगपत्कल्पयितुमशक्यमपि तौ स्वरमण्डलस्य मूर्च्छितं युगपत्कल्पयन्तौ मनः श्रवणयोर्मङ्गलं यथा भवति तथा जगतुरगायतामिति ।।२२-२३।।

भाव प्रकाशिका

सायं काल की बेला का सम्मान करते हुए, जबकि चन्द्रमा और तारे उदित हो गये थे, जिसमें बेले की सुगन्धि सुगन्धित श्रीभगवान् और बलरामजी के द्वारा गाये जाने वाला वह गीत निबद्ध नहीं हो सकने के कारणकोई दूसरा कोई उसे गा नहीं सकता था, आरोह एवं अवरोह के सौन्दर्य से युक्त होने के कारण मन एवं श्रवणेन्द्रिय को वह सुखप्रद था गीत । इस प्रकार के उस गीत को वे दोनों एक साथ गाने लगे ।।२२-२३।।

गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्च्छिता नाविदन्नृप । स्रंसद्दुकूलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः ।।२४।।

अन्वयः— हे नृप ! तद्गीतम् आकर्ण्य ततः मूर्छिताः गोप्य स्रंसद्दुकूलम् आत्मानं स्रस्तकेशस्रजं न अविदन् ।।२४।।

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् उस गीत को सुनकर गोपियाँ मूर्छित हो गयीं उनको न तो इस बात का पता था कि उनका वस्त्र खिसक गया है और केशों में गूंथी मालाएँ गिर पड़ी है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

मूर्च्छितास्तद्गीतलीनचित्ताः । स्रंसद्भ्रश्यद्दुकूलं यस्मात्तमात्मानं देहम्। स्रस्ताः केशेभ्यः स्रजो यस्य तं च । ततो नाविदन्।।२४।।

भाव प्रकाशिका

मूर्छिताः अर्थात् उन सबका चित्त उसमें ही लीन हो गया था । वे सब इस तरह से गीत सुनने में लीन हो गयी थीं कि उन सबों को इस बात का भी पता नहीं था कि उनके वस्त्र उनके शरीर से खिसक गये हैं और चोटी में गूँथी मालाएँ गिर पड़ी हैं ।।२४।।

एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः संप्रमत्तवत् । शङ्खचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात् ।।२५।।

अन्वयः— एवं विक्रीडतो स्वैरं सम्प्रमत्तवत् गायतोः शङ्खचूड इतिख्यातः धनदानुचरः अभ्यगात् ।।२५।।

अनुवाद— जिस समय राम और श्याम दोनों भाई स्वच्छन्द विहार कर रहे थे और उन्मत्त के समान गा रहे थे, उसी समय वहाँ पर शङ्खचूड नामक वहाँ कुबेर का अनुचर आया ।।२५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२५।।

तयोर्निरीक्षतो राजंस्तन्नाथं प्रमदाजनम् । क्रोशन्तं कालयामास दिश्युदीच्यामशङ्कितः ।।२६।।

अन्वयः— हे राजन् तयोः निरीक्षतोः तन्नाथं प्रमदाननम् क्रोशन्तम् अशंकितः उदीच्यां दिशि कालयामास ।।२६।।

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् राम एवं श्याम उन दोनों भाइयों के देखते ही रोती चिल्लाती हुई गोपियों को लेकर वह उत्तर दिशा में भाग चला । उन गोपियों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ही थे ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

निरीक्षतोर्निरीक्षमाणयोः तौ नाथौ यस्य तं प्रमदाजनं कालयामास हठात्प्रेरयामास ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

उन दोनों भाइयों के देखते ही रहने पर जिन सबों को स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ही थे उन गोपियों का बलपूर्वक लेकर भाग चला ।।२६।।

क्रोशन्तं कृष्ण रामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम् । यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम् ।।२७।।

अन्वयः— दस्युना ग्रस्ताः गाः यथा स्वपरिग्रहम् कृष्ण रामेति क्रोशन्तं विलोक्य भ्रातरौ अन्वधावताम् ।।२७।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ने देखा कि जैसे कोई लुटेरा गायों को लूट कर ले जाय उसी तरह यह यक्ष हमारी प्रेयसियों को ले जा रहा है । और वे प्रेयसियाँ चिल्ला रही हैं । यह देखकर वे दोनों भाई उस यक्ष के पीछे दौड़ पड़े ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

दस्युना व्याघ्रेण ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

दस्युना अर्थात् बाघ के द्वारा ।।२७।।

मा भैष्टेत्यभयारावौ शालहस्तौ तरस्विनौ । आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम् ।।२८।।

अन्वयः— मा भैष्ट इति अभयारावौ, शाल हस्तौ तरस्विनौ तरसा त्वरितं तं गुह्यकाधमम् आसेदतुः ।।२८।।

अनुवाद— डरो मत ! डरो मत ! इस तरह से कहते हुए भगवान श्रीकृष्ण और बलरामजी अपने हाथ में शाल वृक्ष लिए हुए वेगपूर्वक शीघ्र ही उस अधम यक्ष के पास पहुँच गये ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

मा भैष्ट भयं न प्राप्नुतेत्यभयवाचौ ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

तुम डरो मत इस तरह से अभय बना देने वाली वाणी बोलते हुए ।।२८।।

स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन् । विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ।।२९।।

अन्वयः— तौ कालमृत्यु इव तौ अनुप्राप्तौ वीक्ष्य उद्विजन् सः मूढः स्त्रीजनं विसृज्य जीवितेच्छया प्राद्रवत् ।।२९।।

अनुवाद— उन दोनों भाइयों को सन्निकट में आये हुए देखकर वह मूर्ख यक्ष गोपियों को छोड़कर अपनी जान बचाने के लिए भाग चला ।।२९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२९।।

तमन्वधावद्गोविन्दो यत्र यत्र स धावति । जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियो बलः ।।३०।।

अन्वयः— यत्र यत्र स गच्छति, तत् शिरोरत्नं जिहीर्षुः गोविन्दः तम् अन्वधावत् बलः स्त्रियः रक्षन् तस्थौ ।।३०।।

अनुवाद— वह जहाँ-जहाँ भागकर जाता था वहाँ-वहाँ उसके पीछे भगवान् श्रीकृष्ण उसके पीछे इसलिए जाते थे कि उसके शिर में जो मणि थी उसको छिन लें। और बलरामजी गोपियों की रक्षा करने के लिए वहीं रुक गये।।३०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३०।।

अविदूर इवाभ्येत्य शिरस्तस्य दुरात्मनः । जहार मुष्टिनैवाङ्ग सहचूडामणिं विभुः ।।३१।।

अन्वयः— हे अङ्ग विभुः अविदूर इव अभ्येत्य मुष्टिनैव सहचूडामणिं तस्य दुरात्मनः शिरः जहार ।।३१।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! कुछ ही दूर पर भगवान् श्रीकृष्ण ने उसको पकड़ लिया और एक मुक्के से ही चूडामणि के साथ उस दुष्ट के शिर को तोड़ दिया ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

शिरसा सह चूडामणिं जहारेत्यर्थः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

उसके शिर के साथ ही उसके शिर में विद्यमन मणि को भी ले लिए ।।३१।।

शङ्खचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् । अग्रजायाददत्प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ।।३२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे शङ्खचूडवधो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।।३४।।

अन्वयः— एवं शङ्ख चूडं निहत्य भास्वरम् मणिम् आदाय पश्यन्तीनां योषिताम् पश्यन्तीनां प्रीत्या अग्रजाय आददीत्।।३४।।

अनुवाद— इस तरह शङ्ख चूड को मारकर तथा उसकी चमकती हुई मणि को लेकर गोपियों के सामने ही भगवान् श्रीकृष्ण ने उसको बलरामजी को प्रेमपूर्वक प्रदान कर दिया ।।३२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के चौंतिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।।३४।।

* * *

पैतीसवाँ अध्याय

युगल गीत

श्रीशुकउवाच

गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः । कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥१॥

अन्वयः— कृष्णं वनं याते तमनुद्रुतचेतसः गोप्यः कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यः दुःखेन वासरान् निन्युः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण जब वन में चले जाते थे उस उनका मन चूकि भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा रहता था अतएव भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान करती हुई बड़े ही कष्ट सेवितातीं थीं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चत्रिंशे वनं याते कृष्णे गोकुलयोषितः । युगलश्लोकानुगीतेन निन्युर्दुःखेन वासरान् । एवं रात्रिषु कृष्णेन स्वैरमभिरमितानां दिवा तद्विरहितानांमनुगीतेन दिननिस्तारप्रकारमाह-गोप्य इति । दुःखेन कृच्छ्रेण ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दिन में जब भगवान् कृष्ण वन में चले जाते थे तब गोकुल की वनिताएँ युग्म श्लोक के माध्यम से उनकी लीलाओं का गायन करके दिनों को बड़े कष्ट से विताती थीं । इस प्रकार रात में भगवान् श्रीकृष्ण के साथ अपनी इच्छानुसार रमण करने वाली गोपियाँ दिन में उनके विरह का अनुभव करती हुई उनकी लीलाओं का गान करके दिन बिताती थीं । इसी बात को **गोप्य इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । दुःखेन अर्थात् कष्ट से ॥१॥

गोप्य ऊचुः

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥२॥
व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ।
काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥३॥

अन्वयः— हे गोप्य यत्र मुकुन्दः वामवाहुकृतवामकपोलः वल्गितभ्रूः अधरार्पितवेणुम् कोमलाङ्गुलिभिः आश्रितमार्गं ईरयति तदा व्योमयानवनिताः सिद्धैः सह तदुपधार्य विस्मिताः सलज्जाः काम मार्गण समर्पितचिताः अपस्मृत नव्यः कश्मलं ययुः ॥२-३॥

गोपों ने कहा

अनुवाद— हे सखियों भगवान् अपने भक्तों को प्रेम वितरण करते है और अपने दोषियों को मोक्ष प्रदान करते है वे जब अपनी वायी भुजमूल पर अपने वायें कपोल को लटकाकर और अपनी भौहों को नचाते हुए अपनी वाँसुरी को अपने ओष्ठों पर रखकर अपनी सुकुमार अङ्गुलियों से उसके सातों छिद्रों पर रखकर जब उसे बजाते हैं तो उस समय आकाश में सिद्धों की पत्नियाँ अपने सिद्ध पतियों के साथ विमानों पर चढ़कर आती हैं और उस मुरली की धुन को सुनकर विस्मित हो जाती हैं, जब वे सोचती हैं कि अरे मेरे साथ मेरे पति भी हैं तो वे लज्जित हो जाती हैं, किन्तु जब उनका चित्त काम के बाणों से विंध जाता है तो वे अचेत सी हो जाती हैं । उन्हें इस बात का ज्ञान भी नहीं रह जाता कि उनकी नीवीं शिथिल हो गयी है ॥२-३॥

भावार्थ दीपिका

वामबाहुकृतवामकपोल इत्यादीनि द्वादशयुगलानि । हे गोप्यः, वामे बाहौ तन्मूले कृतोऽर्पितो वामकपोलो येन सः । वल्गिते नर्तिते भ्रुवौ येन स वल्गितभ्रूर्मुकुन्दः । अधरे अर्पितं वेणुं कोमलाभिरङ्गुलिभिराश्रिता मार्गाः सप्तस्वरच्छिद्राणि यस्य तं यत्र यदा ईरयति वादयति । तदा व्योमयानानां सिद्धानां वनिताः सिद्धैः स्वपतिभिः सह वर्तमाना अपि तद्वेण्वीरणमुपधार्याकर्ण्य प्रथमं विस्मितास्ततः काममार्गणेभ्यः समर्पितानि चित्तानि याभिस्तास्तत्परवशा इत्यर्थः । सलज्जाः सत्यः कश्मलं मोहं ययुः । अत्र लिङ्गम्अपस्मृता विस्मृता नीव्यो याभिरिति । अत एवंभूतस्य कृष्णस्य विरहं कथं सहाम इति सर्वत्र वाक्यशेषः ।।२-३।।

भाव प्रकाशिका

इस अध्याय का नाम गोपिका युगल गीत है । इस अध्याय का नाम युगल गीत इसलिए है, कि इस अध्याय के प्रायः सभी श्लोक दो-दो श्लोक के रूप में अन्वित है । इस अध्याय के छब्बीस श्लोकों में से चौबीस श्लोकों के बारह युगल श्लोक हैं । गोपियाँ आपस में बातें करती हुई कहती है कि जब श्रीकृष्ण अपने बायीं भुजमूल पर बाये कपोल को लटकाकर तथा आँखों को तेजी से नचाकर अपने ओष्ठों पर बाँसुरी को रख देते हैं और उसके सातों छिद्रों पर सात स्वरों का जो धुन छेड़ते हैं उस समय अपने सिद्ध पतियों के साथ विमान पर बैठी हुई उनकी पत्नियाँ उस वंशी की धुन सुनकर पहले तो आश्चर्यित हो जाती हैं । उसके पश्चात् काम के वाणों से व्यथित होकर वे बेचैन हो जाती हैं । उन्हें इस बात का भी पता नहीं रहता है कि उनकी नीवी खुली जा रही है । उनकी बेचैनी में यही प्रमाण है कि उन्हें अपनी नीवी के शैथिल्य का भी पता नहीं रहता है ।।२-३।।

हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं हारहास उरसि स्थिरविद्युत् ।
नन्दसूनुरयमार्तजनानां नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ।।४।।
वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ।
दन्तदष्टकवला धृतकर्णा निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ।।५।।

अन्वयः— हन्त अबलाः इदं चित्रं शृणुत हारहास उरसि स्थिर विद्युत् अयम् नन्दसुनुः यर्हि आर्तजनानां नर्मदः कूजित वेणुः वृन्दशोः व्रजवृषा मृगभावः वेणुवाद्यहत चेतसः आरात् दन्तदष्टकबलाः धृतकर्णाः निद्रिता लिखित चित्रम् इव आसन् ।।४-५।।

अनुवाद— अरी गोपियों इस आश्चर्यभरी बात को तो सुनो । जब श्रीकृष्ण हँसते हैं तो उनकी हँसी की रेखाएँ, हार का रूप धर लेती हैं । उनके वक्षस्थल पर लहराते हुए हार में हास्य की किरणें चमकने लगती है। उनके वक्षस्थल पर जो लक्ष्मीजी का सुनहला श्रीवत्स चिह्न वह ऐसा लगता है कि जैसे श्याम मे घमण्डल पर विद्युत स्थिर रूप से स्थित हो गया हो । जब श्रीकृष्ण दुःखी जनों का दुःख दूर करने के लिए तथा विरही व्यक्ति के भीतर प्राणों का संचार करने के लिए अपनी बाँसुरी बजाते हैं तब व्रज के सभी बैल गाये और मृग आदि सभी उनके पास आ जाते हैं । और उनके दाँतों से चबाया हुआ घास का ग्रास उन सबों के मुख में जैसे के तैसे पड़ा रह जाता है, वे उसे न तो निगल पाते हैं और न उगल पाते हैं । वे अपने दोनों कानों को खड़ा करके इस प्रकार स्थिर रूप से खड़े रहते हैं, जैसे वे सो गये हों अथवा ऐसा प्रतीत होता है कि वे केवल भीत पर लिखे हुए चित्र हों । उन सबों की इस दशा का कारण है कि प्रियतम श्रीकृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि उन सबों के चित्त को चुरा लेती है ।।४-५।।

भावार्थ दीपिका

हन्त हे अबलाः, इदं चित्रं शृणुत । हारहासो हारवद्विशदो हासो यस्य सः । यद्वा वेणुवादनेनाधोवदनेन हसतो हारेषु स्फुरन् हासो यस्य सः । यद्वा हारवद्वक्षसि शोभमानो हासो यस्य सः । यद्वा हाराणां हास एव विशदा स्फूर्तिर्यस्मिन्नुरसीति ।

उरसि स्थिरा विद्युदिव लक्ष्मीर्यस्य सः यर्हि यदा कूजितवेणुर्नादितवेणुर्भवति । तदा व्रजें वृषा मृगा भावश्च वेणुवाद्येन हृतानि चेतांसि येषां तें । आराद्दूरादेव दन्तैर्दष्टा कवला ग्रासा यैस्ते । धृता उत्तम्भिताः कर्णा यैस्ते । निद्रिता इव लिखितचित्रमिव चासन् अविदुषां तिरश्चामिदमतिचित्रमित्यर्थः ।।४-५।।

भाव प्रकाशिका

हे सखियों इस आश्चर्य की बात तुम लोग सुनो । सुशोभित होती है । अथवा हारों की हंसी ही उनके वक्षस्थल पर हार के समान हास का अर्थ है हार के समान चमकती हुई हँसी वाले, अथवा बाँसुरी बजाते समय नीचे मुख करके वे जब हँसते हैं उनकी हँसी हारों में चमकती है । अथवा उनकी हंसी उनके वक्षस्थल पर हार के समान सुशोभित होती है । अथवा हारों की हंसी ही उनके वक्षस्थल पर हार के समान प्रतीत होती है । उनके वक्षस्थल पर स्थिर लक्ष्मीजी की श्रीवत्स चिह्न विद्युत के समान चमकता है । जब वे अपनी बाँसुरी को बजाते हैं उस समय व्रज के बैल, मृग तथा गायें उन सबों का चित्त उनकी बाँसुरी आकृष्ट कर लेती है । अतएव दूर से ही दाँतों के द्वारा खाये हुए घास के ग्रास को । वे अपने कानों को खड़ा कर लेते हैं । और लगता है कि जैसे वे भित पर बनाये गये चित्र हों अज्ञानी पशु-पक्षियों की यह दशा अत्यन्त विचित्र है ।।४-५।।

बर्हिणस्तबकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ।
कर्हिचित्सबल आलि स गोपैर्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ।।६।।
तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम् ।
स्पृहयतीर्वयमिवाबहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजाः स्तिमितापः ।।७।।

अन्वयः— बर्हिणः स्तवक धातु पलाशैः बद्धमल्ल परिवह विडम्बः सः हे आलि सबलः गोपैः मुकुन्दः यत्र गाः समाह्वयति तर्हि भग्नगतयः सरितः अनिलनीतम् तत्पदाम्बुज रसः स्पृहयतीः वयामिव अबहुपुण्याः प्रेमवेपित भुजाः स्तिमितापः ।।६-७।।

अनुवाद— जिस समय प्रियतम श्रीकृष्ण मोरपंख का मुकुट अपने सिर पर बाँध लेते हैं तथा अपनी घुंघराली अलकों में पुष्पों के गुच्छे लगा लेते हैं, गेरु आदि से अपने श्रीविग्रह को चित्रित्त कर लेते हैं तथा वृक्षों को पल्लवों सेअपना वेष सजा लेते है, तब वे किसी पहलवान् के समान प्रतीत होते हैं । उसके पश्चात् वे गोपों तथा बलराम जी के साथ अपनी बांसुरी में गायों का नाम लेकर बुलाते हैं उस समय नदियों की गति रुक जाती है, वे चाहती हैं कि प्रियतम श्रीकृष्ण के चरणों से उड़ी हुई धूल को वायु लाकर हमें भी प्रदान कर देता । किन्तु सखियों वे नदियाँ भी हम लोगों के ही समान उपचित पुण्यों वाली नहीं है । हमलोगों के समान वे भी अपनी लहर रूपी हाथ को नहीं कँपा पाती हैं कभी वे अपनी भुजाओं को कँपाती तो है किन्तु प्रेमातिरेक के कारण वे स्तम्भित हो जाती हैं ।।६-७।।

भावार्थ दीपिका

किञ्च अचेतनासु सरित्सु तदतीव चित्रमित्याहुः-हे आलि सखि, बर्हिणो मयूरस्तस्य स्तबका मयूरपिच्छा धातवो गैरिकादयश्च पलाशानि पल्लवाश्च तैर्बद्धश्चासौ मल्लानां परिबर्हः परिकरस्तं विडम्बयत्यनुकरोतीति तथा स मुकुन्दो गोपैः सह वेणुनेत्युपरितनमत्रापि ज्ञातव्यम् । यत्र यदा गाः सम्यगाह्वयति । तर्हि तदा तद्ध्वनिश्रवणात् । अनिलेनानीतं तस्य पदाम्बुजरजः स्पृहयन्त्य इव भग्नगतयः सरितो वै निश्चितं वयमिव ता अप्यबहुपुण्या यतो न प्राप्नुवन्ति । केवलं प्रेम्णा वेपिता भुजास्तरङ्गा यासां ताः । स्तिमिता निश्चला आपो यासां ताः । गोप्योऽपि लोचनयोस्तिमितजला भवन्तीति ।।६-७।।

भाव प्रकाशिका

यही नहीं अचेतन नदियों में भी अत्यन्त आश्चर्य हैं, इस बात को गोपियों ने कहा- हे सखियों जब श्रीकृष्ण मोर पङ्खों के मुकुट को धारण करके गेरु आदि से अपने को चित्रित करके तथा वृक्षों के कोमल पत्तों से अपने

को सजाकर बड़े मल्लों का अनुकरण करते हैं । जब प्रियतम श्रीकृष्ण गोपों के साथ अपनी वाँसुरी बजाते हैं तो उस विरह को सहा नहीं जाता है । जब वे गायों को बुलाते हैं उस समय उस ध्वनि को सुनकर वायु के साथ उड़कर आयी हुई उनके चरणों की धूलि को नदियाँ भी प्राप्त करना चाहती हैं किन्तु जिस तरह से हमलोगों का बहुत पुण्य नहीं है उसी तरह इन नदियों का भी बहुत अधिक पुण्य नहीं है । इसीलिए वे प्रियतम श्रीकृष्ण के चरणरज को नहीं प्राप्त कर पाती हैं । वे प्रेमवशात् केवल अपनी लहररूपी भुजाओं को ही कँपाती है । उन सबों का जल रुक जाता है । गोपियाँ भी आँसुओं को रोक लेती हैं ॥६-७॥

अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपूरुष इवाचलभूतिः ।
वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्वेणुनाह्वयति गाः स यदा हि ॥८॥
वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः ।
प्रणतभारविटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनव ससृजुः स्म ॥९॥

अन्वयः— अनुचरैः समनुवर्णितवीर्यः आदि पुरुष इवाचलभूतिः वनचरः गिरितटेषु चरन्तीः गाः यदाहि सः गाः समाह्व यति वनलताः तरवः आत्मनि विष्णुं इव पुष्पफलाढ्याः प्रहृष्टतनवः प्रणतभार विटपाः मधुधाराः ससृजु ॥८-९॥

अनुवाद— अरी सखियों ! श्रीभगवान् के अनुचर देवगण उनके अनन्त और अचिन्त्य ऐश्वर्य का वर्णन करते हैं ऐसे ये ग्वाल बाल भी प्रियतम श्रीकृष्ण के अचिन्त्य लीलाओं का वर्णन करते हैं । इस प्रकार के श्रीकृष्ण जब वृन्दावन के गोवर्धन पर्वत की तराई में गायों को चराते हुए अपनी बाँसुरी बजाकर अपनी गायों को बुलाते हैं । उस समय वन के वृक्ष और लताएँ फूल एवं फल से भर जाती हैं । और फलों तथा फूलों के भार से वृक्षों की डालियाँ झुक जाती हैं । मानों वे उनको प्रणाम कर रही हों । वे वृक्ष और लताएँ अपने भीतर भगवान् विष्णु की अभिव्यक्ति सूचित करती हुई प्रेम से फूल उठती हैं । और सबके सब मधुधारा की सृष्टि करने लगती हैं ॥८-९॥

भावार्थ दीपिका

स्थावरेष्वप्यतिचित्रं दृश्यत इत्याहुः-अनुचरैर्गोपैर्देवादिभिर्वा । मुग्धानां वाक्यमादिपुरुष इवेति । अचलभूतिर्निश्चलश्रीः। वेणुना तत्तन्नाम्ना गानेन । तदा प्रणता भारेण विटपाः शाखा यासां ता वनगता लताः स्वस्मिन्विष्णुं प्रकाशमानं सूचयन्त्य इव मधुधारा ववृषुः, स्मेति विस्मये । तरवश्च तथा तत्पीनामपि तथैवानन्द इति भावः । एतानि विष्णुव्यक्तिलक्षणानि ॥८-९॥

भाव प्रकाशिका

गोपियों ने कहा स्थावरों में भी अत्यन्त विचित्रता दिखती है प्रियतम श्रीकृष्ण के अनुचर तो ग्वाल बाल हैं और आदि पुरुष भगवान् नारायण के अनुचर देवगण हैं उन मुग्ध गोपगण श्रीकृष्ण के एश्वर्य का वर्णन उसी तरह करते हैं जैसे देवगण भगवान् नारायण के ऐश्वर्य का वर्णन करते हैं । अचल भूति अर्थात् स्थिर ऐश्वर्य । वंशी की धुन से भिन्न-भिन्न नामों के गान से । प्रियतम श्रीकृष्ण के बंशी बजाने के समय फलों एवं फूलों के भार से झुकी वृक्षों की शाखाएँ और वन लताएँ अपने में प्रकाशित होने वाले भगवान् विष्णु को ही सूचित करती हुई मधुधारा की वर्षा करती हैं । स्म यह अव्यय विस्मय के अर्थ में पयुक्त है । वनलताओं के ही समान उनके पति वृक्षों को भी समान रूप से आनन्दानुभूति का होना भगवान् विष्णु की अभिव्यक्ति के लक्षण है ॥८-९॥

दर्शनीयतिलको वनमालादिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः। अलिकुलैरलघुगीतमभीष्टमाद्रियन्यर्हि सन्धितवेणुः॥१०॥
सरसि सारसहंसविहङ्गाश्चारुगीतहृतचेतस एत्य । हरिमुपासत ते यतचित्ता हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः॥११॥

अन्वयः— दर्शनीयतिलकाः वनमालादियगन्ध तुलसीमधुमत्तैः अलिकुलैः अलघुगीतम् अभीष्टम् आद्रियन् यर्हि सन्धिदवेणुः तदा सरासि सारसहंसविहंगाः चारुगतिहृतचेतस एत्य हन्तते यत्तचित्ता मीलितदृशः धृतमौनाः हरिम् उपासते ॥१०-११॥

अनुवाद— इस संसार में अथवा संसार के बाहर भी जितनी दर्शनीय वस्तुएँ है उन सबों से सुन्दर हैं हमारे जीवन सर्वस्व श्रीकृष्ण । उनके ललाट में लगे हुए मनोहरतिल की शोभा तो और निराली है । गले में धारण की गयी घुटनों तक लटकने वाली वनमाला में विद्यमान तुलसी के सौगन्ध्य से मदमत्त भौंरे जो गुंजार करते हैं, उन सबों का अत्यधिक समादर करते हुए हमारे प्राण प्यारे श्याम सुन्दर उन भ्रमरो की गुंजन के स्वर में स्वर मिलाकर अपनी त्रैलोक्य मोहनी बाँसुरी को बजाते हैं उस समय सरोवर के कमल वन में विचरण करने वाले सारस हंस आदि पक्षीगण के चित्त को वह बाँसुरी की ध्वनि अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है । वे सब के सब प्रियतम श्रीकृष्ण के पास आ जाते हैं और अपने मन को समाहित करके तथा आँखों को बन्द करके चुपचाप उस मुरली की मनोहर ध्वनि का श्रवण करते रहते हैं ।।१०-११।।

भावार्थ दीपिका

किञ्च सरसि कमलवनेषु विहरतां पक्षिणामपि मनआकर्षणं तद्गीतं किं पुनरन्येषामित्याहुः-दर्शनीयतिलक इति । दर्शनीयस्तिलको यस्य । दर्शनीयानां सुन्दराणां मध्ये मुख्य इति वा । वनमालासु या दिव्यगन्धा तुलसी तस्या मधुना मत्तैरलिकुलैरलघु उच्चैरभीष्टमनुकूलं गीतमाद्रियन्नादरेण गृह्णन् यर्ह्यधरे सन्धितवेणुर्भवति । तर्हि ये सरसि सारसा हंसा अन्ये च विहङ्गास्ते चारुणा गीतेन हृतचेतस एत्य तत आगत्य हरिमुपासताभजन्त । तत्समीपे उपविविशुर्वा । हन्तेति विषादे ।।१०-११।।

भाव प्रकाशिका

गोपियाँ कहती हैं कि सरोवर के कमल वन में विचरण करने वाले पक्षियों के भी मन को आकृष्ट कर लेने वाली है श्याम सुन्दर को मुरली की ध्वनि तो फिर दूसरे लोगों के मन को वह आकृष्ट कर लेती है, यह क्या कहना है ? त्रैलोक्य सुन्दर श्रीकृष्ण के ललाट में लगा तिलक दर्शनीय ही है । अथवा वह देखने में मनोहर लगने वाली वस्तुओं में सबसे सुन्दर है । प्रियतम श्रीकृष्णकी वनमाला में लगी हुई तुलसी की सुगन्ध से मदमत्त बने भ्रमरों के समूह का उत्कृष्ट कोटि की गुंजन की ध्वनि उसका समादर करते हुए हमारे जीवन सर्वस्व श्रीकृष्ण अपने अधरों पर वंशी को रखकर जब बजाते हैं । उस समय सरोवर में रहने वाले जो सारस, हंस तथा दूसरे पक्षी हैं, वे उस वंशी के सुन्दर गीत से आकृष्ट होकर श्रीहरि के सन्निकट आकर उनकी उपासना करने लगते हैं। अर्थात् उनके पास आकर बैठ जाते हैं । हन्त यह अव्यय विषाद के अर्थ में है । अर्थात् पक्षीगण तो श्रीकृष्ण प्रियतम की वंशी की ध्वनि सुनने का मौका पा जाते हैं और हमलोगों को वेद वंशी पर गाये गये सुनने को नहीं मिलते हैं ।।१०-११।।

सहबलः स्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ।
हर्षयन्यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भाति विश्वम् ।।१२।।
महदतिक्रमणशङ्कितचेता मन्दमन्दमनु गर्जति मेघः ।
सुहृदमभ्यवर्षत्सुमनोभिश्छायया च विदधत्प्रतपत्रम् ।।१३।।

अन्वयः— हे व्रजदेव्यः ! सहबलाः स्रगवतंसविलासः क्षितिभृतः सानुषु वेणुरवेण विश्वम् हर्षयन् जातहर्षः उपरम्भति, महदतिक्रमणशंकितचेत्ता मेघः मन्दमन्दम् अनुगर्जति छायया प्रतपत्रम् विदधत् सुहृदम् सुमनोभिः अभ्यवर्षत् ।।१२-१३।।

अनुवाद— गोपियाँ कहती हैं कि हे व्रजदेवियों जिस समय बलरामजी के साथ हमारे प्राण प्रिय श्रीकृष्ण पुष्पों की मालाओं को अपने कण्ठों का कुण्डल बनाकर उसको धारण कर लेते हैं, और बलरामजी के साथ गिरिराज गोवर्धन के शिखरों पर खड़ा होकर सम्पूर्ण विश्व को प्रहर्षित करते हुए अपनी बाँसुरी बजाते हैं उस समय वे वाँसुरी में आनन्दभर कर सम्पूर्ण विश्व का आलिङ्गन करते हैं उस बाँसुरी की ध्वनि को सुनकर कारे कजरारे मेध मन्द-मन्द गरजने लगते हैं । वे जोर से इसलिए नहीं गरजते हैं कि जोर से गरजने पर बाँसुरी की धुन के कहीं वह

विपरीत न हो जाये और उससे महापुरुष भगवान् श्रीकृष्ण का अतिक्रमण रूप अपचार न हो जाय। जब वह देखता हैं कि हमारे हितैषी श्रीकृष्ण को धूप लग रही है तो वह उनके ऊपर अपनी छाया करके उनके छत्र का काम करता हैं। वह उनके ऊपर अपने जीवन (पानी) की नन्हीं-नन्हीं फूहियों को बरसाने लगता है। कभी-कभी बादलों के बीच में छिपकर देवता भी उनके ऊपर पुष्पों की वर्षा कर जाते हैं ॥१२-१३॥

भावार्थ दीपिका

मेघोऽपि हरिं सेवत इत्याहु:-सहबल इति। भो व्रजदेव्यो गोप्य:, सहबल: सराम: कृष्ण: स्रग्भिर्निर्मिताभ्यामवतंसाभ्यां कर्णभूषणाभ्यां विलासो यस्य। यद्वा मुक्ताफलस्रगापीडेन विलासो यस्येति। क्षितिभृत: सानुषु गिरेस्तटेषु वर्तमान:। स्वयं जातहर्षो विश्वं हर्षयन्यदा वेणुरवेणोपरम्भति निनादयति। नादेन पूरयतीत्यर्थ। तदा मेघो महत: कृष्णस्यातिक्रमणे शङ्कितं चेतो यस्य स न पुरतो याति, न चौच्चैर्गर्जति, किंतु तत्रैव स्थित: सन् वेणुरवमनु मन्दं मन्दं गर्जति। किंच सुहृदं विश्वार्तिहरणादिसाम्यात्सुहृत्कृष्णस्तं सुमनोभिरभ्यवर्षत्। अदृश्यैर्देवै: क्रियमाणं कुसुमवर्षं मेघे कल्पयित्वोक्तम्। तुषारो वा कुसुमतया कल्पित:। स एव वा देवतारूपोऽभ्यवर्षदिति। प्रतपादातपत्त्रायत इति प्रतपत्रं छत्रं तच्छायया कुर्वन्निति ॥१२-१३॥

भाव प्रकाशिका

सहबल: इत्यादि श्लोक से गोपियाँ कह रही हैं कि मेघ भी श्रीहरि का सेवन करते हैं। वे कहती हैं कि हे गोपियों बलरामजी के साथ श्रीकृष्ण पुष्पमालाओं से निर्मित कुण्डलों से सुशोभित होकर अथवा मोतियों की माला से निर्मित कुण्डलों से सुशोभित होते हैं। पर्वत के शिखरों पर खड़ा होकर। स्वयं प्रसन्न होकर सम्पूर्ण विश्व को हर्षित करते हुए अपनी वंशी की ध्वनि से निनादित करते हैं, उस समय मेघ महापुरुष श्रीकृष्ण के अतिक्रमण के भय से न तो उनके सामने जाता है और न तो जोर से गरजता है; अपितु उनकी वंशी की धुन से अपनी ध्वनि को मिलाकर मन्द-मन्द गरजता है। सम्पूर्ण विश्व के कष्ट को दूर करने वाले अपने मित्र श्रीकृष्ण के ऊपर पुष्पों की वर्षा करता है। अदृश्य रहकर देवता जो पुष्पों की वर्षा करते हैं, वह मेघ के द्वारा की गयी वर्षा है इस तरह से कल्पना करके गोपियाँ ऐसा कहती हैं। अथवा मेघ के द्वारा की जाने वाली फूहियों की वर्षा को पुष्प की वर्षा के रूप में कल्पना करके वे ऐसा कहती हैं। अथवा मेघ ही देवता का रूप धारण करके वर्षा करता है। वह अपनी छाया से श्रीकृष्ण के छत्र का काम करता है ॥१२-१३॥

विविधगोपचरणेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षा: ।
तव सुत: सति यदाधरबिम्बे दत्तवेणुरनयत्स्वरजाती: ॥१४॥
सवनशस्तदुपधार्य सुरेशा: शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगा: ।
कवय आनतकन्धरचित्ता: कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वा: ॥१५॥

अन्वय:— हे सति ! तव सुत: विविधगोपचरणेषु विदग्ध:, वेणुवाद्ये उरुधा निजशिक्षा: यदा अधरबिम्बेदत्तवेणु रनयत् स्वरजाति:। सवनश: तदुपधार्य सुरेशा शक्रशर्वपरमोष्ठिपुरोगा: कवय: आनतकन्धरचित्ता: अनिश्चित तत्त्वा: कश्मलं ययु: ॥१४-१५॥

अनुवाद— गोपियाँ यशोदाजी से कहती हैं कि हे सतियों में श्रेष्ठ यशोदाजी आपके पुत्र श्रीकृष्ण ग्वालों के साथ खेल खेलने में पूर्णतया निपुण हैं। वे किसी दूसरे बाँसुरी बजाने वालों में सबों से श्रेष्ठ हैं। इन्होंने किसी दूसरे से बाँसुरी बजाना नहीं सिखा फिर भी ये उससे अनेक प्रकार के राग रागिनियों को निकालते हैं। जब वे विम्बाफल के समान लाल अपने अधर पर बाँसुरी को रखते हैं तब वे उससे ऋषभ, गान्धार आदि अनेक प्रकार के स्वरों को निकालते हैं। उस समय आपके पुत्र श्रीकृष्णजी की बाँसुरी के तान को सुनकर ब्रह्मा, इन्द्र तथा शङ्कर

आदि जो बड़े-बड़े देवता है. वे भी उस बाँसुरी के स्वर को नहीं पहचान पाने के कारण इतना मोहित हो जाते हैं कि उनका चित्त हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण की वंशी की ध्वनि में ही तल्लीन हो जाता है । उनका सिर झुक जाता है और उसी में तन्मय हो जाते हैं ॥१४-१५॥

भावार्थ दीपिका

अपि च महदेतदाश्चर्यमित्याहुः-विविधेति । हे सति यशोदे, तव सुतो नानागोपक्रीडासु विदग्धो निपुणो वेणुवाद्ये विषये निजैव शिक्षा यासु ताः । स्वोत्प्रेक्षिता न त्वन्यतः श्रुता इत्यर्थः । स्वरजातीर्निषादऋषभादिस्वरालापभेदाननयदुन्नीतवान् । तत् ताः स्वरजातीः सवनशो मन्द्रमध्यमतारभेदेन यतो गीतध्वनिरागतस्ततश्चानता कन्धरा चित्तं च येषां ते । उपधार्य समाकर्ण्य। कवयः कोविदा अपि न निश्चितं तत्त्वं तद्भेदो यैस्ते कश्मलं मोहं ययुरिति ॥१४-१५॥

भाव प्रकाशिका

गोपियाँ माता यशोदा से भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा करती हुई कहती हैं कि यह बड़े ही आश्चर्य की बात है कि आपके पुत्र श्रीकृष्ण गोपों के साथ अनेक प्रकार की क्रीडा करने में अत्यन्त निपुण हैं । वंशी बजाने की कला यद्यपि इन्होंने किसी से भी नहीं सिखा है ये स्वयं ही वंशी बजाना सीख लिए और उससे, निषाद ऋषभ आदि अनेक स्वरों को वे वंशी की ध्वनि से ही प्रकट करते हैं । स्वर की वे जो जातियाँ मन्दमध्य तथा हार के भेद से अनेक प्रकार की हो जाती हैं । उस वंशी की ध्वनि को सुनकर ब्रह्मा इन्द्र आदि देवता जो सर्वज्ञ माने जाते हैं वे भी मोह में पड़ जाते हैं । वे भी उसके स्वर को नहीं पहचान पाते हैं । उन लोगों का भी सिर झुक जाता है, और वे उसी वंशी की ध्वनि में तल्लीन हो जाते हैं । क्योंकि वे उस वंशी की ध्वनि को प्रयास करके भी उसके स्वरों की जाति नहीं कर पाते हैं ॥१४-१५॥

निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्रनीरजाङ्कुशविचित्रललामैः ।
व्रजभुवः शमयन्खुरतोदं वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥१६॥
व्रजति तेन वयं सविलासवीक्षणार्पितमनोभववेगाः ।
कुजगतिं गमिता न विदामः कश्मलेन कबरं वसनं वा ॥१७॥

अन्वयः— निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्रनीरजांकुश विचित्रललामैः व्रजभुवः खुरतोदं शमयन् वर्ष्मधूर्यगतिः ईडितवेणुः व्रजति तेन सविलासवीक्षणार्पित मनोभववेगाः वयम् कुजगमिताः कश्मलेन कबरं वसनं वा न विदामः ॥१६-१७॥

अनुवाद— इस युगल में गोपियाँ आपस में बाते करती हुई कहती हैं कि गायों के खुरों से जब व्रज की भूमि खुद जाती है, उस समय पृथिवी को जो पीड़ा होती है उस पीड़ा को गायों के पीछे चलने वाले हमारे प्राणेश्वर श्रीकृष्ण ध्वज, व्रज, यव, कमल, अङ्कुश आदि चिह्नों से मनोहर बने अपने चरण कमलों के दल से पृथिवी के संताप को दूर करते हुए गजराज के समान मन्दगति से चलते है और अपनी बाँसुरी बजाते रहते हैं । प्रियतम श्रीकृष्ण की वह चाल, उनकी बाुँसरी की ध्वनि तथा विलास प्रेक्षण हमारे हृदय में ये सबके सब काम के वेग को और बढ़ा देने का काम करते हैं । उसके कारण हमलोग इतने मोहित हो जाते हैं कि हिलडुल नहीं सकती। जैसे हमलोग वृक्ष हों । हमारे मन में इतना मोह बढ जाता है कि हमे इस बात का भी पता नहीं रहता है कि हमारे केश बँधे हैं कि खुल गये है । हमारे वस्त्र हमारे शरीर पर हैं कि उतर गये हैं ?॥१६-१७॥

भावार्थ दीपिका

अस्माकं तु मोहं किं ब्रूम इत्याहुः- निजपदाब्जदलैरिति। ध्वजादीनि विचित्राणि ललामानि चिह्नानि येषां तैर्निजानि पदान्येवाब्जदलानि तैर्व्रजभुवः खुरतोदं खुराक्रमणव्यथां शमयन्वर्ष्मणा देहेन धुर्यो गजस्तद्वद्गतिर्यस्य स कृष्णो वादितवेणुः

सन् यद्व्रजति । तेन निमित्तेन सविलासवीक्षणेनार्पितो मनोभववेगो यासु ता वयम् । कुजै वृक्षास्तेषां गतिं गमिताः सत्यो मोहेन न विदामः कबरं वा वसनं वेति ।।१६-१७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीकृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनकर हमलोगों को कितना मोह होता है इसके विषय में हम क्या कहें इस बात को गोपियाँ **निजपदा० इत्यादि** श्लोक को कहती हैं । गौओं के खुर से खनित पृथिवी की व्यथा को हमारे प्राणाधार श्रीकृष्ण अपने ध्वज आदि के चिह्नों से अलंकृत अपने चरण रूपी कमल के दलों द्वारा शान्त करते हुए गजराज के समान चलते हुए अपनी बाँसुरी बजाते रहते हैं । उनकी उस बंशी की ध्वनि, प्रेम पूर्वक चितन, और मन्दगति ये सबके सब हमलोगों के भीतर काम के वेग को बढ़ाने का काम करते हैं । हमलोग इतना मोहित हो जाती हैं कि जड़ वृक्ष के समान हमलोग हिलडुल तक नहीं पातीं । हमे इतना भी पता नहीं चलता है कि हमारे केशों और वस्त्रों की स्थिति क्या है ?।।१६-१७।।

मणिधरः क्वचिदागणयन्गा मालया दयितगन्धतुलस्याः ।
प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे प्रक्षिपन्भुजमगायत यत्र ।।१८।।
क्वणितवेणुरववञ्चितचित्ताः कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ।
गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ।।१९।।

अन्वयः— मणिधर क्वचित् मणिमालयागाः गणयन् दयितगन्धतुलस्याःमालया सहवर्तमानः प्रणयिनः अनुचरस्य कदा अंसे भुजम् प्रक्षिपन् यत्र अगायत तदा क्वणित वेणुरववञ्चितचित्ताः कृष्ण गृहिण्यः हरिण्यः गुणगणार्णं कृष्णमनुगत्य गोपिका इव विमुक्त गृहाशाः कृष्णमन्वसत् ।।१८-१९।।

अनुवाद— श्रीकृष्ण जिन मणियों की माला को धारण करते हैं, वह मणिमाला अत्यन सुन्दर लगती है वे उस मणिमाला से कभी अपनी गायों को गिनने का कारते हैं । तुलसी की माला वे सदैव इसलिए धारण करते हैं कि तुलसी की गन्ध उनको अत्यन्त प्रिय है । जब कभी वे मणियों की माला से गायों की गणना करते-करते अपने प्रेमी अनुचर के कन्धे पर हाथ रखकर अपनी बाँसुरी बजाने लगते है उस समय उनकी बाँसुरी की ध्वनि को सुनकर कृष्णसार मृगों की पत्नियाँ हरिणियों का भी चित्त आकृष्ट हो जाता है । वे आकर श्रीकृष्ण को घेरकर उसी तरह खड़ी हो जाती हैं जिस तरह हम सभी गोपियाँ घर परिवार की आशा का परित्याग करके उनको घेर कर खड़ी हो जाती हैं । वे हरिणियाँ वहाँ से लौटकर जाने का नाम भी नहीं लेती हैं ।।१८-१९।।

भावार्थ दीपिका

किंच मणिधरो मणीन् ग्रथितान् गोगणनार्थं धरतीति मणिधरः । क्वचिद्देशे एतैर्मणिभिर्गा आसमन्ताद्गणयन् । तथा दयितगन्धा या तुलसी तस्या मालया सह वर्तमानः । प्रणयिनः प्रियस्यानुचरस्यांसे भुजं प्रक्षिपन् । यत्र यदा कदाचिदगायत। तदा क्वणितवेणुरवेण वञ्चितान्यपहृतानि चित्तानि यासां ताः कृष्णस्य हरिणस्य गृहिण्यो भार्याः गुणगणार्णं गुणगणसमुद्रं कृष्णमनुगत्य प्राप्य ताः कृष्णमेवान्वसतान्वासत । न न्यवर्तन्तेत्यर्थः । कुतः । यतो विमुक्ता गृहाशा याभिस्ता गोपिका इव ता अपि ह्येवमेवान्वासतेति ।।१८-१९।।

भाव प्रकाशिका

गोपियाँ कहती है कि श्रीकृष्ण प्यारे गौओं को गिनने के लिए मणियों की माला धारण करते हैं, वे इस मणियों की माला से अपनी गायों को गिनते हैं, ये हमेशा प्रिय गन्धवाली तुलसी की माला को धारण किये रहते हैं । अपने किसी प्रिय अनुज के कन्धे पर हाथ रखकर जब कभी ये अपनी बाँसुरी बजाते हुए चलते हैं, उस

समय उनकी वंशी की ध्वनि को सुनकर कृष्ण मृगों की हरिणियों का मन अपने वश में नहीं रह पाता है । वे उस ध्वनि को सुनकर गुणों के सागर श्रीकृष्ण के पास आकर उनके ही पास खड़ी हो जाती हैं और जिस तरह हम गोपियाँ श्रीकृष्ण को घेरकर खड़ी हो जाती हैं, और अपने घर नहीं लौटना चाहती हैं, उसी तरह वे भी प्रियतम श्रीकृष्ण को छोड़कर नहीं जाना चाहती है ॥१८-१९॥

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ।
नन्दसूनुरनघे तव वत्सो नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥२०॥
मन्दवायुरुपवात्यनुकूलं मानयन्मलयजस्पर्शेन ।
बन्दिनस्तमुपदेवगणा ये वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥२१॥

अन्वयः— अनघे ! तव वत्सः नन्दसूनुः कुन्ददामकृतकौतुकवेषः गोपगोधनवृतः प्रणयिनां नर्मदः यमुनायाम् विजहार मलयज स्पर्शेन मानयन् मन्दवायुः अनुकूलं वाति तम् ये उपदेवगणाः वन्दिनः ते वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥२०-२१॥

अनुवाद— हे यशोदाजी आप अत्यधिक पुण्यवती हैं, आप विलकुल निष्पाप हैं । आपके पुत्र नन्दलाल अत्यधिक प्रेमी हैं, वे अपने प्रेमी मित्रों को अनेक प्रकार के हास परिहास से सुख प्रदान करते हैं । वे जब अपने को कुन्द कली की माला से अपने को सजा लेते हैं तथा गोपों और गौओं के साथ यमुनाजी के तट में खेलने लग जाते हैं उस समय मलज चन्दन के समान शीतल तथा अनुकूल वायु चलने लग जाती है । तथा गन्धर्वगण आदि जो उपदेवगण हैं वे बन्दीजनों के ही समान वाद्य, गीत तथा उपहार प्रदान करके उनकी सेवा करते हैं तथा उनके चारो ओर खड़े रहते हैं ॥२०-२१॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं वृन्दावनप्रदेशेषु क्रीडित्वा सायाह्ने गोधनानि परावर्त्य यमुनायां क्रीडतस्तस्य सौभाग्यमनुवर्णयन्ति- कुन्ददामकृतकौतुकवेष इति । गोपीनामुत्सवाय कुन्ददामभिः कृतः कौतुकेनोत्सवेन वेषोऽलङ्कारो येन सः । हे अनघे यशोदे, तव वत्सः पुत्रो नन्दसूनुः कृष्णः । यद्वा सहैव बह्व्यः कथयन्त्यः काश्चित्तव वत्स इति काश्चिन्नन्दसूनुरिति चाहुः-नर्मदो हर्षदः सन्यदा विजहार क्रीडति स्म । तदा मलयजस्पर्शेन मलयजस्य चन्दनस्येव सुरभिः शीतश्च यः स्पर्शस्तेन तं कृष्णं मानयन्ननुकूलं यथा तथोपवाति वीजयति । यद्वा मलयजो दक्षिणो वायुः । यद्वा मलयजस्य कृष्णेन स्वाङ्गेऽनुलिप्तस्य स्पर्शेन मानयन्निति । किंच बन्दिन इव स्तावकाः सन्तो गन्धर्वादिगणा वाद्यगीतपुष्पवर्षादिभिः परिवव्रुः परित उपासत ॥२०-२१॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह वृन्दावन में क्रीडा करने के पश्चात् सायंकाल गौओं को लौटाकर यमुनानदी के तट पर क्रीडा करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के सौभाग्य का वर्णन करती हुई गोपियाँ **कुन्ददामकृतकौतुक० इत्यादि** श्लोक कहती हैं। गोपियों की प्रसन्नता के लिए जब प्रियतम श्रीकृष्ण अपने को कुन्दकली की माला से अपने को अलकृंत करके, हे यशोदाजी आपके लाड़ले पुत्र हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण । अथवा एक ही साथ अनेक गोपियाँ यशोदाजी से निवेदित करती हैं । कोई गोपी कहती हैं कि आपके पुत्र तो कोई गोपी नन्दलाल कहती है । वे कहती हैं श्रीकृष्ण तो हमलोगों को प्रसन्न करने वाले हैं । वे जब यमुना तट पर क्रीडा करते हैं, उस समय चन्दन के समान शीतल तथा सुगन्ध वायु आपके पुत्र श्रीकृष्ण का समादर करती हुई । अथवा चन्दन से जिनके अङ्ग लिप्त हैं ऐसे श्रीकृष्ण के स्पर्श से उनका वायु सत्कार करती है, और उनके मनोऽनुकूल ढंग से चलती है । वन्दीगणों के समान गन्धर्व इत्यादि जितने भी उपदेवगण है उनकी सेवा अपने वाद्य एवं गीत तथा उपहार दान के द्वारा करते हैं । तथा उनकी सेवा में उनको घेर कर खड़े रहते हैं ॥२०-२१॥

वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः ।
कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥२२॥
उत्सवं श्रमरुचापि दृशीनामुन्नयन्खुररजश्छुरितस्त्रक् ।
दित्सयैति सुहृदाशिष एष देवकीजठरभूरुडुराजः ॥२३॥

अन्वयः— व्रजगवां वत्सलः यदगध्रः दिनान्ते कृत्स्नगोधनम् उपोह्य पथिवृद्धैः वन्द्यमानचरणः गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः श्रमरूचाऽपि दृशीनां उत्सवं उन्नयन् खुररजश्चछुरित स्त्रक् एष सुहृदाशिषः दित्सया देवकी जठरभू उडुराजः एति ॥२२-२३॥

अनुवाद— हे सखी ! श्याम सुन्दर व्रजवासियों और गौओं से अत्यधिक प्रेम करते हैं । गोवर्धन पर्वत को धारण करके इन्होंने हमलोगों की रक्षा की । सायंकाल में अपनी सम्पूर्ण गायों को लौटाकर आते ही होंगे । यदि तुम पूछो कि उनके आने में इतनी देर क्यों हो रही हैं तो इसका उत्तर है कि रास्ते में वयोवृद्ध ब्रह्माजी तथा ज्ञान वृद्ध शंकरजी आदि देवगण जो उनके चरणों की बन्दना करने लगते हैं । और उनके अनुचर ग्वाल बाल उनकी कीर्ति का गान करते होंगे । वे दिनभर जङ्गलों में घूमने से थक गये होंगे फिर भी उनको देखने से हमलोगों को अगाध आनन्द मिलता है । गायों के खुरों से उड़ी हुई धूल से उनकी वनमाला भर गयी है । यशोदाजी की कोंख से प्रकट होने वाले कृष्णचन्द्र हम प्रेमियों की समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने के लिए हमलोगों के पास चले आ रहे हैं ॥२२-२३॥

भावार्थ दीपिका

आयान्तमालोक्य हृष्यन्त्यः परस्परमूचुः-वत्सल इति । व्रजस्य गवां च । यद्वा व्रजे निबद्धानां गवामनुकम्प्यानामस्माकमित्यर्थः। वत्सलो हितकृत् । कुतः । यद्यस्मादगध्रः अगं धरतीति गोवर्धनोद्धरणः । बहुशो रक्षणस्योपलक्षणमेतत् । वृद्धैर्ब्रह्मादिभिः । पथि वन्द्यमानचरण इति ते सेर्ष्यं सायं शीघ्रमागन्तुं न ददतीत्यर्थः । उपोह्य एकीकृत्य गीतयुक्तो वेणुर्यस्य सः । श्रमयुक्तयापि कान्त्या नेत्राणां हर्षमुन्नयन् उच्चैः प्रापयन् । खुररजोभिश्छुरिता याप्ताः स्त्रजो यस्य। सुहृदामस्माकमाशिषो मनोरथस्य दित्सया दातुमिच्छया देवक्या जठरे भवतीति तथा स एवोडुराजश्चन्द्रो निर्वृतिहेतुत्वेन स एष एतीति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

आते हुए श्रीभगवान् श्रीकृष्ण को देखकर प्रसन्नता पूर्वक गोपियाँ आपस में कहती हैं- प्रियतम श्रीकृष्ण व्रजवासियों और गौओं से प्रेम करते हैं । अथवा गोशालाओं में बँधी गायों और उनकी कृपा के पात्र भूत हम सबों का वे कल्याण करने वाले हैं । क्योंकि उनहोंने गोवर्धन धारण आदि अनेक प्रकार से हमसबों का कल्याण करने वाले हैं । रास्ते में ब्रह्माजी आदि वृद्ध देवगण उनके चरणों की वन्दना करने लगते हैं, उनको जल्दी आने नहीं देते हैं, अतएव गोपियों को इर्ष्या होती है। । वे अपनी गायों को समेट कर ला रहे हैं । यद्यपि वे थक गये होंगे। उनको देखकर हमलोगों को आपार आनन्द की प्राप्ति होती है । गायों के खुरों से उड़ी हुई धूल से उनकी वनमाला भर गयी है । हम अपने प्रेमियों की अभिलाषा को पूर्ण करने की इच्छा से वे हमलोगों की ही ओर आ रहे हैं। यशोदाजी का एक नाम देवकी भी है । अतएव उनकी कोंख से उत्पन्न हुए चन्द्रमा के समान है । अथवा नन्दजी व्रजराज होने के कारण देव हैं । और उनकी पत्नी यशोदाजी देवकी हैं ॥२२-२३॥

मदविघूर्णितलोचन ईषन्मानदः स्वसुहृदां वनमाली ।
बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं मण्डयन्कनककुण्डललक्ष्म्या ॥२४॥
यदुपतिर्द्विरदराजविहारो यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते ।
मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं मोचयन्व्रजगवां दिनतापम् ॥२५॥

अन्वयः— ईषन् मदविघूर्णितलोचनः स्वसुहृदां मानदः वनमाली, कनककुण्डललक्ष्म्या मृदुगण्डं मण्डयन् बदरपाण्डुवदनः द्विरदराज विहारः मुदित वक्त्रः एषः यदुपतिः व्रज गवांदुरन्तं दिनतापं मोचयन यामिनीपतिः इव उपयाति ॥२४-२५॥

अनुवाद— सन्निकट में आते हुए अपने प्राणेश्वर श्रीकृष्ण को देखकर गोपियां एक दूसरे से कहती हैं कितना सौन्दर्य है श्याम सुन्दर का । कुछ मदभरी आँखें कुछ चढ़ी हुई हैं, उनमें कुछ अरुणिमा भी है, अपने मित्रों को सम्मान देने वाले ये श्रीकृष्ण वनमाला धारण किए हुए हैं, कानों के सुवर्ण निर्मित कुण्डल अपने सौन्दर्य से इनके कोमल कपोलों को समलकृंत कर रहे हैं और इनके कपोल अधपके बेर के फल के समान पीले प्रतीत होते हैं। मदमत्त गजराज की गति के समान गति वाले प्रियतम श्रीकृष्ण का मुखमण्डल प्रसन्न है । इस तरह यदुपति श्रीहरि व्रजवासियों को तथा गायों को दिन की भयङ्कर गर्मी से मुक्त करने वाले चन्द्रमा के ही समान हम सबों के हार्दिक संताप को दूर करने के लिए हमलोगों के ही पास आ रहे हैं ॥२४-२५॥

भावार्थ दीपिका

अतिसंभ्रमेण काश्चित्समीपमायान्तं कथयन्ति । ईषन्मदेन विधूर्णिते विघूलिते लोचने यस्य सः । बदरपाण्डुरवदनः ईषत्पक्वबदरवत् पाण्डुरं वदनं यस्य सः । अत्र हेतुः- कनककुण्डलयोर्लक्ष्म्या कान्त्या मृदू कौमलौ गण्डौ यस्मिंस्तद्वदनं मण्डयन्निति कोमलगण्डस्थलं वा शोभयन्निति । यदुपतिरिति देवकीजठरभूरिति च–'प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जस्तातवात्मजः' इत्यादि गर्गवाक्यप्रसिद्धयोक्तम् । यद्वा–'सख उदेयिवान्सात्वतां कुले' इतिवत् ज्ञात्वा काश्चिद्वदन्तीति । गजेन्द्रगतिश्चन्द्र इव प्रसन्नवक्त्रो व्रजगवामस्माकमनन्तं दिनतापं च शमयन्नुपयाति एष समीपमायातीति ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

अपने सन्निकट आते हुए अपने प्रांणेश्वर श्रीकृष्ण को देखकर अत्यन्त उतावली होकर कुछ गोपियाँ कहती हैं थोड़े मद से उनकी आँखें चढ़ी हुई हैं । उनका मुख मण्डल अधपके वेर के फलों के समान पीला दिखता है । उसका कारण है कि सुवर्ण निर्मित कुण्डलों की कान्ति से उनको कपोल मण्डित हैं । वे श्रीकृष्ण देवकी यशोदा के गर्भ से उत्पन्न है । महर्षि गर्ग ने नामकरण के समय कहा था कि ये पहले वसुदेव के पुत्र के रूप में कहीं उत्पन्न हो चुके हैं । इसीलिए श्रीभगवान् को यदुपति और देवकी की कोंख से उत्पन्न कहा गया है । इनकी चाल मदमत्त गजेन्द्र के समान है । मुख प्रसन्न है । चन्द्रमा के समान ये कृष्ण चन्द्र गौओं के दिन संताप को और हमारे विरहजन्य सन्ताप को दूर करने के लिए इधर ही आ रहे हैं ॥२४-२५॥

श्रीशुक उवाच

एवं व्रजस्त्रियो राजन्कृष्णलीला नु गायतीः । रेमिरेऽहःसु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे वृन्दावन क्रीडायां गोपिकायुगलगीतं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

अन्वयः— हे राजन् एवं महोदयाः तन्मनस्काः तच्चिताः कृष्ण लीलानुगायतीः व्रजस्त्रियः अहःसु रेमिरे ।।२५।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् महाभाग्यवती गोपियों का मन सदा भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा रहता था। वे श्रीकृष्णमय हो गयी थीं जब दिन में भगवान् श्रीकृष्ण गायों को चराने के लिए वन में चले जाते थे तो वे इसी प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान करती हुई, उनकी लीलाओं में रमती रहती थीं ॥२६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के गोपिका युगलगीत नामक पैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

एवं विरहदुःखेनापि नु अहो कृष्णलीला एव गायन्त्यस्तस्मिंश्चित्तं चेतना जीवितं यासां तास्तस्मिन्नेव मनः संकल्परूपं यासां ताः, अतो महानुदय उत्सवो यासां ता अहःस्वपि रेमिरे ।।२६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण दिन में गायों को चराने के लिए वन में चले जाते थे, अतएव उनके विरह दुःख से दुःखी गोपियाँ दिन में भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान करती थीं इसलिए उन सबों का मन भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा रहता था, अतएव भगवल्लीला का गायन उनके लिए महान् उत्सव था । इस तरह भगवल्लीला का गान करती हुई दिन में भी श्रीभगवान् में ही रमण करती थीं ॥२६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के पैंतीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥३५॥

* * *

छतीसवाँ अध्याय

अरिष्टासुर का वध एवं कंस का अक्रूरजी को व्रज में भेजना

श्रीशुक उवाच

अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः । महीं महाककुत्कायः कम्पयन्खुरविक्षताम् ॥१॥

अन्वयः— अथ तर्हि अरिष्टः वृषभासुर महाककुत्कायः खुरविक्षतां महीं कम्पयन् गोष्ठमागतः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण के वन से लौटने के कारण व्रज में गोपियाँ आनन्द मना रही थीं उस समय बैल का रूप धारण किए हुए अरिष्टासुर नन्दजी की गोशाला में आया । उसका डील बहुत बड़ा था और उसका शरीर भी विशाल था । वह अपने खुर से पृथिवी को खोद रहा था और उसके भार से पृथिवी काँप रही थीं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षट्त्रिंशे तु हतेऽरिष्टे नारदोक्त्या बलाच्युतौ । वसुदेवसुतौ ज्ञात्वा कंसोऽक्रूरं समादिशत् । गोपीरासान्तरायान्तं शङ्खचूडं निहत्य सः । अहन् गोपीमहानन्दासहं दुष्टमरिष्टकम् । एवं देवगन्धर्वादिगीतनृत्यवाद्यकुसुमवर्षादिभिः कृष्णं प्राप्तं दृष्ट्वा व्रजस्य परमोत्सवे वर्तमाने तद्विरुद्धार्थान्तराधिकारार्थमथशब्दः । तर्हि तदा । वृषभाकृतिरसुरः । तं वर्णयति सार्धत्रयेण–महान्तौ ककुत्कायौ यस्य । खुरैर्विदारितां महीं कम्पयन् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

छत्तीसवे अध्याय में इस बात का वर्णन है कि अरिष्टासुर के मारे जाने के पश्चात् नारदजी के कहने से जब कंस ने यह जाना कि बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण दोनों वसुदेवजी के पुत्र हैं तो उसने अक्रूरजी को आदेश दिया गोपियों के साथ रासक्रीड़ा के पश्चात् शंखचूड का वध करके भगवान् श्रीकृष्ण गोपियों के महाआनन्द को नहीं सह सकने वाले दुष्ट अरिष्टासुर का वध किए । इस तरह से देवता गन्धर्व आदि के गीत नृत्य, वाद्य, पुष्पवर्षा आदि के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त हुए देखकर जबकि व्रज में महान उत्सव मनाया जा रहा था, उसके विरुद्ध दूसरे अर्थ के वर्णन के अधिकार की प्राप्ति के लिए श्लोक के आदि में अथ शब्द का प्रयोग किया गया है । तर्हि अर्थात् उस समय बैल के आकार वाला असुर का वर्णन साढे तीन श्लोकों में किया गया है । महाककुत्कायः अर्थात् जिसके ककुत् अर्था डील और शरीर ये दोनों विशाल थे । वह अपने खुर से खनी हुई पृथिवी को कँपा रहा था ॥१॥

रम्भमाणः खरतरं पदा च विलिखन्महीम् । उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन् ॥२॥

अन्वयः— खरतरं रम्भमाणः पदा च महीं विलिखन् पुच्छं उद्यम्य, विषाणाग्रेण वप्राणि च उद्धरन् ॥२॥

अनुवाद— वह जोर से गर्ज रहा था और पैरों से धूल उच्छाल रहा था । वह अपनी पूंछ को उठाकर सींगों से चाहार दिवारी (खेतों के मेड़ आदि) को तोड़ता जा रहा था ॥२॥

भावार्थ दीपिका

रम्भमाणो वृषभजातिशब्दं कुर्वन् । विलिखन् विदारयन् । उद्यम्योर्ध्वं कृत्वा । वप्राणि तटान्युत्क्षिपन् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

रम्भमाण: अर्थात् हँकड़ता हुआ, विलिखन् = उच्छालता हुआ, उद्यम्य अर्थात् ऊपर उठाकर, वप्राणि खेतों के मेड़ आदि को ॥२॥

किंचित्किंचिच्छकृन्मुञ्चन्मूत्रयंस्तब्धलोचनः । यस्य निर्ह्रादितेनाङ्ग निष्ठुरेण गवां नृणाम्॥३॥
पतन्त्यकालतो गर्भाः स्रवन्ति स्म भयेन वै । निर्विशन्ति घना यस्य ककुद्यचलशङ्कया ॥४॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! किञ्चित्किञ्चित् शकृत् मुञ्चन् मूत्रयन् स्तब्धलोचनः यस्य निष्ठुरेण निर्ह्रादितेन गवांनृणाम् भयेन वै, अकालतः गर्भाः स्रवन्ति पतन्ति च, यस्य ककुदि धनाः अचलशङ्कया निर्विशन्ति ॥३-४॥

अनुवाद— वह बीच-बीच में थोड़ा-थोड़ा मल-मूत्र करते जाता था । वह अपनी आँखे फाड़कर इधर-उधर दौड़ता था । राजन् परीक्षित् उसके हँकड़ने से भयभीत स्त्रियों और गौओं के तीन-चार महीनों के गर्भों का स्राव हो जाता था और पाँच छह महीने के गर्भ गिर पड़ते थे उसके ककुद् को देखकर मेघ उसे पर्वत समझकर उस पर आकर ठहर जाते थे ॥३-४॥

भावार्थ दीपिका

किंचित्किंचिच्छकृन्मध्ये मध्ये ईषदीषत्पुरीषं मुञ्चन् तथा मूत्रयन्मूत्रमुत्सृजन् । स्तब्धलोचनोऽनिमिषलोचनः । यस्य ध्वनिना गवां नारीणां च । तत्र- 'आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः । अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यात्' इति विभागः । ककुदि गलपृष्ठश्रृङ्गे ॥३-४॥

भाव प्रकाशिका

थोड़ा-थोड़ा मल-मूत्र करते हुए । स्तब्ध लोचनः अर्थात् अपनी आँखों को खोले हुए (एक टक से देखते हुए) उसके हंकड़ने की ध्वनि से गायों और स्त्रियों को कहा गया है कि चौथे महीने तक के गर्भ के नष्ट होने को गर्भ स्राव कहते है, और पाञ्चवें और छठे महीने में गर्भ के नष्ट होने को गर्भपात कहते हैं । उसके पश्चात् प्रसव कहलाता है । ककुदि अर्थात् डील पर ॥३-४॥

तं तीक्ष्णश‍ृङ्गमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसुः । पशवो दुद्रुवुर्भीता राजन्संत्यज्य गोकुलम् ॥५॥

अन्वयः— हे राजन् तं तीक्ष्णश‍ृङ्गम् उद्वीक्ष्य गोप्यः गोपाः च तत्रसुः भीताः पशवः गोकुलं संत्यज्य दुद्रुवु ॥५॥

अनुवाद— राजन परीक्षित् उस तीखे सींग वाले बैल को देखकर गोपियाँ तथा गोप सभी भयभीत हो गये भयभीत पशु अपनी गोशाला को छोड़कर भाग गये ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविन्दं शरणं ययुः ॥६॥
भगवानपि तद्वीक्ष्य गोकुलं भयविद्रुतम् । मा भैष्टेति गिराऽऽश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् ॥
गोपालैः पशुभिर्मन्द त्रासितैः किमसत्तम ॥७॥

अन्वयः— ते सर्वे कृष्ण इति गोविन्दशरणं ययुः भगवान् अपि तत् भय विद्रुतम् गोकुलं वीक्ष्य मा भैष्ट इति गिरा आश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् हे मन्द हे असत्तम गोपालैः पशुभिः त्रासितैः किम् ॥६-७॥

अनुवाद— उस समय व्रजवासियों ने हे श्रीकृष्ण हे श्रीकृष्ण कहकर भगवान् श्रीकृष्ण की शरणागति की। भगवान् भी सम्पूर्ण गोकुल को भयभीत देखकर सबों को आश्वासन देते हुए कहे डरो मत, डरो मत । उसके पश्चातृ वृषासुर को वे ललकारते हुए कहे अरे मूर्ख महादुष्ट ग्वालों और गौओं को क्यों डरा रहा है, इससे क्या होगा?॥६-७॥

भावार्थ दीपिका

कृष्ण कृष्ण रक्षेति ॥६-७॥

भाव प्रकाशिका

हे भगवान् श्रीकृष्ण आप हमलोगों की रक्षा करें ॥६-७॥

बलदर्पहाऽहं दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् । इत्यास्फोट्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन् ॥८॥
सख्युरसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः । सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन् ॥
उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥९॥

अन्वयः— दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनां अहं बलदर्पहा इति तल शब्देन आस्फोट्य अच्युतः अरिष्टं कोपयन् सख्युः अंसे भुजभोगं पसार्य हरिः अवस्थितः सः अरिष्टोऽपि एवं कोपितः खुरेण अवनिम् उल्लिख्य क्रुद्ध उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः कृष्णम् उपाद्रवत् ॥८-९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने कहा तुम्हारे जैसे दुष्टों तथा दूसरे दुष्टों के भी बल के घमण्ड को तोड़ने वाला मैं हूँ । इस तरह से कहकर श्रीभगवान् अपनी भुजाओं पर ताल ठोककर अरिष्टासुर को क्रोधित बना रहे है । अपने मित्र के कन्धे पर हाथ फैलाकर श्रीहरि खड़े हो गये । वह अरिष्टासुर भी क्रुद्ध होकर अपने खुर से पृथिवी को खोदते हुए तथा अपने उठायी हुई पूंछ से मेंघों को तितर-वितर करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण पर टूट पड़ा ॥८-९॥

भावार्थ दीपिका

इत्येवं वदन् । आस्फोट्य करतले बाहुमाहत्य । तेन तलशब्देन कोपयन् । भुजाभोगं भुजा भुजः स एव भोगः सर्पदेहस्तम्। सर्पदेहाकारं भुजमित्यर्थः । स्वयमच्युतः अन्यान्दुष्टन्हरतीति हरिः । उद्यता ऊर्ध्वं गच्छता पुच्छेन भ्रमन्तो मेघा यस्मिन् ॥८-९॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से कहते हुए अपनी भुजाओं पर ताल ठोककर, श्रीभगवान् उस ताल के शब्द से अरिष्टासुर को कुपित बना रहे थे । भुजाभोगम् अर्थात् सर्प के शरीर के समान भुजाओं को स्वयम् अन्य दुष्टों का विनाश करने के कारण भगवान् हरि कहलाते हैं । उद्यत्पुच्छभ्रमन् मेघः अपनी उठी हुई पूंछ की रगड़ से मेघों को तितर-वितर करते हुए ॥८-९॥

अग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् । कटाक्षिप्याद्रवत्तूर्णमिन्द्रमुक्तोऽशनिर्यथा ॥१०॥

अन्वयः— अग्रन्यस्त विषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनः कटाक्षिप्य, इन्द्रमुक्तोशनिर्यथा तूर्णम् अच्युतम् आद्रवत् ॥१०॥

अनुवाद— अरिष्टासुर अपनी दोनों सींगों को आगे कर दिया क्रोध से लाल बनी आखों से भगवान् श्रीकृष्ण की ओर टकटकी लगाकर उनकी ओर अपनी अपने तिरछे नेत्रों से देखकर भगवान् श्रीकृष्ण की ओर इतनी तेजी से दौड़ा जैसे इन्द्र ने अपने व्रज का प्रहार किया हो ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अग्रे न्यस्ते विषाणाग्रे येन सः । स्तब्धे असृक्तुल्ये लोचने यस्य सः । कटाक्षिप्य कटाक्षेण तिर्यङ् निरीक्ष्य ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

अरिष्टासुर अपनी दोनों सींगों को आगे कर लिया । स्तब्धासृग्लोचनः अर्थात् उसकी आँखें खून की तरह लाल थीं तथा वह उन आखों से भगवान् को एक टक से देख रहा था । **कटाक्षिप्य** अर्थात् अपनी तिरछी आँखों से देखकर ।।१०।।

गृहीत्वा शृङ्गयोस्तं वा अष्टादश पदानि सः । प्रत्यपोवाह भगवान् गजः प्रतिगजं यथा ।।११।।

अन्वयः— सः भगवान तं शृंगयोः गृहीत्वा गजः प्रतिगजं यथा अष्टादश प्रदानि प्रत्यपोवाह ।।११।।

अनुवाद— श्रीभगवान् उसके दोनों सींगो को पकड़कर जैसे एक हाथी दूसरे अपने प्रतिद्वंदी हाथी को पीछे ढकेल कर ले जाता है उसी तरह उसको अठारह डेग पीछे ढकेल ले गये ।।११।।

भावार्थ दीपिका

प्रत्ययोवाह प्रतिलोमं व्यनुदत् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

प्रत्ययोवाह अर्थात् पीछे की ओर ढकेल ले गये ।।११।।

सोऽपविद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरः । आपतत्स्विन्नसर्वाङ्गो निःश्वसन्क्रोधमूर्च्छितः ।।१२।।

अन्वयः— भगवता इत्थम् अपविद्धः सः सत्वरः पुनः उत्थाय स्विन्न सर्वाङ्गः क्रोधमूर्छितः आपतत् ।।१२।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के द्वारा इस तरह से ढकेल दिए जाने पर फिर जल्दी उठ गया । उस समय उसका सारा शरीर पसीने से लथपथ हो गया था । वह श्रीभगवान् पर पुनः टूट पड़ा उस बार वह क्रोध से व्याकुल था।।१२।।

भावार्थ दीपिका

अपविद्धोऽपक्षिप्तः । आपतदाद्रवत् । स्विन्नानि स्वेदयुक्तानि सर्वाङ्गानि यस्य सः । क्रोधमूर्च्छितः क्रोधेन व्याप्तः।।१२।।

भाव प्रकाशिका

अपविद्धः अर्थात् ढकेल दिया गया आपतत् अर्थात् टूट पड़ा । स्विन्नसर्वाङ्गः अर्थात् उसका सारा शरीर पसीने से भर गया था । क्रोधमूर्छितः अर्थात् अत्यन्त क्रुद्धः ।।१२।।

तमापतन्तं स निगृह्य शृङ्गयोः पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले ।
निष्पीडयामास यथार्द्रमम्बरं कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत् ।।१३।।

अन्वयः— आपतन्तं तं शृङ्गयोः निगृह्य भूतले निपात्य पदा समाक्रम्य यथार्द्रमम्बरं निष्पीडयामास कृत्वा विषाणेन जघान सः अपतत् ।।१३।।

अनुवाद— आते हुए अरिष्टासुर के दोनों सींगों को पकड़ कर भगवान् ने उसको पृथिवी पर पटकं दिया उसके ऊपर श्रीभगवान् चढ़कर जैसे कोई गीला वस्त्र निचोड़े उस तरह उसको खूब चहल दिए । फिर उसकी सींग को उखाड़कर उसको खूब पीटे जिससे वह मर ही गया ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

कृत्वा विषाणमुत्पाट्य तेनैव जघान स चापतत् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

कृत्वा अर्थात् उसकी सींग को उखाड़कर उसी से श्रीभगवान् ने उसको खूब पीटा जिससे कि वह मर गया ।।१३।।

असृग्वमन्मूत्रशकृत् समुत्सृजन् क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः ।
जगाम कृच्छ्रं निर्ऋतेरथ क्षयं पुष्पैः किरन्तो हरिमीडिरे सुराः ।।१४।।

अन्वयः— असृग्वमन् मूत्रशकृत् समुत्सृजन् पादान् क्षिपन् अनवस्थितेक्षणः अथ निऋतेः क्षयं कृच्छ्रं जगाम देवाः पुष्पैः किरन्तः हरिमीडिरे ।।१४।।

अनुवाद— इसके पश्चात् वह दैत्य खून उगलता हुआ, मलमूत्र त्याग करता हुआ, पैरों को पटकता रहा और उसकी आँखें उलट गयीं । उसके पश्चात् वह बड़े ही कष्ट से यमलोक चला गया । तदनन्तर देवगण श्रीभगवान् पर फूल बरसाते हुए उसकी स्तुति किए ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

मूत्रं च शकृच्च मूत्रशकृत् । एकवद्भावः । तदुभयं समुत्सृजन्नित्यर्थः । पादांश्च क्षिपन्नितस्ततश्चालयन् । अनवस्थितेक्षणः प्रचलितनेत्रः कृच्छ्रं कष्टं जगाम । अथ निर्ऋतेर्मृत्योः क्षयं निवासं जगाम । कृच्छ्रं यथा भवति तथा मृत इति वा ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

मूत्रं शकृत् अर्थात् मल-मूत्र, मूत्र शकृत् में एकवद्भाव द्वन्द समास है । समुत्सृजन् मल एवं मूत्र दोनों को त्यागते हुए । क्षिपंश्च पादान् अर्थात् अपने पैरों को पटकते हुए । अन्षस्थितेक्षणः अर्थात् उसके नेत्र उलट गये, कृच्छ्रं जगाम = कष्ट पूर्वक मरा ! निऋतेः क्षयम् = अर्थात् यमलोक में चला गया, अर्थात् वह मर गया ।।१४।।

एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः । विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनोत्सवः ।।१५।।

अन्वयः— एवं ककुद्मिनं हत्त्वा स्वजातिभिः स्तूयमानः गोपीनां नयनोत्सवः सबलःगोष्ठं विवेश ।।१५।।

अनुवाद— इस तरह बैल का रूप धारण करने वाले अरिष्टासुर को मारकर जब ग्वालबाल उनकी स्तुति कर रहे थे उस समय गोपियों के नेत्रों को आनन्द देने वाले भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी के साथ गोष्ठ में प्रवेश किए।।१५।।

भावार्थ दीपिका

नयनोत्सवो नयनानां मूर्तिमानुत्सवः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

नयनोत्सवः नेत्रों के मूर्तिमान उत्सव स्वरूप ।।१५।।

अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेनाद्भुतकर्मणा । कंसायाथाह भगवान्नारदो देवदर्शनः ।।१६।।

अन्वयः— अद्भुतकर्मण कृष्णेन अरिष्टे दैत्ये निहते अथ देवदर्शनः भगवान् नारदः कंसाय आह ।।१६।।

अनुवाद— अद्भुत कर्मो को करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने अरिष्टासुर को मार दिया उसके पश्चात् देवर्षि नारदजी ने जाकर कंस से कहा ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

'कामं व्रजे वसन्तं तं कृष्णं तेन तु विस्मृतम् । नारदः स्मारयामास कंसं दूतगिरेव तु' ।।१।। तदाह-अरिष्ट इति । देवदर्शनो देवर्षिः । यद्वा एवं कथिते एवं भविष्यतीति साक्षाद्देववद्दर्शनं ज्ञानं यस्य सः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण व्रज में सुख पूर्वक निवास कर रहे थे, किन्तु कंस तो उनको भूल ही गया था । नारदजी दूत के समान वाणी से उसको भगवान् श्रीकृष्ण की याद दिलाए । उसी बात को अरिष्टे० इत्यादि श्लोक से कहा गया है । देवदर्शनः अर्थात् देवर्षिः अथवा इसतरह से कहने पर ऐसा होगा इस तरह से नादजी का साक्षात् ज्ञान था, अतएव वे देवदर्शन हैं ॥१६॥

यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याःकृष्णमेव च । रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता ॥१७॥
न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः। निशम्य तद्भोजपतिः कोपात् प्रचलितेन्द्रियः॥१८॥
निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया। निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः ॥१९॥

अन्वयः— यशोदया सुतां कन्याम् आह, देवक्याः च कृष्णम् एवेत्याह, रामं च रोहिणी पुत्रमाह विभ्यता वसुदेवेन स्वमित्रे नन्दे न्यस्तौ, याभ्यां वै ते पुरुषाः हताः । तद् निशम्य प्रचलितेन्द्रियः भोजपतिः कोपात् तत्सुतौ आत्मनः मृत्युम् मत्त्वा वसुदेवजिघांसया निशातम् असिम् आदत्त नारदेन विवारितः ॥१७-१९॥

अनुवाद— नारदजी ने कंस को बतलाया कि तुम्हे जो कन्या दी गयी थी और जो तुम्हारे हाथ से छुटकर आकाश में चली गयी वह तो यशोदा की पुत्री थी । देवकी के पुत्र तो श्रीकृष्ण हैं, बलरामजी भी रोहिणी के पुत्र हैं । डर के मारे वसुदेवजी ने उनदोनों को अपने मित्र नन्दजी को दे दिया था । वसुदेवजी के उन्हीं दोनों पुत्रों ने तुम्हारे सभी पुरुषों को मारा है । इस बात को सुनते ही कंस क्रोध से काँपने लगा । वसुदेवजी के दोनों पुत्रों अपनी मृत्यु का कारण मानकर कंस ने क्रोध करके अपने हाथ में वसुदेवजी को मारने की इच्छा से तीक्ष्ण तलवार ले लिया, किन्तु नारदजी ने कंस को यह समझाकर रोक दिया कि वसुदेवजी को मार देने पर वे दोनों भाग जायेंगे अतएव पहले उन दोनों को मारो ॥१७-१९॥

भावार्थ दीपिका

आप्तेनेव नारदेनोक्तमाह-यशोदाया इति । देवक्या अष्टमगर्भत्वेन प्रसिद्धां कन्यां यशोदायाः सुतामाह-यशोदायाः सुतत्वेन प्रसिद्धं कृष्णं देवक्याः सुतमाह-रोहिणीपुत्रं रामं च देवक्याः सप्तमं सुतमाह-यद्वा नन्दसुतत्वेन प्रसिद्धं रामं च वसुदेवभार्याया रोहिण्याः पुत्रमाह-तौ वसुदेवसुतौ चेत्कथं व्रजं गतौ तत्राह-वसुदेवेनेति । निवारित इति । हते वसुदेवे तौ पलायेतामतो बध्यतामिति मन्त्रं वदता नारदेन निवारित इति ॥१७-१९॥

भाव प्रकाशिका

आप्त के समान नारदजी के द्वारा उक्त बातों को **यशोदायाः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । देवकी के आठवें गर्भ के रूप में प्रसिद्ध कन्या को नारदजी ने बतलाया कि वह तो यशोदा की पुत्री थी । यशोदा के पुत्र रूप में प्रख्यात कृष्ण ही देवकी के पुत्र हैं । और रोहिणी के पुत्र राम देवकी के सातवें पुत्र हैं । अथवा नन्द के पुत्र रूप में प्रसिद्ध राम को नारदजी ने बतलाया कि वे वसुदेव की पत्नी रोहिणी के पुत्र हैं । यदि पूछों कि यदि वे दोनों वसुदेव के पुत्र है तो वे दोनों व्रज में कैसे गये ? इस पर नारदजी ने बतलाया कि डर के मारे उन दोनों पुत्रों को वसुदेवजी ने अपने मित्र नन्दजी के यहाँ पहुँचा दिया था । जब कंस वसुदेवजी को मारने के लिए तलवार उठाया तो नारदजी ने यह कहकर उसे रोक दिया कि यदि वसुदेवजी को मार दोगे तब तो वे दोनों भाग जायेंगे अतएव पहले कृष्ण और बलराम को मारो ॥१७-१९॥

ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैर्बबन्ध सह भार्यया । प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम् ॥२०॥

अन्वयः— ज्ञात्वा सहभार्यया लोहमयैः पाशैः बबन्ध । प्रतियाते तु देवर्षौ कंसः केशिनम् आभाष्य ॥२०॥

अनुवाद— इन सारी बातों को जानकर कंस ने देवकी और वसुदेव को लोहे के हथकड़ियों और बेड़ियों में बाँध दिया और केशी को बुलाकर कहा ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ। ततो मुष्टिकचाणूरशलतोशलकादिकान् ॥२१॥
अमात्यान्हस्तिपांश्चैव समाहूयाह भोजराट्। भो भो निशम्यतामेतद्वीरचाणूरमुष्टिकौ॥२२॥
नन्दव्रजे किलासाते सुतावानकदुन्दुभेः। रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः॥२३॥

अन्वयः— कंसः केशिनम् भवता रामकेशवौ हन्येताम् प्रेषयामास । ततः मुष्टिकचाणूर शलतोशलादिकान् अमात्यान् हस्तिपान् चैव समाहूय भोजराट् आह भो भो वीर चाणूरमुष्टिकौ निशम्यताम् । नन्दव्रजे किल आनकदुन्दुभेः सुतौ रामकृष्णौ आसाते, ततो मह्यं किल मृत्युः निदर्शितः ॥२१-२३॥

अनुवाद— कंस ने केशी को यह कहकर व्रज में भेजा कि तुम कृष्ण और बलराम को मार दो । इसके पश्चात् वह चला गया । इसके बाद कंस ने चाणूर मुष्टिक, शल तथा तोशल आदि पहलवानों मन्त्रियों और महावतों को बुलाकर कहा कि तुमलोग मेरी बात ध्यान पूर्वक सुनो । वसुदेव के दो पुत्र बलराम और कृष्ण नन्द के व्रज में रहते हैं, उन दोनों के हाथों मेरी मृत्यु बतलायी गयी है ॥२१-२३॥

भावार्थ दीपिका

मह्यं मम निदर्शितो विधात्रा नारदेन वा ॥२१-२३॥

भाव प्रकाशिका

विधाता अथवा नारद ने मेरी मृत्यु बतलायी हैं ॥२१-२३॥

भवद्भ्यामिह संप्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया । मञ्चाः क्रियन्तां विविधा मल्लरङ्गपरिश्रिताः ॥
पौरा जानपदाः सर्वे पश्यन्तु स्वैरसंयुगम् ॥२४॥

अन्वयः— इहं संप्राप्तौ भवद्भ्याम् मल्ललीलया हन्येताम् । मल्लरङ्गपरिश्रान्ताः विविधाः मञ्चाः क्रियन्ताम् । सर्वे पौराः जानपदाः स्वैरं संयुगम् पश्यन्तु ॥२४॥

अनुवाद— जब वे दोनों यहाँ आ जायँ तब उन दोनों को कुस्ती नामक खेल के बहाने मार देना । अब तुमलोग भाँति-भाँति के मञ्च बनाओ और उन सबों को अखाड़े के चारो ओर सजा दो । उन सबों पर बैठकर नागरिक और देश की सारी प्रजा इस स्वच्छन्ददंगल को देखे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

व्रजं गन्तुमुद्यतौ तावाह-भवद्भ्यामिति । मञ्चा उत्तुङ्गस्तम्भाभिरचितस्थानानि ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

जब चाणूर और मुष्टिक व्रज जाने के लिए तैयार हुए तो उन सबों को कंस ने भवद्भ्यामित्यादि श्लोक से कहा कि वे सब जब यहाँ आ जायँ तब उन सबों को कुश्ती लड़ने के बहाने मार डालना ॥२४॥

महामात्र त्वया भद्र रङ्गद्वार्युपनीयताम् । द्विपः कुवलयापीडो जहि तेन ममाहितौ ॥२५॥

अन्वयः— भद्र महामात्र त्वया रङ्गद्वारि कुवलयापीड़ द्विपः उपनीयताम् तेन ममाहितौ जहि ॥२५॥

अनुवाद— महावत तुम तो रङ्गद्वार पर ही कुबलयापीड हाथी को लेकर रहना और उसी के द्वारा मेरे उन दोनों शत्रुओं को मार देना ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अहितौ शत्रू ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनों शत्रुओं को ॥२५॥

आरभ्यतां धनुर्यागश्चतुर्दश्यां यथाविधि । विशसन्तु पशून्मेध्यान् भूतराजाय मीढुषे ॥२६॥

अन्वयः— चतुर्दश्यां यथाविधिः धनुर्यागः आरभ्यताम्, भूतराजमीढुषे मेध्यान् पशून् विशसन्तु ॥२६॥

अनुवाद— चतुर्दशी तिथि को ही धनुर्याग प्रारम्भ कर दिया जाय और वर प्रदान करने वाले भूतनाथ भैरव को अनेक प्रकार के पवित्र (मेध्य) पशुओं की बलि प्रदान की जाय ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

मीढुषे वरदाय ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

मीढुषे अर्थात् वरदान देने वाले ॥२६॥

इत्याज्ञाप्यार्थतन्त्रज्ञ आहूय यदुपुङ्गवम् । गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरमुवाच ह ॥२७॥

अन्वयः— अर्थतन्त्रज्ञः इति आज्ञाप्य यदुपुंगवम् अक्रूरम् आहूय पाणिना पाणिं गृहीत्वा उवाच ह ॥२७॥

अनुवाद— राजन् कंस तो अपने स्वार्थ साधन के सिद्धान्त को जानता था वह इस प्रकार से सबों को आज्ञा देकर यदुवंशियों में श्रेष्ठ अक्रूरजी को बुलाकर उनका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अर्थतन्त्रज्ञोऽर्थसिद्धान्तमेव जानातीति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

अर्थतन्त्रज्ञः स्वार्थके सिद्धान्त का ज्ञाता ॥२७॥

भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रमादृतः । नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ॥२८॥

अन्वयः— भो भो दानपते ! मह्यम् आदृतं मैत्रम् क्रियताम् भोजवृष्णिषु त्वत्तः हिततमः अन्यः न विद्यते ॥२८॥

अनुवाद— हे दानवीर अक्रूर जी ! आप मेरे आदरणीय हैं, आज आप मेरा मित्रोचित कार्य कीजिये क्योंकि भोजवंशी तथा वृष्णिवंशी यादवों में आपसे बढ़कर मेरा कोई भी हितैषी नहीं है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

हे दानपते अक्रूर, मैत्रं मित्रकृत्यं त्वया क्रियताम् । त्वत्तोऽन्य आदृतः सादरो हिततमश्च न विद्यत इति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

हे अक्रूर आप मेरा मित्रोचित काम कीजिए । भोजवंशियों और वृष्णिंवशियों में आपसे बढ़कर दूसरा कोई भी हितैषी नहीं है ॥२८॥

अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम् । यथेन्द्रो विष्णुमाश्रित्य स्वार्थमध्यगमद्विभुः ॥२९॥

अन्वयः—हे सौम्य अतस्त्वामाश्रितः कार्यगौरवसाधनम् यथाविभुः इन्द्रः विष्णुम् आश्रित्य स्वार्थम् अध्यगमत्॥२९॥

अनुवाद— हे सौम्य आप का सहारा मैंने इसलिए लिया है कि कार्य बहुत बड़ा है । अतएव जिस तरह

इन्द्र समर्थ होकर भी भगवान् विष्णु की सहायता से अपने स्वार्थ की सिद्धि करते हैं। इसी तरह आपकी सहायता से मैं अपने कार्य में सफल होना चाहता हूँ ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

गच्छ नन्दव्रजं तत्र सुतावानकदुन्दुभेः । आसाते ताविहानेन रथेनानय मा चिरम् ॥३०॥

अन्वयः— नन्दव्रजं गच्छ तत्र आनकदुन्दुभेः सुतौ आसाते तो इह अनेन रथेन माचिरम् आनय ॥३०॥

अनुवाद— आप नन्द के व्रज में जायँ। वहाँ वसुदेव के दो पुत्र है, उन दोनों को आप शीघ्र इस रथ से यहाँ ले आइये ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

निसृष्टः किल मे मृत्युर्देवैर्वैकुण्ठसंश्रयैः । तावानय समं गोपैर्नन्दाद्यैः साभ्युपायनैः ॥३१॥

अन्वयः— वैकुण्ठसंश्रयैः किल देवैः मे मृत्युः विसृष्टः तौ साभ्युपायनैः नन्दाद्यैः गोपैः समम् आनय ॥३१॥

अनुवाद— विष्णु के आश्रय में रहने वाले देवताओं ने उन दोनों को मेरी मृत्यु का कारण बतलाया है उन दोनों को आप यहाँ लाइये और नन्द आदि गोपों को बड़े-बड़े उपहारों के साथ यहाँ लाइये ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तौ मे मृत्युर्नितरां सृष्टः । वैकुण्ठसंश्रयैर्विष्णुसंश्रयैर्देवैः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

विष्णुसंश्रयैः अर्थात् विष्णु के आश्रय में रहने वाले देवों ने उन दोनों की सृष्टि मेरी मृत्यु के कारण रूप से की है ॥३१॥

घातयिष्य इहानीतौ कालकल्पेन हस्तिना । यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातये वैद्युतोपमैः ॥३२॥

अन्वयः— कालकल्पेन हस्तिना इहानीतौ घातयिष्ये, यदि ततो मुक्तौ वैद्युतोपमैः मलैः घातये ॥३२॥

अनुवाद— इहाँ आने पर उन दोनों को मैं काल के समान भयङ्कर अपने कुवलयापीड हाथी से मरवा दूँगा। यदि किसी तरह उससे वे बच गये तो फिर बिजली के समान फूर्तिले पहलवानों से मैं मरवा डालूँगा ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

किं ततस्तत्राह-धातयिष्य इति । कालकल्पेन मृत्युतुल्येन वैद्युतोपमैरशनितुल्यैः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि उन दोनों को यहाँ लाने से क्या होगा ? तो इस पर कंस ने कहा मैं उन दोनों को मरवा दूँगा। अपने काल के समान कुबलयापीड हाथी के द्वारा। अथवा वज्र के समान शरीर वाले पहलवानों से मरवा दूँगा ॥३२॥

तयोर्निहतयोस्तप्तान् वसुदेवपुरोगमान् । तद्बन्धून्निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान् ॥३३॥

अन्वयः— तयोः निहतयोः तप्तान् वसुदेव पुरोगमान् तद्बन्धून् वृष्णिभोजदशार्हकान् निहनिष्यामि ॥३३॥

अनुवाद— उन दोनों के मर जाने पर उन दोनों के शोक से संतप्त वसुदेव आदि जो वृष्णिवंशीय, भोजवंशीय तथा दशार्हवंशीय हैं उन सबों का मैं मार दूँगा ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्यकामुकम् । तद्भ्रातरं देवकं च ये चान्ये विद्विषो मम ॥३४॥

अन्वयः— च स्थविरं, राज्यकामुकं पितरम् उग्रसेनं तद्भ्रातरं देवकं ये चान्ये मम विद्विषः ॥३४॥

अनुवाद— और बूढे राज्य प्राप्त करने की इच्छा वाले, पिता उग्रसेन को उनके भाई देवक को तथा जो मुझसे द्वेष करने वाले हैं उन सबों को मैं मार दूँगा ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

ततश्चैषा मही मित्र भवित्री नष्टकण्टका । जरासन्धो मम गुरुर्द्विविदो दयितः सखा ॥३५॥
शम्बरो नरको बाणो मय्येव कृतसौहृदाः । तैरहं सुरपक्षीयान् हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान्॥३६॥

अन्वयः— मित्र ! ततः च एषा मही निष्कण्टका भवित्री, मम गुरुः जरासन्धः, दयितः सखा द्विविदः शम्बरः, नरकः बाणः, मयि एवकृतसौहृदान् तैः अहं सुरपक्षीयान् नृपान् हत्वा महीं भोक्ष्ये ॥३५-३६॥

अनुवाद— हे मित्र ! उसके पश्चात् सम्पूर्ण पृथिवी पर मेरा निष्कण्टक राज्य होगा मेरे श्वसुर जरासन्ध प्रियमित्र द्विविद, शम्बरासुर, नरकासुर, बाणासुर ये सबके सब मेरे हितैषी हैं । उन सबों के साथ मैं देवताओं के पक्षपाती राजाओं को मारकर पृथिवी का राज्य करूँगा ॥३५-३६॥

भावार्थ दीपिका

नष्टकण्टका नष्टशत्रुः । ननु कतिपयाऽसुहृद्वधेन नष्टकण्टका कथं स्यादिति तत्राह-जरासन्ध इति ॥३५-३६॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी पर मेरा कोई श्त्रु नहीं रहेगा । यदि कहें कि कुछ शत्रुओं के मारने से पृथिवी निष्कण्टक कैसे होगी। तो इस पर कंस ने **जरासन्ध० इत्यादि** श्लोक को कहा ॥३५-३६॥

एतज्ज्ञात्वा नय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्भकौ । धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम् ॥३७॥

अन्वयः— एतज्ज्ञात्वा रामकृष्णार्भकौ इह धनुर्मखनिरीक्षार्थं यदुपुरश्रियम् द्रष्टुम् च क्षिप्रम् आनय ॥३७॥

अनुवाद— इन सारी बातों को जानकर आप राम और कृष्ण दोनों बालकों को यहाँ धनुर्यज्ञ तथा मथुरा की शोभा देखने के बहाने लाएँ ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

यदुपुरश्रियं द्रष्टुं चेति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

और मथुरा की शोभा देखने के लिए लिवा लाएँ ॥३७॥

अक्रूर उवाच

राजन्मनीषितं सध्यक् तव स्वावद्यमार्जनम् । सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्यद्दैवं हि फलसाधनम् ॥३८॥

अन्वयः— राजन् स्वावद्यमार्जनम् तव साध्यक् मनीषितम्। सिद्ध्य सिद्ध्योः समं कुर्यात् फलसाधनं हि दैवं कुर्यात्॥३८॥

अक्रूरजी ने कहा

अनुवाद— राजन् आप अपने ऊपर आने वाली विपत्ति को दूर करने के लिए ठीक विचार किया है । मनुष्य को कार्य की सफलता और असफलता में एक समान रहना चाहिए । फल की प्राप्ति तो दैव की प्रेरणा से होती हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

तत्र स्वमनीषितं विचारितं सध्यक् सम्यक् स्वावद्यं मरणं तन्मार्जनम् । तथाऽप्येतावानभिनिवेशो न कार्य इति भविष्यत्सूचयन्नाह-सिद्ध्यसिद्ध्योरिति ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

महाराज आपने अपनी मृत्यु के दूर करने का अच्छा उपाय विचारा है । किन्तु इसमें इतना अभिनिवेश नहीं करना चाहिए । इसी बात को इसी तरह से भविष्य को सूचित करते हुए उन्होंने सिद्ध्य सिद्ध्योः इत्यादि से सूचित किया है ।।३८।।

मनोरथान्करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि । युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते ।।३९।।

अन्वयः— जनः दैवहतानपि मनोरथान् उच्चैः करोति हर्षशोकाभ्यां युज्यते तथापि ते आज्ञां करोमि ।।३९।।

अनुवाद— मनुष्य यह नहीं जानता है कि दैव उसके मनोरथों को पहले से ही विनष्ट कर रखा है, अतएव वह बड़े-बड़े मनोरथों को करता रहता है, फिर भी आपकी जो आज्ञा है उसका मैं पालन कर रहा हूँ ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

पुरुषकारस्य व्यभिचारमाह-मनोरथानिति ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

पुरुष के प्रयास में होने वाले वैफल्य को **मनोरथान् इत्यादि** श्लोक से अक्रूरजी ने कहा ।।३९।।

श्रीशुक उवाच

एवमादिश्य चाक्रूरं मन्त्रिणश्च विसृज्य सः । प्रविवेश गृहं कंसस्तथाक्रूरः स्वमालयम् ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽक्रूरसंप्रेषणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ।।३६।।

अन्वयः— एवम् अक्रूरम् आदिश्य मन्त्रिणश्च विसृज्य कंसः स्वगृहं प्रविवेश अक्रूरश्च स्वम् आलयम् प्रविवेश।।४०।।

अनुवाद— इस तरह अक्रूरजी को आदेश देकर और अपने मन्त्रियों को विदा करके कंस अपने घर में प्रवेश किया और अक्रूरजी अपने घर चले गये ।।४०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवे स्कन्ध के पूर्वार्ध के अक्रूरजी को व्रज में भेजना नामक छत्तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के छतीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३६।।

सैंतीसवाँ अध्याय

केशी और व्योमासुर का उद्धार तथा नारदजी द्वारा श्रीभगवान् की स्तुति

श्रीशुक उवाच

केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं महाहयो निर्जरयन्मनोजवः ।
सटावधूताभ्रविमानसंकुलं कुर्वन्नभो हेषितभीषिताखिलः ॥१॥
विशालनेत्रो विकटास्यकोटरो बृहद्गलो नीलमहाम्बुदोपमः ।
दुराशयः कंसहितं चिकीर्षुर्व्रजं च नन्दस्य जगाम कम्पयन् ॥२॥

अन्वयः— कंस प्रहितः केशी महाहयः मनोजवः सटावधूताभ्रविमानसंकुलं नभः कुर्वन् हेषितभीषिताखिलः विशालनेत्रः विकटास्यकोटरः, बृहद्गलः नीलमहाम्बुदोपमः दुराशयः कंसहितं चिकीर्षुः नन्दस्य व्रजं जगाम ॥१-२॥

अनुवाद— जिसको कंस ने भेजा था वह केशी बहुत बड़े घोड़े के रूप में मन के समान वेग से दौड़ता हुआ व्रज में आया । वह अपनी खुरों से पृथिवी को खोदता हुआ आ रहा था । उसके केशों के बाल से टकराकर आकाश के मेघ तथा देवताओं के विमान तितर-वितर हो जा रहे थे । वह अपनी हिनहिनाहट से सबों को भयभीत बना रहा था । उसके नेत्र बहुत बड़े थे । उसका मुँह वृक्ष के कोटर के समान भयङ्कर था । उसकी गर्दन मोटी और लम्बी थी । वह देखने में विशाल नीले मेघ की घटा के समान काला-काला लगता था । उसके मन में दुष्टता भरी थी । वह कंस का उपकार करना चाहता था इस प्रकार का वह केशी नामक दैत्य व्रज में आया । उसके चलने से पृथिवी काँप रही थी ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

सप्तत्रिंशे हते केशिन्यच्युतो भाविकर्मभिः । नारदेन स्तुतः क्रीडन् व्योमासुरमथावधीत् । वृषवेषासुरं यद्वत् केशिनं हयवेषिणम् । कंसप्राणसखं हत्वा कंसं व्यसुमिवाकरोत् । केशी त्विति । प्रथमश्लोकेन य एवंभूतः केशीत्यनूद्य तं भगवानुपाह्वयदिति तृतीयेतीयेनान्वयः । महाहयः सन् महीं निर्जरयन् श्लथयन्विदारयन्नित्यर्थः । सटाभि केसरैरवधूतानीतस्ततः क्षिप्तान्यभ्राणि विमानानि च तैः संकीर्णं नभः कुर्वन् । ह्रेषितैरश्वजातिशब्दैर्भीषितमखिलं विश्वं येन सः ॥१-२॥

भाव प्रकाशिका

सैंतीसवें अध्याय में श्रीभगवान् द्वारा केशी के मार दिए जाने पर नारदजी द्वारा भावी कार्यों के ज्ञापन पूर्वक स्तुति किए जाने के पश्चात् भगवान् खेल-खेल में ही व्योमासुर को मार दिए । बैल का वेष बनाये हुए अरिष्टासुर के ही समान अश्व का रूप धारण किए हुए केशी जो कंस का प्राण था उसको मारकर श्रीभगवान् ने कंस को निष्प्राण के समान बना दिया । **केशी तु० इत्यादि** प्रथम श्लोक का केशी के स्वरूप का वर्णन करके उस केशी को श्रीभगवान् ने सिंह के समान गरजकर ललकारा इस तरह से तीसरे श्लोक के साथ अन्वय हैं ॥१-२॥

तं त्रासयन्तं भगवान्स्वगोकुलं तद्धेषितैर्बालविघूर्णिताम्बुदम् ।
आत्मानमाजौ मृगयन्तमग्रणीरुपाह्वयत् स व्यनदन्मृगेन्द्रवत् ॥३॥

अन्वयः— स्वगोकुलम् तद्हेषितै त्रासयन्तं बालविधूर्णिताम्बुदम् आजौ आत्मानं मृगयन्तं तं अग्रणी स भगवान् मृगेन्द्रवत् व्यनदन् उपाह्वयत् ॥३॥

अनुवाद— अपनी हिनहिनाहट से जो गोकुल को भयभीत करने वाले तथा अपनी पूंछ और आयाल के बालों से मेघ को जो तितर-वितर कर रहा था संग्राम के लिए वह श्रीभगवान् को ही खोज रहा था उस केशी को श्रीभगवान् आगे बढ़कर सिंह के समान गर्जना करते हुए ललकारे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तद्धषितैस्तैरतिनिष्ठुरैर्हेषितैः । बालैः पुच्छलोमभिर्विधूर्णिताः परिभ्रामिता अम्बुदा येन तम् । आजौ संग्रामार्थम् । आत्मानं कृष्णम् । अग्रणीः पुरतो निर्गतः सन्नुपाह्वयत् स्वसमीपमाजुहाव । स च केशी तन्निशम्य मृगेन्द्रवन्नादमकरोत् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

केशी के निष्ठुर हिनहिनाहट से व्रज भयभीत हो गया । उसकी पूंछ की बाल से टकराकर मेघ जिधर-तिधर जो जाते थे । वह युद्ध करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण को ही खोज रहा था । भगवान् श्रीकृष्ण व्रज से बाहर निकलकर केशी को ललकारे उसको सुनकर केशी भी सिंह के समान गर्जना किया ।।३।।

स तं निशम्याभिमुखो मुखेन खं पिबन्निवाभ्यद्रवदत्यमर्षणः ।
जघानपद्भ्यामरविन्दलोचनं दुरासदश्चण्डजवो दुरत्ययः ।।४।।

अन्वयः— तन्निशम्य सः मुखेन खं पिबन्निव अत्यमर्षणः अभिमुखः अभ्यद्रवत् दुरासदः चण्डजवः दुरत्ययः अरविन्दलोचनं पद्भ्यां जघान ।।४।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की उस ललकार को सुनकर जैसे वह आकाश को ही पी जायेगा इस तरह से अपना मुख फैलाकर अत्यन्त असहिष्णु वह श्रीभगवान् के सामने दौड़ा । अत्यधिक वेगवान् होने के कारण उसको पकड़ना कठिन था तथा कोई दूसरा उसको अभिभूत भी नहीं कर सकता था कि ऐसा केशी श्रीभगवान् पर अपने दोनों पैरों से प्रहार किया ।।४।।

भावार्थ दीपिका

ततः केशी तं कृष्णं दृष्ट्वा मुखेन खं पिबन्निव मुखं विवृत्याभिमुखः सन्नभिजगाम । किंच अत्यमर्षणोऽतिकुपितोऽत्यन्तमसहमानो वा । प्रत्यक्पद्भ्यां जघान । दुरासदोऽन्यैरभिभवितुमशक्यः । दुरत्ययः उद्यतः सन् दुरतिक्रमः। अत्र हेतुः- चण्डजवश्चण्डस्तीव्रो जवो वेगो धावनं यस्य ।।४।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर अपना इतना मुँह फैलाया जैसे वह आकाश को ही पी जायेगा। उसको दूसरा कोई अभिभूत नहीं कर उसका अतिक्रमण करना कठिन था क्योंकि वह अत्यन्त वेग से दौड़ता था।।४।।

तद्वञ्चयित्वा तमधोक्षजो रुषा प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः ।
सावज्ञमुत्सृज्य धनुःशतान्तरे यथोरगं तार्क्ष्यसुतो व्यवस्थितः ।।५।।

अन्वयः— अधोक्षजः तद्वञ्चयित्वा रुषा तम् पादयोः परिविध्य उरगं तार्क्ष्यसुतः यथासावज्ञम् धनुः शतान्तरे उत्सृजय व्यवस्थितः ।।५।।

अनुवाद— श्रीभगवान् अधोक्षज (अतीन्द्रिय) हैं अतएव उन्होंने उसके उस प्रहार से अपने को बचा लिया, उसके पश्चात् उसके दोनों पैरों को पकड़कर बड़े क्रोध से अपमान पूर्वक उसको घूमाकर चार सौ हाथ दूर उसी तरह फेंक दिए जिस तरह गरुड सांप को झटक देते हैं और खड़ा हो गये ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तद्धननं वञ्चयित्वा तं च हननाय प्रसारितयोः पादयोर्हस्ताभ्यां गृहीत्वा परिविध्य भ्रामयित्वा व्यवस्थितस्तथैव स्थितो बभूव ।।५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् उसके प्रहार से अपने को बचा लिए इसके पश्चात् श्रीभगवान् को मारने के लिए फैलाये हुए उसके दोनों पैरों को पकड़कर क्रोधपूर्वक उसको घुमाकर चार सौ हाथ दूर फेंक दिए ।।५।।

स लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा व्यादाय केशी तरसाऽपतद्धरिम् ।
सोऽप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन् प्रवेशयामास यथोरगं बिले ॥६॥

अन्वयः— लब्धसंज्ञ सः केशी पुनः उत्थितः रुषा व्यादाय तरसा हरिम् अपतत् । सः अपि स्मयन् उरगं बिले यथा अस्य वक्त्रे उत्तर भुजं प्रवेशयामास ॥६॥

अनुवाद— होश में आकर केशी पुनः उठ खड़ा हुआ और क्रोध करके अपने मुँख को फैलाकर श्रीभगवान् पर टूट पड़ा । श्रीभगवान् भी मुस्कुराते हुए उसके मुख में अपनी बायीं भुजा उसी तरह घुसेड़ दिये जिस तरह कोई सर्प बिल में घुस जाता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

व्यादाय मुखं प्रसार्य वेगेन हरिं प्रत्याद्रवत् । सोऽपि हरिर्हसन्नुत्तरं सव्यं भुजम् । निर्भयत्वे दृष्टान्तः-यथोरगं बिल इति॥६॥

भाव प्रकाशिका

केशी अपना मुँह फैलाकर श्रीभगवान् पर टूट पड़ा । श्रीभगवान् भी हँसते हुए अपनी बायीं भुजा को उसके मुँह में उसी तरह डाल दिए जैसे कोई सर्प बिल में घुस जाता है । यह श्रीभगवान् के भय राहित्य में दृष्टान्त है॥६॥

दन्ता निपेतुर्भगवद्भुजस्पृशस्ते केशिनस्तप्तमयस्पृशो यथा ।
बाहुश्च तद्देहगतो महात्मनो यथामयः संववृधे उपेक्षितः ॥७॥

अन्वयः— तप्तम् अयः स्पृशो यथा भगवद्भुजस्पृशः केशिनः ते दन्ताः निपेतुः महात्मनः बाहुश्च तद्देहगतः उपेक्षितः आमयः यथा संववृधे ॥७॥

अनुवाद— जैसे गर्म लोहे का स्पर्श हो गया हो उस तरह से भगवान् की भुजा का स्पर्श होते ही केशी के सभी दाँत टूटकर गिर पड़े, और उसके मुख में प्रविष्ट भगवान् की भुजा उसी तरह बढ़ने लगी जिस तरह उपेक्षा करने पर रोग बढ़ जाता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

ततः किं तदाह-दन्ता इति । चर्वणाय भगवद्भुजं स्पृशन्तीति तथा ते व्यादानेन ये विवृताः । अयो लोहं स्पृशन्तीति स्पृशः । यद्वा तप्तमयमतितप्तं लोहादि स्पृशन्तो यथेति । आमयो जलोदरम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि उसके पश्चात् क्या हुआ तो इस पर **दन्ताः इत्यादि** श्लोक शुकदेवजी कहते हैं । श्रीभगवान् की भुजा को चबाने के लिए उसके दाँतों के श्रीभगवान् की भुजा से ज्यों ही स्पर्श हुआ त्यो ही वह मुँह खोले ही था कि उसके सारे दाँत टूटकर गिर पड़े । अथवा अत्यन्त संतप्त लोहे के स्पर्श से जैसे दाँत टूट जाय **व आमयः** अर्थात् जलोदर रोग ॥७॥

समेधमानेन स कृष्णबाहुना निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् ।
प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः पपात लेण्डं विसृजन्क्षितौ व्यसुः ॥८॥

अन्वयः— समेधामाने कृष्णहुना निरुद्धायुः सः चरणान् विक्षिपन् प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः लेण्डं विसृजन् व्यसुः क्षितौ पपात ॥८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की वह भुजा इतनी बढ़ी कि केशी का श्वास आना जाना बन्द हो गया उसका दम घुट गया, वह अपना पैर पटकने लगा उसका सारा शरीर पसीने से भर गया । उसकी आँखें उलट गयीं और वह मलत्याग करने लगा । उसके प्राण निकल गये और वह पृथिवी पर गिर पड़ा ॥८॥

भावार्थ दीपिका

लेण्डं पुरीषं उत्सृजन् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

मल त्याग करते हुए ॥८॥

तद्देहतः कर्कटिकाफलोपमाद्व्यसोरपाकृष्य भुजं महाभुजः ।
अविस्मितोऽयत्नहतारिरुत्स्मयैः प्रसूनवर्षैर्दिविषद्भिरीडितः ॥९॥

अन्वयः— कर्कटिकाफलोपमाद् व्यसोः महाभुज तद्देहतः भुजं अपाकृष्य अयत्नहतारिरुत्स्मयै; अविस्मितः प्रसून वर्षै दिविषद्भिः ईडितः ॥९॥

अनुवाद— उसका निष्प्राण शरीर फूल गया था और वह गिर कर ककड़ी के समान फट गया। श्रीभगवान् ने उसके मुँह से अपना हाथ खींच लिया इसके कारण श्रीभगवान् को न तो हर्ष हुआ और न गर्व ही क्योंकि वह शत्रु बिना प्रयास के ही मर गया था। यह देखकर देवता श्रीभगवान् पर फूल बरसाने लगे और उनकी स्तुति करने लगे॥९॥

भावार्थ दीपिका

कर्कटिकाफलं हि पक्वं साद्यन्तं विदीर्णं भवति तद्वद्विदीर्णात्तस्य देहात्। व्यसोर्विगतप्राणात्। अविस्मितो गर्वरहितः। अयत्नेन हतोऽरिर्येन सः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

देखा जाता है कि जब ककड़ी का फल पक जाता है तो वह फट जाता है, उसी तरह केशी का शरीर फट गया था और भगवान् ने उसके शरीर से अपना हाथ निकाल लिया। इससे श्रीभगवान् को अपने पर गर्व नहीं हुआ क्योंकि बिना प्रयास के ही उनका शत्रु मर गया था ॥९॥

देवर्षिरुपसङ्गम्य भागवतप्रवरो नृप । कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत् ॥१०॥

अन्वयः— हे नृप भागवतप्रवरः देवर्षि रहसि उपसंगम्य अक्लिष्टकमाणं कृष्णं एतदभाषत ॥१०॥

अनुवाद— हे राजन्! भगवद् भक्तों में श्रेष्ठ देवर्षि नारदजी एकान्त में श्रीभगवान् के पास आकर कहे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

कंसाय कृष्णमादिश्य तद्रहस्यादिपैशुनैः। कंसघातादि कृष्णस्य कार्यमावेदयन्मुनिः।' तदाह-देवर्षिरित्यादिना। न चायं सूचकः किन्तु सर्वसुहृदित्याह-भागवतप्रवर इति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

कंस को भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में बतलाकर उसके रहस्यों के ज्ञाता देवर्षि नारदजी ने एकान्त में आकर श्रीभगवान से कहा। देवर्षि इत्यादि श्लोक से इसी बात को कहा गया है। देवर्षि नारद केवल सूचना देने वाले ही नहीं हैं अपि तो भगवान् के पूर्ण रूप से हितैषी हैं, इस बात को **भागवत प्रवर** शब्द से कहा गया है ॥१०॥

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् योगेश जगदीश्वर । वसुदेवाखिलावास सात्वतां प्रवर प्रभो ॥११॥

अन्वयः— हे कृष्ण ! कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् हे योगेश, हे जगदीश्वर, हे वासुदेव, हे अखिलावास ! हे सात्वतां प्रवर प्रभो ॥११॥

अनुवाद— हे सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान, आपका स्वरूप मन और वाणी का विषय नही होने से अगम्य है। हे योगेश्वर, हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन्! हे सम्पूर्ण जगत् के भीतर अन्तर्यामी रूप से निवास करने वाले वासुदेव हे यदुवंश शिरोमणे प्रभो ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अस्मद्रहस्यं वैरिणि कंसे सूचितवानिति मा शङ्कीरित्याह-कृष्ण कृष्णेत्यादिना । अयं भाव:- त्वमीश्वरो भूभारदैत्यसंहारायावतीर्णोऽसि, अतस्तदनुरूपाचरणेन विश्वं परिपालयेति । तत्र त्वयि तावद्भयशङ्कैव नास्तीत्याह-अप्रमेयात्मन्नपरिच्छिन्नरूप । योगेशाचिन्त्यप्रभाव । जगदीश्वर विश्वनियन्तः । वासुदेव सर्वभूतेषु वर्तमान । अखिलावास सर्वस्याश्रय । संप्रति सात्वतां प्रवर श्रेष्ठ । प्रभो सर्वशक्ते ॥११॥

भाव प्रकाशिका

आप इस बात की शङ्का न करें कि नारद ने हमारे रहस्य को कंस को बतला दियाहै । इस बात को नारदजी ने **कृष्ण कृष्ण० इत्यादि** श्लोक से कहा है । कहने का अभिप्राय है कि आप तो पृथिवी के भार को उतारने के लिए तथा दैत्यों का संहार करने के लिए अवतार ग्रहण किए हैं । अतएव उसी के अनुकूल आचरण करते हुए आप सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करें । अतएव इसके कारण आपके लिए भय की कोई भी शङ्का नहीं है, इस बात को नारदजी ने **अप्रमेयात्मन्** शब्द से कहा है । **योगेश** अर्थात् अचिन्त्य प्रभाव सम्पन्न **जगदीश्वर** अर्थात् सम्पूर्ण जगत् के नियन्ता, वासुदेव अर्थात् सभी जीवों के भीतर अन्तर्यामीरूप से रहने वाले । **अखिलावास** अर्थात् सम्पूर्ण जगत् के आश्रय । इस समय आप यदुवंशियों में श्रेष्ठ रूप से विद्यमान हैं । **हे प्रभो हे सर्वशक्तिमान्:** ॥११॥

त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम् । गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥१२॥

अन्वयः— एधसाम् एकः ज्योतिरिव त्वम् सर्वभूतानाम् आत्मा, गूढः, गुहाशयः, साक्षी, महापुरुषः ईश्वरः ॥१२॥

अनुवाद— जिस तरह एक ही अग्नि सभी लकड़ियों में व्याप्त रहती है, उसी तरह आप सभी भूतों में उनकी आत्मा रूप से व्याप्त हैं । ऐसा होने पर भी आप अपने को छिपाये रहते हैं, आप बुद्धि के भी भीतर रहकर उसकी अपेक्षा अन्तरङ्ग हैं । आप सबों के साक्षी हैं तथा पुरुषोत्तम है । क्योंकि आप सम्पूर्ण जगत् के नियामक हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

कथमेवंरूपोऽहमिति चेदत आह-त्वमात्मेति । नहि त्वं जीववत्परिच्छिन्न किंतु सर्वभूतानामन्तर एकोऽनुस्यूत आत्मा। अन्तरनुस्यूतत्वे दृष्टान्तः:- एधसां काष्ठानामन्तर्ज्योतिरिवेति । भूतेषु स्थितोऽपि तैर्न दृश्यस इत्याह-गूढ इति । अत्र हेतवः:- गुहाशयो बुद्धेरप्यान्तरः । किच साक्षी । नहि साक्षी दृश्यत इत्यर्थः । अपि च महापुरुषः । अतः परिच्छिन्नमतिभिर्न ज्ञायस इत्यर्थः । तर्हि सर्वान्तरत्वे किं प्रमाणमत आह-ईश्वर इति । नहीश्वरं बिना परतन्त्राणां जीवानां प्रवृत्तिर्घटत इत्यर्थः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मैं ऐसा हूँ इसे कैसे कहा जा सकता है ? इस पर नारदजी ने कहा क्योंकि आप सम्पूर्ण भूतों की आत्मा है । आप जीव के समान परिच्छिन्न (सीमित) नहीं है बल्कि आप सभी भूतों के भीतर विद्यमान रहने वाले सबों में अनुस्यूत आत्मा हैं । सबों के भीतर आत्मारूप से अनुष्यूत होने में दृष्टान्त है कि जिस तरह से एक ही अग्नि सभी कष्ठों में व्याप्त रहती है । सभी भूतों के भीतर रहने पर भी आप इसलिए नहीं दिखाई देते हैं कि आप अपने को छिपाये रहते हैं । उसका कारण है कि आप गुहाशय अर्थात् आप बुद्धि के भी भीतर रहकर उसको प्रेरित करते रहते हैं । आप सबों के साक्षी है । साक्षी किसी को दिखता नहीं है । आप महापुरुष हैं इसलिए अज्ञानी जीवों को ज्ञात नहीं होते हैं । यदि आप कहें कि सबों के भीतर विद्यमान हूँ इसमें क्या प्रमाण हैं ? इस पर नारदजी ने कहा कि आप ईश्वर हैं । ईश्वर के बिना अपने कर्मो के अधीन रहने वाले जीवों को किसी प्रकार की गति नहीं हो सकती है ॥१२॥

आत्मनात्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान् । तैरिदं सत्यसंकल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥१३॥

अन्वयः— आत्मना आत्माश्रयः पूर्वं मायया गुणान् ससृजे सत्संकल्पः तैः इदं सृजसि, अत्सि, अवसि ॥१३॥

अनुवाद— आप सम्पूर्ण जगत् के अधिष्ठान हैं, किन्तु स्वयं अधिष्ठान रहित है । सृष्टि काल के आने पर आपने माया को अपनाकर गुणों की सृष्टि की और उन गुणों को ही अपनाकर आप जगत् की सृष्टि संहार और रक्षा करने का काम करते हैं । इन सभी कार्यों को करने के लिए आपको किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि आप सत्यसंकल्प हैं और सम्पूर्ण जगत् के नियामक हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अहमीश्वरोऽन्यत्सर्वमीशितव्यमित्येतदेव कुत इत्यत आह–आत्मनेति । साधनान्तरनिरपेक्ष एवात्माश्रयः स्वतन्त्रः मायया शक्त्या भवान् गुणान् ससृजे सृष्टवान् । तैः सृष्टैर्गुणैरिदं विश्वं सृजसि अत्सि संहरसि अवसि पालयसि । ननु सृष्ट्यादिक्रिया षट्कारकसाध्यैव दृष्टेत्याह–सत्यसंकल्प इति । नहि संकल्पैकसाध्ये बहिःसाधनापेक्षेति भावः । अतस्त्वमीश्वर इत्युपसंहारः॥१३॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मैं ईश्वर हूँ और मुझसे भिन्न सब कुछ इशितव्य हैं यह कैसे कहा जा सकता है ? तो इस पर नारदजी **आत्मनात्म० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । आप साधनान्तर निरपेक्ष हैं, स्वतंत्र है सृष्टिकाल के आने पर आपने माया को अपनाकर गुणों की सृष्टि की और अपने द्वारा सृष्ट गुणों के ही द्वारा जगत् की सृष्टि, संहार और रक्षा करते हैं यदि आप कहें कि सृष्टि आदि जितने कार्य हैं षट्कारकों के ही द्वारा सम्पादित होते हैं । इस पर नारदजी ने कहा कि आप तो सत्य सङ्कल्प हैं । अपने सङ्कल्प मात्र से ही सबकुछ करते हैं । केवल सङ्कल्प के द्वारा सभी कार्यों को करने वाले आपको बाह्य साधनों की अपेक्षा नहीं होती है । इसीलिए तो आप ईश्वर हैं॥१३॥

स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् । अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ॥१४॥

अन्वयः— स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च अवतीर्णोऽसि ॥१४॥

अनुवाद— वही आप राजा का वेष बनाये हुए दैत्यों, प्रमथों एवं राक्षसों का विनाश करने के लिए और धर्म की मर्यादाओं की रक्षा करने के लिए अवतार ग्रहण किए हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमाह–स त्वमिति । भूधरभूतानां भुवं धरन्तीति भूधरा राजानस्तद्रूपाणाम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

सत्यम् इत्यादि श्लोक के द्वारा नारदजी जिसको कहना अपेक्षित है, उस बात को बतलाते हैं । यहाँ पर भूधर शब्द राजा का वाचक है । नारदजी ने कहा कि इस समय भूलोक में दैत्य, राक्षस एवं प्रमथ ही राजा का रूप बनाकर विद्यमान है । उन सबों का विनाश करने के लिए तथा धर्म की मर्यादा की रक्षा करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं ॥१४॥

दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयाऽयं हयाकृतिः । यस्य हेषितसंत्रस्तास्त्यजन्त्यनिमिषा दिवम् ॥१५॥

अन्वयः— दिष्टया ते लीलया अयं हयाकृतिः दैत्यः निहतः यस्य ह्रेषितसंत्रस्ताः अनिमिषाः दिवम् त्यजन्ति ॥१५॥

अनुवाद— सौभाग्य वशात् आपने खेल ही खेल में इस अश्व का रूप बनाकर रहने वाले दैत्य को मार दिया । उसकी हिनहिनाहट की ध्वनि सुनकर देवगण स्वर्ग छोड़कर भाग जाते थे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

चाणूरं मुष्टिकं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम् । कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो ॥१६॥

अन्वयः— हे विभो परश्वः अहनि ते चाणूरं मुष्टिकं, अन्यान् च मल्लान् हस्तिनम् च कंसं चं निहतं द्रक्ष्ये ॥१६॥

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् में व्यापक विभो परसो दिन मैं आपके द्वारा मारे गये, चाणूर, मुष्टिक, दूसरे पहलवानों कुबलयापीड हाथी एवं कंस को मैं देखूँगा ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

परश्वोऽहनीति । अद्यैवाक्रूर एष्यति, श्वो मथुरां गन्तासि, परश्वश्च त्वया निहतान् द्रक्ष्यामीति सिद्धवन्निर्देशो विज्ञापनप्रकारविशेषः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

परश्वोऽहनि० इत्यादि के द्वारा नारदजी ने कहा कि आज अक्रूरजी आयेंगे, कल आप मथुरा जायेंगे परसो दिन आप चाणूर आदि को मारेगें । उन मरे हुओं को मैं देखूँगा । यह सिद्धवत् निर्देश एक कहने का प्रकार विशेष है ॥१६॥

तस्यानु शङ्खयवनमुराणां नरकस्य च । पारिजातापहरणमिन्द्रस्य च पराजयम् ॥१७॥

अन्वयः— तस्यानु शङ्खयवन मुखाणां नरकस्य च पारिजातापहरणम् इन्द्रस्य च पराजयं द्रक्ष्यामि ॥१७॥

अनुवाद— उसके बाद मैं शङ्खासुर, कालयवन, मुर और नरकासुर को आपके द्वारा मारे गये देखूंगा । आप स्वर्ग से पारिजात पुष्प के वृक्ष को उखाड़ लायेंगे तथा इन्द्र के विरोध करने आपके हाथों इन्द्र का पराजय भी मैं देखूंगा ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तस्यानु तदनन्तरम् । शङ्खादीनां । शङ्खः पञ्चजनः । वधं द्रक्ष्यामीति शेषः । भाविनिर्देशमात्रमेतत्, नत्वानन्तर्यं विवक्षितम्॥१७॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् पञ्चजन नामक शङ्खासुर, उन सबों का मैं आपके द्वारा वध देखूँगा । यहाँ पर भविष्यत् काल में श्रीभगवान् के द्वारा किए जाने वाले कार्यों का निर्देश किया गया है । यहाँ आनन्तर्य विवक्षित नहीं ॥१७॥

उद्वाहं वीरकन्यानां वीर्यशुल्कादिलक्षणम् । नृगस्य मोक्षणं पापाद्द्वारकायां जगत्पते ॥१८॥

अन्वयः— वीर्यशुल्कादि लक्षणं वीरकन्यानां उद्वाहं हे जगत्पते द्वारकायां च नृगस्य पापाद् मोक्षणं द्रक्ष्यामि ॥१८॥

अनुवाद— आप अपनी कृपा, वीरता तथा सौन्दर्य आदि का शुल्क देकर वीर कन्याओं से जो विवाह करेंगे तथा द्वारका में आपके द्वारा नृग की पाप से मुक्ति को भी मैं देखूगा ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

स्यमन्तकस्य च मणेरादानं सह भार्यया । मृतपुत्रप्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥१९॥

अन्वयः— भार्यया सह स्यमन्तकस्य मणेः आदाने ब्राह्मण्स्य स्वधामतः मृतपुत्रप्रदानम् ॥१९॥

अनुवाद— आप अपनी पत्नी जाम्बवती के साथ स्यमन्तकमणि जाम्बवान् से लेकर आयेंगे और ब्राह्मण के मरे हुए पुत्रों को अपने धाम से लाकर उसे देंगे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

भार्यया जाम्बवत्या सह । स्वधामतो महाकालपुरात् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अपनी जाम्बवती नामक पत्नी के साथ, स्वधामतः अर्थात् महाकाल पुर से ॥१९॥

पौण्ड्रकस्य वधं पश्चात्काशिपुर्याश्च दीपनम् । दन्तवक्त्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ ॥२०॥

अन्वयः— पौण्ड्रकस्यवधं पश्चात् काशिपुर्याः च दीपनम् महाक्रतौ चैद्यस्य निधनं दन्तवक्त्रस्य च ॥२०॥

अनुवाद— आप पौण्ड्रक नामक मिथ्या वासुदेव का वध करेंगे, उसके पश्चात् काशीपुरी को जला देंगे। पाण्डवों के राजसूय यज्ञ में शिशुपाल का वध और वहाँ से लौटते समय दन्तवक्त्र का वध भी मैं देखूँगा ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन्भवान् । कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि ॥२१॥

अन्वयः— द्वारकामावसन् भवान् यानि च अन्यानि वीर्याणि कर्ता कविभिः भुवि गेयानि तानि अहं द्रक्ष्यामि ॥२१॥

अनुवाद— द्वारका में निवास करते हुए आप जिन दूसरे पराक्रम पूर्ण कार्यों को करेंगे जो पृथिवी पर कवियों के द्वारा वर्णन करने योग्य होंगे उन सभी कार्यों को मैं देखूँगा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

द्वारकामावसन् द्वारकायां वसन् । कर्ता करिष्यति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

द्वारका में निवास करते हुए कर्ता अर्थात् करेंगे ॥२१॥

अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै । अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥२२॥

अन्वयः— अथ अमुश्य क्षपयिष्णोः अर्जुन सारथेः कालरूपस्य ते अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्यामि ॥२२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् पृथिवी का भार उतारने के लिए अर्जुन का सारथि बने हुए कालस्वरूप आपके द्वारा कई अक्षौहिणी सेनाओं का विनाश भी मैं देखूँगा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अमुष्य विश्वस्य भूभारस्य वा ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अमुष्य अर्थात् विश्व के अथवा भूभार का ॥२२॥

विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया समाप्तसर्वार्थममोघवाञ्छितम् ।
स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमायागुणप्रवाहं भगवन्तमीमहि ॥२३॥

अन्वयः— विशुद्ध विज्ञानघनं स्वसंस्थया समाप्तसर्वार्थममोघवाञ्छितम् स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमायागुण प्रवाहं भगवन्तम् ईमहि ॥२३॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप विशुद्ध विज्ञानघन हैं, आप अपने स्वरूप में स्थित रहते हैं, इसीलिए, आपको समस्त पदार्थ अपने आप प्राप्त हैं। आपका सङ्कल्प अमोघ है, वह कभी भी व्याहत नहीं होता है। आपकी चिन्मयी शक्ति के समक्ष माया के द्वारा होने वाला यह त्रिगुणमय संसारचक्र नित्यनिवृत्त है। अर्थात् कभी हुआ ही नहीं ऐसे सच्चिदानन्द स्वरूप निरतिशय ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीभगवान् की मैं शरणागति करता हूँ ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

एवं विज्ञाप्य कृताभिनन्दनं भगवन्तं नमस्यति द्वयेन-विशुद्धविज्ञानघनमिति । केवलं ज्ञानैकमूर्तिम् । अतएव स्वसंस्थया स्वरूपसम्यक्स्थित्यैव परमानन्द रूपया सम्यगाप्ताः सर्वेऽर्था येन तम् । आप्तकामतोक्ता सत्यसंकल्पतामाह-अमोघवाञ्छितमिति।

ननु वाञ्छा चेदस्ति तर्हि दुर्निवारा संसृतिरत आह-स्वतेजसेति । चिच्छम्या नित्यनिवृत्तो मायाकार्यरूपो गुणप्रवाहो यस्मात्तम्। अतो भगवन्तं निरतिशयैश्वर्यमीमहि शरणं व्रजेमेति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

नारदजी ने इस प्रकार से श्रीभगवान् को विज्ञापित करके उनका अभिनन्दन किया अब वे विशुद्ध **विज्ञान घनम्० इत्यादि** दो श्लोकों से श्रीभगवान् को नमस्कार करते हैं । वे कहते हैं कि हे भगवन् ! आप केवल ज्ञान स्वरूप हैं अतएव अपने स्वरूप में अच्छी तरह से स्थित रहते हैं । आप परमानन्द स्वरूप हैं । अतएव आपको सभी पदार्थ प्राप्त हैं । इस तरह से नारदजी ने श्रीभगवान् को अवाप्तसमस्तकाम बतलाया, अब वे उनकी सत्यसंकल्पता को बतलाते हैं । आप जो कुछ चाहते हैं, वह आपको प्राप्त हो जाता है । यदि कोई कहे कि भगवान में यदि वाञ्छा है तब तो उनको संसारचक्र की प्राप्ति अवश्य होगी तो इसके उत्तर में नारदजी कहते हैं कि आपकी चिन्मयी शक्ति के द्वारा आपसे माया अथवा माया का कार्य सदैव दूर रहता है । अतएव श्रीभगवान् का ऐश्वर्य निःसीम है। इस प्रकार के आपश्री भगवान् की मैं शरणागति करता हूँ ।।२३।।

त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् ।
क्रीडार्थमद्यात्तमनुष्यविग्रहं नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्वताम् ।।२४।।

अन्वयः— स्वाश्रयम् आत्ममायया विनिर्मिताशेष विशेषकल्पनम् अद्य कीडार्थम् आत्त मनुष्यविग्रहम् यदुवृष्णसात्त्वताम् धूर्यं ईश्वरं त्वाम् नतोस्मि ।।२४।।

अनुवाद— हे प्रभो आप अपने आपमें स्वतन्त्र हैं आपकी माया के द्वारा ही सम्पूर्ण भेदों की कल्पना की गयी है । सम्प्रति आप क्रीडा करने के ही लिए इस मनुष्य शरीर को धारण किए हुए हैं, आप यदुवंशियों और वृष्णिवंशियों में अग्रगण्य हैं । इस प्रकार के सम्पूर्ण जगत् के नियामक आपको मैं नमस्कार करता हूँ ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

ननु त्रिकालज्ञस्त्वं कथं मत्प्रपञ्चं न जानासि । जानासि चेत्कथमगुणप्रवाहं ब्रवीषि तत्राह-त्वामिति । ईश्वरमन्यस्य वशयितारं स्वाश्रयमन्यस्यावशमत आत्ममाया आत्माधीनया मायया विनिर्मिता अशेषविशेषा महदाद्या यादवादिरूपा वा कल्पना येन तं धुर्यं श्रेष्ठं नतोऽस्मीति ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि आप तो त्रिकालज्ञ हैं, तो फिर मेरी माया को आप कैस नहीं जानते हैं और यदि आप मेरे प्रपञ्च को जानते हैं तो फिर आप कहते हैं कि आपका माया और उसके कार्यों से सम्बन्ध नहीं होता है ? इस पर नारदजी ने **त्वामीश्वर० इत्यादि** श्लोक को कहा । अर्थात् आप तो सम्पूर्ण जगत् को अपने वश में रखने वाले हैं, इसीलिए तो आप ईश्वर हैं । आप अपने आपमें स्वतन्त्र हैं आप किसीके अधीन नहीं है । अतएव आपके अधीन रहने वाली माया के द्वारा महत् तत्व से लेकर विशेष पर्यन्त सम्पूर्ण प्रपञ्च कल्पित है । यह यादवादि रूप की कल्पना भी उसी की है । आप यदुवंशियों में अग्रगण्य हैं आपको मैं नमस्कार करता हूँ ।।२४।।

श्रीशुक उवाच

एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः । प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो ययौ तद्दर्शनोत्सवः ।।२५।।

अन्वयः— भागवत प्रवरो मुनिः एवं यदुपतिं कृष्णं प्रणम्य अभ्यनुज्ञातः तद्दर्शनोत्सवः ययौ ।।२५।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् भगवद् भक्तों में श्रेष्ठ मुनि नारदजी इस प्रकार से यादवों के स्वामी भगवान्

श्रीकृष्ण को प्रणाम करके तथा श्रीभगवान्की आज्ञा प्राप्त करके चले गये । उस समय श्रीभगवान् का दर्शन मिल जाने के कारण देवर्षि नारदजी का रोम-रोम खिल उठा था ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

भगवानपि गोविन्दो हत्वा केशिनमाहवे । पशूनपालयत्पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः ॥२६॥

अन्वयः— व्रजसुखावहः भगवान् गोविन्दः अपि एवं आहवे केशिनम् हत्वा प्रीतैः पालैः पशून् अपालयत् ॥२६॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण व्रज को सुख प्रदान करने वाले थे । वे भी युद्ध में केशी नामक दैत्य को मारकर प्रसन्न गवाल बाल जो पशुओं का पालन करने वाले थे उन सबों के साथ पशुपालन का काम करने लगे॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

एकदा ते पशून्पालाश्चारयन्तोऽद्रिसानुषु । चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चोरपालापदेशतः ॥२७॥

अन्वयः— एकदा तेपालाः अद्रिसानुषु पशून् चारयन्तः चोरपालापदेशतः निलायन क्रीडाः चक्रुः ॥२७॥

अनुवाद— एक बार वे पशुओं को चराने वाले पर्वत के शिखर पर पशुओं को चराते हुए चोर और रक्षक नामक लुकाछिपी का खेल खेल रहे थे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

ननु नारदेन व्योमवधो न दृष्टः तत्कथं व्योमवधप्रसक्तिरिति तत्रोच्यते-प्रातरेव केशिवधानन्तरं नारदेनोक्तमङ्गीकृत्य पुनस्तथैव पशून् पालयता व्योमो हतः । यद्वा व्योम वधः पूर्वमेव वृत्तोऽपि वेषधारिवधप्रसङ्गादत्रोच्यत इति द्रष्टव्यम् । केचित्पुनः शङ्खचूडवधात्पूर्वमेव पठन्ति च । तमाह-एकदेति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि नारदजी ने तो व्योमासुर के वध को देखा नहीं था फिर अतएव उनके साथ व्योमवध का संबन्ध कैसे हो सकता है ? इसके उत्तर में कहा जाता है कि प्रात:काल ही केशीवध के पश्चात् नारदजी की बातों को स्वीकार करके उसी तरह पशुओं को चराते हुए श्रीभगवान् ने व्योमासुर को मार दिया । अथवा व्योमासुर का वध पहले ही हो गया था फिर वेषधारियों के वध का प्रसङ्ग होने के कारण उसका यहाँ पर वर्णन किया जा रहा है। कुछ लोग तो शङ्खासुर के वध के प्रसङ्ग से पहले ही व्योमासुर के वध को पढ़ते हैं । उसी का वर्णन **एकदा॰ इत्यादि** श्लोक से किया गया है ॥२७॥

तत्रासन् कतिचिच्चोराः पालाश्च कतिचिन्नृप । मेषायिताश्च तत्रैके विजह्रुरकुतोभयाः ॥२८॥

अन्वयः— हे नृप तत्र कतिचित् चोराः कतिचित् पालाः च आसन् तत्र एके मेषायिताः च अकुतोभयाः विजह्रुः॥२८॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! उन सबों में से कुछ तो चोर बने हुए थे, कुछ रक्षक बने थे और कुछ भेंड़ बने थे सब निर्भय होकर खेल रहे थे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपालवेषधृक् । मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरायितो बहून् ॥२९॥

अन्वयः— मयपुत्रः महामायः व्योमः गोपालवेषधृक् चोरायितः बहून मेषयितान् अपोवाह ॥२९॥

अनुवाद— मय दानव का पुत्र व्योम् बहुत बड़ा मायावी था । वह ग्वाल का वेष बनाये हुए और चोर बनकर वह मेष बने हुए बहुत से ग्वालों को उठा ले गया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

मेषायितान् मेषवदाचरितान् स्वयं चोरवदाचरितः सन्नपोवाहापकृश्य निनाय ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

भेड़ बने हुए बहुत ग्वालों को चोर वनकर उठा ले गया ॥२९॥

गिरिदर्यां विनिक्षिप्य नीतं नीतं महासुरः । शिलया पिदधे द्वारं चतुःपञ्चा वशेषिताः ॥३०॥

अन्वयः— महासुरः नीतं नीतं गिरिदर्यां विनिक्षिप्य शिलया द्वारं पिदधे चतुःपञ्चावशेषिताः ॥३०॥

अनुवाद— वह महान असुर ग्वालों को लाकर पर्वत की गुफा में रखकर पत्थर की शिला से उसका द्वार बन्द कर देता था । अब केवल चार पाँच बचे थे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

पिदधे छादितवान् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

बन्द कर देता था ॥३०॥

तस्य तत्कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम् । गोपान्नयन्तं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥३१॥

अन्वयः— सताम् शरणदः कृष्णः तस्य तत्कर्म विज्ञाय गोपान् नयन्तं वृकं हरिः इव ओजसा जग्राह ॥३१॥

अनुवाद— सत्पुरुषों की रक्षा करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण उसके द्वारा किए जाने वाले उस कर्म को जान गये और गोपों को ले जाने वाले व्योमासुर को उसी तरह पकड़ लिए जिस तरह किसी वृक को कोई सिंह पकड़ ले ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

शरणद आश्रयप्रदः । हरिः सिंह इव ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

शरणदः अर्थात् रक्षक, **हरिइव** = सिंह के समान ॥३१॥

स निजं रूपमास्थाय गिरीन्द्रसदृशं बली । इच्छन्विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद्ग्रहणातुरः ॥३२॥

अन्वयः— सः बली निजं गिरीन्द्र सदृशं रूपम् आस्थाय आत्मानं विमोक्तुम् इच्छन् ग्रहणातुर न अशक्नोत् ॥३२॥

अनुवाद— बलवान वह असुर अपना पर्वतेन्द्र के समान रूप धारण करके अपने को छुड़ा लेना चाहा किन्तु श्रीभगवान् उसको इस तरह से पकड़ लिए थे कि वह अपने को छुड़ा नहीं सका ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले । पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥३३॥

अन्वयः— अच्युतः तां दोर्भ्यां निगृह्य महीतले पातयित्वा दिवि देवानां पश्यतां पशुमारम् अमारयत् ॥३३॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण उसको दोनों हाथों से पकड़कर पृथिवी पर पटक दिए और स्वर्ग से देवताओं के देखते रहने पर ही उसको पशु के समान इतना मारे कि वह मर ही गया ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

पशुमारं पशुमारो यथा भवति तथा । अनिःश्वासमित्यर्थः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

पशुओं के समान मारते मारते उसको मार ही डाले ॥३३॥

गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान्निः सार्य कृच्छ्रत । स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे व्योमासुरवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

अन्वयः— गुहापिधानं निर्भद्य गोपान् कृच्छ्रतः निःसार्य सुरैः गोपैः स्तूयमानः स्वगोकुलम् प्रविवेश ॥३४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् गुफा के द्वार पर लगे चट्टानों के पिहान को तोड़ डाले और ग्वालों को उस सङ्कटपूर्ण स्थान से निकाल लाये । सभी देवता और ग्वाल बाल भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण अपने व्रज में चले गये ॥३४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के व्योमासुर वध नामक सैंतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

भुवि गोपैः स्तूयमानः, उपारि वैमानिकैर्देवैरिति ।।३४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी पर गोप श्रीभगवान् की स्तुति कर रहे थे और ऊपर की ओर आकाश में विमान पर बैठे देवगण उनकी स्तुति कर रहे थे ॥३४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३७।।

अड़तीसवाँ अध्याय

अक्रूरजी की व्रज की यात्रा

श्रीशुक उवाच

अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः । उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥१॥

अन्वयः— महामतिः अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां उषित्वा रथम् आस्थाय नन्दगोकुलम् ययौ ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् परीक्षित् महाबुद्धिमान अक्रूरजी भी उस रात मथुरापुरी में निवास करके प्रातःकाल रथ पर बैठकर नन्दजी के गोकुल के लिए प्रस्थान किए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टात्रिंशे यथा ध्यायन्नक्रूरो गोकुंल गतः । तथैव रामकृष्णाभ्यां गृहं नीत्वा सुसत्कृतः । प्रातः केशिवधे वृत्ते द्वादश्यां निर्गते मुनौ । ततो व्योमे हतेऽक्रूरः सायं गोकुलमागमत् । तदेवं नारदेन कंसवधादिकार्ये विज्ञापिते श्रीकृष्णे मथुरां गन्तुमुद्यतो वर्तते । तदाऽक्रूरोपि गोकुलमागमदित्याह-अक्रूरोऽपीति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

अड़तीसवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि जिस तरह ध्यान करते हुए अक्रूरजी गोकुल गये थे उसी तरह उनको अपने घर लाकर बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण ने उनका अच्छी तरह से स्वागत किया । प्रातःकाल

केशी दैत्य का वध हो जाने पर द्वादशी तिथि को जब नारदजी चले गये, उसके पश्चात् व्योमासुर के मारे जाने पर सायंकाल अक्रूरजी गोकुल में पहुँचे । इस तरह से नारदजी द्वारा कंसवध आदि के कार्य को विज्ञापित कर दिए जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा जाने के लिए तैयार हैं । उसी समय अक्रूरजी भी गोकुल में आये ।।१।।

गच्छन्पथि महाभागो भगवत्यम्बुजेक्षणे । भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिन्तयत् ।।२।।

अन्वयः— महाभागः पथि गच्छन् अम्बुजेक्षणे भगवति परां भक्तिम् उपगतः एवम् अचिन्तयत् ।।२।।

अनुवाद— महाभाग्यवान् अक्रूरजी जब रास्ते में जा रहे थे उस समय उनकी कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण में अत्यन्त प्रेममयी भक्ति हो गयी । वे इस प्रकार से विचार करने लगे ।।२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२।।

किं मयाचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः । किं वाऽथाप्यर्हते दत्तं यद्द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ।।३।।

अन्वयः— मया किं भद्रम् आचरितम् ? किं परमं तपः तप्तम् ? अथापि किं वा अर्हते दत्तं यद् अद्यकेशवम् द्रक्ष्यामि।।३।।

अनुवाद— मैंने कौन सा ऐसा पुण्यकर्म किया है ? अथवा कौन सी ऐसी तपस्या की है ? अथवा मैंने कौन सा ऐसा किसी सत्पात्र को दान दिया है ? जिसके फलस्वरूप आज मैं भगवान् केशव का दर्शन करूँगा।।३।।

भावार्थ दीपिका

अपिः संभावनायाम् । अर्हते योग्याय ।।३।।

भाव प्रकाशिका

यहाँ पर अपि शब्द का प्रयोग संभावना के अर्थ में किया गया है । अर्हते अर्थात् योग्यपात्र को ।।३।।

ममैतद्दुर्लभं मन्य उत्तमश्लोकदर्शनम् । विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ।।४।।

अन्वयः— विषयात्मनो मम एतद् उत्तमश्लोकदर्शनम् दुर्लभं मन्ये, यथा शूद्रजन्मनः ब्रह्म कीर्तनम् ।।४।।

अनुवाद— मैं तो विषयी जीव हूँ यह पवित्र कीर्ति श्रीभगवान् का दर्शन तो मेरे लिए दुर्लभ है, यह मैं मानता हूँ । यह तो उसी तरह असम्भव सा है जैसे किसी शूद्र कुल में उत्पन्न व्यक्ति को वेदाध्ययन का अवसर मिल जाय ।।४।।

भावार्थ दीपिका

स्वस्य कृष्णस्य दर्शनेऽसंभवमाशङ्क्य पुनः संभावयति-ममैतदिति द्वयेन । विषयात्मनो विषयाविष्टचित्तस्य । शूद्रजन्म यस्य तस्य ब्रह्मकीर्तनं वेदोच्चारणं यथेति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

अपने लिए भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन मिलना असम्भव मानकर पुनः **ममैतद्० इत्यादि** दो श्लोकों से उसकी सम्भावना का प्रतिपादन करते हैं । **विषयात्मनः** अत्यन्त विषयी । **शूद्रजन्मनः ब्रह्मकीर्तनम्** जैसे शूद्रवंश में उत्पन्न हुए को वेदाध्ययन का अवसर मिल जाय ।।४।।

मैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम् । ह्रियमाणः कालनद्या क्वचित्तरति कश्चन ।।५।।

अन्वयः— मैवं अधमस्यापि मम अच्युतस्य दर्शनं स्यादेव यथा कालनद्या ह्रियमाणः कश्चन क्वचित् तरति ।।५।।

अनुवाद— फिर भी ऐसी बात नहीं है । यद्यपि मैं अधम जीव हूँ फिर भी मुझको भगवान् अच्युत के दर्शन होंगे ही । जैसे नदी में बहता हुआ कोई तिनका किसी किनारे लग ही जाता है, वैसे ही कालरूपी नदी में प्रवाहित होने वाले किसी जीव को कर्मवशात् श्रीभगवान् का दर्शन मिल ही जाता है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

यद्वा मैवं, किंत्वधमस्य नीचस्यापि मम स्यादेव । कुत इत्यत आह-ह्रियमाणः कालनद्येति । अयं भावः-यथा नद्या ह्रियमाणानां तृणादीनां मध्ये किंचित्कदाचित्तरति कूलं प्राप्नोति तथा कर्मवशेन कालेन ह्रियमाणानां जीवानामपि मध्ये कश्चित्तरेदिति संभवतीति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

अथवा ऐसी बात नहीं है । यद्यपि मैं अधम हूँ फिर भी मुझको श्रीहरि का दर्शन मिलेगा ही । यह उसी तरह सम्भव है जैसे नदी में बहता हुआ कोई तिनका कहीं किनारे लग ही जाता है, उसी तरह कर्मवशात् काल रूपी नदी में प्रवाहित होने वाले जीवों में कोई ऐसा भी होता है जो इस संसार सागर को पार कर जाय ।।५।।

ममाद्यामङ्गलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः । यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम् ।।६।।

अन्वयः— अद्य मम अमङ्गलं नष्टं मम भवः फलवान् च यत् भगवतः योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम् नमस्ये ।।६।।

अनुवाद— आज मेरे सभी अमङ्गल (पाप) विनष्ट हो गये । मेरा जन्म सफल हो गया, क्योंकि मैं श्रीभगवान् के उन चरण कमलों को प्रणाम करूँगा जिन चरणों का योगिजन ध्यान किया करते हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

अतोऽनया प्रवृत्त्यैव ममामङ्गलं ध्रुवं नष्टमेवेति ज्ञायते । भवो जन्म च सफलं जातमिति । यद्यतो नमस्करिष्यामि ।।६।।

भाव प्रकाशिका

अतएव इस प्रवृत्ति से ही लगता है कि आज मेरे पाप विनष्ट हो गये । मेरा जन्म सफल हो गया । क्योंकि आज मैं श्रीभगवान् के चरण कमलों को नमस्कार करूँगा ।।६।।

कंसो बताद्याऽकृत मेऽत्यनुग्रहं द्रक्ष्येऽङ्घ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः ।
कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः पूर्वेऽतरन्यन्नखमण्डलत्विषा ।।७।।

अन्वयः— कंसो बत अद्य मे अनुगहं अकृत इति अमुना प्रहितः हरेः अङ्घ्रिपद्मं द्रक्ष्ये कृतावतारस्य नखमण्डलत्विषा पूर्वे दुरत्ययं तमः अतरन् ।।७।।

अनुवाद— निश्चित रूपसे कंस ने मेरे ऊपर कृपा की है, उसी के द्वारा भेजे जाने के कारण आज मैं श्रीहरि के चरण कमलों का दर्शन कर पाऊँगा जो श्रीभगवान् आज श्रीकृष्ण के रूप में अवतीर्ण हुए है उनके नख समूह की कान्ति का ही ध्यान करके प्राचीन ऋषिगण अपने घोर अज्ञानान्धकार को पार करके संसार से पार उतर गये।।७।।

भावार्थ दीपिका

अमङ्गलनाशे सूचकान्तरमाह-कंस इति । बतेत्याश्चर्ये । अतिखलः कंसोऽपि ममात्यन्तमनुग्रहं कृतवान् । यतोऽमुना कंसेन प्रहितो हरेरङ्घ्रिपद्मं द्रक्ष्ये द्रक्ष्यामीति । पूर्वेऽम्बरीषादयस्तमःसंसारमतरंस्तीर्णाः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

कंसः इत्यादि श्लोक से अमङ्गल नाश के दूसरे सूचक को बतलाते हैं । बत् यह अव्यय आश्चर्य के अर्थ में प्रयुक्त है । यद्यपि कंस अत्यन्त दुष्ट है, फिर भी उसने मुझ पर बड़ी कृपा की है । कयोंकि कंस के द्वारा भेजे जाने के ही कारण आज मैं श्रीहरि के चरण कमलों का दर्शन करूँगा । प्राचीन अम्बरीष आदि अपने अज्ञान को नष्ट करके मुक्त हो गये ।।७।।

यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः श्रिया च देव्या मुनिभिः ससात्वतैः ।
गोचारणायानुचरैश्चरद्वने यद्गोपिकानां कुचकुङ्कुमाङ्कितम् ॥८॥

अन्वयः— यत् पद्मभवादिभिः सुरैः अर्चितं श्रिया देव्या च ससात्वतैः मुनिभिः, अनुचरैः गोचारणाय वने अचरत्, यत् गोपिकानां कुच कुङ्कुमाङ्कितम् ॥८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के जिन चरणों की अर्चना ब्रह्मा शिव तथा इन्द्र इत्यादि बड़े-बड़े देवता करते हैं। श्रीदेवी भी श्रीभगवान् के उन चरणों की सदा सेवा करती रहती हैं, श्रीभगवान् के प्रेमी भक्तों के साथ ज्ञानी मुनिजन भी श्रीभगवान् के उन्हीं चरणों का ध्यान करते हैं । श्रीभगवान् के वे ही चरण गौओं को चराने के लिए वन-वन में विचरण करते हैं । वे ही चरण गोपिकाओं के वक्षोजों में लगे कुङ्कुम के रङ्ग से रङ्ग जाते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अङ्घ्रिपद्मं विभावयति-यदिति । ब्रह्मादिभिरर्चितमिति परमैश्वर्यमाह-श्रिया चेति सौभाग्यातिशयम् । मुनिभिर्भक्तसहितैरिति परमपुरुषार्थत्वम् । गोचारणायेति कृपालुत्वम् । यद्गोपिकानामिति प्रेममात्रसुलभत्वम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

यदर्चितम्० इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् के चरण कमलों के ऐश्वर्य को बतलाते हैं । ब्रह्मा आदि देवता ने श्रीभगवान् के चरणों की अर्चना करते हैं यह कहकह उन चरणों के परमैश्वर्य को बतलाया गया है । श्रीदेवी भी श्रीभगवान् के चरणों का सेवन करती हैं यह उनका सर्वोत्कृष्ट सौभाग्य है । भगवद्भक्तों के साथ मुनिजन भी श्रीभगवान् के चरणों का ध्यान करते हैं, यह परम पुरुषार्थता है गौओं को चराने के लिए वे चरण वन में घुमते हैं इससे उनकी कृपालुता कही गयी है, वे गोपियों के वक्षोजों के कुङ्कुम से रङ्ग जाते हैं यह कहकर श्रीभगवान् को प्रेममात्र से सुलभ कहा गया है ॥८॥

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम् ।
मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः ॥९॥

अन्वयः— मुकुन्दस्य सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुण कञ्जलोचनं गुडालकावृतं मुखं नूनं द्रक्ष्यामि मे मृगाः प्रदक्षिणं वै प्रचरन्ति ॥९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् भोग एवं मोक्ष दोनों देने वाले हैं इसीलिए उनका मुकुन्द नाम है, उनके सुन्दर कपोल एवं नासिका से युक्त, मन्द मुस्कान, प्रेमपूर्ण चितवन तथा कमल के समान अत्यन्त मनोहर नेत्र से मनोज्ञ तथा काले घुंघराले केशों से घिरे मुख का दर्शन मैं अवश्य करूँगा क्योंकि मेरे दाहिने पार्श्व से होकर ये मृग संचरण कर रहे हैं॥९॥

भावार्थ दीपिका

मनोरथान्तरं करोति-द्रक्ष्यामीति । शोभमानौ कपोलौ नासिका च यस्मिंस्तत् । स्मितसहितोऽवलोको यस्मिन्, अरुणकञ्जवल्लोचने यस्मिन्, तञ्च तञ्च मुखम् । गुडालकावृतं वक्रकेशावृतम् । तदानीमेव शुभसूचकं दृष्ट्वातिहृष्यन्नाह-प्रदक्षिणमिति॥९॥

अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो भारावताराय भुवो निजेच्छया ।
लावण्यधाम्नो भवितोपलम्भनं मह्यं न न स्यात्फलमञ्जसा दृशः ।।१०।।

अन्वयः— भुवोभारावताराय निजेच्छया मनुजत्वमीयुषः लावण्यधाम्नः विष्णोः अपि अद्य मह्यम् उपलम्भनं दृशः अञ्जसा फलं नन स्यात् ।।१०।।

अनुवाद— पृथिवी के भार को दूर करने के लिए अपनी इच्छा से मनुष्य की लीला करने वाले, सम्पूर्ण सौन्दर्य के एक मात्र आश्रय भगवान् विष्णु का जो आज मुझे दर्शन मिलेगा उससे मुझे अपने नेत्रों का फल आसानी से ही अवश्य प्राप्त हो जायेगा ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

पुनरप्यन्यच्चिन्तयति-अप्यद्येति । ईयुषः प्राप्तवतः लावण्यस्य धामाश्रयस्तस्य विष्णोः यद्वा विष्णोर्लावण्ययुक्तं यद्धाम वपुस्तस्य । उपलम्भनं दर्शनं भविता भविष्यति । अपि यद्येवं स्यात्तर्हि मह्यं मम दृशो लोचनस्य फलं न स्यादिति न, अपितु स्यादेवेत्यर्थः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

पुनः अक्रूरजी दूसरे प्रकार से चिन्तन करते हैं । ईयुषः धारण किए हुए सौन्दर्य के आश्रय भगवान् विष्णु के अथवा सौन्दर्य सम्पन्न भगवान् विष्णु के शरीर का दर्शन होगा । यदि ऐसा होता है तो मेरे नेत्रों का फल मुझे मिल जायेगा । अर्थात् मेरे नेत्र सफल हो जायेंगे ।।१०।।

य ईक्षिताऽहंरहितोऽप्यसत्सतोः स्वतेजसाऽपास्ततमोभिदाभ्रमः ।
स्वमाययात्मन्रचितैस्तदीक्षया प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ।।११।।
यस्याखिलामीवहभिः सुमङ्गलैर्वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः ।
प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगद्यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः ।।१२।।
स चावतीर्णः किल सात्वतान्वये स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत् ।
यशो वितन्वन्व्रज आस्त ईश्वरो गायन्ति देवा यदशेषमङ्गलम् ।।१३।।
तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम् ।
रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्ष्ये ममासन्नुषसः सुदर्शनाः ।।१४।।

अन्वयः— यः असत्सतोः ईक्षिताऽपिः अहंरहितः, स्वतेजसापास्ततमोभिदाभ्रमः स्वमाययात्मन्रचितैः तदीक्षया प्राणाक्ष धीभिः सदनेषु अभीयते, यस्य सुमङ्गलैः गुणकर्म जन्मभिः विमिश्राः अखिलामीवहानि विमिश्रावाचः जगत्प्राणन्ति शुम्भन्ति, पुनन्ति तद्विरक्ताः शवशोभनाः मताः सच ईश्वरः अवतीर्णः किल सात्वतान्वये, स्वसेतुपालमरवर्य शर्मकृत् व्रजे यशो वितन्वन् आस्ते, यदशेषमङ्गलम् देवा गायन्ति महतां गति गुरुं, त्रैलोक्यकान्तं, दृशिमन्महोत्सवम् रूपं दधानं, श्रियईप्सितास्पदं तु अद्यनूनंद्रक्ष्ये मम उषसः सुदर्शनाः आसन् ।।११-१४।।

अनुवाद— श्रीअक्रूरजी कामना करते है जो श्रीभगवान् इस सम्पूर्ण कार्य कारणात्मक जगत् के एकमात्र द्रष्टा होकर अपने में कर्तृत्वाभिमान से रहित हैं, इनकी चिन्मयी शक्ति से अज्ञान के कारण होने वाला भेद का भ्रम बिलकुल बिनष्ट हो गया है, वे अपनी योगमाया से ही अपने आपमें भ्रूविलास मात्र से प्राण, इन्द्रिय, और बुद्धि आदि के साथ अपने स्वरूपभूत जीवों की रचना कर लेते हैं और उनके साथ वृन्दावन की कुंजों में तथा गोपियों के गृह में विभिन्न प्रकार की लीलाओं को करते हुए से प्रतीत होते हैं । जब समस्त पापों को विनष्ट करने वाले उनके परम मङ्गलमय गुण कर्म और जन्म की लीलाओं से युक्त होकर वाणी उनका गान करती है, तब उस गान

से सम्पूर्ण संसार में प्राणों का संचार हो जाता है, सम्पूर्ण अपवित्रता विनष्ट होकर सर्वत्र पवित्रता छा जाती हैं, किन्तु जिस वाणी से उनके गुण तथा लीला आदि का वर्णन नहीं किया जाता है। वे वाणी तो शवों को ही सुशोभित करने वाली है। अर्थात् व्यर्थ है। वे ही श्रीभगवान् आज यदुवंशियों के वंश में अपनी बनायी हुई धर्म की मर्यादा का पालन करने वाले देवताओं का कल्याण करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं। वे ही परम ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीभगवान आज व्रज में निवास करते हुए अपने यश का विस्तार कर रहे हैं। और सभी देवता उनके मङ्गलमय यश का गान कर रहे हैं। वे श्रीभगवान् बड़े-बड़े महापुरुषों के एक मात्र आश्रय हैं। तथा सबों के परम गुरु हैं। उनका सौन्दर्य त्रैलोक्य को मोहित करने वाला है। तथा नेत्र वालों के आनन्द की परमाकाष्ठा हैं। इसीलिए सौन्दर्य की एकमात्र अधीश्वरी श्रीलक्ष्मीजी भी उनको सदा प्राप्त करने के लिए लालायित रहा करती हैं। श्रीभगवान् का आज अवश्य दर्शन प्राप्त करूँग, क्योंकि आज मुझे प्रात:काल से ही अच्छे अच्छे शकुन हो रहे हैं ॥११-१४॥

भावार्थ दीपिका

य ईक्षितेत्यादिचतुर्भिः कलापकम्। तत्रैवं शङ्का–नन्वस्मदादिवदेव भोक्तृत्वकर्तृत्वादिधर्मैस्तत्र तत्र प्रतीयमानस्य कथं विष्णुत्वमितीमां शङ्कां श्लोकत्रयेणापाकुर्वश्चतुर्थेन तमहं द्रक्ष्यामीति मनोरथं करोति। तथा हि–य ईक्षितेति। असत्सतोः कार्यकारणयोरीक्षितापीक्षणमात्रकर्ताप्यहंरहितोऽहङ्काररहीनः। तथा अपास्ततमोभिदाभ्रमः, तमः स्वाज्ञानं ततो भिदा भेदस्ततो भ्रमोऽभिनिवेशादिः, अपास्ता अपाकृतास्तम आदयो यस्मिन्सः। कुत एतत्तत्राह–स्वतेजसा चिच्छक्त्या नित्यस्वरूपसाक्षात्कारेण। तथापि स्वमायया स्वाधीनया मायया तदीक्षया तस्यैवेक्षया प्राणाक्षधीभिः सहितैरात्मन्नात्मनि स्वस्मिन्नेव रचितैः जीवैः सदनेषु वृन्दावनतरुषु गोपीगृहेषु च लीलया कर्माणि कुर्वन् सक्तवदभीयते आभिमुख्येन प्रतीयते। ननु सर्वथाहंकारादिरहितस्यात्मारामस्य लीलापि कुत इत्याशङ्क्य परानुग्रहार्थेत्याशयेनाह–यस्येति। अखिलान्यखिलस्य वा अमीवानि पापानि घ्नन्तीत्यखिलामीवहानि तैः। तथा सुमङ्गलैः शोभनानि मङ्गलानि येभ्यस्तैः। गुणाः करुणादयः कर्माणि जन्मानि च तैर्विमिश्रा युक्ता वाचो जगत्प्राणन्ति जीवयन्ति, शुम्भन्ति शोभयन्ति, पुनन्ति पवित्रयन्ति। व्यतिरेकमाह–या इति। तैर्विरक्ता रहितास्तास्तु स्वलंकृता अपि वस्त्राद्यलंकृतशववच्छोभमाना मताः सतां संभताः। स्वयं रचितान्सेतून् वर्णाश्रमधर्मान् पालयताममरवर्याणां सुखकर्ता सन्नवतीर्णः। यद्यशः। त्रैलोक्ये एकमेव कान्तम्। दृशिर्दृष्टिस्तद्वतां महानुत्सवो यस्मात्। यद्वा महानुत्सव एव। अत एव श्रिय ईप्सितमास्पदमेवंभूतं रूपं श्रीमूर्तिं दधानं तमीश्वरं द्रक्ष्यामीति। अत्र लिङ्गम्। उषसः प्रभातसमयाः सुदर्शनाः शुभदर्शनाः। सुखं प्रभाता रजन्यः शुभसूचिका बभूवुरित्यर्थः ॥११-१४॥

भाव प्रकाशिका

य ईक्षिता इत्यादि ग्यारहवें श्लोक का आगे के चौथे चौदहवे श्लोके साथ अन्वय होने के कारण यह
कलापक है। जहाँ चार श्लोक का एक साथ अन्वय होता है। उसे कलापक कहते हैं। यहाँ पर शङ्का का स्वरूप
है कि हम संसारी जीवों के ही समान कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि धर्मों से युक्त के समान प्रतीत होने वाले भगवान् श्रीकृष्ण
को विष्णु कैसे माना जा सकता है ? इसी शङ्का का ग्यारहवें, बारहवें एवं तेरहवें श्लोक से दूर करते हुए चौदहवे
श्लोक में अक्रूरजी यह मनोरथ करते हैं कि उन भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन मैं अवश्य करूँगा। वह भी इस प्रका
से है जो परमात्मा कार्य कारणात्मक जगत् के साक्षात् द्रष्टा होकर भी कर्तृत्वाभिमान से रहित है, उनमें भेद भ्र
बिल्कुल है ही नहीं। अपने में होने वाले अज्ञान के ही कारण भेद का भ्रम होता है। उस भेद भ्रम को श्रीभगवा
ने दूर कर दिया है। वे अपनी चिन्मयी शक्ति से अर्थात् नित्य स्वरूप साक्षात्कार के द्वारा विनष्ट कर दिया
वे अपनी उस माया से ही ईक्षण करके अपने में ही प्राण इन्द्रिय तथा बुद्धि से युक्त जीव की रचना कर ले
हैं। और अपने में ही रचित जीवो के साथ वृन्दावन और गोपियों के गृह में लीला करते हुए से प्रतीत होते हैं॥११
अब प्रश्न होता है कि परमात्मा तो अहङ्कार रहित हैं वे आत्माराम हैं। वे लीला भी क्यों करते हैं ? इस प्रव

की आशङ्का करके **यस्याखिलामीवहाभ० इत्यादि** श्लोक से कहते है कि जीवों पर करने के ही लिए वे लीला करते हैं । उन श्रीभगवान् की गुण कर्म तथा जन्म से संवद्ध वाणी जो होती है, वह जीवों के समस्त पापों को विनष्ट कर देने वाली होने के कारण मङ्गलमयी है । उससे जगत् में प्राण का संचार हो जाता है । जगत् सुशोभित होने लगता है, और उन वाणियों से सर्वत्र पवित्रता छा जाती है । जिस वाणी का संवन्ध श्रीभगवान् के गुण, कर्म और जन्म की कथाओं से नहीं होता है वह तो शवों को ही सुशोभित करने वाली होती है ।।१२।। वे श्रीभगवान् यादववंश में अवतीर्ण हुए है । उनके अवतार का प्रयोजन यही है कि उनके द्वारा स्थापित वर्णाश्रम धर्म की जो मर्यादाएँ हैं, उन सबों की रक्षा करने वाले श्रेष्ठ देवताओं का कल्याण करना । वे व्रज में ही रहकर अपने पवित्र यश का विस्तार करते हैं । और देवगण उनके यश का गान करते हैं ।।१३।। वे त्रैलोक्य में सबसे अधिक सुन्दर हैं । जो लोग दृष्टि सम्पन्न है । उनको परमानन्द प्रदान करने का काम करते हैं । सम्पूर्ण सौन्दर्य की अधीश्वरी श्रीलक्ष्मीजी भी श्रीभगवान् को प्राप्त करने के लिए ललचाती हैं इस प्रकार के रूप वाले श्रीभगवान् का मैं आज अवश्य दर्शन करूँगा । इस तरह से अक्रूरजी कामना करते हैं वे कहते हैं कि आज प्रात:काल से ही मुझे शुभ शगुन हो रहे हैं जो श्रीभगवान् के दर्शन के सूचक है ।।१४।।

अथावरूढः सपदीशयो रथात् प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये ।
धिया धृतं योगिभिरप्यहं ध्रुवं नमस्य आभ्यां च सखीन् वनौकसः ।।१५।।

अन्वयः— अथ सपदि रथात् सपादि अवरूढ़ ईशयोः प्रधानपुंसोः योगिभिः अपि स्वलब्धये धिया धृतं चरणं अहं ध्रुवं नमस्ये आभ्यां वनौकसः सखीन् नमस्ये ।।१५।।

अनुवाद— श्रीभगवान् का दर्शन पा लेने के बाद में शीघ्र ही रथ से कूद पड़ूँगा । तथा प्रधान पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी के जिन चरणों को स्वयं प्राप्त करने के लिए योगिगण ध्यान करके अपने हृदय में धारण कर करते हैं । उन चरणों को साक्षात् प्रणाम करूँगा । और भगवान् श्रीकृष्ण और वलरामजी के साथ ही उनके वनवासी मित्रों ग्वाल बालों के भी चरणों को मैं प्रणाम करूँगा ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

किंच-अथ दर्शनानन्तरं सपदि तत्क्षणमेव रथादवतीर्णः सन् प्रधानयोः पुरुषयो रामकृष्णयोश्चरणं योगिभिरप्यात्मलाभाय केवलं धियैव धृतं साक्षादहं नमस्यामि । आभ्यां सहानयोः सखीन् गोपांश्च नमस्यामीति ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

साथ ही श्रीभगवान् का दर्शन करने के पश्चात् शीघ्र ही रथ से उतर कर प्रधान पुरुष श्रीकृष्ण भगवान् और बलरामजी के साथ ही इनके मित्र ग्वाल बालों के भी चरणों को नमस्कार करूँगा । भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी के चरणों को योगिजन ध्यान के द्वारा अपने हृदय में धारण करते हैं किन्तु मैं तो उन चरणों को साक्षात् प्रणाम करूँगा ।।१५।।

अप्यङ्घ्रिमूले पतितस्य मे विभुः शिरस्यधास्यन्निजहस्तपङ्कजम् ।
दत्ताभयं कालभुजङ्गरंहसा प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां नृणाम् ।।१६।।

अन्वयः— विभुः अङ्घ्रिमूले पतितस्य मे शिरसि कालभुजंगरंहसा प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां नृणाम् दत्ताभयं निजहस्तपङ्कजं शिरसि अधास्यत् ।।१६।।

अनुवाद— श्रीभगवान् अपने चरण कमलों में गिरे हुए मेरे सिर पर काल रूपी सर्प के भय से उद्विग्न बने हुए तथा अपना रक्षक चाहने वाले लोगों को अभय प्रदान करने वाले अपने हाथों को मेरे सिर पर रख देंगे ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

किंच-अपीति । अधास्यत् धास्यति । तद्विभावयति-दत्ताभयमिति सार्धेन ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

अपि० इत्यादि श्लोक का पद अधास्यत् अर्थात् रख देंगे । उन हाथों की महिमा **दत्ताभयम्० इत्यादि** डेढ श्लोकों से बतलाते हैं ॥१६॥

समर्हणं यत्र निधाय कौशिकस्तथा बलिश्चाप जगत्त्रयेन्द्रताम् ।
यद्वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं स्पर्शेन सौगन्धिकगन्ध्यपानुदत् ॥१७॥

अन्वयः— कौशिकः यत्र समर्हण निधाय बलिश्च आपः निधाय जगत् त्रयेन्द्रताम् यद्वा विहारे सौगन्धिगन्धि स्पर्शेन व्रजयोषितां श्रमं अपानुदत् ॥१७॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के जिन हाथों पर इन्द्र ने पूजा की भेंट को और बलि उन हाथों पर जल प्रदान करके दोनों त्रैलोक्य के स्वामित्व को प्राप्त कर लिए भगवान् के जिन हाथों से सौगन्धिक कमल की सुगन्धि निकलती है, उन्हीं हाथों से स्पर्श करके श्रीभगवान् ने व्रज वनिताओं के रास जन्य श्रम को दूर कर दिया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

बलिना तावत्पदत्रयपरिमितभूदानसमये तस्य हस्ते उदकं निहितम् । कौशिक इन्द्रस्तेनापि कदाचित्किंचिन्निहितमिति ज्ञातव्यम् । मुमुक्षूणां संसारभयनिवर्तकं सकामानामभ्युदयप्रदं चेत्युक्तम्, अनुरक्तानां परमसुखदं चेत्याह-यद्वा वाशब्दो वितर्के। विहारे रासक्रीडायाम् । सौगन्धिकस्य गन्ध इव गन्धो यस्य तत् सौगन्धिकगन्धि ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

तीन पग पृथिवी का दान करते समय बलि ने श्रीभगवान् के हाथ पर सङ्कल्प का जल छोड़ा था, इन्द्र ने भी किसी समय श्रीभगवान् के हाथ पर कुछ रखा था । श्रीभगवान् का हस्तकमल मुमुक्षु जीवों के संसार भाव को दूर कर देता है और सकाम जीव को अभ्युदय प्रदान करने वाला है । तथा अनुरक्त जीवों को वह परमानन्द प्रदान करने वाला है । अथवा वा शब्द वितर्क के अर्थ में प्रयुक्त है । श्रीभगवान् के उस हाथ से सौगन्धिक कमल की सुगन्धि निकलती है । उस हाथ के स्पर्श से रासक्रीडा जन्य श्रम को अपनोदित कर दिया ॥१७॥

न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् ।
योऽन्तर्बहिश्चेतस एतदीहितं क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा ॥१८॥

अन्वयः— अच्युतः कंसस्य प्रहितः दूत अपि मयि अरि बुद्धिम् नहि उपैष्यति, सः विश्वदृक् यः चेतसः अन्तः बहिः क्षेत्रज्ञः एतद् ईहितं अमलेन चक्षुषा ईक्षति ॥१८॥

अनुवाद— यद्यपि मैं कंस के द्वारा भेज गया दूत हूँ । फिर भी वे मुझको शत्रु की बुद्धि से नहीं देखेंगे क्योंकि वे सर्वज्ञ हैं । वे सभी जीवों के अन्तःकरण के भीतर भी हैं और बाहर भी हैं । वे क्षेत्रज्ञ होकर जीवों की सारी चेष्टाओं को निर्मल बुद्धि से देखते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

एवं परमानुग्रहं संभाव्य पुनरप्यसम्भवमाशङ्क्य परिहरति-न मयीति । यद्यप्यहं कंसेन प्रहितोऽतस्तस्य दूतः, तथापि मयि अरेरयमिति बुद्धिं नोपैष्यति न करिष्यतीत्यर्थः । यतो विश्वदृक् सर्वज्ञः, अतो मम चेतसोऽन्तश्च बहिश्च यदीहितं चेष्टितमेतद्यः क्षेत्रज्ञोऽन्तर्यामी नित्यज्ञानेनेक्षते । अयं भावः-चेतसो बहिरेव कंसमनुवर्ते, अन्तस्तु कृष्णमेव तदेतदसौ हृदि स्थितो जानातीति। यद्वा एतस्य जगत ईहितमिति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से श्रीभगवान् के परमानुग्रह की संभावना करके फिर भी असंभव की शङ्का करके उसका परिहार करते हैं। वे सोचते हैं कि यद्यपि मैं कंस का भेजा हुआ दूत हूँ फिर भी श्रीभगवान् मेरे विषय में शत्रु बुद्धि नहीं करेंगे। कयोंकि वे सर्वज्ञ हैं, वे मेरे अन्तःकरण के भीतर भी हैं और बाहर भी हैं। वे जीवों के द्वारा की जाने वाली सारी चेष्टाओं को इसलिए जानते है कि वे अन्तर्यामी हैं। वे अपने नित्य ज्ञान से देखते हैं कहने का अभिप्राय है कि मैं तो बाहर से ही कंस की आज्ञा का पालन करता हूँ भीतर से तो मैं कृष्ण का ही अनुगन्ता हैं। वे हृदय के भीतर रहने के कारण इन सारी बातों को जानते हैं ॥१८॥

अप्यङ्घ्रिमूलेऽवहितं कृताञ्जलिं मामीक्षिता सस्मितमार्द्रया दृशा।
सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो वोढा मुदं वीतविशङ्क ऊर्जिताम् ॥१९॥

अन्वयः— अपि अङ्घ्रिमूले अवहितं कृताञ्जलिम् माम् सस्मितम् आर्द्रया दृशाईक्षिता सपदि अपध्वस्त समस्तकिल्विषः वीतविशङ्कः ऊर्जिताम् मुदं वोढा ॥१९॥

अनुवाद— उनके चरणों में प्रणाम करने के पश्चात् जब मैं उनके चरणों में हाथ जोड़कर मैं खड़ा हो जाऊँगा उस समय वे अपनी दया भरी दृष्टि से अवश्य देखेंगे। उसी समय मेरे सम्पूर्ण पाप विनष्ट हो जायेंगे। और उस समय मैं आनन्दमग्न हो जाऊँगा ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

अपि यद्यङ्घ्रिमूले चरणोपान्तेऽवहितं संयतं कृपामृतेनार्द्रया दृशा मामीक्षिता द्रक्ष्यति तर्हि सपद्येव विनष्टाखिलकल्मषः परां मुदं वोढा प्राप्स्यामीति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

यदि मैं उनके चरणों में हाथ जोड़कर संयतभाव से खड़ा हो जाऊँगा तो वे अपनी कृपामृत से परिपूर्ण नेत्रों से मुझे अवश्य देखेंगे, उस समय मेरे सारे पाप विनष्ट हो जायेंगे और मैं परमानन्द को प्राप्त कर लूँगा ॥१९॥

सुहृत्तमं ज्ञातिमनन्यदैवतं दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ माम्।
आत्मा हि तीर्थीक्रियते तदैव मे बन्धश्च कर्मात्मक उच्छ्वसित्यतः ॥२०॥

अन्वयः— अथ सुहृत्तमं अनन्यदैवतं ज्ञातिं माम् बृहद्भ्यां दोर्भ्यां परिरप्स्यते तदैव मे आत्मा अपि तीर्थी क्रियते तदैव अतः मे कर्मात्मके बन्धः उच्छ्वसिति ॥२०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् अपने सर्वोत्कृष्ट हितैषी तथा अपने बान्धव मुझको अपनी विशाल बाहुओं से पकड़कर वे मुझको अपने हृदय से लगा लेंगे। उसी समय यह मेरा शरीर पवित्र हो जायेगा और इस शरीर से मेरा कर्मात्मक बन्धन टूट जायेगा ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अथ मां परिरप्स्यते आलिङ्गिष्यति यदा तदैव मे आत्मा देहस्तीर्थीक्रियतेऽतिपवित्रीकरिष्यते। उच्छ्वसिति श्लथो भविष्यति। अतो देहात् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् वे मेरा आलिङ्गन करेंगे। उसी समय मेरा शरीर अत्यन्त पवित्र हो जायेगा। **उच्छ्वसिति** अर्थात् शिथिल हो जायेगा। अतः अर्थात् देह से ॥२०॥

लब्धाङ्गसङ्गं प्रणतं कृताञ्जलिं मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः ।
तदा वयं जन्मभृतो महीयसा नैवादृतो यो धिगमुष्य जन्म तत् ॥२१॥

अन्वयः लब्धाङ्गसङ्गं प्रणतं कृताञ्जलिम् माम् उरुश्रवाः तत अक्रूर इति वक्ष्यते तदावयं जन्मभृतः महीयसा यः नैवादृतः तत् अमुष्य जन्मधिक् ॥२१॥

अनुवाद श्रीभगवान् का आलिङ्गन प्राप्त करके नम्र बने तथा हाथ जोड़े हुए जब श्रीभगवान् मुझे चाचा अक्रूर कहकर संबोधित करेंगे उस समय मेरा जन्म सफल हो जायेगा । भगवान श्रीकृष्ण ने जिसको समादृत ही नहीं किया उसके जन्म को तो धिक्कार है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तत भोस्तातेति । तदा जन्मभृतः सफलजन्मानः । अन्यथा तज्जन्मैव न भवतीत्याह-महीयसेति । महीयसा श्रीकृष्णेन योऽनादृतोऽमुष्य तस्य जन्तोस्तज्जन्म धिक् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

तत अर्थात् हे चाचा, **तदाजन्मभृतेः** अर्थात् सफल जन्म वाले, इसके बिना जन्म तो जन्म ही नहीं हो सकता इसको **महीयसा० इत्यादि** के द्वारा अक्रूरजी ने कहा है । भगवान् श्रीकृष्ण ने जिसका समादर ही नहीं किया उसका जन्म ही व्यर्थ है ॥२१॥

न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ।
तथापि भक्तान् भजते यथा तथा सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ॥२२॥

अन्वयः— तस्य दयितः सुहृत्तमो न चाप्रियः द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा तथापि यथा सुरद्रुमः यद्वद् उपाश्रितः अर्थः तथा भक्तान् भजते ॥२२॥

अनुवाद— उनको न तो कोई अत्यन्त प्रिय अथवा न हितैषी है और न तो उनका कोई द्वेष्य अथवा उपेक्ष्य है । फिर भी जैसे कल्पवृक्ष अपने नीचे आकर याचना करने वाले को जिस तरह मुँह माँगी वस्तुए प्रदान करता है, उसी तरह वे अपने भक्तों को समस्त पुरुषार्थ प्रदान करते है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

ननु सुहृदादिषु परिष्वङ्गसंप्रश्नादयो जीवधर्माः कथमीश्वरे सङ्गच्छन्तेऽत आह-न तस्येति । दयितः प्रियस्तद्विपरीतोऽप्रियः सुहृत्तमो हिततमस्तद्विपरीतो द्वेष्य एतत्सर्वव्यतिरिक्त उपेक्ष्य इति । दयितादयो न सन्तीति सत्यं, तथापि भक्तान् भजते, तत्र यथा ये भक्तास्तांस्तथा भजते- 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' इति भगवद्वचनात् अविषमत्वेऽपि भक्तेभ्य एव फलं ददातीत्यत्र दृष्टान्तः-यद्वत्सुरद्रुम इति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि अपने हितैषियों आदि का आलिङ्गन पूर्वक कुशल प्रश्न पूछना तो जीव का धर्म है, यह ईश्वर (भगवान् श्रीकृष्ण) क्यों करेंगे ? तो इसके उत्तर में **न तस्य इत्यादि** श्लोक कहते हैं । दयित अर्थात् प्रिय और प्रिय के विपरीत अप्रिय होता है । सुहृमत् परम हितैषी को कहते हैं, और इन सबों के विपरीत आचरण करने वाले को देष्य कहते हैं । इन सबों से जो भिन्न होता है, उसको उपेक्ष्य कहते हैं श्रीभगवान् का कोई भी प्रिय इत्यादि नहीं है । फिर भी भगवान् अपने भक्तों को अनुगृहीत करते हैं । जो जैसे भक्त होता हैं श्रीभगवान् उन सबों को उसी प्रकार से अनुगृहीत करते हैं । उन्होंने कहा भी है- **ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्** अर्थात् जो भक्त मेरी जैसी उपासना करते हैं उन भक्तों को मैं उसी प्रकार से अनुगृहीत करता हूँ । यद्यपि श्रीभगवान् में

वैषम्य दोष नहीं है फिर भी वे अपने भक्तों को ही फल प्रदान करते हैं । इसका दृष्टान्त कल्पवृक्ष है । अर्थात् जो कल्पवृक्ष के नीचे आकर प्रार्थना करता है, उसी की इच्छा को पूर्ण करने का काम कल्पवृक्ष करता है ॥२२॥

किंचाग्रजो माऽवनतं यदूत्तमः स्मयन् परिष्वज्य गृहीतमञ्जलौ ।
गृहं प्रवेश्याप्तसमस्तसत्कृतं संप्रक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु ॥२३॥

अन्वयः— किञ्च अवनतं मा अग्रज यदूत्तमः स्मयन्, परिष्वज्य अञ्जलौ गृहीतम् गृहं प्रवेश्य, आप्तसमस्त सत्कृतं, कंसकृतं स्वबन्धुषु सं प्रक्ष्यते ॥२३॥

अनुवाद— जब मैं उनके सामने सिर झुकाकर खड़ा हो जाऊँगा उस समय यदुश्रेष्ठ बलरामजी मुस्कुराते हुए मुझे अपने हृदय से लगा लेंगे । फिर मेरे दोनों हाथ पकड़कर मुझे घर के भीतर ले जायेंगे, तदनन्तर मेरा हर प्रकार से सत्कार करेंगे । उसके पश्चात् वे पूछेंगे कि कंस हमारे घर वालों के साथ कैसा व्यवहार करता है?॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यो मयाञ्जलिः करिष्यते तस्मिन्नेवाञ्जलौ गृहीतं माम् । आप्तानि समस्तान्यर्घादिसत्कृतानि येन तं माम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

मैं जो हाथ जोड़ूगा उस अञ्जलि पर अनुगृहीत मुझको जो मेरे अर्घ्य इत्यादि सत्कार को सम्पादित करके मुझको॥२३॥

श्रीशुक उवाच

इति संचिन्तयन् कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि । रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥२४॥

अन्वयः— हे नृप ! इति अध्वनि श्रीकृष्णं संचिन्तयन् श्वफलकतनयः रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्च अस्तगिरिम्॥२४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से भगवान् कृष्ण के विषय में चिन्तन करते हुए श्वफलक के पुत्र श्रीअक्रूरजी गोकुल पहुँच गये और उसी समय सूर्यास्त भी हो गया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

स तु मार्गमपि न वेद तथापि रथेन प्राप्त इति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

उनको तो मार्ग का भी पता नहीं रहा और वे गोकुल पहुँच गये ॥२४॥

पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामलपादरेणोः ।
ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि विलक्षितान्यब्जयवाङ्कुशाद्यैः ॥२५॥

अन्वयः— अखिललोकपाल किरीट जुष्टमलपादरेणोः यवांङ्कुशाद्यैः विलक्षितानि क्षितिकौतुकानि तस्य पदानि गोष्ठे ददर्श ॥२५॥

अनुवाद— जिनके चरण कमल के रज को भी लोकपाल अपने किरीटों पर चढ़ाते हैं श्रीभगवान् के चरणों के चिह्नों को अक्रूरजी ने गोष्ठ में देखा । यव, अङ्कुश तथा कमल आदि के चिह्नों से उनकी पहचान हो रही थी। उन चरण चिह्नों से पृथिवी की शोभा हो रही थी ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अखिलैर्लोकपालैः किरीटेषु जुष्टा अमलाः पादरेणवो यस्य तस्य । क्षितिकौतुकानि क्षितेरलङ्काररूपाणि ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

सभी लोकपाल जिनके चरण रज को अपने किरीट पर धारण करते हैं, वे चरण-चिह्न पृथिवी के अलङ्कार रूप हैं ॥२५॥

तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसंभ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाऽश्रुकलाकुलेक्षणः ।
रथादवस्कन्द्य स तेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति ॥२६॥

अन्वयः— तद्दर्शनाह्लाद विवृद्धासंभ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमा, अश्रुकलाकुलेक्षण रथादवस्कन्द्य स तेष्वचेष्टत अहो प्रभोः अमूनि अङ्घ्रिरजांसि इति ॥२६॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के उन चरण चिह्नों को देखकर उनको इतनी प्रसन्नता हुई कि वे उसे सम्भाल नहीं पाये। उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया था, आँखों में प्रेमाश्रु भर गये, वे अपने रथ से उतर गये और उन चरण रजों में लोटने लगे और यह कहने लगे कि अरे ! ये तो मेरे स्वामी के चरण चिह्न हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तद्दर्शनेन य आह्लादस्तेन विवृद्धः संभ्रमो यस्य सः । प्रेम्णा ऊर्ध्वानि रोमाणि यस्य सः । अश्रूणां कलाभिर्लेशैराकुले ईक्षणे यस्य सः । अवस्कन्द्यावप्लुत्य तेषु पदेषु सोऽक्रूरः अचेष्टत व्यलुठत् । अहो इति दुर्लभतां भावयन् ॥२६॥'

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के चरण चिह्नों को देखने से उत्पन्न आनन्द से ये व्याकुल हो गये । उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया । आँखों में आँसू भर गये ऐसे अक्रूरजी अपने रथ से उतरकर श्रीभगवान् के उन चरण चिह्नों पर लोटने लगे । अहो यह कहकर उनचरण चिह्नों की दुर्लभता का अनुभव कर रहे थे ॥२६॥

देहंभृतामियानर्थो हित्वा दम्भं भियं शुचम् । संदेशाद्यो हरेर्लिङ्गदर्शनश्रवणादिभिः ॥२७॥

अन्वयः— देहभृतामियान् अर्थः संदेश आह हरेः लिङ्गदर्शनश्रवणदिभिः दम्भं भियं, शुचम् हित्वा ॥२७॥

अनुवाद— मानव जीवन का यही प्रयोजन है जो कंस के संदेश से लेकर अब तक अक्रूरजी के चित्त की जैसी स्थिति रही उसी तरह के चित्त की स्थिति हो जाना । अतएव जीवमात्र का यही परम कर्तव्य है कि, दम्भ, भय और शोक को त्यागकर भगवान् की मूर्ति चिह्न, लीला स्थान तथा गुणों के दर्शन श्रवण आदि के द्वारा ऐसा ही भाव सम्पादित किया जाय ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

ननु किमर्थमेवं व्यलुठत्, नास्ति प्रेमसंभ्रमे फलोद्देश इत्याह-देहंभृतामिति । देहभाजामेतावानेन पुरुषार्थः, कंसस्य संदेशादारभ्य हरेर्लिङ्गदर्शनश्रवणादिभिर्योऽयमक्रूरस्य वर्णित इति । संदेश आद्यो यस्यार्थस्य स यावानक्रूरस्य जात इति वा॥२७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि अक्रूरजी श्रीभगवान् के चरण चिह्नों पर क्यों लौटने लगे ? प्रेमातिरेक का फल तथा उद्देश्य नहीं होता इस बात को **देहभृताम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । शरीर धारियों का सबसे बड़ा पुरुषार्थ यही है कि कंस के संदेश से लेकर अभी तक अक्रूरजी के चित्त की स्थित वर्णित की गयी है, वही स्थिति श्रीभगवान् की मूर्ति, चिह्न, आदि को देखकर हो जाना । **संदेशाद्यः** का अर्थ है जिसके प्रारम्भ में संदेश है, अक्रूरजी की जो स्थिति हुई ॥२७॥

ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ । पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरुहेक्षणौ ॥२८॥

अन्वयः— पीतनीलाम्बरधरौ शरदाम्बुरुहेक्षणौ गोदोहनं गतौ रामं च कृष्णं च व्रजे ददर्श ॥२८॥

अनुवाद— व्रज में जाकर अक्रूरजी ने गोदोहन के स्थान में विराजमान, श्रीकृष्ण भगवान् और बलरामजी दोनों भाइयों को देखा भगवान् श्रीकृष्ण पीताम्बर धारण किए हुए थे और बलरामजी नीलाम्बर । उन दोनों के नेत्र कमल पुष्प के समान अत्यन्त मनोहर थे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

ततः कृष्णं रामं च ददर्श । गावो दुह्यन्तेऽस्मिन्निति गोदोहनं तत्स्थानं गतौ प्राप्तौ ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् अक्रूरजी ने श्रीकृष्ण भगवान् और बलरामजी को देखा । वे दोनो गौओं के दूहने के स्थान में विराजमान थे ॥२८॥

किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ । सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥२९॥

अन्वयः— किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥२९॥

अनुवाद— उन दोनों लोगों की किशोरावस्था थी, भगवान् श्रीकृष्ण श्याम वर्ण के थे और बलरामजी गौर वर्ण के थे, वे सम्पूर्ण शोभा की खान थे, उनकी भुजाएँ लम्बी-लम्बी थी उनका मुख मण्डल मनोज्ञ था, और वे दोनों अत्यन्त सुन्दर थे । उनकी चाल गजशावक के समान अत्यन्त मनोज्ञ थी ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजैश्चिह्नितैरङ्घ्रिभिर्व्रजम् । शोभयन्तौ महात्मानावनुक्रोशस्मितेक्षणौ ॥३०॥

अन्वयः— ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजैः चिह्नितैरङ्घ्रिभिव्रजम्, शोभयन्तौ महात्मानौ अनुक्रोशस्मितेक्षणौ ॥३०॥

अनुवाद— ध्वज, व्रज, अङ्कुश तथा कमल के चिह्नों से चिह्नित पदचिह्नों से व्रज को सुशोभित कर रहे थे । वे दोनों महापुरुष अपने मुस्कान युक्त चितवन से सुशोभित उनके नेत्र दया और औदार्य से परिपूर्ण थे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

अनुक्रोशोऽनुकम्पा तद्विलसितस्मितयुक्तमीक्षणं ययोस्तौ ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अनुकोश अर्थात् कृपा से सुशोभित मन्द मुस्कान युक्त उनके नेत्र थे ॥३०॥

उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ । पुण्यगन्धानुलिप्ताङ्गौ स्नातौ विरजवाससौ ॥३१॥

अन्वयः— उदाररुचिरक्रीडौ, स्रग्विणौ वनमालिनौ, पुण्यगन्धानुलिप्ताङ्गौ स्नातौ विरज वाससौ ॥३१॥

अनुवाद— वे औदार्यपूर्ण मनोज्ञ क्रीडाओं को करने वाले पुष्पों की माला पहने हुए तथा वनमाला धारण किए हुए वें उनके अङ्गों में सुगन्धित चन्दन का लेप लगा था, स्नान करके वे स्वच्छ वस्त्र धारण किए थे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

उदारा रुचिरा क्रीडा ययोस्तौ स्रग्विणौ रत्नस्रग्भिरलंकृतौ ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

उनकी क्रीडा उदार और मनोहर थी । वे रत्नों की माला से अलंकृत थे ॥३१॥

प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतू जगत्पती । अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन बलकेशवौ ॥३२॥

अन्वयः— आद्यौ पुरुषौ, जगद्धेत् जगत्पती, जगत्यर्थे स्वांशेन अवतीणौ बलकेशवौ ॥३२॥

अनुवाद— अक्रूरजी ने अनुभव कि ये दोनों आदि पुरुष परमात्मा ही हैं, वे दोनों जगत् के कारण है । और जगत् के स्वामी है । संसार का कल्याण करने के लिए परमात्मा ही अपने सम्पूर्ण अंशों से श्रीकृष्ण एवं बलरामजी के रूप में अवतीर्ण हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

प्रधानभूतौ पुरुषौ प्रकृतिपुरुषात्मकौ वा । कुतः । आद्यौ । तदपि कुतः जगद्धेतू । अतएव जगत्पती । विपरीतो वा चतुर्णां पदानां हेतुहेतुमद्भावः । जगत्यर्थे पृथिव्या भारापनयनाय स्वांशेन मूर्तिभेदेन बलकेशवौ सन्ताववतीर्णौ ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

वे संसार के प्रधान पुरुष हैं अथवा प्रकृति पुरुष स्वरूप है । क्योंकि वे दोनों आदि पुरुष है । वह भी इसलिए कि वे दोनों जगत् के कारण हैं । अतएव वे जगत् के स्वामी हैं । अथवा इसके विपरीत इन चारों पादों में हेतु हेतुमद्भाव है । पृथिवी का भार दूर करने के लिए वे अपने अंश से बलरामजी और श्रीकृष्ण भगवान् इन दो मूर्तियों के रूप में अवतीर्ण हैं ॥३२॥

दिशो वितिमिरा राजन् कुर्वाणौ प्रभया स्वया । यथा मारकतः शैलौ रौप्यश्च कनकाचितौ ॥३३॥

अन्वयः— राजन् स्वयाप्रभया दिशो वितिमिरा कुर्वाणौ यथा कनकाचितौ मारकतः प्रप्यः च शैलौ ॥३३॥

अनुवाद— परीक्षित् वे अपनी कान्ति से दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे जैसे सुवर्ण से व्याप्त मरकत मणि और चाँदी के दो पर्वत हों ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

स्वप्रभया विगततिमिरा दिशः कुर्वाणौ कनकाचितौ सुवर्णव्याप्ताविति सालंकारयोः शैलसादृश्यार्थमुक्तम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

अपनी कान्ति से वे दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे । लगता था जैसे सवर्णव्याप्त मरकत मणि और चाँदी के दो पर्वत हो । उन दोनों के अलंकृत होने के कारण उन दोनों की पर्वत से सदृशता बतलायी गयी है॥३३॥

रथात्तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः । पपात चरणोपान्ते दण्डवद्रामकृष्णयोः ॥३४॥

अन्वयः— स्नेहविह्वल सः अक्रूरः रथात् तूर्णम् अवप्लुत्य रामकृष्णयोः चरणोपान्ते दण्डवत् पपात ॥३४॥

अनुवाद— स्नेह के वेग से व्याकुल अक्रूरजी उनको देखते ही रथ से कूद पड़े । और श्रीबलरामजी और कृष्ण भगवान् के चरणों के पास दण्डे के समान गिरकर प्रणाम किए ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः । पुलकाचिताङ्ग औत्कठ्यात् स्वाख्याने नाशकन्नृप ॥३५॥

अन्वयः— हे नृप ! भगवद्दर्शनाह्लादवाष्पपर्याकुलेक्षणः पुलकाचिताङ्गः औत्कण्ठ्यात् स्वाख्याने न अशकत् ॥३५॥

अनुवाद— हे राजन् ! श्रीभगवान् का दर्शन प्राप्त हो जाने से उनको इतना आह्लाद हुआ कि उनके नेत्र प्रेमाश्रुओं से भर गये, उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया उत्कण्ठावशात् उनका गला भर गया और वे अपना नाम भी नहीं बता सके ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

भगवद्दर्शनाह्लादेन यद्बाष्प तेन पर्याकुले ईक्षणे यस्य सः पुलकैराचितं व्याप्तमङ्गं यस्य सः । स्वाख्यानेऽक्रूरोऽहं नमस्करोमीति कथने नाशक्नोत् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के दर्शन जन्य आनन्दातिरेक के कारण अक्रूरजी के नेत्रों में प्रेमाश्रु भर गये, उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया, मैं अक्रूर आपको नमस्कार करता हूँ यह भी नहीं कह सके ।।३५।।

भगवांस्तमभिप्रेत्य रथाङ्गाङ्कितपाणिना । परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः ।।३६।।

अन्वयः— प्रणतवत्सलः भगवान् तमभिप्रेत्य रथाङ्गङ्कित पाणिना अभ्युपाकृष्य प्रीतः परिरेभे ।।३६।।

अनुवाद— भक्तवत्सल भगवान् जान गये कि ये कंस के द्वारा भेजे गये अक्रूरजी हैं वे अपने चक्र के चिह्न से चिह्नित हाथ से अक्रूरजी को प्रसन्न होकर अपने सन्निकट खींचकर उनका आलिङ्गन किए ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

अभिप्रेत्याक्रूरोऽयमेतदर्थमागत इति ज्ञात्वा कंसहननसामर्थ्यं द्योतयन्निव रथाङ्गेन चक्रेणाङ्कितो यः पाणिस्तेनाभ्युपाकृष्य तमालिङ्गितवान् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

अभिप्रेत्य अर्थात् यह जानकर किये अक्रूर हैं और इस कार्य के लिए आये हैं, इस बात को जानकर कंस को मारने में समर्थ्य को द्योतिति करते हुए के समान चक्र के चिह्न से चिह्नित हाथों से अक्रूरजी को अपने सन्निक़ट खींचकर हृदय से लगा लिए ।।३६।।

संकर्षणश्च प्रणतमुपगुह्य महामनाः । गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत् सानुजो गृहम् ।।३७।।

अन्वयः— महामना सङ्कर्षणः च प्रणतम् उपगुह्य पाणिना पाणी गृहित्वा सानुजः गृहम् अनयत् ।।३७।।

अनुवाद— महामनस्वी बलरामजी भी अपने सामने विनीत अक्रूरजी को गले से लगाये और उनके हाथों को पकड़कर भगवान् श्रीकृष्ण के साथ अपने घर लाये ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

पाणी अञ्जलिरूपेण संहितावेव गृहीत्वा ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

हाथ जोड़े हुए अक्रूरजी के दोनों हाथों को पकड़कर अपने घर लाये ।।३७।।

पृष्ट्वाथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम् । प्रक्षाल्य विधिवत् पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ।।३८।।

अन्वयः— स्वागतं पृष्ट्वा तस्मै वरासनं निवेद्य विधिवत्पादौ प्रक्षाल्य मधुपर्कार्हणमाहरत् ।।३८।।

अनुवाद— श्रीभगवान् उनका कुशल पूछकर उन्हें श्रेष्ठ आसन पर बैठाये । उनके पैरों को धोकर मधुपर्क आदि पूजा की सामग्री प्रदान किए ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

मधुपर्क एवार्हणं तस्मिन् वा यदुचितमर्हणमाहरत् । आनीय समर्पितवानित्यर्थः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

मधुपर्करूपी पूजा अथवा उनके लिए उचित पूजा सामग्री लाकर प्रदान किए ।।३८।।

निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रान्तमादृतः । अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद्विभुः ॥३९॥

अन्वयः— अतिथये गां च निवेद्य श्रान्तम् आदृतः संवाह्य विभुः श्रद्धया बहुगुणं मेध्यं अन्नम् उपाहरत् ॥३९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने अतिथि अक्रूरजी को गौ प्रदान किया उनका पैर दबाकर उनकी थकान दूर किए फिर श्रद्धापूर्वक अनेक गुणों से युक्त अन्न का भोजन कराये ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित् । मुखवासैर्गन्धमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात्पुनः ॥४०॥

अन्वयः— परमधर्मवित् रामः भुक्तवते तस्मै प्रीत्या मुखवासैः गन्धमाल्यैः पुनः परां प्रीतिं व्यधात् ॥४०॥

अनुवाद— धर्म के श्रेष्ठ जानकार श्रीबलरामजी अक्रूरजी के भोजन कर लेने के पश्चात् अत्यन्त प्रेम पूर्वक पान इत्यादि तथा सुगन्धित माला आदि प्रदान करके उन्हें बहुत प्रसन्न किए ॥४०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४०॥

पप्रच्छ सत्कृतं नन्दः कथं स्थ निरनुग्रहे । कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः ॥४१॥

अन्वयः— सत्कृतं नन्दः पप्रच्छ हे दाशार्ह निरनुग्रहे कंसे जीवति सौनपालाः अवयः इव कथं स्थ ॥४१॥

अनुवाद— सत्कार सम्पन्न हो जाने पर नन्दजी ने आकर पूछा कि अक्रूरजी क्रूर कंस के जीते रहने पर आपलोग कैसे रहते हैं । कसाइयों के घर में भेड़ों के समान आप लोगों की दशा होगी ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

सत्कृतं संमानितम् । निरनुग्रहे क्रूरे । कथं केन प्रकारेण स्थ जीवथेत्यर्थः । सौनः पशुघाती स एव पालको येषामवीनां मेषाणां त इव तत्तुल्या इत्यर्थः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

सत्कार हो चुकने पर निरनुग्रहः अर्थात् क्रूर आपलोग कैसे जीवन यापन करते हैं । जैसे कसाई के घर में भेड़ों की स्थिति होती है, वैसी ही आपलोगों की स्थिति होगी ॥४१॥

योऽवधीत्स्वस्वसुस्तोकान् क्रोशन्त्या असुतृप् खलः । किं नु स्वित्तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे॥४२॥

अन्वयः— यः असुतृप् खलः क्रोशन्त्याः स्वस्वसुः तोकान् अवधीत् किनुएवत् तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे॥४२॥

अनुवाद— जो इन्द्रियाराम दुष्ट अपनी विलखती हुई बहिन के बच्चों को मार डाला उसी की प्रजा आपलोग सुखी हैं, यह कैसे हम सोच सकते हैं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

निरनुग्रहतामाह-योऽवधीदिति । तोकान् तोकानि । असुतृप् असूनेव तर्पयति यः । अतः खलः तस्य कंसस्य प्रजानाम्। हे अक्रूर, येषां जीवनमात्रमपि दुर्लभं तेषां वः किं नु कुशलं विचारयाम इति ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

कंस की क्रूरता का वर्णन करते हुए नन्दजी ने कहा । इन्द्रियाराम कंस रोती हुई अपनी बहिन के बच्चों को मार दिया । अतएव वह दुष्ट है । हे अक्रूरजी आपलोग तो उसकी प्रजा हैं आपलोगों का तो जीना दुर्लभ होगा अतएव आपलोगों की कुशल हम कैसे सोचें ॥४२॥

इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः । अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽक्रूरागमनं नामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

अन्वयः— इत्थं सुनृतया वाचा नन्देन समाजितः अक्रूरः परिपृष्टेन अध्वपरिश्रमं जहौ ॥४३॥

अनुवाद— नन्दजी द्वारा इस तरह मधुरवाणी से कुशल मङ्गल पूछे जाने पर अक्रूरजी का मार्गश्रम समाप्त हो गया ॥४३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के स्कन्ध के पूर्वार्ध के अक्रूरजी के आगमन नामक अड़तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

मधुरया वाचा इत्थं सत्कृतः । तथैव वाचा परिपृष्टेन प्रश्नेन । अध्वपरिश्रमं संसारश्रमम् ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

मधुरवाणी से ऐसे सत्कार किए गये तथा उसी तरह की वाणी के द्वारा पूछने पर उनका संसार श्रम समाप्त हो गया ॥४३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के अड़तीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥३८॥

उन्तालिसवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी का मथुरा गमन

श्रीशुक उवाच

सुखोपविष्टः पर्यङ्के रामकृष्णोरुमानितः । लेभे मनोरथान् सर्वान् पथि यान्स चकार ह ॥१॥

अन्वयः— रामकृष्णोरुमानितः पर्यङ्के सुखोपविष्टः पथि यान् मनोरथान् चकार सर्वान् लेभे ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— बलरामजी और श्रीकृष्ण भगवान् के द्वारा बहुत सम्मानित श्री अक्रूरजी पलङ्ग पर सुख पूर्वक बैठ गये । उन्होंने मार्ग में जो जो अभिलाषाएँ की थी वे सभी अभिलाषाएँ पूरी हो गयीं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

नवत्रिंशे पुरीं गच्छत्यच्युते गोपिकोक्तयः । अक्रूरेणाथ कालिन्द्यां विष्णुलोकस्य दर्शनम् । भक्तानां मनोरथाः सत्या भवन्तीति द्योतयन्नाह-सुखोपविष्ट इति । रामकृष्णाभ्यामुरु अधिकं मानितः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उनतालिसवें अध्याय में मथुरापुरी भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति विरहाग्नि से संतप्त गोपियों का वर्णन तथा अक्रूरजी का श्रीयमुनाजी में विष्णुलोक का दर्शन वर्णित है । भक्तों के मनोरथ पूर्ण ही होते हैं इसी अर्थ को द्योतित करते हुए सुखोपविष्टः इत्यादि श्लोक को कहते हैं बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा अत्यधिक सम्मानित॥१॥

किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने । तथापि तत्परा राजन्न हि वाञ्छन्ति किंचन ॥२॥

अन्वयः— राजन् श्रीनिकेतने भगवति प्रसन्ने किम् अलभ्यं तथापि तत्परा किंचन न वाञ्छन्ति ॥२॥

अनुवाद— परीक्षित् लक्ष्मीजी के एकमात्र आश्रय श्रीभगवान् के प्रसन्न हो जाने पर संसार की कौन सी ऐसी वस्तु है जो प्राप्त न हो जाय ? फिर जो भगवान् के ऐकान्तिक भक्त होते हैं वे उनसे कुछ भी नहीं चाहते हैं॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

सायंन्तनाशनं कृत्वा भगवान् देवकीसुतः । सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम् ॥३॥

अन्वयः— सायंतनाशनं कृत्वा देवकीसुतः भगवान् सुहृत्सु कंसस्य वृत्तम् अन्यत् चिकीर्षितम् पप्रच्छ ॥३॥

अनुवाद— सायंकालिक भोजन कर लेने के पश्चात् देवकी माता के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण अपने सुहृदों के प्रति कंस के व्यवहार तथा दूसरे कार्यक्रम के विषय में पूछे ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

श्रीभगवानुवाच

तात सौम्यागतः कच्चित् स्वागतं भद्रमस्तु वः । अपि स्वज्ञातिबन्धूनामनमीवमनामयम् ॥४॥

अन्वयः— हे तात हे सौम्य ! आगतः स्वागतम् वः भद्रमस्तु, अपि स्वज्ञाति बन्धूनाम् अनामयम् ॥४॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे चाचाजी ! हे सौम्य ! आपको यात्रा में कोई कष्ट तो नहीं हुआ । आप आये आपका स्वागत है । आपका मङ्गल हो किन्तु हमारें जो बन्धु बान्धव हैं वे तो सकुशल और निराग तो हैं न ?॥४॥

भावार्थ दीपिका

हे तात हे सौम्य, स्वागतं यथा तथा आगतः । स्वज्ञातिवन्धूनाम्, स्वे सुहृदः, ज्ञातयः सपिण्डाः, बन्धवोऽसपिण्डाः संबन्धिनः, तेषामपि किमनमीवमपापमदुःखं सुखमिति यावत् । अनामयमारोग्यम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

हे चाचाजी, हे सौम्य आप आये आपका स्वागत है । हमारे बन्धुओं मित्रों, बान्धवों आदि का कुशल तो है न तथा वे सब निरोग तो हैं ॥४॥

किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये । कंसे मातुलनाम्न्यङ्ग स्वानां नस्तत्प्रजासु च ॥५॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! मातुलनाम्नि कुलामये कंसे एधमाने स्वानां तत्प्रजासु च किं नु नः कुशलं पृच्छे ॥५॥

अनुवाद— हे चाचाजी नाम मात्र के मामा कंस तो हमारे कुल के लिए व्याधि हैं जब तक उनकी समृद्धि हो रही है तब तक अपने बान्धवों तथा कंस की प्रजाओं का कुशल मैं क्या पूछूं ?॥५॥

भावार्थ दीपिका

एवं प्रश्नोऽपि मम नातिसङ्गत इत्याह-किं न्विति । अङ्ग हे अक्रूर, पृच्छे पृच्छामि । नोऽस्माकं कुलस्यामये रोगे नो मातुल इति नाम यस्य तस्मिन् । नः स्वानां ज्ञातीनाम् । तस्य प्रजासु च ॥५॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह का मेरा पूछना भी उचित नहीं इस बात को भगवान् ने अक्रूरजी से कहा । हे अक्रूरजी आपसे मैं पूछता हूँ । नाम मात्र के मामा जो हमारे वंश के लिए व्याधि है । हमारे बन्धुओं कंस की प्रजाओं का भी ॥५॥

अहो अस्मदभूद्भूरि पित्रोर्वृजिनमार्ययोः । यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बन्धनं तयोः ॥६॥

अन्वयः— अहो अस्मत् आर्ययोः पित्रोः भूरि वृजिनम् अभूत् यद हेतोः पुत्रमरणं यद हेतो तयोः बन्धनम् ॥६॥

अनुवाद— चाचाजी यह बड़े ही खेद की बात है कि मेरे ही कारण मेरे सदाचारी और निरपराध माता-पिता को अनेक प्रकार के कष्टों को भोगना पड़ा। मेरे ही कारण उनके पुत्र मारे गये और मेरे ही कारण उन लोगों को कंस ने हथकड़ी और बेड़ी में जकड़ कर उनको जेल में डाल दिया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

अस्मदस्मन्निमित्तम् । वृजिनं दुःखम् । आर्ययोर्निरपराधयोः । यद्धेतोर्योऽहमेव हेतुस्तस्मात् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

अस्मत् अर्थात् मेरे ही कारण । वृजिनम् अर्थात् दुखम् आर्ययोः अर्थात् निरपराध इन सबों का कारण मैं ही हूँ॥६॥

दिष्ट्याद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य काङ्क्षितम् । संजातं वर्ण्यतां तात तवागमनकारणम् ॥७॥

अन्वयः— हे सौम्य मह्यं काङ्क्षितम् दिष्ट्या अद्य स्वानांवः दर्शनम् संजातम् तात तवागमनकारणं वर्ण्यतम् ॥७॥

अनुवाद— मैं बहुत दिनों से चाहता था कि आपलोगों में से किसी का दर्शन हो जाय । यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आज आपका दर्शन हो गया । हे सौम्य स्वभाव वाले चाचाजी अब आप अपने आने का कारण बतलाइये ॥७॥

भावार्थ दीपिका

हे सौम्य, स्वानां वो दर्शनमद्य मम संजातं तद्दिष्ट्या भद्रम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

हे सौम्य ! आपका दर्शन आज हो गया यह बड़े सौभाग्य की बात है ॥७॥

श्रीशुक उवाच

पृष्टो भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः । वैरानुबन्धं यदुषु वसुदेववधोद्यमम् ॥८॥

अन्वयः— भगवता पृष्टः माधवः सर्वं वर्णयामास यदुषु वैरानुबन्धं वसुदेव वधोद्यमम् ॥८॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवान् के द्वारा पूछे जाने पर अक्रूरजी ने सारी बातें बतलायी कि कंस सभी यदुवंशियों से वैर ठान लिया है और वसुदेवजी को मार डालना चाहता है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

माधवो मघोर्वशजः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

मधुवंशी होने के कारण अक्रूरजी का माधव कहा गया है ॥८॥

यत्संदेशो यदर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयम् । यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्मानकदुन्दुभेः ॥९॥

अन्वयः— यत्संदेशः वा यदर्थं स्वयं दूतः प्रेषित; यत् नारदेन अस्य स्वजन्मान्कदुन्दुभेः ॥९॥

अनुवाद— कंस का जो संदेश था उसे बतलाये, जिसके लिए कंस ने अक्रूरजी को दूत बनाकर जिस काम के लिए भेजा था उसको तथा यह भी की नारदजी ने यह भी बतला दिया है कि श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों भाई वसुदेवजी के पुत्र हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

यो धनुर्मखच्छद्मा संदेशो यस्य । तदर्थं चाणूरादिभिर्घातनार्थम् । अस्य कृष्णस्य पुरतो वर्णयामास । स्वजन्म कृष्णजन्म। आनकदुन्दुभेः सकाशात् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

धनुयर्ज्ञ के बहाने जो संदेश था । भगवान् और बलरामजी को मारने के लिए चाणुरादि की नियुक्ति । भगवान् श्रीकृष्ण को बतलाये । नारदजी ने कंस को बतला दिया था कि श्रीकृष्ण वसुदेवजी के पुत्र हैं ॥९॥

श्रुत्वाऽक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा । प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञादिष्टं विजज्ञतुः ॥१०॥

अन्वयः— अक्रूरस्य वचः श्रुत्वा परवीरहा कृष्णो बलश्च प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञादिष्टं विजज्ञतुः ॥१०॥

अनुवाद— अक्रूरजी की बातों को सुनकर शत्रुओं का दमन करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी जोर से हँसकर राजा कंस का जो संदेश था उसको अपने पिता नन्दजी को सुना दिए ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

विजज्ञतुर्विशेषेण ज्ञापयामासतुः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

विजज्ञतुः अर्थात् विशेष रूप से बतलाये ॥१०॥

गोपान् समादिशत्सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः। उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ॥११॥
यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसान् । द्रक्ष्यामः सुमहत्पर्व यान्ति जानपदाः किल ॥
एवमाघोषयत् क्षत्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ॥१२॥

अन्वयः— सः अपि गोपान् समादिशत् सर्वगोरसः गृह्यताम् उपायनानि गृह्णीध्वम् शकटानियुज्यन्ताम्, श्वः मधुपुरीं यास्यामः नृपते रसान् दास्यामः सुमहत्पर्व द्रक्ष्यामः जनपदाः किल यान्ति। एवं नन्दगोपः क्षत्रा स्वतोकुले अघोष यत्॥११-१२॥

अनुवाद— नन्द बाबा ने भी सभी गोपों को आज्ञा दे दी कि सारा गोरस एकत्रित कर लो, भेंट की सामग्री ले लो और छकड़ों को नाध लो कल हम सभी मथुरा जायेंगे, वहा चलकर राजा कंस को गोरस देंगे । वहाँ बहुत बड़ा उत्सव हो रहा है । उसको देखने के लिए देश की सारी जनता एकत्रित हो रही है । उसको हमलोग भी देखेंगे । नन्दबाबा ने गाँव के कोतवाल से पूरे व्रज में यह घोषणा करवा दी ॥११-१२॥

भावार्थ दीपिका

सोऽपि नन्दो गोपान् समादिशत् । तदेव दर्शयति-गृह्यतामित्यादिना । गोरसः क्षीरादिः । उपायनान्युत्तमवस्तूनि ॥११॥ रसान् घृतादीन् । शब्दच्छलेनेदं सूचयति-अचिकित्स्यस्य रोगस्य चिकित्सार्थं रसान् दास्याम इति । क्षत्रा व्रजरक्षाधिकृतेन । आघोषयत् सर्वतो घोषितवान् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

नन्दजी ने गोपों को आदेश दे दिया । उसी को **गृह्यताम्० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं **गोरसः** अर्थात् दूध आदि । उपायनानि अर्थात् भेंट की उत्तम सामग्री । रसान् घी आदि । शब्द के व्याज से सूचित करते हैं जिसकी चिकित्सा नहीं हुई उस रोग के लिए रस हम प्रदान करेंगे । क्षत्रा अर्थात् गाँव के कोतवाल से । अघोषयत् अर्थात् सब जगत घोषणा करवा दिए ॥११-१२॥

गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् । रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ।।१३।।

अन्वयः— रामकृष्णै पुरीं नेतुम् व्रजम् आगतम् अक्रूरं आगतम् तत् उपश्रुत्य ताः गोप्यः भृशम् व्यथिताः बभूवुः।।१३।।

अनुवाद— बलरामजी और भगवान् को मथुरापुरी ले जाने के लिए अक्रूरजी व्रज में आये हैं, इस बात को सुनकर श्रीभगवान् की प्रेयसी गोपियाँ बहुत दुःखी हुईं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ताः कृष्णैकजीवना गोप्यस्तत्तदाक्रूरमागतमुपश्रुत्येति ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ही जिन सबों के एकमात्र जीवनधार हैं ऐसी गोपियाँ अक्रूरजी के आगमन को सुनकर अत्यन्त दुःखी हो गयीं ।।१३।।

काश्चित्तत्कृतहृत्तापश्वासम्लानमुखश्रियः । स्त्रंसद्दुकूलवलयकेशग्रन्थ्यश्च काश्चन ।।१४।।

अन्वयः— काश्चित् तत्कृत हृत्तापश्वासम्लानमुखाश्रियः संसद्दुकूलवलय केश ग्रन्थ्यश्च काश्चन ।।१४।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के मथुरा जाने की बात सुनते ही बहुत सी गोपियों के हृदय में ऐसी जलन हुई कि उनके गर्मश्वास के कारण उन सबों की मुखश्री मलिन हो गयी ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

व्यथालिङ्गान्याह पञ्चभिः-काश्चिदिति । तेन श्रवणेन कृतो यो हृत्तापस्तेन यः श्वासस्तेन म्लाना मुखश्रीर्यासां ता बभूवुरिति। दुकूलानि च वलयानि च केशग्रन्थयश्च, स्त्रंसन्तो दुकूलादयो यासां तथाभूताः काश्चन बभूवुरिति ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

गोपियों को हुए कष्ट के चिह्नों का वर्णन पाँच श्लोकों से करते हैं । उस समाचार को सुनकर गोपियों के हृदय में उत्पन्न संताप जन्य गर्म श्वास से गोपियों की मुख की शोभा मलीन हो गयी । कुछ तो इतना अचेत हो गयीं कि उनको अपना गिरती हुई साड़ी गिरते हुए कङ्गन और खुलते हुए केशबन्ध का ही पता नहीं चला ।।१४।।

अन्याश्च तदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तयः । नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ।।१५।।

अन्वयः— अन्याश्च तदनुध्यान निवृताशेष वृत्तय आत्मलोकं गता इव इमं लोकं न अभ्यजानन् ।।१५।।

अनुवाद— दूसरी कुछ गोपियों को श्रीभगवान् के स्वरूप का ध्यान आते ही उनकी सारी वृत्तियाँ इस तरह से निवृत्त हो गयीं कि जैसे वे समाधिस्थ हो गयी हों और उन्हें इस संसार का भी ज्ञान नहीं रहा ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

तस्य श्रीकृष्णस्यानुध्यानेन निवृत्ता अशेषाश्चक्षुरादिवृत्तयो यासां ता इमं लोकं देहमपि न जानन्ति स्म मुक्ता इवेति।।१५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण का ध्यान आते ही उनकी सारी नेत्र आदि की वृत्तियाँ ही निवृत्त हो गयीं और मुक्तों के समान उनको अपने शरीर का भी ध्यान नहीं रहा ।।१५।।

स्मरन्त्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः । हृदिस्पृशश्चित्रपदा गिरः संमुमुहूः स्त्रियः ।।१६।।

अन्वयः— अन्याः शौरे अनुरागस्मितेरिताः हृदिस्पृशः चित्रपदाः गिरः स्मरन्त्यः संमुमुहुः ।।१६।।

अनुवाद— कुछ गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्ण मन्द मन्द मुस्कान मिश्रित हृदय स्पर्शी विचित्र पदों से युक्त श्रीभगवान् की वाणी का स्मरण करके वे उसी में तल्लीन होकर मोहित हो गयीं ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

अपराः स्त्रियः शौरेर्गिरः स्मरन्त्यः संमुमुहुः । कथंभूताः । अनुरागेण यत्स्मितं तेनेरिताः । हृदि स्पृशन्तीति हृदिस्पृशो मनोज्ञाः । चित्राणि पदानि यासु ताः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

कुछ श्रीभगवान की वाणी का ही स्मरण करके मोहित हो गयीं । कैसी वाणी ? अनुराग पूर्ण मुस्कान पूर्वक उच्चारण की गयी । अत्यन्त मनोहर तथा विचित्र पदों से युक्त वाणी ॥१६॥

गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहासावलोकनम्। शोकापहानि नर्माणि प्रोद्दामचरितानि च॥१७॥
चिन्तयन्त्यो मुकुन्दस्य भीता विरहकातराः । समेताः सङ्घशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः॥१८॥

अन्वयः— सुललितां गतिं, चेष्टां स्निग्ध सावलोकनम् शोकापहानि, नर्माणि प्रोदाम चरितानि च, मुकुन्दस्य चिन्तयन्त्यः विरहकातराः भीताः संघशः समेताः अच्युताशयाः अश्रुमुख्यः प्रोचुः ॥१७-१८॥

अनुवाद— गोपियाँ मन ही मन श्रीभगवान की मनोज्ञ चाल, उनकी भाव भंगिमा प्रेम परिपुष्ट मुस्कान, चितवन, समस्त शोकों के विनष्ट कर देने वाली हँसी की बातें, तथा औदार्य पूर्ण लीलाओं का चिन्तन करने लगीं। उनके विरह के भय से वे सब कतार हो गयीं, क्योंकि उनके जीवन सर्वस्व थे श्रीभगवान् । उन सबों की आँसू उमड़ आये और वे सब संघशः एकत्रित होकर कहने लगीं ॥१७-१८॥

भावार्थ दीपिका

विरहेण कातरा विह्वलाः । अच्युते आशयश्चित्तं यासां ताः ॥१७-१८॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् के विरह के भय से कातर हो गयी थीं, क्योंकि उन सबों का मन भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा हुआ था ॥१७-१८॥

गोप्य ऊचुः

अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ।
तांश्चाकृतार्थान्वियुनङ्क्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥१९॥

अन्वयः— अहो विधातः तव क्वचिद् दया न, देहिनः प्रणयेन मैत्र्यासंयोज्य तान् च अकृतार्थान् अपार्थकं विनियुंक्ष्व अर्भकं यथाते विक्रीडितम् ॥१९॥

गोपियों ने कहा

अनुवाद— अरे विधाता तुम्हारे हृदय में दया बिल्कुल नहीं है; पहले तो तुम संसारी प्राणियों को एक दूसरे से प्रेम तथा सौहार्द से मिला देते हो, जब तक उन दोनों प्राणियों की अभिलाषाएँ पूरी नहीं हो जाती उससे पहले ही उन सबों को एक दूसरे से व्यर्थ ही विलग कर देते हैं । तुम्हारी यह क्रीड़ा बच्चों की क्रीडा के समान व्यर्थ ही है॥१९॥

भावार्थ दीपिका

कृष्णसङ्गतिं विधाय विघट्टयतीति विधातारं प्रत्येकमाक्रोशन्त्य आहुः-अहो इति । मैत्र्या हिताचरणेन । प्रणयेन स्नेहेन च अकृतार्थानप्राप्तभोगानपि तान्वियुनङ्क्षि वियोजयसि । तस्मान्न तव दया । बालिशोऽपि त्वमित्याहुः-अपार्थकमिति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अहो० इत्यादि श्लोक से गोपियाँ विधाता को कोशती हुई कहती हैं, पहले तो तुमने हमलोगों को कृष्ण

से मिला दिया अब तुम हमलोगों से कृष्ण को अलग कर रहे हो। मैत्र्या अर्थात् मित्रता के द्वारा और प्रणयेन अर्थात् स्नेह के द्वारा जिनकी अभिलाषाएँ पूर्ण नहीं हुई हैं ऐसी हमलोगों से कृष्ण को विलग कर रहे हो। अतएव तुममें दया है ही नहीं। अपार्थक कहकर गोपियों ने विधाता की क्रीडा को मूखर्तापूर्ण बतलाया ॥१९॥

यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुन्तलावृतं मुकुन्दवक्त्रं सुकपोलमुन्नसम्।
शोकापनोदस्मितलेशसुन्दरं करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥२०॥

अन्वयः— यः त्वं असित कुन्तलावृतं, सुकपोलमुन्नसं शोकापनोदस्मितलेश सुन्दरं मुकुन्दवक्त्रं प्रदर्श्य पारोक्ष्यं करोषि ते कृतम् असाधु ॥२०॥

अनुवाद— हे विधाता पहले तो तुमने काले घुंघराले केशों से आवृत मरकतमणि के समान चिकने और स्निग्ध कपोल तथा उठी हुई नाक, अधरों पर मन्द मुस्कान की सुन्दर रेखा जो समस्त शोकों का अपनो दन कर देने वाली है इन सबों समलंकृत श्रीकृष्ण के मुख कमल को हमें दिखाया और अब तुम उसको हमारी आँखों से दूर कर रहे हो यह तुम्हारा काम अत्यन्त अनुचित है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

विगर्हितं तवेदं कर्मेत्याहुः-यस्त्वमिति। शोकमपनुदतीति शोकापनोदः, स चासौ स्मितलेशश्च गूढहासस्तेन सुन्दरं मुकुन्दस्य वक्त्रं सकृत् प्रदर्श्य पुनस्तस्य पारोक्ष्यमदृश्यतां करोषि, अतस्तव कृतं कर्माऽसाधु निन्द्यमित्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

गोपियों ने कहा कि हे विधातः तुम्हारा यह निन्दित कर्म है। शोक को दूर करने वाले गूढ हँसी से मनोहर बने श्रीकृष्ण के मुख को एक बार दिखाकर तुम हमारी आँखों से दूर कर रहे हो अतएव यह तुम्हारा काम निन्दनीय है॥२०॥

क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म नश्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत्।
येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥२१॥

अन्वयः— क्रूरः त्वम् अक्रूर समाख्यया स्म दत्तं हि नः चक्षुः बत अज्ञवत् हरसे। येन वयं मधुद्विषः एकदेशे त्वदीयम् अखिलसर्ग सौष्ठवम् अद्राक्ष्म ॥२१॥

अनुवाद— तुम स्वयं क्रूर हो अतएव यहाँ अक्रूर के वेष में तुम ही आये हो। तुमने ही हमें नेत्र प्रदान किया है, किन्तु अपने ही द्वारा दिए गये नेत्रों को तुम अज्ञानी के समान हमसे छिन रहे हो। इन आँखों से ही हमलोग प्रियतम श्रीकृष्ण के एक ही अङ्ग में तुम्हारी सम्पूर्ण सृष्टि के सौन्दर्य को देखती थीं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

किंच दत्तापहारित्वेनातिक्रूरस्त्वमित्याहुः-क्रूरस्त्वमिति। नन्वक्रूरो हरति, नाहमिति चेदत आहुः-अक्रूरसमाख्ययेति। नह्येवं कर्तुमन्यः प्रभवति, अतो नामान्तरेण स्म ध्रुवं त्वमेवागतोऽसि। कृष्णं हरामि, न युष्मच्चक्षुरिति चेत्, न। येन त्वद्दत्तेन चक्षुषा मधुद्विष एकदेशे नेत्रवक्त्रादौ त्वदीयं समग्रं सृष्टिनैपुणमद्राक्ष्म दृष्टवत्यो वयं, तच्चक्षुः। अयं भावः-मम सर्वं रहस्यमाभिर्ज्ञातमित्यमर्षेणेव कृष्णं वियोजयन्नस्मानन्धीकरोषीति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

क्रूर स्त्वम्० इत्यादि श्लोक से गोपियाँ कहती है कि अपने द्वारा ही प्रदत्त वस्तु को छिनने के कारण तुम अत्यन्त क्रूर हो। यदि तुम कहो कि मैं नहीं हरण करने का काम अक्रूर कर रहे हैं तो ऐसी बात नहीं है, ऐसा काम कोई दूसरा नहीं कर सकता अतएव अक्रूर के नाम से तुम ही आये हो। यदि कहो कि मैं तो कृष्ण का हरण कर रहा हूँ तुम लोगों के नेत्रों को नहीं तो ऐसी भी बात नहीं है। जिस तुम्हारे द्वारा प्रदत्त नेत्रों से हमलोग

मधुसूदन के नेत्र मुख इत्यादि एक-एक अङ्ग में तुम्हारी सृष्टि की सम्पूर्ण निपुणता को देखती थीं उस नेत्र का ही तुम हरण कर रहे हो । कहने का अभिप्राय है, तुम जानते हो कि हमारे सम्पूर्ण रहस्य को ये गोपियाँ जान गयी हैं, इसी क्रोध के कारण तुम हमारे कृष्ण को हमलोगों से वियुक्त कर रहे हों ।।२१।।

न नन्दसूनुः क्षणभङ्गसौहृदः समीक्षसे नः स्वकृतातुरा बत ।
विहाय गेहान्स्वजनान्सुतान्पतींस्तद्दास्यमद्धोपगता नव प्रियः ॥२२॥

अन्वयः— बत नन्दसूनुः नवप्रियः क्षणभङ्गसौहृदः गेहान् स्वजनान् सुतान् पतीन् विहाय अद्धातद्दास्यम् गता स्वकृतातुरा नः न समीक्षते ।।२२।।

अनुवाद— यह खेद की बात है कि श्रीकृष्ण को भी नये-नये लोग से नेह लगाने की आदत बन गयी है । इनका प्रेम क्षणभङ्गुर है, अपने गृहों, बान्धवों, पुत्रों तथा अपने पतियों का परित्याग करके हमलोग जिन प्रियतम श्रीकृष्ण की दासियाँ बन गयीं वे इस समय हमलोगों को देखते भी नहीं है ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

विधातारं विहाय परस्परमूचुः-न नन्दसूनुरिति । वतेति खेदे । क्षणभङ्गमस्थिरं सौहृदं यस्य सः । गृहादीन् विहायाद्धा साक्षात्तस्यैव दास्यमुपगताः स्वकृतातुरास्तत्कृतेनैव स्मितादिना परवशा अपि नोऽस्मान्न समीक्षते । नवं नवं प्रियं यस्य सः । अत एनं निवारयाम इति भावः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

विधाता को छोड़कर गोपियाँ परस्पर में **न नन्दसूनु० इत्यादि** कहने लगीं यह खेद की बात है कि श्रीकृष्ण का प्रेम क्षणभङ्गुर है । अपने गृह आदि का परित्याग करके हमलोग श्रीकृष्ण की साक्षात् दासियाँ बन गयीं । उनके द्वारा की गयी मुस्कान आदि के कारण हमलोग उनके अधीन हो गयीं किन्तु ये हमलोगों को नहीं देखते हैं । इनको भी नया-नया प्रेमी प्रिय हैं । अतएव इनको ही हमलोग रोकें ।।२२।।

सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवम् ।
याः संप्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः पास्यन्त्यपाङ्गोत्कलितस्मितासवम् ॥२३॥

अन्वयः— ध्रुवम् पुर योषितां इयं रजनी सुखं प्रभाता आशिषः सत्या; बभूवुः । यः संप्रविष्टस्य व्रजस्पतेः अपांगोत्कलितस्मितासवम् मुखं पास्यन्ति ।।२३।।

अनुवाद— निश्चित रूप से मथुरा नगरी की स्त्रियों के लिए आज की रात का प्रात:काल बड़ा ही मङ्गलमय होगा, आज उनकी सारी अभिलाषायें पूर्ण हो जायेंगी । जो श्यामसुन्दर तिरछे प्रेक्षण और मन्दमुस्कान से युक्त मुख कमल के मादक आसव को वितीर्ण करते हुए मथुरा पुरी में प्रवेश करेंगे । उस समय वे सब उसका पान करकें कृतकृत्य हो जायेंगी ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

सेर्ष्यमूचुः-सुखं प्रभातेति । व्रजस्पतेः श्रीकृष्णस्य मुखं पास्यन्त्यादरेण द्रक्ष्यन्ति । कथंभूतम्- अपाङ्गेन नेत्रप्रान्तेनोत्कलितमुज्जृम्भितं स्मितमेवासवो रसो यस्मिंस्तत्। यद्वा अपाङ्गोत्कलितस्मितेनासवरूपं यन्मुखम्। ततश्च पानं मुख्यमेव संभावयन्ति।।२३।।

भाव प्रकाशिका

सुखं प्रमाता इत्यादि श्लोक से गोपियों ने ईर्ष्या पूर्वक कहा कटाक्षपात से विजृम्भित मन्द मुस्कान रूपी आसव युक्त । अथवा कटाक्षपात से मिश्रित मुस्कान जन्य आसवरूप मुख का पान ही प्रधान है इस तरह की संभावना गोपियाँ करती हैं ।।२३।।

तासां मुकुन्दो मधुमञ्जुभाषितैर्गृहीतचित्तः परवान्मनस्व्यपि ।
कथं पुनर्नः प्रतियास्यतेऽबला ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥२४॥

अन्वयः— परवान् मनस्व्यपि मुकुन्दः तासां मधुमञ्जुभाषितैः गृहीतचित्तः सलज्जस्मित विभ्रमैः भ्रमन् ग्राम्याः अबलाः कथं पुनः प्रतियास्यते ॥२४॥

अनुवाद— श्रीकृष्ण यद्यपि अपने नन्द बाबा इत्यादि गुरुजनों के वश में रहने वाले तथा मनस्वी (धैर्य स्पन्न) हैं फिर भी उन पुरी की युवतियों के मधु के समान मधुर वचनों से इनका चित्त अवश्य आकृष्ट हो जायेगा । ये उनकी लज्जा युक्त मुस्कान तथा भाव-भंगिमा में ही रम जायेंगे । फिर ये हम गँवार अबलाओं के यहाँ लौटकर क्यों आयेंगे?॥२४॥

भावार्थ दीपिका

ननु द्वित्राणि दिनानि तथा भवतु नाम, तथाप्यस्मत्स्नेहाकृष्टः पित्रादिभिश्च परावर्तित आगमिष्यतीत्याशङ्क्याहुः- हे अबलाः, तासां मधुवन्मञ्जुभिर्भाषितैर्वशीकृतचित्तस्तथा तासां सलज्जस्मितैर्विभ्रमैर्भ्रमन् परवान्पित्रादिपरतन्त्रोऽपि । यद्वा व्रजे परेऽन्ये बन्धवः सन्ति यस्य । तथा मनस्वी धीरोऽपि ग्राम्या अविदग्धा नः कथं प्रतियास्यते प्रत्येष्यति, न कथंचिदित्यर्थः॥२४॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि दो तीन दिन तक वैसा हो सकता है, फिर भी हमलोगों के स्नेह से आकृष्ट होकर तथा अपने पिता इत्यादि से लौटाये जाने पर लौटकर आयेंगे ही इस तरह की आशङ्का करके कहती हैं हे गोपियों ! उन सबों की मधु के समान मनोहर वाणी के अधीन चित्त वाले श्याम तथा उन सबों के लज्जा युक्त मुस्कान तथा विलासपूर्ण भाव भंगी में ही रमे हुए वे अपने गुरुजनों के अधीन रहने पर भी, अथवा व्रज में जिनके दूसरे बन्धु हैं वे श्रीकृष्ण मनस्वी होकर भी हम गँवार ग्वालिनों के यहाँ क्यों आयेंगे ? अर्थात् वे कभी भी नहीं आयेंगे ॥२४॥

अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते दाशार्हभोजान्धकवृष्णिसात्वताम् ।
महोत्सवः श्रीरमणं गुणास्पदं द्रक्ष्यन्ति ये चाध्वनि देवकीसुतम् ॥२५॥

अन्वयः— अद्य तत्र ध्रुवं दाशार्ह भोजान्धकवृष्णिसात्वताम् दृशः ध्रुवं महोत्सवो भविष्यते ये च अध्वनि श्रीरमणं गुणास्पदं देवकीसुतम् द्रक्ष्यन्ति तेषां दृशः महोत्सवः भविष्यते ॥२५॥

अनुवाद— आज निश्चित रूप से मथुरा में दाशार्ह भोज, अन्धक तथा वृष्णि वंशी यादवों के नेत्रों का महान् उत्सव होगा तथा जो लोग रास्ते में जाते हुए लक्ष्मीरमण तथा समस्त गुणों के आश्रय देवकी नन्दन श्रीकृष्ण का दर्शन करेंगे, उनके नेत्रों का महान् उत्सव होगा ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

किंच अस्मदुत्सवभाजोऽन्य एवाद्य भविष्यन्तीत्याहुः अद्येति । तत्र पुरे दाशार्हादीनां दृशो दृष्टेर्महानुत्सवो भविष्यते भविष्यति । ये देवकीसुतं द्रक्ष्यन्ति । तथा ये चाध्वनि गच्छन्तं द्रक्ष्यन्ति तेषामपि दृशो भविष्यतीति । यद्वा दृश इति द्वितीया। तेषां दृशो नेत्राणि महोत्सवो भविष्यते प्राप्स्यति । प्राप्त्यर्थस्य भवतेरात्मनेपदित्वात् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

हमारे आनन्द से युक्त आज दूसरे ही लोग आनन्दित होंगे इस बात को गोपियों ने **अद्य० इत्यादि** श्लोक से कहा है । आज मथुरा नगरी के दशार्ह इत्यादि यदुवंशियों के नेत्रों को परमानन्द की प्राप्ति होगी । क्योंकि वे लोग श्रीकृष्ण का दर्शन करेंगे । और जो लोग रास्ते में श्रीकृष्ण का दर्शन करेंगे उनके नेत्रों को परमानन्द की प्राप्ति होगी । यहाँ आत्मने पदी भू धातु प्राप्त्यर्थक है ॥२५॥

मैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भूदक्रूर इत्येतदतीव दारुणः ।
योऽसावनाश्वास्य सुदुःखितं जनं प्रियात्प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥२६॥

अन्वयः- एतद्विधस्य अकरुणस्य अक्रूर नाम माभूत इति अतीवदारुणः । असौ सुदुखितं जनं अनाश्वास्य प्रियात् प्रियम् अध्वनः पारम् नेष्यति ॥२६॥

अनुवाद— गोपियाँ आपस में कहती हैं कि जो इतना निष्ठुर है उसका अक्रूर नाम नहीं होना चाहिए, क्योंकि यह तो अत्यन्त निष्कृप है, कृपा करना जानता ही नहीं है । यह जो अक्रूर है, वह हम दुःखी गोपी जनों को किसी भी प्रकार का आश्वासन दिए बिना ही हमारे अत्यन्तप्रिय श्रीकृष्ण को हमलोगों से अत्यन्त दूर ले जायेगा॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अक्रूरं शपन्त्य आहुः- मैतद्विधस्येति । एषा विधा विधानं कर्म यस्य । अतएव निष्कृपस्याक्रूर इति शोभनं नाम मा भूत् । तत्र हेतुः-अतीव दारुण इत्यादि । प्रियात् प्राणादपि प्रियतरं कृष्णमध्वनः पारमस्मद्दृगगोचरत्वादतिदूरं देशं नेष्यति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

मैतद्विधस्य इत्यादि श्लोक के द्वारा गोपियाँ अक्रूरजी की निन्दा करती हुई कहती हैं जिसका इस प्रकार का कर्म है । यह कृपा से शून्य निष्कृप है अतएव इसका अक्रूर नाम नहीं होना चाहिए । उसका कारण है कि यह अत्यन्त कठोर है । यह हमारे प्राणों से भी प्रिय श्रीकृष्ण को हमारे नेत्रों से दूर देश में ले जायेगा ॥२६॥

अनार्द्रधीरेष समास्थितो रथं तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः ।
गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं दैवं च नोऽद्य प्रतिकूलमीहते ॥२७॥

अन्वयः— अनार्द्रधीः एषः रथं समास्थितः तम् अनु अमी दुर्मदा, गोपाः च अनोभिः त्वरयन्ति, स्थविरैः उपेक्षितं, दैवं च अद्य नः प्रतिकूलम् ईहते ॥२७॥

अनुवाद— ये निष्ठुर श्रीकृष्ण भी रथ पर बैठ गये । और उनके पीछे ये मदमत्त गोप भी छकड़ों को नाँघ कर शीघ्रता कर रहे हैं । इन बूढे लोग भी उन सबों की उपेक्षा कर दिए हैं । सोच रहे हैं कि जाओ, जो मन करे सो करो हम क्या करें । लगता है आज यह दैव भी हमलोगों के प्रतिकूल आचरण कर रहा है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अहो धिगस्मज्जीवितमित्याहुः-अनार्द्रधीरिति । अनार्द्रा कठिना धीर्यस्य स तावदेष कृष्णो रथमधिरूढः अस्याविनयमालक्ष्य स्थविरैश्चोपेक्षितम् । ते न निवारितवन्त इत्यर्थः । किंच-दैवं चेति । अयं भावः यदि दैवमस्माकमनुकूलं भवेत्तर्हि विघ्नैः कश्चिदेषां मध्ये प्रतिहन्येत । अकस्माद्वज्रपातो वा भवेत् । अन्यद्वा किंचिदनिष्टं स्यान्न तु तत्किंचिदस्तीति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

गोपियाँ कहती हैं धिक्कार है हमलोगों के जीवन को जो हमारे श्रीकृष्ण भी निष्ठुर हैं देखो वे भी जाकर रथ पर बैठ गये । उनकी इस दुर्विनीतता को देखकर बूढ़ों ने भी उनकी उपेक्षा कर दी है । उन लोगों ने रोका भी नहीं किन्तु दैव भी हमलोगों के प्रतिकूल ही है । यदि वह हमलोगों के अनुकूल होता तो इन लोग की इस यात्रा में विघ्न उपस्थित कर देता । वज्रपात होने लगता या दूसरा अनिष्ट होने लगता । लेकिन कुछ भी नहीं हो रहा है ॥२७॥

निवारयामः समुपेत्य माधवं किं नोऽकरिष्यन् कुलवृद्धबान्धवाः ।
मुकुन्दसङ्गान्निमिषार्धदुस्त्यजाद्दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥२८॥

अन्वयः— समुपेत्य माधवं निवारयामः कुलवृद्धवान्धवाः नः किं अरिष्यन्, निमिषाधदुस्त्यजात् मुकुन्दसंगात् दैवेन विध्वंसित दीनचेतसाम् ॥२८॥

अनुवाद— चलो हम सब चलकर अपने प्रियतम श्रीकृष्ण को रोकें । कुल के बड़े बूढ़े लोग हमारा क्या कर लेंगे । हमलोग तो आधे क्षण के भी उनकी संगति को नहीं त्याग सकती थीं, किन्तु दुर्भाग्य ने वह सब कुछ चौपट कर दिया । उसने हमारे चित्त को विनष्ट और व्याकुल बना दिया है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

परस्परं संमन्त्र्य साहसमधिरुह्याहुः-निवारयाम इति । अकरिष्यन् करिष्यन्ति । निमिपार्धदुस्त्यजान् मुकुन्दसङ्गाद्विध्वंसितानि वियोजितान्यत एव दीनानि चेतांसि यासाम् । एवंभूतानामस्माकं न मृत्योरपि भयमित्यर्थः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

आपस में फिर मन्त्रणा करके साहस को अपनाकर कहती हैं कि हमलोग स्वयं श्रीकृष्ण को चल कर रोकें। अकरियन् अर्थात् करेंगे । आधा क्षण के लिए भी दुस्त्यज श्रीकृष्ण की सङ्गति को दुर्भाग्य ने उसको विध्वंसित कर दिया । उसने श्रीकृष्ण को हमसे अलग कर दिया अतएव हमलोगों का चित्त हीन हो गया है । अतएव हमलोगों को मृत्यु से भी भय नहीं है ।।२८।।

यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्रलीलावलोकपरिरम्भणरासगोष्ठयाम् ।
नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा विना तं गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरन्तम् ।।२९।।

अन्वयः— यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्र लीलावलोकपरिरम्भण रासगोष्ठयाम् नः क्षणदाक्षणमिव नीताः स्म हे गोप्यः तं विना दुरन्तम् तमः कथं नु अतिरेम ।।२९।।

अनुवाद— सखियों जिनकी प्रेम भरी मनोहर मुस्कान मीठी-मीठी बातें विलासपूर्ण अवलोकन और प्रेमालिङ्गन् के द्वारा हमलोगों ने उस विशाल रात्रिको एकक्षण के समान बिता दिया, उनके बिना उनकी विरह व्यथा को हमलोग कैसे पार करेंगी ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

इतोऽपि कारणादवश्यं साहसमेवावलम्बनीयमित्याहुः- हे गोप्यः यस्य ललितं स्मितं च, वल्गु मन्त्रश्च, लीलावलोकश्च, परिरम्भणं चानुरागेणैतानि यस्यां रासगोष्ठ्यां रासक्रीडासभायां नोऽस्माभिः क्षणदा रात्रयः क्षणमिव नीतास्तममुं कृष्णं विना दुरन्तं तमो विरहदुःखं कथं नु अतितरेम । न कथंचिदित्यर्थः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

इसलिए हमलोगों को साहस को ही अपनाना चाहिए हे गोपियों जिनकी मधुर मुस्कान मीठी-मीठी बातें, प्रेम पूर्वक वीक्षण तथा आलिङ्गन ये सारी बातें प्रेमपूर्वक की गयी और उस रासक्रीडा की सभा में वे रात्रियाँ एक क्षण के समान बीत गयीं पता ही नहीं चला उन श्रीकृष्ण के बिना इस घोर विरह जन्य दुःख को हम कैसे पार करेंगी ?।।२९।।

योऽह्नः क्षये व्रजमनन्तसखः परीतो गोपैर्विशन् खुररजश्छुरितालकस्रक् ।
वेणुं क्वणन् स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ।।३०।।

अन्वयः— यः अनन्तसखः अह्नः क्षये गोपैः परीतः व्रजम्, विशन् खुररजश्छुरितालकस्रक् वेणुं क्वणन् स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन चित्तं क्षिणोति अमुमृते नुकथं भवेम ।।३०।।

अनुवाद— जो बलरामजी के मित्र श्रीकृष्ण सायंकाल प्रतिदिन गोपों के साथ गौ चराकर व्रज में आते थे तो उनकी काली घुंघराली अलकें वनमाला गौओं की खुर की धूल से ढंके रहते थे । वे वंशी बजाते हुए मन्दमुस्कान युक्त तिरछा कटाक्षपात के द्वारा हमलोगों के चित्त को बेध देते थे । उन श्रीकृष्ण के बिना हमलोग कैसे रहेंगी ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

किंच आस्तां तावत्तमोऽतितरणं जीवनमेव कथं स्यादित्याहुः-य इति । अह्नःक्षये दिनावसाने खुररजोभिश्छुरिता धूसरा अलकाः स्रजश्च यस्य स व्रजं विशन् स्मितेन यत्कटाक्षनिरीक्षणं तेन नचित्तं क्षिणोति हरति । अमुं कृष्णं विना कथं भवेम जीवेम॥३०॥

भाव प्रकाशिका

विरह व्यथा को पार करने की बात छोड़ो हमलोग जी ही कैसे सकती हैं ? प्रतिदिन सायंकाल गायों के खुर की धूल से धूसरित जिनके केश तथा मालाएँ भरी रहती थीं वे व्रज में प्रवेश करते समय जो मन्दमुस्कान पूर्वक जो कटाक्षपात करते थे, उससे वे हमारे चित्त को चुरा लेते थे । उन श्रीकृष्ण के बिना हमलोगों का जीवन ही कैसे रह सकता है ?॥३०॥

श्रीशुक उवाच

एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः ।
विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥३१॥

अन्वयः— एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं कृष्णविविक्तमानसाः व्रजस्त्रियः लज्जां विसृज्य सुस्वरं रुरुदुःस्म गोविन्द दामोदर माधव इति ॥३१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से कहती हुई श्रीकृष्ण विरह से व्याकुल गोपियाँ जिनका मन केवल श्रीकृष्ण में ही लगा था वे गोपियाँ लज्जा का परित्याग करके हे गोविन्द, हे दामोदर, हे माधव कह-कहकर सुन्दर स्वर से रोने लगीं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

कृष्णे विषक्तानि मानसानि यासाम् । सुस्वरमुच्चैः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

जिन सबों का मन भगवान् श्रीकृष्ण में ही आसक्त था वे जोर-जोर से रोने लगीं ॥३१॥

स्त्रीणामेवं रुदन्तीनामुदिते सवितर्यथा । अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम् ॥३२॥

अन्वयः— एवं रुदन्तीनाम् स्त्रीणाम् अथ उदिते सवितरि कृतमैत्रादिकः अक्रूरः रथं चोदयामास ॥३२॥

अनुवाद— जब इस प्रकार से गोपियाँ रो रही थीं उसी समय सूर्योदय हो गया था, अक्रूरजी ने भी संध्यावन्दनादि क्रियाओं से निवृत्त होकर रथ को मथुरा के लिए हाँका ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

'क्रूरमक्रूरतः श्रुत्वा कंसं कंसनिषूदनः । गोपीमनोरथारामः सरामः स्वपुरं ययौ' ॥१॥ स्त्रीणामिति । ता अनादृत्य कृतमैत्रादिको मैत्रं मित्रदैवतं सन्ध्योपासनं तदादिकर्म कृतं येन सः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

कंस को मारने वाले भगवान् श्रीकृष्ण अक्रूरजी के मुख से कंस को क्रूर सुनकर गोपियों के मनोरथों के एकमात्र आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण अपनी पुरी मथुरा में चले गये ॥१॥ उन सबों की परवाह न करके संन्ध्यावन्दन करके॥३२॥

गोपास्तमन्वसज्जन्त नन्दाद्याः शकटैस्ततः । आदायोपायनं भूरि कुम्भान् गोरससंभृतान् ॥३३॥

अन्वयः— ततः नन्दाद्याःगोपाः गोरसम्भृतान् कुम्भान् भूरि उपायनं च आदाय तम् अन्वसज्जन्त ॥३३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् नन्दजी इत्यादि गोपगण दूध, दही, घी आदि से भरे घड़ों तथा बहुत सी भेंट सामग्री लेकर छकड़ों पर चढ़कर उनके पीछे-पीछे चले ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

अन्वसज्जन्तान्वगच्छन् ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

अन्वसज्जन्त अर्थात् अनुगमन किए ।।३३।।

गोप्यश्च दयितं कृष्णमनुव्रज्यानुरञ्जिताः । प्रत्यादेशं भगवतः काङ्क्षन्त्यश्चावतस्थिरे ।।३४।।

अन्वयः— अनुरञ्जिताः गोप्यः च दयितं कृष्णम् अनुव्रज्य भगवतः प्रत्यादेशं कांक्षन्त्यः अवतस्थिरे ।।३४।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण से प्रेम करने वाली गोपियाँ भी अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के पास गयीं, वे भगवान् श्रीकृष्ण से संदेश प्राप्त करने की इच्छा से रुक गयीं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

अनुरञ्जिताः परावृत्य निरीक्षणादिभिः किंचिदानन्दिताः । प्रत्यादेशं प्रत्याख्यानम् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

प्रेमी गोपियों को भगवान् ने मुड़कर जब देखा तो गोपियों को कुछ आनन्द मिला । अब वे भगवान् का सन्देश प्राप्त करने के लिए रुक गयीं ।।३४।।

तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः । सान्त्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ।।३५।।

अन्वयः— स्वप्रस्थाने ताः तया तप्यतीः वीक्ष्य यदूत्तमः अयास्ये इति सप्रेमैः आश्वासयामास ।।३५।।

अनुवाद— अपने प्रस्थान काल में गोपियों को उस तरह से संतप्त होते देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने दूत के द्वारा मैं आऊँगा इस तरह से सन्देश भेजकर उन सबों को सान्त्वना प्रदान किया ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

तप्यतीः संतप्यमानाः । आयास्ये शीघ्रमागमिष्यामीति दूतवाक्यैः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

तप्यतीः संतप्त होती हुई शीघ्र ही आऊँगा इस तरह दूत के वाक्यों से ।।३५।।

यावदालक्ष्यते केतुर्यावद्रेणू रथस्य च । अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः ।।३६।।

अन्वयः— यावत् रथस्य केतुः आलक्ष्यते यावत् रेणुः तावत् अनुप्रस्थितात्मानः लेख्यानीवापलक्षिता ।।३६।।

अनुवाद— जब तक रथ पताका दिखता रहा तथा जब तक पहियों से उड़ी धूल दिखती रही तब तक उन सबों ने अपने चित्त को श्रीकृष्ण के साथ ही भेज दिया था तब तक वे गोपियाँ चित्र लिखित के सभानहीं खड़ी रहीं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

कृष्णमनुप्रस्थापिता आत्मानश्चित्तानि याभिस्ताः लेख्यमयपुत्रिका इव निश्चलाः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

जिन सबों ने अपने मन कृष्ण भगवान् के साथ ही भेज दिया था वे गोपियाँ चित्र लिखित के समान निश्चल खड़ी रहीं ।।३६।।

ता निराशा निववृतुर्गोविन्दविनिवर्तने । विशोका अहनी निन्युर्गायन्त्यः प्रियचेष्टितम् ॥३७॥

अन्वयः— गोविन्दविनिवर्तने निराशाः ता निववृतुः प्रियचेष्टितम् गायन्त्यः विशोका अहनी निन्यु ॥३७॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के लौट आने की आशा से निराश गोपियाँ अपने-अपने घर चली गयी और अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान करके वे अपने हृदय के संताप को हल्का करती थीं । और दिन तथा रात बिताती थी ॥३७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

भगवानपिसंप्राप्तोरामाक्रूरतो नृप । रथेन वायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम् ॥३८॥

अन्वयः— हे नृप भगवान् अपि रामाक्रूरतः वायुवेगेन रथेन अघनाशिनीम् कालिन्दीम् संप्राप्तः ॥३८॥

अनुवाद— राजन् भगवान् श्रीकृष्ण भी बलरामजी तथा अक्रूरजी के साथ वायु के समान वेग वाले रथ से पाप विनाशिनी श्रीयमुनाजी के तट पर आ गये ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३८॥

तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम् । वृक्षषण्डमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ॥३९॥

अन्वयः— तत्र मणिप्रभम् मृष्टं पानीयं उपस्पृश्य पीत्वा वृसषण्डमुपव्रज्य सरामः रथमाविशत् ॥३९॥

अनुवाद— वहाँ जाकर उन लोगों ने आचमन करके स्वच्छ मणि के समान जल को पीकर भगवान् श्रीकृष्ण वृक्ष समूह के बीच में जाकर बलरामजी के साथ रथ पर बैठ गये ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

वृक्षाणां षण्डं समूहमुपव्रज्य ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

वृक्षों के समूह में जाकर ॥३९॥

अक्रूरस्तावुपामन्त्र्य निवेश्य च रथोपरि । कालिन्द्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥४०॥

अन्वयः— अक्रूरः तौ उपामन्त्र्य रथोपरिच निवेश्य कालिन्द्याः ह्रदम् आगत्य विधिवत् स्नानम् आचरत् ॥४०॥

अनुवाद— अक्रूरजी ने उन दोनों बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण से विदा लेकर तथा उन लोगों को रथ पर बैठाकर यमुनाजी के उस कुण्ड में आकर विधि पूर्वक स्नान किया ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

शत्रुभ्यः शङ्कितः सन् रथोपरि निवेश्य ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

शत्रु के डर से रथपर बैठाकर ॥४०॥

निमज्ज्य तस्मिन् सलिले जपन्ब्रह्म सनातनम् । तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥४१॥

अन्वयः— तस्मिन् सलिले निमज्ज्य सनातनं ब्रह्म जपन् अक्रूरः तौ एव समन्वितौ रामकृष्णौ ददर्श ॥४१॥

अनुवाद— उस कुण्ड में स्नान करके अक्रूरजी जल में डूबकर गायत्री मन्त्र का जप करने लगे । उस समय अक्रूरजी ने देखा कि जल में राम और कृष्ण दोनों भाई एक साथ बैठे हैं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्म वेदं जपन् । 'क्वेमौ बालौ क्व तौ मल्लाविति शङ्कितचेतसे । अक्रूराय जले रूपमत्याश्चर्यं व्यदर्शयत् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

अक्रूरजी सोच रहे थे कि कहाँ तो ये दोनों बालक और कहाँ वे दोनों पहलवान है, इस तरह शङ्का कर रहे थे इसीलिए भगवान् उनको अत्यन्त आश्चर्य दिखाया ।।४१।।

तौ रथस्थौ कथमिह सुतावानकदुन्दुभेः । तर्हि स्वित् स्यन्दने न स्त इत्युन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ।।४२।।

अन्वयः— रथस्थौ तौ आनक दुन्दुभेः सुतो इह कथम् तर्हि स्वित् स्यन्दने न स्तः इति सः उन्मज्ज्य व्यचष्ट ।।४२।।

अनुवाद— मैं तो वसुदेवजी के पुत्रों को रथ पर छोड़कर आया था वे यहाँ कैसे आ गये । फिर उन लोगों को रथ पर नहीं होना चाहिए, इसलिए उन्होंने सिर उठाकर देखा ।।४२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४२।।

तत्रापि च यथापूर्वमासीनौ पुनरेव स; । न्यमज्जद्दर्शनं तन्मे मृषा किं सलिले तयोः ।।४३।।

अन्वयः— तत्रापि च यथापूर्वम् आसीनौ पुनः एव सः यत् मे सलिले तयोः दर्शनं मृषा किम् इति न्यमज्जत् ।।४३।।

अनुवाद— अक्रूरजी ने देखा कि वे दोनों भाई तो रथ पर पहले के ही समान विद्यमान हैं, उन्होंने सोचा कि जल में जो मैंने देखा वह भ्रम हो सकता है ? इसलिए अक्रूरजी ने पुनः डुबकी लगाई ।।४३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४३।।

भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत् स्तूयमानमहीश्वरम् । सिद्धचारणगन्धर्वैरसुरैर्नतकन्धरैः ।।४४।।

अन्वयः— सः भूयः तत्रापि सिद्धचारणगन्धर्वै रसुरैः नतकन्धरै स्तूयमानम् अहीश्वरम् अद्राक्षीत् ।।४४।।

अनुवाद— वे पुनः देखे कि वहाँ पर शेषनाग विद्यमान हैं और सिंद्ध, चारण, गन्धर्व, असुर सबके सब अपनी गर्दन झुकाकर उनकी स्तुति कर रहे हैं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

सिद्धादिभिः स्तूयमानम् ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

सिद्धआदि जिनकी स्तुति कर रहे थे ।।४४।।

सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम् । नीलाम्बरं बिसश्वेतं शृङ्गैः श्वेतमिव स्थितम् ।।४५।।

अन्वयः— सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम् नीलाम्बरम् विसश्वेतम् शृङ्गैः श्वेतमिव स्थितम् ।।४५।।

अनुवाद— उन्होंने देखा कि शेषनाग के सौ सिर हैं प्रत्येक फण पर मुकुट विराजमान है । कमलनाल के समान श्वेत शरीर पर वे नीलाम्बरधारण किए हुए हैं । लगता है कि हजार शिखरों वाला कैलास पर्वत विद्यमान हैं।।४५।।

भावार्थ दीपिका

सहस्रं शिरांसि यस्य तम् । सहस्रफणेषु मौलयो यस्य सन्तीति तथा तम् । नीले अम्बरे यस्य तम् । विसवत्कमलनालवत् श्वेतम् । शृङ्गैः शिखरै श्वेतं कैलासमिव स्थितम् ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

उनके हजार शिर थे, हजारो सिरों पर किरीट विद्यमान थे । शेषजी नीलाम्बर धारण किए थे । वे कमल नाल के समान श्वेतवर्ण के थे । जैसे अपने हजारों शिखरों वाला कैलास पर्वत विद्यमान हो ।।४५।।

तस्योत्सङ्गे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् । पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्रारुणेक्षणम् ।।४६।।

अन्वयः— तस्योत्सङ्गे घनश्यामं पीतकैशेयवाससम् चतुर्भुजम्, शान्तम् पद्त्रपत्रारुणेक्षणम् चतुर्भुजं अद्राक्षीत् ।।४६।।

अनुवाद— शेषजी के कुण्डलीकृत आधे शरीर पर मेघ के समान श्यामवर्ण वाले, पीताम्बर रेशमी वस्त्र धारण किए हुए, जिनकी चार भुजाएँ थी ऐसे परम शान्त तथा कमलदल के समान मनोहर तथा अरुणिमा लिए हुए नेत्र वाले पुरुष को उन्होंने देखा ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

तस्योत्सङ्गे कुण्डलीकृतदेहार्धे । विलोक्येत्येकादशेन श्लोकेनान्वयः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

शेषजी के कुण्डलीकृत देहार्ध पर आगे के ग्यारहवें श्लोक के विलोक्य पद से इसका अन्वय है ।।४६।।

चारुप्रसन्नवदनं चारुहासनिरीक्षणम् । सुभ्रून्नसं चारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम् ।।४७।।

अन्वयः— चारु प्रसन्नवदनं, चारुहासनिरीक्षणम्, सुभ्रून्नसं चारुकर्णम् सुकपोलारुणाधरम् ।।४७।।

अनुवाद— उनका मुख अत्यन्त मनोहर है, उनकी मधुर हँसी दर्शकों के चित्त को चुरा लेने वाला चितवन सुन्दर भौहे उठी हुई नासिका, सुन्दर कान, कपोल और लाल अधरों की छटा निराली है ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

शोभने भ्रुवौ यस्य, उन्नता नासिका यस्य तं च तं च । शोभनौ कपोलौ यस्य, अरुणावधरौ यस्य तं च तं च ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

सुन्दर भौहों, उठी हुई नासिका, सुन्दर कपोल तथा लाल अधर से युक्त श्रीभगवान् को अक्रूरजी ने देखा।।४७।।

प्रलम्बपीवरभुजं तुङ्गांसोरःस्थलश्रियम् । कम्बुकण्ठं निम्ननाभिं वलिमत्पल्लवोदरम् ।।४८।।

अन्वयः— प्रलम्बपीवरभुजं, तुङ्गांसोरः स्थलश्रियम्, कम्बुकण्ठम्, निम्ननाभिं, वलिमत्पल्लवोदरम् ।।४८।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की भुजाएँ परिपुष्ट तथा जानु पर्यन्त लटकने वाली हैं, कंधे उठे हुए हैं तथा वक्षःस्थल लक्ष्मीजी का आश्रय स्थान है, शङ्ख के समान उत्तार चढ़ाव युक्त उनका गला है; नाभि गहरी है, तथा त्रिबली से सुशोभित श्रीभगवान् का उदर पीपल के पत्ते के समान सुशोभित होता है ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

तुङ्गावंसौ यस्य, उरःस्थले श्रीर्यस्य तं च तं च । बलिमत्पल्लवोदरं वलयस्तिर्यङ्निम्नरेखा यस्य सन्ति तद्वलिमत् तच्च तत् पल्लववदश्वत्थदलसदृशमुदरं यस्य तम् ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के उन्नत कंधे, लक्ष्मीजी से सुशोभित वक्षःस्थल त्रिबली से सुशोभित पिपल के पत्ते के समान उदर है ।।४८।।

बृहत्कटितटश्रोणिकरभोरुद्वयान्वितम् । चारुजानुयुगं चारुजङ्घायुगलसंयुतम् ।।४९।।

अन्वयः— बृहत् कटितट श्रोणिकरभोरुद्वयन्वितम्, चारुजानुयुगं, चारुजङ्घयुगलसंयुतम् ।।४९।।

अनुवाद— (अक्रूरजी ने श्रीभगवान् के) विशाल कटिप्रदेश, नितम्ब, हथेली के समान सुडौल दोनों जङ्घों मनोहर दोनों घुटनों और पिण्डलियों को देखा ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

कटितटं च श्रोणिश्च करभसदृशमूरुद्वयं च, बृहच्च तत्कटितटश्रोणिकरभोरुद्धयं च तेनान्वितम् । यद्वा बृहद्यत् कटितटश्रोणिभ्यां करभोरुद्वयेन चान्वितम् ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

अक्रूरजी ने देखा कि श्रीभगवान् के विशाल कटिप्रदेश को करभ के समान दोनों जङ्घों को विशाल कटि प्रदेश तथा हथेली के समान दोनों जङ्घाओं से सुशोभित श्रीभगवान् को देखा ।।४९।।

तुङ्गगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतम् । नवाङ्गुल्यङ्गुष्ठदलैर्विलसत्पादपङ्कजम् ।।५०।।

अन्वयः— तुङ्गगुल्फारुण नखव्रातदीधिभिर्वृतम् नवाङ्गुल्यङ्गुष्ठ दलै विलसत्पादपङ्कजम् ।।५०।।

अनुवाद— उन्होंने देखा कि एड़ी के ऊपर की गाँठे उभरी हुई हैं, लाल-लाल नखों की दिव्य कान्ति फैल रही है, उनके चरण कमल नवीन और कोमल पङ्खुड़ियों के समान अङ्गुलियों और अङ्गुष्ठ से सुशोभित हैं ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

तुङ्गावीषदुन्नतौ गुल्फावरुणनखव्राताश्च तेषां दीधितिभिः । तथा नवाः कोमला अङ्गुल्योऽङ्गुष्ठौ च तान्येव दलानि तेप विलसच्छोभमानं पादपङ्कजं यस्य तम् ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

थोड़े उठे हुए गुल्फ तथा लाल-लाल नखों के समूह की कान्ति से तथा नवीन एवं कोमल अङ्गलियों एवं अंगुष्ठ रूपी दल से श्रीभगवान् के चरण कमल सुशोभित है ।।५०।।

सुमहार्हमणिव्रातकिरीटकटकाङ्गदैः । कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुण्डलैः ।।५१।।
भ्राजमानं पद्मकरं शङ्खचक्रगदाधरम् । श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ।।५२।।

अन्वयः— सुमहार्हमणिव्रात किरीटकटकाङ्गदैः कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुर कुण्डलैः भ्राजमानं पद्मकरं शङ्खचक्रगदारधम् श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ।।५१-५२।।

अनुवाद— अक्रूरजी ने देखा बहुमूल्य मणियों से मुकुट कंगन, बाजूबन्द, करधनी, हार नूपुर और कुण्डलों से कटिसूत्र तथा यज्ञोपवीत से सुशोभित श्रीभगवान् अपने कमल में शङ्ख, चक्र एव गदा धारण किए हुए है, उनका वक्षस्थल श्रीवत्स चिह्न से सुशोभित है, एवं वे वन माला धारण किए हुए हैं ।।५१-५२।।

भावार्थ दीपिका

सुमहार्हा मणिव्राता येषु तैः किरीटादिभिः ।।५१-५२।।

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त मूल्यवान् मणि समूह जिनमें जटित हैं ऐसे किरीट आदि से सुशोभित ।।५१-५२।।

सुनन्दनन्दप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः । सुरैशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः ।।५३।।
प्रह्लादनारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः । स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ।।५४।।
श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया ।
विद्ययाऽविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ।।५५।।

विलोक्य सुभृशं प्रीतो भत्तया परमया युतः। हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥५६॥
गिरा गद्गदयाऽस्तौषीत् सत्त्वमालम्ब्य सात्त्वतः। प्रणम्य मूर्ध्नाऽवहितः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥५७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धेपूर्वार्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।।३९।।

अन्वयः— सुनन्दनन्दप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभि सुरैशैः ब्रह्मरुद्राद्यैः नवभिश्च द्विजोत्तमैः प्रहलदनारदवसुप्रमुखै र्भागवतोत्तमैः पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः स्तूयमानं, श्रिया, पुष्ट्या गिरा, कान्त्या, कीर्त्या, तुष्ट्या, इलया, उर्जया, विद्यया, अविद्यया, शक्त्या, मायया, च निषेवितम् विलोक्य सुभृशंप्रीतः, परमया भक्त्यायुतः हृष्यत् तनूरुहः भावपरिक्लिनात्मलोचनः सात्त्वतः मूर्ध्नां प्रणम्य सत्त्वमालम्व्य अवहित कृताञ्जलिपुहः गद्गदया गिरा अस्तौषीत् ।।५३-५७।।

अनुवाद— अक्रूरजी ने देखा कि सुनन्द नन्द आदि प्रमुख पार्षद सनकादि महर्षि गण, बड़े-बड़े देवेश्वर, ब्रह्माजी तथा रुद्र आदि, मरीचि आदि नव ब्राह्मण, प्रह्लादजी नारदजी, वसुगण आदि श्रेष्ठ भागवत गण श्रीभगवान् की अपनी-अपनी भक्तिभावना के अनुसार स्तुति कर रहे हैं। श्रीदेवी (लक्ष्मीजी) पुष्टि देवी, सरस्वती देवी, कान्ति देवी, कीर्ति देवी, तुष्टि देवी, इला देवी (भूदेवी) उर्जा देवी (लीला शक्ति) विद्यादेवी अविद्या देवी (जीवों को मोक्ष एवं बन्धन प्रदान करने वाली शक्ति) शक्ति एवं माया ये सब की शक्तियाँ श्रीभगवान् की सेवा कर रही हैं। यह सब देखकर अक्रूरजी अत्यन्त प्रसन्न हुए, उनके भीतर अत्यधिक भक्ति की भावना भर गयी, उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमाँच हो गया। उन्होंने भक्ति पूर्वक सिर झुकाकर श्रीभगवान् को प्रणाम किया और सत्त्वगुण सम्पन्न होकर वे सावधानी पूर्वक हाथ जोड़े हुए अपनी भर्राइ हुई वाणी से श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ।।५३-५७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूवार्ध के उनतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

पृथक् पृथक् भावोऽभिप्रायो येषां तैः । तत्र पार्षदैः स्वामीति स्तूयमानम् । सनकादिभिर्ब्रह्मेति । ब्रह्माद्यैर्महेश्वर इति। मरीच्यादिभिर्द्विजोत्तमैः परः प्रजापतिरिति । वसुरुपरिचरः । प्रह्लादनारदवसवः प्रमुखा मुख्या येषां तैः । परं दैवतमिति च । श्रेष्ठैर्वचोभिः। पृथग्भावैर्वचोभिरिति वा ।।५३-५४।। विद्याविद्ये जीवानां मुक्तिसंसृतिहेतू । माया तयोः कारणम् । शक्तिर्ह्लादिनी संविज्ज्ञानम् । आभिरन्याभिश्च निषेवितम् ।।५५।। विलोक्य सृभृशं प्रीतोऽस्मत्कृष्णोऽसावेवंभूतः परमेश्वर इति ज्ञात्वेति ।।५६-५७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायांमेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः।।३९।।

भाव प्रकाशिका

विद्या तथा अविद्या ये दोनों क्रमशः जीवों की मुक्ति एवं संसार बन्धन के कारण हैं, माया विद्या और अविद्या दोनों का कारण है । शक्ति शब्द से श्रीभगवान् की ह्लादिनी शक्ति को कहा गया है । संवित् ज्ञान का वाचक है। इन शक्तियों से अतिरिक्त शक्तियों के द्वारा श्रीभगवान् को सुसेवित भगवान् को अक्रूरजी ने देखा । यह सब देखकर अक्रूरजी अत्यधिक प्रसन्न हुए वे जान गये कि हमारे श्रीकृष्ण तो साक्षात् परमेश्वर है ।।५३-५७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के उनतालिसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३९।।

* * *

चालिसवाँ अध्याय

अक्रूरजी द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति

अक्रूर उवाच

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ।
यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद्ब्रह्माऽविरासीद्यत एष लोकः ॥१॥

अन्वयः— अखिलहेतु हेतुं, नारायणम् आद्यम् अव्ययम् त्वा अहं नतोऽस्मि यन्नाभिजातात् अरविन्दकोशात् ब्रह्माविरासीद् यत एषः लोकः ॥१॥

अक्रूरजी ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! आप तो प्रकृति आदि समस्त हेतुओं के भी हेतु हैं । आप नारायण शब्द वाच्य आदि पुरुष हैं तथा निर्विकार है । इस प्रकार के आपको मैं नमस्कार करता हूँ आपकी नाभि से उत्पन्न कमल के कोश से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई और ब्रह्माजी ने इस लोक की सृष्टि की है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चत्वारिंशे ततोऽक्रूरः कृष्णं मत्वेश्वरेश्वरम् । प्रणम्य भक्त्या तुष्टाव सगुणागुणभेदतः ॥१॥ श्रीकृष्णं प्रणमति–नतोऽस्मीति। हे कृष्ण त्वा त्वां नतोऽस्मि । त्वमस्मपितृव्यः कुतो मां बालं नतोऽसि तत्राह- आद्यं पुरुषमव्ययं च । अनादिनिधनमित्यर्थः। कुत एतत् । अखिलहेतूनां हेतुम् । स तु नारायणो नाहमिति चेत्तत्राह–नारायणं त्वाम् । किं नारायण इति मां स्तौषि काऽत्र स्तुतिः सत्यमेवेत्याह–यन्नाभिजातादिति । यतो ब्रह्मणः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चालीसवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि अक्रूरजी ने यह जान लिया की श्रीकृष्णजी तो सभी नियामकों के भी नियामक परमेश्वर हैं । उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण को भक्ति पूर्वक नमस्कार किया तथा उनके सगुण तथा निर्गुण स्वरूप की स्तुति की ॥१॥ **नतोऽस्मि० इत्यादि** श्लोक से वे श्रीभगवान् को प्रणाम करते हैं— हे भगवन् श्रीकृष्ण! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । यदि आप कहें कि आप तो मेरे चाचाजी हैं मुझे क्यों नमस्कार करते हैं ? मैं तो बालक हूँ, इस पर अक्रूरजी कहते हैं आप ही सृष्टि से पूर्वकाल में रहने वाले आदि पुरुष हैं । तथा सदा एक समान रहने के कारण निर्विकार हैं । अर्थात् आप अनादि निधान (आदि और अन्त से रहित) हैं यदि आप कहें कि यह कैसे ? तो इसका उत्तर हैं कि आप प्रकृत्यादि समस्त कारणों के भी कारण हैं । यदि आप कहें कि ऐसा तो भगवान् नारायण ही हो सकते हैं मैं नहीं, इस पर कहते हैं कि नारायण भी आप ही हैं । क्या नारायण समझकर आप मेरी स्तुति करते हैं, तो मेरी स्तुति क्या है ? तो इस पर अक्रूरजी कहते हैं क्योंकि आपकी ही नाभिकमल से ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई है । और उन्होंने ही इस जगत् की सृष्टि की है ॥१॥

भूस्तोयमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि ।
सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः ॥२॥

अन्वयः— भूःतोयम्, अग्निः, पावन, खमादिः महन् अजादिः मनः इन्द्रियाणि, सर्वेन्द्रियार्थाः सर्वेविबुधा च ये जगतः हेतवः ते अङ्गभूताः ॥२॥

अनुवाद— पृथिवी, जल, तेज, वायु आकाश, आकाश के भी कारण भूत अहङ्कार महत् तत्त्व, माया के भी कारणभूत आदि पुरुष, ये सभी जो जगत् के कारण हैं वे सबके सब आपके अङ्ग हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अखिलहेतुहेतुत्वं प्रपञ्चयति–भूरिति । खस्यादिरहङ्कारः अजा माया तस्या आदिः पुरुषः । एते ये जगतो हेतवस्ते सर्वे तवाङ्गभूता अङ्गाच्छ्रीमूर्तेर्भूताः उपसर्जनभूता वा ।।२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के सम्पूर्ण कारणों के भी कारणत्व का विस्तार से वर्णन इस **भूस्तोयम्०** आदि श्लोक से किया गया है । **खमादिः** अर्थात् आकाश के भी कारण अहङ्कार । **अजादिः** अजा शब्द वाच्य माया के भी कारण पुरुष। ये जितने भी जगत् के कारण हैं वे सबके सब श्रीभगवान् के अङ्ग हैं । अङ्ग से उत्पन्न होने वाले ऐश्वर्य मूर्ति हैं, अथवा गौण हैं ।।२।।

नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः ।
अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया गुणात्परं वेद न ते स्वरूपम् ।।३।।

अन्वयः— अनात्मतया गृहीता एते अजादयः आत्मनः ते स्वस्वरूपं न विदुः अजायाः गुणैः अनुबद्धः सः अजो हि ते गुणात् परं ते स्वरूपं न वेदा ।।३।।

अनुवाद— ये प्रकृति आत्मा अनात्मा रूप से ज्ञात हैं, क्योंकि इन सबों का ग्रहण इदम् इदम् इस रूप से गृहीत होने के कारण इदम् वृत्ति से गृहीत होने वाले घटादि के समान अनात्मा (जड़) हैं । और आप तो सम्पूर्ण जगत् की आत्मा है । अतएव ये आपके स्वरूप को नहीं जानते हैं । ब्रह्माजी भी प्रकृति के रजोगुण से आवृत होने के कारण गुणातीत आपके स्वरूप को नहीं जानते हैं, क्योंकि आप तो गुणों से परे हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

नन्वतिस्तुतिः कथं क्रियते, अहमेवान्यत उत्पन्नस्तत्परतन्त्रश्चेत्याशङ्क्य, तवैषा माया, त्वत्पारमार्थ्यं तु न कोऽपि वेदेत्याह–नैत इति । एते अज आदिर्येषां ते आत्मनस्ते स्वरूपं न विदुः । अनात्मतया जड़त्वेन कारणेन । जडत्वे हेतुः–गृहीताः प्रत्यक्षादिभिर्दृष्टाः नह्यजडो दृग्गोचर इति भावः । ननु जडा मां मा जानन्तु जीवस्तु ज्ञास्यतीत्यत आह–अज इति । सोऽजो ब्रह्माप्यजाया गुणैरनुबद्ध आवृतो गुणातीतं ते तव स्वरूपं न वेद, अन्यः कुतो ज्ञास्यतीति । यद्वा प्रकृत्यादय आत्मनः स्वरूपम् तव स्वरूपं च न विदुः, जडत्वादेव । जीवस्तु तानात्मानं च वेत्ति न पुनस्त्वत्स्वरूपमिति । यथोक्तं हंसगुह्ये–'देहोऽसवोऽक्षा मनवो भूतमात्रा नात्मानमन्यं च विदुः परं यत् । सर्वं पुमान्वेद गुणांश्च तज्ज्ञो न वेद सर्वज्ञमनन्तमीडे ।' इति ।।३।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि इतनी अधिक मेरी स्तुति क्यों करते हैं ? मैं दूसरें से उत्पन्न हुआ हूँ और अपने माता पिता के परतन्त्र भी हूँ तो ऐसी बात नहीं है । यह तो आप की माया है । यह आपके विषय में वास्तविकता को तो कोई भी नहीं जानता है । इसी बात को **नैते इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । ब्रह्माजी आदि जितनी भी आत्माएँ हैं वे आप के स्वरूप को नहीं जानती हैं । प्रकृति आदि तो जड़ हैं वे सब अनात्मा होने के कारण आपके स्वरूप को नहीं जानते । वे जड इसलिए हैं कि उनका प्रत्यक्ष होता है । आत्मा का प्रत्यक्ष नहीं होता है । यदि आप कहें कि जड भक्तों मेरे स्वरूप को न जाने किन्तु आत्माएँ तो जीव तो मुझको जानेंगे ही । इस पर अक्रूरजी ने कहा जीवों में प्रधान ब्रह्माजी है वे भी प्रकृति के गुणों से आवृत हैं । और आप तो गुणातीत हैं अतएव वे भी आपके स्वरूप को नहीं जानते हैं । अथवा प्रकृति आदि भी सबों की आत्मा आपके स्वरूप को नहीं जानती हैं, क्योंकि वे जड़ हैं । और जीव तो उन प्रकृति आदि को तथा अपने को जानता हैं किन्तु वह आपके स्वरूप को नहीं जानता है । हंस स्तोत्र में कहा भी गया है **देहोऽसवोऽक्षा० इत्यादि** अर्थात् देह, प्राण, इन्द्रियाँ, मन्त्र

समुदाय (या मुनिगण) तन्मात्राएँ, अपने को तथा अपने से भिन्न को नहीं जानते हैं । पुरुष इन सबों को जानता है तथा गुणों को भी जानता है । किन्तु जीव भी सर्वज्ञ तथा अनन्त परमात्मा को नहीं जान पाता है ।।३।।

त्वां योगिनो यजन्त्यद्धा महापुरुषमीश्वरम् । साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधवः ।।४।।

अन्वयः— साधवः योगिनः महापुरुषम् ईश्वरं त्वां साध्यात्मं साधिभूतम् साधिदैवं च अद्धा यजन्ति ।।४।।

अनुवाद— साधु योगिजन महापुरुष तथा सम्पूर्ण जगत् के नियामक आपकी आराधना अध्यात्म, अधिभूत तथा अधिदैव के साक्षी एवं महापुरुष तथा सबों के अन्तर्यामी रूप से करते हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

ननु यदि केऽपि न जानन्ति कथं तर्हि संसारनिवृत्तिर्जीवानामित्याशङ्क्य साक्षादगोचरत्वेऽपि येन केनापि मार्गेण भजतां त्वं गम्योऽसीत्याह-त्वां योगिन इति । हैरण्यगर्भादयोऽध्यात्माधिभूताधिदैवसाक्षिणं महापुरुषं तदन्तर्यामिस्वरूपमीश्वरं नियन्तारं च यजन्ति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि यदि मुझको कोई भी नहीं जानता है, तो फिर जीवों की संसार निवृत्ति कैसे हो सकती हैं ? इस पर अक्रूरजी कहते हैं कि यद्यपि आपका साक्षात्कार तो नहीं होता फिर भी जो लोग आपका भजन करते है । वे जिस किसी तरह आपको जान ही लेते हैं इसी बात को **त्वां योगिनः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। योगिजन आपकी आराधना आध्यात्म, अधिभूत तथा अध्यात्म के साक्षी महापुरुष तथा सबों के अन्तर्यामी रूप से किया करते हैं ।।४।।

त्रय्या च विद्यया केचित्त्वां वै वैतानिका द्विजाः । यजन्ते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ।।५।।

अन्वयः— केचित् च वैतनिकाः द्विजाः त्रय्या विद्यया विततैः यज्ञैः नानारूपामराख्यया त्वां यजन्ते ।।५।।

अनुवाद— बहुत से कर्ममार्गानुयायी कर्मकाण्डी ब्राह्मण कर्ममार्गोपदेशिकात्रयी विद्या के द्वारा विभिन्न रूप वाले आपकी इन्द्रादि विभिन्न नामों से बड़े-बड़े यज्ञों के माध्यम से आराधना करते हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं सांख्ययोगावेकीकृत्योक्तौ, त्रयीमार्गं कर्मज्ञानभेदेन दर्शयति-त्रय्या चेति श्लोकद्वयेन । वैतानिकाः कर्मयोगिनस्त्वां वै त्वामेव यजन्ते । ननु ते इन्द्रवरुणवाय्वादीन् यजन्ते, नतु मामित्यत आह-नाना वज्रहस्तादीनि रूपाणि येषां ते येऽमरास्तेषामाख्यया नाम्ना त्वामेव यजन्त इति अयं भावः-ऐन्द्रवारुणादिसूक्तैरिन्द्रादयः सर्वैश्वर्येण प्रकाश्यन्ते न च सर्वेश्वरा बहवः संभवन्ति, अतो नामभेदेन त्वामेव यजन्त इति । तथा च श्रुतिः- 'स प्रथमः स प्रकृतिर्विश्वकर्मा स प्रथमो मित्रावरुणोऽग्नि स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वांस्तस्मा इन्द्राय हविराजुहोति' इति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

सांख्य तथा योग दर्शन को एक ही करके चौथे श्लोक में कहा जा चुका है । अब **त्र्याच० इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा कर्ममार्ग तथा ज्ञानमार्ग के भेद से वर्णन करते हैं । कर्ममार्गावलम्बी कर्मकाण्डी विद्वान् आपकी ही आराधना करते ैं । यदि आप कहें कि वे तो इन्द्र, वरुण तथा वायु आदि की आराधना करते हैं मेरी नहीं तो इस पर कहते हैं वज्रहस्त त्यादि जिनके रूप हैं उन देवताओं के नाम से वे आपकी ही आराधना करते हैं । कहने का अभिप्राय है कि इन्द्र, रुण आदि देवताओं से संबन्धित जो सूक्त हैं वे इन्द्र आदि देवताओं को सर्वैश्वर्य सम्पन्न रूप से वर्णित करते हैं । कन्तु सर्वेश्वर तो कोई एकही होगा अनेक नहीं । अतएव कर्ममार्गी इन्द्र, वरुण आदि विभिन्न नामों से वे आपकी ही ाराधना करते हैं । श्रुति भी कहती हैं- **स प्रथमः स प्रकृतिः इत्यादि** अर्थात् सम्पूर्ण जगत् के स्रष्टा ही सम्पूर्ण जगत्

के प्रधान कारण है। वे ही प्रधान, मित्र, वरुण, तथा अग्नि है। वे ही प्रधान बृहस्पति ऐसे इन्द्र (सर्वैश्वर्य सम्पन्न) इन्द्र शब्द वाच्य परमात्मा के लिए यजमान हविष्य का होम करता है ॥५॥

एके त्वाऽखिलकर्माणि संन्यस्योपशमं गताः । ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजन्ति ज्ञानविग्रहम् ॥६॥

अन्वयः— एके अखिलकर्माणि संन्यस्य उपशमं गताः ज्ञानिनः ज्ञानविग्रहम् त्वां ज्ञानयज्ञेन यजन्ति ॥६॥

अनुवाद— बहुत से ज्ञानी पुरुष सभी कर्मों का संन्यास कर देते हैं और शान्त भाव में स्थित हो जाते हैं। इस तरह वे लोग ज्ञान यज्ञ के द्वारा ज्ञान स्वरूप आपकी ही आराधना करते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञानयज्ञेन समाधिना ॥६॥

भाव प्रकाशिका

ज्ञानयज्ञेन अर्थात् समाधि के द्वारा ॥६॥

अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाऽभिहितेन ते । यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् ॥७॥

अन्वयः— अन्ये च संस्कृतात्मानः त्वन्मया अभिहितेन विधिना बहुमूर्त्येकमूर्तिकम् त्वां वै यजन्ति ॥७॥

अनुवाद— बहुत से वैष्णव अथवा शैव दीक्षा से दीक्षित पुरुष हैं जो आपके द्वारा अभिहित पाञ्चरात्रागम है उसमें बतलायी गयी विधि से वसुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इन चारो व्यूहों के रूप में अथवा एक ही पर वासुदेव के रूप में आपकी ही आराधना करते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

सांख्ययोगत्रयीमार्गा उक्ताः, वैष्णवशैवमार्गावाह द्वयेन-अन्ये चेति । संस्कृतात्मानो वैष्णवशैवदीक्षया दीक्षिताः सन्तः ते त्वयाभिहितेन पञ्चरात्रादिविधिना त्वन्मयास्त्वन्मयत्वेनात्मानं चिन्तयन्तस्त्वदेकप्रधाना इति वा । वासुदेव सङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धभेदेन बहुमूर्ति नारायणरूपेणैकमूर्तिकं च त्वामेव यजन्ति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

इससे पहले के श्लोक में, सांख्य, योग एवं त्रयी नामक मार्गों का वर्णन किया जा चुका है। **अबअन्ये च० इत्यादि** दो श्लोकों से वैष्णव एवं शैव मार्गों का वर्णन किया जा रहा है। वैष्णव तथा शैव दीक्षा से दीक्षित जो लोग हैं वे लोग आपके द्वारा वर्णित पाञ्चरात्रागम आदि की विधि से त्वदात्मक रूप से अपना चिन्तन करते हुए अथवा परमात्म की ही प्रधानोपासना करने वाले वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध इन चार व्यूहों के रूप में अनेक मूर्ति वाले अथवा नारायण रूप से एक मूर्ति वाले आपकी आराधना करते हैं ॥७॥

त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम् । बह्वाचार्यविभेदेन भगवन्समुपासते ॥८॥

अन्वयः— हे भगवान् अन्ये शिवोक्तेन मार्गेण बह्वाचार्य विभेदेन शिवरूपिणम् त्वाम् एवोपासाते ॥८॥

अनुवाद— हे भगवान् दूसरे लोग शिवजी के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से जिसके आचार्यपद के कारण बहुत से अवान्तर भेद हैं उसके द्वारा शिव स्वरूप आपकी ही आराधना करते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

बह्वाचार्यविभेदेनेति नानाभेदशैवपाशुपतादिमार्गेण ॥८॥'

भाव प्रकाशिका

बह्वाचार्यविभेदेन अर्थात् शैव पाशुपत आदि अनेक भेदों वाले मार्ग से ॥८॥

सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् । येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो ॥९॥

अन्वयः— हे प्रभो ये अपि अन्यदेवताभक्ताः यद्यपि अन्यधियः ते सर्वे एव सर्वदेवमयेश्वरम् त्वां यजन्ति ॥९॥

अनुवाद— जो लोग दूसरे देवताओं के भक्त हैं और वे उन देवताओं को आपसे भिन्न ही समझते हैं वे लोग सर्वदेवमय सर्व नियामक आपकी ही आराधना करते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

येऽपि क्षुद्रदेवताभक्तास्तेऽपि त्वामेव यजन्तीत्याह-सर्व एवेति । हे सर्वदेवमय । नन्वेते परस्परदेवताऽधिक्षेपकलहव्याकुलचित्ताः कथमेकमेव यजन्तीत्युच्यते तत्राह-यद्यप्यन्यधिय इति । बुद्धिमात्रभेदो न वस्तुभेद इत्यर्थः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

जो लोग छोटे-छोटे देवताओं के भक्त हैं, वे भी आपकी ही आराधना करते हैं । इस बात को **सर्वएव इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । हे प्रभो आप तो सर्वदेव स्वरूप हैं । प्रश्न है कि ये सभी परस्पर में एक दूसरे के अभिमत देवता पर आक्षेप करते हैं अतएव इन सबों का तो चित्त व्याकुल है । अतएव आप कैसे कहते हैं कि एक ही देवता का सभी यजन करते हैं ? इस पर नारदजी कहते हैं उनमें केवल बुद्धि का भेद हैं वस्तु का भेद नहीं है ॥९॥

यथाद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो । विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः ॥१०॥

अन्वयः— हे प्रभो ! यथा आद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्या पूरिताः सर्वतः सिन्धुं प्रविशन्तिः तद्वत् अन्ततः त्वां गतयः॥१०॥

अनुवाद— हे प्रभो ! जिस तरह प्रर्वत से निकलने वाली तथा वर्षा के जल से परिपूर्ण होकर नदियाँ अन्त में समुद्र में ही प्रवेश कर जाती है, उसी तरह सभी उपासनाओं द्वारा प्राप्य एकमात्र आप ही हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तस्मात्सर्वे मार्गास्त्वय्येव पर्यवस्यन्तीति सदृष्टान्तमाह-यथेति । अद्रेः सकाशात्सर्वतः प्रभवन्ति या नद्यस्ताः पुनः पर्जन्येनापूरिता बहुस्रोतसः सत्यः सर्वतः सिन्धुमेव विशन्ति यथा, तद्वदेता गतयो मार्गा अन्ततस्त्वामेव विशन्तीति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यथा० इत्यादि श्लोक के द्वारा बतलाते हैं कि सभी मार्गों का पर्यवसान आप में ही होता है इस बात को **दृष्टान्तोपन्यास** पूर्वक बतलाते हैं । जैसे पर्वत के सभी भागों से प्रवाहित होने वाली तथा मेघ के जल से परिपूर्ण नदियाँ अनेक स्रोतों वाली होकर अन्त में समुद्र में प्रवेश कर जाती हैं, उसी तरह इन सभी मार्गों के एकमात्र प्राप्य आप ही हैं ॥१०॥

सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः । तेषु हि प्राकृताः प्रोता आब्रह्मस्थावरादयः ॥११॥

अन्वयः— सन्त्वं, रजः तम इति भवतः प्रकृतेः गुणाः तेषु हि आबह्मस्थावरादयः प्राकृताः प्रोताः ॥११॥

अनुवाद— हे प्रभो ! सत्त्व, रजस् एवं तमस् आपकी प्रकृति के ही गुण हैं । उनमें ही ब्रह्माजी से लेकर स्थावर पर्यन्त समस्त प्राकृत पदार्थ ओतप्रोत हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अत्र हेतुमाह-सत्त्वमिति । भवतः शक्तिर्या प्रकृतिस्तस्याः सत्त्वादयो गुणा अतः प्राकृताः प्रकृतिकार्योपाधयो ब्रह्मपर्यन्ताः स्थावरादयो जीवाः स्वोपाधिद्वारा तेषु गुणेषु प्रोताः प्रविष्टास्ते च प्रकृतौ सा च त्वयीति । अतः क्रमेणोपाधिलयात्सर्वेऽपि त्वामेव विशन्तीति । यद्वा भवतः प्रकृतेर्गुणेषु प्रोता ब्रह्मादयो भवद्व्यतिरिक्ता न सन्ति, अतस्त्वमेव सर्वदेवमय इति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

सभी मार्गों के परमात्मा में पर्यवसान का कारण बतलाते हैं प्रकृति आपकी शक्ति है । सत्त्वादि गुण प्रकृति के ही है । अतएव जितने भी ब्रह्मा पर्यन्त प्रकृति के कार्य की उपाधियाँ हैं, सभी स्थावर आदि जीव अपनी उपाधि द्वारा प्रकृति में प्रविष्ट हैं, और वह प्रकृति आपमें प्रविष्ट होती है । अतएव उपाधि का लय हो जाने पर सबके सब आप में ही प्रवेश कर जाते हैं अथवा श्रीभगवान् की प्रकृति के गुणों में प्रविष्ट ब्रह्मा आदि आपसे भिन्न नहीं हैं अतएव आप ही सर्वदेवमय हैं ॥११॥

तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्तदृष्टये सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे ।
गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥१२॥

अन्वयः— सर्वात्मने अविषक्तदृष्टये सर्वात्मने, सर्वधियां च साक्षिणे अयम् गुणप्रवाह, अविद्यया कृतः, देवनृतिर्यगात्मसु प्रवर्तते तुभ्यं नमस्तेऽस्तु ॥१२॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप सर्वस्वरूप हैं फिर भी आपकी दृष्टि निर्लिप्त है । आप समस्त वृत्तियों के साक्षी हैं । यह गुणों के प्रवाह के कारण यह होने वाली सृष्टि अज्ञान मूलक है । यह देवता, मनुष्य तथा पशु-पक्षी आदि सभी गोपियों में व्याप्त है । ऐसा होने पर भी आप सर्वथा उससे अलग है । हे प्रभो आपको नमस्कार है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

ननु भवतः प्रकृतेरिति वदन्ममापि प्रकृतिसंबन्धं ब्रवीषि । ततश्च तेषां मम च को विशेषः स्यादित्याशङ्क्य विशेषमाह– तुभ्यमिति । अविभक्तदृष्टयेऽलिप्तबुद्धये । कुतः । सर्वात्मने स्वव्यतिरिक्ताभावादविषक्तदृष्टित्वमित्यर्थः । किंच सर्वधियां साक्षिणे । सर्वबुद्धिसाक्षित्वान्न क्वापि बुद्धिलेप इत्यर्थः । इतरे तु संसरन्तीत्याह-गुणप्रवाह इति । देवनृतिर्यञ्च आत्मानो येषां तेषु देवादिशरीराभिमानिष्वित्यर्थः । त्वदविद्यया कृतोऽयं गुणप्रवाहः प्रवर्तते, अतो महान्विशेष इत्यर्थः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि आपने **भवतः प्रकृतेः** यह कहकर मेरा संबन्ध प्रकृति से बतलाया है, ऐसी स्थिति में अन्य जीवों से मेरा भेद कैसे होगा इस प्रकार की आशङ्का करके अक्रूरजी कहते हैं, कि आपकी दृष्टि किसी से लिप्त नहीं अपितु निर्लिप्त है । क्योंकि आप सबों की आत्मा है, आप से भिन्न वस्तु का अभाव होने के कारण आप अविषक्त दृष्टि है । आप सबों की बुद्धियों के साक्षी हैं । सभी बुद्धियों के साक्षी होने के कारण आपकी बुद्धि कहीं भी लिप्त नहीं होती है । दूसरे जीव तो संसार चक्र में पड़े रहते हैं । इस बात को **गुण प्रवाह इत्यादि** के द्वारा कहा गया है देवता, मनुष्य पशु तथा पक्षी आदि में यह गुणों का प्रवाह व्याप्त है । क्योंकि वे सभी देहाभिमानी हैं । गुणो का यह प्रवाह आपकी अविद्या शक्ति के द्वारा प्रवर्तित है । अतएव अन्य जीवों से आपकी महती विशेषता है ॥१२॥

अग्निर्मुखं तेऽवनिरङ्घ्रिरीक्षणं सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः ।
द्यौः कं सुरेन्द्रास्तव बाहवोऽर्णवाः कुक्षिर्मरुत्प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥१३॥

अन्वयः— अग्निः ते मुखम् अवनिः अङ्घ्रिः ईक्षणं सूर्यः, नभः नाभिः, अथो दिशः श्रुतिः, द्यौः कम्, सुरेन्द्राः तव बाहवः अर्णवाः कुक्षिः, मरुत् प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥१३॥

अनुवाद— अग्नि आपका मुख है, पृथिवी ही पैर है, सूर्य नेत्र हैं, आकाश आपकी नाभि है, और दिशाएँ श्रोत्र हैं, स्वर्ग ही सिर है, बड़े-बड़े देवता आपकी भुजाएँ हैं, समुद्र कोङ्ख हैं तथा वायु आपकी प्राण शक्ति के रूप में उपासनार्थ कल्पित है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

सर्वात्मन इत्यनेनोक्तं सगुणं स्तौति-अग्निर्मुखमिति द्वाभ्याम् । अग्न्यादीननूद्येश्वरावयवता विधीयते । योऽयमग्निः स तु तव मुखमित्यादिवचनव्यक्त्या । ईक्षणं चक्षुः । श्रुतिः श्रवणेन्द्रियम् । कं मूर्धा । प्राणश्च बलं च तत् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

पीछे के श्लोक में श्रीभगवान् को सर्वात्मा कहा गया है, उसके द्वारा उक्त श्रीभगवान् के सगुण रूप का वर्णन करते हुए अक्रूरजी **अग्निमुखं तें० इत्यादि** दो श्लोकों से स्तुति करते हैं । इस श्लोक में अग्नि आदि का अनुवाद करके उन सबों को श्रीभगवान् का अङ्ग बतलाया गया है । यह जो अग्नि है वही आपका मुख है, इत्यादि वचन व्यक्ति के द्वारा कहा गया है । **ईक्षणं** अर्थात् नेत्र । **श्रुतिः** अर्थात् श्रवणेन्द्रिय । **कम्** अर्थात् सिर **प्राणबलं** अर्थात् प्राण तथा बल ।।१३।।

रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः ।
निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापतिर्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ।।१४।।

अन्वयः— परस्यते वृक्षौषधयः रोमाणि, मेधाः शिरोरुहा, अद्रयः अस्थिनखानि, रात्र्यहनी निमेषणम्, प्रजापतिः तु मेढ्रः वृष्टिः तव वीर्यम् इष्यते ।।१४।।

अनुवाद— हे परमात्मन् वृक्ष तथा औषधियाँ आपके रोम हैं, मेघ शिर के बाल हैं पर्वतगण आपकी हड्डियाँ और नख हैं, दिन और रात आपके पलकों को खोलना और बन्द करना है, प्रजापति जननेन्द्रिय हैं, और वृष्टि ही आपका वीर्य है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

अद्रयः परस्य तेऽस्थिनखानि ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

आप परमात्मा के पर्वत समूह ही हड्डियाँ और नख हैं ।।१४।।

त्वय्यव्ययात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीवसंकुलाः ।
यथा जले संजिहते जलौकसोऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये ।।१५।।

अन्वयः— हे अव्ययात्मन् यथा जले जलौकसः संजिहते, वा उदुम्बरे अपि मशकाः एवं मनोमये पुरुषे त्वयि बहुजीव सङ्कुलाः सपालाः लोकाः कल्पिताः ।।१५।।

अनुवाद— हे अविनाशी प्रभो, जिस तरह जल में बहुत से छोटे-छोटे जीव रहा करते हैं, अथवा गूलर के फल में बहुत से छोटे-छोटे कीड़े रहा करते हैं, उसी तरह मनोमय आपमें अनेक जीवों से भरे हुए अनेक लोकपालों सहित लोक विराजमान रहते हैं ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

न केवलमेतावत्, किंतु सर्वोऽप्ययं प्रपञ्चस्त्वदवयवभूत एवेति वदन्नेवं सत्यपि प्रपञ्चस्य षट् जन्मादयो विकारास्त्वयि न प्रसज्जन्ते, तस्य त्वयि कल्पितत्वादित्याह-त्वयीति । अव्ययात्मनि पुरुषे पूर्णे लोकादयः संजिहते प्रचरन्ति हे अव्ययात्मन्निति वा । कथंभूते त्वयि । मनोमये मनःप्रधाने मनोवृत्तिव्यङ्ग्ये- 'दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या', 'मनसैवानुद्रष्टव्यः' इत्यादिश्रुतेः । जले यथा जलौकसः सूक्ष्मप्राण्यण्डराशयो यथा चोदुम्बरान्तःकेसरेषु मशकाः परस्परवार्तानभिज्ञाः, एवमनन्तानि ब्रह्माण्डानि त्वयि संचरन्तीतर्थः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

इतना ही नहीं बल्कि यह सम्पूर्ण प्रपञ्च आपका अवयव भूत ही है, इस तरह से कहते हुए भी अक्रूरजी यह बतलाते हैं कि आपमें प्रपञ्च में होने वाले जन्मादि षड्विकार नहीं होते हैं। अविनाशी पूर्ण पुरुष आपमें लोक आदि संचरण किया करते हैं। आप कैसे हैं ? मनोमय है अर्थात् मनोवृत्ति के द्वारा ही आपकी अभिव्यक्ति हुआ करती है। श्रुतियाँ भी कहती हैं— **१. दृश्यते त्वग्र्यया बुद्धया** अर्थात् साधनसप्तकानुगृहीत बुद्धि के द्वारा ही परमात्मा साक्षात्कार हुआ करता है। **२. मनसैवानुद्रष्टव्यः** अर्थात् शुद्ध मन से ही परमात्मचिन्तन करना चाहिए। जिस तरह जल में सूक्ष्म जीवों के अण्डों का समूह अथवा गूलर के फल में छोटे-छोटे कीड़े जो एक दूसरे से विलकुल अपरिचित होते है, उन सबों का निवास होता है, इसी तरह आप में अनन्त ब्राह्मण्ड संचरण किया करते हैं ॥१५॥

यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि । तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः ॥१६॥

अन्वयः— यानि यानि हि रूपाणि इह क्रीडनार्थ विभर्षि तैः आमृष्ट शुचः लोकाः मुदा ते यशः गायन्ति ॥१६॥

अनुवाद— अतएव आप क्रीडा करने के लिए जिन-जिन रूपों को धारण करते हैं आपके वे सब अवतार लोगों के शोक और मोह को विनष्ट कर देते हैं। उसके पश्चात् वे सबलोग आनन्द पूर्वक आपके निर्मल यश का गान किया करते हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तस्मादेवंभूतं तव स्वरूपं दुरवगाहमिति त्वदवतारकथामृतमेव सन्तः सेवन्त इत्याह-यानि यानीति। आमृष्टा परिमार्जिता' शुक् येषां ते ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

अतएव इस प्रकार आपका स्वरूप दुरगाह है। अतएव सत् पुरुष आप की लीलाओं का ही सेवन करते हैं। इस बात को अक्रूरजी ने **यानि० इत्यादि** श्लोक से कहा है। आमृष्टशुचः जिन लोगों का शोक विनष्ट हो गया है॥१६॥

नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च । हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥१७॥

अन्वयः— कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च नमः हयशीर्ष्णे नमः मधुकैटभमृत्यवे तुभ्यं नमः ॥१७॥

अनुवाद— वेदों की रक्षा करने के लिए मत्स्यावतार धारण करने वाले तथा प्रलय कालीन सागर में संचरण करने वाले आपको नमस्कार है। हयग्रीवावतार धारण करने वाले आपको नमस्कार है तथा मधु एवं कैटभ नामक राक्षसों को मारने वाले आपको नमस्कार है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अतः स्वयमप्यवतारान्नमस्यति-नम इति। हयशीर्ष्णे हयग्रीवाय। मधुकैटभयोर्मृत्यवे हन्त्रे ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

अतएव अक्रूरजी स्वयम् भी श्रीभगवान् के अवतारों को प्रणाम करते हैं। हयशीष्णे आर्थात् हयग्रीव को, मधुकैटभ मृत्यवे अर्थात् मधु एवं कैटभ नामक दैत्यों को मारने वाले ॥१७॥

अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे । क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये ॥१८॥

अन्वयः— मन्दरधारिणे बृहते अकूपाराय नमः क्षित्युद्धारविहाराय सूकरमूर्तये नमः ॥१८॥

अनुवाद— प्रभो आपने ही विशाल कच्छप का रूप धारण करके मन्दराचल पर्वत को धारण किया था ऐसे आपको नमस्कार है, आपने ही वराहावतार धारण करके पृथिवी का उद्धार किया था ऐसे वराह रूपधारी आपको नमस्कार है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अकूपाराय कूर्माय । क्षित्युद्धारो विहारो यस्य तस्मै ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

अकूपाराय अर्थात् कच्छप रूप धारण करने वाले क्षित्युद्धार विहाराय पृथिवी का उद्धार रूप विहार को करने वाले॥१८॥

नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह । वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च ॥१९॥

अन्वयः— हे साधुलोकभयापह अद्भुतसिंहाय ते नमः वामनायक्रान्त त्रिभुवनाय तुभ्यं नमः ॥१९॥

अनुवाद— हे प्रह्लाद आदि सत्पुरुषों के भय को दूर करने वाले भगवन् आपके अद्भुत नृसिंह रूप को मैं नमस्कार करता हूँ । आपने ही वामन रूप धारण करके अपने डगों से त्रैलोक्य को नाप लिया था ऐसे आपके वामन रूप को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे । नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च ॥२०॥

अन्वयः— दृप्तक्षत्रवनच्छिदे भृगूणां पतये नमः, श्रवणान्तकराय रघुवर्याय ते नमः ॥२०॥

अनुवाद— धर्म का अतिक्रमण करने वाले घमण्डी क्षत्रिय रूपी वन को काटने के लिए श्रीपरशुरामजी का रूप धारण करने वाले तथा राक्षसराज रावण का विनाश करने के लिए भगवान् श्रीराम का रूप धारण करने वाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

भृगुणां पतये परशुरामाय ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

भृगूणांपतये अर्थात् परशुरामजी को नमस्कार ॥२०॥

नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतांपतये नमः ॥२१॥

अन्वयः— वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च नमः प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥२१॥

अनुवाद— हे प्रभो आप ही वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध इन चार व्यूह रूपों को धारण करके अपने भक्तों का पालन करने का कार्य करते हैं । ऐसे आपको नमस्कार है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्व्यूहरूपेण प्रणमति-नमस्ते वासुदेवायेति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

नमस्ते वासुदेवाय इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् के चारो व्यूह रूपों को प्रणाम करते हैं ॥२१॥

नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने । म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥२२॥

अन्वयः— दैत्यदानवमोहिने शुद्धाय बुद्धाय नमः म्लेच्छप्राय क्षत्रहन्त्रे कल्किरूपिणे नमः ॥२२॥

अनुवाद— दैत्यों एवं दानवों को मोहित करने के लिए शुद्ध बुद्ध का रूप धारण करने वाले आपको नमस्कार है । जब पृथिवी के सभी क्षत्रिय म्लेच्छ प्राय हो जायेंगे, उस समय उन सबों का विनाश करने के लिए कल्कि रूप धारण करने वाले आपको नमस्कार है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

भगवन् जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया । अहंममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥२३॥

अन्वयः— हे भगवन् तव मायया मोहितः अयं जीवलोकः अहं मम इति असद्ग्राहः कर्मवर्त्मसु भ्राम्यते ॥२३॥

अनुवाद— हे भगवन् आपकी माया से मोहित सभी जीव अहङ्कार एवं ममकार रूपी मिथ्या दुराग्रह में फंसकर कर्म के मार्ग में भटक रहे हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

एवं स्तुत्वा बन्धमोक्षं प्रार्थयितुमाह-भगवन्निति । असति देहादौ ग्राह आग्रहो यस्य सः, असन् ग्राहो यस्येति वा ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से स्तुति करके संसार के बन्धन से मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करने के लिए भगवन् इत्यादि श्लोक को कहते हैं । **असद्ग्राहः** अर्थात् **मिथ्या** शरीरादि में अहन्त्व एवं ममत्व रूपी दुराग्रह सम्पन्न । अथवा जिसका दुराग्रह असत् हो ॥२३॥

अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु । भ्रमाम स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥२४॥

अन्वयः— हे विभो ! अहं च आत्मजागारदारार्थस्वजनादिषु स्वप्नकल्पेषु मूढः सन् सत्यधिया भ्रमामि ॥२४॥

अनुवाद— हे प्रभो मैं भी स्वप्न में दिखने वाले पदार्थों के समान मिथ्याकल्प पुत्र, गृह, पत्नी, धन, स्वजन आदि को सत्य मानकर उन्हीं के मोह में फँसकर भटक रहा हूँ ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

न केवलमयं लोकोऽहमपि तथैवेत्याह-अहं चेति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

केवल यह जीवलोक ही नहीं मैं भी इस संसार में भटक रहा हूँ ॥२४॥

अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम् । द्वन्द्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वात्मनः प्रियम् ॥२५॥

अन्वयः— अनित्यानात्मदुखेषु विपर्ययमतिः हि अहम् द्वन्द्वारामः रामः तमोविष्टः आत्मनः प्रियं त्वां न जाने ॥२५॥

अनुवाद— अनित्य, अनात्मा तथा दुःखमय वस्तुओं के विषय में मेरी बुद्धि उलटी हो गयी और अनित्य को नित्य, अनात्मा शरीरादि को आत्मा तथा दुःखमय को सुखमय समझकर उस द्वन्दात्मक संसार में ही रम गया हूँ उसके कारण अब तक यह भी नहीं जान पाया कि वस्तुत आत्मा के एक मात्र प्रिय आप ही हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

मूढत्वमेव प्रकटयति-विपर्ययमतिरिति । अनित्ये कर्मफले नित्यमिति, अनात्मनि देहे आत्मेति, दुःखरूपे गृहादौ सुखमिति विपरीतमतिरित्यर्थः । द्वन्द्वेषु सुखदुःखादिष्वारमति क्रीडतीति तथा सः । ननु दुःखे कुतो रतिस्तत्राह-तमोविष्टस्तमसा व्याप्तोऽत आत्मनः प्रियं प्रेमास्पदं त्वा त्वां न जान इत्यर्थः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

अपने **को विपर्यमतिः** कहकर अक्रूरजी अपनी मूर्खता का ही वर्णन करते हैं । अनित्य कर्मों के फल में नित्यत्व की बुद्धि, अनात्मा देह में आत्मा की बुद्धि, तथा दुःखरूप गृह आदि में सुख की बुद्धि यही मेरी विपरीत मति है । मैं सुख-दुःखात्मक संसार में ही रम गया । यदि कहें कि दुःख में प्रेम कैसे सम्भव है ? इसका उत्तर है अज्ञान व्याप्त होने के कारण अपने प्रेमास्पद आप श्रीभगवान् को नहीं जान सका ॥२५॥

यथाऽबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः । अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत्त्वाऽहं पराङ्मुखः ॥२६॥

अन्वयः— यथा अबुधः तदुद्भवैः प्रतिच्छनं जलं हित्वा वै मृगतृष्णां अभ्येति तद्वत्त्वा अहं पराङ्मुखः ॥२६॥

अनुवाद— जैसे कोई अज्ञानी पुरुष जल के लिए तलाब पर जाय और जल से ही उत्पन्न सेवार आदि के कारण वहाँ जल का सद्भावन जानकर मृगतृष्णा में प्रतीत होने वाले मिथ्या जल को प्राप्त करने के लिए जाय उसी तरह अपनी ही माया से आवृत आपको छोड़कर विषयोपभोग में ही सुख का अनुभव करने लगा हूँ ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तदेव सदृष्टान्तमाह-यथेति । तस्माज्जलादुद्भवन्तीति तदुद्भवानि तृणादीनि तैः । तथा मायाच्छन्नं त्वा त्वामहं हित्वा पराङ्मुखो देहाभिमुखो वर्त इति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बात को ही दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहते हैं- जल से ही उत्पन्न होने वाले सेवार आदि से आवृत होने के कारण अज्ञानी व्यक्ति वहाँ जल का अभाव समझता है, वैसे ही अपनी माया से आवृत सुख स्वरूप आपको छोड़कर मैं विषयों में ही सुख मानने लगा ॥२६॥

नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः । रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥२७॥

अन्वयः— कृपणधीः अहं कामकर्महतं प्रमाथिभिः च अक्षै इत ततः ह्रियमाणं मनः रोद्धुं न उत्सहे ॥२७॥

अनुवाद— मैं अज्ञानी हूँ । मेरा मन कामनाओं और कर्मों से आहत है । अर्थात् वह कामना और कर्मों को करने का संकल्प करता ही रहता है । साथ ही अतिप्रबल इन्द्रियाँ उसको अपनी ओर इधर-उधर घसीटती ही रहती हैं फलतः मैं अपने इस मन को रोक भी नहीं पाता हूँ ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं जानतः कुतो विषयाभिमुखता तत्राह-नोत्सह इति । कृपणा विषयवासनायुक्ता धीर्यस्य सः । अतएव कामकर्मभ्यां हतं क्षुतितमिन्द्रियैश्च बलिभिर्विषयसंयुक्तैरितस्तत आकृष्यमाणं मनो रोद्धुं नियन्तुं न शक्नोमीति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें कि इस प्रकार से जानने वाले तुम्हारा मन विषयों में कैसे प्रवृत्त होता है ? इस पर अक्रूरजी कहते हैं मेरी बुद्धि मन विषयों की वासना से युक्त है । और कामनाओं तथा कर्मों से क्षुब्ध बने हुए मेरे मन को बलवान इन्द्रियाँ अपने विषयों की ओर आकृष्ट किया करती हैं । इस प्रकार के अपने मन को मैं नहीं रोक पाता हूँ ॥२७॥

सोऽहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ।
पुंसो भवेद्यर्हि संसरणापवर्गस्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥२८॥

अन्वयः— सोऽहम् असतां दुरापं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्मि, हे ईश तत् चापि भवदनुग्रह मन्ये । यर्हि पुंसः संसरणापवर्गः भवेत् हे अब्जनाभत्वयि सदुपासनया मतिः स्यात् ॥२८॥

अनुवाद— इस प्रकार से संसार में भटकता हुआ आपके चरणों की सन्निधि में आ गया हूँ इसको भी मैं आपका अनुग्रह ही मानता हूँ । क्योंकि हे पद्मनाभ जब जीव के संसार से मुक्त होने को बेला आती है तब ही सत्पुरुषों की उपासना से उसकी बुद्धि आपमें लग जाती है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

तदेवमस्वतन्त्रो यः सोऽहं तवाङ्घ्रिमुपगतः शरणं प्राप्तः । नन्विन्द्रियपरतन्त्रस्यैतदपि कुतस्तत्राह-तच्चापीति । हे ईश

अन्तर्यामिन्, त्वदङ्घ्र्युपगमनं चासतां दुरापम्, अतो भवतोऽनुग्रह एवेत्यहं मन्ये । अनुग्रहे सतीति वा । ननु सतां सेवयेदं भवतीति किं मदनुग्रहेणेत्यत आह-पुंस इति । जीवस्य संसारस्यापवर्गः समाप्तिर्यदा त्वत्कृपया भवेत् संभावनास्पदं भवति, हे अब्जनाभ, तदा सदुपासना संपद्यते, तयैव त्वयि मतिर्भवेत् त्वत्कृपां बिना न सत्सेवा , नतरांत्वन्मतिः, नतमां मुक्तिरित्यर्थः।।२८।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह जो मैं अपने मन और इन्द्रियों के परतन्त्र हो गया हूँ वही मैं आपके चरणों की शरण में आ गया हूँ । प्रश्न है कि इन्द्रियों के वश में रहने वाले व्यक्ति की भगवच्चरणोपसत्ति कैसे है ? इस पर अक्रूरजी कहते हैं- वह भी आपकी कृपा के कारण ही सम्भव हुआ है । हे अन्तर्यामिन् प्रभो असत् पुरुष तो आपके चरणों के सन्निकट आ भी नहीं सकते हैं । अतएव यह भी आपकी कृपा ही से हुआ है यह मैं मानता हूँ । अथवा आपका अनुग्रह होने पर ही ऐसा सम्भव हो पाता है । यदि आप कहें कि यह तो सत् पुरुषों की सेवा से ही सम्भव हो पाता मेरी कृप से क्या होने वाला है ? इस पर अक्रूरजी कहते हैं कि जीव की संसार से मुक्ति तब होती है । जब आपकी कृपा होती है । हे अब्जनाय तब ही मनुष्य सत्पुरुष की उपासना करता है । उसी के द्वारा जीव की बुद्धि आपमें संलग्न हो जाती है । आपकी कृपा के बिना न तो सत्सेवा हो पाता है, न तो आपमें बुद्धि लगती है, और न तो मुक्ति होना सम्भव है । अतएव आपकी कृपा से ही यह सब सम्भव है ।।२८।।

नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्यहेतवे । पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।।२९।।

अन्वयः— विज्ञानमात्राय, सर्वप्रत्यय हेतवे, पुरुषेशप्रधानाय, अनन्तशक्तये ब्रह्मणे नमः ।।२९।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप विज्ञान स्वरूप है, आपकी कृपा से ही इस प्रकार के ज्ञान प्राप्त होते हैं । पुरुषों को सुख-दुःखादि प्रदान करने वाले जो काल, कर्म, स्वभाव आदि है, उन सबों में प्रधान आप ही है । आप अनन्त शक्ति सम्पन्न हैं । आप साक्षात् परब्रह्म है । ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूँ ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

पादयोः पतन्प्रार्थयते-नम इति द्वयेन । विज्ञानमेव मात्रा मूर्तिर्यस्य तस्मै । अतएव सर्वप्रत्ययहेतवे समस्तज्ञानकारणाय। किंच पुरुषस्य ये ईशाः सुखदुःखादिप्रापकाः कालकर्मस्वभावादयस्तेषां प्रधानाय नियन्त्रे । कुतः । ब्रह्मणे परिपूर्णाय । किंच अनन्तशक्तये अनन्ताः शक्तयो यस्य । यद्वा अनन्ता मायाख्या शक्तिर्यस्य तस्मै । अथवा प्रधानं प्रकृतिः पुरुषस्तत्प्रवर्तकः, ईशः काल एतन्त्रितयात्मने ब्रह्मणे । वक्ष्यति च भगवान्- 'प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः । सतोऽभिव्यञ्जकः कालो ब्रह्म तन्त्रितयं त्वहम् ।।' इति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

अक्रूरजी श्रीभगवान् के चरणों पर गिरकर प्रार्थना नमः इत्यादि दो श्लोको से करते हैं- वे कहते हैं कि हे प्रभो आप विज्ञान स्वरूप हैं । जीवों को होने वाले सभी ज्ञानों के कारण आप ही हैं । किञ्च पुरुषों को सुख दुःख प्रदान करने वाले जो काल, कर्म तथा स्वभाव आदि जितने हैं, उन सबों में प्रधान आप ही हैं । क्योंकि आप परिपूर्ण ब्रह्म हैं । आपकी शक्ति भी अनन्त हैं । अथवा आपकी माया नामक शक्ति अनन्त है । अथवा प्रकृति, पुरुष तथा काल इन तीनों की आत्मा स्वरूप आप है । भगवान् आगे चालकर कहेंगे भी इस जगत् का आधार प्रकृति हैं और पुरुष उससे श्रेष्ठ है इन दोनों का अभिव्यञ्जक काल हैं और मैं ये तीनों हूँ ।।२९।।

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च । हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ।।३०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अक्रूर स्तुतिर्नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।।४०।।

अन्वयः— वासुदेवाय, सर्वभूतक्षयाय नमः, हे हृषीकेशः तुभ्यं नमःहे प्रभो प्रपन्नं मां पाहि ।।३०।।

अनुवाद—हे भगवन् ! आप ही वासुदेव हैं, आप ही सभी जीवों के एक मात्र आश्रय हैं । हे हृषीकेश आपको नमस्कार है । हे प्रभो मैं आपका शरणागत हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिए ॥३०॥

इस तरह श्रीमद्भागवतमहापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के अक्रूरस्तुति नामक चालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

सर्वप्रत्ययहेतुत्वमभिव्यञ्जयंस्तौति-नमस्त इति । वासुदेवाय चित्ताधिष्ठात्रे । सर्वभूतक्षयाय । क्षय आश्रयः । अहङ्कारश्च प्राणिनामाश्रयः । ततश्चाहंकाराधिष्ठात्रे संकर्षणायेत्यर्थः । हृषीकेशेति बुद्धिमनसोरधिष्ठात्रोः प्रद्युम्नानिरुद्धयोरेकीकृत्य ग्रहणम् । शरणागतं मां पाहीति प्रार्थना ।।३०।।

इति श्रीमद्भागवतेमहापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के सर्वप्रत्यय हेतुत्व को अभिव्यक्त करते हुए स्तुति करते हैं । **वासुदेवाय** चित्त के अधिष्ठातृ देवता को, सर्वभूतक्षयाय में क्षय शब्द आश्रय का वाचक है । अहङ्कार ही प्राणियों का आश्रय है । अर्थात् अहङ्कार के अधिष्ठाता सङ्कीर्षण को नमस्कार है । बुद्धि और मन के अधिष्ठाता हृषीकेश हैं । हृषीकेश शब्द से प्रद्युम्न तथ अनिरुद्ध दोनों का एक साथ ग्रहण किया गया है मैं आपके शरण में आया हूँ आप मेरी रक्षा करें ॥३०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के चालीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।४०।।

* * *

एकतालिसवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण का मथुरा में प्रवेश

श्रीशुक उवाच

स्तुवतस्तस्य भगवान् दर्शयित्वा जले वपुः । भूयः समाहरत्कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥१॥

अन्वयः— स्तुवतः तस्य भगवान् कृष्ण जले वपुः दर्शयित्वा नटो आत्मनः नाट्यमिव भूयः समाहरत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— अक्रूरजी श्रीभगवान् की स्तुति कर रहे थे । उस समय भगवान् श्रीकृष्ण जल में अपने रूप को दिखाकर उसी तरह छिपा लिए जिस तरह कोई नट अपना रूप दिखाकर फिर उसको पर्दे के पीछे छिपा लेता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकचत्वारिंशकेऽहन् रजकं प्राविशन्पुरीम् । ततो वरानदात्तुष्टः सुदाम्नो वायकस्य च ॥१॥ सशङ्कमक्रूरमनः प्रबोध्य स्वधाम संदर्शनसत्कृपातः । स्वराजधानीं मथुरामपश्यदलंकृतानन्तमहोत्सवाढ्याम् ॥२॥ ॥१॥

भाव प्रकाशिका

एकतालिसवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा नगरी में प्रवेश करते समय धोबी को मार दिए और सुदामा नामक दर्जी को प्रसन्न होकर वर प्रदान किए ॥१॥ अक्रूरजी का मन भगवान् श्रीकृष्ण

के विषय में शङ्कित था उनको कृपा पूर्वक अपने धाम का दर्शन कराकर उनकी शङ्का को दूर करके अपनी राजधानी जो अनन्त महोत्सव से परिपूर्ण थी उसमें प्रवेश किए ।।२।। ।।१।।

सोऽपि चान्तर्हितं वीक्ष्य जलादुन्मज्ज्य सत्वरः । कृत्वा चावश्यकं सर्वं विस्मितो रथमागमत् ।।२।।

अन्वयः— सः अपि च अन्तर्हितं वीक्ष्य जलात् उन्मज्ज्य सत्वरः आवश्यकं सर्वं कृत्वा विस्मितः रथम् आगमत्।।२।।

अनुवाद— अक्रूर जी भी श्रीभगवान् के उस दिव्य रूप को अन्तर्हित देखकर जल से बाहर निकल आये और शीघ्र ही सम्पूर्ण आवश्यक कृत्यों को समाप्त करके आश्चर्यितमना होकर रथ पर आ गये ।।२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२।।

तमपृच्छद्धृषीकेशः किं ते दृष्टमिवाद्भुतम् । भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षयामहे ।।३।।

अन्वयः— हृषीकेशः तम् अपृच्छत् ते भूमौ, वियति, तोये वा अद्भुतम् इव दृष्टं किम् तथा त्वां लक्षयामहे ।।३।।

अनुवाद— इन्द्रियों के नियामक भगवान् श्रीकृष्ण उनसे पूछे चाचाजी आपने पृथिवी, जल अथवा आकाश में कुछ आश्चर्यमय देखा है क्या, वैसा ही हम आपको देख रहे हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३।।

अक्रूर उवाच

अद्भुतानीह यावन्ति भूमौ वियति वा जले । त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपश्यतः ।।४।।

अन्वयः— भूमौ, वियति, गले वा इह यावन्ति अद्भुतानि तानि विश्वात्मके त्वयि विपश्यतः में किं अदृष्टम् ।।४।।

अक्रूरजी ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो, पृथिवी, जल और आकाश में तथा इस संसार में जितने भी अद्भुत पदार्थ हैं वे सबके सब आप में विद्यमान हैं, क्योंकि आप विश्वरूप है । जब मैं आपको देख रहा हूँ तो फिर मेरे लिए कौन सी वस्तु अदृष्ट है, अतएव मेरे लिए कुछ भी अद्भुत नहीं है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

भूमौ वियति जले वा यावन्त्यद्भुतानि तानि त्वय्येव सन्ति तं च त्वां पश्यतो मे किमद्भुतमदृष्टम् । अपितु सर्वं दृष्टमित्यर्थः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी, जल एवं आकाश में जितने भी अद्भुत पदार्थ हैं वे सबके सब आप में विद्यमान हैं, इस प्रकार के आपको मैंने जब देख लिया तो फिर मेरे लिए कुछ भी अदृष्ट नहीं है ।।४।।

यत्राद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले । तं त्वाऽनुपश्यतो ब्रह्मन् किं मे दृष्टमिहाद्भुतम् ।।५।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् भूमौ, वियति, जले यत्र सर्वाणि अद्भुतानि, तं त्वा अनुपश्यतः मे किम् इहअद्भुतम् दृष्टम् ।।५।।

अनुवाद— हे भगवान् ! पृथिवी आकाश तथा जल में होने वाले सभी अद्भुत पदार्थ आप में विद्यमान हैं ऐसे आपको जब मैं देख रहा हूँ तो फिर मैं कौन सी अद्भुत वस्तु यहाँ देख सकता हूँ ।।५।।

भावार्थ दीपिका

ननु मत्प्राप्तेः पूर्वमेव त्वं विस्मितमुखो लक्षितोऽसि, अतो भूमौ वियति जले वा किमप्यद्भुतं दृष्टमेवेति चेदत आह- यत्राद्भुतानीति । यत्र त्वयि सर्वाण्यद्भुतानि सन्ति तं त्वामिह पश्यतो मेऽन्यत्र भूम्यादौ किमद्भुतं दृष्टं, त्वां विना न तत्र किंचिदद्भुतमित्यर्थः । ब्रह्मन् हे परमेश्वरेत्यर्थः । ब्रह्मेति वा पाठः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मेरे पास आने से पहले आप आश्चर्य चकित से दिखते थे अतएव अपने पृथिवी, आकाश अथवा जल में अवश्य अद्भुत पदार्थ देखा होगा इस पर अक्रूरजी **यत्राद्भुतानि० इत्यादि** श्लोक कहते हैं कि जिससे आपमें सम्पूर्ण अद्भुत विद्यमान हैं ऐसे आपको मैं यहाँ देख रहा हूँ। अतएव आपसे अलग पृथिवी आदि में कुछ भी अद्भुत नहीं है। ब्रह्मन् अर्थात् हे परमेश्वर। अथवा ब्रह्म पाठ मान लिया जाय ।।५।।

इत्युक्त्वा चोदयामास स्यन्दनं गान्दिनीसुतः । मथुरामनयद्रामं कृष्णं चैव दिनात्यये ।।६।।

अन्वयः— इति उक्त्वा गान्दिनी सुतः स्यन्दनं चोदयामास, दिनात्यये रामं कृष्णं च मथुराम् अनयत् ।।६।।

अनुवाद— यह कहकर गान्दिनी नन्दन अक्रूरजी रथ को हाँक दिए और सायंकाल बलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् को मथुरा ला दिए ।।६।।

भावार्थ दीपिका

गान्दिनीसुतोऽक्रूरः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

गान्दिनी देवी के पुत्र अक्रूरजी ।।६।।

मार्गे ग्रामजना राजंस्तत्रतत्रोपसङ्गताः । वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाददुः ।।७।।

अन्वयः— हे राजन् ! मार्गे तत्र-तत्र उपसङ्गताः ग्रामजनाः वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीताः दृष्टिं च न आददुः ।।७।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित रास्ते में स्थान-स्थान पर गाँव के लोग मिलते थे तथा वसुदेवजी के पुत्र बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर आनन्दमग्न हो जाते थे, यहाँ तक कि वे उन पर से अपनी दृष्टि भी नहीं हटा पाते थे ।।७।।

भावार्थ दीपिका

दृष्टिं नाददुः । पश्यन्त एव स्थिता इत्यर्थः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

दृष्टिं नाददुः अर्थात् देखते ही रह जाते थे ।।७।।

तावद्व्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयोऽग्रतः । पुरोपवनमासाद्य प्रतीक्षन्तोऽवतस्थिरे ।।८।।

अन्वयः— नन्दगोपादयः व्रजौकसः तावत् तत्र अग्रतः पुरोपवनमासाद्य प्रतीक्षन्तः अवतस्थिरे ।।८।।

अनुवाद— नन्दजी इत्यादि व्रजवासी गोपगण पहले ही वहाँ पहुँच गये थे और नगर के बाहरी उपवन में रुककर उन लागों की प्रतीक्षा कर रहे थे ।।८।।

भावार्थ दीपिका

रामकृष्णागमनं प्रतीक्षमाणाः स्थिताः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

बलराम जी और भगवान् कृष्ण के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे ।।८।।

तान् समेत्याह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः । गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं प्रहसन्निव ।।९।।

अन्वयः— तान् समेत्य भगवान् जगदीश्वरः प्रश्रितं अक्रूरं पाणिना पाणिं गृहित्वा प्रहसन् इव आह ।।९।।

अनुवाद— उन लोगों से मिलकर सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् विनीत भाव से खड़े अक्रूरजी का हाथ अपने हाथ में लेकर हँसते हुए से कहे ।।९।।

भावार्थ दीपिका

प्रश्रितं विनीतम् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्रितम् अर्थात् विनीत ।।९।।

भवान्प्रविशतामग्रे सहयानः पुरीं गृहम् । वयं त्विहावमुच्याथ ततो द्रक्ष्यामहे पुरीम् ।।१०।।

अन्वयः— भवान् अग्रे सहयानं पुरीं गृहम् प्रविशताम्, वयम् तु इह अवमुच्य अथ ततः पुरीं द्रक्ष्यामहे ।।१०।।

अनुवाद— आप पहले अपने रथ के साथ नगर में प्रवेश करें और घर जायँ इसके पश्चात् हमलोग यहाँ उतरकर फिर नगर देखने जायेंगे ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

स्वगृहं च प्रविशताम् । अवमुच्योत्तार्य विश्राम्येत्यर्थः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

अपने गृह में प्रवेश कीजिए । अवमुच्य अर्थात् उतरकर अर्थात् विश्राम करके ।।१०।।

अक्रूर उवाच

नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो । त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल ।।११।।

अन्वयः— हे प्रभो ! भवद्भ्यां रहितः अहं मथुरां न प्रवेक्ष्ये हे नाथ हे भक्तवत्सल ते भक्तं मां न त्यक्तुम् अर्हसि।।११।।

अक्रूरजी ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो आपलोगों के बिना मैं मथुरा में प्रवेश नहीं कर सकता हूँ । हे नाथ ! हे भक्तवत्सल प्रभो मैं आपका भक्त हूँआप मुझको न त्यागें ।।११।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।११।।

आगच्छ याम गेहान्नः सनाथान्कुर्वधोक्षज । सहाग्रजः सगोपालैः सुहृद्भिश्च सुहृत्तम ।।१२।।

अन्वयः— हे अधोक्षज हे सुहृत्तम सहाग्रजः, सगोपालैः सुहृद्भिश्च सहआगच्छ गेहान् याम नः सनाथान् कुरु ।।१२।।

अनुवाद— हे भगवन् ! हे मेरे परम हितैषी अपने अग्रज, नन्दादि गोपों तथा अपने मित्रों के साथ आइये घर चलें हमलोग, हमें आप सनाथ कीजिये प्रभो ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

साग्रजः सह गोपालैरित्यर्थः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

बलरामजी तथा गोपालों के साथ ।।१२।।

पुनीहि पादरजसा गृहान्नो गृहमेधिनाम् । यच्छौचेनानुतृप्यन्ति पितरः साग्नयः सुराः ।।१३।।

अन्वयः— पादरजसा गृहमेधिनाम् नः गृहान् पुनीहि यत्शौचेन पितरः साग्नयः सुराः अनुतृप्यन्ति ।।१३।।

अनुवाद— आप अपने चरणों की धूल से हम गृहस्थों के गृह को पवित्र बना दीजिये । आपके चरणोदक से पितृगण, अग्नि और देवगण तृप्त हो जाते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

यच्छौचेन यस्य पादरजसः क्षालनोदकेन गृहाङ्गणस्थितेन ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

आपके चरणों को धोने के जल के आङ्गन में पड़ने से ॥१३॥

अवनिज्याङ्घ्रियुगलमासीच्छ्लोक्यो बलिर्महान् । ऐश्वर्यमतुलं लेभे गतिं चैकान्तिनां तु या ॥१४॥

अन्वयः— महान् बली अङ्घ्रियुगलमवनिज्य श्लोक्यः आसीत् अतुलम् ऐश्वर्य ऐकान्तिनां तु या तां गतिं लेभे ॥१४॥

अनुवाद— भगवन् आपके चरण युगल को धोकर महात्मा बली ने उस यश को प्राप्त किया जिसका गान सत्पुरुष करते हैं तथा उन्होंने अतुलनीय ऐश्वर्य एवं एकान्तिक भक्तों को प्राप्त होने वाली गति को प्राप्त किया॥१४॥

भावार्थ दीपिका

श्लोक्यः पुण्यकीर्त्यर्हः । एकान्तभक्तानां या गतिस्तां च लेभे ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

श्लोक्यः अर्थात् पुण्य पुरुषों द्वारा कीर्तन किये जाने योग्य । ऐकान्तिक भक्तों को प्राप्त होने वाली गति को प्राप्त किया ॥१४॥

आपस्तेऽङ्घ्र्यवनेजन्यस्त्रीँल्लोकान् शुचयोऽपुनन् । शिरसाऽधत्त याः शर्वः स्वर्याताः सगरात्मजाः॥१५॥

अन्वयः— ते अवने जन्यः शुचयः आपः त्रीन्लोकान् अपुनन् याः शर्वः शिरसा अधत्त, सगरात्मजाः स्वःयाताः॥१५॥

अनुवाद— आपके चरणोदक के पवित्र जल से श्रीगङ्गाजी ने तीनों लोकों को पवित्र बना दिया, उन्हीं जलों को शङ्करजी ने अपने शिर पर धारण किया तथा उन जलों के स्पर्श से राजा सगर के पुत्र स्वर्ग चले गये ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अपुनन्पवित्रितवत्यः । याभिरद्भिः स्वः स्वर्गं प्राप्ताः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

अपुनन् अर्थात् पवित्र बना दिया । उन्हीं जलों के स्पर्श से स्वर्ग चले गये ॥१५॥

देवदेव जगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन । यदूत्तमोत्तमश्लोक नारायण नमोऽस्तु ते ॥१६॥

अन्वयः— हे देवदेव ! हे जगन्नाथ ! हे पुण्यश्रवणकीर्तन ! हे यदूत्तम ! हे उत्तमश्लोक ! हे नारायण ! ते नमः अस्तु॥१६॥

अनुवाद— हे देवताओं के भी आराध्यदेव, हे जगत् के स्वामिन् आपकी कथाओं का श्रवण और कीर्तन पुण्यमय है । हे यदुवंशियों में श्रेष्ठ, हे उत्तम यश सम्पन्न, हे नारायण आपको मेरा नमस्कार है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

प्रार्थयमानो नमस्करोति-देवदेवेति । अतः परमन्यच्छ्रेयो नास्तीति मत्त्वा बहुधा संबोधयति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की प्रार्थना करते हुए अक्रूरजी उनको नमस्कार करते हैं । इससे बढ़कर दूसरा कोई भी पुण्य नहीं है इसीलिए अक्रूरजी श्रीभगवान् को अनेक प्रकार से संबोधित करते हैं ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच

आयास्ये भवतो गेहमहमार्यसमन्वितः । यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये सुहृत्प्रियम् ॥१७॥

अन्वयः— भवतः गेहम् अहम् आर्यसमन्वितः आयास्ये । यदुचक्रद्रुहं हत्वा सुहृत्प्रियम् वितरिष्ये ॥१७॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— मैं आपके घर बलरामजी के साथ आऊँगा । सम्पूर्ण यदुवंशियों से द्रोह करने वाले कंस को मार कर अपने हितैषियों को प्रसन्न करूँगा ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

आदौ तावद्यदुचक्राय द्रुह्यतीति यदुचक्रध्रुक् तं कंसं हत्वा सुहृदां प्रियं वितरिष्ये दास्यामि ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम यदुवंशियों से द्रोह करने वाले कंस को मारकर अपने हितैषियों को प्रसन्न करूँगा ॥१७॥

श्रीशुक उवाच

एवमुक्तो भगवता सोऽक्रूरो विमना इव । पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्मावेद्य गृहं ययौ ॥१८॥

अन्वयः— एवम् भगवता उक्तः सः अक्रूरः विमना इव पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्मावेद्य गृहं ययौ ॥१८॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से श्रीभगवान् के कहने पर अक्रूरजी उदास के समान मथुरापुरी में प्रवेश किए । श्रीभगवान् के आने का समाचार कंस को बतलाकर वे अपने घर चले गये ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

रामकृष्णावानीताविति स्वकृतं कर्मावेद्य समर्प्येति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

श्रीकृष्ण और बलरामजी को मैंने ला दिया है इस तरह अपने कर्म को बतलाकर अक्रूरजी अपने घर चले गये ॥१८॥

अथापराह्ने भगवान् कृष्णः सङ्कर्षणान्वितः । मथुरां प्राविशद्गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः ॥१९॥

अन्वयः— अथ अपराह्ने सङ्कर्षणान्वितः भगवान् गोपैः परिवारितः दिदृक्षुः मथुरां प्राविशत् ॥१९॥

अनुवाद—उसके पश्चात् बलरामजी के साथ तथा गोपों से घिरे हुए देखने की इच्छा से मथुरा पुरी में प्रवेश किए॥१९॥

भावार्थ दीपिका

गोपैः परिवारितः प्राविशत् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

गोपों के साथ प्रवेश किए ॥१९॥

ददर्श तां स्फाटिकतुङ्गगोपुरद्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम् ।
ताम्रारकोष्ठां परिखादुरासदामुद्यानरम्यो पवनोपशोभिताम् ॥२०॥

अन्वयः— स्फटिकतुङ्गगोपुरद्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम्, ताम्रार कोष्ठां परिखादुरासदाम् उद्यानरम्योपवनोपशोभिताम् तां ददर्श ॥२०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने देखा कि नगर के परकोटे में स्फटिकमणि के ऊँचे-ऊँचे गोपुर तथा घरों में बड़े-

बड़े फाटक बने हैं, उनमें सोने के बड़े-बड़े किवाड़ लगे हैं तथा सोने के ही तोरण बने हैं। नगर के चारो ओर ताम्बे और पित्तल की चाहारदीवारी बनी हुई है। गहरी खाई के कारण कहीं से भी उसमें प्रवेश कर पाना कठिन है। स्थान-स्थान पर सुन्दर-सुन्दर उद्यान और उपवन सुशोभित हो रहे हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णदृष्टां पुरीमनुवर्णयति चतुर्भिः-ददर्श तामिति। स्फाटिकानि तुङ्गानि गोपुराणि पुरद्वाराणि गृहद्वाराणि च यस्यां ताम्। बृहन्ति हेममयानि कपाटानि तोरणानि च यस्यां ताम्। ताम्रं च आरः आरकूटश्च तन्मयाः कोष्ठा धान्यागाराश्चशालादयो यस्यां ताम्। परिखाः परितः खातगर्तास्ताभिर्दुरासदां दुर्गमाम्। उद्यानानि दूरस्थानि वनानि रम्याण्युपवनानि च निकंटानि तैरुपशोभिताम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा देखी गयी मथुरापुरी का वर्णन शुकदेवजी चार श्लोकों से करते हैं। स्फटिकमणि के ऊँचे-ऊँचे नगर के तथा गृहों के द्वार उस नगरी के बड़े-बड़े किवाड़ और तोरण सुवर्ण के ही बने हैं। ताम्बे और पीतल के धान्यागार और घोड़ों के रहने के स्थान बने हैं। नगर के चारो ओर गहरी खाईं होने से उसमें कही से भी प्रवेश करना कठिन है। वह नगरी उद्यानों और उपवनों से सुशोभित है ॥२०॥

सौवर्णशृङ्गाटकहर्म्यनिष्कुटैः श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम् ।
वैदूर्यवज्रामलनीलविद्रुमैर्मुक्ताहरिद्भिर्वलभीषु वेदिषु ॥२१॥
जुष्टेषु जालामुखरन्ध्रकुट्टिमेष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् ।
संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां प्रकीर्णमाल्याङ्कुरलाजतण्डुलाम् ॥२२॥

अन्वयः— सौवर्णशृङ्गाटकहर्म्यनिष्कुटैः श्रेणीसमाभिः भवनैः उपस्कृताम् वैदूर्यविज्रामलनील विद्रुमैः मुक्ताहरिद्भिः वलभीषु वेदिषु जुष्टेषु जालामुखरन्ध्रकुट्टिमेषु आविष्टपारावत बर्हिनादिताम् संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां प्रकीर्ण माल्यांकुरलाजतण्डुलाम् ददर्श ॥२१-२२॥

अनुवाद—श्रीभगवान् ने देखा कि सुवर्ण से सजे हुए चौराहे, धनिकों के महल तथा उनके साथ लगे हुए बगीचे, प्रजावर्ग के सभा भवन, तथा साधारण लोगों के निवास गृह उस नगरी की शोभा बढ़ा रहे हैं। वैदूर्य, हीरे, स्फटिक, नीलम, मूङ्गे, मोती और पन्ना आदि से जड़े हुए छज्जे, चबूतरे, झरोखें एवं फर्श आदि जगमगा रहे हैं। उन पर बैठे हुए कबूतर, मोर, आदि पक्षी अनेक प्रकार की बोलियाँ बोल रहे हैं। सड़क, बाजार, गली और चौराहों पर खूब छिड़काव किया गया है। स्थान-स्थान पर फूल माला, जवार लावा और अक्षत बिखरे हुए हैं ॥२१-२२॥

भावार्थ दीपिका

सौवर्णाः शृङ्गाटकाश्चतुष्पथा हर्म्याणि धनिनां गृहाणि च निष्कुटा गृहोचिता आरामाश्च तैः। श्रेणीनामेकशिल्पोपजीविनां सभाभिरुपवेशस्थानैरन्यैश्च भवनैर्गृहैरूपस्कृतामलंकृताम्। अमलाः स्फटिकाः। हरितो मरकताः। वैदूर्यादिरत्नैर्जुष्टेषु बलभ्यादिष्वाविष्टैरुपविष्टैः पारावतैर्बर्हिभिश्च नादिताम् तत्र वलभ्यो गृहपुरोभागेषु वक्रदारुच्छादनानि। वेदयो बलभीनामधोदेशे विरचिता अवष्टम्भवेदिकाः। जालामुखरन्ध्राणि गवाक्षच्छिद्राणि। कुट्टिमानि मणिबद्धा भूमयस्तेष्विति। रथ्या राजमार्गाः आपणाः पण्यवीथयः मार्गा अन्ये च, चत्वराण्यङ्गनानि, संसिक्तानि रथ्यादीनि यस्यां ताम्। प्रकीर्णा माल्यादयो यस्यां ताम् ॥२१-२२॥

भाव प्रकाशिका

सुवर्ण निर्मित चौराहे, हर्म्याणि अर्थात् धनिकों के महल, निष्कुष्टाः और उन गृहों से लगे हुए बगीचों से श्रेणी सभाभिः अर्थात् एक तरह के शिल्प से अपना जीवन निर्वाह करने वाले कारीगरों का सभा भवनों से तथा दूसरे प्रकार के भवनों से, समलंकृत मथुरापुरी को श्रीभगवान् ने देखा। अमलाः अर्थात् स्फटिक मणियाँ, हरितः

अर्थात् मरकत मणियाँ, वैदूर्य आदि रत्नों से जटित बलभी अर्थात् छज्जों में बैठे हुए कबूतर मोर आदि की बोलियों से ध्वनित । घर के आगे बने छज्जों को बलभी कहते हैं । छज्जों के नीचे बैठने के लिए बनी हुई वेदियाँ जालामुखरन्ध्राणि अर्थात् खिड़कियों के छिद्र । मणियों से बने फर्श को कुट्टिम कहते हैं । राजमार्ग के रथ्या तथा बाजार को आपण कहते हैं । चत्वर अर्थात् आङ्गन । उस पुरी के राजमार्ग आदि पर छिड़काव किया गया था। वहाँ माला इत्यादि बिखरे पड़े थे । ऐसी मथुरा नगरी को श्रीभगवान् ने देखा ।।२१-२२।।

आपूर्णकुम्भैर्दधिचन्दनोक्षितैः प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः ।
सवृन्दरम्भाक्रमुकैः सकेतुभिः स्वलंकृतद्वारगृहां सपट्टिकैः ।।२३।।

अन्वयः— दधिचन्दनोक्षितैः आपूर्णकुम्भैः प्रसून दीपावलिभिः सपल्लवै, सवृन्दरम्भाक्रमुकैः सकेतुभिः सपट्टिकैः स्वलंकृतद्वारगृहां मथुरापुरीं ददर्श ।।२३।।

अनुवाद— श्रीभगवान् ने देखा कि मथुरापुरी के गृहों के द्वारों पर दही चन्दन और अक्षत से चर्चित जल भरे कलश रखे गये हैं, वे फूल, दीपक नयी-नयी कोंपलों फल सहित केले और सुपारी के वृक्ष छोटी-छोटी झंड़ियों और रेशमी वस्त्रों से सजाये गये हैं ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

तथा स्वलंकृतानि द्वाराणि येषां ते गृहा यस्यां ताम् । कैः । आपूर्णैः कुम्भैर्दध्ना चन्दनेन चोक्षितैः सिक्तैः प्रसूनानां दीपानां चावलयो येषु तैः । वृन्दैः फलगुच्छैरुपलक्षिता रम्भाः क्रमुकाश्च तत्सहितैः । सकेतुभिः केतवो ध्वजास्तत्सहितैः । पट्टिका वितस्तिविस्तारपट्टवस्त्राणि तत्सहितैः । तत्रेवं रीतिः-द्वारेषूभयतस्तण्डुलानामुपरि कुम्भास्तत्परितः प्रसूनावलयः कण्ठे पट्टिका मुखे चूतादिपल्लवास्तदुपरि पात्रान्तरे दीपावलयस्तत्संनिधौ रम्भाः क्रमुकाः केतवस्तोरणानि चेति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

उस मथुरापुरी के गृहों के द्वार सजाये गये थे । किन वस्तुओं से ? दधि चन्दन तथा अक्षतों से सिक्त जलभरे कलशों सें, वे सब पुष्पों एवं दीपों से सजाये गये हैं, फल से युक्त केले और सुपारी के वृक्षों से ध्वजा पताकाओं से तथा छोटी-छोटी झंडियों से सजाये गये हैं । उसका क्रम यह है द्वारों के दोनों और चावलों के ऊपर कलश, उसके चारों ओर पुष्पों के समूह रखा गया । कलश के गले में पट्टी बँधी है, उसके ऊपर आम आदि के पल्लव रखे है । उसके ऊपर दूसरे पात्र में दीपक जलाये गये है । उसी के सन्निकट में केले और सुपारी ध्वजा पताका लगाया गया है ।।२३।।

तां संप्रविष्टौ वसुदेवनन्दनौ वृतौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मना ।
द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियो हर्म्याणि चैवारुरुर्नृपोत्सुकाः ।।२४।।

अन्वयः— वयस्यैः वृतौ वसुदेवनन्दनौ नरदेवर्त्मना तां संप्रविष्टौ, हे नृप द्रष्टुम् त्वरिताः पुरस्त्रियः समीयुः उत्सुकाः हर्म्याणि चैव आरुरुहुः ।।२४।।

अनुवाद— राजन् भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ग्वाल बालों के साथ राजमार्ग से उस नगरी में प्रवेश किए । उस समय मथुरा की नारियाँ अत्यधिक उत्सुक होकर एक साथ मिलकर उनको देखने के लिए महल के छतों पर चढ़ गयीं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

नरदेववर्त्मना राजमार्गेण तां पुरीं संप्रविष्टाविति द्वितीयान्तम् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

वे दोनों राजमार्ग से मथुरापुरी में प्रवेश किए । प्रविष्टौ यह द्वितीयान्त पद है ।।२४।।

काश्चिद्विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणा विस्मृत्य चैकं युगलेष्वथापराः ।
कृतैकपत्रश्रवणैकनूपुरा नाङ्क्त्वा द्वितीयं त्वपराश्च लोचनम् ।।२५।।

अन्वयः— काश्चिद्विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणा, अथ अपराः युगलेषु एकं विस्मृऽय कृतै कपत्रश्रवणैकनूपुरा अपराः च द्वितीयं लोचनं नाङ्क्त्वा ।।२५।।

अनुवाद— कुछ नारियों ने शीघ्रता करते हुए वस्त्रों और आभूषणों को ही उलटा पहन लिए कुछ नारियाँ एक-एक ही कुण्डल धारण करके तथा दूसरे को भूलकर, किसी ने अपनी एक ही आँख में काजल लगाया दूसरे में काजल लगाना भूलकर चल पड़ी ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

औत्सुक्यमेवाह द्वयेन-काश्चिदिति । विपर्यक् विपरीतं धृतानि वस्त्राणि भूषणानि च याभिस्ताः । युगलेषु युग्मधार्येषु कुण्डलकङ्कणादिष्वेकं विस्मृत्य समीयुः । कृतमेकमेव पत्रं ययोस्ते श्रवणे यासाम्, एकमेव नूपुरं चरणाभरणं यासां ताश्च ताश्च। नाङ्क्त्वा अनङ्क्त्वा । एकस्मिन्नेव लोचने अञ्जनं निधायैव ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

नारियों की उत्सुकता को ही दो श्लोकों से कहा गया है । विपर्यक् अर्थात् विपरीत । उन सबों ने उलटा ही वस्त्रों एवं आभूषणों को धारण कर लिया । जिन सबों को जोड़ा ही धारण किया जाता है ऐसे कुण्डल कङ्गन आदि में से एक-एक को ही धारण करके कुछ नारियाँ चल पड़ी । किसी ने एक ही पत्र नामक आभूषण धारण किया तो किसी ने एक ही नूपुर को धारण किया । कोई एक ही आँख में काजल लगाकर दूसरे में काजल लगाना भूल गयी ।।२५।।

अश्नन्त्य एकास्तदपास्य सोत्सवा अभ्यज्यमाना अकृतोपमज्जनाः ।
स्वपन्त्य उत्थाय निशम्य निःस्वनं प्रपाययन्त्योऽर्भमपोह्य मातरः ।।२६।।

अन्वयः— अश्नन्त्यः एकाः तदपास्या, सोत्सवाः अभ्यज्यमानाः अकृतोपमज्जनाः स्वपन्त्यः निःस्वनं निशम्य उत्थाय प्रपाययन्त्यः मातरः अर्भम् अपोह्य ।।२६।।

अनुवाद— कुछ स्त्रियाँ भोजन कर रही थीं भोजन करना छोड़कर भगवान् श्रीकृष्ण को देखने चल पड़ीं, सबों के मन में आनन्द भरा था, कुछ जो उबटन लगवा रही थी । बिना स्नान किए ही चल पड़ी, कुछ सो रही थी आवाज सुनकर जग पड़ी और वैसे ही चल पड़ी कुछ बच्चे को दूध पिला रही थी, वह दूध पिलाना छोड़कर चल पड़ी ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

तद्भोजनं त्यक्त्वा अभ्यज्यमानाः सखीभिः क्रियमाणतैलाभ्यङ्गाः अकृतोपमज्जना अकृतस्नानाः । अर्भं बालकम् । अपोह्य निरस्य ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

तदपास्य अर्थात् भोजन छोड़कर, कुछ की सखियाँ उन्हें उबटन लगा रही थीं वे बिना स्नान किए ही, अर्भम् अर्थात् बालक को, अपोह्य अर्थात् हटाकर ।।२६।।

मनांसि तासामरविन्दलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकैः ।
जहार मत्तद्विरदेन्द्रविक्रमो दृशां ददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम् ।।२७।।

अन्वयः— मत्तद्विरेन्द्रविक्रमः अरविन्दलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकनैःश्रीरमणात्मना तासाम् दृशां उत्सवं ददन् मनांसि जहार ।।२७।।

अनुवाद— मत्तगजेन्द्र के समान चाल वाले भगवान् श्रीकृष्ण अपनी विलासपूर्ण हँसी तथा प्रेम भरे चितवन से एवं श्रीलक्ष्मीजी को भी आनन्दित करने वाले अपने श्याम सुन्दर श्रीविग्रह से उन नारियों को आनन्द प्रदान करते हुए उन सबों के मन को हर लिया ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

प्रगल्भा या लीलाताभिर्हसितानि निरीक्षणानि च तैः श्रियं रमयतीति श्रीरमणस्तेनात्मना वपुषा तासां दृशामुत्सवं ददन्मनांसि जहार ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

विलासपूर्ण प्रगल्भ हँसी तथा अवलोकन के द्वारा लक्ष्मीजी को भी आनन्दित करने वाले अपने श्याम वर्ण के श्रीविग्रह से उन नारियों के नेत्रों को आनन्द प्रदान करते हुए उन सबों के मन का अपहरण कर लिये ।।२७।।

दृष्ट्वा मुहुः श्रुतमनुद्रुतचेतसस्तं तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः ।
आनन्दमूर्तिमुपगुह्य दृशात्मलब्धं हृष्यत्त्वचो जहुरनन्तमरिंदमाधिम् ।।२८।।

अन्वयः— अरिन्दम मुहु श्रुतम् अनुद्रुतचेतसः तं दृष्ट्वा तत्प्रेक्षणोत्स्मित सुधोक्षणलब्धमानाः, दृशात्मलब्धं आनन्दमूर्तिम्उपगुह्य दृष्य तत्वचः अनन्तम् आधिम् जहुः ।।२८।।

अनुवाद— हे कामादि शत्रुओं का दमन करने वाले राजन् परीक्षित् । जिनके विषय में उन नारियों ने बहुत अधिक सुन रखा था, उनका चित्त चिरकाल से उनके लिए चञ्चल हो रहा था उन श्रीभगवान् को देखकर तथा भगवान श्रीकृष्ण द्वारा प्रेम भरे प्रेक्षण एवं मन्दमुस्कान की सुधा सिञ्चित सम्मान को प्राप्त कर उन मथुरा की नारियों ने अपनी आँखों के मार्ग से उनको अपने हृदय में बैठा लिया तथा उनके आनन्दमय स्वरूप का गाढालिङ्गन करके चिरकाल की विरह व्यथा को शान्त कर लिया ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

मुहुः श्रुतत्वात्तद्रुतचेतसः सद्यस्तं दृष्ट्वा तस्य प्रेक्षणं चोत्स्मितं च तदेव सुधा तयोक्षणं सेचनं तेन लब्धो मानो याभिस्ताः। दृशोद्घाटितेननेत्रद्वारेणात्मनि मनसि लब्धं प्राप्तं परिष्वज्य तदप्राप्तिजनितमनन्तमाधिं मानसीं व्यथां जहुः-हे अरिंदम निर्जितकामेति संबोधनं शृङ्गाररसे निमग्नो मा भूरिति ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में बहुत बार सुने गये रहने के कारण, जिन सबों का मन भगवान श्रीकृष्ण में ही लगा था वे सभी नारियाँ श्रीभगवान् को देखकर श्रीभगवान् के प्रेमपूर्ण प्रेक्षण एवं मन्दमुस्कान रूपी सुधा से सिंचित सम्मान को प्राप्त कर वे नारियाँ अपने नेत्र के मार्ग से उनको अपने हृदय में बैठाकर उनके आनन्दमय स्वरूप का आलिङ्गन करके चिरकाल की विरहव्यथा जन्य मानसिक व्यथा का परित्याग कर दिया । हे अरिन्दम अर्थात् कामादि को जीतने वाले परीक्षित् । अर्थात् तुम शृङ्गार रस में निमग्न मत होओ ।।२८।।

प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखाम्बुजाः । अभ्यवर्षन्सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ ।।२९।।

अन्वयः— प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखाम्बुजाः प्रमदा बलकेशवौ सौमनस्यैः अभ्यवर्षन् ।।२९।।

अनुवाद— अपने-अपने महलों की अटारियों पर चढ़ी हुई, प्रेम के आवेग से जिनका मुख कमल विकसित था वे नारियाँ भगवान श्रीकृष्ण और बलरामजी के ऊपर फूलो की वर्षा की ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

सौमनस्यैः कुसुमसमूहैः शोभनमनोभावैर्वा ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

सौमनस्यैः अर्थात् पुष्प समूह से अथवा सुन्दर मनोभावों से ।।२९।।

दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रग्गन्धैरभ्युपायनैः । तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्र तत्र द्विजातयः ।।३०।।

अन्वयः— तत्र-तत्र प्रमुदिताः द्विजातयः तौ दध्यक्षतैः सोदपात्रैः स्रग्गन्धैः अभ्युपायनैः तौ आनर्चुः ।।३०।।

अनुवाद— स्थान-स्थान पर प्रसन्न हुए ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों ने बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण की दही अक्षत, जल से भरे पात्र पुष्पों की मालाओं चन्दन एवं भेंट की सामग्री से पूजा की ।।३०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३०।।

ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन्महत् । या ह्येतावनुपश्यन्ति नरलोकमहोत्सवौ ।।३१।।

अन्वयः— पौराः ऊचुः अहो गोप्यः किम् महत् तपः अचरन् या हि एतौ नरलोकमहोत्सवौ अनुपश्यन्ति ।।३१।।

अनुवाद— मथुरा नगर की नारियों ने कहा गोपियों ने न जाने कौन सी महान तपस्या की है कि मनुष्य लोक को आनन्द प्रदान करने वाले इन दोनों बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करती रहती है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

पौराः पुरस्त्रियः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

पौराः अर्थात् मथुरा नगरी की नारियाँ ।।३१।।

रजकं कंचिदायान्तं रङ्गकारं गदाग्रजः । दृष्ट्वाऽयाचत वासांसि धौतान्यत्युत्तमानि च ।।३२।।

अन्वयः— गदाग्रजः कंचित् रङ्कारं रजकं आयान्तं दृष्ट्वा धौतानि उत्तमानि वासांसि अयाचत ।।३२।।

अनुवाद— उस समय भगवान् श्रीकृष्ण किसी आते हुए धोबी को देखे जो रङ्गने का भी काम करता था उससे उन्होंने धुले हुए उत्तम वस्त्रों को माँगा ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

रजको वस्त्रनिर्णेजकः स एव वस्त्राणां रङ्गमपि कुर्वन् रङ्गकारः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

वस्त्रों को धोने वाले तथा वस्त्रों को रङ्गने वाले ।।३२।।

देह्यावयोः समुचितान्यङ्ग वासांसि चार्हतो । भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते नात्र संशयः ।।३३।।

अन्वयः— अर्हतोः आवयोः समुचितानि अङ्गवासांसि देहि, दातुः ते परं श्रेयो भविष्यति अत्र संशयः न ।।३३।।

अनुवाद— भगवान् ने कहा भाई तुम हम दोनों को ऐसा वस्त्र दो जो हमदोनों के योग्य हो । ऐसा करने से तुम्हारा परम कल्याण होगा इसमें कोई संदेह नहीं है ।।३३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३३।।

स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वतः । साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यो राज्ञः सुदुर्मदः ।।३४।।

अन्वयः— सर्वतः परिपूर्णेन भगवता याचितः राज्ञः सुदुर्मदः भृत्यः सः साक्षेपं रुषितः प्राह ।।३४।।

अनुवाद— श्रीभगवान् तो हर प्रकार से परिपूर्ण हैं, उनके द्वारा याचना किए जाने पर राजा कंस का अत्यन्त घमण्डी भृत्य वह श्रीभगवान् पर आक्षेप करते हुए क्रोध करके कहा ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

रुषितः कुपितः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

रुषितः अर्थात् क्रोध करके ।।३४।।

ईदृशान्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचराः । परिधत्त किमुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सथ ।।३५।।

अन्वयः— हे उद्वृत्ताः नित्यंगिरिवनेचराः ईदृशान्येव वासांसि परिधत्ते किमु राजद्रव्याणि अभीप्सथ ।।३५।।

अनुवाद— ऐ उद्दण्डों ! सदा पर्वतों और वनों में रहने वाले इसी प्रकार के वस्त्रों को पहनते हो क्या, राजा के द्रव्य को प्राप्त करना चाहते हो ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

हे उद्वृत्ताः, गिरौ वने चरथ ये नित्यं ते यूयं पूर्वं परिधत्तेति संभावनायां लोटू । अभीप्सथ प्रार्थयध्वम् ।।३५।।'

भाव प्रकाशिका

ऐ उद्दण्डों पर्वत पर वन में रहने वाले तुमलोग पहले इसी तरह के वस्त्रों को पहनते थे क्या ? यहाँ सम्भावना के अर्थ में परिधत्त में लोट् लकार है । अभीप्सथ अर्थात् माँग रहे हो ।।३५।।

याताशु बालिशा मैवं प्रार्थ्यं यदि जिजीविषा । बध्नन्ति घ्नन्ति लुम्पन्ति दृप्तं राजकुलानि वै ।।३६।।

अन्वयः— हे वालिशा यदि जिजीविषा आशु यात मैवं प्रार्थ्यं राजकुलानि वै दृप्तं बध्नन्ति, घ्नन्ति लुम्पन्ति ।।३६।।

अनुवाद— ऐ मूर्खों यदि जीवित रहने की इच्छा है तो शीघ्र भाग जाओ । इस तरह से प्रार्थना मत करना अन्यथा राज्यकर्मचारी तुम जैसे घमण्डियों को कैद कर लेते हैं, मारते हैं और उन सबों के पास जो कुछ भी रहता है छिन लेते हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

राजकुलानि राजकीयाः लुम्पन्ति निःस्वं कुर्वन्ति ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

राजकुलानि अर्थात् राजकर्मचारी, लुम्पन्ति अर्थात् छिन लेते हैं ।।३६।।

एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः । राजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ।।३७।।

अन्वयः— इत्थम् विकत्थमानस्य कुपितः देवकी सुत कराग्रेण शिरः कायात् अपातयत् ।।३७।।

अनुवाद— इस तरह से बहक-बहक कर बोलने वाले को भगवान् श्रीकृष्ण क्रोध करके एक तमाचा मारे और उसका सिर घड़ से टूटकर पृथिवी पर गिर पड़ा ।।३७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३७।।

तस्यानुजीविनः सर्वे वासः कोशान् विसृज्य वै । दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः ॥३८॥

अन्वयः— तस्यानुजीविनः सर्वे वासः कोशान् विसृज्य सर्वतोमार्गं दुद्रुवुः अच्युतः वासांसि जगृहे ॥३८॥

अनुवाद— यह देखकर उस धोबी के जितने अनुचर थे वे कपड़ों के गट्ठर को छोड़कर इधर-उधर भाग गये और भगवान् उन वस्त्रों को ले लिए ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

वासःकोशान् वस्त्रपुटकान् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

वासः कोशान् अर्थात् कपड़ों के गट्ठर को ॥३८॥

वसित्वात्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः संकर्षणस्तथा । शेषाण्यादत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित् ॥३९॥

अन्वयः— कृष्णः तथा सङ्कर्षणः आत्मप्रिये वस्त्रे वसित्वा कानिचित् भुवि विसृज्य शेषाणि गोपेभ्यः आदत्त ॥३९॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी अपने प्रिय वस्त्रों को धारण करके तथा कुछ वस्त्रों को वहीं छोड़कर शेष वस्त्रों को गोपों में बाँट दिए ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत् । विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपतः ॥४०॥

अन्वयः— ततः तु प्रीतः वायकः तयोः वेषम् विचित्र वर्णैः चैलेयैः आकल्पैः अनुरुपतः अकल्पयत् ॥४०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् एक दर्जी ने प्रेम पूर्वक श्रीराम और श्रीकृष्ण को रङ्ग-विरङ्गे वस्त्रों से उनके अनुकूल वेष के रूप में सजा दिया ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

वायकस्तन्तुवायविशेषः । वेषमलङ्कारम् । चैलैयैर्वस्त्रमयैराकल्पैर्भूषणैः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

वायकः अर्थात् दर्जी वेषम् अर्थात् अलङ्कार को । **चैलेयैः** अर्थात् वस्त्रमय आकल्पैः अर्थात् भूषणों से ॥४०॥

नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः । स्वलंकृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ ॥४१॥

अन्वयः— रामकृष्णौ नानालक्षणवेषाभ्यां पर्वणि सितेतरौ स्वलंकृतौ बालगजौ इव विरेजतु ॥४१॥

अनुवाद— बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण अनेक प्रकार से वस्त्रों से उसी तरह सुशोभित हो रहे थे जैसे-जैसे किसी उत्सव के अवसर पर श्याम और श्वेत दो बालगज सजा दिए गये हों ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

पर्वण्युत्सवे ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

पर्वणि अर्थात् उत्सव के समय पर ॥४१॥

तस्य प्रसन्नो भगवान् प्रादात्सारूप्यमात्मनः । श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतीन्द्रियम् ॥४२॥

अन्वयः— तस्य प्रसन्नोभगवान् आत्मनः सारूप्यम् प्रादात् लोके परमां श्रियं बलैश्वर्य स्मृतीन्द्रियम् च ॥४२॥

अनुवाद— उस दर्जी पर प्रसन्न होकर भगवान् इस लोक में भरपूर धन सम्पत्ति बल ऐश्वर्य अपनी स्मृति और इन्द्रियों की देखने सुनने आदि की शक्ति प्रदान की और मृत्यु के पश्चात् अपना सारूप्य मोक्ष भी प्रदान किए॥४२॥

भावार्थ दीपिका

इहलोके परमां श्रियं च बलं चैश्वर्यं च स्मृतिं चेन्द्रियं तत्पाटवं च प्रादात् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने उसको इस लोक में अतुल धन सम्पत्ति, बल, ऐश्वर्य, स्मृति तथा इन्द्रियों की पटुता प्रदान की ।।४२।।

ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः । तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ।।४३।।

अन्वयः— ततः सुदाम्नः मालाकारस्य भवनं जग्मतुः तौ दृष्ट्वा सः समुत्थाय भुवि शिरसा ननाम ।।४३।।

अनुवाद— उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी सुदामा नामक मालाकार के भवन में गये । उन दोनों को आये हुए देखकर वह उठकर खड़ा हो गया और जमीन पर सिर टेककर उनलोगों को प्रणाम किया ।।४३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४३।।

तयोरासनमानीय पाद्यं चार्थार्हणादिभिः । पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः ।।४४।।

अन्वयः— तयोः आसनम् आनीय पाद्यं चार्घ्यार्हणादिभिः स्रक् ताम्बूलानुलेपनैः सानुगयोः पूजां चक्रे ।।४४।।

अनुवाद— उसके पश्चात् उन दोनों लोगों को आसन पर बैठाकर पाद्य अर्घ्य आदि प्रदान करके सभी ग्वाल बालों के साथ माला, ताम्बूल तथा चन्दनानुलेपन आदि के द्वारा उसने श्रीकृष्ण एवं बलरामजी की पूजा की ।।४४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४४।।

प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो । पितृदेवर्षयो मह्यं तुष्टा ह्यागमनेन वाम् ।।४५।।

अन्वयः— प्राह प्रभो वाम् आगमनेन नः जन्म सार्थकं कुलं च पवित्रं, पितृदेवर्षयः मह्यं तुष्टाः ।।४५।।

अनुवाद— उसने प्रार्थना की कि हे प्रभो आपदोनों के आगमन से मेरा जन्म सफल हो गया मेरा वंश पवित्र हो गया तथा हमारे पितृगण देवता एवं ऋषिगण हमसे संतुष्ट हो गये ।।४५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४५।।

भवन्तौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम् । अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवाय च ।।४६।।

अन्वयः— भवन्तौ किल विश्वस्य परमं कारणम्, क्षेमाय भवाय च इह अंशेन अवतीर्णौ ।।४६।।

अनुवाद— आप दोनों जगत के परम कारण हैं, आप दोनों इस लोक में अपने अंश से संसार को अभ्युदय तथा मोक्ष प्रदान करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

क्षेमायाभवाय । भवायोद्भवाय ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

क्षेमाय अर्थात् अभय प्रदान करने के लिए तथा **भवाय** अभ्युदय करने के लिए ।।४६।।

नहि वां विषमा दृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः । समयोः सर्वभूतेषु भजन्तं भजतोरपि ।।४७।।

अन्वयः— भजन्तं भजतोः अपि सुहृदोः जगदात्मनोः सर्वभूतेषु समयोः वां विषमा दृष्टिः न ।।४७।।

अनुवाद— यद्यपि आप भजन करने वालों को ही भजते हैं फिर भी आप सबों के हितैषी है तथा सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं । सभी जीवों के प्रति समान दृष्टि रखने वाले आपलोगों की विषम दृष्टि नहीं है ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

रजकवधेन वायकानुग्रहेण च युवयोर्विषमदृष्टितयाऽनीश्वरता नाशङ्कनीयेत्याह–नहि वामिति । अत्र हेतुः–समयोरिति । अत्रापि हेतुद्वयम्– सुहृदोरिति जगदात्मनोरिति च ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

धोबी का वध करने के कारण तथा दर्जी पर कृपा करने के कारण आप दोनों की विषम दृष्टि है इस रूप से अनीश्वरता की शङ्का नहीं करनी चाहिए इस बात को **नहिवाम्० इत्यादि** से कहा गया है । उसका कारण है कि आप दोनों सबों के प्रति समान दृष्टि रखते है । ऐसा होने का कारण हैं, क्योंकि आप दोनों सबों के हितैषी हैं तथा जगत् की आत्मा हैं।।४७।।

तावाज्ञापयतं भृत्यं किमहं करवाणि वाम् । पुंसोऽत्यनुग्रहो ह्येष भवद्भिर्यन्नियुज्यते ॥४८॥

अन्वयः— तौ भृत्यं आज्ञापयतम् वाम् अहं किं करवाणि, एषहि पुंसः अत्यनुग्रहः यत् भवद्भिः नियुज्यते ।।४८।।

अनुवाद— इस प्रकार के आप दोनों इस अपने भृत्य को आज्ञा दीजिये कि मैं आप दोनों की कौन सी सेवा करूँ । यह आप की बहुत बड़ी कृपा होगी कि आप मुझे किसी कार्य को करने के लिए आज्ञा दें ।।४८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४८।।

इत्यभिप्रेत्य राजेन्द्र सुदामा प्रीतमानसः । शस्तैः सुगन्धैः कुसुमैर्माला विरचिता ददौ ॥४९॥

अन्वयः— हे राजेन्द्र इति अभिप्रेत्य सुदामा प्रीतमानसः शस्तै सुगन्धैः कुसुमैः विरचिता माला ददौ ।।४९।।

अनुवाद— हे राजेन्द्र ! इस तरह से प्रार्थना करके सुदामा माली ने श्रीभगवान् के अभिप्राय के समझ लिया। उसने श्रेष्ठ सुगन्धित पुष्पों से निर्मल माला उन दोनों को प्रदान किया ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

इत्यभिप्रेत्य इत्येवं विज्ञापयन्नभिप्रेत्य तन्मतं ज्ञात्वा ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के अभिप्राय को जानकर ।।४९।।

ताभिः स्वलंकृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहानुगौ । प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान् ॥५०॥

अन्वयः— ताभिः स्वलंकृतौ प्रीतौ सहानुगौ कृष्णरामौ–प्रणताय प्रपन्नाय वरदौ वरान् ददतुः ।।५०।।

अनुवाद— ग्वाल बालों के साथ उन मालाओं से समलंकृत भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी अत्यन्त प्रसन्न हुए । वर प्रदान करने वाले उन दोनों लोगों ने विनीत तथा शरणागत सुदामा माली को वरदान प्रदान किए ।।५०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५०।।

सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि । तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥५१॥

अन्वयः— सः अपि तस्मिन्नखिलात्मनि अचलां भक्तिं, तद्भक्तेषु सौहार्दं भूतेषु च पराम् दयां वव्रे ।।५१।।

अनुवाद— सुदामा माली ने भी सम्पूर्ण जगत् की आत्मा श्रीभगवान् से निश्चल भक्ति, भगवद् भक्तों के प्रति, सौहार्द तथा सभी जीवों के प्रति दया के सर्वश्रेष्ठ भाव का वरदान माँगा ।।५१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५१।।

इति तस्मै वरं दत्त्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम् । बनमायुर्यशः कान्तिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पुरप्रवेशो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४१।।

अन्वयः— इति तस्मै वरं अन्वयवर्धिनीं श्रियं बलम् आयुः यशः कान्तिं च दत्त्वा सहाग्रजः निर्जगाम ।।५२।।

अनुवाद—इस तरह से सुदामा को अभिप्रेत वरदान, वंश परम्परा के अनुसार बढने वाली लक्ष्मी, बल, आयु, यश और कान्ति प्रदान करके श्रीभगवान् वहाँ से बलरामजी के साथ निकल पड़े ।।५२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के मथुरा नगरी में प्रवेश नामक एकतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

अन्वयवर्धिनीं वंशे वृद्धिमतीमित्यर्थः । अप्रार्थितं श्रीप्रभृतिकं च दत्त्वा ततो निर्जगामेति ।।५२।।

'स्वैरं चरन्मधुपुरे रजकं निकृत्त्य कृष्णः प्रदाय च वरानथ वायकाय ।
मालाकृतं समनुकम्प्य चकार कुब्जामृज्वीं धनुश्च सहसा नमयन्बभञ्ज' ।।१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायामेकचत्वरिंशोऽध्यायः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

अन्वयवर्धिनीम् अर्थात् वंश परम्परा के अनुसार बढ़ने वाली सुदामा माली द्वारा नहीं भी माँगी गयी लक्ष्मी इत्यादि को प्रदान करके श्रीभगवान् वहाँ से निकल गये ।।५२।।

मथुरापुरी में अपनी इच्छा के अनुसार विचरण करते हुए श्रीकृष्णभगवान् धोबी को मारकर, दर्जी को वर प्रदान करके, मालाकार पर कृपा करके तथा कुब्जा को ऋज्वी सुन्दरी बनाकर धनुष को झुकाकर अचानक तोड़ दिये।।१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के एकतालिसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।४१।।

* * *

बयालिसवाँ अध्याय

भगवान् कृष्ण की कुब्जा पर कृपा धनुर्भङ्ग तथा कंस की बेचैनी

श्रीशुक उवाच

अथ व्रजन्राजपथेन माधवः स्त्रियं गृहीताङ्गविलेपभाजनाम् ।
विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां पप्रच्छ यान्तीं प्रहसनरसप्रदः ॥१॥

अन्वयः— अथ राजपथेन व्रजन् गृहीताङ्गविलेपभाजनाम् कुब्जां युवतीं वराननां यान्तीं स्त्रियं विलोक्य प्रहसन् रसप्रदः माधवः पप्रच्छ ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् परीक्षित् राजमार्ग से जाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने एक जाती हुई स्त्री को देखा, वह अपने हाथ में चन्दन का पात्र लिए हुई थी, वह कुबड़ी थी अतएव कुब्जा कहलाती थी, वह युवती थी तथा उसका मुँह सुन्दर था । उसको देखकर प्रेम रस प्रदान करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण उससे पूछे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्विचत्वारिंशके कुब्जोन्नमनं धनुषो भिदा । वधस्तद्रक्षिणां कंसारिष्टं रङ्गोत्सवादि च ॥१॥ अङ्गविलेपाश्चन्दनादयः । गृहीतान्यङ्गविलेपानां भाजनानि यया ताम् । रसप्रदः सुखप्रदः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बयालिसवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने कुब्जा को सीधा कर दिया, धनुष को तोड़ दिया। उसके रक्षकों को मार दिया, कंस को अपशकुन होने लगे और रङ्गोत्सव आदि का भी वर्णन है ॥१॥ अङ्गविलेपा: अर्थात् चन्दन आदि। कुब्जा चन्दनादि का पात्र लिए हुई थी। रसप्रद: अर्थात् सुख प्रदान करने वाले ॥१॥

का त्वं वरोरुर्वेतदुहानुलेपनं कस्याङ्गने वा कथयस्व साधु नः ।
देह्यावयोरङ्गविलेपमुत्तमं श्रेयस्ततस्ते नचिराद्भविष्यति ॥२॥

अन्वयः— हे वरोरुत्वं का अङ्गने एतत् उ ह कस्य अनुलेपनं नः साधुकथयस्व, आवयो: उत्तमम् अङ्गविलेपनं देहि ततः ते न चिरात् श्रेय: भविष्यति ॥२॥

अनुवाद— हे सुन्दरि ! तुम कौन हो, हे अङ्गने ! यह किसके लिए चन्दन ले जा रही हो। यह हमलोगों को सत्य-सत्य बतलाओं, हमदोनों को भी तुम यह उत्तम चन्दन प्रदान करो, ऐसा करने से तुम्हारा शीघ्र ही कल्याण होगा॥२॥

भावार्थ दीपिका

हे अङ्गने हे वरोरु, इति सोपहासं संबोध्याऽऽपृच्छति-त्वं का, एतदनुलेपनं कस्य वा, उ ह इति निपातौ भ्रूविक्षेपयुक्ते वितर्के। अस्मत्सेवा सद्यः फलत्येवेत्याह-नचिरादिति ॥२॥

भाव प्रकाशिका

हे अङ्गने तथा हे वरोरु इन दोनों संबोधनों से उपहास पूर्वक संबोधत करके श्रीभगवान् पूछते हैं तुम कौन हो ? यह चन्दन किसके लिए है उ ह ये दोनों निपात भ्रूविक्षेप पूर्वक वितर्क के अर्थ में हैं। हमारी सेवा शीघ्र फल देती है इस बात को **नचिरात्० इत्यादि** से भगवान् ने कहा है ॥२॥

सैरन्ध्र्युवाच

दास्यस्म्यहं सुन्दर कंससंमता त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि ।
मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं विना युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति ॥३॥

अन्वयः— हे सुन्दर ! अहं हि अनुलेपकर्मणि कंससंमता त्रिवक्रनामा दासी अस्मि। मद्भावितं भोजपतेः अतिप्रियम् युवां विना कः अन्यतमः तदर्हति ॥३॥

दासों ने कहा

अनुवाद— हे श्यामसुन्दर ! मेरे अङ्गराग लगाने का काम कंस को अत्यन्त अभिमत है मैं उनकी दासी हूँ, मेरा नाम त्रिवक्रा है। मेरे द्वारा लगाया गया अङ्गराग कंस को अत्यन्त प्रिय है। आप दोनों को छोड़कर कौन दूसरा हो सकता है जो इस अङ्गराग के योग्य हो ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तिस्रो ग्रीवोरः- कट्यो वक्रा इति त्रिवक्रेति नाम यस्याः सा। अनुलेपसाधनक्रियायां कंसस्य बहुमता दास्यस्मि ॥३॥

भाव प्रकाशिका

गर्दन, वक्ष:स्थल और कमर ये तीनों जिसके टेढे हों वह त्रिवक्रा है। मेरा नाम त्रिवक्रा है। अङ्गरागानुलेपन कार्य में कंस की अभिमत दासी हूँ ॥३॥

रूपपेशलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः । धर्षितात्मा ददौ सान्द्रमुभयोरनुलेपनम् ।।४।।

अन्वयः— रूपपेशलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः धर्षितात्मा उभयो; अनुलेपनम् ददौ ।।४।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के सौन्दर्य, सौकुमार्य, रसिकता, मन्दहँसी, प्रेमालाप तथा मनोज्ञ प्रेक्षण के कारण कुब्जा का मन उसके वश में नही रहा । श्रीभगवान् पर अनुरक्तमना उसने दोनों भाइयों को वह सुन्दर गाढा अङ्गराग लगाया।।४।।

भावार्थ दीपिका

रूपं चाङ्गसौष्ठवं पेशलं च सौकुमार्यं माधुर्यं च रसिकता हसितं चालापाश्च वीक्षितं च तैर्धर्षितात्मा मोहितचित्ता। सान्द्रं घनम्।।४।।

भाव प्रकाशिका

अङ्गों के सौन्दर्य को ही रूप कहते है सौकुमार्य, मधुरता, रसिकता हँसी बातचित और प्रेमपूर्वक वीक्षण से उसका चित्त मोहित हो गया था । सान्द्र अर्थात् गाढा ।।४।।

ततस्तावङ्गरागेण स्ववर्णेतरशोभिना । संप्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरञ्जितौ ।।५।।

अन्वयः— ततः तौ स्ववर्णेतररागेण शोभिना अङ्गरागेण संप्राप्त पर भागेन अनुरञ्जितौ शुशुभाते ।।५।।

अनुवाद— उसके पश्चात् श्रीभगवान् अपने शरीर पर पीतवर्ण के तथा बलरामजी रक्त वर्ण के अङ्गराग को नाभि से ऊपर के भाग में अङ्गराग लगाये थे उससे अनुरंजित भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी अत्यन्त सुशोभित हुए ।।५।।

भावार्थ दीपिका

स्ववर्णेतरशोभिना रामकृष्णयोवर्णाभ्यामितरः पीतादिवर्णस्तेन शोभितुं शीलं यस्य तेन । संप्राप्तपरभागेन संप्राप्तः परो नाभेरुपरितनो भागो येन सः । संप्राप्तः परभागः शोभातिशयो येनेति वा, तेनानुरञ्जितौ ।।५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों अपने वर्ण से भिन्न वर्ण का ही सुन्दर अङ्गराज अपनी नाभि से ऊपर के भाग में लगाये थे, उससे वे दोनों अनुरंञ्जित थे ।।५।।

प्रसन्नो भगवान्कुब्जां त्रिवक्रां रुचिराननाम् । ऋज्वीं कर्तुं मनश्चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम् ।।६।।

अन्वयः— प्रसन्नो भगवान् त्रिवक्रां रुचिराननाम् कुब्जां दर्शने फलम् दर्शयन् ऋज्वीं कर्तुं मनः चक्रे ।।६।।

अनुवाद— श्रीभगवान् कुब्जा पर प्रसन्न थे वह तीन स्थानों से टेढी थी किन्तु सुन्दर मुख वाली कुब्जा को अपने दर्शन का साक्षात् फल प्रदान करने की इच्छा से सीधी बनाने का विचार किए ।।६।।

भावार्थ दीपिका

स्वदर्शने सद्यः फलं दर्शयन् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

अपने दर्शन का सद्यः फल प्रदान करते हुए ।।६।।

पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्‌व्यङ्गुल्युत्तानपाणिना । प्रगृह्य चुबुकेऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः ।।७।।

अन्वयः— अच्युतः पद्भ्यां प्रपदे आक्रम्य द्व्यङ्गुल्युत्तान पाणिना चुबुके प्रगृह्य अध्यात्मम् उदनीनमत् ।।७।।

अनुवाद— श्रीभगवान् ने अपने दोनों पैरों से उसके दोनों पैरों के अग्रभाग को दबाकर अपने हाथ के दो अङ्गुलियों को उठाये हुए उसकी ठोढ़ी में लगाकर उसके शरीर को थोड़ा सा उचकाकर शरीर को सीधा कर दिया ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तस्याः प्रपदे पादाग्रद्वयंपद्भ्यामापीड्य द्वे अङ्गुल्यावुत्ताने उन्नते यस्मिन्पाणौ तेन चुबुके मुखस्याधोभागे धृत्वाऽध्यात्मं देहमुन्नमयामास ।।७।।

भाव प्रकाशिका

उसके पैरों के अग्रभाग को अपने पैरों से दबाकर अपने हाथ की दो अङ्गुलियों को ऊपर उठाकर उसकी ठोढी के नीचे लगाकर उचका दिया और कुब्जा के शरीर को भगवान् ने सीधा कर दिया ।।७।।

सा तदर्जुसमानाङ्गी बृहच्छ्रोणिपयोधरा । मुकुन्दस्पर्शनात्सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा ।।८।।

अन्वयः— सा तदा मुकुन्दस्पर्शनात् सद्यः ऋजुसमानाङ्गी बृहच्छ्रोणीपयोधरा प्रमदोत्तमा बभूव ।।८।।

अनुवाद— वह उसी समय श्रीभगवन् के स्पर्श करते ही सीधे तथा समान शरीर वाली विशाल नितम्ब एवं उन्नत पयोधरों वाली उत्तम युवती हो गयी ।।८।।

भावार्थ दीपिका

तदैव ऋजु समानमङ्गं यस्याः । बृहत्यौ श्रोणी पयोधरौ च यस्याः सा । मुकुन्दस्पर्शनादिति मुख्यं कारणम् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् के स्पर्श करते ही कुब्जा का शरीर और सुडौल हो गया । उसके विशाल नितम्ब एवं उन्नत पयोधर हो गये । इसमें मुख्य कारण श्रीभगवान् का स्पर्श ही था ।।८।।

ततो रूपगुणौदार्यसंपन्ना प्राह केशवम् । उत्तरीयान्तमाकृष्य स्मयन्ती जातहृच्छया ।।९।।

अन्वयः— ततः रूपगुणौदार्यसम्पन्ना जातहृच्छया स्मयन्ती सा उत्तरीयान्तमाकृष्य केशवम् प्राह ।।९।।

अनुवाद— उसी समय रूप गुण तथा औदार्य से युक्त कुब्जा के मन में श्रीभगवान् से मिलने की इच्छा जाग गयी उसने मुस्कुराते हुए श्रीभगवान् के दुपट्टे की छोर पकड़कर कहा ।।९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।९।।

एहि वीर गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे । त्वयोन्मथितचित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ ।।१०।।

अन्वयः— वीर एहि गृहं यामः इह त्वां त्यक्तुं न उत्सहे, त्वयोन्मथितचित्तायाः हे पुरुषर्षभ प्रसीद ।।१०।।

अनुवाद— हे वीर शिरोमणे आप आइये, हमलोग घर चले, मैं आपको यहाँ छोड़ने में असमर्थ हूँ । आपने मेरे चित्त को मथ डाला है, हे पुरुष श्रेष्ठ आप मुझ पर कृपा कीजिये ।।१०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१०।।

एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो रामस्य पश्यतः । मुखं वीक्ष्यानुगोपानां प्रहसंस्तामुवाच ह ।।११।।

अन्वयः— रामस्य पश्यतः एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णः अनुगोपानां मुखं वीक्ष्य प्रहसन् ताम् उवाच ।।११।।

अनुवाद— बलरामाजी के सामने ही कुब्जा के द्वारा इस तरह से प्रार्थना किए जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण गोपों की ओर मुँह करके हँसते हुए उसे कहे ।।११।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।११।।

एष्यामि ते गृहं सुभ्रूः पुंसामाधिविकर्शनम् । साधितार्थोऽगृहाणां नः पान्थानां त्वं परायणम् ।।१२।।

अन्वयः— हे सुभ्रूः, ते गृहम् पुसाम् आधिविकर्शनम् साधिताऽर्थो एष्यामि, अगृहाणां पान्थानां नः त्वं परायणम्।।१२।।

अनुवाद— सुन्दरी तुम्हारा घर लोगों की मानसिक व्यथा मिटाने का साधन है । अपने प्रयोजन को पूरा करके मैं तुम्हारे घर आऊँगा, गृहविहीन हम जैसे पथिकों के लिए तो तुम्हारा ही आश्रय है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अधिविकर्शनं मनःपीडाशमनम् । कंसवधेन स्वयं साधितोऽर्थः सुहृदां प्रयोजनं येन सः । अगृहाणामकृतदाराणां पान्थानां प्रवासिनां परमयनमाश्रयस्त्वम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

आधिविकर्शनम् अर्थात् मानसिक पीडा को शान्त करने वाला, कंस का वध करके अपने हितैषियों का प्रयोजन सिद्ध करके । जिन लोगों ने दार ग्रहण नहीं किया है ऐसे प्रवासियों के लिए तो दूसरों का ही घर आश्रय होता है ॥१२॥

विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन्मार्गे वणिक्पथैः । नानोपायनताम्बूलस्रग्गन्धैः साग्रजोऽर्चितः ॥१३॥

अन्वयः— तां माध्व्या वाण्या विसृज्य वाणिक्पथै व्रजन् मार्गे नानोपायनताम्बूलस्रग्गन्धैः साग्रजः अर्चितः ॥१३॥

अनुवाद— इस तरह अपनी मधुर वाणी के द्वारा उसको बिदा करके जब वे व्यापारियों के बाजार से होकर जा रहे थे उस समय रास्ते में व्यापारियों ने बलरामजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण को अनेक प्रकार के उपहार, ताम्बूल, माला तथा चन्दन प्रदान करके उनकी पूजा की ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

मधुरया गिरा तां प्रस्थाप्य व्रजन् वणिक्पथैर्वणिग्भिरर्चितः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

मिठी वाणी से कुब्जा को बिदाकर बाजार के मार्ग से जाते समय रास्ते में व्यापारियों द्वारा पूजित हुए ॥१३॥

तद्दर्शनस्मरक्षोभादात्मानं नाविदन् स्त्रियः । विस्रस्तवासः कबरवलया लेख्यमूर्तयः ॥१४॥

अन्वयः— तद्दर्शनस्मरक्षोभाद् विस्रस्तवासः कबरवलयाः लेख्यमूर्तयः स्त्रियः आत्मानं न अविदन् ॥१४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के देखने से कामार्त बनी हुई चित्र लिखित जैसी स्त्रियों को जिनके वस्त्र खिसक गये थे, केश के बाल खुल गये थे तथा हाथों के कङ्गन गिर पड़े थे उनको अपने तक का भी पता नहीं रहा॥१४॥

भावार्थ दीपिका

लेख्याश्चित्र्न्यस्ता इव मूर्तयो यासां ताः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

चित्रलिखित जैसी ॥१४॥

ततः पौरान्पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः । तस्मिन्प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम् ॥१५॥

अन्वयः— ततः पौरान् धनुषः स्थानम् पृच्छमानः अच्युतः तस्मिन् प्रविष्टः एन्द्रं धनुरिव अद्भुतं ददृशे ॥१५॥

अनुवाद— उसके पश्चात् नागरिकों से धनुष के स्थान को पूछते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उस स्थान पर आकर इन्द्र धनुष के समान अद्भुत धनुष का देखे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

धनुर्मखशालां पृच्छन् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

धनुर्यज्ञशाला को पूछते हुए ॥१५॥

पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धितम् । वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे ॥१६॥

अन्वयः— बहुभिःपुरुषैः गुप्तम् अर्चितं परमर्द्धितम् नृभिः वार्यमाणः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे ॥१६॥

अनुवाद— उस धनुष की बहुत से लोग रक्षा कर रहे थे । उसकी पूजा की गयी थी और उसमें बहुत अधिक धन लगाया गया था, रक्षकों द्वारा रोके जाने पर भी भगवान् श्रीकृष्ण बलपूर्वक उस धनुष को उठा लिए ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

प्रसह्य बलात् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

प्रसह्य अर्थात् बलपूर्वक ॥१६॥

करेण वामेन सलीलमुद्धृतं सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यताम् ।
नृणां विकृष्य प्रबभञ्ज मध्यतो यथेक्षुदण्डं मदकर्युरुक्रमः ॥१७॥

अन्वयः— सलीलम् वामेन करेण उद्धृतं सज्यंच कृत्वा निमिषेण नृणां पश्यताम् विकृष्य मदकरी इक्षुदण्डं यथा उरुक्रमः मध्यतः प्रबभञ्ज ॥१७॥

अनुवाद— उन्होंने खेल-खेल में बायें ही हाथ से उसको उठाकर तथा डोरी चढ़ाकर क्षणभर में ही लोगों के सामने ही उसको बीच से उसी तरह तोड़ दिया जिस तरह मदमत्त हाथी गन्ने को तोड़ देता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

निमिषेणाति शीघ्रम् मदकरी मत्तहस्ती ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

निमिषेण अर्थात् अत्यन्त शीघ्र, मदकरी अर्थात् मदमत्त हाथी ॥१७॥

धनुषो भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः । पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥१८॥

अन्वयः— भज्यमानस्य धनुषः शब्दः खं रोदसी दिशः पूरयामास, यं श्रुत्वा कंसः त्रासम् उपागमत् ॥१८॥

अनुवाद— धनुष के टूटने का जो शब्द हुआ उससे आकाश, पृथिवी और दिशाएँ भर गयीं उसको सुनकर कंस भी भयभीत हो गया ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

तद्रक्षिणः सानुचराः कुपिता आततायिनः । ग्रहीतुकामा आवव्रुर्गृह्यतां बध्यतामिति ॥१९॥

अन्वयः— तद्रक्षिणः कुपिताः आततायिनः सानुचराः ग्रहीतुकामाः आवव्रुः गृह्यताम् बध्यताम् इति ॥१९॥

अनुवाद— धनुष के रक्षक क्रुद्ध हो गये, वे सब आततायी थे, उन सबों ने अपने अनुचरों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण को पकड़ लेना चाहा । उन सबों ने दोनों भाइयों को घेर लिया और कहने लगे, पकड़ लो, मार डालो ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

गृह्यतां बध्यतामिति वदन्तो जिघृक्षव आवृतवन्तः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

पकड़ लो मार डालो इस तरह से कहते हुए उन दोनों भाइयों को सबों ने पकड़ने की इच्छा से घेर लिया॥१९॥

अथ तान्दुरभिप्रायान्विलोक्य बलकेशवौ । क्रुद्धौ धन्वन आदाय शकले तांश्च जघ्नतुः ॥२०॥

अन्वयः— अथ तान् दुरभिप्रायान् विलोक्य बलकेशवौ क्रुद्धौ धन्वनः शकले आदाय तान् च जघ्नतुः ॥२०॥

अनुवाद— उन सबों के दुरभिप्राय को जानकर भगवान् कृष्ण और बलरामजी भी क्रोधित हो गये और धनुष के दोनों टुकड़ों को लेकर उन सबों को मार डाले ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

न केवलं क्रुद्धौ, किंतु भग्नस्य धनुषः शकले गृहीत्वा जघ्नतुश्चेति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

वे लोग केवल क्रुद्ध ही नहीं हुए बल्कि टूटे हुए धनुष के टुकड़ों को लेकर मारे भी ॥२०॥

बलं च कंसप्रहितं हत्वा शालामुखात्ततः । निष्क्रम्य चेरतुर्हृष्टौ निरीक्ष्य पुरसंपदः ॥२१॥

अन्वयः— कंसप्रहितं बलं च हत्वा ततः शालामुखात् निष्क्रम्य पुरसम्पदः निरीक्ष्य हृष्टौ चेरतुः ॥२१॥

अनुवाद— कंस के द्वारा भेजीगयी सेना को भी मारकर बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण यज्ञशाला के द्वार से बाहर निकल कर नगर की संपत्ति देखकर प्रसन्नता पूर्वक वे लोग विचरण करते रहे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

परतः प्रातर्गन्तव्यमिति शालामुखादेव पुनर्निष्क्रम्य ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी तरफ प्रात:काल चलना है, यह सोचकर यज्ञशाला के द्वार से ही वे दोनों बाहर निकले ॥२१॥

तयोस्तदद्भुतं वीर्यं निशाम्य पुरवासिनः । तेजःप्रागल्भ्यरूपं च मेनिरे विबुधोत्तमौ ॥२२॥

अन्वयः— तयोः तत् अद्भुतं वीर्यं, तेजः, प्रागल्भ्यं, रूपं च निशाम्य पुरवासिनः विबुधोत्तमौ मेनिरे ॥२२॥

अनुवाद— बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण के उस अद्भुत पराक्रम, तेज, धृष्टता तथा रूप को देखकर नगरवासियों ने उनको कोई श्रेष्ठ देवता माना ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तेजः प्रभावम् । प्रागल्भ्यं धृष्टताम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

तेजः अर्थात् प्रभाव, **प्रगल्भता** अर्थात् साहस ॥२२॥

तयोर्विचरतोः स्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवान् । कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुराच्छकटमीयतुः ॥२३॥

अन्वयः— तयोः स्वैरं विचरतोः आदित्यः अस्तम् उपेयिवान्, कृष्णरामौ गोपैः वृतौ शकटम् ईयतुः ॥२३॥

अनुवाद— बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण के अपनी इच्छानुसार विचरण करते-करते सूर्यास्त हो गया ग्वाल बालों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी नगर से निकलकर अपने रहने के स्थान छकड़े पर चले आये ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

शकटं शकटावमोचनस्थानम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

शकटम् अर्थात् छकड़ों के खोलने के स्थान पर ॥२३॥

गोप्यो मुकुन्दविगमे विरहातुरा या आशासताशिष ऋता मधुपुर्यभूवन् ।
संपश्यतां पुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं हित्वेतरान्नु भजतश्चकमेऽयनं श्रीः ॥२४॥

अन्वयः— मुकुन्द विगमे विरहातुराः गोप्यः याः आशिषः आशासत नु भजतः इतरान् हित्वा श्रीः अयनं चकमे तां पुरुषभूषणगात्र लक्ष्मीं सम्पश्यतां मधुपुरि ऋता अभूवन् ॥२४॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के अपने से विलग होते समय भगवान् के विरह में व्याकुल गोपियों ने मथुरावासियों के लिए जिन-जिन बातों को कहा था वे सबके सब मथुरा वासियों के लिए सत्य हो गयीं, क्योंकि चाहने वाले ब्रह्मा आदि देवताओं का परित्याग करके लक्ष्मीजी जिनको अपना एकमात्र निवास स्थान बनाया उन्हीं पुरुष श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण के शारीरिक सौन्दर्य को देखकर मथुरा वासी आनन्दमग्न हो रहे थे यह उनका बहुत बड़ा सौभाग्य था ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

मुकुन्दस्य विगमे व्रजान्निर्गमनसमये या आशिष आशासत-'सुखं प्रभाता रजनीयम्', 'अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते' इत्यादि यदुक्तवत्यस्ता ऋताः सत्या बभूवुः । पुरुषभूषणस्य श्रीकृष्णस्य गात्रस्य देहस्य लक्ष्मीं शोभाम् । कथंभूतस्य गात्रस्य। नु अहो इतरान्ब्रह्मादीन् हित्वा यदयनमाश्रयं श्रीः कामयामास यां गात्रलक्ष्मीमिति वा ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के व्रज से निकलते समय गोपियों ने मथुरावासियों के विषय में जो-जो आशीर्वाद दिया था, यह रात मथुरावासियों के लिए सुखद प्रभात वाली है, निश्चित रूप से आज से वहाँ देखे जायेगे इत्यादि जो कहा था वे सारी बातें सत्य हो गयीं । पुरुष श्रेष्ठ श्रीकृष्ण के शरीर की शोभा को कैसे शरीर की शोभा को ? तो इसका उत्तर है कि चाहने वाले त्रैलोक्य के बड़े-बड़े ब्रह्मा आदि देवताओं का परित्याग करके लक्ष्मीजी ने जिसको अपने रहने का एकमात्र स्थान बनाया उन भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर की शोभा को । अथवा जिस शरीर की शोभा को ॥२४॥

अविनिक्ताङ्घ्रियुगलौ भुक्त्वा क्षीरोपसेचनम् । ऊषतुस्तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा कंसचिकीर्षितम् ॥२५॥

अन्वयः— अवनिक्ताङ्घ्रियुगलौ क्षीरोपसेचनं भुक्त्वा कंसचिकीर्षितम् ज्ञात्वा, तां रात्रिं सुखं ऊषतुः ॥२५॥

अनुवाद— हाथ पैर धोकर बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ने दूध में बने खीर आदि पदार्थों का भोजन किया; कंस आगे क्या करना चाहता है इस बात का पता लगाकर वे दोनों उस रात को वहीं सुख पूर्वक सो गये ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अवनिक्तं क्षालितमङ्घ्रियुगलं ययोस्तौ । क्षीरमिश्रमन्नं भुक्त्वा सुखं न्यवसताम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

बलरामजी एवं भगवान् श्रीकृष्ण दोनों पैरों को धोकर और दुग्ध मिश्रित अन्न का भोजन करके सुख पूर्वक सो गये ॥२५॥

कंसस्तु धनुषो भङ्गं रक्षिणां स्वबलस्य च । वधं निशम्य गोविन्दरामविक्रीडितं परम् ॥२६॥

अन्वयः— कंसस्तु धनुषः भङ्गम् रक्षिणां स्व बलस्य च वधं गोविन्दराम विक्रीडितं परम निशम्य ॥२६॥

अनुवाद— कंस ने जब यह सुना कि श्रीकृष्ण और बलरामजी ने खेल ही खेल में धनुष को तोड़ दिया, और धनुष के रखवालों तथा मेरी सेना को मार दिया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

परं केवलं गोविन्दरामयोर्विक्रीडितं तत्, नतु पराक्रमः कश्चित् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

यह सबकुछ श्रीकृष्ण और बलरामजी के लिए खेल था इसके लिए उनको कोई पराक्रम नहीं था ।।२६।।

दीर्घप्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः । बहून्यचष्टोभयथा मृत्योर्दौत्यकराणि च ।।२७।।

अन्वयः— भीतः दुर्मतिः दीर्घप्रजागरः उभयथां मृत्यौर्दौत्यकराणि दुर्निमित्तानि बहूनिं आचष्ट ।।२७।।

अनुवाद— कसं बहुत डर गया, उस मूर्ख को देर रात तक नींद नहीं आयी, उसको दिन में और रात में बहुत से अपशकुन हुए जो मृत्यु के सूचक थे ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

उभयथा स्वप्नजागरितभेदेन प्रत्येकं मृत्योर्दौत्यकराणि च । तथा च मन्त्रः-'इत्थादुलूकश्चापघ्नन् हिरण्याक्षो अयोमुखः। रक्षसां दूत आगतः' इत्यादिः । तथा- 'यदेतद्भूतान्यन्वाविश्य दैवीं वाचं वदसि' इत्यादिश्च ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

स्वापावस्था और जागरावस्था के भेद से दोनों प्रंकार से प्रत्येक अपशकुन मृत्यु के सूचक थे । मन्त्र भी कहता है- **इत्थादुलूकश्चापहध्नम्० इत्यादि** अर्थात् इस तरह से उल्लू उसको मारते हुए सुवर्ण के समान आँखों वाला एवं लोहे के मुँह वाला राक्षसों का दूत आया । तथा **यदेतद्भूतान्याज्चाविश्य० इत्यादि** यह जो भूतों में प्रवेश करके संस्कृत बोलते हो । इत्यादि ।।२७।।

अदर्शनं स्वशिरसः प्रतिरूपे च सत्यपि । असत्यपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा ।।२८।।

अन्वयः— सत्यपि प्रतिरूपे स्वशिरसः अदर्शनं तथा असत्यपि द्वितीये ज्योतिषां द्वैरूप्यम् ।।२८।।

अनुवाद— जागरावस्था में सिर के रहने पर भी प्रतिबिम्ब में अपने शिर का नहीं दिखना तथा अङ्गुल्यादि अवष्टम्भ के बिना भी तारों चन्द्रमा आदि के दो नहीं होने पर भी दो दिखना ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

तानि दर्शयति श्लोकत्रयेण-जलादौ प्रति रूपे दृश्यमानेऽपि स्वशिरसस्तत्रादर्शनम् । असत्यपि द्वितीये चक्षुषोऽन्तर्धानेऽङ्गुल्यादेः ज्योतिषां चन्द्रादीनां द्वित्वम् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

उन सबों को तीन श्लोकों से बतलाते हैं जल आदि में प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ने पर उसमें अपने शिर नहीं दिखता है । द्वितीय पक्ष के नहीं रहने पर भी नेत्र के छिप जाने पर वहाँ चन्द्र आदि का द्वित्व होता है ।।२८।।

छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः । स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ।।२९।।
स्वप्ने प्रेतपरिष्वङ्गः खरयानं विषादनम् । यायान्नलदमाल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ।।३०।।
अन्यानि चेत्थंभूतानि स्वप्नजागरितानि च । पश्यन्मरणसंत्रस्तो निद्रां लेभे न चिन्तया ।।३१।।

अन्वयः— छायायां छिद्रप्रतीतिः, प्राणघोषानुपश्रुतिः, स्वर्णप्रतीतिवृक्षेषुः स्वपदानामदर्शनम्, स्वप्नेप्रेतपरिष्वङ्गः स्वरयानं विषादनम्, यायान्नलदमाल्येकः तैलाभ्यक्तः दिगम्बर अन्यानि च इत्थं भूतानि स्वप्नजागरितानि च पश्यन् मरण संत्रस्तः चिन्तया निद्रां न लेभे ।।२९-३१।।

अनुवाद—अपनी परिछाई में छिद्र दिखाई देना प्राणों के घोष का नहीं सुनाई देना, वृक्षों को सुनहला दिखना,

बालू या कीचड़ा में चलने पर अपने पैरों के चिह्न का नहीं दिखना, स्वप्न में प्रेतों के गले लगना, स्वप्न में गधे की सवारी करना, विषखाना, जपाकुसुम की माला पहनकर चलना, स्वप्न में सारा शरीर तेल से तर होना, नङ्गे कहीं जाना, इसी तरह के स्वप्न में तथा जागरावस्था में दुर्निमित्तों को देखने के कारण कंस को चिन्ता हो गयी और उसे रात में नीद नहीं आयी ॥२९-३१॥

भावार्थ दीपिका

छायायां पतिबिम्बे छिद्रप्रतीतिः। पिहितकर्णपुटस्य योऽन्तः श्रूयमाणो ध्वनिः स प्राणघोषस्तस्याऽश्रवणम्। वृक्षेषु स्वर्णवर्णप्रतीतिः। रजःकर्दमादिषु स्वपदानामदर्शनम्। एतानि जागरितानि दुर्निमित्तानि ॥२९॥ स्वप्नान्याह–स्वप्न इति। प्रेतैर्मृतैः परिष्वङ्गः खरमारूह्य यानम्। विषभक्षणम्। नलदमाली जपाकुसुममाली यायादिति यत्तदप्येकं दुर्निमित्तमिति ॥३०-३१॥

भाव प्रकाशिका

अपनी परिछाई में छिद्र प्रतीत होना, कानों को बन्द करने पर जो ध्वनि सुनाई देती है, उसका नहीं सुनाई देना, वृक्षों का सुनहला दिखना, धूल अथवा कीचड़ में चलने पर अपने पद चिह्नों को नहीं दिखना ये सब जागरावस्था के दुर्निमित्त हैं। अब स्वप्नावस्था के दुनिर्मित्तों को बतलाते हैं, प्रेतों के गले लगना, विष खाना, ओड़हुल के फूल की माला पहनकर कहीं जाना, यह भी एक दुर्निमित्त है ॥२९-३१॥

व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये च अद्भ्यः समुत्थिते। कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम्॥३२॥

अन्वयः— हे कौरव्य निशि व्युष्टायां अद्भयः समुत्थिते च सूर्ये कंसः मल्लक्रीडामहोत्सवं कारयामास ॥३२॥

अनुवाद— हे परीक्षित् रात्रि बीत जाने पर प्रातःकाल कंस ने मल्लक्रीडा महोत्सव करवाया ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

कष्टेन कथंचित्प्रभातायां पुनः सूर्ये चा दभ्यः समुत्थित इति। तथा च श्रुतिः–'अद्भ्यो वा' इति– 'य उदगान्महतोऽर्णवात् विभ्राजमानः सलिलस्य मध्यात्। स मा वृषभो लोहिताक्षः सूर्यो विपश्चिन्मनसा पुनातु' इति च ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

कष्टपूर्वक किसी तरह रात्रि के बीत जाने पर सूर्य के जल से बाहर निकलने पर श्रुति भी कहती है- यह **उदगान्महार्णवात्० इत्यादि** अर्थात् जो महार्णव के जल से निकलकर सुशोभित हो रहे हैं, वे लाल नेत्रों वाले सर्वज्ञ सूर्य मेरे मन को पवित्र बना दें ॥३२॥

आनर्चुः पुरुषा रङ्गं तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे। मञ्चाश्चालंकृताः स्त्रग्भिः पताकाचैलतोरणैः ॥३३॥

अन्वयः— पुरुषाः रङ्गं अनार्चुः, तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे, मञ्चाः च स्त्रग्भिः पताका चैल तोरणैः अलंकृताः ॥३३॥

अनुवाद— राजकर्मचारियों ने रङ्गशाला को सजा दिया। भेरी, तुरही आदि बाजे बजने लगे लोगों के बैठने के मञ्च मालाओं, झंडियों और वन्दनवार आदि से सजा दिए गये ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः। यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः ॥३४॥

अन्वयः— तेषु पौराः ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः जानपदाः कृतासनाः राजानः च यथोपजोषं विविशुः ॥३४॥

अनुवाद— उन सबों पर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नागरिक तथा ग्रामवासी, सबके सब यथा स्थान बैठ गये। राजा लोग अपने-अपने निश्चित स्थान पर जाकर बैठ गये ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

यथोपजोषं यथासुखम् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

यथोपजोषम् अर्थात् अपनी सुविधा के अनुसार ।।३४।।

कंसः परिवृतोऽमात्यै राजमञ्च उपाविशत् । मण्डलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता ।।३५।।

अन्वयः— कंसः आमात्यैः परिवृतः मण्डलेश्वरमध्यस्थः विदूयता हृदयेन, राजमञ्चे उपाविशत् ।।३५।।

अनुवाद— राजा कंस अपने मंत्रियों के साथ मण्डलेश्वरों के बीच में राज सिंहासन पर बैठ गया ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

वाद्यमानेषु तूर्येषु मल्लतालोत्तरेषु च । मल्लाः स्वलंकृता दृप्ताः सोपाध्यायाः समासत ।।३६।।

अन्वयः— मल्लतालोतरेषु तूर्येषु वाद्यमानेषु च स्वलकृंताः दृप्ताः सोपाध्यायाः मल्लाः समासत ।।३६।।

अनुवाद— बजाये जाने वाले वाद्यों में पहलवानों के ताल जोर से सुनायी पड़ रहे थे । गर्वीले पहलवान खूब सजकर अपने उस्तादों के साथ बैठ गये ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

मल्लताल उत्तरेषु उपरि उच्चैः श्रूयते येषु तेषु तूर्येषु । उपाध्याया मल्लाचार्याः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

बाजा जाने वाले वाद्यों में पहलवानों के ताल जोर से सुनाई पड़ते थे । उपाध्यायः अर्थात् पहलवानों के उस्ताद।।३६।।

चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च । त आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ।।३७।।

अन्वयः— चाणूरः मुष्टिकः कूटः शलः तोशल एव च ते बल्गुवाद्य प्रहर्षिताः उपस्थानम् आसेदुः ।।३७।।

अनुवाद— चाणूर, मुष्टिक, कूट, शाल तथा तोशल ये सभी पहलवान् वाद्य की मधुर ध्वनि से प्रसन्न होकर अखाड़े पर बैठ गये ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

उपस्थानं मल्लरङ्गम् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

उपस्थानम् अर्थात् अखाड़े पर ।।३७।।

नन्दगोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः । निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन्मञ्च आविशन् ।।३८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वाधे मल्लरङ्गोपवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४२।।

अन्वयः— भोजराजसमाहुताः नन्दगोपादयः गोपाः निवेदितोपायनाः एकस्मिन् मञ्चे आविशन् ।।३८।।

अनुवाद— राजा कंस के द्वारा आहूत नन्दगोप आदि गोप राजा को उपहार प्रदान करके सबके सब एक मञ्च पर बैठ गये ।।३८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के मल्लरङ्गोपवर्णन नामक बयालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

समाहुताः समाहूताः । निवेदितान्युपायनानि यैस्ते ।।३८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

समाहुताः अर्थात् बुलाये गये । जिन लोगों ने उपहार प्रदान कर दिया था वे ।।३८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के बयालिसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।४२।।

◆

तैंतालिसवाँ अध्याय

कुबलयापीड का वध और अखाड़े में प्रवेश

श्रीशुक उवाच

अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परंतप । मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः ॥१॥

अन्वयः— हे परन्तप अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुम् उपेयतुः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे काम, क्रोध रूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्ण और वलरामजी भी स्नानादि नित्यकर्मों को करके दंगल के अनुरूप नगाड़े की ध्वनि सुनकर रङ्गभूमि देखने के लिए चल पड़े ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रिचत्वारिंशके हत्वा गजेन्द्रं रामकृष्णयोः । रङ्गप्रवेशसौभाग्यं चाणूरेण च भाषणम् ॥१॥ पूर्वेद्युरेव कृतं शौचं शुद्धत्वं निरपराधत्वं याभ्यां तौ । एतदुक्तं भवति-धनुर्भङ्गादिनाऽऽवाभ्यां निजैश्वर्ये सूचितेऽपि पितरौ न मुञ्चत्यावां च पुनर्जिघांसति । अतोऽस्य मातुलस्यापि वधे नावयोर्दोष इत्येवं कृतापराधपरिहाराविति । मल्लानां दुन्दुभीनां च निर्घोषं माल्लतालदुन्दुभिनिर्घोषं वा ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तैंतालिसवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि कुबलयापीड नामक गजेन्द्र को मारकर वलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवन् का रङ्गशाला में प्रवेश की शोभा तथा उनका चाणूर के साथ वातचित का वर्णन है । पहले ही दिन जिन राम कृष्ण के द्वारा शुद्धि कर दी गयी थी । कहने का अभिप्राय है कि धनुर्भङ्ग आदि के द्वारा यद्यपि हम दोनों ऐश्वर्य को सूचित कर दिए है । कंस हमारे माता-पिता को मुक्त नहीं किया है और वह हमलोगों को मारना चाहता भी हैं अतएव इस मामा को मार देने से कोई पाप नहीं लगेगा इसलिए किए हुए अपराध का परिहार जिन लोगों ने कर लिया है, पहलवानों की दुन्दुभि की ध्वनि को सुनकर अथवा मल्लतालदुन्दुभि की ध्वनि को॥१॥

रङ्गद्वारं समासाद्य तस्मिन्नागमवस्थितम् । अपश्यत्कुवलयापीडं कृष्णोऽम्बष्ठप्रचोदितम् ॥२॥

अन्वयः— रङ्गद्वारसमासाद्य कृष्णः तस्मिन् अम्बष्ठ प्रचोदितम् कुबलयापींड नागम् अवस्थितम् अपश्यत् ॥२॥

अनुवाद— रङ्गद्वार पर पहुँच कर भगवान् श्रीकृष्ण देखे कि महावत के द्वारा प्रेरित कुबलयापीड हाथी रङ्गद्वार पर खड़ा है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अम्बष्ठो हस्तिपकस्तेन चोदितम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

अम्बष्ठ नामक महावत के द्वारा प्रेरित ॥२॥

बद्ध्वा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिलालकान् । उवाच हस्तिपं वाचा मेघनादगभीरया ॥३॥

अन्वयः— शौरिः परिकरं बद्ध्वा कुटिलालकान् समुह्य, मेघनादगभीरया वाचा हस्तिपं उवाच ॥३॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण अपनी कमर कसकर तथा घुंघराले केशों को समेट कर मेघ के समान गम्भीर वाणी में महावत से कहे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

परिकरं युद्धोचितपरिधानं कृत्वा । समुह्य निबध्य ॥३॥

भाव प्रकाशिका

परिकरम् अर्थात् युद्धोचितरीति से अपने वस्त्रों को बाँधकर समुह्य अर्थात् बाँधकर ॥३॥

अम्बष्ठाम्बष्ठ मार्गं नौ देह्यपक्रम मा चिरम् । नो चेत्सकुञ्जरं त्वाऽद्य नयामि यमसादनम् ॥४॥

अन्वयः— हे अम्बष्ठ ! अम्बष्ठ नौ मार्गं देहि माचिरम् अपक्रम, नोचेत् अद्य सकुञ्जरं त्वा यमसादनम् नयामि ॥४॥

अनुवाद— ओ महावत ! महावत ! हम दोनों के लिए रास्ता दे दो, शीघ्र हट जाओ नहीं तो तुम और तुम्हारे हाथी दोनों को मैं यमराज के घर भेज दूँगा ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

एवं निर्भर्त्सितोऽम्बष्ठः कुपितः कोपितं गजम् । चोदयामास कृष्णाय कालान्तकयमोपमम् ॥५॥

अन्वयः— एवं निर्भत्सितः अम्बष्ठः कुपितः कोपितं कालान्तक यमोपमम् गजम् कृष्णाय चोदयामास ॥५॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा इस तरह से धमकाये जाने पर महावत क्रुद्ध हो गया और हाथी को भी क्रोधित करके काल, मृत्यु तथा यमराज के समान उसको भगवान् श्रीकृष्ण की ओर चलाया ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अन्तको मृत्युः कालस्तन्निमित्तं, यमस्तन्नियन्ता तैरुपमा यस्य तम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

मृत्यु काल तथा उन दोनों के नियामक यमराज इन तीनों से जिसकी उपमा दी जा सकती है ऐसे भयङ्कर हाथी को ॥५॥

करीन्द्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसाग्रहीत् । कराद्विगलितः सोऽमुं निहत्याङ्घ्रिष्वलीयत ॥६॥

अन्वयः— करीन्द्रः अभिद्रुत्य तम् करेण तरसा अग्रहीत् करात् विगलितः सः अमुं निहत्य अङ्घ्रिषु अलीयत ॥६॥

अनुवाद— गजराज ने झपट कर भगवान् श्रीकृष्ण को बलपूर्वक अपनी सूंढ से पकड़ लिया, किन्तु भगवान् उससे सरक कर निकल गये और हाथी को मुक्के से मारकर उसके पैरों के बीच में छिप गये ॥६॥

भावार्थ दीपिका

विगलितो विच्युतः । मुष्टिना निहत्य अलीयताऽदृश्यो बभूव ॥६॥

भाव प्रकाशिका

विगलितः अर्थात् छूट गये और मुक्के से हाथी को मारकर छिप गये ॥६॥

संक्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः स केशवम् । परामृशत्पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः ॥७॥

अन्वयः— संक्रुद्धः तम् अचक्षाणः घ्रणदृष्टिः सः केशवम् पुष्करेण परामृशत् स प्रसह्य विनिर्गतः ॥७॥

अनुवाद— क्रुद्ध हुंआ हाथी श्रीभगवान् को न देखकर अपनी सूंढ से सूंघकर भगवान् को अपनी सूढ से पकड़ लिया और भगवान् भी बलपूर्वक उससे छूट गये ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अचक्षाणोऽपश्यन् । घ्राणमवघ्राणं तेन दृष्टिर्दर्शनं यस्य सः । लोचनागोचरमपि हि पशवो घ्राणेन जानन्तीति प्रसिद्धम्। परामृशद्धृतवान् । पुष्करेण शुण्डाग्रेण । स कृष्णः । प्रसह्य बलेन ॥७॥

भाव प्रकाशिका

अचक्षाणः अर्थात् नहीं देखकर । नाक से ही सूंघकर देख लेने वाला हाथी पशु अदृश्य वस्तु को भी सूघकर जान लेते हैं ऐसी प्रसिद्धि है । पुष्करेण अर्थात् सूंढ के अग्रभाग से, परामृशत् अर्थात् पकड़ लिया । और भगवान् कृष्ण भी उससे बलपूर्वक छूट गये ॥७॥

पुच्छे प्रगृह्यातिबलं धनुषः पञ्चविंशतिम् । विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया ॥८॥

अन्वयः— अतिबलं पुच्छे प्रगृह्य धनुषः पञ्चविंशतिम् सुपर्णः नागम् इव लीलया विचकर्ष ॥८॥

अनुवाद— अत्यन्त बलवान् उस हाथी की पूंछ पकड़ कर श्रीभगवान् सौ हाथ खेल-खेल में ही पीछे उसी तरह घसीट लाये जिस तरह गरुड़ नाग को घसीट लाते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

धनुषा धनुषां पञ्चविंशतिर्यावत्तावन्तं देशं विचकर्ष आकृष्य नीतवान् । कं क इव विचकर्ष । यथा नागं सर्पवद्वर्तमानं गजं सुपर्णवत्स्वयमिति-'आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः' इतिवत् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

धनुषः पञ्चविंशतिम् अर्थात् पच्चीस धनुष की दूरी अर्थात् सौ हाथ घसीट लाये । कौन किसको घसीटा? नाग के समान वर्तमान हाथी को गरुड़ के समान स्वयं श्रीभगवान् **आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः** इस श्लोक में यथा पद का अर्थ यथावत् अर्थात् अपने रूप से आविर्भूत हुए इस तरह से अर्थ करने से जैसे पुनरुक्ति का परिहार हो जाता है, उसी तरह यथानागं अर्थात् सर्प के समान वर्तमान हाथी को इस तरह से अर्थ करने से पुनरुक्ति परिहार हो जाता है ॥८॥

स पर्यावर्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः । बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः ॥९॥

अन्वयः— सव्य दक्षिणतः पर्यावर्तमानेन भ्राम्यमाणेन स अच्युतः गोवत्सेन बालकः इव बभ्राम ॥९॥

अनुवाद— बायें दाये घुमने वाले उस हाथी के द्वारा दायें बायें घुमने वाले भगवान् श्रीकृष्ण उसी तरह घुम जाते थे जिस तरह दायें बायें घुमने वाले बछड़े की पूंछ पकड़ने वाला बालक बायें दायें घूम जाता है । अर्थात् जब हाथी बायें घूमकर भगवान को पकड़ना चाहता था तो वे दायें घूम जाते थे और जब वह दायें घूमकर भगवान् को पकड़ना चाहता था तो भगवान् बायें घूम जाते थे ॥९॥

भावार्थ दीपिका

स पर्यावर्तमानेनेति । पुच्छग्राहिणं श्रीकृष्णं ग्रहीतुं यदि दक्षिणतः परिवर्तते गजस्तर्हि साव्यतो भ्रामयति । यदा सव्यतः परिवर्तते तदा दक्षिणतो भ्रामयंस्तेन सह बभ्राम । गोवत्सेन भ्राम्यमाणेन बालकः स एव कृष्णो यथाऽन्यो वा बालक इवेति॥९॥

भाव प्रकाशिका

स पर्यावर्तमानेन० इत्यादि श्लोक से कहा गया है कि जब हाथी पूंछ पकड़े हुए कृष्ण को पकड़ने के लिए बाएँ घूमता था तो भगवान् दायें घूम जाते थे और जब वह उनको पकड़ने के लिए दाँए घूमता था तो भगवान् बायें घूम जाते थे। उसी तरह जैसे गौ के बछड़े के द्वारा घुमाये जाने वाले बालक श्रीकृष्ण अथवा कोई दूसरा बालक ॥९॥

ततोऽभिमुखमभ्येत्य पाणिनाहत्य वारणम् । प्राद्रवन्पातयामास स्पृश्यमानः पदे पदे ॥१०॥

अन्वयः— ततः अभिमुखम् अभ्येत्य पाणिना वारणम् आहत्य, पदे-पदे, स्पृश्यमान इव प्राद्रवन् पातयामास ॥१०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् सामने आकर भगवान् हाथी को एक घूसा मारे और वे उसको गिराने के लिए उसके सामने वे इस तरह भागने लगे जैसे वह भगवान् को अब पकड़ा तब पकड़ा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

वारणं गजं प्राद्रवन् प्रकर्षेणासमन्ततो धावन् पातयामास। यथा पतति तथा तं वञ्चयन्प्राद्रवदित्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

हाथी को बहुत अधिक दौड़ते हुए गिरा दिए। जिस तरह से वह गिर जाय इस तरह से उसको उठते हुए दौड़ने लगे ॥१०॥

स धावन् क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः । तं मत्वा पतितं क्रुद्धो दान्ताभ्यां सोऽहनत्क्षितिम्॥११॥

अन्वयः— धावन् सः क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसा उत्थितः। तं पतितं मत्त्वा क्रुद्धः सः क्षितिम् दन्ताभ्यां अहनत् ॥११॥

अनुवाद— दौड़ते हुए भगवान् क्रीड़ा पूर्वक पृथिवी पर गिरकर शीघ्र ही उठ गये श्रीभगवान् को गिरा हुआ मानकर क्रुद्ध उस हाथी ने अपने दोनों दाँतों से पृथिवी पर प्रहार किया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

किंच स धावन्निति। अहनदहन् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

अहनत् अर्थात् प्रहार किया ॥११॥

स्वविक्रमे प्रतिहते कुञ्जरेन्द्रोऽत्यमर्षितः । चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद्रुषा ॥१२॥

अन्वयः— स्वविक्रमे प्रतिहते अत्यमर्षितः कुञ्जरेन्द्रः महामात्रैः चोद्यमानः रुषा कृष्णम् अभ्यद्रवत् ॥१२॥

अनुवाद— अपना प्रहार व्यर्थ हो जाने के कारण गजेन्द्र अत्यधिक क्रुद्ध हो गया वह महावतों द्वारा प्रेरित होकर भगवान् श्रीकृष्ण की ओर दौड़ा ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

तमापतन्तमासाद्य भगवान्मधुसूदनः । निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥१३॥

अन्वयः— आपतन्तं तम् आसाद्य भगवान् मधुसूदनः पाणिना हस्तं निगृह्य भूतले पातयामास ॥१३॥

अनुवाद— अपनी ओर आते हुए देखकर भगवान् उसके सन्निकट चले गये और एक ही हाथ से उसके सूंड को पकड़कर पृथिवी पर पटक दिए ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

पतितस्य पदाक्रम्य मृगेन्द्र इव लीलया । दन्तमुत्पाट्य तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद्धरिः ॥१४॥

अन्वयः— पतितस्य लीलयामृगेन्द्र इव पदा आक्रम्य दन्तम् उत्पाट्य तेन इभं हस्तिपान् च अहनत् ॥१४॥

अनुवाद— गिरे हुए हाथी के ऊपर श्रीभगवान् खेल-खेल में सिंह के समान चढ़कर उसके दाँत को उखाड़ लिए और उसी से उस हाथी को तथा महावतों को मार डाले ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

मृतकं द्विपमुत्सृज्य दन्तपाणिः समाविशत्। अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिन्दुभिरङ्कितः ॥
विरूढस्वेदकणिकावदनाम्बुरुहो बभौ ॥१५॥

अन्वयः— मृतकं द्विपम् उत्सृज्य, दन्तपाणिः असंन्यस्तविषाणः असृङ्मदविन्दुभिः अंकितः समाविशत् विरूढस्वेदकणिकावदनाम्बुरुहः बभौ ॥१५॥

अनुवाद— मरे हुए हाथी को छोड़कर हाथ में हाथी का दाँत लिए हुए कन्धे पर हाथी दाँत को रखे हुए रक्त तथा मद की बून्दों से सुशोभित श्रीभगवान् रङ्गशाला में प्रवेश किए। उस समय उनके मुखकमल पर पसीने की बून्दें झलक रही थीं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

रङ्गं समाविशत्तदा वीरश्रिया बभौ । कथंभूतः-अंसे न्यस्तं विषाणं गजदन्तो येन सः । असृजो रक्तस्य मदस्य च बिन्दुभिः परितोऽङ्कितः । विरुढा उद्गताः स्वेदकणिकास्ताभिरुपलक्षितं वदनाम्बुरुहं यस्य सः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

जब भगवान् रङ्गशाला में प्रवेश किए उस समय वे वीर की शोभा से सुशोभित हुए । कैसे ? वे अपने कन्धे पर हाथी के दाँत को रखे हुए थे, पूरे शरीर पर रक्त एवं मद बूंदे पड़ी हुई थी । मुखकमल पर पसीने की बूदें झलक रही थीं ॥१५॥

वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ । रङ्गं विविशतू राजन् गजदन्तवरायुधौ ॥१६॥

अन्वयः— हे राजन् ! कतिपयैः गोपैः वृतौ गजदन्तवरायुधौ बलदेव जनार्दनौ रङ्गं विविशतुः ॥१६॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् कुछ गोपों के साथ हाथी के दाँत रूपी श्रेष्ठ आयुध को धारण किए हुए भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी रङ्गशाला में प्रवेश किए ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

न केवलं स एकः समाविशत्, किंतु वृतो गोपैरिति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

अकेले ही भगवान् नहीं प्रवेश किए बल्कि गोपों के साथ वे दोनों प्रवेश किए ॥१६॥

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः ॥१७॥

अन्वयः— साग्रजः रङ्गंगतः मल्लानाम् अशनिः, नृणां नरवरः, स्त्रीणां मूर्तिमान स्मरः, गोपानां स्वजनः, असतां क्षितिभुजां शास्ता, स्वपित्रोः शिशुः, भोजपतेः मृत्युः अविदुषां विराट् योगिनां परं तत्त्वं, वृष्णीनां पर देवता इति विदितः ॥१७॥

अनुवाद— रङ्गशाला में अपने बड़े भाई के साथ प्रवेश किए हुए भगवान् पहलवानों को व्रज के समान शरीर वाले, सामान्य मनुष्यों को श्रेष्ठ मनुष्य, स्त्रियों को मूर्तिमान कामदेव, गोपों को स्वजन, दुष्ट राजाओं को

प्रशासक, अपने माता पिता को छोटा बालक, राजा कंस को मृत्यु, अज्ञानियों को विराट् योगियों को परतत्व और भगवद् भक्त यदुवंशियों को परा देवता प्रतीत हुए ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तत्र शृङ्गारादिसर्वरसकदम्बमूर्तिर्भगवांस्तत्तदभिप्रायानुसारेण बभौ, न साकल्येन सर्वेषामित्याह–मल्लानामिति । मल्लादीनामज्ञानां द्रष्टृणामशन्यादिरूपेण दशधा विदितः सन्साग्रजो रङ्गं गत इत्यन्वयः । मल्लादिष्वभिव्यक्ता रसाः क्रमेण श्लोकेन निबध्यन्ते– 'रौद्रोऽद्भुतश्च शृङ्गारो हास्यं वीरो दया तथा । भयानकश्च बीभत्सः शान्तः सप्रेम भक्तिकः ।' अविदुषां विराट् विकलः अपर्याप्तो राजत इति तथा अनेन बीभत्सरस उक्तः । विकलत्वं च 'क्व वज्रसारसर्वाङ्गौ इत्यादिना वक्ष्यते।।१७।।

भाव प्रकाशिका

शृङ्गरादि समस्त समूह के मूर्तिमान रूप श्रीभगवान् भिन्न-भिन्न लोगों के अभिप्रायानुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से सुशोभित हुए सबों को सभी रूपों से नहीं देखने वाले पहलवान आदि अज्ञानियों को वज्र आदि दस रूपों में प्रतीत हुए। वे अपने बलरामजी के साथ रङ्गशाला में गये थे । पहलवानों आदि को अभिव्यक्त हुए रसों का श्लोक में निबन्धन क्रमशः इस तरह से किया गया है । **रौदोदभुतश्च० इत्यादि** अर्थात् रौद्र अद्भुत, शृङ्गार, हास्य, वीर, करुण, भयानक, बीभत्स, शान्त और प्रेमाभक्तिरस । अज्ञानियों विराट अर्थात् अपूर्ण, सुशोभित होने वाले इससे बीभत्स रस कहा गया है । **क्ववज्रसारसर्वाङ्गो इत्यादि** श्लोक से आग श्रीभगवान् की अपर्याप्तता का वर्णन करेंगे।।१७।।

हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा तावपि दुर्जयौ । कंसो मनस्व्यपि तदा भृशमुद्विविजे नृप ॥१८॥

अन्वयः— हे नृप कुवलयापीडं हतं तौ अपि दुर्जयौ दृष्ट्वा मनस्वी अपि कंसः तदाभृशम् उद्विविजे ॥१८॥

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् उस समय कुबलयापीड को मरा हुआ तथा श्रीरामकृष्ण को दुर्जय देखकर कंस मनस्वी होकर भी अत्यधिक उद्विग्न हो गया ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

उद्विविजे भीतो बभूव ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

उद्विविजे अर्थात् भयभीत हो गया ॥१८॥

तौ रेजतू रङ्गगतौ महाभुजौ विचित्रवेषाभरणस्रगम्बरौ ।
यथा नटावुत्तमवेषधारिणौ मनः क्षिपन्तौ प्रभया निरीक्षताम् ॥१९॥

अन्वयः— महाभुजौ विचित्रवेषाभरणस्रगम्बरौ उत्तमवेष धारिणो नटौ यथा निरीक्षताम् प्रभया मनः क्षिपन्तौ तौ रङ्गगतौ रेजतुः ॥१९॥

अनुवाद— श्रीकृष्ण और बलराम जी की भुजाएँ लम्बी-लम्बी थी, उनके वेष, आभूषण, माला तथा वस्त्र विचित्र थे, जैसे उत्तम वेष धारण करके दो नट अभिनय करने के लिए आये हों वे ऐसा ही लगते थे और जो कोई भी उनको देखता था अपनी कान्ति से वे उसके मन को आकृष्ट कर लेते थे । इस प्रकार के भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी उस रङ्गशाला में सुशोभित हो रहे थे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

यथा नटाविति निर्भयत्वं दर्शितम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

यथा नटौ कहकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी के भय रहितत्व को बतलाया गया ॥१९॥

निरीक्ष्य तावुत्तमपूरुषौ जना मञ्चस्थिता नागरराष्ट्रका नृप ।
प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणानना: पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम् ॥२०॥

अन्वयः— हे नृप मचस्थिताः नागरराष्ट्रका जनाः तौ उत्तम पुरुषौ निरीक्ष्य प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणाननाः तदाननम् नयनै पपुः तृप्ता न ॥२०॥

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् मंच पर स्थित मथुरा के नागरिक और राष्ट्र के जन समुदाय उन दोनों उत्तम पुरुषों को देखकर इतने प्रसन्न हो गये कि उनके नेत्र और मुख कमल विकसित हो गये । वे लोग उनके मुख की मधुरिमा का पान करते रहे किन्तु तृप्त नहीं हुए, अर्थात् वे लोग उनके मुख कमल को एकटक से निहारते रहे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

प्रहर्षवेगेनोत्कलितान्युज्जृम्भितानीक्षणान्याननानि च येषाम् । तयोराननं पपुः परं न तृप्ताः । निराकाङ्क्षा न बभूवुरित्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

हर्षातिरेक के वेग से उन देखने वालों के नेत्र कमल विकसित हो गये और वे उन्हीं नेत्रों से उनको देखते रहे पर देखने से उन लोगों का मन नहीं भरा ॥२०॥

पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया । जिघ्रन्त इव नासाभ्यां श्लिष्यन्त इव बाहुभिः ॥२१॥

अन्वयः— चक्षुर्भ्यां पिबन्त इव, जिह्वया लिहन्त इव, नासाभ्यां जिघ्रन्त इव, बाहुभिः श्लिष्यन्त इव ॥२१॥

अनुवाद— मानो वे अपने नेत्रों से पी रहे थे, जीभ से चाट रहे थे, घ्राणेन्द्रिय से सूंघ रहे थे और भुजाओं से आलिङ्गन कर रहे थे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह–पिबन्त इवेति । श्लिष्यन्तः परिष्वङ्गं कुर्वन्त इव लक्षिता इत्यर्थः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

पिबन्त इव० इत्यादि श्लोक के द्वारा उपर्युक्त बात को ही कहा गया है श्लिष्यन्तः अर्थात् आलिङ्गन करते हुए के समान वे लोग प्रतीत हो रहे थे ॥२१॥

ऊचुः परस्परं ते वै यथादृष्टं यथाश्रुतम् । तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव ॥२२॥

अन्वयः— तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव यथाश्रुतम् यथादृष्टम् ते वै परस्परम् ऊचुः ॥२२॥

अनुवाद— उनके सौन्दर्य, गुण, माधुर्य और निर्भयताने दर्शकों को जैसे उनकी लीलाओं को याद दिला दिया और वे परस्पर में उनके संबन्ध में देखी-सुनी बातें कहने लगे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

यथादृष्टं धनुर्भङ्गादि यथाश्रुतं गोवर्धनोद्धरणादि तत्तदनतिक्रम्य, तदनुरूपमित्यर्थः । प्रत्यक्षं च तयो रूपं गजदन्तादियुक्तं, गुणाः शौर्यादयो, माधुर्यं हसितालापादि, प्रागल्भ्यं धाष्टर्यं तैः स्मारिता इव स्मरणं प्रापिता इव ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

धनुर्भङ्ग आदि जिसको लोगों ने देखा था तथा गोवर्धन धारण आदि जिसे वे लोग सुने थे उसके अनुरूप ही प्रत्यक्षत: उनके रूप तथा हाथी दाँत को लिए हुए, शौर्य आदि गुण हँसकर बोलने आदि में विद्यमान माधुर्य, तथा साहस इन सबों के द्वारा उनके देखे सुने गुणों आदि की याद आ गयी ॥२२॥

एतौ भगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्य हि । अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥२३॥

अन्वयः— एतौ साक्षात् भगवतः हरेः नारायणस्य अंशेन इह वसुदेवस्य सद्मानि अवतीर्णौ ॥२३॥

अनुवाद— ये दोनों साक्षात् श्रीहरि भगवान् नारायण के अंश से ही यहाँ वसुदेवजी घर में अवतीर्ण हुए हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

विस्मितानां वाक्यान्याह अष्टभिरेतावित्यादिभिः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

एतौ इत्यादि आठ श्लोकों से आश्चर्यित हुए लोगों के वाक्यों का वर्णन किया गया है ॥२३॥

एष वै किल देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम् । कालमेतं वसन्गूढो ववृधे नन्दवेश्मनि ॥२४॥

अन्वयः— एषः वै किल देवक्यां जातः गोकुलम् नीतः, एतं कालं नन्दवेश्मनि गूढः वसन् ववृधे ॥२४॥

अनुवाद— निश्चित रूप से ये श्यामवर्ण के कुमार देवकी के गर्भ से उत्पन्न हुए और गोकुल पहुँचा दिए गये । इतने दिन तक नन्दजी के घर में छिपकर बड़े हुए हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

किलेति सर्वत्रान्वयः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

किल पद का सर्वत्र अन्वय करना चाहिए ॥२४॥

पूतनाऽनेन नीताऽन्तं चक्रवातश्च दानवः । अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकोऽन्ये च तद्विधाः ॥२५॥

अन्वयः— अनेन किल पूतना अन्तं नीता, दानवः चक्रवातः च, अर्जुनौ, गुह्यकः, केशी, धेनुकः तद्विधा अन्ये च अन्तं नीताः किल ॥२५॥

अनुवाद— इन्होंने ही पूतना को मारा, चक्रवात का रूप धारण करने वाले दानव तृणावर्त को, दोनों अर्जुन वृक्षों का उद्धार किया, शङ्खचूड नामक यक्ष को मारा, केशी धेनुक और उसके ही समान अन्य दैत्यों को मारा॥२५॥

भावार्थ दीपिका

गुह्यकः शङ्खचूडः । अन्ये चाघासुरादयः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

शङ्ख चूड नामक यक्ष तथा अधासुर आदि दैत्यों को मारा ॥२५॥

गावः सपाला एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः । कालियो दमितः सर्प इन्द्रश्च विमदः कृतः ॥२६॥

अन्वयः— एतेन सपालाः गावः दावाग्ने परिमोचिताः कलियः सर्पः दमितः इन्द्रः च विमदः कृतः ॥२६॥

अनुवाद— इन्होंने ही गोपालों के साथ-साथ गायों को दावाग्नि से बचा लिया, कालिय नाग का दमन किया और इन्द्र का मान मर्दन किया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

सप्ताहमेकहस्तेन धृतोऽद्रिप्रवरोऽमुना । वर्षवाताशनिभ्यश्च परित्रातं च गोकुलम् ॥२७॥

अन्वयः— अमुना एकहस्तेन सप्ताहं अद्रिप्रवरः धृतः वर्षवात अशनिभयः च गोकुलम् परित्रातम् ॥२७॥

अनुवाद— इन्होंने ही एक सप्ताह तक एक ही हाथ से पर्वत श्रेष्ठ गोवर्धन को उठाये रखा और वर्षा, वायु एवं वज्रपात से गोकुल की रक्षा की ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

गोप्योऽस्य नित्यमुदितहसितप्रेक्षणं मुखम् । पश्यन्त्यो विविधांस्तापांस्तरन्ति स्माश्रमं मुदा ॥२८॥

अन्वयः— अस्य नित्यमुदितहसितप्रेक्षणं मुखं पश्यन्त्यः गोप्यः विविधान् तापान् आश्रमं मुदा तरन्ति स्म ॥२८॥

अनुवाद— इनके मन्द-मन्द मुस्कान मधुर प्रेक्षण तथा सदा प्रसन्न रहने वाले मुख मण्डल को देखती हुई गोपियाँ भी बिना प्रयास के ही अनेक प्रकार के तापों से मुक्त हो जाती थीं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

आश्रममीषच्छ्रमयुक्तं मुखम् । अश्रमं मुखमिति वा । यद्वा अश्रमं यथा भवति तथा तरन्ति स्मेति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

थोड़े से श्रमयुक्त मुख को अथवा श्रम रहित मुख को अथवा किसी भी प्रयास के बिना ही मुक्त हो जाती थीं॥२८॥

वदन्त्यनेन वंशोऽयं यदोः सुबहुविश्रुतः । श्रियं यशो महत्त्वं च लप्स्यते परिरक्षितः ॥२९॥

अन्वयः— अनेन परिक्षतः अयं यदोः सुबहुश्रुतः वंशः श्रियं, यशः महत्त्वं च लप्स्यते इति वदन्ति ॥२९॥

अनुवाद— इन श्रीकृष्ण के द्वारा संरक्षित अत्यधिक विख्यात यदु का यह वंश, ऐश्वर्य, यश और महत्त्व को प्राप्त करेगा इस तरह से लोग कहते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अनेन परिरक्षितो यदोर्वंशः सुबहुविश्रुतः सन्श्र्यादि लप्स्यत इति वन्दन्तीति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

इनके द्वारा संरक्षित अत्यधिक विख्यात यदु का वंश ऐश्वर्य आदि को प्राप्त करेगा इस तरह से लोग कहते हैं॥२९॥

अयं चास्याग्रजः श्रीमान्रामः कमललोचनः । प्रलम्बो निहतो येन वत्सको ये बकादयः ॥३०॥

अन्वयः— अयं अस्य अग्रजः कमलोचनः श्रीमान् रामः येन प्रलम्बः, वत्सकः वकादयः निहताः ॥३०॥

अनुवाद— ये इनके बड़े भाई ऐश्वर्य सम्पन्न बलरामजी हैं, जिनके कमल के समान मनोहर नेत्र हैं, इन्होंने ही प्रलम्बासुर, वत्सासुर तथा वत्सासुर आदि को मारा ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

धेनुकबकवत्सासुरेषु विपर्ययोक्तिर्जनवादेष्वनिश्चयात् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

धेनुक, वत्स, बक इन राक्षसों के विषय में उलटी बातें जनवाद के अनिश्चित होने के कारण कही गयी हैं ॥३०॥

जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु तूर्यषु निनदत्सु च । कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत् ॥३१॥

अन्वयः— एवं ब्रुवाणेषु जनेषु तूर्येषु निनदत्सु च चाणूरः कृष्णरामौ समाभाष्य वाक्यम् अब्रवीत् ॥३१॥

अनुवाद— लोग जिस समय इस तरह की बातें कर रहे थे तथा अखाड़े में तुरही आदि बज रहे थे उसी समय चाणूर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी को सम्बोधित करते हुए कहा ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु सत्सु तदसहमानश्चाणूरोऽब्रवीदिति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

लोग जब इस तरह की बातें कर रहे थे उसी समय उन बातों को नहीं सह सकने के कारण चाणूर ने कहा ॥३१॥

हे नन्दसूनो हे राम भवन्तौ वीरसंमतौ । नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाहूतौ दिदृक्षुणा ॥३२॥

अन्वयः— हे नन्दसूनो हे राम भवन्तौ वीर सम्मतौ नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा दिदृक्षुणा राज्ञा आहूतौ ॥३२॥

अनुवाद— हे श्रीकृष्ण ! हे बलराम आप दोनों तुम दोनों वीरों के आदरणीय हो यह सुनकर देखने की इच्छा वाले राजा ने आप दोनों को बुलाया है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

प्रियं राज्ञः प्रकुर्वत्यः श्रेयो विन्दन्ति वै प्रजाः । मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा ॥३३॥

अन्वयः— राज्ञः मनसा, वाचा, कर्मणा प्रियं कुर्वत्यः प्रजा श्रेयो विन्दन्ति अतः अन्यथा विपरीतम् ॥३३॥

अनुवाद— मन, वाणी तथा शरीर से राजा के प्रियकार्य को करने वाली प्रजाओं का कल्याण होता है और उसके विपरीत कार्य करने वाली प्रजा की हानि होती है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम् । वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडन्तश्चारयन्ति गाः ॥३४॥

अन्वयः— नित्यं प्रमुदिताः गोपाः वत्सवाला वनेषु मल्लयुद्धेन कीडन्तः गाः चारयन्ति इति स्फुटम् ॥३४॥

अनुवाद— प्रख्यात है कि गाय और बछड़े चराने वाले ग्वाले आनन्द पूर्वक जङ्गलों में कुश्ती लड़ते हुए खेलते रहते हैं और गाय चराते रहते हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

तस्माद्राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवाम हे । भूतानि नः प्रसीदन्ति सर्वभूतमयो नृपः ॥३५॥

अन्वयः— यूयं वयं च राज्ञः प्रियं करवाम हे भूतानि नः प्रसीदन्ति, सर्वभूतमयः नृपः ॥३५॥

अनुवाद— अतएव मैं और आप राजा का प्रिय कार्य कुश्ती लड़कर करें और ऐसा करने से हमलोगों पर सभी प्राणी प्रसन्न होंगे क्योंकि राजा तो सर्वभूतमय होते हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

हे कृष्ण, प्रियं करवामेति । राज्ञि प्रीते भूतानि च प्रसीदेयुः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

हमलोग राजा के प्रिय कार्य करें राजा के प्रसन्न हो जाने पर सभी प्राणी प्रसन्न होंगे ॥३५॥

तन्निशम्याब्रवीत्कृष्णो देशकालोचितं वचः । नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनन्द्य च ॥३६॥

अन्वयः— नियुद्धम् आत्मनः अभीष्टं मन्यमानः कृष्ण तत् निशम्य अभिनन्द्य देशकालोचितं वचः अब्रवीत् ॥३६॥

अनुवाद— कुश्ती को अपने मनोऽनुकूल मानते हुए भगवान् श्रीकृष्ण चाणूर की बात को सुनकर उसकी बातों का समर्थन करते हुए देश कालोचित बातें कहे ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

प्रजा भोजपतेरस्य वयं चापि वनेचराः । करवाम प्रियं नित्यं तन्नः परमनुग्रहः ॥३७॥

अन्वयः— वयं वनेचरा अपि अस्य भोजपतेः प्रजाः नित्यं प्रियं करवाम तत् नः परम् अनुग्रहः ॥३७॥

अनुवाद— हमलोग भी बन में रहने वाले महाराज कंस की प्रजा हैं अतएव हमें इनको प्रसन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए इसी में हमारा कल्याण है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम् । भवेन्नियुद्धं माऽधर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः ॥३८॥

अन्वयः— वयं बालाः तुल्यबलैः कीडिष्यामः यथोचितं नियुद्धं भवेत् मल्लसभासदः अधर्मः मास्पृशेत् ॥३८॥

अनुवाद— हम बालक हैं अतएव अपने समान बलवानों के साथ कुश्ती लड़ने का खेल करेंगे। कुश्ती तो समान बलवालों के साथ ही होनी चाहिए जिससे देखने वाले लोगों को अन्याय का समर्थन नहीं करना पड़े ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

यथोचितं नियुद्धं बाहुयुद्धं भवेत् । मल्लसभासदो मल्लसभाधिकृतान् जनानधर्मो मा स्पृशेन्न स्पृशेदित्यर्थः । हे मल्लेति वा ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

यथोचित रीति से ही कुश्ती होनी चाहिए । जिससे कि पहलवानों के अधिकृत सभासदों को अधर्म का समर्थन नहीं करना पड़े । अथवा हे पहलवान ॥३८॥

चाणूर उवाच

न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः । लीलयेभो हतो येन सहस्त्रद्विपसत्त्वभृत् ॥३९॥

अन्वयः— येन सहसद्विप सत्त्वभृत इभः लीलया हतः सत्वं न वालः न किशोरः त्वं बलिनां वरः बलः च ॥३९॥

चाणूर ने कहा

अनुवाद— आपने एक हजार हाथ का बल रखने वाले कुबलयापीड हाथी को खेल-खेल में ही मार दिया ऐसे आप न तो बालक हैं न किशोर आप तो बलवानों के श्रेष्ठ बल हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

सहस्त्रद्विपानां सत्त्वं बलं बिभर्तीति तथा ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

एक हजार हाथियों का बल रखने वाले ॥३९॥

तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नानयोऽत्र वै । मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कुवलयापीड वधो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

अन्वयः— तस्मात् भवद्भ्यां बलिभिः योद्धव्यं अत्र वै अनयो न, मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सहमुष्टिकः ॥४०॥

अनुवाद— अतएव आप दोनों को हम जैसे बलवानों से कुश्ती लड़ना चाहिए, तुम मुझसे कुश्ती लड़ो और बलराम के साथ मुष्टिक कुश्ती लड़ेगा ॥४०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के कुवलयापीड वध नामक तैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

बलिभिर्मादृशैः सह । अनयोऽधर्मः विक्रम पराक्रमं कुरु । मुष्टिको विक्रमतादित्यनुषङ्गः ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

मेरे जैसे बलवानों के साथ । **अनयः** अर्थात् अधर्म विक्रम अर्थात् पराक्रम दिखाओ । मुष्टिक बलराम के साथ लड़े ।।४०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।४३।।

* * *

चौवालिसवाँ अध्याय

चाणूर मुष्टिक आदि पहलवानों तथा कंस का वध

श्रीशुक उवाच

एवं चर्चितसंकल्पो भगवान्मधुसूदनः । आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥१॥

अन्वयः— एवं चर्चित सङ्कल्पः भगवान् मधुसूदनः चाणूरं आससाद अथ रोहिणी सुतः मुष्टिकम् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् ने चाणूर आदि के वध का सङ्कल्प पहले से ही कर लिए । जोड़ निश्चित हो जाने पर श्रीभगवान् चाणूर से और बलरामजी मुष्टिक से कुश्ती लड़ने लगे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुश्चत्वारिंशके तु मल्लकंसादिमर्दनम् । कंसयोषित्समाश्वासस्ताभ्यां पित्रोश्च दर्शनम् ॥१॥ चर्चितो निश्चित एवं सङ्कल्पो यस्य सः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौवालिसवें अध्याय में श्रीभगवान् ने पहलवानों तथा कंस आदि का वध किया तथा कंस की पत्नियों को आश्वासन प्रदान किया । इसके पश्चात् कंस की दोनों पत्नियाँ अपने पिता जरासंघ क यहाँ चली गयीं ॥१॥ चर्चितः अर्थात् निश्चित सङ्कल्प वाले ॥१॥

हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्ध्वा पद्भ्यामेव च पादयोः । विचकर्षतुरन्योन्यं प्रसह्य विजिगीषया ॥२॥

अन्वयः— विजीगीषया हस्ताभ्यां हस्तयोबद्ध्वा पद्भ्यामेव च पादयोः अन्योन्यं प्रसह्य विचकर्षतुः ॥२॥

अनुवाद— एक दूसर को जीत लेने की इच्छा से वे लोग हाथों से हाथों को बाँधकर तथा पैरों को पैरों से अड़ाकर एक दूसरे को खींचने लगे ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी । शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥३॥

अन्वयः— अरत्नी द्वे अरत्नीभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी, शिरः शीर्ष्णो असो रस्तौ अन्योन्यमभि जघ्नतुः ॥३॥

अनुवाद— वे पञ्जो से पञ्जो को, घुटनों को घुटनों से तथा शिर को शिर से भिड़ाकर एवं छाती को छाती से भिड़ाकर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

बाहुमध्यात्कनिष्ठाङ्गुलिव्यतिरेकेण कृतमुष्टिर्हस्तोऽरत्निः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

हाथ के बीच के भाग से लेकर कनिष्ठा अङ्गुली को छोड़कर बनाई मुट्ठी को अरत्नि कहते हैं ।।३।।

परिभ्रामणविक्षेपपरिरम्भावपातनैः । उत्सर्पणापसर्पणैश्चान्योन्यं प्रत्यरुन्धताम् ।।४।।

अन्वयः— परिभ्रामण विक्षेपरिरम्भाव पातनैः उत्सर्पणापसर्पणैः च अन्योन्यं प्रत्यरुन्धताम् ।।४।।

अनुवाद— वे एक दूसरे का हाथ पकड़कर चारो ओर घुमाते, दूर ढकेल देते, जोर से एक दूसरे को जकड़ लेते, लिपट जाते, एक दूसरे को उठाकर पटक देते, छूटकर निकल जाते और कभी पीछे हट जाते थे । इस तरह वे परस्पर में एक दूसरे को रोक देते और प्रहार करते थे ।।४।।

भावार्थ दीपिका

परिभ्रामणं हस्तादिषु गृहीत्वा परितश्चालनम् । विक्षेपो नोदनम् । परिरम्भो बाहुभ्यां निष्पीडनम् । अवपातनमधःक्षेपः। उत्सर्पणमुत्सृज्य पुरतो गमनम् । अपसर्पणं पृष्ठतो गमनम् । एतैः प्रत्यरुन्धतां प्रत्यावृतवन्तौ ।।४।।

भाव प्रकाशिका

परिभ्रामण अर्थात् हाथ आदि पकड़कर चारो ओर घुमाना, **विक्षेपः** अर्थात् ढकेल देना, **परिरम्भः** अर्थात् दोनों हाथों से पकड़कर दबाना, **अवपातनम्** अर्थात् नीचे पटक देना, **उत्सर्पणम्** अर्थात् छोड़कर फिर सामने आना, **अपसर्पणम्** अर्थात् पीछे जाना । इन सभी उपायों से वे एक दूसरे को रोक रहे थे ।।४।।

उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनैः स्थापनैरपि । परस्परं जिगीषन्तावुपचक्रतुरात्मनः ।।५।।

अन्वयः— उत्थापनैः उन्नयनैः चालनैः स्थापनैः अपि, परस्परं जिगीषन्तौ आत्मनः अपचक्रतुः ।।५।।

अनुवाद— जब कोई गिर जाता तो दूसरा उसे घुटनों और पैरों में दबाकर उठा लेता, हाथों से पकड़कर ऊपर की ओर ले जाता, गले में लिपट जाने पर ढकेल देता, तथा आवश्यकतानुसार हाथ पैर पकड़कर गांढ बाँध देता । इस तरह से वे एक दूसरे को जीत लेने का प्रयास करते थे ।।५।।

भावार्थ दीपिका

उत्थापनं जानुनी पादौ च पिण्डीकृत्य पतितस्योच्चाटनम् । उन्नयनं हस्ताभ्यामुद्धृत्य नयनम् । चालनं कण्ठादिलग्नस्य निःसारणम् । स्थापनं पादादिपिण्डीकरणम् । एवं परस्परमात्मनो देहस्यापचक्रतुरपकारं कृतवन्तौ ।।५।।

भाव प्रकाशिका

उत्थापनम् अर्थात् घुटने और पैर को समेट कर गिरे हुए को उठाना, **उन्नयनम्** हाथों से पकड़कर ऊपर की ओर ले जाना, **चालनम्** गले से लिपटे हुए को छुड़ाना, स्थापन पैर आदि को मोड़कर गोल कर देना इस तरह वे एक दूसरे का अपकार करते थे ।।५।।

तद्बलाबलवद्युद्धं समेताः सर्वयोषितः । ऊचुः परस्परं राजन्सानुकम्पा वरूथशः ।।६।।

अन्वयः— राजन् समेताः सर्वयोषितः तद् बालबलवद् युद्धं सानुकम्पाः वरुथशः परस्परं ऊचुः ।।६।।

अनुवाद— उस कुश्ती को देखने के लिए आयी हुई स्त्रियाँ उस बलवानों का निर्बल बालकों के साथ होती कुश्ती को देखकर टोली बनाकर परस्पर में कहने लगीं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

तद्युद्धं बलाबलवदेकतो बलमन्यतोऽबलम् । तद्युद्धं विषममित्यूचुरित्यर्थः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

उस युद्ध में एक तरफ बलवान और दूसरी ओर निर्बल बच्चों को देखकर कहने लगीं कि यह युद्ध विषम हैं ।।६।।

महानयं बताधर्म एषा राजसभासदाम् । ये बलाबलवद्युद्धं राज्ञोऽन्विच्छन्ति पश्यतः ।।७।।

अन्वयः— एषां राजसभासदाम् बत महान्अयं अधर्मः ये पश्यतः बलाबलवदयुद्धम् अन्विच्छन्ति ।।७।।

अनुवाद— ये राजा कंस के सभा में यह महान् अधर्म हो रहा है, क्योंकि राजा के सामने बलवान् पहलवानों के साथ निर्बल बच्चों का युद्ध कराया जा रहा है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तदेव दर्शयति-महानिति । यद्वा बलाबलवतोर्युद्धं दृष्ट्वा महानयमधर्म इत्यूचुरित्यन्वयः । बालयोर्बलवतोश्च युद्धं राजा चेत्पश्येत्स्वयं वारणीयः । एते तु राज्ञः पश्यतः स्वयमन्विच्छन्त्यनुमन्यन्त इति महानधर्म इत्यर्थः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

महानयम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा उस अनर्थ को ही बतलाती हैं अथवा बलवानों तथा निर्बलों का युद्ध देखकर स्त्रियाँ कहने लगीं की यह महान् अधर्म है । बालकों तथा बलवानों का युद्ध यदि राजा देखे तो उसको स्वयं रोकना चाहिए । ये सब तो राजा के सामने ही उसका अनुमोदन कर रहे हैं । अतएव यह महान् अधर्म हैं ।।७।।

क्व वज्रसारसर्वाङ्गौ मल्लौ शैलेन्द्रसंनिभौ । क्व चातिसुकुमाराङ्गौ किशोरौ नाप्तयौवनौ ।।८।।

अन्वयः— वज्रसार सर्वाङ्गौ शैलेन्द्रसन्निभौ मल्लौ क्वच अतिसुकुमाराङ्गौ किशोरौ नाप्त यौवनौ ।।८।।

अनुवाद— कहाँ तो व्रज के समान कठोर सभी अङ्गों वाले पर्वतराज के समान ये दोनों पहलवान और कहाँ अत्यन्त सुकुमार अङ्गों वाले किशोरावस्थावस्थित ये दोनों बालक, अभी इन दोनों की युवावस्था भी नहीं आयी है । इन दोनों में कोई तुलना नहीं है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

बलाबलवद्युद्धतां प्रपञ्चयति पञ्चभिः- क्वेति । वज्रसाराणि वज्रवत्कठिनानि सर्वाण्यङ्गानि ययोस्तौ ।।८।।

भाव प्रकाशिका

क्ववज्रसारसर्वाङ्गौ० इत्यादि पाँच श्लोकों से बलवानों और निर्बलों के युद्ध का विस्तार करती हैं नारियाँ। **वज्रसारसर्वाङ्गौ** अर्थात् वज्र के समान जिन दोनों के अत्यन्त कठोर सभी अङ्ग हैं ।।८।।

धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् । यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ।।९।।

अन्वयः— अस्य हि समाजस्य ध्रुवं व्यतिक्रमः ध्रुवं भवेत् । यत्र अधर्मः समुत्तिष्ठेत् तत्र कर्हिचित् न स्थेयं ।।९।।

अनुवाद— इस सभा में बैठने वाले लोगों को जो इसे देख रहे है उनको धर्मोल्लंघन का पाप अवश्य लगेगा। जहाँ पर अधर्म की प्रधानता हो वहाँ कभी नहीं ठहरना चाहिए, अतएव हमलोगों को यहाँ से चले जाना चाहिए।।९।।

भावार्थ दीपिका

समाजस्य सभायाः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

समाजस्य अर्थात् सभा का ।।९।।

न सभां प्रविशेत् प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन् । अब्रुवन्विब्रुवन्नज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते ॥१०॥

अन्वयः— सभ्यदोषाननुस्मरन् प्राज्ञः सभा न प्रविशेत् । अब्रुवन्, वि ब्रूवन् अज्ञः नरः किल्विषम् अश्नुते ॥१०॥

अनुवाद— शास्त्र बतलाता है कि सभासदों के दोषों को जानने वाले मनुष्य को उस सभा में प्रवेश नहीं करना चाहिए, क्योंकि दोषों को जानकर भी नहीं कहना, या चुप रह जाना या विपरीत बोलना या मैं नहीं जानता हूँ, यह कह देना ये तीनों ही बातें मनुष्य को दोष का भागी बनाती हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अपरा ऊचुः- न सभामिति । अब्रुवन् ज्ञात्वापि तूष्णीं तिष्ठन्, विब्रुवन्विपरीतं ब्रुवन्, अज्ञो न जानामीति ब्रुवन् । अतः प्राज्ञो न सभां प्रविशेदिति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी नारियों ने **सभाम्० इत्यादि** श्लोक से कहा अब्रुवन् जानकर भी चुप रह जाना, **विब्रुवन्** अर्थात् विपरीत बोलना, **अज्ञः** अर्थात् मैं नहीं जानता हूँ यह कहना ये तीनों दोष का भागी बनाती हैं । अतः बुद्धिमान व्यक्ति को ऐसी सभा में नहीं जाना चाहिए ॥१०॥

वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनाम्बुजम् । वीक्ष्यतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवाम्बुभिः ॥११॥

अन्वयः— शत्रुम् अभितः बल्गतः कृष्णास्य श्रमवार्युप्तं वदनम् बुजम् अम्बुभिः पद्मकोशम् इव वीक्ष्यताम् ॥११॥

अनुवाद— शत्रु के चारो ओर पैंतरा बदलने वाले श्रीकृष्ण के मुख कमल पर निकल आये पसीने को तो देखो लगता है जैसे कमल के कोश पर पानी की बूंदे आ गयी हों ॥११॥

भावार्थ दीपिका

वल्गतः शत्रुमभित इति । शत्रोः सर्वतो धावतः कृष्णस्य श्रमवारिणा उप्तं व्याप्तं मुखाम्बुजं दृश्यताम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

बलातशत्रुन् अभितः इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है कि शत्रु के चारो ओर पैंतरा बदलने वाले श्रीकृष्ण का मुख पसीने से भर गया है देखो तो ॥११॥

किं न पश्यत रामस्य मुखमाताम्रलोचनम् । मुष्टिकं प्रति सामर्षं हाससंरम्भशोभितम् ॥१२॥

अन्वयः— मुष्टिकं प्रति सामर्षं हास संरम्भ शोभितम् रामस्य आताम्रलोचनं मुखं कि न पश्यत ॥१२॥

अनुवाद— मुष्टिक के प्रति क्रोध युक्त तथा हँसी के आवेश से सुशोभित लाल-लाल नेत्रों से युक्त बलरामजी के मुख को तुम लोग नहीं देख रही हो क्या ?॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अन्या ऊचुः- किं न पश्यतेति । सामर्षं सक्रोधम् । हासेन संरम्भ आवेशस्तेन शोभितम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी नारियों ने **किं न पश्यत० इत्यादि** श्लोक को कहा **सामर्षम्** अर्थात् क्रोध युक्त, **हाससरम्भशोभितम्** अर्थात् हँसी के आवेश से सुशाभित ॥१२॥

पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिङ्गगूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ।
गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणुं विक्रीडयाऽञ्चति गिरित्ररमार्चिताङ्घ्रिः ॥१३॥

अन्वयः— बत व्रजभुवः पुण्याः यत् अयं नृलिङ्गगूढः पुराणपुरुषः वनचित्रमाल्यः सहबलः गाः पालयन् वेणुं क्वणयन् च गिरित्ररमार्चिताङ्घ्रिः विक्रीडया अञ्चति ॥१३॥

अनुवाद— सखियों व्रजभूमि ही परम पवित्र और धन्य है जहाँ पर पुराणपुरुष पुरुषोत्तम मनुष्य के रूप में छिपकर रहते हैं । वे प्रभु वहाँ रङ्गविरङ्गे वन पुष्पों की माला धारण करते हैं, बलरामजी के साथ बाँसुरी बजाते हुए गायों को चराया करते हैं, अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं को करते हुए विचरण किया करते हैं । इनके चरणों की पूजा भगवान् शिव और लक्ष्मीजी भी किया करते हैं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अन्या ऊचुः- पुण्या बतेति । नृलिङ्गेन मनुष्यदेहेन गूढः । वनस्थानि चित्राणि माल्यानि यस्य स; । गिरित्रः शिवो रमा च ताभ्यामर्चितावङ्घ्री यस्य सः । अयं भावः-धिगिमां सभां यस्यामयं पराभूतये । तास्तु व्रजभुवो धन्याः । यस्याः स्वयं कृष्णो विविधक्रीडयाऽञ्चति गच्छतीति ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

दूसरी स्त्रियों ने **पुण्याबत० इत्यादि** श्लोक को कहा **नृलिङ्गगूढः** अर्थात् मनुष्य शरीर धारण करके छिपे हुए । **वनपुष्पों** की जिनकी मलाएँ है । गिरित्र अर्थात् शिवजी और रमा अर्थात् लक्ष्मीजी जिनके चरणों की पूजा करती हैं । अर्थात् इस सभा को धिक्कार है क्योंकि इस सभा में इनका अपमान होता है । वह व्रजभूमि धन्य है । जिस व्रजभूमि में स्वयं कृष्ण अनेक प्रकार की क्रीडा करते हुए विचरण करते हैं ।।१३।।

गोप्यस्तपः किमचरन्यदमुष्य रूपं लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम् ।
दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुरापमेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ।।१४।।

अन्वयः— गोप्यः किं तप अचरन् यत् अमुष्य लावण्यसारमसमोर्ध्वम् अनन्यसिद्धम् रूपं अनुसवाभिनवं दुरापं यशसः श्रियः ऐश्वरस्य एकान्तधाम दृग्भिः पिबन्ति ।।१४।।

अनुवाद— गोपियों ने न जाने कौन सी तपस्या की थी कि जो इनके सम्पूर्ण सौन्दर्यो के सारभूत जिसके समान किसी का भी सौन्दर्य नहीं हो सकता अधिक होने की तो कोई बात ही नहीं है जो कृत्रिम नहीं अपितु स्वाभाविक है, जो प्रतिक्षण नवीन ही बना रहता है । इस प्रकार के रूप को अपने नेत्र रूपी दोनों से निरन्तर पान करती हैं । इनके इस रूप के ही अधीन सम्पूर्ण यश, सौन्दर्य और ऐश्वर्य हैं । यह अन्यों के लिए तो दुष्प्राप्य है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

अहो कष्टमल्पपुण्या वयं यतोऽस्माभिरनवसरे दृष्टोऽयम् । गोप्यस्तु बहुपुण्या इत्याहुस्त्रिभिः-गोप्य इति । अमुष्य श्रीकृष्णस्य रूपमङ्गलावण्येन सार श्रेष्ठम् । किंच असमोर्ध्वं न विद्यते सममूर्ध्वं अधिकं च यस्य तत् । तदपि नान्येनाभरणादिना सिद्धं किंतु स्वत इव । ऐश्वरस्यैश्वर्यस्य चैकान्तधाम अव्यभिचारिस्थानम् । पाठान्तरे अमुष्य ईश्वरस्येत्यन्वयः । एवंभूतं नित्यं नवीनं रूपं या नेत्रैः पश्यन्तीति ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

यह अत्यन्त कष्ट की बात है, हमलोगों का पुण्य अत्यन्त अल्प है कि हमलोगों ने इस रूप को अनवसर में देखा गोपियाँ तो बहुत अधिक पुण्यवती हैं । इस बात को **गोप्यः इत्यादि** तीन श्लोकों से स्त्रियों ने कहा- इन श्रीकृष्ण के शारीरिक सौन्दर्य के समान किसी का भी सौन्दर्य नहीं है, उससे अधिक कैसे होगा ? इनका रूप समाभ्यधिक रहित है । इनका यह रूप आभूषण इत्यादि के कारण नहीं अपितु स्वाभाविक है । यह सम्पूर्ण ऐश्वर्यो का एकमात्र आश्रय है । **श्रिय ईश्वरस्य** इस पाठान्तर के होने पर इस ईश्वर का ऐसा कार्य होगा । इस तरह को नित्य नवीन बने रहने वाले रूप को वे गोपियाँ अपने नेत्रों से देखती हैं ।।१४।।

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥१५॥

अन्वयः— ऊरुक्रमचित्तयानाः व्रजस्त्रियः धन्याः याः दोहने, अवहनने, मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षण मार्जनादौ च अनुरक्तधियः अश्रुकण्ठयः एनम् गायन्ति ॥१५॥

अनुवाद— सखियों निरन्तर भगवान् श्रीकृष्ण का ही चिन्तन करते रहने वाली व्रजवनिताएँ धन्य हैं, क्योंकि वे गायों को दूहते समय, धानों को कूटते समय, दधिमन्थन करते समय, घरों को लिपते समय, बच्चों को झूला झूलाते समय, रोते हुए बालकों को चुप कराते समय एवं घरों में झाड़ू आदि लगाते समय भी इनमें ही चित्त लगे रहने के कारण वे अपने प्रेम भरे हृदय से आँसुओं के कारण अपने भर्राये कण्ठ से इनका ही गीत गाती रहती हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

किंच या दोहनादिष्वेनं गायन्ति ता व्रजस्त्रियो धन्याः । प्रेङ्खेङ्खनं दोलाान्दोलनम् । उक्षणं सेचनम् । कथंभूताः । उरुक्रमे चित्तमुरुक्रमचित्तं तेनैव यानं सर्वविषयप्राप्तिर्यासां ताः । पाठान्तरे उरुक्रमं चिन्तयन्त्य इत्यर्थः । कुतः । अनुरक्तधियः । तत्र लिङ्गम्- अश्रुकण्ठ्यः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

जो गोपियाँ गोदोहन आदि के भी समय में इनका ही गीत गाती हैं, वे गोपियाँ धन्य हैं । प्रेङ्खङ्खनम् अर्थात् झूला झुलाना, **उक्षणम्** अर्थात् सींचना । वे गोपियाँ कैसी हैं ? श्रीभगवान् में सदाचित्त के लगे रहन से उसी के साथ जिनको सभी विषयों की प्राप्ति होती है । पाठान्तर के अनुसार अर्थ होगा कि श्रीकृष्ण का ही चिन्तन करती हुई; क्योंकि उन सबों का मन श्रीभगवान् में ही अनुरक्त रहता है । ऐसा इसलिए की आसुँओं से उनका कण्ठ भर्राया रहता है ॥१५॥

प्रातर्व्रजाद्व्रजत आविशतश्च सायं गोभिः समं क्वणयतोऽस्य निशम्य वेणुम् ।
निर्गम्य तूर्णमबलाः पथि भूरिपुण्याः पश्यन्ति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥१६॥

अन्वयः— प्रातर्वजादव्रजतः सायं गोभिः आविशतः च समं वेणुम् क्वणयतः अस्य निशम्य भूरिपुण्याः अबलाः तूर्णम् निर्गम्य पथि सस्मितमुखम् सदयावलोकम् पश्यन्ति ॥१६॥

अनुवाद— जब ये श्रीकृष्ण प्रातःकाल गायों को चराने के लिए व्रज से निकलकर वन में जाते हैं और सायंकाल जब ये अपनी गायों के साथ व्रज में सुमधुर अपनी वंशी बजाते हुए प्रवेश करते हैं, उस समय अत्यधिक पुण्यवती व्रज की गोपियाँ अतिशीघ्र घर से निकलकर रास्ते में आ जाती हैं और श्रीकृष्ण के मधुर मुस्कान से शोभित मुख और दया पूर्ण मनोज्ञ प्रेक्षण का अवलोकन करती हुई आनन्दमग्न हो जाती हैं । अतएव वे गोपियाँ धन्य हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

प्रातरिति । या अबला अस्य वेणुं निशम्य गृहात्तूर्णं निर्गम्य पथि सस्मितमुखं पश्यन्ति ता भूरिपुण्या इति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

प्रातर्व्रजात्० इत्यादि श्लोक से नारियाँ कहती हैं कि जो व्रजवासिनियाँ इन श्रीकृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनकर घर से शीघ्र निकलकर रास्ते में इनके मधुर मुस्कान से शोभित मुख को देखती हैं वे अत्यधिक पुण्यवान् हैं ॥१६॥

एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः । शत्रुं हन्तुं मनश्चक्रे भगवान्भरतर्षभ ॥१७॥

अन्वयः— हे भरतर्षभ एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो भगवान् हरि शत्रुं हन्तुं मनः चक्रे ॥१७॥

अनुवाद— हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ राजन् परीक्षित् जब इस प्रकार से स्त्रियाँ आपस में बातें कर रही थीं उसी समय योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने शत्रु चाणूर को मार डालने का मन बना लिया ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

एवं सभयं ब्रुवाणासु स्त्रीषु तासां भयनिवृत्तये कृष्णः शत्रुं हन्तुं मनश्चक्रे ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से डरी हुई नारियाँ आपस में बातें कर रही थीं उसी समय उन सबों का भय दूर करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण अपने शत्रु चाणूर को मारने का मन बना लिए ।।१७।।

सभयाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेहशुचातुरौ । पितरावन्वतप्येतां पुत्रयोरबुधौ बलम् ।।१८।।

अन्वयः— सभयाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्र स्नेहशुचा आतुरौ पुत्रयोः बलम् अबुधौ पितरौ अन्वतप्येताम् ।।१८।।

अनुवाद— स्त्रियों की भययुक्त वाणी को सुनकर वसुदेवजी और माता देवकी अपने पुत्रों के प्रति स्नेह के कारण शोकातुर हो गये । क्योंकि उन लोगों को अपने पुत्रों के बल का ज्ञान नहीं था और उन लोगों के हृदय में अत्यधिक पीडा होने लगी ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

सभयाः स्त्रीणां गिरः श्रुत्वा पुत्रयोः स्नेहेन या शुक् तया आतुरौ विह्वलौ पुत्रयोर्बलमजानन्तौ पितरावनुतापं प्राप्ताविति।।१८।।

भाव प्रकाशिका

स्त्रियाँ की भययुक्त वाणी को सुनकर अपने पुत्रों के प्रति होने वाले स्नेह के कारण जो शोक उत्पन्न हो गया था उसके कारण भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी के माता-पिता को अत्यधिक हार्दिक पीडा हुई, क्योंकि वे लोग अपने पुत्रों के बल को नहीं जानते थे ।।१८।।

तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युतेतरौ । युयुधाते यथान्योन्यं तथैव बलमुष्टिकौ ।।१९।।

अन्वयः— अच्युतेतरौ तैस्तैः विविधै नियुद्धविधिभिः यथा अन्योन्यं युयुधाते तथैव बलमुष्टिकौ ।।१९।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण और चाणूर कुश्ती के विभिन्न प्रकार के दाव पेंच का प्रयोग करके जिस तरह परस्पर में लड़ रहे थे उसी तरह बलरामजी और मुष्टिक भी लड़ रहे थे ।।१९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१९।।

भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः । चाणूरो भज्यमानाङ्गो मुहुर्ग्लानिमवाप ह ।।२०।।

अन्वयः— वज्रनिपेषनिष्ठुरैः भगवद्गात्रनिष्पातैः भज्यमानङ्गः चाणूरः मुहुः गलनिम् अवाप ।।२०।।

अनुवाद— वज्र के समान कठोर श्रीभगवान् के अङ्गों के रगड़ से चाणूर के अङ्ग-अङ्ग टूट रहे थे उसके कारण उसे बहुत अधिक व्यथा हुई ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

तदा भवतो गात्राणामरत्निजान्वादीनां निष्पातैः प्रहारैः वज्रस्य निष्पेषस्तीव्रप्रपातस्तद्वज्रन्निष्ठुरैः भज्यमानाङ्गः श्लथगात्रः।।२०।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् के पंजे तथा घुटनों के वज्र के समान प्रहारों से चाणूर के प्रत्येक अङ्ग शिथिल हो गये ।।२०।।

स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टीकृत्य करावुभौ । भगवन्तं वासुदेवं क्रुद्धो वक्षस्यबाधत ॥२१॥

अन्वयः— क्रुद्धः सः श्येनवेगः उत्पत्य उभौ करौ मुष्टीकृत्य भगवन्तं वासुदेवं वक्षसि अबाधत ॥२१॥

अनुवाद— वह अत्यन्त क्रोधित होकर बाज पक्षी के समान झपटा और अपने दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर भगवान् श्रीकृष्ण के वक्ष स्थल पर प्रहार किया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

श्येनस्येव वेगो यस्य स चाणूरः । अबाधतताडयत् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

बाजपक्षी के समान वेग वाले चाणूर ने भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर प्रहार किया ॥२१॥

नाचलत्तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः । बाह्वोर्निगृह्य चाणूरं बहुशो भ्रामयन्हरिः ॥२२॥
भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीणजीवितम् । विस्रस्ताकल्पकेशस्रगिन्द्रध्वज इवापतत् ॥२३॥

अन्वयः— तत्प्रहारेण मालाहत द्विप इव हरि न अचलत् बाह्वोः निगृह्य बहुशः भ्रामयन् क्षीणजीवितं चाणूरं भूपृष्ठेतरसा पोथयामास विस्रस्ताकल्पेकशस्रग् इन्द्रध्वज इव अपतत् ॥२२-२३॥

अनुवाद— चाणूर के उस प्रहार से फूलों की माला से मारे गये गजरांज के समान श्रीभगवान् तनिक भी विचलित नहीं हुए । उन्होंने चाणूर के दोनों हाथों को पकड़कर चाणूर को अन्तरिनक्ष में बार-बार घुमाया घुमाते समय ही उसके प्राण निकल गये थे । उन्होने जोर से चाणूर को पृथिवी पर पटक दिया । चाणूर के वेषभूषा अस्त व्यस्त हो गये केश और मालायें विखर गयीं और वह इन्द्रध्वज के समान गिर पड़ा ॥२२-२३॥

भावार्थ दीपिका

भूपृष्ठे भुव उपरि । पोथयामासास्फालयत् । इन्द्रध्वजो वज्रम् । यद्वा इन्द्रध्वजो गौडेषु प्रसिद्धः । कस्मिंश्चिदुत्सवे महान्स्तम्भो ध्वजपताकाद्यलंकृतः पुरुषाकृतिरुच्छ्रीयते स यथा पतति तद्वदपतदिति ॥२२-२३॥

भाव प्रकाशिका

भूपृष्ठे अर्थात् पृथिवी पर । पोथायामास अर्थात् पटक दिया । इन्द्रध्वजः अर्थात् वज्र अथवा गौडदेश में प्रसिद्ध इन्द्रध्वज । किसी उत्सव विशेष में महान स्तम्भ वाला, ध्वजा एवं पताका से अलंकृत पुरुष के आकार वाला ध्वज फहराया जाता है । वह जैसे गिरता है उसी तरह गिर पड़ा ॥२२-२३॥

तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै । बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो भृशम् ॥२४॥
प्रवेपितः स रुधिरमुद्वमन्मुखतोऽर्दितः । व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवाङ्घ्रिपः ॥२५॥

अन्वयः— तथैव पूर्वं मुष्टिना हतेन बलिना बलभद्रेण बलेन अभिहतः मुष्टिकः भृशम् वेपितः अर्दितः मुखतः रुधिरम् उद्वमन् उर्व्युपस्थे वाताहत अङ्घ्रिपः इव व्यसुः पपात ॥२४-२५॥

अनुवाद— उसी तरह पहले मुष्टिक ने भी बलरामजी को एक मुक्का मारा था । उस पर बलवान् बलरामजी ने उसको जोर से एक थप्पड़ मारा । थप्पड़ लगते ही वह काँपने लगा और अत्यन्त व्यथित होकर मुँह से रक्त वमन करता हुआ निष्प्राण होकर आँधी से उखड़े हुए वृक्ष के समान पृथिवी पर गिर पड़ा ॥२४-२५॥

भावार्थ दीपिका

अर्दितः पीडितः । उर्व्युपस्थे भूतले ॥२४-२५॥

भाव प्रकाशिका

अर्दितः अर्थात् पीडित । **उर्व्युपस्थे** अर्थात् पृथ्वी पर ॥२४-२५॥

ततः कूटमनुप्राप्तं रामः प्रहरतां वरः । अवधील्लीलया राजन्सावज्ञं वाममुष्टिना ॥२६॥

अन्वयः— हे राजन् ततः अनुप्राप्तं कूटं प्रहरतां वरः रामः सावज्ञं मुष्टिना लीलया अवधीत् ॥२६॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! उसके पश्चात् अपने सामने आये हुए कूट को प्रहार करने वाले बलरामजी ने उपेक्षा पूर्वक बायें हाथ के एक मुक्के के प्रहार से खेल ही खेल में मार दिया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

तर्ह्येव हि शलः कृष्णपदापहतशीर्षकः । द्विधा विदीर्णस्तोशलक उभावपि निपेततुः ॥२७॥

अन्वयः— तर्हि एव कृष्ण पदापहतशीर्षकः शल; द्विधा विदीर्णः तोशलकः उभावपि निपेततुः ॥२७॥

अनुवाद— उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने पैर के ठोकर से मारकर शल के सिर को घड़ से अलग करन दिया और तोशल को तिनके के समान चिर दिया । इस तरह वे दोनों मर गये ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते । शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥२८॥

अन्वयः— चाणूरे, मुष्टिके, कूटे, शले तोशलके हते शेषा प्राणपरिप्सवः मल्लाः प्रदुद्रुवुः ॥२८॥

अनुवाद— इस तरह चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल के मारे जाने पर बचे हुए सभी पहलवान् अपनी जान बचाने के लिए भाग गये ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

गोपान्वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य विजह्रतुः । वाद्यमानेषु तूर्येषु बल्गतो रुतनूपुरौ ॥२९॥

अन्वयः— वयस्यान् गोपान् आकृष्य तैः संसृज्य वाद्यमानेषु तूर्येषु बल्गन्तौ रुतनपुरौ विजह्रतुः ॥२९॥

अनुवाद— पहलवानों के भाग जाने पर अपने मित्र गोपों को खीचकर बलरामजी तथा भगवान कृष्ण उन सबों के साथ भीड़कर और नाच-नाच कर भेरी ध्वनि के साथ अपने नूपुरों की ध्वनि को मिलाकर कुश्ती के खेल को करने लगे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

वल्गन्तौ नृत्यादि कुर्वन्तौ ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

बल्गन्तौ अर्थात् नृत्य आदि करते हुए ॥२९॥

जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः । ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधु साध्विति ॥३०॥

अन्वयः— रामकृष्णयो कर्मणा सर्वे जनाः प्रजहृषुः ऋते कंसं विप्रमुख्या साधु साध्विति ॥३०॥

अनुवाद— श्रीबलरामजी और भगवान् कृष्ण की इस अद्भुत लीला को देखकर सभी दर्शकों को बड़ा आनन्द मिला, कंस को छोड़कर श्रेष्ठ पुरुष और साधु पुरुष धन्य है धन्य हैं यह कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

साधु साधु इति वदन्तः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहते हुए ॥३०॥

हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट् । न्यवारयत्स्वतूर्याणि वाक्यं चेदमुवाच ह ॥३१॥

अन्वयः— मल्लवर्येष हतेषु विद्रुतेषु च भोजराट् स्वतूर्याणि न्यवारयत् इदं वाक्यम् उवाच ह ॥३१॥

अनुवाद— अपने श्रेष्ठ पहलवानों को मार दिए जाने पर तथा भाग जाने पर कंस ने वाद्यों को बन्द करवा दिया और कहा ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

निःसारयत दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात् । धनं हरत गोपानां नन्दं बध्नीत दुर्मतिम् ॥३२॥

अन्वयः— दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात् निःसारयत, गोपानां धनं हरत, दुर्मतिम् नन्दम् बध्नीत ॥३२॥

अनुवाद— वसुदेव के इन दुश्चरित्र लड़कों को नगर से निकाल दो, गोपों का सारा धन छीन लो और मूर्ख नन्द को कैद कर लो ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

वसुदेवस्तु दुर्मेधा हन्यतामाश्वसत्तमः । उग्रसेनः पिता चापि सानुगः परपक्षगः ॥३३॥

अन्वयः— दुर्मेधा असत्तमः वसुदेवः हन्यताम् पिता उग्रसेनः अपि सानुगः परपक्षगः ॥३३॥

अनुवाद— दुर्बुद्धि वसुदेव को शीघ्र मार दो और मेरे पिता भी अपने अनुचरों के साथ शत्रुओं से मिले हैं अतएव उन्हें भी मार डालो ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितोऽव्ययः । लघिम्नोत्पत्य तरसा मञ्चमुत्तुङ्गमारुहत् ॥३४॥

अन्वयः— एवं कंसे विकत्थमाने वै प्रकुपितः अव्ययः लघिम्ना तरसा उत्पलुत्य उत्तुङ्गं मंचमारुहत् ॥३४॥

अनुवाद— इस प्रकार से कंस बहक बहक कर बोल रहा था उसी समय क्रुद्ध हुए अविनाशी श्रीभगवान शीघ्रता से वलपूर्वक उच्छलकर उसके ऊँचे मंच पर चढ़ गये ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

अव्ययोऽश्रमः । लघिम्ना लाघवेन ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

अव्ययः अर्थात् विना प्रयास के ही, लघिम्ना अर्थात् शीघ्रता से ॥३४॥

तमाविशन्तमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात् । मनस्वी सहसोत्थाय जगृहे सोऽसिचर्मणी ॥३५॥

अन्वयः— आत्मनः मृत्युम् तम् आविशन्तम् आलोक्य मनस्वी कंस सहसा आसनात् उत्थाय असि चर्मणी जगृहे।।३५॥

अनुवाद— अपनी मृत्यु रूपी भगवान श्रीकृष्ण को अपने पास आये देखकर वह मनस्वी कंस अचानक अपने सिंहासन से उठ खड़ा हुआ और अपने हाथ में तलवार और ढाल ले लिया ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३५॥

तं खड्गपाणिं विचरन्तमाशु श्येनं यथा दक्षिणसव्यमम्बरे ।
समग्रहीद्दुर्विषहोग्रतेजाः यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ॥३६॥

अन्वयः— खड्गपाणिं तं दाक्षिण सव्यम् अम्बरे श्येनं यथा आशु विचरन्तम् दुर्विष्होग्रतेजाः तार्क्ष्यसुतः उरगं यथा तरसा समग्रहीत ॥३६॥

अनुवाद— हाथ में तलवार लेकर जब कंस बाज पक्षी के समान बड़ी शीघ्रता से दायें और बाये पैंतरा बदल रहा था उसी समय असह्य तेज: सम्पन्न भगवान् उसको उसी तरह से बल पूर्वक पकड़ लिए जिस तरह गरुड़ साँप को पकड़ लेते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

दुर्विषहमविषह्यमुग्रं तेजो यस्य स श्रीकृष्णः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

दुर्विर्षहोग्रतेजा: अर्थात् असह्य उग्रतेज वाले भगवान श्रीकृष्ण ॥३६॥

प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं निपात्य रङ्गोपरि तुङ्गमञ्चात् ।
तस्योपरिष्टात्स्वयमब्जनाभः पपात विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः ॥३७॥

अन्वयः— चलत् किरीटं तं केशेषु प्रगृह्य तुङ्गमञ्चात् रङ्गोपरि निपास्य विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः अब्जनाभः तस्योपरि स्वयं पपात ॥३७॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के पकड़ते ही कंस का मुकुट गिर पड़ा । उसके पश्चात् श्रीभगवान् उसके केश को पकड़कर उस ऊँचे मञ्च से पृथिवी पर गिरा दिए और सम्पूर्ण विश्व के आश्रय तथा स्वतन्त्र श्रीभगवान् ऊपर से उसी के ऊपर कूद पड़े ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

गरिष्ठत्वाय विश्वाश्रयत्वमुक्तम् । तत्र हेतुः-अज्ब्जनाभः । कुतस्तस्योपर्येव पपात । यत आत्मतन्त्रः स्वतन्त्रः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के अत्यन्त भारीपन को बतलाने के लिए उनको विश्वाश्रय कहा गया है । उसका कारण है कि वे अब्जनाभ भगवान् विष्णु ही है । उसके ऊपर ही क्यों कूदे तो इसका उत्तर है कि वे स्वतन्त्र हैं ॥३७॥

तं संपरेतं विचकर्ष भूमौ हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः ।
हाहेति शब्दः सुमहांस्तदाभूदुदीरितः सर्वजनैर्नरेन्द्र ॥३८॥

अन्वयः— हे नरेन्द्र तं संपरेतं हरिः इभं यथा विपश्यतः जगतः विचकर्ष तदा सर्वजनै उदीरितः हा हा इति सुमहान् शब्द अभूत् ॥३८॥

अनुवाद— हे राजवर्य परीक्षित् मरे हुए कंस को श्रीहरि सबों के सामने उसी तरह घसीटने लगे जैसे कोई सिंह मरे हुए हाथी का घसीटता है । उस समय सबके मुँह से हाय-हाय का अत्यधिक शब्द हुआ ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३८॥

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं पिबन्वदन्वा विचरन्स्वपन् श्वसन् ।
ददर्श चक्रायुधमग्रतो यतस्तदेव रूपं दुरवापमाप ॥३९॥

अन्वयः— स नियत्दा उद्विग्नधिया पिबन् अग्रतः विचरन् स्वप्न श्वसन वा यतः चक्रायुधः तम् ईश्वरं अग्रतः ददर्श तदेवदुरवापम् रूपम् आप ॥३९॥

अनुवाद— कंस सदैव बेचैन मन से खाते-पीते, बोलते, चलते, सोते तथा श्वास लेते हुए चूकि अपने सामने हाथ में चक्रधारण किए श्रीभगवान् के ही रूप को देखता था, अतएव द्वेष बुद्धि से भी श्रीभगवान् का निरन्तर

चिन्तन करते रहने के कारण श्रीभगवान् के उसी रूप को प्राप्त किया। अर्थात् उसकी सारूप्य मुक्ति हो गयी, जो बड़े-बड़े योगियों के लिए भी दुर्लभ है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

तस्यानुजा भ्रातरोऽष्टौ कङ्कन्यग्रोधकादयः । अभ्यधावन्नभिक्रुद्धा भ्रातुर्निर्वेशकारिणः ॥४०॥

अन्वयः— तस्य अष्टौ अनुजा भ्रातरः कङ्कन्यग्रोधकादयः भ्रातुः निर्वेशकारिणः अभिक्रुद्धाः अभ्यधावन् ॥४०॥

अनुवाद— कंस के कङ्क न्यग्रोध आदि आठ छोटे भाई कंस का बदला लेने के लिए अत्यन्त क्रुद्ध होकर बलरामजी और श्रीकृष्ण भगवान् पर टूट पड़े ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

निर्वेशो निष्कृतिरानृण्यमित्यर्थः । तत्कारिणः सन्तस्तेऽभ्यधावन् ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

कंस का बदला लेने के लिए जो उसके छोटे भाई थे वे भगवान् श्रीकृष्ण पर टूट पड़े ॥४०॥

तथातिरभसांस्तांस्तु संयत्तान्रोहिणीसुतः । अहन्परिघमुद्यम्य पशूनिव मृगाधिपः ॥४१॥

अन्वयः— तथा अतिरभसान् तान् संयतान् रोहिणी सुतः परिघम् उद्यम्य मृगाधिपः पशून् इव अहन् ॥४१॥

अनुवाद— अत्यधिक वेग सम्पन्न तथा युद्ध करने के लिए आते हुए उन सबों को बलरामजी ने परिघ उठाकर उसी तरह मार डाला जिस तरह सिंह दूसरे पशुओं को मार डालता है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

तथा तादृगतिरभसो वेगो येषां तान् । संयत्तानुद्युक्तान् ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

उसी तरह से वेग सम्पन्न तथा युद्ध के लिए तैयार ॥४१॥

नेदुर्दुन्दुभयो वयोम्नि ब्रह्मेशाद्या विभूतयः । पुष्पैः किरन्तस्तं प्रीताः शशंसुर्ननृतुः स्त्रियः ॥४२॥

अन्वयः— व्योम्नि दुन्दुभयः नेदुः ब्रह्मेशाद्याः विभूतयः पुष्पैः किरन्तः प्रीताः तं शशंसुः स्त्रियः ननृतुः ॥४२॥

अनुवाद— उस समय अकाश में दुन्दुभियाँ बजने लगीं श्रीभगवान् की विभूति स्वरूप ब्रह्माजी तथा शङ्करजी इत्यादि उन पर फूलों की वर्षा करते हुए प्रशंसा करने लगे तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥४२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४२॥

तेषां स्त्रियो महाराज सुहृन्मरणदुःखिताः । तत्राभीयुर्विनिघ्नन्त्यः शीर्षाण्यश्रुविलोचनाः ॥४३॥

अन्वयः— हे महाराज सुहृन्मरण दुःखिताः तेषां स्त्रियः शीर्षाणि विनिघ्नन्त्यः अश्रु विलोचनाः तत्र अभीयुः ॥४३॥

अनुवाद— हे महाराज परीक्षित् आत्मीय स्वजनों की मृत्यु के कारण कंस तथा उसके भाइयों की दुखित स्त्रियाँ अपने सिर को पीटती हुई तथा आँखों में आँसू भर कर वहाँ आयीं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४३॥

शयानान्वीरशय्यायां पतीनालिङ्ग्य शोचतीः । विलेपुः सुस्वरं नार्यो विसृजन्त्यो मुहूः शुचः ॥४४॥

अन्वयः— वीरशय्यायां शयानान् पतीन् अलिङ्ग्य नार्यः मुहुः शुचः विसृजन्तः सुस्वरं विलेपुः ॥४४॥

अनुवाद— वीरशय्या पर सोए हुए अपने पतियों से लिपट कर वे नारियाँ बार-बार आँसू बहाती हुए जोर-जोर से विलाप करने लगीं ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

शोचन्त्यो विलापांश्चक्रुः शुचः अश्रूणि ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

शोक करती हुई विलाप कर लगीं । शुचः अर्थात् आँसुओं को ॥४४॥

हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणानाथ वत्सल । त्वया हतेन निहता वयं ते सगृहप्रजाः ॥४५॥

अन्वयः— हा नाथ, हे प्रिय हे धर्मज्ञ, हे करुणानाथ, हे वत्सल त्वया हतेन वयं ते सगृहप्रजाः हताः ॥४५॥

अनुवाद— हे प्रियतम हे धर्मज्ञ ! हे करुणामय ! हे अनाथ वत्सल ! आपकी मृत्यु से हम सबों की मृत्यु हो गयी, हमारे घर उजड़ गये हमारी सन्तानें अनाथ हो गयीं ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

धर्मज्ञ इत्यादीनि विलापे प्रेमसंबोधानानि । ते त्वदीया वयम् ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

विलाप में धर्मज्ञ इत्यादि प्रेमविषयक संबोधन है । ते अर्थात् आपके हमलोग ॥४५॥

त्वया विरहिता पत्या पुरीयं पुरुषर्षभ । न शोभते वयमिव निवृत्तोत्सवमङ्गला ॥४६॥

अन्वयः— हे पुरुषर्षभ त्वया पत्या विरहिता निवृत्तोत्सवमङ्गला इयं पुरी वयमिव न शोभते ॥४६॥

अनुवाद— हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप इस नगरी के स्वामी थे आपसे रहित इस नगरी के उत्सव और मङ्गल चिह्न नष्ट हो गये है और यह हमलोगों के ही समान अब नहीं शोभती है ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

त्वया पत्या विरहिता पुरीयं न शोभत इति स्वदृष्ट्याभिधानम् ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

आप इस नगरी के पति थे, आप से रहित होने के कारण यह पुरी नहीं सुशोभित होती है, इस तरह से वे सब अपनी दृष्टि के अनुसार कहती हैं ॥४६॥

अनागसां त्वं भूतानां कृतवान्द्रोहमुल्बणम् । तेनेमां भो दशां नीतो भूतध्रुक् को लभेत शम् ॥४७॥

अन्वयः— त्वम् अनागसां भूतानां उल्बणं द्रोहकृतवान् । भो तेन इमां दशां नीतः को भूतध्रुक् शम् लभेत ॥४७॥

अनुवाद— आपने निरपराध प्राणियों के साथ घोर द्रोह किया, इसी के कारण आपकी यह दशा हुई । संसार के जीव से द्रोह करने वाला कौन व्यक्ति शान्ति लाभ कर सकता है ? कोई नहीं ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

अनागसामिति तु परमार्थाभिधानम् ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

अनागसामित्यादि श्लोक को उन स्त्रियों ने सत्य ही कहा है ॥४७॥

सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः । गोप्ता च तदवध्यायी न क्वचित्सुखमेधते ॥४८॥

अन्वयः— इह सर्वेषां भूतानां एष हि प्रभवाप्ययः गोप्ता च तत् अवध्यायी क्वचित् सुखम् न एधते ॥४८॥

अनुवाद— इस संसार के सभी भूतों की उत्पत्ति और प्रलय स्थान ये श्रीकृष्ण ही है । ये ही सम्पूर्ण जीवों के रक्षक है । उनका अपमान करने वाला कहीं भी सुख नहीं प्राप्त कर सकता है ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

एषः कृष्णः । प्रभवन्त्यस्मादिति प्रभवः, अपियन्ति अस्मिन्नित्यप्ययः स च स च । तदवध्यानं तदवज्ञा तत्कर्तुं शीलं यस्य सः ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

एषः अर्थात् ये श्रीकृष्ण ही, प्रभवाप्ययः अर्थात् उत्पत्ति और नाश के स्थान है । अवध्यायी अर्थात् अपमान करने वाला ॥४८॥

श्रीशुक उवाच

राजयोषित आश्वास्य भगवाँल्लोकभावनः । यामाहुर्लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत् ॥४९॥

अन्वयः— लोकभावनः भगवान् राजयोषितः आश्वास्य हतानां याम लौकिकीं सस्थाम् आहुः समकारयत् ॥४८॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— सम्पूर्ण संसार को जीवन प्रदान करने वाले भगवान्, रानियों को सान्त्वना प्रदान किए । उसके पश्चात् मरने वालों की लौकिक रीति से और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न कराये ॥४९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४९॥

मातरं पितरं चैव मोचयित्वाथ बन्धनात् । कृष्णरामौ ववन्दाते शिरसाऽऽस्पृश्य पादयोः ॥५०॥

अन्वयः— अथ रामकृष्णौ मातरं पितरं चैव बन्धनात् मोचयित्वा, पादयोः शिरसा आस्पृश्य बबन्दाते ॥५०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण अपने माता-पिता को बन्धन से मुक्त करके अपने शिर से उनके चरणों का स्पर्श करके उनकी बन्दना किए ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

आस्पृश्य ईषत्स्पृष्ट्वा ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

आस्पृश्य अर्थात् थोड़ा स्पर्श करके ॥५०॥

देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ । कृतसंवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ ॥५१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कंसवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

अन्वयः— देवकी वसुदेवश्च जगदीश्वरौ विज्ञाय कृतसंबन्दनौ पुत्रौ शङ्कितौ न सस्वजाते ॥५१॥

अनुवाद— माता देवकी और वसुदेवजी अपने दोनों पुत्रों को जगदीश्वर समझकर उन दोनों की बन्दना किए और उनको हृदय से नहीं लगाये उनको शङ्का हो गयी कि जगदीश्वर को हम पुत्र कैसे समझें ॥५१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के कंसवध नामक चौवालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

पुत्रभावं विहाय जगदीश्वराविति ज्ञात्वा शङ्कितौ न सस्वजाते नालिङ्गितवन्तौ, किंतु बद्धाञ्जली तस्थतुरित्यर्थः ।।५१।।

'प्रसह्य हत्वा हस्तीन्द्रं मल्लेन्द्रान्मल्ललीलया । बीभत्सचरितं कंसं सबीभत्सममारयत् ।' ।।१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थ दीपिका टीकायां चतुश्चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ।।

भाव प्रकाशिका

पुत्र का भ्रम त्यागकर ये दोनों जगदीश्वर हैं इस तरह से शङ्का हो जाने के कारण उन दोनों का आलिंगन नहीं किए अपितु हाथ जोड़कर खड़े रहे ।।५१।।

बलपूर्वक कुवलयापीड़ हाथी को मारकर और मल्ललीला कुश्ती के द्वारा पहलवानों को मारकर वीभत्स आचरण करने वाले कंस को श्रीभगवान् बीभत्स रीति से मार दिए ।।१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका टीका के चौवालिसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।४४।।

* * *

पैतालिसवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी का यज्ञोपवीत संस्कार और गुरुकुल में निवास

श्रीशुक उवाच

पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः । मा भूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥१॥

अन्वयः— पितरौ उपलब्धार्थौ इति विदित्वा पुरुषोत्तमः मा भूत् इति जनमोहिनीम् निजां मायां ततान ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण ने जान लिया कि मेरे माता-पिता को मेरे भगवद्भाव का ज्ञान हो गया है, किन्तु ऐसा होना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा होने पर तो हम पुत्र स्नेह का सुख नहीं प्राप्त कर सकते हैं, इसलिए उन्होंने उन पर अपनी उस योगमाया को फैला दिया जो संसार के सभी जीवों को मोहित किए हुई है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चचत्वारिंशकेऽथ पितृन्नन्दादिसान्त्वनम् । उग्रसेनाभिषेकश्च गुरौ वासात्पुरागतः ॥१॥ उपलब्धार्थौ विदित्वेति । अयमर्थः-उप समीपे आवयोः पुत्रबुद्ध्या सांसारिकपरमसुखभोगात्पूर्वमेव लब्धार्थौ आवामीश्वराविति लब्धः प्राप्तः परमज्ञानरूपोऽर्थो याभ्यां तौ तथाभूतौ ज्ञात्वा मयि प्रसन्ने सत्यनयोर्ज्ञानं नाम किं दुर्लभं स्यात् । दुर्लभं तु मयि पुत्रतया प्रेम । अत इदानीमेव तज्ज्ञानं मा भूदिति निजां स्वाधीनां मायां तयोः प्रसारितवानिति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

पैंतालिसवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि श्रीभगवान् अपने माता-पिता तथा नन्दजी आदि को सान्त्वना प्रदान किये अपने नाना उग्रसेन को राजसिंहासन पर अभिषिक्त किये । पुनः गुरुकुल में निवास करके वे मथुरापुरी में आये ॥१॥ **उपलब्धार्थों विदित्वा०** का अभिप्राय है कि हम दोनों में पुत्र की बुद्धि के द्वारा सांसारिक परम सुख भोग से पहले ही, हम दोनों ईश्वर हैं इस प्रकार का परमार्थ ज्ञान हो गया है । इस प्रकार से जानकर मेरे प्रसन्न होने पर इनको कौन सा ज्ञान दुर्लभ है । दुर्लभ मुझमें पुत्र का प्रेम होना है । अतएव इन लोगों को मेरे भगवद्भाव का ज्ञान न हो, इसीलिए उन्होंने अपने अधीन रहने वाली माया को फैला दिया ॥१॥

उवाच पितरावेत्य साग्रजः सात्वतर्षभः । प्रश्रयावनतः प्रीणन्नम्ब तातेति सादरम् ।।२।।

अन्वयः— सात्वतर्षभः साग्रज पितरौ एत्य प्रश्रयावनतः प्रीणन् सादरम् अम्ब तात इति उवाच ।।२।।

अनुवाद— यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई बलरामजी के साथ अपने माता-पिता के पास आकर अत्यन्त बिनयान्वित होकर प्रसन्नता एवं समादर पूर्वक हे माँ हे पिताजी इस तरह कहे ।।२।।

भावार्थ दीपिका

तदेव दर्शयति-उवाचेत्यादिभिरष्टभिः । प्रीणन्प्रीणयन् सादरं ब्रुवन् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के द्वारा अपनी योगमाया के विस्तार को उवाच इत्यादि आठ श्लोकों से बतलाते हैं । प्रसन्न करते हुए समादर पूर्वक कहे ।।२।।

नास्मत्तो युवयोस्तात नित्योत्कण्ठितयोरपि । बाल्यपौगण्डकैशोराः पुत्राभ्यामभवन् क्वचित् ।।३।।

अन्वयः— हे तात ! नित्यमुक्तकण्ठितयोः अपि युवयोः आस्मत्तोः पुत्राभ्यां बाल्य-पौगण्डकैशोराः क्वचित् न अभवन्।।३।।

अनुवाद— हे माताजी और हे पिताजी ! हमदोनों आपके पुत्र हैं और आप लोग हमलोगों के लिए सदा उत्कण्ठित भी रहे, किन्तु आप हम दोनों के वाल्यावस्था, पौगण्डावस्था तथा कैशोरावस्था के आनन्द को नहीं प्राप्त कर सके ।।३।।

भावार्थ दीपिका

अस्मत्तोऽस्मन्निमित्तं नित्यमुत्कण्ठितयोरपि युवयोः पुत्राभ्यामावाभ्यां कृत्वा बाल्यपौगण्डकैशोरास्तत्तदवस्थानुभवसुखानीत्यर्थः । नाभवन्निति । अस्मत्तः पुत्राभ्यामिति सामानाधिकरण्यं वा ।।३।।

भाव प्रकाशिका

हमलोगों को लेकर सदा उत्कंठित रहकर भी आप दोनों को हमदोनों पुत्रों द्वारा वाल्यावस्था, पौगण्डावस्था तथा किशोरावस्था के अनुभव जन्य सुख आप दोनों को नहीं मिला अथवा अस्मत्तः पुत्राभ्यां में सामानाधिकरण्य भी माना जा सकता है । अर्थ उपर्युक्त ही है ।।३।।

न लब्धो दैवहतयोर्वासो नौ भवदन्तिके । यां बालाः पितृगेहस्था विन्दन्ते लालिता मुदम् ।।४।।

अन्वयः— दैवहतयोः नौ भवदन्तिके वासो न लब्धः, यां लालितां मुदम् पितृगेहस्थाः बालाः विन्दन्ते सा न लब्धा।।४।।

अनुवाद— दुर्भाग्यवशात् हमदोनों को आपलोगों के सन्निकट रहने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ, इसीलिए माता-पिता के पास रहने वाले बालको को जिस सुख की प्राप्ति होती है, वह सुख हमलोगों को नहीं प्राप्त हुआ।।४।।

भावार्थ दीपिका

किंच आवामेव दैवहीनावित्याह-न लब्ध इति । पितृगेहस्था बाला यां मुदं विन्दन्ते सा च न लब्धेति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

और हमदोनों ही दुर्भाग्यग्रस्त हैं, इस बात को **न लब्धः इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । पिता के घर बालक जिस आनन्द को प्राप्त करते हैं, वह आनन्द हमलोग नहीं प्राप्त कर सके ।।४।।

सर्वार्थसंभवो देहो जनितः पोषितो यतः । न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ।।५।।

अन्वयः— सर्वार्थसंभवः देह यतः जनितः पोषितः मर्त्यः तयोः पित्रोः निर्वेशं शतायुषा न याति ।।५।।

अनुवाद— धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन सभी पुरुषार्थों को देने वाले शरीर को जो माता-पिता उत्पन्न

करते हैं, पोषते हैं, उसका ऋण मनुष्य यदि सौ वर्ष तक जीवित रहकर माता-पिता की सेवा करता रहे तो भी नहीं उतार सकता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

एवं तावच्छ्लोकद्वयेन युवयोरावयोश्च कामहानिर्जातेत्युक्तमावयोः पुनर्युष्मत्परिचर्यालोपेन धर्महानिरपि जातेत्याह–सर्वार्थसंभव इति । सर्वेषां धर्माद्यर्थानां संभवो यस्मिन्स देहो यतो याभ्यां जनितः पोषितश्च तयोः पित्रोर्निर्वेशं निष्कृतिमानृण्यं मर्त्यः शतसंवत्सरमात्रेणायुषा न प्राप्नोति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह दो श्लोकों द्वारा यह बतलाया जा चुका है कि आप दोनों और हम दोनों के काम (भोग) की हानि हुई और अब **सर्वार्थसंभवः** इस श्लोक के द्वारा यह बतलाया जा रहा है कि आप दोनों की सेवा रूप धर्म की भी हम दोनों की हानि हो गयी । जिस शरीर से सभी पुरुषार्थों की प्राप्ति सम्भव है वह शरीर जिन माता-पिता से उत्पन्न होकर पोषित होता है उन माता-पिता से मनुष्य अपने सौ वर्षों की आयु से सेवा करके भी उऋण नहीं हो सकता है ॥५॥

यस्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च । वृत्तिं न दद्यात्तं प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति हि ॥६॥

अन्वयः— यः कल्पः आत्मजः आत्मना च धनेन च तयोः वृत्तिं न दद्यात् तं प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति ॥६॥

अनुवाद— जो समर्थ पुत्र अपने शरीर से तथा धन से अपने माता-पिता की सेवा नहीं करता है, उसके मरने पर यमदूत उसको उसी का मांस खिलाते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

तन्मध्येऽपि तु यः पुत्र कल्पः समर्थः सन्नपि देहेन धनेन च पित्रोर्वृत्तिं जीविकां न संपादयेत्, तं प्रेत्य लोकान्तरे यमदूताः स्वस्यैव मांसं खादयन्तीति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

अपनी उस सौ वर्ष की आयु में समर्थ होकर भी जो पुत्र अपने शरीर तथा धन से अपने माता-पिता की जीविका नहीं चलाता है तो उसके मरने पर यमदूत उसको उसी का मांस खिलाते हैं ॥६॥

मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम् । गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रच्छ्वसन्मृतः ॥७॥

अन्वयः— मातरं पितरं वृद्धं साध्वीं भार्यां शिशुम् सुतं गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पः अविभ्रत श्वसन् मृतः ॥७॥

अनुवाद— जो वृद्ध माता-पिता सती साध्वी पत्नी, बालक सन्तान, गुरु, ब्राह्मण और शरणागत की रक्षा नहीं करता है, वह जीवित भी रहकर मरे हुए के समान है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

किंच मात्रादिशुश्रूषामकुर्वन्विफलजीवितश्च भवतीत्याह–मातरमिति । अबिभ्रदपुष्णन् श्वसन्नपि मृततुल्य एवेति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

और भी माता-पिता की सेवा नहीं करने वाले पुत्र का जीवन व्यर्थ है इस बात का **मातरम्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । नहीं सेवा करने वाला जीवित रहकर भी मरा हुआ ही है ॥७॥

तन्नवकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः । मोघमेते व्यतिक्रान्ता दिवसा वामनर्चतोः ॥८॥

अन्वयः— तत् अवकल्पयोः नौ कंसात् नित्यम् उद्विग्न चेतसोः वाम् अनर्चतोः एते दिवसाः मोघम् व्यतिक्रान्ताः ॥८॥

अनुवाद— अतएव कंस के भय से सदा उद्विग्न रहने वाले हम दोनों असमर्थ ही रहे । अतएव आप दोनों की सेवा नहीं करने वाले हमदोनों के इतने दिन व्यर्थ ही बीत गये ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मान्नौ आवयोः । मोघं व्यर्थम् । अनर्चतोरपूजयतोः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अतएव हमदोनों के । मोघम् अर्थात् व्यर्थ, **अनर्चतोः** अर्थात् नहीं पूजा करने वाले ॥८॥

तत्क्षन्तुमर्हथस्तात मातर्नौ परतन्त्रयोः । अकुर्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम् ॥९॥

अन्वयः— हे तात ! हे मातः परतन्त्रयोः क्लिष्टयोः वां शूश्रूषां अकुर्वतोः नौ क्षन्तुम् अर्हथः ॥९॥

अनुवाद— हे पिताजी ! हे माताजी ! हम दोनों परतन्त्र थे, अतएव दुष्ट कंस के द्वारा बहुत अधिक सताये जाने पर आप दोनों की सेवा हम दोनों नहीं कर सके, इसके लिए आप दोनों, हम दोनों को क्षमा कर दें ॥९॥

भावार्थ दीपिका

दुर्हृदा कंसेन कृत्वा ॥९॥

भाव प्रकाशिका

दुष्ट कंस के द्वारा ॥९॥

श्रीशुक उवाच

इति मायामनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा । मोहितावङ्कमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम् ॥१०॥

अन्वयः— इति माया मनुष्यस्य विश्वात्मनोः हरेः गिरा मोहितौ अङ्कम् आरोप्य परिष्वज्य मुदम् आपतुः ॥१०॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से माया को अपनाकर मनुष्य बने हुए सम्पूर्ण जगत् की आत्मा श्रीहरि की वाणी से मोहित होकर माता देवकी और वसुदेवजी उन दोनों को अपनी गोद में बैठाकर अपने हृदय से लगा लिए और आनन्द को प्राप्त किए ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

सिञ्चन्तावश्रुधाराभि स्नेहपाशेन चावृतौ । न किंचिदूचतू राजन्बाष्पकण्ठौ विमोहितौ ॥११॥

अन्वयः— राजन् विमाहितौ अश्रुधाराभिः सिञ्चन्तौ स्नेहपाशेन च आवृतौ वाष्पकण्ठौ किञ्चित् न ऊचतुः ॥११॥

अनुवाद— राजन् ! वे श्रीभगवान् की माया से मोहित हो गये थे, अतएव स्नेह के पाश में पड़े हुए वे आँसुओं की धारा से अपने पुत्रों भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी को सींच दिए, उनका कण्ठ आँसुओं से रुँघ गया था अतएव वे कुछ भी बोल न सके ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

एवमाश्वास्य पितरौ भगवान्देवकीसुतः । मातामहं तूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ॥१२॥

अन्वयः— भगवान् देवकी सुतः एवम् पितरौ आश्वास्य, मातामहम् उग्रसेनं तु यदूनाम नृपम् अकरोत् ॥१२॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण इस तरह से अपने माता-पिता को आश्वासन प्रदान करके अपने नाना उग्रसेन को यदुवंशियों का राजा बना दिए ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

आश्वास्य सान्त्वयित्वा ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

आश्वास्य अर्थात् सान्त्वना प्रदान करके ।।१२।।

आह चास्मान्महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि । ययातिशापाद्यदुभिर्नासितव्यं नृपासने ।।१३।।

अन्वयः— आह च महाराज ! अस्मान् प्रजाः च आज्ञाप्तुम् अर्हसि ययातिशापात् यदुभिः नृपासने न आसितव्यम्।।१३।।

अनुवाद— उन्होंने कहा महाराज आप हम प्रजाओं को आज्ञा प्रदान करें । महाराज ययाति के शाप के कारण यदुवंशियों को राजसिंहासन पर नहीं बैठना चाहिए। और हमारी ऐसी ही इच्छा है, अतएव आपको कोई दोष नहीं लगेंगा।।१३।।

भावार्थ दीपिका

त्वमेवाज्ञापयेति मा वदेत्याह-ययातिशापादिति । तव तु यादवत्वेऽपि मदाज्ञया न दोष इति भावः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

आप यह नहीं कहें कि तुम ही प्रशासन करो क्योंकि हम यदुवंशियों को महाराज ययाति का शाप है । यद्यपि आप यादव हैं फिर भी मेरी आज्ञा के कारण आपको दोष नहीं लगेगा ।।१३।।

मयि भृत्य उपासीने भवतो विबुधादयः । बलिं हरन्त्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः ।।१४।।

अन्वयः— मयि भृत्ये उपासीने अवनताः विबुधादयः बलिं हरन्ति अन्ये नराधिपाः किमुत ।।१४।।

अनुवाद— जब मैं आपका सेवक बनकर आपकी सेवा करता रहूँगा तो देवता आदि भी विनम्र होकर आपको उपहार प्रदान करेंगे दूसरे राजाओं की क्या बात है ?।।१४।।

भावार्थ दीपिका

मम तादृशी शक्तिर्नास्तीति चेत्तत्राह-मयीति । मत्प्रसादेन सर्वं भविष्यतीत्यर्थः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मुझमें प्रशासन करने की शक्ति नहीं हैं तो ऐसी बात नहीं है । मेरी कृपा से सब कुछ हो जायेगा ।।१४।।

सर्वान्स्वान् ज्ञातिसंबन्धान् दिग्भ्यः कंसभयाकुलान् । यदुवृष्ण्यन्धकमधुदाशार्हकुकुरादिकान् ।।१५।।
सभाजितान्समाश्वास्य विदेशावासकर्शितान् । न्यवासयत्स्वगेहेषु वित्तैः संतर्प्य विश्वकृत् ।।१६।।

अन्वयः— विश्वकृत कंसभयाकुलान् यदुवृष्ण्यन्धकमधु दाशार्हकुकुरादिकान् सर्वान् स्वान् ज्ञातिसंबन्धान् दिग्भ्यः विदेशवास कर्शितान् सभाजितान् समाश्वास्य वित्तैः संतर्प्य स्वगेहेषु न्यवासयत् ।।१५-१६।।

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् के कर्त्ता भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं अतएव वे कंस के भय से भयभीत, यदुवंशी वृष्णिवंशी, अन्धकवंशी, मधुवंशी, दाशार्हवंशी तथा कुकुरवंशी समस्त सजातीय संबन्धियों को बुलवाकर उन सबों को घर से बाहर रहने के कारण जो क्लेश हुआ था उन सबों को भगवान् सान्त्वना प्रदान किए उन लोगों को बहुत अधिक सम्पत्ति प्रदान करके अपने घर में बसाये ।।१५-१६।।

भावार्थ दीपिका

स्वान्ज्ञातीन् संबन्धांश्च दिग्भ्य आनाय्येति ।।१५-१६।।

भाव प्रकाशिका

अपने सजातीयों को सभी दिशाओं से बुलवाकर ।।१५-१६।।

कृष्णसंकर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः । गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः ॥१७॥

अन्वयः— कृष्ण संकर्षणभुजैः गुप्ताः लब्धमनोरथाः गृहेषु रेमिरे सिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः ॥१७॥

अनुवाद— अब सभी यदुवंशी भगवान् कृष्ण एवं बलरामजी के बाहुबल से संरक्षित थे । उन सबों के सारे मनोरथ पूर्ण हो गये । वे सभी कृतकृत्य हो गये और अपने गृहों में ही आनन्द पूर्वक विहार करने लगे । भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी उन सबों के सारे कष्टों को दूर कर दिये ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

सिद्धाः पूर्णाः । कृष्णरामाभ्यां गतो निवृत्तो ज्वरस्तापो येषां ते ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

सिद्ध अर्थात् पूर्ण । भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी उनके सारे कष्टों को दूर कर दिये । यह **कृष्णरामगतज्वराः** का अर्थ है ॥१७॥

वीक्षन्तोऽहरहः प्रीता मुकुन्दवदनाम्बुजम् । नित्यं प्रमुदितं श्रीमत्सदयस्मितवीक्षणम् ॥१८॥

अन्वयः— प्रीताः नित्यं प्रमुदितं श्रीमत्सदयस्मितम् वीक्षणम् मुकुन्दवदनाम्बुजम् अहरहः वीक्षन्तः ॥१८॥

अनुवाद— वे सभी प्रसन्नता पूर्वक नित्यही प्रफुल्लित कभी नहीं कुम्हलाने वाले कमल के समान सदय हँसी और वीक्षण से युक्त भगवान् श्रीकृष्ण के मुख कमल को देखते रहते थे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

सदयस्मितं वीक्षणं यस्मिंस्तत् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

दया, भरी मधुर मुस्कान से युक्त श्रीभगवान् के मुखकमल को वे लोग सदा देखते रहते थे ॥१८॥

तत्र प्रवयसोऽप्यासन्युवानोऽतिबलौजसः । पिबन्तोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखाम्बुजसुधां मुहुः ॥१९॥

अन्वयः— अक्षैः मुकुन्दस्य मुखबुजसुधां मुहु पिबन्तः तत्र प्रवयसः अपि युवानः अति बलौजसः आसन् ॥१९॥

अनुवाद— अपने नेत्रों से भगवान् श्रीकृष्ण के मुख कमल के पराग रूपी अमृत का बार-बार पान करते रहने के कारण वहाँ के वृद्ध भी जवानों के समान अत्यन्त बलवान थे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

प्रवयसो वृद्धा अप्यतिशयितं बलमोजश्च येषां ते ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

वृद्ध भी अत्यधिक बल एवं ओज से सम्पन्न थे ॥१९॥

अथ नन्दं समासाद्य भगवान्देवकीसुतः । संकर्षणश्च राजेन्द्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥२०॥

अन्वयः— हे राजेन्द्र ! अथ नन्दं समासाद्य भगवान् देवकीसुतः सङ्कर्षणश्च परिष्वज्य इदम् ऊचतुः ॥२०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी बाबा नन्द के पास आकर उनका आलिङ्गन किये और कहे ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

पितर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम् । पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपि हि॥२१॥

अन्वयः— पितः युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ ललितौ भृशम् पित्रोः आत्मनः अपि हि आत्मजेषु अभ्यधिका प्रीतिः ॥२१॥

अनुवाद— हे पिताजी आप और माता यशोदा ने हम दोनों को बड़े ही प्रेम से पाला पोषा है । यह भी सत्य है कि माता-पिता की अपने पुत्रों पर अपने शरीर से भी अधिक प्रेम होता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

भृशमात्मनोऽप्याधिक्येन पोषितौ । न चाश्चर्यमेतदित्याह-पित्रोरिति । आत्मनो देहादप्यात्मजेष्वभ्यधिका हि प्रीतिरिति॥२१॥

भाव प्रकाशिका

अपने शरीर से भी अधिक प्रेम पूर्वक पाला । यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । माता-पिता का अपने शरीर से भी अधिक प्रेम अपने पुत्रों पर होता है ॥२१॥

स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् । शिशून्बन्धुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥२२॥

अन्वयः— स पिता सा च जननी यौ पोषरक्षणे अकल्पैः बन्धुभिः उत्सृष्टान् शिशून स्वपुत्रवत् पुष्णीताम् ॥२२॥

अनुवाद— वस्तुतः वे ही माता-पिता हैं जो अपने पुत्रों के पोषण और रक्षण में असमर्थ बान्धवों द्वारा परित्याग कर दिये गये बच्चों का पालन-पोषण अपने पुत्रों के समान करते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

देवकीवसुदेवयोः पुत्रौ युवां नास्मत्पुत्रावित्यपि न वाच्यमित्याह-स पितेति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

आप यह भी नहीं कहें कि तुम दोनों तो देवकी और वसुदेव के पुत्र हो हमारे नहीं, क्योंकि **सपिता० इत्यादि**॥२२॥

यात यूयं व्रजं तात वयं च स्नेहदुःखितान् । ज्ञातीन्वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम् ॥२३॥

अन्वयः— हे तात ! यूयं व्रजं यात, वयं सुहृदां सुखं विधाय स्नेहदुःखितान् वो ज्ञातीन् द्रष्टुम् एष्यामः ॥२३॥

अनुवाद— हे पिता जी आप व्रज चले जाइये, हमलोग भी अपने हितैषियों को सुख प्रदान करके स्नेह के कारण दुःखी आपके सजातीयों को देखने के लिए आयेंगे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

एवं सान्त्वय्य भगवान्नन्दं सव्रजमच्युतः । वासोलंकारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥२४॥

अन्वयः— भगवान् अच्युतः सव्रजंनन्दं सान्त्वय्य वासोऽलङ्कार कुपाद्यैः सादरं अर्हयामास ॥२४॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण बाबा नन्द को तथा व्रजवासियों को सान्त्वना प्रदान करके बड़े आदर सत्कार पूर्वक उनको वस्त्र अलङ्कार तथा धातु के वर्तन इत्यादि प्रदान किए ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

सव्रजं व्रजवासिभिः सहितम् । कुप्यानि स्वर्णरजतादिव्यातिरिक्तकांस्यपात्रादीनि तत्प्रभृतिभिः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

व्रजवासियों के साथ यह **सव्रजम्** का अर्थ है । **कुप्यानि** अर्थात् सुवर्ण एवं रजत के अतिरिक्त कांसे के पात्र आदि ॥२४॥

इत्युक्तस्तौ परिष्वज्य नन्दः प्रणयविह्वलः । पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजं ययौ ।।२५।।

अन्वयः— इत्युक्तः प्रणयविह्वलः नन्दः तौ परिष्वज्य अश्रुभिः नेत्रे पूरयन् गोपैः सहव्रजं ययौ ।।२५।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के इस तरह कहने पर बाबा नन्द भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी को गले से लगाये और प्रेम से अधीर होकर अपने नेत्रों में आँसू भरकर गोपों के साथ व्रज में चले गये ।।२५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२५।।

अथ शूरसुतो राजन्पुत्रयोः समकारयत् । पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद्विजसंस्कृतिम् ।।२६।।

अन्वयः— अथ शूरसुतः पुत्रयो पुरोधसा ब्राह्मणैः च यथावत् द्विज संस्कृतिम् समकारयत् ।।२६।।

अनुवाद— इसके पश्चात् वसुदेवजी अपने पुरोहित गर्गाचार्य तथा ब्राह्मणों के द्वारा अपने दोनों पुत्रों का द्वजोचित संस्कार विधि पूर्वक कराये ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

पुरोधसा गर्गाचार्येण द्विजसंस्कृतिमुपनयनम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

पुरोहित श्रीगर्गाचार्य के द्वारा उपनयन संस्कार कराये ।।२६।।

तेभ्योऽदाद्दक्षिणा गावो रुक्ममालाः स्वलंकृताः । स्वलंकृतेभ्यः संपूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः ।।२७।।

अन्वयः— तेभ्यः स्वलंकृतेभ्यः दक्षिणा रुक्ममाला स्वलंकृताः क्षौममालिनीः सवत्साः गावः संपूज्य अदात् ।।२७।।

अनुवाद— उन अच्छी तरह से अलंकृत ब्राह्मणों को सत्कार पूर्वक सुवर्ण की माला पहनी हुई, अच्छी तरह से अलंकृत तथा रेशमी वस्त्रों की माला पहनी हुई वछड़ों से युक्त गायों की पूजा कर गायें प्रदान किए ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

गावो गाः रुक्मस्य माला विद्यन्ते यासां ताः क्षौमवस्त्रमालावतीः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

गावः अर्थात् गायों को । सुवर्णा की तथा रेशमी वस्त्रों की माला पहनी हुई गायों को ।।२७।।

याः कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः । ताश्चाददादनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ।।२८।।

अन्वयः— महामतिः कृष्णरामजन्मर्क्षे या मनोदत्ताः कंसेन अधर्मतः हृताः ताः च अनुस्मृत्य अददात् ।।२८।।

अनुवाद— महाज्ञानी वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्ण के तथा बलरामजी के जन्म नक्षत्रों में जितनी गायों के दान का मन से सङ्कल्प किये तथा जिन्हे राजा कंस ने अन्याय पूर्वक छिन लिया था उन सबों को भी स्मरण करके दान दे दिये ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

याः पूर्वं मनोदत्ता आसंस्ता एवाददात् । ननु ताः कंसेनापहृताः, सत्यम्, राजगोष्ठादाच्छिद्य दत्ता इत्याह-कंसेनाधर्मत इति ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

जितनी गायें पहले मानसिक सङ्कल्प के द्वारा दी गयीं उन सबों को दिया । यदि कहें कि उन गायों को तो कंस ने छिन लिया था तो वह ऐसा ही है, राजा की गोशाला से लेकर दी गयी इस बात को **कंसेनाधर्मतः** शब्द से कहा गया है ।।२८।।

ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ । गर्गाद्यदुकुलाचार्याद्गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥२९॥

अन्वयः— ततः च यदुकुलाचार्यात् गर्गात् लब्धसंस्कारौ सुव्रतौ द्विजत्वं प्राप्य गायत्रं व्रतम् आस्थितौ ॥२९॥

अनुवाद— उसके पश्चात् यदुकुल के आचार्य गर्ग महर्षि से उपनयन संस्कार प्राप्त करके सुन्दर व्रत वाले भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ब्रह्मचर्य व्रत को धारण किए ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

गायत्रं व्रतं ब्रह्मचर्यम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

गायत्रंव्रतम् अर्थात् ब्रह्मचर्य व्रत ॥२९॥

प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ । नान्यसिद्धामलज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥३०॥

अन्वयः— जगदीश्वरौ, सर्वज्ञौ सर्वविद्यानां प्रभवौ, नान्यसिद्धमलाज्ञानं गूहमानौ नरेहितै ॥३०॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों जगत् के स्वामी हैं, सर्वज्ञ हैं, सभी विद्याओं के वे उत्पत्ति स्थान हैं उनका निर्मलज्ञान स्वत: सिद्ध है, फिर भी वे उसको मानुष लीला करने के लिए छिपा रखे थे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

प्रकर्षेण भवन्त्याभ्यामिति प्रभवौ । अत एव सर्वज्ञौ स्वतः सिद्धममलं ज्ञानं प्रच्छादयन्तौ नरचेष्टितैः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

इन दोनों से ही सारी विद्यायें उत्पन्न होती हैं अतएव ये सर्वज्ञ हैं स्वाभाविक रूप से सिद्ध निर्मल ज्ञान को मानव लीला के द्वारा छिपा रखे थे ॥३०॥

अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः । काश्यं सान्दीपनिं नाम ह्यवन्तिपुरवासिनम् ॥३१॥

अन्वयः— अथो गुरुकुले वासम् इच्छन्तौ काश्यं सान्दीपनि नाम अवन्तिपुरवासिनम् उपजग्मतुः ॥३१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् गुरुकुल में निवास करने की इच्छा से वे दोनों काशी के सन्दीपनि नामक आचार्य जो उज्जैन में रहते थे उनके पास गये ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

यथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् । ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥३२॥

अन्वयः— तौ दान्तौ यथोपसाद्य गुरौ अनिन्दिताम् वृत्तिम् ग्राहयन्तौ भक्त्या देवमिवादृतौ स्म ॥३२॥

अनुवाद— जितेन्द्रिय वे दोनों विधिपूर्वक अपने गुरु के पास निवास करने लगे तथा गुरु की कैसे सेवा करनी चाहिए इसका आदर्श उपस्थित करते हुए वे दोनों बड़े ही भक्ति पूर्वक गुरु की सेवा करते थे । वे आचार्य की देवता के समान सेवा करते थे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

यथा यथावत् । उपासाद्य प्राप्य । गुरौ वृत्तिमन्यान् ग्राहयन्तौ शिक्षयन्तौ । गुरुमुपेतावुपगतौ, सेवितवन्तावित्यर्थः॥३२॥

भाव प्रकाशिका

यथावत् अर्थात् विधिपूर्वक, उपसाद्य अर्थात् प्राप्त करके **गुरौवृत्तिमनिन्दिताम् ग्राहयन्तौ** गुरु की उत्तम सेवा कैसे करनी चाहिए इस बात की शिक्षा दूसरों को देते हुए **गुरुमुपेतौ** अर्थात् गुरु के पास गये ॥३२॥

तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः । प्रोवाच वेदानखिलान्साङ्गोपनिषदो गुरुः ॥३३॥

अन्वयः— तयोः शुद्धभावानुवृत्तिभिः तुष्टो द्विजवरः गुरुः अखिलान् वेदान् साङ्गोपनिषदः प्रोवाच ॥३३॥

अनुवाद— उन दोनों की शुद्ध वृत्ति से युक्त सेवा से प्रसन्न होकर गुरुजी ने उनको अङ्गों और उपनिषदों के साथ वेदों का उपदेश दिया ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

शुद्धो भावो यासु ताभिरनुवृत्तिभिः । साङ्गोषनिषदः अङ्गानि षडङ्गानि शिक्षादीनि तैरुपनिषद्भिश्च सहितान् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

शुद्ध भाव से युक्त सेवाओं से । साङ्गोपनिषदः अर्थात् शिक्षाकल्प इत्यादि छहो अङ्गों तथा उपनिषदों के साथ॥३३॥

सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान्न्यायपथांस्तथा । तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम् ॥३४॥

अन्वयः— सरहस्यं धनुर्वेदम् तथा धर्मान् न्यायपथान् तथा च अन्विक्षिकीं विद्यां षड्विधां राजनीति च ॥३४॥

अनुवाद— मन्त्र तथा देवता के ज्ञान के साथ धनुर्वेद मनुस्मृति इत्यादि धर्मशास्त्रों का मीमांसा आदि का, तर्कविद्या का तथा छह प्रकार की राजनीति का उपदेश दिए ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

सरहस्यं मन्त्रदेवताज्ञानसहितम् । धर्मान्मन्वादिधर्मशासत्राणि । न्यायपथान्मीमांसादीन् । आन्वीक्षिकीं तर्कविद्याम् । षड्विधां-'सन्धिश्च विग्रहो यानमासनं द्वैधमाश्रयः' इत्येवं षड्विधां राजनीतिम् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

सरहस्यम् अर्थात् देवता तथा मन्त्र के ज्ञान के साथ । मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रों को, न्यायपथान् अर्थात् मीमांसा आदि शास्त्रों को **आन्विक्षिकीम्** अर्थात् तर्कशास्त्र का षड्विधाम् राजनीतिम् अर्थात् सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध तथा आश्रय इस तरह से छह प्रकार की राजनीति को ॥३४॥

सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्तकौ । सकृन्निगदमात्रेण तौ संजगृहतुर्नृप ॥३५॥

अन्वयः— हे नृप ! सर्वविद्याप्रवर्तकौ तौ नरवरश्रेष्ठौ सर्वं सकृत् निगदमात्रेण संजगृहतुः ॥३५॥

अनुवाद— हे राजन् ! सभी विद्याओं के प्रवर्तक भगवान् श्रीकृष्ण जो उत्तम मनुष्यों में श्रेष्ठ थे सभी विद्याओं का एक बार ही उच्चारण करने मात्र से ज्ञान प्राप्त कर लिए ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

सकृन्निगदमात्रेणैकवारं गुरोरुच्चारणमात्रेण ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

गुरु के केवल एक ही बार उच्चारण करने से यह सकृन्निगदमात्रेण का अर्थ है ॥३५॥

अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयत्तौ तावतीः कलाः । गुरुदक्षिणयाचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥३६॥

अन्वयः— हे नृप अहोरात्रैः चतष्षष्टया संयतौ तावतीः कलाः गुरुदक्षिणया आचार्यं छन्दयामासतुः ॥३६॥

अनुवाद— सदा संयत रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण चौसठ दिन रातों में चौसठ कलाओं का भी ज्ञान प्राप्त कर लिए उसके पश्चात् उन लोगों ने आचार्य सान्दीपनि से प्रार्थना किए कि आपकी जो इच्छा हो दक्षिणा में माँग लें ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

तावतीश्चतुःषष्टिकलाः । ताश्च शैवतन्त्रोक्ता लिख्यन्ते । यथा गीतम् १. वाद्यम् २. नृत्यम्, ३. नाट्यम् ४. आलेख्यम् ५. विशेषकच्छेद्यम् ६. तण्डुलकुसुमबलिविकाराः, ७. पुष्पास्तरणम् ८. दशनवसनाङ्गरागाः, ९ मणिभूमिकाकर्म, १०. शयनरचनम् ११. उदकवाद्यमुदकघातः, १२. चित्रयोगाः, १३. माल्यग्रथनविकल्पाः, १४. शेखरापीडयोजनम् १५. नेपथ्ययोगाः, १६. कर्णपत्रभङ्गाः, १७. सुगन्धयुक्तिः, १८. भूषणयोजनम् १९. ऐन्द्रजालम् २०. कौचुमारयोगाः, २१. हस्तलाघवम् २२. चित्रशाकापूपभक्ष्यविकारक्रियाः, २३. पानकरसरागासवयोजनम् २४. सूचीवायकर्म, २५. सूत्रक्रीडा, २६. वीणाडमरुकवाद्यानि, २७. प्रहेलिका, २८. प्रतिमाला, २९. दुर्वाचकयोगाः, ३० पुस्तकवाचनम् ३१. नाटकाख्यायिकादर्शनम् ३२. काव्यसमस्यापूरणम् ३३. पट्टिकावेत्रबाणविकल्पाः, ३४. तर्ककर्माणि, ३५. तक्षणम् ३६. वास्तुविद्या, ३७. रूप्यरत्नपरीक्षा, ३८. धातुवादः ३९. मणिरागज्ञानम् ४०. आकरज्ञानम् ४१. वृक्षायुर्वेदयोगाः ४२. मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधिः, ४३. शुकसारिकाप्रलापनम् ४४. उत्सादनम् ४५. केशमार्जनकौशलम् ४६. अक्षरमुष्टिककथनम् ४७. म्लेच्छितकुतर्कविकल्पाः, ४८. देशभाषाज्ञानम् ४९. पुष्पशकटिकानिर्मितिज्ञानम् ५०. यन्त्रमातृकाधारणमातृका, ५१. संवाच्यम् ५२. मानसीकाव्यक्रिया, ५३. अभिधानकोशः, ५४. छन्दोज्ञानम् ५५. क्रियाविकल्पाः, ५६. छलितकयोगाः, ५७. वस्त्रगोपनानि, ५८. द्यूतविशेषः, ५९. आकर्षक्रीडा, ६०. बालक्रीडनकानि, ६१. वैनायिकीनाम् ६२. वैजयिकीनाम् ६३. वैतालिकीनां च विद्यानां ज्ञानम् ६४. इति चतुःषष्टिकलाः । छन्दयामासतुरुपलोभितवन्तौ ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

तावती अर्थात् चौसठ कलाएँ । उन कलाओं का नाम शैवतन्त्र में बतलाया गया है, वे है १. गीत, २. वाद्य, ३. नृत्य, ४. नाट्य, ५. चित्रकारी, ६. बेल बूटे बनाना, ७. चावल और पुष्पादि से पूजा के उपहारां को बनाना, ८. फूलों की सेज बनाना, ९. दाँत, वस्त्र और अङ्गों को रंगना, १०. मणियों का फर्श बनाना, ११. शय्या बनाना, १२. जल को बाँध देना, १३. विचित्र सिद्धियाँ दिखलाना, १४. हार माला आदि बनाना, १५. कान और चोटी के फूलों के गहने बनाना, १६. कपड़े और गहने बनाना, १७. फूलों के आभूषणों से शृङ्गारकरना, १८. कानों के पत्तों की रचना करना, १९. सुगन्धित वस्तुए इत्र आदि बनाना, २०. इन्द्रजाल (जादूगिरी), २१. अपने मनोऽनुकल वेश धारण कर लेना, २२. हाथ की फूर्ति के काम, २३. तरह-तरह की खेलने की वस्तुएँ बनाना, २४. तरह-तरह के पीने का पदार्थ बनाना, २५. सूई का काम, २६. कठपुतली बनाना और नचाना, २७. पहले, २८. प्रतिमा आदि बनाना, २९. कूटनीति, ३० ग्रन्थों के पढाने की चातुरी, ३१. नाटक आख्यायिका आदि की रचना करना, ३२. समस्यापूर्ति करना, ३३. पट्टी, बाण तथा बेंत आदि बनाना, ३४. गलीचे दरी आदि बनाना, ३५. बढ़ई की कारीगरी, ३६. गृह आदि बनाने की कारीगरी, ३७. सोने चाँदी आदि धातु तथा हीरे-पन्ने आदि रत्नों की परीक्षा, ३८. सोना चाँदी बना लेना, ३९. मणियों के रङ्ग को पहचानना, ४०. खानों की पहचान, ४१. वृक्षों की चिकित्सा, ४२. भेड़ा, मूर्गा या बटेर आदि को लड़ाने की कला, ४३. तोता मैना आदि की बोलियाँ जानना, ४४. उच्चाटन की विधि, ४५. केशों की सफाई का कौशल, ४६. मुट्ठी की चीज या मन की बात बताना, ४७. म्लेच्छ काव्यों को समझ लेना, ४८. विभिन्न देशों की भाषा का ज्ञान, ४९. शकुन अपशकुन जानना प्रश्नों के उत्तर में शुभाशुभ बतलाना, ५०. नाना प्रकार के मातृका यन्त्र बनाना, ५१. रत्नों का नाना प्रकार के आकारों में काटना, ५२. सांकेतिक भाषा बनाना, ५३. मन में काव्यों की रचना करना, ५४. छन्दों का ज्ञान, ५५. छल से काम निकालना, ५६. समस्त कोशों का ज्ञान, ५७. समस्त छन्दों का ज्ञान, ५८. वस्त्रों को छिपाने की या बदलने की विद्या, ५९. द्यूत-क्रीडा, ६०. दूर के मनुष्य या वस्तुओं का आकर्षण करना, ६२. बालकों के खेल, ६२. मन्त्र विद्या, ६३. विजय प्राप्त करने वाली विद्या, ६४. वेताल आदि को वश में रखने की विद्या। ये ही चौसठ कलायें है छन्दयामासतुः अर्थात् प्रलोभित किया ।।३६।।

द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं सँल्लक्ष्यराजन्नतिमानुषीं मतिम् ।
संमन्त्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं बालं प्रभासे वरयांबभूव ह ॥३७॥

अन्वयः— राजन् सः द्विजः तयो तं अद्भुतं महिमानं अतिमानुषी मतिं संलक्ष्य, पत्न्या संमन्त्र्य प्रभासे महार्णवे मृतं बालं वरयाम्बभूव ह ॥३७॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! सान्दीपनि मुनि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी की अद्भुत महिमा को तथा अतिमनुष बुद्धि को जान गये थे । अतएव उन्होंने अपनी पत्नी के साथ विचार करके प्रभास क्षेत्र में महार्णव में डूबकर मरे हुए अपने पुत्र को लाने के लिए कहा ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

प्रभासे क्षेत्रे महार्णवे मृतं बालं वरयामास ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

प्रभास क्षेत्र के महार्णव में मरे हुए अपने पुत्र को दक्षिणा के रूप में माँगा ॥३७॥

तथेत्यथारुह्य महारथौ रथं प्रभासमासाद्य दुरन्तविक्रमौ ।
वेलामुपव्रज्य निषीदतुः क्षणं सिन्धुर्विदित्वाऽर्हणमाहरत्तयोः ॥३८॥

अन्वयः— तथा इति अथ दुरन्तविक्रमौ महारथौ रथम् आरुह्य प्रभासम् आसाद्य बेलामुपव्रज्यक्षणं निषीदतुः सिन्धुः विदित्वा तयोः अर्हणम् आहरत् ॥३८॥

अनुवाद— उन दोनों ने कहा बहुत अच्छा । वे दोनों अनन्त पराक्रम सम्पन्न महारथी थे । गुरुजी की आज्ञा स्वीकार करके रथ पर चढकर प्रभास क्षेत्र में गये । समुद्र तट पर जाकर क्षणभर बैठे रहे । उन दोनों को परमेश्वर जानकर समुद्र ने उनकी पूजा की ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

ईश्वराविति विदित्वा समुद्रस्तयोरर्हणमाजहार ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनां को परमेश्वर जानकर समुद्र ने उन दोनों की पूजा की ॥३८॥

तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रः प्रदीयताम् । योऽसाविह त्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा ॥३९॥

अन्वयः— भगवान् तमाह महता उर्मिणा त्वया इह यः असौ बालकः ग्रस्तः गुरुपुत्रः आशु प्रदीयताम् ॥३९॥

अनुवाद— भगवान् ने समुद्र से कहा तुम यहाँ पर अपनी विशाल तरङ्गों में जिसे बहा कर ले गये थे, वह बालक मेरा गुरु पुत्र है शीघ्र लाकर दो ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

समुद्र उवाच

नैवाहार्षमहं देव दैत्यः पञ्चजनो महान् । अन्तर्जलचरः कृष्ण शङ्खरूपधरोऽसुरः ॥४०॥

अन्वयः— हे देव अहम् नैव अहार्षम् । हे कृष्ण अन्तः जलचरः शंखरूपधरः असुरः पञ्चजनः महान् दैत्यः ॥४०॥

मनुष्य का वेष बनाये हुए समुद्र ने कहा

अनुवाद— हे देव मैंने उस बालक का अपहरण नहीं किया है । मेरे जल के भीतर जलचर शङ्ख के रूप में दैत्य जाति का पञ्चजन नामक महान् असुर रहता है ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चजनस्त्वसुरोऽहार्षीत् । स च महान्ममासाध्य इत्यर्थः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

पञ्चजन नामक असुर ने हरण किया । वह बहुत बड़ा दैत्य है, मेरे वश का नहीं है ।।४०।।

(आस्ते तेनाहृतो नूनं तच्छुत्वा सत्वरं प्रभुः।।)

अन्वयः— आस्ते नूनं तेन आहूतः तच्छुत्वा सत्वरं प्रभुः ।

अनुवाद— निवास करता है । निश्चित रूप से वही उसका हरण किया है । यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण शीघ्र ही।

जलमाविश्य तं हत्वा नापश्यदुदरेऽर्भकम् ।।४१।।

अन्वयः— जलम् आविश्य तं हत्वा उदरे अर्भकम् न अपश्यत ।।४१।।

अनुवाद— जल में प्रवेश करके तथा उसको मारकर उसके उदर में बालक को नहीं देखे ।।४१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४१।।

तदङ्गप्रभवं शङ्खमादाय रथमागमत्। ततः संयमनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ।।४२।।
गत्वा जनार्दनः शङ्खं प्रदध्मौ सहलायुधः। शङ्खनिर्ह्लादमाकर्ण्य प्रजासंयमानो यमः ।।४३।।

अन्वयः— तदङ्गप्रभवं शङ्खम् आदाय रथम् आगमत् ततः यमस्य दयितां पुरीं संयमनीं नाम गत्वा सहलायुधः जनार्दनः शङ्खं प्रदध्मौ प्रजा संयमनः यमः शङ्ख निह्लादं आकर्ण्य ।।४२-४३।।

अनुवाद— पञ्चजन के शरीर से उत्पन्न शङ्ख को लेकर श्रीभगवान् रथ पर आ गये और उसके पश्चात् यमराज को अत्यन्त प्रिय संयमनी नामक नगरी में बलरामजी के साथ जाकर शङ्ख बजाये । प्रजाओं का नियमन करने वाले यम उस शङ्ख की ध्वनि को सुनकर ।।४२-४३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४२-४३।।

तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्त्युपबृंहिताम्। उवाचावनतः कृष्णं सर्वभूताशयालयम् ।।
लीलामनुष्य हे विष्णो युवयोः करवाम किम् ।।४४।।

अन्वयः— तयोः भक्त्युपबृंहितम् महतीं सपर्यां चक्रे । अवनतः सर्वभूताशयालयम् कृष्णम् उवाच । हे लीलामनुष्य विष्णो युवयोः किं करवाम ।।४४।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों की भक्ति से भरकर बहुत बड़ी पूजा की । उसके बाद यम ने सबों के अन्तःकरण में निवास करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण से कहा हे लीलापूर्वक मनुष्य रूप धारण करने वाले भगवन् विष्णो मैं आप दोनों की कौन सी सेवा करूँ ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

सपर्यां पूजाम् । सर्वेषां भूतानामाशया अन्तःकरणानि तान्यालयो निवासो यस्य तम् ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

सपर्या अर्थात् पूजा । सबों के अन्तःकरण में निवास करने वाले यह **सर्वभूताशयालयम्** का अर्थ है ।।४४।।

श्रीभगवानुवाच

गुरुपुत्रमिहानीतं निजकर्मनिबन्धनम् । आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ।।४५।।

अन्वयः— हे महाराज निजकर्म निबन्धनम् गुरुपुत्रम् इहानीतम् गुरुपुत्रम् मम शासनपुरस्कृतः आनयस्व ।।४५।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे यमराज अपने कर्मों के बन्धन के अनुसार मेरा गुरुपुत्र यहाँ लाया गया है । तुम मेरी आज्ञा को स्वीकार करके उसको लाओ ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

निजं कर्मैव निवन्धनं यस्य तथाभूतमपि मदाज्ञापुरस्कारेणानयतस्ते न दोष इत्यर्थः ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि वह अपने कर्मों के बन्धन में बन्धा हुआ है फिर भी मेरी आज्ञा से उसको लाने में कोई दोष नहीं होगा ॥४५॥

तथेति तेनोपानीतं गुरुपुत्रं यदूत्तमौ । दत्त्वा स्वगुवे भूयो वृणीष्वेति तमूचतुः ॥४६॥

अन्वयः— तथेति तेनोपनीतं गुरुपुत्रं यदुत्तमौ स्वगुरवे दत्त्वा भूयो वृणीष्व इति तम् ऊचतुः ॥४६॥

अनुवाद— बहुत अच्छा कहकर यम के द्वारा लाये गये गुरुपुत्र को अपने गुरु को प्रदान करके उन दोनों यदुवंश शिरोमणियों ने कहा और आज्ञा करें ॥४६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४६॥

गुरुरुवाच

सम्यक् संपादितो वत्स भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः । को नु युष्मद्विधगुरोः कामानामवशिष्यते ॥४७॥

अन्वयः— हे वत्स ! भवद्भ्यां सम्यक् गुरु निष्क्रयः सम्पादितः युष्मद्विधगुरोः को नु कामानाम् अवशिष्यते॥४७॥

गुरुदेव ने कहा

अनुवाद— वत्स ! तुम दोनों ने बहुत अच्छी तरह से गुरुदक्षिणा प्रदान कर दी । अब और कुछ नहीं चाहिए। तुम जैसे पुरुषोत्तमों के गुरु की कौन सी कामना अवशिष्ट रह सकती है ?॥४७॥

भावार्थ दीपिका

वत्सेति प्राधान्येनैकस्य संबोधनम् । गुरोर्निष्क्रयो गुरुदक्षिणा । युष्मद्विधयोर्गुरोर्मम कामानां मध्ये को नु कामोऽवशिष्यते, न कोऽपीति ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

वत्स यह एक वचनान्त संबोधन दोनों में से एक भगवान् श्रीकृष्ण की प्रधानता होने के कारण किया गया है । **गुरोर्निष्क्रयः** अर्थात् गुरुदक्षिणा । तुम दोनों जैसे शिष्यों के गुरु मेरी कोई भी कामना अवशिष्ट नहीं रह सकती है ॥४७॥

गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु पावनी । छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ॥४८॥

अन्वयः— हे वीरौ स्वगृहं गच्छतम् वाम् पावनीकीर्ति अस्तु इह परत्र च छंदासि अयातयामानि भवन्तु ॥४८॥

अनुवाद— हे वीरों ! अब तुम दोनों अपने घर जाओ । लोकों को पवित्र बना देने वाली कीर्ति तुम दोनों को प्राप्त हो । तुम्हारी पढी हुई विद्या इस लोक में तथा परलोक सदा नवीन बनी रहे ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

हे वीरौ ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

हे वीरों ॥४८॥

गुरुणैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा । आयातौ स्वपुरं तात पर्जन्यनिनदेन वै ॥४९॥

अन्वयः— हे तात ! एवम् गुरुणा अनुज्ञातौ अनिलरंहसा पर्जन्यनिनदेन वै रथेन स्वपुरम् आयातौ ॥४९॥

अनुवाद— हे वत्स परीक्षित् अपने गुरु की इस प्रकार की आज्ञा प्राप्त करके भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी वायु के समान वेग वाले तथा मेघ के समान ध्वनि करने वाले रथ से अपनी नगरी मथुरा में आये ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

अनिलवद्रंहो वेगो यस्य तेन पर्जन्यो मेघस्तद्वन्निनदो यस्य तेन ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

वायु के समान वेग वाले तथा मेघ के समान ध्वनि करने वाले रथ से ॥४९॥

समनन्दन्प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ । अपश्यन्त्यो बह्वहानि नष्टलब्धधना इव ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गुरुपुत्रानयनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

अन्वयः— बह्वहानि रामजनार्दनौ अपश्यन्त्यः सर्वाः प्रजाः नष्टलब्ध धना इव समनन्दन् ॥५०॥

अनुवाद— बहुत दिनों तक श्रीबलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण को नहीं देखने के कारण दुखी प्रजा उन दोनों को देखकर आनन्दमग्न हो गयीं, जैसे खोया हुआ धन उनको पुनः प्राप्त हो गया हो ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के गुरुपुत्रानयन नामक पैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

नष्टमदृष्टं तत्पुनर्लब्धं धनं याभिस्ता इवेति ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवतमे महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

नष्टलब्ध धना इव अर्थात् पहले अदृष्ट होकर जैसे पुनः प्राप्त हो गया हो इस प्रकार के धन के समान वे प्रजाएँ ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के पैतालिसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥४५॥

* * *

छियालिसवाँ अध्याय

उद्धवजी की व्रजयात्रा

श्रीशुक उवाच

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा । शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥१॥

अन्वयः— उद्धवः वृष्णीनां प्रवरः कृष्णस्य दयितः सखा, मन्त्री, साक्षात् बृहस्पतेः शिष्यः बुद्धिसत्तमः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— उद्धवजी यदुवंशियों में श्रेष्ठ पुरुष थे वे बृहस्पतिजी के साक्षात् शिष्य थे, भगवान् के अत्यन्त प्रिय मित्र तथा सलाहकार थे । वे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ थे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षट्चत्वारिंशके घोषमुद्धवं प्रेष्य तद्गिरा । यशोदानन्दयोश्चक्रे कृष्णः शोकापनोदनम् । कामचार द्विजातिः सन्परित्यज्यातिसंयतः गुरोर्ज्ञानमनुप्राप्य सख्या गोपीरुपादिशत् । गोपीनां सान्त्वनमतिरहस्यं सन्मन्त्रिसाध्यमिति तदर्थमुद्धवं विशिनष्टि–वृष्णीनामिति। बुद्धिसत्तमो बुद्ध्यातिश्रेष्ठः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

छियालिसवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजी को भेजकर उनके माध्यम से नन्द बाबा तथा माता यशोदा के शोक को दूर कराये । द्विजों को चाहिये कि वें स्वेच्छाचार का परित्याग करके अत्यन्त संयत रहें गुरु से ज्ञान प्राप्त करके श्रीभगवान् ने अपने मित्र उद्धवजी से गोपियों को उपदेश दिलवाया । गोपियों को सान्त्वना प्रदान अत्यन्त रहस्यात्मक है, अतएव वह मन्त्री के द्वारा ही सम्भव है उसके लिए श्रीशुकदेवजी उद्धवजी की विशेषता **वृष्णीनाम् इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । **बुद्धिसत्तमः** अर्थात् बुद्धिमानों में अत्यन्त श्रेष्ठ ॥१॥

तमाह भगवान्प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनं क्वचित् । गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥२॥

अन्वयः— प्रपन्नार्तिहरः भगवान् हरि प्रेष्ठम् एकान्तिनं भक्तम् तम् क्वचित् पाणिना पाणिं गृहित्वा आह ॥२॥

अनुवाद— आपने शरणागतों के कष्ट को दूर करने वाले भगवान् श्रीहरि अपने प्रियतम तथा ऐकान्तिक भक्त श्रीउद्धवजी का एकान्त में अपने हाथ से उनके हाथ को पकड़कर कहे ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

गच्छोद्धव व्रजं सौम्य पित्रोर्नौ प्रीतिमावह । गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्संदेशैर्विमोचय ॥३॥

अन्वयः— सौम्य उद्धव व्रजं गच्छ नौ पित्रोः प्रीतिम् आवह मत्संदेशैः गोपीनां मद्वियोगाधिं विमोचय ॥३॥

अनुवाद— हे सौम्य ! स्वभाव वाले उद्धव तुम व्रज में जाओ और हमदोनों के माता-पिता बाबा नन्द एवं यशोदा माता को प्रसन्न करो और मेरे वियोग के कारण गोपियाँ मनोव्याधि से पीड़ित हैं, मेरे संदेश से उन सबों की मानसिक व्याधि को दूर करो ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदेहिकाः । ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान्बिभर्म्यहम् ॥४॥

अन्वयः— ताः मन्मनस्काः मत्प्राणाः मदर्थेत्यक्तदैहिका मामेव दयितं प्रेष्ठं आत्मानं मनसा गताः ये मदर्थे त्यक्त लोकधर्माश्च तान् अहम् विभर्मि ॥३॥

अनुवाद— उद्धव ! गोपियों का मन मुझमें ही लगा रहता है, उनका प्राण उनका जीवन और उनका सर्वस्व मैं ही हूँ मेरे लिए उन सबों ने अपने पति पुत्र सगे सबन्धी आदि सबों को छोड़ दिया, उन सबों ने बुद्धि से भी मुझको ही अपना प्रिय, प्रियतम तथा अपनी आत्मा भी मान रखा है । मेरा यह व्रत है कि जो मेरे लिए ही लौकिक और पारलौकिक धर्म का परित्याग कर देता है उसका भरण पोषण मैं स्वयं करता हूँ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

गोपीनां विशेषतः संदेशे कारणमाह-ता इति । मय्येव संकल्पात्मकं मनो यासां ताः । अहमेव प्राणो यासां ताः । मदर्थे त्यक्ता दैहिकाः पतिपुत्रादयो याभिस्ताः । ततः किमत आह-ये त्यक्तलोकधर्मा इति । मन्निमित्तं त्यक्तौ लोकधर्माविहामुत्र सखे तत्साधनानि च यैस्तान् विभर्मि पोषयामि संवर्घयामि सुखयामीत्यर्थः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

गोपियों के यहाँ विशेष रूप से संदेश देने का कारण **ता० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । जिनका संकल्पात्मक मन मुझमें ही लगा रहता है ऐसी गोपियों का प्रण मैं ही हूँ । उन सबों ने मेरे ही लिए अपने पतियों तथा पुत्रों आदि का परित्याग कर दिया है, उससे क्या हुआ ? तो इस पर कहते हैं- मेरे लिए ही जो लौकिक एवं पार लौकिक धर्मों का परित्याग करता है, उसका मैं स्वयं भरण-पोषण करता हूँ अर्थात् सुखी बना देता हूँ।।४।।

मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थे गोकुलस्त्रियः । स्मरन्त्योऽङ्ग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः ॥५॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! प्रेयसां प्रेष्ठे मयि दुरस्थे गोकुलस्त्रियः विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः स्मरन्ति विमुह्यन्ति ।।५।।

अनुवाद— हे उद्धव ! अपने प्रिय व्यक्तियों में सबसे प्रिय मेरे दूर रहने पर वे व्रज वनिताएँ विरह की व्यथा से व्याकुल बनी हुई मेरा स्मरण करती हैं और मूर्छित हो जाती हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तासां वियोगाधिं दर्शयति द्वयेन-मयि ता इति । विरहेणौत्कण्ठ्यं तेन विह्वलाः परवशाः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

मयि ता इत्यादि दो श्लोकों से गोपियों की विरह व्यथा को बतलाते हैं । विरहेणौत्कण्ठ्यम् विरह के कारण होने वाली जो वेचैनी उसके अधीन हो गयी हैं गोपियाँ ।।५।।

धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान्कथंचन । प्रत्यागमनसंदेशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥६॥

अन्वयः— मदात्मिकाः बल्लव्यः अतिकृच्छ्रेण कथंचन प्राणान् धारयन्ति मे प्रत्यागमन संदेशैः ।।६।।

अनुवाद— गोपियों की आत्मा मैं हूँ वे मेरी गोपियाँ मेरे लौटने के संदेश से बड़ी कठिनाई से अपने प्राणों को धारण करती हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

गोकुलान्निर्गमनसमये शीघ्रमागमिष्यामीति ये प्रत्यागमनसंदेशास्तैः । मे मदीया बल्लव्यो गोप्यः । मदात्मिका इति । तासामात्मा यदि स्वदेहे विरहतापेन दह्येतैव तस्य मयि वर्तमानत्वात्कथंचिज्जीवन्तीति भावः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

गोकुल से निकलने के समय मैंने गोपियों को संदेश दिया था कि मैं शीघ्र ही लौट आऊँगा । उस मेरे लौटने के सहारे वे मेरी गोपियाँ मदात्मिका हैं । अर्थात् यदि उन सबों की आत्मा मन उन सबों के शरीर में होती तब तो वह विरह के संताप से दग्ध हो गयी होती । किन्तु उन सबों की आत्मा मुझ में है अतएव वे किसी तरह जी रही हैं ।।६।।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त उद्धवो राजन्संदेशं भर्तुरादृतः । आदाय रथमारुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥७॥

अन्वयः— राजन् इत्युक्त उद्धवः भर्तुः संदेशं आदृत आदाय रथम् आरुह्य नन्दगोकुलम् प्रययौ ॥७॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् ! इस तरह से श्रीभगवान् के द्वारा कहे जाने पर अपने स्वामी के संदेश को समादर पूर्वक लेकर उद्धवजी रथ पर चढ़कर गोकुल के लिए प्रस्थान किए ॥७॥

भावार्थ दीपिका

संदेशं-'भवतीनां वियोगो मे नहि सर्वात्मना क्वचित्' इत्यादिकम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् का संदेश था भवतीनां वियोगो मे नाहि सर्वात्मना क्वचित् अर्थात् मुझे कभी भी आप लोगों का वियोग नहीं हो सकता है इत्यादि ॥७॥

प्राप्तो नन्दव्रजं श्रीमान्निम्लोचति विभावसौ । छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥८॥

अन्वयः— श्रीमान् विभावसौ निम्लोचति प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः छन्नयानः नन्दव्रजं प्राप्तः ॥८॥

अनुवाद— परम सुन्दर उद्धवजी जब सूर्यास्त हो रहा था तब पशु वन से लौटते समय उनके खुरों की धूलि से उद्धवजी का रथ छिप गया था उस समय वे गोकुल में आये ॥८॥

भावार्थ दीपिका

निम्लोचत्यस्तं गच्छति सति । छन्नं यानं यस्येति । तदा गोपीभिरज्ञातत्वेन नन्दसङ्गं लब्धवानिति सूचयति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

सूर्यास्त के समय । उद्धवजी का रथ छिप गया था । अतएव गोपियों के जाने बिना ही उद्धवजी मेरी नन्दजी से भेंट हो गयी यह सूचित होता है ॥८॥

वासितार्थेऽभियुध्यद्भिर्नादितं शुष्मिभिर्वृषैः । धावन्तीभिश्च वास्राभिरूधोभारैः स्ववत्सकान् ॥९॥

अन्वयः— वासितार्थे अयुध्यद्भिः शुष्मिमभिः वृषैःनादितं वस्राभिः उधोभारैः स्ववत्सकान् धावन्तीभि; च ॥९॥

अनुवाद— उस समय ऋतुमती गायों के लिए सांड आपस में लड़ रहे थे तथा उन साड़ों की गर्जना से व्रज ध्वनित हो रहा था, नई व्याई हुई गाएँ अपने थानों की भारी भार से दबी होने पर भी अपने बछड़ों की ओर दोड़ रही थीं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

व्रजं वर्णयति पञ्चभिः-वासितार्थ इत्यादिना । वासिताः पुष्पवत्यो गावस्तन्निमित्तमभितो युध्यद्भिः शुष्मिभिर्मत्तैर्वृषैर्नादितम्। वास्राभिर्धेनुभिः । स्ववत्सकान्प्रति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

वासितार्थे० इत्यादि पाँच श्लोकों से व्रज का वर्णन करते हैं । ऋतुमती गायों के लिए चारो ओर सांड़ आपस में लड़ रहे थे और उनके गर्जने की ध्वनि से व्रज ध्वनित हो रहा था । नई व्याई हुई गायें अपने बछड़ों की ओर दौड़ रही थीं ॥९॥

इतस्ततो विलङ्घद्भिर्गोवत्सैर्मण्डितं सितैः । गोदोहशब्दाभिरवं वेणूनां निःस्वनेन च ॥१०॥

अन्वयः— इतस्ततः विलङ्घद्भिः सितैः वत्सै मण्डितं गोदोहशब्दाभिरवं वेणूना निःस्वनेन मण्डितम् ॥१०॥

अनुवाद— इधर-उधर उछलते हुए गौओं के उजले बछड़ों से सुशोभित, गायों के दूहने की घर-घर ध्वनि से तथा वंशी के ध्वनि से गोकुल सुशोभित हो रहा था ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

विलङ्घद्भिः उत्पतद्भिः गोदोहशब्दैः सहाभितो रवा; मुञ्च, मा मुञ्च, नय, आनय, देहि, गृहाणेत्यादयो यस्मिंस्तम् । वेणूनां निःस्वनेन च मण्डितम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

विलङ्दभिः अर्थात् उछलते हुए, गोदहन के शब्दों के साथ चारो होने वाली, छोड़ दो, नहीं छोड़ो, ले जाओ, लाओ, दो लो, इत्यादि शब्दों से तथा वंशी की ध्वनि से अलंकृत गोकुल में उद्धवजी आये ॥१०॥

गायन्तीभिश्च कर्माणि शुभानि बलकृष्णयोः । स्वलंकृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥११॥

अन्वयः— स्वलंकृताभिः गोपीभिः गोपैः च बलकृष्णयोः शुभानि कर्माणि गायन्तीभिः च विराजितम् व्रजं प्राप्तः ॥११॥

अनुवाद— अच्छी तरह से अलंकृत गोपियों तथा गोपों से सुशोभित तथा जब गोपियाँ बलरामजी एवं भगवान् श्रीकृष्ण के सुन्दर कर्मो का गीत गा रही थीं उस समय व्रज में उद्धवजी आये ॥११॥

भावार्थ दीपिका

गायन्तीभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के शुभ कर्मों का गीत गाती हुई गोपियों तथा गोपों से सुशोभित व्रज में उद्धवजी आये ॥११॥

अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः । धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपावासैर्मनोरमम् ॥१२॥

अन्वयः— अग्न्यर्कातिथिागोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः धूपैः दीपैः च माल्यैः च गोपावासैः मनोरमम् व्रजं प्राप्तः ॥१२॥

अनुवाद— अग्नि, सूर्य, अतिथि, गौ, ब्राह्मण, पितृगण तथा देवताओं की अर्चना से युक्त धूप, दीप एवं मालाओं से सुशोभितम गोपों के गृहों से मनोहर व्रज में उद्धवजी आये ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अग्न्याद्यर्चनान्वितैर्गोपगृहैर्धूपादिभिश्च मनोरमम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अग्नि आदि की अर्चना से युक्त गोपों के गृहों तथा धूप दीप आदि से मनोहर व्रज में उद्धवजी आये ॥१२॥

सर्वतः पुष्पितवनं द्विजालिकुलनादितम् । हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मषण्डैश्च मण्डितम् ॥१३॥

अन्वयः— सर्वतः पुष्पितवनं द्विजालिकुलमण्डितम् हंसकारण्डवाकीर्णैः पद्मषण्डै च मण्डितम् ॥१३॥

अनुवाद— वहाँ के वन पुष्पों से भरे हुए थे, पक्षी चहक रहे थे और भौरे गुंजार कर रहे थे हंसों एवं कारण्डों से भरे हुए पद्म समूहों से समलंकृत व्रज में उद्धवजी आये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

षण्डैः समूहैः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

षण्डै अर्थात् समूहों से ॥१३॥

तमागतं समागम्य कृष्णस्यानुचरं प्रियम् । नन्दः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधियार्चयत् ॥१४॥

अन्वयः— कृष्णस्य प्रियम् अनुचरम् आगतम् तम् समागम्य प्रीतः परिष्वज्य वासुदेवधिया आर्चयत् ॥१४॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के प्रिय अनुचर आये हुए उद्धवजी से मिलकर नन्दजी को बड़ी ही प्रसन्नता हुई । उन्होंने उनका आलिङ्गन करके भगवान् श्रीकृष्ण के ही समान उनका सम्मान किया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

आर्चयत् पूजयामास ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

आर्चयत् अर्थात् पूजा किए ॥१४॥

भोजितं परमान्नेन संविष्टं कशिपौ सुखम् । गतश्रमं पर्यपृच्छत्पादसंवाहनादिभिः ॥१५॥

अन्वयः— परमान्नेन भोजितम् कशिपौ सुखम् संविष्टम् पादसंवाहनादिभिः गतश्रमं पर्यपृच्छत् ॥१५॥

अनुवाद— उत्तम अन्न का भोजन करने के बाद शय्या पर सुखपूर्वक बैठे हुए उद्धवजी के चरणों को दबाकर सेवकों ने उनकी थकान दूर कर दी । उसके पश्चात् बाबा नन्द ने उनसे पूछा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

कशिपौ शय्यायां संविष्टम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

शय्या पर बैठे हुए ॥१५॥

कच्चिदङ्ग महाभाग सखा नः शूरनन्दनः । आस्ते कुशल्यपत्याद्यैर्युक्तो मुक्तः सुहृद्वृतः ॥१६॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! महाभाग नः सखा शूरनन्दनः मुक्तः अपत्याद्यैः युक्तः सुहृद्वृतः कच्चित् कुशली आस्ते ॥१६॥

अनुवाद— हे महाभाग्यवान् उद्धवजी हमारे मित्र वसुदेवजी अब तो कारागार से मुक्त हैं अब वे अपने पुत्रों तथा हितैषियों के साथ कुशल पूर्वक हैं न ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना । साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥१७॥

अन्वयः— दिष्ट्या पापः कंसः सानुगः स्वेन पाप्मना हतः यः सदा साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि ॥१७॥

अनुवाद— सौभाग्यवशात् पापी कंस अपने अनुचरों के साथ अपने पापों के ही कारण मारा गया । वह धार्मिक तथा साधु स्वभाव वाले यदुवंशियों से सदा द्वेष ही करता था ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

साधूनामिति कर्मणि षष्ठी ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

साधूनाम् में कर्म के अर्थ में षष्ठी विभक्ति हुई है ॥१७॥

अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् । गोपान् व्रजं चात्मनाथं गावा वृन्दावनं गिरिम्॥१८॥

अन्वयः— कृष्णः नः मातरं, सुहृदः, सखीन् गोपान् आत्मनाथं व्रजं, गावः वृन्दावनम् गिरिम् अपि स्मरति ॥१८॥

अनुवाद— उद्धवजी यह बतलाइये कि कृष्ण मुझको, इन अपनी मां को, हितैषियों को मित्रों को, गोपों

को, जिसके वे ही स्वामी है, इस व्रज को, वृन्दावन को, गौओं को तथा गोवर्धन पर्वत को कभी स्मरण भी करते हैं क्या ?॥१८॥

भावार्थ दीपिका

गावो गाः । गिरिं गोवर्धनम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

गावः अर्थात् गायों को, गिरिम् अर्थात् गोवर्धन पर्वत को ॥१८॥

अप्यायास्यति गोविन्दः स्वजनान्सकृदीक्षितुम् । तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥१९॥

अन्वयः— गोविन्दः स्वजनान् सकृदीक्षितुम् आयास्यति अपि तर्हि सुनसं सुस्मितेक्षणम् तद्वक्त्रं द्रक्ष्यामः॥१९॥

अनुवाद— क्या गोविन्द अपने बन्धु बान्धवों को देखने के लिए यहाँ एक बार भी आयेंगे । यदि आ जाते तो हम उनके उस सुन्दर नासिका तथा मधुर हास्य एवं चितवन से युक्त उनके मुखकमलको देख लेते ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

अप्यायास्यत्यागमिष्यति किम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अप्यायास्यति अर्थात् आयेंगे क्या ?॥१९॥

दावाग्नेर्वातवर्षाच्च वृषसर्पाच्च रक्षिताः । दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥२०॥

अन्वयः— सुमहात्मना कृष्णेन दावाग्नेः वातवर्षाच्च वृषसर्पा च दुरत्ययेभ्यः मृत्युभ्यः राक्षिताः ॥२०॥

अनुवाद— उद्धवजी भगवान् कृष्ण महापुरुष थे उन्होंने वनाग्नि, आँधी-पानी, को टालना अत्यन्त कठिन था, उससे हमलोगों की अनेक बार रक्षा की है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णोपकारस्मरणादिभिरनुपमानन्देनाभिभूयमान आह-दावाग्नेरित्यादिना वाताद्वर्षाच्चेति वृषत्सर्पाच्चेति अन्येभ्यश्च दुरतिक्रमेभ्यो मृत्युभ्यः श्रीकृष्णेन रक्षिताः स्मः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के उपकारों के स्मरणादि के द्वारा अनुपमेय आनन्द से परिपूर्ण नन्दजी दावाग्नेः इत्यादि श्लोक कहते हैं । आँधी और पानी से, वृषासुर तथा अधासुर से तथा दूसरे जिनको टालना मुश्किल था तथा उन मृत्यु के कारणों से श्रीकृष्ण ने हमलोगों की रक्षा की ॥२०॥

स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीलापाङ्गनिरीक्षितम् । हसितं भाषितं चाङ्ग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः॥२१॥

अन्वयः—हे अङ्ग ! कृष्ण वीर्याणि, लीलापाङ्गनिरीक्षितम्, हसितं भाषितं च स्मरतां नः सर्वाः क्रियाः शिथिलाः॥२१॥

अनुवाद—हे उद्धवजी हमलोग श्रीकृष्ण की लीलाओं, उनके विलासपूर्ण तिरछी चितवन, उन्मुक्त हँसी एवं मधुर भाषण आदि का स्मरण करके उसी में इतना तन्मय हो जाते हैं कि हमारी सारी क्रियाएँ शिथिल हो गयी हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

किंच स्मरतामिति । लीलयापाङ्गेन निरीक्षितम् । अङ्ग हे उद्धव ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

स्मरण करने वाले लीलापाङ्गेन निरीक्षितम् अर्थात् विलास पूर्ण तिरछी अवलोकन । अङ्ग अर्थात् हे उद्धव जी ॥२१॥

सरिच्छैलवनोद्देशान्मुकुन्दपदभूषितान् । आक्रीडानीक्षमाणानां मनो याति तदात्मताम् ॥२२॥

अन्वयः— मुकुन्दपदभूषितान् सरिच्छैलवनोदेशान् आक्रीडान् ईक्षमाणानां मनः तदात्मताम् याति ॥२२॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के चरण चिह्नों से समलंकृत यमुना नदी, गोवर्धन पर्वत, वन प्रदेश एवं उनके विविध प्रकार के क्रीडा करने के स्थानों को देखकर हमारा मन श्रीकृष्णमय ही हो जाता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

न केवलं शिथिला एवं, किंतु शनैरुपरमन्तीत्याह-सरिच्छैलेति । सरितश्च शैलाश्च वनोद्देशाश्च तान् । आक्रीडान् क्रीडास्थानानि॥२२॥

भाव प्रकाशिका

हमारी क्रियाएँ केवल शिथिल ही नहीं अपितु वे धीरे-धीरे बन्द होती जा रही हैं । नदियों, पर्वतों वन प्रदेशों तथा क्रीडा स्थानों को ॥२२॥

मन्ये कृष्णं च रामं च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ । सुराणां महदर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥२३॥

अन्वयः— गर्गस्य वचनं यथा सुरोत्तमौ कृष्णं च रामं च इह सुराणां महदर्थाय इह प्राप्तौ इति मन्ये ॥२३॥

अनुवाद— महर्षिगण के वचनानुसार देववर्य श्रीकृष्ण और बलरामजी इस पृथिवी पर देवताओं के महान् कार्य को करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं यह मैं मान रहा हूँ ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

सुराणामर्थाय । महद्गम्भीरं गर्गस्य वचनं यथा ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि गर्ग के गम्भीर वचन के अनुसार देवताओं का कार्य करने के लिए ॥२३॥

कंसं नागायुतप्राणं मल्लौ गजपतिं तथा । अवधिष्टां लीलयैव पशूनिव मृगाधिपः ॥२४॥

अन्वयः— नागायुतप्राणं कंसम् मल्लौ तथा गजपतिं मृगाधिपः पशूनिव लीलयैव अवधीष्टाम् ॥२४॥

अनुवाद— दस हजार हाथयों का बल रखने वालें कंस को, दोनों पहलवानों का गजराज कुवलयापीड को जैसे सिंह दूसरे पशुओं को मार देता है, उसी तरह उन दोनों बलराम और कृष्ण ने खेल-खेल में मार दिया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

न केवलं तद्वचनानुसारेणैव व्यवहारसंवादादपीत्याह-कंसमिति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

कंसम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा उन्होंने कहा कि केवल गर्ग महर्षि के कहने से ही नहीं व्यवहार को भी वैसा ही देखने से वही बात सिद्ध होती है ॥२४॥

तालत्रयं महासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट् । बभञ्जैकेन हस्तेन सप्तााहमदधाद्गिरिम् ॥२५॥

अन्वयः— तालत्रय महासारं धनुः, इभराट् यष्टिामिव बभञ्ज एकेन हस्तेन सप्ताहं गिरिम् अदधात् ॥२५॥

अनुवाद— तीन ताल के बराबर लम्बा तथ अत्यन्त सुदृढ़ धनुष को उसी तरह तोड़ दिए जेसे गजेन्द्र किसी छड़ी को तोड़ दे और श्रीकृष्ण एक ही हाथ पर एक सप्ताह तक गोवर्धन पर्वत को धारण किए रहे ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

इभराड्यष्टिमिव तालत्रयप्रमाणं धनुर्बभञ्ज ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

जैसे गजराज किसी छड़ी को तोड़ दे उसी तरह तीन ताल के बराबर लम्बे धनुष को श्रीकृष्ण लीला पूर्वक तोड़ दिए ।।२५।।

प्रलम्बो धेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्तो बकादयः । दैत्याः सुरासुरजितो हता येनेह लीलया ।।२६।।

अन्वयः— प्रलम्बः धेनुकः अरिष्टः तृणावर्त, बकादय दैत्या; सुरासुरजितः लीलया येन इह हताः ।।२६।।

अनुवाद— प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, अरिष्टासुर तृणावर्त तथा बकासुर आदि जो सभी देवताओं और असुरों को जीत लेने वाले दैत्य थे, उन सबों को श्रीकृष्ण खेल-खेल में मार डाले ।।२६।।

भावार्थ दीपिका नहीं है ।।२६।।

श्रीशुक उवाच

इति संस्मृत्य संस्मृत्य नन्दः कृष्णानुरक्तधीः । अत्युत्कण्ठोऽभवत्तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ।।२७।।

अन्वयः— कृष्णानुरक्तधीः नन्द इति संस्मृत्य संस्मृत्य प्रेमप्रसरविह्वलः अत्युत्कण्ठः तुष्णीं अभवत् ।।२७।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित नन्दजी का मन स्वभावतः भगवान् श्रीकृष्ण में अनुरक्त था, और जब वे इस तरह से वे उनकी लीलाओं का स्मरण करने लगे तब तो उनमें श्रीभगवान् के प्रति इतना प्रेम का प्रवाह बढा कि वे विह्वल हो गये, श्रीभगवान् से मिलने की उत्कण्ठा के कारण उनका गला रूँध गया और कुछ बोल नहीं सके ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च । शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत्स्नेहस्नुतपयोधरा ।।२८।।

अन्वयः— स्नेह स्नुतपयोधरा यशोदा पुत्रस्य चरितानि शृण्वन्ती अश्रूणि अवास्राक्षीत् ।।२८।।

अनुवाद— स्नेह के कारण जिनके स्तन से दूध प्रवाहित हो रहा था ऐसी यशोदा माता अपने पुत्र श्रीकृष्ण के चरितों को सुनती हुई अपनी आँखों से आँसुओं का बहाने लगीं ।।२८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२८।।

तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः । वीक्ष्यानुरागं परमं नन्दमाहोद्धवो मुदा ।।२९।।

अन्वयः— भगवति कृष्णे तयोः नन्दयशोदयोः इत्थं अनुरागं वीक्ष्य, उद्धवः मुदानन्दम् आह ।।२९।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण में उन नन्द बाबा और माता यशोदा के इस तरह का अथाह अनुराग देखकर उद्धवजी आनन्दमग्न हो गये और बाबा नन्द से कहने लगे ।।२९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२९।।

उद्धव उवाच

युवां श्लाध्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद । नारायणेऽखिलगुरौ यत्कृता मतिरीदृशी ।।३०।।

अन्वयः— हे मानद युवां नूनं इहदेहिनामश्लध्यतमौ यत अखिलगुरौ नारायणे एतादृशी मतिकृता ।।३०।।

श्रीउद्धवजी ने कहा

अनुवाद— हे सबों को सम्मान देने वाले नन्दजी आप दोनों निश्चित रूप से इस संसार के सभी प्राणियों में प्रशंसनीय है, क्योंकि सम्पूर्ण जगत् को ज्ञान प्रदान करने वाले भगवान् नारायण में आप दोनों का इस प्रकार से पुत्र स्नेह है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम् ।
अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥३१॥

अन्वयः— एतौ हि विश्वस्य बीजयोनी, रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम् भूतेषु अन्वीय इमौ पुराणौ विलक्षणस्य ज्ञानस्य च ईशाते ॥३१॥

अनुवाद— ये बलरामजी और श्रीकृष्ण दोनों ही इस जगत् के उपादान कारण और निमित्त कारण है । यदि श्रीकृष्ण पुरुष हैं तो बलरामजी प्रकृति (प्रधान) हैं । ये दोनों सभी भूतों में व्याप्त होकर जीवन दान देते हैं और उन सबों से विलक्षण ज्ञान स्वरूप जीव का नियमन करते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

अखिलगुरुत्वमेव जनकत्वेन नियन्तृत्वेन चाह-एताविति । रामो मुकुन्दश्चेत्येतौ विश्वस्य बीजयोनी निमित्तोपादाने । ननु पुरुषप्रधानयोर्बीजयोनित्वं प्रसिद्धमत आह-पुरुष; प्रधानमिति । पुरुषोंऽशः । प्रधानं शक्तिः । अतः प्रधानपुरुषावप्येतावेवेत्यर्थः। एवं जनकत्वमुक्तम् । किंच अन्वीय भूतेषु भूतेष्वनुप्रविश्य भूतानां तदुपहितस्य विलक्षणस्य नानाभेदस्य ज्ञानस्य जीवस्य चेशाते ईश्वरौ नियन्तारौ भवतः । कुतः । पुराणावनादी । अनादित्वात्कारणत्वं ततश्च नियन्तृत्वमित्यर्थः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

एतौ० इत्यादि श्लोक के द्वारा जनक तथा नियामक होने के कारण सम्पूर्ण जगत् के गुरुत्व का प्रतिपादन करते हैं । बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण दोनों इस जगत् के निमित्त कारण और उपादान कारण हैं । यदि कहें कि जगत् के प्रति पुरुष तथा प्रकृति के ही निमित्त कारणत्व एवं उपादान कारणत्व प्रसिद्ध हैं तो इसके उत्तर में पुरुषः प्रधानम् उद्धवजी कहते हैं । अर्थात् यदि भगवान् श्रीकृष्ण पुरुष हैं तो बलरामजी प्रधान (प्रकृति) हैं । पुरुषः अर्थात् पुरुष के अंश हैं प्रकृति ही शक्ति है । अतएव ये ही दोनों पुरुष एवं प्रधान भी हैं । इस तरह से उन दोनों के जगत् जनकत्व का प्रतिपादन किया गया । किञ्च सभी भूतों (शरीरों) में प्रवेश करक शरीरोपहित तथ उससे विलक्षण ज्ञान स्वरूप जीव का ये दोनों नियमन करते हैं । क्योंकि दोनों अनादि हैं । अनादि होने के कारण इन दोनों का कारणत्व है और उसी के कारण नियामकत्व भी सिद्ध होता है ॥३१॥

यस्मिञ्जनः प्राणवियोगकाले क्षणं समावेश्य मनो विशुद्धम् ।
निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति परां गतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥३२॥

अन्वयः— जनः प्राणावियोग काले यस्मिन् विशुद्धम् मनः क्षणं समावेश्य आशु कर्माशयम् निर्हृत्य ब्रह्ममयः अर्कवर्णः परां गंति याति ॥३२॥

अनुवाद— मृत्यु के समय में मनुष्य उनमें यदि अपने विशुद्ध मन को क्षण भर के भी लिए लगा देता है तो वह अपने समस्त कर्मों को धोकर बहा देता है तथा शीघ्र ही सूर्य के समान तेजस्वी ब्रह्म स्वरूप होकर परम गति को प्राप्त कर लेता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

ननु सृष्ट्यादिकर्मावेशान्मनुष्यादिजन्मदर्शनाच्च तस्यान्येभ्यः को विशेष इत्याशङ्क्याह–यस्मिन्निति द्वाभ्याम् । कर्माशयं कर्मवासनां निर्हृत्य त्यक्त्वा ब्रह्ममय; स्वरूपज्ञानवानर्कवर्णः शुद्धसत्त्वमूर्तिः सन् परां गतिं तत्पदं याति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि सृष्टि आदि कर्मों में प्रविष्ट होने के कारण तथा मनुष्य आदि रूप से जन्म लेने के कारण श्रीकृष्ण की दूसरे लोगों से कौन सी विशेषता है इस प्रकार की आशंका करके यस्मिन् इत्यादि दो श्लोकों को कहते हैं । **कर्माशयम्** अर्थात् कर्म की वासना का निहृत्य अर्थात् त्याग करके जीव स्वरूपज्ञान से सूर्य के समान तेजस्वी होकर परम पद को प्राप्त कर लेता हैं ॥३२॥

तस्मिन्भवन्तावखिलात्महेतौ नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ ।
भावं विधत्तां नितरां महात्मन्किं वाऽवशिष्टं युवयोः सुकृत्यम् ॥३३॥

अन्वयः— तस्मिन् अखिलात्महेतो नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ भवन्तौ नितरां भावं विधत्तां हे महात्मन् युवयो किं सुकृत्यं अवशिष्टम् ॥३३॥

अनुवाद— वे श्रीभगवान् जो सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं तथा कारण हैं, वे ही नारायण, है । वे पृथिवी के भार को दूर करने के लिए और अपने भक्तों की अभिलाषाओं को पूरा करने के लिए पृथिवी पर अवतीर्ण हुए है । उन्हीं श्रीभगवान् के प्रति आप दोनों का इस तरह का वात्सल्य भाव है । हे महात्माओं अब आप दोनों को कौन सा पुण्य कार्य करने के लिए अवशिष्ट रह गया है ?॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अखिलस्यात्मा च हेतुश्च तस्मिन्कारणेन मनुष्याकृतौ महात्मन्महात्मनि परिपूर्णे भवन्तौ भक्तिं कुरुतः। अतः कृतकृत्यावित्यर्थः॥३३॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत् की आत्मा और हेतु हैं । वे पृथिवी का भार उतारने और अपने भक्तों की अभिलाषापूर्ण करने के लिए इन दो कारणों से मनुष्य का रूप धारण किए हैं । उन परिपूर्ण महात्मा की आपलोग भक्ति कर रहे हैं । अतएव आप दोनों का जन्म सफल हो गया है ॥३३॥

आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः । प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवान्सात्वतां पतिः ॥३४॥

अन्वयः— सात्वतां पतिः भगवान् अच्युतः अदीर्घेण कालेन व्रजम् आगमिष्यति, पित्रोः प्रियं विधास्यते ॥३४॥

अनुवाद— भगवान् अच्युत भक्तों के स्वामी हैं, वे शीघ्र ही व्रज में आयेंगे और आप माता-पिता दोनों का प्रियकार्य करेंगे ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तुतमाह-आगमिष्यतीति । पित्रोर्युवयोः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

जिसको कहना आवश्यक है उसे **आगमियति० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । उद्धवजी ने पितरौ अर्थात् आप दोनों ॥३४॥

हत्वा कंसं रङ्गमध्ये प्रतीपं सर्वसात्वताम् । यदाह वः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥३५॥

अन्वयः— सर्वसत्त्वतामप्रतीपम् कंस रङ्गमध्ये हत्वा कृष्णः वः समागत्य यदाह तत् सत्यं करोति ।।३५।।

अनुवाद— सम्पूर्ण यदुवंशियों के विरोधी कंस को रङ्गशाला में मारकर भगवान् श्रीकृष्ण आपलोगों के पास आकर जो कहे थे उसे सत्य करेंगे ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

'यात यूयं व्रजं तात वयं च स्नेहदुःखितान् । ज्ञातीन्वो द्रष्टुमेष्यामो विधाय सुहृदां सुखम् ।' इति यदाह कृष्णास्तत्सत्यं करिष्यतीति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् ने यह जो कहा था कि हे पिताजी आप व्रज चले जाइये यहाँ अपने हितैषियों को सुखी बना कर मेरे वियोग से दुःखी बने हुए व्रजवासियों को देखने के लिए आऊँगा इसे भगवान् सत्य करेंगे ।।३५।।

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमन्तिके । अन्तर्हृदि स भूतानामास्त ज्योतिरिवैधसि ॥३६॥

अन्वयः— हे महाभागौ मा खिद्यतम् कृष्णम् अन्तिके द्रक्ष्यथः, स भूतानाम् अन्तःहृदि आस्ते एधसि ज्योतिः इव।।३६।।

अनुवाद— आप दोनों महाभाग्यवान हैं खेद न करें आप अपने पास ही श्रीकृष्ण को देखेंगे जिस तरह काष्ठ के भीतर अग्नि विद्यमान रहती है उसी तरह श्रीकृष्ण भी सबों के हृदय में भी विद्यमान हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

कालविलम्बनमसहमानौ प्रत्याह-मा खिद्यतमिति । हे महाभागौ । अन्तिके इदानीमेव समीपे वा। कुत इत्यत आह-अन्तर्हृदीति। तर्हि सर्वैः किमिति न दृश्यते तत्राह-ज्योतिरिवैधसीति । तद्यथा मथनं बिना न दृश्यते तथा भक्तिं बिना कृष्णोऽपीति भावः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

समय के विलम्ब को नहीं सहने वाले यशोदाजी और नन्दजी के प्रति उन्होंने **माखिद्यतम्० इत्यादि** कहा हे महाभाग्यवानों इसी समय अथवा समीप में ही । कैसे इस पर उन्होंने कहा श्रीकृष्ण तो सबों के हृदय के अन्दर विद्यमान हैं । तो फिर सभी लोग उन्हें क्यों नहीं देख पाते हैं ? इस पर उन्होंने कहा **ज्योतिरिवैधसि** काष्ठ के भीतर यद्यपि अग्नि विद्यमान रहती है किन्तु जिस तरह मंथन के बिना वह अग्नि प्रकट नहीं होती है उसी तरह भक्ति के बिना श्रीकृष्ण नहीं दिखते हैं ।।३६।।

न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियो वाऽस्त्यमानिनः । नोत्तमो नाधमो वापि समानस्यासमोऽपि वा॥३७॥

अन्वयः— अमानिनः अस्य कश्चित् प्रियः न अस्ति न वा अप्रियः अस्ति नोत्तमो नाधमः समानस्य नापि असमः।।३७।।

अनुवाद— किसी एक शरीर के प्रति अभिमान नहीं रखने वाले श्रीकृष्ण का न तो कोई प्रिय है और न अप्रिय; वे सबों के प्रति एक समान है, इसीलिए उनके लिए न तो कोई उत्तम है और न अधम यहाँ तक कि विषम दृष्टि वाला भी उनके लिए विषम नहीं है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

अहो आस्तामेतत्तस्य त्विहागमनं स्वस्यातिप्रियान्पित्रादीन्विहाय न सङ्गच्छत इति मन्येत तत्राह-न ह्यस्येति । अस्य प्रियादयो नहि सन्ति । तत्र हेतू-अमानिनः समानस्येति च ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

ये सारी बातें ठीक है उनका अपने प्रिय पिता इत्यादि को छोड़कर यहाँ नहीं आना तो उचित नहीं लगता

है । ऐसा यदि नन्दजी कहें तो इसका उत्तर है कि श्रीकृष्ण का कोई भी प्रिय आदि नहीं है । इसका कारण है कि वे अमानी और समान हैं ॥३७॥

न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः । नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥३८॥

अन्वयः— तस्य न माता न पिता न भार्या, न सुतादयः वात्मीयः न नापि परः न देहः न जन्म एव च ॥३८॥

अनुवाद— श्रीकृष्ण का न तो कोई माता है न पिता न पत्नी न पुत्र आदि हैं । उनका न तो कोई आत्मीय है और न पराया है । न तो उनका देह है और न उनका जन्म होता है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३८॥

न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु । क्रीडार्थः सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥३९॥

अन्वयः— अस्य कर्म न सोऽपि साधूनां परित्राणाय क्रीडार्थः लोके सदसन् मिश्रयोनिषु ॥३९॥

अनुवाद— इस लोक में उनके लिए कर्तव्य रूप से कोई भी कर्म नहीं है फिर भी इस लोक में साधुओं की संरक्षा के लिए और क्रीडा करने के लिए सात्त्विक देवादि, मत्स्य आदि तथा सदसत् मनुष्यादि योनियों में अवतीर्ण होते हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

सोऽपि जन्मकर्मादिरहितोऽपि क्रीडाप्रयोजनः सन् स साधूनां परिपालनाय सदसन्मिश्रयोनिषु सात्त्विकराजसतामसयोनिषु, यद्वा देवादिमत्स्यादिनृसिंहादियोनिषु कल्पते आविर्भवतीत्यर्थः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

जन्म एवं कर्म आदि से रहित होने पर भी श्रीकृष्ण क्रीडा करने के लिए और साधु पुरुषों का पालन करने के लिए सात्त्विक राजस, तामस योनियों में अथवा देवादि, मत्स्यादि तथा नृसिंह आदि योनियों में अविर्भूत होते हैं॥३९॥

सत्त्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् । क्रीडन्नतीतोऽत्र गुणैः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥४०॥

अन्वयः— अजः निर्गुणः सत्त्वं रजः तम इति गुणान् भजते क्रीडन् अतीतः अत्र गुणैः सृजति अवति हन्ति च ॥४०॥

अनुवाद— श्रीकृष्ण अजन्मा तथा निर्गुण है फिर भी संसार में प्रकृति के सत्त्व, रजस एवं तमस इन गुणों को स्वीकार करते हैं । वे यद्यपि क्रीडातीत हैं फिर भी सत्त्वादि गुणों को अपनाकर जगत् की सृष्टि, रक्षा और संहार का कार्य करते हैं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

ननु जन्मकर्मादिरहितस्य कुत एतदित्यत आह–सत्त्वमिति । क्रीडामतीतोऽपि क्रीडन् । तथापि मायागुणैर्घटत इत्यर्थः॥४०॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि जब श्रीकृष्ण जन्म तथा कर्म से रहित हैं तो भी उनका सत्त्वादि योनियों में आविर्भाव कैसे होता है ? इस पर उद्धवजी **सत्त्वम् इत्यादि** श्लोक कहते हैं । यद्यपि वे क्रीडातीत हैं फिर भी क्रीडा करते हैं । यह सब माया के गुणों से उपपन्न हो जाता है ॥४०॥

यथा भ्रमरिकादृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते । चित्ते कर्तरि तत्रात्मा कर्तेवाहंधिया स्मृतः ॥४१॥

अन्वयः— यथा भ्रमरिका दृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते चित्ते कर्तरि तत्र अहंधिया कर्ता इव ॥४१॥

अनुवाद— जैसे भ्रमण यंत्र पर घूमने वाले व्यक्ति को पृथिवी घूमती हुई प्रतीत होती है, उसी तरह वस्तुतः

सब करने वाला तो चित्त है, किन्तु भ्रमवशात् जीव उसमें अहन्त्व बुद्धि कर लेने के कारण कर्ता के समान प्रतीत होता है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

अत्राविद्योपाधेर्जीवस्य कर्तृत्वं दृष्टान्तीकुर्वंस्तयाविद्ययैव कर्तृत्वमिति सदृष्टान्तमाह-यथेति। भ्रमरिका परिभ्रमणं तयोपलक्षितया दृष्ट्या भूरपि भ्राम्यतीति यथा प्रतीयते एवं चित्ते कर्तरि सति तत्र चित्तेऽहंधिया आत्माध्यासेनात्मा कर्ता स्मृता यथा तद्वदिति॥४१॥

भाव प्रकाशिका

जीव अविद्योपाधि है और उसी के कर्तृत्व आदि धर्म हैं। उसी को दृष्टान्त बनाकर कर्तृत्व आविद्यिक है इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक **यथा० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं। परिभ्रमण यन्त्र को भ्रमरिका कहा जाता है। उस पर घूमने वाले व्यक्ति की दृष्टि से पृथिवी घूमती हुई सी प्रतीत होती है। इसी तरह चित्त के ही कर्ता होने पर भी उसमें अहंत्व बुद्धि के कारण आत्मा को कर्ता कहा गया है ॥४१॥

यवुयोरेव नैवायमात्मजो भगवान्हरिः। सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ॥४२॥

अन्वयः— अयम् युवयोः एव आत्मजः न सर्वेषाम् आत्मजः आत्मा, पिता, माता ईश्वरः ॥४२॥

अनुवाद— ये श्रीकृष्ण केवल आप दोनों के ही पुत्र नहीं हैं अपितु व सबों के पुत्र, आत्मा, पिता, पुत्र एवं स्वामी है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

किंच युवयोरेव नायमात्मजः किंतु सर्वेषामपि, तत्रापि नात्मज एव किंतु शत्रुमित्रादिरूपोऽपीति सर्वात्मत्वनिरूपणेन मोहनिवृत्तये संबन्धमनैकान्तिकीकरोति-युवयोरेवेति द्वाभ्याम् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च ये आप दोनों के ही पुत्र नहीं है अपितु ये सबों के पुत्र हैं। केवल पुत्र ही नहीं माता, पिता और स्वामी भी हैं। यही नहीं शत्रु एवं मित्र भी हैं। नन्द यशोदा के मोह की निवृत्ति के लिए सर्वात्मत्व का निरूपण करके सम्बन्ध को अनैकान्तिक युवयोरेव इत्यादि दो श्लोकों से बतलाते हैं ॥४२॥

दृष्टं श्रुतं भूतभवद्भविष्यत् स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च।
विनाऽच्युताद्वस्तु तरां न वाच्यं स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥४३॥

अन्वयः— दृष्टं, श्रुतं, भूतभवद्भविष्यत् स्थास्नुः चरिष्णुः सकृदल्पकं वा अच्युताद्विना वस्तुतरां न वाच्यं स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥४३॥

अनुवाद— संसार की जितनी भी देखी अथवा सुनी हुई वस्तु हैं, चाहे वे भूतकालिक हों वर्तमान कालिक हों भविष्यत् कालिक हों वे सबके सब भगवान् अच्युत के बिना कोई वस्तु हो ही नहीं सकती है। वस्तुतः वे ही सब हैं और वे ही परमार्थ है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

अच्युताद्विना तरां नितरां तत्त्वतो वाच्यं निर्वचनार्हं वस्तु नास्तीति ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् अच्युत के बिना तात्त्विक कही जाने योग्य कोई भी वस्तु नहीं है ॥४३॥

एवं निशा सा ब्रुवतोर्व्यतीता नन्दस्य कृष्णानुचरस्य राजन् ।
गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपानवास्तून्समभ्यर्च्य दधीन्यमंथन् ॥४४॥

अन्वयः— हे राजन् एवं ब्रुवतोः नन्दस्य कृष्णानुचरस्य च सा निशा व्यतीता गोप्य समुत्थाय दीपान् निरूप्य वास्तून् समभ्यर्च्य दधीनि अमन्थन् ॥४४॥

अनुवाद— हे राजन् इस तरह से नन्दजी के तथा भगवद् भक्त श्रीउद्धवजी के बातें करते हुए वह रात-बीत गयी गोपियों ने उठकर दीपक जलाया वास्तु देवता की पूजा की और फिर दधिमन्थन का कार्य करने लगीं॥४४॥

भावार्थ दीपिका

दीपान्निरूप्य प्रज्वाल्य । वास्तून् देहल्यादीन् ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

दीपक जलाकर देहली आदि की ॥४४॥

ता दीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजू रज्जूर्विकर्षद्भुजकङ्कणस्रजः ।
चलन्नितमबस्तनहारकुण्डलत्विषत्कपोलारुणकुङ्कुमाननाः ॥४५॥

अन्वयः— रज्जुविकर्षद्भुज कङ्कण स्रजः दीप दीप्तैः मणिभिः विरेजुः, चलन्नितम्बस्तनहारकुण्डलत्विषत्कपोलारुण कुङ्कुमाननाः ता विरेजुः ॥४५॥

अनुवाद— दधि मंथन के समय रस्सी के खींचते समय गोपियों की कलाइयों में विद्यममकंगन तथा उनके हार द्वीपों से प्रकाशित मणियों के द्वारा सुशोभित होते थे । दधि मंथन करते समय गोपियों के नितम्ब, स्तन तथा गलों के हार हिल रहे थे । कानों के कुण्डल अपनी कान्ति से गोपियों के कुङ्कुम मण्डित कपोलों की लालिमा को और बढ़ाते थे । इस प्रकार शोभा सम्पन्न गोपियाँ दधिमन्थन का काम करने लगीं ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

मणिभिः काञ्च्यादिषु स्थितैः रज्जूर्विकर्षत्सु भुजेषु कङ्कणानां स्रजो यासां ताः । चलन्तो नितम्बाः स्तना हाराश्च यासां ताः, कुण्डलैस्त्विषन्तः स्फुरन्तः कपोला यासां ताः, अरुणानि कुङ्कुमानि येषु तान्याननानि यासां ता एव ताश्च ताश्च ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

करधनी इत्यादि में लगी हुई मणियों, रस्सी को खीचने वाले हाथों के कङ्गन की मालाएँ, हिलते हुए नितम्ब, स्तन तथा हार एवं कुण्डलों की कान्ति से चमकते हुए गोपियों के गाल, तथा मुख पर लगे लाल कुङ्कुम इन सबों से गोपियाँ सुशोभित थीं ॥४५॥

उद्गायतीनामरविन्दलोचनं व्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशद्ध्वनिः ।
दध्नश्च निर्मन्थनशब्दमिश्रितो निरस्यते येन दिशाममङ्गलम् ॥४६॥

अन्वयः— अरविन्दलोचनं गायन्तीनां व्रजाङ्गनानां ध्वनिः दध्नः च निर्मन्थन शब्दमिश्रितः दिवम् अस्पृशत् येनदिशाम् अमङ्गलं निरस्यते ॥४६॥

अनुवाद— दधि मन्थन करते समय कमलनयन श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान करने वाली गोपियों की ध्वनि दधिमन्थन के शब्द में मिलकर स्वर्ग लोक तक पहुँच गयी, जो ध्वनि चारो ओर फैलकर दिशाओं के अमङ्गल को नष्ट कर रही थी ॥४६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४६॥

भगवत्युदिते सूर्ये नन्दद्वारि व्रजौकसः । दृष्ट्वा रथं शातकौम्भं कस्यायमिति चाब्रुवन् ॥४७॥

अन्वयः— भगवति सूर्ये उदिते व्रजौकसः नन्दद्वारि शातकौम्भं रथं दृष्ट्वा अयम् कस्य इति च अब्रुवन् ॥४७॥

अनुवाद— भगवान् सूर्य के उदित होने पर बाबा नन्द के दरवाजे पर सुवर्ण रथ को देखकर व्रजवासी गोपियाँ आपस में बातें करने लगीं कि यह रथ किसका है ?॥४७॥

भावार्थ दीपिका

तदा व्रजौकसो गोप्यः ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

उस समय गोपियाँ ॥४७॥

अक्रूर आगतः किं वा यः कंसस्यार्थसाधकः । येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥४८॥

अन्वयः— किं वा अक्रूरः आगतः यः कंसस्य अर्थसाधकः येन कमललोचनः कृष्णःमधुपुरीं नीतः ॥४८॥

अनुवाद— क्या फिर अक्रूर आ गया, जो कंस के प्रयोजन की सिद्धि करने वाला है । जो कमल नयन श्रीकृष्ण को मधुपुरी (मथुरापुरी) ले गया ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

सक्रोधमाहुः-अक्रूर इति । अर्थं साधितवानित्यर्थसाधकः तदाहुः-येन नीत इति ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

गोपियाँ क्रोध पूर्वक कहती हैं, क्या पुनः अक्रूर आ गया ? जो कंस के प्रयोजन को सिद्ध करता है । उसी बात को कहती हैं जो अक्रूर श्रीकृष्ण को मथुरा पुरी में ले गया ॥४८॥

किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रीतस्य निष्कृतिम् । इति स्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात्कृताह्निकः ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्दशोकापनयनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

अन्वयः— किं अस्माभिः प्रेतस्यभर्तुः निष्कृतिम् साधयिष्यति ? इति वदन्तीनां स्त्रीणां कृताह्निकः उद्धवः आगतः॥४९॥

अनुवाद— क्या अब वह हमलोगों को लेजाकर अपने मरे हुए स्वामी कंस का पिण्डदान करायेगा क्या? जब स्त्रियाँ आपस में इस तरह से बातें कर रही थी उसी समय उद्धवजी नित्यकर्म से निवृत्त होकर आ गये ॥४९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के नन्द शोकापनयन नामक छियलिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

कंसं घातयित्वा पुनः किमर्थमागत इत्याशङ्क्य स्वयमेव कारणं संभावयन्ति-किमिति । तदा साधितेन कार्येण प्रीतस्य तुष्टस्य भर्तुः । पाठान्तरे प्रेतस्य कंसस्य निष्कृतिमौर्ध्वदेहिकमस्माभिः कृत्वा साधियिष्यते किम् । अस्मन्मांसैः पिण्डान्कृत्वा दास्यतीत्यर्थः । इत्येवं वदन्तीनां स्त्रीणां ततस्तस्मिननवसरे कृताह्निकः कृतस्नानादिनियम उद्धव आगत इति ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

कंस को मरवाकर फिर किसलिए आया है ? इस तरह से आशङ्का करके उन सबों ने स्वयं कारण की संभावना करते हुए कहा- कार्य की सिद्धि हो जाने से उसके स्वामी प्रसन्न हो गये । पाठान्तर के अनुसार मरे हुए

कंस की और्ध्व दैहिक क्रिया हमलोगों से सिद्ध करेगा क्या ? हमलोगों के मांस का पिण्ड बनाकर पिण्डदान करेगा क्या ? इस तरह से स्त्रियाँ जब बातें कर रही थीं उसी समय उद्धवजी नित्यकर्म से निवृत्त होकर आ गये ।।४९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थदीपिका टीका के छियालिसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।४६।।

* * *

सैंतालिसवाँ अध्याय

उद्धव और गोपियों की वार्ता और भ्रमरगीत

श्रीशुक उवाच

तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम् ।
पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसन्मुखारविन्दं मणिमृष्टकुण्डलम् ॥१॥

अन्वयः— प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनं, पीताम्बरम्, पुष्करमालिनम्, लसन्मुखारविन्दं माणिमृष्टकुण्डलं तं कृष्णानुचरं वीक्ष्य व्रजस्त्रियः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जिनकी भुजाएँ घुटनों तक लटक रहीं थी, नवीन कमल दल के समान जिनके मनोहर नेत्र थे, पीताम्बर धारण किए हुए, कमल की माला पहने हुए, सुन्दर मुखारविन्द वाले तथा जिनके कानों के कुण्डल मणि जटित थे ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त श्रीउद्धवजी को व्रजवनिताओं ने देखा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तचत्वारिंशकेऽथ कृष्णादेशेन गोपिकाः । बोधयित्वोद्धवस्तत्त्वमनुज्ञाप्यागमत्पुरीम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् सैंतालिसवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से गोपिकाओं को तत्त्व का उपदेश देकर उद्धवजी मथुरापुरी में लौट आये ॥१॥

शुचिस्मितः कोऽयमपीच्यदर्शन; कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ।
इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥२॥

अन्वयः— शुचिस्मितः अयम् अपीच्यदर्शनः कः कुतः च कस्य, अच्युतवेषभूषणः इति उत्सुकाः, सर्वाः उत्तम श्लोकपदाम्बुजाश्रयम् तम् परिवव्रुः ॥२॥

अनुवाद— पवित्र मुस्कान वाली गोपियाँ आपस में बातें कर रही थी यह पुरुष देखने में तो बहुत सुन्दर है, यह कहाँ से आया है ? किसका दूत है ? इसका वेष भूषा तो श्रीकृष्ण के ही समान है, इस तरह से उत्सुक वनी हुई गोपियों ने उत्तमश्लोक श्रीभगवान् के चरण कमलों के भक्त श्रीउद्धवजी को घेर लिया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अपीच्यं सुन्दरं दर्शनं यस्य सः। अच्युतस्येव वेषो भूषणानि च यस्य सः। कोऽयं कुतो वा कस्य चेति वदन्त्यस्तं परिवव्रुः॥२॥

भाव प्रकाशिका

देखने में सुन्दर, भगवान् श्रीकृष्ण के ही समान वेष तथा भूषणों वाले उद्धवजी के विषय में यह कौन है? कहाँ से आया है, किसका दूत है, इत्यादि बातें करती हुई उद्धवजी को चारो ओर से गोपियों ने घेर लिया ॥२॥

तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः ।
रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने विज्ञाय संदेशहरं रमापतेः ॥३॥

अन्वयः— रमापतेः संदेशहरं विज्ञाय प्रश्रयेण अवनताः सव्रीडहासेक्षणसुनृतादिभिः सुसत्कृतं आसने उपविष्टम् रहसि अपृच्छन् ॥३॥

अनुवाद— उद्धवजी को भगवान् श्रीकृष्ण का संदेश वाहक जानकर उन सबों ने विनयावनत होकर सलज्जहास चितवन एवं मधुरवाणी से उनका सत्कार करके एकान्त में आसन पर बैठे हुए उद्धवजी से उन गोपियों ने कहा ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् । भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान् प्रियचिकीर्षया ॥४॥

अन्वयः— त्वां यदुपतेः समुपागतं पार्षदं जानीमः भर्त्रा पित्रोः प्रियचिकीर्षया भवान् इह प्रेपितः ॥४॥

अनुवाद— हमलोग यह जानती हैं कि आप यदुवंश शिरोमणि श्रीकृष्ण के पार्षद (सेवक) हैं आपके स्वामी ने आपको अपने माता-पिता को सुख देने के लिए यहाँ भेजा है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

पार्षदं सेवकम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

पार्षद अर्थात् सेवक ॥४॥

अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे । स्नेहानुबन्धो बन्धूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥५॥

अन्वयः— अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे, बन्धूनां स्नेहानुबन्धं मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥५॥

अनुवाद— अन्यथा उनके लिए इस गोकुल में कोई भी स्मरण करने योग्य वस्तु नहीं दिखायी पड़ती है। बन्धु बांधावों का स्नेह बन्धन तो बड़े-बड़े ऋषिमुनियों के लिए भी सुदुस्त्यज होता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

प्रित्रोः प्रियचिकीर्षयेत्यत्र हेतुः-स्नेहानुबन्ध इति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अपने माता पिता को सुख देने का कारण है **स्नेहानुबन्धः** अर्थात् प्रेम का बन्धन ॥५॥

अन्येष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थविडम्बनम् । पुम्भिः स्त्रीषु कृता यद्वत्सुमनेस्विव षट्पदैः ॥६॥

अन्वयः— अन्येपु मैत्री अर्थकृता यावदर्थ विडम्बनम् पुम्भिः कृता मैत्री यद्वत षट्पदैः सुमनेषु इव ॥६॥

अनुवाद— दूसरों के साथ तो किसी प्रयोजन विशेष पर्यन्त ही मैत्री का स्वांग रचा जाता है, पुरुषों का स्त्रियों से मैत्री उसी तरह की होती है जिस तरह भौरों की पुष्पों से होती है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

अन्यथा गोव्रजे तस्येत्यत्र हेतुः-अन्येष्विति । अर्थकृता कार्यनिमित्ता । विडम्बनमनुकरणमात्रं न तु तात्त्विकी मैत्री । पुम्भिरिति दृष्टान्तौ ॥६॥

भाव प्रकाशिका

नहीं तो इस गोकुल में उनके लिए स्मरणीय कुछ नहीं होने के कारण **अन्येस्वर्थकृताः इत्यादि** श्लोक से बतलाती हैं। अर्थकृता अर्थात् प्रयोजन विशेष के लिए। विडम्बनम् अर्थात् अनुकरण मात्र वास्तविक मैत्री नहीं। **पुम्भिः इत्यादि** के द्वारा गोपियों ने दो दृष्टान्तों को उपन्यत किया है ॥६॥

निःस्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः । अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥७॥

अन्वयः— गणिकाः निःस्वं त्यजन्ति, प्रजाः अकल्पं नृपतिं, अधीत विद्याः आचार्यं, दत्त दक्षिणम् ऋत्विजः ॥७॥

अनुवाद— वेश्या जब यह जान लेती है, कि मेरे पास आने वाले के पास धन नहीं है तो वे उसका परित्याग कर देती हैं, प्रजा जब यह जान लेती है यह राजा हमारी रक्षा करने में असमर्थ है तो वह उसका साथ नहीं देती है। इसी तरह छात्र विद्याध्ययन करने के पश्चात् आचार्य का साथ छोड़ देते हैं, और दक्षिणा पा जाने पर ऋत्विजगण यजमान का छोड़कर चले जाते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अस्यैवान्यार्थनिदर्शनैः प्रपञ्चः-निःस्वमित्यादिना । दत्ता दक्षिणा येन तं याज्यम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

इसी अर्थ का दूसरे उदाहरणों से विस्तार **निःस्वम्० इत्यादि** श्लोक से किया गया है। दक्षिणा दे देने वाले यजमान को ॥७॥

खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिपथो गृहम् । दग्धं मृगास्तथारण्यं जारो भुक्त्वा रतां स्त्रियम्॥८॥

अन्वयः— खगाः वीतफलं वृक्षम्, अतिथयः च भुक्त्वा गृहम् तथा मृगाः दग्धारण्यम्, जारः भुक्त्वा रतां स्त्रियम् त्यजन्तीतियावत् ॥८॥

अनुवाद— पक्षीगण फल रहित वृक्ष को, अतिथिगण भोजन करके गृहस्थ के घर को, मृगगण आग लगे हुए वन को एवं जार (उपपति) उपभोग करके अतृप्त ही स्त्री को छोड़कर चले जाते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

पक्षिणो विगतफलं वृक्षम् । रतामनुरक्तामतृप्तामित्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

पक्षीगण उस वृक्ष को छोड़कर चले जाते हैं जिसका फल समाप्त हो जाता है। **रताम्** अर्थात् अनुरक्त अर्थात् अतृप्त ॥८॥

इति गोप्यो हि गोविन्दे गतवाक्कायमानसाः । कृष्णदूते व्रजं याते उद्धवे त्यक्तलौकिकः ॥९॥

अन्वयः— इति गोविन्दे गतमानसाः त्यक्त लौकिकाः गोप्यः कृष्ण दूते उद्धवे व्रजं याते ॥९॥

अनुवाद— इस तरह गोपियों का मन बाणी तथा शरीर तो भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा था अतएव वे इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण के दूत उद्धवजी के व्रज में आने पर लौकिक व्यवहार को भूल ही गयीं, और वे यह नहीं सोचीं कि किससे कौन सी बात कहनी चाहिए और कौन सी नहीं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

त्यक्तलौकिकास्त्यक्तलोकव्यवहाराः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

त्यक्तलौकिकाः अर्थात् लौकिक व्यवहार को त्याग दिया ॥९॥

गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदत्यश्च गतह्रियः । तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥१०॥

अन्वयः— तस्य यानि कैशोरबाल्ययोः प्रियकर्माणि संस्मृत्य संस्मृत्य गायन्त्यः गतह्रियः रुदत्यश्च ॥१०॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के वाल्यावस्था से लेकर किशोरावस्था पर्यन्त की जितनी भी लीलाएँ थीं उन सबों को स्मरण करके गान करती हुई वे सब लज्जा को छोड़कर रोने लगीं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

प्रियस्य कर्माणि गायन्त्यस्तया तस्य वाल्यकैशोरयोर्यानि कर्माणि तानि संस्मृत्य संस्मृत्य गतह्रियः सत्यो रुदत्यश्च तमपृच्छन्निति पूर्वक्रिययैव संबन्धः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के कर्मों का गान करती हुई भगवान् श्रीकृष्ण के वाल्यावस्था से लेकर किशोरावस्था पर्यन्त के सभी कार्यों को याद करके लज्जा का परित्याग करके रोती हुई गोपिकाएँ उद्धवजी से पूछने लगीं । इस श्लोक का अपृच्छन क्रिया से संबन्ध है ॥१०॥

काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसङ्गमम् । प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥११॥

अन्वयः— काचित् मधुकरं दृष्ट्वा कृष्णसङ्गमं ध्यायन्ती प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वा अब्रवीत् ॥११॥

अनुवाद— एक गोपी अपने सन्निकट में विद्यमान भौंरे को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण के सङ्गम का चिन्तन करती हुई सोची कि हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण ने मुझ मानिनी को मनाने के लिए इसे दूत बनाकर भेजा है, अतएव वह कहने लगी ॥११॥

भावार्थ दीपिका

प्रियेण श्रीकृष्णेन मां प्रसादयितुं प्रस्थापितोऽयं दूत इति कल्पयित्वाब्रवीत् । यद्वा तस्मिन्नप्युद्धवे प्रियप्रस्थापितं दूतमिति दूतदृष्टिं कृत्वा मधुकरापदेशेनोद्धवमेवाब्रवीदित्यर्थः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण ने मुझको प्रसन्न करने के लिए इसे दूत बनाकर भेजा है ? इस तरह से कल्पना करके कहने लगी अथवा उन उद्धवजी में भी अपने प्रियतम के द्वारा प्रस्थापित दूत की दृष्टि करके भौंरे के बहाने से उद्धवजी से कहने लगी ॥११॥

गोप्युवाच

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं यदुसदसि विडम्ब्य यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥१२॥

अन्वयः— कितवबन्धो मधुप अङ्घ्रिम् मा स्पृश, सपत्न्याः कुच विलुलितमाला कुङ्कुमं श्मश्रुभि बहतु मधुपतिः तन्मानिनां यदुसदसिविडम्ब्यं प्रसादं बहतु यस्य त्वम् ईदृक् दूतः ॥१२॥

गोपियों ने कहा

अनुवाद— ऐ कपटी कृष्ण के मित्र भौंरे, तुम मेरे पैरों के मत छूओ । सौत के स्तनों से मसल दी गयी वनमालाआ को और उसमें लगे हुए कुङ्कुम को अपनी मूंछों पर श्रीकृष्ण धारण किया करें, जो यादवों की सभा में उपहास का विषय है । वे अपनी ही प्रेयसियों की प्रसन्नता को धारण करें, उनको मुझसे क्या मतलब है । उनके ही तुम इस प्रकार के दूत हो ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

हे मधुप, कितवस्य धूर्तस्य बन्धो नोऽस्माकमङ्घ्रिं मा स्पृश । मा मां नमस्कारेण प्रार्थयस्वेत्यर्थः । तत्किमित्पयेक्षायां कृष्णवर्णस्य तस्य श्मश्रूणां लोहितत्वे कारणमुत्प्रेक्षमाणाह–सपत्न्याः कुचाभ्यां लुलिता संमर्दिता या कृष्णस्य वनमाला अतएव तस्याः कुङ्कुमं येषु तैः श्मश्रुभिरुपलक्षितः । किंतु तासामवमानिनीनां प्रसादं मधुपतिर्वहतु, किमस्मत्प्रसादनेन तस्य यदुसदसि विडम्ब्यमुपहासास्पदम् । कुतः । यस्य दूतस्त्वमीदृगीदृशः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

हे भौंरे ! कपटी के सखा ! मेरे पैरों का स्पर्श मत करो । मुझको नमस्कार करके प्रसन्न मत करो । ऐसा क्यों इस प्रकार की आङ्काक्षा होने पर काले रङ्ग के भौंरे के मूंछ को लाल होने के कारण की उत्प्रेक्षा करती हुई कहती है । मेरी सौत के स्तनों की रगड़ से मसल दी गयी श्रीकृष्ण की वनमाला अतएव उसमें लगे हुए कुकुम जिनमें लगा हुआ है ऐसी मुछों वाले तुम और तुम्हारे मित्र हैं । मथुरा के स्वामी श्रीकृष्ण उन्ही मनिनियों की कृपा प्रसाद को धारण करें । मरी प्रसन्नता से उनको क्या मतलब है ? उन मानिनियों का कृपा प्रसाद यादवों की सभा में उपहासास्पद है । क्योंकि तुम भी उनके इस प्रकार के दूत हो जैसा तुम उसी प्रकार के तुम्हारे मित्र हैं ।।१२।।

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान्भवादृक् ।
परिचरिति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ।।१३।।

अन्वयः— स्वां अधरसुधां सकृत् पाययित्वा भवादृक् सुमनस इव अस्मान् सद्यः तत्यजे । उत्तम श्लोकजल्पैः । हृतचेता पद्मा अपि हि कथं तत्पादपद्मं परिचरति ।।१३।।

अनुवाद— जैसे तुम हो वैसा वे भी है तुम भी पुष्पों का रस लेकर उड़ जाते हो वे भी हम सबों को केवल एक बार अपने अधर सुधा का पान कराके शीघ्र ही त्याग दिए । पता नहीं श्रीलक्ष्मीजी उनके चरण कमल की सेवा कैसे करती हैं, लगता है वे श्रीकृष्ण की चिकनी चुपड़ी बातों में आ गयी होंगी । उस चित्तचोर ने उनके भी हृदय को चुरा लिया होगा ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ननु किमित्येवं तमवजानीथ, किं वस्तेनापकृतमत आह–सकृदिति । भवादृक् त्वादृशो दुर्मनाः सुमनसः कुसुमानि यथा त्यजति तद्वत् । अहो वताविज्ञस्य तस्य पादपद्मं श्रीः कथं सेवते, विदितं मयेत्याह–अपीति । वतेति खेदे । उत्तमश्लोकस्य जल्पैर्मिथ्याकथाभिः प्रलापैः प्रायो हृतचेताः, वयं तु न लक्ष्मीवदविचक्षणा इति भावः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि आपलोग उनकी इस तरह से क्यों अवमानना कर रही हैं, उन्होंने आपलोगों का कौन सा अपकार किया है ? इस पर गोपियों ने **सकृदधरसुधाम्० इत्यादि** श्लोक कहा । अर्थात् तुम जैसे दुष्ट हो वैसे ही वे भी हैं । तुम जैस पुष्पों का रस पीकर उन सबों का परित्याग कर देते हो वैसे ही वे भी है । आश्चर्य की बात है कि लक्ष्मीजी उनके स्वभाव से परिचित नहीं है, इसीलिए वे उनके चरण कमलों की सेवा करती रहती हैं । मैं इस बात को जानती हूँ । श्लोक का बत यह अव्यय खेदार्थक है । वे श्रीकृष्ण उनके साथ मीठी-मीठी और मिथ्या बातें करते रहते हैं और उन्हीं बातों से वे श्रीलक्ष्मीजी के चित्त को चुरा लिए होंगे । लक्ष्मीजी के समान हमलोग अनभिज्ञ नहीं है ।।१३।।

किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूनामधिपतिमगृहाणामग्रतो नः पुराणम् ।
विजयसखसखीनां गीयताम् तत्प्रसङ्गः क्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ।।१४।।

अन्वयः— हे षडङ्घ्रे इह नः अगृहाणाम् अग्रे पुराणम् यदूनाम अधिपतिं किं बहुगायसि ? विजय सखसखीनाम् तत्प्रसङ्गः गीयताम् क्षपितकुचरुजः ते इष्टमीष्टाः कल्पयन्ति ।।१४।।

अनुवाद— हे भ्रमर हमलोग गृहवाली नहीं हे, हमलोग तो वनवासिनियाँ हैं । हमलोगों के समक्ष यदुवंश शिरोमणि श्रीकृष्ण के गुणों का इतना अधिक गान क्यों करते हैं । वे हमलोगों के लिए नये नहीं हैं, बल्कि हमलोगों के लिए वे पुराने हैं । हम लोग उनके स्वभाव से खूब परिचित हैं । विजय जिनका मित्र है उन श्रीकृष्ण की प्रियतमाओं के सामने जाकर उनका गुणगान करो । उन सबों के लिए वे नये हैं, और इस समय वे उन सबों के हृदय के संताप को मिटा दिए है । अतएव वे सब उनके गुणों का गायन सुनकर तुम्हें मुँह माँगी वस्तुएँ देंगी ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

झङ्कारान्बहुधा कुर्वन्तमस्मत्प्रसादलाभाय कृष्णं गायतीति मत्वाह–किमिहेति । पुराणं पुरातनं बहुशोऽनुभूतम् । विजयसखस्य श्रीकृष्णस्य सांप्रतं याः सख्यस्तासामग्रतस्तत्प्रसङ्गो गीयताम् । इष्टाः कृष्णस्य प्रियाः । तेन पूजिता इति वा । तेनालिङ्गितेन क्षपिता कुचरुग्यासां तास्तवेष्टमपेक्षितं दास्यन्तीति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

बार-बार गुनगुनाने वाले भौंरे को देखकर वह गोपी मानती है कि यह हमलोगों की प्रसन्नता को प्राप्त करने के लिए कृष्ण की महिमा का गान कर रहा है । अतएव वह **किमिह० इत्यादि** श्लोक को कहती है । वह कहती है कि श्रीकृष्ण हमारे लिए नये नहीं हैं । हमलोगों ने उनको अनेक बार अनुभव किया है । वे विजयश्री के मित्र हैं । विजय उनके साथ रहती है । अथवा वे अर्जुन के मित्र है । उन श्रीकृष्ण की इस समय जो सखियाँ हैं उन सबों के ही सामने जाकर तुम उनका गुणगान करो । वे कृष्ण की प्रियतमाएँ हैं । अथवा श्रीकृष्ण ने उन सबों का समादर किया है । श्रीकृष्ण ने जो उन सबों का आलिङ्गन किया है, उससे उन सबों के उरोजों का रोग शान्त होगया है । वे सब प्रसन्न होकर तुमको तुम्हारी अभिप्रेत वस्तुएँ प्रदान करेंगी ॥१४॥

दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः ।
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का अपि च कृपणपक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्दः ॥१५॥

अन्वयः— दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियः याः तत् कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य दुरापाः स्युः यस्य चरणरजः भूतिः उपास्ते, वयं का ? अपि च कृपणपक्षे उत्तमश्लोक शब्दः ॥१५॥

अनुवाद— स्वर्गलोक, भूलोक और पाताल में कौन सी ऐसी स्त्री है जो उनकी कपट भारी मनोहर मुस्कान तथा भौहों के इशारे पर उनके वश में नहीं हो जाय । संसार की कोई भी स्त्री उनके लिए दुष्प्राप नहीं है । औरों की तो बात ही क्या है, स्वयं लक्ष्मीजी उनके चरणरज की सेवा करती रहती हैं, ऐसी स्थिति में वन में रहने वाली हमलोग किस गिनती में है ? तुम जाकर उनसे कहो कि तुम्हारा नाम उत्तम श्लोक है । अच्छे लोग तुम्हारी कीर्ति का गान करते हैं । अतएव तुम दीनों पर भी दया किया करो, इसी में तुम्हारे नाम की सार्थकता है । अन्यथा तुम्हारा उत्तम श्लोक यह नाम झूठा हो जायेगा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

भो मातः, मैवं वोचस्त्वामनुस्मृत्यानङ्गविक्लवस्त्वां प्रसादयितुं मामादिष्टवानित्यत आह–दिवीति । दिवि भुवि रसातले च याः स्त्रियः स्युः ताः का नाम दुरापाः, न काश्चन । तदित्यव्ययम्, तस्येत्यर्थः । कपटेन रुचिरेण हासेन भ्रूविजृम्भो यस्य तस्य । हे कपट, इति वा । किंच यस्य चरणरजः श्रीः सेवते तत्र वयं काः । अपि च यद्यप्येवं तथापि कृपणपक्षे कृपणानुकम्पिनि पुंस्युत्तमश्लोकशब्दो भवतीति तथा कथनीयं त्वयेति भावः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

तुम यह जो कहते हो कि आप ऐसी बात न कहें । आपको स्मरण करके वे कामार्त हो गये हैं अतएव

आपको प्रसन्न करने के लिए उन्होंने मुझे आदेश दिया है । इस पर गोपी ने **दिविभुवि० इत्यादि** श्लोक कहा स्वर्ग लोक में भूलोक में तथा पाताल लोक में कौन ऐसी स्त्री हैं, जो उनके लिए दुष्प्राप्य हो । ऐसी कोई भी स्त्री नहीं है । तत् यह अव्यय पद तस्य के अर्थ में प्रयुक्त है । अथवा उसका अर्थ है हे कपटी ! जिनके चरणरज की सेवा स्वयं लक्ष्मीजी करती हैं उनके लिए हमलोग कौन हैं ? कपट भरी मनोज्ञ हंसी तथा भौहों के ईशारे करने वाले वे हैं । किन्तु तुम उनसे जाकर कहना कि दीनों पर दया करने वाले पुरुष को उत्तम श्लोक कहते हैं ।।१५।।

विसृज शिरसि पादं वेदम्यहं चाटुकारैरनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ।
स्वकृत इह विसृष्टपत्यपत्यन्यलोका व्यसृजदकृतचेताः किं तु संधेयमस्मिन् ।।१६।।

अन्वयः— शिरसि पादं विसृज । अहं वेद्मि चाटुकारैरनुनयविदुषस्ते मुकुन्दात् दौत्यैः अभ्येत्य, स्वकृत इह विसृष्टपत्यपत्यन्यलोकाः व्यसृजदकृतचेताः किं नु संधेयम् अस्मिन् ।।१६।।

अनुवाद— अरे भौंरे तुम मेरे पैर पर सिर मत टेकों, मैं जानती हूँ कि तुम अनुनय-विनय करने में चतुर हो । लगता है कि तुम श्रीकृष्ण से इस चाटुकारिता की कला को सीखकर आये हो । देखो हमने श्रीकृष्ण के ही लिए अपने पुत्रों, पतियों और दूसरे सगे संबन्धियों का परित्याग कर दिया, किन्तु उनमें थोड़ी सी भी कृतज्ञता नहीं हैं । वे हमलोगों को छोड़ कर चले गये । बतलाओ ऐसे अकृतज्ञ के साथ सन्धि करने योग्य है क्या ? उन पर कैसे विश्वास किया जा सकता है ?।।१६।।

भावार्थ दीपिका

पादमूले प्रविशन्तं क्षमापयिष्यन्तमिव मत्त्वाह-विसृजेति । शिरसि न्यस्तं पादं विसृज । तथाप्यमुञ्चन्तमाह-वेद्मीति । मुकुन्दादभ्येत्य ततः शिक्षित्वेत्यर्थः । दौत्यैर्दूतकर्मभिश्चाटुकारैः प्रियोक्तिरचनाभिरनुनयविदुषः प्रार्थनाचतुरस्य ते तव सर्वमहं वेद्मि। मुकुन्दवत्त्वमप्यविश्वसनीय इति भावः । ननु तेन किमपराद्धं तत्राह-स्वकृत इति । स्वकृते तदर्थमेव विसृष्टा अपत्यपत्यन्यलोकाः अपत्यानि पतयश्चेतीह लोकोऽन्यलोको धर्मसाध्यश्च याभिस्ता नः अकृतचेता असंयतचित्तो यो व्यसृजदस्मिन्कि नु संधातव्यमिति।।१६।।

भाव प्रकाशिका

चरणों के पास आते हुए देखकर वह गोपी मानती है कि यह मुझसे क्षमा याचना करना चाहता है । इस पर वह गोपी **विसृज० इत्यादि** श्लोक कहती है । वह कहती है अपने शिर पर जो मेरे पैर के रखते हो उसे त्याग दो । फिर भी गोपी के चरणों को नहीं त्यागने वाले भौंरे से वह कहती है । **मुकुन्दादभ्येत्य** अर्थात् श्रीकृष्ण से ही सीख कर । दूतकर्म करने वालों को चाटुकारिता तथा प्रियवचनों के द्वारा अनुनय विनय करने में तुम चतुर हो यह मैं खूब जानती हूँ । अर्थात् जिस तरह श्रीकृष्ण पर विश्वास नहीं किया जा सकता उसी तरह तुम भी विश्वास के योग्य नहीं हो । यदि पूछो कि श्रीकृष्ण ने आपका कौन सा अपराध किया है ? तो मैं बतलाती हूँ । श्रीकृष्ण के लिए ही हमने अपने पुत्र, पति तथा दूसरे सगे संबन्धियों को त्याग दिया । इसके कारण इस लोक को तथा जिनकी प्राप्ति धर्माचरण के द्वारा सम्भव था उसका परित्याग कर दिया, किन्तु श्रीकृष्ण का मन तो असंयत है, वे हमें त्याग कर चले गये । ऐसे व्यक्ति के साथ क्या संधि करनी हैं ?।।१६।।

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ।
बलिमपि बलिमत्त्वाऽवेष्टयद्ध्वाङ्क्षवद्यस्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ।।१७।।

अन्वयः— लुब्धधर्मा, कपीन्द्रं मृगयुरिव विव्यधे, स्त्रीजितः कामयानां स्त्रियं विरूपाम् अकृत, य बलिम् अपि बलिं मत्वा ध्वांक्षवत् अवेष्टयत् तत् असितसख्यैः अलम् दुस्त्यजः तत् कथार्थः ।।१७।।

अनुवाद— हे मधुप कपिराज बालिको उन्होंने बहेलिए के समान छिपकर मारा, अपनी स्त्री सीता के वश

में रहने के कारण, उनको चाहने वाली स्त्री शूर्पणखा का उन्होंने नाक-कान काट कर कुरूप बना दिया । ब्राह्मण के घर जन्म लेकर वामन के रूप में उन्होंने उस बलि को अन्त में वरुण पाश में बाँधकर पाताल में भेज दिया जो बलि उनको अपना सर्वस्व प्रदान कर दिया था । ठीक उसी तरह जैसे कौआ काक बलि देने वाले के द्वारा दी गयी बलि को खा लेता है और फिर अपने साथियों के साथ मिलकर बलि प्रदान करने वाले को घेरकर परेशान करता है । अब तो मुझे उन काले श्रीकृष्ण के ही समान किसी भी काली वस्तु से प्रेम नहीं करना है। यदि तुम पूछो कि जब ऐसी बात है तो फिर उनकी चर्चा क्यों करती हो ? तो इसका उत्तर है कि एक बार जिसे उस श्रीकृष्ण की चसका लग जाती है, वह उसको छोड़ नहीं पाता है यही कारण है कि मैं चाहकर भी उस श्रीकृष्ण की चर्चा छोड़ नहीं पाती हूँ ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

किंच कृष्णस्य पूर्वाणि कर्माण्यनुसंदधाना विभेम्यहमस्मादित्याह–मृगयुरिवेति । मृगयुर्लुब्धक इव य; कपीन्द्रं बालिनं विव्यधे अविध्यत् । लुब्धधर्मा क्रौर्यवान् वा । अलुब्धधर्मेति वा । लुब्धको हि तन्मांसमत्तुकामो विध्यति, अयं तु न तथा, अतो वृथा । कठिन इत्यर्थः । तथा स्त्रियं शूर्पणखां स्त्रीजितः सीतापरतन्त्रः काम एव यानं प्राप्तिसाधनं यस्यातां विरूपां छिन्नकर्णनासिकामकरोद्दाशरथिरूपेण । तथा बलिमपि तद्दत्तं बलिमत्त्वा भक्षयित्वा ध्वाङ्क्षवत्काकवदवेष्टयद्बबन्ध वामनरूपेण। 'बलिमत्त्वोऽक्षिपद्विष्टपाद्य' इति पाठे बलिं पूजां गृहीत्वा विष्टपात्स्वर्गादधोऽक्षिपद्वदित्यर्थः । तत्तस्मादसितस्य कृष्णस्य सख्यैरलम्। एवं चेत्किमिति तं नित्यं गायथ तत्राह–दुस्त्यजस्तु तस्य कथारूपोऽर्थ इति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

किन्तु श्रीकृष्ण ने पहले जिन कर्मों को किया है उसके कारण मैं उनसे डरती हूँ, इस बात को गोपी ने **मृगयुरिव० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा है । उन्होंने श्रीराम रूप से बालि को बहेलिए के समान छिपकर मारा लुब्धधर्मा अर्थात् जिस तरह लुब्धक बहेलिया क्रूर होता है, उसी तरह से क्रौर्यगुण सम्पन्न है । अथवा अलुब्ध धर्मा यह पदच्छेद है । अलुब्ध धर्मा का अर्थ है कि जिस तरह बहेलिया अपने शिकार का मांस खाता है, किन्तु ये वैसा भी नहीं करते । उन्होंने व्यर्थ ही बालि को मारा । यही नहीं अपनी पत्नी सीता के वश में रहने के कारण इन्होंने कामार्त होकर इनको चाहने वाली शूर्पणखा के नाक और कान काटकर उसे कुरूप बना दिया । इसी तरह वामन का रूप धारण करके इन्होंने बलि के द्वारा प्रदत्त पूजा को स्वीकार करके भी अन्त में बलि को उसी तरह वरुण पाश में बाँध दिया जिस तरह ध्वांक्ष (कौआ) काक बलि देने वाले के द्वारा प्रदत्त बलि को खाकर अपने साथियों के साथ बलि प्रदान करने वाले को घेर कर उसे परेशान करता है । **बलिमत्त्वाऽधोक्षिऽपद्विष्टपादयः** इस तरह के पाठ भेद का अर्थ है कि इन्होंने बलि के द्वारा प्रदत्त बलि (पूजा) तो स्वीकार कर ली और अन्त में बलि को स्वर्ग से रसातल में भेज दिया । अतएव इस प्रकार के काले कृष्ण से मित्रता करना ठीक नहीं है। यदि पूछो कि यदि ऐसी बात है तो फिर प्रतिदिन तुमलोग श्रीकृष्ण के गीत को क्यों गाती हो ? तो इसका उत्तर है कि श्रीकृष्ण की कथा रूप अर्थ को छोड़ पाना तो अत्यन्त कठिन है ।।१७।।

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ।।१८।।

अन्वयः— यदनुचरित लीलाकर्ण पीयूषविप्रुट् सकृददनविधूतद्वन्द धर्माः विनष्टाः सपदि दीनं गृहकुटुम्बं उत्सृज्य इह बहवः दीनाः विहंगाः भिक्षुचर्यां चरन्ति ।।१८।।

अनुवाद— श्रीकृष्ण की लीलारूपी कर्णामृत के एक बूंद भी जिसने पी लिया उसके राग-द्वेष सुख-दुख आदि समस्त द्वन्द्व विनष्ट हो जाते हैं । बहुत से लोग तो अपनी दुःखमय गृहस्थी का परित्याग करके अकिंचन

हो जाते हैं । वे अपने पास किसी भी प्रकार के परिग्रह को नहीं रखते हैं और पक्षियों के समान् भिक्षुचर्या (भीख मांगकर खाना) को अपना लेते है, किन्तु श्रीकृष्ण कथामृत का परित्याग नहीं करते हैं । यही दशा हम गोपियों की भी है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

अपि च जानीम एव तत्कथाऽपि त्रिवर्गलतामूलोन्मूलनीति तथापि न त्यक्तुं शक्नुमः, किं कुर्म इत्याह-यदनुचरितेति। यस्यानुचरितमेव लीला तदेव कर्णपीयूषं तस्य विप्रुट् कणिका तस्याः सकृददनं सेवनं तेन विधूता निरस्ता द्वन्द्वधर्मा रागादयो येषां तेऽत एव विनष्टा असत्तुल्या दीनं दुःखितं गृहकुटुम्बं विहाय दीना भोगहीना विहङ्गा अपि भिक्षुचर्यां प्राणवृत्तिमात्रं चरन्त्यतस्त्याज्याः, तथापि त्यक्तुं न शक्नुम इति निन्दापरत्वेऽयं तावच्छ्रौतोऽर्थः । दुस्त्यजत्वेऽपि पारमार्थिकोऽयमर्थः । विधूतद्वन्द्वधर्मा इत्यन्तः समासः पूर्ववत् । ततस्ते च ते अविनष्टाश्चेति समासः । इतरे पुनर्द्वन्द्वधर्माणो विनष्टा एव । सपदि तत्क्षणमेव दीनं तुच्छं गृहसहितं कुटुम्बं विहाय दीना इवाकिंचनाः । 'धीराः' इति वा पाठः । बहवो विहङ्गा हंसा इव सारासारविवेकचतुरा भिक्षुचर्यां पारमहंस्यं चरन्ति । तस्मादेवं परमपुरुषार्थरूपत्वाद्दुस्त्यज एव तत्कथार्थ इति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

गोपियाँ कहती है, हम लोग यह जानती हैं कि श्रीकृष्ण की कथा त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) को विनष्ट कर देने वाली है, फिर भी हमलोग उसका परित्याग नहीं कर सकती हैं, क्या करें ? इस बात को गोपियों ने **यदनुचरित० इत्यादि** श्लोक से कहा है । श्रीकृष्ण का चरित ही लीला है और वह कर्णामृत है, उसकी एक भी कणिका का जिसने एकबार भी सेवन कर लिया वह राग-द्वेष सुख-दु:ख आदि द्वन्द्व धर्मों का परित्याग कर देता है । वह असत् के समान हो जाता है और वह अपने दु:खमय दीन कुटुम्ब परिवार आदि का परित्याग कर देता है । वह समस्त भोगों को छोड़ कर पक्षियों के समान भिखारी बन जाता है । इन सारी बातों को जानकर भी हमलोग श्रीकृष्ण लीलाकथामृत का परित्यग नहीं कर सकती । यह अर्थ सुनने में यद्यपि निन्दापरक हैं । किन्तु दुस्त्यज होने पर भी श्रीकृष्ण लीला कथामृत ही परमार्थ है । विधूतद्वन्द्वधर्मा पर्यन्त समास इस तरह है **यस्यानुचरितमेव लीला तदेव कर्णपीयूषं तस्यविप्रुट् कणिका तस्याः सकृद् अपि सेवनं तेन विधूता निरस्ताः द्वन्द्वधर्माः रागादयो येषां ते** और उसके कारण विनष्ट नहीं हुए । और दूसरे जो द्वन्द धर्म थे वे विनष्ट हो गये । और वे लोग शीघ्र ही तुच्छ गृह सहित कुटुम्ब को छोड़कर दीन के समान अकिंचन हो जाते हैं । अथवा **धीराः** पाठ है । बहुत से लोग हंसों के समान सारा सार विवेक करने में चतुर पुरुष पारमहंस्य को अपना लेते हैं । अतएव श्रीकृष्ण की लीला कथामृत परमपुरुषार्थ स्वरूप होने के कारण दुस्त्यज है ।।१८।।

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधाना कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णबध्वो हरिण्यः ।
ददृशुरसकृदेतन्नखस्पर्शतीव्रस्मररुज उपमन्त्रिन्भण्यतामन्यवार्ता ।।१९।।

अन्वयः— कुलिकरुतम् इव अज्ञ कृष्णावध्वाः हरिण्य इव वयं जिह्मव्याहृतम् ऋतम् इव श्रद्धनाः असकृत् एतत् नखस्पर्शतीव्रस्मररुजः ददृशुः उषन्त्रिन् अन्यवार्ता भण्यताम् ।।१९।।

अनुवाद— जिस तरह बहेलिए के सुमधुर गीत का विश्वास कृष्णसार मृग की हरिणियाँ करके उसके जाल में फंस कर मारी जाती है, उसी प्रकार हम भोली-भाली गोपियाँ भी कपटी कृष्ण की मिट्टी-मिट्ठी बातों को सुनकर उसे सत्य मान ली, और उनके नखस्पर्श से होने वाली काम व्याधिका बार-बार अनुभव करती रही । अतएव श्रीकृष्ण के दूत भौंरे इस विषय में तुम और कुछ नहीं कहो, यदि कहना हो तो दूसरी बातें कहो ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

ननु किमेवं ब्रूषे, पूर्वं त्वयैव साकं रहसि किमेवं नावोचदित्यत आह-वयमिति । हे उपमन्त्रिन् दूत, आस्तामियं वार्ता।

यत; कुलिकस्य मृगयोः रुतं गीतमज्ञा यथा ऋतं सत्यमिति श्रद्धानां: कृष्णस्य हरिणस्य बध्वो भार्या हरिण्यः शरैः क्षताः सत्यो रुजो ददृशु; । एवं जिह्मस्य कुटिलस्य तस्य व्याहृतं ऋतमिव श्रद्धानाः स्पृहयन्त्यो वयमसकृदेतद्ददृशिम । किं तत् । तस्य नखैः स्पर्शस्तेन तीव्रः स्मरस्तेन रुजः पीडाः । तस्मादन्या वार्ता भण्यतां कथ्यतामिति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि तुम ऐसा क्यों कहती हो । पहले तुम्हारे साथ एकान्त में ऐसा नहीं कहा क्या ? इस पर गोपी ने **वयमृतमिव० इत्यादि** अर्थात् हे दूत छोड़ इन बातों को जिस तरह बहेलिए के मधुर गीत को सुनकर कृष्णसार मृग की हरिणियाँ बाणों से मारे जाकर रोगी हो जाती हैं, उसी तरह हम सब श्रीकृष्ण की कही हुई बातों को सत्य मानकर उनपर श्रद्धा करती हुई बार-बार इन सारी बातों को देखी हैं । वह क्या है ? कृष्ण ने नख स्पर्श से उत्पन्न तीव्र काम वेदना और उसके कारण पीड़ा को बढ़ा दिया अतएव छोड़ो कृष्ण सम्बन्धी बातों को दूसरी बातों को कहो ।।१९।।

प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेक्षितः किं वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग ।
नयसि कथमिहास्मान्दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ।।२०।।

अन्वयः— हे प्रयसखे प्रेयसा प्रेषिताः पुनः अगाः किम् ? वरय किम् अनुरुन्धे हे अङ्ग मे माननीयः असि । अस्मान् कथम् इह नयसि दुस्त्यजद्वन्द्व पार्श्वम् । हे सौम्य एतत् उरसि श्रीर्बधुः साकम् आस्ते ।।२०।।

अनुवाद— गोपी कहती हैं भौंरे लगता है कि वहाँ जाकर उनके द्वारा भेजे गये तुम पुनः आये है । हे दूत ! तुम मेरे समादरणीय हो । बोलो क्या चाहते हो तुम हमलोगों को वहाँ क्यों ले जाना चाहते हो । उनके यहाँ जाकर तो लौटना मुश्किल है । उनके वक्षःस्थल पर सदा लक्ष्मीजी उनके साथ रहती है । वहाँ हमारा निर्वाह कैसे होगा ?।।२०।।

भावार्थ दीपिका

परावृत्य गत्वा पुनरागतं प्रत्याह-प्रियसखेति । हे प्रियस्य सखे, प्रेयसा कृष्णेन पुनः प्रेषितः किं त्वमागतोऽसि । अङ्ग हे दूत, मे माननीयः पूज्योऽसि । अतो भवान् किमनुरुन्ध प्राप्तुमिच्छतीत्यर्थः । तद्वरय वृणीष्व । संमानितं प्रत्याह-नयसीति। इह सती अस्मान् दुस्त्यजं द्वन्द्वं मिथुनीभावो यस्य तस्य पार्श्वं समीपं कथं नयसि नेष्यसि । तथा हि-हे सौम्य, श्रीर्नाम वधूः। साकं सहैव सततमास्ते । तत्राप्युरसि वक्षस्येव ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

जाकर पुनः लौटे हुए भौंरे के प्रति गोपी **प्रिय सख इत्यादि** श्लोक कहती हैं । हे प्रियतम श्रीकृष्ण के सखे प्रियतम श्रीकृष्ण ने पुनः तुमको भेजा है क्या ? तुम क्यों आये हो ? तुम मेरे माननीय हों । अतएव बतलाओ तुम क्या चाहते हो ? जो चाहते हो वह माँग लो । सम्मानित मधुकर से कहती है । हमलोग यहाँ हैं, हमलोगों को वहाँ क्यों ले जाना चाहते हो ? क्योंकि उनके यहाँ जाकर वहाँ से लौटना दुष्कर हो जाता है । हे सौम्य ! उनके साथ तो उनकी प्रियतमा लक्ष्मी सदा रहा करती हैं, वह भी अलग नहीं अपितु वे उनके वक्षःस्थल पर ही निवास करती है । अतएव वहाँ हमलोगों का निर्वाह कैसे होगा ।।२०।।

अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनास्ते स्मरति स पितृगेहान्सौम्य बन्धूंश्च गोपान् ।
क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत्कदा नु ।।२१।।

अन्वयः— अपि बत अधुना आर्यपुत्रः मधुपुर्यांक्व आस्ते, हे सौम्य ! सः पितृगेहान् गोपान् बन्धूंश्च स्मरति ? सः नः किङ्करीणां कथा क्वचिदपि गृणीते ? अगुरुसुगन्धं भुजं कदा नु मूर्ध्न्यधास्यत् ।।२१।।

अनुवाद— अच्छा तो बतलाओ गुरुकुल से लौटकर हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण इस समय मथुरापुरी में ही है क्या ? हे सौम्य मधुकर ! कभी वे अपने माता-पिता नन्दजी और यशोदाजी को अपने गृह को तथा गोप बन्धुओं को स्मरण करते हैं क्या ? कभी वे हम दासियों की भी चर्चा चलाते हैं क्या ? वे कभी अगुरु की दिव्य सुगन्धि से युक्त अपनी भुजाओं को हमारे सिर पर रखेंगे क्या ?॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तेन संमन्त्रिता सती ब्रूते । अपि बतेति । बत हर्षे । हे सौम्य, गुरुकुलादागत्यार्यपुत्रः कृष्णोऽधुना किं मधुपुर्यां वर्तते?। कदाचिदपि नोऽस्माकं वार्ताः किं ब्रूते ? अगुरुवत्सुगन्धं भुजं नो मूर्ध्नि कदा नु धास्यतीति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उसके साथ मन्त्रणा करके गोपी कहती है; हे सौम्य ! गुरुकुल से आकर मेरे स्वामी श्रीकृष्ण इस समय मथुरा में ही है क्या ? क्या वे कभी हमलोगों की भी चर्चा करते हैं ? अगुरु के समान सौगन्ध्य सम्पन्न अपनी भुजाओं को हमारे सिर पर वे कभी रखेंगे क्या ?॥२१॥

श्रीशुक उवाच

अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः । सान्त्वयन्प्रियसंदेशैर्गोपीरिदमभाषत ॥२२॥

अन्वयः— अथ एवं निशम्य उद्धवः कृष्णदर्शनलालसाः गोपीः प्रियसन्देशैः सान्त्वयन् इदमभाषत ॥२२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् गोपियों की इस तरह की बात सुनकर श्रीउद्धवजी भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन की लालसा (अभिलाषा) वाली गोपियों को उनके प्रियतम श्रीकृष्ण के सन्देश से सान्त्वना प्रदान करते हुए कहने लगे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णदर्शनोत्सुका गोपीः प्रियस्य संदेशैः सान्त्वयन् प्रथमं तावदिदमभाषत ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए उत्सुक बनी हुई गोपियों को उन सबों के प्रियतम श्रीकृष्ण के संदेश से सान्त्वना प्रदान करते हुए उद्धवजी ने सर्वप्रथम यह कहा ॥२२॥

उद्धव उवाच

अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः । वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥२३॥

अन्वयः— अहो यूयं पूर्णार्थाः स्म, भवत्यः लोकपूजिताः, यासां भगवति वासुदेवे इति मनः अर्पितम् ॥२३॥

उद्धवजी ने कहा

अनुवाद— गोपियों तुमलोग कृतकृत्य हो । तुमलोग संसार के सभी प्राणियां के लिए पूजनीय हो, क्योंकि तुम लोगों का मन भगवान् श्रीकृष्ण में इस प्रकार से लगा हुआ है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तदाह षड्भिः-अहो इति । स्म नूनं यूयं पूर्णार्था कृतार्थाः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

गोपियों को श्रीभगवान् का संदेश छह श्लोकों में बतलाते हैं । गोपियों निश्चित रूप से तुमलोगों का जीवन सफल है ॥२३॥

दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः । श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥२४॥

अन्वयः— दानव्रततपोहोम जपस्वाध्यायसंयमैः अन्यैश्चश्रेयोभिः कृष्णे हि भक्तिसाध्यते ॥२४॥

अनुवाद— दान, व्रत, तप, होम, जप, स्वाध्याय (वेदाध्ययन) ध्यान धारणा और स्वधर्म के द्वारा श्रीभगवान् में भक्ति की प्राप्ति का प्रयास किया जाता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

श्रेयोभिः श्रेयः साधनैः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

श्रेयोभिः अर्थात् कल्याण के साधनों से ॥२४॥

भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमा । भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥२५॥

अन्वयः— दिष्ट्या भवतीभिः उत्तमश्लोके भगवति भक्तिः मुनीनामपि दुर्लभा प्रवर्तिता ॥२५॥

अनुवाद— यह बड़े सौभाग्य की बात है कि तुमलोगों ने पवित्र कीर्ति भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति उसी सर्वोत्तम प्रेमाभक्ति को प्राप्त किया है और उसका आदर्श उपस्थित किया है जो बड़े-बड़े मुनियों को भी दुर्लभ है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अनुत्तमा अतिश्रेष्ठा ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

अनुत्तमा अर्थात् अत्यन्त श्रेष्ठ ॥२५॥

दिष्ट्या पुत्रान्पतीन्देहान्स्वजनान्भवनानि च । हित्वाऽवृणीत यूयं यत्कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥२६॥

अन्वयः— दिष्टया यूयं पुत्रान् पतीन् देहान् स्वजनान् भवनानि च । हित्वा यत् कृष्णाख्यं परम् पुरुषं अवृणीत ॥२६॥

अनुवाद— यह भी बड़े ही सौभाग्य की बात है कि तुमलोग पुत्रों, पतियों, देहों अपने सगे संबन्धियों तथा गृहों का परित्याग करके जो सबों के प्रति परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण का वरण की हो ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अवृणीत वृतवत्यः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अवृणीत अर्थात् वरण किया ॥२६॥

सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे । विरहेण महाभागा महान्मेऽनुग्रहः कृतः ॥२७॥

अन्वयः— महाभागाः अधोक्षजे विरहेण सर्वात्मभावः अधिकृतः भवतीनां मे महान् अनुग्रहः कृतः ॥२७॥

अनुवाद— महाभाग्यवती गोपियों भगवान् श्रीकृष्ण के विरह के राग आप लोगों ने उन इन्द्रियातीत परमात्मा प्रति उस भाव को प्राप्त कर लिया है जो सभी वस्तुओं में परमात्मा का दर्शन कराता है । तुमलोगों ने अपने उस भाव को मेरे सामने भी प्रकट किया है । यह तुमलोगों ने मेरे ऊपर बहुत बड़ी कृपा की है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

सर्वात्मभाव एकान्तभक्तिः । अधिकृतः प्राप्तः । भगवत्प्रेमसुखप्रदर्शनेन ममैव महाननुग्रहः कृत इति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

सर्वात्मभाव: अर्थात् ऐकान्तिक भक्ति: । अधिकृत: अर्थात् प्राप्त किया है । श्रीभगवान् के प्रति प्रेमजन्य सुख प्रदर्शन के द्वारा मेरे ऊपर कृपा की है ।।२७।।

श्रूयतां प्रियसंदेशो भवतीनां सुखावहः । यमादायागतो भद्रा अहं भर्तू रहस्करः ।।२८।।

अन्वयः— अहं भर्तुः रहस्करः । भवतीनां सुखावहः प्रियसन्देशः श्रूयताम् । हे भद्राः यम् आदाय अहम् आगतः।।२८।।

अनुवाद— देवियों मैं अपने स्वामी का गुप्त कार्य करने वाला हूँ । आपलोग अपने प्रियतम के संदेश को सुनें । वह आपको परम सुख प्रदान करने वाला है । कल्याणियों उसी को लेकर मैं यहाँ आया हूँ ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

भर्तुः कृष्णस्य रहस्करो रहस्यकार्यकर्ता ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

अपने स्वामी का गुप्त कार्य करने वाला ।।२८।।

श्रीभगवानुवाच

भवतीनां वियोगो मे नहि सर्वात्मना क्वचित् । यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ।।
तथाहं च मनःप्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः ।।२९।।

अन्वयः— यथा खं वाय्वग्निः जलं मही भूतानि भूतेषु तथाऽहं च मनः प्राण भूतेन्द्रियगुणाश्रयः भवतीनां मे वियोगः सर्वात्मना क्वचित् न ।।२९।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— जिस तरह आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी ये पाँचों महाभूत सभी भूतों में व्याप्त हैं, उसी तरह मैं भी मन, प्राण, पंचभूत इन्द्रिय और उनके विषयों का आश्रय हूँ । वे मुझमें हैं और मैं उन सबों में हूँ । अतएव सबों का उपादान कारण होने के कारण आपलोगों का मुझसे कभी भी बिल्कुल वियोग नहीं होता है क्योंकि मैं सबमें अनुगत हूँ ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

भवतीनां मे मया सह वियोगो नास्ति । कुतः । सर्वात्मना सर्वस्योपादानकारणेन । अतएव सर्वेषु मनआदिकार्येष्वहमनुगतत्वेन स्थित इति सदृष्टान्तमाह-यथेति । भूतेषु चराचरेषु महाभूतानि । वाय्वग्निर्वायुसहितोऽग्निः वायुश्चाग्निश्चेत्यर्थः । यथा तथाऽहं चेति। मनआदीनि कार्याणि गुणाः कारणं तेषामाश्रयत्वेनानुगत इत्यर्थः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

आपलोगों का मुझसे वियोग नहीं है क्योंकि मैं सर्वात्मा अर्थात् सबों का उपादान कारण हूँ । अतएव मन आदि जितने भी कार्य हैं मैं सबमें व्यापक हूँ । उदाहरणार्थ जैसे आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवी ये पाँचों महाभूत सम्पूर्ण चराचरों में व्याप्त हैं । वाय्वग्नि अर्थात् वायु के साथ अग्नि । अर्थात् वायु और अग्नि (तेज) उसी तरह से मैं भी सर्वत्र अनुगत हूँ । मन आदि कार्य हैं और सत्त्वादि गुण कारण हैं, उन सबों का आश्रय होने के कारण मैं उन सबों में अनुगत हूँ ।।२९।।

आत्मन्येवात्मनात्मानं सृजे हन्म्यनुपालये । आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना ।।३०।।

अन्वयः— आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना आत्मनि एव आत्मना आत्मानं सृजे, हन्मि अनुपलये च ।।३०।।

अनुवाद— मैं ही अपनी माया के द्वारा भूत, इन्द्रिय और उनके विषय होकर उनका आश्रय बन जाता हूँ। और स्वयं निमित्त भी होकर अपने आपकी सृष्टि करता हूँ उसका संहार करता हूँ और पालन करता हूँ ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

ननु कारणत्वे सर्वानुगतत्वे च कार्यकारणभेदः स्यादत आह-आत्मन्येवेति । ननु नित्यसिद्धस्य कुतः सृष्ट्यादिरूपता अत आह-भूतेन्द्रियगुणात्मना । बुद्धीन्द्रियेति वा पाठः । तद्रूपेणेति । ननु निर्विकारस्य कुतस्तद्रूपतेति तत्राह-आत्ममायानुभावेनेति।।३०।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि कारण और व्यापक होने पर तो कार्य और कारण में भेद होगा । इस पर कहते हैं, अपने मे ही अपने से अपनी सृष्टि, संहार और पालन करता हूँ । प्रश्न है कि आप तो नित्यसिद्ध हैं अतएव आपकी सृष्ट्यादि रूपता कैसे सम्भव है भूत, इन्द्रिय तथा गुण रूप से अथवा **बुद्धीन्द्रिय** यह पाठ है । प्रश्न है कि आप निर्विकार हैं अतएव आपकी बुद्धिन्द्रियादि रूपता कैसे हो सकती है ? इसका उत्तर है कि अपनी माया के द्वारा।।३०।।

आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोऽनुगणान्वयः । सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥३१॥

अन्वयः— ज्ञानमयः शुद्ध आत्मा व्यतिरिक्तः, अगूणान्वयः सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्भि र्मायावृतिभिः ईयते ।।३१।।

अनुवाद— आत्मज्ञानस्वरूप तथा शुद्ध हैं माया तथा माया के कार्यों से भिन्न हैं । उसका किसी भी गुण से स्पर्श नहीं होता । माया की जो तीन वृत्तियाँ है सुषुप्ति, स्वप्न और जागर उन सबों के द्वारा वह अखण्ड आत्मा कभी प्राज्ञ प्रतीत होता है, कभी तैजस तथा कभी विश्व प्रतीत होता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

नन्वात्मनो भूतादिरूपत्वे तद्दोषप्रसङ्गः स्यात्तत्राह-आत्मेति । आत्मा तु शुद्धः । कुतः । अगुणान्वयः न गुणेष्वन्वेतीति तथा । तत्कुतः । व्यतिरिक्तः । तदपि कुतः । ज्ञानमयो ज्ञानस्वरूपः । नन्वहंप्रत्यये स्वसंवेद्यमेवात्मनो नानावस्थावत्त्वमिति कुतः शुद्धतेति तत्राह-सुषुप्तीति । मायाकार्यमनोवृत्तिभिर्विश्वतैजसप्राज्ञरूपेण प्रतीयते, न स्वत इत्यर्थः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि यदि आत्मा भूतादिरूप होगा तो फिर भूतों में होने वाले दोषों से उसके संपृक्त होने का प्रसङ्ग होगा । इसके उत्तर में कहते हैं कि आत्मा तो शुद्ध है क्योंकि उसका किसी भी गुण से संबन्ध नहीं होता है । यदि पूछो कि ऐसा क्यों तो इसका उत्तर है कि वह ज्ञान स्वरूप हैं । प्रश्न होता है कि मैं 'मैं' इस रूप से होने वाली प्रतीति में आत्मा के स्वसंवेद्य अनेक अवस्थाओं की प्रतीति होती है, अतएव उसको शुद्ध कैसे माना जा सकता है ? इस पर कहते हैं **सुषुप्तीति०** अर्थात् माया के कार्य जो मन की वृत्तियाँ सुषुप्ति, स्वाप तथा जागर नाम की वृत्तियाँ हैं उन सबों के कारण ही वह विश्व तैजस और प्राज्ञरूप से प्रतीत है, स्वाभाविक रूप से नहीं॥३१॥

येनेन्द्रियार्थान्ध्यायेत मृषा स्वप्नवदुत्थितः । तन्निरुन्ध्यादिन्द्रियाणि विनिद्रः प्रत्यपद्यत ॥३२॥

अन्वयः— उथितः स्वप्नवत् येन इन्द्रियार्थान् मृषाध्यायेत् तत् इन्द्रियाणि निरुन्ध्यात् विनिद्रः प्रत्यपद्यत ।।३२।।

अनुवाद— जिस तरह जगे हुए मनुष्य को स्वप्न के पदार्थ मिथ्या प्रतीत होते हैं उसी तरह सोचना चाहिए कि जागरावस्था में भी प्रतीत होने वाले भी इन्द्रियों के विषयमिथ्या ही हैं । अतएव विषयों की ओर प्रवृत्त होने वाली इन्द्रियों को विषयों में प्रवृत्त होने से रोके और जैसे वह सोकर उठा हो उसी तरह मेरा साक्षात्कार करे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

कुतः । मनोनिरोधे तदभावात्, इति व्यतिरेकं दर्शयितुं मनोनिरोधं विधत्ते-येनेति । उत्थितः पुमान् यथा मिथ्याभूतमेव

स्वप्नं ध्यायति, एवं बाधितानपीन्द्रियार्थान् शब्दादीन्येन मनसा ध्यायेच्चिन्तयेत् । ध्यायंश्च येनेन्द्रियाणि प्रत्यपद्यत प्राप । तन्मनो विनिद्रोऽनलसः संनिरुन्ध्यान्नियच्छेदिति ।।३२।।'

भाव प्रकाशिका

क्योंकि मन का निरोध हो जाने पर उसका अभाव हो जाता है । इसी तरह **येन० इत्यादि** श्लोक के द्वारा। जिस तरह जगा हुआ मनुष्य स्वप्न को मिथ्या ही जानता है । उसी तरह से बाधित भी इन्द्रियों के विषय शब्द आदि को जिस मन से चिन्तन करता है और जाग करके जिसके द्वारा इन्द्रियों को प्राप्त करता है । उस मन को सावधानी पूवर्क इन्द्रियों का चिन्तन करने से रोके ।।३२।।

एतदन्तः समाम्नायो योगः सांख्यं मनीषिणाम् । त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रान्ता इवापगाः ।।३३।।

अन्वयः— समुद्रान्ताः आपगा इव मनीषिणाम् समाम्नायः योगः सांख्यं त्यागः तपः दमः सत्यं एतदन्तः ।।३३।।

अनुवाद— जिस तरह सभी नदियाँ अन्त में जाकर समुद्र में ही मिलकर समाप्त हो जाती हैं उसी तरह मनीषी पुरुषों का वेदाभ्यास, योगसाधना, आत्मानात्मविवेक, त्याग, तपस्या, इन्द्रियसंयम तथा सत्य पालन आदि समस्त धर्मों का पर्यवसान मेरी प्राप्ति में ही हो जाती है । सबों का तात्पर्य मेरे साक्षात्कार में ही है ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

तावता च कृतार्थो भवतीत्याह-एतदन्त इति । एष मनोनिरोधः अन्तः समाप्तिः फलं यस्य सः । समाम्नयो वेदः । स तत्र पर्यवस्यतीत्यर्थः । योगोऽष्टाङ्गः । सांख्यमात्मानात्मविवेकः । त्यागः संन्यासः । तपः स्वधर्मः । दम इन्द्रियदमनम्। मार्गभेदेऽप्येकत्र पर्यवासने दृष्टान्तः-समुद्रान्ता आपगा नद्य इवेति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

मनुष्य मेरा साक्षात्कार करके ही कृतार्थ हो जाता है, इस बात को **एतदन्तः** श्लोक से कहा गया है । इस मनोनिरोध में ही सबों काा फल है । वेदाध्ययन का भी इसी अर्थ में पर्यवसान होता है । अष्टाङ्गयोग सांख्य आत्मानात्मविवेक, त्याग अर्थात् संन्यास, तपस्या अर्थात् स्वधर्म का पालन । दमः अर्थात् इन्द्रियों को वशीकृत करना, इन भिन्न-भिन्न मार्गों का पर्यवसान मनोनिरोध में ही होता है । यह उसी तरह होता है जिस तरह सभी नदियों का पर्यवसान जाकर समुद्र में हो जाता है ।।३३।।

यत्त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम् । मनसः संनिकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ।।३४।।

अन्वयः— यत्तु अहं प्रियोदृशाम् भवतीनां दूरे वर्ते मनसः सन्निकषार्थं मदनुध्यान काम्यया ।।३४।

अनुवाद— मैं जो तुमलोगों के नेत्रों का प्रियतम जीवन सर्वस्व तुमलोगों से दूर इसलिए हूँ कि तुमलोग मेरा सदा चिन्तन करते रहो । शरीर से दूर रहने पर मन से मेरे सन्निधान का अनुभव करो ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

ननु किमन्यानिवास्मानात्मविद्यया प्रलोभयसि, वयं तु सर्वसुन्दरसकलगुणगणालंकृतेन त्वया विरहं नैव सहाम इति चेदत आह-यत्त्वहमिति । दृशां दूरे यद्वर्ते तन्मदनुध्यानार्थम् । तच्च ध्यानं मनसः संनिकषार्थमिति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि यह क्या है कि पराये के समान हम लोगों को इस आत्मविद्या के द्वारा आप प्रलोभित कर रहे हैं । हमलोंग सर्वाङ्ग सुन्दर सकल गुण समूह से अलंकृत आपके विरह को नहीं सह पाती हैं । इसका उत्तर हैं कि मैं जो तुमलोगों से दूर रह रहा हूँ कि तुमलोग मेरा ध्यान करती रहो । उस ध्यान का प्रयोजन है कि मैं तुमलोगों के मन के सन्निकट में बना रहूँ ।।३४।।

यथा दूरचरे प्रेष्ठें मन आवश्यि वर्तते । स्त्रीणां च न तथा चेतः संनिकृष्टेऽक्षगोचरे ॥३५॥

अन्वयः— स्त्रीणां मनः यथा दूरचरे प्रेष्टं मन आविश्य वर्तते तथा सन्निकृष्टे अक्षिगोचरे चेतः न ॥३५॥

अनुवाद— स्त्रियों का मन जिस तरह अपने दूर देश वासी प्रियतम में लगा रहता है, उस तरह से सन्निकट तथा आँखों के सामने रहने वाले प्रियतम में नहीं लगता है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

एतदुपपादयति त्रयेण-यथा दूरचरे इति ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का प्रतिपादन **दूरचरे० इत्यादि** तीन श्लोकों के द्वारा करते हैं ॥३५॥

मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत् । अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥३६॥

अन्वयः— विमुक्ताशेष वृत्ति कृत्स्नं मनः मयि आवेश्य मां नित्यं अनुस्मरन्त्यः अचिरान् माम् उपैष्यथ ॥३६॥

अनुवाद— सभी वृत्तियों से रहित मन को पूर्ण रूप से मुझमें लगाकर तथा निरन्तर मेरा स्मरण करती हुई तुमलोग शीघ्र ही मुझको प्राप्त कर लोगी ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन्व्रज आस्थिताः । अलब्धरासाः कल्याण्यो माऽऽपुर्मद्वीर्यचिन्तया॥३७॥

अन्वयः— अस्मिन् वने रात्र्यां क्रीडता मया याः व्रजे आस्थिताः अलव्धरासाः कल्याण्यः मदवीर्य चिन्तया मा आपुः॥३७॥

अनुवाद— इस वृन्दावन में शरद् पूर्णिमा की रात्रि में रासक्रीडा करते हुए मेरे रास को जो गोपियाँ नहीं प्राप्त कर सकीं पतियां आदि के रोकने के कारण व्रज में ही रुक गयी वे सव मेरी लीला का चिन्तन करके मुझको प्राप्त कर लीं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

उपैष्यथेति माधुर्यमात्रमिति चेदत आह-या इति । हे कल्याण्यः, स्वभर्तृभिः प्रतिवद्धाः याः वने क्रीडता मया सहालव्धक्रीडास्तास्तदैव मामापुः प्रापुः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

तुमलोग मुझे प्राप्त कर लोगी यह तो केवल मिठी वात है; यदि ऐसा कहो तो ऐसी बात नहीं है, हे कल्याणियां पतियां द्वारा रोक दिए जाने के कारण जो गोपियाँ मेरे साथ रास क्रीडा में भाग नहीं ले सकीं उन सबों ने उसी समय मुझको प्राप्त कर ली ॥३७॥

श्रीशुक उवाच

एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः । ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्संदेशागत स्मृतीः ॥३८॥

अन्वयः— एवं प्रियतमादिष्टामाकर्ण्य ताः तत् सन्देशागतस्मृतीः प्रीताः व्रजयोषितः उद्धवम् ऊचुः ॥३८॥

अनुवाद— इस तरह से अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के संदेश को सुनकर गोपियों को बड़ी ही प्रसन्नता हुई। उस सन्देश को सुनने से श्रीभगवान् की लीलाओं की उन सबों को याद आ गयी और गोपियों ने उद्धवजी से कहा ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

तस्य संदेशेनागता स्मृतिर्यासां ताः । प्रथमार्थे द्वितीया ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् के सन्देश से उन गोपियों को भगवान् की लीलाओं की याद आ गयी । स्मृति: में प्रथमा के अर्थ में द्वितीया विभक्ति हुई हैं ॥३८॥

गोप्य ऊचु:

दिष्ट्याऽहितो हतः कंसो यदूनां सानुगोऽघकृत् । दिष्ट्याप्तैर्लब्धसर्वार्थैः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना॥३९॥

अन्वयः— दिष्ट्या यदूनां अघकृत् अहितः कंसः सानुगः हतः दिष्ट्या अधुना आप्तैः लब्धसवार्थैः अच्युतः कुशली आस्ते ॥३९॥

गोपियों ने कहा

अनुवाद— उद्धवजी यह सौभाग्य की बात है कि यदुवंशियों को दुःख देने वाला कंस अपने अनुयायियों के साथ मारा गया । यह भी कम आनन्द की बात नहीं है कि श्रीकृष्ण के बन्धु-बान्धवों के सभी मनोरथ पूर्ण हो गये और श्रीकृष्ण उन सब लोगों के साथ मथुरा में निवास कर रहे हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

यदूनामहितः शत्रुः । अघकृद्दुःखदः । दिष्ट्येत्यानन्दे । आप्तैः प्राप्तैहितैषी सह ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

यदुवंशिओं का शत्रुः । अघकृत अर्थात् दुःख देने वाला, दिष्टायेत्यानन्दे दिष्टया पद यहाँ आनन्द के अर्थ में प्रयुक्त है । **आप्तै०** अर्थात् प्राप्त अथवा हितैषियों के साथ ॥३९॥

कच्चिद्गदाग्रजः सौम्य करोति पुरयोषिताम् । प्रीतिं नः स्निग्धसव्रीडहासोदारेक्षणार्चितः ॥४०॥

अन्वयः— सौम्य नः स्निग्ध सव्रीडहासोदारेक्षणार्चितः गदाग्रजः कच्चित् पुरयोषितां प्रीतिं करोति ॥४०॥

अनुवाद— हे सौम्य उद्धवजी हमारी प्रेमभरी लजीली हँसी मुस्कान और उन्मुक्त चितवन से पूजित श्रीकृष्ण मथुरा की नारियों को प्रसन्न करते हैं क्या ?॥४०॥

भावार्थ दीपिका

अन्या ऊचुः-कच्चिदिति । नोऽस्माकं करणीयां प्रीतिं कच्चित्पुरयोषितां करोति । स्निग्धं च तत्सव्रीडहासेनोदारमीक्षणं तेनार्चितस्ताभिरस्माभिर्वा ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी गोपियों ने पूछा हमलोगों को करने योग्य प्रेम क्या मथुरा नगरी की वनिताओं से करते हैं क्या ? प्रेमभरी लज्जायुक्त हँसी और उन्मुक्त प्रेक्षण उन सबों के द्वारा अथवा हमलोगों के द्वारा ॥४०॥

कथं रतिविशेषज्ञः प्रियश्च वरयोषिताम् । नानुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुभाजितः ॥४१॥

अन्वयः— रतिविशेषतः वरयोषिताम् प्रियश्च तद्वाक्यैः विभ्रमैः च अनुभाजितः कथं न अनुबध्येत ॥४१॥

अनुवाद— दूसरी गोपयों ने कहा श्रीकृष्ण तो प्रेम की मोहनी कला के विशेषज्ञ हैं और सभी श्रेष्ठ स्त्रियाँ उनसे प्रेम भी करती हैं । अतएव उन सबों की मीठी बातों तथा हाव-भाव से देखे गये श्याम उन सबों पर क्यों नहीं रीझते ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

अन्या ऊचुः-कथमिति । तासां वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुभाजितः पूजितः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी गोपियों ने कहा मीठे वचनों औंर हाव-भावों से पूजित ॥४१॥

अपि स्मरति नः साधो गोविन्दः प्रस्तुते क्वचित् । गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथान्तरे॥४२॥

अन्वयः— हे साधो ! गोविन्दः पुरस्त्रीणां प्रस्तुते गोष्ठी मध्ये स्वैरकथान्तरे नः ग्राम्याः अपिस्मरति ।।४२।।

अनुवाद— दूसरी गोपियों ने कहा-हे साधो आप यह बतलायें कि नगर की नारियों की मण्डली में जब कोई बात चलती है और श्रीकृष्ण स्वच्छन्द रूप से जब प्रेम की बातें करते हैं तो वे कभी हम गँवारों की भी चर्चा करते हैं क्या ?।।४२।।

भावार्थ दीपिका

पुनरन्या ऊचुः-किमनया चिन्तया, अस्मान् क्वचित्प्रस्तुतप्रसङ्गे स्मरति किम् । ग्राम्या अविदग्धाः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

फिर दूसरी गोपियों ने कहा यह क्या सोचना है कहीं पर प्रेम का प्रसङ्ग चलने पर हम गँवारों को कभी स्मरण करते हैं क्या ?।।४२।।

ताः किं निशाः स्मरति यासु तदाप्रियाभिर्वृन्दावने कुमुदकुन्दशशाङ्करम्ये ।
रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्यामस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ।।४३।।

अन्वयः— ताः निशाः कदाचित् स्मरति किम् यासु तदा कुमुदकुन्दशशाङ्करम्ये वृन्दावने क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठयाम् प्रियाभि; अस्माभिः ईडितमनोज्ञकथः रेमे ।।४३।।

अनुवाद— श्रीकृष्ण क्या उन रात्रियों का कभी स्मरण करते हैं जब कुमुदिनी और कुन्दके पुष्प खिले हुए थे तथा चन्द्रमा की चाँदनी से वृन्दावन मनोहर बना हुआ था, उस समय उन्होंने हम सबों के साथ रास रचाया। और हमलोगों के साथ नृत्य भी किया । वे हमलोगों के साथ नाना प्रकार के विहार कर रहे थे ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

अन्या ऊचुः– ताः किमिति । कुमुदैः कुन्दैः शशाङ्केन च रम्ये, वृन्दावने क्वणन्ति चरणनूपुराणि यस्यां तस्यां रासगोष्ठ्यामस्माभिः प्रियाभिरीडिता मनोज्ञाः कथा यस्य स तदा यासु निशासु रेमे ताः कदाचित्कि नु स्मरति वा, न वेति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

दूसरी गोपियों ने **किमितिश्लोक** के द्वारा कहा कुमुद, कुन्द और चन्द्रमा से मनोहर बने वृन्दावन में जिसमें चरणों के नूपुर बज रहे थे उस रास की मण्डली में हम प्रियतमाओं ने जिन रात्रियों में उनकी मनोहर लीलाओं का गान किया, उन रात्रियों को वे कभी स्मरण करते हैं क्या ?।।४३।।

अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा । संजीवयन्नु नो गात्रैर्यथेन्द्रो वनमन्बुदैः ।।४४।।

अन्वयः— स्वकृता शुचा तप्ताः नः गात्रै संजीवयन् नु यथा इन्द्रः अम्बुदै; यथा दाशार्हः एष्यति अपि ।।४४।।

अनुवाद— हे उद्धवजी श्रीकृष्ण के ही वियोग से सन्तप्त हम सबों के सन्ताप को जिस तरह इन्द्र वर्षा करके वन के संताप को दूर कर देते है, उसी तरह हम सबों के संताप को अपने कर स्पर्श आदि से दूर करने के लिए यहाँ कभी आयेंगे क्या ?।।४४।।

भावार्थ दीपिका

स्वनिमित्तेन शोकेन तप्ता नोऽस्मान्गात्रैः करस्पर्शादिभिः संजीवयन्कि नु इहैष्यतीति ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

किसी दूसरी गोपी ने पूछा उद्धवजी श्रीकृष्ण के विरह के ही कारण हम सभी गोपियाँ सन्तप्त हैं ? जिस

तरह इन्द्र वर्षा करके वन के संताप को दूर किया करते हैं उसी तरह अपने कर स्पर्शादि के द्वारा हम सबों के सन्ताप को दूर करने के लिए यहाँ कभी आयेंगे क्या ?॥४४॥

कस्मात्कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताहितः । नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृद्वृतः ॥४५॥

अन्वयः— हताहितः प्राप्तराज्यः नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृदवृतः कृष्णः इहकस्मात् एष्यति ॥४५॥

अनुवाद— दूसरी गोपियों ने कहा अब तो उन्होंने शत्रु को मारकर राज्य को प्राप्त कर लिया है । अब वे बड़े-बड़े राजाओं की कन्याओं से विवाह करके प्रसन्नता पूर्वक अपने मित्रों के साथ रहेंगे । श्रीकृष्ण क्या करने के लिए यहाँ आयेंगे ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

अन्या ऊचुः-कस्मादिति । अनन्यगतित्वेन पूर्वमत्रावसत्, संप्रति महदैश्वर्यं प्राप्तः कस्मादिहागमिष्यतीति ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी गोपियों ने **कस्मात्० इत्यादि** श्लोक से कहा पहले श्रीकृष्ण का कोई आश्रय नहीं रहा अतएव वे यहाँ निवास करते थे । अब तो वे महान ऐश्वर्य को प्राप्त कर लिए हैं । वे यहाँ क्या करने के लिए आयेंगे ॥४५॥

किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः । श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेतार्थः कृतात्मनः ॥४६॥

अन्वयः— महात्मनः श्रीपतेः आप्तकामस्य कृतात्मनः अस्माभिः वनौकोभिः अन्याभि; वा किं अर्थ; क्रियेत ॥४६॥

अनुवाद— दूसरी गोपी ने कहा महात्मा श्रीकृष्ण तो स्वयं लक्ष्मीपति हैं उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हैं, वे कृतकृत्य है हम वनवासिनियों से अथवा दूसरों से उनका कौन सा प्रयोजन सिद्ध होगा ?॥४६॥

भावार्थ दीपिका

अन्यास्तु परमार्थमूचुः-किमस्माभिरिति । वनचरीभिरस्माभिरन्याभिर्वा राजकन्याभिर्महात्मनो धीरस्य । किंच श्रीपतेः। तदपि आस्ताम् । स्वत एवाप्तकामस्यात एव कृतात्मनः पूर्णस्य किं कोऽप्यर्थः क्रियेत, न कश्चिदिति ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी गोपियों ने वास्तविक बात कहा वन में रहने वाली हमलोगों से अथवा राजकन्याओं से महात्मा धैर्य सम्पन्न, लक्ष्मीजी के पति, वह भी छोड़ो वे स्वभावतः अवाप्त समस्त काम हैं फलतः वे कृतकृत्य हैं । अपने आप में परिपूर्ण हैं, अतएव कोई भी उनका कौन सा कार्य करेगा ?॥४६॥

परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिङ्गला । तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाप्याशा दुरत्यया ॥४७॥

अन्वयः— स्वैरिणी अपिहि पिङ्गला आह नैराश्यं ही परं सौख्यम् तज्जानतीनां तथापि कृष्णे नः आशा दुरत्यया॥४७॥

अनुवाद— वेश्या होकर भी पिङ्गला ने ठीक ही कहा है कि निराशा ही सबसे बड़ा सुख है । इस बात को हमलोग जानती भी हैं, फिर भी श्रीकृष्ण से मिलने की आशा लगाये हैं उसे छोड़ नहीं पाती हैं । यह आशा ही हम सबों का जीवन है ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

यतोऽघटमाना या कृष्णस्य सङ्गतिः सैवास्मान्व्याकुलयति, अतो नैराश्यमेव परमं सुखं तच्चातिदुष्करमित्याहुः-परं सौख्यमिति । स्वैरिणी कामचारिणी ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की सङ्गति असम्भव है । वही हमलोगों को व्याकुल बनाये रहती है । अतएव निराशा

ही सर्वोत्कृष्ट सुख है । किन्तु हमलोगों को निराशा होना भी अत्यन्त कठिन है । **परं सौख्यम्** अर्थात् सर्वोत्कृष्ट सुख । स्वैरिणी अर्थात् वेश्या ।।४७।।

क उत्सहेत संत्यक्तुमुत्तमश्लोकसंविदम् । अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरङ्गान्न च्यवते क्वचित् ।।४८।।

अन्वयः— उत्तम श्लोक संविदम् सन्त्यक्तुं कः उत्सहेत ? यस्य अनिच्छतः अपि श्रीः अङ्गात् क्वचिन्नच्यवते।।४८।।

अनुवाद— हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण ने एकान्त में हमलोगों से जो मीठी-मीठी बातें की उसको कौन भूल सकता है । उनकी इच्छा नहीं रहने पर भी श्रीदेवी उनके चरणों में लिपटी रहती हैं । वे एकक्षण के लिए भी उनका साथ नहीं छोड़ती हैं ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

संविदमेकान्तवार्ताम् ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

संविदम् अर्थात् एकान्त में की गयी बातें ।।४८।।

सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे । संकर्षणसहायेन कृष्णेनाचरिताः प्रभो ।।४९।।

अन्वयः— हे प्रभो ! इमे सरित् शैल वनोद्देशा गावः वेणुरवाः संकर्षणसहायेन कृष्णेनाचरिताः ।।४९।।

अनुवाद— हे उद्धवजी यह वही यमुना नदी है जिसमें श्रीकृष्ण विहार करते थे । यही वही गोवर्धन पर्वत है जिसके शिखर पर बैठकर श्रीकृष्ण अपनी मोहिनी वंशी बजाया करते थे । यह वही वन प्रदेश है जिसमें वे रात्रि के समय रासलीला करते थे । ये वही गायें है जिनको चराने के लिए सुबह शाम श्रीकृष्ण प्रियतम बाँसुरी बजाते हुए और हमलोगों को पहले के ही समान सुनाई देती है । इन सबों का प्रियतम श्रीकृष्ण ने बलरामजी के साथ सेवन किया है ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

किंच तद्विस्मृतौ न तावद्दुःखमस्ति, सापि नास्माकं संभवतीत्याहुः-सरिच्छैलेति त्रिभिः । आचरिताः सेविताः ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

हमलोग श्रीकृष्ण को भूल सकती थी इसमें कोई भी कष्ट नहीं था किन्तु वह भी हमलोगों के लिए सम्भव नहीं है इस बात को गोपियो ने **सरिच्छैल० इत्यादि** तीन श्लोकों से कहा है । **आचरिताः** अर्थात् सेवन किया है ।।४९।।

पुनः पुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं बत । श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ।।५०।।

अन्वयः— बत नन्दगोपसुतं पुनः पुनः स्मारयन्ति । श्रीनिकेतैः तत्पदकैः विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ।।५०।।

अनुवाद— यहाँ की ये सारी चीजें जो लक्ष्मीजी के निवासस्थानभूत उनके चरण चिह्नों से अङ्कित है इन सबों को देखकर हमसबों को श्रीकृष्ण की याद आती रहती है । अतएव हमलोग किसी भी हालत में श्रीकृष्ण को नहीं भूल सकती हैं ।।५०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५०।।

गत्या ललितयोदारहासलीलावलोकनैः । माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तं विस्मरामहे ।।५१।।

अन्वयः— ललितया गत्या, उदारहास लीलावलोकनैः माध्व्या गिरा, हृतधियः कथं तं विस्मरामहे ।।५१।।

अनुवाद— उनकी वह मनोहर चाल, उन्मुक्त हँसी, विलासपूर्ण चितवन, माधुर्यपूर्ण वाणी, इन सबों ने हमलोगों के चित्त को चुरा लिया है । भला आप ही बतलायें कि हमलोग प्रियतम श्रीकृष्ण को कैसे भूलें ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

हे उद्धव, तं कथं विस्मरामेति ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

हे उद्धवजी हमलोग किस तरह प्रियतम श्रीकृष्ण को भूलें ।।५१।।

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन । मग्नमुद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिनार्णवात् ।।५२।।

अन्वयः— हे नाथ हे रमानाथ, हे व्रजनाथ ! हे अर्तिनाशन ! हे गोविन्द ! मग्नं गोकुलं वृजिनार्णवात् उद्धर ।।५२।।

अनुवाद— हे हमारे जीवन के स्वामी श्रीकृष्ण ! हे लक्ष्मीपते ! हे व्रज के स्वामिन् ! हे अपने शरणागतों के कष्ट को विनष्ट करने वाले प्रियतम श्रीकृष्ण ! हे गौओं से प्रेम करने वाले गोविन्द ! आज सम्पूर्ण गोकुल विरह सागर में डूब रहा है, इसका उद्धार करो नाथ ।।५२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५२।।

श्रीशुक उवाच

ततस्ताः कृष्णसंदेशैर्व्यपेतविरहज्वराः । उद्धवं पूजयां चक्रुर्ज्ञात्वात्मानमधोक्षजम् ।।५३।।

अन्वयः— ततः कृष्ण संदेशैः व्यपेतविरहज्वराः अधोक्षजम् आत्मानं ज्ञात्वा उद्धवं पूजयाञ्चक्रुः ।।५३।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्ण के संदेश को सुनकर गोपियों की विरह व्यथा समाप्त हो गयी वे सब अतीन्द्रिय श्रीभगवान् को अपनी आत्मा जान ली थीं । उन सबों ने उद्धवजी की पूजा की ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णमधोक्षजं ज्ञात्वा तं च स्वात्मानं ज्ञात्वा ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण को अतीन्द्रिय जानकर और उनको अपनी आत्मा मानकर ।।५३।।

उवास कातिचिन्मासान्गोपीनां विनुदन् शुचः । कृष्णलीलाकथां गायन्नमयामास गोकुलम् ।।५४।।

अन्वयः— गोपीनां शुचः विनुदन् कतिचिन् मासान् उवास । कृष्ण लीलाकथां गायन् गोकुलं रमयामास ।।५४।।

अनुवाद— गोपियों की विरहव्यथा मिटाने के लिए उद्धवजी कुछ महीनों तक व्रज में निवास किए और भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाकथा का गायन करते हुए वे व्रजवासियों को आनन्दित किए ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

विनुदन् अपनयन् ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

विनुदन् अर्थात् दूर करते हुए ।।५४।।

यावन्त्यहानि नन्दस्य व्रजेऽवात्सीत्स उद्धवः । व्रजौकसां क्षणप्रायाण्यासन्कृष्णस्य वार्तया ।।५५।।

अन्वयः— सः उद्धवः यावन्त्यहानि व्रजे अवात्सीत् कृष्णस्य वार्तया क्षणप्रायाणि आसन् ।।५५।।

अनुवाद— उद्धवजी जितने दिन नन्दजी के व्रज में निवास किए भगवान् श्रीकृष्ण की कथा होते रहने के कारण वे सब दिन व्रजवासियों के लिए एकक्षण के समान बीत गये ।।५५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५५।।

सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन्कुसुमितान्द्रुमान् । कृष्णं संस्मारयन्रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥५६॥

अन्वयः— हरिदासः सरिदवनगिरिद्रोणी कुसुमितान् द्रुमान् वीक्षन् व्रजौकसां कृष्णं संस्मारयन् रेमे ॥५६॥

अनुवाद— भगवद्भक्त उद्धवजी यमुनानदी के तटों, वनों और पर्वत की गुफाओं में विचरण करते हुए तथा फूलों से लदे हुए वृक्षों को देखकर, तत्-तत् स्थानों पर भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा की गयी लीलाओं की व्रजवासियों को याद दिलाते हुए व्रज में ही विहार करते रहे ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

सरिद्वनगिरिदर्यादिषु प्रत्येकं श्रीकृष्णं लीलासंप्रश्नादिभिः संस्मारयन्रेमे ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

यमुनानदी, वन एवं गोवर्द्धन पर्वत की गुफाओं में भगवान् ने जिन लीलाओं को किया था उन सबों को व्रजवासियों से पूछकर जानते हुए व्रज में ही निवास किए ॥५६॥

दृष्ट्वैवमादिगोपीनां कृष्णावेशात्मविक्लवम् । उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥५७॥

अन्वयः— गोपीनाम् कृष्णावेशात्मविक्लवम् दृष्ट्वा एव परमप्रीतः उद्धवः ताः नमस्यन् इदं जगौ ॥५७॥

अनुवाद— गोपियों की इस प्रकार की प्रेम विकलता तथा भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेम में तन्मयता देखकर उद्धवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और वे उन सबों को नमस्कार करते हुए कहे ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

कृष्णावेशेनात्मनो मनसो विक्लवं वैक्लव्यम् । ता गोपीर्नमस्यन् नमस्करिष्यन् । उत्तममस्यात्मनो गोपस्त्रीनमस्कृतिरन्याय्या न भवतीति दर्शयितुं तासां महत्त्वं पञ्चभिर्जगौ उवाच ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेमावेश से अविष्ट गोपियों के मन की विकलता को देखकर, उन गोपियों को नमस्कार करते हुए स्वयम् उत्तम होने पर भी गोपियों को नमस्कार करना अनुचित नहीं है इस बात को प्रदर्शित करते हुए तथा गोपियों के महात्म्य को पाञ्च श्लोकों द्वारा गाये ॥५७॥

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपबध्वो गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः ।
वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥५८॥

अन्वयः— एताः गोपबध्वः भुवि तनुभृतः परम्, गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः, भवभियः मुनय वयं च यद्वाञ्छन्ति, अनन्त कथा रसस्य ब्रह्मजन्मभिः किम् ॥५८॥

अनुवाद— इन गोप बधुओं (गोपियों) का ही इस संसार में शरीरधारण श्रेष्ठ एवं सफल हैं क्योंकि ये सब भगवान् श्रीकृष्ण के परम प्रेममय दिव्य महाभाव में स्थित हो गयी हैं । प्रेम की यह सर्वोच्च स्थिति संसार के भय से भयभीत केवल मुमुक्षु पुरुषों को ही नहीं बड़े-बड़े मुनियों एवं भक्तजनों के लिए भी वाञ्छनीय है । जिसको भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाकथा की चस्का लग गयी हैं उसको कुलीनता की द्विजाति समुचित संस्कारों की तथा बड़े-बड़े यज्ञ यागादि में दीक्षित होने की कोई आवश्यकता नहीं है ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

एता इति । एताः परं केवलं तनुभृतः सफलजन्मानः । रूढभावाः परमप्रेमवत्यः । यदिति यं रूढं भावं भवभियो मुमुक्षवो मुमुक्षवो मुनयो मुक्ता अपि वाञ्छन्ति, वयं च भक्ता अपि । अतोऽनन्तस्य कथासु रसो रागो यस्य तस्य

ब्रह्मजन्मभिर्विप्रसंबंन्धिभिः शौक्लसावित्रयाज्ञिकैस्त्रिभिर्जन्मभिः किं कोऽतिशयः । यत्र तत्र जातः स एव सर्वोत्तम इत्यर्थः । यद्वा अनन्तकथासु रसो यस्य तस्य ब्रह्मजन्मभिश्चतुर्मुखजन्मभिरपि किमित्यर्थः ।।५८।।

भाव प्रकाशिका

एताः इत्यादि श्लोक से उद्धवजी कहते हैं कि इन गोपियों का ही इस संसार में शरीर धारण सफल है। क्योंकि ये सब भगवान् श्रीकृष्ण के परम प्रेम से सम्पन्न हैं । श्रीभगवान् में इस परम प्रेम से युक्तता संसार के भय से भयभीत मुमुक्षु पुरुष, मुनिजन तथा मुक्त पुरुष भी प्राप्त करना चाहते हैं । यही नहीं हम भक्तजन भी इसे प्राप्त करना चाहते हैं । अतएव भगवान् अनन्त की कथाओं में जिसका अनुराग है । उसका ब्राह्मणवंश में जन्म, शौक्ल सावित्र यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों और इन स्त्रियों में कोई भी अन्तर नहीं है ।।५८।।

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ।
नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षाच्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ।।५९।।

अन्वयः— इमाः वनचरीः व्यभिचारदुष्टाः स्त्रियः क्व ? क्वच एष कृष्णे परमात्मनि रूढभाव : अनुभजतः अविदुषः ईश्वरः उपयुक्तः अगदराज इव साक्षात् श्रेयः तनोति ।।५९।।

अनुवाद— कहाँ तो वन में रहने वाली, व्यभिचार दोष से दूषित गाँव की गँवार गोपियाँ, और कहाँ तो सच्चिदानन्द घन भगवान् श्रीकृष्ण में इन सबों का अनन्य प्रेम ? स्पष्ट है कि यदि कोई अज्ञानी जीव भी श्रीभगवान् के स्वरूप, रूप, गुण, विभूति आदि को जाने बिना भी उनकी भक्ति करता है उसका श्रीभगवान् उसी तरह से साक्षात् कल्याण करते हैं जिस तरह यदि कोई अनजान में भी अमृत पी ले तो वह अपनी शक्ति से पीने वाले को अमर बना देता है ।।५९।।

भावार्थ दीपिका

किंच ईश्वरप्रसादो महत्त्वे कारणम्, तस्य च न जातिराचारो ज्ञानं वा कारणं किंतु केवलं भजनमेवेत्याह-क्वेमा इति । साक्षाद्भजतः पुंसः ननु अहो उपयुक्तः सेवितः अगदराजोऽमृतं यथेति ।।५९।।

भाव प्रकाशिका

कोई भी अपनी जाति, आचार और ज्ञान के कारण महान् नहीं होता है, बल्कि किसी के भी महान् होने का कारण परमात्मा की कृपा है और परमात्मा की कृपा भजन करने वाले पर ही होती है । इसी बात को क्वेमाः इत्यादि श्लोक से कहा गया है । भजन करने वाले ही व्यक्ति पर भगवान् उसी तरह से कृपा करते है, जिस तरह अमृत पीने वाले को ही अमृत अमर बनाता है ।।५९।।

नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठलब्धाशिषां य उदगाद्व्रजबल्लवीनाम् ।।६०।।

अन्वयः— रासोत्सवे अस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठलब्धाशिषां व्रजबल्लवीनां यः उदगाद् अयं प्रसादः अङ्ग उ नितान्तरतेः श्रियः नलिनगन्धरुचां स्वर्योषितां च न अन्याः कुतः ।।६०।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण ने रासोत्सव के समय गोपियों के गले में बाँह डालकर उन सबों के समस्त मनोरथों को पूर्ण कर दिया । उस समय श्रीभगवान् की गोपियों पर जो कृपा आविर्भूत हुई वह श्रीभगवान् की नित्य सङ्गिनी तथा उनके वक्षःस्थल पर निवास करने वाली न तो लक्ष्मीजी पर आविर्भूत हुई और न कमल की सुगन्धि तथा कान्ति से युक्त देवाङ्गनाओं पर हुई तो और किसी दूसरी स्त्री पर कैसे होगी ।।६०।।

भावार्थ दीपिका

अत्यन्तापूर्वश्चायं गोपीषु भगवतः प्रसाद इत्याह–नायमिति । अङ्गे वक्षसि उ अहो नितान्तरतेः एकान्तरतिमत्याः श्रियोऽपि नायं प्रसादोऽनुग्रहोऽस्ति । नलिनस्येव गन्धो रुक् कान्तिश्च यासां तासां स्वर्गाङ्गनानामप्सरसामपि नास्ति । अन्याः पुनर्दूरतो निरस्ताः । रासोत्सवे कृष्णभुजदण्डाभ्यां गृहीत आलिङ्गितः कण्ठस्तेन लब्धा आशिषो याभिस्तासां गोपीनां य उदगादाविर्बभूव।।६०।।

भाव प्रकाशिका

नायम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा उद्धवजी कहते है कि गोपियों पर श्रीकृष्ण भगवान् ने अत्यन्त अपूर्व कृपा की । आश्चर्य है श्रीभगवान् की नित्य अङ्ग सङ्गिनी श्रीदेवी पर तथा कमल की सुगन्धि तथा कान्तिवाली देवताओं की पत्नियों पर भी वह कृपा उन्होंने नहीं की दूसरी स्त्रियों पर तो उस कृपा की बात बहुत दूर है । रासोत्सव के समय में श्रीभगवान् की भुजाओं से आलिङ्गित कण्ठ वाली गोपियों पर उनकी जो कृपा आविर्भूत हुई ।।६०।।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ।।६१।।

अन्वयः— अहो वृन्दावने अहम् आसाम् चरणरेणुजुषाम् गुल्मलतौषधीनाम् किमपि स्याम्, याः दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा श्रुतिभिः विमृग्याम् मुकुन्दपदवीं भेजुः ।।६१।।

अनुवाद— मैं तो यह चाहता हूँ कि मैं वृन्दावन में इन गोपियों के चरणों की धूल का सेवन करने वाली यहाँ की कोई झाड़ी, लता अथवा औषधि का जन्म प्राप्त कर लूँ जिससे कि मुझे इन सबों के चरणों की धूल मिलती रहेगी । ये गोपियाँ जिन सबों को छोड़ना अत्यन्त कठिन है उन अपने स्वजन संबन्धियों तथा वेदमार्ग का परित्याग करके श्रीभगवान् के साथ तन्मयता को प्राप्त कर लिया । परमात्मा के उस परम प्रेम के स्वरूप का श्रुतियाँ भी अन्वेषण किया करती है पर प्राप्त नहीं कर पातीं ।।६१।।

भावार्थ दीपिका

किंच आस्तां तावद्गोपीनां भाग्यं, मम त्वेतावत्प्रार्थ्यमित्याह–आसामिति । गोपीनां चरणरेणुभाजां गुल्मादीनां मध्ये यत्किमप्यहं स्यामित्याशंसा । कथंभूतानाम् । या इत्यादि । आर्याणां मार्गं धर्मं च हित्वा ।।६१।।

भाव प्रकाशिका

गोपियों के भाग्य की बात तो अलग है, मैं तो केवल इतना ही चाहता हूँ कि गोपियों की चरण धूल को प्राप्त करने वाली मैं वृन्दावन की कोई झाड़ी, लता अथवा औषधि ही बन जाऊँ, जिससे कि इन सबों के चरणों की धूल मुझे मिलती रहे । ये गोपियाँ वैदिक मार्ग तथा धर्म का परित्याग करके ।।६१।।

या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामैर्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासोगोष्ठ्याम् ।
कृष्णस्य तद्भगवतश्चरणारविन्दं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ।।६२।।

अन्वयः— श्रिया अर्चितम् आप्तकामैः अजादिभिः योगेश्वरैः अपि यदात्मनि अर्चितम् तत्भगवतः कृष्णस्य चरणाविन्दम् रासगोष्ठयाम् याः स्तनेषुन्यस्तं परिरभ्य तापम् विजहुः ।।६२।।

अनुवाद— स्वयम् श्रीदेवी जिसकी पूजा करती है आप्तकाम ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता तथ योगेश्वरगण जिसका अपने मन में सदा चिन्तन किया करते हैं श्रीभगवान् के उन्हीं चरणों को रासक्रीडा के समय अपने स्तनों पर रखकर आलिङ्गन करके गोपियाँ अपने विरह के संताप को मिटा दीं ।।६२।।

भावार्थ दीपिका

पुनस्ता एव विशिनष्टि–या वा इति । योगेश्वरैरप्यात्मन्येवार्चितं स्तनेषु न्यस्तं परिरभ्य तापं जहुरिति ।।६२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में फिर उन गोपियों की प्रशंसा करते हैं, योगेश्वरों ने श्रीभगवान् के उन चरणों की पूजा अपने अन्तःकरण में की। गोपियाँ स्तनों पर रखे हुए उन चरणों का आलिङ्गन करके अपनी विरहव्यथा को शान्त कीं॥६२॥

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः। यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥६३॥

अन्वयः— नन्दगोपव्रजस्त्रीणां पादरेणुम् अभीक्ष्णशः वन्दे, यासां हरिकथोद्गीतं भुवनत्रयं पुनाति ॥६३॥

अनुवाद— नन्दजी के व्रज में रहने वाली गापियों के चरणों की धूलि की मैं बारम्बार वन्दना करता हूँ, जिन सबों के द्वारा गायी गयी हरिकथा त्रैलोक्य को पावित्र बना रही है ॥६३॥

भावार्थ दीपिका

एवं महत्त्वं प्रतिपाद्य नमस्करोतिवन्द इति ॥६३॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से गोपियों के महत्त्व का प्रतिपादन करके उद्धवजी **वन्दे० इत्यादि** श्लोक के द्वारा उन सबों को नमस्कार करते हैं ॥६३॥

श्रीशुक उवाच

अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नन्दमेव च। गोपानामन्त्र्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥६४॥

अन्वयः— अथ गोपीः यशोदां नन्दम् एवं च अनुज्ञाप्य, गोपान् आमन्त्र्य यास्यन् दाशार्हः रथम् आरुरुहे ॥६४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से कई महीनों तक व्रज में रहने के पश्चात् उद्धवजी गोपियाँ, नन्द बाबा और माता यशोदा से आज्ञा प्राप्त करके तथा गोपों से विदा होकर मथुरा जाने की इच्छा से रथ पर सवार हुए ॥६४॥

भावार्थ दीपिका

अनुज्ञाप्य अनुज्ञां याचित्वा। आमन्त्र्य पृष्ट्वा ॥६४॥

भाव प्रकाशिका

अनुज्ञाप्य अर्थात् आज्ञा लेकर। आमन्त्र्य अर्थात् पूछकर ॥६४॥

तं निर्गतं समासाद्य नानोपायनपाणयः। नन्दादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥६५॥

अन्वयः— तं निर्गतं समासाद्य नानोपायन पाणयः नन्दादयः अनुरागेण अश्रुलोचनाः प्रावोचन् ॥६५॥

अनुवाद— उद्धवजी का रथ जब व्रज से बाहर निकला तब अपने हाथ में अनेक प्रकार के उपहार लेकर नन्दबाबा इत्यादि गोपगण उनके पास आये और प्रेम के कारण अपनी आँखों में आँसू भरकर वे लोग कहने लगे ॥६५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६५॥

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः। वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥६६॥

अन्वयः— नः नमसः वृत्तयः कृष्णपादाम्बुजाश्रयः स्युः, वाचः नाम्नाम् अभिधायिनीः कायः तत् प्रह्वणादिषु स्युः॥६६॥

अनुवाद— उद्धवजी हमलोग यही चाहते हैं कि हमारे मन की सारी वृत्तियाँ हमारे समस्त सङ्कल्प श्रीकृष्ण के चरण कमलों के ही अश्रित रहें। हमारी वाणी उनके ही नामों का उच्चारण करती रहे। तथा हमारा शरीर उनको ही प्रणम आदि करने में प्रवृत्त रहे ॥६६॥

भावार्थ दीपिका

नोऽस्माकं मनसो वृत्तयः। कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः स्युः। अभिधायिनीरभिधायिन्यः ॥६६॥

भाव प्रकाशिका

हमारे मन की वृत्तियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों के आश्रित बनी रहें । अभिधायिनी: अर्थात् उच्चारण करने वाली ।।६६।।

कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया । मङ्गलाचरितैर्दानै रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ।।६७।।

अन्वयः— कर्मभिर्भाम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया मङ्गलाचरितैः दानै कृष्णईश्वरे नः रतिः ।।६७।।

अनुवाद— अपने कर्मों के अनुसार हमारा चाहे जहाँ जन्म हो, वहाँ अपने पुण्य आचरणों तथा दानों के फल रूप से हमारा प्रेम हमारे ईश्वर श्रीकृष्ण में ही बना हो ।।६७।।

भावार्थ दीपिका

कृष्णे रतिः स्यादिति ।।६७।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण में ही हमारा प्रेम हो ।।६७।।

एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप । उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ।।६८।।

अन्वयः— हे नराधिप ! गोपैः कृष्णभक्त्या एवं सभाजितः उद्धवः पुनः कृष्णपालितां मथुरां आगच्छत् ।।६८।।

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् ! इसप्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति से युक्त गोपों के द्वारा सम्मानित उद्धवजी भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा पालित मथुरा नगरी में आ गये ।।६८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६८।।

कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् । वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात् ।।६९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे उद्धवप्रतियाने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४७।।

अन्वयः— कृष्णाय प्रणिपत्य व्रजौकसां भक्त्युद्रेकं आह वासुदेवाय रामाय राज्ञे च उपायनानि अदात् ।।५९।।

अनुवाद— वहाँ जाकर उद्धवजी ने भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम किया और उनको व्रजवासियों की प्रेममयी भक्ति का उद्रेक सुनाया । फिर उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण को बलरामजी को तथा राजा उग्रसेन को उन उपहारों को प्रदान किया जो उपहार सामग्री नन्दबाबा आदि गोपों ने दिया था ।।६९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के उद्धव प्रतियान नामक सैंतालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

कृष्णादिभ्यो भक्त्युद्रेकमाह-उपायनानि चाददिति ।।६९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

गोपियों की भगवान् श्रीकृष्ण आदि के प्रति भक्ति की उत्कटता को उद्धवजी ने बतलाया और उन लोगों को उपहार प्रदान किया ।।६९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।४७।।

* * *

अड़तालिसवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण का कुब्जा और अक्रूरजी के घर जाना

श्रीशुक उवाच

अथ विज्ञाय भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः । सैरन्ध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन्गृहं ययौ ॥१॥

अन्वयः— अथ सर्वात्मा सर्वदर्शनः भगवान् कामतप्तायाः सैरन्धयाः गृहं विज्ञाय ययौ ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् सबों की आत्मा तथा सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण कुब्जा की मिलन की इच्छा जानकर उसका प्रिय कार्य करने के लिए उसके घर गये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टचत्वारिंशकेऽथ कृष्णः कुब्जामरीरमत् । अक्रूरस्य गृहं गत्वा तं गजाह्वयमादिशत् ॥१॥ सैरन्ध्रीकाममापूर्य पूरयित्वा मनोरथान् । अक्रूरस्य ततः कृष्णस्तेन पार्थानसान्त्वयत् ॥२॥ ॥१॥

भाव प्रकाशिका

अड़तालिसवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण कुब्जा के घर जाकर उसके साथ रमण किए और अक्रूरजी के घर जाकर वे अक्रूरजी को हस्तिनापुर भेजे । कुब्जा की अभिलाषा को पूरा करके श्रीभगवान् उसके मनोरथ को पूरा करके, उसके पश्चात् अक्रूरजी के यहाँ जाकर अक्रूरजी के ही द्वारा पाण्डवों को सान्त्वना प्रदान किए ॥१॥

महार्होपष्करैराढ्यं कामोपायोपृबृंहितम् । मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनासनैः ॥
धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गन्धैरपि मण्डितम् ॥२॥

अन्वयः— महार्होपस्करैः आढ्यं कामोपायोपबृंहितम् मुक्तादामपताकाभिः वितानशयनासनैः सुरभिभिः धूपैः स्रग्गन्धैः अपि मण्डितम् कुब्जायाः गृहं ययौ ॥२॥

अनुवाद— कुब्जा का घर बहुमूल्य सामग्रियों से परिपूर्ण था, उसमें शृङ्गार रस को उद्दीपित करने वाली बहुत सी सामग्रियाँ थी, मोती की झालरें और पताकाओं, चन्दोवा, शय्या एवं आसनों से परिपूर्ण था; सुगन्धित धूपों तथा मालाओं की गन्धों से भी वह मण्डित था । इस प्रकार के कुब्जा के घर भगवान् श्रीकृष्ण गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

महार्हैरनर्घ्यैरूपस्करैर्गृहोपकरणैरन्वितम् । कामोपायैस्तदुद्दीपकैः सुरतबन्धादिलेख्यैरुपबृंहितम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

बहुमूल्य सामग्रियों से परिपूर्ण तथा सुरतबन्ध आदि के चित्रों से भरा था ॥२॥

गृहं तमायान्तमवेक्ष्य सासनात्सद्यः समुत्थाय हि जातसंभ्रमा ।
यथोपसंगम्य सखीभिरच्युतं सभाजयामास सदासनादिभिः ॥३॥

अन्वयः— तम् गृहम् आयान्तम् अवेक्ष्य सा हि जातसम्भ्रमा आसनात् सद्यः समुत्थाय सखिभिः यथोपसंगम्य अच्युतः सदासनादिभिः सभाजयामास ॥३॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण को अपने घर आते हुए देखकर वह घबराकर अपने आसन से शीघ्र ही उठकर खड़ी हो गयी । अपनी सखियों के साथ आगे आकर उसने श्रीभगवान् का यथोचित सत्कार किया । उसके पश्चात् श्रीभगवान् को श्रेष्ठ आसन प्रदान करके उसने श्रीभगवान की विविध प्रकार से पूजा किया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

यथा यथोचितम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

यथा अर्थात् यथोचित रूप से ॥३॥

तथोद्धवः साधु तयाभिपूजितो न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम् ।
कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः ॥४॥

अन्वयः— तथा साधु तयाभि पूजितः आसनम् च अभिमृश्य उर्व्याम् न्यषीदत् । कृष्णः अपि लोकाचरितान्यनुव्रतः महाधनं शयनं विवेश ॥४॥

अनुवाद— कुब्जा के द्वारा अच्छी तरह पूजित होकर उद्धवजी, कुब्जा के द्वारा प्रदत्त आसन को हाथ से छूकर पृथिवी पर बैठ गये क्योंकि वे अपने स्वामी श्रीकृष्ण के समक्ष आसन पर बैठना उचित नहीं समझे । भगवान् श्रीकृष्ण लोकाचार का अनुसरण करते हुए शीघ्र ही उसकी बहुमूल्य शय्या पर जाकर बैठ गये ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

सा मज्जनालेपदुकूलभूषणस्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः ।
प्रसाधितात्मोपससार माधवं सव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥५॥

अन्वयः— सा मज्जनालेपदुकूलभूषणस्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः सव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः माधवं प्रसाधितात्मोपससार ॥५॥

अनुवाद— कुब्जा भी स्नान, अङ्गराग, वस्त्र, आभूषण, हार, सुगन्ध, ताम्बूल और सुधासव आदि से अपने को सजाकर लीलामयी एवं लज्जामिश्रित मुस्कान एवं हाव-भाव के साथ श्रीभगवान् को देखती हुई उनके पास आयी ॥५॥

भावार्थ दीपिका

प्रसाधितो योग्यतामापादित आत्मा देहो यया सा । सव्रीडं यल्लीलयोद्गतं स्मितं तद्येषु विभ्रमेषु तद्युक्तैरीक्षितैरुपलक्षिता॥५॥

भाव प्रकाशिका

उसने अपने शरीर को खूब सजा लिया था और लज्जायुक्त विलासमय मुस्कान से युक्त हाव-भाव से सम्पन्न॥५॥

आहूय कान्तां नवसङ्गमह्रिया विशङ्कितां कङ्कणभूषिते करे ।
प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ॥६॥

अन्वयः— नवसङ्गमह्रिया विशङ्कितां कान्ताम् आहूय कङ्कणभूषिते करे प्रगृह्य श्य्यामधिवेश्य अनुलेपनार्पण पुण्यलेशया रामया रेमे ॥६॥

अनुवाद— नवीन मिलन के सङ्कोच के कारण कुछ झिझकने वाली उस कुब्जा को भगवान् श्रीकृष्ण अपने पास बुलाये और कङ्गन से मण्डित उसके हाथ को पकड़कर उसको अपने पास बैठा लिए उसके साथ रमणा किए। कुब्जा का यद्यपि अङ्गरागप्रदानजन्य बहुत थोड़ा सा पुण्य था ॥६॥

भावार्थ दीपिका

अनुलेपार्पणादन्यत्तस्याः पुण्यं नास्तीति दर्शयितुं पुण्यलेशयेत्युक्तं नतु पुण्यस्याल्पत्वविवक्षया ॥६॥

भाव प्रकाशिका

कुब्जा का अनुलेपन प्रदान का अवश्य पुण्य था इस बात को बतलाने के लिए ही पुण्यलेशया कहा गया है। पुण्य की अल्पता को बतलाने के लिए नहीं ॥६॥

सानङ्गतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णाजिघ्रन्त्यनन्तचरणेन रुजो मृजन्ती ।
दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं परिरभ्य कान्तमानन्दमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम् ॥७॥

अन्वयः— अनङ्गतप्कुचयोरुरसः तथा अक्ष्णा जिघ्रन्ती अनन्तचरणेन रुजो मृजन्ती सा दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं आनन्दमूर्तिं कान्तम् परिरभ्य अतिदीर्घतापम् अजहात् ॥७॥

अनुवाद— कुब्जा श्रीभगवान् के चरणों को अपने कामसंतपत हृदय (वक्ष:स्थल) पर और नेत्रों पर रख ली और दिव्य सुगन्ध को लेने लगी । इस तरह उसने अपने हृदय की सारी आधि-व्याधि शान्त कर ली । वक्ष:स्थल में सटे हुए आनन्दमूर्ति प्रियतम श्रीकृष्ण का अपनी दोनों भुजाओं से गाढ़ालिङ्गन करके कुब्जा ने दीर्घकाल से बढ़े हुए विरहताप को शान्त किया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

कुचादीनां रुजो मृजन्ती । जिघ्रन्तीय चरणम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

स्तनों आदि के रोग को दूर करती हुई और श्रीभगवान् के चरणों को सूङ्घती हुई ॥७॥

सैवं कैवलानाथं तं प्राप्यदुष्प्रापमीश्वरम् । अङ्गरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥८॥

अन्वयः— अहो अङ्गरागार्पणेन दुष्प्रापम् ईश्वरम् कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुर्भगा सा इदमयाचत ॥८॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् कुब्जा ने भगवान् श्रीकृष्ण को केवल अङ्गराग प्रदान किया था उसके उसे सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति हुई । जो भगवान् दुष्प्राप्य हैं और कैवल्य के स्वामी हैं । किन्तु उस दुर्भगा ने श्रीभगवान् को प्राप्त करके गोपियों के समान सेवा नहीं माँगकर यही माँगा ॥८॥

भावार्थ दीपिका

काममेव प्राकृतदृष्ट्या अयाचत । नच गोप्य इव सा तन्निष्ठेति दुर्भगेत्युक्तम् । कृतार्थत्वे तु तस्याः न संदेहः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

उसने प्राकृत दृष्टि से काम की याचना की, गोपियों के समान श्रीभगवान् में निष्ठा की याचना नहीं की; इसलिए उसको दुर्भगा कहा गया है । उसके कृतकृत्य होने में तो कोई सन्देह नहीं है ॥८॥

आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया । रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं सङ्गं तेऽम्बुरुहेक्षण ॥९॥

अन्वयः— हे प्रेष्ठ इह उष्यताम् कतिचित् दिनानि मया रमस्व हे अम्बुरुहेक्षण ते सङ्गं त्यक्तुं न उत्सहे इति आह ॥९॥

अनुवाद— हे प्रियतम आप यहीं रहें कुछ दिनों तक मेरे साथ रमण करें । हे कमलनयन मैं आपकी सङ्गति को नहीं त्याग सकती यह उसने कहा ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

तस्यै कामवरं दत्त्वा मानयित्वा च मानदः । सहोद्धवेन सर्वेशः स्वधामागमदर्चितम् ॥१०॥

अन्वयः— मानदः सर्वेशः तस्यै कामवरं दत्त्वा मानयित्वा च उद्धवेन सह अर्चितम् स्वधाम अगमत् ॥१०॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण सबको सम्मान प्रदान करने वाले है, तथा सर्वेश्वर हैं अतएव उसको अभिप्रेत वरदान देकर और उसकी पूजा स्वीकार करके अपने सर्वसम्मानित गृह पर उद्धवजी के साथ लौट आये ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

काम एवं वरस्तं दत्त्वा । मानयित्वा चालंकारादिदानैः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

काम का वरदान देकर तथा अलङ्कार प्रदान आदि के द्वारा कुब्जा का सम्मान करके ॥१०॥

दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् । यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात्कुमनीष्यसौ ॥११॥

अन्वयः— दुराराध्यं सर्वेश्वरेश्वरं विष्णुं समाराध्य यः मनोग्राह्यं वृणीते आसौ आसत्वात् कुमनीषी ॥११॥

अनुवाद— भगवान् दुराराध्य हैं, अर्थात् उनको प्रसन्न कर लेना बड़ा ही कठिन है । वे सभी स्वामियों के भी स्वामी है । ऐसे भगवान् विष्णु को प्रसन्न करके यदि कोई उनसे विषय सुख को माँगता है तो वह निश्चित रूप से दुर्बुद्धि है क्योंकि विषय सुख तो अत्यन्त तुच्छ हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

मनोग्राह्यं विषयसुखम् । असत्त्वात्तुच्छत्वात् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

मनोग्राह्य अर्थात् विषय सुख, असत्वात् अर्थात् तुच्छ होने से ॥११॥

अक्रूरभवनं कृष्णःसहरामोद्धवः प्रभुः । किंचिच्चिकीर्षयन्प्रागादक्रूरप्रियकाम्यया ॥१२॥

अन्वयः— प्रभुः कृष्णः अक्रूरभवनं सहरामोद्धवं अक्रूरप्रियकम्यया किञ्चित् चिकीर्षयन् प्रागात् ॥१२॥

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण अक्रूरजी के घर बलरामजी एवं उद्धवजी के साथ उनकी अभिलाषा पूर्ण करने के लिए तथा उनसे कुछ काम करवाने के लिए गये ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

किंचिच्चिकीर्षयन् । हस्तिनापुरप्रस्थापनं कारयितुमिच्छन्नित्यर्थः । अक्रूरप्रियकाम्यया च ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अक्रूरजी को हस्तिनापुर भेजने के लिए और अक्रूरजी की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए ॥१२॥

स तान्नरवरश्रेष्ठानारादीक्ष्य स्वबान्धवान् । प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभिनन्द्य च ॥१३॥
ननाम कृष्णं रामं च स तैरप्यभिवादितः । पूजयामास विधिवत्कृतासनपरिग्रहान् ॥१४॥

अन्वयः— सः तान् नरवरश्रेष्ठान् स्वबान्धवान् आराद् वीक्ष्य प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्य अभिनन्ध्य च रामं कृष्णं च ननाम तैः अपि अभिवादितः स कृतासनपरिग्रहान् विधिवत् पूजयामास ॥१३-१४॥

अनुवाद— अक्रूरजी उन मनुष्य लोके के श्रेष्ठ पुरुष तथा अपने बान्धव भगवान् श्रीकृष्ण आदि को आते हुए दूर से ही देखकर उठकर खड़े हो गये वे शीघ्र ही उठकर आगे आये और बलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् का प्रणाम किए । उसके पश्चात् उन लोगों ने भी अक्रूरजी को प्रणाम किया । इसके पश्चात् आसन पर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्ण आदि की अक्रूरजी ने विधि पूर्वक पूजा की ॥१३-१४॥

भावार्थ दीपिका

आरादूरादेव ।।१३-१४।।

भाव प्रकाशिका

आरात् अर्थात् दूर से ही ।।१३-१४।।

पादावनेजनीरापो धारयन् शिरसा नृप । अर्हणेनाम्बरैर्दिव्यैर्गन्धस्रग्भूषणोत्तमः ।।१५।।
अर्चित्वा शिरसानम्य पादावङ्कगतो मृजन् । प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ।।१६।।

अन्वयः— हे नृप ! पादावनेजनीः आप शिरसा धारयन् अर्हणेन दिव्यैः अम्बरैः गन्धसाम्भूषणोत्तमैः अर्चित्वा शिरसा आनम्य अङ्कगतौ पादौ मृजन् प्रश्रयावनतः क्रूरः रामकृष्णौ अभाषत ।।१५-१६।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के पैर को धोए हुए जल को उन्होंने अपने सिर पर धारण किया, उसके पश्चात् अनेक प्रकार की पूजा सामग्री दिव्य वस्त्र गन्धमाला और श्रेष्ठ आभूषणों से उनका पूजन किया । सिर झुकाकर उनको प्रणाम किया और उनके पैरों को गोद में रखकर दबाने लगे । उसी समय अक्रूरजी विनयावनत होकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी से कहे ।।१५-१६।।

भावार्थ दीपिका

आ अप इति च्छेदः । अप आ सर्वतो धारयन्नित्यन्वयः ।।१५-१६।।

भाव प्रकाशिका

आ अपः इसतरह से पदच्छेद है । अपः आ अर्थात् पूर्ण रूप से धारण करते हुए ।।१५-१६।।

दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् । भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्राद्दुरन्ताच्च समेधितम् ।।१७।।

अन्वयः— दिष्ट्या सानुगः पापः कंसः हतः वाम् इदं कुलं दुरन्तात् कृच्छ्रात् भवद्भ्यां उद्धृतं समेधितं च ।।१७।।

अनुवाद— यह बड़े ही आनन्द की बात है कि पापी कंस अपने अनुयायियों के साथ मारा गया, आप दोनों का यह वंश है । इसकी आप दोनों ने भयङ्कर कष्ट से बचाया है तथा इसको समृद्ध एंव सम्पन्न किया है।।१७।।

भावार्थ दीपिका

वां युवयोरिदं कुलमुद्धृतं समेधितं च ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

आप दोनों का यह वंश विपत्ति से उबर गया और समृद्ध हो गया ।।१७।।

युवाम् प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ । भवभ्यां न बिना किंचित्परमस्ति न चापरम् ।।१८।।

अन्वयः— युवाम् प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ भवद्भयां बिना न किञ्चित् परमस्ति न चापरम् ।।१८।।

अनुवाद— आप दोनों इस जगत् के प्रधान पुरुष हैं, जगत् के कारण हैं तथा जगत् स्वरूप हैं । आप दोनों से रहित कोई भी जगत् की छोटी अथवा बड़ी वस्तु नहीं है । न कारण है न कार्य हैं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

वामिदं कुलमित्यादिव्यवहारदृष्ट्योक्त्वा परमार्थमाह-युवामिति । जगन्मयौ युवाम् । कुतः । जगद्धेतू । तदपि कुतः । प्रधानपुरुषौ तदात्मको अतो भवभ्यां बिना परं कारणमपरं कार्यं च नास्तीति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

व्यवहार की दृष्टि से यह आप दोनों का वंश है यह कहकर परमार्थ को अक्रूरजी बतलाते हैं । आप दोनों

जगत् स्वरूप हैं क्योंकि आप दोनों जगत् के कारण है । क्योंकि आप दोनों प्रधान और पुरुष है अतएव आप दोनों के बिना न तो कारण है और न कार्य हैं ॥१८॥

आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः । ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥१९॥

अन्वयः— आत्मसृष्टमिदं विश्वं स्वशक्तिभिः अन्वाविश्य, हे ब्रह्मन् श्रुतप्रत्यक्ष गोचरम् बहुधा ईयते ॥१९॥

अनुवाद— हे परमात्मन् आपने ही अपनी शक्ति से इस विश्व की रचना की है । और आप अपनी काल तथा माया आदि शक्तियों से इसमें प्रवेश करके सभी देखे और सुनी जाने वाली वस्तुओं के रूप में प्रतीत हो रहे है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

ननु प्रत्यक्षादिसिद्धं कथं नास्तीत्युच्यतेऽत आह-आत्मसृष्टमिति । हे ब्रह्मन्परमेश्वर । 'ब्रह्म' इति वा पाठः । रजआदिस्वशक्तिभरात्मनैव सृष्टमिदं विश्वमन्वाविष्य कारणत्वादननुप्रविष्टोऽप्यनुप्रविश्यैव स्थितः श्रुतप्रत्यक्षगोचरं यथा भवति तथा बहुधा भवानेव प्रतीयते ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि प्रत्यक्षादि से सिद्ध वस्तुओं को नही हैं यह कैसे कहा जा सकता है ? इस पर अक्रूरजी **आत्मसृष्टम् इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । हे ब्रह्मन् अर्थात् हे परमेश्वर अथवा ब्रह्म पाठ है । रज आदि अपनी शक्तियों से स्वयं इस जगत् की सृष्टि करके उपादान कारण होने के कारण अप्रविष्ट होने पर भी प्रविष्ट के समान आप स्थित हैं दृष्ट एवं श्रुत सभी वस्तुओं के रूप में आप ही प्रत्यक्ष होते हैं । यद्यपि आप एक है फिर भी अनेक रूप में प्रतीत होते हैं ॥१९॥

यथा हि भूतेषु चराचरेषु मह्यादयो योनिषु भान्ति नाना ।
एवं भवान्केवल आत्मयोनिष्वात्मात्मतन्त्रो बहुधा विभाति ॥२०॥

अन्वयः— यथा हि चराचरेषु भूतेषु योनिषु मह्यादयः नाना भन्ति एवं भवान् केवल आत्मतन्त्र आत्मयोनिषु बहुधा विभाति ॥२०॥

अनुवाद— उदाहरणार्थ पृथिवी आदि कारण तत्त्वों से उनके कार्य स्थावरजङ्गम शरीर बनते हैं । और वे (पृथिवी आदि) उनमें अनुप्रविष्ट होकर अनेक रूपों में प्रतीत होते हैं । किन्तु वस्तुतः वे कारण रूप ही हैं । इसी तरह आप भी केवल एक ही हैं, किन्तु अपने कार्यरूप जगत् में अनेक रूप से स्वेच्छा से ही प्रतीत हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

एकस्यैव बहुधा प्रतीतिं सदृष्टान्तमाह यथाहीति योनिषु स्वस्यैव रूपान्तरेणाभिव्यक्तिस्थानेषु चराचरेषु यथा मही प्रमुखानि कारणान्येव नानाभान्ति । आत्मयोनिषु स्वकारणेषु भूतभौतिकेषु । जीवोऽपि नरमृगादिशरीरेषु, बालयुवाद्यवस्थासु च तथा प्रतीयते इति तद् व्यवच्छेदार्थमात्मतन्त्रग्रहणम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

एक ही वस्तु के अनेक रूपों की प्रतीति का प्रतिपादन दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक करते हैं योनिषु अर्थात् जहाँ पर अपनी ही दूसरे रूप में प्रतीत होती है । जिस तरह सम्पूर्ण चराचर शरीरों में पृथिवी आदि कारण ही अनेक रूपों में प्रतीत होते हैं । आत्मयोनिषु अर्थात् अपने कारणभूत भूत भौतिक पदार्थों में । जीव भी मनुष्य पशु आदि शरीरों में तथा बाल युवा आदि अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार का प्रतीत होता है । उससे भेद करने के लिए आत्मतन्त्र कहा गया है ॥२०॥

सृजस्यथो लुम्पसि पासि विश्वं रजस्तमःसत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः ।
न बध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा ज्ञानात्मनस्ते क्व च बन्यहेतुः ॥२१॥

अन्वयः— अथो विश्वं रजस्तमः सत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः सृजसि लुम्पसि पासि, तद्गुण कर्मभिः वा न बध्यसे ज्ञानत्मनः ते बन्धहेतुः च क्व ॥२२॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप अपनी रजोगुण, तमोगुण तथा सत्त्वगुण नामक शक्तियों के द्वारा जगत् की क्रमशः सृष्टि, संहार और रक्षण का कार्य करते हैं फिर भी आप उन गुणों से अथवा उन गुणों से होने वाले कर्मों से नहीं बाँधते हैं । उसका कारण है कि आप शुद्ध ज्ञानस्वरूप हैं । ऐसी स्थिति में आपके बन्धन का कौन सा कारण हो सकता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

ननृ सृष्ट्यादिकर्तृत्वेन च मम किं जीववद्बन्ध उक्तो नहि नहीत्याह–सृजसीति । तद्‌गुणकर्मभिर्वा तैर्गुणैः कर्मभिर्वेत्यर्थः। यतः क्क च कदाचिदपि बन्धहेतुरविद्या तव नैवास्ति । कुत इत्यत आह–ज्ञानात्मन इति । मायाया आश्रयानावरकत्वादिति भावः।।२१।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि सृष्टि आदि के कर्ता होने से क्या मेरा जीव के समान बन्ध कह रहे हैं । तो इस पर अक्रूरजी कहते है ऐसी बात नहीं है । आप उन गुणों के द्वारा अथवा उन गुणों से होने वाले कर्मों के द्वारा नहीं बन्धते हैं । यही नहीं अविद्या भी कभी भी आपके बन्धन का कारण नहीं हो सकती है । क्योंकि आप शुद्ध ज्ञानस्वरूप हैं । माया अपने आश्रय का आवरण नहीं कर सकती हैं ॥२१॥

देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्भवो न साक्षान्न भिदात्मनः स्यात् ।
अतो न बन्धस्तव नैव मोक्षः स्यातां निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥२२॥

अन्वयः— देहाद्युपाधेः अनिरूपित्वत् आत्मनः साक्षात् न भवः न भिदा स्यात् अतःतव न बन्धः न मोक्ष स्याताम त्वयि नः निकामः अविवेकः ।।२२।।

अनुवाद— प्रभो आत्मा में स्थूल देह तथा सूक्ष्म देह आदि उपाधियों के नहीं होने के कारण उसमें न तो जन्म, न मृत्यु न किसी प्रकार का भेद ही है । यही कारण है कि आपमें न बन्धन है न मोक्ष है । आपमें अपने अपने अभिप्राय के अनुसार जो मोक्ष और बन्धन की कल्पना की जाती है वह हमारा अज्ञानमात्र ही है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

किंच आस्तां तावद्बन्धशङ्का, यतो विद्योपाधेर्जीवात्मनोऽपि न वस्तुतो बन्धोऽस्तीत्याह–देहाद्युपाधेरिति । भवो जन्म तन्मूला भिदा च साक्षात्स्वरूपतो न स्यादिति । ननु मम बन्धाभावं वदता त्वया किं मोक्षोऽङ्गीक्रियते, ओमिति चेत्तर्हि बन्धाभावे मोक्षासंभवादापन्नो बन्धोऽपीत्याशङ्क्याह–अत इति । यतो नाविद्या अतो न बन्धो मोक्षश्च । एवमुभौ नस्यातामित्यर्थः । ननु उलूखले मां बद्धं श्रुतवान्, यमुनाह्रदे मुक्तं च दृष्टवानसि, अतः कथमुभयं नास्त्यत आह–निकाम इति । स्वाभिप्रायानुरूपस्त्वयि नोऽस्माकमविवेक एव परमेवंभूत इति । यद्वा नोऽविवेक एव तवोभौ स्यातामिति ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

बन्ध की शङ्का को छोड़िए क्योंकि अविद्योपहित जीव की भी वास्तविक रूप से बन्ध नहीं है । इसी बात को **देहोपाधेः० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । भव जन्म को कहते है । जन्ममूलक भेद भी नहीं है । प्रश्न

है कि मेरे बन्धन के अभाव का आप प्रतिपादन करते हैं । क्या आप मोक्ष को स्वीकार करते हैं ? यदि हाँ तो फिर बिना बन्ध के मोक्ष भी नहीं हो सकता है । अतएव आपको बन्ध भी स्वीकार करना होगा । इसी प्रकार की शङ्का करके कहते है **अतो नबन्ध० इत्यादि** चूकि अविद्या है ही नहीं अतएव न तो बन्ध होता है और न मोक्ष होता है। कहने का अभिप्राय है कि दोनों नहीं हो सकते । यदि श्रीभगवान् कहें कि मेरा ओखली में बन्धा जाना आपने सुना है । अपने यह देखा है कि यमुना के ह्रद में मैं मुक्त हुआ । अतएव आप कहते हैं कि दोनों नहीं हो सकते। इस पर अक्रूरजी **निकाम० इत्यादि** कहते हैं आपके विषय में हमलोग विविध प्रकार की कल्पना अपने अविवेक के कारण करते हैं ॥२२॥

त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय यदा यदा वेदपथः पुराणः ।
बाध्येत पाखण्डपथैरसद्भिस्तदा भवान्सत्त्वगुणं बिभर्ति ॥२३॥

अन्वयः— त्वया उदितः अयं पुराणः वेदपथः जगतः हिताय यदा-यदा पाखण्डपथैः असद्भिः बाध्येत तदाभवान् सत्त्वगुणं विभर्ति ॥२३॥

अनुवाद— आपके द्वारा उपदिष्ट यह प्राचीन वैदिक मार्ग जब-जब पाखण्ड पथ पर चलने वाले दुष्टों के द्वारा क्षतिग्रस्त होता है तब-तब आप शुद्ध सत्त्वमय शरीर धारण करते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि ममावतारास्तच्चरित्राणि च शुक्तिरजतवदविद्याकल्पितान्येव किं, नहि नहि, इयं तु तव लीलेत्याह द्वयेन-त्वयोदित इति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

यदि श्रीभगवान् कहें कि क्या मेरे अवतार और उसकी लीलायें शुक्ति रजत के समान अविद्या कल्पित हैं? तो ऐसी बात नहीं है । यह तो आप श्रीभगवान् की लीला है । इस बात को **त्वयोदितोऽयम्: इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ॥२३॥

स त्वं प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः ।
अक्षौहिणीशतवधेन सुरेतरांशराज्ञाममुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन् ॥२४॥

अन्वयः— हे प्रभो ! स त्वम् सुरेतरांशराज्ञाम् अक्षौहिणी शतबधेन भूमेः भारम् अपनेतुम् अमुष्य कुलस्य यशः वितन्वन् अद्य स्वांशेन वसुदेवगृहे अवतीर्णः ॥२४॥

अनुवाद— हे प्रभो आप दैत्यों के अंश से उत्पन्न राजाओं की सैकड़ों अक्षौहिणी सेना का विनाश करके पृथिवी के भार को दूर करने के लिए तथा इस वंश के यश को फैलाने के लिए अपने अंशभूत बलरामजी के साथ वसुदेवजी के गृह में अवतार ग्रहण किए हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

सुरेतरांशा ये राजानस्तेषामक्षौहिणीशतानां वधेन भूमेर्भारमपनेतुं स्वांशेन रामेण सहावतीर्णोऽसि ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

दैत्यों के अंशभूत जो राजागण हैं उनकी सैकड़ों अक्षौहिणी सेना का वध करके पृथिवी के भार को दूर करने के लिए आप अपने अंशभूत श्रीबलरामजी के साथ अवतार ग्रहण किए हैं ॥२४॥

अद्येश नो वसतयः खलु भूरिभागा यः सर्वदेवपितृभूतनृवेदमूर्तिः ।
यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत्पुनाति स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज यः प्रविष्टः ॥२५॥

अन्वयः— हे ईश अद्य नो वसतयः खलु भूरिभागाः यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत् पुनति । हे अधोक्षज स त्वं जगद्गुरुः यः सर्वदेवपितृभूतनृवेदमूर्तिः प्रविष्टः ।।२५।।

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् के नियामक प्रभो आज हमारा यह नगर अत्यन्त भाग्य सम्पन्न है क्योंकि इस नगर में जिनके चरणोदक का जल त्रैलोक्य को पवित्र बनता है । हे अतीन्द्रिय प्रभो वही आप जगत् के माता-पिता और आचार्य हैं सभी देवता, पितृगण, भूतगण तथा राजागण आपकी मूर्ति हैं आप इस नगर में निवास करते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अत एवंभूतस्य तवागमनेन कृतार्थोऽस्मीत्याह त्रयेण-अद्येति । हे ईश, अद्य नो वसतयो गृहास्तपोवनादपि बहुपुण्याः। कुतः । या वसतीस्त्वं साक्षात्प्रविष्टः । कथंभूतः । यस्य तव पादसलिलमेव गङ्गा त्रिजगत्पुनाति, यश्च त्वं पञ्चयज्ञदेवतामूर्तिः स त्वं जगद्गुरुरिति ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

अतएव इस प्रकार के आपके आगमन से मैं कृतार्थ हो गया हूँ इस बात को **अद्य० इत्यादि** तीन श्लोकों से अक्रूरजी कहते हैं । हे सम्पूर्ण जगत् के नियामक प्रभो आज हमलोगों का यह नगर तपोवन से भी अधिक पवित्र हो गया है । क्योंकि इन नगरों में आप साक्षात् निवास करते हैं । कैसे आप हैं ? क्योंकि आपके चरणोदक का जल गङ्गाजी इस त्रैलोक्य को पवित्र बनाती हैं । और आप पञ्चयज्ञ देवों की मूर्ति है । ऐसे आप जगद्गुरु अर्थात् माता-पिता और आचार्य हैं ॥२५॥

कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ।
सर्वान्ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामानात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥२६॥

अन्वयः— भक्तप्रियात् ऋत गिरः सुहृदः कृतज्ञात् कः पण्डितः तवदपरं शरणम् स्यात् । भजतः सुहृदः सर्वान् अभिकामान् सर्वान् ददाति आत्मानम् अपि यस्य उपचयापचयौ न ।।२६।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप अपने प्रेमी भक्तों के प्रियतम हैं । सत्यवक्ता, सबों के हितैषी और कृतज्ञ है। ऐसे आपको छोड़कर कौन पण्डित पुरुष होगा जो दूसरों के शरण में जाय । आप अपने भजन करने वाले सुहृद् पुरुषों की सारी कामनाओं को पूर्ण कर देते हैं । यहाँ तक कि जिसमें न तो कोई वृद्धि होती है और न कमी होती है अपने उस आत्मा को भी आप दे देते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

स्वमनोरथः परिपूरित इति तुष्यन्नाह-कः पण्डित इति । ऋतगिरः सत्यवाचः । त्वत्तोऽपरं शरणं कः समीयाद्गच्छेत्। यतो भवान् भजतः सर्वानभितः कामांश्च ददात्यात्मानमपीति ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

हमारा मनोरथ परिपूर्ण हो गया । इस तरह संतोष का अनुभव करते हुए अक्रूरजी **कः पण्डितः इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । ऋत गिरः अर्थात् सत्यवक्ता, आपको छोड़कर किसके शरण में जाय । क्योंकि जो आपका भजन करता है उसकी सारी कामनाओं को आप हर तरह से पूर्ण कर देते हैं । यहाँ तक कि अपनी आत्मा को भी दे देते हैं ॥२६॥

दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः ।
छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्त गेहदेहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥२७॥

अन्वयः— हे जनार्दन ! योगेश्वरैः सुरेशैः अपि दुरापगतिः भवान् इह दिष्ट्या प्रतीतः नः सुतकलत्रधनाप्तगेहदेहादिमोहरशनं भवदीयमायां अशु छिन्धि ॥२७॥

अनुवाद— हे भगवन् आप दुष्टों को विनष्ट करने वाले हैं । बड़े-बड़े योगिराज और देवताओं के स्वामी कभी आपके स्वरूप को नहीं जान पाते हैं । यह बड़े ही सौभाग्य की बात है कि हमलोगों को आपका साक्षात् दर्शन मिल गया । आप कृपा करके हमारे पुत्र, कलत्र, धन, देह, गेह आदि के मोह की रस्सी रूपी अपनी माया के बन्धन से हमें मुक्त कर दें ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

नोऽविवेकिनाम् । तत्रापीह गृह एव ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

हम अज्ञानी जीव है । हम अपने ही गृह में माया की रस्सी में बँधे हैं ॥२७॥

इत्यर्चितः संस्तुतश्च भक्तेन भगवान्हरिः । अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः संमोहयन्निव ॥२८॥

अन्वयः— इति भक्तेन संस्तुतः अर्चितश्च भगवान् हरिः गीर्भिः संमोहयन् इव संस्मितं अक्रूरं प्राह ॥२८॥

अनुवाद— इस तरह से भक्त अक्रूरजी के द्वारा पूजित और स्तुति कर लिए जाने के बाद भगवान श्रीहरि अपनी वाणी से मोहित करते हुए के समान उनसे कहे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च श्लाघ्यो बन्धुश्च नित्यदा ।
वयं तु रक्ष्याः पोष्याश्च अनुकम्प्याः प्रजा हि वः ॥२९॥

अन्वयः— त्वं नः गुरुः पितृव्यः च श्लाध्यः बन्धुः च नित्यदा, वयं हि वः प्रजाः रक्ष्याः पोष्याः अनुकम्प्याः च॥२९॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— आप हमारे हितोपदेशक और चाचा है । आप अत्यन्त प्रशंसनीय और हमारे हितैषी बान्धव हैं । हम तो आपके बालक हैं । और आपकी रक्षा, पालन और कृपा के पात्र हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

वो युष्माकं प्रजाः पुत्रा हि वयमिति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

आपके पुत्र हैं हमलोग ॥२९॥

भवद्विधा महाभागाः निषेव्या अर्हसत्तमाः । श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥३०॥

अन्वयः— श्रेयस्कामैः नृभिः भवद्विधाः अर्हसत्तमा महाभागा नित्यं निषेव्याः देवाः स्वार्थाः न साधवः ॥३०॥

अनुवाद— कल्याणकामी पुरुषों को चाहिए कि आप जैसे महाभाग्यवान् पुरुषों का सदा सेवन करें । वे तो देवताओं से भी बढ़कर हैं । देवता तो स्वार्थ परायण ही होते हैं किन्तु सन्त स्वार्थ परायण नहीं होते ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

ननु नृभिर्देवाः सेव्या इति प्रसिद्धं तत्राह-देवा इति । स्वार्थाः स्वकार्यसाधनपराः, साधवस्तु केवलं परानुग्रहपराः, परमार्थतस्तु साधव एव देवा इति त एव सेव्या इत्यर्थः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि मनुष्यों को देवताओं की सेवा करनी चाहिए । इस बात पर श्रीभगवान् कहते है देवता अपने अर्थ की सिद्धि में कुशल होते हैं । किन्तु साधुजन तो दूसरों पर कृपा करना जानते हैं । वास्तविकता है कि साधु पुरुष ही देवता हैं उनका ही सेवन करना चाहिए ।।३०।।

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः । ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ।।३१।।

अन्वयः— अम्मयानि तीर्थानि नहि मृच्छिलामयाः देवाः न ते उरु कालेन पुनन्ति साधवः तु दर्शनादेव ।।३१।।

अनुवाद— नदी जलाशय आदि ही तीर्थ नहीं है और न तो मिट्टी और पत्थर की बनी मूर्तियाँ ही देवता हैं । वे तो दीर्घकाल पर्यन्त श्रद्धापूर्वक सेवा करने से पवित्र बनाते हैं । किन्तु साधु पुरुष तो दर्शन देकर ही पवित्र बना देते हैं।।३१।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि मृच्छिलादिमयाः किं देवादयो नैवेत्यत आह-नहीति । अम्मयानि तीर्थानि मृन्मयाः शिलामयाश्च देवा न भवन्तीति न, अपितु भवन्त्येव । तथापि साधूनां तेषां च महदन्तरमित्याह-ते पुनन्तीति ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

तो क्या मिट्टी और पत्थर की बनी हुई मूर्तियाँ देवता नहीं हैं ? इस पर कहा गया नहीं । केवल नदी आदि ही तीर्थ नहीं होते और न तो मिट्टी पत्थर की मूर्तियाँ ही देवता नहीं हैं ऐसी बात नहीं होते हैं किन्तु साधुओं और देवताओं में महान अन्तर है; इसी बात को **ते पुनन्ति इत्यादि** श्लोक से भगवान् कहे हैं ।।३१।।

स भवान्सुहृदां वै नः श्रेयान् श्रेयश्चिकीर्षया । जिज्ञासार्थं पाण्डवानां गच्छस्व त्वं गजाह्वयम् ।।३२।।

अन्वयः— स भवान् वै न नः सुहृदां श्रेयान् पाण्डवानां श्रेयः चिकीर्षया जिज्ञासार्थं त्वम् गजाह्वयम् गच्छस्व ।।३२।।

अनुवाद— चाचाजी आप हमारे हितैषी सुहृदों में सर्वश्रेष्ठ हैं । अतएव आप पाण्डवों का कल्याण करने के लिए तथा उनका कुशल मङ्गल जानने के लिए हस्तिनापुर चले जायँ ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

'किंचिच्चिकीर्षयन्प्रागात्' इति यदुक्तं तत्कार्यमादिशति-स इति । नः सुहृदां मध्ये भवान् श्रेष्ठोऽतः पाण्डवानां श्रेयश्चिकीर्षया गजाह्वयं गच्छस्व गच्छेति । यद्वा स्वेति पृथक् पदम् । हे स्व आत्मीयेत्यर्थः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

इससे पहले कहा जा चुका है कि श्रीभगवान् अक्रूरजी के घर उनसे कुछ करवाने की इच्छा से गये । उसी कार्य को **स इति० इत्यादि** श्लोक से कहते है । हमारे हितैषियों में आप सर्वश्रेष्ठ हैं । अतएव आप पाण्डवों का कल्याण करने के लिए तथा उनका कुशल जानने के लिए हस्तिनापुर जायँ ।।३२।।

पितर्युपरते बालाः सह मात्रा सुदुःखिताः । आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम ।।३३।।

अन्वयः— पितरि उपरते मात्रा सह सुदुःखिताः बालाः राज्ञा वसन्ते स्वपुरम् आनीताः इति शुश्रुम ।।३३।।

अनुवाद— हमने सुना है कि महाराज पाण्डु के मर जाने के पश्चात् माता कुन्ती के साथ युधिष्ठिर आदि पाण्डव बड़े कष्ट में पड़ गये थे । तब राजा धृतराष्ट्र उन्हें अपनी राजधानी हस्तिनापुर में लाये ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

राज्ञा धृतराष्ट्रेण । वसन्ते निवसन्ति । शुश्रुम श्रुतवन्तो वयम् ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

राजा धृतराष्ट्र वसन्ते अर्थात् नगर में, शुश्रुम अर्थात् ऐसा हम सुनते हैं ।।३३।।

तेषु राजाम्बिकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषु दीनधीः । समो न वर्तते नूनं दुष्पुत्रवशगोऽन्धदृक् ।।३४।।

अन्वयः— तेषु भ्रातृपुत्रेषु अम्बिका पुत्रः दीनधीः नूनं समो न वर्तते । दुष्टपुत्र वशगः अन्धदृक् ।।३४।।

अनुवाद— अपने भाई पाण्डु के पुत्रों के प्रति अम्बिका के पुत्र धृतराष्ट अपने पुत्रों के समान बुद्धि नहीं रखते हैं । उनका पुत्र दुर्योधन दृष्ट स्वभाव वाला है । वे उसी के वश में रहते हैं, और वे अन्धे तो हैं ही ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

दुष्टा ये स्वपुत्रा दुर्योधनादयस्तद्वशेन गच्छतीति तथा । यतोऽन्धदृगन्धनेत्रः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

धृतराष्ट्र के जो दुर्योधन आदि दुष्ट पुत्र है, उन सबों के वश में रहने वाले राजा आँख से अन्धे भी हैं ।।३४।।

गच्छ जानीहि तद्वृत्तमधुना साध्वसाधु वा । विज्ञाय तद्विधास्यामो यथा शं सुहृदां भवेत् ।।३५।।

अन्वयः— गच्छ तद्वृत्तम् अधुना साधु असाधु वा जानीहि विज्ञाय तदविधास्यामो यथा सुहृदां शं भवेत् ।।३५।।

अनुवाद— आप हस्तिनापुर जायँ और उन सबों की स्थिति अच्छी है या बुरी इस बात का पता लगायें। आपके द्वारा जान करके ही मैं ऐसा करूँगा जिससे कि अपने सुहृदों को सुख मिले ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान्हरिरीश्वरः । संकर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४८।।

अन्वयः— इति अक्रूरं समादिश्य हरिः ईश्वरः भगवान सङ्कर्षणोद्धवाभ्याम् ततः स्वभवनं ययौ ।।३६।।

अनुवाद— इस तरह अक्रूरजी को आदेश देकर सम्पूर्ण जगत् के नियामक भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ से बलरामजी और उद्धवजी के साथ अपने भवन में चले गये ।।३६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के अड़तालिसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्ध भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।४८।।

* * *

उनचासवाँ अध्याय

अक्रूरजी का हस्तिनापुर गमन

श्रीशुक उवाच

स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोऽङ्कितम् । ददर्श तत्राम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥१॥
सहपुत्रं च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमम्। कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पाण्डवान्सुहृदोऽपरान् ॥२॥

अन्वयः— पौरवेन्द्रयशोऽङ्कितम् हस्तिनापुरम् गत्वा तत्र अम्बिकेयं सभीष्मं, विदुरं पृथाम्, सहपुत्रं बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमम्, कर्णं, सुयोधनं द्रौणिं, पाण्डवान् अपरान् सुहृदो ददर्श ॥१-२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— पुरुषवंशी राजाओं के यश से सुशोभित हस्तिनापुर में जाकर वहाँ पर सबसे पहले राजा धृतराष्ट्र से उसके पश्चात् भीष्मजी, विदुरजी, कुन्ती, वाह्लिक, उनके पुत्र सोमदत्त, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, युधिष्ठिर आदि पाण्डवों तथा दूसरे इष्ट मित्रों से मिले ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

ऊनपञ्चाशत्तमे तु गत्वाऽक्रूरो गजाह्वयम् । राज्ञः स्वभ्रातृपुत्रेषु बुद्ध्वा वैषम्यमागमत् ॥१॥ पौरवेन्द्राणां यशोभिस्तत्कृतदेवब्राह्मणायतनादिभिरङ्कितम् ॥१॥ बाह्लीकपुत्रः सोमदत्तः । भारद्वाजो द्रोणः । गौतमः कृपः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उनचासवें अध्याय में अक्रूरजी इस्तिनापुर में जाकर और यह जानकर कि राजा धृतराष्ट्र अपने भाई के पुत्र पाण्डवों के प्रति विषम दृष्टि रखते हैं, मथुरा लौट आये । **पौरवेन्द्राणां यशोभिः** पुरुवंशी राजाओं द्वारा बनाये गये देवता तथा ब्राह्मणों के गृह आदि से सुशोभित । बाह्लीक के पुत्र सोमदत्त, भारद्वाज अर्थात् द्रोणाचार्य गौतमः अर्थात् कृपाचार्य ॥१-२॥

यथावदुपसंगम्य बन्धुभिर्गान्दिनीसुतः । संपृष्टस्तैः सुहृद्वार्तां स्वयं चापृच्छदव्ययम् ॥३॥

अन्वयः— गान्दिनीसुतः बन्धुभिः यथावत् उपसंगम्य तैः सुहृद्वार्ताम् तैः पृष्टः स्वयं च अव्ययम् अपृच्छत् ॥३॥

अनुवाद— गान्दिनी नन्दन अक्रूरजी अपने बान्धवों से यथायोग्य मिलकर उन सबों द्वारा अपने सुहृदों का कुशल पूछे जाने पर स्वयम् भी उन लोगों का कुशल मङ्गल पूछे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अव्ययं कुशलम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

परिपूर्ण कुशल ॥३॥

उवास कतिचिन्मासान्राज्ञो वृत्तविवित्सया । दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छन्दानुवर्तिनः ॥४॥

अन्वयः— दुष्प्रजस्य अल्पसारस्य, खलच्छन्दानुवर्तिनः राज्ञः वृत्तविवित्सया तत्र कतिचिन्मासान् उवास ॥४॥

अनुवाद— दुष्ट सन्तानों वाले, मन्दबुद्धि तथा शकुनि आदि के विचारों के अनुसार चलने वाले राजा धृतराष्ट्र का पाण्डवों के प्रति व्यवहार को जानने की इच्छा से वे वहाँ कुछ महीनों तक निवास किए ॥४॥

भावार्थ दीपिका

दुष्प्रजस्यासत्पुत्रस्य अल्पसारस्य मन्दधृतेः खलानां कर्णादीनां छन्दमिच्छामनुवर्तितुं शीलं यस्येति तथा तस्य ॥४॥

Scanned by CamScanner

भाव प्रकाशिका

दुष्प्रजस्य अर्थात् दुष्टपुत्रों वाले, अल्पसारस्य अर्थात् मन्दबुद्धि तथा दुष्टकर्ण आदि की इच्छा के अनुसार चलने वाले राजा के ।।४।।

तेज ओजो बलं वीर्यं प्रश्रयादींश्च सद्गुणान्। प्रजानुरागं पार्थेषु नसहद्भिश्चिकीर्षितम् ।।५।।
कृतं च धार्तराष्ट्रैर्यद्गरदानाद्यपेशलम् । आचख्यौ सर्वमेवास्मै पृथा विदुर एव च ।।६।।

अन्वयः— पार्थेषु तेजो बलं, वीर्यं प्रश्रयदीन् सद्गुणान् प्रजानुरागं च न सहद्भिः धार्तराष्ट्रैः चिकीर्षितम् यत् गरदानादि अपेशलं कृतम् पृथा विदुर एव च आचख्यौ ।।५-६।।

अनुवाद— पाण्डवों के तेज, बल, पराक्रम, विनम्रता आदि सद्गुणों तथा उनमें प्रजाओं का प्रेम नहीं सहने वाले धृतराष्ट्र के पुत्रों ने जो विष प्रदान आदि बुरा कार्य किया तथा जो कुछ करना चाहते हैं, इन सारी बातों को विदुर और कुन्तीजी ने अक्रूरजी को बतलाया ।।५-६।।

भावार्थ दीपिका

तेजः प्रभावः । ओजः शस्त्रादिनैपुणम् । वीर्यं शौर्यम् । नसहद्भिरसहमानैः । चिकीर्षितमित उपरि कर्तुमिष्टम् । गरस्य विषस्य दानादि । अपेशलमन्याय्यम् । तेज ओज इत्यादि सर्वं कथायामास ।।५-६।।

भाव प्रकाशिका

तेज अर्थात् प्रभाव, ओजः अर्थात् शस्त्र इत्यादि की निपुणता, वीर्यम् अर्थात् पराक्रम, न सहद्भि अर्थात् नहीं सहन करने वाले चिकीर्षितम् जो भविष्य में करना चाहते हैं, विष प्रदान आदि, अपेशलम् अर्थात् अनुचित तेज ओज इत्यादि सब कुछ कहे ।।५-६।।

पृथा तु भ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्य तम् । उवाच जन्मनिलयं स्मरन्त्यश्रुकलेक्षणा ।।७।।

अन्वयः— अक्रूरम् भ्रातरम् प्राप्तम् तम् उपसृत्य, जन्मनिलयं स्मरन्ती अश्रुकलेक्षणा उवाच ।।७।।

अनुवाद— अपने भाई अक्रूरजी को आये देखकर कुन्तीजी उनके सन्निकट जाकर बैठ गयीं और अपनी मातृभूमि को स्मरण करके उनकी आँखों में आसू भर गये और उन्होंने कहा ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तत्कथनात्पूर्वतनं पृथाया वृत्तमाह-पृथा त्विति । अश्रूणां कला लेशा ययोस्ते ईक्षणे यस्या सा ।।७।।

भाव प्रकाशिका

उन सारी बातों के कहने से पहले कुन्तीजी के वृत्तान्त को **पृथातु० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । उनकी दोनों आँखों में अश्रुकण आ गये थे ।।७।।

अपि स्मरन्ति नः सौम्य पितरौ भ्रातरश्च मे । भगिन्यो भ्रातृपुत्राश्च जामयः सख्य एव च ।।८।।

अन्वयः— हे सौम्य अपि पितरौ, भ्रातरः, भगिन्यः भ्रातृपुत्राः जामय सख्य एव नः स्मरन्ति ।।८।।

अनुवाद— हे सौम्य ! मेरे माता-पिता, भाई, बहनें कुल की स्त्रियाँ तथा सखियाँ हमलोगों का कभी स्मरण भी करती हैं ।।८।।

भावार्थ दीपिका

अपि किम् । जामयः कुलस्त्रियः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

अपि अर्थात् क्या ? **जामयः** अर्थात् कुल की स्त्रियाँ ।।८।।

Scanned by CamScanner

भ्रात्रेयो भगवान्कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः । पैतृष्वस्रेयान्स्मरति रामश्चाम्बुरुहेक्षणः ॥९॥

अन्वयः— भ्रात्रेयः भगवान् कृष्णः शरण्यः भक्तवत्सलः, अम्बुरेहेक्षणः रामः च पैतृष्वश्रेयान् स्मरति ॥९॥

अनुवाद— हमारे भाई के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण शरणागत रक्षक और भक्तवत्सल हैं तथा कमल के समान नेत्र वाले बलरामजी कभी अपने इन फुफेरे भाइयों को स्मरण करते हैं क्या ?॥९॥

भावार्थ दीपिका

पैतृष्वस्रेयान् मत्पुत्रान् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

पितृष्वस्रेयान अर्थात् मेरे पुत्रों को ॥९॥

सपत्नमध्ये शोचन्तीं वृकाणां हरिणीमिव । सान्त्वयिष्यति मां वाक्यैः पितृहीनांश्च बालकान् ॥१०॥

अन्वयः— वृकाणां हरिणीमिव सपत्नमध्ये शोचन्तीं मां पितृहीनान् बालकान् च वाक्यैः सान्त्वयिष्यति ॥१०॥

अनुवाद— भेड़ियों के बीच में विद्यमान हरिणी के समान शत्रुओं के बीच में विद्यमान मैं शोचती रहती हूँ कि क्या भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ आकर अपने वाक्यों से मुझको तथा मेरे पितृहीन पुत्रों को सान्त्वना प्रदान करेंगे॥१०॥

भावार्थ दीपिका

शोचन्तीं मां वाक्यैः सान्त्वयिष्यति किम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

शोक करती हुई मुझको सान्त्वना प्रदान करेंगे क्या ॥१०॥

कृष्णकृष्ण महायोगीन्विश्वात्मन्विश्वभावन । प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥११॥

अन्वयः— हे कृष्ण हे महायोगीन् हे विश्वात्मन् हे विश्वभावन हे गोविन्द शिशुभिः च अवसीदतीम् प्रपन्नां पाहि ॥११॥

अनुवाद— हे कृष्ण ! हे महायोगी कृष्ण ! हे सम्पूर्ण जगत् की आत्मा ! हे सम्पूर्ण विश्व को जीवन प्रदान करने वाले, हे गोविन्द मैं आपकी शरण में हूँ आप मेरी रक्षा करें ॥११॥

भावार्थ दीपिका

हे महायोगिन् महान्योग उपायो मायाख्योऽस्यातीति । हे विश्वात्मन्सर्वान्तर्यामिन् । हे विश्वभावन विश्वपालक । प्रपन्नां शरणागताम् । अवसीदतीं क्लिश्यन्तीम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

हे माया रूपी महान् उपाय से सम्पन्न भगवन् कृष्ण, हे सर्वान्तर्यामी, हे सम्पूर्ण विश्व का पालन करने वाले, शरणागत तथा कष्ट का अनुभव करती हुई मेरी आप रक्षा करें ॥११॥

नान्यत्तव पदाम्भोजात्पश्यामि शरणं नृणाम् । बिभ्यतां मृत्युसंसारादीश्वरस्यापवर्गिकात् ॥१२॥

अन्वयः— मृत्युसंसारात् बिभ्यताम् नृणाम् ईश्वरस्य आपवर्गिकात् तव पदाम्भोजात् अन्यत् शरणं न ॥१२॥

अनुवाद— हे कृष्ण मृत्युमय इस संसार से डरने वाले लोगों को मोक्ष प्रदान करने वाले आपके चरण कमलों से भिन्न कोई भी दूसरा रक्षक नहीं है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

आपवर्गिकान्मोक्षप्रदनात् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

आपवर्गिकात् अर्थात् मोक्ष प्रदान करने वाले आपसे ।।१२।।

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने । योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ।।१३।।

अन्वयः— कृष्णाय, शुद्धाय, ब्रह्मणे परमात्मने योगेश्वराय, योगाय नमः अहं त्वाम् शरणं गता ।।१३।।

अनुवाद— हे भगवन् ! श्रीकृष्ण आपमें माया के लेश भी नहीं है, आप परब्रह्म परमात्मा हैं, आप समस्त साधनों और उपायों के स्वामी हैं तथा स्वयं योग स्वरूप हैं । हे श्रीकृष्ण मैं आपके शरण में हूँ । आप मेरी रक्षा करें।।१३।।

भावार्थ दीपिका

शुद्धाय धर्मात्मने । ब्रह्मणेऽपरिच्छिन्नाय । परमात्मने जीवस्य । योगेश्वरायाणिमादियुक्ताय । योगाय ज्ञानात्मने ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

शुद्धाय अर्थात् धर्म स्वरूप, ब्रह्मणे अर्थात् निःसीम, परमात्मने जीवों के मित्र, योगेश्वराय अर्थात् अणिमा आदि सिद्धियों से सम्पन्न । योगाय अर्थात् ज्ञानस्वरूप ।।१३।।

श्रीशुक उवाच

इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरम् । प्रारुदद्दुःखिता राजन्भवतां प्रपितामही ।।१४।।

अन्वयः— राजन् इति स्वजनं जगदीश्वरम् कृष्णं च अनुस्मृत्य, भवतां प्रपितामही दुःखिता प्रारुदत् ।।१४।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् ! इस प्रकार से अपने सगे संबन्धियों तथा जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण को स्मरण करके आपकी प्रपितामही कुन्ती देवी अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगीं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

प्रपितामही प्रपितामहः पाण्डुस्तस्य भार्या रुरोद ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

प्रपितामही परीक्षित् के प्रपितामह पाण्डु है उनकी पत्नी कुन्ती रोने लगी ।।१४।।

समदुःखसुखोऽक्रूरो विदुरश्च महायशाः । सान्त्वयामासतुः कुन्तीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभिः ।।१५।।

अन्वयः— अक्रूरः महायशाः विदुरश्च समदुःखसुखः तत्पुत्रोत्पत्ति हेतुभिः कुन्तीं सान्त्वयामासतुः ।।१५।।

अनुवाद— अक्रूरजी और महायशस्वी विदुरजी ये दोनों महात्मा सुख और दुःख को एक समान मानने वाले थे । इन दोनों लोगों ने कुन्ती के पुत्रों की उत्पत्ति के कारणभूत धर्म, इन्द्र इत्यादि को याद दिलाकर कुन्ती को बहुत समझाया ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

पृथया सह समं दुःखं सुखं च यस्य सः । तस्याः पुत्राणामुत्पत्तिहेतुभिर्जनकैर्धर्मानिलेन्द्रादिभिस्तत्कथनैरित्यर्थः ।।१५।।

Scanned by CamScanner

भाव प्रकाशिका

कुन्ती के साथ होने वाले दु:ख तथा सुख को एक समान मानने वाले कुन्ती के पुत्रों की उत्पत्ति के कारणभूत धर्म, वायु, इन्द्र इत्यादि की याद दिलाकर ।।१५।।

यास्यन्राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम् । अवदत्सुहृदां मध्ये बन्धुभिः सौहृदोदिताम् ।।१६।।

अन्वयः— यास्यन् विषमं पुत्र लालसम् राजानम् अभ्येत्य बन्धुभिः सौहृदोदितम् सुहृदां मध्ये अवदत् ।।१६।।

अनुवाद— मथुरा जाते समय अपने पुत्रों के प्रति पक्षपात करने वाले राजा धृतराष्ट्र से मिलकर उनके हितैषी श्रीकृष्ण भगवान् और बलरामजी आदि द्वारा कही हुई बातों को अक्रूरजी कौरवों की भरी सभा में कहे ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

बन्धुभिः रामकृष्णादिभिः सौहृदेनोदितमुक्तं यत्तदवददिति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

रामकृष्ण आदि बान्धुओं द्वारा सौहार्दवशात् कहीं हुई बातों को कहे ।।१६।।

अक्रूर उवाच

भो भो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धन । भ्रातर्युपरते पाण्डावधुनाऽऽसनमास्थितः ।।१७।।

अन्वयः— भो-भो वैचित्रवीर्य कुरूणां कीर्तिवर्धन त्वं भ्रातरि पाण्डौ उपरते अधुना आसनम् अस्थितः ।।१७।।

अक्रूरजी ने कहा

अनुवाद— हे विचित्रवीर्यनन्दन, हे कुरुवों की कीर्ति को बढ़ाने वाले आप अपने भाई की मृत्यु हो जाने पर सिंहासनासीन हुए हैं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

भ्रातर्युपरत इति । पाण्डोः पुत्रेषु सत्सु राजासनं त्वमास्थित इति कटाक्षः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

भ्रातर्युपरते० इत्यादि के द्वारा यह कटाक्ष किया गया है कि पाण्डु के पुत्रों के रहने पर भी आप राजसिंहासन पर बैठ गये ।।१७।।

धर्मेण पालयन्नुर्वीं प्रजाः शीलेन रञ्जयन् । वर्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्तिमवाप्स्यसि ।।१८।।

अन्वयः— धर्मेण उर्वीं पालयन् शीलेन प्रजाः रञ्जयन् स्वेषु समः वर्तमानः श्रेयःकीर्तिम् अवाप्स्यसि ।।१८।।

अनुवाद— धर्मपूर्वक पृथिवी का पालन करते हुए तथा शील नामक गुण के द्वारा प्रजाओं का अनुरञ्जन करते हुए एवं अपने लोगों के प्रति समान बुद्धि को रखते हुए आप लोक में कल्याण तथा यश को प्राप्त करेंगे।।१८।।

भावार्थ दीपिका

भवतु तथाप्येवं वर्तमानः श्रेयोऽवाप्यसीत्याह-धर्मेणेति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि ऐसी बात है फिर भी इस तरह से व्यवहार करते हुए आप कल्याण प्राप्त करेंगे । इस बात को **धर्मेण० इत्यादि** श्लोक से कहे ।।१८।।

Scanned by CamScanner

अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तमः । तस्मात्समत्वे वर्तस्व पाण्डवेष्वात्मजेषु च ॥१९॥

अन्वयः— लोके अन्यथा तु आचरन् गर्हितः तमो यास्यसि, तस्मात् पाण्डवेषु आत्मजेषु च समत्वे वर्तस्व ॥१९॥

अनुवाद— यदि आप इसके विपरीत आचरण करेंगे तो आपकी लोक में निन्दा होगी और मृत्यु के पश्चात् आपको नरक में जाना होगा । अतएव आप पाण्डवों तथा अपने पुत्रों के प्रति एक समान व्यवहार करें ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तमो नरकमिहैव महद्दुःखमिति भावः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

तमः अर्थात् नरक इस लोक में ही महान् दुःख मिलेगा ॥१९॥

नेह चात्यन्तसंवासः कर्हिचित्केनचित्सह । राजन्स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः ॥२०॥

अन्वयः— इह कर्हिचित् केनचित् सह अत्यन्त संवासः न । राजन् स्वेन देहेन अपि जायात्मजादिभिः किमु ॥२०॥

अनुवाद— इस संसार में कहीं, कभी कोई भी किसी के साथ सदा नहीं रहता है । यह बात जब इस देह के साथ भी सत्य है तो फिर पत्नी-पुत्र आदि के विषय में क्या कहना है ?॥२०॥

भावार्थ दीपिका

नन्वात्मजानात्मजादिषु कथं समत्वं स्यात्तत्राह-नेह चेति । अत्यन्तं नित्यं संवासः सम्यक् स्थितिः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि अपने पुत्रों तथा दूसरे के पुत्रों के साथ एक समान व्यवहार कैसे किया जा सकता है ? तो इस पर कहते हैं **नेह चेति** अर्थात् एक साथ निवास नहीं होता है ॥२०॥

एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते । एकोऽनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥२१॥

अन्वयः— जन्तुः एकः प्रसूयते, एक एव प्रलीयते, एकः सुकृतमनुभुङ्क्ते एक एव च दुष्कृतम् ॥२१॥

अनुवाद— जीव अकेला ही उत्पन्न होता है, अकेले ही मरता है, अकेले ही अपने पुण्यों का फल भोगता है और अकेले ही अपने पापों का भी फल भोगता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तावदपत्तिमरणयोः सुखदुःखयोश्च केनापि साहित्यं नास्तीत्याह-एक इति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

जन्म मरण इन दोनों के समय में अथवा सुख एवं दुःख के भोगने में कोई भी साथ नहीं रहता है ॥२१॥

अधर्मोपचितं वित्तं हरन्त्यन्येऽल्पमेधसः । संभोजनीयापदेशैर्जलानीव जलौकसः ॥२२॥

अन्वयः— अल्पमेधसः सः अधर्मोपचितं वित्तं अन्ये सम्भोजनीयापदेशैः जलौकसः जलानि इव हरन्ति ॥२२॥

अनुवाद— अधर्मपूर्वक कमाये हुए धन को उस धन को कमाने वाले मूर्ख के धन का उसके स्त्री पुत्र हम तुम्हारे हैं हमारा पालन करना तुम्हारा धर्म है, यह कहकर उसके पत्नी-पुत्र इत्यादि उसी तरह से लूट लेते हैं जिस तरह जल में रहने वाले जन्तुओं के सर्वस्व जल को उन्हीं के सम्बन्धी चाट जाते हैं ॥२२॥

Scanned by CamScanner

भावार्थ दीपिका

किंच यदा च सह संवसन्ति तदापि क्लेशोपार्जितवित्तापहारितया पुत्रा नाम शत्रव एव ज्ञेया इत्याह-अधर्मेति । संभोजनीयाः पोष्याः। पुत्रादय इति व्यपदेशैरल्पमेधसो मूढस्य वित्तं हरन्ति। जलौकसो मत्स्यजीवनभूतानि जलानि यथा तत्पुत्रा हरन्ति तद्वदिति।।२२।।

भाव प्रकाशिका

जब वे पुत्र पत्नी इत्यादि साथ रहते हैं तब भी कठिनाई से कमाये हुए धन को उसके पुत्र रूपी शत्रु उसके धन को लूट लेते हैं । इस बात को **अधर्मोपचितं० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । **संभोजनीयाः** अर्थात् पालनीय। पुत्र इत्यादि कहलाने वाले उस धन को कमाने वाले मूर्ख की सम्पत्ति को लूट लेते हैं, जल में रहने मछली के जीवन स्वरूप जल को उसके पुत्र इत्यादि के समान ।।२२।।

पुष्णाति यानधर्मेण स्वबुद्ध्या तमपण्डितम् । तेऽकृतार्थं प्रहिण्वन्ति प्राणा रायः सुतादयः ।।२३।।

अन्वयः— यान् धर्मेण पुष्णाति तम् अपण्डितम् ते प्राणाः रायः सुतादयः अकृतार्थं प्रहिण्वन्ति ।।२३।।

अनुवाद— वह जिन धन तथा पुत्र आदि को अधर्म पूर्वक पालन-पोषण करता है वे ही इस जीव को असन्तुष्ट छोड़कर चले जाते हैं ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

किंच यानेवं पुष्णाति ते धनमादाय मृता जीवन्तोऽपि वा तं परित्यजन्तीत्याह-पुष्णातीति । स्वबुद्ध्या स्वीया इत्यभिमानेन रायोऽर्थाः अकृतार्थमप्राप्तभोगम् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

जिन सबों का वह इस तरह अधर्म पूर्वक पालन करता है उसके धन को लेकर मर जाते हैं अथवा जीवित रहकर भी उसका परित्याग कर देते हैं । इस बात को पुष्णाति इत्यादि श्लोक से कहा गया है । स्वबुद्ध्या अर्थात् स्वीयत्वाभिमान के द्वारा रायः अर्थात् धन सम्पत्ति । अकृतार्थम् अर्थात् भोगों को प्राप्त किए बिना ही ।।२३।।

स्वयं किल्विषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः । असिद्धार्थो विशत्यन्धं स्वधर्मविमुखस्तमः ।।२४।।

अन्वयः— तैः त्यक्तः नार्थकोविदः असिद्धार्थः स्वयं किल्विषम् आदाय स्वधर्मविमुखः अन्धं तमो विशति ।।२४।।

अनुवाद— उन पुत्रादि के द्वारा परित्यक्त वह अपने लौकिक स्वार्थ को भी नहीं जानता है वह जिन सबों के लिए अधर्म करता है वे उसे छोड़ देते हैं और पाप की गठरी अपने सिर पर लेकर वह नारकीय घोर अन्धकार में चला जाता है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

स पुनः पापैकपाथेयो नरकं विशतीत्याह-स्वयमिति । असिद्धार्थोऽपूर्णमनोरथः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

वह पापी केवल पाप को ही लेकर नरक में चला जाता है । इस बात को **स्वयम्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । **असिद्धार्थः** अर्थात् अपूर्ण मनोरथ वाला ।।२४।।

तस्माल्लोकमिमं राजन्स्वप्नमायामनोरथम् । वीक्ष्यायम्यात्मनात्मानं समः शान्तो भव प्रभो ।।२५।।

अन्वयः— राजन् तस्मात् इमं लोकम् स्वप्नमायामनोरथम् वीक्ष्य, आत्मना आत्मानं आयम्य हे प्रभो शान्तः समः भव ।।२५।।

अनुवाद— राजन् ! इसलिए इस संसार को स्वप्न माया और मनोरथ मात्र मानकर अपने प्रयत्न से अपने चित्त को रोकिए पक्षपात मत कीजिए । आप समर्थ हैं समत्व में स्थित हो जाइये, इस संसार की ओर से शान्त हो जाइये॥२५॥

भावार्थ दीपिका

स्वप्नश्च माया च मनोरथश्च तत्तेन तुल्यम् । आयम्य नियम्य । शान्तः सन्समो भवेति ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

यह जगत् स्वप्न माया तथा मनोरथ भाव के समान मिथ्या है । आयम्य अर्थात् नियमन करके शान्तः अर्थात् सम में स्थित हो जायँ ॥२५॥

धृतराष्ट्र उवाच

यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान् । तथानया न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथाऽमृतम् ॥२६॥

अन्वयः— हे दानव्रते भवान् कल्याणीं वदति तथा अनया न तृप्यामि यथा मर्त्यः अमृतं प्राप्य ॥२६॥

धृतराष्ट्र ने कहा

अनुवाद— हे दानी शिरोमणे आप जिस तरह की कल्याण कारिणी वाणी को कहते हैं, उससे में उसी तरह तृप्त नहीं हो पा रहा हूँ जिस तरह मरने वाला पुरुष अमृत प्राप करके नहीं तृप्त होता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

हे दानपते अक्रूर । न तृप्याम्यलमिति न मन्ये ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

हे दानी शिरोमणे अक्रूरजी । न तृप्यामि अर्थात् पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं हो रहा हूँ ॥२६॥

तथापि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले । पुत्रानुरागविषमे विद्युत्सौदामनी यथा ॥२७॥

अन्वयः— हे सौम्य तथापि सुनृतां पुत्रानुरागविषमे चले हृदि न स्थीयते, सौदामिनी विद्युत् यथा ॥२७॥

अनुवाद— हे सौम्य ! अक्रूरजी फिर भी अपने पुत्र के प्रति अनुराग के कारण विषम बने हुए इस चंचल हृदय में आपकी कल्याणकारिणी वाणी उसी तरह नही टिक पाती है, जिसतरह एक बार बिजली चमकती है और दूसरे क्षण अन्तर्धान हो जाती है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

सूनृता प्रिया वाक् चलेऽस्थिरे हृदि न स्थीयते न तिष्ठतीत्यर्थः । सुदामा पर्वतस्तत्र भवा विद्युदिव । तस्मिन्स्फटिकशिलामये सहसैवातिस्फुरिता विद्युद्यथा तद्वदित्यर्थः । यद्वा सुदामा माला तस्या इयं सौदामनी । मालाकारेत्यर्थः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

आपकी प्रियवाणी इस चंचल हृदय में टिक नहीं पाती है । उसी तरह जिस तरह सुदामा नामक स्फटिकशिला वाले पर्वत पर विजली चमक कर शीघ्र ही अन्तर्धान हो जाती है । अथवा सुदामा माला को कहते ही, अर्थात् माला के समान चमकने वाली बिजली ॥२७॥

ईश्वरस्य विधिं को नु विधुनोत्यन्यथा पुमान् । भूमेर्भारावताराय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥२८॥

अन्वयः— भूमेः भारावताराय यः यदोःकुले अवतीर्ण ईश्वरस्य विधिं को नु पुमान् अन्यथा विधुनोति ॥२८॥

Scanned by CamScanner

अनुवाद— पृथ्वी के भार को दूर करने के लिए जो यदुवंश में अवतीर्ण हुए हैं उन ईश्वर के विधान को कौन पुरुष उलट फेर कर सकता हैं। उनकी जैसी इच्छा होगी वैसा ही होगा ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं जानतोऽपि कथमयं मोह इति चेदत आह-ईश्वरस्येति। विधिं विधानं। मायामिति यावत् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि इस तरह से जानकर भी क्यों यह मोह करते हो तो इस पर धृतराष्ट्र **ईश्वरस्य० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। विधि अर्थात् विधान को अर्थात् माया को ॥२८॥

यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं सृष्ट्वा गुणान्विभजते तदनु प्रविष्टः।
तस्मै नमो दुरवबोधविहारतन्त्रसंसारचक्रगतये परमेश्वराय ॥२९॥

अन्वयः— यः दुर्विमर्शपथया निजमायया इदं सृष्ट्वा तदनुप्रविष्टः गुणान् बिभजते तस्मै दुरवबोधविहारतन्त्रसंसारचक्रगतये परमेश्वराय नमः ॥२९॥

अनुवाद— जो परमात्मा अपनी अचिन्त्यमार्ग वाली माया के द्वारा इस संसार की सृष्टि करके इसमें प्रवेश करक कर्मों तथा कर्म फलों का विभाग करते हैं। इस संसार चक्र की अनवरुद्ध गति में उनकी अचिन्त्य लीला शक्ति के अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है। मैं उन्हीं श्रीभगवान् को प्रणाम करता हूँ ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अतस्तमेव नमस्यति-य इति। दुर्विमर्शपथया अवितर्क्यमार्गया। गुणान्कर्माणि तत्फलानि च विभजतेति विविच्य ददाति। दुरवबोधो यो विहारस्तस्य क्रीडा स एव तन्त्रं प्रधानं मुख्यं कारणं यस्य संसारचक्रस्यअत एव तस्य गतिर्यस्मात्तस्मै नम इति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

यो दुर्विमर्श० इत्यादि श्लोक के द्वारा उन परमात्मा को ही राजा धृतराष्ट्र प्रणाम करते हैं। दुर्विमिर्शपथया अर्थात् अचिन्त्य मार्ग वाली गुणों, कर्मों और उन कर्मों के फलों को पृथक्-पृथक् करके फल प्रदान करते हैं। जिनकी दुरवगाह्य क्रीडा ही जिसमें प्रधान हैं उस संसार चक्र की गति जिस परमात्मा के द्वारा ही होती हैं उन परमात्मा को नमस्कार है ॥२९॥

श्रीशुक उवाच

इत्यभिप्रेत्य नृपतेरभिप्रायं स यादवः। सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनार्यदुपुरीमगात् ॥३०॥

अन्वयः— इति नृपतेः अभिप्रायं अभिप्रेत्य स यादवः सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनः यदुपुरीम् अगात् ॥३०॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से राजा धृतराष्ट्र के अभिप्राय को जानकर वे अक्रूरजी अपने सुहृदों से विदा लेकर फिर मथुरा लौट आये ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

अभिप्रेत्य ज्ञत्वा ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अभिप्रेत्य अर्थात् जानकर ॥३०॥

Scanned by CamScanner

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् । पाण्डवान्प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे पूर्वार्ध एकोनपञ्चशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

इति पूर्वार्धः समाप्तः

अन्वयः— हे कौरव्य रामकृष्णाभ्यां पाण्डवान् प्रति धृतराष्ट्रविचेष्टितम् शशंस यदर्थं स्वयम् प्रेषितः ॥३१॥

अनुवाद— हे परीक्षित् अक्रूरजी राजा धृतराष्ट्र की पाण्डवों के प्रति होने वाली प्रवृत्ति को भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी को बतलाये क्योंकि इसी कार्य के लिए श्रीभगवान् उनको हस्तिनापुर भेजे थे ॥३१॥

इस तरह महर्षि व्यास के द्वारा प्रणीत अठारह हजार श्लोको वाली श्रीमद्भागवत महापुराण नामक संहिता के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध के उनचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के उनचासवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।४९।।

।। ओम नमो भगवते वासुदेवाय ।।

दशम स्कन्धः (उत्तरार्धः)

पचासवाँ अध्याय

श्रीभगवान् का जरासन्ध से युद्ध और द्वारकापुरी का निर्माण

श्रीशुक उवाच

अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ । मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ॥१॥

अन्वयः— हे भरतर्षभ अस्ति प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भर्तरि मृते दुःखार्ते पितुर्गृहान् ईयतुः स्म ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् ! अस्ति तथा प्राप्ति नामक कंस की दोनों पत्नियाँ अपने पति के मारे जाने पर दुःख से संतप्त होकर अपने पिता जरासंध के घर चली गयीं ।।१।।

भावार्थ दीपिका

ततः पञ्चाशत्तमे तु जरासन्धभयादिव । कारायित्वाम्बुधौ दुर्गं तन्निनाय निजं जनम् ।।१।। कपटान्कपटैरेव हत्वा दैत्यानयत्नतः । अजयच्च जरासंन्धं धर्मेणैव तु धार्मिकम् ।।२।। अस्तिप्राप्तिसंज्ञिके । ईयतुर्जग्मतुः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् पचासवें अध्याय में जैसे जरासन्ध के डर से समुद्र के बीच में अपना किला बनाकर श्रीभगवान् अपनी प्रजा को वहीं ले गये ।।१।। कपटी दैत्यों को कपट के ही द्वारा बिना प्रयास के ही मारकर धर्म के ही द्वारा धार्मिक जरासंध को परास्त किए ।।२।। अस्ति और प्राप्ति संज्ञक दोनों कंस की पत्नियाँ जरासंध के धर चली गयीं ।।१।।

पित्रे मगधराजाय जरासन्धाय दुःखिते । वेदयांचक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ।।२।।

अन्वयः— दुःखिते आत्मवैधव्यकारणम् पित्रे मगधराजाय जरासंधाय वेदयाञ्चक्रतुः ।।२।।

अनुवाद— वे दोनों दुःखी होकर अपने विधवा होने के समस्त कारणों को अपने पिता मगधराज जरासन्ध को बतलायीं ।।२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२।।

स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप । अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परममुद्यमम् ।।३।।

अन्वयः— हे नृप तदप्रियम् आकर्ण्य शोकामर्षयुतः अयादवीं महीं कर्तुम् परमम् उद्यमम् चक्रे ।।३।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् उस अप्रिय समाचार को सुनकर कंस के लिए शोक तथा कृष्ण पर क्रोध से युक्त जरासन्ध ने पृथिवी को यदुवंशियों से रहित बना देने के लिए अपने युद्ध की बड़ी तैयारी की ।।३।।

भावार्थ दीपिका

कंसे शोकः कृष्णे चामर्षस्ताभ्यां युतः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

कंस के लिए शोक तथा कृष्ण पर क्रोध से युक्त जरासन्ध ।।३।।

अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः । यदुराजधानीं मथुरां न्यरुणत्सर्वतोदिशम् ।।४।।

अन्वयः— विंशात्या अक्षौहिणीभिः तिसृभिः चापि सः यदुराजधानीं मथुरां सर्वतोदिशम् न्यरुणत् ।।४।।

अनुवाद— वह तेइस अक्षौहिणी सेना लेकर यदुवंशियों की राजधानी मथुरा को सब ओर से घेर लिया।।४।।

भावार्थ दीपिका

न्यरुणद्रुरोध ।।४।।

भाव प्रकाशिका

घेर लिया ।।४।।

निरीक्ष्य तद्बलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम् । स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भयाकुलम् ।।५।।

अन्वयः— उद्वेलं सागरमिव तद्बलं तेन संरुद्धं स्वपुरम् स्वजनं च भयाकुलम् निरीक्ष्य कृष्णः ।।५।।

अनुवाद— उफनते हुए समुद्र के समान उस सेना को और उससे घिरी हुई अपनी नगरी को तथा भयभीत अपनी प्रजा को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तस्य बलं सैन्यमुद्वेलं लङ्घितमर्यादं सागरमिव । तेन तस्य बलेन संरुद्धम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

जरासन्ध की सेना उफनते हुए सागर के समान थी और उस सेना से घिरी हुई ।।५।।

चिन्तयामास भगवान्हरिः कारणमानुषः । तद्देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम् ।।६।।

अन्वयः— कारणमानुषः भगवान् हरिः तद्देशकालानुगुणं स्वावतार प्रयोजनम् चिन्तयामास ।।६।।

अनुवाद— पृथिवी का भार उतारने के लिए मनुष्य बने हुए भगवान् श्रीहरि देश एवं काल के अनुसार अपने अवतार के प्रयोजन का विचार किए ।।६।।

भावार्थ दीपिका

किं बलमेव हन्मि न मागधम्, मागधं वा हत्वा बलं गृह्णामि, यद्वा सगागधं सर्वं हन्मीति चिन्तयामास । ननु प्रथमं कथं जेष्यामीत्येवं चिन्तयितुं युक्तं तत्राह-कारणमानुष इति । भूभारावतारकारणेन मानुषो नतु तत्त्वत इति ।।६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सोचे कि क्या मैं सेना को ही मारूँ जरासन्ध को न मारूँ अथवा जरासन्ध को मारकर उसकी सेना को कैद कर लूँ । अथवा जरासंन्ध के साथ सारी सेना को मार दूँ, इस तरह से भगवान ने सोचा । प्रश्न है कि पहले सेना को कैसे जीतूँ, इस तरह से विचार करने के लिए उचित बात कहे कि वे कारण मानुष हैं । पृथिवी के भार को उतारनने के लिए मनुष्य बने हैं वस्तुतः वे मनुष्य नहीं है ।।६।।

हनिष्यामि बलं ह्येतद्भुवि भारं समाहितम् । मागधेन समानीतं वंश्यानां सर्वभूभुजाम् ॥७॥

अन्वयः— मागधेन समानीतम् सर्वभूभुजाम् वंश्यानां भुविभारसमाहितं एतद् बलं हनिष्यामि ।।७।।

अनुवाद— मगध राज जरासन्ध के द्वारा पृथिवी के सभी राजवंश की लायी गयी जो पृथिवी पर भार बनी हुई है इस सेना को मैं मार दूँगा हूँ ।।७।।

भावार्थ दीपिका

एवं त्रिधा विचिन्त्य प्रथमं पक्षं निर्धारितवांस्तदाह चतुर्भिः-हनिष्यामीति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से तीन प्रकार से प्रथम पक्ष को ही श्रीभगवान् ने निर्धारित किया, इस बात को उन्होंने चार श्लोकों से कहा है ।।७।।

अक्षौहिणीभिः संख्यातं भटाश्वरथकुञ्जरैः । मागधस्तु न हन्तव्यो भूयः कर्ता बलोद्यमम् ॥८॥

अन्वयः— भटाश्वरथकुञ्जरैः अक्षौहिणीभिः संख्यातं बलं हनिष्यामि मागधः तु न हन्तव्यः भूयः बलोद्यमं कर्ता ।।८।।

अनुवाद— पैदल, घुड़सवार, रथ तथा हाथियों से युक्त अक्षौहिणियों में गिनी जाने वाली सेना को मार दूँ । जरासंन्ध को नहीं मारना चाहिए । ऐसा करने से वह पुनः सेना लेकर आक्रमण करेगा ।।८।।

भावार्थ दीपिका

बलोद्यमं कर्ता करिष्यतीति ।।८।।

भाव प्रकाशिका

सेना लेकर आक्रमण करेगा ।।८।।

एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे । संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ॥९॥

अन्वयः— भूभारहराणाय साधूनां संरक्षणाय अन्येषां वधाय च एतदर्थः अयं अवतारः कृतः ।।९।।

अनुवाद— पृथिवी के भार को दूर करने के लिए, सज्जन पुरुषों की संरक्षा के लिए तथा दुष्टों का वध करने के लिए इन्हीं तीन कार्यों को करने के लिए मैंने इस अवतार को ग्रहण किया है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

नन्वत एव हन्तव्यस्तत्राह-एतदर्थ इति । एतच्छब्दार्थं स्पष्टयति-भूभारहरणायेति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

अतएव मुझको इस सेना को मार देना चाहिए । **भूभारहरणाय इत्यादि** के द्वारा एतत् शब्द के अर्थ को स्पष्ट किया गया है ।।९।।

अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः संभ्रियते मया । विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥१०॥

अन्वयः— मया अन्यअपिदेहः धर्मरक्षायै क्वचित् काले प्रभवतः अधर्मस्य विरामाय संभ्रियते ।।१०।।

अनुवाद— मैं अन्य शरीरों को भी धर्म की रक्षा के लिए और किसी समय बढ़ते हुए अधर्म को रोक देने के लिए ग्रहण करता हूँ ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

अयमेतदर्थोऽवतार इत्युपलक्षणमित्याह-अन्योऽपीति । प्रभवत उद्भवतः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

मेरा यह अवतार इसी के लिए हुआ है इस उपलक्षण को **अन्योपि० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । **प्रभवतः** उत्पन्न होते हुए ।।१०।।

एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात्सूर्यवर्चसौ । रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ।।११।।

अन्वयः— एवं गोविन्दे ध्यायति आकाशात् ससूतौ सपरिच्छदौ सूर्यवर्चसौ रथौ आकाशात् उपस्थितौ ।।११।।

अनुवाद— इस तरह से भगवान् गोविन्द जब विचार कर ही रहे थे उसी समय युद्ध की सारी सामग्रियों से युक्त तथा सूर्य के समान चमकते हुए दो रथ आकाश से उतरे उन दोनों रथों को दो सारथि हाँक रहे थे ।।११।।

भावार्थ दीपिका

ससूतौ सारथिसहितौ । परिच्छदः परिकरो ध्वजकवचादिस्तत्सहितौ ।।११।।

भाव प्रकाशिका

ससूतौ अर्थात् सारथि के साथ, परिच्छदः युद्धोपयोगी ध्वज तथा कवच आदि से युक्त ।।११।।

आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया । दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः संकर्षणमथाब्रवीत् ।।१२।।

अन्वयः— दिव्यानि पुराणानि आयुधानि च यदृच्छया अथ तानि दृष्ट्वा हृषीकेशः संकर्षणम् अब्रवीत् ।।१२।।

अनुवाद— उसी समय भगवान के दिव्य एवं सनातन आयुध भी वहाँ उपस्थित हो गये । उन सबों को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी से कहे ।।१२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१२।।

पश्यार्य व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो । एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ।।१३।।

अन्वयः— हे प्रभो ! हे आर्य ! त्वावतां यदूनां व्यसनं पश्य, एष ते रथ आयातः दयितानि आयुधानि च ।।१३।।

अनुवाद— हे प्रभो ! हे आर्य आपके द्वारा रक्षा किए जाने वाले यदुवंशियों के ऊपर आयी हुई इस विपत्ति को आप देखें ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

त्वमेवावन् रक्षको नाथो विद्यते येषां ते त्वावन्तस्तेषाम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

जिन सबों के रक्षक आप ही है उन यदुवंशियों पर ।।१३।।

यानमास्थाय जह्येतद्व्यसनात्स्वान्समुद्धर । एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत् ।।१४।।

अन्वयः— यानम् आस्थाय एतद व्यसनं जहि स्वान् समुद्धर, हे ईश एतदर्थं हि साधूनां शर्मकृत् नौ जन्म ।।१४।।

अनुवाद— अब आप इस रथ पर आरूढ होकर शत्रु सेना का संहार करें और अपनी प्रजा का उद्धार करें। हम दोनों का जन्म साधु पुरुषों का कल्याण करने लिए हुआ है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४।।

त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेर्भारमपाकुरु । एवं संमन्त्र्य दाशार्हौ दंशितौ रथिनौ पुरात्।।१५।।
निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसा वृतौ । शङ्खं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः ।।१६।।

अन्वयः— त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेः भारम् अपाकुरु, एवं संमन्त्र्य दाशार्हौ दंशितौ रथिनौ स्वायुधाढ्यौ, अल्पीयसा बलेन वृतौ पुरात् निर्जग्म्तुः दारुकसारथिः हरिः विनिर्गत्यशंखं दध्मौ ।।१५-१६।।

अनुवाद— तेइस अक्षौहिणी वाली यह सेना जो पृथिवी पर भार बनी हुई है इसको नष्ट कर दीजिए। इस तरह से विचार करके भगवान् श्रीकृष्ण कवच पहनकर तथा आयुधों को धारण करके बहुत थोड़ी सेना के साथ रथ पर बैठकर नगर से बाहर निकले और जिनका दारुक सारथि था वे श्रीहरि नगर से निलककर अपना शंख बजाये ॥१५-१६॥

भावार्थ दीपिका

दंशितौ बद्धकवचौ। स्वायुधाढ्यौ शोभनायुधसंपन्नौ ॥१५-१६॥

भाव प्रकाशिका

स्वायुधाढ्यौ अर्थात् सुन्दर आयुध से युक्त ॥१५-१६॥

ततोऽभूत्परसैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः। तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम ॥१७॥
न त्वया योद्धुमिच्छामि बालेनैकेन लज्जया। गुप्तेन हि त्वया मन्द न योत्स्ये याहि बन्धुहन्॥१८॥

अन्वयः— ततः परसैन्यानां हृदि वित्रासवेपथुः अभूत् तौ वीक्ष्य मागधः आह हे पुरुषाधम कृष्ण त्वया एकेन कालेन लज्जया योद्धुम्न इच्छामि गुप्तेन हि त्वया मन्द ! हे बन्धुहन् ! त्वया न योत्स्ये याहि ॥१७-१८॥

अनुवाद— जब भगवान् ने शङ्ख बजाया तो शत्रु सेना के हृदय में डर के मारे कँपकँपी हो गयीं। बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर जरासंध ने कहा ऐ पुरुषाधम श्रीकृष्ण तुम बालक के साथ मुझे युद्ध करने में लज्जा लगती है। तुम तो अपने मामा को मारने वले हो मैं तुमसे युद्ध नहीं करूँगा तुम मेरे सामने से भग जा। तुम तो न जाने कहाँ-कहाँ छिपकर रहता था ॥१७-१८॥

भावार्थ दीपिका

पुरुषा अधमा यस्मादिति वास्तवोऽर्थः। हे पुरुषोत्तमेति। गुप्तेन सर्वान्तरत्वाद्दर्शनानर्हेण। हे मन्द ! वघ्नातीति बन्धुरविद्या तां हन्तीति तथा, हे अविद्यानिरसनेति। याहि प्राप्नुहि ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

हे पुरुषाधम पद का वास्तविक अर्थ है कि सभी जीव जिनकी अपेक्षा अधम कोटि के हैं। अर्थात् हे पुरुषोत्तम! **गुप्तेन** अर्थात् सबों के भीतर अन्तर्यामी रूप से रहने के कारण कोई आपका साक्षात्कार नहीं कर सकता। हे मन्द का पदच्छेद है हे अमन्द ! बन्धुहन् का वास्तविक अर्थ है जो बाँधने का काम करे वह बन्धु अर्थात् अविद्या है, उसको जो विनष्ट करे अर्थात् हे अज्ञानविनाशक। याहि अर्थात् प्राप्त करो ॥१७-१८॥

तव राम यदि श्रद्धा युध्यस्व धैर्यमुद्वह। हित्वा वा मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्याहि मां जहि ॥१९॥

अन्वयः— हे राम तव यदि श्रद्धा युध्यस्व, धैर्यम् उद्वह वा मच्छरैःछिन्नं देहम् हित्वा स्वर्याहि मां वा जहि ॥१९॥

अनुवाद— बलराम यदि तुम्हारी युद्ध करने में श्रद्धा हो तो धैर्य धारण करके युद्ध करो और बाणों से छिन्न-भिन्न शरीर को त्याग कर स्वर्ग चले जाओ अथवा मुझको मार दो ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

अच्छेद्यदेहोऽसाविति स्वयमेव मत्वाऽपरितोषात्पक्षान्तरमाह-यद्वा मां जहीति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

बलरामजी का शरीर अच्छेद्य हैं ऐसा मानकर असन्तोष के कारण दूसरे पक्ष को जरासन्ध ने कहा मुझको मार डालो ॥१९॥

श्रीभगवानुवाच

न वै शूरा विकत्थन्ते दर्शयन्त्येव पौरुषम् । न गृह्णीमो वचो राजन्नातुरस्य मुमूर्षतः ॥२०॥

अन्वयः— राजन् शूराः न विकत्थन्ते पौरुषम् एव दर्शयन्ति आतुरस्य मुमूर्षतः वचो न गृह्णीमः ॥२०॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— मगधराज जो वीर होते हैं वे आत्मश्लाघा नहीं करते हैं वे अपना पौरुष दिखलाते हैं । तुम तो मरने वाले हो इसीलिए तुम्हारी बातों पर हम ध्यान नहीं देते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

यथाश्रुतार्थग्रहणेन भगवत उत्तरम्-न वै शूरा इति । विकत्थन्ते श्लाघन्ते ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने जैसा सुना है उसका वैसा ही अर्थ मानकर उत्तर देते हैं विकत्थन्ते अर्थात् डींग नहीं हाँकते हैं ॥२०॥

श्रीशुक उवाच

जरासुतस्तावभिसृत्य माधवौ महाबलौघेन बलीयसावृणोत् ।
ससैन्ययानध्वजवाजिसारथी सूर्यानलौ वायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥२१॥

अन्वयः— जरासुतः तो माधवौ अभिसृत्य महाबलौघेन बलीयसा ससैन्ययानध्वजवाजि सारथी वायुः अभ्ररेणुभिः सूर्यानलौ इव आवृणोत् ॥२१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् जरासन्ध बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण को अपनी अत्यधिक बलवान् और विशाल सेना से चारो ओर से घेर लिया जिसके कारण भगवान् श्रीकृष्ण की सेना, रथ, ध्वजा, घोड़े और सारथियों का दिखना बन्द हो गया । यह उसी तरह से हुआ जिस तरह वायु मेघ से सूर्य को तथा धूल से आग को ढँक लेता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

माधवौ मधुवंशभवौ । महता सैन्यसमूहेनावृतवान् । वायुरभ्रैः सूर्यं रेणुभिश्चाग्निं यथेत्यदर्शनमात्रमेवावरणमिति सूचितम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

मधु के वंश में उत्पन्न होने वाले भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी को जरासन्ध ने विशाल सेना से घेर लिया, जैसे वायु सूर्य को मेघों से तथा धूल से अग्नि को ढँक देने का काम करती हैं । इससे सूचित होता है कि वह आवरण दिखाई न देना मात्र था ॥२१॥

सुपर्णतालध्वजचिह्नितौ रथावलक्षयन्त्यो हरिरामयोर्मृधे ।
स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं समाश्रिताः संमुमुहुः शुचार्दिताः ॥२२॥

अन्वयः— हरिरामयोः सुपर्णतालध्वजचिह्नितौ रथौ मृधे अलक्ष्यन्त्यः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं श्रिताः स्त्रिय शुचार्दिता संमुमुहुः ॥२२॥

अनुवाद— गरुड़ के चिह्न वाले भगवान् श्रीकृष्ण के रथ तथा तालध्वज के चिह्न से चिह्नित बलरामजी के रथ के युद्ध भूमि में नहीं दिखाई पड़ने पर महलों की अटारियों छज्जों और फाटकों पर चढ़कर युद्ध का दृश्य देखने वाली नगर की नारियाँ शोक के आवेग से मूर्छित हो गयीं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

हरिः परानीकपयोमुचां मुहुः शिलीमुखात्युल्बणवर्षपीडितम् ।
स्वसैन्यमालोक्य सुरासुरार्चितं व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम् ॥२३॥

अन्वयः— परानीकपयोमुचा मुहुः शिलीमुखात्युल्बण वर्ष पीडितम् स्वसैन्यम् आलोक्य सुरासुरार्चितं शार्ङ्गशरासनोत्तमम् व्यस्फूर्जयत् ॥२३॥

अनुवाद— जब भगवान् श्रीकृष्ण ने देखाकि शत्रु की सेना के बीर हमारी सेना पर इस प्रकार बाणों का प्रहार कर रहे हैं जैसे मेघ अनगिनत पानी की बूंदे बरसा रहा हो और उससे हमारी सेना अत्यन्त पीड़ित है तब उन्होंने देवता और असुर दोनों से पूजित अपने शार्ङ्ग धनुष का टङ्कार किया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

परस्यानीकानि सैन्यानि तान्येव पयोमुचो मेघास्तेषां शिलीमुखा वाणास्तेषामत्युल्बणं वर्षं तेन पीडितम् । व्यस्फूर्जयदुज्जृम्भितवान् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

शत्रु की सेना रूपी मेघों के अत्यन्त भयङ्कर बाणों से पीडित अपनी सेना को देखकर उन्होंने अपने शार्ङ्ग धनुष का टङ्कार किया ॥२३॥

गृह्णन्निषङ्गादथ संदधच्छरान्विकृष्य मुञ्चञ्छितबाणपूगान् ।
निघ्नन्रथान्कुञ्जरवाजिपत्तीन्निरन्तरं यद्वदलातचक्रम् ॥२४॥

अन्वयः— अथ निषङ्गात् गृह्णन् संदच्छरान् विकृष्य मुञ्चन् शीतबाण पूगान् निघ्नन् रथान् कुञ्जरवाजिपत्तीन् निरन्तरं यदवदलातचक्रम् ॥२३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् वे तरकस में से बाण निकालने, उसे धनुष पर चढ़ाकर धनुष की प्रत्यञ्चा खींचकर झुण्ड के झुण्ड बाणों को छोड़ने लगे । उस समय उनका धनुष इतनी शीघ्रता से घूम रहा था कि जैसे कोई आलात चक्र घुम रहा हो । इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण जरासन्ध की चतुरङ्गिणी सेना के हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सेना का संहार करने लगे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तदाह-गृह्णन्निति । निषङ्गादिषुधेः शरान् गृह्णन् । अथ तान्गुणे संदधत् । गुणमाकृष्य निशितबाणसमूहान्मुञ्चन् । निघ्नन्प्रहरन्। पत्तिः पदातिः । निरन्तरमिति ग्रहणादिक्रियाविशेषणम् । ज्वलत्काष्ठं भ्रमणे यथा चक्रवद्भवति तद्वद्व्यस्फूर्जयदिति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

उसी का वर्णन **गृहणन् इत्यादि** श्लोक से करते हैं । तरकस से बाणों को निकाल कर उन सबों को प्रत्यञ्चा पर चढाकर प्रत्यञ्चा को खींचकर तीक्ष्ण बाण समूह को छोड़ते हुए । निघ्नन् अर्थात् मारते हुए । पत्तिः अर्थात् पैदल, निरन्तरम् पद ग्रहणादि का क्रिया विशेषण है । जलती हुई लकड़ी को घुमाने पर जैसे ज्वालाचक्र बन जाता है । अर्थात् बनेठी के समान चक्राकार अपने धनुष की डोरी का टङ्कार किए ॥२४॥

निर्भिन्नकुम्भाः करिणो निपेतुरनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकन्धराः ।
रथा हताश्वध्वजसूतनायकाः पदातयश्छिन्नभुजोरुकन्धराः ॥२५॥

अन्वयः— निर्भिन्नकुम्भाः करिणः अनेकशः शरवृक्ण कन्धराः अश्वा; हताश्वध्वजसूतनायकाः रथाः छिन्नभुजोरुकन्धराः पदातयः च निपेतुः ॥२५॥

अनुवाद— बहुत से हाथियों के सिर फट गये थे वे, बाण लगने से जिन घोड़ों की गर्दन कट गयी थी वे, जिनके घोड़े, ध्वज, सारथि और रथी मर गये थे ऐसे रथ, जिनकी भुजा जाङ्घा और कन्धे कट गये थे ऐसी पैदल सेना गिर गयी ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

हता अश्वा ध्वजाः सूता नायका रथिनयश्च येषु ते ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

जिनके अश्व, ध्वज, सारथि और रथी मार दिए गये थे ॥२५॥

संछिद्यमानद्विपदेभवाजिनामङ्गप्रभूताः शतशोऽसृगापगाः ।
भुजाहयः पूरुषशीर्षकच्छपा हतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥२६॥
करोरुमीनां नरकेशशैवला धनुस्तरङ्गायुधगुल्मसंकुलाः ।
अच्छूरिकावर्तभयानका महामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥२७॥
प्रवर्तिता भीरुभयावहा मृधे मनस्विनां हर्षकरीः परस्परम् ।
विनिघ्नताऽरीन्मुसलेन दुर्मदान्सङ्कर्षणेनापरिमेयतेजसा ॥२८॥

अन्वयः— मुसलेन दुर्मदान् अरीन् निघ्नता अपरिमेयतेजसा सङ्कर्षणेन मृधे संछिद्यमानद्विपदेभवाजिनामङ्गप्रसूताः भीरुभयावहाः भुजाहयः पूरुषशीर्षकच्छपाः हतद्विपद्वीपहय ग्रहाकुलाः करोरुमीनाः नरकेशशैवलाः धनुस्तरङ्गायुध गुल्मसङ्कुलाः अच्छूरिकावर्तभयानकाः महामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः मनस्विनां हर्षकरीः शतशः असृगापगाः प्रवर्तिता ॥२६-२८॥

अनुवाद— अपने मुसल के प्रहार से मदान्ध शत्रुओं को मारने वाले निःसीम तेजस्वी बलरामजी ने मारे जाते हुए पैदल सेना तथा हाथी घोड़ों के शरीर से निकलने वाले रक्त से उत्पन्न, कायरों को भयभीत कर देने वाली रक्त की सैकड़ों नदियाँ बहा दी । जिसमें वीरों की भुजाएँ सांप के समान मनुष्यों के सिर ही कच्छप के समान प्रतीत होते थे । मारे गये हाथी द्वीप के समान अश्वरूपी ग्राहों से भरी हुई, वीरों के हाथ बड़ी मछली के समान, मनुष्यों के केश सेवार के समान, धनुष तरङ्गों के समान और अस्त्र-शस्त्र लता एवं तिनकों के समान प्रतीत होते थे । ढालें भयङ्कर चकोह के समान, बहुमूल्य मणियाँ एवं आभूषण पत्थरो के रोड़ों तथा कङ्कड़ों के समान बह रहे थे । उन नदियों को देखकर कायर पुरुष डर रहे थे और वीरों का परस्पर में उत्साह बढ़ रहा था ॥२६-२८॥

भावार्थ दीपिका

संछिद्यमाना द्विपदा इभा वाजिनश्च तेषामङ्गेभ्यः प्रसूता असृगापगा रुधिरनद्यः परस्परं प्रवर्तिता इति तृतीयेनान्वयः । प्रसिद्धनदीरूपकमाह–भुजा एवाहयो यासु ताः । पुरुषाणां शीर्षाण्येव कच्छपा यासु ताः । हता द्विपा एव द्वीपा अन्तर्वर्तितटानि। हया एव ग्रहा ग्राहास्तैश्चाकुला व्याप्ताः । करा ऊरवश्च मीना यासु ताः । नराणां केशा एव शैवलं यासु ताः । धनूंष्येव तरङ्गा आयुधान्येव गुल्मास्तैश्च तैश्च सङ्कुलाः । अच्छूरिकाश्चर्माणि चक्राणि वा तान्येवावर्तास्तैर्भयानकाः । महामणीनां प्रवेका उत्तमा आभरणानि च यथायथमश्मानः शर्कराश्च यासु ताः । भीरूणां भयावहाः मनस्विनां धीराणां हर्षकर्यः ॥२६-२८॥

भाव प्रकाशिका

कटने वाले पैदल सैनिकों, हाथियों, और अश्वों के अङ्गों से रक्त की नदियाँ बहने लगी । इसका परस्पर में आगे के तीसरे (अठाइसवें) श्लोक से अन्वय है । प्रसिद्ध नदी रूपक को बतलाते हैं । वीरों की भुजाएँ ही उन नदियों में सर्प के समान, सिंर कछुए के समान, मारे गये हाथी नदी के भीतर विद्यमान द्वीप के समान, अश्व ग्राहों के समान, इन सबों से वे नदियाँ व्याप्त थीं । हाथ और जङ्घे मछली के समान, मनुष्यों के केश से वार

के समान, धनुष तरङ्ग के समान और आयुध गुल्म के समान अच्छूरिका तथा चर्म ही उस नदी के भयानक आवर्त के समान बहुत से उत्तम आभरण और मणियाँ उस नदी में प्रवाहित होने वाले कङ्कण पत्थर के समान थे। इस तरह की नदियाँ कायरों के लिए भयानक और वीरों के लिए हर्षप्रद थीं ॥२६-२८॥

बलं तदङ्गार्णवदुर्गभैरवं दुरन्तपारं मगधेन्द्रपालितम् ।
क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयोर्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः परम् ॥२९॥

अन्वयः— हे अङ्ग तद्बलं अर्णवदुर्गभैरवं दुरन्तपारं मगधेन्द्रपालितं वसुदेवपुत्रयोः जगदीशयोः परम् विक्रीडितं क्षयं प्रणीतम् ॥२९॥

अनुवाद— हे परीक्षित् जरासंध की वह सेना समुद्र के समान दुर्गम, भयावह और कठिनाई से जीतने योग्य थी किन्तु श्रीबलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण ने उसे खेल-खेल में ही विनष्ट कर दिया। क्योंकि वे तो जगत् स्वामीं हैं, उनके लिए एक सेना का नाश करना तो खिलवाड़ ही है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

किंच सङ्कर्षणेनापि तद्बलं क्षयं प्रणीतम्। अङ्ग हे राजन्, अर्णववद्दुर्गं दुर्गमं भैरवं भयंङ्करं च। यतो दुरन्तपारम्, अन्तोऽत्रतलम्, पारमावधि, दुःशब्दो निषेधे, विक्रमेणागाधं देशतश्च निरवधिकमित्यर्थः। किंच मगधेन्द्रेण च पालितं बलम्। यदेवंभूतं रामकृष्णयोः कर्मोक्तः तत्परं केवलं तयोर्विक्रीडितं नतु पराक्रमः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

बलरामजी ने भी उस सेना का नाश किया। राजन् वह सेना समुद्र के समान भयङ्कर तथा कठिनाई से जीतने योग्य थी। दुरन्त का अन्त शब्द तल का बोधक है। पार सीमा को कहते हैं। **दुः** शब्द निषेध का बोधक है ॥२९॥

स्थित्युद्भवान्तं भुवनत्रयस्य यः समीहतेऽनन्तगुणः स्म लीलया ।
न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रहस्तथापि मर्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ॥३०॥

अन्वयः— यः अनन्तगुणः स्थित्युद्भवानन्तं भुवनत्रयस्य स्वलीलया समीहते। तस्य परपक्षनिग्रहः चित्रं न तथापि मर्त्यानुविधानात् वर्ण्यते ॥३०॥

अनुवाद— अनन्त गुणों से सम्पन्न जो श्रीभगवान् त्रैलोक्य की सृष्टि, पालन और संहार का कार्य लीला पूर्वक कर देते हैं, उनके लिए शत्रु की सेना को विनष्ट कर देना कोई आश्चर्य की बात नहीं है तथापि वे मनुष्य के वेष में जो लीला करते हैं उसका वर्णन किया जाता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

न चैतदाश्चर्यमित्याह-स्थित्युद्भवान्तमिति। तर्हि किमित्याश्चर्यमिव वर्णितं तत्राह-तथापीति। मर्त्याननुविधत्तेऽनुकरोतीति मर्त्यानुविधस्य ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इस बात को **स्थित्युद्भवान्तम्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। तो फिर इसका वर्णन आश्चर्य के समान क्यों वर्णित किया गया है ? तो चूकि श्रीभगवान् मनुष्यों का अनुकरण कर रहे हैं ॥३०॥

जग्राह विरथं रामो जरासंन्धं महाबलम् । हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ॥३१॥

अन्वयः— हतानीकावशिश्टासुं विरथं महाबलं जरासन्धं रामः सिंहः सिंहम् इव ओजसा जग्राह ॥३१॥

अनुवाद— जरासन्ध की सारी सेना मार दी गयी थी, उसका रथ भी टूट गया था उसके शरीर में केवल प्राण ही बचा था, उस महाबलवान् जरासन्ध को बलरामजी ने बलपूर्वक उसीतरह से पकड़ लिया जिस तरह कोई बलवान सिंह किसी दूसरे सिंह को पकड़ लेता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

किंच जग्राहेति । हतान्यनीकानि यस्य, अवशिष्टा असव एव यस्य तं च तं च ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

जग्राहरामः इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है कि जरासन्ध की सेना मार दी गयी थी, उसके शरीर में केवल प्राण भर रह गये थे जरासन्ध को बलरामजी ने बलपूर्वक पकड़ लिया ॥३१॥

बध्यमानं हतारातिं पाशैर्वारुणमानुषैः । वारयामास गोविन्दस्तेन कार्यचिकीर्षया ॥३२॥

अन्वयः— वारुण मानुषैः पाशै वध्यमानं हताररतिं जरासन्धं तेन कार्यचिकीर्षया गोविन्दः वारितः ॥३२॥

अनुवाद— वरुणपाश से बाँधकर जब बलरामजी जिसके सारे शत्रु मार दिए गये थे, उस जरासन्ध को मार देना चाहते थे किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने उनको ऐसा करने से यह कहकर रोक दिया कि यह फिर सेना विटोर कर आयेगा और हमलोग पृथिवी का भार आसानी से उतार देंगे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

हता बहुशोऽरातयो येन तथाभूतमपि जरासन्धं बध्यमानं वारयामासेति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

जिस जरासन्ध ने अपने बहुत से शत्रुओं को मार दिया था उस मारे जाते हुए जरासन्ध को मारने से भगवान् श्रीकृष्ण ने बलरामजी को रोक दिया ॥३२॥

स मुक्तो लोकनाथाभ्यां व्रीडितो वीरसंमतः । तपसे कृतसंकल्पो वारितः पथि राजभिः ॥३३॥

अन्वयः— लोकनाथाभ्यां मुक्तः स वीरसंमतः ब्रीडितः तपसे कृत संकल्पः पथि राजभिः वारितः ॥३३॥

अनुवाद— संसार के स्वामी श्रीबलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा छोड़ दिए जाने पर वीर सम्मत जरासन्ध बहुत लज्जित था। उसने तपस्या करने का सङ्कल्प किया था किन्तु रास्ते में राजाओं ने उसको समझा बुझाकर तपस्या करने से रोक दिया ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि । स्वकर्मबन्धप्राप्तोऽयं यदुभिस्ते पराभवः ॥३४॥

अन्वयः— पवित्रार्थपदैः वाक्यैः नयनैः प्राकृतैः अपि यदुभिः ते अयं पराभवः स्वकर्मबन्धप्राप्तः ॥३४॥

अनुवाद— राजाओं ने जरासन्ध को धर्मोपदेश परक वाक्यों तथा लौकिक नीतियों से समझाया कि राजन् आपका बहुत थोड़े यदुवंशियों द्वारा जो पराजय हुआ है इसमें आपका प्रारब्ध ही कारण है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

पवित्रार्थानि धर्मोपदेशपराणि पदानि येषु तैर्वाक्यैः । नयनैर्नीतिभिः । प्राकृतैर्लौकिकैः । तत्र लौकिकन्यायमाहुः— स्वकर्मेति । यदुभिरल्पकैः कृत्वा ते महतः पराभवः केवलं कर्मबन्धेन प्राप्तोऽतस्त्वया न लज्जितव्यमिति ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

धर्मोपदेश परक वाक्यों से तथा लौकिक नीतियों से जरासन्ध को राजाओं ने समझाया। लौकिक नीति की

बातें करते हुए उन सबों ने कहा अल्पसंख्यक तथा दुर्बल यदुवंशियों से आपका पराजय आपके पूर्वकृत कर्मजन्य है । अतएव आपको लज्जा नहीं करनी चाहिए ।।३४।।

हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा । उपेक्षितो भगवता मगधान्दुर्मना ययौ ।।३५।।

अन्वयः— तदा सर्वानीकेषु हतेषु बार्हद्रथः नृपः भगवता उपेक्षितः दुर्मना मगधान् ययौ ।।३५।।

अनुवाद— उस समय सारी सेना के मार दिए जाने पर बृहद्रथ के पुत्र राजा जरासन्ध को श्रीभगवान् ने उपेक्षा पूर्वक छोड़ दिया और वह उदास होकर अपने राज्य मगध प्रदेश में चला गया ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

बार्हद्रथो जरासन्धः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

बार्हद्रथ अर्थात् जरासन्ध ।।३५।।

मुकुन्दोऽप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः । विकीर्यमाणः कुसुमैस्त्रिदशैरनुमोदितः ।।३६।।
माथुरैरूपसंगम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः । उपगीयमानविजयः सूतमागधबन्दिभिः ।।३७।।
शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः । वीणावेणुमृदङ्गानि पुरं प्रविशति प्रभौ ।।३८।।

अन्वयः— निस्तीर्णाखिलः अक्षतबलः मुकुन्दः अपि त्रिदशैः अनुमोदितः कुसुमैः विकीर्यमाणः मुदितात्मभिः विज्जवरै माथुरैः उपसंगम्य सूतमागध बन्दिभिः उपनगीयमान विजयः पुरं प्रविशति प्रभौ शङ्खदुन्दुभयः वीणवेणुमृदङ्गानि भेरी तूर्याणि अनेकशः नेदुः ।।३६-३८।।

अनुवाद— परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्ण ने जरासंध की तेइस अक्षैहिणी सेना पर जो आसानी से विजय प्राप्त कर लिया किन्तु श्रीभगवान् की सेना में किसी का भी बालबाँका नहीं हुआ । उस समय बड़े-बड़े देवता श्रीभगवान् पर पुष्पों की वर्षा करके उनके इस महान् कार्य को अनुमोदित कर रहे थे, जरासन्ध के पराजय से मथुरावासी भय रहित हो गये और उनका हृदय आनन्द से भर गया । श्रीभगवान् आकर उन सबों से मिले । उस समय सूत मागध एवं वन्दीजन उनके विजय का गान कर रहे थे । श्रीभगवान् जिस समय नगर में प्रवेश किए उस समय वहाँ शङ्ख, नगारे, भेरी, वीणा, वंशी, मृदङ्ग एवं तुरही आदि अनेक बाजे बजने लगे ।।३६-३८।।

भावार्थ दीपिका

मुकुन्दोऽपि ययावित्यनुषङ्गः । न क्षतं बलं यस्य सः । तस्यैवामृतदृष्ट्या क्षतप्रतिसन्धानादिति भावः । निस्तीर्णोऽनायासेनैव तीर्णोऽखिलार्णवो येन । साधु साधु इत्यनुमोदितश्च । प्रत्युद्यातैर्मथुरावासिभिः जनैः । उपसंगम्य मिलित्वा । तदा प्रभौ पुरं प्रविशति सति शङ्खादयो नेदुः ।।३६-३८।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् भी चले गये इस प्रकार से अन्वय है । श्रीभगवान् की अमृत दृष्टि के कारण घावों की प्रतीति नहीं होने के कारण भगवान् की सेना की कोई भी क्षति नहीं हुई । **निस्तीर्णोरि बलार्णवः** अर्थात् भगवान् ने शत्रु की समुद्र के समान सेना पर अनायास ही विजय प्राप्त कर लिया । देवताओं ने बहुत अच्छा, बहुत अच्छा कहकर श्रीभगवान् का अनुमोदन किया । आगे से उठकर सम्मान करने वाले मथुरावासियों से मिलकर, श्रीभगवान् के नगर में प्रवेश करते समय शङ्ख इत्यादि बजने लगे ।।३६-३८।।

सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिरलंकृताम्। निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥३९॥
निचीयमानो नारीभिर्माल्यदध्यक्षताङ्कुरैः। निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥४०॥

अन्वयः— सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिरलंकृताम् ब्रह्मघोषेण निर्घुष्टाम् कौतुकावद्धतोरणम् प्रीत्युत्कलितलोचनैः नारीभिः सस्नेहं निरीक्ष्य माल्यदध्यक्षातांकुरैः निचीयमानः ॥३९-४०॥

अनुवाद— उस समय मथुरा के मार्गों को सुगन्धित जल से सींच दिया गया था, वहाँ के प्रत्येक लोग प्रसन्न थे। मथुरा नगरी को छोटी-छोटी पताकाआं से सजा दिया गया था, ब्राह्मण गण वेदों का पाठ कर रहे थे, पूरे नगर में आनन्द के सूचक तोरण को बाँध दिया गया था, प्रसन्नता के कारण जिनके नेत्र विकसित हो गये थे ऐसी नारियाँ श्रीभगवान् को स्नेह पूर्वक देख रही थीं। और श्रीभगवान् पर माला दही अक्षत और ज्वार की वर्षा कर रही थीं ॥३९-४०॥

भावार्थ दीपिका

कथंभूतां पुरं तदाह-सिक्तमार्गामिति। ब्रह्मघोषेण वेदघोषेण निर्घुष्टां निनादिताम्। कौतुकेनोत्सवेन आ सर्वतो वद्धानि तोरणानि यस्यां ताम्। निचीयमानो विकीर्यमाणः। प्रविवेशेति विपरिणताऽनुषङ्गः ॥३९-४०॥

भाव प्रकाशिका

किस प्रकार के नगर में उसको बतलाते हैं मथुरा के सारे मार्ग सुगन्धित जल से सींच दिये गये थे। सभी ब्राह्मणगण वेद पाठ कर रहे थे, नगर में उत्सव के द्योतक तोरण को बाँध दिया गया था। **निचीयमानः** अर्थात् छींटे जाते थे। मथुरा वासियों ने आगे आकर श्रीभगवान् का स्वागत किया। ऐसी मथुरा पुरी में भगवान् प्रवेश किए यहाँ पीछे के श्लोक से अन्वय है ॥३९-४०॥

आयोधनगतं वित्तमनन्तं वीरभूषणम्। यदुराजाय तत्सर्वमाहृतं प्रादिशत्प्रभुः ॥४१॥

अन्वयः— आयोधनगतं अनन्तं वित्तम् वीरभूषणम् आहृतं तत्सर्वं प्रभु यदुराजाय प्रादिशत् ॥४१॥

अनुवाद— श्रीभगवान् युद्ध भूमि से अनन्त सम्पत्ति तथा वीरों के भूषण जो लाये थे वह सबकुछ यदुवंशियों के राजा उग्रसेन को प्रेषित कर दिए ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

आयोधनं रणभूमिस्तत्रस्थं वित्तम्। वीराणां भूषणम् ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

आयोधन युद्धभूमि को कहते हैं, वहाँ पर विद्यमान संपत्ति वीरों के भूषण आदि जिसे भगवान् लाये थे ॥४१॥

एवं सप्तदशकृत्वःतावत्यक्षौहिणीबलः। युयुधे मागधो राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ॥४२॥

अन्वयः— एवं सप्तदशकृत्वः तावत्यक्षौहिणी बलः मागधः राजा कृष्णपालितैः यदुवंशिभिः युयुधे ॥४२॥

अनुवाद— इस तरह सत्रह बार तेइस-तेइस अक्षौहिणी सेना लेकर मगधराज जरासंध ने भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा संरक्षित यदुवंशियों के साथ युद्ध किया ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

तावतीति च्छेदः। तावति पराजये वर्तमानेऽप्यक्षौहिण्यो बलं यस्य सः। सप्तदशकृत्वः सप्तदशवारान्युयुधे ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

तावती इस तरह से पदच्छेद है। उस तरह से पराजय होने पर भी तेइस अक्षौहिणी सेना वाला जरासन्ध सत्रह बार युद्ध किया ॥४२॥

अक्षिण्वंस्तद्बलं सर्वं वृष्णयः कृष्णतेजसा । हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽयादरिभिर्नृपः ॥४३॥

अन्वयः— कृष्णतेजसा वृष्णय सर्वं तद्बलं अक्षिण्वन् स्वेषु अनीकेषु हतेषु अरिभिः त्यक्तः नृपः अयात् ॥४३॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के तेज से सम्पन्न यदुवंशी जरासंध की सम्पूर्ण सेना को मार देते थे । सारी सेना के मारे जाने के पश्चात् जरासन्ध को छोड़ देते थे और वह लौट जाता था ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

अक्षिण्वन् क्षयं निन्युः ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

अक्षिण्वन् अर्थात् विनष्ट कर देते थे ॥४३॥

अष्टादशमसंग्राम आगामिनि तदन्तरा । नारदप्रेषितो वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत ॥४४॥

अन्वयः— अष्टादशमसंग्रामे आगमिनि तदन्तरा नारदप्रेषितः वीरः यवनः प्रत्यपद्यत ॥४४॥

अनुवाद— जब अठारहवाँ संग्राम होने वाला था उसके बीच में नारदजी द्वारा प्रेषित वीर कालयवन आया॥४४॥

भावार्थ दीपिका

अष्टादशमेऽष्टादशे संग्रामे भाव्ये तन्मध्येऽकस्मात्कालयवनः प्राप्तः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

जब अठारहवें बार युद्ध होने वाला था उसके बीच में ही अकस्मात् कालयवन आया ॥४४॥

रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः । नृलोके चाप्रतिद्वन्द्वो वृष्णीन् श्रुत्वात्मसंमितान् ॥४५॥

अन्वयः— नृलोके च अप्रतिद्वन्द्वः वृष्णीन् आत्मसंमितान् श्रुत्वा तिसृभिः म्लेक्ष कोटिभिः मथुराम् रुरोध ॥४५॥

अनुवाद— मर्त्यलोक में प्रतिद्वन्दी रहित वह वीर वृष्णिवंशियों को अपने समान सुनकर तीन करोड़ म्लेच्छों की सेना लेकर आया ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

आत्मसंमितान्स्वतुल्यान् ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

जब अठारहवें बार युद्ध होने वाला था उसके बीच में ही अकस्मात् कालयवन आया ॥४५॥

तं दृष्ट्वाऽचिन्तयत्कृष्णः संकर्षणसहायवान् । अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महत् ॥४६॥

अन्वयः— तं दृष्टवा सङ्कर्षण सहायवान् कृष्णः अचिन्तयत् अहो यदूनां हि उभयतः महत् वृजिनं प्राप्तम् ॥४६॥

अनुवाद— कालयवन की इस आक्रमण को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने बलरामजी के साथ मिलकर विचार किया कि यह तो यदुवंशियों के लिए दोनों ओर से बहुत बड़ी विपत्तियाँ होने वाली हैं ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

वृजिनं दुःखम् । उभयतो यवनाज्जरासन्धाच्च ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

वृजिन अर्थात् कष्ट । उभयतः कालयवन और जरासन्ध दोनों से ॥४६॥

यवनोऽयं निरुन्धेऽस्मानद्य तावन्महाबलः । मागधोऽप्यद्य वा श्वो वा परश्वो वागमिष्यति ॥४७॥

अन्वयः— अद्य तावत् अयं महाबलः यवनः अस्मान् निरुन्धे मागधः अपि अद्यश्वः वा परश्वः वा आगमिष्यति॥४७॥

अनुवाद— आज यह महाबलवान् यवन हमलोगों को घेर रहा है जरासन्ध भी आज या कल या परसो आ ही जायेगा ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

तदाह-द्वयेन निरुन्धे निरुणद्धि ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

उसी विचार को दो श्लोकों से बतलाते हैं निरुन्धे अर्थात् घेर रहा है ॥४७॥

आवयोर्युध्यतोरस्य यद्यागन्ता जरासुतः । बन्धून्वधिष्यत्यथवा नेष्यते स्वपुरं बली ॥४८॥

अन्वयः— अस्य आवयोः युध्यतोः यदि जरासुतः आगन्ता तदा बली बन्धून् वधिष्यति अथवा स्वपुरं नेष्यति ॥४८॥

अनुवाद— जब हमदोनों इस कालयवन के साथ युद्ध करते रहेंगे और उसी समय यदि जरासन्ध भी आ जायेगा तब तो वह हमारे बन्धुओं को मार देगा अथवा उन सबों को कैदी बनाकर अपने यहाँ ले जायेगा क्योंकि वह महाबलवान् है ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

अस्य अनेन ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

अस्य अर्थात् इसके साथ ॥४८॥

तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम् । तत्र ज्ञातीन्समाधाय यवनं घातयामहे ॥४९॥

अन्वयः— तस्मात् अद्य द्विपद दुर्गमम् दुर्गं विधाष्यामः तत्र ज्ञातीन् समाधाय यवनं घातयमहे ॥४९॥

अनुवाद— अतएव आज हम एक ऐसा किला बनायेंगे जिसमें मनुष्यों का पहुँचना कठिन होगा, अपने स्वजन संबन्धियों को उसी में पहुँचाकर इस यवन का हम वध करायेंगे ॥४९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४९॥

इति संमन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादशयोजनम् । अन्तः समुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥५०॥

अन्वयः— भगवान् इति संमन्त्र्य अन्तः समुद्रे दुर्गं नगरं द्वादश योजनम् सर्वम् अद्भुतम् अचीकरत् ॥५०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् इस प्रकार से विचार करके समुद्र के भीतर दुर्ग का निर्माण करके उसके भीतर बारह योजन विस्तृत पूर्णरूप से अद्भुत नगर बना दिए ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

समुद्रमध्ये दुर्गं तन्मध्ये नगरम् । कृत्स्नाद्भुतं सर्वाश्चर्यमयम् । अचीकरत् कारयामास ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

समुद्र के बीच में किला उसके बीच में नगर जो पूर्ण रूप से आश्चर्यमय था । **अचीकरत्** अर्थात् बना दिए॥५०॥

दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम् । रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथावास्तु विनिर्मितम् ॥५१॥

अन्वयः— यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम् दृश्यते रथ्याचत्वरवीथीभिः यथावास्तु विनिर्मितम् ॥५१॥

अनुवाद— वहाँ त्वष्टा के पुत्र विश्वकर्मा का विज्ञान और वास्तुकला की निपुणता प्रकट होती थी। उसमें वास्तु शास्त्र के अनुसार बड़ी-बड़ी सड़कों, चौराहों और गलियों को यथास्थान किया गया था ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

त्वष्टा विश्वकर्मा तदीयं। शिल्पनैपुंण च क्रियाकौशलम्। तदाह सार्धैस्त्रिभिः-रथ्येति। रथ्या राजमार्गाः पुरतः, वीथ्य उपमार्गाः पश्चिमतः। उभयतोऽपि चत्वराण्यङ्गनानि, तन्मध्ये कोष्ठाः, ततोऽप्यन्तः सुवर्णभवनानि, तदुपरि स्फाटिकाट्टालिकाः, तदुपरि हेमकुम्भा इति बहुभूमिकम्। यथावास्तु वास्तु गृहादिनिर्माणस्थानं तदनतिक्रम्य विनिर्मितम् ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

त्वष्टा शब्द से विश्वकर्मा को कहा गया। विश्वकर्मा के क्रिया कौशल का वर्णन साढ़े तीन श्लोकों में किया गया है। रथ्या अर्थात् राजमार्ग पूर्व की ओर वीथी अर्थात् उपमार्गपश्चिम की ओर। दोनों ओर आङ्गन। नगर के बीच में कोठार। उसके भीतर सोने के भवन उसके ऊपर स्फटिक की अँटारी उसके ऊपर सुवर्ण के घड़े। इस तरह से बहुत भूमियों से युक्त। गृहादिनिर्माण के स्थान वह द्वारकापुरी निर्मित थी ॥५१॥

सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम्। हेमशृङ्गैर्दिविस्पृग्भिः स्फाटिकाट्टालगोपुरैः ॥५२॥
राजतारकुटैः कोष्ठैहेमकुम्भैरलंकृतैः। रत्नकूटैर्गृहैर्हैमैर्महामरकतस्थलैः ॥५३॥
वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वलभीभिश्च निर्मितम्। चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥५४॥

अन्वयः— सुरद्रुमलतोद्यान विचित्रोपवनान्वितम् हेमशृङ्गैः दिविस्पृग्भिः स्फटिकाट्टालगोपुरैः राजतारकूटैः कोष्ठैः अलंकृतैः हेमकुम्भैः रत्नकूटैः हैमैर्गृहै महामरकतस्थलैः वास्तोष्पतीनां च गृहैः बल्लभीभिः च निर्मितम् चातुर्वर्ण्य जनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥५२-५४॥

अनुवाद— वह नगर देववृक्षों के उद्यानों और लताओं एवं विचित्र उद्यानों से युक्त था। सुवर्ण की गगन चूम्बी शिखरों, स्फटिक की अँटारियों तथा गोपुरों एवं सुवर्ण कुम्भों से सुशोभित वहाँ के गृह थे। उन भवनों के शिखर रत्नों के तथा फर्श महामरकत मणि के बने थे। वह नगर वास्तु देवता के मन्दिरों तथा छज्जाओं से युक्त था। वह नगर चारो वर्णों के लोगों से भरा हुआ था। सबों के बीच में यदुवंशियों के प्रधान उग्रसेन जी, वसुदेवजी, बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण के महल सुशोभित हो रहे थे ॥५२-५४॥

भावार्थ दीपिका

सुराणां द्रुमा लताश्च येषु तान्युद्यानानि विचित्रोपवनानि च तैरन्वितम्। हेममयानि शृङ्गाणि येषु तैः दिविस्पृग्भिरत्युच्चैः। स्फाटिका अट्टाला उपरिभूमिका गोपुराणि च द्वाराणि तैर्निर्मितमित्युत्तरेणान्वयः। राजतारकुटैः रजतं च आरकुटं च पीतलोहं ताभ्यां निर्मितैः कोष्ठैरश्वशालान्नशालादिभिः। कथंभूतैः। हेमकुम्भैरलंकृतैः। तथा रत्नकूटैः पद्मरागादिशिखरैः हैमैः सौवर्णैः। महामरकतमयानि स्थलानि येषु तैर्गृहैश्च। किंच नगरगृहादौ वास्तोष्पतीनां देवानां च गृहैर्वलभीभिश्चन्द्रशालिकाभिश्च निर्मितम्। यदुदेवगृहै राजगृहैरुल्लसच्छोभमानम् ॥५२-५४॥

भाव प्रकाशिका

देववृक्षों एवं लताओं से मनोहर बने हुए उपवनों से युक्त था वह नगर। सुवर्ण के गगन चुम्बी शिखरों, स्फटिक की अट्टालिकाएँ, ऊँचे-ऊँचे दरवाजों से युक्त वह नगर बना था। वहाँ की अश्वशाला और अन्नशाला चाँदी और पीतल के बने थे। वे कामदार सुवर्ण के कुम्भों से अलकृत थे। पद्मरागादि के तथा सुवर्ण के शिखरों से वे सुशोभित थे। वहाँ के गृहों के फर्श महामरकत मणि के बने थे। नगर के गृह आदि में वास्तुदेवता के मन्दिर बने थे। वह नगर छज्जों से सुशोभित था। यदुदेव गृहैः अर्थात् राजगृहों से वह नगर सुशोभित था ॥५२-५४॥

सुधर्मां पारिजातं च महेन्द्रः प्राहिणोद्धरेः । यत्र चावस्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मैर्न युज्यते ॥५५॥

अन्वयः— महेन्द्रः हरेः सुधर्मां, पारिजातं च प्राहिणोत् । यत्र अवस्थितः मर्त्यः मर्त्यधर्मैः न युज्यते ॥५५॥

अनुवाद— इन्द्र ने भगवान् श्रीकृष्ण के यहाँ देवताओं की सुधर्मा नाम की सभा और पारिजात नामक देववृक्ष को भेजा ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

पारिजातं च प्राहिणोत्प्रस्थापयामासेति शुकपरीक्षित्संवादात्पूर्व भावित्वाद्भूतनिर्देश्याः । मर्त्यधर्मैः क्षुत्पिपासादिषडूर्मिभिः॥५५॥

भाव प्रकाशिका

पारिजात भी भेजा शुक परक्षित् संवाद से पहले यह घटना होने के कारण यहाँ भूतकाल का निर्देश किया गया है । मर्त्यधर्मैः अर्थात् भूख प्यास अदि षडूर्मियों से ॥५५॥

श्यामैककर्णान्वरुणो हयान् शुक्लान्मनोजवान् ।अष्टौ निधिपतिः कोशाँल्लोकपालो निजोदयान् ॥५६॥

अन्वयः— वरुणः श्यामैककर्णान् शुक्लान् मनोजवान हयान् निधिपतिः अष्टौ कोशान् लोकपालौ निजोदयान् प्राहिणोत्॥५६॥

अनुवाद— वरुण देवता ने बहुत से श्वेत वर्ण के घोड़ों जिनका एक कान श्यामवर्ण का था, कुबेरजी ने अपनी आठों निधियों तथा लोकपालों ने अपनी विभूतियों को वहाँ भेज दिया ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

निधिपतिः कुबेरः । अष्टौ कोशान्निधीन् 'पद्मश्चैव महापद्मो मत्स्यकूर्मौ तथौदकः । नीलो मुकुन्दः शङ्खश्च निधयोऽष्टौ प्रकीर्तिताः' इति प्रसिद्धान् । निजोदयान्निजविभूतीः ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

निधिपति अर्थात् कुबेरजी आठो निधियों को भेजे । पद्म, महापद्म, मत्स्य, कूर्म, औदक, नील मुकुन्द तथा शंख ये आठ निधियाँ कही गयी है । निजोदयान् अर्थात् अपनी विभूतियों को ॥५६॥

यद्यद्भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये । सर्वं प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ॥५७॥

अन्वयः— नृप भगवता स्वसिद्धये यत् यत् आधिपत्यं दत्तम् भूमिगते हरौ सर्वं प्रत्यर्पयामासुः ॥५७॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् लोकपालों के अधिकार के निर्वाह के लिए जिन-जिन सिद्धियों का अधिकार दिया था, श्रीभगवान् जब लीला करने के लिए अवतार ग्रहण किए तो वे लोकपाल उनको उन सभी शक्तियों और सिद्धियों को श्रीभगवान् के चरणों में समर्पित कर दिये ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

अन्ये च सिद्धादयो भगवता स्वाधिकारसिद्धये यद्यदाधिपत्यं दत्तमासीत्तत्सर्वं प्रत्यर्पयामासुरिति ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

सिद्धों आदि के अधिकार की प्राप्ति के लिए जिन-जिन विभूतियों का अधिकार दिया था उन सभी सिद्धियों को सिद्धों आदि ने श्रीभगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया ॥५७॥

तत्र योगप्रभावेन नीत्वा सर्वजनं हरिः । प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः ॥
निर्जगाम पुरद्वारात्पद्ममाली निरायुधः ॥५८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे दुर्गनिवेशनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

अन्वयः— हरिःयोगप्रभावेन सर्वजनं तत्र नीत्वा प्रजापालेन रामेण समनुमन्त्रितः कृष्णः पद्ममाली पुरद्वारात् निरायुधः निर्जगाम ॥५८॥

अनुवाद— श्रीहरि अपनी अचिन्त्य योगमाया नामक शक्ति के द्वारा द्वारका में पहुँचा दिया । शेषप्रजा की रक्षा के लिए बलरामजी को मथुरा में ही रख दिया और उनसे सलाह करके बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के स्वयं कमल की माला पहने हुए नगर के बड़े दरवाजे से बाहर निकले ॥५८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्द्ध के दुर्गनिवेशन नामक पचासवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

यथा कालयवनो न वेत्ति, न चासौ जनः तथ योगप्रभावेन नीत्वा त्वमत्र स्थित्वा प्रजाः पालय, अहं पलायिष्य इति समनुमन्त्रितः कृतानुमन्त्र इत्यर्थः ।।५८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

ऐसा किया जाय कि न तो इस बात को कालयवन जान सके और न ये लोग जान सकें, अपने सारे संबन्धियों को योगमाया के प्रभाव से द्वारका पहुँचकर वहाँ प्रजाओं के रक्षक रूप से आप यहाँ रहें । बलरामजी ने कहा मैं यहाँ रक्षा करूँगा । इस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी विचार किए ।।५८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के पचासवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।५०।।

* * *

एकावनवाँ अध्याय

कालयवन का भस्म होना और मुचुकुन्द की कथा

श्रीशुक उवाच

तं विलोक्य विनिष्क्रान्तमुज्जिहानमिवोडुपम् । दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥१॥
श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् । पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकञ्जारुणेक्षणम् ॥२॥
नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम्। मुखारविन्दं बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥३॥
वासुदेवो ह्ययमिति पुमान् श्रीवत्सलाञ्छनः । चतुर्भुजाऽरविन्दाक्षो वनमाल्यतिसुन्दरः ॥४॥
लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति । निरायुधश्चलत्पद्भ्यां योत्स्येऽनेन निरायुधः ॥५॥
इति निश्चित्य यवनः प्राद्रवन्तं पराङ्मुखम् । अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ॥६॥

अन्वयः— विनिष्क्रान्तं तं दर्शनीयतमं श्यामम् उज्जिहानमि वोडुपम् पीतकौशेयवाससम्, श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्त कन्धरम्, पृथु दीर्घं चतुर्बाहुं नवकञ्जारुणेक्षणम् नित्यप्रमुदितं तं, श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितं, मुखारविन्दं विभ्राणं स्फुरन्मकरकुण्डलम्

तं विलोक्य वासुदेवो हि अयम् इति पुमान् श्रीवत्सलाञ्छनः, चतुर्भुजाऽरविन्दाक्षः वनमाली अतिसुन्दरः नारदप्रोक्तैः लक्षणैः अन्यः भवितुन्नार्हति । निरायुधः । पद्भ्यां चलन् अनेन निरायुधः पद्भ्यां चलन् योत्स्ये इति निश्चित्य यवनः योगिनामपि दुरापम् पराङ्मुखं प्राद्रवतं जिघृक्षुः अन्वधावत् ।।१।।

अनुवाद— परीक्षित् मथुरा के नगर द्वार से निकले हुए जैसे पूर्व दिशा से चन्द्रमा निकले हों श्रीभगवान् के देखने में अत्यन्त सुन्दर श्याम शरीर, पीला पीताम्बर धारण किए हुए थे श्रीभगवान् के वक्षस्थल पर श्रीवत्सचिह्न सुशोभित हो रहा था । उनके गले में कौस्तुभमणि चमक रही थी, उनकी मांसल और लम्बी चार भुजाएँ थीं, नवीन विकसित कमल के समान अरुण वर्ण के उनके नेत्र थे, सुन्दर कपोलों से तथा मधुर मुस्कान से मनोहर बना हुआ उनका मुख सदा प्रसन्न रहता था । वे चमकते हुए मकराकृति कुण्डलों को कानों में धारण किए थे । इस तरह के श्रीभगवान को देखकर कालयवन ने निश्चित किया कि यही पुरुष वासुदेव है । क्योंकि इसके हृदय में श्रीवत्स चिह्न है । इसकी चार भुजाएँ है, कमल के समान मनोहर नेत्र हैं । वनमाला धारण किए हुए अत्यन्त सुन्दर लग रहा है । नारदजी के द्वारा बतलाये गये लक्षणों वाला कोई दूसरा मनुष्य नहीं हो सकता है । यह बिना किसी आयुध को धारण किए हुए पैदल चला आ रहा है । इसके साथ मैं भी किसी आयुध को धारण किए बिना ही युद्ध करूँगा। इस तरह से निश्चय करके कायलवन जो भगवान् योगियों को भी दुष्प्राप्य हैं, उनके पीछे की ओर भागने वाले श्रीभगवान् को पकड़ लेने की इच्छा से उनके पीछे दौड़ा ।।१-६।।

भावार्थ दीपिका

एकपञ्चाशत्तमेऽहन्मुचुकुन्ददृशा हरिः । यवनं मुचुकुन्देन स्तुतः सन्नन्वकम्पत । यवनेन्द्रसुतात्कालयवनाद्यदुभीषणात्। हरिर्हरगिरः स्वैरं पालनायापलायत । यदा गार्ग्यः षण्ढ इत्युक्तस्तदा यादवैरुपहसिते क्रुद्धोऽसौ श्रीमहेशं प्रसाद्य यदुभीषणं पुत्रं वरं लब्धवान्, ततश्च यवनेन्द्रेणापुत्रेण स्वक्षेत्रे पुत्रोत्पादनाय प्रार्थितो गार्ग्यः कालयवनमजीजनदिति पुराणप्रसिद्धम् । पुरद्वारान्निष्क्रान्तम्। उज्जिहानमुद्गच्छन्तम् । नित्यप्रमुदितमित्यादिमुखारविन्दविशेषणम् । नारदोक्तैरेतैर्लक्षणैरयं पुमान्वासुदेव एव नान्यो भवितुमर्हति। अयं च निरायुधः, अतोऽनेन पद्भ्यामेव चलन्निरायुधोऽहं योत्स्यामीति निश्चित्य तं पराङ्मुखं प्राद्रवन्तमन्वधावदित्यन्वयः ।।१-६।।

भाव प्रकाशिका

एकावनवें अध्याय में श्रीहरि ने मुचुकुन्द की नेत्राग्नि से कालयवन को भस्म कर दिया । उसके पश्चात् मुचुकुन्द के द्वारा स्तुति किए जाने पर श्रीभगवान् ने उन पर कृपा की । यदुवंशियों के लिए भयङ्कर यवनेन्द्र के पुत्र कालयवन को देखकर जो श्रीभगवान् भाग चले । उसका कारण था कि वे शङ्करजी के शाप का पालन अपनी इच्छा से ही करना चाहते थे । महर्षि गर्ग को उनके साले ने नपुंसक कहा तो यह सुनकर सभी यदुवंशी हँसने लगे, यह देखकर महर्षि गर्ग क्रुद्ध हो गये और उन्होंने श्रीशङ्करजी को प्रसन्न करके यदुवंशियों के लिए भयङ्कर पुत्र का वरदान प्राप्त किया । उसके पश्चात् निःसन्तान यवनेन्द्र ने अपनी पत्नी से पुत्र पैदा करने के लिए महर्षि गर्ग से प्रार्थना की तो महर्षि ने कालयवन को उत्पन्न किया यह कथा पुराणों में प्रसिद्ध है । विनिष्क्रान्तम् अर्थात् नगर द्वार से निकले हुए । उज्जिहन्तम् अर्थात् उदित होने वाले । नित्यप्रमुदितम् इत्यादि श्रीभगवान् के मुखकमल के विशेषण हैं । नारदजी के द्वारा बतलाये गये लक्षणों से युक्त यह ही पुरुष वासुदेव है, इससे भिन्न कोई दूसरा वासुदेव नहीं हो सकता। यह कोई आयुध नहीं लिए है अतएव पैदल चलकर मैं भी निरायुध ही इसके साथ युद्ध करूँगा । इस तरह निश्चित करके, पीछे की ओर भागने वाले श्रीभगवान् को पकड़ लेने की इच्छा से कालयवन श्रीभगवान् के पीछे दौड़ा ।।१-६।।

हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरिणा स पदे पदे । नीतो दर्शयता दूरं यवनेशाऽद्रिकन्दरम् ।।७।।

अन्वयः— पदे-पदे आत्मानं हस्त प्राप्तमिव दर्शयता हरिणा स यवनेशः दूरं अद्रिकन्दरम् नीतः ।।७।।

अनुवाद— लीला करते हुए श्रीहरि भागते हुए श्रीहरि को कालयवन पग-पग पर यही समझता था कि अब पकड़ा तब पकड़ा । इस तरह से कालयवन को दूर एक पर्वत की कन्दरा में श्रीभगवान् लाये ।।७।।

भावार्थ दीपिका

आत्मानं हस्तप्राप्तमिव दर्शयता दूरं नीत इत्यन्वयः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

अपने को अब हाथ से पकड़ ही लिया प्रतीत कराते हुए कालयवन को दूर लाये इस तरह से अन्वय है॥७॥

पलायनं यदुकुले जातस्य तव नोचितम् । इति क्षिपन्ननुगतो नैनं प्रापाहताशुभः ॥८॥

अन्वयः— यदुकुले जातस्य तव पलायनं नोचितम् इति क्षिपन् अनुगतः अहताशुभः एनं न प्राप ॥८॥

अनुवाद— तुम यदुवंश में उत्पन्न हुए हो । तुम्हारा इस तरह से भागना उचित नहीं है, इस तरह से आक्षेप करता हुआ वह यवन श्रीभगवान् को इसलिए नहीं प्राप्त कर सका कि उसका पाप समाप्त नहीं हुआ था ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अहताशुभोऽक्षीणकर्मा ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अकृताशुभः अर्थात् जिसके कर्म विनष्ट नहीं हुए थे ॥८॥

एवं क्षिप्तोऽपि भगवान्प्राविशद्गिरिकन्दरम् । सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ॥९॥

अन्वयः— एवं प्राक्षिप्तोऽपि भगवान् गिरिकन्दरम् प्राविशत् । सोऽपि प्रविष्टः तत्र अन्यं नरम् शयानं ददृशे ॥९॥

अनुवाद— इस तरह से आक्षेप किए जाने पर भी श्रीभगवान् पर्वत की कन्दरा में घुस गये उनका पीछा करता हुआ वह भी उसमें घुसा और वहाँ एक दूसरे सोए हुए मनुष्य को उसने देखा ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

नन्वसौ दूरमानीय शेते मामिह साधुवत् । इति मत्वाऽच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत् ॥१०॥

अन्वयः— ननु असौ माम् इह दूरम् आनीय साधुवत् शेते इति तं अच्युतं मत्त्वा मूढः पदा समताडयत् ॥१०॥

अनुवाद— देखो यह मुझको इतना दूर ले आया और अब यहाँ पर साधु पुरुष के समान सो रहा है । इस तरह से सोचते हुए उसने उस पुरुष को ही श्रीकृष्ण मानकर अपने पैर से मारा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तं शयानमच्युतं मत्वाऽताडयदिति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उस सोए हुए पुरुष को श्रीकृष्ण मानकर उसको पैर से मारा ॥१०॥

स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने । दिशो विलोकयन्पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ॥११॥

अन्वयः— चिरं सुप्त सः उत्थाय शनैः लोचने उन्मील्य दिशो विलोकयन् पार्श्वे अवस्थितम् तम् अद्राक्षीत् ॥११॥

अनुवाद— दीर्घकाल से सोए हुए उस पुरुष ने धीरे-धीरे अपने नेत्रों को खोलकर अपने सन्निकट में खड़े उस काल यवन को देखा ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत । देहजेनाग्निना दग्धो भस्मसादभवत्क्षणात् ॥१२॥

अन्वयः— हे भारत तावत् तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन सः देहजेनाग्निना दग्धः क्षणात् भस्मसात् अभवत् ॥१२॥

अनुवाद— हे भरतवंशी परीक्षित् उस रुष्ट हुए पुरुष की दृष्टि पड़ते ही वह यवन उनके शरीर से उत्पन्न अग्नि से क्षण भर में ही जलकर राख हो गया ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

तस्य क्रुद्धस्य दृष्टिपातेन संदीप्तो यः स्वदेहजोऽग्निस्तेन ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

उस क्रुद्ध पुरुष की दृष्टि पड़ने से संतप्त उसके शरीर से अग्नि उत्पन्न हो गयी और वह उसी से जलकर भस्म हो गया ।।१२।।

राजोवाच

को नाम स पुमान्ब्रह्मन् कस्य किंवीर्य एव च । कस्माद्गुहां गतः शिश्ये किंतेजो यवनार्दनः ।।१३।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् सः पुमान् को नाम ? कस्य ? किं वीर्य एव ? कस्मात् गुहांगतः शिश्ये ? किं तेजः ।।१३।।

राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा

अनुवाद— हे भगवन् जिसके देखने मात्र से वह यवन भस्म हो गया वह पुरुष कौन था ? वह किस वंश का था ? उसमें कैसी शक्ति थी ? वह किस कारण से गुफा में जाकर सोता था ? उसमें कैसा तेज था ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

यवनमर्दयति हिनस्तीति तथा स कस्य वंश्यः किंवीर्यः कीदृक्प्रभाववान् किंतेजः कस्य वीर्यं पुत्र इत्यर्थः। शिश्ये अशयिष्ट।।१३।।

भाव प्रकाशिका

यवन को विनष्ट करने वाला वह पुरुष किसके वंश का था ? उसमें कैसा प्रभाव था ? उसका कैसा तेज था ? वह किसका पुत्र था । शिश्ये अर्थात् सो रहा था ।।१३।।

श्रीशुक उवाच

स इक्ष्वाकुकुले जातो मान्धातृतनयो महान् । मुचुकुन्द इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ।।१४।।

अन्वयः— सः इक्ष्वाकुकुले जातः मान्धातृतनयः महान्, मुचुकुन्द इति ख्यातः ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ।।१४।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— वह पुरुष इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न हुआ था । वह मान्धाता का पुत्र था उसका नाम मुचुकुन्द था, वह ब्राह्मणों का भक्त तथा सत्यप्रतिज्ञ था ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

सत्य सङ्गरो युद्धं प्रतिज्ञा वा यस्य सः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

सत्यसङ्गरः अर्थात् सत्यप्रतिज्ञ ।।१४।।

स याचितः सुरगणैरिन्द्राद्यैरात्मरक्षणे । असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ।।१५।।

अन्वयः— असुरेभ्यः परित्रस्तैः इन्द्राद्यैः सुरगणैः आत्मरक्षणे याचितः सः तद्ररक्षां चिरम् अकरोत् ।।१५।।

अनुवाद— एक बार असुरों के भय से भयभीत इन्द्र आदि देवताओं ने मुचुकुन्द से अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की और मुचुकुन्द ने उन देवताओं की दीर्घकाल पर्यन्त रक्षा की ।।१५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१५।।

लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं मुचुकुन्दमथाब्रुवन् । राजन्विरमतां कृच्छ्राद्भवान्नः परिपालनात् ॥१६॥

अन्वयः— ते स्वपालं गुहं लब्ध्वा अथ मुचुकुन्दं अब्रुवन् राजन् कृच्छ्रात् नः परिपालनात् विरमताम् ॥१६॥

अनुवाद— जैसे देवताओं के रक्षक के रूप मे स्वामी कार्तिकेय प्राप्त हो गये हों उसके बाद में देवताओं ने मुचुकुन्द से कहा कि राजन् आपने बहुत कष्ट से हमलोगों की रक्षा की है, अब आप विश्राम कीजिये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

गुहं कार्तिकेयम् । स्वःपालं स्वर्गपालकं सेनान्यम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

स्वःपालम् अर्थात् स्वर्ग के रक्षक अर्थात् सेनापति ॥१६॥

नरलोके परित्यज्य राज्यं निहतकण्टकम् । अस्मान्नपालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः ॥१७॥

अन्वयः— हे वीर ! नरलोके निहतकण्टकम् राज्यं परित्यज्य अस्मान् पालयतः ते सर्वे कामाः उज्झिताः ॥१७॥

अनुवाद— हे वीर ! हमलोगों की रक्षा के लिए मनुष्यों के अकण्टक राज्य का परित्याग करके हमलोगों की रक्षा करते हुए आपने अपनी सारी कामनाओं का परित्याग कर दिया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

उज्झितास्त्यक्ता गता इत्यर्थः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

उज्झिताः अर्थात् त्याग दिया ॥१७॥

सुता महिष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमन्त्रिणः । प्रजाश्च तुल्यकालीया नाऽधुना सन्ति कालिताः ॥१८॥

अन्वयः— भवतः सुताः महिष्यः ज्ञातयः आत्मामन्त्रिणः तुल्यकालीयाः प्रजा च अधुना न सन्ति कालिताः ॥१८॥

अनुवाद— आपके पुत्र, रानियाँ, बन्धु बान्धव, आमात्य, मन्त्रिगण, आपके समय की प्रजाएँ, इनमें से कोई भी नहीं है, सबके सब कालकवलित हो गए हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

किंच सुता इति तुल्यकालीयास्त्वत्समानकालीनाः । कालिता विचालिताः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

और आपके पुत्र इत्यादि आपके समय की प्रजाएँ । कालिताः अर्थात् मर गये है ॥१८॥

कालो बलीयान्बलिनां भगवानीश्वरोऽव्ययः । प्रजाः कालयते क्रीडन्पशुपालो यथा पशून् ॥१९॥

अन्वयः— कालः बलिनां बलीयान् भगवान् ईश्वरः अव्ययः पशुपालः पशून् यथा प्रजाःक्रीडन् कालयते ॥१९॥

अनुवाद— काल सभी बलवानों से भी बलवान् है, वह सर्वनियामक अविनाशी तथा भगवत् स्वरूप है। जिस तरह पशुओं का पालन करने वाला सभी पशुओं को अपने वश में रखता है उसी तरह वह काल भी सबों को आपने वश में कर लेता है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

मत्प्रजाः कोऽन्यः कालयेदिति चेदत आहुः-काल इति । कालयते इतस्ततश्चालयति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें कि मुझको छोड़कर कौन दूसरा है जो मेरी प्रजा को मारे ? तो इस पर देवताओं ने **काल० इत्यादि** श्लोक से कहा कालयते अर्थात् जिधर चाहता है उधर ले जाता है ?॥१९॥

वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः । एक एवेश्वरस्तस्य भगवान्विष्णुरव्ययः ॥२०॥

अन्वयः— ते भद्रं अद्य नः वरं वृणीष्व, कैवल्यं ऋते तस्य अव्ययः भगवान् विष्णुः एक एव ईश्वरः ॥२०॥

अनुवाद— राजन् आपका कल्याण हो आप आज मोक्ष को छोड़कर हमलोगों से कोई वरदान माँग लें, मोक्ष के तो अविनाशीभगवान् विष्णु ही एक मात्र स्वामी है, वे ही मोक्ष प्रदान कर सकते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तस्य कैवल्यस्य ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

उस मोक्ष को प्रदान करने का अधिकार तो एक मात्र भगवान् विष्णु को ही है ॥२०॥

एवमुक्तः स वै देवानभिवन्द्य महायशाः। (निद्रामेव ततो वव्रे स राजा श्रमकर्षितः॥
यः कश्चिन्मम निद्राया भङ्गं कुर्यात्सुरोत्तमाः ॥१॥
स हि भस्मीभवेदाशु तथोक्तश्च सुरैस्तदा)॥अशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया॥२१॥

अन्वयः— एवम् उक्तः स वै महायशाः देवान् अभिवन्द्य श्रमकर्षितः राजा ततः निद्राम् एव वव्रे । हे सुरोत्तमाः यः कश्चित् मम निद्रायाः भङ्गं कुर्यात् स हि आशु भस्मी भवेत्, तदा सुरैः तथोक्तः च गुहाविष्टः देवदत्तया निद्रया अशयिष्ट ॥२१॥

अनुवाद— देवताओं द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर महायशस्वी राजा ने देवताओं की वन्दना की और परिश्रम करने के कारण श्रान्त हुए राजा ने देवताओं से निद्रा का वरदान माँगा । राजा मुचुकुन्द ने कहा हे श्रेष्ठ देवताओं जो कोई मेरी निद्रा को भङ्ग करे वह शीघ्र ही भस्म हो जाय । देवताओं ने कहा वैसा ही होगा । इस तरह का वरदान प्राप्त करके राजा पर्वत की कन्दरा में प्रवेश करके देवताओं द्वारा प्रदत्त निद्रा के कारण सो गये॥२१॥

भावार्थ दीपिका

गुहायां प्रविष्टः शेते स्म ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

गुफा में प्रवेश करके सो गये ॥२१॥

स्वापं यातं यस्तु मध्ये बोधयेत्त्वामचेतनः । स त्वया दृष्टमात्रस्तु भस्मीभवतु तत्क्षणात् ॥२२॥

अन्वयः— यस्तु अचेतनः स्वापं यातं मध्ये त्वाम् बोधयेत् स त्वया दृष्टमात्रः तत्क्षणात् भस्मी भवतु ॥२२॥

अनुवाद— उस समय देवताओं ने कह दिया था कि राजन जो मूर्ख सोते समय बीच में आपको जगायेगा वह आपके देखने मात्र से उसी क्षण जलकर भस्म हो जायेगा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

यवने भस्मसान्नीते भगवान्सात्वतर्षभः । आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ॥२३॥

अन्वयः— यवने भस्मसात् नीते सात्वतर्षभः भगवान् धीमते मुचुकुन्दाय आत्मानं दर्शयामास ॥२३॥

अनुवाद— राजन् यवन के भस्म हो जाने पर सात्वत् वंशीयों में अग्रगण्य श्रीभगवान् बुद्धिमान महाराज मुचुकुन्द को दर्शन दिए ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

तमालोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् । श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् ॥२४॥

अन्वयः— धनश्यामं, पीतकौशेयवाससं श्रीवत्सवक्षसं, भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् तम् अवलोक्य ॥२४॥

अनुवाद— जलभरे मेघ के समान श्यामवर्ण वाले रेशमी पीताम्बर धारण किए हुए, श्रीभगवान् का वक्षस्थल लक्ष्मीजी के श्रीवत्स चिह्न से सुशोभित था, गले में धारण की हुई कौस्तुभमणि अपनी ज्योति विखेर रही थी ऐसे श्रीभगवान् को राजा मुचुकुन्द ने देखा ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

चतुर्भुजं रोचमानं वैजयन्त्या च मालया । चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥२५॥
प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम् । अपीच्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम् ॥२६॥
पर्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः । शङ्कितः शनकै राजा दुर्धर्षमिव तेजसा ॥२७॥

अन्वयः— चतुर्भुजं वैजयन्त्यामालया च रोचमानं, चारुप्रसन्नवदनम् स्फुरन्मकरकुण्डलम्, नृलोकस्य प्रेक्षणीयम् सानुरागस्मितेक्षणम्, अपीच्य वयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम् तस्य तेजसा धर्षितः, महाबुद्धिः राजा तेजसादुर्धर्षम् इव शङ्कितः पर्यपृच्छत् ॥२५-२७॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की चार भुजाएँ थीं, गले में धारण की गयी वनमाला से वे सुशोभित हो रहे थे, उनका मनोहर मुख प्रसन्न था, कानों में मकराकृति कुण्डल चमक रहे थे, श्रीभगवान् की वह शोभा मनुष्यों के देखने योग्य ही थी, प्रेमपूर्ण मुस्कान से सुशोभित श्रीभगवान् के नेत्र । उनकी तरुण अवस्था दर्शनीय थी, मतवाले सिंह के समान उनकी चाल थी, राजा श्रीभगवान् के तेज से हतप्रभ से हो गये थे । यद्यपि राजा मुचुकुन्द महाबुद्धिमान थे फिर भी श्रीभगवान् के तेज को देखकर वे आश्चर्यित हो गये । राजा थोड़े शङ्कित से होकर श्रीभगवान् से पूछे ॥२५-२७॥

भावार्थ दीपिका

धर्षितोऽभिभूतः । दुर्धर्षमप्रधृष्यम् ॥२५-२७॥

भाव प्रकाशिका

धर्षित अर्थात् हतप्रभ, दुधर्षम् जिनको अभिभूत नहीं किया जा सके ॥२५-२७॥

मुचुकुन्द उवाच

को भवानिह संप्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे । पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके ॥२८॥

अन्वयः— भवान् कः इह कण्टके विपिने पद्म पलाशाभ्यां पद्भयां इह कथं विचरसि, गिरिगहवरे कथं संप्राप्तः ॥२८॥

मुचुकुन्द जी ने कहा

अनुवाद— आप कौन है ? अत्यधिक काण्टों से भरे हुए इस वन में आप कमल दल के समान सुकुमार और मनोहर पैरों वाले कैसे विचरण कर रहे हैं । इस पर्वत की गुफा में आप कैसे आये ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

विपिनेऽरण्ये, तत्रापि गिरेर्गह्वरे दुष्प्रवेशस्थाने, तत्राप्युरुकण्टके पद्मपलाशसदृशाभ्यां पद्भ्यां विचरसीति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

वन में उसमें भी जिसमें प्रवेश करना कठिन है, और काण्टों से भरे हुए इस गुफा में आप कमल के दलों के समान कोमल पैरों से कैसे विचरण कर रहे हैं ॥२८॥

किंस्वित्तेजस्विनां तेजो भगवान्वा विभावसुः । सूर्यः सोमो महेन्द्रो वा लोकपालो परोऽपि वा ॥२९॥

अन्वयः— किंस्वित् तेजस्विनां तेजः ? वा भगवान् विभावसुः ? सूर्यः सोमः, महेन्द्रः वा, वापरः अपि लोकपालः?॥२९॥

अनुवाद— क्या आप तेजस्वियों के मूर्तिमान तेज है ? या आप साक्षात् अग्निदेव हैं या आप सूर्य या चन्द्रमा या इन्द्र या कोई दूसरा लोकपाल हैं ?॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तेजोमूर्तिः प्रभा वा दीप्तिर्वा ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

तेज की मूर्ति अथवा प्रभा या कान्ति ?॥२९॥

मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम् । यद्बाधसे गुहाध्वान्तं प्रदीपः प्रभया यथा ॥३०॥

अन्वयः— त्वां त्रयाणां देवदेवानां पुरुषर्षभं मन्ये, यत् गुहाध्वान्तं प्रदीप प्रभया यथा बाधसे ॥३०॥

अनुवाद— मैं आपको देवताओं के भी आराध्य ब्रह्मा विष्णु एवं शङ्कर इन तीनों में श्रेष्ठ भगवान् नारायण ही मानता हूँ । क्योंकि आप अपनी कान्ति से इस गुफा के अन्धकार को उसी तरह विनष्ट कर रहे हैं जिस तरह प्रदीप अपनी प्रभा से अन्धकारको विनष्ट कर देता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

सर्वत्रापरितोषादाह-मन्य इति । पुरुषर्षभम् श्रीविष्णुम् । गुहाध्वान्तमन्तस्तमः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त किसी से भी संतोष नहीं होने के कारण **मन्ये० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं कि आप देवों में श्रेष्ठ भगवान् विष्णु हैं ॥३०॥

शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुङ्गव । स्वजन्म कर्म गोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥३१॥

अन्वयः— हे नरपुंगव शुश्रूषताम् अव्यलीकं अस्माकम् स्वजन्म कर्म, गोत्रं वा यदि रोचते कथ्यताम् ॥३१॥

अनुवाद— हे पुरुषश्रेष्ठ चूकि हम जानना चाहते हैं अतएव आपको यदि अच्छा लगे तो ठीक-ठीक अपने जन्म, कर्म अथवा नाम को मुझे बतलाइये ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबन्धवः । मुचुकुन्द इति प्रोक्तो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ॥३२॥

अन्वयः— हे पुरुषव्याघ्र प्रभो वयं तु ऐक्ष्वाकाः क्षत्रबन्धवः यौवनाश्वात्मजः मुचुकुन्द इति प्रोक्तः ॥३२॥

अनुवाद— हे पुरुषश्रेष्ठ प्रभो ! यदि मेरे विषय में पूछें तो मैं इक्ष्वाकु वंशीय क्षत्रिय हूँ । मैं युवनाश्वनन्दन मान्धाता का पुत्र हूँ ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

वयं त्विति वंश्याभिप्रायेण बहुवचनम्। तेष्वहं मुचुकुन्द इति प्रोक्त इति। युवनाश्वो मान्धातुः पिता अतो मान्धाता यौवनाश्वः॥३२॥

भाव प्रकाशिका

वयं यह बहुवचनान्त प्रयोग वंश वालों के अभिप्राय से हुआ है । उन सबों में मेरा नाम मुचुकुन्द है । युवनाश्व मान्धाता के पिता का नाम है । अतएव यौवनाश्व मान्धाता हैं ॥३३॥

सोऽपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना । अनन्तरं भवान् श्रीमाँल्लक्षितोऽमित्रशातनः ॥३४॥

अन्वयः— सः अपि नूनं आत्मीयेनैव पापेन भस्मीकृतः अनन्तरं भवान् श्रीमान् अमित्रशातनः लक्षितः ॥३४॥

अनुवाद— निश्चित रूप से उसके पापों ने ही उसको जलाकर भस्म कर दिया उसके पश्चात् परम सुन्दर अपने शत्रुओं को विनष्ट करने वाले आपने मुझे दर्शन दिया ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

तेजसा तेऽविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः । हतौजसो महाभाग माननीयोऽसि देहिनाम् ॥३५॥

अन्वयः— हे महाभाग ! देहिनाम् माननीय असि ते अविषह्येणतेजसा हतौजसः भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः ॥३५॥

अनुवाद— हे महाभाग्यवान् आप सभी शरीर धारियों के लिए सम्माननीय हैं, आपके असह्य तेज के कारण मेरा ओज समाप्त हो गया मैं आपको बार-बार देख भी नहीं पा रहा हूँ ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३५॥

एवं संभाषितो राज्ञा भगवान्भूतभावनः । प्रत्याह प्रहसन्वाण्या मेघनादगभीरया ॥३६॥

अन्वयः— राज्ञा संभाषितः भूतभावनः भगवान् मेघनादगभीरया वाण्या प्रहसन् प्रत्याह ॥३६॥

अनुवाद— राजा मुचुकुन्द के द्वारा इस तरह से पूछे जाने पर सभी प्राणीयों को जीवन प्रदान करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण हँसते हुए मेघध्वनि के समान गम्भीर वाणी से कहे ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

श्रीभगवानुवाच

जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रशः । न शक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि ॥३७॥

अन्वयः— हे अङ्ग मे जन्मकर्माभिधानानि सहस्रशः सन्ति । मया अपि हि अनन्तत्वात् अनुसंख्यांतु न शक्यन्ते॥३७॥

अनुवाद— यह सम्भव है कि कोई अनेक जन्मों में पृथिवी के समस्त धूल कणों को गिन ले किन्तु मेरे गुणों, कर्मों, नामों तथा जन्मों को कोई नहीं गिन सकता है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

क्वचित्कदाचित्कश्चित् यद्यपि रजांस्यपि विममे गणितवांस्तथापि जन्मानि कर्माणि न विमिमीते ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि कोई कभी धूल कणों को भी गिन ले सकता है फिर भी मेरे जन्मों एवं कर्मो को कोई भी नहीं गिन सकता है । क्योंकि श्रीभगवान् के ही समान उनके गुण, कर्म, नाम और जन्म भी अनन्त है और अनन्त वस्तु को कैसे कोई गिन पायेगा ॥३८॥

कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप । अनुक्रमन्तो नैवान्तं गच्छन्ति परमर्षयः ॥३९॥

अन्वयः— हे नृप मे कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि अनुक्रमन्तः परमर्षयः अन्तं नैव गच्छन्ति ॥३९॥

अनुवाद— हे राजन् ! त्रिकाल मे भी रहने वाले मेरे जन्मों को सनकादि महर्षिगण गिनते रहते है किन्तु वे भी उनका पार नहीं पाते ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृणुष्व गदतो मम । विज्ञापितो विरिञ्चेन पुराहं धर्मगुप्तये॥
भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ॥४०॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! अद्यतनानि गदतः मम शृणुष्व पुरा अहं धर्मगुप्तये भूमेः भारायमाणनाम् असुराणां क्षयाय च विरिञ्चेन विज्ञापितः ॥४०॥

अनुवाद— प्रिय मुचुकुन्द ! फिर भी मैं अपने वर्तमान कालिक नामों और कर्मों को बतलाता हूँ उसे आप सुनिए । बहुत पहले ब्रह्माजी ने धर्म की रक्षा करने के लिए तथा पृथिवी पर भार बने हुए असुरों का विनाश करने के लिए मुझसे प्रार्थना की ॥४०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४०॥

अवतीर्णो यदुकुले गृह आनकदुन्दुभेः । वदन्ति वासुदेवेति वसुदेवसुतं हि माम् ॥४१॥

अन्वयः— यदुकुले आनकदुन्दुभेः गृहे अवतीर्णः माम् हि वसुदेवसुतं वासुदेव इति वदन्ति ॥४१॥

अनुवाद— ब्रह्माजी की ही प्रार्थना से यदुवंश में वसुदेवजी के यहाँ मैंने अवतार ग्रहण किया । लोग मुझे वसुदेवजी के पुत्र वासुदेव कहते हैं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४१॥

कालनेमिर्हतः कंसः प्रलम्बाद्याश्च सद्द्विषः । अयं च यवनो दग्धो राजंस्ते तिग्मचक्षुषा ॥४२॥

अन्वयः— हे राजन् कालनेमिः कंसः हतः सद्द्विषः प्रलम्बाद्याश्च अयं च ते तिग्मचक्षुषा यवनः हतः ॥४२॥

अनुवाद— राजन् कंस के रूप में कालनेमि जो था उसको मैंने मार दिया । प्रलम्बासुर आदि अनेक असुरों को मैं मार चुका हूँ यह कालयवन था मेरी प्रेरणा से आपके तीक्ष्ण नेत्राग्नि से भस्म हो गया है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

ते तिग्मचक्षुषा निमित्तेन मयैव दग्धः ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

मेरे ही द्वारा प्रेरित होकर आपके नेत्रों की तीक्ष्णाग्नि से भस्म हो गया ॥४२॥

सोऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः । प्रार्थितः प्रचुरं पूर्वं त्वयाहं भक्तवत्सलः ॥४३॥

अन्वयः— सोऽहंतव अनुग्रहार्थं एतां गुफाम् उपागतः पूर्वं त्वया भक्तवत्सलः अहं प्रचुरं प्रार्थितः ॥४३॥

अनुवाद— राजन् वही मैं तुम पर कृपा करने के लिए इस गुफा में आया हूँ क्योंकि तुमने पहले मुझ भक्तवत्सल की बहुत अधिक उपासना की है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४३॥

वरान्वृणीष्व राजर्षे सर्वान्कामान्ददामि ते । मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोऽर्हति शोचितुम् ॥४४॥

अन्वयः— राजर्षे वरान् वृणीष्व ते सर्वान् कामान् ददामि, मां प्रपन्नः जनः भूयः कश्चित् न शोचति ॥४४॥

अनुवाद— हे राजर्षे तुम मुझसे वरदान माँगो, मैं तुम्हारी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण कर दूँगा । जो जीव मेरी शरणागति कर लेता है, वह पुनः किसी भी वस्तु के लिए शोक नहीं करता है ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

अपूर्णोऽहमिति शोचितुम् । यद्वा अन्यैर्दत्तेषु वरेषु क्षीयमाणेषु यथा शोचति नैवं मां प्रपन्नः । मद्दत्तवराणामक्षय्यत्वादिति भावः ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

मैं अपूर्ण हूँ इस तरह का शोक मेरा कोई भी शरणागत नहीं करता है । अथवा दूसरों के द्वारा प्रदत्त वरों के क्षीण हो जाने पर जैसे कोई शोक करता है, मेरा भक्त वैसा नहीं करता । मेरे द्वारा दिए गये वरदान अक्षय होते हैं ।।४४।।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तस्तं प्रणम्याह मुचुकुन्दो मुदान्वितः । ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन् ।।४५।।

अन्वयः— इत्युक्तः मुदान्वितः मुचुकुन्दः तं प्रणम्य नारायणं देवं ज्ञात्वा गर्गवाक्यम् अनुस्मरन् आह ।।४५।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से श्रीभगवान् के द्वारा कहे जाने पर प्रसन्न राजा मुचुकुन्द ने भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करके और उनको ही भगवान् नारायण देव जानकर कहा ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

अष्टाविंशतिमे युगे भगवानवतरिष्यतीति वृद्धगर्गवाक्यमनुस्मरन्नित्यर्थः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् अठाइसवें युग में अवतीर्ण होंगे इस वृद्धगर्गमहर्षि के वाक्य का स्मरण करते हुए ।।४५।।

मुचुकुन्द उवाच

विमोहितोऽयं जन ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक् ।
सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित्पुरुषश्च वञ्चितः ।।४६।।

अन्वयः— हे ईश त्वदीयया मायया मोहितः अयं अनर्थदृक् जनः त्वां न भजति सुखाय दुःखप्रभवेषु गृहेषु सज्जते स्त्री पुरुषः च वञ्चितः ।।४६।।

मुचुकुन्द जी ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् आपकी माया से मोहित मनुष्य सदा अनर्थों को ही भोगता रहता है । वह सुख की प्राप्ति के लिए दुःख की उत्पत्ति स्थान गृहस्थी में फँस जाता है । इस तरह स्त्री पुरुष सभी जीव आपकी माया से ठगे जाते हैं ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

त्वद्भक्तिरेव केवलं दुर्लभा, कामास्तु तुच्छा न वरणयोग्या इत्याशयेनाभक्तानां संसारमष्टभिः प्रपञ्चयन्स्तौति-विमोहित इति । हे ईश, योषित्पुरुषश्चेति द्विविधोऽप्ययं जनस्त्वदीयया मायया विमोहितोऽनर्थदृक् अनर्थे संसारे दृक् दृष्टिर्यस्यासौ । यद्वा अर्थं परमार्थस्वरूपं त्वां न पश्यतीति तथा । अतस्त्वां न भजति किंतु परस्परं वञ्चितः सन्सुखेच्छया दुःखानामेव प्रभवो येषु तेषु गृहेष्वेव सज्जत इति ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

आपकी भक्ति ही दुर्लभ है । सभी काम्य पदार्थ तुच्छ हैं, वे वरण के योग्य नहीं है । इसीलिए जो भक्त नहीं होता है वह संसार में संसरण करता रहता है । इसी बात को **विमोहितः इत्यादि** आठ श्लोकों से विस्तार

पूर्वक राजा बतलाते हैं । हे प्रभो स्त्री और पुरुष दोनों प्रकार के मनुष्य आपकी माया से मोहित होने के कारण अनर्थों को भोगते हैं । अनर्थदृक का अर्थ है, अनर्थमय संसार में ही उनकी दृष्टि बनी रहती है । अथवा परमार्थ स्वरूप आपको वह नहीं देखता अतएव वह आपका भजन नहीं करता है बल्कि वह वञ्चित होकर सुख प्राप्ति की इच्छा से दु:खों के मूल घर गृहस्थी में फँस जाता है ।।४६।।

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं कथंचिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ ।
पादारविन्दं न भजत्यसन्मतिर्गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः ।।४७।।

अन्वयः— हे अनघ अत्र दुर्लभम् अव्यङ्गम् अयत्नतः मानुषं जन्म लब्ध्वा असन्मती जनः गृहान्ध कूपे पतितः पशुः यथा ते पादारविन्दं न भजति ।।४७।।

अनुवाद— हे संसार के पापों से रहित प्रभो ! जीव को इस कर्मभूमिभारत में मनुष्य का जन्म मिलना दुर्लभ है फिर आपकी कृपा से अथवा भाग्यवशात् किसी तरह की पूर्ण कृपा से मनुष्य का जन्म प्राप्त करके जीव की बुद्धि असत् इस गृहरूपी औंधे कुएँ में लग जाती है । वह आपके चरण कमलों का भजन नहीं करता है । इस औंधे कुएँ में ही उसी तरह से पड़ा रहता है जिस तरह से तृण के लोभ में पड़ा पशु किसी कुएँ में गिरकर उसी में पड़ा रहता है ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

किंच कामसुखं सूकरादिष्वपि संभवति, भगवद्भजनं तु न मानुषजन्मव्यतिरकेणेति मानुषत्वं प्राप्य त्वामभजन्नतिमूढ इत्याह-लब्ध्वेति । अत्र कर्मभूमौ अव्यङ्गमविकलाङ्गम् । किंच असति विषयसुखे मतिर्यस्य सः । गृहमेवान्धकूपस्तस्मिन्निपतितः। यथा पशुस्तृणलुब्धोऽन्धकूपे पततीति ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

कामजन्य सुख तो सूकर आदि योनियों में भी प्राप्त हो जाता है किन्तु भगवद् भजन तो मानव योनिव्यतिरिक्त योनि में होना असम्भव है । अतएव जो मनुष्य की योनि को प्राप्त करके भी आपका भजन नहीं करता है वह अत्यन्त मूर्ख है । इसी बात को **लब्ध्वा० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । इस कर्मभूमि में अव्यङ्गम् अर्थात् पूर्णरूप से **असन्मतिः मिथ्या** विषयों में ही जिस का मन लगा रहता है । वह **गृहान्धकूपे** अर्थात् गृहरूपे औंधे कुए में गिर जाता है ।।४७।।

ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः ।
मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वासज्जमानस्य दुरन्तचिन्तया ।।४८।।

अन्वयः— हे अजित ! राज्यश्रियोनद्ध ।उन्नद्धमदस्य भूपतेः मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वासज्जमानस्य दुरन्तचिन्तया एष कालः निष्फलः गतः ।।४८।।

अनुवाद— हे भगवन् ! मैं राज्य श्री के मद से मदमत्त हो गया था क्योंकि मैं राजा था । अपने इस विनष्ट होने वाले शरीर को ही आत्मा समझता था । पुत्र-पत्नी कोशभूमि इन सबों को ही प्राप्त करने में मेरी बुद्धि लगी रहती थी, इन सबों की भयङ्कर चिन्ता के कारण मैं परमात्मा के विषय में कुछ भी नहीं सोच पाता था । इस तरह से इतने समय का सारा समय व्यर्थ में ही बीत गया ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

न केवलमस्य जनस्येयं गतिः किंतु ममापि तथैवेत्याह-ममैष इति । मर्त्ये शरीरे आत्मबुद्धिर्यस्य तस्य ममातएव सुतादिष्वासज्जमानस्य ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

ममैष० **इत्यादि** श्लोक से राजा मुचुकुन्द कहते है कि यह हालत सामान्य जनता की ही हो ऐसी बात नहीं है मेरी भी यही गति है । मैं अपने इस मरणशील शरीर को ही आत्मा मानता था अतएव मैं सदा पुत्रादि में ही आसक्त रहता था ।।४८।।

कलेवरेऽस्मिन्घटकुड्यसंन्निभे निरूढमानो नरदेव इत्यहम् ।
वृतां रथेभाश्वपदात्यनीकपैर्गां पर्यटंस्त्वाऽगणयन्सुदुर्मदः ।।४९।।

अन्वयः— अस्मिन् घटकुडयसन्निमे कलेवरे अहम् नरदेव इति निरुढमानः रथेभाश्वपदात्यनीकपैः वृतः सुदुर्मदः त्वां अगणयन् गां पर्यटन् ।।४९।।

अनुवाद— यह शरीर प्रत्यक्षतः घड़े एवं दीवाल के समान पार्थिव है । और दृश्य होने क कारण आत्मा से भिन्न भी है, फिर भी मैं अपने इस शरीर को ही आत्मा मान लिया था और राजा के मद से मदान्ध होकर अत्यन्त दृप्त हो गया था । मैं रथ, हाथी, घोड़ा तथा पैदल सेना तथा सेनापति के साथ पृथिवी पर घूमा करता था आपको तो मैं कुछ समझता ही नहीं था ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

उन्नद्धमदत्वं प्रपञ्चयति-कलेवर इति । घटकुड्यादिसदृशे दृश्येऽनात्मनि यत एवं सुदुर्मदोऽभवमतो ममैष कालो निष्फलों गत इति ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

कलेवर इत्यादि श्लोक के द्वारा राजा मुचुकुन्द अपनी मदान्धाता का ही वर्णन किए हैं । घट एवं दिवाल के समान दृश्य होने के कारण अनात्मा शरीर में । चूकि इस प्रकार का मदान्ध हो गया था अतएव मेरा यह समय व्यर्थ हो गया ।।४९।।

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ।।५०।।

अन्वयः— इतिकृत्यचिन्तया उच्चैः प्रमत्तम्, प्रवृद्धलोभम्, विषयेषु लालसम् अप्रमत्तः आखुम् क्षुल्लेलिहानः अहिरिव अन्तकः त्वम सहसा अभिपद्यसे ।।५०।।

अनुवाद— मुझे यह करना चाहिए और यह नहीं करना चाहिए इस तरह से कर्तव्या-कर्तव्य की चिन्ता में पड़कर मनुष्य जीवन के एकमात्र कर्तव्य भगवत्प्राप्ति से विमुख होकर प्रमत्त हो जाता है । संसार में बाँध रखने वाले विषयों से व्यग्र होकर प्रमत्त हो जाता है । संसार में बाँध रखने वाले विषयों के विषय में उसकी लालसा दिन-दिन बढ़ती है जाती है, किन्तु सदैव सावधान रहने वाले भूख के कारण अपनी जीभ लपलपाते हुए सर्प के समान असावधान चूहे के प्रति काल स्वरूप आप अचानक उस पुरुष की जीवन लीला ही समाप्त कर देते हैं।।५०।।

भावार्थ दीपिका

त्वामगणयन्तं त्वमाक्रमसीत्याह-प्रमत्तमिति । प्रमत्तमनवहितम् । त्वामन्तकमविगणय्य देहादिष्वासक्तमिति यावत् । कुतः प्रमत्तम् । इतिकृत्यचिन्तया एवमेवं करणीयमिति मनोरथपरम्परया । मनोरथे भग्नेऽपि विषयेषु लालसमुत्सुकम् । प्राप्तेऽपि पुनः प्रवृद्धो लोभस्तृष्णा यस्य तमन्तकस्त्वमभिपद्यसेऽभिभवसीत्यर्थः । क्षुधा सृक्किणी लेलिहानोऽहिराखुं मूषकमिवेति ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

आपकी परवाह नहीं करने वालों पर आप काल रूप से आक्रमण कर देते हैं इस बात को प्रमत्तमुच्चैः इत्यादि

श्लोक के द्वारा राजा मुचुकुन्द कहते हैं । प्रमत्त अर्थात् असावधान काल स्वरूप आपकी परवाह नहीं करके देह आदि में आसक्त रहने वाले । क्यों आसावधन ? इसका उत्तर है कि मुझे यह करना चाहिए और यह नहीं करना चाहिए इस प्रकार सें कर्तव्या-कर्तव्य रूपी मनोरथातिशय्य के कारण । यदि मनोरथ भङ्ग भी हो जाय तो भी विषयों की प्राप्ति की लालसा से सम्पन्न । मनोरथों की प्राप्ति हो जाने पर भी जिसकी पुन: प्राप्ति की लालसा बढ़ जाती है उसको कालस्वरूप आप दबोच लेते हैं । भूख के कारण जीभ लपलपाने वाला सर्प जिस तरह चूहे को पकड़ लेता है उसी तरह काल स्वरूप आप उस जीव की जीवन लीला समाप्त कर देते हैं ।।५०।।

पुरा रथैर्हैमपरिष्कृतैश्चरन्मतङ्गजैर्वा नरदेवसंज्ञितः ।
स एव कालेन दुरत्ययेन ते कलेवरो विट्कृमिभस्मसंज्ञितः ।।५१।।

अन्वयः— पुरा हेमपरिष्कृतैः रथैः वा मतंगजैः चरन् नरदेव संज्ञितः यः चरन् स एव कलेवरः दुरत्ययेन कालेन विट् कृमि भस्मसंज्ञितः कृतः ।।५१।।

अनुवाद— जो पहले सुवर्ण रथ पर अथवा बड़े-बड़े गजराजों पर चढ़कर चलता था और राजा कहलाता था वही शरीर आपके अबाध काल का ग्रास बनकर बाहर फेंक देने पर पक्षियों या कुत्तों आदि की विष्ठा, धरती में गाड़ देने पर सड़कर कीडा और आग में जला देने पर भस्म बन जाता है ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

किंच कालात्मना त्वयाभिपन्नो देह एवं भवतीत्याह-पुरेति । श्वसृगालादिभिर्भक्षितो विट्संज्ञितस्तैरभक्षितः कृमिसंज्ञितो दग्धो भस्मसंज्ञितो भवति । इति बुद्ध्या विचार्यैवंभूतशरीरे ममतां कुर्वन्तो जना हरिं नाराधयन्ति ते आत्मनि शत्रुभूता ज्ञेयाः सततम् । यतः 'योनेः सहस्राणि बहूनि गत्वा दुःखेन लब्ध्वापि च मानुषत्वम् । सुखावहं ये न भजन्ति विष्णुं ते वै मनुष्यात्मनि शत्रुभूताः।।' इति ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

काल स्वरूप आपके द्वारा अभिभूत शरीर जिस प्रकार का होता है उसको पुरा इत्यादि श्लोक से बतलाते हैं । मृत्यु के पश्चात् उस शरीर को फेंक देने पर कुत्ते स्यार आदि खाकर विट् कर देते हैं, उन सबों के नहीं खाने पर कीड़ों के रूप में परिणत हो जाता है । यदि उस शरीर को जला दिया जाय तो वह जलकर राख की ढेर बन जाता है । इस तरह से विचार करके उस शरीर में जो लोग ममता करते हैं और श्रीहरि की आराधना नहीं करते हैं । उन लोगों का आत्मा के विषय में शत्रु ही जानना चाहिए । कहा भी गया है । **योनेः सहस्रमिति०** अर्थात् अनेक योनियों में भ्रमण करता हुआ जीव बड़ी कठिनाई से सुखप्रद मनुष्य योनि को प्राप्त करता है । मानव शरीर प्राप्त करके भी जो लोग भगवान् विष्णु का भजन नहीं करते हैं, वे मनुष्य आत्मा के शत्रु ही हैं ।।५१।।

निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो वरासनस्थः समराजवन्दितः ।
गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते ।।५२।।

अन्वयः— हे ईश दिक्चक्रम् निर्जित्य, अभूतविग्रहः वरासनस्थः समराजवन्दितः मैथुन्यसुखेषु गृहेषु पुरुषः योषितां क्रीडामृगः नीयते ।।५२।।

अनुवाद— हे प्रभो जिसने सभी दिशाओं को जीत लिया है, जिसके साथ युद्ध करने वाला कोई भी नहीं है, जो श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठता है तथा जो पहले उसके समान राजा थे वे सब जिसके चरणों में सिर झुकाते हैं, वह पुरुष जब मैथुन जन्य आनन्द देने वाली स्त्रियों के पास जाता है तो वह स्त्रियों का क्रीडा मृग (खिलौना) बन जाता है ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

किंच अन्तकप्राप्तेः प्रागपि दिग्विजयिनो राज्ञोऽपि पारतन्त्र्यदुःखं तदवस्थमेवेत्याह-निर्जित्येति । अभूतविग्रहोऽविद्यमानसंग्रामः। पूर्वं ये समाना राजानस्तै राजभिर्वन्दितोऽपि मिथुनीभावः सुरतमेव परं सुखं येषु तेषु योषितां गृहेषु क्रीडामृग इव इतस्ततो नीयते ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

मृत्यु से पहले भी दिग्विजयी राजागण भी पारतन्त्र्य दुःख का अनुभव करते हैं । इस बात को निर्जित्य इत्यादि श्लोक के द्वारा कहा गया है । **अभूतविग्रहः** अर्थात् जिसके साथ युद्ध करने वाला कोई भी नहीं है । **समराजवन्दितः** अर्थात् जो पहले उसके समान राजा थे वे लोग भी जिसकी वन्दना करते हैं । **मैथुन्यसुखेषु योषितां गृहेष** मैथुन जन्य सुख प्रदान करने वाली स्त्रियों के गृह में जाकर वहीं मनुष्य उन स्त्रियों के हाथ का खिलौना बन जाता है ।।५२।।

करोति कर्माणि तपःसुनिष्ठितो निवृत्तभोगस्तदपेक्षयाददत् ।
पुनश्च भूयेयमहं स्वराडिति प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ।।५३।।

अन्वयः— निवृत्त भोगः तपः सुनिष्ठितः कर्माणि करोति, तदपेक्षया ददत् अहं पुनश्च स्वराट् भूयेयम् इति प्रवृद्ध तर्षः सुखाय न कल्पते ।।५३।।

अनुवाद— जो लोग भोगों से निवृत्त होकर तपस्या आदि पुण्यकर्मों को इस भावना से करते हैं कि मैं अगले जन्म में भी पुनः चक्रवर्ती सम्राट् होऊँ । इस तरह से जिन लोगों की तृष्णा बढ़ी हुई है, वे लोग कभी भी सुख नहीं प्राप्त कर पाते हैं ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

किंच तत्रातितृष्णाकुलस्य न भोगक्षणः कश्चिदस्तीत्याह-करोतीति । तपस्यधःशयनब्रह्मचर्यादौ सुनिष्ठितः । पुनश्च स्वराडिन्द्रः स्यामिति । यद्वा जन्मान्तरेष्वेवमेव चक्रवर्ती स्यामिति ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों की तृष्णा अत्यधिक बढ़ी हुई है ऐसे लोगो को कभी भी सुख भोगने को नहीं मिलता है । इसी बात को **करोति इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । **तपः सुनिष्ठितः** अर्थात् तपस्या करते हुए भूमि पर सोते हैं । ब्रह्मचर्य आदि का पालन करते हैं । जो लोग इसलिए तपस्या करते हैं कि मैं पुनः इन्द्र होऊँ, अथवा अगले जन्म में भी इसी प्रकार से चक्रवर्ती सम्राट् होऊँ ।।५३।।

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः ।।५४।।

अन्वयः— हे अच्युत ! भ्रमतः जनस्य यदा अपवर्गः भवेत् तर्हि सत्समागमः यर्हि सत्संगमः तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि मतिः जायते ।।५४।।

अनुवाद— हे प्रभो संसार चक्र से भ्रमण करते हुए जीव की जब संसार से मुक्त होने की वेला आती है उसको सत्पुरुषों का समागम प्राप्त होता है । जब सत्संग की प्राप्ति होती है निश्चित रूप से उसकी वुद्धि सम्पूर्ण जगत् के स्वामी आप में लग जाती है ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

तदेवमष्टाभिः श्लोकैरीशबहिर्मुखानां संसारं प्रपञ्च्य भक्त्या तन्निवृत्तिक्रममाह-भवापवर्ग इति । भो अच्युत, भ्रमतः

संसरतो जनस्य यदा त्वदनुग्रहेण भवस्य बन्धस्यापवर्गोऽन्तो भवेत्प्राप्तकालः स्यात्तदा सतां सङ्गमो भवेत् । यदा च सत्सङ्गमो भवेत्तदा सर्वसङ्गनिवृत्त्या कार्यकारणनियन्तरि त्वयि भक्तिर्भवति ततो मुच्यत इत्यर्थः ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार आठ श्लोकों द्वारा परमत्त्म पराङ्मुख जीवों के संसार प्रपञ्च का वर्णन करके राजा मुचुकुन्द बतलाते हैं कि भगवद् भक्ति के द्वारा संसार से मुक्ति मिलती है । इस बात को **भवापवर्ग० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । हे अपने स्वरूप में सदा स्थित रहने वाले प्रभो ! संसार चक्र में भ्रमण करनने वाले जीव की जब आपकी कृपा से संसार के बन्धन से मुक्ति की प्राप्ति की बेला होती है तब उस जीव को सत्पुरुष की सङ्गति प्राप्त होती है । सत्सङ्ग की प्राप्ति होने से उसकी सभी आसक्तियों से निवृत्ति हो जाती है । और सम्पूर्ण कार्यकारणों के नियामक आपमें उसकी भक्ति हो जाती है उसके पश्चात् वह संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है ।।५४।।

मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो राज्यानुबन्धापगमो यदृच्छया ।
यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्यया वनं विविक्षद्भिरखण्डभूमिपैः ।।५५।।

अन्वयः— हे ईश ममानुग्रहः एवते कृतः इति मन्ये । यदृच्छया राज्यानुबन्धापगमः यः साधुभिः अखण्डभूमिपैः वनं विवक्षद्भिः एकचर्यया प्रार्थ्यते ।।५५।।

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् के नियामक प्रभो मैं तो मानता हूँ कि आपने मुझ पर परम अनुग्रह किया है क्योंकि अनायास ही मेरा राज्य का बन्धन छूट गया । साधु प्रकृति के अखण्ड पृथिवी के प्रशासक राजागण जब वन में जाकर एकान्त में भजन करने की कामना करते हैं तब वे संसार की ममता से मुक्त होने के लिए आपकी प्रार्थना करते हैं ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

मम तु सत्सङ्गमात्पूर्वमेवयो राज्यादिसङ्गविच्छेदो जातः सोऽयं त्वया महाननुग्रहः कृत इत्याह–मन्य इति । ते त्वया। साधुभिर्विवेकिभिस्तपसे वनं प्रवेष्टुमिच्छद्भिः स्वयं त्यक्तुमलभमानैः प्रार्थ्यत इति ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

मेरा सत्सङ्ग से पहले ही जो राज्य का परित्याग हुआ यह आपका बहुत अनुग्रह मैं मानता हूँ । इस बात को राजा मुचुकुन्द ने **मन्ये० इत्यादि** श्लोक से कहा है । ते अर्थात् आपका । वन में जाकर तपस्या करने की इच्छा वाले ज्ञानी पुरुष जिसका त्याग नहीं कर पाते हैं । इस तरह से राजा प्रर्थना करते हैं ।।५५।।

न कामयेऽन्यं तव पादसंवनादकिंचनप्रार्थ्यतमाद्वरं विभो ।
आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे वृणीत आर्यो वरमात्मबन्धनम् ।।५६।।

अन्वयः— हे विभो ! अकिंचन प्रार्थ्यतमात् तव पादसेवनात् अन्यद्वरं न कामये हे हरे त्वां हि अपवर्गदं आराध्य कः आर्यः आत्मबन्धनं वृणीत ?।।५६।।

अनुवाद— हे प्रभो ! जो लोग सभी प्रकार के संग्रह परिग्रहों से रहित है । ऐसे अकिञ्चन पुरुष भी जिसको प्राप्त करना चाहते हैं और आपके चरणों की सेवा से भिन्न कोई भी दूसरा वरदान नहीं प्राप्त करना चाहता है। मोक्ष प्रदान करने वाले आपको प्रसन्न करके कौंन ऐसा श्रेष्ठ पुरुष होगा जो अपने के बन्धन में डालने वाले सांसारिक वस्तुओं का वरदान माँगेगा ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं विषयसेवामार्गं भगवत्सेवामार्गं च विविच्य वरान् वृणीष्वेति यदुक्तं तत्रोत्तरमाह–न कामय इति । अकिंचना निवृत्ताभिमानाः । आर्यो विवेकी ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से विषयों के सेवन का मार्ग तथा परमात्म सेवा के मार्ग का विचार कर वरों को माँगो यह जो भगवान् पहले कह चुके हैं उसका उत्तर राजा ने **कामये इत्यादि** श्लोक से दिया है । अकिंचनाः अर्थात् अभिमानरहित आर्यः अर्थात् विवेकी पुरुष ।।५६।।

तस्माद्विसृज्याशिष ईश सर्वतो रजस्तमःसत्त्वगुणानुबन्धनाः ।
निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं त्वां ज्ञाप्तिमात्रं पुरुषं व्रजाम्यहम् ।।५७।।

अन्वयः— हे ईश तस्मात् अहम् रजस्तमः सत्वगुणानुबन्धना आशिषः सर्वतः विसृज्य निरञ्जनं निर्गुणम् अद्वयम् परं ज्ञप्तिमात्रं पुरुषंत्वां व्रजामि ।।५७।।

अनुवाद— अतएव हे प्रभो मैं रजोगुण तमोगुण और सत्त्गुण से संबन्ध रखने वाली समस्त कामनाओं का परित्याग करके माया के लेश से भी रहित गुणातीत, एक एवं अद्वितीय ज्ञान स्वरूप परम पुरुष आपकी मैं शरणागति करता हूँ।।५७।।

भावार्थ दीपिका

रजस्तमःसत्त्वगुणैरनुबध्यन्त इति तथा वा आशिष ऐश्वर्यादिशत्रुमारणादिधर्मादिरूपा विसृज्य परं पुरुषमीश्ररं ज्ञाप्तिमात्रं ज्ञानघनम् । कुतः । निरञ्जनम् । तत्कुतः । निर्गुणम् । तदपि कुतः । अद्वयम् । अतएव अक्षरं त्वां शरणं व्रजामीति ।।५७।।

भाव प्रकाशिका

रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुण से संबन्ध रखने वाले, ऐश्वर्य शत्रुमारण आदि धर्म रूप कामनाओं का परित्याग करके परमपुरुष ईश्वर आपकी मैं शरणागति करता हूँ । आप ज्ञान स्वरूप हैं, क्योंकि आप माया के संबन्ध से रहित हैं । आप ज्ञाप्तिमात्र हैं तथा एक हैं अतएव निर्विकार आपकी मैं शरणागति करता हूँ ।।५७।।

चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापैरवितृषषडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथंचित् ।
शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकं पाहि मापन्नमीश ।।५८।।

अन्वयः— हे ईश चिरमिह वृजिनार्तः अनुतापैः तप्यमानः अवितृष षडमित्रः अलब्धशान्ति कथंचित् हे शरणद समुपेतः अभयम् अमृतम् अशोकं पदाब्जं आपन्नं माम् पाहि ।।५८।।

अनुवाद— हे प्रभो ! मैं अनादि काल से अपने कर्मो के फलों को भोगते-भोगते आर्त हो चुका हूँ, दुःख की ज्वाला मुझे रात-दिन सताती थी मेरे छह इन्द्रिय रूप शत्रु, कभी शान्त नहीं होते थे, उन सबों की विषयों की प्यास सदा बढ़ती ही रहती थी, अतएव मुझको कभी शान्ति नहीं मिलती थी । हे शरण प्रदान करने वाले प्रभो ! अब मैं भय, मृत्यु और शोक से रहित आपके चरणों की शरण में आया हूँ आप मेरी रक्षा करें ।।५८।।

भावार्थ दीपिका

भुंक्ष्व तावद्भोगान्, कैवल्यं तु करस्थमेवेति पुनर्वरैः प्रलोभयन्तं श्रीकृष्णं पादोपग्रहणेन प्रार्थयते-चिरमिति । वृजिनैः कर्मफलैरार्तः पुनस्तद्वासनाभिस्तप्यमानस्तथाप्यवितृषषडमित्र, तृडेव तृषा तृष्णा, न विगततृषाः षडमित्राः शत्रव इन्द्रियलक्षणा यस्य सः । अत एवालब्धशान्तिः, कथंचिद्दैववशेन लब्धशान्तिरिति वा । शरणं स्वज्ञानं तद्ददातीति तथा हे शरणद, समुपेतः प्राप्तोऽहम् । अशोकत्वे हेतुः- अभयम् । तत्रापि हेतुः-ऋतं सत्यम् । आपन्नमापदा व्याप्तं पाहीति ।।५८।।

भाव प्रकाशिका

तब तक भोगों को भोगों, कैवल्य मोक्ष तो तुम्हारी मुट्ठी में है इस तरह से वरदान माँगने के लिए प्रलोभित करने वाले भगवान श्रीकृष्ण के पैरों को पकड़कर मुचुकुन्द प्रार्थना करते हैं- कर्मो के फलों और उन सबों की वासनाओं से संतप्त होते रहने पर हमेशा विषय भोग की लालच करने वाली छहो मेरे इन्द्रिय रूप शत्रु मुझे क्षणभर

के लिए भी शान्त नहीं रहने देते थे । हे शरण प्रदान करने वाले प्रभो ! अब मैं आपके भय, मृत्यु और शोक से रहित चरणों की शरण में आया हूँ आप विपदों से व्याप्त मेरी रक्षा कीजिये ॥५८॥

श्रीभगवानुवाच

सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता । वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः ॥५९॥

अन्वयः— हे सार्वभौम महाराज ते मक्तिः विमला उर्जिता यतः वरैः प्रलोभितस्य अपि कामैः न विहता ॥५९॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे सार्वभौम महाराज, आपकी बुद्धि अत्यन्त पवित्र और समुन्नत है वर माँगने के लिए प्रलोभन देने पर भी आपकी बुद्धि कामनाओं के अधीन नहीं हुई ॥५९॥

भावार्थ दीपिका नहीं है ॥५९॥

प्रलोभितो वरैर्यत्त्वमप्रमादाय विद्धि तत् । न धीर्मय्येकभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते क्वचित् ॥६०॥

अन्वयः— यत् त्वम् वरैः प्रलोभितः तत् अप्रामादाय विद्धि मयि एकभक्तानाम् धीः अशीर्भिः क्वचित् न प्रभिद्यते॥६०॥

अनुवाद— मैंने तुम्हें जो वरदान देने का प्रलोभन दिया । उसे तुम्हारी सावधानी की परीक्षा के लिए मैंने दिया था; जो मेरा अनन्यभक्त होता है, उसकी बुद्धि कामनाओं के अधीन नहीं होती है ॥६०॥

भावार्थ दीपिका

अप्रमादाय प्रमादाय न भवत्येव । कुत इत्याह आह-न धीरिति । एकान्तभक्तानां धीराशीर्भिः प्राप्ताभिरपि न भिद्यते नासज्जत इत्यर्थः ॥६०॥

भाव प्रकाशिका

अप्रमादाय असावधान नहीं होती है । ऐसा क्यों होता है । इस पर श्रीभगवान् कहते है- कामनाओं के प्राप्त हो जाने पर भी उसमें आसक्त नहीं होती है ॥६०॥

युञ्जानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः । अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥६१॥

अन्वयः— राजन् अभक्तानाम् युञ्जनानां प्राणायामादिभिः अक्षीणवासनं मनः पुनरुत्थितम् दृश्यते ॥६१॥

अनुवाद— जो मेरे भक्त नहीं हैं वे लोग प्राणायाम आदि के द्वारा अपने मन को भले ही वश में कर लें किन्तु उनकी वासनाओं के विनष्ट नहीं होने से उन लोगों का मन फिर विषयों की ओर प्रवृत्त हो जाता है ॥६१॥

भावार्थ दीपिका

व्यतिरेकमाह-युञ्जानानामिति । उत्थितं विषयाभिमुखम् ॥६१॥

भाव प्रकाशिका

इसके विपरीत **युंजानानाम्० इत्यादि** बतलाते है । उत्थितम् विषयों में प्रवृत्त ॥६१॥

विचरस्व महीं कामं मय्यावेशितमानसः । अस्त्वेव नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥६२॥

अन्वयः— मयि आवेशितमानसः कामं महीं विचरस्व । तुभ्यं मयि अनपायिनी भक्तिः नित्यदा अस्तु एव ॥६२॥

अनुवाद— मुझमें ही अपना मन लगाकर अपनी इच्छानुसार तुम पृथिवी पर विचरण करों तुममें मेरे प्रति अनपायिनी भक्ति सदैव बनी रहेगी ॥६२॥

भावार्थ दीपिका

तुभ्यं तव ।।६२।।

भाव प्रकाशिका

तुभ्यमृ अर्थात् तुम्हारी ।।६२।।

क्षात्रधर्मस्थितो जन्तून्न्यवधीर्मृगयादिभिः । समाहितस्तत्तपसा जह्यघं मदुपाश्रितः ।।६३।।

अन्वयः— क्षात्र धर्मस्थितः मृगयादिभिः जन्तून् न्यवधीः समाहितः तत् तपस मदुपाश्रितः अघं जहि ।।६३।।

अनुवाद— क्षत्रिय धर्म को अपनाकर तुमने शिकार आदि करते हुए बहुत से जीवों का वध किया है । अब एकाग्रचित्त से मेरी उपासना करते हुए पाप को विनष्ट कर दो ।।६३।।

भावार्थ दीपिका

युक्त्याभासेन भीषयंस्तपसि लोकसंग्रहे प्रवर्तयति-क्षात्रधर्मेति ।।६३।।

भाव प्रकाशिका

युक्त्याभास के द्वारा भयभीत करते हुए लोकसंग्रह रूप तपस्या में क्षात्र धर्म इत्यादि श्लोक से प्रवृत्त करते हैं श्रीभगवान् ।।६३।।

जन्मन्यनन्तरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः । भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ।।६४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे मुचुकुन्द स्तुतिर्नामैक पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५१।।

अन्वयः— हे राजन् अनन्तरे जन्मनि सर्वभूतसुहृत्तमः द्विजवरः भूत्वा केवलम् माम् उपैष्यसि ।।६४।।

अनुवाद— अगले जन्म में सभी जीवों के परम हितैषी श्रेष्ठ ब्राह्मण होकर तुम केवल मुझको ही प्राप्त कर लोगे।।६४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायामेकपच्चशत्तमोऽध्यायः ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थदीपिका टीका के एकावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।५१।।

बावनवाँ अध्याय

द्वारका गमन, बलरामजी का विवाह, भगवान् श्रीकृष्ण के पास रुक्मिणी जी का संदेश लेकर ब्रह्मण का आना

श्रीशुक उवाच

इत्थं सोऽनुगृहीतोऽङ्ग कृष्णेनेक्ष्वाकुनन्दनः । तं परिक्रम्य संनम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ॥१॥

अन्वयः— हे अङ्ग इत्थं सः इक्ष्वाकुनन्दनः कृष्णेनानुगृहीतः तं परिक्रम्य सन्नम्य गुहामुखात् निश्चक्राम् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे परीक्षित् इस प्रकार से इक्ष्वाकुनंदन मुचुकुन्द भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा अनुगृहीत होकर भगवान् श्रीकृष्ण की परिक्रमा करके उनको नमस्कार किये और उस पर्वत कन्दरा से बाहर निकले ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्विपञ्चाशत्तमे धावन्भयादिव गतः पुरीम् । अन्वमोदत संदेशं रुक्मिण्या द्विजवर्णितम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

बावनवें अध्याय में कालयवन से भयभीत होकर भागते हुए के समान श्रीभगवान् अपनी पुरी (द्वारकापुरी) में चले गये और ब्राह्मण के द्वारा वर्णित रुक्मिणी के सन्देश का अनुमोदन किए ।।१।।

स वीक्ष्य क्षुल्लकान्मर्त्यान्पशून्वीरुद्वनस्पतीन् । मत्तवा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ।।२।।

अन्वयः— सः क्षुल्लकान् मर्त्यान् पशून् वीरुद् वनस्पतीन् वीक्ष्य कलियुगं प्राप्तं मत्वा उत्तराम् दिशम् जगाम ।।२।।

अनुवाद— वे बाहर निकल कर देखे कि मनुष्य, पशु, लाताएँ, वनस्पतियाँ ये सबके सब वहुत छोटे आकार के हो गये है । ऐसा देखकर वे समझ गये कि कलियुग आ गया है । और वे उत्तर दिशा की ओर चले गये।।२।।

भावार्थ दीपिका

क्षुल्लकानल्पप्रमाणान् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

क्षुल्लकान् अर्थात् अल्पप्रमाण वाले ।।२।।

तपः श्रद्धायुतो धीरो निःसङ्गो मुक्तसंशयः । समाधाय मनः कृष्णे प्राविशद्गन्धमादनम् ।।३।।

अन्वयः— तपः श्रद्धायुतः धीरः निःसंगः मुक्तसंशयः कृष्णे मनः समाधाय गन्धमादनम् प्राविशत् ।।३।।

अनुवाद— राजा मुचुकुन्द तपस्या, श्रद्धा, धैर्य एवं अनासक्ति से युक्त थे तथा संशय रहित थे वे भगवान् श्रीकृष्ण में अपने को लगाकर गन्धमादन पर्वत पर चले गये ।।३।।

भावार्थ दीपिका

तपसि श्रद्धायुतः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

तपः श्रद्धायुक्तः अर्थात् तपस्या करने में श्रद्धायुक्त ।।३।।

बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् । सर्वद्वन्द्वसहः शान्तस्तपसाराधयद्धरिम् ।।४।।

अन्वयः— नरनारायणालयम् बदर्याश्रमम् असाद्य सर्वद्वन्द्वसहः शान्तः तपसा हरिम् आराधयत् ।।४।।

अनुवाद— भगवान् नर-नारायण के निवास स्थान बदरिकाश्रम पहुँचकर वे शान्त मन से सर्दी गर्मी आदि द्वन्द्वों को सहते हुए तपस्या के द्वारा श्रीहरि की आराधना करने लगे ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तत्र च बदर्याश्रमम् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

तत्र अर्थात् बदरिकाश्रम में ।।४।।

भगवान्पुनराव्रज्य पुरीं यवनवेष्टिताम् । हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ।।५।।

अन्वयः— भगवान् पुनराव्रज्य यवनवेष्टितां पुरीं म्लेच्छ बलं हत्त्वा तदीयं धनम् द्वारकां निन्ये ।।५।।

अनुवाद— उसके पश्चात् भगवान् मथुरापुरी आये, तथा मथुरापुरी को घेरे हुई यवन की सेना को मारकर उन सबों की संपत्ति को द्वारकापुरी लाये ।।५।।

भावार्थ दीपिका

निन्ये नयन्मार्गे चलति स्म ॥५॥

भाव प्रकाशिका

निन्ये अर्थात् ले जाने के मार्ग से चल पड़े ॥५॥

नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः । आजगाम जरासन्धस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥६॥

अन्वयः— अच्युतचोदितैः गोभिः नृभिश्च धने नीयमाने त्रयोविंशत्यनीकपः जरासन्धः आजगाम् ॥६॥

अनुवाद— जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण के कहने पर सब धन गौओं और मनुष्यों के द्वारा ले जाया जा रहा था उसी समय तेइस अक्षैहिणी सेना के साथ जरासन्ध अठारहवीं बार आ गया ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ । मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन्दुद्रुवतुद्रुतम् ॥७॥

अन्वयः— हे राजन् ! रिपुसैन्यस्य वेगरभसं विलोक्य माधवौ मनुष्यचेष्टम् आपन्नौ द्रुतम् दुद्रुवतुः ॥७॥

अनुवाद— हे परीक्षित् शत्रु की सेना के प्रबल वेग को देखकर बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण दोनों मनुष्य के समान चेष्टा करते हुए उनके सामने से बड़ी तेजी से भागने लगे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

वेगरभसं वेगोद्रेकम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

वेगरभसं अर्थात् वेग के प्राबल्य को ॥७॥

विहाय वित्तं प्रचुरमभीतौ भीरुभीतवत् । पद्भयां पद्मपलाशाभ्यां चेलतुर्बहुयोजनम् ॥८॥

अन्वयः— अभीतौ भीरुभीतवत् प्रचुरं वित्तं विहाय पद्मपलशाम्यां पद्भ्यां बहुयोजनम् देशम् चलतुः ॥८॥

अनुवाद— यद्यपि उन लोगों के मन में थोड़ा भी भय नहीं था फिर भी डरे हुए के समान बहुत अधिक धन संपत्ति वहीं छोड़कर कमल दल के समान कोमल पैरों से बहुत अधिक योजन तक भागते रहे ॥८॥

भावार्थ दीपिका

भीरुभीतवद्भीरोरपि भीतवत् । अतिभीतवदित्यर्थः । चेलतुः पलायेताम् । बहुयोजनं देशम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

भीरुभीतवत् अर्थात् अत्यन्त भयभीत के समान चेलतुः अर्थात् भागते रहे, बहुयोजनम् देशम् अर्थात् अनेक योजन पर्यन्त के स्थान तक ॥८॥

पलायमानो तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन्बली । अन्वधावद्रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ॥९॥

अन्वयः— तौ पालयमानौ दृष्ट्वा ईशयोः अप्रामाणवित् बली मागधः प्रहसन् रथानीकैः अन्वधावत् ॥९॥

अनुवाद— श्रीबलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण दोनों को भागते हुए देखकर बलवान् जरासन्ध हँसने लगा उसको श्रीभगवान् के ऐश्वर्य तथा प्रमाण का पता नहीं था। वह रथ और सेना के साथ उन दोनों का पीछा करने लगा ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अप्रमाणवित् प्रमाणामियत्ता तन्न वेत्तीत तथा ॥९॥

भाव प्रकाशिका

सीमा को नहीं जानने वाला ॥९॥

प्रद्रुत्य दूरं संश्रान्तौ तुङ्गमारुहतां गिरिम् । प्रवर्षणाख्यं भगवान्नित्यदा यत्र वर्षति ॥१०॥

अन्वयः— दूरं प्रद्रुत्य संश्रान्तो तुङ्गं प्रवर्षणाख्यं गिरिम् आरुहताम् यत्र भगवान् नित्यदा वर्षति ॥१०॥

अनुवाद— दूर तक भागने के कारण थके हुए वे दोनों बहुत ऊँचे प्रवर्षण नामक पर्वत पर चढ़े गये। वहाँ सदैव वर्षा होती रहती है अतएव उसको प्रवर्षण कहते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तुङ्गमेकादशयोजनोन्नतम्। प्रकर्षेण वर्षत्यस्मिन्निति प्रवर्षण इत्याख्या यस्य तम्। तदाह-भगवानिति। भगवानिन्द्रः॥१०॥

भाव प्रकाशिका

वह पर्वत ग्यारह योजन ऊँचा था, वहाँ बहुत अधिक वर्षा होती रहती है अतएव उसका नाम प्रवर्षण गिरि है। भगवान् शब्द से इन्द्र को कहा गया है ॥१०॥

गिरौ निलीनावाज्ञाय नाधिगम्य पदं नृप । ददाह गिरिमेधोभिः समन्तादग्निमुत्सृजन् ॥११॥

अन्वयः— हे नृप गिरौ निलीनौ आज्ञाय पदं न अधिगम्य एधोभिः समान्तात् अग्निम् उत्सृजन् गिरिम् ददाह ॥११॥

अनुवाद— हे परीक्षित् जब जरासन्ध ने देखा कि दोनों पर्वत में छिप गये और ढूढने पर उन दोनों का कहीं भी पता न चला तो वह प्रवर्षण पर्वत को चारो ओर इन्धन से आग लगाकर पर्वत को जला दिया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तत्र विचिन्वन्नपि तयोः पदं निलयस्थानमनधिगम्य ॥११॥

भाव प्रकाशिका

वहाँ पर उनको ढूंढने पर भी उन दोनों के छिपने के स्थान का पता नहीं पाकर ॥११॥

तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटादुभौ । दशैकयोजनोत्तुङ्गन्निपेततुरधो भुवि ॥१२॥

अन्वयः— हे नृप ततः दशैकयोजनतुङ्गात् दह्यमानतटात् उभौ तरसा उत्पत्त्य भुवि अधस्तात् निपेततुः ॥१२॥

अनुवाद— हे परीक्षित् उसके पश्चात् ग्यारह योजन ऊँचे जलते हुए पर्वत के छोर से दोनों भाई नीचे पृथिवी पर कूद पड़े ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

ततो गिरेः दशचैकं च योजनानि तावदुत्तुङ्गान्मागधसंरोधदेशमतिक्रम्य परतोऽधो निपेततुः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् ग्यारह योजन ऊँचे पर्वत से जरासन्ध की सेना द्वारा घेरे हुए स्थान से बाहर नीचे पृथिवी पर कूद गये ॥१२॥

अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ । स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप ॥१३॥

अन्वयः— हे नृप सानुगेन रिपुणा अलक्ष्यमाणौ यदूत्तमौ पुनः समुद्रपरिखां स्वपुरं पुनः आयातौ ॥१३॥

अनुवाद— हे राजन्! उन्हें कूदते हुए जरासन्ध अथवा उसके किसी अनुयायी ने नहीं देखा। इसके पश्चात् वे दोनों बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ से चलकर समुद्र ही जिसकी खाईं है ऐसी द्वारका नगरी में आये॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

सोऽपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ । बलमाकृष्य सुमहन्मगधान्मागधो ययौ ॥१४॥

अन्वयः— बलकेशवौ दग्धौ इति मृषा मन्वानः सोऽपि मागधः सुमहत् बलम् आकृष्य मगधान् ययौ ॥१४॥

अनुवाद— जरासन्ध ने झूठ मूठ के ही मान लिया कि बलराम और श्रीकृष्ण दोनों जलकर मर गये । अतएव वह अपनी बहुत बड़ी सेना को लौटाकर मगध देश में चला गया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

आनर्ताधिपतिः श्रीमान् रैवतौ रेवतीं सुताम् । ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद्बलायेति पुरोदितम् ॥१५॥

अन्वयः— आनर्ताधिपतिः श्रीमान् रैवतः ब्रह्मणा चोदितः स्वसुताम् रोहिणीम् बलाय प्रादात् इति पुरोदितम् ॥१५॥

अनुवाद— आनर्त देश के ऐश्वर्य सम्पन्न स्वामी रैवत थे । वे ब्रह्माजी के द्वारा प्रेरित होकर अपनी पुत्री रेवती का विवाह बलरामजी से कर दिए, इस बात को पहले मैं कह चुका हूँ ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णस्य विवाहान्निरूपयितुं बलदेवविवाहं नवमस्कन्धोक्तमनुस्मारयति-आनर्तेति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के विवाहों का निरूपण करने के लिए नवें स्कन्ध में कहे गये बलरामजी के विवाह को **आनर्ताधिपति० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं ॥१५॥

भगवानपि गोविन्द उपयेमे कुरुद्वह । वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयंवरे ॥१६॥

अन्वयः— हे कुरूद्वह भगवान् गोविन्द अपि स्वयम्बरे श्रियः मात्रां भीष्मकसुतां वैदर्भीं उपयेमे ॥१६॥

अनुवाद— हे परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्ण भी स्वयम्बर के समय लक्ष्मीजी के अवतार वैदर्भी (रुक्मणी) जी के साथ विवाह किए ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

मात्रां कलाम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

मात्रा अर्थात् कला अंश स्वरूपिणी ॥१६॥

प्रमथ्य तरसा राज्ञः शालवादींश्चैद्यपक्षगान् । पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥१७॥

अन्वयः— तार्क्ष्यपुत्रः सुधाम् इव सर्वलोकानां पश्यताम् चैद्यपक्षीयान् शाल्वादीन् राज्ञः तरसा प्रमथ्य भैमीं उपयेमे इति पूर्वेणान्वयः ॥१७॥

अनुवाद— जिस तरह गरुड़ ने अमृत का हरण किया था । उसी तरह सबों के समाने ही चैद्यदेशाधिपति शिशुपाल के पक्ष में रहने वाले शाल्व इत्यादि राजाओं को परास्त करके रुक्मिणी जी के साथ विवाह किया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

गरुडो यथा देवान्प्रमथ्य सुधामहरत्तथेति ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह गरुड़ देवताओं को परास्त करके अमृत का हरण कर लिए उसी तरह श्रीभगवान् भी रुक्मिणीजी का हरण करके उनके साथ विवाह किए ॥१७॥

राजोवाच

भगवान्भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम् । राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ॥१८॥

अन्वयः— भगवान् भीष्मकसुतां रुचिराननाम् रुक्मिणीं राक्षसेन विधानेन उपयेमे इति श्रुतम् ॥१८॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण महाराज भीष्मक की पुत्री परम सुन्दरी रुक्मिणी देवी के साथ विवाह उनका बल पूर्वक हरण करके राक्षस विधि से किया यह मैंने सुना है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

'राक्षसो युद्धहरणात्' इति स्मृतेः राज्ञः प्रमथ्येति च त्वदुक्त्या राक्षसेन विधानेनोपयेमे परिणीतवानिति श्रुतम्। पूर्वमेव वा॥१८॥

भाव प्रकाशिका

युद्ध में बलपूर्वक कन्या का हरण करके किया जाने वाला विवाह राक्षस विवाह कहलाता है । यह स्मृतियों में कहा गया है । आपने भी कहा है कि राजाओं को परास्त करके श्रीभगवान् ने राक्षस विधि से विवाह किया। यह मैंने पहले ही सुना है ॥१८॥

भगवन् श्रोतुमिच्छामि कृष्णस्यामिततेजसः । यथा मागधशाल्वादीञ्जित्वा कन्यामुपाहरत् ॥१९॥

अन्वयः— भगवन् अमित तेजसः कृष्णस्य श्रोतुमिच्छामि यथा मागधशाल्वादीन् जित्वा कन्याम् उपाहरत् ॥१९॥

अनुवाद— भगवन् मैं यह सुनना चाहता हूँ कि परम तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण किस तरह जरासन्ध तथा शाल्व आदि राजाओं को परास्त करके कन्या का हरण किए ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

सामान्यत एव श्रुतम् । विशेषं तु श्रोतुमिच्छामि ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

मैंने सामान्यतः सुना है अब उसे विशेष रूप से सुनना चाहता हूँ ॥१९॥

ब्रह्मन्कृष्णकथाः पुण्या माध्वीर्लोकमलापहाः । को तु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः ॥२०॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् कृष्णकथाः पुण्याः माध्वीः लोकमलापहाः, कः नु श्रुतज्ञः नित्यनूतनाः शृण्वानः तृप्येत् ॥२०॥

अनुवाद— हे ब्रह्मर्षे ! भगवान् श्रीकृष्ण की कथाएँ स्वयं पवित्र हैं, वे सम्पूर्ण संसार के मल को विनष्ट कर देने वाली हैं, उनमें इतना माधुर्य है कि उनको सदा सुनते रहने पर भी सदा नवीन ही बनी रहती हैं । ऐसा कौन रसिक पुरुष होगा जो श्रीभगवान् की कथाओं को सुनकर तृप्त हो जाय ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

श्रवणौत्सुक्यमाविष्करोति-ब्रह्मन्निति । पुण्या महाफलाः, माध्वीः श्रुतिसुखाः, लोकस्य मलापहाश्च, शृण्वानः शृण्वन्नित्यर्थः। श्रुतज्ञः श्रुतसारवित् । नित्यनूतनाः प्रतिक्षणमाश्चर्यवत्प्रतीयमानाः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् श्रीभगवान् की कथा को सुनने में अपनी उत्सुकता को **ब्रह्मन्० इत्यादि** श्लोक से अभिव्यक्त करते हैं । पुण्याः अर्थात् महान् फल देने वाली । माध्वीः अर्थात् माधुर्य से परिपूर्ण, लोकमलापहाः संसार के दोषों को विनष्ट करने वाली, शृण्वानः अर्थात् सुनने वाला । श्रुतज्ञः अर्थात् श्रवण के सार को जानने वाला । नित्य नूतनाः अर्थात् प्रत्येक क्षण में आश्चर्यमयी प्रतीत होने वाली ॥२०॥

श्रीशुक उवाच

राजासीद्भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् । तस्य पञ्चाभवन्पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥२१॥

अन्वयः— महान् राजा भीष्मकः विदर्भाधिपतिः आसीत् । तस्य पञ्च पुत्रा अभवन् एकावरानना कन्या च ॥२१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— महान् राजा भीष्मक विदर्भदेश के स्वामी थे । उनके पाञ्च पुत्र और एक परम सुन्दरी कन्या थी ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः । रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती ॥२२॥

अन्वयः— अग्रजः रुक्मी, रुक्मरथः, अनन्तरः रुक्मवाहुः, रुक्मकेशः रुक्ममाली सती रुक्मिणी एषां स्वसा आसीत्॥२२॥

अनुवाद— महाराज भीष्मक के पुत्रों में रुक्मी सवसे वड़ा था उससे छोटा रूक्मरथ उसके वाद रूक्मवाहु, रूक्म केश और रूक्ममाली सवसे छोटा था । सती साध्वी रुक्मिणी सवसे छोटी थी ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रियः । गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ॥२३॥

अन्वयः— सा गृहागतैः गीयमानाः मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रियः उपश्रुत्य तं सदृशं पतिम् मेने ॥२३॥

अनुवाद— रुक्मिणी अपने महल में आवे हुए लोगों के द्वारा वर्णन किए जाने वाले लोगों के मुख से भगवान् श्रीकृष्ण के रूप, पराक्रम तथा ऐश्वर्य को सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण को ही अपने मनोनुकूल पति मानती थी ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम् । कृष्णश्च सदृशीं भार्यां समुद्वोढुं मनो दधे ॥२४॥

अन्वयः— कृष्णश्च बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम् ताम् सदृशीं भार्यां समुद्बोढु मनो दधे ॥२४॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण भी समझते थे कि रुक्मिणी में नारी के सभी सुन्दर लक्षण है, वह अत्यन्त बुद्धिमती है, उदारता, सौन्दर्य, शील स्वभाव, और गुणों में भी वह अद्वितीय है । अतएव भगवान् ने श्रीरुक्मिणीजी से विवाह करने का निश्चय किया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

बन्धूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप । ततो निवार्य कृष्णद्विड् रुक्मी चैद्यममन्यत ॥२५॥

अन्वयः— हे नृप बन्धूनाम् भगिनीं कृष्णाय दातुम् इच्छताम् कृष्णद्विड् रुक्मी निवार्य चैद्यम् अमन्यत ॥२५॥

अनुवाद— राजन् रुक्मिणीजी के भाई बन्धु भी चाहते थे कि रुक्मणी का विवाह भगवान् श्रीकृष्ण से ही हो, किन्तु रुक्मी भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष रखता था उसने उन्हें विवाह करने से रोक दिया और शिशुपाल को ही अपने बहिन का योग्य पति माना ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

चैद्यममन्यत तस्या वरमित्यर्थः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

रुक्मी ने अपने बहिन का योग्यपति शिशुपाल को ही माना ॥२५॥

तदवेत्यासितापाङ्गी वैदर्भी दुर्मना भृशम् । विचिन्त्याप्तं द्विजं कंचित्कृष्णाय प्राहिणोद्द्रुतम् ॥२६॥

अन्वयः— असितापाङ्गी वैदर्भी तदवेत्य भृशम् दुर्मना विचिन्त्य कंचित् आप्तं द्विजं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥२६॥

अनुवाद— जब परम सुन्दरी रुक्मिणीजी को इस बात का पता चला कि मेरा भाई रुक्मी मेरा विवाह शिशुपाल से करना चाहता है तो वे अत्यधिक उदास हो गयीं और विचार करके उन्होंने किसी अत्यन्त विश्वसनीय ब्राह्मण को भगवान् श्रीकृष्ण के पास भेजा ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अवेत्य ज्ञात्वा । असितापाङ्गी सुनीलकटाक्षा । कृष्णाय कृष्णमानेतुं प्रेषयामास ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अवेत्य अर्थात् जानकर, असितापाङ्गी, अर्थात् सुन्दर नील कटाक्षों वाली । कृष्णाय अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण को लिवा आने के लिए भेजा ॥२६॥

द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः । अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं काञ्चनासने ॥२७॥

अन्वयः— सद्वारकां समभ्येत्य प्रतिहारैः प्रवेशितः, आद्यं पुरुषं काञ्चनासने आसीनम् अपश्यत् ॥२७॥

अनुवाद— जब ब्राह्मण देवता द्वारका पहुँचे तो द्वारपालों ने उनको महल में प्रवेश कराया । तब उन ब्राह्मण देवता ने देखा कि आदि पुरुष भगवान् सुवर्ण के सिंहासन पर बैठे हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

प्रतीहारैर्द्वारपालैः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

प्रतिहारैः अर्थात् द्वारपालों द्वारा ॥२७॥

दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनात् । उपवेश्यार्हयांचक्रे यथात्मानं दिवौकसः ॥२८॥

अन्वयः— ब्रह्मण्यदेवः तं दृष्ट्वा निजासनात् अवरुह्य उपवेश्य आत्मानं दिवौकसः यथा अर्हयाञ्चक्रे ॥२८॥

अनुवाद— ब्राह्मणों के परम भक्त भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मण देवता को देखकर अपने आसन से उतरकर उन ब्राह्मण देवता को अपने आसन पर बैठाकर उनकी इस तरह पूजा किए जिस तरह देवगण श्रीभगवान् की पूजा करते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

आत्मानं श्रीकृष्णम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

आत्मानम् अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण की ॥२८॥

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तमुपगम्य सतां गतिः । पाणिनाभिमृशन्पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥२९॥

अन्वयः— सतां गतिः भुक्तवन्तं विश्रान्तं तं उपगम्य पाणिना पादौ अभिमृशन् अव्यग्रःतम् अपृच्छत् ॥२९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् सन्तों के एकमात्र आश्रय है ब्राह्मण देवता जब भोजन करने के पश्चात् विश्राम कर चुके थे उस समय भगवान् श्रीकृष्ण उनके पास गये और अपने कोमल हाथों से उनके पैर को सहलाते हुए शान्ति पूर्वक पूछने लगे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अभिमृशन् शनैः संमर्दयन् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

अभिमृशन् अर्थात् धीरे-धीरे दबाते हुए ।।२९।।

क्वचिद्द्विजवरश्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसंमतः । वर्तते नातिकृच्छ्रेण संतुष्टमनसः सदा ।।३०।।

अन्वयः— हे द्विजवर श्रेष्ठ ! क्वचित् सदा सन्तुष्टमनसः ते वृद्धसंमतः धर्मः नातिकृच्छ्रेण वर्तते ? ।।३०।।

अनुवाद— हे ब्राह्मण शिरोमणे ! क्या सदा सन्तुष्टमना रहने वाले आपको वृद्ध पुरुषों के संमत धर्म का पालन करने में कोई कठिनाई तो नहीं होती है न ?।।३०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३०।।

संतुष्टो यर्हि वर्तेत ब्राह्मणो येनकेनचित् । अहीयमानः स्वाद्धर्मात्स ह्यस्याखिलकामधुक् ।।३१।।

अन्वयः— यर्हि ब्राह्मणः येनकेनचित् संतुष्टः स्वधर्मात् अहीयमानः वर्तेत सहि अस्याखिल कामधुक् ।।३१।।

अनुवाद— ब्राह्मण यदि जो कुछ मिल जाय उसी से संतुष्ट रहकर अपने धर्म का पालन करता रहे तो उसका वह धर्म ही उसकी सारी कामनाओं को पूरा कर देता है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

स धर्मोऽस्य ब्राह्मणस्याखिलकामदोग्धा भवति । यद्वा स ब्राह्मणोऽस्य विश्वस्याखिलकामधुगिति ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

वह धर्म ही उसकी सारी कामनाओं को पूर्ण कर देता है, अथवा वह ब्राह्मण ही सम्पूर्ण विश्व की कामनाओं को पूर्ण कर देता हैं ।।३१।।

असंतुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः । अकिंचनोऽपि संतुष्टः शेते सर्वाङ्गविज्वरः ।।३२।।

अन्वयः— असन्तुष्ट सुरेश्वरः अपि असकृत् लोकान् आप्नोति । अकिचनः अपि सन्तुष्टः सर्वाङ्ग विज्वरः शेते ।।३२।।

अनुवाद— इन्द्र का भी पद पाकर असन्तुष्ट रहने वाले को सुख प्राप्त करने के लिए बार-बार लोकों में जाना पड़ता है और सन्तुष्ट रहने वाला अकिंचन निश्चित होकर सोता है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

लोकानाप्नोति लोकाल्लोकान्तरं पर्यटति नैकत्र निर्वृतस्तिष्ठतीत्यर्थः । नाप्नोतीति पाठे सुरेश्वरोऽपि भूत्वा लोकान्नाप्नोत्युत्तमलोकान्प्राप्तोऽप्यप्राप्त इव क्लिश्यतीत्यर्थः । शेते सुखमास्ते इत्यर्थः । तदेवाह–सर्वेष्वङ्गेषु वाक्पाण्यादिषु विज्वरस्तापरहितः।।३२।।

भाव प्रकाशिका

लोकानाप्नोति अर्थात् एक लोक से दूसरे लोकों में जाता है वह निश्चिन्त होकर एकत्र स्थिर नहीं रहता है। **नाप्नोति०** यह पाठ होने पर अर्थ होगा कि इन्द्र होकर भी वह उत्तम लोकों को प्राप्त करके भी अप्राप्त के ही समान कष्टानुभव करता है । शेते अर्थात् सुखपूर्वक रहता है । उसी बात को कहते है । सर्वाङ्गेषु अर्थात् वाक्पाणि आदि इन्द्रियों में ताप का अनुभव किए बिना सोता है ।।३२।।

विप्रान्स्वलाभसंतुण्टान्साधून्भूतसुहृत्तमान् । निरहंकारिणः शान्तान्नमस्ये शिरसाऽसकृत् ।।३३।।

अन्वयः— स्वलाभ सन्तुष्टान् विप्रान् साधून् भूतसुहृत्तमान् निरहंकारिणः शान्तान् शिरसा असकृत् नमस्ये ।।३३।।

अनुवाद— स्वयम्प्राप्त वस्तुओं से सन्तुष्ट रहने वाले ब्राह्मण साधु प्रकृति के होते हैं। वे सभी जीवों के हितैषी होते। उनमें अहङ्कार का लेश भी नहीं होता, उन शान्त ब्राह्मणों को मैं सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

स्वलाभः स्वत एव प्राप्तो लाभ आत्मलाभो वा तेन संतुष्टान्पूर्णान् साधून्स्वधर्मनिष्ठान् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

अपने आप प्राप्त अथवा आत्मलाभ यह **स्वलाभः** शब्द का अर्थ है। उसी से सन्तुष्ट अर्थात् परिपूर्ण रहने वाले। **साधून्** अर्थात् अपने धर्म का निष्ठा पूर्वक पालन करने वाले ॥३३॥

कच्चिद्वः कुशलं ब्रह्मन्राजतो यस्य हि प्रजाः। सुखं वसन्ति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः॥३४॥

अन्वयः— ब्रह्मन् राजतः वः कुशलं क्वचित् यस्य हि विषय पाल्यमानाः प्रजाः सुख वसन्ति सः मे प्रियः ॥३४॥

अनुवाद— ब्राह्मण देवता राजा की ओर से तो आपलोग को सभी प्रकार का सुख है। जिस राजा के राज्य में प्रजा सुख पूर्वक रहती है वह राजा हमको प्रिय है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

यस्य राज्ञो विषये देशे ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

जिस राजा के विषये अर्थात् देश में ॥३४॥

यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्येह यदिच्छया। सर्वं नो ब्रूह्यगुह्यं चेत्किं कार्यं करवाम ते ॥३५॥

अन्वयः— यतः त्वम् दुर्गं निस्तीर्य, इह यदिच्छया आगतः अगुह्यं चेत् सर्वं नो ब्रूहि ते किं कार्यं करवाम ॥३५॥

अनुवाद— आप कहाँसे इतना कठिन मार्ग चलकर किस अभिलाषा से यहाँ आये वह यदि गोपनीय न हो तो सारी बाते आप हमसें कहें मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

यतः स्थानात्। यदिच्छया यत्कार्येच्छया दुर्गं समुद्रम् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

यतः अर्थात् जिस स्थान से, यदिच्छया, अर्थात जिस कार्य की पूर्ति के लिए दुर्गम इस समुद्र में ॥३५॥

एवं संपृष्टसंप्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना। लीलागृहीतदेहेन तस्मै सर्वमवर्णयत् ॥३६॥

अन्वयः— लीलागृहीतदेहेन परमेष्ठिना एवं संपृष्टः संप्रश्नः ब्राह्मणः तस्मै सर्वम् अवर्णयत् ॥३६॥

अनुवाद— श्रीभगवान् लीला से ही मनुष्य शरीर धारण करते हैं। उनके द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर ब्राह्मण देवता सारी बातें कह सुनाये ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

संपृष्टः संप्रश्नः प्रष्टव्योऽर्थो यं सः परमेष्ठिना परमेश्वरेण। बन्धूनामनभिप्रेतं रुक्मिणश्चेष्टितमित्यादि सर्वम् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

पूछे जाने योग्य प्रश्न परमात्मा के द्वारा जो था वह रुक्मी की चेष्टाएँ बन्धुओं को अभिप्रेत नहीं था ॥३६॥

रुक्मिण्युवाच

श्रुत्वा गुणान्भुवनसुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् ।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ॥३७॥

अन्वयः— हे त्रिभुवन सुन्दर शृण्वतां कर्णविवरैः निर्विश्य अङ्गतापं हरतः ते गुणान् श्रुत्वा दृशिमताम् दृशां अखिलर्थलाभं रूपं च श्रुत्वा हे अच्युत ! त्वयि मे अपत्रपं चित्तं विशति ॥३७॥

श्रीरुक्मिणीजी ने कहा

अनुवाद— हे त्रैलोक्यसुन्दर ! सुनने वालों के कानों के माध्यम से हृदय में प्रवेश करके उनके सभी अङ्गों के सन्तापों को दूर कर देने वाले आपके गुणों को सुनकर तथा नेत्रवालों के नेत्रों को सम्पूर्ण पुरुषार्थ प्रदान करने वाले आपके रूप के विषय में भी सुनकर हे प्रियतम अच्युत ! मेरा चित्त लज्जा शर्म सब कुछ छोड़कर आप में ही प्रवेश कर रहा है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

रुक्मिण्या स्वयमेकान्ते लिखित्वा दत्तपत्रिकाम् । मुद्रामुन्मुच्य कृष्णाय प्रेमचिह्नामदर्शयत् ।' ब्राह्मणः श्रीकृष्णानुज्ञया वाचयति-श्रुत्वेति । अयमर्थः-हे अच्युत हे भुवनसुन्दरेत्यौत्सुक्यं द्योतयति-क्व तव महिमा क्व चाहं रूपकुलशीलादियुक्तापि। तथाऽप्यपगता त्रपा यस्मात्तन्मे चित्तं त्वय्याविशत्यासज्जते । तत्कुतस्तत्राह-शृण्वतां कर्णविवरैरन्तः प्रविश्याङ्गतापम्, अङ्गेति पृथक् संबोधनं वा, हरतस्तव गुणान् श्रुत्वा तथा दृशिमतां चक्षुष्मतां दृशामखिलार्थलाभात्मकं रूपं च श्रुत्वेति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

रुक्मिणी स्वयम् एकान्त में लिखकर प्रदत्त की, मुद्रा को खोलकर भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम चिह्न रूप पत्रिका को ब्राह्मण देवता ने भगवान् श्रीकृष्ण को दिखाया । भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा को प्राप्त करके ब्राह्मण देवता **श्रुत्वा० इत्यादि** श्लोक को बाँचने लगे । पत्रिका का अभिप्रायहै कि हे अच्युत ! हे भुवन सुन्दर! उन शब्दों द्वारा रुक्मिणीजी अपनी उत्सुकता को द्योतित करती हैं । कहाँ तो आपकी महिमा और कहाँ तो रूप कुल तथा शील आदि से युक्त भी मैं ? फिर भी निर्लज्ज मेरा मन आपमें ही आसक्त हो रहा है । क्योंकि कानों के मार्ग से हृदय में प्रवेश करके सभी अङ्गों के सन्ताप को आपके गुण हरण करने वाले हैं । अङ्ग यह संबोधन भी हो सकता है । ऐसे आपके गुणों को सुनकर तथा देखने वालों के नेत्रों को सम्पूर्ण पुरुषार्थ प्रदान करने वाला है आपका रूप आपके उस रूप के विषय में भी सुनकर ॥३७॥

का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूपविद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ।
धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोकमनोभिरामम् ॥३८॥

अन्वयः— हे मुकुन्द ! कुलशीलरूप विद्यावयोद्रविणधामभिरामतुल्यम्, नरलोक मनोभिरामम् महती धीरा कुलवती का कन्यात्वा हे नृसिंह काले पतिं न वृणीत ॥३८॥

अनुवाद— हे प्रेमस्व रूप श्यामसुन्दर ! चाहे जिस दृष्टि से देखे कुल, शील, रूप विद्या अवस्था, धन-धान इन सभी विषयों में आप अपने ही समान अर्थात् अद्वितीय हैं । मनुष्य लोक के जितने भी प्राणी हैं आपको देखकर सबों का मन आनन्दित होता है । हे पुरुष भूषण ! अब आप ही बतलायें कि कौन सी ऐसी कुलवती धैर्यवती कन्या है जो विवाह के योग्य समय के आने पर आपको अपने पति के रूप में वरण नहीं करेगी ?॥३८॥

भावार्थ दीपिका

अहो कुलकन्यानामिदमतिघार्ष्ट्यमिति मा शङ्कीरित्याह-का त्वेति । हे मुकुन्द, हे नृसिंह नरश्रेष्ठ, का नाम कन्या

कुलवती तथा महती पुरुगुणोदारा तथा धीरा धृतिमती त्वा त्वां पतिं न वृणीत । मय्येव केयं दोषशङ्केति भावः । कथंभूतम्। कुलशीलदिभिरात्मनै तुल्यं निरुपममित्यर्थः । द्रविणं द्रव्यसंपत्, धाम प्रभावः, तथा नरलोकस्य मनसामभिरामोऽभिरमणं यस्मात्तम् । किंच काले विवाहावसरे ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

आप इस तरह की शङ्का न करें कि अरे यह तो कुल कन्याओं की बहुत बड़ी धृष्टता है । हे मुकुन्द ! हे नृसिंह नरश्रेष्ठ ! ऐसी कौन कुलवती सकल नारी गुण सम्पन्न धैर्य सम्पन्न कन्या होगी जो आपको अपने पति के रूप में वरण न करे ? तो फिर मुझमें ही दोष की शङ्का क्यों ? आप तो कुल, शील इत्यादि के विषय में अद्वितीय हैं । आपके सदृश कोई दूसरा पुरुष है ही नहीं । द्रविण अर्थात् धनसम्पत्ति, धाम अर्थात् प्रभाव । आपको देखकर मनुष्य लोक के सभी प्राणियों का मन आनन्दित हो जाता है । ऐसे आपको विवाह के अवसर पर ।।३८।।

तन्मे भवान्खलु वृतः पतिरङ्ग जायामात्माऽर्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ।
मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ।।३९।।

अन्वयः— हे अङ्ग भवान् मे पतिःवृतः आत्मा च भवतः अर्पितः विभो अत्र आगत्य मां जायां विधेहि हे अम्बुजाक्ष वीर भागम् मृगपतेः बलिम् गोमायुवत् चैद्यः आरात् मा अभिवर्षतु ।।३९।।

अनुवाद— हे प्रियतम ! मैंने आपको पति के रूप में वरण किया है मैं आपका अपना पति बना चुकी हूँ । आप यहाँ आकर मुझे पत्नी के रूप में स्वीकार करें । प्रियतम श्रीकृष्ण मैं आप सरीखे वीर को समर्पित हो चुकी हूँ । जैसे सिंह के भाग को सियार छूले वैसे ही कहीं सन्निकट से आकर शिशुपाल मेरा स्पर्श न कर ले।।३९।।

भावार्थ दीपिका

हे विभो , तस्मान्मे मया भवान्खलु पतिर्वृतः, आत्मा च भवतोऽर्पितः, अतस्त्वमत्रागत्य मां भवतो जायां विधेहि । विपक्षे बाधकं द्योतयन्त्याह-मा वीरभागमिति । वीरस्य तव भागं मामाराच्छीघ्रमेत्यागत्य चैद्यो माऽभिमर्शतु मा स्पृशतु । मृगपतेर्बलिं गोमायुवत् गोमायुः सृगाल इवेति ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

हे विभो ! इसलिए मैंने आपको अपने पति के रूप में वरण कर लिया है, मैं आपको अपनी आत्मा समर्पित कर चुकी हूँ । अतएव आप यहाँ आकर मुझे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करें । ऐसा नहीं होने पर बाधक का निर्देश करती हुई श्रीरुक्मिणीजी कहती हैं, कहीं आपके भाग को सन्निकट से आकर सिंह के भाग को सियार के समान शिशुपाल मेरा स्पर्श न कर ले ।।३९।।

पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेशः ।
आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ।।४०।।

अन्वयः— पूर्तेष्टदत्त नियम व्रत देव विप्र गुरु अर्चनादिभिः यदि परेशः भगवान् अलम् आराधितः गदाग्रजः एत्य मे पाणिं गृह्णातु अन्ये दमघोष सुतादयः न ।।४०।।

अनुवाद— मैंने यदि जन्मान्तरों में पूर्त कर्म (कुआँ, तलाब, बावली आदि सुदवाना) इष्ट यज्ञ यागादि दान, नियम, व्रत, देवता, ब्राह्मण और आदि की पूजा के द्वारा भगवान् परमेश्वर की ही आराधना की हों और वे मुझ पर प्रसन्न हों तो भगवान् श्रीकृष्ण ही आकर मेरा पाणिग्रहण करे दूसरे दमघोष के पुत्र शिशुपाल आदि नहीं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

अनेकजन्मकृतैः सुकृतैरिदमेव भूयादिति प्रार्थयते-पूर्तेति । पूर्तं कूपादि । इष्टमग्निहोत्रादि । दत्तं हिरण्यादिदानम् । नियमस्तीर्थाटनादिः । व्रतं कृच्छ्रादि ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

अनेक जन्मों में किए गये पुण्यों से यह फल मिले कि भगवान् श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों । पूर्तम् अर्थात् कुआ आदि बनवाना, इष्टम् अर्थात् अग्निहोत्रादि, दत्तम् अर्थात् सुवर्णादि का दान नियमः अर्थात् तीर्थ यात्रा आदि, व्रत् कृछ्र अर्थात् चान्द्रायण आदि ।।४०।।

श्वोभाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान् गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः ।
निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिनोद्वहवीर्यशुल्काम् ।।४१।।

अन्वयः— हे अजित, श्वः भाविनि उद्वहने पृतनादिभिः परीतः विदर्भान् गुप्त समेत्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य प्रमथ्य वीर्य शुल्काम् माम् राक्षसेन् विधिना उद्वह ।।४१।।

अनुवाद— मेरा विवाह होने से एक दिन पहले आप अपनी सेना के साथ गुप्त रीति से आ जायँ और शिशुपाल तथा जरासन्ध आदि की सेना को बलपूर्वक मथ डालिए और वीरता ही जिसका शुल्क है ऐसी मेरा विवाह राक्षस विधि से करें ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

ननु चैद्याय बन्धुभिरर्पितायां त्वयि किमधुना करणीयमित्यपेक्षायामाह-श्वोभाविनीति । हे अजित, श्वोभाविनि उद्वहने विवाहे प्रथमं गुप्तोऽलक्षित एवागत्य पश्चात्पृतनापतिभिः परिवृतः संश्चैद्यादिवलं निर्मथ्य प्रसह्य बलाद्वीर्यं प्रभावदर्शनमेव शुल्कं वैवाहिकं देयं यस्यास्तां माम् । अनेन राक्षसविधिनोद्वहेत्युपदेशरहस्यम् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें कि तुम्हारे भाई बन्धु जब तुम्हारा विवाह शिशुपाल से कर दें तो उस स्थिति में मैं क्या करूँगा । तो इसके उत्तर में श्रीरुक्मिणीजी ने कहा मेरे विवाह के दिन से एक दिन पहले आप अपनी सेना के साथ गुप्त विधि से आकर जरासन्ध और शिशुपाल की सेना को बल पूर्वक मथ डालें और वीरता ही जिसका शुल्क है ऐसी मेरे से विवाह राक्षस विधि से करें यही मेरे उपदेश का रहस्य है ।।४१।।

अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धूंस्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ।
पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ।।४२।।

अन्वयः— बन्धून् अनिहत्य अन्तःपुरचरीम् त्वां कथम् उद्वहे इति उपायम् प्रवदामि । पूर्वेद्यु महती कुलदेवि यात्रा अस्ति यस्यां नववधूः बहिः गिरिजाम् उपेयात् ।।४२।।

अनुवाद— यदि आप यह कहें कि तुम तो अन्तःपुर में पहरे के अन्दर रहती हो, अतएव तुम्हारे बन्धुओं को मारे बिना मैं तुम्हारे साथ कैसे विवाह कर सकता हूँ ? तो इसके विषय में मैं उपाय बतलाती हूँ । विवाह से एक दिन पहले कुलदेवी की हमारे यहाँ विशाल यात्रा होती है । उस यात्रा में विवाह किए जाने वाली बहू गिरिजा देवी की पूजा करने जाती हैं ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

ननु भवतु शिशुपालादिबलप्रमथनम् । अन्तःपुरमध्यगतायास्तव हरणे त्वद्बन्धुवधोऽपि प्रसज्जेतेत्यत आह-अन्तःपुरेति। पुराद्बहिर्वर्तमानां गिरिजामम्बिकाम् । अम्बिकागृहादेव मम हरणं सुकरमिति भावः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि शिशुपाल आदि की सेना को तो तहस नहस किया जा सकता है किन्तु तुम तो अन्तःपुर में रहती है । अतएव तुम्हारे भाई बन्धुओं को मारे बिना तुम्हारे साथ मैं कैसे विवाह कर सकता हूँ, इसके विषय

में मैं उपाय बतलाती हूँ। विवाह से एक दिन पहले हमारे यहाँ कुल परम्परा के अनुसार कुलदेवी की विशाल यात्रा होती है। उस यात्रा में विवाह किए जाने वाली नववधू गिरिजा देवी की पूजा करने जाती है, अतएव वहीं से मेरा अपहरण आसान होगा ॥४२॥

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ।
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून्व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात् ॥४३॥

अन्वयः— हे अम्बुजाक्ष ! यस्य अङ्घ्रिपङ्कजरजः स्नपनं आत्मतमोपहत्यै उमापतिरिव महान्तः वाञ्छन्ति यर्हि भवत् प्रसादं न लभेय व्रतकृशान् असून् जह्याम् शतजन्मभिः स्यात् ॥४३॥

अनुवाद— हे कमलनयन ! आपके चरणों की धूलि से भगवान् शङ्कर जैसे महापुरुष इसलिए स्नान करना चाहते हैं कि उनकी आत्मशुद्धि हो जाय। ऐसे आपकी कृपा प्रसाद मुझे यदि नहीं मिल सका तो व्रतोपवास के द्वारा शरीर को सुखाकर मैं प्राणत्याग कर दूँगी उसके लिए चाहे मुझे सैकड़ों जन्म लेना पड़े कभी तो आपका कृपा प्रसाद मुझे मिलेगा ही ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

ननु किमनेनानर्थकारिणा निर्बन्धेन चैद्योऽपि तावत्प्रख्यातगुणकर्मा योग्य एव वर इति तत्राहन्-यस्येति। हे अम्बुजाक्ष, यस्य भवतोऽङ्घ्रिपङ्कजरजोभिः स्नपनमात्मनस्तमसोऽपहत्यै उमापतिरिव महान्तो वाञ्छन्ति तस्य भवतः प्रसादं यर्ह्यहं न लभेय न प्राप्नुयां तर्हि व्रतैरूपवासादिभिः कृशानसून्प्राणान् जह्यां त्यजेयम्। ततः किमित्यत आह-शतजन्मभिरिति। एवमेव वारंवारं जह्यां यावच्छतजन्मभिरपि तव प्रसादः स्यादिति ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें कि इस प्रकार के अनर्थकारी निर्बन्ध से कौन सा लाभ है ? शिशुपाल भी प्रख्यात गुणों एवं कर्मों वाला है अतएव वह एक योग्य वर है। इस पर श्रीरुक्मिणीजी कहती हैं हे कमलनयन, जिस आपके चरणों की धूलि से भगवान् शिव जैसे पुरुष अपनी आत्मा शुद्धि के लिए स्नान करना चाहते हैं, ऐसे आपका यदि कृपा प्रसाद मुझे नहीं मिला तो मैं व्रतों और उपवासों द्वारा अपने शरीर को सुखाकर प्राणों का परित्याग कर दूँगी। इसके लिए चाहे मुझे सैकड़ों जन्म लेना पड़े कभी न कभी आपका कृपा प्रसाद मुझे मिलेगा ही ॥४३॥

ब्राह्मण उवाच

इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाहृताः । विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिण्युद्वाहे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

अन्वयः— हे यदुदेव ! इत्येते गुह्य संदेशाः मया आहृताः अत्र यत् कर्तुं विमृश्य तदनन्तरं क्रियताम् ॥४४॥

ब्राह्मण देवता ने कहा

अनुवाद— हे यदुवंश शिरोमणे ! यह श्रीरुक्मिणी का अत्यन्त गोपनीय सन्देश है, जिन्हें लेकर मैं आपके पास आया हूँ। इसके विषय में जो कुछ करना हो विचार कर लें और उसके पश्चात् उसके अनुसार कार्य कीजिए ॥४४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के रुक्मिणी विवाह के प्रसङ्ग में बावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

अत्र यत्कर्तुं करणीयं तद्विमृश्य क्रियतां तच्चानन्तरमेव क्रियतामिति ।।४४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

इस विषय मे जो कुछ करने योग्य हो उसे विचार कर उसके अनुसार कार्य करें ।।४४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के बावनवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।५२।।

* * *

तिरपनवाँ अध्याय

रुक्मिणी हरण

श्रीशुकउवाच

वैदर्भ्याः स तु संदेशं निशम्य यदुनन्दनः । प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥१॥

अन्वयः— स तु यदुनन्दनः वैदर्भ्याः संदेशं निशम्य पाणिना पाणिं प्रगृह्य प्रहसनिदम् अब्रवीत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण श्रीरुक्मिणीजी के सन्देश को सुनकर अपने हाथ से ब्राह्मण देवता का हाथ पकड़कर हँसते हुए कहे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रिपञ्चाशत्तमे गत्वा विदर्भानद्भुतेहितः । रुक्मिणीमहरत्कृष्णो मिषतां द्विषतां वलात् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तिरपनवें अध्याय में विदर्भ देश में जाकर अद्भुत चेष्टाओं वाले भगवान् श्रीकृष्ण सभी शत्रुओं के सामने ही रुक्मिणी का बलपूर्वक हरण कर लिए ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि । वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः ॥२॥

अन्वयः— तथा अहमपि तच्चित्तः निशि निद्रां न लभे अहम् वेद रुक्मिणा द्वेषात् मम उद्वाहः निवरितः ॥२॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— ब्राह्मण देवता ! रुक्मिणी के ही समान मेरा भी मन रुक्मिणी में ही लगा है । इसलिए मुझे रात में नींद नहीं आती है । मैं जानता हूँ कि द्वेष के कारण रुक्मिणी ने मेरे विवाह को रोकवा दिया है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

निद्राया अलाभे कारणान्तरम्-वेदेति । तया अकथितमप्यहं जानामीति ॥२॥

भाव प्रकाशिका

नींद नहीं आने का दूसरा कारण नहीं कहने पर भी मैं जानता हूँ ॥२॥

तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान्मृधे । मत्परामनवद्याङ्गीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥३॥

अन्वयः— मत्पराम् अनवद्याङ्गीम् एधस अग्नि शिखामिव मृधे राजन्यापसदान् उन्मथ्य ताम् आनयिष्ये ॥३॥

अनुवाद— मुझसे प्रेम करने वाली परम सुन्दरी राजकुमारी को जिस तरह से लकड़ियों को मथकर उससे आग निकाल ली जाती है वैसे ही युद्ध में उन नामधारी क्षत्रिय कुलकलङ्को को तहस नहस करके निकाल लाऊँगा॥३॥

भावार्थ दीपिका

आनयिष्ये आनेष्यामि । राजन्यापसदान् राजसु हीनान् । उन्मथ्यानयने दृष्टान्तः एधस इति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

नीच राजाओं को तहस नहस करके मैं लाऊँगा तहस-नहस करने में दृष्टान्त है अरणि का । जिस तरह अरणि मन्थन करके अग्नि निकाल ली जाती हैं, उसी तरह उन नीच राजाओं को तहस नहस करके राजकुमारी को लाऊँगा॥३॥

श्रीशुक उवाच

उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः । रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम् ॥४॥

अन्वयः— रुक्मिण्याः उद्वाहार्क्षं विज्ञाय मधुसूदनः सारथिम् दारुक आशु रथः संयुज्यताम् ॥४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— रुक्मिणीजी के विवाह के नक्षत्र को जानकर भगवान् मधुसूदन ने सारथि से कहा दारुक शीघ्र रथ को तैयार करो ॥४॥

भावार्थ दीपिका

उद्वाहर्क्षमिति परश्वो रात्रौ विवाहनक्षत्रमिति विज्ञाय तस्यां रात्र्यां प्रस्थाय प्रातर्विदर्भदेशानगमत् । श्वोभाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान् गुप्तः समेत्येति रुक्मिणीसंदेशात् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

परसो रात्रि में विवाह नक्षत्र है, इस बात को जानकर उसी दिन रात्रि में चलकर प्रात:काल भगवान् विदर्भ देश में आ गये । रुक्मिणी का सन्देश भी था कि अजित् विवाह से एकदिन पहले आप गुप्त रीति से विदर्भ देश में आ जायँ ॥४॥

स चाश्वैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः । युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥५॥

अन्वयः— स च शैव्य सुग्रीवमेघपुष्पबलाहकैः अश्वैः युक्तं रथम् उपानीय प्राञ्जलिरग्रतः स्थितः ॥५॥

अनुवाद— दारुक भगवान् के रथ में शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नामक चार अश्वों को जोतकर उसे ले आये और हाथ-जोड़कर भगवान् के सामने खड़ा हो गये ॥५॥

भावार्थ दीपिका

शैब्येत्यादीनि चत्वार्यश्वनामानि ॥५॥

भाव प्रकाशिका

शैव्य इत्यादि चार अश्वों के नाम हैं ॥५॥

आरुह्य स्यन्दनं शौरिर्द्विजमारोप्य तूर्णगैः । आनर्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद्धयैः ॥६॥

अन्वयः— शौरिः द्विजम् आरोप्य स्यन्दनम् आरुह्य तूर्णगैः हयैः एकरात्रेण आनर्तात् विदर्भान् अगमत् ॥६॥

अनुवाद— शूरवंशावतंस भगवान् श्रीकृष्ण पहले ब्राह्मण देवता को रथ पर बैठाकर बाद में स्वयं रथ पर सवार हुए और शीघ्रगामी अश्वों द्वारा एक ही रात में आनर्त प्रदेश से विदर्भ देश में आ गये ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

राजा स कुण्डिनपतिः पुत्रस्नेहवशं गतः । शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन्कर्माण्यकारयत् ॥७॥

अन्वयः— सः कुण्डीनपति राजा पुत्रस्नेहवशं गतः स्वां कन्यां शिशुपालाय दास्यन् कर्माण्यकारयत् ॥७॥

अनुवाद— कुण्डीन पति महाराज भीष्मक अपने पुत्र रुक्मी के स्नेह के अधीन होकर अपनी पुत्री रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से करने के लिए तैयारी करा रहे थे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

पुत्रस्य रुक्मिणः स्नेहेन तद्वशमनुगच्छतीति तथा । अनेन शिशुपालेऽनभिरुचिं द्योतयति । कर्माणि पुरालङ्कारपितृदेवार्चनादीनि॥७॥

भाव प्रकाशिका

पुत्र रुक्मी के प्रति होने वाले स्नेह के कारण उसके अधीन से हो गये थे । इससे पला चलता है कि महाराज भीष्मक की शिशुपाल के प्रति अभिरुचि नहीं थी । वे नगर को सजवाने और पितरों तथा देवता आदि का पूजन आदि करवा रहे थे ॥७॥

पुरं संमृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् । चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम् ॥८॥

अन्वयः— संसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् चित्रध्वजपताकाभि; तोरणैः समलंकृतम् पुरम् ॥८॥

अनुवाद— नगर के मार्गो, चौराहों और गलियों में सुगन्धित जल का छिड़काव कर दिया गया था सर्वत्र रंग-विरङ्गी पताकाएँ एवं ध्वज लगा दिए गये थे तथा वन्दनवार बाँधकर अलंकृत कर दिया गया था ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तान्येवाह-पुरमित्यादिचतुर्भिः। संमृष्टाः संसिक्ताश्च मार्गादयो यस्मिंस्तत्। चित्रा ध्वजेषु पताकास्ताभिः समलंकृतमकारयत्।।८।।

भाव प्रकाशिका

राजा के द्वारा कराये गये कार्यों का ही चार श्लोकों से वर्णन किया गया है । उस नगर के सभी मार्ग सींच दिए गये थे, ध्वज और रङ्ग-विरङ्गी पताकायें लगा दी गयी थीं । उन सबों से राजा ने नगर को अलंकृत कराया था ॥८॥

स्रगन्धमाल्याभरणैर्विरजोम्बरभूषितैः । जुष्टं स्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः ॥९॥

अन्वयः— स्रगन्धमाल्याभरणैः विरजोम्बरभूषितै स्त्री पुरुषै अगरुधूपितैः श्रीमद्गृहैः जुष्टं नगरमकारयत् ॥९॥

अनुवाद— माला, चन्दन, आभूषणों स्वच्छ वस्त्रों से अलंकृत स्त्री पुरुषों एवं अगरु के धूप से सुगन्धित ऐश्वर्य सम्पन्न गृहों से सुशोभित उस नगर को राजा ने कराया था ॥९॥

भावार्थ दीपिका

स्रगन्धमाल्याभरणैरित्यत्र मत्वर्थो द्रष्टव्यः । यद्वा स्रगन्धमाल्यान्याबिभ्रतीति तथा तैः तथा विरजोम्बरैर्भूषितैश्च स्त्रीपुरुषैर्जुष्टम्। तथा श्रीमद्भिर्गृहैश्च जुष्टम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

सुगन्धित चन्दन माला एवं आभूषणों से युक्त अथवा सुगन्धित चन्दन माला आदि को धारण किए हुए एवं स्वच्छ वस्त्रें से सुशोभित स्त्री-पुरुष से सेवित था वह नगर ॥९॥

पितॄन्देवान्समभ्यर्च्य विप्रांश्च विधिवन्नृपः । भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मङ्गलम् ॥१०॥

अन्वयः— हे नृप पितृन् देवान् समभ्यर्च्य विप्रान् च विधिवत् भोजयित्वा यथान्यायं मङ्गलं वाचयामास ॥१०॥

अनुवाद— राजा ने पितरों तथा देवताओं की अच्छी तरह से पूजा कराकर ब्राह्मणों को भोजन कराकर उनसे नियमानुसार स्वस्तिवाचन कराया ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

यथान्यायमन्यांश्च । कन्यां प्रति मङ्गलं वाचयामास ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

नियमानुकूल कन्या के लिए दूसरे मङ्गलों को कराया ॥१०॥

सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृतकौतुकमङ्गलाम् । अहतांशुकयुग्मेन भूषितां भूषणोत्तमैः ॥११॥
चक्रुः सामर्ग्यजुर्मन्त्रैर्वध्वा रक्षां द्विजोत्तमाः । पुरोहितोऽथर्वविद्वै जुहाव ग्रहशान्तये ॥१२॥

अन्वयः— सुदतीं कन्यां सुस्नातां कृतकौतुकमङ्गलाम् अहतांशुकयुग्मेन भूषणोत्तमै भूषितां द्विजोत्तमाः समार्ग्यजुर्मन्त्रैः बध्वाः रक्षां चक्रुः अथर्वविद् पुरोहितः वै ग्रह शान्तये जुहाव ॥११-१२॥

अनुवाद— सुन्दर दाँतों वाली कन्या श्रीरुक्मिणी जी को अच्छी तरह से स्नान कराया गया उनके हाथों में मङ्गल सूत्र कङ्कण पहनाया गया, कोहबर बनाया गया, उनको दो नवीन वस्त्र पहनाये गये, अलङ्कारों से अलंकृत किया गया, श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेद के मन्त्रों से उनकी रक्षा की और अथर्ववेद के विद्वान पुरोहित ने ग्रहशान्ति के लिए हवन किया ॥११-१२॥

भावार्थ दीपिका

कृतं कौतुकेन विवाहसूत्रेण मङ्गलं यस्यास्ताम् । अहतं नवीनम् । भूषणोत्तमैश्च भूषिताम् । वध्वास्तस्याः कन्यायाः। अथर्वविदथर्वणमन्त्रवित् ॥११-१२॥

भाव प्रकाशिका

रुक्मिणीजी का विवाह सूत्र के द्वारा मङ्गल किया गया । अहत अर्थात् नवीन । उनको उत्तमभूषणों से अलंकृत किया गया । बध्वाः अर्थात् रुक्मिणीजी का । अथर्ववित् अर्थात् अथर्ववेद के मन्त्रों को जानने वाला ॥११-१२॥

हिरण्यरूप्यवासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान् । प्रादाद्धेनूश्च विप्रेभ्यो राजा विधिविदां वरः ॥१३॥

अन्वयः— विधिविदांवरः राजा विप्रेभ्यः हिरण्यरूप्यवासांसि गुडमिश्रितान् तिलान् च धेनूः च प्रादात् ॥१३॥

अनुवाद— कुल परम्परा तथा शास्त्रीय विधियों के जानकार राजा ने ब्राह्मणों को सुवर्ण, चाँदी, वस्त्र तथा गुड मिश्रित तिलों तथा गायों का दान दिया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुताय वै । कारयामास मन्त्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम् ॥१४॥

अन्वयः— एवं चेदिपतिः राजा दमघोष सुतायसर्वम् अभ्युदयोचितम् मन्त्रज्ञैः कारयामास ॥१४॥

अनुवाद— इसी तरह चेदि देशाधिपति राजा दमघोष अपने पुत्र शिशुपाल के लिए मन्त्रों के जानकार ब्राह्मणों से विवाह सम्बन्धी मङ्गल कृत्य करवाये ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अभ्युदये उचितम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

मङ्गलकारी कृत्य ।।१४।।

मदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यन्दनैर्हेममालिभिः । पत्त्यश्वसंकुलैः सैन्यैः परीतः कुण्डिनं ययौ ।।१५।।

अन्वयः— मदच्युद्भि गजानीकैः हेममालिभिः स्यन्दनैः पत्यश्वसंकुलैः सैन्यैः परीतः कुण्डीनं ययौ ।।१५।।

अनुवाद— उसके पश्चात् मदमत्त हाथियों, सुवर्ण की मालाओं से सजे, रथों, पैदल एवं घुड़सवारों की सेना को साथ लेकर कुण्डीन पुर में पहुँच गये ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

ततश्चतुरङ्गसैन्यैः परीतः परिवृतः कुण्डिनं भीष्मकस्य पुरं ययौ । मदं च्यवन्ते इति मदच्युतस्तैः । स्यन्दनै रथैः । हेमरचिता माला विद्यन्ते येषु तैः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् चतुरङ्गिणी सेना के साथ वे राजा भीष्मक की नगरी कुण्डीनपुरी में चले गये । मदच्युद्भिः अर्थात् जिन सबों की मदवारि प्रवाहित हो रही थी, सुवर्ण निर्मित मालाओं से सजाये गये रथों ।।१५।।

तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्य च । निवेशयामास मुदा कल्पितान्य निवेशने ।।१६।।

अन्वयः— विदर्भाधिपतिः वै तं समभ्येत्य अभिपूज्य च कल्पितान्य निवेशने मुदा निवेशयामास ।।१६।।

अनुवाद— विदर्भ देश के राजा भीष्मक आगे आकर उनका स्वागत सत्कार किए और परम्परा के अनुसार उनका पूजन किए उसके पश्चात् उनके लिए पहले से ही निश्चित दूसरे स्थान (जनवासा) में आनन्द पूर्वक ठहरा दिए गये ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

कल्पितं निर्मितं यदन्यनिवेशनं तस्मिन् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

जो दूसरा निवास स्थान बनाया गया था उसमें ।।१६।।

तत्र शाल्वो जरासन्धो दन्तवक्रो विदूरथः । आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौण्ड्रकाद्याः सहस्रशः ।।१७।।

अन्वयः— तत्र शाल्वः जरासन्धः, दन्तवक्रः, विदूरथः, चैद्यपक्षीयाः, पौण्ड्रकाद्याः, सहस्रशः आजग्मुः ।।१७।।

अनुवाद— वहाँ पर शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र, विदूरथ आदि शिशुपाल के पक्ष में पौण्ड्रक आदि हजारों राजा आये ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

कृष्णरामद्विषो यत्ताः कन्यां चैद्याय साधितुम् । यद्यागत्य हरेत्कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिर्वृतः ।।१८।।
योत्स्यामः संहतास्तेन इति निश्चितमानसाः । आजग्मुर्भूभुजः सर्वे समग्रबलवाहनाः ।।१९।।

अन्वयः— यत्ताः कृष्णरामद्विषः चैद्याय कन्यांसाधयितुम् रामाद्यैः यदुभिः वृतः कृष्णः आगत्य यदि कन्यां हरेत् तेन संहताः योत्स्यामः इति निश्चितमानसाः सर्वे भूभुजः समग्रवलवाहनाः आजग्मुः।।१८-१९।।

अनुवाद— वे सभी राजा सावधान थे और भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी से जो द्वेष करते थे, राजकुमारी रुक्मिणी, शिशुपाल को ही मिले इस विचार से आये थे । वे सब अपने मन में पहले से ही निश्चित किए थे कि यदि श्रीकृष्ण, बलरामजी एवं यदुवंशियों के साथ आकर कन्या का हरण करते हैं तो हम सभी एक साथ मिलकर उनसे युद्ध करेंगे । इसीलिए वे सब अपनी सेना के साथ आये थे ॥१८-१९॥

भावार्थ दीपिका

यदि श्रीकृष्णो हरेदिति शङ्किताः । कन्यां साधयितुमित्यर्थः ॥१८-१९॥

भाव प्रकाशिका

यदि श्रीकृष्ण आकर कन्या का हरण करते हैं, इस तरह से शङ्का करने वाले वे राजागण कन्यां साधयितुम् अर्थात् कन्या को प्राप्त कराने के लिए ॥१८-१९॥

श्रुत्वैतद्भगवान्रामो विपक्षीयनृपोद्यमम् । कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां कलहशङ्कितः ॥२०॥
बलेन महता सार्धं भ्रातृस्नेहपरिपलुतः । त्वरितः कुण्डिनं प्रागाद्गजाश्वरथपत्तिभिः ॥२१॥

अन्वयः— विपक्षीय नृपोद्यमम् श्रुत्वा भगवान् रामो एकं कृष्णं कन्यां हर्तुं गतं च श्रुत्वा कलहशङ्कितः भ्रातृस्नेह परिप्लुतः महता बलेन सार्धं गजाश्वरथपत्तिभिः त्वरितः कुण्डिनं प्रागात् ॥२०-२१॥

अनुवाद— विपक्षी राजाओं की इस प्रकार की तैयारी को सुनकर तथा कृष्ण कन्या का हरण करने के लिए गये है, यह सुनकर बलरामजी अपने भाई के स्नेह से परिपूर्ण होकर वहाँ सम्भावित कलह की शङ्का से हाथी, घोड़े एवं पैदल सेना लेकर कुण्डीनपुर के लिए प्रस्थान किए ॥२०-२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०-२१॥

भीष्मकन्या वरारोहा काङ्क्षन्त्यागमनं हरेः । प्रत्यापत्तिमपश्यन्ती द्विजस्याचिन्तयत्तदा ॥२२॥

अन्वयः— हरेः आगमनं काङ्क्षन्ती, वरारोहा भीन्मकन्या तदा द्विजस्य प्रत्यापत्तिम पश्यन्ती अचिन्तयत् ॥२२॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के आगमन की प्रतीक्षा करने वाली परम सुन्दरी भीष्मक कन्या तब तक ब्राह्मण के भी नहीं लौटने को देखकर चिन्ता करने लगीं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

सूर्योदयात्पूर्वमेवौत्सुक्येन रुक्मिण्यचिन्तयदित्याह-भीष्मकन्येति । प्रत्यापत्तिं प्रत्यागमनम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

सूर्योदय से पहले ही श्रीरुक्मिणीजी चिन्ता करने लगीं इस बात को भीष्मक कन्या इत्यादि श्लोक से कहा गया है । प्रत्यापत्तिम लौटना ॥२२॥

अहो त्रियामान्तरित उद्वाहो मेऽल्पराधसः । नागच्छत्यरविन्दाक्षो नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ॥
सोऽपि नावर्ततेऽद्यापि मत्संदेशहरो द्विज ॥२३॥

अन्वयः— अहो मे अल्पराधसः त्रियामान्तरितः, अरविन्दाक्षः न आगच्छति अहम् अत्र कारणं न वेद्मि । सः मत्सन्देश हरः द्विजः अद्य अपि न आवर्तते ॥२३॥

अनुवाद— अहो मुझ अभागिनी के विवाह में केवल रात की देर है, मेरे जीवन सर्वस्व कमलनयन श्रीहरिः अब तक नहीं आये न जाने इसका कारण क्या है, मैं नहीं जानती । मेरा संदेश ले जाने वाले ब्राह्मण देवता भी अब तक नहीं लौटे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

त्रियामा रात्रिस्तावन्मात्रेणान्तरितः । अल्पराधसो मन्दभाग्यायाः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

एक रात्रि अवशिष्ट है । अल्पराधसः मन्दभाग्यवाली के ।।२३।।

अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किंचिज्जुगुप्सितम् । मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः ।।२४।।

अन्वयः— मयि अपि किञ्चित् जुगुप्सितम् दृष्ट्वा अनवद्यात्मा नूनं हि कृतोद्यमः मत्पाणिग्रहणे नायाति ।।२४।।

अनुवाद— मुझमें कोई-न-कोई पाप देखकर ही परम शुद्ध स्वरूप श्रीकृष्ण इसीलिए वे मेरे विवाह के अवसर पर मेरा पाणिग्रहण करने के लिए नहीं आये हैं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

जुगुप्सितं धार्ष्ट्यादि । अपीति शङ्कायाम् । नायाति हि कृतोद्यम इति । अयमर्थः-आदौ कृतोद्यमत्वात्तं न प्रस्थापितवान् प्रस्थानावसरे च किंचिन्मयि जुगुप्सितं मरवा प्रत्याचष्ट, अतः सोऽपि द्विजो नूनं नायातीति ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

धृष्टता आदि दोष आदि का प्रयोग शङ्का के अर्थ में हुआ हैं । तैयारी करके नहीं आ रहे है । कहने का अभिप्राय है कि तैयारी कर लेने के कारण ब्राह्मण को नहीं भेजे । चलते समय मुझमें कुछ दोष देखकर वे पूछे होंगे । इसीलिए वह ब्राह्मण भी नहीं आ रहा है ।।२४।।

दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः । देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती ।।२५।।

अन्वयः— दुर्भगाया में न धाता न महेश्वरः मे अनुकूल वारुद्राणी देवी गौरी सती मे विमुखा ।।२५।।

अनुवाद— मैं दुर्भाग्य सम्पन्न हूँ इसीलिए नतो विधाता और न तो भगवान् शिव ही मेरे अनुकूल है । यह भी सम्भव है रुद्रपत्नी देवी पर्वत राज की पुत्री पार्वतीजी ही मुझसे अप्रसन्न हों ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

यद्वा ततो निर्गतोऽपि श्रीकृष्णो मद्दैववैमुख्यात्क्वचित्प्रतिबद्धो भवेदित्याह-दुर्भगाया इति ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

अथवा वहाँ से श्रीकृष्ण निकले हों फिर मेरे दुर्देव के कारण कहीं पर रुक गये हों । इस बात को उन्होंने दुर्भागाया इत्यादि श्लोक के द्वारा कहा है ।।२५।।

एवं चिन्तयती बाला गोविन्दहृतमानसा । न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले ।।२६।।

अन्वयः— एवं चिन्तयती गोविन्दहृतमानसा कालज्ञा च बाला अश्रुकलाकुले नेत्रे न्यमीलयत् ।।२६।।

अनुवाद— इस तरह से सोचती हुई रुक्मिणीजी का मन श्रीभगवान् में ही लगा हुआ था, यह सोचकर कि अभी भी समय है उन्होंने आँसुओं से भरे नेत्रों को बन्द कर लिया ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

कालज्ञा आधुनापि गोविन्दागमनकाल इति मन्वाना किंचिदाश्वस्तचित्ता सती चिन्तास्तब्धे लोचने निमीलितवतीत्यर्थः।।२६।।

भाव प्रकाशिका

अभी भी गोविन्द के आने का समय समाप्त नहीं हुआ है इस तरह से सोचकर रुक्मिणीजी का चित्त आश्वस्त हो गया । वे अपने चिन्ता से स्तब्ध हुए नेत्रों को मूंद लीं ।।२६।।

एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविन्दागमनं नृप । वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन्प्रियभाषिणः ॥२७॥

अन्वयः— हे नृप एवं गोविन्दागमनं प्रतीक्षन्त्या वध्वाः प्रियभाषिणः वाम उरुभुजः नेत्रम् अस्फुरन् ॥२७॥

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् इस तरह से भगवान् के आगमन की प्रतीक्षा करने वाली श्रीरुक्मिणीजी के प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण के आगमन को सूचित करने वाले उनकी वायीं जाङ्घ, वायीं भुजा और वायां नेत्र फडकने लगे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

प्रियभाषिणः प्रियसूचकाः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

प्रिय भाषिण अर्थात् शुभ के सूचकः ॥२७॥

अथ कृष्णविनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः । अन्तःपुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ॥२८॥

अन्वयः— अथ कृष्ण विनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः अन्तः पुरचरीं देवी राजपुत्री ददर्श ह ॥२८॥

अनुवाद— इस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा भेजे हुएवे ही ब्राह्मण श्रेष्ठ राजकुमारी श्रीरुक्मिणीजी को अन्तःपुर में रहने वाली किसी देवी के समान ध्यानमन देखे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

पुरोपवनं प्राप्तेन श्रीकृष्णेन विनिर्दिष्टः प्राप्तं मां कथयेत्यादिष्टः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

नगर के उपवन में आकर भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा आदिष्टकि रुक्मिणी को बतला दें कि मैं आ गया हूँ॥२८॥

सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती । आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञा समपृच्छच्छुचिस्मिता ॥२९॥

अन्वयः— प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं तं आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञा शुचिस्मिता सा समपृच्छत् ॥२९॥

अनुवाद— प्रसन्न मुख वाला किसी भी प्रकार की घबराहट से रहित उन ब्राह्मण देवता को देखकर लक्षणों को जानने वाली पवित्र मुस्कान वाली श्रीरुक्मिणी जी ने उनसे पूछा ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

न व्यग्रा आत्मनो देहस्य गतिर्यस्य तम् । लक्षणाभिज्ञा दूतस्य लक्षणं तत्तत्कार्यसूचकमभिजानातीति तथा ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

शरीर की गति किसी भी प्रकार के घबराहट से रहित उस ब्राह्मण को देखकर दूत का लक्षण जो विभिन्न कार्यों का सूचक होता है उसको जानने वाली ॥२९॥

तस्या आवेदयत्प्राप्तं शशंस यदुनन्दनम् । उक्तं च सत्यवचनमात्मोपनयनं प्रति ॥३०॥

अन्वयः— तस्याः प्राप्तं आवेदयत् यदुनन्दनं शशंस आत्मोपनयनं प्रति सत्यवचनम् उक्तं चः ॥३०॥

अनुवाद— वे ब्राह्मण देवता श्रीरुक्मिणीजी को बतलाये कि भगवान् श्रीकृष्ण आ गये हैं और ब्राह्मण ने भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा की । वे यह भी बतलाये कि आपको ले जाने की उन्होंने सत्य प्रतिज्ञा की है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तस्यै प्राप्तं यदुनन्दनमावेदितवान् । तं च शसंस । आत्मोपनयनं प्रति आत्मना स्वयं श्रीकृष्णस्यानयनं प्रति तेन द्विजेन

सत्यवचनं प्रोक्तमिति । आत्मनः प्राणेश्वरस्येति वा । यद्वा आत्मनस्तस्या उपनयनं प्रति श्रीकृष्णेन यदुक्तं सत्यवचनं तामानयिष्य इत्यादि तच्च शशंसावर्णयदित्यर्थः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीरुक्मिणीजी को ब्राह्मण ने बतलाया कि भगवान् श्रीकृष्ण आ गये हैं । उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की प्रशंसा की । उन्होंने यह बतलाया कि वे हमारे सामने सत्य प्रतिज्ञा किये है कि मैं रुक्मिणी को ले आऊँगा अथवा आत्मनः अर्थात् प्राणेश्वर श्रीकृष्ण को अथवा उन रुक्मिणीजी को लाने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने जो सत्यप्रतिज्ञा की थी उसको वे ब्राह्मण रुक्मिणीजी को बतलाये ॥३०॥

तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा । नपश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन्ननाम सा ॥३१॥

अन्वयः— तम् आगतं समाज्ञाय हृष्टमानसा सा ब्राह्मणाय अन्यत् प्रियं न पश्यती ननाम ॥३१॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण को आये हुए जानकर श्रीरुक्मिणीजी उन ब्राह्मण को देने योग्य कोई भी दूसरी वस्तु न समझकर उन्होंने ब्राह्मण देवता को नमस्कार किया ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तं श्रीकृष्णम् । अस्मिन्कार्ये सर्वस्वार्पणमप्यपर्याप्तमिति तदुचितं प्रियमपश्यन्ती तदा केवलं ननाम । पश्चाद्बहु ददावित्यर्थः। यद्वा मां श्रियं ये नमन्ति ते तावत्सर्वसम्पदामास्पदं भवन्ति किं पुनर्मयि प्रणतायामिति ततोऽधिकमन्यत्प्रियमपश्यन्ती ननामेति।।३१।।

भाव प्रकाशिका

तम् अर्थात् ब्राह्मण को इस कार्य के लिए अपना सर्वस्व समर्पण करना भी पर्याप्त नहीं होगा, अतएव उसके लिए कोई दूसरी वस्तु को उचित तथा प्रिय नहीं देखकर उन्होंने ब्राह्मण देवता को प्रणाम कर लिया और उसके पश्चात् बहुत कुछ प्रदान किया । अथवा लक्ष्मीजी ने कहा है कि जो लोग मुझको प्रणाम करते है वे उसी समय सम्पूर्ण सम्पत्तियों के योग्य अधिकारी हो जाते हैं । और जिसको मैं स्वयं प्रणाम कर रही हूँ उसके विषय में क्या कहना है । इसीलिए वे उससे अधिक कुछ भी नहीं समझकर ब्राह्मण देवता को प्रणाम कीं ॥३१॥

प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रेक्षणोत्सुकौ । अभ्ययात्तूर्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥३२॥

अन्वयः— स्वदुहितुः उदवाहदर्शनोत्सुकौ रामकृष्णौ प्राप्तौ श्रुत्वा तूर्यघोषेण समर्हणैः अभ्ययात् ॥३२॥

अनुवाद— राजा भीष्मक ने जब सुना कि मेरी पुत्री का विवाह देखने के लिए उत्सुक बलरामजी और श्रीकृष्ण आयें हैं तो वे तूर्यघोष पूर्वक उनके पूजन की सामग्री लेकर उन दोनों के पास गये ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजांसि सः । उपायनान्यभीष्टानि विधिवत्समपूजयत् ॥३३॥

अन्वयः— मधुपर्कम् विरजांसिवासांसि सः अभीष्टानि उपायनानि च उपनीय विधिवत् समपूजयत् ॥३३॥

अनुवाद— राजा उनको मधुपर्क, निर्मल वस्त्र तथा अभीष्ट उपहारों को देकर उनकी विधिपूर्वक पूजा किए॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

तयोर्निवेशनं श्रीमदुपकल्प्य महामतिः । ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे यथा ॥३४॥

अन्वयः— महामतिः तयोः श्रीमत् निवेशनम् उपकल्प्य ससैन्ययोः सानुगयोः यथा आतिथ्यं विदधे ॥३४॥

अनुवाद— महाबुद्धिमान राजा भीष्मक सेना और अनुचरों के साथ श्रीबलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण की यथोचित अतिथ्य सत्कार किए ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

महामतिरित्यनेन श्रीकृष्णो बाढं कन्यामुद्वोढुमेवागतः स्यादिति वरोचितेन विधिना समपूजयदिति सूचितम् । यथा यथावत् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

महामतिः इस विशेषण के द्वारा सूचित किया गया है । बहुत अच्छा हो सकता है कि कन्या का विवाह करने को श्रीकृष्ण आये हैं । इसलिए जिस तरह वर की पूजा की जानी चाहिए उस तरह से राजा ने पूजा की।।३४।।

एवं राज्ञां समेतानां यथावीर्यं यथावयः । यथाबलं यथावित्तं सर्वैः कामैः समर्हयत् ।।३५।।

अन्वयः— एवं समेतानां राज्ञां यथा वीर्यं, यथावयः यथा बलम् यथावित्त सर्वैः कामैः समर्हयत् ।।३५।।

अनुवाद— इस तरह से आये हुए सभी राजाओं की उनके पराक्रम, अवस्था बल और धन सम्पत्ति के अनुसार सबों की राजा भीष्मक उनके अभिप्रेत वस्तुओं को प्रदान करके सबों की यथायोग्य पूजा किये ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

समेतानां राज्ञां मध्ये वीर्याद्यनतिक्रम्य तं तं समर्हितवानित्यर्थः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

आये हुए राजाओं में जिस राजा का जैसा पराक्रम, अवस्था, बल था उसी के अनुसार उन राजाओं की महाराज भीष्मक ने सबों की पूजा की ।।३५।।

कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः । आगत्य नेत्राञ्जलिभिः पपुस्तन्मुखपङ्कजम् ।।३६।।

अन्वयः— विदर्भपुरवासिनः आगतं कृष्णम् आकर्ण्य नेत्रञ्जलिभिः तन्मुखपङ्कजम् पपुः ।।३६।।

अनुवाद— विदर्भ नगर में रहने वाले लोग भगवान् श्रीकृष्ण आये हैं, इस बात को सुनकर अपने नेत्र रूपीं अञ्जलि से उनके मुखकमल का पान करने लगे ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णे भाविकर्मसूचकं जनानुरागं दर्शयति-कृष्णमागतमिति त्रिभिः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के आगे होने वाले कर्म के सूचक लोगों के अनुराग का वर्णन **कृष्णम्० इत्यादि** तीन श्लोकों से कहते हैं ।।३६।।

अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा । असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ।।३७।।

अन्वयः— रुक्मिणी अस्यैव भार्या भवितुमर्हति, अपरान, असौ अपि अनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ।।३७।।

अनुवाद— राजकुमारी रुक्मिणी इसकी ही पत्नी होने के योग्य है, कोई दूसरी नारी नहीं । सभी दोषों से रहित शरीर वाले ये श्रीकृष्ण भी भीष्म कुमारी रुक्मिणी के लिए ही योग्य पति हैं ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

अस्यैव रुक्मिण्येवार्हत्येव असावेव भैष्म्या एव समुचित एवेति षडवधारणानि । तत्रैकस्मिन्व्यतिरेकप्रदर्शनमुपलक्षणार्थं नापरेति । नच वाक्यभेददोषः । अनूद्यविधेयभेदेन विभिन्नानामेव वाक्यानां सह प्रयोगात् । ग्रहं संमार्ष्टीत्यादिवदिति ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में छह अवधारणात्मक वाक्य बनते हैं । उन सबों को तोषणीकार ने इस प्रकार दिखाया है।

१. अस्यैव रुक्मिणी यदि भार्या भवितुमर्हति तर्हि च अस्यैव । अर्थात् यदि रुक्मिणी यदि किसी की पत्नी हो सकती है तो इस श्रीकृष्ण की है । **२. अस्य भार्या भवितुमर्हा रुक्मिण्येव ।** अर्थात् इनकी पत्नी होने लायक रुक्मिणी ही हैं, कोई दूसरी स्त्री नहीं । **३. अर्हत्येव अस्य रुक्मिणी भार्याभवितुमर्हत्येव नान्यार्हतीति ।** रुक्मिणी इनकी पत्नी होने योग्य है ही दूसरी कोई स्त्री नहीं । **४. असावपिका अपिशब्द स्वार्थक है असौएव भैष्म्याः समुचितः पतिरसावेव नापरः ।** रुक्मिणी के लिए योग्य पति श्रीकृष्ण ही है दूसरा कोई नहीं । **५. भैष्म्या एव असौ समुचितः पतिः भैष्म्या एवं नान्यस्था ।** श्रीरुक्मिणजी के ही ये समुचित पति हैं किसी दूसरी स्त्री के नहीं। **६. भैष्म्या एव भौष्म्या असौपतिरुचित एवं नान्यः उचितः ।** रुक्मिणी जी के लिए उचित पति श्रीकृष्ण ही हैं, दूसरा कोई उचित नहीं है । इस तरह से इस श्लोक में छह अवधारण हैं । उनमें एक में व्यतिरेक का प्रदर्शन उपलक्षणार्थ है । यहाँ पर वाक्य भेद जन्य दोष नहीं है । उद्देश्य एवं विधेय कें भेद से विभिन्न वाक्यों का प्रयोग देखा जाता है । ग्रहं समर्ष्टि के समान । ग्रह शब्द सोमपात्र का वाचक है ।

किंचित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत् । अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥३८॥

अन्वयः— यन्नः किंचित् सुचरितं तेन तुष्टः त्रिलोककृत् अनुगृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिम् अच्युतः गृह्णातु ॥३८॥

अनुवाद— यदि हमारा पूर्वजन्म का कोई पुण्य है तो त्रिलोक की रचना करने वाले श्रीहरि हम पर प्रसन्न हों तो विदर्भ देशाधिपति की पुत्री श्रीरुक्मिणीजी का पाणिग्रहण श्रीकृष्ण ही करें ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

अयमेवानुग्रह इति निर्दिशन्ति-गृह्णात्विति ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

विदर्भ देशवासी मानते थे कि परमात्मा का हमलोग पर यही अनुग्रह होगा कि श्रीरुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण से हो । इस बात को **गृह्णातुः** पद के द्वारा कहा गया है ॥३८॥

एवं प्रेमकलाबद्धा वदन्ति स्म पुरौकसः । कन्या चान्तःपुरात्प्रागाद्भटैर्गुप्ताम्बिकालयम् ॥३९॥

अन्वयः— प्रेमकलाबद्धाः पुरौकसः एवं वदन्तिस्म, भटैर्गुप्ता कन्या च अन्तःपुरात् अम्बिकालयम् प्रागात् ॥३९॥

अनुवाद— प्रेम के कारण नगर के लोग जिस समय इस तरह से बातें कर रहे थे उसी समय सैनिकों से सुराक्षित श्रीरुक्मिणिजी अन्तःपुर से निकलकर देवीजी के मन्दिर के लिए चलीं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

प्रेम्णः कला लेशस्तेन बद्धा वदन्ति स्म । संपूर्ण प्रेम तेषां हृद्येवावर्तत इत्यर्थः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

अपने यत् किंचित प्रेम परवश होकर लोग इस तरह से कह रहे थे । सम्पूर्ण प्रेम उन लोगों के हृदय में आविष्कृत हुआ ॥३९॥

पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम् । सा चानुध्यायती सम्यङ्मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥४०॥

अन्वयः— मुकुन्दचरणाम्बुजं ध्यायती सा च भवान्याः पादपल्लवम् द्रष्टुं पद्भ्यां विनिर्ययौ ॥४०॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों का ध्यान करती हुई श्रीरुक्मिणीजी देवी जी के चरण कमलों का दर्शन करने के लिए पैदल हीं चलीं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

गमनं विशिनष्टि द्वयेन-पद्भ्यामिति ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

पद्भ्याम् इत्यादि दो श्लोकों से गमन का ही वर्णन किया गया है ।।४०।।

यतवाङ्भातृभिः सार्धं सखीभिः परिवारिता। गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः ॥
मृदङ्गशङ्खपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥४१॥

अन्वयः— यतवाक् भ्रातृभिः सखीभिः सार्धं परिवारिता सन्नद्धैः उद्यतायुधै शूरैः राजभटैः गुप्ता मृदङ्गशङ्खपणवाः तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ।।४१।।

अनुवाद— रुक्मिणीजी मौन थी माताएँ तथा सखी सहेलियाँ उन्हें चारो ओर से घेरे थीं । कवच पहने हुए अस्त्र शस्त्र उठाये हुए शूर-वीर राजसैनिक उनकी रक्षा कर रहे थे । उस समय मृदङ्ग शङ्ख, ढोल, तुरही और भेरी आदि बाजे बज रहे थे ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

अपि च-मृदङ्गेत्यादि । जघ्निरे आहताः । वादिता इत्यर्थः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

और मृदङ्ग इत्यादि बजाये जा रहे थे ।।४१।।

नानोपहारबलिभिर्वारमुख्याः सहस्रशः । स्रग्गन्धवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलंकृताः ॥४२॥
गायन्तश्च स्तुवन्तश्च गायका वाद्यवादकाः। परिवार्य वधूं जग्मुः सूतमागधबन्दिनः ॥४३॥

अन्वयः— स्रग्गन्ध वस्त्राभरणैः स्वलंकृताः द्विजपत्न्यः, नानोपहारबलिभिः सहस्रशः वारमुख्यः गायकाः वाद्य वादकाः गायन्तः स्तुवन्तः च सूतमागधवन्दिनः वधूं परिवार्य जग्मुः ।।४२-४३।।

अनुवाद— पुष्पमाला चन्दन आदि सुगन्ध द्रव्य आभूषणों एवं वस्त्रों से सज-धज कर ब्राह्मण पत्नियाँ तथा अनेक प्रकार के उपहार तथा पूजन सामग्री लेकर हजारों श्रेष्ठ वाराङ्गनाएँ साथ थीं, गवैया गा रहे थे और बाजा बजाने वाले बाजा बजा रहे थे । सूत मागध और वन्दीजन दुलहिन के चारो ओर से घेर कर चल रहे थे ।।४२-४३।।

भावार्थ दीपिका

वारमुख्या गणिकोत्तमाः ।।४२-४३।।

भाव प्रकाशिका

वारमुख्या अर्थात् उत्तम गणिकाएँ ।।४२-४३।।

आसाद्य देवीसदनं धौतपादकराम्बुजा । उपस्पृश्य शुचिः शान्ता प्रविवेशाम्बिकान्तिकम् ॥४४॥

अन्वयः— देवी सदनं आसाद्य धौतपादकराम्बुजा शुचिः उपस्पृश्य शान्ता अम्बिकान्तिकम् प्रविवेश ।।४४।।

अनुवाद— देवीजी के मन्दिर में पहुँच कर श्रीरुक्मिणीजी कमल के समान कोमल हाथ पैरों को धोकर, तथा आचमन से बाह्याभ्यन्तर पवित्र होकर देवजी के मन्दिर में प्रवेश कीं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

उपस्पृश्याचम्य ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

उपस्पृश्च अर्थात् आचमन करके ।।४४।।

तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः । भवानीं वन्दयांचक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम् ॥४५॥

अन्वयः— प्रवयसः विधिज्ञाः विप्रयोषितः वै तां बालां भवान्विताम् भवपत्नीं भवानीं वन्दयाञ्चक्रुः ॥४५॥

अनुवाद— वृद्ध तथा विधि विधान को जानने वाली ब्राह्मण पत्नियों ने श्रीरुक्मिणीजी से श्रीशङ्करजी के साथ रहने वाली शङ्करजी की पत्नी पार्वतीजी को प्रणाम करवाया ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

प्रवयसो वृद्धाः । भवान्वितामिति भवस्योपसर्जनत्वं स्त्रीकर्मोचितमुक्तम् ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

प्रवयसः अर्थात् वृद्ध, भवान्विताम् में शङ्करजी की गौणता स्त्री कर्म में उचित ही है ॥४५॥

नमस्ये त्वाऽम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसंतानयुतां शिवाम् । भूयात्पतिर्मे भगवान्कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥४६॥

अन्वयः— हे अम्बिके स्वसन्तानयुतां शिवां त्वा अभीक्षणं नमस्ये । मे पतिः भगवान् कृष्णःभूयात् तदनुमोदताम्॥४६॥

अनुवाद— हे अपने सन्तान से युक्त कल्याणकारिणी हे देवीजी आपको मैं बार-बार प्रणाम करती हूँ । आप इसका समर्थन करें कि मेरे पति भगवान् श्रीकृष्ण ही हों ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

नमस्य इति । रुक्मिण्या तदैव दृष्टोऽयं मन्त्रः । स्वसन्तानयुतां गणेशादिसहिताम् । आत्मारामोऽसौ कथं त्वत्पतिर्भवेदिति चेदत आह-तदनुमोदतामिति । भवती श्रीकृष्ण एव वा ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

रुक्मिणीजी को उसी समय **नमस्ये इत्यादि** मन्त्र का साक्षात्कार हुआ । स्वसन्तान युताम् अर्थात् गणेशजी इत्यादि के साथ । यदि आप कहें कि भगवान् श्रीकृष्ण तो आत्माराम हैं । वे तुम्हारा पति कैसे हो सकते हैं ? तो इस पर रुक्मिणीजी कहती हैं कि आप इसका अनुमोदन करें कि भगवान् श्रीकृष्ण मेरे पति हों । आप तो स्वयं श्रीकृष्ण स्वरूपा हैं ॥४६॥

अद्भिर्गन्धाक्षतैर्धूपैर्वासःस्त्रङ्माल्यभूषणैः । नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक् ॥४७॥

अन्वयः— अद्भिः गन्धाक्षतैः धूपैः वासः सम् माल्यभूषणैः नानोपहार बलिभिः प्रदीपावलिभिःपृथक् पूजयामासेत्यर्थः॥४७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् रुक्मिणीजी ने जल, गन्ध, अक्षत, धूप, वस्त्र, पुष्पमाला, हार, आभूषण, अनेक प्रकार के नैवेद्य, भेद तथा आरती आदि से अलग-अलग पूजा किया ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

वासःस्त्रग्गन्धादिभिरम्बिकां समपूजयत् ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीरुक्मिणीजी ने वस्त्र, माला तथा चन्दन आदि से अम्बिकाजी का पूजन किया ॥४७॥

विप्रस्त्रियः पतिमतीस्तथा तैः समपूजयत् । लवणापूपताम्बूलकण्ठसूत्रफलेक्षुभिः ॥४८॥

अन्वयः— तथा पतिमतीः विप्रस्त्रियः तैः लवणापूताम्बूलकण्ठसूत्रफलेक्षुभिः समपूजयत् ॥४८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उन्हीं सामग्रियों से तथा नमक, पान, ताम्बूल, कण्ठसूत्र फल तथा ईख से सौभाग्यवती ब्राह्मणियों की भी उन्होंने पूजा की ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

तथा विप्रस्त्रियोऽपि तैर्द्रव्यैर्लवणादिभिश्च समपूजयदिति ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

और रुक्मिणीजी ने ब्राह्मणों की पत्नियों की भी उन द्रव्यों तथा नमक, पूआ आदि से पूजा की।।४८।।

तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुःशेषां युयुजुराशिषः । ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ।।४९।।

अन्वयः— ताः स्त्रियः तस्यै शेषां आशिषः युयुजुः । वधूः देव्यै ताभ्यो नमश्चक्रे शेषा च जगृहे ।।४९।।

अनुवाद— उन ब्राह्मण पत्नियों ने श्रीरुक्मिणीजी को प्रसाद तथा आशीर्वाद दिया और उन्होंने देवीजी को तथा उन ब्राह्मण पत्नियों को नमस्कार करके प्रसाद ग्रहण किया ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

शेषां निर्माल्यम् ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

शेषां अर्थात् प्रसाद को ।।४९।।

मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामाम्बिकागृहात् । प्रगृह्य पाणिना भृत्यां रत्नमुद्रोपशोभिना ।।५०।।

अन्वयः— अथ मुनिव्रतं त्यक्त्वा रत्नमुद्रोपशोभिना पाणिना भृत्यां प्रगृह्य अम्बिका गृहात् निश्चक्राम ।।५०।।

अनुवाद— उसके पश्चात् मौनव्रत को पूरा करके श्रीरुक्मिणीजी अपने रत्न जटित अङ्गुठियों से सुशोभित हाथ से अपनी सखी का हाथ पकड़कर देवी के मन्दिर से निकलीं ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

मुनिव्रतं मौनम् । भृत्यां सखीम् ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

मुनिव्रत अर्थात् मौन । भृत्याम् अर्थात् सखी को ।।५०।।

तां देवमायामिव वीरमोहिनीं सुमध्यमां कुण्डलमण्डिताननाम् ।
श्यामां नितम्बार्पितरत्नमेखलां व्यञ्जत्स्तनीं कुन्तलशङ्कितेक्षणाम् ।।५१।।

अन्वयः— देवमायामिव वीरमोहिनीं सुमध्यमां कुण्डलमण्डिताननाम् श्यामां नितम्बार्पितरत्नमेखलां व्यञ्जत्स्तनीम् कुन्तल शंङ्कितेक्षणाम्ताम् विलोक्य वीरामुमुहुः इति तृतीयेनान्वयः ।।५१।।

अनुवाद— श्रीभगवान की माया के समान बड़े-बड़े वीरों को भी मोहित करने वाली सुन्दर तथा कृश कटिभागवाली, जिनका मुख मण्डल कुण्डलों से सुशोभित हो रहा था, कैशोर तथा तारुण्यावस्था की सन्धि की अवस्था वाली जिनके नितम्ब पर जड़ाऊ करधनी सुशोभित हो रही थी जिनका वक्षःस्थल कुछ उन्नत था तथा दृष्टि लटकती हुई अलकों के कारण कुछ चञ्चल हो रही थी ऐसी रुक्मिणीजी को देखकर वीर मोहित हो गये ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

तां विलोक्य वीरा मुमुहुरिति तृतीयेनान्वयः । श्यामामजातरजस्काम् । कुन्तलेभ्यः शङ्किते इव चपले ईक्षणे यस्यास्ताम्।।५१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीरुक्मिणीजी को देखकर वीरगण मोहित हो गये । श्यामाम् अर्थात् जिनको अभी रजोधर्म नहीं हुआ था। लटकते केशों के कारण जिनके नेत्र कुछ चञ्चल हो रहे थे ।।५१।।

शुचिस्मितां बिम्बफलाधरद्युतिशोणायमानद्विजकुन्दकुड्मलाम् ।
पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं सिञ्जत्कलानूपुरधामशोभिना ॥५२॥

अन्वयः— शुचिस्मितां बिम्बफलाधरद्युतिशोणायमान द्विजकुन्दकुड्मलाम् सिञ्जत्कलानूपुर धामशोभिना पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीम् विलोक्य वीराः मुमुहुः ॥५२॥

अनुवाद— श्रीरुक्मिणीजी के ओष्ठों पर मधुर मुस्कान थी दन्तपंक्ति कुन्दकली के समान थी अत्यन्त उज्जवल थी और उस पर पके कुन्दरु के समान लाल-लाल ओष्ठों की लालिमा आ गयी थी, चमकते हुए नूपुरों के छोटे-छोटे घुंघुरु रुनझुन ध्वनि कर रहे थे । वे अपने सुकुमार चरणों से राजहंस की गति से चल रही थीं, इस प्रकार श्रीरुक्मिणीजी को देखकर वहाँ आये हुए यशस्वी वीर मोहित हो गये ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

द्विजा एव कुन्दानां कुड्मलानि मुकुलानि विम्बफलवद्योऽधरस्तस्य द्युतिभिः शोणायमानानि तानि यस्यास्ताम् । कला शोभा तद्युक्तं नूपुरं सिञ्जच्च तत्कलानूपुरं च तस्य धाम दीप्तिस्तेन शोभितुं शीलमस्य तेन पदा चलन्तीम् ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

उनके दाँत कुन्दकली के समान थे कुंदरु के फल के समान लाल ओष्ठ की लालिमा से उनकी दन्त पंक्ति कुछ लाल हो रही थी । शोभा सम्पन्न नूपुरों की ध्वनि तथा नूपुर की चमक से सुशोभित पैरों से चलती हुई रुक्मिणीजी को देखकर वीर मोहित हो गये ॥५२॥

विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ।
यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहासव्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः ॥५३॥

अन्वयः— यां वीक्ष्य ते नृपतयः तदुदारहासव्रीडावलोकहृतचेतसउज्झितास्त्राः तां विलोक्य समागताः यशस्विनः तत्कृतहृच्छयार्दिताः वीराः मुमुहुः ॥५३॥

अनुवाद— जिस रुक्मिणीजी को एवं उनकी उदार हँसी तथा लज्जायुक्त नीचे किए हुए नेत्रों को देखकर वहाँ आये हुए यशस्वी वीर मोहित हो गये तथा उसके कारण उन सबों ने अपने अस्त्रों का परित्याग कर दिया क्योंकि कामार्त वीरों का हृदय मानों जर्जर हो गया था ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

न केवलं मुमुहुः पेतुश्चेत्याह-यामिति । यात्रामिषेण हरये स्वलावण्यं समर्पयन्तीं यां वीक्ष्य क्षितौ पेतुः सा तान्प्राप्तान् ह्रिया ऐक्षत तदैवाच्युतं च ददर्शेत्युत्तरेणान्वयः ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

वे केवल मोहित नहीं हुए अपितु गिर पड़े इस बात का **याम्० इत्यादि** से कहा गया है । यात्रा के व्याज से श्रीभगवान् पर अपने सौन्दर्य को समर्पित करती हुई उन रुक्मिणीजी को देखकर पृथिवी पर गिर पड़े । उन वीरों को रुक्मिणीजे ने लज्जापूर्वक देखा उसी समय उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण को भी देखा इस तरह से अगले श्लोक से अन्वय है ॥५३॥

पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ।
सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा ॥५४॥

अन्वयः— गजरथाश्वगताः विमूढाः क्षितौ पेतुः यात्राच्छलेनहरये स्वशोभाम् अपर्यन्तीम् एवं सा चलत्पदनकोशौ चालयती तदाभगवतः प्राप्तिं प्रसमीक्षमाणा ॥५४॥

अनुवाद— हाथी रथ तथा घोड़े पर सवार वे वीर मोहित होकर पृथिवी पर गिर पड़े, यात्रा के ब्याज से अपने सौन्दर्य को श्रीहरि को समर्पित करती हुई वे अपने कमल कोश के समान चरणों से पैदल चल रही थी और श्रीभगवान् के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

चलत्पद्मकोशतुल्यौ चरणौ चालयन्ती ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

चञ्चल कमल कोश के समान अपने पैरों को चलाती हुई ।।५४।।

उत्सार्य वामकरजैरलकानपाङ्गैः प्राप्तान् ह्रियैक्षत नृपान्ददृशेऽच्युतं सा ।
तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम् ।।५५।।

अन्वयः— वामकरजैः अलकान् उत्सार्य अपाङ्गैः प्राप्तान् नृपान् ह्रिया ऐक्षतक सा अच्युतं ददृशे । रथमारुरुक्षतीं राजकन्यां द्विषतां समीक्षतां कृष्णः जहार ।।५५।।

अनुवाद— अपने बायें हाथ की अङ्गुलियों से केशों को हटाकर रुक्मिणीजी ने लज्जापूर्वक आये हुए राजाओं को देखा उसी समय उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण को भी देखा । रथ पर चढने की इच्छा वाली उस राजकन्या का भगवान् श्रीकृष्ण ने सभी शत्रुओं के सामने ही हरण कर लिया ।।५५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५५।।

रथं समारोप्य सुपर्णलक्षणं राजन्यचक्रं परिभूय माधवः ।
ततो ययौ रामपुरोगमैः शनैः सृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः ।।५६।।

अन्वयः— माधवः राजन्यचक्रं परिभूय सुपर्णलक्षणं रथं समारोप्य ततः सृगालमध्यदिव भागहृत् हरिः रामपुरोगमैः शनैः ययुः ।।५६।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण राजाओं को अभिभूत करके श्रीरुक्मिणीजी को अपने उस रथ पर बैठा लिए जिसकी ध्वजा पर गरुड़ का चिह्न बना था । जिस तरह सियारों के बीच से कोई सिंह अपना भाग ले जाय उसी तरह श्रीभगवान् श्रीरुक्मिणीजी को लेकर बलरामजी आदि यदुवंशियों के साथ वहाँ से चल पड़े ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

सुपर्णलक्षणं गरुडध्वजम् हरिः सिंहः ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

गरुड के चिह्न वाली ध्वजा को । **हरिः** अर्थात् सिंह ।।५६।।

तं मानिनः स्वाभिभवं यशःक्षयं परे जरासन्धवशा न सेहिरे ।
अहो धिगस्मान्यश आत्तधन्वनां गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ।।५७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपंचाशत्तमोध्यायः ।।५३।।

अन्वयः— जरासन्धवशाः मानिनः परत स्वाभिभवं यश; क्षयं न सेहिरे अहोधिक अस्मान् आतधन्वनां केसरिणां मृगैरिव गोपैः हृतम् ।।५७।।

अनुवाद— उसके पश्चात् जरासन्ध के वश में रहने वाले अभिमानी राजाओं को अपना यह तिरस्कार तथा

कीर्ति का नाश सहन नहीं हुआ । वे कहने लगे । धनुष धारण किए हुए हमलोगों को धिक्कार है । जैसे सिंहों के भाग कोई मृग ले जाय उसी तरह यदुवंशियों ने हमलोगों के यश का अपहरण किया है ॥५७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध की तिरपनवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

असहमानानां तेषामाक्रोशमाह । अहो धिगस्मान् । यतोऽस्माकं यशो गोपैर्हतमिति ।।५७।।

इति श्रीमद्भभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

नहीं सह पाने वालों के आक्रोश को **अहोधिगस्मान् इत्यादि** से कहा गया है क्योंकि गोपों ने हमलोगों के यश का अपहरण किया है ॥५७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के तिरपनवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।५३।।

चौवनवाँ अध्याय

शिशुपाल के साथी राजाओं की हार और रुक्मी की हार एवं श्रीकृष्ण रुक्मिणी विवाह

श्रीशुक उवाच

इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः । स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रान्ता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥१॥

अन्वयः— इति सुसंरब्धाः दंशिताः धृतकार्मुकाः सर्वे स्वैः स्वैः बलैः परिक्रान्ता वाहान् आरुह्य अन्वीयुः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— अरे हमलोगों को धिक्कार है इस तरह से कहकर क्रोध से भरकर कवच पहनकर एवं धनुष ग्रहण करके सभी राजा गण अपनी-अपनी सेना लेकर तथा बाहनों पर चढ़कर भगवान् श्रीकृष्ण के पीछे दौड़ पड़े ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुष्पञ्चशत्तमे तु जित्वा राज्ञोऽरिपक्षगान् रूक्मिणं च विरूप्याथ भैम्याः पाणिं पुरेऽग्रहीत् इतीति । अहो धिगस्मानित्येवं वदन्तः सुसंरब्धाः क्रोधाविष्टाः । दंशिताः कृतसन्नाहाः । परिक्रान्ताः परिवृताः । अन्वीयुरन्वधावन्॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौवनंवे अध्याय में शत्रु (शिशुपाल) के पक्षपाती राजाओं को जीतकर तथा रुक्मी को विरूप बनाकर श्रीभगवान् अपनी नगरी में जाकर श्रीरुक्मिणीजी का पाणिग्रहण किए ॥१॥ अरे हमलोगों को धिक्कार है इस तरह से कहते हुए सुसंरब्धाः अर्थात् अत्यन्त क्रुध, दंशिताः अर्थात् कवच पहनकर परिक्रान्ताः अर्थात् घिरे हुए, अन्वीयुः अर्थात् पीछा किए ॥१॥

तानापतत आलोक्य यादवानीकयूथपाः । तस्थुस्तत्संमुखा राजन्विस्फूर्ज्य स्वधनूंषि ते ॥२॥

अन्वयः— हे राजन् तान् आपततः आलोक्य यादवानीक यूथपाः ते स्वधनूंषि विस्फूर्ज्य तत्संमुखं तस्थुः ॥२॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् उन सबों को आक्रमण करते हुए देखकर यदुवंशियों के सेनापति भी अपने धनुषों का टङ्कार करके उन सबों के सामने डट गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

विस्फूर्ज्य टङ्कारयित्वा ॥२॥

भाव प्रकाशिका

विस्फूर्ज्य अर्थात् टङ्कार करके ॥२॥

अश्वपृष्टे गजस्कन्धे रथोपस्थे च कोविदाः । मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥३॥

अन्वयः— अश्वपृष्टे गजस्कन्धे, रथोपस्थे च कोविदा मेघा अद्रिष्वपः यथा शरवर्षाणि मुमुचुः ॥३॥

अनुवाद— जरासन्ध की सेना के कोई अश्व पर सवार था, तो कोई हाथी पर सवार था और कोई रथ पर सवार था । वे सबके सब युद्ध के मर्मज्ञ थे जैसे मेघ पर्वतों पर जल बरसाते हैं उसी तरह वे यदुवंशियों की सेना पर बाणों की वर्षा करने लगे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

परेषां शराणां बाहुल्ये यादवानामचलत्वे दृष्टान्तः-मेघा इति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

शत्रुओं के बाणों की अधिकता तथा यादवों की अचलता का दृष्टान्त मेघा इत्यादि से उपन्यस्त किया गया है ॥३॥

पत्युर्बलं शरासारैश्छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा । सव्रीडमैक्षत्तद्वक्त्रं भयविह्वललोचना ॥४॥

अन्वयः— सुमध्यमा पत्युः बलं शरासारैः छन्नं वीक्ष्य सव्रीडम् भयविह्वला लोचना तद् वक्त्रं ऐक्षत ॥४॥

अनुवाद— परम सुन्दर श्रीरुक्मिणीजी अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण की सेना को बाणों से ढँके हुए देखकर लज्जायुक्त भय से व्याकुल नेत्रों से उन्होंने श्रीभगवान् के मुख को देखा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

ऐक्षदैक्षत ॥४॥

भाव प्रकाशिका

ऐक्षत् अर्थात् देखा ॥४॥

प्रहस्य भगवानाह मा स्म भैर्वामलोचने । विनङ्क्ष्यत्यधुनैवतत्तावकैः शात्रवं बलम् ॥५॥

अन्वयः— भगवान् प्रहस्य आह वामलोचने मास्मभैः एतत् अधुनैव तावकैः शात्रवं बलं विनङ्क्ष्यति ॥५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् हँसकर कहे सुन्दरी ! डरो मत ये सबके सब तुम्हारी सेना द्वारा विनष्ट कर दिए जायेंगे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

मा स्म भैः मा भयं कुरु । हे वामलोचने वराक्षि । तावकैस्त्वदीयैः कृत्वा ॥५॥

भाव प्रकाशिका

डरो मत सुन्दरी ! तुम्हारी सेना द्वारा ॥५॥

तेषां तद्विक्रमं वीरा गदसङ्कर्षणादयः । अमृष्यमाणा नाराचैर्जघ्नुर्हयगजान्रथान् ।।६।।

अन्वयः— गद सङ्कर्षणादयः वीराः तेषां तद्विक्रमं अमृण्यमाणा नाराचैः हय गजान् रथान् जघ्नु ।।६।।

अनुवाद— गद तथा सङ्कर्षण आदि वीर शत्रुओं के उस पराक्रम को नहीं सह सकने के कारण अपने बाणों से शत्रुओं, हाथी, घोड़े तथा रथों को विनष्ट करने लगे ।।६।।

भावार्थ दीपिका

स चासौ विकमश्चतम् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

शत्रुओं के पराक्रम को ।।६।।

पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनां गजिनां भुवि । सकुण्डलकिरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः ।।७।।

अन्वयः— रथिनाम् अश्विनाम् गजिनाम् सकुण्डल किरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः शिरांसि भुवि पेतुः ।।७।।

अनुवाद— उनके बाणों से रथ, अश्व तथा हाथी पर बैठे हुए वीरों के कुण्डल एवं किरीट तथा पगड़ी से युक्त करोड़ों शिर पृथिवी पर गिर पड़े ।।७।।

भावार्थ दीपिका

उष्णीषाणि शिरोवतंसवस्त्राणि तत्सहितानि शिरांसि ।।७।।

भाव प्रकाशिका

पगड़ी से युक्त शिर ।।७।।

हस्ताः सासिदेष्वासाः करभा ऊरवोऽङ्घ्रयः । अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसि च ।।८।।

अन्वयः— ससि गदेष्वासाःहस्ताः करभाः उरवोङ्घ्रयः अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्य शिरांसि च ।।८।।

अनुवाद— खड्ग, गदा और धनुष युक्त हाथ, पहुँचे, जङ्घे और पैर कट-कटकर गिरने लगे । इसी तरह घोड़े खच्चर, हाथी ऊँट गधे और मनुष्यों के शिर भी गिरने लगे ।।८।।

भावार्थ दीपिका

करभाः प्रकोष्ठा ऊरुविशेषणं वा ।।८।।

भाव प्रकाशिका

करभा अर्थात् पहुँचा अथवा करभ शब्द जङ्घा का विशेषण भी हो सकता है ।।८।।

हन्यमानबलानीका वृष्णिभिर्जयकाङ्क्षिभिः । राजानो विमुखा जग्मुर्जरासन्धपुरःसराः ।।९।।

अन्वयः— जयकांक्षिभिः वृष्णिभिः हन्यमानबलानीकाः जरासन्धपुरःसराः राजानः विमुखा जग्मुः ।।९।।

अनुवाद— विजय प्राप्त करना चाहने वाले यदुवंशियों द्वारा शत्रु की सेना के विनष्ट कर दिए जाने पर जरासन्ध आदि राजागण युद्ध से पीठ दिखाकर भाग गये ।।९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।९।।

शिशुपालं समभ्येत्य हृतदारमिवातुरम् । नष्टत्विषंगतोत्साहं शुष्यद्वदनमब्रुवन् ।।१०।।

अन्वयः— हृतदारम् इव आतुरम्, नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्यद्वदनम् शिशुपालम् अब्रुवन् ।।१०।।

अनुवाद— अपनी भावी पत्नी के छिन जाने के कारण मरणासन्न, कान्तिविहीन तथा विनष्ट उत्साह वाले शिशुपाल के पास जाकर जरासन्ध आदि कहने लगे ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

अप्राप्तदारमेव तं हृतदारमिवातुरम् ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

जिसको पत्नी प्राप्त ही नहीं हुयी उसी को हृतदार के समान आतुर कहा गया है ।।१०।।

भो भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज । न प्रियाप्रिययो राजनिष्ठा देहिषु दृश्यते ।।११।।

अन्वयः— भो ! भो ! पुरुषशार्दूल इदं दौर्मनस्यंत्यज राजन् प्रियाप्रिययोः देहिषुनिष्ठा न दृश्यते ।।११।।

अनुवाद— हे पुरुष श्रेष्ठ ! आप अपनी इस उदासी को छोड़िये कोई भी बात सर्वदा अपने मन के अनुकूल ही हो, या प्रतिकूल ही हो इस संबन्ध में किसी की स्थिरता किसी भी प्राणी के जीवन में नहीं देखी जाती है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

निष्ठा स्थैर्यम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

निष्ठा अर्थात् स्थिरता ।।११।।

यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया । एवमीश्वरतन्त्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः ।।१२।।

अन्वयः— यथा दारुमयी योषित् कुहकेच्छया नृत्यते एवम् ईश्वरतन्त्रः अयम् सुखदुःखयोः ईहते ।।१२।।

अनुवाद— जिस तरह कठपूतली नचाने वाले की इच्छा के अनुसार ही कठपुतली नाचती है उसी तरह ईश्वर के अधीन रहकर यह जीव सुख तथा दुःख को प्राप्त करता है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

कुहको नर्तयिता तस्येच्छया । दुःखेऽपीहमानत्वेन पारवश्यं व्यक्तं दर्शितम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

नचानने वाले की इच्छा से । दुःख की भी परवशता को बतलाया ।।१२।।

शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः । त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्य एकमहं परम् ।।१३।।

अन्वयः— अहं शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः परम त्रयोविंशतिभिः सैन्ये एकम् अहं जिग्ये ।।१३।।

अनुवाद— श्रीकृष्ण ने मुझे सत्रह बार पराजित कर दिया किन्तु सबके बाद तेइस अक्षौहिणी सेना के साथ एक बार हम जीत गये ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अत्र चाहमेव दृष्टान्त इत्याह जरासन्धः शौरेरिति। कृष्णात्सकाशात्। एकं संयुगम्। परं केवलमन्तिमं वा जिग्ये जितवानहम्।।१३।।

भाव प्रकाशिका

शौरेः इत्यादि श्लोक से जरासन्ध ने कहा कि इस विषय में मै ही दृष्टान्त हूँ । कृष्ण से । किन्तु अन्तिम युद्ध मैने जीत लिया ।।१३।।

तथाप्यहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित् । कालेन दैवयुक्तेन जानन्विद्रावितं जगत् ।।१४।।

अन्वयः— दैवयुक्तेन कालेन विद्रावितं जानन् अहम् तथापि न शोचामि न प्रहृण्यामि ।।१४।।

अनुवाद— चूकि मैं जानता हूँ कि प्रारब्ध के अनुसार ही काल भगवान् जगत को झुकाते रहते हैं । अतएव इसके लिए न तो शोक करता हूँ और न तो प्रसन्न होता हूँ ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

दैवमदृष्टं तद्युक्तेन ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

प्रारब्धानुसार ।।१४।।

अधुनापि वयं सर्वे वीरयूथपयूथपाः । पराजिताः फल्गुतन्त्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः ।।१५।।

अन्वयः— वीरयूथपयूथपाः वयं सर्वे आधुनापि फल्गुतन्त्रैः कृष्णपालितैः यदुभिः पराजिताः ।।१५।।

अनुवाद— हम सभी वीर सेनापतियों के भी नायक है फिर भी इस समय थोड़ी सी सेना वाले कृष्ण के द्वारा संरक्षित यदुवंशियों से पराजित हो गये ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

फल्गुतन्त्रैः स्वल्पसैन्यैः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अत्यल्प सेना वाले ।।१५।।

रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणि । तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः ।।१६।।

अन्वयः— आत्मानुसारिणि काले अधुना रिपवो जिग्युः यदाकालः प्रदक्षिणः तदा वयं विजेष्यामः ।।१६।।

अनुवाद— अपने अनुकूल काल होने के कारण इस समय शत्रु विजयी हो गये, जब अनुकूल समय होगा उससमय हमलोग विजयी हो जायेंगे ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

प्रदक्षिणोऽनुकूलः स्यात् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

प्रदक्षिणः अर्थात् जब अनुकूल होगा ।।१६।।

एवं प्रबोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात्सानुगः पुरम् । हतशेषाः पुनस्तेऽपि ययुः स्वं स्वं पुरं नृपाः ।।१७।।

अन्वयः— मित्रैः एवं प्रबोधितः चैद्यः सानुगः पुरम् अगात् हतशेषाः ते अपि राजानः स्वं-स्वं पुरं ययुः ।।१७।।

अनुवाद— इस तरह मित्रों द्वारा समझाए जाने पर शिशुपाल अपने अनुयायियों के साथ अपने नगर में चला गया और मरने से बचे हुए वे राजागण भी अपने-अपने नगर में चले गये ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन्स्वसुः । पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली ।।१८।।

अन्वयः— कृष्णद्विट् बली रुक्मी तु स्वसुःराक्षसोद्वाहम् असहन् अक्षौहिण्यावृतः पृष्ठतः कृष्णम् अन्वगमत् ।।१८।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण से द्वेष करने वाला बलवान् रुक्मी अपनी एक अक्षौहिणी सेना के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का पिछा किया ।।१८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१८।।

रुक्म्यमर्षी सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजाम् । प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दंशितः सशरासनः ।।१९।।

अन्वयः— महाबाहुः रुक्मीसुसंरब्धः दंशितः सशराशनः सर्वभूभुजां शृण्वताम् प्रतिज्ञज्ञे ।।१९।।

अनुवाद— महाबाहु रुक्मी अत्यन्त क्रुद्ध होकर कवच पहनकर तथा धनुष धारण करके सभी राजाओं के सामने ही इस तरह से प्रतिज्ञा किया ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् । कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥२०॥

अन्वयः— समरे कृष्णम् अहत्वा रुक्मिणी च अप्रत्यूह्य कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि, इति वः सत्यम् ब्रवीमि ॥२०॥

अनुवाद— युद्ध में श्रीकृष्ण को मारे विना तथा रुक्मिणी को लौटाये विना मैं कुण्डिन नगरी में प्रवेश नहीं करूँगा यह मैं आपलोगों से सत्य कहता हूँ ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राहसत्वरः । चोदयाश्वान् यतः कृष्णस्तस्य मे संयुगं भवेत् ॥२१॥

अन्वयः— इत्युक्त्वा रथम् आरुह्य सारथिम् प्राह सत्त्वरः अश्वान् चोदय यतः तस्य कृष्णस्य मे संयुगं भवेत् ॥२१॥

अनुवाद— इस तरह से कहकर तथा रथ पर चढ़कर उसने सारथि से कहा शीघ्रता से अश्वों को हाँको जिससे मेरा उस कृष्ण से युद्ध हो जाय ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः । नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता ॥२२॥

अन्वयः— अहं अद्य सुदुर्मतेः गोपालस्य निशितैः वाणै वीर्यमदं नेष्ये, येन मे स्वसा प्रसभं हृता ॥२२॥

अनुवाद— आज मैं उस छोटी बुद्धि वाले ग्वाले के बल के घमण्ड को अपने तीक्ष्ण बाणों से विनष्ट कर दूँगा । उसने मेरी वहिन का बलपूर्वक हरण किया है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

गोपालस्य वेदपालकस्येति वास्तवोऽर्थः । तथा सुदुर्मतेरिति शोभनाऽनुग्रहवती दुष्टेष्वपि मतिर्यस्य तस्येति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

गोपालस्य का वास्तविक अर्थ है वेद की रक्षा करने वाले, **सुदुर्मतेः** का वास्तविक अर्थ है सुन्दर तथा दुष्टों पर भी कृपा करने वाली जिसकी बुद्धि है ऐसे श्रीकृष्ण की ॥२२॥

विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित् । रथेनैकेन गोविन्दं तिष्ठ तिष्ठेत्यथाह्वयत् ॥२३॥

अन्वयः— अथ कुमतिः विकत्थमानः ईश्वरस्य अप्रमाणवित् एकेन रथेन गोविन्द तिष्ठ-तिष्ठ आह्वयत् ॥२३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् जिसकी बुद्धि बिगड़ गयी थी वह आत्मशलाघा करता हुआ रुक्मी जो श्रीभगवान् के प्रभाव को नहीं जानता था एक ही रथ से भगवान् श्रीकृष्ण को ठहरो-ठहरो कहता हुआ ललकारा ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः । आह चात्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसन ॥२४॥

अन्वयः— सुदृढं धनुः विकृष्य त्रिभिः शरैः कृष्णं जघ्ने । आह च यदूनां कुलपांसन अत्रक्षणं तिष्ठ ॥२४॥

अनुवाद— बलपूर्वक धनुष को खींचकर उसने तीन बाणों से भगवान् श्रीकृष्ण को मारा और कहा अरे यदुकुल कलंक तू क्षण भर मेरे सामने ठहर जा ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

यदूनां कुलपांसन कुलदूषण । वस्तुतस्तु यदूनां कुलस्य पते । हे असंन स्वयं च रिपुहननचतुर । 'असं समाघाते' इत्यस्माद्धातोः कर्तरि ल्युट्प्रत्ययो नन्द्यादिविहितः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

यदूनां कुंलपांसन अर्थात् यदुकुल कलंक । कुलपा अंसनः इस पदच्छेद के अनुसार, यदुवंश की रक्षा करने वाले और अंसन अर्थात् शत्रुजनों को मारने में चतुर । अंस समाघाते धातु से नन्द्यादिगण विर्हित कर्ता के अर्थ में ल्युट प्रत्यय करके अंसनः पद व्युत्पन्न है ।।२४।।

कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा ध्वाङ्क्षवद्धविः । हरिष्येऽद्य मदं मन्द मायिनः कूटयोधिनः ।।२५।।

अन्वयः— हविः ध्वांक्षवत् मे स्वसारंमुषित्वाकुत्रयासि हे मन्दः मायिनः कूटयोधिनः ते मदं अद्य हरिष्ये ।।२५।।

अनुवाद— जैसे कौआ हविष्य लेकर उड़ जाय उसी तरह मेरी बहिन को चुराकर कहाँ जा रहे हो । ऐ मूर्ख तुम मायावी और कूट युद्ध करने वाले हो । आज मैं तेरा घमण्ड चूर-चूर कर देता हूँ ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

ध्वाङ्क्षः काकः स यथा हविर्मुष्णाति तद्वत् । वस्तुतस्तु अध्वाङ्क्षवदिति च्छेदः । सहस्राक्षवदित्यर्थः । हे मन्द स्थिरेत्यर्थः।।२५।।

भाव प्रकाशिका

ध्वांक्ष का अर्थ कौआ है । जैसे कौआ हविष्य लेकर उड़ जाय वैसे । वस्तुतः अध्वांक्षवत् यह पदच्छेद है। और उसका अर्थ होगा इन्द्र के समान हे मन्द हे स्थिर ।।२५।।

यावन्न मे हतो बाणैः शयीथा मुञ्च दारिकाम् । स्मयन्कृष्णो धनुश्छित्त्वा षड्भिर्विव्याध रुक्मिणम्।।२६।।

अन्वयः— यवत् मे बाणैः हतः नशयीथाः दारिकाम् मुञ्च । स्मयन् कृष्णः धनुःछित्त्वा षड्भिः रुक्मिणं विव्याध।।२६।।

अनुवाद— जब तक मेरे बाणों से तुम मारे नहीं जाते उससे पहले इस बच्ची को छोड़कर तुम भग जाओ। उसकी बातों को सुनकर भगवान् कृष्ण मुस्कुराते हुए उसके धनुष को काटकर उसे छह बाणों से मारे ।।२६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२६।।

अष्टभिश्चतुरो वाहान् द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः । स चान्यद्धनुरादाय कृष्णं विव्याध पञ्चभिः ।।२७।।

अन्वयः— अष्टभिः चतुरो वाहान् द्वाभ्यां सूतं त्रिभिः ध्वजं स च अन्यद् धनुरादाय कृष्णं पञ्चभिः विव्याध ।।२७।।

अनुवाद— श्रीभगवान् आठ बाणों से चारो अश्वों को दो बाणों से सारथि को तथा तीन बाण से उसके ध्वजा को काटकर गिरा दिए ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

तैस्ताडितः शरौघैस्तु चिच्छेद धनुरच्युतः । पुनरन्यदुपादत्ततदप्यच्छिनदव्ययः ।।२८।।

अन्वयः— तै तु शरौघैः ताडितः अच्युतः धनुःचिच्छेद पुनः अन्यद् उपादत्त तदपि अव्ययः अच्छिनत् ।।२८।।

अनुवाद— उन बाण समूहों से मारे जाने पर भगवान् ने उसके धनुष को काट दिया फिर उसने दूसरा धनुष लिया तो उसको भी श्रीभगवान् काट दिए ।।२८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२८।।

परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ । यद्यदायुधमादत्त तत्सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः ।।२९।।

अन्वयः— स परिघं, पट्टिशं, शूलं, चर्मासी, शक्तितोमरौ यद् यद् आयुधम् आदत्त सर्वं हरिः अच्छिनत् ।।२९।।

अनुवाद— परिघ, पट्टिश, शूल, ढाल और तलवार, शक्ति और तोमर उसने जिन-जिन आयुधों के लिये उन सबों को भी श्रीभगवान् काट डाले ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

ततो रथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया । कृष्णमभ्यद्रवत्क्रुद्धः पतङ्गइव पावकम् ॥३०॥

अन्वयः— ततः रथात् अवप्लुत्य खड्गपाणिः कृष्णं जिघां जिह्वासया पतङ्गः पावकम् इव कृष्णम् अभ्यद्रवत्॥३०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् रुक्मी रथ से कूदकर हाथ में खड्ग लेकर भगवान् श्रीकृष्ण को मार डालने की इच्छा से उनकी ओर उसी तरह दौड़ा जिस तरह कीड़ा आग की ओर दौड़ता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

तस्य चापततः खड्गं तिलशश्चर्म चेषुभिः । छित्त्वाऽसिमाददे तिग्मं रुक्मिणं हन्तुमुद्यतः ॥३१॥

अन्वयः— आपततः च तस्य खड्गं चर्म च इषुभिः तिलशः छित्त्वा रुक्मिणं हन्तुं तिग्मं असिम् आददे ॥३१॥

अनुवाद— आते हुए रुक्मी के खड्ग और ढाल दोनों को श्रीभगवान् अपने बाणों से मार कर टुकड़े-टुकड़े कर दिए और रुक्मी को मार डालने के लिए उद्यत श्रीभगवान् हाथ में तीक्ष्ण तलवार ले लिए ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला । पतित्वा पादयोर्भर्तुरुवाच करुणं सती ॥३२॥

अन्वयः— भ्रातृवधोद्योगं दृष्ट्वा भयविह्वला सतीरुक्मिणी भर्तुः पादयोः पतित्वा करुणं उवाच ॥३२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् द्वारा अपने भाई के मारे जाने का उद्योग देखकर भय विह्वल रुक्मिणीजी श्रीभगवान् के चरणों में गिरकर करुण होकर कहीं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

योगेश्वराप्रमेयात्मन् देवदेव जगत्पते । हन्तुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥३३॥

अन्वयः— हे योगेश्वर ! हे अप्रमेयात्मन् ! हे देव-देव ! हे जगत्पते ! हे महाभुज ! हे कल्याण ! मे भ्रातरं हन्तुं नार्हसि ॥३३॥

अनुवाद— हे योगेश्वर, आप तो देवताओं के भी आराध्य है, आपकी इच्छाओं और स्वरूप को कोई नहीं जान सकता है। हे जगत् के स्वामिन्, हे महाभुज, हे सबों का कल्याण करने वाले प्रभो आप मेरे भाई को मत मारें ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

श्रीशुक उवाच

तया परित्रासविकम्पिताङ्गया शुचावशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठया ।
कातर्यविस्रंसितहेममालया गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत ॥३४॥

अन्वयः— परित्रासविकम्पिताङ्गया शुचावशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठयाकातर्य विस्रंसित हेममालया तया गृहीतपादः करुणः न्यवर्तत ॥३४॥

शुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— भय के कारण श्रीरुक्मिणीजी के सारे अङ्ग काँप रहे थे, शोकाधिक्य के कारण उनका मुख सुख गया था और कण्ठ अवरुद्ध हो गया था आतुरतावशात् उनके गले का हार गिर गया था इस तरह की रुक्मिणीजी

श्रीभगवान् के चरणों को पकड़ी थीं । रुक्मिणीजी को इस तरह देखकर करुणावशात् रुक्मी को मारने का निश्चय छोड़ दिये ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

परित्रासेन विकम्पितान्यङ्गानि यस्यास्तया । शुचा शोकेनावशुष्यन्मुखं यस्याः, रुद्धः कण्ठो यस्याः सा च सा च । तथा कातर्येण वैक्लव्येन वित्रंसिता हेममयी माला यस्यास्तया । गृहीतौ पादौ यस्य सः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

भय के कारण जिनके सारे अङ्ग काँप रहे थे, शोक के कारण जिनका मुख सूख गया था और गला रुँध गया था । आतुरता के कारण जिनका सुवर्ण का हार गिर गया था । ऐसी रुक्मिणी जी जिनके चरणों को पकड़ी थीं॥३४॥

चैलेन बद्ध्वा तमसाधुकारिणं सश्मश्रुकेशं प्रवपन्व्यरूपयत् ।
तावन्ममर्दुः परसैन्यमद्भुतं यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः ॥३५॥

अन्वयः— असाधुकारिणं तम् चैलेन बद्ध्वा सश्मश्रुकेशं व्यरूपन् व्यरूपयत् तावत यदुप्रवीराः अद्भुतं परसैन्यं ममर्दुः यथा नलिनीं गजः ॥३५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का अपकार करने वाले रुक्मी को कपड़े से बाँध कर श्रीभगवान् ने उसके मूछ-दाढ़ी और केश को मूंडकर उसको कुरुप बना दिया । उतने ही समय में यदुवंशी वीरोंने शत्रु की सेना को उसी तरह से तहस नहस कर दिया जिस तरह से कोई हाथी कमल वन को रौंद देता है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

सश्मश्रुकेशं सहितानि स्थाने स्थानेऽवशिष्टानि श्मश्रूणि केशाश्च यथा भवन्ति तथा । तेनैवासिना प्रवपन्मुण्डयन् व्यरूपयद्विरूपमकरोत् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

स्थान-स्थान पर जिसमें दाढी-मूछ के केश छूट जाते हैं ऐसे उस तलवार से ही उसके केश को मूडकर भगवान् ने रुक्मी को कूरूप बना दिया ॥३५॥

कृष्णान्तिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् । तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वा सङ्कर्षणो विभुः ॥
विमुच्य बद्धं करुणो भगवान्कृष्णमब्रवीत् ॥३६॥

अन्वयः— विभुः भगवान् सङ्कर्षणः कृष्णान्तिकम् उपव्रज्य तत्र रुक्मिणं तत्र तथा भूतं हतप्रायं बद्धं दृष्ट्वा विमुच्य कृष्णम् अब्रवीत् ॥३६॥

अनुवाद— सर्वसमर्थ भगवान् बलरामजी श्रीकृष्ण भगवान् के पास आकर वहाँ पर कुरूप बनाये गये रुक्मी को बन्धा हुआ तथा अधमरा सा देखकर उसके बन्धन को खोल दिए और भगवान् श्रीकृष्ण से कहे ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

तथाभूतं हतप्रायमित्युत्तरवाक्येऽप्यनुषङ्गः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

तथाभूतम् अर्थात् मरे हुए के समान यह आगे के श्लोक से संबन्ध है ॥३६॥

असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम् । वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः ॥३७॥

अन्वयः— कृष्ण इदं त्वया असाधुकृतम् अस्मज्जुगुप्सितम् श्मश्रुकेशानां वपनं वैरूप्यं सुहृदः वधः ॥३७॥

अनुवाद— कृष्ण तुमने यह अच्छा काम नहीं किया । यह निन्दित कार्य हमलोगों के योग्य नहीं है । अपने संबन्धी की दाढ़ी-मूँछ मूड़कर उसे कुरूप बना देना तो एक तरह से उसका वध ही है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३७।।

मैवास्मान्साध्व्यसूयेथा भ्रातुर्वैरूप्यचिन्तया । सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक् पुमान्।।३८।।

अन्वयः— हे साध्वि भ्रातुः वैरूप्यचिन्तया अस्मान् मैव असूयेथाः सुख दुःखदः च अन्यः नास्ति यतः पुमान् स्वकृतभुक् ।।३८।।

अनुवाद— हे साध्वि ! अपने भाई के कुरूप बना दिए जाने के कारण हमलोगों से बुरा न मानना, सुख अथवा दुःख देने वाला कोई दूसरा नहीं है । मनुष्य अपने ही किए हुए कर्मों का फल भोगता है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

रुक्मिणीं सान्त्वयति-मैवास्मानिति ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

मैवास्मान्० इत्यादि श्लोक से बलरामजी सान्त्वना प्रदान करते हैं ।।३८।।

बन्धुर्वधार्हदोषोऽपि न बन्धोर्वधमर्हति । त्याज्यः स्वेनैव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः ।।३९।।

अन्वयः— बाधार्ह दोषोऽपि बन्धुः बन्धोः बधम् न अर्हति त्याज्यः स्वेनैव दोषेण हतः किं पुनः हन्यते ।।३९।।

अनुवाद— यदि कोई बन्धु मार दिए जाने योग्य अपराध करे तो बन्धु को मारना नहीं चाहिए बल्कि छोड़ देना चाहिए, अपने ही दोष के द्वारा मारे गये उसको फिर क्या मारना है ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

पुनः कृष्णमाक्षिपति बन्धुरिति ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

बन्धु इत्यादि श्लोक के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण को कहते हैं ।।३९।।

क्षत्रियाणामयं धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः । भ्रातापि भ्रातरं हन्याद्येन घोरतरस्ततः ।।४०।।

अन्वयः— क्षत्रियाणाम् अयं धर्म प्रजापति विनिर्मितः भ्राता अपिभ्रातरं हन्यात् येन अयं ततः घोरतरः ।।४०।।

अनुवाद— क्षत्रियों के इस धर्म का निर्माण ब्रह्माजी ने ही बनाया है कि एक भाई दूसरे भाई को मार देता है । अतएव क्षत्रिय का धर्म घोर है ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

पुनर्देवीं प्रत्याह-क्षत्रियाणामिति । येन धर्मेण भ्रातापि भ्रातरं हन्यात् । ततस्तस्माद्घोरतरोऽतिदारुणो धर्मश्च । अतः कोऽस्माकमपराध इति भावः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

बलरामजी पुनः रुक्मिणीजी को **क्षत्रियाणाम्० इत्यादि** श्लोक से समझाते हैं । जिस धर्म के चलते एक भाई दूसरे भाई को मार देता है । अतएव यह क्षत्रियों का धर्म अन्यन्त भयङ्कर है ।।४०।।

राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रियो मानस्य तेजसः । मानिनोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदान्धाः क्षिपन्ति हि।।४१।।

अन्वयः— श्रीमदान्धाः मानिनः राज्यस्य, भूमेः, वितस्य, स्त्रियः मानस्य तेजसः अन्यस्य वा हेतोः क्षिपन्तिहि ।।४१।।

अनुवाद— जो लोग धन के नशे में अन्धे हो रहे हैं और अभिमानी हैं वे राज्य, पृथिवी, धन, स्त्री, मान, तेज अथवा किसी अन्य कारण से अपने बान्धवों का भी तिरस्कार कर देते हैं ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

पुनः श्रीकृष्णं प्रत्याह-राज्यस्येति । तथाप्यस्माकमेतदनुचितमिति भावः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

राज्यस्य० इत्यादि श्लोक से बलरामजी ने पुनः भगवान् श्रीकृष्ण से कहा फिर भी यह कार्य हमलोगों के लिए अनुचित है ।।४१।।

तवेयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुर्हृदाम् । यन्मन्यसे सदाऽभद्रं सुहृदां भद्रमज्ञवत् ।।४२।।

अन्वयः— सर्वभूतेषु सदा दुर्हृदां सुहृदाम् भद्रं अभद्रं यन्मन्यसे अज्ञवत् इयं तव विषमा बुद्धिः ।।४२।।

अनुवाद— सभी जीवों के प्रति सदादुर्भाव रखने वाले तुम्हारे बान्धवों का कल्याण करने के ही लिए हमने उनका दण्ड विधान किया है, उसे यदि तुम अमङ्गल मानती हो तो तुम्हारी अज्ञानी के समान विषम बुद्धि है ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

पुनर्देवीं प्रत्याह-तवेयमिति । सर्वभूतेषु दुर्हृदामहितानां भ्रातॄणामज्ञवद्यद्भद्रं मन्यसे इच्छसि इयं तव विषमा असमीचीना बुद्धिः । कुतः । यतस्तदेव सुहृदामभद्रमिति । यद्वा सर्वभूतेषु दुर्हृदामपि स्वसुहृदां भद्रमेव दण्डरूपं मुण्डनमभद्रं यन्मन्यसे तवेयं विषमा बुद्धिरिति । अथवा सर्वभूतेषु मध्ये दुर्हृदां शिशुपालादीनामभद्रं सुहृदां भद्रं च यन्मन्यसे तवेयं विषमा बुद्धिः समा न भवति । अज्ञवदज्ञानामिव ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

पुनः श्रीरुक्मिणीजी के प्रति कहते हैं कि सभी जीवों के प्रति दुर्भाव रखने वाले अपने भाइयों के विषय में जो अज्ञानियों के समान तुम अमङ्गल मानती हो यह तुम्हारी विषम बुद्धि है । क्योंकि वही हितैषियों के लिए अकल्याण है । अथवा सभी जीवों के प्रति दुर्भाव रखने वाले अपने सुहृदों का जो दण्ड दिया गया उनका मुण्डन इत्यादि कर दिया गया वह उनके लिए मङ्गल ही है । किन्तु उसको जो तुम अमङ्गल मानती हो यह तुम्हारी विषम बुद्धि है । अथवा सभी जीवों में दुर्भाव रखने वाले शिशुपाल आदि के अमङ्गल को तथा अपने बान्धवों का जो तुम मङ्गल मानती हो वह तुम्हारी विषम बुद्धि है । और वह तुम अज्ञानी के समान मान रही हो ।।४२।।

आत्ममोहो नृणामेष कल्प्यते देवमायया । सुहृदुर्हृदुदासीन इति देहात्ममानिनाम् ।।४३।।

अन्वयः— देवमायया देहात्ममानिनाम् नृणाम् एष सुहृद दुर्हृदउदासीन इति आत्ममोह कल्प्यते ।।४३।।

अनुवाद— परमात्मा की माया से मोहित होकर देह को ही आत्मा मानने वाले मनुष्यों को आत्ममोह के कारण ही मित्र शत्रु और उदासीन की कल्पना होती है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

कुत इत्यत आह-आत्ममोह इति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि ऐसा क्यों होता है ? तो इसका उत्तर है कि आत्मा के विषय में ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होने के कारण ।।४३।।

एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् । नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः ॥४४॥

अन्वयः— सर्वेषामपि देहिनाम् एक एव हि परः आत्मा मूढैः यथा ज्योतिः यथा नभः नानेव गृह्यते ॥४४॥

अनुवाद— सभी शरीरधारियों की यद्यपि आत्मा एक ही है फिर जिस तरह जल और घड़ा आदि उपाधियों के भेद से एक ही सूर्य अथवा एक ही आकाश अनेक प्रतीत होते हैं, उसी तरह अज्ञानियों को ही शरीर भेद के कारण अनेक आत्माओं की प्रतीति अज्ञान के कारण ही होती है ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

परमार्थमाह-एक एवेति । परः शुद्धः ज्योतिश्चन्द्रादिर्यथोदकेषु । नभो यथा घटादिष्विति ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

एक एव॰ इत्यादि श्लोक से बलरामजी ने परमार्थ का निरूपण किया है । पर अर्थात् शुद्ध आत्मा । जैसे जलों में चन्द्रमा आदि अनेक प्रतीत होते हैं तथा घट आदि उपाधियों के कारण एक ही आकाश अनेक प्रतीत होता है ॥४४॥

देह आद्यन्तवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः । आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥४५॥

अन्वयः— एष आद्यन्तवान् देहः द्रव्यप्राणगुणात्मकः अविद्यया आत्मनि क्लृप्तः देहिनम् संसारयति ॥४५॥

अनुवाद— यह शरीर उत्पत्ति एवं नाश वाला है यह द्रव्यात्मक (पञ्च महाभूतात्मक) पञ्च प्राणात्मक तथा निर्गुणात्मक है । अज्ञान के कारण आत्मा से संसक्त होकर आत्मा को इस संसार में संसरण कराता है । अर्थात् उसको जन्म-मृत्यु के चक्र में डाल देता है ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

कुतस्तर्हि न चन्द्रादिवदात्मानमेकं शुद्धं प्रतीमस्तत्राह-देह इति । द्रव्यमधिभूतम्, प्राणा इन्द्रियाण्यध्यात्मम, गुणशब्देनाधिदैवं, तत्त्रितयात्मकः । देहोपाधिना शुद्धो न प्रतीयत इत्यर्थः ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि तो फिर आत्मा की चन्द्रमा आदि के समान एकत्व प्रतीति कैसे होती है ? तो इस पर देह इत्यादि श्लोक कहते हैं । यह देह द्रव्य अर्थात् अधिभूत, प्राण तथा इन्द्रियाँ अध्यात्म हैं तथा गुण शब्द के द्वारा अधिदैव होने के कारण त्रितयात्मक है । और इस देह रूपी उपाधि के कारण शुद्ध आत्मा की प्रतीति नहीं होती है ॥४५॥

नात्मनोऽन्येन संयोगो वियोगश्चासतः सति । तद्धेतुत्वात्तत्प्रसिद्धेर्दृग्रूपाभ्यां यथा रवेः ॥४६॥

अन्वयः— यथा दृग्रूपाभ्यां तद्धेत्वात् तत्प्रसिद्धेः रबे न संयोगः वियोगः वा हे सति अन्येन आत्मनः संयोगः वियोगो वा न ॥४६॥

अनुवाद— रूप एवं नेत्र दोनों सूर्य के द्वारा प्रकाशित होते है, सूर्य इन दोनों के कारण सूर्य का न तो नेत्र और रूप से संयोग अथवा वियोग नहीं होता है, इसी तरह से आत्मा के द्वारा सम्पूर्ण जगत् का प्रकाशन होता है अतएव इस आत्मा का अधिभूत आदि असत् पदार्थो से संयोग वियोग कुछ भी नहीं होता है ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

ननु देहसंबन्धेनापि संसारे सति शुद्धत्वं गतमेव तत्राह-नात्मन इति । हे सति, अन्येनाधिभूतादिना आत्मनः संयोगवियोगौ न स्तः । कुतः । असतः असत्त्वादन्यस्येत्यर्थः । कुतोऽसत्त्वं तत्राह-तद्धेतुत्वादिति । तस्यान्यस्य भूतेन्द्रियादेः प्रसिद्धेः प्रकाशस्य तद्धेतुत्वादात्महेतुत्वात् । ननु देवैरधिष्ठितेभ्य इन्द्रियेभ्यो भूतानां प्रतीतिः प्रसिद्धा । भूत प्रतीत्या च तत्प्रसिद्धिर्नात्मन इत्यत आह

दृग्रूपाभ्यां यथा रवेः । यथा प्रकाश्यप्रकाशकत्वेन वर्तमानयोरपि चक्षूरुपयोः रवेः सकाशात्प्रसिद्धिर्द्वयोरपि तैजसत्वात्तदभेदश्च तथा भूतेन्द्रियादीनां परस्परं सिद्धानामपि चैतन्याधीन एव प्रकाशस्तत्कार्यत्वाच्च तद्व्यतिरेकेणासत्त्वं चेत्यर्थः । तथा च द्वादशे वक्ष्यति-'दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथक् भवेत् । एवं धीः खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात् ।' इति । यद्वा रवेः प्रसिद्धाभ्यामेव दृग्रूपाभ्यां परस्परं प्रसिद्धिर्यथा भवति तद्वदिति ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि देह का संबन्ध होने के कारण संसार होता है और आत्मा का शुद्धत्व नहीं प्रतीत होता है। इस पर **आत्मनः इत्यादि** श्लोक कहते हैं । हे सति (रुक्मिणी) अधिभूत शरीर से आत्मा का संयोग या वियोग नहीं होता है । क्योंकि आत्मव्यतिरिक्त सम्पूर्ण जगत् मिथ्या है । यदि पूछो कि कैसे जगत् असत् हैं तो इसके उत्तर में तद्धेत्वात् अर्थात् पञ्चमहाभूत तथा इन्द्रिय आदि के प्रकाश का कारण आत्मा है । यदि कहों कि देवताओं से अधिष्ठित होने से इन्द्रियों और भूतों की प्रतीति होती है यह प्रसिद्ध है । पञ्च महाभूतों की प्रतीति से शरीर की प्रतीति होती आत्मा की प्रतीति नहीं होती है । इस पर कहते हैं जैसे नेत्र और रूप से सूर्य का संयोग या का वियोग नहीं होता है । जैसे प्रकाश्य एवं प्रकाशक रूप से रहने वाले रूप और चक्षु का प्रकाश सूर्य के ही द्वारा होता है । और चक्षु एवं रूप के तैजस होने के कारण अभेद हैं उसी तरह भूत एवं इन्द्रियों आदि जो सिद्ध हैं उनका भी प्रकाश चैतन्य के ही द्वारा होता है । प्रकाश तथा उसका कार्य होने के कारण चैतन्य से भिन्न सबके सब मिथ्या ही हैं । बारहवें स्कन्ध में महर्षि कहेंगे दीप, चक्षु और रूप ये सबके सब जैसे तैजस है उसी तरह ज्ञान इन्द्रियाँ तथा तन्मात्राएँ ये सभी अत्यन्त आदृत होने के कारण असत् ही हैं । अथवा सूर्य से प्रकाशित होने वाले नेत्र एवं रूप से जैसे एक-दूसरे के प्रकाशक होते हैं उसी तरह ।।४६।।

जन्मादयस्तु देहस्य विक्रिया नात्मनः क्वचित् । कलानामिव नैवेन्दोर्मृतिर्ह्यस्य कुहूरिव ।।४७।।

अन्वयः— जन्मादयः तु देहस्य विक्रिया आत्मनः क्वचित् न इन्दोः कलानामिव, अस्य मृतिः कुहूरिव ।।४७।।

अनुवाद— जन्म आदि तो देह के ही विकार है आत्मा के नहीं, क्योंकि आत्मा तो निर्विकार है । यह उसी तरह से होता है । जिस तरह कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा की कलाओं का ही क्षय होता है चन्द्रमा का नहीं जिस तरह से अमावस्या के दिन चन्द्रमा की कलाओं का ही नाश होता है चन्द्रमा का नहीं उसी तरह शरीर का ही नाश होता है आत्मा का नहीं । लोग तो भ्रमवशात् आत्मा का नाश मानते हैं ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

देहसंबन्धाभावादेव नात्मनो जन्मादयोऽपीति वक्तुं जन्मादीनां देहधर्मत्वमाह-जन्मादयस्त्विति । कथं तर्हि जातोऽहं बालोऽहं वृद्धोऽहमित्यात्मनि जन्मादिप्रतीतिः । देहजन्मादिनैवेति सदृष्टान्तमाह-कलानामिवेति । इन्दोः कलानामेव जन्मादयो नैवेन्दोर्यथा तद्वत् । यथा च कलानाशादेव कुहूरमावास्या इन्दुक्षय उच्यते तद्वदस्यात्मनो देहनाशादेव मृतिव्यवहार इत्यर्थः।।४७।।

भाव प्रकाशिका

देह से आत्मा का सम्बन्ध होता ही नहीं अतएव जन्म आदि आत्मा के विकार नहीं होते हैं । जन्म आदि शरीर के धर्म है । इस बात को कहने के लिए जन्म आदि को देह का धर्म **जन्मादयः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । प्रश्न होता है कि तो फिर मैं उत्पन्न हुआ मैं बालक हूँ मैं वृद्ध हूँ इस तरह से आत्मा में जन्म आदि की प्रतीति कैसे होती है इस बात को देहजन्मादिनैव इत्यादि से दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक **कलानमिव० इत्यादि** से कहा गया है । जैसे चन्द्रमा की कलाओं के ही जन्मादि होते हैं चन्द्रमा के नहीं । उसी तरह जैसे कलाओं के नाश से ही आमावस्या के दिन चन्द्रमा का नाश कहा जाता है उसी तरह देह के ही नाश को लेकर आत्मा के मरने का व्यवहार होता है ।।४७।।

यथा शयान आत्मानं विषयान्फलमेव च । अनुभुङ्क्तेऽप्यसत्यर्थे तथाप्नोत्यबुधो भवम् ॥४८॥

अन्वयः— यथा शयानः असति अपि अर्थे आत्मानं विषयान् फलम् अनुभुङ्क्ते तथा अबुधः भवम् आप्नोति ॥४८॥

अनुवाद— जिस तरह सोया हुआ व्यक्ति किसी पदार्थ के नहीं रहने पर भी भोक्ता, भोग्य एव भोग का अनुभव करता है उसी तरह अज्ञानी पुरुष मिथ्या ही संसार चक्र का अनुभव करता है ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

नन्वात्मनो देहादिसंबन्धाभावे कथं भोक्तृभोग्यभोगप्रतीतिरित्याशङ्क्य स्वप्रदृष्टान्तेन समर्थयति-यथा शयान इति । आत्मानं भोक्तारं विषयान् भोग्यान् फलं भोगमसत्यप्यर्थेऽनुभङ्क्ते तथा अबुधः संसारं प्राप्नोति ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि यदि आत्मा का देहादि से सम्बन्ध नहीं है तो फिर उसको भोक्ता, भोग्य एवं भोग की प्रतीति कैसे होती है? इस तरह से शङ्का करके स्वप्न के दृष्टान्त से बलरामजी यथाशयन इत्यादि श्लोक से कहते हैं। जैसे सोया हुआ पुरुष पदार्थों के नहीं रहने पर आत्मानम् अर्थात् भोक्ता विषयान् अर्थात् भोग्यों तथा फलम् अर्थात् भोगों का अनुभव करता है । उसी तरह अज्ञानी पुरुष मिथ्या ही संसार चक्र को प्राप्त करता है ॥४८॥

तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम् । तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ॥४९॥

अन्वयः— तस्मात् हे शुचिस्मिते अज्ञानजं आत्मशोषविमोहनम् शोकम् तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव ॥४९॥

अनुवाद— अतएव हे साध्वी अज्ञान से उत्पन्न होने वाले इस शोक को ज्ञान के द्वारा दूर करके स्वस्थ हो जाओ । शोक तो अन्तकरण को मुरझा देता है और मनुष्य को मोहित कर देता है ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

आत्मानं शोषयति विमोहयति चेति तथा तम् । निर्हृत्यापाकृत्य ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

अन्तःकरण को सुखाता है और मनुष्य को मोहित करता है निर्हृत्या अर्थात् दूर करके ॥४९॥

श्रीशुक उवाच

एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता । वैमनस्यं परित्यज्य मनो बुद्ध्या समादधे ॥५०॥

अन्वयः— एवं भगवता रामेण प्रतिबोधिता तन्वी वैमनस्यं परित्यज्य बुद्धया मनः समादधे ॥५०॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से भगवान् बलरामजी द्वारा समझाने पर परम सुन्दरी रुक्मिणीजी अपने मन के मैल को मिटाकर विवेक के द्वारा समाधान की ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

समादधे समाहितमकरोत् ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

समादधे अर्थात् समाधान किया ॥५०॥

प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हतबलप्रभः । स्मरन्विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः ॥
(चक्रे भोजकटं नाम विवासाय महत्पुरम् ॥) ॥५१॥

अन्वयः— प्राणावशेष उत्सृष्टः द्विड्भिः हतबलप्रभः स्मरन् विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः विवासाय भोजकटंनाम पुरम् चक्रे ॥५१॥

अनुवाद— रुक्मी के केवल प्राणमात्र वचे उसकी सेना और तेज को शत्रुओं ने विनष्ट कर दिया था, वह अपने को कुरुप बनाये जाने को भूल नहीं पाता था उसके सारे मनोरथ व्यर्थ हो गये थे। उसने अपने रहने के लिए वहाँ भोजकट नामक वहा बड़ा नगर वसाया ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

रुक्मिणस्त्वेवं श्रुतवतो नाज्ञानं निवृत्तमिति दर्शयन्नाह-प्राणावशेष इति ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

प्राणावशेष० इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है कि बलरामजी के द्वारा दिए गये उपदेश को सुनकर भी रुक्मी का अज्ञान दूर नहीं हुआ ॥५१॥

अहत्वा दुर्मतिं कृष्णमप्रत्यूह्य यवीयसीम्। कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रावसद्रुषा ॥५२॥

अन्वयः— दुर्मति कृष्णम् अहत्वा यवीयसीम् अप्रत्युह्य कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यमि इत्युक्त्वातत्र रुषा अवसत् ॥५२॥

अनुवाद— वह दूषित बुद्धि वाले श्रीकृष्ण को मारे बिना और अपनी छोटी बहन को लौटाये बिना मैं कुण्डिन नगरी में नहीं लौटूंगा यह कहकर रुक्मी वहीं निवास करने लगा ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

अहत्वा अज्ञात्वाऽदुर्मतिमिति च सत्योऽर्थः। अप्रत्यूह्यानावर्त्य। अप्रतिबुध्येति तु सत्यम्। यवीयसीं स्वसारम्। यत्र विरूपितस्तत्रैवावसत्। तत्र च भोजकटं नामपुरमभवत् ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

अहत्वा अर्थात् जाने बिना अदुर्मतिम् अर्थात् दुर्मति से रहित। यह अहत्वाऽदुर्मतिम् का सत्य अर्थ है। अप्रत्यूह्य अर्थात् लौटाये बिना। और रुक्मीणी लक्ष्मी का अवतार हैं इस बात को जाने बिना यह इसका सत्य अर्थ है। यवीयसीम् अर्थात् छोटी बहिन। जहाँ पर भगवान् ने रुक्मी को कुरूप बनाया था वहीं रहने लगा। वहीं पर भोजकट नाम का नगर हो गया ॥५२॥

भगवान् भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान्। पुरमानीय विधिवदुपयेमे कुरुद्वह ॥५३॥

अन्वयः— हे कुरुद्वह ! एवं भूमिपान-निर्जित्य भीष्मक सुताम् पुरम् आनीय भगवान् विधिवत् उपयेमे ॥५३॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! इस प्रकार राजाओं को परास्त करके तथा श्रीरुक्मिणीजी को द्वारकापुरी में लाकर श्रीभगवान् विधि पूर्वक उनके साथ विवाह किए ॥५३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५३॥

तदा महोत्सवो नृणां यदुपुर्यां गृहे गृहे। अभूदनन्यभावानां कृष्णे यदुपतौ नृप ॥५४॥

अन्वयः— हे नृप तदा यदुपतौ कृष्णे अनन्यभावानां नृणां यदुपुर्यां गृहे-गृहे महोत्सव अभूत् ॥५४॥

अनुवाद— हे परीक्षित् यदुवंशियों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण में जिन लोगों का अनन्य प्रेम था उन द्वारका के लोगों के घरों में महान् उत्सव मनाया गया ॥५४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५४॥

नरा नार्यश्च मुदिताः प्रमृष्टमणिकुण्डलाः। पारिबर्हमुपाजह्रुर्वरयोश्चित्रवाससोः ॥५५॥

अन्वयः— प्रमृष्टमणिकुण्डलानराः नार्यश्च मुदिताः चित्रवाससोः वरयोः पारिबर्हमुपजह्रुः ॥५५॥

अनुवाद— चमकते हुए मणियों के कुण्डल धारण किए वहाँ के पुरुष और स्त्रियाँ प्रसन्नतापूर्वक विचित्र वस्त्र धारण किए हुए दुल्हा और दुलहिन को अनेक प्रकार सामग्रियाँ भेट में अर्पित की ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

वरयोर्वरवध्वोः पारिबर्हं देयमुपस्करम् ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

वर तथा वधू को पारिबर्हं अर्थात् दी जाने वाली सामग्रियाँ ॥५५॥

सा वृष्णिपुर्युत्तभितेन्द्रकेतुभिर्विचित्रमाल्याम्बररत्नतोरणैः ।
बभौ प्रतिद्वार्युपक्लृप्तमङ्गलैरापूर्णकुम्भागुरुधूपदीपकैः ॥५६॥

अन्वयः— सा वृष्णिपुर्युत्तम्भितेन्द्र केतुभिः विचित्रमाल्याम्बररत्नतोरणैः पतिद्वार्युपक्लृप्त मङ्गलैः आपूर्णं कुम्भागुरुधूपदीपकैःबभौ ॥५६॥

अनुवाद— उस समय वह द्वारकापुरी में फहराये गये इन्द्र ध्वजों से, चित्र-विचित्र मालाओं, वस्त्रों तथा वाँधे गये वन्दनवारों से, प्रत्येक द्वारों पर सजाये गये मङ्गलमय जल भरे कलशों तथा अगुरु के धूपों और द्वीपों से अत्यन्त सुशोभित हुई ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

उत्तम्भितैरिन्द्रकेतुभिर्ध्वजविशेषैः । उपक्लृप्तानि मङ्गलानि लाजाङ्कुरपुष्पप्रकरादीनि तैः ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

फहराये गये इन्द्र ध्वजों से । सजाये गये मङ्गलमय खिल यवार तथा पुष्प समूहों से ॥५६॥

सिक्तमार्गा मदच्युद्भिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम् । गजैर्द्वास्तु परामृष्टरम्भापूगोपशोभिता ॥५७॥

अन्वयः— अहूतप्रेष्ठभूभुजाम् मदच्युद्भिः गजैः सिक्तमार्गा द्वास्सु परामृष्टरम्भापूगोपशोभिता ॥५७॥

अनुवाद— बुलाये गये मित्र राजाओं के मदमत्त हाथियों की मदवारि से द्वारका की गलियाँ सींच गयी थीं तथा दरवाजों पर रोपे गये केले के स्तम्भ तथा सुपारी के पौधों से वह नगरी सुशोभित थी ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

आहूताः प्रेष्ठाः भूभुजस्तेषां गजैः परामृष्टा उच्छ्रितारम्भाश्च पूगाश्च तैरुपशोभिता । यद्वा तैरेव गजैः परामृष्टाः संस्पृष्टः रम्भाश्च पूगाश्च तैरुपशोभिता ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

बुलाये गये प्रिय राजाओं के हाथियों से तथा रोपे गये केले और सुपारी के पौधों से द्वारकापुरी सुशोभित थी अथवा उन्हीं हाथियों से स्पर्श किए गये केले और सुपारी से ॥५७॥

कुरुसृञ्जयकैकेयविदर्भयदुकुन्तयः । मिथो मुमुदिरे तस्मिन्संभ्रमात्परिधावताम् ॥५८॥

अन्वयः— तस्मिन् सम्भ्रमात् परिधावताम् कुरुसृञ्जय कैकेय विदर्भयदुकुन्तयः मिथो मुमुदिरे ॥५८॥

अनुवाद— उस उत्सव में कुतूहलवशात् इधर-उधर दौड़ने वाले कुरु सृञ्जय कैकेय विदर्भ यदु और कुन्तिभोज वंशों के लोग परस्पर में आनन्दानुभव कर रहे थे ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

संभ्रमादौत्सुक्यात्परिधावतां बन्धूनां मध्ये मिथः समेत्य मुदं प्रापुः ॥५८॥

भाव प्रकाशिका

शीघ्रता के कारण उत्सुकतावशात् अपने बान्धवों के बीच परस्पर मिलकर आनन्द को प्राप्त किए ॥५८॥

रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं ततस्ततः । राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्भृशविस्मिताः ॥५९॥

अन्वयः— ततस्ततः गीयमानं रुक्मिण्या हरणंश्रुत्वा, राजानः राजकन्याश्च भृशविस्मिताः ॥५९॥

अनुवाद— स्थान-स्थान पर गायी जाने वाली रुक्मिणी हरण की गाथा को सुनकर राजागण और राजकन्यायें अत्यन्त विस्मित हुईं ॥५९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५९॥

द्वारकायामभूद्राजन्महामोदः पुरौकसाम् । रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियःपतिम् ॥६०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिण्युद्वाहोत्सवे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

अन्वयः— राजन् रुक्मिण्यारमयोपेतं श्रियः पतिं कृष्णं दृष्ट्वा द्वारकायाम् पुरौकसाम् महामोद अभूत् ॥६०॥

अनुवाद— परीक्षित्‌भगवती लक्ष्मीजी को रुक्मिणीजी के रूप में साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण के साथ देखकर द्वारका में नगर वासियों को महान् आनन्द की प्राप्ति हुई ॥६०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के रुक्मिणी विवाहोत्सव नामक चौवनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका टीका के चौवनवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥५४॥

* * *

पचपनवाँ अध्याय

प्रद्युम्न का जन्म और शम्बरासुर का वध

श्रीशुक उवाच

कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग्रुद्रमन्युना । देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ।।१।।

अन्वयः— वासुदेवांशः कामःतु प्राक् रुद्रमन्युना दग्धः देहोपपत्तये तमेव प्रत्यपद्यत ।।१।।

अनुवाद— कामदेव भगवान् वासुदेव के अंश है, उनको पहले क्रोध करके शङ्करजी ने भस्म कर दिया था. वे पुनः शरीर प्राप्त करने के लिए भगवान् वासुदेव को ही अपना आश्रय बनाये ।।१।।

भावार्थ दीपिका

पञ्चपञ्चाशत्तमे तु प्रद्युम्नोऽजनि कृष्णतः । शम्बरेण हृतः सोऽथ हत्वा तं कान्तयागमत् । प्रद्युम्नहानिलाभाद्यैः शम्बराहरणादिना। कुटुम्बिनामपत्यादिसुखदुःखमसूसुचत् ।।२।। जाम्बवत्यादिविवाहेभ्यः प्रागेव प्रद्युम्नजन्म ततो विवाहास्ततः

शम्बरागारात्प्रद्युम्नप्रत्यागमनम्, अतः पुत्रकथनप्रस्तावेऽपि प्रथमं प्रद्युम्नस्य जातमात्रस्य शम्बरेण हरणं निरूप्यते, प्रत्यागमनं तूत्तरकालीनमपि कथापर्यवसानायात्रोक्तमिति । वासुदेवाधिष्ठितचित्तप्रभवत्वाद्वासुदेवांशः सृष्टिहेतुत्वाच्च । देहोपपत्तये देहप्राप्तये।।१।।

भाव प्रकाशिका

पचपनवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र के रूप में प्रद्युम्न का जन्म हुआ । उनका शम्बरासुर ने हरण कर लिया । इसके पश्चात् वे शम्बरासुर को मारकर अपनी पत्नी के साथ आ गये । प्रद्युम्न की हानि और लाभ आदि के द्वारा तथा शम्बासुर के द्वारा हरण इत्यादि के द्वारा गृहस्थों को सन्तान आदि से होने वाले सुख तथा दु:ख को सूचित किया गया है । जाम्बवती के विवाह से पहले ही प्रद्युम्न का जन्म हुआ । उसके पश्चात् श्रीभगवान् के विवाह हुए । उसके पश्चात् शम्बरासुर के यहाँ से प्रद्युम्नजी का आगमन हुआ । अतएव पुत्रों के वर्णन के प्रसङ्ग में उत्पन्न होते ही प्रद्युम्न का शम्बरासुर के द्वारा हरण का निरूपण शुकदेवजी करते हैं । प्रद्युम्नजी का आगमन यद्यपि श्रीभगवान् के विवाहों के बाद में हुआ फिर भी इस कथा की समाप्ति के लिए इसी अध्याय के अन्त में किया गया है । चूकि चित्त के अधिष्ठाता भगवान् वासुदेव ही हैं और काम की उत्पत्ति चित्त से ही होती है कामदेव भगवान् वासुदेव के अंश हैं और सृष्टि के कारण भी हैं । **देहोपपत्तये** अर्थात् शरीर की प्राप्ति के लिए ।।१।।

स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः । प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ।।२।।

अन्वयः— कृष्णवीर्य समुद्भवः वैदर्भ्यां जात सः प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतः पितुः अनवमः ।।२।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के वीर्य से रुक्मिणीजी के गर्भ से उत्पन्न होते ही वे प्रद्युम्न के नाम से विख्यात हुए वे अपने पिता भगवान् कृष्ण से किसी भी प्रकार से कम नहीं थे ।।२।।

भावार्थ दीपिका

अनवमोऽन्यूनः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

अनवम: अर्थात् कम नही थे ।।२।।

तं शम्बरः कामरूपी हृत्वा तोकमनिर्दशम् । स विदित्वात्मनः शत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद्गृहम् ।।३।।

अन्वयः— कामरूपी शम्बरः अनिर्दशम् तोकम् आत्मनः शत्रुं विदित्वा हृत्वा उदन्वति प्रास्य गृहम् अत्यगात् ।।३।।

अनुवाद— अपनी इच्छा के अनुसार रूप बना लेने वाले शम्बरासुर दस दिन के होने से पहले ही उनको अपना शत्रु जानकर शिशु प्रद्युम्न का हरण करके समुद्र में फेंककर अपने घर लौट गया ।।३।।

भावार्थ दीपिका

स प्रसिद्धः कामशत्रुः शम्बरस्तमात्मनः शत्रुं विदित्वा हृत्वा समुद्रे प्रास्य प्रक्षिप्य गृहमगादिति ।।३।।

भाव प्रकाशिका

कामदेव के शत्रु प्रसिद्ध शम्बरासुर शिशु प्रद्युम्न को अपना शत्रु जानकर उनका हरण कर लिया और समुद्र में फेंक कर अपने घर चला गया ।।३।।

तं निर्जगार बलवान्मीनः सोऽप्यपरैः सह । वृतो जालेन महता गृहीतो मत्स्यजीविभिः ।।४।।

अन्वयः— तं बलवान्मीनः निर्जगार सोऽपि अपरैः सह मत्स्यजीविभिः महता जालेन गृहीतः ।।४।।

अनुवाद— उस बालक प्रद्युम्न को एक बहुत बड़े मछली ने निगल लिया उसको दूसरी मछलियों के साथ बहुत बड़े जाल में मल्लाहों ने फंसा लिया ।।४।।

भावार्थ दीपिका

निर्जगार गिलितवान् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

निर्जगार अर्थात् निगल लिया ॥४॥

तं शम्बराय कैवर्ता उपाजह्रुरुपायनम् । सूदा महानसं नीत्वाऽवाद्यन्स्वधितिनाद्भुतम् ॥५॥

अन्वयः— तं कैवर्ताः शम्बराय उपायनम् आजह्रुः सूदा अद्भुतम् तं महानसं नीत्वा स्वधितिना अवद्यन् ॥५॥

अनुवाद— मल्लाहों ने उस मत्स्य को शम्बरासुर को उपहार के रूप में प्रदान किया । उस अद्भुत मत्स्य को रसोइये रसोई घर में लाये और कुल्हाड़ी से काटने लगे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

स्वधितिना शस्त्रिकया अवद्यन्नवाद्यन्खण्डितवन्तः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

स्वधितिना अर्थात् कुल्हाड़ी से । अवद्यन् अर्थात् काटे ॥५॥

दृष्ट्वा तदुदरे बालं मायावत्यै न्यवेदयन् । नारदोऽकथयत्सर्वं तस्याः शङ्कितचेतसः ॥
बालस्य तत्त्वमुत्पत्तिं मत्स्योदरनिवेशनम् ॥६॥

अन्वयः— तदुदरे बालं दृष्ट्वा मायावत्यै न्यवेदयन् । तस्याः शङ्कित चेतसः नारदः बालस्य तत्त्वम् उत्पत्तिम् मत्स्योदर निवेशनम् एवं नारदः अकथत् ॥६॥

अनुवाद— मत्स्य के पेट में बालक को देखकर रसोइये ने उसे शम्बरासुर की दासी मायावती को दे दिया। मायावती को उस बालक के विषय में शङ्का थी । नारदजी ने आकर बतला दिया कि इसकी उत्पत्ति कैसे हुई और यह मछली के पेट में यह बालक कैसे गया ?॥६॥

भावार्थ दीपिका

तत्त्वं कामोऽयं तव भर्तेति । उत्पत्तिं श्रीकृष्णाद्रुक्मिण्यामुत्पन्न इति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यह बालक कामदेव है, यह तुम्हारा पति है, श्रीरुक्मिणीजी के गर्भ से भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ है ॥६॥

सा च कामस्य वै पत्नी रतिर्नाम यशस्विनी । पत्युर्निर्दग्धदेहस्य देहोत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥७॥

अन्वयः— सा च कामस्य वै पत्नी यशस्विनी रतिः नाम । निर्दग्धदेहस्य देहोत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥७॥

अनुवाद— वह मायावती कामदेव की पत्नी यशस्विनी रति थी । जिस दिन कामदेव भस्म हुए उसी दिन से उनके शरीर की उत्पत्ति की प्रतीक्षा कर रही थी ॥७॥

भावार्थ दीपिका

यशस्विनी पतिव्रता भर्तृदेहप्राप्तिं प्रतीक्षमाणा ॥७॥

भाव प्रकाशिका

यशस्विनी अर्थात् पतिव्रता अपने पति के शरीर की उत्पत्ति की प्रतीक्षा करने वाली ॥७॥

निरूपिता शम्बरेण सा सूपौदनसाधने । कामदेवं शिशुं बुद्ध्वा चक्रे स्नेहं तदार्भके ॥८॥

अन्वयः— शम्बरेण सूपौदन साधने निरूपिता सा शिशुं कामदेवं बुद्ध्वा तदार्भके स्नेहं चक्रे ॥८॥

अनुवाद— शम्बरासुर ने उसको दाल-भात बनाने के काम में लगा दिया था । उस बालक को कामदेव जानकर वह उससे प्रेम करने लगी ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तं शिशुं कामदेवं बुद्ध्वा विज्ञाय ॥८॥

भाव प्रकाशिका

उस बालक को कामदेव जानकर ॥८॥

नातिदीर्घेण कालेन स कार्ष्णी रूढयौवनः । जनयामास नारीणां वीक्षन्तीनां च विभ्रमम् ॥९॥

अन्वयः— नाति दीर्घेण कालेन रूढयौवनः कार्ष्णिः वीक्षन्तीनां नारीणाम् विभ्रमं चक्रे ॥९॥

अनुवाद— थोड़े ही दिनों में भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युमनजी युवक हो गये उनका रूप लावण्य इतना अधिक था जो स्त्रियाँ उनको देखती थीं वे उनमें शृङ्गार रस अद्भूत हो जाता था ॥९॥

भावार्थ दीपिका

विभ्रमं संमोहम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

विभ्रम अर्थात् काम विकार ॥९॥

सा तं पतिं पद्मदलायतेक्षणं प्रलम्बबाहुं नरलोकसुन्दरम् ।
सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षती प्रीत्योपतस्थे रतिरङ्ग सौरतैः ॥१०॥

अन्वयः— हे अङ्ग पद्मंदलायतेक्षणं प्रलम्बबाहुं नरलोक सुन्दरम् सा रतिः तं पति सव्रडहासोत्तभि तं भ्रुवेक्षती सौरतैः प्रीत्या उपतस्थे ॥१०॥

अनुवाद— हे परीक्षित् कमलदल के समान मनोज्ञ नेत्र, आजानु बाहु और मनुष्य लोक में सबसे सुन्दर अपने उस पति को देखकर वह रति लज्जा पूर्वक हँसती हुई अपने भौहों को मटकाकर उनकी ओर देखती हुई तथा प्रेम से भरकर स्त्री-पुरुष सम्बन्धी भाव को व्यक्त करती हुई उनकी सेवा शुश्रुषा में लगी रहती थीं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अङ्ग हे राजन्, सौरतैर्भावैरुपतस्थेऽभजत् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

हे राजन् ! स्त्री पुरुष सम्बन्धी भावों के साथ उनकी सेवा में उपस्थित हुई ॥१०॥

तामाह भगवान्कार्ष्णिर्मातस्ते मतिरन्यथा । मातृभावमतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा ॥११॥

अन्वयः— भगवान् कार्ष्णिः ताम् आह ते मतिः अन्यथा मातृभावम् अतिक्रम्य कामिनी यथा वर्तसे ॥११॥

अनुवाद— भगवान् प्रद्युम्न ने कहा माँ मैं तुम्हारी बुद्धि में परिवर्तन देखता हूँ । तुम माता के भाव का परित्याग करके कामिनी जैसी चेष्टा करती हो ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

रतिरुवाच

भवान्नारायणसुतः शम्बरेणाहृतो गृहात् । अहं तेऽधिकृता पत्नी रतिः कामो भवान्प्रभो ॥१२॥

अन्वयः— प्रभो भवान् नारायण सुतः गृहात् शम्बरेण आहृतः अहं ते अधिकृता पत्नी रतिः भवान् कामः ॥१२॥

रति ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! आप भगवान् नारायण के पुत्र हैं, शम्बरासुर ने आपको सूतिका गृह से ही चुरा लाया था मैं आपकी सदा से अधिकृता पत्नी रति हूँ और आप कामदेव हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अधिकृता पत्नीत्यत्र हेतुः-रतिरहं भवान्काम इति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अधिकृता पत्नी होने का कारण रति ने बतलाया कि मैं रति हूँ और आप कामदेव हैं ॥१२॥

एष त्वाऽनिर्दशं सिन्धावक्षिपच्छम्बरोऽसुरः । मत्स्योऽग्रसीत्तदुदरादितः प्राप्तो भवान्प्रभो ॥१३॥

अन्वयः— एषः शम्बरोऽसुरः अनिर्दशं त्वा सिन्धौ अक्षिपत् मत्स्यः अग्रहित तदुदरात् इतः भवान् प्राप्तः ॥१३॥

अनुवाद— हे प्रभो ! यह शम्बरासुर आपके दशदिन के होने से पहले ही समुद्र में फेंक दिया, आपको एक मछली निगल गयी । उसी के पेट से आप यहाँ प्राप्त हुए ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

तमिमं जहि दुर्धर्षं दुर्जयं शत्रुमात्मनः । मायाशतविदं त्वं च मायाभिर्मोहनादिभिः ॥१४॥

अन्वयः— मायाशत विदं इमं दुधर्षं दुर्जयं आत्मनः शत्रम् मोहनादिभिः मायाभिः त्वं च जहि ॥१४॥

अनुवाद— यह शम्बरासुर सैकड़ों प्रकार की मायाओं को जानता है । अतएव इसको अपने वश में करना अथवा जित पाना बड़ा कठिन आप अपने इस शत्रु को मोहन आदि मायाओं से मार डालें ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

दुर्जयत्वे हेतुः-मायाशतविदमिति । कथं तर्हि हन्तव्यस्तत्राह-मायाभिरिति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

शम्बरासुर के दुर्जयत्व का कारण बतलाया कि यह सैकड़ों प्रकार की माया को जानता है, तो फिर कैसे जीता जा सकता है ? तो इसका उत्तर है कि मोहन आदि विद्याओं के द्वारा ॥१४॥

परिशोचति ते माता कुररीव गतप्रजा । पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा ॥१५॥

अन्वयः— गतप्रजा ते माता पुत्रस्नेहाकुलादीना कुररी इव विवत्सा आतुरागौः इव परिशोचति ॥१५॥

अनुवाद— जिसकी सन्तान आपके खो जाने से आपकी माता पुत्र के स्नेह से व्याकुल तथा दीन होकर उस कुररी पक्षी के समान शोक कर रही हैं जिसका बच्चा खो गया हो अथवा जिसका बछड़ा मर गया हो ऐसी गौ के समान ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

न चात्र विलम्बः कार्य इत्याह-परिशोचतीति । रोदितीत्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

इस काम में देर नहीं करनी चाहिए इस बात को **परिशोचति॰** अर्थात् रोती है इत्यादि श्लोक से कहा गया है॥१५॥

प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने । मायावती महामायं सर्वमायाविनाशिनीम् ।।१६।।

अन्वयः— एवं प्रभाष्य मायावती महात्मने प्रद्युम्नाय सर्वमाया विनाशिनीम् महामायां विद्यां ददौ ।।१६।।

अनुवाद— इस प्रकार से कहकर मायावती ने परम पराक्रमी भगवान् प्रद्युम्न को सभी मायाओं को विनष्ट कर देने वाली महामाया नाम की विद्या प्रदान किया ।।१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१६।।

स च शम्बरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत् । अविषह्यैस्तमाक्षेपैः क्षिपन्संजनयन्कलिम् ।।१७।।

अन्वयः— स च शम्बरम् अभ्येत्य तम् अविषह्यै: आक्षेपैः क्षिपन् कलिम् संजन्यन् संयुगाय समाह्वयत् ।।१७।।

अनुवाद— भगवान् प्रद्युम्न शम्बरासुर के पास आकर उस पर कठोर आक्षेपों को करते हुए उससे कलह करने के लिए तथा शम्बरासुर को युद्ध के लिए ललकारे ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

सोऽधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः पदा हत इवोरगः । निश्चक्राम गदापाणिरमर्षात्तम्रलोचनः ।।१८।।

अन्वयः— दुर्वचोभिः अधिक्षिप्तः सः यदा हतः उरगइव अमर्षात् ताम्रलोचनः गदापाणिः निश्चक्राम ।।१८।।

अनुवाद— प्रद्युम्नजी के कटु आक्षेपों से शम्बरासुर अत्यन्त क्रुद्ध हो गया जैसे किसी विषैले सर्प को पैर के ठोकर से मार दिया गया हो उसी तरह क्रोध से आँखें लाल करके अपने हाथ में गदा लेकर निकला ।।१८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१८।।

गदामाविध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने । प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ।।१९।।

अन्वयः— प्रद्युम्नाय महात्मने तरसा आविध्य गदाम् प्रक्षिप्य व्रजनिष्पेषनिष्ठुरम् नादं व्यनदत् ।।१९।।

अनुवाद— महापराक्रमी प्रद्युम्नजी पर उसने अपनी गदा को घुमा कर फेंका और ऐसी गर्जना किया जैसे बिजली कड़क रही हो ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

व्रजस्य निष्पेषे निर्घाते यथा निष्ठुरस्तीव्रो नादो भवति तथाभूतं नादं व्यनदत् । सामान्यविशेषतया व्याप्यव्यापकत्वमोदनपाकं पचतीतिवत् अतिनिष्ठुरं नादमकरोदित्यर्थः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

वज्र के टकराने से जैसे कठोर ध्वनि होती है, उस तरह से उसने तीव्र नाद किया । सामान्य विशेष न्याय के अनुसार यहाँ पर व्याप्य व्यापक भाव है । ओदनपाकं पचति के समान अत्यन्त तीव्र गर्जना उसने की ।।१९।।

तामापतन्तीं भगवान्प्रद्युम्नो गदया गदाम् । अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणोत्स्वगदां नृप ।।२०।।

अन्वयः— हे नृप ! भगवान् प्रद्युम्नः आपतन्तीं तां गदाम् गदया अपास्य क्रुद्ध शत्रवे स्वगदां प्राहिणोत् ।।२०।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! आती हुई उस गदा का अपनी गदा के प्रहार से प्रद्युम्नजी ने गिरा दिया और सके पश्चात् क्रुद्ध होकर उन्होंने उस पर अपनी गदा चलायी ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मयदर्शिताम् । मुमुचेऽस्त्रमयं वर्षं कार्ष्णौ वैहायसोऽसुरः ॥२१॥

अन्वयः— स च असुरः मयदर्शितां दैतेयीं मायां समाश्रित्य कार्ष्णौ वैहायसः अस्त्रमयं मुमुचे ॥२१॥

अनुवाद— वह शम्बरासुर मय नामक दैत्य की बतलायी हुई आसुरी माया के द्वारा आकाश में जाकर अस्त्र शस्त्रों की वर्षा करने लगे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

वैहायस आकाशे स्थितः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

वैहायसः अर्थात् आकाश में जाकर ॥२१॥

बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयो महारथः । सत्त्वात्मिकां महाविद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम् ॥२२॥

अन्वयः— महारथः रौक्मिणेयः अस्त्रेण बाध्यमानः सर्वमायोपमर्दिनीम् सत्त्वात्मिकां महाविद्यां प्रायुङ्क्त इत्युत्तरेणान्वयः॥२२॥

अनुवाद— रुक्मिणी नन्दन महारथी प्रद्युम्नजी अस्त्रों की वर्षा से पीड़ित होकर सभी मायाओं को विनष्ट करने वाली सात्त्विकी महामाया का प्रयोग किए ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

सत्त्वात्मिकां सत्त्वगुणमयीं प्रायुङ्क्तेत्युत्तरस्यानुषङ्गः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

सत्त्वगुणमयी माया का प्रयोग किए । इसका आगे के श्लोक के साथ अन्वय है ॥२२॥

ततो गौह्यकगान्धर्वपैशाचोरगराक्षसीः । प्रायुङ्क्तशतशो दैत्यः कार्ष्णिर्व्यधमयत्स ताः ॥२३॥

अन्वयः— ततो दैत्यः गौह्यकगान्धर्व पैशाचोरगराक्षसीः शतशः प्रायुङ्क्त सः कार्ष्णिः ताः व्यधमत् ॥२३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् शम्बरासुर ने यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, नाग और राक्षसों की माया का प्रयोग किया और किन्तु प्रद्युम्नजी ने महाविद्या से उन सबों को विनष्ट कर दिया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

ता मायाः । व्यधमदवनाशयत् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

ताः अर्थात् उन मायाओं का, व्यधमत् अर्थात् विनष्ट कर दिया ॥२३॥

निशातमसिमुद्यम्य सकिरीटं सकुण्डलम् । शम्बरस्य शिरः कायात्ताम्रश्मश्रुजसाऽहरत् ॥२४॥

अन्वयः— निशातम् असिम् उद्यम्य शम्बरस्य सकिरीटं सकुण्डलम् ताम्रश्मश्रु शिरः ओजसा कायात् अहरत् ॥२४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् प्रद्युम्नजी नें एक तीक्ष्ण तलवार से शम्बरासुर के किरीट एवं कुण्डल युक्त शिर को जो लाल-लाल दाढ़ी-मूछों से भयङ्कर लगता था उसको बल पूर्वक काट दिया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

ताम्राणि श्मश्रूणि यस्मिंस्तत् । ओजसा बलेन ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

लाल-लाल दाढी और मूछों वाले । तरसा अर्थात् बलपूर्वक ॥२४॥

आकीर्यमाणो दिविजैः स्तुवद्भिः कुसुमोत्करैः । भार्ययाऽम्बरचारिण्या पुर नीतो विहायसा ॥२५॥

अन्वयः— स्तुवद्धि दिविजैः कुसुमोत्करैः आकीर्यमाणः अम्बरचारिण्या भर्यया विहायसा पुरं नीतः ॥२५॥

अनुवाद— स्तुति करने वाले देवगण प्रद्युम्नजी पर पुष्पों की वर्षा कर रहे थे, उसी समय वे आकाश में चलने वाली अपनी पत्नी मायावती के द्वारा द्वारकापुरी में लाये गये ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

अन्तःपुरवरं राजँल्ललनाशतसंकुलम् । विवेश पत्न्या गगनाद्विद्युतेव बलाहकः ॥२६॥

अन्वयः— हे राजन् ललनाशतसंकुलं अन्तःपुरवरं गगनात् विद्युत बलाहकः इव पत्न्या विवेश ॥२६॥

अनुवाद— हे राजन् सैकड़ों नारियो से भरे हुए भगवान् के उस श्रेष्ठ अन्तःपुर में आकाश मार्ग से श्यामवर्ण के प्रद्युम्नजी अपनी गौरवर्ण की पत्नी रति के साथ उसी तरह से प्रवेश किए जिस तरह विद्युत् के साथ जलभरा मेघ आया हो ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

विद्युता सह बलाहको मेघ इव ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

विद्युत् के साथ जलभरे मेघ के समान ॥२६॥

तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् । प्रलम्बबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम् ॥२७॥
स्वलंकृतमुखाम्भोजं नीलवक्रालकालिभिः । कृष्णं मत्वा स्त्रियो ह्रीता निलिल्युस्तत्र तत्र ह ॥२८॥

अन्वयः— जलदश्यामं पीत कौशेयवाससम् प्रलम्बबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितम्रूचिराननम् नीलवक्रालकालिभिः स्वलंकृतमुखाम्भोजं तं दृष्ट्वा कृष्णं मत्वा ह्रीता स्त्रियः तत्र-तत्रनिलिल्यु ॥२७-२८॥

अनुवाद— वर्षाकालीन श्यामवर्ण वाले, पीताम्बर धारण किए हुए, आजानुबाहु रतनारे नेत्र मन्दमुस्कान से मनोहर मुखमण्डल जो काले घुघंराले केशों से अच्छी तरह से अलंकृत था ऐसे प्रद्युम्नजी को देखकर स्त्रियाँ उन्हें श्रीकृष्ण समझकर कुछ लज्जित हो गयीं और यत्र-तत्र छिप गयीं ॥२७-२८॥

भावार्थ दीपिका

नीलाश्च वक्राश्च येऽलकास्त एवालयस्तैः ह्रीता लज्जिताः ॥२७-२८॥

भाव प्रकाशिका

भौरों के समान काले घुघराले केश रूपी भ्रमा से जिनका मुख कमल समलंकृत था। ह्रीता अर्थात् लज्जित॥२७-२८॥

अवधार्य शनैरीषद्वैलक्षण्येन योषितः । उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः ॥२९॥

अन्वयः— शनैः ईषदवैलक्षण्येन अवधार्य प्रमुदिताः सुविस्मिताः योषितः सस्त्रीरत्नं उपजग्मुः ॥२९॥

अनुवाद— धीरे-धीरे प्रद्युम्नजी में भगवान् श्रीकृष्ण से विलक्षणता का निश्चय करके प्रसन्न तथा आश्चर्य चकित स्त्रियाँ स्त्रीरत्न के साथ विद्यमान उनके पास चली आयीं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णो न भवतीत्यवधार्य स्त्रीषु रत्नं श्रेष्ठा रतिस्तत्सहितम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

ये श्रीकृष्ण नहीं हैं इस तरह से निश्चित करके । स्त्रीरत्न के साथ विद्यमान प्रद्युम्नजी के पास आ गयीं ॥२९॥

अथ तत्रासितापाङ्गी वैदर्भी वल्गुभाषिणी । अस्मरत्स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥३०॥

अन्वयः— अथ तत्र असितापाङ्गी वल्गुभाषिणी वैदर्भी स्नेहस्नुतपयोधरा नष्टं स्वसुतं अस्मरत् ॥३०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् वहाँ कजरारे नेत्रों वाली तथा मधुरभाषिणी श्रीरुक्मिणीजी वहाँ आयीं । उस समय स्नेह के कारण उनके स्तनों से दूध चू रहा था उन्हें अपने भूले हुए पुत्र की याद आ गयी ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

को न्वयं नरवैदूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः । धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा ॥३१॥

अन्वयः— कोऽन्वयं नरवैदूर्यः कस्य वा कामलेक्षणः ? कया वा जठरे धृतः ? अनेन केयं वा लब्धा ॥३१॥

अनुवाद— वे सोचने लगीं यह कौन मानव श्रेष्ठ है ? कमल के समान नेत्रों वाला यह किसका पुत्र हैं? इसको किसने अपने गर्भ में धारण किया था ? इसने किस सौभाग्यवती को पत्नी के रूप में प्राप्त किया हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

सुतं स्मरन्त्याह-को न्वयमिति । नरवैदूर्यः पुरुषश्रेष्ठः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

अपने पुत्र को याद करती हुई उन्होंने मन में ही कहा यह पुरुष श्रेष्ठ कौन है ?॥३१॥

मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात् । एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित् ॥३२॥

अन्वयः— मम चापि आत्मजः नष्टः यः सूतिका गृहात् नष्टः यदि कुत्रचित् जीवति एतत् तुल्यवयोरूप ॥३२॥

अनुवाद— मेरा भी एक पुत्र खो गया उसको किसी ने प्रसूती गृह से ही चुरा लिया था, यदि वह कहीं जीवित होगा तो उसकी भी अवस्था और रूप ऐसा ही होगा ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

एतेन तुल्यं वयो रूपं च यस्य स भवेदिति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

इसके ही समान उसका भी रूप और अवस्था होगी ॥३२॥

कथं त्वनेन संप्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः । आकृत्याऽवयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः ॥३३॥

अन्वयः— अनेन कथं तु शार्ङ्गधन्वनः आकृत्या, अवयवैः गत्या, स्वरहासावलोकनै सारूप्यं प्राप्तम् ॥३३॥

अनुवाद— यह श्रीकृष्ण के ही समान आकार से, अङ्गों से, चाल से, स्वर हँसी तथा चितवन कैसे सारूप्य हैं ?॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तस्य स्वपुत्रत्वं संभावयन्त्याह-कथं त्विति ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

कथं तु इत्यादि श्लोक से वे कहती हैं कि सम्भव है यह मेरा ही पुत्र है ॥३३॥

स एव वा भवेन्नूनं यो मे गर्भे धृतोऽर्भकः । अमुष्मिन्प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥३४॥

अन्वयः— यः अर्भकः मया गर्भे धृतः नूनं स एव वा भवेत् अमुष्मिन् मे अधिका प्रीतिः मे वामः भुजः स्फुरति॥३४॥

अनुवाद— जिस बालक को मैंने अपने गर्भ में धारण किया था निश्चित रूप से यह वही हो सकता है क्योंकि इसके प्रति मेरा प्रेम उमड़ रहा है और मेरी बायीं बांह फड़क रही है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाधिकं संभावयति-स एवेति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

स एव० इत्यादि श्लोक से यह मेरा ही पुत्र है इस तरह से अधिक सम्भावना करती हैं ।।३४।।

एवं मीमांसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः । देवक्यानकदुन्दुभ्यामुत्तमश्लोक आगमत् ।।३५।।

अन्वयः— वैदर्भ्या एवं मीमांसमानायां देवक्यानकदुन्दुभ्यां उत्तमश्लोकः देवकीसुतः आगमत् ।।३५।।

अनुवाद— जिस समय रुक्मिणीजी इस प्रकार से सोच-विचार कर रही थीं उसी समय माता देवकी और वासुदेवजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण आ गये ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

देवक्यानकदुन्दुभ्यां देवक्यानकदुन्दुभिभ्यामित्यर्थः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

देवक्यानकदुन्दुभ्याम् अर्थात् देवकीजी तथा वासुदेवजी के साथ ।।३५।।

विज्ञातार्थोऽपि भगवांस्तूष्णीमास जनार्दनः । नारदोऽकथयत्सर्वं शम्बराहरणादिकम् ।।३६।।

अन्वयः— भगवान् जनार्दनः विज्ञातार्थोऽपि तुष्णीम् आस । नारदः शम्बराहरणादिकम् सर्वम् अकथयत् ।।३६।।

अनुवाद— भगवान् जनार्दन सबकुछ जानते थे किन्तु चुप रहे । नारदजी ने बतलाया कि प्रद्युम्नजी का हरण शम्बरासुर ने किया और इसके बाद की सारी बातें को बताये ।।३६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३६।।

तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं कृष्णान्तःपुरयोषितः । अभ्यनन्दन्बहूनब्दान्नष्टं मृतमिवागतम् ।।३७।।

अन्वयः— तत् महदाश्चर्य श्रुत्वा कृष्णान्तः पुरयोषितः मृतं आगतमिव नष्टं बहून् अब्दान् अभ्यनंदन् ।।३७।।

अनुवाद— उस महान आश्चर्य की बात को सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तःपुर की स्त्रियाँ बहुत वर्षों तक प्रद्युम्नजी का अभिनन्दन करती रहीं जैसे कोई मरकर जीवित हो गया हो ।।३७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३७।।

देवकी वसुदेवश्च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः । दम्पती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुर्मुदम् ।।३८।।

अन्वयः— देवकी, वसुदेवः च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः रुक्मिणी च दम्पती परिष्वज्य मुदम् ययुः ।।३८।।

अनुवाद— माता देवकी, वसुदेवजी, भगवान् कृष्ण, बलरामजी, श्रीरुक्मिणी और अन्तःपुर की स्त्रियाँ प्रद्युम्नजी और रति की जोड़ी को आलिङ्गन करके बहुत प्रसन्न हुए ।।३८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३८।।

नष्टं प्रद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः । अहो मृत इवायातो बालो दिष्ट्येति हाब्रुवन् ।।३९।।

अन्वयः— द्वारकौकसः नष्टं प्रद्युम्नं आयातम् आकर्ण्य अहो दिष्ट्या बालः मृतः इव आयातः इति ह अब्रुवन् ।।३९।।

अनुवाद— द्वारकावासियों ने जब सुना कि खोए हुए प्रद्युम्नजी आ गये हैं तो वे आपस में कहने लगे कि कितना सौभाग्य की बात है कि खोया हुआ बालक जैसे मर करके लौट आया हो ।।३९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३९।।

यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरो यदभजन् रहरूढभावाः ।
चित्रं न तत्खलु रमास्पदबिम्बबिम्बे कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे प्रद्युम्नोत्पत्तिनिरूपणं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

अन्वयः— यं वै पितृसरूप निजेशभावाः तन्मातरः रहरूढभावाः मुहुः यदअभजन् रमास्पदबिम्ब बिम्बे कामेस्मरेक्षिविषये तत्खलुचित्रं न अन्यनार्यः किमुत ॥४०॥

अनुवाद— अपने पिता से मिलते-जुलते स्वरूप वाले प्रद्युम्नजी को देखकर उनकी माताएँ भी उन्हें अपने पतिदेव समझकर मधुर भाव में मग्न हो जाती थीं और सामने से हटकर एकान्त में चली जाती थीं श्रीनिकेतन श्रीभगवान् के प्रतिबिम्ब स्वरूप कामावतार भगवान् प्रद्युम्न के दीख जाने पर ऐसा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । उन्हें देखकर दूसरी स्त्रियों की विचित्र दशा हो जाती थी यह क्या कहना है ॥४०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के पूर्वार्ध की प्रद्युम्नजी की उत्पत्ति का वर्णन नामक पचपनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

अतिसौन्दर्येण प्रद्युम्नं वर्णयति-यमिति । पिता श्रीकृष्णस्तत्सरूपे तत्सदृशे प्रद्युम्ने निज आत्मीय ईशो भर्तेति भावो भावना यासां तास्तन्मातरः कृष्णपत्न्योऽपि रहसि निरूढभावाः सत्यो यमभजन्निति यत्तत्र खलु चित्रम् । कथं सति । स्मरे स्मर्यमाणत्वेनैव क्षोभके कामेऽक्षिविषये सति । किंच रमास्पदं श्रीकृष्णस्तस्य बिम्बं श्रीमूर्तिस्तस्य बिम्बे प्रतिबिम्बे पुत्रे । तदा किं नु वक्तव्यमन्यनार्यो भेजुरिति ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

यम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा प्रद्युम्नजी के अत्यधिक सौन्दर्य का वर्णन करते हैं अपने पिता भगवान् श्रीकृष्ण के समान रूप वाले प्रद्युम्नजी को देखकर उनकी माताओं को भी उनमें अपने पति भगवान् श्रीकृष्ण की मधुर भावना हो जाती थी और वे एकान्त में हटकर चली जाती थीं, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी । क्योंकि जिस काम के स्मरण होते ही मन में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है उनको देख लेने पर । तथा श्रीनिकेतन भगवान् श्रीकृष्ण के प्रतिबिम्ब स्वरूप थे भगवान् प्रद्युम्न । तो फिर उनको देखकर अन्य नारियों की विचित्र दशा हो जाती थी यह क्या कहना है ॥४०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थदीपिका टीका के पचपनवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥५५॥

छप्पनवाँ अध्याय

स्यमन्तक मणि की कथा जाम्बवती और सत्यभामा के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का विवाह

श्रीशुक उवाच

सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः । स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥१॥

अन्वयः कृष्णायकृतकिल्बिषः सत्राजितः स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद सत्राजित भगवान श्रीकृष्ण पर झूठा कलङ्क लगाया था उसका मर्जन करने के लिए वे अपनी पुत्री का भगवान् श्रीकृष्ण के साथ विवाह करके स्यमन्तक मणि उनको समर्पित कर दिया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षट्पञ्चाशत्तमे मिथ्याभियोगे मणिमाहरत् । कन्यां जाम्बवतः प्राप कृष्णः सत्राजितस्ततः । पुत्रादिकामसौख्यस्य निष्ठामुक्त्वातिचञ्चलाम् । अर्थस्यानर्थतामाह स्यमन्तहरणादिना । सत्यभामाजाम्बवत्योर्विवाहप्रस्तावाय स्यमन्तकाख्यानमाह-सत्राजित इति इत्यकारान्तः क्वचिच्च तकारान्तोऽप्यन्वयानुसारेण द्रष्टव्यः । कृतापराधस्तच्छान्तये स्वयमेवोद्यमं कृत्वा मणिना सह प्रादादिति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

छपनवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण पर मिथ्या कलङ्क लगा उसके कारण भगवान् ने जाम्बवान से स्यमन्तक मणि का हरण किया तथा और उन्होंने जाम्बवान की पुत्री जाम्वती को भी प्राप्त किया । उसके पश्चात् वे सत्राजित् की पुत्री सत्यभाभा को भी प्राप्त किया । पुत्र आदि कामना जन्य सुख में होने वाली अत्यन्त चञ्चल निष्ठा को बतलाकर स्यमन्तक मणि के हरण इत्यादि के द्वारा श्रीशुकदेवजी ने बतलाया कि अर्थ अनर्थकारी होता है । सत्यभामा और जाम्बवती दोनों के विवाह का प्रस्ताव वर्णित करने के लिए **सत्राजित० इत्यादि** श्लोक के द्वारा स्यमन्तक मणि की कथा बतलायी गयी है । कहीं-कहीं पर सत्राजितः यह अकारन्त पाठ है और कहीं पर सत्राजित् इस तरह से तकारनान्त पाठ है । चूकि सत्राजित ने अपराध किया था इसलिए स्वयम् प्रयास करके वे उस मणि के साथ सत्यभाभाजी को भी सत्राजित ने श्रीकृष्ण भगवान् को प्रदान कर दिया ॥१॥

राजोवाच

सत्राजितः किमकरोद्ब्रह्मन्कृष्णस्य किल्बिषम् । स्यमन्तकः कुतस्तस्य कस्माद्दत्ता सुता हरेः ॥२॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् सत्राजितः कृष्णस्य किम् किल्बिषम् अकरोत् तस्य स्यमन्तकः कुतः कस्मात् हरेः सुतादत्ता॥२॥

राजा परीक्षित् ने पूछा

अनुवाद— भगवन् सत्राजित् ने भगवान् श्रीकृष्ण का कौन सा अपराध किया था, उनको स्यमन्तक मणि कैसे प्राप्त हुई, उन्होंने किस कारण से अपनी पुत्री का विवाह भगवान् श्रीकृष्ण से किया ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

श्रीशुक उवाच

आसीत्सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा । प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात्सूर्यस्तुष्टः स्यमन्तकम् ॥३॥

अन्वयः— भक्तस्य सत्राजितः सूर्यः परमः सखा आसीत् तुष्टः सूर्यः प्रीतः तस्मै स्यमन्तकं मणिं प्रदात् ॥३॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् सूर्य अपने भक्त सत्राजित् के श्रेष्ठ मित्र हो गये थे वे प्रसन्न होकर अपने स्निग्ध मित्र सत्राजित को स्यमन्तक मणि प्रदान किए थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

भक्तस्य सत्राजित: सूर्य: स्वाम्यपि सखे वासीदित्यर्थ:। स च तुष्टस्तस्मै स्यमन्तकं नाम मणिं प्रादात्। प्रीत: स्निग्ध:॥३॥

भाव प्रकाशिका

अपने भक्त सत्राजित् के भगवान् सूर्य यद्यपि सत्राजित् के स्वामी थे फिर भी वे उसके मित्र के समान हो गये थे। वे सन्तुष्ट होकर अपने स्निग्ध मित्र सत्रजित् को स्यमन्तक मणि प्रदान किए थे ॥३॥

स तं बिभ्रन्मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रवि:। प्रविष्टो द्वारकां राजंस्तेजसा नोपलक्षित: ॥४॥

अन्वय:— हे राजन् स: तं मणिं कठे विभ्रन् रवि: यथा भाजमान: तेजसा नोपलक्षित: द्वारकां प्रविष्ट: ॥४॥

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् वह सत्राजित् उस मणि को अपने गले मे बाँधकर सूर्य के समान देदीप्यमान होकर वह द्वारका में आया किन्तु उसकी तेजस्विता के कारण उसे लोग नहीं पहचान पाये ॥४॥

भावार्थ दीपिका

नोपलक्षित: सत्राजितोऽसावित्यविज्ञात: ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यह सत्राजित् है इस तरह पहचान में आये बिना ही ॥४॥

तं विलोक्य जना दूरात्तेजसा मुष्टदृष्टय:। दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसु: सूर्यशङ्किता: ॥५॥

अन्वय:— दूरात् तं विलोक्य मुष्टदृष्टय: सूर्यशङ्कित: जना: अक्षै: दिव्यते भगवते शशंसु ॥५॥

अनुवाद— दूर से ही सत्राजित् को देखकर लोगों की आखें चौधिया गयीं। उन लोगों को लगा भगवान् सूर्य श्रीभगवान् का दर्शन करने के लिए आ रहे हैं। उस समय भगवान् चौसर खेल रहे थे। उसी समय लोगों ने श्रीभगवान् को सूचित किया ॥५॥

भावार्थ दीपिका

दीव्यते क्रीडते। सूर्योऽयमिति शङ्किता: सन्त: कथयामासुरिति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

दीव्यते अर्थात् खेलते हुए। ये सूर्य है इस तरह से शङ्का करके लोग श्रीभगवान् को बतलाये ॥५॥

नारायण नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर। दामोदरारविन्दाक्ष गोविन्द यदुनन्दन ॥६॥
एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते। मुष्णन्गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि तिग्मगु: ॥७॥

अन्वय:— हे नारायण ! हे शङ्खचक्रगदाधर ! हे दामोदर ! हे अरविन्दाक्ष ! हे गोविन्द ! हे यदुनन्दन ! हे जगत्पते! एष: त्वां दिदृक्षु: सविता तीक्ष्णगु: गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि मुष्णन् आयाति ॥६-७॥

अनुवाद— लोगों ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा हे नारायण, हे शङ्ख चक्र और गदा धारण करने वाले, हे दामोदर, हे कमल के समान मनोज्ञ और कोमल नेत्रों वाले प्रभो, हे गोविन्द, हे यदुवंश शिरोमणे, हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामी प्रभो आपका दर्शन करने के लिए तीक्ष्ण किरणों वाले तथा अपनी किरणों से सबों के नेत्रों को चौंधिया देते हुए ये भगवान् सूर्य आ रहे हैं ॥६-७॥

भावार्थ दीपिका

सूर्यं नमस्कारार्थमागतं कल्पयित्वोद्रिक्तभक्तीनां संबोधनानि नारायणेत्यादीनि । गभस्तिचक्रेण रश्मिजालेन । मुष्णन्प्रतिघ्नन्। तिग्मास्तीक्ष्णा गावो रश्मयो यस्य सः ॥६-७॥

भाव प्रकाशिका

सूर्य भगवान् को नमस्कार करने के लिए आ रहे हैं इस तरह से कल्पना करके श्रीभगवान् के प्रति लोगों में भक्ति उदीर्ण हो गयी इसीलिए लोग श्रीभगवान् को नारायण आदि संबोधनों से संबोधित किए हैं । गभस्ति चक्रेण अर्थात् किरण समूह से मुष्णन् अर्थात् चौंधियाते हुए । तिग्मगुः अर्थात् तीक्ष्ण किरणों वाले ॥६-७॥

नन्वन्विच्छन्ति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः । ज्ञात्वाऽद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥८॥

अन्वयः— ननु हे प्रभो ! ते मार्गं विवुधर्षभाः त्रिलोक्याम् इच्छन्ति यदुषु गूढं त्वा ज्ञात्वा अद्य अजः याति ॥८॥

अनुवाद— हे प्रभो ! सभी श्रेष्ठ देवता आपको प्राप्त करने के लिए त्रिलोकी में आपके मार्ग का अन्वेषण करते रहते हैं किन्तु वे उसे प्राप्त नहीं करते । आपको यदुवंशियों में छिपे हुए जानकर आज भगवान् सूर्य आपका दर्शन करने के लिए आ रहे हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

न चेदमघटमानमित्याहुः-नन्विति । अन्विच्छन्ति मृगयन्ते । अजः सूर्यः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

ननु इत्यादि श्लोक से बतलाते हैं कि यह असम्भव नहीं है । अन्विच्छन्ति अर्थात् अन्वेषण किया करते हैं । **अजः अर्थात्** सूर्य ॥८॥

श्रीशुक उवाच

निशम्य बालवचनं प्रहस्याम्बुजलोचनः । प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिनाज्वलन् ॥९॥

अन्वयः— बालवचनं निशम्य अम्बुजलोचनः प्रहस्य प्राह असौ रविःदेवः न मणिना ज्वलन् सत्राजितः ॥९॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— अनभिज्ञ लोगों की बातों को सुनकर कमलनयन भगवान् हँसने लगे । उन्होंने कहा ये भगवान् सूर्य नहीं हैं । यह तो मणियों से प्रकाशित होने वाला सत्राजित हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

बालानामज्ञानां वचनम् । जवलन् विद्योतमानः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

अनभिज्ञ लोगों की वाणी को सुनकर । ज्वलन् अर्थात् प्रकाशित होता हुआ ॥९॥

सत्राजित्स्वगृहं श्रीमत्कृतकौतुकमङ्गलम् । प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत् ॥१०॥

अन्वयः— सत्राजित् कृतकौतुकमङ्गलं श्रीमत् स्वगृहं पविश्य विप्रैः देवसदने मणिं न्यवेशयत् ॥१०॥

अनुवाद— सत्राजित् अपने समृद्ध घर में प्रवेश किया, वहाँ उसके आने के उपलक्ष्य में मङ्गल मनाया जा रहा था । सत्राजित् ने ब्राह्मणों द्वारा देवगृह में मणि की प्रतिष्ठा करा दिया ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

कृतानि कौतुकेनोत्सवेन मङ्गलानि यस्मिंस्तत् । विप्रैः कृत्वा ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

कृतकौतुकमङ्गलम् अर्थात् जहाँ महोत्सव के द्वारा मङ्गल मनाया जा रहा था । ब्राह्मणों से कराकर ॥१०॥

दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो । दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः ॥
न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः ॥११॥

अन्वयः— प्रभो यत्र अभ्यर्चितः मणिः दिने-दिने अष्टौ स्वर्ण भारान् सृजति । दुर्भिक्ष मारी, अरिष्टानि, सर्पाधिव्याधयः अरिष्टानितत्र मायिनः मायां च नास्ति ॥१५॥

अनुवाद— राजन् जहाँ पर वह पूजितमणि रहती थी वह प्रतिदिन आठ भर सुवर्ण उत्पन्न करती थी । वहाँपर दुर्भिक्ष, महामारी आदि अरिष्ट नहीं होते थे । वहाँ माया करने वालों की माया का भी प्रभाव नहीं होता था ॥११॥

भावार्थ दीपिका

भारप्रमाणं च-'चतुर्भिर्व्रीहिभिर्गुञ्जं गुञ्जान्पञ्च पणं पणान् । अष्टौ धरणमष्टौ च कर्षं तांश्चतुरः पलम् । तुलां पलशातं प्राहुर्भारः स्याद्विंशतिस्तुलाः' इति । मारीनामा कालमृत्युः । अरिष्टमभद्रम् । अशुभा दुःखहेतवः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

भार का प्रमाण बतलाते हुए कहा गया है कि चार ब्रीहि (धान) का एक गुंजा होता है । पाँच गुंजे का पण होता है । आठ पणों का एक धरण होता है, आठ धरण का एक कर्ष होता है चार कर्ष का एक पल होता है, सौ पल का एक तुला होता है और बीस तुला का एक भार होता है । मारी अर्थात[काल मृत्यु, अरिष्ट अर्थात् अकल्याण, अशुभ अर्थात् दुःख का कारण ॥११॥

स याचितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा । नैवार्थकामुकः प्रादाद्याच्ञाभङ्गमतर्कयन् ॥१२॥

अन्वयः— सः क्वापि शौरिणा यदुराजाय मणिं याचितः अर्थकामुकः याच्ञाभङ्गम् अतर्कयन् नैव प्रादात् ॥१२॥

अनुवाद— एक बार श्रीभगवान् ने सत्राजित् से कहा कि वह यदुवंशियों के राजा उग्रसेन को वह मणि दे दे, किन्तु इस बात पर विचार किये बिना अर्थ लोलुप सत्राजित् ने मणि नहीं दिया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

क्वापि कदाचित् । अनेन भगवत्यसमर्प्य स्वयमग्रभोजिनः सर्वानिष्टनिवर्तकमप्यनिष्टहेतुरेव भवतीति सूचितम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

क्वापि अर्थात् एक बार इसके द्वारा यह सूचित किया गया है श्रीभगवान् को समर्पित किए बिना स्वयम् पहले किसी वस्तु का उपभोग करने वाले के लिए सम्पूर्ण अनिष्टों को दूर करने वाली भी वस्तु अनिष्ट कारिणी हो जाती है ॥१२॥

तमेकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् । प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद्वने ॥१३॥

अन्वयः— एकदा तं महाप्रभं मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य प्रसेनः हयम् आरुह्य वने मृगयां व्यचरत् ॥१३॥

अनुवाद— एक बार प्रसेन उस महाकान्ति सम्पन्न मणि को अपने गले में बाँधकर घोड़े पर चढ़कर वन में शिकार कर रहा था ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

तदेव दर्शयितुमाह-तमेकदेति । प्रतिमुच्य बद्ध्वा । प्रसेनः सत्राजिद्भ्राता ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

उस अनर्थ को ही दिखलाने के लिए **तम्० इत्यादि** श्लोक कहा गया है । प्रतिमुच्य अर्थात् बाँधकर । प्रसेन: अर्थात् सत्राजित् का भाई ।।१३।।

प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केसरी । गिरिं विशज्जाम्बवता निहतो मणिमिच्छता ।।१४।।

अन्वयः— केसरी प्रसेनं सहयं हत्वा । मणिम् आच्छिद्य गिरिं विशनमणिमिच्छता जाम्बवता निहतः ।।१४।।

अनुवाद— एक सिंह प्रसेन तथा उसके घोड़े को मारकर मणि को छिन लिया जब पर्वत की गुफा में प्रवेश ही करना चाहता था मणि प्राप्त करने की इच्छा से जाम्बवान् ने सिंह को मारकर मणि को ले लिया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

आच्छिय आकृष्य गृहीत्वा ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

आच्छिद्य अर्थात् लेकर ।।१४।।

सोऽपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले । अपश्यन्भ्रातरं भ्राता सत्राजित्पर्यतप्यत ।।१५।।

अन्वयः— सः अपि बिले मणिं कुमारस्य क्रीडनकं चक्रे । भ्राता सत्रजित् भ्रातरं अपश्यन पर्यतप्यत ।।१५।।

अनुवाद— जाम्बवान् भी उस मणि को लेकर अपनी गुफा में मणि को अपने बच्चे को खेलने के लिए दे दिए । सत्राजित् अपने भाई को नहीं आया हुआ देखकर दु:खी हो गये ।।१५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१५।।

प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनंगतः । भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः ।।१६।।

अन्वयः— मणिग्रीवः वनं गतः मम भ्राता कृष्णेन निहतः तत् श्रुत्वा जनाः कर्ण-कर्णे अजपन् ।।१६।।

अनुवाद— सत्राजित् कहने लगे कि मेरा भाई मणि को गले में बाँधकर वन में गया था प्राय: कृष्ण ने उसे मार दिया । यह सुनकर लोग आपस में काना-फूसी करने लगे ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

अजपन्नुपांशु अवोचन् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

अजपन् अर्थात् आपास में बातें करने लगे ।।१६।।

भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि । मार्ष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरैः ।।१७।।

अन्वयः— तदुपश्रुत्य भगवान् आत्मनि लिप्तं दुर्यशः मार्ष्टुं नागरै प्रसेनपदवीम् अन्वपद्यत ।।१७।।

अनुवाद— उसको सुनकर भगवान् अपने पर लगे कलंक को दूर करने के लिए नागरिकों के साथ प्रसेन को ढूंढने के लिए वन में गये ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

हतं प्रसेनमश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने । तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः ॥१८॥

अन्वयः— वने केसरिणा प्रसेनं अश्वं चहतं वीक्ष्य तं च अद्रिपृष्ठे ऋक्षेण निहतं जनाः ददृशुः ॥१८॥

अनुवाद— खोजते-खोजते लोगों ने घोर जङ्गल में देखा कि प्रसेन और उसके अश्व को सिंह ने मार दिया है उसके पैरों के चिह्न को देखते हुए जब लोग आगे बढ़े तो देखे कि उस सिंह को पर्वत के ऊपर एक ऋक्ष ने उस सिंह को मार दिया है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

ऋक्षराजबिलं भीममन्धेन तमसा वृतम् । एको विवेश भगवानवस्थाप्य वहिः प्रजाः ॥१९॥

अन्वयः— भगवान् प्रजाः बहिः अवस्थाप्य अन्धेन तमसावृतम् ऋक्षराजभीमम् बिलं भगवान् एकः विवेश ॥१९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् प्रजाओं को बाहर ही रखकर घोर अन्धकार से युक्त ऋक्षराज के भयङ्कर गुफा में अकेले प्रवेश किए ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

तत्र दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम् । हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकान्तिके ॥२०॥

अन्वयः— तत्र बालकृष्डनकं कृतं मणिं दृष्ट्वा हर्तुं कृतमतिः तस्मिन् अर्भकोन्ति के अवतस्थे ॥२०॥

अनुवाद— वहाँ जाकर भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि उस श्रेष्ठ मणि को बच्चे का खिलौना बना दिया गया है, अतएव उस मणि का अपहरण कर लेने की इच्छा से भगवान् उस बालक के सन्निकट में जाकर खड़े हो गये॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

तमपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् । तच्छ्रुत्वाऽभ्यद्रवत्क्रुद्धो जाम्बवान्बलिनां वरः ॥२१॥

अन्वयः— तम् अपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री भीतवत् चुक्रोश तत् श्रुत्वा क्रुद्धः बलिनां वरः जाम्बवान् अभ्यधावत् ॥२१॥

अनुवाद— उन अपरिचित पुरुष को देखकर बच्चे की धाय डरी हुई के समान चिल्ला पड़ी। उसको सुनकर बलवानों में श्रेष्ठ ऋक्षराज जाम्बवान क्रोध करके दौड़ आये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनात्मनः । पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ॥२२॥

अन्वयः— कुपितः वैसः प्राकृतं पुरुषं मत्त्व अनुभाववित् न तेन आत्मनः स्वामिना भगवता युयुधे ॥२२॥

अनुवाद— क्रुद्ध जाम्बवान् श्रीभगवान् को एक साधरण मनुष्य समझ लिए वे श्रीभगवान् के प्रभाव को नहीं जानें, और वे अपने ही स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने लगे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

द्वन्द्वयुद्धं सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः । आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥२३॥

अन्वयः— क्राव्यार्थे श्येनयोरिव उभयोः विजिगीषतोः आयुधाश्मद्रुमैः दोर्भिः सुतुमुलं द्वन्द्वयुद्धम् ॥२३॥

अनुवाद— जैसे मांस के लिए दो बाज पंक्षी लड़ रहे हो वैसे ही एक-दूसरे को परास्त कर देने के लिए पहले तो आयुधों से युद्ध किए, उसके पश्चात् पत्थर की शिलाओं से, फिर वृक्षों से और अन्त में बाहु युद्ध करने लगे। इस तरह से भयङ्कर द्वन्द्व युद्ध किए ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

क्रव्यार्थे आमिषार्थे ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

क्रव्यार्थे अर्थात् मांस के लिए ।।२३।।

आसीत्तदष्टाविंशाहमितरेतरमुष्टिभिः । वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम् ।।२४।।

अन्वयः— इतरेतरमुष्टिभिः व्रजनिष्पेशपरुषैः अविश्रमम् अहर्निशम् तत् अष्टाविंशाहम् आसीत् ।।२४।।

अनुवाद— वज्र के समान कठोर एक दूसरे पर मुक्के का प्रहार करने लगे इस तरह रात-दिन लगातार (युद्ध करते) हुए दोनों के अठाइस दिन बीत गये ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

अष्टाविंशाहं अष्ट च विंशतिश्चाहानि दिनानि यस्मिंस्तदष्टाविंशाहम् । विंशतिशब्दे तिलोपआर्षः । वज्रस्य निष्पेषो निर्घातस्तद्वत्परुषैर्निष्ठुरेः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

अष्टाविंशाहम् अर्थात् अठाइस दिन। विशंति के ति कालोप आर्ष है। वज्रनिष्पेषम् अर्थात् वज्र प्रहार के समान कठोर।।२४।।

कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टाङ्गोरुबन्धनः । क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः ।।२५।।

अन्वयः— कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टाङ्गोरुबन्धनः क्षीणसत्त्वः स्विन्नगात्रः अतीव विस्मितः तमाह ।।२५।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के मुक्कों के प्रहार से जाम्बवान् के शरीर की एक-एक गांठ टूट गयी । उनका उत्साह समाप्त हो गया । पसीने से शरीर लथपथ हो गया । तब वे अत्यन्त आश्चर्य चकित होकर श्रीभगवान् से कहे ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णस्य मुष्टीनां विनिष्पातैराघातैर्निष्पिष्टानि श्लथान्यङ्गानामुरूणि बन्धनानि संधिस्थानानि यस्य सः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के मुक्के के प्रहार से जाम्बवान के शरीर के सारे सन्धिस्थानों के बन्धन ढीले पड़ गये।।२५।।

जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहो बलम् । विष्णुं पुराणपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ।।२६।।

अन्वयः— अहं त्वां सर्वभूतानां प्राणः ओजः सहः बलम् पुराण पुरुषम् प्रभविष्णुम् अधीश्वरम् विष्णुम् जाने ।।२६।।

अनुवाद— प्रभो ! मैं जान गया कि आप ही सबों के प्राण, इन्द्रिय बल, मनोबल, और शरीर बल हैं। आप ही पुराण पुरुष, सबों को परास्त कर देने वाले, सबों के स्वामी भगवान् विष्णु ही हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

लोके को वाऽयं मत्तो बलीयानिति विस्मितः सन्विमृश्याह-जाने इति । सर्वभूतानां यः प्राणस्तत्र यदोजः सहो बलं च इन्द्रियहृदयदेहबलानि तत्सर्वं त्वमित्याहं जाने । कथं तथात्वमत आह-विष्णुमित्यादि ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

जाम्बवान् यह सोचकर कि संसार में कौन ऐसा पुरुष है जो मुझसे बलवान् है ? वे विचार करके जाने इत्यादि श्लोक कहे । जो सबों के प्राण, इन्द्रिय बल, हृदय बल और देह के बल यह सबकुछ आप ही हैं । यह कैसे कहते हैं तो इस पर कहते हैं कि आप ही विष्णु इत्यादि हैं ।।२६।।

त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानामपि यच्च सत् । कालः कलयतामीशः पर आत्मा तथात्मनाम्॥२७॥

अन्वयः— त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानामपि यत् च सत् कलयतामीशः कालः तथा आत्मनाम् पर आत्मा ॥२७॥

अनुवाद— आप ही विश्व की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा को बनाने वाले हैं तथा सृज्य-सृज्य पदार्थों में सत्ता रूप से विद्यमान आप हैं । आप मारने वालों के भी काल हैं तथा आत्माओं में श्रेष्ठ आप परमात्मा हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

पुराणत्वे हेतुः-त्वं हीति । स्रष्टा निमित्तम् । यच्च सदुपादानम् । अतः पुराणम् । प्रभविष्णुत्वे हेतुः-काल इति । अधीश्वरस्त्वमप्यत एवेत्याह-ईशः पर इति । न च तटस्थ इत्याह-आत्मनामात्मेति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

त्वं हि इत्यादि से पुराणत्व में हेतु उपन्यस्त किया गया है । स्रष्टा अर्थात् निमित्त कारण यच्चसत् कहकर जगत् का उपादान कारण बतलाया गया है । अतएव सबों से प्राचीन भगवान के प्रभविष्णुत्व में हेतु उनको काल कहकर बतलाया गया है । इसीलिए आप सबों के स्वामी हैं । परमात्मा तटस्थ इसलिए नहीं है कि वे आत्माओं की भी आत्मा हैं ॥२७॥

यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षैर्वर्त्मादिशत्क्षुभितनक्रतिमिङ्गिलोऽब्धिः ।
सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लङ्का रक्षःशिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ॥२८॥

अन्वयः— यस्येषदुत्कलितरोष कटाक्षमोक्षैः क्षुभितनक्रतिमिङ्गिलोब्धिः वर्त्म आदिशत् स्वयशः सेतुकृतः लङ्का च उज्ज्वलिता इषुक्षतानि शिरांसि भुविपेतुः ॥२८॥

अनुवाद— प्रभो ! आप अपने नेत्रों में थोड़ा सा क्रोध का भाव लेकर तिरछी दृष्टि से समुद्र को देखा था। उस समय समुद्र में रहने वाले घडियाल और मगरमच्छ व्याकुल हो गये, और समुद्र ने आपको मार्ग प्रदान कर दिया । उस समय आप समुद्र पर सेतु का निर्माण करके अपने यश का विस्तार किया । आपने लङ्का को तहस नहस कर दिया और आपके बाणों से कटकर राक्षसों के शिर पृथिवी पर गिर पड़े ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

यत एवं भूतोऽते ममेष्टदैवतं रघुनाथ एव त्वमित्याह-यस्येति । ईषदुत्कलित उद्दीपितो यो रोषस्तेन ये कटाक्षमोक्षास्तैः क्षुभिता नक्रा ग्राहास्तिमिङ्गिला महामत्स्याश्च यस्मिन् सोऽब्धिर्वर्त्म मार्गमादिशद्दत्तवांस्तथापि तस्मिन् येन त्वया स्वयश एव सेतुः कृतः । उज्ज्वलिता च दग्धा । यस्येषुभिः क्षतानि छिन्नानि रक्षसो दशग्रीवस्य शिरांसि भुवि पेतुः । स एव त्वमिति जाने॥२८॥

भाव प्रकाशिका

चूकि आप ऐसे है अतएव आप मेरे इष्ट देवता श्रीरामचन्द्र ही हैं । इस बात को **यस्य० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । थोड़ा से क्रोध के आने से आपने जो तिरछी नजर से समुद्र को देखा, उससे समुद्र में रहने वाले ग्राह और तिमिङ्गिल इत्यादि महामत्स्य आदि क्षुब्ध हो गये । इसप्रकार के समुद्र ने आपको मार्ग प्रदान कर दिया । उसके कारण आपने अपने यशस्वरूप सेतु का निर्माण किया । आपने लङ्का को तहस नहस कर दिया। आपके बाणों से कट-कटकर राक्षसों के सिर पृथिवी पर गिर पड़े । वही श्रीराम आप हैं यह मैंने जान लिया है॥२८॥

इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः । व्याजहार महाराज भगवान्देवकीसुतः ॥२९॥

अन्वयः— हे महाराज ! इति विज्ञात विज्ञानम् ऋक्षराजानम् अच्युतः भगवान् देवकी सुतः व्याजहार ॥२९॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् इस तरह से जिनको परमात्म तत्त्व का ज्ञान हो गया था ऐसे ऋक्षराज जाम्बवान से अपने स्वरूप में सदैव स्थित रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण उनसे कहे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

इति विज्ञातं विज्ञानं येन तम् । विज्ञानशब्दः करणसाधनः कर्मसाधनो वा । ऋक्षराजं प्रत्युक्तवान् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

श्रीजाम्बवानजी को अब परमात्म तत्त्व का ज्ञान हो गया था । उनको श्रीभगवान् ने कहा । विज्ञानम् पद या तो करण साधन है । अर्थात् इसकी व्युत्पत्ति विज्ञायते अनेन इस तरह से कारण में व्युत्पत्ति है, अथवा कर्म साधन है । अर्थात् विज्ञायते यत् तत् । इस तरह से व्युत्पत्ति है ।।२९।।

अभिमृश्यारविन्दाक्षः पाणिना शंकरेण तम् । कृपया परया भक्तं प्रेमगम्भीरया गिरा ।।३०।।

अन्वयः— अरविन्दाक्षः शङ्करेण पाणिना तम् अभिमृश्य परया कृपया प्रेमगम्भीरया गिरा भक्तं व्याजहारेति पूर्वश्लोकेनान्वयः।।३०।।

अनुवाद— कमल के समान मनोज्ञ एवं कोमल नेत्रों वाले भगवान् श्रीकृष्ण कल्याणकारी अपने हाथों से ऋक्षराज के शरीर पर हाथ फेरकर अत्यधिक कृपा से युक्त होकर प्रेमपूर्ण अपनी गम्भीर वाणी से भक्त जाम्बवान् से कहे ।।३०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३०।।

मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् । मिथ्याभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनामुना ।।३१।।

अन्वयः— हे ऋक्षपते ! वयम् इह विलम् अमुनामणिना आत्मनः मिथ्याभिशापं प्रमृजन् मणिहेतोः इह विलम् प्राप्ताः।।३१।।

अनुवाद— हे ऋक्षराज ! मैं इस गुफा में इस मणि के द्वारा अपने ऊपर लगे हुए मिथ्या कलङ्क को दूर करने के लिये इस मणि को प्राप्त करने के लिए आया हूँ ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

वयं बहवो बिलद्वारं प्राप्तास्तत्र मिथ्याभिशापममुना मणिना प्रमृजन् प्रमार्ष्टुमहमन्तर्बिलमिह प्राप्त इत्यर्थः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा कि हम बहुत से लोग इस गुफा के द्वार पर आये हैं अपने ऊपर लगे मिथ्या कलङ्क को दूर करने के लिए मै इस गुफा के भीतर आया ।।३१।।

इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जाम्बवतीं मुदा । अर्हणार्थं स मणिना कृष्णायोपजहार ह ।।३२।।

अन्वयः— इत्युक्तः मुदा सः स्वां दुहितरं जाम्बवतीं कन्यां अर्हणार्थं मणिना कृष्णाय उपजहार ।।३२।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के द्वारा इस तरह से कहे जाने पर प्रसन्नमना जाम्बवानजी श्रीभगवान् की पूजा के लिए मणि के साथ अपनी पुत्री जाम्बवती नाम की कन्या को भगवान् श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिए ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

सह मणिना । समर्पयामास ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

मणि के साथ जाम्बवती को समर्पित कर दिए ।।३२।।

अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः । प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ।।३३।।

अन्वयः— विलं प्रविष्टस्य शौरेः निर्गमं अदृष्ट्वा जनाः द्वादशाहानि प्रतीक्ष्य दुःखिताः स्वपुरं ययुः ।।३३।।

अनुवाद— गुफा में प्रवेश किए हुए श्रीहरि को बाहर नहीं आते हुए देखकर लोग बारह दिन तक प्रतीक्षा करके दुःखी होकर द्वारका लौट गये ।।३३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३३।।

निशम्य देवकीदेवी रुक्मिण्यानकदुन्दुभिः । सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन्बिलात्कृष्णमनिर्गतम् ॥३४॥

अन्वयः— बिलात् कृष्णमनिर्गतम् निशम्य देवकीदेवी, रुक्मिणी, आनकदुन्दुभिः सुहृदः ज्ञातयः अशोचन् ॥३४॥

अनुवाद— गुफा से भगवान् श्रीकृष्ण के बाहर नहीं निकलने की बात सुनकर देवकी देवी, श्रीरुक्मिणजी, वसुदेवजी, अन्य संबन्धी एवं कुटुम्बीजन शोक करने लगे ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

सत्राजितं शपन्तस्ते दुःखिता द्वारकौकसः । उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥३५॥

अन्वयः— ते दुखिताः द्वारकौकसः सत्राजितं शपन्तः कृष्णोपलब्धये महाभायां दुर्गाम् उपतस्थुः ॥३५॥

अनुवाद— वे दुःखी द्वारकावासी सत्राजित् की निन्दा करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए महामाया दुर्गा देवी की उपासना करने लगे ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णप्राप्तये चन्द्रभागां नाम दुर्गांमभजन् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए चन्द्रभागा नामक दुर्गा देवी की आराधना किए ॥३५॥

तेषां तु देव्युपस्थानात्प्रत्यादिष्टाशिषा स च । प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन्हरिः ॥३६॥

अन्वयः— तेषां तु देव्युपस्थानात् प्रत्यादिष्टा शिषा स च सिद्धार्थः सदारः हरिः हर्षयन् प्रादुर्बभूव ॥३६॥

अनुवाद— उन सबों की आराधना से प्रसन्न होकर देवी ने आशीर्वाद दिया । भगवान् श्रीकृष्ण भी सबों को प्रसन्न करते हुए मणि प्राप्त करके अपनी पत्नी के साथ प्रकट हो गये ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

स च कृष्णस्तेषां प्रादुर्बभूव । 'आसव' इति पाठे आसव इन्द्रियाणि तेषां प्रेष्ठ इत्यर्थः कदा देव्या उपस्थानात् । तया तान्प्रति आदिष्टा दत्ता या आशीः कृष्णं द्रक्ष्यथेति तया सहैव ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

वे भगवान् उन सबों के समक्ष प्रकट हो गये । जहाँ पर आसवः पाठ है वहाँ पर असूनो प्रेष्ठ इस अर्थ में शैषिक अण् प्रत्यय होकर आसव रूप व्युत्पन्न हुआ है । अर्थात् उन लोगों के प्रियतम श्रीभगवान् प्रकट हो गये । कब प्रकट हुए ? देवी की उपासना करने से । देवीजी ने जो लोगों को आशीर्वाद दिया कि तुमलोग श्रीकृष्ण भगवान् का दर्शन करोगे, उसी आशीर्वाद के साथ ही ॥३६॥

उपलभ्य हृषीकेशं मृतं पुनरिवागतम् । सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥३७॥

अन्वयः— मृतं पुनः आगतमिव पत्न्या सहमणिग्रीवं हृषीकेशम् उपलभ्य सर्वे जातमहोत्सवाः ॥३७॥

अनुवाद— जैसे कोई मरकर पुनः जीवित हो जाय उसी तरह पत्नी के साथ गले में मणि बाँधे हुए हृषीकेश को प्राप्त करके सबलोग महोत्सव मनाने लगे ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

लोके जनाः कथंचिन्मृतं बन्धुं पुनरागतमुपलभन्ते तद्वदुपलभ्य सर्वे जातमहोत्सवा आसन्निति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

लोक में देखा जाता है कि कोई व्यक्ति मरकर भी जी जाता है तो उसके बान्धव प्रसन्न हो जाते हैं उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण के आये हुए देखकर सबलोग उत्सव मनाने लगे ॥३७॥

सत्राजितं समाहूय सभायां राजसंनिधौ । प्राप्तिं चाख्याय भगवान्मणिं तस्मै न्यवेदयत् ॥३८॥

अन्वयः— भगवान् सत्राजितं सभायां समाहूय राजसन्निधौ प्राप्तिं चाख्याय तस्मै मणिं न्यवेदयत् ॥३८॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण सत्राजित् को सभा में बुलाकर राजा के सन्निकट में मणि की प्राप्ति संबन्धी सारी बातें बतलाकर मणि सत्राजित् को समर्पित कर दिए ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३८॥

स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वावाङ्मुखस्ततः । अनुतप्यमानो भवनमगमत्स्वेन पाप्मना ॥३९॥

अन्वयः— स च अतिव्रीडितः रत्नं अवाङ्मुखः गृहित्वा ततः स्वेन पापेन अनुतप्यमानः भवनम् अगमत् ॥३९॥

अनुवाद— सत्राजित् अत्यन्त लज्जित थे । वे नीचे मुँह करके मणि को लेकर अपने द्वारा किए गये अपराध से अत्यधिक सन्तप्त होते हुए अपने घर आये ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

पाप्मनाऽपराधेनानुतप्यमानः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

अपराध के कारण अत्यन्त चिन्तित ॥३९॥

सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः । कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद्वाच्युतः कथम् ॥४०॥

अन्वयः— तदेवाघं अनुध्यायन् सः बलवद्विग्रहाकुलः आत्मरजः कथं मृजामि अच्युतः कथम् प्रसीदेत् ॥४०॥

अनुवाद— वे अपने उसी अपराध को सोचते रहते थे, बलवान् से विरोध के कारण वे व्याकुल भी थे यही सोचते थे कि अपने अपराध का अपनोदन कैसे करूँ ? और भगवान् श्रीकृष्ण मुझ पर कैसे प्रसन्न हों ?॥४०॥

भावार्थ दीपिका

अघं दोषम् । आत्मनो रजो मलमपराधमिति ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

अघम् अर्थात् अपराध, रजोमलम् अपराध ॥४०॥

किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद्वा जनो यथा । अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥४१॥

अन्वयः— अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् किं साधुकृत्वा मह्यम् यथा जनः न शपेत् ॥४१॥

अनुवाद— दूरदर्शी नहीं हूँ, क्षुद्र और अज्ञानी हूँ मैं घन का लोभी हूँ मैं कौन सा ऐसा अच्छा काम करूँ कि लोग मुझे कोसे नहीं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

किं कृत्वा कस्मिन्कृते इत्यर्थः । साधु भद्रम् । अदीर्घदर्शनमविचारकं माम् । क्षुद्रं कृपणम् । मूढं मन्दमतिम् ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

मेरे कौन से कार्य के करने पर साधु अर्थात् अच्छा, अदीर्घदर्शनम् विचार हीन मैं क्षुद्रं अर्थात् कृपण मूढम अर्थात् अज्ञानी ॥४१॥

दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च । उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शान्तिर्न चान्यथा ॥४२॥

अन्वयः— तस्मै स्त्रीरत्नं दुहितरं रत्नमेव च दास्यामि । अयं उपायः समीचीनः तस्य अन्यथा शान्तिर्न ॥४२॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण को मैं स्त्रीरत्न अपनी पुत्री तथा रत्न को दे दूँगा यही सबसे अच्छा उपाय है। किसी भी दूसरे प्रकार से शान्ति नहीं मिल सकती है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

एवं ध्यायन्नुपायं निश्चिनोति-दास्य इति । स्त्रीरत्नं दुहितरं तावद्दास्यामि तदनन्तरं पारिबर्हत्वेन रत्नमपीति ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से उपाय का चिन्तन करते हुए उन्होने **दास्ये इत्यादि** श्लोक के द्वारा निश्चय किया मैं स्त्रीरत्न अपनी पुत्री का उनसे विवाह कर दूँगा और दहेज के रूप में मणि प्रदान कर दूँगा ॥४२॥

एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित्स्वसुतां शुभाम् । मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥४३॥

अन्वयः— सत्राजितः एवं बुद्ध्या व्यवसितः स्व शुभां सुताम् मणिम् च स्वयम् उद्यम्य उपजहार ह ॥४३॥

अनुवाद— सत्राजित अपनी विवेक बुद्धि से इस तरह का निश्चय करके स्वयं ही इसके लिए उद्योग किए और अपनी मङ्गलमयी पुत्री और मणि दोनों को श्रीभगवान् को समर्पित कर दिए ॥४३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४३॥

तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि । बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥४४॥

अन्वयः— शीलरूपौदार्य गुणान्वितां बहुभिः यचिताम् तां सत्यभामां भगवान् यथाविधि उपयेमे ॥४४॥

अनुवाद— शील स्वभाव, सौन्दर्य तथा उदारता आदि से युक्त तथा जिनको बहुत से लोग चाहते थे उन सत्यभामा से भगवान् श्रीकृष्ण ने विधि पूर्वक विवाह किया ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

बहुभिः कृतवर्मादिभिः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

बहुभिः अर्थात् कृतवर्मा आदि के द्वारा ॥४४॥

भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप । तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे स्यमन्तकोपाख्याने षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

अन्वयः— भगवान् प्राह नृप वयं मणिं न प्रचीच्छामः देवभक्तस्य तव आस्तां वयं च फलभागिनः ॥४५॥

अनुवाद— हे परीक्षित् श्रीभगवान् ने कहा हम स्यमन्तक मणि नहीं लेंगे, आप भगवान् सूर्य के भक्त है, इसे आप ही रखें हमतो इसका फल प्राप्त करेंगे ॥४५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के स्यमन्तकोपाख्यान के छपनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

मणिं न प्रतीच्छामो न स्वीकुर्मः । देवः सूर्यस्तद्भक्तस्येति कटाक्षः । फलभागिन इति । तवापुत्रत्वात्त्वदीयं धनमस्माकमेवेति गूढोऽभिप्रायः ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकाटीकायां षटपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

मैं मणि नहीं लूँगा, आप सूर्य के भक्त के ही पास यह रहे फलभागिन का मूढ अभिप्राय है कि आपको पुत्र तो है नहीं अतएव आपका धन तो हमारा ही है ॥४५॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवे स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के छपनवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।५६।।

सत्तावनवाँ अध्याय

स्यमन्तक हरण शतधन्वाका वध अक्रूरजी को फिर से द्वारका बुलाना

श्रीशुक उवाच

विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धानाकर्ण्य पाण्डवान् । कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून्॥१॥

अन्वयः— विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दः पाण्डवान् कुन्तीं च कुल्यकरणे दग्धान् श्रुत्वा सहरामः कुरून् ययौ ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् को इसका पता था कि पाण्डव और कुन्ती सुरक्षित हैं । फिर भी जब उन्होंने सुना कि कुन्ती और पाण्डव जल कर मर गये तो कुल परम्परा के अनुसार बलरामजी के साथ वे हस्तिनापुर गये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तपञ्चाशत्तमे तु पुनः शतधनोर्वधे । प्राप्तं स्म दुर्यशो मार्ष्टि कृष्णोऽक्रूराहृतान्मणेः ॥१॥ अक्रूरमुररीकृत्य मणेः पात्रमथाच्युतः । उपामन्त्र्य तमेकान्ते सरामोऽगाद्गजाह्वयम् ॥२॥ सत्राजितः श्रीकृष्णाज्ञाभङ्गफलं व्यक्तीकर्तुमाह–विज्ञातार्थोऽपीति। पाण्डवा बिलद्वारेण जतुगृहान्निर्गता इत्येवं विज्ञातोऽर्थो येन सः । कुन्तीं च दग्धामाकर्ण्य । कुल्यकरणे कुलोचितसंव्यवहारार्थम्।।१।।

भाव प्रकाशिका

सत्तावनवें अध्याय में शतधन्वा का बध हो जाने पर अपयश प्राप्त भगवान् अक्रूरजी से मणि को लेकर अपने अपयश को दूर किए ॥१॥ उसके पश्चात् श्रीभगवान् यह जानकर कि मणि अक्रूरजी के पास है उसकी सलाह करके वलरामजी के साथ वे हस्तिनापुर गये ॥२॥ भगवान् की आज्ञा को नहीं मानने का फल सत्राजित् को मिला । इस बात को अभिव्यक्ति करने के लिए कहते हैं **विज्ञातर्थेऽपि इत्यादि पाण्डव सुरङ्ग** मार्ग से लाक्षागृह से निकल गये हैं इस वात को भगवान् जानते थे । कुन्ती को मरकर जल जाने का समाचार सुनकर कुलोचित व्यवहार के लिए ॥१॥

भीष्मं कृपं सविदुरं गान्धारीं द्रोणमेव च । तुल्यदुःखौ च संगम्य हा कष्टमिति होचतुः ॥२॥

अन्वयः— भीष्मं, कृपं, सविदुरं गान्धारीं द्रोणमेव च संगम्य हाकष्टम् इति ऊचतुः ॥२॥

अनुवाद— भीष्मजी, कृपाचार्य, विदुर, गान्धारी, श्रीद्रोणाचार्य, से मिलकर, संवेदना प्रकट करके कहे कि यह तो अत्यन्त कष्ट की बात है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अन्येषां तद्वाहदुःखाभावाद्भीष्मादीन्सङ्गम्येत्युक्तम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे लोगों के पाण्डवों के जल मरने का कष्ट नहीं था अतएव भीष्म इत्यादि से मिलकर यह कहा गया है ॥२॥

लब्ध्वैतदन्तरं राजन् शतधन्वानमूचतुः। अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मान्न गृह्यते ॥३॥

अन्वयः— एतत् अन्तरं लब्ध्वा अक्रूर कृतवर्माणौ शतधन्वानम् ऊचतुः । मणिः कस्मानगृह्यते ॥३॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर जाने से अवसर प्राप्त करके अक्रूर और कृतवर्मा ने शतधन्वा से कहा तुम सत्राजित् से मणि क्यों नहीं छिन लेते हो ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

योऽस्मभ्यं संप्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्य नः । कृष्णायादान्न सत्राजित्कस्माद्भ्रातरमन्वियात् ॥४॥

अन्वयः— यः सत्राजितः अस्मभ्यं संप्रतिश्रुत्य नः विगर्ह्य कन्यारत्नं कृष्णाय अदात् सः भ्रातरं कथम् न अन्वियात्॥४॥

अनुवाद— जिस सित्राजित ने अपनी कन्या का विवाह हमलोगों से करने की प्रतिज्ञा करके भी हमलोगों का तिरस्कार करके श्रीकृष्ण के साथ उसका विवाह कर दिया वह अपने भाई प्रसेन के समान क्यों न मर जाय॥४॥

भावार्थ दीपिका

ननु जीवन्सत्राजित्कथं मणिं दास्यति तत्रोचतुः-योऽस्मभ्यमिति । भ्रातरं प्रसेनं मृतं कस्मान्नान्वियान्नानुगच्छेत् । म्रियतामित्यर्थः॥४॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि जीवित रह कर मणि कैसे दे सकता है । इस पर उन दोनों ने **योऽस्मभ्यम्० इत्यादि** श्लोक कहा अर्थात् जैसे प्रसेनजित् मर गया उसी तरह यह मर जाय क्या हानि है ?॥४॥

एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः । शयानमवधील्लोभात्स पापः क्षीणजीवितः ॥५॥

अन्वयः— असत्तमः क्षीणजीवितः ताभ्यां भिन्नमतिः सः पापः शयानम् सत्राजितम् लोभात् अवधीत् ॥५॥

अनुवाद— पापी शतधन्वा का जीवन समाप्त हो चला था अक्रूर और कृतवर्मा दोनों के बहकाने में आकर सोते हुए सत्राजित् को मणि के लोभ से मार दिया ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रन्दन्तीनामनाथवत् । हत्वा पशून्सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥६॥

अन्वयः— विक्रोशमानानां अनाथवत् क्रन्दतीनां स्त्रीणां सौनिकवत् हत्वा, मणिम् आदाय जग्मिवान् ॥६॥

अनुवाद— जब स्त्रियाँ अनाथ के समान रो रही थीं उस समय जिस तरह कसाई पशुओं को मार देता है उसी तरह सत्राजित् को मारकर और मणि लेकर चला गया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

जग्मिवान् जगाम ॥६॥

भाव प्रकाशिका

जग्मिवान् अर्थात् चला गया ॥६॥

सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचार्पिता । व्यलपत्तात तातेति हा हतास्मीति मुह्यती ॥७॥

अन्वयः— हतं पितरं वीक्ष्य शुचर्पिता सत्यभामा तात-तात इति व्यलपत् हा हतास्मि इति मुह्यती ॥७॥

अनुवाद— अपने पिता को मरा हुआ देखकर शोक सन्तप्त सत्यभामा पिताजी पिताजी मैं तो मारी गई इस तरह से विलाप करती हुई मूर्छित हो गयीं ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम् । कृष्णाय विदितार्थाय तप्ताचख्यौ पितुर्वधम् ॥८॥

अन्वयः— मृतं तैलद्रोण्यां प्रास्यं गजसाह्वयं जगाम विदितार्थाय कृष्णाय तप्ता पितुवर्धम् आचख्यौ ॥८॥

अनुवाद— मरे हुए अपने पिता के शव को उन्होंने तेल के कड़ाहें में रखवा दिया और स्वयं हस्तिनापुर गयीं। अत्यन्त संतप्त होकर अपने पिता के वध की बात को उन्होंन सुनाया । यद्यपि इसको श्रीभगवान् जानते थे ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

तदाकर्ण्येश्वरौ राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् । अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः ॥९॥

अन्वयः— राजन् तदाकर्ण्य ईश्वरौ नृलोकताम् अनुसृत्य अहो नः परमं कष्टम् इति अस्राक्षौ विलेपतुः ॥९॥

अनुवाद— परीक्षित् उस समाचार को सुनकर सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण मनुष्य लोक की लीला करते हुए कहे, अरे यह तो हमलोगों पर बहुत बड़ी विपत्ति आ गयी । इस तरह से कहकर अपनी आँखों में आँसू भरकर विलाप किए ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

आगत्य भगवांस्तस्मात्सभार्यः साग्रज पुरम् । शतधन्वानमारेभे हन्तुं हर्तुं मणिं ततः ॥१०॥

अन्वयः— भगवान् तस्मात् सभार्यः साग्रजः पुरम् आगत्य शतधन्वानम् हन्तुम् मणिं ततः हर्तुम् आरेभे ॥१०॥

अनुवाद— हस्तिनापुर से अपनी पत्नी तथा श्रीबलरामजी के साथ द्वारकापुरी में आकर शतधन्वा को मारने तथा उससे मणि छिन लेने का प्रयास करने लगे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

सोऽपि कृष्णोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया । साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत स चाब्रवीत् ॥११॥

अन्वयः— सः अपि कृष्णोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया साहाय्यें कृतवर्माणम् अयाचत् स च अब्रवीत् ॥११॥

अनुवाद— शतधन्वा भी भगवान् श्रीकृष्ण के उद्यम को जानकर अपने प्राण की रक्षा करने के लिए कृतवर्मा से सहायता की याचना की तो कृतवर्मा ने भी कहा ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः । को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥१२॥

अन्वयः— अहम् ईश्वरयोः रामकृष्णयोः हेलनं न कुर्याम् तयोः वृजिनम् आचरन् कः नु क्षेमाय कल्पेत ॥१२॥

अनुवाद— श्रीबलरामजी और श्रीकृष्ण दोनों ईश्वर हैं उन दोनों के प्रतिकूल आचरण नहीं कर सकता हूँ, उन दोनों का अपराध करने वाला कौन व्यक्ति लोक अथवा परलोक में सुख पूर्वक रह सकता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

हेलनं प्रतिकूलम् । वृजिनमपराधम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

हेलनम् अर्थात् विपरीत, वृजिनम् अर्थात् अपराध ॥१२॥

कंस सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्त्याजितः श्रिया । जरासन्धः सप्तदश संयुगान्विरथो गतः ॥१३॥

अन्वयः— यद्द्वेषात् त्याजितः श्रिया सहानुगः कंसः अपीतः जरासन्धः सप्तदश संयुगान् विरथः गतः ॥१३॥

अनुवाद— उनसे ही द्वेष करने के कारण कंस राज्य लक्ष्मी को खो दिया और अपने अनुयायियों के साथ मारा गया । जरासन्ध भी सत्रह बार युद्ध में परास्त होकर बिना रथ के ही अपनी राजधानी में लौटा ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अपीतो मृतः । सप्तदशसंख्याकान् संयुगान् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

अपीतः अर्थात् मर गया, सत्रहबार युद्ध में ॥१३॥

प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत । सोऽप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥१४॥

अन्वयः— प्रत्याख्यातः सः च अक्रूरं पार्ष्णिग्राहम् अयाचत, सः अपि आह–कः विद्वान् ईश्वरयोः बलम् विरुध्येत? ॥१४॥

अनुवाद— कृतवर्मा के द्वारा इस तरह अनादृत होकर उसने अक्रूर से सहायता माँगी । इस पर अक्रूरजी ने कहा कौन इस प्रकार का विज्ञ पुरुष होगा जो उन दोनों ईश्वरों के बल पौरुष को जानकर भी उनका विरोध करे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च । चेष्टां विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताऽजया ॥१५॥

अन्वयः— यः इदं विश्वं लीलया सृजति अवति हन्ति च यस्य चेष्टां अजया मोहिताः विश्वसृजः न विदुः ॥१५॥

अनुवाद— जो इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि, रक्षा और संहार लीला पूर्वक ही करते हैं । उनकी चेष्टा को माया से मोहित होने के कारण ब्रह्माजी आदि विश्वविधाता नहीं जानते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तौ रामकृष्णावेकमेव तत्त्वमित्यभिप्रेत्याह–य इदमिति । अजया मायया । मोहिताऽजयेति सन्धिरार्षः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीबलरामजी और भगवान कृष्ण दोनों एक ही तत्त्व हैं इसी अभिप्राय से **यः** का एकवचनान्त प्रयोग किया गया है । अजया अर्थात् माया से, मोहिताजया में सन्धि आर्ष है ॥१५॥

यः सप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना । दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रमिवार्भकः ॥१६॥

अन्वयः— सप्तहायनः बालः यः शैलम् एकेन पाणिना उत्पाट्य उच्छिलिन्ध्रम् अर्भक इव लीलयदधार ॥१६॥

अनुवाद— सात वर्ष की बाल्यावस्था में ही जिन्होंने खेल-खेल में ही अपने एक ही हाथ से गोवर्धन पर्वत को उखाड़कर उसी तरह से धारण किए रहे जैसे कोई बालक उच्छिलिन्ध्र (बरसाती छत्ते) को धारण किए रहता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे । अनन्तायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः ॥१७॥

अन्वयः— तस्मै अद्भुतकर्मणे भगवते कृष्णाय नमः अनन्ताय, अनादिभूताय, कूटस्थाय आत्मने नमः ॥१७॥

अनुवाद— उन अद्भुत कर्मों को करने वाले भगवान श्रीकृष्ण को नमस्कार है । जो देशकाल वस्तु की सीमा से रहित हैं, अनादि हैं, वे सदा निर्विकार रहने वाले हैं तथा सबों की आत्मा हैं ऐसे श्रीभगवान को नमस्कार है॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् । तस्मिन्न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥१८॥

अन्वयः— तेनापि प्रत्याख्यातः सः शतधन्वा तस्मिन् महामणिम् न्यस्य, शतयोजनगं अश्वम् आरुह्य ययौ ॥१८॥

अनुवाद— अक्रूर के द्वारा भी मना कर दिए जाने पर शतधन्वा अक्रूर के ही यहाँ मणि को रखकर सौ योजन दौड़ने वाले घोड़े पर चढ़कर भाग गया ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अन्तर्यामिकृष्णनियुक्तस्तस्मिन्नक्रूरे मणिं न्यस्य ययावपलायत् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा प्रेरित होकर अक्रूर के यहाँ मणि रखकर भाग गया ॥१८॥

गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ । अन्वयाताम् महावेगैरश्वै राजन् गुरुद्रुहम् ॥१९॥

अन्वयः— हे राजन् ! रामजनार्दनौ गरुडध्वजं महावेगैः अश्वैः रथम् आरुह्य गुरुद्रुहम् अन्वायाताम् ॥१९॥

अनुवाद— हे परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी अत्यन्त वेग वाले अश्वों वाले गरुडध्वज रथ पर चढ़कर अपने श्वसुर से द्रोह करने वाले शतधन्वा का पीछा किए ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

गुरुः श्वशुरस्तद्धन्तारम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अपने श्वसुर को मारने वाले ॥१९॥

मिथिलायामुपवने विसृज्य पतितं हयम् । पद्भ्यामधावत्संत्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा ॥२०॥

अन्वयः— मिथिलायाम् उपवने पतितं हयम् विसृज्य संत्रस्तः पद्भ्यामधावत् कृष्णः अपि रुषा अधावत् ॥२०॥

अनुवाद— मिथिला के उपवन में मरे हुए घोड़े को छोड़कर शतधन्वा, पैदल भागा, भगवान् श्रीकृष्ण भी क्रोध करके उसके पीछे दौड़े ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

शतयोजनमात्रगामित्वात्ततः परं गन्तुमशक्तस्तत्र पतितः । तं हयं विसृज्य ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

उसका घोड़ा केवल सौ योजन ही जा सकता था, उससे आगे वह नहीं जा सकता था अतएव गिर पड़ा। उस गिरे हुए अश्व को छोड़कर ॥२०॥

पदातेर्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना । चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् ॥२१॥

अन्वयः— पदातेः तस्य पदातिः भगवान् तिग्मनेमिना चक्रेण शिरः उत्कृत्य वाससोः मणिम् व्यचिनोत् ॥२१॥

अनुवाद— पैदल भागने वाले शतधन्वा का पैदल पीछा करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने तीक्ष्ण धार वाले से चक्र से सिर काटकर उसके वस्त्रों में मणि खोजे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

व्यचिनोन्मृगयामास । अक्रूरे मणिरस्तीति सर्वज्ञतया विदित्वाऽपि रामवञ्चनाय तया कृतवानिति भावः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

व्यचिनोत् अर्थात् खोजे । अक्रूर के पास मणि है, यह सर्वज्ञ होने के कारण जनकार भी बलरामजी को वञ्चित करने के लिए उन्होंने वैसा किया ॥२१॥

अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाग्रजान्तिकम् । वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥२२॥

अन्वयः— अलब्धमणिः कृष्णः अग्रजान्तिकम् आगत्य आह शतधनुः वृथा हतः तत्र मणिः न विद्यते ॥२२॥

अनुवाद— मणि को नहीं प्राप्त करके भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी के पास आकर कहे कि शतधन्वा को व्यर्थ ही मारा गया उसके पास मणि नहीं है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना । कस्मिंश्चित्पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥२३॥

अन्वयः— ततः बलः आह नूनं शतधन्वना सः मणिः कस्मिंश्चित् पुरुषे न्यस्तः तम् अन्वेष पुरं व्रज ॥२३॥

अनुवाद— बलरामजी ने कि शतधन्वा ने किसी व्यक्ति के पास रख दिया है अतएव द्वारका जाकर उसे पता लगाओ ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

अन्वेषान्विच्छ ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

अन्वेष अर्थात् पता लगाओ ॥२३॥

अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम । इत्युक्त्वा मिथिलां राजन्विवेश यदुनन्दनः ॥२४॥

अन्वयः— अहम् मम प्रियतमं विदेहं, द्रष्टुम् इच्छामि राजन् इत्युक्त्वा मिथिलां विवेश ॥२४॥

अनुवाद— मैं अपने प्रियतम विदेह से मिलना चाहता हूँ राजन् परीक्षित् इस तरह से कहकर बलरामजी मिथिला में चले गये ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

सर्वज्ञस्यैवं विचेष्टितं मद्वञ्चनायेति मत्वा गूढमन्युराह-अहमिति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीकृष्ण सर्वज्ञ हैं अतएव मुझको वञ्चित करने के ही लिए उन्होंने ऐसी चेष्टा की है, इस तरह से सोचकर अपने क्रोध को छिपाये रखकर बलरामजी ने **अहम् इत्यादि** श्लोक कहा ॥२४॥

तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः । अर्हयामास विधिवदर्हणीयं समर्हणैः ॥२५॥

अन्वयः— तं दृष्ट्वा प्रीतमानसः मैथिलः सहसा उत्थाय समर्हणैः अर्हणीयं विधिवत् अर्हयामास ॥२५॥

अनुवाद— श्रीबलरामजी को देखकर मिथिलाधिपति विदेह प्रसन्न मन से उठकर श्रीबलरामजी की विविध प्रकार की सामग्रियों से सविधि पूजा की ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः । मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ॥
ततोऽशिक्षद्गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ॥२६॥

अन्वयः— प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना मानितः सः विभुः तस्यां मिथिलायां कतिचित् समाः उवास ततः कालेधार्तराष्ट्रःसुयोधनः गदां अशिक्षत् ॥२६॥

अनुवाद— प्रेम पूर्वक महामनस्वी जनकजी से समानित श्रीबलरामजी वहाँ कुछ वर्षों तक निवास किए, उस समय धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने उनसे गदा युद्ध सीखा ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

कतिचित्समाः संवत्सरान् । प्रासङ्गिकमाह-तत इति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

ततः इत्यादि श्लोक से यह बतलाया गया है कि वहाँ पर श्रीबलरामजी ने दुर्योधन को गदायुद्ध सिखाया॥२६॥

केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः । अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद्विभुः ॥२७॥

अन्वयः— पियाया प्रियकृतविभुः केशवः द्वारकाम् एत्य, शतधन्वनः निधनं मणेः च अप्राप्तिं प्राह ॥२७॥

अनुवाद— अपनी प्रियतमा सत्यभामाजी का प्रियकार्य करने वाले श्रीभगवान् द्वारका आकर सत्यभामा जी को शतधन्वा की मृत्यु तथा मणि की अप्राप्ति की बात बतलाया ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

सत्यभामामप्यवञ्चयदिति सूचयन्नाह-केशव इति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने सत्यभामाजी से भी वञ्चना की इस बात की सूचना केशवः इत्यादि श्लोक से दिया गया है॥२७॥

ततः स कारयामास क्रिया बन्धोर्हतस्य वै । साकं सुहृद्भिर्भगवान्या याः स्युः सांपरायिकाः ॥२८॥

अन्वयः— ततः सः वै हतस्य बन्धोः याः याः साम्परायिकाः क्रियाः सर्वाः सुहृद्भिः साकं कारयामास ॥२८॥

अनुवाद— उसके बाद उन्होंने मारे गये सत्राजित की और्ध्वदैहिक सारी क्रियाओं को अपने भाई बान्धवों के साथ करवाया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

बन्धोः सत्राजितः । सांपरायिकाः पारलौकिक्यः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

बन्धोः अर्थात् सत्राजित् की । **साम्परायिकाः** अर्थात् पारलौकिक कियायें ॥२८॥

अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम् । व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥२९॥

अन्वयः— शतधनोः वधम् श्रुत्वा प्रयोजकौ अक्रूरः कृतवर्मा च वित्रस्तौ द्वारकायाः व्यूषतुः ॥२९॥

अनुवाद— शतधन्वा के वध के समाचार को सुनकर शतधन्वा को सत्राजित के वध के लिए उत्तेजित करने वाले अक्रूर और कृतवर्मा दोनो भयभीत होकर द्वारका से दूर चले गये ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

व्यूषतुर्द्वारकायाः सकाशात्त्यक्त्वापि पलायितौ । प्रयोजकौ मणिहरणे शतधन्वनः प्रवर्तकौ । तत्राक्रूरः कृष्णानुमतेनैव गतः। कृतवर्मा तु भक्तपक्षपातप्राकट्यभयादिवोपेक्षित इति गम्यते । कथमन्यथा सर्वज्ञेश्वरवञ्चनं तयोः संभवतीति ॥२९।

भाव प्रकाशिका

व्यूषतुः अर्थात् द्वारका से भाग गये क्योंकि मणि को छिन्ने के लिए शतधन्वा को उत्तेजित करने वाले ये ही दोनो थे । अक्रूर तो भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा से गये थे, किन्तु कृतवर्मा अपने भक्त के प्रति पक्षपात के भय से उपेक्षित के समान चले गये ऐसा लगता है । अन्यथा वे दोनों सर्वज्ञ श्रीभगवान् को कैसे धोखा दे सकते थे ॥२९॥

अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन्वै द्वारकौकसाम् । शारीरा मानसास्तापा मुहुर्दैविकभौतिका: ॥३०॥

अन्वय:— अक्रूरे प्रोषिते वैद्वारकौकस: अरिष्टानि मुहु: दैविका: भौतिका: शारीरा: मनसा: तापा: आसन् ॥३०॥

अनुवाद— अक्रूर के द्वारका से चले जाने पर द्वारका वासियों को अनेक प्रकार के अरिष्टों, शारीरिक और मानसिक सन्तापों तथा दैविक एवं भौतिक सन्ताप सहने पड़े ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं वाराणस्यां दानपतिसमाख्यया मणिहस्तेऽक्रूरे रुक्मवेदिकैर्महाध्वरैर्यजमाने निवसति पुन: श्रीकृष्णेनैव प्रस्थापितोऽक्रूर इति कर्णे कर्णे जपति जने सत्यभामारामादीनामप्यविश्वासे जनसंग्रहायाक्रूरं समाहूय साक्षेपं श्रीकृष्ण: प्राह । इदं च भगवन्मतं संगोप्य केचन ऋषयोऽन्यत्कारणमक्रूरानयने वर्णयन्ति तद्यथाश्रुतं दूषयितुमनुवदति-अक्रूरे प्रोषित इति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से वाराणसी में दानपति के नाम से मणि को रखने वाले अक्रूरजी सुवर्ण की वेदियों वाले बड़े-बड़े यज्ञों को करते थे । उनको श्रीकृष्ण ने ही फिर वहाँ भेज दिया इस तरह से लोग आपस में कहने लगे । यद्यपि सत्यभामाजी और श्रीबलरामजी को इस पर विश्वास नहीं था, फिर भी जनसंग्रह के लिए अक्रूरजी को बुलाकर भगवान् श्रीकृष्ण ने आक्षेप पूर्वक कहा । कुछ ऋषियों ने कहा कि अक्रूरजी को पुन: बुलाना श्रीभगवान् का अभिमत था । उस जन श्रुति के अनुसार उसको खण्डित करने के लिए उसका अनुवाद शुकदेवजी **अक्रूरे प्रोषिते इत्यादि** श्लोक से करते हैं ॥३०॥

इत्यङ्गोपदिशन्त्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् । मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम् ॥३१॥

अन्वय:— हे अङ्ग इति एके प्रागुदाहृतम् विस्मृत्य उपदिशन्ति मुनिवासे निवासे अरिष्ट दर्शनम् घटेत्किम् ?॥३१॥

अनुवाद— हे परीक्षित् इस तरह से कुछ लोग कहते है, किन्तु पूर्वोक्त बातों को वे भूल जाते हैं । जिनमें सभी मुनियों का निवास है ऐसे श्रीभगवान् के रहने पर अरिष्टों का सहना कभी सम्भव है क्या ?॥३१॥

भावार्थ दीपिका

दूषयति-इतीति । अङ्ग हे राजन् ! श्रीकृष्णमाहात्म्यं विस्मृत्येति । तदेवाह-मुनिवासनिवास इति । मुनीनां वासो यस्मिन्स श्रीकृष्णस्तस्य निवासे सत्यक्रूरापगममात्रेणारिष्टदर्शनं किं घटेत । तदिच्छां विना न घटेतेत्यर्थ: ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

उसका **इत्यङ्गो इति० इत्यादि** श्लोक से करते हैं । **अङ्ग !** अर्थात् हे राजन् उपर्युक्त तरह की बातें करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा को भूल जाते हैं । उसी को बतलाते हैं कि भगवान् में सभी मुनियों का निवास है । उन श्रीकृष्ण भगवान् के रहने पर अक्रूर के चले जाने पर अरिष्ट दर्शन इत्यादि का होने लगना कभी सम्भव है क्या ? नहीं सम्भव है ॥३१॥

देवेऽवर्षति काशीश: श्वफल्कायागताय वै । स्वसुतां गान्दिनीं प्रादात्ततोऽवर्षत्स्म काशिषु ॥३२॥

अन्वय:— देवे अवर्षति काशीश: अगतायश्वफल्काय स्वसुतां गान्दिनी प्रादात् तदा शिष अवर्षत्स्म ॥३२॥

अनुवाद— एक बार जब काशी राज्य में वर्षा नहीं हो रही थी उस समय काशी में आये हुए श्वफल्क से काशिराज ने अपनी पुत्री गान्दिनी का विवाह कर दिया तब जाकर काशी में वर्षा हुई ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

पुनस्तन्मतमेवानुवर्णयति-देव इति । काशिषु देशेषु देवे मघवत्यवर्षति सति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

उन्हीं लोगों के मत का वर्णन **देवे० इत्यादि** श्लोक से करते हैं जब काशी देश में इन्द्र वर्षा नहीं कर रहे थे ॥३२॥

तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्र यत्र ह । देवोऽभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारिकाः ॥३३॥

अन्वयः— तत् सुतः असौ अक्रूर तत्प्रभावः यत्र यत्र ह देवः अभिवर्षते तत्र न उपतापाः न मारिकाः ॥३३॥

अनुवाद— अक्रूर भी श्वफल्क के पुत्र हैं, वे जहाँ-जहाँ रहते थे वह खूब वर्षा होती थी, वहाँ न तो किसी प्रकार का कष्ट होता था और न महामारी होती थी ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

इति वृद्धवचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम् । इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः ॥३४॥

अन्वयः— इति वृद्धवचः श्रुत्वा इह कारणम् एतावत् न इति मत्त्वा समानाय्य जनार्दनः अक्रूरं प्राह ॥३४॥

अनुवाद— इस तरह से श्रीभगवान् की बातों को सुनकर श्रीभगवान् यद्यपि जानते थे कि इसका कारण यह नही है फिर भी वृद्धों का सम्मान करने के लिए श्रीभगवान् ने अक्रूरजी को ढूँढवाकर मँगवाया और उनके आने पर श्रीभगवान् उनसे बातें किए ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

इत्येवंभूतमक्रूरमहिमप्रतिपादनपरं वृद्धानां वाक्यं श्रुत्वा, सत्यमेवं तथाप्येतावदेव कारणं न भवति किंतु मणेरप्यपगम इति मत्वेत्येतदन्तं परमतम् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह की अक्रूर की महिमा का प्रतिपादन करने वाले वृद्धों की बातों को सुनकर ऐसा होने पर अक्रूर का न रहना मात्र इसका कारण नहीं है, किन्तु उनके न रहने पर मणि भी तो द्वारका से बाहर चली जायेगी इसलिए। यहाँ तक दूसरों का मत है ॥३४॥

पूजयित्वाऽभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रियाः कथाः । विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥३५॥

अन्वयः— एनं पूजयित्वा, सम्भाष्य प्रियाः कथाः कथयित्वा विज्ञाताखिल चित्तज्ञः स्मयमानः उवाच ह ॥३५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने अक्रूरजी का खूब स्वागत, सत्कार किया, उनसे प्रिय लगने वाली बातें भी की, भगवान तो सबों के हृदय की बातों को जानते हैं । उन्होंने मुस्कुराते हुए अक्रूरजी से कहा ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

विज्ञातमखिलं येन स चासावत एव चित्तज्ञश्च । अयं भावः-महाभागवतस्यास्य मया दत्तेऽपि मणावपेक्षा नास्त्येव, यस्मादाहूतो मणिना सहैवागत इति ज्ञात्वेति ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् सर्वज्ञ हैं, वे सबों के अन्त: करण की बात जानते हैं । इस महाभागवत को मैं मणि यदि दे भी दूँ तो इनको उसकी अपेक्षा नहीं हैं । मैंने इनको बुलाया तो ये मणि को साथ ही लेकर आये हैं इस बात को जानकर ॥३५॥

ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना । स्यमन्तको मणिः श्रीमान्विदितः पूर्वमेव नः ॥३६॥

अन्वयः— ननु दानपते शतधन्वना न्यस्तः श्रीमान् स्यमन्तको मणिः त्वयि आस्ते इति पूर्वमेव नः विदितः ॥३६॥

अनुवाद— हे दानपते शतधन्वा ने ऐश्वर्य सम्पन्न स्यमन्तक मणि आपके ही पास रख दी है, इस बात को हम पहले से ही जानते हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३६।।

सत्राजितोऽनपत्यत्वाद्गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः । दायं निनीयापः पिण्डान्विमुच्यर्णं च शेषितम् ।।३७।।

अन्वयः— सत्राजितः अनपत्यत्वात् दुहितुः सुताः अपः पिण्डांश्च निनीय ऋणं च विमुच्य शेषितम् दायं गृह्णीयुः।।३७।।

अनुवाद— सत्राजित् का कोई पुत्र नहीं है अतएव उनकी पुत्री सत्यभामा के पुत्र उनको जलदान तथा पिण्डदान करके उनका ऋण चुकायेंगे और जो कुछ बचा रहेगा उसके उत्तराधिकारी होंगे ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह-सत्राजित इति । अपः पिण्डांश्च निनीय दत्त्वा ऋणं च विमुच्यापाकृत्य शेषितमवशिष्टं दायं दुहितुः सत्यभामायाः सुता गृह्णीयुरिति शास्त्रम् । तथा च स्मरन्ति-'पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा । तत्सुता गोत्रजा बन्धुशिष्यसब्रह्मचारिणः' इति ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् क्या हुआ इस पर श्रीभगवान् ने कहा **सत्राजितः इत्यादि** श्लोक जलदान और पिण्डदान करके उन्हें ऋणमुक्त करके अवशिष्ट सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होंगे । वह सत्यभामा के पुत्र ही प्राप्त करेंगे । शास्त्र भी यही कहता है । ऋषियों ने कहा है पत्नी इति । पत्नी, पुत्रियाँ माता-पिता भाई, इन सबों के पुत्र सगोत्रीय बन्धु शिष्य तथा सहपाठी ये पूर्व-पूर्व के अभाव में उत्तरोत्तर दाय भाग के अधिकारी होते हैं ।।३७।।

तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः । किंतु मामग्रजः सम्यङ्न प्रत्येति मणिं प्रति ।।३८।।

अन्वयः— तथापि अन्यैः तु दुर्धरः हे सुव्रते मणिः त्वयि आस्तां किन्तु अग्रज माम् मणिं प्रति न प्रत्येति ।।३८।।

अनुवाद— यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से सत्यभामा के पुत्र ही मणि के अधिकारी है, फिर भी इन सबों में मणि धारण की योग्यता नहीं हैं । अतएव मणि आपके ही पास रहे किन्तु मणि के विषय में मेरे बड़े भाई मुझ पर विश्वास नहीं करते हैं ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

अग्रजोऽपि न प्रत्येति न विश्वसितीति ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

मेरे बड़े भाई भी मुझ पर विश्वास नहीं करते हैं ।।३८।।

दर्शयस्व महाभाग बन्धूनां शान्तिमावह । अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः ।।३९।।

अन्वयः— महाभाग दर्शयस्व बन्धूनां शान्तिम् आवह अद्य ते रुक्मवेदय मखाः अव्युच्छिन्नः वर्तन्ते ।।३९।।

अनुवाद— हे महाभाग्यवान् ! आप उन सबों को मणि दिखाकर सबों के मन में शान्ति का संचार करे मैं जानता हूँ कि उस मणि के प्रभाव से ही आपके यज्ञों की वेदियाँ सुवर्ण की बनती हैं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

नास्तीति न वक्तव्यम् । यतोऽव्युच्छिन्नाः संतता मखा वर्तन्त इति ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

आप यह नहीं कह सकते हैं कि मेरे पास मणि नहीं। उसी के प्रभाव से आपके यज्ञों में सदा सुवर्ण की वेदियाँ बनती हैं ॥३९॥

एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम् । आदाय वाससाच्छन्नं ददौ सूर्यसमप्रभम् ॥४०॥

अन्वयः— एवं सामभिः आलब्धः श्वफल्कतनयः वाससाच्छन्नं सूर्यसमप्रभम् मणिम् आदाय ददौ ॥४०॥

अनुवाद— इस तरह सान्त्वनापूर्ण बातों से सन्तुष्ट अक्रूरजी वस्त्र में लपेटी हुई सूर्य के समान चमकने वाली उस मणि को लेकर श्रीभगवान् के दे दिए ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

आलब्ध उक्तो हृदि स्पृष्ट इति वा ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

आलब्धः अर्थात् कहे गये अथवा हृदय से संस्पृष्ट ॥४०॥

स्यमन्तकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः । विमृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयत्प्रभुः ॥४१॥

अन्वयः— स्यमन्तकं ज्ञातिभ्यो दर्शयित्वा मणिना आत्मनः रजः विमृज्य प्रभुः भूयः तस्मै प्रत्यर्पयत् ॥४१॥

अनुवाद— स्यामन्तक मणि को अपने ज्ञाति भाइयों को दिखाकर अपने पर लगे हुए कलङ्क को भगवान् ने मिटा दिया और उसके पश्चात् उन्होंने उस मणि को अक्रूरजी को दे दिया ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

रजो मिथ्याभिशापं संमृज्य । अन्यैर्दुर्धर इत्यादिमिषेण प्रीत्या भूयस्तस्मै प्रत्यर्पितवानिति ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

रजः अर्थात् मिथ्या कलङ्क दूर करके। इस मणि को दूसरा कोई धारण नहीं कर सकता इसलिए प्रेमपूर्वक उन्होंने उस मणि को अक्रूरजी को लौटा दिया ॥४१॥

यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च ।
आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम् ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे स्यमन्तकोपाख्याने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

अन्वयः— यः तु एतद् ईश्वरस्य भगवतः विष्णोः वीर्याढ्यं सुवृजिनहरं सुमङ्गलं च आख्यानं पठति शृणोति, अनुस्मरेत् वा दुष्कीर्तिम् दुरितम् अपोह्य शान्तिम् याति ॥४२॥

अनुवाद— जो पुरुष सर्वशक्तिमान श्रीभगवान् श्रीकृष्ण के पराक्रम से परिपूर्ण सभी पापों को विनष्ट करने वाले मङ्गलमय आख्यान को पढ़ता या सुनता या स्मरण करता है वह अपने अपयशों तथा पापों को दूर कर के शान्ति को प्राप्त करता हैं ॥४२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के स्यमन्तकोपाख्यान के सन्तावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

दुष्कीर्तिं तन्मूलं दुरितं चेति ।।४२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५७।।

भाव प्रकाशिका

दुष्कीर्ति अर्थात् अपयश तथा उसके मूल में विद्यमान पाप को ।।४२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के सत्तावनवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।५७।।

अट्ठावनवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण के अन्यान्य विवाहों की कथा

श्रीशुक उवाच

एकदा पाण्डवान्द्रष्टुं प्रतीतान्पुरुषोत्तमः । इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान्युयुधानादिभिर्वृतः ॥१॥

अन्वयः— एकदा श्रीमान् पुरुषोत्तमः प्रतीतान् पाण्डवान् द्रष्टुं युयुधानादिभिर्वृतः इन्द्रप्रस्थं गतः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— एक बार परमैश्वर्य सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण पहचान लिए गये पाण्डवों से मिलने के लिए इन्द्रप्रस्थ गये॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टपञ्चाशत्तमे तु कृष्णः पञ्च करेऽग्रहीत् । कालिन्दीं मित्रविन्दां च सत्यां भद्रां च लक्ष्मणाम् ॥१॥ कालिन्दीं निजलाभाय तपः परमुपेयुषीम् । परिणेष्यन्प्रियावासमिन्द्रपस्थमथागमत् ॥२॥ प्रतीतान्नष्टानपि द्रुपदगृहे पुनः सर्वैर्दृष्टान् । युयुधानः सात्यकिः॥१॥

भाव प्रकाशिका

आट्ठावनें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण अपनी पाञ्च पत्नियों से विवाह किए उन सबों का नाम है कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या, भद्रा और लक्ष्मणा ॥१॥ कालिन्दी श्रीभगवान् की प्राप्ति के लिए अत्यधिक तपस्या कर रहीं थीं । उनके साथ भगवान् श्रीकृष्ण अपनी प्रियतमा के निवास स्थान में गये और उसके पश्चात् इन्द्रप्रस्थ गये ॥२॥ प्रतीतान् अर्थात् लोग जानते थे कि पाण्डव लक्षागृह में जल गये हैं कि किन्तु द्रौपदी स्वयम्बर के समय द्रुपद के यहाँ पहचान लिए गये थे । युयुधानः अर्थात् सात्यकिः ॥१॥

दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुन्दमखिलेश्वरम् । उत्तस्थुर्युगपद्वीराः प्राणा मुख्यमिवागतम् ॥२॥

अन्वयः— वीराः पार्थाः तम् अखिलेश्वरम् मुकुन्दम् आगतं दृष्ट्वा मुख्यम् आगतं प्राणा इव युगवत् उत्तत्थुः ॥२॥

अनुवाद— वीर पाण्डव उन सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण को आये हुए देखकर एक ही साथ उठकर खड़े हो गये जैसे पञ्चवृत्ति प्राण का संचार होते ही इन्द्रिया सचेष्ट हो जाती हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

प्राणा इन्द्रियाणि मुख्यं पञ्चवृत्तिं प्राणमिव ॥२॥

भाव प्रकाशिका

प्राण अर्थात् इन्द्रियाँ । मुख्यम् अर्थात् पञ्चवृत्ति प्राण के समान ॥२॥

परिष्वज्याच्युतं वीरा अङ्गसङ्गहतैनसः । सानुरागस्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥३॥

अन्वयः— वीराः अच्युतं परिष्वज्य अङ्गसङ्गहतैनसः तस्य सानुराग स्मितं वक्त्रं वीक्ष्य मुदं ययुः ॥३॥

अनुवाद— वीर पाण्डव भगवान् श्रीकृष्ण का आलिङ्गन किए । उनके अङ्गों का सङ्ग होने के कारण पाण्डवो के सारे पाप प्रणष्ट हो गये वे भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेमभरी मुस्कुराहट से सुशोभित मुख को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् । फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवन्दितः ॥४॥
परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिन्दिता । नवोढा व्रीडिता किंचिच्छनैरेत्याभ्यवन्दत ॥५॥

अन्वयः— युधिष्ठरस्य, भीमस्य पादाभिवन्दनं कृत्वा फाल्गुनं परिरभ्य यमाभ्यां च अभिवन्दितः परमासने आसीनं अभिनन्दिता, नवोढा किञ्चित् व्रीडिता कृष्णा शनैः एत्य कृष्णम् अभ्यवन्दत ॥४-५॥

अनुवाद— युधिष्ठिर और भीम को प्रणाम करके अर्जुन का आलिङ्गन करके तथा नकुल एवं सहदेव से अभिवन्दित भगवान् श्रीकृष्ण जब श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे थे उस समय परम सुन्दरी नवविवाहिता द्रौपदी कुछ लज्जित सा होकर आयी और भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम की ॥४-५॥

भावार्थ दीपिका

ज्येष्ठयोः प्रणामं कृत्वा समेनालिङ्गितः कनिष्ठाभ्यामभिवन्दितो बभूव । कृष्णा द्रौपदी । बहुभार्या सत्यपि निन्दारहिता। पार्थैर्नवमचिरमूढा परिणीता ॥४-५॥

भाव प्रकाशिका

अपने से बड़े युधिष्ठिर और भीम को प्रणाम करके, समवयस्क अर्जुन से आलिङ्गित तथा अपने से छोटे नकुल एवं सहदेव से अभिवन्दित हुए भगवान् श्रीकृष्ण । कृष्णा अर्थात् द्रौपदी, अनिन्दिता पाञ्चो पाण्डवों की पत्नी होने पर भी निन्दा रहित । पाण्डवों के साथ नवीनतया विवाहित ॥४-५॥

तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिवन्दितः । निषसादासनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासत ॥६॥

अन्वयः— तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितः अभिवन्दित च आसने निषसाद । अन्ये च पूजिताः पर्युपसत ॥६॥

अनुवाद— उसी तरह से वीर सत्यकि की पूजा करके पाण्डवों ने उनको प्रणाम किया । और वे एक आसन पर बैठ गये । दूसरे यदुवंशियों को भी पाण्डवों ने पूजा की और वे भी बैठ गये ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

पृथां समागत्य कृताभिवादनस्तयातिहार्दार्द्रदृशाभिरम्भितः ।
आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषां पितृष्वसारं परिपृष्टबान्धवः ॥७॥

अन्वयः— पृथा समागत्य कृताभिवादनः तथा अतिहार्द्राद्रदृशाभिरम्भितः परिपृष्टबान्धवः सहस्नुषां तां पितृष्वसारं तां कुशलं पृष्टवान् ॥७॥

अनुवाद— भगवान् अपनी फूआ कुन्तीजी के पास जाकर उनको प्रणाम किए कुन्तीजी ने उनको हृदय से लगाया और उनको प्रेमाश्रु भरे नेत्रों से देखा । कुन्तीजी के द्वारा अपने बान्धवों का समाचार पूछे जाने के बाद श्रीभगवान् अपनी फूआ और उनकी पुत्रवधू द्रौपदी का भी कुशल पूछा ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अतिहार्देन स्नेहेनार्द्रे सजले दृशौ यस्यास्तया परिष्वक्तः । तया परिपृष्टा बान्धवा यस्य सः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

हार्दिक स्नेह से प्रेमाश्रु भरे नेत्रों वाली कुन्ती के द्वारा आलिङ्गित उनसे कुन्तीजी ने उनके बन्धुओं का समाचार पूछा॥ ७॥

तमाह प्रेमवैक्लव्यरुद्धकण्ठाश्रुलोचना । स्मरन्ती तान्बहून्क्लेशान्क्लेशापायात्मदर्शनम् ॥८॥

अन्वयः— **प्रेमवैक्लव्य रुद्धकण्ठाश्रुलोचना**, तान् बहून क्लेशान् स्मरन्ती तम क्लेशापाय दर्शनम आह ॥८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् द्वारा कुशल पूछे जाने पर प्रेम की विह्वलता के कारण कुन्तीजी का गला रूँध गया, उनके नेत्रो से आँसू बह रहे थे, अपने पहले के क्लेशों का स्मरण करते हुए श्रीकुन्तीजी जिनका दर्शन करने से सारे क्लेश मिट जाते हैं ऐसे श्रीभगवान् से कहीं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

प्रेम्णा वैक्लव्यं तेन रुद्धः कण्ठो यस्याः क्लेशापाये आत्मनिदर्शनं यस्य तम् । भजतां क्लेशापायाय आत्मानं दर्शयतीति वा ॥८॥

भाव प्रकाशिका

प्रेम की विकलता से जिनका गला रूँध गया था । जिन श्रीभगवान् का दर्शन ही क्लेशों को दूर कर देता है अथवा क्लेशों को दूर करने के लिए जो दर्शन देते हैं ॥८॥

तदैव कुशलं नोऽभूत्सनाथास्ते कृता वयम् । ज्ञातीन्नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया ॥९॥

अन्वयः— कृष्णतदैव नः कुशलं अभूत् ते वयम् सनाथाः कृताः, नः ज्ञातीन् स्मरता त्वया मे भ्राता प्रेषितः ॥९॥

अनुवाद— श्रीकृष्ण हमलोगों का कुशल उसी समय हो गया और हमलोग सनाथ हो गये जब आप हमलोगों को अपना कुटुम्बी जानकर हमारा कुशल जानने के लिए हमारे भाई अक्रूर को आप भेजे ॥९॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञातीन्बन्धून् नोऽस्मान् । यदा भ्राताऽक्रूरः प्रेषितः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

हमलोगों को अपना बन्धु जानकर । जब आपने मेरे भाई अक्रूर को भेजा ॥९॥

न तेऽस्ति स्वपरभ्रान्तिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः । तथापि स्मरतां शश्वत्क्लेशान्हंसि हृदि स्थितः ॥१०॥

अन्वयः— **विश्वस्य सुहृदात्मनः तेस्वपर भ्रान्तिः न अस्ति । तथापि स्मरतां हृदि स्थितः शश्वतक्लेशान् हन्सि ॥१०॥**

अनुवाद हे श्रीकृष्ण ! आप सम्पूर्ण जगत् के हितैषी और आत्मा हैं । आपको यह अपना है और यह पराया है, इस प्रकार का भ्रम नहीं है । फिर भी जो मनुष्य आपका स्मरण करते हैं आप उनके हृदय में स्थित रहकर उनके क्लेश को सदा दूर करते रहते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञातीनिति वचनात्प्राप्तं मोहं वारयन्ती स्तौति-न तेऽस्तीति । तत्र हेतुः- विश्वस्येति । सुहृच्च आत्मा च तस्य । हंसि नाशयसि ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

ज्ञातीन् इस कथन से प्राप्त मोह को दूर करती हुई कुन्तीजी श्रीभगवान की स्तुति करती हैं कि आपको अपने और परायेका भ्रम नहीं है । उसका कारण वे बतलाती हैं कि आप सम्पूर्ण जगत के हितैषी और आत्मा हैं । हंसि अर्थात् आप नाश करते हैं ॥१०॥

युधिष्ठिर उवाच

किं न आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वर । योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्नो दृष्टः कुमेधसाम् ॥११॥

अन्वयः— हे अधीश्वर नः किं श्रेयः आचरित न वेद यत् योगेश्वराणां दुर्दर्शः नः कुमेधसां दृष्टः ॥११॥

युधिष्ठिर ने कहा

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् हमलोगों ने कौन सा ऐसा पुण्य किया है कि जो आप योगेश्वरों को भी दर्शन नहीं देते वे ही आप हम कुबुद्धियों को दर्शन दे रहे हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

कुमेधसां विषयासक्तचित्तानां दृष्टोऽसि ॥११॥

भाव प्रकाशिका

कुमेधसाम् अर्थात् हम विषयासक्तचित्त वालों को आप दर्शन देते हैं ॥११॥

इति वै वार्षिकान्मासान् राज्ञा सोऽभ्यर्थितः सुखम् । जनयन्नयनानन्दमिन्द्रप्रस्थौकसां विभुः ॥१२॥

अन्वयः— इति वै राज्ञा अभ्यर्थितः इन्द्र प्रस्थौकसां नयनानन्दं जनयन् सुखम् अवसदित्यर्थः ॥१२॥

अनुवाद— इस तरह से राजा युधिष्ठिर के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर भगवान् इन्द्रप्रस्थ वासियों के नेत्रों को आनन्दित करते हुए बरसात के चार महिनों तक वहीं सुख पूर्वक निवास किए ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

सुखमवसदिति शेषः । सुखमभ्यर्थित इति वा क्रियासमप्तिः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

सुख पूर्वक निवास किए अथवा सुख पूर्वक प्रार्थित हुई इस तरह से क्रिया की समाप्ति हुई ॥१२॥

एकदा रथमारुह्य विजयो वानरध्वजम् । गाण्डीवं धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ ॥१३॥
साकं कृष्णेन संनद्धो विहर्तुं विपिनं वनम् । बहुव्यालमृगाकीर्णं प्राविशत्परवीरहा ॥१४॥

अन्वयः— एकदा वानरध्वजं रथमारुह्य परवीरहा विजयः गाण्डीवं धनुः अक्षय सायकौ तूणौ च आदाय संनद्धः कृष्णेन साकं विपिनं वनम् विहर्तुं बहुव्याल मृणाकीर्णं प्राविशत् ॥१३-१४॥

अनुवाद— एक दिन जिनके ध्वज पर वानर का चिह्न था ऐसे वीर शत्रुओं को मारने वाले अर्जुन रथ पर बैठकर तथा कवच पहनकर गाण्डीव धनुष तथा दो अक्षय तुणीर धारण करके भगवान् श्रीकृष्ण के साथ एक वन से दूसरे वन में विचरण करते हुए उस वन में प्रवेश कर गये जो बहुत अधिक सर्पों एवं जानवरों से भरा था ॥१३-१४॥

भावार्थ दीपिका

कालिन्दीदर्शनप्रसङ्गमाह-एकदेति । अक्षयाः सायका ययोस्तौ तूणौ इषुधी ॥१३-१४॥

भाव प्रकाशिका

एकदा इस श्लोक से कालिन्दी दर्शन के प्रसङ्ग का वर्णन किया गया है । जिनमें अक्षयबाण थे ऐसे दो तूणीरों को ॥१३-१४॥

तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान् सूकरान् महिषान् रुरून् । शरभान् गवयान् खड्गान् हरिणान् शशशल्लकान्॥१५॥

अन्वयः तत्र शरैः व्याघ्रान् सूकरान् महिषान् रुरून्, शरभान् गवयान् खड्गान्, हरिणान् शशशल्लकान् अविध्यत्॥१५॥

अनुवाद- वन में उन्होंने बाणों से बाघों, सूकरों, भैंसों, रुरुओं, शरभों, गवयों, गेंडों, हरिणों, खरगोशों और स्याहियो को मारा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

तान्निन्युः किङ्करा राज्ञे मेध्यान्पर्वण्युपागते । तृट्परीतः परिश्रान्तो बीभत्सुर्यमुनामगात् ॥१६॥

अन्वयः— पर्वण्युपागते किङ्करा तान् मेध्यान् राज्ञ निन्युः तृट् परीतः बीभत्सुः यमुनाम् अगात् ॥१६॥

अनुवाद— अमावस्या के आने पर उनमें से जो मेध्य (यज्ञ के योग्य) थे उन सबों को सेवक गण राजा युधिष्ठिर के पास ले गये । आखेट करते हुए अर्जुन को प्यास लगी थी, वे यमुनाजी के किनारे गये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

राज्ञे युधिष्ठिराय । मेध्यान्कर्मार्हान् । बीभत्सुरर्जुनः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

राज्ञे अर्थात् युधिष्ठिर के लिए, मेध्यान् अर्थात् जो श्राद्ध के योग्य थे । बीभत्सुः अर्थात् अर्जुन ॥१६॥

तत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ कृष्णौ ददर्शतुः कन्यां चरन्तीं चारुदर्शनाम् ॥१७॥

अन्वयः— तत्र उपस्पृश्य महारथौ कृष्णौ विशदं वारि पित्वा चारुदर्शनाम् चरन्तीं कन्यां ददर्शतुः ॥१७॥

अनुवाद— वहाँ पर हाथ पैर धोकर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन स्वच्छ जल को पीकर देखने में सुन्दर विचरण करती हुई, एक कन्या को दोनों लोगों ने देखा ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम् । पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम् ॥१८॥

अन्वयः— वरारोहां सुद्विजाम्, रुचिराननाम् प्रमदोत्तमाम् सख्या प्रेषितः फाल्गुनः ताम् आसाद्य पप्रच्छ ॥१८॥

अनुवाद— उस सुन्दरी के दाँत और मुख मनोहर थे वह एक श्रेष्ठ रमणी थी भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा भेजे गये अर्जुन उससे पूछे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

सख्या श्रीकृष्णेन ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

सख्या अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा ॥१८॥

का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतोऽसि किं चिकीर्षसि । मन्ये त्वां पतिमिच्छन्तीं सर्वं कथय शोभने॥१९॥

अन्वयः— सुश्रोणी ! त्वं का असि ? कस्य असि कुतः असि ? किं चिकीर्षसि ? त्वां पतिम् इच्छन्तीम् मन्ये, हे शोभने ! सर्वं कथय ॥१९॥

अनुवाद— हे सुन्दरी ! तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ? कहाँ से आयी हो, क्या करना चाहती हो? लगता है कि तुम अपने पति को प्राप्त करना चाहती हो । हे सुन्दरी इन सारी बातों को तुम बतलाओ ।।१९।।

भावार्थ दीपिका नहीं है ।।१९।।

कालिन्द्युवाच

अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती । विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता ।।२०।।

अन्वयः— अहं सवितुः देवस्य दुहिता, वरेण्यं, वरदं विष्णुं पतिम् ईच्छती परमम् तपः आस्थिता ।।२०।।

कालिन्दीजी ने कहा

अनुवाद— मैं सूर्य देव की पुत्री हूँ मैं सर्वश्रेष्ठ वरदान देने वाले भगवान् विष्णु को अपना पति बनाना चाहती हूँ । इसके लिए मैं कठोर तपस्या कर रही हूँ ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम् । तुष्यतां मे स भगवान्मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ।।२१।।

अन्वयः— हे वीर तम् श्रीनिकेतनम् ऋते अन्यं पतिं न वृणे, अनाथसंश्रयः सः भगवान् मुकुन्दः मे तुष्यताम् ।।२१।।

अनुवाद— हे वीर उन लक्ष्मीजी के पति भगवान् विष्णु को छोड़कर मैं किसी को भी पति के रूप में वरण नहीं कर सकती हूँ । अनाथों के एकमात्र आश्रय वे भगवान् मुकुन्द मुझ पर प्रसन्न हों ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

अयं मा कामयेदित्याशङ्कायामाह-नान्यमिति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

कही यह मुझे न प्राप्त करना चाहे इस शङ्का से कालिन्दीजी ने कहा भगवान् विष्णु से भिन्न किसी दूसरे का पति के रूप में वरण नहीं कर सकती ।।२१।।

कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुनाजले । निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ।।२२।।

अन्वयः— कालिन्दी इति समाख्याता, यमुनाजले पित्रा निर्मिते भवने अच्युत दर्शनं यावत् वासमि ।।२२।।

अनुवाद— मेरा नाम कालिन्दी है । मैं अपने पिता के द्वारा यमुना के जल में निर्मित भवन में रहती हूँ जब तक भगवान् अच्युत के दर्शन नहीं होंगे तब तक इसी में निवास करूँगी ।।२२।।

भावार्थ दीपिका नहीं है ।।२२।।

तथाऽवदद्गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम् । रथमारोप्य तद्विद्वान्धर्मराजमुपागमत् ।।२३।।

अन्वयः— गुडाकोशः वासुदेवाय तथा अवदत् सोऽपि विद्वान् ताम् रथम् आरोप्य धर्मराजम् उपागमत् ।।२३।।

अनुवाद— अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण को सारी बातें उसी तरह बतलाये । भगवान् तो पहले से ही जानते अतएव कालिन्दी को उस रथ पर बैठाकर युधिष्ठिर के पास लाये ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

आदावेव तद्विद्वान् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

पहले से ही जानने वाले ।।२३।।

यदैव कृष्णः संदिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम् । कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥२४॥

अन्वयः यदैव संदिष्टः कृष्णः विश्वकर्मणा विचित्रं परमाद्भुतं नगरं कारयामास ॥२४॥

अनुवाद पाण्डवों की प्रार्थना से भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों के रहने के लिए विश्वकर्मा द्वारा एक अद्भुत तथा विचित्र नगर बनवा दिया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गात्तत्कालीनं चरित्रान्तरमाह-यदैवेति । पार्थैर्यदैव संदिष्टो विज्ञापितः श्रीकृष्णस्तदैव तेषां विश्वकर्मणा देवशिल्पिना नगरं कारयामास ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्गवशात् उस काल में किए गये श्रीभगवान् दूसरे चरित्र को बतलाते हैं शुकदेवजी पाण्डवों के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों के निवास के लिए विश्वकर्मा एक अत्यन्त अद्भुत नगर बनवा दिए॥२४॥

भगवांस्तत्र निवसन्स्वानां प्रियचिकीर्षया । अग्नये खाण्डवं दातुमर्जुनस्यास सारथिः ॥२५॥

अन्वयः— तत्र निवसन् भगवान् स्वानां प्रियचिकीर्षया अग्ने खाण्डवं दातुं अर्जुनस्य सारथिः आस ॥२५॥

अनुवाद— वहाँ पर रहते हुए भगवान् पाण्डवों का प्रिय कार्य करने के लिए तथा अग्नि को खाण्डव वन प्रदान करने के लिए अर्जुन के सारथि बन गये ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

किंच भगवान्निरतिशयैश्वर्यगुणवानप्यर्जुनस्य धनुरादिलाभाय सारथिरास । खाण्डवं नामेन्द्रस्य वनम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् निःसीम ऐश्वर्य सम्पन्न हैं फिर भी अर्जुन को धनुष आदि की प्राप्ति हो जाय एतदर्थ अर्जुन के सारथि बन गये खाण्डव नामक वन इन्द्र का वन था ॥२५॥

सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्धयान् श्वेतान् रथं नृप । अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभिः ॥२६॥

अन्वयः— हे नृपः तुष्टः अग्निः अर्जुनाय श्वेतान् हयान् रथं अक्षयौ तूणौ अस्त्रिभिः अभेद्यं वर्म च अदात् ॥२६॥

अनुवाद— खाण्डव वन को जलाकर संतुष्ट हुए अग्नि ने अर्जुन को श्वेतवर्ण के घोड़े, रथ दो अक्षय तूणीर तथा कोई शस्त्रधारी जिसे भेद न सके इस इस प्रकार का कवच प्रदान किया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अक्षयावक्षयसायकौ ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

जिसके बाण घट न सकें ॥२६॥

मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् । यस्मिन्दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशिभ्रमः ॥२७॥

अन्वयः— बह्नेः मोचितः मयः च सख्ये सभां उपाहरत् यस्मिन् दुर्योधनस्य जलेस्थल दृशिभ्रमः आसीत् ॥२७॥

अनुवाद— अर्जुन ने मय नामक दैत्य को अग्नि से बचा लिया उसके कारण मित्र बना हुआ मय दानव अर्जुन के लिए ऐसी सभा प्रदान की कि उसी में दुर्योधन को जल में स्थल का भ्रम हो गया था ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

खाण्डवदाहकाद्वह्नेः । सख्ये अर्जुनाय । यस्मिन्निति सामान्यतो निर्देशः यस्यामित्यर्थः । जलस्थलयोर्दृग्दृष्टिभ्रमः । यद्वा जले स्थलवत् दृक् दृष्टिर्यस्मिंस्तज्जलस्थलदृक् तस्मिन् भ्रम आसीदिति ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

खाण्डव वन को जलाने वाले वह्नि से । सख्ये अर्थात अर्जुन के लिए । **यस्मिन यह सामान्यतः** निर्देश यह यस्मिन अर्थ यस्याम है । जल और स्थल में दृष्टि का भ्रम हो गया था । अथवा जिसमें जल में स्थल के समान प्रतीति हो जाती थी । इस तरह की जिसमें दृष्टि होती थी उस सभा में भ्रम हो गया ।।२७।।

स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः । आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ।।२८।।

अन्वयः— तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिः च अनुमोदितः सः भूयः सात्यकि प्रमुखैर्वृतिः द्वारकाम आययौ ।।२८।।

अनुवाद— कुछ दिनों के बाद अर्जुन की अनुमति प्राप्त करके तथा संबन्धियों का अनुमोदन प्राप्त करके सात्यकि आदि के साथ श्रीभगवान् द्वारका आये ।।२८।।

भावार्थ दीपिका नहीं है ।।२८।।

अथोपयेमे कालिन्दीं सुपुण्यर्त्वृक्ष ऊर्जिते । वितन्वन्परमानन्दं स्वानां परममङ्गलम् ।।२९।।

अन्वयः— अथ सुपुयर्त्वक्ष उर्जिते स्वानां परमानन्दं परमं मङ्गलम् वितन्वन् कालिन्दीम् उपयेमे ।।२९।।

अनुवाद— उसके पश्चात् पुण्य ऋतु तथा नक्षत्र आने पर श्रीभगवान् अपने लोगों को परम आनन्द और मङ्गल प्रदान करते हुए कालिन्दीजी का पाणिग्रहण किए ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

सुपुण्य ऋतुः ऋक्षं च यस्मिन् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

पवित्र ऋतु एवं नक्षत्र से युक्त लग्न में ।।२९।।

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दुर्योधनवशानुगौ । स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम् ।।३०।।

अन्वयः— दुर्योधन वशानुगौ विन्दानुविन्दौ आवन्त्यौ कृष्णे सक्तां स्वभगिनीं स्वयम्वरे न्यषेधताम ।।३०।।

अनुवाद— दुर्योधन के वशवर्ती उज्जैन के राजा विन्द और अनुविन्द भगवान् को चाहने वाली अपनी बहन **मित्रविन्दा** को स्वयम्बर में भगवान् को अपना पति बनाने से रोक दिए ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

पञ्चमं मित्रविन्दाविवाहमाह-विन्दानुविन्दाविति द्वाभ्याम् । आवन्त्यावबन्त्यौ राजानौ ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

मित्रवृन्दा के साथ भगवान् के पाँचवें विवाह का वर्णन विन्दानुविन्दा इत्यादि दो श्लोकों में करते हैं ।।३०।।

राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविन्दां पितृष्वसुः । प्रसह्य हृतवान्कृष्णो राजन्राज्ञां प्रपश्यताम् ।।३१।।

अन्वयः— हे राजन ! पितृष्वसुः राजाधिदेव्याः तनयां मित्रविन्दां कृष्णः प्रपश्यतां राज्ञाम् प्रसह्य हृतवान ।।३१।।

अनुवाद— हे राजन् ! अपनी फुआ की राजाधिदेवी की पुत्री मित्रविन्दा का भगवान् श्रीकृष्ण ने सभी राजाओं के सामने ही बल पूर्वक अपहरण कर लिया ।।३१।।

भावार्थ दीपिका— नही है ।।३१।।

ग्नजिन्नाम कौशल्य आसीद्राजातिधार्मिकः । तस्य सत्याऽभवत्कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥३२॥

अन्वयः हे नृप ! नग्नजित् नाम अतिधार्मिकः कौशल्य राजा आसीत् तस्य कन्या सत्या देवी नाग्नजिती अभवत्॥३२॥

अनुवाद हे राजन् ! परीक्षित् कोशल देश के अत्यन्त धार्मिक राजा का नाम नग्नजित् था । उनकी पुत्री का नाम सत्यादेवी था । नग्नजित् की पुत्री होने के कारण उनका नाम नाग्नजिती भी था ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

षष्ठमाह-नग्नजिदिति । कौशल्यः कोशलदेशपतिस्तस्य सत्यानाम कन्याऽभवदासीत् देवी कान्तिमती नाग्नजितीति पितृनाम्ना प्रसिद्धेत्यर्थः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

नग्नजित्० इत्यादि श्लोक में भगवान् के छठे विवाह का वर्णन किया गया है । **कौशल्यः** अर्थात् कोशलदेशपति नग्नजित् थे । उनकी पुत्री का नाम सत्या था । अत्यन्त कान्ति सम्पन्न होने के कारण वे देवी कही गई थीं । राजा नग्नजित् की पुत्री होने से उनका नाम नाग्नजिती था ॥३२॥

न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्त गोवृषान् । तीक्ष्णशृङ्गान्सुदुर्धर्षान्वीरगन्धासहान्खलान् ॥३३॥

अन्वयः तीक्ष्णशृङ्गान् सुदुर्धर्षान् वीरगन्धासहान् खलान् सप्त गोवृषान् अजित्वा वोढुं न शेकुः ॥३३॥

अनुवाद तीक्ष्ण सींग वाले दुर्धर्ष, किसी वीर पुरुष के गन्ध को नहीं सह सकने वाले दुष्ट सात सांढों को जीते बिना कोई भी राजा उन सत्या देवी के साथ विवाह नहीं कर सकता था ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

वीरस्य गन्धमपि न सहन्त इति तथा तान् । खलान् दुर्वृत्तान् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

वीरों की गन्ध भी नहीं सह सकने वाले दुष्ट ॥३३॥

तां श्रुत्वा वृषजिल्लभ्यां भगवान्सात्वतांपतिः । जगाम कौशल्यपुरं सैन्येन महता वृतः ॥३४॥

अन्वयः— सात्वतां पतिः भगवान् वृषजिल्लभ्यां तां श्रुत्वा महता सैन्येन वृतः कौशल्यपुरं जगाम ॥३४॥

अनुवाद— यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण ने जब यह सुना कि सात बैलों को जीत कर ही सत्यादेवी को प्राप्त किया जा सकता है, तो वे एक विशाल सेना लेकर कौशल्यपुर में गये ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

वृषान् जयति यस्तेन लभ्याम् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

जो सांढों को जीत लेगा उसी के साथ उनका विवाह होगा ॥३४॥

स कोशलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः । अर्हणेनापि गुरुणा पूजयन्प्रतिनन्दितः ॥३५॥

अन्वयः प्रीतः सः कोशलपतिः प्रत्युत्थानासनादिभिः अर्हणेनापि गुरुणा, पूजयन् प्रतिनन्दित ॥३५॥

अनुवाद कोशलपति अत्यन्त प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्ण की अगवानी किए और आसन आदि प्रदान करके, बहुत बड़ी पूजन सामग्री से उनकी पूजा किए । भगवान् श्रीकृष्ण भी उनका बहुत अधिक अभिनन्दन किए॥३५॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिनन्दितस्तं प्रतिनन्दितवान्, श्रीकृष्णेन वा स प्रतिनन्दित: ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

प्रतिनन्दित: अर्थात् राजा उनका अभिनंदन किए । अथवा भगवान् श्रीकृष्ण उनका अभिनन्दन किया ।।३५।।

वरं विलोक्याभिमतं समागतं नरेन्द्रकन्या चकमे रमापतिम् ।
भूयादयं मे पतिराशिषोऽमला: करोतु सत्या यदि मे धृतो वृतै: ।।३६।।

अन्वय:— समागतं अभिमतं रमापतिं वरं विलोक्य नरेन्द्रकन्या चकमे । यदि में अमला आशिष: व्रतैधृत: मे अयं पति: भूयात् ।।३६।।

अनुवाद— आये हुए वर अपने मनोऽनुकूल भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर राजा नग्नजित् की कन्या सत्या देवी ने उनको प्राप्त करने की कामना की । उन्होंने मन ही मन अभिलाषा की यदि मैंने व्रतों का पालन करते हुए इनका चिन्तन किया है तो ये ही मुझे पति के रूप में प्राप्त हों ।।३६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३६।।

यत्पादपङ्कजरज: शिरसा बिभर्ति श्रीरब्जज: सगिरिश: सह लोकपालै: ।
लीलातनू: स्वकृतसेतुपरीप्सयेश: काले दधत्स भगवान्मम केन तुष्येत् ।।३७।।

अन्वय:— यत्पादपङ्कज रज: श्री: अब्जज: लोकपालै: सगिरिश: शिरसा विभर्ति स: ईश: काले स्वकृत सेतु परीप्सया लीलातनू: भगवान् दधत् मम केन तुष्येत् ।।३७।।

अनुवाद— जिनके चरण कमल की धूल लक्ष्मीजी, ब्रह्माजी, लोकपालों के साथ शङ्करजी अपने सिर पर धारण करते हैं, वे ही श्रीभगवान् समय-समय पर अपने द्वारा बनायी गयी धर्म की पर्यादा की रक्षा करने के लिए अपने लीलावतारों को ग्रहण करते हैं वे श्रीभगवान् मेरे किस साधन से प्रसन्न हो सकते हैं, वे तो अपनी ही कृपा के कारण प्रसन्न हो सकते हैं ।।३७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३७।।

अर्चितं पुनरित्याह नारायण जगत्पते । आत्मानन्देन पूर्णस्य करवाणि किमल्पक: ।।३८।।

अन्वय:— अर्चित पुन: इति आह हे जगत्पते नाराय आत्मानन्देन पूर्णस्य अल्पक: किम् करवाणि ।।३८।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की पूजा कर लेने के पश्चात् राजा ने कहा हे जगत् के स्वामी, हे नारायण आप तो अपने ही आनन्द से परिपूर्ण हैं मैं तुच्छ मनुष्य आपकी कौन सी सेवा कर सकता हूँ ।।३८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३८।।

श्रीशुक उवाच

तमाह भगवान् हृष्ट: कृतासनपरिग्रह: । मेघगम्भीरया वाचा सस्मितं कुरुनन्दन ।।३९।।

अन्वय:— हे कुरुनन्दन ! हृष्ट: भगवान् कृतासनपरिग्रह: सस्मितं मेघगम्भीरया वाचा तम् आह ।।३९।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजा नग्नजित् के द्वारा किए गये सत्कार से श्रीभगवान् बहुत प्रसन्न हुए और मुस्कुराते हुए मेघ के समान गम्भीर वाणी से उन्होंने राजा से कहा ।।३९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३९।।

श्रीभगवानुवाच

नरेन्द्र याच्ञा कविभिर्विगर्हिता राजन्यबन्धोर्निजधर्मवर्तिन: ।
तथापि याचे तव सौहृदेच्छया कन्यां त्वदीयां नहि शुल्कदा वयम् ।।४०।।

अन्वय: नरेन्द्र निजधर्म वर्तिन: राजन्यवन्धो: याच्ञा कविभि: विगर्हिता तथापि तव सौहृदेच्छया त्वदीयां कन्यां याचे । वयं हि शुल्कदा न ।।४०।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद राजवर्य । अपने धर्म मे स्थित रहने वाले क्षत्रिय के द्वारा की जाने वाली याचना को विज्ञ पुरुषों ने निन्दा की है । फिर भी आपका सौहार्द प्राप्त करने की इच्छा से हम आपकी कन्या की याचना करते है, किन्तु इसके बदले मे हम कोई भी शुल्क नही दे सकते हैं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

हे नरेन्द्र । राजन्यबन्धो: क्षत्रियस्य । शुल्कदा: द्रव्यादिप्रदा: ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

राजवर्य ! राजन्यबन्धो: क्षत्रिय की । शल्कदा: द्रव्य आदि प्रदान करने वाले ।।४०।।

राजोवाच

कोऽन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्यावर इहेप्सित: । गुणैकधाम्नो यस्याङ्गे श्रीर्वसत्यनपायिनी ।।४१।।

अन्वय:— हे नाथ गुणैकधाम्न: यस्य अङ्गे अनपायिनी श्री:वसति ते अन्य: क: अभ्यधिक: इप्सित: कन्यावर:।।४१।।

राजा ने कहा

अनुवाद— हे नाथ ! आप सभी सद्गुणों के एक मात्र आश्रय हैं, आपके वक्ष: स्थल में कभी भी आपका साथ नही छोड़ने वाली लक्ष्मीजी का निवास, अतएव आपसे बढ़कर अधिक इप्सित कौन वरहो सकता है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

गुणानामेकमेव धाम स्थानं तथाभूतस्य यस्य तवाङ्गे ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

सभी गुणों के एकमात्र आश्रय आपके वक्ष: स्थल में ।।४१।।

किं त्वस्माभि: कृत: पूर्वं समय: सात्वतर्षभ । पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया ।।४२।।

अन्वय:— किन्तु हे सात्वतर्षभ ! पूर्वं मयां पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया मयासमय: कुत: ।।४२।।

अनुवाद— किन्तु यदुवंश शिरोमणे इसके पहले मैंने पुरुषों के पराक्रम की परीक्षा के लिए तथा कन्या के श्रेष्ट वर की प्राप्ति के लिए एक प्रतिज्ञा की है ।।४२।।

भावार्थ दीपिका--- नहीं है ।।४२।।

सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता दुरवग्रहा: । एतैर्भग्ना: सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजा: ।।४३।।

अन्वय:— हे वीर एते दुर्दान्ता: दुरवग्रहा: सप्त गोवृषा: एतै: बहव: नृपात्मजा: भिन्नगात्रा: अभूवन्नित्यर्थ: ।।४३।।

अनुवाद— हे वीर मेरे ये किसीके वश में नहीं होने वाले तथा अशिक्षित सात सांड हैं इन सबों ने बहुत से राजकुमारों का अङ्ग-भङ्ग कर दिया है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

दुर्दान्ता [illegible] दुरवग्रहा अपरायन्त्राः । कुतस्तदाह-एतैरिति । भग्ना भग्नं प्रापिताः ।।४३

भाव प्रकाशिका

दुर्दान्त अर्थात् बिना सधाये हुए दुरवग्रहः अर्थात् के किसी के वश में नहीं होने वाले [illegible] ने [illegible] राजकुमारों को अङ्ग-भङ्ग कर दिया है ।।४३।।

यदीमे निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनन्दन । वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियः पते ।।४४।।

अन्वय— हे यदुनन्दन ! यदीमे त्वया एव निगृहीताः स्युः हे श्रियःपतेः ! मे दुहितुः भवान् अभिमतः वरः ।।४४

अनुवाद— हे यदुनन्दन यदि इन सबों को आप निगृहीत अर्थात् अपने वश में करके नाथ देंगे तो हे [illegible] आप ही मेरी पुत्री के अभिमत पति होंगे ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

यद्यदीमे गोवृषा निगृहीता दमिता नाथिता इति यावत् ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप हमारे इन सांड़ो को अपने वश में करके इन सबों की नाक में नाथ पहना दें ।।४४

एवं समयमाकर्ण्य बद्ध्वा परिकरं प्रभुः । आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैव तान् ।।४५।।

अन्वयः— एवं समयम् आकर्ण्य प्रभुः परिकरं बद्वा आत्मानं सप्तधाकृत्वा लीलया एव तान् न्यगृह्णात् ।।४५

अनुवाद— इस प्रकार की प्रतिज्ञा को सुनकर श्रीभगवान् अपनी कमर कस लिए और सात रूप धारण करके खेल-खेल में उन साड़ों को अपने वश में कर लिए ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

एतान्यो निगृह्णाति तस्य कन्येति समयः कृतस्तम् । सप्तधा कृत्वेति । बह्वीनां योषितां संपूर्ण एवाहं संभोगयोग्यः स्यामिति सत्यां प्रत्यसापत्न्यप्रदर्शनार्थमात्मनः सप्तधाकरणम् ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

इन सबो को जो अपने वश में कर ले उसी को मैं कन्या दूँगा । इस तरह से प्रतिज्ञा की गयी है । सात रूपों को धारण करके भगवान् ने बतलाया कि अनेक पत्नियों का भोग करने में समर्थ मैं ही हूँ । तथा होने वाली पत्नी सत्या को सौतों को नहीं सहना पड़ेगा इस बात को बतलाने के लिए भगवान् ने सात रूपों को धारण किया।।४५।।

बद्ध्वा तान्दामभिः शौरिर्भग्नदर्पान् हतौजसः । व्यकर्षल्लीलया बद्धान्बालो दारुमयायथा ।।४६।।

अन्वयः— शौरिः भग्नदर्पान् हतौजसः तान् दुमभिवद्ध्वा बालः दारुमयान् यथा बद्धान् लीलया व्यकर्षयत् ।।४६।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के द्वारा निगृहीत कर दिये जाने के कारण उन सांड़ों का घमण्ड टूट गया उन सबो का उत्साह समाप्त हो गया था । भगवान् श्रीकृष्ण उन सबों को रस्सी में बाँधकर इस तरह घसीट रहे थे जैसे कोई बालक काठ के बने बैलों को घसीटता है ।।४६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४६।।

ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः । तां प्रत्यगृह्णाद्भगवान्विधिवत्सदृशीं प्रभुः ।।४७।।

अन्वयः— हे राजन् ततः विस्मितः प्रीतः राजा कृष्णाय सुतां ददौ भगवान् प्रभुः सदृशीं तां विधिवत् प्रत्यगृह्णात्।।४७।।

अनुवाद— उसके पश्चात् राजा को आश्चर्य हुआ वे प्रसन्नता पूर्वक अपनी पुत्री सत्यादेवी का विवाह भगवान श्रीकृष्ण से कर दिए और श्रीभगवान् अपने योग्य पत्नी को विधिपूर्वक स्वीकार किए ॥४७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४७॥

राजपत्न्यश्च दुहितुः कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिम् । लेभिरे परमानन्दं जातश्च परमोत्सवः ॥४८॥

अन्वयः— दुहितुः प्रियं पतिं कृष्णं लब्ध्वा राजपत्न्यश्च परमानन्दं लेभिरे परमोत्सवः जातश्च ॥४८॥

अनुवाद— अपनी पुत्री के प्रिय भगवान् श्रीकृष्ण को पति के रूप में प्राप्त करके राजा की पत्नियों को परमानन्द की प्राप्ति हुई और अत्यधिक महोत्सव मनाया गया ॥४८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४८॥

शङ्खभेर्यानका नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः । नरा नार्यः प्रमुदिताः सुवासः स्रगलंकृताः ॥४९॥

अन्वयः— शङ्ख भेर्यानकाः नेदुः गीतवाद्य द्विजाशिषः सुवासमः स्रगलंकृताः नराः नार्यश्च प्रमुदिताः ॥४९॥

अनुवाद— उस समय शङ्ख, ढोल और नगाड़े बजने लगे गीत और वाद्य होने लगे ब्राह्मण वर वधू को आशीर्वाद देने लगे, सुन्दर वस्त्र माला एवं आभूषण धारण किए स्त्री-पुरुष अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥४९

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४९॥

दशधेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद्विभुः । युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम् ॥५०॥

अन्वयः— विभुः दशधेनुसहस्राणि, निष्कग्रवीसुवाससाम् युवतीनां त्रिसाहस्रम् पारिबर्हम् अदात् ॥५०॥

अनुवाद— राजा ने दस हजार गौएँ तथा गले में सुवर्ण का हार तथा सुन्दर वस्त्र धारण की हुई तीन हजार दासियों को दहेज में दिया ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

निष्कग्रीवाश्च ताः सुवाससश्च तासां युवतीनां च दासीनाम् ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

गले में सुवर्णका हार धारण की हुई तथा सुन्दर वस्त्र धारण की हुई दासियों को दहेज में दिया ॥५०॥

नवनागसहस्राणि नागाच्छतगुणान्रथान् । रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान्नरान् ॥५१॥

अन्वयः— नव नाग सहस्राणि नागात् शतगुणान् रथान् रथात् शतगुणान् आश्वान् अश्वात् शतगुणान् नरान् च पारिवर्हददौ॥५१॥

अनुवाद— इसके साथ ही नव हजार हाथी, नव लाख रथ, नौ करोड़ घोड़े तथा नव अरब सेवक दहेज में दिए॥५१

भावार्थ दीपिका

नागान्नागेभ्यः शतगुणान्नवलक्षाणि । रथाद्रथेभ्यः शतगुणान्नवकोटीः । अश्वादश्वेभ्यः शतगुणान्नवपद्मानि ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

नव हजार हाथी, नव लाख रथ, नव करोड़े अश्व तथा नव अरब सेवक भी ॥५१॥

दम्पती रथमारोप्य महत्या सेनयावृतौ । स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोशलः ॥५२

अन्वयः— महत्या सेनया वृतौ दम्पती रथमारोप्य स्नेहप्रक्लीन् हृदयः कोशलः यापयामास ॥५२॥

अनुवाद— बहुत बड़ी सेना के साथ वर कन्या को रथ पर बैठाकर, स्नेह के कारण आर्द्र हृदय व कोशलाधिपति ने विदा किया ॥५२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५२॥

श्रुत्वैतद्रुरुधुर्भूपा नयन्तं पथि कन्यकाम् । भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा ॥५३॥

अन्वयः— पुरा यदुभिः गोवृषैः च भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षाः भूपाः कन्याकां नयन्तं पथि रुरुधुः ॥५३॥

अनुवाद— यदुवंशियो ने तथा राजानग्नजित् के सांड़ों ने जिन राजाओं के बल पौरुष को पहले विनष्ट कर दिया था वे असहन शील राजा कन्या को लेकर जाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण को रास्ते में घेर लिए ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

यदुभिर्गोवृषैश्च भग्नवीर्या अपि सुदुर्मर्षा असहनशीला रुरुधुः ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

पहले यदुवंशियो और सांड़ों ने जिनके बल-पौरुष को विनष्ट कर दिया था फिर भी श्रीभगवान् के इस विजय को नही सह सकने वाले राजागण भगवान् को घेर लिए ॥५३॥

तानस्यतः शरव्रातान्बन्धुप्रियकृदर्जुनः । गाण्डीवी कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥५४॥

अन्वयः— शरव्रातान् अस्यतः तान् बन्धुप्रियकृत गाण्डीवी अर्जुन सिंह क्षुद्रमृगान् इवतान् कालयामास ॥५४॥

अनुवाद— बाण समूह की वर्षा करने वाले उन राजाओं को अपने बन्धु का प्रिय कार्य करने वाले गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन उन सबो को उसी तरह काल कवलित कर डाले जैसे कोई सिंह छोटे-छोटे मृगों को मार डालता है ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

अस्यतः क्षिपतः । प्रयुञ्जानानिति यावत् ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

अस्यतः अर्थात् बाणों का प्रहार करने वाले ॥५४॥

पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया । रेमे यदूनामृषभो भगवान्देवकीसुतः ॥५५॥

अन्वयः— भगवान् देवकीसुतः पारिबर्हम् उपगृह्य सत्यया द्वारकाम् एत्य यदूनाम् ऋषभः रेमे ॥५५॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण उस दहेज का और सत्याजी को लेकर द्वारका आये उसके पश्चात् वे गृहस्थोचित विहार करने लगे ॥५५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५५॥

श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः । कैकेयीं भ्रातृभिर्दत्तां कृष्णः संतर्दनादिभिः ॥५६॥

अन्वयः— पितृष्वसु श्रुतिकीर्तेः सुतां संतर्दनादिभिः भ्रातृभिः दत्तां कैकेयीं भद्राम् उपयेमे ॥५६॥

अनुवाद— श्रुतिकीर्ति नामक अपनी फूआ की पुत्री भद्रा जो कैकेय देश में उत्पन्न हुई थी उनके संतर्दन नामक भाइयों ने स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया और भगवान् ने उनका पाणि ग्रहण किया ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

सप्तमं विवाहमाह-श्रुतकीर्तेरिति । श्रुतकीर्तिर्नाम या पितृष्वसा तस्याः सुतां भद्रां नाम । कैकेयीं तद्देशजाम् ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

श्रुति कीर्तेः इत्यादि श्लोक से भगवान् के सातवें विवाह का वर्णन किया गया है । श्रीभगवान् की जो श्रुतिकीर्ति नाम की फूआ थी उनकी पुत्री भद्रा जो कैकय देश में उत्पन्न हुई थी उनका पाणिग्रहण श्रीभगवान् ने किया ॥५६॥

सुतां च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् । स्वयंवरे जहारैक: स सुपर्ण: सुधामिव ॥५७॥

अन्वय:— मद्राधिपते: लक्षणै: युतां सुतां लक्ष्मणां सुपर्ण सुधासिव स्व: स्वयम्बरे जहार ॥५७॥

अनुवाद— मद्र देश के राजा की पुत्री का नाम लक्ष्मणा था, वे नारी के समस्त गुणों से युक्त थी उनके स्वम्वर के समय श्रीभगवान् ने अकेले उनका उसी तरह से हरण कर लिया जिस तरह गरुड़ ने अकेले ही अमृत कलश का हरण कर लिया था ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

अष्टमं विवाहमाह-सुतां चेति । एक एव स श्रीकृष्णो लक्ष्मणां जहार ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के आठवें विवाह का वर्णन **सुतां च इत्यादि** श्लोक से किया गया है । भगवान् श्रीकृष्ण ने अकेले हरण कर लिया ॥५७॥

अन्याश्चैवंविधा भार्या: कृष्णस्यासन् सहस्रश: । भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शना: ॥५८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽष्टमहिष्युद्वाहो नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्याय: ॥५८॥

अन्वय:— भौमं हत्वा तन्निरोधात् आहृता: चारुदर्शना: कृष्णस्य अन्या: च सहस्र: भार्या: आसन् ॥५८॥

अनुवाद— भौमासुर को मारकर उसके अन्त:पुर लायी गयी देखने में सुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण की दूसरी हजारो पत्नियाँ थीं ॥५८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवे स्कन्ध के उत्तरार्ध के अठावनवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

तस्य निरोधोऽन्त:पुरं तस्मात् ॥५८॥

'भैष्मी जाम्बवती भामा सत्याभद्रा च लक्ष्मणा । कालिन्दी मित्रविन्दा चेत्यष्टौपट्टमहास्त्रिय: ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टपञ्चाशत्तमोऽध्याय: ॥५८॥

भाव प्रकाशिका

भौमासुर के अन्त:पुर से लायी गयी ॥५८॥ रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा, भद्रा, लक्ष्मणा, कालिन्दी तथा मित्रविन्दा ये श्रीभगवान् की आठ पटरानियाँ थीं ।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवे स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के अठावनवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥५८॥

उनसठवाँ अध्याय

भौमासुर का वध एवं सोलह हजार एक सौ राज कन्याओं के साथ श्रीभगवान् का विवाह

राजोवाच

यथा हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः । निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥१॥

अन्वयः— यथा भगवता भौमो हतः येन च ताः स्त्रियः निरुद्धाः एतत् शार्ङ्गधन्वनः विक्रमम आचक्ष्व ॥१॥

राजा परीक्षित् ने पूछा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार से उस भौमासुर को मारा जिसने उन स्त्रियों को बन्दी बनाया था. शार्ङ्गधनुष धारण करने वाले श्रीभगवान् के उस पराक्रम का आप वर्णन करे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ऊनषष्टितमे भौमं हत्वा तेनाहृता हरिः । कन्याः सहस्रशः प्राप पारिजातं दिवोऽहरत् । परिणीय ततस्ताभिस्तन्मनोरथपूरणैः। आत्मारामोऽप्यसौ रेमे तद्गृहेषु गृहस्थवत् । येन ताः स्त्रियो निरुद्धाः स भौमः । चकाराद्येन कारणेन हतस्तदाचक्ष्वेति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उनसठवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण भौमासुर को मारकर, उसके द्वारा हरण करके लाई हुई हजारों स्त्रियों को प्राप्त किया तथा स्वर्ग लोक से श्रीभगवान् ने पारिजात वृक्ष का अपहरण किया । उसके पश्चात् उन सबों के साथ विवाह करके उन सबों के मनोरथों को पूर्ण करते हुए आत्माराम भी होकर श्रीभगवान् उन सबों के गृहो में गृहस्थ के समान विहार किए । जिस कारण से भौमासुर ने उन स्त्रियों को वंदीगृह में डाल दिया था और जिस कारण से श्रीभगवान् ने भौमासुर को श्रीभगवान् मारे उसे भी आप बतलायेंगे ॥१॥

श्रीशुक उवाच

इन्द्रेण हतछत्रेण हतकुण्डलबन्धुना । हतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचेष्टितम् ॥
सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥२॥

अन्वयः— हतच्छत्रेण, हतकुण्डलबन्धुना, हतामराद्रिस्थानेन इन्द्रे भौमचेष्टितम् ज्ञापितः सभार्यः गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जिसने वरुण के छत्र को देवमाता अदित के कुण्डल को तथा देवताओं ने मणिपर्वत का अपहरण कर लिया था, इस प्रकार की भौमासुर की चेष्टाओं के इन्द्र के द्वारा बताये जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी पत्नी सत्यभामाजी के साथ गरुड पर सवार होकर भौमासुर के नगर प्राग्ज्योतिषपुर में गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्रेण भौमविचेष्टितं ज्ञापितः सन्प्राग्ज्योतिषपुरं भौमनगरं ययावित्यन्वयः । किंभूतेन । हतं छत्रं यस्य तेन । लोकपालप्रधानत्वादिन्द्रस्य वरुणच्छत्रहरणेऽपि तस्यैव मानभङ्ग इति तथोक्तम् । हते कुण्डले यस्याः सा अदितिर्बन्धुर्माता यस्य तेन । हतममराद्रौ स्थानं मणिपर्वतलक्षणं यस्य तेन । सत्यभामाया गृहे भगवन्तमिन्द्र आगत्य विज्ञापितवांस्तदा तस्याः कौतुकाय तया भार्यया सह ययाविति । यद्वा त्वदनुज्ञयैव त्वत्पुत्रं हनिष्यामीति इतिहासोक्तं भूम्यै वरं दत्तं सत्यं कर्तुं सत्यभामाया भूम्यंशत्वात्तया सह ययौ । यद्वा नारदानीतपारिजातैककुसुमे रुक्मिण्यै दत्ते सति कुपितां सत्यभामां सान्त्वयता तुभ्यं पारिजातमेव दास्यामीति श्रीकृष्णेन प्रतिश्रुतमिति हरिवंशे प्रसिद्धं तदर्थं तां नीतवानिति ॥२॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र के द्वारा भौमासुर की विशेष चेष्टाओं को जानकर श्रीभगवान् भौमासुर के नगर प्राग्ज्योतिषपुर में गये। यह इस श्लोक का मुख्यवाक्य । कैसी भौमासुर की चेष्टाएँ जिसने छत्र छिन लिया था । यद्यपि भौमासुर ने वरुण देव के ही छत्र को छिना था किन्तु लोकपालों में प्रधान होने के कारण वरुण का छत्र छिनने से इन्द्र का ही उससे अपमान हुआ. तथा भौमासुर ने इन्द्र की बन्धु अर्थात् माता अदिति के कानों का कुण्डल ले लिया था, तथा देवताओं के मणि पर्वत को भी अपना बना लिया था, इस तरह से इन्द्र ने सत्यभामाजी के गृह में आकर श्रीभगवान् को बतलाया । उस समय सत्यभामाजी के कौतुक के लिए श्रीभगवान् उनके साथ गये, अथवा तुम्हारी आज्ञा से ही तुम्हारे पुत्र भौमासुर को मारूँगा इस तरह से इतिहास में वर्णित भू देवी को दिए गये वरदान को सत्य करने के लिए भूदेवी के अंशावतार सत्यभामाजी को साथ लेकर भगवान् गये । अथवा नारदजी के द्वारा लाये गये पारिजात के एक पुष्प को रुक्मिणीजी को दे देने से कुपित सत्यभामाजी को सान्त्वना प्रदान करते हुए श्रीभगवान् ने कहा था कि तुमको मैं पारिजात ही दूँगा, इस तरह से हरिवंश में प्रसिद्ध कथा को सत्य करने के लिए श्रीभवान् सत्यभामाजी के साथ गये ।।२।।

गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् । मुरपाशायुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वत आवृतम् ।।३।।

अन्वयः— गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैः जलाग्न्यनिलदुर्गमम् मुरपाशयुतैः घोरैः दृढै सर्वतः आवृतम् प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ।।३।।

अनुवाद— पर्वत के दुर्गों से उसके पश्चात् शस्त्रों के दुर्गों से उसके बाद जल से भरी हुई खाई से उसके पश्चात् अग्निया बिजली की चाहारदिवारी से तथा उसके बाद वायु के दुर्ग से घिरे रहने के कारण अत्यन्त दुर्गम तथा मुर नामक दैत्य के दस हजार फंदों से घिरे हुए भौमासुर के नगर में श्रीभगवान् गये ।।३।।

भावार्थ दीपिका

गरुडेन याने कारणम्-गिरिदुर्गैरित्यादि । तैरुपलक्षितम् । जलाग्न्यनिलैश्च सर्वतो वर्तमानैर्दुर्गमम् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के गरुड़ वाहन से जाने का कारण था कि भौमासुर के नगर में जाना अत्यन्त कठिन था । पर्वतो आदि के दुर्गों से उपलक्षित जल, अग्नि तथा वायु से पूर्ण रूप से घिरे होने के कारण अत्यन्त दुर्गम था उस नगर में पहुँचना ।।३।।

गदया निर्बिभेदाद्रीन् शस्त्रदुर्गाणि सायकैः । चक्रेणाग्निं जलं वायुं मुरपाशांस्तथासिना ।।४।।

अन्वयः— गदया अद्रीन् विर्विभेद, सायकै शस्त्रदुर्गाणि निर्विभेद चक्रेण अग्निजंल वायुं तथा असिना मुरपाशान् निर्विभेद इतियावत् ।।४।।

अनुवाद— श्रीभगवान् ने अपनी गदा के प्रहार से पर्वतों को बाणों से शस्त्र दुर्गों को चक्र से अग्नि, जल तथा वायु के दुर्गों को विनष्ट कर दिए श्रीभगवान् ने उसके पश्चात् अपनी तलवार से मुर के पाशों को काट दिया ।।४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४।।

शङ्खनादेन यन्त्राणि हृदयानि मनस्विनाम् । प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ।।५।।

अन्वयः— शङ्ख नादेन यन्त्राणि मनस्विनां हृदयानि गदाधरः गुर्व्या गदया प्राकारं निर्विभेद ।।५।।

अनुवाद— श्रीभगवान् अपने पाञ्चजन्य शङ्ख की ध्वनि से वहाँ के भयङ्कर यन्त्रों को तथा मनस्वी वीरों के हृदय को विदीर्ण कर दिए तथा भगवान् गदाधर अपनी भरी गदा से नगर के परकोटे को विनष्ट कर दिए ।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५।।

पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगान्ताशनिभीषणम् । मुरः शयान उत्तस्थौ दैत्यः पञ्चशिरा जलात् ॥६॥

अन्वयः युगान्ताशनिभीषणात् पाञ्चजन्य ध्वनिं श्रुत्वा शयानः मुरः पञ्चशिरा दैत्य जलात् उत्तस्थौ ॥६॥

अनुवाद प्रलय कालीन बिजली की कड़क के समान भयङ्कर पाञ्चजन्य शङ्ख की ध्वनि को सुनकर सोया हुआ मुर नामक पाञ्च सिरो वाला दैत्य जल में सोया हुआ था वह जग गया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

युगान्ताशनेर्ध्वनिवद्भीषणम् । परिखाया जलात् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

प्रलय कालिक बिजली की कड़क के समान भयङ्कर खाई के जल से ॥६॥

त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो युगान्तसूर्यानलरोचिरुल्बणः ।
ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पञ्चभिर्मुखैरभ्यद्रवत्ताक्ष्यसुतं यथोरगः ॥७॥

अन्वयः— युगान्त सूर्यानलरोचिः उल्बणः सुदुर्निरीक्षणः त्रिशूलमुद्यम्य पञ्चभिर्मुखैः त्रिलोकीं ग्रसन् इव तार्क्ष्यसुतं उरग इव अभ्यद्रवत् ॥७॥

अनुवाद— प्रलयकालीन सूर्य के समान प्रचण्ड तेजः सम्पन्न उसको देखना भी कठिन था, वह अपने हाथ में त्रिशूल उठाकर अपने पाँच मुखों से मानों त्रैलोक्य को निगल लेना चाहता हो ऐसा वह श्रीभगवान् की ओर उसी तरह दौड़ा जैसे गरुड़ के ऊपर साँप टूट पड़ा हो ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत्स पञ्चभिः ।
सरोदसी सर्वदिशोऽन्तरं महानापूरयन्नण्डकटाहमावृणोत् ॥८॥

अन्वयः— शूलं तरसा आविध्य सः गरुत्मते निरस्य पञ्चभिःवक्त्रैः व्यनदत् सरोदसी सर्वदिशः अन्तरं महान् आपूरयन् अण्डकटाहम् आवृणोत् ॥८॥

अनुवाद— उसने त्रिशूल को घुमाकर गरुडजी पर चलाया और अपने पाँचों मुखों से सिंहनाद किया उसकी ध्वनि से सभी दिशाएँ भर गयीं और वह ध्वनि पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो गयी ॥८॥

भावार्थ दीपिका

आविध्य आतोल्य स महान्नाद इत्यन्वयः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

आविध्य अर्थात् घुमाकर वह महान् ध्वनि ॥८॥

तदापतद्वै त्रिशिखं गरुत्मते हरिः शराभ्यामभिनत्त्रिधौजसा ।
मुखेषु तं चापि शरैरताडयत्तस्मै गदां सोऽपि रुषा व्यमुञ्चत ॥९॥

अन्वयः— तदावै गरुत्मते आपतत् त्रिशिखं हरिः ओजसा शराभ्यां त्रिधा अभिनत् शरैः तं चापि मुखे अताडयत् तदा सः अपि रुषा तस्मै गदां व्यमुञ्चत् ॥९॥

अनुवाद— उस समय गरुडजी की ओर आते हुए त्रिशूल को देखकर श्रीहरि ने अपने दो बाणों से मारकर उसको तीन खण्डों में तोड़ दिया और उस मुर के भी मुख पर बाणों से प्रहार किया । उस समय उस दैत्य ने भी क्रोध करके श्रीभगवान् पर अपनी गदा चलायी ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तस्मै श्रीकृष्णाय गदां व्यमुञ्चत व्यक्षिपत् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण पर गदा चलाया ।।९।।

तामापतन्तीं गदया गदां मृधे गदाग्रजो निर्बिभिदे सहस्रधा ।
उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजित: शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ।।१०।।

अन्वय:— गदाग्रज: ताम् आपतन्तीं गदां गदया सहस्रधा निर्विभिदे, बाहून् उद्यम्य अभिधावत: अजित: शिरांसि चक्रेण लीलया जहार ।।१०।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण ने उस अपनी ओर आती हुई गदा को अपनी गदा के प्रहार से हजारों टुकडे कर दिए । अपनी भुजाओं को उठाकर अपनी और दौड़कर आते हुए उसको देखकर श्रीभगवान् उसके शिरों को चक्र से खेल-खेल में ही काट दिए ।।१०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१०।।

व्यसु: पपाताम्भसि कृत्तशीर्षो निकृतशृङ्गोऽद्रिरिवेन्द्रतेजसा ।
तस्यात्मजा: सप्त पितुर्वधातुरा: प्रतिक्रियामर्षजुष: समुद्यता: ।।११।।

अन्वय:— कृत्तशीर्ष: व्यसु: इन्द्रतेजसा निकृत्त शृङ्गं: अद्रि: इव अम्भसि पपात पितुर्वधात् तस्य सप्त आत्मजा: प्रति:क्रयामर्षजुष: समुद्यता: ।।११।।

अनुवाद— शिरों के कट जाने से निष्प्राण वह दैत्य जल में उसी तरह गिर पड़ा जैसे इन्द्र के वज्र से शिखर के कट जाने से कोई पर्वत समुद्र में गिर पड़ा हो । पिता का वध हो जाने से दु:खी मुर के सात पुत्र क्रोध करके बदला लेने के लिए शस्त्रास्त्र से सम्पन्न होकर युद्ध करने के लिए तैयार हो गये ।।११।।

भावार्थ दीपिका

इन्द्रतेजसा वज्रेण । प्रतिक्रियया हेतुभूतया अमर्षजुष: ।।११।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्रतेजसा अर्थात् वज्र से । बदला चुकाने के लिए क्रोध से भरकर ।।११।।

ताम्रोऽन्तरिक्ष: श्रवणो विभावसुर्वसुर्नभस्वानरुणश्च सप्तम: ।
पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे भौमप्रयुक्ता निरगन्धृतायुधा: ।।१२।।

अन्वय:— ताम्र: अन्तरिक्ष: श्रवण: विभावसु: वसु: नभस्वान् सप्तम: अरुणश्च, भौमप्रयुक्ता: मृधे पीठं चमूपतिं पुरस्कृत्य धृतायुधा: निरगन् ।।१२।।

अनुवाद— मुर के पुत्रों के नाम थे ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु: वसु: । नभस्वान्, और अरुण । यह मुर का सातवाँ पुत्र था । वे सब भौमासुर से प्रेरित होकर तथा पीठ नामक दैत्य को सेनापति बनाकर युद्ध करने के लिए निकल पड़े ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

पीठं पीठनामानम् । निरगन्निरगमन् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

पीठम् अर्थात् पीठ नामक, निरगन् अर्थात् निकले ।।१२।।

प्रायुञ्जतासाद्य शरानसीन्गदाः शत्तयृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः ।
तच्छस्त्रकूटं भगवान्स्वमार्गणैरमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥१३॥

अन्वयः— आसाद्य रुषोल्बणाः अजिते, शरान् असीन् गदाः शक्तयृष्टिशूलानि प्रायुञ्जत, अमोघवीर्यः भगवान् तच्छस्त्रकूटं स्वमार्गणैः चकर्त ह ॥१३॥

अनुवाद— वहाँ आकर वे सब क्रोध से अत्यन्त भयङ्कर बने हुए श्रीभगवान् पर बाण, तलवार गदाएँ, शक्ति, ऋष्टि, तथा शूल का प्रहार करने लगे तथा अमोघ शक्ति सम्पन्न श्रीभगवान् भी अपने बाणों से उस शस्त्र समूह को तिल-तिल करके काट कर गिरा दिए ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

तान्पीठमुख्याननयद्यमक्षयं निकृत्तशीर्षोरुभुजाङ्घ्रिवर्मणः ।
स्वानीकपानच्युतचक्रसायकैस्तथा निरस्तान्नरको धरासुतः ॥१४॥

अन्वयः— निकृत्तशीर्षोरुभुजङ्घ्रिवर्मणः तान् पीठमुख्यान् यमक्षयं अनयत् अच्युतचक्रसायकैः तथानिरस्तान् स्वानीकपान धरासुतः नरकः निरीक्ष्येति श्लोकेनान्वयः ॥

अनुवाद— जिन दैत्यों के सिर, जङ्घों, भुजा पैर और कवच कट गये थे उन पीठ तथा उसके साथियों को श्रीभगवान् यमलोक पहुँचा दिए । भगवान् अच्युत के बाणों से उस तरह से मारे गये अपने सेनापतियां को देखकर पृथिवी का पुत्र भौमासुर सह न सका ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

कृत्तानि शीर्षादीनि येषां तान् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

जिन सबों के सिर आदि कट गये थे ॥१४॥

निरीक्ष्य दुर्मर्षण आस्रवन्मदैर्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमत् ।
दृष्ट्वा सभार्यं गरुडोपरि स्थितं सूर्योपरिष्टात्सतडिद्धनं यथा ॥
कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं योधाश्च सर्वे युगपत्स्म विव्यधुः ॥१५॥

अन्वयः— धरासुतः पयोधि प्रभवैः आस्रवन्मदगजैः निराक्रमत सूर्योपरिष्टात् सतिडद्धनं यथा सभार्यं गरुडो परिस्थितं कृष्णं निरीक्ष्य दुर्मषणः तस्मै शतघ्नी व्यसृजत् सर्वेयोधाश्च युगपत् विव्यधुः स्म ॥१५॥

अनुवाद— पृथिवी के पुत्र भौमासुर समुद्र तट पर उत्पन्न हुए तथा जिनकी मदवारि प्रवाहित हो रही थी ऐसे हाथियों की सेना लेकर निकला । वह अपनी पत्नी के साथ गरुड पर विराजमान भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर असहिष्णु उसने भगवान् श्रीकृष्ण के ऊपर शतघ्नी नामक शक्ति विशेष को चलाया और सभी योधाओ एक ही समय श्रीभगवान् पर वह अपने अस्त्र-शस्त्रों को चलाया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

शतघ्नीं शक्तिविशेषम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

शतघ्नीम् अर्थात् शक्ति विशेष को चलाया ॥१५॥

तद्भौमसैन्यं भगवान्गदाग्रजो विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः ।
निकृत्तबाहूरुशिरोध्रविग्रहं चकार तर्ह्येव हताश्वकुञ्जरम् ॥१६॥

अन्वयः— भगवान् गदाग्रजः विचित्रवाजैः निशितैः शिलामुखैः तर्हिएव तद्भौम सैन्यं हताश्वकुञ्जरम् चकार ॥१६॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण अपने विचित्र पुंखों वाले तीक्ष्ण बाणों से उसी समय भैमासुर की उस सेना को कटे हुए भुजा जङ्घा, गर्दन तथा शरीर वाली बना दिए और उस सेना के हाथियों और अश्वों को मार दिए ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

विचित्रा वाजाः पत्राणि येषां तैर्बाणैर्निकृत्ता बाहव ऊरवः शिरोध्रः कन्धरा विग्रहा देहाश्च यस्मिंस्तत् । तर्ह्येव तं यदा विव्यधुस्तस्मिन्नेव क्षणे ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

अद्भुत पत्रों वाले तीक्ष्ण बाणों से भुजाएँ, जङ्घे, गर्दन तथा शरीर को काट डाले । उसी समय जब उन सबों ने अस्त्र-शस्त्र चलाया उसी क्षण ॥१६॥

यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह । हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रिभिः ॥१७॥

अन्वयः— हे कुरुद्वह ! योधैः यानिशस्त्रास्त्राणि प्रयुक्तानि तानि हरिः एकैकशः त्रिभिः शरैः अच्छिनत् ॥१७॥

अनुवाद— हे परीक्षित् योधओं ने जिन अस्त्रों एवं शस्त्रों का प्रयोग श्रीभगवान् उन प्रत्येक को अपने तीन-तीन तीक्ष्ण बाणों से काट दिए ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अत्याश्चर्ये कुरूद्वहेति संबोधनम् । तथाहि-तैर्यानि प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि तत्प्राप्तेः पूर्वमेव तत्सर्वं सैन्यं हत्वा पश्चात्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि च चिच्छेद । तत्राप्येकैकं शस्त्रमस्त्रं च त्रिभिः शरैरित्याश्चर्यम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त आश्चर्य के अर्थ में शुकदेवजी ने कुरुद्वह इस संबुद्धि पद का प्रयोग किया है । वह इस तरह से है उन सबों ने जिन अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग श्रीभगवान् पर किया उन सबों के पहुँचने से पहले ही भगवान् ने उन सबों को अपने तीन तीक्ष्ण बाणों के प्रयोग से काटकर गिरा दिया यही अत्यन्त आश्चर्य है ॥१७॥

उह्यमानः सुपर्णेन पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् । गरुत्मता हन्यमानास्तुण्डपक्षनखैर्गजाः ॥१८॥
पुरमेवाविशन्नार्ता नरको युध्ययुध्यत । दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनार्दितं स्वकम्॥१९॥
तं भौमः प्राहरच्छक्त्या वज्रः प्रतिहतो यतः । नाकम्पत तया विद्धो मालाहत इव द्विपः ॥२०॥

अन्वयः— सुपर्णेन उह्यमानः पक्षाभ्यां गजान् निघ्नता गरूत्मता तुण्डपक्षनखैः हन्यमानाः आर्ताः गजाः पुरम् एव आविशन् नरकः युधि अयुध्यत, गरुडेन विद्रावितं स्वकंसैन्यं दृष्ट्वा भौमः तं शक्त्या प्राहरत् यतः वज्रः प्रतिहतः । तया मालाहतः द्विप इव न अकम्पत ॥१८-१९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् गरुड पर सवार थे । गरुडजी अपने पङ्खों से हाथियों को मार रहे थे । गरुडजी के द्वारा चोंचों, पङ्खों और नखों से मारे जाते हुए हाथी घबरा गये और भागकर नगर में प्रवेश कर गये । नरकासुर युद्ध के मैदान में अकेले युद्ध करता रहा । गरुड़ के द्वारा भगाई गयी अपनी सेना को देखकर नरकासुर ने गरुड़जी पर उस शक्ति का प्रहार किया जिस शक्ति से इन्द्र के वज्र को व्यर्थ बना दिया था । किन्तु उसके प्रहार सें गरुड़जी उसी प्रकार विचलित नहीं हुए जैसे फूलों की माला से प्रहार करने पर हाथी विचलित नहीं होता है ॥१८-२०॥

भावार्थ दीपिका

किंच गरुत्मतेति । यतो यया शक्त्या वज्रः प्रतिहत आस । गरुडस्तु नाकम्पत ॥१८-२०॥

भाव प्रकाशिका

गरुड़जी भी हाथियों को अपने पङ्खों, चोचों तथा नखों से मार रहे थे । जिस शक्ति के द्वारा इन्द्र का व्रज भी विफल हो गया था ॥१८-२०॥

शूलं भौमोऽच्युतं हन्तुमाददे वितथोद्यमः। तद्विसर्गात्पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः ॥
अपाहरद्गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥२१॥

अन्वयः— वितथोद्यमः भौमः अच्युतं हन्तुं शूलम् आददे, तद्विसर्गात् पूर्वमेव गजस्थस्य नरकस्य हरिः क्षुरनेमिनाचक्रेण शिरः अपाहरत् ॥२१॥

अनुवाद— जिसका सारा प्रयास विफल हो गया था वह भौमासुर भगवान् श्रीकृष्ण को मारने के लिए त्रिशूल उठाया किन्तु उस त्रिशूल को चलाने से पहले ही श्रीहरि हाथी पर बैठे हुए नरकासुर का शिर तीक्ष्ण धार वाले चक्र से काट दिए ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

गरुडे वितथोद्यमः सन् शूलं त्रिशूलमाददे धृतवान् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

गरुड को मारने के लिए भौमासुर के द्वारा किया गया प्रयास व्यर्थ हो गया था । उसने श्रीभगवान् को मारने के लिए त्रिशूल उठाया ॥२१॥

सकुण्डलं चारुकिरीटभूषणं बभौ पृथिव्यां पतितं समुज्ज्वलत् ।
हाहेति साध्वित्यृषयः सुरेश्वरा माल्यैर्मुकुन्दं विकिरन्त ईडिरे ॥२२॥

अन्वयः— समुज्ज्वलत् सकुण्डलं चारुकिरीटभूषणं पृथिव्यां पतितं बभौ, हाहेति साधु इति ऋषय सुरेश्वराः माल्यैः विकिरन्तः मुकुन्दं ईडिरे ॥२२॥

अनुवाद— जगमगाता हुआ कुण्डल और मनोहर किरीट से सुशोभित भौमासुर का सिर पृथिवी पर गिरकर सुशोभित हो रहा था । उस समय भौमासुर के संबन्धी हाय-हाय करने लगे, ऋषिगण बहुत अच्छा कहने लगे और देवगण श्रीभगवान् पर पुष्पों और मालाओं की वर्षा करते हुए उनकी स्तुति करने लगे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

ततश्च भूः कृष्णमुपेत्य कुण्डले प्रतप्तजाम्बूनदरत्नभास्वरे ।
स वैजयन्त्या वनमालयार्पयत्प्राचेतसं छत्रमथो महामणिम् ॥२३॥

अन्वयः— ततः च भूः कृष्णम् उपेत्य प्रतप्तजाम्बूनद रत्न भास्वरे कुण्डले, स वैजयन्त्या वनमालया प्राचेतसं छत्रम् अथो महामणिम् अर्पयत् ॥२३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् भू देवी भगवान् श्रीकृष्ण के पास आकर तपाये हुए सुवर्ण से बने हुए एवं रत्न जटित चमकते हुए देवमाता आदिति के दोनों कुण्डलों को भगवान् को प्रदान कर दी, उन्होंने श्रीभगवान् के गले में वनमाला पहना दिया, वरुणदेव के छत्र को प्रदान किया उन्होंने श्रीभगवान् को महामणि प्रदान किया था॥२३॥

भावार्थ दीपिका

प्रतप्ते जाम्बूनदे यानि रत्नानि तैर्भास्वरे । मेर्वंशभूतं मन्दरशिखरं महामणिं चार्पयदिति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

तपाये सुवर्ण में जड़े गये रत्नों से चमकते हुए । सुमेरु पर्वत के अंशभूत मन्दराचल शिखर और महामणि को भी समर्पित किया ।।२३।।

अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम् । प्राञ्जलि: प्रणता राजन्भक्तिप्रवणया धिया ।।२४।।

अन्वय:— राजन् अथदेवी देववरार्चितं विश्वेशं प्राञ्जलि: प्रणता भक्तिप्रवणयाधिया अस्तोषीत् ।।२४।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! उसके बाद बड़े-बड़े देवताअें से पूजित सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीभगवन् की हाथ जोड़कर अत्यन्त विनम्रता पूर्वक भक्ति भाव भरे शब्दों से स्तुति करने लगीं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२४।।

भूमिरुवाच

नमस्ते देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर । भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन्नमोऽस्तु ते ।।२५।।

अन्वय:— हे देवदेवेश ! हे शङ्खचक्रगदाधर ते नम: हे परमात्मन् भक्तेच्छोपात्तरूपाय ते नम: अस्तु ।।२५।।

भूदेवी ने कहा

अनुवाद— हे देवताओं के भी पूज्यतम् प्रभो, हे शङ्ख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले प्रभो आपको मेरा नमस्कार है । हे परमात्मन् आप अपने भक्तों की इच्छा के अनुकूल ही शरीर धारण कर लेते हैं । ऐसे आपको नमस्कार है ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

ऐश्वर्यं ज्ञात्वा भूमि: स्तौति-नमस्त इति । परमात्मन् देवाद्यन्तर्यामिन् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के ऐश्वर्य को जानकर भूदेवी श्रीभगवान् की स्तुति करती हैं । नमस्ते इत्यादि श्लोक के द्वारा। परमात्मन् देवताओं के भी अन्तर्यामिन् प्रभो ।।२५।।

नम: पङ्कजनाभाय नम: पङ्कजमालिने । नम: पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ।।२६।।

अन्वय:— पङ्कजाभाय नम: पङ्कजमालिने नम:, पङ्कजनेत्राय नम पङ्कजाङ्घ्रये ते नम: ।।२६।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आपकी नाभि से कमल प्रकट हुआ है, आप कमल की माला को धारण करते हैं, आपके नेत्र कमल के समान मनोज्ञ एवं सुकुमार है, तथा कमल के समान अत्यन्त कोमल तथा मनोहर चरणो वाले आपको नमस्कार है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

येन मन्त्रेण कुन्त्या: प्रसन्न: पूर्वमासीत्तेन मन्त्रेण नमस्यति-नम इति । पङ्कजं नाभौ यस्य तस्मै जगत्कारणायेत्यर्थ: । अतएव सत्कीर्तिमयी पङ्कजमाला विद्यते यस्य तस्मै । एवंभूतं ध्यायतां पङ्कजवत्सुप्रसन्ने तापोपशमने नेत्रे यस्य तस्मै । पङ्कजवत्सुसेव्यौ पङ्कजाङ्कितौ आङ्घ्री यस्य तस्मै नम इति ।।२६।।

की स्तुति करते हैं। जिनकी नाभि में कमल है ऐसे जगत् के कारण स्वरूप आपको मेरा नमस्कार है। अतएव सत्कीर्ति सर्व जिनकी पङ्कज माला है ऐसे आपको नमस्कार है। इस प्रकार के आपका जो लोग ध्यान करते हैं उन लोगों पर कमल के ही समान प्रसन्न तथा उन जीवों के समस्त संतापों को दूर करने वाले जिनके नेत्र हैं ऐसे आपको नमस्कार है। कमल के ही समान सेवनीय तथा कमल के चिह्नों से चिह्नित दोनों चरणों वाले आपको मेरा नमस्कार है ॥२६॥

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे । पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥२७॥

अन्वयः— तुभ्यं भगवते नमः, वासुदेवाय, विष्णवे, पुरुषाय, आदिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥२७॥

अनुवाद— हे प्रभो ! सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्य सम्पन्न होने के कारण आप भगवत शब्द वाच्य हैं आपको नमस्कार है। आप ही वासुदेव, शब्द से अभिहित किए जाते हैं, ऐसे आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत् में व्यापक होने के कारण आप विष्णु शब्द वाच्य हैं आपको मेरा नमस्कार है। सृष्टि से भी पहले विद्यमान होने के कारण आप पुरुष शब्द वाच्य हैं ऐसे आपको मेरा नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत् के कारण भूत आपको नमस्कार है आप पूर्ण ज्ञान स्वरूप को मेरा नमस्कार है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

किंच भगवते निरतिशयैश्वर्याय वासुदेवाय सर्वभूताश्रयायात एव विष्णवे व्यापिने। नहि सर्वभूताश्रयत्वं परिच्छिन्नस्य संभवतीति कुतः सर्वाश्रयत्वं तत्राह-पुरुषाय सर्वस्मात्कार्यात्पूर्वमेव सते-'पूर्वमेवाहमिहासमिति तत्पुरुषस्य पुरुषत्वं' इति श्रुतेः। एतदपि कुतः। आदिबीजाय। आदेर्जगत्कारणस्यापि कारणाय। एवमपि न मृदादिवज्जाड्यमित्याह-पूर्णबोधायेति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

भगवते अर्थात् सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्य रूप आपको मेरा नमस्कार है। सभी भूतों के एक मात्र आश्रय होने के कारण आप वासुदेव हैं, ऐसे आपको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत् में व्यापक होने के कारण विष्णु आपको नमस्कार है। सभी भूतों का आश्रय वही होगा जो सीमित हो, अतएव श्रीभगवान् में सर्वभूताश्रयत्च कैसे है ? इस पर कहती है पुरुषाय, चूंकि आप सभी कार्यो से पहले विद्यमान रहते है, अतएव आपको नमस्कार है। श्रुति भी कहती है। **पूर्वमेवाहमासमिति पुरूषस्य पुरुषत्व ।** सभी कार्यों के पहले मैं (परमात्मा) ही था यह पुरुष का पुरुषत्व है। ऐसा भी कैसे कहा जा सकता है ? इस पर भूदेवी कहती है आदि बीजाय जगत् के कारण का भी परमात्मा कारण हैं। ऐसा होने पर भी वे मृत्तिका इत्यादि के समान जड़ नही है। आप पूर्ण ज्ञान स्वरूप अतएव आपको नमस्कार है ॥२७॥

अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये । परावरात्मन्भूतात्मन्परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥२८॥

अन्वयः— अजाय, अस्य जनयित्रे अनन्तशक्तये ब्रह्मणे नमः। हे परावरात्मन् भूतात्मन् परमात्मन् ते नमः अस्तु॥२८॥

अनुवाद हे प्रभो आप अजन्मा हैं, फिर भी इस जगत् को उत्पन्न करने वाले हैं, आप अनन्त शक्ति सम्पन्न परं ब्रह्म हैं ऐसे आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण कारण कार्य रूप जगत् की आत्मा है, प्राणी अथवा अप्राणी जितने भी जीव हैं वे सब आपके स्वरूप है हे परमात्मन् आपको नमस्कार है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवमपि स्वस्य कारणात्पूर्वं सत्त्वं न स्यादत आह-अजायेति। स्वयमजाय। अस्य च जगतो जनयित्रे। उभयत्रापि क्रमेण हेतुद्वयम्-ब्रह्मणे बृहते, अनन्त शक्तय इति च। बृहत्त्वादजत्वम्, अनन्तशक्तित्वात्तज्जनयितृत्वमित्यर्थः। ननु पित्रादयः पुत्रादीनां जनकास्तेषां च तत्पूर्वे तेषां च भूतानि तेषां च स्वकर्मद्वारेण जीवाः किमत्राहं तत्राह-परावरात्मन्नित्यादि। पित्राद्यात्मकत्वात्त्वमेव जनक इत्यर्थः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि ऐसा हेने पर भी अपने करण से पहले तो मेरी सत्ता नहीं हो सकती है इस पर भूदेवी **अजाय० इत्यादि** श्लोक कहती है कि आप तो अजन्मा है । ऐसा होकर भी इस जगत् को आप उत्पन्न करने वाले हैं । दोनों स्थानों में क्रमशः दो हेतुओं को उपन्यस्त किया गया है वे हैं १. ब्रह्मणे अर्थात् आप बृहत्व गुण सम्पन्न हैं । २ अनन्त शक्तये अर्थात् आप अनन्त शक्ति सम्पन्न होने के कारण जगत् को उत्पन्न करते हैं । बृहत्व गुण सम्पन्न होने के कारण आप अज हैं और अनन्त शक्ति सम्पन्न होने के कारण इस जगत् की सृष्टि करने वाले हैं। यदि आप कहें कि देखा जाता है कि पुत्रों आदि के उत्पन्न करने वाले उनके पिता इत्यादि होते हैं, और उन सबों को उत्पन्न करने वाले उनसे पहले रहने वाले जीव होते है, उन जीवों की उत्पत्ति भी उनके कर्मों के अनुसार हैं होने वाले जीव होते हैं, मैं इसमें कौन होता हूँ । तो इस पर पृथिवी देवी **परावरात्मन् इत्यादि** कहती हैं आप ही पिता इत्यादि रूप हैं अतएव आप ही जगत् के जनक हैं ॥२८॥

त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं प्रभो तमोनिरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः ।
स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषो भवान्परः ॥२९॥

अन्वयः— हे प्रभो सिसृक्षुः त्वं उत्कटं रजः निरोधाय तमः विभर्षि जगतः स्थानाय सत्वं हे प्रभो भवान् कालः प्रधानं परः पुरुषः ॥२९॥

अनुवाद— हे प्रभो जब आप जगत् की सृष्टि करना चाहते हैं तो उत्कट रजोगुण को धारण करते हैं जगत् का संहार करने के लिए आप उद्रिक्त तमोगुण को धारण करते हैं । जगत् की रक्षा करने के लिए आप उत्कृष्ट सत्वगुण को धारण करते हैं । यह सब कुछ करने पर भी आप इन गुणों से कभी लिप्त नहीं होते हैं । आप स्वयं ही प्रकृति पुरुष और इन दोनों के संयोग तथा वियोग के कारणभूत काल है और आप इन तीनों से परे हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

ननु गुणा विश्वोत्पत्त्यादिहेतवस्ते च प्रधानस्यैव तस्य च पुरुषः क्षोभकस्तत्र च कालो निमित्तमिति प्रसिद्धं किमत्राहं तत्राह-त्वं वा इति । तमसो धारणेऽप्यसंवृत एव । स्थानाय पालनाय । जगतः सृष्ट्याद्यर्थमुत्कटं रजआदि त्वमेव विभर्षि सृजसीत्यर्थः । कालप्रधानपुरुषाय त्वद्व्यतिरिक्ता न सन्ति त्वं तु परः सर्वव्यतिरिक्तः । अतस्त्वमेव जनयितेत्यर्थः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि जगत् की उत्पत्ति आदि के कारण तो गुण हैं और वे प्रधान के गुण है । पुरुष ही उस प्रकृति में सृष्टि की बेला आने पर क्षोभ उत्पन्न करता है । उसका भी निमित्त कारण काल है, यह बात प्रसिद्ध है मैं इसमें कौन होता हूँ । तो इस पर भू देवी **त्वं वै० इत्यादि** श्लोक कहती हैं । आप तमोगुण धारण करने पर उससे आच्छन्न नहीं होते है । स्थानाय अर्थात् पालन करने के लिए । अर्थात् जगत् की सृष्टि आदि करने के लिए आप रजस् आदि गुणों को धारण करते हैं तब सृष्टि आदि करते हैं काल, प्रधान और पुरुष ये तीनों आप ही हैं । ऐसा होने पर भी आप तीनों से परे हैं । अतएव आप ही जगत् को उत्पन्न करने वाले हैं ॥२९॥

अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि ।
कर्ता महानित्यखिलं चराचरं त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः ॥३०॥

अन्वयः— अहं, पयः, ज्योतिः, अनिलः नभः मात्राणि, देवा मनः, इन्द्रियाणि अहङ्कार, महान्, अखिलं चराचरं हे भगवन् अद्वितीयेत्वयि अयं पृथक् इति भ्रमः ॥३०॥

अनुवाद— हे प्रभो ! मैं (पृथ्वी), जल, तेज, वायु, आकाश पञ्चतन्मात्राएँ मन. इन्द्रिय, इनके अधिष्ठात्

देवता, अहङ्कार और महत् तत्त्व यह सम्पूर्ण चराचर आपके अद्वितीय स्वरूप में विद्यमान है, भ्रम के कारण ही यह पृथक् प्रतीत हो रहा है ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

कार्यकारणप्रपञ्चस्य तदव्यतिरेकं तस्य च सर्वव्यतिरेकमुपपादयति-अहमिति । अहं भूमिः । मात्राणीति देवा मन इन्द्रियाणीति च त्रिविधाहंकारकार्याणि । कर्ताऽहङ्कारः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

इस सम्पूर्ण कार्य कारण प्रपञ्च आपसे अभिन्न है तथा आप सबों से परे हैं, इस बात का प्रतिपादन करती हुई भू देवी कहती हैं **अहम्० इत्यादि** भूमि, तन्मात्राएँ, इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता मन तथा इन्द्रियाँ तीनों प्रकार के अहङ्कारों के कार्य, तथा अहङ्कार स्वरूप आप ही हैं ।।३०।।

तस्यात्मजोऽयं तव पादपङ्कजं भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः ।
तत्पालयैनं कुरु हस्तपङ्कजं शिरस्यमुष्यागखिलकल्मषापहम् ।।३१।।

अन्वयः— अयं तस्यात्मजः भीतः प्रपन्नार्तिहर तवपाद पङ्कजं उपसादितः तत् एनं पालय अखिल कल्मषापहमहस्तपङ्कजं अमुष्य शिरसिकुरु ।।३१।।

अनुवाद— हे प्रभो ! यह भौमासुर का पुत्र है अत्यन्त भयभीत है । हे शरणागत जीवों के कष्ट को विनष्ट करने वाले प्रभो इसको मैं आपके चरणों की शरण में ले आयी हूँ, आप इसकी रक्षा करें और समस्त पापों को विनष्ट करने वाले अपने हस्त कमलों को इसके सिर पर रख दें ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

एवं स्तुत्वा प्रार्थयते-तस्येति । हे प्रपन्नार्तिहर । तस्य नरकस्य अयं भगदत्तो नाम आत्मजः भीतोऽत एव मया तव पादपङ्कजमुपसादितः।।३१।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से श्रीभगवान् की स्तुति करके भूदेवी श्रीभगवान् से प्रार्थना करती हैं कि हे शरणागत जीवों के कष्ट को हरने वाले प्रभो ! यह भौमासुर का पुत्र भगदत्त है । यह भयभीत है । इसीलिए मैं इसको आपके चरण कमलों के शरण में लायी हूँ ।।३१।।

श्रीशुक उवाच

इति भूम्यार्थितो वाग्भिर्भगवान्भक्तिनम्रया । दत्त्वाऽभयं भौमगृहं प्राविशत्सकलर्द्धिमत् ।।३२।।

अन्वयः— इति भक्तिनम्रया भूम्या वाग्भिः अर्थितः भगवान् अभयं दत्त्वा सकलर्द्धिमत् भौमगृहं प्राविशत् ।।३२।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इसतरह से भक्ति से नम्र बनी हुई भूदेवी द्वारा वाणी से प्रार्थित श्रीभगवान् भगदत्त को अभय प्रदान करके सम्पूर्ण समृद्धियों से सम्पन्न भौमासुर के गृह में प्रवेश किए ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

अभयं दत्त्वा ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

भगदत्त को अभय प्रदान करके ।।३२।।

तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम् । भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥३३॥

अन्वयः— हरिः तत्र राजन्यकन्यानां षट् सहस्राधिकायुतम् राजभ्यो विक्रम्य भौमाहृतानां ददृशे ॥३३॥

अनुवाद— वहाँ पर श्रीहरि ने सोलह हजार राजकुमारियों को जिनको राजाओं पर आक्रमण करके भौमासुर ने हरण करके लाया था देखा ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

शताधिकमित्यपि ज्ञातव्यम् । यथाह श्रीपराशरः-'कन्यापुरे स कन्यानां षोडशातुलविक्रमः । शताधिकानि ददृशे सहस्राणि महामते ॥' इति राजभ्य इत्युपलक्षणं सिद्धादिभ्यश्चेति । तथा च तेनैवोक्तम्- 'देवसिद्धासुरादीनां नृपाणां च जनार्दन । हत्वा हि सोऽसुरः कन्या रुरोध जिनमन्दिरे ॥' इति ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

सोलह हजार से सौ अधिक जानना चाहिए । जैसा कि श्रीपराशर महर्षि ने कहा भी है अतुल पराक्रम सम्पन्न श्रीभगवान् कन्याओं के अन्तःपुर में सोलह हजार से सौ अधिक कन्याओं को देखे । श्लोक का राजभ्यः उपलक्षण है सिद्धों आदि की कन्याओं का हरण करके वह लाया था भगदत्त ने ही कहा हे जनार्दन ! देवताओं सिद्धों, असुरों तथा राजाओं की कन्याओं का हरण करके वह असुर अपने महल में बन्दी बनाकर रखा था ॥३३॥

तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः । मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ॥३४॥

अन्वयः— तं नरवीरं प्रविष्टं विक्ष्य विमोहिताः स्त्रियः दैवोपसादितं तं मनसा अभीष्टं पतिं वव्रिरे ॥३४॥

अनुवाद— मनुष्य श्रेष्ठ श्रीभगवान् को अन्तःपुर में प्रवेश किए हुए देखकर अपना सौभाग्य समझकर उनको अपने अभिप्रेत पति के रूप में उन कन्याओं ने मन से वरण कर लिया ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

भूयात्पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम् । इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥३५॥

अन्वयः— इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधु, अयं मह्यम् पतिः भूयात् धाता तदनुमोदताम् ॥३४॥

अनुवाद— इस तरह से सभी कन्याओं ने अलग-अलग भाव पूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण में अपने मन को लगाया। उन मबों ने निश्चय किया कि ये श्रीकृष्ण ही मेरे पति हों और विधाता हमलोगों के इस मनोरथ को पूर्ण करें ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३५॥

ताः प्राहिणोद्द्वारवतीं सुमृष्टविरजोम्बराः । नरयानैर्महाकोशान्रथाश्वान्द्रविणं महत् ॥३६॥ महत् द्रविणं च ॥३६॥

अन्वयः— सुमृष्ट विरजोम्बराः ताः नरयानैः द्वारवतीं प्राहिणोत् महाकोशान् रथाश्वान् महत् द्रविणं च ॥३६॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण उन राजकुमारियों को सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से अलंकृत करके पालिकियों में द्वारका भेज दिए और उनके साथ ही बहुत से खाजाने रथ घोड़े और तथा अतुल सम्पत्ति भी भेज दिए ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

प्राहिणोत्प्रस्थापयामास । सुमृष्टाः कमनीयाश्च ता विरजोम्बराश्च ताः । नरयानैः शिविकाभिः । अपि च महाकोशानिति॥३६॥

भाव प्रकाशिका

प्राहिणोत् अर्थात् भेज दिया । अच्छी तरह से स्नान कराकर अच्छे वस्त्रों एवं आभूषणों से सजाकर पालकियों से भेज दिए बड़े-बड़े कोशों को भी भेज दिए ॥३६॥

ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दन्तांस्तरस्विनः । पाण्डुरांश्च चतुःषष्टिं प्रेमयामास केशवः ॥३७॥

अन्वयः— केशवः चतुर्दन्तान् तरस्विनः पाण्डुरांश्च चतुष्षष्टिं ऐरावतकुलेभान् च प्रेषयामास ॥३७॥

अनुवाद भगवान् श्रीकृष्ण चार दाँतों वाले वेग सम्पन्न श्वेतवर्ण के चौसठ ऐरावत के वंश में उत्पन्न हाथियों के [illegible] [illegible] भेज दिए ॥३७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

गत्वा सुरेन्द्रभवनं दत्त्वाऽदित्यै च कुण्डले । पूजितस्त्रिदशेन्द्रेण सहेन्द्राण्या च सप्रियः ॥३८॥

अन्वयः— सुरेन्द्र भवनं गत्वा, अदित्यै चकुण्डले दत्वा इन्द्राण्या सह इन्द्रेण सप्रियः पूजितः ॥३८॥

अनुवाद— इन्द्र के भवन मे जाकर देव माता अदिति को उनका कुण्डल समर्पित किए । वहाँ इन्द्र इन्द्राणी के साथ सत्यभामाजी के साथ भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा किए ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

सप्रियः सत्यभामासहितः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

सप्रियः अर्थात् सत्यभामाजी के साथ ॥३८॥

चोदितो भार्ययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति । आरोप्य सेन्द्रान्विबुधान्निर्जित्योपानयत्पुरम् ॥३९॥

अन्वयः— भार्यया चोदितः पारिजातं उत्पाट्य गरुत्मति आरोग्य, सेन्द्रान् विवुधान् निर्जित्य पुरम् अनयत् ॥३९॥

अनुवाद— सत्यभामाजी के द्वारा प्रेरित होकर श्रीभगवान् पारिजात वृक्ष को उखाड़कर तथा गरुड़ पर रखकर इन्द्र के साथ ही देवताओं को पराजित् कर द्वारकापुरी में लाए ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः । अन्वगुर्भ्रमराः स्वर्गात्तद्गन्धासवलम्पटाः ॥४०॥

अन्वयः— सत्यभामायाः गृहोद्यानोपशोभनः स्थापितः तद्गन्धासवलम्पटाः भ्रमराः स्वर्गात् अन्वगुः ॥४०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् उसको सत्यभामाजी के गृहोद्यान में लगा दिए जिससे की उस उद्यान की शोभा बढ़ गयी । कल्पवृक्ष के साथ उसकी सुगन्धि एवं पराग: के लोभी भौरे भी स्वर्ग से द्वारका में आ गये ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

गृहोद्यानं निष्कुटं तदुपशोभयति यः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

गृहोद्यान को निष्कुट कहते हैं । उसको सुशोभित करने वाला ॥४०॥

ययाच आनम्य किरीटकोटिभिः पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् ।
सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महानहो सुराणां च तमो धिगाढ्यताम् ॥४१॥

अन्वयः आनम्य किरीट कोटिभिः पादौ स्पृशनार्थ साधनम् अच्युतं ययाच सिद्धार्थः एतेन विगृह्यते अद्ये सुराणां महान् तम आढ्यताम् धिक् ॥४१॥

अनुवाद— जिस इन्द्र ने अपना सिर झुकाकर किरीट की नोक से श्रीभगवान् के चरणों का स्पर्श करके उनसे सहायता माँगी वही इन्द्र काम सिद्ध हो जाने पर श्रीभगवान् से युद्ध किया । देवता अत्यन्त तमोगुणी हैं। उनमें विद्यमान धनाढ्यता को धिक्कार है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

सेन्द्रान्विबुधान्निर्जित्येतीन्द्रकृष्णयो: संग्राम उक्तस्तत्र ननु कथं प्रसाधितस्वमनोरथेन श्रीकृष्णेन महेन्द्रस्य संग्राम इत्याह-ययाच इति । **अच्युतमर्थसाधनमिति च कर्मद्वयं याचतिधातो:** । विगृह्यते विग्रहं करोति महानपि । तम: क्रोध: । आढ्यतां धनिकतां धिगिति ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्र सहित देवताओं को परास्त करके इस वाक्यांश के द्वारा इन्द्र और भगवान् श्रीकृष्ण का संग्राम कहा गया है । प्रश्न है कि भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा जिसके मनोरथ की पूर्ति हुई उसी इन्द्र के साथ युद्ध कहा गया है । **ययाच इत्यादि** श्लोकं से कहा गया है । **अच्युतमर्थसाधनम्** में दो कर्म पदों को कहा गया हैं । याच् धातु के दो कर्म होते ही है । विगृह्यते अर्थात् युद्ध करता है, यद्यपि इन्द्र महान हैं फिर भी ऐसा किए । **तम:** अर्थात् क्रोध । धनिकता को धिक्कार हैं ।।४१।।

अथो मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु ता: स्त्रिय: । यथोपयेमे भगवांस्तावद्रूपधरोऽव्यय: ।।४२।।

अन्वय:— अथो एकस्मिन् मुहूर्ते अव्यय: भगवान् नानागारेषु तावत् रूपधर: ता: स्त्रिय: यथा उपयेमे ।।४२।।

अनुवाद— उसके पश्चात् निर्विकार श्रीभगवान् अनेक गृहों में जितनी स्त्रियाँ थी उतना ही रूप धारण करके उन सबों के साथ एक ही मुहूर्त में विवाह किए ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

यथा यथावत् । अनेन देवक्यादिबन्धुजनसमागमोऽपि प्रतिगृहं यौगपद्येन सूचित: । अव्यय: सर्वत्रापि संपूर्ण एव।।४२।।

भाव प्रकाशिका

यथा अर्थात् यथोचित विधि से इस तरह देवकीजी आदि बान्धवों का सभागम भी प्रत्येक गृह में सूचित किया गया है ।।४२।।

गृहेषु तासामनपाय्यतर्क्यकृन्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थित: ।
रेमे रमाभिर्निजकामसंप्लुतो यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन् ।।४३।।

अन्वय:— तासां अनपाय्यतर्क्यकृत् निरस्त साम्यातिशयेषु गृहेषु अवस्थित: निजकामसंप्लुत: रमाभि: यथेतर: गार्हकमेधिकान् चरन् रेमे ।।४३।।

अनुवाद— उन पत्नियों के गृहों में सदैव करने वाले मति की गति से परे कर्मों को करने वाले श्रीभगवान् उन पत्नियों के गृहों में इतनी सामग्रियाँ थी कि उतनी सामग्री कहीं नहीं हो सकती है, उससे अधिक होने की ना कोई सम्भावना ही नहीं थी । अपने आप में ही परिपूर्ण रहने वाले श्रीभगवान् लक्ष्मीजी के अंशभूत पत्नियों के साथ दूसरे गृहस्थों के समान गृहस्थ धर्मों का पालन करते हुए विहार किए ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

अहो भाग्यं नारीणामित्याह त्रिभि:-गृहेष्विति । अतर्क्याणि कर्माणि करोति तथा स: । निरस्तं साम्यमतिशयश्च यैरन्येषां तेषु गृहेष्वनपाय्यवस्थित: । रमाभिर्लक्ष्म्या अंशभूताभि: । निजकामसंप्लुत: स्वानन्दपरिपूर्ण: । गार्हकमेधिकान् गृहस्थधर्मान्।।४३।।

भाव प्रकाशिका

स्त्रियो के महान् सौभाग्य का वर्णन गृहेषु इत्यादि तीन श्लोकों से करते हैं । अतर्क्यकर्मकृत् अर्थात् बुद्धि गति से परे कर्मों को करने वाले, निरस्त साम्यातिशयेषु अर्थात् जिन सबों के समान ही कोई नहीं था तो उससे अधिक

कहाँ से सम्भव है. ऐसे उन स्त्रियो के गृहो मे सदैव विद्यमान रहने वाले श्रीभगवान् । रमाभिः अर्थात् लक्ष्मीजी के अंशभूत स्त्रियो से । **निजकाम संप्लुतः** अर्थात् आत्मानन्द परिपूर्ण, **गार्हकमेधिकान्** अर्थात् गृहस्थ धर्मो का।।४३।।

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पादवीं यदीयाम् ।
भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासवलोकनवसङ्गमजल्पलज्ञाः ।।४४।।

अन्वयः— यदीयां पदवीं ब्रह्मादयोऽपि न विदुः इत्थं रमापतिं पतिम् अवाप्य ताः स्त्रियः अविरतम् मेधितया अनुरागहासवलोकनवसङ्गजल्पलज्जाः भेजुः ।।४४।।

अनुवाद— जिन श्रीभगवान् के स्वरूप को ब्रह्मा आदि देवता भी वास्तविक रूप से नहीं जानते हैं, इस प्रकार के लक्ष्मीपति श्रीभगवान् को पति के रूप में प्राप्त करके वे सभी स्त्रियों के नित्य निरन्तर प्रेम की वृद्धि होती रहती थी । और वे प्रेम पूर्ण मुस्कान मधुर अवलोकन, नवीन समागम, प्रेमालाप, तथा भाव की अभिवृद्धि करने वाली लज्जा से युक्त होकर श्रीभगवान् की हर प्रकार से सेवा करती रहती थीं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

अनुरागहाससहितमवलोकं च तत्पूर्वकं नवसङ्गमं च तद्गतं जल्पं च तस्मिन् लज्जां च भेजुः ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

प्रेम पूर्ण हँसी से युक्त प्रेक्षण पूर्वक नवीन समागम गत बातें और उसके कारण होने वाली लज्जा को भी प्राप्त किया ।।४४।।

प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ।
केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पारिजातहरणनरकवधोनामैकोनषठतमोऽध्यायः ।।५९।।

अन्वयः— दासी शताअपि प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचताम्बूलविश्रमण वीजनगन्धमाल्यैः केशप्रसारशयन स्नपनोपहार्यैः विभोः दास्यम् विदधुः ।।४५।।

अनुवाद— उन सभी पत्नियों के साथ सेवा करने के लिए सैकड़ौं दासियाँ थी फिर भी जब श्रीभगवान् उन सबो के महल मे जाते थे तो वे स्वयम् आगे जाकर श्रीभगवान् को आदर पूर्वक लिवा लाती थीं; श्रेष्ठ आसन पर बैठाती थीं, उनकी उत्तम सामग्रियों से पूजा करती थीं, उनके चरण कमल को पखारती, पान लगाकर खिलाती, पैर दबाकर उनकी थकान दूर करती, पङ्खा झलती, इत्र चन्दन आदि लगाती, पुष्पो की माला पहनाती, श्रीभगवान् के केश को सँवारती, सुलाती, स्नान कराती तथा अनेक प्रकार के भोजन कराकर अपने ही हाथों श्रीभगवान् की सेवा करती थीं ।।४५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के पारिजात हरण तथा नरकासुर वध नामक उनसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५९।।

भावार्थ दीपिका

विश्रमणं पादसंवाहनम् । केशप्रसारः केशप्रसाधनम् । दासीनां शतानि विद्यन्ते यासां तथाभूता अपि स्वयं विभोर्दास्यं विदधुः ।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे भावप्रकाशिकायां टीकायां एकोनषष्टितमोऽध्यायः ।।५९।।

भाव प्रकाशिका

विश्रमणं अर्थात् पैर दबाना, केस प्रसार: अर्थात् केश संवारना, जिन सबों की सैकड़ों दासियाँ थीं फिर भी अपने हाथों से श्रीभगवान् की सेवा करती थीं ॥४५॥

इस तरह श्रीमद्भगवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के उनसठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।५९।।

* * *

साठवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण रुक्मिणी संवाद

श्रीशुक उवाच

कर्हिचित्सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम् । पतिं पर्यचरद्भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ।।१।।

अन्वयः— कर्हिचित् जगद्गुरुम् स्वतल्पस्थं सुखमासीनं पतिं भौष्मी सखीजनैः व्यजनेन पर्यचत् ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— एक दिन जगत् के माता-पिता तथा ज्ञान प्रदाता भगवान् श्रीकृष्ण श्रीरुक्मिणीजी के पलङ्ग पर सुख पूर्वक बैठे थे और श्रीरुक्मिणीजी अपनी सखियों के साथ उनको पङ्खा झल रही थीं और सेवा कर रहीं थीं।।१।।

भावार्थ दीपिका

अथ षष्टितमे कृष्णः परिहासेन रुक्मिणीम् । कोपयित्वा ततः प्रेमकलहे तामसान्त्वयत् । रामारामजनानन्दमहोदयविडम्बनैः। रुक्मिण्या प्रेमकलहच्छद्मनैश्वर्यमीर्यते । स्वतल्पस्थं स्वपर्यङ्कस्थम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

साठवें अध्याय में भगवान् कृष्ण परिहासभरी वाणी से श्रीरुक्मिणीजी को कुपित कराकर उसके पश्चात् उनको प्रेम कलह में सान्त्वना प्रदान किए । पत्नियों के साथ विहार करने वाले लोगों को होने वाली आनन्द की प्राप्ति के अनुकरणों के द्वारा रुक्मिणीजी से प्रेमकलह के व्याज से अपने ऐश्वर्य को अभिव्यक्त किए । स्वतल्पस्थम् अर्थात् अपने पलङ्ग पर बैठे हुए ।।१।।

यस्त्वेतल्लीलया विश्वं सृजत्यत्त्यवतीश्वरः । स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुष्वजः ।।२।।

अन्वयः— यः तु ईश्वरः एतत् विश्वं लीलया सृजति अवति सः हि अजः एव सेतूनां गोपीथाय यदुषु जातः ।।२।।

अनुवाद— जो सर्वशक्तिमान परमात्मा खेल-खेल में ही इस विश्व की सृष्टि करते हैं और रक्षा करते हैं वे ही अपनी बनायी हुई धर्म की मर्यादाओं की रक्षा करने के लिए यदुवंश में अवतीर्ण हुए हैं ।।२।।

भावार्थ दीपिका

वक्ष्यमाणं रुक्मिण्याः श्रीकृष्णे परमं प्रेम संभावयितुं तस्योक्तमेव तत्त्वमनुस्मारयति-यस्त्विति ।।२।।

भाव प्रकाशिका

यस्तु इत्यादि श्लोक के द्वारा आगे जिसका वर्णन किया जाना है उस श्रीरुक्मिणीजी के भगवान श्रीकृष्ण में परम प्रेम को समादृत करने के लिए उनके द्वारा उक्त तत्त्व का स्मरण दिलाते हैं ।।२।।

तस्मिन्नन्तर्गृहे भ्राजन्मुक्तादामविलम्बिना । विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥३॥
मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादिते । जालरन्ध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चन्द्रमसोऽमलैः ॥४॥
पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना । धूपैरगुरुजै राजञ्जालरन्ध्रविनिर्गतैः ॥५॥
पयःफेननिभे शुभ्रे पर्यङ्के कशिपूत्तमे । उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम् ॥६॥

अन्वयः— भ्राजन् मुक्तादामविलम्बिना वितानेन मणिमयैः दीपैः विराजिते मल्लिका दामभिः पुष्पैः द्विरेफकुल नादिते, जालरन्ध्र प्रविष्टैः चन्द्रमसः अमलैः गोभिः उद्यानशालिना पारिजात वनामोदवायुना जालरन्ध्र विनिर्गतैः अगरुजै धूपैः विराजिते तस्मिन् अन्तर्गृहे पयः फेन पर्यङ्के कशिपूतमे सुखासीनं जगताम् ईश्वरं पतिम् उपतस्थे ॥३-६॥

अनुवाद— जिसमें मोती की लड़ियाँ लटक रही थी ऐसे चन्दोवे से तथा मणिमय दीपों से सुशोभित वेला चमेली के पुष्पों पर मँडराने वाले भ्रमरों के गुञ्जन से गुञ्जित, खिड़कियों के छिद्रों से प्रविष्ट चन्द्रमा की स्वच्छ किरणों से सुशोभित जिसके उद्यान में पारिजात के उपवन में शीतल, मन्द सुगन्ध वायु चल रही थी तथा जिसके झरोखों की जालियों से अगुरु धूप का धूआँ निकल रहा था इस प्रकार के उस महल में दूध के फेन के समान कोमल तथा उजले विछौनों से युक्त पलङ्ग पर सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण सुख पूर्वक बैठे थे और अपने पति भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा श्रीरुक्मिणीजी कर रही थीं ॥३-६॥

भावार्थ दीपिका

आदौ तावन्त्रिभिः श्लोकैर्मन्दिरमनुवर्णयति-तस्मिन्निति । तच्छब्देनातिप्रसिद्धमाह-भ्राजन्ति मुक्तादामानि तेषां विलम्बाः सन्ति यस्मिंस्तेन वितानेन विराजिते । तृतीयान्तेन विराजितपदेनान्वयः । सुगन्धितया द्विरेफकुलैर्नादिते । प्रविशद्भिश्चन्द्ररश्मिभिः। निर्गच्छद्भिरगुरुसंभवैर्धूपैश्चातिमनोहरत्वं दर्शितम् । पयसः क्षीरस्य फेन इव मृदुनि पर्यङ्कस्थे । कशिपूत्तमे हंसतूलिकायाम् । उपतस्थे असेवत ॥३-६॥

भाव प्रकाशिका

पहले तीन श्लोकों से श्रीरुक्मिणीजी के महल का वर्णन किया गया है । तस्मिन् के तत् पद के द्वारा अत्यन्त प्रसिद्धि को बतलाया गया है । जिसके वितान (चन्दोवे) से मोती की लड़ियाँ लटक रही थीं उस चन्दोवे से सुशोभित था वह भवन । तृतीयान्त पदों का **विराजिते** पद से अन्वय है । मालाओं की सुगन्धि के कारण भौरे गुनगुना रहे थे । जलकरन्ध्र से आने वाली चन्द्रमा की किरणें सुशोभित हो रही थीं । झरोखों के छिद्रों से निकलने वाली अगुरु धूप की सुगन्धि से उस भवन की सुन्दरता बतलायी गयी है । दूध के फेन के समान श्वेतपर्यंक पर कशिपूत्तमे अर्थात् हंसतुल वाली शय्या पर उपतस्थे अर्थात् सेवा कर रही थीं ॥३-६॥

वालव्यजनमादाय रत्नदण्डं सखीकरात् । तेन वीजयती देवी उपासांचक्र ईश्वरम् ॥७॥

अन्वयः— सखीकरात् रत्नदण्डम् बालव्यजनम् आदाय तेन वीजयती देवी ईश्वरम् उपासांचक्रे ॥७॥

अनुवाद— अपनी सखी के हाथ से रत्ननिर्मित दण्डे वाले चामर को लेकर रुक्मिणीजी उससे सर्वशक्तिमान अपने पतिदेव भगवान् श्रीकृष्ण को हवा कर रही थीं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाभिनयति-वालव्यजनमिति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

वालव्यजनीमित्यादि श्लोक के द्वारा उसी का अभिनय कर रहे है ॥७॥

सोपाच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां रेजेऽङ्गुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता ।
वस्त्रान्तगूढकुचकुङ्कुमशोणहारभासा नितम्बधृतया च परार्ध्यकाञ्च्या ॥८॥

अन्वयः— उपाच्युतं सा क्वण्यती मणिनूपुराभ्यां, अङ्गुलीयवलय व्यजनाग्रहस्ता, वस्त्रान्तगूढकुङ्कुम शोणहारभासा नितम्ब धृतया परार्ध्य काञ्च्या च रेगे ॥८॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के ही सन्निकट में विद्यमान जिनके पैरों के नूपुर बज रहे थे, हाथों के अग्रभाग में विद्यमान, अङ्गूठी, कङ्गन तथा चञ्चल चामर विद्यमान थे । आँचल के नीचे छिपे हुए स्तनों में लगे केसर की लालिमा से लाल-लाल प्रतीत होने वाला हार चमक रहा था तथा कमर में बहुमूल करधनी की लड़ी लटक रही थी इस प्रकार की श्रीरुक्मिणीजी सुशोभित हो रही थीं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

उपाच्युतमच्युतस्य समीपे सा मणिनूपुराभ्यां रेजे । क्वणयती मणिमयौ नूपुरौ कूजयन्ती । तथा अङ्गुलीयवलयव्यजनान्यग्रहस्ते हस्ताग्रे यस्याः सा । वस्त्रान्तेन गूढौ स्थगितौ कुचौ तयोः कुङ्कुमं तेन शोणो हारस्तस्य भासा, तथा नितम्बे धृता या परार्ध्या अमूल्या काञ्ची तया च रेजे ॥८॥

भाव प्रकाशिका

उपाच्युतम् अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण के सन्निकट में मणिरचित कुण्डलों से सुशोभित होती थीं । अपने मणिरचित नूपुरों को बजाती हुई । जिनके हाथों के अग्रभाग में अङ्गूठी कङ्गन और चमर विद्यमान थे । आँचल में ढँके हुए स्तनों के केसर की लालिमा से लाल प्रतीत होने वाले हार की कान्ति से तथा कमर में धारण की गयी बहुमूल्य करधनी से सुशोभित थीं रुक्मिणी जी ॥८॥

तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा ।
प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठवक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ॥९॥

अन्वयः— या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा तां अनन्यगतिं रूपिणीं श्रियम् निरीक्ष्य प्रीतः स्मयन् हरि अलककुण्डल निष्ककण्ठवक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां आबभासे ॥९॥

अनुवाद— जो लीला पूर्वक शरीर को धारण करने वाले श्रीभगवान् के अनुरूप शरीर को धारण की थीं श्रीभगवान् को छोड़कर जिनके लिए कोई दूसरा आश्रय नहीं है उन शरीर धारण की हुई लक्ष्मीजी को देखकर अत्यन्त प्रसन्न तथा मुस्कुराते हुए श्रीभगवान् घुंघराले केश, कानों के कुण्डल, और गले के हार से सुशोभित मुख चन्द्र से मुस्कुहारहट से अमृत वर्षा करने वाली श्रीरुक्मिणीजी से कहे ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तां निरीक्ष्य प्रीतः सन्स्मयमानो हरिराबभाषे । कथंभूताम् । या लीलया धृतनरतनोस्तस्यानुरूपरूपा अनुरूपं रूपं यस्यास्ताम् । यथोक्तं श्रीपराशरेण-'देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी । विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम् । इति । किंच अलकैः कुण्डलाभ्यां निष्केण पदकेनालंकृतकण्ठेन च चतुर्दिक्षु शोभिते वक्त्रे उल्लसन्ती स्मितसुधा यस्यास्ताम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उन श्रीरुक्मिणीजी को देखकर प्रसन्न होकर मुस्कुराते हुए श्रीहरि कहे । कैसी लक्ष्मी जी ? लीला पूर्वक शरीर धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के अनुकूल ही शरीर धारण की हुई श्रीरुक्मिणीजी को । जैसा कि श्रीमहर्षि पराशर ने श्रीविष्णु पुराण मे कहा भी है **देवत्वेदेव० इत्यादि** अर्थात् जब श्रीहरि देवता बन जाते हैं तो श्रीदेवी भी देवशरीर धारण कर लेती हैं, और जब वे मनुष्य बन जाते हैं तो लक्ष्मीजी भी मनुष्य शरीर धारण कर लेती

है । भगवान् विष्णु के शरीर के अनुकूल ही लक्ष्मीजी भी शरीर को धारण कर लेती हैं । तथा जिनके धुंघराले केशों दोनो कुण्डलो और गले के हार से अलंकृत कण्ठ से चारो दिशाओं में सुशोभित मुख पर मुस्कान की अमृत वर्षा हो रही थी ऐसी रुक्मिणीजी से ॥९॥

श्रीभगवानुवाच

राजपुत्रीप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः। महानुभावैः श्रीमद्भी रूपौदार्यबलोर्जितैः ॥१०॥
तान्प्राप्तानर्थिनो हित्वा चैद्यादीन्स्मरदुर्मदान्। दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मान्नो ववृषेऽसमान्॥११॥

अन्वयः राजपुत्रि लोकपालविभूतिभिः महानुभावैः श्रीमद्भिः रूपौदार्य बलोर्जितैः भूपैः इप्सिता स्मरदुर्मदान् चैद्यादीन् प्राप्तान् अर्थिनः पित्रा भ्रात्रा च दत्तान् हित्वा अस्मान् असमान् नः कस्मान् ववृषे ॥१०-११॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद हे राजकुमारी ! जिनके पास लोकपालों के समान ऐश्वर्य और सम्पत्ति है, जो बड़े महानुभाव हैं तथा जो सौन्दर्य औदार्य और बल में भी, बहुत आगे बढ़े हैं इस प्रकार के बड़े-बड़े राजा तुमसे विवाह करना चाहते थे, जो कामोन्मत्त होकर तुम्हारे याचक बने हुए थे ऐसे शिशुपाल आदि बड़े-बड़े वीरों को तुम्हारे पिता और भाई जिनसे विवाह करने के लिए तुम्हारा वाग्दान भी कर चुके थे उन सबों को छोड़कर मेरे जैसे व्यक्ति जो किसी भी तरह तुम्हारे समान नहीं है ऐसे मुझको तुमने अपना पति क्यों स्वीकार किया ?॥१०-११॥

भावार्थ दीपिका

सर्वगुणयुक्तापि तव बुद्धिर्मन्देत्याशयेनाह–राजपुत्रीत्याद्येकादशभिः। हे राजपुत्रि, लोकपालानामिव विभूतिभिरैश्वर्यं येषां तैस्तथा महाप्रभावैराढ्यै रूपादिभिरूर्जितैश्च पूर्वमीप्सितासि । तान्हित्वा नोऽस्मानसमानान्कस्माद्ववृषे वृतवती त्वम् ॥१०-११॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि तुममें सभी गुण विद्यमान हैं फिर भी तुम्हारी बुद्धि मन्द है, इसी आशय से श्रीभगवान् ने राजपुत्री इत्यादि ग्यारह श्लोकों से कहा हे राजकुमारी लोकपालों के समान जिनके पास ऐश्वर्य एवं सम्पत्ति है तथा जो महाप्रभाव से सम्पन्न है, रूप आदि के विषय में जो बहुत आगे हैं ऐसे राजागण तुमसे विवाह करना चाहते थे। उन सबों को छोड़कर तुम्हारे समान जो मैं नहीं था ऐसे मुझको तुमने पति रूप से क्यो वरण किया ॥१०-११॥

राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रूः समुद्रं शरणं गतान् । बलवद्भिः कृतद्वेषान्प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥१२॥

अन्वयः— हे सुभ्रूः राजभ्यः बिभ्यतः समुद्रं शरणं गतान् बलवद्भिः कृतद्वेषान् प्रायः त्यक्तनृपासनान् ॥१२॥

अनुवाद— हे सुन्दरी हम तो बड़े-बड़े राजाओं से डरकर समुद्र में आकर बस गये हैं बलवान् राजाओं से मेरा बैर भी है, और प्रायः राजसिंहासन के अधिकार से भी हम वंचित है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

किंच प्रायशो राजभ्यो जरासन्धादिभ्यो बिभ्यतो भयं प्राप्नुवतः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

प्रायः जरासन्ध आदि बड़े राजाओं के भय से भयभीत ॥१२॥

अस्पष्टवर्त्मनां पुंसामलोकपथमीयुषाम् । आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदन्ति योषितः ॥१३॥

अन्वयः— **हे सुभ्रूः । अस्पष्टवर्त्मनां पुंसां अलोकपथमीयुषाम् पदवीं आस्थिताः योषितः प्रायः सीदन्ति ॥१३॥**

अनुवाद— हे सुन्दरी ! लोगों को यह भी मालुम नहीं है कि मैं किस मार्ग के अनुयायी हूँ, हम लौकिक व्यवहार का भी ठीक से पालन नहीं करते हैं, जो स्त्रियाँ मुझ जैसे व्यक्ति का आश्रय करती है, वे प्रायः कष्ट भोगती है ?॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अस्पष्टवर्त्मनामविज्ञाताचाराणाम् । अलोकपथमस्त्रीपारतन्त्र्यम् । पदवीं मार्गं आस्थिता अनुसृताः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

जिनका आचरण ज्ञात नहीं है यह अस्पष्ट वर्त्मनाम् का अर्थ है, अलोक पथम् स्त्रियों के पारतन्त्र्य को नहीं स्वीकार करने वाले । पदवीम् अर्थात् मार्ग को, आस्थिता: अर्थात् अनुसरण करने वाली ।।१३।।

निष्किंचना वयं शश्वन्निष्किंचनजनप्रियाः । तस्मात्प्रायेण नह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ।।१४।।

अन्वयः— हे सुमध्यमे वयं निष्किञ्चनाः शश्वत निष्किञ्चनजनप्रियाः तस्मात् मां प्रायेण आढ्याः नहि भजन्ति ।।१४।।

अनुवाद— हे सुन्दरी मैं तो सदा से अकिञ्चन हूँ, और अकिञ्चन लोगों से ही मैं प्रेम भी करता हूँ । यही कारण है कि प्राय वे लोग जो अपने को धनी मानते हैं, वे मेरा भजन नहीं करते हैं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

किंच निष्किञ्चना इति ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

और मैं तो सदा से अकिञ्चन हूँ ।।१४।।

ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः । तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ।।१५।।

अन्वयः— ययोः आत्मसमंवित्त जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः तयोः विवाहो मैत्री च उत्तमअधमयोः क्वचित् न ।।१५।।

अनुवाद— जिन दो लोगों का धन, जन्म, ऐश्वर्य सौन्दर्य और आय अपने ही समान हो ऐसे ही लोगों में विवाह और मित्रता करनी चाहिए अपने से उत्तम अथवा अधम लोगों से नहीं करना चाहिए ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

आत्मसमं परस्परमनुरूपम् । जन्मैश्वर्याभ्यां सहिता आकृतिः रूपं जातिर्वा समा । भव आयतिः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अपने ही समान अर्थात् परस्पर में अनुकूल जन्म और ऐश्वर्य के साथ-साथ रूप अथवा जाति हो, भव: अर्थात् आय हो ।।१५।।

वैदर्भ्येतदविज्ञाय त्वयाऽदीर्घसमीक्षया । वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ।।१६।।

अन्वयः— हे वैदर्भि ! त्वया अदीर्घ समीक्षया एतद् विज्ञाय मुधा भिक्षुभिः श्लाधिता गुणैः हीना वयं वृताः ।।१६।।

अनुवाद— हे विदर्भराजकुमारी तुमने अपनी अदूरदर्शिता के कारण, इन सारी बातों पर विचार किए बिना हीं भिक्षुकों से मेरी झूठी प्रशंसा सुनकर मुझ गुणहीन का ही वरण कर लिया ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

न दीर्घा समीक्षा विचारो यस्यास्तया ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

खूब अच्छी तरह से विचार किए बिना ही ।।१६।।

अथात्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम् । येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ।।१७।।

अन्वयः— अथ आत्मनोऽनुरूपं क्षत्रियर्षभम् भजस्व येन त्वम्इह अमुत्र च सत्या आशिषः लप्स्यसे ।।१७।।

अनुवाद— अतएव अब भी तुम अपने अनुकूल किसी क्षत्रिय का वरण कर लो, जिससे कि तुम्हारी इस लोक में और परलोक में अभिलाषाएँ पूर्ण हो सकें ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अथ इदानीमपि ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

अथ अर्थात् अब भी ॥१७॥

चैद्यशाल्वजरासन्धदन्तवक्त्रादयो नृपाः । मम द्विषन्ति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः ॥१८॥

अन्वयः— हे वामोरु ! चैद्य शाल्वः जरासन्धः दन्तवक्त्रादयः नृपाः ममद्विषन्ति तव अग्रजः रुक्मी अपि ॥१८॥

अनुवाद— हे सुन्दरी शिशुपाल शाल्व, जरासन्ध तथा दन्तवक्त्र आदि राजागण मुझसे द्वेष करते हैं, तुम्हारा बड़ा भाई रुक्मी भी मुझसे द्वेष करता है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि किमित्यानीताहमिति चेत्तत्राह-चैद्यशाल्वजरासन्धेति । मम मां द्विषन्ति ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

यदि तुम कहो कि तो फिर आप मुझे क्यों लाए तो इसका उत्तर है कि शिशुपाल, शाल्व जरासन्ध थे सब मुझसे द्वेष करते हैं ॥१८॥

तेषां वीर्यमदान्धानां दृप्तानां स्मयनुत्तये । आनीतासि मया भद्रे तेजोऽपहरताऽसताम् ॥१९॥

अन्वयः— भद्रे ! वीर्यमदान्धानं दृप्तानाम् तेषां स्मयनुत्ताये असताम् तेजः अपहरता माया आनीतासि ॥१९॥

अनुवाद— हे कल्याणी अपने पराक्रम के मद में अन्धे बने हुए घमण्डी उन सबों के घमण्ड और मद को दूर करने के लिए दुष्टों के तेज को दूर करने वाले मेरे द्वारा तुम लायी गयी हो ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

स्मयनुत्तये गर्वापनयनाय ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

स्मयनुत्तये अर्थात् गर्वापनोदन करने के लिए ॥१९॥

उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः । आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥२०॥

अन्वयः— नूनं वयं उदासीनाः स्त्र्यपत्यर्थकामुकाः न, आत्मलब्ध्या वयं पूर्णाः गेहयोः ज्योतिः अक्रियाः ॥२०॥

अनुवाद— मै तो निश्चित रूप से उदासीन रहने वाला हूँ मैं स्त्री-पुत्र धन सम्पत्ति का लोलुप नही है । मैं तो आत्मप्राप्ति के द्वारा ही सदा पूर्ण रहने वाला देह एवं गेह के संबन्ध से रहित दीप शिखा के समान साक्षी मात्र हूँ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

स्त्रीणामतिदुःसहमौदासीन्यमकामत्वं चाह-उदासीना इति । गेहयोर्देहगेहयोरुदासीना अतएव ज्योतिरक्रियाः ज्योतिः प्रदीपादि तद्वत्साक्षिमात्रतया क्रियारहिता आस्महे वर्तामहे इति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

स्त्रियों के लिए जो अत्यन्त असह्य उदासीन रहने वाला काम रहित मैं हूँ । देह एवं गेह से उदासीन अतएव

दीपशिखा के समान साक्षी मात्र हूँ । जिस प्रकार प्रदीप केवल गृह का प्रकाश मात्र करता है और कुछ भी नहीं करता उसी तरह मैं हूँ । हमेशा निष्क्रिय बने रहने वाला हूँ मैं ॥२०॥

श्रीशुक उवाच

एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं वल्लभामिव । मन्यमानामविश्लेषात्तद्दर्पघ्न उपारमत् ॥२१॥

अन्वयः— अविश्लेषात् आत्मानमेव वल्लभाम् मन्यमानाम् तत् दर्पघ्नः भगवान् एतावदुक्त्वा उपारमत् ॥२१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवान् को क्षणभर के लिए भी विलग नहीं होने के कारण रुक्मिणीजी अपने को ही सर्वाधिक श्रीभगवान् की प्रियतमा मानने लग गयी थीं, उनके इसी अभिमान को विनष्ट करने के लिए श्रीभगवान् इतना ही कहकर चुप हो गये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अविश्लेषाद्धेतोः आत्मानमेव वल्लभामित्येवार्थे इवशब्दः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

कभी अलग नहीं होने के कारण अपने को ही प्रियतमा । यहाँ एव के अर्थ में इव शब्द का प्रयोग है ॥२१॥

इति त्रिलोकेशपतेस्तदात्मनः प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम् ।
आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथुश्चिन्तां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥२२॥

अन्वयः— इति त्रिलोकेशपते आत्मनः प्रियस्य अश्रुतपूर्वम् अप्रियम् आश्रुत्य देवी भीता हृदि जातवेपथुः रुदती दुरन्ताम् चिन्ताम् जगाम ॥२२॥

अनुवाद— इस तरह से त्रैलोक्याधिपति अपने प्रियतम की अश्रुतपूर्व वाणी को सुनकर श्रीरुक्मिणीजी भयभीत हो गयीं उनके हृदय में कँप-कपीं हो गयी । वे रोने लगीं और भयङ्कर चिन्ता में पड़ गयीं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

पदा सुजातेन नखारुणश्रिया भुवं लिखन्त्यश्रुभिरञ्जनासितैः ।
आसिञ्चती कुङ्कुमरूषितौ स्तनौ तस्थावधोमुख्यतिदुःखरुद्धवाक् ॥२३॥

अन्वयः— नखारूणश्रिया सुजातेन पदा भुवं लिखन्ती अञ्जनासितैः अश्रुभिः कुङ्कूम रुषितौ स्तनौ आसिञ्चती अतिदुःखरुद्धवाक् अधोमुखी तस्थौ ॥२३॥

अनुवाद— नखों की लालिमा से लाल प्रतीत होने वाले कमल के समान कोमल पैरों से पृथिवी को कुरेदती हुई वे अंजन के मिल जाने से काली आंसुओं से केसर से रङ्गे स्तनों को धोने लगीं । उनका मुँह नीचे की ओर लटक गया और अत्यधिक कष्ट के कारण उनका गला रुँध गया और वे खड़ी ही रह गयीं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

चिन्तालक्षणमाह-पदेति । नखैररुणा श्रीः कान्तिर्यस्य तेन सुजातेन सुकोमलेन पदा ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

उनकी चिन्ता का लक्षण पदा **सुजातेन० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । नखों से लाल प्रतीत होने वाले

तस्याः सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धेर्हस्ताच्छ्लथद्वलयतो व्यजनं पपात ।
देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन्रम्भेव वायुविहता प्रविकीर्य केशान् ॥२४॥

अन्वयः- सुदुख भयशोक विनष्ट बुद्धेः हस्तात् श्लथत् वलयतः व्यजनं पपात विक्लवधिया वायु विहता रम्भेव मुह्यन् केशान् प्रविकीर्य सहसैव देहश्च पपात ॥२४॥

अनुवाद- अत्यधिक कष्ट, भय तथा शोक के कारण उनकी बुद्धि विनष्ट हो गयी, उनके हाथों के शिथिल हो जाने से कङ्गन भी खिसक गया हाथ का चमर छूट कर गिर पड़ा । बुद्धि की विकलता के कारण वे सहसा अचेत हो गयी, केश विखर गए और वायु के वेग से उखड़े हुए केले के स्तम्भ के समान पृथिवी पर गिर पड़ीं॥२४॥

भावार्थ दीपिका

सुदुःखमप्रियश्रवणात्, भयं त्यागशङ्कया, शोकोऽनुतापः, तैर्विनष्टा बुद्धिर्यस्यास्तस्याः । श्लथन्ति पतन्ति वलयानि यस्माद्धस्तात् । देहश्च पपात । विक्लवा अवशा धीर्यस्यास्तस्याः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की अप्रिय वाणी सुनकर अत्यधिक कष्ट हुआ, त्याग की शङ्का से भय हो गया और उसके कारण होने वाले संताप इन तीनों के कारण उनकी विचारशक्ति विनष्ट हो गयी । उनके हाथों का कङ्गन खिसक गया। उनका शरीर भी गिर गया । उनकी बुद्धि व्याकुल हो गयी ॥२४॥

तद्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः प्रियायाः प्रेमबन्धनम् । हास्यप्रौढिमजानन्त्याः करुणः सोऽन्वकम्पत ॥२५॥

अन्वयः— हास्यप्रौढिम् अजानन्त्याः प्रियाया प्रेमबन्धनम् तत् दृष्ट्वा सः भगवान् कृष्णः करुणः अन्व कम्पत॥२५॥

अनुवाद— हास्य की प्रौढी को नहीं जानने के कारण मेरी प्रेयसी के प्रेमपाश की दृढता के कारण यह दशा हुई है, यह देखकर करुण श्रीभगवान् श्रीरुक्मिणीजी पर कृपा किए ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

हास्यस्य प्रौढिं गाम्भीर्यम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

हास्य की गम्भीरता को ॥२५॥

पर्यङ्कादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः । केशान्समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत्पद्मपाणिना ॥२६॥

अन्वयः— चतुर्भुजः आशु पर्यङ्कात् अवरुह्य ताम् उत्थाप्य, केशान् समुह्य तदवक्त्रं पद्मपाणिना प्रामृजत् ॥२६॥

अनुवाद— चार भुजाओं वाले भगवान् शीघ्र ही पलङ्ग से उतरकर श्रीरुक्मिणीजी के केशों को सुलझाकर अपने कर कमल से उनके नेत्रों को पोंछे ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्भुज इति उत्थापनाश्लेषणवक्त्रपरिमार्जनाद्यर्थमाविष्कृतचतुर्भुज इत्यर्थः । समुह्य निबध्य ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीरुक्मिणीजी के उठाने, आलिङ्गन करने तथा मुख को पोछने के लिए श्रीभगवान् अपनी चार भुजाओं को आविष्कृत कर लिए । समुह्य अर्थात् बाँधकर ॥२६॥

प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा । आश्लिष्य बाहुना राजन्ननन्यविषयां सतीम् ॥२७॥

अन्वयः— राजन् आश्रु कले नेत्रे शुचा चोपहतौ स्तनौ प्रमृज्य अनन्यविषयां सतीम् बाहुना आश्लिष्य ॥२७॥

अनुवाद— राजन् ! परीक्षित् आँसुओं से मनोहर बने नेत्रों और शोक संतप्त दोनों स्तनों को पोंछकर अनन्य प्रेमभाव से सम्पन्न सती श्रीरुक्मिणीजी को भगवान् भुजाओं में भरकर अपनी छाती से लगा लिए ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

अश्रुकले अश्रुभिः शोभिते । शुचा शोकाश्रुभिः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

आँसुओं से मनोहर बने हुए । शुचा अर्थात् शोक की आँसुओं से ।।२७।।

सान्त्वयामास सान्त्वज्ञः कृपया कृपणां प्रभुः । हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतदर्हां सतां गतिः ।।२८।।

अन्वयः— हास्यप्रौढि भमच्चिताम् अतदर्हाम् सान्त्वज्ञः सतां गतिः प्रभुः कृपणां सान्त्वयामास ।।२८।।

अनुवाद— हँसी की गम्भीरता के कारण जिनका चित्त चकराने लगा अतएव इस तरह की हँसी के लिए आयोग्य तथा दीन बनी हुई श्रीरुक्मिणीजी को साधु पुरुषों के एकमात्र आश्रय सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान समझाने की कला को अच्छी तरह जानते हैं । उन्होंने रुक्मिणीजी को सान्त्वना प्रदान किया ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

सान्त्वयामासानुनीतवान् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

सान्त्वयामास अर्थात् समझाये ।।२८।।

श्रीभगवानुवाच

मा मा वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणाम् । त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याचरितमङ्गने ।।२९।।

अन्वयः— हे वैदर्भी मा मा असूयेथाः मत्परायणाम् त्वां जाने त्वद्वचः श्रोतुकामेन हे अङ्गने क्ष्वेल्या आचरितम्।।२९।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे विदर्भ राजकुमारी तुमको मुझसे बुरा नहीं मानना चाहिए, अर्थात् मुझसे रुठो मत ! मैं जानता हूँ कि तुम एक मात्र मेरी परायण हो । हे सुन्दरी तुम्हारी वाणी सुनने की इच्छा से मैंने तुमसे हँसी की थी।।२९।।

भावार्थ दीपिका

मा माम् । त्वद्वचः किं तु वदिष्यसीति श्रोतुकामेन श्रोतुमिच्छता क्ष्वेल्या नर्मणा एवमाचरितमुक्तं न तत्त्वतः हे अङ्गने सुन्दरि ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

मा अर्थात् मुझसे, तुम उत्तर में क्या कहती हो तुम्हारी बातों को सुनने की इच्छा से मैंने तुमसे हँसी की थी, मैंने वस्तुतः नहीं कहा था । हे अङ्गने अर्थात् हे सुन्दरी ।।२९।।

मुखं च प्रेमसंरम्भस्फुरिताधरमीक्षितुम् । कटाक्षेपारुणापाङ्गं सुन्दरभ्रुकुटीतटम् ।।३०।।

अन्वयः— प्रेम संरम्भ स्फुरिताधरमुखम् कटाक्षेपारुणापाङ्ग, सुन्दरभ्रुकुटी तटम् इक्षितुम् ।।३०।।

अनुवाद— तुम्हारे मुख के लाल-लाल ओष्ठ प्रणय कोप के कारण किस तरह फड़कते है ? तुम्हारे कटाक्ष पूर्वक देखने से तुम्हारे नेत्रों में कैसी लाली छा जाती है ? भौहों के चढ जाने के कारण तुम्हारा मुख कितना सुन्दर लगता है, यही सब देखने के लिए यह सब मैंने कहा था ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

प्रेमसंरम्भेण प्रणयकोपेन स्फुरित: कम्पितोऽधरो यस्मिंस्तत् । कटाथशब्देन कटाक्षास्तैराक्षेपैररुणावपाङ्गौ यस्मिंस्तत्। अतएव सुन्दरं कुटिलं भ्रुकुटीतटं यस्मिंस्तत् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

प्रणयकोप के कारण तुम्हारे फड़कते हुए ओष्ठोंमूल के कटाक्ष शब्द का अर्थ कटाक्ष ही है, कटाक्ष पूर्वक देखने से आयी हुई लालिमा तथा भौंहों के चढ़ जाने से, इन तीनों कारणों से तुम्हारे मुख की मैं शोभा देखना चाहता था ।।३०।।

अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् । यन्नर्मैर्नीयते याम: प्रियया भीरुभामिनि ।।३१।।

अन्वय:— हे भीरुभामिनि ! गृहमेधिनाम् गृहेषु अयं हि परमो लाभ: यत् प्रियया नर्मै: याम: नीयते ।।३१।।

अनुवाद— हे प्रियतमे सुन्दरी ! गृहस्थों के लिए घर गृहस्थी का तो इतना ही सर्वश्रेष्ठ लाभ है कि अपनी प्रियतमा के साथ हास-परिहास में कुछ थोड़ा सा समय बीता लिया जाय ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

ननु कलहे किं कौतुकं सुखं वाऽत आह-अयं हीति । नर्मैर्नर्मभि: । याम: काल: ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

यदि तुम पुछो कि काल में भी कोई कौतुक अथवा सुख होता है क्या ? इस पर श्रीभगवान् **अयं हि इत्यादि** श्लोक कहते हैं । हास परिहास में थोड़ा सुखमय समय बीत जाता है ।।३१।।

श्रीशुक उवाच

सैवं भगवता राजन्वैदर्भी परिसान्त्विता । ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ।।३२।।

अन्वय:— राजन् एवं भगवतापरिसान्त्विता सा वैदभी तत् परिहासोक्तिं ज्ञात्वा प्रियत्यागभयं जहौ ।।३२।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् इस तरह से श्रीभगवान् के द्वारा समझाये जाने पर विर्दभ राजकुमारी ने उसे हँसी समझकर भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा त्याग दिए जाने का भय त्याग दिया ।।३२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३२।।

बभाषे ऋषभं पुंसां वीक्षन्ती भगवन्मुखम् । सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापाङ्गेन भारत ।।३३।।

अन्वय:— हे भारत सव्रीडहासरुचिर स्निग्धापाङ्गेन भगवन्मुखम् वीक्षन्ती पुंसां ऋषभं बभाषे ।।३३।।

अनुवाद— हे परीक्षित् ! श्रीरुक्मिणीजी सलज्जहास्य एवं प्रेमपूर्ण मधुर चितवन से श्रीभगवान् के मुख को देखती हुई उन पुरुषश्रेष्ठ से कहीं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

भगवतस्तस्य ऐश्वर्ययुक्तं मुखं सव्रीडेन हासेन रूचिरेण स्निग्धेनापाङ्गेन वीक्षमाणा ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के ऐश्वर्य: युक्त मुख को लज्जायुक्त हंसी तथा मनोहर कटाक्षपात पूर्वक देखती हुई ।।३३।।

श्रीरुक्मिण्युवाच

नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाहं यद्वै भवान् भगवतोऽसदृशी विभूम्नः ।
क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ॥३४॥

अन्वयः हे अरविन्दविलोचन यद् वैभवान् भगवतः असदृशी नन्वेवम् एतत् क्व स्वेमहिम्न अभिरतः त्र्यधीशे भगवान् गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा अहं क्व ?॥३४॥

श्रीरुक्मिणीजी ने कहा

अनुवाद— हे कमलनयन आपने जो यह कहा है कि मैं आपके समान नहीं हूँ यह ठीक ही आप कहे हैं, क्योंकि आप षड्विध ऐश्वर्य सम्पत्र होने के कारण भगवान हैं, मैं आपके अनुरूप किसी प्रकार से नहीं हो सकती हूँ, अतएव आप यह ठीक ही कहे है । कहाँ तो आप अपनी अखण्ड महिमा में स्थित रहने वाले है, आप तीनों गुणों के स्वामी तथा ब्रह्मादि देवताओं से सेवित हैं, और कहाँ तो मैं मेरा स्वभाव तीनों गुणों के अनुसार है । मैं गुणमयी प्रकृति हूँ, जिनकी सेवा कामनाओं के पीछे भटकने वाले अज्ञानी लोग ही किया करते हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

'असमत्वं भयं दुर्गाश्रयणं प्रबलैः कलिः । अराजत्वमविज्ञाता लौकिकेहावसादनम् ॥१॥ निष्किंचनत्वं तत्प्रीतिराढ्यानादरणीयता । अनौचित्यं निर्गुणत्वं वृथाश्लाघा च भिक्षुभिः ॥२॥ औदासीन्यमकामत्वं स्वदोषान्षोडशाऽसतः । अज्ञत्वादीर्घदर्शित्वे भैम्या राज्ञां बहून्गुणान् । कृष्णनर्मोदितान् भैष्मी न्यषेधत्तद्गुणस्तवैः' ॥३॥ भगवता स्वनिन्दापराणीव यानि वचनान्युक्तानि तानि सर्वोत्कर्षपरतया व्याचक्षाणा प्रतिभाषते स्म, तत्र यदुक्तं-'कस्मान्नो ववृषेऽसमान्' इति तत्रासाम्यं सत्यमेवेत्याह-नन्वेवमिति । हे अरविन्दविलोचन, त्र्यधीशस्त्रयाणां ब्रह्मादीनामप्यधीशो नियन्ता त्वं क्व । क्व चाहं गुणप्रकृतिस्त्रिगुणस्वभावा प्राकृता गुणमयी प्रकृतिर्वा । ननु त्वमेवाधीश्वरी श्रीः सर्वैरुपास्यत्वादिति चेदत आह-अज्ञैः सकामैर्गृहीतौ पादौ यस्याः सा॥३४॥

भाव प्रकाशिका

अपने में अविद्यानभी सोलह दोषों को अपने में श्रीरुक्मिणीजी ने बतलाया है- १. असमता, २. भय, ३. दुर्गाश्रयण, ४. प्रबलों से विरोध, ५. अराजत्व, ६. विज्ञातृत्व, ७. लौकिकाकांक्षा का परित्याग, ८. अकिंचनत्व, ९. अकिंचनजनप्रियत्व, १० आढ्यानादरणीयत्व, ११. भिक्षुकों के द्वारा मिथ्या प्रशंसा, १२. अनौचित्य, १३. निर्गुणत्व, १४. औदासीन्य, १५. अकामत्व तथा १६. अदीर्घदृर्शीत्व । श्रीरुक्मिणीजी ने राजाओं के अज्ञत्व और अदीर्घदर्शित्व तथा अनेक गुणों के निषेध भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों के वर्णन के प्रसङ्ग में की । श्रीभगवान् ने अपने वचनों में अपनी निन्दापरक जिन वचनों को कहा था, उन सबों का सर्वोत्कृष्ट रूप से सद्भाव भगवान् श्रीकृष्ण में ही हैं इस बात का प्रतिपादन करती हुई, श्रीरुक्मिर्णीजी उनके वचनों का उत्तर दी हैं । भगवान् ने कहा था कि तुमने मुझ जैसे असदृश व्यक्ति का वरण क्यों किया । श्रीरुक्मिर्णीजी ने कहा कि मुझमें और आपमें असादृश्य वास्तविक रूप से हैं । इस अर्थ का प्रतिपादन **नन्वेवम्० इत्यादि** श्लोक से किया । उन्होंने कहा हे कमलनयन ! आप तो ब्रह्मा आदि तीनों के स्वामी है । अतएव कहाँ तो मैं त्रिगुण के अनुसार गुणों के स्वभाव वाली, दोनों की समता कैसे सम्भव है यदि आप कहें कि लक्ष्मी का अवतार होने के कारण तुम ही अधीश्वरी हो, क्योंकि सब लोग तुम्हारी उपासना करते हैं तो इसका उत्तर है कि मेरी उपासना तो अज्ञानी तथा कामनाओं से युक्त पुरुष करते हैं ॥३४॥

सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमान्तः शेते समुद्र उपलम्भनमात्र आत्मा ।
नित्यं कदिन्द्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽन्ध्यम् ॥३५॥

अन्वयः— हे उरुक्रम ! सत्यं गुणेभ्यः भयादिव समुद्रे अन्तः भवान् शेते, नित्यं कदिन्द्रियगणैः कृत विग्रहः त्वम्, त्वम् सेवकैः तमोन्धं नृपपदं विधूतम् ॥३५॥

अनुवाद— हे प्रभो ! मै आपके समान कैसे हो सकती हूँ, यह सत्य है कि आप राजाओं के भय से समुद्र में आ छिपे है । किन्तु राजा शब्द से यहाँ पृथिवी के राजा नहीं अपितु तीनों गुण ही राजा है । मानो आप उन्हीं के भय से अन्त:करण रूप समुद्र मे आकर छिप गये हैं । आप अनुभूति स्वरूप आत्मा के रूप में विराजमान हैं । आप राजाओ से वैर रखते है यह भी उचित ही हैं किन्तु वे राजा दुष्ट इन्द्रियाँ हैं, इन सबों से तो आपका वैर है ही । प्रभो आप राजसिंहासन से रहित है, यह भी ठीक ही है । क्योंकि आपके चरणों की सेवा करने वाले भक्त भी राजा के पद को घोर अज्ञानान्धकार मय समझकर उसका दूर से ही परित्याग कर दिये है । ऐसी स्थिति मे आपके लिए क्या कहना है ?॥३५॥

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं 'राजभ्यो विभ्यतः सुभ्रूः समुद्रं शरणं गतान्' इति तत्राह-सत्यमिति । हे उरुक्रमेति भयाभावं दर्शयति-गुणाः शब्दादय एव राजन्त इति राजा नस्तेभ्यो भयादिवेति । अन्तर्हृदये समुद्रे तद्वदगाधे विषयाकारैरपरिच्छिन्न इत्यर्थः । शेते निश्चलतया प्रकाशते । उपलम्भनमात्रश्चैतन्यघन आत्मा भवानिति । 'बलवद्भिः कृतद्वेषान्' इति यदुक्तं तदपि सत्यमित्याह-नित्यमिति । कदिन्द्रियगणैः कुत्सितैर्बहिर्मुखैरिन्द्रियगणैः । वृत्त्यभिप्रायेण बहुवचनम् । कुत्सित इन्द्रियगणो येषामिति वा । तैस्त्वं नित्यं कृतविग्रहः, तेषु तवाप्रतीतेः । यदुक्तं- 'त्यक्तनृपासनान्' इति तदपि युक्तमेवेत्याह-त्वत्सेवकैरिति । नृपाणां पदमासनमन्धं गाढं तम एव तत् । अविवेकबहुलत्वात् । त्वत्सेवकैरेव तत्त्यक्तं किं पुनर्वक्तव्यं त्वया त्यक्तमिति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

आपने यह जो कहा है कि हे सुन्दरी राजाओं से डरकर मैं समुद्र के शरण में निवास करता हूँ, तो आपका यह कथन सत्य ही है । श्रीरुक्मिणीजी श्रीभगवान् में भय का अभाव उनको उरुक्रम कहकर बतलाती है । किन्तु यहाँ राजा शब्द से शब्द इत्यादि गुणों को ही कहा गया है । उन सबों से मानो भयभीत होकर आप अन्त:करण रूपी समुद्र में निवास करते हैं । आगाध हार्दाकाश विषयों से परिच्छिन्न नहीं है । शेते शब्द का अर्थ है हृदय में आप निश्चल रूप से प्रकाशित होते हैं । आप तो उपलम्भन मात्र चैतन्यघन आत्मा हैं । **बलवद्भिः कृतद्वेषान्** अर्थात् मैंने बलवानों से वैर कर लिया है यह भी आपका कथन सत्य ही है । किन्तु वे राजागण अपनी दुष्ट इन्द्रियाँ ही हैं इन बहिर्मुख इन्द्रियों से बैर होना आपके लिए स्वाभाविक ही है । यहाँ वृत्तियों के अभिप्राय से बहुवचनान्त प्रयोग है । अथवा जिनकी इन्द्रियों का समूह निन्दित है उन सबों से आपका वैर है । उन सबों से आपका नित्य ही वैर है क्योंकि उन सबों की आपमें प्रीति नहीं होती है । आपने यह जो कहा है कि मैं सिंहासन से रहित हूँ, यह भी सत्य ही है । जब आपके भक्त ही राजसिंहासन को घोर अज्ञानान्धकारमय मानकर उसका दूर से परित्याग कर दिये है, क्योंकि राजसिंहासन तो अविवेक बहुल ही होता है । ऐसी स्थिति में आपने उसका परित्याग कर दिया है, यह क्या कहना है ?॥३५॥

त्वत्पादपद्ममकरन्दजुषां मुनीनां वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम् ।
यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य भूमंस्तवेहितमथो अनु ये भवन्तम् ॥३६॥

अन्वयः— त्वत् पादपद्ममकरन्द जुषां मुनीनां वर्त्म अस्फुटं ननु नृपशुभिः दुर्विभाव्यम्, ईश्वरस्य यस्मात् ईहितम् अलौकिम्, हे भूमन् अथो भवन्तम् अनु ये तवेहितम् ।।३६।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आपके चरण कमलों की सेवा करने वाले जो मुनिगण हैं उनका भी मार्ग अस्पष्ट ही होता है । वे लौकिक पुरुषों जैसा आचरण नहीं करते हैं । अतएव यह सत्य है । ये नर पशु आपके मार्ग का पता नहीं लगा सकते हैं । आपके भक्तों की भी चेष्टाएँ जब अलौकिक होती हैं तो फिर आपकी चेष्टा के अलौकिक होने में कौन सा सन्देह है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

'अस्पष्टवर्त्मनां पुंसामलोकपथमीयुषाम्' इति यदुक्तं तदपि तथैवेत्याह-त्वत्पादेति । नृपशुभिर्नराकारैः पशुभिः । किं पुनर्वक्तव्यं तव वर्त्मास्फुटमिति । किंच यस्माद्ये भवन्तमनुवर्तन्ते तेषामपीहितमलौकिकमिव । अथो अतः किमु वक्तव्यं तवेश्वरस्येहितमलौकिकमित्यर्थः । 'आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदन्ति योषितः' इत्यस्य परिहारं वक्ष्यति-'यद्वाञ्छया' इति पञ्चमश्लोके ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

आपने यह जो कहा है कि हमारा मार्ग अस्पष्ट है तथा हमारा लौकिक आचरण नहीं होता है यह भी सत्य ही है । जब आपके भक्तों का ही मार्ग अस्पष्ट होता है, तो आपका मार्ग अस्पष्ट है यह क्या कहना है, ये नराकार पशुगण आपके मार्ग का पता नहीं लगा सकते हैं । इसी तरह जो आपके भक्तगण हैं, उन लोगों का ही आचरण जब अलौकिक होता है तो फिर आपका अलौकिक आचरण होता है, इसबात को क्या कहना है ? आप ईश्वर हैं अर्थात् सम्पूर्ण जगत् के नियामक हैं, अतएव आपकी चेष्टाएँ अलौकिक होंगी ही । हे सुन्दरी हमारे मार्ग का अनुसरण करने वाली स्त्रियों को प्रायः कष्ट सहना पड़ता है । इसका उत्तर रुक्मिणीजी ने पाँच वे श्लोक में दिया है ।।३६।।

निष्किंचनो ननु भवान्न यतोऽस्ति किंचिद्यस्मै बलिं बलिभुजोऽपि हरन्त्यजाद्याः ।
न त्वा विदन्त्यसुतृपोऽन्तकमाढ्यतान्धाः प्रेष्ठो भवान्बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ।।३७।।

अन्वयः— ननु भवान् निर्षिकिञ्च नः यतः किञ्चित् नास्ति, बलिभुजः हराद्या अपि यस्मै बलिं हरन्ति, भवान् बलिभुजाम् प्रेष्ठः तेऽपि तुभ्यम् । असुतृपः आढ्यतान्धाः अन्तकं त्वा न विदन्ति ।।३७।।

अनुवाद— आपने कहा है कि आप निष्किञ्चन हैं । आप इसलिए निष्किञ्चन हैं कि आपसे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है । आप ही सब कुछ हैं । आपके पास रखने के लिए कुछ भी नहीं हैं । क्योंकि जिन ब्रह्मा आदि देवताओं की लोग पूजा करते हैं वे ब्रह्मा आदि देवता भी आपकी पूजा करते हैं । जो लोग धनाढ्य के अभिमान में अन्धे हो रहे हैं । वे अपनी इन्द्रियों को ही तृप्त करने में लगे हुए है, वे लोग न तो आपको जानते हैं और न यह ही जानते है कि आप उनकी मृत्यु के रूप में सिर पर सवार हैं ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

'निष्किंचना वयं शश्वन्निष्किंचनजनप्रियाः । तस्मात्प्रायेण नह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ।' इत्येतच्छ्लोकोक्तं दोषत्रयं परिहरति-निष्किंचन इति । दरिद्रतालक्षणं निष्किंचनत्वं तु तव न घटत इत्याह-यस्मा इति । अन्यतो बलिभुजः पूज्या अपि ब्रह्मादयो यस्मै भवते बलिं हरन्ति तस्य सर्वेश्वरस्य भवतो दरिद्रता न घटत इत्यर्थः । 'निष्किंचनजनप्रियः' इत्यत्र तत्पुरुषेण बहुव्रीहिणा वा निन्दा स्यादिति स्वयमुयुभयथा स्तौति-प्रेष्ठो भवानिति । बलिभुजां ब्रह्मादीनां लोकेश्वराणां त्वं प्रेष्ठस्तेऽपि तुभ्यं तवेति । 'तस्मात्प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति' इति तस्योत्तरं न त्वा विदन्तीति । आढ्यतयाऽन्धास्त्वा त्वामन्तकं न विदन्ति। अतस्ते असुतृपः असूनेव तर्पयन्ति न त्वां भजन्तीत्यर्थः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने **निष्कञ्चना वयम्० इत्यादि** श्लोक के माध्यम से अपने में तीन दोषों को बतलाया था वे दोष है,कि मैं निष्किञ्चन हूँ, मुझे निष्किचन जन ही प्रिय हैं अतएव प्राय मुझको धनाढ्य लोग नहीं भजते हैं । श्रीभगवान् के तीनों दोषों का परिहार रुक्मिणीजी करती है, उन्होंने श्रीभगवान् से कहा दारिद्रता रूप निष्किञ्चनत्व तो आप में नहीं है । क्योंकि दूसरे देवता जो दूसरे लोग से पूजा प्राप्त करते हैं वे ब्रह्मा आदि देवता भी आपकी पूजा करते हैं । अतएव आप सर्वेश्वर हैं । ऐसे आप में दरिद्रता तो सम्भव नहीं है । निष्किञ्चन जनप्रिय यहाँ पर तत्पुरुष समास कहें अथवा बहुव्रीहि समास कहें दोनों ही प्रकार से निन्दा होगी । अतएव रुक्मिणीजी उन दोनों

प्रकार में स्वयम श्रीभगवान् की स्तुति करती हैं । वे कहती हैं कि जो ब्रह्मादि देवता दूसरों से पूजा प्राप्त करते हैं वे भी आपकी पूजा करते हैं । अतएव उन ब्रह्मा आदि देवताओं के आप प्रियतम हैं और वे देवता भी आपको प्रिय हैं । आपने यह जो कहा है कि प्राय: धनिक लोग हमारा भजन नही करते हैं । इसका उत्तर श्रीरुक्मिणीजी ने **नत्वा विदन्ति इत्यादि** के द्वारा दिया है । उन्होंने कहा है कि जो लोग धनाढ्यता के कारण आपको नहीं जानते हैं और अपनी इन्द्रियो की तृप्ति मे लगे रहते हैं । वे यह भी नहीं जानते हैं कि आप उनके सिर पर काल रूप से सवार हैं ।।३७।।

त्वं वै समस्तपुरुषार्थमय: फलात्मा यद्वाञ्छया सुमतयो विसृजन्ति कृत्स्नम् ।
तेषां विभो समुचितो भवत: समाज: पुंस: स्त्रियाश्च रतयो: सुखदु:खिनोर्न ।।३८।।

अन्वय:— त्वं वै समस्त पुरुषार्थमय; फलात्मा, सुमतय यद्वाञ्छया कृत्स्नम् विसृजन्ति, हे विभो ! भवत: तेषां समाज: समुचित: स्त्रिया: पंसो: च रतयो: दु:खिनो: न ।।३८।।

अनुवाद— हे प्रभो ! संसार में जीवों के लिए वांछित जितने भी धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष रूपी पुरुषार्थ हैं उन सबों के रूप में आप ही विद्यमान हैं । आप ही समस्त वृत्तियों, प्रवृत्तियों, सिद्धियों और साध्यों के फल हैं । विचारशील पुरुष आपको ही प्राप्त करने के लिए सबकुछ त्याग देते हैं । हे विभो उन विवेकी पुरुषों का ही आपका समाज होना चाहिए । जो लोग स्त्री पुरुष के सहवास से प्राप्त होने वाला सुख अथवा दु:ख को प्राप्त करने के कारण दु:खी है ऐसे लोगों को आपके समान नहीं होना चाहिए ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

बलिभुजामपि भवान्प्रेष्ठ इत्यत्र हेतुं वदन्ती 'ययोरेव समं वित्तं' इत्यनेनोक्तमनौचित्यं परिहरति-त्वं वा इति । फलात्मा परमानन्दरूप:-'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' इति श्रुते:। समाज: सेव्यसेवकलक्षणसंबन्धो नतु पुंस: स्त्रियाश्च मिथो रतयो: । अतएव तत्कृतसुखदु:खिनो:, तदाकुलयोरित्यर्थ: ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीरुक्मिणीजी ने कहा है कि उन पुजाओं को प्राप्त करने वाले ब्रह्मा आदि देवताओं को भी आप प्रियतम हैं इसमें कारण बतलाते हुए तथा 'ययोरेव समंवित्तम' इत्यादि श्लोक में उक्त अनौचित्य का परित्याग करती हुई श्रीरुक्मिणीजी ने **त्वं वै० इत्यादि** श्लोक कहा है । **फलात्मा** अर्थात् परमानन्द स्वरूप फल आप ही हैं । श्रुति भी कहती है इस आनन्दस्व परमात्मा के ही आनन्द के एक छोटे से भाग को प्राप्त करके आनन्द का अनुभव करती है । समाज: अर्थात् सेव्य सेवक भाव रूप संबन्ध होना चाहिए । परस्पर में स्त्री-पुरुष के सहवास जन्य सुख एवं दु:ख के कारण दु:खी बने रहने वाले का आपसे संबन्ध नहीं होना चाहिए ।।३८।।

त्वं न्यस्तदण्डमुनिभिर्गदितानुभाव आत्मात्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि ।
हित्वा भवद्भुव उदीरितकालवेगध्वस्ताशिषोऽब्जभवनाकपतीन्कुतोऽन्ये ।।३९।।

अन्वय: न्यस्तदण्डमुनिभिर्गदितानुभाव: त्वं जगताम् आत्मा आत्मदश्च इति भवद्भुव उदीरितकालवेग ध्वस्ताशिष: अब्जभवनाकपतीन् अन्ये कुत: मे वृत असि ।।३९।।

अनुवाद- आपने कहा है कि भुक्षिकों ने मेरी प्रशंसा की है, किन्तु आपकी प्रशंसा करने वाले भिक्षुक सामान्य भिक्षुक नहीं हैं, अपितु वे परम शान्त संन्यासी पुरुष है । जो लोग बड़े से बड़े भी अपराधी को दण्ड देना नहीं चाहते हैं ऐसे महापुरुष भिक्षुओं ने आपकी महिमा का वर्णन किया है । इसलिए मैंने खूब अच्छी तरह से विचार करके यह जान लिया है कि सम्पूर्ण जीवों की आत्मा हैं, और सबों को आत्मा प्रदान करने वाले आप

है मैंने यह जानकर ब्रह्माजी तथा देवराज इन्द्र का परित्याग कर दिया कि आपके भौंहों के इशारे से उत्पन्न काल ब्रह्माजी तथा इन्द्र को भी अपना ग्रास बना लेता है तो फिर शिशुपाल और जरासन्ध आदि की कौन सी बात है इसीलिए मैंने आपको पति के रूप में वरण किया है ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

'भिक्षुभि: श्लाघिता मुधा' इत्यस्य परिहार:-त्वमिति । भिक्षुपदव्याख्यानं न्यस्तदण्डैर्मुनिभिरिति । मुधेत्यस्य परिहार: -आत्मेति । **यदर्थं सर्वं** प्रियं भवति तस्य जगतामात्मनस्तव वरणं न वृथेत्यर्थ: । किंच आत्मद इति । 'वैदर्भ्येनदविज्ञाय त्वयाऽदीर्घसमीक्षया' इति स्वस्मिन्नुक्तं दोषद्वयं परिहरति-इतीति । इति ज्ञात्वैव मे मया वृतोऽसीत्यज्ञानपरिहार: । हित्वेत्यदीर्घसमीक्षापरिहार: । भगवतो भ्रुव: सकाशादुदीरितो य: कालस्तस्य वेगस्तेन ध्वस्ता आशिषो येषां तान्ब्रह्मादीनपि विहाय । कुतोऽन्ये वराका इत्यर्थ: ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

प्रभो आपने कहा है कि भिक्षुओं ने मेरी झूठी प्रशंसा की है । इस वाक्य के भिक्षु पद की व्याख्या करती हुई श्रीरुक्मिणीजी ने **न्यस्तदण्डै: मुनिभि:** पदों के द्वारा की है । अर्थात् आपकी प्रशंसा करने वाले भिक्षुक सामान्य भिक्षुक नही है अपितु वे ऐसे भिक्षुक हैं जिन्होंने किसी को भी दण्ड न देने का निश्चय कर लिया । ऐसे संन्यासी पुरुष वे भिक्षुक है जो आपकी महिमा का वर्णन करते हैं । आपने कहा है कि वे मेरी मिथ्या प्रशंसा करते हैं, इसका परिहार करते हुए वे कहती हैं कि आप संसार के सभी जीवों की आत्मा हैं और उन जीवों को आत्मदान करते है। जिस आत्मा के लिए ही सबकुछ प्रिय होता है उस जगत् की आत्मा आपका वरण करना व्यर्थ नहीं है । यही नही आप आत्मा प्रदान करते हैं । श्रीभगवान् ने यह जो कहा है कि हे वैदर्भी तुमने ठीक से विचार नहीं करने के कारण मेरा पति रूप में वरण किया है, इस तरह से अपने में श्रीभगवान् द्वारा बतलाये गये दोषों का परिहार करती हुई रुक्मिणीजी कहती हैं कि इस तरह से मैंने गहन विचार करके आपका पति के रूप में वरण किया है । अज्ञावशात् मैंने आपका वरण नहीं किया है । इस तरह से उन्होंने अपने में अज्ञान का परिहार किया है । दीर्घ विचार के अभाव का परिहार करते हुए उन्होंने कहा कि आपके भौंहों के इशारे से उत्पन्न काल ब्रह्मा, इन्द्र इत्यादि देवताओं को भी कालकवलित कर लेता है तो इन शिशुपाल और जरासन्ध इत्यादि में क्या रखा है ।।३९।।

जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान्विद्राव्य शार्ङ्गनिनदेन जहर्थ मां त्वम् ।
सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून्स्वभागं तेभ्यो भयाद्यदुदधिं शरणं प्रपन्न: ।।४०।।

अन्वय:— हे गदाग्रज ! हे ईश ! इदं तववच: जाड्यं यततेभ्य: भयात् उदधिं शरणं प्रपन्न: य: भवान् शार्ङ्ग निनदेन सिंह: पशून् यथा भूपान् विद्राव्य स्वभागं बलिम् त्वं मां जहर्थ ।।४०।।

अनुवाद— हे गदाग्रज हे ईश आपकी इस वाणी में किसी भी प्रकार का औचित्य नहीं प्रतीत होता है कि आप उन राजाओं के भय से आकर समुद्र में बसे हैं, जिन राजाओं को मेरे विवाह के अवसर पर आप अपने शार्ङ्ग धनुष के टङ्कार से आये हुए राजाओं को भगाकर उसी तरह से मेरा हरण कर लिया जैसे कोई सिंह दूसरे पशुओं को भगाकर अपना भाग ले जाता है ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

स्वज्ञानं परिहृतय पुरुषान्तरगुणवर्णनप्रदीप्तकोपसंरम्भेण तस्मिन्नेवाज्ञानमापादयति-जाड्यमिति । सिंहो यथा पशून्विद्राव्य स्वबलिं हरति तथा शार्ङ्गधनुर्निनादेनैव जरासन्धादीन्विद्राव्य मां स्वभागं श्रियं यस्त्वं हृतवानसि तस्य तव राजभ्यो भयादुदधिं प्रपन्न इति यद्वचो भाषणं तज्जाड्यं मान्द्यं न घटत इत्यर्थ: ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

अपने अज्ञान का परिहार करके श्रीरुक्मिणीजी से दूसरे पुरुषों के गुणों का वर्णन सुनकर रुकिमणीजी क्रोध के बढ़ जाने के कारण श्रीभगवान् में ही अज्ञान का प्रतिपादन **जाड्य वचः इत्यादि** श्लोक से करती हैं। जिस तरह सिंह दूसरे पशुओं को भगाकर अपना भाग ले जाता है उसी तरह आप अपने शार्ङ्ग धनुष के टङ्कार में हैं जरासन्ध आदि राजाओं को भगाकर अपना भाग भूत मेरा अपहरण कर लिए, ऐसे आप उन जरासन्ध आदि राजाओं के भय से समुद्र के शरण में आकर बस गये, यह जो आप कह रहे हैं, वह आपकी वाणी जाड्य पूर्ण है। आपके इस कथन का कोई औचित्य नहीं है ॥४०॥

यद्वाञ्छया नृपशिखामणयोऽङ्गवैन्यजायन्तनाहुषगयादय ऐकपत्यम् ।
राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमम्बुजाक्ष सीदन्ति तेऽनुपदवीं त इहास्थिताः किम् ॥४१॥

अन्वयः— हे अम्बुजाक्ष यद्वाञ्छया नृप शिखामणयः अङ्ग वैन्य जायन्तनाहुष गयादयः ऐकपत्यं राज्यं विसृज्य वनम् विविशुः ते अनुपदवीं ते इह आस्थितः सीदन्ति किम् ॥४१॥

अनुवाद— हे कमल नयन जिस आपको प्राप्त करने की इच्छा से प्राचीन काल के बड़े-बड़े राजश्रेष्ठ अपने एकछत्र राज्य का परित्याग करके वेन के पिता अङ्ग, पृथु, जयन्त के पुत्र भरत, नहुष के पुत्र ययाति तथा गय आदि वन में चले गये वे आपके मार्ग का अनुसरण करके इस समय कष्ट का अनुभव कर रहे हैं क्या ?॥४१॥

भावार्थ दीपिका

यच्चान्यत् । 'अस्पष्टवर्त्मनाम्' इत्यादिना अर्थात्त्वां भजन्तः सीदन्तीत्यवसादनं श्रमावहत्वमुक्तं तदपि मन्दमेवेत्याह-यद्वाञ्छयेति । यस्य तव भजनवाञ्छया नृपोत्तमाः । अङ्गो वेनस्य पिता, वैन्यः पृथुः, जायन्तो भरतः, नाहुषो ययातिः, गयश्चादिर्येषां ते । य एते तव पदवीं मार्गमाश्रितास्ते किं सीदन्ति, न सीदन्त्येव । अपि तु त्वत्पदं प्राप्ता इत्यर्थः । एवं कोपावेशेनावसादनस्य परिहारादस्पष्टवर्त्मनामित्येतदानन्तर्यं विहायात्रोत्कर्षः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च आपने यह जो कहा है कि हम अस्पष्ट मार्ग वाले का अनुसरण करने वाले को कष्ट का अनुभव करते हैं आपका यह भी कथन मन्द ही है। इस बात को रुक्मिणीजी ने **यदवाञ्छया० इत्यादि** श्लोक से कहा है। आपकी ही प्राप्ति के लिए बड़े-बड़े राज-राजेश्वर अपने एकच्छत्र राज्य का परित्याग करके वन में चले गये जैसे वेन के पिता अङ्ग वेन के पुत्र पृथु, जयन्त के पुत्र भरत, नहुष के पुत्र ययाति तथा गय आदि राजागण. ये सभी आपके मार्ग को अपना लिए, वे क्या इस समय कष्ट ही भोग रहे हैं. ऐसी बात तो नहीं है। वे सभी आपके धाम को प्राप्त कर लिए। इस तरह कोप के आवेश से अवसादन का परिहार करने के कारण अस्पष्टवर्तनाम् के उत्तर में अधिक उत्कर्ष है ॥४१॥

काऽन्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्धमाघ्राय सन्मुखरितं जनतापवर्गम् ।
लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥४२॥

अन्वयः— गुणालयस्य तथा लक्ष्म्यालयं पादसरोज गन्धं जनतापवर्गम् सन्मुखरितं आघ्रय तु अविगणय्य का अर्थ विविविक्त दृष्टिः कामर्त्या उरुभयम् अन्यं श्रयेत ॥४२॥

अनुवाद— आर्य पुत्र ! आप कहते हैं कि तुम किसी और राजकुमार का वरण कर लो। भगवन् आप समस्त कल्याण गुणों के एक मात्र आश्रय है आपके चरण श्री लक्ष्मीजी का आश्रय है, तथा अपने शरण में आये जीवों को मोक्ष प्रदान करने वाला है। तथा साधु पुरुष आपके चरणों की महिमा का गुणगान करते हैं. आपके

उन चरण कमलों की सुगन्धि जिसको एक बार भी सुघंने को मिल गयी है, वह अपने स्वार्थ एवं परमार्थ के ठीक-ठीक जानने वाली कौन ऐसी नारी है जो कि आपको छोड़कर ऐसे लोगों का वरण करेगी जो सदैव, जन्म, जरा, मृत्यु तथा भयों से युक्त हैं । कोई भी बुद्धिमती नारी ऐसा नहीं कर सकती है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

यच्चोक्तं 'अथात्मनोऽनुरूपम्' तत्राह-काऽन्यमिति श्लोकद्वयेन । गुणानामालयस्य तव पादसरोजगन्धं जानत्या अपवर्गं मोक्षरूपं लक्ष्म्या आलयं तत्सेव्यं सद्भिर्मुखरितं वर्णितमाघ्राय तमविगणय्य मर्त्या मरणधर्मिका सदा उरुभयं यस्य तमन्यं का स्त्री श्रयेत सेवेत । अर्थे विविक्ता दृष्टिर्यस्याः सा गुणालययेत्यनेन गुणैर्हीना इति यदुक्तं तदपास्तम् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

कान्यम्० इत्यादि दो श्लोकों से श्रीरुक्मिणीजी श्रीभगवान् के **अथात्मनोऽनुरूपम् इत्यादि** श्लोक का उत्तर देती हैं । वे कहती हैं कि आप तो सभी गुणों के एक मात्र आश्रय हैं । आपके चरण कमलों कि सुगन्धि जो अपने भक्तों को मोक्ष प्रदान करने वाली है, तथा लक्ष्मी जी का सेव्य है, तथा सत्पुरुष जिसकी महिमा का बखान करते हैं, उस सुगन्धि को आघ्राण करके उसका तिरस्कार करके भी जो मरणशील है तथा जन्म जरा मृत्यु आदि भयों से धिरे रहने वाले है, ऐसे किसी पुरुष का कोई भी बुद्धिमती स्त्री आश्रय करेगी क्या ? अतएव अपने यह जो कहा है कि हम तो गुणों से रहित हैं यह आपका कथन खण्डित हो गया ॥४२॥

तं त्वाऽनुरूपमभजं जगतामधीशमात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम् ।
स्यान्मे तवाङ्घ्रिररणं सृतिभिर्भ्रमन्त्या यो वै भजन्तमुपयात्यनृतापवर्गः ॥४३॥

अन्वयः— हे जगतामधीश अत्र परत्र च कामपूरम् तंत्वा अनुरूपं आत्मानं अभजं । सृतिभिः भ्रमन्त्याः मे तवङ्घ्रिः अरणं स्यात् यो वै भजन्तम् अनृतपवर्गः उपयाति ॥४३॥

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् प्रभो ! आप इस लोक में तथा परलोक में समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं, मैंने आपका वरण अपने अनुरूप ही समझकर किया है । आप सबों की आत्मा परमात्मा है। हे नाथ मुझे अपने कर्मों के अनुसार भले ही विभिन्न योनियों में भटकना पड़े, इसकी कोई भी चिन्ता नहीं है । मैं केवल इतना ही चाहती हूँ कि आप तो इस मिथ्या संसार से मुक्ति दिलाने वाले है । आपके चरण कमल ऐसे हैं कि उनका जो भजन करता है, उसको वे अपना बना लेते है । अतएव आपके चरण कमल मेरे रक्षक अवश्य बने रहें ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

अतस्त्वामेवाहमभजमित्याह-तं त्वेति । किंच प्रार्थयते-स्यादिति । अरणं शरणम् । सृतिभिर्देवतिर्यगादिभिर्जन्मभिः । पाठान्तरे त्वर्थवादबहुलकर्मश्रवणैरित्यर्थः । कथंभूतस्य तव । यस्त्वमनृतस्य संसारस्यापवर्गो नाशो यस्मात्स भजन्तमुपयात्यात्मसात्करोति तस्य तवाङ्घ्रिरिति । भीतस्य हि शरणमेवानुरूपं भजनयोग्यं अतस्त्वामहमभजमित्यर्थः ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

इसीलिए मैंने आपका वरण किया इस तरह से श्रीरुक्मिणीजी ने **तंत्वा इत्यादि** श्लोक से कहा । साथ ही वे श्रीभगवान् से प्रार्थना भी **स्यात् इत्यादि** दत्तरार्ध से करती हैं । **अरणम्०** अर्थात् शरण । **सृतिभिः** अर्थात् देव मनुष्य तिर्यक इत्यादि योनियों में जन्म द्वारा । पाठान्तर के अनुसार अर्थ होगा कि अर्थवाद बहुल कर्मों का श्रवण करने के कारण । कैसे संसार से मुक्ति प्रदान करने वाले आपके चरण आपका भजन करने वाले को अपना बना लेते हैं । भयभीत के लिए शरण का अर्थ है भजन करने के लिए अनुकूल । इसीलिए मैंने आपका वरण किया ॥४३॥

तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वविडालभृत्याः ।
यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्युष्मत्कथा मृडविरिञ्चसभासु गीता ।।४४।।

अन्वयः— हे अच्युत स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वविडालभृत्या तवोपदिष्टाः नृपाः हे अरिकर्षण यत्कर्णमूलम् मृडविरिञ्चसभासु गीता युष्मत्कथा नोपयायात् तस्याः स्युः ।।४४।।

अनुवाद— हे अच्युत गधों के समान घर का भार ढोने वाले, बैलों के समान गृहस्थी के व्यापार में जुते रहकर कष्ट उठाने वाले, कुत्तों के समान तिरस्कृत होने वाले, विलाव के समान हिंसक तथा कृतदासों के समान स्त्री की सेवा करने वाले जो शिशुपाल आदि राजागण जिनका आपने उपदेश दिया है, वे उसी स्त्री के पति बनें जिसके कानों में शङ्करजी तथा ब्रह्माजी की सभा में गायी जाने वाली आपकी कथा नहीं पड़ी हो ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

ये चोक्ता राज्ञां बहवो गुणा 'राजपुत्रीप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः' इत्यादिना तत्र सेव्यं सशापं साङ्गुलिभङ्गं चाह द्वाभ्याम्-तस्याः स्युरिति । खरा इव केवलं भारवाहा गावो बलिवर्दा इव नित्यं व्यापारक्लिष्टाः, श्वान इवावमताः, बिडाला इव कृपणा हिंस्राश्च, भृत्या इव किंकरा नृपास्तस्या दुर्भगायाः पतयः स्युः । यस्याः कर्णपथं त्वत्कथा न प्राप्नुयादिति ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

आपने राजाओं के बहुत से जो गुण बतलाया है राजपुत्री० इत्यादि श्लोक के द्वारा उन शिशुपाल जरासन्ध आदि राजाओं के विषय में श्रीरुक्मिणीजी ईष्या, शाप तथा अङ्गुलि दिखाती हुई **तस्याः स्यु० इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा कहती हैं । गधों के समान गृहस्थी के केवल भार ढोने वाले, बैलों के समान गृहस्थी के व्यपार में जुते रहकर कष्ट उठाने वाले, कुत्तों के समान तिरस्कृत होने वाले, विलाव के समान दीन और हिंसक एवं कृतदास के समान स्त्री का दास बने रहने वाले वे राजा गण उसी अभागिनी के पति बनें, जिसने कभी भी आपकी कथा न सुनी हो ।।४४।।

त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्तर्मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् ।
जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री ।।४५।।

अन्वयः— त्वक्श्मश्रुरोमनख केशपिनद्धम्, अन्तः मांसास्थिरक्त कृमिविट्कफपित्तवातम् जीवच्छवम् कान्तम् अतिविमूढा सास्त्री भजति या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती ।।४५।।

अनुवाद— ऊपर से चमड़ा, दाढ़ी, मूंछ, रोएँ, नख तथा केश से ढँके हुए, भीतर मांस हड्डी, रक्त, कीड़े, मल, कफ, पित्त एवंवात से भरे हुए जीते जी ही मुर्दे के समान शरीर की सेवा अपने प्रियतम पति की सेवा वही अत्यन्त मूर्ख स्त्री करती है जिसने कभी भी आपके चरण कमलों के पराग का पान नहीं किया है ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

तथा हि-ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती सती या स्त्री विमूढा सा कान्तोऽयमिति मतिर्यस्याः सा कान्तमतिर्जीवच्छवं भजति। त्वगादिभिर्बहिः पिनद्धं छन्नमन्तर्मांसादिमयमिति ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

उदाहरणार्थ आपके चरण कमल के पराग का आघ्राणन नहीं किया है, वही अत्यन्त मूर्ख श्री जीते जी शव के समान अस्पृश्य पति को अपना प्रियतम पति समझकर सेवा करती है । यह शरीर तो चमड़े आदि से ढँका हुआ है और इसके भीतर मांस आदि ही भरे हुए हैं ।।४५।।

अस्त्वम्बुजाक्ष मम ते चरणानुराग आत्मन्रतस्य मयि चानतिरिक्तदृष्टेः ।
यर्ह्यस्य वृद्धय उपात्तरजोऽतिमात्रो मामीक्षसे तदु ह नः परमानुकम्पा ॥४६॥

अन्वयः— हे अम्बुजाक्ष मयि च अतिरिक्त दृष्टेः आत्मन् रतस्य ते मम चरणानुरागः अस्तु, यर्हि अस्य वृद्धये उपात्तरजः माम् ईक्षसे तत् उह नः परमानुकम्पा ॥४६॥

अनुवाद— हे कमलनयन मैं सुन्दरी हूँ या गुणवती हूँ इस बात पर आप दृष्टि नहीं देते हैं अतएव आपका उदासीन रहना स्वाभाविक ही है । फिर भी मैं यही चाहती हूँ कि आपके चरणों में मेरा सुदृढ अनुराग बना रहे। हे अम्बुजाक्ष जब आप विश्व की समृद्धि के लिए रजोगुण से युक्त होकर मुझको देखते हैं यह मेरे ऊपर आपकी बहुत बड़ी कृपा है ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं 'उदासीना वयम्' इत्यादिना तत्राह-अस्त्विति । यद्यपि त्वं निरपेक्षस्तथापि मम ते चरणानुरागोऽस्तु । मयि च मय्यपि नातिरिक्ता अतिशयवती दृष्टिर्यस्य तस्य ते । आत्मन् आत्मन्येव रतस्य । तर्हि तव तेन को लाभः । त्वच्चरणानुराग एव महान् लाभः । किंच यर्ह्यस्य विश्वस्य वृद्धये उपात्ता रजसोऽतिमात्रा औत्काट्यं येन स तथाभूतः सन्मामीक्षसे । उ एवार्थे। ह हर्षे । तदेव नः परमानुकम्पा अत्यनुग्रह इति ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

आपने यह जो कहा है कि मैं तो सदा उदासीन रहने वाला हूँ उसका उत्तर **अस्तु० इत्यादि** श्लोक है । यद्यपि आप उदासीन रहने वाले हैं फिर भी मैं चाहती हूँ कि आपके चरणों में मेरा अनुराग बना रहे । मेरे सौंदर्य तथा गुणों के विषय में आपकी कोई विशेष दृष्टि नहीं है, अतएव आप आत्माराम हैं । यदि आप पूछें कि तो फिर मेरे चरणों में अनुराग से तुम्हारा कौन सा लाभ होने वाला है ? तो उत्तर है कि आपके चरणों में अनुराग ही मेरे लिए महान् लाभ है । और इस विश्व की समृद्धि के लिए जब आप रजोगुण से युक्त होकर मुझको अत्यन्त प्रेम पूर्वक देखते हैं वही मेरे ऊपर आपकी महती अनुकम्पा है । तदुह का उ एवार्थक है और ह हर्षार्थक अव्यय है ॥४६॥

नैवालीकमहं मन्ये वचस्ते मधुसूदन । अम्बाया इव हि प्रायः कन्यायाः स्याद्रतिः क्वचित् ॥४७॥

अन्वयः— हे मधूसूदन ते वचः अहं अलीकं न मन्ये अम्बायाः इव कन्यायाः क्वचित् रतिस्यात् ॥४७॥

अनुवाद— हे मधुसूदन ! आपने यह जो कहा है कि तुम अपने अनुरूप पति का वरण कर लो, आपकी इस वाणी को मैं मिथ्या नहीं मानती हूँ क्योंकि काशिराज की पुत्री अम्बा जिसके द्वारा जीती गयी थी उससे भिन्न पुरुष शाल्व में प्रेम था ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं सर्वं तदुक्तं प्रतिव्याख्याय प्रसन्नचित्ता मन्त्रमुपदिशन्त्याह द्वाभ्याम्-नैवेति । 'अथात्मनोऽनुरूपम्' इत्यादि ते वचोऽलीकं मिथ्येति नैव मन्ये । यतो लोके कन्याया एव क्वचिद्रतिर्भवति । यथा काशिराजकन्यानामम्बाम्बालिकाम्बिकानां तिसृणां मध्ये अम्बायाः कन्याया एव शाल्वे रतिर्जाता तद्वत् ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीभगवान् के द्वारा कही गयी बातों की व्याख्या ठीक उनके विपरीत करके प्रसन्न श्रीरुक्मिणीजी इस मन्त्र का उपदेश **नैव० इत्यादि** दो श्लोकों से देती हैं । आपने यह जो कहा है कि अपने अनुकूल पति का तुम वरण कर लो तो आपकी इस वाणी को मैं मिथ्या इसलिए नहीं मानती हूँ कि काशिराज की तीन पुत्रियों अम्बा, अम्बिका तथा अम्बालिका इन तीन पुत्रियों में से अम्बा ऐसी थी कि जो जिसके द्वारा जीत ली गयी थी उससे भिन्न शाल्व से प्रेम करती थी ॥४७॥

व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या मनोभ्येति नवं नवम् । बुधोऽसतीं न बिभृयात्तां बिभ्रदुभयच्युतः ॥४८॥

अन्वयः— पुंश्चल्या; व्यूढायाः अपि मनः नवं नवं अभ्येति, बुधः असतीनं विभृयात् विभ्रत् उभयच्युतः ॥४८॥

अनुवाद— कुलटा स्त्री का विवाह हो जाने पर भी मन नवीन-नवीन पुरुषों की ओर जाता है । बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह ऐसी स्त्री को अपने पास न रखे । उसको अपनाने वाली पुरुष लोक और परलोक दोनो को खो बैठता है ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

व्यूढायाः परिणीताया अपीति, उभयस्मादिहपरलोकद्वयाच्च्युतो भ्रष्ट इति ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

विवाहिता भी लोक और परलोक दोनों से भ्रष्ट हो जाती हैं ॥४८॥

श्रीभगवानुवाच

साध्व्ये तच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्रि प्रलम्भिता । मयोदितं यदन्वात्थ सर्वं तत्सत्यमेव हि ॥४९॥

अन्वयः— हे साध्वि ! त्वम् एतत् श्रोतुकामैः प्रलम्भिता मयोदितं यदन्वाथ तत् हि सत्यमेव ॥४८॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे साध्वी ! राजकुमारी इन्हीं बातों को सुनने के लिए मैंने तुमसे हँसी की थी तुमने मेरी बातों की जैसी व्याख्या की है, वही सत्य है ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

प्रलम्भिता उपहसिता । अन्वात्थ अन्वाख्यातवती ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

प्रलम्भिता उपहास किया था । व्याख्या की है ॥४९॥

यान्यान्कामयसे कामान्मय्यकामाय भामिनि । सन्ति ह्येकान्तभक्तायास्तव कल्याणि नित्यदा ॥५०॥

अन्वयः—हे भामिनि यान् यान् कामान् मयि अकामाय कामयसे हे कल्याणि ! एकान्तभक्तायाः तव नित्यदा सन्ति हि ॥५०॥

अनुवाद— सुन्दरी तुम मुझसे जो-जो कामनाएँ करती हो वे तो सदा तुमको प्राप्त ही हैं । हे कल्याणी तुम मेरी एकान्त भक्ता हो । मुझसे की गयी कामनाएँ सांसारिक बन्धन में डालने वाले नहीं हैं । वे तो समस्त कामनाओं से मुक्त करा देती हैं ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

मयि एकान्तभक्तायास्ते कामाः सन्त्येव । अकामाय कामनिवृत्तये मोक्षपर्यवसायिन इत्यर्थः ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

तुम मेरी एकान्तभक्ता हो, तुम्हारा मुझसे अनन्य प्रेम है । तुम जो चाहती हो वह सब तुम्हें प्राप्त है । अकामाय अर्थात् कामनाओं की निवृत्ति के लिए अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के लिए ॥५०॥

उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च तेऽनघे । यद्वाक्यैश्चाल्यमानाया न धीर्मय्यपकर्षिता ॥५१॥

अन्वयः— अनघे ते पतिप्रेम पातिव्रत्यं च उपलब्धं यत् वाक्यैः चाल्यमानायाः मयि धीः न अपकर्षिता ॥५१॥

अनुवाद— हे निष्पाप प्रियतमे ! मैंने तुम्हारे पति प्रेम और पातिव्रत्य को जान लिया । मैंने जो हँसी की

बातें की थी कि तुम्हारी बुद्धि मुझसे विचलित होती है कि नहीं यह देखने के लिए, किन्तु तुम्हारी बुद्धि मुझसे विचलित नहीं हुई ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

अनुवादेन वरान् दत्त्वा तामभिनन्दति-उपलब्धमिति । यद्यस्मान्मयि वर्तमाना धीर्नापकर्षिता नान्यविषया जाता ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीरुक्मिणीजी की बातों के अनुवाद के माध्यम से उनको वरों का प्रदान करके श्रीभगवान् उनकी प्रशंसा **उपलब्धम्० इत्यादि** श्लोक से करते हैं । क्योंकि तुम्हारी मुझमें विद्यमान बुद्धि अन्य विषयिणी नहीं हो सकी।।५१

ये मां भजन्ति दाम्पत्ये तपसा व्रतचर्यया । कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया ।।५२।।

अन्वयः— अपवर्गेशं मां ये तपसा व्रतचर्यया दाम्पत्ये भजन्ति कामात्मानः मायया मोहिताः ।।५२।।

अनुवाद— सुन्दरी मैं मोक्ष का स्वामी हो जो लोग दाम्पत्य सुख प्राप्त करने के लिए तपस्या और व्रत करके मेरी आराधना करते हैं वे कामना प्रधान लोग मेरी माया से मोहित हैं ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

एकान्तभक्तिमभिनन्द्य तामेव दृढीकर्तुं सकामान् भक्तान्निन्दति-ये मामिति । दाम्पत्ये दम्पत्युपभोग्यसुखार्थम् ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

एकान्त भक्ति की प्रशंसा करके उसी को सुदृढ करने के लिए सकाम भक्ति करने वालों की निन्दा करते है । **दाम्पत्ये** अर्थात् दाम्पत्य जीवन के सुखों का उपभोग करने के लिए ।।५२।।

मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसंपदं वाञ्छन्ति ये संपद एव तत्पतिम् ।
ते मन्दभाग्या निरयेऽपि ये नृणां मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसङ्गमः ।।५३।।

अन्वयः— हे मानिनि अपवर्गसंपदम् मां प्राप्य तत्पतिम् सम्पदम् एव वाञ्छन्ति, नृणां ये निरये अपि ते मन्द भाग्याः मात्रात्मकत्वात् निरयः सुसङ्गमः ।।५३।।

अनुवाद— हे प्रियतमे मैं मोक्ष और सम्पत्तियों का स्वामी हूँ । ऐसे मुझको प्राप करके भी सम्पत्तियों के स्वामी मुझसे सम्पत्ति ही प्राप्त करना चाहते है, वे मन्द भाग्यवान हैं, वे भोग तो नरकों में तथा नरक के ही समान सूकर कूकुर योनियों में भी जीवों को प्राप्त होने वाले है । किन्तु उन लोगों का मन विषयों में ही लगा रहता है। अतएव उन जीवों को नरक में जाना भी अच्छा लगता है ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

मायामोहितत्वमेवोपपादयति-मां प्राप्येति । अपवर्गेण सह संपदो यस्मिंस्तं मां प्राप्य प्रसाद्य ये केवलं संपद एव विषयान्वाञ्छन्ति नतु माम् । तत्पतिं तासां संपदामपि योऽहमेव पतिस्तम् । तथा ये विषया निरयेऽप्यतिनिकृष्टयोनावपि स्युस्तान्। किंच तेषां पुंसां मात्रात्मकत्वाद्विषयात्मकत्वान्निरयः सुसङ्गमः शोभनसङ्गम एव स्यादतो मन्दभाग्या एव ते इत्यर्थः।।५३।।

भाव प्रकाशिका

माया से मोहित होने का प्रतिपादन मां प्राप्य इत्यादि श्लोक से भगवान् श्रीकृष्ण करते हैं । अपवर्ग मोक्ष के साथ मोक्ष की भी प्राप्ति जिसकी प्राप्ति हो जाने से हो जाती है, ऐसे मुझको प्रसन्न करके जो लोग केवल विषयों को ही प्राप्त करना चाहते है और मुझको नहीं चाहते हैं । उन सम्पत्तियों का भी स्वामी मैं ही हूँ । तथा जिन भोगों की प्राप्ति नरक में तथा अत्यन्त निकृष्ट सूकरादि योनियों में प्राप्त होने वाले हैं उनको चाहने वाले मन्द

बुद्धि हैं । उन पुरुषों का मन सदा विषयों में ही लगे रहने के कारण उन जीवों को नरक में भी जाना अच्छा लगता है । अतएव वे मन्दभाग्य है ।।५३।।

दिष्ट्या गृहेश्वर्यसकृन्मयि त्वया कृताऽनुवृत्तिर्भवमोचनी खलैः ।
सुदुष्करासौ सुतरां दुराशिषो ह्यसुंभराया निकृतिंजुषः स्त्रियाः ।।५४।।

अन्वयः— हे गृहेश्वरि दिष्ट्या त्वया मयि भवमोचनी अनुवृत्तिः असकृत् कृता, खलैः असौ सुदुष्करः दुराशिषः असुंभरायाः निकृतिजुषः स्त्रिया सुदुष्करः ।।५४।।

अनुवाद— हे गृहेश्वरि प्राण प्रिये तुमने अब तक संसार से मुक्त करने वाली ही मेरी सेवा की है यह बड़े आनन्द की बात है । दुष्ट पुरुष ऐसा नहीं कर सकते हैं । जिन स्त्रियों का मन दूषित कामनाओं से भरा हुआ है, जो अपनी इन्द्रियों की ही तृप्ति में लगी रहती हैं, उन सबों के लिए भी यह दुष्कर है ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

तस्मात् हे गृहेश्वरि, त्वया मयि भवमोचनी निष्कामाऽनुवृत्तिः कृता एतद्दृष्ट्या भद्रम् । कथंभूता । खलैः सुदुष्करा । दुराशिषो दुरभिप्रायाया अतएव असुंभरायाः प्राणतर्पणपराया निकृतिंजुषो वञ्चनपरायाः स्त्रियाः सुतरामसावनुवृत्तिर्दुष्करेति ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

अतएव हे गृहेश्वरि तुमने मेरी सेवा संसार से मुक्त करने वाली ही की है यह आनन्द की बात है । दुष्ट पुरुष ऐसा नहीं कर सकते । दूषित कामनाओं से युक्त तथा अपनी इन्द्रियों की ही तृप्ति में लगी रहने वाली स्त्री के लिए भी यह दुष्कर है ।।५४।।

न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले ।
प्राप्तान्नृपानवगणय्य रहोहरो मे प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ।।५५।।

अन्वयः— हे मानिनि त्वादृशीं पणयिनीं गृहेषुन पश्यामि यया स्वविवाहकाले प्राप्तान् नृपान् अवगणय्य उपयुक्त सत्कथस्य रहो हरो द्विजः प्रस्थापितः ।।५५।।

अनुवाद— हे मनिनि ! तुम्हारे सदृश मुझसे प्रेम करने वाली कोई भी पत्नी अपने गृह में मैं नहीं देख रहा हूँ, क्योंकि जिस समय तुमने मुझे देखा भी नहीं था केवल मेरी कथाओं को सुना था उस समय तुम्हारे विवाह में आये हुए राजाओं की उपेक्षा करके तुमने मेरे पास गुप्त संदेश देने वाले ब्राह्मण को मेरे पास भेजा था ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

किंच सन्ति निष्कामाः प्रेम्णैव मय्यनुवर्तमाना बह्व्यः किंतु त्वया सदृशीं क्वापि न पश्यामीति तस्या भक्तिं बहुमानेनाभिनन्दति- न त्वादृशीमिति त्रिभिः । उपश्रुताः सत्यः कथा यस्य मे ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

किञ्च मुझमें निष्काम भक्ति करने वाली बहुत सी मेरी स्त्रियाँ है । किन्तु तुम्हारे समान मुझमें भक्ति करने वाली किसी भी स्त्री को मैं नहीं देख रहा हूँ । इस तरह से श्रीभगवान् रुक्मिणीजी की भक्ति की प्रशंसा **नत्वा० इत्यादि** तीन श्लोकें से करते हैं । उस समय तुमने कथा मात्र सुनी थी ।।५५।।

भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य प्रोद्वाहपर्वणिच तद्वधमक्षगोष्ठ्याम् ।
दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्या नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ।।५६।।

अन्वयः— युधिनिर्जितस्य भ्रातुः विरूपकरणं, प्रोद्वाह पर्वणि अक्षगोष्ठ्याम् तद्वधम् समुत्थं दुःखं अस्मत् अयोग भीत्या असहः किमपि नैव अब्रवीः तेन ते वयं जिताः ।।५६।।

अनुवाद— युध में मुझसे पराजित तुम्हारे भाई को मैंने विरूप बना दिया था और अनिरुद्ध के विवाह के समय तो बलरामजी ने तो उसको मार भी दिया था। किन्तु उससे उत्पन्न कष्ट को तुमने मुझसे वियोग हो जाने की सम्भावना से चुपचाप सह लिया था, मुझसे कुछ भी तुमने नहीं कहा इसके कारण तुमने तो मुझे जीत ही लिया ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

प्रोद्वाहपर्वण्यनिरुद्धविवाहे । अक्षगोष्ठ्यां द्यूतसभायाम् । तस्य भ्रातुर्वधम् । तस्मिन्काले कालान्तरे वा तदनुस्मरणतः पुनः पुनः समुत्थं दुःखमस्माभिरयोगो वियोगस्तद्भीत्या असहः सोढवत्यसि । अनेनैवानिरुद्धविवाहानन्तर्यमस्य ज्ञातव्यम्॥५६॥

भाव प्रकाशिका

विवाह के समय में द्यूत सभा में रुक्मिणीजी के भाई रुक्मी का वध ही हो गया, उस समय अथवा दूसरे समय में उसका स्मरण करने से बार-बार उत्पन्न कष्ट को तुमने मुझसे वियोग के भय से सह लिया। इसके ही द्वारा यह जानना चाहिए कि इसके पश्चात् अनिरुद्ध का विवाह होने वाला है ॥५६॥

दूतस्त्वयात्मलभने सुविविक्तमन्त्रः प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत् ।
मत्त्वा जिहास इदमङ्गमनन्ययोग्यं तिष्ठेत् तत्त्वयि वयं प्रतिनन्दयामः ॥५७॥

अन्वयः— आत्मलभने सुविविक्तमन्त्रः दूतः त्वया प्रस्थापितः मयि चिरायति एतत् शून्यं मत्त्वा इदम् अङ्गं अनन्य योग्यं मत्त्वा जिहासे, तत् त्वायि तिष्ठेत् वयं प्रतिनन्दयामः ॥५७॥

अनुवाद— तुमने मेरी प्राप्ति के लिए दूत के द्वारा गुप्त सन्देश भेजा था, किन्तु जब तुमने मेरे पहुँचने में कुछ विलम्ब देखा तो, उस समय तुमको अपना सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर दूसरे के योग्य नहीं समझकर इसको त्यागने का निश्चय कर लिया। उस समय तुमको यह संसार सूना प्रतीत होने लगा था। तुम्हारे इस प्रेम का बदला नहीं चुका सकते है, अतएव इसका केवल हम अभिनन्दन करते हैं ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

अपि च दूत इति। आत्मलभने मत्प्राप्त्यर्थम्। मयि चिरायति श्वोभाविनि विवाहे आगन्तव्यमिति कृते समये कथंचिदप्राप्तवति सत्येतद्विश्वं शून्यं मत्वेदमनन्ययोग्यमङ्गं जिहासे त्यक्तुमिच्छामि त्यक्ष्यामीत्येवं दूतः प्रस्थापितः। तथा ह्युक्तं त्वया-'यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून् व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात्' इति। यद्वा अजिहास इति च्छेदः। त्यक्तुमैच्छ इत्यर्थः। तत्तव कर्म त्वय्येव तिष्ठेत्, न तत्प्रतिकर्तुं शक्यमित्यर्थ;। किंतु केवलं त्वां प्रतिनन्दयामो हर्षयाम इति ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

दूतस्त्वया० इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् कहते हैं कि आत्मलभने अर्थात् मेरी प्राप्ति के लिए। कल होने वाले विवाह में आपको आना चाहिए इस तरह से समय का निश्चय कर दिए जाने पर यदि आप किसी कारणवश इस ससांर को शून्य मानकर इस सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर को किसी दूसरे के योग्य नहीं मानकर मैं इसका परित्याग कर देना चाहती हूँ। यह कहकर तुमने दूत को भेजा और कहा था कि हे कमलनयन यदि मैंने आपकी कृपा नहीं प्राप्त कर सकी तो मैं अपने प्राणों का परित्याग कर दूँगी। सैकड़ों जन्म में भी व्रतों से कृश बने हुए शरीर से कभी न कभी आपकी कृपा होगी अथवा **अजिहासे** यह पदच्छेद करके अर्थ होगा कि त्यागने की इच्छा की। तुम्हारा यह प्रेम तुममे ही बना रहे। मैं उसका बदला नहीं चुका सकता हूँ। केवल अभिनन्दन के द्वारा तुमको प्रहर्षित करता हूँ ॥५७॥

श्रीशुक उवाच

एवं सौरतसँल्लापैर्भगवान् जगदीश्वरः । स्वरतो रमया रेमे नरलोकं विडम्बयन् ॥५८॥

अन्वयः— जगदीश्वरः भगवान् स्वरतः नरलोकं विडम्बयन् एवं सौरतसंल्लापैः रमया रेमे ॥५८॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् भगवान् सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं तथा आत्माराम है। मनुष्य लोक का अनुकरण करते हुए वे अपनी पत्नी रुक्मिणी जी के साथ दाम्पत्य प्रेम को बढ़ाने वाले विनोदपूर्ण वार्तालाप करते हुए विहार किए।।५८।।

भावार्थ दीपिका

सौरतसँल्लापैः सुरतनर्मगोष्ठीभिः ।।५८।।

भाव प्रकाशिका

सुरतगोष्ठियों द्वारा ।।५८।।

तथान्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव । आस्थितो गृहमेधीयान्धर्मांल्लोकगुरुर्हरिः ।।५९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमकस्कन्धे उत्तरार्धे कृष्णरुक्मिणीसंवादो नाम षष्टितमोऽध्यायः ।।६०।।

अन्वयः— विभुः लोकगुरुः हरिः तथा अन्यासामपि गृहेषु गृहवानिव गृहमेधीयान् धर्मान् आस्थितः ।।५९।।

अनुवाद— श्रीभगवान् सर्वव्यापक एवं संसार को शिक्षा देने वाले हैं। वे रुक्मिणीजी के ही समान अन्य पत्नियों के गृहों में गृहस्थ के समान रहते थे और गृहस्थोचित धर्म का पालन करते थे ।।५९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के श्रीकृष्ण रुक्मिणी संवाद नामक साठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां षष्टितमोऽध्यायः ।।५९।।

भाव प्रकाशिका— नही है ।।६०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के साठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।५९।।

एकसठवाँ अध्याय

श्रीभगवान् की सन्तति का वर्णन और अनिरुद्धजी के विवाह में रुक्मी का मारा जाना

श्रीशुक उवाच

एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दश दशाबलाः । अजीजनन्ननवमान्पितुः सर्वात्मसंपदा ॥१॥

अन्वयः— ताः कृष्णस्य अबलाः एकैकशः दश-दश पुत्रान् अजीजनन् पितुः सर्वात्मसम्पदा अनवमान् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण की उन प्रत्येक पत्नियों के दश-दश पुत्र हुए । वे बलरूप आदि के विषय में अपने पिता से किसी भी प्रकार से कम नहीं थे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकषष्टितमे शौरेः पुत्रपौत्रादिसन्ततिः । अनिरुद्धविवाहे च रुक्मिणो रामतो वधः ॥१॥ अष्टाधिकशतद्यष्टसहस्रस्त्रीसमुद्भवान्। कोटिशः पुत्रपौत्रादीन्हरिदाररैयोजयत् ॥२॥ तदेतद्वक्तुमाह-एकैकश इति । कृष्णस्याबला भार्याः । सर्वा या आत्मनि संपत्तया। पितुः सकाशादनवमानन्यूनान् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

एकसठवें अध्याय में श्रीभगवान् के पुत्र एवं सन्तानों का वर्णन है और अनिरुद्धजी के विवाह में बलरामजी द्वारा रुक्मी का वध भी वर्णित है ॥१॥ श्रीभगवान् की सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियों से उत्पन्न करोड़ों पुत्रों एवं पौत्रों का भगवान् ने अपनी पत्नियों से योग कराया ॥२॥ इन्ही सारी बातों को बतलानें के लिए एकैकश; इत्यादि श्लोक कहा गया है । **कृष्णस्याबलाः** अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियाँ जो सभी रूप बल इत्यादि के विषय में भगवान् श्रीकृष्ण से किसी प्रकार कम नहीं थे ॥१॥

गृहादनपगं वीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम् । प्रेष्ठं न्यमंसत स्वं स्वं न तत्तत्त्वविदः स्त्रियः ॥२॥

अन्वयः— राजपुत्र्यः गृहाद् अनपगं स्थितं अच्युतं स्वं स्वं प्रेष्ठं न्यमंस्त स्त्रियः तत्त्वविदः न ॥२॥

अनुवाद— राजकुमारियाँ देखती थीं कि भगवान् श्रीकृष्ण हमारे ही महल में सदा विद्यमान रहते है । अतएव वे समझती थीं कि भगवान् श्रीकृष्ण को मैं ही सर्वाधिक प्रिय हूँ । वास्तविकता यह है कि वे भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा को नहीं जानती थीं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

प्रेष्ठं न्यमंसत अच्युतस्य प्रियतमं प्रत्येकं स्वं स्वं मेनिरे । न तस्य तत्त्वमात्मारामत्वं विदन्ति ताः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

वे राजकुमारियाँ यही मानती थीं कि मैं ही प्रियतमा हूँ क्योंकि उन राजकुमारियों को श्रीभगवान् के आत्मारामत्व का ज्ञान ही नहीं था ॥२॥

चार्वब्जकोशवदनायतबाहुनेत्रसप्रेमहासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः ।
संमोहिता भगवतो न मनो विजेतुं स्वैर्विभ्रमैः समशकन्वनिता विभूम्नः ॥३॥

अन्वयः— चार्वब्जकोशवदनायतबाहुनेत्रसप्रेमहासरसवीक्षित बल्गुजल्पैः सम्मोहिताः स्वविभ्रमैः विभूम्नः भगवतः मनः विजेतुं न समशकन् ॥३॥

अनुवाद— ये सुन्दर भगवान् श्रीकृष्ण कमलकोश के समान सुन्दर मुख विशाल भुजाएँ, कर्ण स्पर्शी नेत्र, प्रेमप्रचुर मुस्कान रससंप्लुत प्रेक्षण कला एवं मधुर वाणी से स्वयं ही मोहित रहती थीं, वे अपनी शृङ्गारमयी चेष्टाओं से श्रीभगवान् के मन को अपने वशमें नहीं कर सकी । क्योंकि श्रीभगवान् तो सदा आत्मानन्द में ही स्थित रहने वाले हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

आत्मारामत्वं व्यनक्ति द्वयेन-चार्विति । चार्वब्जकोशवद्वदनं च आयतानि बाहुनेत्राणि च सप्रेम्णा हासरसेन वीक्षितानि च वल्गुजल्पाश्च भगवतः एतैः संमोहिता वनिताः स्वैः स्वैरनेकैर्विभ्रमैस्तस्य श्रीकृष्णस्य मनो विजेतुं हर्तुं न समशकन्न शक्ता बभूवुः । विभूम्नः परिपूर्णस्य ॥३॥

भाव प्रकाशिका

चार्वब्ज० इत्यादि दो श्लोकों से शुकदेवजी श्रीभगवान् के आत्मा रामत्व का वर्णन करते है । मनोहर कमल कोश के समान मनोज्ञ मुख तथा प्रलम्ब भुजाओं विशाल नेत्र को ही प्रेम पूर्वक हँसी तथा प्रेक्षण कला तथा माधुर्य पूर्ण श्रीभगवान् की बातों से ही वे राजकुमारियाँ स्वयं मोहित थीं अतएव वे अपने भावभंगिमाओं के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के मन को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकीं ॥३॥

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः ।
पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः ॥४॥

अन्वयः— षोडश सहस्रम् पत्न्यस्तु स्मायावलोक लवदर्शित भावहारि भ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः अनङ्गबाणैः करणैः यस्येन्द्रियं विमथितुं न शेकु ॥४॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियाँ सोलह हजार से अधिक थी। वे अपनी मन्दमुस्कान और तिरछे कटाक्षपात से युक्त भौंहों के ईशारे से ऐसे प्रेम के बाण को चलाती थीं जो काम कला के भावों से परिपूर्ण होते थे, किन्तु वे किसी भी साधन से तथा किसी भी प्रकार से श्रीभगवान् की इन्द्रियों को चंचल बनाने में समर्थ नहीं हो सकीं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तासां विभ्रमान्वर्णयन्नेतद्विवृणोति-स्मायेति । स्मायो गूढहसितं तद्युक्तोऽवलोकलवः कटाक्षस्तेन दर्शितः सूचितो भावोऽभिप्रायस्तेन हारि मनोहरणशीलं यद्भ्रूमण्डलं तेन प्रहिताः प्रस्थापिता ये सौरता मन्त्रास्तेषु शौण्डैः प्रगल्भैरनङ्गस्य बाणैः शरैरन्यैश्च करणैः कामशास्त्रप्रसिद्धैर्यस्येन्द्रियं मनो विमथितुं क्षोभयितुं षोडशसहस्रमपि पत्न्यो न शेकुरिति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

उन सबों की श्रृङ्गारिक चेष्टाओं का वर्णन करते हुए इसकी व्याख्या करते हैं। मन्द मुस्कान चितवन तथा कटाक्षपात से अभिव्यक्त होने वाले अभिप्राय एवं मनोहर भौ से प्रेषित सुरत संबन्धी मन्त्र में पटु बाणों द्वारा तथा दूसरे साधनो से स्त्रियाँ श्रीभगवान् की इन्द्रियों को चंचल बनाने में समर्थ नही हो सकीं ॥४॥

इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ।
भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसङ्गमलालसाद्यम् ॥५॥

अन्वयः— ब्रह्मादयोऽपि यदीयां पदवीं न विदुः रमापतिं पतिम् अवाप्य ताः स्त्रियः अविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोक नवसङ्गमलालसाद्यम् मुदा भेजुः ॥५॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित बड़े-बड़े देवता भी जिनकी प्राप्ति के मार्ग को नहीं जानते हैं उन लक्ष्मीपति श्रीभगवान् को पति के रूप में प्राप्त करके उन स्त्रियों के सदैव उनके प्रेम और आनन्द की वृद्धि होती रहती थी और वे प्रेम भरी मुस्कुराहट मधुर चितवन नवसमागम की लालसा आदि से श्रीभगवान् की सेवा करती रहती थीं॥५॥

भावार्थ दीपिका

अनुरागेण हासोऽवलोकश्च नवसङ्गमे लालसमौत्सुक्यं च ते आद्यम यस्य विभ्रमकदम्बस्य तं भेजुः । अनुरागहासावलोकनवसङ्गमलालसाद्यं भेजुस्तस्य मनो विजेतुं न शेकुरिति वा ॥५॥

भाव प्रकाशिका

जिन सबों की श्रृङ्गारिक चेष्टाएँ प्रेमपूर्ण मुस्कान अनुरागपूर्वक चितवन तथा नवीन सङ्गम की लालसा आदि से पूर्ण होती थी। वे भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा करती थीं। तथा उन सबों के अनुराग पूर्ण हँसी चितवन तथा नवीन सङ्गम आदि की लालसा आदि श्रीभगवान् की अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकती थीं ॥५॥

प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ।
केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥६॥

अन्वयः— दासीशता अपि प्रत्युद्गमासन्वरार्हण पादशौच ताम्बूलविश्रमण वीजनगन्धमाल्यैः केश प्रसार शयन स्नपनोपहार्यैः दास्यम् विदधुः स्म ॥६॥

अनुवाद— उन सबों में प्रत्येक पत्नियों के साथ सौकड़ों दासियाँ रहती थीं। ऐसा होने पर भी जब श्रीभगवान् उन सबों के महल में पधारते थे तब वे स्वयम् आगे बढकर उनको आदर पूर्वक लिवा लातीं श्रेष्ठ आसन पर बैठातीं, उत्तम सामग्रियों से उनकी पूजा करतीं, उनका पाँव पखारती, पान लगाकर खिलातीं, पैर दबाकर उनकी थकान दूर करतीं इत्र चन्दनादि लगातीं पुष्पों का हार पहनाती, केश सँवरती, सुलातीं, स्नान कराती तथा अनेक प्रकार का भोजन कराकर अपने ही हाथों भगवान की सेवा करती थीं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

किंतु प्रत्युद्गमादिभिर्विभोस्तस्य दास्यं नित्यं विदधुरिति। प्रौढभावेऽपि नवसङ्गमाद्यभिधानमगतसारत्वेनौत्सुक्येंन च तथा प्रतीतेः। तेषामेव श्लोकानां प्रस्तावान्तरे पुनः पुनरावृत्तिरतिसौन्दर्यात् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

किन्तु आगे बढ़कर लिवा लाने आदि के द्वारा वे श्रीभगवान् की सेवा करती थीं। प्रौढभाव के रहने पर भी नवीन सङ्गम आदि का सार समाप्त नहीं होने के कारण तथा उत्सुकतावशात् उस तरह की प्रतीति होने से उन्हीं श्लोकों का दूसरे प्रस्ताव में उन सबों की बार-बार आवृत्ति सौन्दर्यातिशय्य के कारण होती थी ॥६॥

तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः। अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान्प्रद्युम्नादीन्गृणामि ते ॥७॥

अन्वयः— तासां कृष्ण स्त्रीणां या दश पुत्राणां पुरोदिताः अष्टौ महिष्यः तत्पुत्रान् पद्युम्नादीन् ते गृणामि ॥७॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण की प्रत्येक पत्नियों के दस-दस पुत्र हुए यह मैं पहले कह चुका हूँ, उनमें से आठ पटरानियों के प्रद्युम्न आदि पुत्रों का वर्णन मैं आपको सुनाता हूँ ॥७॥

भावार्थ दीपिका

प्रासङ्गिकमुक्त्वा प्रस्तुतमाह-तासामिति। दश दश पुत्रा यासां तासां मध्येऽष्टौ महिष्यो याः प्रागुक्तास्तत्पुत्रानिति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

तासाम्० इत्यादि श्लोक से प्रासङ्गिक बातों को कहकर प्रस्तुत का वर्णन करते हैं जिन पत्नियों के दश-दश पुत्र हैं उनमें जो आठ पटरानियाँ हैं जिन सबों का वर्णन पहले किया गया है, उन सबों के पुत्रों का वर्णन करते हैं ॥७॥

चारुदेष्णः सुदेष्णश्च चारुदेहश्च वीर्यवान्। सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथा परः ॥८॥
चारुचन्द्रो विचारुश्च चारुश्च दशमो हरेः। प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः ॥९॥

अन्वयः— चारु देष्णः सुदेष्णश्च, वीर्यवान् चारुदेहः च सुचारुः चारुगुप्तः च तथा अपरः भद्रयारुः चारु चन्द्रः, विचारुः च चारुश्च दशमः हरेः प्रद्युम्न प्रमुखा जाताः रुक्मिण्या पितुः अवमाः न ॥८-९॥

अनुवाद— चारुदेष्ण, सुदेष्ण, पराक्रमी चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त तथा भद्रचारु, चारुचन्द्रः विचारु और सुचारु ये रुक्मिणी जी के गर्भ से श्रीभगवान् के प्रद्युम्न आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए ये किसी भी विषय में अपने पिता से कम नहीं थे ॥८-९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८-९॥

भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा। चन्द्रभानुर्बृहद्भानुरतिभानुस्तथाऽष्टमः ॥१०॥
श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश। साम्बः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च सहस्रजित्॥११॥
विजयश्चित्रकेतुश्च वसुवान् द्रविडः क्रतुः। जाम्बवत्याः सुता ह्येते साम्बाद्याः पितृसंमताः॥१२॥

अन्वयः— भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुः भानुमान् तथा चन्द्रभानुः बृहद्भानुः तथा अष्टमः अतिभानुः श्रीभानु,

प्रतिभानुः च सत्यभामात्मजादश । साम्बः, सुमित्रः, पुरुजित् शतजित् सहस्रजित् विजयः चित्रकेतुः च वसुमान्, द्रविडः, क्रतुः एतेहि जाम्बवत्याः साम्बाद्याः सुता पितृ संमताः ॥१०-१२॥

अनुवाद— भानु, सुभानु, स्वर्भानुः प्रभानुः तथा भानुमान् चन्द्रभानुः बृहद्भानु अष्टमः अतिभानुः श्रीभानु तथा प्रतिभानु ये दस सत्यभामा जी के दस पुत्र हुए । जाम्बवतीजी के भी साम्ब आदि दस पुत्र हुए साम्ब, सुमित्र पुरुजित्, शतजित् सहस्रजित् विजय,चित्रकेतु वसुमान, द्रविड और क्रतु । ये अपने पिता के प्रिय थे ॥१०-११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०-१२॥

वीरश्चन्द्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान्वृषः । आमः शङ्कुर्वसुः श्रीमान्कुन्तिर्नाग्नजितेः सुताः ॥१३॥

अन्वयः— वीरः चन्द्रः, अश्वसेनः, चित्रगुः वेगवान् वृषः, आमः, शङ्कुः वसुः श्रीमान् कुन्तिः नाग्नजितेः सुताः॥१३॥

अनुवाद— वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान, वृष, आम, शङ्कु, वसु, श्रीमान् कुन्ति ये नाग्नजिति सत्याजी के दस पुत्र है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

श्रीमानिति वसोः कुन्तेर्वा विशेषणम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीमान् यह कुन्ति अथवा वसु का विशेषण है ॥१३॥

श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुबाहुर्भद्र एकलः । शान्तिर्दर्शः पूर्णमास; कालिन्द्याः सोमकोऽवरः ॥१४॥

अन्वयः— कालिन्द्याः श्रुतः कविः वृषः वीरः सुबाहुः भद्रः एकलः शान्तिः दर्शः पूर्णमासः अवरः सोमकः ॥१४॥

अनुवाद— कालिन्दीजी के भी ये दस पुत्र थे श्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, एकल, शान्ति दर्श, पूर्णमास और सबसे छोटे सोमकः ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

भद्रो नाम एकल एकः । सोमकोऽवरः कनीयान् । एते कालिन्द्याः सुता इति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

भद्र नामक एक एकल थे । सोमक सबसे छोटे थे । ये सभी कालिन्दीजी के पुत्र थे ॥१४॥

प्रघोषो गात्रवान्सिंहो बलः प्रबल ऊर्ध्वगः । माद्र्यः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥१५॥

अन्वयः— माद्र्याः प्रघोषः, गात्रवान, सिंहः बलः, प्रबलः ऊर्ध्वगः महाशक्ति; सहः ओजः अपराजितः च ॥१५॥

अनुवाद— मद्रदेश की राजकुमारी लक्ष्मणाजी के भी दस पुत्र थे प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजित् ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

माद्रयाः लक्ष्मणायाः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

मद्रदेश की राजकुमारी लक्ष्मणाजी के ॥१५॥

वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोन्नाद एव च । महाशः पावनो वह्निर्मित्रविन्दात्मजाः क्षुधिः ॥१६॥

अन्वयः— मित्रविन्दात्मजाः वृकः हर्षः, अनिलः, गृध्रः, वर्धनः उन्नादः, महाशः पावनः बह्निः क्षुधिश्च ॥१६॥

अनुवाद— मित्रविन्दाजी के भी दस पुत्र थे वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, उन्नाद, महाश, पावन तथा क्षुधि॥१६॥

भावार्थ दीपिका

क्षुधिश्च दशम; । एते मित्रविन्दात्मजाः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

मित्रविन्दा जी के दसवें पुत्र का नाम क्षुधि है ॥१६॥

संग्रामजिद्बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित् । जयः सुभद्रो भद्राया वाम आयुश्च सत्यकः ॥१७॥

अन्वयः— भद्रायाः संग्रामजित् बृहत्सेनः शूरः प्रहरणः अरिजित् जयः, सुभद्र वामः आयुः सत्यकः च ॥१७॥

अनुवाद— भद्राजी के भी दस पुत्रों के नाम है- संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण अरिजित् जय, सुभद्र वाम आयु और सत्यक ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

संग्रामजित्प्रमुखाः सत्यकान्ता भद्रायाः सुताः । शैब्यानामापि सैव ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

संग्रामजित् से लेकर सत्यक पर्यन्त भद्राजी के पुत्र है । भद्राजी का ही नाम शैव्या भी है ॥१७॥

दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया हरेः । प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद्रुक्मवत्यां महाबलः ॥१८॥

अन्वयः— हरेः रोहिण्याः देप्तिमांस्तप्तताम्राद्याः पद्युम्नाच्च रुक्मवत्यां महाबलः अनिरुद्धः अभूत् ॥१८॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के रोहिणीजी के गर्भ से दीप्तिमान तप्त एवं ताम्र आदि पुत्र हुए । प्रद्युम्नजी की पत्नी रुक्मवती के गर्भ से अनिरुद्ध नामक महाबलवान् पुत्र का जन्म हुआ ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

रोहिण्याः सुतानामुक्तिरन्यासामुपलक्षणार्थम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

रोहिणीजी के पुत्रों का वर्णन अन्य पत्नियों के पुत्रों के उपलक्षण के लिए किया गया है ॥१८॥

पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन्नाम्ना भोजकटे पुरे। एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप ॥
मातरः कृष्णजातानां सहस्राणि च षोडश ॥१९॥

अन्वयः— राजन् रुक्मिणः पुत्र्यातुं नाम्नाभोजकटे पुरे । हे नृप एतेषां पुत्रपौत्राः च कोटिशः बभूवुः । कृष्णजातानां मातरः सहस्राणि चषोडश ॥१९॥

अनुवाद— रुक्मवती भोजक नामक नगर के राजा रुक्मी की पुत्री थी । इन सबों के पुत्र और पौत्र करोड़ो हुए । भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्रों की माताओं की संख्या सोलह हजार एक सौ आठ थी ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

एतेषामपि अन्येषामपि श्रीकृष्णपुत्राणां शतसंख्यस्त्रीषु पुत्राः पौत्राश्च कोटिशो बभूवुः । तत्र हेतुत्वेन श्रीकृष्णपत्नीनां बाहुल्यमनुस्मारयतिमातरः कृष्णजातानामिति । चशब्देनाधिकाश्चेत्युक्तम् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

इन सबों के तथा दूसरे जो भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र थे उन सबों के पुत्र और पौत्र करोड़ों थे । इसका कारण

है कि भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियाँ ही बहुत अधिक थी । मातर: कृष्ण जातानां के चकार से सोलह हजार से अधिक एक सौ आठ पत्नियाँ थी उनको बतलाया गया है ॥१९॥

राजोवाच

कथं रुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद्दुहितरं युधि। कृष्णेन परिभूतस्तं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते ॥
एतदाख्याहि मे विद्वन् द्विषोर्वैवाहिकं मिथः ॥२०॥

अन्वयः— हे विद्वन् युधि कृष्णेन परिभूतः तं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते अरिपुत्राय रुक्मी कथं दुहितरं प्रादात् एतद् मे आख्याहि द्विषोः वैवाहिकं कथम् ।।२०।।

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— हे विद्वन् युद्ध में श्रीकृष्ण से पराजित होकर जो सदा इस अवसर की प्रतीक्षा करता था कि कब अवसर मिले कि मैं श्रीकृष्ण से बदला लूँ । वह रुक्मी श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के साथ अपनी पुत्री का विवाह कैसे किया ? दो वैरियों में वैवाहिक संबन्ध कैसे हुआ इसे आप मुझे बतलाइये ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

यः कृष्णं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते स कथं प्रादादिति । वैवाहिकं विवाहनिमित्तम् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

जो श्रीकृष्ण को मारने के लिए अवसर की प्रतीक्षा करता था उसने अपनी पुत्री को कैसे प्रदान किया ? वैवाहिकम् अर्थात् विवाह सम्बन्धी ।।२०।।

अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम् । विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक् पश्यन्ति योगिनः ॥२१॥

अन्वयः— योगिनः अनागतम् अतीतम् वर्तमानम्, अतीन्द्रिययं, विप्रकृष्टं व्यवहितं च सम्यक् पश्यन्ति ।।२१।।

अनुवाद— योगि जन तो भविष्यत् भूत, वर्तमान, अतीन्द्रिय दूरस्थ एवं व्यवहित बातों को बड़ी अच्छी तरह से जान लेते हैं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

रुक्मिणोऽभिप्रायं कथं जानीम इति चेदत आह-अनागतमिति । अतीन्द्रियमस्मदादीन्द्रियागोचरम् । विप्रकृष्टं दूरस्थम्। व्यवहितं कुड्याद्यन्तरितम् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मैं रुक्मी के अभिप्राय को कैसे जांनू तो इसके उत्तर में राजा परीक्षित् अनागत आदि श्लोक कहते हैं । अतीन्द्रियम अर्थात् हमलोगों के इन्द्रियों के अविषयभूत विप्रकृष्ट अर्थात् दूरस्थित । व्यवहितम् अर्थात् दिवाल आदि के व्यवधान से युक्त ।।२१।।

श्रीशुक उवाच

वृतः स्वयंवरे साक्षादनङ्गोऽङ्गयुतस्तया । राज्ञः समेतान्निर्जित्य जहारैकरथो युधि ॥२२॥

अन्वयः— स्वयम्वरे साक्षात् अनङ्गाङ्गयुतः तया वृतः समेतान् राज्ञः एकरथः युधि निर्जित्य जहार ।।२२।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् प्रद्युम्नजी साक्षात् कामदेव थे । रुक्मवती ने स्वम्वर में उनका वरण कर लिया । प्रद्युम्नजी अकेले ही वहाँ पर एकत्रित सभी राजाओं को जित लिए और रुक्मवती का हरण करके ले आये ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तत्रोत्तरम्- स्वयंवरे रुक्मवत्या वृतः सन् राज्ञो निर्जित्य जहारेति ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

उसका उत्तर है कि स्वयम्बर में रुक्मवती ने प्रद्युम्नजी का वरण कर लिया । और प्रद्युम्नजी वहाँ पर एकत्रित सभी राजाओं को पराजित करके उसका हरण कर लिए ।।२२।।

यद्यप्यनुस्मरन्वैरं रुक्मी कृष्णावमानितः । व्यतरद्भागिनेयाय सुतां कुर्वन्स्वसुः प्रियम् ।।२३।।

अन्वयः— कृष्णावमानितः रुक्मी यद्यपि वैरम् अनुस्मरन् स्वसुः प्रियम् कुर्वन भागिनेयाय सुतां व्यतरत् ।।२३।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा अपमानित रुक्मी यद्यपि वैर को भूला नहीं था फिर भी अपनी बहिन को प्रसन्न करने के लिए अपने भाँजे प्रद्युम्नजी से अपनी पुत्री का विवाह कर दिया ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

यद्यपि श्रीकृष्णावमानितस्तथापि वैरमनुस्मरन्नपि व्यतरत्प्रादात् । अन्वमोदतेत्यर्थः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि रुक्मी भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा अपमानित किया गया था, वह उस वैर को भूला नहीं था फिर भी उसने अपनी पुत्री का प्रद्युम्नजी के साथ विवाह का समर्थन कर दिया ।।२३।।

रुक्मिण्यास्तनयां राजन्कृतवर्मसुतो बली । उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ।।२४।।

अन्वयः— हे राजन् रुक्मिण्या विशालाक्षीं चारुमती कृतवर्मासुतः बली ताम् उपयेमे ।।२४।।

अनुवाद— हे राजन् ! रुक्मिणीजी की पुत्री चारुमती जो बड़े-बड़े नेत्रों वाली थी उसके साथ कृतवर्मा के पुत्र बली ने विवाह किया था ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

सर्वासामपि एकैका कन्या तत्सर्वविवाहोपलक्षणार्थं ज्येष्ठकन्याविवाहमाह-रुक्मिण्या इति ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की सभी पत्नियों की एक-एक कन्या थी । सबों के विवाहों के उपलक्षण रूप से बड़ी कन्या के विवाह का वर्णन रुक्मिण्याः इत्यादि श्लोक से किया गया है ।।२४।।

दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः । रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया ।।
जानन्नधर्मं तद्यौनं स्नेहपाशानुबन्धनः ।।२५।।

अन्वयः— स्वसुःप्रियचि कीर्षया हरेः बद्धवैरोऽपि रुक्मी तद्दौहित्राय अनिरुद्धाय रोचनाम् अदात् । तद यौनं अधर्मं जानन् स्नेहपाशानुबन्धनः सन् चकार ।।२५।।

अनुवाद— अपनी बहन को प्रसन्न करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण के साथ वैर करते हुए भी अपनी पुत्री के पुत्र अनिरुद्ध के साथ उसने अपनी पौत्री रोचना का भी विवाह कर दिया । यद्यपि वह जानता था कि यह विवाह धर्म के विरुद्ध है फिर भी प्रेम के बन्धन में पड़कर उसने ऐसा कर दिया ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

यौनं विवाहः । तद्यौनमधर्मं जानन्निति । द्विषदन्नं न भोक्तव्यं द्विषन्तं नैव भोजयेत् इति लोकविरोधात् । अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्न तु, इति निषेधाच्चेत्यर्थः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

यौन अर्थात् विवाह । उस विवाह को धर्म के विरुद्ध जानता हुआ भी **दिषन्न० इत्यादि** अर्थात् शत्रु का अन्न न तो खाना चाहिए और न तो द्वेष करने वाले को अपना अन्न खिलाना चाहिए । इस तरह के लोक का विरोध होने पर भी । तथा जिसके कारण नरक मिले तथा जो लोक विरोधी हो उसका आचरण नहीं करना चाहिए इस तरह का निषेध होने पर भी ॥२५॥

तस्मिन्नभ्युदये राजन् रुक्मिणी रामकेशवौ । पुरं भोजकटं जग्मुः साम्बप्रद्युम्नकादयः ॥२६॥

अन्वयः— राजन् तस्मिन् अभ्युदये रुक्मिणी रामकेशवौ साम्बप्रद्युम्नकादयः भोजकटं पुरं जग्मुः ॥२६॥

अनुवाद— हे राजन् ! उस विवाह की बेला में रुक्मिणीजी बलरामजी भगवान् श्रीकृष्ण प्रद्युम्नजी तथा साम्व आदि भी भोजकट पुर में गये ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

तस्मिन्निवृत्त उद्वाहे कालिङ्गप्रमुखा नृपाः । दृप्तास्ते रुक्मिणं प्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥२७॥

अन्वयः— तस्मिन् उद्वाहे निवृत्ते कालिंग प्रमुखाः दृप्ताः नृपाः रुक्मिणं प्रोचुः अक्षैः बलम् विनिर्जय इति ॥२७॥

अनुवाद— विवाह के निर्विघ्न पूरा हो जाने पर कलिङ्ग नरेश आदि घमण्डी राजाओं ने कहा कि तुम बलरामजी को द्यूतक्रीडा में जित लो ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

लोकविरुद्धाचरणफलं वक्तुमाह-तस्मिन्निति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

लोक विरुद्ध आचरण करने का फल बतलाने के लिए **तस्मिन्० इत्यादि** श्लोक को कहा गया है ॥२७॥

अनक्षज्ञो ह्ययं राजन्नपि तद्व्यसनं महत् । इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षै रुक्म्यदीव्यत ॥२८॥

अन्वयः— राजन् अयं अनक्षज्ञः अपि तत् महद्व्यसनं, इत्युक्तः रुक्मी बलम् आहूय तेन सह अदीव्यत ॥२८॥

अनुवाद— राजाओं ने कहा कि हे राजन् बलरामजी जूआ खेलना नहीं जानते हैं फिर भी इनको जूए का खूब शौक है । इस तरह से कहे जाने पर रुक्मी बलरामजी को बुलाकर उनके साथ जूआ खेलने लगा ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अदीव्यत क्रीडितवान् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

अदीव्यत अर्थात् जूआ खेलने लगा ॥२८॥

शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राददे पणम् । तं तु रुक्म्यजयत्तत्र कालिङ्गः प्राहसद्बलम् ॥
दन्तान्संदर्शयन्नुच्चैर्नामृष्यत्तद्धलायुधः ॥२९॥

अन्वयः— तत्र रामः शतं सहस्रम्, अयुतम् पणम् आददे तं तु रुक्मी अजयत् तत्र कलिङ्गः दन्तान् संदर्शन् उच्चैः बलम् प्राहसत् तत् हलायुधः न अमृष्यत ॥२९॥

अनुवाद— बलरामजी ने पहले सौ, फिर एक हजार तथा उसके बाद दस हजार मुहरों का दाव लगाया।

उसको रुक्मी ने जित लिया उस समय कलिङ्ग नरेश बलरामजी को दाँत दिखाते हुए जोर से हँसते हुए बलरामजी की हँसी उड़ाने लगे । बलरामजी से वह हँसी सहन न हुई । वे चिढ से गये ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

ततो लक्षं रुक्म्यगृह्णाद्ग्लहं तत्राजयद्बलः । जितवानहमित्याह रुक्मी कैतवमाश्रितः ॥३०॥

अन्वयः— ततः रुक्मी लक्षं ग्लहं अगृह्णात् तत्र बलः अजयत् ततः रुक्मी कैतवम् आश्रितः अहंजितवान् इत्याह॥३०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् रुक्मी ने एक लाख मुहरों का दाव लगाया उसे बलरामजी ने जितलिया किन्तु रुक्मी धूर्तता से कहने लगा कि मैं जीता हूँ ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

निष्काणां लक्षं ग्लहं पणं कृतवान् । कैतवं कपटम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

एक लाख मुहर का दाव लगाया । कैतव अर्थात् कपट ॥३०॥

मन्युना क्षुभितः श्रीमान्समुद्र इव पर्वणि । जात्यारुणाक्षोऽतिरुषा न्यर्बुदं ग्लहमाददे ॥३१॥

अन्वयः— मन्युना क्षुभितः श्रीमान् समुद्रइव पर्वणि जात्यारुणाक्षः अतिरुषा न्यबुद्ध ग्लहमाददे ॥३१॥

अनुवाद— क्रोध के मारे क्षुब्ध श्रीबलरामजी की लाल-लाल आँखें और लाल हो गयीं और क्रुद्ध होकर उन्होंने दस करोड़ मुहरों का दाव लगाया ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

न्यर्बुदं दशकोटीर्ग्लहं क्षुभितो राम आददे ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

दस करोड़ का दाव लगाया ॥३१॥

तं चापि जितवान्रामो धर्मेण च्छलमाश्रितः । रुक्मी जितं मयाऽत्रेमे वदन्तु प्राश्निका इति ॥३२॥

अन्वयः— रामः धर्मेण तं चापि जितवान् छलम् आश्रितः रुक्मी मया जितम् अत्र इमे प्राश्निकाः वदन्तु ॥३२॥

अनुवाद— धर्मानुसार उस दाव को भी बलरामजी ने जीत लिया । इस पर छल का सहारा लेकर रुक्मी ने कहा मैं जीता हूँ । इस विषय में सभासद कलिंग नरेश इत्यादि बतलायें ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

छलमाश्रितो रुक्मी मया जितमित्याह ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

कपट का सहारा लेकर रुक्मी ने कहा मैं जीत गया हूँ ॥३२॥

तदाऽब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः । धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वदति वै मृषा ॥३३॥

अन्वयः— तदा नभोवाणी अब्रवीत् बलेनैव ग्लहः जितः धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वै मृषा वदति ॥३३॥

अनुवाद— उस समय आकाशवाणी हुई कि धर्मानुसार बलरामजी ने ही दाव जीता है, रुक्मी तो झूठ बोल रहा है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

तामनादृत्य वैदर्भो दुष्टराजन्यचोदितः । संकर्षणं परिहसन्बभाषे कालचोदितः ॥३४॥

अन्वयः— ताम् अनादृत्य कालचोदितः वैदर्भः दुष्टराजन्यचोदितः सङ्कर्षणं परिहसन् बभाषे ॥३४॥

अनुवाद— उस आकाशवाणी की परवाह किए बिना काल से प्रेरित रुक्मी दुष्ट राजाओं के द्वारा प्रेरित होकर बलरामजी का उपहास करते हुए कहने लगा ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः । अक्षैर्दीव्यन्ति राजानो बाणैश्च न भवादृशाः ॥३५॥

अन्वयः— बनगोचराः गोपालाः यूयं अक्षकोविदानैव, राजानः अक्षैः बाणैश्च दीव्यन्ति भवादृशाः न ॥३५॥

अनुवाद— बलरामजी आप लोग वन-वन भटकने वाले ग्वाल है आप जूआ खेलना क्या जानें, पासों और बाणों से खेलने का काम तो राजागण जानते हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३५॥

रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः । क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥३६॥

अन्वयः— रुक्मिणा एवम् अधिक्षिप्तः राजभिश्च उपहसितः क्रुद्धः परिधम् उद्यम्य तं नृम्णसंसदिजघ्ने ॥३६॥

अनुवाद— रुक्मी के द्वारा इस तरह से आक्षेप करने पर तथा राजाओं के द्वारा उपहास करने पर बलरामजी परिघ उठाकर उसको उस मागलिक सभा में मार डाले ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

नृम्णसंसदि मङ्गलसभायाम् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

नृम्ण संसदि अर्थात् मङ्गलसभा में ही ॥३६॥

कलिङ्गराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे । दन्तानपातयत्क्रुद्धो योऽहसद्विवृतैर्द्विजैः ॥३७॥

अन्वयः— क्रुद्धः दशमे पदे कलिङ्गराजं तरसागृहित्वा यः विवृतैः द्विजैः अहसत् दन्तान् अपातयत् ॥३७॥

अनुवाद— क्रुद्ध होकर बलरामजी भागते हुए कलिङ्गराज को बलपूर्वक पकड़कर जिन दाँतों को निकालकर वे दिखाते थे उनके उन दाँतों को तोड़कर गिरा दिए ॥३७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः । राजानो दुद्रुवुर्भीता बलेन परिघार्दिताः ॥३८॥

अन्वयः— अन्ये निर्भिन्न बाहूरुशिरसः राजानः बलेन परिघार्दिता, भीताः दुदुवुः ॥३८॥

अनुवाद— दूसरे राजा गण जिनकी भुजा, जङ्घा तथा शिर टूट-फूट गये थे तथा जो खून से लथपथ हो गये बलरामजी के द्वारा परिध से पीड़ित होने के कारण डर कर भाग गयें ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३८॥

निहते रुक्मिणि श्याले नाब्रवीत्साध्वसाधु वा । रुक्मिणीबलयो राजन्स्नेह भङ्गभयाद्धरिः ॥३९॥

अन्वयः— राजन् रुक्मिणीश्याले निहते रुक्मिणी बलयोः स्नेहभङ्ग भयात् हरि साधु-असाधु वा न अब्रवीत् ॥३९॥

अनुवाद— परीक्षित् अपने साले रुक्मी के मारे जाने पर रुक्मिणी तथा बलरामजी दोनों के स्नेह के भङ्ग के भय से श्रीहरि न तो अच्छा कहे और न तो बुरा कहे ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् ।
रामादयो भोजकटाद्दशार्हाः सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

अन्वयः— ततः सूर्यया सह अनिरुद्धं वरं रथं समारोप्य सिद्धाखिलार्थाः रामादयः दशार्हा मधुसूदनाश्रयाः भोजकटात् कुशस्थलीं ययुः ॥४०॥

अनुवाद— उसके पश्चात् नवोढा रोचना के साथ श्रेष्ठ रथ पर बैठाकर अनिरुद्धजी का विवाह और शत्रु का वध दोनों प्रयोजनों की सिद्धि हो जाने से बलरामजी आदि यदुवंशी भगवान् के आश्रय में रहकर भोजकट से द्वारकापुरी में आ गये ॥४०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के अनिरुद्ध विवाह तथा रुक्मीवध नामक एकसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६१।।

भावार्थ दीपिका

सूर्यया नवोढया । सिद्धा अखिला अर्था अभ्युदयशत्रुवधादयो येषां ते ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां एकषष्टितमोऽध्यायः ।।६१।।

भाव प्रकाशिका

सूर्यया अर्थात् नवविवाहिता रोचना के साथ । जिनके अभ्युदय तथा शत्रु वध आदि के सारे प्रयोजन सिद्ध हो गये थे ।।४०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के एकसठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।६१।।

* * *

बासठवाँ अध्याय

उषा अनिरुद्ध मिलन

राजोवाच

बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः । तत्र युद्धमभूद्धोरं हरिशङ्करयोर्महत् ॥
एतत्सर्वं महायोगिन्समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥१॥

अन्वयः— हे महायोगिन् यदूत्तमः बाणस्य तनयाम् उषाम् उपयेमे । तत्र हरिशङ्करयोः महत् घोरं युद्धम् अभूत् त्वम् एतत् सर्वम् आख्यातुम् अर्हसि ।।१।।

राजा परीक्षित ने कहा

अनुवाद— हे महायोग सम्पन्न मुनीश्वर, मैंने सुना है कि यदुवंश शिरोमणि अनिरुद्धजी ने बाणासुर की पुत्री ऊषा के साथ विवाह किया । वहाँ श्रीहरि तथा शङ्करजी दोनों का घोर युद्ध हुआ। आप इन सारी बातों को मुझे सुनायें।।१।।

भावार्थ दीपिका

द्वियुकषष्टितमे प्रोक्तमनिरुद्धस्य रोधनम् । कन्यया रममाणस्य बाणेन बहुबाहुना ।।१।। अनिरुद्धोद्वहेऽन्यस्मिन् बाणयादवसंयुगे। श्रीकृष्णः श्रीहरं जित्वा बाणबाहूनथाच्छिनत् ।।२।। ।।१।।

भाव प्रकाशिका

बाणासुरी की पुत्री ऊषा के साथ रमण करने वाले अनिरुद्धजी को बाणासुर ने कारागार में डाल दिया। इस बात का वर्णन बासठवें अध्याय में किया गया है अनिरुद्धजी के दूसरे विवाह के अवसर पर बाणासुर और यादवों के साथ युद्ध होने पर भगवान् श्रीकृष्ण शङ्करजी को पराजित करके बाणासुर की भुजाओं को काट दिए ॥२॥॥१॥

श्रीशुक उवाच

बाणः पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः । येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ॥२॥

अन्वयः— महात्मन बलेः पुत्रशतज्येष्ठः बाण आसीत् येन वामन रूपाय हरये मेदिनी अदायि ॥२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— महात्मा बलि के सौ पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र बाणासुर था। बलि वामनरूप धारण करने वाले श्रीहरि को पृथिवी का दान दिया था ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा । मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसन्धो दृढव्रतः ॥३॥

अन्वयः— तस्यौरसः सुतः बाण सदा शिवभक्ति रतः मान्यः, वदान्यः धीमान् सत्यसन्धः दृढव्रत आसीत् ॥३॥

अनुवाद— उस बलि के औरस पुत्र बाणासुर सदा भगवान् शिवजी भक्ति में रत रहता था। वह उदार, सत्यवक्ता दृढव्रत था तथा उसकी बुद्धि प्रशंसनीय थी ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

शोणिताख्ये पुरे रम्ये स राज्यमकरोत्पुरा। तस्य शम्भोः प्रसादेन किङ्करा इव तेऽमराः ॥
सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवेऽतोषयन्मृडम् ॥४॥

अन्वयः— सः पुरा शोणिताख्ये रम्ये पुरे राज्यम् अकरोत्। तस्य शम्भोः प्रसादेन ते अमराः किङ्करा इव आसन् सहस्रबाहुवाद्येन ताण्डवे मृडम् अतोषयत् ॥४॥

अनुवाद— वह प्राचीन काल में शोणित पुर नामक मनोहर नगर में राज्य करता था। शङ्करजी की कृपा से इन्द्रादि देवता उसके भृत्य के समान बने रहते थे। एक दिन ताण्डव नृत्य के समय उसने अपने हजार भुजाओ से बाजा बजाकर शङ्करजी को प्रसन्न कर दिया ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

भगवान्सर्वभूतेशः शरण्यो भक्तवत्सलः । वरेण छन्दयामास स तं वव्रे पुराधिपम् ॥५॥

अन्वयः— भक्तवत्सलः शरण्यः सर्वभूतेशः भगवान् वरेण छन्दयामास सः तं पुराधिपम् वव्रे ॥५॥

अनुवाद— भगवान् शङ्कर भक्तवत्सल, शरणागतों की रक्षा करने वाले तथा समस्त भूतों के स्वामी हैं। उन्होंने बाणासुर से कहा कि तुम अपने मनोऽनुकूल वरदान माँग लो। बाणासुर ने कहा भगवन् आप मेरे नगर की रक्षा करते हुए यहीं रहें ॥५॥

भावार्थ दीपिका

पुराधिपं पुरपालकम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

पुराधिपम् अर्थात् नगर की रक्षा करते हुए यहीं रहें ॥५॥

स एकदाह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः । किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदाम्बुजम् ॥६॥

अन्वयः— वीर्यदुर्मदः एकदा सः अर्कवर्णेन किरीटेन तत् पदाम्बुजम् संस्पृशन पार्श्वस्थ गिरिशं आह ॥६॥

अनुवाद— अपने पराक्रम और बल के मद से मत्त बना हुआ बाणासुर एक दिन सूर्य के समान चमकने कवाले किरीट के अग्रभाग से सन्निकटस्थ शङ्करजी के चरणों को छूकर शङ्करजी से कहा ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम् । पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामराङ्घ्रिपम् ॥७॥

अन्वयः— हे महादेव लोकानां गुरुम् ईश्वरं अपूर्णकामानां कामपूरामराङ्घ्रिम् त्वाम् नमस्ये ॥७॥

अनुवाद— हे महादेव आप सभी लोकों के स्वामी हैं जिन लोगों की कामनाएँ पूर्ण नहीं हुई हैं । उनकी कामनाओं को पूर्ण करने के लिए आप कल्पवृक्ष हैं मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥७॥

भावार्थ दीपिका

कामान्पूरयतीति कामपूरः स चासावमराङ्घ्रिपः कल्पतरुस्तं त्वाम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

कामनाओं को पूर्ण करने वाले को काम पूरा कहते हैं । आप कामपूर वृक्ष कल्पवृक्ष हैं ॥७॥

दोस्सहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् । त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥८॥

अन्वयः— त्वया दत्तम् दोस्सहस्रं मे परं भाराय अभवत् त्वद् ऋते त्रिलोक्यां समम् प्रतियोद्धारं नलभे ॥८॥

अनुवाद— आपके द्वारा प्रदत्त हजार भुजाएँ मेरे लिए अत्यधिक भार बन गयी हैं । आपको छोड़कर त्रिलोकी में अपने समान मुझसे युद्ध करने वाले किसी भी वीर योद्धा को मैं नहीं पा रहा हूँ, जो मेरे साथ युद्ध करे ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

कण्डूत्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् । आद्याऽयां चूर्णयन्नद्रीन्भीतास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ॥९॥

अन्वयः— हे आद्य कण्ड्त्या निभृतै; दोर्भिः दिग्गजान् अहम् अयाम् ते अपि भीताः प्रदुद्रुवुः अद्रीन् चूर्णयन् ॥९॥

अनुवाद— हे आदि देव ! मेरी भुजाओं में बहुत अधिक युद्ध करने की खुजलाहट हुई तो मैं युद्ध करने के लिए दिग्गजों के पास गया किन्तु वे भी डरकर भाग गये । लौटते समय मैंने बहुत से पर्वतों को चूर-चूर कर दिया॥९॥

भावार्थ दीपिका

हे आद्य, निभृतैर्भरितैर्दोर्भिरद्रींश्चूर्णयन् अयामगच्छम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

हे आदिदेव ! खुजलाहट से भरी भुजाओं से मैंने पर्वतों को चूर-चूर कर दिया ॥९॥

तच्छ्रुत्वा भगवान् क्रुद्धः केतुस्ते भज्यते यदा । त्वद्दर्पघ्नं भवेन्मूढ संयुगं मत्समेन ते ॥१०॥

अन्वयः— तत् श्रुत्वा क्रुद्धः भगवान् मूढ यदा ते केतुः भज्यते तदा ते त्वद्दर्पघ्नं मत्समेन ते संयुगं भवेत्॥१०॥

अनुवाद— उसे सुनकर क्रुद्ध होकर भगवान् शङ्कर ने कहा मूर्ख ! जब तुम्हारा ध्वज टूट जायेगा उस समय मेरे ही समान तुम्हारा घमण्ड को चूर करने वाले के साथ युद्ध होगा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

इत्युक्तः कुमतिर्हृष्टः स्वगृहं प्राविशन्नृप । प्रतीक्षन् गिरिशादेशं स्ववीर्यनशनं कुधीः ।।११।।

अन्वयः— हे नृप । कुधीः इत्युक्तः कुमतिः हृष्टः स्वगृहं प्राविशत् स्ववीर्यनशनं गिरिशादेशं प्रतीक्षन् ।।११।।

अनुवाद— हे परीक्षित बाणासुर की बुद्धि बिगड़ गयी थी । श्रीशङ्करजी द्वारा इस तरह की बातों को सुनकर वह निदित बुद्धि वाला बहुत प्रसन्न और अपने घर लौट आया । इसके बाद वह अपने बल एवं पराक्रम का नाश करने वाले शङ्करजी के आदेश की प्रतीक्षा करने लगा ।।११।।

भावार्थ दीपिका

स्ववीर्यस्य नशनं केतुभङ्गं प्रतीक्षमाणः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

अपने पराक्रम का नाश करने वाले ध्वजा के टूटने की प्रतीक्षा करने लगा ।।११।।

तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिम् । कन्याऽलभत कान्तेन प्रागदृष्टश्रुतेन सा ।।१२।।

अन्वयः— तस्य ऊपानाम दुहिता कन्या प्राक् अदृष्टश्रुतेन प्राद्युम्निाकान्तेन स्वप्ने रतिम् अलभत ।।१२।।

अनुवाद— बाणासुर की कन्या पुत्री का नाम ऊपा था । उसने जिसको पहले न तो देखा था और न सुना था उस प्रद्युम्न जी के कमनीय पुत्र अनिरुद्धजी के साथ स्वप्न में समागम का अनुभव किया ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

श्रीमहेशादिष्टसंग्रामस्य प्रसङ्गमाह-तस्योपेति । प्राद्युम्निनाऽनिरुद्धेन । तत्रापि स्वप्ने ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

श्रीशङ्करजी ने जिस संग्राम की भविष्यवाणी किया था उस संग्राम का प्रसङ्ग इस **तस्योषा० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । **प्रद्युम्निना** अर्थात् अनिरुद्धजी के साथ । उसने स्वप्न में ।।१२।।

सा तत्र तमपश्यन्ती क्वासि कान्तेति वादिनी । सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम्।।१३।।

अन्वयः— सा तत्र तम् अपश्यन्ती हे कान्त क्वासि इतिवादिनी सखीनां मध्ये भृशम् व्रीडिता विह्वला उत्तस्थौ ।।१३।।

अनुवाद— वह अपनी शय्या पर उस पुरुष को नहीं पाकर हे प्रियतम आप कहाँ चले गये, इस तरह से कहती हुई उठी और सखियों के बीच में लज्जित होकर अत्यधिक व्याकुल हो गयी ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

तं कान्तमपश्यन्ती सा उत्तस्थौ ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

उन अपने प्रियतम को वहाँ नहीं देखकर वह जग गयी ।।१३।।

बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा च तत्सुता । सख्यपृच्छत्सखीमूषां कौतूहलसमन्विता ।।१४।।

अन्वयः— बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डः तत्सुता चित्रलेखा सखी कौतूहल समन्विता सखीम् ऊषाम् अपृच्छत् ।।१४।।

अनुवाद— बाणासुर के मन्त्री का नाम कुम्भाण्ड था, उसकी पुत्री का नाम चित्रलेखा था, वह ऊषा की सखी थी । चित्रलेखा ने कौतूहल वश अपनी सखी से पूछा ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

ततः किं वृत्तं तत्राह-बाणस्येति ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् क्या हुआ ? इस पर शुकदेवजी ने कहा बाण का मन्त्री इत्यादि ।।१४।।

कं त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशस्ते मनोरथः । हस्तग्राहं न तेऽद्यापि राजपुत्र्युपलक्षये ॥१५॥

अन्वयः— हे सुभ्रूः हे राजपुत्री ते अद्यापी हस्तग्राहं न इत्युपलक्षये, त्वं कं मृगयसे ते मनोरथः कीदृशः ॥१५॥

अनुवाद— हे सुन्दरी राजकुमारीजी तुम्हारा अभी तक पाणिग्रहण भी नहीं हुआ है । फिर भी तुम किसे ढूढ रहीं हो ? तुम्हारे मनोरथ का स्वरूप क्या है ?॥१५॥

भावार्थ दीपिका

हस्तग्राहं भर्तारम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

हस्तग्राहम् अर्थात् पति ॥१५॥

ऊषोवाच

दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः । पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयङ्गमः ॥१६॥

अन्वयः— स्वप्ने कश्चित् श्यामः कमललोचनः पीतवासा, बृहद्बाहुः योषितां हृदयङ्गमः नरः स्वप्नेदृष्टः ॥१६॥

ऊषा ने कहा

अनुवाद— मैंने स्वप्न में एक अत्यन्त सुन्दर कमल के समान मनोहर नेत्रों वाले पीला वस्त्र धारण किए हुए विशाल भुजाओं वाले तथा नारियों के चित्त को चुराने वाले पुरुष को देखा है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

तमहं मृगये कान्तं पाययित्वाऽधरं मधु । क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥१७॥

अन्वयः— अधरं मधुपाययित्वा स्पृहयतीं मां वृजिनार्णवे क्षिप्त्वाक्वापि यातः अहं तं कान्तं मृगये ॥१७॥

अनुवाद— उसने मुझको अपने अधर के मधु का पिलाया, और अभी मैं तृप्त भी नहीं हुई थी कि वह मुझको दुःख सागर में छोड़कर कहीं चला गया, उसी प्रियतम को मैं खोज रही हूँ ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

चित्रलेखोवाच

व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते । तमानेष्ये नरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश ॥१८॥

अन्वयः— यदि त्रिलोक्यां भाव्यते ते व्यसनम् अपकर्षामि तम् आदिशः यः ते मनोहर्ता तं नरं अनेष्ये ॥१८॥

चित्रलेखा ने कहा

अनुवाद— यदि तुम्हारा चित्तचोर त्रैलोक्य में होगा तो मैं तुम्हारे कष्ट को शान्त कर दूँगी । मैं चित्र बनाती हूँ उसे तुम पहचानो तुम्हारे मन का हरण करने वाले को मैं ला दूँगी ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

इत्युक्त्वा देवगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगान् । दैत्यविद्याधरान्यक्षान्मनुजांश्च यथालिखत् ॥१९॥

अन्वयः— इति उक्त्वा देव गन्धर्व सिद्ध चारण पन्नगान् दैत्यविद्याधरान् यक्षान् मनुजान् च यथा अलिखत् ॥१९॥

अनुवाद— यह कहकर उसने देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण एवं पन्नगों का चित्र बनाया, दैत्यों, विद्याधरों, यक्षों तथा मनुष्यों का चित्र बनाया ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

स्वप्ने त्वया दृष्ट एषां मध्ये को वा भवेदिति देवादीन् यथावत्पटेऽलिखत् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

जिसको तुमने स्वप्न में देखा है, वह इनमें से कौन है यह कहकर देवताओं आदि का चित्र उसने कपड़े पर ठीक-ठीक बनाया ।।१९।।

मनुजेषु च सा वृष्णीन् शूरमानकदुन्दुभिम् । व्यलिखद्रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता ।।२०।।

अन्वयः— सा मनुजेषु वृष्णीन् शूरम् आनकदुन्दुभिम् रामकृष्णौ च व्यालि त् पद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता ।।२०।।

अनुवाद— मनुष्यों में उसने वृष्णिवंशी वसुदेवजी के पिता शूर, बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण का चित्र बनाया उसके पश्चात् प्रद्युम्नजी के चित्र को देखकर वह लज्जित हो गयी ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

प्रद्युम्नं लिखितं वीक्ष्य श्वशुरोऽयमिति लज्जिता ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

प्रद्युम्न के चित्र को देखकर ये हमारे श्वसुर है यह सोचकर लज्जित हो गयी ।।२०।।

अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषाऽवाङ्मुखी ह्रिया । सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते ।।२१।।

अन्वयः— महीपते ! अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्य ह्रिया अवाङ्मुखी ऊषा सः असौ इति स्मयमाना प्राह ।।२१।।

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् अनिरुद्धजी के चित्र को देखकर लज्जा से नीचे मुख करके मुस्कुराती हुई उसने कहा मेरा प्राणबल्लभ यही है ।।२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ।।२१।।

चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी । ययौ विहायसा राजन्द्वारकां कृष्णपालिताम् ।।२२।।

अन्वयः— राजन् योगिनी चित्रलेखा तं कृष्णपौत्रम् आज्ञाय विहायसा, कृष्णपालिताम् द्वारकां ययौ ।।२२।।

अनुवाद— राजन् योगिनी चित्रलेखा उनको भगवान् श्रीकृष्ण का पौत्र जानकर रात्रि में ही आकाशमार्ग से भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा संरक्षित द्वारका में गयी ।।२२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२२।।

तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के प्राद्युम्निं योगमास्थिता । गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ।।२३।।

अन्वयः— तत्र सुपर्यङ्के सुप्तं प्रद्युम्निं योगमायाम् आस्थिता गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियम् अदर्शयत् ।।२३।।

अनुवाद— वहाँ अनिरुद्धजी अत्यन्त सुन्दर शय्या पर सोए थे, योगमाया के प्रभाव से उनको उठाकर शोणित पुर में लायी और अपनी सखी को उसके प्रियतम का दर्शन करा दी ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

शोणितपुरं नीत्वा ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

शोणितपुर लाकर ।।२३।।

सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदितानना । दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे पुम्भी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥२४॥

अन्वयः— सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदितानना पुम्भिः दुष्प्रेक्ष्ये स्वगृहे प्रद्युम्निना समरेमे ।।२४।।

अनुवाद— वह ऊषा अपने सुन्दर प्राण बल्लभ को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने महल में अनिरुद्ध जी के साथ विहार करने लगी । उसके उस भवन की ओर कोई भी पुरुष नहीं जा सकता था ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

पुम्भिर्दुष्प्रेक्ष्ये प्रेक्षितुमशक्ये ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

पुम्भिः दुष्प्रेक्ष्य जिसे कोई पुरुष देख भी नहीं सकता था ।।२४।।

परार्ध्यवासः स्रग्गन्धधूपदीपासनादिभिः । पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषयार्चितः ॥२५॥
गूढः कन्यापुरे शश्वत्प्रवृद्धस्नेहया तया । नाहर्गणान्स बुबुधे ऊषयापहृतेन्द्रियः ॥२६॥

अन्वयः— परार्ध्यवासः स्रग्गन्ध धूपदीपासनादिभिः पानभोजनभक्ष्यैः वाक्यैः शुश्रूषया अर्चितः शश्वत्प्रवृद्धस्नेहया तया ऊषया अपहृतेन्द्रिय कन्यापुरे गूढः सः अहर्गणान् न बुबुधे ।।२५-२६।।

अनुवाद— बहुमूल्य वस्त्र माला चन्दन धूप दीप श्रेष्ठ आसन आदि से प्रिय वाक्यों द्वारा तथा सेवा शुश्रूषा से पूजित तथा जिसका प्रेम निरन्तर बढ़ता ही जाता था उस ऊषा के द्वारा अनिरुद्धजी उसके वश में हो गये थे, इस तरह से कन्याओं के अन्तःपुर में छिपे रहकर अनिरुद्धजी को बीते हुए दिन समूह का भी पता नहीं चला ।।२५-२६।।

भावार्थ दीपिका

स च परार्ध्यैरमूल्यैर्वासःस्रगादिभिः शुश्रूषणपूर्वकमर्चितः सन्। तया ऊषयापहृतेन्द्रियोऽहर्गणान् दिनसमूहान्न बुबुधे।।२५-२६।।

भाव प्रकाशिका

बहुमूल्य वस्त्रों मालाओं चन्दनों आदि से सेवा शुश्रूषा पूर्वक पूजित होते हुए तथा उषा के द्वारा उनके मन को अपने वश में कर लिए जाने के कारण अनिरुद्धजी को बीते हुए दिन समूह का पता भी नहीं चला ।।२५-२६।।

तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम् । हेतुभिर्लक्षयांचक्रुराप्रीतां दुरवच्छदैः ॥२७॥

अन्वयः— यदुवीरेण तथा भुज्यमानां हतव्रताम् आप्रीतां दुरवच्छदैः हेतुभिः लक्षयां चक्रुः ।।२७।।

अनुवाद— अनिरुद्धजी के साथ सहवास करने के कारण ऊषा का कुँवरापन विनष्ट हो गया, उषा अत्यन्त प्रसन्न भी रहने लगी थी । उसमें ऐसे लक्षण उत्पन्न हो गये थे जिसको छिपाया भी नहीं जा सकता था, पहरेदारों ने जान लिया कि इसका किसी पुरुष के साथ सम्बन्ध है ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

आप्रीतामतिहृष्टाम् दुरवच्छदैश्छादयितुमशक्यैः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

आप्रीताम् अर्थात् अत्यन्त प्रसन्न । दुखच्छदैः अर्थात् जिन सबों को छिपाया नहीं जा सकता था ।।२७।।

भटा आवेदयांचक्रू राजंस्ते दुहितुर्वयम् । विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणम् ॥२८॥

अन्वयः— ते दुहितुः कन्यायाः कुलदूषणं विचेष्टितम् लक्षयामः इति भटाः आवेदयाञ्चक्रुः ।।२८।।

अनुवाद— द्वारपालों ने जाकर बाणासुर से निवेदन किया कि राजन् आपकी पुत्री के चाल-ढाल को देखकर हमलोगों को लगता है कि उससे आपके कुल पर लक्षण लग सकता है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

विचेष्टितं विरुद्धाचरणम् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

विचेष्टितम् अर्थात् विरुद्ध आचरण ।।२८।।

अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो । कन्याया दूषणं पुंभिर्दुष्प्रेक्षाया न विद्महे ।।२९।।

अन्वयः— प्रभो ! अनपायिभिः अस्माभिः गृहे गुप्तायाः पुम्भिः दुष्प्रेक्षायाः कन्यायाः दूषणं न विद्महे ।।२९।।

अनुवाद— प्रभो हमलोग निरन्तर जिसका पहरा देते रहे, उस गृह में संरक्षित आपकी कन्या को कोई पुरुष देख भी नहीं सकता है, फिर भी कैसे कलङ्कित हो गयी यह हमलोग नहीं जानते ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

अनपायिभिः अपायोऽपसर्पणं प्रमादो वा तद्रहितैः । पाठान्तरे दुष्टा प्रेष्या सखी यस्यास्तस्याः पुम्भिर्दूषणं कुतो वेति न जानीम इत्यर्थः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

पहरे पर से कभी भी नहीं हटने वाले अथवा प्रमाद रहित हमलोगों द्वारा संरक्षित दुष्प्रेष्या पाठ मानने पर अर्थ होगा कि जिसकी सखी दुष्ट हो, उसके पुरुष से सम्बन्ध कैसे हो गया यह हमलोग नहीं जानते हैं ।।२९।।

ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः । त्वरितः कन्यकागारं प्राप्तोऽद्राक्षीद्यदूद्वहम् ।।३०।।

अन्वयः— ततः दुहितुः श्रुतदूषणः प्रव्यथितः बाणः त्वरितः कन्यकागारं प्राप्तः यदूद्वहम् अद्राक्षीत् ।।३०।।

अनुवाद— उसके पश्चात् अपनी पुत्री के चरित्र को दूषित सुनकर बाणासुर को अत्यधिक कष्ट हुआ, वह शीघ्र ही कन्या के महल में चला गया और वहाँ पर अनिरुद्धजी को विद्यमान देखा ।।३०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३०।।

कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणम् ।
बृहद्भुजं कुण्डलकुन्तलत्विषा स्मितावलोकेन च मण्डिताननम् ।।३१।।
दीव्यन्तमक्षैः प्रिययाभिनृम्णया तदङ्गसङ्गस्तनकुङ्कुमस्रजम् ।
बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ।।३२।।

अन्वयः— भुवनैक सुन्दरं तं कामात्मजं श्यामं पिशङ्गाम्बरम् अम्बुजेक्षणं बृहद्भुजं कुण्डल कुन्तलत्विषा स्मितावलोकेन च मण्डिताननम् अभिनृम्णया प्रियया अक्षैः दिव्यन्तम् तदङ्गसङ्गस्तनकुङ्कुमस्रजम् मधुमल्लिका श्रुतां बाहवोः दधानं तस्याग्रे आसीनम् अवेक्ष्य विस्मितः ।।३१-३२।।

अनुवाद— सम्पूर्ण संसार में सबसे सुन्दर कामावतार प्रद्युम्नजी के पुत्र अनिरुद्धजी श्यामवर्ण के अत्यन्त सुन्दर पुरुष थे, पीला वस्त्र धारण किए थे, कमल के समान अत्यन्त मनोहर उनके नेत्र थे घुटनों पर्यन्त लटकने वाली उनकी भुजाएँ थी, सुन्दर कुण्डलों तथा काले घुंघराले केशों की कान्ति से तथा मधुर मुस्कानसे उनका मुख अलंकृत था, सर्वमङ्गलमयी अपनी प्रियतमा के साथ वे पासों से द्यूतक्रीडा कर रहे थे । अपनी प्रियतमा के अङ्ग संस्पर्श से उसके स्तनों में लगे केसर लगी माला को वे धारण किए थे, बासन्ती वेला की माला धारण की हुई ऊषा के कन्धे पर हाथ रखे हुए तथा ऊषा के सामने बैठे हुए अनिरुद्धजी को देखकर बाणासुर आश्चर्यित हो गया ।।३१-३२।।

भावार्थ दीपिका

कामस्यात्मनो देहाज्जातम् । अभिनृम्णया सर्वमङ्गलया । तस्या अङ्गसङ्गेन स्तनकुङ्कुमं यस्यां स्रजि तां बाह्वोर्मध्ये वक्षसि दधानम् । मधुमल्लिका वसन्तभवा मल्लिकास्तदाश्रिताम् । तस्याग्र इत्यार्षः सन्धिः । तस्या अग्र इत्यर्थः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

कामात्मजम् = कामावतार प्रद्युम्नजी के पुत्र, अभिनृम्णाया अर्थात् सर्वमङ्गलमयी, ऊषा के अङ्गों के संस्पर्श से जिसमें उसके स्तनों के केसर लगे थे उस माला को धारण किए हुए । वासन्ती बेला की माला को धारण की हुई तस्याग्रे में सन्धि आर्ष है । उषा के सामने ।।३१-३२।।

स तं प्रविष्टं वृतमाततायिभिर्भटैरनीकैरवलोक्य माधवः ।
उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितो यथान्तको दण्डधरो जिघांसया ।।३३।।

अन्वयः— आततायिभिः भटैः अनीकैः वृतं प्रविष्टं तं अवलोक्य माधवः मौर्व्यं परिघम् उद्यम्य दण्डधरः अन्तकः यथा जिघांसया व्यवस्थितः ।।३३।।

अनुवाद— अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित वीरों की सेना के साथ प्रवेश किए हुए बाणासुर को देखकर अनिरुद्धजी लोहे के परिध को उठाकर दण्डधारी यमराज के समान खड़े हो गये ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

आततायिभिरुद्यतशस्त्रैः । माधवोऽनिरुद्धः । मौर्वं मुरुर्लोहविशेषस्तन्निर्मितम् ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

आततायिभिः अस्त्र धारण किए हुए । मौर्व्यम् विशेष प्रकार के लोहे को कहते हैं । उससे निर्मित परिध को मौर्व्य परिघ कहा गया है ।।३३।।

जिघृक्षया तान्परितः प्रसर्पतः शुनो यथा सूकरयूथपोऽहनत् ।
ते हन्यमाना भवनाद्विनिर्गता निर्भिन्नमूर्धोरुभुजाः प्रदुद्रुवुः ।।३४।।

अन्वयः— जिघृक्षया परितः प्रसर्पतः तान् सूकर यूथपः शूनः यथा अहनत् हन्यमानाः ते निर्भिन्नमूर्धोरुभुजाः भवनात् विनिर्गताः प्रदुद्रुवुः ।।३४।।

अनुवाद— अनिरुद्धजी को पकड़ने के लिए आये हुए बाणासुर के सैनिक उनकी ओर ज्यों-ज्यों झपटते त्यों-त्यों वे उन्हें मारकर गिराते जाते । ठीक वैसे ही जैसे सूअरों के यूथ नेता कुत्तों को मार डाले । अनिरुद्धजी के प्रहार से टूटे फूटे सिर, जङ्घा और भुजा वाले वे सभी भवन से निकल कर भाग गये ।।३४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३४।।

तं नागपाशैर्बलिनन्दनो बली घ्नन्तं स्वसैन्यं कुपितो बबन्ध ह ।
ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदिषीत् ।।३५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽनिरुद्धबन्धो नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।।६२।।

अन्वयः— कुपितो बलिनन्दनः स्वसैन्यं घ्नन्तं तं नागपाशैः बबन्ध, बद्धं निशम्य ऊषा शोक विषाद विह्वला अश्रुकलाक्षी अरौदिषीत् ।।३५।।

अनुवाद— क्रुद्ध बाणासुर ने अपने सैनिकों को मारने वाले अनिरुद्धजी को, नाग पाश में बाँध दिया ।

अनिरुद्धजी को बंधे हुए सुनकर ऊषा अत्यधिक शोक और विषाद से विह्वल हो गयी और अपने नेत्रों से आँसू बहाती हुई रोने लगी ।।३५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के अनिरुद्ध बन्ध नामक बासठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६२।।

भावार्थ दीपिका

शोकविषादाभ्यां विह्वलाऽवशा अश्रूणां कला विन्दवो ययोस्ते अक्षिणी यस्याः सा ।।३५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्विषष्टितमोऽध्यायः ।।६२।।

भाव प्रकाशिका

शोक तथा विषाद के कारण विवश । आँसुओं की विन्दुओं वाले नेत्रों वाली ।।३५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के बासठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।६२।।

◆

तिरसठवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण के साथ बाणासुर का युद्ध

श्रीशुक उवाच

अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनां च भारत । चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥१॥

अन्वयः— हे भारत ! अनिरुद्धं अपश्यताम् अनुशोचताम् च तद्बन्धूनां चत्वारः वार्षिकाः मासाः व्यतीयुः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे भरतवंशीय राजन् परीक्षित् अनिरुद्धजी को नहीं देखकर उनके विषय में सोचने वाले उन बन्धुओं के वर्षा ऋतु के चार महीनों के दिन बीत गये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रियुक्षष्टितमे चाथ बाणयादवसङ्गरे । स्तुतिज्वरेण रुद्रेण बाणबाहुभिदो हरेः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इसके पश्चात् तिरसठवें अध्याय में बाणासुर और भगवान् श्रीकृष्ण के युद्ध के प्रसङ्ग में रुद्रज्वर के द्वारा बाणासुर की भुजाओं को काटने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति का वर्णन है ॥१॥

नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च । प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥२॥

अन्वयः— बद्धस्य वार्ता तत् कर्म च नारदात् उपाकर्ण्य कृष्णदेवताः वृष्णयः शोणितपुरं प्रययुः ॥२॥

अनुवाद— नारदजी के मुख से बँधे हुए अनिरुद्धजी के विषय में सारी बातें और उनके द्वारा किए गये बाणासुर के सैनिकों को परास्त करना रूप कर्म को सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण को ही आराध्य मानने वाले सभी यदुवंशी शोणितपुर में गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

कर्म च युद्धादिकम् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

युद्ध इत्यादि कर्म ।।२।।

प्रद्युम्नो युयुधानश्च गदः साम्बोऽथ सारणः । नन्दोपनन्दभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ।।३।।
अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताः सर्वतोदिशम् । रुरुधुर्बाणनगरं समन्तात्सात्वतर्षभाः ।।४।।

अन्वयः— रामकृष्णानुवर्तिनः प्रद्युम्नः युयुधानः च गदः साम्बः अथ सारणः नन्दोपनन्दभद्राद्याः द्वादशभिः अक्षौहिणीभिः समेताः सात्वतर्षभा; समन्तात् बाणनगरं रुरुधुः ।।३-४।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी के साथ, उनके सम्पूर्ण अनुयायी यदुवंशी प्रद्युम्नजी, सत्याकि, गद, साम्ब सारण, नन्द उपनन्द और भद्र बारह अक्षौहिणी सेना के साथ व्यूह बनाकर चारो ओर से बाणासुर की राजधानी को घेर लिए ।।३-४।।

भावार्थ दीपिका

रामकृष्णानुवर्तिन इति । तौ पुरतो निर्गतावित्यर्थः । सर्वतोदिशमित्यस्योत्तरेणान्वयः ।।३-४।।

भाव प्रकाशिका

रामकृष्णानुवर्तिनः अर्थात् पहले नगर से बारह निकले हुए भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम का अनुवर्तन करने वाले । सर्वतोदिशम् का पाँचवे श्लोक के साथ अन्वय है ।।३-४।।

भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् । प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्योऽभिनिर्ययौ ।।५।।

अन्वयः— भज्यमान पुरोद्यान प्राकाराट्टालगोपुरम् प्रेक्ष्यमाणः रुषाविष्टः तुल्यसैन्यः अभिनिर्ययौ ।।५।।

अनुवाद— नगर के उद्यान, पर कोटों, बूर्जों तथा सिंह द्वार को विनष्ट होते हुए देखकर बाणासुर क्रुद्ध हो गया और वह भी बारह अक्षौहिणी सेना लेकर बाहर निकल पड़ा ।।५।।

भावार्थ दीपिका

भज्यमानानि पुरोद्यानादीनि । द्वन्द्वैकवद्भावः । अट्टालाः प्रकारादुपरितनान्युन्नतस्थानानि । अभिनिर्ययौ बाणः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

विनष्ट किए जाते हुए नगर के उद्यान, अट्टालिकाएँ, परकोटों तथा बूर्जों को देखकर बाणासुर भी निकल पड़ा।।५।।

बाणार्थे भगवान् रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः । आरुह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ।।६।।

अन्वयः— स्वसुतैः प्रमथैः वृतः भगवान् रुद्रः बाणार्थे नन्दिवृषभम् आरुह्य रामकृष्णयोः युयुधे ।।६।।

अनुवाद— अपने पुत्रों तथा प्रमद्गणों को साथ लेकर भगवान् शङ्कर बाणासुर की ओर से बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण से युद्ध करने लगे ।।६।।

भावार्थ दीपिका

सुतः स्कन्दस्तत्सहितैः प्रमथैर्गणैः । रामकृष्णाभ्यां युयुधे ।।६।।

भाव प्रकाशिका

स्कन्दजी तथा प्रमथगणों को साथ लेकर श्रीबलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण के साथ युद्ध करने लगे ।।६।।

आसीत्सुतुमुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् । कृष्णशंकरयो राजन्प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥७॥

अन्वयः— राजन् कृष्णशङ्करयो प्रद्युम्न गुहयोः अपि युद्धम् सु तुमुलम् आसीत् ॥७॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् भगवान् कृष्ण तथा शङ्करकजी का तथा प्रद्युम्न का स्कन्दजी का भी युद्ध अत्यन्त घमासान और भयङ्कर हो रहा था ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

कुम्भाण्डकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः । साम्बस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥८॥

अन्वयः— कुम्भाण्डकूपकर्णाभ्यां बलेन सहसंयुगः बाणपुत्रेण साम्बस्य बाणेन सह सात्यकेः ॥८॥

अनुवाद— कुम्भाण्ड और कूपकर्ण का युद्ध बलरामजी के साथ हो रहा था बाणासुर के पुत्र का साम्ब के साथ, तथा सात्यकि का बाणासुर के साथ युद्ध हो रहा था ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः । गन्धर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥९॥

अन्वयः— ब्रह्मादयः सुराधीशः मुनयः सिद्धचारणाः गन्धर्वाप्सरसः यक्षाः द्रष्टुम् विमानैः आगमन् ॥९॥

अनुवाद— ब्रह्माजी आदि बड़े-बड़े देवता मुनिगण, सिद्धचारण, गन्धर्व, अप्सराएँ तथा यक्षगण उस युद्ध को देखने के लिए विमान पर चढ़कर आये ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

शङ्करानुचरान् शौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् । डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान्सविनायकान् ॥१०॥
प्रेतमातृपिशाचांश्च कूष्माण्डान्ब्रह्मराक्षसान् । द्रावयामास तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥११॥

अन्वयः— शौरि; शङ्करानुचरान् भूतप्रमथ गुह्यकान् डाकिनी यातुधानान् च सवेतालान् विनायकान् प्रेतमातृपिशाचान् च कूष्माण्डान् ब्रह्मरासान् शार्ङ्गधनुःच्युतै तीक्ष्णाग्रै शरैः द्रावयामास ॥१०-११॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण शङ्करजी के अनुचरों भूत-प्रेत, प्रमथ गुह्यक डाकिनी यातुधान वेताल, विनायक, प्रेतगण, मातृगण, पिशाच, कूष्माड और ब्रह्म राक्षसों को अपने शार्ङ्ग धनुष से छूटे हुए तीक्ष्ण बाणों से मारकर खदेड दिया ॥१०-११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०-११॥

पृथग्विधानि प्रायुङ्क्त पिनाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे । प्रत्यस्त्रैः शमयामास शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥१२॥

अन्वयः— पिनाकी शार्ङ्गिणे पृथग्विधानि अस्त्राणि प्रायुंक्त, अविस्मित शार्ङ्गपाणिः प्रत्यस्त्रैः शमयामास ॥१२॥

अनुवाद— पिनाक धारण करने वाले श्रीशङ्करजी भगवान् श्रीकृष्ण पर नाना प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग किए और शार्ङ्ग धनुषधारी भगवान् श्रीकृष्ण ने बिना किसी आश्चर्य उन सबों के विरोधी अस्त्रों से शान्त कर दिया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् । आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्यच ॥१३॥

अन्वयः— ब्रह्मास्त्रस्य स च ब्रह्मास्त्रं बायव्यस्य पार्वतम् आग्नेयस्य च पार्जन्यं पाशुपतस्य च नैजम् ॥१३॥

अनुवाद— ब्रह्मास्त्र की शान्ति के लिए ब्रह्मास्त्र, वायव्य की शान्ति के लिए पार्वत, आग्नेय की शान्ति के लिए पर्जन्यास्त्र तथा पार्जन्यास्त्र की शान्ति के लिए नारायणास्त्र का प्रयोग किया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्यस्त्राण्येवाह-ब्रह्मास्त्रस्येति । नैजं नारायणास्त्रम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मास्त्रस्य च इत्यादि श्लोक से प्रत्यास्त्रों (विरोधी अस्त्रों) को बतलाया गया है। **नैजम्** अर्थात् नारायणास्त्र।।१३।।

मोहयित्वा तु गिरिशं जृम्भणास्त्रेण जृम्भितम् । बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदेषुभिः ।।१४।।

अन्वयः— शौरः जृम्भणास्त्रेण जृम्भितम् गिरिशं मोहयित्वा बाणस्य पृतनां असिगदेषुभिः जघान ।।१४।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण जृम्भाणास्त्र के द्वारा जृम्भित (जम्भाई लेते हुए) शङ्करजी को मोहित करके गदा, खड्ग तथा बाण से; बाण की सेना को मारने लगे ।।१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४।।

स्कन्दः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समन्ततः । असृग्विमुञ्चन्गात्रेभ्यः शिखिनापाक्रमद्रणात् ।।१५।।

अन्वयः— प्रद्युम्न बाणौधैः समन्ततः अर्द्यमानः स्कन्दः गात्रेभ्यः असृग्विमुञ्चन् रणात् शिखिना अपाक्रमत् ।।१५।।

अनुवाद— प्रद्युम्नजी के बाण समूह से बहुत अधिक घायल स्वामी कार्तिकेय के शरीर से खून बह रहा था । वे अपने वाहन मयूर द्वारा भाग निकले ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

शिखिना मयूरेण वाहनेन ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

शिखिना मयूर वाहन से ।।१५।।

कुम्भाण्डः कूपकर्णश्च पेततुर्मुसलार्दितौ । दुद्रुवुस्तदनीकानि हतनाथानि सर्वतः ।।१६।।

अन्वयः— मुसलार्दितौ कुम्भाण्डः कूपकर्णश्च अर्दितौ पेततुः हतनाथानि तदनीकानि सर्वतः दुद्रुवुः ।।१६।।

अनुवाद— बलरामजी के मुसल के मार से घायल होकर कुम्भाण्ड और कूपकर्ण गिर पड़े और अपने सेनापतियों को हताहत देखकर बाणासुर की सेना भाग चली ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

तयोरनीकानि । हतौ नाथौ येषां तानि ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

कुम्भाण्ड और कूपकर्ण की सेनाएँ । हतनाथानि जिन सबों के सेनापति मार दिए गये थे ।।१६।।

विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षणः । कृष्णमभ्यद्रवत्संख्ये रथी हित्वैव सात्यकिम् ।।१७।।

अन्वयः— स्वबलम् विशीर्यमाणं दृष्ट्वा अत्यमर्षणः रथी बाणः सात्यकिम् हित्वा संख्ये कृष्णम् अभ्यद्रवत् ।।१७।।

अनुवाद— अपनी सेना को तितर-वितर होते देखकर क्रोध करके बाणासुर सात्यकि को छोड़कर रथ पर सवार होकर क्रुद्ध भगवान् श्रीकृष्ण पर आक्रमण करने के लिए दौड़ पड़ा ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

धनूष्याकृष्य युगपद्बाणः पञ्चशतानि वै । एकैकस्मिञ्छरौ द्वौ द्वौ संदधे रणदुर्मदः ॥१८॥

अन्वयः— रणदुर्मदः बाणः युगपत् पञ्चशतानि धनूंषि आकृष्य एकैकस्मिन् द्वौ-द्वौ शरौ संदधे ॥१८॥

अनुवाद— परीक्षित् रणोन्मत्त बाणासुर एक ही समय पाँच सौ धनुषों को खींचकर प्रत्येक धनुष पर दो-दो बाणों का संधान किया ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

तानि चिच्छेद भगवान्धनूंषि युगपद्धरिः । सारथिं रथमश्वांश्च हत्वा शङ्खमपूरयत् ॥१९॥

अन्वयः— भगवान् हरिः तानि धनूंषि युगपत् चिच्छेद सारथिं, रथम् अश्वान् च हत्वा शङ्खम् अपूरयत् ॥१९॥

अनुवाद— भगवान् श्रीहरि उन धनुषों को एक ही समय में काट दिए और बाणासुर के सारथि रथ तथा अश्वों को मारकर अपना शङ्ख बजाये ?॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा । पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥२०॥

अन्वयः— कोटरा नाम तन्माता पुत्रप्राण रिरक्षयां नग्ना मुक्तशिरोरुहा कृष्णस्य पुरतः अवतस्थे ॥२०॥

अनुवाद— कोटरा नाम की बाणा की माता अपने पुत्र के प्राण की रक्षा करने के लिए भगवान् कृष्ण के सामने अपने केश को खोलकर नङ्गे खड़ी हो गयी ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

ततस्तिर्यङ्भुखो नग्नामनिरीक्षन्गदाग्रजः । बाणश्च तावद्विरथश्छिन्नधन्वाऽविशत्पुरम् ॥२१॥

अन्वयः— तिर्यङ्मुखः नग्नाम् अनिरीक्षन् गदाग्रज तावत् विरथः छिन्नधन्वा बाणः च पुरम् अविशत् ॥२१॥

अनुवाद— भगवान् अपना मुँह पीछे की ओर कर लिए ताकि वे कोटरा को नहीं देख सकें और रथ विहीन तथा धनुषों के कट जाने के कारण बाणासु अपने नगर में प्रवेश कर गया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अनिरीक्षमाणस्तिर्यङ्मुखो बभूवेति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

कोटरा को नहीं देखते हुए पीछे मुँह कर लिए ॥२१॥

विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात् । अभ्यधावत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥२२॥

अन्वयः— भूतगणे विद्राविते त्रिशिरः त्रिपात् ज्वरस्तु दशदिशः दहन्निव दाशार्हं अभ्यधावत ॥२२॥

अनुवाद— जब भगवान् शङ्कर के भूतगण इधर-उधर भाग गये तब उनके द्वारा छोड़ा हुआ रुद्र ज्वर तीन पैर और तीन शिरों वाला मानों दश दिशाओं को जलाते हुए से भगवान् श्रीकृष्ण की ओर दौड़ा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

ज्वरस्तु योद्धुमभ्यधावदिति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

रुद्रज्वर युद्ध करने के लिए दौड़ा ॥२२॥

अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् । माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥२३॥

अन्वय:— अथ नारायणो देव: तं दृष्ट्वा ज्वरं व्यसृजत् । माहेश्वर: वैष्णव: च उभौ ज्वरौ युयुधाते ॥२३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उस ज्वर को देखकर भगवान् नारायण: ज्वर को छोड़े । उसके पश्चात् माहेश्वर ज्वर और वैष्णव ज्वर दोनों परस्पर में युद्ध करने लगें ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

श्रीनारायण: शीतज्वरमसृजत् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् नारायण ने शीत ज्वर की सृष्टि कर दी ॥२३॥

माहेश्वर: समाक्रन्दन्वैष्णवेन बलार्दित: । अलब्ध्वाऽभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वर:॥
शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयताञ्जलि: ॥२४॥

अन्वय:— वैष्णवेन बलार्दित: समाक्रन्दन माहेश्वर: भीत: अन्यत्र अभयम् अलध्वा शरणार्थी प्रयताञ्जलि: हृषीकेशम् तुष्टाव ॥२४॥

अनुवाद— वैष्णव ज्वर से पीडित होकर माहेश्वर ज्वर चिल्लाने लगा, और अत्यन्त भयभीत हो गया । जब उसको कहीं भी त्राण नहीं मिला तो वह नम्रता पूर्वक हाथ जोड़े हुए भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगा॥२४॥

भावार्थ दीपिका

माहेश्वर: सामक्रन्दन्युयुधे ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

माहेश्वर ज्वर चिल्लाते हुए युद्ध कर रहा था ॥२४॥

ज्वर उवाच

नमामि त्वाऽनन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ।
विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद्ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गं प्रशान्तम् ॥२५॥

अन्वय:— अनन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रं विश्वेत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यद्ब्रह्म ब्रह्मलिङ्ग नमामि ॥२५॥

ज्वर ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! आपकी शक्ति अनन्त है आप ब्रह्माजी आदि ईश्वरों के भी स्वामी हैं आप सबों की आत्मा हैं आप केवल ज्ञान मात्र स्वरूप हैं । आप ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, उसकी रक्षा और संहार करने वाले हैं । आप ही परंब्रह्म का वर्णन श्रुतियाँ करती हैं आप सभी विकारों से रहित परम शान्त ब्रह्म स्वरूप हैं मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

आत्मानं परमशक्तिमन्तं मन्यमान: श्रीकृष्णं तापयितुं प्रवृत्त: स्वयमेव तप्त: सन् तं परमेश्वरं ज्ञात्वा स्तुवन्नमस्करोति- नमामीति । त्वा त्वामनन्तशक्तिं नमामि । कुत: । परेषां ब्रह्मादीनामीशम् । तत्र हेतु:-सर्वात्मानं सर्वस्यात्मानं चेतयितारम् । तत्कुत: । केवलं शुद्धम् । ज्ञाप्तिमात्रं चैतन्यघनम् । तदेवं सर्वचेतयितृत्वेन परमेश्वरत्वमुक्तम्, किंच विश्वसृष्ट्यादिहेतुत्वादपीत्याह- विश्वोत्पत्तीति । नन्वेवंभूतं ब्रह्म प्रसिद्धं, नाहमिति तत्राह-यत्तद्ब्रह्मेति । यद्ब्रह्म तदेव त्वमित्यर्थ: । किं तद्ब्रह्मेत्यत आह- ब्रह्मलिङ्गं ब्रह्मणा वेदेन लिङ्ग्यते द्योत्यत इति । तत्कुत: । प्रशान्तम् । सर्वविक्रियारहितत्वात्र साक्षाद्वाच्यमिति भाव: ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् की स्तुति करते हुए माहेश्वर ज्वर कहता है कि हे प्रभो आप सबों की आत्मा हैं, अनन्त शक्ति सम्पन्न हैं। इस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण को मानने वाले वह ज्वर संतप्त करना चाहता था किन्तु वह स्वयं संतप्त होने लगा। उन परमेश्वर की स्तुति करता हुआ नमस्कार करता है। अनन्त शक्ति संपन्न आपको मैं नमस्कार करता हूँ। क्योंकि ब्रह्माजी आदि बड़े-बड़ें देवताओं के भी आप स्वामी हैं। उसका कारण है कि आप सबों की आत्मा हैं। वह भी कैसे ? क्योंकि आप शुद्ध स्वरूप हैं, ज्ञान स्वरूप हैं। इस प्रकार से सबों को चैतन्य सम्पन्न बनाने वाले के रूप में उसने श्रीभगवान् को परमेश्वर बतलाया। **विश्वोत्पत्ति० इत्यादि** के द्वारा उसने श्रीभगवान् को जगत् की सृष्टि पालन और संहार आदि का काल कारण भी बतला कर श्रीभगवान् को उसने परमेश्वर बतलाया। यदि भगवान् कहें कि जो इस प्रकार का होगा। वह बह्म होगा। मैं ब्रह्म नहीं हूँ तो इस पर ज्वर ने यत् ब्रह्म कहा। अर्थात् जो ब्रह्मा है वही आप हैं। यदि भगवान् कहें कि वह ब्रह्म क्या है? इस पर ज्वर कहता है कि ब्रह्म का ज्ञान वेदों के द्वारा होता है। वह भी कैसे तो इस पर कहता है आप प्रशान्त अर्थात् सभी विकारों से रहित होने के कारण साक्षात् वाच्य नहीं हैं ॥२५॥

कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः ।
तत्संघातो बीजरोहप्रवाहस्त्वन्मायैषां तन्निषेधं प्रपद्ये ॥२६॥

अन्वयः— कालो दैवं, कर्म, जीवः स्वभावः, द्रव्यं, क्षेत्रं, प्राण आत्मा विकारः, तत्संघातः बीजरोह प्ररोहः एषा त्वन्माया, तन्निषेधं प्रपद्ये ॥२६॥

अनुवाद— काल, दैव, कर्म, जीव, स्वभाव, सूक्ष्मभूत, शरीर, सूक्ष्मात्मा प्राण, अहङ्कार एकादश इन्द्रियाँ पञ्चमहाभूत, इन सबों का संघात, लिङ्ग शरीर और बीजाङ्कुरन्याय के अनुसार कर्म और कर्म से लिङ्ग शरीर यह सब कुछ आपकी माया है और माया के निषेध की अवधि आप हैं मैं आपकी शरणागति करता हूँ ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

किंच यत्सविशेषं वस्तु तत्र वयं प्रभवामः, त्वयि तु सर्वविशेषातीते न कस्यापि प्रभुत्वं किंतु त्वमेव सर्वप्रभुरिति ज्ञप्तिमात्रत्वं विवृण्वन्स्तौति-काल इति। कालः क्षोभकः। कर्म निमित्तम्। तदेव फलाभिमुखमभिव्यक्तं दैवम्। स्वभावस्तत्संस्कारः। जीवस्तद्वान्। द्रव्यं भूतसूक्ष्माणि। क्षेत्र शरीरम्। प्राणः सूत्रम्। आत्मा अहङ्कारः। विकार एकादशेन्द्रियाणि महाभूतानि चेति षोडशकः तत्संघातो लिङ्गदेहः। एतस्य च बीजरोहवत्प्रवाहः, रोहोऽङ्कुरो देहाद्बीजरूपं कर्म ततोऽङ्कुररूपो देहस्ततः पुनरेवमिति प्रवाहः। एषा त्वन्माया। तस्य निषेधः अपोहो यस्मिंस्तं त्वां निषेधावधिभूतं प्रपद्ये भज इति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

जहाँ विशेषण विशिष्ट वस्तु होती है वहाँ पर तो हम प्रबल हो जाते हैं किन्तु आप तो सभी विशेषाताओं से रहित हैं अतएव आप पर कोई भी प्रभुत्व नहीं जमा सकता है, अपितु आप ही सबों के प्रभु है। श्रीभगवान् को ज्ञानमात्र बतलाकर यह उनकी स्तुति करता है। प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न करने वाला काल कर्म (कारण) जब कर्म फल देने के लिए उद्यत होता है तो वही कहलाता है कर्म। कर्म का संस्कार ही स्वभाव कहलाता है। संस्कार से सम्पन्न जीव, द्रव्य अर्थात् भूत सूक्ष्म, शरीर, सूत्रात्मा, आत्मा अर्थात् अहङ्कार विकार अर्थात् एकादश इन्द्रियाँ तथा पञ्चमहाभूत सब मिलकर सोलह इन सबों के संघात ही लिङ्ग शरीर है। इस लिङ्ग शरीर का बीजों के प्ररोह के समान प्रवाह चलता है। देह रूप बीज से कर्म और कर्म से लिङ्ग शरीर लिङ्ग शरीर से कर्म फिर उसी से कर्म होता है। उससे पुनः प्रवाह होता है। यह आपकी माया है। उसका निषेध अर्थात् अपोह स्वरूप आप ही निषेध की पराकाष्ठा है। ऐसे अपकी मैं शरणागति करता हूँ ॥२६॥

नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान्साधूँल्लोकसेतून्बिभर्षि ।
हंस्युन्मार्गान्हिंसया वर्तमानान् जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥२७॥

अन्वयः— लीलयैवोपपन्नैः नानाभावैः देवान् साधून् लोकसेतून् विभर्षिहिंसयावर्तमान् उन्मार्गान हंसि ते एतत् जन्म भूमेः भारहाराय ॥२७॥

अनुवाद— आप अपनी लीला मात्र से अनेक रूपों को धारण कर लेते हैं और देवताओं सन्तों तथा लोक मर्यादा जो वर्णों एवं आश्रमों के धर्म रूप हैं । उन सबों का आप पालन करते हैं । आप उसके साथ ही हिंसक असुरों का विनाश करते हैं । आपका यह अवतार भूमि के भार को दूर करने के लिए है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

ननु देवकीतनयस्य मे कथमेवंभूत्वं तत्राह-नानाभावैरिति । सर्वोपाधिविनिर्मुक्त एव त्वं यथा लीलया स्वीकृतैर्मत्स्याद्यवतारैर्देवान् बिभर्षि पालयसि । तदर्थं लोकसेतून्वर्णाश्रमधर्मान् । तदर्थं तदनुष्ठातृन्साधून् तदङ्गत्वेनोन्मार्गान् दैत्यादीन् हंसि संहरसि । एवमेतदपि तव जन्म भूमेर्भारहरणाय । लीलावतारोऽयं न कस्यापि त्वं तनय इत्यर्थः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मैं तो माता देवकी का पुत्र हूँ ऐसा मैं कैसे हो सकता हूँ ? इस पर ज्वर ने कहा **नानाभावै० इत्यादि** आप सभी उपाधियों से रहित है आप अपनी लीलामात्र से मनुष्यों आदि के अवतारों को ग्रहण कर लेते हैं। आप देवताओं का पालन करते हैं । उसके लिए वर्णाश्रम धर्म इत्यादि का पालन करते है। इन धर्मों के अनुष्ठाता सत्पुरुषों की रक्षा करते हैं और उसके अङ्गभूत दैत्यों का संहार करते हैं । इस तरह से आपका यह भी जन्म भूमि के भार को दूर करने के ही लिए है । आपका यह लीलावतार है । आप किसी के पुत्र नहीं है ॥२७॥

तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण ।
तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं नो सेवेरन्यावदाशानुबद्धाः ॥२८॥

अन्वयः— अहं ते शान्त्युग्रेणात्युल्बणेन दु;सहेन ज्वरेण तप्तः देहिनां तावत् तापः यावदाशाबद्धाःते अङ्घ्रिमूलं न सेवेरन् ॥२९॥

अनुवाद— हे प्रभो मैं आपके शान्त, उग्र और अत्यन्त भयानक दुस्सहतेज से संतप्त हूँ । शरीरधारियों को तब तक सांसारिक संताप संतप्त करते हैं, जब तक विभिन्न प्रकार की आशाओं में बधे रहने के कारण आपके चरण कमलों की सेवा वे नहीं करते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अतोऽज्ञानतस्त्वदभिभवे प्रवृत्तं मां तप्तं रक्षेत्याशयेनाह-तप्तोहमिति । ते तेजसा त्वत्सृष्टेन ज्वरेण शान्तोग्रेण शीतज्वरेण। परसंतापकस्य युक्त एव ताप इति चेदत आह-तावदिति । सेवायां प्रवृत्तानामनुचित इति भावः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

अतएव अज्ञानवशात् ही मैं आपको अभिभूत करने में प्रवृत्त हो गया अब मैं स्वयं संतप्त हो रहा हूँ आप मेरी रक्षा करें । आपके द्वारा सृष्ट शीतज्वर से यदि आप कहें कि दूसरों को संतप्त करने वाले को तो संतप्त होना ही चाहिए इसपर वह कहता है **तावदित्यादि** जो आपके चरणों की शरण में आ जाय उसका तो संतप्त होना अनुचित ही है ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्ति व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम् । यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम् ॥२९॥

अन्वयः— हे त्रिशिरः अहं ते प्रसन्न अस्मि ते मद्ज्वरात् ते भयं व्येतु । यो नौ संवादं स्मरति तस्य त्वत् भयं न भवेत्॥२९॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे त्रिशिर मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, मेरे ज्वर से होने वाला तुम्हारा भय समाप्त हो जाय। जो मनुष्य हमदोनों के इस संवाद का स्मरण करे उसको तुम्हारा भय नहीं होना चाहिए ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

हे त्रिशिरः, व्येतु अपयातु । मदाज्ञापालकः सन्सुखं विचर । कासावाज्ञा तामाह-य इति । नौ आवयोरिमं संवादं यः स्मरेत्तस्य त्वत् त्वत्तो न भयं भवेत् । त्वया भयं नोत्पादनीयमित्यर्थः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

हे त्रिशिर ज्वर ! व्येतु दूर हो जाय। मेरी आज्ञा का पालन करते हुए सुखपूर्वक विचरण करो। वह कौन सी आज्ञा है ? तो उसे कहते हैं जो मनुष्य हमदोनों के इस संवाद का स्मरण करे उसको तुमसे भय नहीं होना चाहिए॥२९॥

इत्युक्तोऽच्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः । बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यञ्जनार्दनम् ॥३०॥

अन्वयः— इत्युक्तः माहेश्वरः ज्वरः अच्युतम् आनम्यगतः बाण; तु रथम् आरूढः जनार्दनम् ज्योत्स्यन् प्रागात् ॥३०॥

अनुवाद— इस तरह से श्रीभगवान् के कहने पर माहेश्वर ज्वर उनको नमस्कार करके चला गया और बाणसुर भी रथ पर चढ़कर भगवान् जनार्दन से युद्ध करने के लिए आया ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः । मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥३१॥

अन्वयः— हे नृप ततः बाहुसहस्रेण नानायुध धरः परमक्रुद्धः असुरः चक्रायुधे बाणान् मुमोच ॥३१॥

अनुवाद— हे परीक्षित उसके पश्चात् एक हजार भुजाओं में अनेक प्रकार के आयुधों को धारण किए हुए बाणासुर अत्यधिक क्रोध करके चक्र को धारण करने वाले श्रीभगवान् पर बाणों को चलाया ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

तस्यास्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना । चिच्छेद भगवान्बाहूञ्छाखा इव वनस्पतेः ॥३२॥

अन्वयः— अस्त्राणि अस्यतः तस्य बाहून्, वनस्पते शाखा इव भगवान् क्षुरनेमिना असकृत् चिच्छेद ॥३२॥

अनुवाद— बार-बार अस्त्रों का प्रहार करने वाले उस बाणासुर की भुजाओं को भगवान् श्रीकृष्ण अपने तीक्ष्ण धार वाले चक्र से उसी तरह काटने लगे जिस तरह कोई वृक्ष की शाखाओं को काटता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

बाहुषु च्छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान्भवः । भक्तानुकम्प्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥३३॥

अन्वयः— बाणस्य बाहुषु धिद्यमामेषु भक्तानुकम्पी भगवान् चक्रायुधम् उपव्रज्य अभाषत ॥३३॥

अनुवाद— बाणासुर की भुजाओं को काटते हुए देखकर अपने भक्तों पर कृपा करने वाले भगवान शङ्कर भगवान् श्रीकृष्ण के पास आकर कहे ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

श्रीरुद्र उवाच

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये । यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥३४॥

अन्वयः— त्वं ब्रह्मणि वाङ्मये गूढं परं ज्योतिः परब्रह्म, यम् आकाशमिव, केवलं अमलात्मानः पश्यन्ति ॥३४॥

श्रीशङ्करजी ने कहा

अनुवाद— आप वेद मन्त्रों में तात्पर्य रूप से छिपे हुए परंप्रकाश स्वरूप परब्रह्म हैं शुद्ध हृदय वाले महात्मा गण ही आपके आकाश के समान सर्वव्यापक और निर्विकार स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

भक्तरक्षणार्थं श्रीरुद्रो भगवन्तं स्तौति-त्वं हीति । अयमर्थः-त्वामज्ञात्वाऽयं युध्यत इति न चित्रम् । यतस्त्वं वाङ्मये ब्रह्मण्यपि गूढं ब्रह्म अभिधाऽविषयत्वात् । कुतः । परं ज्योतिः । ज्योतिषामपि प्रकाशकत्वादविषय इत्यर्थः । कथं तर्हि प्रतीतिरत आह-यमिति । अमलात्मनां स्वतः प्रकाशसे इत्यर्थः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

अपने भक्त की रक्षा के लिए श्रीशङ्करजी श्रीभगवान् की स्तुति करते हैं । आपका ज्ञान नहीं होने के कारण यह आपसे युद्ध करता है यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । क्योंकि आप वेदों में उनके तात्पर्य के रूप में छिपे हुए ब्रह्म है । आप अभिधा वृत्ति के विषय हैं ही नहीं आप परम प्रकाश स्वरूप है क्योंकि सूर्य चन्द्रमा आदि प्रकाश को भी आप प्रकाशित करते हैं । अतएव उन प्रकाशों के विषय नहीं है । प्रश्न होता है कि तो फिर कैसे प्रतीति होती है ? इस पर शङ्करजी कहते है । शुद्ध हृदय वाले महात्मागण को आप प्रकाशित होते हैं ॥३४॥

नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो द्यौः शीर्षमाशा श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी ।
चन्द्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः ॥३५॥

अन्वयः— यस्य नाभिः नभः अग्निः मुखम् अम्बुरेतः द्यौः शीर्षम्, आशाः श्रुतिः ऊर्वी अङ्घ्री चन्द्रः मनः, अर्कः दृक्, अहं आत्मा समुद्रः जठरः, इन्द्रः भुजा ॥३५॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आकाश ही आपकी नाभि है, अग्नि ही मुख है, जल ही रेतस् है, द्युलोक ही शिरोभाग है, दिशाएँ ही कान है, पृथ्वी है चरण हैं, चन्द्रमा मन हैं और सूर्य ही नेत्र हैं मैं अहङ्कार (आत्मा) हूँ, समुद्र ही पेट है और इन्द्र आदि लोकपाल अपकी भुजाएँ हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

आस्तां तावन्निर्गुणस्य तव ज्ञानं लीलयाधिष्ठितस्त्वया ये विराड्विग्रहः सोऽपि न ज्ञायते उदुम्बरफलान्तर्वर्तिमशकैरिवोदुम्बरफलमित्याशयेन विराड्रूपेण स्तौति द्वाभ्याम्- नाभिरिति । यस्य नभआदयो नाभ्याद्यवयवाःस भवान् लोककल्पः पुरुष इत्युत्तरेणान्वयः । नभो यस्य नाभिः । अग्निर्मुखम् अम्बु रेतः । द्यौः शीर्षम् । आशा दिशः श्रुतिः श्रवणेन्द्रियम् । उर्वी अङ्घ्रिः । चन्द्रो मनः । अर्को दृक् । अहं शिव आत्माऽहंकारः । समुद्रो जठरम् । इन्द्रो भुजा बाहुः । इन्द्रादयो लोकपाला बाहव इत्यर्थः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

आपके निर्गुण स्वरूप का ज्ञान तो अपनी जगह पर बना रहे लीला पूर्वक आपने जो विराट् शरीर धारण किया है, उसका भी ज्ञान उसी तरह नहीं होता है जिस तरह गूलर के फल में रहने वाले छोटे-छोटे कीड़ों को गूलर के फल का पता नहीं होता हैं । इसी अभिप्राय से भगवान् शङ्कर श्रीभगवान् के विराट् रूप की स्तुति **नाभि इत्यादि** दो श्लोकों से करते हैं । जिस आपके नाभि आदि अङ्गः हैं ऐसे आप लोक के समान पुरुष हैं, इस तरह

से आगे के श्लोक के साथ अन्वय है । आकाश ही आपकी नाभि है, अग्नि ही मुख है जल ही रेतस् है, स्वर्गलोक ही शिरोभाग दिशाएँ ही कान हैं, पृथिवी ही अर्थ चरण हैं । चन्द्रमा मन हैं, सूर्य नेत्र हैं, मैं शिव ही आत्मा (अहङ्कार) हूँ, समुद्र ही पेट है और इन्द्र आदि लोकपाल ही आपकी भुजाएँ हैं ॥३५॥

रोमाणि यस्यौषधयोऽम्बुवाहाः केशा विरिञ्चोधिषणा विसर्गः ।
प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः स वै भवान्पुरुषो लोककल्पः ॥३६॥

अन्वयः— यस्य रोमाणि औषधयः केशाः अम्बुवाहाः धिषणा विरिञ्चः विसर्गः प्रजापतिः, हृदयं धर्मः, सवै भवान् लोककल्पः ॥३६॥

अनुवाद— जिस आपके रोम ही औषधियाँ, मेघ ही केश, ब्रह्माजी ही बुद्धि हैं तथा प्रजापति ही मेढ़्र हैं, धर्म ही हृदय हैं, ऐसे आप लोक के समान हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

ओषधयो रोमाणि । यच्छब्दावृत्तिः स्पष्टतार्था । अम्बुवाहाः केशाः । विरिञ्चो धिषणा बुद्धिः । प्रजापतिर्विसर्गो मेढ्रम्। धर्मो हृदयम् । लोकैः कल्प्यतेऽवकल्प्यत इति लोककल्पः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

ओषधियाँ ही आपके रोम हैं । स्पष्टता के लिए ही यत् शब्द की आवृत्ति की गयी है । मेघ ही केश हैं, ब्रह्माजी ही बुद्धि हैं । प्रजापति ही मेढ़ (अण्डकोश) हैं तथा धर्म ही आपके हृदय हैं । ऐसे आप सम्पूर्ण लोक स्वरूप हैं ॥३६॥

तवावतारोऽयमकुण्ठधामन्धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय ।
वयं च सर्वे भवतानुभाविता विभावयामो भुवनानि सप्त ॥३७॥

अन्वयः— हे अकुण्ठधामन् अयं तवावतारः धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय । वयं सर्वे भवता अनु भाविताः सप्तभुवनानि विभावयामः ॥३७॥

अनुवाद— हे अखण्ड ज्योति स्वरूप परमात्मन् आपका यह अवतार धर्म की रक्षा के लिए तथा जगत् के अभ्युदय के लिए हुआ है । हम सभी लोकपाल भी आपके प्रभाव से ही प्रभाव सम्पन्न होकर सातो लोकों का पालन करते हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

ननु तत्त्वतः प्रादेशिकशरीरस्य कथं नभोनाभित्वादीत्यत आह–तवेति हे अकुण्ठधामन्नप्रच्युतस्वरूप, भवायाभ्युदायाय। न केवलमेतावत्किंत्वस्मदनुग्रहार्थमपीत्याह–वयं चेति । सर्वे लोकपालास्त्वया पालिताः सप्तापि भुवनानि पालयाम इति॥३७॥

भाव प्रकाशिका

हे अकुण्ठधामन् अर्थात् सदा अपने ही स्वरूप में स्थित रहने वाले भगवन् । भवाय अर्थात् अभ्युदय के लिए । केवल इतनी ही बात नहीं है अपितु हमलोगों पर कृपा करने के ही लिए इस बात को **वयम् च इत्यादि** से कहा गया है । हम सभी लोकपाल आपके द्वारा पालित ही होकर सातो भुवनों का पालन करते हैं ॥३७॥

त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीशः ।
प्रतीयसेऽथापि यथाविकारं स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै ॥३८॥

अन्वयः— त्वमेकः अद्वितीयः आद्यः पुरुषः तुर्यः स्वदृग्हेतुः अहेतुः ईशः अथापि स्वमायया सर्वगुण प्रसिद्ध्यै यथा विकारं प्रतीयसे ॥३८॥

जन्य जाग्रत स्वप्न एवं सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में अनुगत एवं उनसे अतीत आप तुरीय तत्व हैं। आप स्वयं प्रकाश सबके कारण है। आपका कोई भी कारण नहीं है। आप सबों के स्वामी हैं। ऐसा होने पर भी आप अपनी माया के द्वारा तीनों गुणों की विषमताओं को प्रकाशित करने के लिए अपनी माया से ही देव मनुष्य आदि विभिन्न शरीरों के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप में प्रतीत होते हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

ननु यदि विभावयितारो यूयं विभाव्यानि च भुवनानि सन्ति तर्हि कथमुक्तं त्वं हि ब्रह्मेति। नहि ब्रह्मत्वे मम सजातीयविजातीयभेदः संभवतीत्यत आह-त्वमिति। एकः सजातीयभेदरहितः। कुतः। आद्यः पुरुषः पुरुषाणामवस्थात्रयवतामाद्यः प्रकृतिभूतः पुरुषः। कुतः। तुरीयः। शुद्ध इत्यर्थः। तदपि कुतः। स्वदृक् स्वप्रकाशज्ञानरूपः। शुद्धादेव ह्युपाधियोगाज्जीवाजायन्ते। 'यथाऽग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्व एव आत्मानो व्युच्चरन्ति' इति श्रुतेः। अतः सजातीयरहितः। किंच अद्वितीयो विजातीयरहितोऽपि। कुतः। हेतुः सर्वस्य। तथा स्वयं हेतुरहितश्चेति। कथं तर्हि प्रतिशरीरं जीवभेदः प्रतीयतेऽत आह-प्रतीयस इति। सर्वगुणप्रसिद्ध्यै सर्वविषयप्रकाशनाय ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि यदि आपलोग पालन करने वाले हैं तथा आपलोगों के द्वारा पालित होने वाले हैं तो फिर आपलोगों ने यह क्यों कहा कि आप ही ब्रह्म हैं? यदि मैं ब्रह्म हूँ तो फिर मैं सजातीय विजातीय भेद शून्य कैसे हो सकता हूँ इस पर शङ्करजी ने कहा **त्वमि० इत्यादि** एकः अर्थात् सजातीय भेद रहित, क्योंकि आप आदि पुरुष हैं, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं वाले पुरुषों में आदि हैं। प्रकृति स्वरूप पुरुष हैं। क्योंकि आप तुरीय अर्थात् शुद्ध स्वरूप हैं। वह भी कैसे? आप स्वदृक् अर्थात् स्वप्रकाशज्ञान स्वरूप हैं। शुद्ध होने के ही कारण आप औपाधिक संयोग होने पर जीव हो जाते हैं। **यथाग्ने० इत्यादि** श्रुति भी कहती है जिस तरह अग्नि से छोटी-छोटी चिनगारियाँ निकलती हैं वैसे ही परम पुरुष से सभी जीव निकलते हैं। अतएव आप सजातीय रहित हैं। अद्वितीय कहकर शङ्करजी ने उनको विजातीय भेद रहित भी बतलाया है। क्योंकि आप सबों के कारण हैं किन्तु स्वयं कारण से रहित हैं। यदि कोई कहे कि तो फिर प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न आत्माओं की प्रतीति कैसे होती है? इस पर शङ्करजी कहते है प्रतीयसे इत्यादि। सर्वगुण प्रसिद्ध्यै अर्थात् सभी विषयों को प्रकाशित करने के लिए ॥३८॥

यथैव सूर्यः पिहितश्छायया स्वया छायां च रूपाणि च संचकास्ति।
एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्वमात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥३९॥

अन्वयः— हे भूमन् यथा सूर्यः स्वया छायया एव पिहितः छायां च रूपाणि च संचकास्ति एवं गुणेन अपिहितः आत्म प्रदीपः त्वं गुणान् गुणिनश्च ॥३९॥

अनुवाद— हे अनन्तप्रभो! जिस प्रकार सूर्य अपनी छाया (मेंधों) से ढँक जाते हैं और उन मेघों तथा विभिन्न रूपों का प्रकाशन करते हैं उसी तरह गुणों से नहीं ढँके रहने पर भी आप स्वयं प्रकाश होने के कारण गुणों औ।र गुणियों का भी प्रकाशन करते हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि किमहमेव संसारीत्युच्यते, नहि नहीति सदृष्टान्तमाह-यथैवेति। हे भूमन्, स्वया छायया मेघलक्षणया परदृष्ट्या पिहितश्छादितोऽपि सूर्यश्छायां मेघं च रूपाणि च मेघान्तरितान्घटादीनपि संचकास्ति प्रकाशयति। एवं गुणेनाहंकारेण स्वकार्येण जीवावरकेण तद्दृष्ट्या पिहितोऽपि गुणान्सत्त्वादीनुपाधीन् गुणिनश्चोपहितान् जीवानपि चकास्ति। आत्मप्रदीपः स्वप्रकाशः। अतः सर्वसाक्षिणस्तव न संसार इत्यर्थः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

यदि भगवान् पूछें कि क्या मैं ही संसारी हूँ तो इस पर शङ्करजी कहते है कि ऐसी बात नहीं है । इस बात को वे दृष्टान्तोपन्यास पुरस्सर कहते हैं । हे भूमन् ! अपनी छाया रूपी मेघ के द्वारा दूसरों को देखने में लगता है कि सूर्य ढँक गये है फिर भी मेघ और मेघ की घट आदि को सूर्य प्रकाशित करते हैं उसी तरह अहङ्कार के कार्यभूत जीव को आवृत करने वाले की दृष्टि से ढँके होने पर भी सत्त्वादि उपाधियों और उनसे उपहित जीवों को आप प्रकाशित करते हैं । आप स्वप्रकाश अतएव सबों के साक्षी आपका संसार नहीं होता है ॥३९॥

यन्मायामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु । उन्मञ्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥४०॥

अन्वयः— यन्मग्यामोहितधियः पुत्रदारगृहादिषु प्रसक्ता वृजिनार्णवे निमिञ्जन्ति, उन्मञ्जन्ति च ॥४०॥

अनुवाद— प्रभो आपकी माया से जिनकी बुद्धि मोहित हो गयी है वे लोग पुत्र पत्नी परिवार देह एवं गेह में ही आसक्त होकर दु:ख के सागर इस संसार में डूबते और उतराते रहते हैं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

किंच मायाश्रयस्यान्यान्मोहयतस्तव कुतः संसृतिरित्याशयेनाह–यन्मायेति । पुत्रादिषु प्रसक्ताः । वृजिनार्णवे दुःखसागरे। उन्मज्जन्ति देवादियोनिषुः, निमज्जन्ति स्थावरादिषु । तदुक्तं वायवीये–'विपर्ययश्च भवति ब्रह्मत्वस्थावरत्वयोः' इति ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

आप माया के आश्रय हैं । आप अपनी माया से दूसरों को मोहित करते हैं, अतएव आपको संसार कैसे हो सकता है ? इसी अभिप्राय से **यन्माया० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं- पुत्रों आदि में आसक्त । वृजिनार्णवे अर्थात् दु:खसागर संसार में उन्मज्जन्ति अर्थात् देवादि योनियों में जाते हैं, तथा निमिज्जन्ति अर्थात् स्थावरादि योनियों में चले जाते हैं । वायु पुराण में कहा भी गया है । **विपर्ययश्च भवति० इत्यादि** अर्थात् इस संसार सागर में पड़े जीव कही उच्च देवादि योनियों में चले जाते हैं तो कभी स्थावरादि योनियों में चले जाते हैं ॥४०॥

देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः । यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः ॥४१॥

अन्वयः— देवदत्तम् इमं नृलोकं लब्ध्वा य अजितेन्द्रियः त्वत्पादौ नाद्रियेत सहि आत्मवञ्चकः शोच्यः ॥४१॥

अनुवाद— परमात्मप्रदत्त इस मनुष्य लोक को प्राप्त करके भी जो आपके चरणों की आराधना नहीं करता है वह अपने को धोखा देने वाला शोचनीय है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

एवं जीवेश्वरव्यवस्थां निरूप्येदानीमभजन्त निन्दति द्वाभ्याम्–देवेति । देवेन त्वया कर्माध्यक्षेण दत्तं नृदेहमिमं लब्ध्वापीति॥४१॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से जीव एवं ईश्वर की व्याख्या का निरूपण करके श्रीशिवजी परमात्माराधन नहीं करने वाले की दो श्लोकों से निन्दा करते हैं । आप सभी जीवों के कर्मों को साक्षात् जानते हैं, आपके द्वारा प्रदत्त इस मानव शरीर को भी प्राप्त करके ॥४१॥

यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियमीश्वरम् । विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥४२॥

अन्वयः— यः मर्त्यः प्रियम् आत्मानम् ईश्वरं त्वां विपर्ययेन्द्रियरक्षार्थं विसृजते स अमृतं त्यजन् विषम् अत्ति ॥४२॥

अनुवाद— जो मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा प्रियतम एवं ईश्वर आपको इन्द्रियों के विषयों के प्राप्त को प्राप्त करने के लिए त्याग देता है वह अमृत का परित्याग करके विष खाने का काम कर रहा है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

शोच्यत्वे हेतुः-यस्त्वमिति । विपर्यया विपरीता अनात्माऽप्रियाऽनीश्वरा ये इन्द्रियार्थाः पुत्रादयस्तदर्थम् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

त्वामित्यादि श्लोक के द्वारा शोच्यत्व का कारण बतलाते हैं विपर्यया अर्थात् विपरीत अनात्मा अप्रिय तथा अनीश्वर पुत्रादि के लिए ।।४२।।

अहं ब्रह्माथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः । सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ।।४३।।

अन्वयः— अहं, ब्रह्मा, विबुधाः अमलाशया; मुनयश्च प्रेष्ठम् ईश्वरम् आत्मानं त्वां सर्वात्मना प्रपन्नाः ।।४३।।

अनुवाद— मैं (शङ्करजी), ब्रह्माजी सभी देवता, शुद्ध अन्तःकरण वाले मुनिगण ये सभी प्रियतम ईश्वर तथा सबों की आत्मा आपकी पूर्ण रूप से शरणागति करते हैं ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

अहमन्ये च शुद्धमनसस्त्वामेव प्राप्ता इत्याह-अहमिति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

अहम् इत्यादि श्लोक के द्वारा शङ्करजी कहते हैं कि मैं तथा दूसरे शुद्ध अन्तःकरण वाले आपको ही प्राप्त किए हैं ।।४३।।

तं त्वा जगत्स्थित्युदयान्तहेतुं समं प्रशान्तं सुहृदात्मदैवम् ।
अनन्यमेकं जगदात्मकेतं भवापवर्गाय भजाम देवम् ।।४४।।

अन्वयः— तं जगत्स्थित्युदयान्त हेतुं समं प्रशान्तं सुहृद् आत्मदैवं, अनन्यम् एकं, जगदात्मकेतं देवम् मत्वा भवापवर्गाय भजाम ।।४४।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप जगत् की उत्पत्ति स्थिति एवं संहार के कारण हैं । आप सबमें सम, परमशान्त, हितैषी, आत्मा और इष्टदेव हैं । आप एक अद्वितीय जगत् एवं आत्मा के अधिष्ठान हैं । हम सभी संसार से मुक्त होने के लिए दिव्यगुण सम्पन्न आपका भजन करते हैं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

भगवतो भजनीयत्वे हेतून्वदंस्तद्भक्तिं प्रार्थयते-तं त्वेति । समत्वे हेतुः-प्रशान्तमिति । सुसेव्यत्वमाह-सुहृदात्मदैवं सुहृद्बुद्धिप्रवर्तकत्वात्, आत्मा च सर्वात्मकत्वात्, एवंभूतं दैवमीश्वरं त्वाम् । न चान्यो भजनीयोऽस्तीत्याह-अनन्यमेकं समानासमानजातीयरहितम् । तत्कुतः । जगतामात्मनां च केतमधिष्ठानम् ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ही भजन करने योग्य हैं, उसके कारण को बतलाते हुए शङ्करजी श्रीभगवान् की भक्ति की प्रार्थना तंत्वा इस श्लोक से करते हैं । प्रशान्त होने के कारण श्रीभगवान् सबों में सम हैं । सुहृत् एवं आत्मा के आराध्य हैं क्योंकि वे सुहृद् बुद्धि के प्रवर्तक हैं । वे सर्वात्मक होने के कारण आत्मा हैं । इस प्रकार के ईश्वर आपका हम भजन करते हैं । आप से भिन्न कोई दूसरा भजनीय नहीं है । आप समान एवं असमान जातीयों से रहित हैं । जगत् और आत्मा के आप अधिष्ठान हैं, यह जगदात्मकेतम् का अर्थ है ।।४४।।

अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती मयाऽभयं दत्तममुष्य देव ।
संपाद्यतां तद्भवतः प्रसादो यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥४५॥

अन्वयः— हे देव ! अयं मम इष्टः दयितः अनुवर्ती मया अमुष्य अभयं दत्तम् तत् भवतः प्रसादः संपाद्यताम् यथाते दैत्यपतौ प्रसादः ॥४५॥

अनुवाद— हे प्रभो ! यह मेरा परमप्रिय कृपा पात्र है । इसको मैंने अभयदान दिया है । यह आपकी कृपा उसी तरह प्राप्त करे जिस तरह से आपने इसके दादा प्रह्लादजी पर कृपा की है ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

स्वयं भक्तिमाशास्य स्वभक्तस्याभीष्टमाशास्ते-अयमीति । दैत्यपतौ प्रह्लादे ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

स्वयं भक्ति की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करके अपने भक्त के भी अभीष्ट की प्रार्थना **अयम्० इत्यादि** श्लोक से करते हैं । दैत्यपतौ प्रह्लादजी पर ॥४५॥

श्रीभगवानुवाच

यदात्थ भगवंस्त्वं नः करवाम प्रियं तव । भवतो यद्व्यसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥४६॥

अन्वयः— भगवन् यत् त्वं नः आत्थ तव प्रियं करवाम । भवतो यद् व्यवसितम् तन्मे साधु अनुमोदितम् ॥४६॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् आपने जो कहा है वह आपका प्रिय कार्य मैं किए देता हूँ आपने जो पहले निश्चित किया था उसका मैंने इसकी भुजाओं को काटकर अच्छी तरह से अनुमोदन किया है ॥४६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४६॥

अवध्योऽयं ममाप्येष वैरोचनिसुतोऽसुरः । प्रह्लादाय वरो दत्तो न बध्यो मे तवान्वयः ॥४७॥

अन्वयः— एष वैरोचनिसुतः असुरः मम अपि अबध्यः प्रह्लादाय वरो दत्तः तवान्वय; मे बध्यः न ॥४७॥

अनुवाद— मैं जानता हूँ कि यह असुर बलि का पुत्र है, अतएव यह मेरा बध्य नहीं है । मैंने प्रह्लाद को वरदान दिया है कि तुम्हारे वंश वाले को मैं नहीं मारूँगा ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

वैरोचनिर्बलिर्मद्भक्तस्तसुतत्वादवध्यस्तावत् । किंच प्रह्लादायेति । अन्वयो वंशः ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

विरोचन के पुत्र बलि थे, वे मेरे भक्त थे उनका पुत्र होने के कारण यह मेरा बध्य नहीं है । किञ्च प्रह्लाद को मैंने वर दिया हैं कि मैं तुम्हारे वंश वालों को नहीं मारूँगा । अन्वय अर्थात् वंश ॥४७॥

दर्पोपशमनायास्य प्रवृक्णा बाहवो मया । सूदितं च बलं भूरि यच्च भारायितं भुवः ॥४८॥

अन्वयः— अस्य दर्पोपशमनाय मया बाहवः वृक्णाः भूरिबलं च सूदितम् यच्च भुवः भारायितम् ॥४८॥

अनुवाद— इसके गर्व को दूर करने के लिए मैंने इसकी भुजाओं को काट दिया है । इसकी बहुत बड़ी सेना को इसलिए नष्ट कर दिया है कि वह पृथ्वी पर भार बनी हुई थी ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि किमित्येवं कृतं तत्राह-दर्पोपशमनायेति ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

तो फिर आपने ऐसा क्यों किया तो इसके उत्तर में श्रीभगवान् ने कहा कि इसके दर्प का दलन करने के लिए ।।४८।।

चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यन्त्यजरामराः । पार्षदमुख्यो भवतो न कुतश्चिद्भयोऽसुरः ।।४९।।

अन्वयः— अस्य चत्वारः शिष्टाः भुजा अजरामराः भविष्यन्ति । भवतः पार्षदमुख्यः असुरः कुतश्चिद् भयो न ।।४९।।

अनुवाद— इसकी बची हुई चार भुजाएँ अजर अमर हो जायेंगी । यह आपका मुख्य पार्षद होगा, इसको किसी से भय नहीं होगा ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

अनुगृह्णाति-चत्वार इति ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

चत्वारः इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् बाणासुर को अनुगृहीत करते हैं ।।४९।।

इति लब्ध्वाऽभयं कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽसुरः । प्राद्युम्निं रथमारोप्य सवध्वा समुपानयत् ।।५०।।

अन्वयः— इति अभयं लब्ध्वा कृष्णं शिरसा प्रणम्य असुरः प्रद्युम्निं रथम् आरोप्य सबध्वा समुपानयत् ।।५०।।

अनुवाद— इस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण से अभयता का वरदान प्राप्त करके बाणासुर अनिरुद्धजी और उनकी पत्नी उषा को रथ पर बैठाकर लाया ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

सह बध्वा उषया ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

सहबध्वा अर्थात् उषा के साथ ।।५०।।

अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासःसमलंकृतभ् । सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ।।५१।।

अन्वयः— अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासः समलंकृतम् सपत्नीकं पुरस्कृत्य रुद्रानुमोदितः ययौ ।।५१।।

अनुवाद— इसके पश्चात् एक अक्षौहिणी सेना के साथ सुन्दर वस्त्रों से समलंकृत अपनी पत्नी के साथ विद्यमान अनिरुद्धजी को आगे करके तथा भगवान् शङ्करजी का अनुमोदन प्राप्त करके भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका के लिए प्रस्थान किए ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

रुद्रानुमोदित इति तदभिप्रेतस्यैव बाणभुजभङ्गस्य कृतत्वात् ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

रुद्रानुमोदितः अर्थात् शङ्करजी को अभिप्रेत बाणासुर की भुजाओं का च्छेदन रूप कार्य को करने के कारण।।५१।।

स्वराजधानीं समलंकृतां ध्वजैः सतोरणैरुक्षितमार्गचत्वराम् ।
विवेश शङ्खानकदुन्दुभिस्वनैरभ्युद्यतः पौरसुहृद्द्विजातिभिः ।।५२।।

अन्वयः— सतोरणैरुक्षितमार्ग चत्वराम् ध्वजैः समलंकृता, शङ्खानकदुन्दुभि स्वनैः पौर सुहृदद्विजातिभिः अभ्युद्यतः स्वराजधानीं विवेश ।।५२।।

अनुवाद— जिसके बड़े-बड़े मार्गों तथा चैराहों पर चन्दन मिश्रित जल का छिड़काव करके ध्वजों से अलंकृत कर दिया गया था, तथा भगवान् के आगमन का समाचार को सुनकर नागरिकों के बन्धु बान्धवों ने तथ ब्राह्मणों ने आगे आकर श्रीभगवान् का सम्मान किया उस समय शङ्ख और नगाड़े बजाये जा रहे थे इस प्रकार श्रीभगवान् अपनी राजधानी में प्रवेश किए ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

पौरादिभिरभ्युद्यतोऽभिमुखमागत्य सत्कृतः ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

आगे आकर नागरिकों आदि द्वारा आगे आकर समादृत ।।५२।।

य एवं कृष्णविजयं शङ्करेण च संयुगम् । संस्मरेत्प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात्पराजयः ।।५३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अनिरुद्धानयनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।।६३।।

अन्वयः— यः प्रातरुत्थाय एवं कृष्ण विजयं शङ्करेण संयुगं च संस्मरेत् तस्य पराजयः न स्यात् ।।५३।।

अनुवाद— जो मनुष्य प्रात;काल जगकर इस प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण के विजय तथा उनका शङ्करजी के साथ युद्ध का स्मरण करेगा उसका कही भीं पराजय नहीं होगा ।।५३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्द्ध के अनिरुद्धानयन नामक तिरसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रिषष्टितमोऽध्यायः ।।६३।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के उत्तरार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के तिरसठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।६३।।

चौसठवाँ अध्याय

नृग राजा की कथा

श्रीशुक उवाच

एकदोपवनं राजञ्जग्मुर्यदुकुमारकाः । विहर्तुं साम्बप्रद्युम्न चारुभानुगदादयः ।।१।।

अन्वयः— राजन् एकदा साम्बप्रद्युम्न चारुभानुगदादयः यदुकुमारकाः विहर्तुं उपवनं जग्मुः ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् एकदिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारुभानु और गद आदि यदुवंशी राजकुमार विहार करने के लिए उपवन में गये ।।१।।

भावार्थ दीपिका

चतुःषष्टितमे कृष्णो नृगं पापादमोचयत् । ब्रह्मस्वहारिदोषोक्त्या राज्ञो दृप्तानशिक्षयत् ।।१।। विभूतिभाग्यभोगादिमदोन्नद्धमनोरथान् । अन्वशासद्यदून्कृष्णो नृगोद्धारप्रसङ्गतः ।।२।। ।।१।।

भाव प्रकाशिका

चौसठवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने राजा नृग को पाप से मुक्त किया ब्रह्मस्वहरण जन्य दोष को बतलाकर घमण्डी राजाओं को शिक्षा प्रदान किया ।।१।। ऐश्वर्य भाग्य तथा भोग आदि से उन्मत्त तथा उत्कट मनोरथ वाले यदुवंशियों को भगवान् श्रीकृष्ण राजा नृग के उद्धार के प्रसङ्ग से शिक्षा प्रदान किए है ।।२।। ।।१।।

क्रीडित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वन्तः पिपासिताः । जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्वमद्भुतम् ।।२।।

अन्वयः— तत्र सुचिरं क्रीडित्वा पिपासिताः जलं विचिन्वन्तः निरुदके कूपे अद्भुतं सत्त्वं ददृशुः ।।२।।

अनुवाद— बहुत देर तक खेल खेलते उन लोगों को प्यास लग गयी । जल की खोज करते हुए उन लोगों ने जल रहित कूप में एक अद्भुत जीव को देखा ।।२।।

भावार्थ दीपिका

पिपासितास्तृषिता जलं विचिन्वन्तः । सत्त्वं जीवम् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

पिपासिताः अर्थात् प्यासे हुए । सत्त्वम् अर्थात् जीव को ।।२।।

कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः । तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रुस्ते कृपयान्विताः ।।३।।

अन्वयः— गिरिनिभं कृकलासं वीक्ष्य विस्मितमानसाः कृपयान्विताः ते तस्य उद्धरणे यत्नं चक्रुः ।।३।।

अनुवाद— पर्वत के समान गिरगिट को देखकर वे सब आश्चर्यचकित हो गये । उनका हृदय करुणा से भर गया और वे उसे बाहर निकालने का प्रयास करने लगे ।।३।।

भावार्थ दीपिका

तं च कृकलासं वीक्ष्य ।।३।।

भाव प्रकाशिका

उन सबों ने उस गिरगिट को देखकर ।।३।।

चर्मजैस्तान्तवैः पाशैर्बद्ध्वा पतितमर्भकाः । नाशक्नुवन्समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुकाः ।।४।।

अन्वयः— पतितं तं चर्मजैः तान्तवैः पाशैः बद्ध्वा अर्भकाः समुद्धर्तुं न अशक्नुवन् उत्सुकाः कृष्णाय आचख्युः ।।४।।

अनुवाद— कुएँ में गिर हुए उस गिरगिट को चमड़े और सूत की रस्सी में बाँधकर निकालना चाहा किन्तु वे उसको नहीं निकल सके, वे सब उत्सुकता वशात् यह बात भगवान् श्रीकृष्ण को बतलाये ।।४।।

भावार्थ दीपिका

चर्मजैश्चर्ममयैः पाशैस्तान्तवैस्तन्तुमयैश्च ।।४।।

भाव प्रकाशिका

चमड़े और तन्तु के बने रस्सियों से ।।४।।

तत्रागत्यारविन्दाक्षो भगवान्विश्वभावनः । वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण स लीलया ।।५।।

अन्वयः— विश्वभावनः अरविन्दाक्षः तत्र आगत्य वीक्ष्य सः वामेन करेण तं लीलया उज्जहार ।।५।।

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् को जीवन प्रदान करने वाले कमल नयन भगवान् वहाँ आकर उसको देखे और खेल-खेल में उसे बाएँ हाथ से पकड़कर बाहर निकाल दिए ।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५।।

स उत्तमश्लोककराभिमृष्टो विहाय सद्यः कृकलासरूपम् ।
संतप्तचामीकरचारुवर्णः स्वर्ग्यद्भुतालंकरणाम्बरस्त्रक् ॥६॥

अन्वयः— उत्तमश्लोक कराभिमृष्टः सः सद्यः कृकलासरूपम् विहाय संतप्तचामीकरचारुवर्णः अद्भुतालंकरणाम्बर स्त्रक् स्वर्गी बभूवेति शेषः ॥६॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के कर कमलों का स्पर्श होते ही वह शीघ ही गिरगिट का शरीर त्याग कर देवता हो गया । उसका शरीर संतप्त सुवर्ण के समान चमक रहा था । उसके शरीर पर अद्भुत वस्त्र, आभूषण और माला सुशोभित हो रहे थे ॥६॥

भावार्थ दीपिका

संतप्तं चामीकरं सुवर्णं तद्वद्वर्णो यस्य सः । अद्भुता अलंकाराम्बरस्त्रजो यस्य सः स्वर्गी देवो बभूवेति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

तपाये हुए सुवर्ण के समान उसका वर्ण हो गया । वह अद्भुत अलङ्कार, वस्त्र एवं माला से सुशोभित एक देवता हो गया ॥६॥

पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं जनेषु विख्यापयितुं मुकुन्दः ।
कस्त्वं महाभाग वरेण्यरूपो देवोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥७॥

अन्वयः— विद्वानपि मुकुन्दः जनेषु विख्यापयितुम् तन्निदानं पप्रच्छ हे महाभाग ! वरेण्यरूपः त्वं कः ? नूनं त्वां देवोत्तमं गणयामि ॥७॥

अनुवाद— यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण जानते थे कि इस दिव्य पुरुष को गिरगिट की योनि क्यों प्राप्त हुई फिर भी वह कारण सबों को ज्ञात हो जाय इसलिए उन्होंने उस दिव्य पुरुष से पूछा- महाभाग ! आपका रूप बहुत सुन्दर है आप कौन हैं, लगता है आप कोई श्रेष्ठ देवता हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

दशामिमां वा कतमेन कर्मणा संप्रापितोऽस्यतदर्हः सुभद्र ।
आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ॥८॥

अन्वयः— हे सुभद्र ! कतमेन कर्मणा इमां दशां प्रापितोऽसि अतदर्हः विवित्सतां नो आत्मानम् आख्याहि यत् अत्र नः वक्तुम् क्षमं मन्यसे ॥८॥

अनुवाद— हे कल्याण स्वरूप किस कर्म के कारण आपकी यह दशा हुई है । आप इसके योग्य नहीं है, हमलोग जानना चाहते हैं, आप अपना परिचय दें । यदि आप इसे बतलाना उचित समझें तो ॥८॥

भावार्थ दीपिका

यद्यदि । क्षमं योग्यम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

यत् अर्थात् यदि । क्षमम् अर्थात् उचित ॥८॥

श्रीशुक उवाच

इति स्म राजा संपृष्टः कृष्णेनानन्तमूर्तिना । माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥९॥

अन्वयः— अनन्तमूर्तिना कृष्णेन इति संपृष्टः राजा माधवं अर्कवर्चसा किरीटेन प्रणिपत्य आह ॥९॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— अनन्त मूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर राजा नृग अपने सूर्य के समान चमकते हुए किरीट से भगवान् श्रीकृष्ण को साष्टाङ्ग प्रणाम करके कहे ॥९॥

भावार्थ दीपिका नहीं है ॥९॥

नृग उवाच

नृगो नाम नरेन्द्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो । दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥१०॥

अन्वयः— हे प्रभो अहं इक्ष्वाकुतनयः नृगो नाम नरेन्द्रः आख्याय मानेषु दानिषु अहं यदि ते कर्णम् अस्पृशम् ॥१०॥

राजा नृग ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो मैं इक्ष्वाकु का पुत्र तथा नृग नामक नरेन्द्र हूँ। दानियों की गणना के प्रसङ्ग में हो सकता है आपने मेरा नाम सुना हो ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

यदि ते कर्णमस्पृशमित्यसंदेहे संदेहवचनं यदि वेदाः प्रमाणं स्युरितिवत् । कर्णपथं नूनं प्राप्तः स्यामित्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यदि ते कर्णम् स्पृशम् इस श्लोक का अर्थ है कि आपने मेरा नाम अवश्य सुना होगा । यदि संदेह की बात हो तो **यदि वेदाः प्रमाणं स्युः** इस वाक्य के समान होता है ॥१०॥

किं नु तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः । कालेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ॥११॥

अन्वयः— हे नाथ ! सर्वभूतात्म साक्षिणः, कालेन अव्याहतदृशः ते कि नु अविदितम् अथापितव आज्ञया वक्ष्ये॥११॥

अनुवाद— हे नाथ आप तो सभी जीवों की आत्मा और साक्षी हैं. काल के द्वारा आपकी दृष्टि व्याहत नहीं होती है । आप सब कुछ वर्तमान के ही समान देखते हैं । आप को कौन सी बात अज्ञात है । फिर भी आपकी आज्ञा है अतएव मैं कहता हूँ ॥११॥

भावार्थ दीपिका

किंच किं न्विति । सर्वेषां भूतानामात्मनो बुद्धेः साक्षिणस्तेऽविदितं किं नु, न किंचित् ॥११॥'

भाव प्रकाशिका

किनु० इत्यादि श्लोक से राजा नृग कहते हैं कि आप तो सभी जीवों की आत्मा और उनकी बुद्धि के साक्षी हैं । आपको तो सब कुछ ज्ञात हैं ॥११॥

यावन्त्यः सिकता भूमेर्यावन्त्यो दिवि तारकाः । यावन्त्यो वर्षधाराश्च तावतीरददं स्म गाः ॥१२॥

अन्वयः— भूमेः यावन्त्यः सिकताः दिवि यावन्त्यः तारकाः, यावन्त्यः वर्षधाराः च तावतीः गाः अददं स्म ॥१२॥

अनुवाद— हे प्रभो ! पृथिवी में जितने धूलिकण हैं, आकाश में जितने तारे हैं तथा वर्षा में जितनी धाराएँ गिरती हैं, उतनी गायों का मैंने दान किया है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूपगुणोपपन्नाः कपिला हेमशृङ्गीः ।
न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा दुकूलमालाभरणा ददावहम् ॥१३॥

अन्वयः— अहम् पयस्विनीः तरुणी शीलरूपगुणोपपन्नाः कपिलाः हेमशृङ्गीः न्यायार्जिताः सवत्सा, दुकूलमालाभरणाः ददौ ॥१३॥

अनुवाद— मैंने दुधारु, युवती, सीधी, सुन्दर सुलक्षण और कपिला गायों के सींग में सोना मढाकर जो न्यायतः मुझे प्राप्त थी, उन सबों को बछड़ों के साथ, वस्त्र माला एवं अलङ्कारों से अलंकृत करके मैंने दान किया॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

स्वलंकृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः सीदत्कुटुम्बेभ्य ऋतव्रतेभ्यः ।
तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः प्रादांयुवभ्यो द्विजपुङ्गवेभ्यः ॥१४॥

अन्वयः— स्वलंकृतेभ्यः, गुणशीलवद्भ्यः सीदत्कुटुम्बेभ्यः, ऋतव्रतेभ्यः तपः श्रुतब्रह्मवदान्य सद्भ्यः युवभ्यः द्विजपुंगवेभ्यः प्रादाम् ॥१४॥

अनुवाद— अच्छी तरह से अलंकृत शील गुण सम्पन्न जिनका परिवार कष्ट में था, जो दम्भाभरण से रहित तपस्वी, वेदपाठी तथा शिष्यों को विद्यादान देने वाले एवं सच्चरित्र युवक तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणों को गोदान दिया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

ऋतव्रतेभ्योऽदम्भाचारेभ्यः तपसा श्रुताः प्रख्यातश्च ते ब्रह्मणि वदान्या अत्युदारा अध्यापनशीलाश्च ते सन्तश्च तेभ्यः॥१४॥

भाव प्रकाशिका

ऋतव्रतेभ्यः अर्थात् दम्भाचरण नहीं करने वाले, तपस्वी वेदपाठी, तथा प्रख्यात अत्यन्त उदार एवं छात्रों को वेदाध्ययन कराने वाले ब्राह्मणों के दान दिया है ॥१४॥

गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः कन्याः सदासीस्तिलरूप्यशय्याः ।
वासांसि रत्नानि परिच्छदान्रथानिष्ट च यज्ञैश्चरितं च पूर्तम् ॥१५॥

अन्वयः— गोभूहिरण्पायतनश्वहस्तिनः सदासीः कन्याः, तिलरुप्य शय्याः वासांसि रत्नानि, परिच्छदान् रथान प्रादाम् यज्ञैः इष्टं पूर्वं च चरितम् ॥१५॥

अनुवाद— मैंने गौ, पृथिवी, सुवर्ण, गृह, घोड़े, हाथी, दासियों सहित कन्यायें तिलों के पर्वत, चाँदी शय्या, वस्त्र, रत्न, गृह सामग्री और रथ आदि दान दिया । यज्ञों को किया और कूप बावली आदि बनाया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

पूर्तं वापीकूपादि । चरितं कृतम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

पूर्तम् कुआँ बावली आदि का निर्माण कराया ॥१५॥

कस्यचिद्द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने । संपृक्ताऽविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥१६॥

अन्वयः— कस्यचिद् द्विज मुख्यस्य भ्रष्टा गौ ममगोधने सम्पृक्ता, सा च अविदुषा मया द्विजातये दत्ता ॥१६॥

अनुवाद— किसी ब्राह्मण श्रेष्ठ की भूली हुई गौ मेरी गायों में आकर मिल गयी उसको अनजान में मैंने दूसरे ब्राह्मण को दान दे दिया ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

एवं वर्तमानस्य मम संकटं किंचिदापन्नं शृण्वित्याह-कस्यचिदिति । द्विजमुख्यस्य प्रतिग्रहनिवृत्तस्य । संपृक्ता मिलिता। अविदुषा ब्राह्मणस्येयमित्यजानता ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह के मेरे ऊपर जो सङ्कट आया उसे आप सुनें । द्विज मुख्यस्य अर्थात् जिसने दान लेना त्याग दिया था । संपृक्ता अर्थात् मिल गयी । अविदुषा अर्थात् यह ब्राह्मण कीगाय है इस बात को नहीं जानने वाले ॥१६॥

तां नीयमानां तत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम् । ममेति प्रतिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ॥१७॥

अन्वयः— नीयमानां तां दृष्ट्वा तत् स्वामी तम् मम इति उवाच । मम इति प्रति ग्राह्य मे नृगः दत्तवानिति आह ॥१७॥

अनुवाद— उस गाय ले जाते हुए देखकर उस गौ का जो स्वामी था उसने कहा यह तो मेरी गाय है । इस पर ब्राह्मण ने कहा कि यह मैंने दान में पाया है । इसे मुझे नृग ने दिया है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ । भवान्दाताऽपहर्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद्भ्रमः ॥१८॥

अन्वयः— विवदमानो स्वार्थ साधकौ विप्रौ माम् ऊचतुः भवान् दाता अपहर्ता इति तत् श्रुत्वा मे भ्रमः अभवत्॥१८॥

अनुवाद— परस्पर में एक दूसरे से विवाद करने वाले अपनी बात रखने के लिए दोनों ब्राह्मण मेरे पास आकर कहे कि आपने इस गौ का दान मुझे दिया है । दूसरे ब्राह्मण ने कहा कि यदि ऐसी बात है तो आपने मेरी गाय का अपहरण कर लिया । यह सुनकर मुझे भ्रम हो गया ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिग्राहिणोक्तं-दातेति । स्वामिनोक्तमपहर्तेति । अभवद्भ्रमः, व्याकुलोऽभवमित्यर्थः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

जिसने दान लिया था उसने मुझे दाता कहा और जो उस गौ का स्वामी था उसने मुझे अपहर्ता कहा । यह सुनकर मैं व्याकुल हो गया ॥१८॥

अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै । गवां लक्ष प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम् ॥१९॥

अन्वयः— धर्मकृच्छ्रगतेन वै उभौ विप्रौ अनुनीतौ । एषा प्रदीयताम् प्रकृष्टानां गवां लक्षम् प्रदास्यामि ॥१९॥

अनुवाद— धर्म सङ्कट में पड़े हुए मैंने दोनों ब्राह्मणों से प्रार्थना की इस गौ को आप एक दूसरे को दे दें इसके बदले में मैं एक लाख श्रेष्ठ गायों को दूँगा ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तदोभावपि प्रत्येकमनुनीतौ प्रार्थितौ । कथं तदाह-गवामिति सार्धेन ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

उस समय मैंने दोनों ब्राह्मणों से प्रार्थना की । क्यों प्रार्थना की ? तो इसका उत्तर गवाम्० इत्यादि डेढ श्लोकों से दिया गया है ॥१९॥

भवन्तावनुगृह्णीतां किङ्करस्याविजानतः । समुद्धरतं मां कृच्छ्रात्पतन्तं निरयेऽशुचौ ॥२०॥

अन्वयः— अविजानतः किङ्करस्य भवन्तावनुगृह्णीताम् कृच्छ्रात् अशुचौ निरये पतन्तं मां समुद्धरतम् ॥२०॥

अनुवाद— अज्ञानवशात् मुझसे यह पाप हो गया है । आप दोनों मुझ पर कृपा करें । इस घोर अपवित्र नरक में गिरने से मुझे बचा लीजिए ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् । नान्यद्गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ ।।२१।।

अन्वयः— राजन् अहं न प्रतीच्छे इति उक्त्वा स्वामी अपाक्रमत्। गवाम् अन्यत् अयुतमपि न इच्छामि इति अपरो ययौ।।२१।।

अनुवाद— राजन् मैं इसके बदले में अब कुछ नहीं लूँगा । यह कहकर गौ का स्वामी चला गया । तुम इसके बदले में एक लाख नहीं दस हजार गायें और दो तो भी मैं नही लूँगा यह कहकर दूसरा ब्राह्मण भी चला गया ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

अपरः प्रतिग्राही । दुराग्रहो यल्लक्षं त्वयोक्तमन्यदपि गवामयुतं यदि तदपीमां विहाय नेच्छामीत्युक्त्वा गां त्यक्त्वा ययावित्यर्थः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

अपरः जिसने दान लिया था । उसका दुराग्रह था । उसने कहा एक लाख ही क्या इसके बल में दस हजार और गायें देने के लिए कहो तो भी मैं नहीं लूँगा । यह कहकर और उस गाय को छोड़कर दूसरा बाह्मण भी चला गया ।।२१।।

एतस्मिन्नन्तरे याम्यैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् । यमेन पृष्टस्तत्राहं देवदेव जगत्पते ।।२२।।

अन्वयः— हे देवदेव जगत्पते एतस्मिन्नन्तरे याम्यैः दूतैः यमक्षयमनीतः तत्राहंयमेनपृष्टः ।।२२।।

अनुवाद— हे देवाधिदेव ! हे जगत् के स्वामी ! आयु समाप्त हो जाने पर यम के दूत मुझे यमलोक ले गये । वहाँ पर यमराज ने मुझसे पूछा ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

एतस्मिन्नन्तर इति । इतः पूर्वं पापाभावान्नेतुमसमर्था इति भावः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

एतस्मिन्नन्तरे० इत्यादि श्लोक से कहा गया है कि उससे पहले मुझमें पाप का अभाव था अतएव वे मुझे ले जाने में असमर्थ थे ।।२२।।

पूर्वं त्वमशुभं भुङ्क्षे उताहो नृपते शुभम् । नान्तं दानस्य धर्मस्य पश्ये लोकस्य भास्वतः ।।२३।।

अन्वयः— हे नृपते पूर्वंत्वम् अशुभं भुङ्क्षे उताहो शुभम् । दानस्य धर्मस्य भास्वतः लोकस्य अन्तं न पश्यामि ।।२३।।

अनुवाद— हे राजन् ! पहले आप पाप का फल भोगेंगे अथवा पुण्य का फल भोगेंगे । तुम्हारे दान और धर्म के फलस्वरूप तुम्हें ऐसा तेजस्वी लोक प्राप्त होने वाला है जिसका कोई अन्त ही नहीं है ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

उताहो इत्येकं पदम् । अथवा पूर्वं शुभमिति । नान्तमिति यमस्य स्वस्य वा वाक्यम् । पश्ये पश्यामि ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

उताहो यह एक ही पद है । इसका अर्थ है अथवा पहले पुण्य का फल । नान्तम् यह यमराज का अथवा राजा की बाणी हो सकती है । पश्ये अर्थात् देखता हूँ ।।२३।।

पूर्वं देवाशुभं भुञ्ज इति प्राह पतेति सः । तावदद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन्प्रभो ॥२४॥

अन्वयः— हें देव पूर्वम् अशुभम् भुञ्जे इति । सः प्राहपत इति । तावत् पतन्तम् आत्मानं कृकलासं अद्राक्षम् ॥२४॥

अनुवाद— हे देव पहले अशुभ कर्मों का फल भोगूँगा । इस पर यमराज ने कहा । तुम गिर जाओ । गिरते समय मैंने अपना गिरगिट का शरीर देखा ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

हे देव यम, पूर्वमशुभं भुञ्ज इति मयोक्ते स यमः पतेति प्राह ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

यम पहले अशुभ का फल भोगूँगा यह कहते ही यमराज ने कहा तो फिर गिर जाओ ॥२४॥

ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव । स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्संदर्शनार्थिनः ॥२५॥

अन्वयः— हे केशव ! भवत्संदर्शनार्थिनः ब्रह्मण्यस्य, बदान्यस्य तव दासस्य स्मृतिः अद्यापि न विध्वस्ता ॥२५॥

अनुवाद— हे केशव मैं आपका दर्शन करना चाहता था, अतएव ब्राह्मणों के भक्त तथा उदार तथा आपका दास मैं हूँ । इसीलिए आज तक भी मेंरी स्मृति विनष्ट नहीं हुई है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदृशाऽमलहृद्विभाव्यः ।
साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्धबुद्धेः स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवापवर्गः ॥२६॥

अन्वयः— हे विभो सत्वं परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदिशा अमलहृदिविभाव्यः साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्धबुधेः ममअक्षिपथः कथं ? यस्य भवापवर्गः स्यान्मे अनुदृश्यः ॥२६॥

अनुवाद— हे विभो ! आप तो परमात्मा है । बड़े-बड़े योगेश्वर उपनिषदों की दृष्टि से अपने शुद्ध हृदय में आपका ध्यान करते हैं । हे अतीन्द्रिय प्रभो आप मेरी आँखों के सामने कैसे आ गये । मैं तो अनेक प्रकार के व्यसनों और दुःखद कर्मों में फँसकर अंधा हो रहा था । आपका दर्शन तो तब होता है जब जीव को संसार के चक्र से मुक्त होना होता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

दुर्घटेन श्रीकृष्णदर्शनेन विस्मितः सनात्मनो भाग्यमभिनन्दति-स त्वमिति । हे विभो, स त्वं ममाक्षिपथो लोचनगोचरः सन्कथं साक्षात्प्रत्यक्षोऽसीत्यर्थः । किमत्राश्चर्यं तदाह-पर आत्मा । अतएव योगेश्वरैरपि श्रुतिदृशा उपनिषच्चक्षुषाऽमले हृदि विभाव्यश्चिन्त्यः । यतोऽधोक्षजः । अक्षजमैन्द्रियकज्ञानं तदधोऽर्वागेव यस्मात्सः । यस्येह भवापवर्गो भवेत्तस्य भवाननुदृश्यः स्यात् । उरुव्यसनेन कृकलासभवदुःखेनान्धबुद्धेस्तु ममैतच्चित्यमित्यर्थः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

असंभव भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन से आश्चर्यित होकर अपने भाग्य की सराहना राजा नृग **सत्वम्० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । आप मेरी आँखो के सामने कैसे आ गये । यदि आप कहें कि इसमें कौन सा आश्चर्य है। तो राजा नृग कहते है आप तो परमात्मा हैं । अतएव योगेश्वर ही आपका अपने शुद्ध हृदय में चिन्तन करते हैं। क्योंकि आप अधोक्षज अर्थात् अतीन्द्रिय हैं । इन्द्रियों से होने वाला ज्ञान अक्षज है । यह ऐन्द्रियिक ज्ञान जिसकी अपेक्षा हीन कोटि का है । जिसको मुक्त होने की बेला होती है, उसको आप दर्शन देते हैं । अत्यधिक व्यसन के कारण गिरगिट होने के कारण होने वाले दुःख के कारण मैं अन्धा हो रहा था । यही मुझको आश्चर्य है ॥२६॥

देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम । नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥२७॥

अन्वयः— देवदेव जगन्नाथ हे गोविन्द हे पुरुषोत्तम, हे नारायण हे हृषीकेश, हे पुण्य श्लोक, हे अच्युत ॥२७॥

अनुवाद— हे देवताओं के भी आराध्य देव, आप जगत् के स्वामी है । आप गोविन्द शब्द से कहे जाते हैं ? क्योंकि सम्पूर्ण वेद वाक्य आपका ही वर्णन करते हैं । हे पुरुषोत्तम हे नारायण आप इन्द्रियों के नियामक होने के कारण हृषीकेश है आपका यश अत्यन्त पवित्र है । हे सदा अपने स्वरूप में स्थित प्रभो आप हमेशा निर्विकार ही बने रहते हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

उद्रिक्तभक्ति र्बहुधा संबोधयन्नाह-देवदेवेति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

भक्ति के उद्रिक्त हो जाने के कारण राजा भगवान् श्रीकृष्ण को देवदेव इत्यादि अनेक सम्बोधनों से इस श्लोक में संबोधित करते हैं ॥२७॥

अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो । यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥२८॥

अन्वयः— हे कृष्ण देवगतिं यान्तं मां अनुजानीहि । हे प्रभो यत्रक्वापि सतः मे चेतः त्वत् पदास्पदम् भूयात् ॥२८॥

अनुवाद— हे भगवन् कृष्ण मैं देवताओं के लोक में जा रहा हूँ, मुझे आप आज्ञा दें । हे प्रभो आप मुझ पर ऐसी कृपा करें कि मैं जहाँ कहीं भी रहूँ आपके चरणों में मेरा मन लगा रहे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अनुज्ञापयति-अनुजानीहीति । देवलोकेऽपि सतो वर्तमानस्यात्मनो मनसः संनिधिं प्रार्थयते । यत्र क्वापीति । त्वत्पदमास्पदं विषयो यस्य तथाभूतं भूयादिति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

अनुजानीहि० इत्यादि श्लोक से राजा नृग श्री भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि देवलोक में भी रहने पर भी मेरे मन के सन्निधान में आप बने रहें । अर्थात् मेरे मन के चिन्तन का विषय आपके चरण कमल ही बने रहें ॥२८॥

नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये । कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥२९॥

अन्वयः— सर्वभावाय, ब्रह्मणे, अनन्त शक्तये ते नमः, कृष्णाय, वासुदेवाय, योगानां पतये नमः ॥२९॥

अनुवाद— हे भगवन् सम्पूर्ण कार्यकारण रूप से आप ही विद्यमान हैं । आप परंब्रह्म है, तथा आपकी शक्ति अनन्त है । हे वासुदेव कृष्ण आप योगेश्वरों के भी स्वामी हैं । आपको मेरा बारम्बार नमस्कार है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

यास्यन्नमस्यति-नम इति । सर्वभावाय सर्वस्य भावो जन्म येन तस्मै । ब्रह्मणे कर्तृत्वेऽप्यविकाराय । कुतः । अनन्तशक्तये, अनन्ता मायाख्या शक्तिर्यस्य तस्मै । वासुदेवाय सर्वभूताश्रयायेत्युपादानत्वमुक्तम् । श्रीकृष्णाय सदानन्दरूपायेति पुरुषार्थत्वमुक्तम्। 'कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः । तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ।' इति स्मृतेः । किंच योगानामिष्टापूर्तादिकर्मणां पतय फलदात्रे । अयं भावः-एवंभूतं त्वां विहाय गन्तुमनिच्छुरपि गमिष्यामि त्वद्दत्तकर्मफलभोगायेति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

देवलोक में जाते हुए राजा नृग श्रीभगवान् को नमस्कार **नमः इत्यादि** श्लोक से करते हैं । आपसे ही समस्त पदार्थों की उत्पत्ति होती है । ब्रह्मणे कहकर श्रीभगवान् को कर्ता होने पर भी निर्विकार कहा गया है । क्योंकि श्रीभगवान्

अनन्त शक्ति सम्पन्न है । आपकी माया नामक शक्ति का कोई भी अन्त नहीं हैं । ऐसे आप को नमस्कार है । वासुदेवाय अर्थात् सभी जीवों के आश्रय स्वरूप आपको नमस्कार है । वासुदेव पद से भगवान को सम्पूर्ण जगत् का उपादान कहा गया है । कृष्णाय अर्थात् सदा आनन्द स्वरूप आपको नमस्कार है । कहा भी गया है **कृषि भूवाचकः इत्यादि** अर्थात् कृष् शब्द पृथिवी वाचक शब्द है और ण उसकी निर्वृति अर्थात् प्राप्ति का वाचक । इन दोनों का वाचक शब्द कृष्ण शब्द है । योगानां पतये कहकर राजा ने कहा कि आप इष्टापूर्त कर्मों का फल प्रदान करने वाले आपको नमस्कार है । इस प्रकार के आपको छोड़कर जाना नहीं चाहकर भी मैं आपके द्वारा प्रदत्त कर्मों का फल भोगने के लिए जा रहा हूँ ॥२९॥

इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना । अनुज्ञातो विमानाग्र्यमारुहत्पश्यतां नृणाम् ॥३०॥

अन्वयः— इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य स्वमौलिना पादौ स्पृष्ट्वा अनुज्ञातः नृणाम् पश्यताम् विमानाग्र्यम् आरुहत् ॥३०॥

अनुवाद— इस तरह से कहकर राजा नृग ने भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार किया, अपने शिर से श्रीभगवान् के चरणों का स्पर्श करके सभी लोगों के सामने ही राजा नृग श्रेष्ठ विमान पर चढ़ गये ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

कृष्णः परिजनं प्राह भगवान्देवकीसुतः । ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥३१॥

अन्वयः— ब्रह्मण्यदेवः धर्मात्मा देवकीसुत भगवान कृष्ण राजन्यान् अनुशिक्षयन् परिजनं प्राह ॥३१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् ब्राह्मणों के परम प्रिय, धर्म के आधार, माता देवकी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण क्षत्रियों को शिक्षा देते हुए अपने परिजनों से कहे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि । तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वरमानिनाम् ॥३२॥

अन्वयः— तेजीयसः भुक्तमग्नेः मनागपि ब्रह्मस्वं दुर्जरं ईश्वरमानिनाम् राज्ञाम् किमुत ?॥३२॥

अनुवाद— जो लोग अग्नि के समान तेजस्वी हैं, उन लोगों के भी लिए ब्रह्म का थोड़ा सा भी धन दुर्जर है । अर्थात् उसे वे नहीं पचा सकते हैं, तो जो राजा लोग अपने को झूठ-मूठ का ईश्वर मानते हैं वे क्या उसे पचा पायेंगे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

मनागीषदपि भुक्तं सदग्नेरग्निसदृशस्य तेजीयसोऽतितेजस्विनोऽपि दुर्जरम् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

अग्नि के समान व्यक्ति ब्राह्मण के धन को थोड़ा सा भी खाकर नहीं पचा सकते हैं ॥३२॥

नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया । ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥३३॥

अन्वयः— अहं हलाहलं विषं न मन्य यस्य प्रतिक्रिया ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तम् अस्य भुवि प्रतिविधि न ॥३३॥

अनुवाद— मैं हलाहल को विष इस लिए नहीं मानता हूँ कि उसकी चिकित्सा होती है । वस्तुतः ब्रह्मस्व ही को विष कहा गया है, क्योंकि उसकी चिकित्सा पृथिवी पर नहीं है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

हिनस्ति विषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति । कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥३४॥

अन्वयः— विषम् अत्तारं हन्ति, बह्निः अद्भिः प्रशाम्यति ब्रह्मस्वारणिपावकः समूलं कुलं दहति ॥३४॥

अनुवाद— विष खाने वाले को मारता है । अग्निजल से शान्त हो जाती है । किन्तु ब्रह्मस्वरूपी अरणि से प्रकट हुई अग्नि तो समूल वंश का ही नाश कर देती है ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

किंच विषादपि घोरमित्याह-हिनस्तीति । संसर्गि संसर्गेण मारकत्वादग्नितुल्यता स्यात्तदपि नेत्याह-वह्निरिति । अपि च समूलमिति । वह्निर्मूलान्यवशेषयति, ब्रह्मस्वलक्षणारणिजः पापावकस्तु कुलं तदपि समूलमिति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मस्व विष से भी अधिक भयङ्कर है इस बात को **विषमत्तारं इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । संसर्गि अर्थात् संबन्ध मात्र से मार देने वाला होता है, ब्रह्मस्व, अपने संसर्ग मात्र से बिनष्ट करने वाले अग्नि से भी भयङ्कर है। इस बात को बह्निरणि० इत्यादि से कहा गया है । ब्रह्मस्व तो समूल वंश का विनाश कर देता है । अग्नि भी मूल को नहीं विनष्ट करती है । ब्रह्म स्वरूपी अरणि से उत्पन्न पाप रूपी अग्नि खाने वाले के वंश का समूल विनाश कर देती है ।।३४।।

ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं हन्ति त्रिपूरुषम् । प्रसह्य तु बलाद्भुक्तं दश पूर्वान्दशापरान् ।।३५।।

अन्वयः— ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भुक्तं विषं हन्ति, प्रसह्य बलाद भुक्तं तु दश पूर्वान् दशापरान् ।।३५।।

अनुवाद— यदि ब्राह्मण की पूरी अनुमति प्राप्त किए बिना ब्राह्मण के धन को खाया जाय तो खाने वाले को उसके पुत्र तथा उसके पुत्र के पुत्र को मार देता है और यदि बल पूर्वक छीनकर ब्राह्मण की सम्पत्ति खायी जाय तो वह खाने वाले के दस पीढ़ी के पूर्वजों और बाद के दस पीढ़ियों को विनष्ट कर देता है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

दुरनुज्ञातं यथावदननुज्ञातम् । त्रिपूरुषं कुलं स्वयं पुत्रं पौत्रं च । प्रसह्य हठात् । बलाद्राजाद्याश्रयतः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

दुरनुज्ञातम् अर्थात् पूर्णरूप से सहमति प्राप्त किए बिना । त्रिपूरुषम् अर्थात् खाने वाले, उनके पुत्र तथा पुत्र के पुत्र को प्रसह्य अर्थात् बलपूर्वक राजा आदि आश्रय के द्वारा ।।३५।।

राजानो राजलक्ष्म्यान्धा नात्मपातं विचक्षते । निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधुबालिशाः ।।३६।।

अन्वयः— बालिशा राजलक्ष्म्यान्धा राजानः ब्रह्मस्वं साधु अभिमन्यन्ते ते निरयं आत्मपातं विचक्षते ।।३६।।

अनुवाद— जो अज्ञानी तथा राज लक्ष्मी के मद से मत्त राजागण ब्राह्मण की सम्पत्ति को हड़पना अच्छा मानते हैं वे अपने होने वाले नरक में पतन को नहीं देख पाते हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

ये ब्रह्मस्वमभिमन्यन्ते इच्छन्ति ते निरयमेवाभिमन्यन्ते । अतो बालिशा अज्ञा आत्मपातं न विचक्षत इति ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

जो राजागण ब्राह्मण के धन को हड़प लेना चाहते हैं, वे लोग नरक में भी जाना पसन्द करते हैं । अतएव वे अज्ञानी राजागण अपने आत्मपतन को नहीं देख पाते हैं ।।३६।।

गृह्णन्ति यावतः पांसून् क्रन्दतामश्रुबिन्दवः । विप्राणां हृतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुम्बिनाम् ।।३७।।
राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दान्निरङ्कुशाः । कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः ।।३८।।

अन्वयः— बदान्यान्यां कुटुम्बिनाम् क्रन्दताम्हतकृतीनां न विप्राणां अश्रुविन्दवा यावतः पांसून् गृह्णन्ति तावतोऽब्दान् निरङ्कुशाः राजानः राजकुल्याश्च ब्रह्मदायापहारिणः कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते ।।३७-३८।।

अनुवाद— जिन उदार हृदय और कुटुम्बी की वृत्ति छिन ली जाती है उनके रोने से पृथिवी के जितने धूलकण भिंग जाते हैं उतने वर्षों तक ब्राह्मण के धन को छिनने वाले उस उच्छृंखल राजा को और उसके वंशजों को कुम्भीपाक नामक नरक में कष्ट भोगना पड़ जाता है ।।३७-३८।।

भावार्थ दीपिका

अपि च गृह्णन्तीति ।।३७-३८।।

भाव प्रकाशिका

स्वीकार भी करते हैं ।।३७-३८।।

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः । षष्टिर्वर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ।।३९।।

अन्वयः— यः स्वदत्तां पर दत्तां वा ब्रह्मवृत्ति हरेत् षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां कृमिः जायते ।।३९।।

अनुवाद— जो मनुष्य अपने से दी गयी अथवा दूसरों द्वारा दी गयी ब्राह्मण की जीविका के साधन को छिन लेता है, वह एक हजार वर्षों तक विष्ठा का कीड़ा होता है ।।३९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३९।।

न मे ब्रह्मधनं भूयाद्यद्गृद्ध्वाऽल्पायुषो नराः । पराजिताश्च्युता राज्याद्भवन्त्युद्वेजिनोऽहयः ।।४०।।

अन्वयः— मे ब्रह्मधनं न भूयात् यद् गृद्ध्वा नराः अल्पायुषाः राज्यात् पराजिताः च्युताः उद्वेजिनः अहयः भवन्ति।।४०।।

अनुवाद— मैं तो चाहता हूँ कि मुझे ब्राह्मण का धन न मिले, क्योंकि ब्राह्मण के धन की लालच करने वाले अल्पायु हो जाते हैं । दूसरे राजाओं से पराजित हो जाते है और वे राज्य भ्रष्ट हो जाते हैं और मरने के बाद वे दुख देने वाले साँप हो जाते हैं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

गृद्ध्वा अभिकाङ्क्ष्य ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

गृद्ध्वा अर्थात् लालच करके ।।४०।।

विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः । घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ।।४१।।

अन्वयः— हे मामकाः कृतागसम् अपि विप्रं नैव द्रुह्यत । घ्नन्तं, बहु शपन्तं वा नित्यशः नमस्कुरुत ।।४१।।

अनुवाद— हे मेरे आत्मीयों अपराधी भी ब्राह्मण से द्वेष न करो । यदि वह मार भी दे या बहुत अधिक गालियाँ भी दे तो भी सदा नमस्कार ही करो ।।४१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४१।।

यथाहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः । तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दण्डभाक् ।।४२।।

अन्वयः— यथा अहं समाहितः अनुकालं विप्रान् प्रणमे तथा च यूयं नमत यः अन्यथा स मे दण्डभाक् ।।४२।।

अनुवाद— जैसे मैं सावधानी पूर्वक सर्वदा ब्राह्मणों को नमस्कार करता हूँ उसी तरह तुम लोग भी ब्राह्मणों को नमस्कार करो जो मेरी आज्ञा का उल्लंघन करेगा उसे मैं दण्ड दूँगा ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

प्रणमे नमामि ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

प्रणमे अर्थात् नमस्कार करता हूँ ॥४२॥

ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः । अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥४३॥

अन्वयः— अपहृतः ब्राह्मणार्थः अजानन्तमपि हर्तारं अधः पातयति एनं हि नृंग ब्राह्मण गौरिव ॥४३॥

अनुवाद— यदि ब्राह्मण का धन चोरी हो जाय तो अनजान में भी उस धन को चुराने वाले का नरक में पतन हो जाता है, जैसे इस राजा नृग को ब्राह्मण की गौ के कारण नरक में जाना पड़ा ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

न केवलमर्थवादबिभीषिकेयं किंतु प्रत्यक्षमित्याह-ब्राह्मणार्थ इति ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

यह केवल अर्थवाद अथवा भय मैं नहीं पैदा कर रहा हूँ अपितु यह प्रत्यक्ष है । इस बात को भगवान् ने **ब्राह्मणार्थः इत्यादि** श्लोक से कहा है ॥४३॥

एवं विश्राव्य भगवान्मुकुन्दो द्वारकौकसः । पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे नृगोपाख्यानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

अन्वयः— सर्वलोकानां पावनः भगवान् मुकुन्द एवं व्रजौकसः विश्राव्य निज मन्दिरम् विवेश ॥४४॥

अनुवाद— सम्पूर्ण लोकों को पवित्र करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका वासियों को इस तरह से उपदेश देकर अपने महल में चले गये ॥४४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के नृगोपाख्यान नामक चौसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के चौसठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥६४॥

पैंसठवाँ अध्याय

श्रीबलरामजी का व्रजगमन

श्रीशुक उवाच

बलभद्रः कुरुश्रेष्ठः भगवान्रथमास्थितः । सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ।।१।।

अन्वयः— हे कुरुश्रेष्ठ, भगवान् बलभद्र रथमाश्रितः सुहृददिदृक्षुः उत्कण्ठः नन्दगोकुलम् प्रययौ ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे परीक्षित् ! भगवान् बलरामजी रथ पर बैठकर अपने हितैषियों नन्दजी आदि को देखने की इच्छा और उत्कण्ठा से नन्दजी के गोकुल में गये ।।१।।

भावार्थ दीपिका

पञ्चषष्टितमे रामाश्चक्रे गोकुलमागतः । रममाणस्तु गोपीभिः कालिन्द्याः कर्षणं मदात् ।।१।। रामस्य चरितं चित्रं कालिन्द्याकर्षणादि यत् । पौण्ड्रकान्तादि कृष्णस्य पृथगुक्तमतः परम् ।।२।।।।१।।

भाव प्रकाशिका

पैसठवें अध्याय में बलरामजी गोकुल गये । गोपियों के साथ विहार करते हुये वे यमुनाजी को मदमत्त होकर घसीटे ।।१।। बलरामजी का यह जो यमुना जी के कर्षण सम्बन्धी अद्भुत चरित है उसके पश्चात् पौण्ड्रक वध आदि को गया है ।।२।। ।।१।।

परिष्वक्तश्चिरोत्कण्ठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च । रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनन्दितः ।।२।।

अन्वयः— चिरोत्कण्ठितैः गोपैः गोपीभिः एव च परिष्वक्तः रामः पितरौ अभिवाद्य अशीर्भिः अभिनन्दितः ।।२।।

अनुवाद— दीर्घकाल से उत्कण्ठित गोपों तथा गोपियों के द्वारा आलिङ्गित बलरामजी माता यशोदा और नन्दजी को प्रणाम करके उनके आशीर्वचनों से अभिनन्दित हुए ।।२।।

भावार्थ दीपिका

आशीर्भिरभिनन्दितो बभूव ।।२।।

भाव प्रकाशिका

आशीर्वचनों से अभिनन्दित हुए ।।२।।

चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजो जगदीश्वरः । इत्यारोप्याङ्कमालिङ्ग्य नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः ।।३।।

अन्वयः— हे दाशार्ह ! सानुजः जगदीश्वरः चिरं नः पाहि इति अङ्कम् आरोप्य, आलिङ्ग्य नेत्रैः जलै सिषिचतुः ।।३।।

अनुवाद— हे दाशार्ह बलरामजी आप अपने छोटे भाई श्रीकृष्ण के साथ जगत् स्वामी हो । हम सबों की दीर्घ काल तक आप दोनों रक्षा करें, इस तरह से कहकर नन्द बाबा और यशोदाजी ने बलरामजी को अपनी गोद में बैठाकर हृदय से लगा लिया और उनको अपनी आँसुओं के जल से सींच दिया ।।३।।

भावार्थ दीपिका

गोपवृद्धांश्च विधिवद्यविष्ठैरभिवन्दितः । यथावयो यथासख्यं यथासंबन्धमात्मनः ॥४॥

अन्वयः— गोपवृद्धान् च विधिवत् अभिवन्द्य यविष्ठैः अभिवन्दितः यथा वयः यथा सख्यं आत्मनः यथा सम्बन्धः॥४॥

अनुवाद— बलरामजी वृद्ध गोपों को विधि पूर्वक प्रणाम करके अपने से छोटे गोपों द्वारा अभिवन्दित हुए। बलरामजी सबों से अवस्था के अनुसार तथा मित्रता के अनुसार सबों से मिले ॥४॥

भावार्थ दीपिका

गोपवृद्धांश्च विधिवदभिवन्द्य यविष्ठैरभिवन्दितो बभूवेत्यर्थः । अपि च यथावय इति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

बलरामजी अपने से वृद्ध गोपों को सविधि प्रणाम करके अपने से कम अवस्था वाले गोपों से अभिवन्दित हुए । वे सबों से अवस्था एवं मित्रता के अनुसार मिले भी ॥४॥

समुपेत्याथ गोपालान्हास्यहस्तग्रहादिभिः । विश्रान्तं सुखमासीनं पप्रच्छुः पर्युपागताः ॥५॥

अन्वयः— अथगोपालान् समुपेत्य हास्यहस्तग्रहादिभिः विश्रान्तं सुखमासीनम् पर्युपागताः पप्रच्छुः ॥५॥

अनुवाद— इसके पश्चात् ग्वालों से मिलकर किसी के साथ हँसे, तो किसी से हाथ मिलाये । इसके पश्चात् विश्राम करके सुख पूर्वक बैठे हुए बलरामजी के पास आकर गोपों ने पूछा ॥५॥

भावार्थ दीपिका

ते सर्वे स्वेषु यादवेषु तं राममनामयमारोग्यं पप्रच्छुः । ते च तेन पृष्टा इति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

वे सभी अपने सभी यदुवंशीयों को समाचार पूछे बलरामजी ने भी सबों का कुलश प्रश्न पूछा ॥५॥

पृष्टाश्चानामयं स्वेषु प्रेमगद्गदया गिरा । कृष्णे कमलपत्राक्षे संन्यस्ताखिलराधसः ॥६॥

अन्वयः— प्रेमगद्गदयागिरा स्वेषु अनामयं पृष्टाः कमलपत्राक्षे कृष्णे संन्यस्ता खिलराधसः ॥६॥

अनुवाद— प्रेम भरी वाणी से अपने वसुदेवजी आदि के विषय में कुशल प्रश्न आदि पूछ लिए जाने के पश्चात् जिन सबों भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए अपने समस्त भोगों का परित्याग कर दिया था उन गोपों ने पूछा ॥६॥

भावार्थ दीपिका

कृष्णे कृष्णप्राप्त्यर्थं संन्यस्ताखिलराधसस्त्यक्तसर्वविषयाः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए जिन सबों ने समस्त विषयों का परित्याग कर दिया था ॥६॥

कच्चिन्नो बान्धवा राम सर्वे कुशलमासते । कच्चित्स्मरथ नो राम यूयं दारसुतान्विताः ॥७॥

अन्वयः— हे राम ! कच्चित नः सर्वे बान्धवाः कुशलम् आसते, कच्चित् दारसुतान्विताः यूयं नः स्मरथ ॥७॥

अनुवाद— हे बलरामजी ! हमारे वसुदेवजी हमारे सभी बन्धुजन सकुशल हैं न ? अब तो आप लोग पत्नी पुत्र वाले हो गये हैं, क्या आपलोग हमलोगों को कभी याद करते हैं ?॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

दिष्ट्या कंसो हतः पापा दिष्ट्या मुक्ताः सुहृज्जनाः । निहत्य निर्जित्य रिपून्दिष्ट्या दुर्गं समाश्रिताः॥८॥

अन्वयः— दिष्ट्या पापः कंसः हतः दिष्ट्या सुहृज्जनाः मुक्ताः रिपून् निर्जित्य निहत्य दिष्ट्या दुर्गं समाश्रिताः ॥८॥

अनुवाद— यह सौभाग्य की बात है कि पापी कंस मारा गया आपलोगों ने हमारे संबन्धियों को कष्ट से मुक्त कर दिया। शत्रुओं को जीतकर तथा मारकर सौभाग्यवशात् आपलोग दुर्ग में निवास करते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

गोप्यो हसन्त्यः पप्रच्छू रामसंदर्शनादृताः । कच्चिदास्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्रीजनवल्लभः ॥९॥

अन्वयः— रामसंदर्शनादृताः गोप्यः हसन्त्यः पप्रच्छुः पुरस्त्रीजनबल्लभः कृष्णः कच्चित् सुखम् आस्ते ॥९॥

अनुवाद— बलरामजी को देखकर प्रसन्न हुई गोपियाँ हँसती हुई पूछीं बलरामजी ! नगर की नारियों के प्रियतम श्रीकृष्ण सुख पूर्वक हैं न ॥९॥

भावार्थ दीपिका

रामस्य संदर्शनेनादृताः सादराः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

बलरामजी को देखकर प्रसन्न हुई गोपियों ने ॥९॥

कच्चित्स्मरति वा बन्धून्पितरं मातरं च सः । (अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ॥)
अपि वा स्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥१०॥

अन्वयः— मातरं पितरं बन्धून् वा सः स्मरति । अपिअसौ मातरं द्रष्टुं सकृत् अपि आगमिष्यति । अपिवा महाभुजः अस्माकम् अनुसेवां स्मरते ॥१०॥

अनुवाद— क्या श्रीकृष्ण अपने माता-पिता का बान्धवों को कभी याद करते हैं ? क्या वे अपनी माता को देखने के लिए एक बार भी यहाँ आयेगें क्या वे महाभुज ! हमलोगों के द्वारा की गयी सेवा को कभी याद करते हैं?॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

मातरं पितरं भ्रातॄन्पतीन्पुत्रान्स्वसॄरपि । यदर्थे जहिम दाशार्ह दुस्त्यजान्स्वजनान्प्रभो ॥११॥

अन्वयः— हे दाशार्हप्रभो ! यदर्थे मातरं, पितरं भ्रातॄन् पतीन् पुत्रान् स्वसॄः अपि दुस्त्यजान् जहिमः ॥११॥

अनुवाद— हे बलरामजी जिन श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए हमलोगों ने माता-पिता, भाई, पति, पुत्र तथा बहनों को त्याग दिया, जिन सबों को छोड़ना बड़ा ही कठिन है ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

ता नः सद्यः परित्यज्य गतः संछिन्नसौहृदः । कथं नु तादृशं स्त्रीभिर्न श्रद्धीयेत भाषितम् ॥१२॥

अन्वयः— ताः नः सद्य परित्यज्य संछिन्नसौहृदः गतः । कथं नु तादृशं भाषितम् स्त्रीभिः न श्रद्धीयेत ॥१२॥

अनुवाद— इस प्रकार की हमलोगों को छोड़कर तथा प्रेम के बन्धन को तोड़कर श्रीकृष्ण चले गये । उनकी मीठी-मीठी बातों पर कौन स्त्री होगी जो विश्वास न करे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि तद्गमने युष्माभिः प्रतिबन्धः किं न कृतः, तद्वाक्यविश्वासादिति चेत्,-ननु विश्वासः किमिति कृतस्तत्राहुः-कथं न्विति । वक्तृबहुत्वान्नानाविधानि वाक्यानि ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि तुमलोगों ने उनको क्यों नहीं रोका, यदि आप पूछें कि विश्वास क्यों किया ? इस पर गोपियों ने कहा-वे बहुत प्रकार की मिठी बातें करते हैं, अतएव उन पर विश्वास हो ही जाता है ॥१२॥

कथं तु गृह्णन्त्यनवस्थितात्मनो वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः ।
गृह्णन्ति वै चित्रकथस्य सुन्दरस्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥१३॥

अन्वयः— अनवस्थितात्मनः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियःवचः कथं नु गृह्णन्ति, चित्रकथस्य सुन्दरस्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः वै गृह्णन्ति ॥१३॥

अनुवाद— बलरामजी चञ्चल चित्त वाले तथा कृतघ्न श्रीकृष्ण की बातों को नगर की विज्ञ नारियाँ कैसे स्वीकार कर लेती है ? दूसरी गोपी ने कहा श्रीकृष्ण अत्यन्त अद्भुत बातें करते हैं उनकी सुन्दर मुस्कुराहट और प्रेमपूर्ण देखने की कला से नगर की नारियाँ भी प्रेमावेश से व्याकुल होकर उनकी बातों को स्वीकार कर लेती होंगी ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

तत्रान्या ऊचुः-कथं नु गृह्णन्तीति । अन्या ऊचुः-गृह्णन्ति वा इति । चित्रकथस्य चित्रकथाकथनकोविदस्य । किंच सुन्दरं स्मितं यस्मिंस्तेनावलोकनेनोच्छ्वसितः क्षुभितो यः स्मरस्तेनातुराः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

कुछ गोपियों ने बलरामजी से पूछा कि नगर की नारियाँ तो चतुर होती है, वे श्रीकृष्ण की बातों को क्यों स्वीकार कर लेती हैं । दूसरी गोपियों ने कहा । श्रीकृष्ण रङ्ग-विरङ्गी बातों को करने में निपुण है । उनकी सुन्दर मुस्कान और प्रेम पूर्ण नेत्रों से देखने की मोहक कला से कामार्त होकर उनकी बातों में फँस जाती होंगी नगर नारियाँ भी ॥१३॥

किं नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयतापराः । यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः॥१४॥

अन्वयः— गोप्यः तत् कथया नः किम् अपराः कथाः कथयत । यदिअस्माभिः विनातस्य कालो याति तथैव नः॥१४॥

अनुवाद— किसी गोपी ने कहा हे गोपियों उनके विषय में बाते करने से कौन सा लाभ है ? यदि उनका हमलोगों के बिना समय बीत जाता है तो उसी तरह से हमलोगों का भी उनके बिना समय बीत ही जाता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अन्या ऊचुः-किं न इति । कालस्तावत्तस्य चास्माकं च यात्येव, किंतु तस्य सुखेन, अस्माकं तु दुःखेनेत्ये तावानेव विशेष इति ध्वनितम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

कुछ गोपियों ने कहा कि हे गोपियों श्रीकृष्ण के विषय में बाते करने से कौन सा लाभ है ? उनके बिना हमलोगों का भी समय बीत ही जाता है । अन्तर इतना ही है उनका समय सुख से वितता है और हमलोगों का समय दुःख से बीतता है ॥१४॥

इति प्रहसितं शौरेर्जल्पितं चारु वीक्षितम् । गतिं प्रेमपरिष्वङ्गं स्मरन्त्यो रुरुदुः स्त्रियः ॥१५॥

अन्वयः— इति शौरेः प्रहसितं जल्पितं, चारुवीक्षितं, गतिं, प्रेमपरिष्वङ्गं स्मरन्त्यः स्त्रियः रुरुदुः ॥१५॥

अनुवाद— इस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण की मधुर मुस्कान, उनकी मीठी-मीठी बातें देखने की मनोहर कला, उनकी चाल तथा उनके द्वारा किए गये प्रेमालिङ्गन का स्मरण करती हुई रोने लग गयीं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

सङ्कर्षणस्ताः कृष्णस्य संदेशैर्हृदयंगमैः । सान्त्वयामास भगवान्नानानुनयकोविदः ॥१६॥

अन्वयः— नानानुनय कोविदः भगवान् सङ्कर्षणः ताः कृष्णस्य हृदयंगमै संदेशैः सान्त्वयामासः ॥१६॥

अनुवाद— भगवान् बलरामजी अनुनय विनय करने में चतुर थे वे भगवान् श्रीकृष्ण की हृदय स्पर्शी संदेशों को सुनाकर गोपियों को सान्त्वना प्रदान किए ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

नानाविधेष्वनुनयेषु कोविदः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

अनेक प्रकार से अनुनय विनय करने में निपुण ॥१६॥

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च । रामः क्षपासु भगवान्गोपीनां रतिमावहन् ॥१७॥

अन्वयः— तत्र च दौ मासौ मधुं माधवमेव च, भगवान् रामः क्षपासु रतिमावहन् अवात्सीत् ॥१७॥

अनुवाद— वहाँ (व्रज में) बलरामजी वसन्त ऋतु के दो महिनों तक व्रज में ही निवास किए । वे रात्रि के समय गोपियों के प्रेम की अभिवृद्धि किया करते थे ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

मधुं चैत्रम्। माधवं वैशाखम् । गोपीनां रतिमिति श्रीकृष्णक्रीडासमयेऽनुत्पन्नानामतिबालानामन्यासामित्यभियुक्तप्रसिद्धिः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

मधुम् अर्थात् चैत्र तथा माधव अर्थात् वैशाख । प्रामाणिक पुरुषों का कहना है कि भगवान् श्रीकृष्ण की क्रीडा के समय जिनका जन्म नहीं हुआ था जो अत्यन्त छोटी अवस्था की थी उन गोपियों के प्रेम की अभिवृद्धि करते थे ॥१७॥

पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगन्धवायुना । यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥१८॥

अन्वयः— पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगन्धवायुना सेविते यमुनोपवने स्त्रीगणैः वृतः रेमे ॥१८॥

अनुवाद— पूर्ण चन्द्रमा की चाँदनी चारो ओर छिटककर जब यमुनाजी के तट को धवल बना देती थी, तथा कुमुदिनी की सुगन्ध लेकर मन्दगति से चलने वाली वायु चलती रहती थी उस समय गोपियों के समूह के साथ बलरामजी यमुनाजी के उपवन में विहार करते थे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

पूर्णचन्द्रस्य कलाभिर्मरीचिभिरामृष्टे उज्ज्वले । कौमुदीगन्धवायुना कुमुद्वतीनां गन्धवातेन सेविते । यद्वा कौमुदीशब्देन तद्विकासितानि कुमुदानि लक्ष्यन्ते । कुमुदगन्धवातेनेत्यर्थः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

पूर्णचन्द्रमा की चाँदनी से धवल बने हुए तथा विकसित कुमुदिनी की सुगन्धि से संभिन्न वायु से सेवित अथवा कौमुदी शब्द के द्वारा चाँदनी के कारण विकसित कुमुदिनी को लक्षित किया गया है अर्थात् कुमुद की सुगन्धि से सुगन्धित वायु के द्वारा ॥१८॥

वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात् । पतन्ती तद्वनं सर्वं स्वगन्धेनाध्यवासयत् ॥१९॥

अन्वयः— वरुणप्रेषिता वारुणी देवी वृक्षकोटरात् पतन्ती तत् सर्वं वनं स्वगन्धेन अध्यवासयत् ॥१९॥

अनुवाद— वरुण देवता ने अपनी पुत्री वारुणी देवी को वहाँ प्रेषित कर दिया वे वृक्ष के एक कोटर से निकली और अपनी सुगन्धि से उन्होंने सम्पूर्ण वन को सुगन्धित कर दिया ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

वारुणी सुधया सहोत्पन्ना मदिरा ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

अमृत मन्थन के समय अमृत के साथ जो उत्पन्न हुई थी उस वारुणी देवी को ।।१९।।

तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः । आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ।।२०।।

अन्वयः— मधुधारायाः वायुनोपहृतं तं गन्धम् आघ्राय ललनाभिः समं तत्र आघ्रायोपगतः पपौ ।।२०।।

अनुवाद— वायु के माध्यम से लायी गयी उस मधु की धारा की सुगन्धि का आघ्राण न करके श्रीबलरामजी स्त्रियों के साथ जाकर उसका पान किए ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः । वनेषु व्यचरत्क्षीबो मदविह्वललोचनः ।।२१।।

अन्वयः— वनिताभि; उपगीयमानचरितः मदविह्वललोचनः क्षीवः हलायुधः वनेषु व्यचरत् ।।२१।।

अनुवाद— उस समय गोपियाँ बलरामजी के चरित का गान कर रही थी और बलरामजी मतवाले होकर वन में विचरण कर रहे थे । मद के कारण उनके नेत्र लाल-लाल हो गये थे । और वे विह्वल हो गये थे ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

क्षीबो मत्तः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

क्षीब अर्थात् मदमत्त ।।२१।।

स्रग्व्येककुण्डलो मत्तो वैजयन्त्या च मालया । बिभ्रत्स्मितमुखाम्भोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ।।२२।।

अन्वयः— स्रग्वी एक कुण्डलः मत्तः वैजयन्त्या मालया च स्वेदप्रालेय भूषितं मुखाम्भोजं च विभ्रत् ।।२२।।

अनुवाद— बलरामजी माला धारण किए हुए थे । उनके एक कान में कुण्डल सुशोभित हो रहा था । मुख पर मुस्कुराहट की शोभा थी और उस पर पसीने की बूंदे हिमकण के समान सुशोभित हो रही थीं ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

स्वेद एव प्रालेयं हिमं तेन भूषितम् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

पसीने की बूंद रूपी ओस कण से उनका मुख कमल सुशोभित हो रहा था ।।२२।।

स आजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः । निजं वाक्यमनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः ।।
अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह ।।२३।।

अन्वयः— स ईश्वर, जल क्रीडार्थं यमुनाम् आजुहाव मत्तः इति निजं वाक्यम् अनादृत्य अनागताम् अपगां बलः कुपितः हलाग्रेण विचकर्ष ।।२३।।

अनुवाद— सर्वशक्तिमान बलरामजी ने यमुनाजी को जलक्रीड़ा के लिए आहूत किया, उस समय यमुनाजी ने यह सोचकर उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया वे मदमत्त है इससे क्रुद्ध होकर बलरामजी उनको नहीं आयी हुई नदी देखकर अपने हल के अग्रभाग से घसीटा ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

मत्तोऽयमित्यनादृत्यानागतामापगां नदीम् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

इस समय तो ये मदमत्त हो गये है अतएव उनकी आज्ञा का उल्लंघन करके नहीं आने पर नदी को ।।२३।।

पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मयाऽऽहुता । नेष्ये त्वां लाङ्गलागेण शतधा कामचारिणीम् ।।२४।।

अन्वयः— हे पापे मया आहूता त्वं यत् माम् अवज्ञाय न आयासि कामचारिणीम् त्वां हलाग्रेण शतधानेष्ये ।।२४।।

अनुवाद— बलरामजी ने कहा पापिनी यमुने ! मेरे बुलाने पर भी तुम मेरा तिरस्कार करके यहाँ नहीं आयी अतएव स्वेच्छाचरण करने वाली तुमको मैं इस हल के अग्रभाग से सैकड़ों टुकड़े कर दूँगा ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

आहुता आहूता यद्यस्मान्नागच्छसि तस्मात् । नेष्ये गमयिष्यामि ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

आहुता का वास्तविक रूप आहूता है । चूकि तुम नहीं आ रही हो अतएव हल के अग्रभाग से मैं बुलाऊँगा।।२४।।

एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनन्दनम् । उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप ।।२५।।

अन्वयः— हे नृप ! एवं निर्भर्त्सिता भीता चकिता यमुना यदुनंदनम् वाचम् उवाच पादयोः पतिता च ।।२५।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् इस प्रकार से डाँटे जाने पर भयभीत तथा आश्चर्यचकित यमुना नदी बलरामजी के चरणों पर गिरकर कहीं ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

चकिता कम्पिता ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

चकिता अर्थात् काँपती हुई ।।२५।।

राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् । यस्येकांशेन विधृता जगती जगतः पते ।।२६।।

अन्वयः— हे महाबाहो राम ! राम ! तव विक्रमं न जाने हे जगतः पते यस्य एकांशेन जगती विधृता ।।२६।।

अनुवाद— हे महाबाहो बलरामजी मैं आपके पराक्रम को नहीं जानती हूँ, आप जगत् के स्वामी है । आपके अंश मात्र शेषजी के शिर पर यह पृथिवी टिकी हुई है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

एकांशेन शेषाख्येन ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

आपके शेष नामक अंश के द्वारा ।।२६।।

परं भावं भगवतो भगवन्मामजानतीम् । मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन्प्रपन्नां भक्तवत्सल ।।२७।।

अन्वयः— हे भगवन् भगवतः परं भावम् अजानतीम् हे भक्तवत्सल प्रपन्नां माम् हे विश्वात्मन् मोक्तुम् अर्हसि ।।२७।।

अनुवाद— हे भगवन् मैं आपके परम भाव को नहीं जानती थी अतएव मुझसे यह अपराध हुआ है । हे भक्त वत्सल आप तो सम्पूर्ण जगत् की आत्मा है । मैं आपकी शरणागता हूँ, मुझे आप क्षमा कर दें ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

ततो व्यमुञ्चद्यमुनां याचितो भगवान्बलः । विजगाह जलं स्त्रीभि; करेणुभिरिवेभराट् ॥२८॥

अन्वयः— ततः याचितो भगवान बलः यमुनां व्यमुञ्चत् करेणुभिः इभराट् इव स्त्रीभिः जलं विजगाहे ॥२८॥

अनुवाद— इस तरह से प्रार्थना किए जाने पर भगवान् बलरामजी यमुनां नदी को छोड़ दिए । जिस तरह से गजराज अपनी करेणुओं के साथ जलक्रीडा करता है, उसी तरह यमुना जल में स्त्रियों के साथ जल क्रीड़ा किए॥२८॥

भावार्थ दीपिका

विजगाह अवगाहनं कृतवान् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

विजगाहे अर्थात् स्नान किए ॥२८॥

कामं विहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासिताम्बरे । भूषणानि महार्हाणि ददौ कान्तिः शुभां स्रजम् ॥२९॥

अन्वयः— कामं विहृत्य सलिलादुत्तीर्णाय कान्तिः असिताम्बरे, महार्हाणि भूषणानि, शुभां स्रजं ददौ ॥२९॥

अनुवाद— अपनी इच्छा भर जल विहार करके बाहर निकले हुए बलरामजी को लक्ष्मीजी ने दो नीले वस्त्रों, बहुमूल्य आभूषणों तथा मनोहर माला प्रदान किया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

उत्तीर्णाय निर्गतायासिताम्बरादीनि कान्तिर्ददौ । कान्तिर्लक्ष्मीः । यथोक्तं वैष्णवे-'वरुणप्रहिता चास्मै मालामम्लानपङ्कजाम्। समुद्राभे तथा वस्त्रे नीले लक्ष्मीरयच्छत ॥' इति । हरिवंशे च बलं प्रति लक्ष्मीवाक्यम्' 'जातरूपमयं चैकं कुण्डलं वज्रभूषणम्। आदिपद्मं च पद्माख्यं दिव्यं श्रवणभूषणम् । देवेमां प्रतिगृह्णीष्व पौराणीं भूषणक्रियाम् ।' इत्यादि ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

विहार करके निकले हुए बलरामजी को कान्ति (लक्ष्मीजी) ने नीले वस्त्र आदि दिया । कान्ति शब्द से यहाँ लक्ष्मीजी को कहा गया है । जैसा कि विष्णु पुराण में कहा गया है । वारुणी देवी से प्रेषित लक्ष्मीजी ने बलरामजी को कभी नहीं कुम्हलाने वाले कमलों की माला नीले रङ्ग के दो वस्त्र प्रदान किया । हरिवंश पुराण में बलरामजी के प्रति लक्ष्मीजी के वाक्य इस तरह हैं- सुवर्णमय यह एक कुण्डल निर्मित है । ये दिव्य आदि पद्म और पद्म नामक कान का दिव्य भूषण है । हे देव आप इस पुराणोक्त भूषण को धारण करें ॥२९॥

वसित्वा वाससी नीले मालामामुच्य काञ्चनीम् । रेजे स्वलंकृतो लिप्तो माहेन्द्र इव वारणः ॥३०॥

अन्वयः— नीले वाससी वसित्वा काञ्चनीं मालां च आमुच्य स्वलंकृतः लिप्तः माहेन्द्रः वारण इव रेजे ॥३०॥

अनुवाद— बलरामजी दोनों नीले वस्त्रों को धारण करके तथा सुवर्ण की माला को धारण करके चन्दन आदि का लेप लगाकर तथा अच्छी तरह से अलंकृत बलरामजी इन्द्र के ऐरावत हाथी के समान सुशोभित हुए ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

वसित्वा परिधाय । आमुच्य कण्ठे निधाय । चन्दनादिभिरालिप्तः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

वसित्वा अर्थात् पहिन कर, आमुच्य अर्थात् गले में धारण करके । चन्दन आदिका लेप लगाकर ॥३०॥

अद्यापि दृश्यते राजन् यमुनाकृष्टवर्त्मना । बलस्यानन्तवीर्यस्य वीर्यं सूचयतीव हि ॥३१॥

अन्वयः— अद्यापि यमुना आकृष्टवर्त्मना दृश्यते । अनन्तवीर्यस्यबलस्य वीर्यं सूचयति इव ॥३१॥

अनुवाद— परीक्षित् आज भी यमुनाजी बलरामजी द्वारा घसीटे मार्ग से बहती हैं। वे अनन्त पराक्रम सम्पन्न बलरामजी के पराक्रम को मनो सूचित करती हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे। रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥३२॥

इति श्रीमाद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे यमुनाकर्षणं नाम पञ्चषष्ठितमोअध्यायः ॥६५॥

अन्वयः— व्रज योषिताम् माधुर्यैः आक्षिप्तचित्तस्य रामस्य व्रजे एवं रमतः सर्वा निशा एकेव याता ॥३२॥

अनुवाद— गोपियों के माधुर्य से बलरामजी का चित्त इतना आकृष्ट हो गया था कि उनको समय का पता ही नही चला। सारी रात्रियाँ उनको एक रात्रि के समान बीत गयीं इस प्रकार बलराम की व्रज में विहार करते रहे ॥३२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के यमुनाकर्षण नामक पैसठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६५॥

भावार्थ दीपिका

एकेव एकैव निशा यथा तथा। माधुर्यैर्विलासैः ॥३२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

भाव प्रकाशिका

एकेवके बदले में एकैव होना चाहिए एक रात्रि के समान माधुर्यैः विलासों द्वारा ॥३२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के पैंसठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥६५॥

* * *

छियासठवाँ अध्याय

पौण्ड्रक एवं काशिराज का वध

श्रीशुक उवाच

नन्दव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप । वासुदवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ।।१।।

अन्वयः— हे नृप रामे व्रजं गते करूषाधिपतिः अज्ञो वासुदेवः अहम् इति कृष्णाय दूतं प्राहिणोत् ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् जब बलरामजी व्रज में चले गये थे उस समय करूष देश का स्वामी अज्ञानी पौण्ड्रक ने भगवान् श्रीकृष्ण के पास यह कहकर दूत भेजा कि मैं वासुदेव हूँ ।।१।।

भावार्थ दीपिका

षट्षष्ठितमे' काशीं गत्वाऽहन् पौण्ड्रकं हरिः । तन्मित्रं च ततो वृत्तं सुदक्षिणवधादिकम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

छियासठवें अध्याय में श्रीहरि काशी जाकर पौण्ड्रक का वध किए पौण्ड्रक के मित्र वृत्त तथा सुदक्षिण आदि के वध का भी काम उन्होंने किया ।।१।।

त्वं वासुदेवो भगवानवतीर्णो जगत्पतिः । इति प्रस्तोभितो बालैर्मेन आत्मानमच्युतम् ॥२॥

अन्वयः— बालैः त्वंवासुदेवः भगवान् अवतीर्णः जगत् पतिः इति प्रस्तोभितः आत्मानम् अच्युतं मेने ॥२॥

अनुवाद— मूर्ख लोग उसको कहा करते थे कि आप ही भगवान् वासुदेव हैं और आप जगत् के स्वामी के रूप में अवतीर्ण हुए हैं । इस तरह से बहकाये जाने के कारण वह मूर्ख अपने को अच्युत मानने लगा ॥२॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तोभितः प्रोत्साहितः स्तुत्या । बालैरज्ञैः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

प्रस्तोभितः अर्थात् स्तुति के द्वारा प्रोत्साहित । बालैः अर्थात् मूर्खों द्वारा ॥२॥

दूतं च प्राहिणोन्मन्दः कृष्णायाव्यक्तवर्त्मने । द्वारकायां यथा बालो नृपो बालकृतोऽबुधः ॥३॥

अन्वयः— बालकृतः अबुधः बालो यथा मन्दः अव्यक्तवर्त्मने कृष्णाय द्वारकायां दूतं प्राहिणोत् ॥३॥

अनुवाद— जिस तरह बच्चे खेल-खेलते हुए किसी अज्ञानी बच्चे को राजा बनाकर उसके साथ राजा जैसा व्यवहार करते हैं, उसी तरह वह मूर्खों द्वारा वासुदेव बनाया गया हुआ वह मूर्ख अव्यक्तवर्त्मा भगवान् श्रीकृष्ण के पास अपना दूत भेज दिया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

बालकृतो नृपो बालैर्नृपत्वेन क्रीडायां परिकल्पितः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

बालकृतो नृपः अर्थात् क्रीड़ा करते समय किसी बालक को राजा बना देते है ॥३॥

दूतस्तु द्वारकामेत्य सभायामास्थितं प्रभुम् । कृष्णं कमलपत्राक्षंराजसंदेशमब्रवीत् ॥४॥

अन्वयः— दूतः तु द्वारकाम् एत्य सभायाम् आस्थितं प्रभुं कमल पत्राक्षं कृष्णं राजसंदेशम् अब्रवीत् ॥४॥

अनुवाद— वह दूत द्वारका में आकर सभा में बैठे हुए श्रीभगवान् श्रीकृष्ण को अपने राजा का संदेश सुनाया॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

वासुदेवोऽवतीर्णोऽहमेक एव न चापरः । भूतानामनुकम्पार्थं त्वं तु मिथ्याभिधां त्यज ॥५॥

अन्वयः— अहम् एक एव भूतानाम् अनुकम्पार्थ वासुदेवः अवतीर्णः अपरः वासुदेवो न त्वं तु मिथ्या अभिधां त्यज॥५॥

अनुवाद— मैं ही अकेले वासुदेव के रूप में जीवों पर कृपा करने के लिए अवतीर्ण हुआ हूँ । हमसे भिन्न कोई वासुदेव नहीं है, अतएव तुमने जो झूठ-मुठ का अपना नाम वासुदेव रख लिए हो उसे त्याग दो ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

यानि त्वमस्मच्चिह्नानि मौढ्याद्बिभर्षि सात्वत । त्यक्त्वैहि मां त्वं शरणं नो चेद्देहि ममाहवम् ॥६॥

अन्वयः— हे सात्वत । त्वम् मौढ्यात् अस्मत् चिह्नानि विभर्षि तानि त्यक्त्वा त्वं मां शरणम् एहि नोचेत् मम आहवम् देहि ॥६॥

अनुवाद— हे यदुवंशी तुमने मूर्खता वशात् जो मेरे चिह्नों को धारण कर लिया है, उन सबों का परित्याग करके मेरे शरण में आओ अन्यथा मुझसे युद्ध करो ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

श्रीशुक उवाच

कत्थनं तदुपाकर्ण्य पौण्ड्रकस्याल्पमेधसः । उग्रसेनादयः सभ्या उच्चकैर्जहसुस्तदा ॥७॥

अन्वयः— अल्पमेधसः पौण्ड्रकस्य तत् कत्थनम् उपाकर्ण्य उग्रसेनादयः सभ्याः उच्चकैः जहसुः ॥७॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— मूर्ख पौण्ड्रक की इस आत्मश्लाघा को सुनकर उग्रसेन इत्यादि सभी सभासद जोर से हँसने लगे ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

उवाच दूतं भगवान्परिहासकथामनु । उत्स्रक्ष्ये मूढ चिह्नानि यैस्त्वमेवं विकत्थसे ॥८॥

अन्वयः— परिहासकथाम् अनुभरावान दूतम् उवाच, मूढ चिह्नानि उत्स्रक्ष्येः यैः त्वम् एवं विकत्थसे ॥८॥

अनुवाद— सबों की हँसी समाप्त हो जाने के पश्चात् भगवान् ने दूत से कहा मूर्ख जिन चिह्नों को धारण करके इस तरह से आत्मश्लाघा करते हो उन चिह्नों पर मैं अपने चिह्नों को छोड़ूंगा ॥८॥

भावार्थ दीपिका

हे मूढ, उत्स्रक्ष्ये त्वयि प्रक्षेप्स्यामि । यैः सह त्वमेवं विकत्थसे तेष्वपीत्यर्थः । यद्वा यै; कृत्रिमैः सुदर्शनादिभिस्त्वमेवं श्लाघसे तान्युत्स्रक्ष्ये त्याजयिष्यामीत्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

हे मूर्ख ! मैं तुम पर अपने चिह्नों को छोडूंगा जिन चिह्नों के सहारे तुम इस तरह आत्मश्लाघा करते हो उन चिह्नों पर मैं अपने चिह्नों को छोडूँगा । अथवा जिन कृत्रिम सुदर्शन आदि के द्वारा तुम इस तरह से बहक कर बातें करते हो तुम्हारे उन चिह्नों को छोड़वा दूँगा ॥८॥

मुखं तदपिधायाज्ञ कङ्कगृध्रवटैर्वृतः । शयिष्यसे हतस्तत्र भविता शरणं शुनाम् ॥९॥

अन्वयः— हे अज्ञ तदापि मुखं अपिधाय कङ्कगृध्र वटैर्वृतः हतः शयिष्यसे तत्र शुनाम् शरणं भविता ॥९॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने कहा कि जाकर अपने राजा से कह देना कि उस समय तुम अपना मुँह छिपाकर आँधे मुँह गिरकर चील गीध तथा बटेर आदि मांसभक्षी पक्षियों से घिरे हुए सो जाओंगे और उस समय तुम कुत्तों को शरण देने वाले बन जाओगे ॥९॥

भावार्थ दीपिका

मां शरणमेहीत्यस्योत्तरम्- मुखमिति । वटाः कङ्कादिवत्पक्षिविशेषाः । तत्र तदा शुनां शरणमाश्रयो भवितासि ॥९॥

भाव प्रकाशिका

तुमने यह जो कहा है कि मेरे शरण में आ जाओ । उसका उत्तर **मुखम् इत्यादि** है । चिल इत्यादि के समान एक पक्षी का नाम बट है । उस समय तुम कुत्तो के शरण रक्षक हो जाओगे ॥९॥

इति दूतस्तदाक्षेपं स्वामिने सर्वमाहरत् । कृष्णोऽपि रथमास्थाय काशीमुपजगाम ह ॥१०॥

अन्वयः— इति दूतः तत् सर्वम् आक्षेपं स्वामिने आहरत् कृष्णः अपि रथम् आस्थाय कशीम् उपजगाम ॥१०॥

अनुवाद— इस तरह से श्रीभगवान् द्वारा किए गये सम्पूर्ण आक्षेप को उस दूत ने जाकर अपने स्वामी को सुनाया और भगवान् श्रीकृष्ण भी रथ पर बैठकर काशीपुरी में गये क्योंकि उस समय पौण्ड्रक काशीराज के ही यहाँ था ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

काशीमिति पौण्ड्रकस्यापि तदा मित्रपुरेऽवस्थानात् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

पौण्ड्रक चूकि उन दिनों अपने मित्र काशीराज के यहाँ था अतएव भगवान् काशी गये ॥१०॥

पौण्ड्रकोऽपि तदुद्योगमुपलभ्य महारथः । अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तो निश्चक्राम पुराद्द्रुतम् ॥११॥

अन्वयः— महारथः पौण्ड्रकः अपि तदुद्योगम् उपलभ्य अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तः द्रुतम् पुराद्बहिः निश्चक्राम ॥११॥

अनुवाद— महारथी पौण्ड्रक भी भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा किए आक्रमण को सुनकर शीघ्र ही दो अक्षौहिणी सेना लेकर शीघ्र ही युद्ध करने के लिए नगर से बाहर निकला ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

तस्य काशिपतिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोऽन्वयान्नृप । अक्षौहिणीभिस्तिसृभिरपश्यत्पौण्ड्रकं हरिः ॥१२॥

अन्वयः— हे नृप ! तस्य मित्रं काशिपति तिसृभिः अक्षौहिणीभिः पार्ष्ण ग्रहः अन्वयात् हरिः पौण्ड्रकम् अपश्यत्॥१२॥

अनुवाद— पौण्ड्रक के मित्र काशीराज भी तीन अक्षौहिणी सेना को लेकर पौण्ड्रक की सहायता के लिए उसके पीछे आये । उसके पीछे-पीछे आये ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

पार्ष्णिग्राहः पृष्ठतो रक्षकः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

पार्ष्णिग्रह उसको कहते हैं जो पीछे से रक्षा करता है ॥१२॥

शङ्खार्यसिगदाशार्ङ्गश्रीवत्साद्युपलक्षितम् । बिभ्राणं कौस्तुभमणिं वनमालाविभूषितम्॥१३॥
कौशेयवाससी पीते वसानं गरुडध्वजम् । अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥१४॥
दृष्ट्वा तमात्मनस्तुल्यवेषं कृत्रिममास्थितम् । यथा नटं रङ्गगतं विजहास भृशं हरिः॥१५॥

अन्वयः— शङ्खार्यसि गदाशार्ङ्ग श्रीवत्साद्युपलक्षितम् विभ्राणं कौस्तुभमणिं, वनमाला विभूषितम्, कौशेयवाससी पीते वसान गरुडध्वजम् अमूल्यमौल्याभरणं स्फुरन् मकरकुण्डलम् तम कृत्रिमं आत्मनः तुल्यं वेषम् आस्थितं रङ्गगतं नटं यथा दृष्ट्वा हरिः भृशम् विजहास ॥१३-१५॥

अनुवाद— शङ्ख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग धनुष तथा श्रीवत्स चिह्न से सुशोभित गले में कौस्तुभमणि धारण किए हुए वनमाला से विभूषित, दो रेशमी पीताम्बर धारण किए हुए पौण्ड्रक की ध्वजा पर गरुड़ का चिह्न था । वह अपने सिर पर महार्घ मुकुट धारण किए था, उसके कानों में मकराकृत कुण्डल चमक रहा था । इस तरह से अपने ही सदृश कृत्रिम वेष को धारण किए हुए जैसे रङ्गशाला में कोई निपुण नट विद्यमान हो ऐसे पौण्ड्रक को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण खूब जोर से हँसे ॥१३-१५॥

भावार्थ दीपिका

गरुडः कृत्रिमो ध्वजे यस्य तम् । अमूल्योऽनर्घ्यो मौलिराभरणं च यस्य तम् ॥१३-१५॥

भाव प्रकाशिका

उसके ध्वज पर कृत्रिम गरुड विद्यमान थे । वह बहुमूल्य मुकुट को धारण किए था ॥१३-१५॥

शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः । असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम् ॥१६॥

अन्वयः— अरयः हरिम् शूलैः गदाभि;, परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः असिभिः पट्टिशैः बाणैः प्राहरन् ।।१६।।

अनुवाद— शत्रुओं ने श्रीहरि पर त्रिशूल, गदा, परिध, शक्ति, ऋष्टि प्रास तथा तोमर से तलवार, पट्टिश और बाण आदि अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार किया ।।१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१६।।

कृष्णस्तु तत्पौण्ड्रककाशिराजयोर्बलं गजस्यन्दनवाजिपत्तिमत् ।
गदासिचक्रेषुभिरार्दयद्भृशं यथा युगान्ते हुतभुक् पृथक्प्रजाः ॥१७॥

अन्वयः— कृष्णस्तु पौण्ड्रककाशिराजयोः गजस्यन्दवाजिपत्तिमत् तत् बलम् युगान्ते पृथक् प्रजाः हुतभुक् यथा गदासि चक्रेषुभिः भृशम् आर्दयत् ।।१७।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण भी पौण्ड्रक तथा काशीराज के हाथी, रथ, घोड़े तथा पैदल वाली दोनों सेनाओं को जिस तरह प्रलय काल के अन्त में अग्नि सभी प्राणियों को जला देती है, उसी तरह बहुत अधिक व्याकुल कर दिए ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

गजस्यन्दनादिचतुरङ्गबलमर्दितवान् । पृथक्प्रजाश्चतुर्विधं भूतग्रामं यथा युगान्ताग्निरिति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

हाथी, घोड़ा रथ एवं पैदल सैनिकों वाली सेना को खूब मर्दित किए । चारो प्रकार की प्रजाओं वाले जीव समूह को जैसे युगान्ताग्नि जला डालती है ।।१७।।

आयोधनं तद्रथवाजिकुञ्जरद्विपत्खरोष्ट्रैररिणावखण्डितैः ।
बभौ चितं मोदवहं मनस्विनामाक्रीडनं भूतपतेरिवोल्बणम् ॥१८॥

अन्वयः— मनस्विनां मोदवहं तत् आयोधनं अरिणावखण्डितैः रथवाजिकुञ्जरद्विपत्खरोष्ट्रै चितं भूतपतेः उल्बणं आक्रीडनं यथा बभौ ।।१८।।

अनुवाद— मनस्वीवीरों को अनांदित करने वाला वह रणभूमि चक्र से टुकड़े-टुकड़े किए गये रथ, घोड़े, हाथी, मनुष्य, गधे तथा ऊटों से भर गयी । वह भगवान् शङ्कर की भयङ्कर क्रीडा स्थली के समान प्रतीत हो रही थीं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

आयोधनं रणस्थानम् । अरिणा चक्रेण । चितमाकीर्णम् । आक्रीडनमिव कल्पान्तरुद्रस्य क्रीडास्थानमिव ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

अयोधन अर्थात् रणभूमि, **अरिणा** अर्थात् चक्र के द्वारा **चितम्** अर्थात् भरी हुई, **आक्रीडनमिव** अर्थात् कल्पान्त में भगवान शङ्कर के क्रीडास्थान के समान ।।१८।।

अथाह पौण्ड्रकं शौरिर्भो भो पौण्ड्रक यद्भवान् । दूतवाक्येन मामाह तान्यस्त्राण्युत्सृजामि ते ॥१९॥

अन्वयः— अथ शौरिः आह भो पौण्ड्रक यद् भवान् दूतवाक्येन माम् आह तान्यस्त्राणि ते उत्सृजामि ।।१९।।

अनुवाद— इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण कहे हे मूर्ख पौण्ड्रक तुमने जो अपने दूत के द्वारा मुझको कहा था अपने उन अस्त्रों को मैं तुम पर छोड़ रहा हूँ ।।१९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१९।।

त्याजयिष्येऽभिधानं मे यत्त्वयांऽज्ञ मृषा धृतम् । व्रजामि शरणं तेऽद्य यदि नेच्छामि संयुगम् ॥२०॥

अन्वयः— हे अज्ञ यत् त्वया मृषा धृतम् मे अभिधानं त्याजयिष्ये । यदि संयुगम् न इच्छामि अद्य ते शरणं व्रजामि॥२०॥

अनुवाद— हे मूर्ख तुमने जो अपना झूठ-मूठ का मेरा नाम रख लिया उसको भी मैं आज छूड़ा दूँगा । यदि मैं तुमसे युद्ध नहीं कर सका तो मैं तुम्हारी शरण में आ जाऊँगा ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

इति क्षिप्त्वा शितैर्बाणैर्विरथीकृत्य पौण्ड्रकम् । शिरोऽवृश्चद्रथाङ्गेन वज्रेणेन्द्रो यथा गिरेः ॥२१॥

अन्वयः— इति क्षिप्त्वाशितै बाणैः पौण्ड्रकम् विरथीकृत्य इन्द्रे वज्रेण गिरेः यथा रथाङ्गेन शिरः अवृश्चत् ॥२१॥

अनुवाद— इसतरह से भगवान् श्रीकृष्ण पौण्ड्रक का तिरस्कार किये और अपने तीक्ष्ण बाणों से उसके रथ को तोड़कर रथहीन बना दिए उसके पश्चात् जिस तरह से इन्द्र ने पर्वतों के पङ्खों को काट डाला था उसी तरह भगवान् चक्र से पौण्ड्रक के सिर को काट डाले ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

गिरेः शृङ्गं यथेति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

जैसे पर्वतों के शिखर को ॥२१॥

तथा काशिपतेः कायाच्छिर उत्कृत्य पत्रिभिः । न्यपातयत्काशिपुर्यां पद्मकोशमिवानिलः ॥२२॥

अन्वयः— तथा काशिपतेः कायात् शिरः उत्कृत्य अनिलः पद्मकोशम् इव काशिपुर्याम् न्यपातयत् ॥२२॥

अनुवाद— और काशिराज के सिर को धड़ से काटकर जिस तरह वायु कमल पुष्प को गिरा दे उसी तरह से काशिपुरी में गिरा दिए ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

एवं मत्सरिणं हत्वा पौण्ड्रकं ससखं हरिः । द्वारकामाविशत्सिद्धैर्गीयमानकथामृतः ॥२३॥

अन्वयः— एव मत्सरिणं ससखं पौण्ड्रकं हत्वा सिद्धैः गीयमान कथामृतः श्रीहरिः द्वारकाम् आविशत् ॥२३॥

अनुवाद— इस तरह अपने से डाह करने वाले पौण्ड्रक और उसके मित्र काशी नरेश का वध करके श्रीभगवान् द्वारका में प्रवेश किए उस समय सिद्धगण श्रीभगवान् की अमृतमयी कथा का गान कर रहे थे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका नहीं है ॥२३॥

स नित्यं भगवद्ध्यानप्रध्वस्ताखिलबन्धनः । बिभ्राणश्च हरे राजन्स्वरूपं तन्मयोऽभवत् ॥२४॥

अन्वयः— हे राजन् ! नित्यं भगवद्ध्यान प्रध्वस्ताखिल बन्धनः स हरेः स्वरूपं विभ्राणश्च तन्मयः अभवत् ॥२४॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! पौण्ड्रक द्वेषभाव से ही सही श्रीभगवान् का सदैव चिन्तन करता था । इसके कारण उसके सारे बन्धन कट गये थे । श्रीहरि के स्वरूप को धारण किए रहता था अतएव वह सदा श्रीभगवान् का ही चिन्तन करता था । अतएव वह श्रीभगवान् के सारूप्य को प्राप्त किया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

शिरः पतितमालोक्य राजद्वारे सकुण्डलम् । किमिदं कस्य वा वक्त्रमिति संशयिरे जनाः ॥२५॥

अन्वयः— राजद्वारे पतितं सकुण्डलं शिर आलोक्य किमिदम् कस्य वा वक्त्रम् इति जनाः संशयिरे ॥२५॥

अनुवाद— काशीपुरी में राजद्वार पर कुण्डल मण्डित सिर को देखकर लोगों को संशय होने लगा कि यह क्या है किसका मुख है इस तरह से संशय ग्रस्त हो गये ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

प्रथमं किमिदमिति पश्चाद्वक्रमिति विभाव्य कस्य चेति संशयिरे संशयं कृतवन्त इति ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

पहले उस सिर को देखकर लोगों को हुआ कि यह क्या है ? इसके बाद यह संशय करने लगे कि यह किसका मुख है ॥२५॥

राज्ञः काशिपतेर्ज्ञात्वा महिष्यः पुत्रबान्धवाः । पौराश्च हा हता राजन्नाथ नाथेति प्रारुदन् ॥२६॥

अन्वयः— राज्ञः काशिपतेः ज्ञात्वा महिष्यः पुत्र बान्धवाः, पौराश्च हा राजन् हा नाथ, नाथ वयं हताः इति प्रारुदन्॥२६॥

अनुवाद— यह जानकर कि यह काशिराज का सिर है । उनकी रानियाँ, पुत्र, बन्धु-बान्धव तथा नागरिक हे राजन् ! हे नाथ हमलोग तो मर ही गये इस तरह से कहकर रोने लगे ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

सुदक्षिणस्तस्य सुतः कृत्वा संस्थाविधिं पितुः । निहत्य पितृहन्तारं यास्याम्यपचितिं पितुः ॥२७॥
इत्यात्मनाऽभिसंधाय सोपाध्यायो महेश्वरम् । सुदक्षिणोऽर्चयामास परमेण समाधिना॥२८॥

अन्वयः— तस्य सुतः सुदक्षिणः पितुः संस्थाविधिं कृत्वा, पितृहन्तारं निहत्य अपचितिं, यास्यामि इति अभिसंधाय सुदक्षिणः सापाध्यायः महेश्वरम् परमेण समाधिना अर्चयामास ॥२७-२८॥

अनुवाद— अपने पिता की और्ध्वदैहिक सारी क्रियाओं को सम्पन्न करने के पश्चात् सुदक्षिण ने यह निश्चय किया कि अपने पिता को मारने वाले को मार कर हीं मैं अपने पितृऋण से ऊऋण हो पाऊँगा एतदर्थ सुदक्षिण अपने कुल पुरोहित एवं आचार्यों के साथ शङ्करजी की पूजा किया ॥२७-२८॥

भावार्थ दीपिका

संस्थाविधि मुत्तरक्रियाम् । अपचितिं निष्कृतिम् । आत्मनाभिसंधाय बुद्ध्या व्यवस्य। सुदक्षिणोऽत्युदारः ॥२७-२८॥

भाव प्रकाशिका

संस्थाविधिः अर्थात् और्ध्व दैहिक क्रिया । अपचितिम् ऊ ऋण, आत्मना अभिसंधाय बुद्धि पूर्वक निश्चय करके, सुदक्षिणः अर्थात् अत्यन्त उदार ॥२७-२८॥

प्रीतोऽविमुक्ते भगवांस्तस्मै वरमदाद्भवः । पितृहन्तृवधोपायं स वव्रे वरमीप्सितम् ॥२९॥

अन्वयः— अविमुक्ते प्रीतः भगवान् भवः तस्मै वरम् अदात् । सः अभीप्सितम् वरम् पितृवधोपायं वव्रे ॥२९॥

अनुवाद— काशीपुरी में प्रसन्न हुए भगवान् शङ्कर उसको वरदान देने के लिए कहे, उसने अपने अभिप्रेत वर पिता को मारने वाले को मारने का उपाय वरदान माँगा ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

वरमदात् । वृणीष्वेत्युक्तवानित्यर्थः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

वरदान मागों इस तरह से शङ्करजी ने कहा ॥२९॥

दक्षिणाग्निं परिचर ब्राह्मणैः सममृत्विजम् । अभिचारविधानेन स चाग्निः प्रमथैर्वृतः ॥३०॥
साधयिष्यति सङ्कल्पमब्रह्मण्ये प्रयोजितः । इत्यादिष्टस्तथा चक्रे कृष्णायाभिचरन्व्रती ॥३१॥

अन्वयः— ब्राह्मणैः सममृत्विजम् दक्षिणाग्निं परिचर । स च अग्निः अभिचारविधानेन अब्रह्मण्ये प्रयोजितः प्रमथैः वृतः सङ्कल्पम् साधयिष्यति । इति तथा आदिष्टः व्रती कृष्णाय अभिचरन् चक्रे ॥३०-३१॥

अनुवाद— शङ्करजी ने कहा तुम ब्राह्मणों के साथ मिलकर ऋत्विग्भूत अभिचार विधि से दक्षिणाग्नि की आराधना करो । इससे वह अग्नि प्रमथ गणों के साथ प्रकट होकर यदि ब्राह्मणों के अभक्त पर प्रयोग करोगे, तो वह तुम्हारा सङ्कल्प सिद्ध कर देगा । भगवान् शङ्कर की आज्ञा प्राप्त करके सुदक्षिण ने अनुष्ठान के लिए उपयोगी नियम ग्रहण किया और वह भगवान् श्रीकृष्ण पर अभिचार करने लगा ॥३०-३१॥

भावार्थ दीपिका

ऋत्विजमृत्विजमिव स्वनियोगकारिणम् । 'यज्ञस्य देवमृत्विजम्' इति श्रुतेः । अब्रह्मण्ये प्रयोजित इति कृष्णे प्रयोजिते विपरीतो भविष्यतीति सूचितम् । अभिचरन्नभिचारं कुर्वन् । व्रती गृहीतनियमः ॥३०-३१॥

भाव प्रकाशिका

ऋत्विजमृत्विजमिव अर्थात् अपने नियोग को पूरा करने वाली श्रुति भी कहती है यज्ञस्य देवमृत्विजम् अर्थात् यज्ञ के देवता ऋत्विज अग्नि । अब्रह्मण्ये प्रयोजितः कहकर भगवान् शङ्कर ने सूचित कर दिया कि यदि तुम भगवान् श्रीकृष्ण पर अभिचार कर्म करोगे तो उसका विपरीत फल होगा, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण तो ब्राह्मणों के भक्त हैं ॥३०-३१॥

ततोऽग्निरुत्थितः कुण्डान्मूर्तिमानतिभीषणः । तप्तताम्रशिखाश्मश्रुरङ्गारोद्गारिलोचनः ॥३२॥

अन्वयः— ततः कुण्डात् मूर्तिमान् अतिभीषणः तप्तताम्रशिखश्मश्रुरङ्गारोद्गारि लोचनः अग्नि रुत्थितः ॥३२॥

अनुवाद— अभिचार पूर्ण होते ही यज्ञकुण्ड से अत्यन्त भयङ्कर अग्नि मूर्तिमान होकर प्रकट हुआ । उसके बाल दाढ़ीं मूछ तपाये हुए ताम्बे के समान लाल-लाल थे और नेत्रों से जैसे अङ्गार निकल रहे थे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

तप्तं ताम्रमिव शिखा श्मश्रूणि च यस्य सः । अङ्गारोद्गारीणि लोचनानि यस्य सः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

उस अग्नि की शिखा तथा दाढ़ी मूँछ तपाये गये ताम्बे के समान लाल-लाल थे । उसके नेत्र अङ्गारों को बरसाने वाले थे ॥३२॥

दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीदण्डकठोरास्यः स्वजिह्वया । आलिहन्सृक्किणी नग्नो विधुन्वंस्त्रिशिखं ज्वलत् ॥३३॥

अन्वयः— दंष्ट्रोग्र भ्रुकुटी दण्ड कठोरास्यः स्वजिह्वया सृक्किणी आलिहन् नग्नः ज्वलत् त्रिशिखं विधुन्वन् ॥३३॥

अनुवाद— उग्र दाँतों और टेढी भ्रुकुटी से उसके मुख से क्रूरता स्पष्ट दिखायी देती थी, वह अपनी जीभ से अपने मुख के दोनों कोनों को चाट रहा था । वह नग्न (नङ्गा) था । वह अपने त्रिशूल को बार-बार घुमा रहा था और उसके त्रिशूल से लपटें निकल रही थी ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

दंष्ट्राभिश्चोग्रैर्भृकुटीदण्डैश्च कठोरं क्रूरमास्यं यस्य सः । त्रिशिखं त्रिशूलम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

उस अग्नि के दाँत भयङ्कर थे, भौहें चढ़ी हुई और टेढ़ी थी और उसके मुख से क्रूरता टपक रही थी त्रिशिखम् अर्थात् त्रिशूल को ॥३३॥

पद्भ्यां तालप्रमाणाभ्यां कम्पयन्नवनीतलम् । सोऽभ्यधावद्वृतो भूतैर्द्वारकां प्रदहन् दिशः ।।३४।।

अन्वयः— ताल प्रमाणाभ्यां पद्भ्यां अवनीतलम् कम्पयन् भूतैः वृतः सः दिशः प्रदहन् द्वारकां अभ्यधावत् ।।३४।।

अनुवाद— उसके दोनों पैर ताल के पेड़ के समान लम्बे थे, वह पृथिवी को कंपाता हुआ भूतों के साथ दिशाओं को जलाता हुआ द्वारका की ओर दौड़ पड़ा ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

दिशः प्रदहन् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

दिशाओं के जलाता हुआ ।।३४।।

तमाभिचारदहनमायान्तं द्वारकौकसः । विलोक्य तत्रसुः सर्वे वनदाहे मृगा यथा ।।३५।।

अन्वयः— तम् अभिचार दहनम् आयान्तम् विलोक्य सर्वे द्वारकौकसः वनदाहे मृगाः यथा तत्रसुः ।।३५।।

अनुवाद— उस अभिचाराग्नि को आते हुए देखकर सभी द्वारकावासी उसी तरह डर गये जिस तरह वन में आग लगने पर वन के सभी मृग आदि पशु डर जाते हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नही हैं ।।३५।।

अक्षैः सभायां क्रीडन्तं भगवन्तं भयातुराः । त्राहि त्राहि त्रिलोकेश वह्नेः प्रदहतः पुरम् ।।३६।।

अन्वयः— भयातुराः सभायां अक्षैः क्रीडन्तं भगवन्तं हे त्रिलोकेश पुरम् प्रदहतः अग्नेः त्राहि-त्राहि इत्याहुः ।।३६।।

अनुवाद— भयभीत होकर सभी द्वारकावासी सभा में द्यूतक्रीडा करते हुए श्रीभगवान् से कहे हे त्रिलोक के स्वामी नगर को जलाने वाले इस अग्नि से आप हमलोगों की रक्षा करें ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

त्राहि त्राहीत्याहुरिति शेषः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये इस तरह से कहने लगे ।।३६।।

श्रुत्वा तज्जनवैक्लव्यं दृष्ट्वा स्वानां च साध्वसम् । शरण्यः संप्रहस्याह मा भैष्टेत्यवितास्म्यहम्।।३७।।

अन्वयः— तत् जन वैक्लव्यं श्रुत्वा स्वानां च साध्वसम् दृष्ट्वा शरण्यः संप्रहस्य आह मा भैष्ट अहम् अवितास्मि।।३७।।

अनुवाद— अपने लोगों की विकलता को सुनकर तथा उन सबों को देखकर भक्तों की रक्षा करने वाले श्रीभगवान् जोर से हँसकर कहे तुमलोग डरो मत मैं रक्षा करूँगा ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

अहमवितास्मि रक्षिष्यामीति ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

मैं रक्षा करूँगा ।।३७।।

सर्वस्यान्तर्बहिःसाक्षी कृत्यां माहेश्वरीं विभुः । विज्ञाय तद्विघातार्थं पार्श्वस्थं चक्रमादिशत् ।।३८।।

अन्वयः— सर्वस्य अन्तर्वहिः साक्षी विभुः माहेश्वरीं कृत्यां विज्ञाय तद्विघातार्थम् पार्श्वस्थं चक्रम् आदिशत् ।।३८।।

अनुवाद— परीक्षित् सबों के भीतर और बाहर की बातों को जानने वाले श्रीभगवान् जान गये कि यह माहेश्वरी कृत्या है, उसको विनष्ट करने के लिए श्रीभगवान् अपने पास में ही विद्यमान सुदर्शन चक्र को आदेश दिए ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३८॥

तत्सूर्यकोटिप्रतिमं सुदर्शनं जाज्वल्यमानं प्रलयानलप्रभम् ।
स्वतेजसा खं ककुभोऽथ रोदसी चक्रं मुकुन्दास्त्रमथाग्निमार्दयत् ॥३९॥

अन्वयः— सूर्य कोटिप्रतिमं, प्रलयानलप्रभम, स्वतेजसा खं ककुभः रोदसी च जाज्वल्यमानं मुकुन्दास्त्रं सुदर्शनं चक्रम् अथ अग्निम् अर्दयत् ॥३९॥

अनुवाद— करोड़ों सूर्य के समान प्रलय कालीन अग्नि के समान, कान्ति वाले तथा अपने तेज से आकाश, दिशाएँ तथा भूलोक तथा अन्तरिक्ष को प्रकाशित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण के अस्त्र सुदर्शन चक्र ने उस अग्नि को कुचल डाला ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

रोदसी च प्रकाशयदिति शेषः । यद्वा स्वतेजसा खादीन्प्रति जाज्वल्यमानमत्यर्थं प्रकाशमानमित्यर्थः । आर्दयदपीडयत्॥३९॥

भाव प्रकाशिका

भूलोक तथा अन्तरिक्ष को प्रकाशित कर दिया । अथवा अपने तेज से आकाश आदि को अत्यन्त प्रकाशित करते हुए । अर्दयत् अर्थात् कुचल डाला ॥३९॥

कृत्यानलः प्रतिहतः सरथाङ्गपाणेरस्त्रौजसा नृप स भग्नमुखो निवृत्तः ।
वाराणसीं परिसमेत्य सुदक्षिणं तं सर्त्विग्जनं समदहत्स्वकृतोऽभिचारः ॥४०॥

अन्वयः— नृप सरथाङ्गपाणेः अस्त्रौजसा प्रतिहतः स कृत्यानलः, भग्नमुखः निवृत्तः वाराणसीं परिसमेत्य सर्त्विग्जनं तं सुदक्षिणं समदहत स्वकृतोऽभिचारः ॥४०॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्ण के अस्त्र के तेज से मर्दित वह कृत्याग्नि का मुँह टूट गया वह कृत्या लौटकर वाराणसी आ गयी ऋत्विजनों के साथ उसने सुदक्षिण को जला दिया । इस तरह उसका अभिचार उसी के विनाश का कारण बन गया ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

अर्दितोऽग्निर्यत्कृतवांस्तदाह-कृत्यानल इति। सहर्त्विग्भिर्जनैश्च वर्तमानम् । अभिचर्यते मार्यतेऽनेनेत्यभिचारः कृत्यानलः॥४०॥

भाव प्रकाशिका

मर्दित उस कृत्याग्नि ने जो किया उसको कृत्यानलः इत्यादि से बतलाया गया है । ऋत्विजों और अपने लोगों के साथ बैठे हुए सुदक्षिण को जला दिया जिसके द्वारा मारण क्रिया की जाती है, वह कृत्याग्नि सुदक्षिण के ही विनाश का कारण बन गयी ॥४०॥

चक्रं च विष्णोस्तदनुप्रविष्टं वाराणसीं साट्टसभालयापणाम् ।
सगोपुराट्टालककोष्ठसंकुलां सकोशहस्त्यश्वरथान्नशालाम् ॥४१॥
दग्ध्वा वाराणसीं सर्वां विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् । भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत्कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः ॥४२॥

अन्वयः— तदनु वाराणसी प्रविष्टं विष्णोः चक्रम् साट्टसभालयापणाम् स गोपुराट्टालककोष्ठ संकुला सकोश हस्त्यश्वरथान्नशालाम् सर्वां वाराणसी दग्ध्वा विष्णोः चक्रम् सुदर्शनम् भूयः अक्लिष्टकर्मणः कृष्णस्य पार्श्वम् उपतिष्ठत् ॥४१-४२॥

अनुवाद— कृत्या के पीछे-पीछे भगवान् विष्णु का सुदर्शन चक्र वाराणसी में प्रवेश किया उसने वाराणसी के सभागार, बाजार, अट्टालिकाओं, नगर द्वार, द्वार के शिखर चाहारदिवारियों, रव जाने, हाथी, घोड़े, रथ और अन्न के गोदाम, भगवान् के सुदर्शन चक्र ने इन सबों को जलाकर भस्म कर दिया। उसके पश्चात् वह चक्र अक्लिष्ट कर्मों को करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के पास चला गया ॥४१-४२॥

भावार्थ दीपिका

अट्टादिसहिताम्। अट्टा मञ्चाः ॥४१-४२॥

भाव प्रकाशिका

अट्टालिकाओं आदि से युक्त, अट्टमञ्चो को कहते हैं ॥४१-४२॥

य एनं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम्। समाहितो वा शृणुयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पौण्ड्रकादिवधो नाम षट् षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

अन्वयः— यः मर्त्यः एनम् उत्तमश्लोक विक्रमम् श्रावयेत् समाहितो वाशृणुयात् स सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४३॥

अनुवाद— जो मनुष्य पुण्यकीर्ति श्रीभगवान् के इस पराक्रम पूर्ण चरित्र को सुनाता है अथवा सावधानी पूर्वक सुनता है, उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥४३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के पौण्ड्रकादि वध नामक छियासठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥६६॥

सड़सठवाँ अध्याय

द्विविद का उद्धार

राजोवाच

भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः । अनन्तस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः ॥१॥

अन्वयः— अहं भूयः अद्भुत कर्मणः अनन्तस्य अप्रमेयस्य रामस्य यदन्यत् कृतवान् प्रभुः भूयः श्रोतुम् इच्छामि॥१॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— मैं पुनः अद्भुत कर्म करने वाले अनन्त तथा अप्रमेय श्रीबलरामजी के दूसरे कर्मों को जिन सबों को उन्होंने किया उन सबों को सुनना चाहता हूँ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तषष्टितमे रामो गिरौ रैवतके मदात् । स्वैरं युवतिभिः क्रीडन्नवधीद्द्विविदं खलम् । कालिन्दीविदारणानन्तरं रामचरितं

द्विविदवधादिसङ्गतमप्यनुक्त्वा तत्पूर्वभावित्वेन पौण्ड्रकवधादि निरूप्येदानीं तदेव प्रस्तौति-भूयोऽहमित्यादिना। रामचरितश्रवणेच्छायामद्भुतकर्मत्वं हेतुस्तत्र चानन्तत्वं तत्राप्यप्रमेयत्वमिति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सड़सठवे अध्याय में श्रीबलरामजी मदमत्त होकर रैवतक पर्वत पर गोपियों के साथ क्रीडा करते हुए दुष्ट द्विविद नामक वानर का वध किए ॥१॥ कालिन्दी के विदारण के पश्चात् यद्यपि द्विविद के वध आदि श्रीबलरामजी का चरित सङ्गत था किन्तु उससे पहले होने वाले पौण्ड्रक आदि के वध आदि का निरूपण करके अब **भूयोऽहम्० इत्यादि** के द्वारा द्विविद के वध का वर्णन शुकदेवजी प्रारम्भ करते है। बलरामजी के चरित के सुनने की इच्छा का कारण उनका अद्भुत कर्मत्व है। उसका भी कारण यह है कि वे अनन्त हैं और अनन्तत्व का भी कारण श्रनेबलरामजी का अप्रमेयत्व है ॥१॥

श्रीशुक उवाच

नरकस्य सखा कश्चिद्द्विविदो नाम वानरः। सुग्रीवसचिवः सोऽथ भ्राता मैन्दस्य वीर्यवान् ॥२॥

अन्वयः— कश्चित् नरकस्य सखा सुग्रीव सचिवः सः मैन्दस्य वीर्यवान् द्विविदो नाम वानरः आसीत् ॥२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— भौमासुर का मित्र सुग्रीव का मन्त्री मैन्द का बलवान भाई एक द्विविद नाम का वानर था ॥२॥

भावार्थ दीपिका

नरकस्य सखेति हरिणा वैरे कारणम्। सुग्रीवसचिव इति तस्य मन्त्रबलम्। मैन्दस्य भ्रातेति रामायणेऽतिप्रसिद्धत्वेन वीर्याधिक्यमुक्तमिति ॥२॥

भाव प्रकाशिका

भौमासुर का मित्र होने के कारण उसका भगवान् श्रीकृष्ण से वैर था। सुग्रीव का मन्त्री होने के कारण उसको मन्त्र का बल प्राप्त था। बाल्मीकीय रामायण में मैन्द को अधिक बलवान बतलाया गया है। उसी का वह पराक्रम सम्पन्न भाई था ॥२॥

सख्युः सोऽपचितिं कुर्वन्वानरो राष्ट्रविप्लवम्। पुरग्रामाकरान्घोषानदहद्वह्निमुत्सृजन् ॥३॥

अन्वयः— सः वानरः सख्युः अपचितिं राष्ट्रविप्लवम् कुर्वन पुरग्रामाकरान् घोषान् वह्निम् उत्सृजन् अदहत् ॥३॥

अनुवाद— वह अपने मित्र के ऋण से उऋण होने के लिए राष्ट्रविप्लव करने लगा वह नगरो, ग्रामों, खानों और अहीरों की वस्तियों में आग लगाकर उन्हें जलाने लगा ॥३॥

भावार्थ दीपिका

सख्युर्नरकस्यापचितिमानृण्यम्। राष्ट्रस्य विप्लवो नाशो यथा भवति तथा पुरादीनदहदिति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

वह अपने मित्र नरकासुर से आनृण्य प्राप्त करने के लिए राष्ट्र का नाश करने के लिए नगर ग्राम आदि में आग लगाने लगा ॥३॥

क्वचित्स शैलानुत्पाट्य तैर्देशान्समचूर्णयत्। आनर्तान्सुतरामेव यत्रास्ते मित्रहा हरिः ॥४॥

अन्वयः— क्वचित सः शैलान् उत्पाट्य तैः देशान् समचूर्णयत् आनर्तान् सुतराम् एव यत्र मित्रहा हरिः आस्ते ॥४॥

अनुवाद— कभी वह पर्वतों को उखाड़कर प्रान्त के प्रान्त को चकनाचूर कर देता था आनर्त देश में तो वह विशेष रूप से इस काम को करता था, क्योंकि उसके मित्र को मारने वाले श्रीहरि वहीं रहते थे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

किंच क्वचिदिति । कदाचित्स द्विविदः मित्रहा सखिहन्ता ।।४।।

भाव प्रकाशिका

और कहीं पर तो वह द्विविद । उसके मित्र को मारने वाले श्रीहरि ।।४।।

क्वचित्समुद्रमध्यस्थो दोर्भ्यामुत्क्षिप्य तज्जलम् । देशान्नागायुतप्राणो वेलाकूलानज्जयत् ।।५।।

अन्वयः— नागायुतप्राणः सः क्वचित् समुद्रमध्यस्थः दोर्भ्यां तज्जलम् उत्क्षिप्य वेला, कूलान् देशान् अमज्जयत्।।५।।

अनुवाद— दस हजार हाथियों के बल वाला वह द्विविद वानर समुद्र के बीच में खड़ा होकर समुद्र के जल को उत्लचकर समुद्र तट में विद्यमान देशों को पानी में डूबो देता था ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तस्य समुद्रस्य जलं बाहुभ्यामुत्क्षिप्य वेलायाः कूले वर्तमानान् देशान् प्लावयामासेति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

समुद्र के जल को अपने दोनों हाथों से उलीचकर समुद्र के तट में बसे देशों को पानी में डुबो देता था।।५।।

आश्रमानृषिमुख्यानां कृत्वा भग्नवनस्पतीन् । अदूषयच्छकृन्मूत्रैरग्नीन्वैतानिकान् खलः ।।६।।

अन्वयः— खलः ऋषिमुख्यानां आश्रमान् भग्नवनस्पतीन् कृत्वा, शकृन्मूत्रैः वैतानिकान् अग्नीन् अदूषयत् ।।६।।

अनुवाद— वह दुष्ट ऋषियों के आश्रमों के वृक्षों को तोड़ देता था और मल-मूत्र का त्याग करके होमाग्नि को भी दूषित कर देता था ।।६।।

भावार्थ दीपिका

आश्रमस्थान्वनस्पतीन् भङ्क्त्वा आहवनीयाद्यग्निषु मूत्रादि कृतवान् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

वह आश्रम के वृक्षों को तोड़ देता था और ऋषियों की आहवनीय अग्नि में मलमूत्र त्याग कर देता था।।६।।

पुरुषान् योषितो दृप्तः क्ष्माभृद्द्रोणीगुहासु सः । निक्षिप्य चाप्यधाच्छैलैः पेशस्कारीव कीटकम्।।७।।

अन्वयः— सः दृप्तः पुरुषान् योषितः क्ष्माभृद्द्रोणी गुहासु निक्षिप्य कीटकम् पेशस्करीव शैलैः च अप्यधात् ।।७।।

अनुवाद— द्विविद् दृप्त होने के कारण पुरुषों और स्त्रियों को उठाकर पर्वतों की कन्दरा में रखकर उसका मुह शिला से बन्द कर देता था, यह उसी तरह से करता है जिस तरह भृङ्गी कीड़ा किसी दूसरे कीड़ों को अपने बिल में रखकर गुनगुनाता रहता है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

अप्यधात्पिदधे । पेशस्कारी भ्रमरः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

अप्यधात् अर्थात् बन्द कर देता था । पेशस्कारी अर्थात् भृङ्गी ।।७।।

एवं देशान्विप्रकुर्वन्दूषयंश्च कुलस्त्रियः । श्रुत्वा सुललितं गीतं गिरिं रैवतकं ययौ ।।८।।

अन्वयः— एवं देशान् विप्रकुर्वन् कुलस्त्रियः दूषयन् च सुललितं गीतं श्रुत्वा रैवतकं गिरिं ययौ ।।८।।

अनुवाद— वह देशों को तो उपद्रुत करता ही था । कुल स्त्रियों को भी दूषित कर देता था । वह अत्यन्त मनोहर गीत को सुनकर रैवतक पर्वत पर गया ।।८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।८।।

तत्रापश्यद्यदुपतिं रामं पुष्करमालिनम् । सुदर्शनीयसर्वाङ्गं ललनायूथमध्यगम् ॥९॥

अन्वयः— तत्र पुष्करमलिनम् सुदर्शनीयसर्वाङ्गम् ललनायूथमध्यगम् यदुपतिं रामम् अपश्यत् ॥९॥

अनुवाद— वहाँ पर उसने कमल की माला पहने हुए दर्शनीय सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर वाले तथा सुन्दर युवतियों के बीच में बैठे हुए यदुवंश शिरोमणि बलरामजी को देखा ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

गायन्तं वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम् । विभ्राजमानं वपुषा प्रभिन्नमिव वारणम् ॥१०॥

अन्वयः— वारुणीं पीत्वा मदविह्वललोचनम् वपुषा प्रभिन्नं वारणम् इव विभ्राजमांन गायन्तम् अपश्यत् ॥१०॥

अनुवाद— वारुणी मदिरा पीकर आनन्दमग्न नेत्रों वाले शरीर से मदमत्त गजराज के समान सुशोभित तथा मनोहर गीत गाते हुए बलरामजी को उसने देखा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

प्रभिन्नं मत्तम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

प्रभिन्न अर्थात् मदमत्त ॥१०॥

दुष्टः शाखामृगः शाखामारूढः कम्पयन्द्रुमान् । चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं संप्रदर्शयन् ॥११॥

अन्वयः— दुष्टः शाखाम् आरूढः शाखामृगः द्रुमान् कम्पयन् आत्मानं संप्रदर्शयन् किलकिला शब्दं चक्रे ॥११॥

अनुवाद— वह दुष्ट वानर वृक्ष की शाखा पर बैठकर शाखा को झकझोरते हुए स्त्रियों के सामने आकर किलकारी भी मारने लगा ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

तस्य धार्ष्ट्यं कपेर्वीक्ष्य तरुण्यो जातिचापलाः । हास्यप्रिया विजहसुर्बलदेवपरिग्रहाः ॥१२॥

अन्वयः— बलदेव परिग्रहाः जाति चापलाः हास्यप्रिया; स्त्रियः तस्यकपेः धार्ष्ट्यं वीक्ष्य विजहसुः ॥१२॥

अनुवाद— बलदेवजी के साथ रहने वाली वे स्त्रियाँ स्वभावतः चञ्चल और हास्य परिहास प्रिय होने से उस वानर की धृष्टता (ढिठाई) को देखकर हँसने लगीं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

जात्या स्वभावेनैव चापलं यासां ताः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

स्वभावतः चंचल ॥१२॥

ता हेलयामास कपिर्भ्रूक्षेपैः संमुखादिभिः । दर्शयन्स्वगुदं तासां रामस्य च निरीक्षतः ॥१३॥

अन्वयः— रामस्य निरीक्षतः कपिः भ्रूविक्षेपैः संमुखादिभिः तासां स्वगुदं दर्शयन् ताः हेलयामास ॥१३॥

अनुवाद— बलरामजी के सामने ही उनकी परवाह किए बिना ही वह वानर कभी अपनी भौहें भटकाता था कभी उन सबों के सामने आकर उन सबों को अपनी गुदा दिखाता था इस तरह वह उन सबों की अवहेलना करने लगा॥१३॥

भावार्थ दीपिका

हेलयामासावजज्ञे । निरीक्षतो निरीक्षमाणस्य तमनादृत्येत्यर्थः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

हेलयामास अर्थात् अपमान करने लगा । निरीक्षतः अर्थात् बलरामजी के सामने ही उनकी परवाह किए बिना।।१३।।

तं ग्राव्णा प्राहरत्क्रुद्धो बलः प्रहरतां वरः। स वञ्चयित्वा ग्रावाणं मदिराकलशं कपिः ॥१४॥
गृहीत्वा हेलयामास धूर्तस्तं कोपयन्हसन्। निर्भिद्य कलशं दुष्टो वासांस्यास्फालयद्बलम्॥१५॥

अन्वयः— प्रहरतां वरः बलः क्रुद्धः बलं तं ग्रव्णाप्राहरत्, ग्रावाणं वञ्चयित्वा कपिः मदिराकलशं गृहित्वा धूर्तः तं हसन् कोपयन् कलशं निर्भिद्य दुष्ट वासांसि स्फालयन् बलम् अवहेलयामास ।।१४-१५।।

अनुवाद— प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ बलरामजी क्रुद्ध होकर उसको एक पत्थर के टुकड़े से मारे, किन्तु द्विविद ने उससे अपने को बँचा लिया । उसने मदिरा कलश को उठा लिया और वह हँसते हुए बलरामजी को क्रोधित करने लगा। मदिरा कलश को फोड़कर तथा स्त्रियों के वस्त्रों को फाड़कर बलरामजी की उसने अवहेलना की ।।१४-१५।।

भावार्थ दीपिका

आस्फालयद्योषितां वासांस्याकृष्य पाटितवान् ।।१४-१५।।

भाव प्रकाशिका

वासांस्यास्फालयत् स्त्रियाँ के वस्त्रों का खींचकर फाड़ दिया ।।१४-१५।।

कदर्थीकृत्य बलवान्विप्रचक्रे मदोद्धतः । तं तस्याविनयं दृष्ट्वा देशांश्च तदुपद्रुतान् ।।१६।।
क्रुद्धो मुसलमादत हलं चारिजिघांसया। द्विविदोऽपि महावीर्यः शालमुद्यम्य पाणिना।।१७।।
अभ्येत्य तरसा तेन बलं मूर्धन्यताडयत् । तं तु सङ्कर्षणो मूर्ध्नि पतन्तमचलो यथा।।१८।।
प्रतिजग्राह बलवान्सुनन्देनाहनच्च तम् । मुसलाहतमस्तिष्को विरेजे रक्तधारया ।।१९।।
गिरिर्यथा गौरिकया प्रहारं नानुचिन्तयन्। पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रमोजसा ।।२०।।
तेनाहनत्सुसंक्रुद्धस्तं बलः शतधाच्छिनत् । ततोऽन्येन रुषा जघ्ने तं चापि शतधाच्छिनत्।।२१।।

अन्वयः— मदोद्धतः बलवान् तं कदर्थीकृत्य तस्य अविनयं तदुपद्रुतान् देशान् च दृष्ट्वा क्रुद्धः अरिजिघांसया मुसलं हलं च आदत्त । महावीर्यः द्विविदः अपि पाणिना शालम् उद्यम्य, अभ्येत्य तेन तरसा बलं मूर्धन्यताडयत् अचलो यथा सङ्कर्षणः मूर्ध्नि पततं तं तु प्रतिजग्राह । बलवान् सुनन्देन तं व्याहनत् च मुसलाहतमस्तिष्कः गैरिकया यथा रक्तधारया विरेजे । प्रहारं नानुचिन्तयन् पुनः अन्यं समुत्क्षिप्य ओजसा निष्पत्रं कृत्वा सुसंक्रुद्ध तेन अहनत्बलः शतधा अच्छिनत् ततः रुषा अन्येन तं जघ्ने तं चापि शतधाच्छिनत् तं चापि जघ्ने ।।१६-२१।।

अनुवाद— जिस समय वह बलवान् वानर श्रीबलरामजी को नीचा दिखाने की कोशिश कर रहा था उस समय उन्होंने उसकी ढिठाई को देखकर तथा उसके द्वारा सताये गये देशों पर विचार करके शत्रु को मार डालने की इच्छा से बलरामजी ने अपना हल और मूसल उठाया । महाबलवान द्विविद ने भी अपने एक ही हाथ से एकशाल वृक्ष को उखाड़ लिया और उससे बलरामजी के सिर पर प्रहार किया । बलरामजी अविचल पर्वत के समान खड़े रहे । वे उस वृक्ष को अपने सिर पर गिरने के पहले ही पकड़ लिये और अपने सुनन्द नामक मूसल से उन्होने द्विविद के सिर पर प्रहार किया । उसके कारण द्विविद का सिर फट गया और उससे रक्त की धारा प्रवाहित होने लगी, उसे देखकर लगता था जैसे किसी पर्वत से गेरु की धारा प्रवाहित हो रही हो । अपने सिर फटने की परवाह

किए बिना द्विविद कुपित होकर एक दूसरा वृक्ष उखाड़ा और उसको निष्पत्र बनाकर बलरामजी पर प्रहार किया किन्तु बलरामजी ने उसको टुकड़ा-टुकड़ा कर दिया । उसके पश्चात् द्विविद अत्यन्त क्रुद्ध होकर दूसरे शालवृक्ष से मारा बलरामजी उसे भी छिन्न-भिन्न कर दिए ॥१६-२१॥

भावार्थ दीपिका

विप्रचक्रे एवमपकृतवान् । शालं वृक्षम् । सुनन्देन मुसलेनाहनत् अहन्नित्यर्थः । तं वानरम् । मस्तिष्कं मस्तकावयवविशेषः। गैरिकया लोहितधातुना । नानुचिन्तयन्नगणयन् ॥१६-२१॥

भाव प्रकाशिका

सुनन्देन अर्थात् मुसल के द्वारा, अहन् अर्थात् प्रहार किया । तम् अर्थात् उस वानर को । मस्तिष्कम् अर्थात् मस्तक के भाग विशेष को गैरिकया गेरु धातु से । नानु चिन्तयन् अर्थात् परवाह किए बिना ॥१६-२१॥

एवं युध्यन्भगवता भग्ने भग्ने पुनः पुनः । आकृष्य सर्वतो वृक्षान्निर्वृक्षमकरोद्वनम् ॥२२॥

अन्वयः— एवं भगवता युध्यन् भग्ने भग्ने पुनः पुनः सर्वतः वृक्षान् आकृष्य वनम् निर्वृक्षम् अकरोत् ॥२२॥

अनुवाद— इस प्रकार वह भगवान् बलरामजी से युद्ध करता रहा । एक वृक्ष के टूट जाने पर दूसरा वृक्ष वह उखाड़ता था । इस तरह उसने वन को ही वृक्षहीन बना दिया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

ततोऽमुञ्चच्छिलावर्षं बलस्योपर्यमर्षितः । तत्सर्वं चूर्णयामास लीलया मुसलायुधः ॥२३॥

अन्वयः— ततः अमर्षितः बलस्य उपरिशिलावर्षम् अमुञ्चत् मुसलायुधः तत्सर्वं लीलयाचूर्णयामास ॥२३॥

अनुवाद— उसके पश्चात द्विविद बलरामजी पर शिलाओं की वर्षा करने लगा और मुसल धारण करने वाले श्रीबलरामजी खेल-खेल में ही उन सबों को चूर-चूर कर दिए ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

स बाहू तालसंकाशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः । आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरूरुजत् ॥२४॥

अन्वयः— स कपीश्वरः तालसंकाशौ बाहू मुष्टीकृत्य रोहिणी पुत्रम् आसाद्य ताभ्यां वक्षसि अरूरुजत् ॥२४॥

अनुवाद— उस वानर श्रेष्ठ की भुजाएँ ताल वृक्ष के समान थी वह दोनों हाथों की मुट्ठी बाँधकर तथा बलरामजी के पास आकर अपनी दोनों मुट्ठियों से बलरामजी के वक्षस्थल पर प्रहार किया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अरूरुजत् ताडयामास ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

अरूरुजत् अर्थात् प्रहार किया ॥२४॥

यादवेन्द्रोऽपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुसललाङ्गले । जत्रावभ्यर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद्रुधिरं वमन् ॥२५॥

अन्वयः— यादवेन्द्रोऽपि मुसाललाङ्गले त्यक्त्वा क्रुद्धः तं दोर्भ्यां जत्रौअभ्यर्दयत् सः रुधिरं वमन् अपतत् ॥२५॥

अनुवाद— यदुवंश शिरोमणि श्रीबलरामजी हल और मुसल को रख दिये और क्रुद्ध होकर अपनी दोनों भुजाओं सें जात्रु स्थान (हँसुली) पर प्रहार किये, उसके कारण वह रक्तवमन करता हुआ गिर पड़ा ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

यादवेन्द्रः संकर्षणः क्रुद्धः सन् । जत्रौ कण्ठबाहुमूले ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

यादवेन्द्र अर्थात् श्रीबलरामजी क्रुद्धः सन् अर्थात् क्रुद्ध होकर, जत्रौ अर्थात हँसली पर ॥२५॥

चकम्पे तेन पतता सटङ्कः सवनस्पतिः । पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवाम्भसि ॥२६॥

अन्वयः— हे कुरुशार्दूला वायुना अम्भसिनौः इव पततातेन सटङ्कः स वनस्पति पर्वतः चकम्पे ॥२६॥

अनुवाद— हे परीक्षित् जिस तरह आँधी आने पर जल में डोंगी डगमगाने लगती है, उसी तरह उसके गिरते समय बड़े-बड़े वृक्षों और शिखरों के साथ सारा पर्वत हिल गया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

टङ्काः सतोयविवराणि तत्सहितः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

जलों के सोतों के साथ ॥२६॥

जयशब्दो नमः शब्दः साधु साध्विति चाम्बरे । सुरसिद्धमुनीन्द्राणामासीत्कुसुमवर्षिणाम् ॥२७॥

अन्वयः— अम्बरे सुरसिद्धमुनीन्द्राणाम् जयः शब्दः, नमः, शब्द साधु साध्विति कुसुमवर्षिणम् ॥२७॥

अनुवाद— आकाश में देवगण जय-जय, सिद्धगण नमः नमः बड़े-बड़े मुनियों का साधु-साधु शब्द का उच्चारण करते हुए सबों ने बलरामजी पर फूलों की वर्षा की ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् । संस्तूयमानो भगवाञ्जनैः स्वपुरमाविशत् ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे उत्तरार्धे द्विविदवधो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

अन्वयः— एवं जगद्व्यतिकरावहम् द्विविदं निहत्य जनैः संस्तूयमानः भगवान् स्वपुरम् आविशत् ॥२८॥

अनुवाद— राजन् संसार में उपद्रव मचाने वाले द्विविद को इस प्रकार से मारकर श्रीबलरामजी अपनी द्वारकापुरी में लौट आये उस समय पुरजन परिजन श्रीबलरामजी की प्रशंसा कर रहे थे ॥२८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवे स्कन्ध के उत्तरार्ध के द्विविदवध नामक सड़सठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६७॥

भावार्थ दीपिका

जगतो व्यतिकरं नाशमावहतीति तथा तम् ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थ दीपिकायां सप्त षष्ठितमोऽध्यायः ॥६७॥

भाव प्रकाशिका

जगतोव्यतिकरावहम् जगत् का नाश करने वाले ॥२८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवे स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के सड़सठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥६७॥

अड़सठवाँ अध्याय

कौरवों पर बलरामजी का कोप और सम्ब का विवाह

श्रीशुक उवाच

दुर्योधनसुतां राजँल्लक्ष्मणां समितिंजयः । स्वयंवरस्थामहरत्साम्बो जाम्बवतीसुतः ।।१।।

अन्वयः— राजन् समितिञ्जयः जाम्बवतीसुतः साम्बः स्वयम्बरस्थां दुर्योधनसुतां लक्ष्मणम् अहरत् ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् जम्बवती नन्दन साम्ब बहुत बड़े वीर थे । वे अकेले बड़े-बड़े वीरों पर विजय प्राप्त करने में समर्थ थे । वे स्वयम्बर में स्थित दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा का हरण कर लिए ।।१।।

भावार्थ दीपिका

अष्टषष्टितमे साम्बे निरुद्धे कौरवैर्युधि । तद्विमोक्षाय रामेण गजाह्वयविकर्षणम् । रामचरित्रान्तरं निरूपयितुमाह-दुर्योधनसुतामिति। समितिंजयः संग्रामजित् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

अड़सठवें अध्याय में जब कौरवों ने साम्ब को युद्ध में निगृहीत कर लिया तब साम्ब को मुक्त कराने के लिए बलरामजी ने हस्तिनापुर को घसीटा ।।१।। श्रीबलरामजी के दूसरे चरित्र का वर्णन करने के लिए श्रीशुकदेवजी ने दुर्योधन सुताम् इत्यादि श्लोक को कहा । समिति जयः अर्थात् संग्राम को जीत लेने वाले ।।१।।

कौरवाः कुपिता ऊचुर्दुर्विनीतोऽयमर्भकः । कदर्थीकृत्य नः कन्यामकामामहरद्बलात् ।।२।।

अन्वयः— कुपिताः कौरवाः ऊचु; अयम् अर्भकः दुर्विनीतः नः कदर्थीकृत्य अकामां कन्यां बलात् अहरत् ।।२।।

अनुवाद— क्रोध करके कौरवों ने कहा यह लड़का बहुत ढीठ है, इसने हम सबों का तिरस्कार करके बलपूर्वक हमलोगों की कन्या का अपहरण कर लिया है । वह इसे चाहती भी नहीं थी ।।२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२।।

बध्नीतेमं दुर्विनीतं किं करिष्यन्ति वृष्णयः । येऽस्मत्प्रसादोपचितां दत्तां नो भुञ्जते महीम् ।।३।।

अन्वयः— इमं दुर्विनीतं बध्नीत, वृष्णयः किं करिष्यन्ति ? ये अस्मत् पसादोपचितां दत्तां नो महीम् भुंजते ।।३।।

अनुवाद— अतएव इस ढीठ को पकड़कर बाँध लो, इसे सुनकर नाराज यदुवंशी हमलोगों का क्या विगाड़ लेंगे । वे लोग हमारी ही कृपा से दी हुई हमारी ही भूमि का उपभोग करते हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

नोऽस्माकं महीमस्माभिर्दत्ताम् । न ते भूपतय इति भावः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

हमलोगों के द्वारा दी गयी, हमारी ही भूमि का वे राजा तो हैं नहीं ।।३।।

निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यद्येष्यन्तीह वृष्णयः । भग्नदर्पाः शमं यान्ति प्राणा इव सुसंयताः ।।४।।

अन्वयः— यदि सुतं निगृहीतं श्रुत्वा वृष्णयः इह एष्यन्ति, तदा भग्नदर्पाः सुसंयताः प्राणा इव शमं यान्ति ।।४।।

अनुवाद— यदि वे लोग अपने लड़के के बन्दी होने का समाचार सुनकर यहाँ आयेगे तो हमलोग उनके

घमण्ड को चूर-चूर कर देगें। फिर उन लोगों का दिमाग वैसे ही ठंड़ा हो जायेगा जैसे संयमी पुरुष की इन्द्रियाँ वश में हो जाती है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

यान्ति यास्यन्ति। प्राणा इन्द्रियाणीव सुसंयता प्राणायामादिर्भिदमिता ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यान्ति अर्थात् लौट जायेंगे, प्राणा अर्थात् इन्द्रियों के समान, संयमी पुरुष की प्राणायाम् आदि के द्वारा दमन की गयी ॥४॥

इति कर्णः शलोभूरिर्यज्ञकेतुः सुयोधनः। साम्बमारेभिरे बृद्धं कुरूवृद्धानुमोदिता ॥५॥

अन्वयः— कुरूवृद्धानुमोदिताः कर्णः, शलः, भूरिः, यज्ञकेतुः, सुयोधनश्च साम्बं बद्धुम् अरेभिरे ॥५॥

अनुवाद— इस प्रकार कुरुवृद्ध भीष्म से अनुमति लेकर कर्ण, शल, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु भीष्म पितामह तथा दुर्योधन ये छहो साम्ब को निगृहीत करने की तैयारी कर लिए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

कुरुवृद्धो भीष्मस्तेनानुमोदितास्तत्सहिताः षडेते इत्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

कुरुवृद्धः अर्थात् भीष्मजी की अनुमति लेकर तथा उनके साथ छहो ॥५॥

दृष्ट्वानुधावतः साम्बो धार्तराष्ट्रान्महारथः। प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ सिंह इवैकलः ॥६॥

अन्वयः— धार्तराष्ट्रान अनुधावतः दृष्ट्वा महारथः साम्बः रुचिरं चापं प्रगृह्य सिंह इव एकलः तस्थौ ॥६॥

अनुवाद— धृतराष्ट्र पक्षीयों को पीछा करते हुए देखकर महारथी साम्ब ने एक सुन्दर धनुष को लेकर सिंह के समान अकेले युद्ध के मैदान में डट गये ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणः। आसाद्य धन्विनो बाणैः कर्णाग्रण्यः समाकिरन्॥७॥

अन्वयः— जिघृक्षवः क्रुद्धाः कर्णाग्रण्यः तिष्ठ तिष्ठ इति भाषिणः धन्विनः तं आसाद्य बाणैः समाकिरन् ॥७॥

अनुवाद— साम्ब को पकड़ लेने की इच्छा वाले तथा क्रुद्ध कर्ण को मुखिया बनाकर कौरव वीर खड़ा रहा, खड़ा रह इस तरह से साम्ब को ललकारते हुए साम्ब के सन्निकट आकर उन पर बाणों की वर्षा करने लगे॥७॥

भावार्थ दीपिका

कर्णोऽग्रणीर्येषां ते ॥७॥

भाव प्रकाशिका

कर्ण जिन सबों के अग्रणी थे ॥७॥

सोऽपविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिर्यदुनन्दनः। नामृष्यत्तदचिन्त्यार्भः सिंहः क्षुद्रमृगैरिव ॥८॥

अन्वयः— हे कुरुश्रेष्ठ ! कुरुभिः अपविद्धः अचिन्त्यार्भ; स यदुनन्दनः क्षुद्रमृगैरवि न अमृष्यत् ॥८॥

अनुवाद— हे परीक्षित् कौरवों के प्रहार से चिढ़े हुए अचिन्त्य ऐश्वर्य सम्पन्न यदुनन्दन साम्ब उससे उसी तरह से चिढ़ गये जिस तरह क्षुद्रमृगों के प्रहार से कोई सिंह चिढ़ जाता है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

नामृष्यत् असहत् । अचिन्त्यस्य भगवतोऽर्भोऽर्भक । अचिन्त्यश्चासावर्भश्चेति वा ।।८।।

भाव प्रकाशिका

नामृष्यत् अर्थात् सहन नही किए । अचिन्त्यार्भः अर्थात् अचिन्त्य भगवान् के पुत्र साम्ब अथवा अचिन्त्य प्रभावाले साम्ब ।।८।।

विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान्विव्याध सायकैः । कर्णादीन्षड्रथिन्वीरस्तावद्भिर्युगपत्पृथक् ।।९।।

अन्वयः— रुचिरं चापं विस्फूर्ज्य कर्णादीन् षड्रथीन वीरान् सायकैः युगपत् सर्वान् वीरान् पृथक् विव्याध ।।९।।

अनुवाद— अपने मनोहर धनुष का टङ्कार किया साम्ब ने छह रथों पर सवार कर्ण आदि छहो वीरों को एक ही समय में सबों को बाणों से मारा ।।९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।९।।

चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकैकेन च सारथीन् । रथिनश्च महेष्वासांस्तस्य तत्तेऽभ्यपूजयन् ।।१०।।

अन्वयः— चतुर्भिः चतुरो वाहान् एकैकेन च सारथीन् महेष्वासान् रथिनः च तस्य ते अभ्यपूजयन् ।।१०।।

अनुवाद— चार बाणों से चार घोड़ों को एक बाण से सबों के सारथियों को तथा एक-एक बाण से सभी महारथियों को साम्ब ने मारा, साम्ब के इस हस्तलाघव की प्रशंसा वे विरोधी भी करने लगे ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

तत्प्रपञ्चयति-चतुर्भिरिति । चतुर्भिश्चतुर इत्यत्र वीप्सानुसन्धेया । तत्कर्म ते संमानितवन्तः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

साम्ब के उस प्रहार कर्म का ही विस्तार चतुर्भिः इत्यादि श्लोक से कहते हैं । चार-चार बाणों से सभी रथों के चारो अश्वों को एक-एक बाणों से सभी सारथियों को तथा एक-एक बाण से सभी महारथियों को । साम्ब के इस कर्म की सबों ने प्रशंसा की ।।१०।।

तं तु ते विरथं चक्रुश्चत्वारश्चतुरो हयान् । एकस्तु सारथिं जघ्ने चिच्छेदान्यः शरासनम् ।।११।।

अन्वयः— ते तु तं विरथं चक्रुः चत्वारः चतुरोहयान् एकस्तु सारथिं जघ्ने, अन्यः शरासनं चिच्छेद ।।११।।

अनुवाद— उन सभी महारथियों ने मिलकर साम्ब को रथ विहीन बना दिया । चार महारथियों ने उसके सारथि को मार दिया तथा एक महारथि ने साम्ब के धनुष को काट दिया ।।११।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।११।।

तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवो युधि । कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं जयिनोऽविशन्।।१२।।

अन्वयः— कुरवः युधि तं विरथी कृत्य कृच्छ्रेण बद्ध्वा जयिनः कुमारं स्वस्य कन्यां च स्वपुरं अविशन् ।।१२।।

अनुवाद— कौरवों ने साम्ब को युद्ध में रथ विहीन बनाकर बड़े कष्ट से साम्ब को बाँधकर साम्ब तथा अपनी कन्या को लेकर विजय मनाते हुए अपने नगर में प्रवेश किए ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

स्वस्य दुर्योधनस्य कन्यां च नीत्वेति शेषः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

स्वस्य अर्थात् दुर्योधन की पुत्री को लेकर ।।१२।।

तच्छ्रुत्वा नारदोक्तेन राजन्संजातमन्यवः । कुरून्प्रत्युद्यमं चक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः ॥१३॥

अन्वयः— राजन् नारदोक्तेन तत् श्रुस्वा संजातमन्यवः उग्रसेन प्रचोदिताः कुरून् प्रति उद्यमं चक्रुः ॥१३॥

अनुवाद— परीक्षित् नारदजी के द्वारा कहे गये साम्ब सम्बन्धी समाचार को सुनकर सबके सब क्रुद्ध हो गये और उग्रसेन के द्वारा प्रेरित होकर सब कौरवों से युद्ध करने की तैयारी करने लगे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

सान्त्वयित्वा तु तान्रामः संनद्धान्वृष्णिपुंगवान् । नैच्छत्कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमलापहः ॥१४॥

अन्वयः— कलिमलापहः रामः तान् संनद्धान् वृष्णिपुंगवान् सान्त्वयित्व वृष्णीनां कुरूणां कलिं नैच्छत् ॥१४॥

अनुवाद— कलिजन्य समस्त पापों को मिटाने वाले बलरामजी ने उन युद्ध के लिए तैयार यदुवंशियों को शान्त कर दिया क्योंकि वे यदुवंशियों और कुरुवंशियों के बीच में युद्ध नहीं चाहते थे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

यतः कलिं नैच्छदतः सान्त्वयित्वा जगामेति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

चूकि वे युद्ध नहीं चाहते थे अतएव सान्त्वना प्रदान करके गये ॥१४॥

जगाम हास्तिनपुरं रथेनादित्यवर्चसा । ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतश्चन्द्र इव ग्रहैः ॥१५॥

अन्वयः— ग्रहै वृतः चन्द्र इव ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतः आदित्यवर्चसा रथेन हस्तिनापुरं जगाम ॥१५॥

अनुवाद— ग्रहों के साथ विद्यमान चन्द्रमा के समान अपने कुल वृद्धों और ब्राह्मणों के साथ सूर्य के समान चमकते हुए रथ पर चढ़कर हस्तिनापुर गये ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

गत्वा गजाह्वयं रामो बाह्योपवनमास्थितः । उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥१६॥

अन्वयः— गजाह्वयं गत्वा रामः वाह्योपवनम् अस्थितः धृतराष्ट्रं बुभुत्सया उद्धवं प्रेषयामास ॥१६॥

अनुवाद— श्रीबलरामजी हस्तिनापुर जाकर वहाँ बाहरी उद्यान में रुक गये और उद्धवजी को धृतराष्ट्र के पास यह जानने के लिए भेजे कि कौरव क्या करना चाहते हैं ?॥१६॥

भावार्थ दीपिका

धृतराष्ट्रं प्रति बुभुत्सयेति । अभिप्रायजिज्ञासयेत्यर्थः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

धृतराष्ट्र के पास इसलिए भेजे कि वे लोग क्या करना चाहते हैं ?॥१६॥

सोऽभिवन्द्याम्बिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं च बाह्लिकम् । दुर्योधनं च विधिवद्राममागतमब्रवीत् ॥१७॥

अन्वयः— सः अम्बिकापुत्रम् भीष्मं द्रोणम् बाहिलकम् दुर्योधनं च विधिवत् अभिवन्द्य आगतं रामम् अब्रवीत्॥१७॥

अनुवाद— उद्धवजी धृतराष्ट्र भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, बाह्लीक तथा दुर्योधन आदि को विधिपूर्वक प्रणाम करके बतलाये कि बलरामजी आये हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

विधिवदभिवन्द्य ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

विधि पूर्वक प्रणाम करके ।।१७।।

तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्य प्राप्तं रामं सुहृत्तमम् । तमर्चयित्वाऽभिययुः सर्वे मङ्गलपाणयः ।।१८।।

अन्वयः— तम् प्राप्तं आकर्ण्य ते अतिप्रीताः तम् सुहृत्तमम् अर्च यित्वा ते सर्वे मङ्गलपाणयः अभिययुः ।।१८।।

अनुवाद— परम हितैषी श्रीबलरामजी को आये हुए सुनकर वे लोग बहुत प्रसन्न हुए उन लोगों ने उद्धवजी की पूजा की और सबके सब अपने हाथ में उपहार लेकर उनके पास गये ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

तमुद्धवमर्चयित्वा सत्कृत्य । मङ्गलपाणय उपायनहस्ताः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी की पूजा करके । मङ्गलापाणयः अर्थात् हाथ में उपहार लिए हुए ।।१८।।

तं संगम्य यथान्यायं गामर्घ्यं च न्यवेदयन् । तेषां ये तत्प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम् ।।१९।।

अन्वयः— तं यथान्यायं संगम्प गाम् अर्घ्यं च न्यवेदयन् तेषां ये तत् प्रभावज्ञाः ते बलम् शिरसा प्रणेमुः ।।१९।।

अनुवाद— वे अपनी-अपनी अवस्था और सम्बन्ध के अनुसार श्रीबलरामजी से मिले । उन सबों में जो श्रीबलरामजी को प्रभाव को जानने वाले थे वे श्रीबलरामजी को सिर झुकाकर प्रणाम किए ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

वृद्धा अपि प्रणेमुः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

वृद्धों ने भी प्रणाम किया ।।१९।।

बन्धून्कुशलिनः श्रुत्वा पृष्ट्वा शिवमनामयम् । परस्परमथो रामो बभाषेऽविक्लवं वचः ।।२०।।

अन्वयः— बन्धून् कुशलिनः श्रुत्वा परस्परम् अनामयम् शिवम् पृष्ट्वा रामः अविक्लवं वचः बभाषे ।।२०।।

अनुवाद— उसके पश्चात् उन लोगों ने परस्पर में एक दूसरे का कुशल मङ्गल पूछा । और यह जानकर कि सभी भाई बन्धु सकुशल हैं । उसके पश्चात् बलरामजी ने बड़ी धीरता और गम्भीरता के साथ कहा ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

उग्रसेनः क्षितीशेशो यद्व आज्ञापयत्प्रभुः । तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वं मा विलम्बितम् ।।२१।।

अन्वयः— क्षितीशेशः उग्रसेनः यद्वः आज्ञापयति तत् अव्यग्रधियः श्रुत्वा मा विलम्बितम् कुरुध्वम् ।।२१।।

अनुवाद— महाराजाधिराज महाराज उग्रसेन जो तुमलोगों को आज्ञा दिए है उसे सावधानी पूर्वक सुनो और उसे सुनकर शीघ्र उस कार्य को करो ।।२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२१।।

यद्यूयं बहवस्त्वेकं जित्वाऽधर्मेण धार्मिकम् । अबध्नीताथ तन्मृष्ये बन्धूनामैक्यकाम्यया ।।२२।।

अन्वयः— यत् बहवः यूयं अधर्मेण एकं धार्मिकं जित्वा अबध्नीत अथ बन्धूनाम् ऐक्यकामया मृष्ये ।।२२।।

अनुवाद— तुमलोग बहुत से मिलकर अधर्म पूर्वक अकेले धार्मिक साम्ब को जीतकर उसे बन्दी बना लिए हो। मैं बन्धुओं में एकता बनी रहे इसीलिए इसे वर्दास्त कर रहा हूँ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

यद्यूयमित्युग्रसेनवाक्यम्। मृष्ये सहे। अथाशु तमानीय समर्पयतेति शेषः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

यद् यूयम् इत्यादि उग्रसेन के वाक्य हैं। मृष्ये अर्थात् सहन कर रहा हूँ। अतएव उसको शीघ्र मेरे पास लाकर मुझे समर्पित करो ॥२२॥

वीर्यशौर्यबलोन्नद्धमात्मशक्तिसमं वचः। कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥२३॥

अन्वयः— कुरव बलदेवस्य वीर्यशौर्य बलोनद्धम् आत्मशक्तिसमं वचः निशम्य प्रकोपिताः ऊचुः ॥२३॥

अनुवाद— कौरवों ने श्रीबलरामजी की वीरता, शूरता और बल पौरुष के उत्कर्ष से परिपूर्ण वाणी सुनकर, कुरुवंशी क्रोध से तिलमिला गये और वे कहने लगे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

वीर्यं प्रभावः शौर्यमुत्साहो बलं सत्त्वं तैरुन्नद्धमुच्छृङ्खलम्। कथम्। आत्मनः शक्तेः सममनुरूपम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

वीर्यम् अर्थात् प्रभावं शौर्यम् अर्थात् उत्साह, बलम् अर्थात् पराक्रम इन सबों से परिपूर्ण क्योंकि, वह आत्म शक्ति के अनुरूप था ॥२३॥

अहो महच्चित्रमिदं कालगत्या दुरत्यया। आरुरुक्षत्युपानद्वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥२४॥

अन्वयः— अहो कालगत्या दुरत्यया इदं महत् चित्रम् वै उपानत् मुकुटसेवितम् शिरः आरुरुक्षिति ॥२४॥

अनुवाद— अरे काल की गति को कोई नहीं जानता यह तो अत्यन्त वित्रित्र बात है कि जूती मुकुट सेवित सिर पर चढ़ना चाहती है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

उपानत्पादरक्षा शिर आरोढुमिच्छतीति हीना अस्मानाज्ञापयन्तीत्यर्थः॥२४॥

भाव प्रकाशिका

उपानह जूते को कहते है। वह शिर पर चढ़ना चाहता है। अर्थात् छोटे लोग आज्ञा देने लग गये हैं ॥२४॥

एते यौनेन संबद्धाः सहशय्यासनाशनाः। वृष्णयस्तुल्यतां नीता अस्मद्दत्तनृपासनाः ॥२५॥

अन्वयः— यौनेन संबद्धा एते सहशय्या सनाशनाः अस्मद्दत्तनृपासनाः वृष्णयः तुल्यतां नीताः ॥२५॥

अनुवाद— हमलोगों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध से सम्बद्ध होने के कारण ये लोग हमलोगों के साथ सोने बैठने लगे और एक साथ खाने भी लगे। हमलोगों ने इनको सिंहासन प्रदान कर दिया। ये राजोचित शय्या का भी उपयोग करने लगे और हमलोगों ने इनको अपने बराबर बना लिया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अस्यैव प्रपञ्चः एत इति चतुर्भिः। यौनेन पृथाया विवाहेन ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

एते इत्यादि चार श्लोकों से उपर्युक्त बातों का प्रपञ्च किया गया है। कुन्ती के साथ विवाह के द्वारा ॥२५।

चामरव्यजने शङ्खमातपत्रं च पाण्डुरम् । किरीटमासनं शय्यां भुञ्जन्त्यस्मदुपेक्षया ॥२६॥

अन्वयः— अस्मदुपेक्षया चमरव्यजने शङ्खमातपत्रं च पाण्डुरम् किरीटम् आसनं शय्यां च भुञ्जन्ति ॥२६॥

अनुवाद— हमलोगों की उपेक्षा के कारण ही ये यदुवंशी चँवर, पङ्खा, शङ्ख, श्वेतच्छत्र, मुकुट, राजसिंहासन और राजोचित शय्या का उपभोग कर रहे हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

किंच चामरव्यजने इति । भुञ्जन्त्युपभुञ्जत इत्यर्थः । अस्मदुपेक्षयाऽस्माकमनाग्रहेण ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

और चामर और व्यजन । भुञ्जन्ति अर्थात् उपभोग करते है अमदुपेक्षया अर्थात् हमलोगों के आग्रह नही करने के कारण ॥२६॥

अलं यदूनां नरदेवलाञ्छनैर्दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतम् ।
येऽस्मत्प्रसादोपचिता हि यादवा आज्ञापयन्त्यद्य गतत्रपा बत ॥२७॥

अन्वयः— फणीनाम् अमृतमिव दातुः प्रतीपैः नरदेव लाञ्छनैः ये हि यादवाः अस्मत् प्रसादोचिताः बतगतत्रपाः अद्य आज्ञापयन्ति ॥२७॥

अनुवाद— जिस तरह दूध पिलाने वाले के ही लिए सर्प घातक होते हैं, उसी तरह हमारे ही द्वारा राजा के चिह्नों को प्राप्त करके यदुवंशी बढ़े अब वे हमारे ही विपरीत आचरण करते हैं ये निर्लज्ज हो गये हैं । इनसे राजा के चिह्नों को छिन लेना चाहिए ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अलमिति । अतःपरं तान्यपहरिष्याम इत्यर्थः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

अलम् इत्यादि श्लोक से कहा गया है कि अब हमलोग इन लोगों से राज चिह्नों को छिन लेंगे ॥२७॥

कथमिन्द्रोऽपि कुरुभिर्भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः । अदत्तमवरुन्धीत सिंहग्रस्तमिवेरणः ॥२८॥

अन्वयः— उरणः सिंहग्रस्तमिव भीष्मद्रोणार्जुनादिभिः कुरुभिः अदत्तम् इन्द्रोऽपि कथम् अवरुन्धीत ॥२८॥

अनुवाद— जिस तरह सिंह के भाग को जैसे मेष नहीं प्राप्त कर सकता है, उसी तरह भीष्म, द्रोण और अर्जुन इत्यादि कुरुवंशी दे न दें तो फिर इन्द्र भी किसी वस्तु का उपभोग कैसे कर सकते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अवरुन्धीत स्वीकुर्यात् । उरणो मेषः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

अवरुन्धीत अर्थात ले सकते है, उरण अर्थात भेंड़ा ॥२८॥

श्रीशुक उवाच

जन्मबन्धुश्रियोन्नद्धमदास्ते भरतर्षभ । अश्राव्य रामं दुर्वाच्यमसभ्याः पुरमाविशन् ॥२९॥

अन्वयः— हे भरतर्षभ जन्मबन्धुश्रियोन्नद्धा मदा सभ्याः ते रामं दुर्वाच्यं आश्राव्य पुरम् आविशन् ॥२९॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् कुरुवंशी अपनी कुलीनता, बान्धवों के बल तथा धन सम्पत्ति के गर्व में चूर होने के कारण असभ्य हो गये थे । वे श्रीबलरामजी को दुर्वाच्य को सुनाकर अपने नगर में चले गये ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

जन्मना बन्धुभिश्चोपलक्षितया श्रिया उन्नद्ध उत्कटो मदोयेषां ते । दुर्वाच्यं परुषं वाक्यम् । असभ्या दुर्जनाः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

कुलीनता तथा बान्धवों के द्वारा उपलक्षित धन-सम्पत्ति के कारण उन्मत्त हो गये थे अतएव बलरामजी को परुष वाक्यों को कहकर नगर में प्रवेश कर गये । असभ्य अर्थात् दुष्ट ।।२९।।

दृष्ट्वा कुरूणां दौः शील्यं श्रुत्वाऽवाच्यानि चाच्युतः । अवोचत्कोपसंरब्धो दुष्प्रेक्ष्यः प्रहसन्मुहूः।।३०।।

अन्वयः— कुरूणां दौःशील्यं दृष्ट्वा अवाच्यानि च श्रुत्वा अच्युत कोप संरब्धः दुष्प्रेक्ष्य मुहुः प्रहसन् अवोचत्।।३०।।

अनुवाद— कौरवों की अशिष्टता को देखकर तथा उनके दुर्वचनों को सुनकर क्रोध से बलरामजी का चेहरा तमतमा उठा, उनकी ओर देखना कठिन था । वे बार बार हँसकर कहे ।।३०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३०।।

नूनं नाना मदोन्नद्धाः शान्तिं नेच्छन्त्यसाधवः । तेषां हि प्रशमो दण्डः पशूनां लगुडो यथा ।।३१।।

अन्वयः— नूनं नानामदोन्नद्धाः साधवः शान्तिं नेच्छन्ति । तेषां प्रशमः दण्डः, यथा पशूनां लगुडः ।।३१।।

अनुवाद— निश्चत रूप से जिन दुष्ट पुरुषों को अपनी कुलीनता तथा बल, पौरुष का घमण्ड होता है, वे दुष्ट शान्ति नहीं चाहते हैं । उन सबों को दण्ड देना ही उनके प्रशम का उपाय है । जिस तरह से पशुओं को ठीक करने का उपाय दण्ड ही होता है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

नानाधनाभिजनादिमदैरुन्नद्धास्तेषां दण्ड एव प्रथमः प्रकर्षेण शमयतीति तथा । यथा लगुडो दण्डः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

अनेक प्रकार की कुलीनता, धन आदि के मद से उद्दण्ड बने दुष्टों को शान्त करने का सबसे अच्छा उपाय उन लोगों को दण्ड देना है । ठीक उसी तरह से जिस तरह से पशुओं को ठीक लाठी से किया जाता है ।।३१।।

अहो यदून्सुसंरब्धान्कृष्णं च कुपितं शनैः । सान्त्वयित्वाहमेतेषां शममिच्छन्निहागतः ।।३२।।

अन्वयः— अहो सुसंरब्धान् यदून् कुपितं कृष्णं च सान्त्वयित्वा अहम् एतेषां शमम् इच्छन् आगतः ।।३२।।

अनुवाद— अत्यधिक क्रुद्ध यादवों तथा श्रीकृष्ण को किसी तरह शान्त करके मैं इन सबों के कल्याण करने के लिए यहाँ आया हूँ ।।३२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३२।।

त इमे मन्दमतयः कलहाभिरताः खलाः । तं मामवज्ञाय मुहुर्दुर्भाषान्मानिनोऽब्रुवन् ।।३३।।

अन्वयः— त इमे मन्दमतयः कलहाभिरताः खलाः तं माम् अवज्ञाय मनिनः मुहुः दुर्भाषान् अब्रुवन् ।।३३।।

अनुवाद— ये सभी अज्ञानी हैं, ये सभी कलह करना चाहते हैं, इन्हें शान्ति नहीं चाहिए इन सबों ने मेरा अपमान किया और मुझे बार-बार गालियाँ दी ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

दुर्भाषान् अवाच्यशब्दान् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

दुर्भाषान् अर्थात् जिन शब्दों को नहीं कहना चाहिए ॥३३॥

नोग्रसेनः किल विभुर्भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः । शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः ॥३४॥

अन्वयः— शक्रादयः लोकपालाः यस्य आदेश वर्तिनः स उग्रसेनः विभुः न सः भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः ॥३४॥

अनुवाद— मनुष्यों की क्या बात है । जिनके आदेश का पालन इन्द्र आदि देवता करते हैं वे उग्रसेन राजाधिराज नहीं है वे तो केवल यदुवंशियों के प्रशाशक हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

दुर्भाषणमनुस्मरति षड्भिः-नोग्रसेन इति । विभुराज्ञापयितुं समर्थः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

नोग्रसेनः इत्यादि छह श्लोकों से कौरवों के दुर्वचन का स्मरण बलरामजी करते हैं । विभुः अर्थात् आज्ञा देने में समर्थ ॥३४॥

सुधर्माक्रम्यते येन पारिजातोऽमराङ्घ्रिपः । आनीय भुज्यते सोऽसौ न किलाध्यासनार्हणः ॥३५॥

अन्वयः— येन सुधर्माक्रम्यते येन अमराङ्घ्रिपः आनीय भुज्यते असौ किल अध्यासनार्हणः न ॥३५॥

अनुवाद— जो सुधर्मासभा को वश में करके उसका उपयोग करते हैं तथा जो देववृक्ष पारिजात को लाकर उपभोग करते हैं वे भगवान् श्रीकृष्ण भी राजसिंहासन के अधिकारी नहीं है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

अहो धृष्टा श्रीकृष्णमप्यधिक्षिपन्तीति कुपित आह-सुधर्मेत्यादिभिस्त्रिभिः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

अरे ये ढीठ भगवान् श्रीकृष्ण पर भी आक्षेप करते हैं इस तरह से क्रुद्ध होकर बलरामजी सुधर्मेत्यादि तीन श्लोकों से कहते हैं ॥३५॥

यस्य पादयुगं साक्षाच्छ्रीरुपास्तेऽखिलेश्वरी । स नार्हति किल श्रीशो नरदेवपरिच्छदान् ॥३६॥

अन्वयः— यस्य पादयुगं, अखिलेश्वरी साक्षात् श्रीः उपासते सः श्रीशः किल नरदेवपरिच्छदः नार्हति ॥३६॥

अनुवाद— जिनके दोनों चरणों की उपासना सम्पूर्ण जगत् की स्वामिनी साक्षात् लक्ष्मीजी करती हैं, वे लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण राजचिह्नों के अधिकारी नहीं हैं ?॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजोऽखिललोकपालैर्मौल्युत्तमैर्धृतमुपासिततीर्थतीर्थम् ।
ब्रह्मा भवोऽहमपि यस्य कलाः कलायाः श्रीश्चोद्वहेम चिरमस्य नृपासनं क्व ॥३७॥

अन्वयः— यस्य अङ्घ्रिपंकजरजः अखिललोकपालैः मौल्युत्तमैः धृतम् उपासित् तीर्थतीर्थम्, ब्रह्मा, भवः, अहमापि, श्रीः चापि यस्य कलायाः कलाः चिरम् उद्वहेम, अस्य नृपासनं क्व ? ॥३७॥

अनुवाद— जिनके चरण कमलों की धूल को सभी लोकपाल अपने उत्तम सिर पर धारण करते हैं । जिनके

चरणों की उपासना सभी करते हैं, और जिनके चरण गंगा आदि तीर्थों को भी पवित्र बना देने वाले हैं, शङ्करजी ब्रह्माजी मैं तथा लक्ष्मीजी जिनकी कला के कला हैं, उन भगवान् श्रीकृष्ण के लिए राजसिंहासन में क्या रखा है।।३७।।

भावार्थ दीपिका

मौल्युत्तमैर्मौलियुक्तैरुत्तमाङ्गैः, उत्तमैर्मौलिभिरिति वा । उपासितानि तीर्थानि यैर्योगिभिस्तेषामपि तीर्थम् । यद्वा उपासितं सर्वैः सेवितं तीर्थं गङ्गा तस्यास्तीर्थं तीर्थत्वनिमित्तम् । किंच ब्रह्मा भवः श्रीश्चाहमपि उद्वहेम । कथंभूता वयम् । यस्य कलाया अंशस्य कला अंशाः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

मौल्युत्तमैः अर्थात् मुकुट युक्त सिरों पर अथवा उत्तम शिरों पर । उपसित तीर्थतीर्थम् अर्थात् जिन योगियों ने तीर्थों की उपासना की है उनको भी पवित्र बनाने वाला अथवा जिसकी सबों ने सेवन किया है ऐसे गङ्गा आदि तीर्थों को भी पवित्र बनाने वाला है और जिनके ब्रह्माजी, शिवजी तथा मैं भी और श्रीदेवी भी जिनको धारण करते है । यस्यकलायाः कलाः जिनके अंश के भी अंश अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म भाग ।।३७।।

भुञ्जते कुरुभिर्दत्तं भूखण्डं वृष्णयः किल । उपानहः किल वयं स्वयं तु कुरवः शिरः ।।३८।।

अन्वयः— वृष्णयः किल कुरुभिः दत्तं भूखण्डं भुञ्जते । वयं किल उपानह कुरवः स्वयं शिरः ।।३८।।

अनुवाद— यदुवंशी तो कुरुवंशियों के द्वारा दी गयीं भूमि का उपभोग करते हैं । हम यदुवंशी जूते हैं और कुरुवंशी तो स्वयं शिर हैं ।।३८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३८।।

अहो ऐश्वर्यमत्तानां मत्तानामिव मानिनाम् । असंबद्धा गिरो रूक्षाः कः सहेतानुशासिता ।।३९।।

अन्वयः— अरे ऐश्वर्यमत्तानां मानिनामिव असंबद्धाः रूक्षाः गिरः कः अनुशासिता सहेत ।।३९।।

अनुवाद— ये ऐश्वर्य के मद से मत्त बने हुए घमण्डी कौरव हैं । इनकी असम्बद्ध बाते कौन प्रशासक पुरुष हो जो इन सबों को दण्ड देकर इनकी बुद्धि ठीक कर सकता है, वह इनकी असंबद्धतथा रुक्षवाणी को सहन करे ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

मत्तानामिव मद्यादिना । रूक्षाः परुषाः । अनुशासिता स्वयं दण्डधरः सन् ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

मदिरा आदि पीकर मदमत्त बने हुए के समान । रुक्षाः अर्थात् कठोर अनुशासिन अर्थात् स्वय दण्डित करके प्रशासन करने वाला ।।३९।।

अद्य निष्कौरवीं पृथ्वीं करिष्यामीत्यमर्षितः । गृहीत्वा हलमुत्तस्थौ दहन्निव जगत्त्रयम् ।।४०।।

अन्वयः— अद्य निष्कौरवीं पृथिवीं करिष्यामि इति अमर्षित जगत्त्रयम् दहन्निव हलं गृहित्वा उत्तस्थौ ।।४०।।

अनुवाद— आज मैं पृथिवी को कौरवों से रहित बना दूँगा, इस तरह से कहते-कहते वे क्रोध से भर गये। उन्होंने अपने हाथ में हल को उठा लिया ।।४०।। लगता था जेसे वे त्रैलोक्य को भस्म कर देंगे ।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४०।।

लाङ्गलाग्रेण नगरमुद्विदार्य गजाह्वयम् । विचकर्ष स गङ्गायां प्रहरिष्यन्नमर्षितः ।।४१।।

अन्वयः— अमर्षितः लाङ्गलाग्रेण गजाह्वयम् नगरम् उद्विदार्य सः गंगायां प्रहरिष्यन् विचकर्ष ।।४१।।

अनुवाद— क्रुद्ध बलरामजी अपने हल की नोक से हस्तिनापुर को उखाड़ लिए और उसको गङ्गा में डुबा देने के लिए खींचने लगे ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

लाङ्गलाग्रेण दक्षिणतः प्रकारमूले निखातेन । उद्विदार्य उत्पाट्य ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

लाङ्गलाग्रेण हल की नोक से दाहिनी ओर प्रकारक मूल में गड्ढा करके ॥४१॥

जलयानमिवाघूर्णं गङ्गायां नगरं पतत् । आकृष्यमाणमालोक्य कौरवा जातसंभ्रमाः ॥४२॥

अन्वयः— जलयानमिव, गङ्गायां नगरं पतत् आकृष्यमाणम् आलोक्य कौरवा जातसंभ्रमाः ॥४२॥

अनुवाद— खींचे जाने के कारण हस्तिनापुर ऐसे डगमगाने लगा जैसे जल में नौका डगमगाने लगती हैं, गङ्गा में डुबाने के लिए खींचे जाते हुए नगर को देखकर सभी कौरव भयभीत हो गये ॥४२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४२॥

तमेव शरणं जग्मुः सकुटुम्बा जिजीविषवः । सलक्ष्मणां पुरस्कृत्य साम्बं प्राञ्जलयः प्रभुम् ॥४३॥

अन्वयः— जिजीविषवः सलक्ष्मणां साम्बं पुरस्कृत्य सकुटुम्बाः प्राञ्जलयः तमेव प्रभुम् शरणं जग्मुः ॥४३॥

अनुवाद— वे अपनी जान बचाने के लिए, लक्ष्मणा के साथ साम्बजी को आगे करके सभी कौरव हाथ जोड़े हुए अपने परिवार के साथ सर्वशक्तिमान बलरामजी की ही शरण में गये ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

जिजीविषव इत्यक्षराधिक्यं सोढव्यम् ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

जीने की इच्छा वाले । इसमें एक अक्षर अधिक है ॥४३॥

राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते । मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ॥४४॥

अन्वयः— हे अखिलाधार राम ! राम ! ते प्रभावं न विदाम नः मूढानां कुबुद्धीनाम् अतिक्रमम् क्षन्तुम् अर्हसि ॥४४॥

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत के एकामत्र आधार श्रीबलरामजी हमलोग आपके प्रभाव को नहीं जानते हैं प्रभो हमलोग अज्ञानी है, हमारी बुद्धि विगड़ गयी है । आप हमारे अपराध को क्षमा कर दें ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

मूढानां प्रभावानभिज्ञानाम् । अतिक्रममपराधम् ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

मूढानाम् अर्थात् अज्ञानियों के आपके प्रभाव से अनभिज्ञ अतिक्रमम् अर्थात् अपराध को ॥४४॥

स्थित्युत्पत्त्यप्ययानां त्वमेको हेतुर्निराश्रयः । लोकान्क्रीडनकानीश क्रीडतस्ते वदन्ति हि ॥४५॥

अन्वयः— स्थित्युत्पत्यप्ययानां त्वम् एकः हेतुः निराश्रयः हे ईश क्रीडतः ते लोकान् क्रीडनकान् वदन्ति ॥४५॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के एकमात्र कारण हैं । आप आश्रय निरपेक्ष हैं । मुनिगण बतलाते हैं कि क्रीडा करने वाले आपकी ये लोक क्रीडा के साधन खिलौना हैं ॥४५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४५॥

त्वमेव मूर्ध्नीदमनन्त लीलया भूमण्डलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् ।
अन्ते च यः स्वात्मनिरुद्धविश्वः शेषेऽद्वितीयः परिशिष्यमाणः ॥४६॥

अन्वयः— हे अनन्त इदम् भूमण्डलम् त्वमेव मूर्ध्नि लीलया विभर्षि हे सहस्रमूर्धन् ! अन्ते च स्वात्मनिरुद्धविश्वः परिशिण्यमाणः अद्वितीयः शेषे ॥४६॥

अनुवाद— हे अनन्त इस सम्पूर्ण भूण्डल को आप लीला पूर्वक अपने सिर पर धारण करते हैं और प्रलय काल की बेला में सम्पूर्ण विश्व को अपने भीतर लीन करके आप अद्वितीय रूप से शेष शय्या पर शयन करते हैं ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

शेषे शयनं करोषि । शेषपर्यङ्के परिशिष्यमाणो यः स च त्वमेवेति वा ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

शेषेशयनं करोषि अर्थात् महाप्रलय की बेला में केवल आप ही बचे रहते हैं और आप ही शेष शय्या पर शयन करते हैं ॥४६॥

कोपस्तेऽखिलशिक्षार्थं न द्वेषान्न च मत्सरात् । बिभ्रतो भगवन्सत्त्वं स्थितिपालनतत्परः ॥४७॥

अन्वयः— भगवन् स्थिति पालन तत्परः सत्त्वं विभ्रतः ते कोपः अखिलशिक्षार्थ न द्वेषात् न च मत्सरात् ॥४७॥

अनुवाद— भगवन् आप जगत की स्थिति तथा पालन के लिए आप सत्वमय शरीर धारण करते है । आप लोगों को शिक्षा देने के लिए क्रोध करते हैं किसी द्वेष अथवा मत्सर के लिए नहीं ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

अस्मासु कोपश्च तवायमुचित एवेत्याहुः-कोपस्त इति । स्थितिपालने तत्परस्तात्पर्यवान्कोपः । पाठान्तरे संबोधनम्॥४७॥

भाव प्रकाशिका

कोपस्ते० इत्यादि श्लोक से कौरव कह रहे हैं कि आपका हमलोगों पर क्रोध करना उचित ही है । जगत् की स्थिति और पालन में आपका तात्पर्य है ॥४७॥

नमस्ते सर्वभूतात्मन्सर्वशक्तिधराव्यय । विश्वकर्मन्नमस्तेऽस्तु त्वां वयं शरणं गताः ॥४८॥

अन्वयः— हे सर्वभूतात्मन् हे सर्वशक्तिधर ! हे अव्यय हे विश्वकर्मन् ते नमः अस्तु वयं त्वां शरणं गताः ॥४८॥

अनुवाद— हे सभी जीवों की आत्मा स्वरूप भगवन् हे सर्वशक्तिसम्पन्न निर्विकार प्रभो आप सम्पूर्ण जगत् के कर्ता है । आपको बारम्बार नमस्कार है । आपके शरण में हमलोग आये हैं, अतएव आप हमलोगों की रक्षा कीजिए ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

विश्वं कर्म कृत्यं यस्य स त्वमिति संबोधनम् ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

विश्वकर्मन् अर्थात् सम्पूर्ण विश्व के स्रष्टा प्रभो ॥४८॥

श्रीशुक उवाच

एवं प्रपन्नैः संविग्नैर्वेपमानायनैर्बलः । प्रसादितः सुप्रसन्नो मा भैष्टेत्यभयं ददौ ॥४९॥

अन्वयः— वेपमानायनैः प्रपन्नैः संविग्नैः एवं प्रसादितः संपसन्नः बलः मा भैष्ट इति अभयं ददौ ॥४९॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— कौरवों का नगर डगमगा रहा था, उसके कारण घबराये हुए तथा शरणागत कौरवों द्वारा प्रसन्न किए गये बलरामजी प्रसन्न होकर, डरो मत यह कहकर उन सबों को अभय प्रदान किये ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

वेपमानमयनं पुरं येषां तैः ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

जिन सबों का नगर डगमगा रहा था ।।४९।।

दुर्योधनः पारिबर्हं कुञ्जरान्षष्टिहायनान् । ददौ च द्वादशशतान्ययुतानि तुरङ्गमान् ।।५०।।
रथानां षट्सहस्राणि रौक्माणां सूर्यवर्चसाम् । दासीनां निष्ककण्ठीनां सहस्रं दुहितृवत्सलः ।।५१।।

अन्वयः— दुहितृवत्सलः दुर्योधनः पारिबर्हं षष्टिहायनान् कुञ्जरान् द्वादशशतानि, तुरङ्गमान् अयुतानि सूर्यवर्चसां रौक्माणां रथनां षट्सहस्राणि, निष्ककण्ठीनां दासीनां सहस्रं ददौ ।।५०-५१।।

अनुवाद— अपनी पुत्री लक्ष्मणा के प्रति वात्सल्य गुण सम्पन्न दुर्योधन ने दहेज में साठ वर्ष के बारह सौ हाथी एक लाख बीस हजार घोड़े, सूर्य के समान चमकते हुए छह हजार रथ और गले में सोने का हार पहनी हुई एक हजार दासियों को दिया ।।५०-५१।।

भावार्थ दीपिका

तुरङ्गमांश्च द्वादशायुतानि ।।५०-५१।।

भाव प्रकाशिका

एक लाख बीस हजार घोड़ों को दिया ।।५०-५१।।

प्रतिगृह्य तु तत्सर्वं भगवान्सात्वतर्षभः । ससुतः सस्नुषः प्रायात्सुहृद्भिरभिनन्दितः ।।५२।।

अन्वयः— सात्वतर्षभः भगवान् तत्सर्वं प्रतिगृह्य सुहृद्भिः अभिनन्दितः ससुतः सस्नुषः प्रायात् ।।५२।।

अनुवाद— यदुवंश शिरोमणि बलरामजी यह सम्पूर्ण दहेज स्वीकार करके तथा कौरवों के अभिनन्दन को स्वीकार करके अपने पुत्र तथा पुत्रवधू के साथ द्वारका के लिए प्रस्थान किए ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

सुहृद्भिः कौरवैः ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

सुहृढभिः अर्थात् कौरवों द्वारा किए गये ।।५२।।

ततः प्रविष्टः स्वपुरं हलायुधः समेत्य बन्धूननुरक्तचेतसः ।
शशंस सर्वं यदुपुङ्गवानां मध्येसभायां कुरुषु स्वचेष्टितम् ।।५३।।

अन्वयः— ततः हलायुधः अनुरक्तचेतसः बन्धून् समेत्य स्वपुरं प्रविष्टः मध्ये सभायां यदुपुङ्गवानां कुरुषु सर्व स्वचेष्टितम् शशंस ।।५३।।

अनुवाद— उसके पश्चात् बलरामजी अपने प्रेमियों का समाचार जानने के लिए उत्सुक अपने बान्धवों से मिले और द्वारकापुरी में प्रवेश किये उन्होंने श्रेष्ठ यदुवंशियों की सभा में कौरवों के प्रति जिस कार्य को किया था उसे सुनाया।।५३।।

भावार्थ दीपिका

मध्येसभायां सभामध्ये ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

मध्येसभायाम् अर्थात् सभा में ।।५३।।

अद्यापि च पुरं ह्येतत्सूचयद्रामविक्रमम् । समुन्नतं दक्षिणतो गङ्गायामनु दृश्यते ।।५४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सङ्कर्षण विजयोनाम अष्टषष्टितमोऽध्यायः ।।६८।।

अन्वयः— अद्य अपि एतत् पुरं राम विक्रमं सूचयत् दक्षिणतः गङ्गायां समुनतो दृश्यते ।।५४।।

अनुवाद— आज भी यह नगर श्रीबलरामजी जी के पराक्रम को सूचित करते हुए दक्षिण की ओर झुकता हुआ प्रतीत होता है ।।५४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की सङ्कर्षणविजय नामक अड़सठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।५४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तराधे भावार्थ दीपिकायां टीकायांमष्टषष्टितमोऽध्यायः ।।६८।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्द्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के अड़सठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।६८।।

* * *

उनहत्तरवाँ अध्याय

नारदजी द्वारा श्रीभगवान् की गृहचर्या का दर्शन

श्रीशुक उचाच

नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषिताम् । कृष्णेनैकेन बह्वीनां तद्दिदृक्षुः स्म नारदः ॥१॥

अन्वयः— नारदः नरकं निहतं तथा एकेन कृष्णेन बह्वीनां योषिताम् उद्वाहं च श्रुत्वा तत् दिदृक्षुः स्म ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् नारदजी ने जब यह सुना कि नरकासुर का वध हो गया तथा यह सुनकर कि अकेले भगवान् श्रीकृष्ण ने सोलह हजार एक सौ स्त्रियों के साथ विवाह किया तो उनके मन में श्रीभगवान् का गार्हस्थ्य देखने की इच्छा जागृत हो गयी ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकोनसप्ततितमे गार्हस्थ्यं प्रतिमन्दिरम् । कृष्णस्य नारदो दृष्ट्वा विस्मितोऽगात्ततः स्तुवन् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उनहत्तरवें अध्याय में नारदजी प्रत्येक महलों में भगवान् श्रीकृष्ण के गार्हस्थ्य को देखकर आश्चर्यित हो गये और वे उनकी स्तुति करते हुए वहाँ से चले गये ॥१॥

चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत्पृथक् । गृहेषु द्यवष्टसाहस्त्रं स्त्रिय एक उदावहत् ॥२॥

अन्वयः— बत चित्रम् एतत् एकः एकेन वपुषा पृथक् गृहेषु द्वयष्टसाहस स्त्रियः युगपत् उदावहत् ॥२॥

अनुवाद— नारदजी सोचने लगे कि यह आश्चर्य की बात है कि अकेले भगवान् श्रीकृष्ण एक शरीर से सोलह हजार स्त्रियों के साथ एक ही साथ विवाह किए ॥२॥

भावार्थ दीपिका

दिदृक्षामभिनयेनाह-चित्रमिति । द्यवष्टसहस्त्रस्त्रीरुदावहत्परिणीतवान् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

नारदजी की इच्छा को अभिनय पूर्वक **चित्रम्० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । **द्वयष्टसाहस्त्रीरुदावहत्** सोलह हजार स्त्रियों के साथ विवाह किया ॥२॥

इत्युत्सुको द्वारवतीं देवर्षिर्द्रष्टुमागमत् । पुष्पितोपवनारामद्विजालिकुलनादिताम् ॥३॥

अन्वयः— इति उत्सुकः देवर्षिः द्रष्टुम् पुष्पितोपवनाराम द्विजालिकुलनादिताम् द्वारवतीं आगमत् ॥३॥

अनुवाद— इस प्रकार से उत्सुक बने हुए देवर्षि श्रीभगवान् की गार्हस्थ्य लीला देखने के लिए द्वारका आये। उस समय वहाँ के उपवन और उद्यान विकसित पुष्पों से भरे हुए थे । उन सबों में विभिन्न प्रकार के पक्षी बोल रहे थे और भौरें गुञ्जार कर रहे थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तां द्वारवतीमनुवर्णयति-पुष्पितेति सार्धत्रयेण । पुष्पितेषूपवनेष्वारामेषूद्यानेषु च द्विजानामलीनां च कुलानि तैर्नादिताम्॥३॥

भाव प्रकाशिका

पुष्पित० इत्यादि साढ़े तीन श्लोकों से द्वारका का वर्णन करते हैं । विकसित उपवन और उद्यान पक्षियों और भ्रमरों से निनादित हो रहा था ॥३॥

उत्फुल्लेन्दीवराम्भोजकह्लारकुमुदोल्पलैः । छुरितेषु सरस्सूच्चैः कूजितां हंससारसैः ॥४॥

अन्वयः— उत्फुल्लेन्दीवराम्भोज कह्लारकुमुदोत्पलैः छुरितेषु सरस्सु हंससारसैः उच्चैः कूजिताम् द्वारवतीं आगमत्॥४॥

अनुवाद— वहाँ के सरवरों में नीले, लाल और श्वेत रङ्ग वाले विभिन्न प्रकार के कमल खिले हुए थे । इनसवों से वहाँ के सरोवर सुशोभित थे । उन सरोवरों में हंस और सारस पक्षी कलरव कर रहे थे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

छुरितेषु व्याप्तेषु ॥४॥

भाव प्रकाशिका

छुरितेषु अर्थात् भरे हुए ॥४॥

प्रासादलक्षैर्नवभिर्जुष्टां स्फाटिकराजतैः । महामरकतप्रख्यैः स्वर्णरत्नपरिच्छदैः ॥५॥

अन्वयः— स्फाटिकराजतैः प्रसादालक्षैर्नवभिः जुष्टां महामरकत प्रख्यैः स्वर्ण रत्नपरिच्छदैः द्वारवतीम् आगात्॥५॥

अनुवाद— उस द्वारकापुरी में स्फाटिक मणि और चाँदी के नव लाख महल थे । उनके महामर कतमणि के फर्श चमक रहे थे तथा उनमें हीरे जड़े हुए थे । उन महलों मे सुवर्ण के ही सारे समान थे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

महामरकतैः प्रख्यायन्ते प्रकाशन्त इति तथा तैः । स्वर्णरत्नमयाः परिच्छदाः परिकरा येषु तैः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

महामरकतप्रख्यैः अर्थात् महामरकत मणि के फर्श चमक रहे थे उन महलों में सोने और रत्नों से निर्मित सामग्री भरी हुई थी ।।५।।

विभक्तरथ्यापथचत्वरापणैः शालासभाभी रुचिरां सुरालयैः ।
संसिक्तमार्गाङ्गणवीथिदेहलीं पतत्पताकाध्वजवारितातपाम् ।।६।।

अन्वयः— विभक्तरथ्या पथचत्वरापणैः शालसभाभिः सुरालयै रुचिरां संसिक्तमार्गांगणवीथिदेहलीं पतत् पताकाध्वजवारितातपाम् द्वारवतीम् अगात् ।।६।।

अनुवाद— उस द्वारवती के राजमार्ग, गलियाँ, चौरास्ते, तथा बजार बहुत सुन्दर थे, घुड़शाल आदि पशुओं के रहने के स्थान तथा सभावन से वह द्वारकापुरी मनोहर बनी हुई थी । वहाँ की सड़कों चौक गली तथा दरवाजों पर छिड़काव किया गया था, झण्डियाँ और ध्वज फहरा रहे थे जिसके कारण रास्तों पर धूप नहीं आती थीं । ऐसी द्वरकापुरी में श्रीनारदजी आये ।।६।।

भावार्थ दीपिका

पतन्त्यः प्रचलन्त्यः पताका येषु तैर्ध्वजैर्वारित आतपो यस्यां ताम् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

फहराते हुए ध्वजा पताकाओं के कारण वहाँ धूप नीचे नहीं आती थीं ।।६।।

तस्यामन्तः पुरं श्रीमदर्चितं सर्वधिष्ण्यपैः । हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्ट्रा कर्त्स्न्येन दर्शितम् ।।७।।

अन्वयः— तस्याम् सर्वधिष्ण्यपैः अर्चितं हरेः श्रीमदन्तः पुरम् यत्र त्वष्ट्रा कार्त्स्न्येन स्वकौशलं दर्शितम् ।।७।।

अनुवाद— उस द्वारकापुरी में सभी लोकपालों से पूजित श्रीहरि का अत्यन्त सुन्दर अन्तःपुर था, जिसमें विश्वकर्मा ने अपने सम्पूर्ण शिलप कौशल को दिखाया था ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तस्यां द्वरकायाम् । सर्वैर्धिष्ण्यपैर्लोकपालैरर्चितम् । षोडशभिः सद्मसहस्रैः समलंकृतं हरेरन्तःपुरं विवेश । तत्र च तस्य शौरेः पत्नीनां भवनेष्वेकतमं विवेशेत्यन्वयः । यत्र च स्वकौशलं त्वष्ट्रा दर्शितमित्यन्तःपुरभ्वनयोर्विशेषणम् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

उस द्वारका में समस्त लोकपालों से पूजित सोलह हजार भवनों से समलंकृत श्रीहरि का अन्तःपुर । उसमें भी श्रीहरि की पत्नियों के भवनों में से एक भवन में नारदजी प्रवेश किए । उस भवन में त्वष्टा ने अपनी सम्पूर्ण शिल्पकला का प्रदर्शन किया था । यह अन्तःपुर तथा भवन दोनों का विशेषण है ।।७।।

तत्र षोडशभिः सद्मसहस्रैः समलंकृतम् । विवेशैकतमं शौरेः पत्नीनां भवनं महत् ।।८।।

अन्वयः— तत्र षोडशभिः सद्मसहस्रैः समलंकृतम् शौरेः पत्नीनाम् एकतमं महद्भवनं विवेश ।।८।।

अनुवाद— उस अन्तःपुर में सोलह हजार भवन थे । वे सब भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियों के भवन थे। उसमें से एक विशाल भवन में नारदजी ने प्रवेश किया ।।८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।८।।

विष्टब्धं विद्रुमस्तम्भैर्वैदूर्यफलकोत्तमैः। इन्द्रनीलमयैः कुड्यैर्जगत्या चाहतत्विषा ॥९॥

अन्वयः— विद्रुमुस्तम्भैः वैदूर्य फलकोत्तमैः इन्द्रनीलमयैः कुड्यैः विष्टब्धं अहतात्विषा जगत्या च बिष्टब्धम् ॥९॥

अनुवाद— उस महल में मूंगे के स्तम्भ, वैदूर्य के उत्तम छज्जे, इन्द्रनीलमणि की दिवारें और वहाँ की गचें भी ऐसी इन्द्र नीलमणि की बनी थीं जिनकी चमक कभी कम नहीं होने वाली थीं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तदनुवर्णयति चतुर्भिः-विष्टब्धमिति । विद्रुमस्तम्भैर्विष्टब्धं विधृतम् । वैदूर्यमयानि फलकोत्तमानि स्तम्भाश्रयणानि छादनानि तैरिन्द्रनीलमयैः कुड्यादिभिश्चोपलक्षितम् जगत्या भूमिकया चेन्द्रनीलमय्या । न हता त्विड् यस्यास्तया ॥९॥

भाव प्रकाशिका

उस भवन का वर्णन विष्टब्धं इत्यादि चार श्लोकों से करते हैं मूँगे के स्तम्भों से वह धारण किया गया था । वैदूर्य कें उत्तम छज्जे थे । इन्द्रनीलमणि की दिवारों से वह भवन सुशोभित था । जिनकी चमक कभी भी कम नहीं होती ऐसे इन्द्र नीलमणि से उसकी गच्चें बनी थीं ॥९॥

वितानैर्निर्मितैस्त्वष्ट्रा मुक्तादामविलम्बिभिः । दान्तैरासनपर्यङ्कैर्मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥१०॥

अन्वयः— मुक्तादामविलम्बिभिः त्वाष्ट्र निर्मितैः वितानैः दान्तै रासन पर्यङ्कैः मण्युत्तमपरिष्कृतैः ॥१०॥

अनुवाद— विश्वकर्मा द्वारा निर्मित चन्दोवे में मोती की लड़ियाँ लटक रही थीं तथा हाथीदाँत के पलङ्ग और आसन बने थे उनमें श्रेष्ठ मणियाँ जड़ी हुई थीं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

मुक्तादाम्नां विलम्बा विविधानि लम्बनानि विद्यन्ते येषु तैः । मण्युत्तमैः परिष्कृतैर्भूषितैः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उन चन्दोओं में मोती की लड़ियाँ लटक रही थीं । उत्तम मणियों से सुशोभित ॥१०॥

दासीभिर्निष्ककण्ठीभिः सुवासोभिरलंकृतम् । पुम्भिः सकञ्चुकोष्णीषसुवस्त्रमणिकुण्डलैः ॥११॥

अन्वयः— निष्ककण्ठीभिः सुवासोभिः दसीभिः अलंकृतम् सकञ्चुकोष्णीश सुवस्त्रमणि कुण्डलैः समलंकृतम् ॥११॥

अनुवाद— गले में हार पहनी हुई तथा सुन्दर वस्त्र धारण की हुई दासियों, तथा जामा पगड़ी तथा सुन्दर वस्त्र पहने हुए एवं मणिनिर्मित कुण्डल धारण किए हुए दास उस भवन की शोभा को बढ़ा रहे थे ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्तध्वान्तं विचित्रवलभीषु शिखण्डिनोऽङ्ग ।
नृत्यन्ति यत्र विहितागुरुधूपमक्षैर्निर्यातमीक्ष्य घनबुद्धय उन्नदन्तः ॥१२॥

अन्वयः— हे अङ्ग रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्त ध्वान्तं यत्र विचित्र बलभीषु शिखण्डिनः नृत्यन्ति, विहितागुरुधूपमक्षैः निर्यात मीक्ष्य घनबुद्धयः उन्नदन्तः आसन् ॥१२॥

अनुवाद— हे परीक्षित् रत्न निर्मित प्रदीप समूह की कान्ति से उस भवन का अन्धकार दूर हो रहा था, अगर की धूप देने के कारण निकलने वाले धूम को देखकर रङ्ग-बिरङ्गे छज्जों पर बैठे हुए मयूर मेघों के भ्रम से कूक-कूक कर नाचने लगते थे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

ईक्ष्य समीक्ष्य । घनो मेघोऽयमिति बुद्धिर्येषां ते ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

ईक्ष्य अर्थात् देखकर धूम को मेघ समझ लेने वाले ।।१२।।

तस्मिन्समानगुणरूपवयः सुवेषदासीसहस्रयुतयाऽनुसवं गृहिण्या ।
विप्रो ददर्श चमरव्यजनेन रुक्मदण्डेन सात्वतपतिं परिवीजयन्त्या ।।१३।।

अन्वयः— तस्मिन् विप्र समान गुण रूपवयः सुवेष दासी सहस्रयुतया अनुसवं रुक्मण्डेन चमरव्यजनेन परिवीजयन्त्या गृहिण्या सात्वतपतिं ।।१३।।

अनुवाद— उस महल में देवर्षि ने अपने ही समान रूप गुण अवस्था तथा सुन्दर वेष वाली हजारों दासियों से युक्त होने पर भी सुवर्ण दण्डवाले चमर से हवा करती हुई श्रीरुक्मिणी जी के साथ बैठे हुए श्रीभगवान् को देखा।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अनुसवं सर्वकालम्। आत्मना समानानि गुणरूपवायांसि सुवेषोऽलङ्काराय यस्य तेन दासीसहस्रेण युतया गृहिण्या सह।।१३।।

भाव प्रकाशिका

अनुसवं सर्वदा । जिन सबों का अपने समान गुण, रूप अवस्था सुन्दर वेष एवं अलङ्कार था ऐसी हजारो दासियों से युक्त श्रीरुक्मिणीजी के साथ ।।१३।।

तं सन्निरीक्ष्य भगवान्सहसोत्थितः श्रीपर्यङ्कतः सकलधर्मभृतां वरिष्ठः ।
आनम्य पादयुगलं शिरसा किरीटजुष्टेन साञ्जलिरवीविशदासने स्वे ।।१४।।

अन्वयः— तं सन्निरीक्ष्य सकल धर्मभृतां वरिष्ठः भगवान् श्रीपर्यङ्कतः सहसा उत्थितः सञ्जलिः किरीट जुष्टेन शिरसा पादयुगलं आनम्य स्वे आसने अवीविशत् ।।१४।।

अनुवाद— श्रीनारदजी को देखते ही सभी धार्मिकों में श्रेष्ठ श्रीभगवान् लक्ष्मीजी के पलङ्ग से एकाएक उठकर खड़ा हो गये । उन्होंने हाथ जोड़कर देवर्षिजी के चरणों में प्रणाम किया और उनको अपने आसन पर बैठाया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

श्रियो रुक्मिण्याः पर्यङ्कतः । अवीविशदुपवेशयामास ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

रुक्मिणीजी के पलङ्ग पर से । अवीविशत् अर्थात् बैठाये ।।१४।।

तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्नाऽबिभ्रज्जगद्गुरुतरोऽपि सतां पतिर्हि ।
ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनाम युक्तं तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ।।१५।।

अन्वयः— तस्य चरणौ अवनिज्य तदपः जगद्गुरुतरोऽपि स्वमूर्ध्ना अबिभ्रत् । सतां पतिः हि, यदगुणनामब्रह्मण्य देव इति युक्तं तस्यैव यच्चरणशौचम् अशेषतीर्थम् ।।१५।।

अनुवाद— श्रीभगवान् नारदजी के चरणों को पखार कर उस जल को अपने सिर पर धारण कर लिए यद्यपि वे सम्पूर्ण जगत् के परम गुरु है । वे संतों के आदर्श है । इसी गुण के कारण उनका नाम उचित नाम ब्रह्मण्यदेव है अर्थात् वे ब्राह्मणों को अपना आराध्य मानते हैं । उन श्रीभगवान् का ही चरणोदक गङ्गाजल सम्पूर्ण जगत् को पवित्र बनाने का काम करता है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अबिभ्रदबिभः दधारेत्यर्थः । विभ्रदिति शत्रन्तं वा । तदा संपूज्याभिभाष्य च प्राहेत्युत्तरेणान्वयः । कथंभूतः । यस्य चरणशौचं गङ्गा अशेषतीर्थं सः । अतएव जगद्गुरुतरोऽपि सतां धर्मभृतां पतित्वादेवमकरोदित्यर्थः । सतां पतित्वे हेतुः- ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणकृतं नाम तस्यैव यतो युक्तं समञ्जसमस्तद्धर्मप्रवर्तनायवमाचरणमित्यर्थः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अबिभ्रत अर्थात् धारण किया अथवा विभ्रत यहशतृप्रत्यान्त पद है । उसके पश्चात् पूजन करके तथा उनसे बातें करके कहे यह आगे श्लोक के साथ अन्वय है । श्रीभगवान् कैसे हैं ? जिन श्रीभगवान् का चरणोदक सबों को पवित्र बनाने वाला है । अतएव जगत् के परम गुरु होने पर भी धार्मिक शिरोमणि होने के कारण श्रीभगवान् ने देवर्षि के चरणोदक को अपने शिर पर धारण किया । वे सन्त पुरुषों में श्रेष्ठ इसलिए हैं कि गुण के कारण ही उनका नाम ब्रह्मण्यदेव है । और उनका यह नाम उचित भी हैं । अतएव इस धर्म को प्रवर्तित करने के ही लिए श्रीभगवान् ने ऐसा आचरण किया ।।१५।।

संपूज्य देवऋषिवर्यमृषिः पुराणो नारायणो नरसखो विधिनोदितेन ।
वाण्याभिभाष्य मितयाऽमृतमिष्टया तं प्राह प्रभो भगवते करवाम हे किम् ।।१६।।

अन्वयः— पुराणः ऋषिः नरसखः नारायणः देवऋषिवर्यम् उदितेन विधिना सम्पूज्य अमृतमिष्टया मितया वाण्या अभिभाष्य तं प्राह प्रभो ! भगवते किं करवामहे ।।१६।।

अनुवाद— प्राचीन ऋषि तथा नर के सखा भगवान् नारायण देवर्षिवर्य श्रीनारदजी की शास्त्रोक्त विधि से पूजा किए और उसके पश्चात् अमृत से भी मीठे किन्तु संक्षिप्त वाणी के द्वारा उनके साथ बातें करके कहें कि हे भगवन् आपकी कौन सी सेवा करूँ ?।।१६।।

भावार्थ दीपिका

अभिभाष्य दिष्ट्यात्र त्वदागमनमित्यादि प्रियमुक्त्वा ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

अभिभाष्य अर्थात् भाग्यवशात् आपके आगमन से इसतरह प्रियवाणी कहकर ।।१६।।

नारद उवाच

नैवाद्भुतं त्वयि विभोऽखिललोकनाथे मैत्री जनेषु सकलेषु दमः खलानाम् ।
निःश्रेयसाय हि जगत्स्थितिरक्षणाभ्यां स्वैरावतार उरुगाय विदाम सुष्ठु ।।१७।।

अन्वयः— हे विभो अखिललोकनाथे त्वयि अद्भुतं नैव सकलेषु जनेषु मैत्री खलनाम् दमः, जगतत्थितिरक्षणाभ्यां हि निःश्रेयसा य हेउरुगाय स्वैरावतारः सुष्ठु विदाम ।।१७।।

नारदजी ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! आप सम्पूर्ण लोकों के स्वामी है, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि आप अपने सभी भक्तों से प्रेम करते हैं और दुष्टों का दमन किया करते हैं । आप जगत् की स्थिति और रक्षा के द्वारा कल्याण करने के लिए आप अपनी इच्छा के अनुसार अवतार ग्रहण करते है, इस बात को हम अच्छी तरह से जानते हैं।।१७।।

भावार्थ दीपिका

भगवता स्वस्यार्हणमनर्हं मन्यमानस्तत्संभावयन्नाह-नैवेति । सर्वमित्रत्वादेवमर्हणं नतु मम गौरवात् । तर्हि कथं कंसादिष्वमैत्री

तत्राह-खलानां दमश्च नैवाद्भुतमिति । कुत: । जगत: स्थितिर्धारणं रक्षणं पालनं ताभ्यां सह तस्य नि:श्रेयसाय तवायं स्वेंच्छावतार इति वयं सुष्ठु सम्यग्विद्म: । अत: खलदम: साधुसंमाननं च युक्तमिति भाव: ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के द्वारा की गयी पूजा के अयोग्य अपने को मानते हुए नारदजी **नैष० इत्यादि** श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् को सम्मानित करते हुए कहते हैं । सबों का मित्र होने के ही करण आपने मेरी पूजा की है मेरी महिमा के कारण नहीं । यदि श्रीभगवान् सबों के मित्र हैं तो वे कंस आदि को क्यों मारे ? इस पर नारदजी कहते हैं। दुष्टों का दमन करना भी कोई अद्भुत बात नहीं है । क्योंकि जगत् की स्थिति तथा पालन के द्वारा जगत् का कल्याण करने के लिए आपका यह स्वेच्छावतार है । इस बात को मैं अच्छी तरह से जानता हूँ । अतएव आपके द्वारा सत्पुरुषों का सम्मान और दुष्टों का दमन दोनों आपके लिए उचित हैं ।।१७।।

दृष्टं तवाङ्घ्रियुगलं जनतापवर्गं ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधै: ।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृति: स्यात् ।।१८।।

अन्वय:— जनतापवर्गं तवाङ्घ्रियुगलं दृष्टं अगाधबोधै: ब्रह्मादिभि: हृदि विचिन्त्यम् संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बम् ध्यायन् चरामि अनुगृहाण यथा स्मृति: स्यात् ।।१८।।

अनुवाद— अपने भक्तजनों को मोक्ष प्रदान करने वाले आपके चरणों का दर्शन मिल गया यह बड़े ही सौभाग्य की बात है, आपके इन चरणों को अपने हृदय में चिन्तन अगाध ज्ञान सम्पन्न ब्रह्माजी आदि देवता किया करते हैं । इस संसार रूप कुएँ में गिरे हुए जीवों के इस कूप से बाहर निकलने के साधन हैं आपके चरण । मैं तो आपके चरणों का चिन्तन करते हुए सदा विचरण किया करता हूँ, आप मुझ पर ऐसी कृपा करें कि मुझे आपके चरणों की यादगारी बनी रहे ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

यदुक्तं प्रभो किं करवामेति तत्राह-दृष्टमिति । भक्तजनताया अपवर्गरूपम् । किंच अतिदुर्लभतया ब्रह्मादिभिर्योगेश्वरैरपि हृदि विचिन्त्यम् । किंच संसारकूपे पतितानामुत्तरणायावलम्बमाश्रयम् । एवंभूतं तवाङ्घ्रियुगलं मया दृष्टमत: कृतकृत्योऽस्मि। तथापि त्वत्स्मृतिर्यथा स्यात्तथानुगृहाण । ततस्तद्ध्यायन्नेव नित्यं चरामीति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने यह जो कहा है कि मैं आपकी कौन सी सेवा करूँ ? उसके विषय में नारदजी **दृष्टम्० इत्यादि** श्लोक कहे हैं । आपके चरण भक्त पुरुषों के लिए मोक्ष स्वरूप है । आपके चरण अत्यन्त दुर्लभ है, इसीलिए ब्रह्माजी आदि योगेश्वर आपके चरणों का चिन्तन अपने हृदय में कर रहे हैं । आपके ये चरण इस संसार रूपी कूप में गिरे हुए जीवों को इससे बाहर निकलने में यह आश्रय का काम करता है । आपके इस प्रकार के दोनों चरणों का दर्शन करके मैं तो कृतकृत्य हों गया फिर भी आप ऐसी कृपा करें कि आपके चरणों की स्मृति मुझे बनी रहे इसीलिए तो मैं आपके चरणों का ध्यान करता हुआ संचरण करता हूँ ।।१८।।

ततोऽन्यदाविशद्गेहं कृष्णपत्न्या: स नारद: । योगेश्वरेश्वरस्याङ्ग योगमायाविवित्सया ।।१९।।

अन्वय:— हे अङ्ग तत: नारद: कृष्णपत्न्या: अन्यद्गेहं योगेश्वरेश्वरस्य योगमाया विवित्सया आविशत् ।।१९।।

अनुवाद— हे परीक्षित् उसके पश्चात् नारदजी भगवान् श्रीकृष्ण की दूसरी पत्नी के गृह में योगेश्वरों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण की योगमाया को जानने की इच्छा से प्रवेश किए ।।१९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१९।।

दीव्यन्तमक्षैस्तत्रापि प्रियया चोद्धवेन च । पूजितः परया भक्त्या प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥२०॥

अन्वयः— तत्रापि प्रियया उद्धवेन च अक्षैः दीव्यन्तम् ददर्श प्रत्युत्थानासनादिभिः परया भक्त्या पूजितः ॥२०॥

अनुवाद— वहाँ भी उन्होंने देखा की श्रीभगवान् अपनी पत्नी तथा उद्धवजी के साथ द्यूत-क्रीडा कर रहे हैं । श्रीभगवान् खड़ा होकर उन्हें आसन प्रदान किए तथा परम भक्ति पूर्वक नारदजी की पूजा किए ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अक्षैर्दीव्यन्तमित्यादौ ददर्शेति ज्ञातव्यम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

चौसर खेलते हुए श्रीभगवान् को देखे ऐसा अर्थ समझना चाहिए ॥२०॥

पृष्टश्चाविदुषेवासौ कदाऽऽयातो भवानिति । क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णैरस्मदादिभिः ॥२१॥

अन्वयः— भवान् कदा आयात इति अविदुषा इव अस्मै पृष्टः च अस्मदादिभिः अपूर्णै पूर्णानाम् कि नु क्रियते॥२१॥

अनुवाद— आप कब आये इस तरह से श्रीभगवान् अनजानकी तरह पूछे । आप तो पूर्ण है । हम अपूर्ण जन आप पूर्ण महापुरुषों की कौन सी सेवा कर सकते हैं ?

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

अथापि ब्रूहि नो ब्रह्मञ्जन्मैतच्छोभनं कुरु । स तु विस्मित उत्थाय तूष्णीमन्यदगाद्गृहम् ॥२२॥

अन्वयः— अथापि हे ब्रह्मन् नो ब्रूहि एतज्जन्म शोभनं कुरु विस्मितः स तु उत्थाय तुष्णीम् अन्यद्गृहम् अगात् ॥२२॥

अनुवाद— फिर भी हे ब्रह्मन आप मुझे सेवा का असवर दीजिए, मेरे जन्म को सफल बनाइये । नारदजी तो यह सुनकर आश्चर्यित हो गये उठकर चुपचाप दूसरे महल में प्रवेश कर गये ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

तत्राप्यचष्ट गोविन्दं लालयन्तं सुतान् शिशून् । ततोऽन्यस्मिन्गृहेऽपश्यन्मज्जनाय कृतोद्यमम् ॥२३॥

अन्वयः— तत्रापि गोविन्दं शिशून् सुतान् लालयन्तं आचष्ट । ततः अन्यस्मिन् गृहे मज्जनाय कृतोद्यमम् अपश्यत्॥२३॥

अनुवाद— वहाँ भी उन्होंने भगवान् गोविन्द को अपने छोटे बच्चों को दुलार करते हुए देखा । उसके पश्चात् दूसरे महल में वे श्रीभगवान् को स्नान की तैयारी करते हुए देखे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

जुह्वन्तं च वितानाग्नीन्यजन्तं पञ्चभिर्मखैः । भोजयन्तं द्विजान्क्वापि भुञ्जानमवशेषितम् ॥२४॥

अन्वयः— वितानाग्नीन् जुह्वन्तं पञ्चभिः मखैः यजन्तं, क्वापिद्विजान भोजयन्तं क्वापि अवशेषितम् भुञ्जानम् ददर्श॥२४॥

अनुवाद— कहीं पर नारदजी ने श्रीभगवान् आवहनीय आदि अग्नियों में होम करते हुए देखा कहीं पर पञ्च महायज्ञ करते हुए देखा, कहीं पर उनको ब्राह्मणों को भोजन कराते हुए देखा तो कहीं पर ब्राह्मणों के भोजन करा लेने पर अवशिष्ट अन्न को भोजन करते हुए देखा ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

वितानाग्नीनाहवनीयादीनग्निहोत्रेण पञ्चभिर्मखैर्महायज्ञैर्यजन्तम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

आहवनीयादि अग्नि में अग्निहोत्र करते हुए, तथा पञ्चमहायज्ञों से यजन करते हुए देखा ॥२४॥

क्वापि सन्ध्यामुपासीनं जपन्तं ब्रह्म वाग्यतम् । एकत्र चासिचर्मभ्यां चरन्तमसिवर्त्मसु ॥२५॥

अन्वयः— क्वापि सन्ध्यामुपासीनम् वाग्यतम् ब्रह्म जपन्तम्, एकत्र च असिचर्मभ्यां असिवर्त्मसुचरन्तम् ॥२५॥

अनुवाद— उन्होंने कहीं पर श्रीभगवान् को सन्ध्योपासन करते हुए देखा तो कहीं पर मौन होकर गायत्री मन्त्र का जप करते हुए देखा, एक जगह तो श्रीभगवान को ढाल एवं तलवार लेकर तलवार के पैंतरे चलते हुए देखा॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

अश्वैर्गजै रथैः क्वापि विचरन्तं गदाग्रजम् । क्वचिच्छयानं पर्यङ्के स्तूयमानं च बन्दिभिः ॥२६॥

अन्वयः— क्वापि गदाग्रजम् अश्वैः रथैः गजैः विचरन्तम्, क्वचित् पर्यङ्के शयानं वन्दिभिः स्तूयमानं च ददर्श ॥२६॥

अनुवाद— कहीं पर नारदजी ने भगवान् श्रीकृष्ण को घोड़े, हाथी और रथ से विचरण करते हुए तथा कहीं पर उन्होंने देखा कि श्रीभगवान् सोए हैं और बन्दीजन उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

मन्त्रयन्तं च कस्मिंश्चिन्मन्त्रिभिश्चोद्धवादिभिः । जलक्रीडारतं क्वापि वारमुख्याऽबलावृतम् ॥२७॥

अन्वयः— कस्मिंश्चित् उद्धवादिभि; मन्त्रिभिः मन्त्रयन्तं ददर्श, क्वापि वारमुख्या अबलावृतम् जलक्रीडारतम् ददर्श॥२७॥

अनुवाद— किसी महल में नारदजी ने देखा कि श्रीभगवान् अपने उद्धवजी आदि मन्त्रियों के साथ किसी विषय का विचार कर रहें तो किसी महल में वेश्याओं के साथ जलक्रीडा कर रहे हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

कुत्रचिद्द्विजमुख्येभ्यो ददतं गाः स्वलंकृताः । इतिहासपुराणानि शृण्वन्तं मङ्गलानि च ॥२८॥

अन्वयः— कुत्रचित् द्विजमुख्येभ्यः स्वलंकृताः गाः ददतं ददर्श, मङ्गलानि इतिहासपुराणनि शृण्वन्तं ददर्श ॥२८॥

अनुवाद— किसी महल में नारदजी ने श्रीभगवान् को श्रेष्ठ ब्राह्मणों को समलंकृत गौओं का दान करते हुए देखा तथा मङ्गलमय इतिहास पुराणों को सुनते हुए देखा ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

हसन्तं हास्य कथया कदाचित्प्रियया गृहे । क्वापि धर्मं सेवमानमर्थकामौ च कुत्रचित् ॥२९॥

अन्वयः— कदाचित् गृहे हास्य कथया प्रियया हसन्तं ददर्श क्वापि धर्मं सेवमानं कुत्रचित् अर्थ कामौ-सेवमानं ददर्श॥२९॥

अनुवाद— किसी महल में अपने प्रिय पत्नी के साथ हँसी की बातें करके हँसते हुए श्रीभगवान् को नारदजी ने देखा, किसी पत्नी के महल में धर्म का सेवन करते हुए तथा किसी महल में अर्थ एवं काम नामक पुरुषार्थों का सेवन करते हुए देखा ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

ध्यायन्तमेकमासीनं पुरुषं प्रकृतेः परम् । शुश्रूषन्तं गुरून्क्वापि कामैर्भोगैः सपर्यया ॥३०॥

अन्वयः— क्वापि एकम् आसीनं पुरुष प्रकृतेः परं ध्यायन्तं ददर्श, क्वापि कामैः भोगैः सपर्यया शुश्रुषन्तं ददर्श॥३०॥

अनुवाद— कहीं पर नारदजी ने देखा कि श्रीभगवान् अकेले बैठे हुए प्रकृति से परे पुरुष का ध्यान कर रहे हैं तो कहीं पर गुरुजनों को अभिप्रेत भोग सामग्री प्रदान करके उनकी सेवा कर रहे हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

कुर्वन्तं विग्रहं कैश्चित्सन्धिं चान्यत्र केशवम् । कुत्रापि सह रामेण चिन्तयन्तं सतां शिवम् ॥३१॥

अन्वयः— केशवं कैश्चित् विग्रहं च कुर्वन्तं अन्यत्र च सन्धिं कुर्वन्तं कुत्रापि रामेण सह सतां शिवम् चिन्तयन्तम् ददर्श॥३१॥

अनुवाद— श्रीनारदजी ने देखा कि श्रीभगवान् किसी के साथ विग्रह कर रहे है । और किसी के साथ सन्धि कर रहे हैं । किसी महल में नारदजी ने श्रीभगवान् को बलरामजी के साथ बैठकर सत्पुरुषों के कल्याण के विषय में सोच रहे हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

पुत्राणां दुहितॄणां च काले विध्युपयापनम् । दारैर्वरैस्तत्सदृशैः कल्पयन्तं विभूतिभिः ॥३२॥

अन्वयः— कुत्रचित् पुत्राणां कालेतत्सदृशैः दारै, दुहितॄणां च काले तत्सदृशैः वरैः विभूतिभिः विध्युपयापनम् कल्पयन्तम् ददर्श ॥३२॥

अनुवाद— किसी पत्नी के घर में नारदजी ने देखा कि श्रीभगवान् समयानुसार अपने पुत्रों का उनके समान पत्नियों से तथा पुत्रियों का उनके योग्य पतियों से विधि पूर्वक विवाह सम्पन्न कर रहे हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

काले तत्तत्समये विधिना उपयापनं प्रापणं विवाहमित्यर्थः । कल्पयन्तं घटयन्तम् । विभूतिभिर्विभवैः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

समयानुसार विधि पूर्वक विवाह कार्य विभूति पूर्ण सम्पन्न करते हुए देखे ॥३२॥

प्रस्थापनोपानयनैरपत्यानां महोत्सवान् । वीक्ष्य योगेश्वरेशस्य येषां लोका विसिस्मिरे ॥३३॥

अन्वयः— अपत्यानां प्रस्थापनोपानयनैः योगेश्वरेशस्य महोत्सवान् वीक्ष्य येषां लोकाविसिस्मिरे ॥३३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् कहीं कन्याओं को विदा करने की तैयारी में लगे हैं और कहीं बुलाने की तैयारी में लगे है इस तरह से योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण के उत्सवों को देखकर लोग विस्मित हो जाते थे ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्थापनं दुहितृजामात्रादीनां स्वगृहात्तत्तद्गृहं प्रति नयनम् । उपानयनं तत्तद्गृहात्पुनरानयनम् । तैर्महोत्सवान्कल्पयन्तम् योगेश्वरेशस्य तेषामपत्यानां महोत्सवान्वीक्ष्य लोकाः सर्वे विसिस्मिरे विस्मयं चक्रुः । तथाभूतान् कल्पयन्तम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

प्रस्थापनम् अर्थात् पुत्री तथा जामाता आदि को उनके घर भेजना उपानयनं उन सबों के घर से अपने घर बुलाना । इन सबों के द्वारा महोत्सवों कल्पना करते हुए योगेश्वरों के भी स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण के उन सन्तानों के महोत्सवों को देखकर लोग आश्चर्यित हो जाते थे ॥३३॥

यजन्तं सकलान्देवान्क्वापि क्रतुभिरूर्जितैः । पूर्तयन्तं क्वचिद्धर्मं कूपाराममठादिभिः ॥३४॥

अन्वयः— क्वचन ऊर्जितैः क्रतुभिः कुत्रचित् सकलान् देवान् यजन्तं, क्वचित कूपाराम मठादिभिः धर्मं पूर्तयन्तम्॥३४॥

अनुवाद— कहीं पर तो श्रीभगवान् का बड़े-बड़े यज्ञों द्वारा सभी देवताओं की पूजा करते हुए तथा कही पर कुप, उद्यान तथा गुरुकुल आदि के द्वारा पूर्त कर्मों को कर रहे हैं भगवान् ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

चरन्तं मृगयां क्वापि हयमारुह्य सैन्धवम् । घ्नन्तं ततः पशून्मेध्यान्परीतं यदुपुङ्गवैः ॥३५॥

अन्वयः— क्वापि सैन्धवम् हयमारुह्य मृगयाचरन्तम् ततः यदुपुंगवैः परीतम् मेध्यान् पशून् घ्नन्तं ददर्श ।।३५।।

अनुवाद— नारदजी ने देखा कि कहीं तो श्रीभगवान् सिन्धु देशी अश्व पर चढ़कर आखेट कर रहे हैं और श्रेष्ठ यदुवंशियों के साथ यज्ञीय पशुओं को मार रहे हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

अव्यक्तलिङ्गं प्रकृतिष्वन्तः पुरगृहादिषु । क्वचिच्चरन्तं योगेशं तत्तद्भावबुभुत्सया ॥३६॥

अन्वयः— तत् तत् भाव बुभुत्सया क्वचित् अव्यक्त लिङ्गं प्रकृतिषु अन्तःपुरादिषु अव्यक्तलिङ्ग चरन्तम् ।।३६।।

अनुवाद— कहीं पर अभिप्राय का पता लगाने के लिए प्रजाओं तथा अन्तः पुर में अपना वेष बदलकर विचरण करते हुए श्रीभगवान् को नारदजी ने देखा ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

अव्यक्तलिङ्गं वेषान्तरेण च्छन्नम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

अव्यक्तलिङ्ग अपने वेष को बदल कर ।।३६।।

अथोवाच हृषीकेशं नारदः प्रहसन्निव । योगमायोदयं वीक्ष्य मानुषीमीयुषो गतिम् ॥३७॥

अन्वयः— अथ मानुषीम् गतिमीयुषः योगमायोदयं वीक्ष्य नारदः हृषीकेशं प्रहसन् इव उवाच ।।३७।।

अनुवाद— मनुष्य के समान लीला करने वाले श्रीभगवान् की योगमाया के प्रभाव को देखकर नारदजी ने मुस्कुराते हुए उनसे पूछा ।।३७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३७।।

विदाम योगमायास्ते दुर्दर्शा अपि मायिनाम् । योगेश्वरात्मन्निर्भाता भवत्पादनिषेवया ॥३८॥

अन्वयः— हे योगेश्वर ते योगमाया मायिनाम् अपिदुदर्शा हे योगेश्वरात्मन् भवत्पादनिषेवया निर्भाता ।।३८।।

अनुवाद— हे योगेश्वर आपकी माया ब्रह्माजी आदि बड़े-बड़े मायावियों के लिए दुर्गम्य है । किन्तु आपके चरणों की सेवा करने के कारण मैं आपकी माया के रहस्य को जानता हूँ ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

हे योगेश्वर, आत्मन आत्मनि मम मनसि तव स्वरूपे वा निर्भाताः प्रतीतास्तव योगमायाः केवलं विदाम विद्मः नतु त्वत्परमार्थमिति भावः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

हे योगेश्वर ! मेरे मन में अथवा आपके स्वरूप में प्रतीत होने वाली केवल आपकी माया को मैं जानता हूँ, आपके स्वरूप को मैं नहीं जानता हूँ ।।३८।।

अनुजानीहि मां देव लोकांस्ते यशसाप्लुतान् । पर्यटामि तवोद्गायँल्लीलां भुवनपावनीम् ॥३९॥

अन्वयः— हे देव माम् आनुजानीहि तव भुवनपावनीम् लीलां उदगायन् यशसाप्लुतान् ते लोकान् पर्यटामि ।।३९।।

अनुवाद— हे देवताओं के भी आराध्य प्रभो ! अब मुझे आप आज्ञा दें । मैं संसार को पवित्र बनाने वाली आपकी लीला को जोर-जोर से गायन् करता हुआ आपके यश से भरे लोकों में मैं सञ्चरण करता हूँ ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

त्वन्मानुष्यनाट्येन मुह्याम्यतो मां प्रस्थापयेत्याह-अनुजानीहीति ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

अनुजानीहि इस श्लोक से नारदजी ने कहा कि आपकी इस मनुष्य के समान लीला से मैं मोहित हो रहा हूँ ।।३९।।

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्मन्धर्मस्य वक्ताहं कर्ता तदनुमोदिता । तच्छिक्षयँल्लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ।।४०।।

अन्वयः— ब्रह्मन् अहं धर्मस्य वक्ता, कर्ता तदनुमोदिता, तत् इमम् लोकं शिक्षयन् आस्थित; पुत्र ! माखिदः ।।४०।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् मैं धर्म का उपदेष्टा, कर्ता और धर्म का अनुमोदन करने वाला हूँ । धर्म की शिक्षा देते हुए इस लोक में स्थित हूँ । पुत्र ! तुम मेरी माया को देखकर मोहित मत होना ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

तत्तस्माल्लोकं शिक्षयन्निमं धर्ममास्थितो नतु तत्त्वतः । हे पुत्र, मा खिदः मोहं मा प्राप्नुहीति ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

अतएव लोगों को शिक्षा देने के लिए मैं इस धर्म का पालन करता है । तात्विक रूप से नहीं हे पुत्र नारद तुम मोहित न होओ ।।४०।।

श्रीशुक उवाच

इत्याचरन्तं सद्धर्मान्पावनान्गृहमेधिनाम् । तमेव सर्वगेहेषु सन्तमेकं ददर्श ह ।।४१।।

अन्वयः— इति गृहमेधिनाम् पावनान् सद्धर्मान् अचारन्तम् तमेव एकं सर्वगेहेषु सन्तं ददर्श ह ।।४१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह गृहस्थों को पवित्र बनाने वाले श्रेष्ठ धर्म का एक ही श्रीभगवान् को सभी गृहों में आचरण करते हुए नारदजी ने देखा ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

इत्येवमनुगृहीतस्तमेकमेवं सन्तं ददर्शेति ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से श्रीभगवान् की कृपा प्राप्त नारदजी ने एक ही श्रीभगवान् को सभी गृहों में देखा ।।४१।।

कृष्णस्यानन्तवीर्यस्य योगमायामहोदयम् । मुहुर्दृष्ट्वा ऋषिरभूद्विस्मितो जातकौतुकः ।।४२।।

अन्वयः— अनन्तवीर्यस्य श्रीकृष्णस्य योगमाया महोदयम् मुहुः दृष्ट्वा विस्मितः ऋषिः जातकौतुक अभूत् ।।४२।।

अनुवाद— अनन्त पराक्रम सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण की योगमाया के प्रभाव को बार-बार देखकर आश्चर्यित हुए देवर्षि नारदजी की कौतूहल की सीमा न रही ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

मुहुर्मुहुर्दृष्ट्वा जातकौतुको मुनिर्विस्मितोऽभूदिति ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

बार-बार देखकर कौतूहल सम्पन्न नारदजी के आश्चर्य की कोई सीमा न रही ।।४२।।

इत्यर्थकामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धितात्मना । सम्यक् सभाजितः प्रीतस्तमेवानुस्मरन्ययौ ॥४३॥

अन्वयः— इति अर्थ कामधर्मेषु श्रद्धितात्मना कृष्णेन सम्यक् सभाजितः प्रीतः तमेव अनुस्मरन् ययौ ॥४३॥

अनुवाद— इस तरह अर्थ, काम तथा धर्म इन तीनों पुरुषार्थों में श्रद्धा पूर्वक लगे रहने वाले भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा अच्छी तरह से समादृत देवर्षि नारदजी श्रीभगवान् का ही स्मरण करते हुए वहाँ से चले गये ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

श्रद्धितः श्रद्धया युक्त आत्मा यस्य तेन ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

श्रद्धा पूर्वक लगे रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा ॥४३॥

एवं मनुष्यपदवीमनुवर्तमानो नारायणोऽखिलभवाय गृहीतशक्तिः ।
रेमेऽङ्ग षोडशसहस्रवराङ्गनानां सव्रीडसौहृदनिरीक्षणहासजुष्टः ॥४४॥

अन्वयः— हे अङ्ग एवं नारायण अखिल भवाय गृहीत शक्तिः मनुष्यपदवीमनुवर्तमानः सव्रीड सौहृद निरीक्षणहासजुष्टः षोडश सहस्रवराङ्गनानां रेमे ॥४४॥

अनुवाद— हे परीक्षित् इस प्रकार से भगवान् नारायण सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करने के लिए अपनी महाशक्ति योगमाया को स्वीकार करके मनुष्यों के समान लीला करते हैं । वे द्वारकापुरी में सोलह हजार पत्नियों की लज्जा एवं प्रेम से परिपूर्ण अवलोकन और मन्द मुस्कान से सेवित होते हुए उन सबों के साथ विहार किए॥४४॥

भावार्थ दीपिका

नारददृष्टां श्रीकृष्णलीलां निगमयति-एवमिति । अखिलस्य भवायोद्भवाय गृहीताः शक्तयो नानामूर्तयो येन सः । सव्रीडं च तत्सौहृदं च तेन निरीक्षणं हासश्च ताभ्यां जुष्टः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

नारदजी द्वारा देखी गयी भगवान् श्रीकृष्ण लीला का उपसंहार **एवमित्यादि** श्लोक से करते हैं । जिन श्रीभगवान् ने सम्पूर्ण जगत् का कल्याण करने के लिए अनेक शरीर को धारण किए हैं । लज्जा एवं प्रेम से परिपूर्ण अवलोकन तथा मन्दमुस्कान से सेवित ॥४४॥

यानीह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः कर्माण्यनन्यविषयाणि हरिश्चकार ।
यस्त्वङ्ग गायति शृणोत्यनुमोदते वा भक्तिर्भवेद्भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे कृष्णगार्हस्थ्यदर्शनं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

अन्वयः— हे अङ्ग विश्वविलयोदभववृत्तिहेतुः हरिः इह यानि अनन्यविषयाणि कर्माणि चकार यस्तु गायति, शृणोति अनुमोदते वा अपवर्ग मार्गे भगवति भक्तिः भवेत् ॥४५॥

अनुवाद— हे परीक्षित् ! विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के परम कारण भूत श्रीहरि ने जिन लीलाओं को की, उसको दूसरा कोई नहीं कर सकता है । जो इसको पढ़ता है, या सुनता है, या अनुमोदन करता है उसको मोक्ष के मार्ग स्वरूप श्रीभगवान् भक्ति की प्राप्ति हो जाती है ॥४५॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के श्रीकृष्ण गार्हस्थ्य दर्शन नामक उनहत्तरवे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥६९॥

भावार्थ दीपिका

अनन्यविषयाण्यसाधारणानि । अपवर्गमार्गे मोक्षप्रदे ।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ।।६९।।

भाव प्रकाशिका

अनन्यविषयाणि अर्थात् असाधारण, अपवर्ग मार्गे अर्थात् मोक्षप्रदान करने वाले ।।४५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवे स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के उनहत्तरवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।६९।।

◆

सत्तरवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण की नित्यचर्या और उनके पास जरासन्ध के कैदी राजाओं के दूत का आना

श्रीशुक उवाच

अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान्कूजतोऽशपन् । गृहीतकण्ठ्यः पतिभिर्माधव्यो विरहातुराः ॥१॥

अन्वयः— अथ उषसि उपवृत्तायां पतिभिः गृहीतकण्ठ्याः विरहातुराः माधव्यः कूजतः कुक्कुटान् अशपन् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जब प्रातःकाल की बेला हो जाती उस समय जिनके गले में भगवान् श्रीकृष्ण अपनी भुजा डाल रखे है वे भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियाँ विरह की सम्भावना से बोलने वाले मूर्गों को कोसने लगती थीं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततस्तु सप्ततितमे कृष्णस्याह्निककर्मणि । दूतनारदयोः कार्ये कार्यमन्त्रविचारणम् ॥१॥ जगन्मङ्गलचारित्रमाह्निकं जगदीशितुः। नारदेन क्वचित्किंचिद्दृष्टमाह यथाक्रमम् ॥२॥ अथेति–'इत्यर्थकामधर्मेषु कृष्णेन श्रद्धितात्मना' इति प्रस्तुतस्य श्रीकृष्णस्याह्निकस्याधिकारेऽथशब्दः उपवृत्तायामासन्नायाम् । पतिभिः श्रीकृष्णैः माधव्यो माधवस्य भार्याः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् सत्तरवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा दिन में किए जाने वाले कर्म के विषय में दूत तथा नारदजी के कार्यों के किए जाने वाले कर्मों के विषय में विचार का वर्णन है ॥१॥ जिन भगवान् जगदीश्वर का चरित्र तथा आह्निक जगत् का मङ्गल करने वाला है नारदजी ने जिसको जहाँ-तहाँ कुछ देखा । शुकदेवजी उसका क्रमशः वर्णन किए हैं ॥२॥ पीछे के अध्याय में कहा गया है कि अर्थ, धर्म तथा काम नामक पुरुषार्थो को श्रद्धा पूर्वक करने वाले उन भगवान श्रीकृष्ण के आह्निक कर्मों के अधिकार में अथ शब्द का प्रयोग किया गया है । उपवृतायाम् अर्थात् होने लगने पर भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा माधव्यः अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियाँ ॥१॥

वयांस्यरूरुवन्कृष्णं बोधयन्तीव बन्दिनः । गायत्स्वलिष्वनिद्राणि मन्दारवनवायुभिः ॥२॥

अन्वयः— मन्दारवनवायुभिः गायत्सु अलिषु अनिद्राणि वयांसि वन्दिनः इव कृष्णं बोधयन्तीव अरूरुवन ॥२॥

अनुवाद— पारिजात वान की वायु की सुगन्धि से सुवासित वायु के चलने से भौंरे जब गुनगुनाने लगते हैं तो उसके कारण पक्षियों की नींद खुल जाती और वे बन्दीजनों की तरह भगवान् श्रीकृष्ण को जगाने के लिए जोर-जोर से कलरव करने लगते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

वन्दिन इव श्रीकृष्णं बोधयन्ति सन्ति वयांसि पक्षिणोऽरूरुवन् अतिशयेनाकूजन् । मन्दारवनवायुभिर्गायत्स्वलिष्वनिद्राणि निद्रारहितानि वयांसि ॥२॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह वन्दीजन भगवान् श्रीकृष्ण को जगाते है, उसी तरह पक्षीगण भी जोर-जोर से मधुर कलरव करने लगते हैं । पारिजात वन की वायु के कारण जब भौरें गुनगुनाने लगते हैं जगे हुए पक्षीगण ॥२॥

मुहूर्तं तं तु वैदर्भी नामृष्यदतिशोभनम् । परिरम्भणविश्लेषात्प्रियबाह्वन्तरं गता ॥३॥

अन्वयः— प्रियवाह्वन्तरं गता वैदर्भी तु परिरम्भणविश्लेषात् तं मुहूर्तं अतिशोभनम् न अमृष्यत् ॥३॥

अनुवाद— अपने प्रियतम के भुजपाश में बँधी रहने पर भी आलिङ्गन छूट जाने के भय से श्रीरुक्मिणीजी उस अत्यन्त पवित्र ब्राह्ममूहूर्त को भी असह्य मानने लगती थीं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

वैदर्भीत्युपलक्षणम् परिरम्भणविश्लेषात्तं पर्यालोच्य ॥३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीरुक्मिणीजी भगवान् श्रीकृष्ण की सभी पत्नियों के उपलक्षण हैं । आलिङ्गनं छूट जाने के कारण रूप से उसको जानकर ॥३॥

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः । दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम् ॥४॥

अन्वयः— ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय वारि उपस्पृश्य प्रसन्नकरणः माधवः आत्मानं तमसः परं दध्यौ ॥४॥

अनुवाद— ब्राह्म मुहूर्त में जगकर जल का आचमन कर भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न मन से अपने स्वरूप का माया रहित रूप से ध्यान करने लगते थे ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

एकं स्वयंज्योतिरनन्यमव्ययं स्वसंस्थया नित्यनिरस्तकल्मषम् ।
ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतिम् ॥५॥

अन्वयः— एकं स्वयं ज्योतिः अनन्यम् अव्यम् स्व संस्थया नित्य निरस्तकल्मषं ब्रह्माख्यम् अस्य उद्भवं नाश हेतुभिः स्वशक्तिभिः लक्षितभाव निर्वृतिम् ॥५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की आत्मा का वह स्वरूप सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेद रहित होने के कारण एक, स्वयं प्रकाश है । अनन्य अर्थात् उसमें किसी प्रकार की उपाधि या उपाधि के कारण होने वाले किसी अन्य वस्तु का अस्तित्व नहीं है, **अव्ययम्** अर्थात् निर्विकार, अपनी संस्था मात्र से समस्त प्रकार के दोषों से रहित तथा ब्रह्म शब्द वाच्य हैं । इस सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति स्थिति एवं नाश के कारणभूत ब्रह्मशक्ति, विष्णुशक्ति तथा रुद्रशक्ति इन तीनों शक्तियों से इस बात का अनुमान हो सकता है कि वह स्वरूप एकरस सत्तारूप और आनन्द स्वरूप है । भगवान् श्रीकृष्ण प्रतिदिन अपने इस स्वरूप का ध्यान करते थे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

एकमखण्डम् तत्र हेतुः-अनन्यं निरूपाधिम् । अत एवाव्ययं नित्यम् । स्वयंज्योतिष्ट्वे हेतुः-नित्यनिरस्तं, नित्यनिवृत्तं कल्मषमविद्या यस्मात्तम् । उपलक्षणमाह-अस्येति । अस्य विश्वस्य । लक्षितभावश्चासो निर्वृतिश्च । भावः सत्ता । निर्वृतिरानन्दः।

तथा हि-गुणक्षोभात्पूर्वं सत्तामात्रं यः- 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' इत्यादिश्रुते । स एवानन्दश्च-'विज्ञानमानन्दम्' इत्यादिश्रुतेः'। तं सदानन्दमित्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

एक अर्थात् अखण्ड, क्योंकि उपाधियों से रहित है, आत्मा का स्वरूप इसीलिए वह नित्य है । सभी दोषों से रहित होने के कारण वह आत्मा का स्वरूप स्वयं प्रकाश है । उस आत्म स्वरूप का उपलक्षण है कि वह इस जगत् की सृष्टि स्थिति तथा संहार के कारण भूत शक्तियों से युक्त है । उसी से उस आत्मा की सत्ता रूप तथा आनन्द स्वरूप होने का अनुमान किया जा सकता है । कहने का अभिप्राय है कि गुणों में क्षोभ उत्पन्न होने से पहले जो सत्तामात्र रहता है । श्रुति भी कहती है सदेव सोम्येदमग्र आसीत् । अर्थात् हे सोम्य गुंणों में क्षोभ उत्पन्न होने से पहले यह आत्मा का स्वरूप सत्तामात्र ही था । वही आनन्द स्वरूप भी है । श्रुति भी कहती हैं **विज्ञानमानन्दं ब्रह्म'** अर्थात् वही ज्ञान स्वरूप और आनंद स्वरूप ब्रह्म शब्द वाच्य है ॥५॥

अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि क्रियाकलापं परिधाय वाससी ।
चकार सन्ध्योपगमादि सत्तमो हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः ॥६॥

अन्वयः— अथ अमले अम्भसि आप्लुतः वाससी परिधाय यथाविधि सन्ध्योपगमादि क्रियाकलापं चकार हुतानलः सत्तमः वाग्यतः ब्रह्मजजाप ॥६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् स्वच्छ जल में स्नान करके धोती पहन कर तथा दुपट्टा धारण करके, विधि पूर्वक सन्ध्योपासनादि क्रियाओं को करने के पश्चात् श्रीभगवान् ने अग्निहोत्र किया उसके पश्चात् मौन होकर गायत्री मन्त्र का वे जप किए ॥६॥

भावार्थ दीपिका

अप्लुतः स्नातः सन्ध्याया उपगम उपासनमादिर्यथा भवति तथा क्रियाकलापं चकार । काण्वत्वादुदयात्पूर्वमेव हुतानलः। ब्रह्म गायत्रीं जजाप ॥६॥

भाव प्रकाशिका

अप्लुतः अर्थात् स्नान करके । सन्ध्या के क्रियाकलाप को विधि पूर्वक श्रीभगवान् ने किया । काण्व होने के कारण सूर्योदय से पहले ही उन्होंने अग्निहोत्र किया । और उसके पश्चात् उन्होंने गायत्री मन्त्र का जप किया है ॥६॥

उपस्थायार्कमुद्यन्तं तर्पयित्वात्मनः कलाः । देवानृषीन्पितॄन्वृद्धान्विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान् ॥७॥
धेनूनां रुक्मशृङ्गीणां साध्वीनां मौक्तिकस्रजाम्। पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम् ॥८॥
ददौ रूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैः सह । अलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्धं बद्धं दिने दिने ॥९॥

अन्वयः— उद्यन्तमर्कं उपस्थाय आत्मनः कलाः देवान्, ऋषीन् पितॄन् च तर्पयित्वा, विप्रान् अभ्यर्च्य आत्मवान् पर्यास्वनी नां रुक्मशृङ्गीणाम् साध्वीनाम् मौक्तिक स्रजाम् गृष्टी नाम् धेनूनां सवत्सानां सुवाससाम् रुप्यखुराग्राणां क्षौमाजिन तिलैः सह अलंकृतेभ्यः विप्रेभ्यः बद्धं बद्धं दिने-दिने ददौ ॥७-९॥

अनुवाद— उगते हुए सूर्य का उपस्थान करके अपनी कला स्वरूप देवताओं, ऋषियों और पितरों का तर्पण करने के पश्चात् ब्राह्मणों की पूजा श्रीभगवान् ने किया । उसके पश्चात् परम मनस्वी भगवान् श्रीकृष्ण दुधारु, जिन सबों के सींग में सोना मढ़ाया गया था, सीधी सादी, जिनके गले मे मोतियों की माला पहनायी गयी थी ऐसी पहली बार बच्चा दी हुई बछड़ों के साथ तथा वस्त्रों से सजायी गयी गायों को रेशमी वस्त्र, मृगचर्म और तिल के साथ अलंकृत ब्राह्मणों को प्रतिदिन तेरह हजार गायों का दान करते थे ॥७-९॥

भावार्थ दीपिका

कला अंशान्देवान् ऋषीन्पितृंश्च तर्पयित्वा । गृष्टीनां प्रथमप्रसूतानाम् । बद्वमिति । 'हिरण्येन परीवृतान्कृष्णान् शुक्लदतो मृगान् । मष्णारे भरतोऽददाच्छतं वद्वानि सप्त च ।' इति श्रुत्युक्तानि सप्तोत्तरशतं बद्वानेकीकृत्य पुराणे चतुर्दशलक्षत्वेन गणितानि। यथोक्तं भरतमेवाधिकृत्य नवमस्कन्धे-'मृगान् शुक्लदतः कृष्णान्सुवर्णेन परिष्कृतान् । अदात्कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश।' इति ततश्चेयं बद्वसंख्या श्लोकेन संगृह्यते-'चतुर्दशानां लक्षणां सप्ताधिकशतांशकः । बद्वं चतुरशीत्यग्रसहस्राणि त्रयोदश।' इति। दिने-दिने च प्रतिगृहं चेति ।।७-९।।

भाव प्रकाशिका

कला अर्थात् अपने अंशभूत देवों, ऋषियों और पितरों का तर्पण करके गृष्टीनाम् पहली बार व्यायी हुई गायों का । बद्व के विषय में श्रुति में कहा गया है कि भरत ने मष्णार कर्म में ९१५८८ उजले दाँतों वाले काले मृगों को प्रदान किया । इस तरह श्रुति में वर्णित एक सौ सात वद्व को एकत्रित करके पुराण में चौदह लाख मृगों की संख्या बतलायी गयी है । भरत के ही विषय में नवें स्कन्ध में कहा गया है । श्वेत दाँतों वाले चौदह लाख काले मृगों को सुवर्ण से अलंकृत करके भरत ने मष्णार कर्म में दान दिया । वद्व की संख्या श्लोक में इस तरह कही गयी है । एक बद्व की संख्या १३०८४ होती है । इस तरह एक सौ सात बद्व की संख्या चौदह लाख होती है । श्रीभगवान् इतनी गायों का प्रतिदिन दान देते थे ।।७-९।।

गोविप्रदेवतावृद्धगुरून् भूतानि सर्वशः । नमस्कृत्यात्मसंभूतीर्मङ्गलानि समस्पृशत् ।।१०।।

अन्वयः— गोविप्रदेवतावृद्ध गुरून् सर्वशः भूतानि आत्मसंभूतीः नमस्कृत्य मङ्गलानि समस्पृशत् ।।१०।।

अनुवाद— अपनी विभूति रूप गौ, ब्राह्मण, देवता अपने परिवार के बडे-बूढ़े गुरुजनों सभी प्राणियों को नमस्कार करके श्रीभगवान् ने माङ्गलिक वस्तुओं का स्पर्श किया ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

आत्मसंभूतीः सविभूतीः । मङ्गलानि कपिलादीनि ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

आत्मसंभूतीः अर्थात् अपनी विभूति रूप, मङ्गलानि अर्थात्कपिला गौ इत्यादि ।।१०।।

आत्मानं भूषयामास नरलोकविभूषणम् । वासोभिर्भूषणैः स्वीयैर्दिव्यस्रगनुलेपनैः ।।११।।

अन्वयः— स्वीयै वासोभिः भूषणैः दिव्य स्रगनुलेपनैः नरलोकविभूषणम् आत्मानं भूषयामास ।।११।।

अनुवाद— श्रीभगवान् ने अपने दिव्य वस्त्रों कौस्तुभ आदि आभूषणों दिव्य मालाओं तथा चन्दनादि अनुलेपनों के द्वारा मनुष्यलोक के अलङ्कार स्वरूप अपने शरीर को अलंकृत किया ।।११।।

भावार्थ दीपिका

नरलोकस्य विभूषणरूपमात्मानम् । स्वीयैः पीताम्बर कौस्तुभादिभिः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

मर्त्यलोक के भूषण के समान मनोहर अपने शरीर को अपने दिव्य पीताम्बर एवं कौस्तुभ आदि के द्वारा अलंकृत किया।।११।।

अवेक्ष्याज्यं तथादर्शं गोवृषद्विजदेवताः । कामांश्च सर्ववर्णानां पौरान्तःपुरचारिणाम् ॥ ।।१२।।
प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनन्दत

अन्वयः— आज्यं तथा दर्पणम् अवेक्ष्य गोवृषद्विज देवताः, पौरान्तः पुरचारिणाम् सर्ववर्णानाम् कामान् च प्रदाप्य प्रकृतीः कामैः प्रतोष्य प्रत्यनन्दत ।।१२।।

अनुवाद— उसके पश्चात् श्रीभगवान् घी में तथा दर्पण में अपना मुख देखे और फिर गौ, बैल, ब्राह्मण और देवताओं को प्रणाम करके नगरवासियों तथा अन्त:पुर में रहने वाले चारो वर्णों के लोगों की अभिलाषाओं को पूर्ण करते थे, तदनन्तर प्रजाओं की कामनाओं की पूर्ति करके उन सबों को देखकर अत्यन्त आनन्दित होते थे श्रीभगवान्॥१२॥

भावार्थ दीपिका

कामानभिलषितानर्थान् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

कामान् अर्थात् अभिलाषित पदार्थों को ॥१२॥

संविभज्याग्रतो विप्रान् स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः । सुहृदः प्रकृतीर्दारानुपायुङ्क्त ततः स्वयम् ॥१३॥

अन्वयः— स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः अग्रतः विप्रान् सुहृदः प्रकृतिः दारान् संविभज्य ततः स्वयम् उपायुक्त ॥१३॥

अनुवाद— भगवान माला, ताम्बूल, चन्दन और अङ्गराग पहले ब्राह्मणों को, उसके पश्चात् सम्बन्धी हितैषियों प्रजाओं और रानियों को बाँट देते उसके बाद बची हुई इन सभी वस्तुओं का स्वयम् उपभोग करते थे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

विप्रादीन्स्रगादिभिः संविभज्य । तेभ्यस्तानि दत्त्वेत्यर्थः । उपायुङ्क्त भोगार्थमग्रहीत् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

मालाएँ आदि पहले ब्राह्मणों आदि को बाँट देने के बाद बची वस्तुओं का अपने उपयोग में लाते थे ॥१३॥

तावत्सूत उपानीय स्यन्दनं परमाद्भुतम् । सुग्रीवाद्यैर्हयैर्युक्तं प्रणम्यावस्थितोऽग्रतः ॥१४॥

अन्वयः— सूतः तावत् सुग्रीवाद्यैः हयैः युक्त परमाद्भुतम् स्यन्दनम् उपानीय प्रणम्य अग्रतः अवस्थितः ॥१४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् जब तक इन कार्यों को करते तब तक सारथि जिसमें सुग्रीव, शैव्य आदि अश्व जुते रहते ऐसे अत्यन्त मनोहर रथ को लाकर श्रीभगवान् को प्रणाम करके सामने खड़ा हो जाता था ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

गृहीत्वा पाणिना पाणी सारथेस्तमथारुहत् । सात्यक्युद्धवसंयुक्तः पूर्वाद्रिमिव भास्करः ॥१५॥

अन्वयः— अथ पाणिना सारथेः पाणी गृहित्वा सात्यक्युद्धवसंयुक्तः पूर्वाद्रिम् भास्कर इव तम् आरुहत् ॥१५॥

अनुवाद— श्रीभगवान् अपने हाथ से सारथि के हाथ को पकड़कर सात्यकि तथा उद्धवजी के साथ उस रथ पर उसी तरह चढ़ते हैं, जिस तरह भगवान् भास्कर उदयाचल पर आरूढ होते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

पाणी कृतेञ्जलौ गृहीत्वा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

सव्रीडप्रेमवीक्षितैरीक्षितः क्षणं स्थितस्ताभिरेव वीक्षितैः कृच्छ्राद्विसृष्टो निरगादिति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

लज्जा एवं प्रेममिश्रित अवलोकनों से देखे जाने पर क्षणभर रुककर उन सबों द्वारा देखे जाते हुए तथा वहीं क्षणभर ठहर कर उन सबों के द्वारा कष्ट पूर्वक विदा किए हुए श्रीभगवान् निकल जाते थे ।।१६।।

सुधर्माख्यां सभां सर्वैर्वृष्णिभिः परिवारितः । प्राविशद्यन्निविष्टानां न सन्त्यङ्ग षडूर्मयः ।।१७।।

अन्वयः— हे अङ्ग सर्वैवृष्णिभि; परिवारित यन्निविष्टानां षडूर्मय; नसन्ति तां सुधर्माख्यां सभा प्राविशत् ।।१७।।

अनुवाद— उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण सभी यदुवंशियों के साथ उस सुधर्मा सभा में प्रवेश कर जाते थे जिसमें बैठने वालों को भूख-प्यास, शोक-मोह तथा जरा और मृत्यु ये षड्र्मियाँ नहीं सताती थीं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

एवं सर्वगृहेभ्यः पृथक्पृथङ्ङ्निर्गत्यानन्तरमेक एव सन्सुधर्मां प्राविशत् । यन्निविष्टानां यत्र प्रविष्टानाम् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

सभी गृहों से अलग-अलग निकलकर फिर एक होकर सुधर्मा सभा में प्रवेश कर जाते थे, जिसमें प्रवेश किए लोगों को ।।१७।।

तत्रोपविष्टः परमासने विभुर्बभौ स्वभासा ककुभोऽवभासयन् ।
वृतो नृसिंहैर्यदुभिर्यदूत्तमो यथोडुराजो दिवि तारकागणैः ।।१८।।

अन्वयः— तत्र परमासने उपविष्टः विभुः स्वभासा ककुभः अवभासयन् यदुभिः नृंसिहै वृतः यदूत्तमः दिवि तारकागणैः उडुराजो यथा बभौ ।।१८।।

अनुवाद— उस सभा में सिंहासन पर बैठे हुए सर्वव्यापक श्रीभगवान् अपनी कान्ति से सभी दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे । श्रेष्ठ यदुवंशियों से घिरे हुए श्रीभगवान् की शोभा आकाश में तारा समूह के बीच में बैठे हुए चन्द्रमा के समान हो रही थी ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

नृसिंहैर्नृषुश्रेष्ठैः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

नृसिंहैः अर्थात् श्रेष्ठ यदुवंशियों से ।।१८।।

तत्रोपमन्त्रिणो राजन्नानाहास्यरसैर्विभुम् । उपतस्थुर्नटाचार्या नर्तक्यस्ताण्डवैः पृथक् ।।१९।।

अन्वयः— हे राजन् तत्र उपमन्त्रिणः नाना हास्यरसैः नटाचार्याः नर्तक्यः ताण्डवैः पृथक् विभुम् पृथक् उपतस्थुः।।१९।।

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् वहाँ पर विदूषः अनेक प्रकार के हास्य रसों से नटाचार्य अभिनयों से तथा नर्तकियाँ नृत्य के द्वारा श्रीभगवान् की सेवा करती थीं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

उपमन्त्रिणः परिहासकाः । पृथक्पृथक् स्वस्वसमुदायैः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

उपमन्त्रिण अर्थात् विदूषकगण अलग-अलग अपने समुदायों से ।।१९।।

मृदङ्गवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः । ननृतुर्जगुस्तुष्टुवुश्च सूतमागधबन्दिनः ॥२०॥

अन्वयः— मृदङ्गवीणामुरजवेणुतालदरस्वनैः सूतमागधवन्दिनः ननृतुः जगुः तुष्टुवुः च ॥२०॥

अनुवाद— उस समय मृदङ्ग, वीणा, मुरज, वंशी, ढोल तथा शङ्ख की ध्वनि होने लगती थी तथा सूत मागध एवं बन्दीजन नाचते, गाते एवं श्रीभगवान् की स्तुति करने लग जाते थे ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

मृदङ्गादयः प्रसिद्धाः । दरः शङ्खः । सूतादयस्तुष्टुवुः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

मृदङ्ग इत्यादि प्रसिद्ध है । **दरः** अर्थात् शङ्ख । सूत इत्यादि श्रीभगवान् की स्तुति करने लगते थे ॥२०॥

तत्राहुर्ब्राह्मणाः केचिदासीना ब्रह्मवादिनः । पूर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञां चाकथयन्कथाः ॥२१॥

अन्वयः— तत्र आसीनाः केचिद् ब्रह्मवादिनः ब्राह्मणाः सर्वेषां पुण्ययशसां राज्ञां कथा अकथयन् ॥२१॥

अनुवाद— उस सभा में बैठे हुए कुछ वेदज्ञ ब्राह्मण श्रीभगवान् को मन्त्र सुनाते थे और कुछ प्राचीन पवित्र कीर्ति राजाओं की कथा सुनाते थे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणा ब्रह्म वेदमाहुर्मन्त्रान्व्याख्य वक्षतेत्यर्थः । वादिनो वादनचतुराः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणाः अर्थात् वेदों की व्याख्या करने में निपुण ब्राह्मण वेदमन्त्र सुनाते थे । वादिनः व्याख्या करने में निपुण॥२१॥

तत्रैकः पुरुषो राजन्नागतोऽपूर्वदर्शनः । विज्ञापितो भगवते प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥२२॥

अन्वयः— हे राजन् तत्र एकः अपूर्वदर्शनः पुरुषः आगतः भगवते विज्ञपितः प्रतिहारैः प्रवेशितः ॥२२॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् वहाँ पर अपरिचित् एक पुरुष आया । द्वारपालों ने उसके आने की सूचना दी और श्रीभगवान् की आज्ञा प्राप्त कर द्वारपालों ने उसको प्रवेश कराया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

स नमस्कृत्य कृष्णाय परेशाय कृताञ्जलिः । राज्ञामावेदयद्दुःखं जरासन्धनिरोधजम् ॥२३॥

अन्वयः— सः परेशाय कृष्णाय नमस्कृत्य जरासन्ध निरोधनम् राज्ञाम् दुःखं आवेदयत् ॥२३॥

अनुवाद— उसने परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और जरासन्ध के द्वारा बन्दी बनाये गये राजाओं के दुःख को सुनाया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

ये च दिग्विजये तस्य संनतिं न ययुर्नृपाः । प्रसह्य रुद्धास्तेनासन्नयुते द्वे गिरिव्रजे ॥२४॥

अन्वयः— तस्य दिग्विजये ये च नृपाः संनतिं न ययुः तेन प्रसह्य गिरिव्रजे रुद्धा आसन्न तेषां संख्या द्वे अयुते ॥२४॥

अनुवाद— जरासन्ध के दिग्विजय के समय जिन राजाओं ने उसके सामने सिर नहीं झुकाया उसने उन राजाओं को बलपूर्वक गिरिव्रज नामक दुर्ग में वन्दी बना दिया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

गिरिव्रजे तत्संज्ञके दुर्गे रुद्धा आसन् । तेषां च दुःखमावेदयदित्यन्वयः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

गिरिव्रज नामक दुर्ग में वन्दी बनाये गये राजाओं के दुःख को उसने बतलाया ॥२४॥

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्प्रपन्नभयभञ्जन । वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः ॥२५॥

अन्वयः— हे अप्रमेयात्मन् कृष्ण, हे प्रपन्नभयभञ्जन, भवभीताः पृथग्धियः वयं त्वां शरणं यामः ॥२४॥

अनुवाद— हे सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, हे अप्रमेयात्मन् प्रभो ! हे शरणागत जीवों के भय को दूर करने वाले भगवन् । हमलोगों की भेद बुद्धि समाप्त नहीं हुई हैं, हम संसार के भय से डरे हुए हैं । हमलोग आपकी शरणागति करते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

कृष्ण कृष्णति षट्श्लोकी राज्ञां विज्ञप्तिः, तत्र प्रथमेन शरणाश्रयणं, त्रिभिः, भयानुवादः, द्वाभ्यां प्रार्थनमिति ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

कृष्ण कृष्ण इत्यादि छह श्लोकों के द्वारा राजाओं ने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की है । उन छह श्लोकों में से पहले श्लोक के द्वारा राजाओं ने श्रीभगवान् की शरणागति की है, उसके पश्चात् उन सबों ने अपने भय का अनुवाद किया है । अन्तिम दो श्लोकों से राजाओं ने श्रीभगवान् से प्रार्थना की है ॥२५॥

लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे ।
यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥२६॥

अन्वयः— लोकः विकर्मनिरतः अयं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे कुशले कर्मणि प्रमतः, यः तावत् अस्य इह बलवान् इह जीविताशां सद्य छिनत्ति तस्मै अनिमिषाय नमोऽस्तु ॥२६॥

अनुवाद— इस संसार के लोग ऐसे सकाम एवं निषिद्ध कर्मों में फँसे हुए हैं कि वे आपके बतलाये हुए परम कल्याणकारी कर्म, आपकी उपासना से विमुख हो गये हैं । और अपनी आशाओं और अभिलाषाओं में भटक रहे हैं । आप बड़े बलवान हैं । आप कालरूप से सदा सावधान रहकर उनकी आशालता का सद्यः समुच्छेदन कर देते हैं । हम आपके उस कालरूप को नमस्कार करते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

पृथग्दर्शिनो लोकस्य भवभयं विवृण्वन्तो नमन्ति–लोक इति । विकर्म निषिद्धं काम्यं च तस्मिन्नितरां रतः । स्वे कुशले धर्मे । भवतोऽर्चने त्वयोदिते पञ्चरात्रे । समान्यतश्च गीतासु–'यत्करोपि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्, इति । प्रमत्तोऽनवहितो यावदयं लोकस्तावदेवास्य लोकस्य यः सद्यो जीविताशां छिनत्ति तस्मै तुभ्यमनिमिषाय कालात्मने नम इति ॥२६॥

समर्पित कर दो । **प्रमत्तः** अर्थात् असावधान जो यह लोक है उसकी जीने की आशा रूपी लता का आप नाश कर देते हैं । इस तरह के काल स्वरूप आपको हमलोगों का नमस्कार है ।।२६।।

लोके भवाञ्जगदिनः कलयावतीर्णः सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय चान्यः ।
कश्चित्त्वदीयमतियाति निदेशमीश किं वा जनः स्वकृतमृच्छति तन्न विद्मः ।।२७।।

अन्वयः— जगत् ईनः भवान् लोके सद्रक्षणाय खलनिग्रणाय च अवतीर्णः हे ईश कश्चित् त्वदीयं निदेशम् अतिपाति, किं वा जनः स्वकृतम् ऋच्छति तत् न विद्मः ।।२७।।

अनुवाद— हे प्रभो आप तो संसार के स्वामी हैं, आप अपने ज्ञान, बल शक्ति आदि कलाओं के साथ इस संसार में इसलिए अवतार ग्रहण किए हैं कि आप सज्जनों की रक्षा करे और दुष्टों का दमन करें । हे ईश इस संसार में कुछ जरासन्ध आदि ऐसे राजा गण हैं जो आपकी आज्ञाओं का उल्लंघन करते हैं । अथवा यह भी सम्भव है कि हमलोग अपने पूर्वकृत कर्मो का फल भोग रहे हैं । किन्तु आपके हमलोग भक्त हैं आपके भक्तों को दुष्कर्म कैसे दुःख प्रदान रूप फल प्रदान कर सकते हैं ? अतएव आप कृपा करके हमे क्लेशों से मुक्त करें।।२७।।

भावार्थ दीपिका

सेयं लोकस्य गतिर्वयं तु त्वद्भक्ताः, अतोऽस्माकं कुत एतदुःखमापन्नमित्याश्चर्येणाहुः-लोक इति । भो ईश, जगत इन ईश्वरः । त्वयि सद्रक्षणार्थमवतीर्णेऽपि चेदस्माकं दुःखं स्यात्तर्हि किमन्यः कश्चिज्जरासन्धादिस्त्वदाज्ञामपि लङ्घयति । किंच त्वया रक्ष्यमाणोऽपि जनः स्वकर्मजं दुःखं प्रापोत्येवेति न विद्मः । नचैतदुभयमपि युक्तमिति भावः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

यह तो संसारी जीवों की गति है, किन्तु हमलोग तो आपके भक्त हैं, अतएव हमलोगों को यह कष्ट कैसे भोगना पड़ रहा है, इस बात को हम नहीं समझ पा रहे हैं । इस तरह से राजाओ ने **लोके० इत्यादि** श्लोक से आश्चर्य पूर्वक कहा- हे भगवन् आप तो संसार के स्वामी हैं । सज्जनों की रक्षा के लिए ही आप अवतार ग्रहण किए हैं फिर भी हमलोगों को कष्ट भोगना पड़ रहा है । तो फिर दूसरों की कौन सी बात है ? कुछ जरासन्ध आदि राजागण आपकी आज्ञा का उल्लंघन भी कर रहे हैं । किञ्च जिन अपने भक्तों की आप रक्षा करते हैं, उन हमलोगों को हमारे कर्म, किस तरह हमलोगों को इतना कष्ट देते हैं, यह बात हमारे समझ में नहीं आती हैं ।।२७।।

स्वप्रायितं नृपसुखं परतन्त्रमीश शश्वद्भयेन मृतकेन धुरं वहामः ।
हित्वा तदात्मनि सुखं त्वदनीहलभ्यं क्लिश्यामहेऽतिकृपणास्तव माययेह ।।२८।।

अन्वयः— हे ईश नृप सुखं स्वप्नायितं परतन्त्रम् शश्वद् भयेन मृतकेन धुरं वहामः त्वदनीहलभ्यं तत् आत्मनि सुखं हित्वा अतिकृपणाः वयम् इह तव मायया क्लिश्यामहे ।।२८।।

अनुवाद— प्रभो हम इस बात को जानते है कि राजा होने का सुख प्रारब्ध के अधीन है । वह स्वप्न के ही समान अत्यन्त तुच्छ है । उस सुख को भोगने वाला यह शरीर भी मुर्दे के समान है । इस शरीर के पीछे सैकड़ों प्रकार के भय लगे रहते हैं । हमलोग इस शरीर के द्वारा अनेक प्रकार के भारों को ढो रहे हैं इसीलिए हमलोग अन्तः करण के निष्काम भाव तथा निःसङ्कल्प के द्वारा प्राप्त होने वाले आत्मसुख का परित्याग करके आपकी माया से मोहित होकर अपार कष्ट को भोग रहे हैं ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

किं दुःखं तदाहुः-स्वप्रायितमिति । स्वप्नवज्जातं नृपसुखं नृपोचितं सुखम् । यतः परतन्त्रं विषयसाध्यम् । किंच संप्रति शश्वद्भयं यस्मिंस्तेन मृतकतुल्येन शरीरेण धुरं पुत्रदारादिचिन्तां केवलं वहामः । अहो कष्टं नः, ये वयमितः पूर्वमेव निष्कामाः सन्तस्त्वां नाश्रिता इत्याहुः हित्वेति । त्वत् त्वत्तो यदनीहैर्निष्कामैर्लभ्यमात्मनि स्वतःसिद्धं सुखं तद्धित्वा क्लिश्याम इति ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि कौन सा दुःख है तो उसे **स्वप्नायितम् इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं हमलोगों को राजा होने का सुख स्वप्न के समान हो गया है । क्योंकि वह सुख तो कर्माधीन और विषय साध्य है । और वर्तमान में तो जो सदा दुःखों से घिरा है इस प्रकार के अपने मृतक तुल्य शरीर से पुत्र पत्नी परिवार की अनेक प्रकार की चिन्ताओं का वहन कर रहे हैं । यह अत्यन्त सोचनीय है कि इससे पहले निष्काम होकर आपको अपना आश्रय नहीं बनाये। इस बात को **हित्वा इत्यादि** श्लोकांश से कहा गया है । निष्काम कर्मों के द्वारा आपसे प्राप्त होने वाले स्वाभाविक सुख का परित्याग करके हमलोग कष्ट भोग रहे हैं ॥२८॥

तन्नो भवान्प्रणतशोकहराङ्घ्रियुग्मो बद्धान्वियुङ्क्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात् ।
यो भूभुजोऽयुतमतङ्गजवीर्यमेको बिभ्रद्रुरोध भवने मृगराडिवावीः ॥२९॥

अन्वयः— तत् प्रणत शोकहराङ्घ्रियुग्मः भवान् मगधाह्वय कर्मपशात् नः वियुंक्ष्व यः अयुत मतं गजवीर्यम एकः विभ्रत् भवने मृगराट् आवीः इव भवने रुरोध ॥२९॥

अनुवाद— अतएव हे प्रभोः ! आपके चरण कमल शरणागत जीवों के शोक को विनष्ट कर देने वाले हैं । आप हमलोगों को मगधराज जरासन्ध रूपी कर्मों के बन्धन से मुक्त कर दें । जो मगधराज अकेले ही दश हजार हाथियों के बल से सम्पन्न हैं, और वह हम राजाओं को अपने कैद खाने में उसी तरह बाँध रखा है जिस तरह कोई सिंह भेड़ों को घेरे रहता है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

त्वन्मायाकृतं कर्मबन्धं त्वमेव निवर्तयेति प्रार्थयन्ते–तन्न इति । वियुङ्क्ष्व मोचय । मगधो जरासन्धस्तत्संज्ञकात्कर्मपाशात् भवद्भिरेव विक्रम्य ततो निर्गम्यतामिति चेदत आहुः–य इति । एक एवायुतमतंगजानां वीर्यं विभ्रत्सन्स्वभवने भूभुजोऽस्मान् रुरोध । सिंहो मेषीरिव ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

आपकी माया द्वारा रचित कर्म के बन्धन को आप ही दूर करें इस तरह से राजागण प्रार्थना **तन्नः इत्यादि** श्लोक से करते हैं । **वियुंक्ष्व** अर्थात् मुक्त करें । जरासन्ध नामक मगधराज को आपलोग स्वयं अपने पराक्रम से हराकर मुक्त हो जायँ । तो ऐसी बात सम्भव इसलिए सम्भव नहीं है । अकेला जरासन्ध दस हजार हाथियों के बल से सम्पन्न है । अतएव वह अपने भवन में उसी तरह से कैद कर रखा है । जिस तरह कोई मृगराज बकरियों को घेर कर रखता है ॥२९॥

यो वै त्वया द्विनवकृत्व उदात्तचक्र भग्नो मृधे खलु भवन्तमनन्तवीर्यम् ।
जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पो युष्मत्प्रजा रुजति नोऽजित तद्विधेहि ॥३०॥

अन्वयः— हे उदात्तचक्र यो वै त्वया द्विनवकृत्वभग्नः मृधे खलु अनन्तवीर्यम् भवन्तम् जित्वा नृलोकनिरतं सकृदूढदर्पः युष्मत्प्रजा नो रुजति हे अजित् तद्विधेहि ॥३०॥

अनुवाद— हे चक्रपाणे ! आपने जरासन्ध से अठारह बार युद्ध किया और सत्रह बार आपने उसका मान मर्दन करके उसे छोड़ दिया । अठारहवीं बार आप उससे हार गये । इससे वह सम्पूर्ण मनुष्यों को जितकर अत्यन्त घमण्डी हो गया है । हमलोगों को आपका भक्त जानकर वह हमलोगों को और अधिक सताता है । हे अजित अब आप जैसा चाहें वैसा करें ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

किंच युष्मदीया वयमित्यस्मानधिकं बाधत इत्याहुः-यो वा इति । हे उदात्तचक्र उद्यतसुदर्शन, यो वै द्विनवकृत्वोऽष्टादशवारांस्त्वया सह मृधे वर्तमाने तत्र सप्तदशकृत्वस्त्वया खलु भग्नः पराजितः पश्चादनन्तवीर्यमपि नृलोके निरतं नरशरीरविनोदं भवन्तं सकृज्जित्वा ऊढदर्पः प्राप्तगर्वो युष्मत्प्रजा नो रुजति पीडयति । तत्तत्र यद्युक्तं तद्विधेहीत्यर्थः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

वह यह जानकर अधिक सताता है कि हमलोग आपके भक्त हैं इस तरह से राजाओं ने कहा हे चक्रपाणे जिसने आप से अठारह बार युद्ध किया उसमें सत्रह बार वह आपसे पराजित हो गया । यद्यपि आप अनन्त शक्ति सम्पन्न है, फिर भी मनुष्य लीला करते हुए आप उससे पराजित हो गये । उसके कारण वह अत्यन्त दृप्त हो गया है । और आपकी प्रजा हमलोगों को अधिक सता रहा है । अतएव आप जो उचित समझें वैसा करें ।।३०।।

दूत उवाच

इति मागधसंरुद्धा भवद्दर्शनकाङ्क्षिणः । प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम् ।।३१।।

अन्वयः— इति मागधसंरुद्धाः भवद्दर्शन काङ्क्षिणः ते पादमूलं प्रपन्नाः दीनानां शं विधीयताम् ।।३१।।

दूत ने कहा

अनुवाद— भगवन्, जरासन्ध के बन्दी बने हुए सभी राजागण आपका दर्शन प्राप्त करना चाहते हैं । आपके चरणों की शरणागति करते हैं । प्रभो हम दीन राजाओं का आप कल्याण करें ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

दूत आह-इतीति ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

इति० इत्यादि श्लोक को दूत ने कहा है ।।३१।।

श्रीशुक उवाच

राजदूते ब्रुवत्येवं देवर्षिः परमद्युतिः । बिभ्रत्पिङ्गजटाभारं प्रादुरासीद्यथा रविः ।।३२।।

अन्वयः— एवं राजदूते ब्रुवति पिङ्गजटाभारं विभ्रत् परमद्युतिः देवर्षिः रविः यथा प्रादुरासीत् ।।३२।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से जब राजाओं का दूत कह रहा था उसी समय, पीली जटा को धारण किए हुए अत्यन्त कान्ति सम्पन्न देवर्षि नारदजी वहाँ सूर्य भगवान् के समान प्रकट हो गये ।।३२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३२।।

तं दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः सर्वलोकेश्वरेश्वरः । ववन्द उत्थितः शीर्ष्णा ससभ्यः सानुगो मुदा ।।३३।।

अन्वयः— तं दृष्ट्वा सर्वलोकेश्वरः भगवान् कृष्णः सानुगः ससभ्यः उत्थितः मुदा शीर्ष्णा ववन्दे ।।३३।।

अनुवाद— नारदजी को देखकर ब्रह्मा आदि सभी लोकपालों के भी स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण अपने अनुयायियों तथा सभासदों के साथ खड़े होकर हर्षपूर्वक उनकी वन्दना किए ।।३३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३३।।

सभाजयित्वा विधिवत्कृतासनपरिग्रहम् । बभाषे सूनृतैर्वाक्यैः श्रद्धया तर्पयन्मुनिम् ।।३४।।

अन्वयः— विधिवत् सभाजयिवा कृतासनपरिग्रहम् सुनृतैः वाक्यै; श्रद्धया मुनिं तर्पयन् बभाषे ।।३४।।

अनुवाद— जब देवर्षि आसन स्वीकार करके बैठ गये तब भगवान् ने उनकी विधिपूर्वक पूजा की और अपनी श्रद्धा से उनको सन्तुष्ट करते हुए कहे ।।३४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३४।।

अपिस्विदद्य लोकानां त्रयाणामकुतोभयम् । ननु भूयान्भगवतो लोकान्पर्यटतो गुणः ।।३५।।

अन्वयः— अपिस्वित् त्रयाणां लोकानां अकुतोभयम् ननु भूयान् लोकान् पर्यटत भगवतः गुणः ।।३५।।

अनुवाद— क्या त्रैलोक्य में कुशल तो है । आप त्रैलोक्य में सदा धूमते रहते हैं । इससे हमें फायदा है कि सम्पूर्ण जगत् का समाचार आपसे मिलता रहता है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

भूयान्महान्गुणो लाभोऽयमस्माकं यत्सर्वलोकवृत्तान्तज्ञानमिति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

यह महान लाभ है कि हमें सबों का समाचार मिल जाता है ।।३५।।

न हि तेऽविदितं किंचिल्लोकेष्वीश्वरकर्तृषु । अथ पृच्छामहे युष्मान्पाण्डवानां चिकीर्षितम् ।।३६।।

अन्वयः— ईश्वर कर्तृषु त्रिषु लोके ते किञ्चित् अविदितं नास्ति अथ युष्मान् पाण्डवानां चिकीर्षित पृच्छाम हे ।।३६।।

अनुवाद— ईश्वर प्रणीत त्रैलोक्य के भीतर के सारे सामाचार आप को ज्ञात है अतएव मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस समय पाण्डव क्या कर रहे हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

ईश्वरः कर्ता येषां तेषु ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

ईश्वर प्रणीत लोको में ।।३६।।

श्रीनारद उवाच

दृष्टा मया ते बहुशो दुरत्यया माया विभो विश्वसृजश्च मायिनः ।
भूतेषु भूमंश्चरतः स्वशक्तिभिर्वह्नेरिव च्छन्नरुचो न मेऽद्भुतम् ।।३७।।

अन्वयः— हे विभो: विश्वसृजः चते दुरत्यय माया मया बहुशः दृष्टा । हे भूमन् ! भूतेषु चरत; स्वशक्तिभिः छन्नरुचः वह्नेःइव मे अद्भुतम् न ।।३७।।

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— हे सर्वव्यापक प्रभो विश्व की सृष्टि करने वाले आपकी माया तो ब्रह्मा आदि बड़े मायावी ब्रह्माजी आदि को भी मोहित कर देने वाला है । आपकी उस माया का मैने दर्शन किया है । हे भूमन् आप सभी भूतों के भीतर अन्तर्यामी रूप से व्याप्त हैं । जिस तरह अग्नि में विद्यमान अरणि की कान्ति नहीं दिखायी देती है, उसी तरह आप । आप अपनी अचिन्त्य शक्ति से आच्छन्न रहते हैं, दिखायी नहीं पड़ते । आप तो सर्वज्ञ हैं । किन्तु अनजान के समान मुझसे पाण्डवों का समाचार पूछते हैं । यह मेरे लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

एवमविदुषेव सर्वज्ञेन जरासन्धवधार्थमेव पाण्डवचिकीर्षितं पृष्टो नारदो मायेयमिति ज्ञात्वाह–दृष्टा इति त्रिभिः । विश्वसृजश्च ब्रह्मणोऽपि मायिनो मोहकस्य ते स्वशक्तिभिर्विद्यादिभिर्भूतेष्वन्तर्यामितया चरतो वर्तमानस्य । यद्यहं भूतेषु वर्ते तर्हि भूतानि मां किं न पश्यन्ति तत्राह- वह्नेरिव च्छन्नरुच इति । स्वशक्तिभिरेव च्छन्ना रुक् प्रकाशो यस्य तस्य । अतस्तवेदं प्रश्नादि न मेऽद्भुतम्।।३७।।

भाव प्रकाशिका

सर्वज्ञ भी होकर अनजान के समान जरासन्ध का वध करने के ही लिए पाण्डव क्या करना चाहते हैं ? इस तरह से पूछे जाने पर नारदजी ने जान लिया कि यह भगवान् की माया है । इसी बात को उन्होंने दृष्टा इत्यादि तीन श्लोकों से कहा । ब्रह्माजी इत्यादि बड़े-बड़े मायावियों को भी मोहित करने वाली आप विद्या आदि अपनी शक्तियों से सभी भूतों के भीतर सञ्चरण करने वाले हैं । यदि आप पूछें कि मैं यदि भूतों के भीतर विद्यमान हूँ तो जीव मुझको क्यों नहीं देख पाते हैं ? इस पर नारदजी ने कहा कि जिस तरह अग्नि की कान्ति काठ में छिपी रहती है उसी तरह आपका प्रकाश आपकी अपनी शक्ति से ही आच्छन्न है । अतएव आपका अनजान के समान मुझको आश्चर्यित नहीं कर रहा है ।।३७।।

तवेहितं कोऽर्हति साधु वेदितुं स्वमाययेदं सृजतो नियच्छतः ।
यद्विद्यमानात्मतयाऽवभासते तस्मै नमस्ते स्वविलक्षणात्मने ।।३८।।

अन्वयः— स्वमाययेदं सृजतो नियच्छतः, यदवर्तमानात्मतया अवभासते । तव इहितं कः साधु वेदितुम् अर्हति तस्मै स्व विलक्षणात्मने ते नमः ।।३८।।

अनुवाद— आप अपनी माया से ही इस जगत् की सृष्टि करते हैं और इसका संहार भी कर देते हैं यद्यपि यह जगत् मिथ्या है फिर भी सत्य के समान प्रतीत होता है, इसका भी कारण माया ही है । आप कब क्या करना चाहते हैं इस बात को अच्छी तरह से कौन जान सकता है । आप स्वेतर समस्त वस्तुओं से विलक्षण हैं। आपका स्वरूप सर्वथा अचिन्तनीय है अतएव मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

इदं जगत् । कथंभूतम् । असदेव यत्तव मायया विद्यमानात्मतयाऽवभासते तज्जगत्सृजतः । किंतु केवलं तुभ्यं नमनमेव शक्यमित्याह- तस्मै नम इति । कुतः । स्वेन रूपेण सर्वतो विलक्षणात्मने अचिन्त्यायेत्यर्थः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

यह जगत् कैसा है ? यह जगत असत् होने पर भी सत्य के समान आपकी माया के द्वारा प्रतीत होता है । इस प्रकार के जगत् की सृष्टि करने वाले आप हैं । ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ । आप अपने रूप से सर्वथा श्वेतरवस्तु विलक्षण हैं । आप अचिन्त्य स्वरूप वाले हैं आपको नमस्कार है ।।३८।।

जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः ।
लीलावतारैः स्वयशः प्रदीपकं प्राज्वालयत्त्वा तमहं प्रपद्ये ।।३९।।

अन्वयः— अनर्थवहात् शरीरात् संसरतः विमोक्षणं न जानतः जीवस्य यः लीलावतारैः स्वयशः प्रदीपकं प्रज्वालयत् त्वा तमहं शरणं प्रपद्ये ।।३९।।

अनुवाद— शरीर और शरीर सम्बन्धी वासनाओं से सम्बन्ध रखने वाली वासनाओं के कारण जीव इस संसार चक्र में भटक रहा है । वह इससे मुक्ति प्राप्त करने के साधन को नहीं जानता है । ऐसे ही जीवों का कल्याण करने के लिए आप नाना प्रकार के अवतारों को ग्रहण करते हैं और अपने पवित्र यश का दीपक जला देते हैं । जिसके द्वारा यह जीव इस अनर्थकारी शरीर से मुक्ति प्राप्त कर लेता है । अतएव मैं आपकी शरणागति करता हूँ ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेवंभूतस्य किं मायाचेष्टितैरित्यत आह-जीवस्येति । अविद्यातमसा वृतत्वेनानर्थप्रापकाच्छरीरात्संसरतः । तेनैव तपसा तस्माच्छरीराद्विमोक्षोपायमजानतः । प्राज्वालयत्प्रदीपितवान् । तं त्वा त्वाम् । यशःश्रवणादिभिर्जीवस्य मोक्षार्थमित्यर्थः।।३९।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप पूछें कि यदि मैं इस प्रकार का हूँ तो फिर मुझको मायिक कार्यों को करने से कौन सा लाभ है। इस पर नारदजी ने **जीवस्य० इत्यादि** श्लोक कहा अज्ञानान्धकार की प्राप्ति जिससे होती है उस शरीर से संसरण करने वाले। उसी अज्ञानान्धकार के कारण शरीर से मुक्ति पाने के उपाय को नहीं जानने वाले जीवों का आपने अपने यश रूपी दीपक को प्रकाशित कर दिया है। जिससे कि जीव आपकी लीलाओं का श्रवणादि करके संसार से मुक्त हो जाय ऐसे आपकी मैं शरणागति करता हूँ ।।३९।।

अथाप्याश्रावये ब्रह्म नरलोकविडम्बनम् । राज्ञः पैतृष्वस्रेयस्य भक्तस्य च चिकीर्षितम् ।।४०।।

अन्वयः— हे नरलोकविडम्बनम् ब्रह्म तथापि पैतृष्वस्रेयस्य भक्तस्य चराज्ञः चिकीर्षितम् आश्रवये ।।४०।।

अनुवाद— हे मनुष्यों जैसी लीला करने वाले परब्रह्म विभो यद्यपि आप तो सब कुछ जानते ही हैं फिर भी मैं आपके फुफेरे भाई तथा आपके भक्त महाराज युधिष्ठिर क्या कहना चाहते है ? इस बात को मैं सुना रहा हूँ ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

आश्रावये श्रावयिष्यामि । नरलोकविडम्बनं ब्रह्म त्वाम् । ब्रह्मन्निति पाठेऽपि हे ब्रह्मन्परमात्मन्, नरलोकानुकारिणं त्वां श्रावयिष्यामीति ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

आश्रवये अर्थात् मैं सुनाऊँगा । आप तो मनुष्यों की जैसे लीला करने वाले परब्रह्म है । **ब्रह्मन्** यह पाठ होने पर भी अर्थ होगा कि हे मनुष्यों की जैसी लीला करने वाले परमात्मन् आपको मैं सुनाऊँगा ।।४०।।

यक्ष्यति त्वां मखेन्द्रेण राजसूयेन पाण्डवः । पारमेष्ठ्यकामो नृपतिस्तद्भवाननुमोदताम् ।।४१।।

अन्वयः— पामेष्ठ्यकामः नृपति पाण्डवः त्वां राजसूयेन मखेन्द्रेण यक्ष्यति तद्भवान् अनुमोदताम् ।।४१।।

अनुवाद— ब्रह्मलोक की प्राप्ति की कामना से महाराज युधिष्ठिर आपकी आराधना यज्ञश्रेष्ठ राजसूय के द्वारा करना चाहते है । आप उसका अनुमोदन करें ।।४१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४१।।

तस्मिन्देव क्रतुवरे भवन्तं वै सुरादयः । दिदृक्षवः समेष्यन्ति राजानश्च यशस्विनः ।।४२।।

अन्वयः— हे देव तस्मिन् क्रतुवरे भवन्तं दिदृक्षवः सुरादयः यशस्विनः राजानश्च समेष्यन्ति ।।४२।।

अनुवाद— हे देव ! उस श्रेष्ठ यज्ञ में आपका दर्शन करने के लिए बड़े-बड़े देवता और यशस्वी राजागण भी आयेंगे ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

न चात्रैवानुमोदनं कार्यं किंतु तत्रागन्तव्यमित्याशयेनाह-तस्मिन्निति ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

केवल यहीं से अनुमोदन नहीं करना है अपितु आपको वहाँ उस यज्ञ में भी आना चाहिए ।।४२।।

श्रवणात्कीर्तनाद्ध्यानात्पूयन्तेऽन्तेवसायिनः । तव ब्रह्ममयस्येश किमुतेक्षाभिमर्शिनः ॥४३॥

अन्वयः— हे ईश तव ब्रह्ममयस्य श्रवणात् कीर्तनात् ध्यानात् अन्तेवसायिनः पूयन्ते । ईक्षाभिमर्शिनः किमुत ॥४३॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप सच्चिदानन्द घन स्वरूप है । आपकी लीलाओं का श्रवण, कीर्तन और ध्यान करने से जब चाण्डाल भी पवित्र हो जाते हैं तो आपका दर्शन और स्पर्श करने वाले के विषय में क्या कहना है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

तत्रागताश्च सर्वे त्वद्दर्शनादिना पूता भविष्यन्तीत्याह-श्रवणादिति । अन्तेवसायिनः श्वपचा अपि । ब्रह्ममयस्य ब्रह्मघनमूर्तेः। ईक्षा च अभिमर्शः स्पर्शनं च तौ विद्येते येषाम् ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

वहाँ आये हुए सभी लोग आपका दर्शन करके पवित्र हो जायेंगे । इस बात को नारदजी ने श्रवणात् इत्यादि श्लोक से कहा है । अन्तेवसायिन: अर्थात् चाण्डाल । ब्रह्ममयस्य अर्थात् ब्रह्म स्वरूप । **ईक्षभिमर्शिनः** दर्शन और स्पर्श करने वाले ॥४३॥

यस्यामलं दिवि यशः प्रथितं रसायां भूमौ च ते भुवनमङ्गल दिग्वितानम् ।
मन्दाकिनीति दिवि भोगवतीति चाधो गङ्गेति चेह चरणाम्बु पुनाति विश्वम् ॥४४॥

अन्वयः— हे भुवनमङ्गल यस्यते अमलं यश; दिग्वितानम् दिवि रसायां भूमौच प्रथितं चरणाम्बुज दिवि मन्दाकिनी, अधः च भोगवती इह च गङ्गेति विश्वम् पुनाति ॥४४॥

अनुवाद— हे त्रिभुवन मङ्गल आपका यश सभी दिशाओं में छा रहा है । वह स्वर्ग लोक में, पताल लोक में और भूलोक में भी व्याप्त हो रहा है । और आपका चरणोदक स्वर्ग लोक में मंदाकिनी के नाम से, पाताल लोक में भोगवती के नाम से और भूलोक में गङ्गा के नाम से सम्पूर्ण विश्व को पवित्र बना रहा है ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

कैमुत्यमतिशयेनाह-यस्येति । हे भुवनानां मङ्गलरूप, दिवि पाताले भूमौ च प्रथितं यस्य यशो विश्वं पुनाति । कथम्। प्रथितं दिग्वितानं दिग्भवनानां वितानवदलंकरणम् । तथा चरणाम्बु च प्रथितं पुनाति । कथं तत्प्रथितम् । दिवि मन्दाकिनीति, अधश्च भोगवतीति, इह च भूमौ गङ्गेति । तस्य तवागमनात्सर्वं मङ्गलं पवित्रं च भविष्यतीति भावः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

सादृश्यातिशय के कारण नारदजी ने **यस्येति** इस श्लोक को कहा है । हे लोकों में मङ्गल स्वरूप प्रभो। स्वर्गलोक, पाताल लोक और भूलोक में प्रख्यात आपका यश सम्पूर्ण जगत् को पवित्र बना रहा है । यह दिशाओं रूपी भवन का अलङ्कार स्वरूप है । इस तरह आपका चरणोदक भी पवित्र करने का काम करता है । वह कैसे प्रख्यात है ? स्वर्ग लोक में वह मन्दाकिनी रूप से, पाताल में भोगवती के नाम से और भूलोक में गङ्गा के नाम से प्रख्यात है ॥४४॥

श्रीशुक उवाच

तत्र तेष्वात्मपक्षेष्वगृह्णत्सु विजिगीषया । वाचःपेशैः स्मयन् भृत्यमुद्धवं प्राह केशवः ॥४५॥

अन्वयः— तत्र तेषु आत्मपक्षेपु विजिगीषया अगृहणत्सु केशवः स्मयन् वाचः पेशैः उद्धवम् भृत्यं प्राह ॥४५॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— वह अपने यदुवंशी चाहते थे कि पहले जरासन्ध पर चढाई करके उसे जीत लिया जाय । अतएव उन लोगों को नारदजी की बात अच्छी नहीं लगी । तब भगवान् केशव थोड़ा मुस्कुराकर आपने भक्त उद्धवजी से कहे॥४५॥

भावार्थ दीपिका

तत्रैवं नारदोक्तं तेषु वर्तमानेष्वात्मीयपक्षेषु यादवेषु जरासन्धस्य विजिगीषया अगृह्णत्स्वमन्यमानेषु । वाचःपेशैः पेशलवाग्भिरित्यर्थः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

वहाँ इस प्रकार से नारदजी की बात को वहाँ पर विद्यमान सभी यदुवंशी पहले जरासन्ध को जीतना चाहते थे अतएव नारदजी की बातें पसन्द नहीं आयी । वाचःपेशैः अर्थात् मनोहर बातों से ।।४५।।

श्रीभगवानुवाच

त्वं हि नः परमं चक्षुः सुहृन्मन्त्रार्थतत्त्ववित् । तथात्र ब्रूह्यनुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवाम तत् ।।४६।।

अन्वयः— त्वं हिनः परमं चक्षुः सुहृत् मन्त्रार्थतत्त्ववित् तथा अत्र अनुष्ठेयं ब्रूहि, श्रद्दध्मः तत् करवाम् ।।४६।।

श्रीभगवान ने कहा

अनुवाद— उद्धव तुम मेरे श्रेष्ठ नेत्र है, हितैषी शुभ सम्पत्ति को होने वाले और कार्य तत्त्व के वेत्ता हो। तुम बतलाओ कि इस विषय में क्या किया जाय ? हम तुम्हारी बातों पर विश्वास करते है । उसी के अनुसार हम करेंगे ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

चक्षुष्ट्वे हेतुः- मन्त्रार्थानां मन्त्रसाध्यानां तत्त्ववित्परिपाकवेदिता ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

चक्षुरिन्द्रिय ग्राह्यता में कारण है मन्त्रार्थों एवं मन्त्र साध्यों के तत्त्ववेत्ता उसके परिपाक को जानने वाले होते हैं।।४६।।

इत्युपामन्त्रितो भर्त्रा सर्वज्ञेनापि मुग्धवत् । निदेशं शिरसाधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ।।४७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भगवद्याने सप्ततितमोऽध्यायः ।।७०।।

अन्वयः— इति सर्वज्ञेनापि भर्त्रा मुग्धवत् उपामन्त्रितः निदेशं शिरसाधाय, उद्धवः प्रत्यभाषत ।।४७।।

अनुवाद— इस तरह से अपने सर्वज्ञ स्वामी के द्वारा अनजान के समान पूछे जाने पर, श्रीभगवान् की आज्ञा को शिरोधार्य करके उद्धवजी ने कहा ।।४७।।

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्द्ध के भागवद्यान विचार नामक सत्तरवें अध्याय का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थ दीपिकायां सप्ततितमोऽध्यायः ।।७०।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के भी भावार्थ दीपिका नामक टीका के सत्तरवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।७०।।

* * *

एकहत्तरवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ पधारना

श्रीशुक उवाच

इत्युदीरितमाकर्ण्य देवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत् । सभ्यानां मतमाज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः ॥१॥

अन्वयः— इति उदीरितम् आकर्ण्य महामतिः उद्धवः देवर्षेः सभ्यानां कृष्णस्य च मतम् आज्ञाय अब्रवीत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण की बातों को सुनकर महाबुद्धिमान उद्धवजी ने सभासदो की, भगवान् श्रीकृष्ण की तथा देवर्षि नारदजी की बातों का विचार करके कहा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अथैकसप्ततितम उद्धवस्य तु मन्त्रतः । इन्द्रप्रस्थं गते कृष्णे पार्थानां परमोत्सवः ॥१॥ राजसूयमिषं कृत्वा भीमदुर्योधनादिषु। कलिमुत्पाद्य तद्द्वारा भूभारमहरत्प्रभुः ॥२॥ देवर्षेर्मतं राजसूयगमनम् । सभ्यानां मतं राजरक्षा । कृष्णस्य तूभयम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

एकहत्तरवें अध्याय में उद्धवजी के विचारानुसार भगवान् श्रीकृष्ण के इन्द्रपस्थ चले जाने पर पाण्डवों को बड़ी प्रसन्ता हुई ॥१॥ राजसूय यज्ञ को बहाना बनाकर भीम तथा दुर्योधन आदि में कलह उत्पन्न करके श्रीभगवान् ने पृथ्वी के भार को विनष्ट किया ॥२॥ देवर्षि का मत था कि राजसूय यज्ञ में चलना चाहिए, सभासदों का मत था कि राजाओं की रक्षा करना चाहिए । भगवान श्रीकृष्ण का मत था कि राजसूय यज्ञ में भी चला जाय, और राजाओं की भी रक्षा करनी चाहिए ॥१॥

उद्धव उवाच

यदुक्तमृषिणा देव साचिव्यं यक्ष्यतस्त्वया । कार्यं पैतृष्वस्त्रेयस्य रक्षा च शरणैषिणाम् ॥२॥

अन्वयः— हे देव ऋषिणा यदुक्तं यक्ष्यतः पैतृस्वस्त्रेयस्य त्वया साचिव्यम् शरणैषिणाम् रक्षा च कार्यम् ॥२॥

उद्धवजी ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो देवर्षि नारदजी ने यह जो कहा है कि यज्ञ करने वाले अपने फुफेरे भाई पाण्डवों के यज्ञ में सम्मिलित होकर उनकी सहायता करनी चाहिए यह ठीक है तथा राजाओं की रक्षा करनी चाहिए ॥२॥

भावार्थ दीपिका

यक्ष्यतो यागं करिष्यतः, पैतृष्वस्त्रेयस्य पितृष्वसुः पुत्रस्य, साचिव्यं साहाय्यं तच्च कार्यम् । तथा शरणार्थिनां राज्ञां रक्षा च कार्या ॥२॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञ करने वाले अपने फुफेरे भाई पाण्डवों की सहायता करनी चाहिए तथा शरणार्थी राजाओं की भी रक्षा करनी चाहिए॥२॥

यष्टव्यं राजसूयेन दिक्चक्रजयिना विभो । अतो जरासुतजय उभयार्थो मतो मम ॥३॥

अन्वयः— हे विभो दिक्चक्रजयिना राजसूयेन यष्टव्यम् अतो जरासुत जयः मम उभयार्थो मतः ॥३॥

अनुवाद— हे सर्वव्यापक प्रभो ! जो सभी दिशाओं पर विजय प्राप्त कर ले उसी को राजसूय यज्ञ करना चाहिए और उसी प्रसङ्ग में जरासन्ध पर विजय भी प्राप्त करना होगा । ऐसा करने से दोनों कार्य हो जायेंगे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रथमं राजसूयार्थं गन्तव्यं, ततो राजरक्षा कर्तव्येत्याह-यष्टव्यमित्यष्टभिः। अतो दिग्विजयहेतोः। उभयार्थो राजसूयार्थः शरणागतरक्षार्थश्च ॥३॥

भाव प्रकाशिका

अतएव पहले राजसूय यज्ञ में चलना चाहिए उसके पश्चात् राजाओं की रक्षा करनी चाहिए। इस बात को उद्धवजी ने **यष्टव्यम् इत्यादि** से लेकर आठ श्लोकों तक कहा है। दिग्विजय के लिए दोनों कार्यों की सिद्धि हो जाती है। राजसूय रूप विषय तथा राजाओं की रक्षा भी हो जायेगी ॥३॥

अस्माकं च महानर्थो ह्येतेनैव भविष्यति। यशश्च तव गोविन्द राज्ञो बद्धान्विमुञ्चतः ॥४॥

अन्वयः— हे गोविन्द एतेनैव अस्माकं महानर्थः भविष्यति बद्धान् राज्ञो विमुञ्चतः तव यशः ॥४॥

अनुवाद— हे गोविन्द केवल जरासन्ध को ही जीत लेने से हमलोगों को महान् अर्थ की प्राप्ति होगी और बँधे हुए राजाओं की मुक्ति से आपका यश बढ़ेगा ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

स वै दुर्विषहो राजा नागायुतसमो बले। बलिनामपि चान्येषां भीमं समबलं विना ॥५॥

अन्वयः— सवै नागायुत समो बले राजा समबलं भीमं बिना अन्येषां बलिनाम् दुर्विषहः ॥५॥

अनुवाद— राजा जरासन्ध दस हजार हाथियों के समान बलवान है। उसके ही समान बल वाले भीम को छोड़कर दूसरे बलवानों को उसको जीत पाना बड़ा कठिन है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अत्युत्सुकतया सद्य एव जरासन्धं हन्तुमिच्छतो यादवानालक्ष्याह-स वा इति। अन्येषां ततो बलिनामपि यद्यपि समबल एव भीमस्तथापि तं विना। भीमादेव तस्य मृत्युर्विहित इति भावः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त उत्सुकता के कारण जरासन्ध को ही मारना चाहने वाले यादवों के प्रति उन्होंने कहा दूसरे भी बलवानों के लिए वह समान बलवाला है किन्तु जरासन्ध की मृत्यु तो भीम से ही विहित है ॥५॥

द्वैरथे स तु जेतव्यो मा शताक्षौहिणीयुतः। ब्रह्मण्योऽभ्यर्थितो विप्रैर्न प्रत्याख्याति कर्हिचित् ॥६॥

अन्वयः— स तु द्वैरथे जेतव्यः शताक्षौहिणीयुतः ब्रह्मण्यः विप्रैः अभ्यर्थितः कर्हिचित् न प्रत्याख्याति ॥६॥

अनुवाद— उसको आमने-सामने के युद्ध में जितना चाहिए। सौ अक्षौहिणी सेना के साथ युद्ध करने पर उसको जीतना आसान नहीं है। वह ब्राह्मण भक्त है। बाह्मणों के द्वारा याचना करने पर वह इनकार नहीं करता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

ननु स्वबलसाम्येऽपि सेनाबलं तस्याधिकमिति चेदत आह-द्वैरथ इति। द्वन्द्वयुद्धे। शतेनाक्षौहिणीभिर्युतो मागधो मा, न जेतव्य इत्यर्थः। नन्वसौ स्वसैन्यमेव युद्धाय नियुञ्जीत कुतस्तेन द्वैरथमिति तत्राह-ब्रह्मण्य इति। न प्रत्याख्याति न निराकरोति॥६॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि अपनी सेना भी उसकी सेना के बराबर होने पर भी उसकी सेना का बल अधिक होगा। इस पर उद्धवजी ने **द्वैरथे० इत्यादि** श्लोक कहा। **द्वैरथे** अर्थात् द्वन्द युद्ध में। सौ अक्षौहिणी सेना के द्वारा जरासन्ध को नहीं जीता जा सकता है। यदि कहें कि वह सेना को ही युद्ध करने में लगायेगा। अतएव उसके साथ द्वन्द्व युद्ध

कैसे हो सकेगा ? इस उद्धवजी ने कहा कि वह ब्राह्मण भक्त है । वह ब्राह्मणों को कभी जबाब नहीं देता है ।।६।।

ब्रह्मवेषधरो गत्वा तं भिक्षेत वृकोदरः । हनिष्यति न संदेहो द्वैरथे तव संनिधौ ।।७।।

अन्वयः— यदि वृकोदर ब्रह्मवेषधरः याचेत तदा तव संन्निधौ द्वैरथे हनिष्यति न संदेह ।।७।।

अनुवाद— यदि ब्राह्मण का वेष धारण करके भीम उससे याचना करें तो आपके सन्निधान में द्वन्द्व युद्ध में वे जरासन्ध का बध अवश्य कर देंगे, इसमें किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

भिक्षेत द्वन्दयुद्धं याचताम् । तथापि समबलत्वात्साम्यमेव स्यादत आह-तव संनिधाविति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

भिक्षेत अर्थात् द्वन्द युद्ध की याचना करें । यदि कहें कि भीम के ही समान वह भी बलवान है । अतएव भीम उसको कैसे जीत सकते है ? इस पर उद्धवजी ने कहा आपका सन्निधान होने से ।।७।।

निमित्तं परमीशस्य विश्वसर्गनिरोधयोः । हिरण्यगर्भः शर्वश्च कालस्यारूपिणस्तव ।।८।।

अन्वयः— विश्वसर्गनिरोधस्य ईशस्य अरूपिणः कालस्य तव परम् हिरण्यगर्भः शर्वश्च निमित्तम् ।।८।।

अनुवाद— हे प्रभो आप सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि तथा संहार करने वाले हैं आप रूप रहित काल स्वरूप है। आपके इस कार्य में ब्रह्माजी तथा शङ्करजी तो निमित्त मात्र हैं, उसी तरह जरासन्ध का वध तो आप करेंगे भीम तो केवल निमित्त मात्र होंगे ।।८।।

भावार्थ दीपिका

नन्वकिंचित्कुर्वतो मम संनिधानात्किं स्यादत आह-निमित्तमिति । अयमर्थः-यथा तवारूपस्य कालात्मनो विश्वसर्गे निमित्तं केवलं हिरण्यगर्भस्तथा शर्वश्च तन्निरोधे तथात्र त्वमेव संनिधिमात्रेण हन्ता भीमो निमित्तमात्रमिति ।।८।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मैं तो कुछ करूँगा नहीं, मेरे सन्निधान मात्र से क्या होगा ? इस पर उद्धवजी ने **निमित्तम् इत्यादि** श्लोक कहा इसका अर्थ यह है जैसे रूप रहित काल स्वरूप आदि आप जगत् की सृष्टि और संहार करते हैं। ब्रह्माजी और शङ्करजी तो निमित्तमात्र है । उसी तरह अपने सन्निधान मात्र से जरासन्ध का वध तो आप करेंगे भीम तो निमित्तमात्र होंगे ।।८।।

गायन्ति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च ।
गोप्यश्च कुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च ।।९।।

अन्वयः— ते विशद कर्म राज्ञां देव्यः स्वशत्रुवधम, आत्मविमोक्षणं च गायन्ति गोप्यश्च कुञ्जरपते जनकात्मजायाः पित्रोः च लब्धशरणाः मुनयः वयं च ।।९।।

अनुवाद— जब आप जरासन्ध का बध कर देंगे तो जरासन्ध के कैद में पड़े हुए राजाओं की रानियाँ आपके विशद यश का गान करेंगी कि आपने उनके शत्रु जरासन्ध का वध कर दिया तथा उनके प्रियतम राजाओं को कारागार से मुक्त करा दिया । ठीक उसी तरह जैसे गोपियाँ शङ्खचूड़ से मुक्त कराने की आपकी लीला का, आपके शरणागत मुनिगण गजेन्द्र की तथा जानकी जी के उद्धार की आपकी लीला का और हमलोग आपके माता-पिता को कंस के कारागार से मुक्त करने की आपकी लीला का गान करते हैं ।।९।।

भावार्थ दीपिका

अतोऽनेनोपायेन त्वया स शीघ्रं हन्तव्य इत्याशयेनाह–गायन्तीति जरासन्धधृतानां राज्ञां देव्यः पत्न्यस्ते विशदं कर्म स्वगृहेषु बालकलालनादौ गायन्ति । किं तत्कर्म । स्वशत्रोर्जरासन्ध्ररघस्य बधमात्मनां पतीनां विमोक्षणं च । वत्स, मारोदीः श्रीकृष्ण एव करिष्यतीति। अत्र दृष्टान्ताः गोप्यश्चेत्यादयः । यथा गोप्यः शङ्खचूडवधं स्वमोक्षं च गायन्ति । अवतारान्तरनगतं कुञ्जरपतेर्नक्रात्। जनकात्मजायाश्च रावणात्। पित्रोश्च कंसगृहान्मोक्षम् । अतएवं भूतानां तासां कृपया त्वया तथैव कर्तव्यमिति भावः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

अतएव इस उपाय से आप जरासन्ध का शीघ्र वध करें । इसी अभिप्राय से उद्धवजी ने **गायन्ति इत्यादि** श्लोक कहते हैं । जरासन्ध के द्वारा बन्दी बनाये गये राजाओं की रानियाँ आपके निर्मल यश का गान अपने गृहों में बालकों का लालन पालन करते समय गाती हैं । यदि आप पूछें कि मेरे किस कर्म के विषय में ? तो उद्धवजी कहते हैं कि अपने शत्रु जरासन्ध के वध और अपने पतियों की मुक्ति के विषय में वे कहती है, वत्स रोओ मत भगवान् श्रीकृष्ण ऐसा कार्य करेंगे । इस विषय में दृष्टान्त गोपियाँ आदि हैं । गोपियाँ आपके द्वारा शङ्खचूड़ के वध और अपनी मुक्ति की गीत गाती हैं । दूसरे अवतार में आपने गजराज का उद्धार किया तथा श्री जानकी जी को रावण के कारागार से मुक्ति की गीति मुनिजन गाते हैं । आपने अपने माता-पिता को कंस के कारागार से मुक्त किया इसका गीत हमलोग गाते हैं ।।९।।

जरासन्ध्यवधः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते । प्रायः पाकविपाकेन तव चाभिमतः क्रतुः ।।१०।।

अन्वयः— हे कृष्ण ! जरासन्धवध भूरि अर्थायोपकल्पते । प्रायः पाकविपाकेन तव चक्रतुः अभिमतः ।।१०।।

अनुवाद— हे श्रीकृष्ण जरासन्ध का वध स्वयं ही बहुत से प्रयोजनों को सिद्ध कर देने वाला है, क्योंकि वन्दी राजाओं के पुण्य के परिणाम से तथा जरासन्ध आदि के पापों के परिणाम से आपको भी राजसूय यज्ञ अभिप्रेत है ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

किंच जरासन्धवध इति । भूर्यर्थायेति । ततः शिशुपालवधादयोऽपि सुखसाध्या भविष्यन्तीति भावः । एतच्च सर्वं भविष्यत्येवेति संभावयन्नाह–प्राय इति । पच्यत इति पाकः कर्म तस्य विपाकः फलं तेन राज्ञां पुण्यविपाकेन जरासन्धादीनां पापविपाकेनेति । पाठान्तरे जरासन्धस्य पापविपाकेनेति । तेनायं क्रतुस्तवाभिप्रेतस्तत्र गते त्वयि सर्वं भविष्यतीत्यर्थः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

जरासन्ध का वध हो जाने से शिशुपाल आदि का वध आसान हो जायेगा । ये सारी बातें तो होंगी ही। इसकी सम्भावना से कहते हैं **पच्यते** इस व्युत्पति के अनुसार पाक शबर कर्म का वाचक है । पुण्य कर्म का फल होगा कि राजागण जरासन्ध के कैदखाने से मुक्त हो जायेंगे और जरासन्ध के पाप का परिणाम होगा कि उसकी मृत्यु हो जायेगी । प्रायः पाप विपाकेन पाठ होने पर अर्थ होगा कि जरासन्ध अपने पाप के फल स्वरूप मरेगा अतएव यह राजसूय यज्ञ आपको भी अभिप्रेत है । आपके उस यज्ञ में जाने पर यह सारा कार्य हो जायेगा ।।१०।।

श्रीशुक उवाच

इत्युद्धववचो राजन्सर्वतोभद्रमच्युतम् । देवर्षिर्यदुवृद्धाश्च कृष्णश्च प्रत्यपूजयन् ।।११।।

अन्वयः— राजन् इति उद्धव वचः सर्वतोभद्रम् अच्युतम् देवर्षिः यदुवृद्धाः च कृष्णश्च प्रत्यपूजयन् ।।११।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् परीक्षित् इस तरह से उद्धवजी की यह बाणी सब तरह से मङ्गलमयी थी । उसकी सराहना देवर्षि नारदजी, यदुवंश के कुलवृद्ध तथा भगवान् श्रीकृष्ण सबों ने किया ।।११।।

भावार्थ दीपिका

अच्युतमुपपत्त्या वृद्धम् । यदुवृद्धा इति वदता अनिरुद्धादयस्तथा नापूजयन्निति सूचितम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

अच्युतम् अर्थात् सब तरह से उचित । यदुवृद्ध कहकर सूचित किया गया है, कि अनिरुद्धजी इत्यादि ने इसका समर्थन नहीं किया ।।११।।

अथादिशत्प्रयाणाय भगवान्देवकीसुतः । भृत्यान्दारुकजैत्रादीननुज्ञाप्य गुरून्विभुः ।।१२।।

अन्वयः— अथ देवकीसुतः भगवान् गुरून् अनुज्ञाप्य विभुः दारुक जैत्रादीन् भृत्यान् प्रयाणाय आदिशत् ।।१२।।

अनुवाद— उसके पश्चात् माता देवकी के पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेवजी इत्यादि से आज्ञा लेकर दारुक एवं जैत्र आदि भृत्यों को इन्द्रप्रस्थ जाने की तैयारी करने के लिए आदेश दे दिए ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

अनुज्ञाप्यानुज्ञां प्रार्थ्य । गुरून्वसुदेवादीन् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

अनुज्ञाप्य अर्थात् आज्ञा लेकर वसुदेवजी इत्यादि गुरुजनों से ।।१२।।

निर्गमय्यावरोधान्स्वान्ससुतान्सपरिच्छदान् । संकर्षणमनुज्ञाप्य यदुराजं च शत्रुहन् ।।
सूतोपनीतं स्वरथमारुहद्गरुडध्वजम् ।।१३।।

अन्वयः— हे शत्रुहन् ! सङ्कर्षणम् यदुराजं च अनुज्ञाप्य स सुतान् सपरिच्छदान् निर्गमय्य सूतोपनीतं गरुडध्वजम् स्वरथम् आरुहत् ।।१३।।

अनुवाद— हे शत्रुओं को मारने वाले राजन् परीक्षित् इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण यदुवंशीयों के राजा उग्रसेन और बलरामजी से आज्ञा लेकर, बाल बच्चों और उनके सामानों को लेकर रानियों को आगे चला दिए और दारुक के द्वारा लाये गये अपने गरुडध्वज रथ पर स्वयं सवार हुए ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अवरोधान्स्वान्दारान् निर्गमय्य प्रयाणं कारयित्वा ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

अपनी पत्नियों का प्रस्थान कराकर ।।१३।।

ततो रथद्विपभटसादिनायकैः करालया परिवृत आत्मसेनया ।
मृदङ्गभेर्यानकशङ्खगोमुखैः प्रघोषघोषित्ककुभो निराक्रमत् ।।१४।।

अन्वयः— ततः रथद्विप भटसादिनायकैः करालया आत्मसेनया परिवृतः । मृदङ्गभेर्यानकशङ्खगोमुखैः प्रघोषघोषित ककुभः निराक्रमत् ।।१४।।

अनुवाद— उसके पश्चात् वे रथों हाथियों, घुड़सवारों तथा पैदलों की विशाल सेना के साथ श्रीभगवान् प्रस्थान किए । उस समय मृदङ्ग नगारे, ढोल शङ्ख और नारसिंगों की ध्वनि से दिशाएँ ध्वनित हो गयीं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

भटाः पदातयः । सादिनोऽश्वारोहाः । रथादिनायकैः करालया तीव्रयात्मसेनया परिवृतो निराक्रमन्निरगात् । कुतः सकाशात्। मृदङ्गादिभिर्वाद्यैः प्रघोषेण घोषितायाः ककुभः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

भता: अर्थात् पैदल सेना, सादिन: अर्थात् घुड़सवार रथ आदि के नायकों से तीव्र अपनी सेना के साथ प्रस्थान किए। कहाँ से निकले ? मृदङ्ग आदि वाद्यों से घोषित दिशाएँ जहाँ थी वहाँ से ॥१४॥

नृवाजिकाञ्चनशिबिकाभिरच्युतं सहात्मजाः पतिमनु सुव्रता ययुः ।
वराम्बराभरणविलेपनस्रजः सुसंवृता नृभिरसिचर्मपाणिभिः ॥१५॥

अन्वयः— सुव्रताः सहात्मजाः वराम्बराभरण विलोपनस्रजः असिचर्म पाणिभिः सुसंवृताः नृवाजिकांचन शिबिकाभिः अच्युतं पतिमनुययुः ॥१५॥

अनुवाद— सती शिरोमणि रुक्मिणीजी आदि हजारों रानियाँ अपने पुत्रों के साथ सुन्दर वस्त्र, भूषण चन्दनादि अङ्गराज तथा पुष्पमालाओं से सुसज्जित होकर तथा हाथ में तलवार एवं ढाल लिए हुए सैनिकों से संरक्षित भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियाँ डोलियों, रथों सोने की बनी हुई पालकियों में बैठकर अपने पति भगवान् श्रीकृष्ण के पीछे चलीं॥१५॥

भावार्थ दीपिका

नृवाजीति। नृवाजिभिर्नरयानैरश्वैश्च काञ्चनशिबिकाभिश्चाच्युतं पतिमनुययुः। सुव्रताः पतिव्रताः वराण्यम्बरादीनि यासां ताः॥१५॥

भाव प्रकाशिका

नृवाजि इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है कि डोलियों रथों सुवर्ण की पालकियों में बैठकर अपने पति भगवान् श्रीकृष्ण के पीछे चलीं। सुव्रताः अर्थात् पतिव्रताएँ। सुन्दर वस्त्रों आदि से सजकर चलीं ॥१५॥

नरोष्ट्रगोमहिषखराश्वतर्यनःकरेणुभिः परिजनवारयोषितः ।
स्वलंकृताः कटकुटिकम्बलाम्बराद्युपस्करा ययुरधियुज्य सर्वतः ॥१६॥

अन्वयः— परिजनवारयोषितः स्वलंकृताः कटकुटिकम्बलाम्बराद्युपस्कराः नरोष्ट्रगोमहिष खराश्वर्यनः करेणुभिः सर्वतः अधिज्य ययुः ॥१६॥

अनुवाद— अनुचरों की स्त्रियाँ वाराङ्गनाएँ अच्छी तरह से शृङ्गार करके खस आदि की झोपड़ियों, अनेक प्रकार के तम्बुओं, कनातो कम्बलो, ओढने, विछाने के समानों, बैलों, भैसों, गधों और खच्चरों पर लादकर तथा स्वयं पालकी ऊँट छकड़ों और हथिनियों पर सवार होकर चलीं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

नरोष्ट्रादिभिर्यानैः। अश्वतरी गर्दभ्यामश्वाज्जाता। अनः शकटम्। करेणुर्गजी। परिजनयोषितो वारयोषितश्च। कटकुटय उशीरादितृणनिर्मितगृहाः कम्बलाम्बरादयश्चोपस्कराः कुड्यादिरूपा यासां ताः। अधियुज्य बलीवर्दादिषु तानुपस्करान् दृढं संनह्य॥१६॥

भाव प्रकाशिका

मनुष्यों, ऊटों, आदि की सवारियों से, खच्चर, गाड़ी, अनुचरों की नारियाँ और वाराङ्गनाएँ खस की झोपड़ियों, कम्बल वस्त्र आदि सामग्रियाँ तम्बू कानात आदि बैलों आदि पर उन सामग्रियों को लादकर ॥१६॥

बलं बृहद्ध्वजपटछत्रचामरैर्वरायुधाभरणकिरीटवर्मभिः ।
दिवांशुभिस्तुमुलरवं बभौ रवेर्यथार्णवः क्षुभिततिमिङ्गिलोर्मिभिः ॥१७॥

अन्वयः— तिमिंगिलोर्मिभिःक्षुभित अर्णवो रवेः यथा वृहद्ध्वज पटछत्र चामरैः वरायुधाभरण किरीटवर्मभिः दिवांशुभिः तुमुलरवं बभौ ॥१७॥

अनुवाद— जिस तरह तिमिङ्गिलों एवं लहरों के उछलने से क्षुब्ध बने हुए समुद्र की शोभा होती है, उसी

तरह कोलाहल से परिपूर्ण फहराती हुई बड़ी-बड़ी पताकाओं छत्रों, चवरों, श्रेष्ठ अस्त्रशस्त्रों वस्त्राभूषणों, मुकुटों कवचों एवं दिन के समय उन पड़ती हुई सूर्य की किरणों से भगवान् श्रीकृष्ण की सेना अत्यधिक सुशोभित हुई ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

रवेरंशुभिश्च तद्बलं दिवा बभौ । कथंभूतम् । तुमुलरवमाकुलस्वनम् । क्षुभितैस्तिमिङ्गिलैरूर्मिभिश्च ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

सूर्य की किरणों से भी भगवान् श्रीकृष्ण की सेना सुशोभित हुई कैसी सेना ? अत्यधिक कोलाहल से युक्त तिमिङ्गिलों और लहरों से क्षुब्ध समुद्र ॥१७॥

अथो मुनिर्यदुपतिना सभाजितः प्रणम्य तं हृदि विदधद्विहायसा ।
निशम्य तद्‌यववसितमाहृतार्हणो मुकुन्दसंदर्शननिर्वृतेन्द्रियः ॥१८॥

अन्वयः— अथो यदुपतिना सभाजितः मुनिः, तद्‌व्यवस्तिं निशम्य, मुकुन्दसंदर्शन निर्वृतेन्द्रियः तं प्रणम्य हृदि विदधत् विहायसा ययौ ॥१८॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा सम्मानित देवर्षि नारदजी भगवान् के निर्णय को जानकर बहुत प्रसन्न हुए। श्रीभगवान् के दर्शन से देवर्षि की सारी इन्द्रियाँ आनन्द मग्न थीं, जाते समय भगवान् ने देवर्षि की अनेक प्रकार की सामग्रियों से पूजा की। इसके पश्चात् देवर्षि मन ही मन श्रीभगवान् को प्रणाम करके आकाश मार्ग से चले गये॥१८॥

भावार्थ दीपिका

मुनिर्नारदो विहायसा ययाविति शेषः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

नारदजी आकाश मार्ग से चले गये ॥१८॥

राजदूतमुवाचेदं भगवान्प्रीणयन् गिरा । मा भैष्ट दूत भद्रं वो घातयिष्यामि मागधम् ॥१९॥

अन्वयः— भगवान् राजदूतं गिरा प्रीणयन् इदम् उवाच दूत माभैष्ट वः भद्रम् मागधं घातयिष्यामि ॥१९॥

अनुवाद— राजाओं के दूत को अपनी वाणी से प्रसन्न करते हुए श्रीभगवान् कहे, दूत तुम डरो मत तुमलोगों का कल्याण हो जरासन्ध को मैं मरवा दूँगा ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

मा भैष्टेति बहुत्वं राजाभिप्रायेण ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

मा भैष्ट में बहुवचन राजाओं के अभिप्राय से प्रयुक्त है ॥१९॥

इत्युक्तः प्रस्थितो दूतो यथावदवदन्नृपान् । तेऽपि संदर्शनं शौरेः प्रत्यैक्षन्यन्मुमुक्षवः ॥२०॥

अन्वयः— इत्युक्तः दूतः प्रस्थितः नृपान् यथावद् अवदत् तेऽपिशौरे संदर्शनं प्रत्यैक्षन् यत् मुमुक्षः ॥२०॥

अनुवाद— इस तरह कहने पर दूत ने भी प्रस्थान किया और उसने राजाओं को सारी बातो को ज्यों की त्यों बतलाया। मुक्ति प्राप्त करने वाले राजागण भी श्रीभगवान् के आने की प्रतीक्षा करने लगे ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्यैक्षन् प्रत्यैक्षन्त । यद्यस्मान्मुमुक्षवः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

प्रत्यैक्षन् अर्थात् प्रतीक्षा करने लगे, क्योंकि वे सब जरासन्ध के कारागार से मुक्ति प्राप्त करना चाहते थे।।२०।।

आनर्तसौवीरमरूंस्तीर्त्वा विनशनं हरिः । गिरीन्नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान् ।।२१।।

अन्वयः— हरिः आनर्त सौवीर मरून् विनशनं तीर्त्वा गिरीन् नदीः पुरग्रामव्रजाकरान् अतीयाय ।।२१।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण आनर्त सौवीर, मरू, कुरुक्षेत्र और इन सबों के बीच में पड़ने वाले पर्वतों, नदियों, नगरों, ग्रामों तथा अहीरों की वस्तियों को पार करते हुए आगे बढ़ने लगे ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

आनर्तादयो मार्गस्थदेशास्तांस्तीर्त्त्वाऽतिक्रम्य । विनशनं कुरुक्षेत्रम् । अतीयायातिक्रम्य ययौ ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

रास्ते में पड़ने वाले आनर्त आदि देशों को पार करके । विनशनम् अर्थात् कुरुक्षेत्र को । अतीयाय अर्थात् पार करके आगे बढ़ते गये ।।२१।।

ततो दृषद्वतीं तीर्त्वा मुकुन्दोऽथ सरस्वतीम् । पञ्चालानथ मत्स्यांश्च शक्रप्रस्थमथागमत् ।।२२।।

अन्वयः— ततः मुकुन्दः दृषद्वतीम् अथ सरस्वतीं तीर्त्वा अथ पञ्चालान् मत्स्यान् च शक्रप्रस्थम् अगमत् ।।२२।।

अनुवाद— उसके पश्चात् श्रीभगवान् दृषद्वती एवं सरस्वती नामक नदियों को पार करके उसके बाद में आने वाले पञ्चाल एवं मत्स्य देशों को पार करके इन्द्रप्रस्थ आये ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

शक्रपस्थमिन्द्रप्रस्थम् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्रप्रस्थ को ही शक्रप्रस्थ कहते हैं ।।२२।।

तमुपागतमाकर्ण्य प्रीतो दुर्दुर्शनं नृणाम् । अजातशत्रुर्निरगात्सोपाध्यायः सुहृद्वृतः ।।२३।।

अन्वयः— नृणाम् दुर्दर्शनं तम् उपागतम् आकर्ण्य अजातशत्रुः प्रीतः सोपाध्यायः सुहृद्वृतः निरगात् ।।२३।।

अनुवाद— परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन मनुष्यों को मिलना कठिन है । ऐसे श्रीभगवान् श्रीकृष्ण आ गये है, इस बात को सुनकर महाराज युधिष्ठिर को बड़ी ही प्रसन्नता हुई । वे अपने आचार्यों तथा अपने हितैषी बान्धवों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण की अगवानी करने के लिए नगर से बाहर आये ।।२३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२३।।

गीतवादित्रघोषेण ब्रह्मघोषेण भूयसा । अभ्ययात्स हृषीकेशं प्राणाः प्राणमिवादृतः ।।२४।।

अन्वयः— सः गीतवादित्रघोषेण भूयसा ब्रह्मघोषेण प्राणाः प्राणमिव आदृतः अभ्ययात् ।।२४।।

अनुवाद— महाराज युधिष्ठिर मङ्गलमय गीतों तथा वाद्यों एवं जोर-जोर से पढ़े जाते हुए वेद मन्त्रों की ध्वनि पूर्वक बड़े आदर से श्रीभगवान् का समादर करने के लिए चले जैसे इन्द्रियाँ मुख्य प्राण से मिलने जा रही हों।।२४।।

भावार्थ दीपिका

प्राणा इन्द्रियाणि प्राणं मुख्यं प्राणमिव ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

प्राणा: अर्थात् इन्द्रियाँ प्राणमिव अर्थात् मुख्य प्राण से ।।२४।।

दृष्ट्वा विक्लिन्नहृदयः कृष्णं स्नेहेन पाण्डवः । चिराद्दृष्टं प्रियतमं सस्वजेऽथ पुनः पुनः ॥२५॥

अन्वयः— अथ विक्लीन्न हृदयः पाण्डवः चिरात् दृष्टप्रियतमं श्रीकृष्णं दृष्ट्वा स्नेहेन पुनः पुनः सस्वजे ॥२५॥

अनुवाद— उसके पश्चात् प्रसन्न हुदय से महाराज युधिष्ठिर बहुत दिनों के बाद मिले हुए भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर अत्यन्त प्रेम पूर्वक उनका बार-बार आलिङ्गन किए ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

सस्वजे परिरेभे ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

सस्वजे अर्थात् आलिङ्गन किए ॥२५॥

दोर्भ्यां परिष्वज्य रमामलालयं मुकुन्दगात्रं नृपतिर्हताशुभः ।
लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो हृष्यत्तनुर्विस्मृतलोकविभ्रमः ॥२६॥

अन्वयः— रमामलालयं मुकुन्दगात्रं दोर्भ्यां परिष्वज्य हताशुभः हृष्यत्तनुः विस्मृत लोक विभ्रमः अश्रुलोचनः परां निर्वृतिं लेभे ॥२६॥

अनुवाद— लक्ष्मीजी का एकमात्र निवास स्थान भगवान् श्रीकृष्ण का दिव्य मङ्गल विग्रह है । दोनों हाथों से पकड़कर आलिङ्गन करने से महाराज युधिष्ठिर के समस्त पाप विनष्ट हो गये । उनका सम्पूर्ण अङ्ग रोमाञ्च के कारण प्रफुल्लित हो गया । उस समय उनको इस विश्व का प्रपञ्च भ्रम बिल्कुल नहीं था । उनकी आँखों से प्रेमाश्रु प्रवाहित हो रहे थे ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

रमाया अमलं निर्दोषमालयम् । विस्मृतो लोकव्यवहारो येन सः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

लक्ष्मीजी का निर्मल निर्दोष निवास स्थान **विस्मृतलोकविभ्रमः** अर्थात् संसार के समस्त व्यवहारों को भूल गये महाराज युधिष्ठिर ॥२६॥

तं मातुलेय परिरभ्य निर्वृतो भीमः स्मयन्प्रेमजवाकुलेन्द्रियः ।
यमौ किरीटी च सुहृत्तमं मुदा प्रवृद्धबाष्पाः परिरेभिरेऽच्युतम् ॥२७॥

अन्वयः— प्रेमजवाकुलेन्द्रियः भीमः स्मयन् तं मातुलेयं परिरभ्य निर्वृतः यमौ किरीटी च प्रवृद्धवाष्पा; मुदा सुहृत्तमम् अच्युतम् परिरेभिरे ॥२७॥

अनुवाद— प्रेम के वेग से विस्मृत बाह्य व्यापार वाले भीम भी मुस्कुराते हुए अपने ममेरे भाई भगवान् श्रीकृष्ण का आलिङ्गन करके आनन्द मग्न हो गये । तदनन्तर, अर्जुन, नकुल एवं सहदेव भी अपने अत्यन्त प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण का आलिङ्गन प्राप्त किए उस समय उन लोगों की आखों में आँसुओं की बाढ आ गयी थी ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

अर्जुनेन परिष्वक्तो यमाभ्यामभिवादितः । ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य वृद्धेभ्यश्च यथार्हतः ॥२८॥

अन्वयः— अर्जुनेन परिष्वक्त यमाभ्यामभिवादितः ब्राह्मणेभ्यः वृद्धेभ्यश्च यथाहितः नमस्कृत्य ॥२८॥

अनुवाद— अर्जुन ने पुनः भगवान् श्रीकृष्ण का आलिङ्गन किया, तथा नकुल और सहदेव ने भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार किया । भगवान् श्रीकृष्ण भी ब्राह्मणों तथा कुरुवृद्धों को यथायोग्य नमस्कार किया ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अर्जुनेन समत्वात्परिष्वक्त एव केवलं पादौ नमस्कुर्वन्नर्जुनः कृष्णेन भुजाभ्यां धृत इति भावः। यमाभ्यां त्वभिवादितश्चेति॥२८॥

भाव प्रकाशिका

अर्जुन के समान होने के कारण अर्जुन ने श्रीभगवान् का आलिङ्गन किया अर्जुन भगवान् का पैर छूना चाहे किन्तु भगवान् ने उनको दोनों भुजाओं से पकड़कर हृदय से लगा लिया, नकुल और सहदेव ने भगवान् को नमस्कार किया॥२८॥

मानितो मानयामास कुरुसृंजयकैकयान् । सूतमागधगन्धर्वा बन्दिनश्चोपमन्त्रिणः ॥२९॥
मृदङ्गशङ्खपटहवीणापणवगोमुखैः । ब्राह्मणाश्चारविन्दाक्षं तुष्टुवुर्ननृतुर्जगुः ॥३०॥

अन्वयः— मानितः कुरुसृंजयकैकयान् मानयामास सूतमागधगन्धर्वाः वन्दिनः चः उपमन्त्रिणः ब्राह्मणाः च तुष्टुवुः मृदंगशङ्ख पटहवीणा पणव गोमुखैः तुष्टुवुः ननृतुः जगुः ॥२९-३०॥

अनुवाद— कुरु, सृंजय तथा कैकयदेश के राजाओं ने भगवान् श्रीकृष्ण का सम्मान किया और भगवान् श्रीकृष्ण ने भी उन राजाओं का सम्मान किया। सूत, मागध और वन्दीजन और ब्राह्मण भगवान् की स्तुति करने लगे और गन्धर्व, नट, विदूषक इत्यादि मृदंग शङ्ख, नगारे, वीणा, ढोल और नरसिंगे आदि बजाकर श्रीभगवान् को प्रसन्न करने के लिए नाचने-गाने लगे ॥२९-३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९-३०॥

एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः । संस्तूययमानो भगवान्विवेशालंकृतं पुरम् ॥३१॥

अन्वयः— एवं सुहृद्भिः पर्यस्तः पुण्यश्लोकशिखामणिः भगवान् स्तूयमानः अलंकृतं पुरं प्रविवेश ॥३१॥

अनुवाद— इस तरह अपने सुहृदों के साथ परम यशस्वी भगवान् श्रीकृष्ण स्तुति किए जाते हुए सजाये गये नगर में प्रवेश किए ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

संसिक्तवर्त्म करिणां मदगन्धतोयैश्चित्रध्वजैः कनकतोरणपूर्णकुम्भैः ।
मृष्टात्मभिर्नवदुकूलविभूषणस्रग्गन्धैर्नृभिर्युवतिभिश्च विराजमानम् ॥३२॥

अन्वयः— करिणां मदगन्ध तोयैः सं सिक्तवर्त्म, चित्रध्वजैः कनकतोरणपूर्णकुम्भैः मृष्टात्मभिः नवदुकूल विभूषणस्रम् गन्धैः नृभिः युवतिभिः श्च विराजमानम् ॥३२॥

अनुवाद— इन्द्रप्रस्थ नगर की सड़के और गलियाँ मदमत्त हाथियों के मद से तथा गन्ध से सींच दी गयी थी स्थान-स्थान पर रङ्ग-विरङ्गी झंडियाँ लगायी गयी थी। सुनहले तोरण बाँध दिये गये थे और सुवर्ण के जलभरे कलश स्थान-स्थान पर रखे गये थे। नगर के सभी युवक और युवतियाँ स्नान करके नये वस्त्र भूषण पुष्पों के हार आदि धारण करके घूम रहे थे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

चित्रध्वजादिभिर्विराजमानम् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

रङ्ग-विरङ्गे ध्वज आदि से सुशोभित ॥३२॥

उद्दीप्तदीपबलिभिः प्रतिसद्म जालनिर्यातधूपरुचिरं विलसत्पताकम् ।
मूर्धन्यहेमकलशै रजतोरुशृङ्गैर्जुष्टं ददर्श भवनैः कुरुराजधाम ॥३३॥

अन्वयः— उद्दीप्तदीपवलिभिः प्रतिसद्मजालनिर्यात धूप रुचिरं विलसत्पताकम् मूर्धन्य हेमकलशैः रजतोरुशृङ्गै भवनैः जुष्टं कुरुराज धाम ददर्श ॥३३॥

अनुवाद— प्रत्येक गृहों में स्थान-स्थान पर दीपक जलाये गये थे उससे दीपावली की शोभा हो रही थी। प्रत्येक गृहों के झरोखों से सुगन्धित धूप के धूम से मनोहर था वह नगर। सभी गृहों के ऊपर पताकाएँ फहरा रही थीं। और सुवर्ण के कलश एवं चाँदी के शिखर जगमगा रहे थे। भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार के भवनों से युक्त इन्द्रप्रस्थ नगर को देखा ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिसद्म उद्दीप्तैर्दीपैर्बलिभिः, पुष्पादिप्रकरैश्च जुष्टम्। जालेभ्यो गवाक्षेभ्यो निर्गतैर्धूपै रुचिरम्। विलसन्त्यः पताका यस्मिंस्तत्। मूर्धन्या मूर्ध्नि भवा हेमकलशा येषां तैः। रजतमयानि रूप्यमयान्युरुणि स्थूलानि शृङ्गाणि कलशाधस्तनभूमिका येषां तैर्भवनैर्जुष्टं कुरुराजस्य धाम पुरं ददर्श ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

प्रत्येक गृहों में प्रकाशित हो रहे दीपों और बलियों से सुशोभित गवाक्ष मार्ग से निकलते हुए सुगन्धित धूप से मनोहर, फहराती पताकाओं से सुशोभित, गृहों के शिखरों पर सुवर्ण कलशों वाले गृहों से सुशोभित कलशों के आधार चाँदी के थे इस प्रकार के भवनों से भरे हुए इन्द्रपस्थ को श्रीभगवान् ने देखा ॥३३॥

प्राप्तं निशम्य नरलोचनपानपात्रमौत्सुक्यविश्लथितकेशदुकूलबन्धाः ।
सद्यो विसृज्य गृहकर्म पतींश्च तल्पे द्रष्टुं ययुर्युवतयः स्म नरेन्द्रमार्गे ॥३४॥

अन्वयः— नरलोचनपानपात्रं प्राप्तं निशम्य औत्सुक्यविश्लथितकेशदुकूलबन्धाः युवतः यः सद्यः गृहकर्म पतींश्च तल्पे विसृज्य द्रष्टुं नरेन्द्र मार्गे ययुः स्म ॥३४॥'

अनुवाद— यह सुनकर कि अत्यन्त मनोहर भगवान् श्रीकृष्ण राजमार्ग पर आ रहे हैं उत्सुकतावशात् जिनकी चोटियों और साड़ियों की गाँठे शिथिल हो गयी थीं ऐसी युवति गृह के कामों और शय्या पर सोए हुए अपने पतियों को छोड़कर उनको देखने के लिए शीघ्र ही राजमार्ग पर आ गयीं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

नराणां लोचनानि तेषां पानस्य सादरवीक्षणस्य पात्रं विषयम्। किं पुनर्नारीणामित्यर्थः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

जब पुरुषों के लिए भी दर्शनीय भगवान् श्रीकृष्ण थे तो नारियों के विषय में क्या कहना है ?॥३४॥

तस्मिन्सुसंकुल इभाश्वरथद्विपद्भिः कृष्णं सभार्यमुपलभ्य गृहाधिरूढाः ।
नार्यो विकीर्य कुसुमैर्मनसोपगुह्य सुस्वागतं विदधुरुत्स्मयवीक्षितेन ॥३५॥

अन्वयः— तस्मिन् इभाश्वरथद्विपद्भि सुसंकुले तस्मिन् सभार्यं कृष्णम् उपलभ्य गृहाधिढाः नार्यः कुसुमैः विकीर्य, मनसा उपगुह्य, उत्स्मयवीक्षितेन सुस्वागतं विदधुः ॥३५॥

अनुवाद— हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल सेना के भीड़ से युक्त सड़क पर अपनी पत्नियों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर वहाँ की अट्टारियों पर चढ़ी हुई युवतियों ने श्रीभगवान् पर पुष्पों की वर्षा करके मन ही मन उनका आलिङ्गन करके प्रेमपूर्ण मुस्कान और चितवनों से उनका सुस्वागत किया ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

सुष्ठु स्वागतं तत्प्रश्नादिकं प्रियमुत्स्मयवीक्षितेनैव विदधुः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

युवतियों ने उनका सुन्दर स्वागत मधुर मुस्कान युक्त वीक्षण से किया ।।३५।।

ऊचुः स्त्रियः पथि निरीक्ष्य मुकुन्दपत्नीस्तारा यथोडुपसहाः किमकार्यभूमिः ।
यच्चक्षुषां पुरुषमौलिरुदारहासलीलावलोककलयोत्सवमातनोति ।।३६।।

अन्वयः— स्त्रियः पथि ताराः यथोडुपसहाः मुकुन्द पत्नीः निरीक्ष्य ऊचुः अमूभि; किम् अकारि ? यत् पुरुषमौलिरुदार हासलीलावलोककलया चक्षुषाम् उत्सवम् आतनोति ।।३६।।

अनुवाद— इन्द्रप्रस्थ नगर की नारियाँ राजमार्ग पर चन्द्रमा के साथ विराजमान ताराओं के समान भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियों को देखकर आपस में कहने लगीं कि इन सबों ने न जाने कौन सा तप किया था कि जिसके कारण पुरुष शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण अपनी उन्मुक्त हँसी और विलास पूर्ण कटाक्षों से इन सबों की ओर देखकर परमानन्द प्रदान करते होंगे ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

उडुपसहाः चन्द्रसहचरा इत्यर्थः । अमूभिः किं पुण्यमकारि ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

उडुपसहा: अर्थात् चन्द्रमा की सहचारियाँ । इन सबों ने कौन सा पुण्य कार्य किया है ।।३६।।

तत्र तत्रोपसङ्गम्य पौरा मङ्गलपाणयः । चक्रुः सपर्यां कृष्णाय श्रेणीमुख्या हतैनसः ।।३७।।

अन्वयः— मङ्गलपाण्यः पौराः श्रेणी मुख्याः च तत्र-तत्र उपसंगम्य कृष्णाय सपर्यां चक्रुः ।।३७।।

अनुवाद— हाथ में उपहार लिए हुए निष्पाप नागरिकों ने स्थान-स्थान पर भगवान् श्रीकृष्ण से मिलकर उनको उपहार प्रदान किया और भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा किया ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

श्रेण्य एकशिल्पोपजीविनां सङ्घास्तेषु मुख्याश्च ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

श्रेण्य: किसी एक शिल्प के द्वारा अपनी जीविका चलाने वाले उन सबों में मुख्य यह श्रेणी मुख्या: का अर्थ है।।३७।।

अन्तःपुरजनैः प्रीत्या मुकुन्दः फुल्ललोचनैः । ससंभ्रमैर्भ्युपेतः प्राविशद्राजमन्दिरम् ।।३८।।

अन्वयः— अन्तः पुरजनैः प्रीत्या फुल्ललोचनैः ससम्भ्रमैः अभ्युपेतः राजमन्दिरम् प्रविशत् ।।३८।।

अनुवाद— अन्त:पुरी की नारियाँ भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर प्रेम और आनन्द से भर गयीं उन सबों ने अपने प्रेम पूर्ण एवं आनन्द से खिले नेत्रों से श्रीभगवान् का स्वागत किया और श्रीभगवान् भी उन सबों का स्वागत स्वीकार करके राजभवन में प्रवेश किए ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

अभ्युपेतोऽभिगमनेन सत्कृतः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

अगवानी के द्वारा समादृत ।।३८।।

पृथा विलोक्य भ्रात्रेयं कृष्णं त्रिभुवनेश्वरम् । प्रीतात्मोत्थाय पर्यङ्कात्सस्नुषा परिषस्वजे ॥३९॥

अन्वयः— पृथा त्रिभुवनेश्वरम् भ्रात्रेयं कृष्णं विलोक्य प्रीतात्मा सस्नुषा पर्यङ्कात् समुत्थाय परिषस्वजे ।।३९।।

अनुवाद— माता कुन्तीजी त्रैलोक्याधिपति अपने भतीजे भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर आनन्द से भर गयीं वे अपनी पुत्र वधू के साथ पलङ्ग से उठकर आगे आयीं और श्रीभगवान् को गले लगा लीं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

सस्नुषा द्रौपदीसहिता ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

सस्नुषा अर्थात् द्रौपदी के साथ ।।३९।।

गोविन्दं गृहमानीय देवदेवेशमादृतः । पूजायां नाविदत्कृत्यं प्रमोदोपहतो नृपः ॥४०॥

अन्वयः— नृपः देवदेवेशम् गोविन्दं आदृतः गृहम् आनीय प्रमोदोपहतः पूजायां कृत्यं न अविदत् ।।४०।।

अनुवाद— महाराज युधिष्ठिर देवताओं के भी आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण को समादर पूर्वक लाकर आनन्दातिशय के कारण आत्मविस्मृत हो गये उन्हे इस बात की यादगारी ही नहीं रही कि किस क्रम से भगवान् की पूजा करनी चाहिए ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

कृत्यं प्रकारविशेषम् । प्रमोदेनोपहतोऽभिभूतः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

कृत्यम् प्रकार विशेष को, प्रमोदेनोपहत: अर्थात् अभिभूत ।।४०।।

पितृष्वसुर्गुरुस्त्रीणां कृष्णश्चक्रेऽभिवादनम् । स्वयं च कृष्णया राजन्भगिन्या चाभिवन्दितः ॥४१॥

अन्वयः— कृष्णः पितृष्वसुः गुरुस्त्रीणां अभिवादनम् चक्रे । राजन् कृष्णया भगिन्या च स्वयम् अभिवन्दितः ।।४१।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण अपनी फूआ तथा दूसरे गुरुजनों की स्त्रियों को प्रणाम किए । राजन् परीक्षित द्रौपदी और सुभद्रा ने भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम किया ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

गुरुस्त्रीणां च । कृष्णया द्रौपद्या । भगिन्या सुभद्रया ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

गुरुस्त्रीणाम् गुरुजनों की पत्नियों को । कृष्णया अर्थात् द्रौपदी द्वारा, भगिन्या अर्थात् सुभद्रा द्वारा ।।४१।।

श्वश्र्वा संचोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीश्च सर्वशः । आनर्च रुक्मिणीं सत्यां भद्रां जाम्बवतीं तथा॥४२॥
कालिन्दीं मित्रविन्दां च शैब्यां नाग्नजितीं सतीम् । अन्याश्चाभ्यागता यास्तु वासःस्रगमण्डनादिभिः॥४३॥

अन्वयः— श्वश्वा संचोदिता कृष्णा कृष्णपत्नीः रुक्मिणीं, सत्याम् भद्रां, जाम्बवतीं, कालिन्दीम्, मित्रविन्दां शैव्यां सतीं नाग्नजितीम् अन्याश्च यास्तु अभ्यागताः वासः सक्र् मण्डनादिभिः आनर्च ।।४२-४३।।

अनुवाद— अपनी सासु माता कुन्ती की प्रेरणा से प्रेरित द्रौपदी ने भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियों, रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती, कालिन्दी, मित्रविन्दा, शैव्या तथा पतिव्रता नाग्नजिती एवं अन्य भगवान् श्रीकृष्ण की जो पत्नियाँ वहाँ आयी थीं, उन सबों का सत्कार वस्त्र, माला तथा अलङ्कार की अन्य वस्तुओं से किया ।।४२-४३।।

भावार्थ दीपिका

आनर्च अर्चितवती । अन्याश्च याः कृष्णपत्न्योऽभ्यागतास्ता अपि ।।४२-४३।।

भाव प्रकाशिका

आनर्च अर्थात् पूजन (सत्कार) किया । दूसरी जो भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियाँ वहाँ आयी थीं उन सबों का भी ।।४२-४३।।

सुखं निवासयामास धर्मराजो जनार्दनम् । ससैन्यं सानुगामात्यं सभार्यं च नवं नवम् ।।४४।।

अन्वयः— धर्मराजः ससैन्यं, सानुगामात्यं सभार्यं च जनार्दनम् नवं नवम् सुखं निवासयामास ।।४४।।

अनुवाद— महाराज युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण को उनकी सेना, अनुचरों, मन्त्रियों तथा पत्नियों के साथ ऐसे स्थान में ठहराया जहाँ उन्हें नित्य ही नवीन-नवीन सुख की प्राप्ति हो सके ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

प्रत्यहं नवं यथा भवति तथा सुखं निवासयामास ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

जहाँ प्रतिदिन नवीन सुख की सामग्री प्राप्त हो सके ।।४४।।

तर्पयित्वा खाण्डवेन वह्निं फाल्गुनसंयुतः । मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता ।।४५।।

अन्वयः— फाल्गुन संयुतः खाण्डवेन वह्निम् तर्पयित्वा, येन राज्ञे दिव्या सभाकृता मयं मोचयित्वा ।।४५।।

अनुवाद— जहाँ अर्जुन के साथ रहकर भगवान् श्रीकृष्ण ने खाण्डववन का दाह कराकर अग्नि को तृप्त किया था और मयासुर को अग्नि से बचाया था जिस मयासुर ने महाराज युधिष्ठिर के लिए दिव्य सभा का निर्माण करके दिया था ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

कथंभूतम् । यः प्रेम्णा नित्यं फाल्गुनेन संयुतः । अतएव तस्य सहायेन सता येन खाण्डवेन वह्निं तर्पयित्वा तत्र च मयं मोचयित्वा तं मयं प्रयुज्य युधिष्ठिराय दिव्या सभा कृता तं जनार्दनम् । अनेन राज्ञः कृष्णोपकारानुस्मरणं दिव्यत्वात्सभाया यथामनोरथं सर्वावकाशसंपादनं च दर्शितम् ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

कैसे जनार्दन को श्रीभगवान् प्रेम पूर्वक अर्जुन के साथ रहकर । अर्जुन की सहायता से खाण्डव वन के द्वारा अग्नि को तृप्त करके तथा मयासुर को उस अग्नि से बचाकर, मय को आदेश देकर राजा युधिष्ठिर के लिए दिव्य सभा का निर्माण कराया उन भगवान् जनार्दन को । इस तरह से भगवन् कृष्ण द्वारा किए गये राजा युधिष्ठिर के उपकारो का स्मरण किया गया है । वह सभादिव्य थी, अतएव मनोरथ के अनुसार ही सभी अवकाशों का सम्पादन किया गया है ।।४५।।

उवास कतिचिन्मासान्राज्ञः प्रियचिकीर्षया । विहरन्रथमारुह्य फाल्गुनेन भटैर्वृतः ।।४६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे कृष्णस्येन्द्रप्रस्थगमनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ।।७१।।

अन्वयः— राज्ञः प्रियचिकीर्षया । फाल्गुनेन भटैः वृतः रथम् आरुह्य विहरन् कतिचिन्मासान् उवास ।।४६।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर के प्रिय कार्य को करने की इच्छा से इन्द्रप्रस्थ में ही रहे । वे अर्जुन

के साथ रथ पर सवार होकर विहार करने के लिए जाया करते थे। उस समय उनके साथ बड़े-बड़े वीर सैनिक भी उनकी सेवा के लिए उनके साथ जाया करते थे ।।४६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के भगवान् श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ गमन नामक एकहतरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थ दीपिकायां एकसप्ततितमोऽध्यायः ।।७१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के एकहत्तरवें अध्याय की शिवप्रसद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।७१।।

* * *

बहत्तरवाँ अध्याय

पाण्डवों के राजसूय यज्ञ का आयोजन और जरासन्ध का वध

श्रीशुक उवाच

एकदा तु सभामध्य आस्थितो मुनिभिर्वृतः । ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः ॥१॥

अन्वयः— एकदा युधिष्ठिरः मुनिभिः ब्राह्मणैः क्षत्रियैः वैश्यैः भ्रातृभिः च वृतः सभामध्ये आस्थितः आसीत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— एक दिन राजा युधिष्ठिर मुनियों, ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा अपने भाइयों के साथ बैठे थे॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततो द्विसप्ततितमे राज्ञा कार्ये निवेदिते । दुर्जयं मागधं बुद्ध्वा भीमेनाघातयद्धरिः ॥१॥ आस्थितः, आसनमिति शेषः॥१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् बहत्तरवें अध्याय में राजा युधिष्ठिर द्वारा कार्य का निवेदन किए जाने पर श्रीहरि ने भीम के द्वारा जरासन्ध को मरवा दिया ॥१॥ आसन पर बैठे थे ॥१॥

आचार्यैः कुलवृद्धैश्च ज्ञातिसंबन्धिबान्धवैः । शृण्वतामेव चैतेषामाभाष्येदमुवाच ह ॥२॥

अन्वयः— आचार्यैः कुलवृद्धैः च ज्ञातिसंबन्धिबान्धवैः एतेषाम् शृण्वतामेव आभाष्य इदम् उवाच ॥२॥

अनुवाद— आचार्यों कुलवृद्धों ज्ञाति बन्धुओं, संबन्धियों एवं कुटुम्बियों इन सबों के सामने ही भगवान् श्रीकृष्ण को संबोधित करके उन्होंने कहा ॥२॥

भावार्थ दीपिका

शृण्वतामेवेति । यत्प्रसन्नः कृष्णः करोति न तदन्यः कश्चिदपि कर्तुं समर्थ इति निश्चित्य सर्वानेवताननादृत्य कृष्णमुवाचेत्यर्थः। आभाष्य भो भो कृष्ण भक्तवत्सलेत्येवं संबोध्य ॥२॥

भाव प्रकाशिका

शृण्वतामेव० इत्यादि उत्तरार्ध का अभिप्राय है कि प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्ण जो कर देते हैं, उस कार्य

को करने में दूसरा कोई समर्थ नहीं है, इस तरह निश्चय करके, उन सबों को न कहकर युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण को हे भक्तवत्सल श्रीकृष्ण इस तरह से संबोधित करके ॥२॥

युधिष्ठिर उवाच

क्रतुराजेन गोविन्द राजसूयेन पावनीः । यक्ष्ये विभूतीर्भवतस्तत्संपादय नः प्रभो ॥३॥

अन्वयः— हे गोविन्द क्रतुराजेन राजसूयेन भवतः पावनीः विभूतिः यक्ष्ये प्रभो तत् नः सम्पादय ॥३॥

राजा युधिष्ठिर ने कहा

अनुवाद— हे गोविन्द ! मैं सर्वश्रेष्ठ राजसूय यज्ञ के द्वारा आपकी तथा आपकी विभूति स्वरूप देवताओं की आराधना करना चाहता हूँ, अप मेरे इस सङ्कल्प को पूरा करें ॥३॥

भावार्थ दीपिका

विभूतीरंशान् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

विमूतीः अर्थात् आपके अंशभूत देवताओं की ॥३॥

त्वत्पादुके अविरतं परि ये चरन्ति ध्यायन्त्यभद्रनशने शुचयो गृणन्ति ।
विन्दन्ति ते कमलनाभ भवापवर्गमाशासते यदि त आशिष ईश नान्ये ॥४॥

अन्वयः— हे कमलनाभ ये अभद्रनाशने त्वत्पादुके अविरतं परिचरन्ति, ध्यायन्ति, गृणन्ति, ते शुचयः भवापवर्गम् विन्दन्ति हे ईश यदि ते आशिषः आशास्ते अन्येन ॥४॥

अनुवाद— हे कमलनाभ ! आपकी चरण पादुकायें सभी अमङ्गलों का नाश कर देने वाली है, जो लोग उन दोनों की सेवा करते हैं, ध्यान करते हैं और स्तुति करते हैं, वे लोग ही वस्तुतः पवित्रात्मा हैं । ऐसे लोग संसार चक्र से मुक्ति प्राप्त कर लेते है । यदि वे विषयों की अभिलाषा करते हैं वे उसको भी प्राप्त कर लेते हैं। किन्तु जो लोग आपकी चरणपादुका की शरणागति नहीं करते हैं वे न तो मुक्ति प्राप्त करते हैं और न तो सांसारिक भोग को ही प्राप्त करते हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

एष चक्रवर्तिनां मनोरथः कथं त्वया क्रियत इति चेदत आह-त्वत्पादुके इति । परि ये चरन्तीति यच्छब्दव्यवधानमार्षम्। ये परिचरन्ति देहेन । ध्यायन्ति मनसा । अभद्रस्य नशने नाशके । गृणन्ति वाचा । ते भवस्यापवर्गं मोक्षं विन्दन्ति । यद्याशासते तर्ह्याशिषोऽपि त एव विन्दन्ति नान्ये चक्रवर्तिनोऽपि ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि ऐसा मनोरथ तो कोई चक्रवर्ती राजा ही कर सकता है, आप इस तरह का मनोरथ कैसे करते हैं ? तो इस पर राजा युधिष्ठिर **त्वत्पादुके० इत्यादि** श्लोक कहते हैं परिचरन्ति के बीच यत् शब्द का व्यवधान आर्ष है । जो लोग देह से परिचर्या (सेवा) करते हैं, मन से ध्यान करते है । अभद्रस्य नशने अर्थात् अमङ्गल का विनाश करने वाले । गृणन्ति अर्थात् स्तुति करते हैं । वे मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं । यदि वे उपासक विषयों को प्राप्त करना चहतें है तो उसे भी प्राप्त कर लेते हैं । **नान्ये** अर्थात् यदि कोई चक्रवर्ती भी आपकी चरण पादुका की शरणागति नहीं करते है वे मुक्ति तो क्या विषय भोगों को भी नहीं प्राप्त कर पाते हैं ॥४॥

तद्देवदेव भवतश्चरणारविन्दसेवानुभावमिह पश्यतु लोक एषः ।
ये त्वां भजन्ति न भजन्त्युत वोभयेषां निष्ठां प्रदर्शय विभो कुरुसृंजयानाम् ॥५॥

अन्वयः— तत् हे देव देव भवतः चरणारविन्द सेवानुभावम् इह एषः लोकः पश्यतु । विभो कुरुसृंजयानाम् ये त्वां भजन्ति उतन भजन्ति उभयेषां निष्ठां प्रदर्शय ॥५॥

अनुवाद— अतएव हे देवताओं के भी आराध्य देव मैं चाहता हूँ कि आपके चरणों की सेवा का प्रभाव यह संसार देख ले । कुरुवंशियों और सृंजयवंशियों में जो लोग आपका भजन करते हैं तथा जो लोग आपके चरणों की सेवा नहीं करते हैं इन दोनों प्रकार के लोगों की निष्ठा को आप दिखला दें ॥५॥

भावार्थ दीपिका

भगवतो भक्तपक्षपातमाविष्कारयन्नाह-तद्देवदेवेति । तत्तस्मात्पश्यतु साक्षात् । एवं निश्चितेऽपि ये कर्मादिप्रधानाः । केचित्कुरुसृंजया भगवद्भक्तिं न बहु मन्यन्ते तेषां मोहनिवृत्तये ये त्वां भजन्ति यदि वा न भजन्ति तेषामुभयेषां निष्ठां स्थितिं प्रदर्शय।।५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् अपने भक्तों का पक्षपात करते हैं, इस बात को महाराज युधिष्ठिर आविष्कृत करते हुए **तद्वदेवदेव० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । अतएव साक्षात् देखे । इस प्रकार से निश्चित होने पर भी जो लोग प्रधान रूप से कर्मो को करते हैं । कुछ कुरुवंशी और सृंजय वंशी श्रीभगवान् की भक्ति को बहुत महत्त्व नहीं देते हैं, उन लोग के अज्ञान को दूर करने के लिए जो लोग आपका भजन करते हैं अथवा जो लोग भजन नहीं करते हैं उन दोनों प्रकार के लोगों की निष्ठा को आप प्रदर्शित करें ॥५॥

न ब्रह्मणः स्वपरभेदमतिस्तव स्यात्सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः ।
संसेवतां सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवाऽनुरूपमुदयो न विपर्ययोऽत्र ॥६॥

अन्वयः— सर्वात्मनः समदृशः स्वसुखानुभूतेः ब्रह्मणः तव स्वपरभेदमतिः न सं सेवतां ते प्रसादः सुरतरोः इव सेवानुरूपमुदयः अत्र विपययो न ॥६॥

अनुवाद— प्रभो ! आप सबों की आत्मा, समदर्शी और स्वयम् आत्मानन्द के साक्षात्कर स्वरूप परंब्रह्म हैं, आपमे यह मैं यह दूसरा है या यह अपना है और यह दूसरे का है, इस प्रकार का बुद्धिभेद नहीं है । फिर भी आप उसी पर कृपा करते हैं जो आपकी सेवा करता है । यह उसी तरह से होता है जिस तरह कल्पवृक्ष अपना सेवन करने वालों पर कृपा करता है । दूसरों पर नहीं । सेवा के फल में जो न्यूनाधिक भाव होता है उसका कारण सेवा में न्यूनाधिक भाव के कारण होता है । आपमें अन्यथा भाव नहीं है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

ननु रागादिरहिते मयि कथमिदं वैषम्यं स्यात्तत्राह-नेति । स्वः पर इति भेदमतिस्तव न स्यादेव । कुतः । ब्रह्मणो निरूपाधेः किंच सर्वस्यात्मनोऽतः समदृशः । किंच स्वसुखानुभूतेः । अतो रागाद्यभावादिति भावः । तथापि संसेवमानानामेव त्वत्प्रसादो नान्येषाम् । तत्रापि सेवाऽनुरूपमुदयः फलं न त्वत्र विपर्ययोऽन्यथाभावः । यथा कल्पद्रुमस्य रागादिराहित्येऽपि सेवकेष्वेव फलजनकत्वं नान्येषु ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें कि मैं तो राग और द्वेष से रहित हूँ अतएव मुझमें इस प्रकार की विषमता कैसे हो सकती है ? तो इसके उत्तर में महाराज युधिष्ठिर ने **न ब्रह्मणः इत्यादि** श्लोक को कहा । आपमें अपने और पराये की बुद्धि बिल्कुल नहीं है । क्योंकि आप निरूपाधिक ब्रह्म हैं । साथ ही आप सबों की आत्मा हैं, अतएव आप

समदर्शी हैं। तथा आत्मानन्द के साक्षात्कार स्वरूप हैं, क्योंकि आपमें रागद्वेष इत्यादि का अभाव है। फिर भी जो लोग आपकी सेवा करते हैं उन लोगों पर ही आप कृपा करते हैं। दूसरों पर नहीं। उसमें भी जिसकी जैसी सेवा होती है उसीके अनुसार आप कृपा करते है। अतएव सेवा में न्यूनाधिक्य का होना ही आपकी कृपा के न्यूनाधिक्य का कारण होता है। उसमें अन्यथाभाव नहीं होता है। जिस तरह से कल्पतरु उस पर ही कृपा करता है, जो उसकी सेवा करता है उससे भिन्नों पर नहीं ॥६॥

श्रीभगवानुवाच

सम्यग्व्यवसितं राजन् भवता शत्रुकर्शन । कल्याणी येन ते कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥७॥

अन्वयः— हे शत्रुकर्शन राजन् भवता सम्यग्व्यवसितं, येन ते कल्याणी कीर्तिः लोकान् अनुभविष्यति ॥७॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे शत्रु विजयी राजन् युधिष्ठिर ! आपने बिल्कुल ठीक निश्चय किया, इस यज्ञ के द्वारा आपकी मङ्गलमयी कीर्ति का सम्पूर्ण लोकों में विस्तार होगा ॥७॥

भावार्थ दीपिका

सत्यं मद्भक्तानामेव कैवल्यादि नान्येषामित्यनुमोदमान आह-सम्यगिति। शत्रुकर्शनेति संबोधयन्सर्वराजविजयशक्तिं संचारयति। अनुभविष्यति द्रक्ष्यति। सर्वलोकव्याप्ता भविष्यतीत्यर्थः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

महाराज युधिष्ठिर के प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए श्रीभगवान् ने कहा आप सत्य कहते हैं। मैं अपने भक्तों को ही कैवल्य प्रदान करता हूँ। दूसरों को नहीं श्रीभगवान् महाराज युधिष्ठिर को **शत्रुकर्शन** इस संबोधन के द्वारा उनमें सभी राजाओं पर विजय प्राप्त करने की शक्ति का संचार करते हैं। अनुभविष्यति का अर्थ है देखेगी है। अर्थात् आपकी कीर्ति सम्पूर्ण लोकों में फैल जायेगी ॥७॥

ऋषीणां पितृदेवानां सुहृदामपि नः प्रभो । सर्वेषामपि भूतानामीप्सितः क्रतुराडयम् ॥८॥

अन्वयः— हे प्रभो ! अयंक्रतुराट् ऋषीणां पितृदेवानां नः सुहृदाम् अपि सर्वेषां भूतानाम् इप्सितः ॥८॥

अनुवाद— राजन् ! यह राजसूय नामक सभी यज्ञों का राजा है। यह ऋषियों, पितरों, देवताओं, हम सुहृदों को तथा सभी जीवों को अभिप्रेत है ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

विजित्य नृपतीन्सर्वान्कृत्वा च जगतीं वशे । संभृत्य सर्वसंभारानाहरस्व महाक्रतुम् ॥९॥

अन्वयः— सर्वान् नृपतीन् विजित्य जगतीं च वशेकृत्वा सर्वसंभारान् संभृत्य महाक्रतुम् आहरस्व ॥९॥

अनुवाद— सभी राजाओं को जीत कर सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने वश में करके तथा सम्पूर्ण यज्ञोपयोगी सामग्रियों को एकत्रित करके आप यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥९॥

भावार्थ दीपिका

किमत्र मयान्येन वा संपादनीयं, तव तु सुकर एव राजसूय इत्याह-विजित्येति। जगतीं सर्वां पृथ्वीम्। संभारान्यज्ञोपस्करान्संभृत्य संपाद्य आहरस्वानुतिष्ठेत्यर्थः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इसमें मुझको अथवा किसी दूसरे को क्या करना है ? आपके लिए राजसूय यज्ञ करना तो बहुत आसान

है । इस बात को श्रीभगवान् ने **विजित्य० इत्यादि** श्लोक से कहा है । जगतीम् अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी को, संभागन् अर्थात् यज्ञ सामग्री को संभृत्य अर्थात् एकत्रित करके, आहरस्व अर्थात् यज्ञ का अनुष्ठान करें ॥९॥

एते ते भ्रातरो राजँल्लोकपालांशसंभवाः । जितोऽस्म्यात्मवता तेऽहं दुर्जयो योऽकृतात्मभिः ॥१०॥

अन्वयः— राजन् एते ते भ्रातरः लोकपालांशसंभवाः यः अहं अकृतात्मभिः दुर्जयः आत्मवताते अहं जितः ॥१०॥

अनुवाद— राजन् आपके भाई इन्द्र आदि लोकपालों के अंश से उत्पन्न होने के कारण बहुत बड़े वीर हैं। जो लोग अपने मन को वश में नहीं किए है वे लोग मुझे अपने वश में नहीं कर सकते किन्तु जितेन्द्रिय आपने तो अपने गुणो से मुझको अपने वश में कर लिया है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ननु नृपपतिविजयादि कथं शक्यं स्यादत आह-एत इति । किंच आत्मवता जितेन्द्रियेण ते त्वयाहं च जितोऽस्मि वशीकृतोऽस्मि । अकृतात्मभिरजितेन्द्रियैः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि राजाओं आदि पर विजय कैसे प्राप्त किया जा सकता है । इस पर श्रीभगवान् ने **एते० इत्यादि** श्लोक को कहा । आप जितेन्द्रिय हैं अतएव आपने मुझको अपने वश में कर लिया । **अकृतात्मभिः** अर्थात् अजितेन्द्रियों के द्वारा ॥१०॥

न कश्चिन्मत्परं लोके तेजसा यशसा श्रिया । विभूतिभिर्वाभिभवेद्देवोऽपि किमु पार्थिवः ॥११॥

अन्वयः— लोके मत्परं तेजसा यशसा श्रिया वा विभूतिभिः कश्चित् देवः अपि न अभिभवेत् किमु पार्थिवः ॥११॥

अनुवाद— संसार में मेरे भक्त का कोई देवता भी अपने तेज, यश अथवा ऐश्वर्य के द्वारा तिरस्कार नहीं कर सकता है तो फिर पृथिवी के राजागण उसका तिरस्कार कैसे कर सकते हैं ?॥११॥

भावार्थ दीपिका

अस्तां तावदेवभूतस्य तव परैरभिभवशङ्का अकिंचनमपि मत्परं कोऽपि नाभिभवितुं प्रभवतीत्याह-न कश्चिदिति । तेजसा प्रभावेण । विभूतिभिः सैन्यादिसामग्रीभिः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के आपको अपने शत्रुओं से पराभव की शङ्का हो सकती है, किन्तु मेरा कोई भक्त यदि अकिञ्चन है तो भी उसका कोई देवता तेज, यश और सैन्यादि सामग्री के द्वारा तिरस्कार नहीं कर सकता है । तेजसा अर्थात् प्रभाव के द्वारा विभूतिभिः सेना आदि सामग्री के द्वारा ॥११॥

श्रीशुक उवाच

निशम्य भगवद्गीतं प्रीतः फुल्लमुखाम्बुजः । भ्रातॄन्दिग्विजयेऽयुङ्क्त विष्णुतेजोपबृंहितान् ॥१२॥

अन्वयः— भगवद् गीतं निशम्य प्रीतः फुल्लमुखाम्बुजः विष्णुतेजोपबृंहितान् भातॄन् दिग्विजये आयुंक्त ॥१२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवान् की बातों को सुनकर प्रसन्न तथा विकसित मुखकमल वाले राजा युधिष्ठिर ने भगवान् विष्णु के तेज से सम्पन्न अपने भाइयों को दिग्विजय करने के कार्य में नियुक्त कर दिया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अयुङ्क नियुक्तवान् । विष्णोस्तेजसोपबृंहितान्संवर्धितान् । तेजोपबृंहितानिति सन्धिरार्षः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

अयुंक्त अर्थात् नियुक्त कर दिया । भगवान् विष्णु के तेज से जिन सबों का तेज बढ गया था । तेजोपबृंहितान् में आर्ष सन्धि हुई है ।।१२।।

सहदेवं दक्षिणस्यामादिशत्सहसृंजयैः । दिशि प्रतीच्यां नकुलमुदीच्यां सव्यसाचिनम् ।।
प्राच्यां वृकोदरं मत्स्यैः केकयैः सह मद्रकैः ।।१३।।

अन्वयः— सृंजयैः सह सहदेवं दक्षिणस्यां आदिशत्, प्रतीच्यां दिशिनकुलम् उदीच्यां सव्यसाचिनम् प्राच्यां वृकोदरम् मत्स्यैः केकयैः मद्रकैः सह आदिशदिति शेषः ।।१३।।

अनुवाद— महाराज युधिष्ठिर ने सृंजय वंशियों के साथ सहदेव को दक्षिण दिशा में जाने का आदेश दिया, पश्चिम दिशा में नकुल को जाने का आदेश दिया उत्तर दिशा में बायें हाथ से भी बाण चलाने वाले अर्जुन को भेजा, और भीम को मत्स्य, केकय एवं मद्र देशीय सैनिकों के साथ पूर्व दिशा में दिग्विजय करने के लिए जाने का आदेश दिया ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

नकुलादीनां मत्स्यादिभिः सहायैर्यथासंख्येन संबन्धः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

नकुल आदि का मत्स्य आदि सहायकों के साथ संख्या के अनुसार सम्बन्ध है ।।१३।।

ते विजित्य नृपान्वीरा आजह्रुर्दिग्भ्य ओजसा । अजातशत्रवे भूरि द्रविणं नृप यक्ष्यते ।।१४।।

अन्वयः— हे नृप ते वीराः नृपान् ओजसा विजित्य दिग्भ्यः यक्ष्यते अजातशत्रवे भूरि द्रविणं आजह्रुः ।।१४।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् वे भीम आदि सभी वीर अपने पौरुष से राजाओं को परास्त करके सभी दिशाओं से यज्ञ करने वाले महाराज युधिष्ठिर के लिए बहुत अधिक मात्रा में धन लाए ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

कथंभूताय । यक्ष्यते यागं करिष्यते ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

किस प्रकार के राजा के लिए ? यक्ष्यते यज्ञ करने वाले महाराज युधिष्ठिर के लिए ।।१४।।

श्रुत्वाऽजितं जरासन्धं नृपतेर्ध्यायतो हरिः । आहोपायं तमेवाद्य उद्धवो यमुवाच ह ।।१५।।

अन्वयः— जरासन्धं अजितं श्रुत्वा ध्यायतः नृपतेः आद्यः हरिः तमेव उपायं आह यम् ह उद्धवः उवाच ।।१५।।

अनुवाद— जरासन्ध पर विजय नही प्राप्त किया जा सका है इस बात को सुनकर महाराज युधिष्ठिर चिन्तित हो गये । उस समय श्रीभगवान् ने उनको वही उपाय बतलाया जिसको उद्धवजी ने बतलाया था ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

आद्यो हरिः श्रीकृष्णः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

आद्य हरिः भगवान् श्रीकृष्ण को कहा गया है ।।१५।।

भीमसेनोऽर्जुनः कृष्णो ब्रह्मलिङ्गधरास्त्रयः । जग्मुर्गिरिव्रजं तात बृहद्रथसुतो यतः ॥१६॥

अन्वयः— हे तात भीमसेनः अर्जुनः कृष्णः त्रयः ब्रह्मलिङ्गधराः गिरिव्रजं जग्मु यतः बृहद्रथ सुतः ॥१६॥

अनुवाद— हे परीक्षित् भीम, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण तीनों ब्राह्मण का वेष बनाकर गिरिव्रज गये जहाँ बृहद्रथ के पुत्र जरासन्ध की राजधानी थी ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मलिङ्गधरा ब्राह्मणलिङ्गधारिणः । यतो यत्र बृहद्रथसुतो जरासन्धः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मलिङ्गधराः अर्थात् ब्राह्मण का वेष धारण किए हुए जहाँ पर बृहद्रथ के पुत्र जरासन्ध रहता था ॥१६॥

ते गत्वातिथ्यवेलायां गृहेषु गृहमेधिनम् । ब्रह्मण्यं समयाचेरन्राजन्या ब्रह्मलिङ्गिनः ॥१७॥

अन्वयः— ते अतिथ्यबेलायां गृहमेधिनम् गृहेषु गत्वा ते ब्रह्मलिङ्गिनः राजन्याः ब्रह्मण्यं समयाचेरन् ॥१७॥

अनुवाद— जिस समय जरासन्ध आये हुए अतिथियों का सत्कार करता था उसी समय गार्हस्थ्य धर्म का पालन करने वाले उस जरासन्ध के यहाँ वे तीनों ब्राह्मण वेषधारी ब्राह्मण के समान याचना किए ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

गृहेषु वर्तमानं समयाचेरन् । सम्यगयाचन्तेत्यर्थः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

जिस समय जरासन्ध अपने घर में विद्यमान था **समयाचेरन्** अर्थात् अच्छी तरह से याचना किए ॥१७॥

राजन्विद्ध्यतिथीन्प्राप्तानर्थिनो दूरमागतान् । तन्नः प्रयच्छ भद्रं ते यद्वयं कामयामहे ॥१८॥

अन्वयः— राजन् दूरमागतान् अर्थिनः अतिथीन् प्राप्तान् विद्धि। ते भद्रम् यद्वयं कामयामहे तन्नः प्रयच्छ ॥१८॥

अनुवाद— राजन् दूर से आये हुए हमलोगों को आप याचक अतिथि जानें । आपका कल्याण हो । जो हमलोग आपसे प्राप्त करना चाहते हैं, उसे आप हमलोगो को प्रदान कीजिए ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

किं दुर्मर्षं तितिक्षूणां किमकार्यमसाधुभिः । किं न देयं वदान्यानां कः परः समदर्शिनाम् ॥१९॥

अन्वयः— तितिक्षूणम् दुर्मर्षम् किम् ? असाधुभिः अकार्यं किम् ? वदान्यानां देयं किंम् ? समदर्शिनाम् परः कः?॥१९॥

अनुवाद— तितिक्षु (सहनशील) पुरुष क्या नहीं सह सकते हैं ? दुष्ट पुरुष बुरा से बुरा क्या नहीं कर सकते हैं ? उदार पुरुष क्या नहीं दे सकते हैं ? और समदर्शी के लिए पराया कौन हो सकता है ?॥१९॥

भावार्थ दीपिका

नन्विदं कामयामह इति विशेषो निर्दिश्यताम्, अन्यथा यस्य स्वयंकल्पः पुत्रादेर्वियोगो दुःसहः स कथं देयः, तथा राजमण्डनं किरीटाद्यदेयं यत्तद्भिक्षुभ्यः कथं देयम्, तथातिरम्यं रत्नाभरणादि पुत्रादियोग्यं कथं परस्मै देयमिति चेदत आहुः- किं दुर्मर्षमित्यादि । अथ दृष्टान्तत्वेनार्थान्तरमाहुः-किमकार्यमिति । यथाऽसाधूनामकार्यं नास्ति तथा तितिक्षूणां दुर्मर्षं दुःसहं नास्ति । वदान्यानामत्युदाराणामदेयं नास्ति । समदर्शिनां परश्च नास्ति । अतः किं विशेषनिर्देशेनेत्यर्थः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

आपलोग कहें कि हमलोग यह चाहते हैं इस तरह से आपलोग जो चाहते हों उसे बतलायें, नहीं तो जिसका

स्वयंकल्प पुत्र आदि का वियोग जिसको सह पाना अत्यन्त कठिन है उसको कैसे दिया जा सकता है ? इसी तरह राजा को अलंकृत करने वाले किरीट आदि को भिक्षुकों को कैसे दिया जा सकता है ? तथा अत्यन्त मनोहर रत्न इत्यादि के आभूषण इत्यादि जो पुत्रों आदि के लिए योग्य होता है, उसको कैसे दिया जा सकता है ? इस पर अतिथियों ने **किं दर्मर्षम्० इत्यादि** श्लोक को कहा इसके पश्चात् अतिथियों ने दूसरी वस्तु को दृष्टान्त रूप से **किमकार्यम्० इत्यादि** कहा । जिस तरह दुष्ट पुरुष कोई भी बुरा कार्य कर सकता है । तितिक्षु पुरुष कुछ भी सह सकता है, इसी तरह अत्यन्त उदार पुरुष को लिए अदेय कुछ भी नहीं होता है । एवं समदर्शी पुरुष के लिए पराया कोई नहीं होता अतएव विशेष निर्देश से कौन सा लाभ है ?॥१९॥

योऽनित्येन शरीरेण सतां गेयं यशो ध्रुवम् । नाचिनोति स्वयंकल्पः स वाच्यः शोच्य एव सः॥२०॥

अन्वयः— यः स्वयं कल्पः अनित्येन शरीरेण सतां गेयं ध्रुवं शरीरं नाचिनोति सः वाच्यः शोच्य एव सः ॥२०॥

अनुवाद— स्वयं समर्थ भी होकर अपने अनित्य शरीर के द्वारा ऐसे अविनाशी यश जिसका गान सज्जन पुरुष करें, का अर्जन नहीं करता है, उसकी जितनी भी निन्दा की जाय वह कम ही है । तथा उसका जीवन शोचनीय ही है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

किंच अर्थिने धीरेण मुद्गलादिवत्प्राणा अपि न वञ्चनीया इत्याशयेनाहुः-योऽनित्येनेति । नाचिनोति न संपादयति स वाच्यः स निन्द्यः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

धैर्यवान् पुरुष को चाहिए कि वह मुद्गल आदि के समान अपने प्राणों को भी याचकों को दे दे । इसी अभिप्राय से अतिथियों ने **योऽनित्येन० इत्यादि** श्लोक को कहा नही सम्पादित करता है वह निन्दनीय पुरुष है ॥२०॥

हरिश्चन्द्रो रन्तिदेव उञ्छवृत्तिः शिबिर्बलिः । व्याधः कपोतो बहवो ह्यध्रुवेण ध्रुवं गताः ॥२१॥

अन्वयः— हरिश्चन्द्रः रन्तिदेवः उञ्छवृत्तिः, शिविः बलिः व्याधः कपोतः बहवःहि अध्रुवेण ध्रुवं गताः ॥२१॥

अनुवाद— राजन् राजा हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, उञ्छवृत्ति से जीवन का निर्वाह करने वाले महात्मा मुद्गल, शिवि, बलि, व्याध, कपोत, इत्यादि अनेक पुरुष अपने-अपने अनित्य शरीर से अविनाशी पद को प्राप्त कर लिए ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

विश्वामित्रार्थानृण्याय हरिश्चन्द्रो भार्यात्मजादिसर्वं विक्रीय स्वयं चाण्डालतां प्राप्तोऽप्यनिर्विण्णः । सहायोध्यावासिभिर्जनैः स्वर्गं गतः रन्तिदेवः सकुटुम्बोऽष्टचत्वारिंशदहान्यलब्धोदकोऽपि कथंचिल्लब्धान्नोदकाद्यर्थिभ्यो दत्त्वा ब्रह्मलोकं गतः । उञ्छवृत्तिर्मुद्गलः षण्मासं सीदत्कुटुम्बोऽप्यातिथ्यदानेन ब्रह्मलोकं गतः । शिबिः शरणागतकपोतरक्षणाय स्वमांसं श्येनाय दत्त्वा दिवं गतः । बलिः सर्वस्वं ब्राह्मणवेषधारिणे हरये दत्त्वा तमेव आत्मसाच्चकार । कपोतश्चातिथये व्याधाय कपोत्या सहात्ममांसं दत्त्वा विमानेन दिवं गतः । व्याधस्तयोः सत्त्वं वीक्ष्य स्वयमतिनिर्विण्णो महाप्रस्थाने वनाग्निदग्ध देहो निष्कल्मषो दिवमारुरोह। एवमन्ये च बहवोऽध्रुवेण शरीरेण ध्रुवं लोकं गता इति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्र से आनृण्यता प्राप्त करने के लिए पत्नी पुत्र इत्यादि को बेंचकर स्वयं चाण्डाल बन गये फिर भी कष्ट का अनुभव नहीं किए उसके फलस्वरूप वे अयोध्या वासियों के साथ स्वर्ग को प्राप्त किए । राजा रन्तिदेव को अड़तालिस दिनो तक अन्न और जल नहीं मिला था उसके पश्चत् किसी तरह प्राप्त अन्न और जल को अतिथि को देकर वे ब्रह्मलोक को प्राप्त किये । महात्मा मुद्गल उञ्छवृत्ति से जीवन निर्वाह करते थे । एक बार

सपरिवार महात्मा मुद्गल को कुछ नही प्राप्त हुआ था फिर भी वे अतिथि को दान करके ब्रह्मलोक को प्राप्त किए थे। राजा शिवि शरणागत कबूतर की रक्षा करने के लिए अपने मांस को बाज पक्षी को देकर स्वर्ग लोक को प्राप्त किए। राजा बलि ब्राह्मण वेषधारी श्रीभगवान् को अपना सर्वस्व दान करके श्रीभगवान् को ही अपना बना लिये। कबूतर अतिथि व्याध को अपनी कपोती के साथ अपने मांस को दान करके विमान पर चढ़कर स्वर्ग चला गया। व्याध भी कपोत एवं कपोती के आत्मबल को देखकर स्वयम संसार से अत्यन्त विरक्त हो गया और महाप्रस्थान के समय दावाग्नि मे अपने शरीर को जलाकर निष्पाप हो गया और स्वर्ग लोक को प्राप्त किया। इसी तरह अनेक पुरुषों ने अपने अनित्य शरीर से अविनाशी पद को प्राप्त किया ॥२१॥

श्रीशुक उवाच

स्वैराकृतिभिस्तांस्तु प्रकोष्ठैर्ज्यहितैरपि । राजन्यबन्धून्विज्ञाय दृष्टपूर्वानचिन्तयत् ॥२२॥

अन्वयः— स्वैः आकृतिभिः ज्याहतैः प्रकोष्ठै रपि तान् राजन्यबन्धून् विज्ञाय दृष्टपूर्वान् अचिन्तयत् ॥२२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जरासन्ध उन तीनों अतिथियों के स्वर तथा आकार को देखकर एवं कलाइयों पर प्रत्यञ्चा की रगड़ को देखकर यह जान लिया था कि ये ब्राह्मण नहीं हैं, क्षत्रिय हैं। वह सोचने लगा कि मैंने इन सबों को कहीं देखा है, किन्तु कहाँ देखा है, यह याद नहीं है, यह विचार करने लगा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

ज्याहतैर्ज्याघातकिणाङ्कितैः दृष्टपूर्वान्द्रौपदीस्वयंवरादिषु ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

कलाई पर प्रत्यञ्चा के रगड़ के चिह्नों से द्रौपदी स्वयम्बर आदि के समय में ॥२२॥

राजन्यबन्धवो ह्येते ब्रह्मलिङ्गानि बिभ्रति । ददामि भिक्षितं तेभ्य आत्मानमपि दुस्त्यजम् ॥२३॥

अन्वयः— एते हि राजन्यबन्धवः ब्रह्मलिङ्गानिविभ्रति तेभ्यः भिक्षितम् दुस्त्यजम आत्मानमपि ददामि ॥२३॥

अनुवाद— ये सभी क्षत्रिय हैं, ब्राह्मण का वेष बनाकर आये हैं। यदि ये याचना करेंगे तो मैं इन सबों के माँगने पर जिसको देना बड़ा कठिन है, उस अपना शरीर भी दे दूँगा ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

बलेर्नु श्रूयते कीर्तिर्वितता दिक्ष्वकल्मषा । ऐश्वर्याद्भ्रंशितस्यापि विप्रव्याजेन विष्णुना ॥२४॥

अन्वयः— विप्रव्याजेन विष्णुना ऐश्वर्याद् भंशितस्यापि बलेर्नु दिक्षु वितता अकल्मषा कीर्तिः श्रूयते ॥२४॥

अनुवाद— ब्राह्मण के वेष बनाकर विष्णु ने बलि को यद्यपि उसको ऐश्वर्य भ्रष्ट कर दिया किन्तु आज भी बलि की दिशाओं में फैली हुई निर्मल कीर्ति सुनी जाती है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्रस्य श्रियं जिहीर्षता विप्रव्याजेन विष्णुना भ्रंशितस्यापि बलेः । न अहो । नेति पाठे न श्रूयते किं, अपितु श्रूयत इति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र के ऐश्वर्य का हरण करने की इच्छा से ब्राह्मण का वेष बनाये हुए विष्णु के द्वारा ऐश्वर्य भ्रष्ट हुए बलि की न अर्थात् आश्चर्य है कि जहाँ न पाठ है वहाँ अर्थ होगा नहीं सुनी जाती है क्या ? बल्कि सुनी ही जाती है ॥२४॥

श्रियं जिहीर्षतेन्द्रस्य विष्णवे द्विजरूपिणे । जानन्नपि महीं प्रादाद्वार्यमाणोऽपि दैत्यराद् ॥२५॥

अन्वयः— इन्द्रस्य श्रियं जिहीर्षता द्विजरूपिणे विष्णवे जानन् अपि दैत्यराद् बलिः वार्यमाणः अपि महीं प्रादात्॥२५॥

अनुवाद— दैत्यराज बलि से राज्य लक्ष्मी को बलि से छिनकर इन्द्र की राज्य लक्ष्मी को लौटा देने के लिए ही ब्राह्मण का वेष बनाये हुए भगवान विष्णु को दैत्यराज बलि शुक्राचार्य के द्वारा रोके जाने पर भी पृथिवी का दान दे दिया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

तं श्लाघते-विष्णव इति । शुक्रेण वार्यमाणोऽपि । अतएव विष्णुरिति जानन्नपि ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

विष्णवे इत्यादि के द्वारा जरासन्ध राजा बलि की प्रशंसा करता है । शुक्राचार्य के द्वारा रोके जाने पर भी अतएव ये विष्णु हैं इस तरह से जानते हुए भी ॥२५॥

जीवता ब्राह्मणार्थाय को न्वर्थः क्षत्रबन्धुना । देहेन पतमानेन नेहता विपुलं यशः ॥२६॥

अन्वयः— पतमानेन देहेन क्षत्रबन्धुना ब्राह्मणार्थाय विपुलं यश; नेहता जीवता को नु अर्थः ?॥२६॥

अनुवाद— जरासंन्ध सोच रहा था इस नाशवान शरीर से जो क्षत्रिय विपुल यश को नहीं प्राप्त करना चाहता है, जो ब्राह्मण के लिए नहीं जीवित रहता है, उसका जीना व्यर्थ है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

पतमानेन पतता क्षत्रबन्धुना देहेन ब्राह्मणार्थाय विपुलं यशो नेहता नेहमानेनासंपादयता को नु अर्थः । न कोऽपीत्यर्थः॥२६॥

भाव प्रकाशिका

नाशवान् शरीर से जिस क्षत्रिय ने अपने शरीर से ब्राह्मण के लिए प्रभूत मात्रा में यश नहीं कमाया उसके जीने से कोई लाभ नहीं है ॥२६॥

इत्युदारमतिः प्राह कृष्णार्जुनवृकोदरान् । हे विप्रा व्रियतां कामो ददाम्यात्मशिरोऽपि वः ॥२७॥

अन्वयः— इत्युदारमतिः कृष्णार्जुनवृकोदरान् प्राह, हे विप्राः कामः व्रियतां वः आत्मशिरः अपि ददामि ॥२७॥

अनुवाद— इस तरह से निश्चय करके उदार बुद्धि से सम्पन्न जरासन्ध ने भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन तथा भीम से कहा ब्राह्मणों ! आपलोग अपनी इच्छानुसार माँगे । मैं आपलोगों को अपना शिर भी दान कर दूँगा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

एवं निश्चित्याह-हे विप्रा इति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से निश्चय करके जरासन्ध ने हे ब्राह्मणों इत्यादि कहा ॥२७॥

श्रीभगवानुवाच

युद्धं नो देहि राजेन्द्रद्वन्द्वशो यदि मन्यसे । युद्धार्थिनो वयं प्राप्ता राजन्या नान्नकाङ्क्षिणः ॥२८॥

अन्वयः— हे राजेन्द्र यदि मन्यसे नो द्वन्द्वशः युद्धं देहि वयं राजन्याः युद्धार्थिनः प्राप्ताः अन्नकाक्षिणः न ॥२८॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे राजवर्य ! यदि आप देना चाहते हैं तो आप हमें द्वन्द्वयुद्ध की भिक्षा प्रदान करें, हमलोग अन्न चाहने वाले ब्राह्मण नहीं है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

असौ वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्राताऽर्जुनो ह्ययम् । अनयोर्मातुलेयं मां कृष्णं जानीहि ते रिपुम् ॥२९॥

अन्वयः— असौ पार्थः वृकोदरः अयं हि तस्यभ्राता अर्जुनः अनयोः मातुलेयम् माम् ते रिपुम् कृष्णं जानीहि ॥२९॥

अनुवाद— ये पृथा पुत्र भीमसेन हैं और ये इनके अनुज अर्जुन हैं, मैं आपका शत्रु तथा इन दोनों का ममेरा भाई कृष्ण हूँ यह आप जान लें ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

राजन्यतामेव प्रपञ्चयति-असाविति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

असौ॰ इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् क्षत्रियत्व का ही विस्तार से वर्णन करते हैं ॥२९॥

एवमावेदितो राजा जहासोच्चैः स्म मागधः । आह चामर्षितो मन्दा युद्धं तर्हि ददामि वः ॥३०॥

अन्वयः— एवम् आवेदितः मागधः राजा उच्चैः जहास स्म आमर्षितः च आह मन्दाः तर्हि वः युद्धं ददामि ॥३०॥

अनुवाद— इस तरह से कहे जाने पर मगध के राजा जरासन्ध जोर से हँसा और क्रोध करके कहा मूर्खो! यदि ऐसी बात है तो मैं युद्ध की प्रार्थना को स्वीकार करता हूँ ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

न त्वया भीरुणा योत्स्ये युधि विक्लवचेतसा । मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः ॥३१॥

अन्वयः— युधिविक्लवचेतसा भीरुणा यतः स्वपुरीं मथुरा त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः त्वया न योत्स्ये ॥३१॥

अनुवाद— कृष्ण तुम तो युद्ध में घबरा जाते हो अतएव तुम डरपोक हो भय के ही कारण तुम अपनी नगरी मथुरा को छोड़कर समुद्र का शरण ले लिए हो । अतएव मैं तुम्हारे साथ युद्ध नहीं करूँगा ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

यतो मद्भिया समुद्रं शरणं गतः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

क्योंकि तुम मेरे भय समुद्र में जाकर शरण लिए हो ॥३१॥

अयं तु वयसाऽतुल्यो नातिसत्त्वो न मे समः । अर्जुनो न भवेद्योद्धा भीमस्तुल्यबलो मम ॥३२॥

अन्वयः— अयं तु वयसा अतुल्यः नाति सत्त्वःन मे समः अतः अर्जुनः योद्धा न भवेत् भीमः मम तुल्यबलः ॥३२॥

अनुवाद— यह अर्जुन तो अवस्था में भी मुझसे छोटा है, मुझसे अधिक बलवान भी नहीं है और न तो मेरे समान बलवान है । अतएव अर्जुन से भी योद्धा नहीं करूँगा । भीम मेरे समान बलवान् है, अतः इसके साथ युद्ध करूगा ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

वयसाप्यतुल्यो नातिसत्त्वो नातिबलश्च न च देहेन मया समोऽतोऽर्जुनो योद्ध न भवेत् । भीमस्तु भवेत् । यतो मम तुल्यबलः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

अर्जुन मुझसे अवस्था में भी छोटा है **नाति सत्त्वः** अर्थात् अधिक बलवान भी नहीं है और अर्जुन मेरे समान देह से भी मेरे समान बलवान नहीं हैं, अतएव अर्जुन योद्ध नहीं हो सकते हैं । भीम मेरे समान बलवान् भी हैं अतएव ये योद्धा हो सकते हैं ॥३२॥

इत्युक्त्वा भीमसेनाय प्रादाय महतीं गदाम् । द्वितीयां स्वयमादाय निर्जगाम पुराद्बहिः ॥३३॥

अन्वयः— इत्युक्त्वा भीमसेनाय महतीं गदाम् प्रादाय, द्वितीयां स्वयम् आदाय पुराद्बहिः निर्जगाम ॥३३॥

अनुवाद— यह कहकर जरासन्ध भीम को एक विशाल गदा देकर तथा दूसरी गदा स्वयं लेकर युद्ध करने के लिए नगर से बाहर निकल गया ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

प्रादाय दत्त्वेत्यर्थः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

प्रादाय अर्थात् देकर ॥३३॥

ततः समे खले वीरौ संयुक्तावितरेतरौ । जघ्नतुर्वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां रणदुर्मदौ ॥३४॥

अन्वयः— ततः वीरौ समे खले इतरेतरौ संयुक्तौ रणदुर्मदौ, वज्रकल्पाभ्यां गदाभ्यां जघ्नतुः ॥३४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् वे दोनों बीर समतल युद्ध के मैदान में परस्पर में एक दूसरे से युद्ध करने लगे । वे दोनों रणोन्मत्त थे अतएव अपनी वज्र के समान गदा से एक दूसरे पर प्रहार करने लगे ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

समे खले युद्धाङ्गणे ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

समतल युद्ध के मैदान में ॥३४॥

मण्डलानि विचित्राणि सव्यं दक्षिणमेव च । चरतोः शुशुभे युद्ध नटयोरिव रङ्गिणोः ॥३५॥

अन्वयः— सव्यं दक्षिणमेव विचित्राणि मण्डलानि चरतोः रङ्गिणोः नटयोः युद्धं इव शुशुभे ॥३५॥

अनुवाद— वे दोनों बायें दाये अद्भुत पैंतरा चलते हुए उसी तरह सुशोभित हो रहे थे जैसे रङ्गमञ्च पर दो नट युद्ध का अभिनय कर रहे हों ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

मण्डलानि गदायुद्धगतिभेदान् । सव्यं दक्षिणं च यथा भवति तथा । रङ्गिणो रङ्गगतयोर्नटयोरिवेति निर्भयत्वेनोपमा ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

मण्डलानि अर्थात् गदा युद्ध के पैतरे, सव्यं दक्षिणम् अर्थात् बायें दायें । रङ्गिणोः अर्थात् रङ्गमञ्च पर विद्यमान नटयोरिव दो नटों के समान । भीम और जरासन्ध दोनों के निर्भय होने के कारण यह उपमा दी गयी है ॥३५॥

ततश्चटचटाशब्दो वज्रनिष्पेषसन्निभः । गदयोः क्षिप्तयो राजन्दन्तयोरिव दन्तिनोः ॥३६॥

अन्वयः— राजन् ततः क्षिप्तयोः गदयोः वज्रनिष्पेशसन्निभः चटचटाशब्दः दन्तिनोः दन्तयोः इव शुशुभे इति शेषः ॥३६॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् उसके पश्चात् एक दूसरे पर प्रहार की गयी गदायें जब परस्पर में टकराती थीं तो उनसे चट-चट की ऐसी ध्वनि होती थी जैसे परस्पर में युद्ध करने वाले दो हाथियों के दाँत टकराकर चट-चट की आवाज करते हैं । अथवा बिजली गिरने पर जैसी आवाज होती है उसी तरह की आवाज होती थी ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

चटचटेति गदयोः परस्पराघातशब्दानुकरणम्। वज्रस्य निष्पेषः पातस्तत्सदृशः। युध्यतोर्दन्तिनोर्दन्ताघातशब्द इव शुशुभे॥३६॥

भाव प्रकाशिका

दोनों गदाओं के टकराने पर होने वाली ध्वनि का अनुकरण चट-चट शब्द से किया गया है । वज्र निष्पेशसन्निभ: अर्थात् विद्युत् पात के समान । परस्पर में युद्ध करने वाले दो हाथियों के दाँतों के टकराने की ध्वनि के समान सुशोभित होते थे ।।३६।।

ते वै गदे भुजजवेन निपात्यमाने अन्योन्यतोसकटिपादकरोरुजत्रून् ।
चूर्णीबभूवतुरुपेत्य यथार्कशाखे संयुध्यतोर्द्विरदयोरिव दीप्तमन्यवो: ।।३७।।

अन्वय:— यथा दीप्तमन्यवो: अर्कशाखे संयुध्यतो: द्विरदयो: इव भुजजवेन निपात्यमानेते वै गदे अन्योन्यतों सकटिपादकरोरुजत्रून् उपेत्य चूर्णी बभूवतु: ।।३७।।

अनुवाद— जिस तरह क्रोध करके दो हाथी लड़ने लगते हैं और आक की डालियाँ तोड़कर एक दूसरे पर प्रहार करने लगते हैं तो वे डालियाँ एक दूसरे से टकराकर चूर-चूर हो जाते हैं उसी तरह जरासन्ध और भीम अत्यन्त वेग पूर्वक एक दूसरे पर गदा चलाकर एक दूसरे के कंधों, कमरों पैरों हाथों जङ्घो ओर हँसलियों पर चोट करते थे तो उनकी गदाएँ उनके अंङ्गों से टकराकर चूर-चूर हो जाती थीं ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

अंसकट्यादीनुपेत्य । दीप्तो मन्युर्ययोस्तयोर्द्विरदयोर्गजयोरर्कशाखाभ्यां समं युध्यतोस्ते यथा चूर्णीभवतस्तद्वत् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

कन्धों तथा कमर आदि से टकराकर क्रोध करके लड़ने वाले दो हाथी आक की डालियों को तोड़कर युद्ध करने लगते हैं उस समय वे डालियाँ उन हाथियों के अङ्गों से टकराकर जैसे चूर-चूर हो जाते हैं उसी तरह उन दोनों की गदाएँ चूर-चूर होने लगीं ।।३७।।

इत्थं तयो: प्रहतयोर्गदयोर्नृवीरौ क्रुद्धौ स्वमुष्टिभिरय:स्पर्शैरपिष्टाम् ।
शब्दस्तयो: प्रहरतोरिभयोरिवासीन्निर्घातवज्रपरुषस्तलताडनोत्थ: ।।३८।।

अन्वय:— इत्थं प्रहतयो: तयो: गदयो: क्रुद्धौ नृवीरौ अय; स्पर्शै: मुष्टिभि: अपिष्टाम् इभयो: इव प्रहरतो: तयो: तलताडनोत्थ: शब्द: निर्घातवज्र परुष: आसीत् ।।३८।।

अनुवाद— इस प्रकार जब गदाएँ चूर-चूर हो गयीं तब दोनों वीर क्रोध में भरकर अपने मुक्के के प्रहार से एक दूसरे को चूर-चूर कर देना चाहते थे । मुक्के ऐसे गिरते मानो लोहे के घन गिर रहा हो । एक दूसरे पर प्रहार करते हुए वे दो हाथियों के समान उनके थप्पड़ों और मुक्कों का कठोर शब्द बिजली की गड़गड़ाहट के समान जान पड़ता था ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

अपिष्टां चूर्णीचक्रतु: ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

अपिष्टाम् अर्थात् दोनों ने चूर-चूर कर दिया ।।३८।।

तयोरेवं प्रहरतो: समशिक्षाबलौजसो: । निर्विशेषमभूद्युद्धमक्षीणजवयोर्नृप ।।३९।।

अन्वय:— हे नृप: एवंतयो: प्रहरतो: समशिक्षा बलौजसो: अक्षीणजवयो: युद्धं निर्विशेषम् अभूत् ।।३९।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् इस तरह वे दोनों एक दूसरे पर प्रहार करते थे । दोनों की गदा युद्ध में कुशलता

एवं बल और उत्साह एक समान थे । दोनों की शक्ति बिल्कुल क्षीण नहीं हो रही थी । इस तरह युद्ध करते रहने पर भी किसी की भी हार और जीत नहीं हो रही थी ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

शिक्षा अभ्यासः, बलं सत्त्वम्, ओजः प्रभावः, समानि तानि ययोस्तयोः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

शिक्षा अर्थात् अभ्यास, बल अर्थात् शारीरिक बल, ओजः अर्थात् प्रभाव ये सभी बाते दोनों के एक समान थे।।३९।।

एवं तयोर्महाराज युध्यतोः सप्तविंशतिः । दिनानि निरगंस्तत्र सुहृद्वन्निशि तिष्ठतोः ।।४०।।

अन्वयः— महाराज ! एवं तयोः युध्यतोः सप्तविंशतिः दिनानि निरगन् तत्र निशि सुहृदवत् तिष्ठतोः ।।४०।।

अनुवाद— हे महाराज इस प्रकार दोनों को युद्ध करते हुए सताइस दिन बीत गये वे दोनों रात्रि में मित्र के समान रहते थे ।।४०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४०।।

एकदा मातुलेयं वै प्राह राजन्वृकोदरः । न शक्तोऽहं जरासन्धं निर्जेतुं युधि माधव ।।४१।।

अन्वयः— हे राजन् एकदा वै मातुलेयं वृकोदरः प्राह माधव ! अहं युधि जरासन्धं निर्जेतुं शक्तः न ।।४१।।

अनुवाद— हे महाराज परीक्षित् एक दिन भीमसेन ने अपने ममेरे भाई भगवान् श्रीकृष्ण से कहा हे माधव! मैं युद्ध में जरासन्ध को जीतने में समर्थ नहीं हूँ ।।४१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४१।।

शत्रोर्जन्ममृती विद्वाञ्जीवितं च जराकृतम् । पार्थमाप्याययन्स्वेन तेजसाऽचिन्तयद्धरिः ।।४२।।

अन्वयः— हरिः शत्रोः जन्म मृती विद्वान् जराकृतं, जीवितं पार्थं स्वेन तेजसा आप्यायन् अचिन्तयत् ।।४२।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण जरासन्ध के जन्म और मृत्यु को जानते थे । वे यह भी जानते थे कि जरानामक राक्षसी इसके शरीर के दो टुकड़ों को जोड़कर जीवन प्रदान किया है । अतएव उन्होंने भीमसेन के शरीर में अपनी शक्ति का संचार किया और उसके मरने का उपाय सोचा ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

जन्म शकलरूपं, मृतिः पुनः शकलीभावस्ते विद्वान् जानन् । जरानाम राक्षसी तत्कृतम् । अचिन्तयत्कथमसौ शकलीभवेदिति।।४२।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् जानते थे कि इसका जन्म दो टुकड़ों में हुआ है । पुनः इसको दो टुकड़ों में कर देने से ही इसकी मृत्यु होगी । जरा नाम की राक्षसी ने इसे जीवन प्रदान किया है । उन्होंने सोच लिया कि यह पुनः कैसे दो टुकड़ों में होगा ।।४२।।

संचिन्त्यारिवधोपायं भीमस्यामोघदर्शनः । दर्शयामास विटपं पाटयन्निव संज्ञया ।।४३।।

अन्वयः— अमोघदर्शनः अरिवधोपायं संचिन्त्य विटपं पाटयन्निव संज्ञया भीमस्य दर्शयामास ।।४३।।

अनुवाद— परीक्षित् श्रीहरि का ज्ञान अबाध है । वे शत्रु के बध का उपाय सोचकर एक वृक्ष की डाली को बीचो-बीच से चीर दिए और इशारे से उसे भीमसेन को दिखाये ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

विटपं शाखाम् । करेण विटपं गृहीत्वा हरिर्भीमस्य यथाहं विटपं पाटयामि तथा त्वमेनं विपाटयेति संज्ञया संकेतेनारिवधोयायं दर्शयामासेत्यर्थः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

विटपम् अर्थात् शाखा को । हाथ में वृक्ष की शाखा को लेकर श्रीहरि जैसे मैं शाखा को चीर रहा हूँ वैसे ही तुम इस को चीर दो इस तरह से भीमसेन को शत्रु के बध के उपाय को दिखलाए ।।४३।।

तद्विज्ञाय महासत्त्वो भीमः प्रहरतां वरः । गृहीत्वा पादयोः शत्रुं पातयामास भूतले ।।४४।।

अन्वयः— तद्विज्ञाय प्रहरतांवरः महासत्त्वो भीमः शत्रुंपादयोः गृहित्वा भूतले पातयामास ।।४४।।

अनुवाद— उस उपाय को जानकर प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ महाबलवान् भीम जरासन्ध के पैरों को पकड़कर उसे पृथिवी पर पटक दिए ।।४४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४४।।

एकं पादं पदाक्रम्य दोर्भ्यामन्यं प्रगृह्य सः । गुदतः पाटयामास शाखामिव महागजः ।।४५।।

अन्वयः— एकं पादं पदाक्रम्य सः अन्यं दोर्भ्यां प्रगृह्य महागजः शाखामिव गुदतः पाटयामास ।।४५।।

अनुवाद— जरासन्ध के एक पैर को अपने पैर से दबाकर उसके दूसरे पैर को अपने दोनों हाथों से पकड़कर उसे गुदा की ओर से ऐसे चीर डाला जैसे कोई गजराज वृक्ष की डाली पकड़कर चीर डाले ।।४५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४५।।

एकपादोरुवृषणकटिपृष्ठस्तनांसके । एकबाह्वक्षिभ्रूकर्णे शकले ददृशुः प्रजाः ।।४६।।

अन्वयः— एकपादोरुवृषण कटिपृष्ठ स्तनांसके एकबाह्वक्षिकर्णे शकले प्रजाः ददृशुः ।।४६।।

अनुवाद— लोगों ने जरासन्ध के शरीर के दो टुकड़ों को देखा । उन लोगों ने यह भी देखा कि जरासन्ध के एक-एक पैर, जङ्घा अण्डकोश, कमर पीठ स्तन कन्धा भुजा नेत्र भौह और कान अलग-अलग हो गये हैं ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

एकैकः पादादिर्ययोस्ते शकले ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

उन दोनों टुकड़ों में एक-एक पैर थे ।।४६।।

हाहाकारो महानासीन्निहते मगधेश्वरे । पूजयामासतुर्भीमं परिरभ्य जयाच्युतौ ।।४७।।

अन्वयः— मगधेश्वरे निहते महान् हाहाकार आसीत् जयाच्युतौ भीमं परिरभ्य पूजयामासतुः ।।४७।।

अनुवाद— जरासन्ध की मृत्यु हो जाने पर वहाँ की प्रजा जोर-जोर से हाय-हाय करने लगी, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण दोनों भीमसेन का आलिङ्गन किए और उनका सत्कार किए ।।४७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४७।।

सहदेवं तत्तनयं भगवान्भूतभावनः । अभ्यषिञ्चदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः ।।
मोचयामास राजन्यान्संरुद्धा मागधेन ये ।।४८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे जरासन्धवधो नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।।७२।।

अन्वयः— भूतभावनः अमेयात्मा प्रभुः भगवान् तत्तनयं सहदेवं मगधानां पति अभ्याषिञ्चत् मागधेन ये संरुद्धा राजन्यान् मोचयामास ।।४८।।

अनुवाद—**जिन भगवान्** श्रीकृष्ण के स्वरूप को कोई नहीं जान सकता है एवं सम्पूर्ण जीवों को जीवन प्रदान करने वाले **भगवान् श्रीकृष्ण** जरासन्ध के पुत्र सहदेव को मगधाधिप के रूप में अभिषिक्त किये और जरासन्ध जिन राजाओं को **करागृह में डाले हुए था** उन राजाओं को श्रीभगवान् मुक्त कर दिये ।।४८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के जरासन्ध वध नामक बहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७२।।

भावार्थ दीपिका

दुर्वृत्तत्वादसौ हतो नतु राज्याभिलाषेणेति दर्शयन्नाह-सहदेवमिति ।।४८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्विसप्ततितमोऽध्यायः ।।७२।।

भाव प्रकाशिका

जरासन्ध का वध भगवान् ने इसलिए कराया कि वह दुर्वृत्त था। राज्य के लोभ से नहीं इस बात को बतलाते हुए श्रीशुकदेवजी ने सहदेवम् इत्यादि श्लोक कहा ।।४८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्द्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के बहत्तरवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्यख्या सम्पूर्ण हुई ।।७२।।

* * *

तिहत्तरवाँ अध्याय

जरासन्ध के जेल से मुक्त हुए राजाओं की विदाई और श्रीभगवान् का इन्द्रप्रस्थ लौट आना

श्रीशुक उवाच

अयुते द्वे शतान्यष्टौ लीलया युधि निर्जिताः । ते निर्गता गिरिद्रोण्या मलिना मलवाससः ॥१॥

अन्वयः— द्वे अयुते अष्टौ शतानि युधि लीलया निर्जिताः ते मलिना मलवाससः गिरिद्रोण्या निर्गताः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जरासन्ध बीस हजार आठ सौ राजाओं को अनायास ही जीतकर पहाड़ों की घाटी में एक किले के भीतर बन्दी बनाकर रखा था । भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा छोड़ दिए जाने पर वे राजागण वहाँ से निकले तो उनका शरीर और वस्त्र मैले हो चुके थे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततस्त्रिसप्ततितमे मोचयित्वा नृपान्हरिः । राजार्हभोगैः स्वान्देशान्प्रस्थाप्य पुनरागमत् ॥१॥ अत्युन्नद्धजरासन्धव- धात्तद्रुद्धभूपतीन्। विमोक्ष्य कृपया कृष्णो निजरूपमदर्शयत् ॥२॥ ये निर्जिता जरासन्धेन निरुद्धाश्च गिरिद्रोण्यां ते ततो निर्गताः सन्तो घनश्यामां ददृशुरित्युत्तरेणान्वयः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तदनन्तर तिहत्तरवें अध्याय में श्रीहरि राजाओं को जरासन्ध के जेल से मुक्त करके उन्हें राजाओं के योग्य भोग प्रदान करके, उन सबों को उनके देश में भेजकर पुन इन्द्रप्रस्थ आये ॥१॥ अत्यन्त अत्याचारी जरासन्ध का वध हो जाने के कारण उसके द्वारा बन्दी बनाये गये राजाओं को मुक्त करके भगवान् श्रीकृष्ण कृपा करके उन राजाओं को अपने रूप का दर्शन कराये ॥२॥ जरासन्ध जिन राजाओं को पर्वतों की घाटी में बन्दी बनाकर रखा था वे राजा जब वहाँ से निकले तो वे श्रीभगवान् के रूप का दर्शन किए इसतरह से आगे के श्लोक से अन्वय है ॥१॥

क्षुत्क्षामाः शुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः । ददृशुस्ते घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ।।२।।

अन्वयः— क्षुत्क्षामाः शुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः ते पीतकौशेय वाससम् घनश्यामं ददृशुः ।।२।।

अनुवाद— भूख के कारण वे राजागण दुर्बल हो गये थे, उनके मुख सूख गये थे, जले में बन्द रहने के कारण उनका शरीर अत्यधिक शिथिल हो गया था । वे राजागण रेशमी पीताम्बर पहने हुए जलभरे मेघ के समान श्यामवर्ण वाले भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन किए ।।२।।

भावार्थ दीपिका

क्षुधा क्षामा कृशाः । संरोधेन परिकर्शिताः क्लेशिताः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

क्षुत्क्षामाः अर्थात् भूख के कारण दुर्बल बने हुए । संरोध परिकर्शिता अर्थात् बन्दी हो जाने के कारण अत्यन्त कष्ट प्राप्त ।।२।।

श्रीवत्साङ्कं चतुर्बाहुं पद्मगर्भारुणेक्षणम् । चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ।।३।।
पद्महस्तं गदाशङ्खरथाङ्गैरुपलक्षितम् । किरीटहारकटककटिसूत्राङ्गदाचितम् ।।४।।

अन्वयः— चतुर्वाहुं, श्रीवत्सांकं, पद्मगर्भारुणेक्षणम् चारुप्रसन्नवदनम् स्फुरन् मकरकुण्डलम् पद्महस्तं गदाशंख रथाङ्गैः उपलक्षितम् किरीट हारकटककटिसूत्रांगदाचितम् ददृशु रिति शेषः ।।३-४।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की चार भुजाएँ थी, उनके वक्षस्थल में श्रीवत्सांक चिह्न सुशोभित हो रहा था, कमल के भीतरी भाग के समान कोमल एवं रतनारे उनके नेत्र थे । श्रीभगवान् का सुन्दर मुख प्रसन्न था, उनके कानों में मकराकृति कुण्डल चमक रहे थे, श्रीभगवान् अपने एक हाथ में कमल धारण किए थे और शेष तीन भुजाओं में गदा, शङ्ख एवं चक्र धारण किए थे । किरीट, हार, कङ्गन और कटि सूत्र एवं बाजूबन्द अपने-अपने स्थान पर सुशोभित हो रहे थे ।।३-४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३-४।।

भ्राजद्वरमणिग्रीवं निवीतं वनमालया । पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया ।।५।।
जिघ्रन्त इव नासाभ्यां रम्भन्त इव बहुभिः । प्रणेमुर्हतपाप्मानो मूर्धभिः पादयोर्हरेः ।।६।।

अन्वयः— भ्राजद्वरमणिग्रीवं, वनमालया निवीतम् चक्षुर्भ्या पिबन्त इव, जिह्वया लिहन्त इव नासाभ्यां जिघ्रन्त इव बाहुभि रम्भन्त इव हतपाप्मानः मूर्धभिः हरेः पादयोः प्रणेमुः ।।५-६।।

अनुवाद— श्रीभगवान् अपने गले में श्रेष्ठ कौस्तुभ मणि को धारण किए थे, तथा उनकी वनमाला लटक रही थी । इस प्रकार के श्रीभगवान् को देखकर वे राजागण मानो अपने नेत्रों से पी रहे हों, जीभ से चाट रहे हों नाक से सूंघ रहे हों एवं भुजाओं से श्रीभगवान् का आलिङ्गन कर रहे हों । श्रीभगवान् का दर्शन करने के कारण उन राजाओं के समस्त पाप विनष्ट हो गये थे वे श्रीभगवान् के चरणों पर सिर रखकर उनको प्रणम किए ।।५-६।।

भावार्थ दीपिका

भ्राजन् भ्राजमानो वरमणिः कौस्तुभो यया सा ग्रीवा यस्य तम् । निवीतं कण्ठलम्बितया व्याप्तम् । पिबन्त इवेत्यादीनां हरेः पादयोः प्रणेमुरित्युत्तरेणान्वयः । रम्भन्तः परिरम्भमाणा इव ।।५-६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवन् की ग्रीवा श्रेष्ठ कौस्तुभमणि से सुशोभित हो रही थी, निवीतं वनमालया अर्थात् उनकी वनमाला

लटक रही थी, पिबन्तः इव इत्यादि का श्रीहरि के चरणों में प्रणाम किया इस तरह से आगे के श्लोक से अन्वय है। रम्भन्तः इव अर्थात् आलिङ्गन करते हुए के समान ॥५-६॥

कृष्णसंदर्शनाह्लादध्वस्तसंरोधनक्लमाः । प्रशशंसुर्हृषीकेशं गीर्भिः प्राञ्जलयो नृपाः ॥७॥

अन्वयः— कृष्ण संदर्शना ह्लादध्वस्तसंरोधनक्लमाः प्राञ्जलयः नृपाः गीर्भिः हृषीकेशं प्रशशंसुः ॥७॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करने से उन राजाओं को इतना आनन्द हुआ कि उन लोगों को जेल में रहने का कष्ट समाप्त हो गया। वे राजागण हाथ जोड़कर भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

कृष्णदर्शनाह्लादेन ध्वस्तः संरोधनक्लमो येषां ते ॥७॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन जन्य आनन्द के द्वारा उन राजाओं के कारागार में रहने का कष्ट विनष्ट हो गया॥७॥

राजान ऊचुः

नमस्ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराव्यय । प्रपन्नान्पाहि नः कृष्ण निर्विण्णान्घोरसंसृतेः ॥८॥

अन्वयः— हे देवदेवेश हे प्रपन्नार्तिहर ? हे अव्यय हे कृष्ण नमस्ते निर्विण्णान् प्रपन्नान् नः घोरसंसृतेः पाहि ॥८॥

राजाओं ने कहा

अनुवाद— हे देवों के भी आराध्य देव, हे शरणागत जीवों के कष्ट को दूर करने वाले तथा सदा निर्विकार रहने वाले भगवन् श्रीकृष्ण आपको नमस्कार है, हमलोग आपके शरणागत हैं। इस घोर संसार चक्र में पड़े हुए हमलोग कष्ट का अनुभव कर रहे हैं, आप हमलोगों की रक्षा करें ॥८॥

भावार्थ दीपिका

संरोधाद्रक्षितानस्मान् घोरायाः संसृतेरपि पाहि मोचय ॥८॥

भाव प्रकाशिका

आपने हमलोगों की इस कारागार से रक्षा की अब इस संसार चक्र से भी हमलोगों की रक्षा आप करें ॥८॥

नैनं नाथान्वसूयामो मागधं मधुसूदन । अनुग्रहो यद्भवतो राज्ञां राज्यच्युतिर्विभो ॥९॥

अन्वयः— हे मधुसूदन ! हे नाथ एनं मागधं न अन्वनुसूयामः हे विभो भवतः अनुग्रहो यत् राज्ञां राज्यच्युतिः ॥९॥

अनुवाद— हे मधुसूदन। हे मेरे स्वामिन् हमलोग इस जरासन्ध में कोई दोष नहीं देखते हैं यह तो आपका बहुत बड़ा अनुग्रह है कि राजा कहलाने वाले हमलोग राज्यलक्ष्मी से च्युत कर दिए गये ॥९॥

भावार्थ दीपिका

ननु भवन्तो जरासन्धासूयाविष्टा इहामुत्र भोगासक्ताश्च कथं संसृतेर्मोचनीया रत्याशङ्क्य संप्रति न वयं तथाभूता इत्याहुः- नैनमित्यष्टभिः। हे नाथ, वयमेनं नान्वसूयामः अन्वतु दोषदृष्ट्या न पश्यामः। कुत इत्यत आहुः-अनुग्रह इति। यद्यस्मात्॥९॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि आपलोग तो जरासन्ध से असूया करते हैं लौकिक पारलौकिक भोगों को भोगने में आसक्त हैं अतएव आपलोगों को इस संसर चक्र से कैसे मुक्त किया जा सकता है ? इस तरह से आशङ्का करके राजाओं ने कहा कि इस समय हमलोगों की वैसी स्थिति नहीं है। इस बात को राजाओं ने **नैनम्० इत्यादि** आठ श्लोकों

से कहा। हे नाथ ! हमलोग इस जरासन्ध से असूया नहीं करते हैं और न इसको हमलोग दोष देते हैं, क्योंकि यह तो आपकी कृपा है। जिससे कि ॥९॥

राज्यैश्वर्यमदोन्नद्धो न श्रेयो विन्दते नृपः । त्वन्मायामोहितोऽनित्या मन्यते संपदोऽचलाः ॥१०॥

अन्वयः— राजैश्वर्य मदोनद्धो नृपः श्रेयो नहि विन्दते त्वन्माया मोहितः सम्पदः अनित्या संपदः अचलाः मन्यते॥१०॥

अनुवाद— जो राजा अपने राज्यैश्वर्य के मद से उन्मत्त हो जाता है उसका कल्याण नहीं होता है। वह आपकी माया से मोहित होकर अनित्य सम्पत्तियों को ही अचल मान लेता है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव व्यतिरेकेणोपपादयन्ति-राज्यैश्वर्येति। राज्यैश्वर्याभ्यां मदस्तेनोन्नद्ध उच्छृङ्खलो नित्या अचलाश्च संपदो मन्यते। यद्वा अनित्याः सतीरचलाः शाश्वतीर्मन्यते ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बात को व्यतिरेक के द्वारा **राज्यैश्वर्य० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहते हैं। राज्य तथा ऐश्वर्य से उन्मत्त बना हुआ सपत्ति को नित्य तथा अचल मानने लगता है। अथवा अनित्य सम्पत्ति को नित्य और अचल मान लेता है ॥१०॥

मृगतृष्णां यथा बाला मन्यन्त उदकाशयम् । एवं वैकारिकीं मायामयुक्ता वस्तु चक्षते ॥११॥

अन्वयः— यथा बालाः मृगतृष्णां उदकाशयम् मन्यन्ते एवम् अयुक्ता; वैकारिकीं मायाम् वस्तु चक्षते ॥११॥

अनुवाद— जिस तरह अज्ञानी लोग मृगतृष्णा को ही जलाशय मान लेते हैं उसी तरह इन्द्रिय लोलुप एवं अज्ञानी पुरुष इस परिवर्तित होने वाली माया को सत्य मान लेते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

किंच अवस्तु सद्वस्तुतया पश्यन्तीत्याहुः-मृगतृष्णामिति। वैकारिकीं सृष्ट्यादिविकारापन्नाम्। अयुक्ता अविवेकिनः॥११॥

भाव प्रकाशिका

वे अज्ञानी लोग मिथ्या वस्तु को सत्य मान लेते हैं, इस तरह से राजाओं ने कहा वैकारिकीम् अर्थात् सृष्टि आदि रूप से विकृत होने वाली अयुक्ताः अर्थात् अज्ञानी लोग ॥११॥

वयं पुरा श्रीमदनष्टदृष्टयो जिगीषयाऽस्या इतरेतरस्पृधः ।
घ्नन्तः प्रजाः स्वा अतिनिर्घृणः प्रभो मृत्युं पुरस्त्वाऽविगणय्य दुर्मदाः ॥१२॥

अन्वयः— हे प्रभो पुरा दुर्मदाः वयम् श्रीमदनष्टदृष्टयः अस्याः जिगीषया इतरेतरस्पृधः स्वाः प्रजाः घ्नन्त अतिनिर्घृणाः पुरः मृत्युंत्वा विगणय्य स्थिताः ॥१२॥

अनुवाद— हे प्रभो मद से मतवाले बने हुए हमलोग धन सम्पत्ति के मद में चूर होकर अन्धे हो गये थे। इस पृथिवी को जीत लेने की इच्छा से एक दूसरे से होड़ करते थे और अपनी ही प्रजाओं का नाश करते रहते थे। हमलोगों का जीवन क्रूरता से भरा हुआ था। आप सामने मृत्यु रूप से खड़े हैं इस बात की परवाह भी नहीं करते थे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

राज्यस्य योगवियोगयोरनर्थार्थावदत्वमस्मास्वेव दृष्टमित्याहुः-वयमिति द्वाभ्याम्। श्रीमदेन नष्टा दृष्टिर्येषां ते। अस्याः पृथिव्याः। इतरेतरस्पृधः परस्परं स्पर्धमानाः। पुरः पुरतः। त्वा त्वां मृत्युमविगणय्य। पुरा ये दुर्मदा वयम् ॥१२॥

भावप्रकाशिका

राज्य का योग अनर्थावह होता है और रवियोग अर्थावह होता है, इस बात को हमलोगों ने अपने जीवन में देख लिया। इस बात को राजाओं ने **वयम्० इत्यादि** दो श्लोकों से कहा है। ऐश्वर्य के मद से हमलोगों की दृष्टि नष्ट हो गयी थी। अस्याः इस पृथ्वी का **इतरेतरस्पृधः** अर्थात् परस्पर में एक दूसरे से होड़ लगाने वाले। पुरः अर्थात् सामने। त्वांमृत्युमविगणय्य मृत्यु स्वरूप आपकी परवाह किए बिना। पहले हमलोग मदमत्त हो गये थे ॥१२॥

त एव कृष्णाद्य गभीररंहसा दुरन्तवीर्येण विचालिताः श्रियः ।
कालेन तन्वा भवतोऽनुकम्पया विनष्टदर्पाश्चरणौ स्मराम ते ॥१३॥

अन्वयः— हे कृष्ण त एव अद्य गभीररंहसा दुरन्तवीर्येण कालेन भवतः तन्वा श्रियः विचालितः भवतः अनुकम्पया विनष्टदर्पाः ते चरणौ स्मरामः ॥१३॥

अनुवाद— हे श्रीकृष्ण प्रभो जो हमलोग राज्य तथा ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त थे वही हमलोग आपके शरीर भूत काल जिसकी गति इतना गम्भीर है कि उसको कोई टाल नही सकता है, वह अत्यन्त बलवान् है, उस काल ने हमलोगों को श्रीविहीन बना दिया है। और आपकी कृपा से हमलोगों का घमण्ड विनष्ट हो गया है। अब हमलोग आपके चरण कमलों का स्मरण कर रहे हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

हे कृष्ण, त एव वयमद्य विनष्टर्पास्ते चरणौ स्मरामः स्मर्तुमाशास्महे। कथंभूताः। भवतस्तन्वा मूर्त्या कालेन श्रियो विचालिताः विभ्रंशिताः। अतो राज्यच्युतिर्भवदनुग्रह एवेत्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

हे कृष्ण वही हमलोग आज अपने अभिमान के विनष्ट हो जाने के कारण आपके चरणों का स्मरण करते हैं। कैसे हमलोग ? तो इसे बतलाते हैं। आपके शरीरभूत काल ने हमलोगों को श्रीविहीन बना दिया है। अतएव राज्यभ्रष्ट होना आपकी कृपा ही है ॥१३॥

अथो न राज्यं मृगतृष्णिरूपितं देहेन शश्वत्पतता रुजां भुवा ।
उपासितव्यं स्पृहयामहे विभो क्रियाफलं प्रेत्य च कर्णरोचनम् ॥१४॥

अन्वयः— हे विभो ! शश्वत पतता रुजां भुवा देहेन उपासितव्यं स्पृहयामहे अथो मृगतृष्णिरूपितं राज्यं न च कार्य रोचनम् प्रेत्य क्रिया फलं न स्पृहयामहे ॥१४॥

अनुवाद— हे सर्वव्यापक प्रभो ! जो निरन्तर क्षीण होने वाले, एवं रोगों की जन्मभूमि इस शरीर के द्वारा हमलोग जो उपासना करने के योग्य है उन आपके चरणों की उपासना करके आपको प्राप्त करना चाहते हैं। और राज्य को नहीं प्राप्त करना चाहते हैं, क्योंकि वह तो मृगतृष्णा के समान मिथ्या ही है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अत एवाथो अनन्तरं मृगतृष्णिसदृशं राज्यं शश्वत्पतता प्रतिक्षणं क्षीयमाणेन तथा रुजां रोगाणां भुवा जन्मक्षेत्रेण देहेनोपासितव्यं सेव्यं न स्पृहयामहे। प्रेत्य परलोके च क्रियाफलं स्वर्गादिभोगमुपासितव्यं न स्पृहयामहे। कथंभूतम्। कर्णयो रोचनं रुचिजनकमात्रम्। तत्र गतस्य स्पर्धाद्यनपगमेन सुखाभावादित्यर्थः ॥१४॥

यज्ञादि कर्मों के फलस्वरूप स्वर्गादि भोगों को भी नहीं प्राप्त करना चाहते हैं । क्योंकि स्वर्गादि फल तो केवल सुनने में ही अच्छे लगते हैं । स्वर्ग में जाने पर वहाँ भी स्पर्धा इत्यादि दूर नहीं समाप्त होते हैं । अतएव उन स्वर्गादिकों में भी सुख की प्राप्ति नही होती है ।।१४।।

तं नः समादिशोपायं येन ते चरणाब्जयोः । स्मृतिर्यथा न विरमेदपि संसरतामिह ।।१५।।

अन्वयः— नः तम् उपायं समादिश येन इह संसरताम् अपि ते चरणाब्जयोः स्मृतिः न विरमेत् ।।१५।।

अनुवाद— अतएव आप हमलोगों को उस उपाय का उपदेश दें जिससे कि इस संसार में संसरण करने वाले हम संसारी जीव आपके चरण के स्मरण को नहीं भूलें ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

यद्येवंभूता यूयं तर्हि मम चरणौ स्मरत, ततोऽनायासेन मुक्तिर्भविष्यतीति किं मदपेक्षयेति चेदत आहुः-तं न इति । त्वच्चरणस्मृतिरपि त्वत्प्रसादफलं मेवेत्यर्थः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें कि यदि ऐसी बात है तो तुम लोग हमारे चरणों का स्मरण करते रहो उसके द्वारा तो बिना प्रयास के ही तुम लोगों की मुक्ति हो जायेगी तो इसके उत्तर में राजाओं ने **तं नः इत्यादि** श्लोक से कहा अर्थात् आपके चरणों का स्मरण बने रहना भी आपकी कृपा से सम्भव है ।।१५।।

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने । प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमोनमः ।।१६।।

अन्वयः— प्रणतक्लेशनाशाय, कृष्णाय, वासुदेव, हरये, परमात्मने, गेविन्दाय नमो नमः ।।१६।।

अनुवाद— अपने शरणागतजीवों के समस्त क्लेशों का नाश करने वाले भगवन् श्रीकृष्ण, वासुदेव, श्रीहरि परमात्मा तथा भगवान् गोविन्द को हम बार-बार नमस्कार करते है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१६।।

श्रीशुक उवाच

संस्तूयमानो भगवान्राजभिर्मुक्तबन्धनैः । तानाह करुणस्तात शरण्यः श्लक्ष्णया गिरा ।।१७।।

अन्वयः— हे तात मुक्तबन्धनैः राजभिः संस्तूयमानः शरण्यः करुणः भगवान् तान् श्लक्षणया गिरा आह ।।१७।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जो राजागण: जरासन्ध के कारागार से मुक्त हो गये थे उन सबों के द्वारा स्तुति किए जाने वाले शरणागत रक्षक एवं दयालु भगवान् उन राजाओं से अत्यन्त मधुरवाणी से कहे ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

श्लक्ष्णया मञ्जुलया ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

श्लक्ष्णया अर्थात् मनोज्ञ वाणी से कहे ।।१७।।

श्रीभगवानुवाच

अद्यप्रभृति वो भूपा मय्यात्मन्यखिलेश्वरे । सुदृढा जायते भक्तिर्बाढमाशंसितं तथा ।।१८।।

अन्वयः— भूपाः अद्यप्रभृति वः अखिलेश्वरे आत्मनि मयि बाढम् आशंसितं सुदृढा भक्ति जायते ।।१८।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— राजाओं जैसी आपलोगों ने कामना की है, उसके अनुसार निश्चित रूप से सम्पूर्ण जगत् की आत्मा तथा सम्पूर्ण जगत् के स्वामी मुझमें आपलोगों की सुदृढ भक्ति हो जायेगी ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

यथा भवद्भिराशंसितं तथा बाढं निश्चितं वो मयि भक्तिर्जायते जायतामित्यर्थः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

आपलोगों ने जैसी भावना की है वैसी निश्चित रूप से आपलोगों की मुझमें निश्चित रूप से भक्ति होगी ॥१८॥

दिष्ट्या व्यवसितं भूपा भवन्त ऋतभाषिणः । श्रियैश्वर्यमदोन्नाहं पश्य उन्मादकं नृणाम् ॥१९॥

अन्वयः— **हे ऋतभाषिणः भूपाः दिष्ट्या व्यवसितम् । नृणाम् उन्मादकं श्रियैश्वर्यमदोन्नाहं पश्ये ॥१९॥**

अनुवाद— हे सत्य बोलने वाले राजाओं अपलोगों ने जो निर्णय किया है वह तुमलोगों के बड़े ही सौभाग्य की बात है । मैं देखता हूँ कि धन, सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त होकर बहुत से लोग उच्छृंखल और मदमत्त हो जाते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

हे भूपाः, मद्भजनमेव कर्तव्यमिति भवद्भिर्व्यवसितं संकल्पितं दिष्ट्या भद्रम् । भवद्भिरुक्तं च सत्यमेवेत्याह-भवन्त इति। श्रीश्च ऐश्वर्यं च ताभ्यां मदस्तेनोन्नाहमुद्वन्धनं स्वैराचारमित्यर्थः । पश्ये पश्यामि ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

राजाओं ! मेरा भजन ही करना चाहिए । आपलोगों ने जो निश्चय किया है, वह आपलोगों के लिए कल्याणकारी है । आपलोगों ने जो कहा है, वह भी सत्य ही है । इस बात को श्रीभगवान् ने भवन्त इत्यादि से कहा है । सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य के द्वारा तो घमण्ड उत्पन्न हो जाता है और उसके द्वारा मनुष्य स्वेच्छाचारी हो जाता है । यह मैं देखता हूँ ॥१९॥

हैहयो नहुषो वेनो रावणो नरकोऽपरे । श्रीमदाद्भ्रंशिताः स्थानाद्देवदैत्यनरेश्वराः ॥२०॥

अन्वयः— **हैहयः नहुषः वेनः रावणः नरकः अपरे देवदैत्यनरेश्वराः श्रीमदात् स्थानात् भ्रंशिताः ॥२०॥**

अनुवाद— हैहय, नहुष, वेन, रावण नरकासुर इत्यादि दूसरे देवता, दैत्य और राजागण श्रीमद के कारण हीं अपने स्थान से च्युत हो गये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-हैहय इति । हैहयः कार्तवीर्यश्चक्रवर्ती नरेश्वरः पितुः कामधेनुहरणपरशुरामेण सपुत्रो हतः । नहुषो देवेन्द्रतां प्राप्त उन्मत्तः शचीसङ्गाय ब्राह्मणान् शिबिकां वाहयंस्तैरेव ततो भ्रंशितोऽजगरत्वमवाप । वेनोऽप्युन्मत्तो ब्राह्मणानधिक्षिपंस्तैरेव हुंकृतैर्हतः । रावणो राक्षसेश्वरः सीतामभिलषन्राघवेण हतः । नरको दैत्येश्वरोऽदितिकुण्डलाद्याहरणान्मयैव हतः । अपरेऽपि श्रीमदात्स्थानाद्भ्रंशिताः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बातों को ही बतलाते हैं कृतवीर्य का पुत्र चक्रवर्ती राजा था वह परशुरामजी के पिता जमदग्नि महर्षि की गाय का हरण कर लिया था । उसके कारण परशुरामजी ने उसको तथा उसके पुत्रों को भी मार डाला । नहुष इन्द्रत्व को प्राप्त करके उन्मत्त हो गये थे वे इन्द्र की पत्नी के साथ सहवास करने के लिए ब्राह्मणों से अपनी पालकी ढुलवा रहे थे । उन ब्राह्मणों के शाप से वे अजगर हो गये । वेन भी उन्मत्त हो गये थे और ब्राह्मणों के हुङ्कार

में मारे गये। रावण राक्षसों का स्वामी था, किन्तु श्रीजानकी जी का अपहरण करने के कारण भगवान श्रीराम के द्वारा मारा गया। दैत्यो के स्वामी नरकासुर ने देव माता अदिति के कुण्डल आदि का अपहरण किया था उसको मैंने ही मारा। इसके अतिरिक्त राजागण भी ऐश्वर्य के मद के कारण अपने स्थान से भ्रष्ट हो गये ॥२०॥

भवन्त एतद्विज्ञाय देहाद्युत्पाद्यमन्तवत् । मां यजन्तोऽध्वरैर्युक्ताः प्रजा धर्मेण रक्षथ ॥२१॥

अन्वयः भवन्त देहाद्युत्पाद्यमन्तवत् एतद् विज्ञाय, युक्ताः माम् अध्वरैः यजन्तः धर्मेण प्रजाः रक्षथ ॥२१॥

अनुवाद देह आदि उत्पन्न होने वाली सारी वस्तुएँ विनष्ट होती हैं इस बात को जानकर आपलोग अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर यज्ञों के द्वारा मेरी आराधना करें ओर धर्म पूर्वक प्रजाओं की रक्षा करें ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

यदुत्पाद्यं देहादि तदन्तवत् । एवं विज्ञाय युक्ता अप्रमत्ता रक्षथ रक्षतेत्यर्थः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उत्पन्न होने वाली शरीर आदि सभी वस्तुएँ नष्ट होने वाली है, इस बात को जानकर सावधानी पूर्वक प्रजाओं की रक्षा करें ॥२१॥

संतन्वन्तः प्रजातन्तून्सुखं दुःखं भवाभवौ । प्राप्तं प्राप्तं च सेवन्तो मच्चित्ता विचरिष्यथ ॥२२॥

अन्वयः— प्रजातन्तून् सन्तन्वन्तः सुखं दुःखं भवाभवौ प्राप्तं प्राप्तं च सेवन्तः मच्चित्ता विचरिष्यथ ॥२२॥

अनुवाद— वंश परम्परा की रक्षा के लिए सन्तान उत्पन्न करते हुए बार-बार प्राप्त होने वाले सुख-दुःख जन्म मृत्यु का सेवन करते हुए आपलोग अपना चित्तमुझ में लागकर जीवन बिताओ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

प्रजातन्तून् पुत्रादिसन्ततीः । प्राप्तं प्राप्तं समत्वेन सेवमानाः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

प्रजातन्तून् अर्थात् पुत्रादि सन्तानों को प्राप्तं प्राप्तम् बार-बार प्राप्त होने वाले को समान रूप से सेवन करते हुए॥२२॥

उदासीनाश्च देहादावात्मारामा धृतव्रताः । मय्यावेश्य मनः सम्यङ्मामन्ते ब्रह्म यास्यथ ॥२३॥

अन्वयः— देहादौ उदासीनाः च आत्मारामाः धृतव्रताः मयि मनः सम्यक् आवेश्य अन्ते ब्रह्म माम् यास्यथ ॥२३॥

अनुवाद— देह एवं देह के संबन्धियों के प्रति अनासक्त रहते हुए अपनी आत्मा में ही रमण करो, पालन करने योग्य व्रतों को करते हुए मुझमें ही अपने मन को अच्छी तरह से लगाकर अन्त में तुम लोग मुझ ब्रह्म को ही प्राप्त करोगे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

मां ब्रह्म यास्यथ ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

मुझ ब्रह्म को ही प्राप्त करोगे ॥२३॥

श्रीशुक उवाच

इत्यादिश्य नृपान्कृष्णो भगवान्भुवनेश्वरः । तेषां न्ययुङ्क्त पुरुषान्स्त्रियो मज्जनकर्मणि ॥२४॥

अन्वयः— इति नृपान् आदिश्य भुवनेश्वरः भगवान् कृष्णः तेषां मज्जनकर्मणि स्त्रियो पुरुषान् न्ययुंक्त ॥२४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से राजाओं को आदेश देकर सम्पूर्ण लोकों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण उन राजाओं को स्नान कराने के काम में बहुत से स्त्रियों और पुरुषों को नियुक्त कर दिया ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

स्त्रियश्च तेषां मज्जनकर्मण्यभ्यङ्गस्नानादौ न्ययुङ्क्त ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

स्त्रियों को उन राजाओं को उबटन आदि लगाकर स्नान कराने के काम में नियुक्त कर दिया ।।२४।।

सपर्यां कारयामास सहदेवेन भारत । नरदेवोचितैर्वस्त्रैर्भूषणैः स्रग्विलेपनैः ॥२५॥

अन्वयः— भारत सहदेवेन नरदेवोचितैः वस्त्रै भूषणैः स्रग्विलेपनैः तेषां सपर्यां कारयामास ।।२५।।

अनुवाद— हे परीक्षित् जरासन्ध के पुत्र सहदेव के द्वारा उन राजाओं को राजोचित वस्त्र, आभूषण, माला तथा चन्दन आदि दिलवाकर उन राजाओं का सत्कार करवाया ।।२५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२५।।

भोजयित्वा वरान्नेन सुस्नातान्समलंकृतान् । भोगैश्च विविधैर्युक्तांस्ताम्बूलाद्यैर्नृपोचितैः ॥२६॥

अन्वयः— सुस्नातान् समलंकृतान् वरान्नेन भोजयित्वा नृपोचितैः ताम्बूलाद्यैः विविधैः भोगैः युक्तान् कारयामासेतिशेषः।।२६।।

अनुवाद— अच्छी तरह से स्नान करके अलङ्कारों से अलंकृत राजाओं को श्रीभगवान् ने उत्तम पदार्थों का भोजन करवा कर राजाओं के अनुकूल ताम्बूल आदि अनेक प्रकार के भोगों को प्रदान कराया ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

सुस्नातान्सम्यगलंकृतान् भोगैश्च युक्तान् वरेणान्नेन भोजयित्वा पुनस्तेषां सपर्यां सहदेवेन कारयामास ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

अच्छी तरह से स्नान करके अच्छी तरह से अलङ्कारों से अलंकृत भोग सम्पन्न राजाओं को उत्तम पदार्थों का भोजन कराकर श्रीभगवान् उन राजाओं का सहदेव से पुनः सत्कार कराए ।।२६।।

ते पूजिता मुकुन्देन राजानो मृष्टकुण्डलाः । विरेजुर्मोचिताः क्लेशात्प्रावृडन्ते यथा ग्रहाः ॥२७॥

अन्वयः— मुकुन्देन पूजिताः मृष्टकुण्डलाः क्लेशात् मोचिताः; ते प्रावृडन्ते ग्रहाः विरेजुः ।।२७।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण से समादृत कानों में चमकते हुए कुण्डलों को धारण किए हुए कष्ट से मुक्त हुए वे उसी तरह से सुशोभित हो रहे थे जैसे वर्षा ऋतु के बीत जाने पर चन्द्रमा आदि ग्रह सुशोभित होते हैं।।२७।।

भावार्थ दीपिका

ग्रहाश्चन्द्रादयो यथा ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

चन्द्रमा आदि ग्रहों के समान ।।२७।।

रथान्सदश्वानारोप्य मणिकाञ्चनभूषितान् । प्रीणय्य सूनृतैर्वाक्यैः स्वदेशान्प्रत्ययापयत् ॥२८॥

अन्वयः— मणिकाञ्चन भूषितान् सदश्वान् रथान् समारोप्य सुनृतैः वाक्यैः स्वदेशान् प्रत्ययापयत् ।।२८।।

अनुवाद— उसके पश्चात् श्रीभगवान् मणियों और सुवर्ण से जटित एवं सुन्दर रथों पर बैठाकर मधुरवाणी से तृप्त करके उन राजाओं को अपने-अपने देश में भेज दिये ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

प्रीणय्य नन्दयित्वा ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

प्रीणय्य अर्थात् प्रसन्न करके ॥२८॥

त एवं मोचिताः कृच्छ्रात्कृष्णेन सुमहात्मना । ययुस्तमेव ध्यायन्तः कृतानि च जगत्पतेः ॥२९॥

अन्वयः— एवं सुमहात्मना कृष्णेन कृच्छ्रात् मोचिताः तमेव कृतानि च जगत्पतेः ध्यायन्तः ययुः ॥२९॥

अनुवाद— इस प्रकार से उदार शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा कष्ट से मुक्त किए गये वे राजागण भगवान् श्रीकृष्ण का तथा उनकी लीलाओं का ध्यान करते हुए अपने-अपने देश में चले गये ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

जगदुः प्रकृतिभ्यस्ते महापुरुषचेष्टितम् । यथाऽन्वशासद्भगवांस्तथा चक्रुरतन्द्रिताः ॥३०॥

अन्वयः— ते प्रकृतिभ्यः महापुरुषचेष्टितम् जगदुः भगवान् यथा अन्वशासत् तथा अतन्द्रिताः ते चक्रुः ॥३०॥

अनुवाद— अपने-अपने राज्यों में जाकर वे राजागण, अपनी प्रजाओं को भगवान् श्रीकृष्ण की चेष्टाओं और लीलाओं को सुनाये और जैसा श्रीभगवान् उन राजाओं को उपेदश दिए थे, वे वैसा निरालस होकर आचरण किए ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

जगदुः ऊचुः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

जगदुः अर्थात् कहे ॥३०॥

जरासन्धं घातयित्वा भीमसेनेन केशवः । पार्थाभ्यां संयुतं प्रायात्सहदेवेन पूजितः ॥३१॥

अन्वयः— केशवः भीमसेनेन जरासंन्ध घातयित्वा सहदेवेन पूजितः पार्थाभ्याम् संयुतः प्रायात् ॥३१॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण भीमसेन के द्वारा जरासन्ध को मरवाकर जरासन्ध के पुत्र सहदेव के द्वारा पूजित होकर भीमसेन और अर्जुन दोनों पाण्डवों के साथ इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान किए ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

गत्वा ते खाण्डवप्रस्थं शङ्खान्दध्मुर्जितारयः । हर्षयन्तः स्वसुहृदो दुर्हृदां चासुखावहाः ॥३२॥

अन्वयः— जितारयः ते खाण्डवप्रस्थं गत्वा स्वसुहृदः हर्षयन्तः दुर्हृदां चासुखावहाः शङ्खान् दध्मुः ॥३२॥

अनुवाद— वे विजयी वीर खाण्डवप्रस्थ के सन्निकट जाकर अपने सुहृदों को प्रहर्षित करते हुए तथा अपने शत्रुओं को दुःख पहुँचाते हुए अपने-अपने शङ्खो को बजाये ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

खाण्डवप्रस्थं इन्द्रप्रस्थम् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

खाण्डवप्रस्थ अर्थात् इन्द्रप्रस्थ ॥३२॥

तच्छ्रुत्वा प्रीतमनस इन्द्रप्रस्थनिवासिन: । मेनिरे मागधं शान्तं राजा चाप्तमनोरथ: ।।३३।।

अन्वय:— इन्द्रप्रस्थनिवासिन: तच्छ्रुत्वा प्रीतमनस: मागधं शान्तं राजा च आप्तमनोरथ इति मेनिरे ।।३३।।

अनुवाद— इन्द्रप्रस्थ निवासियो उस शङ्ख की ध्वनि को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये और वे सब जान गये कि जरासन्ध की मृत्यु हो गयी, और महाराज युधिष्ठिर का मनोरथ पूरा हो गया अब राजसूय यज्ञ होने वाला है।।३३।।

भावार्थ दीपिका

शान्तं मृतम् । आप्तमनोरथो बभूव ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

शान्तम् अर्थात् मर गया । आप्तमनोरथ: अर्थात् महाराज युधिष्ठिर का मनोरथ पूर्ण हो गया ।।३३।।

अभिवन्द्याथ राजानं भीमार्जुनजनार्दना: । सर्वमाश्रावयांचक्रुरात्मना यदनुष्ठितम् ।।३४।।

अन्वय:— भीमार्जुनजनार्दना: राजनम् अभिवन्द्य आत्मना यदनुष्ठितम् तत् सर्वम् श्रावयाञ्चक्रु: ।।३४।।

अनुवाद— भीम, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण ये तीनों जाकर महाराज युधिष्ठिर को प्रणाम किए और उन सारी बातों को सुनाये जो जरासन्ध को मारने के लिए उन लोगों को करना पड़ा था ।।३४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३४।।

निशम्य धर्मराजस्तत्केशवेनानुकम्पितम् । आनन्दाश्रुकलां मुञ्चन्प्रेम्णा नोवाच किंचन ।।३५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे कृष्णाद्यागमने त्रिसप्ततितमोऽध्याय: ।।७३।।

अन्वय:— धर्मराजस्तत् केशवानुकम्पितम् निशम्य प्रेम्णा अश्रुकलां मुञ्चन् किञ्चन नोवाच ।।३५।।

अनुवाद— धर्मराज युधिष्ठिर श्रीभगवान् के उस परम अनुग्रह को सुनकर प्रेमातिरेक से भर गये उस समय उनकी आँखों से आँसू बहा जा रहा था और वो कुछ भी नहीं बोल सके ।।३५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दशवें स्कन्ध के उत्तरार्द्ध के कृष्ण आदि के आगमन नामक तिहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धेउत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रिसप्ततितमोऽध्याय: ।।७३।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावप्रकाशिक व्याख्या नामक टीका के तिहत्तरवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।७३।।

* * *

चौहत्तरवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण की अग्रपूजा और शिशुपाल का वध

श्रीशुक उवाच

एवं युधिष्ठिरो राजा जरासन्धवधं विभोः । कृष्णस्य चानुभावं तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत् ॥१॥

अन्वयः— एवं राजा युधिष्ठिरः जरासन्धवधं विभोः कृष्णस्य च तं अनुभावं श्रुत्वा प्रीतः तम् अब्रवीत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह महाराज युधिष्ठिर जरासन्ध के बध तथा सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्ण की अद्भुत महिमा को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और उनसे कहे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्युक्सप्ततितमे राजसूयक्रिया द्विजैः । अग्रपूजाप्रसङ्गेन चैद्यघातादि वर्ण्यते । राजसूयमुखे हत्वा जरासन्धं तदन्तगं। **चैद्यं तदन्तं कुर्वन्तं बीजं कलिमिवावपत् ।** कृष्णस्य चानुभावमिति चकारात्तस्य स्वाज्ञानुविधायित्वं चालक्ष्येत्यर्थः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौहत्तरवें अध्याय में ब्राह्मणों द्वारा राजसूययज्ञ कर्म के किए जाने के प्रसङ्ग में भगवान् श्रीकृष्ण की अग्रपूजा के प्रसङ्ग में शिशुपाल के वध आदि का वर्णन किया गया है । राजसूय यज्ञ के आदि में जरासन्ध को मारकर उसके पश्चात् शिशुपाल के वध को करके श्रीभगवान् ने कलह के बीज को बो दिया भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा तथा चकार के द्वारा अपनी आज्ञा का पालन भी देखकर ॥१॥

युधिष्ठिर उवाच

ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः । वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥२॥

अन्वयः— ये त्रैलोक्यगुरुवः स्युः त्रैलोकमहेश्वराः दुर्लभं अनुशासनं लब्ध्वा शिरसैव वहन्ति ॥२॥

महाराज युधिष्ठिर ने कहा

अनुवाद— हे सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण ! जो ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि लोकपाल है, वे आपकी आज्ञा को प्राप्त करके उसे शिरोधार्य करते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तदाह-ये स्युरिति । ये त्रैलोक्यस्यापि गुरवः स्युः सनकादयः सर्वे च लोका लोकपालाश्च ते शिरसैव तवानुशासनं **वहन्ति । दुर्लभं लब्ध्वेति । भाग्येनैतल्लब्धमिति बहुमानेनेत्यर्थः ॥२॥**

भाव प्रकाशिका

ये स्युः इत्यादि श्लोक से महाराज युधिष्ठिर की बातों को कहते हैं जो लोग त्रैलोक्य के स्वामी है ब्रह्मा [illegible] आदि भी तथा सभी लोकों के स्वामी भी आपकी आज्ञा को प्राप्त करना अपना सौभाग्य [illegible]धार्य करते हैं ॥२॥

[illegible]नामीशमानिनाम् । धत्तेऽनुशासनं भूमंस्तदत्यन्तविडम्बनम् ॥३॥

[illegible]क्षः भवान् दीनानाम् ईशमानिनाम् अनुशासनं धत्ते तत् अत्यन्त विड्म्बनम् ॥३॥

[illegible] कमल नयन है हमलोग तो दीन है किन्तु अपने को स्वामी मानते है। और [illegible] यह आपकी मनुष्यलीला का अभिनय मात्र हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

स भवान्परमेश्वरोऽस्माकमनुशासनं धत्ते तदत्यन्तविडम्बनमननुरूपमनुकरणम् । स्वतेजोहानिप्रसङ्गादित्यर्थ: ।।३।।

भाव प्रकाशिका

आप परमेश्वर है फिर भी हमारी आज्ञाओं का आप पालन करते हैं । यह आप अपने स्वरूप के प्रतिकूल कार्य करते है । इससे आपके तेज की हानि ही हो सकती हैं ।।३।।

न ह्येकस्याद्वितीयस्य ब्रह्मण: परमात्मन: । कर्मभिर्वर्धते तेजो ह्रसते च यथा रवे: ।।४।।

अन्वय:— एकस्य अद्वितीयस्य ब्रह्मण: परमात्मन: कर्मभि: तेज: नहि ह्रसते वर्धते वा रवे: यथा ।।४।।

अनुवाद— आप एक एवं अद्वितीय हैं परब्रह्म परमात्मा आप ही है । कर्मो को करने से आपकी उसी तरह न तो वृद्धि होती है और न तो ह्रास होता है जिस तरह से उदय और अस्त होने से सूर्य की न तो वृद्धि होती है और न ह्रास होता है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

अथवा तव परिपूर्णस्याज्ञापनाज्ञाधारणाभ्यां न तेजसो हानिवृद्धी, अत: कृपया सर्वं सङ्गच्छत इत्याह–न ह्येकस्याद्वितीयस्येति। समानासमानरहितस्य ब्रह्मणस्तवोभयं माया । परमात्मन इति सर्वजीवनियन्तुस्तव नियम्यत्वं सुतरां न वास्तवम् । अत: परानुग्रहार्थैरेतै: कर्मभिस्तव तेजो न वर्धते न च ह्रसति । रवेरिवोदयास्तमयादिकर्मभिरित्यर्थ: । तथा च श्रुति:- 'न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्' इति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

आप अपने आप में परिपूर्ण है, आपको आज्ञा देने तथा आपके द्वारा आज्ञा स्वीकार किए जाने के द्वारा आपमें न तो किसी प्रकार की वृद्धि होती है और न तो किसी प्रकार की कमी होती है । अतएव आपकी कृपा में सबकुछ सम्भव है । इस बात को महाराज युधिष्ठिर ने **नह्येकस्य० इत्यादि** श्लोक से कहा है । आप समान तथा असमान रहित आपकी दोनों माया हैं । **परमात्मन:** पद के द्वारा महाराज युधिष्ठिर ने बतलाया कि आप तो सम्पूर्ण जीवों के नियामक हैं । अतएव आपमें नियम्य का होना वास्तविक नहीं है । अतएव हम सबों पर कृपा करने के लिए आप जो इन कर्मो को करते हैं इससे आपका तेज उसी तरह न तो बढ़ता है और न घटता है जिस तरह सूर्य के उदय होने तथा अस्त होने से सूर्य की न तो वृद्धि होती है और न ह्रास होता है । श्रुति भी कहती है **'न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्'** अर्थात् कर्मो को करने से परमात्मा की न तो वृद्धि होती है और न उससे उनका ह्रास ही होता है ।।४।।

न वै तेऽजित भक्तानां ममाहमिति माधव । त्वं तवेति च नानाधी: पशूनामिव वैकृता ।।५।।

अन्वय:- हे अजित हे माधव ते भक्तानाम् ममाहमिति त्वं तवेति च पशूनामिव नाना धी: वै न ।।५।।

अनुवाद--- हे किसी से नही पराजित होने वाले माधव आपके भक्तों की यह मैं हूँ तथा यह मेरा है, यह तुम हो तथा यह तुम्हारा है, इस प्रकार की भेद बुद्धि नहीं होता है । यह भेद बुद्धि तो पशुओं में होती है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेवमप्यहं परमेश्वरो ममेदं नीचं कर्मायोग्यमिति मनसि कथं न भवेदत आह–न वै त इति । हे अजित, तव भक्तानामेव तावदियं नानाधीर्भेदमतिर्नास्ति । यथा पशूनामज्ञानां वैकृता शरीरविषया । तव तु नास्तीति किं पुनर्वक्तव्यमित्यर्थ:।।५।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि इस प्रकार से भी मैं परमेश्वर हूँ, यह मेरा नीच कर्म मेरे लिए उचित नहीं है इस तरह से मेरे मन में

क्यों नहीं होता है । तो इस पर महाराज युधिष्ठिर ने **न वै ते० इत्यादि** श्लोक कहा- हे किसी से नही पराजित होने वाले भगवन् आपके भक्तों की ही इस प्रकार की बुद्धि जब नहीं होती है तो फिर जैसे पशुओं के समान अज्ञानी जीवों में शरीर विषयिणी बुद्धि होती है । आप में इस प्रकार की भेद बुद्धि नहीं होती है यह क्या कहना है ?॥५॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वा यज्ञिये काले वव्रे युक्तान्स ऋत्विजः । कृष्णानुमोदितः पार्थो ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥६॥

अन्वयः— इति उक्त्वा कृष्णानुमोदितः यज्ञिये काले सः पार्थ; ब्रह्मवादिनः ब्राह्मणान् ऋत्विजः वव्रे ॥६॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से कहकर महाराज युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण की अनुमति से यज्ञोचित काल के आ जाने पर यज्ञ के कर्मों में निपुण वेदवादी ब्राह्मणों को ऋत्विज आचार्य इत्यादि रूप में वरण किया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञिये यज्ञोचिते वसन्तादिकाले । युक्तानभियुक्तान् । स युधिष्ठिरः ऋत्विजो होतृप्रमुखान् । वव्रे वृतवान् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञ के लिए उचित वसन्त इत्यादि काल के जा जाने पर । यज्ञ कर्मों को करने में निपुण ब्राह्मणों का महाराज युधिष्ठिर ने वरण किया ॥६॥

द्वैपायनो भरद्वाजः सुमन्तुर्गौतमोऽसितः । वसिष्ठश्च्यवनः कण्वो मैत्रेयः कवषस्त्रितः ॥७॥
विश्वामित्रो वामदेवः सुमतिर्जैमिनिः क्रतुः । पैलः पराशरो गर्गो वैशम्पायन एव च ॥८॥
अथर्वा कश्यपो धौम्यो रामो भार्गव आसुरिः । वीतिहोत्रो मधुच्छन्दा वीरसेनोऽकृतव्रणः ॥९॥

अन्वयः— द्वैपायनः, भरद्वाजः सुमन्तु गौतमः, असितः, वसिष्ठः च्यवनः कण्वः मैत्रेयः कवषःत्रित । विश्वामित्रः वामदेवः, सुमतिः, जैमिनिः क्रतुः पैलः, पराशरः, गर्गः वैशम्पायन एव च, अथर्वा, कश्यपः धौम्यः रामः भार्गवः आसुरिः वीतिहोत्रः, मधुच्छन्दाः वीरसेनः अकृतव्रणः ॥७-९॥

अनुवाद— महाराज युधिष्ठिर ने जिन ब्राह्मणों का वरण किया उन सबों के नाम इस प्रकार हैं । श्रीकृष्णपैपायन, व्यासदेव, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वसिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित, विश्वामित्र, वामदेव, सुमति, जैमिनि, क्रतुः पैल, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्वा, कश्यप, धौम्य, परशुराम, शुक्राचार्य, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दा, वीरसेन और अकृतवर्ण ॥७-९॥

भावार्थ दीपिका

तानाह-द्वैपायन इति त्रिभिः । अकृतव्रणान्तानेतानृत्विगुपद्रष्ट्रादिभेदेन वव्रे ॥७-९॥

भाव प्रकाशिका

द्वैपायन इत्यादि तीन श्लोकों से उस यज्ञ में वरण किये गये ब्राह्मणों के नाम बतलाये गये हैं । अकृतव्रण आदि ब्राह्मणों का ऋत्विक् उपद्रष्टा इत्यादि के रूप में इन ब्राह्मणों का वरण किया ॥७-९॥

उपहूतास्तथा चान्ये द्रोणभीष्मकृपादयः । धृतराष्ट्रः सहसुतो विदुरश्च महामतिः ॥१०॥

अन्वयः— तथा अन्ये उपहूताः द्रोण भीष्म कृपादयः, सहसुताः धृतराष्ट्रः महामतिः विदुरश्च ॥१०॥

अनुवाद— इसके अतिरिक्त द्रोण, भीष्म, कृपाचार्य आदि अपने पुत्रों के साथ धृतराष्ट्र तथा महाबुद्धिमान विदुर भी बुलाये गये थे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अन्ये चोपहूता यज्ञदिदृक्षवस्तत्रेयुरित्यन्वयः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

दूसरे बुलाये गये लोग यज्ञ देखने की इच्छा से वहाँ आये ।।१०।।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा यज्ञ दिदृक्षवः । तत्रेयुः सर्वराजानो राज्ञां प्रकृतयो नृप ।।११।।

अन्वयः— हे नृप यज्ञदिदृक्षवः ब्राह्मणाः, क्षत्रियाः वैश्याः, शूद्राः सर्वराजानः राज्ञां प्रकृतयः तत्र ईयुः ।।११।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् यज्ञ को देखने की इच्छा से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी राजागण तथा राजाओं की प्रजाएँ वहाँ आयीं ।।११।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।११।।

ततस्ते देवयजनं ब्राह्मणाः स्वर्णलाङ्गलैः । कृष्ट्वा तत्र यथाम्नायं दीक्षयांचक्रिरे नृपम् ।।१२।।

अन्वयः— ततः ते ब्राह्मणाः देवयजनं स्वर्णलाङ्गलैः कृष्ट्वा तत्र यथाम्नायं नृपं दीक्षयां चक्रिरे ।।१२।।

अनुवाद— उसके पश्चात् वे सभी ब्राह्मण यज्ञभूमि को सुवर्ण के हल से जुतवाकर राजा युधिष्ठिरको शास्त्रानुसार यज्ञ की दीक्षा दी ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

देवयजनं यज्ञभूमिम् । कृष्ट्वा कर्षणादिभिः संशोध्य । दीक्षयांचक्रिरे दीक्षासंस्कारयुक्तमकुर्वन् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

देवयजनं अर्थात् यज्ञभूमि को, कृष्ट्वा अर्थात् जुतवाकर दीक्षां चक्रिरे अर्थात् यज्ञ की दीक्षा के संस्कार से संस्कृत किए ।।१२।।

हैमाः किलोपकरणा वरुणस्य यथा पुरा । इन्द्रादयो लोकपाला विरिञ्चभवसंयुताः ।।१३।।
सगणाः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः । मुनयो यक्षरक्षांसि खगकिन्नरचारणाः ।।१४।।
राजानश्च समाहूता राजपत्न्यश्च सर्वशः । राजसूयं समीयुः स्म राज्ञः पाण्डुसुतस्य वै।।१५।।

अन्वयः— पुरा वरुणस्य यज्ञे यथा उपकरणाः किल हैमाः, राज्ञः पाण्डुसुतस्य राजसूयं समाहूताः विरिञ्चभवसंयुताः इन्द्रादयः लोकपालाः सगणाः सिद्धगन्धर्वाः विद्याधरमहोरगाः, मुनयः, यक्षरक्षांसि खग किन्नरचारणाः राजानः राजपत्न्यः च सर्वशः समीयुः ।।१३-१५।।

अनुवाद— प्राचीन काल में वरुण के यज्ञ में जैसे सभी उपकरण सुवर्ण के थे उसी तरह महाराज युधिष्ठिर के भी यज्ञ में सभी उपकरण सुवर्ण के थे । पाण्डुपुत्र महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में, निमन्त्रण प्राप्त करके ब्रह्माजी के साथ शङ्करजी इन्द्र इत्यादि सभी लोकपाल अपने गणों के साथ सिद्ध गन्धर्व, विद्याधर, महोरग, मुनिगण, यक्ष, राक्षस पक्षी, किन्नर, चारण, राजागण, उनकी सभी रानियाँ भी आयी थीं ।।१३-१५।।

भावार्थ दीपिका

उपकरणा उपस्कराः वरुणस्य राजसूये यथा आसन्निति शेषः। किंच इन्द्रादयो देवगणाः । ये च राजादयः समाहूतास्तत्र समीयुः स्म ते सर्वे कृष्णभक्तस्य पाण्डुसुतस्य राज्ञो युधिष्ठिरस्य राजसूयमविस्मिताः सन्तः सूपपन्नं सुसंपन्नं मेनिरे इत्यन्वयः ।।१३-१५।।

भाव प्रकाशिका

निमन्त्रित सभी राजागण वहाँ आये। वे सभी भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त पाण्डुपुत्र राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ, विना किसी आश्चर्य के सुसंम्पन्न माने ॥१३-१५॥

मेनिरे कृष्णभक्तस्य सूपपन्नमविस्मिताः । अयाजयन्महाराजं याजका देववर्चसः ॥
राजसूयेन विधिवत्प्राचेतसमिवामराः ॥१६॥

अन्वयः— अविस्मिताः देववर्चसः याजकाः कृष्णभक्तस्य सूपपन्नं मेनिरे, प्राचेतसम् अमरा इव महाराजं राजसूयेन विधिवत् अयाजयन् ॥१६॥

अनुवाद— सबने बिना किसी कौतूहल के इस बात को मान ली की भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त युधिष्ठिर के लिए राजसूययज्ञ करना उनके योग्य ही है। और देवताओं के समान तेजस्वी याजकों ने महाराज युधिष्ठिर से उसी तरह राजसूययज्ञ कराया जिस तरह देवताओं ने वरुण से कराया था ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

याजका ऋत्विजः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

याजकाः अर्थात् ऋत्विग्गण ॥१६॥

सुत्येहन्यवनीपालो याजकान्सदसस्पतीन् । अपूजयन्महाभागान्यथावत्सुसमाहितः ॥१७॥

अन्वयः— सुत्येहनि अवनीपालः महाभागन् याजकान् सदसस्पतीन् यथावत् सुसमाहितः अपूजयत् ॥१७॥

अनुवाद— सोमाभिषव के दिन राजा युधिष्ठिर ने महाभाग्यवान ऋत्विजों और यज्ञकर्म में होने वाली त्रुटियों का निरीक्षण करने वाले सदसस्पतियों की बड़ी ही सावधानी पूर्वक पूजा की ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

सुत्येहनि सोमाभिषवदिने ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

सुत्येहनि अर्थात् सोमलता से रस निकालने के दिन ॥१७॥

सदस्याग्र्यार्हणार्हं वै विमृशन्तः सभासदः । नाध्यगच्छन्ननैकान्त्यात्सहदेवस्तदाब्रवीत् ॥१८॥

अन्वयः— सदस्याग्र्यार्हणार्हं विमृशन्तः सभासदः अनैकान्त्यात् नाध्यगच्छन् तदा सहदेवः अब्रवीत् ॥१८॥

अनुवाद— सदस्यों में अग्रपूजा किसकी हो इस विषय पर विचार करने वाले सभासदगण मतों की भिन्नता के कारण कोई निश्चय नहीं कर पा रहे थे उस समय सहदेव ने कहा ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अग्र्यार्हणमग्रपूजा तस्यार्हं योग्यम्। अनैकान्त्याद्योग्यानां बहुत्वेनैकस्यानिश्चयात् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

अग्र्यार्हणम् अर्थात् अग्रपूजा के योग्य कौन है ? मतों की भिन्नता के कारण निश्चय नहीं हो सकने से ॥१८॥

अर्हति ह्यच्युतः श्रैष्ठ्यं भगवान्सात्वतांपतिः । एष वै देवताः सर्वा देशकालधनादयः ॥१९॥

अन्वयः— सात्वतांपतिः भगवान् अच्युतः श्रैष्ठ्यं अर्हति, एव वै सर्वाः देवताः देशकालधनादयः ॥१९॥

अनुवाद— यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण ही सदस्यों में सर्वश्रेष्ठ हैं, ये ही सभी देवता देश, काल तथा धन आदि स्वरूप हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१९।।

यदात्मकमिदं विश्वं क्रतवश्च यदात्मकाः । अग्निराहुतयो मन्त्राः सांख्यं योगश्च यत्परः ।।२०।।

अन्वयः— इदं विश्वं यदात्मकम् क्रतवः च यदात्मकाः अग्निः आहुतयः मन्त्राः सांख्यं योगश्च यत्परः ।।२०।।

अनुवाद— इस सम्पूर्ण विश्व की जो आत्मा है, यज्ञ भी यदात्मक है, अग्नि, आहुतियाँ, मन्त्र, सांख्य तथा योग ये सबके सब भगवान् श्रीकृष्ण की ही प्राप्ति के साधन हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

सांख्यं ज्ञानम् । योग उपासना ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

ज्ञान तथा उपासना भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति के साधन है ।।२०।।

एक एवाद्वितीयोऽसावैतदात्म्यमिदं जगत् । आत्मनात्माश्रयः सभ्याः सृजत्यवति हन्त्यजः ।।२१।।

अन्वयः— सभ्याः असौ एक एव अद्वितीयः इदं जगत् ऐतदात्म्यम् आत्मनात्माश्रयः सृजत्यवति हन्त्यजः ।।२१।।

अनुवाद— हे सभासदों भगवान् श्रीकृष्ण एकरस अद्वितीय ब्रह्म हैं, ये सजातीय, विसजातीय एवं स्वगत इन तीनों प्रकार के भेदों से रहित है । यह सम्पूर्ण जगत् श्रीकृष्णात्मक है, ये अपने आप में स्थित हैं, ये अजन्मा हैं, तथा जगत् की सृष्टि स्थिति एवं संहार के कर्ता हैं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

ननु सांख्यं केवलपरं, योगः सविशेषणपरः, कथमुभयोरेकपरत्वं तत्राह-एक एवाद्वितीयोऽसावतः सांख्यस्यैतत्परत्वं युक्तम् । विशेषणभूतस्य सर्वप्रपञ्चस्य तन्मयत्वात्सविशेषणविषयस्य योगस्यापि युक्तमद्वितीयपरत्वमित्याह-ऐतदात्म्यमिति । एष श्रीकृष्ण आत्मा यस्य तदेतदात्मा तस्य भाव ऐतदात्म्यम् । भवितर्येव भावनिर्देशः । 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' इति श्रुतेः । अत्र हेतुः-आत्मनेति । हे सभ्याः, आत्माश्रयोऽन्यनिरपेक्षः स्वयमज इदं जगत् सृजत्यवति हन्ति चेति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि सांख्य तो केवल परक तथा योग विशेषण विशिष्ट परक है, दोनों को एक ही अर्थ का प्रतिपादक कैसे कहा जा सकता है ? इस पर कहा गया है कि ये एक रस एवं अद्वितीय हैं । अतएव सांख्य इनका प्रतिपादन करता है यह मानना उचित ही है । यह जगत् श्रीकृष्णात्मक ही है । होने वाले के ही अर्थ में भाव का निर्देश है। श्रुति भी कहती है **ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्** अर्थात् सम्पूर्ण जगत् परमात्मात्मक ही है । उसका कारण है कि ये अपने में ही अवस्थित हैं । ये अन्य निरपेक्ष स्वयं अजन्मा हैं । ये जगत् की सृष्टि करते हैं, पालन करते हैं और संहार करते हैं ।।२१।।

विविधानीह कर्माणि जनयन्यदवेक्षया । ईहते यदयं सर्वः श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ।।२२।।

अन्वयः— यदवेक्षया इह विविधानि कर्माणि जनयन् अयं सर्वः धर्मादिलक्षणं श्रेयः इहते ।।२२।।

अनुवाद— जिन भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से अनेक प्रकार के यज्ञादि कर्मों को करने वाले सभी प्राणी धर्म अर्थ, काम एवं मोक्ष रूप समस्त पुरुषार्थों को प्राप्त करते हैं ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

किंच विविधानीति । यस्यावेक्षयाऽनुग्रहेण विविधानि कर्माणि तपोयोगादीनि जनयन्कुर्वन् यद्यस्मादयं सर्वोऽपि जनो धर्मादिलक्षणं श्रेय ईहते साधयति । कर्माणि तत्फलानि च यदधीनानीत्यर्थः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

यही नहीं जिन श्रीकृष्ण भगवान् की कृपा से अनेक प्रकार के तपस्या योग इत्यादि करके सभी लोग धर्मादि स्वरूप कल्याण को प्राप्त करते हैं । अर्थात् कर्मों का फल भी भगवान् श्रीकृष्ण के अधीन ही है ।।२२।।

तस्मात्कृष्णाय महते दीयतां परमार्हणम् । एवं चेत्सर्वभूतानामात्मनश्चार्हणं भवेत् ।।२३।।

अन्वयः— तस्मात् महते कृष्णाय परमार्हणम् दीयताम् एवं चेत् सर्वभूतानां आत्मनश्च अर्हणं भवेत् ।।२३।।

अनुवाद— अतएव भगवान् श्रीकृष्ण की ही अग्रपूजा होनी चाहिए इनकी पूजा करने से समस्त प्राणियों की तथा आत्मा की भी पूजा हो जाती है ।।२३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२३।।

सर्वभूतात्मभूताय कृष्णायानन्यदर्शिने । देयं शान्ताय पूर्णाय दत्तस्यानन्त्यमिच्छता ।।२४।।

अन्वयः— तदत्तस्यानन्त्यमिच्छता पूर्णाय शान्ताय सर्वभूतात्मभूताय अनन्यदर्शिन कृष्णाय देयम् ।।२४।।

अनुवाद— की गयी समर्चना के अनन्त फल को प्राप्त करने की इच्छा वाले को चाहिए कि वह अपने आप में पूर्ण, परमशान्त, सभी भूतों की आत्मा तथा अनन्यदर्शी भगवान् श्रीकृष्ण की अग्रपूजा करनी चाहिए ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

नन्वात्मना क्रियमाणमर्हणमात्मनः कथं स्यात्तत्राह-सर्वभूतानामात्मभूताय । अनन्यदर्शिने निरस्तभेदमतये ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि अपने द्वारा की गयी पूजा आत्मा की कैसे हो सकती है तो इसका उत्तर है कि श्रीभगवान् सभी भूतों की आत्मा है ऐसे श्रीभगवान् के लिए तथा जिनकी बुद्धि समस्त भेदों से रहित है, ऐसे श्रीभगवान् के लिए।।२४।।

इत्युक्त्वा सहदेवोऽभूत्तूष्णीं कृष्णानुभाववित् । तच्छ्रुत्वा तुष्टुवुः सर्वे साधु साध्विति सत्तमाः ।।२५।।

अन्वयः— कृष्णानुभाववित् सहदेवः इत्युक्त्वा तुष्णीम् अभूत् तत् श्रुत्वा सर्वे सत्तमाः साधु-साधु इति तुष्टुवुः ।।२५।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव को जानने वाले सहदेव इतना कहकर चुप हो गये उसको सुनकर सभी श्रेष्ठ पुरुष बहुत अच्छा, बहुत अच्छा कहकर उनकी प्रशंसा किए ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णानुभाववित्सहदेव इत्युक्त्वा तूष्णीमभूत् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के प्रभाव को जानने वाले सहदेव यह कहकर मौन हो गये ।।२५।।

श्रुत्वा द्विजेरितं राजा ज्ञात्वा हार्दं सभासदाम् । समर्हयद्धृषीकेशं प्रीतः प्रणयविह्वलः ।।२६।।

अन्वयः— द्विजेरितं श्रुत्वा सभासदाम् हार्दं ज्ञात्वा प्रीतः राजा प्रणयविह्वलः हृषीकेशं समर्हयत् ।।२६।।

अनुवाद— ब्राह्मणों की वाणी को सुनकर तथा सभासदों के हार्दिक अभिप्राय को जानकर राजा युधिष्ठिर प्रेम से विह्वल हो गये और भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा किए ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

द्विजेरितं साधु साध्विति घोषं श्रुत्वा । हार्दमभिप्रायम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों की बहुत अच्छा, बहुत अच्छा ध्वनि सुनकर । हार्दम अर्थात् अभिप्रायम् ।।२६।।

तत्पादाववनिज्याप: शिरसा लोकपावनीः । सभार्यः सानुजामात्यः सकुटुम्बोऽवहन्मुदा ।।२७।।

अन्वयः— सभार्य, सानुजामात्यः सकुटुम्बः मुदा तत्पादौ अवनिज्य लोकपावनी अपः शिरसा अबहत् ।।२७।।

अनुवाद— अपनी पत्नी, छोटे भाइयों, मन्त्रियों, कुटुम्बियों के साथ अत्यन्त प्रेम से भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों को धोकर उसे अपने शिर पर धारण किए ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

वासोभिः पीतकौशेयैर्भूषणैश्च महाधनैः । अर्हयित्वाश्रुपूर्णाक्षो नाशकत्समवेक्षितुम् ।।२८।।

अन्वयः— पीतकौशेयैः वासोभिः महाधनैः भूषणैः च अर्हयित्वा अश्रुपूर्णाक्षः समवेक्षितुम् नाशकत् ।।२८।।

अनुवाद— रेशमी पीताम्बर वस्त्रों से तथा अत्यन्त मूल्यवान भूषणों से भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करके आँखों में प्रेमाश्रु के भर जाने के कारण वे भगवान् श्रीकृष्ण को नहीं देख सके ।।२८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२८।।

इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वे प्रञ्जलयो जनाः । नमो जयेति नेमुस्तं निपेतुः पुष्पवृष्टयः ।।२९।।

अन्वयः— इत्थं सभाजितं वीक्ष्य सर्वेजनाः प्राञ्जलयः नमो जयेति तं नेमुः पुष्पवृष्टयः निपेतुः ।।२९।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण को इस तरह पूजित देखकर सभी लोग हाथ जोड़कर श्रीभगवान् को नमस्कार एवं जयकार करने लगे ।।२९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२९।।

इत्थं निशम्य दमघोषसुतः स्वपीठादुत्थाय कृष्णगुणवर्णनजातमन्युः ।
उत्क्षिप्य बाहुमिदमाह सदस्यमर्षी संश्रावयन्भगवते परुषाण्यभीतः ।।३०।।

अन्वयः— दमघोष सुतः इत्थं निशम्य कृष्णगुणवर्णनजात मन्युः, स्वपीठादुत्थाय सदसि अमर्षी बाहुम् उत्क्षिप्य भगवते संश्रावयन् अभीतः परुषाणि इदमाह ।।३०।।

अनुवाद— राजन् दमघोष का पुत्र शिशुपाल इस प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण के गुणों का वर्णन सुनकर क्रुद्ध हो गया और अपने आसन पर से उठकर अपनी भुजा को उठाकर असहिष्णुता के कारण सभा में श्रीभगवान् को सुनाकर निर्भय होकर कठोर बातें कहने लगा ।।३०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३०।।

ईशो दुरत्ययः काल इति सत्यवती श्रुतिः । वृद्धानामपि यद्बुद्धिर्बालवाक्यैर्विभिद्यते ।।३१।।

अन्वयः— ईशः दुरत्ययः कालः इति श्रुतिः सत्यवती यत् बालवाक्यैः वृद्धानाम् अपि बुद्धि विभिद्यते ।।३१।।

अनुवाद— सभासदों काल ही ईश्वर है, यह श्रुति सत्य है, वह टालने पर भी नहीं टलता है । यहाँ मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि बच्चों और मूर्खों की बातों से बड़े-बड़े ज्ञान वृद्धों और वृद्धों की बुद्धि चकरा जाती है।।३१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३१।।

यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा मा मन्ध्वं बालभाषितम् । सदसस्पतयः सर्वे कृष्णो यत्संमतोऽर्हणे ॥३२॥

अन्वयः— हे सर्वे सदसस्पतयः यूयं पात्रविदां श्रेष्ठा बालभाषितं मा मन्ध्वम् यत् कृष्णः अर्हणे संमतः ॥३२॥

अनुवाद— हे सभी सदसस्पतियों, आपलोग योग्य पात्र के चयन में सर्वथा समर्थ हैं । आपलोग बालक सहदेव की बातें ठीक न मानें कि कृष्ण ही अग्रपूजा के योग्य हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

हे सदसस्पतयः, सर्वे बालस्य भाषितं मा मन्यध्व मा जानीत मा गृह्णीतम् । किं तत् । यद्यतः कृष्णोऽर्हणे अग्रपूजायां संमतस्तत् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

हे सदसस्पतियों आप सभी बालक सहदेव की बातें ठीक न मानें कि कृष्ण ही अग्रपूजा के योग्य हैं । यह सबों को सम्मत है ॥३२॥

तपोविद्याव्रतधरान् ज्ञानविध्वस्तकल्मषान् । परमर्षीन्ब्रह्मनिष्ठाँल्लोकपालैश्च पूजितान् ॥३३॥
सदस्पतीनतिक्रम्य गोपालः कुलपांसनः । यथा काकः पुरोडाशं सपर्यां कथमर्हति ॥३४॥

अन्वयः— तपोविद्याव्रतधरान् ज्ञानविध्वस्तकल्मषान् परमर्षीन् ब्रह्मनिष्ठान् लोकपालैश्च पूजितान् सदस्पतीनतिक्रम्य काकः पुरोडाशं यथा कुलपांसनः गोपालः कथं सपर्याम् अर्हति ॥३३-३४॥

अनुवाद— यहाँ पर तपस्वी, विद्वान् व्रतधारी ज्ञान के द्वारा अपने समस्त पापों को विनष्ट करने वाले, परं ज्ञानीपरमर्षी, ब्रह्मनिष्ठ जिनकी पूजा लोकपाल भी करते हैं, ऐसे यज्ञ में होने वाली भूल-चूक को देखने वाले सदस्य पतियों को छोड़कर यह कुलकलङ्क ग्वाला अग्रपूजा का अधिकारी कैसे हो सकता है ? क्या यज्ञ के पुरोडाश का अधिकारी कभी कौआ हो सकता है ॥३३-३४॥

भावार्थ दीपिका

अस्यैव वास्तवोऽर्थः पूर्ववदुन्नेयः । गोपाल इति । वेदपृथिव्यादिपालक इत्यर्थः । कुत्सितं वेदविपरीतं लपन्तीति कुलपाः पाखण्डास्तान् अंसते समाघातयतीति तथा सः । अकाकः कं च अकं च काके सुखदुःखे ते न विद्येते यस्य सोऽकाकः, आप्तकाम इत्यर्थः । स यथा आप्तकामो देवयोग्यं केवलं पुरोडाशमात्रं नार्हति, अपितु सर्वस्वमपि, तथाऽयं श्रीकृष्णोऽपि ब्रह्मर्षियोग्यं सपर्यामात्रं कथमर्हति किंत्वात्मसमर्पणमप्यर्हतीत्यर्थः ॥३३-३४॥

भाव प्रकाशिका

इसका ही वास्तविक अर्थ पहले के श्लोक के समान करना चाहिए गोपाल इति अर्थात् वेद तथा पृथिवी आदि का पालन करने वाला, कुलपांसनः, निन्दित अर्थात् वेद विपरीत बातें करने वाले पाखण्डियों का वाचक है, कुलपाः उन सबों को विनष्ट करने वाले यह कुलपांसनः पद का वास्तविक अर्थ है । अकाकः की व्युत्पत्ति हैं कंच अकंच, सुख-दुःख जिनमें है ही नहीं, अर्थात् आप्तकाम, जिस तरह आप्तकाम परमात्मा देवताओं के योग्य केवल पुरोडाश के ही योग्य नहीं हैं अपितु वे सबके अधिकारी है, ऐसे भगवान श्रीकृष्ण भी ब्रह्मषियों के योग्य पूजामात्र ही क्यों अपितु आत्म समर्पण के ही योग्य है ॥३३-३४॥

वर्णाश्रमकुलापेतः सर्वधर्मबहिष्कृतः । स्वैरवर्ती गुणैर्हीनः सपर्यां कथमर्हति ॥३५॥

अन्वयः— वर्णाश्रम कुलापेतः सर्वधर्मबहिष्कृतः, स्वैरवर्ती गुणैर्हीनः सपर्या कथम् अहर्ति ॥३५॥

अनुवाद— इनका न तो कोई वर्ण है, न आश्रम है, और न तो कुल है इन सबों से रहित ये सभी धर्मों से

बहिष्कृत है, स्वेच्छाचारी (लोक एवं वेद की मर्यादायों का उल्लंघन करने वाले) इनमें कोई गुण भी नहीं हैं। ऐसी स्थिति में ये अग्रपूजा के योग्य कैसे हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

वर्णाश्रमकुलेभ्योऽपेतो ब्रह्मत्वात् । 'अनामगोत्रम्' इति श्रुतेः । अत एवानधिकारित्वात्सर्वैर्धर्मैर्वहिष्कृतः । स्वैरवर्ती परमेश्वरत्वात् । अतएव निर्गुणस्तमआदिरहितः । एवंभूतो जीवानां योग्यं तुच्छं सपर्यामात्रं कथमर्हतीत्यर्थः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

वर्ण, आश्रम और कुल से ये रहित हैं क्योंकि ये ब्रह्म है, श्रुति भी कहती है **अनाम गोत्रम्** । ब्रह्म का न तो कोई नाम है और न गोत्र है । अतएव अधिकारी नहीं होने के कारण ये सभी धार्मों से बहिष्कृत है । परमेश्वर होने के कारण अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करते है । तमोगुण आदि गुणों से रहित होने के कारण निर्गुण हैं । इस प्रकार के भगवान् श्रीकृष्ण जीवों के योग्य केवल पूजा के ही पात्र कैसे हैं ?।।३५।।

ययातिनैषां हि कुलं शप्तं सद्भिर्बहिष्कृतम् । वृथापानरतं शशवत्सपर्यां कथमर्हति ।।३६।।

अन्वयः— एषां हि कुलं ययातिना शप्तं सद्भिः बहिष्कृतम् वृथापानरतम् कथं सपर्याम् अर्हति ।।३६।।

अनुवाद— इनका वंश ययाति के द्वारा अभिशप्त होने के कारण सत्पुरुषों के द्वारा बहिष्कृत है । इनके वशं वाले सदा मधुपान में आसक्त रहते हैं अतएव ये अग्रपूजा के योग्य कैसे हो सकते है ?।।३६।

भावार्थ दीपिका

अपि च कथं वर्णनीयो मादृशैरेषां यदूनां महिमा यस्मादेषां कुलं ययातिना शप्तमपि किं सद्भिर्बहिष्कृतम्, अपि तु शिरसा धृतम् । किंचास्मदादिकुलवत्किं वृथापानरतं अपित्वतिनियताचारमित्यर्थ; । अहो यदूनामेव तावदीदृशं माहात्म्यम् । यदुकुलवृद्धस्य ययातेः शापो न प्राभूदित्यादि । अयं तु साक्षादीश्वरोऽतः सपर्यामात्रं कथमर्हतीत्यर्थ; ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक का भी वास्तविक अर्थ इस प्रकार श्रीधर स्वामी करते हैं हम जैसे लोग इनकी महिमा का वर्णन कैसे कर सकते हैं ? क्योंकि इनका वंश राजा ययाति के द्वारा अभिशप्त होकर भी सत्पुरुषों द्वारा बहिष्कृत हैं क्या? अपितु वह शिरोधार्य है । और हमलोगों के वंश के समान व्यर्थ ही पान करने वाला है क्या ? वह तों अत्यन्त निश्चित आचरण करने वाला है । सौभाग्य की बात है कि यदुवंशीयों का ही इस प्रकार का वंश है । यदुवंश के वृद्ध ययाति का शाप इनके वंश को अभिभूत नहीं कर सका ये तो साक्षात् परमात्मा हैं ये केवल पूजा के ही पात्र कैसे हैं ?।।३६।।

ब्रह्मर्षिसेवितान्देशान् हित्वैतेऽब्रह्मवर्चसम् । समुद्रं दुर्गमाश्रित्य बाधन्ते दस्यवः प्रजाः ।।३७।।

अन्वयः— एते ब्रह्मर्षिसेवितान् देशान् हित्वा अब्रह्मवर्चसम् समुद्रं दुर्गम् आश्रित्य दस्यवः प्रजाः बाधन्ते ।।३७।।

अनुवाद— ये ब्रह्मर्षियों द्वारा सेवित मथुरा आदि स्थानों का परित्याग करके ब्रह्मवर्चस के विरोधी समुद्र में किला बनाकर रहने लगे । वहाँ से ये जब निकलते हैं तो डकैतों के समान प्रजाओं को कष्ट पहुँचाते हैं ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

किंच ये राजानो दुष्टानुच्चाटयन्ति तदर्थं कीकटादिदेशानप्याश्रयन्ति । एते तु ब्रह्मर्षिसेवितानेव देशानाश्रित्याब्रह्मवर्चसं समुद्रं दुर्गमपि हित्वा । हापयित्वेत्यर्थः । बाधन्ते तथा या दस्यवः प्रजास्ताश्च । अयमर्थः-वेदतदर्थाभियोगो ब्रह्मवर्चसं तद्विरुद्धमब्रह्मवर्चसं समुद्रं मुद्राऽत्र लिङ्गं तत्सहितं समुद्रम् । वेदविरुद्धलिङ्गधारिणं पाखण्डमित्यर्थः । तल्लिङ्गं त्याजयित्वा

बाधन्ते दण्डयन्ति । कथंभूतम् । दुर्गम्, धर्मवत्प्रतीतेरधर्मतया दुर्ज्ञेयमित्यर्थः । तथाऽदस्यवो दस्यूनपि प्रजावेषेण वर्तमानान् दण्डयन्ति, अतो यदुभ्योऽन्यः को नाम धार्मिकोऽस्तीति । पारुष्यं तूक्तार्थमेव ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

जो राजागण दुष्टों को भगाते हैं और उस कार्य के लिए कीकट आदि देशों में जाकर रहने लगते हैं । ये लोग तो ब्राह्मर्षियों से सेवित ब्रह्मवर्चस विहीन समुद्र रूपी दुर्ग (किले) का त्याग करके, जो लुटेरी प्रजाएँ हैं उन सबों को कष्ट देते हैं । इसका अर्थ इस प्रकार है वेद तथा उसके अर्थों के अभियोग को ब्रह्मवर्चस कहते हैं, उसके विपरीत अब्रह्मवर्चस है । समुद्रम् में मुद्रा शब्द से चिह्न को कहा गया है । उससे युक्त ही समुद्र हैं । अर्थात् वेद विरुद्ध चिह्न पाखण्ड को अपनाने वाले लोगों सें पाखण्ड को त्यागकर उन्हें दण्डित करते हैं । अतएव यादवों से बढ़कर कोई दूसरा धार्मिक नहीं है । शिशुपाल के पारुष्य का वर्णन मैंने पहले कहा ही है ।।३७।।

एवमादीन्यभद्राणि बभाषे नष्टमङ्गलः । नोवाच किंचिद्भगवान्यथा सिंहः शिवारुतम् ।।३८।।

अन्वयः— नष्टमङ्गलः एवमादीनि अभद्राणि बभाषे सिंहो यथा शिवारुतम् भगवान् किञ्चित् नोवाच ।।३८।।

अनुवाद— परीक्षित् ! शिशुपाल का मङ्गल नष्ट हो चुका था उसने इस तरह की और कठोर वचन श्रीभगवान् को सुनाया, किन्तु जिस तरह सिंह सियार के हुआँ-हुआँ के शब्द पर ध्यान नहीं देता है, उसी तरह श्रीभगवान् कुछ भी नहीं बोले ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

शिवा फेरुस्तस्या रुतं श्रुत्वा यथा सिंहो न किंचिद्ब्रूते तद्वत् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

सियारिन की आवाज पर जैसे सिंह ध्यान नहीं देता उसी तरह भगवान् चुप रहे ।।३८।।

भगवन्निन्दनं श्रुत्वा दुःसहं तत्सभासदः । कर्णौ पिधाय निर्जग्मुः शपन्तश्चेदिपं रुषा ।।३९।।

अन्वयः— दुःसहं भगवन्निन्दनंश्रुत्वा तत्सभासदः कर्णौ पिधाय रुषाचेदियं शपन्त; निर्जग्मुः ।।३९।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की असह्य निन्दा को सुनकर कुछ सभासद अपने कानों को बन्द करके शिशुपाल को गाली देते हुए वहाँ से बाहर निकल गये ।।३९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३९।।

निन्दां भगवतः शृण्वंस्तत्परस्य जनस्य वा । ततो नापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः ।।४०।।

अन्वयः— भगवतः तत्परस्य जनस्य निन्दां श्रुत्वा यः ततो नापैति सोऽपि सुकृतात् च्युतः अधः याति ।।४०।।

अनुवाद— श्रीभगवान् की अथवा उनके भक्त की निन्दा को सुनकर अथवा उनके भक्तों की निन्दा को सुनकर वहाँ से जो नहीं हटता है, वह भी अपने पुण्यों के विनष्ट हो जाने से अधोगति को प्राप्त करता है ।।४०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४०।।

ततः पाण्डुसुताः क्रुद्धा मत्स्यकैकयसृंजयाः । उदायुधाः समुत्तस्थुः शिशुपालजिघांसवः ।।४१।।

अन्वयः— ततः क्रुद्धाः पाण्डुसुताः मत्स्यकैकयसृंजयाः शिशुपाल जिघांसवः उदायुधाः समुत्तस्थुः ।।४१।।

अनुवाद— उसके पश्चात् क्रुद्ध हुए पाण्डव तथा मत्स्य, केकय और सृंजय वंशी राजागण शिशुपाल को मारने की इच्छा से आयुध धारण करके उठ खड़े हो गये ।।४१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४१।।

ततश्चैद्यस्त्वसंभ्रान्तो जगृहे खड्गचर्मणी । भर्त्सयन्कृष्णपक्षीयान् राज्ञः सदसि भारत ।।४२।।

अन्वयः— हे भारत राज्ञः सदसि कृष्णपक्षीयान् भर्त्सयन् चैद्यः असम्भ्रान्तः तु खड्गचर्मणी जगृहे ।।४२।।

अनुवाद— उसके पश्चात् बिना किसी घबराटह के शिशुपाल अपने हाथ में खड्ग एव ढाल धारण करके महाराज युधिष्ठिर की सभा में ही कृष्ण पक्षीय राजाओं की निन्दा करते हुए उनको ललकारने लगा ।।४२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४२।।

तावदुत्थाय भगवान्स्वान्निवार्य स्वयं रुषा । शिरः क्षुरान्तचक्रेण जहारापततो रिपोः ।।४३।।

अन्वयः— तावत् भगवान् रुषा उत्थाय स्वान् निवार्य क्षुरान्तचक्रेण आपततः रिपोः शिरः जहार ।।४३।।

अनुवाद— उसी समय भगवान् क्रोध करके उठे और अपने लोगों को रोककर अत्यन्त तीक्ष्णधार वाले चक्र से अपनी ओर झपटते हुए शत्रु शिशुपाल के शिर को काट दिए ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

तावदुत्थायेत्यस्यायमभिप्रायः । एष मत्पार्षदो मत्तुल्यबलः सर्वनितान्हन्यादतो मयैव शीघ्रं हन्तव्य इति तत्क्षणमेवोत्थाय शिरो जहारेति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

तावदुत्थाय कहने का अभिप्राय है कि भगवान् ने सोचा कि यह मेरा पार्षद है । मेरे ही समान बलवान् है । अतएव मेरे इन सभी मेरे पक्ष वालों को मार देगा अतएव मुझे ही इसे शीघ्र मार देना चाहिए अतएव शीघ्र ही खड़ा होकर वे उसके शिर को काट दिए ।।४३।।

शब्दः कोलाहलोऽप्यासीच्छिशुपाले हते महान् । तस्यानुयायिनो भूपा दुद्रुवुर्जीवितैषिणः ।।४४।।

अन्वयः— शिशुपाल हते महान् कोलाहलः शब्द आसीत् जिवितैषिणः तस्यानुयायिनः भूपाः दुद्रुवुः ।।४४।।

अनुवाद— शिशुपाल के मारे जाने पर वहाँ बहुत अधिक कोलाहल हुआ और उसके अनुयायी राजागण अपनी जान बचाने के लिए वहाँ से भाग गये ।।४४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४४।।

चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत् । पश्यतां सर्वभूतानामुल्केव भुवि खाच्च्युता ।।४५।।

अन्वयः— खाच्च्युता भुवि उल्केव चैद्यदेहोत्थितं ज्योति सर्वभूतानाम् पश्यताम् वासुदेवम् उपविशत् ।।४५।।

अनुवाद— जिस तरह आकश से गिरी हुई उल्का पृथिवी में समा जाय उसी तरह सबों के देखते ही देखते शिशुपाल के शरीर से निकली हुई ज्योति भगवान् श्रीकृष्ण में प्रवेश कर गयी ।।४५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४५।।

जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया । ध्यायंस्तन्मयतां यातो भावो हि भवकारणम् ।।४६।।

अन्वयः— जन्मत्रयानुगुणित वैर संरब्धया धिया ध्यायन् तन्मयतां यातः भावो हि भवकारणम् ।।४६।।

अनुवाद— तीन जन्मों से शिशुपाल के अन्तःकरण में श्रीभगवान् के प्रति वैर की भावना बढ़ रही थी, उसी के कारण ध्यान करते-करते वह तन्मय हो गया था यह सत्य है कि भाव ही मृत्यु के पश्चात् होने वाली गति का कारण होती है ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं निन्दकस्य कथं वासुदेवे-प्रवेशस्तत्राह-जन्मत्रयेति । जन्मत्रयेऽनुगुणितमनुवर्तितं यद्वैरं तेन संरब्धयाविष्टया । तन्मयतां तत्स्वरूपतां यातः । पुनः पार्षदो बभूवेत्यर्थः । अत्र हेतुः-भावो हीति । भावो भावना अनुध्यानं भवस्य ध्येयाकारजन्मनः कारणम् । पेशस्कारिध्यानेन कीटादौ तथा दृष्टत्वादित्यर्थः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई प्रश्न करे कि श्रीभगवान् की इस तरह से निन्दा करने वाले शिशुपाल की भगवान् वासुदेव में कैसे प्रवेश हो गया ? इस पर शुकदेवजी ने कहा- शिशुपाल के अन्तःकरण में तीन जन्मों से बैर की बुद्धि बढ़ रही थी। उस वैर की बुद्धि से आविष्ट भगवान् श्रीकृष्ण का शत्रु रूप से निरन्तर चिन्तन किया करता था । चिन्तन करते-करते वह भगवत स्वरूप हो गया । उसी के कारण वह श्रीभगवान् का पुनः पार्षद बन गया । उसका कारण **भावोहि० इत्यादि** से बतलाया गया है । भाव अर्थात् निरन्तर चिन्तन ही ध्येयाकरता का कारण है । लोक में भी देखा जाता है कि चिन्तन करते रहने के कारण कीडा भी पशस्करी भृङ्गी बन जाता है ।।४६।।

ऋत्विग्भ्यः ससदस्येभ्यो दक्षिणां विपुलामदात् । सर्वान्संपूज्य विधिवच्चक्रेऽवभृथमेकराट् ।।४७।।

अन्वयः— एकराट् सदस्येभ्य; ऋत्विग्भ्यः विपुलां दक्षिणाम् अदात् सर्वान् विधिवत् संपूज्य अवभृथं चक्रे ।।४७।।

अनुवाद— पृथिवी के एकमात्र राजा महाराज युधिष्ठिर ने सदस्यों तथा ऋत्विजों को पुष्कल मात्रा में दक्षिणा प्रदान किया सबों का सत्कार करके राजा ने विधिपूर्वक अवभृथ स्नान किया ।।४७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४७।।

साधयित्वा क्रतुं राज्ञः कृष्णो योगेश्वरेश्वरः । उवास कतिचिन्मासान्सुहृद्भिरभियाचितः ।।४८।।

अन्वयः— योगेश्वरेश्वरः कृष्णः राज्ञः क्रतु साधयित्वा सुहृद्भिः अभियाचितः कतिचित् मासान् उवास ।।४८।।

अनुवाद— योगेश्वरों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ को पूर्ण कराकर अपने सगे संबन्धियों तथा सुहृदों की प्रार्थना से कुछ महीनों तक वहीं इन्द्रप्रस्थ में ही निवास किए ।।४८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४८।।

ततोऽनुज्ञाप्य राजानमनिच्छन्तमपीश्वरः । ययौ सभार्यः सामात्यः स्वपुरं देवकीसुतः ।।४९।।

अन्वयः— ततः अनिच्छन्तम् अपि राजानम् ईश्वरः देवकीसुतः अनुज्ञाप्य सभार्यः सामात्यः स्वपुरं ययौ ।।४९।।

अनुवाद— उसके पश्चात् महाराज युधिष्ठिर के नहीं चाहने पर भी भगवान श्रीकृष्ण ने उनसे आज्ञा ले ही ली और अपनी पत्नियों तथा मन्त्रियों के साथ वे इन्द्रप्रस्थ से अपनी नगरी द्वारका के लिए प्रस्थान किए ।।४९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४९।।

वर्णितं तदुपाख्यानं मया ते बहुविस्तरम् । वैकुण्ठवासिनोर्जन्म विप्रशापात्पुनः पुनः ।।५०।।

अन्वयः— मया तत् उपाख्यानं बहुविस्तरं वर्णितम्, विप्रशापात् वैकुण्ठवासिनोः पुनः पुनः जन्म ।।५०।।

अनुवाद— सातवें स्कन्ध में मैं अत्यधिक विस्तार से इस उपाख्यान को सुना चुका हूँ कि सनकादिक ब्राह्मणों के शाप के कारण वैकुण्ठ में रहने वाले जय और विजय को बार-बार जन्म लेना पड़ा ।।५०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५०।।

राजसूयावभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः । ब्रह्मक्षत्रसभामध्ये शुशुभे सुरराडिव ।।५१।।

अन्वयः— राजसूयाव्रभृथ्येन स्नातो राजा युधिष्ठिरः ब्रह्मक्षत्र सभामध्ये सुरराडिव शुशुभे ।।५१।।

अनुवाद— राजसूययज्ञ का अभृथ्य स्नान करके महाराज युधिष्ठिर ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों की सभा में देवराज इन्द्र के समान सुशोभित होने लगे ।।५१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५१।।

राज्ञा सभाजिताः सर्वे सुरमानवखेचराः । कृष्णं क्रतुं च शंसन्तः स्वधामानि ययुर्मुदा ।।५२।।

अन्वयः— राज्ञा समाजिताः सर्वे सुरमानवखेचराः कृष्णं क्रतुं च शंसन्तः मुदा स्वधामनि ययुः ।।५२।।

अनुवाद— महाराज युधिष्ठिर सभी देवता, मनुष्य और आकाशचारियों का यथा योग्य सत्कार किए, उनसे सत्कृत सभी लोग भगवान् श्रीकृष्ण और राजसूय यज्ञ की प्रशंसा करते हुए प्रसन्नता पूर्वक अपने-अपने धाम में चले गये ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

सुरा मानवाः खेचराः प्रमथाश्च ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

देव, मनुष्य आकाशचारी प्रमथगण भी ।।५२।।

दुर्योधनमृते पापं कलिं कुरुकुलामयम् । यो न सेहे श्रियं स्फीतां दृष्ट्वा पाण्डुसुतस्य ताम् ।।५३।।

अन्वयः— पाण्डुसुतस्य ताम् स्फीतां श्रियं दृष्ट्वा यः न सेहे कुरुकुलामय, कलिं पापं दुर्योधनम् ऋते (सर्वे प्रसन्नाः आसन्) ।।५३।।

अनुवाद— पाण्डवों की उज्ज्वल राज्यलक्ष्मी का उत्कर्ष दुर्योधन को वर्दास्त नहीं हुआ । वह स्वभाव से कुरु के वंश के विनाश के लिए बहुत बड़ा रोग, कलह स्वरूप और पापी था । उसको छोड़कर उस राजसूय यज्ञ से सभी सुखी हुए ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

पापं धर्मद्विषम् । अत्र हेतुः-कलिं कलेरंशम् । अतएव कुरुकुलस्यामयं व्याधिवन्नाशकम् ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

पापम् अर्थात् धर्मद्वेषी, उसका कारण था कि वह कलिका अंश था । अतएव कुरुवंश के विनष्ट करने वाला कुरुवंश का व्याधि था ।।५३।।

यं इदं कीर्तयेद्विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम् । राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।५४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे शिशुपालवधो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।।७४।।

अन्वयः— यः इदं विष्णो; कर्म, चैद्यवधादिकम् राजमोक्षं विमानं चकीर्तयेत सर्वपापैः प्रमुच्येत ।।५४।।

अनुवाद— परीक्षित् जो मनुष्य श्रीभगवान् की इस लीला जरासन्धवध, शिशुपाल वध, जरासन्ध के बन्दीगृह से राजाओं की मुक्ति तथा यज्ञानुष्ठान का वर्णन करेगा वह सभी पापों से मुक्त हो जायेगा ।।५४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के शिशुपालवध नामक चौहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७४।।

भावार्थ दीपिका— वितानं यज्ञं च ।।५४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।।७४।।

भाव प्रकाशिका

वितानम् अर्थात् यज्ञानुष्ठान को ।।५४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवे स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के चौहत्तरवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।७४।।

पचहत्तरवाँ अध्याय

राजसूय यज्ञ की पूर्ति और दुर्योधन का अपमान

राजोवाच

अजातशत्रोस्तं दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम् । सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन्नृदेवा ये समागताः ॥१॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् अजातशत्रोः तं राजसूयमहोत्सवम् दृष्ट्वा ये समागताः नृदेवाः ते सर्वे मुमुदिरे ॥१॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— अजातशत्रु युधिष्ठिर के उस राजसूययज्ञ नामक महोत्सव को देखकर जो राजागण उसमें आये थे वे सबके सब प्रसन्न हो गये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चयुक्सप्ततितमे यज्ञावभृथसंभ्रमः । सुयोधनस्य चाक्षान्त्या मानभङ्गो दृशिभ्रमात् । दुर्योधनस्यैकस्यैव दुःखे कारणं प्रष्टुमुक्तमनुवदति-अजातशत्रोरिति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

पचहत्तरवें अध्याय में यज्ञान्त स्नान के समय में मनाये जाने वाले उत्सव के समय दुर्योधन की शान्ति के अभाव में दृष्टि भ्रम के कारण मानभङ्ग (अपमान हुआ) केवल दुर्योधन को इस यज्ञ से हुए दुख का कारण पूछने के लिए राजा परीक्षित् **अजातशत्रोः इत्यादि** श्लोक से अनुवाद करते हैं ॥१॥

दुर्योधनं वर्जयित्वा राजानः सर्षयः सुराः । इति श्रुतं नो भगवंस्तत्र कारणमुच्यताम् ॥२॥

अन्वयः— दुर्योधनं वर्जयित्वा राजानः सर्षयः सुराः प्रसन्नाः आसन् इति श्रुतम्, तत्र कारणम् उच्यताम् ॥२॥

अनुवाद— भगवन् दुर्योधन को छोड़कर सभी राजागण ऋषियों के साथ देवगण सभी प्रसन्न थे। यह मैंने आपके ही मुख से सुना है। उसका कारण क्या था यह आप मुझ बतलायें ॥२॥

भावार्थ दीपिका

इति श्रुतम् । त्वन्मुखादेवेत्यर्थः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

आपके ही मुख से सुना है ॥२॥

ऋषिरुवाच

पितामहस्य ते यज्ञे राजसूये महात्मनः । बान्धवाः परिचर्यायां तस्यासन्प्रेमबन्धनाः ॥३॥

अन्वयः— ते पितामहस्य महात्मनः राजसूये यज्ञे प्रेमबन्धनाः वान्धवाः तस्य परिचर्यायाम् आसन् ॥३॥

क्रान्तद्रष्टा महर्षि से श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् परीक्षित् तुम्हारे पितामह महाराज युधिष्ठिर महात्मा पुरुष थे । उनके राजसूय यज्ञ में प्रेम के बन्धन में बन्धे हुए उनके सभी बान्धव उस यज्ञ के सेवा कार्य में लगे हुए थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

दुर्योधनस्यासहनकारणत्वेन यागमहोत्सवमेव पुनः सिंहावलोकनेन निरूपयति-पितामहस्येत्यादिना । 'एकदान्तःपुरे तस्य' इत्यतः प्राक्तनेन ग्रन्थेन । प्रेमबन्धनाः प्रेमयन्त्रिताः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

दुर्योधन के नहीं सह सकने का कारण यज्ञ महोत्सव ही था, इस बात को पुनः सिंहावलोकन न्याय से श्रीशुकदेवजी निरूपित करते हैं । इस बात को **पितामहस्य ते० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । **एकदान्तः पुरे० इत्यादि** से पहले के श्लोक के द्वारा प्रेम के बन्धन में बधे थे ॥३॥

भीमो महानसाध्यक्षो धनाध्यक्षः सुयोधनः । सहदेवस्तु पूजायां नकुलो द्रव्यसाधने ॥४॥

अन्वयः— भीमः महानसाध्यक्षः सुयोधनः धनाध्यक्षः सहदेवः तु पूजायां, नकुलः द्रव्यसाधने ॥४॥

अनुवाद— भीमसेन भोजनालय की देख-रेख करते थे, दुर्योधन कोषाध्यक्ष का कार्य करते थे, सहदेव अभ्यागतों के सेवा सत्कार का कार्य संभालते थे और नकुल सामग्री एकत्रित करने का काम करते थे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

पूजायां संमानने । द्रव्यसाधने नानावस्तुसंपादने ॥४॥

भाव प्रकाशिका

पूजायाम् अर्थात् आने वाले लोगों सम्मान करने के काम में नियुक्त । द्रव्य साधने अर्थात् सामग्री को एकत्रित करने के काम में ॥४॥

गुरुशुश्रूषणे जिष्णुः कृष्णः पादावनेजने । परिवेषणे द्रुपदजा कर्णो दाने महामनाः ॥५॥

अन्वयः— जिष्णुगुरुशुश्रूषणे, कृष्णः पादावने जने, द्रुपदजा परिवेषणे, महामनाः कार्णः दाने ॥५॥

अनुवाद— अर्जुन गुरुजनों की सेवा करने का काम करते थे, भगवान् श्रीकृष्ण आये हुए अतिथियों का पैर धोने का काम करते थे, द्रौपदी भोजन परोसने का काम करती थी और महामनस्वी कर्ण दान देने का कार्य करते थे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

गुरूणां शुश्रूषणे चन्दनालेपनादौ ॥५॥

भाव प्रकाशिका

गुरुशुश्रूषणे अर्थात् गुरुजनों को चन्दन आदि लगाने के कार्य में ॥५॥

युयुधानो विकर्णश्च हार्दिक्यो विदुरादयः । बाह्लीकपुत्रा भूर्याद्या ये च सतर्दनादयः ॥६॥
निरूपिता महायज्ञे नानाकर्मसु ते तदा । प्रवर्तन्ते स्म राजेन्द्र राज्ञः प्रियचिकीर्षवः ॥७॥

अन्वयः— हे राजेन्द्र युयुधानः, विकर्णः च हार्दिक्यः, विदुरादयः भूर्याद्याः बाह्लीक पुत्राः ये च संतर्दनादयः तदाते राज्ञः प्रयचिकीर्षवः नाना कर्मसु प्रवर्तन्ते स्म ॥६-७॥

अनुवाद— हे राजवर्य परीक्षित् सात्यकि, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुर तथा भूरिश्रवा आदि बह्लीक के पुत्र एवं संतर्दन आदि उस राजसूय यज्ञ में, विभिन्न कर्मों में नियुक्त थे। ये सबके सब ऐसे ही कार्यों को करते रहते थे जिससे कि महाराज युधिष्ठिर का प्रिय एवं हित हो ॥६-७॥

भावार्थ दीपिका

निरूपिता नियुक्ताः सन्तो नानाकर्मसु प्रवर्तन्ते स्म ॥६-७॥

भाव प्रकाशिका

अनेक प्रकार के कार्यों को करने के लिए नियुक्त किए गये थे ॥६-७॥

ऋत्विक्सदस्यबहुवित्सु सुहृत्तमेषु स्विष्टेषु सूनृतसमर्हणदक्षिणाभिः ।
चैद्ये च सात्वतपतेश्चरणं प्रविष्टे चक्रुस्ततस्त्ववभृथस्नपनं द्युनद्याम् ॥८॥

अन्वयः— ऋत्विक् सदस्य बहुवित्सु सुहृत्तमेषु सुनृत समर्हणदक्षिणाभिः स्विष्टेषु च चैद्ये सात्वत्पते : चरणे प्रविष्टे ततस्तु द्युनद्याम् अवभृथस्नपनं चक्रुः ॥८॥

अनुवाद— ऋत्विज् सदस्य तथा बहुत पुरुषों का तथा अपने इष्ट मित्रों का एवं बन्धु बान्धवों का मधुर वाणी, अनेक प्रकार की पूजा सामग्री एवं दक्षिणा आदि से अच्छी तरह से स्वागत सत्कार हो जाने के पश्चात् एवं शिशुपाल के भगवत्सल श्रीकृष्ण भगवान् के चरणों में प्रवेश कर जाने के पश्चात् महाराज युधिष्ठिर गङ्गाजी में यज्ञान्त स्नान किए ॥८॥

भावार्थ दीपिका

ऋत्विजश्च सदस्याश्च सभासदो बहुविदश्च तेषु स्विष्टेषु सम्यक्पूजितेषु। सूनृतं प्रियवाक्, समर्हणमलङ्कारादि, दक्षिणाश्च प्रसिद्धास्ताभिः । द्युनद्यां गङ्गायाम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

ऋत्विज, सदस्य बहुज्ञ पुरुष इन सबों की अच्छी तरह के पूजा हो जाने के पश्चात् मधुरवाणी अलङ्कार आदि तथा दक्षिणा आदि से । **द्युनद्याम्** अर्थात् गङ्गाजी में ॥८॥

मृदङ्गशङ्खपणवधुन्धुर्यानकगोमुखाः । वादित्राणि विचित्राणि नेदुरावभृथोत्सवे ॥९॥

अन्वयः— अवभृथोत्सवे मृदङ्गशङ्खपणवधुन्धुर्यानकगोमुखाः विचित्राणि वाद्यानि नेदुः ॥९॥

अनुवाद— अवभृथ स्नान के महोत्सव के समय, मृदङ्ग, शङ्ख, ढोल नौबत, नगाड़े और नरसिंहा आदि विभिन्न प्रकार के बाजे बजने लगे ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

नर्तक्यो ननृतुर्हृष्टा गायका यूथशो जगुः । वीणावेणुतलोन्नादस्तेषां स दिवमस्पृशत् ॥१०॥

अन्वयः— हृष्टाः नर्तक्यः ननृतुः गायकाः यूथशः जगुः, तेषां सः वीणावेणुतलोन्नादः दिवम् अस्पृशत् ॥१०॥

अनुवाद— नर्तकियाँ आनन्दमग्न होकर नाचने लगीं। झूंड के झूंड गवैये गाने लगे, वीणा, वंशी, एवं झांझ मंजीर बजने लगे, इनकी तुमुल ध्वनि आकाश में गूंजने लगी ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

चित्रध्वजपताकाग्रैरिभेन्द्रस्यन्दनार्वभिः । स्वलंकृतैर्भटैर्भूपा निर्ययू रुक्ममालिनः ॥११॥
यदुसृंजयकाम्बोजकुरुकेकयकोसलाः । कम्पयन्तो भुवं सैन्यैर्यजमानपुरःसराः ॥१२॥

अन्वयः— रुक्ममालिनः यदुसृञ्जय कम्बोज कुरुकेकय कोसलाः चित्रध्वज प्रताकाग्रैः स्वलंकृतैः भटैः भूपाः इभेन्द्रस्यन्नार्वभिः सैन्यैः यजमानपुरःसराः भुवंकम्पयन्तः निर्ययुः ॥११-१२॥

अनुवाद— सुवर्ण का हार पहने हुए यदु सृंजय, कम्बोज, कुरु केकय और कोसल देश के राजागण रङ्गविरङ्गी ध्वजा पताकाओं के साथ सजे-धजे गजराजों, रथों, घोड़ों तथा सुसज्जित वीर सैनिकों के साथ महाराज युधिष्ठिर को आगे करके पृथिवी को कँपाते हुए चल रहे थे ॥११-१२॥

भावार्थ दीपिका

चित्राणि ध्वजपताकाग्राणि येषु तैरिभेन्द्रैः स्यन्दनैरर्वभिरश्वैर्भटैश्च। एवं चतुरङ्गैः सैन्यैर्निर्ययुः। यजमानो युधिष्ठिरः पुरःसरो येषां ते ॥११-१२॥

भाव प्रकाशिका

रङ्ग-विरङ्गी ध्वजा पताकाओं से युक्त गजराजों, रथों अश्वों तथा वीर सैनिकों इस तरह चतुरङ्गिणी सेना के साथ निकले। वे सभी यजमान महाराज युधिष्ठिर को आगे किए हुए थे ॥११-१२॥

सदस्यर्त्विग्द्विजश्रेष्ठा ब्रह्मघोषेण भूयसा । देवर्षिपितृगन्धर्वास्तुष्टुवुः पुष्पवर्षिणः ॥१३॥

अन्वयः— सदस्यर्त्विग्द्विजश्रेष्ठाः भूयसा ब्रह्मघोषेण पुष्पवर्षिणः देवर्षिपितृगन्धर्वा तुष्टुवुः ॥१३॥

अनुवाद— यज्ञ के सदस्य, ऋत्विज् एवं बहुत से श्रेष्ठ ब्राह्मण उच्चस्वर से वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हुए चले। देवता, ऋषि, पितर एवं गन्धर्व आकाश से फूल बरसाते हुए महाराज युधिष्ठिर की स्तुति कर रहे थे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

सदस्या ऋत्विजोऽन्ये च द्विजश्रेष्ठाः निर्ययुः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञ के सदस्य, ऋत्विज और बहुत से दूसरे ब्राह्मण चले ॥१३॥

स्वलंकृता नरा नार्यो गन्धस्त्रग्भूषणाम्बरैः । विलिम्पन्त्योऽभिषिञ्चन्त्यो विजह्नुर्विविधै रसैः ॥१४॥
तैलगोरसगन्धोदहरिद्रासान्द्रकुङ्कुमैः । पुम्भिर्लिप्ताः प्रलिम्पन्त्यो विजह्नुर्वारयोषितः ॥१५॥

अन्वयः— स्वलंकृताः नरा नार्यः गन्धस्त्रग्भूषणाम्बरैः, तैलगोरसगन्धो दहरिद्रासान्द्रकुङ्कुमैः पुम्भिः लिप्ताः प्रलिम्पन्त्यः वारयोषितः विविधैः रसैः विजह्नुः ॥१४-१५॥

अनुवाद— इन्द्रप्रस्थ के स्त्री पुरुष चन्दन, माला, भूषण और अच्छे वस्त्रों से सजधजकर एक दूसरे पर जल, तेल, दूध, मखन आदि रस डालकर भिंगो देते थे एक दूसर के शरीर में लगा देते थे और इस तरह से क्रीडा करते हुए चलने लगे। वाराङ्गनाए पुरुषों को तेल, जल, सुगन्धित जल, हल्दी और केसर मल देतीं और पुरुष भी उन सबों को उसी द्रव्य से सराबोर कर देते ॥१४-१५॥

भावार्थ दीपिका

किञ्च गन्धादिभि; स्वलंकृता नरा नार्यश्च मिथो विजहुः । रसानेवाह-तैलेति । किंच सान्द्रकुङ्कुमादिभिः पुम्भिर्लिप्तास्तान्प्रलिम्पन्त्यो वारयोषितश्च विजहुः ।।१४-१५।।

भाव प्रकाशिका

चन्दनादि से सजे-धजे पुरुष तथा स्त्रियाँ परस्पर में क्रीडा करती थीं । रसों को ही **तैल० इत्यादि** से कहा गया है । गाढे केसर पुरुषों द्वारा लगाये जाने पर वाराङ्गनायें पुरुषों पर भी लगाकर क्रीडा करती थीं ।।१४-१५।।

गुप्ता नृभिर्निरगमन्नुपलब्धुमेतद्देव्यो यथा दिवि विमानवरैर्नृदेव्यः ।
ता मातुलेयसखिभि; परिषिच्यमानाः सव्रीडहासविकसद्वदना विरेजुः ।।१६।।

अन्वयः— एतद् उपलब्धुम् दिविदेव्यो यथा नृभिः गुप्ताः देव्यः विमानवरैः निरगमन् ताः मातुलेय सखिभिः परिषिच्यमाना; सव्रीडहासवदनाः विरेजुः ।।१६।।

अनुवाद— उस समय उत्सव को देखने के लिए जिस तरह उत्तम विमान पर चढ़कर आकाश में देवियाँ आयी थीं, वैसे ही सैनिकों द्वारा सुरक्षित इन्द्रप्रस्थ की राजमहिलाएँ सुन्दर पालकियों पर सवार होकर आयी थीं। पाण्डवों के ममेरे भाई श्रीकृष्ण और उनके सखा उन पर रङ्ग आदि डाल देते थे, उससे रानियों के मुख लज्जायुक्त मुस्कान से सुशोभित होते थे ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

नृभिर्गुप्ता रथादियानैर्नृदेव्यो राजपत्न्यो निरगमन्निरगुः । एतदुपलब्धुं विमानवरैर्देव्यो यथा तद्वत् । मातुलेयैः सखिभिश्च परितः सिच्यमानाः । सव्रीडेन हासेन विकसन्ति वदनानि यासां ताः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

सैनिकों से संरक्षित राजरानियाँ रथ आदि सवारियों से निकली । उसी तरह जिस तरह श्रेष्ठ विमानों से आकाश में देवियाँ उस उत्सव को देखने के लिए आयीं उसी तरह रानियाँ भी आयीं । भगवान् श्रीकृष्ण और उनके सखाओं से सिञ्चित होकर लज्जायुक्त मुस्कान से मण्डित मुखों वाली वे सुशोभित होती थीं ।।१६।।

ता देवरानुत सखीन् सिषिचुर्दृतीभिः क्लिन्नाम्बरा विवृतगात्रकुचोरुमध्याः ।
औत्सुक्यमुक्तकबराच्च्यवमानमाल्याः क्षोभं दधुर्मलधियां रुचिरैर्विहारैः ।।१७।।

अन्वयः— क्लिनाम्बराः विवृतगात्रं कुचोरुमध्या; ताः देवरान् उत सखीन् दृतिभिः सिसिचुः औत्सुक्य मुक्तकबराच्चयवमानमाल्याः रुचिरैः विहारैः मलधियां क्षोभं दधुः ।।१७।।

अनुवाद— उन लोगों के रङ्ग डालने से रानियों के वस्त्र भिंग गये थे, और उनके शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग वक्षः स्थल जङ्घा स्तन और कमर दिखायी से पड़ने लगे थे । रानियाँ भी पिचकारी आदि में रङ्गभर कर अपने देवरों और उनके सखाओं को सींच रही थी । उत्सुकता के कारण उनकी चोटी की मालाएँ गिरी जा रही थीं ।इस मनोज्ञ विहार को देखकर मलिन अन्तःकरण वाले लोगों के मन में काम का उद्रेक हो रहा था ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

देवरान्पतिभ्रातॄन् उत सखीन् सखीनपि । दृतीभिरुदकनोदनचर्मयन्त्रैः सेचनपात्रैश्च । मलधियां कामिनाम् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

देवरों और उनके सखाओं को चर्मपात्रों तथा पिचकारी से । मलधियाम् अर्थात् कामियों के ।।१७।।

स सम्राड्रथमारूढः सदश्वं रुक्ममालिनम् । व्यरोचत् स्वपत्नीभिः क्रियाभिः क्रतुराडिव ।।१८।।

अन्वयः— सः सम्राट् रुक्ममालिनं सदश्वं रथम् आरूढः स्वपत्नीभिः क्रियाभि; क्रतुराडिव व्यरोचत ।।१८।।

अनुवाद— महाराज युधिष्ठिर सुवर्ण के हारसे सजे सुन्दर वाले रथ पर अपनी पत्नियों के साथ उसी तरह सुशोभित हो रहे थे जैसे प्रयाज आदि क्रियाओं के साथ राजसूय यज्ञ ही मूर्तिमान होकर प्रकट हो गया हो ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

क्रियाभिरङ्गक्रियाभिः क्रतुराट् सशरीरो राजसूय इव ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

अङ्ग क्रियाओं के साथ मूर्तिमान राजसूय यज्ञ के समान सुशोभित हो रहे थे ।।१८।।

पत्नी संयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते तमृत्विजः । आचान्तं स्नापयांचक्रुर्गङ्गायां सह कृष्णया ।।१९।।

अन्वयः— ते ऋत्विजः पत्नी संयाज अवभृथ्यैः चरित्वा तम् कृष्णया सह गङ्गायां आचान्तं स्नापयाञ्चक्रुः ।।१९।।

अनुवाद— वे ऋत्विजगण पत्नी संयाज एवं यज्ञान्त स्नान सम्बन्धी कर्म को करवाकर महाराज युधिष्ठिर को द्रौपदी के साथ आचमन करवाया और गङ्गा में स्नान करवाया ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

पत्नीसंयाजो यागविशेषः । अवभृथसंबन्धि आवभृथ्यं च । तैश्चरित्वाताननुष्ठायेत्यर्थः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

एक प्रकार के याग को पत्नीसंयाज कहते है । अवमृथ सम्बन्धी कर्म को अवभृथ्य कहते हैं **तैश्चरित्वा** उन कर्मों को करके ।।१९।।

देवदुन्दुभयो नेदुर्नरदुन्दुभिभिः समम् । मुमुचुः पुष्पवर्षाणि देवर्षिपितृमानवाः ।।२०।।

अन्वयः— नरदुन्दुभिभिः समम् देवदुन्दुभयः नेदुः देवर्षि पितृमानवाः पुष्पवर्षाणि मुमुचुः ।।२०।।

अनुवाद— उस समय मनुष्यों की दुन्दुभियों के साथ ही देवताओं की भी दुन्दुभियाँ बजने लगीं । देवता, ऋषि, पितर पुष्पों की वर्षा करने लगे ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

सस्नुस्तत्र ततः सर्वे वर्णाश्रमयुता नराः । महापातक्यपि यतः सद्यो मुच्येत किल्बिषात् ।।२१।।

अन्वयः— ततः सर्वे वर्णाश्रमयुताः नरा तत्र सस्नुः यतः महापातकी अपि किल्विषात् सद्यः मुच्येत ।।२१।।

अनुवाद— उसके पश्चात् सभी वर्ण और आश्रम का पालन करने वाले लोग वहाँ स्नान किए । उस स्नान के करने से महापातकी मनुष्य भी पापों से मुक्त हो जाता है ।।२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२१।।

अथ राजाऽहते क्षौमे परिधाय स्वलंकृतः । ऋत्विक्सदस्यविप्रादीनानर्चाभरणाम्बरैः ।।२२।।

अन्वयः— अथ राजा अहते क्षौमे परिधाय स्वलंकृतः ऋत्विक्सदस्यविप्रादीन् आभरणाम्बरैः आनर्च ।।२२।।

अनुवाद— उसके पश्चात् महाराज युधिष्ठिर दो नवीन रेशमी वस्त्रों को धारण करके तथा अनेक प्रकार के आभूषणों से अपने को सजाकर ऋत्विजों सदस्यों तथा ब्राह्मणों की आभूषणों और वस्त्रों से पूजा किए ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

अहते नूतने । आनर्च अर्चितवान् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

अहत अर्थात् नवीन । **आनर्च** अर्थात् पूजा किए ।।२२।।

बन्धुज्ञातिनृपान्मित्रसुहृदोऽन्यांश्च सर्वशः । अभीक्ष्णं पूजयामास नारायणपरो नृपः ।।२३।।

अन्वयः— नारायणपरः नृपः बन्धुज्ञातिनृपान्मित्र सुहृदः अन्यान् च अभीक्ष्णं पूजयामास ।।२३।।

अनुवाद— भगवद्भक्त राजा युधिष्ठिर सबों में श्रीभगवान् का ही दर्शन करते थे । इसलिए वे अपने भाई, बन्धु, कुटुम्बी राजा, इष्ट मित्र हितैषी और दूसरे लोगों की बार-बार पूजा किया करते थे ।।२३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२३।।

सर्वे जनाः सुररुचो मणिकुण्डलस्त्रगुष्णीषकञ्चुकदुकूलमहार्घ्यहाराः ।
नार्यश्च कुण्डलयुगालकवृन्दजुष्टवक्त्रश्रियः कनकमेखलया विरेजुः ।।२४।।

अन्वयः— मणिकुण्डलस्त्रगुष्णीष कञ्चुकदुकूलमहार्घ्य हाराः सर्वेजनाः सुररूचः नार्यश्च कुण्डलयुगालकवृन्दजुष्ट वक्त्रश्रियः कनक मेखलया विरेजुः ।।२४।।

अनुवाद— मणि जटित कुण्डल माला, पगड़ी, अङ्गरखा, दुपट्टा एवं बहुमूल्य हार धारण किए हुए सभी लोगों की शोभा देवताओं के समान होती थी, स्त्रियों के मुखों की भी दोनों कानों के कुण्डलों एवं काले घुघराले केशों से शोभा होती थी वे कमर में सुवर्ण की करधनी से सुशोभित होती थीं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

सुराणामिव रुक् कान्तिर्येषाम् । मणिकुण्डलैः सहिताः स्त्रगुष्णीषादयो येषां ते । कुण्डलयुगेनालकवृन्देन च जुष्टा वक्त्रश्रीर्यासां ताः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

सुररुचः देवताओं के समान क्रान्ति से सम्पन्न, मणिकुण्डलों के साथ पगड़ी आदि धारण किए हुए । दोनों कानों के कुण्डलों एवं काले घुंघराले केशों से उनके मुखों की अत्यधिक शोभा होती थी ।।२४।।

अथर्त्विजो महाशालाः सदस्या ब्रह्मवादिनः । ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा राजानो ये समागताः ।।२५।।
देवर्षिपितृभूतानि लोकपालाः सहानुगाः । पूजितास्तमनुज्ञाप्य स्वधामानि ययुर्नृप ।।२६।।

अन्वयः— हे नृप अथ ऋत्विजः बह्मवादिनः महाशालाः सदस्याः ब्रह्म क्षत्रिय विट्शूद्राः ये समागताः राजानः देवर्षि पितृभूतानि सहानुगाः लोकपालाः पूजिताः तम् अनुज्ञाप्य स्वधामनि ययुः ।।२५-२६।।

अनुवाद— हे परीक्षित् ! उस राजसूय यज्ञ में जितने लोग आये थे, ऋत्विज गण, दौ सौ छात्रों को अध्ययन कुराने वाले वेदज्ञ सदस्य, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, एवं शूद्र आये हुए राजागण, देवता, ऋषि, पितृगण तथा सभी जीव तथा अपने अनुयायियों के साथ आये हुए सभी लोकपाल इन सबों की पूजा (सत्कार) महाराज युधिष्ठिर ने किया और उसके पश्चात् वे सब महाराज युधिष्ठिर से अनुमति लेकर अपने-अपने धाम में चले गये ।।२५-२६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२५-२६।।

हरिदासस्य राजर्षे राजसूयमहोदयम् । नैवातृप्यन्प्रशंसन्तः पिबन्मर्त्योऽमृतं यथा ।।२७।।

अन्वयः— राजर्षे मर्त्यः अमृतं पिबन् यथा हरिदासस्य राजसूयम् प्रशंसन्तः नैव अतृप्यन् ।।२७।।

अनुवाद— हे राजर्षि परीक्षित् जिस तरह से कोई मनुष्य अमृत् पीते-पीते तृप्त नहीं होता है उसी तरह भगवद् भक्त महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ महोत्व की प्रशंसा करने से लोग तृप्त नहीं होते थे ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

ततो युधिष्ठिरो राजा सुहृत्संबन्धिबान्धवान् । प्रेम्णा निवासयामास कृष्णं च त्यागकातरः ।।२८।।

अन्वयः— ततः राजा युधिष्ठिर सुहृत्संबन्धिबान्धवान् कृष्णं च निवासयामास त्यागकातरः ।।२८।।

अनुवाद— उसके बाद राजा युधिष्ठिर अपने हितैषी, सुहृद संबन्धियों तथा बान्धवों को तथा भगवान् श्रीकृष्ण को रोक लिये क्योंकि उनको इनके वियोग की कल्पना से अधिक कष्ट होता था ।।२८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२८।।

भगवानपि तत्राङ्ग न्यवात्सीत्तत्प्रियङ्करः । प्रस्थाप्य यदुवीरांश्च साम्बादींश्च कुशस्थलीम् ।।२९।।

अन्वयः— हे अङ्ग साम्बादीन् च यदुवीरान् च कुशस्थलीम् प्रस्थाप्य तत्प्रियङ्करः भगवान् तत्र न्यवात्सीत् ।।२९।।

अनुवाद— हे परीक्षित्, साम्ब आदि को तथा यदुवीरों को द्वारका भेजकर श्रीभगवान् भी महाराज युधिष्ठिर को प्रसन्न करने के लिए इन्द्रप्रस्थ में ही रह गये ।।२९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२९।।

इत्थं राजा धर्मसुतो मनोरथमहार्णवम् । सुदूरतरं समुत्तीर्य कृष्णेनासीद्गतज्वरः ।।३०।।

अन्वयः— इत्थं राजा धर्मसुतः कृष्णेन सुदूरतरं मनोरथ महार्णवं समुत्तीर्य गतज्वरः आसीत् ।।३०।।

अनुवाद— इस तरह राजा युधिष्ठिर भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से अत्यन्त कठिन अपने मनोरथ रूपी सागर को पार करके निश्चिन्त हो गये थे ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

गतज्वरो निश्चिन्त आसीत् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

गतज्वरः अर्थात् निश्चिन्त हो गये थे ।।३०।।

एकदान्तःपुरे तस्य वीक्ष्य दुर्योधनः श्रियम् । अतप्यद्राजसूयस्य महित्वं चाच्युतात्मनः ।।३१।।

अन्वयः— एकदा दुर्योधनः अच्युतात्मनः तस्य अन्तःपुरे श्रियं राजसूयस्य महित्वं च वीक्ष्य अतप्यत् ।।३१।।

अनुवाद— एक दिन दुर्योधन, श्रीभगवान् के परम प्रेमी राजा युधिष्ठिर के अन्तःपुर में विद्यमान सौन्दर्य सम्पत्ति तथा राजसूययज्ञ द्वारा प्राप्त महत्त्व को देखकर डाह की भावना से मन ही मन जलने लगा ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

अच्युते आत्मा यस्य तस्य ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

जिनका मन श्रीभगवान् में ही लगा रहता था ।।३१।।

यस्मिन्नरेन्द्रदितिजेन्द्रसुरेन्द्रलक्ष्मीर्नाना विभान्ति किल विश्वसृजोपक्लृप्ताः ।
ताभिः पतीन्द्रुपदराजसुतोपतस्थे यस्यां विषक्तहृदयः कुरुराडतप्यत् ।।३२।।

अन्वयः— यस्मिन् विश्वसृजा उपक्लृप्ताः नानानरेन्द्र, दितिजेन्द्र, सुरेन्द्र, लक्ष्मीः विभान्ति किल ताभिः द्रुपदराजसुता पतीन् उपतस्थे यस्या, विषक्तहृदयः कुरुराट् अतप्यत ।।३२।।

अनुवाद— पाण्डवों के लिए मयदानव ने जो महल बनाया था उसमें नरपतियों, दैत्यपतियों और सुरपतियों की अनेक प्रकार की विभूतियाँ और श्रेष्ठ सौन्दर्य स्थान-स्थान पर सुशोभित होता था। उनके द्वारा रानी द्रौपदी अपने पतियों की सेवा करती थी। उसको देखकर दुर्योधन के मन में जलन होती थी। क्योंकि उसका मन द्रौपदी में आसक्त था ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

नरेन्द्रादीनां लक्ष्मीर्लक्ष्म्यो विभूतयो विश्वसृजा मयेनोपक्लृप्ता विरचिताः। ताभिः सह। कुरुराड् दुर्योधनोऽतप्यत्॥३२॥

भाव प्रकाशिका

नरपतियों आदि की विभूतियों को मयदानव ने बना दिया था। उन सबों को देखकर दुर्योधन को जलन होती थी ॥३२॥

यस्मिंस्तदा मधुपतेर्महिषीसहस्रं श्रोणीभरेण शनकैः क्वणदङ्घ्रिशोभम्।
मध्ये सुचारु कुचकुङ्कुमशोणहारं श्रीमन्मुखं प्रचलकुण्डलकुन्तलाढ्यम् ॥३३॥

अन्वयः— यस्मिन् तदा मधुपतेः महिषीसहस्रं श्रोणी भरेण शनकैः क्वणदंघ्रिशोभम् मध्येसुचारु कुचकुंकुम शोणहारं प्रचलकुण्डल कुन्तलाढ्यं श्रीमन्मुखम् अशोभतेतिशेषः ॥३३॥

अनुवाद— उन दिनों उसमें भगवान् श्रीकृष्ण की हजारों पत्नियाँ रहती थीं। नितम्बभाग के भारी होने के कारण जब वे धीरे-धीरे चलती थीं तो उनके पैरों के नूपुर बजने लगते थे जिससे उनके पैरों की शोभा बढ़ जाती थी। उनकी कमर पतली और सुन्दर थी वक्षोजों में लगे केसर की लालिमा से श्वेत वर्ण की मोतियों के श्वेत, हार, लाल प्रतीत होने लगते थे उनके कानों के हिलते हुए कुण्डल तथा काले घुंघराले केशों से उन श्रीकृष्ण पत्नियों के मुख की शोभा बढ़ जाती थीं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

महिषीसहस्रमिति बहुत्वोपलक्षणम्। क्वणद्भिरङ्घ्रिभि; शोभा यस्य। मध्ये सुचारु सुचारुमध्यमित्यर्थः। कुचकुङ्कुमैः शोणा हारा यस्य तत्। श्रीमन्ति मुखानि यस्य तत्। चलैः कुण्डलैः कुन्तलैश्चाढ्यं संपन्नमशोभतेति शेषः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

महिषी सहस्रम् बहुत सी रानियों का उपलक्षण है। बजते नूपुरों से पैरों की शोभा से जिनकी शोभा होती थी। उन भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियों की कमर अत्यन्त सुन्दर थी। वक्षोजों में लगे केसर की लालिमा से श्वेत हार भी लाल प्रतीत होते थे। उन पत्नियों के मुख अत्यन्त मनोज्ञ थे। चञ्चल कुण्डलों और कुन्तलों से सम्पन्न मुख सुशोभित होता था ॥३३॥

सभायां मयक्लृप्तायां क्वापि धर्म सुतोऽधिराट्। वृतोऽनुजैर्बन्धुभिश्च कृष्णेनापि स्वचक्षुषा ॥३४॥
आसीनः काञ्चने साक्षादासने मघवानिव। पारमेष्ठ्यश्रिया जुष्टः स्तूयमानश्च बन्दिभिः ॥३५॥

अन्वयः— मयक्लृप्तायां सभायां क्वापि धर्मसुतोऽधिराट् अनुजैः, बन्धुभिः, स्वचक्षुषा कृष्णेनापि वृतः काञ्चने आसने साक्षात् मघवानिव आसीनः परमेष्ठ्य श्रिया जुष्टः वन्दिभिः स्तूयमानः च आसीदिति शेषः ॥३४-३५॥

अनुवाद— मय दानव के द्वारा रचित सभा में कहीं पर राजाधिराज महाराज युधिष्ठिर अपने अनुजों, बान्धवों तथा अपने नेत्र स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण के साथ सुवर्ण सिंहासन पर बैठे थे। उनकी भोग सामग्री तथा उनकी राज्यलक्ष्मी ब्रह्माजी के समान थी उस समय बन्दीजन उनकी स्तुति कर रहे थे ॥३४-३५॥

भावार्थ दीपिका

क्वापि कदाचित्स विरेज इति शेषः । स्वस्य चक्षुषा हिताहितज्ञापक ।।३४-३५।।

भाव प्रकाशिका

क्वापि अर्थत् कभी, सुशोभित हो रहे थे । हिताहित का बोधक होने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण महाराज युधिष्ठिर के नेत्र के समान थे ।।३४-३५।।

तत्र दुर्योधनो मानी परीतो भ्रातृभिर्नृप । किरीटमाली न्यविशदसिहस्तः क्षिपन् रुषा ।।३६।।

अन्वयः— हे नृप तत्र मानी दुर्योधनः भ्रातृभिः परीतः किरीटमाली, असिहस्तः रुषा क्षिपन् न्यविशत् ।।३६।।

अनुवाद— उसी समय अभिमानी दुर्योधन अपने भाइयों के साथ वहाँ आया वह मुकुट धारण किए था, गले में माला और हाथ में तलवार थी वह क्रोधवशात् द्वारपालों को झिड़क रहा था ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

मानी साहंकारः । किरीटं च माला च विद्येते यस्य सः । न्यविशत् विवेश । क्षिपन् द्वाःस्थादीनधिक्षिपन् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

मानी अर्थात् अभिमानी । वह किरीट और माला धारण किए था । न्यविशत् अर्थात् प्रवेश किया । द्वारपालों आदि को डाँट रहा था ।।३६।।

स्थलेऽभ्यगृह्णाद्वस्त्रान्तं जलं मत्वा स्थलेऽपतत् । जले च स्थलवद्भ्रान्त्या मयमायाविमोहितः ।।३७।।

अन्वयः— स्थले वस्त्रान्तं अभ्यगृह्णत् स्थले जलं मत्त्वा जले स्थलवदभ्रान्त्या मयमाया विमोहितः अपतत् ।।३७।।

अनुवाद— स्थल में जल का भ्रम हो जाने के कारण दुर्योधन ने अपने वस्त्र समेट लिया और स्थल में जल की भ्रान्ति होने से गिर पड़ा । वह मय की माया से मोहित हो गया था ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

तत्र स्थले वस्त्रान्तमभ्यगृह्णादाकुञ्चितवान् । कुतः । तस्मिन्स्थले एवं भ्रान्त्या जलं मत्वा जले चापतत् । कुतः । स्थलवद्भ्रान्त्या ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

तत्र स्थल में जल का भ्रम होने के कारण उसने अपना वस्त्र समेट लिया और वहाँ पर जल को स्थल मानकर उसमें गिर पड़ा । क्योंकि जल स्थल के समान प्रतीत हो रहा था अतएव भ्रम के कारण ।।३७।।

जहास भीमस्तं दृष्ट्वा स्त्रियो नृपतयोऽपरे । निवार्यमाणा अप्यङ्ग राज्ञा कृष्णानुमोदिताः ।।३८।।

अन्वयः— हे अङ्ग राज्ञानिवार्यमाणा अपि कृष्णानुमोदिता, भीमः तदृष्ट्वा स्त्रियः अपरे नृपतयः च जहास ।।३८।।

अनुवाद— परीक्षित् राजा युधिष्ठिर के द्वारा मना किए जाने पर भी उसको देखकर भीम जोर से हँसने लगे दूसरे राजागण और स्त्रियाँ भी हँसने लगीं । क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण उन सबों को हँसने का अनुमोदन कर रहे थे ।।३८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३८।।

स व्रीडितोऽवाग्वदनो रुषा ज्वलन्निष्क्रम्य तूष्णीं प्रययौ गजाह्वयम् ।
हाहेति शब्दः सुमहानभूत्सतामजातशत्रुर्विमना इवाभवत् ।।
बभूव तूष्णीं भगवान्भुवो भरं समुज्जिहीर्षुर्भ्रमति स्म यद्दृशा ।।३९।।

अन्वयः— व्रीडितः अवाग्वदनः सः तुष्णी निष्क्रम्य रुष ज्वलन् गजाह्वयम् ययौ सताम् हाहेति महान् शब्दः अमूत अजातशत्रुः विमना इव अभवत् यद् दृशा भ्रमतिस्म भुवो भारं जिहीर्षुः भगवान् तुष्णीं बभूव ।।३९।।

अनुवाद— लज्जित होकर नीचे मुख किए हुए दुर्योधन चुपचाप उससे निकलकर क्रोध से जलता हुआ हस्तिनापुर चला गया । सज्जनों में जोर से हाहाकार होने लगा महाराज युधिष्ठिर उदास हो गये । जिनके देखने से दुर्योधन को भ्रम हो गया, वे भगवान् चुपचाप रहे वे चाहते थे कि किसी तरह पृथ्वी का भार दूर हो ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

भुवो भरं भारं जिहीर्षुरिति । अद्य संपादितेन कलहबीजेन कुरूणां संहारं करिष्यामीति मत्वेति । किंच यस्य दृशा दृष्टिमात्रेण दुर्योधनो भ्रमति स्म भ्रान्तिं प्राप । मयमाया तु निमित्तमात्रम् । स भूभारहरणबीजं दुर्योधनस्य भ्रमं भीमादिहास्येन च तस्य पराभवं विधाय तूष्णीमासीदित्यर्थः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी के भार को दूर करने की इच्छा वाले । आज कलह का बीज बो देने से मैं कौरवों का संहार करूँगा यह मानकर जिन श्रीभगवान् के देखने मात्र से ही दुर्योधन को भ्रम हो गया था । मय की माया तो केवल निमित्त थी । पृथिवी के भार का हरण करने का बीज दुर्योधन को भ्रम भीमादि की हँसी, तथा दुर्योधन के पराभव को कराकर वे भगवान मौन थे ।।३९।।

एतत्तेऽभिहितं राजन्यत्पृष्टोऽहमिह त्वया । सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे दुर्योधनमानभङ्गो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ।।७५।।

अन्वयः— राजन् इह त्वया पृष्टोऽहम् एतत् ते राजसूये महाक्रतौ सुयोधनस्य दौरात्म्यं अभिहितम् ।।४०।।

अनुवाद— राजन् तुमने जो मुझसे पूछा था तुमको मैंने यह राजसूय नामक महायज्ञ में दुर्योधन के डाह का कारण सुना दिया ।।४०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के पचहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ।।७५।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दशवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के पचहत्तरवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।७५।।

* * *

छिहत्तरवाँ अध्याय

शाल्व के साथ यादवों का युद्ध

श्रीशुक उवाच

अथान्यदपि कृष्णस्य शृणु कर्माद्भुतं नृप । क्रीडानरशरीरस्य यथा सौभपतिर्हतः ॥१॥

अन्वयः— हे नृप क्रीडानरशरीरस्य कृष्णस्य अन्यत् अपि अद्भुतं कर्म शृणु यथा सौभपति हतः ॥१॥

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् मनुष्य के समान लीला करने वाले भगवान श्रीकृष्ण के दूसरे भी अद्भुत कर्म को सुनो, कि किस तरह सौभ नामक विमान का स्वामी भगवान् श्री के द्वारा मारा गया ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततः षट्सप्ततितमे वृष्णिशाल्वमहामृधे । द्युमद्गदाप्रहारेण रणत्प्रद्युम्ननिर्गमः । संपाद्य धर्मराजस्य राजसूयमहोदयम् । निहत्य सौभराजादीनथोपारमदच्युतः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् छिहत्तरवें अध्याय में वृष्णिवंशियों और शाल्व के बीच हो रहे महायुद्ध में द्युमन् की गदा के प्रहार से प्रद्युम्न रणभूमि से बाहर चले गये । धर्मराज के राजसूय यज्ञ को सम्पादित करके भगवान् श्रीकृष्ण सौभाधिपति शाल्व आदि को मारकर युद्ध करना बन्द किए ॥१॥

शिशुपालसखः शाल्वो रुक्मिण्युद्वाह आगतः । यदुभिर्निर्जितः संख्ये जरासन्धादयस्तथा ॥२॥

अन्वयः— शिशुपालसखः शाल्वः रुक्मिण्युद्वाहे आगतः संख्ये यदुभिः निर्जितः तथा जरासन्धादयः निर्जिता इति शेषः॥२॥

अनुवाद— शिशुपाल का मित्र शाल्व रुक्मिणी विवाह के अवसर पर आया था किन्तु यदुवंशियों द्वारा युद्ध में वह तथा जरासन्ध इत्यादि पराजित हो गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

शाल्वः प्रतिज्ञामकरोच्छृण्वतां सर्वभूभुजाम् । अयादवीं क्ष्मां करिष्ये पौरुषं मम पश्यत ॥३॥

अन्वयः— शाल्वः सर्वभूभुजांशृण्वताम् प्रतिज्ञम् अकरोत् अहं अयादवीं क्ष्मां करिष्ये मम पौरुषं पश्यत ॥३॥

अनुवाद— शाल्व ने सभी राजाओं के समाने यह प्रतिज्ञा की कि मैं इस पृथिवी को यादवों से रहित बना दूँगा, आपलोग मेरे पराक्रम को देखें ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

इति मूढः प्रतिज्ञाय देवं पशुपतिं प्रभुम् । आराधयामास नृप पांसुमुष्टिं सकृद्ग्रसन् ॥४॥

अन्वयः— हे नृप मूढः इति प्रतिज्ञाय सकृद् पांसुमुष्टिं ग्रासन् प्रभुं देवं पशुपतिं आराधयामास ॥४॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! इस तरह से प्रतिज्ञा करके वह मूढ प्रतिदिन एक बार एक मुट्ठी धूल फांककर शङ्करजी की आराधना करने लगा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्यहं सकृत्पांसुमुष्टिमेकां ग्रसन् भक्षयन् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

प्रतिदिन एक मुट्ठी धूल फाँककर ॥४॥

संवत्सरान्ते भगवानाशुतोष उमापतिः । वरेण छन्दयामास शाल्वं शरणमागतम् ॥५॥

अन्वयः— संवत्सरान्ते भगवान् आशुतोष शरणमागतम् शाल्वं वरेण छन्दयामास ॥५॥

अनुवाद— एक वर्ष के अन्त में शीघ्र प्रसन्न होने वाले भगवान् शङ्कर अपनी शरण में आये हुए शाल्व को वर माँगने के लिए कहा ॥५॥

भावार्थ दीपिका

संवत्सरान्त इति । आशुतोषोऽपि भगवानुमापतिः श्रीकृष्णविद्विषि शाल्वे वरस्य वैफल्यं मन्यमानो न शीघ्रं प्रादुरभूत्। तस्यातिनिर्बन्धमालक्ष्य संवत्सरान्ते च वरेण छन्दयामासेच्छां कारितवान् वरं वृणीष्वेत्युवाचेत्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

संवत्सरान्ते० इस श्लोक में कहा गया है कि उमापति भगवान् शिव भी श्रीकृष्ण के शत्रु शाल्व को दिया गया वरदान व्यर्थ हो जायेगा इस तरह से मानते हुए शीघ्र प्रकट नहीं हुए । उसके आग्रह को देखकर वर्ष के अन्त में उसे वरदान माँगने के लिए कहे । अर्थात् उन्होंने कहा कि वरदान माँगो ॥५॥

देवासुरमनुष्याणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् । अभेद्यं कामगं वव्रे स यानं वृष्णिभीषणम् ॥६॥

अन्वयः— सः देवासुरमनुष्याणाम् गन्धर्वोरगरक्षसाम् अभेद्यं कामगं वृष्णिभीषणम् यानं वव्रे ॥६॥

अनुवाद— शाल्व, देव, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प और राक्षस जिसका भेदन न कर सकें, अपनी इच्छा के अनुसार जो चले, तथा यदुवंशियों के लिए भयङ्कर विमान मांगा ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

तथेति गिरिशादिष्टो मयः परपुरंजयः । पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादात्सौभमयस्मयम् ॥७॥

अन्वयः— तथा इति गिरिशादिष्टः परपुरंजयः मयः अयस्मयम् सौभं पुरं निर्माय शाल्वाय प्रादत् ॥७॥

अनुवाद— शङ्करजी ने तथास्तु कह दिया । शङ्करजी की आज्ञा से मय ने लोहे की नगरी बनाकर शाल्व को प्रदान कर दिया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तथेति प्रतिज्ञाय गिरिशेनादिष्टोऽयस्मयं लोहमयं पुरं सौभसंज्ञं निर्माय रचयित्वा प्रादात् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

तथास्तु इस तरह से शङ्करजी ने प्रतिज्ञा करके, मय नामक दानक को आदेश दे दिया । मय ने लौहमय सौभ नामक नगर बनाकर उसे शाल्व को प्रदान कर दिया ॥७॥

स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाम दुरासदम् । ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥८॥

अन्वयः— स शाल्वः तमोधाम, दुरासदम्, कामगं यानं लब्ध्वा वृष्णिकृतं वैरं स्मरन् द्वारवतीं ययौ ॥८॥

अनुवाद— शाल्व अन्धकारमय जिसको देख पाना भी कठिन तथा इच्छा के अनुसार विमान को प्राप्त करके यदुवंशियों के द्वारा किए गये वैर का स्मरण करता हुआ द्वारकापुरी में गया ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तमसोऽन्धकारस्य धाम आश्रयम् । अन्यैर्दुरासदं दुष्प्राप्यम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

वह अन्धकार का आश्रय था, उसको पकड़ पाना या देख पाना कठिन था ॥८॥

निरुध्य सेनया शाल्वो महत्या भरतर्षभ । पुरीं बभञ्जोपवनान्युद्यानानि च सर्वशः ॥९॥

अन्वयः— हे भरतर्षभ । शाल्वः महत्या सेनया पुरीं निरुद्धय उपवनानि उद्यानानि च सर्वश; बभंज ॥९॥

अनुवाद— हे परीक्षित् शल्व अपनी बहुत बड़ी सेना के द्वारा द्वारकापुरी को घेरकर वहाँ के उपवनों और उद्यानों को पूर्ण रूप से विनष्ट कर दिया ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

सगोपुराणि द्वाराणि प्रासादाट्टालतोलिकाः । विहारान्स विमानाग्र्यान्निपेतुः शस्त्रवृष्टयः ॥१०॥

अन्वयः— सगोपुराणि, द्वाराणि प्रासादा ट्टालतोलिकाः विहारान् स बभञ्ज विमानाग्रयात् शस्त्रवृष्टयः निपेतुः ॥१०॥

अनुवाद— वह नगर द्वारा, फाटकों, राजमहलों, अटारियों, दीवारों, और नागरिकों के मनोविनोद के स्थानों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और उस श्रेष्ठ विमान से शस्त्रों की वर्षा करने लगा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

प्रासादा गृहाः, अट्टालास्तदुपरिगृहाः, तोलिकास्तत्पर्यन्तकुड्यानि ताः । विहारान् क्रीडास्थानानि च स बभञ्ज । किंच विमानाग्र्यात्तस्माच्छस्त्रवृष्ट्यादयः पेतुः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

प्रासाद अर्थात् गृह, अट्टालिकाएँ, दिवारें । उन सबों को तथा नागरिकों के मनोविनोद के स्थानों को विनष्ट कर दिया और उस श्रेष्ठ विमान से शस्त्रों की वर्षा करने लगा ॥१०॥

शिला द्रुमाश्चाशनयः सर्पा आसारशर्कराः । प्रचण्डश्चक्रवातोऽभूद्रजसाच्छादिता दिशः ॥११॥

अन्वयः— शिलाः द्रुमाः अशनयः सर्पाः आसार शर्कराः, प्रचण्डः चक्रवातः अभूत् रजसा दिशः आच्छादिताः ॥११॥

अनुवाद— चट्टानें, वृक्ष, वज्र, सर्प और ओले बरसने लगे, जोर का बवंडर आ गया और धूल से सारी दिशाएँ ढंक गयीं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

आसारशर्करा धारासंपातवज्जलोपलाः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

आसार शर्करा अर्थात् ओले बरसने लगे ॥११॥

इत्यर्द्यमाना सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशम् । नाभ्यपद्यत शं राजंस्त्रिपुरेण यथा मही ॥१२॥

अन्वयः— हे राजन् इति सौभेन कृष्णस्य नगरी भृशम् अर्द्यमाना त्रिपुरेणमही यथा शं न अभ्यपद्यत ॥१२॥

अनुवाद— इस तरह से सौभा (शाल्व के विमान) द्वारा अत्यधिक सतायी जा रही भगवान् श्रीकृष्ण की नगरी उसी तरह से शान्ति का अनुभव नहीं कर रही थी जिस तरह प्राचीन काल में त्रिपुरासुर के द्वारा पृथिवी की गयी थीं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

शं सुखं नाभ्यपद्यत ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

सुख का अनुभव नहीं कर पा रही थी ॥१२॥

प्रद्युम्नो भगवान्वीक्ष्य बाध्यमाना निजाः प्रजाः । मा भैष्टेत्यभ्यधाद्वीरो रथारूढो महायशाः ॥१३॥

अन्वयः— महायशाः वीरः भगवान् प्रद्युम्न निजाः प्रजाः बाध्यमानाः वीक्ष्य रथारुढः मा भैष्ट इत्यभ्यधात् ॥१३॥

अनुवाद— महायशस्वी वीर भगवान् प्रद्युम्न अपनी प्रजा को पीडित देखकर रथ पर सवार होकर कहे तुमलोग डरो मत ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

सात्यकिश्चारुदेष्णश्च साम्बोऽक्रूरः सहानुजः । हार्दिक्यो भानुविन्दश्च गदश्च शुकसारणौ ॥१४॥
अपरे च महेष्वासा रथयूथपयूथपाः । निर्ययुर्दंशिता गुप्ता रथेभाश्वपदातिभिः ॥१५॥

अन्वयः— सात्यकिः चारुदेष्णः, साम्बः सहानुजः अक्रूरः, हार्दिक्यः भानुविन्दः गदः शुकसारणौ अपरेच च महेष्वासाः रथयूथपयूथपाः दंशिताः रथेभाश्व पदातिभिः गुप्ताः निर्ययुः ॥१४-१५॥

अनुवाद— सात्यकि, चारुदेष्ण, साम्ब, अपने छोटे भाइयों के साथ अक्रूर, हार्दिक्य, भानुविन्द, गद, शुक, शारण, और दूसरे वीर बड़े-बड़े धनुष धारण करके निकले । ये सबके सब महारथी थे । सब कवच पहने थे । सब की रक्षा के लिए बहुत सी रथ, हाथी, घोड़े और पैदल सेना चल रही थी ॥१४-१५॥

भावार्थ दीपिका नहीं है ॥१४-१५॥

ततः प्रववृते युद्धं शाल्वानां यदुभिः सह । यथाऽसुराणां विबुधैस्तुमुलं लोमहर्षणम् ॥१६॥

अन्वयः— ततः शाल्वानां यदुभिः सह विबुधैः असुराणां यथा तुमुलं लोमहर्षणं युद्धं प्रववृते ॥१६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् शाल्व के सैनिकों का यदुवंशियों के साथ प्राचीन काल में हुए असुरों का देवताओं के साथ युद्ध के समान घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया । उसे देखकर रोंगटे खड़े हो जाते थे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तुमुलं व्याकुलम् । लोमहर्षणं रौद्रम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

तुमुलम् अर्थात् घमासान, **लोम हर्षणम्** अर्थात् रोंगटे खड़ा कर देने वाला ॥१६॥

ताश्च सौभपतेर्माया दिव्यास्त्रै रुक्मिणीसुतः । क्षणोन नाशयामास नैशं तम इवोष्णगुः ॥१७॥

अन्वयः— नैशं तमः उष्णागुः इव रुक्मिणीसुतः दिव्यास्त्रैः क्षणेन ताः सौभपतेः मायाः नाशयामास ॥१७॥

अनुवाद— जिस तरह रात्रि के अन्धकार को सूर्य विनष्ट कर देते हैं उसी तरह दिव्यास्त्रों के प्रयोग से प्रद्युम्नजी ने शाल्व की सारी मायाओं को विनष्ट कर दिया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

नैशं निशि भवं तम उष्णगुः सूर्य इव ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

रात्रि के अन्धकार को सूर्य के समान ॥१७॥

विव्याध पञ्चविंशत्या स्वर्णपुङ्खैरयोमुखैः । शाल्वस्य ध्वजिनीपालं शरैः संनतपर्वभिः ॥१८॥

अन्वयः— स्वर्णपुङ्खैः अयोमुखैः संनतपर्वभिः शरैः पञ्चविंशत्याशाल्वस्य [illegible]

अनुवाद— प्रद्युम्नजी ने सुवर्ण मय पुङ्खों तथा लौह मुखों वाले जिनके गाँठें जान नही पड़ती थी ऐसे पचीस बाणों से शाल्व के सेनापति को छेद दिया ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

किंच विव्याधेति । स्वर्णमयानि पुङ्खानि पृष्ठप्रान्ता येषां तैः । अयो लोहं तन्मयानि मुखान्यग्राणि येषां तैः । ध्वजिनीपालं सेनान्यम् । संनतानि निम्नानि पर्वाणि ग्रन्थयो येषां तैः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च विव्याधेति जिनके पृष्ठभाग स्वर्णमय थे और अग्रभाग लोहे के थे ऐसे पचीस बाणों से सेनापति को छेद दिये । उन बाणों की गांठे नीचे की ओर झुकी थीं ॥१८॥

शतेनाताडयच्छाल्वमेकैकेनास्य सैनिकान् । दशभिर्दशभिर्नेतॄन्वाहनानि त्रिभिस्त्रिभिः ॥१९॥

अन्वयः— शतेन शाल्वं अताडत् अस्यसैनिकान् एकैकेन दशभिः दशभिः नेतॄनवाहनानि त्रिभिः त्रिभिः ॥१९॥

अनुवाद— उन्होंने सौ बाणों से शाल्व को मारा, शाल्ब के प्रत्येक सैनिकों को एक-एक बाण से तथा सारथियों को दस-दस बाणों से तथा वाहनों को तीन-तीन बाणों से ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

सैनिकान् भटान् । नेतॄन् सारथीन् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

सैनिकान् अर्थात् वीरों को, नेतॄन् अर्थात् सारथियों को ॥१९॥

तदद्भुतं महत्कर्म प्रद्युम्नस्य महात्मनः । दृष्ट्वा तं पूजयामासुः सर्वे स्वपरसैनिकाः ॥२०॥

अन्वयः— प्रद्युम्नस्य तदद्भुतं महत्कर्म दृष्ट्वा सर्वे स्वपरसैनिकाः तं पूजयामासुः ॥२०॥

अनुवाद— प्रद्युम्नजी के उस अद्भुत और महान् कर्म को देखकर अपने तथा शत्रुओं के सभी सैनिकों ने प्रद्युम्नजी की प्रशंसा की ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

स्वपरसेनयोर्वर्तमानाः सर्वे पूजयामासुः संमानितवन्तः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अपनें तथा शाल्व की सेना में विद्यमान सबों ने संमानित किया ॥२०॥

बहुरूपैकरूपं तद्दृश्यते न च दृश्यते । मायामयं मयकृतं दुर्विभाव्यं परैरभूत् ॥२१॥

अन्वयः— मयकृतं मायामयं तत् बहुरूपैकरूपं दृश्यते नच दृश्यते परैः दुर्विभाव्यम् अभूत् ॥२१॥

अनुवाद— मय के द्वारा बनाया गया वह माया मय सौभ विमान कभी अनेक रूपों में तो कभी एक रूप में दिखता था । कभी वह दिखता था कभी नहीं दिखता था । वह यदुवंशियों को इस बात का पता भी नही चलता था कि इस समय वह कहाँ हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

कदाचिद्बहुरूपं कदाचिदेकरूपं क्वचिद्दृश्यते क्वचिन्न दृश्यते एवं दुर्विभाव्यं दुर्वितर्क्यमभूत् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

कभी अनेक रूपों में कभी एक रूप में, कहीं दिखता था तो कहीं नहीं दिखता था इस तरह उसका पता लगाना मुश्किल हो गया था ॥२१॥

क्वचिद्भूमौ क्वचिद्व्योम्नि गिरिमूर्ध्नि जले क्वचित् । अलातचक्रवद्भ्राम्यत्सौभं तद्दुरवस्थितम्॥२२॥

अन्वयः— क्वचिद्भूमौ, क्वचिद् व्योम्नि क्वचित् गिरिमूर्धनि क्वचिज्जले, अलातचक्रवद्भ्राम्यत् सौभं तत् दुरवस्थितम् ॥२२॥

अनुवाद— कभी वह पृथिवी पर दिखता था तो कभी आकाश में, कभी पर्वत शिखर पर तो कभी जल में, वह दिखता था। आलात चक्र के समान घूमता हुआ वह सौभ कहीं भी नहीं ठहरता था ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

किंच क्वचिदिति। एवं तद्दुरवस्थितमनवस्थितंचाभूत् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से वह सदैव अस्थिर बना रहता था ॥२२॥

यत्र यत्रोपलक्ष्येत ससौभः सहसैनिकः । शाल्वस्ततस्ततोऽमुञ्चञ्छरान्सात्वतयूथपाः ॥२३॥

अन्वयः— यत्र-यत्र ससौभः सहसैनिकः शाल्वः उपलक्ष्येत सात्वतयूथपाः ततः ततः शरान् अमुञ्चन् ॥२३॥

अनुवाद— शाल्व जहाँ-जहाँ सौम तथा सैनिकों के साथ प्रतीत होता था यदुवंशी यूथपति वहीं-वही बाण मारते थे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

शरैरग्न्यर्कसंस्पर्शैराशीविषदुरासदैः । पीड्यमानपुरानीकः शाल्वोऽमुह्यत्परेरितैः ॥२४॥

अन्वयः— अग्न्यर्क संस्पर्शैः आशीविषदुरासदैः परेरितैः शरैः पीड्यमान पुरानीकः शल्वः अमुहयत् ॥२४॥

अनुवाद— परीक्षित् अग्नि तथा सूर्य के समन गर्म स्पर्श वाले तथा विषैले सर्पों के समान यदुवंशियों के बाणों से शाल्व का नगराकार विमान और सेना अत्यन्त पीडित हो गयी और यदुवंशियों के बाणों से शाल्व मूर्छित हो गया॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अग्निवद्दाहकोऽर्कवद्युगपत्सर्वतः संस्पर्शो येषां तैः। आशीविषवदेकदेशस्पर्शमात्रेण मारकत्वाद्दुरासदर्दुःसहः पीड्यमानं पुरमनीकानि च यस्य सः। परैर्यदुभिरीतैर्मुक्तैः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

जिन सबों का संस्पर्श अग्नि के समान जला देने वाला सूर्य के समान एक ही समय जिन सबों का संस्पर्श होता था, सर्प के समान एक स्थान में संस्पर्श होने पर मृत्यु देने वाला था इस प्रकार दुःसह बाणों से जिसका नगर और सेना पीड़ित होती थी इस प्रकार का वह शाल्ब था। यदुवंशियों के द्वारा छोड़े गये थे वे बाण ॥२४॥

शाल्वानीकपशस्त्रौघैः वृष्णिवीरा भृशादिताः । न तत्यजू रणं स्वं स्वं लोकद्वयजिगीषवः ॥२५॥

अन्वयः— शाल्बानीकपशस्त्रौघैः भृशार्दिताः। लोक़द्वय जिगीषवः वृष्णिवीराः स्वं स्वं रणं न तत्यजुः ॥२५॥

अनुवाद— शाल्ब के सेनापति के बाण समूह से अत्यन्त पीड़ित यदुवंशी वीर अपने अपने स्थान पर युद्ध करते रहे, क्योंकि वे लोक और परलोक को जीत लेना चाहते थे ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

भृशार्दिता अपि स्वं-स्वं रणम् स्वां स्वां युद्धभूमिम् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त पीडित होकर भी अपनी-अपनी युद्धभूमि का परित्याग नहीं किए ।।२५।।

शाल्वामात्यो द्युमान्नाम प्रद्युम्नंप्राक् प्रपीडित: । आसाद्य गदया मौर्व्या व्याहत्य व्यनदद्बली ।।२६।।

अन्वय:— प्राक् प्रपीडित: द्युमान् नामशाल्वामात्य: प्रद्युम्नं आसाद्य बली मौर्व्या गदया व्याहत्य व्यनदत् ।।२६।।

अनुवाद— जिसे प्रद्युम्नजी ने पचीस बाणों से मारकर पीड़ित किया था वह शाल्व का मन्त्री द्युमान् प्रद्युम्नजी के पास आकर अपनी मौर्वी गद से उन पर प्रहार करके वह बलवान गर्जना किया ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

मौर्व्या कार्ष्णायसमय्या । व्याहत्य प्रहृत्य ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

कार्ष्णायसनामकलोहे से बनी गदा से प्रहार करके ।।२६।।

प्रद्युम्नं गदया शीर्णवक्ष:स्थलमरिंदमम् । अपोवाह रणात्सूतो धर्मविद्दारुकात्मज: ।।२७।।

अन्वय:— गदयाशीर्णवक्षस्थलं अरिंदमम् प्रद्युम्नं धर्मविद् दारुकात्मज: सूत: रणात् अपोवाह ।।२७।।

अनुवाद— गदा के प्रहार से प्रद्युम्नजी का वक्ष:स्थल फट सा गया था सारथि के धर्म को जानने वाला दारुक का पुत्र उनका सारथि था वह उन्हें रणभूमि से हटा ले गया ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

अपोवाह अन्यतो निनाय ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

अपोवाह अर्थात् दूर ले गया ।।२७।।

लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन कार्ष्णि: सारथिमब्रवीत् । अहो असाध्विदं सूत यद्रणान्मेऽपसर्पणम् ।।२८।।

अन्वय:— मुहूर्तेन लब्धसंज्ञ: कर्ष्णि: सारथिम् अब्रवीत् अहो सूत इदम् असाधु यत् मे रणाऽपसर्पणम् ।।२८।।

अनुवाद— एक मुहूर्त में होश में आकर प्रद्युम्नजी ने सारथि से कहा सारथे ! तुमने यह बुरा काम किया कि तुम मुझे रणभूमि से हटा लाये ।।२८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२८।।

न यदूनां कुले जात: श्रूयते रणविच्युत: । विना मत्क्लीबचित्तेन सूतेन प्राप्तकिल्बिषात् ।।२९।।

अन्वय:— यदूनां कुले जात: रणविच्युत: न श्रूयते क्लीबचित्तेन सूतेन मत् प्राप्त किल्विषात् बिना ।।२९।।

अनुवाद— यदुवंशियों के वंश में उत्पन्न कोई भी ऐसा नहीं सुना जाता है जो कि कोई रणभूमि छोड़कर अलग हट गया हो । यह कलङ्क मुझे ही लगा । सारथि तुम नपुंसक हो ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

मत् मत्तो विना । क्लीबं चित्तं यस्य तेन । त्वया सूतेन ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

मुझको छोड़कर । नपुंसक चित्त वाले तुम सारथि के द्वारा ।।२९।।

किं नु वक्ष्येऽभिसङ्गम्य पितरौ रामकेशवौ । युद्धात्सम्यगपक्रान्तः पृष्टस्तत्रात्मनः क्षमम् ॥३०॥

अन्वयः— पितरौ रामकेशवौ अभिसंगम्य पृष्टः युद्धात् सम्यगपक्रान्तः तत्र आत्मनः क्षमम् किं नु वक्ष्ये ॥३०॥

अनुवाद— बतलाओ अपने ताऊ बलरामजी और पिता भगवान् श्रीकृष्ण से मिलकर उनके द्वारा पूछे जाने पर युद्ध से हटा हुआ मैं अपने अनुरूप क्या उत्तर दूँगा ?॥३०॥

भावार्थ दीपिका

पितरौ रामकृष्णावभिसङ्गम्य तत्पार्श्वं गत्वा ताभ्यां पृष्टः स्वयोग्यं किं नु वक्ष्यामीति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अपने चाचा बलरामजी और पिता भगवान् श्रीकृष्ण से मिलकर उन लोगों द्वारा पूछे जाने पर मैं अपने अनुरूप कौन सा उत्तर दूँगा ?॥३०॥

व्यक्तं मे कथयिष्यन्ति हसन्त्यो भ्रातृजामयः । क्लैब्यं कथं कथं वीर तवान्यैः कथ्यतां मृधे॥३१॥

अन्वयः— व्यक्तं मे भ्रातृजामय हसन्त्यः कथयिष्यन्ति वीर ! मृधे कथं कथं क्लैव्यं कथ्यताम् ॥३१॥

अनुवाद— मेरी भाभियाँ हँसती हुई मुझसे निश्चित रूप से पूछेंगीं कि वीर तुम्हें युद्ध में नीचा कैसे दिखा दिया तुम नपुंसक कैसे हो गये । यह बतलाओ ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

भ्रातृजामयो भ्रातृभार्याः व्यक्तं निश्चितं मत्क्लैब्यं कथयिष्यन्ति । तत्कथनमनुकरोति–कथं कथमिति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

भाभियाँ मुझसे हँसती हुई मेरी नपुंसकता की बात कहेंगी । वे कहेंगी कि किस-किस तरह तुम नपुंसक हो गये॥३१॥

सारथिरुवाच

धर्मं विजानताऽऽयुष्मन् कृतमेतन्मया विभो । सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद्रथिनं सारथिं रथी ॥३२॥

अन्वयः— हे विभो ! हे आयुष्मन् धर्मं विजानता मया एतत् कृतम् कृच्छ्रगतं रथिनं सूतः रक्षेत् सारथिं रथी ॥३२॥

सारथि ने कहा

अनुवाद— हे स्वामिन् सूत का धर्म जानकर ही मैंने ऐसा किया है । सारथि का धर्म है कि संकट पड़ने पर सारथि रथी की रक्षा करे और रथी सारथि की रक्षा करें ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

विभो हे समर्थ । एतदपसर्पणम् । धर्ममाह–सूत इति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

हे समर्थ, यह अपसर्पण मैंने सारथि का धर्म जानकर किया है । उस धर्म को सूत इत्यादि उत्तरार्द्ध से कहा गया है ॥३२॥

एतद्विदित्वा तु भवान्मयापोवाहितो रणात् । उपसृष्टः परेणेति मूर्च्छितो गदया हतः ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे शाल्वयुद्धे षट्सप्तिततमोऽध्यायः ॥७६॥

अन्वयः— एतत् विदित्वातु भवान् मया रणात् अपोवाहितः परेण गदया हतः मूर्छितः उपसृष्टः ॥३३॥

अनुवाद— इस धर्म को जानकर ही मैनें आपको रणभूमि से हटा लिया शत्रु ने आप पर गदा प्रहार किया था आप मूर्च्छित हो गये थे अतएव आप सङ्कट में थे । इसीलिए मैंने ऐसा किया ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के शाल्वयुद्ध नामक छिहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७६।।

भावार्थ दीपिका

अपोवाहितोऽपनीतः । उपसृष्ट उपसर्गं पीडां प्राप्त इति कृत्वा । यतः परेण शत्रुणा गदया हतः सन्मूर्च्छितो निःसंज्ञतां गतो भवानिति ।।३३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।।७६।।

भाव प्रकाशिका

अपोवाहितः हटा लाये गये । उपसृष्टः अर्थात् पीड़ित क्योंकि शत्रु ने आप पर गदा का प्रहार किया था और आप मूर्छित हो गये थे ।।३३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका टीका के छिहत्तरवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।७६।।

सत्तहत्तरवाँ अध्याय

शाल्व का वध

श्रीशुक उवाच

स उपस्पृश्य सलिलं दंशितो धृतकार्मुकः ।नय मां द्युमतः पार्श्वं वीरस्येत्याह सारथिम् ।।१।।

अन्वयः— सः सलिलम् उपस्पृश्य दंशितः धृतकार्मुकः वीरस्य द्युमतः पार्श्वं मां नय इति सारथिम् आह ।।१।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— प्रद्युम्नजी जल का आचमन करके कवच पहनकर धनुष धारण करके सारथि से कहे मुझे वीर द्युमान् के पास ले चलो ।।१।।

भावार्थ दीपिका

सप्तयुक्सप्ततितमे नानामायाविचक्षणः । कृष्णेनागत्य शाल्वस्तु हतः सौभं च चूर्णितम् । दंशितः सन्नद्धः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

सतहत्तरवें अध्याय में अनेक प्रकार की माया करने में चतुर शाल्व को भगवान् श्रीकृष्ण ने उसको मारकर सौभ को भी चूर-चूर कर दिया **दंशितः** कवच पहने हुए ।।१।।

विधमन्तं स्वसैन्यानि द्युमन्तं रुक्मिणीसुतः । प्रतिहत्य प्रत्यविध्यन्नाराचैरष्टभिः स्मयन् ।।२।।

अन्वयः— स्व सैन्यानि विधमन्तं द्युमन्तं रुक्मिणीसुतः प्रतिहत्य । अष्टभिः स्मयन् नाराचैः प्रत्यविध्यत् ।।२।।

अनुवाद— अपनी सेना को नष्ट करने वाले द्युमान को रोककर प्रद्युम्नजी ने मुस्कुराते हुए उसे आठ बाणों से मारा ।।२।।

भावार्थ दीपिका

विघमन्तं क्षपयन्तम् । प्रतिहत्य प्रतिरुध्य ।।२।।

भाव प्रकाशिका

विनष्ट करने वाले, **प्रतिहत्य** अर्थात् रोककर ।।२।।

चतुर्भिश्चतुरो वाहान्सूतमेकेन चाहनत् । द्वाभ्यां धनुश्च केतुं च शरेणान्येन वै शिरः ।।३।।

अन्वयः— चतुर्भिः चतुरः वाहान् एकेन च सूतम् अहनत् । द्वाभ्यां धनुश्च केतुश्च अन्येन शरेण वै शिरः ।।३।।

अनुवाद— चार बाणों से उसके चार घोड़ों को और एक बाण से सारथि को मारे । दो बाणों से उसके धनुष को तथा ध्वज को और एक बाण उसके शिर में मारे ।।३।।

भावार्थ दीपिका

अष्टानां विनियोगमाह-चतुर्भिरिति ।।३।।

भाव प्रकाशिका

आठ बाणों के उपभोग को चतुर्भिः इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है ।।३।।

गदसात्यकिसाम्बाद्या जघ्नुः सौभपतेर्बलम् । पेतुः समुद्रे सौभेयाः सर्वे संछिन्नकन्धराः ।।४।।

अन्वयः— गदसात्यकि साम्बाद्याः सौभपतेवलम् जघ्नुः संछिन्नकन्धराः सर्वे सौभेयाः समुद्रेपेतुः ।।४।।

अनुवाद— गद, सात्यकि और साम्ब इत्यादि शाल्व की सेना को मार दिए । उन सबों की गर्दन कट गयी थीं और वे सब समुद्र में गिर पड़े ।।४।।

भावार्थ दीपिका

सौभेयाः सौभस्थाः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

सौभेयाः अर्थात् सौभ में रहने वाले ।।४।।

एवं यदूनां शाल्वानां निघ्नतामितरेतरम् । युद्धं त्रिणवरात्रं तदभूत्तुमुलमुल्बणम् ।।५।।

अन्वयः— एवं यदूनां शाल्वानां इतरेतरम् निघ्नताम् तत् त्रिणवरात्रं तुमुलम् उल्बणम् युद्धम् अभूत् ।।५।।

अनुवाद— इस तरह से यदुवंशियों और शाल्वों की सेना को परस्पर में एक दूसरें को मारते हुए धमासान और भयङ्कर युद्ध के सत्ताइस दिन बीत गये ।।५।।

भावार्थ दीपिका

नवानां रात्रीणां समाहारो नवरात्रम्, त्रयाणां नवरात्राणां समाहारस्त्रिणवरात्रम् । सप्तविंशतिमहोरात्राणीत्यर्थः । तुमुलमाकुलम्। उल्बणं घोरम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

नवरात्रियों के समाहार को नवरात्र कहते है । तीन नवरात्रों के समहारा को त्रिणवरात्रम् अर्थात् सत्ताइस दिन। तुमुल अर्थात् घमासान **उल्बणम्** अर्थात् भयङ्कर ।।५।।

इन्द्रप्रस्थं गतः कृष्ण आहूतो धर्मसूनुना । राजसूयेऽथ निर्वृत्ते शिशुपाले च संस्थिते ।।६।।
कुरुवृद्धाननुज्ञाप्य मुनींश्च ससुतां पृथाम् । निमित्तान्यतिघोराणि पश्यन्द्वारवतीं ययौ ।।७।।

अन्वयः— धर्मसूनुना आहूतः कृष्णः इन्द्रप्रस्थं गतः, अथराजसूये निर्वृत्ते शिशुपाले च संस्थिते कुरुवृद्धान् मुनीन् च ससुतां पृथां अनुज्ञाप्य अतिघोराणि निमितानि पश्यन् द्वारवतीं ययौ ।।६-७।।

अनुवाद— उस समय भगवान् श्रीकृष्ण धर्मराज पुत्र युधिष्ठिर के बुलाने से इन्द्रप्रस्थ गये थे। राजसूय यज्ञ के समाप्त हो जाने तथा शिशुपाल के मरने के बाद कुरुवंश के मुनियों तथा अपने पुत्रों के साथ कुन्ती से अनुमति प्राप्त करके अत्यन्त भयङ्कर अपशकुनों को देखकर द्वारका चले आये ॥६-७॥

भावार्थ दीपिका

परमतमुपन्यस्यति-इन्द्रप्रस्थं गत इत्यादिना ॥६-७॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्रप्रस्थं गत० इत्यादि के द्वारा दूसरे के मत को उपन्यस्त करते है ॥६-७॥

आह चाहमिहायात आर्यमिश्राभिसङ्गतः । राजन्याश्चैद्यपक्षीया नूनं हन्युः पुरीं मम ॥८॥

अन्वयः— आह च अहम्आर्य मिश्राभिसंगतः इह आयातः नूनं चैद्यपक्षीयाः राजन्याः ममपुरीं हन्युः ॥८॥

अनुवाद— मैं तो अपने पूज्य भाई बलरामजी के साथ यहाँ आया हूँ, निश्चित रूप से शिशुपाल के पक्ष वाले राजागण मेरी द्वारकापुरी पर आक्रमण करते होंगे ॥८॥

भावार्थ दीपिका

आह चेति स्वगतमेव पथि चिन्ताविजृम्भितभाषणम् । आर्यमिश्राभिसङ्गतो बलभद्रसहितः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

रस्ते में वे अपने मन में ही सोचने लगे कि मैं तो बलरामजी के साथ ॥८॥

वीक्ष्य तत्कदनं स्वानां निरूप्य पुररक्षणम् । सौभं च शाल्वराजं च दारुकं प्राह केशवः ॥९॥

अन्वयः— स्वानां तत कदनं पुररक्षणं निरूप्य सौभं च शाल्वराजं च वीक्ष्य केशवः दारुकं प्राह ॥९॥

अनुवाद— द्वारका आकर अपने लोगों के विनाश को उन्होंने देखा। नगर की रक्षा में उन्होंने वलरामजी को नियुक्त कर दिया तथा सौभपति शाल्व को देखकर श्रीभगवान् ने दारुक से कहा ॥९॥

भावार्थ दीपिका

दुर्निमित्तदर्शनाकुलचित्त एवं चिन्तयन् द्वारकामागत्य स्वानां कदनं वीक्ष्य सौभं च शाल्वराजं च वीक्ष्य रामं पुररक्षणं प्रति निरूप्य नियुज्य दारुकं प्राहेत्यन्वयः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

अपशकुन दर्शन के अनुकूल चित्त वाले वे इस प्रकार से चिन्तन करते हुए द्वारका आकर अपने लोगों के विनाश और तथा सौभाधिपति शाल्व को देखकर बलरामजी को नगर की रक्षा के कार्य में नियुक्त करके अपने सारथि दारुक से कहे ॥९॥

रथं प्रापय मे सूत शाल्वस्यान्तिकमाशु वै । संभ्रमस्ते न कर्तव्यो मायावी सौभराडयम् ॥१०॥

अन्वयः— हे सूत मे रथम् आशु सौभस्य अन्तिकम् प्रापय । अयम् सौभराट् मायावी ते संभ्रमः न कर्तव्यः ॥१०॥

अनुवाद— सारथे ! मेरे रथ को अत्यन्त शीध्र सौभाधिपति शाल्व के पास ले चलो यह बहुत बड़ा मायावी है तुम डरना मत ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ते त्वया ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

ते अर्थात् तुम्हारे द्वारा ॥१०॥

इत्युक्तश्चोदयामास रथमास्थाय दारुकः । विशन्तं ददृशुः सर्वे स्वे परे चारुणानुजम् ॥११॥

अन्वयः— इत्युक्तः दारुकः रथम् आस्थाय चोदयामास, विशन्तं सर्वे स्वे परे च अरुणानुजम् ददृशुः ॥११॥

अनुवाद— इस तरह से कहे जाने पर दारुक रथ पर बैठकर रथ को शाल्व की ओर ले गये गरुड ध्वज भगवान् के युद्ध भूमि में प्रवेश करते ही उनकी अपनी सेना और शाल्व की सेना ने पहचान लिया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

आस्थाय सम्यगधिष्ठाय अरुणानुजं ध्वजे वर्तमानं गरुडम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

अस्थाय अर्थात् अच्छी तरह से बैठकर, अरुणानुजम् अर्थात् ध्वजपर वर्तमान गरुड को ॥११॥

शाल्वश्च कृष्णमालोक्य हतप्रायबलेश्वरः । प्राहरत्कृष्णसूताय शक्तिं भीमरवां मृधे ॥१२॥

अन्वयः— कृष्णमालोक्य हतप्रायबलेश्वरः मृधे भीमरवां शक्तिं कृष्णसूताय प्राहरत् ॥१२॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर जिसकी सेना प्रायः नष्ट हो चुकी थी वह शाल्व युद्ध में भगवान् श्रीकृष्ण के सारथि पर एक भयङ्कर शब्द करने वाली शक्ति को चलाया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

हतप्रायस्य बलस्य सैन्यस्येश्वरः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

विनष्टप्राय सेना के स्वामी ॥१२॥

तामापतन्तीं नभसि महोल्कामिव रंहसा । भासयन्तीं दिशः शौरिः सायकैः शतधाऽच्छिनत् ॥१३॥

अन्वयः— तां नभसि महोल्कामिव रंहसा आपतन्तीम् दिशः भासयन्तीं शोरि सायकैः शतधाच्छिनत् ॥१३॥

अनुवाद— उस आकाश में बहुत बड़े लूक के समान बड़े वेग से सारथि की ओर आती हुई जिससे सारी दिशाएँ प्रकाशित हो गयी थी उस शक्ति को भगवान श्रीकृष्ण ने अपने बाणों से सैकड़ों टुकड़े कर दिए ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

तं च षोडशभिर्विद्ध्वा बाणैः सौभं च खे भ्रमत् । अविध्यच्छरसंदोहै स्वं सूर्य इव रश्मिभिः॥१४॥

अन्वयः— तं च षोडशभिः बाणैः विद्ध्वा खे भ्रमत् सौभं च शरसंदोहैः अविध्यत् । रश्मिभिः सूर्यः खं इव ॥१४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् शाल्व को सोलह बाणों से बेधकर आकाश में घूमते हुए सौभ को अपने बाण समूह से उसी तरह छलनीकर दिए जैसे सूर्य अपनी किरणों से आकाश को भर देते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तं च शाल्वम् शरसंदोहैः शरजालैः । खं सूर्य इव रश्मिभिरिति सुनीलत्वविपुलत्वादिभिराकाशोपमा सौभस्य । अचिन्त्यवेगबाहुल्यादिभिः शराणां रश्मिसादृश्यम् । अयत्नेनैव रश्मिवच्छरजालप्रसारणात्सूर्यतुल्यः श्रीकृष्ण इति ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

तम् च अर्थात् शाल्व को । **शरसंदोहैः** अर्थात् बाणसमूह से **खं सूर्य इव रश्मिभिः** में सौभकी उपमा आकाश से इसलिए है कि वह भी आकाश के ही समान नीला और विशाल था श्रीभगवान् के अचिन्त्य बाहुबल आदि के द्वारा बाणों की किरणों से सदृशता हैं । बिना प्रयास के ही किरणों के समान बाण समूह के फैलाने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण को सूर्य के समान बतलाया गया है ॥१४॥

शाल्वः शौरेस्तु दोः सव्यं सशार्ङ्गं शार्ङ्गधन्वनः । बिभेद न्यपतद्धस्ताच्छार्ङ्गमासीत्तदद्भुतम् ॥१५॥

अन्वयः— शाल्वः शार्ङ्गधन्वनः शशार्ङ्गं सव्यं दोः विभेद तेन हस्तात् शार्ङ्गं न्यपतत् तत् अद्भुतम् आसीत् ॥१५॥

अनुवाद— शल्व ने शार्ङ्ग धनुष धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की बायी भुजा में बाणों से मारा जिससे भगवान् के हाथ से शार्ङ्ग धनुष छूटकर गिर पड़ा यह एक अद्भुत घटना थी ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

दो र्बाहुम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

दोः अर्थात् भुजा को ॥१५॥

हाहाकारो महानासीद्भूतानां तत्र पश्यताम् । निनद्य सौभराडुच्चैरिदमाह जनार्दनम् ॥१६॥

अन्वयः— तत्र पश्यताम् भूतानाम् महान् हाहाकारः आसीत् सौभराट् उच्चैः निनद्य जनार्दनम् इदमाह ॥१६॥

अनुवाद— युद्ध को देखने वाले लोगों ने जोर से हाहाकार किया । सौभपति शाल्व ने गरजकर श्रीभगवान से यह कहा ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

यत्त्वया मूढ नः सख्युर्भ्रातुर्भार्या हृतेक्षताम् । प्रमत्तः स सभामध्ये त्वया व्यापादितः सखा ॥१७॥

अन्वयः— मूढ यत् त्वया नः सख्यु भ्रातुः इक्षताम् भार्या हृता, समामध्ये प्रमत्तः सः सखा त्वा व्यापादितः ॥१७॥

अनुवाद— मूर्ख तुमने जो हमारे मित्र तथा भाई की पत्नी को हमलोगों के सामने ही हरण कर लिया तथा सभा में जब कि हमारा वह मित्र असावधान था, उसको तुमने मार दिया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

सख्युः शिशुपालस्य । ईक्षतामस्माकम् । प्रमत्तोऽनवहितः । व्यापादितो निहतः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

सख्युः अर्थात् शिशुपाल के । हमलोगों के सामने हो प्रमत्तः अर्थात् असावधान व्यापादितः अर्थात् मार दिया गया ॥१७॥

तं त्वाऽद्य निशितैर्बाणैरपराजितमानिनम् । नयाम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेर्ममाग्रतः ॥१८॥

अन्वयः— तं त्वां निशितैः बाणैः ममाग्रतः तिष्ठेः अपराजितमानिनम् त्वा अद्य अपुनरावृत्तिं नयामि ॥१८॥

अनुवाद— मैं अपने तीक्ष्ण बाणों से अपने को अपराजेय मानने वाले तुमको आज उस स्थान पर पहुँचा दूँगा जहाँ से कोई लौटता नहीं है; यदि तुम मेरे सामने ठहर गये तब ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अपराजितोऽहमिति मानिनं मानयन्तम् । अपुनरावृत्तिं मृत्युम् । तिष्ठेः स्थास्यसि ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

मैं अपराजेय हूँ इस प्रकार से घमण्ड करने वाले, अपुनरावृतिम्, अर्थात् मृत्यु को **तिष्ठेः** ठहर गये तो ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

वृथा त्वं कत्थसे मन्द न पश्यस्यन्तिकेऽन्तकम् । पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहुभाषिणः ॥१९॥

अन्वयः— हे मन्द, वृथात्वं कत्थसे अन्तिके अन्तकम् न पश्यसि शूराः पौरुषं दर्शयन्ति स्म बहुभाषिणः न ॥१९॥

अनुवाद— मूर्ख तुम व्यर्थ ही आत्मशलाघा करते हो सन्निकट में विद्यमान अपनी मृत्यु को नहीं देख रहे हो । वीर पुरुष पराक्रम दिखलाते हैं बहुत बोलते नहीं है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१९।।

इत्युक्त्वा भगवाञ्छाल्वं गदया भीमवेगया । तताड जत्रौ संरब्धः च चकम्पे वमन्नसृक् ।।२०।।

अन्वयः— इत्युक्त्वाभगवान् संरब्ध भीमवेगया गदया शाल्वं जत्रौ तताड स असृक् वमन् चकम्पे ।।२०।।

अनुवाद— यह कहकर क्रोध करके भगवान् अपनी भयङ्कर वेग वाली गदा से शाल्व के जत्रु स्थान (हंसली) पर मारे इससे वह खून उगलता हुआ काँपने लगा ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

गदायां संनिवृत्तायां शाल्वस्त्वन्तरधीयत । ततो मुहूर्तं आगत्य पुरुषः शिरसाच्युतम् ।।
देवक्या प्रहितोऽस्मीति नत्वा प्राह वचो रुदन् ।।२१।।

अन्वयः— गदायां सन्निवृत्तायां शाल्वः अन्तरधीयत ततः मुहूर्ते आगत्य पुरुषः शिरसा अच्युतम् नत्वा, रुदनवचः प्राह देवक्या प्रहितोऽस्मिति ।।२१।।

अनुवाद— गदा जब लौटकर श्रीभगवान् के पास आ गयी तो शाल्ब अन्तर्धान हो गया । मुहुर्त भर वाद एक पुरुष आया और भगवान् को प्रणाम करके रोता हुआ कहा । देवकीजी ने मुझे भेजा है ।।२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२१।।

कृष्ण कृष्ण महाबाहो पिता ते पितृवत्सल । बद्ध्वापनीतः शाल्वेन सौनिकेन यथा पशुः ।।२२।।

अन्वयः— हे कृष्ण, कृष्ण हे महाबाहो हे पितृवत्सलते पिता सैनिकेन पशुः यथा शाल्वेन बद्ध्वापनीतः ।।२२।।

अनुवाद— उन्होंने कहा है कि हे महाबाहो श्रीकृष्ण, हे अपने पिता के प्रति अत्यन्त प्रेम रखने वाले कृष्ण, शल्व तुम्हारे पिता को उसी तरह बाँधकर ले गया है जिस तरह कोई कसाई पशु को बाँधकर ले जाता है ।।२२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२२।।

निशम्य विप्रियं कृष्णो मानुषीं प्रकृतिं गतः । विमनस्को घृणी स्नेहाद्बभाषे प्राकृतो यथा ।।२३।।

अन्वयः— विप्रियं निशम्य कृष्णः मानुषीं प्रकृतिं गतः विमनस्कः घृणी स्नेहात् प्राकृतो यथा बभाषे ।।२३।।

अनुवाद— इस अप्रिय समाचार को सुनकर भगवन् श्रीकृष्ण मनुष्य जैसे हो गये । उनके मुख पर उदासी छा गयी करुणाक्रान्त होकर वे स्नेह के कारण कहे ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

घृणी दयावान् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

घृणी अर्थात् दयालु ।।२३।।

कथं राममसम्भ्रान्तं जित्वाऽजेयं सुरासुरैः । शाल्वेनाल्पीयसा नीतः पिता मे बलवान्विधिः ।।२४।।

अन्वयः— असम्भ्रान्तं सुरासुरैः अजेयं रामं कथं जित्वा अल्पीयसा शाल्वेन मे पिता नीतः विधिःबलवान् ।।२४।।

अनुवाद— सदा सावधन रहने वाले बलरामजी को सभी देवता और असुर मिलकर भी नहीं जीत सकते हैं, वे अजेय है उनको बहुत कम बल वाले शाल्व ने कैसे जीतकर मेरे पिता को लाया ? सचमुच विधि ही बलवान होता है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२४।।

इति ब्रुवाणे गोविन्दे सौभराट् प्रत्युपस्थितः । वसुदेवमिवानीय कृष्णं चेदमुवाच सः ॥२५॥

अन्वयः— इति गोविन्दे ब्रुवाणे सौभराट् प्रत्युपस्थितः वसुदेवामिव आनीय सः कृष्णं च इदम् उवाच ॥२५॥

अनुवाद— इस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण के कहने पर सौभराट् शाल्व उनके सामने वसुदेवजी के समान पुरुष को लाकर उपस्थित हुआ और भगवान् श्रीकृष्ण से कहा ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

एष ते जनिता तातो यदर्थमिह जीवसि । वधिष्ये वीक्षतस्तेऽमुमीशश्चेत्पाहि बालिश ॥२६॥

अन्वयः— एष ते जनिता तातः यदर्थं इह जीवसि, बालिश ते वीक्षतः बधिष्ये ईशः चेत् अमुम् पाहि ॥२६॥

अनुवाद— ये तुमको जन्म देने वाले तुम्हारे पिता हैं । जिनके लिए तुम जी रहे हो । तुम्हारी आँखों के सामने ही इनको मैं मार रहा हूँ यदि तुममें बल है तो तुम इनको बचा लो ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

जनिता जनयिता । ईशश्चेच्छक्तश्चेत् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

जनिता अर्थात् उत्पन्न करने वाले । ईशश्चेत् यदि तुममें सामर्थ्य हो तो ॥२६॥

एवं निर्भर्त्स्य मायावी खड्गेनानकदुन्दुभेः। उत्कृत्य शिर आदाय खस्थं सौभं समाविशत् ॥२७॥

अन्वयः— मायावी एवं निर्भत्स्य खड्गेन आनकदुन्दुभेः शिरः उत्कृत्य आदाय खस्थं सौभं समविशत् ॥२७॥

अनुवाद— वह मायावी शाल्व इस प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण को फटकार कर खड्ग से उस मायामय वसुदेवजी के शिर को काटकर तथा उसे लेकर आकाश में विद्यमान सौभ में प्रवेश कर गया ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

ततोमुहूर्त प्रकृतावुपप्लुतः स्वबोध आस्ते स्वजनानुषङ्गतः ।
महानुभावस्तदबुध्यदासुरीं मायां स शाल्व प्रसृतां मयोदिताम् ॥२८॥

अन्वयः— ततः स्वबोधमहानुभावः स्वजनानुषङ्गतः मुहूर्तं प्रकृतावुपल्लुतः तत् मयोदितां शाल्ब प्रसृतां असुरीं मायां स अबुध्यत ॥२८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् यद्यपि श्रीभगवान् श्रीकृष्ण स्वाभाविक रूप से ज्ञान स्वरूप एवं महानुभाव है फिर भी स्वजन वसुदेवजी के प्रति प्रेमातिशय के कारण वे दो घड़ी के लिए साधारण पुरुषों के समान शोक में डूब गये । किन्तु उसके पश्चात् वे जान गये कि जिसे मय ने शाल्ब को बतलाया था वही यह असुरी माया है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

स्वबोधः स्वतः सिद्धज्ञानवानपि स्वजनस्नेहतः प्रकृतौ मनुष्यस्वभावे उपप्लुतो निमग्न आस्ते अतिष्ठत् । ततस्तत्सर्वमासुरीं मायामबुध्यत् मायेयमिति ज्ञातवान् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

स्वबोधः अर्थात् स्वयं सिद्धज्ञानवान् अपने पिता वसुदेवजी के प्रति स्नेह के कारण मनुष्य के स्वभाव से शोकसंताप में डूब गये । उसके पश्चात् वे यह जान गये कि यह तो आसुरी माया है ॥२८॥

न तत्र दूतं न पितुः कलेवरं प्रबुद्ध आजौ समपश्यदच्युतः ।
स्वप्नं यथा चाम्बरचारिणं रिपुं सौभस्थमालोक्य निहन्तुमुद्यतः ॥२९॥

अन्वयः— प्रबुद्धः अच्युतः तत्र आजौ न दूतं न पितुकालेवरं समपश्यत् स्वाप्नं यथा च अम्बर चारिणं सौभस्थं रिपुम् आलोक्य निहन्तुम् उद्यतः ।।२९।।

अनुवाद— सचेत होकर भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि उस युद्ध भूमि में न तो वह दूत है और वसुदेवजी का शरीर ही है । यह सबकुछ स्वाप्न सा था । इसके पश्चात आकाश में संचरण करने वाले सौभ में विद्यमान शत्रु शाल्व को मारने के लिए तैयार हो गये ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

स्वाप्नं स्वप्नप्रपञ्च यथा ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

स्वप्न कालिक प्रपञ्च के समान ।।२९।।

एवं वदन्ति राजर्षे ऋषयः केचनान्विताः । यत्स्ववाचो विरुध्येत नूनं ते न स्मरन्त्युत ॥३०॥

अन्वयः— हे राजर्षे केचनान्विताः ऋषयः एवं वदन्ति, यत्स्व वाचः विरुध्येत नूनं तेन स्मरन्ति उत ।।३०।।

अनुवाद— हे राजर्षे इस विषय में कुछ ऋषिगण इसी प्रकार से कहते है निश्चित रूप से वे पूर्वापर का विचार नहीं करते । उनकी बातें स्वयं इससे विरोध रखती हैं ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

एवं परमतमुपन्यस्तं निराकरोति-एवमिति । केच केचन । नान्विता अनन्विताः पूर्वापरानुसन्धानरहिताः । तदाह-यत्स्ववाच इति । तन्नानुस्मरन्तीत्यर्थः । अयमभिप्रायः-न तावद्राजसूयार्थं रामेण सह गतः श्रीकृष्णः, सङ्कर्षणमनुज्ञाप्येति पूर्वमुक्तत्वात् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से दूसरों के द्वारा उपन्यस्त मत का खण्डन करते हैं केच अर्थात् कुछ । नान्विता अर्थात् पूर्वा पर का विचार नहीं करने वाले, अनन्वय उसे कहते हैं कि यह उनकी बातों से विरोध रखता है उसका वे ख्याल नहीं रखते हैं, कहने का अभिप्राय है कि भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी के साथ भी राजसूय यज्ञ में नहीं गये थे । पहले ही कहा गया है कि वे बलरामजी से आज्ञा लेकर राजसूय यज्ञ में गये थे ।।३०।।

क्व शोकमोहौ स्नेहो वा भयं वा येऽज्ञसंभवाः । क्व चाखण्डितविज्ञानज्ञानैश्वर्यस्त्वखण्डितः ॥३१॥

अन्वयः— ये यज्ञ संभवाः शोकमोहौ क्व स्नेहो वा, भयं वाक्य क्व च अखण्डित विज्ञान ज्ञानैश्वर्यः तु अखण्डितः ।।३१।।

अनुवाद— अज्ञानियों को होने वाले शोक, मोह, स्नेह और भय कहाँ और कहाँ तो परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्ण जिनका, विज्ञान, ज्ञान एवं ऐश्वर्य अखण्डित है । श्रीभगवान् में कैसे हो सकते हैं ?।।३१।।

भाव प्रकाशिका

यह सब श्रीभगवान में होना असम्भव है इस बात को शुकदेवजी ने **क्वशोकमोहौ० इत्यादि** श्लोक से कहा है। अथवा अपशकुन देख कर उनमें भय कैसे हो सकता है। यह जो कहा गया है कि वे सब मेरी द्वारकापुरी को विनष्ट कर सकते हैं। यह जो कहा गया है कि भगवान के हाँथ से शार्ङ्गधनुष छूटकर गिर गया, अथवा श्रीभगवान् को भय बतलाया ये सब भगवान में नहीं हो सकते हैं। ये सब तो अज्ञानियों में होते हैं। श्रीभगवान् के विज्ञान, ज्ञान और ऐश्वर्य अखण्डित है। विज्ञान स्वरूप विषयक ज्ञान को कहते है। बाह्य विषय विषयक ज्ञान शब्द वाच्य है ॥३१॥

यत्पादसेवोर्जितयात्मविद्यया हिन्वन्त्यनाद्यात्मविपर्ययग्रहम् ।
लभन्त आत्मीयमनन्तमैश्वरं कुतो नु मोहः परमस्य सद्गतेः ॥३२॥

अन्वयः— यत्पादसेवोर्जितयाऽऽत्म विद्यया हिन्वन्त्यना द्यात्मविपर्ययग्रह्मम आत्मीयमनन्तमैश्वरं लभन्ते, परमस्य सद्गतेः मोहः कुतो नु ॥३२॥

अनुवाद— बड़े-बड़े ऋषि महर्षि जिन भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा करके आत्मविद्या को प्राप्त करते हैं और उसके द्वारा देहादि में आत्मत्व बुद्धिरूप अनादि अज्ञान को विनष्ट कर देते हैं तथा आत्मविषयक अनन्त ऐश्वर्य को प्राप्त करते है, उन सत् पुरुषों की सद्गति स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण में मोह कैसे सम्भव है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

किंच यस्य पादसेवया ऊर्जिता पुष्कला या आत्मविद्या तया अनादिश्चासावात्मविपर्ययग्रहश्च अहं कृशः सुखी दुःखीत्यादिलक्षणस्तं हिन्वन्ति नाशयन्ति सन्तः। ऐश्वरं पदं च। तस्य सतां गतेः कुतो नु मोह इति। अतो नैतद्वचनं सत्यमित्यर्थः॥३२॥

भाव प्रकाशिका

जिन श्रीभगवान् के चरणकमलों की सेवा से ऋषि महर्षिगण पुष्कल मात्रा में प्राप्त आत्मविद्या के द्वारा देहादि में आत्मबुद्धि रूप विपरीत ज्ञान को विनष्ट कर देते हैं तथा ऐश्वर पद को प्राप्त करते हैं। उन सत्पुरुषों के प्राप्य स्वरूप श्रीभगवान् को मोह कैसे सम्भव है ? अतएव यह बात सत्य नहीं हो सकती है ॥३२॥

तं शस्त्रपूगैः प्रहरन्तमोजसा शाल्वं शरैः शौरिरमोघविक्रमः ।
विद्ध्वाऽच्छिनद्वर्म धनुः शिरोमणिं सौभं च शत्रोर्गदया रुरोज ह ॥३३॥

अन्वयः— शस्त्रपूगैः ओजसा प्रहरन्तं तं शाल्वं अमोघ विक्रमः शौरिः शरैः विद्ध्वा वर्म धनुः शिरोमणिं अच्छिनत् गदया शत्रोः सौभं च रुरोज ॥३३॥

अनुवाद— शाल्व भगवान् श्रीकृष्ण पर बड़े उत्साह और वेग से शस्त्रों की वर्षा कर रहा था। अमोघ शक्ति सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने बाणों से शाल्व को बेध दिए थे। उन्होंने उसके कवच, धनुष और शिरोमणि को छिन्न-भिन्न कर दिया था। वे अपनी गदा से शाल्ब के सौभ को भी जर्जर कर दिये थे ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

किं तर्हि सत्यं तदाह-तं शस्त्रपूगैरिति। वर्म कवचम् रुरोज बभञ्ज ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

तो फिर क्या सत्य है ? इस पर शुकदेवजी ने **तं शस्त्रपूगैः इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं वर्म अर्थात् कवच, रुरोज अर्थात् तोड़ दिया ॥३३॥

तत्कृष्णहस्तेरितया विचूर्णितं पपात तोये गदया सहस्रधा ।
विसृज्य तद्भूतलमास्थितो गदामुद्यम्य शाल्वोऽच्युतमभ्यगाद्द्रुतम् ॥३४॥

अन्वयः— कृष्णहस्तेरितया गदया सहस्रधा विचूर्णितं तत् तोये पपात । तत् विसृज्य भूतलम् आस्थितः शाल्वः गदामुद्यम्य द्रुतम् अच्युतम् अभ्यगात् ॥३४॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के हाथों से चलायी हुई गदा से वह सौम चूर-चूर होकर समुद्र में गिर पड़ा। उसके गिरने से पहले ही शाल्व हाथ में गदा लेकर पृथिवी पर कूद पड़ा और गदा को उठाकर वह बड़े वेग से भगवान् श्रीकृष्ण पर झपटा ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

आधावतः सगदं तस्य बाहुं भल्लेन छित्त्वाथ रथाङ्गमद्भुतम् ।
वधाय शाल्वस्य लयार्कसंनिभं बिभ्रद्बभौ सार्क इवोदयाचलः ॥३५॥

अन्वयः— आधावतः तस्य सगदं बाहुं भल्लेन छित्त्वा अथ शाल्वस्य वधाय लयार्क सन्निभं रथाङ्गं बिभ्रत् सार्कः उदयाचल इव बभौ ॥३५॥

अनुवाद— दौड़कर आते हुए शाल्व को गदा से युक्त हाथ को श्रीभगवान् ने भल्ल नामक बाण से काट दिया, उसके पश्चात् शाल्व का वध करने के लिए प्रलय कालीन सूर्य के समान चमकते हुए चक्र को लेकर वे सूर्य से सुशोभित उदयाचल के समान सुशोभित हुए ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

लयार्कसंनिभं प्रलयकालीनसूर्यसदृशम् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

लयार्कसन्निभम् अर्थात् प्रलय कालीन सूर्य के समान ॥३५॥

जहार तेनैव शिरः सकुण्डलं किरीटयुक्तं पुरुमायिनो हरिः ।
वज्रेण वृत्रस्य यथा पुरन्दरो बभूव हाहेति वचस्तदा नृणाम् ॥३६॥

अन्वयः— हरि तेनैव पुरुमायिनः सकुण्डलं किरीटयुक्तं शिरः जहार यथा पुरन्दरः वज्रेण वृत्रस्य शिरः जहारतदा नृणाम् हाहेति वचः बभूव ॥३६॥

अनुवाद— श्रीहरि उस चक्र से ही बहुत अधिक माया करने वाले उस शाल्व के किरीट तथा कुण्डल से युक्त शिर को उसी तरह से काट दिया जिस तरह इन्द्र ने वज्र से वृत्रासुर के शिर को काट दिया था। उस समय शाल्व के सैनिक हाय राम चिल्लाने लगे ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

तस्मिन्निपतिते पापे सौभे च गदया हते । नेदुर्दुन्दुभयो राजन्दिवि देवगणेरिताः ॥
सखीनामपचितिं कुर्वन्दन्तवक्रो रुषाभ्यगात् ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सौभवधो नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

अन्वयः— राजन् तस्मिन् पापे निपतिते, सौभे च गदया हते देवगणेरिता दुन्दुभयः दिवि नेदुः सखीनाम् अपचितिं कर्तुम् दन्तवक्त्रः रुषा अभ्यगात् ॥३७॥

अनुवाद— राजन् पापी शाल्व के मर जाने पर तथा गदा के प्रहार से सौभ के विनष्ट हो जाने पर देवताओं ने स्वर्ग में दुन्दुभियाँ बजायी । उसी समय अपने मित्र शिशुपाल आदि का बदला लेने के लिए दन्तवक्त्र युद्ध करने के लिए आ गया ।।३७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के सौभवध नामक सत्तहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७७।।

भावार्थ दीपिका

देवगणैरीरिता वादिताः । किंच सखीनामिति ।।३७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ।।७७।।

भाव प्रकाशिका

देवगणैरीरिता अर्थात् देवताओं द्वारा बजायी गयी । अपने मित्रों शिशुपाल आदि का ।।३७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका टीका की सत्तहतरवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।७७।।

अठहत्तरवाँ अध्याय

दन्तवक्त्र और विदूरथ का वध तथा तीर्थ यात्रा में बलरामजी द्वारा सूतजी का वध

श्रीशुक उवाच

शिशुपालस्य शाल्वस्य पौण्ड्रकस्यापि दुर्मतिः। परलोकगतानां च कुर्वन्पारोक्ष्यसौहृदम्।।१।।
एकः पदातिः संक्रुद्धो गदापाणिः प्रकम्पयन्। पद्भ्यामिमां महाराज महासत्त्वो व्यदृश्यत।।२।।

अन्वयः— महाराज शिशुपालस्य, शाल्वस्य, पौण्ड्रकस्यापि परलोकगतानां पारोक्ष्य सौहृदम् कुर्वन् दुर्मतिः दन्तवक्त्र एकः पदातिः महासत्त्व गदापाणिः संक्रुद्धः इमां पद्भ्यां प्रकम्पयन् व्यदृश्यत ।।१-२।।

अनुवाद— हे महाराज परीक्षित् शिशुपाल, शाल्व और पौण्ड्रक इन सबों के मर जाने पर उनका बदला चुकाने के लिए मूर्ख दन्तवक्त्र अकेला ही पैदल युद्धभूमि में आ गया । वह क्रुद्ध था, हाथ में गदा लिए था, वह अपने पैरों की धमक से पृथिवी को कँपाता हुआ आया ।।१-२।।

भावार्थ दीपिका

ततोऽष्टसप्ततितमे दन्तवक्रविदूरथौ । हत्वा हरिः पुरे रेमे रामः सूतं ततोऽवधीत् । सखीनामपचितिं कुर्वन्नित्युक्तं तदेवाह-शिशुपालस्येति । पारोक्ष्यसौहृदं परोक्षे करणीयं सुहृत्कृत्यम् ।।१-२।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् अठहत्तरवें अध्याय में श्रीहरि दन्तवक्त्र और विदूरथ को मार कर द्वारकापुरी में विहार करने लगे । उसके पश्चात बलरामजी ने सूतजी का वध कर दिया । कहा गया है कि अपने मित्रों का ऋण चुकाने के लिए । उसी को **शिशुपालस्य इत्यादि** से कहा गया है । पारोक्ष्य सौहृदम् अर्थात् परोक्ष में मित्र के द्वारा किया जाने वाला कार्य ।।१-२।।

अठहत्तरवाँ अध्याय

दन्तवक्त्र और विदूरथ का वध तथा तीर्थ यात्रा में बलरामजी द्वारा सूतजी का वध

श्रीशुक उवाच

शिशुपालस्य शाल्वस्य पौण्ड्रकस्यापि दुर्मतिः। परलोकगतानां च कुर्वन्पारोक्ष्यसौहृदम्॥१॥
एकः पदातिः संक्रुद्धो गदापाणिः प्रकम्पयन्। पद्भ्यामिमां महाराज महासत्त्वो व्यदृश्यत॥२॥

अन्वयः— महाराज शिशुपालस्य, शाल्वस्य, पौण्ड्रकस्यापि परलोकगतानां पारोक्ष्य सौहृदम् कुर्वन् दुर्मतिः दन्तवक्त्र एकः पदातिः महासत्त्व गदापाणिः संक्रुद्धः इमां पद्भ्यां प्रकम्पयन् व्यदृश्यत ॥१-२॥

अनुवाद— हे महाराज परीक्षित् शिशुपाल, शाल्व और पौण्ड्रक इन सबों के मर जाने पर उनका बदला चुकाने के लिए मूर्ख दन्तवक्त्र अकेला ही पैदल युद्धभूमि में आ गया। वह क्रुद्ध था, हाथ में गदा लिए था, वह अपने पैरों की धमक से पृथिवी को कँपाता हुआ आया ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

ततोऽष्टसप्ततितमे दन्तवक्रविदूरथौ। हत्वा हरिः पुरे रेमे रामः सूतं ततोऽवधीत्। सखीनामपचितिं कुर्वन्नित्युक्तं तदेवाह-शिशुपालस्येति। पारोक्ष्यसौहृदं परोक्षे करणीयं सुहृत्कृत्यम् ॥१-२॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् अठहत्तरवें अध्याय में श्रीहरि दन्तवक्त्र और विदूरथ को मार कर द्वारकापुरी में विहार करने लगे। उसके पश्चात बलरामजी ने सूतजी का वध कर दिया। कहा गया है कि अपने मित्रों का ऋण चुकाने के लिए। उसी को **शिशुपालस्य इत्यादि** से कहा गया है। पारोक्ष्य सौहृदम् अर्थात् परोक्ष में मित्र के द्वारा किया जाने वाला कार्य ॥१-२॥

तं तथायान्तमालोक्य गदामादाय सत्वरः । अवप्लुत्य रथात्कृष्णः सिन्धुं वेलेव प्रत्यधात् ॥३॥

अन्वयः— तथा आयान्तं तम् आलोक्य कृष्णः गदामादाय रथात् सत्वरः अवप्लुत्य सिन्धु वेलेव प्रत्यधात् ॥३॥

अनुवाद— हाथ में गदा लेकर आते हुए उसको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण गदा लेकर शीघ्र ही रथ से कूदकर जिस तरह सिन्धु के ज्वार को तट रोक देता है, उसी तरह उसको रोक दिए ॥३॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्यधात् प्रतिरुरोध ॥३॥

भाव प्रकाशिका

प्रत्यधात् अर्थात् रोक दिए ॥३॥

गदामुद्यम्य कारूषो मुकुन्दं प्राह दुर्मदः । दिष्ट्या दिष्ट्या भवानद्य मम दृष्टिपथं गतः ॥४॥

अन्वयः— दुर्मदः कारुषः गदाम् उद्यम्य मुकुन्दं प्राह-दिष्टया दिष्ट्या भवानद्य मम दृष्टिपथं गतः ॥४॥

अनुवाद— घमण्ड के नशे में चूर कारूषाधिपति दन्तवक्त्र अपनी गदा तानकर भगवान् श्रीकृष्ण से कहा। बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम आज मेरी आँखों के सामने आ गये ॥४॥

भावार्थ दीपिका

'मुकुन्दं प्राह दुर्मद' इत्यादेरधिक्षेपपरता स्फुटैव । परमार्थस्तु दुर्मदो गतमदः प्राह-मुकुन्दं तृतीये जन्मनि मुक्तिदानार्थमागतम्। अद्येति । जन्मत्रयेऽन्विष्यमाणोऽद्य ब्रह्मशापावसाने भवान्मम स्वामी दृष्टिपथं गतः प्राप्तः । एतद्दिष्ट्या दिष्ट्या भद्रं भद्रम् । अतिहर्षे वीप्सा ॥४॥

भाव प्रकाशिका

घमण्ड के नशे में चूर इत्यादि कथन स्पष्ट रूप से अधिक्षेप परक हैं । वस्तुतः उसका मद समाप्त हो गया था । तीसरे जन्म में मुक्तिदान प्राप्त करने के लिए वह आया । अद्य कहने का अभिप्राय है कि मै त्रैलोक्य में आपको खोज रहा था । ब्राह्मण के शाप की समाप्ति की बेला में आप मेरे स्वामी मुझे दर्शन दिए । यह अत्यन्त कल्याण का विषय है । हर्षातिरेक के अर्थ में दिष्ट्या दिष्ट्या यह वीप्सा है ॥४॥

त्वं मातुलेयो नः कृष्ण मित्रध्रुङ्मां जिघांससि । अतस्त्वां गदया मन्द हनिष्ये वज्रकल्पया ॥५॥

अन्वयः— हे कृष्णत्वं नः मातुलेयः मित्रध्रुङ्मां जिघांससि । अतः हे मन्द वज्रकल्पया गदया त्वां हनिष्ये ॥५॥

अनुवाद— कृष्ण तुम मेरे मामा के लड़के हो अतएव तुमको मारना ठीक नहीं है । किन्तु तुम मेरे मित्रों को मारे हो और मुझको भी मारना चाहते हों । अतएव हे मन्द आज मैं तुमको अपनी वज्र के समान गदा से मार डालूँगा ॥५॥

भावार्थ दीपिका

किंच हे कृष्ण, त्वमस्माकं मातुलेयो बन्धुः । एवमपि मित्रधुक् मित्राणि घातितवान्, मां च जिघांससि तस्मादस्माकं त्वत्तो मृत्युः सनकाद्यनुग्रहप्राप्तो नूनं दुर्वारः । अतस्त्वामेतावन्मात्रमहं याचे । किं तदाह-अमन्द सर्वसहनसमर्थ । क्षात्रधर्मेण सेवितुं गदया त्वां हनिष्ये प्रहरिष्यामि तामेकवारं सहस्वेति । ननु वज्रतुल्यां त्वद्गदां को वा सहेत नैवमित्याह-अवज्रकल्पया उत्पलमालावदतिकोमलयेत्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

हे कृष्ण तुम तो मेरे मामा के पुत्र हो अतएव तुम हमारे बन्धु हो । फिर भी तुमने मेरे मित्रों को मारा है और

मुझको मारना चाहते हो अतएव हमारी तुमसे मृत्यु को कोई रोक नहीं सकता है। इसीतरह से सनकादिकों ने हम पर अनुग्रह किया है। अतएव तुमसे मैं इतनी ही याचना करता हूँ। यदि पूछो कि वह क्या है ? तो उसे मैं बतलाता हूँ। हे अमन्द अर्थात् सब कुछ सहने में समर्थ क्षात्रधर्म का पालन करने के लिए तुमको मैं गदा से मारूँगा। उस गदा प्रहार को तुम सहो। यदि कहो कि तुम्हारी गदा तो वज्र के समान है उसको कौन सह सकता है ? तो ऐसी बात नहीं है यह मेरी गदा वज्र के समान नहीं अपितु कमल माला के समान अत्यन्त कोमल है ॥५॥

तर्ह्यानृण्यमुपैम्यज्ञ मित्राणां मित्रवत्सलः । बन्धुरूपमरिं हत्वा व्याधिं देहचरं यथा ॥६॥

अन्वयः— हे अज्ञ तर्हि देहचरं व्याधिं यथा बन्धुरूपम् अरिंहत्वा मित्रवत्सलः अहं मित्राणां आनृण्यम् उपैमि ॥६॥

अनुवाद— हे मूर्ख इस तरह देह में रहने वाली व्याधि के समान बन्धु रूपी शत्रु तुमको मारकर मैं अपने मित्रों के ऋण से उऋण हो जाऊँगा ॥६॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं हनने कस्तव पुरुषार्थस्तमाह-तर्हीति। अज्ञ न विद्यते ज्ञो यस्मात्, हे सर्वज्ञेत्यर्थः। परमार्थतः स्वामिनमेतद्देहसंबन्धेन बन्धुरूपमरिं ब्रह्मशापेन शत्रुत्वेन प्रतीतं त्वां हत्वा मित्राणामानृण्यमुपैष्यामि। विशेषेणाधीयते मनसि चिन्त्यत इति व्याधिः। देहेऽन्तर्यामितया चरतीति तथा तमीश्वरं हत्वा क्षात्रधर्मेणाराध्य। हन्तेर्गत्यर्थस्य ज्ञानार्थत्वाज्ज्ञात्वेति वा। तेन यथा पित्रादीनामानृण्यमुपयन्ति तद्वदिति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि इस तरह से मारने से तुम्हें किस फल की प्राप्ति होगी ? इस पर वह कहता है हे अज्ञ अर्थात् आपसे बढ़कर कोई ज्ञानी नहीं है अतएव आप सर्वज्ञ हैं। आप वस्तुतः तो हमारे स्वामी हैं। इस देह से संबन्ध के कारण हमारे बन्धु रूप शत्रु हैं। ब्राह्मणों के शाप के कारण शत्रु रूप से प्रतीत होने वाले आपको मारकर मैं मित्रों के ऋण से उऋण हो जाऊँगा। विशेष रूप से जिसका मन में चिन्तन किया जाय वह व्याधि है। देह के भीतर अन्तर्यामी रूप से रहने वाले क्षात्रधर्म के अनुसार आपको हत्वा अर्थात् मारकर अथवा जानकर उसके द्वारा लोग जैसे अपने पितरों आदि के ऋण से उऋण हो जाते हैं उसी तरह मैं भी अपने मित्रों के ऋण से उऋण हो जाऊँगा ॥६॥

एवं रूक्षैस्तुदन्वाक्यैः कृष्णं तोत्रैरिव द्विपम् । गदयाऽताडयन्मूर्ध्नि सिंहवद्व्यनदच्च सः ॥७॥

अन्वयः— तोत्रैः द्विपमिव कृष्णं एवं रुक्षैः वाक्यै तुदन् सः गदया मूर्ध्नि अताड़यत् सिंहवत् व्यनदच्च ॥७॥

अनुवाद— जैसे महवत् हाथी को अङ्कुश से पीडित करता है उसी तरह से वह अपने रूक्ष वाक्यों से भगवान् श्रीकृष्ण को पीड़ित करता हुआ अपनी गदा से श्रीभगवान् के सिर पर गदा से प्रहार किया और सिंह के समान गर्जना किया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

रूक्षैरित्यादिप्रतीत्यभिप्रायेण। तोत्रैरङ्कुशादिभिः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

रुक्षैः इत्यादि प्रतीति के अभिप्राय से कहा गया है। तोत्रैः अर्थात् अङ्कुश इत्यादि से ॥७॥

गदयाभिहतोऽप्याजौ न चचाल यदूद्वहः । कृष्णोऽपि तमहन्गुर्व्या कौमोदक्या स्तनान्तरे ॥८॥

अन्वयः— आजौ गदया अभिहितोऽपि यदूद्वहः न चचाल कृष्णोऽपि तम् गुर्व्या कौमोदक्य स्तनान्तरे अहनत् ॥८॥

अनुवाद— युद्ध के मैदान में गदा के द्वारा प्रहार किए जाने पर भी भगवान् श्रीकृष्ण टस से मस नहीं हुए। उसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण भी अपनी भारी गदा से दन्तवक्त्र के स्तनान्तर में प्रहार किए ।।८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।८।।

गदानिर्भिन्नहृदय उद्वमन्रुधिरं मुखात् । प्रसार्य केशबाह्वङ्घ्रीन्धरण्यां न्यपतद्व्यसुः ।।९।।

अन्वयः— गदानिर्भिन्नहृदयः मुखात् रुधिरम् उद्वमन् केशबाह्वङ्घ्रीन् प्रसार्य धरण्यां व्यसुः न्यपतत् ।।९।।'

अनुवाद— गदा के प्रहार से दन्तवक्त्र का हृदय फट गया वह मुख से रक्त उगलने लगा उसके केश भुजा और पैर फैल गये तथा वह निष्प्राण होकर धरती पर गिर पड़ा ।।९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।९।।

ततः सूक्ष्मतरं ज्योतिः कृष्णमाविशदद्भुतम् । पश्यतां सर्वभूतानां यथा चैद्यवधे नृप ।।१०।।

अन्वयः— हे नृप ततः सूक्ष्मतरं अद्भुतं ज्योतिः सर्वभूतानां पश्यतां चैद्यवधे यथा कृष्णम् आविशत् अद्भुतम् ।।१०।।

अनुवाद— हे राजन् परीक्षित् उसके पश्चात् अत्यन्त सूक्ष्म तथा अद्भूत ज्योति जैसे शिशुपाल वध के समय हुआ था उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण में प्रवेश कर गयी ।।१०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१०।।

विदूरथस्तु तद्भ्राता भ्रातृशोकपरिप्लुतः । आगच्छदसिचर्मभ्यामुच्छ्वसंस्तज्जिघांसया ।।११।।

अन्वयः— तद्भ्राता विदूरथः तु भ्रातृशोक परिप्लुतः उच्छ्वशन् तज्जिघांसा असि चर्मभ्याम् आगच्छत् ।।११।।

अनुवाद— दन्तवक्त्र का भाई विदूरथ अपने भाई के शोक से व्याकुल हो गया। वह लम्बी-लम्बी श्वास लेता हुआ हाथ में ढाल एवं तलवार लेकर श्रीभगवान् को मार देने की इच्छा से आया ।।११।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।११।।

तस्य चापततः कृष्णश्चक्रेण क्षुरनेमिना । शिरो जहार राजेन्द्र सकिरीटं सकुण्डलम् ।।१२।।

अन्वयः— राजेन्द्र आयतः च तस्य कृष्णः क्षुरनेमिना चक्रेण सकुण्डलं स किरीटं तस्य शिरः जहार ।।१२।।

अनुवाद— आक्रमण करने वाले उस विदूरथ को भगवान श्रीकृष्ण ने छूरे के समान तीक्ष्ण धार वाले चक्र से उसके शिर को कुण्डल और किरीट के साथ धड़ से अलग कर दिया ।।१२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१२।।

एवं सौभं च शाल्वं च दन्तवक्रं सहानुजम् । हत्वा दुर्विषहानन्यैरीडितः सुरमानवैः ।।१३।।
मुनिभिः सिद्धगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः । अप्सरोभिः पितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ।।१४।।
उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः । वृतश्च वृष्णिप्रवरैर्विवेशालंकृतां पुरीम् ।।१५।।

अन्वयः— एवं सौभं च शाल्वं च दन्तवक्त्रं सहानुजम् दुर्विषहान हत्त्वा अन्यैः सुरमानवैः मुनिभिः सिद्धगन्धर्वैः विद्याधर महोरगैः अप्सरोभिः पितृगणैः यक्षैः किन्नरचारणैः ईडितः उपगीयमान विजयः, कुसुमैः अभिवर्षितः, वृष्णिप्रवरैः वृतः अलंकृतां पुरीं विवेश ।।१३-१५।।

अनुवाद— इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण सौभ, शाल्व, दन्तवक्त्र तथा उसके छोटे भाई विदूरथ को जिनको मारना दूसरों के लिए अशक्य था उन सबों को मारकर दूसरे देवताओं, मनुष्यों, मुनिजनों, सिद्धों, गन्धर्वों, विद्याधरो, बड़े-

बड़े सर्पों, अप्सराओं, पितृगणों, यक्षों, किन्नरों और चारणों द्वारा श्रीभगवान् के विजय के गीत गाये जा रहे थे। श्रीभगवान् पर पुष्पों की वर्षा की जा रही थी। ऐसे श्रीभगवान् श्रेष्ठ यदुवंशियों के साथ सजाई गयी द्वारकापुरी में प्रवेश किए ।।१३-१५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१३-१५।।

एवं योगेश्वरः कृष्णो भगवान् जगदीश्वरः । ईयते पशुदृष्टीनां निर्जितो जयतीति सः ।।१६।।

अन्वयः— एवं योगेश्वरः जगदीश्वरः भगवान् कृष्णः पशुदृष्टीनां निर्जितः ईयते जयतीति सः ।।१६।।

अनुवाद— इस तरह से योगेश्वर तथा सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण लीला करते हैं, किन्तु पशु के समान दृष्टि वाले लोगों से वे कभी पराजित होते भी दिखते हैं, किन्तु वास्तविकता है कि वे सदा विजयी ही रहते हैं ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

एवं श्रीकृष्णो महाबलानपि लीलया जयत्येवेति कृत्वा स कदाचिज्जरासन्धादिभिर्निर्जित इति पशुदृष्टीनामीयते। नित्यजये हेतवः योगेश्वरो भगवान् जगदीश्वर इति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण महाबलवानों को भी आसानी से जीत लेते है। किन्तु जिन लोगों की दृष्टि पशु के समान है, उन लोगों द्वारा वे कभी जरासन्ध आदि से पराजित भी देखे जाते है। श्रीभगवान् इसलिए नित्य विजयी है कि वे योगेश्वर, भगवान् एवं जगदीश्वर हैं ।।१६।।

श्रुत्वा युद्धोद्यमं रामः कुरूणां सह पाण्डवैः । तीर्थाभिषेकव्याजेन मध्यस्थः प्रययौ किल ।।१७।।

अन्वयः— कुरूणां पाण्डवैः सह युद्धोद्यमम् श्रुत्वा मध्यस्थः रामः तीर्थाभिषेकव्याजेन किल प्रययौ ।।१७।।

अनुवाद— कौरवों की पाण्डवों के साथ युद्ध की तैयारी की बात सुनकर मध्यस्थ किसी भी ओर नहीं रहने की इच्छा से बलरामजी तीर्थ करने के बहाने से तीर्थ यात्रा में चले गये ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

'विदूरथान्तमामथ्य पूतनादि दनोः कुलम्। कृष्णस्तूपारमत्तारादामोऽहन्सूतबल्वलौ'। तत्प्रसङ्गमाह-श्रुत्वेति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

विदूरथ पर्यन्त सभी दैत्यों को मारकर भगवान् कृष्ण मारने का काम बन्द कर दिए क्योंकि उसके पश्चात् बलरामजी पर सूतजी और बल्वल को मारे। उसी का प्रसङ्ग श्रुत्वा इत्यादि श्लोक से कहा गया है ।।१७।।

स्नात्वा प्रभासे संतर्प्य देवर्षिपितृमानवान् । सरस्वतीं प्रतिस्रोतं ययौ ब्राह्मणसंवृतः ।।१८।।

अन्वयः— प्रभासे स्नात्वा देवर्षि पितृमानवान् संतर्प्य ब्राह्मणसंवृतः सरस्वती प्रतिस्रोतं ययौ ।।१८।।

अनुवाद— प्रभास क्षेत्र में स्नान करके सरस्वती नदी जिस ओर से आती है उसी ओर ब्राह्मणों के साथ चले गये ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

प्रतिस्रोतं प्रतिलोमम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

प्रतिस्रोतम् अर्थात् उलटा ।।१८।।

पृथूदकं बिन्दुसरस्त्रितकूपं सुदर्शनम् । विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं प्राचीं सरस्वतीम्॥१९॥
यमुनामनु यान्येव गङ्गामनु च भारत । जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते॥२०॥

अन्वयः— पृथूदकम् विन्दुसरः त्रितकूपं सुदर्शनम् विशालं ब्रह्मतीर्थं च चक्रं, प्राचीं सरस्वतीम् हे भारत यान्येव यमुनाम् अनु गङ्गामनु नैमिषं जगाम यत्र ऋषय सत्रमासते ।।१९-२०।।

अनुवाद— वे पृथूदक तीर्थ में विन्दुसर, त्रितकुप, सुदर्शन तीर्थ, विशाल तीथ्र ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ, प्राची सरस्वती यमुना और गङ्गा नदियों के तट पर प्रधान-प्रधान तीर्थों में होते हुए नैमिषारण्य तीर्थ में गये । उस समय बड़े-बड़े ऋषियों का महान् सत्र चल रहा था ।।१९-२०।।

भावार्थ दीपिका

सुदर्शनं तीर्थम् । चक्रं चक्रतीर्थम् । यमुनामनु यानि तीर्थानि गङ्गामनु च यानि तानि सर्वाणि गत्वा नैमिषमरण्यं जगाम ।।१९-२०।।

भाव प्रकाशिका

सुदर्शनम् अर्थात् सुदर्शन तीर्थ, चक्र, अर्थात् चक्र तीर्थ, यमुना नदी के तट में विद्यमान तथा गङ्गाजी के तट में विद्यमान तीर्थों में वे गये । उसके पश्चात् चे नैमिषारण्य तीर्थ में गये ।।१९-२०।।

तमागतमभिप्रेत्य मुनयो दीर्घसत्रिणः । अभिनन्द्य यथान्यायं प्रणम्योत्थाय चार्चयन् ॥२१॥

अन्वयः— दीर्घसत्रिणः मुनयः तम् आगतमभिप्रेत्य यथान्यायं अभिनंद्य प्रणम्य उत्थाय च अर्चयन् ।।२१।।

अनुवाद— दीर्घकाल तक सत्संग का नियम लेकर मुनियों ने श्रीबलरामजी को आये हुए देखकर उठकर उनका सत्कार किया और यथायोग्य प्रणाम अशीर्वाद करके उनकी पूजा किया ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

अभिप्रेत्य श्रीराम इति ज्ञात्वा ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

अभिप्रेत्य अर्थात् ये श्रीबलरामजी हैं यह जानकर ।।२१।।

सोऽर्चितः सपरीवारकृतासनपरिग्रहः । रोमहर्षणमासीनं महर्षेः शिष्यमैक्षत ॥२२॥

अन्वयः— सोर्चितः सपरीवार कृतासनपरिग्रहः महर्षेः शिष्यं रोमहर्षणम् आसीनम् ऐक्षत ।।२२।।

अनुवाद— पूजित होकर वे अपने आसन पर बैठ गये तब तक उन्होंने देखा कि महर्षि व्यास के शिष्य रोमहर्षण सूत व्यासगद्दी पर बैठे हुए हैं ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

महर्षेर्व्यासस्य ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

महर्षेः अर्थात् महर्षि व्यास के ।।२२।।

अप्रत्युत्थायिनं सूतमकृतप्रह्वणाञ्जलिम् । अध्यासीनं च तान्विप्रांश्चुकोपोद्वीक्ष्य माधवः ॥२३॥

अन्वयः— अप्रत्युत्थायिनं सूतम् अकृतप्रह्वणाञ्जलिं तान् विप्रान् अध्यासीनं च उद्वीक्ष्य माधवः चुकोप ।।२३।।

अनुवाद— ऋषियों के आने पर न तो उठकर प्रणाम ही करते हैं और न तो हाथ जोड़कर प्रणाम करते हैं ऐसे सूतजी को बैठा हुआ देखकर श्रीबलरामजी क्रोध कर लिए ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

सूतं प्रतिलोभजम् । न कृतं प्रह्वणमञ्जलिश्च येन तम् । अध्यासीनं च तान् । तेभ्योऽप्युच्चैरासीनमित्यर्थः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

सूतम् अर्थात् प्रतिलोम जाति में उत्पन्न (ब्राह्मणी के गर्भ) से क्षत्रिय जाति के पुत्र को सूत कहते हैं । वे ब्राह्मणों को न तो हाथ जोड़ते और न तो प्रणाम ही करते है । **अध्यासीनम्** उन ब्राह्मणों से भी उच्च आसन पर बैठे हुए ।।२३।।

यस्मादसाविमान्विप्रानध्यास्ते प्रतिलोमजः । धर्मपालांस्तथैवास्मान्वधमर्हति दुर्मतिः ।।२४।।

अन्वयः— यस्मादसौ इमान् धर्मपालान् विप्रानध्यासते प्रतिलोमजः दुर्मतिः तथैवास्मान् वधमर्हति ।।२४।।

अनुवाद— बलरामजी मन-ही-मन सोचने लगे चूकि यह सूत इन धर्म का पालन करने वाले ब्राह्मणों से उच्च आसन पर बैठा है । अतएव यह दुर्बुद्धि मृत्यु नामक दण्ड का पात्र है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।

ऋषेर्भगवतो भूत्वा शिष्योऽधीत्य बहूनि च । सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ।।२५।।
अदान्तस्याविनीतस्य वृथापण्डितमानिनः । न गुणाय भवन्ति स्म नटस्येवाजितात्मनः ।।२६।।

अन्वयः— ऋषेः भगवतः शिष्यो भूत्वा, सेतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि, सर्वशः बहूनि अधीत्य अदान्तस्य अविनीतस्य, वृथा पण्डितमानिनः गुणाय न भवन्ति स्म अजितात्मनाः नटस्येव ।।२५-२६।।

अनुवाद— यद्यपि यह महर्षि व्यासजी का शिष्य है पूर्ण रूप से इसने, इतिहासों, पुराणों और धर्मशास्त्रों का अध्ययन भी किया है, फिर भी इसका अपने मन पर संयम नहीं, विनयी नही उद्दण्ड है, यह अजितात्मा होने के कारण झूठ-मूठ के अपने को पण्डित मान रखा है । जिस तरह नट की सारी चेष्टायें स्वांग के लिए होती है, उस तरह से इसकी भी सारी चेष्टायें अभिनय मात्र हैं । इससे न तो इसका लाभ सम्भव है और न दूसरे का ।।२५-२६।।

भावार्थ दीपिका

अजानन्नध्यास्त इति चेन्नैवमित्याह-ऋषेरिति । ननु बहुज्ञः कथमेवं कुर्यात्तत्राह-अदान्तस्येति । गुणाय यथोचितानुष्ठानाय ।।२५-२६।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि नहीं जानने के कारण सबों से ऊपर बैठा है तो ऐसी भी बात नहीं है । यह महर्षि व्यासजी का शिष्य है । यदि कोई कहे कि यदि यह बहूज्ञ है तो फिर ऐसा क्यों करता है तो इसका उत्तर **अदान्तस्य० इत्यादि** श्लोक है । गुणाय अर्थात् यथोचित अनुष्ठान के लिए ।।२५-२६।।

एतदर्थो हि लोकेऽस्मिन्नवतारो मया कृतः । वध्या मे धर्मध्वजिनस्ते हि पातकिनोऽधिकाः ।।२७।।

अन्वयः— मया एतदर्थः हि अस्मिन् लोके मया अवतारः कृतः ये हि लोके धर्मध्वजिनः अधिकाः पातकिनः ते बध्याः।।२७।।

अनुवाद— मैंने इसीलिए ही अवतार ग्रहण इसलोक में किया है न कि जो धर्म का ढोंग करते हैं और स्वयं उसका पालन नहीं करते हैं, वे सब मेरे द्वारा मार दिए जाने योग्य हैं ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

विप्रानध्यास्तामन्यद्वा किंचित्करोतु किं तवेति चेत्तत्राह-एतदर्थ इति । धर्मध्वजिन उत्तमलिङ्गधारिणः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

यह ब्राह्मणों से ऊपर बैठता है अथवा और भी कोई काम करता है, आपको इससे क्या मतलब है । इस

पर श्रीबलरामजी **एतदर्थः इत्यदि** श्लोक कहते हैं । धर्म ध्वजिनः धर्म का चिह्न धारण करके भी धर्म का पालन नहीं करने वाले ।।२७।।

एतावदुक्त्वा भगवान्निवृत्तोऽसद्वधादपि । भावित्वात्तं कुशाग्रेण करस्थेनाहनत्प्रभुः ।।२८।।

अन्वयः— असद्वधादपि निवृतः भगवान् एतावदुक्त्वा प्रभुः तं करस्थेन कुशाग्रेण अहनत् भावित्वात् ।।२८।।

अनुवाद— तीर्थ यात्रा करने के कारण श्रीबलरामजी दुष्टों का वध करने के काम के छोड़ चुके थे फिर भी इतनी ही बातों को कहकर वे हाथ में जो कुश लिए थे उसके अग्रभाग से सूतजी पर प्रहार किये और सूतजी मर गये । क्योंकि होनि हार ही ऐसा था ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

भावित्वादिति । नहि भवितव्यं केनापि परिहर्तुं शक्यत इत्यर्थः । अहनत् अहन् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

जो होनिहार होने वाला होता है, उसको कोई रोक नहीं सकता है । अहनत अर्थात् प्रहार किए ।।२८।।

हाहेति वादिनः सर्वे मुनयः खिन्नमानसाः । ऊचुः संकर्षणं देवमधर्मस्ते कृतः प्रभो ।।२९।।

अन्वयः— हाहेति वादिनः खिन्नमानसाः सर्वे मुनयः सङ्कर्षणं देवमूचुः ते अधर्मः कृतः ।।२९।।

अनुवाद— सूतजी के मरते ही सभी ऋषि हाय-हाय करने लगे और उदास हो गये । उन लोगों ने कहा प्रभो! आपने यह बहुत बड़ा पाप किया है ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

ते त्वया ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

ते अर्थात् आपने ।।२९।।

अस्य ब्रह्मासनं दत्तमस्माभिर्यदुनन्दन । आयुश्चात्माक्लमं तावद्यावत्सत्रं समाप्यते ।।३०।।

अन्वयः— हे यदुनन्दन ! अस्माभिः अस्य ब्रह्मासनं दत्तम् आयुश्च, आत्माक्लमं च तावद् यावत् सत्रं समाप्यते।।३०।।

अनुवाद— हे यदुवंश शिरोमणे ! सूतजी को हमलोगों ने ब्राह्मणोचित आसान पर बैठाया था और जब तक हमारा यह सत्र नहीं समाप्त होता है तब तक इनको शरीरिक कष्ट से रहित हमलोगों ने आयु भी प्रदान कर दी थी ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

अधार्मिकप्रतिलोमजवधः कोऽयमधर्म इति चेत्तत्राहुः-अस्येति । पुराण प्रवचनायात्मनः शरीरस्य नास्ति क्लमो यस्मिंस्तदायुश्च दत्तमिति ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि इस अधार्मिक सूत को मार देने में कौन सा अधर्म हो गया ? इस पर मुनियों ने कहा कि इसको हमलोगों ने ब्राह्मणोचित आसन पर बैठाया था और पुराण का प्रवचन करने के लिए हमलोगों ने इनको शारीरिक कष्ट से रहित आयु भी प्रदान कर दिया है ।।३०।।

अजानतैवाचरितस्त्वया ब्रह्मवधो यथा । योगेश्वरस्य भवतो नाम्नायोऽपि नियामकः ।।३१।।
यद्येतद्ब्रह्महत्यायाः पावनं लोकपावन । चरिष्यति भवाँल्लोकसंग्रहोऽनन्यचोदितः ।।३२।।

अन्वयः— अजानतैव त्वया यथा ब्रह्मवधः आचरितः । योगेश्वरस्य भवतः आम्नायः अपि नियामकः न, यदि एतत् ब्रह्महत्यायाः लोकपावनः भवान् अनन्यचोदितः लोकसंग्रहः चरिष्यति ।।३१-३२।।

अनुवाद— हमलोग जानते हैं कि आप नहीं जान पाने के कारण यह ब्राह्मण वध का पाप किया है । आप तो योगेश्वर हैं अतएव वेद भी आपका नियामक नहीं है फिर भी आप लोकोपदेश के लिए अवतार ग्रहण किए हैं । आप तो स्वयं लोक को पवित्र बनाने वाले है । अतएव दूसरों के द्वारा बिना प्रेरणा के आप लोक संग्रहार्थ इसका प्रायश्चित्त कर लें ॥३१-३२॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मवधेऽपि किं ममेश्वरस्येति चेत्सत्यमेव, तथापि प्रायश्चित्तं कर्तव्यमित्याशयेनाहुः-योगेश्वरस्येति सार्धेन । आम्नायो 'ब्राह्मणो न हन्तव्य' इत्यादिलक्षणः । तथाप्येतस्या ब्रह्महत्यायाः पावनं प्रायश्चित्तं हे लोकपावन, अनन्यचोदितः स्वयमेव भवान् यदि करिष्यति तर्हि लोकसंग्रहो भविष्यति नान्यथेति ॥३१-३२॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि ब्राह्मण का वध हो जाने पर भी इससे मुझ ईश्वर को क्या करना है । तो यह बात ठीक है फिर भी आपको प्रायश्चित्त तो करना ही चाहिए, इस तरह से ऋषियों ने **योगेश्वरस्य० इत्यादि** डेढ श्लोक से कहा है । वेद कहता है ब्राह्मण को नहीं मारना चाहिए; फिर भी हे संसार को पवित्र बनाने वाले श्रीबलरामजी इस ब्रह्मत्या से पवित्र बना देने वाला प्रायश्चित्त तो आपको कर ही लेना चाहिए । यदि स्वयं इस कार्य को आप करेंगे तो यह लोगों के लिए प्रेरणा प्रद होगा ॥३१-३२॥

श्रीभगवानुवाच

करिष्ये वधनिर्वेशं लोकानुग्रहकाम्यया । नियमः प्रथमे कल्पे यावान्स तु विधीयताम् ॥३३॥

अन्वयः— लोकानुग्रहकाम्यया वधनिर्वेशं करिष्ये प्रथमे कल्पे यावान् नियमः स तु विधीयताम् ॥३३॥

श्रीबलरामजी ने कहा

अनुवाद— संसार को शिक्षा देने के लिए इस ब्रह्महत्या का प्रायश्चित करूँगा । जो सर्वोत्तम प्रायश्चित्त और उसका नियम बतलाइये ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

वधस्य निर्वेशं प्रायश्चित्तम् । प्रथम कल्पे मुख्यकल्पे । विधीयतामुपदिश्यताम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण के वध का प्रायश्चित्त मैं करूँगा । इसके सर्वोत्तम प्रायश्चित्त का आपलोग हमें उपदेश दें ॥३३॥

दीर्घमायुर्बतैतस्य सत्त्वमिन्द्रियमेव च । आशासितं यत्तद्ब्रूत साधये योगमायया ॥३४॥

अन्वयः— एतस्य दीर्घम् आयुः सत्त्वम् इन्द्रियमेव च यत् आशासितं तद् ब्रूत योगमायया साधये ॥३४॥

अनुवाद— आपलोग इस सूत को दीर्घ आयु बल तथा इन्द्रिय जो कुछ भी प्रदान करना चाहते हों उसे बतलायें मैं अपनी योगमाया के द्वारा इसे प्रदान कर देता हूँ ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

किंच बत हे मुनयः, एतस्य दीर्घमायुः सत्त्वं बलमिन्द्रियं तत्पाटवं च। अन्यच्च यद्भवद्भिराशासितमपेक्षितं तद्ब्रूत सर्वम्॥३४॥

भाव प्रकाशिका

हे मुनियों ! इसको लम्बी आयु, बल, इन्द्रियों की पटुता जो कुछ भी आप प्रदान करना चाहते हों आप लोग बतलाइये ॥३४॥

ऋषय ऊचुः

अस्त्रस्य तव वीर्यस्य मृत्योरस्माकमेव च । यथा भवेद्वचः सत्यं तथा राम विधीयताम् ॥३५॥

अन्वयः— हे राम तव अस्त्रस्य वीर्यस्य मृत्योः अस्माकं च वचः यथा सत्यं भवेत् तथा विधीयताम् ॥३५॥

ऋषियों ने कहा

अनुवाद— हे बलरामजी जिस तरह से आपके अशस्त्र का पराक्रम, इसकी मृत्यु और हमसबों की वाणी जिस तरह से व्यर्थ न हो ऐसा आप उपाय करें ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

अस्त्रादीनां यथा सत्यता भवेदस्माकं च वचः सत्यं यथा भवेत्तथा विधीयतामित्यर्थः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

आपका अस्त्र इत्यादि सत्य हो जाय और हमलोगों की वाणी भी सत्य हो जाय ऐसा आप उपाय करें॥३५॥

श्रीभगवानुवाच

आत्मा वै पुत्र उत्पन्न इति वेदानुशासनम् । तस्मादस्य भवेद्वक्ता आयुरिन्द्रियसत्त्ववान् ॥३६॥

अन्वयः— उत्पन्नः पुत्र आत्मा, इति वेदानुशासनम् तस्मादस्य वक्ता पुत्र आयु इन्द्रिय सत्त्ववान् भवेत् ॥३६॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— वेद कहता है कि आत्मा ही पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है, अतएव इसका पुत्र आप लोगों को पुराण सुनायेगा उसकी आयु, इन्द्रियों का बल आदि भी उसके ही समान होयेगा ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

तथा संपादयन्नाह-आत्मा वा इति । 'अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधिजायते । आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्। इत्यादिवेदानुशासनं वेदवचनम् । तस्मादस्य रोमहर्षणस्य पुत्र उग्रश्रवा भवतां पुराणप्रवक्ता भवेत्स चायुरादिमांश्च भवेत्। अतः साक्षादजीवनादस्त्रस्य मृत्योश्च सत्यता पुत्ररूपेण चायुरादिसिद्धेर्युष्मद्वचनस्यापि सत्यता स्यादिति भावः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

ऋषियों ने जैसा कहा था वैसा ही करते हुए वे कहते हैं **आत्मा वै० इत्यादि** श्रुति कहती है । आत्मा ही पुत्र के नाम वाली हो जाती है । वह सौ वर्ष तक जीवित रहे । यह वेदवाक्य है । अतएव इस रोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा, आपलोगों को पुराण सुनाने वाला हो जाय । वह आयु आदि से सम्पन्न हो जाय । अतएव रोमहर्षण के जीवित नहीं होने पर अस्त्र और मृत्यु दोनों की सत्यता सिद्ध हो जोयगी । पुत्र रूप से आयु आदि की प्राप्ति से आप मुनियों की बातें सत्य होंगी ॥३६॥

किं वः कामो मुनिश्रेष्ठा ब्रूताहं करवाण्यथ । अजानतस्त्वपचितिं यथा मे चिन्त्यतां बुधाः ॥३७॥

अन्वयः— हे मुनिश्रेष्ठाः वः कामः कः ? ब्रूत अथकरवाणि । हे बुधाः अपचितिं तु अजानतः यथा मे चिन्त्यताम्॥३७॥

अनुवाद— हे मुनिश्रेष्ठों ! आप लोग क्या चाहते हें यह मुझे बतलाइये, उसे मैं कर देता हूँ, और मुझे कौन सा प्रायश्चित करना है, इसके जानकार आपलोग जानते हैं, अतएव उसे मुझे बतलाइये ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

प्रथमं तावदपेक्षितं कथयत तदहं करिष्यामीत्याह-किं वः काम इति । किंविषयो वः कामो वर्तते तद्ब्रूतेति । अथानन्तरं ब्रह्मदण्डं गृहीत्वाऽपचितिं निष्कृतिमजानतो मे हे बुधाः, यथावच्चिन्त्यतामपचितिरिति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

पहले आपलोग यह बतलायें कि मैं आपलोगों के लिए क्या करूँ ? उसे मैं करूँगा । आपलोग की अभिलाषा किस विषय में है, यह बतलायें । उसके पश्चात् ब्रह्मदण्ड को स्वीकार करके मुझे कौन सा प्रायश्चित्त करना है यह बतलाएँ उसके विषय में मैं नहीं जानता हूँ । अतएव आपलोग यथार्थ प्रायश्चित्त का विचार करें ।।३७।।

ऋषय ऊचुः

इल्वलस्य सुतो घोरो बल्वलो नाम दानवः । स दूषयति नः सत्रमेत्य पर्वणि पर्वणि ।।३८।।

अन्वयः— इल्वलस्य धोरः सुतः बल्वलो नाम दानवः सः पर्वणि पर्वणि एत्य नः सत्रं दूषयति ।।३८।।

ऋषियों ने कहा

अनुवाद— ईल्वल का भयङ्कर पुत्र बल्वल नामक दानव है । वह प्रत्येक पर्व पर यहाँ आ जाता है और हमलोगों के सत्र को दूषित कर देता है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

प्रथमं तावदपेक्षितं कर्तव्यं कथयन्ति-इल्वलस्येति द्वाभ्याम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम इल्वल इत्यादि दो श्लोकों से अपेक्षित कर्तव्य को मुनिजन बतलाते हैं ।।३८।।

तं पापं जहि दाशार्ह तन्नः शुश्रूषणं परम् । पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् ।।३९।।

अन्वयः— हे दशार्ह पूयशोणितविण्मूत्रसुरामांसाभिवर्षिणम् तं पापं जहि तन्नः परं शुश्रूषणम् ।।३९।।

अनुवाद— हे यदुनन्दन यहाँ आकर पीब, खून, विष्ठा, मूत्र, शराब, और मांस की वर्षा करने वाले उस पापी को आप मार दें, यही हमलोगों की सबसे बड़ी सेवा होगी ।।३९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३९।।

ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः । चरित्वा द्वादश मासांस्तीर्थस्नायी विशुध्यसे ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे बलदेवचरित्रे बल्वलवधोपक्रमो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।।७८।।

अन्वयः— ततश्च सुसमाहितं, भारतंवर्षं परीत्य द्वादशमासान् चरित्वा तीर्थस्नायी विशुध्यसे ।।४०।।

अनुवाद— उसके बाद सावधानी पूर्वक तीर्थों में स्नान करते हुए बारह महीनों तक भारत वर्ष की परिक्रमा करते हुए आप विचरण करें इससे आप शुद्ध हो जायेंगे ।।४०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के बलदेवचरित के अन्तरगत बल्वलवधोपक्रम नामक अठहत्तरवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७८।।

भावार्थ दीपिका

प्रायश्चित्तमाहुः-ततश्चेति । परीत्य प्रदक्षिणीकृत्य । सुसमाधानादिगुणविशेषादेकाब्दमात्रमुक्तमित्यविरोधः । सुसमाहितः कामक्रोधादिरहितः । चरित्वा कृच्छ्राणि ।।४०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टसप्ततितमोऽध्यायः ।।७८।।

भाव प्रकाशिका

प्रायश्चित्त बतलाते है। **ततश्च० इत्यादि** श्लोक के द्वारा। परीत्य अर्थात् परिक्रमा करके सुन्दर समाधान विशेष के कारण एक वर्ष मात्र बतलाया गया है। अतएव इसमें कोई विरोध नहीं है। सुसमाहितः अर्थात् काम एवं क्रोध से रहित होकर प्रायश्चित्त करते हुए ॥४०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवे स्कन्ध के उत्तरार्ध के अठहत्तरवें अध्याय की भावार्थ दीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥७८॥

◆

उनासीवाँ अध्याय

बल्वल का वध एवं बलरामजी की तीर्थ यात्रा

श्रीशुक उवाच

ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचण्डः पांसुवर्षणः । भीमो वायुरभूद्राजन्पूयगन्धस्तु सर्वशः ॥१॥

अन्वयः— हे राजन् ! ततः पर्वणि उपावृत्ते प्रचण्डः पांसुवर्षणः सर्वशः पूयगन्धः तु भीमो वायुः अभूत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् परीक्षित् पर्व का दिन आने पर भयङ्कर पूयरूप से पीव की दुगन्धि से युक्त भयङ्कर आँधी चलने लगी ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ऊनाशीतितमे रामो बल्वलं द्विजतुष्टये । निहत्य तीर्थस्नानाद्यैः सूतहत्यामपानुदत् । उपावृत्ते प्राप्ते ॥१॥

भाव प्रकाशिका

उनासीवें अध्याय में ब्राह्मणों की प्रसन्नता के लिए बल्वल को मारकर तीर्थ स्नान आदि के द्वारा सूत के मारने से लगी हुई हत्या को दूर किया । उपावृत्ते अर्थात् आने पर ॥१॥

ततोऽमेध्यमयं वर्षं बल्वलेन विनिर्मितम् । अभवद्यज्ञशालायां सोऽन्वदृश्यतं शूलधृक् ॥२॥

अन्वयः— ततः बल्वलेन विनिर्मितं अमेध्यमयं वर्षं यज्ञशालायां अभवत् सः शूलधृक् अन्वदृश्यत ॥२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् बल्वल के द्वारा विनिर्मित अपवित्र पदार्थमय वर्षा यज्ञशाला में होने लगी और वह त्रिशूल धारण किए हुए दिखायी पड़ा ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

तं विलोक्य बृहत्कायं भिन्नाञ्जनचयोपमम् । तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं दंष्ट्रोग्रभ्रुकुटीमुखम् ॥३॥
सस्मार मुसलं रामः परसैन्यविदारणम् । हलं च दैत्यदमनं ते तूर्णमुपतस्थतुः ॥४॥

अन्वयः— बृहत्कायं भिन्नाञ्जन शिलोपमम् तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं दंष्टोग्रभ्रुकुटीमुखम् तं विलोक्य रामः परसैन्यविदारणम् मुसलं दैत्यदमनं चं हलं सस्मार ते तूर्णम् उपतस्थतुः ॥३-४॥

अनुवाद— विशालकाय तथा आंजन जिस पर रगड़ा गया हो ऐसी शिला के समान काले शरीर वाले जिसकी शिखा

एवं दाढ़ी मुँछ वाले एवं लम्बे दाँतों और भ्रुकुटी के कारण भयङ्कर मुख वाले वल्वल को देखकर श्रीपरशुरामजी ने शत्रु की सेना को विनष्ट करने वाले हल एवं मूसल का स्मरण किया और वे दोनों शीघ्र ही उपस्थित हो गये ॥३-४॥

भावार्थ दीपिका

भिन्नो विदीर्णोऽञ्जनचय उपमा यस्य तमतिकृष्णमित्यर्थः । तप्तताम्रवच्छिखा श्मश्रूणि च यस्य तम् । दंष्ट्राभिरुग्रं भ्रुकुटीयुतं मुखं यस्य तम् ॥३-४॥

भाव प्रकाशिका

विदीर्ण अञ्जन समूह के समान काले संतप्त ताम्बे के समान लाल-लाल शिखा और दाढी-मूँछ वाले क्रूर आखों तथा भ्रुकुटी से युक्त मुख वाले उसको ॥३-४॥

तमाकृष्य हलाग्रेण बल्वलं गगनेचरम् । मुसलेनाहनत्क्रुद्धो मूर्ध्नि ब्रह्मद्रुहं बलः ॥५॥

अन्वयः— बलःतम् हलाग्रेण गगनेचरम् ब्रह्मद्रुहं बल्वलं आकृष्य क्रुद्धः मूर्ध्नि मुसलेन अहनत् ॥५॥

अनुवाद—बलरामजी अपने हल के अग्रभाग से आकाश में विचरण करने वाले बल्वल को खींचकर उस ब्रह्मद्रोही को क्रोध करके उसके शिर पर मूसल से प्रहार किए ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

सोऽपतद्भुवि निर्भिन्नललाटोऽसृक्समुत्सृजन् । मुञ्चन्नार्तस्वरं शैलो यथा वज्रहतोऽरुणः ॥६॥

अन्वयः— निर्भिन्नललाटः सः असृक्समुत्सृजन् सः आर्तस्वरं मुञ्चन् वज्राहतः अरुणः शैलः यथा भुवि अपतत्॥६॥

अनुवाद— ललाट के फट जाने के कारण वह खून उगलता हुआ आर्तस्वर से चिल्लाता हुआ उसी तरह से पृथिवी पर गिर पड़ा जिस तरह वज्र के प्रहार से लाल बना हुआ कोई पर्वत पृथिवी पर गिर पड़ा हो ॥६॥

भावार्थ दीपिका

अरुणो रुधिरेण दैत्यः । शैलो धातुभिर्यथेति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

रक्त से लाल बना हुआ वह दैत्य । धातु से लाल बना हुआ पर्वत ॥६॥

संस्तुत्य मुनयो रामं प्रयुज्यावितथाशिषः । अभ्यषिञ्चन्महाभागा वृत्रघ्नं विबुधा यथा ॥७॥

अन्वयः— महाभागाः ऋषयः रामं संस्तुत्य अवि तथाः आशिषः प्रयुज्य वृत्रघ्नं विबुधा यथा अभ्यषिञ्चन् ॥७॥

अनुवाद— महाभाग्यवान ऋषिगण श्रीबलरामजी की स्तुति करके उनको सत्य आशीर्वादों को प्रदान किया और जिस तरह वृत्रासुर को मारने वाले इन्द्र का देवताओं ने अभिषेक किया था उसी तरह श्रीबलरामजी का अभिषेक किया॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

वैजयन्तीं ददुर्मालां श्रीधामाम्लानपङ्कजाम् । रामाय वाससी दिव्ये दिव्यान्याभरणानि च ॥८॥

अन्वयः— रामाय दिव्ये वाससी, दिव्यानि आभरणानि श्रीधामाम्लानपङ्कजाम् वैजयन्तीं माला च ददुः ॥८॥

अनुवाद— ऋषियों ने श्रीबलरामजी को दो दिव्य वस्त्र दिव्य आभूषण और एक ऐसी माला प्रदान की जो सभी सौन्दर्यों का आश्रय थी, जिसमें लगे हुए कमल के पुष्प कभी कुम्हलाने वाले नहीं थे ॥८॥

भावार्थ दीपिका

श्रियो धामान्यम्लानानि पङ्कजानि यस्यां ताम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

उस माला में लगे हुए अत्यन्त मनोहर पुष्प कभी कुम्हलाने वाले नहीं थे ॥८॥

अथ तैरभ्यनुज्ञातः कौशिकीमेत्य ब्राह्मणैः । स्नात्वा सरोवरमगाद्यतः सरयुरास्रवत् ॥९॥

अन्वयः— अथ तैः ब्राह्मणैः अभ्यनुज्ञातः कौशिकीम् एत्य स्नात्वा सरोवरम गात् यतः सरयुः आस्रवत् ॥९॥

अनुवाद— उसके पश्चात् नैमिषारण्य के ऋषियों से विदा लेकर बलरामजी ब्राह्मणों आज्ञा से कौशिकी नदी में स्नान करके उस सरोवर पर आये जहाँ से सरयू नदी निकलती है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

किं तत्सरः । यत इति । आस्रवदुदगात् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

वह कौन सा सरोवर है ? तो इसका उत्तर है जहाँ से सरयू नदी निकलती ॥९॥

अनुस्रोतेन सरयूं प्रयागमुपगम्य सः । स्नात्वा संतर्प्य देवादीन् जगाम पुलहाश्रमम् ॥१०॥

अन्वयः— सरयूम् अनुस्रोतेन प्रयागम् उपगम्य सः स्नात्वा देवादीन् संतर्प्य पुलहाश्रमम् जगाम ॥१०॥

अनुवाद— सरयू के किनारे चलते हुए वे उसको छोड़कर प्रयाग आये वहाँ स्नान करके देवताओं एवं पितरों का संतर्पण करके पुलहाश्रम चले गये ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अनुस्रोतेनानुलोमतः । पुलहाश्रमं हरिक्षेत्रम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

सरयू नदी के प्रवाहानुसार, पुलहाश्रमम् अर्थात् हरिक्षेत्र ॥१०॥

गोमतीं गण्डकीं स्नात्वा विपाशां शोण आप्लुतः। गयां गत्वा पितॄनिष्ट्वा गङ्गासागरसङ्गमे ॥११॥
उपस्पृश्य महेन्द्राद्रौ रामं दृष्ट्वाभिवाद्य च । सप्तगोदावरं वेणां पम्पां भीमरथीं ततः ॥१२॥
स्कन्दं दृष्ट्वा ययौ रामः श्रीशैलं गिरिशालयम् । द्रविडेषु महापुण्यं दृष्ट्वाद्रिं वेङ्कटंप्रभुः॥१३॥

अन्वयः— गोमतीं गण्डकीं स्नात्वा विपाशां शोणे आप्लुतः गयां गत्वा, पितॄनिष्ट्वा गङ्गा सागर सङ्गमे उपस्पृश्य, महेन्द्राद्रौ रामं दृष्ट्वा अभिवाद्य च सप्तगोदावरं, वेणां, पम्पां ततः भीमरथीं स्कन्दं दृष्ट्वा रामः गिरिशालयम् श्रीशैलं ययौ, द्रविडेषु महापुण्यं वेङ्काटं दृष्ट्वा श्रीशैलं ययौ प्रभुः ॥११-१३॥

अनुवाद— श्रीबलरामजी वहाँ से गण्डकी, गोमती, विपाशा नदियों में स्नान करके, वे सोननद में जाकर स्नान किए। इसके बाद गया जाकर वे पितरों का पूजन यजन किए। वहाँ से गङ्गा सागर सङ्गम में जाकर आचमन आदि किए। वहाँ से महेन्द्र पर्वत पर जाकर श्रीपरशुरामजी का दर्शन और अभिवादन करके वे सप्तगोदावरी, वेणा, पम्पा ओर भीमरथी आदि नदियों में स्नान करते हुए श्रीबलरामजी स्वामी कार्तिक का दर्शन करके भगवान् शिव के निवास स्थान श्रीशैल पर गये। उसके पश्चात वे द्रविड देश के अत्यन्त पुण्यमय स्थान वेङ्कटाचल पर भगवान् वेङ्कटेश का दर्शन किए ॥११-१३॥

भावार्थ दीपिका

गोमत्यां गण्डक्यां विपाशायां च स्नात्वा शोणे च आप्लुतः । इष्ट्वा संपूज्य । श्रीशैलं श्रीपर्वतम् ॥११-१३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीशैल अर्थात् श्री पर्वत ॥११-१३॥

कामकोष्णीं पुरीं कांचीं कावेरीं च सरिद्वराम् । श्रीरङ्गाख्यं महापुण्यं यत्र संनिहितो हरिः ॥१४॥

अन्वयः— कामकोष्णीं पुरीं काञ्चीं सरिद्वरां कावेरीं श्रीरङ्गाख्यं महापुण्यं यत्र हरिः संनिहितः ॥१४॥

अनुवाद— वहाँ से वे कामाक्षी शिवकांची, विष्णुकांची होते हुए नदियों में श्रेष्ठ कवेरी में स्नान किए। उसके पश्चात् वे श्रीरङ्गमक्षेत्र में गये जहाँ भगवान् श्रीहरि का सदैव संनिधान बना रहता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

काञ्चीं पुरीम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

काञ्चीं पुरीम् अर्थात् काञ्च पुरी ॥१४॥

ऋषभाद्रिं हरेः क्षेत्रं दक्षिणां मथुरां तथा । सामुद्रं सेतुमगमन्महापातकनाशनम् ॥१५॥

अन्वयः— हरेः क्षेत्रम् ऋषभाद्रिम् तथा दक्षिणां मथुराम् महापातक नाशनम् सेतुम् अगमत् ॥१५॥

अनुवाद— वहाँ से श्रीबलरामजी भगवान् विष्णु के क्षेत्र ऋषभाद्रि पर गये तथा दक्षिण भारत के मथुरा में गये। तदनन्तर वे बड़े-बड़े पापों को विनष्ट करने वाले सेतुबन्ध गये ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

तत्रायुतमदाद्धेनूर्ब्राह्मणेभ्यो हलायुधः । कृतमालां ताम्रपर्णीं मलयं च कुलाचलम् ॥१६॥

अन्वयः— तत्र हलायुधः अयुतम् धेनुः ब्राह्मणेभ्य अदात् कृतमालां ताम्रपर्णी मलयं कुलचलम् च ययौ ॥१६॥

अनुवाद— वहाँ पर श्रीबलरामजी ने ब्राह्मणों को दश हजार गायों का दान दिया। वहाँ से वे कृतमाला, ताम्रपर्णी इन नदियों में स्नान करके मलयाचल और कुलाचल पर्वत पर गये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१६॥

तत्रागस्त्यं समासीनं नमस्कृत्याभिवाद्य च । योजितस्तेन चाशीर्भिरनुज्ञातो गतोऽर्णवम् ॥
दक्षिणं तत्र कन्याख्यां दुर्गां देवीं ददर्श सः ॥१७॥

अन्वयः— तत्र आसीनं अगस्त्यं नमस्कृत्य अभिवाद्य च तेन आशीर्भिः योजितः अनुज्ञातः अर्णवम् गतः दक्षिणं तत्र कन्याख्यां दुर्गादेवी ददर्श ॥१७॥

अनुवाद— कुलाचल पर्वत पर बैठे हुए अगस्त्य महर्षि को नमस्कार करके तथा उनका अभिवादन करके, उनके द्वारा आशीर्वादों को प्राप्त करके बलरामजी दक्षिण समुद्र की यात्रा किए वहाँ से दुर्गादेवी के कन्याकुमारी रूप का दर्शन किए ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

दक्षिणमर्णवम् ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

दक्षिण समुद्र ॥१७॥

ततः फाल्गुनमासाद्य पञ्चाप्सरसमुत्तमम् । विष्णुः संनिहितो यत्र स्नात्वाऽस्पर्शद्गवायुतम् ॥१८॥

अन्वयः— ततः फाल्गुनम् आसाद्य पंचाप्सरसमुत्तमम्, यत्र विष्णुः संनिहितः स्नात्वा गवायुतम् अस्पर्शत् ॥१८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् फाल्गुन तीर्थ अनन्तशयन क्षेत्र में गये। वहाँ के सर्वश्रेष्ठ पञ्चाप्सरतीर्थ में

स्नान किए । उस तीर्थ में भगवान् विष्णु का सानिध्य सदैव बना रहता है । वहाँ श्रीबलरामजी दस हजार गायों का दान दिए ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

फाल्गुनमनन्तपुरम् । पञ्चाप्सरसं सरः । अस्पर्शदस्पृशत् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

फाल्गुनम् अर्थात् फाल्गुन तीर्थ, पञ्चाप्सरससरः । पञ्चाप्सरस नामकतीर्थ । अस्पृशत् = दान दिए ।।१८।।

ततोऽभिव्रज्य भगवान्केरलांस्तु त्रिगर्तकान् । गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः ।।१९।।

अन्वयः— ततः भगवान् अभिव्रज्य केरलान् त्रिगर्तकान् गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रम् यत्र धूर्जटेः सान्निध्यम् ।।१९।।

अनुवाद— भगवान् बलरामजी वहाँ से चलकर केरल और त्रिगर्त प्रदेशों में होते हुए उस गोकर्णतीर्थ में आये जहाँ भगवान् शिव का सान्निध्य सदैव बना रहता है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

केरलादीन्देशान् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

केरल आदि प्रदेशों में ।।१९।।

आर्यां द्वैपायनीं दृष्ट्वा शूर्परकमगाद्बलः । तापीं पयोष्णीं निर्विन्ध्यामुपस्पृश्याथ दण्डकम् ।।२०।।

अन्वयः— द्वैपायनीम् आर्यां दृष्ट्वा बलः शूर्परकमगात् । तापीं, पयोष्णीं निर्विन्ध्याम् उपस्पृश्य अथ दण्डकम्।।२०।।

अनुवाद— वहाँ जल से घिरी हुई आर्या देवी का दर्शन करके बलरामजी शूर्परक क्षेत्र में आये । अब उसके पश्चात् तापी, पयोष्णी और निर्विन्ध्य । आदि नदियों में स्नान करके वे दण्डकारण्य में आये ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

द्वीपमयनं यस्यास्ताम् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

द्वीप ही जिनका निवास स्थान है ऐसी आर्या देवी का दर्शन करके ।।२०।।

प्रविश्य रेवामगमद्यत्र माहिष्मती पुरी । मनुतीर्थमुपस्पृश्य प्रभासं पुनरागमत् ।।२१।।

अन्वयः— रेवां प्रविश्य यत्र माहिष्मती पुरी अगमत् मनुतीर्थम् उपस्पृश्य पुनः प्रभासं अगमत् ।।२१।।

अनुवाद— वहाँ होकर वे नर्मदा नदी के तट पर आये जहाँ माहीष्मती नगरी है । वहाँ के मनुतीर्थ में स्नान करके वे पुनः प्रभास क्षेत्र में आये ।।२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२१।।

श्रुत्वा द्विजैः कथ्यमानं कुरुपाण्डवसंयुगे । सर्वराजन्यनिधनं भारं मेने हृतं भुवः ।।२२।।

अन्वयः— द्विजैः कथ्यमानं कुरुपाण्डवसंयुगे सर्वराजन्य निधनं श्रुत्वा भुवः भारं हृतं मेने ।।२२।।

अनुवाद— ब्राह्मणों के मुख से यह सुनकर कि कौरवों और पाण्डवों के युद्ध में सभी क्षत्रिय राजा मारे गये यह सुनकर बलरामजी सोचे कि पृथिवी का भार उतर गया ।।२२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२२।।

स भीमदुर्योधनयोर्गदाभ्यां युध्यतोर्मृधे । वारयिष्यन्विनशनं जगाम यदुनन्दनः ॥२३॥

अन्वयः— सः यदुनन्दनः मृधे गदाभ्यां युद्धयतोः भीम दुर्याधनयोः वारयिष्यन् विनशनं जगाम ॥२३॥

अनुवाद— यदुवंश शिरोमणि बलरामजी युद्ध के मैदान में गदा युद्ध करने वाले भीम और दुर्योधन को युद्ध से रोकने की इच्छा से कुरुक्षेत्र गये ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

विनशनं कुरुक्षेत्रम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

विनशनम् अर्थात् कुरुक्षेत्र में ॥२३॥

युधिष्ठिरस्तु तं दृष्ट्वा यमौ कृष्णार्जुनावपि । अभिवाद्याभवंस्तूष्णीं किं विवक्षुरिहागतः ॥२४॥

अन्वयः— युधिष्ठिरः यमौः कृष्णार्जुनावपि तं दृष्ट्वा अभिवाद्य किं विवक्षुः इहागतः इति तुष्णीम् अभवन् ॥२४॥

अनुवाद— युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण उनको नमस्कार करके इसलिए चुप रहे कि न जाने क्या कहने के लिए यहाँ आये हैं, यह सोचकर चुप ही रहे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

विवक्षुर्वक्तुमिच्छुः । किं वदिष्यतीति भिया तूष्णीमासन्निति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

कहने के लिए अर्थात् ये न जाने क्या कहेंगे इस भय से मौन बने रहे ॥२४॥

गदापाणी उभौ दृष्ट्वा संरब्धौ विजयैषिणौ । मण्डलानि विचित्राणि चरन्ताविदमब्रवीत् ॥२५॥

अन्वयः— उभौ गदापाणी, संरब्धौ, विजयैषिणौ विचित्राणिमण्डलानि चरन्तौ दृष्ट्वा इदम् अब्रवीत् ॥२४॥

अनुवाद— उस समय भीम और दुर्योधन दोनों हाथ में गदा लेकर एक दूसरे को जीत लेने के लिए क्रोध में भरकर तरह-तरह के पैंतरे चल रहे थे । उन दोनों को देखकर बलरामजी ने कहा ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

युवां तुल्यबलौ वीरौ हे राजन्हे वृकोदर । एकं प्राणाधिकं मन्ये उतैकं शिक्षयाधिकम् ॥२६॥

अन्वयः— हे राजन् हे वृकोदर युवां तुल्यबलौ वीरौ एकं प्राणाधिकं मन्ये उतैकं शिक्षयाधिकम् ॥२६॥

अनुवाद— हे दुर्योधन और हे भीम तुम दोनों समान बलवाले वीर हो तुम दोनों में भीम अधिक बलवान है और दुर्योधन ने गदा युद्ध में शिक्षा अधिक प्राप्त की है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

तस्मादेकतरस्येह युवयोः समवीर्ययोः । न लक्ष्यते जयोऽन्यो वा विरमत्वफलो रणः ॥२७॥

अन्वयः— समवीर्ययोः युवयोः एकतरस्य जयः अन्यो वा न लक्ष्यते, तस्मात् अफला रणः विरमतु ॥२७॥

अनुवाद— तुम दोनों का पराक्रम एक समान होने के कारण दोनों में से किसी एक का विजय और दूसरे का पराजय हो ऐसा नहीं प्रतीत होता है । अतएव तुम दोनों इस निष्फल युद्ध को करना बन्द कर दो ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अन्यः पराजयो वा । रणः संग्रामः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

अन्यः अर्थात् पराजय । रणः अर्थात् संग्राम ॥२७॥

न तद्वाक्यं जगृहतुर्बद्धवैरौ नृपार्थवत् । अनुस्मरन्तावन्योन्यं दुरुक्तं दुष्कृतानि च ॥२८॥

अन्वयः— हे नृप ! बद्धवैरौ अन्योन्यं दुरुक्तं दुष्कृतानिच अनुस्मरन्तौ तत् अर्थवत् वाक्यं न जगृहतुः ॥२८॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् उन दोनों का वैर सुदृढ हो गया था वे एक दूसरे की कटुवाणी और दुर्व्यवहार याद करते हुए दोनों के लिए हितकर बलरामजी की बात को वे दोनों नहीं माने ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अर्थवद्वाक्यम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

अर्थवत् अर्थात् हितकारी बात ॥२८॥

दिष्टं तदनुमन्वानो रामो द्वारवतीं ययौ । उग्रसेनादिभिः प्रीतैर्ज्ञातिभिः समुपागतः ॥२९॥

अन्वयः— रामः तद्दिष्टमनुमन्वानः द्वारवतीं ययौ उग्रसेनादिभिः ज्ञातिभिः प्रीतैः समुपागतः ॥२९॥

अनुवाद— श्रीबलरामजी ने मान लिया कि इन दोनों का प्रारब्ध ही ऐसा है, अतएव दोनों के विषय में किसी प्रकार का आग्रह न करके वे द्वारका चले गये । वहाँ उग्रसेन आदि तथा दूसरे संबन्धियों ने उनका आगे आकर स्वागत किया ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

दिष्टं प्राचीनं कर्म । समुपागतः सङ्गतः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

नहीं है ॥२९॥

तं पुनर्नैमिषं प्राप्तमृषयोऽयाजयन्मुदा । क्रत्वङ्गं क्रतुभिः सर्वैर्निवृत्ताखिलविग्रहम् ॥३०॥

अन्वयः— पुनः नैमिषं प्राप्तं सर्वैः क्रतुभिः निवृत्ताखिलविग्रहम् क्रत्वङ्गम् तं ऋषयः मुदा अयाजयन् ॥३०॥

अनुवाद— वहाँ से फिर बलरामजी नैमिषारण्य क्षेत्र में गये वहाँ ऋषियों ने विरोध भाव से निवृत्त बलरामजी से प्रेमपूर्वक सभी यज्ञों को कराया । वास्तविकता तो यह है कि सभी प्रकार के यज्ञ बलरामजी के अङ्ग ही हैं॥३०॥

भावार्थ दीपिका

क्रत्वङ्गं यज्ञमूर्तिम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

क्रत्वङ्गम् अर्थात् यज्ञमूर्ति स्वरूप ॥३०॥

तेभ्यो विशुद्धविज्ञानं भगवान्व्यतरद्विभुः । येनैवात्मन्यदो विश्वमात्मानं विश्वगं विदुः ॥३१॥

अन्वयः— भगवान् विभुः तेभ्यः विशुद्ध विज्ञानं येनैवात्मन्यदो विश्वम् आत्मानं विश्वगं विदुः ॥३१॥

अनुवाद— सर्व समर्थ श्रीबलरामजी उन ऋषियों को विशुद्ध तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया, जिससे वे लोग इस सम्पूर्ण विश्व को अपने आप में और अपने आपको सम्पूर्ण विश्व में अनुभव करने लगे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

आत्मन्यधिष्ठाने विश्वगं सर्वानुस्यूतं येनैव विदुः पश्यन्ति तद्विशुद्धं विज्ञानं व्यतरददात् ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

जिस विज्ञान के द्वारा वे लोग आत्मारूपी अधिष्ठान में विश्व के समस्त वस्तुओं को देखते हैं। उस विज्ञान को उन्होंने प्रदान किया ।।३१।।

स्वपत्न्यावभृथस्नातो ज्ञातिबन्धुसुहृद्वृतः । रेजे स्वज्योत्स्नयेवेन्दुः सुवासाः सुष्ठ्वलंकृतः ।।३२।।

अन्वयः— स्वपत्न्यावभृथस्नातः सुवासा सुष्ठवलंकृतः ज्ञातिबन्धुसुहृद्वृतः स्वज्योत्स्नया इन्दुः इव रेजे ।।३२।।

अनुवाद— उसके पश्चात् अपनी पत्नी के साथ अवभृथ स्नान करके सुन्दर वस्त्रों आदि से अलंकृत अपने भाई बन्धु एवं संबन्धियों के साथ उसी तरह सुशोभित हुए जिस तरह चन्द्रमा अपनी चन्द्रिका और तारों के बीच में सुशोभित होते हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३२।।

ईदृग्विधान्यसंख्यानि बलस्य बलशालिनः । अनन्तस्याप्रमेयस्य मायामर्त्यस्य सन्ति हि ।।३३।।

अन्वयः— अनन्तस्य अप्रमेयस्य मायामर्त्यस्य बलस्य वलशलिनः इदृग्विधानिअसंख्यानि सन्ति हि ।।३३।।

अनुवाद— भगवान् बलरामजी स्वयम् अनन्त हैं। उनका स्वरूप वाणी और मन से परे है। वे लीला करने के ही लिए मनुष्य का शरीर धारण किए हैं, बलशाली बलरामजी के ऐसे असंख्य चरित्र हैं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३३।।

योऽनुस्मरेत रामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः । सायंप्रातरनन्तस्य विष्णोः स दयितो भवेत् ।।३४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे बलदेवतीर्थयात्रानिरूपणं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ।।७९।।

अन्वयः— अद्भुत कर्मणः रामस्य कर्माणि सायं प्रातः अनुस्मरेत् सः विष्णोः दयितो भवेत् ।।३४।।

अनुवाद— जे मनुष्य अद्भुत कर्मों को करने वाले बलरामजी के कर्मों को सायंकाल और प्रात:काल स्मरण करता है वह भगवान् विष्णु का प्रिय हो जाता है ।।३४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के बलरामजी के चरित्र का निरूपण नामक उनासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः ।।७९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका टीका के उनासीवें अधायय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।७९।।

* * *

अस्सीवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा सुदामाजी का स्वागत

राजोवाच

भगवन्यानि चान्यानि मुकुन्दस्य महात्मनः । वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामहे प्रभो ॥१॥

अन्वयः— हे भगवन् अनन्तवीर्यस्य महात्मनः मुकुन्दस्य यानि च अन्यानि तानि श्रोतुम् इच्छामहे प्रभो ॥१॥

राजा परीक्षित् ने पूछा

अनुवाद— हे भगवन् श्रीभगवान् का पराक्रम अनन्त है, वे महापुरुष हैं तथा भोग एवं मोक्ष को प्रदान करने वाले हैं। उनकी दूसरी जो लीलाएँ हैं उन सबों को मैं सुनना चाहता हूँ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अथाशीतितमे कृष्णः श्रीदामानं गृहागतम् । संपूज्यापृच्छदर्थेप्सुं गुरुवासकथां मुदा । सुरारिमारको हरिः पुरा चकार शं सताम्। अतः परं विनैव तन्निजोपकारमाचरत् । रामचरितानि श्रुत्वा पुनर्मुकुन्दवीर्याणि पृच्छति-हे भगवन्, श्रोतुमिच्छामीत्यन्वयः॥१॥

भाव प्रकाशिका

असीवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने यहाँ आये हुए श्रीदामाकी पूजा करके धन को प्राप्त करना चाहने वाले श्रीदामा से गुरुकुल में निवास के दिनों की प्रसन्नता पूर्वक बात की। देवताओं के शत्रु को मारने वाले श्रीहरि ने प्राचीन काल में सत्पुरुषों का कल्याण किया। इसके पश्चात् उसके बिना ही वे अपने लोगों का उपकार किए। श्रीबलरामजी के चरित्रों को सुनने के पश्चात् राजा परीक्षित् ने पुनः श्रीभगवान् की लीलाओं को सुनने के लिए भगवन् इत्यादि श्लोक से श्रीशुकदेवजी से पूछते हैं हे भगवन् का श्रोतुम् इच्छामि से अन्वय है ॥१॥

को नु श्रुत्वा सकृद्ब्रह्मन्नुत्तमश्लोकसत्कथाः । विरमेत विशेषज्ञो विषण्णः काममार्गणैः ॥२॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् सकृत् उत्तमश्लोकसत्कथाः श्रुत्वा को नु काममार्गणैः विषण्णः विशेषज्ञ; विरमेत् ॥२॥

अनुवाद— हे भगवन् एक बार भी श्रीभगवान् की सुन्दर कथाओं को सुनकर काम के बाणों से दुःखी विषेषज्ञ पुरुष फिर भी श्रीभगवान् की कथाओं को नहीं सुनना चाहेगा ॥२॥

भावार्थ दीपिका

उत्तमश्लोकस्य श्रीकृष्णस्य सत्यो मनोहरा विषयवैतृष्ण्यजनिकाः कथाः। विशेषज्ञः सारवित् । विषण्णो विषादं प्राप्तः॥२॥

भाव प्रकाशिका

उत्तमश्लोकस्य अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण की सत्यः अर्थात् मनोहर जिनको सुनकर विषयों से वैराग्य हो जाये ऐसी श्रीभगवान् की कथाओं को। विशेषज्ञः अर्थात् सारवेत्ता, विषण्ण विषाद करने वाला ॥२॥

सा वाग्यया तस्य गुणान् गृणीते करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च ।
स्मरेद्वसन्तं स्थिरजङ्गमेषु शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥३॥
शिरस्तु तस्योभयलिङ्गमानमेत् तदेव यत्पश्यति तद्धि चक्षुः ।
अङ्गानि विष्णोरथ तज्जनानां पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम् ॥४॥

अन्वयः— सा वाक् यया तस्य गुणान् गृणीते, तत्कर्मकरौ च करौ, मनश्च स्थिरजङ्गमेषुवसन्तं स्मरेत् स कर्णः यः तत्पुण्यकथा श्रृणोति, शिरः तु तत् उभयलिङ्गम् आनमेत् यत-तदेव पश्यति तत् हि चक्षुः विष्णोः अथ तज्जनानां चरणोदकं यानि नित्यं भजन्ति तानि अङ्गानि ॥३-४॥

अनुवाद— वास्तविक वाणी वही है, जो श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन न करे वे ही हाथ वास्तविक हाथ हैं जो श्रीभगवान् की सेवा के लिए कर्मों को करे वही मन सच्चा मन है जो सभी प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से रहने वाले श्रीहरि का स्मरण करे, वही कान वस्तुत: कान है जो श्रीभगवान् की पवित्र कथाओं का श्रवण करें, वही सिर भी सच्चा सिर है जो श्रीभगवान् की प्रतिमा रूप और भगवद् भक्त रूप चिह्नों को नमस्कार करता है। एवं नेत्र भी वही सच्चा नेत्र है, जो सबों में परमात्मदर्शन करे। अङ्ग भी वे ही वास्तविक अङ्ग है जो प्रतिदिन श्रीभगवान् के तथा उनके भक्तों के चरणोंदक का सदैव सेवन करें ॥३-४॥

भावार्थ दीपिका

कथाश्रवणं स्तुवन् दृष्टान्ततयाऽन्यार्थानाह-सा वागिति। तावेव करौ यौ तत्कर्मकर्तारौ। तदेव मनो यत्स्थिरजङ्गमेषु वसन्तं स्मरेत्। यस्तस्य पुण्याः कथाः शृणोति स एव कर्णः। उभयलिङ्गं स्थिरं जङ्गमं च तस्यैव लिङ्गमिति मत्वा आनमेत्तदेव शिरः। तदेव तस्य लिङ्गमित्येव यत्पश्यति तदेव चक्षुः। तान्येवाङ्गानि यानि पादोदकं भजन्तीति ॥३-४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की कथा के श्रवण की प्रशंसा करते हुए राजा परीक्षित् दृष्टान्त रूप से दूसरे भी अर्थों को उपन्यस्त **सावागित्यादि** दो श्लोकों से करते हैं। श्रीभगवान् की सेवा के लिए कर्म करने वाले ही हाथ, सच्चे हाथ हैं। वही मन सच्चा मन हैं जो जड़ चेतन के भीतर रहने वाले श्रीभगवान् का स्मरण करे। श्रीभगवान् की पवित्र कथाओं को सुनने वाले ही वास्तविक कान हैं। जड़ चेतन दोनों प्रकार के सारे पदार्थ श्रीभगवान् के मूर्तरूप है यह मानकर सबो को नमस्कार करने वाला शिर ही वस्तुत: शिर है। वे ही परमात्मा की मूर्ति हैं इस तरह से देखने वाले नेत्र ही वास्तव में सच्चे नेत्र हैं। वे ही अङ्ग सार्थक अङ्ग है जो भगवान् विष्णु और उनके भवतों का चरणोदक लेते हैं ॥३-४॥

सूत उवाच

विष्णुरातेन संपृष्टो भगवान्बादरायणिः। वासुदेवे भगवति निमग्नहृदयोऽब्रवीत् ॥५॥

अन्वयः— विष्णुरातेन संपृष्टः भगवान् बादरायणिः वासुदेवे भगवति निमग्नहृदय अब्रवीत् ॥५॥

सूत जी ने कहा

अनुवाद— शौनकादि ऋषियों राजा परीक्षित् के इस प्रकार पूछने पर श्रीशुकदेवजी का हृदय भगवान् श्रीकृष्ण में ही तल्लीन हो गया और वे कहने लगे ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

श्रीशुक उवाच

कृष्णस्यासीत्सखा कश्चिद्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः। विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः ॥६॥

अन्वयः— कृष्णस्य कश्चित् ब्रह्मवित्तमः इन्द्रियार्थेषु विरक्तः प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः ब्राह्मणः सखा आसीत् ॥६॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के एक ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ विषयों से विरक्त शान्तचित्त वाले जितेन्द्रिय ब्राह्मण मित्र थे ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानो गृहाश्रमी। तस्य भार्या कुचैलस्य क्षुत्क्षामा च तथाविधा ॥७॥

अन्वयः— गृहाश्रमी यदृच्छयोपपन्नेन वर्तमानः तस्य कुचैलस्य क्षुतक्षामा भार्या च तथा विधा ॥७॥

अनुवाद— वे गृहस्थाश्रमी भी होकर सभी प्रकार के संग्रह तथा परिग्रह आदि से रहित होने के कारण प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ भी मिल जाता था उसी में संतुष्ट रहते थे । उनके वस्त्र फटे पुराने रहते थे ही उनकी भूख-प्यास से दुर्बल बनी हुई उनकी पत्नी के भी वस्त्र वैसे ही थे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तथाविधा कुचैला । किंच क्षुत्क्षामा यत्किंचित्संपन्नमन्नं तस्मै परिविष्य स्वयं क्षुधा जीर्णा ॥७॥

भाव प्रकाशिका

तथा विधा श्रीदामा के ही समान फटे पुराने वस्त्रों वाली थी क्षुत्क्षामा जो कुछ भी मिल जाता उसे अपने पति को परोसकर स्वयं भूखी रह जाने के कारण जराग्रस्त हो गयी थी ॥७॥

पतिव्रता पतिं प्राह म्लायता वदनेन सा । दरिद्रा सीदमाना सा वेपमानाभिगम्य च ॥८॥

अन्वयः— दरिद्रा सीदमाना वेपमाना पतिम् अभिगम्य सा पतिव्रता म्लान्यता वदनेन पतिं प्राह ॥८॥

अनुवाद— दारिद्रता की मूर्ति दुःखों का अनुभव करने वाली काँपती हुई वह पतिव्रता अपने पति के पास आकर अपने पति से कुम्हलाये मुख से कही ॥८॥

भावार्थ दीपिका

पतिव्रता सती । म्लायता शुष्यता वदनेन । सीदमाना भर्तुर्भोगसंपादनाशक्ततयाऽवसीदन्ती । वेपमाना भयेन कम्पमाना॥८॥

भाव प्रकाशिका

वह पातिव्रत्य व्रत का पालन करती थी । म्लायता वदनेन = सुखे मुख से । सीदमाना अर्थात् अपने पति के भोग पदार्थों को सम्पादित करने की शक्ति से रहित । वेपमाना अर्थात् भय के कारण काँपती हुई ॥८॥

ननु ब्रह्मन्भगवतः सखा साक्षाच्छ्रियःपतिः । ब्रह्मण्यश्च शरण्यश्च भगवान्सात्वतर्षभः ॥९॥

अन्वयः— ननु ब्रह्मन् भगवतः सखा सात्वतर्षभः भगवान् साक्षात् श्रियःपंतिः ब्रह्मण्यः शरण्यः च ॥९॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! आपके मित्र यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण है । वे साक्षात् लक्ष्मीजी के पति ब्राह्मणों के भक्त तथा शरणागत जीवों की रक्षा करने वाले हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

तमुपैहि महाभाग साधूनां च परायणम् । दास्यति द्रविणं भूरि सीदते ते कुटुम्बिने ॥१०॥

अन्वयः— हे महाभाग साधूनां च परायणम् तम् उपैहि, सीदते कुटुम्बिने ते भूरि द्रविणं दास्यति ॥१०॥

अनुवाद— हे महाभाग्यवान् आर्यपुत्र साधु संतों के एक मात्र रक्षक आप उनके पास जाइये । आप कुटुम्बी हैं और कष्ट भोग रहे हैं तो वे आपको बहुत सा धन देंगे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

आस्तेऽधुना द्वारवत्यां भोजवृष्ण्यन्धकेश्वरः । स्मरतः पादकमलमात्मानमपि यच्छति ॥
किं न्वर्थकामान्भजतो नात्यभीष्टान् जगद्गुरुः ॥११॥

अन्वयः— जगद्गुरुः भोजवृष्णियन्धकेश्वरः अधुना द्वारवत्यां आस्ते पादकमलम् स्मरतः आत्मानमपि यच्छति, भजतः नात्यभिष्टान् अर्थकामान् किं नु ॥११॥

अनुवाद— वे सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं तथा भोजवंशी, वृष्णिवंशी एवं अन्धकवंशी यादवों के स्वामी हैं । इस समय वे द्वारका में निवास करते हैं । जो भक्त उन भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों को सदा स्मरण

करते हैं, उन भक्तों को तो वे अपने को भी दे देते हैं। उनके भक्तों को जो अत्यन्त अभीष्ट नहीं है, उस संपत्ति को प्राप्त करना चाहते है उनके विषय में क्या कहना है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

भोजवृष्ण्यन्धकेश्वर इति तत्स्वीकारमात्रेण सर्वे ते दास्यन्तीति भावः। नात्यभीष्टान्परिपाकविरसत्वात् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

जो लोग यह मानते हैं कि भगवान् भोजवंशी, वृष्णिवंशी तथा अन्धकवंशी यादवों के स्वामी हैं। नात्यभीष्टान् अर्थात् जिस धन सम्पत्ति का परिणाम नीरस हो जाता है ।।११।।

स एवं भार्यया विप्रो बहुशः प्रार्थितो मृदु। अयं हि परमो लाभ उत्तमश्लोकदर्शनम् ।।१२।।
इति संचिन्त्य मनसा गमनाय मतिं दधे। अप्यस्त्युपायनं किंचिद्गृहे कल्याणि दीयताम्।।१३।।

अन्वयः— एवं भार्यया बहुशः मृदु प्रार्थितः विप्रः उत्तमश्लोक दर्शनम् अयं हि परमो लाभः इति मनसा संचिन्त्य गमनाय मतिं दधे, कल्याणि गृहे किञ्चिदुपायनम् अपि अस्ति दीयताम् ।।१२-१३।।

अनुवाद— इस तरह से पत्नी के द्वारा नम्रता पूर्वक प्रार्थना किये जाने पर वे ब्राह्मण देवता यह सोचकर जाने का मन बना लिए कि वहाँ जाने का सबसे बड़ा लाभ है कि पवित्र कीर्ति श्रीभगवान् का दर्शन मिल जायेगा। इस तरह सोचकर वे अपनी पत्नी से कहे कि यदि घर में कुछ उपहार देने के लिए हो तो दो ।।१२-१३।।

भावार्थ दीपिका

अप्यस्ति किमस्तीति प्रश्नः ।।१२-१३।।

भाव प्रकाशिका

अप्यस्ति अर्थात् क्या है ?।।१२-१३।।

याचित्वा चतुरो मुष्टीन्विप्रान्पृथुकतण्डुलान्। चैलखण्डेन तान्बद्ध्वा भर्त्रे प्रादादुपायनम् ।।१४।।

अन्वयः— विप्रान् चतुरो मुष्टीन् पृथुकतण्डुलान् याचित्वा तान् चैलखण्डेन बद्धवा भर्त्रे उपायनम् प्रादात् ।।१४।।

अनुवाद— ब्राह्मणों के घर से चार मुट्ठी मोटा चावल माँगकर और उसे कपड़े के टुकड़े में बाँधकर अपने पति को उपहार के लिए दे दी ।।१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४।।

स तानादाय विप्राग्र्यः प्रययौ द्वारकां किल। कृष्णसंदर्शनं मह्यं कथं स्यादिति चिन्तयन् ।।१५।।

अन्वयः— सः विप्राग्र्यः तानादाय मह्यं कृष्ण संदर्शनं कथं स्यादिति चिन्तयन् द्वारकां प्रययौ ।।१५।।

अनुवाद— वे ब्राह्मणवर्य उन चावलो को लेकर यह सोचते हुए कि भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन मुझे कैसे मिलेगा द्वारका के लिए प्रस्थान किए ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

मह्यं मम ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अनुवाद— द्वारका में पहुँचकर वे ब्राह्मण देवता दूसरे द्विजों के साथ सैनिकों की तीन छावनियाँ और तीन ड्योढियों को पार करके भगवद् धर्म का पालन करने वाले अन्धक और वृष्णिवंशी यादवों के महलों में जहाँ पहुँचना कठिन था वहाँ पहुँच गये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

गुल्मानि रक्षार्थं सैन्यस्थानानि । कक्षाः प्रतोलीः । अतीयायातिक्रम्य जगाम । सद्विजो द्विजैः सहितः । ततश्च अगम्या दुर्गमा येऽन्धका वृष्णयश्च तेषां गृहेषु ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

सैनिकों की छावनियों को गुल्म कहते है । कक्षा अर्थात् डयोढियाँ अतियाय पार करके । सद्विजः अर्थात् ब्राह्मणों के साथ । उसके पश्चात् जहाँ जाना कठिन है उन अन्धकवंशी एवं वृष्णिवंशियों के महलों में ॥१६॥

गृहं द्रव्याष्टसहस्राणां महिषीणां हरेर्द्विजः । विवेशैकतमं श्रीमद्ब्रह्मानन्दं गतो यथा ॥१७॥

अन्वयः— द्विजः हरेः द्वयष्टसहस्राणां महिषीणां एकतमं गृहं विवेश श्रीमद्ब्रह्मानन्दगतो यथा ॥१७॥

अनुवाद— वहाँ श्रीहरि के सोलह हजार रानियों के महलों में से एक महल में वे ब्राह्मण देवता प्रवेश किए। उसमें प्रवेश करके वे ब्रह्मानन्द के आनन्द को जैसे प्राप्त कर लिए ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तथा हरेद्यवष्टसहस्राणां महिषीणां च ये गृहास्तेषु मध्ये श्रीमदेकतमं गृहं विवेश । तदा च स द्विजो बह्मानन्दं गतो यथा तथा बभूवेति शेषः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

वहाँ श्रीहरि की सोलह हजार रानियों गृहों में एक एश्वर्य सम्पन्न गृह में प्रवेश किए तो उन्हें जैसे ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो गयी हो उस तरह से वे हो गये ॥१७॥

तं विलोक्याच्युतो दूरात्प्रियापर्यङ्कमास्थितः । सहसोत्थाय चाभ्येत्य दोर्भ्यां पर्यग्रहीन्मुदा ॥१८॥

अन्वयः— प्रियापर्यङ्कमास्थितः अच्युतः दूरात् तं विलोक्य सहसोऽत्थाय अभ्येत्य च मुदा दोर्भ्यां पर्यग्रहीत् ॥१८॥

अनुवाद— अपनी प्रियतमा के पलङ्ग पर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्ण उनको दूर से ही देखकर सहसा उठकर खड़े हो गये और उनके पास आकर अपनी दोनों भुजाओं से पकड़कर अपने हृदय से लगा लिए ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

पर्यग्रहीत्पर्यरीम्भत ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

पर्यग्रहीत अर्थात् आलिङ्गन किए ॥१८॥

सख्यु प्रियस्य विप्रर्षेरङ्गसङ्गातिनिर्वृतः । प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून्नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ॥१९॥

अन्वयः— प्रियस्य सख्युः विप्रर्षेः अङ्गसङ्गाति निर्वृतः पुष्करेक्षणः नेत्राभ्याम् अब्बिन्दून् व्यमुञ्चत् ॥१९॥

अनुवाद— अपने प्रिय सखा ब्राह्मण देवता के अङ्गों के संस्पर्श से कमलनयन श्रीभगवान् को परमानन्द की प्राप्ति हुई और उनके कमल के समान कोमल नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

अब्बिन्दूनानन्दाश्रूणि ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अब्बिन्दून् अर्थात् आनन्दाश्रु ॥१९॥

अथोपवेश्य पर्यङ्के स्वयं सख्युः समर्हणम्। उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ॥२०॥
अग्रहीच्छिरसा राजन् भगवाँल्लोकपावनः। व्यलिम्पद्दिव्यगन्धेन चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ॥२१॥

अन्वयः— अथ पर्यङ्के उपवेश्य स्वयं सख्यु समर्हणम् उपहृत्य अस्य पादौ अवनिज्य पादावनेजनीः लोकपावनः भगवान् शिरसा अग्रहीत दिव्यगन्धेन चन्दनागुरुकुंकुमैः व्यलिम्पत् ॥२०-२१॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् इसके पश्चात् श्रीहरि उन्हें ले जाकर पलङ्ग पर बैठा दिए। स्वयं ही पूजन की सामग्री लाकर संसार के पवित्र बनाने वाले श्रीभगवान् उन ब्राह्मण देवता के पैरों को धोकर उनके चरणोदक को अपने सिर पर धारण किए। और उनके शरीर में चन्दन अरगजा तथा केसर आदि दिव्य गन्धों का लेप किए ॥२०-२१॥

भावार्थ दीपिका

समर्हणमुपायनमुपहृत्य समर्प्य। पादावनेजनीरपः ॥२०-२१॥

भाव प्रकाशिका

पूजन सामग्री समर्पित करके। उनके चरणोदक के जल को ॥२०-२१॥

धूपैः सुरभिभिर्मित्रं प्रदीपावलिभिर्मुदा। अर्चित्वावेद्य ताम्बूलं गां च स्वागतमब्रवीत् ॥२२॥

अन्वयः— मित्रं सुरभिभिः प्रदीपावलिभिः मुदा अर्चित्वा, ताम्बूलम् गां च आवेद्य स्वागतम् अब्रवीत् ॥२२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् सुगन्धित धूपों और दीप समूहों से उन ब्राह्मण देवता की आरती उतारे। उनकी पूजा करके पान तथा गौदान दिए और कहे आपके आगमन का स्वागत है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

कुचैलं मलिनं क्षामं द्विजं धमनिसंततम्। देवी पर्यचरत्साक्षाच्चामरव्यजनेन वै ॥२३॥

अन्वयः— कुचैलं मलिनं क्षामं धमनिसंततम् द्विजम् देवी वै चामर व्यजनेन साक्षात् पर्यचरत् ॥२३॥

अनुवाद— फटे पुराने वस्त्र पहने हुए, मलिन और दुर्बल शरीर वाले श्रीदामाजी के शरीर की सभी नसें दिखायी दे रही थीं। उनको चमर से वायु करने का काम साक्षात् रुक्मिणीजी कर रही थी ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

धमनिभिः शिराभिः सन्ततं व्याप्तम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

उनका शरीर शिराओं से व्याप्त था ॥२३॥

अन्तःपुरजनो दृष्ट्वा कृष्णेनामलकीर्तिना। विस्मितोऽभूदतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितम् ॥२४॥

अन्वयः— अमलकीर्तिना कृष्णेन अतिप्रीत्या अवधूतं सभाजितं दृष्ट्वा अन्तपुरजनः विस्मितोऽभूत् ॥२४॥

अनुवाद— उज्ज्वल कीर्ति सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा अत्यन्त प्रेमपूर्वक अवधूत मैले कुचैले वस्त्र पहने हुए नङ्ग धडङ्ग ब्राह्मण की पूजा करते हुए देखकर अन्तःपुर की स्त्रियाँ अत्यन्त आश्चर्य चकित हो गयीं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अवधूतं मलिनम् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

अवधूत अर्थात् मलिन ।।२४।।

किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा । श्रिया हीनेन लोकेऽस्मिन् गर्हितेनाधमेन च ।।२५।।
योऽसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन संभृतः । पर्यङ्कस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा।।२६।।

अन्वयः— अनेन अवधूतेन भिक्षुणा श्रियाहीनेन, गर्हितेन, अधमेन च अस्मिन् लोके किं पुण्यं कृतम् यो असौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन संभृतः पर्यङ्कस्थां श्रियं हित्वा अग्रजो यथा परिष्वक्तः ।।२५-२६।।

अनुवाद— वे आपस में कह रही थीं इस नङ्ग-धडंङ्ग, निर्धन निन्दनीय, निकृष्ट भिखमंगेने इस संसार में कौन सा ऐसा पुण्य किया है ? जिसके कारण त्रैलोक्याधिपति भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं इसका आदर सत्कार कर रहे हैं। इन्होंने पलङ्ग पर सेवा करती हुई स्वयं लक्ष्मी स्वरूपा श्रीरुक्मिणीजी को छोड़कर इस ब्राह्मण को अपने बड़े भाई बलरामजी के समान अपने हृदय से लगाये हैं ।।२५-२६।।

भावार्थ दीपिका

विस्मयमाह-किमनेनेति द्वाभ्याम् । संभृतः संमानितः ।।२५-२६।।

भाव प्रकाशिका

किमनेन इत्यादि श्लोकों से विस्मय को ही बतलाते हैं। सभृतः सत्कार किये हैं ।।२५-२६।।

कथयांचक्रतुर्गाथाः पूर्वा गुरुकुले सतोः । आत्मनो ललिता राजन्करौ गृह्य परस्परम् ।।२७।।

अन्वयः— राजन् परस्परं करौ गृह्य आत्मनोः सतोः गुरुकुले पूर्वागाथाः कथयांचक्रतुः ।।२७।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् वे एक दूसरे का हाथ पकड़कर अपने पूर्वकाल के जबकि वे गुरुकुल में थे उस समय की मनोहर घटनाओं का वर्णन कर रहे थे ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

सतोर्वसतोः । गृह्य गृहीत्वा ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

सतोः अर्थात् निवास करते थे । **गृह्य** अर्थात् पकड़कर ।।२७।।

श्रीभगवानुवाच

अपि ब्रह्मन्गुरुकुलाद्भवता लब्धदक्षिणात् । समावृत्तेन धर्मज्ञ भार्योढा सदृशी न वा ।।२८।।

अन्वयः— धर्मज्ञ ब्रह्मन् गुरुकुलात् लब्धदीक्षणात् समावृतेन भवता भार्या अपि संदृशी उढ़ा न वा ।।२८।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे धर्म के जानकार ब्रह्मन्, गुरुकुल में गुरु दक्षिणा देने के पश्चात् जब आपका समवर्तन हो गया उसके पश्चात् आप अपने अनुरूप पत्नी के साथ विवाह किए कि नहीं ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

भार्या ऊढा परिणीता न वेति गृहस्थलिङ्गदर्शनाद्भोगादर्शनाच्च संशयादिव प्रश्नः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

पत्नी के साथ विवाह किया कि नहीं यह प्रश्न भगवान् उनके गृहस्थ चिह्न को देखकर तथा भोग राहित्य को देखकर संशय वशात् किए ।।२८।।

प्रायो गृहेषु ते चित्तमकामविहतं तथा । नैवातिप्रीयसे विद्वन्धनेषु विदितं हि मे ॥२९॥

अन्वयः— प्रायः गृहेषु ते चित्तम् अकाम विहतं तथा धनेषु नैव अति प्रियसे इति हि मे विदितम् ।।२९।।

अनुवाद— मैं जानता हूँ कि गृहस्थी में रहकर भी आप प्राय: विषयभोगों में आसक्त नहीं रहते हैं। ब्रह्मन् मैं यह भी जानता हूँ कि आपकी प्रीति धन आदि में नहीं है ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

अप्रतिषेधादुद्वाहमनुमतं मत्वाह-प्राय इति । तर्हि ते चित्तं नूनमकामविहतं कामैर्विहतं न भवतीति मे विदितम् । तथा हि धनेषु वस्त्रादिषु नैवातिप्रीयसे । हे विद्वन्निति । विदुषस्तवैतद्युक्तमिति भावः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

निषेध नहीं करने के कारण विवाह किए हैं यह मान कर कहते है। यह मैं जानता हूँ कि आपका मन काम में आसक्त नहीं रहता है। किञ्च आपको वस्त्रादि से भी अधिक प्रेम नहीं है। यह जानता हूँ आप ज्ञानी हैं अतएव आपके लिए यह उचित ही है ।।२९।।

केचित्कुर्वन्ति कर्माणि कामैरहतचेतसः । त्यजन्तः प्रकृतीर्दैवीर्यथाहं लोकसंग्रहम् ॥३०॥

अन्वयः— कामैः अहतचेतसः केचित् कर्माणि कुर्वन्ति दैवीः प्रकृतीः त्यजन्तः यथा अहम् लोकसंग्रहम् ।।३०।।

अनुवाद— संसार में कुछ ही ऐसे लोग होते हैं जो श्रीभगवान् की माया से निर्मित विषय वासनाओं का त्याग करके चित्त में तनिक वासना नहीं रहने पर भी मुझ जैसे लोक संग्रहार्थ कर्मों को करते रहते हैं ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

कामहतत्वाभावे किं गृहधर्मक्लेशेनेत्याशङ्क्याह-केचिदिति । दैवीरीश्वरमायारचिताः प्रकृतिर्विषयवासनास्त्यजन्तः । कामैरनाकृष्टचेतसामपि कर्मकरणे दृष्टान्तः-यथाऽहमिति । लोकसंग्रहं लोकस्य संग्रहो ग्रहणं यथा भवति तथाहमीश्वरोऽपि कर्माणि यथा करोमि तद्वत् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

चित्त के अनासक्त होने पर भी गृहधर्म के क्लेशों को सहने से कौन सा लाभ है इस तरह की आशङ्का करके **केचित्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। परमात्मा की माया से रचित विषयवासना का त्याग करके। चित्त के काम से आकृष्ट होने पर कर्मों के करने में दृष्टान्त बतलाते हैं लोक को शिक्षा देने के लिए कर्म करते हैं, जैसे ईश्वर होकर भी मैं कर्मों को करता रहता हूँ ।।३०।।

कच्चिद्गुरुकुले वासं ब्रह्मन्स्मरसि नौ यतः । द्विजो विज्ञाय विज्ञेयं तमसः पारमश्नुते ॥३१॥

अन्वयः— ब्रह्मन् ! कच्चिद् गुरुकुले नौ वासं स्मरसि, यतः द्विजः विज्ञेयं विज्ञाय तमसः पारमश्नुते ।।३१।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन् क्या आपको याद है जब हम दोनों एक साथ गुरुकुल में रहते थें, वस्तुतः गुरुकुल में ही ज्ञातव्य बातों को जानकर मनुष्य अज्ञानान्धकार को पार कर पाता है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

नौ आवयोः यतो गुरोः विज्ञेयं परमात्मतत्त्वम् । तमसः संसारस्य ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

नौ अर्थात् हम दोनों के । जहाँ गुरु से परमात्म तत्त्व को जानकर जीव संसार सागर को पार कर जाता है ।।३१।।

स वै सत्कर्मणां साक्षाद्द्विजातेरिह संभवः । आद्योऽङ्ग यत्राश्रमिणां यथाहं ज्ञानदो गुरुः ।।३२।।

अन्वयः— इह यतः साक्षात् संभवः स आद्यः गुरुः यत्र आश्रामिणां द्विजातेः सत्कर्मणां यथा हं गुरुः । ज्ञानदः गुरुः।।३२।।

अनुवाद— इस संसार में शरीर का कारण जन्म देने वाला प्रथम गुरु है । इसके बाद उपनयनादि संस्कार करके सत्कर्मों की शिक्षा देने वाला द्वितीय गुरु है । वह मेरे समान पूज्य है । ज्ञानोपदेश करके परमात्मा को प्राप्त कराने वाला तो गुझसे भी बढ़कर गुरु है । इस तरह इस संसार में तीन गुरु हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

तत्रात्मज्ञानप्रदस्य गुरोरत्यन्तं पूज्यत्वं वक्तुं पुरुषस्य त्रीन् गुरूनाह-स वा इति । इह संसारे यत्र सम्भवो जन्ममात्रं स पिता तावदाद्यः प्रथमो गुरुः पूज्यः । कर्मविद्याप्रदं गुरुमाह-द्विजातेः सतः पुंसः सत्कर्मणा यत्र संभवः । उपनीय वेदाध्यापक इत्यर्थः। स द्वितीयो गुरुः, यथाऽहमीश्वरस्तथा प्रथमादपि पूज्य इत्यर्थः । ब्रह्मविद्याप्रदं गुरुमाह-आश्रमिणां सर्वेषामपि ज्ञानदो यः स तु साक्षादहमेवेति ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

आत्मा (परमात्मा) का ज्ञान प्रदान करने वाले गुरु को अत्यन्त पूज्यत्व का प्रतिपादन करने के लिए मनुष्यों के तीन गुरुओं को **सवा० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । कर्म का ज्ञान कराने वाले गुरु को बतलाते हुए भगवान् ने कहा । द्विजाति सत्पुरुष को जिससे सत्कर्मों का ज्ञान होता है । वह अर्थात् जो उपनयन संस्कार करके वेदाध्ययन कराता है, दूसरा गुरु है । वह मुझ ईश्वर के समान पिता से भी अधिक पूज्य है । ब्रह्म विद्या प्रदान करने वाले गुरु को कहते है । सभी आश्रमियों को ज्ञान देने वाला जो है वह साक्षात् मेरा स्वरूप ही है ।।३२।।

नन्वर्थकोविदा ब्रह्मन्वर्णाश्रमवतामिह । ये मया गुरुणा वाचा तरन्त्यञ्जो भवार्णवम् ।।३३।।

अन्वयः— ननु वर्णाश्रमवताम् इह अर्थ कोविदाः ये मया गुरुणा वाचा अञ्जः भवार्णवंतरन्ति ।।३३।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन् इस संसार में वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले लोगों में वे लोग यथार्थ रूप से स्वार्थ एवं परमार्थ के ज्ञाता है जो लोग गुरु के रूप में विद्यमान मेरे उपदेशों के अनुसार इस संसार सागर को अनायास ही पार कर लेते हैं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

अतो ज्ञानप्रदं गुरुरूपं मामाश्रित्य ये संसारं तरन्ति ते बुद्धिमन्त इत्याह-नन्विति । हे ब्रह्मन्, ते ननु वर्णाश्रमवतां मध्येऽर्थकोविदाः । इह मनुष्यजन्मनि, तत्रापि वर्णाश्रमवत्त्वे सति ये मया गुरूणा गुरूरूपेण वक्त्रा वाचा उपदेशमात्रेणाञ्जः सुखेनैव भवार्णवं तरन्तीति ज्ञानप्रदाद्गुरोरधिकः सेव्यो नास्तीत्युक्तम् ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

अतएव ज्ञान देने वाले गुरुरूप में विद्यमान मुझको ही अपना आश्रय बनाकर जो लोग संसार को पार कर जाते हैं वे ही बुद्धिमान हैं इस बात को **ननु० इत्यादि** श्लोक से श्रीभगवान् ने कहा है । श्लोक का अर्थ है कि हे ब्रह्मन् वर्णाश्रम का पालन करने वालों में वे लोग स्वार्थ एवं परमार्थ के ज्ञाता हैं । इस मनुष्य जन्म में वर्णाश्रम का पालन करते हुए मुझ गुरु रूप से विद्यमान की वाणी के अनुसार आचरण करके अनायास ही संसार सागर को पार कर जाते हैं । अतएव ज्ञानप्रदान करने वाले गुरु से बढ़कर सेवनीय कोई भी नहीं है ।।३३।।

नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा । तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥३४॥

अन्वयः— सर्वभूतात्मा अहम् इज्या प्रजातिभ्यां तपसा उपशमेन वा तथा न तुष्येयम् यथा गुरुशुश्रूषया ॥३४॥

अनुवाद— मैं सबों की आत्मा हूँ मैं गार्हस्थ्य के धर्म पञ्चमहायज्ञों आदि अथवा उत्कृष्ट वंश में जन्म उपनयन, वेदाध्ययन आदि से, वानप्रस्थी के धर्म तपस्या से अथवा सबों से अनासक्ति रूप संन्यास के धर्म से उतना प्रसन्न नहीं होता हूँ जितना कि गुरु की सेवा करने से प्रसन्न होता हूँ ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

अतएव तद्भजनादधिको धर्मश्च नास्तीत्याह-नाहमिति । इज्या गृहस्थधर्मः, प्रजातिः, प्रकृष्टं जन्म उपनयनं तेन ब्रह्मचारिधर्म उपलक्ष्यते ताभ्याम्, तथा तपसा वनस्थधर्मेण, उपशमेन यतिधर्मेण वा अहं परमेश्वरस्तथा न तुष्येयं यथा सर्वभूतात्माऽपि गुरुशुश्रूषयेति ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

अतएव गुरु की सेवा से बड़ा कोई धर्म नहीं है, इस बात को श्रीभगवान् ने **नाहम्० इत्यादि** श्लोक से कहा है । गृहस्थ के धर्म को इज्या कहते हैं । उपनयन के पश्चात् ब्रह्मचारी के धर्म के पालन को प्रजाति कहते हैं । वानप्रस्थी के धर्म तपस्या से, या सबों से अनासक्ति रूप यति धर्म के पालन से मैं उतना संतुष्ट नहीं होता हूँ जितना कि गुरु की सेवा से प्रसन्न होता हूँ ॥३४॥

अपि नः स्मर्यते ब्रह्मन्वृत्तं निवसतां गुरौ । गुरुदारैश्चोदितानामिन्धनानयने क्वचित् ॥३५॥
प्रविष्टानां महारण्यमपर्तौ सुमहद्विज । वातवर्षमभूत्तीव्रं निष्ठुराः स्तनयित्नवः ॥३६॥
सूर्यश्चास्तं गतस्तावत्तमसा चावृता दिशः । निम्नं कूलं जलमयं न प्राज्ञायत किंचन ॥३७॥

अन्वयः— ब्रह्मन् नः गुरौ निवसतां गुरु दारैश्चोदितानां इन्धनानयने क्वपि महारण्यम् प्रविष्टानां सुमहत् तीव्रं वातवर्षमभूतनिष्ठुराः स्तनयित्नवः सूर्यश्च असंगतः तावत् दिशः च तमसा आवृताः निम्नं कूलं जलमयं किंचन न प्राज्ञायत इति वृतं स्मर्यते ॥३५-३७॥

अनुवाद— ब्रह्मन् जिस समय हमलोग गुरुकुल में निवास करते थे, जब हम दोनों को एक दिन गुरुपत्नी ने इन्धन लाने के लिए जङ्गल में भेजा था, उस समय यह हमलोग एक घोर जङ्गल में गये थे और बिना ऋतु के ही भयङ्कर आंधी पानी आ गया आकाश में विजली कड़क रही थी । तब तक सूर्यास्त हो गया चारो ओर अंधेरा छा गया । धरती पर इस तरह पानी भर गया कि खाला-ऊँचा पता ही नहीं चलता था । इस वृत्त को आप स्मरण करते हैं क्या ॥३५-३७॥

भावार्थ दीपिका

किंच अस्माकं गुरुशुश्रूषणं किमपि दैवादेव संपन्नं तत्किं त्वया स्मर्यत इति पृच्छति-अपि न इति । गुरौ निवसतामस्माकं यत्किमपि वृत्तं तत् । क्वचित्कदाचित् । अपर्तौ अपगते ऋतौ, अकाल इत्यर्थः । वातश्च वर्षं च तयोः समाहारः । स्तनयित्नवो गर्जितानि चाभवन् । निम्नं कूलं नतमुन्नतं च स्थानम् ॥३५-३७॥

भाव प्रकाशिका

और हमलोगों की गुरु शुश्रूषा भाग्यवशात् ही सम्पन्न हुई उसे आप याद करते हैं क्या ? इस तरह से भगवान् पूछते हैं । गुरुकुल में निवास करते समय जो घटी उसे आप याद करते हैं एकबार ऋतु के बीत जाने पर बिना समय के आँधी पानी और बिजली कड़क रही थी । **निम्नं कूलम्** अर्थात् ऊँचा-नीचा स्थान ॥३५-३७॥

वयं भृशं तत्र महानिलाम्बुभिर्निहन्यमाना मुहुरम्बुसंप्लवे ।
दिशोऽविदन्तोऽथ परस्परं वने गृहीतहस्ताः परिबभ्रिमातुराः ॥३८॥

अन्वयः— वयं तत्र महानिलाम्बुभिः भृशं निहन्यमानाः अम्बु सम्प्लवे दिशः अविदन्तः अथ परस्परं गृहीत हस्ताः आतुराः परिबभ्रिम ॥३८॥

अनुवाद— हमलोग उस जोर से होने वाली वर्षा और आँधी से अत्यधिक पीड़ित हो रहे थे । जलचारो ओर से बह रहा था । दिशा का ज्ञान नहीं होने के कारण हमलोग एक दूसरे का हाथ पकड़कर इधर-उधर घूम रहे थे ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

अम्बूनां संप्लवो व्यामिश्रणं यस्मिन्नेकोदके तस्मिन्वन इत्यर्थः । परिबभ्रिम । 'भृञ् भरणे' इति धातो रूपम् । परि परितो बभ्रिम । इडागमश्छान्दसः । भारान् घृतवन्त इत्यर्थः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

अम्बूनां सम्प्लवः अर्थात् चारो ओर से पानी का बहना उसी वन में परिबभ्रिम अर्थात् घूमते रहे । यह भृञ् भरणे धातु का रूप है । परिबभ्रिम में इट् का आगम छान्दस है । भारों को धारण किए हुए ॥३८॥

एतद्विदित्वा उदिते रवौ सान्दीपनिर्गुरुः । अन्वेषमाणो नः शिष्यानाचार्योऽपश्यदातुरान् ॥३९॥

अन्वयः— एतत् विदित्वा सान्दीपनि गुरुः रवौ उदिते अन्वेषमाणः नः आतुरान् शिष्यान् आचार्योऽपश्यत् ॥३९॥

अनुवाद— जब हमारे गुरुदेव सन्दीपनि मुनि को इस बात का पता चला तब वे सूर्योदय होने पर अपने शिष्य हम दोनों को ढूंढते हुए जङ्गल में पहुँचे और उन्होंने देखा कि हमदोनों अत्यन्त आतुर हो रहे हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

अहो हे पुत्रका यूयमस्मदर्थेऽतिदुःखिताः । आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठस्तमनादृत्य मत्पराः ॥४०॥

अन्वयः— अहो हे पुत्रका आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठःतम अनादृत्य मत्परा यूयं अस्मदर्थे अतिदुःखिताः ॥४०॥

अनुवाद— आश्चर्य है पुत्रों तुमलोगों ने सबको सबसे प्रिय लगने वाले अपने शरीर की तुमलोगों ने मेरे लिए बहुत कष्ट उठाया और मेरी सेवा तुम दोनों ने की ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

उवाच कृपया श्लोकत्रयीम् । यथा वयं कृतार्था इत्याह-अहो इति । आत्मा देहः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

गुरुजी ने कृपा करके तीन श्लोकों को कहा जिसके द्वारा हमदोनों कृतार्थ हो गये । इस बात को **अहो० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ॥४०॥

एतदेव हि सच्छिष्यैः कर्तव्यं गुरुनिष्कृतम् । यद्वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ ॥४१॥

अन्वयः— सच्छिष्यैः एतदेव हि गुरुनिष्कृतम् कर्तव्यं यत् वै विशुद्ध भावेन गुरौ सर्वार्थात्मसमर्पणम् ॥४१॥

अनुवाद— गुरु के ऋण से उऋण होने के लिए सत् शिष्यों को यही करना चाहिए कि वे अपने गुरु को सबकुछ समर्पित करके अपने शरीर को भी समर्पित कर दें ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

गुरोर्निष्कृतं प्रत्युपकारः । सर्वे अर्था यस्मात्स आत्मा देहस्तस्यार्पणं विनियोगः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

गुरोनिष्कृतम् अर्थात् प्रत्युपकार । सभी चीजें जिसके लिए है उस शरीर को भी गुरु को समर्पित कर दें।।४१।।

तुष्टोऽहं भो द्विजश्रेष्ठाः सत्याः सन्तु मनोरथाः । छन्दांस्ययातयामानि भवन्त्विह परत्र च ।।४२।।

अन्वयः— भोः द्विजश्रेष्ठाः अहं तुष्टः मनोरथाः सत्याः सन्तु । छन्दांसि इह परत्र च अयातयामानि भवन्तु ।।४२।।

अनुवाद— हे द्विजश्रेष्ठों मैं तुमदोनों पर प्रसन्न हूँ । तुमदोनों के सारे मनोरथ पूर्ण हों । तुम लोगों के द्वारा अधीत सारे वेद इस लोक में तथा परलोक में भी तरोताजा बने रहें ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

अयातयामानि यातो यामो यस्य पक्वस्यान्नस्य तद्गतसारं भवति तद्वदन्यदपि गतसारं गौण्या वृत्त्या यातयाममित्युच्यते। अगतसाराणि छन्दांसि मत्तोऽधीयमानानि भवन्त्वित्यर्थः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

जिस अन्न को पकाये हुए प्रहर बीत जाता है वह निस्सार हो जाता है । उसी तरह दूसरी वस्तुएँ जो गतसार हो जाती है वे गौणीवृत्ति से यातयाम कहलाती हैं । मुझसे अध्ययन किया जाने वाला वेद निस्सार नहीं होयें ।।४२।।

इत्थंविधान्यनेकानि वसतां गुरुवेश्मसु । गुरोरनुग्रहेणैव पुमान्पूर्णः प्रशान्तये ।।४३।।

अन्वयः— गुरुवेश्मसु इत्थं विधान्यनेकानि । गुरोनुग्रहेणैव पुमान् प्रशान्तये पूर्णः ।।४३।।

अनुवाद— जिस समय हमलोग गुरुकुल में रहते थे उस समय हमलोगों के साथ अनेक ऐसी घटनाएँ घटी। वस्तुतः गुरु की कृपा से ही मनुष्य शान्ति का अधिकारी और पूर्णता का पात्र हो जाता है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

इत्थंविधान्येवंप्रकाराण्यनेकानि वृत्तानि किं त्वया स्मर्यन्त इति शेषः । फलितमुपसंहरति–गुरोरिति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ क्या आपको याद हैं । सम्पूर्ण कथन का उपसंहार **गुरोः इत्यादि** से करते हैं ।।४३।।

ब्राह्मण उवाच

किमस्माभिरनिर्वृत्तं देवदेव जगद्गुरो । भवता सत्यकामेन येषां वासो गुरावभूत् ।।४४।।

अन्वयः— देवदेव जगदगुरो अस्माभिः किम् अनिर्वृतम् भवता सत्यकामेन येषां वासो गुरौ अभूत् ।।४४।।

ब्राह्मण श्रीदामा ने कहा

अनुवाद— हे देवताओं के भी आराध्य भगवन् श्रीकृष्ण अब हम लोगों को क्या करने के लिए रह गया है । क्योंकि आप सत्य सङ्कल्प परमात्मा के साथ गुरुकुल में रहने का हमें अवसर मिला ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

अस्माभिः किमनिर्वृत्तमसंपन्नं येषामस्माकं भवता सहवासोऽभूत् ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

अब हमें क्या करने के लिए अवशिष्ट रह गया है । क्योंकि मुझे आपके साथ रहने का अवसर प्राप्त हुआ।।४४।।

यस्य च्छन्दोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभो । श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यन्तविडम्बनम् ।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे श्रीदामचरितेऽशीतितमोऽध्यायः ।।८०।।

अन्वयः— विभो छन्दोमय ब्रह्म देह यस्य श्रेयसां आवपनं तस्य गुरुषु वासः अत्यन्त विडम्बनम् ।।४५।।

अनुवाद— हे प्रभो ! छन्दोमय वेद समस्त पुरुषार्थों के मूल स्रोत हैं और वे वेद आपके शरीर हैं। ऐसे आपका गुरुकुल में निवास मनुष्य लीला का अभिनय ही तो है ॥४५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के श्रीदामाचरित के अन्तर्गत अस्सीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८०।।

भावार्थ दीपिका

भवतस्तु सर्वमेतद्विडम्बनमात्रमित्याह-यस्येति । छन्दोमयं वेदाख्यं ब्रह्म । तथा श्रेयसामावपनं तदुद्भवस्थानं देहो मूर्तिर्यस्य तस्य तव ।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामशीतितमोऽध्यायः ।।८०।।

भाव प्रकाशिका

यस्य० इत्यादि श्लोक से श्रीदामाजी ने कहा कि आपकी तो यह मानव लीलामात्र है। छन्दोमय वेद ही सम्पूर्ण पुरुषाथों का मूल है। और वह आपका शरीर है। ऐसे आपका ।।४५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के अस्सीवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।८०।।

* * *

एकासीवाँ अध्याय

श्रीदामाजी को ऐश्वर्य की प्राप्ति

श्रीशुक उवाच

स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन्हरिः । सर्वभूतमनोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥१॥

अन्वयः— इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन् सर्वभूतमनोऽभिज्ञः स्मयमानः सः हरिः तम् उवाच ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— प्रिय परीक्षित् इस तरह से ब्राह्मण श्रेष्ठ श्रीदामाजी के साथ बातें करते हुए सभी जीवों के मन की बातों को जानने वाले श्रीहरि मुस्कुराते हुए उनसे कहे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकाशीतितमे सख्युर्जग्ध्वा पृथुकतण्डुलान् । श्रियं निर्मितवानिंद्रदुर्लभां तु तदाश्रमे । संकथयन् सुखगोष्ठीः कुर्वन् । सर्वभूतानां मनसोऽभिज्ञः । मदर्थं पृथुकानानीय दातुं लज्जित इति जानन्नित्यर्थः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

एकासीवें अध्याय में अपने मित्र के मोटे चावलों को खाकर उनके आश्रम में इन्द्र के भी लिए दुलर्भ सम्पत्ति का श्रीभगवान् ने निर्माणकर दिया । **संकथयन्** अर्थात् सुखपूर्वक, बातें करते हुए । सभी भूतों के मन को जानने वाले। मेरे लिए मोटे चावलों को लाकर मुझे देने में लज्जित हो रहे है, इस बात को जानने वाले ॥१॥

ब्रह्मण्यो ब्राह्मणं कृष्णो भगवान्प्रहसन्प्रियम् । प्रेम्णा निरीक्षणेनैव प्रेक्षन्खलु सतां गतिः ॥२॥

अन्वयः— सतां गतिः ब्रह्मण्यः भगवान् कृष्णः प्रियम् ब्राह्मणम् प्रहसन् प्रेम्णा निरीक्षणेनैव प्रेक्षन् खलु ॥२॥

अनुवाद— सत् पुरुषों के एक मात्र आश्रय, ब्राह्मणों के भक्त भगवान कृष्ण अपने प्रिय ब्राह्मण से हँसी करते हुए कहे। उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मण देवता की ओर प्रेमभरी दृष्टि से देख रहे थे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

प्रहसन् क्ष्वेलीं कुर्वन् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

हँसी करते हुए ॥२॥

श्रीभगवानुवाच

किमुपायनमानीतं ब्रह्मन्मे भवता गृहात् । अण्वप्युपाहृतं भक्तैः प्रेम्णा भूर्येव मे भवेत् ॥
भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ॥३॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् भवता गृहात् मे किम् उपायनम् आनीतं, भक्तैः प्रेम्णा अण्वप्युपाहृतं मे भूरि एव भवेत् अभक्तोपाहृतं भूरि अपि मे तोषाय न कल्पते ॥३॥॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मन् आप अपने घर से मेरे लिए क्या उपहार लाये हैं ? मेरे प्रेमी भक्त मुझे थोड़ी सी भी वस्तु अर्पण करते हैं तो वह मेरे लिए बहुत हो जाता है और अभक्त यदि मुझे बहुत सी भी सामग्री भेंट करे तो उससे मैं संतुष्ट नहीं होता हूँ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

लज्जया त्वकथयतस्तामपनुदन्नाह अण्वपीति द्वाभ्याम् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

लज्जा के मारे नहीं कहने वाले श्रीदामाजी की लज्जा दूर करते हुए उन्होंने **अण्वपि० इत्यादि** दो श्लोकों को कहा ॥३॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥४॥

अन्वयः— यो मे भक्त्या पत्रं, पुष्पं, फलं तोयम् प्रयच्छति तत् प्रयतात्मनः भक्त्युपहृतम् अश्नामि ॥४॥

अनुवाद—जो कोई मुझे भक्ति पूर्वक पत्र, पुष्प, फल, जल इनमें से कुछ भी समर्पण करता है, उसे मैं भोग लगा लेता हूँ ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

इत्युक्तोऽपि द्विजस्तस्मै व्रीडितः पतये श्रियः । पृथुकप्रसृतिं राजन्न प्रायच्छदवाङ्मुखः ॥५॥

अन्वयः— राजन् इत्युक्तोऽपि व्रीडितः अवाङ्मुखः द्विजः तस्मै श्रियः पतये पृथुक् प्रसृतिं न प्रायच्छत् ॥५॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् इस तरह से कहने पर भी लज्जित तथा नीचे मुख किए ब्राह्मण उन लक्ष्मीपति श्रीभगवान् को मोटा चावल नहीं दिए ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

सर्वभूतात्मदृक्साक्षात्तस्यागमनकारणम् । विज्ञायाचिन्तयन्नायं श्रीकामो माभजत्पुरा ॥६॥

अन्वयः— साक्षात् सर्वभूतात्म दृक् तस्यागमन कारणम् विज्ञाय अचिन्त्यत् अयं पुरा मां श्रीकामः न अभजत् ॥६॥

अनुवाद— श्रीभगवान् सभी जीवों के अन्त:करण की बातों को साक्षात् जानते हैं। वे उन ब्राह्मण के आगमन का कारण को जानकर विचार किए कि इसने पहले धन सम्पत्ति की कामना से मेरा भजन नहीं किया है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

सर्वभूतानामात्मदृगन्त:करणसाक्षी ॥६॥

भाव प्रकाशिका

सर्वभूतात्मदृक् अर्थात् सभी जीवों का अन्त:करण के साक्षी ॥६॥

पत्न्याः पतिव्रतायास्तु सखा प्रियचिकीर्षया । प्राप्तो मामस्य दास्यामि संपदोऽमर्त्यदुर्लभाः ॥७॥

अन्वयः— पतिव्रतायास्तु पत्न्याः प्रिय चिकीर्षया सखा माम् प्राप्तः अस्य अमर्त्यदुर्लभाः सम्पदः दास्यामि ॥७॥

अनुवाद— अपनी पतिव्रता पत्नी को प्रसन्न करने के लिए यह मेरा सखा मेरे पास आया है, अतएव इसको मैं देवताओं को भी दुर्लभ सम्पत्ति दूँगा ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अमर्त्यानां देवानामपि दुर्लभाः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं को भी दुर्लभ ॥७॥

इत्थं विचिन्त्य वसनाच्चीरबद्धान्द्विजन्मनः । स्वयं जहार किमिदमिति पृथुकतण्डुलान् ॥८॥

अन्वयः— भगवान् इत्थं विचिन्त्य वसनात् चीरबद्धान् द्विजन्मनः किमिदम् इति पृथुकतण्डूलान् स्वयं जहार ॥८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् इस तरह से विचार करके उनके कपड़ों के चिथड़ों में बँधे हुए उन मोटे चावलों को यह क्या है इस तरह से कहकर स्वयं खींच लिए ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अतिजीर्णत्वाद्वसनस्य पुनस्तन्मध्ये चीरेण बद्धान् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

वस्त्र के अत्यन्त पुराने होने से उसके बीच में बँधे हुए ॥८॥

नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे । तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः ॥९॥

अन्वयः— सखे ननु एतद् उपनीतं मे परमप्रीणनम् । अङ्ग एते पृथुक तण्डुलाः मां विश्वम् तर्पयन्ति ॥९॥

अनुवाद— मित्र तुम मेरे लिए यह उपहार लाये हो, यह तो मुझको अत्यधिक प्रसन्न कर रहा है। ये मोटे चावल मुझको ही नहीं सम्पूर्ण विश्व को तृप्त कर देने वाले हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अङ्ग हे सखे । मां विश्वं विश्वात्मानं माम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

मां विश्वम् अर्थात् सम्पूर्ण विश्व की आत्मा मुझको ॥९॥

इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमाददे । तावच्छ्रीर्जगृहे हस्तं तत्परा परमेष्ठिनः ॥१०॥

अन्वयः— इति मुष्टिं सकृज्जग्ध्वा जग्धुं द्वितीयाम् आददे । तावत् परमेष्ठिनः तत्परा श्रीः हस्तं जगृहे ॥१०॥

अनुवाद— इस तरह से कहते हुए श्रीभगवान् एक मुट्ठी खा लिए और दूसरी मुट्ठी खाने के लिए उठाये उसी समय लक्ष्मी स्वरूपा श्रीरुक्मिणीजी ने उनका हाथ पकड़ लिया ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

इति वदन्नेकां मुष्टिं जग्ध्वा । तत्परेति । अयं भावः-एतावता पुंस इहामुत्र च मत्कटाक्षविलासभूतानां सर्वसंपदां समृद्धयेऽलम्। अतःपरं द्वितीयमुष्ट्यदनेन मा मामेतदधीनां कुर्विति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से कहते हुए एक मुट्ठी खाकर । लक्ष्मीजी तो भगवत्परायणा हैं । कहने का अभिप्राय है कि इतने ही मात्र से मनुष्य के इसलोक एवं परलोक में मेरे कटाक्ष के विलास रूप सम्पूर्ण सम्पत्तियों की समृद्धि के लिए पर्याप्त है । अब इसके बाद दूसरी मुट्ठी खाकर मुझको भी इनके अधीन मत बनाइये ॥१०॥

एतावताऽलं विश्वात्मन्सर्वसंपत्समृद्धये । अस्मिँल्लोकेऽथवाऽमुष्मिन्पुंसस्त्वत्तोषकारणम् ॥११॥

अन्वयः— हे विश्वात्मन् पुंसः अस्मिन् लोके अमुष्मिन् च सर्वसम्पत् समृद्धये एतावतालं त्वत् तोषकारणम् ॥११॥

अनुवाद— हे विश्वात्मन् प्रभो मनुष्य के इस लोक में तथा मृत्यु के पश्चात् परलोक में हर प्रकार की समृद्धि के लिए इतना ही पर्याप्त है, क्योंकि आपकी प्रसन्नता का कारण बन जाता है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

त्वत्तोषकारणं तव तोषस्य कारणं यथा भवेत्तथा सर्वसंपत्समृद्धये । यां भक्तस्य समृद्धिं दृष्ट्वा त्वं तुष्येरित्यर्थः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

त्वत्तोषकारणम् अर्थात् जिसको देखकर आपको सन्तोष हो ऐसी सभी प्रकार की सम्पत्तियों के लिए । अर्थात् अपने भक्त की जिस समृद्धि को देखकर आपको सन्तोष हो ॥११॥

ब्राह्मणस्तां तु राजनीमुषित्वाऽच्युतमन्दिरे । भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेने आत्मानं स्वर्गतं यथा ॥१२॥

अन्वयः— ब्राह्मणः तां तु रजनीम् अच्युतमन्दिरे उषित्वा भुक्त्वा पीत्वा आत्मानं स्वर्गतं यथा सुखं मेने ॥१२॥

अनुवाद— वे ब्राह्मण देवता उस रात को भगवान् श्रीकृष्ण के महल में रहकर भोजन करके तथा पेय पदार्थों का पान करके अपने को स्वर्ग में जाकर जैसा सुख मिलता है उस तरह के सुख का अनुभव किए ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

स्वर्गतं स्वर्गवासिनम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

स्वर्गतम् अर्थात् स्वर्ग में रहने वाले को ॥१२॥

श्वोभूते विश्वभावेन स्वसुखेनाभिवन्दितः । जगाम स्वालयं तात पथ्यनुव्रज्य नन्दितः ॥१३॥

अन्वयः— तात श्वोभूते विश्वभावेन स्वसुखेन अभिवन्दितः पथि अनुव्रज्य नन्दितः स्वालयं जगाम ॥१३॥

अनुवाद— हे परीक्षित् प्रातःकाल सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करने वाले आत्मरमण भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा प्रणाम किए जाने के पश्चात मार्ग में भगवान् के कुछ दूर जाने पर अभिनन्दित किए जाने पर अपने घर चले गये॥१३॥

भावार्थ दीपिका

श्वोभूते उदिते रवौ । विश्वं भावयतीति विश्वभावस्तेनेति पुरतो भाविनमिन्द्रदुर्लभं विभवं सूचयति-स्वसुखेन स्वानन्दपूर्णेनिति दानेऽदीनतां दर्शयति-नन्दितो विनयोक्तिभिः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

प्रात:काल सूर्योदय हो जाने पर **विश्वभावेन** सम्पूर्ण जगत् को सुखी बनाने वाले श्रीभगवान् के द्वारा, इससे आगे प्राप्त होने वाले इन्द्र के लिए भी दुर्लभ ऐश्वर्य को सूचित किया गया है । स्वसुखेन अर्थात् आत्मानन्द से परिपूर्ण, इससे श्रीभगवान् की दान में अदीनता को सूचित किया गया है । **नन्दितः** अर्थात् नम्रता पूर्ण उक्तियों के द्वारा समृद्ध बनाये गये ॥१३॥

स चालब्ध्वा धनं कृष्णान्न तु याचितवान्स्वयम् । स्वगृहान्व्रीडितोऽगच्छन्महद्दर्शननिर्वृतः ॥१४॥

अन्वयः— सः च कृष्णात् धनम् अलब्ध्वा स्वयं तु न याचितवान् महद्दर्शन निर्वृतः व्रीडितः स्वगृहान् अगच्छत्॥१४॥

अनुवाद— वे ब्राह्मण देवता भगवान् श्रीकृष्ण से कुछ भी धन नहीं पाकर स्वयं भी भगवान् से कोई भी याचना नहीं किए । वे श्रीभगवान् के महान दर्शन से आनन्दपूर्ण हो गये थे । तथा अपने चित्त के करतूत पर कुछ लज्जित से होते हुए अपने घर की ओर चल पड़े ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

व्रीडितः स्ववित्तकार्पण्येन लज्जितः । महतः श्रीकृष्णस्य दर्शनेन निर्वृतः सुखं प्राप्तः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

व्रीडितः अर्थात् अपनी सम्पत्ति की कृपणता के कारण लज्जित । भगवान् श्रीकृष्ण के महान् दर्शन को प्राप्त करके आनन्दपूर्ण ॥१४॥

अहो ब्रह्मण्यदेवस्य दृष्टा ब्रह्मण्यता मया । यद्दरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टो बिभ्रतोरसि ॥१५॥

अन्वयः— अहो ब्रह्मण्यदेवस्य ब्रह्मण्यता मया दृष्टा यत् उरसि लक्ष्मीम् विभ्रता दरिद्रतमः आश्लिष्टः ॥१५॥

अनुवाद— वे ब्राह्मण देवता मन-ही-मन सोच रहे थे, अहो ! श्रीभगवान् ब्राह्मणों को देवता मानते हैं । उनकी ब्रह्मण्यता को मैंने आज देखा । उनके जिस वक्ष:स्थल में श्रीलक्ष्मीजी का निवास है उसी हृदय में मुझे दरिद्रतम को श्रीभगवान् ने आलिङ्गित करके सटा लिया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

निर्वृतिमेवाह-अहो इति चतुर्भिः । यद्यतः लक्ष्मीमुरसि विभ्रता आश्लिष्टोऽहम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

श्रीदामाजी को प्राप्त हुए आनन्द का वर्णन **अहो० इत्यादि** चार श्लोकों से करते हैं । अपने वक्षस्थल में लक्ष्मीजी को धारण करने वाले श्रीभगवान् मुझको अपने हृदय से लगा लिए यह उनकी ब्रह्मण्यता की पराकाष्ठा है ॥१५॥

क्वाहं दरिद्रः पापीयान्क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः । ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः ॥१६॥

अन्वयः— क्व अहं दरिद्रः पापीयान् क्व श्रीनिकेतनः कृष्णः ब्रह्मबन्धुः अस्मि इति बाहुभ्यां परिरम्भितः ॥१६॥

अनुवाद— कहाँ तो दरिद्र मैं । यह मेरी दरिद्रता मेरे पूर्व जन्म के पापों का परिणाम है और लक्ष्मीजी के एकमात्र आश्रय श्रीभगवान् । किन्तु मैं ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हूँ इसीलिए श्रीभगवान् मुझको दोनों हाथों से पकड़कर अपने हृदय से लगा लिए ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

पापीयान्नीचः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

पापीयान् अर्थात् नीच ॥१६॥

निवासितः प्रियाजुष्टे पर्यङ्के भ्रातरो यथा । महिष्या वीजितः श्रान्तो वालव्यजनहस्तया ॥१७॥

अन्वयः— अहं भ्रातरः यथा प्रियाजुष्टे पर्यङ्के निवासितः श्रान्तः (अहम्) बालव्यजन हस्तया महिष्या वीजितः ।।१७।।

अनुवाद— उन्होंने मुझे उस पलङ्ग पर सुलाया जिस पर उनकी प्रियतमा श्रीरुक्मिणजी सोती थी । जैसे मैं उनका अपना भाई हूँ । जब मैं थका था तो उनकी पटरानी श्रीरुक्मिणीजी ने अपने हाथ में चँवर लेकर मेरी सेवा की ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

शुश्रूषयापरमया पादसंवाहनादिभिः । पूजितो देवदेवेन विप्रदेवेन देववत् ॥१८॥

अन्वयः— देवदेवेन विप्रदेवेन देववत् पादसंवाहनादिभिः परमया शुश्रूषया पूजितः ।।१८।।

अनुवाद— श्रीभगवान् देवताओं के भी आराध्य हैं, किन्तु साथ ही वे ब्राह्मणों के देवता के समान मानते हैं, यही कारण है कि उन्होंने मेरा पैर दबाकर भोजनादि के द्वारा सेवा करके देवता के समान सत्कार किया ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

पूजितश्चन्दनलेपनादिभिः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

मुझको चन्दन आदि लगाकर उन्होंने मेरी पूजा की ।।१८।।

स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि संपदाम् । सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ॥१९॥

अन्वयः— पुंसां स्वर्गापवर्गयोः रसायां भुवि सम्पदाम् सर्वासां सिद्धीनामपि मूलम् तच्चरणार्चनम् ।।१९।।

अनुवाद— वे सोच रहे थे । स्वर्ग, मोक्ष, पृथिवी और रसातल की सम्पत्ति तथा प्राप्त की जाने वाली सभी सिद्धियों का मूलकारण श्रीभगवान् के चरणों की अर्चना मात्र है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

एंव संपूज्यापि धनस्यादाने कारणं कल्पयति-स्वर्गापवर्गयोरिति द्वाभ्याम् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से मेरी सेवा करके भी मुझे नहीं दिया, इसके कारण की कल्पना वे **स्वर्गा० इत्यादि** श्लोको से करते हैं ।।१९।।

अधनोऽयं धनं प्राप्य माद्यन्नुच्चैर्न मां स्मरेत् । इति कारुणिको नूनं धनं मेऽभूरि नाददात् ॥२०॥

अन्वयः— कारुणिकः अयं अधनं धनं प्राप्य उच्चैः माद्यन् मांन स्मरेत् इति नूनं अभूरि धनं न अददात् ।।२०।।

अनुवाद— श्रीभगवान् परमदयालु हैं, वे यह सोचकर मुझे थोड़ा भी धन इसलिए नहीं दिए कि यह निर्धन, कहीं धन प्राप्त करके मुझको भूल न जाय ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

स्वर्गादीनां यद्यपि तस्य चरणार्चनमेव कारणं तथापि कारुणिकत्वादभूर्यपि स्वल्पमपि धनं मह्यं नाददात् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि स्वर्ग इत्यादि की प्राप्ति इनके चरणों की पूजा करने से हो जाती है फिर भी श्रीभगवान् मुझे थोड़ा सा भी धन इसीलिए नहीं दिए कि यह निर्धन है धन पाकर मदमत्त न हो जाय और मुझको भूल न जाय ।।२०।।

इति तच्चिन्तयन्नन्तः प्राप्तो निजगृहान्तिकम् । सूर्यानलेन्दुसङ्काशैर्विमानैः सर्वतो वृतम् ॥२१॥

अन्वयः— इति ततः अन्तः चिन्तयन् सूर्यानलेन्दु संकाशैविमानैः सर्वतो वृतम् निजगृहान्तिकम् प्राप्तः ॥२१॥

अनुवाद— इस प्रकार से श्रीभगवान् के विषय में अपने मन में विचार करते हुए वे ब्राह्मण देवता सूर्य, अग्नि तथा चन्द्रमा के समान चमकते हुए विमानों से घिरे हुए अपने गृह के महलों के सन्निकट में आ गये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

इत्येवं चिन्तयन्निजगृहस्यान्तिकं तत्प्रान्तम् । तस्य विशेषणं सूर्येति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह अपने मन में सोचते हुए ब्राह्मण देवता अपने घर के सन्निकट में आ गये । **सूर्यानलेन्दु॰ इत्यादि** उस गृह के विशेषण हैं ॥२१॥

विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्द्विजकुलाकुलैः । प्रोत्फुल्लकुमुदाम्भोजकह्लारोत्पलवारिभिः ॥२२॥
जुष्टं स्वलंकृतैः पुंभिः स्त्रीभिश्च हरिणाक्षिभिः। किमिदं कस्य वा स्थानं कथं तदिदमित्यभूत्॥२३॥

अन्वयः— विचित्रोपवनोद्यानैः कूजद्द्विजकुलाकुले, प्रोत्फुल्लकुमुदाम्भोज कह्लारोत्पलवारिभिः स्वलंकृतैः पुम्भिः हरिणाक्षिभिः स्त्रीभिः जुष्टं इदं किम् कस्य वा स्थानं तदिदम् कथम् अभूत् इति ॥२२-२३॥

अनुवाद— ब्राह्मण देवता ने देखा स्थान-स्थान पर चित्र विचित्र उपवन और उद्यान बने हुए हैं, उनमें विभिन्न प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे हैं । सरोवरों में कुमुदनी श्वेत, नील और सुगन्धित कमल खिले हुए हैं । सुन्दर-सुन्दर स्त्री पुरुष अलंकृत होकर विचरण कर रहे हैं । उस स्थान को देखकर वे सोचने लगे, मैं यह क्या देख रहा हूँ ? यह किसका स्थान है ? यह ऐसा कैसे हो गया ?॥२२-२३॥

भावार्थ दीपिका

विचित्रोपवनादिभिर्वृतम् । कथंभूतैः कूजद्भिर्द्विजकुलैः पक्षिसमूहैराकुलैर्व्याप्तैः । तथा प्रोत्फुल्लानि कुमुदादीनि येषु तानि वारीणि येषु तानि तथा तैः । किंच जुष्टमिति । हरिणीनामिवाक्षीणि यासां ताभिः । तदैश्वर्यं दृष्ट्वा वितर्कितवांस्तदाह-किमिदमिति । प्रथमं तेजःपुञ्जं दृष्ट्वा किमिदमिति पश्चाद्विमानानि दृष्ट्वा कस्य चेति स्थानं स्वीयमिति ज्ञात्वा कथं तदिदं स्थानमित्येवंरूपमभूदिति ॥२२-२३॥

भाव प्रकाशिका

विचित्र उपवनों आदि से युक्त कैसे कलरव करने वाले पक्षियों के समूह से व्याप्त विकसित कुमुदादि से युक्त सरोवरों से किञ्च मृगनयनी स्त्रियों से सेवित । इस प्रकार के ऐश्वर्य को देखकर ब्राह्मण देवता तेज समूह को देखकर सोचने लगे यह क्या है ? उसके पश्चात् विमानों को देखकर वे सोचने लगे यह किसका स्थान है ? यह जानकर कि यह तो मेरा ही स्थान है, वे सोचने लगे कि मेरा स्थान ऐसा कैसे हो गया ॥२२-२३॥

एवं मीमांसमानं तं नरा नार्योऽमरप्रभाः । प्रत्यगृह्णन्महाभागं गीतवाद्येन भूयसा ॥२४॥

अन्वयः— एवं मीमांस मानं तं महाभागं अमर प्रभाः नराः नार्यश्च भूयसा गीतवाद्येन प्रत्यगृह्णन् ॥२४॥

अनुवाद— इस प्रकार से वे सोच ही रहे थे कि देवताओं के समान सुन्दर-सुन्दर स्त्री-पुरुष उन महाभाग्यवान् ब्राह्मण की अगवानी करने के लिए गाजे बाजे के साथ आये ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

अमरप्रभास्तत्तुल्यकान्तयः । प्रत्यगृह्णन्नुपायनादिभिरादृतवन्तः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं के समान कान्ति वाले । उपहार आदि के द्वारा उनका सम्मान किए ॥२४॥

पतिमागतमाकर्ण्य पत्न्युद्धर्षातिसंभ्रमा । निश्चक्राम गृहात्तूर्णं रूपिणी श्रीरिवालयात् ॥२५॥

अन्वयः— आगतम् पतिमाकर्ण्य उद्धर्षातिसंभ्रमात् पत्नी रूपिणी श्रीरिवतूर्णं आलयात् निश्चक्राम ॥२५॥

अनुवाद— पतिदेव का शुभागमन सुनकर ब्राह्मणी को अत्यधिक हर्ष हुआ, वे शीघ्रता से अपने घर से शरीर धारिणी लक्ष्मी के समान निकलीं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

उद्धूतो हर्षो यस्याः सा । अतिसंभ्रम आदरो यस्याः । आलयात्कमलवनाद्रूपधारिणी श्रीरिव । स्वर्गस्य तत्र भगवता आनीतत्वात्स्वर्गिणामिव तयो रूपं च बभूवेति भावः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

हर्षातिरेक से युक्त आदर पूर्वक, कमल वन से निकली हुई शरीर धारिणी लक्ष्मीजी के समान । श्रीभगवान् के द्वारा स्वर्ग से लाये जाने के कारण उन दोनों का रूप देवताओं के समान हो गया ॥२५॥

पतिव्रता पतिं दृष्ट्वा प्रेमोत्कण्ठाश्रुलोचना । मीलिताक्ष्यनमद्बुद्ध्या मनसा परिषस्वजे ॥२६॥

अन्वयः— पतिं दृष्ट्वा प्रेमोत्कण्ठाश्रुलोचला पतिव्रता मीलिताक्षी बुद्ध्या अनमत् मनसा परिषस्वजे ॥२६॥

अनुवाद— पति को देखते ही पतिव्रता पत्नी की आँखों में प्रेम और उत्कण्ठा के आँसू छलक आये उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिए, ब्राह्मणी ने ब्राह्मण देवता को नमस्कार किया और मन ही मन उनका आलिङ्गन भी किया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

बुद्ध्या अयमेव वन्द्य इति निश्चयेन । मनसा संकल्पेन ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

ये ही वन्दनीय है इस तरह से निश्चय करके, मनसा अर्थात् सङ्कल्प के द्वारा ॥२६॥

पत्नीं वीक्ष्य विस्फुरन्तीं देवीं वैमानिकीमिव । दासीनां निष्ककण्ठीनां मध्ये भान्तीं स विस्मितः॥२७॥

अन्वयः— विस्फुरन्तीम् वैमनिकीं देवीमिव निष्ककण्ठीनां दासीनां मध्ये भान्तीं पत्नीं वीक्ष्य स विस्मितः ॥२७॥

अनुवाद— विमान में सञ्चरण करने वाले देव पत्नियों के समान चमकती हुई तथा गले में सुवर्ण हार पहनी हुई दासियों के बीच में सुशोभित अपनी पत्नी को देखकर ब्राह्मण देवता अत्यन्त आश्चर्यित हो गये ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

प्रीतः स्वयं तया युक्तः प्रविष्टो निजमन्दिरम् । मणिस्तम्भशतोपेतं महेन्द्रभवनं यथा ॥२८॥

अन्वयः— प्रीतः तया युक्तः स्वयं मणिस्तम्भशतोपेतं महेन्द्रभवनं यथा निजमन्दिरम् प्रविष्टः ॥२८॥

अनुवाद— प्रसन्नता पूर्वक अपनी पत्नी के साथ वे स्वयम् सैकड़ों मणिस्तम्भों से युक्त इन्द्र के भवन के समान अपने भवन में प्रवेश किए ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

पय:फेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः । पर्यङ्का हेमदण्डानि चामरव्यजनानि च ॥२९॥

अन्वयः— दान्ताः रुक्मपरिच्छदाः पर्यङ्काः पयः फेननिभाः शय्याः हेमदण्डानि चामर व्यजनानि च ॥२९॥

अनुवाद— उस भवन में हाथी दाँत से बने जिनमें सुवर्ण के पर लगे थे ऐसे फलङ्ग थे, उन पर दूध के फेन के समान श्वेत वर्ण की और कोमल शय्यायें विछी थी, सुवर्ण निर्मित दण्डे वाले चँवर थे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

यत्र मन्दिरे पयः फेननिभाः शय्या आस्तरणानीत्यादिसंपदस्तत्र सर्वसंपदां समृद्धीर्विलोक्य तर्कयामासेति चतुर्थेनान्वयः। यत्र च दान्ता गजदन्तमयाः पर्यङ्काः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

उस मन्दिर में दूध के फेन के समान श्वेत शय्यायें थीं विछौना आदि के समान सभी सम्पत्तियों की समृद्धि को देखकर ब्राह्मण देवता ने अनुमान किया; इस तरह से आगे के चौथे श्लोक से अन्वय है। उस मन्दिर के पलङ्ग हाथी दाँत के बने थे ॥२९॥

आसनानि च हैमानि मृदूपस्तरणानि च । मुक्तादामविलम्बीनि वितानानि द्युमन्ति च ॥३०॥
स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च । रत्नदीपान्भ्राजमानाँल्ललनारत्नसंयुतान् ॥३१॥
विलोक्य ब्राह्मणस्तत्र समृद्धीः सर्वसंपदाम् । तर्कयामास निर्व्यग्रः स्वसमृद्धिमहैतुकीम् ॥३२॥

अन्वयः— हैमानि आसनानि मृदुउपस्तराणनि, मुक्तादामविलम्बीनि द्युमन्ति वितानानि, महामारकतेष स्वच्छस्फटिक कुड्येषु ललनारत्नंसयुतान् भ्राजमानान् रत्नदीपान् विलोक्य, ब्राह्मणः निर्व्यग्रः तत्र सर्वसम्पदाम् अहैतुकीम् समृद्धीः तर्कयामास ॥३०-३२॥

अनुवाद— सोने के सिंहासनों पर लगी हुई कोमल गद्दियों, जिनमें चमकती हुई मोती की लड़ियाँ लटक रही थीं, स्फटिक मणि की स्वच्छ दीवार पर पन्ने की पिचकारी तथा रत्न निर्मित नारियों के हाथों में जगमगाते हुए दीपक, इस प्रकार की सभी प्रकार की समृद्धि को देखकर तथा उसका कोई प्रत्यक्ष कारण न देखकर ब्राह्मण देवता विचार करने लगे मेरे यहाँ इतनी सम्पत्ति कहाँ से आई ॥३०-३२॥

भावार्थ दीपिका

यत्रासनानि च मृदून्युपस्तरणानि तूलादिमयानि येषु तानि । यत्र मुक्तादामविलम्बवन्ति द्युमन्ति च वितानानि । स ब्राह्मणो निर्व्यग्रः सन् स्थिरः सन् अहैतुकीमाकस्मिकीं स्वस्य समृद्धिं तर्कयामास कुत एषा समृद्धिरागतेति । ॥३०-३२॥

भाव प्रकाशिका

वे ब्राह्मण देवता स्थिर होकर विचार करने लगे कि बिना किसी कारण के इतनी सम्पत्ति कहाँ से आयी ॥३०-३२॥

नूनं बतैतन्मम दुर्भगस्य शश्वद्दरिद्रस्य समृद्धिहेतुः । महाविभूतेरवलोकतोऽन्यो नैवोपपद्येत यदूत्तमस्य॥३३॥

अन्वयः— मम दुर्भगस्य शश्वद्दरिद्रस्य नूनं बत एतत् समृद्धि हेतुः महाविभूतेः यदूत्तमस्य अवलोकतः अन्ये नैव उपपद्यते ॥३३॥

अनुवाद— ब्राह्मण देवता सोचने लगे मैं तो दुर्भाग्य सम्पन्न सदैव दरिद्र ही रहने वाला हूँ। निश्चित रूप से मेरी इस समृद्धि के कारण महाविभूति सम्पन्न यदुवंश शिरोमणि श्रीभगवान् के दर्शन के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

निश्चितनोति । नूनमिति । एतन्ममेति । एष चासावहं च तस्यैतन्मम । महती विभूतिर्यस्य तस्यावलोकादन्यः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

वे ब्राह्मण देवता **नूनम् इत्यादि** श्लोक से निश्चित करते हैं। मेरी इस समृद्धि का महान् विभूति (ऐश्वर्य) सम्पन्न श्रीभगवान् के दर्शन के फल के अतिरिक्त इसका कोई भी दूसरा कारण नहीं है ॥३३॥

नन्वब्रुवाणो दिशते समक्षं याचिष्णवे भूर्यपि भूरिभोजः ।
पर्जन्यवत्तत्स्वयमीक्षमाणो दाशार्हकाणामृषभः सखा मे ॥३४॥

अन्वयः— ननु अब्रुवाणः याचिष्णवे समक्षंदिशते भूरिअपि भूरिभोजः पर्जन्यवत् तत् स्वयमीक्षमाणः दाशार्हकाणाम् ऋषभः ॥३४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् याचना करने वाले याचकों को बिना बोले ही बहुत कुछ दे देते हैं, क्योंकि अपने भक्तों के मन की बातों को जानते हैं वे भूरिभोज हैं अर्थात् बहुत अधिक खिलाने वाले हैं। जिस तरह मेघ सागर को भी भर देने में समर्थ होता है, किन्तु वह कृषकों के समक्ष वर्षा के रात्रि को वर्षा करता है। इसी तरह को हमारे सखा यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

ननु स चेदवलोकनमात्रेण महदैश्वर्यं दत्तवांस्तर्हीदं तुभ्यं मया दत्तमिति किं नावोचदत आह-नन्विति। ननु मे सखा समक्षमब्रुवाण एव याचिष्णवे याचकाय भूरि बह्वपि दिशते ददाति। अत्र हेतुः-भूरिभोजः स्वयं तद्देयं पर्जन्यवदीक्षमाण इति। अयमर्थः-स्वयं तावद्भूरिभोजो बहुभोज आप्तकामत्वाल्लक्ष्मीपतित्वाच्च। अतो यथा पारावारपरिपूरकोऽतिवदान्यः पर्जन्यः कदाचिद्बह्वपि वर्षमल्पमेव च मन्यमानो लज्जयेव समक्षमवर्षन्रात्रौ निद्राणे कर्षके तत्क्षेत्रमाप्लावयति, एवं श्रीकृष्णोऽपि स्वभोगापेक्षया तद्देयमिन्द्रादिपदमप्यतितुच्छं मन्वानस्तस्य च भजनं बहु मन्यमानः समक्षमब्रुवाण एव ददातीति ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

यदि श्रीभगवान् दर्शन करने मात्र से आपको महान् ऐश्वर्य प्रदान कर दिए तो वे यह क्यों नहीं कहें कि मैंने तुमको यह दिया। इस पर कहते हैं- मेरे मित्र सामने कुछ कहे बिना ही याचक को बहुत कुछ प्रदान कर देते हैं। उसका कारण है कि वे भूरिभोज हैं अर्थात् सामने उस देय को पर्जन्य (मेघ) के समान देखे जाते हैं। कहने का अभिप्राय है कि वे स्वयं तो भूरिभोज हैं अर्थात् बहुतों को भोजन कराने वाले हैं। क्योंकि वे स्वभावतः अवाप्तसमस्तकाम हैं और लक्ष्मीजी के पति हैं। अतएव जिस तरह सागर को पूर्ण रूप से भर देने में समर्थ मेघ अत्यन्त उदार होता है, उसी तरह श्रीभगवान् भी अत्यन्त उदार हैं। मेघ जब कभी वह बहुत भी वर्षा करके अल्प ही मानता है। अतएव सबों के सामने वर्षा न करके रात्रि में वर्षा करता हैं और किसानों के खेतों को भर देता है। उसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने भोग की अपेक्षा देय भूत इन्द्र आदि के भी पद को तुच्छ मानते हैं। और अपने भक्तों के द्वारा किए जाने वाले भजन का बहुत महत्त्व देते हैं। और अपने भक्तों के समक्ष कुछ बोले बिना ही दे देते हैं ॥३४॥

किंचित्करो त्युर्वपि यत्स्वदत्तं सुहृत्कृतं फल्ग्वपि भूरिकारी ।
मयोपनीतं पृथुकैकमुष्टिं प्रत्यग्रहीत्प्रीतियुतो महात्मा ॥३५॥

अन्वयः— यत् उरू स्वदत्तं किञ्चित्करोति, सुहृत्कृतं फल्गु अपि भूरिकारी। मया उपनीतां पुथृकैक मुष्टिं महात्मा प्रीतियुतः प्रत्यग्रहीत् ॥३५॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्णा स्वयं बहुत अधिक देकर भी उसे अत्यल्प मानते हैं, और प्रेमी भक्त उनके लिए यदि कुछ भी कर देता है तो उसको बहुत मान लेते हैं। मैंने तो उनको एक मुट्ठी चावल समर्पित किया तो वे उदार शिरोमणि उसे अत्यन्त प्रेम पूर्वक स्वीकार किए ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-किंचिदिति । उरु बह्वपि स्वदत्तं यत्किंचित्करोऽत्यल्पं मन्यते । सुहृत्कृतं फल्वतितुच्छमपि भूरिकारी बहुमन्यत इत्यर्थः । अतएव मयोपनीतं समीपं नीतम् । प्रीतियुतः स्वयमेव प्रतिगृहीतवान् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के औदार्य का ही वर्णन **किञ्चित्० इत्यादि** श्लोक से वे ब्राह्मण देवता करते हैं । श्रीकृष्ण भगवान् अपने प्रेमी भक्तों को बहुत अधिक प्रदान करके भी उसे अल्यल्प मान लेते हैं । और प्रेमी भक्तों द्वारा प्रदत्त अल्यल्प भी बहुत अधिक मान लेते हैं । अतएव मेरे द्वारा समर्पित एक मुट्ठी मोटे चावल को भी उन्होंने बड़े ही प्रेम पूर्वक स्वीकार किया ।।३५।।

तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात् ।
महानुभावेन गुणालयेन विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसङ्गः ।।३६।।

अन्वयः— तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री दास्यं पुनः जन्मनि जन्मनि स्यात् महानुभावेन गुणालयेन विषज्जतः पुरुष प्रसङ्गः स्यात् ।।३६।।

अनुवाद— प्रत्येक जन्मों में मेरी उन्हीं से प्रेम हितौषिता मैत्री हों मैं उनका ही दास बना रहूँ गुणों के एकमात्र आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण से प्रेम करने वाले उनके भक्तों का ही मुझे सङ्ग प्राप्त हो ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णस्य भक्तवात्सल्यं दृष्ट्वा तद्भक्तिं प्रार्थयते-तस्येति । सौहृदं प्रेम । सख्यं हिताशंसनं च । मैत्री उपकारकत्वं च । दास्यं सेवकत्वम् । तत्समाहारैकवचनम् । तस्य तत्संबन्धिनो मे मम स्यान्न तु विभूतिः । किंच महानुभावेन तेनैव विषज्जतो विशेषण सङ्गं प्राप्नुवतस्तद्भक्तेषु प्रकृष्टः सङ्गः स्यादिति ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के भक्तवत्सल्य को देखकर वे ब्राह्मण देवता उनकी भक्ति की प्रार्थना **तस्यैव० इत्यादि** श्लोक से करते हैं । सौहृदम् अर्थत् प्रेम । सख्यम् अर्थात् हितैषिता । मैत्री अर्थात् मित्रा । दास्यम् अर्थात् सेवकत्व। मैं श्रीभगवान् के ही सबन्धियों से संबन्ध चाहता हूँ । मैं ऐश्वर्य नहीं चाहता हूँ । श्रीभगवान् से प्रेम करने वाले उनके भक्तों से ही मेरी सङ्गति हो ।।३६।।

भक्ताय चित्रा भगवान्हि संपदो राज्यं विभूतीर्न समर्थयत्यजः ।
अदीर्घबोधाय विचक्षणः स्वयं पश्यन्निपातं धनिनां मदोद्भवम् ।।३७।।

अन्वयः— विचक्षणः अजः भगवान् धनिनां मदोद्भवम् निपातं स्वयं पश्यन् अदीर्घबोधाय भक्ताय चित्रा संपदः राज्यं विभूति न समर्थयति ।।३७।।

अनुवाद— संपत्ति आदि के दोषों को जानने वाले धनिकों के मद् के कारण होने वाले पतन को स्वयं देखने वाले अजन्मा श्रीभगवान् अपने अदूरदर्शी भक्तों के माँगने पर भी उनको तरह-तरह की सम्पत्ति राज्य और ऐश्वर्य नहीं देते हैं ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

ननु भक्तेः फलं संपदं प्राप्य पुर्नभक्तिं किमिति प्रार्थयसेऽत आह-भक्तायेति । संपदः कोशादीन्राज्यमैश्वर्यं विभूतिः कलत्रपुत्रादीन्न समर्थयति न ददाति, अपि तु दृढां भक्तिमेव । कुतः । अदीर्घबोधाय । अविवेकिनो मम तु भक्त्यभावादेवं जातम् अतस्तद्भक्तिरेव स्यादिति भावः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि भक्ति का फल संपत्ति को प्राप्त करके ब्राह्म देवता पुनः भक्ति क्यों मागते हैं इस पर कहते हैं श्रीभगवान् अपने अदूरदर्शी भक्त का सम्पत्ति, राज्य तथा ऐश्वर्य आदि नहीं देते हैं। अपितु सुदृढा भक्ति ही देते हैं, अदीर्घ बोधाय अर्थात् अदूरदर्शी, भगवान् जानते है कि अज्ञानी को मेरी भक्ति नहीं होती है, इसीलिए अतएव उसका पतन हो जाता है। अतएव मेरे भक्तों को तो भक्ति ही चाहिए ॥३७॥

इत्थं व्यवसितो बुद्ध्या भक्तोऽतीव जनार्दने। विषयाञ्जायया त्यक्ष्यन्बुभुजे नातिलम्पटः ॥३८॥

अन्वयः— इत्थं बुद्ध्या व्यवसितः जनार्दने अतीव भक्तः विषयान् त्यक्ष्यन् जायया नाति लम्पटः बुभुजे ॥३८॥

अनुवाद— इस तरह से अपनी बुद्धि से निश्चय करके वे ब्राह्मण देवता श्रीभगवान् के अत्यन्त भक्त हो गये और अपनी पत्नी के साथ विषयों का त्याग पूर्वक भोग करने लगे ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

त्यक्ष्यन् शनैः शनैस्त्यागमभ्यस्यन्। जायया सह बुभुजे ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

धीरे-धीरे त्याग का अभ्यास करते हुए अपनी पत्नी के साथ भोग किए ॥३८॥

तस्य वै देवदेवस्य हरेर्यज्ञपतेः प्रभोः। ब्राह्मणाः प्रभवो दैवं न तेभ्यो विद्यते परम् ॥३९॥

अन्वयः— तस्य वैदेवदेवस्य प्रभोः यज्ञ पतेः हरे ब्राह्मणाः प्रभवः तेभ्यः परं दैवं न विद्यते ॥३९॥

अनुवाद— परीक्षित, श्रीभगवान् देव के भी आराध्य, वे सम्पूर्ण जगत् के स्वामी है। वे समस्त याज्ञों के स्वामी है। वे भी ब्राह्मणों को अपना प्रभु मानते हैं, अतएव ब्राह्मणों से बड़ा कोई देवता नहीं है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णस्यैवं ब्रह्मण्यता नातिचित्रमित्याह-तस्येति ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

तस्य० इत्यादि लोक से बतलाया गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण की इतनी ब्रह्मण्यता कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥३९॥

एवं स विप्रो भगवत्सुहृत्तदा दृष्ट्वा स्वभृत्यैरजितं पराजितम्।
तद्ध्यानवेगोद्ग्रथितात्मबन्धनस्तद्धाम लेभेऽचिरतः सतां गतिम् ॥४०॥

अन्वयः— एवं भगवत् सुहृत् प्रियः स विप्रः अजितं स्वभृत्यौ पराजितं दृष्ट्वा तद् ध्यानवे गोद्ग्रथितात्मबन्ध्नः अचिरत सतां गतिम् तद्धाम लेभे ॥४०॥

अनुवाद— इस तरह श्रीभगवान् के प्रिय सखा वे ब्राह्मण देवता देखे कि भगवान् स्वयं तो अजित हैं किन्तु वे अपने भक्तों से पराजित हो जाते हैं। वे अपने भक्तों के वश में हो जाते हैं। यह सोचकर वे निरन्तर भगवान् के ध्यान में मग्न रहने लगे। शीघ्र ही उनकी अविधा की गाँठें खुल गयी और वे सन्तपुरुषों को प्राप्त होने वाले श्रीभगवान् के धाम को प्राप्त कर लिए ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

अन्यैरजितमपि स्वभृत्यैः पराजितं दृष्ट्वा तस्य ध्यानं तस्य वेगस्तेनोद्ग्रथितमात्मबन्धनमहंकारो यस्य सः। गतिमित्याविष्टलिङ्गं धामविशेषणम्। सतां ब्रह्मविदां प्राप्यमित्यर्थः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे शत्रुओं आदि से नहीं पराजित होने पर भी अपने भक्तों से पराजित हो जाते हैं। यह देखकर वे सदा भगवान् के ही ध्यान में मग्न रहने लगे। उस ध्यान के वेग से उनकी अहङ्कार की ग्रन्थि विनष्ट हो गयी। अतएव वे ब्रह्मज्ञानियों को प्राप्त होने वाली गति श्रीभगवान् के धाम को प्राप्त कर लिए ॥४०॥

एतद्ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः। लब्धभावो भगावति कर्मबन्धाद्विमुच्यते ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पृथुकोपाख्यानं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

अन्वयः— ब्रह्मण्यदेवस्य एतद् ब्रह्मण्यतां श्रुत्वा नरः भगवति लब्धभावः कर्म बन्धाद्विमुच्यते ॥४१॥

अनुवाद— ब्राह्मणों का अपना इष्टदेव मानने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की इस ब्राह्मण भक्ति को सुनकर, मनुष्य भगवद्भक्त हो जाता है और कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है ॥४१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्द्ध के पृथुकोपाख्यान नामक एकासीवें अध्याय के शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ॥८१॥

भावार्थ दीपिका

एतत्पृथुकोपाख्यानं श्रुत्वा तत्र ब्रह्मण्यतां विशेषतः श्रुत्वेति ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां एकशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

भाव प्रकाशिका

इस पृथुकोपाख्यान को सुनकर उसमें भी श्रीभगवान् की ब्राह्मण भक्ति को सुनकर ॥४१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थदीपिका टीका के एकासीवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥८१॥

* * *

बयासीवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी से गोप गोपियों की भेंट

श्रीशुक उवाच

अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः । सूर्योपरागः सुमहानासीत्कल्पक्षये यथा ॥१॥

अन्वयः— द्वारवत्यां वसतोः रामकृष्णयोः अथ एकदा कल्पक्षये यथा सुमहान् सूर्योपरागः आसीत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद—इस तरह द्वारका में भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी के रहते हुए एक बार सर्वग्रास सूर्य ग्रहण लगा॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्व्यशीतितम आगत्य कुरुक्षेत्रं रविग्रहे । वृष्णीन् दृष्ट्वा मुदा भूपाश्चक्रुः कृष्णकथा मिथः । श्रीदामसुहृदे कृष्णः प्रकल्प्यैन्द्रं पदं भुवि । नन्दादिसुहृदानन्दी कुरुक्षेत्रं जगाम सः । कल्पक्षये यथा । सर्वग्रास इत्यर्थः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बयासीवें अध्याय में सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में आकर वृष्णिवंशियों को देखकर राजागण परस्पर में

भगवान् श्रीकृष्ण के विषय में चर्चा करने लगे। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीदामा नामक अपने मित्र को इस भूलोक में इन्द्र के समान सम्पन्न बनाकर अपने प्रेमी नन्द आदि को आनन्दित करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र गये। कल्पक्षये यथा अर्थात खग्रास सूर्यग्रहण ॥१॥

तं ज्ञात्वा मनुजा राजन्पुरस्तादेव सर्वतः । स्यमन्तपञ्चकं क्षेत्रं ययुः श्रेयोविधित्सया ॥२॥

अन्वयः— राजन् तं सर्वतः पुरस्तात् एव ज्ञात्वा मनुजाः श्रेयोविधित्सया स्यमन्त पञ्चकं क्षेत्रं ययुः ॥२॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् उस ग्रहण के विषय में पहले से ही जानकर सबलोग कल्याण की प्राप्ति के लिए पुण्य कार्य करने के लिए स्यमन्तपञ्चक (कुरुक्षेत्र) क्षेत्र में गये ॥२॥

भावार्थ दीपिका

ज्योतिर्विद्भिः कथ्यमानमादावेव ज्ञात्वा। स्यमन्तपञ्चकं क्षेत्रं कुरुक्षेत्रम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

ज्योतिषियों द्वारा पहले से ही कहे जाने के कारण उस ग्रहण को जानकर, **स्यमन्तपञ्चकं क्षेत्रं** अर्थात् कुरुक्षेत्र॥२॥

निःक्षत्रियां महीं कुर्वन्रामः शस्त्रभृतां वरः । नृपाणां रुधिरौघेण यत्र चक्रे महाह्रदान् ॥३॥

अन्वयः— महीं निःक्षत्रियां कुर्वन् शस्त्रभृतां वरः रामः यत्र नृपाणां रुधिरौघेण महाह्रदान् चक्रे ॥३॥

अनुवाद— पृथिवी को क्षत्रियों से रहित बना देने के लिए शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ श्रीपरशुरामजी ने वहाँ पर क्षत्रिय राजाओं के रक्त समूह से पाँच बड़े-बड़े कुण्ड बना दिए थे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अब्रह्मण्यक्षत्रियवधस्थानत्वेन परशुरामस्याघापनुत्तिस्थानत्वेन च क्षेत्रस्य पापनिरासकत्वमाह-निःक्षत्रियामिति द्वाभ्याम्॥३॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण द्रोही क्षत्रियों का वध स्थान होने के कारण श्रीपरशुरामजी के पापापनोदन स्थान रूप से उस क्षेत्र कें पाप विनाशकत्व को निःक्षत्रियाम् इत्यादि श्लोको से कहा गया है ॥३॥

ईजे च भगवान्रामो यत्रास्पृष्टोऽपि कर्मणा । लोकस्य ग्राहयन्नीशो यथाऽन्योऽघापनुत्तये ॥४॥

अन्वयः— कर्मणा अस्पृष्ट अपि भगवान् रामः ईशोऽपि यत्र अन्यो यथा अधापनुत्तये लोकस्य ग्राहयन् ईजे ॥४॥

अनुवाद— यद्यपि भगवान् परशुरामजी से कर्मों का संबन्ध नहीं हो सकता है। फिर भी श्रीपरशुरामजी परमात्मा होकर भी सामान्य मनुष्यों के समान अपने पापों को दूर करने के लिए वहाँ पर यज्ञ किए थे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अन्यो विद्वान् यथा ॥४॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे विद्वान् के समान ॥४॥

महत्यां तीर्थयात्रायां तत्राऽऽगन्भारतीः प्रजाः । वृष्णयश्च तथाऽक्रूरवसुदेवाहुकादयः ॥५॥
ययुर्भारत तत्क्षेत्रं स्वमघं क्षपयिष्णवः । गदप्रद्युम्नसाम्बाद्याः सुचन्द्रशुकसारणैः ॥६॥
आस्तेऽनिरुद्धो रक्षायां कृतवर्मा च यूथपः । ते रथैर्देवधिष्ण्याभैर्हयैश्च तरलप्लवैः ॥७॥
गजैर्नदद्भिरभ्राभैर्नृभिर्विद्याधरद्युभिः । व्यरोचन्त महातेजाः पथि काञ्चनमालिनः ॥८॥

दिव्यस्त्रग्वस्त्रसन्नाहाः कलत्रैः खेचरा इव । तत्र स्नात्वा महाभागा उपोष्य सुसमाहिताः ॥९॥
ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धेनूर्वासः स्त्रग्रुक्ममालिनीः । रामह्लदेषु विधिवत्पुनराप्लुत्य वृष्णयः ॥१०॥

अन्वयः— महत्यां तीर्थयात्रायां तत्र भारतीः प्रजाः वृष्णायः च तथा अक्रूरः वसुदेवाहुकादयः । हे भारत तत्क्षेत्र स्वमघं क्षपयिष्णवः सुचन्द्रशुकसारणैः गदप्रद्युम्नसाम्बादयः आसन् अनिरुद्धः यूथपः कृतवर्मा रक्षायां आस्ते । देवधिष्ठायामैः रथैः, तरलप्लवैः, हयैः, नदद्भिः अभ्राभैः गजैः विद्याधरद्युभिः नृभिः पथि महातेजाः काञ्चनमलिन दिव्यस्त्राग्वसन्नाहाः कलत्रैः खेचरा इवते व्यरोचन्त । तत्र स्नात्वा महाभागाः सुसमाहिताः उपोष्य वृष्णयः रामह्रदेषु विधिवत् आप्लुप्य ब्राह्मणेभ्यः वासः स्त्रग्रुक्ममालिनीः धेनुः ददुः ॥५-१०॥

अनुवाद— परीक्षित् इस महान् तीर्थ यात्रा के समय भारतवर्ष के सभी प्रदेशों की जनता कुरुक्षेत्र आयी थी । उनमें अक्रूर, वसुदेव, उग्रसेन आदि बड़े बूढे लोग, गद, प्रद्युम्न, साम्ब आदि दूसरे यदुवंशी, अपने पापों का नाश करने के लिए कुरुक्षेत्र आये थे । अनिरुद्धजी और यदुवंश के सेनापति कृतवर्मा ये दोनों नगर की रक्षा के लिए सुचन्द्र, शुक, सारण आदि के साथ, नगर की रक्षा के लिए द्वरका में रह गये थे । यदुवंशी स्वभावतः ही परमतेजस्वी थे और सोने की माला, दिव्य पुष्पों के हार बहुमूल्य वस्त्र तथा कवच से सुज्जित होने के कारण उन लोगों की शोभा और बढ़ गयी थी । वे तीर्थ यात्रा के मार्ग में देवताओं के विमानों के समान रथों, समुद्र की तरङ्ग के समान चलने वाले अश्वों, मेघों के समान विशालकाय एवं गर्जना करने वाले गजों, विद्याधरों के समान मनुष्यों द्वारा ढोयी जाने वाली पालकियों पर अपनी पत्नियों के साथ स्वर्ग के देवता के समान सुशोभित होते थे । महाभाग्यवान यदुवंशी कुरुक्षेत्र में पहुँचकर एकाग्रचित से संयम पूर्वक स्नान ग्रहण के कारण निश्चित समय तक उपवास करके ग्रहण के मोक्ष के उपलक्ष्य में पुनः स्नान करके ब्राह्मणों को वस्त्रों मालाओं और सुवर्ण की मालाओं से सुसज्जित गायों को दान दिये ॥५-१०॥

भावार्थ दीपिका

अगान्नाजग्मुः भारतीर्भारत्यः । सुचन्द्रशुकसारणैः सहानिरुद्धो द्वारकारक्षायामास्ते । तथा कृतवर्मा च यूथपतिः सेनानीः। देवधिष्ण्याभैर्विमानसंकाशैः । तरलास्तरङ्गास्तद्वत् प्लवो गतिर्येषां तैः । विद्याधरद्युभिर्विद्याधराणामिव द्युतिर्येषां तैः । महातेजा महातेजस; । दिव्या अत्युत्तमाः स्त्रग्वस्त्रसन्नाहा येषाम् । पुनरन्येद्युराप्लुत्य । यद्वा तस्मिन्नेवाहनि मुक्तिस्नानं कृत्वा ॥५-१०॥

भाव प्रकाशिका

सुचन्द्र शुक तथा सारण के साथ अनिरुद्धजी नगर की रक्षा के लिए रह गये थे । कृतवर्मा यदुवंशियों की सेनापति भी रह गये थे । **देवधिष्ण्याभैः** अर्थात् देवताओं के विमान के समान । जिन अश्वों की गति समुद्र की चञ्चल तरङ्गों के समान चाल वाले अश्वों, विद्याधर द्युभिरिव द्युतिःयेषाम् अर्थात् विद्याधरों के समान कान्ति वाले मनुष्यों द्वारा । जिनके माला वस्त्र और कवच अत्यन्त उत्तम थे । फिर दूसरे दिन अथवा उसी दिन मुक्तिस्नान करके ॥५-१०॥

ददुः स्वन्नं द्विजाग्र्येभ्यः कृष्णे नो भक्तिरस्त्विति। स्वयं च तदनुज्ञाता वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥११॥
भुक्त्वोपविविशुः कामं स्निग्ध्च्छायाङ्घ्रिषु । तत्रागतांस्ते ददृशुः सुहृत्संबन्धिनो नृपान ॥१२॥

अन्वयः— द्विजाग्र्येभ्यः कृष्णे नः भक्तिरस्तु इति स्वन्नं ददुः, स्वयं च तदनुज्ञाताः कृष्णदेवताः वृष्णयः भुक्त्वा स्निग्धच्छायाङ्घ्रिषु कामं विविशुः । ते तत्रागतान् सुहृत्संबन्धिनो नृपान् ददृशुः ॥११-१२॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण में हमारी प्रेमा भक्ति हो इस संकल्प से भगवान् श्रीकृष्ण को ही देवता मानने वाले यदुवंशियों ने ब्राह्मणों को सुन्दर अन्न प्रदान किया । ब्राह्मणों की आज्ञा से भोजन करके वे घनी छाया वाले वृक्षों की छाया में ठहर गये । उसके बाद वे वहाँ आये हुए अपने सुहृद संबन्धी राजाओं से भेट किए ॥११-१२॥

भावार्थ दीपिका

स्निग्धा शीतला छाया येषामङ्घ्रिपानामङ्घ्रिषु मूलेषु ।।११-१२।।

भाव प्रकाशिका

धनी एवं शीतल छाया वाले वृक्षों की छाया में ।।११-१२।।

मत्स्योशीनरकौसल्यविदर्भकुरुसृञ्जयान् । काम्बोजकैकयान्मद्रान्कुन्तीनानर्तकेरलान् ।।१३।।
अन्यांश्चैवात्मपक्षीयान्परांश्च शतशो नृप । नन्दादीन्सुहृदो गोपान्गोपीश्चोत्कण्ठिताश्चिरम्।।१४।।

अन्वयः— मत्स्योशीनरकौसल्यविदर्भकुरुसृंजयान् कम्बोज, कैकयान, मद्रान् कुन्तीनानर्त, केरलान् अन्यान् च आत्मपक्षीयान् परांश्च शतशः नृपान् नन्दादीन् सुहृदः गोपान् चिरम् उत्कण्ठिताः गोपीश्च ददृशुः ।।१३-१४।।

अनुवाद— वहाँ मत्स्य, उशीनर, कोसल विदर्भ, कुरु, सृंजय कम्बोज कैकय मद्र, कुन्ति आनर्त, केरल एवं अनेक देशों के अपने पक्ष के तथा शत्रु पक्ष के सैकड़ों राजाओं नन्दजी आदि तथा हितैषी गोपों एवं चिरकाल से उत्कण्ठित गोपियों जो वहाँ आयी थी उन सबों से यदुवंशियों ने भेट की ।।१३-१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१३-१४।।

अन्योन्यसंदर्शनहर्षरंहसा प्रोत्फुल्लहृद्वक्त्रसरोरुहश्रियः ।
आश्लिष्य गाढं नयनैः स्रवज्जला हृष्यत्त्वचो रुद्धगिरो ययुर्मुदम् ।।१५।।

अन्वयः— अन्योन्यसंदर्शन हर्षरंहसा प्रोत्फुल हृद्वक्त्र सरोरुह श्रियः गाढं आश्लिष्य नयनैः स्रवज्जला हृष्यत् त्वचः रुद्धगिरः मुदम् ययुः ।।१५।।

अनुवाद— परस्पर में एक दूसरे के देखने से उत्पन्न हर्ष के वेग के कारण सबों के हृत्कमल एवं मुख कमल विकसित हो जाते थे । वे परस्पर में एक दूसरे का गाढ़ालिङ्गन करते, उन लोगों की आखों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगता था, शरीर में रोमाञ्च हो जाता वाणी रुद्ध हो जाती थी और सब आनन्दमग्न हो जाते थे ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

प्रोत्फुल्लैर्वक्त्रसरोरुहैः श्रीः शोभा येषां ते ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

विकसित हृदय कमल एवं मुखकमल से उनकी शोभा बढ़ जाती थी ।।१५।।

स्त्रियश्च संवीक्ष्य मिथोऽतिसौहृदस्मितामलापाङ्गदृशोऽभिरेभिरे ।
स्तनैः स्तनान्कुङ्कुमपङ्करूषितान्निहत्य दोर्भिः प्रणयाश्रुलोचनाः ।।१६।।

अन्वयः— स्त्रियश्च संवीक्ष्य मिथः अतिसौहृदस्मितामलापाङ्गदृशः स्तनैः कुङ्कुमपङ्करूषितान् स्तनान् दोर्भिः निहत्य प्रणयाश्रुलोचनाः अभिरेमिरे ।।१६।।

अनुवाद— पुरुषों के ही समान स्त्रियाँ भी एक दूसरे को देखकर परस्पर में अत्यन्त सौहार्द मन्दमुस्कान, परम पवित्र तिरछी नजर से देखकर एक दूसरे का आलिङ्गन करने लगीं । वे अपनी भुजाओं में भरकर केसर लगे वक्षःस्थल को दूसरी स्त्रियों के वक्षस्थलों से दबातीं और आनन्द का अनुभव करतीं उस समय उन सबों की आँखों में प्रेमाश्रु भर जाते ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

अतिसौहृदेन यत्स्मितं तेनामला अपाङ्गैर्दृशो दृष्ट्यो यासां ताः । मिथः परस्परं संवीक्ष्य दोर्भिरभिरेभिरे आलिङ्गनं कृतवत्यः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त सौहार्दमिंश्रित मुस्कान के कारण परम पवित्र कटाक्षों से युक्त दृष्टि वाली नारियाँ । परस्पर में एक दूसरे को देखकर उन सबों ने एक दूसरे को भुजाओं में भरकर आलिङ्गन किया ।।१६।।

ततोऽभिवाद्य ते वृद्धान् यविष्ठैरभिवादिताः । स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा चक्रुः कृष्णकथा मिथः।।१७।।

अन्वयः— ततः ते वृद्धान् अभिवाद्य यविष्ठैः अभिवादिताः स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा मिथः कृष्णकथाः चक्रुः ।।१७।।

अनुवाद— उसके पश्चात् उन लोगों ने अपने से बड़े-बूढ़ों को प्रणाम किया और अपने से छोटे लोगों का प्रणाम स्वीकार किया । तदनन्तर स्वागत एवं कुशल पूछकर आपस में भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं को कहने सुनने लगे ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

पृथा भ्रातॄन्स्वसॄर्वीक्ष्य तत्पुत्रान्पितरावपि । भ्रातृपत्नीर्मुकुन्दं च जहौ संकथया शुचः ।।१८।।

अन्वयः— पृथा भातॄन् स्वसॄः तत्पुत्रान् पितरौ, भातृपत्नीः मुकुन्दं च वीक्ष्य संकथया शुचः जहौ ।।१८।।

अनुवाद— कुन्तीजी भी अपने भाइयों, बहिनों, उनके पुत्रों माता-पिता भाभियों और भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर तथा उनसे बातें करके अपना सारा दुःख भूल गयीं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

संकथया मिथः सप्रेमगोष्ठ्या ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

संकथया मिथः अर्थात् प्रेम पूर्वक बातें करके ।।१८।।

कुन्त्युवाच

आर्य भ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृताशिषम् । यद्वा आपत्सु मद्वार्तां नानुस्मरथ सत्तमाः ।।१९।।

अन्वयः— आर्य भ्रातः आत्मानम् अकृताशिषम् मन्ये यद् वा हे सत्तमाः आपत्सु मद्वार्तां न अनुस्मरथ ।।१९।।

कुन्तीजी ने कहा

अनुवाद— भैयां मैं अपने को बड़ा ही अभागिन मानती हूँ क्योंकि आप जैसे सज्जन भाई भी आपत्ति काल में मेरी सुधि न ली, इससे बढ़कर और दुःख की कौन दूसरी बात होगी ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

तामेव वसुदेवपृथयोः संकथामाह-आर्येत्यादिचतुर्भिः । अकृताशिषमपूर्णमनोरथम् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

वासुदेवजी और कुन्तीजी की बातों को **आर्य० इत्यादि** चार श्लोकों में वर्णन किया गया है । अकृताशिषम् अपूर्ण मनोरथ वाली ।।१९।।

सुहृदो ज्ञातयः पुत्रा भ्रातरः पितरावपि । नानुस्मरन्ति स्वजनं यस्य दैवमदक्षिणम् ।।२०।।

अन्वयः— यस्य दैवम् अदक्षिणम् तं सुहृदः ज्ञातयः, पुत्राः, भ्रातरः पितरौ अपि स्वजनं न अनुस्मरन्ति ।।२०।।

अनुवाद— जिसका दैव वाम होता है उसको उसके हितैषी, स्वजन सम्बन्धी पुत्र, माता-पिता भी भूल जाते हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

यस्य दैवमदक्षिणमननुकूलं तं स्वजनमपि सन्तं सुहृदादयो नानुस्मरन्ति । अतो मम दैवं प्रतिकूलं, युष्माकं कोऽपराध इति भावः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

जिसका दैव प्रतिकूल होता है उसको उसके स्वजनं सम्बन्धी भी भूल जाते हैं मेरा दैव ही प्रतिकूल है, इसमें आप लोगों का कौन दोष है ?॥२०॥

वसुदेव उवाच

अम्ब मास्मानसूयेथा दैवक्रीडनकान्नरान् । ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यतेऽथवा ॥२१॥

अन्वयः— हे अम्ब ! अस्मान् मा अनुसूयेथाः दैव क्रीडनकान् नरान् ईशस्य हि वशे लोकः कार्यते अथवा कुरुते॥२१॥

वसुदेवजी ने कहा

अनुवाद— बहिन उलाहना मत दो सभी मनुष्य दैव के खिलौने है । सारा संसार ईश्वर के वश में ही रहकर कर्मो को करता है । और उसका फल भी भोगता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

कंसप्रतापिताः सर्वे वयं याता दिशंदिशम् । एतर्ह्येव पुनः स्थानं दैवेनासादिताः स्वसः ॥२२॥

अन्वयः— स्वसः वयं सर्वे कंस प्रतापिताः दिशं दिशं याता; । एतर्हि एव स्थानं दैवेन आसादिताः ॥२२॥

अनुवाद— बहिन हम सभी कंस से सताये जाकर अनेक दिशाओं में भगे हुए थे । अभी कुछ दिन हुए हैं कि हमलोग अपना स्थान प्राप्त कर लिए हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

ईशवशत्वमेवाह-कंसप्रतापिता इति । हे स्वसः । एतर्ह्येव संप्रत्येव ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

संसार परमात्माधीन है इस बात को **कंसप्रतापिताः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । हे बहिन अभी थोड़े दिन पहले ही ॥२२॥

श्रीशुक उवाच

वसुदेवोग्रसेनाद्यैर्यदुभिस्तेऽर्चिता नृपाः । आसन्नच्युतसंदर्शपरमानन्दनिर्वृताः ॥२३॥

अन्वयः— वसुदेवोग्रसेनाद्यैः अर्चिताः ते नृपाः अच्युतसदंर्शपरमानंदनिर्वृताः आसन् ॥२३॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— वहाँ आये हुए सभी राजाओं का वसुदेवजी ने तथा उग्रसेनजी ने अच्छी तरह से सत्कार किया। भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करके सभी राजा आनन्दमग्न हो गये ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

भीष्मो द्रोणोऽम्बिकापुत्रो गान्धारी ससुता तथा । सदाराः पाण्डवाः कुन्ती सृञ्जयो विदुरः कृपः॥२४॥
कुन्तिभोजो विराटश्च भीष्मको नग्नजिन्महान् । पुरुजिद्द्रुपदः शल्यो धृष्टकेतुः सकाशिराट्॥२५॥

दमघोषो विशालाक्षो मैथिलो मद्रकेकयौ । युधामन्युः सुशर्मा ससुता बाह्लिकादयः ॥२६॥
राजानो ये च राजेन्द्र युधिष्ठिरमनुव्रताः । श्रीनिकेतं वपुः शौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः॥२७॥

अन्वयः— हे राजेन्द्र भीष्मः द्रोणः अम्बिका पुत्रः तथा ससुता गान्धारी, सदाराः पाण्डवाः कुन्ती सृञ्जयः विदुरः कृपः, कुन्तिभोजः, विराटः च भीष्मकः महान् नग्नजित् पुरुजित द्रुपदः शल्यः सकाशिराट् धृष्टकेतुः दमघोषः विशालाक्ष मैथिल मद्रकैकयौ, युधामन्युः सुशर्मा, स सुताः बह्लिकादयः येच युधिष्ठिरम् अनुव्रताः राजानः । तें श्रीनिकेतं शौरेः वपुः वीक्ष्य विस्मिताः आसन् ॥२४-२७॥

अनुवाद— परीक्षित् भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधन आदि पुत्रों के साथ गान्धारी, पत्नियों के साथ युधिष्ठिर आदि पाण्डव, कुन्ती, सृञ्जय विदुर कृपाचार्य, कुन्तिभोज विराट्, भीष्मक, महाराज नग्नजित्, पुरुजित द्रुपद शल्य धृष्टकेतु, काशीनरेश, दमघोष, विशालाक्ष, मिथिलाधिप, मद्रनरेश, केकय नरेश युधामन्यु, सुशर्मा, अपने पुत्रों के साथ बाह्लीक तथा युधिष्ठिर के अनुयायी राजागण ये सभी भगवान् श्रीकृष्ण के अत्यन्त मनोहर श्रीविग्रह और उनकी रानियों को देखकर अत्यन्त विस्मित हो गये ॥२४-२७॥

भावार्थ दीपिका

युधिष्ठिरं येऽनुव्रतास्ते, राजसूये जितत्वात् ॥२४-२७॥

भाव प्रकाशिका

राजसूय यज्ञ के अवसर पर युधिष्ठिर ने जिन सबों को जीत लिया था वे युधिष्ठिर के जो राजागण थे वे सब ॥२४-२७॥

अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक्प्राप्तसमर्हणाः । प्रशशंसुर्मुदा युक्ता वृष्णीन्कृष्णपरिग्रहान् ॥२८॥

अन्वयः— अथ राम कृष्णाभ्यां सम्यक्प्राप्त समर्हणाः ते मुदा युता कृष्णपरिग्रहान् वृष्णीन् प्रशसंसुः ॥२८॥

अनुवाद— वे सभी राजागण बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा अच्छी तरह से सम्मानित होकर भगवान् श्रीकृष्ण के स्वजनों की प्रशंसा करने लगे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

अहो भोजपते यूयं जन्मभाजो नृणामिह । यत्पश्यथासकृत्कृष्णं दुर्दर्शमपि योगिनाम् ॥२९॥

अन्वयः— भोजपते नृणाम् इह जन्मभाजः यूयं अहो यत् योगिनाम् अपि दुर्दशम् यत् असकृत् कृष्णं पश्यथ ॥२९॥

अनुवाद— हे भोजपते उग्रसेनजी मनुष्यों में आपलोगों का जन्म धन्य है, क्योंकि जिनका दर्शन योगियों को मिलना कठिन है उन भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन आपलोग बार-बार करते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

जन्मभाजो नृणां मध्ये सफलजन्मानः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

मनुष्यों में आपलोगों का ही जन्म लेना सफल है ॥२९॥

यद्विश्रुतिः श्रुतिनुतेदमलं पुनाति पादावनेजनपयश्च वचश्च शास्त्रम् ।
भूः कालभर्जितभगाऽपि यदङ्घ्रिपद्मस्पर्शोत्थशक्तिरभिवर्षति नोऽखिलार्थान् ॥३०॥

अन्वयः— यत् विश्रुतिः श्रुतिनुता पादावनेजन पपश्च वचः शास्त्रंच इदम् अलं पुनाति, कालवर्जितभगा भूः अपि यदङ्घ्रिपद्म स्पर्शोत्थशक्तिः नः अखिलान्, अर्थान् वर्षति ॥३०॥

अनुवाद— जिन भगवान् श्रीकृष्ण की कीर्ति का वेदो ने आदर के साथ गान किया है, उनके चरणोदक गङ्गा का जल और उनकी शास्त्र स्वरूपिणी वाणी इस सम्पूर्ण जगत् को अच्छी तरह से पवित्र बना रही है। जिस समय पृथिवी के परिवर्तन के कारण सारा ऐश्वर्य विनष्ट हो गया था वह भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमलों के स्पर्श से शक्ति प्राप्त करके इस समय हमलोगों की सारी कामनाओं को पूर्ण कर रही है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

किंच न केवलं तस्य दर्शनमेव, अपितु अत्यन्तदुर्लभं बहु युष्माकं स्वतः संपन्नमित्याहुः-यद्विश्रुतिरिति द्वाभ्याम्। यदिति पृथक् पदम्। यस्येत्यर्थः। विश्रुतिः कीर्तिः श्रुतिभिर्नुता वेदैः स्तुता इदं विश्वमलमत्यर्थं पुनाति। 'यद्विश्रुतिश्रुतिरमीवमलम्' इति पाठे श्रुतिः श्रवणममीवं पापमिति। यस्य पादावनेजनपयो गङ्गा च यस्य वचो वाक्यरूपं शास्त्रं च वेदाख्यं विश्वं पुनाति। किंच कालेन भर्जितं दग्धं भगं माहात्म्यं यस्याः सा तथाविधापि भूर्यस्याङ्घ्रिपद्मस्पर्शेनोत्था आविर्भूता शक्तिर्यस्याः सा नोऽस्माकमखिलानर्थानभितो वर्षति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

केवल भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन ही नहीं अपितु अत्यन्त दुर्लभ बहुत सी वस्तुएँ आपलोगों को प्राप्त हो गयी हैं। इस बात को राजाओं ने यद्विश्रुति इत्यादि दो श्लोकों से कहा। यत् यह एक स्वतन्त्र पद है। जिन भगवान् श्रीकृष्ण की कीर्ति का गान वेद करते हैं, उसके द्वारा यह जगत् अत्यन्त पवित्र हो गया है। **यद्विश्रुति श्रुतिरमीवमलं** इस पाठ के होने पर अर्थ होगा कि जिनका यश श्रवण पाप को विनष्ट कर देता है। जिनके चरणों को धोवन रूपी गङ्गाजल तथा जिनकी शास्त्र रूपी वाणी सम्पूर्ण विश्व को पवित्र करते हैं, किञ्च काल के परिवर्तन के कारण जिसका माहात्म्य नष्ट हो गया था वह पृथिवी इनके चरण कमलों के स्पर्श से शक्ति को प्राप्त करके हमलोगों की अभिलाषाओं को हर तरह से परिपूर्ण कर रही है ॥३०॥

तद्दर्शनस्पर्शनानुपथप्रजल्पशय्यासनाशनसयौनसपिण्डबन्धः ।
येषां गृहे निरयवर्त्मनि वर्ततां वः स्वर्गापवर्गविरमः स्वयमास विष्णुः ॥३१॥

अन्वयः— तददर्शनस्पर्शनानुपथ प्रजल्पशय्यासनाशनसयौन सपिण्डबन्धः, येषां निरयवर्त्मनि गृहे वर्ततां वः स्वर्गापवर्ग विरमः स्वयम् विष्णुः आस ॥३१॥

अनुवाद— उग्रसेन जी आपलोगों का भगवान् श्रीकृष्ण से वैवाहिक सम्बन्ध एवं गोत्र सम्बन्ध है। यही नही आपलोग हर समय उनका दर्शन और स्पर्श प्राप्त करते रहते हैं। उनके साथ चलते है, बोलते है, सोते हैं, बैठते हैं, और खाते-पीते हैं। यों तो आपलोग नरक के मार्ग गार्हस्थ्य में फँसे हैं, किन्तु आपलोगों के घर में भगवान् विष्णु श्रीकृष्ण के रूप मूर्तिमान होकर रहते हैं। उनके दर्शन मात्र सें ही भोग और मोक्ष तक की अभिलाषा मिट जाती है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

दर्शनं च स्पर्शनं चानुपथोऽनुगतिश्च प्रजल्पो गोष्ठी च शय्या शयनं चासनं चाशनं भोजनं च यौनं विवाहसंबन्धस्तेन सह वर्तमानः सपिण्डबन्धो दैहिकसंबन्धः तेन श्रीकृष्णेन सह दर्शनाद्युपलक्षितः सयौनः सपिण्डबन्धो येषां वोऽस्ति। किंच येषां वो गृहे विष्णुः स्वयमास आविरभूत्। निरयवर्त्मनि प्रवृत्तिमार्गे वर्तमानानां स्वर्गापवर्गाभ्यां विरमयति वितृष्णान्करोतीति तथा सः। ते यूयं जन्मभाज इति। यद्वा तदिति सामान्यनिर्देशः। स इत्यर्थः। स विष्णुः स्वयं येषां वो निरयवर्त्मनि संसारकारणे गृहे वर्तमानानामपि बध्यते संबध्यत इति बन्धो दर्शनादिभिः संबद्धः सन्स्वर्गापवर्गविरम आस। परमसुखप्रदो बभूवेत्यर्थः॥३१॥

भाव प्रकाशिका

दर्शन, स्पर्श, अनुगमन बातें करना सोना भोजन करना तथा वैवाहिक संबन्ध भगवान् श्रीकृष्ण के साथ

आपलोगों का है । किञ्च आपलोगों के गृह में भगवान् विष्णु भगवान् श्रीकृष्ण के रूप में स्वयम् अविर्भूत हुए प्रवृत्ति मार्ग में रहने वालों को भी स्वर्ग तथा मोक्ष की इच्छा समाप्त कर देता है । वे भगवान् श्रीकृष्ण आपलोगों को अत्यधिक सुख प्रदान करने वाले हैं ।।३१।।

श्रीशुकं उवाच

नन्दस्तत्र यदून्प्राप्तान्ज्ञात्वा कृष्णपुरोगमान् । तत्रागमद्वृतो गोपैरनस्थार्थैर्दिदृक्षया ।।३२।।

अन्वयः— कृष्णपुरोगमान् यदून् प्राप्तान् ज्ञात्वा अनस्थैः गोपैः वृतः दिदृक्षया तत्र अगमत् ।।३२।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के साथ यदुवंशी कुरुक्षेत्र में आये हैं इस बात का पता नन्दजी को चला तब वे अपनी सारी सामग्री गाड़ियों पर रखकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी को देखने के लिए आये ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

अनस्थार्थैरिति । तत्रैव वासचिकीर्षया शकटेषु स्थापितैरर्थैः सहागत इत्यर्थः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

अनस्थार्थै० इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है कि वहीं पर रहने की इच्छा से गाड़ी पर सारा समान लादकर आये ।।३२।।

तं दृष्ट्वा वृष्णयो हृष्टास्तन्वः प्राणमिवोत्थिताः । परिषस्वजिरे गाढं चिरदर्शनकातराः ।।३३।।

अन्वयः— तं दृष्ट्वा वृष्णयः हृष्टाः तन्वः उत्थिताः प्राणमिव चिरदर्शनकातराः गाढं परिषस्वजिरे ।।३३।।

अनुवाद— नन्दजी को देखकर सभी यदुवंशी अत्यन्त प्रसन्न हो गये जैसे मृतशरीर में प्राण का संचार हो गया है । दीर्घकाल से मिलने के लिए कातर बने हुए उन लोगों ने एक दूसरे का आलिङ्गन किया ।।३३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३३।।

वसुदेवः परिष्वज्य संप्रीतः प्रेमविह्वलः । स्मरन्कंसकृतान्क्लेशान्पुत्रन्यासं च गोकुले ।।३४।।

अन्वयः— कंसकृतान् क्लेशान् गोकुले पुत्रन्यासं च स्मरन् प्रेमविह्वलः वसुदेवः तं परिष्वेज्य संप्रीतः ।।३४।।

अनुवाद— कंस के द्वारा दी गयी यातनाओं तथा अपने पुत्र को गोकुल में रख आने की क्रिया को स्मरण करते हुए प्रेम से विह्वल बने हुए वसुदेवजी नन्दजी का आलिङ्गन करके अत्यन्त आनन्द का अनुभव किए ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

वसुदेवस्तं परिष्वज्य प्रेमविह्वलो वभूवेति शेष; ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

वसुदेवजी नन्दजी का आलिङ्गन करके प्रेम के कारण विह्वल हो गये ।।३४।।

कृष्णरामौ परिष्वज्य पितरावभिवाद्य च । न किंचनोचतुः प्रेम्णा साश्रुकण्ठौ कुरूद्वह ।।३५।।

अन्वयः— हे कुरुद्वह ! कृष्णरामौ प्रेम्णा पितरौ परिष्वज्य अभिवाद्य च साश्रुकण्ठौ किंचन न ऊचतुः ।।३५।।

अनुवाद— हे परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी अपने माता-पिता यशोदा माता और नन्द बाबा का प्रेम पूर्वक आलिङ्गन करके कण्ठ के भर जाने के कारण कुछ भी नहीं बोल सके ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

तावात्मासनमारोप्य बाहुभ्यां परिरभ्य च । यशोदा च महाभागा सुतौ विजहतुः शुचः ॥३६॥

अन्वयः— महाभागा यशोदा च तौ आत्मासनम् आरोप्य बाहुभ्यां परिरभ्य च शुचः विजहतु ॥३६॥

अनुवाद— नन्दबाबा और महाभाग्यवती यशोदा जो भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी को अपनी गोद में बैठाकर तथा उनका आलिङ्गन करके अपने चिरकालिक नहीं मिलने के कष्ट को त्याग दिये ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

तौ सुतौ परिरभ्य नन्दो यशोदा च विरहशोकान्विजहतुस्तत्यजतुः । यद्वा शुचोऽश्रूणि विजहतुर्मुमुचतुरित्यर्थः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी अपने इन दोनों पुत्रों को नन्द बाबा और माता यशोदा उन दोनों का आलिङ्गन करके चिरकालिक विरहजन्य शोक का परित्याग कर दिए । अथवा अपने नेत्रों से आँसू बहाने लगे ॥३६॥

रोहिणी देवकी चाथ परिष्वज्य व्रजेश्वरीम् । स्मरन्त्यौ तत्कृतां मैत्रीं बाष्पकंठ्यौ समूचतुः ॥३७॥

अन्वयः— अथ रोहिणी देवकी च तत्कृताम् मैत्रीं चस्मरन्त्यौ ब्रजेश्वरीम् परिष्वज्य वाष्पकण्ठ्यौ समूचतुः ॥३७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् रोहिणी जी तथा देवकी माता यशोदाजी द्वारा की गयी मित्रता का निर्वाह स्मरण करके व्रजेश्वरी यशोदाजी का आलिङ्गन करके यशोदाजी से कहने लगीं, उस समय उन दोनों का गला भर गया था ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

व्रजेश्वरी यशोदाम् ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

व्रजेश्वरीम् अर्थात् यशोदाजी को ॥३७॥

का विस्मरेत वां मैत्रीमनिवृत्तां व्रजेश्वरि । अवाप्याप्यैन्द्रमैश्वर्यं यस्या नेह प्रतिक्रिया ॥३८॥

अन्वयः— हे ब्रजेश्वरि ! वां निर्वृतां मैत्रीम् का विस्मरेत् यस्या ऐन्द्रम् ऐश्वर्यम् अपि अवाप्य इह प्रतिक्रिया न ॥३८॥

अनुवाद— हे ब्रजेश्वरि ? आप दोनों ने जिस मित्रता का निर्वाह किया है उसको कोई भी स्त्री नहीं भूल सकती है । उसका बदला तो इन्द्र के ऐश्वर्य को भी प्राप्त करके नहीं चुकाया जा सकता है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

अनिवृत्तां निवृत्तिकरणे सत्यप्यनुवर्तमानाम् । ऐन्द्रमैश्वर्यं प्राप्यापि यस्याः प्रतिक्रिया कर्तुं न शक्यत इत्यर्थः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

सदा अनुवर्तित होते रहने वाली यह अनिवृत्तां का अर्थ है । इन्द्र के ऐश्वर्य को भी प्राप्त करके जिसका बदला नहीं चुकाया जा सकता है ॥३८॥

एतावदृष्टपितरौ युवयोः स्म पित्रोः संप्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि ।
प्राप्योषतुर्भवति पक्ष्म ह यद्वदक्ष्णोर्न्यस्तावकुत्र च भयौ न सतां परः स्वः ॥३९॥

अन्वयः— एतौ अदृष्टौ पितरौ युवयोः पित्रोः स्म संप्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि प्राप्य एतौ उषतुः भवतिहपक्ष्म यद्वद अकुत्र भयौ च न्यस्तौ, न सतां परः स्वः ॥३९॥

अनुवाद— हे देवि ! जब ये दोनों अपने माता-पिता को देखे भी नहीं थे और इनके पिता ने इन दोनों को

आपके यहाँ धरोहर के रूप में रख दिया था उस समय आपने इन दोनें की उसी तरह से रक्षा की जिस तरह पलकें आँखों की रक्षा करती हैं। आप दोनों ने इन दोनों को खिलाया-पिलाया प्रेम किया। और रिझाया इन दोनों के मङ्गल के लिए अनेक प्रकार के उत्सव भी किए। वस्तुत: आप ही दोनों इन दोनों के माता-पिता हैं। आपके संरक्षण में इन दोनों को कोई भय भी नहीं था। ऐसा करना आप लोगों के ही अनुरूप है। सत् पुरुषों के लिए न कोई अपना होता हैं न पराया होता है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

तत्कृतां मैत्रीमाहतुः-एताविति। न दृष्टौ पितरौ याभ्यां तौ। वस्तुतस्तु अजन्मत्वादेवादृष्टपितरौ। हे भवति, युवयोः पित्रोर्न्यस्तावेतौ संप्रीणनादीनि प्राप्याकुत्र च भयौ क्वचिदपि भयरहितौ भूत्वोषतुर्वासं चक्रतुः। कथंभूतयोः। अक्ष्णोर्नेत्रयो रक्षकं पक्ष्म यद्वत्तथा रक्षकयोः युक्तं युवयोरेतत्। यतः सतां परः स्व इति नास्ति वैषम्यम् ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

बाबा नन्द और माता यशोदा के द्वारा की गयी मित्रता का वर्णन वे दोनों **एतौ० इत्यादि** श्लोक से करती हैं। जब कि इन दोनों ने अपने माता-पिता को देखा भी नहीं था। वास्तविकता है कि अजन्मा होने के कारण इन दोनों के माता-पिता है ही नहीं। हे देवि आप दोनों के ही मातृत्व और पितृत्व में ये दोनों रखे गये थे। आप दोनों का प्रेम प्राप्त करके ये दोनों निर्भय रहकर आपके यहाँ निवास किए। आप दोनों ने इन दोनों की उसी तरह से रक्षा की है, जिस तरह पलकें आँखों की रक्षा करती हैं। ऐसा करना आप दोनों के ही अनुरूप है। क्योंकि सत्पुरुषों में अपने और पराये का भेद नहीं होता है ॥३९॥

श्रीशुक उवाच

गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति।
दृग्भिर्हृदीकृतमलं परिरभ्य सर्वास्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥४०॥

अन्वयः— यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति गोप्यः च चिरादभीष्टं कृष्णम् उपलभ्य सर्वाः दृग्भिः हृदिकृतं अलं परिरभ्य नित्ययुजां अपि दुरापम् तद्भावम् आपुः ॥४०॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— गोपियाँ जिन भगवान् श्रीकृष्ण को देखते समय आँखों की पलकों के गिर जाने पर उन पलकों के बनाने वाले को ही कोसने लग जाती थीं, उन प्रेममूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन आज उन्हें बहुत दिनों के बाद मिला है। उन सबों ने अपने प्रियतम श्रीकृष्ण को आँखों के रास्ते अपने हृदय में ले जाकर उनका गढालिङ्गन करके मन से ही इतना तन्मय हो गयीं कि नित्य ही अभ्यास करने वाले योगियो को उस तरह से तन्मय होना दुर्लभ है ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

अभीष्टत्वे लिङ्गम्- यद्यस्य श्रीकृष्णस्य प्रेक्षणे दृशिषु नेत्रेषु व्यवधायकं पक्ष्मकृतं विधातारं शपन्ति। दृग्भिर्नेत्रद्वारैर्हृदि कृतं हृदये प्रवेशितं परिरभ्य तद्भावं तदात्मतां प्रापुः। अपि नित्ययुजामारूढयोगिनामपि ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण गोपियों को अत्यन्त अभीष्ट थे इस कथन में प्रमाण बतलाते हैं जिन भगवान् श्रीकृष्ण को देखते समय नेत्रों में व्यवधान उत्पन्न करने वाले पलकों के बनाने वाले ब्रह्माजी को ही कोसने लगती थीं। वे गोपियों अपने नेत्र रूपी द्वारों से भगवान् श्रीकृष्ण को अपने हृदय में ले जाकर उनका गाढालिङ्गन करके इनता तन्मय हो गयीं कि उस तन्मयता के भाव को अभ्यास करने वाले योगिजन भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं ॥४०॥

भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसङ्गतः । आश्लिष्यानामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥४१॥

अन्वयः— तथाभूताः ताः विविक्ते उपसङ्गतः आश्लिष्य अनामयं पृष्ट्वा प्रहसन् इदमब्रवीत् ॥४१॥

अनुवाद— गोपियों को तन्मय होते देखकर श्रीभगवान् उन सबों के साथ एकान्त में चले गये । वे उन सबों को हृदय से लगाकर उन सबों का कुशल मङ्गल पूछे तथा हँसते हुए उन सबों से कहे ॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४१॥

अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थचिकीर्षया । गतांश्चिरायिताञ्छत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥४२॥

अन्वयः— सख्यः स्वानाम् अर्थ चिकीर्षया शत्रुक्षपणचेतसः गतान् चिरायितान् नः स्मरथ अपि ॥४२॥

अनुवाद— हे सखियों अपने स्वजन संबन्धियों का काम करने के लिए हमलोग व्रज से बाहर चले गये, सदा शत्रुओं का ही विनाश करने में लगे रहने वाले । इस कार्य में बहुत दिन बीत गये । क्या तुम लोगों को हमारी याद भी आती है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

चिरायितान्विलम्बितान् । अत्र हेतुः-शत्रूणां पक्षस्य क्षपणे चेतो येषां तान् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

चिरायितान् अर्थात् जिसके बहुत दिन बीत चुके हैं उसका कारण है कि हमलोग शत्रु का ही विनाश करने में लगे रहे ॥४२॥

अप्यवध्यायथास्मान् स्विदकृतज्ञाविशङ्कया । नूनं भूतानि भगवान्युनक्ति वियुनक्ति च ॥४३॥

अन्वयः— अपिस्वित् अस्मान् अकृतज्ञाविशङ्कया अवध्यायथा नूनं भगवान् भूतानि युनक्ति वियुनक्ति च ॥४३॥

अनुवाद— गोपियों हमलोगों को अकृतज्ञ समझकर तुमलोग हमसे बुरा तो नहीं मानने लगी हों । निश्चित रूप से परमात्मा ही किसी को किसी मिलाने और अलग करने का काम करते हैं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

अपिस्वित् अस्मानवध्यायथावजानीथ । अकृतज्ञा एत इत्याविशङ्कया ईषच्छङ्कया न शङ्कामात्रं निश्चितमेवैतत्परित्यज्य गतत्वादित्यत आह-नूनमिति ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

हमलोगों के विषय में अकृतज्ञ की आशङ्का करके तुमलोग हमलोगों का अनादर तो नहीं करने लगी हो? यह सोचकर कि ये लोग छोड़कर चले गये इस तरह से सोचकर इस बात को **नूनम्० इत्यादि** से कहा गया है ॥४३॥

वायुर्यथा घनानीकं तृणं तूलं रजांसि च । संयोज्याक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत् ॥४४॥

अन्वयः— यथा वायु घनानीक, तृणं, तूलं रजांसिच संयोज्य आक्षिपते तथा भूतानि भूतकृत् ॥४४॥

अनुवाद— जिस तरह वायु मेघ समूह, तृण, रुई और धूल इन सबों को एक साथ मिलाकर फिर इन सबों को अलग-अलग भी कर देती हैं उसी तरह सबों के निर्माता परमात्मा भी सबों का संयोग और वियोग अपनी इच्छा से किया करते हैं ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

एतत्सदृष्टान्तमाह-वायुरिति । आक्षिपते पृथक्करोतीत्यर्थः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

इसी बात को श्रीभगवान् दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहते है । आक्षिपते अर्थात् अलग कर देते हैं ॥४४॥

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते । दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥४५॥

अन्वयः— दिष्ट्या भवतीनां मदापन यत् मत्स्नेहः आसीत् मयि भक्तिः ही भूतानां अमृतत्वाय कल्पते ॥४५॥

अनुवाद— सखियां ! यह बड़े ही सौभाग्य की बात है कि तुमलोगों को मेरा स्नेह प्राप्त हो चुका है, वह मेरी ही प्राप्ति कराने वाला है । क्योंकि मुझसे जो प्राणियों का प्रेम है वह उसे मुक्ति प्रदान कर देता है ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

अपि च अतिभद्रमिदं यदुत भवतीनां मद्वियोगेन मत्प्रेमातिशयो जात इत्याह-मयीति । मयि भक्तिमात्रमेव तावदमृतत्वाय कल्पत इति । यदुत भवतीनां मत्स्नेह आसीत्तद्दिष्ट्यातिभद्रम् । कुतः । मदापनो मत्प्रापण इति ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च यह बहुत कल्याण की बात है कि मेरे वियोग से तुमलोगों को मेरी भक्ति की प्राप्ति हो गयी । इस बात को **मयि० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । केवल मेरी भक्ति ही मुक्ति प्रदान करने वाली है । आपलोगों का जो मुझमें प्रेम है वह तो अत्यन्त कल्याण की बात है । क्योंकि मेरी भक्ति मेरी ही प्राप्ति करा देती हैं ॥४५॥

अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः । भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः ॥४६॥

अन्वयः— हे अङ्गना भौतिकानां खं वारभूः वायुः ज्योतिः यथा अहं हि सर्वभूतानाम् आदि अन्तः अन्तरं बहिः ॥४६॥

अनुवाद— हे गोपियों जिस तरह समस्त घट पट आदि पदार्थ के आदि, मध्य, अन्त, भीतर तथा बाहर उन सबों के मूल कारण भूत, पृथवी, जल, तेज, वायु और आकाश उनमें ओत-प्रोत है । उसी तरह मैं भी सभी भूतों के आदि, मध्य, अन्त, भीतर ओर बाहर व्याप्त हूँ ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

कीदृशत्वं यं वयं स्नेहेन प्राप्स्याम इत्यपेक्षायामात्मस्वरूपमाह-अहं हीति । हे अङ्गनाः, भौतिकानां शरावसैन्धवादीनां यथाकाशादीनि पञ्चमहाभूतान्याद्यन्तादिरूपाणि एवं सर्वभूतानां जरायुजादीनामहम् । अतो व्यापकं मां भवत्यः प्राप्ता एवेति ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

यदि तुमलोग पूछो कि आप कैसे हैं कि स्नेह के कारण हमलोग आपको प्राप्त करेंगी, इस तरह के प्रश्न होने पर श्रीभगवान् अपना स्वरूप बतलाते है । हे गोपियाँ जिस तरह कुल्हण और नमक आदि में आकाश आदि पञ्च महाभूत मिले हुए है, उसी तरह से मैं भी जरायुज आदि सभी प्राणियों में व्यापक हूँ अतएव तुमलोग मुझको प्राप्त करोगी ॥४६॥

एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्मात्मना ततः । उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमक्षरे ॥४७॥

अन्वयः— एवं हि एतानि भूतानि ततः भूतेषु आत्मन आत्मा अथ उभयं परे मयि आभातम् ॥४७॥

अनुवाद— इसी प्रकार सभी प्राणियों के भीतर ये पाँचो भूत विद्यमान है और आत्मा उन सबों के भीतर भोक्ता रूप से व्याप्त है । ये दोनों ही इन सबों से उत्कृष्ट मुझमें ही प्रतीत होते हैं ऐसा जानो ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

ननु चतुर्विधभूतग्रामाणां तद्भोक्ता आत्मैवाद्यन्तादिरूपः, तस्मिंश्च सर्वव्यापके सर्वभूतानि वर्तन्त इति कुतस्त्वत्प्राप्तिरस्माकमित्यत आह-एवं हीति । अयमर्थः-शरावादीनां यथा भौतिकानां महाभूतान्याद्यन्तादिरूपाण्येवमैवैतानि चतुर्विधानि

भूतान्यपि भौतिकत्वाविशेषात्स्वकारणेषु भूतेष्वेव वर्तन्ते, नतु भोक्तर्यात्मनि । आत्मा तु तेषु भूतेष्वात्मना भोक्तृरूपेण ततो व्याप्तो न कारणत्वेन । अथैतदुभयं भूतभौतिकरूपं भोग्यं च भोक्तारं चात्मानं मय्यक्षरे परिपूर्णे आभातं पश्यतेति ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहों कि जरायुज, अण्डज, स्वेदज और स्थावर चारो प्रकार के भूतों का भोक्ता तो आत्मा है । वही उन सबों की आदि और अन्त में रहता है । उस सर्वव्यापक आत्मा में ही सभी भूत विद्यमान है । अतएव हमलोग आपको कैसे प्राप्त करेंगी ? इस बात को **एवं हि० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । जिस तरह सभी कुल्हड़ आदि भूत भौतिक पदार्थों के आदि और अन्त में पञ्च महाभूत ही रहते है, इसी तरह ये चारो प्रकार के जीव भी भौतिक के ही समान होने के कारण अपने कारण भूतों में ही विद्यमान हैं । भोक्ता आत्मा में नहीं । आत्मा तो उन सबों में भोक्ता रूप से व्याप्त है कारण रूप से नहीं । इस तरह ये दोनों प्रकार के भूत-भौतिक रूप भोक्ता एवं भोग्य को तुमलोग मेरे ही भीतर देखो ।।४७।।

श्रीशुक उवाच

अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिताः । तदनुस्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन् ।।४८।।

अन्वयः— कृष्णेन एवं अध्यात्मशिक्षया शिक्षिताः गोप्यः तदनुस्मरणध्वस्त जीवकोशाः तमध्यगन् ।।४८।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् इस प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण ने गोपियों को अध्यात्म की शिक्षा दी । उसी उपदेश का बार-बार स्मरण करने के कारण गोपियों का लिङ्ग शरीर विनष्ट हो गया और वे सदा-सदा के लिए श्रीभगवान् को प्राप्त कर लीं ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

अध्यात्मशिक्षया स्वरूपोपदेशेने शिक्षिता बोधितास्तस्यानुस्मरणेन ध्वस्तो जीवकोशो लिङ्गं यासां तास्तमेवाध्यगन् प्रापुः।।४८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के द्वारा अपने स्वरूप के उपदेश से शिक्षित गोपियाँ के जीव कोश (लिङ्ग शरीर) का नाश हो गया और उन सबों ने श्रीभगवान् को प्राप्त कर लिया ।।४८।।

आहुश्च ते नलिननाभपदारविन्दं योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं गेहंजुषामपि मनस्युदियात्सदा नः ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे वृष्णिगोपसंगमो नाम द्व्यवशीतितमोऽध्यायः ।।८२।।

अन्वयः— आहुश्च हे नलिननाभ ते पदारविन्दं आगाधबोधैः योगेश्वरैः हृदि विचिन्त्यम् संसारकूपपतितोतरणाबलम्बं गेहजुषाम् अपि नः मनसि सदा उदियात् ।।४९।।

अनुवाद— गोपियों ने भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना की हे पद्मनाभ आपके चरणकमल आगध ज्ञान सम्पन्न योगेश्वरों के द्वारा अपने हृदय में चिन्तनीय हैं तथा संसार रूपी औंधे कुएँ से निकल पाने के साधन है । आप ऐसी कृपा कीजिए कि घर गृहस्थी के कामों में लगे रहने वाली हम गोपियों के मन में आपके उन चरणों की यादगारी सदा बनी रहे ।।४९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के यदुवंशियों एवं गोपों के संगम नामक बयासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८२।।

भावार्थ दीपिका

एवं प्राप्तोऽपि कृष्णः पुनर्गृहव्यासङ्गेन मापयात्विति तच्चरणस्मरणं प्रार्थयामासुरित्याह-आहुश्चेति । हे नलिननाभ, ते पदारविन्दं गेहंजुषां गृहसेविनीनामपि नो मनसि सदा उदियादाविर्भवेत् ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्व्यशीतितमोऽध्यायः ।।८२।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण के प्राप्त हो जाने पर श्रीभगवान् श्रीकृष्ण के गृहकार्यों में लग जाने पर कहीं हमलोगों से दूर न हो जायँ इसलिए उनके चरणों की स्मृति बने रहने के लिए गोपियों ने **आहुश्च० इत्यादि** श्लोक के द्वारा प्रार्थना की हे पद्मनाभ आपके चरण कमल की गृह कार्यों में व्यस्त हो जाने पर भी हमारे मन में सदा याद बनी रहे ऐसी आप कृपा करें ।।४९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के बयासीवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।८२।।

* * *

तिरासीवाँ अध्याय

श्रीभगवान् की पटरानियों के साथ द्रौपदी की बातचित

श्रीशुक उवाच

तथानुगृह्य भगवान्गोपीनां स गुरुर्गतिः । युधिष्ठिरमथापृच्छत्सर्वांश्च सुहृदोऽव्ययम् ॥१॥

अन्वयः— गोपीनां गुरुः गतिः सभगवान् तथा अनुगृह्य अथ युधिष्ठिरम् सर्वान् सुहृदश्च अव्ययम् अपृच्छत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण गोपियों को शिक्षा देने वाले गुरु भी है और वे ही उन सबों द्वारा प्राप्त किए जाने वाले हैं । वे भगवान् गोपियों पर उस प्रकार से कृपा करके उसके पश्चात् महाराज युधिष्ठिर और अपने दूसरे हितैषियों से उन सबों का कुशल मङ्गल पूछे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्र्यशीतितम एवं च स्त्रीणां कृष्णकथोत्सवे । द्रौपद्यै कृष्णभार्याभिरुक्ताः स्वस्वकरग्रहाः । अव्ययं कुशलम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तिरासीवें अध्याय में इस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं की चर्चा के प्रसङ्ग में भगवान् श्रीकृष्ण की पटरानियों ने अपने-अपने विवाह की कथा द्रौपदी जी को सुनाया **अव्ययम्** अर्थात् कुशल ॥१॥

त एवं लोकनाथेन परिपृष्टाः सुसत्कृताः । प्रत्यूचुर्हृष्टमनसस्तत्पादेक्षाहतांहसः ॥२॥

अन्वयः— तत्पादेक्षाहतांहसः ते लोकनाथेन सुसत्कृताः परिपृष्टाः हृष्टमनसः प्रत्यूचुः ॥२॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के चरण कमलों के दर्शन से ही जिनके सारे पाप विनष्ट हो गये थे वे भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा अच्छी तरह से सत्कृत होने के कारण पूछे जाने पर प्रसन्नता पूर्वक कहे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तत्पादेक्षया हतमंहो येषां ते ।।२।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का दर्शन करने से ही जिनके सारे पाप विनष्ट हो गये थे ।।२।।

कुतोऽशिवं त्वच्चरणाम्बुजासवं महन्मनस्तो मुखनिःसृतं क्वचित् ।
पिबन्ति ये कर्णपुटैरलं प्रभो देहंभृतां देहकृदस्मृतिच्छिदम् ।।३।।

अन्वयः— हे प्रभो ! महन्मनस्तो मुखनिःसृतं त्वच्चरणाम्बुजासवं ये कर्णपुटैरलं पिबन्ति देहभृतां देहकृत् अस्मृतिच्छिदं अशिवंकुतः ।।३।।

अनुवाद— हे प्रभो ! जो महापुरुष आपके चरण रूपी कमल पराग का मन-ही-मन निरन्तर पान करते रहते है, उनके मन के सन्निकट में रहने वाले मुख क्रम से लीला कथा से निकलने वाले आपके चरण कमल के आसव को जो लोग अपने कान रूपी दोनों से मन भर पीते रहते हैं देहधारियों को संसारचक्र में डालने वाली अविद्या का उससे नाश हो जाता है, ऐसे लोगों का अमङ्गल कैसे सम्भव है ?।।३।।

भावार्थ दीपिका

महतां मनस्तः सकाशान्मुखद्वारतो निःसृतं क्वचित्कदाचिद्देहभृतां देहधारिणां देहकृच्चासावस्मृतिश्चाविद्या तां छिनत्तीति तथा तम् । देहकृदीश्वरस्तद्विषयाज्ञानच्छिदं वा ।।३।।

भाव प्रकाशिका

महापुरुषों के मन के सन्निकट में रहने वाले मुख रूपी द्वार से कभी भगवत् कथामृत का पान करने वाले जिन मनुष्यों की अविद्या का नाश हो जाता है । अथवा देह प्रदान करने वाले ईश्वर विषयक अज्ञान को विनष्ट कर देने वाला है ।।३।।

हित्वात्मधाम विधुतात्मकृतत्र्यवस्थमानन्दसंप्लवमखण्डमकुण्ठबोधम् ।
कालोपसृष्टनिगमावन आत्तयोगमायाकृतिं परमहंसगतिं नताः स्म ।।४।।

अन्वयः— आत्मधामविधुतात्मकृतव्यस्थम् आनन्द संप्लवम् अखण्डम् अकुण्ठबोधम् कालोपसृष्ट निगमावन ! आत्तयोगमायाकृतिं परमहंसानां गतिं हित्वा नताः स्म ।।४।।

अनुवाद— स्वरूप प्रकाश के द्वारा बुद्धि की वृत्तियों द्वारा जिन्होंने जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति रूप तीनों अवस्थाओं को विनष्ट कर देने वाले आनन्द सागर एकरस, तथा ज्ञान स्वरूप, कालकृत परिवर्तन के कारण वेदों के ह्रास को देखकर उनकी रक्षा के लिए अपनी अचिन्त्ययोगमाया के द्वारा मनुष्य का शरीर धारण करने वाले परमहंसों के एक मात्र प्राप्य ऐसे आपको हमलोग नमस्कार करते हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

हि त्वेति पदद्वयम् । त्वा त्वां हि एव त्वामेव नताः स्मेत्यर्थः । कथंभूतम् । आत्मधाम्नः स्वरूपप्रकाशेन विधुता निरस्ता आत्मकृता बुद्धिनिमित्तास्तिस्रोऽवस्था यस्मिंस्तम् । अत एवानन्दसंप्लवं सर्वानन्दकदम्बरूपम् । अखण्डं चापरिच्छिन्नम् । यतो न कुण्ठः कुण्ठितो बोधश्चिच्छक्तिर्यस्य तम् । नन्वेवंरूपता श्रीकृष्णस्य कुतः । अस्मदादिवत्प्रतीतेरत आहुः-कालोपसृष्टेति । कालेनोपसृष्टा विप्लुताश्च ते निगमाश्च तेषामवने रक्षार्थमात्ता उपात्ता योगमायया आकृतिर्निराकार मूर्तिर्येन तम् । परमहंसानां गतिं त्वाम् । अतस्तवैवंरूपत्वादस्माकं च त्वन्माययैतत्सर्वंवैपरीत्यात्त्वामेव नताः स्मेति । यद्वा त्वामिति प्रकरणाज्ज्ञातव्यम् । त्वां नताः स्म। किं कृत्वा। हित्वा । किम् । आत्मधाम आत्मा शरीरं धाम गृहं तच्च तच्च । देहदैहिकसङ्गं परित्यज्येत्यर्थः समानमन्यत्।।४।।

भाव प्रकाशिका

हि और त्वा इन दो पदों से हित्वा पद बना है । अर्थात् हमलोग आपको ही नमस्कार करते हैं । कैसे हैं आप? तो इसका उत्तर है कि अपने स्वरूप प्रकाश से बुद्धि की वृत्तियों से उत्पन्न होने वाली जाग्रत स्वप्न तथा सुषुप्ति रूप तीनों अवस्थाओं को आपने विनष्ट कर दिया है । अखण्ड ज्ञान रूवरूप हैं आप यदि कोई कहे कि श्रीकृष्ण तो हमलोगों के ही समान प्रतीत होते हैं अतएव वे ऐसा कैसे हो सकते हैं ? इस पर उन लोगों ने कहा काल के परिवर्तन के कारण होने वाले वेदों के विप्लव को देखकर उनकी रक्षा करने के ही लिए आपने अपनी अचिन्त्य शक्ति योगमाया को अपनाकर मानव शरीर को धारण किए हुए आनन्द सागर तथा परमहंसों के एक मात्र प्राप्य आपको हमलोग नमस्कार करते हैं। अथवा प्रकरण वशात् ज्ञात होने वाले आपको ही हमलोग नमस्कार करते है क्या करके शरीर एवं शारीरिक संबन्धों का परित्याग करके । अन्य सारी बातें एक समान हैं।।४।।

ऋषिरुवाच

इत्युत्तमश्लोकशिखामणिं जनेष्वभिष्टुवत्स्वन्धककौरवस्त्रियः ।
समेत्य गोविन्दकथा मिथोऽगृणंस्त्रिलोकगीताः शृणु वर्णयामि ते ।।५।।

अन्वयः— इति उत्तमश्लोकशिखामणिं अभिष्टुवत्सु जनेषु अन्धककौरवस्त्रियः समेत्य त्रिलोकगीताः गोविन्दकथाः मिथः अगृणन् शृणुते वर्णयामि ।।५।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से जब दूसरे लोग भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति कर रहे थे उस समय यदुवंशियों और तथा कौरव कुल की स्त्रियाँ एकत्रित होकर त्रिभुवन विख्यात भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का परस्पर में वर्णन कर रही थीं अब मैं तुमको उन सबों की ही बातों को सुनाता हूँ ।।५।।

भावार्थ दीपिका

त्रिषु लोकेषु गीताः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

त्रैलोक्यविख्यात ।।५।।

द्रौपद्युवाच

हे वैदर्भ्यच्युतो भद्रे हे जाम्बवति कौसले । हे सत्यभामे कालिन्दि शैब्ये रोहिणि लक्ष्मणे ।।६।।
हे कृष्णपत्न्य एतन्नो ब्रूत वो भगवान्स्वयम् । उपयेमे यथा लोकमनुकुर्वन्स्वमायया ।।७।।

अन्वयः— हे वैदर्भि ! हे भद्रे, हे जाम्बवति, हे कौसले ! हे सत्यभामे, हे कालिन्दि, हे शैब्ये, हे रोहिणि, हे लक्ष्मणे, हे कृष्ण पत्न्यः एतत् नो ब्रूहि, स्वमायया लोकम् अनुकुर्वन् भगवान् स्वयम् यथा वः उपयेमे ।।६-७।।

द्रौपदीजी ने कहा

अनुवाद— हे रुक्मिणी, भद्रा, जाम्बवती, सत्या, सत्यभामा, शैव्या, लक्ष्मणा, रोहिणी तथा दूसरी भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियों तुमलोग हमे यह बतलाओ कि माया से लोकों का अनुकरण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण तुमलोगों का किस तरह पाणिग्रहण किए ।।६-७।।

भावार्थ दीपिका

कौसले हे सत्ये ! शैब्ये हे मित्रविन्दे । रोहिणीनाम काचित्पट्टमहिषीतुल्या । हे अन्याः श्रीकृष्णस्य पत्न्यः ।।६-७।।

भाव प्रकाशिका

हे कौसले अर्थात् हे सत्या ! शैव्ये अर्थात् मित्रविन्दा रोहिणी नाम की कोई भगवान् श्रीकृष्ण की पट्टमहिषी के समान पत्नी, हे अन्या: अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण की दूसरी पत्नियों ॥६-७॥

रुक्मिण्युवाच

चैद्याय माऽर्पयितुमुद्यतकार्मुकेषु राजस्वजेयभटशेखरितङ्घ्रिरेणुः ।
निन्ये मृगेन्द्र इव भागमजावियूथात्तच्छ्रीनिकेतचरणोऽस्तु ममार्चनाय ॥८॥

अन्वयः— मा चैद्याय अर्पयितुम् उद्यत् कार्मुकेषु राजसु अजेयभटशेखारिताङ्घ्रिरेणुः अजावियूथात् स्वभागम् मृगेन्द्रइव निन्ये, तच्छ्रीनिकेतचरणः मम अर्चनाय अस्तु ॥८॥

श्रीरुक्मिणी जी ने कहा

अनुवाद— जरासन्ध आदि राजा गण मेरा विवाह शिशुपाल के साथ कराना चाहते थे, इसलिए वे शास्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध के लिए तैयार थे । किन्तु जिस तरह सिंह बकरियों और भेड़ों के बीच से अपना भाग उठा ले जाता है, उसी तरह अजेय वीर शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण मुझे हर लाये । मैं यही चाहती हूँ कि जन्म जन्मान्तरों तक इन्ही भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की अर्चना करती रहूँ ॥८॥

भावार्थ दीपिका

मा मामर्पयितुं संपादयितुं राजसु जरासन्धादिषूद्यतकार्मुकेषु सत्स्वजेया ये भटास्तेषां शेखरिता मुकुटवत्कृता अङ्घ्रिरेणवो येन । तेषां मूर्ध्नि पदं दधदित्यर्थः । तस्य श्रीनिकेतस्य चरणौ ममार्चनायास्तु ॥८॥

भाव प्रकाशिका

मुझको समर्पित करने के लिए धनुष धारण किए हुए जरासन्ध आदि में जो अजेय वीर थे उनके शिरों पर पैर रखने वाले लक्ष्मीजी के निवास स्थान भगवान् श्रीकृष्ण के चरण कमल मेरे अर्चनीय हैं ॥८॥

सत्यभामोवाच

यो मे सनाभिवधतप्तहृदा ततेन लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुमुपाजहार ।
जित्वर्क्षराजमथ रत्नमदात्स तेन भीतः पिताऽदिशत मां प्रभवेऽपि दत्ताम् ॥९॥

अन्वयः— सनाभिवधतप्तहृदा ततेन लिप्ताभिशापमपमार्ष्टुम् ऋक्षराजं जित्वा रत्नम् उपाजहार अथ रत्नमदात् तेन भीतः स मे पिता दत्ताम् माम प्रभवे आदिशत् ॥९॥

सत्यभामाजी ने कहा

अनुवाद— मेरे पिता अपने भाई के वध के कारण संतप्त थे, वे भगवान् श्रीकृष्ण पर ही अपने भाई के वध का कलङ्क लगाये । उस कलङ्क का मार्जन करने के लिए ऋक्षराज जाम्बवान् को पराजित करके भगवान् स्यमन्तक मणि को लाए और मेरे पिता को उस मणि को समर्पित कर दिए । उसके कारण भयभीत मेरे पिता यद्यपि अक्रूर आदि को मुझे देने के लिए वाग्दान कर चुके थे फिर भी मेरा विवाह भगवान् श्रीकृष्ण से कर दिए ॥९॥

भावार्थ दीपिका

सनाभेर्भ्रातुर्वधेन सिंहकृतेन तप्तं हृद्यस्य तेन मे ततेन तातेन लिप्तमभिशापं दुर्यशोऽपमार्ष्टुं परिहर्तुमृक्षराजं जित्वा रत्नं स्यमन्तकमुपाजहारानीतवान् । अथानन्तरं मत्पित्रे रत्नमदात्, तेन स्वापराधेन भीतः स मे पिता प्रभवे श्रीकृष्णाय मामदिशत ददौ । दत्तामक्रूरादिभ्यः प्रतिश्रुतामपीत्यर्थः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

मेरे पिता अपने भाई के सिंह द्वारा वध कर दिए जाने के कारण सन्तप्त हृदय थे। उन्होंने अपने भाई के वध का कलङ्क भगवान् श्रीकृष्ण पर लगा दिया। उस कलङ्क को दूर करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ऋक्षराज को जीतकर स्यमन्तक मणि को लाये और मेरे पिता को वह रत्न प्रदान कर दिए। उसके कारण मेरे पिता डर गये। यद्यपि वे अक्रूर आदि को मुझे देने के लिए वाग्दान कर चुके थे फिर भी वे मेरा विवाह भगवान् श्रीकृष्ण से कर दिए॥९॥

जाम्बवत्युवाच

प्राज्ञाय देहकृदमुं निजनाथदैवं सीतापतिं त्रिणवहान्यमुनाभ्ययुध्यत् ।
ज्ञात्वा परीक्षित उपाहरदर्हणं मां पादौ प्रगृह्य मणिनाऽहममुष्य दासी ॥१०॥

अन्वयः— देहकृत अमुं निजनाथदेवं सीतापति प्राज्ञाय अमुना त्रिणवाहानि अयुध्यत् परीक्षितः ज्ञात्वा पादौ प्रगृह्य मणिनात् सह माम् अर्हणं उपाहरत् अहम् अमुष्य दासी ॥१०॥

जाम्बवतीजी ने कहा

अनुवाद— द्रौपदीजी मेरे पिता इनको यह नही जान सके कि ये मेरे स्वामी श्रीरामही है। अतएव वे इनसे सत्ताइस दिन तक लड़ते रहे। जब परीक्षा पूरी हुई तो उन्होंने जान लिया कि ये तो मेरे स्वामी श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। यह जानकर उन्होंने इनके चरण पकड़ लिया। और स्यमन्तक मणि के साथ इनको मुझे भी समर्पित कर दिया। अतएव मैं तो इनकी जन्म-जन्म की दासी हूँ ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

देहकृत्पिता अमुं श्रीकृष्णं निजनाथं स्वामिनं देवमीश्वरं सीतापतिं प्राज्ञायाविज्ञाय त्रिणवहानि त्रिनवाहानि, ह्रस्वश्छन्दोऽनुरोधेन। सप्तविंशतिदिनान्यमुनाभ्ययुध्यत्। परीक्षितः संजाता परीक्षा यस्य स परीक्षितस्तं साक्षात्सीतापतिरेवासाविति ज्ञात्वा पादौ प्रगृह्य मणिना सह मामर्हणमुपाहरदर्हणतया समर्पितवान्। अहो तर्हि त्वमतिश्रेष्ठासि, नेत्याह-अमुष्याहं दासीति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

मेरे पिता इन भगवान् श्रीकृष्ण को यह नहीं जान सके कि ये तो मेरे स्वामी श्रीरामचन्द्रजी ही हैं। अतएव वे इनके साथ सताइस दिनों तक युद्ध करते रहे। परीक्षा समाप्त हो जाने पर इनको सीतानाथ जानकर वे इनके चरणों को पकड़ लिए और मणि के ही साथ मुझको भी वे इनको समर्पित कर दिए। यदि आप यह कहें कि तब तो तुम अत्यन्त श्रेष्ठ हो तो ऐसी बात नहीं हैं। मैं तो इनकी दासी हूँ त्रिणवहानि में ह्रस्व छन्द की दृष्टि से कर दिया गया है ॥१०॥

कालिन्द्युवाच

तपश्चरन्तीमाज्ञाय स्वपादस्पर्शनाशया । सख्योपेत्याग्रहीत्पाणिं योऽहं तद्गृहमार्जनी ॥११॥

अन्वयः— स्वपादस्पर्शनाशया तपश्चरन्तीं आज्ञाय सख्या उपेत्य यः पाणिम् अग्रहीत् अहं तद्गृहमार्जनी ॥११॥

कालिन्दीजी ने कहा

अनुवाद— द्रौपदजी जब श्रीभगवान् को इस बात का पता चला कि मैं इनके चरणों को स्पर्श करने की कामना से तपस्या कर रही हूँ तो ये भगवान् श्रीकृष्ण अपने सखा अर्जुन के साथ यमुनातट पर पधार कर मेरा पाणिग्रहण किए इस तरह की मैं इनके गृह को बुहारने वाली दासी हूँ ॥११॥

भावार्थ दीपिका

सख्या अर्जुनेन। तस्य गृहमार्जनी गृहसंमार्जनकर्त्री ॥११॥

भाव प्रकाशिका

सख्या अर्थात् अर्जुन के साथ। उन भगवान् श्रीकृष्ण के गृह की सफाई करने वाली मैं हूँ ॥११॥

भद्रोवाच

ये मा स्वयंवर उपेत्य विजित्य भूपान्निन्ये श्वयूथगमिवात्मबलिं द्विपारिः।
भ्रातॄंश्च मेऽपकुरुतः स्वपुरं श्रियौकस्तस्याऽस्तु मेऽनुभवमङ्घ्र्यवनेजनत्वम् ॥१२॥

अन्वयः— यः स्वयम्बरम् उपेत्य भूपान् विजित्य मे अपकुरुतः भ्रतॄंश्च विजित्य श्वयूवम् आत्मबलिं द्विपारिः इव मां श्रियौकः स्वपुरं निन्ये तस्याः मे अङ्घ्यवनेजनत्वं अनुभवम् अस्तु ॥१२॥

भद्रा ने कहा

अनुवाद— जो श्रीभगवान् मेरे स्वयम्बर में आकर तथा सभी राजाओं को तथा मेरा अपकार करने वाले मेरे भाइयों को भी जीतकर जिस तरह कुत्तों के समूह में विद्यमान अपने भाग को सिंह उठा ले जाता है, उसी तरह ये अपनी शोभामयी नगरी द्वारकापुरी में मुझे लाये। मैं चाहती हूँ कि मुझे जन्मान्तरों में भी इनके चरणों को पखारने का अनुभव प्राप्त होता रहे ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

शुनां यूथगतं स्वबलिं द्विपारिः सिंह इवेति। मे भ्रातुश्चापकुरुतोऽपकारं कुर्वतो विजित्य। श्रियौको लक्ष्मीनिवासः। तस्याङ्घ्र्यवनेजनत्वं चरणक्षालनकर्तृत्वमनुभवं प्रतिजन्म मेऽस्तु ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह कुत्तों के समूह में विद्यमान अपने भाग को सिंह ले जाता है। मेरा अपकार करने वाले मेरे भाइयों को भी जीतकर **श्रियौकः** लक्ष्मीजी के निवास भूत, श्रीभगवान् के चरण कमलों का प्रक्षालन करने का अवसर मुझे प्रत्येक जन्म में मिला करे ॥१२॥

सत्योवाच

सप्तोक्षणोऽतिबलवीर्यसुतीक्ष्णशृङ्गान्पित्रा कृतान् क्षितिपवीर्यपरीक्षणाय।
तान्वीरदुर्मदहनस्तरसा निगृह्य क्रीडन्बबन्ध ह यथा शिशवोऽजतोकान् ॥१३॥

अन्वयः— क्षितिवीर्यपरीक्षणाय पित्रा अतिबलवीर्यसुतीक्ष्णशृङ्गान् सप्तोक्षणः कृतान् तान् वीरदुर्मदहनः तरसा निगृह्य क्रीडन् बबन्ध ह यथा शिशवः अजतोकान् ॥१३॥

सत्या ने कहा

अनुवाद— मेरे पिता राजाओं के पराक्रम की परीक्षा के लिए अत्यन्त बलवान् पराक्रमी और तीक्ष्ण सीङ्ग वाले सात सांडों को रखे थे। उन सबों नें वीरों के घमण्ड को चूर-चूर कर दिया था उन सबों को श्रीभगवान् खेल-खेल में ही झपटकर पकड़ कर नाथ दिये और बाँध दिए जैसे छोटे-छोटे बच्चे बकरी के बच्चों को पकड़ लेते हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

सप्तोक्ष्णो वृषभान्। बलं च वीर्यं च सुतीक्ष्णशृङ्गाणि चातिशयितानि येषां तान्मे पित्रा कृतान्संपादितान् बलीयसे मां दातुं क्षितिपानां वीर्यस्य बलस्य परीक्षणायताननतिप्रसिद्धान्वीराणां दुर्मदं घ्नन्ति ये तांस्तरसा शीघ्र मेव निगृह्य दमयित्वा क्रीडन्ननायासेनैव बबन्ध। अजतोकान् अजापत्यानि ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

सात बैलों को जिन सबों का अत्यधिक बल एवं पराक्रम था उनके सीङ्ग तीक्ष्ण थे। ऐसे बैलों को मेरे पिता पाले थे। आये राजाओं के बल एवं वीर्य की परीक्षा करके सबसे बलवान् के साथ मेरा विवाह करने के लिए। उन बैलों ने बड़े-बड़े वीरों के घमण्ड को चूर कर दिया था। उन बैलों को इन्होंने खेल-खेल में बलपूर्वक पकड़ कर नाथ दिया और बाँध दिया उसी तरह जिस तरह बकरी के बच्चों को छोटे बालक पकड़ लेते हैं ॥१३॥

य इत्थं वीर्यशुल्कां मां दासीभिश्चतुरङ्गिणीम्। पथि निर्जित्य राजन्यान्निन्ये तद्दास्यमस्तु मे ॥१४॥

अन्वयः— य इत्थं वीर्यशुल्कां दासीभिः चतुरङ्गिणीम् पथि राजन्यान् निर्जित्य मां निन्ये मे तद्दास्यम् अस्तु ॥१४॥

अनुवाद— जो भगवान् बल पौरुष के द्वारा चतुरङ्गिणी सेना और दासियों के साथ मुझको लाये और रास्ते में विघ्न डालने वाले राजाओं को परास्त कर दिए मैं चाहती हूँ कि उन श्रीभगवान् की मैं सदा दासी बनी रहूँ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

वीर्यमेव शुल्कं देयं यस्यास्ताम्। दासीभिः सह चतुरङ्गिणी गजाश्वादिसेनायुक्तां पुरं निन्ये ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

वीर्यं शुल्का दासियों के साथ मुझको और चतुरङ्गिणी सेना को द्वारकापुरी में लाए ॥१४॥

मित्रविन्दोवाच

पिता मे मातुलेयाय स्वयमाहूय दत्तवान्। कृष्णे कृष्णाय तच्चित्तामक्षौहिण्या सखीजनैः ॥१५॥

अन्वयः— हे कृष्णे मे पिता स्वयम् आहूय मातुलेयाय कृष्णाय तच्चिताम् अक्षौहिण्या सखीजनैः सह दत्तवान्॥१५॥

मित्रविन्दाजी ने कहा

अनुवाद— हे द्रौपदीजी ! भगवान् श्रीकृष्ण मेरे मामा के पुत्र हैं। मेरे पिताजी स्वयम् इनको बुलाकर मेरा विवाह इनके साथ कर दिए, क्योंकि मेरा चित्त इनमें ही लगा था और साथ में उन्होंने चतुरङ्गिणी सेना और सखियों को भी भेज दिया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

हे कृष्णे हे द्रौपदि। तस्मिन्नेव चित्तं यस्यास्तां मां अक्षौहिण्या सेनया सह। सखीजनैश्च सह ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

हे द्रौपदीजी मेरा मन भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में लगा था। मेरे पिता अक्षोहिणी सेना तथा सखियों के साथ मुझको इन्हें प्रदान कर दिए ॥१५॥

अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनि जन्मनि। कर्मभिर्भ्राम्यमाणाया येन तच्छ्रेय आत्मनः ॥१६॥

अन्वयः— कर्मभिः भ्राम्यमाणायाः मे अस्य पादसंस्पर्शः जन्मनि जन्मनि भवेत् येन आत्मनः तच्छ्रेयः ॥१६॥

अनुवाद— अपने कर्मों के अनुसार मुझे चाहें जन्म लेना पड़े प्रत्येक जन्मों में मुझे इनके चरणों का स्पर्श प्राप्त होता रहे, इसीमें मैं अपना परम कल्याण मानती हूँ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

येन पादसंस्पर्शेनात्मनो मे तत्कैवल्याख्यं श्रेयो भवेत्सः। यद्वा येन कारणेनात्मनो जीवस्य तच्छ्रेयः सएव पुरुषार्थ इति॥१६॥

भाव प्रकाशिका

उसी से मेरा कैवल्य नामक कल्याण हो जायेगा। अथवा जिस कारण से जीव का जो कल्याण होगा वहीं पुरुषार्थ है ॥१६॥

लक्ष्मणोवाच

ममापि राज्यच्युतजन्मकर्म श्रुत्वा मुहुर्नारदगीतमास ह ।
चित्तं मुकुन्दे किल पद्महस्तया वृतः सुसंमृश्य विहाय लोकपान् ॥१७॥

अन्वयः— हे राज्ञि मुहुर्नारदगीतम् अच्युत जन्मकर्म श्रुत्वा पद्महस्तया लोकपान् विहाय वृतः सुसंमृश्य ममापि चित्तं मुकुन्दे किल आस ॥१७॥

लक्ष्मणाजी ने कहा

अनुवाद— हे रानीजी जिसका देवर्षि नारदजी बार-बार गान किया करते थे ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म और कर्म को सुनकर लक्ष्मीजी ने भी लोकपालों को त्याग कर जिनका वरण किया, इस बात को अच्छी तरह से विचार करके मेरा भी मन श्रीभगवान् में ही लगा था ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

राज्ञि हे द्रौपदि, यथा मित्रविन्दायास्तथैव ममापि चित्तं मुकुन्दविषयमासीत् । सुसंमृश्य सुविचार्य पद्महस्तया श्रिया वृतः किल, अतोऽपि मम चित्तं श्रीमुकुन्दे आसेति ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

द्रौपदीजी मित्रविन्दा के ही समान मेरा भी श्रीभगवान् में ही खूब अच्छी तरह से विचार करके श्रीलक्ष्मीजी के द्वारा वरण किए हुए श्रीभगवान् में ही मन लगा था ॥१७॥

ज्ञात्वा मम मतं साध्वि पिता दुहितृवत्सलः । बृहत्सेन इति ख्यातस्तत्रोपायमचीकरत् ॥१८॥

अन्वयः— हे साध्वि दुहितृवत्सलः मे पिता वृहत्सेनः इति ख्यातमे मतं ज्ञात्वा तत्रोपायम् अचीकरत् ॥१८॥

अनुवाद— हे साध्वी मेरे पिता बृहत्सेन मुझे बहुत प्रेम करते थे वे मेरे अभिप्राय को जानकर मेरी इच्छा की पूर्ति के लिए उपाय किए ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

तत्र श्रीकृष्णप्राप्तावुपायमचीकरत्कारयामास ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति का उपाय करवाये ॥१८॥

यथा स्वयंवरे राज्ञि मत्स्यः पार्थेप्सया कृतः । अयं तु बहिराच्छन्नो दृश्यते स जले परम् ॥१९॥

अन्वयः— हे राज्ञि यथा स्वयम्बरे पार्थेप्सया मत्स्यः कृतः अयं तु बहिराच्छन्नः परं जले स दृश्यते ॥१९॥

अनुवाद— हे रानीजी जिस तरह अर्जुन को प्राप्त करने के लिए आपके पिता ने मत्स्य वेध का आयोजन किया उसी तरह हमारे पिता ने भी किया । यहाँ यह विशेषता थी कि मत्स्य बाहर से ढँका था और जल में उसकी परिछाई दिखती थी ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

यथा राज्ञि तव स्वयंवरे पार्थस्येप्सया आप्तुमिच्छया कृतस्तथा मत्स्यं कारितवान् । पाठान्तरे पार्थस्येषुणापाकृतः । तर्हीममाप्यर्जुन एव किं नाविध्यत्तत्राह– अयं त्विति । स मत्स्यो बहिरेवाच्छन्नो नान्तरतः स्तम्भलग्नयोर्ध्वदृष्ट्या सँल्लक्ष्यते, अयं तु न तथा, किंतु स्तम्भमूले निहितकलशजले केवलं दृश्यतेऽतो दृष्टिरधस्तादुपरि च लक्ष्यमिति श्रीकृष्णव्यतिरेकेण न कस्यापि भेद्य इति भावः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

रानीजी जिस तरह आपके स्वयम्बर में पाण्डव वीर अर्जुन को प्राप्त करने की इच्छा से मत्स्य वेध कराया गया था । पाठान्तर के अनुसार अर्जुन के बाण से दूर करने के लिए तो फिर हमारे भी यह अर्जुन ने क्यों नहीं मत्स्य वेध किया ? इस बात को अयं तु इत्यादि से कहा गया है । वह मत्स्य बाहर से ही ढँका था भीतर से नहीं किन्तु स्तम्भ में लगी हुई दृष्टि से वह दिखाई पड़ता था किन्त यह मत्स्य ऐसा नहीं था । क्योंकि स्तम्ब की मूल में रखे गये कलश में वह केवल दिखता था । अतएव दृष्टि नीचे और लक्ष्य उस पर था । उसका वध श्रीकृष्ण को छोड़कर दूसरा कोई नहीं कर सकता था ॥१९॥

श्रुत्वैतत्सर्वतो भूपा आययुर्मत्पितुः पुरम् । सर्वास्त्रशस्त्रतत्त्वज्ञाः सोपाध्यायाः सहस्रशः ॥२०॥

अन्वयः— एतत् श्रुत्वा सर्वास्त्रशास्त्र तत्वज्ञाः सोपाध्यायाः सहस्रशः भूपाः सर्वतः मम पितुः पुरम् आययुः ॥२०॥

अनुवाद— इस समाचार का सभी शास्त्रास्त्रों के अभिज्ञ अपने उपाध्याय के साथ हजारो राजागण देश के कोने-कोने से मेरे पिता की राजधानी में आये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

पित्रा संपूजिताः सर्वे यथावीर्यं यथावयः । आददुः सशरं चापं वेद्धुं पर्षदि मद्धियः ॥२१॥

अन्वयः— यथावीर्यं यथावयः सर्वे मत् पित्रा संपूजिताः । मद्धियः पर्षदि वेद्धुं सशरंचाप आददुः ॥२१॥

अनुवाद— मेरे पिताजी आये हुए सभी के बलवीर्य और अवस्था के अनुसार सत्कार किए । वे लोग मुझे प्राप्त करने के लिए स्वयम्बर में रखे हुए धनुषबाण को उठाये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

मत्स्यं वेद्धुम् । पर्षदि संसदि । मद्धियो मय्येव धीर्येषामिति अन्यचित्ता न वेद्धुं शक्ता इति भावः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

मत्स्य का वेध करने के लिए स्वयम्बर में जिनका मन मुझमें लगा था ऐसे राजा मत्स्यवेध करने में समर्थ नहीं हुए ॥२१॥

आदाय व्यसृजन्केचित्सज्यं कर्तुमनीश्वराः । आकोष्ठं ज्यां समुत्कृष्य पेतुरेकेऽमुना हताः ॥२२॥

अन्वयः— केचित् सज्यं कर्तुम् अनीश्वराः आदाय व्यसृजन् एके आकोष्ठं ज्यां समुत्कृष्य अमुना हताः पेतुः ॥२२॥

अनुवाद— उनमें से कुछ राजा तो धनुष पर ताँत ही नहीं चढ़ा सके । वे धनुष को ज्यों के त्यों रख दिए। कुछ राजा धनुष की डोरी को एक सिरे से बाँधकर दूसरे सिरे तक खींच तो लिया परन्तु वे उसे दूसरे सिर से बाँध न सके, उसका झटका लगने से गिर पड़े ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-आदायेति । अमुना चापेन ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

उसी बात को आदाय इत्यादि श्लोक से कहा गया है । अमुना अर्थात् धनुष से ॥२२॥

सज्यं कृत्वाऽपरे वीरा मागधाम्बष्ठचेदिपाः । भीमो दुर्योधनः कर्णो नाविन्दंस्तदवस्थितिम् ॥२३॥

अन्वयः— अन्ये मागधाम्बष्ठचेदियाः भीमो, दुर्योधन, कर्णः, वीराः सज्यं कृत्वा तदवस्थितिम् कृत्वा न अविन्दन्॥२३॥

अनुवाद— रानीजी अत्यन्त प्रसिद्ध जरासन्ध, अम्वष्ठ तथा शिशुपाल, भीम, दुर्योधन तथा कर्ण आदि धनुष पर डोरी चढ़ा तो लिए किन्तु उन लोगों को इस बात का पता ही नहीं चला कि मछली कहाँ है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

नाविन्दंस्तदवस्थितिमिति मागधादीनां क्रियाशक्तिरेव न लक्ष्याभिज्ञतेत्यर्थः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

नाविन्दन्तदवस्थितिम् इस श्लोकांश से बतलाया गया है कि जरासन्ध आदि में केवल क्रिया शक्ति ही है, उनमें लक्ष्य की अभिज्ञता नहीं है ॥२३॥

मत्स्याभासं जले वीक्ष्य ज्ञात्वा च तदवस्थितिम् । पार्थो यत्तोऽसृजद्बाणं नाच्छिनत्पस्पृशे परम् ॥२४॥

अन्वयः— मत्स्याभासं जले वीक्ष्य तदवस्थितिं च ज्ञात्वा यत्तः पार्थः बाणं असृजत् न अच्छिनत् परम् स्पृशे ॥२४॥

अनुवाद— मछली की छाया जल में देखकर अर्जुन सावधानी पूर्वक बाण चलाये किन्तु उससे लक्ष्यवेध नहीं हुआ किन्तु उनके बाण ने उसका केवल स्पर्श भर किया ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

यत्तो यत्नवान् । असृजन्मुमोच । स बाणो मत्स्यं नाच्छिनत्, परं केवलं पस्पर्श । ज्ञानवानप्यर्जुनो बलेनापूर्ण इत्यर्थ।॥२४॥

भाव प्रकाशिका

यत्तः अर्थात् प्रयास लग्न, असृजत छोड़ा, वह बाण मत्स्यवेंध नहीं कर सका किन्तु स्पर्श तो कर ही लिया। अर्थात् ज्ञानी भी अर्जुन बल में पूर्ण नहीं थे ॥२४॥

राजन्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषु मानिषु । भगवान्धनुरादाय सज्यं कृत्वाथ लीलया ॥२५॥
तस्मिन्संधाय विशिखं मत्स्यं वीक्ष्य सकृज्जले । छित्त्वेषुणापातयत्तं सूर्ये चाभिजिति स्थिते ॥२६॥

अन्वयः— राजन्येषु निवृत्तेषु भग्नमानेषु मानिषुभगवान् धनुः आदाय लीलया सज्यं कृत्वा तस्मिन् विशिख सन्धाय सकृज्जले मत्स्यं वीक्ष्य अभिजिति स्थिते च च सूर्ये तं इषुणा छित्त्वा पातयत् ॥२५-२६॥

अनुवाद— रानीजी इस प्रकार बहुत से अभिमानी वीरों का जब मान मर्दन हो चुका था, बहुत राजागण मुझे प्राप्त करने की अभिलाषा और लक्ष्यवेध की आशा छोड़ चुके थे, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण आये और खेल-खेल में धनुष पर डोरी चढ़ाकर बाण से निशाना साधे और जल में एक ही बार मछली की छाया को देखकर बाण मार कर उसे नीचे गिरा दिए । उस समय सर्वार्थ साधक अभिजित् नक्षत्र था और दोपहर की बेला थी ॥२५-२६॥

भावार्थ दीपिका

अभिजिति सर्वार्थसाधके मुहूर्ते ॥२५-२६॥

भाव प्रकाशिका

सर्वार्थ साधक अभिजित् मुहूर्त में ॥२५-२६॥

दिवि दुन्दुभयो नेदुर्जयशब्दयुता भुवि । देवाश्च कुसुमासारान्मुमुचुर्हर्षविह्वलाः ॥२७॥

अन्वयः— दिवि दुन्दुभयः नेदुः भुवि जय शब्दमुताः हर्षविह्वलाः देवाश्च कुसुमासारन् मुमुचुः ॥२७॥

अनुवाद— उस समय स्वर्ग में दुन्दुभियाँ बजने लगीं और पृथिवी पर जयकार का शब्द होने लगा । हर्ष से विह्वल बने देवगण श्रीभगवान् पर पुष्पों की वर्षा किए ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

तद्रङ्गमाविशमहं कलनूपुराभ्यां पद्भ्यां प्रगृह्य कनकोज्वलरत्नमालाम् ।
नूत्ने निवीय परिधाय च कौशिकाग्र्ये सव्रीडहासवदना कबरीधृतस्रक् ॥२८॥

अन्वयः— तद् अहं रङ्ग कलनूपुराभ्यां पद्भ्यां कनकोज्ज्वलरत्नमालाम् प्रागृह्य नूत्ने कौशिकाग्र्ये निवीय परिधाय सब्रीडहासवदना कबरी धृतस्रक ॥२८॥

अनुवाद— रानीजी उसी समय मैंने रङ्गशाला में प्रवेश किया मेरे पैरों के नूपुर रुन झुनका शब्द कर रहे थे । मैं नवीन उत्तम रेशमी वस्त्र धारण किये हुई थी । मेरे मुख पर लज्जा मिश्रिति मुस्कुराहट थी । मैं अपने हाथों में रत्नों का हार ली थी । बीच-बीच में लगे सोने के कारण वह हार चमक रहा था । मै अपनी चोटी में पुष्पों की माला लगायी थी ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

भगवत्प्राप्तिहर्षनिर्भरेणात्मानमेवानुवर्णयन्त्याह द्वाभ्याम् तद्रङ्गमिति । तत्तदा कलौ कलस्वनौ नूपुरौ ययोस्ताभ्यां पद्भ्यां रङ्गं प्राविशम् । कनकेनोज्ज्वलां रत्नमालाम् । निवीय प्रावृत्य परिधाय च नीवीबन्धेन च । कौशिकाग्र्ये उत्तमकौशेयवस्त्रे। सव्रीडो हासो यस्मिंस्तद्वदनं यस्याः सा । कबर्यां धृताः स्रजो यया सा ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की प्राप्ति जन्य हर्ष से भरी हुई लक्ष्मणाजी अपना ही वर्णन दो श्लोकों से कर रही है । जिस समय मैं रङ्गशाला में प्रवेश की उस समय मेरे पैरों के नूपुर मनोहर शब्द कर रहे थे । सुवर्ण के कारण रत्नों की माला चमक रही थी । निवीय परिधाय अर्थात् धारण किए हुई थी । कौशिकाग्र्ये अर्थात् दो उत्तम रेशमी वस्त्र मेरे मुखपर लज्जा मिश्रित मुस्कान थी और मैं अपनी चोटी में माला लगाये हुई थी ॥२८॥

उन्नीय वक्त्रमुरुकुन्तलकुण्डलत्विड्गण्डस्थलं शिशिरहासकटाक्षमोक्षैः ।
राज्ञो निरीक्ष्य परितः शनकैर्मुरारेरंसेऽनुरक्तहृदया निदधे स्वमालाम् ॥२९॥

अन्वयः— उरुकुन्तलकुण्डलत्विट् गण्डस्थलम् वक्त्रम् उन्नीय शिशिरहास कटाक्षमोक्षैः परितः राज्ञो निरीक्ष्य अनुरक्त हृदया शनकैः मुरारे अंसे स्वमालाम् निदधे ॥२९॥

अनुवाद— रानीजी उस समय मेरा मुख घुंघराले केशों से सुशोभित हो रहा था तथा कुण्डलों की कान्ति से मेरे कपोल और अधिक चमक रहे थे । उस समय मैं अपना मुख उठाकर चन्द्रमा की किरणों के समान सुशीतल हास्य रेखा और तिरछे चितवन से चारो ओर बैठे हुए राजाओं को मैंने देखा और उसके पश्चात् मैंने धीरे से अपनी वरमाला श्रीभगवान् के गले में डाल दी । क्योंकि मेरा मन पहले से ही श्रीभगवान् में अनुरक्त था ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

उरवः कुन्तला यस्मिन्, कुण्डलयोस्त्विषो ययोस्ते गण्डस्थले यस्मिंस्तच्च तच्च । शिशिरः संतापहरो हासो येषु तैः कटाक्षमोक्षैरपाङ्गमोक्षणविलासैः । अनुरक्तं हृदयं यस्याः साऽहम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

घने घुंघुराले केशों तथा कुण्डलों की कान्ति से सुशोभित मेरा मुख मण्डल, संताप विनाशक हँसी मिश्रित कटाक्षपातों के विलास से युक्त, तथा श्रीभगवान् के चरणों में अनुरक्त हृदयवाली मैं ॥२९॥

तावन्मृदङ्गपटहाः शङ्खभेर्यानकादयः । निनेदुर्नटनर्तक्यो ननृतुर्गायका जगुः ॥३०॥

अन्वयः— तावत् मृदङ्ग पटहाः शङ्ख भेर्यानकादयः निनेदुः नटनर्तक्यः ननृतुः गायकाः जगुः ॥३०॥

अनुवाद— उसी समय मृदङ्ग पखावज, शङ्ख, ढोल, नगाड़े आदि बजने लगे, नट एवं नर्तकियाँ नृत्य करने लगीं और गवैये गाने लगे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

एवं वृत्ते भगवति मयेशे नृपयूथपाः । न सेहिरे याज्ञसेनि स्पर्धन्तो हृच्छयातुराः ॥३१॥

अन्वयः— हे यज्ञसेनि एवं मया भगवति ईशे वृत्ते हृच्छया तुराः स्पर्धन्तः नृपयूथपाः न सेहिरे ॥३१॥

अनुवाद— हे द्रौपदी जी ! मेरे द्वारा इस प्रकार से अपने स्वामी श्रीभगवान् का वरण कर लिए जाने पर कामातुर तथा स्पर्धा करने वाले राजाओं को बड़ा ही डाह हुआ ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

याज्ञसेनि हे द्रौपदि, ईशे श्रीकृष्णे मया वृते सति स्पर्धन्तः स्पर्धमानाः नन्वेवं परमैश्वर्यं दृष्टवतां कुतः स्पर्धावसरस्तत्राह- हृच्छयातुरा इति हृच्छयेन कामेनातुरा विवशाः कामविजृम्भिता स्पर्धेति भावः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

हे द्रौपदीजी भगवान् श्रीकृष्ण का मेरे द्वारा वरण कर लिए जाने पर स्पर्धा करने वाले राजाओं को बड़ा ही डाह हुआ । यदि कोई यह कहे कि जिन राजाओं ने श्रीभगवान् के ऐश्वर्य को देख लिया था फिर भी वे कैसे स्पर्धा करने लगे ? तो इसका उत्तर है कामातुर होने के कारण ॥३१॥

मां तावद्रथमारोप्य हयरत्नचतुष्टयम् । शार्ङ्गमुद्यम्य संनद्धस्तस्थावाजौ चतुर्भुजः ॥३२॥

अन्वयः— चतुर्भुजः तावत् मां हयरत्नचतुष्टयम् रथम् आरोप्य सनद्धः शार्ङ्गम् उद्यम्य आजौ तस्थौ ॥३२॥

अनुवाद— चतुर्भुज भगवान् ने अपने श्रेष्ठ चार घोड़ों वाले रथ पर मुझे बैठा लिया, कवच पहने हुए तथा शार्ङ्ग धनुष धारण किए हुए युद्ध करने के लिए रथ पर बैठ गये ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

हयरत्नानां चतुष्टयं यस्मिंस्तं रथम् । द्वाभ्यां मामालिङ्ग्य द्वाभ्यां धनुर्बाणौ गृहीत्वा चतुर्भुजस्तस्थौ ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

चार श्रेष्ठ अश्वों वाले रथ पर दो भुजाओं से मेरा आलिङ्गन करके दो भुजाओं से धनुष एवं बाण धारण किए हुए चार भुजाधारी भगवान् बैठ गये ॥३२॥

दारुकश्चोदयामास काञ्चनोपस्करं रथम् । मिषतां भूभुजां राज्ञि मृगाणां मृगराडिव ॥३३॥

अन्वयः— राज्ञि दारुकः काञ्चनोपस्करम् रथम् मिषतां भूभुजां मृगाणां मृगराट् इव चोदयामास ॥३३॥

अनुवाद— रानीजी दारुक ने सुवर्ण के साज समाज से लदे हुए रथ को राजाओं के सामने ही द्वारका के लिए हाँक दिया । उसी तरह जैसे कोई सिंह हारिणों के बीच से अपना भाग ले जाय उसी तरह ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

मृगाणां मिषतां मृगराडिव । तदा हरिर्जगामेति शेषो ज्ञातव्यः । दारुकस्यैव वा मृगराजोपमा ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

मृगों के बीच मृगराज के समान श्रीहरिः चल दिए । अथवा दारुक की ही यहाँ मृगराज से उपमा दी गयी है ॥३३॥

तेऽन्वसज्जन्त राजन्या निषेद्धुं पथि केचन । संयत्ता उद्धृतेष्वासा ग्रामसिंहा यथा हरिम् ॥३४॥

अन्वयः— केचन ते राजन्याः संयताः उद्धृतेष्वासा पथि हरिम् निषद्धुम् ग्रामसिंहाः इव अन्वसज्जन्त ॥३४॥

अनुवाद— उनमें से कुछ राजाओं ने, धनुष धारण करके श्रीभगवान् को मार्ग में रोकने के लिए श्रीभगवान् का पीछा किया उन सबों की चेष्टा वैसी ही थी जैसे कुत्ते सिंह को रोकना चाहें ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

अन्वसज्जन्त पृष्ठतः सक्ता बभूवुः । निषेद्धुं प्रतिबन्धं कर्तुं केचन पुरतो गत्वा पथि संयत्ता बभूवुरित्यर्थः । उद्धृतेष्वासा ऊर्ध्वकृतचापाः । ग्रामसिंहाः श्वानो हरिं सिंहं यथेति ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

अन्वसज्जन्त अर्थात् पीछा किया । पहले से ही आगे जाकर श्रीभगवान् को रोक लेने के लिए मार्ग में तैयार हो गये । **उद्धृतेष्वासाः** अर्थात् धनुष उठाये हुए । जैसे कुत्ते सिंह को रोकना चाहें उसी तरह ॥३४॥

ते शार्ङ्गच्युतबाणौघैः कृत्तबाह्वङ्घ्रिकन्धराः । निपेतुः प्रधने केचिदेके संत्यज्य दुद्रुवुः ॥३५॥

अन्वयः— शार्ङ्गच्युत बाणौघैः कृत्तबाह्वङ्घ्रिकन्धराः ते प्रधने निपेतु एके संत्यज्य दुद्रुवः ॥३५॥

अनुवाद— शार्ङ्गधनुष से छूटे हुए बाणों से भुजा पैर और गला कट जाने के कारण वे रणभूमि में ही गिर पड़े और कुछ राजागण उन सबों को छोड़कर भाग गये ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३५॥

ततः पुरीं यदुपतिरत्यलंकृतां रविच्छदध्वजपटचित्रतोरणाम् ।
कुशस्थलीं दिवि भुवि चाभिसंस्तुतां समाविशत्तरणिरिव स्वकेतनम् ॥३६॥

अन्वयः— ततः यदुपतिः अत्यलंकृताम् रविच्छदध्वज चित्रतोरणाम् दिवि भुवि चाभि संस्तुताम् कुशस्थलीं तरणिः इव स्वकेतनम् समाविशत् ॥३६॥

अनुवाद—उसके पश्चात् यदुवंश शिरोमणि श्रीभगवान् बहुत अधिक सजायी हुई रङ्ग-विरङ्गी झंडियों तोरणों तथा ध्वजों से भी सजायी गयी जहाँ पृथिवी तक सूर्य की किरणें पहुँच नहीं पाती थी, द्युलोक तथा भूलोक में प्रशंसित द्वारका पुरी के अपने भवन में सूर्य के समान प्रवेश किए ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

रविं छादयन्ति ते रविच्छदा ध्वजेषु पटा यस्यां, चित्राणि तोरणानि यस्यां सा च सा च । तां कुशस्थलीं पुरीं यदुपतिः समाविशत् । स्वकेतनं मण्डलमस्ताचलं वा ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

द्वारकापुरी के ध्वजों के वस्त्र सूर्य की किरणों को ढँक लेते थे, तथा रङ्ग-विरङ्गे तोरणों वालीं, उस द्वारकापुरी में प्रवेश किए **स्वकेतनम्** अर्थात् मण्डल अथवा अस्ताचल में ॥३६॥

पिता मे पूजयामास सुहृत्संबन्धिबान्धवान् । महार्हवासोलङ्कारैः शय्यासनपरिच्छदैः ॥३७॥

अन्वयः— मे पिता सुहृत्संबन्धि बान्धवान् महार्हवासोलङ्कारैः शय्यासनपरिच्छदैः पूजयामास ॥३७॥

अनुवाद— मेरा मनोरथ पूर्ण हो जाने से प्रसन्न मेरे पिता अपने हितैषियों, सगे-सबन्धियों को तथा भाई बन्धुओं को बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, शय्या, आसन, और विविध प्रकार की सामग्रियाँ देकर सम्मानित किए ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

महार्हवासः-प्रभृतिभिः सुहृदादीन्पूजयामास ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

बहूमूल्य वस्त्रों आदि से अपने हितैषियों को सम्मानित किए ॥३७॥

दासीभिः सर्वसंपद्भिर्भटेभरथवाजिभिः । आयुधानि महार्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥३८॥

अन्वयः— पूर्णस्य दासीभिः सर्वसम्पद्भिः भटेभरथवाजिभिः, महार्हाणि आयुधानि भक्तितः ददौ ॥३८॥

अनुवाद— श्रीभगवान् परिपूर्ण हैं फिर भी मेरे पिताजी इनको बहुत सी दासियों सभी प्रकार की सम्पतियाँ सैनिक, हाथी, घोड़े एव बहुत से बहुमूल्य आयुध भक्ति पूर्वक प्रदान किए ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

दास्यादिभिः सहायुधानि पूर्णायापि ददौ ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

परिपूर्ण भी श्रीभगवान् को मेरे पिता दासियों के साथ आयुधों को प्रदान किए ॥३८॥

आत्मारामस्य तस्येमा वयं वै गृहदासिकाः । सर्वसङ्गनिवृत्त्याद्धा तपसा च बभूविम ॥३९॥

अन्वयः— तस्य आत्मारामस्य इमाः वयं सर्वसङ्गनिवृत्याद्धा, तपसा च गृहदासिकाः बभूविम ॥३९॥

अनुवाद— रानीजी आत्मरमण श्रीभगवान् की हम सभी आठ पटरानिया पूर्वजन्म में सभी प्रकार की आसक्तियों को छोड़कर तपस्या करने के कारण ही उनकी गृह दासियाँ बनी हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

इमा अष्टौ वयं सर्वसङ्गनिवृत्त्या तपसा स्वधर्मेणाद्धा साक्षात्तस्य गृहदासिका बभूविम ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

हमलोग सभी आसक्तियों से रहित होकर तपस्या द्वारा अपने धर्म से साक्षात् श्रीभगवान् की दासियाँ हो गयीं॥३९॥

महिष्य ऊचुः

भौमं निहत्य सगणं युधि तेन रुद्धा ज्ञात्वाऽथ नः क्षितिजये जितराजकन्याः ।
निर्मुच्य संसृतिविमोक्षमनुस्मरन्तीः पादाम्बुजं परिणिनाय य आप्तकामः ॥४०॥

अन्वयः— युधि सगणं भौमं निहत्य क्षितिजये तेन रुद्धाः नः जितराजकन्याः ज्ञात्वा आप्तकामः पादाम्बुजं संसृतिविमोक्षम् अनुस्मरन्तीः निर्मुच्य नः परिणिनाय ॥४०॥

सोलह हजार रानियों ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवान् युद्ध में भौमासुर और उसकी सेना का संहार करके दिग्विजय के समय राजाओं को जीतकर उनकी कन्याओं को बन्दी बनायी हुई जानकर संसार से मुक्ति प्राप्त करने के लिए जिनके चरणों का हमलोग स्मरण करती थीं, उन आप्तकाम श्रीभगवान् हमलोगों को बन्धनमुक्त करके हमलोगों का पाणिग्रहण किए ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

क्षितिजये दिग्विजये जितानां राज्ञां कन्या नोऽस्मांस्तेन रुद्धा ज्ञात्वा ततो निर्मुच्य संसृतेर्विमोक्षो यस्मात्तत्पादाम्बुजमनुस्मरन्तीर्नः परिणिनायोदवहत् । आप्तकामोऽपि यः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

दिग्विजय के समय, पराजित राजाओं की कन्या तथा भौमासुर द्वारा बन्दी बनायी गयी जानकर वहाँ से मुक्त करके संसार से मुक्ति प्रदान करने वाले श्रीभगवान् के चरणों का स्मरण करने वाली हमलोगों का आप्तकाम भी श्रीभगवान् पाणिग्रहण किए ॥४०॥

न वयं साध्वि साम्राज्यं स्वाराज्यं भौज्यमप्युत । वैराज्यं पारमेष्टयं च आनन्त्यं वा हरेः पदम्॥४१॥
कामयामह एतस्य श्रीमत्पादरजः श्रिय। कुचकुङ्कुमगन्धाढ्यं मूर्ध्ना वोढुं गदाभृतः ॥४२॥

अन्वयः— हे सध्वि ! वयं साम्राज्यं स्वाराज्यं, भौज्यम् अपि उत वैराज्यं, पारमेठ्यं आनन्त्यं हरेः पदम् वा न कामया महे, एतस्य गदाभृतः श्रियः कुचकुङ्कुमगन्धाद्यं पादरजः मूर्ध्ना बोढुं कामयामहे ॥४१-४२॥

अनुवाद— हे साध्वि ! द्रौपदी जी हमलोग साम्राज्य, इन्द्रकापद, भौज्य उन दोनों के भोग वैराज्य अणिमादि ऐश्वर्य, पारमेष्ठ्य (ब्रह्माजी का पद) आनन्त्य (सारूप्य सालोक्य आदि मोक्ष) अथवा श्रीहरि के पद वैकुण्ठ यह सब कुछ नहीं चाहती हैं किन्तु लक्ष्मीजी के स्तनों में लगे केसर की गन्ध से परिपूर्ण अपने प्रियतम श्रीकृष्ण प्रभु के चरणों की धूलि अपने सिर पर धारण करना चाहती हैं ॥४१-४२॥

भावार्थ दीपिका

न वयमिति । साम्राज्यादि न कामयामहे, किंतु एतस्य श्रीमत्पादरजो मूर्ध्ना वोढुं कामयामह इति । ननु तस्य गृहिण्यो यूयं सर्वसंपद्भ्राजः किमेवं कामयध्वमत आहुः-हे साध्वि, साम्राज्यं सार्वभौमपदम् । स्वाराज्यमैन्द्रं पदम् । भौज्यं तदुभयभोगभाक्त्वम्। विविधं राजत इति विराट् तस्य भावो वैराज्यमणिमादिसिद्धिभाक्त्वमित्यर्थः । पारमेष्ठ्यं ब्रह्मपदम् । आनन्त्यं मोक्षम् । हरेः पदं तत्सालोक्यादि । नतु कामयामह इति । यद्वा बह्वृचब्राह्मणोक्तक्रमेण प्रागादिदिक्चतुष्टयाधिपत्यानि साम्राज्यभौज्यस्वाराज्यवैराज्यानि व्याख्येयानि । तत्किं तत्पादरज एव काम्यतेऽत आहुः-श्रियः कुचकुङ्कुमगन्धाढ्यमिति ब्रह्मादिसेव्यया लक्ष्म्यापि सेवितत्वादिति भावः ॥४१-४२॥

भाव प्रकाशिका

न वयम् इत्यादि दो श्लोकों के माध्यम से भगवान् श्रीकृष्ण की सोलह हजार पत्नियाँ अपनी अभिलाषा प्रकट करती हुई कहती हैं कि हे द्रौपदीजी, हमलोग साम्राज्य आदि प्राप्त करना नहीं चाहती है, लेकिन इन भगवान् श्रीकृष्ण की चरणों की धूलि को अपने सिर पर धारण करना अवश्य चाहती हैं । यदि आप कहें कि तुमलोग तो भगवान् श्रीकृष्ण पत्नियाँ सभी प्रकार की सम्पत्तियों से सम्पन्न हो फिर भी ऐसा क्यों चाहती हो ? इस पर उन पत्नियों ने कहा हे साध्वि ! द्रौपदी जी साम्राज्य (सम्पूर्ण पृथिवी का राज्य) स्वाराज्य (इन्द्र का पद) भौज्य (इन दोनों का फल, वैराज्य) अनेक प्रकार से सुशोभित होने वाले अणिमा आदि ऐश्वर्यों की प्राप्ति पारमेष्ठ्य (ब्रह्माजी के पद)आनन्त्य (मोक्ष) हरेः पदम् श्रीहरि के सारूप्य सालोक्य आदि मोक्ष यह सबकुछ भी हमलोग नहीं प्राप्त करना चाहती हैं । अथवा वहवृच ब्राह्मण ग्रन्थ में वर्णित साम्राज्य आदि चारों के अधिपत्य को भी नहीं प्राप्त करना चाहती है । तब प्रश्न होता है कि तुमलोग क्या चाहती हो ? तो इसका उत्तर है कि हमलोग लक्ष्मीजी के वक्षोजों में लगे केसर की सुगन्धि से परिपूर्ण अपने स्वामी श्रीकृष्ण के चरणों की धूलि को शिरोधार्य करना चाहती हैं । क्योंकि स्वामी श्रीकृष्ण के चरणों की धूलि का सेवन लक्ष्मीजी और ब्रह्माजी भी करते हैं ॥४१-४२॥

व्रजस्त्रियो यद्वाञ्छन्ति पुलिन्द्यस्तृणवीरुधः । गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्र्यशीतितमोध्यायः ॥८३॥

अन्वयः— महात्मनः यत् पादस्पर्शं व्रजस्त्रियः पुलिन्द्यः तृणवीरुधः गावःचारयतः गोपाः वाँछन्ति ॥४३॥

अनुवाद— उदार शिरोमणि श्रीभगवान् के जिन चरणों का स्पर्श व्रज वनिताएँ, भीलिनियाँ तृण लताएँ गायों को चराते समय गोपगण आदि प्राप्त करना चाहते हैं उन्हीं को हमलोग भी प्राप्त करना चाहते हैं ॥४३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्द्ध को तिरासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८३।।

भावार्थ दीपिका

ननु तर्ह्यतिदुर्लभत्वात्किं तद्वाञ्छयत आहुः-व्रजस्त्रिय इति । यद्यथा गावो गाः । महात्मनोऽपि गाश्चारयतः पादस्पर्शं च गोपा यथा वाञ्छन्ति तद्वत् । तत्पराणां सुलभ इति भावः ।।४३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।।८३।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि तब तो अत्यन्त दुर्लभ श्रीभगवान् के चरणरज की प्राप्ति कामना करने से क्या लाभ है ?इस पर गोपियों व्रजस्त्रियः इत्यादि श्लोक कहा गया है यद् यथा अर्थात् जिसको गोपो गौओं को चराते समय उदार शिरोमणि के चरणों की धूलि, गोप, गाएँ प्राप्त करना चाहती है, उसी तरह हमलोग भी प्राप्त करना चाहती हैं । और हमलोग तो श्रीभगवान् की सेविकाएँ हैं अतएव वह हमलोगों के लिए यह सुलभ है ।।४३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवे स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका टीका के तिरासीवे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुंई ।।८३।।

चौरासीवाँ अध्याय

श्रीवसुदेवजी का यज्ञोत्सव

श्रीशुक उवाच

श्रुत्वा पृथा सुबलपुत्र्यथ याज्ञसेनी माधव्यथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः ।
कृष्णेऽखिलात्मनि हरौ प्रणयानुबन्धं सर्वा विसिस्म्युरलमश्रुकलाकुलाक्ष्यः ॥१॥

अन्वयः— अखिलात्मनि श्रीकृष्णे हरौ प्रणयानुबन्धं श्रुत्वा पृथा, सुबल पुत्री, अथ याज्ञसेनी माधवी अथ क्षितिपपत्न्यः उत स्वगोप्यः अश्रुकलाः कुलाक्ष्यः सर्वाः विसिस्म्युः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् परीक्षित् सबों की आत्मा भक्तभयहारी भगवान् श्रीकृष्ण में उनकी पत्नियों का अगाध प्रेम सुनकर कुन्ती, गान्धारी द्रौपदी, सुभद्रा, राजाओं की पत्नियाँ एवं श्रीभगवान् की गोपियां इन सबों की आँखों में आँसू भर गये तथा वे अत्यन्त आश्चर्यित हो गयीं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्भिरधिकाशीतितमे मुनिसमागमे । वसुदेवमखोत्साहबन्धुप्रस्थापनादिकम् । सुबलपुत्री गान्धारी । माधवी सुभद्रा। क्षितिपानां राज्ञां पत्न्यः स्वगोप्यः कृष्णभक्ता गोप्यः । विसिस्म्युर्विस्मयं चक्रुः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौरासीवें अध्याय में मुनियों का समागम होने पर वसुदेवजी का यज्ञ महोत्सव और बन्धु बान्धवों की विदाई का वर्णन है । सुबल पुत्री अर्थात् गान्धारी, माधवी अर्थात् सुभद्रा राजाओं की पत्नियों तथा भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ता गोपियाँ, विसस्म्युः अर्थात् आश्चयर्यित हो गयीं ॥१॥

इति संभाषमाणासु स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिर्नृषु । आययुर्मुनयस्तत्र कृष्णरामदिदृक्षया ॥२॥

अन्वयः— स्त्रीभिः स्त्रीषु नृभिः नृषु इति संभाषमाणासु रामकृष्णदिदृक्षया तत्र मुनयः आययुः ॥२॥

अनुवाद— इस तरह से जब स्त्रियाँ स्त्रियों से और पुरुष पुरुषों से परस्पर में बातें कर रहे थे उसी समय वहाँ मुनिगण भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी का दर्शन करने की इच्छा से आ गये ।।२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२।।

द्वैपायनो नारदश्च च्यवनो देवलोऽसितः । विश्वामित्रः शतानन्दो भरद्वाजोऽथ गौतमः ।।३।।
रामः सशिष्यो भगवान्वसिष्ठो गालवो भृगुः । पुलस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्च मार्कण्डेयो बृहस्पतिः।।४।।
द्वितस्त्रितश्चैकतश्च ब्रह्मपुत्रास्तथाङ्गिराः । अगस्त्यो याज्ञवल्क्यश्च वामदेवादयोऽपरे ।।५।।

अन्वयः— द्वैपायनः नारदः च्यवनः, देवलः, असितः, विश्वामित्रः शतानन्दः, भरद्वाजः, अथ गौतम, सशिष्यः, रामः, भगवान् वसिष्ठः, गालवः, भृगुः, पुलस्त्य, कश्यपः, अत्रिः, मार्कण्डेय, बृहस्पतिः, द्वितः, त्रितः च एकतः च, ब्रह्मपुत्राः तथा अङ्गिराः, अगस्त्यः याज्ञवल्क्यः च अपरे वामदेवादयः ।।३-५।।

अनुवाद— उन ऋषियों के नाम हैं कृष्णद्वैपायन, व्यास, देवर्षि नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम अपने शिष्यों के साथ श्रीपरशुरामजी, महाऐश्वर्य सम्पन्न महर्षि वसिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, द्वित्त, त्रित और एकर्त, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, अङ्गिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य और वामदेव आदि ।।३-५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३-५।।

तान्दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रागासीना नृपादयः । पाण्डवाः कृष्णरामौ च प्रणेमुर्विश्ववन्दितान् ।।६।।

अन्वयः— तान् विश्ववन्दितान् दृष्ट्वा प्रागसीनाः नृपादयः, पाण्डवाः कृष्णरामौ च सहसा उत्थाय प्रणेमुः ।।६।।

अनुवाद— उन विश्ववन्दित मुनियों को देखकर पहले से ही बैठे हुए सभी राजागण आदि युधिष्ठिर आदि सभी पाण्डव, भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी अचानक उठकर खड़े हो गये और उन सबों को प्रणाम किए ।।६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६।।

तानानर्चुर्यथा सर्वे सहरामोऽच्युतोऽर्चयत् । स्वागतासनपाद्यार्घ्यमाल्यधूपानुलेपनैः ।।७।।

अन्वयः— स्वगतासन पाद्यार्ध्यमाल्यधूपानुलेपनैः तान् सर्वे आनर्चुः सहरामः अच्युतः अर्चयत् ।।७।।

अनुवाद— उसके पश्चात् स्वागत, आसन, पाद्य, अर्ध्य, माला, धूप तथा चन्दन आदिसे उन राजाओं आदि ने पूजा की और बलरामजी के साथ स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण भी उन महर्षियों की पूजा किए ।।७।।

भावार्थ दीपिका

आनर्चुरर्चितवन्तः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

अनार्चुः अर्थात् पूजा की ।।७।।

उवाच सुखमासीनान्भगवान्धर्मगुप्तनुः । सदसस्तस्य महतो यतवाचोऽनुशृण्वतः ।।८।।

अन्वयः— धर्मगुप्तनुः भगवान् सुखम् आसीनान् तान् यतवाच; तस्य महतः सदसः अनुशृण्वतः उवाच ।।८।।

अनुवाद— धर्म की रक्षा करने के ही लिए शरीर धारण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण सुखपूर्वक बैठे हुए उन ऋषियों से कहे । उस समय उस विशाल सभा के लोग चुपचाप सुन रहे थे ।।८।।

भावार्थ दीपिका

धर्मगोप्त्री तनुर्यस्य च धर्मगुप्तनुः । यता नियता वाग्यय तस्य सदसः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

धर्म की रक्षा के लिए ही शरीर धारण करने वाले । जिस सभा के सभी लोग चुप थे ॥८॥

श्रीभगवानुवाच

अहो वयं जन्मभृतो लब्धं कार्त्स्न्येन तत्फलम् । देवानामपि दुष्प्रापं यद्योगेश्वरदर्शनम् ॥९॥

अन्वयः— अहो वयम् जन्मभृतः । कार्त्स्न्येन तत्फलम् लब्धम् यत् देवानाम् अपि दुष्प्रापं योगेश्वर दर्शनम् ॥९॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हमलोगों का जीवन सफल हो गया । जन्म लेने का हमें सम्पूर्ण फल प्राप्त हो गया । क्योंकि जिन योगेश्वेरों का दर्शन देवताओं को भी मिलना कठिन है वह हमें प्राप्त हो गया ॥९॥

भावार्थ दीपिका

जन्मभृतः सफलजन्मानः । तत्फलं जन्मफलम् । किं तत् । यद्योगेश्वरदर्शनम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

जन्मभृतः अर्थात् सफल जन्म वाले । **तत्फलम्** अर्थात् जन्म का फल । **यद्योगेश्वरदर्शनम्** क्योंकि योगेश्वरों का दर्शन मिल गया ॥९॥

किं स्वल्पतपसां नृणामर्चायां देवचक्षुषाम् । दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् ॥१०॥

अन्वयः— स्वल्पतपसां आर्चायां देवचक्षुषाम् दर्शनस्पर्शनप्रश्नप्रह्वपादार्चनादिकम् किम् ?॥१०॥

अनुवाद— जिन लोगों ने थोड़ी तपस्या की है और मूर्ति में ही जो लोग देवता की बुद्धि रखते हैं उन लोगों को आपलोगों के दर्शन, स्पर्श, कुशल-प्रश्न, प्रणाम एवं चरण पूजन आदि का अवसर मिल सकता है क्या? अर्थात् कभी नहीं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

किंच युष्माकं दर्शनमेव तावद्देवानामपि दुष्प्रापम्, अस्माकं तु स्पर्शनादिकमपि कथं नु घटितमिति विस्मयेनाह-किमिति । स्वल्पतपसां तीर्थस्नानादिमात्रे तपोबुद्धिर्येषां तथाऽर्चायां प्रतिमायां देव इति चक्षुर्दृष्टिर्येषां तेषां योगेश्वरदर्शनादिकमिदं किमसंभावितमित्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

आपलोगों का दर्शन ही देवताओं के लिए दुर्लभ है । और हमलोगों को तो आपलोगों को स्पर्श भी न जाने कैसे प्राप्त हो गया इस तरह श्रीभगवान् ने **किम** इत्यादि श्लोक से आश्चर्य पूर्वक कहा **स्वल्पतपसाम्** अर्थात् तीर्थ स्नान आदि में ही तपस्या की बुद्धि करने वाले तथा अर्चामूर्ति में ही देव बुद्धि रखने वाले लोगों को तो आप योगेश्वरों का यह दर्शन आदि असम्भव ही है ॥१०॥

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः । ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥११॥

अन्वयः— अम्मयानि तीर्थानि न मृच्छिलामयाः देवाः न ते उरुकालेन पुनन्ति साधवः दर्शनादेव ॥११॥

अनुवाद— केवल जलमय ही तीर्थ नहीं है और मिट्टी तथा पत्थरों से बनी मूर्तियाँ ही देवता नहीं होते, क्योंकि वे तो दीर्घकाल तक सेवा करने पर पवित्र बनाते है किन्तु साधु पुरुष तो दर्शन देकर ही पवित्र बना देते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति-नह्यम्मयानीति त्रिभिः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

पूर्वोक्त अर्थ का ही प्रतिपादन तीन श्लोकों से करते हैं ।।११।।

नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ।।१२।।

अन्वयः— न अग्निः, न सूर्यः न च चन्द्रतारकाः न भूः जलं खं श्वसनः अथ वाङ्मनः भेदकृताः उपासितः अघं न हरन्ति, विपश्चितः मुहूर्तसेवया ।।१२।।

अनुवाद— अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, पृथिवी, जल, आकाश, वायु, वाणी और मन के अधिष्ठातृ देवता दीर्घकाल तक उपासना करने पर भी पापों का पूर्ण रूप से नाश नहीं करते हैं, क्योंकि इनकी उपासना से भेद बुद्धि का नाश नहीं होता है । किन्तु सन्त पुरुषों की सेवा यदि दो घड़ी भी कर ली जाय तो वे समस्त पापों का विनाश कर देते हैं ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

वाङ्मनसयोरप्युपासनाविषयत्वम्, 'यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते मनो ब्रह्मेत्युपास्ते' इति श्रुतेः । अघं तन्मूलमज्ञानं न हरन्ति। अत्र हेतुः-भेदकृतो भेदकर्तारः । यद्वा भेदबुद्धिं कुर्वतः पुंसः । विपश्चितो निरस्तभेदाः । ते तु मुहूर्तमात्रसेवयैवाघं घ्नन्तीति।।१२।।

भाव प्रकाशिका

वाणी और मन भी उपासना के विषय हैं इस अर्थ का प्रतिपादन करती हुई श्रुति कहती है- यो वाचंब्रह्मेत्युपास्ते अर्थात् जो उपासक वाणी में भी ब्रह्म की दृष्टि करके उपासना करता है । मनोब्रह्मेत्युपास्ते मन में ही ब्रह्म की दृष्टि करके उसकी उपासना करता है । पाप के मूलभूत अज्ञान को नहीं विनष्ट कर पाते हैं । उसका कारण है कि वे भेदबुद्धि को उत्पन्न करते हैं । अथवा भेद बुद्धि करने वाले पुरुष को अज्ञान को दूर नहीं करते है । साधु पुरुषों की बुद्धि तो भेद रहित होती है । उन साधु पुरुषों की यदि मुहूर्त भर भी सेवा कर ली जाय तो वे अज्ञान को विनष्ट कर देते हैं ।।१२।।

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ।।१३।।

अन्वयः— यस्य त्रिधातुके कुणपे आत्मबुद्धिः कलत्रादिषु स्वधीः, भौमे इज्यधीः यत् सलिले तीर्थबुद्धिः अभिज्ञेषु जनेषु कर्हिचित् न स एव गोखरः ।।१३।।

अनुवाद— जो मनुष्य बात, पित्त, एवं कफ इन तीन धातुओं से बने हुए इस शवतुल्य शरीर को ही आत्मा मान लेता है, पत्नी पुत्र परिवार आदि में ही आत्मीय बुद्धि करता है, मिट्टी, काष्ठ तथा पत्थर से निर्मित मूर्तियों में इष्टदेव की बुद्धि करता है तथा जो केवल जल को ही तीर्थ समझता है, ज्ञानी महापुरुषों को नहीं, वह मनुष्य होने पर भी पशुओं में भी नीच गधा ही है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

अतः साधून्विहायान्यत्रात्मादिबुद्ध्या सज्जमानोऽतिमन्द इत्याह-यस्येति । आत्मबुद्धिरहमिति बुद्धिः । त्रयो धातवो वातपित्तश्लेष्माणः प्रकृतयो यस्य तस्मिन्कुणपे शरीरे स्वधीः स्वीया इति बुद्धिः । भौमे भूविकारे इज्यधीर्देवताबुद्धिः । यद्यस्य

तीर्थबुद्धिस्तीर्थमिति बुद्धिः । अभिज्ञेषु तत्त्ववित्सु यस्य ता बुद्धयो न सन्ति स एव गोष्वपि खरो दारुणोऽत्यविवेकी । यद्वा गवां तृणादिभारवाहः खरो गर्दभ इति ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

साधु पुरुषों को छोड़कर जो उनसे भिन्न में आत्मादि की बुद्धि करता है वह अत्यन्त अज्ञानी है । आत्मबुद्धि अर्थात् मैं 'मैं' इस तरह की बुद्धि बात, कफ एवं पित्त इन तीन धातुओं से बने इस शरीर में जो स्वीयत्व की बुद्धि करता है । पार्थिव पदार्थो से बनी मूर्तियों में जो आराध्य देव की बुद्धि करता है तथा तत्त्वज्ञ पुरुषों में जिसकी उपर्युक्त प्रकार की बुद्धि नहीं होती है वही पशुओं में भी नीच अत्यन्त अज्ञानी है । अथवा पशुओं के खाने के लिए घास आदि के भार को ढोने वाला गधा है ।।१३।।

श्रीशुक उवाच

निशम्येत्थं भगवतः कृष्णस्याकुण्ठमेधसः । वचो दुरन्वयं विप्रास्तूष्णीमासन्भ्रमद्धियः ।।१४।।

अन्वयः— अकुण्ठमेधसः भगवतः कृष्णस्य इत्थं दुरन्वयं वचो निशम्य भ्रमद्धियः विप्राः तुष्णीम् आसन् ।।१४।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— अखण्ड ज्ञान सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण के इस गूढ भाषण को सुनकर सभी ऋषि मुनियों की बुद्धि चक्कर में पड़ गयी, वे समझ नहीं पाये कि श्रीभगवान् क्या कह रहे हैं, अतएव वे लोग मौन ही रहे ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

दुरन्वयमननुरूपम् । भ्रमन्त्यनवस्थिता बुद्धिर्येषां ते ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

दुरन्वय अर्थात् रहस्यमय । उन ऋषियों की बुद्धि चक्कर खाने लगी ।।१४।।

चिरं विमृश्य मुनय ईश्वरस्येशितव्यताम् । जनसंग्रह इत्यूचुः स्मयन्तस्तं जगद्गुरुम् ।।१५।।

अन्वयः— मुनयः ईश्वरस्य ईशितव्यताम् चिरं विमृश्य जनसंग्रहः इति स्मयन्तः तं जगद्गुरुम् ऊचुः ।।१५।।

अनुवाद— मुनिगण दीर्घकाल तक विचार करके जान लिए कि श्रीभगवान् सर्वेश्वर होकर भी कर्म परतन्त्र जीवों के समान व्यवहार केवल लोक संग्रह के लिए कर रहे है, इस तरह से जानकर वे लोग मुस्कुराते हुए कहे ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

ईशितव्यतामनीश्वरतां कर्माधिकारितां जनसंग्रहमात्रमेतदित्यूचुः । स्मयन्तो हसन्तः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

ईशितव्यताम् अर्थात् कर्मधिकारित्व को । यह केवल लोक संग्रहार्थ है इस तरह से कहे । स्मयन्तः अर्थात् मुस्कुराते हुए ।।१५।।

मुनय ऊचुः

यन्मायया तत्त्वविदुत्तमा वयं विमोहिता विश्वसृजामधीश्वराः ।
यदीशितव्यायति गूढ ईहया अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितम् ।।१६।।

अन्वयः— यन्मायया विश्वसृजाम् अधीश्वराः तत्त्वविदुत्तमाः वयं विमोहिताः यत् गूढ ईहया ईशित व्यायति अहो भगवद्विचेष्टितम् विचित्रम् ।।१६।।

मुनियों ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! आपकी माया से प्रजापतियों के अधीश्वर मरीचि आदि तथा तत्त्वों के ज्ञाता हमलोग मोहित हो रहे हैं, वे ही आप स्वयं ईश्वर होते हुए भी मनुष्यों जैसे चेष्टाओं के द्वारा अपने को छिपाये हुए हैं, वस्तुत: आपकी यह विचित्र लीला है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

अनन्वयं विवृण्वन्त आहुर्द्वाभ्याम्- यन्मायंयेति । तत्त्ववित्सूत्तमा अपि वयम् । कासौ माया यया विमोहिता इति तामाहु:- यदिति । यद्यस्मादीहया नरचेष्टितेन गूढः सन्नीशितव्यायत्यनीश्वरवदाचरति भवान् । नन्वहमीश्वरश्चेत्किमित्येवमाचरेयं तत्राहु:-अहो इति । भगवतस्तव विचेष्टितं विचित्रमतर्क्यम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

दुरधिगम्यता की व्याख्या मुनिगण **यन्मायया० इत्यादि** दो श्लोकों से करते हैं । **तत्त्वविदुत्तमाः** तत्त्वज्ञों में श्रेष्ठ भी हमलोग यहाँ कौन सी माया है जिससे कि आपलोग मोहित हो रहे हैं ? इस पर मुनियों ने उस माया को बतलाया जिसके कारण आप मनुष्य के समान चेष्टाओं को अपने छिपाये हुए हैं और नियामक होकर भी नियाम्य के समान आचरण करते हैं । यदि आप कहें कि यदि मैं ईश्वर होता तो इस तरह की चेष्टा क्यों करता ? इस पर ऋषियो ने कहा भगवन् आपकी लीला विचित्र है ।।१६।।

अनीह एतद्बहुधैक आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न बध्यते यथा ।
भौमैर्हि भूमिर्बहुनामरूपिणी अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ।।१७।।

अन्वयः— यथा भूमिः भौमैः बहुनामरूपिणी तथा अनीहः एकः बहुधा आत्मना सृजत्यवत्यत्ति न बध्यते । अहो विभूम्न चरितम् विडम्बनम् ।।१७।।

अनुवाद— जिस तरह पृथिवी अपने घट आदि विकारों से अनेक रूपों को तथा नामों को धारण कर लेती हैं उसी तरह आप एक और चेष्टा हीन हैं फिर भी अनेक रूपों को धारण कर लेते हैं । और आप सृष्टि, रक्षा एवं सहांर करते हैं इन सबों को करते हुए भी इन कर्मो से लिप्त नहीं होते हैं । आप सजातीय, विजातीय एवं स्वागत भेद शून्य है एक रस और अनन्त है । ऐसे आपकी यह लीला मात्र है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

भगवत्त्वमेवाहु:-अनीह इति । अनीहोऽक्रिय एव । आत्मना स्वरूपमात्रेण । बहुधेत्यत्र दृष्टान्तः-यथा भौमैरिति । भौमैर्घटादिविकारैरुपलक्षिता-'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्' इति श्रुतेः । ननु कथमहं जगत्सृष्ट्यादिकर्ता वसुदेवपुत्रत्वादिति तत्राहु:-अहो इति । विभूम्नः परिपूर्णस्य तदेवं जन्मादि चरितं विडम्बनमनुकरणमात्रं नतु तत्त्वमिति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की भगवत्ता का ही वर्णन करते हुए ऋषियों ने **अनीह० इत्यादि** श्लोक कहा **अनीहः** अर्थात् क्रिया हीन, आत्मना अर्थात् स्वरूप मात्र से, बहुधा का दृष्टान्त **भौमै० इत्यादि** से बतलया गया है । अर्थात् घटादि विकारों से उपलक्षित भूमि । श्रुति भी कहती है **वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्येकेत्येव सत्यम् ।** अर्थात् वस्तुतः मृत्तिका ही सत्य है, घट आदि जितने विकार और नाम हैं वें वागालम्बन मात्र है । यदि आप कहें कि मैं तो वसुदेव जी का पुत्र हूँ सृष्टि आदि करने वाला मैं कैसे हो सकता हूँ । इस पर ऋषियों ने कहा यह तो आपकी आश्चर्यमयी लीलामात्र है इसमें वास्तविकता नहीं है ।।१७।।

अथापि काले स्वजनाभिगुप्तये बिभर्षि सत्त्वं खलनिग्रहाय च ।
स्वलीलया वेदपथं सनातनं वर्णाश्रमात्मा पुरुषः परो भवान् ॥१८॥

अन्वयः— यद्यपि भवान् परः पुरुषः अथापि काले स्वजनाभिगुप्तये, खलनिग्रहाय च सत्त्वं विभर्षि स्व लीलया वर्णाश्रमा सनातनं वेदपथं विभर्षि ।।१८।।

अनुवाद— यद्यपि आप परं पुरुष परमात्मा हैं फिर भी समय-समय से अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए तथा दुष्टों का दमन करने के लिए अवतारों को ग्रहण करते है । क्योंकि सभी वर्णों एवं आश्रमों के रूप में आप ही प्रकट हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

जनसंग्रहमाहुः-अथापीति त्रिभिः । सत्त्वं शुद्धसत्त्वात्मकं रूपं विभर्षि । स्वलीलया आचारेण वेदपथं च विभर्षि।।१८।।

भाव प्रकाशिका

अथापि इत्यादि तीन श्लोकों से श्रीभगवान् के द्वारा किए जाने वाले जनसंग्रह को महर्षियों ने बतलाया है। सत्त्वम् अर्थात् शुद्ध सत्त्वात्मक रूप को धारण करते हैं । तथा अपने आचरण से वेदमार्ग की रक्षा करते हैं ॥१८॥

ब्रह्म ते हृदयं शुक्लं तपःस्वाध्यायसंयमैः । यत्रोपलब्धं सद्व्यक्तमव्यक्तं च ततः परम् ॥१९॥

अन्वयः— ब्रह्म ते शुक्लं हृदयम् तपः स्वाध्याय संयमैः यत्र सद् व्यक्तम् ततः परं च अव्यक्तम् ।।१९।।

अनुवाद— वेद आपका शुद्ध हृदय है, तपस्या स्वाध्याय एवं संयम से उसी में आपके साकार एवं उसके पश्चात् निराकार रूप का साक्षात्कार होता है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

अतएव ब्राह्मणेषु बहुमानमपि करोषीति सहेतुकमाहुः-ब्रह्मेति । ब्रह्मवेदाख्यं शुक्लं शुद्धं ते हृदयमन्तरङ्गं रूपम् कुत इत्यत आहुः-यत्रेतियत्र ब्रह्मणि व्यक्तं कार्यम्, अव्यक्तं कारणं ततः परं सत्सन्मात्रं ब्रह्म च तपआदिभिरुपलब्धं तद्ब्रह्म ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इसीलिए आप ब्राह्मणों का बहुत अधिक समादर भी करते हैं । इस बात को ऋषियों ने हेतु निर्देश पुरस्सर **ब्रह्मेति० इत्यादि** श्लोक से कहा । वेद आपका शुद्ध रूप हैं अर्थात् अन्तरङ्ग रूप है, क्योंकि उस वेद में ही कार्य, उसके पश्चात् कारण स्वरूप तथा अन्त में सन्मात्र ब्रह्म की उपलब्धि तपस्या आदि के द्वारा होती है । ऐसा है वह वेद ॥१९॥

तस्माद्ब्रह्मकुलं ब्रह्मन् शास्त्रयोनेस्त्वमात्मनः । सभाजयसि सद्धाम तद्ब्रह्मण्याग्रणीर्भवान् ॥२०॥

अन्वयः— तस्माद् हे ब्रह्मन् ब्रह्मकुलं शास्त्रयोनेः त्वमात्मनः सद्धाम सभाजयसि तद्भवान् ब्रह्मण्याग्रणी ।।२०।।

अनुवाद— हे परमात्मन् ब्राह्मण ही वेदों के अधारभूत आपके स्वरूप की उपलब्धि के स्थान हैं । इसीलिए आप ब्राह्मणों का सम्मान करते हैं । यही कारण है कि आप ब्राह्मण भक्तों में अग्रगण्य हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

तमाद्वेदहृदयत्वाद्वेदप्रवर्तकं ब्राह्मणकुलं शास्त्रयोनेर्वेदप्रमाणकस्य तव सद्धाम श्रेष्ठमुपलब्धिस्थानं सभाजयसि संपूजयसि तत्तस्मादेव कारणात्त्वं ब्रह्मण्यानामग्रणीर्मुख्यस्तत्प्रवर्तकः सन्कर्माचरसीत्यर्थः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

वेद हृदय होने के कारण ही वेदों के प्रवर्तक ब्राह्मणों के वंश की जो शास्त्रैकप्रमाणगम्य आपका श्रेष्ठ उपलब्धि

स्थान है उसका आप सम्मान करते है । यही कारण है कि आप ब्राह्मण भक्तों में अग्रगण्य है । और सत्कर्मों का आचरण करते हैं ।।२०।।

अद्य नो जन्मसाफल्यं विद्यायास्तपसो दृशः । त्वया सङ्गम्य सद्गत्या यदन्तः श्रेयसां परः ।।२१।।

अन्वयः— यदन्तः श्रेयसां परम् सद्गत्या त्वया संगम्य अद्य नः जन्म विद्यायाः तपसः दृशः साफल्यम् ।।२१।।

अनुवाद— हे प्रभो आप कल्याण की चरम सीमा है, सत्पुरुषों की एकमात्र गति हैं ऐसे आपसे मिलकर हमलोगों के जन्म, विद्या, तपस्या तथा नेत्र सफल हो गये ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

तस्मादीश्वरस्य तवेदं जनसंग्रहमात्रं, वयं तु तव सङ्गत्या कृतार्था इत्याहुः-अद्येति षड्भिः । सतां गत्या त्वया सङ्गम्य सङ्गं प्राप्य । यद्यस्मात्त्वं श्रेयसां परोऽवधिः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

अतएव आपका यह लोकसंग्रह मात्र है । आपसे मिलकर हमलोग कृतार्थ हो गये इस बात को ऋषिगण **अद्य० इत्यादि** छह श्लोकों से कहते हैं । सन्तों के एक मात्र प्राप्य आप से मिलकर क्योंकि आप कल्याण की चरमा कष्ठा हैं ।।२१।।

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे । स्वयोगमाययाच्छन्नमहिम्ने परमात्मने ।।२२।।

अन्वयः— अकुण्ठमेधसे स्वयोगमाययाच्छन्न महिम्ने परमात्मने तस्मै भगवते नमः ।।२२।।

अनुवाद— हे प्रभो आपका ज्ञान अखण्ड है, आप अपनी योगमाया से अपने ऐश्वर्य को छिपाये हुए है, आप स्वयं परमात्मा हैं । ऐसे षड्विध ऐश्वर्य सम्पन्न श्रीभगवन् आपको हमलोगों का नमस्कार है ।।२२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२२।।

न यं विदन्त्यमी भूपा एकारामाश्च वृष्णयः । मायाजवनिकाच्छन्नमात्मानं कालमीश्वरम् ।।२३।।

अन्वयः— अभी भूपाः एकारामाः वृष्णयः च माया जवनिकाच्छन्नाम् कालम् ईश्वरम् यं न विदन्ति ।।२३।।

अनुवाद— इस सभा में बैठे हुए ये सभी राजागण आपके ही साथ आहार-विहार करने वाले ये यदुवंशी भी माया रूपी परदे से अपने को छिपाये हुए सबों की आत्मा, समपूर्ण जगत् के कारण एवं सबों के नियामक आपके स्वरूप को नहीं जानते हैं ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

एकस्मिन्नेव स्थाने आरामो येषां तेऽपि । कालं सृष्ट्यादिकारणम् । ईश्वरं नियन्तारम् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

एकारामा अर्थात् एक ही स्थान में आहार विहरादि करने वाले, **नियन्तारम्** प्रशासन करने वाले ।।२३।।

यथा शयानः पुरुष आत्मानं गुणतत्त्वदृक् । नाममात्रेन्द्रियाभातं न वेद रहितं परम् ।।२४।।

अन्वयः— यथा शयानः पुरुषः गुणतत्वदृक् नाम मात्रेन्द्रियाभातं तद् रहितं परं न वेद ।।२४।।

अनुवाद— जिस तरह सोने वाला पुरुष स्वप्न के मिथ्या पदार्थों को ही सत्य समझ लेता है । और नाम मात्र की इन्द्रियों से प्रतीत होने वाले अपने स्वप्न शरीर को ही अपना वास्तविक शरीर मान लेता है, उसे इस बात का पता भी नहीं रहता है कि इससे भिन्न मेरा जाग्रत कालिक भी शरीर है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

एतत्सदृष्टान्तमाहुः-यथेति । शयानः स्वप्नान्पश्यन् । गुणतत्वदृक् स्वप्नविषयेषु तत्त्वदृष्टिः । नाममात्रमिन्द्रियेण मनसा आभातं सिंहव्याघ्रादिरूपमात्मानं वेद तद्रहितं देवदत्तादिरूपमात्मानं न वेद यथा ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

इस बात को ही दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक मुनिगण **यथाशयानः इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । सोने वाला पुरुष स्वप्न के विषयों को देखता है । उस समय स्वप्न में दिखने वाली वस्तुओं को ही सत्य समझ लेता है । उस स्वप्न में प्रतीत होने वाले सिंह व्याघ्रादि शरीर को ही अपना शरीर मान लेता है । उससे भिन्न देवदत्त आदि रूप से अपने को उसको पता भी नहीं रहता है ।।२४।।

एवं त्वा नाममात्रेषु विषयेष्विन्द्रियेहया । मायया विभ्रमच्चित्तो न वेद स्मृत्युपप्लवात् ।।२५।।

अन्वयः— एवं नाममात्रेषु विषयेषु इन्द्रिय इहया मायया विभ्रमचित्तः स्मृत्युपप्लवात् त्वा न वेद ।।२५।।

अनुवाद— इसी तरह जाग्रदावस्था में भी इन्द्रियों की प्रवृत्ति रूप माया से मोहित होकर मनुष्य विषयों में भटकने लगता है । चित्त के चांचल्य से विवेक शक्ति ढंक जाती है और जीव नहीं जान पाता है कि आप जाग्रत संसार से परे हैं ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

एवं त्वा त्वां नाममात्रेषु स्वप्नादितुल्येषु विषयेष्विन्द्रियैर्या ईहा प्रवृत्तिः सैव माया तया विभ्रमच्चित्तो न वेद । स्मृतेर्विवेकस्योपप्लवान्नाशात् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

इसी तरह स्वप्नादि के ही समान विषयों में इन्द्रियों की प्रवृत्ति रूप माया से मोहित जीव जगत् से परे आपको नहीं जान पाता है । उसका कारण है कि उसकी माया से विवेक शक्ति ढँक जाती है ।।२५।।

तस्याद्य ते ददृशिमाङ्घ्रिमघौघमर्षतीर्थास्पदं हृदि कृतं सुविपक्वयोगैः ।
उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीवकोशा आपुर्भवद्गतिमथोऽनुगृहाण भक्तान् ।।२६।।

अन्वयः— सुविपक्वयोगैः अघौघमर्षतीर्थास्पदं ते अङ्घ्रिम् हृदि कृतम् तस्य ते अद्य ददृशिम उत्सिक्तभक्त्युपहताशयजीव कोशा भवद्गतिम् आपुः अथो भक्ताननुगृहाण ।।२६।।

अनुवाद— हे प्रभो बड़े-बड़े महर्षि अपने परिपक्वयोग साधना के द्वारा आपके उन चरणों को अपने हृदय में धारण करते हैं जो समस्त पापराशि के नष्ट करने वाले गङ्गा जल का भी आश्रय स्थान है । यह परम सौभाग्य की बात है कि हमें आपके उन चरणों का दर्शन हुआ । प्रभो हम आपके भक्त हैं । आप हम पर अनुग्रह कीजिये, हम आपके भक्त हैं । आपके परम पद की प्राप्ति उन लोगों को ही होती है जिनका लिङ्ग शरीर रूप जीव कोश आपकी उत्कृष्ट भक्ति से नष्ट हो जाता है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

अघौघस्य मर्षं नाशं करोति यद्गङ्गाख्यं तीर्थं तस्यास्पदमाश्रयं तेऽङ्घ्रिं सुविपववयोगैरपि हृदि कृतं केवलं नतु दृष्टं तस्य तेडङ्घ्रिददृशिम दृष्टवन्तो वयं बहुभिः पुण्यैरतोऽस्मान् भक्ताननुगृहाण । भक्तान् कृत्वानुग्रहं कुर्वित्यर्थः । ननु किं भक्त्या यथापूर्वं तप एव तप्यतामिति नेत्याहुः-उत्सिक्ता उद्रिक्ता या भक्ति स्तयोपहत आशयलक्षणो जीवकोशो येषां त एव पूर्वे भवद्गतिमापुर्नान्य इति ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

पाप समूह को विनष्ट करने वाले गङ्गाजल के आश्रय भूत आपके चरणों को परिपक्व योग वाले महर्षि गण अपने हृदय में धारण करते हैं, उन लोगों ने भी आपके चरणों का दर्शन नहीं किया, आपके उन्हीं चरणों का हमलोग दर्शन कर रहे हैं यह हमलोगों के बहुत अधिक पुण्यों का फल है, अतएव आप हम भक्तों पर कृपा करें अर्थात् हमलोगों को अपना भक्त बनाकर हम पर आप कृपा करे। यदि आप कहें कि भक्ति करने से कौन सा लाभ होगा पहले के ही समान आप तपस्या करें इस पर ऋषियों ने कहा नहीं। उत्कृष्ट भक्ति के द्वारा जिसके जीव कोश का नाश हो जाता है उन लोगों ने ही आपके परम पद को प्राप्त किया है। दूसरे नहीं ॥२६॥

श्रीशुक उवाच

इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरम्। राजर्षे स्वाश्रमान् गन्तुं मुनयो दधिरे मनः ॥२७॥

अन्वयः— हे राजर्षे ! इति दाशार्हं धृतराष्ट्रं युधिष्ठिरं च अनुज्ञाप्य मुनयः स्वाश्रमान् गन्तुं मनः दधिरे ॥२७॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् इस तरह से श्रीभगवान् की स्तुति करके तथा धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर से अनुमति लेकर वे महर्षिगण अपने आश्रमों में जाने का मन बनाये ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

तद्वीक्ष्य तानुपव्रज्य वसुदेवो महायशाः। प्रणम्य चोपसंगृह्य बभाषेदं सुयन्त्रितः ॥२८॥

अन्वयः— तद्वीक्ष्य तान् उपव्रज्य महायशाः वसुदेवः प्रणम्य च उपसंगृह्य सुयन्त्रितः इदं बभाषे ॥२८॥

अनुवाद— उन महर्षियों के जाने का विचार देखकर महायशस्वी वसुदेवजी उन ऋषियों के सन्निकट में आये और उन ऋषियों का चरण पकड़कर अत्यन्त विनम्रता से कहने लगे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

उपसंगृह्य चरणौ। पाणिभ्यां धृत्वा। बभाषे इदमिति संधिरार्षः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

उपसंगृह्य अर्थात् चरणों को पकड़कर। **बभाषेदं** में सन्धि आर्ष हुई है ॥२८॥

वसुदेव उवाच

नमो वः सर्वदेवेभ्य ऋषयः श्रोतुमर्हथ। कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यताम् ॥२९॥

अन्वयः— ऋषयः सर्वदेवेभ्यः वः नमः श्रोतुमर्हथ। यथा कर्मणा कर्म निहारः स्यात् तत् नः उच्यताम्॥२९॥

वासुदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे ऋषियो आप सभी देव स्वरूप हैं। आप सबों को मेरा नमस्कार है। आप लोग हमारी प्रार्थना सुन लें। जिन कर्मों को करने से कर्मों और कर्मों की वासनाओं का आत्यन्तिक विनाश हो जाता है उस कर्म का उपदेश आपलोग हमें दे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

सर्वे देवा येषु तेभ्यः-'यावतीर्वै देवतास्ताः सर्वा वेदविदि ब्राह्मणे वसन्ति' इति श्रुतेः। येन कर्मणा यथाकृतेन वा कर्मणां निर्हारो निरासो भवति तदुच्यताम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

जिनमें सभी देवताओं का निवास होता हैं। ऐसे आपलोगों को नमस्कार है। श्रुति भी कहती है **यावती वै देवता: ता: सर्वा: वेदविदि ब्राह्मणे वसन्ति**। अर्थात् जितने देवता हैं वे सब वेदज्ञ ब्राह्मणों में निवास करते हैं। किस कर्म को किस तरह से करने से कर्मों का निरास हो जाता है, उसे हमें आप लोग हमें बतलायें ॥२९॥

नारद उवाच

नातिचित्रमिदं विप्रा वसुदेवो बुभुत्सया। कृष्णं मत्वार्भकं यन्न: पृच्छति श्रेय आत्मन: ॥३०॥

अन्वय:— विप्रा: इदं अतिचित्रं न यत् वसुदेव: कृष्णं अर्भकं मत्वा आत्मन: श्रेय: बुभुत्सया न: पृच्छति ॥३०॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— महर्षियों! यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्ण को अपना बालक मानकर हमलोगों से आत्मकल्याण के साधन को जानने की इच्छा से हमलोगों से पूछते हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णं हित्वास्मान्पृच्छतीति विस्मितान्प्रत्याह-नातीति। बुभुत्सया बोद्धुमिच्छया ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण को छोड़कर वसुदेवजी हमलोगों से पूछ रहें हैं, इस तरह से आश्चर्यित मुनियों से नारदजी ने **नाति० इत्यादि** श्लोक से कहा बुभुत्सया अर्थात् जानने की इच्छा से ॥३०॥

संनिकर्षोऽत्र मर्त्यानामनादरणकारणम्। गाङ्गं हित्वा यथान्याम्भस्तत्रत्यो याति शुद्धये ॥३१॥

अन्वय:— अत्र मर्त्यानाम् सन्निकर्ष: अनादरकारणम्। यथा तत्रत्य: गागं अम्भ: हित्वा अन्याम्भ: शुद्धये याति॥३१॥

अनुवाद— संसार में मनुष्यों की अत्यन्त सन्निधि भी अनादर का कारण होता है। जैसे गङ्गातट पर रहने वाला मनुष्य गङ्गा के जल को छोड़कर दूसरे तीर्थ में अपनी शुद्धि के लिए स्नान करने जाता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तत्रत्यो गङ्गातीरवासी ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

तत्रत्य: अर्थात् गङ्गातट पर रहने वाला ॥३१॥

यस्यानुभूति: कालेन लयोत्पत्त्यादिनाऽस्य वै। स्वतोऽन्यस्माच्च गुणतो न कुतश्चन रिष्यति ॥३२॥

अन्वय:— यस्यानुभूति: कालेन अस्य लयोत्पत्त्यादिना स्वत: अन्यस्मात् च गुणतो वा कुतश्चन न रिष्यति ॥३२॥

अनुवाद— जिन भगवान् श्रीकृष्ण का अनुभव समय के परिवर्तन के कारण होने वाली इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और लय के कारण स्वयम् या किसी दूसरे निमित्त से या गुणों से विनष्ट नहीं होती है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

श्रीकृष्णेऽर्भकत्वमानोऽविद्याविजृम्भित इत्याह-यस्येति द्वाभ्याम्। अनुभूतिर्ज्ञानं कुतश्चिदपि न रिष्यति न नश्यति। तदेवाह-कालेन कर्कटिकाफलवत्। अस्य विश्वस्य लयोत्पत्त्यादिनापि। स्वतश्च विद्युदादिवत्। अन्यस्माच्च मुद्गरदिर्घटादिवत्। गुणतो रूपाद्यन्तरोत्पत्ते: पूर्वरूपादिना देहादिवत् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

श्रीकृष्ण को बालक मानना अविद्या के कारण है। इस बात को नारदजी ने **यस्य० इत्यादि** दो श्लोकों

से कहा है । किसी भी कारण से नष्ट नहीं होती है । अनुभूति अर्थात् ज्ञान । इसी बात को बतलाते हैं जैसे- ककड़ी काल वशात् फटकर विनष्ट हो जाती है । यह जगत् लय तथा उत्पत्ति आदि के द्वारा नहीं विनष्ट होता है । स्वत: जैसे बिजली चमक कर अपने आप विनष्ट हो जाती है । दूसरे से जैसे मुद्गर के प्रहार से घट विनष्ट हो जाता है, वैसे ज्ञान नहीं विनष्ट होता है । गुण के कारण भी जैसे दूसरे रूप की उत्पत्ति होने पर देह का पहले का रङ्ग विनष्ट हो जाता है, वैसे भगवद् विषयक ज्ञान विनष्ट नहीं होता है ।।३२।।

तं क्लेशकर्मपरिपाकगुणप्रवाहैरव्याहतानुभवतीश्वरमद्वितीयम् ।
प्राणादिभिः स्वविभवैरुपगूढमन्यो मन्येत सूर्यमिव मेघहिमोपरागैः ।।३३।।

अन्वयः— क्लेशकर्मपरिपाक- गुणप्रवाहै अव्याहतानुभवम् अद्वितीयम् ईश्वरगतम् प्राणादिभि स्वविभवैः उपगूढम् अन्यः मेघ हिमोपरागैः सूर्यम् इव गूढम् मन्येत ।।३३।।

अनुवाद— श्रीभगवान् का ज्ञानमय स्वरूप अविद्या, राग, द्वेष आदि क्लेश, पुण्य पाप रूप कर्म, सुख-दु:खादि रूप कर्मफल, तथा सत्त्व आदि गुणों के प्रवाह से खण्डित नहीं होता है । वे स्वयम् अद्वितीय परमात्मा हैं । जब वे अपने को अपनी शक्तियों प्राण आदि से ढँक लेते हैं तो अज्ञानी जीव उनको ढँका हुआ मान लेते हैं । जैसे बादल कुहरा या ग्रहणं अपने नेत्रों के ढँक जाने पर लोग सूर्य को ढँका हुआ मान लेते हैं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

तमेव कुतश्चिदप्यव्याहतानुभवमत एवेश्वरम् । किंच अद्वितीयं कृष्णमन्यः प्राकृत उपगूढमाच्छन्नं मनुष्यं मन्येत । कैः क्लेशकर्मादिभिः । तत्र क्लेशा रागादयश्च तत्पूर्वकाणि कर्माणि च तत्परिपाके सुखदुःखे च सत्त्वादीनां गुणानां पुनः प्रवाहश्च तैः प्राणादिभिश्च स्वैर्विभवैः स्वकार्यैः । अत्र दृष्टान्तः-मेघहिमोपरागैरभ्रतुषारराहुभिः स्वविभवैः सूर्यमिवेति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

उन श्रीभगवान् का ज्ञान कहीं भी व्याहत नहीं होता है । अतएव वे ईश्वर हैं । इस तरह से अद्वितीय श्रीकृष्ण को अज्ञानी मनुष्य सामान्य मनुष्य मान लेते हैं । राग आदि क्लेश, पुण्य पाप रूप कर्म और कर्मों के सुख दु:खादि परिणाम तथा सत्त्वादि गुणों के प्रवाह से उनका स्वरूप खण्डित नहीं होता है । अपनी ही प्राण आदि शक्तियों से । इसके विषय में दृष्टान्त है जैसे मेघ, कुहरा तथा ग्रहण से अपने नेत्रों के ढँक जाने पर अज्ञानी मनुष्य मानता है कि सूर्य ही ढँक गये ।।३३।।

अथोचुर्मुनयो राजन्नाभाष्यानकदुन्दुभिम् । सर्वेषां शृण्वतां राज्ञां तथैवाच्युतरामयोः ।।३४।।

अन्वयः— राजन् अथ आनकदुन्दुभिम् आभाष्य मुनयः सर्वेषां राज्ञां शृण्वताम् तथैवाच्युतरामयोः ऊचुः ।।३४।।

अनुवाद— राजन् उसके पश्चात् वसुदेवजी को संबोधित करके मुनियों ने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी तथा सभी राजाओं के सामने ही कहा ।।३४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३४।।

कर्मणा कर्मनिर्हार एष साधुनिरूपितः । यच्छ्रद्धया यजेद्विष्णुं सर्वयज्ञेश्वरं मखैः ।।३५।।

अन्वयः— कर्मणा कर्मनिर्हार एषः साधुंनिरूपितः यत् श्रद्धया सर्वयज्ञेश्वरं विष्णु मखैः यजेत् ।।३५।।

अनुवाद— कर्मों के द्वारा कर्मों तथा कर्मों की वसनाओं के विनाश का यही सर्वोत्कृष्ट साधन बतलाया गया है कि श्रद्धा पूर्वक सर्वयज्ञेश्वर भगवान् विष्णु की यज्ञों के द्वारा आराधना की जाय ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

चित्तस्योपशमोऽयं वै कविभिः शास्त्रचक्षुषा । दर्शितः सुगमो योगो धर्मश्चात्ममुदावहः ॥३६॥

अन्वयः— कविभिः शास्त्रच क्षुषा अयं वै चित्तस्योपशमः सुगमो योगः आत्ममुदावहः धर्मश्च दर्शितः ॥३६॥

अनुवाद— त्रिकालदर्शी ज्ञानी पुरुषों ने शास्त्रदृष्टि से इसको ही चित्त की शान्ति का उपाय सुगम मोक्ष साधन और चित्त में आनन्द का उल्लास करने वाला धर्म बतलाया है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

चित्तस्योपशम उ पशमहेतुः । योगो मोक्षोपायश्च । शनैरात्ममदमावहतीति तथा । सुगमः प्रवृत्त्याश्रयत्वात् । धर्मश्चावश्यकः। अन्यथा विहिताकरणेन मालिन्यप्रसङ्गात् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

चित्तस्योपशमः अर्थात् चित्त की शान्ति का कारण । योगः अर्थात् मोक्ष का उपाय, शनैरात्म मुदावह धीरे-धीरे चित्त में आनन्द का उल्लास करने वाला । इस यज्ञ में प्रवृत्ति होना आसान भी है । धर्म अर्थात् आवश्यक धर्म । अन्यथा विहित कर्मों के नहीं करने के कारण चित्त में मलीनता सम्भव भी है ॥३६॥

अयं स्वस्त्ययनः पन्था द्विजातेर्गृहमेधिनः । यच्छ्रद्धयाप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ॥३७॥

अन्वयः— शुक्लेनाप्तवित्तेन पुरुषः श्रद्धया इज्येत अयं गृहमेधिनः द्विजातेः स्वस्त्ययनः पन्थाः ॥३७॥

अनुवाद— न्यायार्जित धन से श्रद्धापूर्वक भगवान् विष्णु की अराधना करना यही गृहस्थ द्विजाति (ब्राह्मण,क्षत्रिय और वैश्य) के लिए सर्वोत्तम कल्याणकारी मार्ग है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

ननु 'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः' इत्यादिना त्यागस्यैव विहितत्वात्कथं कर्म मोक्षोपाय इत्याशङ्क्यादानेव त्यागस्याशक्यत्वादित्याशयेनाहुः-अयमिति सार्धचतुर्भिः । स्वस्त्ययनः स्वस्ति क्षेममीयतेऽनेनेति तथा । श्रद्धया निष्कामतया शुक्लेन शुद्धेनाप्तेन वित्तेन पुरुष ईश्वर इज्येतेति यदेषः पन्थाः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि **न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः** अर्थात् कर्म, प्रजा, तथा धन इन सबों के द्वारा नहीं अपितु त्याग के द्वारा अनेक पुरुषों ने मुक्ति को प्राप्त कर लिया, इस वाक्य के अनुसार त्याग के ही विहित होने से कर्म को मोक्ष का साधन ऋषियों ने क्यों कहा इस तरह की आशङ्का करके, त्याग करना शक्य न होने के कारण ऋषियों ने **अयम्० इत्यदि** साढे चार श्लोको से कर्म को मोक्ष का साधन बतलाया है । **स्वस्त्ययनः** अर्थात् कल्याणकारी । श्रद्धया अर्थात् निष्काम होकर । **शुक्लेनवित्तेन अर्थात्** न्यायार्जित धन के द्वारा ईश्वरः इज्येत= परमात्माराधन किया जाय । यदेषः पन्थाः यही मार्ग है ॥३७॥

वित्तैषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतैषणाम् । आत्मलोकैषणां देव कालेन विसृजेद्बुधः ॥
ग्रामे त्यक्तैषणाः सर्वे ययुर्धीरास्तपोवनम् ॥३८॥

अन्वयः— देव ! यज्ञ दानैः वित्तैषणां गृहैः दारसुतैषणां आत्मलोकैषणां काले बुधः विसृजेत् ग्रामे त्यक्तैषणाः सर्वेधीराः तपोवनं ययुः ॥३८॥

अनुवाद— हे वसुदेवजी विचारवान पुरुष को चाहिए कि यज्ञ तथा दान आदि के द्वारा धन की इच्छा करे, गृहस्थोचित भोगों के द्वारा स्त्री एवं पुत्रों की इच्छा को काल क्रम से स्वर्गादि भी नष्ट हो जाते है इस तरह के विचार से लोक की इच्छा को त्याग दे । इस तरह धीर पुरुष इन तीनों प्रकार की इच्छाओं को घर में त्यग करके तपोवन में जाया करते हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

स्वस्त्ययनमाहुः-वित्तैषणामिति । वित्तफलभूतैर्यज्ञैर्दानैश्च वित्तैषणां वित्तेच्छां विसृजेत् । गृहैर्गृहोचितैर्भोगैर्दारसुतैषणां विसृजेत् । तदनुभवेनैव तदौत्सुक्यनिवृत्तेः । देहे मृते आत्मनः स्वर्गादिलोकैषणां कालेन क्षयानुसंधानेन विसृजेत् । देव हे वसुदेव । यद्वा देवकालेन देवानामपि मृत्युना । मृत्युहेतुभूतेनेत्यर्थः । अत्राचारं प्रमाणयति ग्राम इति ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

वितैषणाम् इत्यादि श्लोक के द्वारा ऋषियों ने कल्याण का मार्ग बतलाया । धन के फल हैं यज्ञ और दान। वित्तैषणाम् अर्थात् धन की इच्छा को त्याग दे । गृहैक अर्थात् गृहोचित भोगों के द्वारा पत्नी एवं पुत्र की इच्छा को त्याग दे । भोगों के ही द्वारा पत्न्यादि की इच्छा की निवृत्ति सम्भव है । शरीर के मर जाने पर अपने स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति की इच्छा को यह सोचकर त्याग दे कि कालक्रम से स्वर्गादि लोक भी नष्ट हो जाते हैं । अथवा देवकालेन अर्थात् देवताओं की भी मृत्यु होती है यह विचार करके **ग्रामे० इत्यादि** के द्वारा आचार को प्रमाणित किया गया है ।।३८।।

ऋणैस्त्रिभिर्द्विजो जातो देवर्षिपितृणां प्रभो । यज्ञाध्ययनपुत्रैस्तान्यनिस्तीर्य त्यजन्पतेत् ।।३९।।

अन्वयः— प्रभो ! देवर्षि पितृणां त्रिभिः ऋणैः द्विजः जातः यज्ञाध्ययन पुत्रैः तानि अनिस्तीर्य त्यजन् पतेत् ।।३९।।

अनुवाद— हे समर्थ वसुदेवजी द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) देवताओं, ऋषियों और ऋषियों का ऋण लेकर उत्पन्न होता है । यज्ञ, वेदाध्ययन और पुत्रोत्पादन किए बिना जो शरीर का परित्याग कर देता है, उसका पतन हो जाता है ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

किंच ऋणैरिति । तथा च श्रुतिः-'जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवान्जायते ब्राह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः' इत्यादि । तान्यनिस्तीर्य तेषामृणान्यनपाकृत्य । तथा च मनुः-'ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् । अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः'। इति ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

ऋणैः इत्यादि श्रुति कहती है **जायमनो वै ब्राह्मणः पितृभ्यः** । अर्थात् उत्पन्न होने वाला ब्राह्मण तीन ऋणों से ऋणी होता है । ब्रह्मचर्य पालन से ऋषियों के ऋण से यज्ञ के द्वारा देवताओं के ऋण से तथा पुत्रोत्पत्ति के द्वारा पितरो के ऋण से वह मुक्त होता है । उन ऋणों को अपाकृत किए बिना जो मर जाता है उसकी अधोगति होती है। महर्षि मनु ने भी **ऋणानि० इत्यादि** श्लोक से कहा है कि तीन ऋणों को दूर करके ही मोक्ष प्राप्ति की इच्छा करे। इन तीनों ऋणों को अपाकृत किए बिना मोक्ष का सेवन करने वाले की अधोगति होती है ।।३९।।

त्वं त्वद्य मुक्तो द्वाभ्यां वै ऋषिपित्रोर्महामते । यज्ञैर्देवर्णमुन्मुच्य निर्ऋणोऽशरणो भव ।।४०।।

अन्वयः— हे महामते ! त्वं तु ऋषिपित्रोः द्वाभ्यां मुक्तः यज्ञैः देवर्णमुन्मुच्य निर्ऋणः अशरणो भव ।।४०।।

अनुवाद— वसुदेवजी आप ऋषिऋण और पितृऋण दो ऋणों से मुक्त हो चुके है अब यज्ञों के द्वारा देवताओं का ऋण चुका दीजिये । इस तरह उऋण होकर आप श्रीभगवान् के शरण में जाकर गृह त्याग दीजिये ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

निर्ऋणो निर्मुक्तऋणः । अशरणो भव गृहात्प्रव्रज ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

निर्ऋणः अर्थात् ऋणमुक्त, अशरणोभव अर्थात् गृह का त्याग कर दीजिए ।।४०।।

वसुदेव भवान्नूनं भक्त्या परमया हरिम् । जगतामीश्वरं प्रार्चः स यद्वां पुत्रतां गतः ॥४१॥

अन्वयः— हे वसुदेव ! भवान् परमया भक्त्या जगतामीश्वरं प्रार्चः यत् सः वां पुत्रतां गतः ॥४१॥

अनुवाद— वसुदेवजी निश्चित रूप से आपने परम भक्ति से जगत् के स्वामी श्रीहरि की अर्चना की है, यही कारण है कि वे श्रीभगवान् आपके पुत्र बन गये ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

किंच अविशुद्धचित्तानामयं क्रमः, त्वं तु कृतार्थ एवेत्याहुः-वसुदेवेति । भवान्नूनं निश्चितं परमया प्रेमलक्षणया भक्त्या हरिम् । प्राचोऽर्चितवान् । यद्यस्मात् । वां युवयोः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

यह तो हमलोग उन लोगों के लिए क्रम बतलायें हैं जिनका चित्त शुद्ध नहीं है । आपतो कृतार्थ ही हैं इस बात को ऋषियों ने वसुदेव इत्यादि श्लोक से कहा गया है आपने तो निश्चित रूप से उत्कृष्ट प्रेमपूर्वक भक्ति के द्वारा श्रीहरि की अर्चना की है । उसी के कारण श्रीहरि आप दोनों के पुत्र बन गये ॥४१॥

श्रीशुक उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा वसुदेवो महामनाः । तानृषीनृत्विजो वव्रे मूर्ध्नानम्य प्रसाद्य च ॥४२॥

अन्वयः— इति तद्वचनं श्रूत्वा महामनाः वसुदेवः तान् ऋषीन् मूर्ध्ना आनम्य प्रसाद्य च ऋत्विजो वव्रे ॥४२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से उन ऋषियों की वाणी सुनकर की महामनस्वी श्रीवसुदेवजी उन ऋषियों को सिर झुकाकर प्रणाम किए और उन लोगों को प्रसन्न करके ऋत्विज के रूप में उन ऋषियों का वरण कर लिए ॥४२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४२॥

न एनमृषयो राजन्वृता धर्मेण धार्मिकम् । तस्मिन्नयाजयन्क्षेत्रे मखैरुत्तमकल्पकैः ॥४३॥

अन्वयः— राजन् ते वृताः ऋषय धर्मेण एनं धार्मिकम् तस्मिन् क्षेत्रे उत्तम कल्पकैः मखैः अयाजयन् ॥४३॥

अनुवाद— जब वसुदेवजी ने धर्म पूर्वक उन ऋषियों का वरण कर लिया तब उन ऋषियों ने पुण्य क्षेत्र कुरुक्षेत्र में उत्तमोत्तम सामग्रियों से यज्ञ करवाया ॥४३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४३॥

तद्दीक्षायां प्रवृत्तायां वृष्णयः पुष्करस्रजः । स्नाताः सुवाससो राजन्राजानः सुष्ठ्वलंकृताः ॥४४॥

अन्वयः— राजन् तद्दीक्षयां प्रवृत्तायां स्नाताः सुवाससः पुष्करस्रजः वृष्णयः राजानः सुष्ठ्वलंकृताः ॥४४॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् जब वसुदेवजी ने यज्ञ की दीक्षा ले ली तब यदुवंशियों ने स्नान करके तथा सुन्दर वस्त्र धारण करके कमल की माला धारण कर ली और राजागण भी वस्त्रभूषणों से खूब अलंकृत हो गये॥४४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४४॥

तन्महिष्यश्च मुदिता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः । दीक्षाशालामुपाजग्मुरालिप्ता वस्तुपाणयः ॥४५॥

अन्वयः— निष्ककण्ठ्यः सुवाससः आलिप्ताः तन्महिष्यश्च मुदिता वस्तुपाणयः दीक्षाशालाम् उपाजग्मुः ॥४५॥

अनुवाद— सुन्दर वस्त्र तथा सुवर्ण के हार पहनी हुई एवं अङ्गराग से अलंकृत श्रीवसुदेवजी की पत्नियाँ आनन्दपूर्वक अपने हाथ में माङ्गलिक द्रव्य लिए हुई दीक्षाशाला में प्रवेश कीं ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

आलिप्ताः कुङ्कुमादिभिः । वस्तुपाणयो गृहीतार्हणहस्ताः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

कुङ्कुम आदि अङ्गरागों को लगायी हुई वस्तुपाण्यः अर्थात् हाथ में पूजन की सामग्री लिए हुई ।।४५।।

नेदुर्मृदङ्गपटहशङ्खभेर्यानकादयः । ननृतुर्नटनर्तक्यस्तुष्टुवुः सूतमागधाः ।।
जगुः सुकण्ठ्यो गन्धर्व्यः संगीतं सहभर्तृकाः ।।४६।।

अन्वयः— मृदङ्गपटहशङ्खभेर्यानकादयः नेदुः नटनर्तक्यः ननृतुः सूतमागधाः तुष्टुवुः सुकण्ठय; सहभर्तृकाः गन्धर्व्य सङ्गीत जगुः ।।४६।।

अनुवाद— उससमय मृदङ्ग परवावज शङ्ख, ढोले और नगाड़े आदि बजने लगे नट और नर्तृकियाँ नाचने लगीं, सूत और मागध स्तुति करने लगे और गन्धर्वों के साथ सुन्दर स्वर वाली गन्धर्व पत्नियाँ गाने लगीं ।।४६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४६।।

तमभ्यषिञ्चन्विधिवदक्तमभ्यक्तमृत्विजः । पत्नीभिरष्टादशभिः सोमराजमिवोडुभिः ।।४७।।

अन्वयः— अक्तम् तम् ऋत्विजः अष्टादशभिः पत्नीभिः उडुभिः सोमराजमिव विधिवदभ्यषिंचन् ।।४७।।

अनुवाद— पहले वसुदेवजी ने अपनी आँख में अञ्जन और शरीर में मखन लगा लिया । उसके पश्चात् उनकी अठारह पत्नियों के साथ ऋत्विजों ने उसी प्रकार महाभिषेक की विधि से अभिषेक कराया जिस तरह प्राचीन काल में नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा का हुआ था ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

अक्तं नेत्रयोरञ्जनेन । अभ्यक्तं सर्वाङ्गेषु नवनीतेन ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

नेत्रों में अञ्जन के द्वारा अक्त और शरीर में मखन लगाकर अभ्यक्त ।।४७।।

ताभिर्दुकूलवलयैर्हारनूपुरकुण्डलैः । स्वलंकृताभिर्विबभौ दीक्षितोऽजिनसंवृतः ।।४८।।

अन्वयः— दुकूलवलयैः हारनूपुर कुण्डलैः स्वलंकृताभिः ताभिः दीक्षितः अजिन संवृतः विबभौ ।।४८।।

अनुवाद— साड़ी कङ्गन, हार, नूपुर तथा कुण्डलों से अलंकृत अपनी उन पत्नियों के साथ दीक्षित होने के कारण कृष्ण मृगचर्म धारण किए हुए वसुदेवजी की अत्यधिक शोभा हो रही थी ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

ताभिः पत्नीभिः सहितो दीक्षितो विरेजे ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

अपनी उन पत्नियों के साथ अत्यधिक सुशोभित हुए ।।४८।।

तस्यर्त्विजो महाराज रत्नकौशेयवाससः । ससदस्या विरेजुस्ते यथा वृत्रहणोऽध्वरे ।।४९।।

अन्वयः— हे महाराज ! तस्यते रत्नकौशेयवाससः ऋत्विजः ससदस्याः वृत्रहणः अध्वरे यथा विरेजुः ।।४९।।

अनुवाद— हे महाराज ! उनके रत्न के समान चमकते हुए रेशमी वस्त्रो को धारण किए ऋत्विज एवं सदस्य उसी तरह सुशोभित हो रहे थे जैसे इन्द्र के यज्ञ में ऋत्विज एवं सदस्य सुशोभित होते थे ।।४९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४९।।

तदा रामश्च कृष्णश्च स्वैः स्वैर्बन्धुभिरन्वितौ । रेजतुः स्वसुतैर्दारैर्जीवेशौ स्वविभूतिभिः ॥५०॥

अन्वयः— स्वैः स्वैः बन्धुभिः अन्वितौ रामश्च कृष्णश्च स्वसुतैः दारैः स्वविभूतिभिः जीवेशौ इव रेजतुः ॥५०॥

अनुवाद— उस समय अपने-अपने भाई बन्धु और पुत्रों के साथ बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण उसी तरह सुशोभित होते थे जैसे अपनी शक्तियों के साथ समस्त जीवों के ईश्वर स्वयं भगवान् समष्टि जीवों के अभिमानी श्रीसङ्कर्षण और अपने विशुद्ध नारायण स्वरूप में सुशोभित होते हैं ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

जीवेशौ सर्वजीवानामीशौ ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

जीवेशौ अर्थात् सभी जीवों के दोनों स्वामी ॥५०॥

ईजेऽनुयज्ञं विधिना अग्निहोत्रादिलक्षणैः । प्राकृतैर्वैकृतैर्यज्ञैर्द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् ॥५१॥

अन्वयः— अनुयज्ञं विधिना अग्निहोत्रादि लक्षणैः प्राकृतैः वैकृतैः यज्ञैः द्रव्यज्ञानक्रियेश्वरम् विधिना ईजे ॥५१॥

अनुवाद— वसुदेवजी ने प्रत्येक यज्ञ यज्ञों में ज्योतिष्टोम, दर्श पूर्णमास आदि प्राकृत यज्ञों सौर सत्रादि वैकृत यज्ञों एवं अग्निहोत्र आदि अन्यान्य यज्ञों के द्वारा द्रव्य, ज्ञान और उनकी क्रिया के मन्त्रों के स्वामी भगवान् विष्णु की विधि पूर्वक आराधना की ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

अनुयज्ञं प्रतियज्ञम् । आम्नातसर्वाङ्गाः प्राकृता ज्योतिष्टोमदर्शपूर्णमासादयस्तेभ्यश्चोदनालिङ्गादिभिरतिदेशप्राप्ताङ्गा वैकृताः सौरसत्रादयस्तैः सर्वैः । द्रव्यं पुरोडाशादि, ज्ञानं मन्त्रः, क्रिया कर्म, तेषामीश्वरम् ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

अनुयज्ञम् अर्थात् प्रत्येक यज्ञों में । सर्वाङ्ग रूप से वर्णित ज्योतिष्टोम, दर्श तथा पूर्णमास नामक प्राकृत यज्ञों में उन सबों से प्रेरणा लिङ्गादि से अतिदेश के रूप प्राप्त अङ्ग वाले वैकृत सौर सत्र आदि इन सबों से । पुरोडाश आदि द्रव्य ज्ञान अर्थात् मन्त्र और क्रिया अर्थात् कर्म इन सबों के स्वामी ॥५१॥

अथर्त्विग्भ्योऽददात्काले यथाम्नातं स दक्षिणाः । स्वलंकृतेभ्योऽलंकृत्य गोभूकन्या महाधनाः ॥५२॥

अन्वयः— अथ काले सः ऋत्विग्भ्यः आम्नातं यथा दक्षिणाः अददात् । स्वलंकृतेभ्यः ऋत्विग्भ्यः अलंकृत्य महाधनाः गोभूः कन्याः अददात् ॥५२॥

अनुवाद— इसके पश्चात् उचित समय पर उन्होंने अच्छी तरह से अलंकृत ऋत्विजों को वेदोक्त विधि से दक्षिणा तथा बहुमूल्यवान् गौएँ पृथ्वी तथा सुन्दरी कन्याओं को प्रदान किया ॥५२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५२॥

पत्नीसंयाजावभृथ्यैश्चरित्वा ते महर्षयः । सस्नू रामह्रदे विप्रा यजमानपुरः सराः ॥५३॥

अन्वयः— ते महर्षयः पत्नी संयाज अवभृथ्यैः चरित्वा यजमानपुरसराः विप्राः रामह्रदे सस्नुः ॥५३॥

अनुवाद— महर्षियों ने पत्नीसंयाज नामक यज्ञांग और अवभृथ स्नान नामक कर्म करके यजमान वसुदेवजी को आगे करके रामहृद में जाकर स्नान किया ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

सस्नुः स्नानं चक्रुः ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

सस्नुः अर्थात् स्नान किया ।।५३।।

स्नातोऽलङ्कारवासांसि बन्दिभ्योऽदात्तथा स्त्रियः । ततः स्वलंकृतो वर्णा नाश्वभ्योऽन्नेन पूजयत् ।।५४।।

अन्वयः— स्नातः आलङ्कारवासांसिवन्दिभ्यः अदात् तथा स्त्रियः ततः स्वलंकृतः वर्णान् आश्वभ्यः अन्नेन अपूजयत्।।५४।।

अनुवाद— स्नान करके वसुदेवजी तथा उनकी पत्नियों ने अपने अलकारों तथा वस्त्रों को बन्दीजनों को दे दिया और नये अलङ्कारों तथा वस्त्रों से अच्छी तरह से अलंकृत वसुदेवजी ने सभी वर्णों के लोगों को यहाँ तक कि कुत्तों को भी भोजन कराये ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

आ श्वभ्यः शुनोऽभिव्याप्य । अन्नेन पूजयदपूजयत् ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

कुत्तों को भी अन्न प्रदान करके समादृत किया ।।५४।।

बन्धून्सदारान्ससुतान्पारिबर्हेण भूयसा । विदर्भकोसलकुरून्काशिकेकयसृंजयान् ।।५५।।
सदस्यर्त्विक्सुरगणान्नृभूतपितृचारणान् । श्रीनिकेतमनुज्ञाप्य शंसन्तः प्रययुः क्रतुम् ।।५६।।

अन्वयः— सदारान् ससुतान् वन्धून् विदर्भ कोसलकुरून् काशिकेकय संजयान् सदस्यार्त्वक्सुरगणान् नृभूत पितृचारणान् भूयसा पारिवर्हेण च अपूजयत् सर्व श्रीनिकेतमनुज्ञाप्य क्रतुम् शंसन्तः प्रययुः ।।५५-५६।।

अनुवाद— उसके पश्चात् वसुदेवजी ने अपने भाई बन्धुओं उनके पुत्रों और पत्नियों को विदर्भ, कोसल, कुरु, काशि, केय तथा सृंजय आदि देशों के राजाओं को बहुत अधिक भेट प्रदान करके उन लोगों का सत्कार किया तथा वे सभी लोग भगवान् श्रीकृष्ण से अनुमति लेकर यज्ञ की प्रशंसा करते हुए अपने-अपने देश चले गये ।।५५-५६।।

भावार्थ दीपिका

बन्ध्वादिचारणान्तान्पारिबर्हेण प्रीतिदानेन चापूजयत्, ते च सर्वे प्रययुः ।।५५-५६।।

भाव प्रकाशिका

बन्धुओं से लेकर चारणों पर्यन्त सबों को प्रीतिदान देकर उन सबों का सत्कार किए तथा वे सब चले गये ।।५५-५६।।

धृतराष्ट्रोऽनुजः पार्था भीष्मो द्रोणः पृथा यमौ । नारदो भगवान्व्यासः सुहृत्संबन्धिबान्धवाः ।।५७।।
बन्धून्परिष्वज्य यदून्सौहृदाक्लिन्नचेतसः । ययुर्विरहकृच्छ्रेण स्वदेशांश्चापरे जनाः ।।५८।।

अन्वयः— धृतराष्ट्रः अनुजः पार्थाः भीष्मः द्रोणः पृथा यमौ नारदः भगवान् व्यासः सुहृत्संबन्धिबान्धवाः बन्धून् यदून् परिष्वज्य सौहृदाक्लिन्नचेतसः विरहकृच्छ्रेण अपरे च जनाः स्वदेशान् ययुः ।।५७-५८।।

अनुवाद— उस समय राजा धृतराष्ट्र विदुर, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कुन्ती, नकुल, सहदेव, नारद, भगवान् व्यासदेव तथा दूसरे स्वजन संबन्धी तथा बान्धव अपने हितैष यदुवंशियों को छोड़कर जाने में अत्यधिक विरह व्यथा का अनुभव करने लगे । उन लोगों ने स्नेहार्द्र मन से यदुवंशियों का आलिङ्गन किया और किसी तरह अपने-अपने देश चले गये और दूसरे लोग भी वहाँ से चल दिये ।।५७-५८।।

भावार्थ दीपिका

प्रयाणे केषांचिद्विशेषमाह–धृतराष्ट्र इति द्वाभ्याम् । अनुजो विदुरः । पार्था युधिष्ठिरभीमार्जुनाः । यमौ नकुलसहदेवौ । सौहृदेनाक्लिन्नानि चेतांसि येषां ते ।।५७-५८।।

भाव प्रकाशिका

वहाँ से प्रस्थान करने में कुछ लोगों की विशेषता **धृतराष्टःइत्यादि** दो श्लोकों को बतलायें हैं । **अनुजः** अर्थात् विदुर । **पार्थाः** अर्थात् युधिष्ठिर भीम तथा अर्जुन ये पृथा के तीन पुत्र । **यमौ** अर्थात् नकुल एवं सहदेव सौहार्द के कारण जिन लोगों का अन्तःकरण भर गया था वे लोग ।।५७-५८।।

नन्दस्तु सह गोपालैर्बृहत्या पूजयार्चितः । कृष्णरामोग्रसेनाद्यैर्न्यवात्सीद्बन्धुवत्सलः ।।५९।।

अन्वयः— कृष्णरामोग्रसेनाद्यैः बृहत्या पूजयार्चितः बन्धुवत्सलः नन्दस्तु गोपालैः सह न्यवात्सीत् ।।५९।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी तथा राजा उग्रसेन आदि ने नन्द बाबा और गोपों की बड़ी-बड़ी सामग्रियों से पूजा की और प्रेम परवश होकर वे वहीं रह गये ।।५९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५९।।

वसुदेवोऽञ्जसोत्तीर्य मनोरथमहार्णवम् । सुहृद्वृतः प्रीतमना नन्दमाह करे स्पृशन् ।।६०।।

अन्वयः— सुहृद्वृतः वसुदेव; मनोरथ महार्णवम् अञ्जसा उत्तीर्य प्रीतमना नन्दम् करे स्पृशन् आह ।।६०।।

अनुवाद—अपने हितैषियों के साथ रहकर वसुदेवजी अपने मनोरथ रूपी महासागर को अनायास ही पार करके प्रसन्न मन से नन्दबाबा के हाथ पकड़कर कहे ।।६०।।

भावार्थ दीपिका

मनोरथो यज्ञविषयस्तमेव महार्णवम् ।।६०।।

भाव प्रकाशिका

मनोरथरूपी महासागर को ।।६०।।

वसुदेव उवाच

भ्रातरीशकृतः पाशो नृणां यः स्नेहसंज्ञितः । तं दुस्त्यजमहं मन्ये शूराणामपि योगिनाम् ।।६१।।

अन्वयः— भ्रातः ईशकृतः यः स्नेह संज्ञितः नृणां पाशः तम् अहम् शूराणाम् योगिनाम् अपि दुस्त्यजम् मन्ये ।।६१।।

वसुदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे भाई परमात्मा ने मनुष्यों के लिए एक प्रेम रूपी ऐसा पाश बना दिया है कि उसको शूरबीरों तथा योगियों के लिए भी त्याग पाना कठिन है ।।६१।।

भावार्थ दीपिका

शूराणां बलेन योगिनां ज्ञानेनापीत्यर्थः ।।६१।।

भाव प्रकाशिका

शूरवीर अपने बल के द्वारा और योगीजन ज्ञान के द्वारा भी ।।६१।।

अस्मास्वप्रतिकल्पेयं यत्कृताज्ञेषु सत्तमैः । मैत्र्यर्पिताऽफला वापि न निवर्तेत कर्हिचित् ।।६२।।

अन्वयः— अस्मासु कृताज्ञेषु सत्तमैः अप्रतिकल्पेयं अफला मैत्री अर्पिता वा अपि कर्हिचित् न निवर्तेत ।।६२।।

अनुवाद— आपने हम अकृतज्ञों के प्रति अनुपम मित्रता का व्यवहार किया है । आप श्रेष्ठ पुरुष है । यद्यपि उस मित्रता का फल हम नहीं चुका सकते फिर भी हम लोगों की यह मित्रता कभी टूटने वाली नहीं है ।।६२।।

भावार्थ दीपिका

तत्कुतस्तत्राह-अस्मास्विति । कृताज्ञेषु कृतमुपकारमजानत्सु सत्तमैर्भवद्भिरप्रतिकल्पा अनुपमा मैत्रीयमर्पिता अफलापि प्रत्युपकारशून्यापि कर्हिचिद्यद्यस्मान्न निवर्तेत । तस्मादीश्वरकृतः पाशोऽयं भवतामिति गम्यत इत्यर्थः ।।६२।।

भाव प्रकाशिका

प्रेम का बन्धन क्यों नही टूटने वाला है, उसे **अस्मासु० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । कृताज्ञ अर्थात् किए हुए उपकार को नहीं जानने वाले । **सत्तमै०** अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष आपलोगों ने जो अनुपम मित्रता का व्यवहार किया है उसका प्रत्युपकार नहीं करने वाले हमलोगों के साथ आपकी मित्रता कभी नहीं टूटने वाली है । अतएव स्पष्ट है कि परमात्मकृत प्रेम का बन्धन है आपलोगों के साथ ।।६२।।

प्रागकल्पाच्च कुशलं भ्रातर्वो नाचराम हि । अधुना श्रीमदान्धाक्षा न पश्यामः पुरः सतः ।।६३।।

अन्वयः— भ्रातः प्राक् हि अकल्पात् च वः कुशालं न अचराम अधुना श्रीमदान्धाक्षाः पुरः सतः न पश्यामः ।।६३।।

अनुवाद— हे भाई पहले बन्दीगृह में बन्द रहने के कारण हम आपका कोई भी उपकार नहीं कर सके और इस समय तो ऐश्वर्य के मद से हम अन्धे हो रहे है और आप हमारे सामने हैं तो भी हम आपको नहीं देख पाते हैं ।।६३।।

भावार्थ दीपिका

अफलत्वमेवाह-प्रागिति हे भ्रातः, अकल्पादसामर्थ्याद्वः कुशलं प्रियं न ह्याचराम न कृतवन्तो वयम् । श्रीमदेनान्धान्यक्षीणि येषां ते ।।६३।।

भाव प्रकाशिका

प्राक्० इत्यादि श्लोक से प्रत्युपकार राहित्य का वर्णन करते है नन्दबाबा ! पहले तो असमर्थ होने के कारण ही हम आपका कोई उपकार नहीं कर सके और ऐश्वर्य के मद से अन्धे होकर ।।६३।।

मा राज्यश्रीरभूत्पुंसः श्रेयस्कामस्य मानद । स्वजनानुत बन्धून्वा न पश्यति ययान्धदृक् ।।६४।।

अन्वयः— हे मानद ! श्रेयस्कामस्य पुंसः राज्य श्रीः माभूत् यया अन्धदृक् स्वजनान् उत बन्धून् वा न पश्यति ।।६४।।

अनुवाद— हे दूसरों को सम्मान देने वाले नन्दजी कल्याणकामी पुरुष को राज्य श्री की प्राप्ति न हो । उस राज्य श्री के कारण मन्दाध बना हुआ पुरुष अपने बन्धुओं तथा स्वजनों को देख भी नहीं पाता है ।।६४।।

भावार्थ दीपिका

राज्यश्रीर्माभूत् । छान्दसोऽडागमः ।।६४।।

भाव प्रकाशिका

राज्य श्रीर्माभूत् में अट् का आगम वैदिक है ।।६४।।

श्रीशुक उवाच

एवं सौहृदशैथिल्यचित्त आनकदुन्दुभिः । रुरोद तत्कृतां मैत्रीं स्मरन्नश्रुविलोचनः ।।६५।।

अन्वयः— एवं सौहृद शैथिल्यचितः आनकदुन्दुभिः तत्कृतां मैत्रीं स्मरन् अश्रुविलोचनः रुरोद ।।६५।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार कहते-कहते वसुदेवजी का हृदय प्रेम से गद्‌गद हो गया । नन्दबाबा द्वारा किए गये उपकार का स्मरण करके उनकी आँखों में आसूँ भर गये और वे रोने लगे ।।६५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६५।।

नन्दस्तु सख्युः प्रियकृत्प्रेम्णा गोविन्दरामयोः । अद्य श्व इति मासांस्त्रीन्यदुभिर्मानितोऽवसत् ॥६६॥

अन्वयः— नन्दस्तु सख्युः रामकृष्णयोः प्रेम्णा यद्यश्वः इति यदुभिर्मानितः त्रीन् मासान् अवसत् ॥६६॥

अनुवाद— बाबा नन्द तो अपने मित्र वसुदेवजी, बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेम के कारण एवं यदुवंशियों से सम्मानित होकर वही तीन महीनों तक निवास किए ॥६६॥

भावार्थ दीपिका

अद्य श्व इति । प्रातनर्गमेऽद्यैवापराह्ने गम्यतामित्यपराह्ने निर्गमे श्वो गम्यतामिति पुनः पुनरेवं मानितः ॥६६॥

भाव प्रकाशिका

अद्य श्वः का अभिप्राय है कि प्रात:काल जाने के लिए तैयार होने पर लोग कहते है आज हीं दोपहर के पश्चात् जाइयेगा और अपराह्न में तैयार होने पर कल जाइयेगा इस तरह से कहते और सम्मानित होते हुए तीन महीने बीत गये ॥६६॥

ततः कामैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबान्धवः । परार्घ्याभरणक्षौमनानानर्घ्यपरिच्छदैः ॥६७॥
वसुदेवोग्रसेनाभ्यां कृष्णोद्धवबलादिभिः । दत्तमादाय पारिबर्हं यापितो यदुभिर्ययौ ॥६८॥

अन्वयः— ततः परार्ध्याभरणक्षौम नानानर्ध्य परिच्छदैः पूर्यमाणः सव्रजः सहबान्धवः वसुदेवो ग्रसेनाभ्यां कृष्णोद्धव बलादिभिः दत्तम् पारिवर्हम् आदाय यदुभिः यापितः ययौ ॥६७-६८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् बहुमूल्य आभूषण, रेशमी वस्त्र अनेक प्रकार की उत्तमोत्तम सामग्रियों और भोगों से नन्द बाबा को उनके व्रजवासी साथियों और बन्धु बान्धवों को वसुदेवजी महाराज उग्रसेन भगवान् कृष्ण बलरामजी उद्धवजी आदि के द्वारा प्रदत्त प्रीति दानों को लेकर विदा प्राप्त करके अपने व्रज के लिए चले गये ॥६७-६८॥

भावार्थ दीपिका

यापितो महासैन्येन प्रस्थापितः ॥६७-६८॥

भाव प्रकाशिका

यापितः अर्थात् अत्यन्त विशाल सेना के साथ विदा करने पर ॥६७-६८॥

नन्दो गोपाश्च गोप्यश्च गोविन्दचरणाम्बुजे । मनः क्षिप्तं पुनर्हर्तुमनीशा मथुरां ययुः ॥६९॥

अन्वयः— नन्दः गोपाश्च गोप्यश्च गोविन्दचरणाम्बुजे क्षिप्तं मनः पुनः हर्तुम् अनीशाः मथुरां ययुः ॥६९॥

अनुवाद— नन्दबाबा उनके गोप, और गोपियों ने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में लगे हुए अपने मन को वहाँ से लौटा लाने में असमर्थ होकर बिना मन के ही मथुरा चले गये ॥६९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६९॥

बन्धुषु प्रतियातेषु वृष्णयः कृष्णदेवताः । वीक्ष्य प्रावृषमासन्नां ययुर्द्वारवतीं पुनः ॥७०॥

अन्वयः— कृष्ण देवताः वृष्णयः बन्धुषु प्रतियातेषु आसन्नां प्रवृषम् वीक्ष्य पुनः द्वारवतीं ययुः ॥७०॥

अनुवाद— भगवान श्रीकृष्ण को ही एक मात्र अपना आराध्य मानने वाले यदुवंशी अपने सभी सम्बन्धियों के चले जाने पर और वर्षा ऋतु को सन्निकट में आने वाली देखकर पुनः द्वारकापुरी में चले गये ॥७०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७०॥

जनेभ्यः कथयांचक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् । यदासीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्संदर्शनादिकम् ॥७१॥

इति श्रीमद्भागवमते महापुराणे दशम स्कन्धे उत्तरार्धे तीर्थ यात्रानुवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

अन्वयः— यदुदेव महोत्सवम् तीर्थयात्रायां यत् सुहृत्संदर्शनादिकम् आसीत् तत् जनेभ्यः कथयाञ्चक्रुः ॥८४॥

अनुवाद— वहाँ जाकर उनलोगों ने वसुदेवजी के यज्ञ महोत्सव और तीर्थयात्रा काल में जो स्वजन संबन्धियों से मिलने आदि की बात थी उसको लोगों ने सुनाया ॥७१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के तीर्थयात्रा वर्णन नामक चौरासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८४॥

भावार्थ दीपिका

यदुदेवस्य वसुदेवस्य महोत्सवं यज्ञादिलक्षणं सुहृत्संदर्शनादिकं चेति ॥७१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

भाव प्रकाशिका

यदुदेव अर्थात् वसुदेवजी के यज्ञमहोत्सव को तथा स्वजन संबन्धियों से मिलने की बात को ॥७१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थदीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥८४॥

◆

पचासीवाँ अध्याय

श्रीभगवान् द्वारा वसुदेवजी को ब्रह्मज्ञान का उपदेश और देवकीजी के मृत छह पुत्रों को लौटा लाना

श्रीबादरायणिरुवाच

अथैकदात्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवन्दनौ । वसुदेवोऽभिनन्द्याह प्रीत्या संकर्षणाच्युतौ ॥१॥

अन्वयः— एकदा प्राप्तौ आत्मजौ कृत पादाभिवन्दनौ अभिनन्द्य वसुदेवः प्रीत्या सङ्कर्षणाच्युतौ आह ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— एक दिन प्रातः कालीन प्रणाम करने के लिए आये हुए अपने दोनों पुत्रों का अभिनन्दन करके वसुदेवजी ने प्रेम पूर्वक बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण से कहा ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चाशीतितमे रामकृष्णौ संप्रार्थितौ सुतौ । पित्रे ज्ञानमथो मात्रे मृतान्पुत्रानयच्छताम् । नन्दयित्वा कुरुक्षेत्रयात्रायां सुहृदो बहून् । तत्त्वज्ञानं ततः पित्रोरादिशन्मृतसूनुभिः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

पच्चासीवें अध्याय में वुसदेवजी द्वारा प्रार्थना किए जाने पर उनके दोनों पुत्रों बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण ने वसुदेवजी को तत्त्वोपदेश किया अपनी माता देवकी के मरे पुत्रों को उनको प्रदान किया । कुरुक्षेत्र की तीर्थ यात्रा में श्रीभगवान् अपने बहुत से सुहृत् संबन्धियों को आनन्दित करके अपने माता-पिता को मरे हुए पुत्रों को प्रदान किए ॥१॥

मुनीनां स वचः श्रुत्वा पुत्रयोर्धामसूचकम् । तद्वीर्यैर्जातविश्रम्भः परिभाष्याभ्यभाषत ॥२॥

अन्वयः— मुनीनां पुत्रयोः धाम सूचकम् वचः श्रुत्वा तद्वीर्यैः जात विश्रम्भः सः परिभाष्य अभ्यभाषत ॥२॥

अनुवाद— मुनियों के मुख से अपने दोनों पुत्रों के प्रभाव के विषय में बाते सुनकर वसुदेवजी को इस बात का विश्वास हो गया था कि ये दोनों साधारण पुरुष नहीं अपितु स्वयं भगवान् हैं । अतएव वे अपने दोनों पुत्रों को संबोधित करके कहे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

धाम प्रभावस्तत्सूचकम् । जातविश्रम्भ उत्पन्नविश्वासः । परिभाष्य संबोध्य ॥२॥

भाव प्रकाशिका

धाम अर्थात् प्रभाव सूचक । जात विश्रम्भः अर्थात् जिनको विश्वास हो गया था । परिभाष्य अर्थात् संबोधित करके॥२॥

कृष्ण कृष्ण महायोगिन्संकर्षण सनातन । जाने वामस्य यत्साक्षात्प्रधानपुरुषौ परौ ॥३॥

अन्वयः— हे महायोगिन् कृष्ण ! कृष्ण ! हे सनातन सनातन संकर्षण वाम अस्य यत् साक्षात् प्रधान पुरुषौ परौ जाने ॥३॥

अनुवाद— हे सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण और महायोगीश्वर सङ्कर्षण तुम दोनों सनातन हो, मैं जानता हूँ कि तुम दोनों सम्पूर्ण जगत् के साक्षात् कारण स्वरूप प्रकृति एवं पुरुष के भी नियामक हो परमेश्वर हो ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अस्य विश्वस्य यत्साक्षात्स्वरूपभूतं कारणं प्रधानपुरुषौ नाम परौ तयोरपि कारणत्वेनेश्वरौ च साक्षाद्वां युवामिति जाने॥३॥

भाव प्रकाशिका

इस सम्पूर्ण जगत् के साक्षात् कारण प्रकृति एवं पुरुष इन दोनों के नियामक होने के कारण आप दोनों साक्षात् ईश्वर हैं । इस बात को मैं जानता हूँ ॥३॥

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा । स्यादिदं भगवान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः ॥४॥

अन्वयः— इदं यत्र येन, यतः यस्य यस्मै यत् यथा यदा स्यात् साक्षात् प्रधान पुरुषेश्वरः भगवान् ॥४॥

अनुवाद— यह सम्पूर्ण जगत् जिस अधिष्ठान में जिसके द्वारा उत्पन्न किया जाता है एवं जिस सामग्री के द्वारा किया जाता है, तथा यह जगत् जिसका कार्य हैं एवं जिसके लिए है, जो कुछ भी जैसा है तथा जब होता है वह एक आप दोनों ही हैं । आप दोनों जगत् के साक्षात् कारण प्रकृति एवं पुरुष इन दोनों के नियामक होने के कारण ईश्वर हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

नन्विदं विश्वमनेकैः कारकैर्जायमानं कुतः प्रधानपुरुषात्मकं, कुतस्तरांआमावयोस्तत्कारणत्वेनेश्वरत्वं तत्राह-यत्रेति । यत्राधिकरणे । येन कर्त्रा करणेन च । यतः अपादानात् । यस्य संबन्धेन । षष्ठ्यर्थस्याकारकत्वेऽपि निमित्ततोक्ता । यस्मै संप्रदानाय । यद्यदिति । प्रयोज्यकर्तृकर्मकारके दर्शिते । ननु तयोर्नास्ति भेदः, यथोक्तम्-'करोति क्रियमाणेन न कश्चित्कर्मणा विना । भवत्यर्थस्य कर्ता च करोतेः कर्म जायते । तथा करोत्यर्थस्य यः कर्ता भवितुः स प्रयोजकः । भविता तमपेक्ष्याथ प्रयोज्यत्वं प्रपद्यते ।' इति च, सत्यम्, तथाप्यवस्थाभेदेन भेदो विवक्षितः । दृश्यते चावस्थाभेदः । तण्डुलानोदनं पचति, मृदं घटं करोतीति । तदेवं सप्तविभक्त्यर्था दर्शिताः । यथेति यदेति च क्रियाविशेषणभूतानामन्येषां चाव्ययानामर्थाः । स्यादिति क्रियापदार्थोपलक्षणम् । एवं सर्वं प्रपञ्चमनूद्य तत्कारणस्य भगवद्रूपतां विधत्ते-इदं साक्षादिति । प्रधानं भोग्यं पुरुषो भोक्ता तयोरीश्वरो भगवांस्त्वमेव साक्षादिति तयोरैक्यमभिप्रेत्यैकवचनम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि इस विश्व की उत्पत्ति तो अनेक कारकों से होती है । क्योंकि यह जगत् प्रकृति पुरुषात्मक है । माया पर्यन्त इन प्रकृति और पुरुष की हम इन दोनों के कारण होने के नियामक कैसे हो सकते हैं । इस पर वसुदेवजी ने यत्र इत्यादि श्लोक कहा जिसके आधार पर जिस कर्ता अर्थात् कारण के द्वारा जिस अपादान से जिसके संबन्ध से यद्यपि षष्ठी का अर्थ कारक नहीं होता है फिर भी उसके द्वारा यहाँ पर उससे निमित्त कारण को कहा गया है । जिस सम्प्रदान के लिए । यत् यत् के द्वारा प्रयोज्य कर्ता एवं कर्म को कहा गया है । यदि कहें कि प्रयोज्य कर्ता और कर्म कारक दोनों एक ही हैं, उनमें भेद नहीं है । जैसा कि कहा भी गया है कि करोति क्रियमाणेन० इत्यादि अर्थात् किए जाने वाले कर्म के बिना ही कोई किसी का निर्माण नही करता है । उस कार्य को करने वाला की जाने वाली क्रिया कर्म हो जाता है । यह भी कहा गया है **करोत्यर्थस्य० इत्यादि** की जाने वाली क्रिया का जो कर्ता होता है वह होने वाले प्रयोजक का कर्म बन जाता है तो ठीक है फिर भी एक ही वस्तु की अवस्था के भेद से उसकी भिन्नता बतलायी गयी है । जिस समय वह प्रयोजक के द्वारा प्रेरित होता है उस समय वह प्रयोजक का कर्म बनता है और जिस मय वह प्रयोजक के द्वारा प्रेरित होकर क्रिया का सम्पादन करता है, उस समय प्रयोज्य कर्ता होता है । एक ही वस्तु की भिन्न-भिन्न अवस्था देखी भी जाती है । जैसे **तण्डुलान् ओदनं पचति** । अर्थात् चावल से भात पकाता है । अर्थात् चावल भात होता है और उस चावल को भात बनाता है । यहाँ पर पूर्वावस्थावस्थित चावल में प्रयोज्य कर्मत्व है और उत्तरावस्था वाला चावल शुद्ध कर्म होता है । अथवा जैसे मृदं घटं करोति । में भी मिट्टी घट होती है, और मिट्टी को घट बनाता है । यहाँ मिट्टी की पूर्वावस्था प्रयोज्य कर्म है और बाद की अवस्था शुद्ध कर्म है । इस तरह से इस श्लोक में सातो विभक्तियो का अर्थ बतलाया गया है। यथा और यदा ये दोनों क्रिया विशेषण रूप दूसरे अव्ययों के अर्थ स्वरूप हैं । स्यात् यह क्रिया पदार्थ का उपलक्षण है । इस तरह सम्पूर्ण जगत् का अनुवाद करके वसुदेवजी सम्पूर्ण जगत् के कारण की भगवत् स्वरूपता का प्रतिपादन **इदं साक्षात् इत्यादि** से करते हैं । प्रधान भोग्य है और पुरुष उसका भोक्ता उन दोनों का नियामक होने के कारण आप दोनों ही भगवान् है । **प्रधान पुरुषेश्वरः भगवान्** में एक वचनान्त प्रयोग का अभिप्राय है कि आप दोनों देखने में श्रीकृष्ण और बलराम रूप से अलग-अलग हैं किन्तु वस्तुतः आप दोनों एक हैं ।।४।।

एतन्नानाविधं विश्वमात्मसृष्टमधोक्षज । आत्मनानुप्रविश्यात्मन्प्राणो जीवो बिभर्ष्यज: ।।५।।

अन्वयः—हे अधोक्षज हे अज, हे आत्मन् एतत् नानाविधम् आत्मसृष्टम् विश्वं आत्मनानुप्रविश्य प्राणो जीवो विभर्षि।।५।।

अनुवाद—हे इन्द्रियातीत हे जन्म तथा अस्तित्व आदि भाव विकारों से रहित ! हे परमात्मन् ! इस चित्र विचित्र की आपने ही रचना की है और इस सम्पूर्ण जगम् में आप ही आत्मा रूप से प्रवेश करके प्राण (क्रिया शक्ति) और जीव (ज्ञान शक्ति) के रूप में इस जगत् का पालन पोषण करते हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

किंच धारणपोषणकर्ताऽपि त्वमेवेत्याह एतदिति । हे आत्मन् प्राणः क्रियाशक्तिर्जीवो ज्ञानशक्तिश्च संस्त्वमेव बिभर्षि।।५।।

भाव प्रकाशिका

वसुदेवजी कहते है कि इस जगत् के धारण कर्ता और पोषण कर्ता भी आप ही है । हे सम्पूर्ण जगत् की आत्मन् इस जगत् के प्राण (क्रिया शक्ति) और जीव (ज्ञान) का पालन पोषण भी आप ही करते हैं ।।५।।

प्राणादीनां विश्वसृजां शक्तयो याः परस्य ताः । पारतन्त्र्याद्वैसादृश्याद्द्वयोश्चेष्टैव चेष्टताम् ।।६।।

अन्वयः— चेष्टताम् विश्व सृजाम् प्राणादीनां याः शक्तयः ता परस्य पारतन्त्र्यात् वैसादृश्यात् द्वयोः चेष्टैव ।।६।।

अनुवाद— क्रियाशक्ति प्रधान प्राण आदि में जगत् की वस्तुओं की सृष्टि करने का जो सामर्थ्य है वह उनका नहीं बल्कि वह आपका है, क्योंकि वे आपके समान चेतन नहीं अचेतन हैं, स्वतंत्र नहीं परतन्त्र हैं। अतएव उन चेष्टाशील प्राण आदि में केवल चेष्ट होती है, किन्तु उनमें चेष्टा करने की शक्ति नहीं है वह शक्ति तो आपकी है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

ननु प्राणादीनां विचित्रशक्तीनां कारणत्वावगमात्कथं परमेश्वरस्यैव कारणत्वेन सर्वात्मकत्वमुच्यत इत्याशङ्क्य प्राणादिशक्तयोऽपि तस्यैवेत्याह-प्राणादीनामिति । प्राणः सूत्रं तदादीनां विश्वसृजां विश्वकारणानां याः शक्तयस्ताः परस्य परमकारणस्येश्वरस्यैव । कुतः। पारतन्त्र्यात् । यथा वेधशक्तिर्न बाणस्य, अपि तु पुरुषस्य तद्वदित्यर्थः । ननु भगवतः प्राणादिवर्गस्य च स्वातन्त्र्यमेव किं न स्यादत आह-वैसादृश्याद्द्वयोरिति । चेतनाचेतनत्वेन विसदृशत्वाद्द्वयोः । अचेतनप्राणादिवर्गस्य चेतनपारतन्त्र्यमेव युक्तमित्यर्थः; । यद्वा प्राणादिषु द्वयोर्द्वयोरेव तावद्विसदृशत्वं विरुद्धक्रियाकारित्वात्किं पुनर्बहूनाम् । तस्मादेकेन सर्वज्ञेन सर्वशक्तिनाऽधिष्ठितानामेव विशिष्टकार्यारम्भकत्वं युक्तं न स्वतन्त्राणामिति । तथा चोक्तम्- 'यदैते संहता भावा भूतेन्द्रियमनोगुणाः । यदायतननिर्माणे न शेकुर्ब्रह्मवित्तम् । तदा संहत्य चान्योन्यं भगवच्छक्तिचोदिताः । सदसत्त्वमुपादाय चोभयं ससृजुर्ह्यदः ।' इति । तथा-'नानात्वात्स्वक्रियाऽनीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयो विभुम्' इत्यादि । ननु प्राणादीनां क्रियाकारित्वं शक्त्यभावे कुतः स्यादत आह-चेष्टैव चेष्टतामिति । चेष्टमानानामेषां चेष्टैव, न तु शक्तिः । यथा वायोः शक्त्या तृणादीनां चलनम्। यथा वा पुरुषस्य शक्त्या शराणां वेग इति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि प्राण आदि में विचित्र शक्तियाँ देखी जाती है अतएव प्राणादि के ही कारणत्व की प्रतीति होने पर भी आप परमात्मा के ही कारण होने से उनके ही सर्वात्मकत्व का प्रतिपादन आप कैसे करते है ? तो इस प्रकार की आशङ्का करके श्रीवसुदेव जी **प्राणादीनाम्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहते है- प्राणों आदि में जो विचित्र शक्ति देखी जाती है, वह भी उनकी नहीं अपितु परमात्मा की है । प्राण अर्थात् सूत्रात्मा आदि जो विश्व की सृष्टि करने वाले सम्पूर्ण जगत् के कारण हैं उनमें जो शक्तियाँ हैं वे शक्तियाँ परम कारण ईश्वर की ही हैं, क्योंकि वे परतन्त्र हैं। जिस तरह से शत्रु को बेध देने की शक्ति बाण की नहीं है अपितु वह शक्ति तो बाण का प्रयोग करने वाले पुरुष की होती है । उस तरह प्राणों के नियामक परमात्मा की शक्ति है प्राणों में । यदि कहें प्राणादिवर्ग को परमात्मा से स्वतंत्र क्यों न माना जाय । जिस तरह परमात्मा स्वतन्त्र हैं उसी तरह प्राणों को भी स्वतंत्र मान लेना चाहिए । तो इस पर वसुदेव जी कहते हैं कि प्राण और ईश्वर में विसदृशता है । ईश्वर चेतन हैं और प्राण अचेतन हैं । अतएव दोनों में विसादृश्य है । अतएव अचेतन प्राणादि वर्ग का चेतन परमात्मा के अधीन ही रहना उचित है । अथवा प्राणादि में दो-दो में ही सादृश्य का अभाव है । वे परस्पर में विरुद्ध क्रिया करते हैं । तो फिर अनेक प्राणों में विसदृशता है इस विषय में क्या कहना है । अतएव केवल सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान परमात्मा के द्वारा अधिष्ठित होकर ही वे प्राण विचित्र क्रियाओं को करते हैं यही मानना उचित है, स्वतंत्र रहकर नहीं। **तथाचोक्तम्०** कहा भी गया है । हे सर्वश्रेष्ठ वेदज्ञ जब भूत, इन्द्रियाँ, मन तथा ये सभी भाव पदार्थ एक साथ मिलकर जिस अपने आश्रय भूत शरीर का निर्माण करने में असमर्थ हो गये । तब परमात्म प्रदत्त शक्ति से प्रेरित होकर परस्पर में एक दूसरे से मिलकर जड़ एवं चेतन अथवा सत् एवं असत् द्रव्यों को लेकर उन सबों ने दोनों प्रकार की (जड़ एवं चेतन) पदार्थों की सृष्टि की । **तथा० इन्द्रियादि** यह भी कहा गया कि अनेक होने के कारण अपनी क्रिया को करने में असमर्थ प्राणादि ने हाथ जोड़कर श्रीभगवान् से प्रार्थना की । यदि कहें प्राणादि में यदि क्रिया करने की शक्ति नहीं है तो फिर वे प्रणनादि क्रिया को कैसे करते हैं? इस पर श्रीवसुदेवजी ने कहा चेष्टा करने वाले उन प्राणादि को उनकी केवल चेष्टाएँ ही होती हैं उनमें शक्ति नहीं है। जैसे वायु की शक्ति से तृण आदि हिलते डुलते

हैं अथवा बाण चलाने वाले पुरुषों की शक्ति से ही बाणों में वेग उत्पन्न होता है। उसी तरह परमात्मा की शक्ति से प्राणादि में क्रिया होती है ॥६॥

कान्तिस्तेजः प्रभा सत्ता चन्द्राग्न्यर्कर्क्षविद्युताम् । यत्स्थैर्यं भूभृतां भूमेर्वृत्तिर्गन्धोऽर्थतो भवान् ॥७॥

अन्वयः— चन्द्राग्न्यर्कर्क्ष विद्युताम् कान्तितेजः प्रभा सत्ता यत् भूभृतां स्थैर्य; भूमेः वृत्तिः गन्धः अर्थतः भवान् ॥७॥

अनुवाद— प्रभो ! चन्द्रमा की कान्ति, अग्नि का तेज, सूर्य की प्रभा, नक्षत्र और विद्युत् आदि का स्फुरण रूप से सत्ता, पर्वतों की सत्ता पृथिवी की साधारण शक्ति रूप वृत्ति और गन्ध रूप गुण ये सभी वस्तुतः आप ही हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

पारतन्त्र्यमेव प्रपञ्चयति-कान्तिरिति पञ्चभिः । चन्द्रस्य कान्तिः । अग्नेस्तेजः । अर्कस्य प्रभा । ऋक्षविद्युतां सत्ता स्फुरणमात्रेण सत्त्वम् । अर्थतो वस्तुतो भगवान् । तथा च श्रुतिः-'न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' इति । स्मृतिश्च- 'यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ।' इति । भूमेर्वृत्तिः प्राणिनामाधारत्वेन वर्तनं गन्धश्च भवान् । तवैव शक्तिरित्यर्थः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

सभी जड़ वस्तुओं के पारतन्त्र्य का ही प्रतिपादन **कान्ति० इत्यादि** पाँच श्लोकों से करते हैं। चन्द्रमा की कान्ति, अग्नि का तेज, सूर्य की प्रभा, नक्षत्रों तथा विद्युतों में स्फुरण रूप से सत्ता वास्तविक रूप से आप ही है। श्रुति भी कहती है। **न तत्र सूर्यो इत्यादि** श्रीभगवान् की नित्य विभूति में न तो वहाँ सूर्य प्रकाशित होते हैं न चन्द्रमा न तारे, जब वहाँ ये बिजलियाँ भी नहीं चमकती हैं तो फिर अग्नि कहाँ से प्रकाशित होगी। उन श्रीभगवान् के प्रकाश से ही ये सभी प्रकाशित होते है, उनके ही प्रकाश से सबकुछ प्रकाशित होता है। स्मृति भी कहती है- **यदादित्यगतम्० इत्यादि** अर्थात् जो सूर्य के प्रकाश से सम्पूर्ण जगत् प्रकाशित होता है, उस सूर्य, चन्द्रमा, और अग्नि में रहने वाले तेज को भी मेरा ही तेज जानो। भूमेर्वृत्ति अर्थात् प्राणियों के आधार रूप होना तथा पृथिवी का गन्ध भी आप ही हैं। वह सारी शक्ति आप की ही है ॥७॥

तर्पणं प्राणनमपां देव त्वं ताश्च तद्रसः । ओज सहो बलं चेष्टा गतिर्वायोस्तवेश्वर ॥८॥

अन्वयः— हे देव अपां तर्पणम् प्राणनम् ताः च तद्रसः त्वम् हे ईश्वर वायोः ओजः सहः बलं चेष्टा तव ॥८॥

अनुवाद— हे देव जल में रहने वाली उस तृप्त करने जीवन देने और एवं शुद्ध करने की शक्ति आप ही हैं। हे प्रभो ! इन्द्रिय शक्ति, अन्तःकरण की शक्ति, उसका हिलना डोलना आदि वायु की ये सब शक्तियाँ आप की ही है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

किंच हे देव, अपां तर्पणं तृप्तिजनकत्वं प्राणनं जीवनहेतुत्वं ता आपश्च तासां रसश्च त्वमेव । किंच वायोरोजः सह आदि तवैव शक्तिः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च हे देव जल में रहने वाली तृप्त करने की शक्ति, जीवन दान करने की शक्ति तथा जल और जल में रहने वाला रस नामक गुण भी आप ही हैं। और वायु में रहने वाली इन्द्रिय शक्ति कि शरीर शक्ति तथा चेष्टा करने की शक्ति ये सबके सब आपकी ही शक्ति है ॥८॥

दिशां त्वमवकाशोऽसि दिशः खं स्फोट आश्रयः । नादो वर्णस्त्वमोंकार आकृतीनां पृथक्कृतिः॥९॥

अन्वयः— त्वं दिशः दिशाम् अवकाशोऽसि खम् स्फोटः आश्रयः नादो, वर्णः त्वम् ओङ्कारः आकृतीनां पृथक् कृतिः॥९॥

अनुवाद— हे प्रभो ! दिशाएँ, दिशाओं में रहने वाला अवकाश आकाश, उसका आश्रयभूत स्फोट अर्थात् शब्द तन्मात्रा या परावाणी, नाद अर्थात् पश्यन्ती, ओङ्कार मध्यमा तथा वर्ण एवं पदार्थों को अलग-अलग निर्देश करने वाला पद रूप वैखरी वाणी भी तुम ही हो ॥९॥

भावार्थ दीपिका

दिशामुपाधिकृताकाशप्रदेशानामवकाशो दिशश्च त्वम् । खं सामान्याकाशस्तदाश्रयः स्फोटश्च शब्दतन्मात्रं परावस्था वागित्यर्थः । नादः पश्यन्ती । ओङ्कारो मध्यमा । वर्णश्चाकृतीनां पदार्थानां पृथक्कृतिः पृथक्करणमभिधानं यस्मात्तत्पदम् । वर्णपदाद्यात्मिका वैखरी च त्वमित्यर्थः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

दिशाएँ अर्थात् उपाधि जन्य आकाश प्रदेशों का जो अवकाश तथा दिशाएँ भी आप ही हैं । सामान्य आकाश और आकाश के आश्रयभूत स्फोट अर्थात् शब्दतन्मात्रा यानी पारावस्थावस्थित वाणी, नाद अर्थात् पश्यन्ती वाणी, ओङ्कार अर्थात् मध्यमावाणी, वर्ण (अधार) एवं पदार्थों का अलग-अलग निर्देश करने वाले पदरूप वैखरी वाणी भी आप ही हैं ॥९॥

इन्द्रियं त्विन्द्रियाणां त्वं देवाश्च तदनुग्रहः । अवबोधो भवान्बुद्धेर्जीवस्यानुस्मृतिः सती ॥१०॥

अन्वयः— इन्द्रियाणांत्वम्इन्द्रियम् देवा तदनुग्रह च भवान् बुद्धेः अवबोधः जीवस्य अनुस्मृतिः सती ॥१०॥

अनुवाद— इन्द्रियाँ और इन्द्रियों की विषय प्रकाशन की शक्ति तथा इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता आप ही हैं बुद्धि की निश्चयात्मिका शक्ति और जीव की भी विशुद्ध स्मृति आप ही है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्रियाणामिन्द्रियं विषयप्रकाशनशक्तिर्देवाश्चेन्द्रियाधिष्ठातारस्तदनुग्रहस्तेषामधिष्ठानशक्तिश्च त्वम् । अवबोधोऽध्य- वसायशक्तिः । अनुस्मृतिः प्रतिसंधानशक्तिः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्रियों की विषय प्रकाशन की शक्ति, इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता तथा उन देवताओं की अधिष्ठातृ शक्ति भी आप ही है । अवबोध अर्थात् निश्चयात्मिका शक्ति एवं अनुस्मृति अर्थात् विशुद्ध स्मृति भी आप ही है ॥१०॥

भूतनामसि भूतादिरिन्द्रियाणां च तैजसः । वैकारिको विकल्पानां प्रधानमनुशायिनाम् ॥११॥

अन्वयः— भूतानां भूतादिः इन्द्रियाणां तैजसः विकल्पानां वैकारिकः अनुशायिनाम् प्रधानम् ॥११॥

अनुवाद— आप भूतों के कारण भूतादि (तामस) अहङ्कार इन्द्रियो के कारण भूत तैजस (राजस) अहङ्कार एवं इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं में उनका करण सात्त्विक अहङ्कार तथा जीवों के आवागमन के कारण प्रधान (माया) भी आप ही है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

भूतानां कारणं भूतादिस्तामसोऽहङ्कारस्त्वमसि । इन्द्रियाणां कारणं तैजसो राजसोऽहङ्कारस्त्वम् । विविधमधिदैवाध्यात्माधिभूतभेदेन विकल्प्यन्त इति विकल्पा देवास्तेषां कारणं वैकारिकः सात्त्विकोऽहङ्कारश्च त्वम् । अनुशायिनां जीवानां संसारकारणं प्रधानं त्वम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

भूतों के कारण भूतादि (तामस) अहङ्कार आप ही हैं । इन्द्रियों के कारण तैजस (राजस) अहङ्कार भी आप ही

है। इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं के भी कारण सात्विकाहङ्कार आप ही है एवं संसारी जीवों के आवागमन के कारण माया भी आप ही है ॥११॥

नश्वरेष्विह भावेषु तदसि त्वमनश्वरम् । यथा द्रव्यविकारेषु द्रव्यमात्रं निरूपितम् ॥१२॥

अन्वयः— यथा द्रव्यविकारेषु द्रव्यंनिरूपितम् इह नश्वरेषु भावेषु तत् अनश्वरम् असि ॥१२॥

अनुवाद— जिस तरह मिट्टी आदि द्रव्यों के विकारभूत घट शराब आदि में निरन्तर वर्तमान रहने वाली मृत्तिका आदि होती है उसी तरह जितने भी विनाशवान् पदार्थ हैं उनमें अविनाशी कारण रूप से आप ही हैं वस्तुत: वे आपके ही स्वरूप है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

अपि च नश्वरेषु नाशशीलेष्विहैतेषु भावेषु यदनश्वरमवशिष्यमाणं रूपं तत्त्वमसि । द्रव्यविकारेषु मृत्सुवर्णादिकार्येषु घटकुण्डलादिषु नश्वरेषु च द्रव्यमात्रं मृत्सुवर्णादिमात्रमनश्वरं यथा तद्वत् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च इस संसार में जो नश्वर पदार्थ हैं उनमें रहने वाले निरन्तर बने ही रहने वाले अनश्वर पदार्थ आप ही है। मिट्टी एवं सुवर्ण आदि द्रव्यों के विकार भूत घट कुण्डल नश्वर पदार्थों में मिट्टी और सुवर्ण आदि के समान अनश्वर आप ही हैं ॥१२॥

सत्त्वं रजस्तम इति गुणास्तद्वृत्तयश्च याः । त्वय्यद्धा ब्रह्मणि परे कल्पिता योगमायया ॥१३॥

अन्वयः— सत्त्वं राजस्तम इति गुणाः याः तद्वृत्तयश्च अद्धा योगमायया त्वयि परे ब्रह्मणि कल्पिताः ॥१३॥

अनुवाद— सत्त्व रज एवं तम ये तीनों गुण और उनकी जो वृत्तियाँ (परिणाम) महत् तत्त्व आदि वे सबके सब योग माया के द्वारा आपमें ही कल्पित हैं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

ननु त्रिगुणात्मककार्यरूपोऽपि त्वमित्युक्तत्वात्कथमनश्वरत्वं तत्राह-सत्त्वमिति । तद्वृत्तयस्तत्परिणामाश्च महदादयः । अद्धा साक्षात् त्वयि परे ब्रह्मणि कल्पिताः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि आप पहले कह चुके हैं कि त्रिगुणात्मक कार्य रूप आप ही हैं ऐसी स्थिति में मुझे अनश्वर कैसे कहा जा सकता है ? इस पर श्रीवसुदेवजी ने **सत्त्वम्० इत्यादि** श्लोक कहा **तदवृत्तयः** अर्थात् गुणों के परिणाम महत् तत्त्व आदि भी आप साक्षात् परब्रह्म में ही योगमाया के द्वारा कल्पित हैं ॥१३॥

तस्मान्न सन्त्यमी भावा यर्हि त्वयि विकल्पिताः । त्वं चामीषु विकारेषु ह्यन्यदा व्यावहारिकः॥१४॥

अन्वयः— तस्मात् अमी भावा न सन्ति यर्हि त्वयि विकल्पिताः त्वं च अमीषु विकारेषु अन्यदा व्यावहारिकः ॥१४॥

अनुवाद— अतएव ये जितने भी अस्ति, जन्म आदि भाव विकार है वे आप में विल्कुल नहीं हैं क्योंकि इन सबों की कल्पना योगमाया ने आपमें कर दिया । ऐसी स्थिति में आप इन सबों में अनुगत प्रतीत होते हैं। जब इन सबों की निवृत्ति हो जाती है उस समय आप निर्विकल्प परमार्थ स्वरूप रह जाते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तस्मान्न सन्तीति । नन्वसतां कथं प्रतीतिरत आह-यर्हीति । यदा विकल्पितास्तदैव प्रतीतिमात्रेण त्वयि सन्ति, त्वं चामीषु तदैव कारणतयानुगतः । अन्यदा त्वव्यावहारिको विकल्पकस्त्वमेवावशिष्यस इत्यर्थः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

तस्मात्० इत्यादि श्लोक में कहा गया है कि इन असत् पदार्थों की प्रतीति कैसे होती है, इस पर **यर्हि० इत्यादि** कहते हैं जब ये आपमें कल्पित होते हैं, उसी समय ये आपमें प्रतीत होते है उस समय आप भी इन सभी पदार्थों में अनुगत रूप से प्रतीत होते है। जिस समय निवृत्त हो जाते हैं उस समय तो अव्यावहारिक विकल्प करने वाले आप ही केवल बच जाते हैं ॥१४॥

गुणप्रवाह एतस्मिन्नबुधास्त्वखिलात्मनः । गतिं सूक्ष्मामबोधेन संसरन्तीह कर्मभिः ॥१५॥

अन्वयः— एतस्मिन् गुण प्रवाहे अबुधाः अखिलात्मन सूक्ष्मां गतिम् अबोधेन कर्मभिः संसरन्ति ॥१५॥

अनुवाद— यह सम्पूर्ण जगत् सत्त्व रज एवं तम इन तीनों गुणों का प्रवाह है जो अज्ञानी जीव सम्पूर्ण जगत् की आत्मा आपकी सूक्ष्म गति को नहीं जान पाने के कारण अपने किए गये कर्मों के कारण इस संसार में संसरण करते रहते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

एवंरूपत्वादज्ञाननिबन्धनश्च संसार इत्याह-गुणप्रवाह इति । सूक्ष्मां निष्प्रपञ्चां गतिमबुधा अविद्वांसः । अबुद्धेति वा पाठः। अतोऽबोधेन देहाभिमानेन कृतैः कर्मभिः संसरन्तीति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार का होने के कारण संसार तो अज्ञान के कारण है। इस बात को वसुदेवजी ने गुण प्रवाह इत्यादि श्लोक से कहा आपकी प्रपञ्च रहित गति को नहीं जानने के कारण देहाभिमान के कारण अपने पूर्व कृत कर्मों के फल स्वरूप संसार में संसरण करते रहते हैं ॥१५॥

यदृच्छया नृतां प्राप्य सुकल्पामिह दुर्लभाम् । स्वार्थे प्रमत्तस्य वयो गतं त्वन्माययेश्वर ॥१६॥

अन्वयः— हे ईश्वर ! यदृच्छया दुर्लमा सुकल्पाम् नृतां प्राप्य त्वन्मायया स्वार्थे मोहितः प्रमत्तस्य वयं गतः ॥१६॥

अनुवाद— हे परमेश्वर ! मेरे शुभ प्रारब्ध के अनुसार इन्द्रियादि के सामर्थ्य से युक्त अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य का शरीर प्राप्त हुआ किन्तु आपकी माया से मोहित होने के कारण मैं अपने स्वार्थ परमार्थ के विषय में असावधान हो गया और मेरी सारी आयु ऐसे ही बीत गयी ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

एवं तयोस्तत्त्वं निरूप्य तदप्राप्त्या शोचति-यदृच्छयेति । नृतां मनुष्यताम् । सुकल्पां पटुतरेन्द्रियाम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से उन दोनों के स्वरूप का निरूपण करके उसकी प्राप्ति नहीं होने के कारण श्रीवसुदेवजी शोक करते हुए **यदृच्छया इत्यादि** श्लोक से कहते है। नृताम् अर्थात् मनुष्यत्व को। सुकल्पाम् अर्थात् इन्द्रियों के सामर्थ्य से सम्पन्न ॥१६॥

असावहं ममैवैते देहे चास्यान्वयादिषु । स्नेहपाशैर्निबध्नाति भवान्सर्वमिदं जगत् ॥१७॥

अन्वयः— देहे असौ अहम् अस्यान्वयादिषु च ऐते ममैव इति भवान् इदं जगत् स्नेहपाशैः निबध्नाति ॥१७॥

अनुवाद— प्रभो यह शरीर मैं हूँ और इस शरीर के सबन्धी मेरे हैं इस अहन्त्व एवं ममत्व रूप स्नेह के पाश से आप इस सम्पूर्ण जगत् को बाँधे हुए हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अहो किमिति प्रमत्तोऽसि, त्वया बहुभिः पाशैर्निबद्धत्वादित्याह-असावहमिति । देहे अस्य देहस्यान्वयादिषु पुत्रादिषु च ममैवैत इति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि आप कैसे बन्धन में बँधे है, तो इसका उत्तर है कि आपने अनेक प्रकार के पाशें से जो बाँध रखा है । इस बात को वसुदेवजीने **असौ० इत्यादि** श्लोक से कहा- देह में मैं देह हूँ इस प्रकार के अहन्त्व बुद्धि के कारण और देह से संबन्ध रखने वाले पुत्रादि में ये सब मेरे हैं इस तरह से ममत्व रूपी पाश से आपने बाँध रखा है ।।१७।।

युवां न नः सुतौ साक्षात्प्रधानपुरूषेश्वरौ । भूभारक्षत्रक्षपण अवतीर्णौ तथात्थ ह ।।१८।।

अन्वयः— युवां न सुतौ न साक्षात् प्रधान पुरुषेश्वरौ भूभारक्षपणे अवतीर्णौ तथा आत्थ ।।१८।।

अनुवाद— आप दोनों हमलोगों के पुत्र नहीं है । अपितु आपदोनों साक्षात् प्रकृत और पुरुष के नियामक ईश्वर हैं । पृथिवी पर भार बने हुए क्षत्रियों का विनाश करने के लिए आप दोनों अवतरित हुए है । ऐसा आपने ही कहा भी है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

अहो त्वत्पुत्रयोरावयोः किमिदमारोप्यते अत आह-युवामिति। भूभारक्षत्रक्षपणार्थमवतीर्णौ तथा ह निश्चितमात्थ कथयसि।।१८।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि हमदोनों तो आपके पुत्र हैं हम दोनों पर इस तरह से आप परमेश्वरत्व का आरोप क्यों करते हैं । इस पर वसुदेवजी ने **युवाम् इत्यादि** श्लोक को कहा । आप दोनों पृथिवी पर भार बने हुए क्षत्रियों का विनाश करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं । ऐसा आप स्वयम् कहते हैं ।।१८।।

तत्ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविन्दमापन्नसंसृतिभयापहमार्तबन्धो ।
एतावताऽलमलमिन्द्रियलालसेन मर्त्यात्मदृक् त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः ।।१९।।

अन्वयः— हे अरण तत् अहम् अद्यते आपन्नंसस्रृतिभयापहम् पदारविन्दम् अस्मि हे आर्तबन्धो एतावता इन्द्रियलालसेन अलम् यत् मर्त्यात्मदृक् परे त्वयि अपत्य बुद्धि ।।१९।।

अनुवाद— हे शरणागत रक्षण परायण प्रभो ! आज मैं आपके चरणों की शरणागति करता हूँ । हे अर्तबन्धों भगवन् आपके ये चरण संसार के भय से भयभीत जीवों के भय को दूर करने वाले हैं अब बहुत हो गयी इन्द्रियों की लोलुपता इसी के कारण मैंने इस मृत्यु के ग्रास बनने वाले इस शरीर में आत्मबुद्धि कर ली और आप पर मात्मा को मैं ने अपना पुत्र मान लिया ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मादरणं शरणमापन्नानां संसृतिभयमपहन्तीति तथा तत् । ननु त्वमतिसुखी, वृथा किं निर्विद्यसेऽत आह-एतावतेति। इन्द्रियलालसेनेन्द्रियार्थतृष्णया । यद्येनेन्द्रियलालसेन मर्त्ये शरीरे आत्मदृगात्मबुद्धिरहं त्वयि च परे परमेश्वरेऽपत्यबुद्धिरस्मि तेनालमलं पर्याप्तमिति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

श्रीवसुदेवजी कहते हैं कि हे शरणागत रक्षण परायण प्रभो अपने शरणागत जीवों के संसारभय को विनष्ट

करने वाले आपके चरण कमलों की मैं शरणागति करता हूँ । यदि आप कहें कि आप तो
आप इस तरह निर्वेद करते हैं । इस पर श्रीवसुदेवजी ने कहा अब मैंने इन्द्रियों की लोलुप
कारण मैंने अपने शरीर में ही आत्मबुद्धि कर ली और आप परमात्मा को ही अपना पुत्र मा
इन्द्रियों के भोगों को नहीं भोगना चाहता हूँ ।।१९।।

सूतीगृहे ननु जगाद भवानजो नौ संजज्ञ इत्यनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै
नानातनूर्गगनवद्विदधज्जहासि को वेद भूम्न उरुगाय विभूतिमाया

अन्वयः— ननु भवान् सूती गृहे नौ जगाद अजः, अनुयुगं निजधर्मगुप्त्यै संजज्ञे । गगनवत्
हे उरुगाय ! भूम्नः विभूतिमायाम् को वेद ।।२०।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आपने हमदोनों से आपने प्रसूती गृह में ही कहा था कि यद्य
आप दोनों के ही माध्यम से प्रत्येक युग में अपने ही द्वारा बनायी गयी धर्म की मर्यादा की र
ग्रहण करता हूँ । हे उरुगाय प्रभो सबलोग आपकी ही कीर्ति का गान करते है । हे अनन्त आ
को कौन जान सकता है ? आप आकाश के ही समान अनेक शरीरों को धारण करते हैं
करते हैं । अतएव आपकी माया के रहस्य को कोई भी नहीं जान सकता है ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

ननु कुत एतदहं परमेश्वर इति तत्राह-सूतीगृहे इति । नौ अवयोः । अनुयुगं प्रतियुगम्
युग्मम्। यदा कश्यपोऽदितिश्चेति युग्मम् । अधुना वसुदेवो देवकीति युग्मम् । एवं हि प्रतियुग्मम
भवान्नूनं जगाद । नन्वन्योऽसौ चतुर्भुजो देव इति तत्राह-नाना तनूरिति । गगनवदसङ्ग एव त्वम् ।
मायां को वेदेति ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि मैं परमेश्वर कैसे हो सकता हूँ । इस पर वसुदेवजी ने **सूतीगृहे० इत्या**
प्रसूती गृह में ही हमदोनों से कहे थे, कि यद्यपि मैं अजन्मा हूँ फिर भी प्रत्येक युग में आप दोनों के
सुतपा और पृश्नि थे, उसके पश्चात् जब आप दोनों कश्यप और अदिति हुए और इस समय जब
देवकी के जोड़े हैं । इस तरह मैं अवतार ग्रहण करता हूँ । यह आपने ही कहा था । यदि कहें कि
इस पर वसुदेवजी ने कहा **नानातनूः इत्यादि** आप तो आकाश के समान असङ्ग हैं। आप सर्वव्
माया के रहस्य को कोई नहीं जान सकता है ।।२०।।

श्रीशुक उवाच

आकर्ण्येत्थं पितुर्वाक्यं भगवान्सात्वतर्षभः । प्रत्याह प्रश्रयानम्रः प्रहसन् श्ल

अन्वयः— पितुर्वाक्यम् इत्थम् आकर्ण्य सात्वतर्षभः भगवान् प्रहसन् प्रश्रयानम्र श्लक्ष्

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— अपने पिता श्रीवसुदेवजी की इस तरह की बातें सुनकर यदुवंश शिरोमणि
लगे । वे अत्यन्त नम्रता पूर्वक मधुर वाणी से कहने लगे ।।२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२१।।

श्रीभगवानुवाच

वचो वः समवेतार्थं तातैतदुपमन्महे । यन्नः पुत्रान्समुद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः ।।२२।।

अन्वयः— हे तात एतत् वः वचः समवेतार्थं मन्महे यत् नः पुत्रान् समुदिश्य, तत्वग्रामः उदाहृतः ।।२२।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे पिताजी आपकी एक-एक बात को हम युक्ति-युक्त मानते हैं, क्योंकि आपने हम पुत्रों को उद्देश करके तत्त्व समूह का उपदेश दिया ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

उपमन्महे उपमन्यामहे । समुद्दिश्य विषयीकृत्य । तत्त्वग्रामस्तत्त्वसमूहः । उदाहृतः सम्यङ्निरूपितः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

उपमन्महे अर्थात् हम मानते हैं । समुद्दिश्य अर्थात् विषय बनाकर । **तत्त्वग्रामः** अर्थात् तत्त्व समूह । उदाहृतः अर्थात् अच्छी तरह से निरूपण किया है ।।२२।।

अहं यूयमसावार्य इमे च द्वारकौकसः । सर्वेऽप्येवं यदुश्रेष्ठ विमृश्याः सचराचरम् ।।२३।।

अन्वयः— आर्य अहम्, यूयम् असौ इमे द्वारकौकसः च हे यदुश्रेष्ठ ! सचराचरम् सर्वेऽप्येवं विमृश्याः ।।२३।।

अनुवाद— हे पिताजी, मैं आप सब भैया बलरामजी तथा ये सभी द्वारकावासी हे यदुवंशीयों में श्रेष्ठ पिताजी जगत् के सभी चराचर जीवों को इसीतरह ब्रह्मरूप समझना चाहिए ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

इमामेव दृष्टिं सर्वत्र विधत्स्वेत्याह-अहमिति । एवं विमृश्याः ब्रह्मत्वेनैवान्वेषणीयाः । किंच सचराचरं जगदपि ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा इसी तरह से ब्रह्मदृष्टि सबों में करना चाहिए । **एवं विमृश्याः** अर्थात् ब्रह्म रूप से अन्वेषित करना चाहिए । यही नहीं सम्पूर्ण चराचर जगत् में भी ब्रह्मदृष्टि करनी चाहिए ।।२३।।

आत्मा ह्येकः स्वयंज्योतिर्नित्योऽन्यो निर्गुणो गुणैः । आत्मसृष्टैस्तत्कृतेषु भूतेषु बहुधेयते ।।२४।।

अन्वयः— आत्मा नित्यः स्वयं ज्योतिः नित्यः निर्गुणः गुणै अन्यः आत्मसृष्टेषु भूतेषु तत्कृतेषु च बहुधा ईयते।।२४।।

अनुवाद— आत्मा तो एक है, स्वयं प्रकाश नित्य निर्गुण और गुणों से भिन्न होने पर भी अपने से ही भूतों की सृष्टि कर लेता है । उन भूतों में तथा भूतों के कार्यभूत शरीरों में वह एक होकर भी अनेक प्रतीत होने लगता है, स्वयं प्रकाश होकर भी दृश्य, नित्य होकर भी अनित्य, निर्गुण होकर भी सगुण के रूप में प्रतीत होता है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

ननु नानाविकारवतां कुतो ब्रह्मत्वमिति चेत्, न, ब्रह्मण एवोपाधिधर्मैर्बहुधा प्रतीतेरिति सदृष्टान्तमाह द्वाभ्याम्- आत्मा हीति। यथा खादिभूतानि तत्कृतेषु घटादिष्वाविस्तिरोभावादि यान्त्येवमसावात्माप्यात्मसृष्टैर्गुणैः कृत्वा तत्कृतेषु देहेषु बहुधा ईयते पुनश्च यथाशयं यथोपाध्याविर्भावतिरोभावादिरूपेण प्रतीयते न वस्तुतः । कुतः एको बहुधा स्वयंज्योतिर्दृश्यत्वेन नित्योऽनित्यत्वेनानन्योऽन्यत्वेन निर्गुणः सगुणत्वेनेत्यादि बहुधात्वं प्रपञ्चनीयम् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि अनेक प्रकार के विकारों से युक्त इन सबों में ब्रह्म दृष्टि कैसे की जा सकती है । तो यह कहना ठीक नहीं । ब्रह्म की उपाधि धर्मों के कारण अनेक रूप से प्रतीति होती है । इस बात को दुष्टान्तो पन्यास पूर्वक

दो श्लोकों से कहते हैं । **आत्मा हि० इत्यादि** जिस तरह आकाश आदि भूत अपने से ही निर्मित घट आदि में ही प्रवेश करके तिरोहित हो जाते हैं इसी तरह यह आत्मा भी अपने से ही सृष्ट गुणों से निर्मित शरीर में अनेक प्रतीत होने लगता है । यही नही अन्त:करण की भिन्नता के अनुसार अपनी-अपनी उपाधियों में आविर्भूत होती हैं एवं तिरोभूत होती है ऐसा प्रतीत होता है । किन्तु वह वास्तविक नहीं है । क्योंकि एक ही आत्मा अनेक रूप से, स्वयं प्रकाश होकर भी दृश्य रूप से, नित्य होकर अनित्य रूप से, अनन्य होकर भी अन्य रूप से, निर्गुण होकर भी सगुण रूप से इत्यादि अनेक रूप से इसका विस्तार करना चाहिए ।।२४।।

खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु यथाशयम् । आविस्तिरोऽल्पभूर्येको नानात्वं यात्यसावपि ।।२५।।

अन्वयः— खं वायुः ज्योतिः आपः भूः तत्कृतेषु यथाशयम् आविः तिरः अल्पभूरि एकः असौ अपि नानात्वं याति।।२५।।

अनुवाद— आकाश वायु, ज्योति, जल, पृथिवी ये सभी पञ्चमहाभूत अपने कार्य घट, कुण्डल आदि में प्रकार एवं अप्रकट, बड़े-छोटे, अधिक थोड़े, एक एवं अनेक रूप से प्रतीत होते हैं । किन्तु वस्तुत: वे सत्ता रूप से एक हैं । इसी तरह आत्मा में भी उपाधियों की भिन्नता के कारण नानात्व की प्रतीति होती है । अतएव जो मैं हूँ वही सब हैं इस तरह से आपका कहना ठीक है ।।२५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२५।।

श्रीशुक उवाच

एवं भगवता राजन्वसुदेव उदाहृतः । श्रुत्वा विनष्टनानाधीस्तूष्णीं प्रीतमना अभूत् ।।२६।।

अन्वयः— राजन् एवं भगवता उदाहृतम् श्रुत्वा वसुदेवः विनष्टनानाधीः तूष्णीं प्रीतमना बभूव ।।२६।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् इस तरह की श्रीभगवान् की वाणी को सुनकर वसुदेवजी की नानात्व की बुद्धि विनष्ट हो गयी । वे आनन्दमग्न होकर मौन और नि:संकल्प हो गये ।।२६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२६।।

अथ तत्र कुरुश्रेष्ठ देवकी सर्वदेवता । श्रुत्वानीतं गुरोः पुत्रमात्मजाभ्यां सुविस्मिता ।।२७।।

अन्वयः— हे कुरुश्रेष्ठ ! अथ तत्र सर्वदेवता देवकी आत्मजाभ्यां गुरोः पुत्रम् आनीतम् श्रुत्वा सुविस्मिता ।।२७।।

अनुवाद— हे परीक्षित् ! उसके पश्चात् सर्वदेवमयी देवकी जी वहीं पर विद्यमान थी उनको यह सुनकर बड़ा आश्चर्य था कि उनके दोनों पुत्र श्रीकृष्ण और बलरामजी अपने गुरु के मरे हुए पुत्र को यमलोक से ले आये थे।।२७।।

भावार्थ दीपिका

सुविस्मिता सती ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

सुविस्मिता सती अर्थात् अत्यन्त आश्चर्यित थीं ।।२७।।

कृष्णरामौ समाश्राव्य पुत्रान्कंसविहिंसितान् । स्मरन्ती कृपणं प्राह वैक्लव्यादश्रुलोचना ।।२८।।

अन्वयः— कंस विहिंसितान् पुत्रान् स्मरन्ती वैक्लव्यात् अश्रुलोचना कृष्णरामौ समाश्राव्य कृपणं प्राह ।।२८।।

अनुवाद— उनको कंस द्वारा मारे गये अपने पुत्रों का स्मरण हो आया वे व्याकुल सी हो गयी, उनकी आँखों में आँसू भर गये वे बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण को संबोधित करके अत्यन्त दीनता पूर्वक कहीं ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

समाश्राव्य संबोध्य ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

समाश्राव्य अर्थात् संबोधित करके ।।२८।।

देवक्युवाच

राम रामाप्रमेयात्मन् कृष्ण योगेश्वरेश्वर । वेदाहं वां विश्वसृजामीश्वरावादिपूरुषौ ।।२९।।

अन्वयः— हे अप्रमेयात्मन् राम ! राम ! हे योगेश्वरेश्वर कृष्ण ! वां अहम् विश्वसृजाम् ईश्वरौ आदिपुरुषौ वेद ।।२९।।

देवकीजी ने कहा

अनुवाद— हे लोकाभिराम बलरामजी आपकी शक्ति मन और वाणी से परे हैं, हे श्रीकृष्ण आप तो योगेश्वरों के भी ईश्वर हैं, मैं जानती हूँ कि आप दोनों प्रजापतियों के भी स्वामी है और आदि पुरुष नारायण हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२९।।

कालविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञामुच्छास्त्रवर्तिनाम् । भूमेर्भारायमाणानामवतीर्णौ किलाद्य मे ।।३०।।

अन्वयः— कालविध्वस्तसत्त्वानां उच्छास्त्रवर्तिनाम् भूमेः भारायमाणानां राज्ञाम् किल अद्य मे अवतीर्णो ।।३०।।

अनुवाद— मुझे यह भी निश्चित रूप से मालुम है कि जिन लोगों ने कालक्रम से अपना धैर्य खो दिया है, जिन लोगों ने शास्त्रों के आज्ञाओं का उल्लंघन किया है तथा जो लोग इस पृथिवी पर बने भार हुए हैं ऐसे राजाओं का नाश करने के ही लिए तुम दोनों मेरे गर्भ से अवतीर्ण हुए हो ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

भूमेर्भारायमाणानां राज्ञामर्थे तेषां निधनार्थं मे मयि किलावतीर्णौ ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी के भार बने हुए राजाओं का विनाश करने के ही लिए आप दोनों मेरे गर्भ से अवतीर्ण हुए हैं।।३०।।

यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः । भवन्ति किल विश्वात्मंस्तं त्वाद्याहं गतिं गता ।।३१।।

अन्वयः— हे विश्वात्मन् यस्यांशांशांशभागेन किल विश्वोत्पत्तिलयादयः भवन्ति अद्य तं त्वा अहंगतिं गता ।।३१।।

अनुवाद— हे विश्वात्मन् तुम्हारे पुरुष रूप अंश से उत्पन्न हुई माया से सत्त्वादि गुणों की उत्पत्ति होती है। और उनके लेशमात्र से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय होते हैं ऐसे आपके शरण में मैं अपने अन्तःकरण से हो गयी हूँ ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

हे आद्य यस्यांशः पुरुषस्तस्यांशो माया तस्या अंशा गुणास्तेषां भागेन परमाणुमात्रलेशेन विश्वोत्पत्त्यादयो भवन्ति तं त्वा त्वां गतिं शरणं गतास्मि ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

हे आद्य पुरुष परमात्मन् आपके अंशभूत पुरुष के अंशभूत माया के अंशभूत गुणों के अंश से सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति स्थिति और लय होते हैं ऐसे आपकी मै शरणागता हूँ ।।३१।।

चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा कालचोदितौ । आनिन्यथुः पितृस्थानाद्गुरवे गुरुदक्षिणाम् ।।३२।।

अन्वयः— चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा कालचोदितौ गुरवे गुरुदक्षिणाम् पितृस्थानात् आनिन्यथुः ।।३२।।

अनुवाद— मैंने सुना है कि तुम्हारे गुरु सन्दीपनिजी के पुत्र को मरे हुए बहुत दिन बीत गये थे, किन्तु गुरु गुरुदक्षिणा देने के लिए गुरु की और काल से प्रेरित होकर तुम दोनों यमलोक से उनके पुत्र को लाकर दक्षिणा प्रदान किए थे ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

आनिन्यथुरानीतवन्तौ । पितृस्थानाद्यमसदनात् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

आनिन्यथुः अर्थात् लौटा लाये । पितृसदनात् अर्थात् यमलोक से ।।३२।।

तथा मे कुरुतं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ । भोजराजहतान्पुत्रान्कामये द्रष्टुमाहृतान् ।।३३।।

अन्वयः— हे योगेश्वरेश्वरौ युवां तथा मे कामं कुरुतम् भोजराजहतान् पुत्रान् आहृतान् द्रष्टुकामये ।।३३।।

अनुवाद— आप दोनों योगेश्वरों के भी ईश्वर हैं । आप दोनों मेरी भी इच्छा की पूर्ति करें मैं चाहती हूँ कि मेरे जिन पुत्रों को भोजराज कंस ने मार दिया था । उन मेरे पुत्रों को तुम दोनों ला दो मैं उन दोनों को देखना चाहती हूँ ।।३३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३३।।

ऋषिरुवाच

एवं संचोदितौ मात्रा रामः कृष्णश्च भारत । सुतलं संविविशतुर्योगमायामुपाश्रितौ ।।३४।।

अन्वयः— हे भारत मात्रा एवं संचोदितौ रामकृष्णश्च योगमायाम् उपाश्रितो सुतलं संविविशितुः ।।३४।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे परीक्षित् इस तरह अपनी माता देवकीजी के द्वारा प्रेरित होने पर बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण दोनों योगमाया को अपना कर सुतल लोक में प्रवेश कर गये ।।३४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३४।।

तस्मिन्प्रविष्टावुपलभ्य दैत्याराड्विश्वात्मदैवं सुतरां तथात्मनः ।
तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय ननाम सान्वयः ।।३५।।

अन्वयः— तस्मिन् प्रविष्टौ दैत्यराट् विश्वात्मदैवं सुतराम् तथात्मनःउपलभ्य तद्दर्शनाह्लाद परिप्लुताशयः सद्यः समुत्थाय सान्वयः ननाम ।।३५।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी के सुतल लोक में प्रवेश कर जाने पर दैत्यराज बलि ने देखा कि विश्व की आत्मा और हमारे परम् प्रिय स्वामी सुतल लोक पधारे हैं, तो आनन्दमान हो गये उनका अन्तःकरण आनन्द से भर गया । वे शीघ्र ही अपने आसन से उठकर खड़े हो गये और अपने कुटुम्ब के साथ श्रीभगवन् को प्रणाम किए ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

दैत्यराड् बलिः । कथंभूतौ । विश्वस्यात्मभूतं दैवम् । सान्वयः सपरिवारः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

दैत्यराट् अर्थात् बलि । **कथंभूतौ** अर्थात् किस प्रकार के उन दोनों को ? विश्वस्यात्मभूतं **दैवम्** **अर्थात्** **सम्पूर्ण** जगत् की आत्मा एवं परादेवता । सान्वयः अर्थात् सपरिवार ।।३५।।

तयोः समानीय वरासनं मुदा निविष्टयोस्तत्र महात्मनोस्तयोः ।
दधार पादाववनिज्य तज्जलं सवृन्द आब्रह्म पुनद्यदम्बु ह ।।३६।।

अन्वयः— मुदा तयोः वरासनं समानीय तत्र निविष्टयोः महात्मनोः पादौ अवनिज्य सवृन्दः तज्जलं दधार यदम्बु आब्रह्म पुनत् ह ।।३६।।

अनुवाद— आनन्द से भरकर दैत्यराज बलि ने भगवान् कृष्ण और श्रीबलरामजी को श्रेष्ठ आसन पर बैठाया। उन दोनों महापुरुषों के बैठ जाने पर राजा बलि उन दोनों महापुरुषों के पैर धोए और उस जल को परिवार सहित अपने सिर पर धारण किए । परीक्षित् ! श्रीभगवान् का चरणोदक ब्रह्मापर्यन्त सम्पूर्ण जगत् को पवित्र बना देने वाला है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

सवृन्दः सपरिजनः। कथंभूतौ पादाववनिज्य। यदम्बुययोरवनेजनोदकम् आ ब्रह्म ब्रह्माणमभिव्याप्य जगत्पुनत्पवित्रयद्वर्तते तौ ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

सवृन्दः अर्थात् सपरिवार कैसे श्रीबलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों को धोकर ? जिन श्रीबलरामजी और भगवान् का चरणोदक ब्रह्माजी से लेकर सम्पूर्ण जगत् को पवित्र बना देने वाला है ।।३६।।

समर्हयामास स तौ विभूतिभिर्महार्हवस्त्राभरणानुलेपनैः ।
ताम्बूलदीपामृतभक्षणादिभिः स्वगोत्रवित्तात्मसमर्पणेन च ।।३७।।

अन्वयः— सः तौ महार्ह वस्त्राभरणानुलेपनैः विभूतिभिः ताम्बूलदीपामृतभक्षणादिभिः स्वगोत्र वित्तात्म समर्पणेन च समर्हयामास ।।३७।।

अनुवाद— उसके पश्चात् दैत्यराज बलि ने बहूमूल्य वस्त्र, आभूषण, ताम्बूल, आरती अमृत के समान भोजन एवं अन्य विविध सामग्रियों से उनकी पूजा की और उसके पश्चात् उन्होंने अपने समस्त परिवार धन तथा शरीर आदि को उनके चरणों में समर्पित कर दिया ।।३७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३७।।

स इन्द्रसेनो भगवत्पदाम्बुजं बिभ्रन्मुहूः प्रेमविभिन्नया धिया ।
उवाच हानन्दजलाकुलेक्षणः प्रहृष्टरोमा नृप गद्गदाक्षरम् ।।३८।।

अन्वयः— हे नृप ! स इन्द्रसेनः प्रेमविभिन्नया धिया भगवत्पदाम्बुजं मुहुः विभ्रन् आनन्दजलाकुलेक्षणः प्रहृष्टरोमा गद्गदाक्षरम् उवाच ।।३८।।

अनुवाद— दैत्यराज बलि का हृदय प्रेम से भर गया था । वे श्रीभगवान् के चरणों को बार-बार अपने सिर पर धारण करने लगे, उनकी आँखों में प्रेमाश्रु का जल भर गया था उनका हृदय गद्गद हो गया था । उनके सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो गया था वे अपने भर्राये हुए कण्ठ से कहने लगे ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

इन्द्रसेनो बलिः । प्रेमविभिन्नया प्रेमार्द्रया धिया । बिभ्रद्धारयन् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्रसेनः अर्थात् बलि । प्रेम विभिन्नया धिया अर्थात् प्रेम से भरे हुए हृदय से । विभ्रत् अर्थात् धारण करते हुए ।।३८।।

बलिरुवाच

नमोऽनन्ताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे । सांख्ययोगवितानाय ब्रह्मणे परमात्मने ।।३९।।

अन्वयः— अनन्ताय बृहते नमः कृष्णाय वेधसे नमः, सांख्ययोगवितानाय ब्रह्मणे परमात्मने नमः ।।३९।।

दैत्यराज बलि ने कहा

अनुवाद— बलरामजी आप अनन्त है । आप इतने महान हैं कि आप अपनी फणाओं के एक अंश विशेष पर इस सम्पूर्ण विश्व को धारण करते हैं । ऐसे आपको मेरा नमस्कार है । हे भगवन् श्रीकृष्ण ! आप तो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं आप इस सम्पूर्ण विश्व के स्रष्टा हैं । आप ही परं ब्रह्म परमात्मा है । आप ज्ञानयोग और भक्तियोग के प्रवर्तक है । हम आप दोनों को प्रणाम करते हैं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

अनन्ताय शेषाय । बृहते फणैकदेशे विश्वधारणाद्बृहत्तस्मै । कृष्णाय सदानन्दरूपाय च । वेधसे जगद्विधात्रे । सांख्ययोगवितानायेत्यादिपदत्रयमैक्यविवक्षया ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

अनन्ताय अर्थात् शेषस्वरूप आपको । बृहते अर्थात् अपनी फणाओं के एक अंश विशेष पर सम्पूर्ण विश्व को धारण करने के कारण आप महान् हैं । कृष्णाय अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप आपको । **बेधसे** अर्थात् जगत् के स्रष्टा, सांख्ययोगवितानाय कहकर बतलाया गया है कि सांख्य शास्त्र एवं योगशास्त्र दोनों पृथक नहीं अपितु एक ही हैं वे परस्पर में वे एक दूसरे के पूरक है ।।३९।।

दर्शनं वां हि भूतानां दुष्प्रापं चाप्यदुर्लभम् । रजस्तमःस्वभावानां यन्नः प्राप्तौ यदृच्छया ।।४०।।

अन्वयः— रजस्तमः स्वभावानां भूतानां वां दर्शनं हि दुष्प्रापं दुर्लभं चापि । यत् नः यदृच्छया प्राप्तम् ।।४०।।

अनुवाद— संसारी जीव तो प्रायः रजोगुण प्रधान और तमोगुण प्रधान स्वभाव वाले होते हैं । ऐसे जीवों कों आप दोनों का दर्शन मिलना बहुत ही कठिन है अतएव वह दुर्लभ भी है । हमलोगों को तो आपलोगों का दर्शन परम सौभाग्य के कारण प्राप्त हुआ है ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

योगेश्वराणामपि दुर्दर्शौ युवामस्माभिर्दृष्टावित्येतन्नातिचित्रमित्याह-दर्शनमिति । दुष्प्रापमपि युष्मत्कृपया केषांचिद्दुर्लभं सुलभमपि भवति तदाह-रजस्तमःस्वभावानामिति । नो दर्शनं प्राप्तौ ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

आप दोनों का दर्शन तो योगेश्वरों को भी मिलना कठिन है । अतएव हमलोगों को जो आपलोगों का दर्शन मिला यह अत्यन्त विचित्र नहीं है । इस बात को बलि ने **दर्शनम्० इत्यादि** श्लोक से कहा है । यद्यपि दोनों का दर्शन मिलना दुष्प्राप है । किन्तु जिन जीवों पर आप कृपा करते हैं, उन जीवों के लिए आपका दर्शन सुलभ हो जाता है। इसी बात को बलि ने कहा **रजस्तमः स्वभावानाम्** अर्थात् यद्यपि हम दैत्यजाति के जीव तो रजोगुण एवं तमोगुणी स्वभाव वाले होते ही है । फिर भी आपलोगों ने हमलोगों को दर्शन दिया ।।४०।।

दैत्यदानवगन्धर्वा सिद्धविद्याध्रचारणाः । यक्षरक्षः पिशाचाश्च भूतप्रमथनायकाः ।।४१।।
विशुद्धसत्त्वधाम्नि त्वयि शास्त्रशरीरिणि । नित्यं निबद्धवैरास्ते वयं चान्ये च तादृशाः ।।४२।।
केचनोद्बद्धवैरेण भक्त्या केचन कामतः । न तथा सत्त्वं संरब्धाः सन्निकृष्टाः सुरादयः।।४३।।

अन्वयः— वयं च अन्ये च तादृशाः दैत्यदानव गन्धर्वाः सिद्धविद्यध्रचारणाः यक्षरक्षः पिशाचाश्च भूतप्रमथनायकाः

विशुद्धसत्त्वधाम्नि अद्धा शास्त्रशरीरिणि त्वयि नित्यं निबद्ध वैराः, ते केचनोद्बुद्धवैरेण केचन भक्त्या, केचन कामतः यथा संन्निकृष्टाः तथा सत्त्वसंरब्धाः सुरादयः न ।।४१-४३।।

अनुवाद— हम तथा हमारे समान जो दूसरे दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विधाधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत तथा प्रख्यात प्रमथगण तो विशुद्ध सत्त्वगुण सम्पन्न साक्षात् शास्त्र शरीरक आपसे तो सदा वैरभाव ही रखा करते हैं, वे आपका भजन नहीं करते है । फिर भी ऐसे ही लोगों में से कुछ आप से वैर भाव रखने के कारण, तथा कुछ लोग भक्ति के द्वारा तथा कुछ लोग कामनाविशेष के द्वारा आपके जिस सयुज्य भाव को प्राप्त कर लिए उस भाव को सत्त्व प्रधान देवता आदि भी नहीं प्राप्त कर सके ।।४१-४३।।

भावार्थ दीपिका

अहो विद्विषो वयं सात्त्विकभक्तेभ्योऽपि सभाग्या इत्याह-दैत्येत्यादित्रिभिः । उद्बुद्धवैरेण या भक्तिस्तया । केचनेति चैद्यादयः । कामतो भक्त्या गोप्यादयो यथा संनिकृष्टास्त्वदात्मतां प्राप्ताः । तथा च सत्त्वसंरब्धाः सत्त्वाविष्टा अपि सुरादयो न संनिकृष्टा इति ।।४१-४३।।

भाव प्रकाशिका

वैर के उद्बुद्ध होने से जो भक्ति उसके द्वारा जैसे शिशुपाल आदि । कामना के द्वारा गोपियाँ आदि । आत्म के आत्मतत्त्व को प्राप्त की । उस प्रकार से आपके सन्निधान को सत्त्वप्रधान देवता भी नहीं प्राप्त कर सके ।।४१-४३।।

इदमित्थमिति प्रायस्तव योगेश्वरेश्वर । न विदन्त्यपि योगेशा योगमायां कुतो वयम् ।।४४।।

अन्वयः— हे योगेश्वरेश्वर योगेशा अपि प्रायः ते मायाम् इदम् इत्थमिति न विदन्ति वयम् कुतः ।।४४।।

अनुवाद— हे योगेश्वरों के भी नियामक प्रभो बहुत से योगेश्वर भी प्राय आपकी माया को इदम् इत्थम् (यह है और इस प्रकार की है) इस रूप से नहीं जान पाते हैं तो फिर हमलोग उसे क्या जान पायेंगे ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

ननु सात्त्विकेभ्योऽपि राजसादयः संनिकृष्टा इति चित्रं तदाह-इदमित्थमिति । इदमिति स्वरूपतः इत्थमिति विशेषतश्च।।४४।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि सात्त्विक देवताओं से भी अधिक आपके सन्निकट में रजोगुणी आदि पहुँच गये यह तो आश्चर्य की बात है । इस पर **इदमित्थम्० इत्यादि** श्लोक कहते है । इदम् अर्थात् स्वरूपतः और इत्थम् अर्थात् प्रकारतः ।।४४।।

तन्नः प्रसीद निरपेक्षविमृग्ययुष्मत्पादारविन्दधिषणान्यगृहान्धकूपात् ।
निष्क्रम्य विश्वशरणाङ्घ्र्युपलब्धवृत्तिः शान्तो यथैक उत सर्वसखैश्चरामि ।।४५।।

अन्वयः— तन्नः प्रसीद निरपेक्ष विमृग्ययुष्मत् पादारविन्दधिषणान्धकूपात् निष्क्रम्य विश्वशरणाङ्घ्र्युपलब्धवृत्तिः शान्तः उत सर्व सखैः चरामि ।।४५।।

अनुवाद— अतएव आप हम पर ऐसी कृपा करें कि मेरी चित्तवृत्ति आपके उन चरण कमलों में लग जाय जिसे किसी की अपेक्षा नहीं रखने वाले परमहंस जन ढूँढा करते हैं । और आपके उन चरणों का आश्रय लेकर उससे भिन्न गृहस्थी के इस औंधे कुएँ से निकल जाऊँ । प्रभो आपके वे चरण कमल जो सम्पूर्ण जगत् के एकमात्र आश्रय उसमें मेरे चित्त की वृत्ति ऐसे लग जाय कि मैं शान्त होकर अकेला ही विचरण किया करूँ अथवा सबों के सखा आपके भक्तों के साथ विचरण किया करूँ ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं यद्यपि नैरपेक्ष्येण त्वत्प्राप्तिर्भवेत्तथापि मां सात्त्विकं कुर्विति प्रार्थयते–तदिति । तत्तथा नः प्रसीद । यथा निरपेक्षैराप्तकामैरपि मृग्यं युष्मत्पादारविन्दं तदेव विलक्षणमाश्रयस्तस्मादन्यद्गृहं तदेवान्धकूपस्तस्मान्निष्क्रम्य निर्गत्य विश्वस्य शरणं रक्षितारो वृक्षास्तेषामङ्घ्रिमूलेषु स्वत एव गलितैः फलादिभिरुपलब्धा प्राप्ता वृत्तिर्जीविका येन सोऽहं शान्तः सन्नेक एव चरामि । उत अथवा सर्वेषां सखायो महान्तस्तैः सह भवा चरामीति ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि नैरपेक्ष्य से भी आपकी प्राप्ति सम्भव है फिर भी आप मुझे सात्त्विक बना दें इस प्रकार से बलि श्रीभगवान् से प्रार्थना **तत्तः इत्यादि** श्लोक से करते हैं । **तत्तः** प्रसीद अर्थात् आप हम पर ऐसी कृपा करें जिससे कि आप्तकाम परमहंसजनों के द्वारा अन्वेषणीय आपके पादारविन्द रूपी आश्रय से भिन्न गृहस्थी रूपी औंधे कुएँ से निकल कर मैं सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाले वृक्षों की जड़ में गिरे हुए फलों से अपनी जीविका चलाते हुए शान्त होकर अकेला मैं विचरण किया करूँ अथवा सबों के मित्र महापुरुष सन्तों के साथ विचरण किया करूँ ।।४५।।

शाध्यस्मानीशितव्येश निष्पापान्कुरु नः प्रभो । पुमान् यच्छ्रद्धया तिष्ठंश्चोदनाया विमुच्यते ।।४६।।

अन्वयः हे प्रभो ! हे ईशितव्येश अस्मान् शाधि नः निष्पापान् कुरु । यत् श्रद्धया तिष्ठन् पुमान् चोदनायाः विमुच्यते।।४६।।

अनुवाद– हे प्रभो ! हे प्रशास्यों का प्रशासन करने वाले प्रभो ! आप हमें आज्ञा देकर निष्पाप बना दें जिसका श्रद्धा पूर्वक पालन करने वाला मनुष्य विधि एवं निषेध का विषय नहीं रह जाता है अर्थात् मुक्त हो जाता है ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

कथमल्पपुण्यानामेव भावः संभवतीति चेत्तर्हि यथैतद्भवेत्तथास्माननुशिक्षयेत्याह–शाधीति । हे प्रभो, ईशितव्याः सर्वे जीवास्तेषामीश यत्तवानुशासनमातिष्ठन्नाश्रयंश्चोदनाया विधिनिषेधलक्षणायाः सकाशाद्विमुच्यते । न खलु त्वद्भक्तो विधिकिङ्करः स्यादिति भावः ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि अल्प पुण्य वालों के लिए ऐसा होना कैसे सम्भव हैं ? तो फिर जैसे यह सम्भव हो उस तरह का आप हमें उपदेश दें इस बात को बलि ने **शाधि० इत्यादि** श्लोक से कहा । हे प्रभो जितने भी प्रशास्य जीव हैं आप उन सबों के नियामक है । जो आपकी आज्ञा का पालन करता है वह विधिनिषेध रूप विधि वाक्यों का विषय नहीं रह जाता है । वह उससे ऊपर उठकर आपका किङ्कर बन जाता है । जो आपका किङ्कर हो जाता है वह विधि का विषय नहीं होता है ।।४६।।

श्रीभगवानुवाच

आसन्मरीचेः षट् पुत्रा ऊर्णायां प्रथमेऽन्तरे । देवाः कं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम् ।।४७।।

अन्वयः— प्रथमे अन्तरे मरीचेः उर्णायां षट्पुत्राः देवाः आसन् ते सुतां जभितुम् उद्यतं वीक्ष्य कं जहसुः ।।४७।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— प्रथम स्वायम्भुव मन्वन्तर में महर्षि मरीचि के उनकी पत्नी उर्णा के गर्भ से छह पुत्र उत्पन्न हुए देवता थे । ब्रह्माजी को अपनी पुत्री के ही साथ समागम करने के लिए उद्यत देखकर वे हँसने लगे ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

तदुक्तं सर्वमनुमोद्य स्वागमनकारणं सप्रपञ्चं कथयति–आसन्निति पञ्चभिः । ऊर्णायां भार्यायाम् । प्रथमेऽन्तरे स्वायंभुवमन्वन्तरे देवाः सुतां वाचं यभितुं यब्धुं मैथुनेन रमयितुमुद्यतमुद्युक्तं कं प्रजापतिं जहसुरुपहसितवन्तः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

दैत्यराज बलि के द्वारा उक्त सारी बातों का अनुमोदन करके श्रीभगवान् अपने आगमन का प्रयोजन **आसन्०** **इत्यादि** पाँच श्लोकों में विस्तार से बतलाते हैं। मरीचि महर्षि की ऊर्णानाम की पत्नी के गर्भ से। प्रथम मन्वन्तर में ब्रह्माजी को अपनी पुत्री के साथ रमण करने के लिए तैयार देखकर देवताओं ने उनका उपहास किया ॥४७॥

तेनासुरीमगन्योनिमधुनाऽवद्यकर्मणा । हरिण्यकशिपोर्जाता नीतास्ते योगमायया ॥४८॥

अन्वयः— तेन अवद्यकर्मणा ते आसुरीं योनिमगन् अधुना ते योगमायया नीताः हिरण्यकशिषोः जाताः ॥४८॥

अनुवाद— उस निन्दित कर्म के कारण ब्रह्माजी ने उन सबों को शाप दे दिया और वे आसुरी योनि में चले गये। योगमाया के द्वारा उपस्थापित वे हिरण्यकशिपु के पुत्र हो गये ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

तेनावद्यकर्मणा पापेनासुरीं योनिमगन्नगमन्। अधुना तत्क्षणमेव। हिरण्यकशिपोर्जाता इत्यर्थः ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

उस निन्दित कर्म के कारण वे ब्रह्माजी के द्वारा अभिशप्त होकर आसुरी योनि में चले गये उसी समय वे हिरण्यकशिपु के पुत्र हो गये ॥४८॥

देवक्या उदरे जाता राजन्कंसविहिंसिताः । सा तान् शोचत्यात्मजान्स्वांस्त इमेऽध्यासतेऽन्तिके ॥४९॥

अन्वयः— राजन् योगमायया नीताः ते देवक्या उदरे जाता कंसविहिंसिताः सा तान् स्वान् आत्मजान् शोचति इमे ते अन्तिके अध्यास्ते ॥४९॥

अनुवाद— राजन् योगमाया से प्रेरित होकर वे माता देवकी के उदर में प्रवेश कर गये। उनको उत्पन्न होते ही कंस ने मार दिया। माता देवकी अपने उन पुत्रों के लिए शोकातुर हैं और वे सब तुम्हारे पास हैं ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

ते च योगमायया ततो नीताः सन्तो देवक्या उदरे जाताः। हे राजन् बले, ते च कंसेन विहिंसिताः। सा च तानात्मजान् मत्वा शोचति। ते चेमे तवान्तिकेऽध्यासते ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

उन सबों को योग माया ने वहाँ से लाकर माता देवकी गर्भ में डाल दिया। राजन् उन सबो को उत्पन्न होते ही कंस ने मार डाला माता देवकी उन सबों को अपना पुत्र मानकर शोक करती हैं। और वे सब इस समय तुम्हारे पास हैं ॥४९॥

इत एतान्प्रणेष्यामो मातृशोकापनुत्तये । ततः शापाद्विनिर्मुक्ता लोकं यास्यन्ति विज्वराः ॥५०॥

अन्वयः— मातृशोकापनुत्तये इतः एतान् प्रणेष्यामः ततः शापात् विनिर्मुक्ताः विज्वराः ते लोकं यास्यन्ति ॥५०॥

अनुवाद— अपनी माता के शोक को दूर करने के लिए इन सबों को मैं यहाँ से ले जाऊँगा। उसके पश्चात् वे शापमुक्त होकर आनन्द पूर्वक अपने लोक में चले जायेंगे ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

लोकं देवलोकम् ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

लोकम् अर्थात् देवलोक में ॥५०॥

स्मरोद्गीथः परिष्वङ्गः पतङ्गः क्षुद्रभृद्धृणी । षडिमे मत्प्रसादेन पुनर्यास्यन्ति सद्गतिम् ॥५१॥

अन्वयः— स्मरोद्गीथः परिष्वङ्ग, पतङ्गः क्षुद्रभृत्, धृणी इमे षट् मत् प्रसादेन पुनः सद्गतिम् यास्यन्ति ॥५१॥

अनुवाद— इन सबों के नाम हैं स्मर, उद्गीथ, परिष्वङ्ग, पतङ्ग क्षुद्रभृत और धृणी, ये छहो मेरी कृपा से सद्गति को प्राप्त कर लेंगे ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

स्मरोद्गीथः स्मरसहित उद्गीथः । सद्गतिं मोक्षम् । स्मरस्यैव पूर्वं कीर्तिमानिति नाम । अतः 'कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायाऽऽनकदुन्दुभिः । अर्पयामास' इत्युक्तम् ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

स्मरोदगीथः अर्थात् स्मर के साथ उद्गीथ । सद्गतिम् अर्थात् मोक्ष को । स्मर का ही पहले कीर्तिमान नाम था अतएव पहले उत्पन्न कीर्तिमान को मेरे पिता वसुदेवजी ने कंस को समर्पित कर दिया ॥५१॥

इत्युक्त्वा तान्समादाय इन्द्रसेनेन पूजितौ । पुनर्द्वारवतीमेत्य मातुः पुत्रानयच्छताम् ॥५२॥

अन्वयः— इत्युक्त्वा तान् समादाय इन्द्रसेन पूजितौ पुनः द्वारवतीम् एत्य मातुः पुत्रान् अयच्छताम् ॥५२॥

अनुवाद— इस तरह से कहकर श्रीभगवान् चुप हो गये । दैत्यराज ने उन दोनों की पूजा की । इसके पश्चात् वे उन सबों को लेकर द्वारका आये और अपनी माता को पुत्रों को समर्पित कर दिये ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

अयच्छतामर्पयामासतुः ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

अयच्छताम् अर्थात् समर्पित किए ॥५२॥

तान्दृष्ट्वा बालकान्देवी पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी । परिष्वज्याङ्कमारोप्य मूर्ध्न्यजिघ्रदभीक्ष्णशः ॥५३॥

अन्वयः— तान् बालकान् दृष्ट्वा पुत्रस्नेह स्नुतस्तनी देवी परिष्षज्य अङ्कम् आरोप्य अभीक्ष्णशः मूर्ध्नि अजिघ्रत् ॥५३॥

अनुवाद— उन बालकों को देखकर पुत्रस्नेह के कारण माता देवकी के स्तनों से दूध चुने लगा । उन्होंने उन सबों को हृदय से लगा लिया, अपनी गोद में बैठाकर उन सबों के सिर को बार-बार सूंघा ॥५३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५३॥

अपाययत्स्तनं प्रीता सुतस्पर्शपरिप्लुता । मोहिता मायया विष्णोर्यया सृष्टिः प्रवर्तते ॥५४॥

अन्वयः— सुतस्नेह परिप्लुता प्रीता यया सृष्टिः प्रवर्तते मायया मोहिता स्तनं अपाययत् ॥५४॥

अनुवाद— पुत्र के स्नेह से आनन्दमग्न होकर उन सबों को अपने स्तनों को पिलाया । उस समय वे श्रीभगवान् की उस माया से मोहित थी जिसके द्वारा यह सृष्टि चलती रहती है ॥५४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५४॥

पीत्वाऽमृतं पयस्तस्याः पीतशेषं गदाभृतः । नारायणाङ्गसंस्पर्शप्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥५५॥

अन्वयः— गदाभृतः पीतशेषतस्याः अमृतं पयःपीत्वा नारायणाङ्गसंस्पर्श प्रतिलब्धात्मदर्शनाः ॥५५॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के पीने से बचे हुए माता देवकी के उस अमृत स्वरूप दूध को पीकर तथा भगवान् श्रीकृष्ण के अङ्गों का संस्पर्श होने से उन सबों को आत्म साक्षात्कार हो गया ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

अमृतत्वे हेतुः-गदाभृतः पीतशेषमिति । नारायणाङ्गसंस्पर्शेन प्रतिलब्धं देवा वयमित्यात्मदर्शनं यैस्ते ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

माता देवकी के दूध के अमृत होने का कारण था कि भगवान् श्रीकृष्ण का पीतशेष था । भगवान् श्रीकृष्ण के अङ्गों के संस्पर्श से हमलोग देवता हैं इस प्रकार का उन सबों को ज्ञान हो गया ॥५५॥

ते नमस्कृत्य गोविन्दं देवकीं पितरं बलम् । मिषतां सर्वभूतानां ययुर्धामदिवौकसाम् ॥५६॥

अन्वयः— ते गोविन्दम् देवकी, पितरं बलं नमस्कृत्य सर्वभूतानांमिषताम् दिवौकसाम् धाम ययुः ॥५६॥

अनुवाद— वे सब भगवान् श्रीकृष्ण,माता देवकी, पिता वसुदेवजी तथा बलरामजी को नमस्कार करके सबों के सामने ही देवलोक में चले गये ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

धाम देवलोकम् ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

धाम अर्थात् देवलोक में ॥५६॥

तं दृष्ट्वा देवकी देवी मृतागमननिर्गमम् । मेने सुविस्मिता मायां कृष्णस्य रचितां नृप ॥५७॥

अन्वयः— नृप ! तं मृतागमन निर्गमम् दृष्ट्वा सुविस्मिता देवी देवकी कृष्णस्य रचितां मायां मेने ॥५७॥

अनुवाद— हे राजन् उन मरे हुए बालकों का आना और पुनः चला जाना देखकर अत्यन्त आश्चर्यित देवकी देवी ने मान लिया यह कोई कृष्ण की माया की लीला है ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

मृतनामागमनं निर्गमनं च श्रीकृष्णस्य मायां मेने । तेनैवापत्यादिरूपेण रचिताम् ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

मरे हुओं का आना और चला जाना अपनी सन्तान रूप श्रीकृष्ण की माया मानी ॥५७॥

एवंविधान्यद्भुतानि कृष्णस्य परमात्मनः । वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य सन्त्यनन्तानि भारत ॥५८॥

अन्वयः— हे भारत ! आनन्तवीर्यस्य परमात्मनः कृष्णस्य अनन्तानि अद्भुतानि वीर्याणि सन्ति ॥५८॥

अनुवाद— हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ परीक्षित् भगवन् श्रीकृष्ण परमात्मा है उनका पराक्रम अनन्त है । इस प्रकार के उनके अद्भुत चरित्र इतने हैं कि उन सबों को पूर्णरूप से कोई भी नहीं जान सकता है ॥५८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५८॥

सूत उवाच

य इदमनुशृणोति श्रावयेद्वा मुरारेश्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः ।
जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम ॥५९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धे मृताग्रजानयनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

अन्वयः— इदम् अमृतकीर्तेः मुरारेः सच्चरितं जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्ण पूरं, व्यासपुत्रैः वर्णितं यः अनुशृणोति वा श्रावयेत् भगवति कृतचित्तः तत्क्षेमधाम याति ॥५९॥

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— हे शौनकादिक ऋषियों श्रीभगवान् का यश अमर है, यह संसार के समस्त पापों को विनष्ट कर देने वाला है श्रीभगवान् के भक्तों के कानों में आनन्दसुधा को प्रवाहित करने वाला है, इसका वर्णन स्वयं व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी ने किया है जो कोई भी इसका श्रवण करता है अथवा दूसरों को सुनाता है उसकी सम्पूर्ण चित्तवृत्ति भगवान् श्रीकृष्ण में लग जाती है और वह उन्हीं के परम कल्याण रूप धाम में जाता है ।।५९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के भगवान् द्वारा अपने अग्रजों के आनयन नामक पचासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८५।।

भावार्थ दीपिका

अमृतं कीर्तिर्यस्य तस्य । व्यासपुत्रैरिति बहुवचनं पूजार्थम् । जगतामघं भिनत्तीति तथा तत् । अलं निःशेषं यथा भवति तथा न कृच्छ्रादिवदिति । तदेवं मोक्षहेतुत्वं पापक्षयहेतुत्वं चोक्तम् । तद्भक्तानां तु सत्कर्णपूरं परमसुखावहं कर्णाभरणमिति स्वयं सुखरूपतामाह । किंच भगवति कृतमावेशितं चित्तं येन स तथा भूत्वा तस्य क्षेमधाम कालादिभयरहितं लोकं यातीति।।५९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।।८५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण का यश अमर है । **व्यासपुत्रैः** में बहुवचन पूजार्थक है । संसारी जीवों के सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाला है कृच्छ्रादि व्रतों के समान सीमित नहीं । इस तरह से श्रीभगवान् के यशगान को मोक्ष का साधन और तथा पापक्षय का हेतु बतलाया गया है । यह भगवद् भक्तों के कानों में परम सुख प्रदान करने वाला है । कर्णभूषणों के समान इसका श्रवण करने वाले का चित्त श्रीभगवान् में आविष्ट हो जाता है । इस प्रकार वह पुरुष काल इत्यादि के भय से रहित श्रीभगवान् के लोक में चला जाता है ।।५९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के पचासीवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।८५।।

* * *

छियासीवाँ अध्याय

सुभद्राहरण और श्रीभगवान् का मिथिला पुरी में राजा जनक और श्रुतदेव के यहाँ एक ही साथ जाना

राजोवाच

ब्रह्मन्वेदितुमिच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः । यथोपयेमे विजयो या ममासीत्पितामही ॥१॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् रामकृष्णयोः स्वसारं या मम पितामही आसीत् ताम् विजयः यथा उपयेमे वेदितुम् इच्छामः॥१॥

राजा परीक्षित ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् जो बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण की बहिन थी और जो हमारी दादी लगती थी उसके साथ हमारे दादा अर्जुन किस तरह विवाह किए इसे मैं जानना चाहता हूँ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षडशीतितमे दम्भात्सुभद्रामर्जुनोऽहरत् । गत्वा च मिथिलां कृष्णो नृपविप्रावनन्दयत् । पित्रोः स्वज्ञानमादिश्य सुभद्रां फाल्गुनाय च । जगाम मिथिलां कृष्णः स्वभक्तप्रियकृत्ततः । देवक्या मृतपुत्रलाभवदर्जुनस्य सुभद्रालाभोऽपि रामप्रातिकूल्याद्दुर्घट इमि मन्यमानः प्रसङ्गात्पृच्छति–ब्रह्मन्निति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

छियासीवें अध्याय में अर्जुन ने दम्भ पूर्वक सुभद्रा का अपहरण कर लिया भगवान् श्रीकृष्ण मिथिलापुरी में जाकर राजा जनक और श्रुतदेव दोनों को आनन्दित किए। अपने माता-पिता को अपने स्वरूप रूप का ज्ञान कराकर तथा सुभद्रा को अर्जुन को प्रदान करके उसके पश्चात् अपने भक्तों को आनन्द प्रदान करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण मिथिला पुरी में गये। देवकीजी को अपने पुत्रों की प्राप्ति के ही समान अर्जुन को सुभद्रा की प्राप्ति बलरामजी के मन के प्रतिकूल होने के कारण कठिन ही था। इस बात को मानते हुए राजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजी **ब्रह्मन्० इत्यादि** श्लोक से पूछते हैं ॥१॥

श्रीशुक उवाच

अर्जुनस्तीर्थयात्रायां पर्यटन्नवनीं प्रभुः । गतः प्रभासमश्रृणोन्मातुलेयीं स आत्मनः ॥२॥

अन्वयः— तीर्थयात्रायां अवनीं पर्यटन् प्रभुः अर्जुनः प्रभासञ्च गतः सः आत्मनः मातुलेयीं अश्रृणोत् ॥२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग में पृथिवी पर भ्रमण करते हुए अर्जुन प्रभास क्षेत्र में गये, तो वे वहाँ पर अपने मामा की पुत्री सुभद्रा के सौन्दर्यादि के विषय में सुने ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

दुर्योधनाय रामस्तां दास्यतीति न चापरे । तल्लिप्सुः स यतिर्भूत्वा त्रिदण्डी द्वारकामगात् ॥३॥

अन्वयः— रामः तां दुर्योधनाय दास्यति अपरे च न तल्लिप्सु त्रिदण्डी यतिः भूत्वा द्वारकाम् अगात् ॥३॥

अनुवाद— वहाँ पर अर्जुन ने सुना कि श्रीबलरामजी सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से करना चाहते हैं, किन्तु वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्ण आदि सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से नहीं करना चाहते है। सुभद्रा को प्राप्त करने की इच्छा से अर्जुन त्रिदण्डी संन्यासी का रूप बनाकर द्वारका में आये ॥३॥

भावार्थ दीपिका

कथमश्रृणोत् दुर्योधनायेति। अपरे वसुदेवादयो न दास्यन्तीति। तल्लिप्सुस्तस्या मातुलेय्या लिप्सुः। रामं वञ्चयितुं पूज्यतमं त्रिदण्डिवेषं विधाय गत इत्याह-स यतिरिति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

अर्जुन ने कैसे सुभद्रा के विषय में सुना कि बलरामजी सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से ही करेंगे। और वसुदेव जी आदि सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से नहीं करना चाहते हैं। उस सुभद्रा को प्राप्त करने के इच्छुक बलरामजी को ठगने के लिए अर्जुन पूज्यतम त्रिदण्डी का वेष बनाकर द्वारका गये। इस बात को **सयति० इत्यादि** श्लोकांश से कहा गया है॥३॥

तत्र वै वार्षिकान्मासानवात्सीत्स्वार्थसाधकः । पौरैः सभाजितोऽभीक्ष्णं रामेणाजानता च सः ॥४॥

अन्वयः— तत्र वै पौरैः अभीक्ष्णशः सभाजितः रामेण अजानता च स्वार्थसाधकः सः वार्षिकान् मासान् अवात्सीत्॥४॥

अनुवाद— पुरवासियों ने तथा बलरामजी ने अर्जुन का खूब सत्कार किया किन्तु वे यह नहीं जाने की ये अर्जुन है। अर्जुन अपना स्वार्थसिद्ध करने के लिए वरसात के चार महीने वही रहें ॥४॥

भावार्थ दीपिका

स्वार्थसाधकः कन्यां प्रेप्सुः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

स्वार्थसाधकः अर्थात् कन्या को प्राप्त करने की इच्छा से ॥४॥

एकदा गृहमानीय आतिथ्येन निमन्त्र्य तम् । श्रद्धयोपहृतं भैक्ष्यं बलेन बुभुजे किल ।।५।।

अन्वयः— एकदा बलेन आतिथ्येन निमन्त्र्य गृहम् आनीय श्रद्धयोपहृतं भक्ष्यं बुभुजे किल ।।५।।

अनुवाद— एक दिन बलरामजी ने उन्हे आतिथ्य के लिए निमन्त्रित किया और वे उनको अपने घर ले आये। बलरामजी ने उनको श्रद्धापूर्वक भोजन सामग्री निवेदित की और वे उसे प्रेम पूर्वक खाये भी ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तमातिथ्येन निमन्त्र्य गृहमानीय बलेन यच्छ्रद्धयोपहृतं परिविष्टं तद्भैक्ष्यं किलार्जुनो बुभुजे इत्यन्वयः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन को आतिथ्य के लिए निमन्त्रित करके घर लाकर बलरामजी ने उनको जो परोसा उसको अर्जुन खाये इस तरह से अन्वय है ।।५।।

सोऽपश्यत्तत्र महतीं कन्यां वीरमनोहराम् । प्रीत्युत्फुल्लेक्षणस्तस्यां भावक्षुब्धं मनो दधे ।।६।।

अन्वयः— सः तत्र महतीं वीरमनोहराम् कन्याम् अपश्यत् । प्रीत्युत्फुल्लेक्षणः तस्यां भावक्षुब्धं मनः दधे ।।६।।

अनुवाद—अर्जुन ने भोजन के समय विवाह योग्य परम सुन्दरी कन्या सुभद्रा को देखा । उसका सौन्दर्य बड़े-बड़े वीरों का मन मोहने वाला था । अर्जुन के नेत्र प्रेम से प्रफुल्लित हो गये । अर्जुन का मन उसे प्राप्त करने के लिए क्षुब्ध हो गया ।।६।।

भावार्थ दीपिका

भावेन रत्यभिप्रायेण क्षुभितं मनो दधे ।।६।।

भाव प्रकाशिका

रति के अभिप्राय से उनका मन क्षुब्ध हो गया ।।६।।

सापि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयंगमम् । हसन्ती व्रीडितापाङ्गी तन्न्यस्तहृदयेक्षणा ।।७।।

अन्वयः— सापि नारीणां हृदयंगमम् वीक्ष्य हसन्ती व्रीडितापाङ्गी तन्न्यस्त हृदयेक्षणा तं चकमे ।।७।।

अनुवाद— सुभद्रा भी नारियों के हृदय का हरण करने वाले अर्जुन को देखकर तनिक मुस्कुराकर लजीली नेत्रों से अर्जुन को देखने लगी और उनको अपना पति बनाने का निश्चय की ।।७।।

भावार्थ दीपिका

व्रीडितापाङ्गी सव्रीडकटाक्षा । तस्मिन्नेव न्यस्तं हृदयमीक्षणं च यया सा ।।७।।

भाव प्रकाशिका

लजीली कटाक्षपातों से उनको ही देखती हुई अर्जुन को अपना हृदय समर्पित कर दी ।।७।।

तां परं समनुध्यायन्नन्तरं प्रेप्सुरर्जुनः । न लेभे शं भ्रमच्चितः कामेनातिबलीयसा ।।८।।

अन्वयः— परं तां समनुध्यायन् अन्तरं प्रेप्सु अतिबलीयसा कामेन भ्रमच्चितः शं न लेभे ।।८।।

अनुवाद— उसके पश्चात् अर्जुन केवल सुभद्रा का ही चिन्तन करने लगे । और इस बात का अवसर ढूंढने लगे कि मैं इसका कब हरण कर लूँ । सुभद्रा को प्राप्त करने की उत्कट कामना से उनका चित्त चक्कर काटने लगा। उन्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिलती थी ।।८।।

भावार्थ दीपिका

अन्तरं हर्तुमवसरं प्रेप्सुः प्राप्तुमिच्छुः । कामेन भ्रमच्चितं यस्य सः शं रामादिसन्माननिमित्तं सुखम् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् सुभद्रा का हरण करने की इच्छा से अर्जुन अवसर प्राप्त करना चाहते थे। इसी कामना से अर्जुन का चित्त चक्कर काटने लगा। शम् अर्थात् श्रीबलरामजी आदि के द्वारा प्राप्त सम्मान से वे सुखानुभव नहीं करते थे॥८॥

महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गताम् । जहारानुमतः पित्रोः कृष्णस्य च महारथः ॥९॥

अन्वयः— महत्यां देवयात्रायां रथस्थां दुर्गनिर्गताम् पित्रोः कृष्णस्य च अनुमतः जहार ॥९॥

अनुवाद— एक दिन देवदर्शन करने के लिए सुभद्रा रथ पर बैठकर किले से बाहर निकली उस समय वसुदेवजी एवं देवकीजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण की अनुमति प्राप्त करके अर्जुन ने सुभद्रा का अपहरण कर लिया ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

रथस्थो धनुरादाय शूरांश्चारुन्धतो भटान् । विद्राव्य क्रोशतां स्वानां स्वभागं मृगराडिव ॥१०॥

अन्वयः— रथस्थः धनुः आदाय आरुन्धतो शूरान् भटान् विद्राव्य स्वानां क्रोशतां स्वभागं मृगराडिव ॥१०॥

अनुवाद— रथ पर बैठकर वीर अर्जुन ने धनुष उठा लिया। जो सैनिक उनको रोकने के लिए आये उन सबों को मारकर उन्होंने भगा दिया। वे सब रोते चिल्लाते रह गये और अर्जुन जिस तरह सिंह अपना भाग लेकर चला जाता है उसी तरह सुभद्रा को लेकर चले गये ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

आसमन्ताद्रुन्धत आवरणं कुर्वतः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

सुभद्रा को घेरे हुए जो वीर सैनिक थे ॥१०॥

तच्छ्रुत्वा क्षुभितो रामः पर्वणीव महार्णवः । गृहीतपादः कृष्णेन सुहृद्भिश्चान्वशाम्यत ॥११॥

अन्वयः— तच्छ्रुत्वा पर्वणि महार्णव इव क्षुभितो रामः कृष्णेन सुहृद्भिः च गृहीतपादः अन्वशाम्यत ॥११॥

अनुवाद— यह सुनकर बलरामजी उसी तरह क्षुब्ध हो गये जिस तरह पूर्णिमा के दिन समुद्र क्षुब्ध हो जाता है। किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण और दूसरे संबन्धियों के द्वारा पैर पकड़ लिए जाने पर वे शान्त हो गये ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

प्राहिणोत्पारिबर्हाणि वरवध्वोर्मुदा बलः । महाधनोपस्करेभरथाश्वनरयोषितः ॥१२॥

अन्वयः— रामः मुदा बरवध्वोः पारिवर्हाणि महाधनोपस्करेभरथाश्वनरयोषितः प्राहिणोत् ॥१२॥

अनुवाद— इसके बाद प्रसन्न होकर बलरामजी वरवधू के लिए बहुत सा धन सामग्री हाथी, रथ, घोड़े, दासी-दास दहेज में भेज दिए ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

पारिबर्हाणि वरबध्वोः प्रीतिदेयानि ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

पारिबर्हाणि अर्थात् दहेज ॥१२॥

श्रीशुक उवाच

कृष्णस्यासीद्द्विजश्रेष्ठः श्रुतदेव इति श्रुतः । कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शान्तः कविरलम्पटः ॥१३॥

अन्वयः— श्रुतदेव इति श्रुतः कृष्णस्य द्विजश्रेष्ठः कृष्णैकभक्त्या पूर्णार्थः शान्तः अलम्पटः कविः आसीत् ॥१३॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् श्रुतदेव के नाम से विख्यात एक श्रेष्ठ ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त थे। भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति से ही वे पूर्ण मनोरथ थे। वे परम शान्त ज्ञानी और विरक्त थे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

स उवास विदेहेषु मिथिलायां गृहाश्रमी । अनीहयाऽऽगताहार्यनिर्वर्तितनिजक्रियः ॥१४॥

अन्वयः— सः गृहाश्रमी विदेहेषु मिथिलायां अनीहयागताहार्य निर्वर्तित निजक्रियः उवास ॥१४॥

अनुवाद— वे गृहस्थ थे और विदेहराज के मिथिला नगर में रहते थे। वे उद्योग रहित थे और जो कुछ मिल जाता था उसी से अपनी जीविका चलाते थे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अनीहयाऽनुद्यमेनैवागतं यदाहार्यं भोज्यं तेन निर्वर्तिता निजाः क्रिया येन सः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

उद्योग नहीं करने के कारण जो भोज्य पदार्थ मिल जाता था उसी से अपनी जीविका चलाते थे ॥१४॥

यात्रामात्रं त्वहरहर्दैवादुपनमत्युत । नाधिकं तावता तुष्टः क्रियाश्चक्रे यथोचिताः ॥१५॥

अन्वयः— यात्रामात्रं तु अहरहः दैवात् उपनमति उत अधिकं न तावता तुष्टः यथोचिताः क्रियाः चक्रे ॥१५॥

अनुवाद— प्रतिदिन उनको जीवन निर्वाह के लिए सामग्री मिल जाती थी, उससे अधिक नहीं मिलती थी, उसी में वे सन्तुष्ट थे तथा अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुसार धर्मपालन में लगे रहते थे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

यात्रामात्रं शरीरादिनिर्वाहमात्रं भोज्यमुपनमति तं प्रत्यागच्छति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

शरीर निर्वाह मात्र के लिए उनको भोज्य सामग्री मिल जाती थी ॥१५॥

तथा तद्राष्ट्रपालोऽङ्ग बहुलाश्व इति श्रुतः । मैथिलो निरहंमान उभावप्यच्युतप्रियौ ॥१६॥

अन्वयः— हे अङ्ग तथा तद्राष्ट्रपालः बहुलाश्व इति श्रुतः। मैथिलः निरहंमान् उभौ अपि अच्युत प्रियौ ॥१६॥

अनुवाद— हे परीक्षित ! उस देश का पालन करने वाले राजा का नाम बाहुलाश्व था। वे राजा मैथिल वंश में उत्पन्न तथा अहङ्कार एवं अभिमान से रहित थे। राजा और ब्राह्मण दोनों भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त थे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

मिथिलस्य जनकस्य वंश्यो मैथिलः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

जनक के वंश के होने के कारण मैथिल थे ॥१६॥

तयोः प्रसन्नो भगवान्दारुकेणाहृतं रथम् । आरुह्य साकं मुनिभिर्विदेहान्प्रययौ प्रभुः ॥१७॥

अन्वयः— भगवान् तयोः प्रसन्न दारुकेण आहृतं रथम् आरुह्य प्रभुः मुनिभिः साकम् विदेहान् प्रययौ ॥१७॥

अनुवाद— श्रीभगवान् राजा बाहुलाश्व और श्रुतदेव दोनों पर प्रसन्न थे। वे दारुक के द्वारा लाये गये रथ पर चढ़कर मुनियों के साथ विदेह की नगरी में गये ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

प्रभुरेव स्वयं विदेहान्देशान् प्रययौ ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

स्वामी भी होकर स्वयम् विदेह राज्य में गये ।।१७।।

नारदो वामदेवोऽत्रिः कृष्णो रामोऽसितोऽरुणिः । अहं बृहस्पतिः कण्वो मैत्रेयश्च्यवनादयः ।।१८।।

अन्वयः— नारदः वामदेव अत्रिः कृष्णः रामः, असितः, आरुणिः, अहं बृहस्पतिः कण्वः मैत्रेयः च्यवनादयः ।।१८।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के साथ नारद, वामदेव, अत्रि कृष्णद्वैपायन व्यास, परशुरामजी, असित, आरुणि, मैं शुकदेव, बृहस्पतिः, कण्व, मैत्रेय, तथा च्यवन आदि ऋषि थे ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

कृष्णो व्यासः । रामो भार्गवः । अहं शुकः । एवमादिभिः सह ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

कृष्णः अर्थात् व्यासजी, रामः अर्थात् परशुरामजी, अहम् अर्थात् शुकदेवजी इन सभी ऋषियों के साथ ।।१८।।

तत्र तत्र तमायान्तं पौरा जानपदा नृप । उपतस्थुः सार्घहस्ता ग्रहैः सूर्यमिवोदितम् ।।१९।।

अन्वयः— नृप आयान्तं तम् तत्र तत्र पौराः जानपदाः ग्रहैः उदितम् सूर्यमिव साध्र्यहस्ताः उपतस्थुः ।।१९।।

अनुवाद— राजन् श्रीभगवान् जहाँ-जहाँ जाते थे वहाँ-वहाँ के नागरिक और ग्रामवासी प्रजा अपने हाथ में पूजन सामग्री लेकर आती थी । पूजा करने वाले लोगों को श्रीभगवान् ऐसा प्रतीत होते थे जैसे ग्रहों के साथ सूर्य उदित हुए हों ।।१९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१९।।

आनर्तधन्वकुरुजाङ्गलकङ्कमत्स्यपाञ्चालकुन्तिमधुकेकयकोसलार्णाः ।
अन्ये च तन्मुखसरोजमुदारहासस्निग्धेक्ष्णं नृप पपुर्दृशिभिर्नृनार्यः ।।२०।।

अन्वयः— हे नृप आनर्तधन्व कुरुजाङ्गलकंकमत्स्य पाञ्चल कुन्तिमधुकेकय कोसलार्णाः अन्येच नृनार्यः उदारहासम् स्निग्धेक्ष्णं तन्मुख सरोजं दृशिभिः पपुः ।।२०।।

अनुवाद— हे राजन आनर्त, धन्व, कुरुजांगल, कङ्क, मत्स्य, पाञ्चाल, कुन्ति, मधु, केकय, कोसल एवं अन्य देशों के नर-नारियों ने अपने नेत्र रूपी दोनों से भगवान् श्रीकृष्ण के उन्मुक्त हँसी और प्रेम भरे प्रेक्षण से युक्त मुख कमल के पराग का पान किया ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

आनर्ताद्यर्णान्तास्तद्देशवर्तिनो नृनार्यः । उदारहासं स्निग्धमीक्षणं यस्मिंस्तत् । दृशिभिर्नेत्रैः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

आनर्त से लेकर अर्ण पर्यन्त देशों के नर-नारी उन्मुक्त हंसी तथा प्रेमपूर्ण प्रेक्षण से युक्त मुखकमल को दृशिभिः अर्थात् नेत्रों से ।।२०।।

तेभ्यः स्ववीक्षणविनष्टतमिस्रदृग्भ्यः क्षेमं त्रिलोकगुरुरर्थदृशं च यच्छन् ।
शृण्वन्दिगन्तधवलं स्वयशोऽशुभघ्नं गीतं सुरैर्नृभिरगाच्छनकैर्विदेहान् ।।२१।।

अन्वयः— स्ववीक्षण विनष्टदृग्भ्यः तेभ्य त्रिलोकगुरुः अर्थ दृशं च यच्छन् सुरैः नृभिः गीतं दिगन्तधवलम् अशुभघ्नम् स्वयशः शृण्वन् शनकैः विदेहान् अगात् ।।२१।।

अनुवाद— त्रिलोक के गुरु भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन से उन लोगों की अज्ञान दृष्टि मिट गयीं, मुनिजन प्रभु का दर्शन करने वाले नर-नारियों को अपनी दृष्टि से परम कल्याण और तत्त्वज्ञान को प्रदान करते हुए चल रहे थे। स्थान-स्थान पर मनुष्य और देवता श्रीभगवान् के उस यश का गान कर रहे थे जो समस्त दिशाओं को धवल बनाते हुए समस्त अशुभों को विनष्ट करने वाला था। इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण धीरे-धीरे विदेह देश में पहुँच गये ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

स्ववीक्षणेनैव विनष्टतमिस्रा दृग्येषां तेभ्यः। क्षेममभयमर्थदृशं तत्त्वज्ञानं च ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् का दर्शन करने मात्र से जिनके नेत्रों की अज्ञान दृष्टि विनष्ट हो गयी थी। **क्षेभमर्थदृशं** अर्थात् परम कल्याण और तत्त्वज्ञान ॥२१॥

तेऽच्युतं प्राप्तमाकर्ण्य पौरा जानपदा नृप। अभीयुर्मुदितास्तस्मै गृहीतार्हणपाणयः ॥२२॥

अन्वयः— नृप अच्युतं प्राप्तम्, आकर्ण्य पौराः जानपदाः हे नृप मुदिताः तस्मै गृहीतार्हणपाणयः अभीयुः ॥२२॥

अनुवाद— राजन् भगवान् श्रीकृष्ण के शुभागमन का समाचार सुनकर नगर के तथा गावों के लोग अपने हाथ में श्रीभगवान् के लिए पूजन सामग्री लेकर आये ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

अभीयुः प्रत्युज्जग्मुः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

अभीयुः अर्थात् अगवानी करने के लिए आये ॥२२॥

दृष्ट्वा त उत्तमश्लोकं प्रीत्युत्फुल्लाननाशयाः। कैर्धृताञ्जलिभिर्नेमुः श्रुतपूर्वांस्तथा मुनीम् ॥२३॥

अन्वयः— प्रीत्युत्फुल्लाननाशयाः ते उत्तम श्लोकं श्रुतपूर्वान् मुनीन् च दृष्ट्वा कैः धृताञ्जलिभिः नेमुः ॥२३॥

अनुवाद— श्रीभगवान् का दर्शन करके उन लोगों के हृदय और मुख कमल प्रेम और आनन्द से भर गया। उन लोगों ने श्रीभगवान् को तथा जिन मुनियों को केवल सुने ही थे देखे नहीं थे उनको शिर झुकाकर तथा हाथ जोड़कर नमस्कार किया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

प्रीत्योत्फुल्लान्याननान्याशया अन्तःकरणानि च येषां ते। कैः शिरोभिः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

प्रेम के कारण जिनके मुखकमल और हृदय विकसित हो गये थे। शिरो से ॥२३॥

स्वानुग्रहाय संप्राप्तं मन्वानौ तं जगद्गुरुम्। मैथिलः श्रुतदेवश्च पादयोः पेततुः प्रभोः ॥२४॥

अन्वयः— तं जगद्गुरुम् स्वानुग्रहाय संप्राप्तं मन्वानौ मैथिलः श्रुतदेवश्च प्रभोः पादयोः पेततुः ॥२४॥

अनुवाद— उन जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण को अपने पर कृपा करने के लिए पधारे हुए मानकर मैथिल वंशीय बहुलाश्व और श्रुतदेव दोनों श्रीभगवान् के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम किए ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

न्यमन्त्रयेतां दाशार्हमातिथ्येन सह द्विजैः । मैथिलः श्रुतदेवश्च युगपत्संहताञ्जली ॥२५॥

अन्वयः— मैथिलः श्रुतदेवश्च युगपत्संहताञ्जली द्विजैः सह दाशार्हम् अतिथ्येन न्यमन्त्रयेताम् ॥२५॥

अनुवाद— मिथिला के राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव दोनों हाथ जोड़कर मुनियों के साथ श्रीभगवान् को अतिथ्य के लिए निमन्त्रित किया ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

भगवांस्तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया । उभयोराविशद्गेहमुभाभ्यां तदलक्षितः ॥२६॥

अन्वयः— भगवान् तदभिप्रेत्य द्वयोः प्रियचिकीर्षया उभाभ्यां तदलक्षितः उभयोः गेहम् आविशत् ॥२६॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण दोनों की प्रार्थना स्वीकार करके, दोनों को ही प्रसन्न करने के लिए एक ही समय में अलग-अलग रूप से दोनों के घर पधारे यह बात एक दूसरे को मालुम नहीं हुई कि भगवान् श्रीकृष्ण मेरे घर के अतिरिक्त किसी दूसरे के घर पधार रहे हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तदभिप्रेत्याङ्गीकृत्य तत्तदोभाभ्यामपि ताभ्यां मद्गृहादन्यस्य गेहं यातीत्यलक्षितोऽविदितः । यद्वा उभाभ्यां रूपाभ्यां तदलक्षितस्ताभ्यामलक्षित इति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

दोनों की प्रार्थना स्वीकार करके, उस समय उन दोनों में से किसी को नहीं मालुम हुआ कि भगवान् हमारे घर के अतिरिक्त किसी दूसरे घर जा रहे है । अथवा दोनों रूपों से उन दोनों के जाने बिना ही ॥२६॥

श्रोतुमप्यसतां दूरान् जनकः स्वगृहागतान् । आनीतेष्वासनाग्र्येषु सुखासीनान्महामना ॥२७॥
प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्षहृदयास्राविलेक्षणः । नत्वा तदङ्घ्रीन्प्रक्षाल्य तदपो लोकपावनीः ॥२८॥
सकुटुम्बो वहन्मूर्ध्ना पूजयांचक्र ईश्वरान् । गन्धमाल्याम्बराकल्पधूपदीपार्घगोवृषैः ॥२९॥

अन्वयः— महामनाः जनकः असतां श्रोतुम् अपिदूरान् स्वगृहागतान् आनीतेष्वासनाग्र्येषु सुखासीनान् प्रवृद्धभक्त्या उद्धर्ष हृदयास्राविलेक्षणः नत्वा तदङ्घ्रीन् प्रक्षाल्य लोकपावनीः तदपः सकुटुम्बः मूर्ध्ना वहन् गन्ध माल्याम्बराकल्प धूपदीपार्ध्य गोवृषः ईश्वरान् पूजयांचक्रे ॥२७-२९॥

अनुवाद— महामनस्वी जनक बहुलाश्व यह देखकर कि दुष्ट पुरुष जिनका नाम भी नहीं सुन सकते हैं, वे भगवान् श्रीकृष्ण और ऋषिगण हमारे घर आये । उन्होंने सुन्दर-सुन्दर आसनों को मँगवाया और श्रीभगवान् तथा मुनिगण उस पर बैंठ गये । उस समय बहुलाश्व की विचित्र दशा थी । उनके हृदय में प्रेमा भक्ति का उद्रेक हो गया। उनकी आँखों में प्रेमाश्रु भर गये । उन्होंने अपने पूज्य अतिथियों के चरणों में नमस्कार किया तथा उनके पैरों को धोया वे अपने परिवार के साथ अतिथियों के चरणोदक के पवित्र जल को अपने शिर पर धारण किया । तदनन्तर उन्होने श्रीभगवान्और भगवत्स्वरूप ऋषियों की गन्धमाला, वस्त्र अलङ्कार, धूप, दीप तथा गौ एवं बैल समर्पित करके उनकी पूजा की ॥२७-२९॥

भावार्थ दीपिका

उद्धर्षमुद्गतहर्ष हृदयं यस्य, अस्रैराविले क्लिन्ने ईक्षणे यस्य सः स च स च । ईश्वरान् । ईश्वरं तत्तुल्यांश्चेत्यर्थः ॥२७-२९॥

भाव प्रकाशिका

जिनके हृदय में प्रेमाभक्ति के उद्रेक से नेत्रों में आँसू भर गये थे । ईश्वरान् ईश्वर तथा ईश्वर के तुल्य ऋषियों की ॥२७-२९॥

वाचा मधुरया प्रीणन्निदमाहान्नतर्पितान् । पादावङ्कगतौ विष्णोः संस्पृशन् शनकैर्मुदा ॥३०॥

अन्वयः— विष्णोः पादावङ्कगतौ शनकैः संस्पृशन् मुदा मधुरया वाचा प्रीणन् तर्पितान् इदमाह ॥३०॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों को अपनी गोद में रखकर उसे धीरे-धीरे सहलाते हुए आनन्द मग्न होकर मधुर वाणी से श्रीभगवान् को प्रसन्न करते हुए स्तुति करने लगे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

प्रीणन्प्रीणयन् । संस्पृशन्संमर्दयन् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

प्रीणन् अर्थात् प्रसन्न करते हुए, संस्पृशन् अर्थात् दबाते हुए ॥३०॥

राजोवाच

भवान्हि सर्वभूतानामात्मा साक्षी स्वदृग्विभो । अथ नस्त्वत्पदाम्भोजं स्मरतां दर्शनं गतः ॥३१॥

अन्वयः— हे विभो, भवान् हिसर्वभूतानाम् आत्मा साक्षी स्वदृक्, अथ नः स्मरतां त्वत्पदाम्भोजं दर्शनं गतः ॥३१॥

राजा बहुलाश्व ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! आप तो सभी जीवों की आत्मा, साक्षी एवं स्वयम्प्रकाश हैं । हम चूकि आपके चरणों का सदा स्मरण करते हैं, इसी लिए आज आप हमलोगों को दर्शन देकर कृतार्थ किए ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

आत्मा चेतयिता । साक्षी प्रकाशकः । स्वदृक् स्वप्रकाशः । अथातः कारणात् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

आत्मा अर्थात् चेतयिता, साक्षी अर्थात् प्रकाशक, स्वदृक् अर्थात् स्वयम्प्रकाश । **अथातः** अर्थात् इसी कारण से ॥३१॥

स्ववचस्तदृतं कर्तुमस्मद्दृग्गोचरो भवान् । यदात्थैकान्तभक्तान्मे नानन्तः श्रीरजः प्रियः ॥३२॥

अन्वयः— यदात्थ एकान्तभक्तात् मे अनन्तः श्रीः अजः प्रियः न तद्वचः ऋतं कर्तुं भवान् अस्मद् दृग्गोचरः भवान्॥३२॥

अनुवाद— आपने यह जो कहा है कि मेरे ऐकान्तिक भक्त से बढ़कर प्रिय मेरे भाई बलरामजी, पत्नी श्रीलक्ष्मीजी तथा पुत्र ब्रह्माजी नहीं है । अपनी इसी वाणी को सत्य करने के लिए आप हमे दर्शन दिए हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अनन्तो बन्धुरपि, श्रीर्भार्याऽपि, अजः पुत्रोऽपि ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

अनन्तः अर्थात् मेरे भाई बलरामजी, पत्नी लक्ष्मीजी और अजः अर्थात् पुत्र ब्रह्माजी अधिक प्रिय नहीं है॥३२॥

को नु त्वच्चरणाम्भोजमेवंविद्विसृजेत्पुमान् । निष्किंचनानां शान्तानां मुनीनां यस्त्वमात्मदः ॥३३॥

अन्वयः— कः नु एवंवित् पुमान् त्वच्चरणाम्भोजम् विसृजेत् । यः त्वम् निष्किञ्चनानाम् शान्तानां मुनीनाम् आत्मदः॥३३॥

अनुवाद— हे प्रभो ! जो पुरुष इस बात को जानता है वह आपके चरणों का परित्याग कैसे कर सकता है ? प्रभो आप तो अपने अकिञ्चन, परम शान्त मुनियों को अपने आपको भी प्रदान कर देने वाले हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

योऽवतीर्य यदोर्वंशे नृणां संसरतामिह । यशो वितेने तच्छान्त्यै त्रैलोक्यवृजिनापहम् ॥३४॥

अन्वयः— यः यदोर्वंशे अवतीर्य इह संसरतां जनानां तच्छान्त्यै, त्रैलोक्यवृजिनापहम् यशः वितेने ॥३४॥

अनुवाद— आप यदु के वंश में अवतार लेकर इस संसार में जन्म मृत्यु के चक्र में पड़े हुए के संसार की शान्ति के लिए ऐसे यश का विस्तार आप किए हैं जो त्रैलोक्य के पापों को विनष्ट कर देने वाला है ॥३४॥

भावार्थदीपिका

तच्छान्त्यै संसारोपशमाय ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

तच्छान्त्यै अर्थात् संसार में होने वाले संतापो को विनष्ट करने के लिए ॥३४॥

नमस्तुभ्यं भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे । नारायणाय ऋषये सुशान्तं तप ईयुषे ॥३५॥

अन्वयः— भगवते, कृष्णाय अकुण्ठमेधसे नारायणाय ऋषये सुशान्तं तप ईयुषे नमः ॥३५॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप अचिन्त्य, अनन्त ऐश्वर्य और माधुर्य की निधि हैं । आप सबों के चित्त को अपनी ओर आकृष्ट करने वाले हैं । आप सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म है । आपका ज्ञान आनन्त है । आप ही परम शान्ति का विस्तार करने के लिए बदरिकाश्रम में नारायण ऋषि के रूप में तपस्यारत हैं ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३५॥

दिनानि कतिचिद्भूमन्गृहान्नो निवसद्विजैः । समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेः कुलम् ॥३६॥

अन्वयः— हे भूमन् कतिचिद् दिनानि नो गृहान द्विजैः समेतः निवस, पादरजसा इदं निमेः कुलं पुनीहि ॥३६॥

अनुवाद— हे एकरस अनन्त आप कुछ दिनों तक मुनि मण्डली के साथ हमारे ही घर निवास करें और अपने चरणों की धूलि से इस निमि के वंश को पवित्र बना दें ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

गृहान् । गृहेष्वित्यर्थः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

गृहान अर्थात् गृहों में ॥३६॥

इत्युपामन्त्रितो राज्ञा भगवाँल्लोकभावनः । उवास कुर्वन्कल्याणं मिथिलानरयोषिताम् ॥३७॥

अन्वयः— इति राजा उपामन्त्रितः लोकभावनः भगवान्, मिथिलानरयोषिताम् कल्याणं कुर्वन् उवास ॥३७॥

अनुवाद— इस तरह से राजा बहुलाश्व के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके संसार को जीवन प्रदान करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण मिथिला के लोगों का कल्याण करते हुए वहाँ निवास किए॥३७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

श्रुतदेवोऽच्युतं प्राप्तं स्वगृहान् जनको यथा । नत्वा मुनीन्सुसंहृष्टो धुन्वन्वासो ननर्त ह ॥३८॥

अन्वयः— श्रुतदेवः स्वगृहान् प्राप्तं अच्युतं मुनीन् नत्वा सुसंहृष्टः वासः धुन्वन् ननर्त ह ॥३८॥

अनुवाद— श्रुतदेव भी अपने घर आये हुए श्रीभगवान् को तथा मुनियों को नमस्कार करके राजा बहुलाश्व के ही समान अत्यधिक आनन्द से भर गये और वे अपना वस्त्र उछाल-उछाल कर नृत्य करने लगे ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

धुन्वन् परिभ्रामयन् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

धुन्वन् अर्थात् घुमाते हुए ।।३८।।

तृणपीठबृसीष्वेतानानीतेषूपवेश्य सः । स्वागतेनाभिनन्द्याङ्घ्रीन्सभार्योऽवनिजे मुदा ।।३९।।

अन्वयः— आनीतेषु तृणपीठवृसीषु एतान् उपवेश्य, स्वागतेन अभिनन्द्य मुदा सभार्यः अङ्घ्रीन् अवनिजे ।।३९।।

अनुवाद— लाये गये चटाई, पीढ़ा तथा मृगचर्म पर इन सबों को बैठाकर उन सबों को स्वागत एंव अभिनन्दन करके आनन्दमग्न होकर अपनी पत्नी के साथ सबों के पैर को धोए ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

अवनिजे अवनिनिजे प्रक्षालितवान् ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

अवनिजे का शुद्ध रूप अवनिनिजे होगा और उसका अर्थ है प्रक्षालित किए ।।३९।।

तदम्भसा महाभाग आत्मानं सगृहान्वयम् । स्नापयांचक्र उद्धर्षो लब्धसर्वमनोरथः ।।४०।।

अन्वयः— उद्धर्षः लब्धसर्वमनोरथः महाभागः तदम्भसा सगृहान्वयम् आत्मानं स्नापयाञ्चक्रे ।।४०।।

अनुवाद— श्रुतदेव के हृदय में हर्ष अत्यधिक उद्रिक्त हो गया था। उनके सारे मनोरथ पूर्ण हो गये थे। वे महाभाग्यवान, उस चरणोदक से अपने घर और सम्पूर्ण कुटुम्बियों को सींचकर उसी सें स्वयम् स्नान कर लिए ।।४०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४०।।

फलार्हणोशीरशिवामृताम्बुभिर्मुदा सुरभ्या तुलसीकुशाम्बुजैः ।
आराधयामास यथोपपन्नया सपर्यया सत्त्वविवर्धनान्धसा ।।४१।।

अन्वयः— फलर्हणोशीर शिवामृताम्बुभिः सुरभ्या मृदा तुलसी कुशाम्बुजै यथोपपन्नया सत्त्वविवर्धनाम्भसा सपर्यया आराधयामास ।।४१।।

अनुवाद— उसके पश्चात् वे फल, गन्ध खस से सुवासित निर्मल एवं मधुरजल, सुगन्धित मिट्टी, तुलसी, कुश, कमल, इत्यादि अनायास प्राप्त पूजा सामग्री एवं सत्त्वगुण बढ़ाने वाले अन्न से सबों की आराधना किए ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

फलैरामलकादिभिरर्हणेनोशीरैस्तृणविशेषमूलैः सुवासितैः शिवैरमृतवत्स्वादुभिरम्बुभिः । सुरभ्या मृदा कस्तूरीप्रमुखया सपर्यया पूजया । यथोपपन्नया अनायासेन संपन्नया । भूतानुपद्रवलब्धत्वात् । सत्त्वविवर्धनं यदन्धनेऽन्नं तेन च ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

आँवला आदि के फलों से पूजन के द्वारा खश से सुवासित अमृत के समान स्वादिष्ट जल, सुगन्धित मिट्टी, कस्तूरी प्रधान पूजा के द्वारा, अनायास प्राप्त तथा जीवों को किसी भी प्रकार का कष्ट दिए बिना ही प्राप्त एवं सत्त्वगुण को बढ़ाने वाले अन्न से सबों का सत्कार किए ।।४१।।

स तर्कयामास कुतो ममान्वभूद्गृहान्धकूपे पतितस्य संगमः ।
यः सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः कृष्णेन चास्यात्मनिकेतभूसुरैः ।।४२।।

अन्वयः— सः तर्कयामास गृहान्धकूपे पतितस्य मम यः सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः आत्मनिकेतभूसुरैः कृष्णेन च सङ्गमः कथम् अन्वभूत् ।।४२।।

अनुवाद— उस समय श्रीश्रुतदेवजी मन-ही-मन सोच रहे थे कि मैं तो गार्हस्थ्य के अन्धेरे कुएँ में पड़ा हुआ हूँ। ऐसी स्थिति में जिनके चरणों की धूलि ही सभी तीर्थों को तीर्थ बनाने वाली है ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण और उनके निवास स्थान ऋषियों का समागम मुझे कैसे प्राप्त हुआ ?।।४२।।

भावार्थ दीपिका

अस्य श्रीकृष्णस्यात्मा मूर्तिस्तस्य निकेतैः स्थानविशेषैर्भूसुरैश्च सर्वतीर्थास्पदपादरेणुभिः कृष्णादिभिर्यः सङ्गमः स मम कुतोऽन्वभूदिति । अनु इति विस्मये । यद्वा आ इति वितर्के । नु इति विस्मये ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्ति तथा उनके विशेष निवास स्थान ऋषियों से, जिनके चरणों की धूलि सभी तीर्थों को तीर्थ बनाने वाली है ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण आदि के साथ मेरा सङ्गम कैसे हुआ ? अनु यह अव्यय विस्मयार्थक है अथवा यह वितर्कार्थक है और नु यह विस्मयार्थक है ।।४२।।

सूपविष्टान्कृतातिथ्यान् श्रुतदेव उपस्थितः । सभार्यस्वजनापत्य उवाचाङ्घ्र्यभिमर्शनः ।।४३।।

अन्वयः— सूपविष्टान् कृतातिथ्यान् सभार्यस्वजनापत्यः उपस्थितः श्रुतदेवः अङ्घ्रि अभिमृशन् उवाच ।।४३।।

अनुवाद— जब सब लोग आतिथ्य स्वीकार करके आराम से बैठ गये तब अपनी पत्नी, पुत्र तथा परिवार के साथ उपस्थित होकर श्रुतदेवजी ने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों को दबाते हुए कहा ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

उपस्थितः समीप उपविष्टः । भार्या भर्तव्याः स्वजना अपत्यानि च तैः सहितः । श्रीकृष्णस्याङ्घ्रिमभिमृशति संमर्दयतीत्यङ्घ्र्यभिमर्शनः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

उपस्थितः अर्थात् समीप में ही बैठे हुए पत्नी पुत्र और परिवार के साथ श्रीभगवान् श्रीकृष्ण के पैरों को दबाते हुए कहे ।।४३।।

श्रुतदेव उवाच

नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः । यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टो ह्यात्मसत्तया ।।४४।।

अन्वयः— परम पुरुषः अद्य एवनः दर्शनं प्राप्त इति न परं यर्हि इदं शक्तिभि सृष्ट्वा आत्मसत्तया ही प्रविष्टः ।।४४।।

श्रुतदेवजी ने कहा

अनुवाद— परम पुरुष परमात्मा आपका दर्शन आज ही मिला हो ऐसी बात नहीं है, अपितु अपनी अचिन्त्य शक्तियों के द्वारा इस जगत् की सृष्टि करके आप जब इसमें प्रवेश कर गये तब से ही आपका दर्शन प्राप्त है।।४४।।

भावार्थ दीपिका

यर्हीदं प्रविष्टस्तदैव दर्शनं प्राप्त इति स एव सन्मात्रो नाद्यतनीभूतस्त्वमित्यर्थः । यद्वा नोऽस्मानद्यैव प्राप्त इति न, किंतु तदैव प्राप्तो यर्हीदं विश्वं स्वशक्तिभिः सत्त्वादिभिः सृष्ट्वा स्वसत्तयानुप्रविष्टस्त्वम् । त्वद्दर्शनं तु परं केवलमद्यैव प्राप्तम् ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

जब श्रीभगवान् इस जगत् के भीतर प्रवेश किए उसी समय आपका दर्शन प्राप्त हो गया । वे ही श्रीभगवान् सन्मात्र हैं आप आज के नहीं है । अथवा आप आज ही हमारे दर्शन के विषय बने ऐसी बात नहीं; बल्कि आप तो उसी समय दर्शन के विषय बन गयें जबकि आप अपनी सत्त्वादि शक्तियों के द्वारा जगत् की सृष्टि करके इसके भीतर प्रवेश कर गये । आपका दर्शन तो आज ही प्राप्त हुआ है ।।४४।।

यथा शयानः पुरुषो मनसैवात्ममायया । सृष्ट्वा लोकं परं स्वाप्नमनुविश्यावभासते ॥४५॥

अन्वयः— यथा शयानः पुरुष मनसा एव स्वाप्नं लोंकं सृष्ट्वा आत्मायया परं स्वाप्नमनुप्रविश्य अवभासते ॥४५॥

अनुवाद— जिस तरह सोया हुआ मनुष्य अपने मन से ही स्वाप्न लोक की सृष्टि करके उसमें अपनी अविद्या के कारण प्रवेश करके विविध कर्मों को करता हुआ प्रतीत होता है, उसी तरह आप भी अपनी माया से अपने में ही जगत् की सृष्टि करके इसमें प्रवेश करके अनेक रूपों से प्रकाशित हो रहे हैं ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

मायासृष्टिप्रवेशयोरविद्यासृष्टिप्रवेशौ दृष्टान्ततयाह-यथेति । आत्ममायया स्वाविद्यया । यद्वा आत्मनस्तव माययेति ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

माया तथा सृष्टि में प्रवेश के दृष्टान्त के रूप में अविद्या और सृष्टि में प्रवेश को उपन्यस्त किया गया है। **यथा० इत्यादि** श्लोक के द्वारा आत्ममायया अर्थात् जीव पक्ष में अपनी अविद्या के द्वारा और परमात्मा के पक्ष में अपनी शक्ति भूत आप अपनी माया के द्वारा ॥४५॥

शृण्वतां गदतां शश्वदर्चतां त्वाभिवन्दताम् । नृणां संवदतामन्तर्हृदि भास्यमलात्मनाम् ॥४६॥

अन्वयः— शृण्वतां, गदतां शश्वदर्चतां त्वाभिवन्दताम् संवदताम् अमलात्मनां नृणां हृदि भासि ॥४६॥

अनुवाद— जो लोग आपका श्रवण, कीर्तन तथा आपकी मूर्तियों की अर्चना करते हैं तथा आपस में आपकी ही चर्चा करते है । ऐसे मनुष्यों का हृदय निर्मल हो जाता है और आप ऐसे ही लोगों के हृदय में प्रकाशित होते है ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

किंच शृण्वतामिति । नित्यं श्रवणकीर्तनादिपराणाममलात्मनामपि हृद्येव त्वं भासि, मम तु लोचनगोचरस्त्वमहो भाग्यमिति भावः ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

और शृण्वताम् इत्यादि श्लोक के द्वारा कहा गया है कि जो लोग सदैव आपका श्रवण कीर्तन आदि करतें रहते हैं। उन लोगों के ही शुद्ध हृदय में आप प्रकाशित होते है । आप जो मुझे दर्शन दिए यह तो मेरा अहोभाग्य है ॥४६॥

हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः कर्मविक्षिप्तचेतसाम् । आत्मशक्तिभिरग्राह्योऽप्यन्त्युपेतगुणात्मनाम् ॥४७॥

अन्वयः— कर्मविक्षिप्तचेतसाम् हृदिस्थोऽप्यतिदूरस्थः आमिशक्तिभिरगाह्योपि, उपेतगुणात्मनाम् अन्ति ॥४७॥

अनुवाद— जिन लोगों का मन लौकिक एवं वैदिक कर्मों के अनुष्ठान के कारण बर्हिमुख हो चुका है, उन लोगों के हृदय में विद्यमान रहकर आप उनसे बहुत दूर रहते हैं । जिन लोगों ने आपके गुणों के गान के द्वारा अपने अन्तःकरण को शुद्ध सत्त्वसम्पन्न बना लिया है, उनके लिए चित्त वृत्तियों से अग्राह्य होने पर भी आप अत्यन्त निकट बने रहते हैं ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

ननु सर्वेषां हृदि स्थितः कथं केषांचिदेव हृदि भासि, मेघैः सूर्यवज्जीवोपाधिभिरावृतत्वादिति यद्युच्यते तर्हि न कस्यापि भायादित्यत आह-हृदिस्थोऽपीति । कर्मभिर्विक्षिप्तं चेतो येषां तेषामात्मशक्तिभिरहंकारादिभिरग्राह्यो व्यवहितोऽप्युपेतगुणः प्राप्तश्रवणकीर्तनादिसंस्कार आत्मा अन्तःकरणं येषां तेषामन्ति समीपे । अव्यवहितस्त्वमित्यर्थः ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि परमात्मा तो सबों के हृदय में विद्यमान हैं, तो फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि

आप कुछ लोगों के ही हृदय में प्रकाशित होते हैं। यदि यह कहा जाय कि जिस तरह मेघों के द्वारा सूर्य छिप जाते है वैसे ही जीवापाधि अविद्याओं के द्वारा आप आवृत हो जाते हैं तब तो आपकी प्रतीति किसी को भी नहीं होनी चाहिए इस पर श्रुतदेवजी **हृदिस्थो० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। लौकिक तथा वैदिक कर्मों की वासना के कारण जिन लोगों का चित्त बर्हिमुख हो गया है उनके अहङ्कार आदि से आप आग्रह्य हैं। किन्तु जिन लोगों ने आपके गुणों के गान को ही अपना लिया है, उन लोगों के लिए आप व्यवहित होने पर उनके अन्त:करण के स्वच्छ हो जाने से आप उसमें प्रकाशित होते हैं। क्योंकि ऐसे लोगों के आप सन्निकटस्थ होते हैं ॥४७॥

नमोऽस्तु तेऽध्यात्मविदां परात्मने अनात्मने स्वात्मविभक्तमृत्यवे ।
सकारणाकारणलिङ्गमीयुषे स्वमायया संवृतरुद्धदृष्टये ॥४८॥

अन्वयः— अध्यात्मविदां परात्मने अनात्मने स्वात्मविभक्त मृत्यवे सकारणाकारणलिङ्गमीयुषे स्वमायया संवृतरुद्धदृष्टये नमः ॥४८॥

अनुवाद— हे प्रभो ! जो लोग आत्मतत्त्व के ज्ञाता हैं ऐसे लोगों के लिए आप आत्मा के रूप में स्थित हैं। जो लोग अपने शरीर आदि को ही अपनी आत्मा मान लिए है ऐसे लोगों के लिए आप अनात्मा को प्राप्त होने वाली मृत्यु के रूप में स्थित है। आप महदादि के रूप में विद्यमान कार्य द्रव्यों तथा प्रकृति रूप कारण द्रव्यों के नियामक हैं। आपकी माया आपकी दृष्टि को नहीं ढँक सकती है किन्तु वह दूसरों की दृष्टि को ढँक दी है। ऐसे आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव प्रपञ्चयन्नमस्यति-नमोऽस्त्विति। ते तुभ्यं नमोऽस्तु। अध्यात्मविदां निवृत्तदेहाद्यहंकाराणां परात्मने परमात्मत्वेन प्रकाशमानाय। मोक्षप्रदायेत्यर्थः। अनात्मने देहाद्यभिमानिने जीवाय, परत्वेनाप्रकाशमानत्वात्। स्वात्मनः सकाशाद्विभक्तः समर्पितो मृत्युः संसारो येन तस्मै। कुत एतत्तत्राह-सकारणं महदादिकार्यम्, अकारणं प्रकृतिः, तदुभायलिङ्गमुपाधिंनियम्यतया ईयुषे प्राप्तवते। अत उभयनियन्तुः स्वस्मात्सकाशात्तदुभयवश्याय जीवाय विभक्तमृत्यव इत्यर्थः। नियन्तृनियम्यत्वे कारणं वदन्नाह-हे स्वमायया संवृतेति। अतोऽलुप्तैश्वर्यत्वान्नियन्त्रे तुभ्यं नमः। किंच रुद्धदृष्टये मायावित्वादेवान्येषां रुद्धा आवृता दृष्टिर्येन तस्मै। यद्वा स्वमायया स्वस्यासंवृता अन्येषां रुद्धा दृष्टिर्येन तस्मै इत्येकं पदम् ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

श्रीश्रुतदेवजी इसी अर्थ का विस्तार से वर्णन करते हुए **हृदिस्थोऽपि० इत्यादि** श्लोक कहते हैं- हे प्रभों आपको नमस्कार है जिन लोगों का देह आदि के विषय में होने वाले अहङ्कार समाप्त हो गया है ऐसे लोगों के लिए आप परमात्मा रूप से प्रकाशित होते हैं। अर्थात् उन लोगों को आप मोक्ष प्रदान कर देते हैं। जो जीव देह आदि में ही आत्मा की बुद्धि रखते हैं उन जीवों के लिए आप परमात्मा रूप से नहीं प्रकाशित होते हैं। ऐसे जीवों को आप मृत्यु प्रदान करते है। ऐसे आपको नमस्कार है। यदि कोई कहे कि ऐसा कैसे होता है ? इस पर श्रुतदेवजी कहते है। कार्यभूत महदादि तथा अकारणभूत प्रकृति इन दोनों प्रकार की उपाधियों को आप प्राप्त किए हुए हैं- अतएव दोनों के नियामक आपके द्वारा इन दोनों के अधीन रहने वाले जीव के लिए मृत्यु के रूप में स्थित हैं। ऐसे आप को नमस्कार है। आप नियन्ता हैं तथा जीव नियम्य हैं। उसका कारण है कि आप अपनी माया से असंवृत हैं अतएव आपका ऐश्वर्य लुप्त नहीं हुआ है। ऐसे आपको नमस्कार है। किन्तु जो लोग माया को नहीं जानते है, माया उनकी दृष्टि को आवृत्त कर दी है। अथवा अपनी माया के द्वारा आपकी दृष्टिसंवृत नहीं किन्तु दूसरों की दृष्टि रुद्ध हो गयी है। ऐसे आपको नमस्कार है। **स्वमाययासंवृतरुद्धदृष्टयेयह** एक पद है ॥४८॥

स त्वं शाधि स्वभृत्यान्नः किं देव करवामहे । एतदन्तो नृणां क्लेशो यद्भवानक्षगोचरः ॥४९॥

अन्वयः— हे देव सत्वंस्वभृत्यान् शाधि किं करवामहे । एतदन्तो नृणां क्लेशः । यद्भवान् अक्षिगोचरः ॥४९॥

अनुवाद— हे स्वयम्प्रकाशप्रभो ! हम आपके सेवक हैं, आप हमें आज्ञा दीजिएँ कि हम आपकी कौन सी सेवा करें । जीवों के क्लेश तब तक ही बने रहते हैं, जब की आपका दर्शन न हो जाय । आपका दर्शन ही समस्त क्लेशों का नाश करने वाला है ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

स एवंभूतः परमेश्वरस्त्वं नोऽस्मान्स्वभृत्यान् शाध्यनुशिक्षय ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

आप तो परमेश्वर ही हैं, हम आपके सेवक है, आप हमे शिक्षा दें ॥४९॥

श्रीशुक उवाच

तदुक्तमित्युपाकर्ण्य भगवान्प्रणतार्तिहा । गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रहसंस्तमुवाच ह ॥५०॥

अन्वयः— इति तदुक्तमुपाकर्ण्य प्रणतार्तिहा भगवान् पाणिना पाणिं गृहित्वा प्रहसन् तम् उवाच ह ॥५०॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह श्रीश्रुतदेवजी की बातों को सुनकर भक्तों के कष्ट को विनष्ट करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने हाथ से श्रुतदेवजी का हाथ पकड़ कर मुस्कुराते हुए उनसे कहे ॥५०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५०॥

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्मंस्तेऽनुग्रहार्थाय संप्राप्तान्विद्ध्यमून्मुनीन् । संचरन्ति मया लोकान्पुनन्तः पादरेणुभिः ॥५१॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ते अनुग्रहार्थाय अमून् सम्प्राप्तान् मुनीन् विद्धि, पादरेणुभिः लोकान् पुनन्तः मया संचरन्ति॥५१॥

श्रीभगवान ने कहा

अनुवाद— हे श्रुतदेव, तुम पर कृपा करने के ही लिए ये मुनिगण यहाँ आये है अपने चरणो की धूलि से ही लोकों को पवित्र बनाते हुए ये मेरे साथ विचरण कर रहे हैं ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

स्वस्मिन्नादरमत्यधिकं ब्राह्मणेषु मन्दमिवालक्ष्य लोकसंग्रहपरो भगवान्मत्तोऽपि ब्राह्मणेषु श्रद्धातिरेकं कुर्वित्येवं तमनुशास्ति-ब्रह्मन्निति सप्तभिः । मया हृदि स्थितेन ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

अपने प्रति श्रुतदेवजी का अत्यधिक आदर और ऋषियों के प्रति कम समादर देखकर लोकसंग्रह करने वाले श्रीभगवान् श्रुतदेवजी को शिक्षा देते हुए कहे कि मुझसे भी अधिक श्रद्धा ब्राह्मणों में करो । इस बात को उन्होंने **ब्रह्म० इत्यादि** सात श्लोकों से कहा है । ये ब्राह्मण मेरे हृदय में निवास करते है ॥५१॥

देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः । शनैः पुनन्ति कालेन तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥५२॥

अन्वयः— देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः कालेनशनैः पुनन्ति तदप्यर्हत्तमेक्षया ॥५२॥

अनुवाद— देवता क्षेत्र एवं तीर्थ इन सबों का दर्शन करने पर ये धीरे-धीरे समयानुसार पवित्र करने का काम

करते हैं किन्तु सत्पुरुष तो शीघ्र ही पवित्र बना देते है । किञ्च देवता भी किसी को पवित्र करने की शक्ति ब्राह्मणों के दर्शन से ही प्राप्त करते हैं ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

देवादिभ्योऽपि ब्राह्मणाः श्रेष्ठा इत्याह-देवा इति। ते शनैः पुनन्ति, एते तु सद्यः। किंच देवादीनि यत्पुनन्ति तदप्यर्हत्तमानामीक्षया॥५२॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं आदि से भी ब्राह्मण श्रेष्ठ है इस बात को श्रीभगवान् **देवा० इत्यादि** श्लोक से कहे है । देवता आदि तो धीरे-धीरे पवित्र बनाने का काम करते हैं किन्तु ऋषिगण तो शीघ्र ही पवित्र बना देते हैं । और देवता आदि भी पवित्र बनाने का काम सत्पुरुषों से ही शक्ति प्राप्त करने का काम करते हैं ॥५२॥

ब्राह्मणो जन्मना श्रेयान्सर्वेषां प्राणिनामिह । तपसा विद्यया तुष्ट्या किमु मत्कलया युतः ॥५३॥

अन्वयः— इह ब्राह्मणो सर्वेषां प्राणिनां श्रेयान् तपसा विद्ययां तुष्टः मत्कलया युतः किमु ॥५३॥

अनुवाद— श्रुतदेव जगत् में ब्राह्मण सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है, यदि वह तपस्या विद्यया, सन्तोष और मेरी भक्ति से युक्त है तो फिर क्या कहना है ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

मम कलापरिकलनमुपास्तिस्तया युतः ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

मत्कलयायुतः अर्थात् मेरी उपासना करने वाला ॥५३॥

न ब्राह्मणान्मे दयितं रूपमेतच्चतुर्भुजम् । सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो ह्यहम् ॥५४॥

अन्वयः— ब्राह्मणात् दयितः मे एतत् चतुर्भुजरूपं न विप्र सर्ववेदमय अहं हि सर्वदेवमय ॥५४॥

अनुवाद— ब्राह्मण से अधिक प्रिय मुझको अपना यह चतुर्भुज रूप भी नहीं हैं, क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय होता है और मैं सर्वदेवमय हूँ ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

किंच ब्राह्मणाराधनमेव मम प्रेष्ठमित्याह-नेति । हेतुमाह-सर्ववेदमयो विप्र इति । प्रणामाधीनत्वात्प्रमेयस्य वेदमयो विप्रो देवमयादस्माद्रूपात्प्रेष्ठ इत्यर्थः ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों की आराधना ही मुझको प्रिय है इस बात को **न ब्रह्मणान्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । उसका कारण है कि ब्राह्मण सर्ववेदमय होता है । सभी प्रमेय प्रमाणाधीन ही होते हैं । अतएव वेदमय ब्राह्मण सर्वदेवमय मेरे इस चतुर्भुज रूप से मुझे अत्यधिक प्रिय हैं ॥५४॥

दुष्प्रज्ञा अविदित्वैवमवजानन्त्यसूयवः । गुरुं मां विप्रमात्मानमर्चादाविज्यदृष्टयः ॥५५॥

अन्वयः— अर्चादौ इष्टदृष्टयः दुष्प्रज्ञाः असूयवः एवम् अविदित्वा गुरुं माम् विप्रम् आत्मानम् अवजानन्ति ॥५५॥

अनुवाद— मूर्ति आदि में ही अपने इष्टदेव की बुद्धि रखने वाले अज्ञानी लोग इस प्रकार से नहीं जानकर अपने गुरु का मेरा तथा अपनी आत्मा का भी अपमान करते हैं ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

असूयवो दोषदृष्टयः । इज्यदृष्टयः पूज्यबुद्धयः ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

असूयवः अर्थात् दोषदृष्टि वाले । इज्यदृष्टयः अर्थात् पूज्य बुद्धि रखने वाले लोग ।।५५।।

चराचरमिदं विश्वं भावा ये चास्य हेतवः । मद्रूपाणीति चेतस्याधत्ते विप्रो मदीक्षया ।।५६।।

अन्वयः— मदीक्षया विप्रः चेतसि आधते यत् इदं चराचरं विश्वं ये च अस्य हेतवः मद्रूपाणि ।।५६।।

अनुवाद— सर्वत्र मेरा ही दर्शन करने वाला ब्राह्मण अपने मन में यह निश्चय कर लेता है कि यह सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् इसके जो महदादि कारण हैं वे सब श्रीभगवान् के ही रूप हैं ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

अस्य विश्वस्य हेतवो भावा महदादयः । मदीक्षया ममैव सर्वत्रेक्षया ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

यह सम्पूर्ण चराचरात्मक विश्व के जो महदादि कारण हैं वे सब के सब परमात्मा के रूप है, क्योंकि वह सर्वत्र मेरा ही दर्शन करता है ।।५६।।

तस्माद्ब्रह्मऋषीनेतान्ब्रह्मन्मच्छ्रद्धयार्चय । एवं चेदर्चितोऽस्म्यद्धा नान्यथा भूरिभूतिभिः ।।५७।।

अन्वयः— ब्रह्मन् तस्मात् एतान् ऋषीन् मच्छ्रद्धयार्चय, एवं चेत् अद्धा अर्चितोऽस्मि अन्यथा भूरिभूतिभिः न ।।५०।।

अनुवाद— अतएव हे श्रुतदेव तुम इन ऋषियों में मेरी बुद्धि रखकर इनकी श्रद्धापूर्वक अर्चना करो यदि तुम ऐसा करते हो तब तुमने मेरी पूजा विधिपूर्वक कर ली अन्यथा बहुमूल्य सामग्रियों से भी तुम मेरी पूजा नहीं कर सकोगे ।।५७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५७।।

श्रीशुक उवाच

स इत्थं प्रभुणादिष्टः सहकृष्णान्द्विजोत्तमान् । आराध्यैकात्मभावेन मैथिलश्चाप सद्गतिम् ।।५८।।

अन्वयः— इत्थं प्रभुणा आदिष्टः सः सहकृष्णान् द्विजोत्तमान् एकात्म्यभावेन् आराध्य मैथिलः च सद्गतिम् आप।।५८।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार से श्रीभगवान् के द्वारा आदिष्ट होकर श्रीश्रुतदेवजी ने ऋषियों का भी भगवान् के साथ अभेद मानकर श्रीभगवान् के साथ ही उनकी भी पूजा की और ऐसा करके श्रुतदेवजी तथा मैथिल भी सद्गति को प्राप्त कर लिए ।।५८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५८।।

एवं स्वभक्तयो राजन्भगवान्भक्तभक्तिमान् । उषित्वादिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् ।।५९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे श्रुतदेवानुग्रहो नाम षडशीतितमोऽध्यायः ।।८६।।

अन्वयः— राजन् भक्तभक्तिमान् भगवान् एवं स्वभक्तयोः सन्मार्गं उद्दिश्य उषित्वा पुनः द्वारवतीम् अगात् ।।५९।।

अनुवाद— हे राजन् ! जिस तरह भक्त भगवान् की भक्ति करते हैं उसी तरह भगवान् भी अपने भक्तों की

भक्ति करते हैं । वे इस तरह अपने दोनों भक्तों को सन्मार्ग का उपदेश करके वहाँ कुछ दिन तक निवास किए और उसके पश्चात् द्वारका लौट आये ॥५९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के श्रुतदेवानुग्रह नामक छियासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८६।।

भावार्थ दीपिका

सतां वेदानां त्रिकाण्डविषयाणां प्रवृत्तिप्रकारमादिश्य ।।५९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षडशीतितमोऽध्यायः ।।८६।।

भाव प्रकाशिका

सत् पुरुवेदों और वेदों के तीनों विषयों का तथा प्रवृत्ति के प्रकार का उपदेश देकर ॥५९॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दशम स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थदीपिका के छियासीवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।८६।।

सत्तासीवाँ अध्याय

वेदस्तुति

परीक्षिदुवाच

ब्रह्मन्बह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः । कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात्सदसतः परे ॥१॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् अनिर्देश्ये साक्षात् सदसतः परे निर्गुणे ब्रह्मणि गुणवृत्तयः श्रुतयः कथं चरन्ति ॥१॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् जिनका मन एवं वाणी से किसी भी प्रकार का निर्देश नहीं किया जा सकता है, साक्षात् महदादि कार्यों प्रकृति आदि का परंब्रह्म से किसी भी प्रकार से संबन्ध नहीं हो सकता है, परंब्रह्म में प्रकृति के सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों गुणों का अभाव है । ऐसे परंब्रह्म के विषय में गुणों से युक्त श्रुतियाँ किस प्रकार से उस परंब्रह्म का वर्णन करती हैं ?॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्ताशीतितमे नारायणनारदवादतः । वेदैः स्तुतिर्गुणालम्बा निर्गुणोवधि वर्ण्यते ॥१॥ वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि । यस्यास्ते हृदये संवित्तं नृसिंहमहं भजे ॥२॥ संप्रदायविशुद्यर्थं स्वीयनिर्बन्धयन्त्रितः । श्रुतिस्तुतिमितव्याख्यां करिष्यामि यथामति ॥३॥ श्रीमद्भागवतं पूर्वैः सारतः संनिवेषितम् । मया तु तदुपस्पृष्टमुच्छिष्टमुपचीयते ॥४॥ पूर्वाध्यायान्ते-'एवं स्वभक्तयो राजन्भगवान्भक्तभक्तिमान् । उषित्वादिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् । इत्यत्र सन्मार्गं सतां स्वतःप्रमाणभूतानामप्रामाण्यकारणरहितानां वेदानां मार्गं ब्रह्मपरत्वमुपदिश्य भगवानगादित्युक्तं, तत्र वेदानां ब्रह्मपरत्वमघटमानं मन्वानः पृच्छति-ब्रह्मन्निति । तत्र तावन्मुख्या-लक्षणा-गुणभेदेन त्रिधा शब्दप्रवृत्तिः । मुख्यापि रुढि-योगभेदेन द्विधा । रूढिश्च स्वरूपेण जात्या गुणेन वा निर्देशार्हे वस्तुनि संज्ञासंज्ञिसंकेतेन प्रवर्तते, यथा-डित्थो गौः शुक्ल इति । लक्षणा च तेनैव संकेतेनाभिहितार्थसंबन्धिनि, यथा-गङ्गायां घोष इति । गौणी चाभिहितार्थलक्षितगुणयुक्ते तत्सदृशे, यथा-सिंहो देवदत्त इति । यथाहुः-'अभिधेयाविनाभूतप्रवृत्तिर्लक्षणेष्यते । लक्ष्यमाणगुणैर्योगाद्वृत्तेरिष्टा तु गौणता ।' इति । योगवृत्तिस्तु

एतत्त्रिविधवृत्तिप्रतिपादितपदार्थयोः प्रकृतिप्रत्ययार्थयोर्वा योगेन । यथा पङ्कजमौपगवः पाचक इत्यादि । तत्र तावद्ब्रह्मणि रूढिवृत्तिर्न संभवतीत्याह–साक्षात्कथं चरन्तीति । तत्र हेतुः–अनिर्देश्ये । अनिर्देश्यत्वेऽपि हेतुं वदन्गुणवृत्तिं निराकरोति–निर्गुणे गुणवृत्तय इति। गुणैर्वर्तमाना अपि निर्गुणे कथं चरन्तीत्यर्थः । निर्गुणत्वे च हेतुं वदन् लक्षणां योगं च निराकरोति–सदसतः पर इति । कार्यकारणाभ्यां परस्मिन्नसङ्गे केनचिदपि संबन्धाभावान्न लक्षणायोगवृत्ती संभवत इत्यर्थः । एवं पदार्थत्वायोगादपदार्थस्य च वाक्यार्थत्वायोगान्न श्रुतिगोचरत्वं ब्रह्मण इत्यभिप्रायः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

सत्तासीवें अध्याय में भगवान् नारायण और नारद के संवाद के माध्यम से गुणों को ही अपना विषय बनाने वाली श्रुतियाँ निर्गुण श्रीभगवान् का वर्णन वेदों द्वारा की गयी स्तुति का वर्णन किया जाता है ।।१।। जिन श्रीभगवान् के मुख में सरस्वती देवी का निवास है तथा वक्षःस्थल में श्रीलक्ष्मीजी का निवास है । तथा जिनके हृदय में ज्ञान का निवास है ऐसे श्रीनृसिंह भगवान् की मैं आराधना करता हूँ ।।२।। सम्प्रदाय की विशेष रूप से शुद्धि के लिए तथा अपने छात्रों के निर्वन्ध के अधीन होकर मैं वेदस्तुति की अपनी बुद्धि के अनुसार संक्षिप्त व्याख्या करूँगा ।।३।। पूर्वाचार्यों ने श्रीमद्भागवत की व्याख्या साररूप से की है । मैं तो उस संक्षेप में कही बातों की विस्तार पूर्वक व्याख्या करूँगा ।।४।। इस अध्याय से पहले के अध्याय में कहा गया है कि हे राजन् अपनों भक्ति करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने दोनों भक्तों के यहाँ निवास करके उन दोनों को सन्मार्ग का उपदेश देकर द्वारकापुरी चले गये। यहाँ पर सन्मार्ग का अर्थ है सन्तपुरुषों के लिए स्वतःप्रमाण तथा अप्रमाण के कारणों से रहित वेद प्रतिपादित मार्ग ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं इस तरह से उपदेश देकर द्वारका चले गये । किन्तु राजा परीक्षित मानते हैं कि वेद ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं इसी अभिप्राय से वे श्रीशुकदेवजी से पूछते हैं शब्द की प्रवृत्ति तीन प्रकार की होती है मुख्या, लक्षणा एवं गौणी । मुख्या वृत्ति के भी दो भेद होते हैं रूढि तथा योग । रुढि भी स्वरूपतः जाति के अनुसार एवं गुण के अनुसार । जिस वस्तु का निर्देश किया जा सकता है उसका संज्ञा संज्ञी रूप में संकेत के द्वारा वस्तु का निर्देश करती है । उदाहरणार्थ डित्थः अर्थात् मिट्टी का पिण्ड, यह उसके स्वरूपतः निर्देश है । गौः अर्थात् गोत्व जाति से अवच्छिन्न व्यक्ति । शुक्लः यह गुणतः निर्देश है । लक्षणा भी मुख्या वृत्ति के द्वरा संकेतित अर्थ से संबन्धित रूप अर्थ का बोध कराती है । जैसे **गंगायां घोषः** में गङ्गा पद का सङ्केतितार्थ है जल प्रवाह, सप्तमी विभक्ति का अर्थ है आधार । घोषः पद का सङ्केतितार्थ है झोपडीं चूकि प्रवाह में झोपड़ी बह जायेगी अतएव दोनों में आधाराधेय भाव रूप संबन्ध के अनुपन्न होने से शब्द की दूसरी वृत्ति लक्षणा प्रवाह से संबद्ध तट रूप अर्थ का बोध कराती है । गौणी वृत्ति वह होती है जो आहित अर्थ में लक्षित गुण से युक्त के सदृश रूप अर्थ को बतलाती है । जैसे सिंहोऽयं देवदत्तः यहाँ सिंह में पाये जाने वाले शौर्य क्रौर्य पराक्रम रूप अर्थ का देवदत्त में सद्भाव गौणीवृत्ति बतलाती है । जैस कि कहा भी गया है **अभिधेयाविनाभूत प्रवृत्तिर्लक्षणेष्यते** अर्थात् अभिधेयार्थ का अविनाभूत वृत्ति लक्षणा होती है । **लक्ष्यमाणगुणै र्योगात् वृत्तेरिष्टा तु गौणता।** जिसको लक्षित किया जाता है, उसके ही गुणों का संयोग होने पर गौणी वृत्ति होती है । तीन प्रकार की वृत्ति (रूढि, लक्षणा एवं गौणी) से प्रतिपादित पद तथा पदार्थो के अथवा प्रकृत्यर्थ एवं प्रत्ययार्थ के योग से योगवृत्ति होती है । जैसे पङ्कजम् जो कीचड़ में उत्पन्न होने वाला लाल कमल, यहाँ योगरूढि है । औपगवः और पाचकः ये दोनों प्रकृतिप्रत्यार्थ के योग के उदाहरण हैं । यहा बतलाते हैं कि ब्रह्म में शब्द की रुढिवृत्ति नहीं हो सकती है । इस बात को राजा परीक्षित् ने पूछा **साक्षात् कथं चरन्ति** । उसका कारण उन्होंने बतलाया कि ब्रह्म अनिर्देश्य हैं । उनका मन और वाणी से निर्देश नहीं किया जा सकता है । अनिर्देश्य के कारण उन्होंने ब्रह्म में शब्द की गौणी वृत्ति का निरास करते हुए कहा **निर्गुणे गुणवृत्तय** गुणों से युक्त श्रुति अपनी गौणी वृत्ति से भी ब्रह्म का कैसे निर्देश कर सकती है ? निर्गूणत्व का कारण बतलाते

हुए लक्षणा वृत्ति एवं योगवृत्ति का निरास **सदसतः परे** कहकर किया गया है । अर्थात् ब्रह्म कार्य वर्ग एवं कारण वर्ग से परे हैं । ब्रह्म असङ्ग है अतएव उसका किसी के साथ सम्बन्ध नहीं है । अतएव ब्रह्म में लक्षणा एवं योग दोनों वृत्तियों का अभाव है । इस तरह पदार्थत्व का योग नहीं होने और अपदार्थ का वाक्यार्थ से योग नहीं हो सकने से ब्रह्म श्रुतियों का वर्ण्य विषय नहीं हो सकते हैं ।।१।।

श्रीशुक उवाच

बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् जनानामसृजत्प्रभुः । मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च ।।२।।

अन्वयः— प्रभुः बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् जनानाम् मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मने अकल्पनाय च असृजत् ।।२।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परमात्मा ने ज्ञानेन्द्रियो, मन, एवं प्राणों की सृष्टि इसलिए की की संसारी कर्म की वसना से युक्त जीवों के विषयोपभोग तथा कर्मों को करने के लिए की है । लोकान्तरगामी जीवों के तत् तत् भोगों को भोगने के लिए तथा कल्पना की निवृत्ति रूप मुक्ति की प्राप्ति के लिए की है ।।२।।

भावार्थ दीपिका

उत्तरमाह-बुद्धीन्द्रियेति । बुद्ध्यादीनुपाधीन् जनानामनुशायिनां जीवानां मात्राद्यर्थं प्रभुरीश्वरोऽसृजत् । मीयन्त इति मात्रा विषयास्तदर्थम् । भवार्थं भवो जन्मलक्षणं कर्म, तत्प्रभृति कर्मकरणार्थमित्यर्थः । आत्मने लोकान्तरगामिने, आत्मनस्तत्तल्लोकभोगायेत्यर्थः। अकल्पनाय कल्पनानिवृत्तये, मुक्तय इत्यर्थः । अर्थधर्मकाममोक्षार्थमिति क्रमेण पदचतुष्टयस्यार्थः। जनानामिति वदन् जीवार्थमीश्वरस्य सृष्ट्यादिषु प्रवृत्तिरिति दर्शयति । प्रभुरितीश्वरस्योपाधिवश्यताभावेन नित्यमुक्ततां दर्शयति। अयमभिप्रायः-सगुणमेव गुणैरनभिभूतं सर्वज्ञं सर्वशक्तिं सर्वेश्वरं सर्वनियन्तारं सर्वोपास्यं सर्वकर्मफलप्रदातारं समस्तकल्याणगुणनिलयं सच्चिदानन्दं भगवन्तं श्रुतयः प्रतिपादयन्ति 'यः सर्वज्ञः सर्ववित् यस्य ज्ञानमयं तपः', सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः', 'यः पृथिव्यां तिष्ठन्पृथिव्या अन्तरः', 'सोऽकामयत बहु स्याम्', 'स ऐक्षत, तत्तेजोऽसृजत', 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्याद्याः । तथाभूतेश्वरतां तावत्संसारिणो जीवस्य तन्निवृत्तये तत्त्वमसीत्यादिवाक्यानि बोधयन्ति । तत्र च तत्त्वंपदयोः सामानाधिकरण्यं प्रतीयते । तच्च प्रकारान्तरेणाघटमानं ब्रह्मणि पर्यवसानं गमयति । तथा हि-न तावद्वैदेव्यामिक्षेतिवदुभयोरेकार्थाभिधानेन सामानाधिकरण्यम् । यथोक्तम्- 'आमिक्षां देवतायुक्तां वदत्येवैष तद्धितः । अमिक्षापदसांनिध्यात्तस्यैव विषयार्पणम् ।' इति । कुतः । भिन्नार्थत्वात् । न चाजहत्स्वार्थया निरूढलक्षणया विशेषणविशेष्यभावेन नीलमुत्पलमितिवत् । यथोक्तम्-स्वबुद्ध्या रज्यते येन विशेष्यं तद्विशेषणम्' इत्यादि । कुतः । विरुद्धार्थत्वेन तदयोगात् । न च जहत्स्वार्थत्वेन संबन्धिलक्षणया कुसुमितद्रुमा गङ्गेतिवत् । कुतः । एकार्थत्वस्य विवक्षितत्वात् । अतो जहदजहत्स्वार्थलक्षणया सोऽयं देवदत्त इतिवद्विरुद्धांशत्यागेनानुगतचिदंशेनैकार्थेन सामानाधिकरण्येन निर्गुणे पर्यवसानम् । अस्थूलादिवाक्यानां तु साक्षादुपाधिनिषेधेन तत्पदार्थशोधने उपयोगान्निर्गुण एवं पर्यवसानम् । तथा वात्रैवोपक्रमे 'स्वसृष्टमिदमापीय' इत्यादिना विशिष्टमालम्बनं वक्ष्यति, अन्ते च श्रुतयः- 'त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः' इत्युपसंहरिष्यन्ति । उपासनादिवाक्यानां तु क्रियार्थप्रवृत्तसृष्ट्याद्यवलम्बनेन ज्ञानसाधनविधानेन तत्परत्वमित्येषा दिक् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् के प्रश्न के उत्तर में श्रीशुकदेवजी कहते हैं । **बुद्धीन्द्रिय० इत्यादि** श्लोक बुद्धि आदि उपाधियों को संसारी जीव को कर्म की वासना से वासित हैं । उन जीवों के भोगों को भोगनें के लिए परमात्मा ने सृष्टि की । **मीयन्ते** इस व्युत्पत्ति के अनुसार मात्रा शब्द विषयों का बोधक है । अर्थात् विषयों की प्राप्ति के लिए । भावार्थम् अर्थात् भवरूप जन्म रूप कर्म आदि करने के लिए है । आत्मने अर्थात् लोकान्तर मे जाने वाले और वहाँ अपने कर्म फलों को भोगने के लिए । अकल्पनाय कल्पना की निवृत्ति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करने के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष

की प्राप्ति के लिए क्रमशः मात्रार्थं, भवार्थ, आत्मने, अकल्पनाय च इन चार पदों का क्रमशः अर्थ है । **जनानाम०** कहकर बतलाया गया है कि जीवों के ही लिए ईश्वर की सृष्टि आदि के कर्मों प्रवृत्ति होती है । प्रभु शब्दवाच्य ईश्वर में उपाधिवश्यता का अभाव होने के कारण ईश्वर की नित्यमुक्तता को श्रीशुकदेवजी दिखलाते हैं । कहने का अभिप्राय यह है कि सभी श्रुतियाँ सगुण ब्रह्म को ही गुणों से कभी अभिभूत नहीं होने वाले, सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, सर्व नियन्ता सबों के लिए उपास्य, सभी कर्मों का फल प्रदान करने वाले, समस्त कल्याण गुणों के आश्रय, **सच्चिदानन्दं भगवन्तं श्रुतयः प्रतिपादयन्ति 'यः सर्वज्ञः सर्ववित् यस्य ज्ञानमयंतप'** अर्थ जो सब कुछ जानने वाले तथा सबों को विशेष रूप से जानने वाले हैं, तथा जिस परमात्मा का तप ज्ञान स्वरूप है । **सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः** अर्थात् जो परमात्मा सबों को अपने वशी में रखते हैं तथा सम्पूर्ण जगत के नियामक हैं, **यः पृथिव्यांतिष्ठन् यः पृथिव्या आन्तरः** परमात्मा पृथिवी के भीतर अन्तर्यामी रूप से विद्यमान रहकर पृथिवी की अपेक्षा अन्तरङ्ग हैं । **सोऽकामयत वहु स्याम्** अर्थात् उस परमात्मा ने सत्य सङ्कल्प किया है कि मैं एक से अनेक हो जाऊँ तदर्थ समष्टि सृष्टि से व्यष्टि सृष्टि में आ जाऊँ। **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म** अर्थात् ब्रह्म सत्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप अनन्त स्वरूप हैं । इत्यादि । इस प्रकार के ही ईश्वरता को संसारी जीव की निवृत्ति के लिए, तत्त्वमसि इत्यादि वाक्य बतलाते हैं । **तत्त्वमसि** इस वाक्य में तत् पद एवं त्वं पद की समानाधिकरण्यता प्रतीत होती है । उस समानाधिकरण्य का सामान्य दूसरे प्रकार से होना असम्भव हैं, ज्ञात होता है कि उसका वर्णन ज्ञान ब्रह्म में ही है । **तथाहि न तावद वैश्वदेव्यामीक्षा** इस वाक्य के ही समान दोनों की एकार्थता का अभिधान करने से सामानाधिकरण्य नहीं हो सकता है । जैसा कि कहा भी गया है **आमीक्षा देवता युक्तां बदत्येवैष तद्धितः** अर्थात् यहाँ पर प्रयुक्त तद्धित प्रत्यय आमीक्षा को देवता से युक्त ही बतलाता है । यहाँ अमिक्षा पद के सन्निधान के कारण उसी का विषय मानना चाहिए । अतएव कैसे कहा जा सकता है ? क्योंकि वह भिन्नार्थक है। अर्थात् परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप अर्थ की भिन्नता है । यहाँ पर यह नहीं कहा जा सकता है कि अजहत्स्वार्था लक्षणा के द्वारा निरूढालक्षणा होने से **नीलम् उत्पलम्** के समान विशेषण-विशेष्य भाव भी सम्भव नहीं है । **यथोक्तम्** जैसा कि कहा भी गया है कि **स्वबुद्ध्या रज्यते येन विशेष्यं तद्विशेषणम्** अर्थात् विशेषण उसे कहते है जिसके द्वारा विशेष्य स्वीयत्व बुद्धि से रंजित हो जाता है । इत्यादि यदि कोई पूछे क्यों होता है तो इसका उत्तर हैं किं तत् एवं त्वम् ये दोनों परस्पर में विरुद्धार्थक हैं । अतएव इनमें विशेषण विशेष्य भाव रूप सम्बन्ध नहीं हो सकता है । यहाँ पर यह भी नहीं कहा जा सकता है कि जहत्स्वार्था लक्षणा के द्वारा उसके सम्बन्धी लक्षणा से **कुसुमितद्रुमा गङ्गा** अर्थात् गङ्गा विकसित वृक्षों वाली है । इस वाक्य के समान विशेषण विशेष्य भाव मान लिया जाय तो ऐसा इसलिए नहीं कहा जा सकता है कि दोनों की एकार्थता श्रुति बतलाती है । अतएव जहदजहत्स्वार्था लक्षणा के द्वारा जिस तरह **सोऽयम् देवदत्तः** इत्यादि में अतीत देश कालावच्छिन एवं वर्तमान देश कालावच्छिन्न रूप विरुद्ध अर्थ का त्याग हो जाता है, उसी तरह यहाँ भी तत् एवं त्वम् पद के परस्पर विरोधी सर्वज्ञत्वावच्छिन्न तथा अल्पज्ञत्वावच्छिन्न रूप अंश का परित्याग करके दोनों में अनुगत् चैतन्य रूप अर्थ की एकता रूप सामानाधिकरण्य के द्वारा निर्गुण में ही पर्यवसान होता है । अस्थूलम् इत्यादि वाक्यों में तो उपाधि का निषेध होने के कारण तत्-तत् पदार्थों का शोधन करने में उपयोग होने के कारण उन सबों का निर्गुण में ही पर्यवसान होता है । इस तरह से उपसंहार किया जायेगा । किञ्च यहीं पर प्रारम्भ में ही **स्वसृष्टमिदमापीय इत्यादि** वाक्यों द्वारा विशिष्ट के ही आलम्बन का प्रतिपादन आगे चलकर किया जायेगा । अन्त में श्रुतियाँ कहती है **त्वयि हि फलन्ति** उसका निरास नहीं किए जाने के कारण आपमें ही पर्यवसान होता है । इस तरह से इस प्रकरण का उपसंहार करेंगी । उपासना आदि जो वाक्य हैं क्रिया रूप अर्थ में प्रवृत्त सृष्टि आदि का आलम्बन करने से तथा ज्ञान के साधन का विधान के द्वारा इसका निर्गुण परत्व है, यही विचार की सरणी है ।।२।।

सैषा ह्युपनिषद्ब्राह्मी पूर्वेषां पूर्वजैर्धृता । श्रद्धया धारयेद्यस्तां क्षेमं गच्छेदकिंचनः ॥३॥

अन्वयः— सैषा हि ब्राह्मी उपनिषत् पूर्वेषां पूर्वजैः धृता यः तां श्रद्धया धारयेत अकिंचनः क्षेमं गच्छेत ॥३॥

अनुवाद—ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाली यही उपनिषत् है, इसे पूर्वजों के भी पूर्वज सनकादि महर्षियों ने आत्म निश्चय के द्वारा धारण किया है। जो कोई भी मनुष्य इसको श्रद्धापूर्वक धारण करेगा वह बन्धन के कारण भूत समस्त उपाधियों से मुक्त होकर परम कल्याण स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करेगा ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अत्र चानादिशिष्टपरम्परागतत्वान्न संदेहो युक्त इत्याह-सैषेति । सैषा यथोक्तालम्बना ब्राह्मी ब्रह्मपरा । श्रद्धया आदरेण वैतण्डिकतर्कानभिनिवेशेन यः श्रवणादिना धारयेत्स अकिंचनो निरस्तदेहाद्युपाधिः सन् परं पदं प्राप्नुयादिति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

अनादि शिष्ट परम्परा से प्राप्त होने के कारण इसके विषय में किसी प्रकार की शङ्का नहीं की जा सकती है इस बात को **सैषा० इत्यादि** श्लोक से श्रीशुकदेवजी ने कहा है। अतएव यह बुद्धीन्द्रियादि श्लोक स्वरूपा प्रसिद्ध परम्परा ब्राह्मी परम्परा है। इसको जो श्रद्धापूर्वक वैतण्डिक तर्कों के अभिनिवेश पूर्वक नहीं अपितु आदर पूर्वक धारण करता है वह देह आदि उपाधियों को दूर करके परं पद को प्राप्त कर लेता है ॥३॥

अत्र ते वर्णयिष्यामि गाथां नारायणान्विताम् । नारदस्य च संवादमृषेर्नारायणस्य च ॥४॥

अन्वयः— अत्र ते नारायणान्विताम् नारदस्य ऋषेः नारायणस्य च गाथां वर्णयिष्यामि ॥४॥

अनुवाद— इस विषय में मैं आपको भगवान् नारायण से सम्बन्ध रखने वाले देवर्षि नारद और ऋषि नारायण के संवाद स्वरूप एक गाथा को सुनाता हूँ ॥४॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव सर्वश्रुत्यर्थनिरूपणेन प्रपञ्चयितुमितिहासमवतारयतिअत्रेति । नारायणान्वितां नारायणः प्रवक्तृत्वेनान्वितो यस्यां ताम् । गाथामितिहासम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

इस विषय में मैं आपको एक इतिहास सुनाता हूँ। उस इतिहास रूपिणी गाथा के प्रवक्ता स्वयम् भगवान् नारायण हैं। यह बदरिकाश्रम वासी भगवान् नारायण और देवर्षि नारद का संवाद रूप गाथा है ॥४॥

एकदा नारदो लोकान्पर्यटन्भगवत्प्रियः । सनातनमृषिं द्रष्टुं ययौ नारायणाश्रमम् ॥५॥

अन्वयः— एकदा भगवत् प्रियः नारदः लोकान् पर्यटन् सनातनम् ऋषिं द्रष्टुं नारायणाश्रमम् ययौ ॥५॥

अनुवाद— एक बार श्रीभगवान् के अत्यन्त प्रेमी देवर्षि नारदजी अनेक लोकों में पर्यटन करते हुए सनातन ऋषि भगवान् नारायण का दर्शन करने के लिए नारायणाश्रम (बदरिकाश्रम) गये ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

यो वै भारतवर्षेऽस्मिन्क्षेमाय स्वस्तये नृणाम् । धर्मज्ञानशमोपेतमाकल्पादास्थितस्तपः ॥६॥

अन्वयः— यः वै अस्मिन् भारतवर्षे नृणाम् क्षेमाय, स्वस्तये धर्मज्ञानशमोपेतः अकल्पात् शमोपेतः तपः आस्थितः ॥६॥

अनुवाद— जो भगवान् नारायण इस भारतवर्ष में मनुष्यों का अभ्युदय (लौकिक कल्याण) तथा परमनिः श्रेयस् मोक्ष की प्राप्ति के लिए कल्प के प्रारम्भ से ही धर्म, ज्ञान और संयम के साथ महान् तप कर रहे हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

तत्रोपविष्टमृषिभिः कलापग्रामवासिभिः । परीतं प्रणतोऽपृच्छदिदमेव कुरूद्वह ॥७॥

अन्वयः— हे कुरुद्वह ! तत्र कलापग्रामवासिभिः ऋषिभिः परीतम् उपविष्टम् । प्रणतः इदमेव अपृच्छत् ॥७॥

अनुवाद— परीक्षित् एक दिन वे कलापग्रामवासी ऋषियों से घिरकर बैठे हुए थे । उसी समय नारदजी ने उनसे बड़ी ही नम्रता से यह प्रश्न पूछा ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

तस्मै ह्यवोचद्भगवानृषीणां शृण्वतामिदम् । यो ब्रह्मवादः पूर्वेषां जनलोकनिवासिनाम् ॥८॥

अन्वयः— शृण्वताम् ऋषीणाम् भगवान् इदम् तस्मै हि अवोचत् जनलोकनिवासिनाम् यो हि ब्रह्मवादः ॥८॥

अनुवाद— सभी ऋषियों के सामने ही भगवान् नारायण ने नारदजी को उस ब्रह्मवाद को सुनाया जो पूर्वकाल में जनलोक निवासियों में वेदों के तात्पर्य तथा ब्रह्म के स्वरूप के विषय में विचार करते समय कहा गया था ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

श्रीभगवानुवाच

स्वायंभुव ब्रह्मसत्रं जनलोकेऽभवत्पुरा । तत्रस्थानां मानसानां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥९॥

अन्वयः— स्वायम्भुव पुरा जनलोक तत्रस्थाना मानसानाम् उर्ध्वरेतसाम् मुनीनाम् ब्रह्मसत्रम् अभवत् ॥९॥

भगवान् नारायण ने कहा

अनुवाद— नारदजी प्राचीन काल में रहने वाले ब्रह्माजी के ऊर्ध्वरेता मानस पुत्रों सनकादिक ऋषियों का ब्रह्मसत्र (ब्रह्म विषयक विचार) हुआ ॥९॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मसत्रमिति । यथा यजमाना एव समाना ऋत्विगादिरूपेण यत्र कर्म कुर्वन्ति तत्कर्मसत्रं प्रसिद्धम् । तथा यत्र समाना एव वक्तृश्रोतृभावेन ब्रह्म मीमांसन्ते तद्ब्रह्मसत्रम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

जिस कर्म में मान-सम्पन्न यजमान ही ऋत्विक् आदि के रूप में कर्म को करते हैं उस कर्म को सत्र कहा जाता है । जहाँ पर मान-सम्मान ही यजमान वक्ता एवं श्रोता रूप से ब्रह्म विषयक विचार करते हैं उसे ब्रह्मसत्र कहते हैं॥९॥

श्वेतद्वीपं गतवति त्वयि द्रष्टुं तदीश्वरम् । ब्रह्मवादः सुसंवृत्तः श्रुतयो यत्र शेरते ॥
तत्र हाऽयमभूत्प्रश्नस्त्वं मां यमनुपृच्छसि ॥१०॥

अन्वयः— ईश्वरं द्रष्टुं त्वयि श्वेतद्वीपं गतवति यत्र श्रुतयः शेरते तदा ब्रह्मवादः सुसंवृतः । तत्र हि अयं प्रश्नम् अभूत् यम् त्वं माम् अनुपृच्छसि ॥१०॥

अनुवाद— जिस समय तुम मेरी श्वेतद्वीपाधिपति अनिरुद्धमूर्ति का दर्शन करने के लिए श्वेतद्वीप चले गये थे उस समय वहाँ ब्रह्म के विषय में विचार हुआ । जिसके विषय में श्रुतियाँ भी मौन धारण कर लेती हैं, स्पष्ट रूप से वर्णन न करके ब्रह्म को लक्षित करती हुई उसी में सो जाती हैं । उस ब्रह्मसत्र में भी उसी प्रश्न को किया गया था जिस प्रश्न को तुम मुझसे किए हो ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अहो तर्हि मया कथं तत्र ज्ञातमित्यत आह-श्वेतद्वीपमिति । तदीश्वरं तत्रस्थं मामेवानिरुद्धमूर्तिम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इस पर नारदजी ने कहा कि उस ब्रह्मवाद को मैं कैसे नहीं जान सका ? इस पर भगवान् नारायण ने बतलाया कि उस समय वहाँ पर विद्यमान मेरी अनिरुद्ध मूर्ति का दर्शन करने के लिए चले गये थे ।।१०।।

तुल्यश्रुततपःशीलास्तुल्यस्वीयारिमध्यमाः । अपि चक्रुः प्रवचनमेकं शुश्रूषवोऽपरे ।।११।।

अन्वयः— तुल्यश्रुततपःशीलाः तुल्यस्वीयारिमध्यमाः एकं प्रवचनम् चक्रुः अपरे शुश्रूषवः ।।११।।

अनुवाद— सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार ये चारो भाई शास्त्रज्ञान, तपस्या तथा शील स्वभाव के विषय में एक समान हैं। ये चारो शत्रु, मित्र तथा उदासीन के विषय में एक समान दृष्टि रखने वाले हैं। उनमें से एक सनन्दन को उन लोगों ने प्रवचन कर्ता बनाया और शेष तीन भाई शुश्रूषु (सुनने की इच्छुक) बन गये ।।११।।

भावार्थ दीपिका

ननु सर्वज्ञास्ते, कस्तत्र वक्ता प्रष्टा वा तत्राह-तुल्यश्रुतेति । श्रुतादिभिरविशेषा अरिमित्रोदासीनहीनत्वेन निरुपमकरुणाः, अतः सर्वे प्रवचनयोग्या अपि केनापि कौतुकेनैकं प्रवक्तारं कृत्वाऽन्ये पप्रच्छुरित्यर्थः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि वे तो सबके सब सर्वज्ञ हैं उनमें कौन वक्ता अथवा कौन प्रष्टा हो सकता है ? इस पर भगवान् नारायण ने कहा कि शास्त्रज्ञान आदि के विषय में तो वे सबके सब एक समान है। उन लोगों का न कोई शत्रु है न कोई मित्र और न कोई उदासीन है वे सबों के साथ एक समान रहने वाले हैं। अतएव उनकी करुणा की कोई उपमा नही दी जा सकती है। यद्यपि वे सभी प्रवचन के योग्य हैं। फिर भी कौतुक वशात् उन लोगों ने सनन्दनजी को प्रवचन कर्ता बना दिया और अवशिष्टतीन लोगों ने प्रश्न किया ।।११।।

सनन्दन उवाच

स्वसृष्टमिदमापीय शयानं सह शक्तिभिः । तदन्ते बोधयांचक्रुस्तल्लिङ्गैः श्रुतयः परम् ।।१२।।
यथा शयानं सम्राजं बन्दिनस्तत्पराक्रमैः । प्रत्यूषेऽभ्येत्य सुश्लोकैर्बोधयन्त्यनुजीविनः ।।१३।।

अन्वयः— यथा शयानं सम्राजं प्रत्यूषे अभ्येत्य अनुजीविन वन्दिनः सुश्लोकैः तत्पराक्रमैः बोधयन्ति एवं स्वसृष्टमिदमापीय शक्तिभिः सहशयानं तदन्ते श्रुतयः परम् बोधयाञ्चक्रुः ।।१२-१३।।

सनंदन महर्षि ने कहा

अनुवाद— जिस तरह सोए हुए सम्राट् को जगाने के लिए उसके अनुजीवी नन्दीगण प्रातःकाल में उस सम्राट के सुयश एवं पराक्रम का गान करके उसे जगाते है उसी तरह प्रलयकाल की बेला के आने पर जो परमात्मा अपने से सृष्ट सम्पूर्ण जगत् को अपने में लीन करके समस्त शक्तियों के साथ सोए हुए परमात्मा को श्रुतियाँ इस प्रकार जगाने का काम करती हैं ।।१२-१३।।

भावार्थ दीपिका

स्वसृष्टमिति । स्वयं निर्मितमिदं विश्वं प्रलयसमये आपीय संहृत्य शयानं योगेन निद्राणमिव वर्तमानं तदन्ते प्रलयान्ते तल्लिङ्गैस्तत्प्रतिपादकैर्वाक्यैः परमीश्वरं सृष्टिसमये प्रथमनिःश्वासभूताः श्रुतयः प्रबोधयामासुः । सुश्लोकैः शोभनाः श्लोकाः कीर्तयो येषु तैः पराक्रमैः ।।१२-१३।।

भाव प्रकाशिका

अपने द्वारा निर्मित इस सम्पूर्ण जगत् को अपने में ही लीन करके योगनिद्रा में सोये हुए परमात्मा को प्रलय

काल के अन्त में परमात्मप्रतिपादक वाक्यों के द्वारा परमात्मा के नि:श्वासभूत श्रुतियाँ उन्हे जगाती हैं। परमात्मा के सुन्दर यश से युक्त उनके पराक्रम बोधक वाक्यों के द्वारा ॥१२-१३॥

श्रुतय ऊचुः

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ।
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते क्वचिदजयात्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥१४॥

अन्वयः— हे अजित जय जय अगजगदोकसां दोषगृभीतगुणां जहि यत् त्वम् आत्मना समवरुद्ध समस्त भगः एकलशक्त्यवबोधक ते क्वचित् अजयात्मनाचचरतः अनुचरेत निगमः ॥१४॥

श्रुतियों ने कहा

अनुवाद— हे अजित प्रभो ! आपकी जय हो, क्योंकि आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं आप पर कोई भी विजय नहीं को प्राप्त कर सकता है। सम्पूर्ण जड़ एवं चेतनों अपनी माया के जाल में फँसाने वाली इस अविद्या का नाश कर दें। इस माया के समस्त सत्त्वादि गुण दोषमय हैं। आप तो स्वभावतः ही सम्पूर्ण ज्ञान, शक्ति, क्रिया बल आदि ऐश्वर्यों से सम्पन्न हैं। यदि आप कहें कि जीव ही अपने ज्ञान वैराग्य आदि के द्वारा इसका नाश कर दें तो ऐसा वे इसलिए नहीं कर सकते है कि, जीवों की ज्ञान आदि समस्त शक्तियों को प्रकट करने वाले अन्तर्यामी आप ही हैं। अतएव आपको छोड़कर कोई भी इस माया को विनष्ट नहीं कर सकता है इस विषय में साक्षात् वेद ही प्रमाण हैं। यदि आप कहें कि इस प्रकार के मुझमें श्रुतियों की प्रवृत्ति कैसे होती है तो इसका उत्तर है कि सृष्टि आदि के समय में आप ही क्रीडा करते हैं इस प्रकार से श्रुतियाँ आपका यत् किञ्चित रूप से वर्णन करती हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

जय जयेति। भो अजित, जय जय उत्कर्षमाविष्कुरु। आदरे वीप्सा। केन व्यापारेण। अगजगदोकसां, अगानि स्थावराणि जगन्ति जङ्गमानि च ओकांसि शरीराणि येषां जीवानां तेषामजामविद्यां जहि नाशय। किमिति गुणवती हन्तव्येत्यत आह–दोषगृभीतगुणाम्। दोषाय आनन्दाद्यावरणाय गृहीता गुणा यया ताम्। 'हग्रहोर्भश्छन्दसि, इति भकारः। इयं हि स्वैरिणीव परप्रतारणाय गुणान् गृह्णात्यतो हन्तव्येति। तर्हि मय्यपि दोषमावहेदिति ममापि तत्र का शक्तिः स्यादत आह–त्वमिति। यद्यस्मात्त्वमात्मना स्वरूपेणैव समवरुद्धसमस्तभगः। संप्राप्तसमस्तैश्वर्योऽसि। वशीकृतमायत्वदिति भावः। ननु स्वयमेव ते ज्ञान वैराग्यादिना किं न हन्युरित्यत आह–अखिलशक्त्यवबोधकेति। तेषां त्वमेवान्तर्यामीसर्वशक्त्युद्बोधकः। अतो न ते ज्ञानादौ स्वतन्त्रा इति भावः। नन्वहमकुण्ठज्ञानैश्वर्यादिगुणो जीवानां कर्मज्ञानादिशक्त्यवबोधनेनाविद्याहन्तेत्यत्र किं प्रमाणमिति चेत्, अहमेव प्रमाणमित्याह–निगमो वेदः। नन्वेवंभूते मयि कथं श्रुतीनां प्रवृत्तिस्तत्राह–क्वचिदिति। कदाचित्सृष्ट्यादिसमयेऽजया मायया चरतः क्रीडतो नित्यं चालुप्तभगतया सत्यज्ञानानन्तानन्दैकरसेनात्मना च चरतो वर्तमानस्य निगमोऽनुचरेत्प्रतिपादयेत्। कर्मणि षष्ठ्यौ। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते', 'यो ब्राह्मणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये', 'य आत्मनि तिष्ठन्', 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म', 'यः सर्वज्ञः स सर्ववित्' इत्यादिनिगमकदम्बस्त्वामेवंभूतं प्रतिपादयतीत्यर्थः। जय जयाजित जह्यगजङ्गमावृतिमजामुपनीतमृषागुणाम्। न हि भवन्तमृते प्रभवन्त्यमी निगमगीतगुणार्णवता तव ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को जगाती हुई श्रुतियाँ कहती हैं कि प्रभो आप अजित हैं। आपको कोई भी नहीं जीत सकता है। अतएव आपकी जय हो जय हो। अर्थात् आप अपना उत्कर्ष आविष्कृत करें। यहाँ पर आदर के अर्थ में वीप्सा है। किस व्यापार के द्वारा ? सम्पूर्ण शरीरधारी चराचर जीवों की अविद्या का आप नाश कर दें। यदि आप कहें कि यह गुणों से युक्त हैं इसको क्यों विनष्ट किया जाय तो, इसके जो सत्त्वादि गुण हैं उसके द्वारा यह जीवों के ज्ञान तथा आनन्द को ढँक देने का काम करती है, हग्रहोर्भश्छन्दसि सूत्र से गृहीत के हकार का भकार हो गया है। अर्थात् यह वेश्या के समान दूसरों

को ठगने के ही लिए गुणों को ग्रहण करती है । अतएव यह विनाश्या है । यदि आप कहें कि तब तो यह मुझमें भी दोषों को अविस्कृत कर सकती है ऐसी माया को मैं कैसे विनष्ट कर सकता हूँ तो ऐसी बात नहीं है । आप तो स्वभावत ही सम्पूर्ण ज्ञान शक्ति आदि ऐश्वर्यों से सम्पन्न हैं । आपने तो माया को अपने वश में कर रखा है । यदि आप कहें कि वे जीव ही अपने ज्ञान तथा वैराग्य आदि गुणों के द्वारा क्यों नहीं विनष्ट कर देते हैं तो इस पर श्रुतियाँ कहती हैं कि जीवों के आप अन्तर्यामी हैं । उनके समस्त ज्ञानादि को आविष्कृत आप ही करते है । अतएव ज्ञान आदि के विषय में वे स्वतंत्र नहीं हैं। यदि आप कहें कि मैं अव्याहत ज्ञानादिगुण सम्पन्न हूँ तथाजीवों के कर्म ज्ञान आदि प्रकाशन पूर्वक उनकी अविद्या का विनाश करने वाला हूँ इसमें क्या प्रमाण है । तो इस पर श्रुतियाँ कहती हैं कि इसमें तो निगम (वेद) ही प्रमाण हैं । यदि कहें कि इस प्रकार के मुझमें श्रुतियों की प्रवृत्ति कैसे होती है । इस पर श्रुतियों ने कहा आप सृष्टि आदि के समय माया के साथ क्रीडा करते हैं किन्तु चूकि आपके ऐश्वर्य कभी लुप्त नहीं होते हैं अतएव सत्य, ज्ञान, अनन्त आनन्द स्वरूप आप सदा बने रहते हैं अतएव इसी तरह से वेद आपका प्रतिपादन करता है । यहाँ कर्म के अर्थ में षष्ठी विभक्ति हुई है। **'य तो वा इमानिभूतानि जायन्ते'** अर्थात् जिस परंब्रह्म परमात्मा से ये सभी भूत उत्पन्न होते हैं। **'यो ब्रह्मणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोत् तस्मै'** अर्थात् परमात्मा सर्वप्रथम ब्रह्माजी की सृष्टि करते हैं तथा जिस परमात्मा ने उस ब्रह्मा को वेदों का ज्ञान प्रदान किया । **'तं ह देवमात्मात्मबुद्धिप्रसादं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये'** अर्थात् उन दिव्यगुणसम्पन्न परमात्मा जो आत्मा और बुद्धि का प्रकाश करते हैं उन परमात्मा की मुमुक्षु जीव मैं शरणागति करता हूँ । **'य आत्मनि तिष्ठन्'** अर्थात् जो परमात्मा आत्मा के भीतर अन्तर्यामी रूप से स्थित रहते हैं । **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** अर्थात् जो परमात्मा सत्य स्वरूप ज्ञान स्वरूप तथा अनन्त स्वरूप हैं । **'यः सर्वज्ञः सर्ववित्'** जो परमात्मा सर्वज्ञ सब कुछ सामान्य रूप से जानते हैं । तथा सर्ववेत्ता हैं सभी वस्तुओं को विशेष रूप से जानते हैं ये सभी वेदों के वाक्य आपका इस प्रकार से वर्णन करते हैं । **जय जयाजित० इत्यादि** हे अजित आपकी जय हो । आप सम्पूर्ण चराचर को अपने मृषागुणों के द्वारा आच्छन्न करने वाली अविद्या को आप विनष्ट कर दें आपको छोड़कर दूसरे जीव इसको विनष्ट करने में समर्थ नहीं है । वेद आपके गुण समूह का वर्णन करते हैं ॥१४॥

बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्यवशेषतया यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदिवाऽविकृतात् ।
अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं कथमयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम् ॥१५॥

अन्वयः— उपलब्धमेतत् बृहत् अवयन्ति अवशेषतया । यतः उदयास्तमयी विकृतेः मृदिवा अविकृतात् । अतो ऋषयः मनोवचनाचरितं त्वयि दधुः नृणाम् भुवि दत्त पदानि कथमयथा भवन्ति ॥१५॥

अनुवाद— निःसन्देह हमारे द्वारा इन्द्र, वरुण कुबेर आदि देवताओं का वर्णन किया जाता है किन्तु जितने भी हमारे मन्त्र, मन्त्रों के दृष्टा ऋषिगण है वे सभी इन्द्र वरुण तथा इस जगत् को ब्रह्म स्वरूप ही जानते हैं इसका कारण है कि जिस समय यह सम्पूर्ण जगत् नहीं रहता है उस समय भी आप बने रहते हैं । क्योंकि ब्रह्म से ही सबों की उत्पत्ति होती है और ब्रह्म में ही सम्पूर्ण जगत् का लय होता है । किन्तु सम्पूर्ण जगत् का उपादान कारण होने पर भी घट, शराब आदि के उपादान कारण मिट्टी के समान आप विकारवान् नहीं हैं, क्योंकि सम्पूर्ण जगत् रूप विवर्त को अधिष्ठान कारण होने के कारण आप निर्विकार है । यही कारण है कि ऋषिगणों का कहना है मन तथा वाणी से जो कुछ भी सोचा या कहा जाता है उसे वे आपका ही स्वरूप मानते हैं । मनुष्य अपना पैर चाहे ईंट, पत्थर, काष्ट किसी पर भी रखे वह पृथिवी पर ही होगा क्योंकि वे सबके सब पृथिवी स्वरूप हैं । अतएव हम चाहे जिस नाम अथवा रूप का वर्णन करें वह आपका ही नाम और रूप होगा ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

ननु कथं मामेवं प्रतिपादयन्ति, यत 'इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा' इत्यादिभिरिन्द्रो यातो जङ्गमस्यावसितस्य स्थावरस्य च राजेति प्रतिपाद्यते, तथा 'अग्निर्मूर्धा दिवः' इत्यादिभिश्चैवंभूतत्वेनाग्न्यादयः प्रतिपाद्यन्ते, तत्राह-बृहदुपलब्धमेतदिति । अयमर्थः- एतदुपलब्धं दृष्टमिन्द्रादिसर्वं बृहद्ब्रह्मत्वमित्येवावयन्ति जानन्ति । कथम् । बृहत एवावशेषतयाऽवशिष्यमाणत्वेन । कुतः । यतो बृहतः सर्वस्योदयास्तमयावुत्पत्तिलयौ, सर्वोपादानत्वात् । तर्हि किं विकारित्वं बृहतः । न, अविकृतात् । विवर्ताधिष्ठानत्वेनाविकारादित्यर्थः । वाशब्द उपमार्थः । यथा घटादेर्विकृतेर्मृदि उदयास्तमयौ तद्वत् । 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादिभिस्तथा प्रतिपादनादित्यर्थः । अतः कारणादृषयो मन्त्रास्तद्द्रष्टारो वा त्वय्येव मनोवचनाचरितं दधुः, मनसा आचरितं तात्पर्यं वचनाचरितमभिधानं च धृतवन्तः । न पृथग्विकारेष्वित्यर्थः । अत्र निदर्शनम्-कथमयथेति । नृणां भूचराणां यत्र कुत्रापि दत्तानि निक्षिप्तानि पदानि भुवि कथमयथा भवन्त्यदत्तानि भवन्ति । अतो यथा मृत्पाषाणेष्टकादिषु दत्तानि पदानि भुवं न व्यभिचरन्ति तथा यत्किमपि विकारजातं वदन्तो वेदास्त्वामेव सर्वकारणं परमार्थभूतं प्रतिपादयन्तीत्यर्थः। द्रुहिणवह्निरवीन्द्रमुखामरा जगदिदं न भवेत्पृथगुत्थितम् । बहुमुखैरपि मन्त्रगणैरजस्त्वमुरुमूर्तिरतो विनिगद्यसे।।१५।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि मेरा इस प्रकार से कैसे प्रतिपादन करते हैं । क्योंकि **इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा** अर्थात् इन्द्र जङ्गम् और स्थावर के राजा हो गये । इस तरह के मन्त्रों से इन्द्र का वर्णन किया जाता हैं । **अग्निमूर्धादिवः** अर्थात् अग्नि सूर्य रूप से द्युलोक के मूर्धा हो गये इत्यादि मन्त्रों से अग्नि का वर्णन किया गया है । इस पर श्रुतियों ने कहा इस तरह से उपलब्ध होने वाले इन्द्र, वरुण आदि ब्रह्मरूप ही है ऐसा ऋषिगण मानते हैं । क्योंकि जब प्रलय काल में सब कुछ विनष्ट हो जाता है, उस समय केवल आप ही बचे रहते हैं । उस परब्रह्म से इस सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति और लय होते हैं । क्योंकि आप ही सबों के उपादान कारण हैं । तो फिर ब्रह्म विकारवान है क्या ? तो ऐसी बात नहीं है, आप हमेशा निर्विकार ही बने रहते हैं । क्योंकि आप जगत् रूपी विवर्त के अधिष्ठान हैं । वा शब्द यहाँ उपमार्थक है । ठीक उसी तरह जिस तरह मिट्टी से उत्पन्न होने वाले घट शराव आदि के बनते विगड़ते रहने पर भी मिट्टी में किसी भी प्रकार का विकार नहीं होता है । इसी अर्थ का प्रतिपादन ये श्रुतियाँ भी करती हैं । **वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्** । अर्थात् जितने भी घटशराव आदि विकार और नाम है जिनका उच्चारण किया जाता है उनमें ही विकार होता है मिट्टी में किसी भी प्रकार का विकार नहीं होता है । **सर्वं खल्विदं ब्रह्म** यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म स्वरूप ही है । इत्यादि श्रुतियाँ सम्पूर्ण जगत् को ब्रह्मरूप ही प्रतिपादन करती हैं । अतएव जितने भी ऋषिगण मन्त्र तथा मन्त्रों के द्रष्टा हैं वे सभी मन से जिनको सोचा जाता है तथा वाणी से जिनको कहा जाता है, उन सबों को आप में ही मानते हैं । आपसे भिन्न विकारों में नहीं इसका उदाहरण **कथमयथा० इत्यादि** है। पृथिवी पर चलने वाले मनुष्य अपना पैर चाहे जहाँ रखें वह पृथिवी पर ही होगा । अतएव जिस तरह मिट्टी, पाषाण, काष्ठ आदि पर रखा हुआ पैर पृथिवी पर ही होगा क्योंकि वे सबके सब पृथिवी रूप ही होंगे । इसी तरह वेद चाहे जिसका वर्णन करें वे सबो के कारणभूत आपका ही वर्णन करते हैं । **द्रुहिणवह्निरवीन्द्रमुखामराः इत्यादि** अर्थात् ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि देवता तथा सम्पूर्ण जगत् प्रतीत होने पर भी आपसे पृथक् नहीं हो सकते हैं । इसीलिए अनेक देवताओं का वर्णन करने वाले वेद मन्त्र उन देवताओं के नाम से अलग-अलग आपकी ही विभिन्न मूर्तियों का वर्णन करते हैं । क्योंकि आप तो अजन्मा हैं और उन मूर्तियों के रूप में भी आपका जन्म नहीं होता है ।।१५।।

इति तव सूरयस्त्र्यधिपतेऽखिललोकमलक्षपणकथामृताब्धिमवगाह्य तपांसि जहुः ।
किमुत पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाः परम भजन्ति ये पदमजस्रसुखानुभवम् ।।१६।।

अन्वयः— त्र्यधिपते इति तव अखिल लोकमलक्षपण कथा कथामृताब्धिमवगाह्य सूरयः तपांसि जहुः ये पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाः हे परम ये तवाजस्रसुखानुभवम् भजन्ति ।।१६।।

अनुवाद— संसारी जीव तो माया के सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीनों गुणों की अच्छी बुरी क्रियाओं में फँस जाते हैं; किन्तु आप तो इस त्रिगुणात्मिका मया नटी के स्वामी हैं। उसको नचाते हैं, इसीलिए विवेकी पुरुष आपकी लीलाकथा रूपी अमृतसागर का अवगाहन करके अपने समस्त पापों को धो डालते हैं। क्योंकि आपकी लीला कथा सभी जीवों के माया जाल को विनष्ट कर देने वाली है। हे परम ! जिन महापुरुषों ने आत्मज्ञान के द्वारा अन्तःकरण के राग-द्वेष आदि तथा शरीर के कालकृत जरामरणादि दोषों को मिटा दिया है और जो निरन्तर आपके उस स्वरूप के चिन्तन में मग्न रहते हैं जो अखण्ड आनन्द स्वरूप है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

त्वमेव सर्वनिगमगोचर इति सतां प्रवृत्त्या द्रढयति–इति तवेति। त्वमेव सर्वकारणत्वेन परमार्थ इति कृत्वा भोस्त्र्यधिपते त्रिगुणमायामृगीनर्तक, सूरयो विवेकिनस्तवाखिललोकमलक्षपणकथामृताब्धिं सकलजनवृजिननिरसनहेतुं कीर्तिसुधासिन्धुमवगाह्य निषेव्य तपांसि तपन्तीति तपांसि पापानि दुःखानि वा जहुस्त्यक्तवन्तः। त्वदीयकथामात्रेण यदा पापत्यागस्तदा किमु वक्तव्यं, ये पुनः स्वधामविधुताशयकालगुणाः स्वधाम्ना स्वरूपस्फुरणेनैव विधुतास्त्यक्ता आशयगुणा अन्तःकरणधर्मा रागादयः कालगुणा जरादयश्च यैस्ते, तथा हे परम, तवाजस्रसुखानुभवमखण्डानन्दानुभवं पदं स्वरूपं भजन्ति सेवन्ते तथाभूता दुःखानि त्यजन्तीति। 'तद्यथा पुष्करपलाश आपो न श्लिष्यन्ते एवमेवंविदि पापं कर्म न श्लिष्यते', 'न कर्मणा लिप्यते पापकेन', 'तत्सुकृतदुष्कृते विधुनुते', 'एतँ्ह वाव न तपति', किमहँ्साधु नाकरवम्', किमहं पापमकरवम्' इत्यादिश्रुतेरित्यर्थः। सकलवेदगणेरितसद्गुणस्त्वमिति सर्वमनीषिजना रताः। त्वयि सुभद्रगुणश्रवणादिभिस्तव पदस्मरणेन गतक्लमाः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रुतियाँ कहती हैं कि हे प्रभो आप ही सम्पूर्ण वेदों में प्रतिपादित किये जाते हैं। इस बात का प्रतिपादन सन्त पुरुषों की प्रवृत्ति से सुदृढ किया जा रहा है। आप ही सम्पूर्ण जगत् के कारण होने के कारण परमार्थ हैं। इस तरह से मन में रखकर कहते हैं हे त्रिगुणात्मिका माया नटी को नचाने वाले है। इस बात को जानकर विवेकी पुरुष आपके सम्पूर्ण संसार के समस्त दोषों को दूर करने वाली लीलाकथा रूपी अमृत सागर का अवगाहन करके संतप्त करने वाले अपने समस्त पापों अथवा दुःखों का परित्याग कर दिये। जब आपकी कथामात्र से ही समस्त पापों का परित्याग हो जाता है तो फिर क्या कहना है। जो लोग अपने स्वरूपज्ञान से ही अन्तःकरण के राग द्वेष आदि धर्मों का परित्याग कर चुकें हैं तथा कालजन्य जरा मरणादि धर्मों का परित्याग कर चुके हैं वे लोग हे परब्रह्म प्रभो आपके निरन्तर अखण्डानन्द अनुभव रूप आपके स्वरूप का सेवन करते हैं और अपने समस्त दुःखों का परित्याग कर देते हैं। इसी अर्थ का प्रतिपादन निम्नांकित श्रुतियाँ करती हैं **तद् यथा पुष्करपलाशः इत्यादि** जिस तरह कमल दल का जल से संस्पर्श नहीं होता है, इसी तरह 'ब्रह्मज्ञान सम्पन्न जीव का कर्मों से संस्पर्श नहीं होता है। **न कर्मणा लिप्यते पापकेन अर्थात्** ब्रह्मज्ञानी को पाप कर्म बन्धन कारक नहीं होते हैं। **तत्सुकृतदुष्कृते विधुनुते** अर्थात् ब्रह्मज्ञानी पुरुष अपने पाप पुण्य रूप समस्त कर्मों को विनष्ट कर देने का काम करता है। ४. **एतं ह वाव न तपति**। अर्थात् आत्मज्ञानी पुरुष को संतप्त नही कर पाते हैं। **कि महं साधुनाकरवम्** वह यह सोचकर संतप्त नहीं होता है कि मैंने कौन सा पुण्य कर्म नहीं किया। **किमहं पापमकरवम्** अर्थात् मैंने कौन सा पाप किया। ये सभी श्रुतियाँ ब्रह्मज्ञानी की महिमा को बतलाती हैं। **सकलवेद तवेरित इत्यादि** श्रुतियाँ कहती हैं कि सम्पूर्ण वेद आपके सद्गुणों का वर्णन करते हैं। इसीलिए संसार के समस्त मनीषी पुरुष आपके मङ्गलमय कल्याणकारी गुणों के श्रवण, स्मरण आदि के द्वारा आपसे ही प्रेम करते हैं, एवं आपके चरणों का संस्मरण करके वे सम्पूर्ण क्लेशों से मुक्त हो जाते हैं ॥१६॥

दृतय इव श्वसन्त्यसुभृतो यदि तेऽनुविधा महदहमादयोऽण्डमसृजन्यदनुग्रहतः ।
पुरुषविधोऽन्वयोऽत्र चरमोऽन्नमयादिषु यः सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतम् ॥१७॥

अन्वयः— असुभृतो यदि अनुविधाः श्वसन्ति, इतरथा दृतय इव श्वसन्ति, यदनुग्रहतः महदहमादया अण्डम् असृजन् अन्नमयादिषु यः चरमः पुरुषविधः अत्र अन्वयः यः सदसतः परं त्वम् अथ यत् एष्ववशेषमृतम् ।।१७।।

अनुवाद— हे भगवन् प्राणधारियों के जीवन की इसी में सफलता है कि वे आपका स्मरण कीर्तन करें। ऐसा नहीं करने वाले प्राणधारियों का जीवन व्यर्थ है। उनके शरीर में श्वास का चलन ठीक उसी तरह से है जिस तरह लुहार की धौंकनी में हवा का आना जाना होता है। महान् तथा अहङ्कार आदि इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि आपके उनमें प्रवेश रूपी अनुग्रह के कारण है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय इन पाँचों कोषों में पुरुष रूप से आप ही विद्यमान रहते हैं। आपके ही अस्तित्व से उन कोशों के अस्तित्व को अनुभूति होती है। उनके नही रहने पर भी अन्तिम अवधि रूप से आप उनमें विराजमान रहते हैं। इस तरह सबसे अन्वित और सबकी अवधि होने पर भी आप असङ्ग हैं। वृतियों के द्वारा जो कुछ भी अस्ति और नास्ति के रूप में प्रतीति होती है, उन सबों में कार्य कारण रूप से आप परे हैं। **'नेति नेति'** श्रुति द्वारा सबका निषेध हो जाने पर भी आप निषेध के साक्षी रूप से बने रहते हैं। अतएव आपके भजन तथा स्मरण के विना मनुष्य का जीवन व्यर्थ है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

'असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये केचात्महनो जनाः।' तथा 'न चेदवेदीन्महती विनष्टिः', 'ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवोपयन्ति' इत्याद्याः श्रुतयः। पूर्वश्लोकोक्तोभयविधभजनहीनान्निन्दन्ति-दृतय इवेति। असुभृतो नरा यदि ते अनुविधा अनुविदधतीत्यनुविधा अनुवर्तिनो भक्ता इति यावत्। तर्हि। श्वसन्ति जीवन्ति सफलजीवना भवन्ति। इतरथा दृतय इव भस्त्रा इव। वृथाश्वासा इत्यर्थः। नन्वभक्तानामपि कामादिफलमस्त्येव। न कार्यकारणानुग्राहकत्वेन जीवनहेतोस्तवाभजने कृतघ्नानां तदपि न सिध्येदित्याशयेनाह-महदहमादय इति। महानहङ्कारश्चादिर्येषां ते यदनुग्रहतो यस्यानुप्रवेशेन लब्धसामर्थ्याः सन्तोऽण्डं देहं समष्टिव्यष्टिरूपं सृष्टवन्तः। तत्र च पञ्चापि कोशानन्नमयादीनाविश्य तत्तदाकारः सन् यश्चेतयते स त्वं तदाह-पुरुषविध इति। पुरुषस्यान्नमयादेर्विधेव विधा आकारो यस्य स तथा। ननु चिदेकरसस्य कथं तत्तदाकारतात आह-अन्वयोऽत्रेति। अत्र एष्वन्नमयादिष्वन्वेतीत्यन्वयः। अतस्तत्तदाकारतेति। एवं तर्हि सत्यत्वमसङ्गत्वं च कथं तत्राह-चरमोऽन्नमयादिषु य इति। अन्नमयादिषूपदिश्यमानेषु यश्चरमो 'ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा' इति पुच्छत्वेनोक्तः स त्वमिति संबन्धः। ननु तथाप्यन्नमयादिष्वन्वितत्वेऽसङ्गत्वव्याहतिरेव, तत्राह-सदसतः परं त्वमथ यदेष्ववशेषमृतमिति। सदसतः स्थूलसूक्ष्मादन्नमयादेः परं व्यतिरिक्तं तत्साक्षिभूतम्। अवशेषमवशिष्यत इत्यवशेषमबाध्यम्। अथात एव ऋतं सत्यम्। तर्हि किमर्थं तेष्वन्वय उक्तः, शाखाचन्द्रवच्छुद्धस्वरूपलक्षणार्थम्। तथा हि- 'स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयस्तस्येदमेव शिरः' इत्यादिना स्थूलसूक्ष्मक्रमेण पञ्चकोशानुपदिष्य 'तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः' इति पुनः पुनस्तदन्वितत्वेनालक्ष्य 'ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा' इति सर्वसाक्षिशुद्धस्वरूपनिरूपणमित्यनवद्यम्। नरवपुः प्रतिपद्य यदि त्वयि श्रवणवर्णनसंस्मरणादिभिः। नरहरे न भजन्ति नृणामिदं दृतिवदुच्छ्वसितं विफलं ततः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

असूर्यानामतेलोकाः प्रकाश के किरण से भी रहित घोर अन्धकार से युक्त असूर्य नामक जो लोक है, आत्मघाती पुरुष मृत्यु के पश्चात् उन्हीं लोकों में चले जाते हैं। **न चेदवेदीन्महती विनष्टिः** उस परमात्म तत्त्व को मनुष्य नहीं जान सका तो जीवन की सबसे बड़ी हानि हो गयी। **ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्ति अथेतरे दुःखमेवाऽपियन्ति।** अर्थात् जिन लोगों ने उस ब्रह्म तत्त्व को जान लिया वे मुक्त हो जाते हैं। तथा जो लोग उस ब्रह्म तत्त्व को नहीं जानते वे दुःख में ही लीन हो जाते है। इत्यादि श्रुतियाँ पूर्व श्लोक में वर्णित दोनों प्रकार के भजन से रहित मनुष्यों की निन्दा करते

हैं। यदि प्राणधारी मनुष्य आपके अनुवर्ती हैं अर्थात् आपका स्मरण कीर्तन करते हैं तो तब तो उनका जीवन सफल है। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं तो उनके शरीर में श्वास का आना जाना लुहार की धौंकनी में हवा के आने जाने के समान व्यर्थ है। यदि कहें कि जो भक्त नहीं है उन लोगों को भी कामादि रूप फल की प्राप्ति होती ही है तो ऐसी बात नहीं है। कार्य कारणानुग्राहक होने के कारण आपके अभक्तों का जीवन कृतघ्न होने के कारण कामादि की भी प्राप्ति नहीं होती है। महान् तथा अहङ्कार आदि भी आपके अनुप्रवेश के कारण ही ब्रह्माण्ड का निर्माण करते हैं। आपके अनुप्रवेश रूप अनुग्रह को प्राप्त करके ही समष्टि व्यष्टि रूप शरीर की सृष्टि करने में समर्थ होते हैं। किञ्च उस शरीर के भीतर रहने वाले जो अन्नमय प्राणमय मनोमय विज्ञानमय एवं आनन्दमय कोश हैं उनमें भी आप प्रवेश करके विभिन्न आकारों वाला हो कर जो चेतन के समान चेष्टा करता है वह भी आप ही हैं। उसी को श्रुतियाँ पुरुषविध: शब्द से कहती है। अर्थात् अन्नमयादि पुरुष के आकार के समान आकार वाले आप हो जाते हैं। यदि आप कहे कि मैं तो केवल ज्ञानस्वरूप हू यह विभिन्न आकारों वाला मैं कैसे हो सकता हूँ, इस पर श्रुतियों ने कहा आप इन सबों से अन्वित हैं। अर्थात् इन अन्नमयादिक से आप अन्वित सम्बद्ध होते हैं। अतएव आपकी विभिन्न आकारता हो गयी। यदि आप पूछें कि ऐसा होने पर मेरे सत्यत्व एवं असङ्गत्व की सिद्धि कैसे होगी ? इस पर श्रुतियों ने कहा **चरमोऽन्नमयादिषु य:** अर्थात् अन्नमय आदि में जो अन्तिमरूप से उपदिष्ट है। **ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा** इस श्रुति में पुच्छ शब्द से कहे गये हैं वही आप हैं। यदि कहे कि अन्नमयादि के साथ अन्वित होने पर मेरा असङ्गत्व बाधित हो गया। उस पर श्रुतियों ने कहा कि आप सत् एव असत् दोनों से परे हैं और जो इन अन्नमयादि के विनष्ट हो जाने पर भी बचा रहता है, वह आप ही हैं। अर्थात् स्थूल सूक्ष्म जो अन्नमयादि हैं उन सबों से भिन्न तथा उन सबों के साक्षी आप हैं। अवशेष अर्थात् अवाच्य। इसीलिए ऋत सत्य हैं। यदि आप कहें कि उन सबों में मेरा अन्वय किसलिए श्रुतियाँ बतलाती हैं? तो इसका उत्तर है कि शाखा चन्द्र के समान आपके शुद्ध स्वरूप लक्षण के लिए। **तथा० हि इत्यादि सवाएष पुरुषोऽन्नरस मय: तस्येदमेव शिर: इत्यादि** श्रुति के द्वारा स्थूल से सूक्ष्म के क्रम से श्रुतियाँ पञ्चकोशों का उपदेश करके उसकी पुरुषविधता अर्थात् पुरुषाकारता का अनुसरण करके यह पुरुष के आकार वाला हो जाता हैं। बार-बार उस ब्रह्म को अन्वित रूप से लक्षित करके **ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा** श्रुति से सबों के साक्षी शुद्ध स्वरूप का निरूपण किया गया है। इस तरह से सबकुछ स्पष्ट हो गया। **नरवपु: प्रतिपद्य इत्यादि** हे नृसिंह भगवन् मानव शरीर प्राप्त करके भी यदि कोई जीव आपके श्रवण, कीर्तन एवं संस्मरण के द्वारा आपकी आराधना नहीं करता है तो ऐसे जीव का श्वास लेना धौंकनी के समान व्यर्थ है ॥१७॥

उदरमुपासते य ऋषिवर्त्मसु कूर्पदृश: परिसरपद्धतिं हृदयमारुणयो दहरम्।
तत उदगादनन्त तव धाम शिर: परमं पुनरिह यत्समेत्य न पतन्ति कृतान्तमुखे ॥१८॥

अन्वय:— ऋषिवर्त्मसु ये कूर्पदृश: ते उदरम् उपासन्ते आरुणय: परिसर पद्धतिं हृदयम् दहरम्। तत हे अनन्त तव धाम परमं शिर: उदगात् यत् समेत्य पुनरिह कृतान्तमुखेन पतन्ति ॥१८॥

अनुवाद— ऋषियों ने आपकी प्राप्ति के लिए अनेक मार्गों को बतलाया है। उनमें से जो स्थूल दृष्टि वाले हैं वे मणिपूरक चक्र में अग्नि रूप से आपकी उपासना करते हैं। अरुणवंशके ऋषिगण सभी नाड़ियों के निकलने के स्थान हृदय में आपके परम सूक्ष्म स्वरूप दहरब्रह्म की उपासना करते है। हे अनन्त प्रभो ! हृदय से ही आपको प्राप्त करने के श्रेष्ठ मार्ग सुषुम्ना नाड़ी के ऊपर की ओर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त गयी है। जो पुरुष उस ज्योतिर्मय मार्ग को प्राप्त कर लेता है, और उससे ऊपर की ओर जाता है वह पुन: जन्म मृत्यु के चक्र में नहीं पड़ता हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

एवं तावत्सर्वात्मके परमेश्वरे सर्वश्रुतिसमन्वयेन सद्भजनीयत्वमुक्त्वा अभक्तनिन्दया च तदेव दृढीकृत्येदानीमनवगाह्यमहिमनि प्रथमं तावदुपाध्यालम्बनमुपासनं 'उदरं ब्रह्मेति शार्कराक्षा उपासते हृदयं ब्रह्मेत्यारुणयो ब्रह्मा हैवैता इत ऊर्ध्वं त्वेसोदसर्पत्तच्छिरोऽश्रयत' इत्याद्याः श्रुतयो विदधतीत्याह–उदरमुपासत इति । ऋषिवर्त्मसु ऋषीणां संप्रदायमार्गेषु ये कूर्पदृशस्ते उदरालम्बनं मणिपूरकस्थं ब्रह्मोपासते ध्यायन्ति । शार्कराक्षा इति श्रुतिपदस्य प्रतिपदं कूर्पदृश इति । कूर्पं शकरारजो विद्यते दृक्ष्वक्षिषु येषां ते तथा रजःपिहितदृष्टयः, स्थूलदृष्टय इति यावत् । उदरस्य हृदयापेक्षया स्थूलत्वात् । यद्वा कूर्पं सूक्ष्मम् । सूक्ष्मदृश इत्यर्थः । तदा हृदयस्थं सूक्ष्ममेवालक्ष्य तत्प्रवेशाय प्रथममुदरस्थमुपासत इति भावः । आरुणयस्तु साक्षाद्धृदयस्थं दहरं सूक्ष्ममेवोपासते । हृदयविशेषणं परिसरपद्धतिमिति । परितः सरन्ति प्रसर्पन्तीति परिसरा नाड्यस्तासां पद्धतिं मार्गं प्रसरणस्थानमित्यर्थः । विशेषणस्य फलमाह–तत इति । हृदयात् भो अनन्त, तव धामोपलब्धिस्थानं सुषुम्नाख्यं परमं श्रेष्ठं ज्योतिर्मयं शिरो मूर्धानं प्रत्युदगादुदसर्पत्। मूलाधारादारभ्य हृदयमध्याद्ब्रह्मरन्ध्रं प्रत्युद्गतमित्यर्थः । कथंभूतं धाम । यत्समेत्य प्राप्य पुनरिह कृतान्तमुखे संसारे न पतन्ति। तथा च श्रुतिः–'शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका । तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति' इति । उदरादिषु य; पुंसां चिन्तितो मुनिवर्त्मभिः । हन्ति मृत्युभयं देवो हृद्गतं तमुपास्महे ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से सर्वात्मक परमात्मा में सभी श्रुतियों का समन्वय होने से श्रीभगवान् को सत्पुरुषों द्वारा भजनीय बतलाकर और अभक्तों की निन्दा के द्वारा उसी अर्थ को सुदृढ बनाकर अब जिनकी महिमा को ठीक-ठीक नहीं जाना जा सकता है, उस परमेश्वर की पहले उपाधि आलम्बन उपासना का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियाँ ये हैं- **उदरं ब्रह्मेति शार्कराक्षाः उपासते ।** अर्थात् शार्कराक्ष उपासक उदरं ब्रह्म की उपासना करते हैं । **हृदयं ब्रह्मेत्यारुणयो ब्रह्म हैवैता इत ऊर्ध्वं त्वेवोदसर्पतछिरोऽश्रयते** अरुण वंश वाले हृदय ब्रह्म की उपासना करते हैं । इस हृदय प्रदेश से ही ऊपर की ओर जाने वाली सुषुम्ना नाम की नाड़ी शिरोभाग के ब्रह्मरंध्र पर्यन्त जाती है । ऋषियों के द्वारा आपकी प्राप्ति के साधनभूत अनेक मार्ग बतलाये गये हैं । ये ऋषियों के सम्प्रदाय मार्ग हैं । इनमें से कूर्प अर्थात् स्थूल दृष्टि वाले होते हैं वे उदर कें भीतर विद्यमान मणिपूरक चक्र में अग्नि रूप से ब्रह्मोपासना करते हैं । **शर्कराक्षा इत्यादि** शर्कराक्ष शब्द कूर्पदृशः का पर्यायवाची है । कूर्प तथा शर्करा धूलकण को कहते है । शर्कराक्ष अर्थात् धूल के कारण जिनकी आँखें बन्द हो गयी है । अतएव शर्कराक्ष का अर्थ है स्थूल दृष्टि वालें। हृदय की अपेक्षा उदर स्थल होता है । अथवा कूर्प शब्द सूक्ष्म का बोधक है । अतः कूर्पदृशः अर्थात् सूक्ष्म दृष्टि वाले । तब अर्थ होगा कि हृदय में विद्यमान सूक्ष्म को ही लक्ष्य बनाकर उसमें प्रवेश करने के लिए पहले उदरस्थ ब्रह्म की उपासना करते हैं । और अरुण वंश वाले ऋषिगण तो साक्षात् हृदय में विद्यमान दहर अर्थत् सूक्ष्म दहर ब्रह्म की उपासना करते हैं । परिसर पद्धति शब्द हृदय का विशेषण है । अर्थात् नाड़ियों के चारो तरफ फैलने का स्थान है हृदय। उस विशेषण का फल है कि उस हृदस्थान से ही हे अनन्त ! आपके धाम की प्राप्ति के साधन भूत सुषुम्ना नामक श्रेष्ठ ज्योतिर्मय नाड़ी मूर्धापर्यन्त ऊपर की ओर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त जाती है । अर्थात् मूलाधार चक्र से लेकर हृदय के बीच से ब्रह्मरंध्र पर्यन्त ऊपर की ओर जाती है । परमात्मा का धाम कैसा है ? इसका उत्तर है कि उस धाम को प्राप्त करके जीव पुनः यमराज के मुख स्वरूप इस संसार में नहीं आता है । श्रुति भी कहती है **शतं चैका हृदयस्यनाड्यः तासांमूर्धानंमभि निःसृतैका तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वं मेति विष्वङन्या उत्क्रमणे भवन्ति** अर्थात् हृदय प्रदेश में एक सौ एक नाड़ियाँ हैं, उन सबों में से एक नाड़ी मूर्धा प्रदेश पर्यन्त जाती है । जो महाभाग्यवान उससे उत्क्रमण करते हैं वे अमृतत्व को प्राप्त कर लेते हैं । उससे भिन्न नाड़ियों के द्वारा उत्क्रमण करने वाले जीव विभिन्न लोकों और योनियों में जाते हैं । **उदरादिषु यः पुंसापुंसा इत्यादि** जो मनुष्य ऋषि मुनियों द्वारा उपदिष्ट पद्धतियों द्वारा उदर स्थान में जिनका चिन्तन करते हैं और जो प्रभु उनके चिन्तन करने पर उनके मृत्यु के भय को विनष्ट कर देते हैं, उन हृदय प्रदेश में विद्यमान श्रीभगवान् की हम उपासना करते हैं ।।१८।।

स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया तरतमतश्चकास्स्यनलवत्स्वकृतानुकृतिः ।
अथ वितथास्वमूष्ववितथं तव धाम समं विरजधियोऽन्वयन्त्यभिविपण्यव एकरसम् ॥१९॥

अन्वयः— स्वकृतविचित्रयोनिषु हेतुतया विशन्निव तरतमतः चकासि स्वकृतानुकृतिः अनलवत् । अथ वितथासु अमूषु तव अवितथम् एकरसम् समं धाम अभिविपण्यवः अवयन्ति ।।१९।।

अनुवाद— हे प्रभो, देव मनुष्य पशु-पक्षी आदि योनियों को अपने ही बनाया है । अतएव सर्वदा सभी रूपों में आप ही विद्यमान हैं । अतएव कारण रूप से प्रविष्ट नही होने पर भी उन सबों में प्रविष्ट हुए के समान प्रतीत होते हैं । आप विभिन्न आकृतियों का अनुकरण करके किसी में उत्तम तो किसी में अधम रूप से प्रकाशित होते हैं । जैसे छोटी बड़ी लकड़ियों और कर्मों के अनुसार प्रचुर अथवा अल्परूप में प्रतीत होते हैं । इसीलिए संतजन लौकिक एवं पारलौकिक कर्म व्यापारों तथा उनके फलो से विरक्त रहकर अपनी निर्मल बुद्धि के द्वारा आत्मा एवं अनात्मा के स्वरूप को जानकर जगत् के झूठे रूपों में नहीं फँसते हैं । और आपके सर्वत्र, एक रस, सम्भाव रूप से स्थित रूप का साक्षात्कार करते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

नन्वीश्वरस्यापि तर्हि जीववदुदरादिसंबन्धे तदनुप्रविष्टस्य च तारतम्ये सति केन विशेषेणोपास्यत्वमितीमामाशङ्कां परिहरन्त्यः 'एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च' इत्याद्याः श्रुतयः स्तुवन्तीत्याह-स्वकृतविचित्रयोनिष्विति । स्वयं कृतासूच्चनीचमध्यमासु योनिष्वभिव्यक्तिस्थानेषु कार्येषु देहादिषु हेतुतयोपादानतया प्रागेवविद्यमानत्वेन मुख्यप्रवेशासंभवाद्विशन्निव वर्तमानस्तरतमतो न्यूनाधिकभावेन चकास्सि अवभाससे स्वकृता योनिरनुकरोतीति स्वकृतानुकृतिरनलवत् । अग्निर्यथा स्वतस्तारतम्यहीनोऽपि काष्ठानुसारेणतथा तथा प्रकाशते तद्वत् । अथातो वितथासु मिथ्याभूतास्वमूषु योनिष्ववितथं सत्यं यतः सममविशेषतमतः सत्यं तव धाम स्वरूपं विरजधियो निर्मलमतयोऽन्वयन्ति जानन्ति । नु इति पृथक् पदं वा । अत्र हेंतुः-अभिविपण्यव इति । अभितो विगतव्यवहाराः । पण व्यवहार इत्यस्य रूपं पण्युरिति, ऐहिकामुष्मिककर्मफलरहिता इत्यर्थः । अविशेषत्वादेवैकरसं सन्मात्रमतस्तवोपाधिकृततारतम्याभावादप्रच्युतैश्वर्यस्योपास्यत्वमिति भावः । स्वनिर्मितेषु कार्येषु तारतम्यविवर्जितम् । सर्वानुस्यूतसन्मात्रं भगवन्तं भजामहे ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

यहाँ प्रश्न होता है कि यदि ईश्वर का उदर आदि से सम्बन्ध होता है और परमात्मा उदर में प्रवेश करते हैं तो फिर दोनों में तारतम्य होने पर ईश्वर की किस विशेषण से विशिष्ट रूप से उपासना करनी चाहिए ? इस प्रकार की होने वाली शङ्का को दूर करती हुई श्रुति कहती है । **एको देवः सर्वभूतेषु इत्यादि** अर्थात् परमात्मा एक हैं और सभी भूतों में अन्तर्यामी रूप से छिपे हुए है । वे सर्वव्यापक हैं तथा सभी भूतों की अन्तरात्मा हैं । जीव जिन कर्मों को करता है उसे साक्षात् देखते हैं । वे सबों के साक्षी है चेत्रा (ज्ञान स्वरूप) केवल (अकेले) और निर्गुण है। **स्वकृत विचित्रयोनिषु० इत्यादि** परमात्मा के ही द्वारा सृष्ट उच्च, नीच एवं मध्यम योनियों में तथा उनकी अभिव्यक्ति के स्थान शरीरों में उपादान रूप से पहले से ही विद्यमान होने से परमात्मा का उनमें मुख्य प्रवेश सम्भाव नहीं हो सकने के कारण प्रवेश करते हुए के समान हे भगवन् आप उत्तम मध्यम रूप से प्रकाशित होते हैं । अर्थात् अपने से ही निर्मित योनि का आप अनुकरण करते हैं । अग्नि के समान अर्थात् जिस तरह अग्नि अपने में तारतम्य से रहित होती है । किन्तु काष्ठों के छोटे बड़े होने के कारण भिन्न रूप से प्रकाशित होती है। अतएव इन मिथ्याभूत योनियों में विवेकी पुरुष आपका स्वरूप, सत्य, एक समान, अपनी निर्मल बुद्धि के द्वारा जानते हैं । अथवा नु यह पृथक् पद ही है । इसका कारण है कि वे अपने समस्त लौकिक वैदिक व्यवहारों और उसके फलों का परित्याग कर दिए

रहते है। पण व्यवहारे धातु का रूप है पण्युः। चूकि आप एक समान सदा रहते हैं अतएव आप एक रस है। अर्थात् सन्मात्र हैं आप। फलत उपाधियों के कारण होने वाले उत्तम भाव का अभाव है। फलतः सदा ऐश्वर्य सम्पन्न होने के कारण आप उपास्य हैं। **स्वनिर्मितेषु इत्यादि** अपने ही द्वारा निर्मित कार्य वर्ग में श्रीभगवान् न्यून अधिक श्रेष्ठ कनिष्ठ भाव से रहित हैं। सबों में परिपूर्ण सत्तामात्र श्रीभगवान् की हम भजन करते हैं ॥१९॥

स्वकृतपुरेष्वमीष्वबहिरन्तरसंवरणं तव पुरुषं वदन्त्यखिलशक्तिधृतोंऽशकृतम् ।
इति नृगतिं विविच्य कवयो निगमावपनं भवत उपासतेऽङ्घ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः ॥२०॥

अन्वयः— स्वकृतेषु पुरेषु अमीषु अबहिः अन्तर संवरणं अखिलशक्तिधृतः तव अंशकृतम् पुरुषं वदन्ति इति नृगतिं विविच्यकवयःनिगमावपनं भवतः अङ्घ्रिम् अभवं विश्वसिता भुवि उपासते ।।२०।।

अनुवाद— प्रभो जीव जिन शरीरों में रहता है वे शरीर उसके कर्मों के द्वारा निर्मित हैं। जीव उन शरीरों के कार्य कारण रूप अवरणों से रहित है। वास्तविकता यह है कि उन आवरणों की सत्ता है ही नहीं। तत्वज्ञानी पुरुषों का कहना है कि समस्त शक्तियों को धारण करने वाले आपका ही वह स्वरूप है। स्वरूप होने के कारण ही अंश नहीं होने पर भी उसे अंश कहते हैं और निर्मित नहीं होने पर भी निर्मित कहते हैं। इसीलिए विवेकी पुरुष जीव के वास्तविक स्वरूप पर विचार करके विश्वास के साथ आपके चरणों की उपासना करते हैं क्योंकि आपके चरण ही समस्त कर्मों को समर्पित करने का स्थान हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

अपि च कुतो न्वियमाशङ्का स्याद्भगवतो देहाद्युपाधिकृतदोषप्रसङ्ग इति यतोऽविद्याकामकर्मभिः संसरतो जीवस्यापि भगवद्भावं लक्षणया बोधयन्त्यस्तं दोषं निषेधयन्ति 'स यश्चायं पुरुषे। यश्चासावादित्ये। स एकः। तत्त्वमसि' इत्याद्याः श्रुतयः। ननु क्रत्वर्थस्यात्मनः स्तुतिरियमीश्वरत्वेन क्रियते, न तु तस्येश्वरत्वं बोध्यते, नैतद्युज्यते, यतस्तत्र 'यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।' इत्याद्याः श्रुतयः कृतावतारस्य भगवतश्चरणभजनमुपायं वदन्तीत्याह- स्वकृतपुरेष्विति। स्वकर्मोपार्जितेषु पुरेषु देहेष्वमीषु नरादिषु भोक्तृत्वेन वर्तमानं पुरुषमखिलशक्तिधृतः सर्वशक्त्याश्रयस्य पूर्णस्य तवांशकृतं वदन्ति। अंश इवांशः, कृत इव कृतः। त्वद्रूपं वदन्तीत्यर्थः। ननु कार्यकारणसंवृतस्य कुत एवंभूतत्वं तत्राह- अबहिरन्तरसंवरणमिति। बहिः कार्यम्, अन्तरं कारणम्। वस्तुतस्तदावरणशून्यम्। तयोरसत्त्वादित्यर्थः। इत्येवं नृगतिं नुर्जीवस्य गतिं तत्त्वं विविच्य विशोध्य कवयोऽन्यथेदं न प्राप्यत इति जानन्तो निगमावपनं निगमोक्तकर्मणामावपनं आसमन्तादुप्यतेऽस्मिन्नित्यावपनं क्षेत्रं सर्वकर्मार्पणविषयमित्यर्थः। यत्रार्पितानि कर्माणि मुक्तिफलं फलन्ति तं भवतोऽङ्घ्रिमभवं भवनिवर्तकं विश्वसिताः कृतविश्वासा उपासतेऽर्चनवन्दनादिभिः सेवन्ते। भुवीति मर्त्यलोके। इदमेंवोचितमिति दर्शयन्ति-त्वदंशस्य ममेशान त्वन्मायाकृतबन्धनम्। त्वदङ्घ्रिसेवामादिश्य परानन्द निवर्तय ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि यह शङ्का कैसे होती है कि देह आदि उपाधि के कारण परमात्मा में दोष का प्रसङ्ग होगा? क्योंकि अविद्या तथा काम्य कर्मों के कारण संसार में संसरण करने वाले जीव के भगवत् भाव का लक्षणावृत्ति से प्रतिपादन करके **स यश्चायं पुरुष यश्चासावात्ये स एकः तत्त्वमसि** अर्थात् जो परमात्मा पुरुष के भी हैं। वे ही आदित्य मण्डल में भी हैं। वे दोनों एक ही है तुम भी वही हो इत्यादि श्रुतियाँ दोष का निषेध करती हैं। **ननुक्रत्वर्थस्यात्मनः** यदि कहें कि क्रतु के लिए यह आत्मा की प्रशंसा है, उसके ईश्वरत्व का प्रतिपादन नहीं किया जा रहा है तो यह कथन उचित नहीं है। क्योंकि श्रुति कहती है **यस्यदेवे० इत्यादि** जिसकी परमात्मा में श्रेष्ठ प्रेमा भक्ति होती है तथा जो परमात्मा के ही समान अपने आचार्य में भक्ति होती है, उस महामनस्वी पुरुष के हृदय में इस श्वेताशर उपनिषद में वर्णित अर्थों

का प्रकाश होता है । यें श्रुतियाँ अवतार ग्रहण करने वाले श्रीभगवान् के चरणों की उपासना को परमात्मा की प्राप्ति का उपाय बतलाती हैं । इसी बात को **स्वकृत० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । अपने कर्मों के द्वारा ही उपार्जित इन मनुष्यादि शरीरों में भोक्ता रूप से विद्यमान पुरुष को सम्पूर्ण शक्तियों को धारण करने वाले तथा सर्वत्र परिपूर्ण आप परमात्मा का अंश जन्य मुनिजन बतलाते हैं । अर्थात् आपका स्वरूप बतलाते हैं । **ननु कार्यकारण० इत्यादि** प्रश्न होता है कि कार्यकारण रूप आवरण से संवृत जीव में परमात्मत्व कैसे सम्भव है ? तो इसका उत्तर है कि जीव आवरण रहित है । क्योंकि वे दोनों आवरण मिथ्या है । इस तरह से जीव तत्त्व को जानकर विवेकी पुरुष यह जान लेते हैं परमात्मा के चरणोपासन व्यतिरिक्त साधन से परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती हैं शास्त्रोक्त कर्मों के समर्पण स्थान आपके चरण कमल ही है भगवान् के चरणों में समर्पित सत्कर्मों का फल मुक्ति की प्राप्ति है । आपके वे चरण कमल संसार का निवर्तन करने वाला है । इस तरह से विश्वास करके अर्चना एवं वन्दना के द्वारा आपके चरणों की सेवा करते हैं । यही उचित है इस बात को बतलाते हुए कहते हैं । **त्वदंशस्य ममेशान इत्यादि** अर्थात् हे मेरे परमानन्द स्वरूप स्वामिन् मैं आपका अंश हूँ । अपने चरणों की सेवा का आदेश देकर अपनी माया के द्वारा निर्मित मेरे बन्धन को आप दूर कर दें ॥२०॥

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ।
न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहाः ॥२१॥

अन्वयः— दुरवगमात्मतत्त्व निगमाय तवात्ततनोः चरित महामृताब्धिपरिवर्त परिश्रमणाः हे ईश्वर केचित् अपवर्गमपि न परिलषन्ति ते चरण सरोजहंसकुल सङ्गविसृष्टगृहाः ॥२१॥

अनुवाद— हे भगवन् ! परमात्म तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करना बड़ा ही कठिन है । उसका ज्ञान कराने के लिए आप अनेक अवतारों को ग्रहण करते हैं और उन अवतारों द्वारा ऐसी लीला करते हैं जो अमृत के महासागर से भी मीठा और मादक होता है और उस आपके चरित रूपी महासागर में अवगाहन करने वाले भगवद् भक्तों की सारी थकान समाप्त हो जाती है । हे ईश्वर ! कुछ ऐसे भी भक्त जन हैं जो मुक्ति का भी प्राप्त करना नहीं चाहते है । वे आपके चरण रूपी कमलों के प्रेमी परमहंस समूह के सत्सङ्ग में जहाँ कहीं भी आपकी कथा होती हैं वहीं चले जाते हैं, इस तरह वे अपने गृह का भी परित्याग कर देते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

भक्तिरल्पसाधनमिति वचनमनुचितमिव मन्वानो भक्तिं गुरूकरोति–दुरवगमेति । भो ईश्वर, दुरवगमं दुर्बोधं यदात्मतत्त्वं तस्य निगमाय ज्ञापनाय तवात्ततनोराविष्कृतमूर्तेश्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः, चरितमेव महानमृताब्धिस्तस्मिन्परिवर्तो विगाहस्तेन परिश्रमणाः । परिर्वर्जनार्थः; । श्रमणं श्रमः गतश्रमा इत्यर्थःअपवर्गमपि केचिन्न परिलषन्ति नेच्छन्ति, कुतोऽन्यदिन्द्रपदादि। केचिदित्येवंभूता भक्तिरसिका विरला इति दर्शयन्ति । न केवलमन्यन्नेच्छन्ति किंतु तेनैव सुखेन पूर्णाः सन्तः पूर्वसिद्धं गृहादिसुखमप्युपेक्षन्त इत्याह–तव चरणसरोजहंसकुलसङ्गविसृष्टगृहा इति । तव चरणसरोजे हंसा इव रममाणा ये भक्तास्तेषां कुलं तेन सङ्गस्तेन विसृष्टा गृहा यैस्ते तथा । अनेन श्रवणकीर्तने दर्शिते । श्रुतिश्च मुक्तेरप्याधिक्यं भक्तेर्दर्शयति । यथाह–'यं सर्वे देवा नमन्ति मुमुक्षवो ब्रह्मवादिनश्च' इति । व्याख्यातं च सर्वज्ञैर्भाष्यकृद्भिः, मुक्ता अपि लीलया विग्रहं कृत्वा भजन्ति इति । त्वत्कथामृतपाथोधौ विहरन्तो महामुदः । कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमम् ॥२१॥'

भाव प्रकाशिका

भक्ति मुक्ति का अल्प साधन है इस तरह से कहने वालों का वचन अनुचित हैं, इस तरह मानकर भक्ति की महती महत्ता का प्रतिपादन करती हुई श्रुतियाँ कहती हैं । हे ईश्वर ! परमात्मतत्त्व अत्यन्त दुर्बोध है । उस आत्मतत्व

का ज्ञान कराने के लिए आप अनेक अवतारों को ग्रहण करते हैं और उस अवतार से ऐसी लीलाओं को करते है जो अमृतसागर के समान अत्यन्त मधुर होती हैं । आपकी उस चरित सागर का सेवन करने वालों का सारा श्रम समाप्त हो जाता है । परिश्रमण: में परि उपसर्ग वर्जनार्थक है । **परिश्रमणाः** अर्थात् जिनका सारा परिश्रम समाप्त हो जाता है। इस प्रकार के जो भगवान् की लीला कथा के प्रेमी कुछ ऐसे भक्त हैं जो मोक्ष को भी नहीं प्राप्त करना चाहते है । ऐसी स्थिति में उनके द्वारा इन्द्र आदि के पद की कामना की तो कोई बात ही नहीं है । कुछ तो भगवद् भक्ति के रसिक महापुरुष होते है जो भक्ति व्यतिरिक्त वस्तुओं को तो नहीं ही चाहते हैं अपितु उस भक्ति जन्य सुख से परिपूर्ण होकर वे पहले से ही प्राप्त गृहादि सुख का भी परित्याग कर देते हैं। इस बात का प्रतिपादन करती हुई श्रुतियाँ कहती हैं **ते चरण सरोज हंसकुलसंग विसृष्टगृहाः** अर्थात् आपके जो दोनों चरण कमल हैं उसके प्रेमी परमहंस महापुरुषों के साथ सङ्ग में इतना रम जाते हैं कि जहाँ कही भी आपकी कथा होती है वहीं चले जाते हैं, वे अपने गृह का परित्याग कर देते हैं । इस प्रतिपादन के द्वारा श्रीभगवान् की कथा का श्रवण और कीर्तन का प्रतिपादन किया गया है । श्रुति भी मुक्ति की अपेक्षा भक्ति को अधिक बतलाती हुई कहती है **यं सर्वे देवा नमन्ति मुमुक्षवो ब्रह्मवादिनः च ।** अर्थात् भगवद् भक्त को तो सभी देवता मुमुक्षु गण तथा ब्रह्मज्ञानी पुरुष भी नमस्कार करते हैं भाष्यकारो ने भी इस श्रुति की व्याख्या इस प्रकार से किया है मुक्ति प्राप्त जीव भी लीला पूर्वक शरीर धारण करके श्रीभगवान् की भक्ति किया करते हैं । **त्वत्कथामृतपाथो धौ.....तृणोपमम्।।८।।** कोई-कोई विरले शुद्ध अन्तःकरण वाले महापुरुष आपकी कथा रूपी अमृत सागर में विहार करते हुए परमानन्द का अनुभव करते हुए धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चारो पुरुषार्थों का भी तृण के समान परित्याग कर देते हैं ।।२१।।

त्वदनुपथं कुलायमिदमात्मसुहृत्प्रियवच्चरति तथोन्मुखे त्वयि हिते प्रिय आत्मनि च ।
न बत रमन्त्यहो असदुपासनयात्महनो यदनुशया भ्रमन्त्युरुभये कुशरीरभृतः ।।२२।।

अन्वयः— त्वदनुपथम् इदम् कुलायं आत्मसुहृत्प्रियवत् चरति तथा हिते, प्रिये आत्मनि च त्वयि बत न रमन्ति । अहो असत् उपासनया आत्महनः अनुशयाः कुशरीरभृतः ।।२२।।

अनुवाद— प्रभो यह शरीर रूपी नीड (खोंता) **त्वदनुपथम्** आपकी सेवा का साधन बन जाता है तब तो यह **आत्मसुहृत् प्रियवच्चरति** यह शरीर आत्मा हितैषी तथा प्रिय व्यक्ति के समान आचरण करता है । तथा हिते **प्रिये आत्मनि च त्वयि तथा उन्मुखे** आप भी आत्मा के सच्चे हितैषी, प्रियतम तथा आत्मा हैं एवं जीव को अपनाने के लिए सदा तैयार भी रहते हैं । ऐसा होने पर भी **बत न रमन्ति अहो** यह अत्यन्त कष्ट की बात है कि जो लोग इस मानव शरीर को पाकर भी आपकी उपासना नहीं करते हैं **असदुपासनया आत्महनः** और इस असत् शरीर एवं इसके संबन्धियों में ही रमण करते हैं, उन्हीं की उपासना करके आत्मनाश कर बैठते हैं । **यदनुशया** उसी की वासना के कारण वे **कुशरीरभृतः** अत्यन्त निन्दित शरीर को धारण करके **उरुभये भ्रमन्ति** अत्यन्त भयङ्कर जन्म-मरण रूपी संसार चक्र में पड़े रहते हैं ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन', न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव । नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति- इत्याद्याः श्रुतयोऽनुक्रोशन्त्यो जगदात्मनीश्वरे रतिमुपदिशन्तीत्याह-त्वदनुपथमिति । त्वदनुवर्तित्वात्त्वत्सेवौपयिकमिदं कुलायं कौ पृथिव्यां लीयत इति कुलायं शरीरमात्मसुहृत्प्रियवत् आत्मा च सुहृच्च प्रियश्च तद्वच्चरति । स्वाधीनतया वर्तत इत्यर्थः । तथापि त्वयि उन्मुखे हिते प्रिये आत्मनि च । अप्यर्थे चकारः । एवंभूते सुसेव्येऽपि त्वयि बताहो कष्टं न रमन्ति न सख्यादिना भजन्ति । असदुपासनया देहाद्युपलालनेनात्महनः प्रमादिनः । कुतः । यदनुशयाः

यस्यामसदुपासनायामनुशयो वासना येषां ते कुशरीरभृतः सन्त उरुभये संसारे भ्रमन्ति परिवर्तन्ते । अत आत्महन इति भावः। त्वय्यात्मनि जगन्नाथे मन्मनो रमतामिह । कदा ममेदृशं जन्म मानुषं संभविष्यति ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

सभी लोग ईश्वर के क्रीडास्थान को ही देखते है इस क्रीडा स्थान को बनाने वाले परमात्मा को कोई नहीं देखता है । **न तं विदाथ य इमाजजानान्यद् युष्माकमन्तरं बभूव नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशसश्चरन्ति।** अर्थात् तुम संसारी लोग उस परमात्मा को नहीं जानते हो जिसने इन सम्पूर्ण प्रजाओं की सृष्टि की है । इसका कारण है कि तुम लोग अविद्या के द्वारा आच्छन्न हो । फलत: केवल तर्क ही करते रहते हो । इस तरह की सारी श्रुतियाँ जगत् की निन्दा करती हुई सम्पूर्ण जगत् की आत्मा परमात्मा में प्रेम को उत्पन्न करती हुई कहती हैं । **त्वदनुपथम् इत्यादि** हे प्रभो **त्वदनुपथम्** आपकी सेवा करने के लिए उपयोगी है यह मिट्टी में मिल जाने वाले शरीर आत्मा, हितैषी और प्रिय के समान आचरण करता है । अर्थात् यह स्वाधीन बना रहता है । **त्वयि च** और आप भी इस जीव की आत्मा, सच्चे हितैषी तथा प्रिय हैं । आप इस शरीर को अपना बना लेना भी चाहते है । फिर भी यह आत्मा । इस तरह आप सुसेव्य है । किन्तु यह बड़े कष्ट की बात है कि लोग आपकी उपासना नहीं करते है । वे इस असत् शरीर और शरीर के संबन्धियों की ही उपासना में लग जाते है । और उसी के कारण अपना आत्मनाश कर लेते है । इस असत् उपासना की वासना से वसित होकर पशु-पक्षी कृमि आदि अत्यन्त निन्दित शरीर को धारण करके जन्म मरण के चक्र रूप भयङ्कर संसार में जीव पड़ा रहता है । **त्वय्यात्मने जगन्नाथे ....सम्भविष्यति** । अर्थात् प्रभो आप जगत् के स्वामी हैं और अपनी आत्मा भी है । इस जीवन में ही मेरा मन आपमें रम जाय । हे प्रभो मेरा ऐसा सौभाग्य कब होगा जब मुझे इस प्रकार का मनुष्य जन्म मिलेगा ।।९।।२२।।

निभृतमरुन्मनोक्षदृढयोगयुजो हृदि यन्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणात् ।
स्त्रिय उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियो वयमपि ते समाः समदृशोऽङ्घ्रिसरोजसुधाः ।।२३।।

अन्वयः— निभृतमरुन्मनोऽक्ष दृढयोगयुजः मुनयः यत् हृदि उपासते तत् अरयः अपि स्मरणात् ययुः स्त्रियः उरगेन्द्र भोगभुजदण्डविषक्तधियः वयमपि ते समाः समदृशः अङ्घ्रिसरोजसुधाः ।।२३।।

अनुवाद—हे प्रभो बड़े-बड़े विचारशील योगीयति अपने प्राणमन और इन्द्रियों को वश में करके दृढयोगाभ्यास के द्वारा हृदय में आपकी उपासना करते हैं । उन योगियों को जिस पद की प्राप्ति होती है, उस पद की प्राप्ति आपके शत्रुओं को भी हो जाती है क्योंकि वे निरन्तर आपका स्मरण करते रहते हैं । वे स्त्रियाँ जो आपको परिच्छिन मानती हैं और आपके शेषनाग के समान मोटी लम्बी और सुकुमार भुजाओं के प्रति कामभाव से आसक्त रहती हैं वे जिस पद को प्राप्त करती है वही पद हम श्रुतियों को भी प्राप्त होता है यद्यपि हमसब आपको सदैव एक रस अनुभव करती हैं और आपके चरणारविन्द के मकरन्दरस का अनुभव करती हैं । इसका कारण है कि आप समदर्शी हैं । आपकी दृष्टि में उपासक के परिच्छिन्न या अपरिच्छन्न या अपरिच्छिन्न भाव में कोई भी अन्तर नहीं है ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य' इत्याद्याः श्रुतयो ध्यानमङ्गत्वेनोपदिशन्तीत्याह-निभृतमरुन्मनोक्षदृढयोगयुज इति । मरुत्प्राणो मनश्चाक्षाणीन्द्रियाणि च निभृतानि संयमितानि यैस्ते च ते दृढं योगं युञ्जन्ति ते दृढयोगयुजस्ते तथाभूता मुनयः हृदियत्तत्त्वमुपासते तदेवारयोऽपि तव स्मरणाद्ययुः प्रापुः । स्त्रियोऽपि कामत उरगेन्द्रभोगभुजदण्डविषक्तधियः अहीन्द्रदेहसदृशयोर्भुजदण्डयोर्विषक्ता धीर्यासां ताः परिच्छिन्नदृष्टयः समदृशः सममपरिच्छन्नं त्वां पश्यन्त्यो वयं श्रुत्यभिमानिन्यो देवता अपि ते समा एव कृपाविषयतया । अङ्घ्रिसरोजसुधाः अङ्घ्रिसरोजं सुष्ठु ध्यायन्त्यः। अयं भावः-इत्थंभूतस्तव स्मरणानुभावो ये योगिनस्त्वां हृद्यालम्बनमुपासते, याश्च वां त्वां समं पश्यामो, याश्च स्त्रियः कामतः

परिच्छिन्नं ध्यायन्ति, ये च द्वेषेण सर्वानपि तांस्त्वामेव प्रापयतीति । चरणस्मरणं प्रेम्णा तव देव सुदुर्लभम् । यथा कथंचिन्नृहरे मम भूयादहर्निशम् ।।१०।।२३।।

भाव प्रकाशिका

आत्मावाऽरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो निदिध्यासितव्यः । अर्थात् अरे मैत्रेयी आत्मा का साक्षात्कर करना चाहिए, तदर्थ श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करना चाहिए इत्यादि श्रुतियाँ परमात्म साक्षात्कार के अङ्ग रूप से ध्यान का उपदेश करती हैं । इस बात को **निभृतमरुन्मनो० इत्यादि** श्लोक से श्रुतियाँ कहती है । यहाँ मरुत् शब्द प्राण का वाचक है, मन और इन्द्रियों को जिन लोगों ने अपने वश में कर लिया है ऐसे योग करने वाले मुनिजन अपने हृदय में जिस तत्त्व की उपासना करके जिस पद को प्राप्त करते है शत्रु भी उसी पद को आपका निरन्तर स्मरण करने के कारण प्राप्त कर लिया । काम की भावना से शेषनाग के समान मोटी लम्बी और कोमल भुजाओं में जिनकी बुद्धि आसक्त है वे परिच्छिन्न दृष्टि वाली स्त्रियाँ तथा समदर्शी, अपरिच्छिन्न रूप से आपका सदा साक्षात्कार करने वाली भी आपके चरण कमल के पराग का सदा पान करने वाली हम श्रुतियाँ भी उनके ही समान आपकी कृपा को प्राप्त करती हैं । कहने का अभिप्राय है कि आपके चरणों के स्मरण का अनुभाव ऐसा है कि जो योगीजन आपका अपने हृदय में उपासना करते हैं, तथा हम श्रुतियाँ भी जो आपको समदर्शी रूप से जानती हैं, और काम की भावना से जो स्त्रियाँ आपकी परिच्छिन्न रूप से अपने हृदय में धारण करती है तथा जो द्वेष के कारण आपका निरन्तर स्मरण करते रहते हैं । इन सबों को आपके चरण स्मरण आपको ही प्राप्त करवाती है । **चरणस्मरणं प्रेम्णा.....अहर्निशम् ।।१०।।२३।।** हे देव आपके चरणों का प्रेमपूर्वक स्मरण अत्यन्त दुर्लभ है । हे नृसिंह चाहे जिस तरह से हो मुझे आपके चरणों का स्मरण रात-दिन बना रहे ।।१०।।२३।।

क इह नु वेद बतावरजन्मलयोऽग्रसरं यत उदगादृषिर्यमनु देवगणा उभये ।
तर्हि न सन्न चासदुभयं न च कालजवः किमपि न तत्र शास्त्रमवकृष्य शयीत यदा ॥२४॥

अन्वयः— क इह नु वेद, बतावरजन्मलयोऽग्रसंर यत उदगादृषिः यमनु देवगणा उभये तर्हि न, सन्न चासदुभयं न च कालजवः किमपि न तत्र शास्त्रमवकृष्य यदा ।।२४।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप अनादि और अनन्त हैं जिसका जन्म और मृत्यु काल से सीमित है वह आपको कैसे जान सकता है ? स्वयं ब्रह्मा जी निवृति परायण सनकादि एवं प्रवृति परायण मरीचि आदि भी बहुत बाद में आपसे ही उत्पन्न हैं । जिस समय आप सब कों समेट कर सो जाते है, उस समय ऐसा कोई भी साधन नहीं रह जाता है, जिससे कि उसके साथ सोया हुआ जीव आपको जान सके क्योंकि उस समय न तो स्थूल आकाशादि जगत् रहता है और न तो महत् तत्त्वादि सूक्ष्म जगत् । इन दोनों से बने हुए शरीर तथा उनके निमित्त क्षण मुहुर्त आदि काल के अश भी नहीं रहते हैं । यहाँ तक कि शास्त्र भी आपमें ही समा जाते हैं, ऐसी स्थिति में आपको जनने की चेष्टा न करके आपका भजन करना ही सर्वोत्तम मार्ग है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।' को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः । अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव' 'अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देव आप्नुवन् पूर्वमर्शत् । तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्व दधाति' इत्याद्याः श्रुतयो भगवत्तत्त्वं दुर्ज्ञेयं वदन्त्यो भक्तिमेवोररीकृत्य स्तुवन्तीत्याह-क इह नु वेदेति। बत अहो भगवन्निह जगत्यग्रसरं पूर्वसिद्धं त्वामवरजन्मलयोऽर्वाचीनोत्पत्तिनाशवान्को नु पुमान्वेद जानाति । ईश्वरस्य पूर्वसिद्धावन्यस्य चर्वाचीनत्वे प्रमाणं वदन् ज्ञानकारणाभावमाह-यत उदगादिति । यतस्त्वत्त ऋषिर्ब्रह्मा उत्पन्नो यं ब्रह्माणमनु उभये आध्यात्मिकाधिदैविका देवगणा उत्पन्नास्ततोऽप्यर्वाचीनाः सर्वे । यदा तु भवान्सर्वमवकृष्योपसंहृत्य शयीत तर्हि तदा अनुशायिनां जीवानां

अनुवाद— हे प्रभो ! कुछलोग यह मानते हैं कि असत् जगत् की उत्पत्ति होती है, कुछ लोग सत् रूप दुखों का नाश होने पर मुक्ति होती है यह मानते हैं दूसरे प्रकार के लोग आत्मा को अनेक मानते है तो कई लोग कर्म के द्वारा प्राप्त होने वाले लोक परलोक व्यवहार को सत्य मानते हैं । वस्तुतः ये सारी बातें भ्रममूलक हैं और वे आरोप करके ही ऐसा उपदेश करते हैं पुरुष त्रिगुणमय है इस प्रकार का भेदभाव केवल अज्ञान से होता है और आप तो अज्ञान से परे हैं अतएव ज्ञान स्वरूप आप में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है ।

भावार्थ दीपिका

इतोऽपि ज्ञानं न सुशकम्, उपदिशतामपि भ्रमबाहुल्यादित्याह-जनिमसत इति । असतो जगतो जनिमुत्पत्तिं ये वैशेषिकादयो वदन्ति । असत एव ब्रह्मत्वस्योत्पत्तिं ये च पातञ्जलादयः । सत एवैकविंशतिप्रकारस्य दुःखस्य नाशं मोक्षं वदन्ति ये नैयायिकाः। उतापि ये च सांख्यादय आत्मनि भिदां भेदं च, ये मीमांसका विपणं कर्मफलव्यवहारमृतं सत्यं स्मरन्ति वदन्ति ते सर्वे आरुपितैरारोपितैर्भ्रमैरेवोपदिशन्ति न तत्त्वदृष्ट्या । 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्', 'ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येति', 'अनीशया शोचति मुह्यमानः', अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः । जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ।', 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म', 'एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः । एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ।' इत्यादिश्रुतिविरोधात्, किंच वस्तुतः पुरुषस्य त्रिगुणमयत्वे सर्वमिदं सङ्गच्छेत, नतु तदस्तीत्याह-त्रिगुणमयः पुमानिति भिदा यदबोधकृता त्वयीति। त्रिगुणमयः पुमानित्यनेन हेतुना या भिदा । उपलक्षणमेतद्भिदादि । सा यस्मात्त्वयि विषये अबोधकृता त्वद्विषयाज्ञानविजृम्भिता। तर्हि किमज्ञानमस्ति, वस्तुतः पुंसि नैवेत्याह-ततः अबोधात्परत्र परेऽसङ्गेऽवबोधरसे ज्ञानघने स अबोधो न भवेन्न संभवतीत्यर्थः। मिथ्यातर्कसुकर्कशेरितमहावादान्धकारान्तरभ्राम्यन्मन्दमतेरमन्दमहिमंस्त्वज्ज्ञानवर्त्मास्फुटम् । श्रीमन्माधव वामन त्रिनयन श्रीशङ्कर श्रीपते गोविन्देति मुदा बदन्मधुपते मुक्तः कदा स्यामहम् ।।१२।।२५।।

भाव प्रकाशिका

हे प्रभो आपका ज्ञान होना इसलिए भी आसान नहीं है कि उपदेश करने वालों में भी बहुत अधिक भ्रम हैं । इस बात को **जनिमसतः इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । वैशिषक आदि यह जो कहते हैं कि असत् से जगत् की उत्पत्ति होती है । पातञ्जल योगमतानुयायी कहते हैं कि असत् से ही ब्रह्मत्व की उत्पति होती है । नैयायिकों का कहना है कि सत् ही इक्कीस प्रकार के दुःखों का नाश हो जाना ही मोक्ष कहलाता है । जो सांख्यमतानुयायी मानते हैं कि आत्माओं में परस्पर में भी भेद होता है तथा आत्मा का प्रकृति से भेद होता है । मीमांसको का मानना है कि कर्म फल का व्यवहार ऋत अर्थात् सत्य हैं इस तरह से कहने वाले सभी आरोपित भ्रम के द्वारा ही उपदेश करते हैं तत्त्व की दृष्टि से नहीं । **'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्'** हे सोम्य ! सृष्टि से पूर्व सजातीय विजातीय स्वगत भेद शून्य ज्ञानमात्र ब्रह्म ही था । **'अनीशया शोचति मुह्यमानः** अर्थात् अनीशा माया से मोहित होकर शोक करता है। अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः । अर्थात् स्वयम् अविद्या में पड़े हुए तथा अपने को धीर और पण्डित मानने वाले जङ्घयमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः । ये मीमांसक अत्यन्त पीडित होते हुए विभिन्न योनियों में वे अज्ञानी चले जाते हैं । उन उपदेशकों का उपदेश उसी तरह से है जैसे एक अन्धा दूसरे को रास्ता बतला रहा हो । एकमेवाद्वितीयम् श्रुति बतलाती हैं कि ब्रह्म एक हैं एवं अद्वितीय है । एक एवं ही भूतात्मा भूते-भूते व्यवस्थितः एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् । अर्थात् यद्यपि आत्मा (परमात्मा) एक है वही सभी भूतों में अन्तर्यामी रूप से स्थित है । वह एक और अनेक उसी तरह प्रतीत होता है जिस तरह एक ही चन्द्रमा अनेक जलपात्रों में अनेक प्रतीत होता है । उपर्युक्त सभी दार्शनिकों का उपर्युक्त श्रुतियों से विरोध होता है । वास्तविक रूप से पुरुष को त्रिगुणात्मक मानने पर ही यह सम्भव था किन्तु पुरुष में त्रिगुणमयत्व वास्तविक नहीं है । इस बात को बतलाती हुई श्रुतियाँ कहती हैं **त्रिगुणमयः पुमानित्यादि** पुरुष त्रिगुणात्मक है इस प्रकार की आपके विषय में होने वाली भेदबुद्धि अज्ञानकृत है।

पुरुष त्रिगुणमय है इस प्रकार की होने वाली बुद्धि के कारण जो भेद है वह अज्ञान जन्य है । यह भेद आदि का उपलक्षण है । आपके विषय में होने वाला यह भेद ज्ञान अज्ञान के कारण है। तो फिर अज्ञान वस्तुत: पुरुष में है ही नहीं यह तो लोग अज्ञान वशात् कहते हैं । प्रभो आप तो इन सबों से ऊपर (परे) असङ्ग ज्ञानघन है अज्ञान आपमें हो नहीं सकता है । **मिथ्यातर्क सुकर्कशेरित....... स्यामहम्।।१२।।२५।।** अर्थात् हे अनन्त महिमशाली प्रभो जो मन्दमति पुरुष झूठे तर्कों द्वारा प्रेरित अत्यन्त कर्कश वाद-विवाद के घोर अन्धकार में भटक रहे हैं उनको आपके ज्ञान का मार्ग स्पष्ट प्रतीत होना सम्भव नहीं हैं । अतएव मेरे जीवन में सौभाग्य का अवसर कब आयेगा जब हम श्रीमन्माधव, वामन, त्रिलोचन, श्रीशङ्कर, श्रीपते गोविन्द, मधुपते इस प्रकार आनन्द में भरकर आपको पुकारता हुआ मुक्त हो जाऊँगा ॥१२॥२५॥

सदिव मनस्त्रिवृत्त्वयि विभात्यसदामनुजात्सदभिमृशन्त्यशेषमिदमात्मतयात्मविद: ।
न हि विकृतिं त्यजन्ति कनकस्य तदात्मतया स्वकृतमनुप्रविष्टमिदमात्मतयाऽवसितम् ॥२६॥

अन्वयः— सदिव मन: त्रिवृत् त्वयि आरात् आमनुजात् विभति, आत्मविद: अशेषमिदम् आत्मतया अभिमृशन्ति । कनकस्य विकृतिं तदात्मतया नहि त्यजन्ति स्वकृतम् अनुप्रविष्टम् इदमात्मतया अवसितम् ।।२६।।

अनुवाद— यह त्रिगुणात्मक जगत् मन की कल्पनामात्र है परमात्मा और जगत् से पृथक् प्रतीत होने वाला पुरुष भी कल्पना मात्र है । इस प्रकार वास्तव में असत् होने पर भी अपने सत्य अधिष्ठान आपकी सत्ता के कारण यह सत्य सा प्रतीत होता है । इसलिए भोक्ता, भोग्य तथा दोनों के सम्बन्ध को सिद्ध करने वाली इन्द्रियाँ आदि जितना भी जगत् है सबको आत्मज्ञ पुरुष आत्मारूप से सत्य ही मानते हैं । सुवर्ण से निर्मित कुण्डल आदि सुवर्ण ही हैं । अतएव उनको इस रूप से जानने वाला पुरुष नहीं छोड़ता है । इसी तरह आत्मा में ही कल्पित आत्मा से व्याप्त यह जगत् है । इसीलिए आत्मज्ञ पुरुष उसे आत्मारूप ही मानते हैं ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

ननु यद्यसन्नोत्पद्यते, यदि च त्रिगुणमय: पुरुषो न भवति, तर्हीदं प्रपञ्चजातं पुरुषश्च पृथङ्नास्तीत्युक्तं स्यात् कथं तर्हि तयो: सत्त्वेन प्रतीतिरत आह-सदिव मन इति । मनो मनोमात्रविलसितमिदं त्रिवृत् त्रिगुणात्मकं प्रपञ्चजातमसदेव सदिव विभाति। कथमिति चेत्तत्राह-त्वयीति । त्वय्यधिष्ठाने । अधिष्ठानसत्तया सद्वत्प्रतीयत इत्यर्थ: । न केवलमिदंकारास्पदं किंत्वामनुजात्। मनुज: पुरुष: । अभिविधावाकार: । पुरुषमभिव्याप्येति । पुरुषस्यापि पृथक्सत्त्वप्रतीतिर्मनोमात्रविलसितेत्यर्थ: । तथा च श्रुति:- 'असतोऽधिमनोऽसृजत । मन: प्रजापतिमसृजत । प्रजापति: प्रजा असृजत । तद्वा इदं मनस्येव परमं प्रतिष्ठितं यदिदं किंच इति। नन्वात्मविदामपि विश्वं सदेव स्फुरत्यत: कथमसत्स्यादत आह-सदभिमृशन्तीति । आत्मविदस्त्वशेषमिदं भोक्तृभोग्यात्मकं विश्वमात्मतयैव सदभिमृशन्ति सदिति जानन्ति । आत्मकार्यत्वान्न पृथगित्यर्थ: । तथाहि-यदुपादानकं यत्कार्यं भवति तत्तेनैव रूपेण प्रतीयते उपादीयते चेति । लोकाचारेण दर्शयति-न हि विकृतिमिति । कनकस्य विकृतिं कुण्डलादिकं कनकार्थिनो न त्यजन्ति । अत्र हेतु:- तदात्मतया, कनकरूपत्वेनेत्यर्थ: । अत: स्वकृतमिदं विश्वमनुप्रविष्टं च पुरुषरूपमात्मतयैवावसितं निश्चितम्। यत्सत्त्वत: सदा भाति जगदेतदसत्स्वत: । सदाभासमसत्यस्मिन्भगवन्तं भजाम तम् ।।१३।।२६।।

भाव प्रकाशिका

यहाँ प्रश्न होता है कि यदि असत् की उत्पत्ति नहीं होती है तथा यदि पुरुष निगुणात्मक नहीं होता है ऐसी स्थिति में यह प्रपञ्च समूह तथा पुरुष परमब्रह्म से पृथक् नहीं है यही कहना होगा । ऐसी स्थिति में प्रपञ्च तथा पुरुष की सत् रूप से प्रतीति क्यों होती है । इस पर श्रुतियाँ कहती हैं **मन: कल्पित त्रिगुणात्मक** यह प्रपञ्च असत् ही है किन्तु सत् के समान प्रतीत होता है । यदि कोई यह पूछे कि ऐसा क्यों होता है इस पर कहती हैं आप ही इसके अधिष्ठान हैं। आप अधिष्ठान की सत्ता के ही कारण यह प्रपञ्च सत् के समान प्रतीत होता है । केवल इदम् इदम् इस रूप से प्रतीत

होता हो ऐसी बात नहीं है अपितु मनुष्य पर्यन्त सबों की सत्ता आपकी ही सत्ता के कारण प्रतीत होती है । **आमनुजात्** में आकार अभिविधि के अर्थ में है । अर्थात् पुरुष की भी पृथक् सत्ता जो प्रतीत होती है वह भी मनः कल्पित ही हैं । **तथा च श्रुति इत्यादि** इसी अर्थ का प्रतिपादन यह श्रुति करती हैं **असतोऽधिमनोऽसृजत मनः प्रजापतिमसृजत। प्रजापतिः प्रजा असृजत । तद्वा इदं मनस्येव परमं प्रतिष्ठितं यदिदं किञ्च इति** । अर्थात् मन ने असत् की सृष्टि की । मन ने प्रजापति की सृष्टि की । प्रजापति ने प्रजाओं की सृष्टि की । अतएव यह जो कुछ भी प्रपञ्च है वह सब कुछ मन में प्रतिष्ठित है । **ननु० इत्यादि** यदि कहें कि जो आत्मज्ञानी पुरुष हैं उन लोगों को भी यह प्रपञ्च सत् के समान ही प्रतीत होता है । अतएव इसको असत् कैसे कहा जा सकता है ? इस पर कहते हैं **सदभिभृशन्ति** अर्थात् आत्मज्ञ पुरुष तो इस सम्पूर्ण भोक्ता तथा भोग्य समूह को आत्मा रूप से सत् रूप ही जानते हैं । अर्थात् चूकि यह सम्पूर्ण विश्व आत्मा का ही कार्य है, अतएव यह कारण से अलग नहीं है । **तथाहि** उदाहरणार्थ ये जिस कार्य का जो उपादान है वह उस उपादान के रूप से ही प्रतीत होता है और गृहीत भी होता है। आगे **नहिविकृतम० इत्यादि** से कहा गया है कि सुवर्ण निर्मित कटक कुण्डल आदि को सुवर्ण चाहने वाला व्यक्ति छोड़ता नहीं है अपितु ले ही लेता है । उसका कारण है कि वह जानता है कि ये सब भी सुवर्णात्मक ही हैं । अतः आपके ही द्वारा निर्मित है यह विश्व । आप इस विश्व में अनुप्रविष्ट हैं । फलतः पुरुषाकार यह विश्व आत्मा रूप से ही निश्चित होता है ॥१३॥२६॥

तव परि ये चरन्त्यखिलसत्त्वनिकेततया त उत पदाक्रमन्त्यविगणय्य शिरो निर्ऋतेः ।
परिवयसे पशूनिव गिरा विबुधानपि तांस्त्वयि कृतसौहृदाः खलु पुनन्ति न ये विमुखाः॥२७॥

अन्वयः— ये तव परिचरन्ति अखिलसत्त्व निकेततया उतते निऋतेः शिरः अविगणप्य पदाक्रमन्ति, ये विमुखाः तान् गिरा पशूनिव विबुधानपि परिवयसे त्वयिकृत सौहृदाः खलु पुनन्ति ॥२७॥

अनुवाद—हे भगवन् जो लोग यह समझते हैं कि आप सम्पूर्ण प्राणियों और पदार्थों के अधिष्ठान हैं तथा सबके आधार हैं और सर्वात्मभाव से आपका भजन सेवन करते हैं, वे मृत्यु को तुच्छ समझकर उसके सिर पर पैर रख देते हैं अर्थात् उस पर विजय प्राप्त कर लेते हैं । जो लोग आपसे विमुख हैं वे जितना बड़ा विद्वान् हो, उन्हें आप कर्मों का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियों से पशुओं के समान बाँध देते हैं । जो लोग आपसे प्रेम का सम्बन्ध जोड़ लिए हैं वे केवल अपने को नहीं दूसरों को भी पवित्र कर देते हैं । इस प्रकार का सौभाग्य आपसे विमुख रहनें वालों को कैसे प्राप्त हो सकता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

ननु 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म', 'नेह नानास्ति किंचन', 'मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इत्यादि श्रुतिभिरेवंभूतस्य भगवतः प्रतिपादनात्तज्ज्ञानं सुकरमेवेति कृतं भक्त्या अत आह-तव परि ये चरन्तीति । तवेति कर्मणि षष्ठी । त्वां ये परिचरन्ति। छन्दसि व्यवहिताश्चेति यच्छब्देन व्यवधानमदोषः । केन रूपेण । अखिलसत्त्वनिकेततया अखिलानि सत्त्वानि निकेतो यस्य स तथा तस्य भावस्तत्ता तया । सर्वभूतावासतयेत्यर्थः । उत एव अविगणय्य तिरस्कृत्य त एव निर्ऋतेर्मृत्योः 'शिरो मूर्धानं पदा पादेनाक्रमन्ति मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दधति । ते तरन्ति मुच्यन्त इत्यर्थः । ये पुनर्विमुखा अभक्तास्तान् गिरा वाचा पशुनिव विबुधान्विदुषोऽपि परिवयसे बध्नासि । कुतः । त्वयि कृतसौहृदाः त्वयि कृतं सौहृदं प्रेम यैस्ते खलु निश्चितं पुनन्ति पवित्रयन्ति । आत्मानमन्यानपीति शेषः । नेतरे । तथा च श्रुतिः-'तस्य वाक्तन्तिर्नामानि दामानि । तस्येदं वाचा तन्त्या नामभिर्दामभिः सर्व सितम्' इति । अयमभिप्रायः-सत्यमेवभूतमात्मानं श्रुतयः प्रतिपादयन्ति तत्र च यद्यपि वस्तुनोऽपरोक्षत्वादपरोक्षमेव ज्ञानमुत्पद्यते । तथाप्यसंभावनाविपरीतभावनातिरस्कृतत्वान्मलिनचित्तेषु परोक्षमिव भवतीति नापरोक्षसंसारभ्रमनिवृत्तिसमर्थम् । भगवत्परिचर्यया तु सम्यगमलचित्तानां तत्प्रसादेन लब्धापरोक्षज्ञानानामयत्नत एव करकलितो मोक्ष इति । तथा च श्रुतयः-'देहान्ते देवः परं ब्रह्म

तारकं व्याचष्टे', 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्य:', 'यस्य देवे परा भक्तिः' इत्यादयः । तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्वतादटन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमान् । यजन्तु यागैर्विवदन्तु वादैर्हरिं विना नैव मृतिं तरन्ति ॥१४॥२७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि **'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'** अर्थात् ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञान स्वरूप तथा अनन्त स्वरूप हैं। **नेहनानाऽस्ति किञ्चन** यहाँ भेद नामक कुछ भी नहीं है । **मृत्योः समृत्युमाप्नोति य इहनानेव पश्यति ।** अर्थात् जो लोग इस जगत् में अविद्यमान भेद को भी भेद के समान देखते हैं वे लोग वार-वार जन्म तथा मृत्यु के चक्र रूप संसार में भटकते रहते हैं । ये सभी श्रुतियाँ इस प्रकार के ब्रह्म का प्रतिपादन करती हैं, अतएव उस ब्रह्म का ज्ञान आसान है । अतएव भक्ति से क्या लाभ है ? इस पर श्रुति कहती है- **तव परियेचरन्ति** अर्थात् हे भगवान् जो लोग आपकी लोग सेवा करते हैं । तव में कर्म के अर्थ में षष्ठी विभक्ति हुई है । **परियेचरन्ति** में छन्दसिव्यवहिताश्च सूत्र से ये पद से व्यवहित हुआ है परिचरन्ति । अर्थात् जो लोग आपकी सेवा करते हैं किस रूप से सेवन करते हैं तो इसका उत्तर है **निखिलसत्त्वनिकेततया** सम्पूर्ण प्राणियों एवं पदार्थों के अधिष्ठान रूप से सेवन करते हैं । वे लोग निश्चित रूप से मृत्यु का तिरस्कार करके मृत्यु के शिर पर अपना पैर रख देते है। अर्थात् मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं जो लोग आपके भक्त नहीं हैं वे चाहे जितना वड़ा विद्वान हों उनको कर्म प्रतिपादक श्रुतियों से आप पशुओं के समान वाँध देते हैं । जो लोग आपसे प्रेम करते हैं वे अपने को पवित्र तो करते ही हैं दूसरों को भी पवित्र वना देते हैं । **तथा च श्रुतिः** श्रुति भी कहती है **तस्यवाक् तन्तिर्दामानि दामानि तस्येदं वाचा तन्त्या नामभिः दामभिः सर्वं सितम् ।** वेदों की वाणी रूपी महारज्जु ब्राह्मण आदि नामक रस्सी संयुक्त पगहे के समान है । जैसे पगहे में वैल आदि वाँध दिए जाते हैं उसी तरह ईश्वर की विधि निषेध रूप वेदवाणी से विविध नाम एवं रूप यह सारा जगत वँधा हैं । कहने का अभिप्राय है कि यह सत्य है कि श्रुतियाँ इस प्रकार की आत्मा का प्रतिपादन करती हैं । उस में भी वस्तु के प्रत्यक्ष होने से प्रत्यक्ष ज्ञान को ही उत्पन्न होता है । फिर भी असम्भावना एवं विपरीत भावना के द्वारा तिरस्कृत कर दिए जाने से जिनका अन्तःकरण रागादि दोषों से दूषित है उनके लिए वह ज्ञान परोक्ष के ही समान हो जाता है । अतएव उनके अपरोक्ष संसार भ्रम की निवृत्ति करने में वह ज्ञान समर्थ नहीं होता है । श्रीभगवान् की सेवा से जिन लोगों का चित्त निर्मल हो गया है उन लोगों को श्रीभगवान् की ही कृपा से अपरोक्ष (प्रत्यक्ष) ज्ञान की प्राप्ति हो जाने से अनायास ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है । श्रुतियाँ भी कहती हैं । शरीरपात होने के समय श्रीभगवान् तारक मन्त्र का उपदेश देते हैं । यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः अर्थात् परमात्मा जिसकी परिचचर्या से प्रसन्न होकर उसका वरण कर लेते हैं उसी को प्राप्त होते हैं तथा यस्य देवे पराभक्तिः अर्थात् जिसकी श्रीभगवान् में उत्तम भक्ति होती है । इत्यादि । **तपन्तुतापैः...... मृतितरन्ति।।१४।।२७।।** अर्थात् लोग पञ्चाग्नि आदि तापों से तपते रहें, पर्वत से गिरकर आत्मघात कर लें, तीर्थों का पर्यटन करें, वेदों का पाठ करें, यज्ञों के द्वारा यजन करें अथवा भिन्न-भिन्न मतवादों द्वारा आपस में विवाद करें, किन्तु श्रीभगवान् की कृपा के विना कोई संसार सागर को पार नहीं कर सकता है ॥१४॥२७॥

त्वमकरणः स्वराडखिलकारकशक्तिधरस्तव बलिमुद्वहन्ति समदन्त्यजयाऽनिमिषाः ।
वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिव विश्वसृजो विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिताः ॥२८॥

अन्वयः— त्वम् अकरणः सम्राट् अखिलकारकशक्तिधरः तव वलिम् उद्वहन्ति अजया अनिमिषाः समदन्ति च वर्षभुजः अखिलक्षितिपतेरिव, विश्वसृजः विदधति यत्रयेत्वधिकृताः भवतः चकिताः ।।२८।।

अनुवाद— हे प्रभो आप मन, बुद्धि और इन्द्रिय आदि कारणों जो चिन्तन आदि के साधन हैं उनसे रहित हैं फिर भी आप समस्त अन्तःकरण और वाह्य करणों की शक्ति से सदा सर्वदा सम्पन्न रहते हैं । आप स्वतः सिद्ध

स्वप्रकाश है । अतएव किसी भी कार्य को करने के लिए आपको इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं है । जैसे छोटे-छोटे राजा अपनी प्रजाओं से कर लेकर सम्राट् को समर्पित करते हैं, उसी तरह मनुष्यों के पूज्य देवता और देवताओं के पूज्य ब्रह्मा आदि भी अपने अधिकृत प्राणियों से पूजा लेकर माया के अधीन होकर आपकी पूजा करते रहते हैं । अर्थात् आपने जिस देवता को जहाँ पर जिस कार्य को करने के लिए नियुक्त कर दिया है, वे वहीं रहकर आपसे भयभीत रहकर उस कार्य को करते रहते हैं ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

ननु यद्यखिलसत्त्वे निकेतत्वेन भवतः सेव्यत्वमुच्यते तर्हि तत्करणसंबन्धात्कर्तृभोक्तृत्वे प्रसज्जेयाताम्, न वस्तुतस्तथात्वमिति चेत्तर्हि जीवानामपि तत्तुल्यत्वमिति केन विशेषेण पुनः सेव्यसेवकत्वमितीमामाशङ्कां परिहरन्त्यः 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः । स वेत्ति वेद्यं न च तस्य वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्' इत्याद्याः श्रुतयः स्तुवन्तीत्याह-त्वमकरण इति । करणसंबन्धरहित एवाखिलकारकशक्तिधरः अखिलानां प्राणिनां यानि कारकाणीन्द्रियाणि तेषां शक्तीर्धारयति प्रवर्तयतीति तथा । कुतः । स्वराट् यतः स्वेनैव राजसे दीप्यसे । न हि स्वतःसिद्धज्ञानशक्तेरिन्द्रियापेक्षेत्यर्थः । अतस्तव बलिमुद्वहन्ति पूजां कुर्वन्ति । अजयाऽविद्यया सहितास्तया वृता इत्यर्थ; । अनिमिषा देवा इन्द्रादयस्तत्पूज्या विश्वसृजो ब्रह्मादयोऽपि। यथा सस्त्रीका एव किङ्कराः स्वामिनं सेवन्ते तथाऽविद्यायुक्ता देवादयस्त्वामिति लोकोक्तिः । समदन्ति च मनुष्यैर्दत्तं हव्यकव्यादिलक्षणं बलिं भक्षयन्ति । अत्र दृष्टान्तः-वर्षभुजोऽखिलक्षितिपतेरिवेति । यथा वर्षभुजः खण्डमण्डलपतयोऽखिलक्षितिपतेर्महामण्डलेश्वरस्य स्वप्रजादत्तबलिभुजो बलिमुद्वहन्ति तद्वदिति । कथं बलिं वहन्ति तदाह-विदधति यत्र ये त्वधिकृता भवतश्चकिता इति । त्वत्तो भीताः सन्तो यस्मिन्कर्मणि नियुक्तास्ते तत्कुर्वन्तीति । त्वदाज्ञापालनमेव बल्युद्वहनमित्यर्थः । तथा च श्रुतिः-'भीषाऽस्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्य; । भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पञ्चमः' इति । अनिन्द्रियोऽपि यो देवः सर्वकारकशक्तिधृक् । सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वसेव्यं नमामि तम् ।।१५।।२८।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि सम्पूर्ण प्राणियों के आश्रय रूप से आपके सेव्यत्व का प्रतिपादन श्रुतियाँ करती हैं तब तो विभिन्न इन्द्रियों का सम्बन्ध होने के कारण आपमें कर्तृत्व और भोक्तृत्व का प्रसङ्ग होगा । यदि कहें कि वस्तुतः आप कर्ता भोक्ता नहीं हैं तो फिर जीवों को भी वस्तुतः कर्ता भोक्ता नहीं मानना होगा । अतएव किस विशेषता के कारण सेव्य सेवक भाव की सिद्धि होगी । तो इस शङ्का को दूर करती हुई श्रुतियाँ कहती हैं- अपाणिपादो जवनों ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः सः शृणोत्यकर्णः । सवेति वेद्यं न च तस्य वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् । अर्थात् परमात्मा हस्त पाद आदि इन्द्रियों से रहित होकर भी सबसे तेज दौड़ते हैं और सबों को पकड़ लेते है । वे चक्षुरिन्द्रिय निरपेक्ष रूप से सबकुछ देख लेते है तथा श्रोत्रेन्द्रिय निरपेक्ष होकर सबकुछ सुन लेते है । वे समस्त वेद्य पदार्थों को जानते है किन्तु कोई भी उस परमात्मा को नहीं जान पाता है । ब्रह्मज्ञानी उस परमात्मा को ही सर्वश्रेष्ठ पुराण पुरुष कहते हैं । इस तरह से श्रुतियाँ श्रीभगवान् की स्तुति करती हैं । इस प्रकार से श्रुतियों ने कहा **त्वमकरणः** अर्थात् इन्द्रियों के सम्बन्ध से आप रहित है । फिर भी आप सभी प्राणियों की इन्द्रियों को प्रवर्तित करने की शक्ति से सम्पन्न हैं । क्योंकि आप सम्राट् हैं । अर्थात् आप प्रकाशक निरपेक्ष रूप से अपने आप प्रकाशित रहते है । आप स्वतः ज्ञानवान होने के कारण आपको इन्द्रियों की अपेक्षा नहीं होती है । यही कारण है कि अविद्या से आवृत होने के कारण इन्द्र आदिदेवता और विश्व की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा आदि भी की पूजा करते रहते हैं । जिस तरह आप स्वामी के साथ रहने वाले भृत्य अपने स्वामी की सेवा करते हैं, उसी तरह अविद्या से युक्त हो देवता आदि आपकी सेवा करते हैं, यह लोकोक्ति है । **समदन्ति च०** अर्थात् मनुष्यों के द्वारा प्रदत्त हव्य तथा कव्य आदि को खाते हैं भी हैं । इस विषय श्रुतियाँ दृष्टान्त उपन्यस्त करती हैं । **वर्षभुजोखिलक्षितिपतेरिव** अर्थात् जिस तरह छोटे-छोटे राजागण प्रजाओं से कर प्राप्त करके सम्राट् को कर प्रदान

करते हैं, उसी तरह देवता भी अपने आराधकों से पूजा प्राप्त करके उसे परमात्मा को प्रदान करते हैं । ब्रह्मादि देवताओं द्वारा श्रीभगवान् की पूजा का प्रकार यह है कि श्रीभगवान् जिस देवता को जिस पद पर नियुक्त कर दिए है, उस पद पर रहकर श्रीभगवान् से भयभीत रहकर वे कार्य किया करते हैं । आप श्रीभगवान् की आज्ञा का पालन ही आपकी उनके द्वारा की गयी पूजा है । श्रुति भी कहती है **भीषास्माद्वात पवते भीषोदेति सूर्य । भीषास्मादग्निचेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः** । अर्थात् परमात्मा के भय से वायु सदा चलती रहती है, तथा सूर्य सदा समय से ही उदित होते है । परमात्मा के भयसे अग्नि संतप्त ही रहते हैं तथा इन्द्र त्रिलोकी का प्रशासन करते हैं । परमात्मा के भय से ही मृत्यु किसी को समय से ही काल कवलित करती है **अनिन्द्रियोऽपियोदिव नमग्मितम्** अर्थात् जो परमात्मा इन्द्रिय रहित होकर भी समस्त आभ्यन्तर एवं बाह्य इन्द्रियों की शक्ति को धारण कर लेते है । वे सर्वज्ञ एवं सर्वकता है, उन सर्व सेवनीय प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ ।।१५।।२८।।

स्थिरचरजातयः स्युरजयोत्थनिमित्तयुजो विहर उदीक्षया यदि परस्य विमुक्त ततः ।
न हि परमस्य कश्चिदपरो न परश्च भवेद्वियत इवाऽपदस्य तव शून्यतुलां दधतः ।।२९।।

अन्वयः— हे विमुक्त यदि अजया विहर तव तदा स्थिर चरजातयः स्युः उदीक्षयां उत्थनिमित्त युजः परमस्य अपरः परश्चन भवेत् वियतइव अपदस्य शून्य तुलां दधतः ।।२९।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप नित्य मुक्त मायातीत हैं, किन्तु जब आप सङ्कल्प मात्र से माया के साथ विहार करते हैं उसी समय जीवों के सूक्ष्म शरीर उनके सुप्त संस्कार जग जाते हैं । उसी समय चराचर प्राणियों की उत्पत्ति होती है । हे परम दयालु प्रभो आपका न तो कोई अपना है न पराया है, आप आकाश के समान सबों के समान हैं । आपके स्वरूप में मन और वाणी की गति ही नहीं है । आपमें कार्य कारण रूप प्रपञ्च का अभावहोने से बाह्य दृष्टि से आप शून्य के समान है, किन्तु उस दृष्ट के भी अधिष्ठान होने से आप परम सत्य हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं करणप्रवर्तकमीश्वरं करणपरतन्त्रा नरा भजन्तीत्युक्तम्, न केवलमियदेव कारणं तत उत्पन्नत्वेनापि तत्परतन्त्रत्वादिति वदन्ति 'यथाऽग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे श्लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि सर्व एत आत्मानो व्युच्चरन्ति' इत्याद्याः श्रुतय इत्याह–स्थिरचरजातय इति । हे विमुक्त नित्यमुक्त, यदि तवाजया मायया विहरो विहारः क्रीडा भवति तदा स्थिरचरजातयः स्थिराश्च चराश्च जातयो जात्यालिङ्गिता देहा येषां ते जीवाः स्युर्भवेयुः । कथंभूतस्य। ततोऽजातः परस्य दूरें वर्तमानस्यासङ्गस्येत्यर्थः । कथं विहारः । उदीक्षया ईक्षणलेशेन । ननु मयि लीनानां जीवानां कथं जन्म स्यात्तत्राह–उत्थनिमित्तयुज इति । ईक्षयैवोत्थान्युत्थितान्याविर्भूतानि निमित्तानि कर्माणि तद्युक्तानि लिङ्गशरीराणि वा तैर्युज्यन्त इति तथा । ननु किंनिमित्तोत्थानेन मदिच्छयैव भवन्तु, न, त्वयि वैषम्याभावाद्विषमसृष्टेरयोगादित्याह–परमस्येति । तव परमस्योत्तमस्य परमकारुणिकस्य वियत इवाकाशसदृशस्य समस्येत्यर्थः । कश्चिदपरः स्वीयः परोऽस्वीयश्च न भवेत् । न संभवतीत्यर्थः । 'असद्वा इदमग्र आसीत् । ततो वै सदजायत' इत्यादिश्रुत्या शून्यपूर्वकत्वमिव प्रतीयते तदर्थं पुनर्विशिनष्टि । शून्यतुलां दधतः शून्यसाम्यं भजतः । तदेव दर्शयितुं पुनर्विशिनष्टि–अपदस्येति । न पद्यत इत्यपदस्तस्य, वाङ्मनसयोरगोचरस्येत्यर्थः । त्वदीक्षणवशक्षोभमायाबोधितकर्मभिः जातान्संसरतः खिन्नान्नृहरे पाहि नः पितः ।।१६।।२९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह कहा जा चुका है कि ईश्वर इन्द्रियों के प्रवर्तक हैं और मनुष्य इन्द्रियों के अधीन हैं । केवल यही नहीं ईश्वर से उत्पन्न होने के कारण भी जीव परमात्मपरतन्त्र हैं । इस बात को **'यथाऽग्नेः क्षुद्राः विस्फुलिङ्गाः व्युच्चरन्ति एवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वेश्लोकाः सर्वेदेवाः सर्वाणि भूतानि सर्व एत आत्मनो व्युच्चरन्ति ।**

अर्थात् जिस तरह अग्नि से छोटी-छोटी चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी तरह इस परमात्म सभी देवता, सभी जीव, ये सबके सब परमात्मा से ही उत्पन्न होते हैं । इस बात को श्रुतियों श्लोक से कहा है । हे नित्यमुक्त जब आप माया के साथ क्रीडा करते हैं उस समय सभी देह वाले जीव हो जाते हैं । कैसे परमात्मा से उत्पन्न होते हैं ? तो इसका उत्तर है कि सबों से । परमात्मा कैसे विहार करते हैं तो इसका उत्तर है कि वे अपने सङ्कल्प मात्र से । र लीन हुए जीवों का जन्म कैसे हो सकता है ? इस पर श्रुतियों ने कहा **उत्पत्ति निमित्त** मात्र से ही जीव अपने कर्मानुसार शरीरों के साथ अविर्भूत हो जाते हैं । अथवा वे अपने है । यदि आप कहें कि कर्मादि निमित्तों को स्वीकार करने की क्या आवश्यकता है ? मे अविर्भाव हो जाय । इस पर श्रुतियों ने कहा नहीं आपमें वैषम्य का अभाव है आपके इ विषम सृष्टि नहीं होगी । इस बात को श्रुतियों ने **परमस्य इत्यादि** से कहा आप परम का अपना है और न पराया है । आप तो आकाश के समान सबों के लिए एक समान हैं । **वै सदजायत । इत्यादि** श्रुतियों से प्रतीत होता है कि सृष्टि शून्य पूर्विका होती है । इसी विशेषित करती हैं- **शून्यतुलां दधतः** अर्थात् शून्य के समान हैं आप । उसी को बतलाने करती हैं- **अपदस्य** अर्थात् वाङ्मनसातीत होने के कारण अप्राप्य हैं । **त्वदीक्षणवशक्षोभ.....** अर्थात् हे नृसिंह हे सम्पूर्ण जगत् के पिता ! आपने सृष्टिसङ्कल्प से ही क्षुब्ध होकर माया है, उसी के कारण हमलोगों का जन्म हुआ है । हम सभी आवागमन के चक्र में भटक हमारी रक्षा करें ।।१६।।२९।।

अपरिमिता ध्रुवास्तनुभृतो यदि सर्वगतास्तर्हि न शास्यतेति नियमो ध्रु
अजनि च यन्मयं तदविमुच्य नियन्तृ भवेत्सममनुजानतां यदमतं

अन्वयः— यदि अपरिमिता ध्रुवाः सर्वगताः न शास्ता इति नियमः ध्रुवः न इतरथा यन्म भवेत् सममनुजानतां यदमतं मतदुष्टतया ।।३०।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आप सदा एक रस हैं । यदि जीव असंख्य एवं सर्वव समान ही हो जायेंगे । ऐसी स्थिति में वे आपके शास्य हैं एवं आप उनके शासक ऐसी स्थिति में आप उनका नियन्त्रण भी नहीं कर सकते हैं । जब वे आपकी अपेक्षा न्यू कर सकते हैं । निश्चित रूप से ये सभी जीव तथा इनकी एकता या भिन्नता आपसे ही उ कारण रूप से रहते हुए भी उनके नियामक है । आपउनमें सम रूप से स्थित हैं । कि है कि आपका वह स्वरूप कैसा है ? क्योंकि जो लोग यह समझते हैं कि मैंने जान नहीं जाने हैं । उन लोगों ने तो अपनी बुद्धि के विषय के जाना है आप उससे परे हैं । जानी जाती हैं वे सभी मतियों की भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न होती हैं । इसलिए उनव का विरोध प्रत्यक्ष है आपका स्वरूप सबों से परे हैं ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

एवं तावत्परमात्मनः सकाशादविद्याकृतकार्योपाधयस्तदंशा एव जीवा जाताः संसरन्तो भ तदा जीवस्याप्येकत्वादेकमुक्तौ सर्वमुक्तिप्रसङ्गः, अथ नानाविद्यास्तर्हि तस्यैवांशान्तरेण संसारान वस्तुत एव नानात्मानस्तत्र च तेषामणुत्वे देहव्यापि चैतन्यं न स्यात्, देहपरिमाणत्वे च मध्यम स्यात्, अतः सर्वगता नित्याश्चेति केचन मन्यन्ते, तत्र न तावदुक्तदोषप्रसङ्गः, अविद्याभेदेन तच्छक्तिभे

ईश्वरस्य तु न केनाप्यंशेन संसारशङ्केत्युक्तमेव, प्रसिद्धं चात्मैक्यं सर्वश्रुतिषु, किंच इमं पक्षमन्तर्यामिब्राह्मणमपि न सहत इत्याह-अपरिमिता इति । वस्तुत एवानन्ता ध्रुवास्तेनैव रूपेण नित्याः सर्वगताश्च तनुभृतो जीवा यदि स्युस्तर्हि तेषां समत्वाच्छास्यता न घटत इति कृत्वा हे ध्रुव, नियमो नियमनं त्वया न स्यादितरथा तु घटेत । कथम् । यन्मयमुपाधितो यद्विकारप्रायं यज्जीवाख्यमजनि जातं तत्तस्य स्वविकारस्य नियन्तृ नियामकं भवेत् । अविमुच्य कारणतयाऽपरित्यज्य । किं तत् । सममनुस्यूतम् । ननु किं यत्तच्छब्दैर्ज्ञायते चेदुच्यतामिदं तदित्यत आह-अनुजानतां यदमतमिति । जानीम इति वदतां यदमतमविज्ञातप्रायम्, अविषयत्वात्। तथा च श्रुतिः-'यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः । अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्', अवचनेनैव प्रोवाच', 'सह तूष्णीं बभूव' इत्यादिः । किंच मतस्य ज्ञातस्य दुष्टतया दोषश्रवणात् । तथा च श्रुतिः-'यदि मन्यसे सुवेदेति दह्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपं यदस्य त्वं यदस्य देवेषु' इत्यादि । तस्माद्यत्तच्छब्दावद्योत्यमतर्क्यं किमपि सर्वानुस्यूतत्वेन समं नियन्तृ भवेदित्यर्थः। अन्तर्यन्ता सर्वलोकस्य गीतः श्रुत्या युक्त्या चैवमेवावसेयः । यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिर्नृसिंहः श्रीमन्तं तं चेतसैवावलम्बे ।।१७।।३०।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से तो परमात्मा से ही अविद्या कृत कार्योपाधि जीव उत्पन्न हुए हैं और वे परमात्मा के अंश भूत संसार में संसरण करते हैं परमात्मा का भजन करते हैं यह कहा जा चुका है । यदि अविद्या एक है तो फिर जीव भी एक होगा और एक की मुक्ति हो जाने से सबकी मुक्ति का प्रसङ्ग होगा । यदि अविद्या अनेक है तो फिर परमात्मा के अंशभूत जीवों के अनेक होने से संसार की निवृत्ति नहीं होने से मोक्षाभाव का प्रसङ्ग होगा । इस प्रकार के तर्क के द्वारा यह सिद्ध होता है कि जीव अनेक हैं और परिमाणक हैं चैतन्य सम्पूर्ण देह में व्यापक नहीं हो सकता है । यदि जीवों को देह परिमाणक माना जाय तो फिर जो मध्यम परिमाणक होता है, वह सावयव होता है । जो सावयव होता है वह अनित्य होता है । इस तरह जीवों की अनित्यता का प्रसङ्ग होगा । अतएव कुछ लोग मानते हैं कि जीव सर्वव्यापक और नित्य हैं । ऐसा मानने पर उपर्युक्त प्रकार के दोष के होने का प्रसङ्ग होगा। अविद्या के भेद से अथवा उसकी शक्ति की भिन्नता के कारण बद्ध मुक्त आदि की व्यवस्था भी बन जाती है । ईश्वर अपने किसी भी अंश से संसरण नहीं करते हैं इस बात को कहा ही जा चुका है । सभी श्रुतियाँ आत्मा (परमात्मा) की एकता को ही बतलाती हैं, किन्तु इस पक्ष को अन्तर्यामी ब्राह्मण भी नहीं स्वीकारता है । इस पर श्रुतियाँ अपरिमिता इत्यादि श्लोक कहती हैं । जीव वस्तुतः अनन्त एवं नित्य हैं । वे संसारी जीव सर्वव्यापक हैं । यदि ऐसी बात है तब तो उन जीवों के आपके समान ही होने के कारण वे परमात्मा के शास्य न ही हो सकते हैं । ऐसी स्थिति में ध्रुव (परमात्मन्) आप उनके नियामक भी नहीं हो सकते हैं, इससे भिन्न प्रकार से तो उनकी प्रशास्यता सिद्ध हो सकती हैं । प्रश्न होता है कि वह कैसे तो इसका उत्तर है कि उपाधि के द्वारा। यत् स्वरूप जो विकार (कार्य) रूप जो जीव नामक विकार उत्पन्न हुआ । वह अपने उस विकार का नियामक होता है । अपने कारणत्व का परित्याग किए बिना ही उन सभी कार्यों में अनुस्यूत होता है । **ननु० इत्यादि** प्रश्न होता है आप यत् एवं तत् शब्द के द्वारा किसको कहते हैं । इस पर श्रुतियों ने कहा अनुजानतां यदमतम् जो लोग कहते हैं कि मैंने ब्रह्म को जान लिए वे लोग वस्तुतः नहीं जान सके । क्योंकि वह आत्मा किसी का विषय नहीं होता है। श्रुति भी कहती है- **यस्यामतं तस्य मतं यस्य न वेद । अविज्ञातं विजानताम् विज्ञातम् अविजानताम् ।** अर्थात् जो यह जानता है कि मैंने ब्रह्म को वह वस्तुतः ब्रह्म को नहीं जान सका । जो यह मानता है कि मैं ब्रह्म को नहीं जाना उसने ही ब्रह्म को जाना । ब्रह्म को जानने वालों को ब्रह्म अविज्ञात है । जो नहीं जानते उन्हें ब्रह्म ज्ञात है । किञ्च ज्ञात ब्रह्म के विषय में श्रुति स्वयं दोष बतलाती है । श्रुति भी यही कहती है । **यदि मन्यसे सुवेदेति दह्रमेवापिनूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम् यदस्यत्वं यदस्य देवेषु ।** अर्थात् यदि आप यह मानते हैं कि ब्रह्म को आसानी से जाना जा सकता तो आप ब्रह्म के विषय में बहुत कम जाने जब हम देवताओं में अधिदैवत रूप है वह भी अल्प ही है । ब्रह्मोपदेश के विषय में कहा गया है कि **अवचनेनैव प्रोवाच सह तुष्णीं बभूव ।** अर्थात् वचनाभाव के ही द्वारा ब्रह्म को बतलाया।

ब्रह्म को जानकर मौन हो गया । अर्थात् ब्रह्मवाणी का विषय है ही नहीं । **अन्तर्यन्तासलोकस्य चेतसैवावलम्बे ।।१७।।३०।।** अर्थात् श्रुतियों ने जिसको समस्त प्रपञ्च का नियामक जिसे बतलाया है तथा युक्तियों के द्वारा भी जो वैसा ही निश्चय होता है । जो सर्वशक्ति नृसिंह हैं उन्हीं सर्वसौन्दर्य एवं माधुर्य निधि श्रीहरि का मन ही मन आश्रय ग्रहण करना चाहिए ।।१७।।३०।।

न घटत उद्भवः प्रकृतिपूरुषयोरजयोरुभययुजा भवन्त्यसुभृतो जलबुद्बुदवत् ।
त्वयि त इमे ततो विविधनामगुणैः परमे सरित इवार्णवे मधुनि लिल्युरशेषरसाः ॥३१॥

अन्वयः— प्रकृतिपुरुषयोः अजयोः उद्भवः न घटते उभययुजातत असुभृतः जलबुदबुदवत् भवन्ति त्वयि त इमे ततो विविधनामगुणैः परमे अर्णवे सरित इव मधुनि अशेषरसा इव लिल्युः ।।३१।।

अनुवाद— प्रभो ! जीव आपसे उत्पन्न होता है यह कहने का यह अर्थ है नहीं है कि आप परिणाम के द्वारा जीव बनते हैं । सिद्धान्त यह है कि प्रकृति और पुरुष दोनों अजन्मा हैं । अर्थात् दोनों जन्म नहीं लेते हैं । यहाँ प्रश्न होता है कि प्राणियों का जन्म कैसे होता है । तो इसका उत्तर है कि अज्ञान के कारण प्रकृति को पुरुष और पुरुष को प्रकृति समझ लेने से एक का दूसरे के साथ संयोग हो जाने से । जैसे बुलबुला नाम की कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है किन्तु उपादान कारण जल और निमित्तकारण वायु के संयोग से उसकी सृष्टि हो जाती है, उसी तरह प्रकृति में पुरुष और पुरुष में प्रकृति का अध्यास हो जाने से जीवों के विविध नाम और गुण रख लिए जाते हैं । अन्त में जैसे समुद्र में सारी नदियाँ और मधु में सभी पुष्पों के रस समा जाते हैं वे सबके सब आपमें समा जाते हैं । अतएव जीवों की भिन्नता और उनका पृथक् अस्तित्व आपके द्वारा ही नियन्त्रित हैं । उनकी पृथक् स्वतंत्रता और सर्वव्यापकता आदि वास्तविक सत्य को न जानने के कारण ही मानी जाती है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

ननु यदि च परमात्मनो जीवा जायन्त इति नियन्तृनियम्यभाव उच्यते तथा सति जीवानामनित्यत्वप्रसङ्गेन प्रतिदिनं कृतनाशाकृताभ्यागमप्रसङ्गः स्यात्, किंच तदा मोक्षो नाम जीवस्य स्वरूपहानिरेव स्यात्, नचैतद्युक्तम्, स्वप्रकाशानन्दात्मनोविद्याकृतार्थनिवृत्तिमात्रस्य मोक्षत्वाभ्युपगमादित्याशङ्क्योपाधिजन्मनै जीवानां जन्मोच्यते न स्वतः अघटनादित्याह–न घटत इति । तत्र किं प्रकृतेर्जीवरूपेणोद्भवः स्यात्पुरुषस्य वा उभयोर्वा । आद्ये जीवानां जडत्वापत्तिः । द्वितीये पुरुषस्य विकारित्वप्रसङ्गः । अतएव तृतीय इत्याशयेनोक्तं प्रकृतिपूरुषयोरुद्भवो न घटत इति श्रुत्याऽजत्वप्रतिपादनादपीत्याह–अजयोरिति। तथा च श्रुतिः–'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीं प्रजां जनयन्तीं सरूपाम् । अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः' इति । उभययुजा तु भवन्ति उभयं च तद्युज्यत इति युक् संबद्धम् । परस्पराध्यस्तमिति यावत् तेनासुभृतः प्राणाद्युपाधयो जीवा जायन्त इत्यर्थः । जलबुद्बुदवदिति । यथा केवलेन जलेनानिलेन वा जलबुद्बुदा न भवन्ति किंतु मिलिताभ्यां तद्वत् । तत्र यथाऽनिलो निमित्तं जलमुपादानमेवमत्रापि प्रकृतिर्निमित्तं पुरुष उपादानम् । 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः'। 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय' इति । 'यथाऽग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः सर्वे लोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि सर्व एवात्मानो व्युच्चरन्ति' इत्यादिश्रुतिषु चेतनाचेतनप्रपञ्चस्य परमात्मोपादानत्वश्रवणात्। न च विकारित्वम्, परिणामानङ्गीकारात्। केचित्पुनः परिणाममङ्गीकृत्यात्मनो विकारभिया विपरीतं निमित्तोपादानभावमिच्छन्ति। सर्वथा तावत्प्रकृतिपुरुषैक्याद्भवतीति सिद्धम् । तत् 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म', 'अजामेकाम्', 'अविनाशी वारेऽयमात्मा' इत्यादिश्रुतिबलादुत्पत्तिश्रवणाच्च जीवानामौपाधिकमेव जन्म, न वस्तुत इत्युक्तम् । उपाधिलयेन परमात्मनि पुनर्लयश्रवणादपि न वास्तवं जन्मेत्याह–त्वयि त इति । त्वयि कारणात्मनि त इमे जीवाः । तत इति । यतो न वास्तवं जन्म तस्माद्विविधनामगुणैरनेकप्रकारकार्योपाधिभिः सह लिल्युर्लीना बभूवुः । तत्र सुषुप्तिप्रलययोर्मधुन्यशेषरसा इव लीयन्ते । यथा मधुनि सकलकुसुमरसा विशेषतोऽनुपलक्ष्यमाणा अपि सामान्येनोपलक्ष्यन्ते, एवं स्वापादौ विशेषमात्रलयात्कारणस्य

विद्यमानत्वात्सामान्यतो वर्तन्ते । मुक्तौ तु कारणस्यापि लयात्त्वयि परमे निरुपाधौ सरित इवार्णवे लीयन्त इति विवेकः । तथा च श्रुतयः– 'यथा सोम्य मधु मधुकृतो निस्तिष्ठन्ति नानात्ययानां वृक्षाणां रसान्समवहारमेकतां संगमयन्ति' । 'ते यथा तत्र न विवेकं लभन्ते अमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्म्यमुष्याहं वृक्षस्य रसोऽस्मीत्येवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सति संपद्य न विदुः सति संपद्यामहे' इति । 'यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय । तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्' इत्याद्याः । यस्मिन्नुद्यद्विलयमपि यद्भाति विश्वं लयादौ जीवोपेतं गुरुकरुणया केवलात्मावबोधे । अत्यन्तान्तं व्रजति सहसा सिन्धुवत्सिन्धुमध्ये मध्ये चित्तं त्रिभुवनगुरुं भावये तं नृसिंहम् ।।१८।।३१।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि यदि जीव परमात्मा से उत्पन्न होता है । इसीलिए परमात्मा नियामक हैं और जीव नियाम्य है । ऐसा कहा जाता है । ऐसा मानने पर जीवों के अनित्यत्व का प्रसङ्ग होगा और जीवों के स्वरूप की हानि ही मोक्ष होगा । किन्तु यह कहना उचित नहीं है । स्वप्रकाशानन्द स्वरूप आत्मा का अविद्याकृत विषय निवृत्ति मात्र को ही मोक्ष स्वीकारा जाता है । इस प्रकार से आशङ्का करके श्रुतियाँ कहती हैं कि उपाधि के जन्म से ही जीवों का जन्म कहा जाता हैं । स्वतः जीवों के जन्म का समन्वय नहीं हो सकता है । इस बात को श्रुतियाँ न **घटते० इत्यादि** श्लोक से कहती हैं । प्रश्न होता है कि प्रकृति का जीव रूप से जन्म होता है ? अथवा पुरुष का अथवा दोनों का ? प्रथम पक्ष को मानने पर जीव में जडत्वापत्ति होगी । दूसरा पक्ष स्वीकार करने पर जीव के विकारवान होने का प्रसङ्ग होगा। अतएव तृतीय पक्ष को ही स्वीकार करना चाहिए इसी अभिप्राय से श्रुतियों ने कहा **प्रकृति पुरुषयोः उद्भवोन घटते** अर्थात् प्रकृति एवं पुरुष दोनों का जन्म समन्वित नहीं होता है । क्योंकि श्रुतियाँ जीव को अजड बतलाती हैं । क्योंकि वे दोनों अजन्मा हैं । श्रुति भी कहती है **अजामेकाम् इत्यादि** अर्थात् प्रकृति अजन्मा है, वह एक है । साथ ही वह रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण से सम्पन्न है । वह अपने ही समान जड़ महदादि कार्यों को उत्पन्न करती है । जीवात्मा और परमात्मा इन दोनों में से जीवात्मा उसका प्रेमपूर्वक सेवन करता है, और परमात्मा उसे भुक्तभोगा जानकर उसका परित्याग कर देता है । **उभययुजातु भवन्ति** अर्थात् प्रकृति और पुरुष दोनों एक दूसरे मिलकर जीव के रूप में उत्पन्न होते हैं । प्रकृति और पुरुष जब एक दूसरे से संबद्ध होते हैं तो परस्पर में एक दूसरे का अध्यास हो जाता है । उसी से प्राण आदि उपाधियों से युक्त जीव उत्पन्न होते हैं । **यथाकेवलेन० इत्यादि** जिस तरह केवल जल से अथवा केवल वायु से बुलबुले नहीं उत्पन्न होते है बल्कि जल और वायु दोनों मिलकर बुलबुले को उत्पन्न करते है, उसी तरह प्रकृति और पुरुष दोनों मिलकर ही जीवों को उत्पन्न करते हैं । वायु बुलबुले का निमित्तकारण है और जल उपादान कारण है । उसी तरह यहाँ भी प्रकृति निमित्त कारण और पुरुष उपादान कारण होता है । इसी अर्थ का प्रतिपादन करती हुई श्रुति कहती है कि **तस्माद् वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः** अर्थात् उस आत्मा (परमात्मा) से आकाश की उत्पत्ति हुई । **सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेय ।** उस आत्मा ने सङ्कल्प किया मैं अनेक हो जाऊँ तदर्थ प्रकृष्ट रूप से उत्पन्न होऊँ । **यथाऽग्नेः क्षुद्राः विस्फुलिङ्गाः व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वेप्राणा, सर्वेलोकाः सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि सर्वएवात्मनः व्युच्चरन्ति ।** अर्थात् जिस तरह अग्नि से छोटी-छोटी चिनगारियाँ निकलती हैं, इसी प्रकार इस आत्मा से सभी प्राण, सभी लोक, सभी देवता, सभी जीव ये सभी आत्मा से ही निकलते हैं । इस तरह की श्रुतियों में चेतनाचेतनात्मक प्रपञ्च का उपादान कारण परमात्मा को ही कहा गया है । परमात्मा को विकारवान् नहीं कहा गया है । क्योंकि सिद्धान्त में जगत् को परमात्मा का परिणाम नहीं माना जाता है । कुछ लोग परिणाम को स्वीकार करके आत्मा के विकारित्व के भय से विपरीत निमित्तोपादान भाव को स्वीकार करते है । ऐसा मानने पर पूर्णरूप से प्रकृति पुरुष की एकता सिद्ध हो जाती है । वह ऐसा है कि **'एकमेवा द्वितीयम् 'अजामेकाम्' अविनाशी**

वारेऽयमात्मा इत्यादि श्रुतियों द्वारा जीव की उत्पत्ति सुने जाने के कारण जीवों के औपाधिक ही जन्म को मानते हैं, वास्तविक नहीं। चूकि उपाधि का परमात्मा में लय सुना जाता पुन: लय के सुने जाने से भी जीवों का वास्तविक जन्म नहीं माना जा सकता है। इस बात को श्रुतियों ने कहा **त्वयि ते इत्यादि** अर्थात् कारण स्वरूप आप में ही ये जीव इसलिए भी। चूकि जीवों का जन्म वास्तविक नहीं है इसलिए अनेक प्रकार की कार्योपाधियों के साथ **लिल्युः** अर्थात् प्रलय काल में परमात्मा में ही लीन हो जाते है। उसमें जिस तरह सुषुप्ति तथा प्रलय में जीव परमात्मा में उसी तरह लीन हो जाते हैं जिस तरह शहद में सभी पुष्पों के रस लीन हो जाते हैं। जिस तरह शहद में सभी पुष्पों के रस विशेष रूप से उपलक्षित नहीं होते है फिर भी वे सामान्य रूप से उपलक्षित होते ही है इसी तरह प्रलय आदि कालों में, विशेष मात्र का लय होता है कारण तो बना ही रहता है सामान्य रूप से सभी जीव रहते हैं किन्तु मुक्तावस्था में तो कारण का भी लय हो जाता है निरूपाधि आप परमात्मा में जीव उसी तरह से मिल जाते हैं जिस तरह नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं यह विवेक है। श्रुतियाँ भी कहती हैं- **यथा सोम्य मधु० इत्यादि** अर्थात् हे सोम्य जिस तरह मधुमखियाँ अनेक वृक्षों के रस को लेकर अनेक रसों को एक में मिश्रित करके सबों को एक मधु के रूप में परिणत कर देती हैं। वे रस जिस तरह से अपने को अलग नहीं कर पाते हैं कि मैं अमुक वृक्ष का रस हूँ, मैं अमुक वृक्ष का रस हूँ हे सोम्य इसी तरह ये सारी प्रजाएँ उस परमात्मा में लीन होकर यह नहीं जान पाते हैं कि मैं परमात्मा में मिल रहा हूँ। **यथा नद्यः स्यन्दमानाः इत्यादि** जिस तरह प्रवाहित होती हुई नदियाँ समुद्र में मिलकर अपने नाम का तथा रूप का परित्याग कर देती हैं उसी तरह आत्मज्ञ पुरुष अपने नाम तथा रूप का परित्याग करके परात्पर दिव्य पुरुष परमात्मा में जाकर मिल जाते हैं। **यस्मिन्नुद्यद्........तं नृसिंहम् ।।१८।।३१।।** अर्थात् जीवों के साथ यह सम्पूर्ण विश्व जिससे उदित होत है तथा सुषुप्ति आदि कालों में जिसमें विलय को प्राप्त होता हुआ प्रतीत होता है। गुरुदेव की कृपा होने पर जब शुद्ध आत्मा का ज्ञान हो जाता है। तब समुद्र में नदी के समान जिन श्रीभगवान् में आत्यन्तिक प्रलय को प्राप्त हो जाता है, उन्हीं त्रिभुवन गुरु भगवान् नृसिंह को अपने हृदय में भावना करता हूँ ।।१८।।३१।।

नृषु तव मायया भ्रमममीष्ववगत्य भृशं त्वयि सुधियोऽभवे दधति भावमनुप्रभवम् ।
कथमनुवर्ततां भवभयं तव यद्भ्रुकुटिः सृजति मुहुस्त्रिणेमिरभवच्छरणेषु भयम् ।।३२।।

अन्वयः— अमीषु नृषु तव मायया भ्रमम् अवगत्य सुधियः अभवे त्वयि भृशं भावं दधति। अनुप्रभवं कथमनुवर्ततां भवभयं तव यद्भ्रुकुटिः मुहुत्रिणेमिः अभवच्छरणेषुभयम् ।।३२।।

अनुवाद— हे प्रभो ! सभी जीव आपकी माया से भ्रम में भटक रहे हैं अर्थात् अपने का आपसे पृथक् मानकर जन्म और मृत्यु के चक्र में चक्कर काट रहे हैं। किन्तु बुद्धिमान पुरुष इसको समझ लेते हैं और सम्पूर्ण भक्तिभाव से आपकी शरणागति कर लेते हैं। आप जन्म और मृत्यु के चक्र से छुड़ाने वाले है। यद्यपि शीत, उष्ण और वर्षा इन तीन भागों वाला काल चक्र आपका भ्रूविलास मात्र है। वह सबों को भयभीत करता रहता है। यह कालचक्र उन लोगों को ही बार-बार भयभीत करता रहता है, जो लोग आपके शरणागति नहीं करते हैं। आपके शरणागत जीवों को जन्म मृत्यु रूप संसार चक्र का भय नहीं होता है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं तावत्परमेश्वराज्जीवा जायन्ते तद्वशेन च कर्माणि कुर्वन्ति पुनस्तत्र लीयन्त इति संसारचक्रे परिभ्रमणमुक्तमिदानीं तन्निवृत्तये 'परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च।' उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभिसंविवेश' इत्याद्याः भगवदनुवृत्तिं विदधतीत्याह-नृषु तव माययेति। नृषु जीवेष्वमीषु तव मायया भ्रममुक्तलक्षणमवगत्य ज्ञात्वा सुधियो भृशं त्वय्यभवे भवनिवर्तके भावं स्वभावमनुवृत्तिं दधति कुर्वन्ति। कीदृशं भ्रमम्। अनुप्रभवं अन्वनु प्रभवो यस्मिंस्तं भ्रमम्। ततः किमत आह-

कथमिति । अनुवर्ततामनुवर्तमानानां त्वामेव शरणं भजतां भवभयं संसारभयं कथं भवेत् । न कथंचिदपीत्यर्थः। कुतः । यद्यस्मात्तव भ्रुकुटिर्भ्रूभङ्गरूपस्त्रिणेमिस्तिस्रो नेमय इवावच्छेदाः शीतोष्णवर्षाकाला यस्य संवत्सरात्मकस्य कालस्य सः। अभवच्छरणेषु न भवान् शरणं रक्षिता येषां तेष्वेव भयं जन्ममरणादिलक्षणं सृजति करोति, अतएवंभूतं संसारमाकलय्य तन्निवृत्तये सुधियस्त्वयि भावं दधतीति । संसारचक्रक्रकचैर्विदीर्णमुदीर्णनानाभवतापतप्तम् । कथंचिदापन्नमिह प्रपन्नं त्वमुद्धर श्रीनृहरे नृलोकम् ।।१९।।३२।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि परमात्मा से जीव उत्पन्न होते है और परमात्मा के ही अधीन रहकर विविध प्रकार के कर्मों को करते हैं । फिर वे परमात्मा में ही लीन हो जाते हैं । इस तरह से वे संसारचक्र में परिभ्रमण कहा गया है । इस श्लोक में उसकी निवृत्ति के लिए श्रुति परमात्मा की भक्ति का प्रतिपादन करती है । वह श्रुति है **परीत्य भूतानि० इत्यादि** सभी जीवों में एक ही आत्मा है इस बात को जानकर और कर्मार्जित एवर्गादि लोकों को अनित्य जानकर तथा सभी दिशाओं और प्रदिशाओं में प्राप्त होने वाले विषयों को भी अनित्य जानकर त्रयी रूप प्राणी का संसेवन करके मन से परमेश्वर की शरणागति मुमुक्षु जीव कर लेता है । इसी बात को **नृषु तव मायया०** श्लोक से कहा गया है । मनुष्य आप श्रीभगवान् की माया से भ्रम में अटक रहा है इस बात को बुद्धिमान पुरुष जानकर। संसार निवर्तक आपकी शरणागति कर लेता है । प्रश्न होता है कि कैसे भ्रम में तो इस बतलाते है अनुप्रभवं जो प्रत्येक जन्म में होता है । उस शरणागति से क्या होता है ? तो इसका उत्तर है कि आपका अनुसरण करने वाले जीवों को संसार का भ्रम कैसे हो सकता है? नहीं हो सकता है । क्योंकि आपके भ्रुकुटिविलास रूप उष्ण, शीत और वर्षा रूप तीन भागों वाला काल चक्र उन जीवों में जन्म, मृत्यु का भय नहीं उत्पन्न करता है जिनके आप स्वयं रक्षक हैं । अतएव इस प्रकार के संसार को जानकर बुद्धिमान पुरुष आपकी शरणागति करता है । **संसारचक्रकचैः.......नृलोकम् ।१९।।३२।।** अर्थात् हे नृसिंह यह जीव संसार चक्र रूपी आरे से टुकड़े-टुकड़े हो रहा है और नाना प्रकार के सांसारिक तापों की धधकती हुई ज्वाला से झुलस रहा है । वह आपत्तिग्रस्त जीव किसी प्रकार आपकी कृपा से आपकी शरण में आया है । आप इसका उद्धार करें ।।१९।।३२।।

विजितहृषीकवायुभिरदान्तमनस्तुरङ्ग य इह यतन्ति यन्तुमतिलोलमुपायखिदः ।
व्यसनशतान्विताः समवहाय गुरोश्चरणं वणिज इवाज सन्त्यकृतकर्णधरा जलधौ ।।३३।।

अन्वयः— विजित हृषीकवायुभिः अदान्तमनः तुरङ्गं ये इह यतन्ति गुरोः चरणम् रामवहाय ते अतिलोलम् उपायखिदः हे अज जलधौ अकर्णधराः वणिज इव व्यशन शतन्विताः सन्ति ।।३३।।

अनुवाद— हे अजन्मा प्रभो ! जिन योगियों ने अपनी इन्द्रियों को और प्राणों को वश में कर लिया है, वे भी जब अपने गुरुदेव के चरणों की शरण न लेकर अपने चञ्चल मन को वश में करने का प्रयास करते हैं, तो वे अपने साधनों में सफल नहीं होते हैं । उन्हें बारबार खेद और विपत्तियों का सामना करना पड़ता है । उनकी ठीक वही दशा होती है जैसे समुद्र में बिना कर्णधार के नाव पर यात्रा करने वाले व्यापारियों की होती है । कहने का अभिप्राय है कि मन को वश में करने के लिए गुरु की अनिवार्य आवश्यकता होती है ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

स च भगवति भावो मनोनियमे सति भवति, सोऽपि गुरूपसदनादिति गुरूपसदनं विदधति 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्', 'आचार्यवान्पुरुषो वेद', 'नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्ताऽन्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठे त्याद्याः श्रुतय इत्याह-विजितहृषीकवायुभिरिति । विजितानि हृषीकाणीन्द्रियाणि वायुश्च प्राणो यैस्तैरप्यदान्तमनस्तुरगमदान्तमदमितं मन एव तुरगो दुर्दमत्वसाम्यात्तं ये यन्तुं नियन्तुं यतन्ति प्रयतन्ते । अतिलोलमतिचञ्चलम् । गुरोश्चरणं समवहायाऽनाश्रित्य ते उपायेषु खिद्यन्ते

क्लिश्यन्तीत्युपायखिदः सन्तो व्यसनशतान्विता बहुव्यसनाकुला इह संसारसमुद्रे सन्ति तिष्ठन्ति । दुःखमेव प्राप्नुवन्तीत्यर्थः। हे अज, अकृतकर्णधरा अस्वीकृतनाविका वणिजो यथा तद्वत् । उक्तं च- 'नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्। मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा' । इति । प्राकृतैः संस्कृतैश्चैव गद्यपद्याक्षरैस्तथा। देशभाषादिभिः शिष्यं बोधयेत्स गुरुः स्मृतः ।' गुरुणोपदर्शितभगवद्भजनसुखानुभूतौ तु स्वत एव मनो निश्चलं भवति नान्यथेति भावः । यदा परानन्दगुरो भवत्पदे पदं मनो मे भगवँल्लभेत । तदा निरस्ताखिलसाधनश्रमः श्रयेय सौख्यं भवतः कृपातः ।।२०।।३३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् में भक्ति तब होती है जब कि मन वश में हो जाय और मन वश में तब होता है जब कि गुरु की शरणागति की जाय । गुरु की शरणागति का विधान करती हुई श्रुति कहती है कि-तद्विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।' अर्थात् उस परा विद्या को जानने के लिए गुरु की शरणागति उपहारपाणि होकर करे । गुरु को भी वेदज्ञ तथा ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिए । दूसरी श्रुति कहती है **आचार्यवान् पुरुषोवेद** । अर्थात् आचार्य वाला ही पुरुष तत्त्वों के रहस्य को जान पाता है । **नैषातर्केण मतिरापने या प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ** । अर्थात् हे प्रियतम नचिकेतः मेरे द्वारा प्रोक्त इस सुन्दर ज्ञानार्थ कही गयी बुद्धि को कुतर्कों द्वारा दूर नहीं करना चाहिए । इसी अर्थ का पतिपादन करती हुई श्रुतियाँ कहती है- **विजितहृषीकवायुभिः** अर्थात् जिन योगिजनों ने अपनी इन्द्रियों और प्राणों को वश में कर लिया है । किन्तु चञ्चल मन को वश में करने के लिए जो लोग गुरु की शरणागति किए बिना ही प्रयास करते हैं वे लोग उपाय करके भी खेद का अनुभव करते हैं । वे इस संसार सागर में गुरुरूपी कर्णधार के बिना उसी तरह कष्टों का अनुभव करते हैं जिस तरह बिना कर्णधार के नाव द्वारा समुद्र को पार करने वाले व्यापारी, कष्ट का अनुभव करते हैं । कहा भी गया है **नृदेहमाद्यं सुलभं......आत्महा** अर्थात् पहले तो मनुष्य का शरीर मिलना ही अत्यन्त कठिन है । और वह मनुष्य शरीर ही सुन्दर नौका है । उस पर गुरु रूपी कर्णधार को अपनाकर मेरी कृपा रूपी अनुकूल वायु से प्रेरित होकर जो पुरुष संसार सागर को नहीं पार कर जाता है, वह आत्मघाती है । तथा जो प्राकृत अथवा संस्कृत भाषा मे गद्य अथवा पद्य के माध्यम से अथवा देशज भाषा के माध्यम से शिष्य को तत्त्वोपदेश करता है उसे गुरु कहते हैं । आचार्योपदिष्ट भगवद् भजन जन्य सुख का अनुभव होने पर मन अपने आप निश्चल हो जाता है । उसके बिना मन स्थिर नहीं होता ।।३३।। **यदा परानन्दगुरो.......भवतः कृपातः ।।२०।।३३।।** अर्थात् हे परमानन्दमय गुरुदेव भगवन् । जब मेरा मन आपके चरणों में स्थान प्राप्त कर लेगा तब मैं आपकी कृपा से, समस्त साधनों के परिश्रम से छुटकारा पाकर परमानन्द प्राप्त करूँगा ।।२०।।३३।।

स्वजनसुतात्मदारधनधामधरासुरथैस्त्वयि सति किं नृणां श्रयत आत्मनि सर्वरसे ।
इति सदजानतां मिथुनतो रतये चरतां सुखयति कोऽन्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे ।।३४।।

अन्वयः— सर्वरसे आत्मनि त्वयि सति स्वजनसुतास्मदारधनधामधरासुरथैः नृणां कि श्रयते इति सद् अजानतां मिथुनतः रतये चरतां स्वविहते स्वनिरस्त भगे कोनु इह सुखयति ।।३४।।

अनुवाद— हे भगवन् ! आप अखण्ड आनन्द स्वरूप एवं शरणागत जीवों की आत्मा हैं । आपके रहते हुए स्वजन, पुत्र, देह, स्त्री, धन, महल, पृथ्वी, प्राण और रथ आदि से क्या प्रयोजन है । जो लोग इस सत्य सिद्धान्त को नहीं जानकर स्त्री पुरुष के संबन्ध से होने वाले सुखों में ही रम रहे हैं, संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो उनको सुख प्रदान कर सके । क्योंकि संसार की सारी वस्तुएँ स्वभावतः विनाशी हैं । उनको विनष्ट होना ही है । वे वस्तुएँ स्वरूप से भी सत्ताहीन और सार हीन हैं । ऐसी वस्तुएँ कैसे सुखद हो सकती हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

'परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन' तथा, 'यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।

अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते' इत्याद्या वैराग्यमङ्गं विदधतीत्याह-स्वजनसुतेति । आत्मा देहः । धाम गृहम् । असुः प्राणः । स्वजनादिभिः किम् । सर्वरसे सर्वे रसाः सुखानि विद्यन्ते यस्मिंस्तस्मिंस्त्वयि परमानन्दे 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' इति श्रुतेः । श्रयतस्त्वां सेवमानस्य पुंस आत्मनि सति नृणां तुच्छैरेतैः किं क उपयोग इति सत् सत्यं परमार्थसुखमजानतामत एवं मिथुनतः स्त्रिया मिथुनीभूय रतये मायासुखाय चरतां प्रवर्तमानानाम् । कर्मणि षष्ठ्यौ । अजानतश्चरतः पुरुषान् कोन्वर्थः सुखयत्यानन्दयति । न कोऽपीत्यर्थः । इह संसारे । कथंभूते । स्वविहते स्वत एव नश्वरे । स्वनिरस्तभगे स्वत एव गतसारे । पाठान्तरे तु को न्वित्यस्यैतद्विशेषणद्वयम् । अतस्त्वद्भजनमेवोचितमित्यर्थः । भजतो हि भवान्साक्षात्परमानन्दचिद्धनः। आत्मैव किमतः कृत्यं तुच्छदारसुतादिभिः ।।२१।।३४।।

भाव प्रकाशिका

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायात् नास्त्यकृतः कृतेन अर्थात् मुमुक्षु पुरुष जब कि कर्मार्जित समस्तभोग्य पदार्थो की नश्वरता आदि का अच्छी तरह से विचार करके जब यह जान लेता है कि इन किए गये कर्मो के द्वारा नित्य मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है, अतएव वह इस संसार से विरक्त हो जाता है । तथा **'यदा सर्वेप्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः, अथमर्त्योऽमृतो भवति अत्र ब्रह्म समश्नुते** । अर्थात् जब उपासक के हृदय में विद्यमान सारी कामनाएँ विनष्ट हो जाती हैं, तो फिर वह उपासक इस लोक मे ही अमृत हो जाता है, वह इस लोक में ही जीवमुक्त हो जाता है । इत्यादि श्रुतियाँ भक्ति के अङ्गभूत वैराग्य का उपदेश देती है इस बात का प्रतिपादन स्वजन **सुत० इत्यादि** श्लोक के माध्यम से करती हैं । श्लोक का आत्मा शब्द देह का वाचक हैं, धाम अर्थात गृह, असु अर्थात् प्राण तथा स्वजनों आदि से क्या प्रयोजन है जबकि आप समस्त प्रकार के सुखों से परिपूर्ण परमानन्द स्वरूप श्रीभगवान् विद्यमान हैं । श्रुति भी कहती है **एतस्यैवानन्दस्यान्यान्यानि भूतानि मात्रा मुपजीवन्ति** । अर्थात् इस आनन्दमय परब्रह्म के हे अंशमात्र आनन्द मात्र को प्राप्त करके दूसरे जीव आनन्द का अनुभव करते हैं । इस प्रकार के आपकी सेवा करने वाले पुरुष की आप परमात्मा के विद्यमान रहने पर इन धन पुत्र परिवार आदि तुच्छ पदार्थो का कौन सा उपयोग है? इस परमार्थ सुख को नहीं जानकर स्त्री सहवास जन्य सुख में ही जो लोग रमे रहते हैं । उनको कौन सी ऐसी वस्तु है जो सुख दे । चरताम् प्रर्वतमानाम् में कर्म के अर्थ में षष्ठी विभक्ति हुई है । इस स्वतः नश्वर संसार में स्वभावतः सार रहित कोऽनुका इस पाठान्तरे में काडनुका ही यह विशेषण है । अतएव आपका भजन करना ही उचित है ।।३४।। **भजतो हि भवान् साक्षात्........ सुतादिभिः।।२१।।३४।।** अर्थात् जो लोग आपका भजन करते हैं उनके लिए आप साक्षात् परमानन्द चिदुघन आत्मा ही हैं । इसलिए उन्हे तुच्छ स्त्री पुत्र धन आदि से क्या प्रयोजन है ?।।२१।।३४।।

भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनान्यृषयो विमदास्त उत भवत्पदाम्बुजहृदोऽघभिदङ्घ्रिजलाः ।
दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे न पुनरुपासते पुरुषसारहरावसथान् ।।३५।।

अन्वयः— ते विमदाः ऋषयः भवत्पदाम्बुजहृदः अघभिदङ्घ्रिजलाः पुरुपुण्य तीर्थसदनानि सेवन्ते । यः नित्यसुखे आत्मनि त्वयि सकृत् मनः दधति पुनः पुरुषसारहरावसथान् न उपासते ।।३५।।

अनुवाद—हे प्रभो जो ऐश्वर्य आदि के घमण्ड से रहित हैं वे संतपुरुष इस पृथिवी पर परम पवित्र और सबको पवित्र बनाने वाले पुण्यमय तीर्थ स्थान हैं । क्योंकि उन लोगों के हृदय में आपके चरणारविन्द विराजमान रहते हैं । उन सन्तपुरुषों का चरणामृत समस्त पापों एवं तापों को सदा के लिए मिटा देने वाला हैं । भगवन् आप नित्य आनन्द स्वरूप ही हैं । जो एक बार अपना मन आप में लगा देता है वह पुनः देह गेह में नहीं फँसता है । वह केवल आप में रम जाता है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

एवं गुरूपदेशेन तत्त्वमवगम्य सारासारविवेकेन च सर्वतो निर्विद्य तदेव महत्सङ्गेनोपपत्तिभिः सम्यगवधारयितुं तीर्थसदनानि मुनयः पर्यटन्तीति 'श्रोतव्यो मन्तव्यः' इत्यादिश्रुत्यर्थमाह-भुवि पुरुपुण्यतीर्थसदनानीति । ते उक्तलक्षणा ऋषयो विमदा निरहङ्कारा यतो भवत्पदाम्बुजहृदः भवतः पदाम्बुजं हृदि येषां ते । अतः स्वयमेवाघभिदङ्घ्रिजलं येषां ते उत अपि तथाविधा अपि पुरूणि बहूनि पुण्यानि तीर्थानि सदनानि च क्षेत्राणि तान्येवोपासते सेवन्ते प्रायस्तत्रैव महत्सङ्गो भवतीति। अथवा पुरु अधिकं भगवद्भजनलक्षणं पुण्यं येषां तानि च तानि तीर्थानि च गुरवो महान्त इत्यर्थः । तेषां सदनान्याश्रमान् । यथाहामरसिंहः-निपानागमयोस्तीर्थमृपिजुष्टजले गुरौः इति । न पुनः पुरुषसारहरावसथानुपासते । पुरुषाणां सारं विवेकस्थैर्यधैर्यक्षमाशान्तिप्रमुखं हरन्तीति तथा ते च ते आवसथा गृहास्तान् । न च तेषां हृदिभवकुत्सितसुखापेक्षेत्याह-दधति सकृन्मनस्त्वयि य आत्मनि नित्यसुखे इति । सकृदपि त्वयि ये मनो दधतीति तेऽपि गृहाद्यासक्ता न भवन्ति, किं पुनरेवंभूता इत्यर्थः । मुञ्चन्नङ्गतदङ्गसङ्गमनिशं त्वामेव संचिन्तयन्सन्तः सन्ति यतो यतो गतमदास्तानाश्रमानावसन् । नित्यं तन्मुखपङ्कजाद्विगलितत्वत्पुण्यगाथामृतस्रोतःसंप्लवसंप्लुतो नरहरे न स्यामहं देहभृत् ।।२२।।३५।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार आचार्योपदेश के द्वारा तत्त्व को जानकर, सार तथा आसार के भेद पूर्वक ज्ञान के द्वारा सबों से उदासीन होकर महान पुरुषों के सत्सङ्ग की युक्ति एवं प्रमाणों के आलोक में तत्त्व का अच्छी तरह से निश्चय करने के लिए मुनिजन तीर्थों में पर्यटन किया करते है । इस तरह से **श्रोतव्योमतव्यः इत्यादि** श्रुतियों के अर्थ को श्रुतियों ने **भुविपुरुपुण्य तीर्थ सदनानि० इत्यादि** श्लोक से कहा है । उपर्युक्त प्रकार के ऋषिगण अहङ्कार रहित हो जाते हैं । क्योंकि वे **भवत्पदाम्बुहृदः** आपके चरण कमलों को अपने हृदय में धारण किए रहते हैं अतएव स्वयं ही जिनका चरणामृत स्वभावतः समस्त पापों को विनष्ट कर देने वाला होता है। । वे लोग निश्चित रूप से अनेक तीर्थ स्थानों तथा क्षेत्रों का सेवन करते हैं । क्योंकि प्रायः तीर्थ स्थानों में महापुरुषों का सत्सङ्ग प्राप्त होता है । अथवा बहुत अधिक श्रीभगवान् का भजन रूप पवित्र तीर्थ ही महान होता हैं । उनके आश्रमों को अमर कोशकार ने कहा भी है **निपानागमयोस्तीर्थमृषिजुष्टजलेगुरौ।** अर्थात् निपान (पनघट) आगम, ऋषियों से सेवित जल एवं गुरु के अर्थ में तीर्थ शब्द का प्रयोग होता है । वे लोग पुनः पुरुषों के सारभूत विवेक, स्थैर्य, धैर्य क्षमा शान्ति आदि गुणों के विनाशक देह गेह में नहीं फँसते हैं । जो उपासक एक बार भी अपना मन नित्य सुख स्वरूप आपमें लगा देते हैं वे भी गृहादि में नहीं लगते हैं तो ऐसे महापुरुषों के विषय में क्या कहना है । **मुञ्चनङ्गतदङ्गसङ्गमनिशं........देहभृत् ।।२२।।३५।।** अर्थात् मैं शरीर और उनके संबन्धियों की आसक्ति छोड़कर रात-दिन आपका ही चिन्तन करूँगा । जहाँ-जहाँ निरभिमान सन्त रहते हैं । मैं उन्हीं आश्रमों में रहूँगा। उन सन्तों के मुखकमल से निस्सृत आपकी पुण्यमयी कथा सुधा की नदियों की धारा में प्रतिदिन स्नान करूँगा। हे नृसिंह मैं पुनः कभी देह के बन्धन में नहीं पड़ूंगा ।।२२।।३५।।

सत इदमुत्थितं सदिति चेन्ननु तर्कहतं व्यभिचरति क्व च क्व च मृषा न तथोभययुक् ।
व्यवहृतये विकल्प इषितोऽन्धपरम्परया भ्रमयति भारती त उरुवृत्तिभिरुक्थजडान् ।।३६।।

अन्वयः— इदम् सत उत्थितं सत् इति चेत् ननु तर्कहतं व्यभिचरति क्व च क्व च न मृषा । न तथोभययुक्, व्यवहृतये विकल्पः इषितः अन्धपरम्परया ते भारती उरुवृत्तिभिः उक्थ जडान् भ्रमयति ।।३६।।

अनुवाद— यदि कोई यह कहे कि यह जगत् सत्य है क्योंकि यह सद्ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है तो यह कहना इसलिए ठीक नहीं है कि इन दोनों में कार्य और कारण का निर्देश ही दोनों में भेद को सिद्ध करता है इसी तरह पिता और पुत्र में भी भेद देखा जाता है । दण्ड और घटनाश में भी कार्यकारणभाव होने पर भी दोनों की एकता नहीं होती

है। किञ्च सत्य रस्सी में उत्पन्न सर्प मिथ्या होता है। यदि यह कहा जाय कि प्रतीत होने वाले सर्प का उपादान कारण केवल रस्सी नहीं हैं अपितु उसके साथ अविद्या का मेल भी है। तो यह समझना चाहिए कि अविद्या और सत् वस्तु के संयोग से ही इस जगत् की उत्पत्ति होती है। अतएव सत् वस्तु में अविद्या के कारण प्रतीत होने वाला जगत् मिथ्या है। यदि केवल व्यवहार के लिए ही जगत् की सत्ता अभीष्ट हो तो उसमें कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि वह पारमार्थिक सत्य न होकर व्यावहारिक सत्य है। यह भ्रम काल की दृष्टि से अनादि है और अज्ञानी जन बिना विचार किए ही पूर्व पूर्व के भ्रम से प्रेरित होकर अन्ध परम्परा से इसे मानते आ रहे हैं। ऐसी स्थिति में कर्म फल को सत्य बतलाने वाली श्रुतियाँ केवल उन्हीं को भ्रम में डालती हैं, जो कर्म में जड़ हो रहे हैं और यह नहीं समझते हैं कि इन श्रुतियों का तात्पर्य कर्म फल की नित्यता बतलाने में नहीं है। बल्कि उनकी प्रशंसा करके उन कर्मों में लगाने में है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

ननु 'आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्', 'तद्भूतानां क्रियार्थेन समन्वयः' इति तत्र तत्र जैमिनिना वेदस्य क्रियापरत्वाभिधानादुपनिषदामपि तदेव युक्तम्, यथोक्तं तन्त्रवार्तिककृता-'एतेन क्रत्वर्थकर्तृप्रतिपादनेनोपनिषदां नैराकाङ्क्ष्यं व्याख्यातं' इति न, एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म', 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म', 'अचक्षुरश्रोत्रम्' इत्येवं तद्विपरीतात्मप्रतिपादनात्। न ह्यद्वितीयपरमानन्दरूपस्य कर्माङ्गत्वं युज्यत। अननुमत्तं चैतद्वार्तिककृत;। कथम्। 'सर्वत्रैवहि विज्ञानं संस्कारत्वेन गम्यते। पराङ्गं चात्मविज्ञानादन्यत्रेत्यवधार्यताम्।' इति तेनैवोक्तत्वात्। एतदर्थमेव मननाय मुनयः पर्यटन्तीत्युक्तम्। तत्रं तावद्द्वैतस्य सत्यत्वे भवेदप्येवं तदेव तु न संभवतीति प्रश्नोत्तराभ्यां मननेन तत्त्वावधारणप्रकारमाह-सत इदमुत्थितं सदिति चेदिति। इदं विश्वं धर्मि। सदिति साध्यो धर्मः। सत उत्पन्नत्वाद्धेतुः। यद्यत उत्पन्नं तत्तदात्मकमेव दृष्टम्। यथा कनकादुत्पन्नं कुण्डलादि तदात्मकं तद्वदिति। तत्र यदि सदभेदः साध्यते तदाऽपादानत्वनिर्देशेनैव भेदप्रतीतेर्विरुद्धो हेतुरित्याह-ननु तर्कहतमिति। ननु नाभेदं साधयामः, किंतु तदुत्पन्नत्वेन कुण्डलादिवद्भेदं प्रतिषेधयामः। तत्राभेद एवस्यादित्याशङ्क्यानैकान्तिकत्वेन दूषयति-व्यभिचरति क्व चेति। पितृपुत्रादिषु मुद्गरघटप्रध्वंसादिषु च तथा दर्शनादिति भावः। ननु तदुत्पन्नत्वं नाम तदुपादानत्वं, न तु तन्निमित्तत्वमतो नानैकान्तिकत्वमित्याशङ्क्य द्वषयति-क्व च मृषेति। गुणोपादानस्यापि फणिनो न गुणत्वं, किंतु मिथ्यात्वम्; अन्यथा कुण्डलादिवदबाधप्रसङ्गात्। अतः पुनरप्यनैकान्तिकत्वमेवेति भावः। ननु न तत्र केवलं गुणमात्रं फणिन उपादानं, किंत्वविद्यायुक्तम्। तथाभूतस्यावस्तुत्वाद्युक्तं फणिनो मिथ्यात्वमित्याशङ्क्य तत्तुल्यमत्रापीति दूषयति-न तथोभययुगिति। अयमर्थः-अत्राप्यविद्यायुक्तस्यैव सत उपादानत्वम्। एवंभूतस्य च न वस्तुसत्त्वम्। अतः सदुपादानत्वमसिद्धमिति न वस्तुसत्त्वं प्रपञ्चस्येति। ननु माभूदनेन हेतुना प्रपञ्चस्य सत्त्वं, हेत्वन्तरेण तु साधयामः। तथा हि-सदिदमर्थक्रियाकारित्वात्। न यदेवं न तदेवं, यथा शुक्तिरजतमिति तत्राह-व्यवहृतये विकल्प इषित इति। व्यवहारायार्थक्रियार्थ विकल्पो भ्रम इषित इष्ट एव, कूटकार्षापणादिनापि क्वचिद्यववहारदर्शनात्। नन्वेकत्र सतोऽन्यत्रारोपो भ्रमः प्रसिद्धोऽत्यन्तासत्त्वे कथं प्रपञ्चो भ्रमः स्यात्, सत्त्वे वा नाद्वैतसिद्धिः। उक्तं च भट्टैः- 'अध्यस्यते खपुष्पत्वमसत्कथमवस्तुनि। प्रज्ञातगुणसत्ताकमध्यारोप्येत वा न वा।' इति नेत्याह-अन्धपरम्परयेति। अन्धपरम्परया यो विकल्प इत्यन्वयः। अयं भावः-संस्कारजन्यो भ्रमः संस्कारसिद्धये पूर्वप्रतीतिमात्रमपेक्षते, न वस्तुसत्त्वम्। प्रतीतौ सत्यां वस्तुसत्त्वाभावेन ब्रह्मव्यतिरेकादर्शनात्। अतोऽनादित्वात्पूर्वपूर्वभ्रमदृष्टस्योत्तरोत्तर आरोपो भविष्यति। अन्धपरम्परान्यायेन व्यवहारः सेत्स्यतीत्यप्रयोजको हेतुरिति। ननु 'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति', 'अपाम सोमममृता अभूम्' इत्यादिभिः कर्मफलस्य नित्यत्वप्रतिपादनादसत्त्वं न घटते, न हि नित्यं वस्त्वसद्भवति, तस्माद्वेदप्रतिपादितत्वाद्द्वैतं सदेवेत्याशङ्क्याह-भ्रमयतीति। हे भगवन् ते भारती वेदलक्षणा उरुवृत्तिभिर्बह्वीभिर्गौणलक्षणादिवृत्तिभिरुक्थजडान्कर्मश्रद्धाभराक्रान्त- मन्दमतीन् भ्रमयति मोहयति। अयं भावः-न हि वेदः कर्मफलं नित्यमभिप्रैति किंतु लक्षणया प्राशस्त्यमात्रम्, विध्येकवाक्यत्वात्। अन्यथा वाक्यभेदप्रसङ्गात्। 'तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते' इति न्यायोपबृंहित- श्रुत्यन्तरविरोधाच्च। अतः कर्मजडानामिदं भ्रममात्रमिति। एतेनैव 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः' इत्यादीनामप्यन्यपरत्वं दर्शितं भवति। उद्भूतं भवतः सतोऽपि भुवनं सन्नैव सर्पः

स्रजः कुर्वत्कार्यमपीह कूटकनकं वेदोऽपि नैवंपरः । अद्वैतं तव सत्परं तु परमानन्दं पदं तन्मुदा
मुञ्च मामानतम् ।।२३।।३६।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि महर्षि जैमिनि ने कहा है, आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थ
कार्य रूप अर्थ का प्रतिपादन करते हैं जो कार्य रूप अर्थ का प्रतिपादन नहीं करते हैं वे
क्रियार्थेन सहन्वयः अर्थात् सिद्धार्थ के प्रतिपादक वाक्यों की क्रिया के प्रतिपादक, वाक्य च
हो उसके साथ अन्वय होता है । उदाहरणार्थ **वर्हिर्षि रजतं न देयम्** तथा **पशुना यजेत इ**
होता है । इस तरह से महर्षि जैमिनि ने कहा है स्थान-स्थान पर वेद क्रियार्थ प्रतिपादन के
भी क्रियार्थ परत्व का ही प्रतिपादक मानना चाहिए जैसा कि तन्त्रवार्तिककार ने कहा
प्रतिपादनेनानैराकाङ्क्ष्यं व्याख्यातम् । अर्थात् इस तरह से क्रतु के ही लिए कर्ता का
हो गया कि उपनिषदों के वाक्य निराकाङ्क्ष हैं अतएव **एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मं** अर्थात् ब्रह्म
विज्ञानमानन्द ब्रह्म अर्थात् ब्रह्म विज्ञान स्वरूप और आनन्द स्वरूप है । **अचक्षुरश्रोतम्**
निरपेक्ष है । इस तरह के वाक्य उसके विपरीत अर्थ के ही प्रतिपादक हैं । अद्वितीय और
का अङ्ग नहीं हो सकते है । ब्रह्म का क्रतु का अङ्ग होना वार्तिककार को अभिमत भी
संस्कार रूप से ही ज्ञात होता है । अर्थात् वेद में विज्ञान विभिन्न वाक्य जन्य देवता कर्मा
होता है । अतएव ब्रीहि आदि के अवघात तथा प्रोक्षणादि संस्कार के समान याग आदि
है । आत्मविज्ञान से भिन्न उसके बिना उपनिषत् जन्य आत्मज्ञान संस्कार स्वरूप कर्म क
रूप से उसका विचार नहीं करना चाहिए । यह वार्तिककार ने ही कहा है । इसीलिए क
करने के लिए पर्यटन करते हैं । इस पर सिद्धान्ती कहते हैं कि यदि द्वैत (भेद) सत्य हो
किन्तु द्वैत तो मिथ्या है । अतएव प्रश्न एवं उत्तर के द्वारा तत्त्व के निश्चय के प्रकार को
इत्यादि श्लोक से कहती हैं । यह विश्व धर्मी (पक्ष) है । सत् यह साध्य है पक्ष में रह
विश्व सत् है, क्योंकि यह सत् ब्रह्म से उत्पन्न है । यह हेतु वाक्य है लोक में देखा जा
होता है, वह तदात्मक ही होता है । जैस कि मिट्टी से उत्पन्न होने वाला घट मृदात्मक ही
से उत्पन्न होने वाले कुण्डलादि सुवर्णात्मक ही होते हैं । इस अनुमान के द्वारा यदि जग
क्या जा रहा है, वह सत् शब्द अपादान का निर्देश करने कारण उसकी सत् से भिन्नता
यह विरुद्ध हेतु है । **ननु तर्कहतम् इत्यादि** अर्थात् जो जिससे उत्पन्न होता है वह तदा
बतलायी गयी है वह भी तर्क पराहत है । इस पर यदि पूर्वपक्षी कहे कि हम अभेद की
सत् से उत्पन्न होने के कारण कुण्डलादि के समान भेद का निषेध करते हैं । ऐसी स्थि
तरह की आशङ्का करके अनैकान्तिकत्व के द्वारा उपर्युक्त कथन में दोषदिखाते है । **क्वच**
नहीं है। कि जो जिससे उत्पन्न हो वह उससे अभिन्न हो देखा जाता है कि पिता से उत्पन्न
होता है । इसी तरह मुद्गर के प्रहार से होने वाला घट ध्वंस मुद्गरात्मक नहीं होता है
यदि पूर्व पक्षी कहे कि तदुत्पन्नत्व का अर्थात् तदुपादानत्व है निमित्त कारणत्व नहीं है । इ
से उत्पन्न होने वाला सर्प गुणात्मक नहीं होता है, अपितु वह मिथ्या ही होता है । यहाँ
रस्सी है । यदि ऐसा नहीं होता तो फिर उस प्रतीत होने वाले सर्प का कुण्डलादि के स

पूर्वपक्षी के मत में पुनः अनैकान्तिकत्व दोष है ही । **ननु न तत्र० इत्यादि** यदि कहें कि प्रतीत होने वाले सर्प का उपादान कारण केवल रज्जू ही नहीं है अपितु अविद्या मिश्रित रज्जू है । अतएव अविद्यायुक्त का रस्सी का उपादान होने से सर्प का मिथ्या होना ठीक ही है । इसीतरह आशङ्का करके कहती है श्रुति कि यही मान लेना चाहिए कि जगत् की उत्पत्ति में अविद्या और सत् का योग ही है । ऐसा होने के ही कारण जगत् सत् नहीं मिथ्या है । अतएव जगत् का सदुपादानत्व सिद्ध नहीं हो सकता है । इसीलिए प्रपञ्च मिथ्या है । **ननुमाभूदनेन हेतुना० इत्यादि** यदि पूर्वपक्षी यह कहे कि इस हेतु के द्वारा प्रपञ्च की सत्यता भले ही न सिद्ध हो, दूसरे हेतु के द्वारा प्रपञ्च की सत्यता हम सिद्ध करते हैं । वह इस तरह है- यह प्रपञ्च सत्य है, क्योंकि उसमें अर्थ क्रियाकारित्व है । जो अर्थ क्रियाकारी नहीं होता है, वह सत्य नहीं होता है । जैसे शुक्ति रजत । इसके उत्तर में श्रुतियाँ कहती हैं- **व्यवहृतये विकल्प इषित इति** अर्थात् व्यवहार के लिए अर्थक्रिया रूप भ्रम को सिद्धान्त में स्वीकार किया ही जाता है । लोक में कूटकर्षापण अर्थात् कूट सुवर्ण का लोक में व्यवहार देखा ही जाता है। यदि कहें कि एक स्थान पर विद्यमान वस्तु का दूसरे स्थान पर किए जाने वाले आरोप को भ्रम कहते हैं, यह प्रसिद्ध है जिस वस्तु का अत्यन्ताभाव है उस प्रपञ्च का भ्रम कैसे हो सकता है ? यदि प्रपञ्च का सद्भाव मानें तब तो अद्वैत की सिद्धि ही नहीं हो सकती है। श्रीकुमारिलभट्ट ने कहा भी है **अध्यस्यतेस्वपुष्पत्वमसत्कथमवस्तुनि । प्रज्ञातगुणसत्ताकमध्यारोप्येतवानवा ।** अर्थात् असत् आकाश कुसुम का अबस्तु में आरोप कैसे हो सकता है । जिसका गुण तथा सत्त्व प्रज्ञात है उसका आरोप होता है कि नहीं । इस पर श्रुतियाँ कहती हैं । **अन्ध परम्परया** अर्थात् अन्धपरम्परा से जो विकल्प होता है । **अयंभावः** कहने का अभिप्राय है कि संस्कार जन्य भ्रम अपने संस्कार की सिद्धि के लिए पहले से ही प्रतीति मात्र की अपेक्षा रखता है वस्तु की सत्ता की नहीं । प्रतीति के होने पर वस्तु की सत्ता का अभाव होने के कारण क्योंकि ब्रह्म से भिन्न कोई भी वस्तु सत् है ही नहीं । अतएव अनादि होने के कारण पूर्व-पूर्व दृष्टभ्रम का उत्तरोत्तर वस्तु में आरोप होयेगा । अन्धपरम्परान्याय से व्यवहार की सिद्धि होगी। इस तरह से अप्रयोजक हेतु है । **नन अक्षय्यं हवै० इत्यादि** यदि कोई यह कहे कि अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्यस्ययाजिनः सुकृतं भवति । अर्थात् चतुर्मास्य याग करने वाले को अक्षय फल की प्राप्ति होती है । **अपाम सोमममृता अभूम।** अर्थात् हमलोगों ने यागों में सोमरस का पान किया और अमर देवता हो गये । ये वाक्य कर्मों के फलों की नित्यता का प्रतिपादन करते हैं । अतएव उनका असत्त्व नहीं स्वीकारा जा सकता है । जो नित्य वस्तु होती है वह असत् नहीं होती है । अतएव वेद के द्वारा प्रतिपादित होने के कारण द्वैत (भेद) सत् ही है । इस तरह की आशङ्का करके श्रुति कहती है । हे भगवन् आपकी वेद रूपी वाणी लक्षणा तथा गौणी आदि वृतियों के द्वारा वेद प्रतिपादित कर्मों में श्रद्धा रखने वाले अज्ञानी कर्म जड़ों में बहुत अधिक भ्रम उत्पन्न करती है । **अयंभावः** कहने का अभिप्राय है कि वेद का कर्मों के फलों की नित्यता के प्रतिपादन में अभिप्राय नहीं है, बल्कि वह लक्षणा वृत्ति के द्वारा उनकी प्रशस्तता का ही प्रतिपादन करती है । ऐसा विधि के साथ एक वाक्यता होने के कारण है यदि ऐसा नही माना जाय तो वाक्यभेद होने का प्रसङ्ग होगा । श्रुति कहती है- **तद्पर्थह० इत्यादि** जिस तरह इस लोक में कर्मार्जित फलों का नाश होता है इसी प्रकार पुण्यार्जित स्वर्गादि का भी क्षय होता है । इस तरह न्याय के द्वारा उपबृंहित दूसरी श्रुतियों का विरोध होगा। अतएव कर्मों में लगे रहने वाले अज्ञानी जीवों का केवल भ्रममात्र है । इसी प्रतिपादन से यह भी सिद्ध हो गया कि **'तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः'** अर्थात् उस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ, इत्यादि श्रुतियाँ भी अन्यपरक ही सिद्ध होती हैं ।।३६।। **उद्भूतं भवतः सतोऽपि भुवनं.......मामानतम् ।।२३।।३६।।** अर्थात् माला में प्रतीत होने वाले सर्प के समान सत्य स्वरूप आपसे उत्पन्न होने पर भी यह त्रैलोक्य सत्य नहीं है । झूठा सोना बाजार में चल जाने पर भी सत्य नहीं हो जाता है । वेदों का तात्पर्य भी जगत् की सत्यता में नहीं है अतएव आपका परम सत्य

परमानन्द स्वरूप अद्वैत सुन्दर पद है । हे इन्दिरावन्दित श्रीहरे मैं उसी की वन्दना करता हूँ । मुझ शरणागत को आप न छोड़ें ॥२३॥३६॥

न यदिदमग्र आस न भविष्यदतो निधनादनुमितमन्तरा त्वयि विभाति मृषैकरसे ।
अत उपमीयते द्रविणजातिविकल्पपथैर्वितथमनोविलासमृतमित्यवयन्त्यबुधाः ॥३७॥

अन्वयः— इदम् यत् अग्रे न आस अतो निधनादनु न भविष्यत् अन्तरा एकरसे त्वयि मृषाविभाति अनुमितम् । अतः उपमीयते द्रविणजाति विकल्पपथैः वितथमनोविलासम् ऋतमित्यवयन्ति अबुधाः ॥२४॥३७॥

अनुवाद— हे भगवन् ! यह जगत् उत्पत्ति के पहले नहीं था और प्रलय के पश्चात् भी नहीं रहेगा । इससे सिद्ध होता है कि यह बीच में भी एक रस परमात्मा में मिथ्या प्रतीत हो रहा है अतएव हम श्रुतियाँ इस जगत् का वर्णन ऐसी उपमा देकर करती हैं कि जैसे मिट्टी में घड़ा लोहे मे शस्त्र और सोने में कुण्डल आदि नाम मात्र है । वस्तुतः तो मिट्टी, लोहा और सोना ही है । इसी तरह परमात्मा में वर्णित यह जगत् नाम मात्र है । यह सर्वथा मिथ्या कल्पना है । अज्ञानी जीव ही इसे सत्य मानते हैं ॥२४॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं प्रपञ्चस्य सत्त्वे साधकं नास्तीत्युक्तम्, इदानीमसत्त्वे सृष्टिप्रलयश्रुतयो 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्याद्यास्तन्मूलं चानुमानं प्रमाणमित्याह-न यदिदमिति । यद्यस्मादिदं विश्वमग्रे सृष्टे पूर्वं न आस नासीत् 'सदेव सोम्येदमग्र आसीत्' 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' इत्यादिश्रुतेः । न च निधनात्प्रलयादनु अनन्तरं भविष्यत् भविष्यति । 'नासदासीन्नो सदासीत्तदानीम्' इत्यादिश्रुतेः । अतः कारणादन्तरा मध्येऽप्येकरसे केवले त्वयि मृषा मिथ्यारूपमेव विभातीति मितं निश्चितम् । यत एवमतः श्रुत्या द्रविणजातिविकल्पपथैर्द्रविणजातीनां द्रव्यमात्राणां मृल्लोहकार्ष्णायसरूपाणां विकल्पा भेदा घटकुण्डलादयस्तेषां पन्थानो मार्गाः प्रकारास्तैरुपमीयते सदृशतया निरूप्यते । यथा तत्र कार्याकाराणां नामधेयमात्रता कारणं मृदाद्येव तु सत्यं तथात्राप्याकाशादीनां नाममात्रता ब्रह्मैव सत्यम् । तथा च श्रुतिः-'यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं भवति', 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्', 'यथा एकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातं स्यात्', 'यथा एकेन नखनिकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसम्' इत्यादि। तस्मादस्य सत्त्वे प्रमाणाभावादसत्त्वे प्रमाणस्य विद्यमानत्वाद्वितथमनोविलासमृतं सत्यमिति ये अवयन्ति जानन्ति तेऽबुधाः। अज्ञा इत्यर्थ; । अत्रैवं प्रयोगः-विवादाध्यासितं न सत् । आद्यन्तयोरविद्यमानत्वाद्विकारित्वादृश्यत्वाच्च शुक्तिरजतादिवत् इत्यन्वये दृष्टान्तः । आत्मवच्चेति व्यतिरेके दृष्टान्तः । मुकुटकुण्डलकङ्कणकिङ्किणीपरिणतं कनकं परमार्थतः । महदहंकृतिखप्रमुखं तथा नरहरेर्न परं परमार्थतः ॥२४॥३७॥

भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि प्रपञ्च के सत्त्व का साधक कोई भी प्रमाण नहीं है । इस श्लोक में बतलाया जाता है कि प्रपञ्च के असत्त्व में ये श्रुतियाँ प्रमाण है । सृष्टि और प्रलय प्रतिपादन करती हुई श्रुति कहती है **यतोवा इमानि भूतानि जायन्त** अर्थात् जिस परंब्रह्म से सभी भूत उत्पन्न होते हैं । ये श्रुतियाँ प्रमाण है । श्रुति मूलक अनुमान प्रमाण इस बात को श्रुति कहती है- **नयादिदम्० इत्यादि** चूकि यह जगत् सृष्टि से पहले नहीं था । इस अर्थ का प्रतिपादन करती हुई श्रुति कहती है- **सदेव सोम्येदमग्र आसीत्** अर्थात् हे सोम्य सृष्टि से पूर्व केवल सत् शब्दवाच्यपरमात्मा एक तथा अद्वितीय थे । आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् । निश्चित रूप से सृष्टि से पूर्व केवल आत्माशब्द वाच्य परमात्मा ही थे । ये सभी श्रुतियाँ बतलाती हैं सृष्टि से पहले यह प्रपञ्च नहीं था और यह भी सम्भव नहीं हैं कि प्रलय के पश्चात जगदिदं भविष्यति । **नासदासीन्नोसदासीत् तदानीम्** यह श्रुति सृष्टि से पूर्व में कार्यकारर्ण वर्ग का अभाव ही बतलाती है । अतएव कारण के अभाव में भी बीच में सदा एक रस रहने वाले आप परमात्मा में यह प्रपञ्च मिथ्या रूप से प्रतीत होता है यह निश्चित होता है । अतएव श्रुति कहती है- **द्रविणजाति विकल्पपथैः** अर्थात् द्रव्य मात्र मिट्टी में घटादि

रूप से, लोह में शस्त्रादि रूप से प्रतीत होने वाले जो घट, कुण्डलादि भेद आदि तथा उन सबों के जो प्रकार है, उसी तरह से हमलोगों के द्वारा उपमा इत्यादि के द्वारा वर्णन किया जाता है । जिस तरह उन सबों में घट कुण्डलादि आकार नाम मात्र हैं, सत्य तो मत्तिका सुवर्ण आदि ही हैं । उसी तरह आकाशादि प्रपञ्च नाम मात्र हैं । सत्य तो केवल ब्रह्म ही हैं । इस अर्थ का प्रतिपादन ये श्रुतियाँ करती हैं- **'यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वंमृण्मयं विज्ञातं भवन्ति ।** अर्थात् हे सोम्य जिस तरह एक ही मृत्पिण्ड का ज्ञान हो जाने पर उसके कार्यभूत सम्पूर्ण घटशराव आदि मृण्मय मृत्तिका रूप से ज्ञात हो जाते है । **वाचारम्भणं विकारो नामधेयम् मृत्तिकेत्येव सत्यम्** अर्थात् जितने भी घट शराब इत्यादि कार्य वर्ग हैं वे केवल वाणी के विलास भूतनामधेय मात्र हैं । वस्तुत: वे सबके सब मृत्तिका रूप से ही सत्य है । **यथा एकेन लोहमणिना सर्वं लोहमयं विज्ञातं स्यात्** अर्थात् जैसे एक ही लोहमणिका होने से उनसे बने सभी कुण्डल कटकादि का सुवर्ण रूप से ज्ञान हो जाता है । तथा **एकेन नखकृन्तनेन सर्वं कार्ष्णायसं इत्यादि** जैसे एक ही नख कृन्तन (लौह पिण्ड) का ज्ञान हो जाने से जितने भी उसके कार्यभूत क्षुरिका इत्यादि हैं उन सबों का लौह रूप से ज्ञान हो जाता है। अतएव **मनोविलासमृतमित्यवयन्त्यबुधाः** अर्थात् मन: कल्पित यह जो प्रपञ्च है उसको सत्य रूप से जानने वाले अज्ञानी हैं । यहाँ पर इस तरह का अनुमान होता है विवादास्पद प्रपञ्च सत् नहीं हैं । क्योंकि वह सृष्टि से पूर्व एवं पश्चात् नहीं रहता है, शुक्ति रजत् के समान । २. विवादास्पद प्रपञ्च मिथ्या है क्योंकि वह कार्य है, घटादि के समान, ३. किञ्च प्रपञ्च सत् नहीं हैं, क्योंकि वह दृश्य है, घटादि के समान। ये सभी अन्वय दृष्टान्त । व्यतिरेकी दृष्टान्त आत्मा है जैसे आत्मा सत् नहीं है, क्योंकि वह सृष्टि के आदि और अन्त में नहीं रहता है । जैसे ऐसा नहीं होता है, वह वैसे नहीं होता है जैसे आत्मा । **मुकुट कुण्डल कङ्कण......... परमार्थतः ।।२४।।३७।।** सुवर्ण, मुकुट कुण्डल कङ्कण किंकिणी के रूप में परिणत होने पर भी वस्तुत: सुवर्ण ही है । इसी तरह हे नृसिंह! महत् तत्त्व अहङ्कार, और आकाश वायु आदि के रूप में उपलब्ध होने वाला यह सम्पूर्ण जगत् वस्तुत: आपसे भिन्न नहीं है ।।२४।।३७।।

स यदजया त्वजामनुशयीत गुणांश्च जुषन्भजति सरूपतां तदनु मृत्युमपेतभगः ।
त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो महसि महीयसेऽष्टगुणितेऽपरिमेयभगः ।।३८।।

अन्वयः— स तु यत् अनया अजाम् अनुशयीत गुणान् च जुषन् तदनु अपेतभगः मृत्युम् सरूपतां भजति, आत्तभगः त्वम् त्वचम् अहिरिव उताम् जहासि अपरिमीय भगः अष्टगुणित महसि महीयसे ।।३८।।

अनुवाद— हे प्रभो ! जब जीव माया से मोहित होकर अविद्या को अपना लेता है उस समय उसके स्वरूप भूत आनन्दादि गुण ढँक जाते हैं । वह गुण जन्य वृत्तियों, इन्द्रियों तथा देहों में फँस जाता है और उन्हीं को अपना स्वरूप मानकर उनकी सेवा करने लगता है । उसके पश्चात् देह इन्द्रिय अदि के जन्म मृत्यु को ही अपना जन्म मृत्यु मनने लगता है । किन्तु हे प्रभो जिस तरह सर्प केंचुल से अपना कोई सम्बन्ध नहीं रखता है उसी तरह आप माया तथा अविद्या का परित्याग कर देते हैं । इसी से आपके सम्पूर्ण एश्वर्य सदा बने रहते हैं । अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों से युक्त परम ऐश्वर्य में आपकी स्थिति है । आपके ऐश्वर्य, धर्म, यश श्री: ज्ञान एवं वैराग्य ये छहो ऐश्वर्य निस्सीम और अनन्त हैं ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

ननु यदि प्रपञ्चो नाम नास्त्येव तदाऽसता तेन न चैतन्यस्य संबन्धगन्धोऽपि तर्हि किमपराद्धं जीवेन यतोऽयं संसरति किं वा बहुपुण्यमीश्वरस्य यतो नित्यमुक्तः किंविषयं च तदा कर्मकाण्डमित्यपेक्षायां जीवेश्वरविशेषं 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति', 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णाम्' इत्याद्या वदन्तीत्याह-

स यदजयेति । स तु जीवो यद्यस्मादजया मायया अजामविद्यामनुशयीतालिङ्गेत्ततो गुणांश्च देहेन्द्रियादीन् जुषन् सेवमान आत्मतयाध्यस्यंस्तदनु तदनन्तरं सरूपतां तद्धर्मयोगं च जुषन्नपेतभगः पिहितानन्दादिगुणः सन् मृत्युं संसारं भजति प्राप्नोति । तद्विषयमेव च कर्मकाण्डमिति भावः । त्वमुत त्वं नु जहासि तामजां मायाम् । ननु सा मय्येवास्ति कथं त्यागस्तत्राह-अहिरिव त्वचमिति । अयं भावः-यथा भुजङ्गः स्वगतमपि कञ्चुकं गुणबुद्ध्या नाभिमन्यते तथा त्वमजाम् । न हि निरन्तराह्लादि संवित्कामधेनुवृन्दपतेरजया कृत्यमिति तामुपेक्षस इति । कुत एतत्तदाह-आत्तभगो नित्यप्राप्तैश्वर्यः । महसि परमैश्वर्येऽष्टगुणितेऽणिमाद्यष्टविभूतिमति महीयसे पूज्यसे विराजसे । कथंभूतः । अपरिमेयभगोऽपरिमितैश्वर्यः । न ह्यन्येषामिव देशकालादिपरिच्छिन्नं तवाष्टगुणितमैश्वर्यमपि तु परिपूर्णस्वरूपानुबन्धित्वादपरिमितमित्यर्थः । नृत्यन्ती तव वीक्षणाङ्गणगता कालस्वभावावादिमिवान्सत्त्वरजस्तमोगुणमयानुन्मीलयन्ती बहून् । मामाक्रम्य पदा शिरस्यतिभरं संमर्दयन्त्यातुरं माया ते शरणं गतोऽस्मि नृहरे त्वामेव तां वारय ।।२५।।३८।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि यदि प्रपञ्च नहीं है तब उसके असत् होने के कारण उसके साथ चैतन्य का गन्ध भी नहीं होगा । तो फिर जीव का कौन सा अपराध है कि वह संसार में संसरण करता है ? अथवा ईश्वर बहुतपुण्यवान होने के कारण वे नित्यमुक्त हैं ? तथा कर्मकाण्ड का विषय क्या है ? इस तरह की अपेक्षा होने पर श्रुति जीव तथा ईश्वर में होने वाली विशेषताओं का वर्णन ये श्रुतियाँ करती हैं । **द्वा सुपर्णा० इत्यादि** अर्थात् इस शरीर रूपी वृक्ष पर जीवात्मा और परमात्मा इन दो पक्षियों का निवास हैं वे दोनों एक साथ आपस में मित्रभाव से रहते हैं । उन दोनों में से जीवात्मा अपने कर्म फलों सुख दु:ख का भोग करता है और परमात्मा कर्म फलों से असम्पृक्त रहकर देदीप्यमान रहता है । **अजामेकाम्: इत्यादि** प्रकृति अजा एवं एक है । वह सत्त्वादि गुणों वाली है । वह अपने ही समान महदादि प्रजाओं की सृष्टि करती है इत्यदि श्रुतियाँ जीव, ईश्वर और माया के स्वरूप विशेष को बतलाती है । इस अर्थ को श्रुतियाँ **स यदजया इत्यादि** श्लोक से बतलाती हैं । वे कहती हैं- वह जीव जब माया से प्रेरित होकर अविद्या का सेवन करता है तथा अविद्या के कर्म देह इन्द्रिय आदि का प्रेम पूर्वक सेवन करता है उस समय वह देहादि को ही अपने अप को समझने लगता है, उस समय उसके स्वरूपभूत ज्ञान आनन्दादि गुण ढँक जाते हैं और वह जन्म एवं मृत्यु के चक्र रूप संसार में संसरण करने लगता है । उसके विषय भूत कर्मकाण्ड में उलझ जाता है । आप तो उस माया तथा अविद्या का परित्याग कर देते हैं । यदि कहें कि मुझमें ही रहने वाली माया का परित्याग कैसे कर सकता हूँ ? इस पर श्रुति ने कहा **अहिरिवत्वचम्** अर्थात् जिस तरह सर्प केचुल को छोड़ देता है, उससे कोई सम्बन्ध नहीं रखता है । **अयम्भावः इत्यादि** कहने का अभिप्राय है कि जिस तरह सर्प अपने शरीर में रहने वाले भी केचुल में गुणबुद्धि से अपना नहीं मानता है उसी तरह आप भी इस माया को त्याग देते हैं । सदैव आनन्दप्रदान करने वाली संवित् रूप कमधेनु के स्वामी आप है । अतएव आप इस अविद्या से अपने किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं मानते हैं । अतएव आप उसकी उपेक्षा कर देते हैं । कोई यदि यह पूछे कि ऐसा क्यों ? तो इस पर श्रुति कहती है- **आतभगः** अर्थात् आपको ऐश्वर्य तो सदा सर्वदा प्राप्त है । आप महान् परमैश्वर्य रूप अणिमादि आठ (महिमा, गरिया, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य ईशित्व और (वशित्व) ऐश्वर्यों से सम्पन्न हैं । ये सिद्धि आपके स्वरूप से सम्बन्ध रखने वाली हैं । अतएव ये सब नि:सीम आपकी विभूतियाँ है । दूसरों के समान ये देश और काल से सीमित नहीं है ।।३८।। **नृत्यन्ती तववीक्षणा...... वारय ।।२५।।३८।।** अर्थात् हे प्रभो आपकी यह माया आपकी दृष्टि के आङ्गन में आकर नाच रही हैं और काल स्वभाव आदि के द्वारा सत्त्वगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी अनेकानेक भावों का प्रदर्शन कर रही है । साथ ही यह मेरे सिर पर सवार होकर मुझ आतुर को बल पूर्वक रौंद रही है । प्रभो नृसिंह मैं आपकी शरण में आया हूँ । आप ही इसे रोक दीजिये ।।२५।।३८।।

यदि न समुद्धरन्ति यतयो हृदि कामजटा दुरधिगमोऽसतां हृदि गतोऽस्मृतकण्ठमणिः ।
असुतृपयोगिनामुभयतोऽप्यसुखं भगवन्ननपगतान्तकादनधिरूढपदाद्भवतः ॥३९॥

अन्वयः— यदि यतः हृदि कामजटा न समुद्धरन्ति तदा असतां हृदिगतो दुरधिगमः, अस्मृतकण्ठमणिः । हे भगवन् असुतृपयोगिनां उभयतोऽपि असुखम् अनपगतान्तकादनधिरूढपदाद् भवतः ॥३९॥

अनुवाद— हे प्रभो ! यदि मनुष्य योगी यति होकर भी अपने हृदय की विषय वासनाओं को नहीं उखाड़ फेंकता है तो फिर उन असाधकों के हृदय में रहकर भी वैसे ही दुर्लभ है जैसे अपने गले में मणि पहने रहने पर भी याद नहीं रहने पर भी उसे इधर-उधर ढूंढते फिरता हो । जो साधक अपनी इन्द्रियों को तृप्त करने में ही लगे हों, विषयों से विरक्त नहीं हों रहे हो उन्हें जीवन भर तथा जीवन के बाद भी दुःख ही दुःख भोगना पड़ता है। क्योंकि वे साधक नहीं घमण्ड़ी हैं । ऐसे लोगों को रिझाने धन कमाने में होने वाले कलेश को उठाना पड़ता है । उन्हें अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होने तथा धर्म कर्म का उल्लंघन करने से पर लोग में प्राप्त होने वाला नरक आदि का भय बना ही रहता है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

एवं तावदुक्तसाधनकदम्बेन ये भगवन्तं भजन्ति ते मृत्युं तरन्ति इतरे संसरन्तीत्युक्तम्, इदानीं ये बहिःसङ्गं परित्यज्य भगवन्मार्गे प्रवृत्ता अपि कथंचिदन्तर्वान्ताशिनः कामान्न मुञ्चन्ति न भगवन्तं प्राप्नुवन्ति न चेह सुखं लभन्ते केवलं कुयोनीरेव प्राप्नुवन्ति तान् शोचन् 'कामान् यः कामयते मन्यमानः सः कर्मभिर्जायते तत्र तत्र' इत्यादिश्रुत्यर्थमाह—यदि न समुद्धरन्तीति। हे भगवन्, ये यतयो हृदि स्थिताः कामजटाः कामस्य मूलानि वासना यदि न समुद्धरन्ति नोत्पाटयन्ति तेषामसतां भवान् हृदि गतोऽपिदुरधिगमो दुष्प्रापः । कथम् । अस्मृतकण्ठमणिर्विस्मृतो यः कण्ठमणिस्तत्तुल्यः । स यथा कण्ठे वर्तमानोऽप्यस्मृतश्चेदप्राप्ता इव भवति तद्वदिति । न केवलमेतावत्किंत्वसुतृपयोगिनामिन्द्रियतर्पणपराणां योगच्छद्मनामुभयतोऽप्यसुखमिहामुत्र च दुःखमेव, तदाह—अनपगतान्तकादनिवृत्तान्मृत्योः । लोकाराधनधनार्जनादिक्लेशाद्योगवैभवप्राकट्यभयाच्चेह तावद्दुःखम् । भवत ईश्वरादपि दुःखम् । कथंभूतात् । अनधिरूढपदात् अनधिरूढं पदं स्वरूपं यस्य तस्मात् । त्वत्स्वरूपप्राप्त्यभावादविद्यावद्विषयत्वेन प्राप्तनिजधर्मातिक्रमनिबन्धनत्वाद्दण्डरूपनरकप्राप्तेरमुत्राप्यसुखमित्यर्थः । दम्भन्यासमिषेण वञ्चितजनं भोगैकचिन्तातुरं संमुह्यन्तमहर्निशं विरचितोद्योगक्लमैराकुलम् । आज्ञालङ्घिनमज्ञमज्ञजनतासंमाननासन्मदं दीनानाथ दयानिधान परमानन्द प्रभो पाहि माम् ।।२६।।३९।।

भाव प्रकाशिका

ऊपर के श्लोकों में यह कहा जा चुका है उक्त साधन समूह के द्वारा जो लोग श्रीभगवान् का भजन करते हैं वे संसार सागर को पार कर जाते हैं और जो लोग ऐसा नहीं करते हैं । वे जन्म मरण के चक्र रूप इस संसार में संसरण करते रहते हैं । इस श्लोक में यह बतलाया जा रहा है कि जो लोग ऊपर से तो संसार की आसक्ति का त्याग किए हैं किन्तु भीतर से वमन भक्षण का काम करते हैं, विषय भोगों की कामना का परित्याग नहीं करते हैं वे न तो श्रीभगवान् को ही प्राप्त करते हैं और न उन्हें संसार का ही सुख प्राप्त होता है । वे तो सदा निन्दित योनियों को ही प्राप्त करते रहते हैं । ऐसे जीवों के प्रति शोंक करते हुए कहते हैं- जो विभिन्न प्रकार की कामनाओं को करते रहते हैं । वे विषयों के दोषों पर ध्यान नहीं देकर केवल विषय गुणों का ही चिन्तन करते रहते है, ऐसे लोग विभिन्न निन्दित योनियों में जन्म लेते रहते हैं । इत्यादि श्रुतियों के अर्थ को **यदिन समुद्धरन्ति इत्यादि** से कहा गया है इसका अर्थ है कि जो योगी यति अपने अन्तःकरण में विद्यमान कामनाओं और कामनाओं के मूल वासना का परित्याग नहीं करते हैं, उन असत् पुरुषों के हृदय में रहकर भी आप उनको प्राप्त नहीं होते हैं। प्रश्न होता है कि किस तरह दुष्प्राप्य हो जाते हैं ? भगवान् उसके उत्तर में श्रुति कहती है जैसे कोई अपने गले में पहनी हुई मणि को भूल जाय और उसे इधर-उधर खोजता फिरे उसी तरह । उसके लिए जिस तरह गले में विद्यमान भी मणि याद नहीं आने के कारण अप्राप्त

ही रहती है । उसी तरह हृदय में विद्यमान परमात्मा उसके लिए दुष्प्राप्य हो जाते हैं । केवल इतना ही नहीं किन्तु जो योगी योग के बहाने केवल अपनी इन्द्रियों को ही तृप्त करते रहते हैं, वे लोग लोक तथा परलोक दोनों में केवल दुःख को ही प्राप्त करते हैं । इसी बात की श्रुतियों ने श्रीभगवान् से कहा- **अनपगतान्तकादनिवृत्तान्मृत्योः** उन लोगों को लीकाराधनोपयोगी धन का अर्जन करने में होने वाले क्लेशों से भोग के वैभव के प्रकट्य का भय बना रहता है । किञ्च परलोक में आप (परमात्मा) भी दुख देते हैं । कैसे परमात्मा से ? तो इसके उत्तर में श्रुतियाँ कहती है **अनधिरूढपदात्** अर्थात् स्वस्वरूप तथा परस्वरूप का ज्ञान नहीं होने के कारण अर्थात् आप परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान नहीं हो सकने के कारण अविद्या मिश्रित विषयोपभोग से अपने धर्म का उल्लंघन करने से आप उसे दण्ड रूप नरक प्रदान करते हैं । अतएव उसे परलोक में भी दुःख ही मिलता है ।।३९।। **दम्भन्यासमिषेण वञ्चितजनं.......पाहिमाम् ।।२६।।३९।।** अर्थात् हे प्रभो ! मैं दम्भपूर्ण संन्यास के बहाने लोगों को ठग रहा हूँ । एक मात्र भोग की इच्छा से ही आतुर हूँ तथा अहर्निश विविध प्रकार के उद्योगों की रचना की थकावट से व्याकुल तथा बेसुध हो रहा हूँ । मैं आपकी आज्ञाओं का उल्लंघन अज्ञानवशात् करता रहता हूँ । और अज्ञानी लोगों से प्राप्त सम्मान से 'मैं सन्त हूँ' इस प्रकार का घमण्ड कर बैठा हूँ । हे दीनानाथ! दयासागर परमानन्द प्रभो आप मेरी रक्षा करें ।।२६।।३९।।

त्वदवगमी न वेत्ति भवदुत्थशुभाशुभयोर्गुणविगुणान्वयांस्तर्हि देहभृतां च गिरः ।
अनुयुगमन्वहं सगुण गीतपरम्परया श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः ।।४०।।

अन्वयः— त्वदवगमी भवदुत्य शुभाशुभयोः गुणविगुणान्वयान् न वेत्ति, तर्हि देहभृतां च गिरः न वेत्ति, अनुयुगम् अन्वहं सगुण गीतपरम्परया श्रवणभृतः यतः त्वमपवर्ग गतिः मनुजैः ।।४०।।

अनुवाद— हे प्रभो ! आपके वास्तविक स्वरूप को जानने वाला पुरुष आपके द्वारा प्रदत्त पुण्य पाप रूप फलों को नहीं भोगता है, क्योंकि वह भोक्तृत्व की भावना से ऊपर उठ जाता है । उस समय विधि एवं निषेध के प्रतिपादक शास्त्र भी उससे निवृत्त हो जाते हैं, क्योंकि वे देहाभिमानियों के लिए हैं । जिसको अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं हुआ है वह भी यदि प्रतिदिन आपकी प्रत्येक युगों में की हुई लीलाओं और गुणों का गान सुनकर उसके द्वारा आपको अपने हृदय में बैठा लेता है तो हे अचिन्त्य गुणों के एकमात्र आश्रय प्रभो आपका वह भक्त भी पाप पुण्य के फलों को नहीं भोगता हैं । क्योंकि आप ही उनके मोक्ष स्वरूप गति हैं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

ननु यतेर्न किमपि कृत्यमस्ति प्रारब्धमेव सुखोपभोगेनापक्षय्यते अतः किमिति वृथा शप्यते उभयतोऽप्यसुखमिति, श्रूयते च 'एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्' इत्यादि तत्राह-त्वदवगमीति । हे सगुण षड्गुणैश्वर्ययुक्त, त्वदवगमी त्वज्ज्ञानवान् भवदुत्थशुभाशुभयोर्भवतः कर्मफलदातुरीश्वराद्धेतोरुत्थयोराविर्भूतयोः शुभाशुभयोः प्राचीनपुण्यापुण्यकर्मणोः फलभूतान् गुणविगुणान्वयान्सुखदुःखसंबन्धान्न वेत्ति नानुसंधत्ते तर्हि तदानीं च देहभृतां देहाभिमानिनां प्रवृत्तिनिवृत्तिकरीर्गिरो विधिनिषेधलक्षणा न वेत्ति । विगतदेहाभिमानतया कार्याकार्यबोधाभावान्न नियुज्यत इत्यर्थः । युक्तं चैतत् । यतः कारणान्मनुजैरन्वहं श्रवणभृतः अनुदिनं श्रवणेन चेतसि धृतस्त्वं तेषामपवर्गगतिः अपवर्गरूपा गतिर्भवसि । कथम् । श्रवणभृतः अनुयुगं प्रतियुगं या गीतपरम्परा उपदेशसन्ततिस्तया, सत्संप्रदायानुसारेणेत्यर्थः । एतदुक्तं भवति-ये तावत्तत्त्वज्ञानिनो न तेषां कर्माधिकारशङ्कापि ये चानवरतं त्वत्कथाश्रवणादिनिष्ठास्तेषामप्यासन्नभवत्पदानां विधिनिषेधबाधः, इतरेषां तु योगच्छद्मनेन्द्रियलालसानामुभयतोऽप्यसुखमिति । अवगमं तव मे दिश माधव स्फुरति यत्र सुखासुखसङ्गमः । श्रवणवर्णनभावमथापि वा न हि भवामि यथा विधिकिङ्करः ।।२७।।४०।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि यति के लिए कुछ भी कर्तव्य नहीं है। यति तो प्रारब्ध कर्म को ही सुखोपभोग के द्वारा उसका अपक्षय करता है, अतएव तुम लोग व्यर्थ ही उसकी निन्दा क्यों करती हो कहती हो कि उसको लोक एवं परलोक दोनों में दु:ख की ही प्राप्ति होती है। श्रुति ही कहती है- **''एष नित्यो महिमाब्राह्मणस्य न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्।** अर्थात् ब्रह्मवेत्ता की यह नित्य महिमा सुनी जाती है कि कर्मों के द्वारा न तो उसका अभ्युदय होता है और न तो कर्मों के द्वारा उसकी अवनति होती है। इस पर श्रुतियाँ कहती हैं। **त्वदवगमीति** हे षड्गुणैश्वर्य युक्त प्रभो आपको जानने वाला मनुष्य कर्मफलों के प्रदाता आपसे प्राप्त होने वाले पुण्य-पाप रूप कर्मों के फलस्वरूप सुख एवं दु:खों का अनुभव नहीं करता है। उस अवस्था में वह देहाभिमानियों को अपना विषय बनाकर किसी कार्य में प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति करने वाले विधि निषेध वाक्यों का भी वह विषय नहीं रह जाता है। क्योंकि आपके उस प्रेमी भक्त का देहाभिमान समाप्त हो जाता है उसे कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान ही नहीं रह जाता है। और ऐसा होना उचित भी है। जिन मनुष्यों ने प्रतिदिन आपकी लीला कथा को सुनते रहने के कारण आपको अपने हृदय में बैठा लिया है ऐसे मनुष्यों के लिए मोक्ष रूप गति (प्राप्य) आप ही है। क्योंकि प्रत्येक युग में होने वाले उपदेश समूह के द्वारा सत्सम्प्रदायानुसार आपकी लीला कथा को सुनने के कारण। कहने का अभिप्राय है कि जो तत्त्वज्ञानी पुरुष है उन लोगों के विषय में कर्माधिकार की शङ्का भी नहीं की जा सकती है। जो लोग निरन्तर आपकी कथाओं का ही श्रवण करते रहते हैं उन लोगों के लिए भी सन्निकट में आपके चरण कमलों के विद्यमान रहने के कारण विधि निषेध वाक्यों का बाध हो जाता हैं दूसरे लोग जो योग के बहाने ऐन्द्रियिक भोगों को भोगते हैं उन लोगों को इस लोक में तथा परलोक दोनों में दु:ख की ही प्राप्ति होती है ॥४०॥
अवगमं तवमेदिश माधव....... विधिकिङ्करः।।२७।।४०।। हे माधव आप मुझे अपने स्वरूप का अनुभव कराइये जिससे फिर सुख-दु:ख की स्फूर्ति नहीं होती है। अथवा मुझे अपने गुणों के श्रवण और वर्णन का प्रेम ही दीजिए जिससे कि में विधि एवं निषेध का किङ्कर न होऊँ ॥२७॥४०॥

द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया त्वमपि यदन्तराऽण्डनिचया ननु सावरणाः ।
ख इव रजांसि वान्ति वयसा सह यच्छ्रुतयस्त्वयि हि फलन्त्यतन्निरसनेन भवन्निधनाः ॥४१॥

अन्वयः— द्युपतयः एव ते अन्तम् न ययुः अनन्ततया त्वमपि न यदन्तरा सावरणाः अण्डनिचयाः ननु वयसा खे रजांसि इव सह बन्ति यत् श्रुतयः तन्निरसनेन भवन्निधनाः त्वयि फलन्ति ॥४१॥

अनुवाद— हे भगवन्! इन्द्र ब्रह्मा आदि देवता भी आपकी थाह नहीं पा सके, यहीं नही, आप भी अपना अन्त नहीं पा सके हैं, क्यों आप तो अनन्त है। आप का अन्त है ही नहीं। हे प्रभो जिस तरह आकाश में हवा के वेग से धूल के नन्हें-नन्हें कण उड़ते रहते है उसी तरह आप में भी काल के वेग से अपने से उत्तरोत्तर दस गुने सात आवरणों के साथ असंख्य ब्रह्माण्ड एक ही साथ धूमते रहते हैं। इस तरह के आपकी सीमा कैसे मिल सकती है। अतएव हम श्रुतियाँ भी आपके स्वरूप का साक्षात् वर्णन नहीं कर सकती है। आपके अतिरिक्त वस्तुओं का निषेध करते-करते अन्त में अपना भी निषेध कर देती हैं। और आपमें ही अपने को खोकर सफल हो जाती हैं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

त्वदवगमी न वेत्ति सुखदु:खे न च विधिनिषेधावित्युक्तं तत्र ननु कथमवगन्तुं शक्यते दुरधिगमत्वस्योक्तत्वादित्येवमाशङ्क्य सत्यमेवमनवगाह्यमहिम्नो वाङ्मनसागोचरत्वादविषयत्वेनैव ज्ञानमिति दर्शयन् 'यदूर्ध्वं गार्गि दिवो यदर्वाक् पृथिव्या यदन्तरा द्यावापृथिवी इमे यद्भूतं भवच्च भविष्यच्च' इत्यादिश्रुतिप्रतिपादितमपरिमितं महिमानमाह-द्युपतय एवेति। हे भगवन्, ते अन्तं द्युपतयः स्वर्गादिलोकपतयो ब्रह्मादयो न ययुर्न प्रापुः। तत्कुतः। यदन्तवद्वस्तु तत्किमपि त्वं न भवसि। आस्तां द्युपतयो न

यथुरिति । यद्यस्मात्त्वमप्यात्मनोऽन्तं न यासि । कुतस्तर्हि सर्वज्ञता सर्वशक्तिता वाऽत आह-अनन्ततया अन्ताभावेन । न हि शशविषाणाज्ञानं सार्वज्ञ्यं तदप्राप्तिर्वा शक्तिवैभवं विहन्ति । अनन्तत्वमेवाह-यदन्तरेति । यस्य तवान्तरा मध्ये ननु अहो सावरणा उत्तरोत्तरं दशगुणसप्तावरणयुक्ता अण्डनिचया ब्रह्माण्डसमूहा वान्ति परिभ्रमन्ति । वयसा कालचक्रेण खे रजांसीव सह एकदैव नतु पर्यायेण । हि यस्मादेवमतः श्रुतयस्त्वयि फलन्ति तात्पर्यवृत्त्या पर्यवस्यन्ति । नतु साक्षाद्वदन्त्ययमेतावानिति। सगुणस्य गुणानन्त्यान्निर्गुणस्य चागोचरत्वात् । कथं तर्ह्यपदार्थे तात्पर्यमिति । तत्र विधिमुखवाक्ये भवेदयं नियमः पदार्थस्यैव वाक्यार्थत्वमिति। निषेधमुखे तु नायं नियम इत्याह-अतन्निरसनेनेति । 'अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि', 'अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्', 'अस्थूलमनणु' इत्यादिप्रकारेण लक्षणया च तत्त्वमसीत्यादयः पर्यवस्यन्ति । नच वाच्यं निषेधैः शून्यमेव ज्ञाप्यत इति । यतो भवन्निधनाः भवति त्वयि निधनं समाप्तिर्यासां तास्तथा । न हि निरवधिनिषेधः संभवत्यतोऽवधिभूते त्वयि फलन्तीत्यर्थः । द्युपतयो विदुरन्तमनन्त ते न च भवान्न गिरः श्रुतिमौलयः । त्वयि फलन्ति यतो नम इत्यतो जय जयेति भजे तव तत्पदम् ।।२८।।४१।।

भाव प्रकाशिका

इससे पहले के श्लोक में श्रुतियों ने श्रीभगवान् से कहा है कि हे प्रभो आपको जानने वाले पुरुष को सुख दु:खादि का अनुभव नहीं करना पड़ता है क्योंकि वह पुरुष विधि निषेध का विषय रह नहीं सकता है । यदि कहें कि मुझको तो दुरधिगम कहा गया अतएव कोई कैसे जान सकता है । इस तरह आशङ्का करके श्रुतियों ने कहा आपको अनवगाह्य महिमा सम्पन्न तथा मन और वाणी के अविषय रूप से ही बतलाते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य ने गार्गी से कहा **यदूर्ध्वं गार्गिदिवः इत्यादि** अर्थात् हे गार्गि जो वह अक्षर तत्त्व द्युलोक से भी ऊपर तथा पृथिवी के भी नीचे, जो द्युलोक और भूलोक की भी बीच में व्याप्त है तथा जो भूत, वर्तमान तथा भविष्य की सभी वस्तुओं में अन्तर्यामी रूप से व्याप्त है । इस तरह की सैकड़ों श्रुतियाँ आपकी अपरिमित महिमा का वर्णन करती हैं । श्रुतियों ने कहा इन्द्र, ब्रह्मा आदि देवता भी आपके अन्त का पता नहीं लगा सके । आप स्वयम् अपनी महिमा और अपना अन्त नहीं जानते है । उसका कारण है कि आप अनन्त हैं । जिसका अन्त है ही नहीं उसे कोई जान कैसे सकता है । यदि कहें कि तो फिर सर्वज्ञता अथवा सर्वशक्तिता की सिद्धि कैसे होगीं जो नहीं है उसको नहीं जानना ही सर्वज्ञता है । यदि कोई शशविषाण को नहीं जानता है तो उससे उसकी सर्वज्ञता की क्षति होती है क्या ? श्रीभगवान् की अनन्तता का ही प्रतिपादन करती हुई श्रुति कहती है- **यदन्तराऽण्डनिचयाः ननुसावरणाः** अर्थात् आपके भीतर ही उत्तरोत्तर दस गुना बड़े आवरणों से युक्त ब्रह्माण्ड समूह घूमते रहते हैं कालचक्र के द्वारा उसी तरह घूमते रहते हैं जिस तरह वायु के वेग से आकाश में असंख्य धूलकण घूमते रहते हैं । इसी तरह आपका वर्णन करती हुई श्रुतियाँ भी आपमें तात्पर्य वृत्ति से पर्यवसित हो जाती हैं । सगुण के ही अनन्त गुण हो सकते हैं निर्गुण ब्रह्म तो गुण का विषय बनता ही नहीं अतएव श्रुतियों का लक्षण अथवा किसी दूसरी वृत्ति से अपदार्थ में तात्पर्य कैसे हो सकता है ? इसका उत्तर यह कि विधि मुख वाक्य के होने पर ही पदार्थ का वाक्यार्थत्व का नियम है । निषेध मुख से वर्णन करने में यह नियम नहीं है । इस बात को श्रुतियों ने **अतन्निरसेनेन** पद के द्वारा कहा गया है । अतएव **अन्यदेवतद्विदितात् इत्यादि** अर्थात् वह ब्रह्मतत्त्व ज्ञात से भी भिन्न है तथा अज्ञात से भी भिन्न है। **अन्यत्रधर्माद० इत्यादि** अर्थात् वह परंब्रह्म धर्म से भी भिन्न है तथा अधर्म से भी भिन्न है । वह समस्त कार्यों और कारणों से भी भिन्न है वह स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों से भिन्न है, लक्षणा वृत्ति के द्वारा तत्त्वमसि इत्यादि वाक्यों का ब्रह्म में पर्यवसान होता है । **नच वाच्यम्० इत्यादि** यहाँ पर यह नहीं कहा जा सकता है । कि लक्षणा वृत्ति के द्वारा शून्य तत्त्व का ही बोध कराती है । **य तो भवन्निधनाः** अर्थात् आप में ही सभी श्रुतियों का पर्यवसान हो जाता है । निषेध नि:सीम होता हो ऐसी बात नहीं है । हे प्रभो आप ही सबों की सीमा हैं अतएव सभी श्रुतियाँ आपमें ही जाकर लीन हो जाती हैं । **द्युपतयो विदुरन्तमनन्तते.........तत्पदम् ।।२८।।४१।।** अर्थात् हे अनन्त ब्रह्मा आदि

देवता आपके अन्त को नहीं जानते हैं और न तो आप ही जानते हैं। वेदों की मुकुटमणि उपनिषदें भी नहीं जानती हैं, क्योंकि आप अनन्त हैं। उपनिषदें नमो नमः जय हो जय हो, जय हो कहकर आप में चरितार्थ होती हैं, इसलिए मैं भी नमो नमः जय हो, जय हो कहकर आपके चरण कमल की उपासना करता हूँ ॥२८॥४१॥

श्रीभगवानुवाच

इत्येतद्ब्रह्मणः पुत्रा आश्रुत्यात्मानुशासनम्। सनन्दनमथानर्चुः सिद्धा ज्ञात्वात्मनो गतिम् ॥४२॥

अन्वयः— ब्रह्मणः पुत्राः इत्येतत् आत्मानुशासनम् आश्रुत्य आऽमनो गतिं ज्ञात्वा सिद्धाः सनन्दनम् आनर्चुः ॥४२॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे देवर्षे ! इस प्रकार ब्रह्माजी के पुत्र सनकादि ऋषियों ने आत्मा और ब्रह्म की एकता का उपदेश सुनकर आत्मा के स्वरूप को जाना और नित्य सिद्ध होने पर भी इस उपदेश से कृतकृत्य होकर उन लोगों ने सनन्दन महर्षि की पूजा की ॥४२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४२॥

इत्यशेषसमाम्नायपुराणोपनिषद्रसः । समुद्धृतः पूर्वजातैर्व्योमयानैर्महात्मभिः ॥४३॥

अन्वयः— इति पूर्वजातैः व्योमयानैः महात्मभिः अशेष समाम्नाय पुराणोपनिषद्रसः समुद्धृतः ॥४३॥

अनुवाद— इस प्रकार सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न होने वाले आकाशगामी सनकादि महात्माओं ने सम्पूर्ण वेद, पुराण और उपनिषदों के तात्पर्य जान लिया है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

इत्यशेषसमाम्नायपुराणोपनिषद्रस इति, सर्वश्रुतिपुराणरहस्यतात्पर्यमित्यर्थः ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह सम्पूर्ण वेदों पुराणों तथा उपनिषदों के तात्पर्य को ॥४३॥

त्वं चैतद्ब्रह्मदायाद श्रद्धयात्मानुशासनम्। धारयंश्चर गां कामं कामानां भर्जनं नृणाम् ॥४४॥

अन्वयः— हे ब्रह्मदायाद त्वं च एतत् नृणाम् कामानां भर्जनम् आत्मानुशासनम् श्रद्धया धारयन्गाम् कामं चर ॥४४॥

अनुवाद— हे ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी ! आप भी इस मनुष्यों की समस्त कामनाओं को भस्म कर देने वाले आत्मोपदेश को अपने हृदय में धारण करके पृथिवी पर स्वेच्छया विचरण करते रहें ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मदायादेति ब्रह्मैव दायमिवायत्नप्राप्यमत्ति सेवत इति तथा। ब्रह्मपुत्रेति वा ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मादायाद अर्थात् विना प्रयास के ही प्राप्त इस ब्रह्म का सेवन करने वाले नारद। अथवा ब्रह्माजी के पुत्र ॥४४॥

श्रीशुक उवाच

एवं स ऋषिणादिष्टं गृहीत्वा श्रद्धयात्मवान्। पूर्णः श्रुतधरो राजन्नाह वीरव्रतो मुनिः ॥४५॥

अन्वयः— राजन् आत्मवान् पूर्णः श्रुतधरः वीरव्रतः मुनिः एवं ऋषिणा आदिष्टं श्रद्धया गृहित्वा आह ॥४५॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् नारदजी संयमी ज्ञानी, पूर्णकाम, ब्रह्मचारी श्रीनारदजी जो कुछ भी सुनते हैं उसे धारण

कर लेते हैं । वे इस प्रकार से भगवान् नारायण के द्वारा उपदिष्ट इस आत्मोपदेश को श्रद्धा पूर्वक धारण करके उनसे कहे ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

पूर्णः कृतकृत्यः । श्रुतधरः श्रुतमर्थं मनसि धारयन् । वीरव्रतो नैष्ठिकः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

पूर्ण अर्थात् पूर्णकाम । श्रुतधरः अर्थात् सुनी हुई बात को अपने मन में धारण कर लेने वाले । वीरव्रतः अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी ।।४५।।

नारद उवाच

नमस्तस्मै भगवते कृष्णायामलकीर्तये । यो धत्ते सर्वभूतानामभवायोशतीः कलाः ।।४६।।

अन्वयः— तस्मै अमलकीर्तये भगवते कृष्णाय नमः यः सर्वभूतानाम् अभवाय उशतीः कलाः धत्ते ।।४६।।

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— जिनकी कीर्ति पवित्र है तथा जो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है। वे भगवान् सभी जीवों को मुक्ति प्रदान करने के लिए अत्यन्त कमनीय कलावतार को धारण किया करते हैं ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

नम इति श्रीकृष्णावतारतया नारायणं नमस्यति । उक्तं हि- 'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्' इति ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

नमः तस्मैः इस श्लोक के द्वारा भगवान् के श्रीकृष्णावतार के रूप में भगवान् नारायण को नमस्कार करते हैं कहा भी गया है **एतेचांशकालाः प्रोक्ताः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्** । अर्थात् ये सभी श्रीभगवान् के अंशावतार कलावतार हैं किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण तो साक्षात् भगवान् नारायण स्वरूप हैं ।।४६।।

इत्याद्यमृषिमानम्य तच्छिष्यांश्च महात्मनः । ततोऽगादाश्रमं साक्षात्पितुर्द्वैपायनस्य मे ।।४७।।

अन्वयः— इति अद्यम् ऋषिम् तत् शिष्यान् च आनम्य ततः महात्मनः साक्षात् मे पितुः द्वैपायनस्य आश्रमम् आगात्।।४७।।

अनुवाद— इस तरह से आदि ऋषि भगवान् नारायण तथा उनके शिष्यों को नमस्कार करके देवर्षि साक्षात् मेरे पिता व्यासजी के आश्रम में गये ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

साक्षात्पितुरिति । योनिव्यवधानं विना जनकस्य अग्निमन्थनावसरे कथंचिदरणौ रेतः पतितं ममन्थ व्यासस्तदैव तत उत्पन्नः शुक इति हि वदन्ति ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

व्यासजी मेरे साक्षात् पिता है क्योंकि मुझें योनि में नहीं जाना पड़ा । अग्नि मन्थन के समय व्यासजी का रेतस अरणि पर गिर पड़ा तो व्यासजी ने उसका मन्थन किया उसी से शुकदेवजी की उत्पत्ति हुई यही लोग बतलाते हैं ।।४७।।

सभाजितो भगवता कृतासनपरिग्रहः । तस्मै तद्वर्णयामास नारायणमुखाच्छ्रुतम् ।।४८।।

अन्वयः— भगवता सभाजितः कृतासन परिग्रहः तस्मै यत् नारायण मुखात् श्रुतम् तत् वर्णयामास ।।४८।।

अनुवाद— भगवान् व्यासजी ने देवर्षि नारदजी का सत्कार किया और उनके द्वारा दिये गये आसन को स्वीकार

करके नारदजी उस पर बैठ गये । इसके पश्चात् वे जो भगवान् नारायण के मुख से सुने थे वह सबकुछ मेरे पिता व्यासजी को सुनाये ।।४८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४८।।

इत्येतद्वर्णितं राजन् यन्नः प्रश्नः कृतस्त्वया । यथा ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणेऽपि मनश्चरेत् ।।४९।।

अन्वयः— राजन् यत् नः त्वया प्रश्नः कृतः इति एतत् वर्णित; । यथा अनिर्देश्ये निर्गुणे अपि ब्रह्मणि मनः चरेत्।।४९।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् आपने मुझसे प्रश्न किया था उसका उत्तर मैने दे दिया कि किस प्रकार जिनका निर्देश नहीं किया जा सकता है जो सभी प्रकृत गुणों से रहित हैं ऐसे भगवान् नारायण में मन कैसे प्रवेश कर सकता है, यही आपका प्रश्न था ।।४९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४९।।

योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधनेयोऽव्यक्तजीवेश्वरो यः,
सृष्ट्वेदमनु प्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः ।
यं संपद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा तं,
कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे नारदनारायण संवादे वेदस्तुतिर्नाम सप्ताशीतितमोऽध्याय:।।८७।।

अन्वयः— यः अस्योत्प्रेक्षकः य; आदि मध्यनिधने यः अव्यक्त जीवेश्वरः यः इदम् सृष्ट्वा अनुप्रविश्य, येन ऋषिणा चक्रे पुरः चक्रे ताः शास्ति अनुशयी यं सम्पद्य अजाम् जहाति, यथाकुलायं सुप्तः कैवल्यनिरस्य योनिमभयं तम् हरिम् अजस्रं ध्यायेत् ।।५०।।

अनुवाद— परीक्षित् जो भगवान् इस विश्व का सत्य सङ्कल्प करते हैं । तथा इस विश्व के आदि, मध्य तथा अन्त में रहते हैं । वे ही भगवान् प्रकृति और जीव दोनों के स्वामी हैं । श्रीभगवान् ही इस विश्व की सृष्टि करके इसके भीतर जीव के साथ प्रवेश कर गये । शरीरों का निर्माण करके वे ही उन सबों का नियन्त्रण करते हैं। जिस तरह सुषुप्ति में सोया हुआ मनुष्य अपने शरीर का अनुसन्धान करके उसका परित्याग करता है, उसी तरह श्रीभगवान् को प्राप्त करके यह जीव माया से मुक्त हो जाता है । भगवान् ऐसे विशुद्ध केवल तत्त्व हैं कि उनमें जगत् के कारण माया अथवा प्रकृति का विल्कुल अस्तित्व नहीं है । वस्तुत: वे अभय स्थान हैं । उन श्रीहरि का सदैव चिन्तन करते रहना चाहिए ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के नारद नारायण संवादान्तर्गत वेदस्तुति नामक सतासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८७।।

भावार्थ दीपिका

समस्तवेदस्तुत्यर्थं संगृह्यानुस्मारयति-योऽस्योत्प्रेक्षक इति । योऽस्य विश्वस्योत्प्रेक्षकः । एवमनुशायिनां समस्तपुरुषार्थसिद्धये सृष्टिस्थितिप्रलयादि प्रापणीयमित्यालोचक इत्यर्थः । अनेन निमित्तत्वमुक्तम् । एवमालोच्यास्यादिमध्यनिधने आदिर्जन्म मध्यः पालनं निधनमन्तः एतेषु कर्मसु यो वर्तते । अनेनोपादानत्वमुक्तम् । ननु प्रकृतिपुरुषयोरुपादाननिमित्तत्वे प्रसिद्धे, सत्यम्, तयोरपि तत एवोद्भूतत्वान्मूलकारणं स एवेत्याह-योऽव्यक्तजीवेश्वर इति । प्रवेशनियमने दर्शयति -य इति । पूर्वोक्तप्रकारेणेदं सृष्ट्वा यदर्थमेतत्सृष्टं तेन ऋषिणा सृष्टे कार्येऽहमिति दर्शनात् ऋषिर्जीवस्तेन सहानुप्रविष्टः पुरः शरीराणि तस्य भोगायतनानि चक्रे ताः पुरः शास्ति तस्य भोगं ददत्परिपालयति । उपासकस्य च कैवल्यरूपो भवतीत्याह-यं संपद्येति । यं संपद्य प्राप्यानुशयी अन्वनु दण्डवत्प्रणामैश्चरणमूले शेते इति तथा स जीवोऽजां कार्यकारणरूपामविद्यां त्यजति । ननु ब्रह्मसंपन्नस्यापि जीवस्य तत्संबन्धो

दृश्यतेऽत आह-सुप्तः कुलायं यथेति । अयं भावः-यथा सुप्तं शरीरवन्तमन्ये पश्यन्ति स तु नात्मानं तथा पश्यति एवं जीवन्मुक्तमप्यन्ये देहवन्तं पश्यन्ति स तु न किंचित्पश्यतीति तं हरिमजस्रमनवरतं ध्यायेत् । किमित्यत आह-अभयं न भयं यस्माद्भयनिवर्तकमित्यर्थः । कुत एतत् । कैवल्यनिरस्तयोनिं कैवल्येनाप्रच्युतस्वरूपावस्थानेन निरस्ता तिरस्कृता योनिर्मूलकारणं माया येन तम् । सर्वश्रुतिशिरोरत्ननीराजितपदाम्बुजम् । भोगयोगप्रदं वन्दे माधवं कर्मिनम्रयोः ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्ताशीतितमोऽध्यायः ।।८७।।

भाव प्रकाशिका

योऽस्योत्प्रेक्षकः इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीशुकदेवजी सम्पूर्ण वेदस्तुति के अर्थ का संग्रह करके स्मरण कराते हैं । जो श्रीभगवान् इस सम्पूर्ण जगत् का सङ्कल्प करते हैं । इस तरह जीवों के समस्त पुरुषार्थों की सिद्धि के लिए सृष्टि, स्थिति तथा प्रलय आदि का सङ्कल्प करते हैं । श्लोक के इतने अंश से श्रीभगवान् को जगत् का निमित्त कारण बतलाया गया है । जो इस जगत् के जन्म, मध्य तथा उपसंहार इन सभी कर्मों को करते हैं । इस तरह उन्होंने श्रीभगवान् को जगत् का उपदान कारण बतलाया है । यदि कोई कहे कि जगत् के उपदान और निमित्त कारण रूप से प्रकृति एवं पुरुष हैं यह प्रसिद्ध है अतएव परमात्मा को उपादानकारण और निमित्तकारण कैसे कहा जा सकता है । इसका उत्तर है कि आपकी बात पूर्ण सत्य नहीं है । प्रकृति और पुरुष भी तो परमात्मा से ही उत्पन्न होते हैं । अतएव मूलकारण तो परमात्मा ही हैं । इस बात को शुकदेवजी ने कहा कि जो परमात्मा प्रकृति एवं पुरुष के भी स्वामी हैं । श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् में प्रवेश करके इसका नियमन करते है । इस बात को **यः सृष्ट्वेदम्** इत्यादि से बतलाया गया है । पूर्वोक्त प्रकार से जगत की सृष्टि करके, जिसके लिए जगत् की सृष्टि की गयी है उस जीव के साथ परमात्मा इस जगत् में अन्तर्यामी रूप से प्रविष्ट हैं । परमात्मा शरीरों की सृष्टि करके उसके लिए भोग तथा आश्रय का निर्माण करके उन शरीरों के लिए भोग प्रदान करते हुए उसका पालन करते हैं । **यं सम्पद्य० इत्यादि** के द्वारा यह बतलाया गया है कि वे ही भगवान् उपासक के लिए कैवल्य रूप हो जाते हैं । उन श्रीभगवान् को प्राप्त करके तथा उनको साष्टाङ्ग प्रणाम करके वह जीव माया मुक्त हो जाता है। **ननु ब्रह्मसम्पन्नस्य०** प्रश्न होता है कि जिस जीव ने ब्रह्म को प्राप्त कर लिया है उसका ब्रह्म से सम्बन्ध हो जाता है यह श्रुति कहती है इस पर कहते हैं- **सुप्तः कुलायं यथा** अर्थात् जैसे सोये शरीरधारी को दूसरे नहीं देखते हैं वह भी अपने को नहीं देखता है इसी तरह जीवन्मुक्त देहधारी को दूसरे नहीं जान पाते हैं । जीवनमुक्त भी कुछ नहीं देखता है । उन श्रीहरि का निरन्तर ध्यान करना चाहिए । प्रश्न होता है कि क्यों ध्यान करना चाहिए ? तो इसका उत्तर है कि वे अभय हैं अर्थ सभी भयों को दूर करने वाले हैं । यह कैसे ? तो इसका उत्तर है । **कैवल्य निरस्तयोनिम्** अर्थात् कैल्यप्राप्त पुरुष सदा अपने स्वरूप में स्थित रहने के कारण अपने कारण भूत माया का परित्याग कर देता है । **सर्वश्रुतिशिरोरत्न० इत्यादि** अर्थात् सभी श्रुतियों के मुकुट मणियाँ ही जिनके चरण कमलों की सदा आरती किया करती हैं उन संसारी मनुष्यों को भोग तथा मुमुक्षु जीवों को योग प्रदान करने वाले भगवान् माधव की शरणागति जीवों पर कृपा करने वाले चरणों की मैं वन्दना करता हूँ ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के सतासीवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।८७।।

अठासीवाँ अध्याय

शिवजी के सङ्कट की निवृत्ति

राजोवाच

देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम् । प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥१॥

अन्वयः— देवासुरमनुष्येषु ये अशिवं शिवं भजन्ति ते प्राय: धनिन: भोगा: लक्ष्म्या; पतिं हरिं तु न ॥१॥

राजा परीक्षित ने कहा

अनुवाद— भगवान् देवता, असुर तथा मनुष्यों में से जो कोई सभी भोगों का परित्याग करने वाले भगवान् शिवजी की जो आराधना करते हैं वे प्राय: धनी और भोग सम्पन्न होते हैं किन्तु लक्ष्मीपति श्रीहरि की उपासना करने वाले प्राय: धनी और भोग सम्पन्न नहीं होते हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टाशीतितमे विष्णुभक्त: कैवल्यमश्नुते । ततोऽर्वाग्देवभक्तस्तु विभूतिमिति वर्ण्यते ॥१॥ हरिर्भजतां मुक्तिद इत्युक्तमभयं ध्यायेदजस्रं हरिमिति तत्र शङ्कतेदेवासुरेति । अशिवमवधीरितभोगम् । भोगा भोगिन: । लक्ष्म्याः पतिं सर्वभोगयुक्तम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

अठासीवें अध्याय में इस बात का वर्णन किया जाता है कि भगवान् विष्णु का जो भक्त होता है वह मोक्ष को प्राप्त करता है और उनसे छोटे देवताओं के जो भक्त होते हैं वे धनी और भोग सम्पन्न होते हैं ॥१॥ श्रीहरि अपना भजन करने वालों को मुक्ति प्रदान करते हैं । इस बात को श्रीशुकदेवजी ने पीछे के अध्याय में कहा है कि अभयंध्यायेदजस्रं हरिमिति । अर्थात् भक्तों के भय को दूर करने वाले श्रीहरि का निरन्तर ध्यान करना चाहिए। उसके विषय में राजा परीक्षित् देवासुर इत्यादि श्लोक से शङ्का करते हैं । अशिवम् अर्थात् भोगों का तिरस्कार करने वाले । भोगा: अर्थात् भोग सम्पन्न। लक्ष्म्या: पतिम् अर्थात् सभी भोगों से सम्पन्न ॥१॥

एतद्वेदितुमिच्छाम: संदेहोऽत्र महान्हि न: । विरुद्धशीलयो: प्रभ्वोर्विरुद्धा भजतां गति: ॥२॥

अन्वयः— एतत् वेदितुम् इच्छाम: अत्र न: महान् सन्देह: विरुद्धशीलयो प्रभ्वो: भजतां विरुद्धा गति ॥२॥

अनुवाद— हे भगवन् हमे इस विषय में महान सन्देह है अतएव हम इस बात को जानना चाहते है । भगवान् श्रीहरि और भगवान् शिव दोनों जगत् के स्वामी हैं और दोनों का परस्पर विरुद्ध शील है । शङ्करजी भोगों का परित्याग किए बैठे हैं और श्रीहरि तो लक्ष्मीजी के पति होने के कारण सर्वभोग सम्पन्न हैं । लेकिन देखा यह जाता है कि शङ्करजी के भक्त धनी और भोग सम्पन्न हैं जबकि श्रीहरि के आराधक प्राय: निर्धन और भोग रहित होते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

श्रीशुक उवाच

शिव: शक्तियुत: शश्वत्त्रिलिङ्गो गुणसंवृत: । वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥३॥

अन्वयः— शिव: शाश्वत् शक्तियुत: त्रिलिङ्ग: गुणसंवृत: वैकारिक: तैजस: च तामस: च इति अहं त्रिधा ॥३॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— शिवजी सदा अपनी शक्ति से युक्त रहते हैं वे तमोगुण सम्पन्न रहते हैं । अहङ्कार के अधिष्ठाता हैं। अहङ्कार भी तीन प्रकार का होता है सात्विक, राजस एवं तामस ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अन्योन्योपमर्देन तमसस्त्रैविध्यान्त्रिलिङ्गः । त्रिलिङ्गत्वमाह-वैकारिक इति । अहमहङ्कार इति ।।३।।

भाव प्रकाशिका

एक गुण दूसरे गुण का उपमर्द करके उद्रिक्त हो जाता है इस तरह तमोगुण भी तीन प्रकार का होता है इसीलिए तमोगुण को त्रिलिङ्ग कहा गया है । तमोगुण के त्रिलिङ्गत्व को शुकदेवजी ने वैकारिकः इत्यादि से कहा है । अहम् अर्थात् अहङ्कार ।।३।।

ततो विकारा अभवन् षोडशामीषु कंचन । उपधावन्विभूतीनां सर्वासामश्नुते गतिम् ।।४।।

अन्वयः— ततः षोडशविकारा अभवन् अमीषु कञ्चन उपधावन् सर्वासाम् विभूतीनां गतिम् अश्नुते ।।४।।

अनुवाद— उस त्रिविध अहङ्कार के सोलह विकार हुए पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाञ्च कर्मेन्द्रियाँ, मन तथा पञ्चमहाभूत सब मिलकर सोलह । इनमें से किसी भी एक की उपासना करने वाला सभी विभूतियों से सम्पन्न हो जाता है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

विकारा मनइन्द्रियभूतरूपाः । षोडशेतीन्द्रियदेवानामभेदविवक्षया । कंचन यत्किंचिद्विकारोपाधिकं भजन्नुपाध्यनुरूपाणां विभूतीनां स्वरूपं प्राप्नोतीति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

विकाराः शब्द से मन दस इन्द्रियाँ और पञ्च महाभूत कहे गये है । षोडश शब्द से बतलाया गया है कि इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं की अभेद की विवक्षा बतलायी गयी है । कंचन कहकर बतलाया गया है कि किसी भी विकार के अधिष्ठातृ देवता की उपासना करने वाला उपाधि के अनुकूल विभूतियों के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ।।४।।

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः । स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन्निर्गुणो भवेत् ।।५।।

अन्वयः— हरिः हि निर्गुणः साक्षात् पुरुषः प्रकृते परः । सः सर्वदृक् उपद्रष्टा तं भजन् त्रिगुणो भवेत् ।।५।।

अनुवाद— श्रीहरि सभी त्याज्य प्राकृतिक गुणों से रहित होने के कारण निर्गुण कहे जाते हैं । वे साक्षात् प्रकृति और पुरुष से महान् हैं । वे सबों के साक्षात् द्रष्टा हैं उनका भजन करने वाला पुरुष प्राकृत गुणों से रहित हो ही जाता है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

उपद्रष्टा साक्षी सन् । यतः सर्वदृक् सर्वं पश्यति । अतः प्रकृतेः पर इति । अत्रेदं तत्त्वम्- "वस्तुनों गुणसंबन्धे रूपद्वयमिहेष्यते । तद्धर्मायोगयोगाभ्यां बिम्बवत्प्रतिबिम्बवत् । गुणाः सत्त्वादयः शान्तघोरमूढाः स्वभावतः । विष्णुब्रह्मशिवानां च गुणयन्तृस्वरूपिणाम् । नातिभेदो भवेद्भेदो गुणधर्मैरिहांशतः । सत्त्वस्य शान्त्या नो जातु विष्णोर्विक्षेपमूढते । रजस्तमोगुणाभ्यां तु भवेतां ब्रह्मरुद्रयोः । गुणोपमर्दतो भूयस्तदंशानां च भिन्नता । अतः समग्रसत्त्वस्य विष्णोर्मोक्षकरी मतिः । अंशतो भूतिहेतुश्च तथानन्दमयी स्वतः । अंशतस्तारतम्येन ब्रह्मरुद्रादिसेविनाम् । विभूतयो भवन्त्येव शनैर्मोक्षोऽप्यनंशतः ।' इदमेवाभिप्रेत्य तत्र तत्रोच्यते 'श्रेयांसि तत्र खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः' इति । तथा 'सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिः' इति । तथा 'सत्त्वं तत्तीर्थसाधनम्' इति तथा 'त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्' इति । तथा 'न ते मय्यच्युतेऽजे च भिदामण्वपि चक्षते' इत्यादि । एवं च सति न किंचिदसमञ्जसम् । तत्तद्भक्तानां तु कलहो मोहमात्रमिति ।।५।।

भाव प्रकाशिका

उपद्रष्टा अर्थात् साक्षी । चूकि वे सबकुछ देखते हैं अतएव वे प्रकृति से परे हैं । वास्तविकता इस प्रकार है- वस्तु का जब गुण से सम्बन्ध होता है तो उसके दो रूप होते हैं । जब उसका उसके धर्मों से योग नहीं होता

है तो वह बिम्ब के समान होता है और धर्मों का योग होने पर प्रतिबिम्ब के समान होता है । सत्त्व आदि जो तीन गुण हैं उनकी तीन स्वभावत: अवस्थाएँ होती हैं- शान्त, घोर और मूढ । ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता स्वरूपत: गुणों के नियामक हैं । इन तीनों में बहुत अधिक भेद नहीं होता है । गुणों के जो धर्म होते हैं उनके कारण उनमें अंशत: भेद होता है । सत्त्वगुण की शान्ति नामक गुण के कारण विष्णु में कभी विक्षेप और मूढता नहीं आते हैं । किन्तु ब्रह्माजी तथा रुद्र में तो विक्षेप और मूढता होते ही हैं । गुणों के अभिभव के कारण उनके अंशों में भिन्नता होती है । अतएव सम्पूर्ण सत्त्वगुण सम्पन्न भगवान् विष्णु की आराधना मोक्षप्रद होती है । उससे उपासक को अंशत: ऐश्वर्य की प्राप्ति भी होती है तथा उसकी आनन्दमयी स्थिति होती है । ब्रह्माजी तथा शिव जी की आराधना करने वालों को कुछ न्यूनाधिक मात्रा में विभूतियाँ होती हैं । धीरे-धीरे उन आराधकों को मोक्ष होता है किन्तु अंशत: नहीं । इन्हीं सारी बातों को लेकर स्थान-स्थान पर कहा जाता है- सत्त्वगुण सम्पन्न शरीर धारियों का परम कल्याण होता हैं । तथा जिनकी सत्त्वप्रिया मूर्ति है । और सत्त्वगुण ही उस तीर्थ का साधन है । तथा समान भाव वाले ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र में भेद बुद्धि नहीं रखता है । तथा वे भक्त मुझ रुद्र विष्णु, तथा ब्रह्मा में थोड़ी सी भी भेद बुद्धि नहीं रखते हैं । ऐसा होने से थोड़ा भी असमंजस नहीं है । ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र के भक्त अपने-अपने देवता के श्रैष्ठ्य को लेकर जो कलह करते हैं उसमें उनका अज्ञान ही कारण है।।५।।

निवृत्तेष्वश्वमेधेषु राजा युष्मत्पितामहः । शृण्वन्भगवतो धर्मानपृच्छदिदमच्युतम् ।।६।।

अन्वयः— अश्वमेधेषु निवृत्तेषु युष्मत् राजा पितामहः भगवतो धर्मान् शृण्वन् अच्युतमिदमपृच्छत् ।।६।।'

अनुवाद— जब तुम्हारे पितामह राजा युधिष्ठिर के सभी अश्वमेघ याग समाप्त हो गये उस समय भागवत धर्म का श्रवण करते हुए वे भगवन् श्रीकृष्ण से इस बात को पूछा ।।६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६।।

स आह भगवांस्तस्मै प्रीतः शुश्रूषवे प्रभुः । नृणां निःश्रेयसार्थाय योऽवतीर्णो यदोः कुले ।।७।।

अन्वयः— नृणां निःश्रेयसार्थाय यदोः कुले अवतीर्णः सभगवान् प्रभुः प्रीतः तस्मै शुश्रूषवे आह ।।७।।

अनुवाद— मनुष्यों का कल्याण करने के लिए महाराज यदु के वंश में अवतार ग्रहण करने वाले सम्पूर्ण जगत् के स्वामी तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से सम्पन्न श्रीभगवान् प्रसन्नता पूर्वक सुनने के इच्छुक महाराज युधिष्ठिर से कहे ।।७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७।।

श्रीभगवानुवाच

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः । ततोऽधनं त्यजन्त्यस्य स्वजना दुःखदुःखितम् ।।८।।

अन्वयः— अहम् यस्य अनुगृह्णामि तद्धनं शनैः हरिष्ये ततः अधनं दुःखदुःखितम अस्य स्वजनाः त्यजन्ति ।।८।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— मैं जिस पर कृपा करता हूँ धीरे-धीरे उसके धन का हरण कर लेता हूँ । उसके पश्चात् निर्धन तथा अत्यन्त दुःखी बने हुए उसको उसके सगे सम्बन्धी भी त्याग देते हैं ।।८।।

भावार्थ दीपिका

यस्याहमनुगृह्णामीति । अयमर्थः-यो विषयान्परिजिहीर्षुरपि कथंचिद्विद्यमानेषु विषयेषु सज्जते क्लिश्यति च तस्य विषयापहार एवानुग्रह इति । यथाश्रुतत्त्वे ध्रुवादीनामैश्वर्यविरोधात् अथवा प्रथमं विभूतीः कामानुरूपा दत्त्वा शनैर्विषयभोगावसाने तस्य निर्वेदमुत्पाद्य हरिष्यामि परमानुग्रहं कर्तुमिति । तदुक्तं भगवतैव- 'न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते' इति । दुःखदुःखितमिति। दुःखादनु पुनर्दुःखितमिव प्रतीयमानमित्यर्थः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

जिस पर मैं कृपा करता हूँ इत्यादि का अर्थ यह है कि जो विषयों का परित्याग करना चाहता है किन्तु विद्यमान विषयों में बार-बार फंस जाता है, और कष्ट का अनुभव भी करता है उसके विषयों का अपहरण ही उस पर कृपा है। जैसे अश्रुत होने पर ध्रुव आदि के ऐश्वर्य से विरोध होने से अथवा पहले इच्छा के अनुसार ऐश्वर्यों को प्रदान करके विषयभोगों के अन्त में धीरे-धीर उसमें वैराग्य को उत्पन्न करके उस पर पूर्ण रूप से कृपा करने के लिए विषयों का हरण कर लेता हूँ। श्रीभगवान् ने स्वयं गीता में कहा है कि मेरे जिस भक्त का मन मुझमें लगा हुआ हैं उसकी कामनाएँ कामोपभोगार्थ नहीं होती हैं। दुःखदुःखितम् अर्थात् अत्यन्त दुःखी के समान प्रतीत होने वाले॥८॥

स यदा वितथोद्योगो निर्विण्णः स्याद्धनेहया । मत्परैः कृतमैत्रस्य करिष्ये मदनुग्रहम् ॥९॥

अन्वयः— स यदा वितथोद्योगः धनेहया निर्विण्णः स्यात् मत्परैः कृतमैत्रस्य मत् अनुग्रहम् करिष्ये ॥९॥

अनुवाद— वह जब धन कमाने का उद्योग करता है तो उसके उस उद्योग को भी मैं विफल बना देता हूँ। तब वह धन की इच्छा से उदासीन हो जाता है। उसके पश्चात् जब वह मेरे भक्तों से मित्रता करता है तो मैं उस पर कृपा करता हूँ ॥९॥

भावार्थ दीपिका

स पुनर्बन्धूनामाग्रहेण धनेहया प्रवृत्तोऽपि मदनुग्रहेण यदा निष्फलोद्यमो निर्विण्णः स्यात्तदा मदनुग्रहमिति ममासाधारणमनुग्रहम्॥९॥

भाव प्रकाशिका

वह जब अपने बान्धवों के आग्रह करने पर धन प्राप्त करने की इच्छा से धन कमाने का प्रयास करता है तो मैं उसके उस प्रयास को विफल बना देता हूँ। उसके पश्चात् उद्योग के निष्फल होने के कारण वह धन कमाने से वैराग्य ले लेता है तो फिर मैं उस पर असाधारण कृपा करता हूँ ॥९॥

तद्ब्रह्म परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सदनन्तकम् । अतो मां सुदुराराध्यं हित्वाऽन्यान्भजते जनः ॥१०॥

अन्वयः— तत् परमं सूक्ष्मं चिन्मात्रं सत् अनन्तकम् दुराराध्यं माम् हित्वा मनः अन्यान् भजते ॥१०॥

अनुवाद— इसलिए अत्यन्त सूक्ष्म ज्ञान मात्र सन्मात्र तथा अनन्त मेरी आराधना अत्यन्त कठिन है।, इसीलिए लोग मुझको छोड़कर दूसरे देवता की आराधना करते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तमेवाह-तद्ब्रह्मेति । अतः पश्चादपि मोक्षमरोचयन् । अत्यासक्तो जन इत्यर्थ; ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

तद्ब्रह्म० इत्यादि श्लोक से उपर्युक्त बातों को ही बतलाते हैं। अतएव बाद में भी मोक्ष को नहीं चाहते हुए लोग अत्यन्त आसक्ति पूर्वक दूसरे देवता की आराधना करते हैं ॥१०॥

ततस्त आशुतोषेभ्यो लब्धराज्यश्रियोन्द्धताः । मत्ताः प्रमत्ता वरदान्विस्मरन्त्यवजानते ॥११॥

अन्वयः— ततः ते अशुतोषेभ्यः लब्धराज्यश्रियोद्धताः मता, प्रमत्ताः वरदान् विस्मरन्ति अवजानते ॥११॥

अनुवाद— इसीलिए वे लोग शीघ्र प्रसन्न होने वाले दूसरे देवताओं की आराधन करके राज्य श्री को प्राप्त करके मदमत्त और उन्मत्त हो जाते हैं। वे अपने वरदान देने वाले देवता को भी भूल जाते हैं और उन देवताओं का अपमान कर देते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

श्रीशुक उवाच

शापप्रसादयोरीशा ब्रह्मविष्णुशिवादयः । सद्यः शापप्रसादोऽङ्ग शिवो ब्रह्मा न चाच्युतः ॥१२॥

अन्वयः— हे अङ्ग ब्रह्मविष्णुशिवादयः शापप्रसादयोः ईशाः । सद्यः शापप्रसादः शिवः ब्रह्मा अच्युतः न ॥१२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् शाप देने और कृपा करने में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव तीनों समर्थ हैं । उनमें ब्रह्मा और शिव दोनों शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं किन्तु भगवान् अच्युत शीघ्र प्रसन्न नहीं होते हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

एतदेवेतिहासेन स्फुटयितुमाह-शापप्रसादयोरिति । ब्रह्मा चेत्यन्वयः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

इस बात को इतिहास के माध्यम से स्पष्ट करने के लिए **शापप्रसादयोः** इत्यादि श्लोक को कहा गया है । शिव और ब्रह्मा, इस तरह से अन्वय है ॥१२॥

अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । वृकासुराय गिरिशो वरं दत्त्वाप संकटम् ॥१३॥

अन्वयः— अत्र इमम् पुरातनम् इतिहासम् उदाहरन्ति । गिरिशः वृकासुराय वरं दत्त्वा सङ्कटम् आप ॥१३॥

अनुवाद— इस विषय में महात्मा लोग इस प्राचीन इतिहास को बतलाते हैं । शङ्करजी वृकासुर को वरदान देकर विपत्ति में पड़ गये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१३॥

वृको नामासुरः पुत्रः शकुनेः पथि नारदम् । दृष्ट्वाशुतोषं पप्रच्छ देवेषु त्रिषु दुर्मतिः ॥१४॥

अन्वयः— शकुने पुत्रः वृकः पथि नारदम् दृष्ट्वा दुर्मतिः त्रिषु देवेषु आशुतोषं पप्रच्छ ॥१४॥

अनुवाद— शकुनि नामक दैत्य का पुत्र वृकासुर था । वह दुष्ट मार्ग में जाते हुए नारदजी से पूछा कि तीन देवताओं में कौन देवता शीघ्र प्रसन्न होने वाला हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

शकुनेः पुत्रः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

शकुनि नामक दैत्य का पुत्र ॥१४॥

स आह देवं गिरिशमुपाधावाशु सिध्यसि । योऽल्पाभ्यां गुणदोषाभ्यामाशु तुष्यति कुप्यति ॥१५॥

अन्वयः— स आह गिरिशं देवं उपाधाव आशु सिध्यसि । यः अल्पाभ्यां गुणदोषाभ्यां अशुतुष्यति कुप्यति ॥१५॥

अनुवाद— नारदजी ने कहा शङ्करजी की अच्छी तरह से आराधना करो तो तुम शीघ्र ही अपने कार्य को सिद्ध कर लोगे । वे थोड़े ही दोष पर क्रुद्ध हो जाते हैं । और थोड़े ही गुण पर प्रसन्न भी हो जाते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

दशास्यबाणयोस्तुष्टः स्तुवतोर्बन्दिनोरिव । ऐश्वर्यमतुलं दत्त्वा तत आप सुसंकटम् ॥१६॥

अन्वयः— वन्दिनोः इव स्तुवते दश स्यबाणयोः तुष्टः अतुलम् ऐश्वर्यम् दत्वा ततः सुसंकटम् आप ॥१६॥

अनुवाद— रावण और बाणासुर शङ्करजी की स्तुति बन्दीजनों के समान स्तुति करते थे । उससे वे उन दोनों

पर प्रसन्न होकर उन दोनों को अतुलनीय ऐश्वर्य प्रदान कर दिए। और उसके पश्चात् वे उन दोनों से कठिन सङ्कट में फँस गये। रावण ने कैलास पर्वत को ही उठा लिया था और बाणासुर के नगर की रक्षा का भार सम्भाल कर वे सङ्कट में पड़ गये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

सुसङ्कटमाप कैलासोत्पाटनं पुरपालनं च ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

सुसङ्कटमाप अर्थात् रावण ने कैलास पर्वत को ही उखाड लिया था और बाणासुर के नगर की रक्षा करने का भार उठाकर संकट में फँस गये ॥१६॥

इत्यादिष्टस्तमसुर उपाधावत्स्वगात्रतः । केदार आत्मक्रव्येण जुह्वानोऽग्निमुखं हरम् ॥१७॥

अन्वयः— इत्यादिष्टः असुरः केदारे तम् अग्निमुखम् हरम् स्वगात्रतः आत्मक्रव्येण जुह्वानः उपाधावत् ॥१७॥

अनुवाद— नारदजी द्वारा इस तरह से आदिष्ट होकर वह असुर केदार क्षेत्र में चला गया और वहाँ पर अग्नि को शङ्करजी का मुख मान कण्त अपने शरीर को काट काटकर होम करके शङ्करजी की आराधना करने लगा॥१७॥

भावार्थ दीपिका

स्वगात्रत उपाधावत्। कथम्। आत्मक्रव्येण स्वमांसेन जुह्वान इति ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

अपने शरीर से ही उपासना करने लगा। प्रश्न है कि कैसे उपासना करता था ? उत्तर है कि अपनें मांस से होम करके ॥१७॥

देवोपलब्धिमप्राप्य निर्वेदात्सप्तमेऽहनि । शिरोऽवृश्चत्स्वधितिना तत्तीर्थक्लिन्नमूर्धजम् ॥१८॥

अन्वयः— देवोपलब्धिम् अप्राप्य सप्तमे अहनि निर्वेदात् तत्तीर्थक्लिनमूर्धजम् शिरः स्वधितिना अवृश्चत् ॥१८॥

अनुवाद— छह दिनों तक शङ्करजी का दर्शन नहीं पाकर कुछ दुःख के साथ सातवें दिन उस तीर्थ में स्नान करके भिङ्गे हुए केशों वाले अपने शिर को उसने कुल्हाड़ी से काट देने के लिए तैयार हुआ ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अवृश्चत् छेत्तुमुद्यतः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

काटने के लिए तैयार हो गया ॥१८॥

तदा महाकारुणिकः स धूर्जटिर्यथा वयं चाग्निरिवोत्थितोऽनलात् ।
निगृह्य दोर्भ्यां भुजयोर्न्यवारयत्तत्स्पर्शनाद्भूय उपस्कृताकृतिः ॥१९॥

अन्वयः— तदा महाकारुणिकः स धूर्जटिः वयं यथा अनलात् अग्निः इव उत्थितः दोर्भ्यां भुजयोः निगृह्य न्यवारयत् तत्स्पर्शनात् भूयः उपस्कृताकृतिः ॥१९॥

अनुवाद— जिस तरह कोई दुःखी होकर आत्मघात करने लगता है तो हमलोग रोक देते हैं, उसी तरह अत्यन्त कृपालु भगवान् शङ्कर हवन कुण्ड की अग्नि से अग्नि के समान प्रकट हो कर अपने दोनों हाथों से उसके हाथों को पकड़ लिए और उसे आत्मघात करने से रोक दिए। शङ्करजी के स्पर्श करने से उसके सार अङ्ग पहले के ही समान हो गये ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

मूर्तिमानग्निरिव देदीप्यमानः वयमधुनातना यथा किंचिद्दुःखेन मर्तुकामं वारयामस्तद्वदिति । स च उपस्कृताकृतिः परिपूर्णदेहोऽभवत् । तं न्यवारयदेवमाह च ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

मूर्तिमान अग्निदेव के समान देदीप्यमान । जिस तरह से हम आधुनिक लोग जैसे किसी दु:ख के कारण मरना चाहने वाले को रोकते हैं उसी तरह वह **उपस्कृता कृतिः** अर्थात् परिपूर्ण शरीर वाला हो गया । वृकासुर को भगवान् शिव रोक दिए और कहे ।।१९।।

तमाह चाङ्गालमलं वृणीष्व मे यथाभिकामं वितरामि ते वरम् ।
प्रीयेय तोयेन नृणां प्रपद्यतामहो त्वयात्मा भृशमर्द्यते वृथा ।।२०।।

अन्वयः— तम् आह च अङ्ग अलम् अलम् मे यथाभिकामं वरं वृणीष्व ते वितरामि प्रपद्यताम् नृणाम् तोयेन प्रीयेय अहो त्वया आत्मा वृथा भृशम् अर्द्यते ।।२०।।

अनुवाद— शङ्कर भगवान् ने उससे कहा वत्स वृकासुर बस करो, बस करो मैं तो अपने शरणागत के जल चढ़ाने से भी प्रसन्न हो जाता हूँ, तुम तो व्यर्थ ही अपने शरीर को कष्ट दे रहे हो । अपनी इच्छा के अनुसार वरदान माँगो मैं उस वरदान को तुम्हें दूँगा ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

तोयेनापि भजतां प्रीतः स्याम्, त्वया तु देहो वृथा पीड्यत इति ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

मैं तो अपने भक्तों के जल से भी प्रन्न हो जाता हूँ तुम तो व्यर्थ ही अपने शरीर को कष्ट दे रहे हो ।।२०।।

देवं स वव्रे पापीयान्वरं भूतभयावहम् । यस्य यस्य करं शीर्ष्णि धास्ये स म्रियतामिति ।।२१।।

अन्वयः— सः पापीयान् भूतभयावहं देवं वरं वव्रे यस्य-यस्य शीर्ष्णि करं धास्ये सम्रियतामिति ।।२१।।

अनुवाद— महापापी वह वृकासुर सभी जीवों के लिए भयङ्कर शङ्करजी वर मागा । मैं जिसके सिर पर हाथ रख दूँगा वह मर जाय ।।२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२१।।

तच्छ्रुत्वा भगवान्रुद्रो दुर्मना इव भारत । ओमिति प्रहसंस्तस्मै ददेऽहेरमृतं यथा ।।२२।।

अन्वयः— हे भारत तत् श्रुत्वा भगवान् रुद्रः दुर्मना इव प्रहसन् ओम् इति अहेः अमृतं यथा तस्मै ददे ।।२२।।

अनुवाद— परीक्षित ! उसको सुनकर भगवान् शङ्कर पहले तो कुछ अनमने से हो गये बाद में हँसकर कह दिया ठीक है ऐसा ही होगा । इस तरह का वरदान देकर उन्होंने मानो साँप को दूध पिला दिया ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

दातुमनर्हमपि दत्तवान् । सर्पाय क्षीरमिव ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

नही देने योग्य भी वरदान दे दिया । सर्प को दूध पिलाने के समान ।।२२।।

इत्युक्तः सोऽसुरो नूनं गौरीहरण लालसः ।
स तद्वरपरीक्षार्थं शम्भोर्मूर्ध्नि किलासुरः । स्वहस्तं धातुमारेभे सोऽबिभ्यत्स्वकृताच्छिवः ॥२३॥

अन्वयः— इत्युक्तः सः असुरः नूनं गौरी हरण लालसः तद्वरपरीक्षार्थं किल सः असुरः शम्भोः मूर्ध्नि स्वहस्तं धातुम् आरेभे सः शिवः स्वकृतात् अबिभयत् ॥२३॥

अनुवाद— शङ्करजी के इस तरह कह देने पर वृकासुर के मन में पार्वतीजी का ही हरण कर लेने के लालसा जग गयी । वह उस वरदान की परीक्षा करने के लिए शिवजी के ही सिर पर हाथ रख देना चाहा । यह देखकर शङ्करजी अपने दिए हुए वरदान से डर गये ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

तेनोपसृष्टः संत्रस्तः पराधावत्सवेपथुः । यावदन्तं दिवो भूमेः काष्ठानामुदगादुदक् ॥२४॥

अन्वयः— तेन उपसृष्टः संत्रस्तः सवेपथुः पराधावत् यावदन्तं दिवः भूमेः काष्ठानाम् उदक् उदगात् ॥२४॥

अनुवाद— बृकासुर के द्वारा पीछा किए जाते हुए शङ्करजी काँपते हुए स्वर्ग लोक के अन्त तक तथा भूमि के अन्तिम छोर तक भागे किन्तु उसको पीछा करते हुए देखकर वे उत्तर दिशा में भागे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

उपसृष्टोऽनुगतः सन् । उदगादधावत् । उदगुत्तर; ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

उपसृष्टः पीछा किए जाते हुए उदगात् अर्थात् भागे । उदक् अर्थात् उत्तर दिशा में ॥२४॥

अजानन्तः प्रतिविधिं तूष्णीमासन्सुरेश्वराः । ततो वैकुण्ठमगमद्भास्वरं तमसः परम् ॥२५॥

अन्वयः— प्रतिविधिम् अजानन्तः सुरेश्वराः तुष्णीम् आसन् । ततः तमसः परम् भास्वरं वैकुण्ठम् अगमत् ॥२५॥

अनुवाद— उसका कोई प्रतिकार नहीं जानने के कारण सभी बड़े-बड़े देवता मौन थे । उसके पश्चात् शङ्करजी प्रकृति मण्डल के ऊपर विद्यमान देदीप्यमान श्रीवैकुण्ठ में गये ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

वैकुण्ठं श्वेतद्वीपम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

वैकुण्ठम् अर्थात् श्वेत द्वीप में गये ॥२५॥

यत्र नारायणः साक्षान्न्यासिनां परमा गतिः । शान्तानां न्यस्तदण्डानां यतो नावर्तते गतः ॥२६॥

अन्वयः— यत्र शान्तानां न्यस्तदण्डानां न्यासिनां परमागतिः साक्षात् नारायणः यतो गतः नावर्तते ॥२६॥

अनुवाद— जहाँ परम शान्त सबको अभय दान करने वाले संन्यासियों के परम प्राप्य भगवान् साक्षात् नारायण का ही निवास होता है जहाँ गया हुआ जीव पुनः इस संसार में नहीं आता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

तं तथाव्यसनं दृष्ट्वा भगवान्वृजिनार्दनः । दूरात्प्रत्युदियाद्भूत्वा बटुको योगमायया ॥२७॥

अन्वयः— वृजिनार्दनः भगवान् तं तथा व्यसनं दृष्ट्वा योगमायया बटुको भूत्वा दूरात् प्रत्युदियात् ॥२७॥

अनुवाद— भक्तो के कष्ट को दूर करने वाले वृकासुर रूपी भगवान् शङ्करकी उस प्रकार की विपत्ति को देखकर श्रीभगवान् अपनी योगमाया से ब्रह्मचारी का रूप धारण करके दूर से ही वृकार की ओर आने लगे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

तं वृकासुरम् । तथाव्यसनं तादृग्व्यसनं यस्य तम् । वृजिनार्दनो दुःखहन्ता । दूरत एव दृष्ट्वा मेखलादिभिरुपलक्षितः प्रत्युदियात् संमुखमागतः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

तम् वृकासुर को । इस प्रकार की विपत्ति को देखकर । वृजिनार्दनः दुःख को दूर करने वाले । दूर से ही देखकर मेखला आदि धारण किए हुए सामने आये ।।२७।।

मेखलाजिनदण्डाक्षैस्तेजसाग्निरिव ज्वलन् । अभिवादयामास च तं कुशपाणि र्विनीतवत् ।।२८।।

अन्वयः— मेखलाजिन दण्डाक्षैः तेजसा अग्निः इव ज्वलन् कुशपाणिः विनीतवत् तं अभिवादयामास ।।२८।।

अनुवाद— मौञ्जी मेंखला मृगचर्म दण्ड तथा माला धारण किए हुए तेज के द्वारा अग्नि के समान देदीप्यमान, हाथ में कुश लिए हुए श्रीभगवान् अत्यन्त नम्र के समान वृकासुर को नमस्कार किए ।।२८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२८।।

श्रीभगवानुवाच

शाकुनेय भवान्व्यक्तं श्रन्तः किं दूरमागतः । क्षणं विश्रम्यतां पुंस आत्माऽयं सर्वकामधुक् ।।२९।।

अन्वयः— शाकुनेय व्यक्तं भवान् श्रान्तः दूरम् आगतः किम् क्षणं विश्रम्यताम् पुंसः अयम् आत्मा सर्वकामधुक्।।२९।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— वृकासुरजी आप स्पष्ट रूप से थके हुए प्रतीत होते है, दूर से आ रहे हैं क्या ? क्षण भर यहाँ विश्राम कीजिए । शरीर ही सभी सुखों की जड़ है । इसी से सारी कामनाएँ पुरी होती है । इसे अधिक कष्ट मत दीजिए ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

व्यक्तं निश्चितम् । किं किमर्थम् । आत्मा देहः सर्वपुरुषार्थहेतुः । अतो मा पीडयेति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

व्यक्तं अर्थात् निश्चित रूप से । किम् अर्थात् किस लिए । आत्मा अर्थात् शरीर सभी पुरुषार्थो का साधन है । अतएव इसे अधिक कष्ट न दें ।।२९।।

यदि नः श्रवणायालं युष्मद्व्यवसितं विभो । भण्यतां प्रायशः पुम्भिर्धृतैः स्वार्थान्समीहते ।।३०।।

अन्वयः— हे विभो ! यदि न; श्रवणाय अलं तर्हि भण्यताम्, प्रायशः धृतैः पुम्भिः स्वार्थान् समीहते ।।३०।।

अनुवाद— आपतो सब कुछ करने में समर्थ हैं, इस समय आप क्या करना चाहते है ? यदि मेरे सुनने योग्य कोई बात हो तो हमें बतलाइये । लोक में देखा जाता है कि सहायकों के द्वारा लोग बहुत से काम बना लेते हैं ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

प्रायशः पुम्भिर्धृतैर्भवान् स्वार्थान्समीहते साधयितुमिच्छति । अथवा जनः पुम्भिः सहायैः स्वकार्याणि साधयत्यतो नः कथ्यतामिति ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

लगता है कि आप सहायकों द्वारा आप अपना काम सिद्ध करना चाहते हैं । अथवा लोग सहायक पुरुषों द्वारा लोग अपने कार्यों को सिद्ध कर लेते हैं । अतएव आप हमें बतलाइये ।।३०।।

श्रीशुक उवाच

एवं भगवता पृष्टो वचसाऽमृतवर्षिणा । गतक्लमोऽब्रवीत्तस्मै यथापूर्वमनुष्ठितम् ॥३१॥

अन्वयः— एवं भगवता अमृतवर्षिणा वचसा पृष्टः गतक्लमः तस्मै यथा पूर्वम् अनुष्ठितम् गतक्लमः अब्रवीत् ॥३१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से श्रीभगवान् के द्वारा अमृतवर्षी वाणी से पूछे जाने पर थोड़ा ठहरकर अपनी, तपस्या, वरदान की प्राप्ति तथा शङ्करजी का पीछा करने का कारण उसने बतला दिया ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

श्रीभगवानुवाच

एवं चेत्तर्हि तद्वाक्यं न वयं श्रद्दधीमहि । यो दक्षशापात्पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥३२॥

अन्वयः— एवं चेत् तर्हि तद् वाक्यं वयं न श्रद्दधीमहि । यः दक्षशापात् पैशाच्यं प्राप्तः प्रेतपिशाचराट् ॥३२॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— यदि ऐसी बात है तो हमलोग उसकी बातों पर विश्वास नहीं करते हैं । दक्ष प्रजापति के शाप से वह तो पिशाच हो गया है । वह प्रेतों और पिशाचों का राजा बना है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

पैशाच्यं पिशाचानामिव वृत्तिम् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

पैशाच्यम् पिशाचों के समान वृत्ति को ॥३२॥

यदि वस्तत्र विश्रम्भो दानवेन्द्र जगद्गुरौ । तर्ह्यङ्गाशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥३३॥

अन्वयः— हे दानवेन्द्र यदि तत्र जगद गुरौविश्रम्भः तर्हि हे अङ्ग आशु स्वशिरसि हस्तं न्यस्य प्रतीयताम् ॥३३॥

अनुवाद— यदि आपका शङ्कर पर विश्वास है तो फिर हे वत्स ! आप आपने ही शिर पर हाथों को रखकर आप विश्वास प्राप्त कर लें ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

यद्यसत्यं वचः शम्भोः कथंचिद्दानवर्षभ । तदैनं जह्यसद्वाचं न यद्वक्ताऽनृतं पुनः ॥३४॥

अन्वयः— यदि शम्भोः वचः कथंचित् असत्यं दानवर्षभ तदा एनं असदवाचं जहि यथा पुनः अनृतं वक्ता न ॥३४॥

अनुवाद— दानवेन्द्र यदि शङ्कर की बात असत्य हो तो फिर उसे मार ही डालिए जिससे कि वह पुनः झूठ न बोले ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

यद्यथा । वक्ता वदिष्यति ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

जैसे । बोलेगा ॥३४॥

इत्थं भगवतश्चित्रैर्वचोभिः स सुपेशलैः । भिन्नधीर्विस्मृतः शीर्ष्णि स्वहस्तं कुमतिर्व्यधात् ॥३५॥

अन्वयः— इत्थं भगवतः चित्रैः सुपेशलैः वचोभिः सः भिन्न घीः विस्मृतः सः कुमतिः स्वहस्तं शीर्ष्णि व्यधात्॥३५॥

अनुवाद— इस तरह से श्रीभगवान् के चित्र विचित्र एवं अत्यन्त मनोहर वाक्यों से वृकासुर की बुद्धि मारी गयी । उस मूर्ख ने अपने ही सिर पर हाथ रख लिया ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

चित्रैर्भ्रामकैः सुपेशलैरतिरम्यैः । भिन्नधीर्भ्रंशितमतिः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

चित्रैः अर्थात् भ्रामक सुपेशलैः अर्थात् अत्यन्त मनोहर भिन्नधीः अर्थात् भ्रष्टबुद्धि वाला ॥३५॥

अथापतद्भिन्नशिरा वज्राहत इव क्षणात् । जयशब्दो नमःशब्दः साधुशब्दोऽभवद्दिवि ॥३६॥

अन्वयः— अथ भिन्नशिरा वज्राहतः इवं क्षणात् अपतत् दिवि जय शब्दः नमः शब्दः साधु शब्दः अभवत् ॥३६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उसी क्षण उसका सिर फट गया जैसे उस पर विजली गिर पड़ी हो, वह गिर पड़ा । आकाश में श्रीभगवान् का जय-जयकार होने लग गया । देवताः नमो नमः तथा बहुत अच्छा कहने लगे॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

मुमुचुः पुष्पवर्षाणि हते पापे वृकासुरे । देवर्षिपितृगन्धर्वा मोचितः सङ्कटाच्छिवः ॥३७॥

अन्वयः— पापे वृकासुरे हते देवर्षि पितृगन्धर्वाः पुष्पवर्षाणि मुमुचुः शिवः सङ्कटात् मोचितः ॥३७॥

अनुवाद— पापी वृकासुर के मर जाने पर देवताओं, ऋषियों और गन्धर्वों ने श्रीभगवान् पर पुष्पों की वर्षा की और शङ्करजी सङ्कट मुक्त हो गये ॥३७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

मुक्तं गिरिशमभ्याह भगवान्पुरुषोत्तमः । अहो देव महादेव पापोऽयं स्वेन पाप्मना ॥३८॥
हतः को नु महत्स्वीश जन्तुर्वै कृतकिल्बिषः। क्षेमी स्यात्किमु विश्वेशे कृतागस्को जगद्गुरौ॥३९॥

अन्वयः— भगवान् पुरुषोतमः मुक्तं गिरिशम् अभ्याह अहो देव महादेव ! अयं पापः स्वेन पाप्मना हतः हे ईशकः नु जन्तुः वै महत्सुकृत किल्विषः क्षेमी स्यात् ? विश्वेशे जगदगुरौ किमु ॥३८-३९॥

अनुवाद— भगवान् पुरुषोत्तम ने सङ्कट से मुक्त शिवजी से कहा, हे देवाधिदेव ! यह पापी अपने ही पापों से मारा गया । हे ईश किसी महापुरुष के प्रति अपराध करने वाला कौन सा जीव सकुशल रह सकता है आप जगद् गुरु विश्वेश्वर का अपराध करने वाले के विषय में क्या कहना हैं ॥३८-३९॥

भावार्थ दीपिका

किमु वक्तव्यं विश्वेशे त्वयि कृतागस्कः कृतापराध इति ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

सम्पूर्ण जगत् के स्वामी आपके प्रति अपराध करने वाला कैसे सकुशल रह सकता है ॥३९॥

य एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः परस्य साक्षात्परमात्मनो हरेः ।
गिरित्रमोक्षं कथयेच्छृणोति वा विमुच्यते संसृतिभिस्तथाऽरिभिः ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुद्रमोक्षणं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

अन्वयः— एवम् अव्याकृत शक्त्युदन्वतः परस्य साक्षात् परमात्मनः हरेः यः गिरित्रमोक्षं कथयेत् शृणोति वा संसृतिभिः तथा अरिभिः विमुच्येत ॥४०॥

अनुवाद— अनन्त शक्तियों के सागर श्रीभगवान् की एक-एक शक्ति वाणी एवं मन का अविषय है, वे प्रकृति से परे साक्षात् परमात्मा है। उन्होंने शङ्करजी को सङ्कट से मुक्ति दिलाई। इस कथा को जो कहता एवं सुनता है वह संसार के बन्धन से और शत्रुओं के भय से मुक्त हो जाता हैं ॥४०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के रुद्रमोक्षण नामक अठासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८८॥

भावार्थ दीपिका

अव्याकृतशक्त्युदन्वतो वाङ्मनसागोचरशक्ति समुद्रस्य। गिरित्रमोक्षं शिवमोचन रूपं चरितम् संसृतिभिर्नानायो निसंचारै भक्तसङ्कटमालोक्य कृपापूर्णहृदम्बुजः। गिरित्रं चित्रवाक्यात्तु मोक्षयामास केशवः ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

भाव प्रकाशिका

अव्याकृतशक्त्युदन्वतः अर्थात् मन एवं वाणी के विषय नहीं बनने वाली शक्तियों के सागर के गिरित्र मोक्षम् अर्थात् शिवजी को सङ्कट से मुक्ति प्रदान करना रूप चरित्र को। संसृतिभिः अर्थात् अनेक योनियों में गमन रूप संसार के बन्धनों से ॥४०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवे स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थ दीपिका टीका के अठासीवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥८८॥

नवासीवाँ अध्याय

महर्षि भृगद्वारा त्रिदेवों की परीक्षा तथा भगवान् द्वारा ब्राह्मण के मरे बालकों को वापस लाना

श्रीशुक उवाच

सरस्वत्यास्तटे राजन्नृषयः सत्रमासत । वितर्कः समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान् ॥१॥

अन्वयः— राजन् सरसस्वत्याः तटे ऋषय सत्रम् आसत । तेषां वितर्क समभूत् त्रिषु अधीशेषु महान् कः ?

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् परीक्षित् सरस्वती नदी के तट पर बड़े-बड़े ऋषिगण यज्ञ करने के लिए बैठे । उन लोगों में इस विषय पर विचार चल रहा था कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीन बड़े देवताओं में महान् कौन है ?॥१॥

भावार्थ दीपिका

नवाशीतितमे देवः को महनिति संशये। परीक्ष्य विष्णोरुत्कर्षं मुनिभ्योऽवर्णयद्भृगुः॥१॥ इतिहासान्तरमाह–सरस्वत्या इति॥१॥

भाव प्रकाशिका

नवासीवें अध्याय में मुनियों को इस विषय पर संशय था कि कौन देवता महान् है । महर्षि भृगु ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की परीक्षा करके बतलाये कि विष्णु ही महान देवता है ॥१॥ **सरस्वत्याः इत्यादि** श्लोक से दूसरे इतिहास का वर्णन करते हैं ॥१॥

तस्य जिज्ञासया ते वै भृगुं ब्रह्मसुतं नृप । तज्ज्ञप्त्यै प्रेषयामासुः सोऽभ्यगाद्ब्रह्मणः सभाम् ॥२॥

अन्वयः— हे नृप ते वै तस्य जिज्ञासया तज्ज्ञप्त्यै ब्रह्मसुतं भृगुं प्रेषयामासुः सः ब्रह्मणः सभाम् अगात् ॥२॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् उन लोगों ने इस बात का पता लगाने के लिए ब्रह्माजी के पुत्र भृगु महर्षि को भेजा और महर्षि सर्वप्रथम ब्रह्माजी की सभा में गये ।।२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२।।

न तस्मै प्रह्वणं स्तोत्रं चक्रे सत्त्वपरीक्षया । तस्मै चुक्रोध भगवान्प्रज्वलन्स्वेन तेजसा ।।३।।

अन्वयः— सत्त्वपरीक्ष्या तस्मै प्रह्वणं स्तोत्रं न चक्रे, स्वेन तेजसा प्रज्वलन् भगवान् तस्मै चुक्रोध ।।३।।

अनुवाद— ब्रह्माजी के धैर्य आदि की परीक्षा करने के लिए वे न तो ब्रह्माजी को प्रणाम ही किए और न तो उनकी स्तुति ही की । यह देखकर ब्रह्माजी अपने ही तेज से दहक उठे और वे महर्षि भृगु पर क्रोध किए।।३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३।।

स आत्मन्युत्थितं मन्युमात्मजायात्मना प्रभुः । अशीशमद्यथा वह्निं स्वयोन्या वारिणात्मभूः ।।४।।

अन्वयः— सः प्रभुः आत्मभू आत्मजाय आत्मनि अभ्युत्थितं मन्युम् आत्मना वह्निम् स्वयोन्या वारिणा यथा अशीशमत्।।४।।

अनुवाद— समर्थ ब्रह्माजी अपने पुत्र के प्रति उत्पन्न क्रोध को अपने आप ही उसी तरह शान्त कर दिए जिस तरह कोई अग्नि को उसके कारण भूतजल से शान्त कर दें ।।४।।

भावार्थ दीपिका

स्वयोन्या स्वस्यैव रूपान्तरेणाभिव्यक्तिस्थानेन स्वकार्येणेत्यर्थः । तेन यथा कश्चिद्वह्निं शमयति तथा स्वकार्येण पुत्रेण निमित्तेन क्रोधं शमयामासेत्यर्थः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

अपने ही रूपान्तर भूत अपनी अभिव्यक्ति के स्थान अर्थात् यह मेरा पुत्र है इस भावना से । जैसे कोई जल से अग्नि को शान्त कर दे उसी तरह अपने पुत्र के प्रति उत्पन्न क्रोध को ब्रह्माजी ने शान्त कर दिया ।।४।।

ततः कैलासमगमत्स तं देवो महेश्वरः । परिरब्धुं समारेभ उत्थाय भ्रातरं मुदा ।।५।।

अन्वयः— ततः स कैलासम् अगमत् महेश्वरः देवः मुदा उत्थाय तं भ्रातरम् परिरब्धुम् आरेभे ।।५।।

अनुवाद— उसके पश्चात् महर्षि भृगु कैलास पर्वत पर गये । भगवान् शङ्कर प्रसन्नता पूर्वक उठकर अपने भाई भृगु महर्षि का आलिङ्गन करना चाहे ।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५।।

नैच्छत्त्वमस्युत्पथग इति देवश्चुकोप ह । शूलमुद्यम्य तं हन्तुमारेभे तिग्मलोचनः ।।६।।

अन्वयः— त्वम् उत्पथगः इति न ऐच्छत् इति देवः चुकोप ह । तिग्मलोचनः शूलम् उद्यम्य तं हन्तुम् आरेभे ।।६।।

अनुवाद— तुम लोक एवं वेद की मर्यादा का उल्लंघन करने वाले हो यह कहकर उनसे नहीं मिलना चाहे। यह देखकर शङ्करजी क्रुद्ध हो गये और त्रिशूल उठाकर महर्षि भृगु को मारना चाहे ।।६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६।।

पतित्वा पादयोर्देवी सान्त्वयामास तं गिरा । अथो जगाम वैकुण्ठं यत्र देवो जनार्दनः ।।७।।

अन्वयः— देवी पादयोः पतित्वतं गिरा सान्त्वयामास अथो वैकुण्ठ जगाम यत्र जनार्दनः देवः ।।७।।

अनुवाद— पार्वतीजी भगवान् शिव के पैरों पर गिर पड़ी और मधुर वचनों को कहकर उन्होंने उनको शान्त किया। इसके पश्चात् महर्षि भृगु वैकुण्ठ लोक में गये जहाँ भगवान् विष्णु विद्यमान थे ।।७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७।।

शयानं श्रिय उत्सङ्गे पदा वक्षस्यताडयत् । तत उत्थाय भगवान्सह लक्ष्म्या सतां गतिः ॥८॥
स्वतल्पादवरुह्याथ ननाम शिरसा मुनिम् । आह ते स्वागतं ब्रह्मन्निषीदात्रासने क्षणम् ॥
अजानतामागतान्वः क्षन्तुमर्हथ नः प्रभो ॥९॥

अन्वयः—श्रियः उत्सङ्गे शयनं वक्षसि पदा अताडयत् ततः सतांगतिः भगवान् लक्ष्म्या सह उत्थाय, स्वतल्पाद् अवरुह्य अथ शिरसा मुनिं ननाम । आह च ते स्वागतम् अत्रासने क्षणम् निषीद प्रभो ! वः आगतान् अजानताम् नः क्षन्तुम् अर्हथ ॥८-९॥

अनुवाद—उस समय भगवान् विष्णु लक्ष्मीजी की गोद में सोये थे । महर्षि भृगु ने उनके वक्षःस्थल में अपने पैर से प्रहार किया । उसके पश्चात् सन्त पुरुषों के एकमात्र आश्रय श्रीभगवान् लक्ष्मीजी के साथ उठकर और अपने पलङ्ग से उतरकर महर्षि भृगु को प्रणाम किए । इसके पश्चात् भगवान् विष्णु ने कहा महर्षे ! आपका स्वागत है । आप इस आसन पर क्षणभर बैठें । आपके आगमन को मैं नहीं जान सका, अतएव आप मुझे क्षमा करें ॥८-९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८-९॥

अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने । इत्युक्त्वा विप्रचरणौ मर्दयन्स्वेन पाणिना ॥१०॥
पुनीहि सह लोकं मां लोकपालांश्च मद्गतान् । पादोदकेन भवतस्तीर्थानां तीर्थकारिणा ॥११॥

अन्वयः— हे तात हे महामुने ते चरणौ अतिकोमलौ इत्युक्त्वा स्वेन पाणिना विप्रचरणौ मर्दयन् भवतः तीर्थानां तीर्थकारिणां पादोदकेन मां सह लोकम् मां मद्गतान् लोकपालांश्च पुनीहि ॥१०-११॥

अनुवाद— भगवान् विष्णु ने कहा हे तात ! हे महामुने आपके चरण अत्यत कोमल हैं, यह कहकर महर्षि भृगु के चरणों को अपने हाथ से ही सहलाने लगे । भगवान् ने कहा महर्षे आपके चरणों का जल तीर्थों को भी तीर्थ बना देने वाला है । अतएव आप मेरे ही साथ मेरे लोक को तथा मेरे अन्दर रहने वाले लोकपालों को अपने चरणोदक से पवित्र बना दें ॥१०-११॥

भावार्थ दीपिका

तीर्थकारिणा तीर्थत्वनिमित्तेन ॥१०-११॥

भाव प्रकाशिका

तीर्थकारिणा अर्थात् तीर्थ बना देने वाला है ॥१०-११॥

अद्याहं भगवँल्लक्ष्म्या आसमेकान्तभाजनम् । वत्स्यत्युरसि मे भूतिर्भवत्पादहतांहसः ॥१२॥

अन्वयः— भगवन् अथ अहं लक्ष्म्या एकान्तं भाजनम् आसम्भवत्पादहतांहसः मे उरसि मे भूतिः वत्स्यति ॥१२॥

अनुवाद—हे भगवन् आज मैं लक्ष्मीजी का एक मात्र आश्रय था । आपके चरण कमल के स्पर्श से मेरे सारे पाप धूल गये । आपके चरणों कें चिह्न से चिह्नित मेरे वक्षः स्थल में लक्ष्मीजी का निवास होगा ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

श्रीशुक उवाच

एवं ब्रुवाणे वैकुण्ठे भृगुस्तन्मन्द्रया गिरा । निर्वृतस्तर्पितस्तूष्णीं भत्तयुत्कण्ठोऽश्रुलोचनः ॥१३॥

अन्वयः—इति वैकुण्ठे ब्रुवाणे भृगु तन्मन्द्रया गिरा निर्वृतः तर्पितः, भक्त्युत्कण्ठः अश्रुलोचनः तुष्णीं बभूवेति शेष॥१३॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवान् के इस तरह से कहने पर महर्षि भृगु उनकी वाणी से तृप्त और आनन्द मग्न हो गये । उनके मन में भक्ति भर गयी और उनकी आँखों में आँसू भर गये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

तस्य मन्द्रया गम्भीरया गिरा निर्वृतस्तूष्णीं बभूवेति शेषः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की गम्भीर वाणी को सुनकर महर्षि भृगु आनन्द मग्न हो कर मौन हो गये ॥१३॥

पुनश्च सत्रमाव्रज्य मुनीनां ब्रह्मवादिनाम् । स्वानुभूतमशेषेण राजन्भृगुरवर्णयत् ॥१४॥

अन्वयः— राजन्ः पुनः ब्रह्मवादिनाम् मुनीनां सत्रम् आगम्य भृगुः स्वानुभूतम् अशेषेण अवर्णयत् ॥१४॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् महर्षि भृगु पुनः ब्रह्मज्ञानी मुनियों के सत्र में आये और जो कुछ भी उन्होंने अनुभव किया उसे पूर्ण रूप से सुना दिया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः । भूयांसं श्रद्दधुर्विष्णुं यतः शान्तिर्यतोऽभयम् ॥१५॥

अन्वयः— अथ तत् निशम्य मुनयः विस्मिताः मुक्तसंशयाः विष्णुं भूयांसं श्रद्दधुः यतः शान्ति यतः अभयम् ॥१५॥

अनुवाद— महर्षि भृगु के अनुभव को सुनकर सभी ऋषि मुनियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन लोगों का संदेह दूर हो गया। तब से वे भगवान् विष्णु को ही सर्वश्रेष्ठ देवता मानने लगे। क्योंकि भगवान् विष्णु ही शान्ति और अभय के उद्गम स्थान है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

विस्मिता अपराधातिरेकेऽपि निर्विकारित्वेन भूयांसं श्रद्दधुः महत्तमं निश्चितवन्तः। यतो यस्मिन् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि का अत्यधिक अपराध होने पर भी मन में किसी प्रकार का विकार नहीं होने से भगवान् विष्णु पर ही अधिक श्रद्धा किए और उन्हीं को ही सर्वश्रेष्ठ देवता निश्चित किए। **यतः** अर्थात् जिसमें ॥१५॥

धर्मः साक्षाद्यतो ज्ञानं वैराग्यं च तदन्वितम् । ऐश्वर्यं चाष्टधा यस्माद्यशश्चात्ममलापहम् ॥१६॥

अन्वयः— यतः साक्षात् धर्मः ज्ञानं वैराग्यं तदन्वितम् अष्टधा ऐश्वर्य च यस्मात् आत्ममलापहम् यशः च ॥१६॥

अनुवाद— भगवान् विष्णु से ही साक्षात् धर्म, ज्ञान, वैराग्य और उससे युक्त आठ प्रकार के एश्वर्य और चित्त को शुद्ध करने वाले यश की प्राप्ति होती है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

वैराग्यं च चतुर्विधमिति पाठे तच्चातुर्विध्यमेवं द्रष्टव्यम्। विषयांस्त्यक्तुमशक्नुवतोऽपि संमानेच्छात्याग आद्यं वैराग्यम्। विषयाणां मध्ये लवणादिव्यतिरेकेणापि वृत्तिर्द्वितीयम्। तथावृत्तावपि मनसि रागशैथिल्येन बाह्येन्द्रियैरेव विषयसेवनं तृतीयम्। तत्राप्यौदासीन्यं चतुर्थम्। यथाहुः-'वैराग्यमाद्यं यतमानसंज्ञं क्वचिद्विरागो व्यतिरेकसंज्ञम्। एकेन्द्रियाख्यं हृदि रागसौक्ष्म्यं तस्याप्यभावस्तु वशीकृताख्यम्।' इति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

वैराग्यं च चतुर्विधम् जहाँ पर पाठ है वहाँ पर चार प्रकार के वैराग्य को ही जानना चाहिए। विषयों का परित्याग करने में असमर्थ होने पर भी उन सबों के समान की इच्छा का परित्याग कर देना यह प्रथम वैराग्य है। विषयों में भी लवण आदि से भिन्न की वृत्ति को दूसरा वैराग्य कहते हैं। उस प्रकार की वृत्ति होने पर भी मन से उन सबों के प्रति राग न होकर केवल बाह्य इन्द्रियों से ही विषयों का सेवन करना तीसरा वैराग्य है। बाह्य इन्द्रियों का भी विषयों

की ओर से उदासीन हो जाना चौथा वैराग्य है । जैसा कि महर्षियों ने कहा है **वैराग्यमाद्यं यत्मानसंज्ञं, क्वचिद्विरागो व्यतिरेक संज्ञम् । एकेन्द्रियाख्यं हृदिराग सौख्यम्, तस्याप्यभावस्तु वशीकृताख्यम्। इति** । अर्थात् विषयों से जो प्रथम वैराग्य होता है उसकी यतमान संज्ञा नाम है । किसी विषय से विराग हो जाना व्यतिरेक संज्ञक वैराग्य है । मन से नहीं केवल वाह्य इन्द्रियां से विषयों के सेवन को एकेन्द्रिय संज्ञक वैराग्य कहते हैं, उसका भी अभाव हो जाना ही वशीकार संज्ञक वैराग्य इस तरह चारो प्रकार के वैराग्य भगवान् विष्णु से ही प्राप्त होने वाले हैं ।।१६।।

मुनीनां न्यस्तदण्डानां शान्तानां समचेतसाम् । अकिंचनानां साधूनां यमाहुः परमां गतिम् ।।१७।।

अन्वयः— शान्तानां समचेतसाम् न्यस्तदण्डानां अकिञ्चनानां साधूनां मुनीनाम् यम् परमां गतिम् आहुः ।।१७।।

अनुवाद— परम शान्त, समचित, सवों को अभय प्रदान करने वाले सन्त मुनिजनों के वे ही भगवान् परम प्राप्य कहे गये हैं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

सत्त्वं यस्य प्रिया मूर्तिर्ब्राह्मणास्त्विष्टदेवताः । भजन्त्यनाशिषः शान्ता यं वा निपुणबुद्धयः ।।१८।।

अन्वयः— यस्य प्रिया मूर्त्तिः सत्त्वं ब्राह्मणाः त्विष्ट देवताः अनाशिषः शान्ताः निपुण वुद्धयः यं वा भजन्ति ।।१८।।

अनुवाद— उन श्रीभगवान् की प्रिय मूर्ति सत्त्वगुण है, ब्राह्मण ही उनके आराध्य देव हैं तथा निष्काम, परमशान्त और निपुण बुद्धि वाले लोग उनका भजन करते हैं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१८।।

त्रिविधाऽऽकृतयस्तस्य राक्षसा असुराः सुराः । गुणिन्या मायया सृष्टाः सत्त्वं तत्तीर्थसाधनम् ।।१९।।

अन्वयः— गुणिन्या मायया तस्य त्रिविधा आकृतयः सृष्टाः राक्षसाः असुराः सुराः सत्त्वं तत्तीर्थसाधनम् ।।१९।।

अनुवाद— त्रिगुणात्मिकामाया ने उनकी तीन प्रकार की आकृतियों की सृष्टि कर दी वे हैं राक्षस, असुर और देवता । इनमें सत्त्वगुण प्रधान देवता नाम की उनकी आकृति उनकी प्राप्ति के साधन हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

तस्य भगवत एव यद्यपि विविधा आकृतयः । तत्तासु सत्त्वमेव तीर्थसाधनं पुरुषार्थहेतुः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि श्रीभगवान् की अनेक प्रकार की आकृतियाँ हैं । उन सबों में से भगवान् की सत्त्वप्रधान देवाकृति ही उनकी प्राप्ति का साधन है ।।१९।।

श्रीशुक उवाच

एवं सारस्वता विप्रा नृणां संशयनुत्तये । पुरुषस्य पदाम्भोजसेवया तद्गतिं गताः ।।२०।।

अन्वयः— एवं नृणां संशयनुत्तये सारस्वता विप्राः पुरुषस्य पदाम्भोज सेवया तद्गतिं गताः ।।२०।।

अनुवाद— इस तरह से मनुष्यों के संशयापनोदनार्थ ऐसी युक्ति रची थी । वे सरस्वती नदी के तट के ब्राह्मण श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करके उनके परम धाम के प्राप्त कर लिए ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

इत्थं निश्चित्य सरस्वतीतीरवासिनो विप्रा हरिसेवया मुक्तिं प्रापुरिति ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से निश्चिय करके सरस्वती नदी के तट पर रहने वाले ब्रह्मण, श्रीहरि के चरणों की सेवा करके मुक्ति को प्राप्त कर लिए ।।२०।।

सूत उवाच

इत्येतन्मुनितनयास्यपद्मगन्धपीयूषं भवपयभित्परस्य पुंसः ।
सुश्लोकं श्रवणपुटैः पिबत्यभीक्ष्णं पान्थोऽध्वभ्रमणपरिश्रमं जहाति ।।२१।।

अन्वयः— इत्येतत् मुनितनयास्यपद्मगन्धपीयुषं भवभयभित्परस्य पुंसः सुश्लोकं यः पान्थः श्रवणपुटै अभीक्ष्णं पिवति अध्वपरिभ्रमण परिश्रमं जहाति ।।२१।।

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— शौनकादिक महर्षियों ! व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी के मुखारविन्द की यह मधुमयी सुधाधारा हैं संसार के भय को मिटाने वाली परम पुरुष श्रीभगवन् की कमनीय कथा है । इस संसार के मार्ग पर चलने वाला जो पथिक इस कथा का अपने कानों से बार-बार निरन्तर श्रवण करता है उसकी सारी थकान मिट जाती है । अर्थात् वह संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

व्यासनन्दनस्य मुखपङ्कजादुद्गतं गन्धयुक्तपीयूषतुल्यं हरेः प्रशस्तं यशो यः संसारी सेवते स मुक्तो भवतीति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

व्यास नन्दन श्रीशुकदेवजी के मुख कमल से निकली गन्ध से युक्त अमृत के समान श्रीहरि के प्रशस्त यश का जो संसारी सेवन करता है वह संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है ।।२१।।

श्रीशुक उवाच

एकदा द्वारवत्यां तु विप्रपत्न्याः कुमारकः । जातमात्रो भुवं स्पृष्ट्वा ममार किल भारत ।।२२।।

अन्वयः— हे भारत ! एकदा द्वारवत्यां विप्रपत्न्याः जातमात्रः कुमारकः भुवं स्पृष्ट्वा ममार ।।२२।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे परीक्षित् एक बार द्वारकापुरी में किसी विप्रपत्नी के गर्भ से पुत्र पैदा हुआ किन्तु वह पृथ्वी का स्पर्श होते ही मर गया ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

स चोक्तलक्षणो भगवान् कृष्ण एवेति दर्शयितुमाख्यानान्तरमाह-एकदेति ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त लक्षणों से युक्त भगवान् श्रीकृष्ण ही है इस बात को बतलाने के लिए एक दूसरी कथा को कहते हैं ।।२२।।

विप्रो गृहीत्वा मृतकं राजद्वार्युपधाय सः । इदं प्रोवाच विलपन्नातुरो दीनमानसः ।।२३।।

अन्वयः— दीनमानसः आतुरः विलपन् सः विप्रः मृतकं गृहीत्वा राजद्वारि उपाधाय इदं प्रोवाच ।।२३।।

अनुवाद— दुःखी मन से अत्यन्त आतुर ब्राह्मण उस मृतक शरीर को राजमहल के द्वार पर लाया वहाँ उसे रखकर विलाप करते हुए कहने लगा ।।२३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२३।।

ब्रह्मद्विषः शठधियो लुब्धस्य विषयात्मनः । क्षत्रबन्धोः कर्मदोषात्पञ्चत्वं मे गतोऽर्भकः ॥२४॥

अन्वयः— ब्रह्मद्विषः शठधियः लुब्धस्य विषयात्मनः क्षत्रबन्धोः कर्मदोषात् मे अर्भकः पञ्चत्वं गतः ॥२४॥

अनुवाद—ब्राह्मणद्रोही, शठ बुद्धि लोभी तथा विषयी राजा के कर्मदोष के कारण मेरे बालक की मृत्यु हुई है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

हिंसाविहारं नृपतिं दुःशीलमजितेन्द्रियम् । प्रजा भजन्त्यः सीदन्ति दरिद्रा नित्यदुःखिताः ॥२५॥

अन्वयः— हिंसाविहारम्, दुःशीलम् अजितेन्द्रियम् नृपतिं भजन्त्यः प्रजाः दरिद्राः नित्यदुःखिता सीदन्ति ॥२५॥

अनुवाद— हिंसा परायण, दुःशील तथा अजितेन्द्रिय राजा को राजा मानकर उसकी सेवा करने वाली प्रजा दरिद्र हो जाती है कष्ट का अनुभव करती है और सदा दुःखी बनी रहती हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं हैं ॥२५॥

एवं द्वितीयं विप्रर्षिस्तृतीयं त्वेवमेव च । विसृज्य स नृपद्वारि तां गाथां समगायत ॥२६॥

अन्वयः— एवं विप्रर्षिः द्वितीयं तृतीयं तु एवमेव नृपद्वरि विसृज्य तां गाथां समगायत ॥२६॥

अनुवाद— इसी तरह अपने दूसरे एवं तीसरे बालक के पैदा होते ही वह ब्राह्मण लड़के के शव को राजमहल के द्वार पर रखकर उसी गाथा को गाया ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

'ब्रह्मद्विष' इत्यादिकां तां गाथां वाक्यम् । मयि न कश्चिद्दोषोऽतो राजदोषेणैव मत्पुत्र म्रियन्त इति बारंबारं चुक्रोशेत्यर्थः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

'ब्रह्मद्विषः' इत्यादि श्लोक को पढ़ा । मेरा कोई दोष नहीं है, अतएव राजा के ही दोष से मेरे पुत्र मर गये इस तरह से उस ब्राह्मण ने कहा ॥२६॥

तामर्जुन उपश्रुत्य कर्हिचित्केशवान्तिके । परेते नवमे बाले ब्राह्मणं समभाषत ॥२७॥

अन्वयः— नवमे बाले परेते कर्हिचित् केशवान्तिके ताम् गाथाम् उपश्रुत्य अर्जुनः ब्राह्मणं समभाषत ॥२७॥

अनुवाद— नवें बालक के मर जाने पर एक बार भगवान् श्रीकृष्ण के सन्निकट में ही अर्जुन ने उस ब्राह्मण के द्वारा पढ़ी गयी गाथा को सुनकर ब्राह्मण से कहा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

किंस्विद्ब्रह्मंस्त्वन्निवासे इह नास्ति धनुर्धरः । राजन्यबन्धुरेते वै ब्राह्मणाः सत्रमासते ॥२८॥

अन्वयः— ब्रह्मन् त्वन्निवासे इह किंस्विद् धनुर्धरः नास्ति एते राजन्यबन्धुः ब्राह्मणा वै सत्रम् आसते ॥२८॥

अनुवाद— क्या आपके इस द्वारका में कोई धनुर्धर नही है क्या ? क्या ये यदुवंशी ब्राह्मण हैं ? कि प्रजा पालन का काम छोड़कर यज्ञ में बैठ गये हैं ?॥२८॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मन् किंस्विदिति । किमर्थं वृथा रोदिषिं यतस्त्वन्निवासे धनुर्धरमात्रोऽपि राजन्यबन्धुरपि नास्ति, ब्रह्मण्यस्य तु का वार्ता। एते तु सत्रे यागे इव ब्राह्मणा मिलिता भवितुमर्हन्तीत्यर्थः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्म किस्विद इस श्लोक से अर्जुन ने कहा ब्राह्मण क्यों रोते हो ? क्योंकि तुम्हारे निवास स्थान में राजागण धनुर्धर भी नहीं हैं। ब्राह्मणों की भक्ति की कौन कहे। ये सभी ब्राह्मण के समान यज्ञ में बैठने के योग्य हैं ।।२८।।

धनदारात्मजापृक्ता यत्र शोचन्ति ब्राह्मणाः । ते वै राजन्यवेषेण नटा जीवन्त्यसुंभराः ।।२९।।

अन्वयः— यत्र धनदारात्मजापृक्ता ब्राह्मणाः शोचन्ति ते वे राजन्यवेषेण ते वै राजन्यवेषेण असंभराः नटाः जीवन्ति।।२९।।

अनुवाद— जिनके राज्य में धन, पत्नी, पुत्र आदि से वियुक्त होकर ब्राह्मण दुःखी होते हैं वे क्षत्रिय नहीं क्षत्रिय के वेष में नट हैं और अपने प्राणों का पोषण करते हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-धनदारात्मजापृक्ता यत्रेति । धनादिभिर्वियुक्ताः सन्तो यत्र येषु जीवत्सु राजन्येषु शोचन्ति ते जीवन्ति केवलं जीविकां संपादयन्ति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बातों को ही अर्जुन कहते है जिन क्षत्रियों के जीते-जी धन आदि से वियुक्त होकर ब्राह्मण दुःखी होते हैं वे क्षत्रिय केवल अपनी जीविकोपार्जन करते हैं ।।२९।।

अहं प्रजां वां भगवनरक्षिष्ये दीनयोरिह । अनिस्तीर्णप्रतिज्ञोऽग्निं प्रवेक्ष्ये हतकल्मषः ।।३०।।

अन्वयः— भगवन् अहं दीनयोः वां इह प्रजां रक्षिष्ये अनिस्तीर्णप्रतिज्ञः हतकल्मषः अग्निं प्रवेक्ष्ये ।।३०।।

अनुवाद— भगवन् आप पति-पत्नी पुत्रों के मरने से दीन हो गये हैं मैं आप दोनों की सन्तान की रक्षा करूँगा। यदि ऐसा नहीं कर सकूँगा तो मैं अग्नि में प्रवेश करके मर जाऊँगा और इस प्रकार मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो जायेगा ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

हतकल्मष इति । अग्निप्रवेशेन ब्राह्मणविलापश्रवणपातकात्पूतो भवेयमित्यर्थः । अहतकल्मष इति वा ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

हतकल्मषः का अर्थ है अग्नि में प्रवेश के द्वारा ब्राह्मण के विलाप श्रवण जन्य पाप से पवित्र हो जाऊँगा। अथवा अहत कल्पषः इस तरह का पदच्छेद है ।।३०।।

ब्राह्मण उवाच

संकर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नो धन्विनां वरः । अनिरुद्धोऽप्रतिरथो न त्रातुं शक्नुवन्ति यत् ।।३१।।
तत्कथं नु भवान्कर्म दुष्करं जगदीश्वरैः । चिकीर्षसि त्वां बालिश्यात्तन्न श्रद्दध्महे वयम्।।३२।।

अन्वयः— सङ्कर्षणः वासुदेवः धन्विनां वरः प्रद्युम्नः अप्रतिरथः यत् रक्षितुं नशक्नुवन्ति तत् कथं नु भवान् जगदीश्वरैः दुष्करं कर्म तत् कथं त्वं बालिश्यात् चिकीर्षसि वयं न श्रद्दध्महे ।।३१-३२।।

ब्राह्मण ने कहा

अनुवाद— बलरामजी, भगवान् श्रीकृष्ण धनुर्धर शिरोमणि प्रद्युम्नजी अद्वितीय योद्धा अनिरुद्ध भी जब मेरे बच्चे की रक्षा नहीं कर पा रहे हैं, इन जगदीश्वरों के भी लिए यह काम कठिन है, तो तुम इसे कैसे करना चाहते हो। यह तुम्हारी मूर्खता हैं मैं तुम्हारी इस बात पर विश्वास नहीं करता हूँ ।।३१-३२।।

भावार्थ दीपिका

न श्रद्दध्महे न संप्रतीमः ॥३१-३२॥

भाव प्रकाशिका

विश्वास नहीं करते हैं ॥३१-३२॥

अर्जुन उवाच

नाहं संकर्षणो ब्रह्मन्न कृष्णः कार्ष्णिरेव च । अहं वा अर्जुनो नाम गाण्डीवं यस्य वै धनुः ॥३३॥

अन्वयः— ब्रह्मन् अहं सङ्कर्षणो न, न कृष्णः न कर्ष्णि एवं अहं वा अर्जुनो नाम यस्य वै गाण्डीवं धनुः ॥३३॥

अर्जुन ने कहा

अनुवाद— ब्राह्मण मैं न तो बलरामजी हूँ न श्रीकृष्ण हूँ और न तो मैं श्रीकृष्ण का पुत्र हूँ मेरा नाम अर्जुन हैं और मेरे धनुष का नाम गाण्डीव है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३॥

माऽवमंस्था मम ब्रह्मन्वीर्यं त्र्यम्बकतोषणम् । मृत्युं विजित्य प्रधने आनेष्ये ते प्रजां प्रभो ॥३४॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् त्र्यम्बकतोषणम् मम वीर्यं मावमंस्थाः प्रभो ! प्रधने मृत्युं विजित्य ते प्रजां आनेष्ये ॥३४॥

अनुवाद— ब्राह्मणदेव मैंने अपने पराक्रम से भगवान् शङ्कर को भी संतुष्ट कर दिया है, अतएव आप मेरे प्रराक्रम का तिरस्कार न करें । मैं युद्ध में मृत्यु को भी परास्त करके आपके पुत्र को लाऊँगा ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

एवं विश्रम्भितो विप्रः फाल्गुनेन परंतप । जगाम स्वगृहं प्रीतः पार्थवीर्यं निशामयन् ॥३५॥

अन्वयः— हे परंतप ! फाल्गुनेन एवं विश्रम्भितः विप्रः पार्थवीर्यं निशामयन् प्रीतः स्वगृहं जगाम ॥३५॥

अनुवाद— परीक्षित ! अर्जुन से इस प्रकार विश्वास दिलाये जाने पर ब्राह्मण देवता प्रसन्न हो गये और अर्जुन के पराक्रम का बखान करते हुए प्रसन्नता पूर्वक अपने घर चले गये ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

एवं प्रौढिवादैर्विश्रम्भितो विश्वासं प्रापितः । निशामयन् शृण्वन् ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से प्रौढिवाद के द्वारा विश्वास प्राप्त, निशामयन् अर्थात् सुनते हुए ॥३५॥

प्रसूतिकाल आसन्ने भार्याया द्विजसत्तमः । पाहि पाहि प्रजां मृत्योरित्याहार्जुनमातुरः ॥३६॥

अन्वयः— भार्याया; प्रसूति काले आसन्ने आतुरः द्विजसत्तमः अर्जुनम् मृत्योः प्रजाः पाहि-पाहि इत्याह ॥३६॥

अनुवाद— पत्नी के प्रसव काल के सन्निकट आ जाने पर आतुर बने हुए द्विजश्रेष्ठ ने अर्जुन से कहा कि आप मेरे सन्तान की रक्षा करें ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

स उपस्पृश्य शुच्यम्भो नमस्कृत्य महेश्वरम् । दिव्यान्यस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गाण्डीवमाददे ॥३७॥

अन्वयः— स शुच्यम्भः उपस्पृश्य महेश्वरं नमस्कृत्य दिव्यान्यस्त्राणि संस्मृत्य सज्यं गाण्डीवम् आददे ॥३७॥

अनुवाद— ब्राह्मण की बातों को सुनकर अर्जुन ने पवित्र जल से आचमन किया तथा शङ्करजी को नमस्कार किया तदन्तर दिव्यास्त्रों का स्मरण करके गाण्डीव धनुष पर डोरी चढ़ाकर हाथ में ले लिया ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणोपेक्षकत्वेन कृष्णावज्ञया महेश्वरं नमस्कृत्य ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन ने ब्राह्मण की अपेक्षा की थी तथा भगवान् श्रीकृष्ण की अवहेलना की थी अतः उन्होंने शङ्करजी को नमस्कार किया ।।३७।।

न्यरुणत्सूतिकागारं शरैर्नानास्त्रयोजितैः । तिर्यगूर्ध्वमधः पार्थश्चकार शरपञ्जरम् ।।३८।।

अन्वयः— पार्थः नानास्त्रयोजितैः शरैः सूतिकागारं तिर्यगुर्ध्वमधः चैव सूतिकागारं न्यरुणत् शरपञ्जरं चकार ।।३८।।

अनुवाद— अर्जुन अनेक प्रकार के अस्त्र मन्त्रों से अभिमंन्त्रित करके प्रसूति गृह को चारो ओर से घेर कर बाणों का एक पिजड़ा बना दिया ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

न्यरुणदावृतवान् । तदेवाह-निर्यगूर्ध्वमिति ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

न्यरुणत् अर्थात् ऊपर नीचे तिरछा इत्यादि बाणों से घेर दिया ।।३८।।

ततः कुमारः संजातो विप्रपत्न्या रुदन्मुहुः । सद्योऽ दर्शनमापेदे सशरीरो विहायसा ।।३९।।

अन्वयः— ततः विप्रपत्न्याः मुहुरुदन् कुमारः संजाताः सद्यः सशरीरः विहायसा अदर्शनम् आपेदे ।।३९।।

अनुवाद— उसके प्रश्चात् ब्राह्मण की पत्नी के गर्भ से एक बच्चा पैदा हुआ वह बार-बार रो रहा था और वह शीघ्र ही सशरीर आकाश में अन्तर्धान हो गया ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

अदर्शनमापेदे देहोऽपि नावशिष्ट इत्यर्थः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

गायब हो गया उसका शरीर भी नहीं बचा ।।३९।।

तदाह विप्रो विजयं विनिन्दन्कृष्णसंनिधौ । मौढ्यं पश्यत मे योऽहं श्रद्दधे क्लीबकत्थनम् ।।४०।।

अन्वयः— तदा विप्रः कृष्णसन्निधो विजयं विनिन्दन् आह मे मौढ्यं पश्यत योऽहं क्लीव कथनम् श्रद्दधे।।४०।।

अनुवाद— उस समय वह ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्ण के सामने ही अर्जुन की निन्दा करते हुए कहा कि मेरी मूर्खता तो देखो कि इस नपुंसक की बातों पर मैंने विश्वास कर लिया ।।४०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४०।।

न प्रद्युम्नो नानिरुद्धो न रामो न च केशवः । यस्य शेकुः परित्रातुं कोऽन्यस्तदवितेश्वरः ।।४१।।

अन्वयः— न प्रद्युम्नः न अनिरुद्ध, न रामो न च केशवः यस्य परित्रातुं शेकुः अन्यः कः अवितेश्वरः ।।४१।।

अनुवाद— प्रद्युम्नजी अनिरुद्धजी बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्ण जिसकी रक्षा नहीं कर सके तो दूसरा कौन उसकी रक्षा कर सकने में समर्थ हो सकता है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

यस्य प्रजाः । तत्तत्र ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

यस्य अर्थात् जिस सन्तान की । तत् अर्थात् उस कार्य में ।।४१।।

धिगर्जुनं मृषावादं धिगात्मश्लाघिनो धनुः । दैवोपसृष्टं यो मौढ्यादानिनीषति दुर्मतिः ।।४२।।

अन्वयः— मृषावादं अर्जुनंधिक आत्मश्लाघिनः धनुः धिक् यः दुर्मतिः मौढ्यात् दैवोपसृष्टं आनिनीषति ।।४२।।

अनुवाद— मृषावादी अर्जुन को धिक्कार है, इस आत्मश्लाघा करने वाले के धनुष को धिक्कार, जो यह मूर्ख अपनी मूर्खता वश उस बालक को भी लौटा लाना चाहता है जिसे प्रारब्ध ने ही हमसे अलग कर दिया है।।४२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४२।।

एवं शपति विप्रर्षौ विद्यामास्थाय फाल्गुनः । ययौ संयमनीमाशु यत्रास्ते भगवान्यमः ।।४३।।

अन्वयः— विप्रैं एवं शपति फाल्गुनः विद्यामस्थाय संयमनीं ययौ यत्र भगवान् यमः आस्ते ।।४३।।

अनुवाद— जब वे ब्राह्मण अर्जुन को इस तरह भला-बुरा कह रहे थे उस समय योगविद्या अपनाकर अर्जुन शीघ्र ही संयमनी पुरी में गये किन्तु वहाँ के स्वामी यमराज थे ।।४३।।

भावार्थ दीपिका नहीं है ।।४३।।

विप्रापत्यमचक्षाणस्तत एन्द्रीमगात्पुरीम् । आग्नेयीं नैर्ऋतीं सौम्यां वायव्यां वारुणीमथ।।
रसातलं नाकपृष्ठं धिष्ण्यान्यन्यान्युदायुधः ।।४४।।

अन्वयः— तत्र विप्रापत्यम् अचक्षाणः ततः ऐन्द्रीम् आग्नेयीं नैऋतीं सौम्यां, वायव्यां वारुणीम् अथ रसातलम् नाकपृष्ठं अन्यान्याधिष्ण्यानि उदायुधः अगात् ।।४४।।

अनुवाद— वहाँ पर ब्राह्मण के बच्चे को न देखकर वे इन्द्र, अग्नि, निऋति, सोम, वायु तथा वरुण देव के लोक में रसातल में एवं स्वर्ग से ऊपर के लोगों में तथा दूसरे लोकों में आयुध धारण किये हुए गये ।।४४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४४।।

ततोऽलब्धद्विजसुतो ह्यनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः । अग्निं विविक्षुः कृष्णेन प्रत्युक्तः प्रतिषेधता ।।४५।।

अन्वयः— ततः अलब्धद्विजसुतः अनिस्तीर्णप्रतिश्रुतः अग्निं विविक्षुः प्रतिषेधता कृष्णेन प्रत्युक्तः ।।४५।।

अनुवाद— कहीं भी ब्राह्मण के पुत्र के नहीं मिलने से अर्जुन की प्रतिज्ञा पुरी नहीं को सकी । अर्जुन जब अग्नि में प्रवेश करना चाहे तो भगवान् श्रीकृष्ण उन्हें ऐसा करने से रोक दिए ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

प्रत्युक्तो वारितः । उपपत्तिभिः प्रतिषेधं कुर्वता ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण ने उनको युक्तियों द्वारा अग्नि में प्रवेश करने से रोक दिया ।।४५।।

दर्शये द्विजसूनूंस्ते मावज्ञात्मानमात्मना । ये ते नः कीर्तिं विमलां मनुष्याः स्थापयिष्यन्ति ।।४६।।

अन्वयः— ते द्विजसूनून् दर्शये मावज्ञात्मानमात्मना ये ते मनुष्यः नः विमलां कीर्तिं स्थापयिष्यन्ति ।।४६।।

अनुवाद— अर्जुन मैं तुमको ब्राह्मण के पुत्रों को दिखलाता हूँ। जो लोग इस समय हमलोगों की निन्दा कर रहे हैं वे ही लोग हमलोगों की निर्मल यश की स्थापना करेंगे ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

मावज्ञ मावजानीहि य निन्दन्ति त एव मनुष्या नः कीर्तिं स्थापयिष्यन्ति निश्चलां करिष्यन्ति। पाठान्तरं तु छन्दोभङ्गभयादागन्तुकमिति ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

अपने अपना तिरकार न करो। जो लोग निन्दा कर रहे हैं वे ही हमलोगों के निश्चल यश को स्थापित करेंगे। पाठान्तर को छन्दोभङ्ग होने के भय से आक्षिप्त मानना चाहिए ॥४६॥

इति संभाष्य भगवानर्जुनेन सहेश्वरः। दिव्यं स्वरथमास्थाय प्रतीचीं दिशमाविशत् ॥४७॥

अन्वयः— इति अर्जुनं संभाष्य दिव्यं स्वरथम् आस्थाय अर्जुन सह ईश्वरः प्रतीचीं दिशम् आविशत् ॥४७॥

अनुवाद— इस तरह से अर्जुन से कहकर श्रीभगवान् अर्जुन के साथ अपने दिव्य रथ पर बैठकर पश्चिम दिशा में गये ॥४७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४७॥

सप्तद्वीपान्सप्तसिन्धून्सप्तसप्तगिरीनथ। लोकालोकं तथाऽतीत्य विवेश सुमहत्तमः ॥४८॥

अन्वयः— अथ सप्त सप्त गिरीन् सप्तद्वीपान् सप्तसिन्धून् तथा लोकालोकम् अतीत्य सुमहत् तमः विवेश ॥४८॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण सात-सात पर्वतों वाले सात द्वीपों तथा सात समुद्रों को एवं लोकालोक पर्वत को पार करके घोर अन्धकार में प्रवेश किए ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

सप्त सप्तसंख्या गिरयो येषु द्वीपेषु तान् ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

सात-सात पर्वत जिनमें हैं ऐसे सात द्वीपों को ॥४८॥

तत्राश्वाः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाः। तमसि भ्रष्टगतयो बभूवुर्भरतर्षभ ॥४९॥

अन्वयः— हे भरतर्षभ तत्र शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकाः अश्वाः तमसि भ्रष्टगतयः अभूवन् ॥४९॥

अनुवाद— परीक्षित वहाँ शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प तथा बलाहक नामक चारो अश्व अपना रास्ता भूलकर इधर-उधर भटकने लगे ॥४९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४९॥

तान्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णो महायोगेश्वरेश्वरः। सहस्रादित्यसंकाशं स्वचक्रं प्राहिणोत्पुरः ॥५०॥

अन्वयः— महायोश्वरेश्वरः तान् दृष्ट्वा भगवान् कृष्णः सहस्रादित्यसंकाशं स्वचक्रम् पुरा प्राहिणोत् ॥५०॥

अनुवाद— योगेश्वरों के भी योगेश्वर भगवान् कृष्ण ने अश्वों की इस गति को देखकर हजारों सूर्य के समान तेजस्वी अपने चक्र को आगे चलने की आज्ञा दी ॥५०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५०॥

तमः सुघोरं गहनं कृतं महद्विदारयद्भूरितरेण रोचिषा ।
मनोजवं निर्विविशे सुदर्शनं गुणच्युतो रामशरो यथा चमूः ।।५१।।

अन्वयः— भूरितरेण रोचिषा सुघोरं गहनं महत् कृतं तमः विदारयत् सुदर्शन् मनोजवं निर्विविशे यथागुणत्युतः रामशर चमूः निर्विविशे ।।५१।।

अनुवाद— अपने अत्यधिक तेज के द्वारा प्रकृति के परिणाम रूप से उत्पन्न उस घने और महान् अन्धकार को चीरता हुआ भगवान् का सुदर्शन चक्र मन के समान उसी तरह तीव्र गति से चला जिस तरह भगवान् श्रीराम के धनुष से छूटे हुए बाण शत्रुओं की सेना में प्रवेश करते थे ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

कृतमिति प्रकृतिपरिणामरूपं नालोकाभावमात्रम् ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

कृतम् अर्थात् प्रकृति के परिणाम स्वरूप प्रकाश का अभाव मात्र नहीं ।।५१।।

द्वारेण चक्रानुपथेन तत्तमःपरं परं ज्योतिरनन्तपारम् ।
समश्नुवानं प्रसमीक्ष्य फाल्गुनः प्रताडिताक्षो पिदधेक्षिणी उभे ।।५२।।

अन्वयः— चक्रानुगतेन द्वारेण तत् तमः पारं अनन्त पारम् परं ज्योतिः समश्नुवानं प्रसमीक्ष्य फाल्गुनः प्रताडिताक्षः उभे अक्षिणी पिदधे ।।५२।।

अनुवाद— इस तरह सुदर्शन चक्र के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलता हुआ रथ उस अन्धकार की अन्तिम सीमा पर पहुँचा । उस अन्धकार के पार अनन्तपार ज्योति जगमगा रही थी । उसे देखकर अर्जुन की आँखें चौंधिया गयी और उन्होंने अपनी दोनों आँखें बन्द कर ली ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

चक्रानुपथेन चक्रमनुगतेन द्वारेण । तत्तमःपरं तस्मात्तमसः परं दूरे वर्तमानं परं श्रेष्ठं भागवतं ज्योतिः समश्नुवानं व्याप्नुवत्प्रसमीक्ष्य प्रताडिताक्षो नेत्रे न्यमीलयदिति ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

चक्र के द्वारा अनुगत मार्ग से उस अन्धकार के पार विद्यमान श्रीभगवान् के श्रेष्ठ व्यापक ज्योति को देखकर अर्जुन के नेत्र काम नहीं कर रहे थे उन्होंने अपनी दोनों आखें बन्द कर ली ।।५२।।

ततः प्रविष्टः सलिलं नभस्वता बलीयसैजद्बृहदूर्मिभूषणम् ।
तत्राद्भुतं वै भवनं द्युमत्तमं भ्राजन्मणिस्तम्भसहस्रशोभितम् ।।५३।।

अन्वयः— ततः बलीयसा नभस्वता ऐजद्बृहदूर्मि भूषणं सलिलं प्रविष्टः तत्राद्भुतं वै भ्राजन्मणिस्तम्भ सहस्रशोभितम् द्युमत्तमं भवनं आसीदिति शेषः ।।५३।।

अनुवाद— उसके पश्चात् तेज आँधी चलने के कारण जिसमें बड़ी-बड़ी लहरियों से सुशोभित दिव्य जल राशि में भगवान् का रथ प्रवेश किया । वहाँ पर हजारों मणियों के स्तम्भों से सुशोभित एक अत्यन्त मनोहर भवन था उसके चारो ओर उज्ज्वल ज्योति फैल रही थी ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

एजन्त उच्चलन्तो बृहन्तो महान्त ऊर्मयो भूषणं यस्य तत् । तत्र सलिले भवनं महाकालपुरम् । द्युमत्तमं द्युतिमत्सु श्रेष्ठम्।।५३।।

भाव प्रकाशिका

उछलती हुई लहरियाँ जिसको सुशोभित कर रही थीं उस जल में महाकालपुर नामक भवन था। प्रकाशित होने वाली सभी वस्तुओं में श्रेष्ठ था ।।५३।।

तस्मिन्महाभीममनन्तमद्भुतं सहस्रमूर्धन्यफणामणिद्युभिः ।
विभ्राजमानं द्विगुणोल्बणेक्षणं सिताचलाभं शितिकण्ठजिह्वम् ।।५४।।

अन्वयः— तस्मिन् महाभीमम् सहस्रमूर्धन्य फणामणिद्युभिः विभाजमानम् द्विगुणोल्वणेक्षणं सिताचलाभम् शितिकण्ठ जिह्वम् अद्भुतम् अनन्तन्तम् ददर्श इतिशेषः ।।५४।।

अनुवाद— उस महल में अत्यन्त भयङ्कर हजारों शिरों की फणाओं की मणियों की कान्ति से सुशोभित, जिनके दो हजार भयङ्कर नेत्र थे तथा जिनका सारा शरीर कैलास पर्वत के समान श्वेत वर्ण का था कण्ठ और जिह्वाएँ नीले रङ्ग की थी ऐसे अद्भुत शेषजी को अर्जुन ने देखा ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

सहस्रं मूर्ध्नि भवाः फणास्तासु मणयस्तेषां द्युतिभिः । द्विसहस्रनेत्रैरूर्जितं स्फटिकगिरिसंकाशम् । शितिकण्ठजिह्वम्, कण्ठाश्च जिह्वाश्च कण्ठजिह्वाः शितयो नीलाः कण्ठजिह्वा यस्य तम् ।।५४।।'

भाव प्रकाशिका

सिर पर होने वाली फणाओं की मणियों की कान्ति से सुशोभित दो हजार नेत्रों से समृद्ध तथा स्फटिक पर्वत के समान श्वेत वर्ण के शरीर वाले जिनके कण्ठ और जीभ नील वर्ण के थे ऐसे शेषजी को अर्जुन ने देखा।।५४।।

ददर्श तद्भोगसुखासनं विभुं महानुभावं पुरुषोत्तमोत्तमम् ।
सान्द्राम्बुदाभं सुपिशङ्गवाससं प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम् ।।५५।।

अन्वयः— तद्भोगसुखासनं विभुं महानुभावम् पुरुषोत्तमोत्तमं सान्द्राम्बदाभम्, सुपिशङ्गवाससम् प्रसन्न वक्त्रम् रुचिरायतेक्षणम् ददर्श ।।५५।।

अनुवाद— अर्जुन ने देखा कि शेषनाग की सुखमयी शय्या पर भगवान् पुरुषोत्तम विराजमान है। उनका व्यापक तथा अत्यधिक प्रभाव है उनके शरीर की कान्ति वर्षा कालीन मेघ के समान श्याम वर्ण की है। वे सुन्दर पीला पीताम्बर धारण किए हुए हैं। उनका मुख मण्डल अत्यन्त प्रसन्न है तथा उनके बड़े-बड़े नेत्र अत्यन्त मनोहर हैं ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

तद्भोगसुखासनं तस्यानन्तस्य भोगो देहः सुखकरमासनं यस्य तम् ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् शेष का शरीर ही जिनकी सुखमयी शय्या है, उन श्रीभगवान् को अर्जुन ने देखा ।।५५।।

महामणिव्रातकिरीटकुण्डलप्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम् ।
प्रलम्बचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालया वृतम् ।।५६।।

अन्वयः— महामणिव्रातकिरीट कुण्डल प्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम् प्रलम्बचार्वष्टभुजं सकौस्तुभम्, श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालया वृत्तम् ददर्श ।।५६।।

अनुवाद— अर्जुन ने देखा कि बहुमूल्य मणियों से जटित किरीट और कुण्डलों की कान्ति से उनके अनन्त काली घुघुराली अलकें सुशोभित हैं। उनकी लम्बी और मनोज्ञ आठ भुजाएँ हैं, गाले में कौस्तुभमणि लटक रही हैं और वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्न से सुशोभित है। उनकी वनमाला घुटनों तक लटक रही है ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

महान्तो मणिव्राता येषु तेषां किरीटकुण्डलानां प्रभा तया परिक्षिप्ताः सर्वतः स्फुरन्तः सहस्रमपरिमिताः कुन्तला यस्य तम्।।५६।।

भाव प्रकाशिका

जिनमें बड़ी-बड़ी मणियों के समूह लगे हैं इस तरह के किरीट और कुण्डलों की कान्ति से जिनकी असंख्य काली घुघराली अलकें चमक रही थीं ऐसे श्रीभगवान् को अर्जुन ने देखा ।।५६।।

सुनन्दनन्दप्रमुखैः स्वपार्षदैश्चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः ।
पुष्ट्या श्रिया कीर्त्यजयाखिलर्द्धिभिर्निषेव्यमानं परमेष्ठिनां पतिम् ।।५७।।

अन्वयः— सुनन्दनन्दप्रमुखैः स्वपार्षदैः चक्रादिभिर्मूर्तिधरैर्निजायुधैः श्रिया पुष्ट्या कीर्त्यजया खिलर्द्धिभिः निषेव्यमाणं परमेष्ठिनां पतिं ददर्श ।।५७।।

अनुवाद— नन्द सुनन्द आदि अपने प्रधान पाषदों सुदर्शन चक्र आदि अपने मूर्तिमान आयुधों पुष्टि श्रीः कीर्ति तथा अजा ये चारो शक्तियों एवं समस्त ऋद्धियों से सेवित ब्रह्मा आदि लोकपालों के अधीश्वर श्रीभगवान् का दर्शन किया अर्जुन ने ।।५७।।

भावार्थ दीपिका

कीर्त्यजया कीर्तिसहितया अजया। अखिलर्द्धिभिरणिमादिविभूतिभिर्मूर्तिधराभिः ।।५७।।

भाव प्रकाशिका

कीर्ति के साथ अजा के द्वारा। मूर्तिमती अणिमा आदि समस्त ऋद्धियों से सेवित ।।५७।।

ववन्द आत्मानमनन्तमच्युतो जिष्णुश्च तद्दर्शनजातसाध्वसः ।
तावाह भूमा परमेष्ठिनां प्रभुर्बद्धाञ्जली सस्मितमूर्जया गिरा ।।५८।।

अन्वयः— अच्युतः अनन्तम् आत्मानम् ववन्दे, जिष्णुः च तद्दर्शनजातसाध्वसः परमेष्ठिनां प्रभुः भूमा सस्मितम् ऊर्जया गिरा बद्धाञ्जली तौ आह ।।५८।।

अनुवाद— श्रीभगवान् ने अपने ही स्वरूप अनन्त भगवान् को नमस्कार किया। अर्जुन श्रीभगवान् को देखकर कुछ भयभीत हो गये थे। भगवान् श्रीकृष्ण के पश्चात् उन्होंने भी प्रणाम किया। हाथ जोड़कर खड़े हुए उन दोनों से ब्रह्मादि लोकपालों के भी स्वामी भूमा पुरुष ने मुस्कुराते हुए मधुर एवं गम्भीर वाणी से कहा ।।५८।।

भावार्थ दीपिका

ऊर्जया ऊर्जितया गिरा ।।५८।।

भाव प्रकाशिका

गम्भीर वाणी से ।।५८।।

द्विजात्मजा मे युवयोर्दिदृक्षुणा मयोपनीता भुवि धर्मगुप्तये ।
कलावतीर्णाववनेर्भरासुरान्हत्वेह भूयस्त्वरयेतमन्ति मे ।।५९।।

अन्वयः— युवयोः दिदृक्षुणा, द्विजात्मजा मया उपनीता भुवि धर्मगुप्तये मे कलावतीर्णौ अवने भरासुरान् हत्वा भूयः इह मे अन्तिम् त्वरया इतम् ।।५९।।

अनुवाद— तुम दोनों को देखने की इच्छा से ही मैंने ब्राह्मण के पुत्रों को यहाँ मँगा लिया था। तुम दोनों पृथिवी पर धर्म की रक्षा करने के लिए मेरी कला से अवतीर्ण हुए हो। पृथिवी के भारभूत असुरों का वध करके तुम दोनों मेरे पास आ जाओ ।।५९।।

भावार्थ दीपिका

मे कलावतीर्णाविति संबोधनम् । शीघ्रं मे अन्ति सकाशमितमागच्छतम् ॥५९॥

भाव प्रकाशिका

मेकलावतीर्णौ यह संबोधन है । में अन्ति अर्थात् मेरे पास **इतम्** अर्थात् आ जाओ ॥५९॥

पूर्णकामावपि युवां नरनारायणावृषी । धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम् ॥६०॥

अन्वयः— युवां नरनारायणौ ऋषी पूर्णकामौ अपि ऋषभो स्थित्यै, लोकसंग्रहम् धर्मम् आचरताम् ॥६०॥

अनुवाद— तुम दोनों ऋषियों में नर और नारायण ऋषि हो यद्यपि तुम दोनों श्रेष्ठ और पूर्णकाम हो फिर भी जगत् की स्थिति के लिए और लोकसंग्रह के लिए धर्म का आचरण करो ॥६०॥

भावार्थ दीपिका

आचरतामाचरतम् । इदं भारतयुद्धात्पूर्वमेव कृतमपि श्रैष्ठ्यकथनप्रस्तावेनात्रोक्तम् ॥६०॥

भाव प्रकाशिका

आचरताम् अर्थात् आचरण करो । यह कार्य भगवान् श्रीकृष्ण ने महाभारत युद्ध से पहले ही किया था फिर भी श्रेष्ठ कथन का प्रस्ताव होने के कारण इसका यहाँ वर्णन है ॥६०॥

इत्यादिष्टौ भगवता तौ कृष्णौ परमेष्ठिना । ओमित्यानम्य भूमानमादाय द्विजदारकान् ॥६१॥
न्यवर्ततां स्वकं धाम संप्रहृष्टौ यथागतम् । विप्राय ददतुः पुत्रान् यथारूपं यथावयः ॥६२॥

अन्वयः— परमेष्ठिना भगवता इत्यादिष्टौ तौ कृष्णौ ओम् इति भूमानम् आनम्य द्विजदारकान् आदाय, संप्रहृष्टौ यथागतम् स्वकं धाम न्यवर्तताम् यथा रूपं यथा वयः विप्राय पुत्रान् ददतुः ॥६१-६२॥

अनुवाद— जब श्रीभगवान् भूमा पुरुष ने श्रीकृष्ण और अर्जुन को इस प्रकार का आदेश दिया तब उन लोगों ने उसे स्वीकार कर उन्हें नमस्कार किया, आनन्द पूर्वक ब्राह्मण के पुत्रों को लेकर जिस रास्ते से गये थे उसी रास्ते से द्वारका में लौट आये । ब्राह्मण के बालक अपनी आयु के अनुसार बड़े-बड़े हो गये थे । उनके रूप और आकृति पूर्ववत् थी उन्हें उनके पिता को भगवान् श्रीकृष्ण ने सौंप दिया ॥६१-६२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६१-६२॥

निशाम्य वैष्णवं धाम पार्थः परमविस्मितः । यत्किंचित्पौरुषं पुंसां मेने कृष्णानुकम्पितम् ॥६३॥

अन्वयः— वैष्णवं धाम निशाम्य परमविस्मितः पार्थः पुंसां यत्किचिञ्चत् पौरुषं कृष्णानुकम्पितम् मेने ॥६३॥

अनुवाद— भगवान् विष्णु के उस परम धाम को देखकर अर्जुन के आश्चर्य की सीमा नही थी उन्होंने माना कि जीवों में जो कुछ बल पौरुष है, वह भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से है ॥६३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६३॥

इतीदृशान्यनेकानि वीर्याणीह प्रदर्शयन् । बुभुजे विषयान्ग्राम्यानीजे चात्यूर्जितैर्मखैः ॥६४॥

अन्वयः— इतीदृशानि अनेकानि इह वीर्याणि प्रदर्शयन् ग्राम्यान् विषयान् बुभुजे अत्युर्जितैः मखैः इजे ॥६४॥

अनुवाद— परीक्षित् भगवान् ने और भी अनेक ऐश्वर्य एवं वीरता से पूर्ण लीलाएँ की लोकदृष्टि से साधारण लोगों के समान सांसारिक विषयों का उन्होंने भोग किया और बहुत से श्रेष्ठ यज्ञ किए ॥६४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६४॥

प्रववर्षाखिलान्कामान्प्रजासु ब्राह्मणादिषु । यथाकालं यथैवेन्द्रो भगवान् श्रैष्ठ्यमास्थितः ॥६५॥

अन्वयः— श्रैष्ठ्यम् आस्थितः भगवान् ब्राह्मणाः दिषु प्रजासु अखिलान् कामान् इन्द्रोयथा यथाकालं प्रववर्ष ॥६५॥

अनुवाद— श्रेष्ठ पुरुषों जैसा आचरण करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अपनी ब्राह्मण आदि सभी प्रजाओं की सारी कामनाओं को उसी प्रकार पूर्ण किए जिस तरह इन्द्र समयानुसार वर्षा करके प्रजाओं की इच्छाओं को पूरा करते हैं ॥६५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६५॥

हत्वा नृपानधर्मिष्ठान् घातयित्वार्जुनादिभिः । अञ्जसा वर्तयामास धर्मं धर्मसुतादिभिः ॥६६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विजकुमारानयनं नाम एकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

अन्वयः— अधर्मिष्ठान् नृपान् हत्वा अर्जुनादिभिः घातयित्वा धर्मसुतादिभिः अञ्जसा धर्मं वर्तयामास ॥६६॥

अनुवाद— श्रीभगवान् अनेक अधर्मी राजाओं को स्वयं मार डाले और बहुतों को अर्जुन आदि द्वारा मरवा डाले । वे युधिष्ठिर आदि राजाओं के साथ मिलकर अनयास ही धर्म का प्रचार किए ॥६६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध के द्विजकुमारानयन नामक नवासीवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां एकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भगवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥८९॥

* * *

नब्बेवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्ण के लीला विहार का वर्णन

श्रीशुक उवाच

सुखं स्वपुर्यां निवसन्द्वारकायां श्रियःपतिः । सर्वसंपत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवैः ।।१।।
स्त्रीभिश्चोत्तमवेषाभिर्नवयौवनकान्तिभिः । कन्दुकादिभिर्हर्म्येषु क्रीडन्तीभिस्तडिद्द्युभिः ।।२।।
नित्यं संकुलमार्गायां मदच्युद्भिर्मतङ्गजैः । स्वलंकृतैर्भटैरश्वै रथैश्च कनकोज्ज्वलैः ।।३।।
उद्यानोपवनाढ्यायां पुष्पितद्रुमराजिषु । निर्विशद्भृङ्गविहगैर्नादितायां समन्ततः ।।४।।
रेमे षोडशससाहस्त्रपत्नीनामेकवल्लभः । तावद्विचित्ररूपोऽसौ तद्गेहेषु महर्द्धिषु ।।५।।

अन्वयः— सर्वसंपत् समृद्धायां वृष्णिपुङ्गवैः जुष्टायां नवयौवन कान्तिभिः उत्तमवेषाभिः हर्म्येषु कन्दुकादिभिः क्रीडन्तीभिः तडिद्द्युभिः स्त्रीभिः जुष्टायाम् मद्च्युद्भिःमतंगजैः स्वलंकृतैः भटैः अश्वैः कनकोज्ज्वलैः रथैः नित्यं संकुलमार्गायां उद्यानोपवनाद्यायां पुष्पितद्रुमराजिषु निर्विशद्भृङ्गविहगैः समन्तः नादितायां षोडशसहस्त्रपत्नीनाम् एकबल्ल्भः तावद्विचित्ररूपोऽसौ महर्द्धिषु तद्गृहेषु श्रियः पतिः स्वपुर्यां सुखं निवसन् रेमे ।।१-५।।

अनुवाद— परीक्षित् भगवान् की अपनी द्वारकापुरी सभी प्रकार की सम्पत्तियों से समृद्ध थी। श्रेष्ठ यदुवंशी गण उसका प्रेमपूर्वक सेवन करते थे। नवीन जवानी की कान्ति से सम्पन्न एवं उत्तम वेषों से अलंकृत, युवतियाँ जब अपने महलों में कन्दुक आदि क्रीड़ा करती थीं, उनकी कान्ति बिजली के समान चमकती थीं। इस प्रकार की स्त्रियों से वह पुरी सुसेवित थी। द्वारकापुरी के मार्ग मदमत्त हाथियों सुन्दर अलङ्कारो से अलंकृत वीर योद्धाओं अश्वों तथा सुवर्ण जटित रथों से भरे रहते थे। वह पुरी उद्यानों और उपवनों से परिपूर्ण थी। उन उद्यानों के पुष्पित वृक्षों की पक्तियों पर बैठे हुए भौंरे गुनगुनाते रहते थे और पक्षीगण चहकते रहते थे। स्वंय भगवान् श्रीकृष्ण सोलह हजार से अधिक पत्नियों के एकमात्र प्रियतम थे। उन सभी पत्नियों के अलग-अलग महल थे। वे महल परम ऐश्वर्य से सम्पन्न थे। श्रीभगवान् की जितनी पत्नियाँ थी उतने ही अद्भुत रूपों को धारण करके भगवान् उन सबों के साथ विहार करते थे। इस तरह लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण द्वारकापुरी में सुखपूर्वक निवास किए ॥१-५॥

भावार्थ दीपिका

चरमे तु पुनः प्रोक्ता कृष्णलीला समासतः। यदुवंशप्रसूतानामानन्त्यं च सकारणम्। श्रीकृष्णविभूर्तिं समासेन दर्शयति- सुखं स्वपुर्यामिति। सर्वसंपदादिविशिष्टायाम्। श्रियःपतिः षोडशसहस्रपत्नीनामेकबल्लभः संस्तासां गेहेषु रेमे इत्यन्वयः॥१-५॥

भाव प्रकाशिका

दशम स्कन्ध के अन्तिम अध्याय में संक्षेप में श्रीकृष्णलीला का वर्णन और कारणयुवत यदुवंश के आनन्त्य का वर्णन है। भगवान् श्रीकृष्ण की विभूति का संक्षेप में वर्णन है। द्वारकापुरी सभी संपत्तियों से सम्पन्न थी लक्ष्मीपति भगवान् सोलह हजार पत्नियों के एक मात्र प्रियतम थे। वे सभी पत्नियों के गृह में रहते हुए विहार किए ॥१-५॥

प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लारकुमुदाम्भोजरेणुभिः । वासितामलतोयेषु कूजाद्द्विजकुलेषु च ॥६॥
विजहार विगाह्याम्भो ह्रदिनीषु महोदयः । कुचकुङ्कुमलिप्ताङ्गः परिरब्धश्च योषिताम् ॥७॥

अन्वयः— प्रोत्फुल्लोत्पलकह्लार कुमुदाम्भोजरेणुभिः वासितामलतोयेषु कुजद्द्विजकुलेषु च ह्रदिनीषु महोदयः अम्भोविगाह्य, योषिताम् परिरख्धः च कुचकुंकुमलिप्ताङ्गः विजहार ॥६-७॥

अनुवाद— सभी पत्नियों के महलों में सुन्दर सरोवर थे। उनके निर्मल जल खिले हुए नीले, पीले, श्वेत लाल आदि कमलों के पराग से सुवासित था। उनमें हंस सारस आदि पक्षी चहकते थे। भगवान् श्रीकृष्ण उन जलाशयों में तथा नदियों में प्रवेश करके अपने पत्नियों के साथ जलविहार करते थे। श्रीभगवान् के साथ जल विहार करने वाली उनकी पत्नियाँ उनको जब अपने भुजपाशों में बाध लेती थीं तो उनके स्तनों में लगे केसर श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में लग जाता था ॥६-७॥

भावार्थ दीपिका

गेहविशेषणं प्रोत्फुल्लेत्यादिश्लोकेन। तथा ह्रदिनीषु चाम्भो विगाह्य विजहार। महानुदयो वैभवं यस्य सः। योषितां कुचकुङ्कुमैर्लिप्ताङ्गः यतस्ताभिः परिरब्धः ॥६-७॥

भाव प्रकाशिका

प्रोत्फुल्ल आदि श्लोक महलों के विशेषण हैं नदियों के जल में प्रवेश करकें श्रीभगवान् जलविहार किए। श्रीभगवान् का वैभव महान था। स्त्रियों द्वारा आलिङ्गित होने के कारण उनके स्तनों के केसर श्रीभगवान् के वक्षःस्थल में लग जाते थे ॥६-७॥

उपगीयमानो गन्धर्वैर्मृदङ्गपणवानकान् । वादयद्भिर्मुदा वीणां सूतमागधबन्दिभिः ॥८॥

अन्वयः— मृदङ्गपणवानकान् वीणां मुदा वादयद्भिः सूतमागधबन्दिभिः गन्धर्वैः उपगीयमानः ॥८॥

अनुवाद—उस समय गन्धर्व गण उनकी स्तुति करने लगते थे तथा सूत, मागध तथा बन्दिगण प्रसन्नता पूर्वक मृदङ्ग, ढोल, नगाड़े और वीणा बजाने लगते थे ॥८॥

भावार्थ दीपिका

सूतमागधबन्दिभिश्चोपगीयमानः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

सूत, मागध एवं वन्दीगण उनकी स्तुति करते रहते थे ॥८॥

सिच्यमानोऽच्युतस्ताभिर्हसन्तीभिः स्म रेचकैः । प्रतिसिञ्चन्विचिक्रीडे यक्षीभिर्यक्षराडिव ॥९॥

अन्वयः— हसन्तीभिः ताभिः रेचकैः सिच्यमानः अच्युतः प्रतिषिञ्चन् यक्षीभिः यक्षराडिव विचिक्रीडे ॥९॥

अनुवाद— हँसती हुई पत्नियाँ पिचकारियों आदि में जल भरकर श्रीभगवान् को भिंगो देती थीं तो भगवान् भी उनको भिंगो देते थे । इस तरह पत्नियों के साथ ऐसी क्रीड़ा करते थे जैसे कुबेर यक्षियों के साथ क्रीडा करते हों ॥९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥९॥

ताः क्लिन्नवस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाः सिञ्चन्त्य उद्धृतबृहत्कबरप्रसूनाः ।
कान्तं स्म रेचकजिहीरषयोपगुह्य जातस्मरोत्सवलसद्वदना विरेजुः ॥१०॥

अन्वयः— ताः क्लीन वस्त्रविवृतोरुकुचप्रदेशाः सिञ्चन्त्यः उद्धतबृहत्कवर प्रसूनाः रेचकजिहीरषया कान्तं उपगुह्य जातस्मरोत्सव लसद् वदन विरेजुः ॥१०॥

अनुवाद— उस समय श्रीभगवान् की पत्नियों के वस्त्र भिंग जाने के कारण उनके वक्षोज और जङ्घा आदि दिखाई पड़ने लग जाते थे । उनकी बड़ी-बड़ी चोटियों और जूड़ों में गुथे हुए फूल गिरने लगते थे । वे भिगोने वाले भगवान् से पिचकारी छिन लेने के श्रीभगवान् के सन्निकट पहुँच जातीं और श्रीभगवान् का आलिङ्गन कर लेती है । उससे उनके मन में प्रेम का उद्रेक हो जाता जिससे कि उनके मुख कमल और विकसित हो जाते थे । और उन पत्नियों की शोभा और बढ़ जाती थी ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ताः क्लिन्नवस्त्राः अतएव विवृतोरुकुचप्रदेशाः । उद्धृतानि विस्रस्तानि बृहत्कबरेभ्यः प्रसूनानि यासां ताः । जातेन स्मरेण य उत्सवस्तेन लसन्ति वदनानि यासां ताः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उन स्त्रियों के वस्त्र भिंगे थे अतएव उनके जङ्घा तथा स्तन आदि स्पष्ट दिखाई देने लगते थे । उनकी चोटियों के खुल जाने से चोटियों में लगे पुष्प गिरने लगते थे । उत्पन्न कामुकता के कारण उनके मुख और सुन्दर लगते थे॥१०॥

कृष्णस्तु तत्स्तनविषञ्जितकुङ्कुमस्रक् क्रीडाभिषङ्गधुतकुन्तलवृन्दबन्धः ।
सिञ्चन्मुहुर्युवतिभिः प्रतिषिच्यमानो रेमे करेणुभिरिवेभपतिः परीतः ॥११॥

अन्वयः— कृष्णः तत्स्तनविषञ्जित कुंकुमस्रक् क्रीडाभिषङ्ग धुत कुन्तल वृन्दवन्धः युवतिभिः मुहुः सिञ्चन् प्रतिसिच्यमानः करेणुभिः परीतः इभपतिरिव रेमे ॥११॥

अनुवाद— उस समय रानियों के वक्षोजों में लगे केसर के रङ्ग से श्रीभगवान् की वनमाला रङ्ग जाती थी। विहार में अत्यन्त मग्न हो जाने से श्रीभगवान् की घुंघुराली अलकें लहराने लगती थीं । वे अपनी रानियों को बार-बार भिंगो देते और रानियाँ भी उनको सराबोर कर देती थीं । अपनी रनियों के साथ श्रीभगवान् इस तरह से विहार करते थे जैसे अपनी हथिनियों से घिरा हुआ कोई गजराज क्रीड़ा कर रहा हो ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तासां स्तनेभ्यो विषज्जितकुङ्कुमा स्रग्यस्य । क्रीडाया अभिषङ्गेणाभिनिवेशेन धुतः कम्पितः कुन्तलवृन्दबन्धो यस्य सः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

रानियों के स्तनों से सट जाने के कारण भगवान् की वनमाला कुङ्कुम के रङ्ग से रङ्ग जाती । क्रीडा में मग्न होने के कारण श्रीभगवान् की घुंघुराली अलकें लहराने लगती थीं ।।११।।

नटानां नर्तकीनां च गीतवाद्योपजीविनाम् । क्रीडालंकारवासांसि कृष्णोऽदात्तस्य च स्त्रियः ।।१२।।

अन्वयः— गीतवाद्योपजीविनां नटानां नर्तकीनां च क्रीडालङ्कारवासांसि कृष्णः तस्य स्त्रियः च अदात् ।।१२।।

अनुवाद— गाना बजाना ही जिनकी जीविका थी उन नटों और नर्तकियों को भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी पत्नियाँ क्रीड़ा के वस्त्रों और अलङ्कारों को दे देते थे ।।१२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१२।।

कृष्णस्यैवं विहरतो गत्यालापेक्षितस्मितैः । नर्मक्ष्वेलिपरिष्वङ्गैः स्त्रीणां किल हृता धियः ।।१३।।

अन्वयः— एवं विहरतः कृष्णस्य गत्यालापेक्षितस्मितैः नर्मक्ष्वेलिपरिष्वङ्गैः स्त्रीणां धियः हृत किल ।।१३।।

अनुवाद— परीक्षित् अपनी पत्नियों के साथ इस तरह से विहार करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की चाल वातचित चितवन मुस्कान आदि से उनकी पत्नियों का मन उनमें ही लगा रहता था उन्हें किसी दूसरी बात की याद ही नहीं आती थी ।।१३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१३।।

ऊचुर्मुकुन्देकधियोऽगिर उन्मत्तवज्जडम् । चिन्तयन्त्योऽरविन्दाक्षं तानि मे गदतः शृणु ।।१४।।

अन्वयः— मुकुन्दैकधियः उन्मतवज्जडम् अगिरः, अरविन्दाक्षं चिन्तयन्त्यः ऊचुः तानिमेदतः मे शृणु ।।१४।।

अनुवाद— परीक्षित उन रानियों के जीवन सर्वस्व श्रीकृष्ण ही थे, उनका चिन्तन करती हुई वे उन्मत्त और जड़ के समान देर तक चुप लगाये रहतीं और कमनीय जाने क्या-क्या कहने लगती थीं । उनकी बातों को मैं (शुकदेवजी) बतलाता हूँ तुम सुनो ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

मुकुन्दैकधियः समाहिता इव क्षणमगिरः सत्यः पुनस्तमेवेशं चिन्तयन्त्यो जडं यथा भवति तथा यानि वाक्यानि ऊचुस्तानि मे मत्तो गदतः शृण्वित्यर्थः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

नहीं है ।।१४।।

महिष्य ऊचुः

कुररि विपलसि त्वं वीतनिद्रा न शेषे स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोधः ।
वयमिव सखि कच्चिद्गाढनिर्भिन्नचेता नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन ।।१५।।

अन्वयः— कुररि विलपसि बीतनिद्रा न शेषे जगति स्वपिति रात्र्याम् गुप्तबोधः सखि कच्चित् वयमिव नलिननयन हासोदारलीलेक्षितेन गाढनिर्भिन्नचेता असि ।।१५।।

अनुवाद— अरी कुररि तुम विलाप कर रही हो, तुम्हें नींद नहीं आती है क्या ? कि नहीं सोती हो ? देखो सारा संसार सो रहा है श्रीभगवान् अपना अखण्ड बोध छिपाकर सो रहे है । सखि ! क्या हमलोगों के ही समान कमल नयन श्रीभगवान् की मधुर हास्यपूर्ण लीलाभरी उदार प्रेक्षण से तुम्हारा भी हृदय विंध गया है क्या ?॥१५॥

भावार्थ दीपिका

ईश्वर; श्रीकृष्णः स्वपिति । त्वं तु निद्राभङ्गं कुर्वती विलपसि न शेषे न स्वपिषि तदनुचितमित्यर्थः । अथवा नापराधस्तवापीत्याशयेनाहुः-नलिननयनस्य भगवतो हासेन सहितमुदारं यल्लीलेक्षितं तेन कश्चिद्गाढं निर्विद्धचेतास्त्वमिति ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सो रहे हैं, तुम विलाप करके उनकी निद्राभङ्ग कर रही हो । उनमें ही चित्त के लगे रहने से तुम सो नहीं रही हो । अथवा इसमें तुम्हारा भी कोई अपराध नहीं है । कमलनयन श्रीभगवान् की हंसी युक्त लीला पूर्वक प्रेक्षण से तुम्हारा भी हृदय तो नहीं विंध गया है ?॥१५॥

नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टबन्धुस्त्वं रोरवीषि करुणं बत चक्रवाकि ।
दास्यं गता वयमिवाच्युतपादजुष्टां किं वा स्रजं स्पृहयसे कबरेण बोढुम् ॥१६॥

अन्वयः— हे चक्रवा कि नक्तमदृष्टबन्धुः त्वं नेत्रे निमीलयसि, बत करुणं रोरवीषि वयमिव दास्यं गता अच्युतपादजुष्टा स्रजं कबरेण बोढुम् स्पृहयसे किम् ।।१६।।

अनुवाद— अरी चकवी तुने रात के समय अपने नेत्रों को क्यों बन्द कर लिया है ? क्या तुम्हारे पति देव विदेश चले गये है कि 'इस तरह करुण रुदन कर रही हो । अथवा हमलोगों के ही समान दासी बनकर श्रीभगवान् के चरणों पर चढ़ी माला को अपनी चोटी में पिरोना चाहती हो ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

नक्तं रात्रावदृष्टबन्धुः सती रोरवीषि । किं वा नैतावदपि तु वयमिव स्पृहयसे ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

रात्रि में अपने प्रियतम को नहीं देखने के कारण करुणरुदन करती हो । अथवा इतना ही नही हमलोगों के समान कामना करती हो ॥१६॥

भो भोः सदा निष्टनसे उदन्वन्नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागरः ।
किं वा मुकुन्दापहृतात्मलाञ्छनः प्राप्तां दशां त्वं च गतो दुरत्ययाम् ॥१७॥

अन्वयः— भो भोः उदन्वन् सदा निष्टनसे अलब्धनिद्रः अधिगतप्रजागरः किंवा मुकुन्दापहृतात्मलाञ्छनः त्वं च दुरत्यां दशा गतः ।।१७।।

अनुवाद— अरे समुद्र तुम तो सदा गरजते ही रहते हो । तुम्हें नींद नहीं आती क्या ? क्या सदा गरजते रहने की आदत पड़ गयी है । क्या श्यामसुन्दर तुम्हारे धैर्य गाम्भीर्य आदि स्वाभाविक गुणों को छिन लिए हैं ? अथवा तुम भी उस भयङ्कर व्याधि के शिकार बन गये हो कि तुम्हें हमलोगों के ही समान नदीं नहीं आती हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अलब्धनिद्रः सदा निष्टनसे क्रोशसि । किं वा अस्माभिः प्राप्तां दशां त्वमपि गतोऽसि । अहो कष्टं यथा वयं संभोगेन मुकुन्दापहृतकुचकुङ्कुमादिलाञ्छनास्तथा त्वमपि यतोऽपहतश्रीकौस्तुभादिलाञ्छनो लक्ष्यसे ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

तुमको नीदं नहीं आती सदा चिल्लाते रहते हो । क्या हमलोगों की जो दशा है । वही दशा तुम्हारी भी है क्या ? कष्ट की बात है कि जिस तरह संभोग के द्वारा श्रीकृष्ण हमारे स्तनों के कुंकुम आदि को हटा देते हैं उसी तरह उन्होंने तुम्हारे भी कौस्तुभमणि आदि को ले लिया है ॥१७॥

त्वं यक्ष्मणा बलवतासि गृहीत इन्दो क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि ।
कच्चिन्मुकुन्दगदितानि यथा वयं त्वं विस्मृत्य भोः स्थगितगीरुपलक्ष्यसे नः ॥१८॥

अन्वयः— इन्दो त्वं बलवता यक्ष्मणा गृहीतोऽसि क्षीणः निजदीधितीभिः तमः न क्षिणोसि वयं यथा कच्चित् मुकुन्दगदितानि यथा विस्मृत्य भोः नः स्थगितगीः उपलक्ष्यसे ॥१८॥

अनुवाद— चन्द्रदेव आपको तो बहुत बड़ा रोग राजयक्ष्मा हो गया है । इससे तुम इतने क्षीण हो गये हो कि अपनी किरणों से अन्धकार को नहीं विनष्ट करते हो । क्या हमलोगों के ही समान हमारे श्यामसुन्दर की मीठी-मीठी रहस्य की बातें भूल जाने के कारण तुम मौन हो गये हो ?॥१८॥

भावार्थ दीपिका

मुकुन्दगदितानि रहस्यानि विस्मृत्य तदेकचिन्तया कच्चित्त्वं क्षीणोऽसि वयमिव स्थगितगीस्तनुवाक् । हे इन्दो, नस्तथैवोपलक्ष्यसे॥१८॥

भाव प्रकाशिका

हे चन्द्रमा भगवन् ! श्रीकृष्ण द्वारा उक्त रहस्यमयी बातों को भूलकर उसी की चिन्ता से तुम हमलोगों के ही समान क्षीण होकर मौन हो गये हो ऐसा प्रतीत हो रहा है ॥१८॥

किं त्वाचरितमस्माभिर्मलयानिल तेऽप्रियम् । गोविन्दापाङ्गनिर्भिन्ने हृदीरयसि नः स्मरम् ॥१९॥

अन्वयः— हे मलयानिल अस्माभिः ते किम् अप्रियम् आचरितम् यत् गोविन्दापाङ्ग निर्मिन्ने नः हृदि स्मरम् ईरयसि॥१९॥

अनुवाद— हे मलयानिल हमलोगों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है कि गोविन्द के कटाक्षपात से विद्ध हमारे हृदय में तुम काम का संचार करते हो ?॥१९॥

भावार्थ दीपिका

अप्रियाचरणं विना स्मरोदीरणेन व्यथाजननं मलयानिल, तवानुचितमित्यर्थः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अप्रियाचरण के बिना कामोद्दीपन करके हमें व्यथित करना उचित नहीं है ॥१९॥

मेघ श्रीमंस्त्वमसि दयितो यादवेन्द्रस्य नूनं श्रीवत्साङ्कं वयमिव भवान्ध्यायति प्रेमबद्धः ।
अत्युत्कण्ठः शबलहृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराः स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखतस्तत्प्रसङ्गः ॥२०॥

अन्वयः— हे श्रीमन् मेघ नूनं त्वं यादवेन्द्रस्य दयितः असि प्रेमबद्धः भवान् वयमिव श्रीवत्साङ्कं ध्यायति, अत्युत्कण्ठः शबलहृदयः अस्मद्विधः स्मृत्वा स्मृत्वा वाष्पधारा तत्प्रसङ्गः मुहुर्दुखतः विसृजसि ॥२०॥

अनुवाद— श्रीमन् मेघ तुम निश्चित रूप से यदुवंश शिरोमणि को अत्यन्त प्रिय हो, इसीलिए तुम उनके प्रेम में बँधकर हमलोगों के समान उनका ध्यान करते हो, तुम्हारा हृदय चिन्ता से भरा है, उनके लिए तुम उत्कण्ठित हो, । इसीलिए उनकी बार-बार याद करके हमारे ही समान तुम आँसू बहाते हो । मेघ श्याम से नाता जोड़ना पीड़ा मोल लेना है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

मेघेति । आतपार्तिहरणादिसाम्यात्त्वं यादवेन्द्रस्य नूनं दयितः सखासि, अतो भवांस्तं ध्यायति । ध्याने लिङ्गान्याहुः- अत्युत्कण्ठ इत्यादि । अहो किमिति त्वया तेन सख्यं कृतं यतो दुःखदस्तत्प्रसङ्ग इति ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

मेघ जैसे श्याम कष्ट को दूर करते हैं, वैसे तुम भी धूप से बचाते हो अतएव दोनों में समानता है । अतएव तुम श्रीकृष्ण के निश्चित रूप से प्रिय मित्र हो । इसलिए आप उनका ध्यान करते हो । ध्यान के चिह्नों को बतलाते हैं । तुम्हारे मन में उनके प्रति अत्यन्त उत्कण्ठा है । अरे तुमने श्याम से क्यों मित्रता की उनसे संबन्ध जोड़ना दुःख का कारण बनता है ।।२०।।

प्रियरावपदानि भाषसेऽमृतसंजीविकयाऽनया गिरा ।
करवाणि किमद्य ते प्रियं वद मे बल्गितकण्ठ कोकिल ।।२१।।

अन्वयः— हे कोकिल अवय मृतसंजीविकया गिरा प्रियराव पदानि भाषसे मेबल्गितकण्ठ मे वद अद्यते किम् प्रियं करवाणि ?।।२१।।

अनुवाद— अरे कोयल ! तुम अपनी इस बोली से मरणावस्थावस्थित भी प्रेमियों को जीवित करने वाली इस वाणी से हमारे प्रियतम को ही समान पदों का उच्चारण करती हो । तुम्हारा कण्ठ अत्यन्त सुरीला है मुझे तुम बतलाओं तुम्हारे लिए मैं कौन सा प्रिय कार्य करूँ ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

हे कोकिल, मे प्रियरावस्य प्रियंवदस्य श्रीकृष्णस्य पदानीव पदानि शब्दांस्त्वं भाषसे । मृतान्संजीवयतीति तथा तयाऽनया कोमलया गिरा बल्गितकण्ठ रमणीयकण्ठ मे कथय किं तव प्रियं करवाणीति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

हे कोयल तुम तो मेरे प्रियतम के ही समान ही अत्यन्त मनोहर शब्दों को बोलती हो । तुम्हारी यह वाणी प्रेमियों को जीवित करने वाली है । हे रमणीय कण्ठ तुम मुझे बतलाओं मैं तुम्हारा कौन सा प्रिय कार्य करूँ ।।२१।।

न चलसि न वदस्युदारबुद्धे क्षितिधर चिन्तयसे महान्तमर्थम् ।
अपि बत वसुदेवनन्दनाङ्घ्रि वयमिव कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ।।२२।।

अन्वयः— हे क्षितिधर उदारबुद्धे ! न चलसि न वदसि महान्तम् अर्थम् चिन्तयसे अपि बत वसुदेवनन्दनाङ्घ्रिम् वयमिव स्तनैर्विधर्तुम् कामयसे ।।२२।।

अनुवाद— हे उदार बुद्धि वाले पर्वत तुम न तो चलते और न तो बोलते है लगता है कि तुम किसी महान् अर्थ का चिन्तन कर रहे हो । क्या मेरे श्यामसुन्दर के चरणों को हमलोगों के ही समान अपने स्तनतुल्य शिखरों पर धारण करना चाहते हो क्या ?।।२२।।

भावार्थ दीपिका

हे क्षितिधर, त्वं न वदसि न चलसि । अतो नूनं महान्तमर्थं चिन्तयसे । बत तर्हि अपि किं यथा स्तनैर्विधर्तुं वयं कामयामहे तथा त्वं स्तनतुल्यैः शृङ्गैर्वोढुं कामयसे । ओमिति चेत्तर्हि तवाप्यस्मदवस्था भविष्यतीति भावः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

हे पर्वत तुम न तो बोलते हों और न चलते हो । अतएव निश्चित रूप से तुम किसी महान् विषय का चिन्तन

करते हो। तो क्या तुम भी हमलोगों के ही समान श्रीकृष्ण के चरणों को अपने स्तन तुल्य शिखरों पर धारण करना चाहते हो यदि हाँ तब तो तुम्हारी भी दशा हमलोगों के ही समान होगी ॥२२॥

शुष्यद्ध्रदाः करशिता बत सिन्धुपत्न्यः संप्रत्यपास्तकमलश्रिय इष्टभर्तुः ।
यद्वद्वयं मधुपतेः प्रणयावलोकमप्राप्य मुष्टहृदयाः पुरुकर्शिताः स्म ॥२३॥

अन्वयः—हे शुष्द्ध्रदाः करशिताः सिन्धुपत्न्यः सम्प्रति अपास्तकमलश्रियः इष्टप्रियः वयं यद्वत् मधुपतेः प्रणयावलोकम् अप्राप्य मुष्ट हृदयाः पुरुकर्शिताः स्म ॥२३॥

अनुवाद—हे समुद्र पत्नियाँ नदियों, इस ग्रीष्म काल में तुम्हारे कुण्ड सुख गये है। इस समय तुममें विकसित कमलों का सौन्दर्य नहीं दिखता। तुम बहुत दुबली पतली हो गयी हो। लगता हैं जिस तरह हमलोग अपने प्रियतम के प्रेमपूर्ण चितवन को न पाकर तरह दुबली पतली हो गयी हैं, उसी तरह से तुम भी मेघों द्वारा अपने प्रियतम समुद्र का जल नहीं पाकर दीन-हीन हो गयी हो ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

भोः सिन्धुपत्न्यो नद्यः संप्रति ग्रीष्मे सिन्धुर्मेघद्वारा अमृतवृष्ट्या युष्मान्नानन्दयति। बत अहो कष्टम्। अतः शुष्यन्तो ह्रदा यासां ताः अपगतकमलशोभाः कृशाश्च वयं यथा प्रियतमस्य भर्तुर्मधुपतेः। स्म प्रसिद्धम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

हे समुद्र पत्नियों नदियों, इस ग्रीष्म ऋतु में समुद्र मेघों द्वारा जल की वृष्टि के द्वारा तुमलोगों को आनन्दित नहीं करता है अतएव तुमलोंगों के कुण्ड सुख गये हैं और विकसित कमलों की शोभा भी तुमसे समाप्त हो गयी है। जैसे हमलोग श्रीकृष्ण के मधुर वचन और प्रणयावलोक के अभाव में कृश हो गयी हैं उसी तरह तुम भी दुबली पतली हो गयी हो यह प्रसिद्ध अर्थ है ॥२३॥

हंस स्वागतमाास्यतां पिब पयो ब्रूह्यङ्ग शौरेः कथां,
दूतं त्वां नु विदाम कच्चिदजितः स्वस्त्यास्त उक्तं पुरा ।
किं वा नश्चलसौहृदः स्मरति तं कस्माद्भजामो वयं,
क्षौद्रालापय कामदं श्रियमृते सैवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥२४॥

अन्वयः— हंस स्वागतम् आस्यताम् पयः पिब, अङ्ग शैरेः कथां ब्रूहि, त्वां नु कच्चित् अजितः दूतं विदाम स्वस्ति आस्ते किंवा पुरा उक्तम् चल सौहृदः स्मरति, हे क्षौद्र कामदम् श्रियम् ऋते आलापय स्त्रियाम् सैवएकनिष्ठा किम् ॥२४॥

अनुवाद— दैववशात् आये हुए हंस को ही भगवान् श्रीकृष्ण का दूत मानकर कहती है, हे हंस आओ दूध पियो। हे प्रिय हंस श्याम सुन्दर की कोई बात सुनाओ। तुम तो प्रियतम के ही दूत हो। श्यामसुन्दर सकुशल तो है ? उनकी मित्रता अत्यन्त अस्थिर है। उन्होंने कहा था कि तुम ही मेरी प्रियतमा हो, यह बात उनको याद है क्या? तुम जाओ हमलोग उनके अनुनय विनय को नहीं सुनती, जब वे हमारी परवाह नहीं करते तो हम उनके पीछे क्यों मरें। हे क्षुद्र के दूत हम उनके पास नहीं जातीं। यदि वे हमारी इच्छा पूर्ण करने के लिए आना चाहते हैं तब उनको बुला लाओ, किन्तु लक्ष्मी के साथ उनको मत लाना। वे यदि वे लक्ष्मी को छोड़कर नहीं आना चाहते तो क्या स्त्रियों में लक्ष्मी ही एकनिष्ठ हैं क्या ?॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तदैव दैवादागतं हंसं दूतं कल्पयित्वाहुः-हंसेति। नोऽस्मान्प्रति पुरा रहस्युक्तं किं वा चलसौहृदः स्मरति। स्मृत्वैव मां

प्रस्थापितवानिति चेदत आहुः- हे क्षौद्र क्षुद्रस्य दूत, कस्मात्तं वयं भजामः । कामार्थमाह्वयति युष्मानिति चेदत आहुः-अहो तर्हि तमालापयाकारय । ओमिति गच्छन्तमिव तं पुनराहुः-याऽस्मान्वञ्चयित्वाएकाकिनी सेवते तां श्रियमृते तमेवालापय। सा तदेकनिष्ठा कथं परिहर्तुं शक्यत इति चेदत आहुः-स्त्रियाम्, जातावेकवचनम् । अस्मासु स्त्रीषु मध्ये किं सैवैकनिष्ठा ननु वयमित्यर्थः । पाठान्तरे तु क्षौद्रं मधु तद्वन्मधुरालापमात्रं यस्य तमकामदमरतिप्रदं श्रियमृते वयं कस्माद्भजामः । किंत्वनादृतापि सती पुनः पुनः सैव भजतु यतोऽस्मादृश्यो मानिन्यः स्त्रिय एकनिष्ठा एकत्रैव स्वसंमानसिद्धौ निष्ठा यासामिति ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

सौभाग्यवशात् अचानक आये हुए हंस को ही दूत मानकर **हंसस्वागत इत्यादि** श्लोक कहती हैं । हमलोगों से रहस्य की बात जो उन्होंने कहा था उसको अस्थिर मित्रता वाले उनको याद है क्या ? यदि कहो कि उसी बात को याद करके उन्होंने भेजा है ? तो इस पर रानियों ने कहा हे क्षुद्र के दूत हमलोग उनकी आराधना क्यों करें । यदि कहो कि इसी से वे आपलोगों को बुला रहे हैं ? तो तुम जाकर उनको ही बुला लाओ । ठीक है कहकर जाते हुए के समान उसे देखकर कहती हैं जो हमलोगों को उड़ा कर अकेले ही उनका सेवन करती है उस लक्ष्मी को उनके साथ मत लाना । यदि कहो कि लक्ष्मी तो केवल श्रीकृष्ण निष्ठ हैं उनको छोड़कर वे नहीं आना चाहते हैं तो इस पर रानियों ने कहा क्या हम सभी स्त्रियों में केवल लक्ष्मी ही एकनिष्ठ हैं ? हमलोग एकनिष्ठ नहीं है क्या ? पाठान्तर के होने पर तो क्षौद्रम् अर्थात् मधु (शहद) के समान केवल मीठी-मीठी बात करने वाले रतिप्रदान नहीं करने वाले लक्ष्मी को छोड़कर हमलोग उनकी क्यों आराधना करें ? अनादृत भी लक्ष्मी ही उनकी सेवा करे, हमलोग तो मानिनी स्त्रियाँ हैं । लक्ष्मी की ही केवल श्रीकृष्ण में निष्ठा है अपने समान की प्राप्ति के लिए जिन सबों की निष्ठा है ।।२४।।

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे । क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमां गतिम् ।।२५।।

अन्वयः— योगेश्वरेश्वरे श्रीकृष्णे इदृशेन क्रियामाणेन भावेन माधव्यः परमां गति लेभिरे ।।२५।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियों का योगेश्वरों के भी स्वामी श्रीकृष्ण में इसी तरह का अनन्य प्रेम था । इसीलिए वे सब परम पद को प्राप्त कर लीं ।।२५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२५।।

श्रुतमात्रोऽपि यः स्त्रीणां प्रसह्याकर्षते मनः । उरुगायोरुगीतो वा पश्यन्तीनां कुतः पुनः ।।२६।।

अन्वयः— यः श्रुतमात्रोऽपि स्त्रीणां मनः प्रसह्य आकर्षते उरुगायः उरुगीतः वा पश्यन्तीनां पुनः कुतः ।।२६।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाएँ ऐसी हैं कि उनके सुनने मात्र से स्त्रियों का मन उनकी ओर आकर्षित कर लेती है । उनकी लीलाएँ अनेक प्रकार से गायी गयी हैं । जो स्त्रियाँ उनका अपने नेत्रों से देखती हैं उनके संवन्ध में क्या कहना हैं ?।।२६।।

भावार्थ दीपिका

तासां कृष्णे एवंभूतो भावो नातिचित्रमित्याह-श्रुतमात्रोऽपीति । उरुभिर्गायैर्गीतैरुरूधा गीतो वा यैः कैश्चिदपि गीतैः; कथाभिः कथंचिदपि गीतो वेत्यर्थः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

श्रुतमात्रोऽपि० इत्यादि श्लोक से कहा गया है कि उन रानियों को भगवान् श्रीकृष्ण में इतना प्रेम था यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । भगवान् की लीलाओं का गायन अनेक लोगों ने अनेक प्रकार से किया है । अथवा किसी के द्वारा किसी प्रकार गायी गयी हैं ।।२६।।

याः संपर्यचरन्प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः । जगद्गुरुं भर्तृबुद्ध्या तासां किं वर्ण्यते तपः ॥२७॥

अन्वयः— याः जगदगुरुं भर्तृ बुद्धया प्रेम्णा पादसंवाहनादिभिः संपर्यचरन् तासां तपः किं वर्ण्यते ॥२७॥

अनुवाद— जिन स्त्रियों ने जगदगुरु भगवान् श्रीकृष्ण को अपनापति मानकर अत्यन्त प्रेमपूर्वक उनके चरण कमलों को सहलाया उन सबों की तपस्या का वर्णन कैसे किया जा सकता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

एवं वेदोदितं धर्ममनुतिष्ठन्सतां गतिः । गृहं धर्मार्थकामनां मुहुश्चादर्शयत्पदम् ॥२८॥

अन्वयः— सतां गतिः एवं वेदोदितं धर्मम् अनुतिष्ठन् गृहं धर्मार्थकामानाम् पदम् मुहुः च अदर्शयत् ॥२८॥

अनुवाद— भगवन् श्रीकृष्ण ही सत् पुरुषों के एकमात्र आश्रय हैं । उन्होंने बार-बार वेदोक्त धर्मों का अनुष्ठान करके बतला दिया कि गृह ही धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति का साधन है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

पदं स्थानम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

पदम् अर्थात् स्थान ॥२८॥

आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहमेधिनाम् । आसन्षोडशसाहस्रं महिष्यश्च शताधिकम् ॥२९॥

अन्वयः— गृहमेधिनाम् परं धर्मं आस्थितस्य कृष्णस्य शताधिकम् षोडशसाहस्रं महिष्यश्च आसम् ॥२९॥

अनुवाद— गृहस्थों के परं धर्म का पालन करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण की रानियों की संख्या सोलह हजार एक सौ आठ थी ॥२९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२९॥

तासां स्त्रीरत्नभूतानामष्टौ याः प्रागुदाहृताः । रुक्मिणीप्रमुखा राजंस्तत्पुत्रांश्चानुपूर्वशः ॥३०॥

अन्वयः— राजन् तासां स्त्रीरत्नभूतामाम् रुक्मिणीप्रमुखाः या प्राक्उदाहृताः तासां पुत्रान च अनुपूर्वशः वर्णित इति शेषः ॥३०॥

अनुवाद— परीक्षित् उनमें से जो रुक्मिणी आदि आठ रानियाँ पहले कही जा चुकी हैं उन सबों के पुत्रों का नाम मैं क्रमशः बतला चुका हूँ ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

या रुक्मिणीप्रमुखा अष्टावुदाहृताः प्राक् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

जो रुक्मिणी आदि आठ रानियाँ जिनका पहले वर्णन किया जा चुका है ॥३०॥

एकैकस्यां दश दश कृष्णोऽजीजनदात्मजान् । यावन्त्य आत्मनो भार्या अमोघगतिरीश्वरः ॥३१॥

अन्वयः— अमोघ गतिः ईश्वरः यावन्त्यः आत्मनोभार्याः एकैकस्यां दश-दश आत्मजान् अजीजनत् ॥३१॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान हैं । उन आठों रानियों से अतिरिक्त जो रानियाँ हैं, उन सबों से भगवान् ने दस-दस पुत्रों को उत्पन्न किया ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

एवमष्टोत्तरशताधिकषोडशसहस्रमहिषीणां पुत्रा लक्षमेकमशीत्युत्तरैकषष्टिसहस्राणि च भवन्ति ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह सोलह हजार एक सौ आठ रानियों के पुत्रों की संख्या कुल मिलाकर एक लाख एकसठ हजार अस्सी होती है ।।३१।।

तेषामुद्दामवीर्याणामष्टादश महारथाः । आसन्नुदारयशसस्तेषां नामानि मे शृणु ।।३२।।

अन्वयः— तेषाम् उद्दामवीर्याणाम् उदारयशसः महारथाः अष्टादश आसन्, तेषां नामानि मे शृणु ।।३२।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के उन परम पराक्रमी पुत्रों में अठारह महायशस्वी महारथी थे । उन सबों का नाम मैं तुम्हें बतलाता हूँ ।।३२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३२।।

प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च दीप्तिमान्भानुरेव च । साम्बो मधुर्बृहद्भानुश्चित्रभानुर्वृकोऽरुणः ।।३३।।
पुष्करो वेदबाहुश्च श्रुतदेवः सुनन्दनः । चित्रबाहुर्विरूपश्च कविर्न्यग्रोध एव च ।।३४।।

अन्वयः— प्रद्युम्नश्च, अनिरुद्धश्च, दीप्तिमान् भानुः एव च साम्बः, मधुः, बृहदभानुः, चित्रभानुः, वृकः, अरुणः, पुष्करः, वेदबाहः च श्रुतदेवः, सुनन्दनः चित्रबाहुः विरूपः, कविः न्यग्रोधः एव च ।।३३-३४।।

अनुवाद— १. प्रद्युम्न, २. अनिरुद्ध, ३. दीप्तिमान, ४. भानुः, ५. साम्ब, ६. मधुः, ७. बृहद्भानुः, ८. चित्रभानु, ९. वृक, १०. अरुण, ११. पुष्कर, १२. वेदबाहुः, १३. श्रुतदेवः, १४. सुनन्दन, १५. चित्रबाहुः, १६. विरुप, १७. कविः और १८. न्यग्रोध ।।३३-३४।।

भावार्थ दीपिका

अनिरुद्धश्चेति । अतः पुत्राणां मध्ये सप्तदशैव महारथा ज्ञेयाः । अथवा अनिरुद्धनामापि कश्चित्पुत्र एवेति ।।३३-३४।।

भाव प्रकाशिका

अनिरुद्ध तो प्रद्युम्नजी के पुत्र थे अतएव पुत्रों में सत्रहह को ही महारथी मानना चाहिए । अथवा हो सकता है कि पुत्रों में से ही किसी का नाम अनिरुद्ध हो ।।३३-३४।।

एतेषामपि राजेन्द्र तनुजानां मधुद्विषः । प्रद्युम्न आसीत्प्रथमः पितृवद्रुक्मिणीसुतः ।।३५।।

अन्वयः— राजेन्द्र एतेषाम् अपि मधुद्विषः रुक्मिणी सुतः प्रद्युम्नः पितृवत् प्रथमः आसीत् ।।३५।।

अनुवाद— परीक्षित् इन पुत्रों में भी श्रीभगवान् के प्रथम पुत्र रुक्मिणी नन्दन प्रद्युम्नजी अपने पिता के ही समान थे ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३५।।

स रुक्मिणो दुहितरमुपयेमे महारथः । तस्मात्सुतोऽनिरुद्धोऽभून्नागायुतबलान्वितः ।।३६।।

अन्वयः— सः रुक्मिणः दुहितरम् उपयेमे, तस्मात् नागायुतबलान्वितः अनिरुद्धसुतः अभूत् ।।३६।।

अनुवाद— प्रद्युम्नजी ने रुक्मी की पुत्री से विवाह किया, उससे प्रद्युम्नजी के पुत्र अनिरुद्ध दस हजार हाथियों के बल वाले उत्पन्न हुए ।।३६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३६।।

स चापि रुक्मिणः पौत्रीं दौहित्रो जगृहे ततः । वज्रस्तस्याभवद्यस्तु मौसलादवशेषितः ॥३७॥

अन्वयः— स चापि दौहित्रः रुक्मिणः पौत्रीं जगृहे ततः तस्य वज्रः अभवत् यः मौसलात् अवशेषितः ॥३७॥

अनुवाद— अनिरुद्धजी ने अपने नाना की पौत्री से विवाह किया उससे अनिरुद्धजी का वज्र नामक पुत्र हुआ। ब्राह्मणों के शाप से उत्पन्न मूसल के द्वारा यदुवंश का नाश होने पर वज्र वचे रहे ॥३७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

प्रतिवाहुरभूत्तस्मात्सुवाहुस्तस्य चात्मजः । सुबाहोः शान्तसेनोऽभूच्छतसेनस्तु तत्सुतः ॥३८॥

अन्वयः— तस्मात् प्रतिवाहुः अभूत् तस्मात् सुवाहुः तस्य च सुवाहोः आत्मजः शान्तसेनः अभूत् तत् सुतः शतसेनः॥३८॥

अनुवाद— वज्र के पुत्र प्रतिवाहु हुए, प्रतिवाहु के सुवाहु सुवाहु के पुत्र का नाम शान्तसेन था और शान्त के पुत्र का नाम शतसेन हुआ ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३८॥

न ह्येतस्मिन्कुले जाता अधना अबहुप्रजाः । अल्पायुषोऽल्पवीर्याश्च अब्रह्मण्याश्च जज्ञिरे ॥३९॥

अन्वयः— एस्मिन् कुले अधनाः अवहुप्रजाः अल्पायुषः अल्पवीर्याः अब्रह्मण्याश्च नहि जज्ञिरे ॥३९॥

अनुवाद— इस वंश में उत्पन्न हुओं में कोई भी निर्धन, कम सन्तानों वाला, या आल्पायु या कम पराक्रमी, अथवा ब्राह्मणों का अभक्त नहीं पैदा हुआ ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

यदुवंशप्रसूतानां पुंसां विख्यातकर्मणाम् । संख्या न शक्यते कर्तुमपि वर्षायुतैर्नृप ॥४०॥

अन्वयः— हे नृप यदुवंश प्रसूतानां विख्यात कर्मणाम् पुंसां संख्या वर्षायुतैः अपि कर्तुं न शक्यते ॥४०॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् यदुवंश में ऐसे यशस्वी एवं पराक्रमी पुरुष इतना पैदा हुए जिनकी संख्या हजारों वर्षों में भी नहीं की जा सकती है ॥४०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४०॥

तिस्रः कोट्यः सहस्राणामष्टाशीतिशतानि च । आसन्यदुकुलाचार्याः कुमाराणामिति श्रुतम् ॥४१॥

अन्वयः— कुमाराणाम् यदुकुलाचार्याः तिस्रः कोट्यः अष्टाशीति सहस्राणाम् शतानि आसीत् इति श्रुतम् ॥४१॥

अनुवाद— राजन् यदंवुश के वालकों को शिक्षा देने के लिए आचार्यों की संख्या तीन करोड़ अठासी लाख थी ऐसा मैंने सुना है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

सहस्राणामपरिमितानां कुमाराणामित्यन्वयः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

निस्सीम कुमारों के ॥४१॥

संख्यानं यादवानां कः करिष्यति महात्मनाम् । यत्रायुतानामयुतलक्षेणास्ते स आहुकः ॥४२॥

अन्वयः— महात्मनाम् यादवानां संख्यानं करिष्यति । यत्र अयुतानाम् अयुत लक्षेण स आहुकः आस्ते ॥४२॥

अनुवाद— महामनस्वी यादवों की गणना कौन कर सकेगा । वहाँ उग्रसेन के ही साथ लगभग एक नील सैनिकों की संख्या थी ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

यदा प्रत्येकं बहूनध्यापयतामाचार्याणामियं संख्या तदपि श्रुतमात्रं नतु सम्यग् ज्ञायते तदा कुमाराणामेवं संख्यानं कर्तुं न शक्यते, कुतः पुनः सर्वयादवानामिति ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

यदि प्रत्येक अध्यापक अनेको को पढ़ाते हो तो यदि आचार्यों की इतनी संख्या थी । वह भी केवल सुनी हुई बात है, अच्छी तरह से ज्ञात नहीं । तब तो कुमारों की ही गणना नहीं की जा सकती है और सम्पूर्ण यादवों की गणना कैसे की जा सकती है ?।।४२।।

देवासुराहवहता दैतेया ये सुदारुणाः । ते चोत्पन्ना मनुष्येषु प्रजा दृप्ता बबाधिरे ।।४३।।

अन्वयः— देवासुराहवहताः ये सुदारुणाः दैतेयाः ते च मनुष्येषु उत्पन्ना दृप्ताः प्रजाः बवाधिरे ।।४३।।

अनुवाद— देवासुर संग्राम में बहुत से भयङ्कर दैत्य मारे गये । वे सब मनुष्यों में जन्म लेकर घमण्ड के कारण प्रजाओं को दुःख देने लगे ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

ते चोत्पन्ना इति । प्रत्येकं बहुभी रूपैरिति ज्ञेयम् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

वे अनेक रूपों से उत्पन्न हुए ऐसा जानना चाहिए ।।४३।।

तन्निग्रहाय हरिणा प्रोक्ता देवा यदोः कुले । अवतीर्णाः कुलशतं तेषामेकाधिकं नृप ।।४४।।

अन्वयः— हे नृप तन्निग्रहाय हरिणा प्रोक्ताः देवाः यदोः कुले अवतीर्णाः तेषाम् एकाधिकं शतं कुलम् आसीत् ।।४४।।

अनुवाद— राजन् उन सबों का दमन करने के लिए देवताओं ने यदुवंश में जन्म लिया, उन सबों के एक सौ एक वंश थे ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

एवमेव यदुकुलेऽपि देवा इति । तथा चोक्तम्- 'सहस्रशः समुद्भूता देवा यदुकुले पृथक्' इति ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से ही यदुवंश में देवता भी उत्पन्न हुए । कहा भी गया है **सहस्रशः समुद्भूताःदेवाः यदुकुले पृथक्** अर्थात् हजारों देवता यदुवंश में अलग-अलग उत्पन्न हुए ।।४४।।

तेषां प्रमाणं भगवान्प्रभुत्वेनाभवद्धरिः । ये चानुवर्तिनस्तस्य ववृधुः सर्वयादवाः ।।४५।।

अन्वयः— तेषां प्रमाणं भगवान् हरिः प्रभुत्वेन अभवत् । ते च तस्य अनुवर्तिनः सर्वयादवाः ववृधुः ।।४५।।

अनुवाद— वे सभी श्रीभगवान् को ही अपना स्वामी और आदर्श मानते थे । श्रीभगवान् के अनुयायी यदुवंशियां की समृद्धि हुई ।।४५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४५।।

शय्यासनाटनालापक्रीडास्नानादिकर्मसु । न विदुः संतमात्मानं वृष्णयः कृष्णचेतसः ।।४६।।

अन्वयः— कृष्णचेतसः वृष्णयः शय्यासनानालापक्रीडास्नानादिकर्मसु सन्तमात्मानं न विदुः ।।४६।।

अनुवाद— जिनका श्रीभगवान् में ही मन लगा रहता था उन यदुवंशीयों को सोने, बैठने, घूमने-फिरने बोलने-खेलने के तथा नहाने धोने के समय अपने शरीर की सुधि ही नही रहती थी । उनका शरीर यन्त्र के समान काम करता रहता था ।।४६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४६।।

तीर्थं चक्रे नृपोनं यदजनि यदुषु स्वःसरित्पादशौचं,विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजितपरा श्रीर्यदर्थेऽन्ययत्नः।
यन्नामामङ्गलघ्नं श्रुतमथ गदितं यत्कृतो गोत्रधर्मः, कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं कालचक्रायुधस्य ॥४७॥

अन्वयः— हे नृप यदुषु यदजनि स्वः सरित्पादशौचं तीर्थं ऊनं चक्रे, अजितपराः विद्विट्स्निग्धाः स्वरूपं ययुः, यदर्थे श्रीः अन्ययत्नः, यन्नाम् श्रुतम् अथगदितं अमङ्गलघ्नम् यत्कृतः गोत्रधर्मः, कालचक्रायुधस्य कृष्णस्य एतत् क्षितिभर हरणं चित्रं न ।।४७।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण जो यदुवंश में जन्म लिए उनके पवित्र यशने श्रीभगवान् के चरणोदक रूप गङ्गाजी की महिमा को अपनी महिमा से कम कर दिया। श्रीभगवान् से शत्रुता करने वाले तथा उनके स्निग्ध भक्त दोनों श्रीभगवान् के स्वरूप को प्राप्त कर लिये यह भगवान् की महिमा है। जिनकी प्राप्ति के लिए बड़े-बड़े देवता प्रयास करते है वे लक्ष्मीजी जिनकी सेवा में सदा संलग्न रहती है, जिन श्रीभगवान् का नाम सुनने अथवा उच्चारण करने से समस्त अमङ्गलों का नाश हो जाता है। ऋषियों के वंश में जितने धर्म प्रचलित हैं उन सबों के संस्थापक श्रीभगवान् ही हैं। राजन् परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्ण अपने हाथ में कालचक्र लिए रहते हैं, वे यदि पृथिवी के भार को उतार देते हैं तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

तस्मात्कृष्णकीर्तेः सर्वतीर्थोत्तमत्वं कृष्णस्य च सर्वदेवोत्तमत्वं न चित्रमित्याह–तीर्थं चक्र इति। इतः पूर्वं स्वःसरिदेव सर्वतोऽधिकं तीर्थमित्यासीत्। इदानीं तु युदुषु यदजनि जातं तीर्थं श्रीकृष्णकीर्तिरूपमेतत्स्वःसरिद्रूपं पादशौचं तीर्थमूनमल्पं चक्रे, स्वयमेव सर्वतीर्थोपरि विराजत इत्यर्थः। श्रीकृष्णस्य विद्विषः स्निग्धाश्च तत्सारूप्यं ययुरित्यपि नातिचित्रम्, तस्य परमकारुणिकत्वात्। तथेदं च न चित्रम्। किं तत्। अजितपरा अजिता कैश्चिदप्यप्राप्ता परा सर्वतः परिपूर्णा श्रीः कृष्णस्यैव, नान्यस्येति। तदेवाह–यदर्थेऽन्येषां ब्रह्मादीनां यत्न इति। ननु निरपेक्षं तमेव लक्ष्मीः श्रयत इति चित्रमेवेति चेत्, नहि, परममङ्गलनामधेयत्वात्तस्येत्याह–यन्नामेति। तदपि नार्थस्मरणापेक्षमित्याह–श्रुतमथगदितमिति। सर्वधर्माश्रयत्वादपीत्याह–यत्कृतो गोत्रधर्म इति। गोत्रेषु तत्तदृषिवंशेषु धर्मो यत्कृतो येन प्रवर्तितः तस्य क्षितिभरहरणं नैव चित्रमित्याह–कृष्णस्यौतदिति। कालचक्रायुधस्येति। सर्वसंहारककालमूर्तेर्विशेषतो दुरन्तप्रभावचक्रायुधस्य कियदेतदित्यर्थः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

अतएव भगवान् श्रीकृष्ण की कीर्ति सर्वोत्तम है तथा भगवान् श्रीकृष्ण सभी देवताओं में उत्तम हैं, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इस बात को **तीर्थं चक्रे० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। इससे पहले तो गङ्गाजी ही सर्वोत्तम तीर्थ थी किन्तु इस समय श्रीभगवान् जो यदुवंश में अवतीर्ण हुए उनका जो यश है, उसकी महिमा की अपेक्षा श्रीभगवान् के चरणोदक रूप गङ्गाजी की महिमा कम हो गयी। भगवान् का यश ही सर्वोत्तम तीर्थ हो गया। श्रीभगवान का यश सभी तीर्थों से महान है। श्रीभगवान् से सम्बन्ध रखने वाले उनके शत्रु तथा उनके भक्त दोनों ही श्रीभगवान् के स्वरूप को प्राप्त कर लिए। यह भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि श्रीभगवान् तो परमदयालु हैं। तथा यह भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है, जिसको कोई भी नहीं प्राप्त कर सका वे लक्ष्मीजी श्रीभगवान् की ही सेवा में संलग्न रहती हैं। अतएव सभी प्रकार से परिपूर्ण श्रीभगवान् श्रीकृष्ण की ही है, किसी दूसरे की नहीं हैं। इसी बात को कहा गया है। **यदर्थोऽन्ययत्नः** अर्थात् जिनको प्राप्त करने के लिए ब्रह्मा आदि देवता प्रयास करते हैं वे लक्ष्मीजी श्रीभगवान् के साथ ही रहती हैं। **ननुनिरपेक्षं तमेव० इत्यादि** प्रश्न होता है कि अवाप्तसमस्त काम होने के कारण श्रीभगवान् तो निरपेक्ष हैं, निरपेक्ष ही श्रीभगवान् को लक्ष्मीजी अपना आश्रय बनाती हैं। यह तो आश्चर्य है ही तो ऐसी बात नहीं है। श्रीभगवान् का नाम अत्यन्त मङ्गलमय है इस बात को **यन्नामामङ्गलघ्नम्** इत्यादि से कहा गया है। यह कोई आवश्यक नहीं कि श्रीभगवान् के नामों के अर्थ को जाना ही जाय श्रीभगवान् के नामों को सुन लेने अथवा उच्चारण कर लेने से ही समस्त अमङ्गलों का नाश हो जाता है। किञ्च ऋषियों के गोत्र में जितने धर्म प्रचलित हैं उन सबों के प्रवर्तक श्रीभगवान् ही हैं। अतएव भगवान् पृथिवी के भार को दूर कर देते हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि वे अपने हाथ में काल रूपी चक्र को धारण करते हैं।

श्रीभगवान् सर्वसंहारक काल शरीरक है। काल उनका रूप है। उनके लिए इमसें कोई आश्चर्य की बात नहीं। विशेष रूप से अत्यन्त उग्र प्रभाव वाले सुदर्शन चक्र के लिए यह कोई बड़ा कार्य नहीं हैं ।।४७।।

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो यदुवरपर्षत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितश्रीमुखेन व्रजपुरवनितानां वर्धयन्कामदेवम् ।।४८।।

अन्वयः— जननिवासः देवकीजन्मवादः यदुवरपर्षत् स्वैः दोर्भिः अधर्मम् अस्यन् स्थिरचरवृजिनघ्नं सुस्मितश्रीमुखेन व्रज पुरवनितानां कामदेवम् वर्धयन् जयति ।।४८।।

अनुवाद— सम्पूर्ण जीवों के एक मात्र आश्रय श्रीभगवान् कहने के लिए देवकी जी के गर्भ से जन्म लिए वस्तुतः वे जन्म लिए ही नहीं यदुवंशी पार्षद के रूप में उनकी सेवा करते हैं। उन्होंने अपने भुजबल से अधर्म का नाश किया। वे स्वभावतः स्थिर एवं जङ्गम जीवों के कष्टों को मिटाते है, उनका मन्द-मन्द मुस्कान से युक्त मुखकमल व्रजवनिताओं और पुर (नगर) की वनिताओं के मन में प्रेमभाव का संचार करता है। ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण की जय हो ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

यत एवंभूतः श्रीकृष्णस्ततः स एव सर्वोत्तम इत्याह-जयतीति। जनानां जीवानां यो निवास आश्रयस्तेषु वा निवसत्यन्तर्यामितया तथा स कृष्णो जयति, देवक्यां जन्मेति वादमात्रं यस्य सः। वस्तुतोऽजन्मा। यदुवराः पर्षत्सभासेवकरूपा यस्य। इच्छामात्रेण निरसनसमर्थोऽपि क्रीडार्थं दोर्भिरधर्ममस्यन् क्षिपन् स्थिरचरवृजिनघ्नोऽधिकारिविशेषानपेक्षमेव वृन्दावनगततरुतृणलतादीनां संसारदुःखहन्ता। तथा विलासवैदग्ध्यानपेक्षं व्रजवनितानां पुरवनितानां च सुस्मितेन शोभनहास्ययुतेन श्रीमता मुखेनैव कामदेवं वर्धयन्। कामश्चासौ दीव्यति। विजिगीषति संसारमिति देवस्तम्। भोगद्वारा मोक्षप्रदमित्यर्थः ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

चूकि श्रीभगवान् इस तरह के है अतएव वे ही सर्वोत्तम हैं। इस बात को **जयति० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। जो श्रीभगवान् सम्पूर्ण जीवों के आश्रय हैं, अथवा सम्पूर्ण जीवों में जो श्रीभगवान् अन्तर्यामी रूप से सभी जीवों में निवास करते हैं। ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण की जय हो। श्रीभगवान् नें देवकीजी के गर्भ से जन्म लिया यह केवल जनवाद है। वस्तुतः वे अजन्मा हैं। श्रेष्ठ यदुवंशी वीर जिनके पार्षद रूप से सभासेवक है, यद्यपि श्रीभगवान् अपने सङ्कल्प मात्र से ही अधर्म को विनष्ट कर सकते हैं फिर भी क्रीडा के लिए अपने भुजाओं के बल से अधर्म का नाश किये। अधिकारी विशेष से निरपेक्षर होकर वे जड़ जंगम जीवों के कष्ठों को दूर कर देते हैं। उन्होंने वृन्दावन के तरुओं और लताओं के संसार दुःख के विनष्ट कर दिया। इसीतरह विलास की निपुणता की अपेक्षा किए बिना अपने मन्द मुस्कान से युक्त मुखारविन्द की शोभा से ही व्रजवनिताओं और नगर की वनिताओं के मन में प्रेम का संचार किया करते हैं। **कामश्चासौदिव्यति विजिगीषति इति** इस व्युत्पत्ति के अनुसार कामदेव उस देव का नाम है जो अपनी कामना मात्र से संसार को जीत लेना चाहता है। और भोग के द्वारा मोक्ष को प्रदान करने वाले हैं श्रीभगवान्।।४८।।

इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षयात्तलीलातनोस्तदनुरूपविडम्बनानि ।
कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य श्रूयादमुष्य पदयोरनुवृत्तिमिच्छन् ।।४९।।

अन्वयः— इत्थं परस्य निजवर्त्मरिरक्षया आत्त लीलातनोः तदनुरूप विडबनानि कर्माणि कर्मकषणानि यदूत्तमस्य अमूष्य पदयोः अनुवृत्तिम् इच्छन् श्रूयात् ।।४९।।

अनुवाद— परीक्षित् प्रकृति से परे पमरात्मा ने अपने द्वारा स्थापित धर्म की रक्षा करने के लिए लीला शरीर को धारण किया और उसके अनुरूप अनेक अद्भुत चरित्रों का अभिनय भी किया। उनका एक-एक चरित्र, स्मरण करने वाले के कर्म के बन्धनों को काट देने वाला है। जो यदुवंश शिरोमणि के चरणों की सेवा का अधिकार प्राप्त करना चाहता है उसे उनकी लीलाओं का श्रवण करना चाहिए ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

तत्तत्कार्यविशेषैः स्वीकृतमत्स्यकूर्मादिनानामूर्तेर्विशेषतो यदूत्तमस्य सतः परस्य तदनुरूपानुकारीणि कर्मकषणानि कर्माणि चरितानि श्रूयात्, शृणुयादित्यर्थः ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

विभिन्न विशेष कार्यों को करने के लिए श्रीभगवान् ने मत्स्य, कूर्म, इत्यादि विभिन्न शरीरों को धारण किया, यदुवंश शिरोमणि परमात्मा ने उसी अपनी मूर्तियों के अनुरूप कर्मों और चरित्रों को किया उसका श्रवण करना चाहिए।।४९।।

मर्त्यस्तयाऽनुसवमेधितया मुकुन्दश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति ।
तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं ग्रामाद्वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां वैयासिक्यां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे श्रीकृष्णचरितानुवर्णनं नाम नवतितमोऽध्यायः ।।९०।।

अन्वयः— तया अनुसवम् एधितया मुकुन्दश्रीमत् कथाश्रवणकीर्तनचिन्तया तद्धाम एति दुस्तर कृतान्त जवापवर्गं यदर्थाः क्षितिभुजः अपि ग्रामात् वनं ययुः ।।५०।।

अनुवाद— परीक्षित जब मनुष्य श्रीभगवान् की लीला कथाओं का श्रवण करने लगता है तो उसकी यही भक्ति उसे भगवन् के धाम में पहुँचा देती है । यद्यपि काल की गति से परे पहुँचना कठिन है । किन्तु भगवान् के धाम तक काल की पहुँच ही नहीं है । उसी धाम की प्राप्ति के लिए बड़े-बड़े राजाओं ने अपना राज्य छोड़कर वन की यात्रा की । अतएव मनुष्य को श्रीभगवान् की लीला कथाओं का ही श्रवण करना चाहिए ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध श्रीकृष्ण चरितानुवर्णन नामक नब्बेवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९०।।

भावार्थ दीपिका

अनुवृत्तेः फलमाह-मर्त्य इति । श्रीमत्याः कथायाः श्रवणकीर्तनयुक्तया चिन्तया संवर्धितयानुवृत्त्या तथा तन्निष्ठत्वेन तस्य धाम लोकमेति । लोकत्वेऽपि कालानाकलितत्वमित्याह-दुस्तरेति । दुर्लभपुरुषार्थतामाह-ग्रामादिति ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायां टीकायां नवतितमोऽध्यायः।।९०।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के चरणों की अनुवृत्ति का फल **मर्त्य इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । श्रीभगवान् की कथा के श्रवण एवं दर्शनयुक्त चिन्तन के द्वारा अनुवृत्ति की समृद्धि हो जाने से परमात्मनिष्ठ हो जाने से मनुष्य परमात्मा के धाम में पहुँच जाता है । लोक में भी काल की गति का अतिक्रमण करना अत्यन्त कठिन है । वह दुर्लभ पुरुषार्थ है इस बात को ग्रामात् इत्यादि से कहा गया है ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के दसवें स्कन्ध के उत्तरार्ध की भावार्थदीपिका टीका के नब्बेवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।९०।।

श्रीकृष्णार्पणमस्तु

।।समाप्तोऽयं दशमस्कन्धः ।।

।। ओम नमो भगवते वासुदेवाय ।।

ग्यारहवाँ स्कन्ध

पहला अध्याय

यदुवंश को ऋषियों का शाप

श्रीबादरायणिरुवाच

कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः । भुवोऽवतारयद्भारं जविष्ठं जनयन्कलिम् ।।१।।

अन्वयः— सरामः यदुभिः वृतः कृष्णः दैत्यवधं कृत्वा जविष्ठं कलिं जनयन् भुवः भारम् अवतारयत् ।।१।।

महर्षिबादरायण के पुत्र श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी तथा दूसरे यदुवंशियों के साथ मिलकर अनेक दैत्यों का वध किए तथा कौरवों और पाण्डवों में शीघ्र मार-काट मचाने वाले कलह को उत्पन्न करके श्रीभगवान् पृथिवी के भार को उतार दिए ।।१।।

भावार्थ दीपिका

श्रीगणेशाय नमः । श्रीकृष्णाय नमः । ॐ नमः श्रीपरमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय । विजयन्ते परानन्दकृष्णपादरजःस्रजः । या धृता मूर्ध्नि जायन्ते महेन्द्रादिमहःस्रजः ।।१।। उक्तैकत्रिंशताध्यायार्मुक्तिरेकादशे ततः । जायन्तेयेतिहासाद्यैः समासव्याससरूपतः ।।२।। नारदो वासुदेवाय समासेन न्यवर्णयत्। भगवानुद्धवायाथ विस्तरेणोपपत्तिभिः ।।३।। तत्र तु प्रथमेऽध्याये यदुवंशस्य संक्षयः । उपक्षिप्तो विरागाय मौसलव्यपदेशतः।।४।। प्रवृत्तितः परानन्दकृष्णक्रीडानुवर्णिता । तन्निवृत्त्या परानन्दपदारोहोऽनुवर्ण्यते ।।५।। एवं तावद्दशमस्कन्धे भूभारावतारणाय निजविभूतिविभूषितयदुवंशस्य यदुवंशावतारितसकलसुरांशस्य भगवतः श्रीकृष्णस्य तदुचितप्रवृत्तिविडम्बनेन तच्छ्रवणस्मरणादिपराणां परेषामानन्दकारणं क्रीडा निरूपिता, अथेदानीमपरिमितयोगमायावैभवस्य भक्तानामात्मतत्त्वोपदेशपूर्वकं क्रीडार्थं भूतलेऽवतारितानां चाधिकारिणां सुरांशानां मौसलापदेशेन तत्तदधिकारपदप्रापणपूर्वकं च ब्रह्माद्यनुग्रहाय निजपदारोहो निरूप्यते । तत्र कुरुक्षेत्रयात्रायामविरक्तस्य वसुदेवस्य 'कर्मणा कर्मनिर्हारो यथा स्यान्नस्तदुच्यताम्' इत्येवं कर्मयोगं पृष्टवत्यो नारदादिभिः कर्मयोगो निरूपितः 'कर्मणा कर्मनिर्हार एष साधु निरूपितः । यच्छ्रद्धयाप्तवित्तेन शुक्लेनेज्येत पूरुषः ।' इत्यादिना । तेन च विशुद्धसत्त्वस्य श्रीकृष्णरामौ परमेश्वरत्वेन ज्ञातवतः षङ्गर्भानयनाध्याये श्रीकृष्णेनात्मतत्त्वमुपदिष्टम् । 'वचो वः समवेतार्थं तातैतदुपमन्महे । यन्नः पुत्रान्समुद्दिश्य तत्त्वग्राम उदाहृतः । इत्यादिना । तच्च विषयभोगातिशयेन पुनस्तिरोहितमासीत्तदेवदानीं नारदमुखवेन प्रथमं पञ्चाध्याय्या निरूप्यते। तत्र प्रथमेऽध्याये वैराग्योत्पादनाय यदुकुलस्य ब्रह्मशापापदेशेनात्युन्नतविषय- सुखानामप्यनित्यता प्रतिपाद्यते । ततश्चतुर्भिर्निमिजायन्तेयसंवादेन सपरिकरं परमतत्त्वनिरूपणम् । ततः षष्ठे भगवदुद्धवसंवादप्रस्तावः। ततस्त्रायोविंशत्या उद्धवं प्रति भगवतस्तत्त्वनिरूपणम् । ततो द्वाभ्यां मौसलक्रीडेत्येवमेकत्रिंशताऽध्यायैरेकादशस्कन्धस्य प्रवृत्तिः। तस्य च यथामति व्याख्यानमारभ्यते। तत्र मौसलप्रसङ्गार्थं पूर्वस्कन्धार्थमनुवदति श्लोकद्वयेन-कृत्वेति । अवतारयत् । अवतारय दित्यडागमो द्रष्टव्यः । जविष्ठं वेगवत्तरमतिशीघ्रम्। हिंसापर्यवसायिनमित्यर्थः । कलिं कलहम् ।।१।।'

भाव प्रकाशिका

श्रीगणेशजी को नमस्कार है। भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है। श्रीपरमहंस जिनके चरण कमल के ज्ञान स्वरूप पराग का निरन्तर पान करते हैं, जो भक्तों के मन में निवास करते हैं ऐसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी को नमस्कार है। **विजयन्ते० इत्यादि** परमानन्द स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों की धूल समूह की जय हों, जिसको अपने सिर पर धारण करने वाले इन्द्र आदि के तेज रूपी माला को धारण करते हैं ॥१॥ ग्यारहवें स्कन्ध में इकतीस अध्यायों से मुक्ति का वर्णन किया गया है। उसमें इतिहासों आदि के द्वारा आवश्यकतानुसार संक्षेप में तथा विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है ॥२॥ नारदजी ने वसुदेवजी को संक्षेप में जिस तत्त्व का वर्णन किया उसी का वर्णन श्रीभगवान ने उद्धवजी को विस्तृत रूप से बतलाया ॥३॥ इस ग्यारहवें अध्याय में यदुवंश के विनाश का वर्णन मूसल के व्याज से वैराग्य की प्राप्ति के लिए किया गया है ॥४॥ प्रवृत्ति मार्ग के अनुसार परमानन्द स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन किया गया है। और निवृत्ति मार्ग के द्वारा परमानन्द स्वरूप श्रीभगवान् के धाम की प्राप्ति हो जाती है, इस बात का वर्णन इस ग्यारहवें स्कन्ध में किया जा रहा है ॥५॥ इस तरह दसवे स्कन्ध में पृथिवी के भार को उतारने के लिए अपने ऐश्वर्य से विभूषित यदुवंश के रूप में सभी देवताओं का यदुवंश में अवतार कराने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के, उसके अनुकूल प्रवृत्ति के अनुकरण के द्वारा श्रीभगवान् की उन लीलाओं का श्रवण करने वाले तथा स्मरण करने वालो के लिए परमानन्द स्वरूप श्रीभगवान् की लीला वर्णन किया है। अब इस ग्यारहवें स्कन्ध में नि:सीम योगमाया के वैभव का भक्तों को आत्म तत्त्वोपदेश पूर्वक क्रीडा करने के लिए जिन देवताओं के अंशों का पृथिवी पर अवतरण श्रीभगवान् ने कराया है उन सबों को मौसल कथा के प्रसङ्ग से विभिन्न अधिकारियों के पद को प्राप्त कराकर ब्रह्मा आदि देवताओं पर कृपा करने के लिए श्रीभगवान् अपने वैकुण्ठ धाम में चले गये इस बात का निरूपण किया जा रहा है। उसमें भी कुरुक्षेत्र की याग में जिनको वैराग्य नहीं उत्पन्न हुआ था उन वसुदेवजी के ऋषियों को समक्ष कर कहना कि आप लोग हमे यह बतलायें कि कर्म के द्वारा कर्म की शान्ति किस प्रकार होता है ? इस तरह से वसुदेवजी द्वारा कर्मयोग के वारे पूछे जाने पर ऋषियों ने कहा है न्याय प्राप्त सम्पत्ति के द्वारा परम पुरुषपरमात्मा की आराधना करना यही कर्मयोग का सम्यक् निरूपण है। उस विशुद्ध सत्त्व के द्वारा वसुदेवजी तथा माताजी को इस बात का ज्ञान हो गया था कि श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों परमात्मा है। इसलिए छह देवकी जी के पुत्रों को लाने का काम श्रीभगवान् ने किया उसी अध्याय में भगवान् ने वसुदेवजी को आत्मतत्त्व का उपदेश किया है। श्रीभगवान् ने वसुदेवजी से कहा कि हे पिताजी आपने हम दोनों पुत्रों को तत्त्वसमूह का उपदेश दिया है। अत्यधिक विषयोभोग के कारण वह ज्ञान जो तिरोहित हो गया था उसी को सर्वप्रथम नारदजी के द्वारा पाँच अध्यायों में वर्णित किया गया है। उसमें भी इस प्रथम अध्याय में वैराग्य उत्पन्न करने के लिए यदुवंश के ब्राह्मणों के शाप के बहाने अत्यधिक विषय सुखों की अनित्यता का प्रतिपादन किया गया है। उसके पश्चात् चार अध्यायों में निमि जायन्तेय संवाद के माध्यम से सपरिकर परमतत्व का निरूपण किया गया है उसके पश्चात छठे अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण एवं उद्धवजी का संवाद का प्रारम्भ हुआ है। उसके बाद तेइस अध्यायों में श्रीभगवान् ने उद्धवजी के प्रति तत्त्व का निरूपण किया है। उसके पश्चात् दो अध्यायों में मौसल क्रीडा वर्णित है। इस तरह इकतीस अध्यायों में एकादश स्कन्ध की प्रवृत्ति हुई है। उसकी व्याख्या अपनी बुद्धि के अनुसार मैं प्रारम्भ करता हूँ। मौसल के प्रसङ्ग के लिए पूर्व स्कन्ध के अर्थ का अनुवाद करते है। मूल के अवतारयत् पद में अट् के आगम का अभाव आर्ष है। **जविष्ठम्** अर्थात् अत्यन्त वेग सम्पन्न जिसका हिंसा में ही पर्यवसान होना है। ऐसे कलि अर्थात् कलह को ॥१॥

ये कोपिताः सुबहु पाण्डुसुताः सपत्नैर्दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान् ।
कृत्वा निमित्तमितरेतरतः समेतान्हत्वा नृपान्निरहरत्क्षितिभारमीशः ॥२॥

अन्वयः— सपत्नैः दुर्द्यूत हेलनकचग्रहणादिभिः ये पाण्डुसुताः सुबहुः कोपिताः तान् निमित्तम् कृत्वा इतरेतरतः समेतान् हत्वा ईशः क्षितिभारम् निरहरत् ॥२॥

अनुवाद— कौरवों ने कपटपूर्ण जूए से, तरह-तरह के अपमानों से तथा द्रौपदी के केश खीचनें आदि अत्याचारों से पाण्डुपुत्रों को अत्यन्त क्रोधित कर दिया था। उन पाण्डवों को ही निमित्त बनाकर भगवान् श्रीकृष्ण ने दोनों पक्षों में एकत्रित हुए राजाओं को मरवा डाला और इस प्रकार पृथिवी के भार को हल्का कर दिया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

एतद्विवृणोति-ये कोपिता इति। सपत्नैर्दुर्योधनादिभिः कोपिताः कोपं कारिता। सुबहु यथा भवति तथा बहुवारानित्यर्थः। तदेवाह-दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिरिति। दुर्द्यूतं कपटद्यूतम्, हेलनमवज्ञा, कचग्रहणं दुःशासनेन द्रौपद्याः केशाकर्षणम्, एतान्यादिर्येषां गरदानजतुगृहदाहादीनां तैः कृत्वा ये कोपितास्तान्पाण्डुसुतान्निमित्तं कृत्वा इतरेतरत उभयो; पक्षयोः समेतान्मिलितान्नृपान्हत्वा क्षितेर्भारं निरहरज्जहार । यद्वा ये कोपिता यैश्च कोपितास्तानितरेतरतः परस्परं निमित्तं कृत्वेत्यन्वयः । यं तावत्प्रकटदैत्याः पूतनादयस्तान्स्वयमेव हतवान्। ये तु दैत्या बान्धवच्छद्मना स्थितास्तान्परस्परं निमित्तं विधाय हत्वा भूभारमपाकृतवानित्यर्थः॥२॥

भाव प्रकाशिका

इसी का विस्तार से वर्णन **येकोपिताः इत्यादि** श्लोक से किया गया है। सपत्नैः अर्थात् दुर्योधन आदि ने क्रुद्ध कर दिया। सुबहु अर्थात् अनेक बार। उसी बात को **दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिः** इस पद से कहा गया है। दुर्द्यूत अर्थात् कपटपूर्ण जूआ, हेलनम् अपमान, कचग्रहण दुःशासन द्वारा द्रौपदी के केशों को खींचा जाना इन सबों के अतिरिक्त भीम को विष खिलाना लाक्षागृह में जलाने आदि का प्रयास करना इन सभी कार्यों द्वारा जिन कौरवों ने पाण्डवों को क्रुद्ध कर दिया था। उन पाण्डवों को ही निमित्त बनाकर दोनों पक्षों में एकत्रित हुए राजाओं को मारकर श्रीभगवान् ने पृथिवी के भार को दूर कर दिया। अथवा जो क्रुद्ध बनाये गये तथा जिन लोगों द्वारा क्रुद्ध बनाये गये उन दोनों को परस्पर में निमित्त बनाकर इस तरह से अन्वय है। जो प्रकट दैत्य थे पूतना आदि उन सबों को तो श्रीभगवान् स्वयं मार दिये और जो दैत्य बन्धु के छल से विद्यमान थे उन सबों को परस्पर में निमित्त बनाकर तथा मारकर श्रीभगवान् ने पृथिवी के भार को दूर कर दिया ॥२॥

भूभारराजपृतना युदभिर्निरस्य गुप्तैः स्वबाहुभिरचिन्तयदप्रमेयः ।
मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं यद्यादवं कुलमहो अविषह्यमास्ते ॥३॥

अन्वयः— स्वबाहुभिः गुप्तै; यदुभिः भू भारराजपृतना निरस्य अप्रमेयः अचिन्तयत् मन्ये ननु अवनेः भार गतोऽपि अगत एव अहो यत् अविषहयम् यादवकुलम् आस्ते ॥३॥

अनुवाद— अपनी भुजाओं के बल सें संरक्षित यदुवंशियों के द्वारा पृथिवी के भारभूत राजाओं और उनकी सेनाओं का बध करके प्रमाणों के द्वारा ज्ञान के विषय नहीं बनने वाले श्रीभगवान् ने विचार किया कि लोक की दृष्टि से पृथिवी का भार उतार दिए जाने पर भी वस्तुतः मेरी दृष्टि से पृथिवी का भार दूर नहीं हुआ है, क्योंकि जिस पर कोई भी विजय नहीं प्राप्त कर सकता है, वह यदुवंश तो बचा ही हुआ है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अपि च-भूभारेत्यादि। अन्याश्च भुवो भारभूता राजपृतना राज्ञां पृतनाः सेनाः राज्ञस्तेषां पृतनाश्चेति वा। स्वबाहुभिर्गुप्तैः परिरक्षितैर्युदुभिर्विवाहादिच्छलेन निरस्य हत्वा । बाहुभिरिति बहुवचनं वस्तुतश्चतुर्भुजाभिप्रायेण । नन्वेवं कृष्णश्चिकीर्षतीति

ये कोपिताः सुबहु पाण्डुसुताः सपत्नैर्दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिस्तान् ।
कृत्वा निमित्तमितरेतरतः समेतान्हत्वा नृपान्निरहरत्क्षितिभारमीशः ॥२॥

अन्वयः— सपत्नैः दुर्द्यूत हेलनकचग्रहणादिभिः ये पाण्डुसुताः सुबहुः कोपिताः तान् निमित्तम् कृत्वा इतरेतरतः समेतान् हत्वा ईशः क्षितिभारम् निरहरत् ॥२॥

अनुवाद— कौरवों ने कपटपूर्ण जूए से, तरह-तरह के अपमानों से तथा द्रौपदी के केश खीचनें आदि अत्याचारों से पाण्डुपुत्रों को अत्यन्त क्रोधित कर दिया था । उन पाण्डवों को ही निमित्त बनाकर भगवान् श्रीकृष्ण ने दोनों पक्षों में एकत्रित हुए राजाओं को मरवा डाला और इस प्रकार पृथिवी के भार को हल्का कर दिया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

एतद्विवृणोति-ये कोपिता इति । सपत्नैर्दुर्योधनादिभिः कोपिताः कोपं कारिता । सुबहु यथा भवति तथा बहुवारानित्यर्थः। तदेवाह-दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिरिति । दुर्द्यूतं कपटद्यूतम्, हेलनमवज्ञा, कचग्रहणं दुःशासनेन द्रौपद्याः केशाकर्षणम्, एतान्यादिर्येषां गरदानजतुगृहदाहादीनां तैः कृत्वा ये कोपितास्तान्पाण्डुसुतान्निमित्तं कृत्वा इतरेतरत उभयो; पक्षयोः समेतान्मिलितान्नृपान्हत्वा क्षितेर्भारं निरहरज्जहार । यद्वा ये कोपिता यैश्च कोपितास्तानितरेतरतः परस्परं निमित्तं कृत्वेत्यन्वयः । यं तावत्प्रकटदैत्याः पूतनादयस्तान्स्वयमेव हतवान् । ये तु दैत्या बान्धवच्छद्मना स्थितास्तान्परस्परं निमित्तं विधाय हत्वा भूभारमपाकृतवानित्यर्थः।।२।।

भाव प्रकाशिका

इसी का विस्तार से वर्णन **येकोपिताः इत्यादि** श्लोक से किया गया है । सपत्नैः अर्थात् दुर्योधन आदि ने क्रुद्ध कर दिया । सुबहु अर्थात् अनेक बार । उसी बात को **दुर्द्यूतहेलनकचग्रहणादिभिः** इस पद से कहा गया है । दुर्द्यूत अर्थात् कपटपूर्ण जूआ, हेलनम् अपमान, कचग्रहण दु:शासन द्वारा द्रौपदी के केशों को खींचा जाना इन सबों के अतिरिक्त भीम को विष खिलाना लाक्षागृह में जलाने आदि का प्रयास करना इन सभी कार्यों द्वारा जिन कौरवों ने पाण्डवों को क्रुद्ध कर दिया था । उन पाण्डवों को ही निमित्त बनाकर दोनों पक्षों में एकत्रित हुए राजाओं को मारकर श्रीभगवान् ने पृथिवी के भार को दूर कर दिया । अथवा जो क्रुद्ध बनाये गये तथा जिन लोगों द्वारा क्रुद्ध बनाये गये उन दोनों को परस्पर में निमित्त बनाकर इस तरह से अन्वय है । जो प्रकट दैत्य थे पूतना आदि उन सबों को तो श्रीभगवान् स्वयं मार दिये और जो दैत्य बन्धु के छल से विद्यमान थे उन सबों को परस्पर में निमित्त बनाकर तथा मारकर श्रीभगवान् ने पृथिवी के भार को दूर कर दिया ॥२॥

भूभारराजपृतना युदभिर्निरस्य गुप्तैः स्वबाहुभिरचिन्तयदप्रमेयः ।
मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं यद्यादवं कुलमहो अविषह्यमास्ते ॥३॥

अन्वयः— स्वबाहुभिः गुप्तै; यदुभिः भू भारराजपृतना निरस्य अप्रमेयः अचिन्तयत् मन्ये ननु अवनेः भार गतोऽपि अगत एव अहो यत् अविषहयम् यादवकुलम् आस्ते ॥३॥

अनुवाद— अपनी भुजाओं के बल सें संरक्षित यदुवंशियों के द्वारा पृथिवी के भारभूत राजाओं और उनकी सेनाओं का बध करके प्रमाणों के द्वारा ज्ञान के विषय नहीं बनने वाले श्रीभगवान् ने विचार किया कि लोक की दृष्टि से पृथिवी का भार उतार दिए जाने पर भी वस्तुतः मेरी दृष्टि से पृथिवी का भार दूर नहीं हुआ है, क्योंकि जिस पर कोई भी विजय नहीं प्राप्त कर सकता है, वह यदुवंश तो बचा ही हुआ है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अपि च-भूभारेत्यादि । अन्याश्च भुवो भारभूता राजपृतना राज्ञां पृतनाः सेनाः राज्ञस्तेषां पृतनाश्चेति वा । स्वबाहुभिर्गुप्तैः परिरक्षितैर्युदुभिर्विवाहादिच्छलेन निरस्य हत्वा । बाहुभिरिति बहुवचनं वस्तुतश्चतुर्भुजाभिप्रायेण । नन्वेवं कृष्णश्चिकीर्षतीति

ज्ञात्वा कथं तस्मै यादवा न द्रुह्यन्ति स्म तत्राह–अप्रमेय: प्रमातुमशक्य: । चिन्तामाह–मन्य इति । नन्विति वितर्के । अवनेर्भूमेर्भारो यद्यपि लोकप्रतीत्या गतस्तथाप्यहमगतमेव मन्ये । हि निश्चितम् । यद्यस्मादविपह्यं सोढुमशक्यम् । यादवं कुलमित्यनेनैव स्ववंशत्वात्स्वयं हननमनुचितमिति सूचितम् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

दूसरे जो पृथिवी के भार बने थे वे राजागण और उनकी सेना को भी अपनी भुजाओं के बल से संरक्षित यदुवंशियों के द्वारा विवाह आदि के व्याज से मारकर । बाहुभि: में बहुवचनान्त प्रयोग इसलिए किया गया है कि वास्तविक रूप से श्रीभगवान् तो चतुर्भुज ही हैं । प्रश्न होता है कि भगवान् हमलोगों का भी वध करना चाहते है, यह सोचकर यदुवंशियों ने उनसे द्रोह क्यों नहीं किया ? तो इसका उत्तर है कि वे अप्रमेय हैं । अर्थात् किसी प्रमाण के द्वारा श्रीभगवान् को नहीं जाना सकता है । **मन्ये० इत्यादि** के द्वारा श्रीभगवान् की चिन्ता का वर्णन किया गया है । ननु इस अव्यय का प्रयोग वितर्क के अर्थ में प्रयुक्त है । यद्यपि लोक की दृष्टि से भूमि का भार दूर हो गया फिर भी मैं मानता हूँ कि पृथिवी का भार दूर नहीं हुआ है । क्योंकि जिसको कोई परास्त नहीं कर सकता है यह यदुवंश तो बना ही हुआ है । यह चूकि मेरा ही वंश है अतएव इसको मैं नहीं मार सकता हूँ । इसको मेरा मानना अनुचित है । इस बात को भगवान् ने सूचित किया है ।।३।।

नैवान्यत: परिभवोऽस्य भवेत्कथंचिन्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम् ।
अन्त: कलिं युदुकुलस्य विधाय वेणुस्तम्बस्य वह्निमिव शान्तिमुपैमि धाम ।।४।।

अन्वय:— मत् संश्रयस्य नित्यम् विभवम् उन्नहनस्य अस्य अन्यै: परिभव: कथंचित् न वेणुस्तम्बस्य बह्निम् यदुकुलस्य अन्त:कलिम् उत्पाद्य शान्तिम् धाम उपैमि ।।४।।

अनुवाद— मेरे आश्रय में रहने वाले इस यदुकुल के लोग अनुदिन उच्छृंखल होते जा रहे हैं । इस यदुकुल को कोई भी दूसरा परास्त नहीं कर सकता है अतएव बाँसों के परस्पर की रगड़ से उत्पन्न अग्नि जैसे बाँस समूह को जला डालती है, उसी तरह इस यदुवंश के भीतर ही कलह पैदा करके इसका मैं विनाश करूँ । उसके पश्चात् मैं शान्ति पूर्वक अपने धाम में जाऊँ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तर्हीदमप्यन्यैर्घात्यतां तत्राह–नैवेति । अन्यतो देवादिभ्योऽपि यादवकुलस्य परिभवस्तिरस्कारो न भवेत् । कुत: मत्संश्रयस्य मां संश्रयत इति मत्संश्रयं कुलं तस्य । किंच नित्यं विभवोन्नहनस्य विभवैर्गजतुरगादिभिरुच्छृङ्खलस्य । यद्वा तर्हीदं किमिति संहर्तव्यं तत्राह– विभवोन्नहनस्येति । तस्मादेवं करिष्यामीत्याह–अन्त: कलिमिति शान्तिमुपशममुपैमि 'वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा' उपैष्यामि । तदनन्तरं धाम च वैकुण्ठाख्यमुपैष्यामीत्यर्थ: ।।४।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि इस यदुवंश का भी विनाश दूसरों के द्वारा करवा दीजिए तो इस पर श्रीभगवान् **नैवान्यत: इत्यादि** श्लोक कहते हैं । देवता आदि भी इस यदुवंश का तिस्कार नहीं कर सकते हैं । क्योंकि यह यदुवंश मेरे आश्रय में है । यह वंश हाथी घोड़ों की नित्य समृद्धि के कारण उच्छृंखल हो गया है । यदि कोई यह पूछे कि तो फिर इसका क्यों विनाश किया जाय तो इस पर कहते हैं यह वंश नित्य ही उच्छृंखल हो रहा है । अतएव मैं ऐसा करूँगा कि इसके भीतर कलह उत्पन्न करके मैं शान्ति प्राप्त कर लूँगा । उपैमि में लट् लकार का प्रयोग वर्तमान सामिप्य के अर्थ में है । उपैमि का अर्थ प्राप्त कर लूँगा है । उसके पश्चात् मैं अपने वैकुण्ठ धाम में जाऊँगा ।।४।।

एवं व्यवसितो राजन्सत्यसङ्कल्प ईश्वर: । शापव्याजेन विप्राणां सजह्हे स्वकुलं विभु: ।।५।।

अन्वय:— राजन् एवं व्यवसित: सत्यसङ्कल्प: ईश्वर: विप्राणां शापव्याजेन विभु: स्वकुलं संजह्हे ।।५।।

अनुवाद— राजन श्रीभगवान् सर्वशक्तिमान और सत्यसङ्कल्प हैं, इस प्रकार का निश्चय करके वे अपने वंश का संहार कर दिये हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

व्यवसितः कृतनिश्चयः । संजह्रे उपसंहृतवान् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह का निश्चय करके । उपसंजह्रे अर्थात् संहार कर दिए ॥५॥

स्वमूर्त्या लोकलावण्यनिर्मुक्त्या लोचनं नृणाम् । गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तं पदैस्तानीक्षतां क्रियाः ॥६॥
आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्यञ्जसा नु कौ । तमोऽनया तरिष्यन्तीत्यगात्स्वं पदमीश्वरः ॥७॥

अन्वयः— स्वमूर्त्या लोकलावण्य निर्मुक्त्या नृणां लोचनम् गीर्भिस्ताः स्मरतां चित्तम् पदैःतान् ईच्छतां क्रियाः आच्छिद्य, अञ्जसा कौ नु सुश्लोकां कीर्तिं वितत्य अनया तमः तरिष्यन्तीति ईश्वरः स्वं पदम् अगात् ॥६-७॥

अनुवाद— श्रीभगवान् की मूर्ति त्रैलोक्य के सौन्दर्य का तिरस्कार करने वाली थी । उन्होंने अपने सौन्दर्य के माधुर्य से सबों के नेत्रों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था । उनकी वाणी अत्यन्त मधुर थी उसके द्वारा श्रीभगवान् को स्मरण करने वालों के चित्त को उन्होंने छिन लिया था । भगवान् के चरण त्रैलोक्य सुन्दर थे । उनके उन चरणो और उन चरणों के चिह्नों को देखने वाले उसे देखते ही रह जाते थे वे अन्यत्र नहीं जाते थे । इस तरह से उनके समय में विद्यमान सभी लोगों की चक्षुरादि की प्रवृत्ति उन्होंने स्वैकनिष्ठ बना लिया था। और उसके पश्चात् उत्पन्न होने वाले लोगों के लिए सुन्दर कीर्ति का इसलिए विस्तार किया कि आगे उत्पन्न होने वाले लोग इस कीर्ति का श्रवण और वर्णन करके संसार को पार कर जायेंगे । इस तरह से श्रीभगवान् अपने लोक में पधारे ॥६-७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवमवतारप्रयोजनं सर्वं संपाद्य स्वं लोकं जगामेत्याह श्लोकद्वयेन-स्वमूर्त्येति । लोकानां लावण्यस्य निर्मुक्तिस्त्यागो यया । यामपेक्ष्य लोकेषु लावण्यं नास्तीत्यर्थः । यद्वा लोकेभ्यो लावण्यस्य निर्मुक्तिर्दानं यतः । यत्संपर्केण लोका लावण्यन्तो भवन्तीत्यर्थः । तया स्वमूर्त्या नृणां लोचनमाच्छिद्याकृष्य ततोऽन्यस्यावलोकने लोचनस्याप्रवृत्तेः । तथा स्वगीर्भिस्ता गिरः स्मरतां चित्तं चाच्छिद्य । तथा पदैस्तत्र तत्राङ्कितैस्तानि पदानीक्षतामीक्षमाणानामन्यतो गमनादिकाः क्रियाश्चाच्छिद्य । तदानीन्तनानां सर्वेषां चक्षुरादिप्रवृत्तीः स्वैकनिष्ठाः कृत्वेत्यर्थः । किंच इत उपरि जनिष्यमाणानां संसारतरणाय कौ पृथिव्यां शोभनाः श्लोकाः सुश्लोकाः कवीनां यस्यां तां स्वकीर्तिं वितत्य विस्तार्यानया कीर्त्या अञ्जसा सुखेनैव नु निश्चितं तमस्तरिष्यन्तीत्यभिप्रेत्येश्वरः स्वं पदं स्थानमगादिति ॥६-७॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से अपने अवतार के सभी प्रयोजन को पूरा करके श्रीभगवान् अपने लोक में चले गये इस बात को **स्वमूर्त्या० इत्यादि** दो श्लोकों से कहा गया है । भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्ति (शरीर) का सौन्दर्य सर्वलोकातिशायी था । वैसा सौन्दर्य किसी का नहीं था अथवा श्रीभगवान् अपने उसी सौन्दर्य से अपने भक्तों को सौन्दर्य प्रदान करते थे । अर्थात् श्रीभगवान् के ही सम्पर्क से संसारी जीव सौन्दर्य सम्पन्न होते थे । श्रीभगवान् ने अपने उस सौन्दर्य से सभी लोगों के नेत्रों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था । अर्थात् श्रीभगवान् के सौन्दर्य को देखकर उससे भिन्न किसी दूसरी वस्तु को देखने में प्रवृत्ति नहीं होती थी । श्रीभगवान् अपनी वाणी उपदेश के माधुर्य से सबों की वाणी को अपने ही ओर आकृष्ट कर लिया । **तथा पदैः इत्यादि** श्रीभगवान् के चरण कमल त्रैलोक्य कमनीय थे । उन पैरों के चिह्नों को जो देख लेता था उसकी दूसरी वस्तु के देखने में प्रवृत्ति होती ही नहीं थी वह उन्हीं श्रीचरणों

को देखते रह जाता था । इस तरह उन्होंने अपने वर्तमान काल के लोगों की चक्षुरादि इन्द्रियों की प्रवृत्ति स्वैकनिष्ठ बना दिया था । किन्तु उसके बाद में उत्पन्न होने वाले लोगों के संसार सागर के संतरण करने के लिए उन्होंने भूलोक मे अपनी सुन्दर कीर्ति का विस्तार किया । जिसका वर्णन कविजन सुन्दर श्लोकों द्वारा करते हैं । उस भगवत् कीर्ति की अपनी रचना द्वारा विस्तार करके, उसका अनुभव करता था । उस कीर्ति का गान करके लोग इस संसार सागर को पार आसानी से कर जायेंगे ॥६-७॥

राजोवाच

ब्रह्मण्यानां वदान्यानां नित्यं वृद्धोपसेविनाम् । विप्रशापः कथमभृद्वृष्णीनां कृष्णाचेतसाम् ॥८॥

अन्वयः— कृष्णचेतसाम् ब्रह्मण्यानां वदान्यानाम् नित्यं वृद्धोपसेविनाम् वृष्णीनाम् विप्रशापः कथम् अभूत् ॥८॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— यदुवंशियों का मन तो सदा भगवान् श्रीकृष्ण में ही लगा रहता था वे ब्राह्मणों के भक्त तथा यचकों को दान देने वालें थे । नित्य ही वे वृद्ध पुरुषों की सेवा करते थे और उनसे सुदपदेश प्राप्त करते थे यदुवंशियों को ब्राह्मणों ने शाप कैसे दिया ?॥८॥

भावार्थ दीपिका

अब्रह्मण्येभ्योऽदातृभ्यो वाऽसेवकेभ्यो वा विप्राः कुप्यन्ति, वृष्णयस्तु न तथेत्याह-ब्रह्मण्यानामित्यादिना । किंच कोपें जातेऽपि कृष्णचेतसां कथमभूत् कथं प्रादुरभूदित्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

जो ब्राह्मणों का भक्त नहीं होता हैं याचकों को दान नहीं देता है और वृद्धों की सेवा नहीं करता है, ऐसे ही लोगों पर ब्राह्मण क्रोध करते हैं, किन्तु यदंवुशी तो ऐसे थे नहीं ऐसी स्थिति में यदुवंशियों को शाप क्यों हुआ? यदि यदुवंशियों पर किसी कारणवश क्रोध हो ही गया तो भी यदुवंशी श्रीभगवान् के आराधक थे उनको शाप क्यों ?॥८॥

यन्निमित्तः स वै शापो यादृशो द्विजसत्तम । कथमेकात्मनां भेद एतत्सर्वं वदस्व में ॥९॥

अन्वयः— हे द्विजसत्तमः स शापो वै यन्निमित्तः, यादृशः एकात्मनां भेदः कथम् एतत् सर्वं में वदस्व ॥९॥

अनुवाद— हे विपवर्य श्रीशुकदेवजी किस कारण से ऋषियों ने यदुवंशियों को शाप दिया था ? उस शाप का स्वरूप क्या था ? वे सभी यदुवंशी एक समान चित्त वाले थे उनमें यह भेद बुद्धि कैसे हुई जिसके कारण कलह हुआ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अतः स्पष्टस्य निमित्तस्याभावान्निमित्तान्तरं पृच्छन्ति-यन्निमित्त इति । एकात्मनामेकचित्तानां कथं भेदः कलहः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

शाप का कोई भी स्पष्ट कारण नहीं होने के कारण राजा उस कारण को पूछते हैं कि वह कौन सा कारण था? दूसरे बात कि सभी यदुवंशी तो एक साथ तथा एक समान चित्त वाले थे सभी श्रीकृष्णाराधक थे । ऐसी स्थिति में उनमें भेदबुद्धि कैसे उत्पन्न हुई जिसके कारण उनमें परस्पर में कलह हुआ ॥९॥

श्रीशुक उवाच

बिभ्रद्वपुः सकलसुन्दरसंनिवेशं कर्माचरन्भुवि सुमङ्गलमाप्तकामः ।
आस्थाय धाम रममाण उदारकीर्तिः संहर्तुमैच्छत कुलं स्थितकृत्यशेषः ॥१०॥

अन्वयः— सकल सुन्दर सन्निवेशं बिभ्रत् भुवि सुमङ्गलं कर्माचरन् आप्तकामः धाम आस्थाय रममाणः उदारकीर्तिः स्थित कृत्यशेषः कुलं संहर्तुम् ऐच्छत् ॥१०॥

अनुवाद— जिस शरीर को श्रीभगवान धारण किए थे वह समस्त सुन्दर सन्निवेशों से युक्त था । श्रीभगवान आप्तकाम हैं उनकी सारी इच्छाएं पूर्ण हैं ऐसे श्रीभगवान् इस संसार मे मङ्गलमय कर्मों को करते वे भगवान् द्वारकापुरी मे रहकर क्रीड़ा करते रहे । उन्होंने अपने सुन्दर यश की स्थापना की । अन्त मे उन्होंने अपने वंश का संहार करना चाहा, क्योंकि उनके लिए केवल यही कार्य अवशिष्ट रह गया था ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

ईश्वरेच्छैवात्र निमित्तमिति परिहरति-विभ्रदिति । सकलानां सुन्दरवस्तूनां संनिवेशो विन्यासविशेषो यस्मिंस्तद्वपुर्बिभ्रत्। तर्हि किमतिसौन्दर्याद्विषयपरः, न, सुमङ्गलं कर्माचरन् । तत्किं कयापि कामनया, न, आप्तकामः । तर्हि किमिति कर्माचरित। धाम द्वारवत्याख्यं गृहमास्थाय रममाणः गृहे रममाणान्कर्म ग्राहयितुमित्यर्थः । ननु किमाप्तकामस्य गृहरत्या कर्मभिर्वा तत्राह-उदारकीर्तिः उदारा बहुफलप्रदा कीर्तिर्यस्य सः । कीर्तिवितानार्थमित्यर्थः । एवं परमैश्वर्येण वर्तमान एव कुलं संहर्तुमैच्छत् । तत्कस्य हेतोः । स्थितः कृत्ये भूभारहरणे शेषो यस्य सः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

यदुवंशियों में परस्पर में कलह का कारण भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा है इस बात को कहने के लिए **विभ्रत० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । जिसमें सभी सुन्दर वस्तुओं का सन्निवेश था इस प्रकार के शरीर को धारण किए हुए श्रीभगवान् तो क्या सौन्दर्य से भिन्न कोई विषय था ? तो ऐसी भी बात नहीं है । वे मङ्गलमय समस्त कार्यों को करते थे । क्या वे ऐसा किसी कामना विशेष से करते थे श्रीभगवान् तो ऐसी बात नहीं है क्योंकि वे आप्तकाम हैं । तो फिर वे किसलिए कर्मों को करते थे ? तो ऐसी भी बात नहीं है । वे द्वारकापुरी में रहकर विहार करते रहे। अपने गृह में ही रहकर अच्छा लगने योग्य कर्मों को करते रहे । **ननु० इत्यादि** प्रश्न है कि आप्तकाम परमात्मा का गृह में रमण से कौन सा लाभ था । इस पर कहते हैं श्रीभगवान् की कीर्ति बहुत अधिक फल प्रदान करने वाली है । वे अपने यश का विस्तार करने के लिए कर्मों को करते थे । इस तरह परम ऐश्वर्य सम्पन्न वे अपने वंश का संहार करना चाहे । प्रश्न होता है कि यह किसलिए उन्होंने किया ? उनके पृथिवी के भार को दूर करने में एक यही कार्य अवशिष्ट रह गया था ।।१०।।

कर्माणि पुण्यनिवहानि सुमङ्गलानि गायञ्जगत्कलिमलापहराणि कृत्वा ।
कालात्मना निवसता यदुदेवगेहे पिण्डारकं समगमन्मुनयो निसृष्टाः ।।११।।

अन्वयः— यदुदेवगेहे कालात्मना निवसता कलिमलापहराणि पुण्यनिवहानि सुमङ्गलानि कर्माणि कृत्वा गायन् निसृष्टाः मुनयः पिण्डारकं समगमन् ।।११।।

अनुवाद— श्रीभगवान् उग्रसेन के गृह में कालरूप से ही निवास करते थे । वे किसी कर्म को सम्पादित करने के लिए ऋषियों को बुलाये थे कर्म पूरा हो जाने पर वे ऋषियों के विदा कर दिए ऋषिगण भी श्रीभगवान् के पुण्य समूह स्वरूप सुमङ्गलमय कर्मो की चर्चा करते हुए पिण्डारक क्षेत्र में चले गये ।।११।।

भावार्थ दीपिका

ईश्वरेच्छयोत्थितं ब्रह्मशापनिमित्तं वक्तुमाह-कर्माणीति । कर्मार्थमाहूताः कर्माणि कृत्वा विसृष्टा मुनयः पिण्डारकं समगमन्नित्यन्वयः। निसृष्टाः प्रस्थापिताः पूर्वोक्तामुदारकीर्तितां विवृण्वन्कर्माणि विशिनष्टि-पुण्यनिवहानीत्यादिभिः पदैः । कानिचिदश्वमेधादिकर्माणि पुण्यमेव जनयन्ति । पुत्रपालनादीनि तु तत्काले सुखमेव कुर्वन्ति । प्रायश्चित्तादीनि तु पापमेव हरन्ति । एतानि तु सर्वतोमुखानीत्याह-पुण्यनिवहानि । कीर्तनादिना पुण्यानि निवहन्ति प्रापयन्तीति । तथा सुमङ्गलान्यतिसुखात्मकानि। गायतो जगतः कलिमलापहराणि कृत्वा । मुनिप्रस्थापने हेतुः-कालात्मना संहारकरूपेण यदुदेवगेहे वसुदेवगृहं निवसता स्वकुलं संजिहीर्षतेत्यर्थः । पिंडारकं ततो नातिदूरं तीर्थविशेषम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की इच्छा से ब्राह्मणों के शाप का कारण उपस्थित हुआ इस बात को कहने के लिए कर्माणि इत्यादि श्लोक को कहते हैं। श्रीभगवान् ऋषियों को कर्म करने के ही लिए बुलाये थे। वे ऋषिगण कर्मों के पूरा हो जाने पर कार्यमुक्त होकर पिण्डारक क्षेत्र में चले गये। निसृष्टाः अर्थात् विदा कर दिए गये। पहले जिनका वर्णन किया जा चुका है उन कर्मों का वर्णन पुण्य निवहानि इत्यादि तीन पदों से करते हैं। कुछ अश्वमेघ आदि कर्म पुण्य जनक ही होते हैं। पुत्रों का पालन पोषण करना रूप कर्म तकाल सुख देते हैं। प्रायश्चित्त आदि कर्म पापों का विनाश करते हैं। किन्तु जिन कर्मों को श्रीभगवान् ने किया वे कर्म हर प्रकार से पुण्य समूह रूप होते हैं। वे अत्यन्त सुखप्रद भी होते हैं। उन कर्मों का गान करने वाले लोगों के कलिजन्य पापों को विनष्ट कर देते हैं। मुनियों को विदा करने का कारण है कि श्रीभगवान् वसुदेवजी के घर में संहारक रूप से ही निवास करते थे। वे अपने वंश का संहार करना चाहते थे। पिण्डारक अर्थात् द्वारका के सन्निकट में विद्यमान तीर्थ। वहीं वे मुनिगण चले गये ॥११॥

विश्वामित्रोऽसितः कण्वो दुर्वासा भृगुरङ्गिराः । कश्यपो वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठो नारदादयः ॥१२॥

अन्वयः— विश्वामित्रः असितः कण्वः, दुर्वासा, भृगुः, अङ्गिरा, कश्यपः, वामदेवः, अत्रिः वसिष्ठः, नारदादयः॥१२॥

अनुवाद— उन ऋषियों के नाम इस प्रकार है विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अङ्गिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, और नारद आदि ॥१२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१२॥

क्रीडन्तस्तानुपव्रज्य कुमारा यदुनन्दनाः । उपसंगृह्य पप्रच्छुरविनीता विनीतवत् ॥१३॥

अन्वयः— क्रीडन्तः यदुनन्दनाः कुमाराः तान् उपव्रज्य उपसंगृह्य, अविनीतः विनीतवत् पप्रच्छुः ॥१३॥

अनुवाद— एक दिन यदुवंश के कुछ उदण्ड राजकुमार खेलते हुए उन ऋषियों के पास चले गये वे बनावटी नम्रता पूर्वक उनके चरणों में प्रणाम करके कहे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

उपसंगृह्य पादग्रहणं कृत्वा ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

उपसंगृह्य अर्थात् प्रणाम करके ॥१३॥

ते वेषयित्वा स्त्रीवेषैः साम्बं जाम्बवतीसुतम् । एषा पृच्छति वो विप्रा अन्तर्वत्न्यसितेक्षणा ॥१४॥

अन्वयः— ते जाम्बवती सुतम् साम्बं स्त्रीवेषैः वेषयित्वा विप्राः एषा असितेक्षणा अन्तर्वत्नीवः पृच्छति ॥१४॥

अनुवाद— वे राजकुमार जाम्बवती नन्दन साम्ब को स्त्री के वेष में सजाकर उन ब्राह्मणों से पूछा ऋषियों यह सुन्दरी गर्भिणी है। अतएव आपलोगों से पूछना चाहती है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

प्रश्नप्रकारमाह-ते वेषयित्वेति द्वयेन। हे अमोघदर्शना विप्राः। एषा अन्तर्वत्नीं गर्भिणी ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

ते वेषयित्वा० इत्यादि दो श्लोकों से प्रश्न के प्रकार को कहा गया है। हे अमोघदर्शन ऋषियों यह गर्भिणी है। अन्तर्वत्नी अर्थात् गर्भिणी ॥१४॥

प्रष्टुं विलज्जती साक्षात्प्रब्रूतामोघदर्शनाः । प्रसोष्यन्ती पुत्रकामा किंस्वित्संजनयिष्यति ॥१५॥

अन्वयः— हे अमोघदर्शनाः पुत्रकामा साक्षात् प्रष्टुं विलज्जती प्रवूताम् प्रसोष्यन्ती किंस्वित् जनयिष्यति ।।१५।।

अनुवाद— हे अमोघदृष्टि वाले मुनिगण यह आसन्नप्रसवा है। यह आपलोगों से साक्षात् पूछने में लजाती है। यह पुत्र प्राप्त करना चाहती है। आपलोग बतलाये यह कन्या जनेगी कि पुत्र ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

वो युष्मान् साक्षात्प्रष्टुं विलज्जती लज्जमानाऽस्मन्मुखेन पृच्छति। प्रसोष्यन्ती आसन्नप्रसवा। किंस्वित्संजनयिष्यति कन्यां वा पुत्रं वा तत्प्रब्रूत ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

आपलोगों से यह साक्षात् पूछने में लजाती है, हमलोगों के माध्यम से पूछना चाहती है यह कन्या जनेगी कि पुत्र यह आपलोग बतलाएँ यह आसन्न प्रसवा है ।।१५।।

एवं प्रलब्धा मुनयस्तानूचुः कुपिता नृप । जनयिष्यति वो मन्दा मुसलं कुलनाशनम् ॥१६॥

अन्वयः— हे नृप एव प्रलब्धा मुनयः कुपिताः तान् ऊचुः मन्दा वः कुलनाशनम् मुसलं जनयिष्यति ।।१६।।

अनुवाद— परीक्षित् इस प्रकार से वे यदुवंशी कुमार उन ऋषियों को ठगना चाहे तो वे क्रुद्ध हो गये और कहे मूर्खो यह तुम्हारे वंश का विनाश करने वाले एक मूसल को जन्म देगी ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

प्रलब्धा वञ्चिताः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

प्रलब्धाः अर्थात् ठगे गये ।।१६।।

तच्छ्रुत्वा तेऽतिसंत्रस्ता विमुच्य सहसोदरम् । साम्बस्य ददृशुस्तस्मिन्मुसलं खल्वयस्मयम् ॥१७॥

अन्वयः— तत् श्रुत्वा ते अति संत्रस्ता सहसा साम्बस्य उदरम् विमुच्य तस्मिन् अयस्मयम् मुसलं खलु ददृशुः ।।१७।।

अनुवाद— मुनियें की बात को सुनकर वे सभी बहुत डर गये। उन सबों ने शीघ्र साम्ब के पेट को देखा तो उसमें सचमुच एक लोहे का मुसल मिला ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

तस्मिन्नुदरे। अयस्मयं लोहमयम् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

तस्मिन सम्ब के पेट में एक लोहे का मुसल निकला ।।१७।।

किं कृतं मन्दभाग्यैर्नः किं वदिष्यन्ति नो जनाः । इति विह्वलिता गेहानादाय मुसलं ययुः ॥१८॥

अन्वयः— नः मन्दभाग्यैः कि कृतम् जना नो किं वदिष्यन्ति इति विह्वलिताः मुसलं आदाय गेहान् ययुः ।।१८।।

अनुवाद— अब वे पछताने और कहने लगे हम मूर्खों ने क्या कर दिया हमलोगों को लोग क्या कहेंगे ? इस तरह से भयभीत बने हुए वे सब मुसल लेकर घर आये ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

मन्दभाग्यैर्नोऽस्माभिः किमेतत्कृतम्। नोऽस्मान् किं वदिष्यतीति विह्वलिताः सन्तो मुसलमादाय गेहान् ययुः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

हम मूर्खों ने क्या कर दिया। हमलोगों को लोग क्या कहेंगे, यह सोचकर भयभीत वे सब मुसल को लेकर घर आये ॥१८॥

तच्चोपनीय सदसि परिम्लानमुखश्रियः । राज्ञ आवेदयांचक्रुः सर्वयादवसन्निधौ ॥१९॥

अन्वयः— परिम्लानमुखश्रियः तच्च सदसि उपनीय सर्वयादवसन्निधौ राज्ञे आवेदयाञ्चक्रुः ॥१९॥

अनुवाद— उन सबों की मुख श्री फीकी पड़ गयी थे। उन सबों ने मुसल ले जाकर राजा के सामने रख दिया और सारी घटना सभी यादवों के सामने सुना दी ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

राज्ञे उग्रसेनाय, नतु श्रीकृष्णाय ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

राजा उग्रसेन को न कि भगवान् श्रीकृष्ण को ॥१९॥

श्रुत्वाऽमोघं विप्रशापं दृष्ट्वा च मुसलं नृप । विस्मिता भयसंत्रस्ता बभूवुर्द्वारकौकसः ॥२०॥

अन्वयः— हे नृप अमोघं विप्रशापं श्रुत्वा मुसलं च दृष्ट्वा द्वारकौकसः विस्मिताः भयसंत्रस्ताः बभूवुः ॥२०॥

अनुवाद— परीक्षित ब्राह्मणों का कभी विफल नहीं होने वाले शाप को सुनकर आश्चर्यित द्वारकावासी भयभीत हो गये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

तच्चूर्णयित्वा मुसलं यदुराजः स आहुकः । समुद्रसलिले प्रास्यल्लोहं चास्यावशेषितम् ॥२१॥

अन्वयः— सः यदुराज आहुकः तत् मुसलं चूर्णयित्वा अवशेषितम् लोहं च समुद्रसलिले प्रास्यत ॥२१॥

अनुवाद— यदुवंशियों के राजा आहुक उस मुसल को चूर-चूर कराकर उसे समुद्र में फेंकवा दिया और अवशिष्ट वचे लोहे को भी फेकवा दिया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

आहुक उग्रसेनः। सोऽपि श्रीकृष्णमपृष्ट्वैव प्रास्यत्प्रक्षिप्तवान्। अस्य मुसलस्य चूर्णीक्रियमाणस्यावशेषितं लोहं च प्रास्यत्॥२१॥

भाव प्रकाशिका

आहुक अर्थात् उग्रसेन भी भगवान् श्रीकृष्ण से पूछे बिना ही प्रास्यत् अर्थात् फेंकवा दिए चूर्ण किए जाने वाले इस मुसल का जो लोह बच गया था उसको भी समुद्र में फेंकवा दिए ॥२१॥

कश्चिन्मत्स्योऽग्रसील्लोहं चूर्णानि तरलैस्ततः । उह्यमानानि वेलायां लग्नान्यासन्किलैरकाः ॥२२॥

अन्वयः— कश्चित् मत्स्यः लोहमग्रसीत् यतः चूर्णानि तरलैः उह्यमानानि बेलायां लग्नानि आसन् किल एरकाः आसन्॥२२॥

अनुवाद— उस लोहे के टुकड़े को एक मछली निगल गयी और चूर्ण बह-बहकर किनारे आकर लग गया और कुछ दिनों में एरका घास के रूप में उग गया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तरलैस्तरङ्गैः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

चंचल तरंङ्गो से ॥२२॥

मत्स्यो गृहीतो मत्स्यघ्नैर्जालेनान्यैः सहार्णवे । तस्योदरगतं लोहं स शल्ये लुब्धकोऽकरोत् ॥२३॥

अन्वयः— मत्स्यघ्नैः मत्स्यः जालेन अन्यैः सह गृहीतः तस्योदरगतं लोहं सशल्यः लुब्धकः अकरोत् ॥२३॥

अनुवाद— मछुआरों ने जाल से दूसरी मछलियों के साथ उस मत्स्य को पकड़ लिया । उसके पेट में विद्यमान लोहे को जरा नामक व्याध ने अपने बाण में लगा लिया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

अन्यैर्मत्स्यैः सह शल्ये शराग्रे ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी मछलियों के साथ शल्ये अर्थात् बाण के अग्रभाग में ॥२३॥

भगवान् ज्ञातसर्वार्थ ईश्वरोऽपि तदन्यथा । कर्तुं नैच्छद्विप्रशापं कालरूप्यन्वमोदत ॥२४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे विप्रशापो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अन्वयः— ज्ञातसर्वार्थो भगवान् ईश्वरोऽपि तत अन्यथा कर्तु न ऐच्छत् काल रूपी विप्रशापम् अन्वमोदत ॥२४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् सब कुछ जानते थे वे इस शाप को मिटा भी सकते थे । किन्तु काल रूप श्रीभगवान् ब्राह्मणों के उस शाप का अनुमोदन ही किए ॥२४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें अध्याय के विप्रशाप नामक प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य)कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञाताः सर्वेऽर्था येन स ईश्वरोऽपि समर्थोऽपि सन्नन्यथाकर्तुं नैच्छत् किंत्वन्वमोदत । यतः कालरूपी ॥२४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् सब कुछ जानते थे वे शाप को व्यर्थ भी कर सकते थे किन्तु उन्होंने ब्राह्मणों के शाप का अनुमोदन किए । क्योंकि वे काल स्वरूप है ॥२४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवे अध्याय की भावार्थदीपिका टीका के प्रथम अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१॥

दूसरा अध्याय

वसुदेवजी के पास श्रीनारदजी का आना और उनको राजा जनक और नवयोगेश्वरों का संवाद सुनाना

श्रीशुक उवाच

गोविन्दभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह । अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः ॥१॥

अन्वयः— कुरुद्वह गोविन्दभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कृष्णोपासनलालसः नारदः अभीक्ष्णम् अवात्सीत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् द्वारकापुरी भगवान् श्रीकृष्ण की भुजाओं से सुरक्षित थी नारदजी की भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना करने की लालसा बनी रहती थी अतएव वे वहाँ बार-बार रहा करते थे ॥१॥

दूसरा अध्याय

वसुदेवजी के पास श्रीनारदजी का आना और उनको राजा जनक और नवयोगेश्वरों का संवाद सुनाना

श्रीशुक उवाच

गोविन्दभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कुरूद्वह । अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः ॥१॥

अन्वयः— कुरुद्वह गोविन्दभुजगुप्तायां द्वारवत्यां कृष्णोपासनलालसः नारदः अभीक्ष्णम् अवात्सीत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् द्वारकापुरी भगवान् श्रीकृष्ण की भुजाओं से सुरक्षित थी नारदजी की भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना करने की लालसा बनी रहती थी अतएव वे वहाँ बार-बार रहा करते थे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वितीये निमिजायन्तसंवादेनाह नारदः । धर्मान्भागवतान्भक्त्या वसुदेवाय पृच्छते ॥१॥ अभीक्ष्णं प्रस्थापितोऽपि पुनःपुनरवात्सीदित्यर्थः । ननु नारदस्य दक्षादिशापान्नैकत्रवासः संभवतीत्याशङ्क्याह-गोविन्दभुजगुप्तायामिति । न तस्यां शापादेः प्रभाव इत्यर्थः । कृष्णोपासने लालसा औत्कण्ठ्यं यस्य सः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे अध्याय में निमिजायन्त संवाद के द्वारा नारदजी ने वसुदेवजी को भक्तिपूर्वक पूछने पर उनको भागवत धर्मों को बतलाये ॥१॥ भगवान् के विदा कर देने पर भी बार-बार द्वारका में आकर रहा करते थे । प्रश्न है कि नारदजी को दक्ष का शाप था अतएव वे एक स्थान पर कैसे रह सकते थे । तो इसका उत्तर है कि द्वारका भगवान् की भुजाओं के द्वारा संरक्षित थी । अतएव वहाँ शाप का प्रभाव नहीं होता था । नारदजी को भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना की अभिलाषा बनी रहती थी ॥१॥

को नु राजन्निन्द्रियवान्मुकुन्दचरणाम्बुजम् । न भजेत्सर्वतोमृत्युरूपास्यममरोत्तमैः ॥२॥

अन्वयः— राजन् कः नु इन्द्रियवान् अमरोत्तमैः उपास्यम् मुकुन्दचरणाम्बुजम् न भजेत् सर्वतः मृत्सः ॥२॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् इन्द्रियों वाला कौन ऐसा प्राणी है ? जो भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाले ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवताओं के भी उपास्य भगवान् मुकुन्द के चरण कमलों की उपासना न करे । जीव तो चारो ओर से मृत्यु से ही घिरा है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

यद्भजने मुक्तानामपीदृशमौत्सुक्यं तं को नाम न भजेदित्याह-को न्विति । इन्द्रियवानिति । इन्द्रियवत्त्वमात्रमेव यत्राधिकारिविशेषणमित्यर्थः । सर्वतः सर्वेष्वपि लोकेषु मृत्युर्यस्य सः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

जिनका भजन करने में मुक्त जीवों का भी इस प्रकार की उत्सुकता है उन श्रीभगवान् का भजन कौन नहीं करेगा ? इस बात को **को नु इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । इन्द्रिय युक्त होना ही जहाँ पर अधिकारी का विशेषण है । जीव की तो सभी लोकों में मृत्यु होती है ॥२॥

तमेकदा तु देवर्षिं वसुदेवो गृहागतम् । अर्चितं सुखमासीनमभिवाद्येदमब्रवीत् ॥३॥

अन्वयः— वसुदेवः एकदा गृहागत् तं देवर्षि अर्चितम् सुखमासीनम् अभिवाद्य इदम् अब्रवीत् ॥३॥

अनुवाद— एक दिन की बात है कि देवर्षि नारदजी वसुदेवजी के घर आये और सत्कार करने के पश्चात् जब सुख पूर्वक बैठ गये उस समय वसुदेवजी उनको नमस्कार करके उनसे यह कहे ॥३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३॥

वसुदेव उवाच

भगवन्भवतो यात्रा स्वस्तये सर्वदेहिनाम् । कृपणानां यथा पित्रोरुत्तमश्लोकवर्त्मनाम् ॥४॥

अन्वयः— यथा पित्रोः यात्रा अपत्यानाम् यथा उत्तमश्लोक वर्त्मनाम् कृपणानम् तथा हे भगवान् भवतः यात्रा सर्वदेहिनाम् स्वस्तये भवतीतिशेषः ॥४॥

वसुदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! जिस तरह माता-पिता की यात्रा सन्तानों के लिए सुखप्रद होती है, तथा दीन संसारियों

का कल्याण करने के लिए साधुसन्तों की यात्रा होती है, उसी तरह आपकी भी यात्रा सभी शरीरधारियों का कल्याण करने के लिए होती है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

यथा पित्रोर्यात्रा आगमनमपत्यानां स्वस्तये मङ्गलाय। यथा चोत्तमश्लोकस्य वर्त्मभूतानां महतां यात्रा कृपणानां स्वस्तये तथा भगवद्रूपस्य भवतो यात्रा सर्वदेहिनां स्वस्तय इति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह माता-पिता का आगमन सन्तानों का कल्याण करने के लिए होता है, तथा जिस तरह भगवद् भक्तों की यात्रा संसारी जीवों का कल्याण करने के ही लिए होती है ॥४॥

भूतानां देवचरितं दुःखाय च सुखाय च। सुखायैव हि साधूनां त्वादृशामच्युतात्मनाम् ॥५॥

अन्वयः— देवचरितं भूतानां दुःखाय च सुखाय च त्वादृशाम् अच्युतात्मानाम् साधूनां हि सुखायैव ॥५॥

अनुवाद— देवताओं का चरित्र कभी दुखद और कभी सुखद भी हुआ करता है किन्तु आप जैसे भगवद् भक्त पुरुष जिनका, जीवन, प्राण आदि सब कुछ भगवन्मय ही है, ऐसे महापुरुषों की चेष्टाएँ तो समस्त प्राणियों के कल्याणार्थ ही होता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

देवैरपि महतामुपमानमनुचितमित्याह-भूतानामिति। देवानां चरितमतिवृष्ट्यादिना भूतानां दुःखायापि भवति। त्वादृशां त्वया सदृशानाम् अच्युते आत्मा येषां तेषाम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं से भी महापुरुषों की उपमा देना अनुचित है इस बात को **भूतानाम० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। देवताओं का चरित अतिवृष्टि आदि के द्वारा जीवों के लिए दु;खप्रद भी होता है। आप जैसे भगवद् भक्तों का **अच्युतात्मनाम्** जिनका मन सदा श्रीभगवान् में ही लगा रहता है ॥५॥

भजन्ति ये यथा देवान्देवा अपि तथैव तान्। छायेव कर्मसचिवाः साधवो दीनवत्सलाः ॥६॥

अन्वयः— ये देवान् यथा भजन्ति देवा अपि तान् तथैव भजन्ति छायेव कर्मसचिवाः साधवः दीनवत्सलाः॥६॥

अनुवाद— जो लोग देवता की जैसी आराधना करते है देवता भी उसको उस आराधना के अनुसार ही फल देते हैं, क्योंकि देवता कर्मों के अधीन होते है। किन्तु सत्पुरुष तो दीन वत्सल होते हैं। अर्थात् जो लोग सांसारिक सम्पत्ति और साधन से हीन हैं ऐसे लोगों को भी अपना लेते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

किंच सुखं कुर्वन्तोऽपि देवा भजनानुसारेण कुर्वन्ति, न तथा साधव इत्याह-भजन्तीति। छायेव यथा पुरुषो यावत्करोति तावदेव तस्य छायापि तथा। कर्मसचिवाः कर्मसहायाः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

देवता सुख भी प्रदान करते हैं वे अपने अराधक की आराधना के अनुसार ही सुख प्रदान करते हैं, किन्तु साधु पुरुष ऐसा नहीं करते हैं इस बात को **भजन्ति ये इत्यादि** श्लोक द्वारा कहा गया है। **छायेव** का अभिप्राय है कि पुरुष जिस प्रकार जितनी आराधना है कर्माधीन रहने वाले देवता भी उतना ही फल प्रदान करते हैं, क्योंकि देवता तो कर्म सचिव अर्थात् सहाय हैं ॥६॥

ब्रह्मंस्तथापि पृच्छामो धर्मान्भागवतांस्तव । यान् श्रुत्वा श्रद्धया मर्त्यो मुच्यते सर्वतो भयात् ।।७।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् तथापि तव भागवतान् धर्मान् पृच्छामः यान् श्रद्धया श्रुत्वा मर्त्यः सर्वतो भयात् मुच्यते ।।७।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन् यद्यपि हम आपके दर्शन से कृतकृत्य हैं फिर भी मैं आपसे उन भागवत धर्मो के विषय में आप से पूछ रहा हूँ जिन भागवत धर्मों के श्रद्धापूर्वक सुन लेने मात्र से मनुष्य संसार के भय से मुक्त हो जाता है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं यद्यपि भवत आगमनमात्रेणैव वयं कृतार्थास्तथापि पृच्छामः । तवेति, तव यैर्धर्मैः प्रसन्नो भगवांस्तानित्यर्थः।।७।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि हम आपके आगमन मात्र से ही कृत-कृत्य हैं फिर भी मैं आपसे उन भागवत धर्मों के विषय में पूछते हैं, जिन धर्मों से प्रसन्न होकर उन जीवों को संसार भय से मुक्त कर देते हैं ।।७।।

अहं किल पुराऽनन्तं प्रजार्थो भुवि मुक्तिदम् । अपूजयं न मोक्षाय मोहितो देवमायया ।।८।।

अन्वयः— अहं किल पुरा देवमायया मोहितः मुक्तिदम् अनन्तं प्रजार्थम् अपूजयम् मोक्षाय न ।।८।।

अनुवाद— निश्चित रूप से मैं पूर्वजन्म में श्रीभगवान् की माया से मोहित हो मुक्ति प्रदान करने वाले श्रीभगवान् की आराधना इसलिए की थी की वे मुझे पुत्र रूप में प्राप्त होएँ मैंनें मोक्ष प्राप्ति के उद्देश्य से श्रीभगवान् की आराधना नहीं की थी ।।८।।

भावार्थ दीपिका

ननु त्वत्तोऽपि किमन्यो भगवत्प्रसादपात्रमस्ति, तत्राह-अहं किलेति । भुवि प्रजार्थोऽपूजयं पुत्रलाभप्रयोजनः सन् पूजितवान् । किलेति सूतीगृहे भगवदुक्तमनुस्मरति ।।८।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि क्या आप से भी बढ़कर कोई भगवान् की कृपा का पात्र है तो इसके उत्तर में श्रीवसुदेवजी ने **अहं किल० इत्यादि** श्लोक कहा- मैंन पुत्र रूप से परमात्मा की प्राप्ति के लिए परमात्मा की आराधना की थी। किल इस पद के द्वारा प्रसूती गृह श्रीभगवान् के द्वारा कही गयी बातों का वसुदेवजी स्मरण कर रहे हैं ।।८।।

यथा विचित्रव्यसनाद्भवद्भिर्विश्वतोभयात् । मुच्येमह्यञ्जसैवाद्धा तथा नः शाधि सुव्रत ।।९।।

अन्वयः— हे सुव्रत यथा विचित्र व्यसनात् भवद्भिः विश्वतोभयात् मच्येमहि अञ्जसेव अद्धा तथा नः शाधि ।।९।।

अनुवाद— हे सुन्दर व्रत वाले नारदजी जिसमें दुःख भी सुख का विचित्र औलोक रूप धारण करके आते हैं इस जन्म मृत्यु रूप भयङ्कर संसार से मैं मुक्त हो जाऊँ इस प्रकार आप मुझे उपदेश दें ।।९।।

भावार्थ दीपिका

अतो यथा मुच्येमहि तथा नोऽस्मान् शाधि शिक्षय । विचित्राणि व्यसनानि यस्मिन्संसारे तस्मात्संसारात् । तथा विश्वतः सर्वतो भयं यस्मिंस्तस्मात् । भवद्भिर्हेतुभूतैः । अञ्जसाऽनायासेन । अद्य साक्षात् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

आप मुझे ऐसा उपेदश दें कि मैं मुक्त हो जाऊँ । इस संसार में दुःख विचित्र प्रकार के हैं, ऐसे इस संसार से मैं मुक्त हो जाऊँ । इस संसार में हर ओर से भय-ही-भय है । भवद्भिः होने वाले अञ्जसा अर्थात् अनायास। अद्धा साक्षात् ।।९।।

श्रीशुक उवाच

राजन्नेवं कृतप्रश्नो वसुदेवेन धीमता । प्रतीस्तमाह देवर्षिहरेः संस्मारितो गुणैः ॥१०॥

अन्वयः— राजन् धीमता वसुदेवेन एवं कृतः प्रश्नः देवर्षिः हरेः संस्मारितो गुणैः तम् प्रतिः आह ॥१०॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् बुद्धिमान वसुदेवजी द्वारा इस प्रकार प्रश्न किए जाने पर देवर्षि नारदजी उनके प्रश्न को सुनकर भगवान् के अनन्त कल्याणगुण के स्मरण में ही आनन्दमग्न हो गये । फिर उन्होंने वसुदेवजी से कहा ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

हरेर्गुणैर्वर्णनीयत्वेन प्रस्तुतैर्हरिः संस्मारित इत्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के गुणों के वर्णनीय रूप से प्रस्तुत होने से श्रीहरि का स्मरण हो आया ॥१०॥

नारद उवाच

सम्यगेतद्व्यवसितं भवता सात्वतर्षभ । यत्पृच्छसे भागवतान्धर्मांस्त्वं विश्वभावनान् ॥११॥

अन्वयः— हे सात्वतर्षभ भवता एतत् सम्यग् व्यवसितं यत् विश्वभावनान् भागवतान् धर्मान् पृच्छ से ॥११॥

श्रीनारदजी ने कहा

अनुवाद— हे वसुदेवजी आपने यह बहुत अच्छा निश्चय किया है कि आप सम्पूर्ण विश्व को जीवन दान देने वाले भागवत धर्मो को मुझसे पूछ रहे हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

प्रीतिमाविष्करोति-सम्यगिति त्रिभिः । पृच्छते पृच्छसि । विश्वभावनान्सर्वशोधकान् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

सम्यक् इत्यादि तीन श्लोक से प्रेम अविष्कृत करते हैं पृच्छसि के अर्थ में पृच्छ प्रयुक्त है । विश्वभावनान् का अर्थ है सम्पूर्ण विश्व को जीवनदान देने वाले ॥११॥

श्रुतोऽनुपठितोध्यातः आदृतो वाऽनुमोदिनः । सद्यः पुनाति अनुपठितः देव विश्वद्रुहोऽपि हि ॥१२॥

अन्वयः— हे देवः ! श्रुतः अनुपठितः ध्यातः अदृतः अनुमोदितः सद्धर्म, विश्वद्रुहः अपि हि सद्यः पुनाति ॥१२॥

अनुवाद— हे देव ! (वसुदेवजी) यह भागवत धर्म ऐसा है कि इसके सुनने, बार-बार पढ़ने, ध्यान करने, आदर करने तथा अनुमोदन करने से यह संसार भर के द्रोही पुरुष को पवित्र बना देता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

आदृतः आस्तिक्येन गृहीतः, अनुमोदितः परैः क्रियमाणः संस्तुतः, सद्धर्मो भागवतो धर्मः देव हेवसुदेवेत्यर्थः । यद्वा देवेभ्ये विश्वस्मै च द्रुह्यन्ति ये तानपि ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

आदृतः अर्थात् अस्तिक्य बुद्ध से ग्रहण किए जाने पर, दूसरों द्वारा किए जाने पर उसका अनुमोदन करने से जो भागवत धर्म है, वह हे वसुदेवजी ! अथवा जो लोग सम्पूर्ण देवताओं से द्रोह करते है उनको पवित्र बना देता है ॥१२॥

त्वया परमकल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः । स्मारितो भगवानद्य देवो नारायणो मम ॥१३॥

अन्वयः— त्वया परम कल्याणः पुण्यश्रवणकीर्तनः अद्य मम नारायणो देवः स्मारितः ॥१३॥

अनुवाद— आपने जिनके गुणों और लीलाओं का श्रवण एवं कीर्तन करने से श्रवण करने वाले मनुष्य का परम कल्याण होता उस मेरे आराध्य भगवान् नारायण की यदि दिला दी है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

किंच त्वया महानुपकारः कृत इत्याह-त्वयेति । पुण्ये श्रवणकीर्तने यस्य सः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

आपने मेरा महान् उपकार किया है । जिनकी लीला और गुणों को सुनने से परम कल्याण होता है ॥१३॥

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । आर्षभाणां च संवादं विदेहस्य महात्मनः ॥१४॥

अन्वयः— अत्र अपि इमम् पुरातनम् इतिहासम् आर्षभाणां महात्मनः विदेहस्य च संवादम् उदाहरन्ति ॥१४॥

अनुवाद— इस विषय में महात्मा लोग ऋषभ देव के पुत्र नौ योगिश्वरों औम महामनस्वी विदेह (जनक) के संवाद को इतिहास के रूप में उपन्यस्त करते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अत्रापि भगवद्धर्मनिर्णयेऽपि । विदेहस्य जनकस्य ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अत्रापि अर्थात् भगवद् धर्म का निर्णय करने के विषय में विदेहस्य अर्थात् जनक जी का ॥१४॥

प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायम्भुवस्य यः । तस्याग्नीध्रस्ततो नाभिर्ऋषभस्तत्सुतः स्मृतः ॥१५॥

अन्वयः— यः स्वायम्भुवस्य मनोः प्रियव्रतो नाम सुतः तस्य आग्नीध्रः ततो नाभिः तत् सुतः ऋषभः स्मृतः ॥१५॥

अनुवाद— स्वायम्भुव मनु के पुत्र जो प्रियव्रत नामक पुत्र थे उनके पुत्र आग्नीध्र हुए आग्नीध्र के पुत्र नाभि हुए और नाभि के पुत्र ऋषभ हुए ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

आर्षभाणामुत्पत्तिं सान्वयां विविच्य कथयति-प्रियव्रत इति सप्तभिः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

प्रियव्रत इत्यादि सात श्लोकों से वंशविवेचन पूर्वक ऋषभ के पुत्रों का वर्णन करते हैं ॥१५॥

तमाहुर्वासुदेवांशं मोक्षधर्मविवक्षया । अवतीर्णं सुतशतं तस्यासीद्ब्रह्मपारगम् ॥१६॥

अन्वयः— तम् मोक्षधर्मविवक्षया, अवतीणं वासुदेवंशम् आहुः तस्य वेदपारगम् शत सुतम् आसीत् ॥१६॥

अनुवाद— शास्त्रों में ऋषभ को भगवान् वासुदेव का अंशावतार माना जाता है । वे मोक्ष धर्म का उपदेश देने के लिए अवतीर्ण हुए थे । उनके वेदों में पारंगत सौ पुत्र थे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

मोक्षधर्मविवक्षया मोक्षधर्माणां प्रवर्तनेच्छया अवतीर्णं वासुदेवांशमाहुः-तस्य च वेदपारगं सुतशमासीत् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

मोक्ष धर्म का प्रवर्तन करने की इच्छा से अवतीर्ण हुए मानते हैं । उनके वेदों में पारंगत सौ पुत्र थे ॥१६॥

तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः । विख्यातं वर्षमेतद्यन्नाम्ना भारतमद्भुतम् ॥१७॥

अन्वयः— तेषांवै भरतः ज्येष्ठ नारायण परायणः आसीत् यन्नाम्ना एतद् अद्भुतम् भारतं विख्यातम् ॥१७॥

अनुवाद— उन सबों में भरतजी ज्येष्ठ थे एवं भगवान् नारायण के भक्त थे, यह अद्भुत भारतवर्ष उन्हीं के नाम से विख्यात है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तेषामृषभसुतानां मध्ये नवयोगीश्वराणां चरितं वक्तुमितरेषां चरितं ततो विविच्याह-तेषामिति । एतदजनाभं नाम वर्षं यस्य नाम्ना भारतमित्यद्भुतं विख्यातमासीत् । एतेन तस्य धर्मातिरेको निरूपितः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

ऋषभदेव के पुत्रों में नव्योगीश्वरों का चरित बतलाने के लिए उनसे भिन्नों का चरित विवेचन पूर्वक कहते हैं इस अजनाभ वर्ष जिनके नाम से भारत इस तरह से अद्भुत रूप से विख्यात हुआ । इस कथन के द्वारा भरतजी के धर्माधिक्य का निरूपण किया गया ॥१७॥

स भुक्तभोगां त्यक्तवेमां निर्गतस्तपसा हरिम् । उपासीनस्तत्पदवीं लेभे वै जन्मभिस्त्रिभिः ॥१८॥

अन्वयः— सः भुक्तभोगाम् इमां पृथ्वीं त्यक्त्वा निर्गतः । तपसा हरिम् उपासीनः त्रिभिः जन्मभिः तत्पदवीं लेभे॥१८॥

अनुवाद— वे इस सम्पूर्ण पृथिवी का राज्य किये और अन्त में हरि की उपासना करने के लिए वन में चले गये और तीन जन्मों में वे श्रीभगवान् के धाम में चले गये ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

इमां पृथ्वीम् । गृहान्निर्गतः । हरिमुपासीनः सेवमानः सन् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

इस पृथिवी को ! घर से निकलकर । श्रीहरि की उपासना करते हुए ॥१८॥

तेषां नव नवद्वीपपतयोऽस्य समन्ततः । कर्मतन्त्रप्रणेतार एकाशीतिर्द्विजातयः ॥१९॥

अन्वयः— तेषां नव नवद्वीपपतयः अस्य समन्तः कर्मतन्त्रप्रणेतारः एकाशीतिः द्विजातयः ॥१९॥

अनुवाद— ऋषभदेवजी के शेष निन्यानबे पुत्रों में से नव तो भारत वर्ष के चारो ओर स्थित नवद्वीपों के स्वामी हो गये । और इक्यासी पुत्र कर्मकाण्ड के प्रणेता ब्राह्मण हो गये ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

नव सुताः नवद्वीपपतयो नवानां ब्रह्मावर्तादिभूखण्डानां पतयः । अस्य भारतस्य वर्षस्य । एकाशीतिः सुताः कर्ममार्गप्रवर्तका ब्राह्मणा अभूवन् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

नव पुत्र तो ब्रह्मावर्त आदि नव भूखण्डों के स्वामी हो गये और इक्यासी कर्म भाग के प्रवर्तक ब्राह्मण हो गये ॥१९॥

नवाभवन्महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः । श्रमणा वातरशनां आत्मविद्याविशारदाः ॥२०॥

अन्वयः— नवमहाभागाः अर्थशंसिनः श्रमणाः वातरशना आत्मविद्या विशारदाः मुनयः अभूवन् ॥२०॥

अनुवाद— शेष नव संन्यासी हो गये वे महाभाग्यवान् थे । उन लोगों ने आत्मविद्या के सम्पादन में बड़ा परिश्रम किया था और उसमें वे निपुण थे । वे प्रायः दिगम्बर ही रहते थे और अधिकारियों को परमार्थ वस्तु का उपदेश दिया करते थे ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अर्थशंसिन: परमार्थनिरूपका: । श्रमणा: श्रमवन्त:, आत्माभ्यासे कृतश्रमा इत्यर्थ: । वातरशना दिगम्बरा: । आत्मविद्यायां विशारदा निष्णाता: ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

अर्थशंसिन: अर्थात् परमार्थ का निरूपण करने वाले श्रमणा: अर्थात् संन्यासी जिन लोगों ने आत्मविद्या में परिश्रम किया था । वातरशना: अर्थात् दिगम्बर । आत्मविद्या में निष्णात ॥२०॥

कविर्हरिरन्तरिक्ष: प्रबुद्ध: पिप्पलायन: । आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमस: करभाजन: ॥२१॥

अन्वय:— कवि: हरि: अन्तरिक्ष: प्रबुद्ध: पिप्पलायन: आविर्होत्र: अथ द्रुमिल: चमस: करभाजन: च ॥२१॥

अनुवाद— उनके नाम थे कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल और करभाजन॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

त एते भगवद्रूपं विश्वं सदसदात्मकम् । आत्मनोऽव्यतिरेकेण पश्यन्तो व्यचरन्महीम् ॥२२।

अन्वय:— ते एते सदसदात्मकं विश्वं आत्मनोऽव्यतिरेकेण पश्यन्त: महीम् व्यचरन्त ॥२२॥

अनुवाद— वे सब कार्यकारण तथा जड़ चेतनात्मक जगत् को अपने से अभिन्न तथा भगवत् स्वरूप देखते हुए पृथिवी पर विचरण किया करते थे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तेषां पारमहंस्यचरितमाह- त एत इति द्वाभ्याम् । भगवद्रूपं विश्वं पश्यन्त: । सदसदात्मकं स्थूलसूक्ष्मरूपम् । तच्च स्वाव्यतिरेकेण पश्यन्त: ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

उन लोगों के पारमहंस्यचरित का वर्णन **त एते० इत्यादि** दो श्लोकों से कहते हैं- भगवत् स्वरूप सम्पूर्ण जगत् को देखते हुए । सदसदात्मकम् अर्थात् सूक्ष्म-स्थूल रूप जगत् को अपने से अभिन्न देखते हुए ॥२२॥

अव्याहतेष्टगतय: सुरसिद्धसाध्यगन्धर्वयक्षनरकिन्नरनागलोकान् ।
मुक्ताश्चरन्ति मुनिचारणभूतनाथविद्याधरद्विजगवां भुवनानि कामम् ॥२३॥

अन्वय:— मुक्ता: अव्याहतेष्टगतय; सुरसिद्धसाध्यगन्धर्वयक्षनरकिन्नरनागलोकान् मुनिचारणभूतनाथविद्याधर द्विजगवां भुवनानि कामम् चरन्ति ॥२३॥

अनुवाद— वसुदेवजी वे सभी मुक्त थे वे कहीं भी बिना किसी रोक टोक के सर्वत्र जाया करते थे । देवता, सिद्ध, साध्य, गन्धर्व, यक्ष, मनुष्य किन्नर, और नागों के लोकों में तथा मुनि, चारण, भूतनाथ विद्याधर, ब्राह्मण और गौओंके स्थानों में वे स्वच्छन्द विचरण किया करते थे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

अव्याहता अप्रतिहता इष्टाऽभिप्रेता गतिर्येषां ते । मुक्ता अनासक्ता: ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

उन लोगों की गति अव्याहत थी । वे अपनी इच्छा के अनुसार कहीं भी जाते थे । मुक्ता: अर्थात् सर्वो से अनासक्त ॥२३॥

त एकदा निमेः सत्रमुपजग्मुर्यदृच्छया । वितायमानमृषिभिरजनाभे महात्मनः ॥२४॥

अन्वयः— ते एकदा अजनाभे ऋषिभिः वितायमानम् सत्रम् महात्मनः निमेः सत्रम् यदृच्छया उपजग्मुः ॥२४॥

अनुवाद— वे एक बार जब अजनाभ वर्ष भारत वर्ष में महामनस्वी निमि ऋषियों के साथ सत्र कर रहे थे तो अचानक उनके सत्र में पहुँच गये ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

महात्मनो निमेः । वितायमानमनुष्ठीयमानम् । अजनाभे भारतवर्षे ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

महात्मा निमि के । वितायमानम् अर्थात् किए जाने वाले, अजनाभे अर्थात् भारत वर्ष में ॥२४॥

तान्दृष्ट्वा सूर्यसंकाशान्महाभागवतान्नृप । यजमानोऽग्नयो विप्राः सर्व एवोपतस्थिरे ॥२५॥

अन्वयः— नृप तान् सूर्यसंकाशान् महाभागवतान् दृष्टवा यजमानः अग्नयः विप्राः सर्वे एव उपतस्थिरे ॥२५॥

अनुवाद— हे वसुदेवजी सूर्य के समान महातेजस्वी तथा भगवान् नारायण के परम भक्त जानकर यजामन (निमि) आवहनीय आदि मूर्तिमान होकर अग्नि ऋत्विज आदि सभी ब्राह्मण सबके सब खड़े होकर उनका स्वागत किए॥२५॥

भावार्थ दीपिका

यजमान निमिः । अग्नय आहवनीयादयः । विप्रा ऋत्विगादयः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

यजमान निमि आहवनीय आदि अग्नि ऋत्विक् आदि ब्राह्मण ॥२५॥

विदेहस्तानभिप्रेत्य नारायणपरायणान् । प्रीतः संपूजयांचक्र आसनस्थान्यथार्हतः ॥२६॥

अन्वयः— विदेहः तान् नारायण परायणान् अभिप्रेत्य प्रीतः आसनस्थान् यथार्हतः संपूजयां चक्रे ॥२६॥

अनुवाद— विदेहराज निमि ने उनको भगवान् नारायण का परम भक्त जानकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन सबों को आसन पर बैठाकर अच्छी तरह से पूजा किए ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

अभिप्रेत्य ज्ञात्वा ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

अभिप्रेत्य अर्थात् जानकर ॥२६॥

तान्रोचमानान्स्वरुचा ब्रह्मपुत्रोपमान्नव । पप्रच्छ परमप्रीतः प्रश्रयावनतो नृपः ॥२७॥

अन्वयः— तान् स्वरुचा, ब्रह्मपुत्रोपमान् रोचमानान् नव परमप्रीतः प्रश्रयावनक्त नृपः पप्रच्छ ॥२७॥

अनुवाद— उन अपनी कान्ति से ब्रह्माजी के पुत्र सनकादिक ऋषियों के समान प्रकाशित होने वाले ऋषियों से अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा निमि ने अत्यन्त नम्रता पूर्वक पूछा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

स्वरुचैव रोचमानान् त्वाभरणादिप्रकाशैः । ब्रह्मपुत्रोपमान्सनत्कुमारादिसदृशान् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

वे अपनी कान्ति से ही प्रकाशित हो रहे थे आभूषण आदि के प्रकाश से नहीं **ब्रह्मपुत्रोपमान** अर्थात् ब्रह्माजी के पुत्र सनकादि महर्षियों के समान ॥२७॥

विदेह उवाच

मन्ये भगवतः साक्षात्पार्षदान्वो मधुद्विषः । विष्णोर्भूतानि लोकानां पावनाय चरन्ति हि ॥२८॥

अन्वयः— साक्षात् भगवतः मधुद्विषः पार्षदान् वः मन्ये विष्णो भूतानि, लोकानां पावनाय हि चरन्ति ॥२८॥

अनुवाद— भगवन् मैं समझता हूँ कि आपलोग साक्षात् भगवान् मधुसूदन के पार्षद हैं क्योंकि भगवान् विष्णु के पार्षद संसारी प्राणियों को पवित्र करने के लिए ही भ्रमण किया करते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

परमप्रीत्या तद्दर्शनमभिनन्दति द्वाभ्याम्- मन्य इति । ननु भगवतः पार्षदानां कथमत्रोपलब्धिस्तत्राह-विष्णोरिति । विष्णुभक्ता लोकपावनार्थं सर्वत्र पर्यटन्तीत्यर्थः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त प्रेम पूर्वक महाराज निमि उन लोगों के दर्शन का अभिनन्दन दो श्लोकों से करते हैं । प्रश्न होता है कि श्रीभगवान् के पार्षदों की यहाँ कैसे उपलब्धि हो गयीं ? तो इस पर **विष्णोः इत्यादि** श्लोकांश से कहते हैं भगवान् विष्णु के भक्त संसार को पवित्र करने के लिए विचरण किया करते हैं ॥२८॥

दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः । तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥२९॥

अन्वयः— देहिनां क्षणभङ्गुरः मानुषं देहः दुर्लभः, तत्रापि वैकुण्ठप्रियदर्शनं दुर्लभं मन्ये ॥२९॥

अनुवाद— अनेक शरीरों को धारण करने वाले शरीरधारियों को क्षणभङ्गुर मानव शरीर की प्राप्ति दुर्लभ है। उसमें श्रीभगवान् के परमप्रिय भागवतों का दर्शन तो और दुर्लभ है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

मया दुर्लभं लब्धमहो भाग्यमित्याह-दुर्लभ इति । बहवो देहा भवन्ति येषां ते देहिनो जीवास्तेषां क्षणभङ्गुरोऽपि मानुषो देहो दुर्लभः, परमपुरुषार्थसाधनत्वात् । वैकुण्ठः प्रियो येषां, वैकुण्ठस्य वा प्रियास्तेषां दर्शनम् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

महाराज निमि कहते हैं कि मैंने दुर्लभ वस्तु को प्राप्त किया यह मेरा अहो भाग्य है । इस बात को उन्होंने **दुर्लभ० इत्यादि** श्लोक से कहा है । जिनके अनेक शरीर होते हैं वे देही शब्द वाच्य जीव हैं । जीवों को अपने कर्मानुसार देव मनुष्य पशु-पक्षी आदि अनेक प्रकार के शरीरों को धारण करना पड़ता है । उन शरीरों में क्षणभङ्गुर भी मनुष्य का देह दुर्लभ है । क्योंकि मनुष्य का शरीर परम पुरुषार्थ का साधन है । उसमें श्रीभगवान् के अत्यन्त प्रेमी भगवद् भक्तों का दर्शन हो जाना अत्यन्त दुर्लभ है ॥२९॥

अत आत्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामो भवतोऽनघाः । संसारेऽस्मिन्क्षणार्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम्॥३०॥

अन्वयः— हे अनघाः अतःभवतः आत्यन्तिकं क्षेमं प्रच्छामि अस्मिन् संसारे क्षणार्धः अपि सत्सङ्गः नृणाम् शेवधिः॥३०॥

अनुवाद— अतएव हे निष्पाप महापुरुष आप लोगों से मैं यह जानना चाहता हूँ कि परम कल्याण का स्वरूप क्या है ? उसका साधन क्या है इत्यादि इस संसार में तो आधे क्षण का भी सत्सङ्ग मिलना मनुष्य के लिए परम निधि है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

हे अनघा निरवद्याः, भवतो युष्मानात्यन्तिकं क्षेमं पृच्छामः यतः क्षणार्धकालभवोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्निधिः । निधिलाभे यथानन्दो भवति तथाऽत्र परमानन्द इत्यर्थः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

हे समस्त दोषों से रहित सत्पुरुषों आपसे मैं आत्यन्तिक कल्याण का स्वरूप जानना चाहता हूँ। क्योंकि इस संसार में आधेक्षण का भी सत्सङ्ग मिलना परमानन्द पद है। अर्थात् जिस तरह निधि का लाभ हो जाने पर अत्यन्त आनन्द होता है उसी तरह सत्सङ्ग की प्राप्ति होने पर परम आनन्द मिलता है ॥३०॥

धर्मान्भागवतान्ब्रूत यदि नः श्रुतये क्षमम्। यैः प्रसन्नः प्रपन्नाय दास्यत्यात्मानमप्यजः ॥३१॥

अन्वयः— यदि नः श्रुतये क्षमम् भागवतान् धर्मान् ब्रूत। यैः प्रसन्नः अजः प्रपन्नाय आत्मनमपि दास्यति ॥३१॥

अनुवाद— यदि मैं सुनने का अधिकारी हूँ तो आप भागवत धर्मों का उपदेश दें। क्योंकि उनसे जन्मादि विकारों से रहित परमात्मा प्रसन्न होकर शरणागत भक्तों को अपने आप तक का दान कर देते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तदर्थं च भागवतान्धर्मान्ब्रूत यदि नोऽस्माकं श्रूतये श्रवणाय क्षमं योग्यं भवति। कथंभूतान्। यैर्धर्मैः प्रपन्नाय भक्तायाऽजो हरिरात्मानमपि दास्यति तान् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

अतएव आपलोग भगवत् धर्मों का उपदेश दें, यदि वह हमारे सुनने योग्य हो तब जिन भागवत धर्मों का पालन करने वाले भक्तों पर प्रसन्न होकर परमात्मा अपने आप तक को दे देते हैं ॥३१॥

नारद उवाच

एवं ते निमिना पृष्टा वसुदेव महत्तमाः। प्रतिपूज्याब्रुवन्प्रीत्या ससदस्यर्त्विजं नृपम् ॥३२॥

अन्वयः— हे वसुदेव ! एवं निमिना पृष्टाः ते महत्तमाः प्रतिपूज्य स सदस्यर्त्विजम् नृपम् प्रीत्या अब्रुवन् ॥३२॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— हे वसुदेवजी इस तरह से महाराज निमि के द्वारा पूछे जाने पर उनकी बातों का सम्मान करके वे महापुरुषगण प्रेम पूर्वक सदस्यों एवं ऋत्विजों के साथ राजा निमि को कहे ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

सह सदस्यैर्ऋत्विग्भिश्च वर्तमानम्। तेऽपि भगवद्धर्मश्रावणपरा वभूवुरित्यर्थः। 'भगवद्धर्म-तद्भक्त-माया-तत्तरणानि च। ब्रह्म-कर्मा-वतारेहा-भक्तप्राप्य-युगक्रमान् ॥१॥ ज्ञातुं क्रमेण कृतवान्नव प्रश्नान्निमिर्नव। एकैकस्योत्तरं प्रोचुः कविमुख्या मुनीश्वराः ॥२॥३२॥

भाव प्रकाशिका

सदस्यों और ऋत्विजों के साथ विद्यमान राजा निमि को वे भी भागवत धर्म श्रवण परायण हो गये थे। १. भगवत् धर्म, २. भगवद् भक्त, ३. माया, ४. माया को पार करने के साधन, ५. ब्रह्म के स्वरूप, ६. ब्रह्म की प्राप्त्युपयोगी कर्म, ७. श्रीभगवान् के अवतार की इच्छा, ८. भक्तों के प्राप्य और ९. युग के क्रम इन नव बातों को जानने के लिए महाराज निमि ने प्रश्नों को किया और कवि आदि मुनीश्वरों ने इन सबों को क्रमशः बतलाया ॥२॥३२॥

कविरुवाच

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम्।
उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद्विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥३३॥

अन्वयः— अत्र नित्यम् अच्युतस्य पादाम्बुजोपासनम् अकुतश्चिद्भयम् मन्ये, उद्विग्न बुद्धेः असदात्मभावात् यत्र भीः विश्वात्मना निवर्तते ॥३३॥

कवि महर्षि ने कहा

अनुवाद— राजन भक्तों के हृदय से कभी दूर नहीं रहने वाले भगवान् अच्युत के चरणों की निरन्तर उपासना ही इस संसार में परम कल्याण (आत्यन्तिक) क्षेम है और सर्वथा भयशून्य है । ऐसा मेरा निश्चित मत है । देह गेह आदि असत् पदार्थों में अहन्त्व एवं ममत्व हो जाने के कारण जिन लोगों की चित्तवृत्ति उद्विग्न हो रही है, इस उपासना को करने पर वह भय भी समाप्त हो जाता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

प्रथममात्यन्तिकं क्षेमं कथयति-मन्य इति । न कुतश्चिद्भयं यस्मात्तदकुतश्चिद्भयम् । अत्र संसारेऽसदात्मभावादसति देहादावात्मभावनातो नित्यं सर्वदोद्विग्नबुद्धेः विश्वात्मना सर्वथा निःशेषं यत्र पादाम्बुजोपासने भीर्निवर्तते तत् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

मन्ये इत्यादि श्लोक से सर्वप्रथम परम कल्याण (आत्यन्तिक क्षेम) का वर्णन करते हैं । जिसको किसी से भय नहीं है वह अकुतश्चिद भय है । इस संसार में देह गेह आदि असत् पदार्थों में आत्मबुद्धि हो जाने के कारण जिसकी बुद्धि सदा उद्विग्न बनी रहती है । विश्वात्मना अर्थात् श्रीभगवान् के चरणों की उपासना करने से किसी प्रकार का भय नहीं होता है सारा भय दूर हो जाता है ॥३३॥

ये वै भगवता प्रोक्ता उपाया ह्यात्मलब्धये । अञ्जः पुंसामविदुषां विद्धि भागवतान्हि तान् ॥३४॥

अन्वयः— अविदुषां पुंसाम् आत्मलब्धये वै अंजः ये उपायाः अभिहिताः तान् हि भागवतान् विद्धि ॥३४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने अज्ञानी जीवों को आसानी से अपनी प्राप्ति के साधन रूप से जिन उपायों को कहा है उन्हीं उपायों को भागवत धर्म तुम जानो ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

भागवतधर्मलक्षणमाह-ये वैइति । मन्वादिमुखेन वर्णाश्रमादिधर्मानुक्त्वाऽतिरहस्यत्वात्स्वमुखेनैव भगवताऽविदुषामपि पुंसामञ्जः सुखेनैवात्मलब्धये ये वै उपाया; प्रोक्तास्तान्भागवतान्धर्मान्विद्धि ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

ये वै० इत्यादि श्लोक के द्वारा भागवत धर्म का लक्षण कहा गया है । मन्वादि महर्षियों के मुख से वर्णों एवं आश्रमों के धर्मों को कहकर उन धर्मों के अत्यन्त रहस्य स्वरूप होने से स्वयम् भी श्रीभगवान् अज्ञानी भी मनुष्यों को आसानी से अपनी प्राप्ति के साधन रूप से जिन उपायों को कहा है उन उपायों को भागवत धर्म समझना चाहिए ॥३४॥

यानास्थाय नरो राजन्न प्रमाद्येत कर्हिचित् । धावन्निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह ॥३५॥

अन्वयः— राजन् यान् आस्थाय नरः कर्हिचित् न प्रमाद्येत वा नेत्रे निमील्य धावन् इह न स्खलेत न पतेत् ॥३५॥

अनुवाद— राजन् जिन धर्मों का पालन करने वाला कभी भी विघ्नो से पीडित नहीं हेता है आँखें बन्द करके दौड़ने पर भी वह विधि-विधान में त्रृटि हो जाने पर भी न तो कभी अपने मार्ग से स्खलित होता है और न तो फल से वञ्चित होता है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

अञ्जःपदेनोक्तं सुकरत्वं विवृणोति-यानिति । यानास्थायाश्रित्य योगादिष्विव न प्रमाद्येत विघ्नैर्न विहन्येत । किंच निमील्य नेत्रे धावन्नपि । इह एषु भागवतधर्मेषु न स्खलेत् । निमीलनं नामाज्ञानम् । यथाहुः-'श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे विप्राणां परिकीर्तिते । एकेन विकलः काणो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः ।' इति अज्ञात्वाऽपीत्यर्थः । यथा पदन्यासस्थानमतिक्रम्य शीघ्रं परतः

पदन्यासेन गतिर्धावनं तद्वदत्रापि किंचित्किंचिदतिक्रम्यातिशीघ्रानुष्ठानं धावनम् । तथाऽनुतिष्ठन्नपि न स्खलेन्न प्रत्यवायी स्यात् । तथा न पतेत्फलान्न भ्रश्येत् । (ब्राह्मणादीनामुक्तानपि धर्मान्कांश्चिदकुर्वाणो भागवतान्धर्मान् श्रवणकीर्तनादीन्कुर्वाणस्तत्फलं प्राप्नुयादित्यर्थः) ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

यान्० इत्यादि श्लोक के अङ्ग: पद से उक्त भागवत धर्मों के सुकरत्व अर्थात् आसानी से अनुष्ठेयत्व का बतलाते हैं । जिन भागवत धर्मों का अनुष्ठान करने वाला योग इत्यादि का अनुष्ठाता जैसे प्रमादी हो जाता है। उस तरह से प्रमादी नहीं हो सकता है । उसके कारण वह विघ्नों के द्वारा बाधित भी नहीं होता है । अथवा आखों को बन्द करके दौड़ता हुआ भी अपने मार्ग से स्खलित नहीं होता है । अर्थात् भागवत धर्मों से कभी स्खलन नहीं होता है । निमीलन अर्थात् अज्ञान । जैसा कि कहा भी गया है श्रुतियाँ और स्मृतियाँ ये दोनों नेत्र हैं । एक का पालन नहीं करने पर अनुष्ठाता काना हो जाता है और श्रुति और स्मृति इन दोनों का पालन नहीं करने वाला पुरुष अन्धा है । नहीं जानकर भी जैसे पैर रखने की जगह का अतिक्रमण करने तथा शीघ्रता से दूसरा पैर रखने वाले की गति में जैसे कोई अन्तर नहीं होता है उसी तरह थोड़ा-थोड़ा भागवत धर्म का अतिक्रमण करके भी अनुष्ठान करने वाला व्यक्ति विघ्नों से बाधित नहीं होता है । उसको भागवत धर्म के अनुष्ठान का फल मिलता ही है । ब्राह्मणदि धर्मों में से कुछ का पालन किए बिना भी यदि श्रवण कीर्तनादि रूप भागवत धर्म का पालन करने वाला उसका फल प्राप्त करता ही है ।।३५।।

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वाऽनुसृतस्वभावात् ।
करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ।।३६।।

अन्वयः— मनुष्य, कायेन, वाचा, मनसा वा इन्द्रियैः बुद्धया, वा आत्मना वा अनुसृतस्वभावात् यत्-यत् करोति तत् सकलं परस्मै नारायणाय समर्पयेत् ।।३६।।

अनुवाद— मनुष्य, शरीर, वाणी, मन अथवा इन्द्रियों या अहंकार अथवा पूर्वजन्मों के सस्कारवशात् जो कुछ भी करे वह भगवान् श्रीमन्नारायण को समर्पित कर दे ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

ननु के ते भागवता धर्माः । ईश्वरार्पितानि सर्वकर्माण्यपीत्याह-कायेनेति । आत्मना चित्तेनाहंकारेण वा । अनुसृतो यः स्वभावस्तस्मात् । अयमर्थः-न केवलं विधितः कृतमेवेति नियमः, स्वभावानुसारिलौकिकमपीति । तथा च भगवद्गीतासु-'यत्करोपि यदश्नासि यज्जुहोपि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।' इति । यद्वा ननु कायादीनामेव कर्म नात्मन इत्याशङ्क्याह-अध्यासेनानुसृताद्ब्राह्मणत्वादिस्वभावाद्यद्यत्करोतीत्यर्थः । तत्सकलं परस्मै परमेश्वराय नारायणायेति समर्पयेत् । तथा सति सकलमपि कर्म भागवतो धर्मो भवतीति भावः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

वे भागवत धर्म कौन है ? इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर है कि अपने द्वारा किए गये सभी कर्मों को श्री भगवान् को समर्पित किए गये कर्म भी भागवत धर्म हैं । इसी बात को **कायेन० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। आत्मना अर्थात् चित्त अथवा अहंकार के द्वारा अनुसरण किया गया स्वभाव । कहने का अभिप्राय है कि विधि पूर्वक ही किए गये कर्म समर्पित किए जायँ यह कोई नियम नहीं है । पूर्व जन्म के संस्कार वशात् जो स्वभाव बन गये हैं उन लौकिक कर्मों को भी भगवान् को समर्पित कर दे । भगवान् ने श्रीमद्भगवद् गीता में कहा भी है **यत्करोषि० इत्यादि अर्थात्** तुम जो करते हो जो खाते हो, जो होम करते हो अथवा जो दान करते हो, तथा जो तपस्या करते हो हे अर्जुन उसे तुम मुझे समर्पित कर दो । **यहाँ प्रश्न होता है कि कर्म तो शरीरादि के ही द्वारा होते आत्मा के द्वारा नहीं** इस

प्रकार की शङ्का का करके कहते हैं, अभ्यास के द्वारा अनुसृत अर्थात् ब्राह्मणत्वादि स्वभाव के कारण तुम जो कुछ करते हैं उन सभी कर्मों का भगवान् नारायण को समर्पित करो यही उसका अभिप्राय है ऐसा करने से वह सबकुछ भागवत धर्म हो जायेगा ॥३६॥

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः ।
तन्माययाऽतो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥३७॥

अन्वयः— ईशादपेतस्य द्वितीयाभिनिवेशतः भयंस्यात् यन्मायया विपर्ययस्मृतिः अतः गुरुदेवतात्मा बुधः एक भक्त्या तं ईशम् आभजेत् ॥३७॥

अनुवाद— जो पुरुष परमात्मा से विमुख हो जाता है उसके श्रीभगवान् की माया से अपने स्वरूप की विस्मृति हो जाती है, इस प्रकार और वह अपने को मैं मनुष्य हूँ मै देवता हूँ का विपर्यय ज्ञान हो जाता है । इस देह आदि में ही अभिनिवेश हो जाने के कारण मनुष्य को बुढापा आदि रोगों से भय होता है । अतएव अपने गुरु को ही आराध्यदेव मानकर अनन्या भक्ति से श्रीभगवान् की आराधना करें ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

ननु किमेवं परमेश्वरभजनेन, अज्ञानकल्पितभयस्य ज्ञानैकनिवर्त्यत्वादित्याशङ्क्याह-भयमिति । यतो भयं तन्मायया भवेदतो बुधो बुद्धिमांस्तमेवाऽऽभजेत् । ननु भयं देहाद्यभिनिवेशतो भवति, स च देहाहंकारतः, स च स्वरूपास्मरणात्किमत्र तस्य माया करोत्यत आह-ईशादपेतस्येति । ईशविमुखस्य तन्माययाऽस्मृतिर्भगवत; स्वरूपास्फूर्तिस्ततो विपर्ययो देहोऽस्मीति ततो द्वितीयाभिनिवेशाद्भयं भवति । एवं हि प्रसिद्धं लौकिकीष्वपि मायासु । उक्तं च भगवता-'दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया । मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।' इति । एकयाऽव्यभिचारिण्या भक्त्या भजेत् । किंच गुरुदेवतात्मा गुरुरेव देवता ईश्वर आत्मा प्रेष्ठश्च यस्य। तथादृष्टिः सन्नित्यर्थः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि इस तरह से परमेश्वर का भजन करने से कौन सा लाभ है ? अज्ञान के द्वारा कल्पित भय की निवृत्ति तो ज्ञान से ही सम्भव है । इस तरह आशंका करके **भयमित्यादि** श्लोक कहते हैं- चूकि भय तो परमेश्वर की माया से ही होता है, अतएव ज्ञानी व्यक्ति को चाहिए कि वह परमेश्वर का ही भजन करे । यदि कोई कहे कि भय तो देह आदि में आत्माभिनिवेश के कारण होता है । वह अभिनिवेश भी अहन्त्व बुद्धि के कारण होता है । देह में अहन्त्व की बुद्धि भी स्वरूप के विस्मरण के कारण होता है । इसमें माया क्या करती है ? इस पर **ईशादपेतस्य० इत्यादि** कहते हैं परमात्मपराङ्मुख को परमात्मा की माया के कारण स्वरूप की विस्मृति हो जाता है । उसी के कारण भ्रमज्ञान होता है । मैं देह हूँ इस तरह देह आदि में ही आत्मत्वभिनिवेश हो जाता है और उसी के कारण भय होता है । इसी तरह लौकिकी माया के भी विषय में प्रसिद्धि है । श्रीभगवान् ने गीता में कहा है **दैवी ह्येषागुणमयी** अर्थात् यह त्रिगुणात्मिका माया मेरी है, इसको पार करना अत्यन्त कठिन है, जो लोग मेरी ही शरणागति करते हैं, वे इस माया को पार कर जाते हैं । इसीलिए अव्यभिचारिणी (अनन्या) भक्ति से परमात्मा का भजन करना चाहिए । भगवद् भक्ति करते समय ऐसी दृष्टि रखे कि गुरु ही देवता अर्थात् ईश्वर तथा आत्मा अर्थात् सबसे प्रिय हैं ॥३७॥

अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयो ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा ।
तत्कर्म संकल्पविकल्पकं मनो बुधो निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात् ॥३८॥

अन्वयः— अविद्यमानोऽपि द्वयः अवभाति, यथा ध्यातु; धिया स्वप्न मनोरथौ, तत् बुध कर्म सङ्कल्प विकल्पकं मनः निरुन्ध्यात् ततः अभयं स्यात् ॥३८॥

अनुवाद— राजन् वास्तविकता यह है कि परमात्मा से अतिरिक्त भेद नामक कोई पदार्थ है ही नहीं फिर भी उसकी प्रतीति होती है । यह उसी तरह होती है जिस तरह स्वप्न काल में द्रष्टा स्वपन की कल्पना कर लेता है । अथवा जाग्रत अवस्था में अनेक प्रकार के मनोरथों को करने से एक विचित्र सृष्टि सी प्रतीत होने लगती है । इसलिए विज्ञ पुरुष को चाहिए कि वह अपने मन को वश में कर ले । मन को वश में करने से ही उसको अभय की प्राप्ति हो जायेगी ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

ननु विषयविक्षिप्तचित्तस्य कुतोऽव्यभिचारिणी भक्तिः संभवति, कुतस्तरामभयम् । तत्र न तावद्विषयो नाम वास्तवोऽस्ति, किंतु मनोविलासमात्रमतो मनोनियमनेन भजनादभयं स्यादित्याह-अविद्यमानोऽपीति । द्वयः द्वैतप्रपञ्चः ध्यातुः पुंसो धिया मनसा स्वप्नश्च मनोरथश्च यथेत्यर्थः । तत्तस्मात्कर्माणि सङ्कल्पयति विकल्पयति च यन्मनस्तन्निरुन्ध्यान्नियच्छेत् । ततश्चैकया भक्त्या भजनादभयं स्यादित्यर्थः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि विषयों का अनुभव करने के कारण जिसका चित्त चञ्चल हो गया है, उसकी अव्यभिचारिणी भक्ति कैसे हो सकती है ? और वह कैसे अभय हो सकता है ? इस पर बतलाते हैं कि ये विषय वास्तविक नहीं है, अपितु ये सभी मन: कल्पित हैं । अतएव मन को अपने वश में करके भजन करने से अभय की प्राप्ति सम्भव है । इसी बात को अविद्यमानोऽपि इत्यादि श्लोक से कहा गया है । यह सारा प्रपञ्च मनुष्य के मन से उसी तरह से कल्पित है जिस तरह वह स्वप्न की कल्पना कर लेता है अथवा जागरावस्था में मनोरथों के माध्यम से अनेक वस्तुओं की कल्पना कर लेता है । अतएव कर्मों को करने वाले सङ्कल्पविकल्यात्मक मन को वश में करके भजन करना चाहिए। उसके पश्चात् अनन्या भक्ति पूर्वक श्रीभगवान् का भजन करने से अभयत्व की प्राप्ति होती है ॥३८॥

शृण्वन्सुभद्राणि रथाङ्गपाणेर्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ।
गीतानि नामानि तदर्थकानि गायन्विलज्जो विचरेदसङ्गः ॥३९॥

अन्वयः— रथाङ्गपाणेः सुभद्राणि जन्मानि, कर्माणि च शृण्वन् लोके यानि यानि तदर्थकानि नामानि विलज्जः गायन् असङ्गः विचरेत् ॥३९॥

अनुवाद— संसार में भगवान् के जन्मों की तथा कर्मों की बहुत सी मङ्गलमयी कथाएँ प्रसिद्ध है, उन सबों का श्रवण करते हुए तथा उनकी उन कथाओं का अर्थ है, उन नामों को लज्जा परित्याग करके बिना किसी आसक्ति के गाते हुए विचरण किया करे ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

एतदत्यन्ताशक्यमित्याशङ्क्य सुगमं मार्गमाह-शृण्वन्निति । तदर्थकानि तान्येव जन्मानि कर्माणि चार्थो येपां तानि । एतान्यपि साकल्येन ज्ञातुमशक्यानीत्याशङ्क्याह-यानि लोके गीतानि प्रसिद्धानि तानि शृण्वन्गायंश्च विचरेत् । असङ्गो निःस्पृहः॥३९॥

भाव प्रकाशिका

मन को वश में करके श्रीभगवान् का भजन करना अत्यन्त आशक्य है, यदि इस तरह कोई कहता है तो उससे सुगम मार्ग इस श्लोक में बतलाते हैं श्रीभगवन् के कर्मों के बोधक मङ्गलमय नामों का श्रवण करते हुए उन नामों का लज्जा त्याग कर गायन करे और अनासक्त होकर पृथिवी पर विचरण करे । यदि कहो कि ऐसे सम्पूर्ण नामों को जानना कठिन है तो इस पर कहते हैं कि श्रीभगवन् के कर्मों और जन्मों के बोधक जो नाम लोक में प्रसिद्ध हैं उनको ही गाते हुए अनासक्त होकर विचरण करें ॥३९॥

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥४०॥

अन्वयः— एवं व्रतः स्वप्रियनाम कीर्त्या जातानुरागः द्रुतचित्तः लोकबाह्यः उच्चैः हँसति, रोदिति, रौति, गायति उन्मादवत् नृत्यति ॥४०॥

अनुवाद— जो भगवद्भक्त इस प्रकार का विशुद्ध व्रत ले लेता है तो उसके हृदय में अपने प्रियतम प्रभु के प्रति अनुराग उत्पन्न हो जाता है । उसका अन्तःकरण द्रवित हो जाता हैं वह संसारी साधरण लोगों से ऊपर उठ जाता है । वह लोगों की मान्यताओं से परे हो जाता है । वह कभी तो वह जोर-जोर से हँसने लग जाता है । कभी अपने प्रियतम प्रभु का वियोग अनुभव करके रोने लग जाता है । कभी वह श्रीहरि के गुणों को गाने लग जाता है । वह उन्मत्त सा हो जाता है । जब कभी वह श्रीभगवान् का सन्निधान अनुभव करता है, तो वह उनको रिझाने के लिए नृत्य करने लगता है ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

एवं च भजतः संप्राप्तप्रेमलक्षणभक्तियोगस्य संसारधर्मातीतां गतिमाह-एवमिति । एवं व्रतं वृत्तं यस्य सः । स्वप्रियस्य हरेर्नामकीर्त्या जातोऽनुरागः प्रेम यस्य सः । अतएव द्रुतचित्तः श्लथादयः । कदाचिद्भक्तपराजितं भगवन्तमाकलय्योच्चैर्हसति। एतावन्तं कालमुपेक्षितोऽस्मीति रोदिति । अत्यौत्सुक्याद्रौति क्रोशति । हे हरे, मामनुगृहाणेति अतिहर्षेण गायति । जितं जितमिनि नृत्यति । किं दाम्भिकवत्परान्प्रति प्रकाशयितुम्, न, उन्मादवद्ग्रहगृहीतवत् । लोकबाह्यो विवशः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से श्रीभगवान् का भजन करने वाले को श्रीभगवान् की प्रेम लक्षणा भक्ति प्राप्त हो जाती है । वह संसार के धर्मों एवं मान्यताओं से ऊपर उठ जाता है । इस बात को **एवं व्रतः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। एवं व्रतः अर्थात् इस प्रकार के आचरण करने वाला भगवद् भक्त श्रीहरि का नाम कीर्तन जब निरन्तर करने लगता है तो उसके हृदय में अपने श्रीप्रभु के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है उसका हृदय द्रवित हो जाता है । कभी तो वह अपने से पराजित श्रीहरि का अनुभव करके जोर से हँसने लगता है तो जब कभी यह अनुभव करता है कि प्रभु ने हमारी इतने समय तक उपेक्षा कर दी और वह रोने लगता है । वह जोर से पुकारता है, हे प्रभो आप मुझ पर कृपा करें। इस तरह से हँसने लगता है । जब वह अनुभव करता है कि प्रभु ने मुझे अनुगृहीत कर लिया तो वह श्रीहरि के समक्ष नृत्य करने लगता है प्रश्न उठता है कि वह भक्ति का दम्भ करके इस प्रकार से लोगों के समक्ष आचरण करता है क्या ? तो ऐसी बात नहीं है वह श्रीहरि के प्रेम में उन्मत्त सा हो जाता है । वह संसारी लोगों से ऊपर उठ जाता है ॥४०॥

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन् ।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत्किंच भूतं प्रणमेदनन्यः ॥४१॥

अन्वयः— खम्, वायुम्, अग्निम्, सलिलं महीं च ज्योतींषि, सत्त्वानि, दिशो द्रुमादीन् सरित् समुद्रांन् च हरेः शरीरम् यत् किञ्च भूतम् अनन्यः प्रणमेत् ॥४१॥

अनुवाद— आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, ग्रह-नक्षत्र, प्राणी, दिशाएँ वृक्ष आदि नदी तथा समुद्र इन सबों को वह श्रीभगवान् के शरीर के रूप में अनुभव करता है । उसे लगता है कि इन सभी रूपों में श्रीहरि ही प्रकट हैं । इस तरह की भावना करता हुआ जिस किसी को भी देखता है उसे भक्तिभाव पूर्वक प्रणाम करता है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

किंच खमिति । सत्त्वानि भूतानि । आकाशादि यत्किंचिद्भूतमात्रं हरेः शरीरमिति मत्वा प्रणमेत् । संभावनायां लिङ्॥४१॥

भाव प्रकाशिका

वह सभी प्राणियों तथा आकाशादि भूतों को श्रीहरि का शरीर मानकर सबों को भक्तिभाव पूर्वक प्रणाम करता है।।४१।।

भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः ।
प्रपद्यमानस्य यथाऽश्नतः स्युस्तुष्टि पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम् ।।४२।।

अन्वयः— यथा अश्नतः अनुधासम् तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायः स्यु एवम् प्रपद्यमानस्य भक्तिः परेशानुभवः अन्यत्र विरक्तिः च एषः त्रिक एक कालः स्युः ।।४२।।

अनुवाद— जिस तरह भोजन करने वाले के प्रत्येक ग्रास के साथ ही तुष्टि (तृप्ति) पुष्टि (जीवन शक्ति का संचार) भूख की निवृत्ति ये तीनों एक साथ हुआ करते हैं, उसी तरह जो श्रीभगवान् की शरणागति स्वीकार करके उनका भजन करने लगता है, उसके प्रत्येक क्षण में श्रीभगवान् के प्रति प्रेम, अपने प्रेमास्पद श्रीहरि के स्वरूप का अनुभव तथा परमात्म व्यतिरिक्त वस्तुओं से वैराग्य इन तीनों की एक ही साथ प्राप्ति होने लगती है ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

नन्वियमारूढयोगानामपि बहुभिर्जन्मभिर्दुर्लभा गतिः कथं नाम कीर्तनमात्रेणैकस्मिन्नेव जन्मनि भवेदित्याशङ्क्य सदृष्टान्तमाह-भक्तिरिति । प्रपद्यमानस्य हरिं भजतः पुंसो भक्तिः प्रेमलक्षणा । परेशानुभवः प्रेमास्पदभगवद्रूपस्फूर्तिः तया निर्वृतस्य ततोऽन्यत्र गृहादिषु विरक्तिरित्येष त्रिक एककालो भजनसमकाल एव स्यात् । यथाऽश्नतो भुञ्जानस्य तुष्टिं सुखं पुष्टिरुदरभरणं क्षुन्निवृत्तिश्च प्रतिघासं स्युः । उपलक्षणमेतत् । प्रतिसिक्थमपि यथा स्युस्तद्वत् । एवमेकैकस्मिन् भजने किंचित्प्रेमादित्रिके जायमानेऽनुवृत्त्या भजतः परमप्रेमादि जायते । बहुग्रासभोजिन इव परमतुष्ट्यादि ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि जो आरूढयोग पुरुष होते है । उनकी भी अनेक जन्मों में जाकर यह गति होती है केवल नाम संकीर्तन मात्र से एक ही जन्म में यह स्थिति कैसे हो जाती है । इस तरह की आशङ्का करके दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक **भक्तिः इत्यादि** श्लोक से कहते हैं श्रीहरि का भजन करने वाले पुरुष प्रेम लक्षणा भक्ति, श्रीभगवान् कि परम प्रेमास्पद के रूप में प्रप्ति तथा परमात्म व्यतिरिक्त देह गेहादि के प्रति विरक्ति ये तीनों भजन एक काल में ही प्राप्त होने लगते है । यह उसी तरह होता है जि तरह भोजन करने वाले पुरुष को प्रत्येक ग्रास में तुष्टि (तृप्ति) पुष्टि (जीवन संचार और भूख की निवृत्ति) ये तीनों एक साथ प्राप्त होते है इस तरह से जिस तरह पूर्ण भोजन कर लेने पर पूर्ण तुष्टि पुष्टि और भूख की निवृत्ति हो जाती है, उसी तरह एक-एक भजन में और निरन्तर भजन होने लगने पर तो परम भक्ति, परमात्मा के प्रति प्रेमास्पद की भावना और संसार से विरक्ति हो जाती है ।।४२।।

इत्यच्युताङ्घ्रि भजतोऽनुवृत्त्या भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः ।
भवन्ति वै भागवतस्य राजंस्ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात् ।।४३।।

अन्वयः— राजन् इति अनुवृत्त्या अच्युताङ्घ्रिं भजतः भागवतस्य वै भक्तिः विरक्तिः भगवत् प्रबोधः भवन्ति ततः साक्षात् परां शान्तिम् उपैति ।।४३।।

अनुवाद— राजन् इस तरह श्रीभगवान् के चरण कमलों की आराधना प्रतिक्षण एक-एक वृत्ति के द्वारा करने वाले भागवत के मन में श्रीभगवान् के प्रति प्रेममयी भक्ति, संसार से वैराग्य और अपने प्रियतम भगवान् के स्वरूप की स्फूर्ति की प्राप्ति हो जाती है, वह परम भागवत हो जाता है । और उसको साक्षात् परम शान्ति प्राप्त होती है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

ततश्च भगवत्प्रसादेन कृतार्थो भवतीत्याह-इत्यच्युताङ्घ्रिमिति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

इत्यच्युताङ्घ्रिम् इत्यादि श्लोक के द्वारा बतलाया गया है कि श्रीभगवान् की कृपा से वह भक्त कृतार्थ हो जाता है ।।४३।।

राजोवाच

अथ भागवतं ब्रूत यद्धर्मो यादृशो नृणाम् । यथा चरति यद्ब्रूते यैर्लिङ्गैर्भगवत्प्रियः ।।४४।।

अन्वयः— अथ भागवतं यद्धर्मः यादृशा यथा नृणा चरति यद्ब्रूते यौलिङ्गैः भगवत् प्रियः ।।४४।

राजा निमि ने कहा

अनुवाद— अब आप लोग भगवद् भक्त का लक्षण बतलायें उसका क्या धर्म है ? उसका कैसा स्वभाव है? वह मनुष्यों के साथ कैसा व्यवहार करता है ? वह क्या बोलता है ? और किन लक्षणों के कारण भगवान् का प्रिय हो जाता है ?।।४४।।

भावार्थ दीपिका

भागवतस्य भवन्तीत्युक्तः तस्य लक्षणं पृच्छति-अथेति । यद्धर्मो यस्मिन्धर्मे परिनिष्ठतः । यादृशो यत्स्वभावः । यथा चरति वर्तते ब्रूते वा । यैश्च लिङ्गैर्भगवतः प्रियो भवति ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

भागवतस्य भवन्ति इस तरह से कहने पर इस श्लोक के द्वारा राजा भागवत के लक्षण पूछते हैं वह भगवद् भक्त किस धर्म में निष्ठित होता है ? उसका स्वभाव कैसा होता है ? वह कैसा आचरण करता है ? वह क्या बोलता है ? तथा किन लक्षणों के कारण वह भगवान का प्रिय हो जाता है ?।।४४।।

हरिरुवाच

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः । भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः ।।४५।।

अन्वयः— यः सर्वभूतेषु, आत्मनः भगवद् भावम् पश्येत् भगवति भूतानि, आत्मनि एष भागवतोत्तमः ।।४५।।

हरि नामक योगीश्वर ने कहा

अनुवाद— जो सभी भूतों में आत्मा रूप से नियामक रूप से आत्म स्वरूप परमात्मा की व्याप्ति का अनुभव करता है, तथा सभी भूतों को परमात्मा में ही आधेय अथवा अध्यस्त रूप से देखता है, एवं आत्मा में परमात्मा की व्याप्ति देखता है, वही उत्तम भागवत है ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

यद्धर्म इत्यस्योत्तरमाह-त्रयेण-सर्वभूतेष्विति । आत्मनः स्वस्य सर्वभूतेषु ब्रह्मभावेन समन्वयं पश्येत् । तथा ब्रह्मरूपे आत्मन्यधिष्ठाने भूतानि च यः पश्येत् । यद्वा- 'आततत्वात् प्रमातृत्वादात्मा हि परमो हरिः' इति तन्त्रोक्तेरात्मनो हरेः सर्वभूतेषु मशकादिष्वपि नियन्तृत्वेन वर्तमानस्य भगवद्भावं निरतिशयैश्वर्यमेव यः पश्येन्न तु तस्य तारतम्यम् । तथात्मनि हरावेव भूतानि च यः पश्येत् । कथंभूते । भगवति अप्रच्युतैश्वर्यादिरूपे । न पुनर्जडमलिनभूताश्रयत्वेन जाड्यादिप्रसक्तया ऐश्वर्यादिच्युतिं पश्येत्। स सर्वत्र परिपूर्णं भगवत्तत्त्वं पश्यन् भागवतोत्तम इत्यर्थः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

यद्धर्म अर्थात् भागवत किस धर्म में निष्ठित होता है इसका उत्तर तीन श्लोकों से देते हैं । भागवत पुरुष अपना सभी भूतों में ब्रह्मभाव से समन्वय देखता है और ब्रह्मस्वरूप आत्मा (परमात्मा) में समस्त भूतो (प्राणियों

को जो देखता है । अथवा सर्वत्र प्रमाता होने के कारण आत्मा ही श्रीहरि हैं, इस तरह से तन्त्रशास्त्र में कहे जाने के कारण श्रीहरि की मच्छर आदि भी जीवों में नियामक रूप से वर्तमान भगवद्भाव अर्थात् निःसीम ऐश्वर्य को जो देखता किसी में कम वेशी नहीं । उसी तरह श्रीहरि में ही जो सभी भूतों को देखता है । वे श्रीहरि अच्युत हैं । अर्थात् वे सदा अपने स्वरूप में ही स्थित रहा करते हैं । वे जड मलिन भूतों के आश्रय रूप से नहीं स्थित रहते हैं क्योंकि जाड्य आदि की प्रसक्ति होने पर ऐश्वर्य आदि की कमी जो देखता है । जो सर्वत्र भगवत् तत्त्व को सर्वत्र व्यापक रूप से देखता है वही उत्तम भागवत है ।।४५।।

ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च । प्रेम मैत्री कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ।।४६।।

अन्वयः— यः ईश्वरे प्रेम तदधीनेषु मैत्री, बलिशेषु कृपा दिपत्सु च उपेक्षां करोति स; मध्यमः ।।४६।।

अनुवाद— जो परमात्मा से प्रेम करता है, भगवद् भक्तों से मित्रता का भाव रखता है, जो अज्ञानी जीवों पर कृपा करता है तथा अपने शत्रुओं की उपेक्षा करता है वह मध्यम कोटिका भागवत है ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

प्रेम च मैत्री च कृपा च उपेक्षा च ता ईश्वरादिषु चतुर्षु यः करोति स मध्यमो भागवतः । एवंभूतस्य भेदस्य दर्शनात्।।४६।।

भाव प्रकाशिका

जो ईश्वर आदि से क्रमशः प्रेम, मैत्री कृपा तथा उपेक्षा करता है, वह मध्यम कोटि का भागवत है । चूंकि वह ईश्वर भक्त अज्ञानी तथा शत्रु आदि भेदों को देखता है ।।४६।।

आर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते । न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः ।।४७।।

अन्वयः— अर्चायाम् एव हरये श्रद्धया पूजाम् इहते तद्भक्तेषु अन्येषु च न स प्राकृतः स्मृतः ।।४७।।

अनुवाद— जो श्रीभगवान् की अर्चा मूर्ति में तो श्रद्धा पूर्वक पूजा करता है, किन्तु भगवान् के भक्तों आदि की विशेष रूप से सेवा शुश्रूषा आदि नहीं करता है वह प्राकृत कोटि का भागवत है ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

अर्चायां प्रतिमायां पूजामीहते करोति न तद्भक्तेष्वन्येषु च सुतरां न करोति । प्राकृतः प्रकृतप्रारम्भः । अधुनैव प्रारब्धभक्तिः शनैरुत्तमो भविष्यतीत्यर्थः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

जो श्रीभगवान् की पूजा मूर्ति में श्रद्धा पूर्वक करता है किन्तु भगवद् भक्तों आदि की पूजा आदि नहीं करता है, वह प्राकृत श्रेणी का भगवद् भक्त है । प्राकृत अर्थात् प्रारम्भ अर्थात् उसनें अभी भक्ति प्रारम्भ किया है, धीरे-धीरे उत्तम कोटि का भागवत हो जायेग ।।४७।।

गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति । विष्णोर्मायामिदं पश्यन्स वै भागवतोत्तमः ।।४८।।

अन्वयः— इन्द्रियैः अर्थात् गृहित्वा अपि यः न द्वेष्टि न हृष्यति इदं विष्णोः मायाम् पश्यन वै उत्तमः भागवतः ।।४८।।

अनुवाद— जो भगवद् भक्त नाक, कान आदि इन्द्रियों से विषयों को ग्रहण कर लेता है, किन्तु अपने प्रतिकूल विषयों से न तो द्वेष करता है और न तो अनुकूल विषयों को प्राप्त करके प्रसन्नता का ही अनुभव करता है, जो यह समझता कि यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् विष्णु की माया है, वह उत्तम भागवत है ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

पुनरष्टभिः श्लोकैरभ्यर्हितत्वादुत्तमभागवतस्यैव लक्षणान्याह-गृहीत्वापीति । श्रीवासुदेवाविष्टचेता न गृह्णाति तावदिन्द्रियैरर्थान्गृहीत्वापीत्यपिशब्दार्थः । इदं विश्वम् ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

अभ्यर्हित होने के कारण पुनः आठ श्लाकों द्वारा उत्तम भागवतों के लक्षण को **गृहित्वा० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं। गृहित्वापि अर्थात् ग्रहण करके भी। यहाँ भी शब्द का अर्थ है कि उत्तम भागवत का चित्त तो भगवान् वासुदेव मे ही लगा रहता है, अतएव वह ग्रहण करके भी नहीं ग्रहण करता है। इदम् अर्थात् यह सम्पूर्ण विश्व।।४८।।

देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः। संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः।।४९।।

अन्वयः— जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः देहेन्द्रिय प्राणमनोधियां यः संसार धर्मैः हरे स्मृत्या अविमुह्यमानः स भागवत प्रधानः।।४९।।

अनुवाद— जन्म, मृत्यु, भूख प्यास तथा तृष्णा और श्रम ये संसार के धर्म है और क्रमशः देह, इन्द्रिय, प्राण, मन तथा बुद्धि के धर्म है। इन संसार के धर्मों से मोहित नहीं होता है क्योंकि वह सदा ही श्रीहरि का स्मरण करता रहता है। अतएव वह उत्तम भागवत है।।४९।।

भावार्थ दीपिका

किंच देहादीनां संसारधर्मैर्जन्माप्ययादिभिर्यो हरेः स्मृत्याऽविमुह्यमानः स भागवतप्रधानः। तत्र देहस्य जन्माप्ययौ। प्राणस्य क्षुत्पिपासे। मनसो भयम्। बुद्धेस्तर्षस्तृष्णा। इन्द्रियाणां कृच्छ्रं श्रमस्तैः।।४९।।

भाव प्रकाशिका

देह आदि के जो जन्म मृत्यु आदि होते हैं ये संसार के धर्म है, अतएव मन में सदा श्रीहरि का स्मरण होते रहने के कारण जो मोहित नहीं होता है, वह उत्तम भागवत है, वह भागवद् भक्तों में प्रधान भक्त है।।४९।।

न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः। वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः।।५०।।

अन्वयः— यस्य चेतसि कामकर्म बीजानां न सम्भवः वासुदेवैकनिलयः सवै भागवतोत्तमः।।५०।।

अनुवाद— जिसके अन्तःकरण में काम (विषय भोगों की इच्छा) कर्म (प्रवृत्ति) और कर्मों के बीज वासनाओं का उदय ही नहीं होता है जो लोग एक मात्र भगवान् वासुदेव में ही निवास करते हैं, वे उत्तम कोटि के भागवत हैं।।५०।।

भावार्थ दीपिका

कामश्च कर्माणि च बीजानि च वासनास्तेषाम्। वासुदेव एवैकनिलय आश्रयो यस्य सः। एतेन गृहीत्वाऽपीत्यादिश्लोकत्रयेण द्वेषहर्षमोहकामादिरहितश्चरतीति यथा चरतीत्येतस्योत्तरमुक्तम्।।५०।।

भाव प्रकाशिका

काम, कर्म और बीज (वासनाओं का) **वासुदेवैक निलय** अर्थात् भगवान् वसुदेव ही जिसके आश्रय हैं। इसके द्वारा गृहीत्वाऽपि इत्यादि तीन श्लोकों से द्वेष, हर्ष तथा मोह आदि से रहित होकर जो व्यवहार करता है इसका उत्तर दिया गया है।।५०।।

न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः। सज्जतेऽस्मिन्नहं भावो देहे वै स हरेः प्रियः।।५१।।

अन्वयः— यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः न यस्य अस्मिन् देहे अहंभावः न सज्जते सः वै हरेः प्रियः।।५१।।

अनुवाद— जिनको सद्वंश में जन्म तथा तपस्या आदि कर्म तथा वर्ण, आश्रम तथा जाति आदि को लेकर इस शरीर में अहंभाव नहीं उत्पन्न होता है, वे निश्चित रूप से श्रीहरि को प्रिय हैं।।५१।।

भावार्थ दीपिका

यैर्लिङ्गैर्भगवत्प्रिय इत्यस्योत्तरमाह-न यस्येति। जन्म सत्कुलम्। कर्म तपआदि। जातयोऽनुलोमप्रतिलोमजा मूर्धावसिक्तादयः। अस्मिन्देहे। अहङ्काररहितैः सत्कुलकर्मादिलिङ्गैर्हरेः प्रियो भवतीत्यर्थः।।५१।।

भाव प्रकाशिका

राजा ने यह जो पूछा था कि किन लक्षणों वाले भक्त भगवान् के प्रिय होते हैं, इसी का उत्तर **न यस्येह० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । जन्म अर्थात् सद्वंश में जन्म, कर्म अर्थात् तपस्या आदि कर्म, जातय: अनुलोम, प्रतिलोम जातियाँ तथा मूर्धाभिसिक्त आदि । इस देह में सदवंश तथा सत्कर्म आदि को लेकर अहङ्कार रहित होना रूपी लक्षणों से भगवद् भक्त भगवान् को प्रिय होते हैं ।।५१।।

न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा । सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ।।५२।।

अन्वयः— यस्य वित्तेषु आत्मनि वा स्वः पर इति भिदा न सर्वभूत समः शान्तः स वै भागवतोत्तमः ।।५२।।

अनुवाद— जिसका धन सम्पत्ति अथवा शरीर आदि में यह अपना है यह पराया है इस प्रकार की भेद बुद्धि नहीं होती है जो सभी भूतों में सम बुद्धि रखता है एवं जो किसी घटना अथवा सङ्कल्प से विक्षिप्त न होकर सदा शान्त चित्त बना रहता है वह श्रीभगवान् का उत्तम भक्त है ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

वित्तेषु स्वीयं परकीयमिति । आत्मनि स्वः पर इति ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

धन सम्पत्ति के विषय में जिसकी यह अपनी और परायी बुद्धि नहीं होती है तथा शरीर के विषय में अपना और दूसरे का भेद ज्ञान नहीं होता है ।।५२।।

त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्र्यः ।।५३।।

अन्वयः— त्रिभुवनविभवहेतवे अपि लवार्धमपि निमिषार्धमपि भगवत्पदारविन्दात् अजितात्मसुरादिविमृग्यात् न चलति अकुण्ठस्मृतिः यः स वैष्णवाग्र्यः ।।५३।।

अनुवाद— त्रैलोक्य के राज्य की प्राप्ति के लिए भी आधा लव या आधा निमेष के लिए भी जिन लोगों का मन वश मे नहीं हो सका है ऐस देवता और ऋषिगण भी जिसका अन्वेषण करते रहते है ऐसे श्रीभगवान् के चरणों के स्मरण से जिसकी बुद्धि कभी भी विचलित नहीं होती है वही वैष्णवों में अग्रगण्य है ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

किंच त्रिभुवनविभवहेतवेऽपि त्रैलोक्यराज्यार्थमपि लवार्धमपि निमिषार्धमपि भगवत्पदारविन्दभजनाद्यो न चलति स वैष्णवाग्र्यः । ननुलवार्धमात्रभजनोपरमे चेत्तावाँल्लाभो भवेत्तत्कुतो न चलेत्तत्राह-अकुण्ठस्मृतिः भगवत्पदतोऽन्यत्सारं नास्तीत्येवंरूपाऽकुण्ठाऽनपगता स्मृतिर्यस्य सः । भगवत्पदारविन्दादन्यत्सारं नास्तीति कुतोऽत आह-अजिते हरावेवात्मा येषां तथाभूतैः सुरादिभिरपि दुर्लभात् । किंतु केवलं विमृग्यात् । तदपेक्षया सर्वस्य तुच्छत्वं स्मरन् यो न चलतीत्यर्थः ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

किञ्च त्रैलोक्य की राज्य लक्ष्मी को प्राप्त करने के लिए भी जिसकी बुद्धि आधा लव अथवा आधा निमेष के लिए भी जिसकी बुद्धि श्रीभगवान् के चरण कमलों के स्मरण से विरत नहीं होती है, वही वैष्णवों श्रेष्ठ हैं प्रश्न होता है कि आधा लव के लिए भजन से विरति हो जाने पर यदि त्रैलोक्य का राज्य मिल जाय तो फिर उतनी देर के लिए भजन से उपरम क्यों नहीं हो जाय । तो इसके उत्तर में कहा गया है कि अकुण्ठ स्मृति अर्थात् श्रीभगवान् के चरणों से बढ़कर दूसरा कुछ भी सार नहीं है इस प्रकार की स्मति जिसको सदैव बनी रहती है । श्रीभगवान् के पादारविन्द से बढ़कर सार कुछ नहीं है इस प्रकार की स्मृति किसी को कैसे होती है ? तो इस पर कहते हैं श्रीभगवान् में ही

जिन लोगों मन लगा रहता है, ऐसे देवताओं आदि के लिए भी दुर्लभ हैं श्रीभगवान् के चरण कमल ! किन्तु उन देवों आदि के लिए भी वह अन्वेषणीय हैं अतएव भगवच्चरणों की अपेक्षा सवों की तुच्छता का ही स्मरण करते हुए जिनका मन भगवद् भजन कभी हटता नहीं है ॥५३॥

भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशाखानखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे ।
हृदि कथमुपसीदतां पुनः स प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः ॥५४॥

अन्वयः— भगवत् ऊरुविक्रमाङ्घ्रिशाखानखमणि चन्द्रिकया निरस्ततापे उपसीदतां हृदि चन्द्रे उदिते अर्कताप इव सः पुनः कथं प्रभवति ॥५४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के चरणों की अङ्गुलियों की नख रूपी मणि की चन्द्रिका से जिन शरणागत भक्तों के हृदय में कामादि जन्य संताप एक बार जब दूर हो चुका है तो वह (कामादिजन्य संताप) उनके हृदय में उसी तरह उत्पन्न नहीं हो सकता है जिस तरह चन्द्रमा के उदित हो जाने पर सूर्य का ताप नहीं लग पाता है ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

अपि च विषयाभिसंधिना चलनं कामेनातिसंतापे सति भवेत्, स तु भगवत्सेवानिर्वृतौ न संभवतीत्याह-भगवत इति। उरुविक्रमौ च तावङ्घ्री च तयोः शाखा अङ्गुलयस्तम्सु नखानि च तानि मणयश्च तेषां चन्द्रिका शीतला दीप्तिस्तया निरस्तः कामादितापो यस्मिंस्तस्मिन्नुपसीदतां भजतां हृदि कथं पुनः संतापः प्रभवति । चन्द्रे उदिते सत्यर्कस्य ताप इव । न यस्य स्वः पर इत्यादिना श्लोकत्रयेण यादृश इत्यस्योत्तरमुक्तं वेदितव्यम् । यद्ब्रूते इत्यस्य च हरिनामानीति ज्ञातव्यम् ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

विषय प्राप्ति की इच्छा से चञ्चलता कामजन्य अत्यन्त संताप होने पर हो सकता है । किन्तु वह श्रीभगवान् की सेवा जन्य आनन्दावाप्ति हो जाने पर नहीं हो सकता है । इस बात को **भगवतः इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । श्रीभगवान् के दोनों चरण ही वृक्ष है, उनकी शाखा अङ्गुलियाँ है । उन अङ्गुलियों के नख ही मणिया हैं उन मणियों की शीतल चमक ही ज्योत्स्ना है । उसके द्वारा जिन भगवत् शरणागतों की कामादि जन्य संताप एक बार शान्त हो चुके हैं,उन शरणागत भक्तों के हृदय में कामादि जन्य सन्ताप उसी तरह उदित नहीं होते हैं जिस तरह चन्द्रमा के उदित हो जाने पर सूर्य का ताप नहीं लगता है **न यस्य स्वः परः इत्यादि** तीन श्लोकों से **यादृशः** इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है । यद्ब्रूते इसका उत्तर **हरिनामानि** को जानना चाहिए ॥५४॥

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ।
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः ॥५५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे नारदवसुदेवसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अन्वयः— अवशाभिहितः अपि अधौधनाश; प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपदम् हरिः यस्य हृदयं साक्षात् न विसृजतिसः भागवत प्रधानः उक्तः ॥५५॥

अनुवाद— विवश होकर भी जिनके नामों का उच्चारण करने मात्र से पाप समूह का नाश हो जाता है. ऐसे श्रीहरि के चरण कमलों को जिसने प्रेम की डोरी से बाँध रखा है उस प्रेमी भक्त के हृदय हृदय में श्रीभगवान् सदा विद्यमान रहते है । ऐसा भक्त भागवतों में उत्तम बतलाया गया है ॥५५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के नारद वसुदेव संवाद नामक दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

भावार्थ दीपिका

उक्तसमस्तलक्षणसारमाह-विसृजतीति । हरिरेव स्वयं साक्षाद्यस्य हृदयं न विसृजति न मुञ्चति । कथंभूतः । अवशेनाप्यभिहितमात्रोऽप्यघौघं नाशयति यः सः । तत्किं न विसृजति । यत; प्रणयरशनया धृतं हृदये निबद्धमङ्घ्रिपद्मं यस्य स भागवतप्रधान उक्तो भवति ।।५५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

भगवतों को बताये गये सभी लक्षणों का सार इस श्लोक में बतलाया गया है । स्वयं श्रीभगवान् ही जिसके हृदय से कभी विलग नहीं होते हैं । ऐसे श्रीभगवान् विवशता वश भी जिनके नामों का उच्चारण कर लेने पर पाप समूह का नाश हो जाता है ऐसे श्रीभगवान् क्यों नहीं त्यागते हैं, तो इसका उत्तर है कि क्योंकि उसने प्रेम रूपी रस्सी से श्रीभगवान् के चरण कमलों को बाँध रखा है । ऐसा भगवद्भक्त भागवतों में प्रधान हैं ।।५५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के दूसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२।।

तीसरा अध्याय

माया माया से पार होने के उपाय एवं ब्रह्म तथा कर्म योग का निरूपण

राजोवाच

परस्य विष्णोरीशस्य मायिनामपि मोहिनीम् । मायां वेदितुमिच्छामो भगवन्तो ब्रुवन्तु नः ॥१॥

अन्वयः— ईशस्य परस्य विष्णोः मायिनामपि मोहिनीम् मायाम् वेदितुम इच्छामः भगवन्तो ब्रुवन्तु ॥१॥

महाराज निमि ने कहा

अनुवाद— परा देवता भगवान् विष्णु की माया बड़े-बड़े मायावियों ब्रह्मा आदि को भी मोहित कर देते हैं। हमलोग उस माया के विषय में जानना चाहते हैं । आप लोग कृपा करके उसे बतलाएँ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

मायातत्तरणब्रह्कर्मप्रश्नचतुष्टे । तृतीये तूत्तरं दत्तमार्षभैर्मुनिभिः पृथक् ॥१॥ विष्णोर्मायामिदं पश्यन्नित्युक्तमतो मायां पृच्छति परस्येति । हे भगवन्तः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तीसरे अध्याय में महाराज निमि द्वारा माया, माया से पार जाने का उपाय ब्रह्म तथा कर्म इन चार प्रश्नों के पूछे जाने पर उसका उत्तर योगीश्वरों ने दिया है । पीछे के अध्याय में कहा गया है- यह सम्पूर्ण जगत् भगवान् विष्णु की माया है इस तरह से जानने वाला अतएव महाराज निमि माया के विषय में पूछते है, हे परमैश्वर्य सम्पन्न योगीश्वरों॥१॥

नानुतृप्ये जुषन्युष्मद्वचो हरिकथामृतम् । संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ॥२॥

अन्वयः— संसार तापनिस्तप्तःमर्त्य तत्तापभेषजम् हरिकथामृतम् युष्मद्वचः जुषन् न अनुतृप्ये ॥२॥

अनुवाद—हे योगीश्वरों मैं संसार रूपी अग्नि के सन्ताप से सन्तप्त एक मनुष्य हूँ। उस संताप को शान्त करने के लिए औषध के समान आपलोगों की श्रीहरि कथा रूपी अमृतमयी वाणी का सेवन करने से मुझे तृप्ति नही होती है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

ननूक्तलक्षणो भागवतो भूत्वा कृतार्थः स्याः, किं बहुप्रश्नैरत आह–नानुतृप्य इति । संसारतापैर्नितरां तप्तोऽहं तस्य तापस्य भेषजं हरिकथामृतरूपं युष्मद्वचो जुषमाणो नानुतृप्यामि ।।२।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि ऊपर जो भागवत के लक्षण बतलाये गये हैं, वैसा ही भागवत होने से तुम कृतार्थ हो जाओगे, बहुत अधिक पूछने से कौन सा लाभ है ? इस पर राजा ने कहा **नानुतृप्ये इत्यादि** अर्थात् मैं संसार के संतापों से संतप्त हूँ । उस सन्ताप की दवा श्रीहरि की कथा रूपी अमृत है । उस अमृत को आप अपनी वाणी से बहा रहे हैं। अतएव आपकी वाणी का सेवन करने से मुझे तृप्ति नहीं होती है ।।२।।

अन्तरिक्ष उवाच

एभिर्भूतानि भूतात्मा महाभूतैर्महाभुज । ससर्जोच्चावचान्याद्यः स्वमात्रात्मप्रसिद्धये ।।३।।

अन्वयः— आद्यः महाभुजः भूतात्मा एभिः महाभूतेः उच्चावचानि भूतानि स्वमात्रात्मप्रसिद्धये आद्यः ससर्ज ।।३।।

अन्तरिक्ष नामक योगीश्वर ने कहा

अनुवाद— आदि पुरुष परमात्मा जिस शक्ति से सभी भूतों के कारण बनते हैं और उनके विषय भोग और मोक्ष की सिद्धि के लिए अथवा अपने उपासको की उत्कृष्ट सिद्धि के लिए स्वनिर्मित पञ्चभूतों के द्वारा नाना प्रकार के देव, मनुष्य आदि शरीरों की सृष्टि करते हैं उसी को माया कहते हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

मायायाः स्वरूपतो निरूपणासंभवात्सृष्ट्यादिकार्याकारेण निरूपयितुमाह–एभिरिति । आद्यः पुरुषो यया शक्तया भूतानामात्मा कारणभूत एभिः स्वसृष्टैर्महाभूतैरुच्चावचानि भूतानि ससर्ज । एषा माया भगवत इति चरमश्लोकपादस्य प्रतिश्लोकमनुपङ्गः। किमर्थं ससर्ज । स्वमात्रात्मप्रसिद्धये, स्वं मिमीते प्रमिमीते उपास्ते यः स स्वमाता तस्यात्मनो जीवस्य प्रकृष्टायै सिद्धये । यद्वा स्वांशभूतानां जीवानां मात्राप्रसिद्धये विषयभोगाय आत्मप्रसिद्धये मोक्षाय चेत्यर्थः । तदुक्तं वेदस्तुतौ- 'बुद्धीन्द्रियमनःप्राणाञ्जनानामसृजत्प्रभुः । मात्रार्थं च भवार्थं च आत्मनेऽकल्पनाय च ।' इति ।।३।।

भाव प्रकाशिका

माया अनिर्वचनीय है, अतएव उसका स्वरूपतः निरूपण नहीं किया जा सकता है, उसका निरूपण उसके कार्यों के ही माध्यम से किया जा सकता है । इसी तरह से उसका निरूपण करने के लिए **एभिः इत्यादि** श्लोक कहते हैं । आदि पुरुष परमात्मा जिस शक्ति के द्वारा महाभूतों के कारण बनते हैं इन्हीं भूतों के द्वारा उन्होंने छोटे-बड़े भूतों की सृष्टि की । यही श्रीभगवान् की माया है । इस श्लोक के अन्तिम चरण का प्रत्येक श्लोक के साथ अन्वय है । किसलिए सृष्टि की तो इसका उत्तर है अपनी माया की उपासना करने वाले उस जीव की उत्कृष्ट सिद्धि के लिए। अथवा अपने अंशभूत जीवों के भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए । वेदस्तुति में कहा भी गया है **बुद्धीन्द्रिय० इत्यादि** अर्थात् बुद्धि, इन्द्रिय, मन तथा प्राण के द्वारा सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीहरि ने जीवों के भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए तथा अपनी कल्पना के अभाव के लिए ही जगत् की सृष्टि की ।।३।।

एवं सृष्टानि भूतानि प्रविष्टः पञ्चधातुभिः । एकधा दशधात्मानं विभजन् जुषते गुणान् ।।४।।

अन्वयः— एवं सृष्टानि भूतानि पञ्चधातुभिः प्रविष्टः एकधा, दशधा आत्मानं विभजन् गुणान् जुषते ।।४।।

अनुवाद— इस प्रकार पञ्च महाभूतों के द्वारा बने हुए प्राणियों के शरीर में वे अन्तर्यामी रूप से प्रवेश करके अपने को पहले एक (मन के) रूप में और उसके पश्चात् पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाञ्च कर्मेन्द्रियों के रूप में विभक्त करके उसके ही द्वारा विषयों का भोग करने लगे ।।४।।

भावार्थ दीपिका

एवं जीवोपकरणार्थं पञ्चधातुभिर्महाभूतैः सृष्टानि भूतान्यन्तर्यामिरूपेण प्रविष्ट एकधा मनसा दशधा बाह्येन्द्रियरूपेणात्मानं विभजन्गुणांस्तत्तद्विषयान् जुषते जोषयतीत्यर्थः । यद्वा तमात्मानं प्रति गुणान्विभजन् जुषते प्रीयत इत्यर्थः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार जीवों के उपकरण के लिए पाञ्च महाभूतों से सृष्ट भूतों के भीतर परमात्मा अन्तर्यामी रूप से प्रवेश किए हुए पहले एकधा (मन रूप से) फिर अपने को ही दस बाह्येन्द्रियों के रूप में विभक्त करके विभिन्न विषयों का भोग कराते हैं अथवा उस आत्मा के लिए विषयों का भोग करते हुए प्रसन्न होते हैं ।।४।।

गुणैर्गुणान्स भुञ्जान आत्मप्रद्योतितैः प्रभुः । मन्यमान इदं सृष्टमात्मानमिह सज्जते ।।५।।

अन्वयः— आत्मप्रद्योतितैः गुणैः प्रभुः गुणान् भुञ्जानः इदं आत्मानं मन्यमानः इह सज्जते ।।५।।

अनुवाद— अन्तर्यामी परमात्मा के द्वारा प्रकाशित विषयों का भोग करता हुआ जीव इस सृष्ट शरीर को ही आत्मा मानने लगता है, और इस शरीर में ही आसक्त होकर संसार में भटकने लगता है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

स च जीव आत्मनाऽन्तर्यामिणा प्रद्योतितैर्गुणैरिन्द्रियैर्गुणान्विषयान्भुञ्जान इदं सृष्टं शरीरमात्मानं मन्यमान इह शरीरादौ सज्जते । अत एव संसरतीति भावः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

वह जीव भी अन्तर्यामी परमात्मा के द्वारा प्रकाशित इन्द्रियों से विषयों का भोग करता हुआ इस सृष्ट शरीर को ही आत्मा मानने लगता है । और उस शरीर में ही आसक्त होकर संसार में भटकने लगता है ।।५।।

कर्माणि कर्मभिः कुर्वन्सनिमित्तानि देहभृत् । तत्तत्कर्मफलं गृह्णन्भ्रमतीह सुखेतरम् ।।६।।

अन्वयः— देहभृत कर्मभिः सनिमित्तानि कर्माणि कुर्वन् तत् तत् कर्मफलं गृह्णन् सुखेतरम् इह भ्रमति ।।६।।

अनुवाद— यह देहधारी जीवात्मा कर्मेन्द्रियों से सकाम कर्मो को करता है और उसके अनुसार शुभ कर्मों का फल सुख तथा अशुभ कर्मों का फल दुःख भोग करने लगता है । इस तरह शरीरधारी होकर वह संसार में भटकने लगता है ।।६।।

भावार्थ दीपिका

ननु भुञ्जानः कथं सज्जते, भुञ्जानो भोगसमाप्तौ मुच्यत इति चेत्तत्राह-कर्माणीति । कर्मभिः कर्मेन्द्रियैश्च सनिमित्तानि सवासनानि कर्माणि कुर्वंस्तत्तत्पूर्वकर्मफलं च गृह्णन्नयं देहभृद्भ्रमतीह संसारे, न तु मुच्यते । कथंभूतं कर्मफलम् । सुखेतरं सुखदुःखात्मकम् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि भोगों को भोगता हुआ आसक्त कैसे हो जाता है । भोगता हुआ शरीर भोगों की समाप्ति हो जाने पर मुक्त हो जाना चाहिए तो इस पर **कर्माणि आदि** श्लोक कहते हैं वह कर्मेन्द्रियों से सकाम कर्मों को करता हुआ और अपने पूर्व कर्मों के फलों के प्राप्त करता हुआ यह शरीरे संसार में भ्रमण करता है । न कि मुक्त होता है । कैसे कर्म फलों को तो इसका उत्तर है कि सुख-दुःखात्मक कर्म फलों को ।।६।।

इत्थं कर्मगतीर्गच्छन्बह्वभद्रवहाः पुमान् । आभूतसंप्लवात्सर्गप्रलयावश्नुतेऽवशः ।।७।।

अन्वयः— एवं पुमान् बह्वभद्रगतीः गच्छन् आभूत संप्लवत् अवशः सर्ग प्रलयौ अश्नुते ।।७।।

अनुवाद— इस तरह वह ऐसे अनेक अमङ्गलमय कर्म गतियों को और उनके फलों को प्राप्त करता है। और महाभूतों के प्रलय पर्यन्त विवश होकर मृत्यु के पश्चात जन्म और जन्म के पश्चात् मृत्यु को प्राप्त करता रहता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

कियन्तं कालं भ्रमति तदाह-इत्थमिति। बहून्यभद्राणि वहन्तीति तथा ताः सर्गप्रलयावुत्पत्तिमरणे ॥७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि जीव कितने समय तक इस संसार में भटकता रहता है ? तो उसे इत्थम् इत्यादि श्लोक से बतलाते हैं। अनेक अमङ्गलमय गतियों को जन्म और मृत्यु को महाभूतों के प्रलय काल पर्यन्त प्राप्त करता रहता है ॥७॥

धातूपप्लव आसन्ने व्यक्तं द्रव्यगुणात्मकम्। अनादिनिधनः कालो ह्यव्यक्तायापकर्षति ॥८॥

अन्वयः— धातूपप्लव आसन्ने अनादिनिधनः कालः द्रव्यगुणात्मकं व्यक्तम् हि अव्यक्तया अपकर्षति ॥८॥

अनुवाद— जब पञ्च महाभूतों के प्रलय का समय आता है उस समय अनादि और अनन्त काल स्थूल तथा सूक्ष्म द्रव्य एवं गुणरूप इस समस्त व्यक्त सृष्टि को अव्यक्त उसके मूल कारण की ओर खीचने का काम करता है। यही भगवान की माया है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

एवं मायामयीं सृष्टिमुक्त्वा प्रलयं दर्शयितुमारभते। धातूनां महाभूतानामुपप्लवे नाशहेतावासन्ने व्यक्तं कार्यं द्रव्यं स्थूलं गुणः सूक्ष्मं तदात्मकमव्यक्तायाव्यक्तं प्रति नेतुमाकर्षति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से मायामयी सृष्टि का वर्णन करके प्रलय को बतलाना प्रारम्भ करते हैं। जब पञ्चमहाभूतों के नाश का कारण सन्निकट आ जाता है उस समय व्यक्त स्थूल काल द्रव्य तथा सूक्ष्म गुणों को उसके कारण भूत अव्यक्त की ओर खींचने का काम काल करता है ॥८॥

शतवर्षा ह्यनावृष्टिर्भविष्यत्युल्बणा भुवि। तत्कालोपचितोष्णार्को लोकांस्त्रीन्प्रतपिष्यति ॥९॥

अन्वयः— भुवि शतवर्षा हि उल्बणा अनावृष्टिः भविष्यति तत्कालोपचितोष्णार्को त्रीन् लोकान् प्रतपिष्यति ॥९॥

अनुवाद— उस समय लगातार पृथिवी पर सूखा पड़ता है वर्षा बिल्कुल नहीं होती है। प्रलयकाल की शक्ति से सूर्य की उष्णता और बढ़ जाती है और त्रैलोक्य तपने लग जाता है। यही भगवान् की माया है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

नाशहेतूनाह-शतवर्षेति। तस्मिन्काले उपचितश्चासावुष्णश्चासावर्कश्च। यद्वा तेन कालेनोपचितमुष्णत्वं यस्य सः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

नाश के कारणों को शतवर्षा इत्यादि से बतलाते है। उस समय सूर्य की उष्णता और बढ़ जाती हैं। अथवा प्रलय काल सूर्य की गर्मी को और बढा देता है ॥९॥

पातालतलमारभ्य सङ्कर्षणमुखानलः। दहन्नूर्ध्वशिखो विष्वग्वर्धते वायुनेरितः ॥१०॥

अन्वयः— सङ्कर्षणमुखानलः पातालमारभ्य ऊर्ध्वशिखः दहन वायुना ईरितः विष्वक्वर्धते ॥१०॥

अनुवाद— उस समय सङ्कर्षण के मुख से निकली हुई अग्नि पाताल से ऊपर की ओर जलती हुई वायु के द्वारा प्रेरित होकर चारो ओर फैल जाती है। यही भगवान् की माया है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ऊर्ध्वशिख ऊर्ध्वज्वालः । विष्वक्परितः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

ऊपर की ओर ज्वाला वाली यह ऊर्ध्वशिख का अर्थ है विष्वक् अर्थात् चारो ओर ॥१०॥

सांवर्तको मेघगणो वर्षति स्म शतं समाः । धाराभिर्हस्तिहस्ताभिर्लीयते सलिले विराट् ॥११॥

अन्वयः— सांवर्तकः मेघगणः हस्तिहस्ताभिः धाराभिः शतं समाः वर्षति ततः विराट् लीयते ॥११॥

अनुवाद— उस समय प्रलयकालीन सांवर्तक मेघ गण सौ वर्षों तक हाथी के सूंढ के समान मोटी धाराओं से वर्षा करते हैं और उसी में यह विराट् ब्रह्माण्ड डूब जाता है । यह भगवान् की माया है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

सांवर्तकः प्रलयकर्ता । धारााभिर्न तु विन्दुभिः हस्तिहस्ताभिस्तत्प्रमाणाभिः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

सांवर्तकः अर्थात् प्रलय करने वाला हस्तिहस्ताभिः अर्थात् हाथी के सूंड के समान मोटे ॥११॥

ततो विराजमुत्सृज्य वैराजः पुरुषो नृप । अव्यक्तं विशते सूक्ष्मं निरिन्धन इवानलः ॥१२॥

अन्वयः— हे नृप ततः वैराजः पुरुषः विराजम् उत्सृज्य निरीन्धनः अनलः इव सूक्ष्मं अव्यक्तं विशते ॥१२॥

अनुवाद— राजन् उस समय जैसे बिना अग्नि के आग बुझ जाती है उसी तरह वैराज पुरुष (ब्रह्मा) विराट् (ब्रह्माण्ड) का परित्याग करके सूक्ष्म प्रकृति में प्रवेश कर जाते हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तत उपाधिलयाद्वैराजः पुरुषोऽव्यक्तं कारणं प्रविशति । ननु- 'ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसंचरे । परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परं पदम् ।' इति स्मृतेर्यावदधिकारमवस्थितिरधिकारिणामिति न्यायाच्च वैराजशब्दाभिधेयस्य च ब्रह्मणः परमभागवतत्वान्मोक्ष एव संगच्छते नान्येषामिव कारणमात्रप्रवेशः, सत्यम्, अश्वमेधादिना सत्यलोकं गतानामप्य-भक्तानामावृत्तिश्रवणादभक्तत्वे च ब्रह्मणोऽपि प्रकृतौ लयः पुनरुत्पत्तिश्चेति मोक्षदौर्लभ्यसूचनायैवमुक्तमित्यविरोधः। यद्वा केनापि प्रमाणेन न व्यज्यत इत्यव्यक्तं ब्रह्मैव तत्प्रवेशेन च मोक्ष एवोक्त इति द्रष्टव्यम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् उपाधि का विलय हो जाने के कारण वैराज पुरुष (ब्रह्मा) अपने कारण भूत प्रकृति में प्रवेश कर जाते हैं । यहाँ पर प्रश्न होता है कि ब्रह्माजी के साथ ही सबके सब जीव प्रलय काल की बेला आने पर परमात्मा में ही प्रवेश करके परं पद में प्रवेश कर जाते हैं इस स्मृति के अनुसार तथा अपने अधिकार काल पर्यन्त सभी अधिकारी पुरुष बने रहते हैं इस न्याय के अनुसार वैराज शब्द से कहे जाने वाले पुरुष ब्रह्माजी के भी परम भागवत होने के कारण मोक्ष ही होना उचित है अन्य पदार्थों के समान अपने कारण मात्र में प्रवेश ही नहीं तो यह कथन अर्ध सत्य है । अश्वमेध याग आदि यागों के करने से सत्यलोक में गये हुए जो जीव भक्त नहीं है उन जीवों के पुनः संसार में संसरण श्रुतियाँ बतलाती है भक्त नहीं होने पर ब्रह्माजी के भी प्रकृति में लय तथा पुनः उत्पत्ति भी होती है । मोक्ष के दुर्लभ होने के कारण इसे ही कहनें में कोई विरोध नहीं है । अथवा किसी भी प्रमाण से जिसकी अभिव्यक्ति नहीं होती है, इस व्युत्पत्ति के अनुसार अव्यक्त शब्द से ब्रह्म को ही कहा गया है, उसी में ब्रह्माजी प्रवेश कर जाते हैं ऐसा अर्थ किया जा सकता है । अतः ब्रह्माजी का मोक्ष हो जाता है यह भी कहा जा सकता है ॥१२॥

वायुना हृतगन्धा भूः सलिलत्वाय कल्पते । सलिलं तद्धृतरसं ज्योतिष्ट्वायोपकल्पते ॥१३॥

अन्वयः— वायुना हृतगन्धाभूः सलिलत्वायकल्पते, सलिलं तत् हृतरसं ज्योतिष्ट्वाय कल्पते ॥१३॥

अनुवाद— जब वायु पृथिवीं के गन्ध को खींच लेती है तो पृथिवी जल रूप हो जाती है । जब वही वायु जल के रस को लेती है तो जल अपना कारण अग्नि बन जाता है । यह भगवान की माया है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

एवं विराजो लयमुक्त्वा तत्कारणानां महदादिपृथिव्यन्तानां प्रातिलोम्येन लयमाह-वायुनेति । वायोर्हि गन्धरसह्रारित्वं प्रसिद्धम् ं सांवर्तकेन वायुना हृतगन्धा अतएव गन्धस्य व्यावर्तकस्य गतत्वात्सलिलत्वाय कल्पते सलिले लीयते इत्यर्थः । तद्धृतरसं तेन वायुनैव हृतो रसो यस्य तत् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से विराट् के लय को बतलाकर उसके कारणभूत महत् तत्त्व से लेकर पृथिवी पर्यन्त का प्रतिलोम क्रम से लय को **वायुना इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । वायु गन्ध एवं रस का संहार करता है यह प्रसिद्ध है। सांवर्तक वायु के द्वारा गन्ध का हरण कर लिए जाने के कारण पृथिवी के व्यावर्तक गन्ध के चले जाने से पृथिवी अपने कारण जल में लीन हो जाती हैं उसी वायु द्वारा रस का हरण कर लिए जाने पर जल अग्नि में लीन हो जाता है ॥१३॥

हृतरूपं तु तमसा वायौ ज्योतिः प्रलीयते । हृतस्पर्शोऽवकाशेन वायुर्नभसि लीयते ॥
कालात्मना हृतगुणं नभ आत्मनि लीयते ॥१४॥

अन्वयः— तमसा हृतरूपं ज्योतिः वायौ प्रलीयते अवकाशेन हृत स्पर्शः वायुः नभसि लीयते कालात्मना हृत गुणं नभः आत्मनि लीयते ॥१४॥

अनुवाद— जव अन्धकार अग्नि के रूप का हरण कर लेता है तो अग्नि अपने कारणभूत वायु में लीन हो जाती है । अवकाश के द्वारा स्पर्श का हरण कर लिए जाने पर वायु आकाश में लीन हो जाता है । कालरूप आत्मा (ईश्वर) के द्वारा आकाश के गुण शब्द का हरण कर लिए जाने पर आकाश अपने कारण भूत तामस अहङ्कार में लीन हो जाता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तमसश्च रूपतिरस्कारित्वं प्रसिद्धम् । सांवर्तकेन तमसा । अवकाशेनाकाशेन स्वकारणेन कालात्मना, शब्दस्य हि कालत एव नाशः प्रसिद्धस्तद्रूपेणात्मना ईश्वरेण । आत्मनि तामसाहङ्कारे ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

यह प्रसिद्ध है कि तमस रूप को तिरोहित कर देता है अतएव सांवर्तक तमस के द्वारा अवकाशेन अर्थात् आकाश के द्वारा काल रूप आत्मा (ईश्वर) के द्वारा शब्द का नाश हो जाने पर आकाश अपने कारणभूत तामस अहङ्कार में मिल जाता है ॥१४॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सह वैकरिकैर्नृप । प्रविशन्ति ह्यहंकारं स्वगुणैरहमात्मनि ॥१५॥

अन्वयः— वैकारिकै सह मनबुद्धि तथा इन्द्रियाँ स्वगुणैः अहमात्मनि हि अहंङ्कारं प्रविशन्ति ॥१५॥

अनुवाद— राजन् निमे, इन्द्रियाँ और बुद्धि राजस अहङ्कार में लीन होती हैं । मन सात्त्विक अहङ्कार से उत्पन्न देवताओं के साथ सात्त्विक अहङ्कार में प्रवेश कर जाता है । तथा अपने तीन प्रकार के कार्यों के साथ महत् तत्त्व में लीन हो जाता है । महत् तत्त्व प्रकृति में और प्रकृति ब्रह्म में लीन हो जाती है । पुनः इसके विपरीत क्रम से सृष्टि होती है, यह भगवान् की माया है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्रियाणि बुद्धिश्च राजसाहंकारम् । मनो वेकारिकैर्देवैः सह सात्त्विकाहंकारम् । एवं त्रिविधैः स्वगुणैः स्वकार्यैः सहितोऽहमहंकार आत्मनि महति स च प्रकृताविति द्रष्टव्यम् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्रियाँ और बुद्धि राजसाहङ्कार मे लीन होती हैं । मन तथा सात्त्विकाहङ्कार से उत्पन्न इन्द्रियों को अधिष्ठातृदेवगण सात्विकाहङ्कार में लीन होते हैं । इस प्रकार के अहङ्कार अपने कार्यों के साथ महत् तत्त्व में लीन होते है । महत् तत्त्व प्रकृति में लीन हो जाता है, यह जानना चाहिए ।।१५।।

एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यन्तकारिणी । त्रिवर्णा वर्णितास्माभिः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।।१६।।

अन्वयः— एषा त्रिवर्णा, भगवतः माया सर्गस्थित्यन्त कारिणी अस्माभिः वर्णिताः भूयः कि श्रोतुम् इच्छसि ।।१६।।

अनुवाद— यह श्रीभगवान् की त्रिगुणात्मिका माया जगत् की सृष्टि स्थिति और संहार करने वाली है । इसका वर्णन हमलोगों ने किया राजन् अब तुम क्या सुनना चाहते हो ?।।१६।।

भावार्थ दीपिका

त्रिवर्णा त्रिगुणा । मायाश्रवणभीतं राजानं तन्निवृत्त्युपायश्रवणे स्वयं छन्दयति-किं भूय इति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

त्रिवर्णा अर्थात् त्रिगुणात्मिका । माया के वर्णन को सुनने से भयभीत उसकी निवृत्ति के उपाय को सुनने के लिए राजा योगीश्वरगण से स्वयं अनुरोध करते हैं । **किं भूय इत्यादि** के द्वारा ।।१६।।

राजोवाच

यथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः । तरन्त्यञ्जः स्थूलधियो महर्ष इदमुच्यताम् ।।१७।।

अन्वयः— हे महर्षे यथा एताम् ऐश्वरीं दुस्तराम् मायां अकृतात्मभिः स्थूलधियः अञ्जः तरन्ति इदम् उच्यताम्ः ।।१७।।

महाराज निमि ने कहा

अनुवाद— हे महर्षे ! इस माया को पार करना तो उन लोगों के लिए बड़ा ही कठिन है जो अपने मन को अपने वश में नहीं कर पाये हैं । अब आप यह बतलाएँ कि जो लोग शरीर आदि को ही आत्मा समझते जिनकी बुद्धि मोटी है, वे अज्ञानी जीव बिना प्रयास के ही इस माया का कैसे पार कर जाते हैं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

एवमनुकम्पितस्तन्निवृत्त्युपायमेव पृच्छति-यथैतामिति । यद्यपि 'तन्माययाऽतो बुध आभजेत्तम्' इति भक्तिस्तत्तारकत्वेनोक्तैव तथापि किं भक्तिरेवान्योऽपि वा तत्रोपायोऽस्तीति ज्ञातुं पुनः प्रश्नः । अकृतात्मभिरवशीकृतान्तःकरणैः । स्थूलधियः स्थूले शरीरे अहंधीर्येषां ते ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

इसप्रकार से योगीश्वरों की कृपा प्राप्त राजा निमि माया के दूर करने के उपाय को **यथैताम्० इत्यादि** श्लोक से पूछते हैं, यद्यपि **तन्माययाऽतो० इत्यादि** के द्वारा बतलाया गया है कि भक्ति द्वारा श्रीभगवान् की माया को पार किया जा सकता है कि फिर भी क्या भक्ति ही माया को पार करने का साधन है ? अथवा उससे भिन्न कोई साधन है ? यदि कोई दूसरा उपाय हो तो उस उपाय को राजा पूछते हैं । अकृतात्मभिः अर्थात् जिन लोगों ने अपने मन को वश में नहीं किया है । स्थूलधियः अर्थात् स्थूल शरीर को ही आत्मा मान ने वाले जो लोग हैं वे।।१७।।

प्रबुद्ध उवाच

कर्माण्यारभमाणानां दुःखहत्यैः सुखाय च । पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम् ॥१८॥

अन्वयः— मिथनीचारिणां नृणाम् दुःखहत्यै सुखाय च कार्यम्आरभ्यमाणांनां पाकविपर्यासं पश्येत् ।।१८।।

प्रबुद्ध नामक चौथे योगीश्वरजी ने कहा

अनुवाद— राजन स्त्री पुरुष के सम्बन्ध में बँधे रहने वाले मनुष्यों को जो दुःख के विनाश तथा सुख की प्राप्ति के लिए कर्मों को करते हैं विचार करना चाहिए कि उनको कर्मों के करने से दुःख के बदले सुख क्यों मिलता है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

भक्तिव्यतिरेकेण नास्त्यन्य उपाय इत्यभिप्रेत्य भक्तिमेव ससाधनां निरूपयति । तत्र प्रथमं वैराग्यद्वारा गुरूपसत्तिमाह चतुर्भिः-कर्माणीति । दुःखहत्यै दुःखप्रतीकाराय । पाकविपर्यासं फलवैपरीत्यम् । मिथुनीचारिणां मिथुनीभूय प्रवर्तमानानाम्।।१८।।

भाव प्रकाशिका

भक्ति से भिन्न कोई दूसरा उपाय नहीं है इसी अभिप्राय से साधन पूर्वक भक्ति का निरूपण करते है । तो इस प्रसङ्ग में सर्वप्रथम संसार से वैराग्य पूर्वक आचार्य की शरणागति **कर्माणि० इत्यादि** चार श्लोक से बतलाते हैं । दुःखहत्यै अर्थात् दुःख को दूर करने के लिए । पाकविपर्यासम् अर्थात् कर्म फलों की विपरीतता, मिथुनीचारिणाम् अर्थात् स्त्रीपुरुष के सम्बन्ध रूप बन्धन में बाँधकर कर्म करने वालों को ।।१८।।

नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्मवृत्तिना । गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥१९॥

अन्वयः— नित्यार्तिदेन, वित्तेन, दुर्लभेन आत्मवृत्तिना, गृहापत्याप्तपशुभि चलैः सधितैः का प्रीतिः ।।१९।।

अनुवाद— जैसे धन को ही ले लिया जाय इससे दिन पर दिन दुःख बढ़ता ही है, इस धन को प्राप्त करना भी अत्यन्त कठिन है, यदि यह किसी प्रकार प्राप्त भी हो जाय तो फिर यह आत्मा के लिए मृत्यु स्वरूप ही है । धन के ही उलझन में पड़कर मनुष्य अपनी आत्मा को भी भूल जाता है । इसी तरह गृह, पुत्र तथा पशुधन आदि भी अनित्य और नाशवान है इनसे कौन सा सुख प्राप्त होगा । इससे सुखशान्ति की प्राप्ति की आशा करना व्यर्थ है।।१९।।

भावार्थ दीपिका

कर्मभिः साधिता अपि वित्तादयो न सुखहेतव इति च पश्येदित्याह-नित्यार्तिदेनेति । आत्मनः स्वस्य मृत्युरूपेण । चलैरनित्यैरपायिभिश्च ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

कर्मों को करके किसी प्रकार धन को प्राप्त कर लेने पर भी धन आदि से सुख की प्राप्ति नहीं होती है। इस बात को जानना चाहिए इस बात को **नित्यार्तिदेन० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । यह धन आत्मा के मृत्यु रूप होता है । धन के उलझन में पड़ा हुआ मनुष्य अपनी आत्मा को भी भूल जाता है ।।१९।।

एवं लोकं परं विद्यान्नश्वरं कर्मनिर्मितम् । सतुल्यातिशयध्वंसं यथा मण्डलवर्तिनाम् ॥२०॥

अन्वयः— एवं परं लोकम् कर्मनिर्मितम् नश्वरं विद्यात् मण्डलवर्तिनाम् यथा सतुल्यातिशयाध्वंसम् ।।२०।।

अनुवाद— माया से पार जाना चाहने वाले मनुय को यह भी जान लेना चाहिए कि मृत्यु के पश्चात् प्राप्त होने वाला परलोक ऐसे ही नाशवान् हैं । इस लोक की वस्तुओं के ही समान परलोक भी सीमित कर्मों का सीमित फल है । वहाँ भी पृथिवी के छोटे राजाओं के समान बराबर वालों से होड़ लगी रहती है, अधिक ऐश्वर्य वालों के प्रति ईर्ष्या और द्वेष की भावना रहती है एवं काम ऐश्वर्य वालों के प्रत्ति घृणा की भावना होती है किञ्च कर्मों । का फल पूरा हो

भावार्थ दीपिका

एवं लोकं परमिति । कर्मनिर्मितत्वान्नश्वरम् । तथा च श्रुतिः–'तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते' इति । किंच वर्तमानसमयेऽपि दुःखयुक्तं पश्येदित्याह–सतुल्यातिशयध्वंसं सह तुल्येनातिशयेन ध्वंसेन च वर्तमानम्। अतस्तुल्ये स्पर्धातिशयेऽसूयाध्वंसालोचने भयादिकं चापरिहार्यमित्यर्थः । यथाखण्डमण्डलपतीनां मिथः स्पर्धादि तद्वत ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

परलोक भी इसी तरह नाशवान् है इस बात को **एवं लोकम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । क्योंकि परलोक भी कर्म निर्मित है । श्रुति भी कहती है **यथेह कर्मचितो, लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यपितो लोकः क्षीयते** अर्थात् जिस तरह कर्मार्जित वस्तुओं का इस लोक में जैसे क्षय होता है उसी तरह पुण्यार्जित परलोक भी क्षीण होता है । किञ्च परलोक वर्तमान काल में भी दुःखप्रद होता है । यह जानना चाहिए । इस बात को **सतुल्यातिशयध्वंसम्** पद से कहा गया है । वहाँ अपने समान, अपने से अधिक तथा ध्वंस से युक्त होता है परलोक । वहाँ अपने समान वालों से स्पर्धा होती है । अपने से अधिक ऐश्वर्य वालों के प्रति असूया होती है । तथा कर्म के फल के समाप्त हो जाते ही परलोक से पतन भी होता है । अतएव विचार करने पर भयादि युक्तत्व अवश्य होता है । जैसे छोटे-छोटे राजाओं में लोक में स्पर्धा देखी जाती है, उसी तरह ।।२०।।

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् । शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ।।२१।।

अन्वयः— तस्मात् उत्तमम् श्रेय जिज्ञासु शाब्दे परे ब्रह्मणि च निष्णातं उपशमाश्रयम् गुरुं प्रपद्येत ।।२१।।

अनुवाद— अतएव जो परम कल्याण का जिज्ञासु है उसे चाहिए कि वह शब्द ब्रह्म तथा परंब्रह्म में निष्णात और तत्त्वज्ञानी गुरु की शरणागति करें ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

उत्तमं श्रेयो ज्ञातुमिच्छुः शब्दे ब्रह्मणि वेदाख्ये न्यायतो निष्णातं तत्त्वज्ञम् । अन्यथा संशयनिरासकत्वायोगात् । परे च ब्रह्मण्यपरोक्षानुभवेन निष्णातमन्यथा बोधसंचारयोगात् । परब्रह्मनिष्णातत्वद्योतकमाह–उपशमाश्रयमिति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

जो परम कल्याण को जानने का इच्छुक हो उसे चाहिए कि वह शब्द ब्रह्म अर्थात् वेद नामक ब्रह्म में नियमानुसार निष्णात तत्त्वज्ञ एवं परंब्रह्म अर्थात् अपरोक्षानुभव में निष्णात् परम शान्त गुरु की शरणागति करे । अपरोक्षानुभव के बिना ज्ञान का संचार नहीं हो सकता है । परंब्रह्म में निष्णातत्व को द्योतित करने के लिए कहा गया है । **उपशमाश्रयम्** अर्थात् परमशान्त आचार्य को होना चाहिए ।।२१।।

तत्र भागवतान्धर्मान् शिक्षेद्गुर्वात्मदैवतः । अमाययानुवृत्त्या यैस्तुष्येदात्मात्मदो हरिः ।।२२।।

अन्वयः— तत्र आत्मदैवतः गुरुः अमायया अनुवृत्त्या च भागवतान् धर्मान् शिक्षेत् यैः आत्मात्मदः हरिः तुष्येत्।।२२।।

अनुवाद— आत्मा (परमात्मा) को ही अपना आराध्य मानने वाले गुरु को चाहिए कि वह शरणागत शिष्य को भागवत् धर्मों का उपदेश दें । भागवत् धर्मों का अनुष्ठान करने वाले के ऊपर अपनी आत्मा को भी प्रदान करने वाले श्रीभगवान् प्रसन्न हो जाते है ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

गुरुरेवात्मा दैवतं च यस्य सः। अनुवृत्त्या सेवया यैर्धर्मैः वस्तुत आत्मा, आत्मप्रपदश्चोपासकानाम्। यथा बलिप्रभृतीनाम्।।२२।।

भाव प्रकाशिका

गुरु को ही आत्मा और अपना आराध्य जानने वाला शिष्य गुरु की निष्कपट भाव से सेवा करे। उन भागवत धर्मों का पालन करने से अपनी आत्मा को भी प्रदान कर देने वाले श्रीभगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। बलि के ऊपर प्रसन्न होकर श्रीभगवान् उन्हें अपने को ही दे दिए ॥२२॥

सर्वतो मनसोऽसङ्गमादौ सङ्गं च साधुषु । दयां मैत्रीं प्रश्रयं च भूतेष्वद्धा यथोचितम् ॥२३॥

अन्वयः— आदौ सर्वतः मनसः असङ्गम् साधुषु च सङ्गम् दयां मैत्रीम् प्रश्रयं च भूतेषु अद्धा यथोचितम् ॥२३॥

अनुवाद— शिष्य को चाहिए कि वह पहले शरीर और सन्तान आदि में मन की अनासक्ति तथा भगवद् भक्तों से प्रेम की प्रक्रिया को जाने। उसके पश्चात् जीवों के प्रति यथायोग्य, दया, मैत्री विनय की निष्कपट भाव से शिक्षा ग्रहण करे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यथोचितमिति हीनेषु दयां समेषु मैत्रीमुत्तमेषु प्रश्रयं च शिक्षेदित्यर्थः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

यथोचितम् का अभिप्राय है कि दीनों पर दया करें, अपने समान अवस्था वालों के साथ मित्रता का भाव रखे और अपने से उत्तम लोगों के प्रति नम्रता का भाव रखे ॥२३॥

शौचं तपस्तितिक्षा च मौनं स्वाध्यायमार्जवम् । ब्रह्मचर्यमहिंसां च समत्वं द्वन्द्वसंज्ञयोः ॥२४॥

अन्वयः— शौचं तपः तितिक्षा च मौनं स्वाध्यायम् आर्जवम् ब्रह्मचर्यम् अहिंसां द्वन्द्वसंज्ञयोः समत्वं च शिक्षेत् ॥२४॥

अनुवाद— शिष्य शौच (अभ्यन्तर एवं बाह्य) तप, तितिक्षा, मौन, स्वाध्याय (वेदाध्ययन) ऋजुता, ब्रह्मचर्य का पालन हिंसा का परित्याग रूप अहिंसा तथा सुख-दुःख, शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों में एक समान बने रहने की शिक्षा प्राप्त करे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

शौचं बाह्यं मृज्जलादिभिः। आभ्यन्तरं चादम्भामानादि शिक्षेत्। तपः स्वधर्माचरणम्। तितिक्षां क्षमाम्। मौनं वृथावाचामनुच्चारणम्। स्वाध्यायमधिकारानुरूपं वेदपाठादिकम्। आर्जवं स्वच्छताम्। ब्रह्मचर्यं यस्य यादुचितमृतुकाले स्वदारनियमादि। अहिंसां भूतेष्वद्रोहम्। द्वन्द्वसंज्ञयोः शीतोष्णसुख दुःखादिरूपयोः। समत्वं हर्षविषादराहित्यम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

शौच अर्थात् पवित्रता का पालन। पवित्रता दो प्रकार की होती है। बाह्य एवं आभ्यन्तर। बाह्य पवित्रता मिट्टी और जल से की जाती है और आभ्यन्तर पवित्रता दम्भ और मान के राहित्य से होती है। इन दोनों प्रकार की पवित्रता की शिक्षा प्राप्त करना चाहिए। तितिक्षा अर्थात् सहनशीलता या क्षमा का भाव। मौन अर्थात् अनावश्यक बातों का उच्चारण नहीं करना। **स्वाध्यायः** अर्थात् शास्त्रोक्त अधिकार के अनुसार वेद आदि का अध्ययन आदि करना। आर्जवम् ऋजुता। **ब्रह्मचर्यम्** उचित नियमानुसार स्वदार गमन आदि अहिंसा किसी भी जीव को किसी भी प्रकार पीड़ित नहीं करना। **द्वन्द्वसंज्ञयोः** शीत उष्ण सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में **समत्वम** अर्थात् हर्ष एवं विषाद से रहित होना ॥२४॥

सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यमनिकेतताम् । विविक्तचीरवसनं संतोषं येनकेनचित् ॥२५॥

अन्वयः— सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षां कैवल्यम्, अनिकेतनम्, विविक्तचीरवसनम् येनकेनचित् संतोषम् शिक्षेदितिशेषः ॥२५॥

अनुवाद— सर्वत्र देश, काल और वस्तुओं में चेतन रूप से आत्मा और नियन्ता रूप से ईश्वर को देखना, एकान्त सेवन, यही मेरा घर है, इस प्रकार की भावना को न रखना, एकान्त में फटे-पुराने कपड़े पहनकर रहना तथा जो कुछ भी मिल जाय उसी से सन्तुष्ट रहना, इन सारी बातें को सीखे ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

आत्मेश्वरान्वीक्षाम् । सच्चिद्रूपेणात्मान्वीक्षां नियन्तृरूपेणेश्वरान्वीक्षां च । कैवल्यमेकान्तशीलत्वम् । अनिकेततां गृहाद्यभिमानराहित्यम्। विविक्तचीरवसनं विजनपतितानां वस्त्रखण्डानां शुद्धानां वा बल्कलानां परिधानम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

आत्मेश्वरान्वीक्षाम् अर्थात् सत् चित् रूप से आत्मा का अनुभव करना तथा नियामक रूप से ईश्वर को देखना, कैवल्यम् एकान्त में रहना, अनिकेतताम् अर्थात् यही मेरा घर है इस प्रकार की भावना से रहित रहना । विविक्त चीरवसनम् अर्थात् निर्जन स्थान में पड़े हुए कपड़े के टुकड़े को पहनकर रहना ॥२५॥

श्रद्धां भागवते शास्त्रेऽनिन्दामन्यत्र चापि हि । मनोवाक्कर्मदण्डं च सत्यं शमदमावपि ॥२६॥

अन्वयः— भागवतेशास्त्रेश्रद्धाम् अन्यत्र चापि अनिन्दांहि, मनोवाक्कर्म दण्डं च सत्यं शमदमावपि ॥२६॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के प्रतिपादक शास्त्रों में श्रद्धा करने दूसरे शास्त्रों की निन्दा नहीं करना, मनोदण्डं प्राणायाम के द्वारा मन को अपने वश में करना, मौन के द्वारा वाणी पर नियन्त्रण करना तथा वासना हीनता के अभ्यास से कर्मो का संयम करना सत्य बोलना, शम दम का पालन करना, इन सबों की शिक्षा प्राप्त करे ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

भागवते भगवत्प्रतिपादके । अन्यत्र शास्त्रादौ या अनिन्दा ताम् । मनसः प्राणायामैर्वाचो मौनेन कर्मणोऽनीहया दण्डम्। सत्यं यथार्थभाषणम् । शमदमावन्तःकरणबाह्येन्द्रियनिग्रहौ ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के स्वरूप आदि के प्रतिपादक शास्त्रों में श्रद्धा करनी चाहिए किन्तु दूसरे प्रकार के शास्त्रों की निन्दा न करे । प्रणायामों के द्वारा मन को, मौन के द्वारा वाणी को और वासना राहित्य के द्वारा कर्म को नियन्त्रित करे । सत्य बोलना, तथा शम एवं दम के द्वारा आभ्यन्तर और बाह्य इन्द्रियों को अपने वश में रखना सीखे ॥२६॥

श्रवणं कीर्तनं ध्यानं हरेरद्भुतकर्मणः । जन्मकर्मगुणानां च तदर्थेऽखिलचेष्टितम् ॥२७॥

अन्वयः— अद्भुतकर्मण हरेः जन्मकर्मगुणानां च श्रवणं, कीर्तनं, ध्यानं तदर्थेऽखिल चेष्टितं च शिक्षेदितिशेषः ॥२७॥

अनुवाद— अद्भुत कर्मों को करने वाले श्रीहरि के जन्मों और कर्मों का आचार्यमुख से श्रवण करना चाहिए। उन सबों का कीर्तन करे तथा ध्यान भी करना जाने । उन श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए ही अपने शरीर की सारी चेष्टाओं को करना चाहिए ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

हरेर्जन्मकर्मगुणानां श्रवणादि तदर्थे । हर्युद्देशेन सर्वं कर्म विशेषतश्च यजनादि यत्तदर्थे शिक्षेत् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि के जन्म और कर्म तथा गुण दिव्य हैं उन सबों का श्रवण कीर्तन और ध्यान करना चाहिए श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए अपने शरीर की सारी चेष्टाओं को तथा विशेष रूप से यागों को करना सिखे ॥२७॥

इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् । दारान्सुतान् गृहान्प्राणान्यत्परस्मै निवेदनम् ॥२८॥

अन्वयः— इष्टं, दत्तं, तपः जप्तं यच्च आत्मनः प्रियंवृत्तम् दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनं शिक्षेत्॥२८॥

अनुवाद— यज्ञ, दान तपस्या, जप तथा अपने का प्रिय लगने वाला व्यवहार समस्त पुष्पादि पत्नी, पुत्र गृह तथा प्राण इत्यादि जितनी भी अपनी प्रिय वस्तु हों उन सबों को परब्रह्म भगवान् नारायण को समर्पित करना सीखे ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

इष्टं दत्तमित्यादयो भावे निष्ठाः । वृत्तं सदाचारः । आत्मनः प्रियं गन्धपुष्पादि । दारादीनप्यालक्ष्य परस्मै परमेश्वराय निवेदनं तत्सेवकतया समर्पणं यत्तच्छिक्षेत् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

इष्टं दत्तम् इत्यादि में भाव में प्रत्यय हुआ है । वृत्तम् अर्थात् सदाचार, अपने को प्रिय लगने वाली चन्दन पुष्प इत्यादि । पत्नी आदि को लक्षित करके भगवान् नारायण को समर्पित कर देना चाहिए । श्रीभगवान् का सेवक होकर श्रीभगवान् को समर्पित करने की क्रिया को सीखे ॥२८॥

एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु च सौहृदम् । परिचर्यां चोभयत्र महत्सु नृषु साधुषु ॥२९॥

अन्वयः— एवं कृष्णात्मनाथेषु मनुष्येषु सौहृदम्उभयत्र परिचर्यां महत्सु नृषु साधुषु ॥२९॥

अनुवाद— जिन पुरुषों ने भगवान् श्रीकृष्ण का अपनी आत्मा और स्वामी के रूप में साक्षात्कार कर लिया है ऐसे सन्तपुरुषों से प्रेम करना चाहिए स्थावर एवं जंगम दोनों प्रकार के प्राणियों की सेवा करे । उसमें भी विशेष रूप से मनुष्यों की सेवा करे उनमें भी परोपकारी महापुरुषों की सेवा करे और उनमें भी साधु पुरुषों की सेवा करना सीखे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

कृष्ण एवात्मा नाथश्च येषाम् । कृष्ण आत्मनो जीवस्य नाथो येषामिति वा तेषु । उभयत्र स्थावरे जङ्गमे च या परिचर्या ताम् । विशेषतो नृषु तत्रापि साधुषु स्वधर्मशीलेषु । ततोऽपि महत्सु श्रीभागवतेषु ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण ही जिनकी आत्मा और स्वामी है ऐसे भगवद् भक्तों से प्रेम करे स्थावर और जङ्गम् दोनों प्रकार के प्राणियों की सेवा करे । उनमें भी मनुष्यों की सेवा करे उनमें भी महापुरुषों की महापुरुष में भी साधु पुरुषों की सेवा करें ॥२९॥

परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः । मिथो रतिर्मिथस्तुष्टिर्निवृत्तिर्मिथ आत्मनः ॥३०॥

अन्वयः— पावनं भगवद्यशः परस्परानुकथनम् मिथो रतिः मिथस्तुष्टिः आत्मनः मिथः निवृत्तिः शिक्षेत् ॥३०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के परम पवित्र यश का ही परस्पर में एक दूसरे से चर्चा करना सीखे, इस प्रकार के साधकों के इकट्ठे होकर परस्पर में प्रेम करना, परस्पर में संतुष्ट रहना तथा प्रपञ्च से निवृत्त होकर परस्पर में आध्यात्मिक शान्ति का अनुभव करते रहना सीखे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

तैश्च सह सङ्गम्य यत्पावनं भगवद्यशस्तस्य परस्परानुकथनं शिक्षेत् । यद्वा यज्ञः प्रति तत्र संस्पर्धादिपरित्यागेन मिथो या रतिः रमणं, या च तुष्टिः सुखं या च निवृत्तिः समस्तदुःखनिवृत्तिस्तां च शिक्षेत् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

भगवद् भक्त पुरुषों से मिलकर श्रीभगवान् का परम पावन यश का एक दूसरे से सुनना और सुनाना चाहिए

अथवा यज्ञ के प्रति स्पर्धा का नहीं करना परस्पर में एक दूसरे से प्रेम करना परस्पर में संतोष और सुख का अनुभव करे। प्रपञ्च से विरक्त रहकर हर प्रकार के दुःखों से होने वाली निवृत्ति को सीखे ॥३०॥

स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम् । भक्त्या संजातया भत्तया बिभ्रत्युत्पुलकां तनुम् ॥३१॥

अन्वयः— मिथः अघौघहरं हरिं स्मरन्त स्मारयन्तः च भक्त्या संजातया भक्त्या उत्पुलकां तनुम् विभ्रति ॥३१॥

अनुवाद— श्रीभ्रुगवान् सम्पूर्ण पाप समूहों का विनाश कर देते हैं। इस तरह के श्रीभगवान् का निरन्तर स्मरण करे और एक दूसरे को याद भी दिलाए। साधन भक्ति का अभ्यास करते-करते जब प्रेमा भक्ति का उद्भव हो जाता है तो उन भगवद् भक्तों के सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो जाता है। ऐसे रोमाञ्चित शरीर को ही भगवद् भक्त धारण करते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

एवं वर्तमानानां परमानन्दप्राप्तिमाह-स्मरन्त इति द्वयेन। भक्त्या साधनभक्त्या संजातया प्रेमलक्षणया भक्त्या ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से साधन भक्ति के अनुष्ठान से भगवद् भक्तों को परमानन्द की प्राप्ति होती है इस बात को **स्मरन्तः इत्यादि** दो श्लोको से बतलाते हैं। साधन भक्ति का सदा अनुष्ठान करते-करते जब प्रेमा भक्ति उद्रिक्त हो जाती है। उस भक्ति से भगवद् भक्तों के सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च हो जाता है, और वे परमानन्द का अनुभव करते हैं॥३१॥

क्वचिद्रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचिद्धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः ।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः ॥३२॥

अन्वयः— क्वचित् अच्युताचिन्तया रुदन्ति, क्वचिद् हसन्ति, नन्दन्ति, वदन्ति अलौकिका, नृत्यन्ति गायन्ति अजम् अनुशीलयन्ति, परम एत्य निर्वृत्ताः तुष्णीं भवन्ति ॥३२॥

अनुवाद— कभी-कभी तो यह सोचकर रोने लगते हैं कि अब तक श्रीहरि की मुझे प्राप्ति नहीं हुई मैं क्या करूँ ? और कभी श्रीभगवान् की प्राप्ति का अनुभव करके हँसने लगते हैं कभी अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण की प्राप्ति का अनुभव करके आनन्दानुभव करने लगते हैं। कभी तो वे अपने प्राण प्यारे श्रीकृष्ण से बातें करने लगते हैं। ऐसे भगवान् के भक्त लोकातीत हो जाते हैं। कभी तो वे अपने प्रियतम को रिझाने के लिए गीत गाने लगते हैं और नृत्य करने लगते हैं। वे निरन्तर श्रीभगवान् का परिशीलन करते रहते हैं। और कभी अपने प्रियतम परमात्मा को संयोग का अनुभव करके परमानन्द मग्न होकर मौन हो जाते हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अजं हरिमनुशीलयन्ति तल्लीलामभिनयन्ति। एवं परमेत्य प्राप्य निर्वृताः सन्तस्तूष्णीं भवन्ति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

निरन्तर श्रीहरि की लीलाओं का अभिनय करते रहते हैं वे भगवद् भक्त, श्रीहरि के संयोग प्राप्ति का अनुभव करके आनन्द मग्न होकर मौन हो जाते हैं ॥३२॥

इति भागवतान्धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया । नारायणपरो मायामञ्जस्तरति दुस्तराम् ॥३३॥

अन्वयः— इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् तदुत्थयाभक्त्या नारायण पर अंजः दुस्तराम् मायाम् तरति ॥३३॥

अनुवाद— राजन् इस प्रकार जो भागवत धर्मों की शिक्षा प्राप्त करता है उसको उससे भक्ति उत्पन्न हो जाती है। वह भगवान् नारायण का भक्त हो जाता है और अनायास ही इस दुस्तर माया को पार कर लेता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति–इतीति । भागवतधर्मोत्पन्नया भक्त्या ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक से भागवत धर्मों का उपसंहार करते हैं । भागवत धर्मों से उत्पन्न होने वाली भक्ति से।।३३।।

राजोवाच

नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः । निष्ठामर्हथ नो वक्तुं यूयं हि ब्रह्मवित्तमाः ।।३४।।

अन्वयः— नारायणाभिधानस्य ब्रह्मणः परमात्मनः नः निष्ठां वक्तुम् अर्हथ, यूयं हि ब्रह्मवितमाः ।।३४।।

महाराज निमि ने पूछा

अनुवाद— योगीश्वरों जिस परंब्रह्म परमात्मा का नाम नारायण है उनका स्वरूप क्या है ? यह आप लोग हमें बतलाये, आपलोग तो ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

'नारायणपरो मायां तरती' त्युक्ते पृच्छति–नारायणाभिधानस्येति । निष्ठां स्वरूपम् । अयं भावः–ब्रह्मैव तावन्नारायण इति भगवानिति परमात्मेति चोच्यते । तदुक्तम्–'वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् । ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।' इति । तथा–'नारायणे भगवति तदिदं विश्वमाहितम् । गृहीतमायोरुगुणः सर्गादावगुणः स्वतः ।' इत्यादिषु । तत्र किमेभिः शब्दैर्निर्विशेषं तदेव वस्तूच्यते, अस्ति वा कोऽपि विशेषांश इति ।।३४।।'

भाव प्रकाशिका

जो भगवान नारायण का भक्त होता है, वह माया को पार कर जाता है, इस बात को सुनकर राजा **नारायणाभिधानस्य०** इस श्लोक के द्वारा पूछते हैं **निष्ठाम्** अर्थात् स्वरूप को । कहने का अभिप्राय है कि ब्रह्म को ही नारायण, भगवान् तथा परमात्मा आदि नामों से अभिहित किया जाता है । कहा भी गया है **वदन्ति० इत्यादि** तत्त्वज्ञ पुरुष अद्वैत ज्ञान को ही ज्ञान कहते हैं । ब्रह्म भगवान् परमात्मा ये सभी शब्द एक ही अर्थ के बोधक हैं और भी कहा गया है- **नारायणे० इत्यादि** अर्थात् भगवान् नारायण पर ही यह सम्पूर्ण विश्व टिका हुआ है । वे सृष्टि के प्रारम्भ में माया के गुणों को स्वीकार कर लेते हैं । तो इन शब्दों से निर्विशेष ब्रह्म को कहा जाता है । इन शब्दों में कोई अन्तर है क्या ?।।३४।।

पिप्पलायन उवाच

स्थित्युद्भवप्रलयहेतुरहेतुरस्य यत्स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सद्बहिश्च ।
देहेन्द्रियासुहृदयानि चरन्ति येन संजीवितानि तदवेहि परं नरेन्द्र ।।३५।।

अन्वयः— नारेन्द्र अस्य स्थित्युद्भवप्रलय हेतुः, अहेतुः यत्स्वप्नजागर सुषुप्तिषु सत् बहिश्च येन देहेन्द्रिय सुहृदयानि चरन्ति संजीवितानि तत् परं अवेहि ।।३५।।

पिप्पलापन नामक योगीश्वरजी ने कहा

अनुवाद— राजेन्द्र जो इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि, स्थिति तथा संहार के कारण हैं, किन्तु जिनका कोई भी कारण नहीं है, जो स्वप्न जागर और सुषुप्ति के साक्षी है और इन सबों के बाहर समाधि में भी रहते हैं जिनकी ही सत्ता से सत्तावान होकर शरीर, इन्द्रिय और प्राण एवं अन्तःकरण अपना-अपना कार्य करते रहते हैं, उसी परम सत्य वस्तु को आप नारायण समझें ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

अत्रोत्तरम्-स्थित्युद्भवेति । अयमर्थः-अस्य विश्वस्य स्थित्युद्भवप्रलयानां हेतुः स्वयं चाहेतुर्हेतुरहितः स नारायण इति परमेव तत्त्वमवेहि स्वप्नजागरसुषुप्तिषु सदनुवर्तमानं यत् । वक्ष्यति च-'तुरीयं त्रिषु संततम्' इति । बहिश्च समाध्यादौ यत्सत्तद्ब्रह्मेति परमेव तत्त्वमवेहि । देहेन्द्रियप्राणमनांसि येन संजीवितानि सन्ति चरन्ति प्रवर्तन्ते तत्परमात्मेति परमेव तत्त्वमवेहि । एवं लक्षणभेदैर्नारायणादिनामभिरुच्यमानमपि परमेकमेव तत्त्वं जानीहि ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक से उत्तर दिया जाता है **स्थित्युद्‌भव इत्यादि** श्लोक से । इसका अर्थ इस प्रकार है जो इस सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि स्थिति और संहार के कारण हैं किन्तु उनका कोई कारण नहीं है वे भगवान् नारायण ही परम तत्त्व हैं यह जानो । स्वप्न जागर और सुषुप्ति इन तीनों कालों में जो साक्षी रूप से विद्यमान रहते हैं । स्वयं महर्षि बादरायण कहेंगे कि इन तीनों कालों में तुरीय जो परमात्मतत्त्व है वे बने रहते हैं । तथा समाधि आदि काल में भी जो सद्रूप से विद्यमान रहते हैं, उन्हें ही परमात्मतत्त्व ब्रह्म जानो । देह इन्द्रिय, प्राण और मन जिन श्रीभगवान् के कारण जीवित रहते हैं और अपना कार्य किया करते हैं उन्हें तुम परमतत्त्व नारायण जानो । इन विभिन्न लक्षणों और विभिन्न नामों से कहे जाने वाले परंतत्त्व एक ही हैं ।।३५।।

नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा प्राणेन्द्रियाणि च यथाऽनलमर्चिषः स्वाः ।
शब्दोऽपि बोधकनिषेधतयात्ममूलमर्थोक्तमाह यदृते न निषेधसिद्धि ।।३६।।

अन्वयः— यथा स्वाः अर्चिषः एतत् मनः न विशति न वाक्, उत न चक्षुः न प्राणोन्द्रियाणि । शब्दोऽपि बोधक निषेधतया आत्मभूलम् आह यद् ऋते निषेध सिद्धिम् ।।३६।।

अनुवाद— जिस तरह आग की चिनगारी आग को न तो प्रकाशित करती है न तो उसे जला ही सकती है, उसी तरह उस परमतत्त्व में और आत्म स्वरूप में न तो मन की गति है, और न वाणी की, नेत्र उसे नहीं देख सकते हैं, बुद्धि सोच भी नहीं सकती हैं, प्राण तथा इन्द्रियाँ तो वहाँ तक जा भी नहीं सकती हैं । **नेति नेति इत्यादि** श्रुतियों के शब्द भी वह यह है इस तरह उसका वर्णन नहीं कर सकते हैं । उसका बोध कराने वाले सभी साधन उनका निषेध करके तात्पर्य रूप से उस निषेध के मूल को लक्षित करा देते हैं, क्योंकि निषेध के आधार की यदि सत्ता न हो तो निषेध कौन कर रहा है निषेध की वृत्ति किस में है ? इन प्रश्नों का उत्तर नहीं रहने से निषेध की सिद्धि नहीं हो सकती हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

अवेहीत्यनेन विषयत्वं प्राप्तं निषेधति-नैतदिति । एतत्परं तत्त्वं मनो न विशति न विषयी करोति । बागुत वागपि चक्षुश्चात्मा बुद्धिश्च प्राणश्च क्रियाशक्त्या न प्राप्नोत्यन्यानि चेन्द्रियाणि । यथाऽनलं स्वाः स्वांशभूता अर्चिषो विस्फुलिङ्गादयो न प्रकाशयन्ति न दहन्ति च, तथा जडासु मन आदिवृत्तिष्वभिव्यज्यमानस्यात्मप्रकाशम्य तत्तद्वृत्तिप्रकाशकएय न तत्प्रकाशविषयत्वम्। 'प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रमन्नस्यान्नं मनसो ये मनो विदुः' इति । तथा- 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इत्यादिश्रुतेः । ननु-'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' इति श्रुतेः । शब्दगोचरत्वं प्रतीयते तत्राह-शब्दोऽपीति । शब्दोऽप्यात्ममूलमात्मनि प्रमाणं सदर्थोक्तमर्थादुक्तं यथा भवति तथा आह, न साक्षात् । कुतः । बोधकनिषेधतया स्वस्यैव बोधकस्य निषेधरूपत्वात् । 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।' 'यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते । तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि ।' 'यन्मनो न मनुते', 'न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनं' इत्यादिश्रुतेः । ननु तर्हि नैवाह श्रुतिः किमिदमुच्यते अर्थोक्तमाहेति तत्राह-यदृत इति । 'अथात आदेशो नेति नेति', 'अस्थूलमनणु', 'यतो वाचो निवर्तन्ते', 'यद्वाचानभ्युदितम्' इत्यादिनिषेधस्य यदवधिभूतं ब्रह्म ऋते बिना सिद्धिर्नास्ति । सर्वस्य निषेधस्य सावधित्वात् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

इससे पहले के श्लोक में अवेहि कहा गया है। उससे परब्रह्म की विषयता सिद्ध होती है, उसका निषेध **नैतत्० इत्यादि** श्लोक से किया गया है। इस श्लोक का अर्थ है कि इस पर तत्त्व को मन अपना विषय नहीं बनाता है। वाणी, चक्षु, बुद्धि तथा प्राण भी अपनी क्रिया शक्ति के द्वारा उस परंब्रह्म नहीं प्राप्त कर सकते है। दूसरी इन्द्रियाँ भी उसको अपना विषय नहीं बनाती हैं। जिस तरह चिनगारी अग्नि का चिनगारी अंशभूत हैं, किन्तु वे अग्नि को न तो प्रकाशित कर सकती हैं, और न तो अग्नि को जला पाती हैं। उस तरह जड़ मन आदि वृत्तियों में प्रकाशित होने वाले आत्मा के प्रकाश की विभिन्न वृत्तियाँ प्रकाशक नहीं हैं। अतएव वह ब्रह्म उन वृत्तियों का विषय नहीं है। श्रुतियाँ कहती है वे परंब्रह्म परमात्मा प्राण के भी प्राण हैं नेत्र के भी नेत्र हैं, श्रोत्र के भी श्रोत्र हैं, नासिका की भी नासिका हैं और मन के भी मन हैं, अर्थात् परमात्मा की सत्ता से ही इन सबों की स्थिति बनी हुई है और दूसरी श्रुति भी कहती है- **यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह** अर्थात् उस परंब्रह्म को अपना विषय बनाए बिना ही मन के साथ-साथ वाणी भी निवृत्त हो जाती हैं। **यद्वाचानभ्युदितम्** जो वाणी के द्वारा नहीं वर्णित की जाती अपितु जिससे वाणी बोलने का काम करती है। उसे ही तुम ब्रह्म जानो, जिसका मनन मन नहीं कर पाता है, कोई भी ब्रह्म को अपने नेत्रों से नहीं देखता है। प्रश्न होता है कि तब तो श्रुति ने कुछ नहीं कहा श्रुति क्या कह रही है। **अर्थोक्तमाह** इस पद से योगीश्वर कहते है जिसके बिना निषेध की भी सिद्धि नहीं हो सकती है। अर्थात् **आदेश नेति-नेति** अर्थात् यह नहीं यह नहीं, यही ब्रह्मोपदेश है। **अस्थूल मनणु** अर्थात् वे परंब्रह्म न तो स्थूल है न अणु है। जो वाणी का विषय नहीं बनता है। इत्यादि निषेधों का अवधिभूत है ब्रह्म। ब्रह्म के बिना निषेध की सिद्धि नहीं हो सकती है। जितने भी निषेध हैं वे सीमित हैं और ब्रह्म निरवधिक है ॥३६॥

सत्त्वं रजस्तम इति त्रिवृदेकमादौ सूत्रं महानहमिति प्रवदन्ति जीवम् ।
ज्ञानक्रियार्थफलरूपतयोरुशक्ति ब्रह्मैव भाति सदसच्च तयोः परं यत् ॥३७॥

अन्वयः— आदौ एकम् सत्त्वं रजस्तम इति त्रिवृत् सूत्रं, महान्, अहम् जीवम् इति वदन्ति ज्ञानक्रियार्थ फलरूपतया उरुशक्ति ब्रह्मैवसदसच्चभाति यत् तयोः परम् ॥३७॥

अनुवाद— सृष्टि से पहले एक वही है। सृष्टि का निरूपण करने के लिए उस ब्रह्म को सत्त्व रजस् तमस् इस तरह से त्रिवृत्त प्रकृति कहा गया है। उसके पश्चात् क्रिया प्रधान होने के कारण सूत्रात्मा कहा गया है। ज्ञान प्रधान होने के कारण उसी को महान् कहा गया, जीव की उपाधि होने से उसे अहङ्कार के रूप में वर्णन किया गया। वास्तविकता है कि जितनी भी शक्तियाँ हैं चाहे वे इन्द्रियों की अधिष्ठातृ देवताओं के रूप में हों, चाहे इन्द्रियों की हों, या इन्द्रियों के विषयों की हो अथवा विषयों के प्रकाश के रूप में हो सबके सब ब्रह्म ही हैं इनसे परे भी जो कुछ है वह भी ब्रह्म ही हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि प्रमाणाविषयत्वान्नास्ति ब्रह्मेति प्रसज्जेतात आह–सत्त्वमिति। सत्स्थूलं कार्यम्, असत्सूक्ष्मं कारणं तत्सर्वं ब्रह्मैव भाति। कुतःयद्यस्मात्तयोः सदसतोः परं कारणं कार्यं कारणाद्भिन्नं न भवति–'वाचारम्भणम्' इति श्रुतेः। ननु कथमेकं बहुविधस्य कारणं तत्राह–उरुशक्ति अनेकशक्तिमत्। उरुर्महती मायालक्षणा शक्तिर्यस्य तदिति वा। बहुधा भानमेव दर्शयति–आदौ यदेकं ब्रह्म तदेव सत्त्वं रजस्तम इति त्रिवृत्प्रधानं प्रवदन्ति। ततः क्रियाशक्त्या सूत्रं ज्ञानशक्त्या महानिति तदेव प्रवदन्ति, ततोऽहमिति जीवं जीवोपाधिमहंकारं च तदेव प्रवदन्ति। ततश्च ज्ञानक्रियार्थफलरूपतया ज्ञानशब्देन देवताः क्रिया इन्द्रियाणि, अर्था विषयाः, फलं तत्प्रकाशः सुखादि वा तद्रूपतया ब्रह्मैव भाति। न हि सर्वस्वरूपेण स्वतो भासमानस्य ब्रह्मणः स्वसिद्धौ प्रमाणापेक्षेति भावः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

यदि वह किसी भी प्रमाण का विषय नहीं अतएव वह नहीं है यही मानना चाहिए । तो इसके उत्तर में योगीश्वरजी **सत्त्वमित्यादि** श्लोक कहते हैं सत् अर्थात् स्थूल कार्य, तथा असत् अर्थात् सूक्ष्मकारण सबकुछ ब्रह्म ही है । क्योंकि चूकि उन कार्य कारणों से परम् अर्थात् भिन्न भी जो कुछ है वह भी ब्रह्म ही है । इसी अर्थ का प्रतिपादन वाचारम्भण श्रुति करती है । प्रश्न है कि एक ही अनेक प्रकार के कार्यों का कारण कैसे हो सकता हैं । इस पर कहा गया है कि परंब्रह्म अनेक शक्ति सम्पन्न हैं । परंब्रह्म की माया रूपी महती शक्ति है । उस ब्रह्म की अनेक प्रकार की शक्तियों के रूप में प्रतीति होती है इस बात को बतलाते हैं । जो ब्रह्म सृष्टि से पहले एक था उसी बात को सृष्टि का निरूपण करने के लिए सत्त्व, रजस एवं तमस रूप त्रिगुणात्मिका प्रकृति कहा उसके क्रिया प्रधान होने के कारण सूत्रात्मा, ज्ञानशक्ति से युक्त होने के कारण महान् उसी को कहा गया । उसी को अहङ्कार अर्थात् जीव की उपाधि होने के कारण अहङ्कार को ही ब्रह्म कहते हैं । ज्ञान क्रियार्थ फल रूप तथा ज्ञान शब्द से इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं की शक्ति, क्रिया शब्द से इन्द्रियों की शक्ति, अर्थ शब्द से इन्द्रियों के विषयों की शक्ति, फल शब्द से इन्द्रियों के प्रकाश की शक्ति, ये सबके सब शक्तियाँ ब्रह्म रूप ही, प्रतीत होते हैं । यहाँ पर सर्वस्वरूप के द्वारा स्वयं प्रकाश ब्रह्म के प्रकाशित होते रहने पर ब्रह्म की सिद्धि में प्रमाण की अपेक्षा नहीं है।।३७।।

नात्मा जजान न मरिष्यति नैधतेऽसौ न क्षीयते सवनविद्व्यभिचारिणां हि ।
सर्वत्र शश्वदनपाय्युपलब्धिमात्रं प्राणो यथेन्द्रियबलेन विकल्पितं सत् ।।३८।।

अन्वयः— आत्मा न जजान, न मरिष्यति असौ न एधते न क्षीयते सवनविद्वयभिचारिणां हि । सर्वत्र शश्वत अनपायी, उपलब्धिमात्रं प्राणो यथा इन्द्रिय बलेन विकल्पितः ।।३८।।

अनुवाद— आत्मा न तो कभी उत्पन्न हुआ और न मरेगा भी । जितने भी परिवर्तनशील पदार्थ हैं, चाहे वे क्रिया, सङ्कल्प और उनके अभाव के रूप में ही क्यों न हो सबकी भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान सबों को सत्ता का वा साक्षी है, वह देश काल एवं वस्तु से परिच्छिन्न नहीं है । वह अविनाशी है । वह उपलब्धि करने वाला अथवा उपलब्धि कराने वाला भी नहीं है, वह उपलब्धि मात्र है । जैसे प्राण तो एक है किन्तु स्थान के भेद से उसके अनेक भेद हो जाते है । इसीतरह ज्ञान एक है किन्तु इन्द्रियों के भेद से उनके अनेक रूप हो जाते हैं ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

ननु सर्वात्मकं चेद्ब्रह्म तर्हि सर्वस्य कार्यस्य जन्मादिविकारवत्त्वाद्ब्रह्मणोऽपि तत्प्रसङ्गः स्यादत आह–नात्मेति । आत्मा ब्रह्म न जजान न जातः । जन्माभावादेव तदनन्तरास्तितालक्षणोऽपि विकारो नास्ति । नैधते न वर्धते । वृद्ध्यभावादेव विपरिणामोऽपि निरस्तः । कुतः । हि यस्माद्व्यभिचारिणामागमापायिनां बालकयुवादिदेहानां सवनवित्तत्तत्कालद्रष्टा । न ह्यवस्थावतां द्रष्टा तदवस्थो भवतीत्यर्थः । ननु निरवस्थः कोऽसावात्मा, अत आह–उपलब्धि मात्रमिति । नन्वायातं तर्हि क्षणिकत्वं नेत्याह–सर्वत्रेति। सर्वत्र देशे शश्वत्सर्वदा अनपाय्यनुवर्तमानम् । ननु नीलज्ञानं जातं, पीतज्ञानं नष्टमिति प्रतीतेर्न ज्ञानस्यानपायित्वमत आह–इन्द्रियबलेनेति । सदेव ज्ञानमिन्द्रियबलेन विविधं कल्पितम् । नीलाद्याकारवृत्तय एव जायन्ते नश्यन्ति च, न ज्ञानमिति भावः । व्यभिचारिष्वव्यभिचारे दृष्टान्तः–प्राणो यथेति ।।३८।।'

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि यदि आत्मा सर्वात्मक है तब तो सभी कार्यों के विकृत होते रहने पर ब्रह्म के भी विकृत होने का प्रसङ्ग होगा । इसके उत्तर में **नात्मा जजान० इत्यादि** श्लोक पढ़ा गया है । श्लोक का अर्थ कि आत्मा कभी जन्म न ही लेता है वह मरता भी नहीं है । वह न तो बढ़ता है, न घटता है । जितने भी विकृत होने वाले पदार्थ है व्यभिचारी विनाशशील पदार्थ है चाहे वे क्रिया, सङ्कल्प और उनके अभाव रूप ही क्यों न हो, वह सबों के भूत भविष्यत् एवं

वर्तमान रूप सत्ता का साक्षी है इस आत्मा की देह के समान् बाल युवा आदि अवस्थाएँ भी नहीं होती । यदि कहे कि अवस्था यह कैसा पदार्थ है ? इस पर कहते हैं कि आत्मा तो उपलब्धि मात्र है । यह सर्वत्र एवं शाश्वत है। जैसे एक ही प्राण स्थान भेद के कारण अनेक हो जाता है । अथवा एक ही ज्ञान जैसे इन्द्रियों के भेद से भिन्न हो जाता है । यदि कहें कि आत्मा उपलब्धि मात्र है तब तो क्षणिक होगा । इस पर बतलाते हैं कि आत्मा सर्वदा रहती है । यदि कहें कि ज्ञान को ही आप आत्मा मानते हैं और नित्य भी मानते हैं ऐसी स्थिति में नील ज्ञान नष्ट हो गया इस तरह के ज्ञान को अनपायि कैसे कह सकते है इन्द्रियों और प्राणों का इसके उत्तर में दृष्टान्त उपन्यस्त किया गया है ॥३८॥

अण्डेषु पेशिषु तरुष्वविनिश्चितेषु प्राणो हि जीवमुपधावति तत्र तत्र ।
सन्ने यदिन्द्रियगणेऽहमि च प्रसुप्ते कूटस्थ आशयमृते तदनुस्मृतिर्नः ॥३९॥

अन्वयः— अण्डेषु, पेशिषु तरुषु अनिश्चितेषु प्राणो हि तत्र-तत्र जीवम् उपधावति सन्ने यदिन्द्रिगणे अहमि च प्रसुप्ते कूटस्थः आशयम् ऋते तदनुस्मृतिः नः ॥३९॥

अनुवाद— संसार में चार प्रकार के जीव होती है अण्डे से पैदा होने वाले पक्षी सर्प आदि, नाल में बेधकर पैदा होने वाले मनुष्य, पशु आदि, पृथ्वी को फोड़कर पैदा होने वाले वृक्ष आदि और पसीने से पैदा होने वालें खटमल आदि । इन सभी जीव शरीरों में प्राण शक्ति जीवों के पीछे लगी रहती हैं । शरीरों के भिन्न प्रकार का होने पर भी प्राण एक ही रहता है । सुषुप्ति की अवस्था में, इन्द्रियाँ चेष्टा विहीन हो जाती हैं, अहङ्कार भी लीन हो जाता है । अर्थात् लिङ्ग शरीर भी नहीं रहता है । उस समय यदि कूटस्थ आत्मा भी नहीं रहे तो फिर सुखमहमष्वाप्सम् यह स्मृति कैसे होगी । सोकर जगनें पर होने वाली स्मृति ही सुषुप्ति में भी आत्मा के सद्भाव में प्रमाण है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

दृष्टान्तं विवृण्वन्निन्द्रियादिलयेन निर्विकारात्मोपलब्धिं दर्शयति अण्डेष्विति । पेशिषु-जरायुजेषु तरुषु उद्भिज्जेष्वविनिश्चितेषु। स्वेदजेषु उपधावत्यनुवर्तते । एवं दृष्टान्ते निर्विकारत्वं प्रदर्श्य दार्ष्टान्तिकेऽपि दर्शयति । कथम् । तदैवात्मा सविकार एवं प्रतीयते यद्यदा जागरे इन्द्रियगणो यदा च स्वप्ने तत्संस्कारवानहंकारः यदा तु प्रसुप्तं तदा तस्मिन्प्रसुप्ते इन्द्रियगणे सन्ने लीने अहम्यहङ्कारे च सन्ने कूटस्थो निर्विकार एवात्मा । कुतः आशयमृते लिङ्गशरीरमुपाधिं विना । विकारहेतोरुपाधेरभावादित्यर्थः । नन्वहंकारपर्यन्तस्य सर्वस्य लये शून्यमेवावशिष्येत, तत्कथं तदा कूटस्थ आत्मा अत आह-तदनुस्मृतिर्नः, तस्य दर्शनस्पर्शनादिविशेषज्ञानशून्यस्य सुखात्मनः सुषुप्तिसाक्षिणः स्मृतिर्नोऽस्माकं भवति, एतावन्तं कालं सुखमहं सुप्तो न किंचिदवेदिषमिति । अतोऽननुभूतस्यास्मरणादस्त्येव सुषुप्तावात्मानुभवो विषयसंबन्धाभावात्तु न स्पष्ट इति भावः । तथा च श्रुतिः-'यद्वै तन्न पश्यति पश्यन्वै तद्द्रष्टव्यं न पश्यति' । 'न हि द्रष्टुर्दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यते' इति ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

दृष्टान्त की व्याख्या करते हुए इन्द्रियों का लय हो जाने के कारण निर्विकार आत्मा की उपलब्धि होती है इस बात को **अण्डेषु इत्यादि** के द्वारा दिखलाते है । अण्डेषु अर्थात अण्डों से उत्पन्न होने वाले, पेशिषु अर्थात् जरायु से पैदा होने वाले, पृथिवी फोड़कर पैदा होने वाले, तथा पसीने से पैदा होने वाले इन विविध प्रकार के शरीरों में एक ही प्राण शक्ति लगी रहती है । इस तरह से दृष्टान्त के निर्विकारत्व को दिखलाकर दार्ष्टान्तिक आत्मा के भी निर्विकारत्व को दिखलाते हैं । क्योंकि उसी समय आत्मा सविकार के समान प्रतीत होती है जब जागरावस्था में इन्द्रियाँ काम करती रहती हैं तथा स्वापकाल में मैं अहङ्कारवान् हूँ इस तरह से प्रतीति होती है । सुषुप्तिकाल में जब इन्द्रियाँ सो जाती हैं अहङ्कार में विलीन हो जाता है उस समय कूटस्थ आत्मा निर्विकार रहता है । क्योंकि आशयमृते अर्थात् लिङ्ग शरीर उपाधि के बिना विकार के कारणभूत उपाधि का अभाव होने से आत्मा निर्विकार प्रतीत होती है । प्रश्न

होंता है कि अङ्कार पर्यन्त सबों के निश्चेष्ट हो जाने पर तो शून्य ही अवशिष्ट रहेगा अतएव उस समय आत्मा कैसे निर्विकार हो सकती है । इस पर कहते है तदनुस्मृतिर्नः । अर्थात् दर्शन एवं स्पर्श आदि विशेष ज्ञान से रहित सुख स्वरूप आत्मा की सुषुप्ति के साक्षी रूप से हमलोगों को प्रतीति होती है । मैं सुख पूर्वक सोया । उस समय विषयों का सम्बन्ध नहीं होने से उसकी स्पष्ट प्रतीति नहीं होती है । श्रुति भी कहती है- **यद्वै तन्न पश्यति पश्यन् वै तद् द्रष्टव्यम् न पश्यति तथा नहि दृष्टुः दृष्टेः विपरिलोपो दृश्यते** । अर्थात् सुषुप्ति में द्रष्टा आत्मा का अभाव नहीं रहता है ।।२९।।

यर्ह्यब्जनाभचरणैषणयारुभक्त्या चेतोमलानि विधमेद्गुणकर्मजानि ।
तस्मिन्विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्त्वं साक्षाद्यथाऽमलदृशोः सवितृप्रकाशः ।।४०।।

अन्वयः— यर्हि अब्जनाभ चरणैषणया उरुभक्त्या गुण कर्मजानि चेतोमलानि विधमेत् तस्मिन् विशुद्धे आत्मतत्त्वं साक्षात् उपलभ्यते यथा अमलदृशोः सवितृप्रकाशः साक्षात् दृश्यते ।।४०।।

अनुवाद— जब पद्मनाभ श्रीभगवान् के चरण कमलों की प्राप्ति की इच्छा से तीव्र भक्ति की जाती है उस समय वह भक्ति ही अग्नि के समान गुण एवं कर्मों से उत्पन्न अन्तःकरण के मल को विनष्ट कर देती है उस समय उस विशुद्ध अन्तःकरण में आत्मतत्त्व की साक्षात् उपलब्धि होती है, जिस तरह शुद्ध आखों से सूर्य का प्रकाश साक्षात् दिखता है ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

ननु यदि सुषुप्तौ कूटस्थात्मानुभवो भवेत्कथं पुनरपि संसारः स्यात्, अविद्यातत्संस्काराणां विद्यमानत्वादिति चेत्कदा तर्हि तन्निवर्तकोऽनुभवो भवेदत आह-यर्हीति । वित्तैषणादि विहाय केवलमब्जनाभस्यैव चरणेच्छया या उरुभक्तिस्तया पुमांश्चेतसो मलानि विधमेन्नाशयेत् । चेत एव वा कर्तृ स्वगतानि मलानि तथा भक्त्या क्षालयेत् । तदा तस्मिन्विशुद्धे चेतसि सति साक्षादव्यवधानेनात्मतत्त्वमुपलभ्यते । अमलयोर्दृशोः सत्योर्यथा पूर्वमेव सिद्धः सवितृप्रकाशः इति ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि यदि सुषुप्ति में कूटस्थ आत्मा का अनुभव होता है तो फिर पुनः संसार कैसे होता है? यदि कहें कि अविद्या और उसके संस्कारों के बने रहने के कारण पुनः संसार होता है तो फिर प्रश्न होता है कि अविद्या का निवर्तक ज्ञान कब होता है ? इस पर **यर्ह्यब्जनाभ० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । धन आदि की प्राप्ति की अभिलाषा का परित्याग करके जब केवल पद्मनाभ भगवान् के चरण कमलों की प्राप्ति की इच्छा से तीव्र भक्ति की जाती है तो उसके द्वारा ही अग्नि के समान मनुष्य के अन्तःकरण का मल विनष्ट हो जाता उस समय उस शुद्ध अन्तःकरण में आत्मतत्त्व की साक्षात् उपलब्धि उसी तरह होती है जिस तरह निर्दोष आँखों से साक्षात् सूर्य के प्रकाश की उपलब्धि होती है ।।४०।।

राजोवाच

कर्मयोगं वदत नः पुरुषो येन संस्कृतः । विधूयेहाशु कर्माणि नैष्कर्म्यं विन्दते परम् ।।४१।।

अन्वयः— न कर्मयोगं वदत येन संस्कृतः पुरुषः इह कर्माणि आशु विहाय नैष्कर्म्यम् अश्नुते ।।४१।।

महाराज निमि ने कहा

अनुवाद— योगीश्वरों आपलोग हमें कर्मयोग का उपदेश दें जिसके द्वारा शुद्ध होकर मनुष्य नैष्कर्म्य को प्राप्त कर लेता है । अर्थात् कर्तृत्व, कर्म और कर्मफल की निवृत्ति करने वाला ज्ञान प्राप्त कर लेता है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

भक्तेः कर्मयोगाधीनत्वात्तं पृच्छति-कर्मयोगमिति । नैष्कर्म्यं कर्मनिवृत्तिसाध्यं ज्ञानम् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

भक्ति चूकि कर्मयोग के अधीन होती है अतएव **कर्मयोगम्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कर्मयोग को पूछते हैं राजा निमि । नैष्कर्म्य अर्थात् कर्म निवृति साध्यज्ञान ।।४१।।

एवं प्रश्नमृषीन्पूर्वमपृच्छं पितुरन्तिके । नाब्रुवन्ब्रह्मणः पुत्रास्तत्र कारणमुच्यताम् ।।४२।।

अन्वयः— एवम् प्रश्नम् पितुरन्ति के पूर्वम् ऋषीनपृच्छम् ब्रह्मणः पुत्राः न अब्रुवन् तत्र कारणम् उच्यताम् ।।४२।।

अनुवाद— एक बार पूर्वकाल में मैंने अपने पिता इक्ष्वाकु के समक्ष ही ब्रह्माजी के सर्वज्ञ सनकादिक ऋषियों से पूछा था किन्तु सर्वज्ञ होने पर भी वे ऋषि इस प्रश्न का उत्तर नहीं बतलाये इसका कारण क्या था ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

प्रश्नान्तरमाह-एवमिति । प्रश्नं प्रष्टव्यमर्थम् । पितुरिक्ष्वाकोः । ब्रह्मणः पुत्राः सनकादयः सर्वज्ञा अपि नाब्रुवन् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

महाराज निमि दूसरा प्रश्न पूछते हैं । इसी प्रश्न को मैने अपने पिता इक्ष्वाकु के समझ ब्रह्माजी के सर्वज्ञ पुत्रों से पूछा था किन्तु सर्वज्ञ होने पर भी उन सनकादि महर्षियों ने मुझे उन प्रश्न का उत्तर नहीं दिया था आपलोग बताएँ की उसका कारण क्या था ?।।४२।।

आविर्होत्र उवाच

कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो न लौकिकः । वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्तत्र मुह्यन्ति सूरयः ।।४३।।

अन्वयः— कर्माकर्मविकर्मेति वेदवादो लौकिको न वेदस्य च ईश्वरात्मत्वात् तत्र सूरयः मुह्यन्ति ।।४३।।

आविर्होत्र नामक योगीश्वर ने कहा

अनुवाद— कर्म (शास्त्र विहित) अकर्म (शास्त्र निषिद्ध) और विकर्म (विहित का उल्लंघन) ये तीनों वेदों के द्वारा ही जाने जा सकते हैं । इनकी व्यवस्था लौकिक रीति से नहीं होती है । वेद अपौरुषेय होने के कारण ईश्वर रूप हैं । इसीलिए उनके तात्पर्य का निश्चय करना बड़ा ही कठिन है । इसके विषय में बड़े-बड़े विद्वान भी भूल करते हैं। अतएव तुम्हारी बचपन को देखकर सनकादि ऋषियों ने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

गहनत्वद्योतनाय प्रथमं द्वितीयप्रश्नस्योत्तरमाह-कर्मेति । कर्म विहितम् । अकर्म तद्विपरीतं निषिद्धम् । विकर्म विगतं कर्म विहिताकरणम् । एतत्त्यं वेदवादो वेदैकगम्यम् । न लौकिकः । वेदस्येश्वरात्मत्वादीश्वरादुद्भूतत्वादपौरुषेयत्वादित्यर्थः । पुंवाक्ये हि वक्तुरभिप्रायतोऽर्थज्ञानं शक्यमपौरुषेये तु केवलं वाक्यपौर्वापर्येणैव तात्पर्यावधारणं, तच्च दुष्करमिति तत्र कर्मादौ विद्वांसोऽपि मुह्यन्ति किमुतान्ये । अतस्तव तदा बालत्वान्नैवाब्रुवन्निति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

विषय की गहनता को सूचित करने के लिए योगीश्वरजी ने पहले दूसरे प्रश्न का उत्तर **कर्माकर्मीविकर्मेति० इत्यादि** श्लोक से दिया । शास्त्र विहित कर्म को कर्म कहते है, शास्त्र निषिद्ध कर्म को अकर्म कहते हैं । विहित कर्म को नहीं करने को विकर्म कहते हैं । ये तीनों प्रकार के कर्म केवल शास्त्र के माध्यम से ही जाने जा सकते हैं ये लौकिक नहीं है अर्थात् लोक के अनुसार इनकी व्यवस्था नहीं की जा सकती है । वेद ईश्वर से उद्भूत हैं,

अतएव वेद अपौरुषेय हैं। पुरुषों के ही वाक्य को सुनकर उनके अभिप्रायानुसार अर्थ का ज्ञान होना सम्भव नहीं है, अपौरुषेय वाक्य को तो पौर्वापर्य के अनुसार तात्पर्य का निर्धारण किया जा सकता है। और वेद वाक्यों के तात्पर्य का निश्चय करना कठिन है। क्योंकि कर्मों आदि के विषय में विद्वान भी मोहित हो जाते हैं तो दूसरों की बात कौन है? अतएव राजन् उस समय तुम्हारी बाल्यावस्था को देखकर ऋषियों ने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया ।।४३।।

परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम् । कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा ।।४४।।

अन्वयः— अयं वेदः परोक्षवादः बालानाम् अनुशासनम् कर्माणि कर्ममोक्षाय विद्यते यथा हि अगदम् ।।४४।।

अनुवाद— यह वेद परोक्षवादात्मक है। यह कर्मों के परित्याग के लिए कर्मों का उपदेश करता है। यह उसी तरह है जैसे बच्चों को दवा खिलाने के लिए दवा खाने के बाद मिठाई खिलाने की लालच दी जाती है, उसी तरह अज्ञानियों को परलोक की लालच देता है ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

दुर्ज्ञेयं वेदतात्पर्यमाह-परोक्षवाद इति। यत्रान्यथास्थितोऽर्थः सङ्गोपयितुमन्यथा कृत्वोच्यते स परोक्षवादः। तथा च श्रुतिः- 'तं वा एतं चतुर्हूतँ सन्तम्। चतुर्होतेत्याचक्षते परोक्षेण। परोक्षप्रिया इव हि देवाः।' इति, परोक्ष वादत्वमेवाह-कर्ममोक्षायेति। ननु स्वर्गाद्यर्थं कर्माणि विधत्ते, न कर्ममोक्षार्थं तत्राह-बालानामनुशासनं यथा भवति तथा। अत्र दृष्टान्तः- अगदमौषधम्। यथा पिता बालमगदं पाययन्खण्डलड्डुकादिभिः प्रलोभयन्पाययति ददाति च तानि। नैतावताऽगदपानस्य तल्लाभः प्रयोजनम्, अपि त्वारोग्यम्। तथा वेदोऽप्यवान्तरफलैः प्रलोभयन्कर्ममोक्षायैव कर्माणि विधत्ते ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

वेदों के तात्पर्य को जानना बड़ा ही कठिन है इस बात को परोक्षवाद इत्यादि श्लोक से कहा गया है। जहाँ पर दूसरे प्रकार से स्थित अर्थ को छिपाने के लिए कोई बात दूसरे प्रकार से कही जाती है उसे परोक्षवाद कहते हैं। श्रुति भी कहती है- **तंवा एतं चतुर्हुतं सन्तं चतुर्होतोत्याचक्षते। परोक्ष प्रिया इव हि देवाः।** अर्थात् उसको चार प्रकार से होम किए गये को चतुर्होता कहा जाता है, क्योंकि देवता तो परोक्षप्रिय ही होते हैं। परोक्षवादत्व का ही प्रतिपादन करते हैं। **ननु० इत्यादि** प्रश्न है कि कर्मों का विधान स्वर्गादि की प्राप्ति के लिए ही वेद उपदेश देते हैं तो ऐसी बात नहीं कर्मों का परित्याग करने के लिए वेद कर्मों का उपेदश देते हैं। यह उसी तरह से होता है जैसे बालकों को मिठाई देने की लालच देकर उनको कड़वी दवा पिलाई जाती है। जैसे पिता बालक को दवा पिलाते समय उसको लड्डू देने का प्रलोभन देता है दवा पिलाने के बाद लड्डू देता भी है। एतावता दवा पीने का वह प्रयोजन नहीं है। अपितु दवा पिलाने का प्रयोजन आरोग्य की प्राप्ति है। उसी तरह वेद भी स्वर्ग प्राप्ति रूपी फल को बतलाकर कर्मों के परित्याग के लिए ही कर्मो का विधान करता है ।।४४।।

नाचरेद्यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः । विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ।।४५।।

अन्वयः— स्वयमज्ञः अजितेन्द्रियः यः वेदोक्तं नाचरेत् विकर्मणा अधर्मेण हि सः मृत्योः मृत्युम् उपैति ।।४५।।

अनुवाद— जो स्वयम् अज्ञानी है तथा जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं है वह यदि मनमाने ढंग से वेदोक्त कर्मो का परित्याग कर देता है तथा विहित कर्मों का आचरण नहीं करता है, वह विकर्म रूप अधर्म के कारण बार-बार जन्म और मृत्यु के चक्र में पड़ता है ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

ननु कर्ममोक्षश्चेत्पुरुषार्थस्तर्हि प्रथमेव कर्म त्यज्यतामत आह-नाचरेदिति। अजितेन्द्रियत्वादज्ञः स्वयं यदि नाचरेत्तर्हि विकर्मणा कर्मानाचरणलक्षणेनाधर्मेण मृत्योरनन्तरं मृत्युमेव प्राप्नोति। तथा च श्रुतिः- 'मृत्वा पुनर्मृत्युमापद्यन्ते अर्द्यमानाः स्वकर्मभिः' इति ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि कर्म का परित्याग ही यदि पुरुषार्थ है तो पहले ही कर्म का परित्याग कर देना चाहिए। तो इसके उत्तर में **नाचरेत्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं है अतएव वह अज्ञ है, यदि वह स्वयं विहित कर्मों को नहीं करता है तब तो विकर्मणा कर्मों का आचरण नहीं करने के कारण अधर्म करता है तो वह बार-बार मृत्यु को प्राप्त करता है। श्रुति भी कहती है- **मृत्वा पुनर्मृत्युमा० इत्यादि** अर्थात् अपने विहित कर्मों के द्वारा पीड़ित किया जाने वाला बार-बार मरता है ॥४५॥

वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे । नैष्कर्म्यां लभते सिद्धिं रोचनार्था फलश्रुतिः ॥४६॥

अन्वयः— वेदोक्तमेव निःसङ्गः कुर्वाणः ईश्वरे अर्पितः नैष्कर्म्यां सिद्धिं लभते। फलश्रुतिः रोचनार्था ॥४६॥

अनुवाद— जो वेद विहित कर्मों का अनुष्ठान किसी कामना विशेष से नहीं करता और अपने द्वारा अनुष्ठित कर्मों को परमात्मा को समर्पित कर देता है तो उसी से उसे **नैष्कर्म्य सिद्धि** अर्थात् उस ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है जो कर्मों का परित्याग करने से होती है। कर्मों के फल जो स्वर्गादि की प्राप्ति आदि बतलाये गये है उसका तात्पर्य फल की सत्यता में नहीं अपितु कर्मों में रुचि उत्पन्न करने के लिए है ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

तस्माद्वेदोक्तमेव कुर्वाणो न तु निषिद्धम्। ननु कर्मणि क्रियमाणे तस्मिन्नासक्तिस्तत्फलं च स्यान्नतु नैष्कर्म्यरूपा सिद्धिरत आह-निःसङ्गोऽनभिनिवेशवान्। ईश्वरेऽर्पितं न तु फलोद्देशेन। ननु फलस्य श्रुतत्वात्कर्मणि कृते फलं भवेदेव, न, रोचनार्थेति। कर्मणि रुच्युत्पादनार्थमगदपाने खण्डलड्डुकादिवत्। ततश्च कर्मभिरुच्या वेदार्थं सम्यग्विचारयति। तदा च 'योवा एतदक्षरमविदित्वा गार्ग्यस्माल्लोकात् प्रैति स कृपणः' इत्यनात्मज्ञस्यैव कृपणताम्। 'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति। ब्रह्मचर्येण तपसा श्रद्धया यज्ञेनानाशकेन' इति यज्ञादीनां ज्ञानशेषतां चावधार्य निष्कामेषु कर्मसु प्रवर्तते। ततश्च 'स्वर्गकामो यजेत' इत्यादिभिः। कामितस्यैव स्वर्गादेः फलत्वेनावगमादकामितोऽसौ न भवतीति नैष्कर्म्यसिद्धिर्भवतीति भावः ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

अतएव वेदोक्त कर्मों को ही करने वाला न कि निषिद्ध कर्मों को। प्रश्न होता है कि कर्म के करने पर तो उसमें आसक्ति तथा उस कर्म के फल तो होते ही हैं नैष्कर्य स्वरूपा सिद्धि नहीं होती है अतएव कहा गया निःसङ्गः अभिनिवेश पूर्वक नहीं और उन कर्मों को फल की प्राप्ति के लिए नहीं अपितु ईश्वर को जो कर्मों को समर्पित कर देता है। प्रश्न है कि कर्मों के फल को श्रुति बतलाती है, अतएव फल तो होगा ही तो ऐसी बात नहीं है। कर्मों की फलश्रुति तो प्ररोचनार्थं होती है। अर्थात् कर्मों में रुचि उत्पन्न करने के लिए है जिस तरह लड्डू प्रदान दवा पीने में रुचि उत्पन्न करने के लिए होती है। उसके कारण कर्म में अभिरुचि होने से वह वेदार्थों का अच्छी तरह से विचार करता है। उस समय वह **यो वा एतदक्षरम विदित्वा गार्ग्यस्माल्लोकात् प्रैति स कृपणः** अर्थात् हे गार्गि जो मनुष्य इस अक्षर परमात्म तत्त्व को जाने बिना शरीर त्याग देता है, वह शोचनीय है। इस श्रुति में अनात्मज्ञ को ही कृपण कहा गया है। **'तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणाविपिदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसा अनाशकेन।'** अर्थात् जो ज्ञानी पुरुष वेदवाक्यों के अनुसार यज्ञ, दान तपस्या एवं उपवास के द्वारा परब्रह्म को जानने की इच्छा करते है इस तरह से यज्ञ आदि को ज्ञान के शेष रूप से निर्धारण करके निष्काम कर्मों में प्रवृत्त होते है। अतएव **'स्वर्गकामोयजेत' इत्यदि** वाक्यों से कामी पुरुष के लिए ही स्वर्ग आदि फलरूप से प्रतीत होते हैं। अतएव ऐसे लोगों को नैष्कर्म्य सिद्धि नहीं होती है ॥४६॥

य आशु हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुः परात्मनः । विधिनोपचरेद्देवं तन्त्रोक्तेन च केशवम् ॥४७॥

अन्वयः— यः आशु परात्मनः हृदयग्रन्थिं निर्जिहीर्षुः तन्त्रोक्तेन विधिना च केशवम् देवम् अर्चेत् ॥४७॥

अनुवाद— जो पुरुष चाहता है कि मेरे ब्रह्म स्वरूप आत्मा की हृदयग्रन्थि शीघ्र खुल जाय तो उसे चाहिए कि वह वैदिक एवं तान्त्रिक दोनों ही पद्धतियों से श्रीभगवान् की आराधना करे ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

वैदिकं कर्मयोगमुक्त्वा तान्त्रिकमाह-य आश्विति । परात्मनः परस्यैव सत आत्मनो जीवस्य हृदयग्रन्थिमहंकारबन्धं निर्हर्तुमिच्छुः सन् तन्त्रोक्तेन च विधिना प्रकारेण भजेत् । तन्त्रमागमः । चकराद्वैदिकेन सह समुच्चयमाह ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

अब वैदिक कर्मयोग का वर्णन करके तान्त्रिक कर्मयोग का वर्णन **य आशु० इत्यादि** श्लोक से करते हैं । परात्मनः अर्थात् परमात्म स्वरूप जीवात्मा का, **हृदयन्थिम्** अर्थात् अहङ्कार की ग्रन्थि को शीघ्र खुलवाना चाहने वाला आगम विधि से श्रीभगवान् की आराधना करे । **तन्त्रोक्तेन च** के चकार का अभिप्राय हैं वैदिक विधि से भी। अर्थात् तन्त्रिक एवं वैदिक दोनों विधियों से श्रीभगवान् की आराधना करे ।।४७।।

लब्धानुग्रह आचार्यात्तेन संदर्शितागमः । महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयात्मनः ।।४८।।

अन्वयः— आचार्यात् लब्धानुग्रहः तेन संदर्शितागमः आत्मनः अभिमतया मूर्त्या महापुरुषम् अभ्यर्चेत् ।।४८।।

अनुवाद— पहले सेवाआदि से प्रसन्न गुरुदेव की दीक्षा प्राप्त करे । तदनन्तर उनसे अनुष्ठान की विधि सीखकर श्रीभगवान् की जो मूर्ति अपने को प्रिय लगे उसी के द्वारा भगवान् पुरुषोत्तम की अर्चना करे ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

तमेव विधिमाह-लब्धानुग्रह इत्यादिना । तेनाचार्येण संदर्शित आगमोऽर्चनप्रकारो यस्य सः ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की पूजा विधि को **लब्धानुग्रह० इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाया गया है । तेन अर्थात् आचार्य द्वारा निर्दिष्ट आगम के अनुसार अर्चना के प्रकार को ।।४८।।

शुचिः संमुखमासीनः प्राणसंयमनादिभिः । पिण्डं विशोध्य संन्यासकृतरक्षोऽर्चयेद्धरिम् ।।४९।।

अन्वयः— प्राणसंयमनादिभिः शुचिः संमुखम् आसीन संन्यासकृतरक्षः हरिम् अर्चयेत् ।।४९।।

अनुवाद— प्राणायाम इत्यादि के द्वारा प्राणों का नियमन पूर्वक पवित्र होकर श्रीभगवान् की मूर्ति के समक्ष बैठ जाय फिर शरीर का संशोधन करके देवता आदि को अच्छी तरह से न्यास द्वारा श्री भगवान् की पूजा करे ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

मूर्तेः संमुखमासीनः । आदिशब्देन भूतशुद्ध्यादिभिः । पिण्डं देहं विशोध्य संन्यासैः सद्भिर्न्यासैः कृता रक्षा येन सः ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

मूर्ति के सामने बैठे हुए आदि शब्द से भूत शुद्धि आदि को लेना चाहिए । पिण्डम् अर्थात् शरीर को विशाध्य अर्थात् संशोधन करके, संन्यासैः अच्छी तरह से मन्त्र तथा देवता आदि न्यास के द्वारा रक्षा करें ।।४९।।

अर्चादौ हृदये चापि यथालब्धोपचारकैः । द्रव्यक्षित्यात्मलिङ्गानि निष्पाद्य प्रोक्ष्य चासनम्।।५०।।
पाद्यादीनुपकल्प्याथ संनिधाप्य समाहितः । हृदादिभिः कृतन्यासो मूलमन्त्रेण चार्चयेत् ।।५१।।

अन्वयः— द्रव्यक्षित्यात्मलिङ्गानि निष्पाद्य आसनम् च प्रोक्ष्य पाद्यादीन् उपकल्प्य सन्निधाप्य हृदादिभिः कृतन्यासः मूलमन्त्रेण अर्चादौ हृदये चापि यथा लब्धोपचारकैः मूलमन्त्रेण च अर्चयेत् ।।५०-५१।।

अनुवाद— सबसे पहले पुष्प आदि में विद्यमान कीड़ों आदि को निकालकर जहाँ पूजन करना हो उस स्थान को झाड़कर तथा लिप पोत कर, शान्ति पूर्वक लिङ्ग अर्थात् पहले से की गयी पूजा के निर्माल्य चन्दन पुष्प आदि को मूर्ति पर से हटाकर उसे पूजा के योग्य बनाकर, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान तथा शुद्धोदक के पात्रों को स्थापित करके सावधान हो जाय, उसके पश्चात् करन्यास तथा हृदयादि न्यास मूल मन्त्र से करके उपचार के जो साधन मिल जायँ उन साधनों से अर्चामूर्ति में अथवा अपने हृदय में विद्यमान श्रीभगवान् की मूर्ति की पूजा करे ॥५०-५१॥

भावार्थ दीपिका

आदावेव द्रव्याणि पुष्पादीनि जन्त्वादिशोधनेन, क्षितिं संमार्जनादिना, आत्मानमव्यग्रतया, लिङ्गं मूर्तिमनुलेपक्षालनादिना, निष्पाद्य योग्यानि कृत्वा । पाद्यादिपात्राण्युपकल्प्य संनिधाप्य हृदि संपूजितं श्रीमूर्तौ ध्यात्वा हृदादिभिः हृदयशिरःशिखाकवचनेत्रास्त्रमन्त्रैर्मूलमन्त्रेण च देवे कृतन्यासो मूलमन्त्रेणार्चयेत् ॥५०-५१॥

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम द्रव्य अर्थात् पुष्प आदि में विद्यमान कीड़ों आदि को हटा दे, उसके पश्चात् जहाँ पर बैठकर पूजा करनी हो उस स्थान को झाड़-पोंछकर अथवा लिप पोतकर, शान्त मना हो जाय । तदनन्तर पहले के पूजन के मूर्ति पर विद्यमान पुष्प, चन्दन, पत्र आदि को हटाकर मूर्ति को पूजा के योग्य बना दे । तदनन्तर अर्घ्य, पाद्य, अचामन, स्नान तथा शुद्धोदक के पात्रों की कल्पना करके उनको स्थापित करे, उसके पश्चात् भगवान् की मूर्ति पर ध्यान करके मूल मन्त्र से हृदयादिन्यास तथा करादिन्यास करके पुनः देवता पर मूल मन्त्र से अथवा पूजन के मन्त्रों से श्रीभगवान् की मूर्ति पर अथवा अपने हृदय में विद्यमान श्रीभगवान् की पूजा करे ॥५०-५१॥

साङ्गोपाङ्गां सपार्षदां तां तां मूर्तिं स्वमन्त्रतः । पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासोविभूषणैः ॥५२॥
गन्धमाल्या क्षतस्रग्भि पदीपोपहारकैः । साङ्गं सपूज्य विधिवत्स्तवैः स्तुत्वा नमेद्धरिम्॥५३॥

अन्वयः— साङ्गोपाङ्गां, सपार्षदां तां तां मूर्तिं स्वमन्त्रतः पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः स्नानवासो विभूषणैः गन्धमाल्याक्षत स्रग्भिः धूपदीपोपहारकैः साङ्ग सम्पूज्य स्तवैः विधिवत् स्तुत्वा हरिम् नमेत् ॥५२-५३॥

अनुवाद— जो जो मूर्ति अभिप्रेत हो उसकी अङ्गों और पार्षदों के साथ, उन मूर्तियों के मन्त्र से पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान आदि प्रदान करके स्नान कराये, फिर वस्त्र पहनाकर आभूषणों को पहनाए । तदनन्तर चन्दन, माला तथा पुष्पों आदि की माला प्रदान करके फिर धूप, दीप तथा उपहार आदि श्रीभगवान् को निवेदित करे । पुनः श्रीभगवान् का अङ्गों सहित पूजन करके आरती इत्यादि के बाद स्तुति के मन्त्रों से श्रीभगवान् की स्तुति करके उनको साष्टाङ्ग प्रणाम करे ॥५२-५३॥

भावार्थ दीपिका

अङ्गानि हृदयादीन्युपाङ्गानि सुदर्शनादीनि तत्सहितां सपार्षदां सपरिवाराम्। कैरुपचारैरर्चयेत्तदाह-पाद्येति। आदिशब्देन मधुपर्कमाचमनं च । अक्षतास्तिलकालङ्कारे, न तु पूजायाम् । 'नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न केतक्या महेश्वरम्' इति निषेधात् । उपहारो नैवेद्यम् ॥५२-५३॥

भाव प्रकाशिका

साङ्गोपाङ्गाम् के अङ्ग शब्द का अर्थ श्रीभगवान् के हृदय आदि को, उपाङ्ग अर्थात् श्रीभगवान् के अस्त्रभूत सुदर्शन पाञ्चजन्यआदि की पूजा करे । पुनः श्रीभगवान् के पार्षद नन्द, सुनन्द, विष्वक्सेन श्रीदेवी भूदेवी आदि की भी पूजा करे। अब प्रश्न होता है कि किन उपचारों से पूजा करे तो उपचार है- पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, मधुपर्क तथा आचमन आदि । अक्षत, तिलक और अलङ्कार से अलंकृत करे । अक्षत से भगवान् विष्णु की पूजा न करे और केवड़ा के पुष्प से शङ्करजी की पूजा न करे । उपहार अर्थात् श्रीभगवान को नैवेद्य समर्पित करे ॥५२-५३॥

आत्मानं तन्मयं ध्यायन्मूर्तिं संपूजयेद्धरेः । शेषामाधाय शिरसा स्वधाम्न्युद्वास्य सत्कृतम् ॥५४॥

अन्वयः— तन्मयम् आत्मानं ध्यायन् हरेः मूर्तिं सम्पूजयेत् । शेषाम् शिरसा आधाय सत्कृतम् स्वधाम्नि उद्वास्य।।५४।।

अनुवाद— अपने आपको भगवन्मय ध्यान करते हुए ही श्रीभगवान् की मूर्ति की पूजा करे । निर्माल्य को अपने सिर पर रखे और आदर के साथ भगवद्विग्रह को यथास्थान स्थापित करके पूजा समाप्त करे ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

शेषां निर्माल्यम् । स्वधाम्नि स्वस्थाने । देवं हृदि मूर्तिं करण्डके उद्वास्य स्थापयित्वा पूजाविधिं समापयेदिति शेषः।।५४।।

भाव प्रकाशिका

शेषाम् अर्थात् निर्माल्य को अपने शिर पर चढावे, स्वधाम्नि अर्थात् मन्दिर में अथवा मूर्ति रखने के स्थान पर श्रीभगवान् का अपने हृदय में अथवा सिंहासन आदि में स्थापित करके पूजा विधि को समाप्त करे ।।५४।।

एवमग्न्यर्कतोयादावतिथौ हृदये च यः । यजतीश्वरमात्मानमचिरान्मुच्यते हि सः ॥५५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे तृतीयोऽध्याय: ।।३।।

अन्वयः— यः एवम् अग्न्यर्कतोयादौ अतिथौ हृदये च ईश्वरम् आत्मानम् यजति सः अचिरान्मुच्यते ।।५५।।

अनुवाद— इस तरह जो अग्नि, सूर्य तथा जल आदि में, अतिथि में या अपने हृदय में आत्मस्वरूप ईश्वर की जो आराधना करता है । वह शीघ्र ही मुक्त हो जाता है ।।५५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के तीसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

भावार्थ दीपिका

तान्त्रिकं कर्मयोगमुपसंहरति-एवमिति ।।५५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

इस अन्तिम श्लोक द्वारा तन्त्रिक कर्म योग का उपसंहार किया गया है ।।५५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के तीसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३।।

* * *

चौथा अध्याय

भगवान् के अवतारों का वर्णन

राजोवाच

यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छन्दजन्मभिः । चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि ब्रुवन्तु नः ॥१॥

अन्वयः— हरिः यैः यै स्वच्छन्दजन्मभिः यानि-यानि कर्माणि करोति कर्ता वा तानि नः ब्रुवन्तु ॥१॥

महाराज निमि ने कहा

अनुवाद— श्रीहरि अपने जिन-जिन स्वेच्छानुसार जन्मों के द्वारा इस लोक में जिन-जिन कर्मों को करते हैं अथवा करने वाले हैं उन सबों को आपलोग हमें बतलायें ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्थे त्ववतारेहाप्रश्नस्योत्तरमुक्तवान् । जयन्तीनन्दनो नाम्ना द्रुमिलो नवसप्तमः ॥१॥ 'मूर्त्याभिमतयात्मानः' इत्यनेनात्मनः प्रियमवतारं पूजयेदित्युक्तेऽवतारज्ञानमपेक्षितं तथा 'स्तवैः स्तुत्वा नमेद्धरिम्' इत्युक्ते गुणकर्मज्ञानं चापेक्षितमतः पृच्छति-यानि यानीति । कर्ता करिष्यति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौथे अध्याय में नव योगीश्वरों में से सातवें योगीश्वर जयन्ती नन्दन श्रीद्रुमिलजी ने राजा निमि के द्वारा पूछे गये श्रीभगवान् के अवतारों और उनकी चेष्टाओं विषयक प्रश्न का उत्तर दिया है ॥१॥ अपने अभिमत मूर्ति की पूजा करे, यह पीछे के अध्याय में कहा गया है, इससे स्पष्ट है कि भगवान् को जो अवतार अपने को प्रिय लगे उसी की पूजा करे । इसके लिए अवतारों का ज्ञान भी अपेक्षित है और यह भी कहा गया है कि स्तुतियों से स्तुति करके श्रीभगवान् के साष्टाङ्गप्रणामकरे । स्तुति के लिए श्रीभगवान् के गुणों और कर्मों का भी ज्ञान अपेक्षित है । क्योंकि श्रीभगवान् के गुणों और कर्मों को जानना आवश्यक है । इसीलिए महाराज निमि पूछते हैं कि श्रीभगवान् जो कुछ करते है अथवा करेंगे उनसबों को आपलोग हमें बतलाएँ ॥१॥

द्रुमिल उवाच

यो वा अनन्तस्य गुणाननन्ताननुक्रमिष्यन्स तु बालबुद्धिः ।
रजांसि भूमेर्गणयेत्कथंचित्कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥२॥

अन्वयः— यः वा अनन्तस्य अनन्तान् गुणान् अनुक्रमिष्यन् स तु बालबुद्धिः भूमेः रजांसि कथंचित् कालेन । गणयेत् अखिलशक्ति धाम्नः नैव ॥२॥

द्रमिल नामक योगीश्वरजी ने कहा

अनुवाद— राजन् जो कोई भी अनन्त स्वरूप भगवान् के अन्तगुणों को गिन लेना चाहता है वह मूर्ख है हो सकता है कि कोई पृथिवी के धूल कणों को गिन भी ले किन्तु सम्पूर्ण शक्तियों के एकमात्र आश्रय परमात्मा के गुणों को कोई नहीं गिन सकता है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

त्वया पृष्टानि कालत्रयसंबन्धिसकलावतारगुणकर्माणि कथयितुमशक्यानि सङ्क्षेपतस्तु कानिचित्कथयिष्यामीत्याह-यो वा इत्यादिना । अनुक्रमिष्यन्गणयितुमिच्छति यः स तु बालानामिव बुद्धिर्यस्य स मन्दमतिः । कालेन महता कोऽपि महामतिः रजांसि गणयेदपि । अखिलशक्तिधाम्नः सर्वशक्त्याश्रयस्य भगवतो गुणांस्तु नैव गणयेत् । तथा च श्रुतिः--विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि इत्यादि ॥२॥

भाव प्रकाशिका

राजन् आपने भूत भविष्यत् एवं वर्तमान तीनों कालों में होने वाले श्रीभगवान् के अवतारों गुणों एवं कर्मों के विषय में पूछा है । उन सबों का वर्णन करना तो शक्य है ही नहीं मैं कुछ अवतारों का संक्षेप में वर्णन करूँगा इस बात को द्रुमिलयोगीश्वरजी ने **यो वा० इत्यादि** श्लोक से कहा । **अजुक्रमिष्यन्** अर्थात् गिनना चाहता है वह बालकों के समान मन्दबुद्धि है । हो सकता है को अत्यन्त बुद्धिमान महान काल में प्रयास करके पृथिवी के धूल कणों को गिन भी ले, किन्तु सम्पूर्ण शक्तियों के एकमात्र आश्रय श्रीभगवान् के गुणों को कोई भी नहीं ही गिन सकता है । श्रुति भी कहती है- **विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि रजांसि विममे** । अर्थात् भगवान् विष्णु के गुणों को जिसका वर्णन किया गया, उनको वह भी नहीं गिन सकता है जो पृथिवी के धूल कर्णों को गिन ले ॥२॥

भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् ।
स्वांशेन विष्ट पुरुषाभिधानमवाप नारायण आदिदेवः ॥३॥

अन्वयः— यदा आत्मसृष्टैः भूतैः विराजंपुरं विरचय्य आदि देवः नारायणः स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधानम् अवाप॥३॥

अनुवाद— जब अपने द्वारा रचित पञ्चभूतों से विराट नामक ब्राह्मण का निर्माण करके उसके भीतर अपने एक अंश से प्रवेश कर गये तो उन श्रीभगवान् को पुरुष शब्द से कहते हैं। यही श्रीभगवान् का पहला पुरुषावतार है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्रादौ पुरुषावतारमाह-भूतैरिति । यदा स्वसृष्टैर्भूतैर्विराजं ब्रह्माण्डं पुरं निर्माय तस्मिन् लीलया प्रविष्टो न तु भोक्तृत्वेन। प्रभूतपुण्यस्य जीवस्य तत्र भोक्तृत्वात् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

द्रुमिल योगीश्वरजी श्रीभगवान् के पुरुषावतार का वर्णन **भूतैर्यदा० इत्यादि** श्लोक से किये हैं । जिस समय आपने ही द्वारा सृष्ट पञ्चभूतों द्वारा विराट् नामक ब्रह्माण्ड का निर्माण करके उसमें लीला पूर्वक प्रवेश कर गये न कि भोक्ता रूप से प्रवेश किए । क्योंकि भोक्ता तो प्रभूत पुण्यों वाला जीव होता है ॥३॥

यत्काय एष भुवनत्रयसंनिवेशो यस्येन्द्रियैस्तनुभृतामुभयेन्द्रियाणि ।
ज्ञानं स्वतः श्वसनतो बलमोज ईहा सत्त्वादिभिः स्थितिलयोद्भवआदिकर्ता ॥४॥

अन्वयः— यत्काये एषः भुवनत्रयसन्निवेशः यस्य इन्द्रियैः तनुभृतामुभयेन्द्रियाणि ज्ञानं स्वतः श्वसनतः बलमोजः इहा सत्त्वादिभिः स्थितिलयोद्भव आदिकर्ता ॥४॥

अनुवाद— उन्हीं के इस विराट ब्रह्माण्ड शरीर में तीनों लोक स्थित हैं, उन्हीं की इन्द्रियों से समस्त देहधारियों की ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ बनी हैं । उनके स्वरूप से ही स्वतः सिद्ध ज्ञान का संचार होता है । उनके श्वास प्रश्वास से समस्त शरीरों में बल आता है तथा इन्द्रियों में ओज और कर्म करने की शक्ति प्राप्त होती है । उन्हीं के सत्त्व आदि, गुणों से संसार की स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय होते हैं । इस विराट शरीर के जो शरीर हैं वे ही आदिकर्ता भगवान् नारायण हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अस्य गुणकर्माण्याह द्वयेन- यत्काय इति । यस्याधिष्ठेयः काय एषः । काय इति सप्तमी वा । तनुभृतां समष्टिव्यष्टिजीवानां ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि यस्य स्वतःस्वरूपभूतात्सत्त्वात्तनुभृतां ज्ञानम्, यस्य स्वतः सिद्धं ज्ञानमिति वा । यस्य श्वसनतः प्राणाद्बलं देहशक्तिः । ओज इन्द्रियशक्तिः । ईहा क्रिया । यश्च सत्त्वादिभिर्विश्वस्य स्थितिलयोद्भवे आदिकर्ता ॥४॥

भाव प्रकाशिका

इन भगवान् के गुणों एवं कर्मों का वर्णन योगीश्वर द्रुमिल जी दो श्लोकों से करते है । **यत्कायः इत्यादि** श्लोक का अर्थ है कि जिन श्रीभगवान् का यह शरीर अधिष्ठेय, अथवा जिस श्रीभगवान् के शरीर में यह सम्पूर्ण त्रैलोक्य स्थित है। **तनुभृतामुभयेद्रियाणि** का अर्थ है शरीरधारियों की ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ **यस्यस्वतः** अर्थात् जिनके स्वरूप से समस्त शरीरधारियों को ज्ञान प्राप्त होता है । जिन श्रीभगवान् के श्वास प्रश्वास से सभी शरीर धारियों को बल (शारीरिक शक्ति) ओज: (इन्द्रिय शक्ति) और इहा (क्रिया शक्ति) की प्राप्ति होती है तथा जिन श्रीभगवान् के सत्त्व आदि गुणों से जगत् की स्थिति, सृष्टि और संहार होते हैं । वे भगवान् नारायण ही आदि कर्ता हैं ।।४।।

आदावभूच्छतधृती रजसाऽस्य सर्गे विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिर्द्विजधर्मसेतुः ।
रुद्रोऽप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य इत्युद्भवस्थितिलयाः सततं प्रजासु ।।५।।

अन्वयः— अस्य सर्गे आदौ रजसा शतधृतिः अभूत् स्थितौ क्रतुपतिः द्विजधर्म सेतुः विष्णुः अभूत् तमसा सः आद्यः पुरुषः अप्याय रुद्रः अभूत् इति प्रजासु सततं स्थित्युद्भवलयाः भवन्तीतियावत् ।।५।।

अनुवाद— इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि कें समय वे ही आदि पुरुष अपने रजोगुण के अंश से ब्रह्मा हो गये, वे ही जगत् की स्थिति काल में अपने सत्त्वगुण के अंश से धर्म तथा ब्राह्मणों के रक्षक यज्ञपति विष्णु हो गये । वे ही आदि पुरुष भगवान् नारायण इस सम्पूर्ण जगत् के संहार के लिए अपने तमोगुण के अंश से रुद्र हो गये । इस तरह उनसे ही परिवर्तनशील प्रजाओं की स्थिति, उत्पत्ति और लय होते रहते हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

आदिकर्तेत्यनेन तत्पूर्वकं कर्त्रन्तरमपि सूचितम्, तद्दर्शयितुं गुणावतारद्वारा चराचरसृष्ट्यादिकर्तृत्वमाह–आदाविति । यस्येत्यनुषङ्गः । यस्य रजसाऽस्य जगतः सर्गे कार्ये शतधृतिर्ब्रह्माभूत् । स्थितौ च विष्णुर्यस्य सत्त्वेनेति शेषः । क्रतुपतिस्तत्फलदाता। द्विजातीनां तद्धर्माणां च सेतुः पालक इत्यर्थः । यस्य तमसाऽस्याऽप्ययाय रुद्रोऽभूत् । इत्येतैर्ब्रह्मादिभिर्निमित्तभूतैः प्रजासूद्भवादयो यतो भवन्ति स आद्यः पुरुष इत्यन्वयः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

आदिकर्ता कहकर योगीश्वर ने बतलाया कि श्रीभगवान् के द्वारा प्रारम्भ में श्रीभगवान् ने ब्रह्माजी की सृष्टि इसके बाद सद्वारक सृष्टि के कर्ता ब्रह्माजी आदि ही है । इसी अर्थ को बतलाने के योगीश्वर ने गुणावतार द्वारा जड़ जंगमात्मक सृष्टि आदि के कर्तृत्व को **आदौ० इत्यादि** श्लोक से बतलाया है । यस्य पद का सर्वत्र अन्वय है । जिन श्रीभगवान् के रजोगुण के अंश से इस जगत् की सृष्टि को करने के लिए श्रीभगवान् ब्रह्मा बन गये । और भगवान् नारायण के सत्त्व अंश से धर्म एवं ब्राह्मणों के रक्षक यज्ञों के फल को प्रदान करने वाले भगवान् विष्णु बन गये । वे ही आदिकर्ता भगवान् नारायण इस जगत् का संहार करने के लिए तमोगुण के अंश से रुद्र हो गये । इस तरह इन सृष्ट्यादि के कारणभूत बह्मा आदि शरीरों से प्रजाओं की जो उत्पत्ति आदि होते हैं उनके कर्ता आदि पुरुष भगवान् नारायण ही हैं ।।५।।

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नरऋषिप्रवरः प्रशान्तः ।
नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्यनिषेविताङ्घ्रिः ।।६।।

अन्वयः— दक्षदुहितरि मूर्त्यां धर्मस्य प्रशान्तः ऋषिप्रवरः नरः नारायणः अजनिष्ट नैष्कर्म्यलक्षणम् कर्म उवाच चचार, ऋषिवर्य निषेविताङ्घ्रिः यः अद्यापि च आस्ते ।।६।।

अनुवाद— दक्ष प्रजापति की मूर्ति नामक पुत्री के गर्भ से श्रीभगवान् धर्म के पुत्र के रूप में ऋषियों में श्रेष्ठ नर तथा नारायण के रूप में अवतार ग्रहण किए । उन्होंन आत्म तत्त्व का साक्षात्कार कराने उस भगवदाराधन रूप

कर्म का उपदेश किया जो वास्तव में कर्मों के बन्धन से छूड़ाने वाला और नैष्कर्म्य की स्थिति को प्राप्त कराने वाला है। उन्होंने वैसे ही कर्म का आचरण भी किया। उन श्रीभगवान् के चरण कमलों की बड़े-बड़े ऋषिगण सेवा किया करते हैं। वे भगवान् आज भी बदरिकाश्रम में उसी कर्म का आचरण करते हुए विराजमान हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

नरनारायणावतारमाह–धर्मस्येति। धर्मस्य भार्यायां दक्षदुहितरि मूर्तिसंज्ञायां नारायणो नर इति मूर्तिद्वयेनाजनिष्ट जातः। तच्चरितमाह–नैष्कर्म्यमात्मस्वरूपं लक्ष्यते येन तत्कर्म कर्मनिर्हाररूपं वा उवाच नारदादिभ्यः स्वयं चचार च। योऽद्यापि कर्माचरन्नास्ते। ऋषिवर्यैर्निषेवितावङ्घ्री यस्य सः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

इस **धर्मस्यः इत्यादि** श्लोक में योगीश्वर द्रुमिलने श्रीभगवान् के नरनारायणावतार का वर्णन करते हैं। धर्म की पत्नी तथा दक्ष प्रजापति की मूर्ति नामक पुत्री के गर्भ से श्रीभगवान् नर एवं नारायण इन दो रूपों में अवतीर्ण हुए। उन भगवान् नारायण और नर के चरित को बतलाते हैं। श्रीभगवान् नारद आदि देवर्षियों को वस्तुतः भगवदाराधन रूप कर्मों का उपदेंश दिए जो कर्म नैष्कर्म्य को प्राप्त करने वाले हैं। किञ्च वे भी स्वयम् वैसे ही कर्मों का आचरण किए। वे श्रीभगवान् आज भी बदरिकाश्रम में वैसा ही कर्म करते हुए विराजमान हैं ।।६।।

इन्द्रो विशङ्क्य मम धाम जिघृक्षतीति कामं न्ययुङ्क्त सगणं स बदर्युपाख्यम्।
गत्वाऽप्सरोगणवसन्तसुमन्दवातैः स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ।।७।।

अन्वयः— मम धाम जिघृक्षति इति विशङ्क्य इन्द्र समणं कामं न्ययुङ्क्त सवदर्युपाख्यं सगणं गत्वा अप्सरोगण सुमन्दवातैः स्त्रीप्रेक्षणेषुभिः अतन्महिज्ञः अविध्यत ।।७।।

अनुवाद— भगवान् नरनारायण की तपस्या को देखकर इन्द्र के मन में यह शङ्का हो गयी कि ये हमारा पद लेना चाहते हैं। इन्द्र श्रीभगवान् की तपस्या में विघ्न डालने के लिए अपने गण के साथ कामदेव को नियुक्त किए। कामदेव को भगवान् नरनारायण की महिमा का ज्ञान नहीं था। इसलिए वह अप्सरागण वसन्त तथा मन्द गन्धवायु के साथ बदरिकाश्रम में जाकर स्त्रियों के कटाक्षबाणों से श्रीभगवान् को घायल करने की चेष्टा करने लगा ।।७।।

भावार्थ दीपिका

भगवदवतारत्वद्योतकं परमोपशमं दर्शयितुमितिहासमाह–इन्द्र इति दशभिः। धाम स्थनं तपसा ग्रहीतुमिच्छतीति विशङ्क्य तपोनाशाय कामं सपरिवारं प्रेषयामास। स कामो वदरीभिरुपाख्यायते यस्तं तस्याश्रममप्सरोगणादिभिः सह गत्वा स्त्रीणां प्रेक्षणान्येव इषवो बाणास्तैः। न तस्य महि महिमानं जानातीत्यतन्महिज्ञः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् नरनारायण श्रीभगवान् के अवतार है, इस बात के सूचित करने के लिए तथा श्रीभगवान् के परम वैराग्य को दिखाने के लिए योगीश्वर **इन्द्र० इत्यादि** दश लोकों से इतिहास का वर्णन करते हैं। ये हमारा पद लेना चाहते हैं इस प्रकार की आशङ्का करके भगवान् नर-नारायण की तपस्या का नाश करने के लिए उनके आश्रम में कामदेव को अपने गण के साथ भेजे। कामदेव अपने परिवार के साथ बदरिकाश्रम में गया और स्त्रियों के कटाक्ष बाण के द्वारा श्रीभगवान् को घायल करना चाहा। काम श्रीभगवान् की महिमा जानता ही नहीं था ।।७।।

विज्ञाय शक्रकृतमक्रममादिदेवः प्राह प्रहस्य गतविस्मय एजमानान्।
मा भैर्विभो मदन मारुत देववध्वो गृह्णीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ।।८।।

अन्वयः— आदि देवः शक्रकृतम् अक्रमम् विज्ञाय गतविस्मयः प्रहस्य एजमानान् प्राह विभो मदन मारुत देवबध्वः मा भैः नोबलि गह्णीत इमम् आश्रमम् अशून्यं कुरुध्वम् ।।८।।

अनुवाद— आदिदेव नर-नारायण जान गये कि यह कुचक्र है । भय से काँपते हुए काम आदि को हँसकर उन्होंने कहा । उस समय श्रीभगवान् के मन में किसी बात का अभिमान नहीं था । उन्होंने कहा कामदेव ! मलयमारुत! अप्सराओं डरो मत, आओ हमारा आतिथ्य स्वीकार करो । अभी यहीं ठहरो हमारा आश्रम शून्य मत करो ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अक्रममपराधम् । अहो, अहं धीर इति विस्मयो गर्वस्तद्रहितः । एजमानान् शापभिया कम्पमानान् । भो विभो समर्थ, देववध्यः मा भैष्ट । बलिमातिथ्यं तान्प्रार्थयते । इममस्माकमाश्रमम् । आतिथ्याभावे शून्यप्रायः स्यादित्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अक्रमम् अर्थात् अपराध अरे मैं अत्यन्त धैर्य सम्पन्न हूँ इस प्रकार के गर्व अथवा आश्चर्य से रहित । **एजमानान्** अर्थात् शाप के भय से काँपने वाले को । **भोविभो** अर्थात् हे समर्थ कमोदव **देवबध्वः** अप्सराओं **माभैष्ट** अर्थात् डरो मत । भगवान् नर-नारायण ने उन सबों से प्रार्थना की मेरा आतिथ्य तुमलोग स्वीकार करो । यह मेरा आश्रम आतिथ्य के अभाव में शून्यप्रय हो जायेगा ॥८॥

इत्थस ब्रुवत्यभयदे नरदेव देवाः सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः ।
नैतद्विभो त्वयि परेऽविकृते विचित्रं स्वारामधीरनिकरानतपादपद्मे ॥९॥

अन्वयः— हे नरदेव, इत्थं अभयदे ब्रुवति सव्रीडनम्रशिरसः तं सघृणम् ऊचुः हे विभो स्वारामधीर निकरानतपादपद्मे परे अविकृते त्वयि एतद्विचित्रं न ॥९॥

अनुवाद— हे महाराज ! इस प्रकार अभयदान प्रदान करने वाले ऋषि नर-नारायण ने कहा उस समय कामदेव आदि सभी देवताओं के सिर लज्जा से झुक गये । उन लोगों ने दयालु भगवान् नर-नारायण से कहा हे प्रभो ! बड़े-बड़े आत्माराम और धीर पुरुष आपके चरणों में प्रणाम करते हैं । इस प्रकार के आपके लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । आप तो माया से परे और निर्विकार हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

हे नरदेव, अभयदे श्रीनारायणे इत्थं ब्रुवति सति देवाः कामादयः सव्रीडानि नम्राणि शिरांसि येषां ते । लज्जाभरेणैवावनतशिरस्का इत्यर्थः । सघृणं यथा भवति तथा कृपां जनयन्त इत्यर्थः । कृपायुक्तं तमिति वा मायातः परे अतोऽविकृते स्वारामाश्च ते धीराश्च ते तेषां निकरैरानतं पादपद्मं यस्य तस्मिन् । त्वय्येतदक्षोभानुकम्पादि न विचित्रम् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

हे महाराज अभय प्रदान करने वाले भगवान् श्रीनारायण के इस प्रकार कहने पर काम आदि के सिर लज्जा से झुक गये थे अर्थात् लज्जा के ही भार से उनके सिर झुक गये थे । कृपा करने वाले कृपा से युक्त भगवान् नारायण को कहे, प्रभो आप तो माया से परे हैं अतएव विकार रहित हैं । दूसरे आत्माराम और धीर पुरुषों के समूह आपके चरणों में प्रणाम करते हैं । आप इस प्रकार से विकार रहित है आपके लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥९॥

त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः स्वौको विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते ।
नान्यस्य बर्हिषि बलीन्ददतः स्वभागान्धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि ॥१०॥

अन्वयः— त्वां सेवताम् स्वौकोविलङ्घ्य ते परमं पदं व्रजतां सुरकृताः बहवः अन्तराया अन्यस्य ब्रर्हिषि स्वभागान् बलीन् ददतः न त्वम् यदि अविता विघ्नमूर्ध्नि पदं धत्ते ॥१०॥

अनुवाद— आपकी सेवा करने वाले भक्ति के प्रभाव से देवताओं की नगरी अमरावती को पार करके आपके धाम परम पद को प्राप्त कर लेते हैं । इसलिए वे आपके भक्त जब भजन करने लगते हैं तो देवता उनकी साधना

में तरह-तरह के विघ्न करते हैं । और जो लोग केवल कर्मकाण्ड में लगकर यज्ञादि द्वारा देवताओं के भाग भूत बलिप्रदान करते हैं उन लोगों के मार्ग में वे किसी भी प्रकार का विघ्न नहीं डालते हैं । किन्तु आपके भक्त देवताओं द्वारा उपस्थापित बाधाओं से भ्रष्ट नहीं होते है । किन्तु आप जिनके रक्षक है वे भक्त विघ्न के सिर पर अपना पैर रखकर आपके परमपद में पहुँच जाते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अस्माकं चापराधाचरणं स्वभावत्वान्न चित्रमित्याहुः-त्वामिति । त्वां सेवतां सेवमानानां सुरैरिन्द्रादिभिः कृता अन्तराया विघ्ना भवन्ति । कस्मादित्य आहुः-स्वौक इति । स्वस्थानं स्वर्गमतिक्रम्य परमं तव स्थानं व्रजताम्ं नान्यस्य त्वामसेवमानस्य। कुतः । बर्हिषि यज्ञे स्वाभागान्पुरोडाशादीन्बलीन्करान् कृषिक इव राज्ञे इन्द्रादिभ्यो ददतः प्रयच्छतः । तर्हि किं मद्भक्तो विघ्नैर्भ्रश्यति, नेत्याहुः-धत्ते इति । यदीति निश्चये । यतस्त्वं सर्वसुराधीश्वरोऽविता रक्षकोऽतोऽसौ विघ्नानां मूर्ध्नि पदमङ्घ्रि धत्ते । कुतः पुनस्त्वयि विघ्नशङ्केति भावः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

अपराध करना तो हमलोगों का स्वभाव हो गया है । इसमें कोई विचित्रता नहीं है इस बात को कामादि कोंने **त्वाम्० इत्यादि** श्लोक से कहा है । आपकी सेवा करने वालों के मार्ग में इन्द्र आदि देवता विघ्नों को उपन्यस्त करते हैं । ऐसा कैसे करते हैं तो इसका उत्तर है कि वे आपके भक्त देवताओं की राजधानी अमरावती को पार करके आपके परमपद में पहुँच जाते हैं । जो लोग आपकी सेवा नहीं करते हैं । वे कुशों पर देवताओं के अंशभूत बलि को यज्ञादि के द्वारा प्रदान करते है उन लोगों के भी मार्ग में वे बाधा नहीं उपस्थित करते है । किन्तु जिन भक्तों के रक्षक आप है वे तो विघ्नों के सिर पर अपना पैर रखकर आपके धाम में पहुँच जाते हैं ॥१०॥

क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्वयशैश्न्यानस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित् ।
क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गोर्मज्ञन्ति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजन्ति ॥११॥

अन्वयः— केचित् क्षुततृट् त्रिकालगुणमारुतजैह्वयशैश्न्यान् अस्मान् अपार जलधीन् तितीर्य विफलस्यक्रोधस्य वशं यान्ति गोपदे मज्जन्ति दुश्चरतपश्च वृथा उत्सृजन्ति ॥११॥

अनुवाद— कुछ लोग तो ऐसे हैं जो भूख-प्यास सदी-गर्मी आँधी-पानी के कष्टों को तथारसनेन्द्रिय और जननेन्द्रिय के वेगों को जो अपार समुद्रों के समान है सह लेते हैं, किन्तु वे लोग उस क्रोध के वश में हो जाते हैं जो गाय के खुर के गढे के समान है । हे प्रभो ! वे अपनी तीव्र तपस्या को खो बैठते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

त्वदभक्तानां तु केवलं तपश्चरतां द्वयी गतिः । अस्माकं वा वशं यान्ति क्रोधस्य वा । तत्रास्मद्वशाः कामोपभोगमपि तावदनुभवन्ति । क्रोधस्य वशाः पुनरतिमन्दा इत्याहुः-क्षुत्तृडिति । क्षुच्च तृट् च त्रिकालगुणाश्च शीतोष्णवर्षाणि च मारुतश्च प्राणो बाह्यो वा जैह्वया जिह्वाभोगाश्च शैश्न्या गुह्योपभोगाश्च एतानस्मानपारजलधिरूपानतितीर्य विलङ्घ्य गोष्पदे मज्जन्ति । कुतः यतः क्रोधस्य विफलस्य वशं यान्ति गच्छन्ति । किंच जले मज्जन्तो यथा विवशाः सन्तो मस्तकारोपितं भारमुत्सृजन्ति तथा वृथैव न मोक्षाय न च भोगाय शापादिना दुश्चरं तप उत्सृजन्ति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

जो लोग आपके भक्त नहीं है और तपस्या करते हैं उन लोगों की तो दो ही गति होती है । वे लोग या तो हमलोगों के वशवर्ती हो जाते हैं अथवा क्रोध के वश में हो जाते हैं । उनमें भी जो लोग हमलोगों के वश में हो जाते हैं, वे लोग तो काम का उपभोग भी करते हैं, किन्तु जो लोग क्रोध के वश में हो जाते हैं वे तो

अत्यन्त मन्द मति वाले हैं इस बात को कामादिकों ने क्षुत् तृट् इत्यादि श्लोक के द्वारा कहा । वे भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी और वर्षा इन तीनों कालों के गुण सर्दी, गर्मी और वर्षा प्राण अथवा बाहरी वायु जिह्वा के भोग स्त्री संयोग जन्य भोग इन सभी हमलोगों के अपार सागर के समान रूपों को पार करके, गौ के खुर के समान क्रोध रूपी गड्ढे में डूब जाते हैं । क्योंकि वे निष्फल क्रोध के वश में हो जाते हैं । जिस तरह जल में डूबने वाले अपने मस्तक पर रखे हुए भार को उतार देते हैं उसी तरह व्यर्थ ही जो न तो मोक्ष देने वाला होता है और न तो भोग प्रदान करने वाला होता उन शाप इत्यादि को देकर अपनी कठोर तपस्या को विनष्ट कर देते हैं ॥११॥

इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियोऽत्यद्भुतदर्शनाः । दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीर्विभुः ॥१२॥

अन्वयः— इति प्रगृणतां तेषां विभुः अत्यद्भुतदर्शनाः स्वर्चिताःशुश्रूषां कुर्वतीः स्त्रियः दर्शयामास ॥१२॥

अनुवाद— जब कामदेव इस प्रकार से श्रीभगवन् की स्तुति कर रहे थे उस समय श्रीभगवान् अपने योग बल से ऐसी स्त्रियों को प्रकट करके दिखाये जो अद्भुत लावण्य से सम्पन्न तथा अद्भुत वस्त्रालङ्कारों से भूषित थीं और श्रीभगवान् नारायण की सेवा में संलग्न थीं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

स्त्रियो योगनिर्मिताः स्त्रीः शुश्रूषां कुर्वतीः स्वर्चिताः सुष्ट्वलंकृतास्तेषां स्वलावण्यादिदर्पोपशमाय दर्शयामास ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

योग के बल से सृष्ट स्त्रियाँ जो श्रीभगवान् की सेवा कर रही थी तथा सुन्दर वस्त्रालङ्कारों से अलंकृत थी। ऐसी स्त्रियों को भगवान् कामादिको को दिखाए ॥१२॥

ते देवानुचरा दृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिव रूपिणीः । गन्धेन मुहुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः ॥१३॥

अन्वयः— ते देवानुचराः रूपिणीः श्रीरिवस्त्रियः दृष्ट्वा रूपौदार्य हतश्रियः तासां गन्धेन मुमुहुः ॥१३॥

अनुवाद— वे देवताओं के अनुचर कामादिकों ने जब मूर्तिमती लक्ष्मीजी के समान उन स्त्रियों को देखा ते उन स्त्रियों के सामने कामादिकों का रूप फीका पड़ गया वे सब उन सबों के शरीर से निकलने वाली सुगन्धि से मोहित हो गयीं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

रूपिणी मूर्तिमती श्रीरिव ताः स्त्रियः स्त्रीर्दृष्ट्वा । तासां तु रूपयौदार्येण महत्त्वेन हता श्रीः कान्तिर्येषां ते ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

मूर्तिमती लक्ष्मीजी के समान उन स्त्रियों को देखकर उन स्त्रियों के रूप की उदारता के कारण इन सबों का सौन्दर्य फीका पड़ गया ॥१३॥

तानाह देवदेवेशः प्रणतान्प्रहसन्निव । आसामेकतमां वृङ्ध्वं सवर्णां स्वर्गभूषणाम् ॥१४॥

अन्वयः— देवदेवेशः प्रणतान् तान् प्रहसन्निव आह आसाम् एकतमां सवर्णां स्वगभूषणाम् वृङध्वम् ॥१४॥

अनुवाद— देवताओं के भी आराध्य भगवान् नारायण नम्र बने हुए उन सबों से हँसते हुए कहे । इनमें से किसी एक को तुमलोग वरण कर लो जो तुमलोगों के समान हो वह स्वर्ग की शोभा बढ़ाएगी ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

वृङ्ध्वं वृणीध्वम् । क्व वयं वराकाः, क्व चेमा इति चेत्तत्राह–सवर्णां समानरूपाम् । नैकाऽप्यस्मदनुरूपेति चेन्मा भवतु, तथापि स्वर्गस्य भूषणरूपाम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

वृङ्ध्वम् अर्थात् वरण कर लो। यदि यह कहो कि कहाँ तो हमलोग ओर कहाँ तो साक्षात् लक्ष्मीजी के समान ये सभी यदि ऐसी बात है तो तुमलोगों के समान जिसका रूप हो उसी का वरण कर लो। यदि कहो कि हमलोगों के समान तो इनमें से कोई नहीं है, तो ठीक है स्वर्ग के भूषण के समान जो हो उसी का वरण कर लो ॥१४॥

ओमित्यादेशमादाय नत्वा तं सुरबन्दिनः । उर्वशीमप्सरःश्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥१५॥

अन्वयः— ओम् इत्यादेशम् आदाय सुरबन्दिनः तं नत्वा अप्सराःश्रेष्ठामुर्वशीम् पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥१५॥

अनुवाद— जैसी आज्ञा यह कहकर देवताओं के अनुचरों ने श्रीभगवान् को नमस्कार किया और अप्सराओं में श्रेष्ठ उर्वशी को आगे करके वे सब स्वर्ग लोक चले गये ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

सुरवन्दिनो देवभृत्याः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

सुरवन्दिनः देवताओं के भृत्य ॥१५॥

इन्द्रायानम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवौकसाम् । ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्रास विस्मितः ॥१६॥

अन्वयः— इन्द्रायानम्य सदसि त्रिदिवौकसां शृण्वताम नारायणवलम् ऊचुः विस्मितः इन्द्रः तत्रास ॥१६॥

अनुवाद— स्वर्ग में जाकर उन सबों ने देवताओं की भरी सभा में इन्द्र को प्रणाम किया और भगवान् नर-नारायण के बल और प्रभाव का वर्णन किया। उसे सुनकर इन्द्र अत्यन्त आश्चर्यित होकर भयभीत हो गये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्राय इन्द्रं प्रति नारायणबलमूचुः। शक्रस्तत्रास त्रासं प्राप्तो विस्मितश्च। तत्र विस्मित आसेति वा ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र को भगवान् नारायण का बल एवं प्रभाव बतलाया यह सुनकर इन्द्र भयभीत हो गये तथा आश्चर्य चकित हो गये ॥१६॥

हंसस्वरूप्यवददच्युत आत्मयोगं दत्तः कुमार ऋषभो भगवान्पिता नः ।
विष्णुः शिवाय जगतां कलयावतीर्णस्तेनाहृता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये ॥१७॥

अन्वयः—हंस स्वरूपी अच्युतो विष्णु जगतां शिवाय दतः कुमारः नः पिता भगवान् ऋषभः कलयावतीर्णः आत्मयोगमवदत् स्तेनाहृताश्रुतयः मधुभिदा हयास्ये आहृताः ॥१७॥

अनुवाद—भगवान् विष्णु अपने स्वरूप में स्थित रहते हुए जगत् का कल्याण करने के लिए अनेक कालावतारों को धारण किए। हंस, दत्तात्रेय कुमार सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार और हमारे पिता भगवान् ऋषभ देव के रूप में अवतार लेकर आत्मयोगं अवदत्। हयग्रीवावतार में उन्होंने मधुकैटभ को मारकर वेदों को लाया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अन्यानप्यवतारांस्तच्चरितानि चाह-हंसस्वरूपीति। दत्तो दत्तात्रेयः। कुमारः सनकादिः। नः पिता ऋषभश्च। विष्णुरेव कलयावतीर्णः सन्नात्मयोगमवदत्। तेन विष्णुना हयास्ये हयग्रीवावतारे मधुभिदा सता ततः श्रुतय आहृताः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् के दूसरे अवतारों और उनके चरितों का वर्णन **हंस स्वरूपी० इत्यादि** श्लोक से करते हैं दत:

अर्थात् दत्तात्रेय । कुमारः अर्थात् सनका सनन्दन सनातन और सनत्कुमार हमारे पिता ऋषभदेव । भगवान् विष्णु ही इन रूपों में अवतीर्ण होकर आत्मयोग का उपदेश दिए । वे ही भगवान् विष्णु ह्यग्रीवावतार में मधुकैटभ को मारकर उनके द्वारा चुराई गयी श्रुतियों को लाए ।।१७।।

गुप्तोऽप्यपे मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रौडे हतो दितिज उद्धरताम्भसः क्ष्माम् ।
कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात्प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम् ।।१८।।

अन्वयः— अप्यये मात्स्ये मनुः इलौषधयः च गुप्तः क्रौडे अम्भसःक्ष्माम् उद्धरता दितिजः हतः कौर्मे अमृतोन्मथने अद्रिः स्वपृष्टे धृतः आर्तम् प्रपन्नं इमराजम् ग्राहात् अमुञ्चत् ।।१८।।

अनुवाद— प्रलय काल के समय मत्स्यावतार धारण करके श्रीभगवान् ने भावी मनु सत्यव्रत की पृथिवी की तथा धान्यादि औषधियों की रक्षा की वाराहावतार धारण करके श्रीभगवान् रसातल से पृथिवी का उद्धार करते समय हिरण्याक्ष का वध किए, कूर्मावतार धारण करके श्रीभगवान् अमृतमन्थन की बेला में मन्दाचल को अपने पीठ पर धारण किए वे ही भगवान् शरणागत एवं आर्त बने हुए गजराज की ग्राह से रक्षा किए ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

इला पृथ्वी ओषधयश्च गुप्ताः । क्रौडे च वाराहावतारे । ग्राहाद्गजेन्द्रममुञ्चन्मोचयामास । एवमादौ यत्रावतारनाम नास्ति तत्र विष्णुः शिवाय जगतां कलयावतीर्ण इत्यनुवर्तनीयम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

इला अर्थात् पृथ्वी तथा धान्यादि ओषधियाँ संरक्षित हुयीं । क्रौडे अर्थात् वराहावतार में । ग्राह से श्रीभगवान् गजेन्द्र को छुड़ा लिए । इसी तरह से जिनमें श्रीभगवान् के अवतारों को नाम नहीं है, उन सभी स्थलों में भगवान् विष्णु संसारी जीवों का कल्याण करने के लिए अपनी कला से अवतीर्ण हुए हैं ।।१८।।

संस्तुन्वतोऽब्धिपतितान् श्रमणानृषींश्च शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम् ।
देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्नेऽसुरेन्द्रमभयाय सतां नृसिंहे ।।१९।।

अन्वयः— अब्धिपतितान् श्रमणान् ऋषीन च संस्तुन्वतः वृत्रवधतः तमसि तमसिप्रविष्टम् शक्रम् असुरगृहे पिहिताः अनाथाःदेवस्त्रियः सतामभयाय नृसिहें असुरेन्द्र जघ्ने ।।१९।।

अनुवाद— एक बार बाल्याखिल्य ऋषि तपस्यया करते-करते अत्यन्त दुर्बल हो गये थे । वे जब कश्यप ऋषि के लिए समिधा ला रहे थे तो गौ के सुर से बने गढ़े में गिर गये । जैसे वे समुद्र में ही गिर पड़े हों । ऋषि ने जब स्तुति की तो भगवान् अवतार ग्रहण कर उनको उससे निकाले, वृत्रासुर का वध करने के कारण इन्द्र को ब्रह्महत्या लग गयी थी । उसके भय से भागकर इन्द्र छिप गये थे, उस समय भगवान् ने इन्द्र को ब्रह्महत्या से मुक्त किया । उस समय असुरों ने अनाथ देंवागनाओं को बन्दी बना लिया था तो भगवान् ही उन सबों को असुरों के चङ्गुल से मुक्त किये । जब हिरण्यकशिपु के कारण प्रह्लाद इत्यादि संत पुरुषों को भय होने लगा उस समय श्रीभगवान् नृसिंहावतार धारण करके हिरण्यकशिपु का वध कर दिये ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

संस्तुन्वतः स्तुतिं कुर्वाणान् ऋषीन्वालखिल्यान् कश्यपार्थं समिदाहरणे गोष्पदे निमग्नानिन्द्रेणोपहसितानुद्धृत्यापदोऽमोचयत्। तमसि ब्रह्महत्यायां प्रविष्टं मोचयामास । असुरगृहे पिहिता निरुद्धा या देवस्त्रियस्ताश्चामुञ्चदनेकावतारैः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि कश्यप के लिए समिधा लाने वाले बालखिल्य ऋषि गौ के खुर से बने गढ़े में गिर गये । उसी

में वे डूब गये । यह देखकर इन्द्र ने उन ऋषियों का उपहास भी किया । उस समय वे बालखिल्य ऋषि श्रीभगवान् की स्तुति किए तो अवतार ग्रहण करके उससे बाहर निकाले । वृत्रासुर का वध करने के कारण ब्रह्महत्या से ग्रस्त इन्द्र को श्रीभगवान् ही ब्रह्महत्या से मुक्त किए । असुरों के यहाँ वन्दी बनाकर रखी गयी देवताओं की अनाथ स्त्रियों को असुरों के चंगुल से भगवान् अनेक अवतारों को धारण कर मुक्त किए ।।१९।।

देवासुरे युधि च दैत्यपतीन्सुरार्थे हत्वाऽन्तरेषु भुवनान्यदधात्कलाभिः ।
भूत्वाऽथ वामन इमामहरद्बलेः क्ष्मां याच्ञाछलेन समदाददितेः सुतेभ्यः ॥२०॥

अन्वयः— च देवासुरे युधि सुरारर्थे दैत्यपतीन् हत्त्वा अन्तरेषु कलाभिः भुवनानि अदधात् । च वामनः भुत्वा इमां क्ष्मां बलेः याच्ञाच्छलेन अहरत् अदिति सुतेभ्यः अददात् ।।२०।।

अनुवाद— देवासुर संग्राम में देवताओं के लिए श्रीभगवान् ने बड़े-बड़े दैत्यो को मार दिया । अनेक मवन्तरों में अनेक कलावतारों को धारण करके उन्होंने त्रैलोक्य की रक्षा की । वमनावतार को धारण करके वे याचना के बहाने इस पृथिवी को बलि से छिन लिए और देवताओं को दे दिए ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

अन्तरेषु सर्वमन्वन्तरेषु कलाभिर्मूर्तिभिर्भुवनान्यदधादपालयत् । इमां क्ष्मां समदाद्ददौ ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

सभी मन्वन्तरों में अपनी कलाओं से अवतार ग्रहण करके श्रीभगवान् लोकों की रक्षा किए इस पृथिवी को दे दिए।।२०।।

निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिःसप्तकृत्वो रामस्तु हैहयकुलाप्ययभार्गवाग्निः ।
सोऽब्धिं बबन्ध दशवक्त्रमहन्सलङ्कं सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः ॥२१॥

अन्वयः— गांच त्रिःसप्तकृत्वः निःक्षत्रियाम् अकृत रामस्तु हैहयकुलाप्ययभार्गवाग्निः सः अब्धिं बबन्ध सलङ्कम् दशवक्त्रम् अहन् । लोकमलघ्नकीर्तिः सीतापतिः जयति ।।२१।।

अनुवाद— भगवान् परशुराम रूप में अवतीर्ण होकर इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित बना दिए। वे हैहय वंश के विनाश के लिए भृगु वंश में अग्नि के समान अवतीर्ण हुए थे । श्रीराम के रूप में अवतीर्ण होकर उन्होंने समुद्र पर पुल बाँध दिया और लङ्का के साथ-साथ रावण का विनाश कर दिये । भगवान् का यश संसार के मल (दोष) को विनष्ट करने वाला है ऐसे सीतापति श्रीरामचन्द्रजी सदा विजयी रहें ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

हैहयानां कुलस्याप्ययाय भार्गवरूपोऽग्निः । स रामो दाशरथिः सन्सलङ्कं लङ्कायां स्थितम् । स च जयति । वर्तमानकालीनोऽवतार इत्यर्थः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

हैहय वंश के विनाश के लिए परशुरामजी भृगुवंश में अग्नि के समान अवतीर्ण हुए थे । वे भगवान श्रीराम लङ्का में स्थित रावण का विनाश किए । उनकी जय हो । अर्थात् वर्तमानकालीन श्रीभगवान् का अवतार है इस तरह से द्रुमिल नामक योगीश्वर ने कहा ।।२१।।

भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि ।
वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हान् शूद्रान्कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते ॥२२॥

अन्वयः— अजन्मा भूमेर्भारावतरणाय यदुषु जातः सुरैः अपि दुष्कराणि करिष्यति । अतदर्हान् यज्ञकृतः वादैर्विमोहयति, अन्ते कालौ शूद्रान् क्षितिभुजः न्यहनिष्यत् ।।२२।।

अनुवाद— श्रीभगवान् पृथिवी का भार उतारने के लिए यदुवंश में अवतीर्ण होकर ऐसे दुष्कर कार्यों को करेंगे जिसे देवता भी नहीं कर सकते हैं। इसके पश्चात् बुद्ध के रूप में अवतीर्ण होकर यज्ञ के अनधिकारी लोगों को तर्क से मोहित करेंगे और कलियुग के अन्त में कल्कि अवतार धारण करके वे ही शूद्र राजाओं का वध करेंगे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

भाविनं रामकृष्णावतारमाह-भूमेरिति। बुद्धावतारमाह-वादैरिति। अतदर्हान्यज्ञानर्हान्दैत्यान्विमोहयिष्यति। कल्क्यवतारमाह-शूद्रानिति। न्यहनिष्यन्निहनिष्यति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

द्रुमिल नामक योगीश्वरजी ने अपने से भविष्यत् काल में होने वाले बलरामजी और श्रीकृष्ण भगवान के अवतारों का वर्णन **भूमेर्भारा० इत्यादि** श्लोक से किया है। **वादैः इत्यादि** श्लोकांश से उन्होंने बौद्धावतार का वर्णन किया है। **शूद्रम् इत्यादि** के द्वारा कल्कि अवतार का उन्होंने वर्णन किया है। **न्यहनिष्यत्** अर्थात मारेंगे॥२२॥

एवंविधानि कर्माणि जन्मानि च जगत्पतेः। भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अन्वयः— हे महाभुज भूरियशसः जगत्पतेः एवं विधानि भूरीणि जन्मानि कर्माणि च वर्णितानि ॥२३॥

अनुवाद— हे महाभुज विदेहराज निमे श्रीभगवान् की कीर्ति महान् है। वे जगत्पति हैं। उनके इस प्रकार से मैंने बहुत जन्मों और उनके कर्मों का वर्णन किया ॥२३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी श्रीधराचार्य कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के चौथे अध्याय की भावार्थ दीपिका नामक टीका के चौथे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥४॥

पाँचवाँ अध्याय

भक्तिहीन पुरुषों की गति और श्रीभगवान् की पूजा विधि का वर्णन

राजोवाच

भगवन्तं हरिं प्रायो न भजन्त्यात्मवित्तमाः । तेषामशान्तकामानां का निष्ठाऽविजितात्मनाम् ॥१॥

अन्वयः—हे आत्मवित्तमाः ये प्रायः हरि भगवन्तं न भजन्ति तेषाम् अशान्तकामानां अविजितात्मनाम् तेषाम् का निष्ठा॥१॥

महाराज निमि ने कहा

अनुवाद—हे योगीश्वरों आपलोग तो श्रेष्ठ आत्मज्ञानी हैं। जो लोग श्रीभगवान् का भजन नहीं करते हैं उनकी कामनाएँ भी शान्त नहीं हुई हैं तथा जिनकी इन्द्रियाँ भी वश में नहीं है ऐसे लोगों की क्या गति होती है ?॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चमे भक्तिहीनानां का निष्ठा को युगे युगे । पूजाविधिरिति प्रश्नद्वयस्योत्तरमुच्यते ।।१।। 'त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः' इत्यनेन श्रीहरिभक्ता विघ्नमूर्ध्नि पदं दत्त्वा परां गतिं यान्ति, अभक्तानां तु विघ्ना भवन्तीत्युक्ते तर्हि तेषां का गतिर्भवतीति पृच्छति-भगवन्तमिति । हे आत्मवित्तमाः, अविजितात्मनां अत एवाशान्तकामानां का निष्ठा । किं प्राप्यमित्यर्थः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

पाँचवे अध्याय में भक्तिहीन पुरुषों की कौन सी गति होती है ? और प्रत्येक युग में पूजा की कौन सी विधि होती है इन दो प्रश्नों का उत्तर योगीश्वरों ने दिया है । पीछे के श्लोक में योगीश्वरों ने कहा है । हे प्रभो जो लोग आपका भजन करते है उन आपका भजन न करने वाले भक्तों के कार्यों में देवगण अनेक प्रकार के विघ्न करते हैं । इस श्लोक से बतलाया गया है कि भगवद् भक्ति करने वाले भगवद् भक्त विघ्नों के सिर पर पैर रखकर आपके धाम मे चले जाते हैं । जो भगवान् के भक्त नहीं है उनके कार्यों में विघ्न होते हैं । ऐसी स्थिति में उन अभक्तों की कौन सी गति होती है यह राजा पूछ रहे हैं । हे आत्मवित्तम हे आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ योगीश्वरों जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं अतएव उन लोगो की कामनाएँ शान्त नहीं हुई हैं उन लोगों की कौन सी गति होती है?।।१।।

चमस उवाच

मुखबाहूरुपादेभ्यः पुरुषस्याश्रमैः सह । चत्वारो जज्ञिरे वर्णा गुणैर्विप्रादयः पृथक् ।।२।।

अन्वयः— पुरुषस्य मुखबाहूरूपादेभ्यः आश्रमैः सह विप्रादय चत्वारो वर्णाः गुणैः पृथक् जाज्ञिरे ।।२।।

चमस नामक योगीश्वरजी ने कहा

अनुवाद— राजन् विराट पुरुष के सत्त्व प्रधान ब्राह्मण, भुजाओं से सत्त्व एवं रजः प्रधान क्षत्रिय, जङ्घों, से रजस् तमस् प्रधान वैश्य और चरणों से तमस् प्रधान शूद्र की उत्पत्ति हुई । उनके ही जङ्घों से गृहस्थाश्रम की हृदय से ब्रह्मचर्य की, वक्षःस्थल से बानप्रस्थ और मस्तक से संन्यास ये चार आश्रम प्रकट हुए ।।२।।

भावार्थ दीपिका

स्वजनकस्य गुरोर्भगवतोऽनादराद्गुरुद्रोहेण दुर्गतिं यान्तीति वक्तुं भगवतः सकाशाद्वर्णाश्रमाणामुत्पत्तिमाह-मुखेति । गुणैः सत्त्वेन विप्रः, सत्त्वरजोभ्यां क्षत्रियः, रजस्तमोभ्यां वैश्यः, तमसा शूद्र इति ।।२।।

भाव प्रकाशिका

अपने जनक तथा आचार्य श्रीभगवान् का अनादर करने के कारण वे जीव दुर्गति को प्राप्त करते हैं इस बात को वतलाने के लिए योगीश्वरजी ने सभी वर्णो एवं आश्रमों की उत्पत्ति श्रीभगवान् से ही होती है इस बात को **मुखबाहूरूपा० इत्यादि** श्लोक से कहा है । सत्त्वगुण से ब्रह्म की सत्त्वगुण एवं रजोगुण से क्षत्रिय की रजोगुण एवं तमोगुण से वैश्य की तथा तमोगुण से शूद्र की उत्पत्ति हुई है ।।२।।

य एषां पुरुषं साक्षादात्मप्रभवमीश्वरम् । न भजन्त्यवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः पतन्त्यधः ।।३।।

अन्वयः— एषां ये साक्षात् आत्मप्रभवम् ईश्वरं नभजन्ति अवजानन्ति स्थानाद्भ्रष्टाः अधः पतन्ति ।।३।।

अनुवाद— इन चारो प्रकार के पुरुषों में परमात्मा को नहीं जानने के कारण जो लोग उनका भजन नहीं करते हैं तथा जो लोग जानकर भी उन ईश्वर की अवमानना करते हैं, वे लोग अपनी मनुष्य योनि से भी भ्रष्ट हो जाते हैं और उनका अधः पतन हो जाता है ।।३।।

भावार्थ दीपिका

एषां मध्ये येऽज्ञात्वा न भजन्ति, ये च ज्ञात्वाप्यवजानन्ति । आत्मनः प्रभवो जन्म यस्मात्तम् । तदभजने कृतघ्नतामप्याह-ईश्वरमिति । स्थानाद्वर्णाश्रमाद्भ्रष्टाः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

इन चारो प्रकार के मनुष्यों में से श्रीहरि को नही जानकर उनका भजन नहीं करते है तथा जो लोग श्रीभगवान् को भी जानकर उनकी अवमानना करते हैं जिन श्रीभगवान् से ही अपना जन्म होता है । उनको जानकर भी भजन नहीं करने से कृतघ्नता होती है । क्योंकि श्रीभगवान् सबों के नियामक और स्वामी हैं । ऐसे लोग अपने आश्रम तथा वर्ण से पतित हो जाते हैं ।।३।।

दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः । स्त्रियः शूद्रादयश्चैव तेऽनुकम्प्या भवादृशाम् ।।४।।

अन्वयः— केचित् हरिकथाः दूरे केचित् च दूरे अच्युतकीर्तनाः स्त्रियः शूद्रादयः चैव ते भवादृशाम् अनुकम्प्या ।।४।।

अनुवाद— कुछ स्त्री एवं शूद्र श्रीहरि की कथा से सदा दूर बने रहते है तथा कुछ लोग श्रीभगवान् के कीर्तन से दूर रहा करते हैं ऐसे लोग आपके कृपा के विषय है । उन लोगों को सौविध्य प्रदान करके हरि कथा और हरि कीर्तन में प्रवेश कराइये ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तत्र येऽज्ञास्ते भवद्विधानामनुग्राह्या इत्याह-दूर इति । दूरे हरिकथाश्रवणं येषां ते अतएव दूरे चाच्युतकीर्तनं येषां ते। दूरे अच्युतकीर्तनाश्चेति वा ।।४।।

भाव प्रकाशिका

जो अज्ञानी है ऐसे स्त्री शूद्रों पर तो आप जैसे लोगों को कृपा करनी चाहिए । इस बात को **दूरे इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । जिन लोगों को श्रीहरि की कथा सुनने को मिलती ही नहीं अतएव वे लोग श्रीहरि के नाम संकीर्तन से दूर रहते हैं ।।४।।

विप्रो राजन्यवैश्यौ च हरेः प्राप्ताः पदान्तिकम् । श्रौतेन जन्मनाथापि मुह्यन्त्याम्नायवादिनः ।।५।।

अन्वयः— विप्रो राजन्यवैश्यौ च श्रौतेन जन्मना अथापि हरेः पदान्तिकम् प्राप्तः अथापि आम्नायवादिनः मुह्यन्ति।।५।।

अनुवाद—ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वेदाध्ययन तथा यज्ञोपवीत संस्कार आदि के द्वारा श्रीभगवान् के चरणों के सन्निकट पहुँच चुके हैं । फिर भी वेदों का वास्तविक तात्पर्य न समझकर अर्थवाद में लगकर मोहित हो जाते हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

ज्ञानलवदुर्विदग्धास्त्वचिकित्स्यत्वादुपेक्ष्या इत्याशयेनाह-विप्र इति । श्रौतेनोपनयनाख्येन । उपलक्षणमेतत् । अध्ययनादिनापि हरेः पदान्तिकं तद्भजनोत्तमाधिकारं प्राप्ता अपि मुह्यन्ति कर्मफलेषु सज्जन्ते । कुतः । आम्नायेषु ये वादा अर्थवादास्ते मोहकतया विद्यन्ते येषां ते । तदुक्तं गीतासु- 'यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः । वेदवादरताः पार्थ नन्यदस्तीति वादिनः ।' इत्यादिना ।।५।।

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों का ज्ञान अधकचरा है ऐसे लोग तो उपेक्षा के पात्र है, क्योंकि ऐसे लोगों की बुद्धि की चिकित्सा नहीं हो सकती है । **विप्र० इत्यादि** श्लोक को इसी अभिप्राय से कहा गया है । यज्ञोपवीत संस्कार वेदाध्ययन का उपलक्षण है । ऐसे लोग श्रीभगवान् के चरणों के सन्निकट पहुँच चूके हैं । ये लोग भगवद् भजन के उत्तम अधिकारी हैं । फिर भी वे कर्म फलों में आसक्त हो जाते हैं । क्योंकि वेंदों मे जो अर्थवाद है पे मोहक है । गीता में श्रीभगवान् ने भी कहा

है। **यामिमाम्० इत्यादि** अर्थात् जो अज्ञानीजन इस अर्थवाद रूप वाद को लेकर विवाद करते हैं। वे वेदवादों में आसक्त रहकर कहते हैं कि इसके अतिरिक्त यहाँ दूसरी बात नहीं है। इत्यादि ॥५॥

कर्मण्यकोविदाः स्तब्धा मूर्खाः पण्डितमानिनः। वदन्ति चाटुकान्मूढा यया माध्व्या गिरोत्सुकाः॥६॥

अन्वयः— कर्मण्यकोविदाः स्तब्धाः मूर्खाः पण्डितमानिनः यया माध्व्या गिरा उत्सुकाः मूढाः चाटुकान वदन्ति॥६॥

अनुवाद— उन लोगों को कर्म का रहस्य ज्ञात नहीं होता है। मूर्ख होने पर भी वे अपने को पण्डित मानते है और अभिमान में अकड़े रहते हैं। वे मीठी बातों में भूल जाते हैं और केवल वस्तुशून्य शब्द माधुरी के मोह में पड़कर चटकीली बातें कहते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

भक्तिमार्गदार्ढ्याय तेषां मोहं प्रपञ्चयन्निन्दन्ति–कर्मणीत्यादिना। अकोविदा यथा बन्धकं न भवति तथा कर्तुमज्ञाः। न चाभिज्ञान्पृच्छन्ति। यतः स्तब्धा अनम्राः। स्तब्धत्वे हेतुः–यतो मूर्खा अपि पण्डिता वयमिति मानवन्तः। अतः 'अपाम सोमममृता अभूम्', 'अक्षय्यं ह वै चातुर्मास्ययाजिनः सुकृतं भवति', 'यत्र नोष्णं न शीतं स्यान्न ग्लानिर्नाप्यरातयः' इत्यादिकया यया माध्व्या गिरोत्सुकाः सन्तो मूढास्तया चाटुकानप्सरोभिः सह विहरिष्याम इत्यादिप्रियान् शब्दान्वदन्ति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

भक्ति मार्ग को सुदृढ करने के लिए योगीश्वर उन सबों के मोह का विस्तार से वर्णन करते हैं। अकोविदा जिस तरह संसार में बन्धन का कारण कर्म न बने उस तरह से कर्मों को करना नहीं जानते हैं। वे कर्मों के अभिज्ञ पुरुष से पूछते भी नहीं है। इसीलिए वे दुर्विनीत हो जाते हैं। उनके दुर्विनीत होने का कारण उनका अज्ञान ही होता है। वे होते हैं तो अत्यन्त मूर्ख किन्तु वे अपने को पण्डित मान लेते हैं। अतएव वे कहते हैं हमलोगों ने सोमरस का पान कर लिया अतएव हमलोग अमर हो गये। चातुर्मास्य याग करने वाले को अक्षय फल की प्राप्ति होती है। उस स्वर्ग में न तो ठंढी है न गर्मी वहाँ थकान भी नहीं होती है। वहाँ पर कोई किसी का शत्रु भी नहीं होता है। इस तरह की जिन मीठी बातों से उत्सुक बने हुए वे अज्ञानी जीव कहते हैं कि स्वर्ग में हमलोग अप्सराओं के साथ विहार करेंगे। इस तरह से अच्छी लगने वाली बातों को कहा करते हैं ॥६॥

रजसा घोरसंकल्पाः कामुका अहिमन्यवः। दाम्भिका मानिनः पापा विहसन्त्यच्युतप्रियान् ॥७॥

अन्वयः— रजसा घोर सङ्कल्पाः कामुका अहिमन्यवः दाम्भिकाः मानिनः पापाः अच्युतप्रियान् विहसन्ति ॥७॥

अनुवाद— रजोगुण की अधिकता के कारण उन लोगों के सङ्कल्प घोर होते हैं वे कामुक प्रकृति वाले होते हैं। वे सर्पों के समान भयङ्कर क्रोधी होते है। दम्भ और मान से भरे हुए वे लोग महापापी होते हैं तथा भगवद् भक्तों का उपहास किया करते हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

किंच तेषां कर्माभिनिवेशात्कामक्रोधदम्भादयो वर्धन्त इत्याह त्रयेण–रजसेति। घोरोऽभिचारादिः सङ्कल्पो येषाँ ते। अहिवन्मयुर्येषां ते ॥७॥

भाव प्रकाशिका

चूकि उन लोगों का कर्मों में ही अभिनिवेश होता है अतएव उनके दाम, क्रोध, दम्भ आदि बढ़ते ही रहते हैं। इस बात को योगीश्वरजी ने **रजसा० इत्यादि** तीन श्लोकों से कहा है। ऐसे लोगों का घोर अभिचार कर्म करने का सङ्कल्प होता है। उनका क्रोध सर्प के समान होता है ॥७॥

वदन्ति तेऽन्योन्यमुपासितस्त्रियो गृहेषु मैथुन्यपरेषु चाशिषः ।
यजन्त्यसृष्टान्नविधानदक्षिणं वृत्त्यै परं घ्नन्ति पशूनतद्विदः ॥८॥

अन्वयः— उपासितस्त्रियः ते मैथुन्य परेषु गृहेषु च आशिषः वदन्ति असृष्टान्नविधान दक्षिणं यजन्ति अतद्विदः वृत्यै परं पशून् । ध्नन्ति ॥८॥

अनुवाद— वे मूर्ख अतिथि आदि की उपासना नहीं करते बल्कि स्त्रियों की उपासना करते हैं वे अन्न एवं दक्षिणा दान दिए बिना ही यज्ञ करते हैं, और केवल अपना पेट भरने के लिए पशुओं का वध करते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

कामुकत्वं प्रपञ्चयति-वदन्तीति । उपासिताः स्त्रियो यैर्न तु वृद्धास्ते मैथुन्यं मिथुनसुखमेव परं नत्वातिथ्यादि येषु गृहेषु तेष्वाशिषो वदन्ति-'इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् । इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ।' इत्याकाराः । दाम्भिकतां प्रपञ्चयति-यजन्तीति । असृष्टान्नविधानदक्षिणं न सृष्टा न संपादिताऽन्नविधानदक्षिणा यथा तथा यजन्ति । तदा च वृत्त्यै जीविकार्थं परं केवलं पशून् घ्नन्ति । अतद्विदो हिंसादोषानभिज्ञाः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

उन मूर्खों की कामुकता का ही विस्तार से वर्णन करते हैं । वे मूर्ख वृद्धों की नहीं अपितु स्त्रियों की उपासना करते हैं, वे स्त्री सहवासजन्य सुख को ही सर्वश्रेष्ठ सुख मानते हैं आतिथ्य आदि को नहीं वे गृहों के ही विषय में आशीर्वचन कहते है वे कहते हैं कि आज मैंने यह प्राप्त किया । मैं अपने इस मनोरथ को प्राप्त करूँगा । मेरे पास आज यह धन है । और पुनः मुझको इस धन की प्राप्ति होगी । इस प्रकार की उनकी कामुकता बनी रहती है । उन मूर्खों की दम्भयुक्तता का वर्णन करते हुए कहते हैं वे बिना अन्नदान तथा बिना दक्षिणा दान के ही यज्ञ करते हैं । और यज्ञ के अवसर पर वे अज्ञानी जीव अपनी जीविका (पेट भरने के लिए) पशुओं का वध करते हैं । वे हिंसा से होने वाले दोष को वे नहीं जानते हैं ॥८॥

श्रिया विभूत्याभिजनेन विद्यया त्यागेन रूपेण बलेन कर्मणा ।
जातस्मयेनान्धधियः सहेश्वरान्सतोऽवमन्यन्ति हरिप्रियान्खलाः ॥९॥

अन्वयः— श्रिया विभूत्या, अभिजनेन, विद्यया, त्यागेन, रूपेण बलेन कर्मणा जातस्मयेन अन्धधिया ते खलाः ईश्वरान् सह हरिप्रियान् अवमन्यन्ति ॥९॥

अनुवाद— वे धन, वैभव, कुलीनता, विद्या, दान, सौन्दर्य बल और कर्म आदि के घमण्ड से अन्धे हो जाते हैं तथा वे दुष्ट ईश्वर तथा भगवद् भक्तों का भी अपमान करते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

मानितां प्रपञ्चयति-श्रियेति । श्रिया धनादिसंपदा । विभूत्या ऐश्वर्येण । श्र्यादिना जातो यः स्मयो गर्वस्तेनान्धा धीर्येषां ते ईश्वरसहितान्सतोऽवमन्यन्ते ॥९॥

अनुवाद— राजन् वेदों ने यह बार-बार कहा है कि ईश्वर आकाश के समान सबों में व्यापक है। वे समस्त शरीरधारियों में स्थित हैं वे ही अपनी आत्मा और प्रियतम हैं किन्तु वे मूर्ख इन वेद की वाणियों को नहीं सुनते है और केवल बड़े-बड़े मनोरथों की बातें आपस में करते रहते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

किंच एवं वर्तमानास्ते वेदतत्त्वार्थं स्फुटमपि न जानन्तीत्याह-सर्वेष्विति। केन रूपेणावस्थितं तदाह-आत्मानमीश्वरमात्मतया ईश्वरतया चावस्थितम् एवमप्यसङ्गतामाह-यथा खम्। पुरुषार्थतामाह-अभीष्टम्। स्फुटत्वमाह-वेदोपगीतं चेति। तत्कुतः। यतो मनोरथानां व्यवायामिषमद्यसेवाविषयाणां वार्तया प्रवदन्ति। निवृत्तिपरं सन्तं वेदं प्रवृत्तिपरं वर्णयन्ति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से रहने वाले वे स्पष्ट रूप में वेदोक्तार्थ को नहीं जानते हैं। इस बात को **सर्वेषु इत्यादि** श्लोक से कहते है अर्थात् परमात्मा सबों के भीतर विद्यमान हैं। वे परमात्मा किस रूप से रहते हैं, इस बात को **आत्मानम० इत्यादि** से कहते हैं कि ईश्वर आत्मारूप से सबों के भीतर विद्यमान हैं। ऐसा होने पर भी परमात्मा सबों से असम्पृक्त ही रहते है। वे आकाश के तरह सबों में व्यापक तथा अभीष्ट हैं। स्पष्टता का वर्णन करतेहुए वे कहते हैं इस बात को वेदों ने बार-बार गाया है। क्योंकि वे स्त्री सहवास मद्य तथा सेवा विषयक मनोरथों से संबद्ध बाते करते हैं। वे निवृत्ति परक सन्तों एवं वेदों को प्रवृति परक बतलाते हैं ॥१०॥

लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना।
व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥११॥

अन्वयः— लोके व्यवायामिषमद्यसेवा जन्तोः नित्याः अतएव तत्रचोदना न तेषु व्यवस्थितिः विवाहयज्ञसुराग्र है आसु निवृत्तिः इष्टाः ॥११॥

अनुवाद— लोक में देखा जाता है कि लोगों के मैथुन, मद्य और मांस की ओर लोगों की स्वभावतः प्रवृत्ति होती है अतएव इस विषय में वेद विधान नहीं कर सकता है। ऐसी स्थिति में विवाह यज्ञ एवं सौत्रमणि यज्ञ के द्वारा ही जो उनका ग्रहण करते हैं, उसका अर्थ है कि लोगों की उच्छृंखल प्रवृति का नियन्त्रण करने में ही श्रुति का तात्पर्य है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

ननु व्यवायादीनामपि 'ऋतौ भार्यामुपेयात्', 'हुतशेषं भक्षयेत्' इत्यादिना विहितत्वात्किमेवं निन्द्यतेऽत आह-लोक इति। ननु। व्यवायः स्त्रीसङ्गः। नित्या रागत एवं नित्यं प्राप्ताः। जन्तोः प्राणिमात्रस्य अतस्तत्र तासु चोदना विधिर्नास्ति। ननु। 'ऋतावुपेयात्' इत्यादिना विधिर्दर्शितः, सत्यम्, नत्वयमपूर्वविधिः, रागतः प्राप्तत्वात्किंतु नियमविधिरूपेण रागिणामभ्यनुज्ञामात्रं विवाहविषय एव व्यवायः कार्यः। यज्ञ क्रियते तदाह-व्यवस्थतिरिति। तेषु व्यवायादिषु। कैः विवाह-यज्ञ-सुराग्रहैः। ननु च नियमपक्षेऽप्यावश्यकत्वान्न निन्दा एवामिषसेवा। 'सौत्रामण्यां सुराग्रहान् गृह्णाति' इति श्रुतेस्तत्रैव मद्यसेवेति नियमः क्रियते। अयं भावः-नायं नियमविधिरपितु नित्यप्राप्तत्वादतो युक्ताऽत आह-आसु निवृत्तिरिति। आसु व्यवायामिषमद्यसेवासु निवृत्तिरिष्टा। तथा सति निवृत्तिः परिसंख्यैव, कथं तर्हि व्यवस्थितिरित्युक्तम्। उच्यते,-न तावत्परिसंख्याविधिना श्रुत्या निवृत्तिरुच्यते। स्वार्थत्यागः, परार्थकल्पना, प्राप्तवाधश्चेति दोषत्रयं स्यात्, अतः क्वचित्प्राप्स्यतोऽप्यर्थस्य प्रापणमनर्थकमित्यपूर्वविधिद्वाराऽन्यनिवृत्तिः फलतो भवति, तद्यथा-'इमामगृभ्णन् रशनामृतस्येत्यश्वाभिधानीमादत्ते' इत्यत्र रशनालिङ्गतो गर्दभाश्वाभिधानी रशनाद्वये प्राप्स्यतो मन्त्रस्यापूर्वविधिद्वारा परिसंख्योच्यते। यथोक्तं तन्त्रवार्तिके-'अप्राप्तविधिरेवायमतो मन्त्रस्य निश्चितः। परिसंख्या फलेनोक्ता न विशेषः पुनः श्रुतेः।' इति। क्वचितु रागतो नित्यप्राप्तत्तयाप्राप्तांशपूरणलक्षणस्य नियमफलस्याप्यभावान्नियमविधिद्वारा फलतः परिसंख्या भवति, यथा 'पञ्च पञ्चनखा भक्ष्याः' इति। तथा रागतो नित्यवत्प्राप्तस्य व्यवायादेर्विवाहादिनियमनाभ्यनुज्ञाद्वारा

परिसंख्यैवेति । ननु यद्यभ्यनुज्ञामात्रमेतद्भवेत्तर्हि 'ऋतुस्नातां तु यो भार्यां संनिधौ नोपगच्छति । घोरायां भ्रूणहत्यायां पच्यते नात्र संशयः ।' इत्यादिदोषश्रवणं न स्यात् । नैष दोषः । मनसि कामे सत्यपि तस्यामरुच्या द्वेषादिना वा तामनुपगच्छतो दोषश्रवणोपपत्तेरेति सर्वमनवद्यम् ।।११।।

भावप्रकाशिका

प्रश्न होता है कि शास्त्र **ऋतौ भार्यामुपेयात्** अर्थात् ऋतुकाल में पत्नी का सेवन करना चाहिए, तथा **हुतशेषं भक्षयेत् इत्यादि** वाक्यों द्वारा स्वयं पत्नी सेवन और मांस भक्षण का विधान करता है । ऐसी स्थिति में योगीश्वर उसकी निन्दा कैसे करते हैं ? तो इसके उत्तर में **लोके० इत्यादि** श्लोक कहते है । व्यवाय स्त्री सहवास को कहते हैं यह नित्य ही **रागतः** प्राप्त है । अतएव रागतः प्राप्त अर्थ के विषय में शास्त्र विधान नहीं कर सकता है । यदि कहें कि ऋतावुपेयात् यह वाक्य स्त्री सेवन का विधान करता है । ठीक है किन्तु ऋतावुपेयात् यह वाक्य अपूर्व विधि नहीं है। क्योंकि व्यवाय तो रागतः प्राप्त है । बल्कि यह वाक्य नियम विधि के रूप में रागी पुरुषों को भी शास्त्र अनुज्ञा मात्र देता है । इसीलिए व्यवस्थिति कहा गया है । उनमे व्यवाय आदि में **विवाह यज्ञ सुराग्रहै इत्यादि** के द्वारा यह बतलाया गया है कि अपनी ही पत्नी का सेवन करे । यज्ञ आदि में ही अर्मिष (मांस) सेवन करे । इसी तरह सौत्रामणि याग करे तो उसी में सुराग्रहण करे । इस तरह से शास्त्र नियम करता है । **ननु च इत्यादि** प्रश्न होता है कि नियम पक्ष में उक्त अवसरों पर इन वस्तुओं का ग्रहण आवश्यक होता है अतएव व्यवाय आदि के सेवन आदि की निन्दा उचित नहीं है । तो इस पर कहते हैं । **आसुनिवृत्तिः** इन सबों से निवृत्ति में ही शास्त्र का तात्पर्य है । कहने का अभिप्राय है कि नित्य ही प्राप्त होने के कारण यह नियमविधि भी न होकर परिसंख्याविधि है । तो फिर योगीश्वर व्यवस्थितिः कैसे कहते हैं । इस पर कहते हैं परिसंख्याविधि के द्वारा श्रुति निवृत्ति नहीं कहती है । क्योंकि वैसा मानने पर स्वार्थ का त्याग परार्थ की कल्पना और प्राप्त का बाध रूपी तीन दोष होंगे । अतएव कहीं-कहीं पर प्राप्त होने वाले विषय को प्राप्त करना व्यर्थ होता है । उदाहरणार्थ- **इमामगृभ्णन् रशनामृतस्येत्यश्वाभिधानीमादत्ते ।** इस वाक्य की रशना लिङ्ग से गधे की जीभ तथा अश्व की जीभ की प्राप्ति होने पर मन्त्र की अपूर्व विधि द्वारा परिसंख्या कही जाती है । जैसा कि तंत्रवार्तिक नामक ग्रन्थ में कहा गया है चूकि परिसंख्या विधि अप्राप्त विधि ही होती है अतएव मन्त्र के निश्चित परिसंख्या फल के द्वारा कही गयी है । श्रुति के कारण विशेष नहीं होता है । कहीं पर तो रागतः प्राप्त के भी अप्राप्त अंश के पूर्ति रूप नियम फल का भी अभाव होने के कारण नियम विधि के द्वारा फलरूप से परिसंख्या होती है । जैसे पञ्च पञ्च नखाः भक्ष्याः इत्यादि । और रागत के कारण नित्य के समान प्राप्त का व्यवाय इत्यादि का विवाह आदि के द्वारा नियमन करके अभ्यनुज्ञा द्वारा परिसंख्या ही होती है । प्रश्न होता है कि यदि अभ्यनुज्ञा ही केवल हो तो फिर ऋतुस्नातां तु० इत्यादि अर्थात् ऋतु स्नान की हुई पत्नी के साथ पति सहवास न करें तो उसके गर्भ हत्या का पाप लगता हैं उसके कारण उसको नरक में जाना पड़ता है । इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं है । इत्यादि दोष श्रवण नहीं हो । तो इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं है । मन में काम की वासना रहने पर भी उस नारी के प्रति अरुचि होने के कारण अथवा द्वेष आदि के कारण भार्यागमन नहीं करने वाले के लिए दोष का विधान है । इस तरह सारी बाते स्पष्ट हो गयीं ।।११।।

धनं च धर्मैकफलं यतो वै ज्ञानं सविज्ञानमनुप्रशान्ति ।
गृहेषु युञ्जन्ति कलेवरस्य मृत्युं न पश्यन्ति दुरन्तवीर्यम् ।।१२।।

अन्वयः— धनं च धर्मैक फलं यतः वै ज्ञानं साविज्ञानम् अनुप्रशान्ति गृहेषु युञ्जन्ति कलेवरस्य दुरन्तवीर्यं मृत्युं न पश्यन्ति ।।१२।।

अनुवाद— धन का एकमात्र फल धर्म है, क्योंकि धर्म से ही परमतत्त्व का ज्ञान और उसकी निष्ठा (अपरोक्षानुभूति) होती है। और निष्ठा में ही परमशान्ति है। किन्तु संसारी लोग उस धन का उपयोग गृहस्थी के स्वार्थों में अथवा कामोपभोग में करते हैं, यह बड़े ही खेद का विषय है वे यह नहीं सोचते हैं कि हमारा यह शरीर मृत्यु का शिकार है और मृत्यु किसी भी प्रकार नहीं टाली जा सकती है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं व्यवायादिमनोरथाकुलितत्वादभीष्टमात्मानं न शृण्वन्तीत्युक्तम्, इदानीं धनस्यापि धर्मद्वारा परमात्मप्रापकस्य दृष्टोपभोगार्थं विनियोगान्नात्मज्ञानगन्धोऽपीत्याह-धनं चेति । धर्म एवैकं फलं यस्य तत् । कुतः । यतो यस्माद्धर्मात्सविज्ञानमपरोक्षज्ञानसहितं दृढं परोक्षज्ञानं भवति । कथंभूतम् । अनुप्रशान्ति अन्वनन्तरमेव प्रकृष्टा शान्तिर्निर्वाणलक्षणा यस्य तत् । एवंभूतं धनं गृहेषु देहाद्यर्थं युञ्जन्ति ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह व्यवाय (स्त्री सेवन) आदि के मनोरथ से व्याकुल होने के कारण लोग अपने अभीष्ट आत्मा परमात्मा का श्रवण नहीं करते है यह कहा जा चुका है । अब इस **धनं च इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं कि धन भी धर्म के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति का साधन बनता है । किन्तु लोग इसका उपयोग लौकिक वस्तुओं के उपभोगार्थ करते हैं । उससे आत्मज्ञान की गन्ध भी लगती है । धन का फल धर्म ही है क्योंकि धर्म से अपरोक्षानुभूति होती है तथा परोक्ष ज्ञान सुदृढ होता है । और उसी के पश्चात् परमशान्ति की प्राप्ति होती है । यह परमा शान्ति निर्वाण स्वरूपा होती है । इस प्रकार के धन का उपयोग लोग धर्मादि में नहीं करके देहादि को पोषणादि में करते हैं ।।१२।।

यद्घ्राणभक्षो विहितः सुरायास्तथा पशोरालभनं न हिंसा ।
एवं व्यवायः प्रजया न रत्या इमं विशुद्धं न विदुः स्वधर्मम् ।।१३।।

अन्वयः— सुरायाः घ्राण भक्षः विहितः तथा पशोः आलभनं विहितम् हिंसान एवं व्यवायः प्रजया रत्या न इमं विशुद्धं स्वधर्मं न विदुः ।।१३।।

अनुवाद— सौत्रामणियाग में भी सुरा को सूघंने का ही विधान है पीने का नहीं । इस तरह पशु के आलम्भन (स्पर्श) का विधान है मारने का नहीं । इसी प्रकार शास्त्र धर्म की रक्षार्थ एवं अपनी पत्नी के गर्भ से सत् सन्तान उत्पन्न करने के ही लिए ही व्यवाय (स्त्री से वन) का विधान करता । स्त्री सहवास जन्य आनन्दोपभोगार्थ नहीं किन्तु संसारी जन अपने इस विशुद्ध धर्म को नहीं जानते हैं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

किञ्च व्यवस्थयापि व्यवायाद्यभ्यनुज्ञानं न यथेष्टम्, अपि त्वन्यथैवेत्याह-यदिति । यद्यस्मात्सुराया घ्राणभक्षोऽवघ्राणं स एव विहितः, न पानम् । तथा पशोरप्यालभनमेव विहितं, न तु हिंसा । अयमर्थः-देवतोद्देशेन यत्पशुहननं तदालभनं 'वायव्यं श्वेतमालभेत' इत्यादिश्रुतेर्न तु हिंसा 'या वेदविहिता हिंसा न सा हिंसेति कीर्त्यते' । इति वचनात् । भक्षणोद्देशेन तु क्रियमाणं हननं लौकिकवद्धिंसैव । अत्र ह्यालभनमेव विहितं, न तु हिंसा । अतो न यथेष्टभक्षणाभ्यनुज्ञेत्यर्थः । व्यवायोऽपि प्रजया निमित्तभूतया, न तु रत्यै । अतो मनोरथवादिन इमं विशुद्धं स्वधर्मं न विदुरिति ।।१३।।

(स्पर्श) मात्र विहित है पशु की हिंसा विहित नहीं है । कहने का अभिप्राय है कि देवता की प्रसन्नता के लिए जो पशुओं को मारा जाता है, वह विहित नहीं है, बल्कि पशु का आलभन विहित है । कहा भी गया है- **'वायव्यं पशुमालभेत'** अर्थात् वायु देवता का पशु का आलभन (स्पर्श) करे यह श्रुति कहती है । स्मृति भी कहती है **यावेदविहिता हिंसा न सा हिंसेति कीर्त्यते** । अर्थात् शास्त्रविहित हिंसा का तात्पर्य हिंसा करने में नहीं हैं। खाने के लिए की जाने वाली पशुओं की हिंसा भी लौकिक हिंसा के ही समान पाप स्वरूप है । अतएव यज्ञों में पशु का आलभन हीं विहित हैं हिंसा नहीं । अतएव खाने के लिए हिंसा का विधान नहीं है । इसी तरह व्यवाय (स्त्री सेवन) भी सन्तानोत्पत्ति के ही लिए विहित है । रति के लिए नहीं । अतएव मनोरथवादी इस विशुद्ध अपने धर्म को नहीं जानते हैं ।।१३।।

ये त्वनेवंविदोऽसन्तः स्तब्धाः सदभिमानिनः । पशून्द्रुह्यन्ति विस्रब्धाः प्रेत्य खादन्ति ते च तान्।।१४।।

अन्वयः— ये तु अनेवं विदः असन्तः स्तब्धाः सदभिमानिनः विस्रब्धाः पशून्द्रुह्यन्ति तान् च ते प्रेत्य खादन्ति ।।१४।।

अनुवाद— जों लोग इस विशुद्ध धर्म को नहीं जानते हैं वे घमण्डी और दुष्ट हैं । वे लोग अपने को श्रेष्ठ जानते हैं । घोखे में पड़े हुए जो लोग पशुआं को मारते हैं परलोक में वे ही पशु उन लोगों को खाते हैं।।१४।।

भावार्थ दीपिका

एवं भागवत्पराङ्मुखानां बहुदोषतां प्रपञ्चय तन्निष्ठां प्रपञ्चयति-ये त्विति पञ्चभिः । अनेवंविदः न एवं धर्मं विदन्ति ये ते । विस्त्रब्धा निःशङ्काः । अनेन मनोरथो भविष्यतीति विश्वस्ता वा । तदनीन्तनपोषणेन वा तैः पशुभिर्विश्वस्ताः । ते च पशवः प्रेत्य अमुत्र तान् खादन्ति 'मां स भक्षयितामुत्र यस्य मांसमिहाइयहम् । एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ।' इति वचनात्।।१४।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से परमात्मा पराङ्मुख लोगों को अनेक दोषों का विस्तार से वर्णन करके योगीश्वर उन सबों की निष्ठा **ये त्वनेवं० इत्यादि** पाँच श्लोकों से करते हैं । **अनेवंविदः** अर्थात् जो लोग इस प्रकार के धर्म को नहीं जानते हैं । विस्त्रब्धाः अर्थात् निःशङ्क होकर अथवा ऐसा करने से हमारे मनोरथ की पूर्ति होगी इस प्रकार से विश्वस्त लोग तत्काल में उन पशुओं के द्वारा अपने को पुष्ट बनाने वाले को वे ही पशु परलोक में उन लोगों को खाते हैं । कहा भी गया है । **नस भक्षयितामुत्र० इत्यादि** अर्थात् जिस पशु के मांस को मनुष्य इस लोक में खाता है । वे पशु परलोक में खाते है विज्ञपुरुष यागों में मारे पशुओं के मांस ही कहते है ।।१४।।

द्विषन्तः परकायेषु स्वात्मानं हरिमीश्वरम् । मृतके सानुबन्धेऽस्मिन्बद्धस्नेहाः पतन्त्यधः ।।१५।।

अन्वयः— मृतके सानुबन्धे अस्मिन् बद्धस्नेहा परकायेषु स्वात्मानं ईश्वरम् हरिद्विषन्तः पतन्ति ।।१५।।

अनुवाद— यह शरीर मृतक है । अपने इस शरीर के साथ तो जो लोग प्रेम भी गाँठ बान्धे रहते हैं तथा दूसरे के शरीर में अपनीं हीं आत्मा के समान विद्यमान श्रीहरि से जो लोग द्वेष करते हैं उनका अधः पतन हो जाता है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अभिचारादिना द्विपन्तः । मृतके देहे । सानुबन्धे पुत्रादिसहिते ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अभिचार कर्म के द्वारा दूसरे के शरीर से द्वेष करने वाले । पुत्रादि से मुक्त अपने मृतक शरीर में ।।१५।।

ये कैवल्यमसंप्राप्ता ये चातीताश्च मूढताम् । त्रैवर्गिका ह्यक्षणिका आत्मानं घातयन्ति ते ।।१६।।

अन्वयः— ये च मूढताम् अतीता येकैवल्यम् अप्राप्ता ते त्रैवर्गिकाः ह्यक्षणिकाः आत्मानं घातयन्ति ।।१६।।

अनुवाद— जो लोग आत्मज्ञान प्राप्त करके भी कैवल्य को नहीं प्राप्त किए है वे लोग अधकचरे में पड़े हैं। न इधर के है न उधर के हैं । ऐसे लोग धर्म, अर्थ एवं काम के ही सम्पादन में लगे रहते हैं । उन्हे क्षणभर के लिए भी शान्ति नहीं मिलती है । वे लोग आत्मघाती हैं ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

अज्ञास्तत्त्वज्ञैरननुकम्पितास्तरन्ति, तत्त्वज्ञास्तु स्वतः । ये तु नात्यन्तमज्ञा न च तत्त्ज्ञास्तेऽन्तरालबर्तिनः पतन्तीत्याह-य इति। कैवल्यं तत्त्वज्ञानमसंप्राप्ताः । मूढतामत्यन्तजडताम् । अत्र हेतुः-त्रिवर्गप्रधानाः । अक्षणिका उपशान्तिक्षणरहिता देहादिस्थैर्यबुद्ध्यो वा स्वयमेवात्मानं घातयन्ति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

अज्ञानी जीवों को यदि तत्वज्ञ पुरुष ज्ञान प्रदान करते है तो वे भी तर जाते हैं । तत्त्वज्ञ पुरुष तो अपने आप तर जाते हैं । जो लोग न तो बिल्कुल अज्ञानी हैं और न तो तत्त्वज्ञानी है । बल्कि दोंनों के बीच में है । उनका पतन हो जाता है । अत्यन्त जड़ता को मूढता कहते हैं । उसका कारण है कि वे त्रिवर्ग के ही सम्पादन में लगें रहते हैं । उन लोगों को कभी शान्ति नहीं मिलती है । वे अपने शरीर आदि को स्थिर मानते हैं । ऐसे लोग स्वयम् ही आत्मनाश करते हैं ।।१६।।

एत आत्माहनोऽशान्ता अज्ञाने ज्ञानमानिनः । सीदन्त्यकृतकृत्या वै कालध्वस्तमनोरथाः ।।१७।।

अन्वयः— अज्ञानेज्ञानमानिनः एते आत्महनः अशान्ताः कालध्वस्त मनोरथा अकृतकृत्या वै सीदन्ति ।।१७।।

अनुवाद— अज्ञान को ही ज्ञान मानने वाले ये आत्मघाती लोग सदा अशान्त ही बने रहते है । काल भगवान् इन लोगों के मनोरथों पर पानी फेरते रहते है । अपने कार्य में सदा विफल ही रहने वाले ये लोग सदा कष्ट का ही अनुभव करते रहते हैं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

तदाह-एत इति । आत्महनः आत्मापह्नवकर्तारः । अज्ञाने कर्मणि । तथा च श्रुतिः-'असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः । तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।' इति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

इसी बात को **एते** इस श्लोक से कहते हैं । आत्मापहार करने वाले ये लोग । **अज्ञाने** अर्थात् कर्म में ही लगे रहते हैं । श्रुति भी कहती है । **असूर्या नामते लोकाः** अर्थात् जहाँ पर सूर्य का प्रकाश नहीं जाता ऐसे असुरों के स्वभूत घोर अन्धकार से व्याप्त लोक हैं । आत्मघाती लोग मरने के पश्चात् उन्हीं लोकों में जाते हैं ।।१७।।

हित्वाऽत्यायासरचिता गृहापत्यसुहृच्छ्रियः । तमो विशन्त्यनिच्छन्तो वासुदेवपराङ्मुखाः ।।१८।।

अन्वयः— वासुदेवपराङ्मुखाः अत्यायासरचिताः गृहापत्यसुहृच्छ्रियः हित्वा अनिच्छन्तः तमो विशन्ति ।।१८।।

अनुवाद— अन्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्ण से विमुख रहने वाले, अत्यन्त परिश्रम से इक्ट्ठी की गयी धन-सम्पत्ति गृह पुत्र, सगे संबन्धी तथा लक्ष्मी को छोड़कर मरने के बाद घोर नहीं चाहकर भी उन अन्धकारमय लोकों में चले जाते हैं ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

या गृहापत्यसुहृच्छ्रियस्ता हित्वा ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

जो गृह पुत्र मित्र एवं लक्ष्मी को त्यागकर ।।१८।।

राजोवाच

कस्मिन्काले स भगवान्किंवर्णः कीदृशो नृभिः । नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम्॥१९॥

अन्वयः— सः भगवान् कस्मिन् काले किं वर्णः कीदृशः नृभिः नाम्ना वा केन विधिना पूज्यते तदिहोच्यताम् ।।१९।।

महाराज निमि ने कहा

अनुवाद— योगीश्वरों श्रीभगवान् किस समय किस रंग का कौन सा वर्ण अपनाते हैं, उनकी उपासना किन नामों और विधियों से करते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं भगवद्भक्तिरेव कर्तव्येति स्थिते तत्र विशेषं पृच्छति-कस्मिन्काल इति । किंवर्णः कीदृग्वर्णवान् । कीदृशः कीदृगाकारः । केन वा नाम्ना । केन वा विधिना ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इस बात का निश्चय हो जाने पर कि भक्ति ही करनी चाहिए राजा भक्ति विशेष को कस्मिन् काले इस श्लोक से पूछते हैं । किं वर्ण अर्थात् किस रंग के कीदृशः अर्थात् किस आकार वाले ? केन वा नाम्ना अर्थात् किस नाम से तथा केन वा विधिना अर्थात् किस विधि से ।।१९।।

करभाजन उवाच

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिरित्येषु केशवः । नानावर्णाभिधाकारो नानैव विधिनेज्यते ।।२०।।

अन्वयः— कृतं त्रेता द्वापरं च कलिः इत्येषु केशवः नानावर्णाभिधाकारः नाना एव विधिना इज्यते ।।२०।।

करभाज योगीश्वरजी ने कहा

अनुवाद— राजन् चार युग है, सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलियुग, इन चारों युगों में भगवान् केशव अनेक वर्णों नामों और आकारों वाले होते हैं और उनकी पूजा भी भिन्न-भिन्न प्रकार से की जाती है ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

एषु कृतादिकालेषु । नानाप्रकारा वर्णाभिधाकारा यस्य सः । नानैव विधिना विधिधेनैव मार्गेण ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

सत्ययुग आदि कालों में श्रीभगवान् के अनेक रङ्ग नाम और आकार होते हैं और उपकी पूजा भी भिन्न-भिन्न प्रकार से होती है ।।२०।।

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो बल्कलाम्बरः । कृष्णाजिनोपवीताक्षान्बिभ्रद्दण्डकमण्डलू ।।२१।।

अन्वयः— कृते, शुक्लः चतुर्बाहुः जटिलः बल्कलाम्बरः, कृष्णाजिनोपवीताक्षान् दण्डकमाण्डलू विभ्रत् ।।२१।।

अनुवाद— सत्ययुग में श्रीभगवान् का रङ्ग श्वेत होता है, उनके सिर पर जटा होती है, वे बल्कल वस्त्र धारण करते हैं, कालामृगचर्म, दण्ड एवं कमण्डलु धारण करते हैं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

तदेव वर्णादिचतुष्टयमाह-कृत इत्यादिना । कृष्णाजिनादीन्बिभ्रदिति ब्रह्मचारिवेषो दर्शितः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

कृत इत्यादि से उस वर्णचतुष्टय को कहा गया है । कालामृगचर्म आदि धारण किए हुए इससे ब्रह्मचारी वेष को बतलाया गया है ।।२१।।

मनुष्यास्तु तदा शान्ता निर्वैराः सुहृदः समाः । यजन्ति तपसा देवं शमेन च दमेन च ॥२२॥

अन्वयः— तदा मनुष्याः तु शान्ताः निर्वैराः सुहृदः समाः दे शमेन, दमेन च देवं यजन्ति ॥२२॥

अनुवाद— राजन् सत्ययुग में मनुष्य शान्त, वैररहित, सबों के हितैषी और समदर्शी होते हैं। वे अपनी बाह्य एवं आभ्यन्तर इन्द्रियों को वश में करके ध्यान द्वारा श्रीभगवान् की आराधना करते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तपसा ध्यानेन ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

तपस्या अर्थात् ध्यान के द्वारा ॥२२॥

हंसः सुपर्णो वैकुण्ठो धर्मो योगेश्वरोऽमलः । ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तः परमात्मेति गीयते ॥२३॥

अन्वयः— हंसः सुपर्णः वैकुण्ठः धर्मो योगेश्वरः अमलः ईश्वरः पुरुषः अव्यक्तः परमात्मा इति गीयते ॥२३॥

अनुवाद— वे लोग, हंस, सुवर्ण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त और परमात्मा इत्यादि नामों से श्रीभगवान् के गुणों और लीलाओं क गान करते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

त्रेतायां रक्तवर्णोऽसौ चतुर्बाहुस्त्रिमेखलः । हिरण्यकेशस्त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः ॥२४॥

अन्वयः— त्रेतायां असौ रक्तवर्णः चतुर्बाहुः त्रिमेखलः, हिरण्यकेशः त्रय्यात्मा स्रुक्स्रुवाद्युपलक्षणः ॥२४॥

अनुवाद— त्रेतायुग में श्रीभगवान् का श्रीविग्रह लालवर्ण का होता है, उनकी चार भुजाएँ होती हैं, वे कमर में तीन मेखलाएँ धारण करते हैं, उनके केश सुनहले होती है, वेद प्रतिपादित यज्ञ के रूप में रहकर स्रुक् एवं स्रुव धारण करते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

त्रिगुणा दीक्षाङ्गभूता मेखला यस्य स यज्ञमूर्तिः । हिरण्यकेशः पिशङ्गकेशः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

दीक्षा के अङ्गभूत तीन लरों वाली मेखला वाले यज्ञमूर्ति **हिरायकेशः** अर्थात् श्रीभगवान् के केश पीले होते हैं॥२४॥

तं तदा मनुजा देवं सर्वदेवमयं हरिम् । यजन्ति विद्यया त्रय्या धर्मिष्ठा ब्रह्मवादिनः ॥२५॥

अन्वयः— तदा तं सर्वदेवमयं देवं हरिम् धर्मिष्ठाः ब्रह्मवादिनः मनुजाः त्रय्या विद्यया यजन्ति ॥२५॥

अनुवाद— उस त्रेतायुग में सर्वदेवस्वरूप श्रीहरि की धार्मिक वेदज्ञ पुरुष ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद के मन्त्रों से आराधना करते हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

त्र्या विद्यया वेदत्रयोक्तकर्मभिः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

ऋगादि तीनों वेदों में प्रोक्त कर्मों से ॥२५॥

विष्णुर्यज्ञः पृश्निगर्भः सर्वदेव उरुक्रमः । वृषाकपिर्जयन्तश्च उरुगाय इतीर्यते ॥२६॥

अन्वयः— विष्णुः, यज्ञः पृश्निगर्भः, सर्वदेवः उरुक्रमः, वृषाकपिः, जयन्तः च, उरुगाय इतीर्यते ॥२६॥

अनुवाद— त्रेतायुग में लोग विष्णु, यज्ञ, प्रश्निगर्भ, सर्वदेव, उरुकर्म, वृषाकपि: जयन्त: और उरुगाय आदि नामों से श्रीभगवान् की लीलाओं का गान करते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

पृश्निगर्भ; पृश्निः सुतपसः प्रजापतेः पत्नी तस्याः पुत्रः । वृषाकपिः स्मृतः सन्वर्पति कामानाकम्पयति क्लेशानिति तथा जयत्येव सर्वदा जयन्तः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

सुतपानामक महर्षि की पत्नी पृश्नि के पुत्र अर्थात् पृश्निगर्भ श्रीभगवान् स्मरण करने मात्र से कामनाओं को पूर्ण करते हैं तथा क्लेशों को विनष्ट करते हैं अतएव वे वृषाकपि हैं । हमेशा विजयी होने के कारण वे जयन्त हैं ॥२६॥

द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निजायुधः । श्रीवत्सादिभिरङ्कैश्च लक्षणैरुपलक्षितः ॥२७॥

अन्वयः— द्वापरे भगवान् श्यामः पीतवासा निजायुधः श्रीवत्सदिभिः अङ्कैः च लक्षणैः उपलक्षितः ॥२७॥

अनुवाद— द्वापर में भगवान् का रङ्ग श्यामवर्ण का होता है । पीताम्बर धारण करते है । तथा शङ्ख, चक्र तथा गदा आदि अपने आयुधों को धारण करते हैं । उनके वक्षःस्थल पर श्रीवत्साङ्क चिह्न तथा भृगुलता होती हैं । वे कौस्तुभमणि आदि से पहचाने जाते हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

श्यामोऽतसीपुष्पसङ्काशः । निजानि चक्रादीन्यायुधानि च यस्य सः । श्रीवत्सो नाम वक्षसो दक्षिणभागे रोम्णां प्रदक्षिणावर्तः स आदिर्येषां करचरणादि गदापद्मादीनां तैरङ्कैराङ्गिकैश्चिह्नैर्लक्षणैर्बाह्यैः कौस्तुभादिभिः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

अलसी के पुष्प के समान श्याम वर्ण वाले, वे अपने चक्र आदि आयुधों को धारण करते हैं । वक्षःस्थल के दाहिने भाग में रोमों का दक्षिणावर्त चिह्न आदि हाथों और पैरों में पद्म आदि के चिह्न इन लक्षणों से तथा कौस्तुभ आदि से श्रीभगवान् पहचाने जाते हैं ॥२७॥

तं तदा पुरुषं मर्त्या महाराजोपलक्षणम् । यजन्ति वेदतन्त्राभ्या परं जिज्ञासवो नृप ॥२८॥

अन्वयः— हे नृप, महाराजोपलक्षणं तं पुरुषं तदा परं जिज्ञासवः मर्त्याः वेदतन्त्राभ्यां यजन्ति ॥२८॥

अनुवाद— राजन् महाराज के चिह्न छत्र चँवर आदि से चिह्नित श्रीभगवान् को जिज्ञासु पुरुष उस समय ईश्वर तत्त्व को जानने की इच्छा से वेद और आगम विधि से पूजन करते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

महाराजोपलक्षणं छत्रचामरादियुक्तम्। वेदतन्त्राभ्यां वैदिकेनागमिकेन च मार्गेण। यजन्ति पूजयन्ति। परमीश्वरं ज्ञातुमिच्छवः॥२८॥

भाव प्रकाशिका

छत्र-चमर आदि महाराज के लक्षणों से युक्त वैदिक एवं आगमीय पद्धति से ईश्वर तत्त्व को जानने की इच्छा से आराधना करते है ॥२८॥

नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्षणाय च । प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥२९॥

अन्वयः— वासुदेवाय नमस्ते, सङ्कर्षणाय नमः प्रद्युम्नाय, अनिरुद्धाय तुभ्यं भगवते नमः ॥२९॥

अनुवाद— भगवान् वासुदेव को नमस्कार है भगवान् सङ्कर्षण को नमस्कार है, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भगवान् को नमस्कार है और ज्ञान स्वरूप आप श्रीभगवान् को नमस्कार है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

नामान्याह-नमस्त इति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

नमस्ते, इत्यादि इस श्लोक से श्रीभगवान् के नामों को कहा गया है ।।२९।।

नारायणाय ऋषये पुरुषाय महात्मने । विश्वेश्वराय विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ।।३०।।

अन्वयः— नारायणाय ऋषये, महात्मने पुरुषाय, विश्वेश्वराय, विश्वाय सर्वभूतात्मने नमः ।।३०।।

अनुवाद— राजन् द्वापर युग में श्रीभगवान् की स्तुति करते हुए कहते हैं- ऋषिनारायण, महात्मानर, विश्वेश्वर, विश्वरूप, तथा सर्वभूतात्मा भगवान् को हमारा नमस्कार है ।।३०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३०।।

इति द्वापर उर्वीश स्तुवन्ति जगदीश्वरम् । नानातन्त्रविधानेन कलावपि यथा शृणु ।।३१।।

अन्वयः— हे उर्वीश, द्वापरे जगदीश्वरम् एवं स्तुवन्ति, कलौ नानातन्त्रविधानेन अपि यथा शृणु ।।३१।।

अनुवाद— हे पृथिवीपते ! द्वापर में जगत् स्वामी श्रीभगवान् की इस तरह अनेक विधानों से स्तुति करते हैं। अब कलियुग में श्रीभगवान् की अनेक तान्त्रिक विधियों से पूजा की जाती है उसे सुनो ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

नानातन्त्रविधानेनेति कलौ तन्त्रमार्गस्य प्राधान्यं दर्शयति ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

अनेक तन्त्रों की विधि से कहकर कलियुग में तन्त्रज्ञ की प्रधानता योगीश्वरजी ने बतलाया है ।।३१।।

कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् । यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ।।३२।।

अन्वयः— कृष्णवर्णं, त्विषाऽकृष्णम् साङ्गोपाङ्गस्त्रपार्षदम् सुमेधसः सङ्कीर्तनप्रायैः यज्ञै यजन्ति ।।३२।।

अनुवाद— कलियुग में श्रीभगवान् का वर्ण काला होता है किन्तु उनकी कान्ति काली नहीं होती है । जैसे नीलमणि से उजली कान्ति निकलती है उसी तरह, उनके हृदय में कौस्तुभ आदि मणि होती है । सुदर्शन आदि अस्त्र तथा सुनन्द आदि पार्षद आदि से वे युक्त होते हैं । श्रीभगवन् की ज्ञानी पुरुष आराधना सङ्कीर्तन प्रधान यज्ञों से किया करते हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

रूक्षतां व्यावर्तयति-त्विषा कान्त्याऽकृष्णामिन्द्रनीलमणिवदुज्ज्वलम् । यद्वा त्विषा कृष्णं कृष्णावतारम् । अनेन कलौ कृष्णावतारस्य प्राधान्यं दर्शयति । अङ्गानि हृदयादीनि । उपाङ्गानि कौस्तुभादीनि । अस्त्राणि सुदर्शनादीनि । पार्षदाः सुनन्दादयः तत्सहितम् । यज्ञैरर्चनैः । सङ्कीर्तनं नामोच्चारणं स्तुतिश्च तत्प्रधानैः । सुमेधसो विवेकिनः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

कलियुग में भगवान् श्याम वर्ण के होते हैं और उनकी कान्ति श्वेत होती है । जैसी नीलमणि से श्वेत कान्ति निकलती है । अथवा **त्विषाकृष्णम्** अर्थात् कृष्णावतार वाले इससे योगीश्वर ने कृष्णावतार की प्रधान कलियुग में बतलायी। अङ्ग अर्थात् हृदय आदि, उपाङ्ग अर्थात् कौस्तुभमणि आदि सुदर्शन आदि अस्त्रों तथा सुनन्द आदि पार्षदो नामोच्चारण और स्तुति प्रधान यज्ञों से श्रीभगवान् की अर्चना करते हैं ।।३२।।

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥३३॥

अन्वयः— हे महापुरुष प्राणतपाल ध्येयं परिभवध्नम् अभीष्टदोहं तीर्थांस्पद शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् भृत्यार्तिहं भवाब्धिपोतं ते चरणारविन्दम् वन्दे ॥३३॥

अनुवाद— हे महापुरुष प्रभो, हे शरणागत जीवों की रक्षा करने वाले प्रभो आपके ध्यान करने योग्य सांसारिक माया-मोह के कारण होने वाले पराजयों का अन्त कर देने वाला, भक्तों को समस्त अभीष्ट वस्तुओं को प्रदान करने वाले तथा कामधेनु स्वरूप, तीर्थों को भी तीर्थ बना देने वाले, शिवजी तथा ब्रह्माजी आदि देवता जिनकी स्तुति करते हैं, भक्तों के समस्त कष्टों को दूर करने वाले तथा संसार रूपी सागर को पार करने के लिए नौका के समान आपके चरण कमलों की मैं वन्दना करता हूँ ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

स्तुतिमाह–ध्येयमिति । हे प्रणतपाल हे महापुरुष, ते चरणारविन्दं वन्दे । कथंभूतम् । ध्येयं ध्यातुं योग्यम् । सदेति सर्वत्र संबध्यते । ध्येयत्वे हेतवः इन्द्रियकुटुम्बादिभिर्यः परिभवस्तिरस्कारस्तं हन्तीति तथा तत् । किंच, अभीष्टदोहं मनोरथपूरकम्। किंच तीर्थास्पदं गङ्गाद्याश्रयत्वेन परमपावनम् । शिवविरिञ्चिभ्यां नुतं स्तुतं महत्तमम् । ननु तौ कृतार्थाविव, किमर्थं ताभ्यां नुतं तत्राह-शरण्यमाश्रययोग्यं सुखात्मकमित्यर्थः । तर्हि ब्रह्मादिस्तुत्यं प्राकृतस्य कथं गोचरः स्यात्, न, भृत्यार्तिहं यस्य कस्यापि भृत्यमात्रस्यार्तिहन्तृ। न केवलमागन्तुकार्तिमात्रं हन्ति किंतु भवांब्धिपोतं संसारार्णवतारकं च ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

ध्येयम् इत्यादि श्लोक से की जाने वाली श्रीभगवान् की स्तुति का वर्णन करते हैं । हे शरणागतजीवों की रक्षा करने वाले ! हे महापुरुष ! मैं आपके चरण कमलों की वन्दना करता हूँ । आपके चरण कैसे हैं ? उत्तर है ध्यान करने योग्य हैं । सदा शब्द का सर्वदा अन्वय करना चाहिए ध्येय होने के कारण हैं कि इन्द्रिय समूह आदि के द्वारा होने वाले पराजय का नाश करने वाले हैं । आपके चरण भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करने वाले, तीर्थ को भी तीर्थ बनाने वाले, क्योंकि गङ्गाजी आदि का भी आश्रय होने के कारण परम पवित्र, शिवजी तथा ब्रह्माजी आदि के द्वारा स्तुत हैं आपके चरण कमल । प्रश्न होता है कि शिवजी आदि क्यों स्तुति करते हैं तो उत्तर है कि वे आश्रय रूप से अपनाने योग्य हैं । अर्थात् सुखस्वरूप है । प्रश्न होता है कि ब्रह्माजी आदि के द्वारा स्तुत चरण प्रकृत जीवों को कैसे प्राप्त हो सकते है ? तो ऐसी बात नहीं वे अपने अनुयायिों के कष्ट को दूर करने वाले हैं । किसी भी शरणागत जीव के कष्ट को वे दूर करते हैं । केवल आगन्तुक ही कष्ट को नहीं अपितु वे संसार सागर को पार करने के लिए सुदृढ नौका के समान हैं । अर्थात् संसार सागर से पार कर देने वाले हैं ॥३३॥

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥३४॥

अन्वयः— हे धर्मिष्ठ महापुरुष आर्यवचसा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराराज्यलक्ष्मीं त्यक्त्वा यत् अरण्यम् अगात् दयितेप्सितम् मायामृगं अन्वधावत् ते चरणारविन्दं वन्दे ॥३४॥

अनुवाद— हे धार्मिकाग्रगण्यमहापुरुष अपने पिता की आज्ञा को मानकर आपने देवताओं के भी अभीप्सित तथा जिसको त्यागना अत्यन्त कठिन था उस राज्य लक्ष्मी का परित्याग करके वन में चले गये, अपनी प्रियतमा श्रीजानकीजी को अभिप्रेत मायामृग के पीछे आप दौड़े ऐसे आपके चरणों की मैं वदना करता हूँ । धन्य है आपकी धर्मनिष्ठा और धन्य है आपका अपनी प्रियतमा के प्रतिप्रेम ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं स्वयमाप्तकामत्वान्नैरपेक्ष्यं भक्तार्थं च सापेक्षतां दर्शयन् श्रीरामचन्द्रं स्तौति-त्यक्त्वेति । अन्यैः सुदुस्त्यजा या सुरेप्सि राज्यलक्ष्मीस्तां त्यक्त्वा । यदिति, य इत्यर्थः । योऽरण्यमगात् किं राज्यवैकल्यदर्शनेन, न, धर्मिष्ठः । कुतः । आर्यस्य गुरोर्दशरथस्य वचसा । किंच एवं राज्यं त्यक्त्वापि भक्तवात्सल्येन दयितया सीतयेप्सितं मायामृगं स्वर्णाकारं योऽन्वधावत्। तस्य भगवतश्चरणारविन्दं वन्दे । यद्वा हे धर्मिष्ठेति । संबोधनम् । तथाप्यविवक्षितत्वादार्यपदेन सन्धिर्न भवति । तथा यदगादिति चरणारविन्दमेवोच्यते । यन्मायामृगमन्वधावत्तत्ते चरणारविन्दं वन्द इत्यन्वयः । अन्यत्समानम् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में भगवान् श्रीरामजी की स्तुति की गयी है । अब इस श्लोक में भगवान् श्रीराम के आप्तकामत्व, सर्वनैरपेक्ष्यत्व, भक्तों के लिए सापेक्षता दिखलाते हुए **त्यक्त्वा** इस श्लोक द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्र की स्तुति की गयी है । दूसरों के लिए जिसको बड़ा ही कठिन था, तथा देवताओं के भी लिए स्पृहणीय, राज्य लक्ष्मी का परित्याग करके । यत् अर्थात् जो वन में चला गया, क्या राज्य में होने वाली किसी प्रकार की कमी देखकर ? तो ऐसी बात नहीं क्योंकि आप धार्मिकों में श्रेष्ठ हैं । तो फिर कैसे ? तो इसका उत्तर है अपने पिता की आज्ञा को मानकर । और इस प्रकार के राज्य का परित्याग करके भी भक्तवत्सलता के कारण अपनी पत्नी श्रीसीताजी को अभिप्रेत होने के कारण स्वर्णाकार माया मृग के पीछे जो दौड़ पडे, उन श्रीभगवान् के चरणारविन्द की मैं प्रार्थना करता हूँ । इस प्रकार से इस श्लोक का अन्वय । श्लोक के अवशिष्ट पद सरल हैं ।।३४।।

एवं युगानुरूपाभ्यां भगवान्युगवर्तिभिः । मनुजैरिज्यते राजन् श्रेयसामीश्वरो हरिः ।।३५।।

अन्वयः— राजन् एवं युगानुरूपाभ्यां युगवर्तिभिः मनुजैः श्रेयसामीश्वरः हरि भगवान् ईज्यते ।।३५।।

अनुवाद— राजन् इस तरह के भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न नामों और रूपों से तत्-तत् युगों में रहने वाले लोगों द्वारा भगवान् श्रीहरि पूजित होते हैं, क्योंकि कल्याणों को प्रदान करने वाले तो श्रीहरि ही हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

युगानुरूपाभ्यां नामरूपाभ्याम् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न नाम और रूप वाले ।।३५।।

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः । यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते ।।३६।।

अन्वयः— सारभागिनः गुणज्ञाः आर्याः कलिं सभाजयन्ति, यत्र सङ्कीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थों अभिलभ्यते ।।३६।।

अनुवाद— सारग्राही कलियुग के गुणों को जानने वाले श्रेष्ठ कलि की बड़ी प्रशंसा करते हैं, कलियुग में तो श्रीभगवान् के नामों का सङ्कीर्तन करने से ही सभी अभिलषित पदार्थों की प्राप्ति हो जाती है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

एतेषु चतुर्युगेषु कलिरेव श्रेष्ठ इत्याह-कलिमिति । गुणज्ञाः कलेर्गुणं जानन्ति ये ते । ननु दोषाणां बहुत्वात्कथं सभाजयन्ति तत्राह-सारभागिनो गुणांशग्राहिणः । कोऽसौ गुणस्तमाह-यत्रेति । तदुक्तम्- 'ध्यायन्कृते यजन् यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् । यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सङ्कीर्त्य केशवम् ।' इति ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

इन चार युगों में कलियुग ही सर्वश्रेष्ठ है इस बात को **कलिम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । जो लोग कलियुग के गुणों को जानते हैं वे यदि कोई कहे कि कलि में दोषों की भरमार है अतएव क्यों समादर करते हैं ? तो ऐसी बात

नहीं है । क्योंकि वे गुणग्राही है । कौन सा गुण कलिगुण में है ? तो इसका उत्तर यत्र आदि श्लोक के उत्तरार्द्ध से दिया गया है। कहा भी गया है- **ध्यायन् कते० इत्यादि** अर्थात् सत्ययुग में ध्यान करने से, त्रेतायुग में यज्ञ करने से, और द्वापर युग में श्रीहरि की अर्चना से जिस फल की प्राप्ति होती है, कलियुग में उस फल की प्राप्ति श्रीहरि के नामों का सङ्कीर्तन करने से होती है ।।३६।।

नह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह । यतो विन्देत परमां शान्तिं नश्यति संसृतिः ।।३७।।

अन्वयः— इह भ्राम्यताम् देहिनाम् अतः परमो लाभो न, यतः परमां शान्तिं विन्देत संसृतिः नश्यति ।।३७।।

अनुवाद— इस संसार में भटकने वाले शरीरधारी जीवों के लिए इससे बढ़कर दूसरा कोई लाभ नहीं होता है । अर्थात् भगवान् के नामों, गुणों और लीलाओं के कीर्तन से बढ़कर दूसरा कोई लाभ नहीं है । क्योंकि इससे परम शान्ति की प्राप्ति होती है और यह संसार चक्र विनष्ट हो जाता है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

तस्मात्कलावतोऽस्मात्संकीर्तनात्परमो लाभो नास्ति । यतः सङ्कीर्तनात् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

अतएव कलियुग में इससे नामादि संकीर्तन से बढ़कर दूसरा कोई लाभ नहीं है ।।३७।।

कृतादिषु प्रजा राजन्कलाविच्छन्ति संभवम् । कलौ खलु भविष्यन्ति नारायणपरायणाः ।।३८।।

अन्वयः— राजन् कृतादिषु प्रजाः कलौ संभवम् इच्छन्ति, कलौ खलु नारायण परायणाः भविष्यन्ति ।।३८।।

अनुवाद— सत्ययुग आदि की प्रजाएँ चाहती हैं कि कलियुग में हमारा जन्म हो, कलियुग में भगवान् नारायण के परम भक्त होंगे ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

किंच, कृतादिष्विति ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

कृतादिषु इत्यादि से कलियुग की महिमा बतलायी गयी है ।।३८।।

क्वचित्क्वचिन्महाराज द्राविडेषु च भूरिशः । ताम्रपर्णी नदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ।।३९।।
कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी । ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मानुजेश्वर ।।
प्रायो भक्ताः भगवति वासुदेवेऽमलाशयाः ।।४०।।

अन्वयः— हे महाराज ! क्वचित् क्वचित् द्राविडेषु च भूरिशः । यत्र ताम्रपर्णी नदी, कृतमाला, पयस्विनी च महापुण्या कावेरी च, महानदी प्रतीची च ये मनुजाः तासां जलं पिबन्ति प्रायः भगवति अमलाशयाः भक्ताः भविष्यन्तीति शेषः ।।३९-४०।।

अनुवाद— हे महाराज कलियुग में भगवान् नारायण के ही आश्रय में रहने वाले बहुत से भक्त कहीं-कहीं पर होंगे । महाराज द्राविड देश में कलियुग में अधिक भक्त पाये जाते हैं । जहाँ ताम्रपर्णी, कृतमाला, पयस्विनी, परमपवित्र कावेरी, महानदी प्रतीची नाम की नदियाँ प्रवाहित होती हैं । जो मनुष्य उन नदियों का जल पीते हैं उनका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और वे भगवान् वासुदेव के भक्त हो जाते है ।।३९-४०।।

भावार्थ दीपिका

अमलाशयाः सन्तः प्रायः प्रायशो भगवति भक्ता भवन्ति ।।३९-४०।।

भाव प्रकाशिका

शुद्ध अन्तःकरण वाले प्रायः भगवान् नारायण के भक्त होते हैं ।।३९-४०।।

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां न किङ्करो नायमृणी च राजन् ।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम् ।।४१।।

अन्वयः— राजन् यः कर्तम् परिहृत्य सर्वात्मना शरण्यं मुकुन्दं शरणं गतः देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणाम् अयं ऋगीन किंकरश्च न ।।४१।।

अनुवाद— राजन् जो मनुष्य कृत कृत्य बुद्धि अथवा भेद बुद्धि का परित्याग कर पूर्ण रूप से सबों के रक्षक भगवान् मुकुन्द के शरण में चला जाता है । वह देवता, ऋषि, पितृगण आप्त (पोष्य) सबों के ऋण से मुक्त हो जाता है, वह किसी का भी किङ्कर नहीं रह जाता है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

भक्तस्य विधिनिषेधनिवृत्तेः कृतकृत्यतामाह–देवर्षीति । आप्ताः पोष्याः कुटुम्बिन इतरे देवादयः पञ्चयज्ञदेवता एतेषां यथाऽभक्तः ऋणी अतएव तेषां किङ्करस्तदर्थं नित्यं पञ्चयज्ञादिकर्ता । तथा च स्मृतिः– 'हीनजातिं परिक्षीणमृणार्थं कर्मकारयेत्' इति । अयं तु न तथा । कोऽसौ । यः सर्वभावेन श्रीमुकुन्दं शरणं गतः । कर्तं कृत्यं परित्यज्य । यद्वा कर्तं भेदं परिहृत्य । कृती छेदने' इत्यस्मात् वासुदेवः सर्वमिति बुद्धवेत्यर्थः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

भगवद् भक्त विधि निषेध से ऊपर उठ जाते है, इस बात को देवर्षि, इत्यादि श्लोक से कहते हैं । आप्ताः अर्थात् पोष्य, कुटुम्बी, दूसरे देवता आदि, पञ्चयज्ञ के देवता, जिस तरह जो भक्त नहीं होता है, वह इन सबों का ऋणी होता है, तथा इन सबों का किंकर होता है । और पञ्चयज्ञ करता रहता है । स्मृति कहती है हीन जाति से क्षीण बना हुआ ऋण के लिए कर्म करना चाहिए । किन्तु श्रीभगवान् का भक्त वैसा नहीं होता है, क्योंकि जो कृत्य बुद्धिका परित्याग कर दिया है । अथवा भेद को त्यागकर कृती छेदने धातु से व्युत्पन्न कर्तम् अर्थात् भगवान् वासुदेव ही सम्पूर्ण जगत् है इस तरह से जानकर ।।४१।।

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः ।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथंचिद्धुनोति सर्वं हृदि संनिविष्टः ।।४२।।

अन्वयः— स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य परेशः हरिः यच्च कथंचित् विकर्म उत्पतितं सर्वं हृदि संन्निविष्टः धुनोति ।।४२।।

अनुवाद— जिसने दूसरी सारी भावनाओं का त्याग कर दिया है । अनन्य भाव से श्रीभगवान् के ही चरणों का भजन करता है, पहली बात यह कि उससे कोई भी पाप नहीं होता है, और यदि किसी तरह हो भी गया तो हृदय में बैठे हुए श्रीभगवान् उसको विनष्ट कर देते हैं ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

विहितकर्मनिवृत्तिमुक्त्वा निषेधनिमित्तप्रायश्चित्तनिवृत्तिमाह–स्वपादमूलमिति । त्यक्तोऽन्यस्मिन्देहादौ देवतान्तरे वा भावो येन । अतएव तस्य विकर्मणि प्रवृत्तिर्न संभवति । यच्च कथंचित्प्रमादादिना उत्पतितं भवेत्तदपि हरर्धुनोति । ननु यमस्तत्र मन्येत तत्राह–परेशः । ननु 'श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे' इति भगवद्वचनात्स्वाज्ञाभङ्गं कथं सहेत तत्राह–प्रियस्य । ननु नायं पापक्षयार्थं भजते तत्राह–हृदि संनिविष्टः । न हि वस्तुशक्तिरर्थितामपेक्षत इत्यर्थः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

इससे पहले के श्लोक में भक्त की विहित कर्म की विवृति कही गयी है । अथवा इस श्लोक से निषेध विधि तथा प्रायश्चित्त कर्म की निवृत्त बतलाते हैं । जो लोग देह में अथवा देवतान्तर की भावना को छोड़ देते हैं । उन व्यक्तियों

की निषिद्ध कर्म में प्रवृत्ति नहीं होती है। यदि प्रमादवशात् किसी प्रकार से पाप कर्म हो ही गया तो उसको भी श्रीभगवान् विनष्ट कर देते हैं। यदि कहें यम उसको न मानें तो इस पर कहते हैं- श्रीभगवान् स्वेतरसमस्त जीवों के स्वामी है। यदि कहें कि श्रुतियाँ और स्मृतियों श्रीभगवान् की आज्ञा है। उस अपनी आज्ञाभङ्ग को भगवान कैसे सह सकते हैं ? इस पर कहते हैं कि वह श्रीभगवान का प्रिय जीव होता है। प्रश्न होता है कि श्रीभगवान् का भक्त अपने पापों के विनाशार्थ उनका भजन तो करता नहीं है। इसका उत्तर है कि भगवान् उस भक्त के हृदय में स्वयं सन्निविष्ट रहते हैं वस्तु शक्ति किसी की प्रार्थना की अपेक्षा नहीं करती है ॥४२॥

नारद उवाच

धर्मान्भागवतानित्थं श्रुत्वाथ मिथिलेश्वरः। जायन्तेयान्मुनीन्प्रीतः सोपाध्यायो ह्यपूजयत् ॥४३॥

अन्वयः— अथ भागवतान् धर्मान् श्रुत्वा मिथिलेश्वर प्रीतः जायन्तेयान् मुनीन् सोपाध्यायः हि अपूजयत् ॥४३॥

नारदजी ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् भागवत धर्मों को सुनकर महाराज निमि को बहुत प्रसन्नता हुई उन्होंने जयन्ती माता के पुत्र नवो योगीश्वरों की अपने ऋत्विजों और आचार्यों की पूजा की ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

जायन्तेयान् जयन्त्याः पुत्रान् ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

जायन्तेयान् महारानी जयन्ती के पुत्रों (नवो योगीश्वरों) की ॥४३॥

ततोऽन्तर्दधिरे सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः। राजाधर्मानुपातिष्ठन्नवाप परमां गतिम् ॥४४॥

अन्वयः— ततः सिद्धाः सर्वलोकस्य पश्यतः अन्तर्दधिरे। धर्मान् उपातिष्ठन् राजा परमां गतिमवाप ॥४४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् वे नवो योगीश्वर सबों के सामने से अन्तर्धान हो गये। राजा भी भागवत धर्मों का पालन करते हुए मुक्ति को प्राप्त कर लिए ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

उपातिष्ठन्ननुतिष्ठन् ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

उपातिष्ठन् अर्थात् पालन करते हुए ॥४४॥

त्वमप्येतान्महाभाग धर्मान्भागवतान् श्रुतान्। आस्थितः श्रद्धया युक्तो निःसङ्गो यास्यसे परम् ॥४५॥

अन्वयः— हे महाभाग त्वम् एतान् भागवतान् धर्मान् श्रद्धया आस्थितः युक्तः सन् परम् निः सङ्गं यास्यसे ॥४५॥

अनुवाद— हे महाभाग्यवान् आप भी इन भागवत धर्मों का श्रद्धा पूर्वक पालन करते हुए इस परम निःसङ्ग अर्थात् परम पवित्र हो जायेंगे ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

निःसङ्गो भूत्वा ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

अनासक्त होकर ॥४५॥

युवयोः खलु दम्पत्योर्यशसा पूरितं जगत् । पुत्रतामगमद्यद्वां भगवानीश्वरो हरिः ॥४६॥

अन्वयः— युवयोः दम्पत्योः यशसा खलु जगत् पूरितं, यत् वां भगवान् ईश्वरो हरिः पुत्रताम् गतः ॥४६॥

अनुवाद— निश्चित रूप से आप दोनों पति-पत्नी के यश से यह सम्पूर्ण जगत् भर गया है । यही कारण है कि आप दोनों के पुत्र भगवान श्रीहरि बने ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

शास्त्रप्रक्रियेयमुक्ता, युवां तु सङ्गत एव कृतार्थावित्याह-युवयोरिति । वां युवयोः ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

यह शास्त्र की प्रक्रिया के अनुसार कहा गया है । आप दोनों तो श्रीभगवान् की सङ्गति से ही कृतार्थ हैं, इस बात को **युवयोः** इस श्लोक से कहा गया है । **वां** अर्थात् आप दोनों के ॥४६॥

दर्शनालिङ्गनालापैः शयनासन भोजनैः । आत्मा वां पावितः कृष्णे पुत्रस्नेहं प्रकुर्वतोः ॥४७॥

अन्वयः— कृष्णे पुत्र स्नेहं प्रकुर्वतः वां दर्शनालिङ्गनालापैः शयनासनभोजनैः आत्मा पावितः ॥४७॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति पुत्र का प्रेम करते हुए आपलोग भगवान् का दर्शन, आलिङ्गन तथा वातचित करते हुए एवं उनके साथ सोने और बैठने के कारण आप दोनों की आत्मा पवित्र हो गयी है ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

न च सर्वकर्मार्पणादिभागवतधर्मैरन्येषामिव युवयोः सत्त्वशुद्धिरापादनीया, पुत्रोपलालनेनैव भागवतधर्मसर्वस्वनिष्पत्तेरित्याह-दर्शनेति । कृष्णे पुत्र इति स्नेहं प्रकुर्वतोर्वां तस्य दर्शनादिभिरात्मा पावितः शोधितः ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

आप दोनों को सर्व कर्म अर्पण रूप भागवत धर्मों के द्वारा दूसरों के समान आत्मशुद्धि का सम्पादन नहीं करना है । क्योंकि पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण का दुलार करने के कारण ही भागवत धर्म के सर्वस्वभूत की प्राप्ति आप दोनों को प्राप्त हो गयी है । भगवान् श्रीकृष्ण को पुत्र मानकर उनके प्रति प्रेम करने के कारण तथा भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन आदि करने के कारण आप दोनों की आत्मा पवित्र हो गयी है ॥४७॥

वैरेण यं नृपतयः शिशुपालपौण्ड्रशाल्वादयो गतिविलासविलोकनाद्यैः ।
ध्यायन्त आकृतधियः शयनासनादौ तत्साम्यमापुरनुरक्तधियां पुनः किम् ॥४८॥

अन्वयः— शिशुपालपौण्ड्रशाल्वादयः नृपतयः वैरेण यं गति विलास विलोकनाद्यैः आकृतधियः ध्यायन्तः तत्साम्यताम् आपुः शयनासनादौ अनुरक्तधियां पुनः किम् ?॥४८॥

अनुवाद— वसुदेवजी ! शिशुपाल, पौण्ड्रक तथा शाल्व आदि राजाओं ने तो वैर भाव से भगवान् श्रीकृष्ण की चाल-ढाल लीला विलास चितवन आदि ध्यान करके सोते, बैठते चलते फिरते स्वाभाविक रूप से भगवान् श्रीकृष्ण की समता को प्राप्त कर लिया और आप लोग तो श्रीभगवान् से प्रेम करते हैं अतएव आप लोगों के विषय में क्या कहना है ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव कैमुत्यन्यायेन स्फुटयति-वैरेणेति । यं शयनासनादौ वैरेणापि ध्यायन्तस्तस्य गतिविलासाद्यैराकृतधियस्तत्तदाकाराधीर्येषां ते तत्सारूप्यमापुः किं पुनर्वक्तव्यमनुरक्तधियां तत्साम्यं भवतीति ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

इसी बात को कैमुत्यन्याय से स्पष्ट वैरेण इत्यादि श्लोक से करते हैं । जिन श्रीभगवान् को सोते-बैठते समय वैर-भाव से श्रीकृष्ण भगवान् की गति तथा विलास आदि का सदा ध्यान करते हुए शिशुपाल आदि श्रीभगवान् के सारूप्य को प्राप्त कर लिए और भगवान् में जिनकी बुद्धि प्रेम पूर्वक लगी है ऐसे आप सभी श्रीभगवान् के साम्य को प्राप्त कर लेंगे यह क्या कहना है ?॥४८॥

माऽपत्य बुद्धिमकृथाः कृष्णो सर्वात्मनीश्वरे । मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्ये परेऽव्यये ॥४९॥

अन्वयः— मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्ये परे अव्यये सर्वात्मनि ईश्वरे अपत्यबुद्धिं मा अकृथाः ॥४९॥

अनुवाद— वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्ण माया को स्वीकर करके लीला करने के लिए मनुष्य बने हुए हैं। तथा अपना ऐश्वर्य छिपा रखे हैं । वे निर्विकार परं पुरुष हैं । वे सम्पूर्ण जगत् की आत्मा और नियामक हैं उनको आप केवल अपना पुत्र ही न समझें ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

ननु पुत्रस्नेहश्चेन्मोक्षहेतुस्तर्हि सर्वे मुच्येरंस्तत्राह–माऽपत्यबुद्धिमिति । अपत्यमिति बुद्धिं मा कृथाः । अडागमश्छान्दसः॥४९॥

भाव प्रकाशिका

यदि पुत्र के प्रति होने वाला स्नेह ही मुक्ति का कारण हो तब तो सभी पुत्र वाले मुक्त हो जायँ, इस पर नारदजी कहते हैं कि इनमें केवल आप पुत्र की ही बुद्धि न करें यहाँ अट् का आगम छान्दस है ॥४९॥

भूभारासुरराजन्यहन्तवे गुप्तये सताम् । अवतीर्णस्य निर्वृत्यै यशो लोके वितन्यते ॥५०॥

अन्वयः— भूभारासुरराजन्य हन्तवे, सतां गुप्तये अवतीर्णस्य निर्वृत्यै लोके यशः वितन्यते ॥५०॥

अनुवाद— पृथ्वी के भारभूत असुर राजाओं का विनाश करने के लिए तथा सत्पुरुषों की रक्षा करने के लिए तथा भक्तों को परम शान्ति मुक्ति प्रदान करने के लिए अवतीर्ण हैं । इसी के लिए जगत् में उनकी कीर्ति भी गायी जाती है ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

ननु कथमीश्वरो मानुषः स्यात्कथं वा तस्य विश्वसृष्ट्यादिकर्तुः पूतना शोषणादिकर्माश्चर्यमिव निरूप्यते तत्राह–भूभाररूपा असुरा एव राजन्यास्तेषां हन्तवे तान्हन्तुम् । निर्वृत्यै मोक्षाय ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि परमात्मा मनुष्य कैसे हो सकते हैं, विश्व की सृष्टि करने वाले श्रीभगवान् पूतना आदि के शोषण आदि आश्चर्य कार्यों को कैसे कर सकते हैं ? इस पर नारदजी ने कहा पृथिवी के भार रूप असुर राजाओं का विनाश करने के लिए तथा भक्तों को मोक्ष प्रदान करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण रूप में अवतीर्ण हैं ॥५०॥

श्रीशुक उवाच

एतच्छ्रुत्वा महाभागो वसुदेवोऽतिविस्मितः । देवकी च महाभागा जहतुर्मोहमात्मनः ॥५१॥

अन्वयः— महाभागः वसुदेवः एतत् श्रुत्वा अतिविस्मितः । महाभागा देवकी च आत्मनः मोहं जहतुः ॥५१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— महाभाग्यवान वसुदेवजी इस आख्यान को सुनकर अत्यन्त आश्चर्यित हुए । महाभाग्यवती देवकी माता भी यह सुनकर अपने अज्ञान का परित्याग कर दीं ॥५१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५१॥

इतिहासमिमं पुण्यं धारयेद्यः समाहितः । स विधूयेह शमलं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पञ्चमोऽध्याय: ॥५॥

अन्वयः— इमं पुण्यं इतिहासं यः समाहितः धारयेत् इह शमलं विधूय ब्रह्मभूताय कल्पते ॥५२॥

अनुवाद— इस पवित्र इतिहास को जो एकाग्रचित्त से धारण करता है, वह इस देह में ही सम्पूर्ण पापों को विनष्ट करके ब्रह्मपद को प्राप्त करता है ॥५२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के पाँचवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

भावार्थ दीपिका

इहास्मिन्नेव देहे शमलं मोहं विधूय ब्रह्मत्वाय कल्पते ॥५२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

इस शरीर में ही समस्त अज्ञान को विनष्ट करके ब्रह्म स्वरूप हो जाता है ॥५२॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के पाँचवे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥५॥

छठा अध्याय

देवताओं की स्वधाम पधारने के लिए भगवान् से प्रार्थना यादवों की प्रभास क्षेत्र जाने की तैयारी करते देखकर उद्धवजी का भगवान् के पास आना

श्रीशुक उवाच

अथ ब्रह्मात्मजैर्देवैः प्रजेशैरावृतोऽभ्यगात् । भवश्च भूतभव्येशो ययौ भूतगणैर्वृतः ॥१॥

अन्वयः— अथ ब्रह्मा आत्मजैः देवै, प्रजेशैः आवृतः अभ्यगात् भूतभव्येशो भवश्च भूतगणैः वृतः ययौ ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ब्रह्माजी अपने सनकादिक पुत्रों, देवताओं और प्रजापतियों के साथ द्वारकापुरी में आये और सर्वेश्वर शङ्करजी अपने भूतगणों के साथ द्वारकापुरी में आये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षष्ठ ब्रह्मादिभिः स्तुत्वा गन्तुं विज्ञापितं हरिम् । उद्धवः प्रार्थयामास स्वधाम नय मामिति ॥१॥ अतःपरमतिविस्तरेणात्मविद्यां निरूपयितुं तत्प्रस्तावमाह अथेति । आत्मजैः सनकादिभिः । अभ्यगात् द्वारकामिति चतुर्थेनान्वयः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

छठे अध्याय में ब्रह्माजी आदि के द्वारा स्तुति करके श्रीभगवान् के अपने धाम में पधारने के लिए प्रार्थना करके चले जाने पर उद्धवजी ने प्रार्थना की कि आप मुझको भी अपने धाम में ले चले ॥१॥ इसके पश्चात् अत्यन्त विस्तार पूर्वक आत्मविद्या का निरूपण करने के लिए उसको प्रस्तावित करते हुए **अथ० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । **अभ्यगत्** अर्थात् गये इसका चौथे श्लोक के द्वारकाम् पद के साथ अन्वय हैं ॥१॥

इन्द्रो मरुद्भिर्भगवानादित्या वसवोऽश्विनौ । ऋभवोऽङ्गिरसो रुद्रा विश्वे साध्याश्च देवताः ॥२॥
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धचारणगुह्यकाः । ऋषयः पितरश्चैव सविद्याधरकिन्नराः ॥३॥
द्वारकामुपसंजग्मुः सर्वे कृष्णदिदृक्षवः । वपुषा येन भगवान्नरलोकमनोरमः ॥
यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापहम् ॥४॥

अन्वयः— भगवान् इन्द्रः मरुद्भिः अदित्याः, वसवः अश्विनौ ऋभवः आङ्गिरसः रुद्राः विश्वे साध्या देवता च, गन्धवप्सिरसः नागाः सिद्धचारण गुह्यकाः ऋषयः पितरः चैव सविद्याधर किन्नराः सर्वे द्वारकाम् कृष्णदिदृक्षवः संजग्मुः । भगवान् येन वपुषा लोकेषु नरलोकमनोरमः सर्वलोक मलापहम् यशो वितेने ॥२-४॥

अनुवाद— मरुद्गणों के साथ देवराज इन्द्र द्वारका नगरी में आये । सभी आदित्यगण आठो वसु, अश्विनी कुमार ऋभु, अङ्गिरा के वंशज ऋषि, ग्यारहों रुद्र विश्वेदेव, साध्यगण, गन्धर्व, अप्सरा नाग, सिद्ध चारण, गुह्यक, ऋषि, पितर, विद्याधर और किन्नर भी वहाँ गये । इन सभी लोगों के वहाँ जाने का उद्देश्य था कि, मनुष्य के समान मनोज्ञ रूप धारण करने वाले और अपने श्याम सुन्दर विग्रह से सभी लोगों का मन अपनी ओर आकृष्ट करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन किया जाय, क्योंकि इस समय इन्होंने अपना श्रीविग्रह प्रकट करके उसके द्वारा त्रैलोक्य में अपनी ऐसी पवित्र कीर्ति का विस्तार किया है जो सम्पूर्ण लोकों के समस्त पाप-ताप को सदा के लिए विनष्ट कर देने वाली है ॥२-४॥

भावार्थ दीपिका

ननु तेषामुपेन्द्रादिरूपं भगवन्तं नित्यं पश्यतां केयमतिदिदृक्षा अत आह–वपुषेति । येन वपुषा नरलोकमनोरमः सन्सर्वलोकेषु यशो वितेने तदतिसुन्दर वपुर्दिदृक्षवः ॥२-४॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि वे देवगण तो श्रीभगवान् के उपेन्द्र आदि रूपों को सदा देखते हैं । अतएव इसे अत्यधिक देखने की इच्छा का कारण क्या है ? तो इसका उत्तर है **वपुषा इत्यादि** श्लोक का उत्तरार्ध । भूलोक में सबसे मनोहर अपने जिस शरीर से सम्पूर्ण लोकों में श्रीभगवान् ने अपने यश का विस्तार किया उस शरीर को देखने की इच्छा थी उन सभी देवताओं की ॥२-४॥

तस्यां विभ्राजमानायां समृद्धायां महर्द्धिभिः । व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुतदर्शनम् ॥५॥

अन्वयः— समृद्धिभिः समृद्धायां तस्यां विभ्राजमानायां अदभुतदर्शनम् कृष्णम् अवितृप्ताक्षाः व्यचक्षत ॥५॥

अनुवाद— सब प्रकार की समृद्धियों से सम्पन्न एवं अलौकिक दीप्ति से देदीप्यमान द्वारकापुरी में भगवान् श्रीकृष्ण के अद्भूत दर्शन का अवलोकन उन सभी देवताओं ने अपनी अतृप्त नेत्रों से किया ॥५॥

भावार्थ दीपिका

व्यचक्षतापश्यन् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

व्यचक्षत अर्थात् देखा ॥५॥

स्वर्गोद्यानोपगैर्माल्यैश्छादयन्तो यदूत्तमम् । गीर्भिश्चित्रपदार्थाभिस्तुष्टुवुर्जगदीश्वरम् ॥६॥

अन्वयः— स्वर्गोद्यानोपगैः माल्यैः यदूत्तमम् छादयन्तः चित्रपदार्थाभिः गीर्भिः जगदीश्वरम् तुष्टुवुः ॥६॥

अनुवाद— स्वर्ग के नन्दन आदि उद्यानों के पुष्पों की मालाओं से भगवान् श्रीकृष्ण को ढँक दिया और चित्र विचित्र पदार्थों (पदों के अर्थों) वाली वाणी से सम्पूर्ण जगत् के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की ॥६॥

भावार्थ दीपिका

स्वर्गोद्यानस्थैर्माल्यैः । चित्राणि शृङ्खलावन्धप्रायाणि पदान्यर्थाश्च यासु ताभिर्गीर्भिः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

स्वर्ग के उद्यान नन्दन वन अदि के पुष्पों की मालाओं से चित्र अर्थात् जो प्रायः शृङ्खलावन्ध से युक्त थे ऐसे पदों एवं अर्थों से युक्त वाणियों से ॥६॥

देवा ऊचुः

नताः स्म ते नाथ पदारविन्दं बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः ।
यच्चिन्त्यतेऽन्तर्हृदि भावयुक्तैर्मुमुक्षुभिः कर्ममयोरुपाशात् ॥७॥

अन्वयः— हे नाथ कर्ममयोरुपाशात् भावयुक्तैः मुमुक्षुभिः यत् अन्तः हृदि चिन्त्यते तत् बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः ते पादरन्दिम् नताः स्म ॥७॥

अनुवाद— हे नाथ कर्मों के भयङ्कर फन्दों से छूटने के लिए मुमुक्षु पुरुष भक्तिभाव पूर्वक आपके जिन चरणों का अपने हृदय में चिन्तन किया करते हैं आपके उन्हीं चरणकमलों का हमलोगों ने बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण, मन और वाणी से साक्षात् प्रणाम किया है, यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

बुद्धीन्द्रियादिभिर्दर्शनादिना प्राणेन च बलहेतुना दण्डवत्प्रणिपातेन नता वयं नमस्कृतवन्तः । स्मेति विस्मये । यथाहुः- 'दोर्भ्यां पदाभ्यां जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा । मनसा वचसा चेति प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः ।' इति । स्मशब्दोक्तविस्मयाय विशेषणम्। कर्ममयादुरुपाशान्मुमुक्षुभिर्भावयुक्तैरपि यत्केवलमन्तर्हृदि चिन्त्यते न तु दृश्यते तद्वयं नताः । अहो भाग्यमित्यर्थः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

बुद्धिता इन्द्रियों आदि से तथा बल के कारण स्वरूप प्राण के द्वारा साष्टाङ्ग प्रणाम पूर्वक हमलोगों ने साक्षात्कार किया। स्म यह विस्मय द्योतक अव्यय है । कहा भी गया है- **दोर्भ्यां पदाभ्यां.......प्रणामोष्टाङ्ग ईरितः ।** दोनों हाथों दोनों पैरों दोनों घुटनों वक्षःस्थल शिर, नेत्र, मन तथा वाणी इन सबों से दण्डे के समान पृथिवी पर गिर कर किए जाने वाले प्रणाम को साष्टाङ्ग प्रणाम अथवा दण्डवत् कहा जाता है । स्म शब्द से कहे गये विस्मय के लिए विशेषण है कर्मों के भयङ्कर फंदों से मुक्त होने के लिए मुमुक्षु पुरुष जिसका भक्तिभाव पूर्वक केवल अपने अन्तःकरण में चिन्तन किया करते हैं । वे उसका साक्षात्कार नहीं करते आपके उन्ही चरण कमलों का हमलोग साक्षात नमस्कार कर रहे हैं यह हमलोगों का अहोभाग्य है ॥७॥

त्वं मायया त्रिगुणयात्मनि दुर्विभाव्यं व्यक्तं सृजस्यवसि लुम्पसि तद्गुणस्थः ।
नैतैर्भवानजित कर्मभिरज्यते वै यत्स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः ॥८॥

अन्वयः— हे अजित ! त्वां त्रिगुणया मायया आत्मनि व्यक्तं तदगुणस्थः सृजसि, अवसि लुम्पसि भवान् वै एतैः कर्मभिः न अज्यते यत् स्वे अव्यवहिते सुखे अभिरतः अनवद्यः ॥८॥

अनुवाद— हे अजित ! आप माया के रज आदि गुणों में स्थित होकर इस अचिन्त्य नाम रूपात्मक प्रपञ्च की त्रिगुणात्मिका माया के द्वारा अपने आपमें ही सृष्टि करते हैं पालन करते हैं संहार करते हैं इन सबों को करते हुए भी आप इन कर्मों से लिप्त नहीं होते हैं, क्योंकि आप राग, द्वेष आदि दोषों से सर्वथा मुक्त हैं और अपने निरावरण अखण्ड स्वरूप भूत परमानन्द में मग्न रहते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

ननु ममापि दृष्टादृष्टकर्मकरणात्कुतो मत्पदारविन्दचिन्तनं कर्मपाशान्मुमुक्षुभिः क्रियते तत्राहुः-त्वमिति । हे अजित, आस्तामिदानीन्तनमिदमत्यल्पं कर्म, त्वं व्यक्तंमहदादिप्रपञ्चं सृजसि पालयसि संहरसि च, तदप्यात्मन्येव न पृथक् । दुर्विभाव्यं मनसाप्यवितर्क्यम् । तद्गुणस्थस्तस्या मायाया गुणेषु नियन्तृत्वेन स्थितः । अतएव तैः कर्मभिर्भवान्नाज्यते न लिप्यते । कुतः। यो भवाननवद्यो रागादिरहितः । यतः स्वे आत्मरूपे सुखेऽव्यवहितेऽनावृते अभिरतः । अतस्त्वं कर्म कुर्वन्नप्यात्मारामः परमेश्वर इति मुमुक्षुभिश्चिन्त्य स इति भावः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें कि मैं भी दृष्ट एवं अदृष्ट रूप कर्मों को करता ही रहता हूँ ऐसी स्थिति में मुमुक्षु पुरुष भक्ति-भाव पूर्वक मेरे चरण कमलों का चिन्तन अपने अन्तःकरण में क्यों करते हैं ? इस पर देवताओं ने **त्वम् मायया० इत्यादि** श्लोक कहा है अस्तु इस समय भले ही आप जो अत्यल्प कर्मों को करते हैं इससे क्या हुआ ? आप तो इस जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार कर्मों को करते हैं, वह भी अपने में ही यह सब आप करते हैं अपने से अलग नहीं । आपका यह कर्म मन से भी अचिन्त्य है । आप उस माया के गुणों के नियम रूप से स्थित हैं । अतएव आप माया के उन गुणों से बँधते नहीं है । क्योंकि आप रागादि दोषों से रहित हैं क्योंकि आप अपने निरावरण अखण्ड स्वरूप आनन्द में अभिरत (मग्न) रहते हैं । अतएव आप कर्मों को करते हुए भी आत्माराम परमेश्वर है, यही कारण है कि मुमुक्षुजन आपके चरणों का चिन्तन किया करते हैं ।।८।।

शुद्धिर्नृणां न तु तथेड्य दुराशयानां विद्याश्रुताध्ययनदानतपः क्रियाभिः ।
सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्धसच्छ्रद्धया श्रवणसंभृतया यथा स्यात् ।।९।।

अन्वयः— हे ईड्य दुराशयानां नृंणा विद्याश्रुताध्ययनदानतपः क्रियाभिः तु तथाशुद्धि न हे ऋषभ यथा सत्त्वात्मनाम ते यशसि प्रवृद्ध सच्छ्रद्धया श्रवण सम्भृतया स्यात् ।।९।।

अनुवाद— हे स्तुति करने योग्य परमात्मन् जिन मनुष्यों की चित्तवृत्ति रागद्वेष आदि से कलुषित है वे उपासना वेदाध्ययन, दान, तपस्या और यज्ञादि भले ही क्रिया करें उससे उनके अन्तःकरण की शुद्धि उस तरह की नहीं होती है जैसी श्रवण से सम्पुष्ट शुद्धान्तःकरण सज्जन पुरुषों की आपकी लीलाकथा कीर्ति के विषय में अनुदिन समृद्ध होकर परिपूर्ण होने वाली श्रद्धा से होती है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

नन्वात्मारामस्य किं कर्मकरणेनात आहुः-शुद्धिरिति । हे ईड्य हे ऋषभ, दुराशयानां रागिणाम् । विद्या उपासना । विद्यादिभिस्तथा शुद्धिर्न भवति । सत्त्वात्मनां सत्तं ते यशसि श्रवणेन संभृतया परिपुष्टयाऽभिवृद्धया सच्छ्रद्धया यथा स्यात् । परमपावनस्य यशसो वितानाय तव कर्माचरणमिति भावः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें कि मैं यदि आत्माराम हूँ तो फिर कर्मों को करने से क्या लाभ है ? इस पर देवताओं ने **शुद्धि इत्यादि** श्लोक कहा । हे नमस्करणीय प्रभो, हे सर्वदेवाग्रगण्य प्रभो ! रागद्वेष से कलुषित अन्तःकरण वाले रागी पुरुषों की । विद्या अर्थात् उपासना आदि से उस प्रकार की शुद्धि नहीं होती है, जैसी शुद्धि सत्त्वगुण सम्पन्न पुरुषों की आपकी लीला कथा को सुनने से सम्पुष्ट तथा परिपूर्ण श्रद्धा से शुद्धि होती है ।।९।।

स्यान्नस्तवाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृदोह्यमानः ।
यः सात्वतैः समविभूतय आत्मवद्भिर्व्यूहेऽर्चितः सवनशः स्वरतिक्रमाय ।।१०।।

यश्चिन्त्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ त्रय्या निरुक्तविधिनेश हविर्गृहीत्वा ।
अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परीष्टः ॥११॥

अन्वयः— यः क्षेमाय मुनिभिरार्द्रहृदोह्यमान यः सात्वतैः समविभूतये अत्मवद्भिः स्वरतिक्रमाय सवनः व्यूहेर्चितः यः प्रयतपाणिभिः अध्वराग्नौ जिज्ञासुभिः परमभागवतैः योगिभिः आत्ममायां अध्यात्मयोगे उत त्रय्या निरुक्तविधिना हे ईश हविगृहीत्वा परीष्टः तवाङ्घ्रिः नः अशुभाशय धूमकेतुः स्यात् ॥१०-११॥

अनुवाद— मननशील मुमुक्षु पुरुष मोक्ष प्राप्ति के लिए अपने प्रेम से पिघले हुए हृदय को जिनको वहन करते हैं, पाञ्चरात्र विधि से उपासना करने वाले भक्त जन समान ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए वासुदेव संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इस चतुर्व्यूह के रूप में जिनकी आराधना करते हैं, जितेन्द्रिय धीर पुरुष स्वर्गलोक का अतिक्रमण करके भगवद्धाम की प्राप्ति के लिए जिनकी तीनों समयों (प्रातः, दोपहर और सायंकाल) में जिनकी पूजा किया करते हैं, याज्ञिक पुरुष तीनों वेदों में बतलायी गयी विधि से अपने अपने संमत हाथों में हविष्य लेकर यज्ञकुण्ड में आहुति देते हैं और हृदय में उन्हीं का चिन्तन किया करते हैं। आपकी आत्मस्वरूपिणी माया के जिज्ञासु योगिजन अपने हृदय के भीतर दहर विद्या आदि के द्वारा आपके चरण कमलों का ही ध्यान करते हैं, आपके महान् प्रेमी भक्तजन उन्हीं को अपना परम इष्ट आराध्य मानते हैं। प्रभो ! आपके वे ही चरण कमल हमारी समस्त अशुभ वासनाओं को भस्म करने के लिए अग्नि स्वरूप हो जायँ और हमारे समस्त पाप-तापों को भस्म कर दें ॥१०-११॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं त्वद्यशःश्रद्धैव शुद्धिहेतुः, अस्माभिस्तु त्वाङ्घ्रिर्दृष्टोऽतस्तवाङ्घ्रिर्नोऽस्माकमशुभाशयानां विषयवासनानां धूमकेतुस्तद्दाहकः स्यात् । कथंभूतः । यः क्षेमाय मोक्षाय मुनिभिर्मुमुक्षुभिः प्रेमार्द्रहृदा ऊह्यमानश्चिन्त्यमानः । यश्च सात्वतैर्भक्तैः समविभूतये समानैश्वर्याय वासुदेवादिव्यूहेऽर्चितः । तेषु च कैश्चिदात्मवद्भिर्धीरैः स्वरतिक्रमाय स्वर्गमतिक्रम्य वैकुण्ठप्राप्तये सवनशस्त्रिकालमर्चितः । किंच प्रयतपाणिभिः संयतहस्तैर्हविर्गृहीत्वाऽध्वराग्नौ आहवनीयादौ याज्ञिकैर्यश्चिन्त्यते । ननु 'यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्तां ध्यायेद्वषट्करिष्यन्' इति वचनात्तत्तद्देवताश्चिन्त्यन्ते अत आहुः-त्रय्या निरुक्तेन विधिनेन्द्रादिरूपेणैव यज्ञपुरुषश्चिन्त्यत इत्यर्थः । उत किंच । अध्यात्मयोगे आत्माधिकारे योगे योगिभिरप्यात्मनस्तव मायाअणिमादिस्तां जिज्ञासुभिस्तत्तत्कामैर्यश्चिन्त्यते । परमभागवतैस्तु मुक्तैर्यः परीष्टः सर्वत; पूजितः स तवाङ्घ्रिर्नोऽशुभाशयधूमकेतुः स्यादिति पूर्वेणान्वयः ॥१०-११॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह आपके यश में की जाने वाली श्रद्धा ही शुद्धि का कारण है। हमलोगों ने तो आपके चरणों का साक्षात्कार कर लिया है। अतएव आपका चरण कमल हमलोगों की विषय वासनाओं को विनष्ट करने वाला दाहक बन जायँ। कैसे चरण कमल ? जो मोक्ष की प्राप्ति लिए मुमुक्षु पुरुषों द्वारा अपने प्रेमाद्र हृदय में धारण किए जाते हैं। अर्थात् चिन्तन किए जाते हैं तथा पाञ्चरात्र विधि से आराधना करके समान ऐश्वर्य के लिए जिनका वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध इन चारो व्यूहों के रूप में जिनकी अर्चना करते है ।, उन सबों की कुछ जितेन्द्रिय धीर पुरुष स्वर्ग का अतिक्रमण करके भगवद् धाम की प्राप्ति कें लिए तीनों सवनों में आराधना करते है किञ्च वैदिक पुरुष अपने संयत हाथों में हविष्य लेकर यज्ञ की आहवनीय आदि अग्नियों में होम करते हैं। जिनका चिन्तन करते हैं। प्रश्न होता है कि जिस देवता के लिए हविष्य का ग्रहण किया जाता है, उसी देवता का चिन्तन वषट्कार करते हुए करना चाहिए, इस सूक्ति के अनुसार यज्ञों में तो इन्द्रादि विभिन्न देवताओं का चिन्तन किया जाता है। इस पर देवताओं ने कहा तीनों वेदों में उक्त विधि से इन्द्रादि रूप में श्रीभगवान् का ही चिन्तन किया जाता है और आत्माधिकार योग में योगियों द्वारा आपकी माया को जानने की इच्छा से अपने हृदय के भीतर दहर आदि विद्याओं में आपका चिन्तन किया जाता है।

परम भागवत मुक्त जीवों द्वारा तो आपके चरण अत्यधिक इष्ट रूप में पूजित होते हैं वे ही आपके चरण कमल हमारे समस्त विषय वासनाओं के लिए धमूकेतु के समान प्रदाहक बन जायँ ॥१०-११॥

पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं संस्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः ।
यः सुप्रणीतममुयार्हणमाददन्नो भूयात्सदाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः ॥१२॥

अन्वयः— विभो इयं भगवती श्रीः तव पर्युष्टया अपिवनमालया प्रतिपत्निवत् संस्पर्धिनी यः सुप्रणीतम् अमुयार्हणमाददत् स सदांध्रिः अशुभाशय धूमकेतुः भूयात् ॥१२॥

अनुवाद— हे प्रभो ! यह भगवती लक्ष्मी आपके वक्षस्थल पर पड़ी हुई वासी माला से भी अपनी सौत के समान स्पर्धा करती हैं फिर भी आप उसकी परवाह न करके भक्तों द्वारा इस वासी माला से की हुई पूजा को भी बड़े प्रेम से स्वीकार करते हैं । ऐसे आप भक्तवत्सल प्रभुका चरण कमल हमारी विषय वासनाओं को धूमकेतु के समान भस्म कर दें ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

एतेषां च मुनिसात्वतादीनां पण्णां सेवकानां मध्ये परमभागवतेषु लक्ष्म्या अपि तव प्रीतिरधिकेति संस्तुवन्ति–पर्युष्टयेति। इडभावश्छान्दसः । अहं यत्र वसामि तत्रैव वक्षसि पर्युषितापीयं वसतीति प्रतिपत्निवत् सपत्नीवच्छ्रीः संस्पर्धमाना भवति, तथापि स्पर्धमानां श्रियमनादृत्य यो भवान्पर्युषितयापि अमुया वनमालया भक्तैरर्पितेयमिति प्रीत्या सुप्रणीतं सुष्ठु संपादितं यथा भवति तथार्हणंपूजामाददत्स्वीकृतवान् । सुप्रणीतमित्यर्हणविशेषणं वा । तस्य तवाङ्घ्रिर्नोऽशुभाशयधूमकेतुर्भूयात् । यद्वा योऽङ्घ्रिरमुया सुप्रणीतमर्हणमाददत्स नोऽशुभाशयधूमकेतुर्भूयादित्यन्वयः । अथवैवं संबन्धः-एतेभ्यो ध्यानार्चनादिनिष्ठेभ्योऽपि त्वद्यशसि प्रवृद्धसच्छ्रद्धावन्त एव कृतार्था भगवतो यशः प्रियत्वादित्याहुः- पर्युष्टया, 'वश कान्तौ' इत्यस्मात्परितः सर्वाङ्गे उष्टया कान्तया शोभितया वनमालया वक्षस्येकदेशे वर्तमाना श्रीः संस्पर्धमाना भवति तथाप्याम्नायमधुव्रतैर्बहुधा वर्णितया कीर्तिमय्या वैजयन्त्या वनमालयैव वो भवान्सुप्रणीतमर्हणमाददादित्यादि पूर्ववत् ॥१२॥

भावप्रकाशिका

ऊपर के दो श्लोकों में मुनि से लेकर सात्वत इत्यादि छह प्रकार के भक्तों की चर्चा की जा चुकी हैं । उन छहों में जो आपके परम भागवत भक्त हैं, उनसे आप लक्ष्मीजी से भी अधिक प्रेम करते हैं, इस तरह से देवगण श्रीभगवान् की स्तुति करते हैं । पर्युष्टया में इट् का अभाव छान्दस है । जहाँ मैं रहती हूँ वहीं पर यह वासी माला भी रहती है इस तरह आपकी वनमाला से श्रीलक्ष्मीजी उसी तरह स्पर्धा करती हैं जैसे कोई स्त्री अपनी सौत से स्पर्धा करे । फिर भी लक्ष्मीजी की स्पर्धा की परवाह किए बिना आप भक्तों के द्वारा अर्पित की गयी वनमाला से की गयी पूजा को अच्छी तरह से की गयी पूजा मानकर स्वीकार करते हैं । सुप्रणीतम् पूजा का विशेषण है अर्थात् अच्छी तरह से की गयी पूजा । ऐसे आपके चरण कमल हमलोगों की अशुभ वासना को विनष्ट करने के लिए धूमकेतु के समान दाहक बन जाय । **यद्वा० इत्यादि** अथवा आपके जो चरण इस वनमाला के द्वारा अच्छी तरह से पूजित हैं वे हमारी अशुभ विषय वासना को भस्म कर देने के लिए दाहक बन जाय । अथवा इसका इस प्रकार से अन्वय है। ध्यान और अर्चना करने वालों से भी आपकी कीर्ति में जिनकी श्रद्धा समृद्ध हो गयी है वे ही लोग कृतार्थ है, क्योंकि उन लोगों को श्रीभगवान् का यश ही प्रिय है । इस बात को देवताओं ने **पर्युष्टया० इत्यादि** श्लोक से कहा है । वश कान्तौ धातु से व्युत्पन्न पर्युष्ट शब्द का अर्थात् सर्वाङ्ग में सुशोभित होने वाली वनमाला से शरीर के एक स्थान में रहने वाली श्रीदेवी स्पर्धा करती हैं । फिर भी वेद रूपी भ्रमरों से वर्णित कीर्तिमयी वनमाला से ही आप अच्छी तरह से की गयी पूजा स्वीकार करते हैं ॥१२॥

केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेवचम्वोः ।
स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्पादः पुनातु भगवन्भजतामघं नः ॥१३॥

अन्वयः— हे भूमन् यः ते पादः त्रिविक्रमयुतः विपताकः केतुः असुरदेवचेम्वोः भयाभयकरः साधुषुस्वर्गाय खलेषु इतराय स ते पादः भजतां नः अघंपुनातु ।।१३।।

अनुवाद— हे अनन्त आपका जो बलिबन्धन के समय दूसरे विक्रम (पाद प्रक्षेप) में सत्य लोक में पहुँच गया। ऊपर की ओर उठा हुआ वह विजय ध्वज के समान प्रतीत होता था । ब्रह्माजी के पैर पखारने के पश्चात् जो उससे तीन गङ्गाजी की धाराएँ प्रवाहित हुई वे उस विजय ध्वज की तीन पताकाओं के समान प्रतीत हुई । उसको देखकर असुरों की सेना में भयव्याप्त हो गया और देवताओं की सेना निर्भय हो गयी, आपका वह चरण कमल साधु स्वभाव वाले पुरुषों के लिए आपके धाम की प्राप्ति का साधन है और दुष्टों के अध: पतन का साधन है। आपका वही चरण कमल हम भजन करने वालों के पापों का विनाश कर दे ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

त्वच्चरणस्य भक्तपक्षपातः प्रसिद्ध एवेति स्तुवन्तः प्रार्थयन्ते-केतुरिति । बलिबन्धने त्रिभिर्विक्रमैर्युतः । तत्र द्वितीयविक्रमे सत्यलोकं गतस्तव पादः केतुरत्युच्छ्रितो विजयध्वज इव । तत्संपादयन्ति । त्रिपतत्पताकः त्रिधा पतन्ती, त्रिषु लोकेषु वा पतन्ती गङ्गा पताका यस्य । तथाऽसुरदेवचम्वोस्तत्सेनयोरुभयोर्भयाभयकरः । साधुषु सुरेषु स्वर्गाय खलेष्वसुरेष्वितरायेतरस्मै अधोगमनाय। य एवं केतुरूपस्ते पादः स भजतां नोऽघं पुनातु शोधयतु । 'अघात्' इति पाठे भजतां नः इति कर्मणि षष्ठ्यौ । अघाद्भजतोऽस्मान्पुनात्विति। तथा च श्रुतिः- 'चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि । तेन पवित्रेण शुद्धेन पूता अति पाप्मानमरातिं तरेम । लोकस्य द्वारमर्चिमत्पवित्रम् । ज्योतिष्मद्भ्राजमानं महस्वत् । अमृतस्य धारा बहुधा दोहमानम्। चरणं नो लोके सुधितां दधातु' इति ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

आपके चरण भक्तों के पक्षपाती हैं, यह प्रसिद्ध है । इसी बात को **केतु० इत्यादि** इस श्लोक में देवगण कहते हैं । बलि को बाँधने के समय में तीन पगों युक्त आपका चरण कमल दूसरे ही पादप्रक्षेप (विक्रम) में सत्यलोक में पहुँच गया, उस समय ऊपर की ओर उठा हुआ अपका चरण कमल विजय ध्वज के समान प्रतीत होता था। ब्रह्माजी ने जब आपके चरणों के धोया उससे तीनों लोकों में जाने वाली गङ्गाजी की तीन धाराएँ प्रवाहित हुईं । वे उस विजय ध्वज की तीन पताकाओं के समान प्रतीत हो रही थीं । आपके उस चरण कमल को देखकर असुर सेना में भय व्याप्त हो गया जबकि देवताओं की सेना निर्भय हो गयी । श्रीभगवान् का वह चरण कमल देवताओं के लिए स्वर्ग प्राप्ति का कारण है और उनसे भिन्न असुरों के अध: पतन का कारण है इस प्रकार से विजय ध्वज रूपी वह चरण कमल उसी का भजन करने वाले हमलोगों के पापों को विनष्ट करके हमे पवित्र बना दे । जहाँ पर अघात् यह पाठ है वहाँ पर **भजतां नः** से कर्म में षष्ठी विभक्ति है । अर्थात् भजन करने वाले हम लोगों को पापों से पवित्र बना दे । श्रुति भी कहती है- **चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि तेन पवित्रेण.......दधातु इति**। अर्थात् श्रीभगवान् का फैला हुआ चरण पवित्र है । उसके द्वारा पवित्र हुआ मनुष्य पापों को विनष्ट कर देता है उस पवित्र से पवित्र बने हुए हमलोग अपने शत्रुओं को विनष्ट कर देते हैं । श्रीभगवान् का वह चरण भगवद् धाम की प्राप्ति का प्रकाशमय और पवित्र है । वह **ज्योतिः** सम्पन्न और अत्यन्त सुशोभित होता है । वह बहुत अधिक अमृत की धारा प्रदान करता है । श्रीभगवान् का चरण हम भक्तों को लोक में अमृत के समान आहरणीय बने ।।१३।।

नस्योतगाव इव यस्य वशे भवन्ति ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः ।
कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः परस्य शं नस्तनोतु चरणः पुरुषोत्तमस्य ॥१४॥

अन्वयः— ब्रह्मादयः तनुभृतः मिथुः अर्द्यमानाः नासि ओतगाव इव यस्य वशे भवन्ति कालस्य ते प्रकृति पुरुषयोः परस्य पुरुषोत्तमस्य चरणः नः शं तनोतु ॥१४॥

अनुवाद— ब्रह्मा आदि जितने भी शरीरधारी हैं वे सत्त्व रजस् एवं तमस् इन परस्पर तीनों गुणों के विरोधी त्रिविध टक्कर के कारण जीते-मरते रहते हैं वे भी सुख एवं दुःख का अनुभव करते रहते हैं । वे उसी तरह से आपके वश में हैं जिस तरह नाथों से गथे हुए बैल अपने स्वामी के वश में रहते हैं । आप उन लोगों के भी लिए काल स्वरूप हैं । आप प्रकृति से परे और पुरुषोत्तम हैं । आपके चरण कमल हमलोगों का कल्याण करें ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

ननु युद्धे देवासुरादयःपरस्परं जयन्ति, जीयन्ते च किमहं तत्रेत्यत आहुः-नसीति । मिथुर्मिथोऽर्द्यमाना युद्धादिभिः पीड्यमाना ब्रह्मादयोऽपि यस्य तव वशे भवन्ति, न तु जये पराजये वा स्वतन्त्राः । के इव । नसि नासिकायामोता नासिकामाविध्य बद्धा गावो बलीवर्दा इव । कुतः । कालस्य कलयितुः प्रवर्तकस्य । तदेव कुतः । प्रकृतिपुरुषयोरपि परस्य । तस्य ते पुरुषोत्तमस्य पादो नः शं तनोतु ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें कि देवता तथा असुर आदि युद्ध में परस्पर विजयी एवं परास्त हुआ करते हैं, उसमें मैं क्या करता हूँ । इस पर देवताओं ने **नसि इत्यादि** श्लेक कहा- युद्ध आदि बह्म आदि में देवता परस्पर में एक दूसरे से पीडित होते रहते हैं और वे सब-के-सब आपके वश में रहने वाले होते हैं । वे जय पराजय प्राप्त करने में स्वतंत्र नहीं है । प्रश्न होता है कि जिसके समान रूप से नाक में नथे हुए बैलों के समान काल के भी प्रवर्तक आप ही हैं । वह भी कैसे ? क्योंकि आप प्रकृति और पुरुष से भी ऊपर है । इस प्रकार के आप पुरुषोत्तम के चरण हमलोगों का कल्याण करे ॥१४॥

अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमानामव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः ।
सोऽयं त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः कालो गभीररय उत्तमपूरुषस्त्वम् ॥१५॥

अन्वयः— अस्य उदयस्थितिसंयमानाम् हेतुः असि । अव्यक्त जीवमहताम् अपि कालमाहुः । सोऽयम् त्रिणाभिः अखिलापचये प्रवृत्तः, कालः गभीररयः त्वम् उत्तमपूरुषः ॥१५॥

अनुवाद— हे प्रभो आप इस सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार के कारण हैं । शास्त्र बतलाते हैं कि आप प्रकृति, पुरुष तथा महत् तत्त्व के भी नियामक काल हैं । शीत, गीष्म और वर्षाकाल रूपी तीन नाभियों वाले सवंत्सर के रूप में सबको काल की ओर ले जाने वाले काल आप ही हैं आपकी गति अबाध और गम्भीर हैं । आप स्वयम् पुरुषोत्तम हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

प्रकृतिपुरुषाभ्यां परत्वमुपपादयन्तः कालत्वेन पुरुषोत्तमत्वमाहुः-अस्येति । अस्य जगत उदयादीनां हेतुरसि । कुतः। अव्यक्तं प्रकृतिर्जीवः पुरुषो महान्महत्तत्वं तेषां कालं नियन्तारं त्वामाहुः-'अक्षरात्परतः परः । महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः । पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः' इत्याद्याः श्रुतयः । किंच अयं संवत्सरात्मको यः कालस्त्रिणाभिस्त्रीणि चातुर्मास्यानि नाभयो यस्य सोऽपि त्वमेव । अतस्त्वमुत्तमपुरुष इति । तथा च गीतासु- 'यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।' इति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं ने श्रीभगवान् की प्रकृति और पुरुष से भी श्रेष्ठता का प्रतिपादन काल रूप से पुरुषोत्तमत्व का प्रतिपादन करते हुए **अस्य० इत्यादि** श्लोक को कहा है- भगवन् आप प्रकृति एवं पुरुष से भी परे हैं; कयोंकि आप प्रकृति, पुरुष एवं महत् तत्त्व के भी नियामक काल हैं । यह श्रुतियाँ ही बतलाती है । श्रुति कहती है- **अक्षरात् परतः परः। महतः परमव्यक्तम् अव्यक्तात् पुरुषः परः । पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्टा सा परागतिः** अर्थात् अक्षर तत्त्व से बढ़कर महत् तत्त्व है । महत् से बढ़कर वशीकार्य अव्यक्त प्रकृति है । प्रकृति से परे पुरुष (परमात्मा) है । परमात्मा से श्रेष्ठ कोई नहीं हैं । पुरुष ही वशीकार्यों की पराकाष्ठा और परं प्राप्य है । किञ्च यह संवत्सर रूप जो काल है तीन चातुर्मास्यों वाला त्रिणाभि है । वह काल भी आप ही है । अतएव आप ही उत्तम पुरुष है । श्रीमद्भगवत गीता में भगवान् कहते हैं- **यस्मात् क्षरमतीतोऽहम् इत्यादि** चूकि मैं क्षर कोटि के जीवों से ऊपर हूँ और अक्षर कोटि के जीवों से श्रेष्ठ हूँ इसीलिए लोक और वेद में मैं पुरुषोत्तम नाम से प्रख्यात हूँ ॥१५॥

त्वत्तः पुमान्समधिगम्य ययाऽस्य वीर्यं धत्ते महान्तमिव गर्भममोघवीर्यः ।
सोऽयं तयाऽनुगत आत्मन आण्डकोशं हैमं ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम् ॥१६॥

अन्वयः— त्वतः स्ववीर्यं प्राप्य पुमान् अमोघवीर्यं यया महान्तमिव गर्भं धत्ते । सोऽयं तया अनुगतः आत्मनः बहिः आवरणैः उपेतं हैमं ब्रह्माण्डं ससर्ज ॥१६॥

अनुवाद— यह पुरुष आपसे ही शक्ति को प्राप्त करके अमोघवीर्य बन जाता है । उसके पश्चात माया से संयुक्त होकर विश्व के महत् तत्त्व रूप गर्भ का आधान करता है । उसके पश्चात् वह महत् तत्त्व त्रिगुणात्मिका माया का अनुसरण करके पृथिवी, जल, तेज, वायु आकाश अहङ्कार और मन रूप सात अवरणों वाले इस सुवर्ण वर्ण ब्रह्माण्ड की रचना करता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

त्वमेव प्रकृत्यादिद्वारा जगत्सृष्ट्यादिद्वारा जगत्सृष्ट्यादिहेतुरित्युक्तं तत्केन प्रकारेण तदाहुः-त्वत्त इति । त्वत्तः पुरुषो वीर्यं शक्तिं समधिगम्य प्राप्य यया मायया सह महान्तं धत्ते । कमिव । अस्य विश्वस्य गर्भमिव । सोऽयं महांस्तयैव माययाऽनुगतः सन्नात्मनः सकाशादाण्डकोशं ससर्ज । त्वयाऽनुगत इति पाठेऽपि तया मायया त्वयाधिष्ठितः सन्निति ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

त्वत्तः इत्यादि श्लोक द्वारा देवताओं ने कहा कि प्रभो आप ही प्रकृति आदि द्वारा तथा जगत् की सृष्टि आदि के कारण हैं, इस प्रकार से आप से ही शक्ति प्राप्त करके पुरुष जिस माया के द्वारा महान को गर्भ के समान धारण करता हैं । वह महान् उसी माया के द्वारा अनुगत रहते हुए आत्मा के द्वारा बह्माण्ड की सृष्टि किया । **त्वया अनुगतः** इस तरह का भी पाठ रहने पर आपके द्वारा अधिष्ठित उस माया के द्वारा यह अर्थ होगा ॥१६॥

तत्तस्थुषश्च जगतश्च भवानधीशो यन्माययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान् ।
अर्थान् जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो येऽन्ये स्वतः परिहृतादपि बिभ्यति स्म ॥१७॥

अन्वयः— हे हृषीकपते ! तत् तस्थुषश्च जगतश्च भवान् अधीशः, यन्माययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान् अर्थान् जुषन्नपि लिप्तो न अन्ये ये स्वतः परिहृतादपि विभ्यतिस्म ॥१७॥

अनुवाद— अतएव हे हृषीकेष आप इस चराचरात्मक जगत् के स्वामी है । यही कारण है कि माया की गुणविषमता के कारण बनने वाले विभिन्न पदार्थों का उपयोग करते हुए भी आप उनमें लिप्त नहीं है । यह केवल आपकी ही बात है आपसे भिन्न दूसरे तो स्वयं उनका त्याग करके उनके विषयों से डरते हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

भवानधीशः । नन्वेवंभूतमीश्वरत्वं मम कुतोऽवगतं तदाहुः-तदिति । तत्तस्मात्तस्थुषः स्थावरस्य जगतो जङ्गमस्य च न लिप्तस्त्वम्। यद्यस्मान्माययोत्था उज्जृम्भिता या गुणविक्रिया इन्द्रियवृत्तिस्तयोपनीतानर्थान्विषयान् जुषन् जुषमाणोऽपि हे हृषीकपते, ये त्वन्ये जीवा योगिनो वा स्वतः परिहृतादप्यविद्यमानात्त्यक्तद्वा विषयजोषणाद्बिभ्यति । वासनामात्रेण बध्यन्त इत्यर्थः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें कि इस प्रकार के मेरे ईश्वरत्व को आप लोग कैसे जानते हैं ? इस पर देवताओं ने कहा इसीलिए तो आप चराचरात्मक जगत् के स्वामी है । यही कारण है कि माया में होने वाले गुणों की विषमता के कारण बनने वाले विभिन्न पदार्थों का आप उपभोग करते है फिर भी उससे लिप्त नहीं होते हैं । दूसरे लोग तो उन सबों का स्वतः त्याग करके भी उन सबों से डरते रहते हैं ।।१७।।

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारिभ्रूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः ।
पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न विभ्व्यः ।।१८।।

अन्वयः— स्मायावलोकलवदर्शितभावहारी, भूमण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः षोडशसहस्रम् पत्न्यस्तु अनंगबाणैः करणैः यस्येन्द्रियं विमथितुम् न विभ्व्यः ।।१८।।

अनुवाद— अपने मन्द-मन्द मुस्कान और तिरछी चितवनों से युक्त मनोज्ञ भौहों के इशारों से और सुरतालापों से प्रौढ सम्मोहक काम बाण को चलाने वाली और काम कला के विविध प्रकारों से आपका मन आकर्षित करना चाहने वाली आपकी सोलह हजार स्त्रियाँ अपने परिपुष्ट काम बाणों से आपके मन को डिगा सकने में सफल नहीं हो सकीं।।१८।।

भावार्थ दीपिका

अलिप्तत्वमाहुः-स्मायेति । स्मायावलोको मन्दस्मितविलसितोऽवलोकस्तस्य लवः कटाक्षस्तेन दर्शितो यो भावोऽभिप्रायस्तेन मनोहारि यद्भ्रूमण्डलं तेन प्रहिता ये सौरता मन्त्रास्तैः शौण्डैः प्रगल्भैरनङ्गबाणैः कामस्य बाणैः संमोहनैः करणैः कामकलादिभिः षोडशसहस्रं पत्न्यो यस्येन्द्रियं मनो विमथितुं क्षोभयितुं न विभ्व्यो न समर्थाः स भवान्न लिप्त इति पूर्वेणान्वयः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के अलिप्तत्व का वर्णन **स्मायावलोक० इत्यादि** श्लोक से करते हुए देवतागण कहते हैं । मन्दमुस्कान और तिरछी चितवन से युक्त मनोहर भौहों के इशारों से और सुरतालापों से प्रौढ सम्मोहक काम बाण चलाने वाली और कामकला के विविधि प्रकरों से आपका मन आकर्षित करना चाहने वाली आपकी सोलह हजार से अधिक रानियाँ आपके मन को डिगा सकने में सफल नहीं हो सकी ।।१८।।

विभ्व्यस्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः पादावनेजसरितः शमलानि हन्तुम् ।
आनुश्रवं श्रुतिभिरङ्घ्रिजमङ्गसङ्गैस्तीर्थद्वयं शुचिषदस्त उपस्पृशन्ति ।।१९।।

अन्वयः— त्रिलोक्याः शमलानि हन्तुम्, विभ्व्यः तवामृतंकथोदवहाः पादावनेजसरितः च शुचिसद ते तीर्थद्वयं आनुश्रवं श्रुतिभिरङ्घ्रिजम् अङ्गसङ्गैः उपस्पृशन्ति ।।१९।।

अनुवाद— हे प्रभो त्रिलोकी के पापों को विनष्ट कर देने में समर्थ अपने दो प्रकार की नदियों को बहा रखा है । पहली तो आपकी अमृतमयी लीलाओं से परिपूर्ण कथा नदी को और दूसरी आपके पाद पक्षालन के जल से प्रवृत्त गङ्गा आदि नदियाँ । अतएव विवेकी पुरुष कानों से आपकी लीला कथा का श्रवण करने से शरीर से गङ्गाजी आदि नदियों का सेवन करते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

तस्मात्तवामृतरूपा या कथा तदेव उदकं वहन्तीति तथा कीर्तिनद्यः। तथा पादावनेजसरितो गङ्गाद्याश्च त्रिलोक्याः शमलानि हन्तुं विभ्व्यः। केन प्रकारेण आनुश्रवं गुरोरुच्चारणमनुश्रूयत इत्यनुश्रवो वेदस्तत्र भवं कीर्तिरूपं तीर्थं श्रुतिभिः श्रवणेन्द्रियैरङ्घ्रिजं चाङ्गसङ्गैरेवं शुचिपदः स्वाश्रमधर्मस्थितास्तव तीर्थद्वयमुपस्पृश्यानि सेवन्त इति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अतएव आपकी अमृत स्वरूप कथा रूपी जल से परिपूर्ण कथा नदियाँ और आपके पादप्रक्षालन से जन्य गङ्गा आदि नदियाँ ये दोनों त्रिलोकी के समस्त पापों को विनष्ट कर देने में समर्थ हैं। अतएव आपके कीर्तिरूप तीर्थ का वेदादि के माध्यम से श्रवण करके अपने वर्ण एवं आश्रम धर्म का पलन करने वाले विवेकी पुरुष गङ्गादि नदियों का सेवन करते हुए उन दोनों तीर्थों का सेवन करते हैं ॥१९॥

बादरायणिरुवाच

इत्यभिष्टूय विबुधैः सेशः शतधृतिर्हरिम्। अभ्यभाषत गोविन्दं प्रणम्याम्बरमाश्रितः ॥२०॥

अन्वयः— विवुधैः सेशः इति अभिष्टूय शतधृतिः गोविन्दं प्रणम्य अम्बरम् अस्थितः हरिम् अभ्यभाषत् ॥२०॥

महर्षि बादरायण (व्यासजी) के पुत्र श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से देवताओं और शङ्करजी के साथ इस तरह से श्रीभगवन् की स्तुति करके अपने धाम में जाने के लिए उद्यत ब्रह्माजी आकाश में स्थित होकर कहने लगे ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

विबुधैः सह ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

देवताओं के साथ ॥२०॥

ब्रह्मोवाच

भूमेर्भारावताराय पुरा विज्ञापितः प्रभो। त्वमस्माभिरशेषात्मंस्तत्तथैवोपपादितम् ॥२१॥

अन्वयः— हे प्रभो ! पुरात्वम् अस्माभिः भूमेर्भारावताराय अस्माभिः विज्ञापितः हे अशेषात्मन् तथैव उपपादितम्।।२१।।

ब्रह्माजी ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! पहले हमलोगों ने अवतार लेकर पृथ्वी का भार उतारने के लिए प्रार्थना की थी। हे सर्वात्मन् आपने हमारी प्रार्थना के अनुसार सारा काम कर दिया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

धर्मश्च स्थापितः सत्सु सत्यसंधेषु वै त्वया। कीर्तिश्च दिक्षु विक्षिप्ता सर्वलोकमलापहा ॥२२॥

अन्वयः— त्वया वै सत्त्वसंधेषु सत्सु धर्मश्च स्थापितः सर्वलोकमलापहा दिक्षु कीर्तिश्च विक्षिप्ता ॥२२॥

अनुवाद— आपने सत्यपरायण साधु पुरुषों के कल्याणार्थ धर्म की स्थापना भी कर दी है। आपने दशो दिशाओं में अपनी ऐसी कीर्ति का विस्तार किया है कि जिसे सुनकर सभी लोग अपने मन के मैल को मिटा देंगे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

विक्षिप्ता विस्तारिता ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

विक्षिप्ता अर्थात् विस्तार किया है ॥२२॥

अवतीर्य यदोर्वंशे बिभ्रद्रूपमनुत्तमम् । कर्माण्युद्दामवृत्तानि हिताय जगतोऽकृथाः ॥२३॥

अन्वयः— यदोर्वंशे अवतीर्य अनुत्तमं रूपं विभ्रत् । उद्दामानि कर्माणि जगतो हिताय अकृथाः ॥२३॥

अनुवाद— आपने सर्वोत्तम रूप धारण करके यदुवंश में अवतार ग्रहण किया आपने जगत् के कल्याण के लिए उदारता और पराक्रम से परिपूर्ण अनेक लीलाओं को भी किया है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

उद्दामानि वृत्तानि विक्रमा येषु तानि कर्माणि ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

उदारचरित्रों से युक्त कर्मों को ॥२३॥

यानि ते चरितानीश मनुष्याः साधवः कलौ । श्रृण्वन्तः कीर्तयन्तश्च तरिष्यन्त्यञ्जसा तमः ॥२४॥

अन्वयः— हे ईश यानि ते चरितानि कलौ साधवः मनुष्याः शृण्वन्तः कीर्तयन्तश्च अञ्जसा तमः तरिष्यन्ति ॥२४॥

अनुवाद— ईश आपके उन चरित्रों का कलियुग में जो साधुपुरुष श्रवण और कीर्तन करेंगे वे अनायास ही इस संसार सागर को पार कर जायेंगे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम । शरच्छतं व्यतीयाय पञ्चविंशाधिकं प्रभो ॥२५॥

अन्वयः— हे प्रभो ! यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः हे पुरुषोत्तम ! पञ्चविंशाधिकं शरच्छतं व्यतीयाय ॥२५॥

अनुवाद— हे प्रभो ! हे पुरुषोत्तम ! यदुवंश में आपके अवतार लिए हुए एक सौ पच्चीस वर्ष बीत चुके हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

नाधुना तेऽखिलाधार देवकार्यावशेषितम् । कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायमभूदिदम् ॥२६॥

अन्वयः— हे अखिलाधार देव अधुना ते कार्यं न अवशेषितम् इदं कुलं च विप्रशापेन नष्टप्रायम् अभूत् ॥२६॥

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् के एक मात्र आश्रय प्रभो अब यहाँ आपके करने के लिए कोई भी कार्य नहीं बचा है । यहाँ तक कि यह वंश भी ब्राह्मणों के शाप के कारण नष्ट प्राय ही हो गया है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

ततः स्वधाम परमं विशस्व यदि मन्यसे । सलोकाँल्लोकपालान्नः पाहि वैकुण्ठ किङ्करान् ॥२७॥

अन्वयः— हे प्रभो ! यदि मन्यसे ततः स्व परमं धाम विशस्व, हे वैकुण्ठ ! सलोका किङ्करान् नः लोकपालान् पाहि॥२७॥

अनुवाद— हे प्रभो ! यह उचित समझें तो आप अपने परमधाम वैकुण्ठ धाम में प्रवेश करें लोकों के साथ अपने किङ्कर हम लोकपालों की रक्षा करें ॥२७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२७॥

श्रीभगवानुवाच

अवधारितमेतन्मे यदात्थ विबुधेश्वर । कृतं वः कार्यमखिलं भूमेर्भारोऽवतारितः ॥२८॥

अन्वयः— हे विवुधेश्वर मे यदात्थ एतत् अवधारितम् वः अखिलं कार्यम् कृतम् भूमेर्भारश्च अवतारितः ॥२८॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्माजी आपने जो हमको कहा है, वह सब कुछ मैंने निश्चित कर लिया है। मैंने आपका सारा काम कर दिया और पृथिवी के भार को भी उतार दिया है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

तदिदं यादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् । लोकं जिघृक्षद्रुद्धं मे वेलयेव महार्णवः ॥२९॥

अन्वयः— तदिदं यादवकुलं वीर्यशौर्यश्रियोद्धतम् लोकं जिघृक्षत् मे वेलय महार्णव इव रुद्धम् ॥२९॥

अनुवाद— यह जो यदुवंश है, वह अपने पराक्रम, शौर्य तथा सम्पत्ति के कारण उद्धत हो गया है। ये पृथिवी को ही ग्रस लेना चाहते है, इन सबों को मैंने इस तरह रोक रखा है जैसे महासागर को उसका तट रोके रहता है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

वीर्यशौर्ययुक्तया श्रिया ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

पराक्रम और शूरता से युक्त अपनी सम्पत्ति के द्वारा ॥२९॥

यद्यसंहृत्य दृप्तानां यदूनां विपुलं कुलम् । गन्ताऽस्म्यनेन लोकोऽयमुद्वेलेन विनङ्क्ष्यति ॥३०॥

अन्वयः— दृप्तानाम् यदूनां विपुलं कुलं असंहृत्य यदि गन्तास्मि अनेन उद्वेलेन अयं लोकः विनंक्ष्यति ॥३०॥

अनुवाद— घमण्डी और उच्छृंखल यदुवंशियों का यह विशाल वंश बिना विनष्ट किए ही मैं चला जाऊँ तो ये सब मर्यादा का उलंघन कर सम्पूर्ण लोकों का संहार कर देंगे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

उद्वेलेन लङ्घितमर्यादेन ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अर्थात् मर्यादा का उल्लंघन करने वाले ॥३०॥

इदानीं नाश आरब्धः कुलस्य द्विजशापतः । यास्यामि भवनं ब्रह्मन्नेतदन्ते तवानघ ॥३१॥

अन्वयः— इदानीं कुलस्य नाशः द्विजशापतः आरब्ध; अनघ ब्रह्मन् एतदन्ते तवभवनं यास्यामि ॥३१॥

अनुवाद— अब ब्राह्मणों के शाप के कारण इस वंश का नाश प्रारम्भ हो गया इसका नाश हो जाने के पश्चात् आपके लोक से होकर मैं अपने धाम में जाऊँगा ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

वैकुण्ठं यास्यंस्तव भवनं यास्यामि ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

वैकुण्ठ धाम में जाते हुए भी मैं आपके लोक से होते हुए जाऊँगा ॥३१॥

श्रीशुक उवाच

इत्युक्तो लोकनाथेन स्वयंभूः प्रणिपत्य तम् । सह देवगणैर्देवः स्वधामः समपद्यत ॥३२॥

अन्वयः— इति लोकनाथेन उक्तः देवः स्वयम्भूः तम् प्रणिपत्य देवगणैः सह स्वधाम समपद्यत ॥३२॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से सम्पूर्ण जगत् के स्वामी श्रीभगवान् के कहने पर ब्रह्माजी देवताओं के साथ अपने धाम में चले गये ।।३२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३२।।

अथ तस्यां महोत्पातान् द्वारवत्यां समुत्थितान् । विलोक्य भगवानाह यदुवृद्धान्समागतान् ।।३३।।

अन्वयः— अथ तस्यां द्वारवत्यां समुत्थितान् महोत्पातान् विलोक्य भगवान् समागतान् यदुवृद्धान् आह ।।३३।।

अनुवाद— उसके पश्चात् उस द्वारकापुरी में होने वाले उत्पातों को देखकर श्रीभगवान् ने आये हुए वृद्ध यदुवंशियों से कहा ।।३३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३३।।

श्रीभगवानुवाच

एते वै सुमहोत्पाता व्युत्तिष्ठन्तीह सर्वतः । शापश्च नः कुलस्यासीद्ब्राह्मणेभ्यो दुरत्ययः ।।३४।।

अन्वयः— एते वे महोत्पाताः इह सर्वतः व्युत्तिष्ठन्ति नः कुलस्य दुरत्ययः शापश्च ब्राह्मणेभ्य आसीत् ।।३४।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— गुरुजनों ! आजकल द्वारका में जिधर देखिए उधर से ही उत्पात हो रहा है । आप लोग जानते ही है कि हमारे वंश के लिए ब्राह्मणों का ऐसा शाप हो चुका है कि जिसे टाला नही जा सकता है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३४।।

न वस्तमव्यमिहास्माभिर्जिजीविषुभिरार्यकाः । प्रभासं सुमहत्पुण्यं यास्यामोऽद्यैव मा चिरम् ।।३५।।

अन्वयः— हे आर्यकाः अस्माभिः जिजीविषुभिः इह न वस्तल्यम् अद्यैव मा चिरम् सुमहत्पुण्यं प्रभासं यास्यामः।।३४।।

अनुवाद— गुरुजनों मेरा विचार है कि यदि हमलोग जीना चाहते हैं यदि हमलोग अपने प्राणों की रक्षा चाहते हैं तो हमे यहाँ नहीं रहना चाहिए । हमलोग आज ही परम पवित्र प्रभास क्षेत्र के लिए निकल चलें ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

प्रभासं यास्याम इति वदतोऽयमभिप्रायः । एते देवांशाः स्वाधिकारानेवार्हन्ति, न तु सद्यो मोक्षम् । द्वारवत्यां मृता मुच्येरंस्तस्मादभ्युदयफलं प्रभासं नेष्यामीति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

प्रभासं यास्यामः कहने वाले श्रीभगवान् का यह अभिप्राय है कि ये सभी देवताओं के अंश हैं ये सब अपना अधिकार प्राप्ति के योग्य हैं । ये सद्यः मोक्ष नहीं चाहते है । द्वारका में मरने पर तो मुक्त हो जायेंगे । अतएव अभ्युदय रूपी फल देने वाले प्रभास क्षेत्र में इन सबों को ले चलूँगा ।।३५।।

यत्र स्नात्वा दक्षशापाद्गृहीतो यक्ष्मणोडुराट् । विमुक्तः किल्बिषात्सद्यो भेजे भूयः कलोदयम् ।।३६।।

अन्वयः— दक्ष शापात् यक्ष्मणा गृहीतः उडुराट् यत्र स्नात्वा किल्विषात् विमुक्तः सद्यः भूयः कलोदयम् भेजे ।।३६।।

अनुवाद— प्रभास क्षेत्र की महिमा है कि दक्ष के शाप से जब चन्द्रमा राजयक्ष्मा रोग से पीडित हो गये थे । उस समय वे प्रभास क्षेत्र में स्नान करके शीघ्र ही रोगमुक्त हो गये और उनकी कला की वृद्धि भी हो गयी।।३६।।

भावार्थ दीपिका

दक्षशापाद्यक्ष्मणा गृहीत उडुराट् चन्द्रो यत्र स्नानमात्रं कृत्वा किल्विषात्तस्माद्रोगदुःखात्सद्यो विमुक्त; सन् भूयः कलावृद्धिं भेजे ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

दक्ष के शाप से चन्द्रमा को यक्ष्मा रोग हो गया। वे प्रभास क्षेत्र में स्नान करते ही रोगमुक्त हो गये और उनकी पुन: कला की वृद्धि हो गयी ।।३६।।

वयं च तस्मिन्नाप्लुत्य तर्पयित्वा पितॄन्सुरान् । भोजयित्वोशिजो विप्रान्नानागुणवताऽन्धसा ।।३७।।
तेषु दानानि पात्रेषु श्रद्धयोप्त्वा महान्ति वै । वृजिनानि तरिष्यामो दानैर्नौभिरिवार्णवम् ।।३८।।

अन्वयः— वयं च तस्मिन् आप्लुत्य पितॄन् सुरान् तर्पयित्वा उशिजो विप्रान् गुणवता अन्धसा भोजयित्वा तेषु पात्रेषु दानानि श्रद्धया उप्त्वा दानैः महान्ति वृजिनानि नौभिः उर्णवम् इव तरिष्यामः ।।३७-३८।।

अनुवाद— हमलोग भी प्रभास क्षेत्र में चलकर स्नान करेंगे। देवता एवं पितरों का तर्पण करेंगे। अनेकों गुणवाले पकवान् तैयार करके श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन करायेंगे। वहाँ हमलोगा उन सत्पात्र ब्राह्मणों को दान देंगे। इस प्रकार उन महान दोनों से हमलोगों सङ्कटों से उसी तरह मुक्त हो जायेंगे जिस तरह कोई जहाज के द्वारा समुद्र पार कर जाता है ।।३७-३८।।

भावार्थ दीपिका

उशिजः कमनीयान्। अन्धसा अन्नेन। उप्त्वेति यथा सुक्षेत्रे बीजमुप्तं बहुफलं भवति तथा दानं सत्पात्रे इति द्योतयति।।३७-३८।।

भाव प्रकाशिका

उशिजः जिनको कोई चाहता है। अन्धसा अर्थात् अन्न से। जिस तरह अच्छे क्षेत्र में बीज बोने से उससे बहुत फल की प्राप्ति होती है, उसी तरह सत्पात्र को दान देने से बहुत फल की प्राप्ति होती है। इस बात को भगवान् द्योतित करते हैं ।।३७-३८।।

श्रीशुक उवाच

एवं भगवतादिष्टा यादवाः कुलनन्दन । गन्तुं कृतधियस्तीर्थं स्यन्दनान्समयूयुजन् ।।३९।।

अन्वयः— हे कुलनन्दन एवं भगवतादिष्टाः यादवाः तीर्थं गन्तुं कृतधियः स्यन्दनान् समयूयुजन् ।।३९।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— हे परीक्षित्। इस तरह से श्रीभगवान् का आदेश प्राप्त करके सभी यदुवंशी प्रभास क्षेत्र जाने का निश्चय कर लिए और सबके सब जाने के लिए रथों को तैयार करने लगे ।।३९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३९।।

तन्निरीक्ष्योद्धवो राजन् श्रुत्वा भगवतोदितम्। दृष्ट्वाऽरिष्टानि घोराणि नित्यं कृष्णमनुव्रतः।।४०।।
विविक्त उपसङ्गम्य जगतामीश्वरेश्वरम् । प्रणम्य शिरसा पादौ प्राञ्जलिस्तमभाषत।।४१।।

अन्वयः— राजन् कृष्णम् अनुव्रतः उद्धवः तन्निरीक्ष्य भगवता आदिष्टम् श्रुत्वा घोराणि अरिष्टानि च दृष्ट्वा जगताम् ईश्वरेश्वरम् विविक्ते उपसङ्गम्य, शिरसा पादौ प्रणम्य प्राञ्जलिः अभाषत ।।४०-४१।।

अनुवाद— राजन् भगवान् श्रीकृष्ण के अत्यन्त प्रेमी उद्धवजी, लोगों द्वारा की जाने वाली तैयारी को देखकर, भगवान्

ने जो आदेश दिया था उसे सुनकर तथा चारो ओर होने वाले अरिष्टों को देखकर, संसार के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण के पास एकान्त में जाकर, उनके चरणों में सिर झुकाकर प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए श्रीभगवान् से कहे ।।४०-४१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४०-४१।।

उद्धव उवाच

देवदेवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तन । संहृत्यैतत्कुलं नूनं लोकं संत्यक्ष्यते भवान् ।।
विप्रशापं समर्थोऽपि प्रत्यहन्न यदीश्वरः ।।४२।।

अन्वयः— हे देवदेवेश, हे योगेश, हे पुण्यश्रवण कीर्तन ! नूनं एतत् कुलंसहृत्य भवान् लोकं संत्यक्ष्यते । यद् ईश्वरः भवान् विप्रशापं समर्थ अपि न प्रत्यहन् ।।४२।।

श्रीउद्धवजी ने श्रीभगवान् से कहा

अनुवाद— हे देवताओं के भी आराध्य, हे योगेश, आपकी लीला कथाओं का श्रवण करना और कीर्तन करना अत्यन्त पवित्रता का कारण है । यह निश्चित है कि इस वंश का संहार करके आप इस लोक का परित्याग कर देंगे । आप तो सम्पूर्ण जगत् के नियामक हैं । आप यद्यपि ब्राह्मणों के शाप को टालने में समर्थ हैं फिर भी आप नहीं टाले, न जाने आप क्या करना चाहते हैं ?।।४२।।

भावार्थ दीपिका

लोकं मर्त्यलोकम् । न प्रत्यहन्प्रतिहतवान् ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

लोकम् अर्थात् मर्त्यलोक को नहीं मिटाये ।।४२।।

नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव । त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि ।।४३।।

अन्वयः— हे केशव अहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणार्धमपि त्यक्तुम् न उत्सहे, हे नाथ माम् अपि स्वधाम नय ।।४३।।

अनुवाद— हे केशव मैं आपके चरण कमलों को आधे क्षण के लिए भी त्याग सकने में समर्थ नहीं हूँ । हे नाथ ! मुझे भी आप अपने धाम में ले चलें ।।४३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४३।।

तव विक्रीडितं कृष्ण नृणां परममङ्गलम् । कर्णपीयूषमास्वाद्य त्यजत्यन्यस्पृहां जनः ।।४४।।

अन्वयः— हे कृष्ण तव विक्रीडितं नृणां परम मङ्गलदायकम् कर्णपीयूषम् आस्वाद्य जनः अन्यस्पृहां त्यजति ।।४४।।

अनुवाद— हे कृष्ण ! आपकी लीला मनुष्यों को परम मङ्गल प्रदान करने वाली है । वह कानों के लिए अमृत के समान है उसका अस्वाद लेकर मनस्थ, दूसरे प्रकार की इच्छाओं का परित्याग कर देता है ।।४४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४४।।

शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषु । कथं त्वां प्रियमात्मानं वयं भक्तास्त्यजेमहि ।।४५।।

अन्वयः— शय्यासनाटनस्थानस्नानक्रीडाशनादिषुत्वां प्रियम् आत्मानं भक्ताः वयम् कथं त्वां त्यजेमहि ।।४५।।

अनुवाद— प्रभो ! सोते, बैठते, घूमते, फिरते, कहते, स्नान करते क्रीडा करते और भोजनादि क्रियाओं के करते समय हम आपके साथ रहे । आप तो हमलोगों की प्रिय आत्मा हैं । हम आपके भक्त हैं, हम कैसे आपका साथ छोड़ सकते हैं ?।।४५।।

भावार्थ दीपिका

शय्यादिषु त्वां भक्ता नित्यं सेवितवन्तो वयं कथं त्यजेम ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

सोने आदि के समय मैं आपके साथ-साथ सदा बना रहा अब हम आपका साथ कैसे छोड़ सकते हैं ?।।४५।।

त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोऽलङ्कारचर्चिताः । उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ।।४६।।

अन्वयः— त्वया उपभुक्तस्रग्गन्धवासोऽलङ्काररर्चिताः उच्छिष्टभोजिनः दासाः तव मायां जयेमहि ।।४६।।

अनुवाद— मैंने आपकी धारण की हुई माला चन्दन, वस्त्र और अलङ्कारों को धारण किया हम आपके उच्छिष्ट भोजी हैं। हम तो आपके दास हैं अतएव प्रभो हमें आपकी माया से डर नहीं हैं। हमे केवल आपके विप्रयोग का भय है ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

त्यक्तुमशक्नुवन्प्रार्थयते, न मायाभयादित्याह-त्वयेति । चर्चिता अलंकृताः । हि निश्चितं जयेम ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी श्रीभगवान् का साथ छोड़ने में असमर्थ होने के कारण श्रीभगवान् से प्रार्थना करते है। माया के भय से प्रर्थना नहीं करते, इस बात को उन्होंने **त्वया० इत्यादि** श्लोक से कहा- चर्चित अर्थात् अलंकृत हि अर्थात् निश्चित रूप से हम माया को जीत लेंगे ।।४६।।

वातरशना य ऋषयः श्रमणा ऊर्ध्वमन्थिनः । ब्रह्माख्यं धाम ते यान्ति शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः।।४७।।

अन्वयः— ये ऊर्ध्वमन्थिनः वातरशनाः श्रमणा ऋषयः ते शान्त संन्यासिनोऽमलाः ब्रह्माख्यं धाम यान्ति ।।४७।।

अनुवाद— हे योगेश्वर हम जानते हैं कि माया को पार कर लेना बड़ा कठिन है। बड़े-बड़े ऋषिमुनि दिगम्बर रहकर और आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करके अध्यात्मविद्या के लिए अत्यधिक परिश्रम करते हैं। इस प्रकार की इस कठिन साधना से उन संन्यासियों के हृदय निर्मल हो जाते हैं। उसके बाद ही वे समस्त वृत्तियों की शान्ति रूप नैष्कर्म्य अवस्था में स्थित होकर आपके ब्रह्म नामक धाम को प्राप्त करते हैं ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

संन्यासिनो हि ब्रह्मचर्यादिक्लेशैः कथंचित्तरन्ति, वयं त्वनायासेनैव तरिष्याम इत्याह-वातरशना इति । उर्ध्वमन्थिन ऊर्ध्वरेतसः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

संन्यासिजन ही ब्रह्मचर्यादि क्लेशों को सहकर किसी तरह संसार सागर को पार कर पाते हैं। हमलोग तो बिना प्रयास के ही संसार को पार कर जायेंगे। इस बात को **वातरशना० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। ऊर्ध्वमन्थिनः अर्थात् ऊर्ध्वरेता ।।४७।।

वयं त्विह महायोगिन् भ्रमन्तः कर्मवर्त्मसु । त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः ।।४८।।

अन्वयः— हे महायोगिन् ! वयं तु इह कर्मवर्त्मसुभ्रमन्तः तावकैः त्वद् वार्तया दुस्तरं तरिष्यामः ।।४८।।

अनुवाद— हे महायोगिन्, हम तो इस कर्ममार्ग में ही भटकते हुए आपके भक्तों के साथ आपकी ही लीलाओं का गायन करते हुए इस भयङ्कर संसार सागर को पार कर जायेंगे ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

तावकैर्भक्तैः सह त्वद्वार्तया दुस्तरं तमः संसारम् ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

आपके भक्तों के साथ आपकी लीलाओं की चर्चा करते हुए इस दुस्तर संसार को पार कर जायेंगे ।।४८।।

स्मरन्तः कीर्तयन्तस्ते कृतानि गदितानि च । गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेलि यन्नृलोकविडम्बनम् ।।४९।।

अन्वयः— ते कृतानि, गदितानि स्मरन्तः कीर्तयन्तः गत्युत्स्मितेक्षणक्ष्वेलि यत् नृलोकविडम्बनम् ।।४९।।

अनुवाद— मनुष्यों के साथ मनुष्यों जैसी आपने अपने भक्तों के साथ की है उसी का हम स्मरण और कीर्तन करते रहेंगे। साथ ही आपकी चाल, मुस्कान, चितवन, तथा हास-परिहास की स्मृति में तल्लीन हो जायेंगे। और इसी से हम आपकी दुस्तर माया को पार लेंगे ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

क्ष्वेली परिहासः । द्वन्द्वैकत्वम् ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

क्ष्वेली अर्थात् परिहास ।।४९।।

श्रीशुक उवाच

एवं विज्ञापितो राजन् भगवान्देवकीसुतः । एकान्तिनं प्रियं भृत्यमुद्धवं समभाषत ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

अन्वयः— राजन् एवं विज्ञापितः भगवन् देवकीसुतः एकान्तिनं प्रियं भृत्यम् उद्धवं समभाषत ।।५०।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् परीक्षित् जब उद्धवजी ने देवकी नन्दन भगवान् श्रीकृष्ण से इस प्रकार की प्रार्थना की तब उन्होंने अनन्य प्रेमी सेवक श्रीउद्धवजी से कहा ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

भावार्थ दीपिका

एकान्तिनमित्यादिस्वाभिप्रायावञ्चने हेतुः ।।५०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

अपने अभिप्राय से वञ्चित नहीं करने का कारण है कि उद्धवजी श्रीभगवान् के ऐकान्तिक सेवक हैं ।।५०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपका टीका के छठे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।६।।

* * *

सातवाँ अध्याय

अवधूतोपाख्यान के अन्तर्गत पृथिवी से लेकर कबूतर तक आठ गुरुओं की कथा

श्रीभगवानुवाच

यदात्थ मां महाभाग तच्चिकीर्षितमेव मे । ब्रह्मा भवो लोकपालाः स्वर्वासं मेऽभिकाङ्क्षिणः ॥१॥

अन्वयः— महाभाग यद् मां आत्थ तत् मे चिकीर्षितमेव, ब्रह्मा भवः लोकपाला मे स्वर्वासमभिकाङ्क्षिणः ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे महाभाग्यवान् ! तुमने जो मेरे विषय में कहा है वह मैं करना ही चाहता हूँ । ब्रह्माजी, शङ्करजी इन्द्रादि लोकपाल अब यही चाहते हैं कि मैं उनके लोक में होकर अपने धाम में चला जाऊँ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तमे तूद्धवस्यात्मज्ञानसिद्ध्यै हरिः स्वयम् । अवधूतेतिहासोक्तगुरुष्वष्टाववर्णयत् । यदात्थ संहृत्यैतत्कुलमिति । स्वर्वासं वैकुण्ठवासं प्रति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सातवें अध्याय में उद्धव के आत्मज्ञान के लिए स्वयं श्रीभगवान् ने अवधूतोपाख्यान के अन्तर्गत आठ गुरुओं का वर्णन किया । तुमने जो यह कहा है कि इस वंश का संहार करके वैकुण्ठ लोक में निवास ॥१॥

मया निष्पादितं ह्यत्र देवकार्यमशेषतः । यदर्थमवतीर्णोऽहमंशेन ब्रह्मणार्थितः ॥२॥

अन्वयः— अत्र मया देवकार्यम् अशेषतः निष्पादितम् ब्रह्मणा अर्थितः यदर्थम् अंशेन अवतीर्णः ॥२॥

अनुवाद— इस लोक में मैंने देवताओं के सम्पूर्ण कार्यों का पूरा कर दिया है जिसके लिए ब्रह्माजी की प्रार्थना से मैं अपने अंश के साथ अवतार लिया था ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

कुलं वै शापनिर्दग्धं नङ्क्ष्यत्यन्योन्यविग्रहात् । समुद्रः सप्तमेऽह्न्येतां पुरीं च प्लावयिश्यति ॥३॥

अन्वयः— शापनिर्दग्धं कुलं वै अन्योन्य विग्रहात् नंक्ष्यति, सप्तमे अहनि समुद्रः एताम् पुरीं प्लावयिष्यति ॥३॥

अनुवाद— निश्चित रूप से वंश तो ब्राह्मणों के शाप से दग्ध हो चुका, ये सब आपसी कलह करके विनष्ट हो जायेंगे । आज के सातवें दिन समुद्र इस द्वारका पुरी को डुबो देगा ॥३॥

भावार्थ दीपिका

त्वं च सर्वत्यागेनात्मनिष्ठो भवेति वक्तुमाह-कुलमिति त्रयेण ॥३॥

भाव प्रकाशिका

तुम भी सबकुछ त्याग पूर्व आत्मनिष्ठ हो जाओ इस बात को कहने के लिए श्रीभगवान् **कुलं च इत्यादि** तीन श्लोकों को कहते हैं ॥३॥

यर्ह्येवायं मया त्यक्तो लोकोऽयं नष्टमङ्गलः । भविष्यत्यचिरात्साधो कलिनापि निराकृतः ॥४॥

अन्वयः— नष्टमङ्गलः अयं लोकः यर्हि एव मया त्यक्तो भविष्यति अचिरात् कलिना अपि निराकृतः स्यात् ॥४॥

अनुवाद— इस मर्त्यलोक का मङ्गल नष्ट हो गया है । हे साधु आचरण वाले उद्धव मैं ज्यों ही इस लोक का परित्याग करूँगा उसके थोड़े ही दिन बाद कलियुग इस लोक को तिरस्कृत कर देगा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तदैवायं नष्टमङ्गलो भविष्यति । निराकृतो नितरामाक्रान्तः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

उसी समय इस लोक का मङ्गल नष्ट हो जायेगा निराकृतः अर्थात् अत्यधिक आकान्त ।।४।।

न वस्तव्यं त्वयैवेह मया त्यक्ते महीतले । जनोऽधर्मरुचिर्भद्र भविष्यति कलौ युगे ।।५।।

अन्वयः— मया महीतले त्यक्ते त्वया इह न वस्तव्यम् हे भद्र कलौ युगे जनः अधर्मरुचिः भविष्यति ।।५।।

अनुवाद— जब मैं इस लोक का परित्याग कर दूँ तब तुम यहाँ पर मत रहना क्योंकि हे भद्र कलियुग में लोगों की रुचि अधर्म में हो जायेगी ।।५।।

भावार्थ दीपिका

न वस्तव्यमेव त्वया ।।५।।

भाव प्रकाशिका

तुमको नहीं ही निवास करना चाहिए ।।५।।

त्वं तु सर्वं परित्यज्य स्नेहं स्वजनबन्धुषु । मय्यावेश्य मनः सम्यक् समदृग्विचरस्व गाम् ।।६।।

अन्वयः— त्वं तु स्वजन बन्धुषु सर्वं स्नेहं परित्यज्य मयि सम्यक् मनः आवेश्य समदृक् गाम् विचरस्व ।।६।।

अनुवाद— तुम अपने सभी सगे संबन्धियों से स्नेह का परित्याग करके मुझमें ही अपने मन को लगाकर समदर्शी होकर पृथिवी पर विचरण करना ।।६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६।।

यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः । नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि मायामनोमयम् ।।७।।

अन्वयः— यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्याम् श्रवणादिभिगृह्यमाणं तद्धि मायामनोमयम् विद्धि ।।७।।

अनुवाद— यह मन, वाणी, नेत्रों तथा श्रोत्र आदि से जो कुछ भी गृहीत होता है उसे तुम मायाकृत तथा कल्पित एवं नश्वर मानो ।।७।।

भावार्थ दीपिका

ननु गुणदोषाभ्यां विषमे लोके कुतः समदृष्टिः स्यामत आह-यदिदमिति । मनआदिभिर्गृह्यमाणं मनोमयत्वान्मायेति विद्धि । तदपि न स्थिरं, किंतु नश्वरं विद्धि ।।७।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि गुणों एवं दोषों के कारण विषम बने हुए इस संसार में समदृष्टि कैसे हुआ जा सकता है। तो इस पर भगवान् कहते हैं मन आदि से जिसका ग्रहण होता है । अतएव इसे माया ही जानो । वह भी स्थिर नहीं अपितु नश्वर ही मानो ।।७।।

पुंसोऽयुक्तस्य नानार्थो भ्रमः स गुणदोषभाक् । कर्माकर्मविकर्मेति गुणदोषधियो भिदा ।।८।।

अन्वयः— अयुक्तस्य पुंसः नानार्थो भ्रमः, स गुण दोषभाक् गुणदोषधियः भिदा कर्म अकर्म, विकर्म इति ।।८।।

अनुवाद— जिस पुरुष का मन असंयत है उसी को पागल की तरह अनेक वस्तुएँ प्रतीत होती हैं । वस्तुतः यह चित्त का भ्रम है । नानात्व का भ्रम हो जाने पर ही यह गुण है और यह दोष है, इस प्रकार की कल्पना

करनी पड़ती है । जिसकी बुद्धि में गुण एवं दोष का भेद बैठ गया है उसी के लिए कर्म (विहित कर्म) अकर्म (विहितकर्म का लोप) और विकर्म (निषिद्ध कर्म) रूप भेद का प्रतिपादन हुआ है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

मनोमयत्वे हेतुः-पुंस इति । अयुक्तस्य विक्षिप्तमनसः । नानार्थो भेदविषयो भ्रमः । स भ्रम एव गुणदोषभाक् । ननु वेदेनैव विधिनिषेधाभ्यां भेदस्य सत्यतोक्ता, न, भ्रमविजृम्भितगुणदोषबुद्धेः पुंसः कर्म विहितम् । अकर्म तल्लोपः, विकर्म निषिद्धमिति भेदः । अविद्यावद्विषय एव वेद इत्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

प्रतीयमान प्रपञ्च के मनोमयत्व का कारण **पुंसः इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । अयुक्तस्य अर्थात् जिसका मन विक्षिप्त है । अनेक वस्तु के भेदविषयक भ्रम । वह भ्रम ही गुण एवं दोष बुद्धि की कल्पना का कारण है । प्रश्न होता है कि वेद ही विधि एवं निषेध के द्वारा भेद की सत्यता का प्रतिपादन करता है । तो ऐसा नहीं कहा जा सकता है । भ्रम के ही कारण पुरुष की जो गुण एवं दोष की बुद्धि होती है । उसी के कारण कर्म अर्थात् कर्म का विधान होता है । अकर्म विहित कर्म का लोप तथा विकर्म निषिद्ध कर्म का भेद होता है । वेद भी अज्ञानी को ही अपना विषय बनाता है ॥८॥

तस्माद्युक्तेन्द्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत् । आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे ॥९॥

अन्वयः— तस्माद् युक्तेन्द्रियग्रामः युक्तचितः इदं जगत् अत्मनि, ईक्षस्व विततम् आत्मानम् मयीश्वरे ॥९॥

अनुवाद— उद्धव सर्वप्रथम तुम अपनी इन्द्रियों को वश में करो । केवल इन्द्रियों को ही नहीं अपने चित की समस्त इन्द्रियों को अपने वश में कर लो । उसके पश्चात् अनुभव करो यह सारा जगत् अपनी आत्मा में ही भरा हुआ है और आत्मा मुझ सर्वत्मा इन्द्रियातीत बह्म से एक ही है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

कथमात्मनि परिच्छिन्ने विततं जगदीक्षणीयं तत्राह-आत्मानमिति । मयि ब्रह्मणि तद्रूपेणेक्षस्व ॥९॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि आत्मा तो परिच्छिन्न है उसमे विस्तृत जगत् का ईक्षण कैसे किया जा सकता है । इस पर श्रीभगवान् ने कहा मुझ ब्रह्म में उस तरह से विस्तृत प्रपञ्च को देखा ॥९॥

ज्ञानविज्ञानसंयुक्त आत्मभूत शरीरिणाम् । आत्मानुभवतुष्टात्मा नान्तरायैर्विहन्यसे ॥१०॥

अन्वयः— ज्ञानविज्ञानसंयुक्तः शरीरिणाम् आत्मभूतः आत्मानुभवतुष्टात्मा अन्तरायैः न विहन्यसे ॥१०॥

अनुवाद— जब तुम वेदों के मुख्य तात्पर्य निश्चय रूप ज्ञान और अनुभव रूप विज्ञान से अच्छी तरह से सम्पन्न होकर अपनी आत्मा के ही अनुभव में मग्न रहोगे तथा समस्त देह धारियों की आत्मा हो जाओगे तब तुम किसी भी विघ्न से पीड़ित नहीं होओगे क्योंकि उन विघ्नों और विघ्न कराने वालों की आत्मा भी तुम ही होओगे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं युक्तचित्तत्वेन कर्माकरणे देवादयो विघ्नान् करिष्यन्ति तत्राह-ज्ञानेति । ज्ञानं वेदतात्पर्यनिश्चयो विज्ञानं तदर्थानुभवस्ताभ्यां सम्यग्युक्तस्तत आत्मानुभवेनैव तुष्टचित्तोऽतः शरीरिणां देवादीनामात्मभूतोऽन्तरायैर्न प्रतिहन्यसे । अयं भावः-यावदनुभवं यथाश्रमं कर्माणि कुर्यादेव । तदनन्तरं सर्वेषामात्मभूतत्वान्न कोऽपि विघ्नानाचरति । तथा च श्रुतिः-'तस्य ह न देवाश्च नाभूत्या ईशते । आत्मा ह्येषां स भवति' इति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि इस प्रकार से मुक्तचित्त होने पर देवता, आदि विघ्न करेंगे। इस पर श्रीभगवान् ज्ञान **विज्ञान० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। वेदों के तात्पर्य का निश्चय रूप ज्ञान होता है और विज्ञान तात्पर्य के अनुभव को कहते हैं। इन दोनों से अच्छी तरह से युक्त होकर आत्मानुभव करने के ही कारण तुम्हारा चित्त सन्तुष्ट रहेगा। इस तरह तुम देवता आदि सभी शरीरधारियों की आत्मा हो जाओगे। अतएव तुम किसी भी विघ्न से पीड़ित नहीं होओगे। **अयं भाव:** कहने का अभिप्राय है कि अनुभवपर्यन्त अपने आश्रम के अनुसार कर्मों को करना ही चाहिए। उसके पश्चात् सबों की आत्मा हो जाने के कारण कोई भी विघ्न नहीं करता है। श्रुति भी कहती है। **तस्य ह न देवाश्च** इत्यादि उस आत्मज्ञानी का कोई भी देवता विघ्न बनने में समर्थ नहीं होता है। क्योंकि वह ज्ञानी पुरुष उन देवताओं की भी आत्मा होता है ॥१०॥

दोषबुद्ध्योभयातीतो निषेधान्न निवर्तते। गुणबुद्ध्या च विहितं न करोति यथार्भकः ॥११॥

अन्वयः— दोषबुद्ध्योभयातीतो निषेधान्त न निवर्तते गुण बुद्ध्या च विहितम् यथार्भकः न करोति ॥११॥

अनुवाद— जो पुरुष दोष एवं गुण बुद्धि से अतीत हो जाता है वह बालक के समान निषिद्ध कर्मों से निवृत्त होता है किन्तु दोष बुद्धि से नहीं। वह विहित कर्म का अनुष्ठान भी करता है, किन्तु गुण बुद्धि से नहीं॥११॥

भावार्थ दीपिका

न चोत्पन्नज्ञानस्यापि यथेष्टाचरणप्रसङ्ग इत्याह-दोषबुद्ध्येति। गुणदोषबुद्ध्यतीतोऽपि प्राक्तनसंस्कारान्निषेधान्निवर्तत एवं किंतु न दोषबुद्ध्य विहितं च प्रायशः करोति, न गुणबुद्ध्या। यथाऽर्भकः सङ्कल्पविकल्परहितः किंचित्करोति कुतश्चिन्निवर्तते तद्वत्॥११॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ पर यह नहीं कहा जा सकता है जिसको ज्ञान उत्पन्न हो गया है उसके भी यथेष्ट आचरण का प्रसङ्ग होगा। इस बात को **दोष बुद्ध्या० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। गुण एवं दोष की बुद्धि से अतीत भी अपने पूर्व संस्कार के कारण निषेध से निवृत्त हो जाता है किन्तु वह प्राय: दोष की बुद्धि से नहीं। वह विहित कर्मो को भी करता है, किन्तु गुण बुद्धि से नहीं। वह बालक के समान सङ्कल्प विकल्प से रहित होता होकर ही किसी कर्म को करता है और किसी कर्म से निवृत्त हो जाता है ॥११॥

सर्वभूतसुहृच्छान्तो ज्ञानविज्ञाननिश्चयः। पश्यन्मदात्मकं विश्वं न विपद्येत वै पुनः ॥१२॥

अन्वयः— सर्वभूत सुहृच्छान्तः ज्ञानविज्ञान निश्चयः मदात्मकं विश्वं पश्यन् वै पुनः न विपद्येत ॥१२॥

अनुवाद— जो पुरुष परमात्मसाक्षात्कार कर लेता है वह जीवों का हितैषी एवं परम शान्त हो जाता है। वह ज्ञान एवं विज्ञान का निश्चय कर लिए रहता है। वह सम्पूर्ण जगत् को परमात्मक रूप से देखता है। अतएव वह कभी पुन: जन्म एवं मृत्यु के चक्ररूप इस संसार में नहीं पड़ता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतस्य न पुनः संसार इत्याह-सर्वभूतेति। न विपद्येत न पुनः संसरेत् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

उपुर्यक्त प्रकार का ज्ञानी पुरुष पुन: इस संसार में संसरण नहीं करता है। इस बात को श्रीभगवान् ने **सर्वभूत० इत्यादि** श्लोक से कहा है। न विपद्येत् अर्थात् पुन: संसरण नहीं करता है ॥१२॥

श्रीशुक उवाच

इत्यादिष्टो भगवता महाभागवतो नृप । उद्धवः प्रणिपत्याह तत्त्वजिज्ञासुरच्युतम् ।।१३।।

अन्वयः—हे नृप ! इति भगवता आदिष्टः महाभागवतः तत्त्वजिज्ञासुः उद्धवः अच्युतम् प्रणिपत्य आह ।।१३।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद—राजन् ! इस प्रकार से श्रीभगवान् का आदेश प्राप्त करके महाभागवत उद्धवजी ने श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग प्रणाम करके कहा ।।१३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१३।।

उद्धव उवाच

योगेश योगविन्यास योगात्मन्योगसंभव । निःश्रेयसाय मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः ।।१४।।

अन्वयः— हे योगेश ! योगविन्यास, योगात्मन योगसंभव मेनिःश्रेयसाय संन्यासलक्षणः त्यागः प्रोक्तः ।।१४।।

श्रीउद्धवजी ने कहा

अनुवाद—हे भगवन् आप ही योग का फल प्रदान करने वाले है, आप ही योगियों की अत्यन्त गोपनीय सम्पत्ति विशेष है । योग में ही आप अपने स्वरूप को प्रकट करते हैं, आपसे ही योग की उत्पत्ति हुई है । इस प्रकार की महिमा से सम्पन्न आपने मेरे कल्याण के लिए इस प्रकार संन्यास स्वरूप त्याग का उपदेश दिया हैं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

त्वं तु सर्वं परित्यज्येत्याद्युपदेशमात्मनोऽयोग्यं मन्वानः पृच्छति-योगेशेति । योगफलदयिन् । योगविदां न्यासो नामातिगोप्यो निक्षेपविशेषः । यद्वा योगो विन्यस्यते क्रियते यस्मिन् । योगात्मन्योगे आत्मा प्रकटो भवति यस्य । योगस्वरूपेति । वा । योगस्य संभवो यस्मात् चतुर्भिरेतैः संबोधनैः स्वमहिम्ना केवलं त्वयोपदिष्टं न तु मदधिकारं पर्यालोच्येति द्योतितम् । तदाह-निःश्रेयसायेति। न चारोग्याद्यर्थं सर्वस्वदानादिवदयं त्यागः किंतु संन्यासलक्षणोऽप्रत्यापत्तिरूपः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

आपने तो सबका परित्याग करके इत्यादि उपदेश के द्वारा यह सबकुछ प्रपञ्च आत्मा के लिए योग्य नहीं है, इस प्रकार से मानते हुए श्रीउद्धवजी श्रीभगवान् से **योगश इत्यादि** श्लोक के द्वारा पूछते हैं । योगेश अर्थात् हे योग का फल प्रदान करने वाले योग के स्वामिन् प्रभो ! योगियों के न्यास नामक अत्यन्त गोपनीय निधि विशेष प्रभो ! अथवा योग विन्यास का अर्थ है जिनमें योग किया जाता है । योगात्मन् अर्थात् योग में ही आपका स्वरूप प्रकट होता है । अथवा योग स्वरूप प्रभो ! योग सम्भव अर्थात् आपसे ही योग की उत्पत्ति होती है । इन चार संबोधनों की महिमा से संपन्न आपने मेरे कल्याण के लिए संन्यास स्वरूप त्याग का उपदेश दिया है। आपने यह उपदेश मेरे अधिकार का विचार करके नहीं दिया है। आपने यह उपदेश आरोग्य इत्यादि के लिए नहीं दिया है । अपितु सर्वस्व दान आदि के समान यह त्याग है । यह संन्यास स्वरूप अप्रत्यापत्तिरूप यह त्यागोपदेश है ।।१४।।

त्यागोऽयं दुष्करो भूमन्कामानां विषयात्मभिः । सुतरां त्वयि सर्वात्मन्नभक्तैरिति मे मतिः ।।१५।।

अन्वयः— हे भूमन् कामानां विषयात्मभिः हे सर्वात्मन् त्वयि अभक्तैः अयं त्यागः सुतरांदुष्करः ।।१५।।

अनुवाद—हे अनन्त प्रभो जो लोग विषयों के भोगों में धुल-मिल गये है ऐसे जो विषयात्मा पुरुषो पुरुष हो गया है, उनके लिए तो विषयों का त्याग तथा कामनाओं का त्याग सर्वथा असम्भव है । उनमें भी जो लोग आपसे विमुख हैं उनके लिए इस प्रकार त्याग का सर्वथा असम्भव है । इस प्रकार का मेरा निश्चय है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१५।।

सोऽहं ममाहमिति मूढमतिर्विगाढस्त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबन्धे ।
तत्त्वञ्जसानिगदितं भवता यथाहं संसाधयामि भगवन्ननुशाधि भृत्यम् ॥१६॥

अन्वय: मूढमति: सोऽहम् ममाहमिति विगाढ: त्वन्मायया विरचितात्मनि सानुबन्धे । तत्त्वञ्जसा निगदितं भवता यथाहम् संसाधयामि भगवन् भृत्यम् अनुशाधि ॥१६॥

अनुवाद प्रभो मैं भी ऐसा ही हूँ मेरी मति इतनी मूढ़ हो गयी है कि मैं यह हूँ, यह मेरा इस भाव से मैं आपकी माया के खेल, देह एवं देह के सम्बन्धी पत्नी पुत्र, परिवार इत्यादि में रम गया हूँ । प्रभो आपने जिस संन्यास का उपदेश दिया है उसे मुझे इस प्रकार से समझाइये कि मैं आसानी से उस का साधन कर सकूँ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

यं प्रति त्यागाद्युपदिष्टं सोऽहं मूढमति: । कुत: । ममेत्यहमिति च सानुबन्धे पुत्रादिसहिते त्वन्मायया विरचिते । आत्मनि देहे विगाढो निमग्नोऽतस्तत्तु भवता निगदितं यथाहमञ्जसा संसाधयामि तथा भृत्यं मामनुशाधि शनै: शिक्षय ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

प्रभो आपने मुझे उपदेश दिया है वह मैं अज्ञानी हूँ । क्योंकि अहन्त्वं एवं ममत्वमयी बुद्धि के कारण मैं आपकी माया के द्वारा विरचित देह गेह पुत्र परिवार धन अदि में मैं डूब रहा हूँ । अतएव आपके द्वारा उपदिष्ट उपदेश का मैं आसानी से अनुष्ठान करूँ इस तरह से आप मुझे उपदेश दें ॥१६॥

सत्यस्य ते स्वदृश आत्मन आत्मनोऽन्यं वक्तारमीश विबुधेष्वपि नानुचक्षे ।
सर्वे विमोहितधियस्तव माययेमे ब्रह्मादयस्तनुभृतो बहिरर्थभावा: ॥१७॥

अन्वय:— हे ईश सत्यस्य ते स्वदृश: आत्मन: अन्यं विबुधेष्वपि वक्तारम् न अनुचक्षे । इमे ब्रह्मादय: सर्वे तव मायया विमोहितधिय: । तनुभृत: बहिरर्थभावा: ॥१७॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप भूत भविष्यत् एवं वर्तमान तीनों कालों में निरूपाधिक सत्य होने से एक रस है । आप स्वयम्प्रकाश है, आप दूसरे के द्वारा प्रकाशित नहीं होते हैं मेरे विचार से मुझको आत्मतत्त्व का उपदेश देने वाला आपको छोड़कर दूसरा कोई नहीं है । ब्रह्मा इत्यादि जितने भी बड़े-बड़े देवता हैं, वे सब शरीराभिमानी होने के कारण आपकी माया से मोहित हैं । जिनका अनुभव इन्द्रियों के माध्यम से होता है, उन बाह्य विषयों को सत्य मानते हैं । अतएव मुझको आप ही उपदेश दें ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

मया संक्षेपत उक्तं विस्तरतस्त्वन्यान्पृच्छेते चेदत आह-सत्यस्येति । स्वदृश: स्वप्रकाशस्य सत्यस्यात्मन आत्मनो मां प्रति वक्तारं ते त्वत्तोऽन्यं नानुचक्षे न पश्यामि । स्वदृश: स्वत: सिद्धज्ञानात्त्वत्तोऽन्यमिति वा कुत इत्यत आह-सर्व इति । बहिरर्थभावा विषयेष्वर्थबुद्धय: ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

मैंने संक्षेप से कहा विस्तार पूर्वक तो तुम दूसरे गुरुओं से पूछो यदि इस तरह से आप कहें तो इस पर श्रीउद्धवजी ने **सर्वेविमोहित० इत्यादि** श्लोक को कहा है । उद्धवजी का अभिप्राय है कि ब्रह्मा आदि सभी देवता आपकी माया से मोहित हैं अतएव वे बाह्य विषयों को भी सत्य समझते हैं ॥१७॥

तस्माद्भवन्तमनवद्यमनन्तपारं सर्वज्ञमीश्वरमकुण्ठविकुण्ठधिष्ण्यम् ।
निर्विण्णधीरहमु ह वृजिनाभितप्तो नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥

अन्वय:— वृजिनाभितप्तोऽहम् उ ह निर्विण धी: तस्मात् भवन्तम् अनवद्यम् अनन्तपारम् सर्वज्ञम् ईश्वरम् अकुण्ठ विकुण्ठधिष्ण्यम् नरसखं नारायणं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥

अनुवाद भगवान् मैं चारों ओर से दुःख रूपी दावाग्नि से सन्तप्त होकर और संसार से विरक्त होकर आपकी शरण में आया हूँ । आप निर्दोष देश एवं काल की सीमा से अपरिच्छिन्न सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और अविनाशी वैकुण्ठलोकवासी हैं एवं नर के नित्य सखा हैं । अतएव आप ही मुझे उपदेश ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

केचिद्दुःशीला भवन्ति केचित्सेविताः फलकाले विनश्यन्ति केचिदज्ञाः केचिद्रक्षणेऽसमर्थाः केचित्तु स्थानादप्रष्टास्तद्-यावृत्त्यर्थमनवद्यमित्यादीनि पञ्च विशेषणानि । न अन्तः कालतः पारं देशतश्च यस्य तम् । कालादिभिरकुण्ठो विकुण्ठलोको धिष्ण्यं स्थानं यस्य तम् । उ हे भगवन्, ह स्फुटम् । निर्वेदे हेतुः-वृजिनैर्दुःखैरभितप्तः । हकारगौरवाय वृकारो युक्त इव पठनीयः । नन्वनवद्यत्वादीनि कुतो मम तदाह नारायणमिति । अनुकम्पितामाह (नरसखं नीयते विक्षिप्यते दुःखैरिति) नरो जीवस्तस्य सखायं भवन्तं शरणं प्रपद्ये ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

कुछ सेवित पुरुष दुःशील होते हैं, फल के समय विनष्ट हो जाते हैं, कुछ अज्ञानी होते हैं कुछ लोग रक्षा करने में असमर्थ होते हैं, कुछ तो अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाते हैं । इन सभी दोषों से व्यावृत्ति के लिए श्रीभगवान् के अनवद्य इत्यादि पाञ्च विशेषण दिये गये हैं । देश और काल की सीमा से रहित होने के कारण श्रीभगवान् अनन्त हैं । भगवान् सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान होने तथा सभी कलादि के कारण कुण्ठित नहीं होते हैं । वैकुण्ठ ही श्रीभगवान् का निवास स्थान है । हे भगवान् ! संसार से विराग होने का कारण है कि उद्धवजी सांसारिक दुःख रूपी दावाग्नि से अत्यन्त सन्तप्त हैं । हे वृजिनाभितप्तः के हकार के गुरुवर्ण बनाने के लिए वृ ही पढ़ना चाहिए । यदि श्रीभगवान् कहें कि मैं अनवद्य आदि विशेषणों से विशिष्ट कैसे हूँ ? इस पर उद्धवजी ने कहा कि आप चूकि नारायण हैं। भगवान् नारायण की अनुकम्पिता को बतलाते हुए कहा गया है कि आप नर के सखा हैं । दुःखों के द्वारा विक्षिप्त होने वाले को नर अर्थात् जीव कहते है । **(नीयते विक्षिप्यते दुःखैः इति)** यह नर की व्युत्पत्ति है । आप जीवों के स्वामी नर ऋषि के सखा हैं अतएव मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच

प्रायेण मनुजा लोके लोकतत्त्वविचक्षणाः । समुद्धरन्ति ह्यात्मानमात्मनैवाशुभाशयात् ॥१९॥

अन्वयः— लोके मनुजाः प्रायः लोक तत्त्वविचक्षणाः आत्मानम् आत्मनैव अशुभाशयात् समुद्धरन्तीतिवत् ॥१९॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— उद्धव संसार में जो लोग लोकतत्त्व का विचार करने में निपुण हैं । यह जानते हैं कि संसार क्या है ? तथा संसार में क्या हो रहा है तो ऐसे लोग अपनी विवेकशक्ति से अपने हृदय में भरी हुई अशुभ वासनाओं से अपने को बचा लेते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तदेवमसंभावनाविपरीतभावनाभ्यामुपदिष्टं तत्त्वमनवगाहमानं प्रति तन्निवृत्तये गुरूपदेशं विनापि स्वान्वयव्यतिरेकाभ्यामेव तत्त्वप्रतिपत्तिर्भवतीति दर्शयितुमाह-प्रायेणेति । लोकतत्त्वस्य विचक्षणाः परीक्षकाः अशुभाशयाद्विषयवासनातः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह असंभावना तथा विपरीतभावना के द्वारा जिस तत्त्व का उपदेश दिया जाता है उसके तत्त्व का निश्चय हीं कर पाने वाले के प्रति उसकी निवृत्ति के लिए गुरु के उपदेश के बिना भी अन्वय एवं व्यतिरेक के द्वारा (हितकारी) र्म में प्रवृत्ति को अन्वय कहते हैं तथा अहितकारी कर्मो से निवृत्ति के व्यतिरेक कहते हैं । हो जाता है इसी बात को

बतलाने के लिए श्रीभगवान् **प्रायेण० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। लोकविचक्षणा: अर्थात् लौकिक विषयों में निपुण पुरुष अशुभाशयात् अर्थात् विषयों की वासना से ।।१९।।

आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषत: । यत्प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोऽसावनुविन्दते ।।२०।।

अन्वय: विशेषत: पुरुषस्य आत्मैव गुरु आत्मन: । यत् असौ प्रत्यक्षानुमानाभ्याम श्रेय: अनुविन्दते ।।२०।।

अनुवाद सभी प्राणियो की विशेष रूप से मनुष्यो की अपनी आत्मा ही हित एवं अहित का उपदेशक गुरु है क्योंकि मनुष्य अपने प्रत्यक्ष अनुभव तथा अनुमान के द्वारा अपने हित एवं अहित का निर्णय करने में पूर्ण रूप से समर्थ होता है ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

तदुपपादयति-आत्मन: पश्वादिशरीरेऽप्यात्मैव हिताहितज्ञाने गुरु: ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का ही प्रतिपादन करते हैं पशु आदि के भी शरीर में रहने वाली आत्मा ही अपने हित एवं अहित का ज्ञान कराने मे गुरु हैं ।।२०।।

पुरुषत्वे च मां धीरा: सांख्ययोगविशारदा: । आविस्तरां प्रपश्यन्ति सर्वशक्त्युपबृंहितम् ।।२१।।

अन्वय:— सांख्ययोगविशारदा: धीरा: पुरुषत्वे सर्वशक्त्युपबृंहितम् माम् आविस्तरा प्रपश्यन्ति ।।२१।।

अनुवाद— सांख्ययोग के ज्ञाता धैर्य सम्पन्न पुरुष इस मनुष्य योनि में इन्द्रिय शक्ति एवं मन शक्ति आदि के आश्रय भूत मुझ आत्मतत्त्व का पूर्णत: प्रकटरूप से साक्षात्कार कर लेते हैं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रत्यक्षं दर्शयति-पुरुषत्वे चेति । तथा च श्रुति: 'पुरुषत्वे चाविस्तरामात्मा स हि प्रज्ञानेन संपन्नतमो विज्ञातं वदति विज्ञातं पश्यति वेद श्वस्तनं वेद लोकालोकौ मर्त्येनामृतमीप्सत्येवं संपन्नोऽथेतरेषां पशूनामशनापिपासे एवाभिविज्ञानम् इति।।२१।।

भाव प्रकाशिका

उस प्रत्यक्ष को **पुरुषत्वे इत्यादि** श्रुति के द्वारा कहते हैं- श्रुति भी कहती है **पुरुषत्वे चाविस्तराम्...... इति।** अर्थात् मनुष्य भी अत्यन्त प्रकट आत्मा मुझको उत्कृष्ट ज्ञान से सम्पन्न होता है। वह मुझको विज्ञात रूप से बतलाता है और विज्ञात रूप से ही देखता है। वह भविष्यत् कालिक वह लोक और परलोक रूप से मुझको जानता है। वह मर्त्य पदार्थो से अमृत को प्राप्त करना चाहता है। इस तरह से सम्पन्न होता है मनुष्य। और पशु आदि को तो केवल भूख आदि का ही ज्ञान होता है ।।२१।।

एकद्वित्रिचतुष्पादो बहुपादस्तथापद: । बह्व्य: सन्ति पुर: सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया ।।२२।।

अन्वय:— एकद्वित्रिचतुष्पाद: बहुपाद: तथा अपद: बहव्य: पुर: सृष्टा: सन्ति, तासां मे पौरुषी प्रिया ।।२२।।

अनुवाद— मैंने एक पैर वाले दो पैर वाला, तीन पैर वाले, चार पैर वाले, चार से अधिक पैर वाले तथा बिना पैर के भी इस तरह अनेक प्रकार के शरीरों की सृष्टि की है, उन सबों में मुझे मनुष्य का ही शरीर अधिक प्रिय है ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

अत: पुरुषत्वं स्तौति-एकेति ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

एकद्वित्रि० इत्यादि के द्वारा मनुष्य की प्रशंसा करते हैं ।।२२।।

अत्र मां मार्गयन्त्यद्धा युक्ता हेतुभिरीश्वरम् । गृह्यमाणैर्गुणैर्लिङ्गैरग्राह्यमनुमानतः ॥२३॥

अन्वयः - अत्र युक्ताः ईश्वरम् माम् हेतुभिः अद्धा मार्गयन्ति, गृह्यमाणै गुणैः अनुमानतः अग्राह्यम् माम् हेतुभिः मार्गयन्ति।।२३।।

अनुवाद- इस मनुष्य शरीर मे एकाग्रचित्त तीक्ष्णबुद्धि पुरुष बुद्धि आदि मे ग्रहण किए जाने वाले हेतुओं से जिससे कि अनुमान भी होता है अनुमान से अग्राह्य अर्थात् अहङ्कार आदि विषयों मे भिन्न मुझ सर्वप्रवर्तक ईश्वर का अनुभव करते है ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

अनुमानमाह-अत्र पौरुष्यां पुरि । युक्ता अप्रमत्ता अग्राह्यं ग्राह्येभ्योऽहङ्कारादिभ्यो व्यतिरिक्तं मामद्धा साक्षान्मृगयन्ति। मार्गणे प्रकारद्वयमाह-गृह्यमाणैर्बुद्ध्यादिभिर्गुणैर्हेतुभिः । जडानां प्रकाशः स्वप्रकाशमेकं विना न घटत इत्यनुपपत्तिमुखेन लक्षकैः। तथा तैरेव लिङ्गैर्व्याप्तिमुखेनानुमानत ईश्वरं प्रवर्तकं मृगयन्ते-बुद्ध्यादिकरणानि कर्तृप्रयोज्यानि करणत्वाद्वास्यादिवदिति । तदुक्तम्- 'भगवान्सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः । दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः ।' इति । न चैतावता आनुमानिक आत्मेति मन्तव्यम् । देहदिव्यतिरिक्तत्वंपदार्थशुद्धिमात्रस्यैवानुमानेन विवक्षितत्वात् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

अनुमान बतलाते हैं इस मनुष्य शरीर में विवेकी पुरुष ग्राह्य अहङ्कार आदि से भिन्न मेरा अन्वेषण करते हैं । उस अन्वेषण के दो प्रकार को बतलाते हैं । एक है जड़ों का प्रकाशक स्वप्रकाश एक के बिना जो उपपन्न नहीं होता हं । इस तरह अनुपपत्ति इत्यादि के माध्यम से लक्षक हेतुओं के द्वारा और उन्हीं हेतुओं से व्याप्ति आदि से अनुमान से प्रवर्तक ईश्वर का अन्वेषण (अनुमान) करते हैं । उसका स्वरूप है बुद्धि आदि इन्द्रियाँ कर्ता के प्रयोज्य हैं क्योंकि वे करण हैं, वसूला आदि के समान जो इन सबों का प्रयोजक है वही ईश्वर है । इसी बात को कहा भी जा चुका है उनका अनुमान दृश्य बुद्धि आदि अनुमापक लक्षणों से द्रष्टा के रूप में भगवान् श्रीहरि सभी भूतों में लक्षित होते हैं। किन्तु यह देखकर आत्मा को अनुमानिक नहीं मानना चाहिए । क्योंकि अनुमान के द्वारा देहादि से भिन्नत्व प्रतिपादन रूप आत्मा पदार्थ की शुद्धि ही विवक्षित है ।।२३।।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । अवधूतस्य संवादं यदोरमिततेजसः ॥२४॥

अन्वयः— अत्र अपि इमम् पुरातनम् इतिहासं उदाहरति। अमिततेजसः यदोः अवधूतस्य संवाद रूपम् तद्वर्तत इति शेषः।।२४।।

अनुवाद— इस विषय में सन्त महापुरुष एक इतिहास को उपन्यस्त करते हैं वह अवधूत दत्तात्रेय और अमित तेजस्वी महाराज यदु के संवाद रूप है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

भूयोऽन्वयव्यतिरेकाभ्यामसंभावनादिनिवृत्तावितिहासमाह-अत्रापीति ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् पुनः अन्वयव्यतिरेक के द्वारा असंभावना की निवृत्ति को **अत्रापि० इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाते है ।।२४।।

अवधूतं द्विजं कंचिच्चरन्तमकुतोभयम् । कविं निरीक्ष्य तरुणं यदुः प्रपच्छ धर्मवित् ॥२५॥

अन्वयः— धर्मवित् यदुः कंचित् द्विजं, अकुतोभयम् कविं तरुणं अवधूतं निरीक्ष्य पप्रच्छ ।।२५।।

अनुवाद— एक बार धर्मों के ज्ञाता राजा यदु ने एक त्रिकालदर्शी तरुण अवधूत ब्राह्मण जो निर्भय विचरण कर रहे थे उनको देखकर उनसे प्रश्न किया ।।२५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२५।।

यदुरुवाच

कुतो बुद्धिरियं ब्रह्मन्नकर्तुः सुविशारदा । यामासाद्य भवाँल्लोकं विद्वांश्चरति बालवत् ।।२६।।

अन्वयः ब्रह्मन् अकर्तुः तव इयं सुविशारदा बुद्धि कुतः याम् आसाद्य भवान् लोकं बालवत् चरति ।।२६।।

राजा यदु ने पूछा

अनुवाद हे ब्रह्मन् आप कर्म तो करते नही तो फिर आपको यह निपुण बुद्धि कहां से प्राप्त हुई है, जिसको प्राप्त करके आप परम विद्वान् भी होकर बालक के समान लोक (संसार) में विचरण किया करते है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

सुविशारदा अतिनिपुणा सर्वलोकविलक्षणा ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

सुविशारदा अर्थात् अत्यन्त निपुण जो संसार में पायी जाने वाली बुद्धियों से विलक्षण है ।।२६।।

प्रायो धर्मार्थकामेषु विवित्सायां च मानवाः । हेतुनैव समीहन्ते आयुषो यशसः श्रियः ।।२७।।

अन्वयः— प्रायः मानवाः आयुषः यशसः श्रियः हेतुनैव धर्मार्थकाममोक्षेषु विवित्सायां च समीहन्ते ।।२७।।

अनुवाद— संसार में देखा जाता है कि मनुष्य आयु, यश अथवा सौन्दर्य सम्पत्ति की अभिलाषा से हीं धर्म, काम और तत्त्वजिज्ञासा में प्रवृत्त होते हैं किसी की भी आकरण प्रवृत्ति नहीं देखी जाती है ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

सर्वलोकवैलक्षण्यमेवाह-प्राय इति । धर्मादिषु विवित्सायामात्मविचारे च मानवाः समीहन्ते प्रवर्तन्ते । तत्राप्यायुरादेर्हेतुना कामनयैव ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

प्रायः इत्यादि श्लोक से दत्तात्रेय की सर्वलोक विलक्षणता को ही कहा गया है । धर्मादि को जानने की इच्छा होने पर अथवा आत्मतत्त्व के विचार में ही मनुष्यों की प्रवृत्ति देखी जाती है । उसमें भी आयु आदि की कामना से हीं प्रवृत्ति देखी जाती है ।।२७।।

त्वं तु कल्पः कविर्दक्षः सुभगोऽमृतभाषणः । न कर्ता नेहसे किंचिज्जडोन्मत्तपिशाचवत् ।।२८।।

अन्वयः— त्वं तु कल्पः, कविः दक्ष, सुभगः अमृतभाषणः न कर्ता नेहसे किञ्चित् जडोन्मत्तपिशाचवत् ।।२८।।

अनुवाद— आप कर्म करने में पूर्ण रूप से समर्थ हैं, विद्वान् एवं निपुण हैं । आपका भाग्य और सौन्दर्य भी सराहनीय है । आपकी वार्णा से मानो अमृत टपकता है फिर भी आप, जड़ उन्मत्त और पिशाच के समान रहते हैं। आप न तो कुछ करते हैं और न कुछ चाहते हैं ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

त्वं तु न कस्यचित्कर्मणः कर्ता भवसि, न किंचिदीहसे इच्छसि । नन्वशक्त्याऽज्ञानेन वाऽनैपुण्येन वा विरूपत्वेन वाऽवाग्मितया वा औदासीन्यं घटत एवं, नेत्याह-कल्प इत्यादिना ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

आप किसी कर्म को नहीं करते है । आप कुछ चाहते भी नहीं हैं यदि कहें कि असमर्थता, अज्ञान निपुणता का अमाव कुरूपता अथवा अवाग्मिता के कारण इन सबों से उदासीन बने रहना पड़ता है तो ऐसी भी बात नहीं है आप सभी कर्मों को करने में समर्थ हैं ।।२८।।

जनेषु दह्यमनेषु कामलोभदवाग्निना । न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गङ्गाम्भस्थ इव द्विपः ॥२९॥

अन्वयः— कामलोभदवाग्निा दह्यमानेषु जनेषु अग्निना मुक्तः गङ्गाम्भस्थः द्विप इव न तप्यसे ॥२९॥

अनुवाद— संसार के अधिकांश लोग काम एवं लोभ के दावानल मे जल रहे हैं किन्तु आप तो इन सबों मे मुक्त प्रतीत होते हैं। जैसे कोई हाथी वन में आग लगने पर वन मे निकलकर गङ्गा जल में खड़ा हो जाय और उस बनाग्नि की आँच उस तक न पहुँच पाये उसी तरह काम एवं लोभ की दावाग्नि की आँच आप तक नहीं पहुच पाती है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

महानानन्दश्च तव कुत इति पृच्छति-जनेष्विति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

जनेषु इस श्लोक के द्वारा राजा पूछते हैं कि आपको यह आनन्द कैसे प्राप्त हुआ ॥२९॥

त्वं हि नः पृच्छतां ब्रह्मन्नात्मन्यानन्दकारणम् । ब्रूहि स्पर्शविहीनस्य भवतः केवलात्मनः ॥३०॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! स्पर्शविहीनस्य केवलात्मनः भवतः आत्मनि आनन्दकारणम् पृच्छतां नः हि त्वं ब्रूहि ॥३०॥

अनुवाद— ब्रह्मन् आप तो पत्नी पुत्र परिवार आदि के स्पर्श से रहित एवं केवल स्वरूप में ही स्थित हैं मैं आपसे यह पूछता हूँ कि आपको अपनी आत्मा में ही यह आनन्द कैसे अनुभव होता है। आप उसे हमें बतलाइये॥३०॥

भावार्थ दीपिका

स्पर्शविहीनस्य विषयभोगरहितस्य। अत्र हेतुः-केवलात्मनः कलत्रादिशून्यस्य ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

स्पर्शविहीनस्य अर्थात् विषयों के भोग से रहित। उसका कारण है कि आप पत्नी इत्यादि से रहित हैं ॥३०॥

श्रीभगवानुवाच

यदुनैवं महाभागो ब्रह्मण्येन सुमेधसा । पृष्टः सभाजितः प्राह प्रश्रयावनतं द्विजः ॥३१॥

अन्वयः— ब्रह्मण्येन सुमेधसा यदुना एवं पृष्टः सभाजितः महाभागः द्विजः प्रश्रयावनतं प्राह ॥३१॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा

अनुवाद— ब्राह्मणों के भक्त अत्यन्त बुद्धिमान महाराज यदु द्वारा सत्कारपूर्वक पूछे जाने पर महाभाग्यवान दत्तात्रेय ने अत्यन्त विनयावनत महाराज यदु से कहा ॥३१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३१॥

ब्राह्मण उवाच

सन्ति मे गुरवो राजन् बहवो बुद्ध्युपाश्रिताः । यतो बुद्धिमुपादाय मुक्तोऽटामीह तान् शृणु ॥३२॥

अन्वयः— राजन् मे बुद्ध्युपाश्रिता बहवः गुरवः सन्ति यतः बुद्धिम् उपादाय मुक्तः इह अटामि तान् शृणु ॥३२॥

ब्राह्मणों ने कहा

अनुवाद— राजन्, मेरे बहुत से बुद्धि सम्पन्न गुरु हैं। उन सबों से ही ज्ञान प्राप्त करके मैं जगत् में मुक्त भाव से विचरण करता हूँ। आप उन गुरुओं के नाम को सुनें ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

बुद्ध्यैवोपाश्रिताः स्वीकृता न तूपदेशेन । अटामि पर्यटामि ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

उन सबो से मैंने बुद्धि को ले लिया, उनके द्वारा किए गये उपदेश के द्वारा नहीं प्राप्त किया । अटामि अर्थात् विचरण करता हूँ ॥३२॥

पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः । कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतङ्गो मधुकृद्गजः ॥३३॥
मधुहा हरिणो मीनः पिङ्गला कुररोऽर्भकः । कुमारी शरकृत्सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत् ॥३४॥
एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः । शिक्षावृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः ॥३५॥

अन्वयः— पृथिवी, वायुः, आकाशम्, आपः (जलम्) अग्निः, चन्द्रमाः रविः, कपोतः, अजगरः, सिन्धुः, पतङ्गो, मधुकृत गजः, मधुहा, हरिणः, मीनः, पिङ्गला, कुररः अर्भकः कुमारी, शरकृत्, सर्पः ऊर्णनाभिः, सुपेशकृत् । राजन् एते चतुर्विंशतिः गुरवः आश्रिताः एतेषाम् शिक्षा वृत्तिभिः आत्मनः शिक्षाम् आत्मनः, अन्वाशिक्षम् ॥३३-३५॥

अनुवाद— मेरे गुरुओं के नाम हैं पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर अजगर, समुद्र, कीडा, मधमुक्खी, हाथी, शहद निकालने वाला, हरिण, मछली, पिङ्गला नाम की वेश्या, कुररपक्षी, बालक, कुमारी कन्या, बाण बनाने वाला, सर्प, मछली और भृङ्गी कीट । राजन् मैंने इन चौबीस गुरुओ का आश्रय लिया, इन्हीं के आचरण से इस लोक में अपने लिए शिक्षा ग्रहण की है ॥३३-३५॥

भावार्थ दीपिका

गुरूनाह-पृथिवीति । शोभनं रूपं कीटस्य करोतीति सुपेशकृत् । मे मयाश्रिताः । तदाह-एतेषां वृत्तिभिरात्मनः शिक्षाः शिक्षणीयानर्थान् हेयोपादेयादीनन्वशिक्षमनुशिक्षितवानस्मि ॥३३-३५॥

भाव प्रकाशिका

सुपेशस्कृत् भृङ्गी क्रीडा को मैंने गुरु बनाया । उसी को बतलाते हैं उसें ही बतलाते हैं । इन्हीं गुरुओ के व्यवहार से मैंने शिक्षा ग्रहण की है । उसी से मैंने त्याज्य एवं संग्राह्य की शिक्षा प्राप्त की है ॥३३-३५॥

यतो यदनुशिक्षामि यथा वा नाहुषात्मज । तत्तथा पुरुषव्याघ्र निबोध कथयामि ते ॥३६॥

अन्वयः— हे पुरुषव्याघ्र हे नहुषात्मज, यतः यत् यथा वा अनुशिक्षामि तत् तथा निबोध ते कथयामि ॥३६॥

अनुवाद— हे नहुषात्मज अर्थात् हे ययाति नन्दन हे पुरुष श्रेष्ठ ! मैंने जिससे जिस प्रकार जो कुछ भी सीखा है, उसे तुम जानो ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

नाहुषो ययातिः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

नाहुषः अर्थात् ययातिः ॥३६॥

भूतैराक्रम्यमाणोऽपि धीरो दैववशानुगैः । तद्विद्वान्न चलेन्मार्गादन्वशिक्षं क्षितेर्व्रतम् ॥३७॥

अन्वयः— भूतैराक्रम्यमाणः अपि धीरः दैववशानुगैः तद्वद् विद्वान् मार्गात् न चलेत् ॥३७॥

अनुवाद— जीवों के द्वारा सदैव आक्रान्त होते रहने पर भी धैर्य सम्पन्न पुरुष को चाहिए कि वह उसे प्रारब्धवशात होना समझकर अपने मार्ग से कभी विचलित नहीं हो यह मैंने पृथिवी से शिक्षा प्राप्त किया है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

क्षितेः क्षमां शिक्षितवानित्याह–भूतैरिति। आक्रम्यमाणः पीड्यमानः। तद्विद्वान्भूतानां दैववशवर्तित्वं विद्वान्। व्रतं नियमम्॥३७॥

भाव प्रकाशिका

उन्होंने कहा कि मैंने पृथ्वी से क्षमा की शिक्षा ली है । इस बात को भूतैः आदि श्लोक में कहा गया है । आक्रम्यमाणः अर्थात् पीड़ित होते हुए । **तद्वद् विद्वान् भूतानाम्** अर्थात् पृथिवी के समान विज्ञ पुरुष जाने कि सभी जीव दैवाधीन हैं व्रतम् अर्थात् नियम को ॥३७॥

शश्वत्परार्थसर्वेहः परार्थैकान्तसंभवः । साधुः शिक्षेत भूभृतो नगशिष्यः परात्मताम् ॥३८॥

अन्वयः— नगशिष्यः साधुः शश्वपरार्थसर्वेहः परार्थैकान्तसंभवः भूभृत्तः परात्मताम् शिक्षेत् ॥३८॥

अनुवाद— पृथिवी के ही विकार पर्वत और वृक्ष हैं । उनसे मैंने शिक्षा ग्रहण की है कि जैसे पर्वत एवं वृक्षो की सारी चेष्टाएँ परार्थ ही होती है । उनका जन्म ही दूसरों के लिए होता है । साधु पुरुष को चाहिए कि उनकी शिष्यता स्वीकार करके परोपकार की शिक्षा ग्रहण करे ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

पर्वतरूपा वृक्षरूपा च या पृथिवी तस्याः शिक्षितमाह–शश्वदिति । सर्वदा परार्थाः परोपकारार्थाः सर्वा ईहा यस्य सः। परार्थ एव एकान्ततः संभवो यस्य सः । भूभृतः पर्वतात् । तस्य हि वृक्षतृणनिर्झरप्रसवक्रियाः परार्था एव यथा तद्वत् । तथा नगशिष्यो वृक्षशिष्यः सन्परात्मतां पराधीनात्मताम् । वृक्षो यथा परैरवखण्ड्योत्पाट्य वा नयनमप्यनुमन्यते तद्वत् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी के ही विकार पर्वत और वृक्ष हैं । उनसे प्राप्त हुई शिक्षा का वर्णन करते हुए उन्होंने **शश्वत इत्यादि** श्लोक कहा । पर्वत की होने वाली सारी चेष्टाएँ परार्थ होती हैं । वृक्षों एवं पर्वतों का जन्म ही परोपकारार्थ होता है । पर्वत के वृक्ष तृण तथा निर्झर की होने वाली प्रसव क्रिया परोपकारार्थ ही होती है । अतएव पर्वतों एवं वृक्षों के शिष्य को भी पराधीनता की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए । वृक्षों के ही समान वृक्ष जैसे काटने उखाड़ने पर काटने वाले का विरोध नहीं करता है, उसी तरह वृक्ष के शिष्य की यदि कोई आँख भी निकाल ले तो उसे नहीं बोलना चाहिए ॥३८॥

प्राणवृत्त्यैव संतुष्येन्मुनिर्नैवेन्द्रियप्रियैः । ज्ञानं यथा न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः ॥३९॥

अन्वयः— मुनिः प्राणवृत्यैव संतुष्येत् इन्द्रियाप्रियैः नैव, यथा ज्ञानं न नश्येत नावकीर्येत वाङ्मनः ॥३९॥

अनुवाद— शरीर के भीतर रहने वाली वायु प्राण वायु से शिक्षा प्राप्त की है कि जैसे प्राण आहार मात्र की इच्छा रखता है और आहार की ही प्राप्ति से वह सन्तुष्ट हो जाता है । उसी तरह साधक को भी चाहिए कि वह उतने से ही सन्तुष्ट रहे जितने से उसका निर्वाह हो जाय । इन्द्रियों को तृप्त करने के लिए बहुत से विषयों को नहीं चाहे। कहने का अभिप्राय है कि उतने ही विषयों का उपयोग करे जिससे बुद्धि विकृत न हो जाय, मन चञ्चल न हो और वाणी व्यर्थ की बातों में न लगे ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

वायुरपि द्विविधः,-प्राणो बाह्यश्च । तत्र प्राणस्य गुरुत्वमाह-प्राणवृत्त्येति । प्राणो ह्याहारादिमात्रेण प्रवर्तते, रूपरसादीनिन्द्रियविषयांस्तु नापेक्षते तथा मुनिरपि भवेदित्यर्थः । प्राणवृत्तेरकरणे मनोवैकल्येन ज्ञाननाशः स्यादतो देहनिवार्हः कर्तव्यः । गुणलिप्सायां तु वाङ्मनश्च विक्षिप्येत, अतो नाधिकं लिप्सेदित्याह-ज्ञानमिति । नावकीर्येत न विक्षिप्येत ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

वायु भी दो प्रकार की होती है, प्राण वायु तथा बाह्य वायु । प्राण के गुरुत्व का प्रतिपादन करते हुए **प्राणवृत्त्यैव० इत्यादि** श्लोक कहा गया है । प्राण आहारमात्र को ही पाकर अपना काम करता रहता है । वह रूप रस इत्यादि इन्द्रिय के विषय को नही चाहता है । उसी के समान मुनि को भी होना चाहिए । आहार मात्र का ग्रहण करने में मन विकल हो जायेगा ज्ञान का नाश हो जायेगा, अतएव देह का निर्वाह करना चाहिए श्रेष्ठ मधुर आहार की प्राप्ति की इच्छा होने पर तो वाणी और मन विक्षिप्त हो जायेगे । अतएव आहार से अधिक न चाहे । भोजन ऐसा होना चाहिए जिसमें कि वह अवकीर्ण न कर और विक्षिप्त न हो ।।३९।।

विषयेष्वाविशन्योगी नानाधर्मेषु सर्वतः । गुणदोषव्यपेतात्मा न विषज्जेत वायुवत् ।।४०।।

अन्वयः— योगी विषयेषुआविशन्, नानाधर्मेषु सर्वतः गुण दोषव्यपेतात्मा वायुवत् न विषज्जेत् ।।४०।।

अनुवाद— शरीर के बाहर रहने वाली वायु से मैंने सीखा है कि जैसे वायु अनेक स्थानो में जाती है किन्तु वह कहीं भी आसक्त नहीं होती है । वह किसी के भी गुण या दोष को नहीं अपनाती है उसी तरह साधक भी आवश्कतावशात् विभिन्न धर्मो स्वभाव वाले विषयों में जाय परन्तु अपने लक्ष्य पर स्थिर रहे । किसी के गुण या दोष को न अपनाएँ । वह किसी से आसक्ति या द्वेष न कर ले ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

विषयान्सेवमानोऽपि तेष्वनासक्तिं बाह्याद्वायोः शिक्षेदित्याह-विषयेष्विति । नानाधर्मेषु शीतोष्णादिधर्मकेषु । न हि वायुर्वने दहने वा सज्जते तद्वत् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

विषयों का सेवन करने वाला उन विषयों में अनासक्ति वाह्य वायु से सीखना चाहिए । नाना धर्मेषु अर्थात् शीत एवं उष्ण आदि धर्मो में वायु वन अथवा अग्नि में आसक्त नहीं होती है ।।४०।।

पार्थिवेष्विह देहेषु प्रविष्टस्तद्गुणाश्रयः । गुणैर्न युज्यते योगी गन्धैर्वायुरिवात्मदृक् ।।४१।।

अन्वयः— इह पार्थिवेषु देहेषु तद्‌गुणाश्रय प्रविष्टः आत्मदृक् योगी गन्धैः वायुः इव गुणैः न युज्यते ।।४१।।

अनुवाद— गन्ध वायु का गुण नहीं है, वह पृथिवी का गुण किन्तु वायु को उसका वहन करना पड़ता है । गन्ध का वहन करने पर वायु शुद्ध रहती है गन्ध से उसका संपर्क नहीं होता है । इसी तरह साधक का जब पार्थिव शरीर से सम्बन्ध होता है तब तक उसको शरीर की व्याधि, पीड़ा और भूख आदि को सहना पड़ता है अपने को आत्मा के रूप में देखने वाला साधक शरीर और उसके गुणों का आश्रय होने पर भी उनसे सर्वथा निर्लिप्त रहता है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

यथा वायुर्गन्धादिधर्मयोगेन प्रतीयमानोऽपि वस्तुतो न तद्योगी, एवं देहादिधर्मयोगेनाहं प्रत्ययेन प्रतीयमानोऽप्यात्मा न तद्धर्मवानिति संभावितमिति वायोरेव शिक्षितमित्याह-पार्थिवेष्विति । तद्गुणाश्रयो देहधर्मान्वाल्यादीनाश्रित्य वर्तमानो गुणैस्तैरव।।४१।।

भाव प्रकाशिका

जिस तरह वायु गन्ध आदि धर्मों का संबन्ध होने पर गन्धवान् के समान प्रतीत होती है, किन्तु वस्तुतः गन्ध आदि वायु के धर्म नहीं हैं । इसी तरह देह आदि के धर्मों का संबन्ध होने से मैं इस रूप से प्रतीत होने वाला आत्मा शरीर के रोग, व्याधि, भूख आदि धर्मों वाला नहीं संभावित है, इस तरह वायु की शिक्षा इस बात को **पार्थिवेषु० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । देह के धर्मो बाल्य आदि का आश्रय होने पर भी वह शरीर के गुणों से कभी लिप्त नहीं होता है ।।४१।।

अन्तर्हितश्च स्थिरजङ्गमेषु ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन ।
व्याप्त्याऽव्यवच्छेदमसङ्गमात्मनो मुनिर्नभस्त्वं विततस्य भावयेत् ।।४२।।

अन्वयः– स्थिर जङ्गमेषु अन्तर्हितश्चापि ब्रह्मात्मभावेन समन्वयेन मुनिः व्याप्त्या अव्यवच्छेदेन आत्मनः असङ्गम् नभस्त्वं भावयेत् ।।४२।।

अनुवाद– जिस तरह आकाश जड़ जङ्गम सभी पदार्थों में प्रविष्ट है, वह यद्यपि उपाधियों के भेद से अनेक प्रतीत होता है किन्तु आकाश एक ही है अनेक नही, उसी तरह आत्मा एक है और सभी वस्तुओं में व्यापक है। ऐसा होने पर भी आत्मा उसी तरह जड़ जङ्गम सभी पदार्थों से अनासक्त है जिस तरह आकाश घट पटादि किसी में परिच्छिन्न न होकर अपरिच्छिन्न है । आत्मा यद्यपि आकाश से भी महान है फिर भी उसकी समता किसी तरह आकाश से की जा सकती है । अतएव साधक को आत्मा की भावना आकाश के समान करनी चाहिए ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

आकाशाच्छिक्षितं संभावनाद्वयमाह–अन्तर्हितश्चेति द्वयेन । अन्तर्हितश्च देहान्तर्गतोऽपि मुनिरात्मनो देहाद्यसङ्गमत एवाव्येवच्छेदं च भावयेत् । कुतः । स्थिरजङ्गमेषु समन्वयेन या व्याप्तिस्तया । किं मणिषु सूत्रस्येव व्याप्तिः, न, विततस्य सर्वगतस्य । तत्कुतः । ब्रह्मात्मभावेन ब्रह्मस्वरूप भावनया । 'तत्त्वमसि' इति श्रुतेः । नन्वेतत्सर्वं कथं संभवति तत्राह–नभस्त्वं तत्तुल्यत्वं भावयेत् । यथा नभसः सर्वगतस्य न घटादिभिः सङ्गः परिच्छेदो वा एवमात्मनोऽपि संभवतीति ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

आकाश के द्वारा शिक्षित दो संभावनाओं (आत्मा एक एवं अद्वितीय है । वह सभी भूतों के भीतर और बाहर दोनों तरह से व्याप्त होने के साथ-साथ असङ्ग भी है ।) को अन्तर्हितश्च इत्यादि श्लोक से कहा गया है। आत्मा शरीर के भीतर होकर भी देहादि से अनासक्त है, इस तरह से साधक को भावना करनी चाहिए । अतएव आत्मा की अव्यवच्छिन्न (असीमित) रूप से ही भावना करनी चाहिए । क्योंकि आत्मा ब्रह्म स्वरूप है । इस तरह से भावना करनी चाहिए । श्रुति भी कहती है **तत्त्वमसि** अर्थात् तुम वही (ब्रह्महीं) हो । प्रश्न होता है कि यह सब कुछ कैसे सम्भव है इस पर **नभस्त्वं इत्यादि** कहते है । अर्थात् साधक आत्मा को आकाश के समान भावना करे । जिस तरह सर्व व्यापक आकाश का घट आदि से सङ्ग नहीं होता है । इसी तरह आत्मा भी शरीर आदि से परिच्छिन्न नहीं है ।।४२।।

तेजोऽबन्नमयैर्भावैर्मेघाद्यैर्वायुनेरितैः । न स्पृश्यते नभस्तद्वत्कालसृष्टैर्गुणैः पुमान् ।।४३।।

अन्वयः— तेजोऽबन्नमयैः भावै मेघाद्यैः वायुनाईरितैः नभः न स्पृश्यते तद्वत् कालसृष्टैः गुणैः पुमान् न स्पृश्यते इत्यर्थः।।४३।।

अनुवाद— जैसे आग लगती है, पानी बरसता है, अन्न आदि पैदा होते हैं और नष्ट होते हैं वायु की प्रेरणा से मेघ आते और चले जाते हैं । किन्तु यह सब कुछ होने पर भी आकाश उन सबों से अछूता रह जाता है । आकाश की दृष्टि से यह सबकुछ है नहीं । इसी तरह भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान के चक्र में न जाने कितने नामों और रूपों की सृष्टि और प्रलय भी हुए किन्तु आत्मा के साथ उनका कोई भी संस्पर्श नहीं है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

किंच कूटस्थस्यात्मनो नागमापायिदेहादिसंबन्ध इत्याह–तेजोऽबन्नमयैः तेजश्च आपश्चान्नं पृथिवी च तन्मयैः कालसृष्टैर्गुणैर्देहादिभिः पुमान्न स्पृश्यत इति नभोवत्संभवतीति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

आत्मा कूटस्थ है, उसमें कोई भी विकार नहीं होता । उस आत्मा का शरीर में होने वाले बालात्व युवत्व आदि

आगमापायी धर्मों से उसी तरह कोई संस्पर्श नही होता है, जिस तरह आग के लगने पर पानी गरमता [illegible] उसमें अन्न तथा पृथिवी इत्यादि से समयानुसार सृष्ट देह आदि से आत्मा का उसी तरह स्पर्श नही होता है जिस तरह वायु से प्रेरित मेघ से आकाश का संस्पर्श नही होता है । जिस तरह आकाश व्यापक है । उसी तरह आत्मा भी व्यापक है ।।४३।।

स्वच्छः प्रकृततः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम् । मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः ।।४४।।

अन्वयः— **स्वच्छः** प्रकृततः स्निग्धः माधुर्यः नृणां तीर्थभूः अपाम् मित्रम् मुनिः ईक्षोपस्पर्शकीर्तनैः पुनाति ।।४४।।

अनुवाद— जिस तरह जल स्वच्छ, स्वभावतः चिकना, मधुर और पवित्र करने वाला होता है तथा गङ्गा आदि तीर्थों का नामोच्चारण से लोग पवित्र होते हैं । उसी तरह से जल से शिक्षा ग्रहण करने वाला साधक भी स्वभावतः शुद्ध, स्निग्ध मधुर भाषी और लोक पावन होता है । जल से शिक्षा ग्रहण करने वाले साधक अपने दर्शन, स्पर्श तथा नामोच्चारण से लोगों को पवित्र बना देते हैं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

स्वच्छत्वादिभिर्गुणैरुदकं जगत्पुनातीति तद्गुणा मया शिक्षिता इत्याह-स्वच्छो निर्मलः प्रकृततः स्वभावतः । स्निग्धो जनेष्वनुरागवान् । माधुर्यो मधुरालापी । तीर्थभूस्तीर्थस्थानम् । अपां मित्रमुदकतुल्यः । अघादिति पाठे सखायं पापात्पुनाति। स्वच्छत्वादिगुणैरर्थादुदकसादृश्यं ज्ञातव्यम् ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

जल जिस तरह अपने स्वच्छत्वादि गुणों से जगत् को पवित्र बना देता है, इसलिए मैंने जल से स्वच्छत्वादि गुणों को ग्रहण किया इस बात को स्वच्छः इत्यादि श्लोक से कहा गया है । स्वच्छः स्वभावतः निर्मल स्निग्ध अर्थात् लोगों से प्रेम करने वाला, माधुर्यः अर्थात् मधुर बोलने वाला, तीर्थभूः पवित्र स्थान वाला साधक जल के ही समान दर्शन, स्पर्श और भाषण से लोगों को पवित्र बना देता है ।।४४।।

तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः । सर्वभक्षोऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत् ।।४५।।

अन्वयः— तेजस्वी तपसा दीप्तः दुर्धर्षः उदरभाजः सर्वभक्षः अपि युक्तात्मा अग्निवत् मलम् न आदत्ते ।।४५।।

अनुवाद— राजन् मैंने अग्नि से यह शिक्षा ग्रहण की है । जैसे अग्नि तेजस्वी है । उसी तरह से अपनी तपस्या से देदीप्यमान और तेजस्वी साधक अपनी इन्द्रियों से अनभिभूत होता है । उसके पास खाने के लिए पेट के सिवा दूसरा कोई पात्र भी नहीं रहता है । इस प्रकार का साधक सबकुछ खाकर भी अग्नि के तरह दोष से संपृक्त नहीं होता है।।४५।।

भावार्थ दीपिका

अग्रेः शिक्षितमाह-तेजस्वीति । ज्ञानातिशयात् । विशेषतस्तपसा दीप्ताः । दुर्धर्षोऽक्षोभ्यः स चासावुदरभाजनश्चापरिग्रहः। युक्तात्मा मुनिः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

तेजस्वी इत्यादि के द्वारा अग्नि से प्राप्त शिक्षा का वर्णन किया गया है । अत्यधिक ज्ञान सम्पन्न होने के कारण तेजस्वी तथा तपस्या के कारण विशेष रूप से दीप्ति सम्पन्न तथा अक्षोभ्य, सभी प्रकार के परिग्रहों से रहित इस प्रकार का मनन शील साधक सबकुछ खा लेने के बाद भी अन्न के दोष से दूषित नहीं होता है ।।४५।।

क्वचिच्छन्नः क्वचित्स्पष्ट उपास्यः श्रेय इच्छताम् । भुङ्क्ते सर्वत्र दातृणां दहन्प्रागुत्तराशुभम् ।।४६।।

अन्वयः— **क्वचिच्छन्नः, क्वचित्स्पष्टः श्रेयः इच्छताम् उपायः दातृणाम् प्रागुत्तराशुभम् भुंक्ते ।।४६।।**

अनुवाद— अग्नि से ही प्राप्त दूसरी शिक्षा के [illegible] प्रकट होता है, उसी तरह साधक को भी कहीं अप्रकट तथा कहीं प्र[illegible] अग्नि लकड़ी आदि में अप्रकट और कहीं उसकी उपासना कर सके । इस प्रकार का साधक भोजन [illegible] जिससे कल्याण कामी पुरुष भोजन करता है ।।४६।। [illegible] के पूर्वोत्तर [illegible] का भस्म करते हुए

भावार्थ दीपिका

अग्नेरेव शिक्षान्तरमाह- क्वचिदिति । यथाग्निः परेच्छयैव हविर्गृह्णाति तथा मुनिरित्याह- दातृणामिति । प्रागुत्तराशुभं भूतं भविष्यच्च पापम् ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

अग्नि से ही प्राप्त होने वाले दूसरी शिक्षाओं का वर्णन **क्वचित् इत्यादि** श्लोक मे करते हैं जैसे अग्नि परोक्ष ही रहकर हविष्य का ग्रहण करता है । उसी तरह मननशील साधक कभी दाताओं के द्वारा प्रदत्त अन्न का भोजन, प्रदाता के पूर्वाघ और उत्तराघ का विनाश कर देता है ।।४६।।

स्वमायया सृष्टमिदं सदसल्लक्षणं विभुः । प्रविष्ट ईयते तत्तत्सरूपोऽग्निरिवैधसि ।।४७।।

अन्वयः— अग्निः एधसि इव स्वमायया सृष्टम् इदं सदसत् लक्षणं विभुः तत्-तत् स्वरूपः प्रविष्टः ईयते ।।४७।।

अनुवाद— साधक पुरुष को इसका विचार करना चाहिए कि जिस तरह अग्निलम्बी चौड़ी टेढ़ी सीधी लकड़ियों मे रहकर लकड़ियों के ही समान लम्बी चौड़ी दिखती है किन्तु वस्तुतः वह वैसी नही है, उसी तरह सव्यापक आत्मा भी अपनी माया संचित कार्यकारण रूप जगत् में व्याप्त होने के कारण उन वस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं होने पर भी उनके रूप में प्रतीत होने लगता है ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनो देहोपाधिकमेवोच्चनीचत्वादि न स्वाभाविकमित्यप्यग्निदृष्टान्तेन संभावितमित्याह-स्वमायया स्वाविद्यया सृष्टं सदसल्लक्षणं देवतिर्यगादिरूपं विप्रशूद्रादिरूपं वा ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

देहरूपी उपाधि के ही कारण आत्मा उच्च नीच कहा जाता है आत्मा का उच्च नीच भाव स्वाभाविक नही है, इस बात को अग्नि के दृष्टान्त के सम्भावित स्वमायया इत्यादि श्लोक से कहा गया है । स्वमायया अर्थात् अपनी अविद्या से सृष्ट चेतना चेतन रूप देवतिर्यक् आदि रूप अथवा विप्रशूद्रादि रूप से संभावित है ।।४७।।

विसर्गाद्याः श्मशानान्ता भावा देहस्य नात्मनः । कलानामिव चन्द्रस्य कालेनाव्यक्तवर्त्मना ।।४८।।

अन्वयः— अव्यक्तवर्त्मनः चन्द्रस्य कलानामिव विसर्गाद्याः श्मशानान्ताः भावाः देहस्य आत्मनः न ।।४८।।

अनुवाद— मैने चन्द्रमा से यह शिक्षा ली है कि जिसकी गति का पता नहीं चलता है उस काल के प्रभाव से चन्द्रमा की कलाएँ घटती-बढ़ती रहती है, किन्तु चन्द्रमा तो चन्द्रमा है, वह न तो घटता है न बढ़ता है वैसे ही जन्म से लेकर मृत्यु तक होने वाली सारी अवस्थाएँ शरीर है, आत्मा का उन सबों से कोई संबन्ध नहीं है।।४८।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनो जन्मादिषड्विकाराभावश्चन्द्रदृष्टान्तेन संभावित इत्याह-विसर्गाद्या इति । विसर्गो जन्म । श्मशानं नाश; । तत्रेयं ज्योतिःशास्त्रप्रक्रिया । आप्यमण्डलं चन्द्रस्तेजोमयं मण्डलमादित्यः, तयोरेकनक्षत्रावस्थाने चन्द्रो न दृश्यते, चक्षुष आदित्यमण्डलेन समदेशस्थितेन व्यवधानात्, सा अमावास्या । अथ षष्टिघटिकाभिश्चन्द्रो नक्षत्रान्तरं गच्छति । आदित्यस्तु त्रयोदशभिरहोरात्रैः। अतः

प्रतिपदमारभ्य विषमस्थितस्यादित्यमण्डलस्य पञ्चदशः पञ्चदशो भाग आप्यमण्डले प्रतिबिम्बितो दृश्यते, सा कलेत्युच्यते। एवं पञ्चदशोऽहिन त्रयोदशभिर्नक्षत्रैरन्तरमिति राशिचक्रस्य सप्तविंशतिनक्षत्रात्मकस्य मध्ये संमुखो चन्द्रादित्यौ तिष्ठतः, तदा संपूर्णं प्रतिबिम्ब भूच्छायालाञ्छितं दृश्यते, सा पौर्णिमा । तस्याममावास्याप्रतिबिम्बेन सह षोडशकलश्चन्द्र उपचर्यते । ततः पुनः प्रतिपदमारभ्य मण्डलयोर्विषमीभावात्कलाह्रासः । तत्र यथा कलानामेवोत्पत्त्यादयो नाप्यमण्डलस्य तथात्मनोऽपीत्याह-कलानामिवेति।।४८।।

भाव प्रकाशिका

आत्मा के षड्भावविकारका अभाव चन्द्रमा के दृष्टान्त के साथ है इस बात को विसर्गाद्याः इत्यादि श्लोक में कहा गया है । विसर्ग अर्थात् जन्म श्मशान अर्थात् नाश । ज्योतिष शास्त्र की प्रक्रिया यह है कि जलमय मण्डल वाले चन्द्रमा है और तेजोमय मण्डल वाले सूर्य हैं । दोनों के एक नक्षत्र की समाप्ति होने पर चन्द्रमा नहीं दिखाई देते हैं। क्योंकि उस समय चक्षुरिन्द्रिय आदित्य मण्डल के समान देश में स्थित होने के कारण व्यवधान हो जाता है उसी दिन को अमावास्या कहते हैं । साठ घड़ियों के पश्चात् चन्द्रमा दूसरे नक्षत्र पर जाते है । सूर्य तो तेरह दिन रातो के बीत जाने पर दूसरे नक्षत्र पर जाते हैं । अतएव प्रतिपत् तिथि से आरम्भ करके विषमस्थित आदित्य मण्डल के १५-१५ भाग जल में प्रतिविम्बित होने के कारण प्रतिबिम्बित दिखता है । इसी तरह पन्द्रहवे दिन तेरह नक्षत्रों का अन्तर होता है । इसी सत्ताइस नक्षत्रात्मक राशि चक्र के बीच में सामने चन्द्रमा और आदित्य रहते हैं । उस समय पृथिवी की छाया से लाञ्छित सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब दिखायी देता है । उसी को पूर्णिमा कहते हैं । उस पूर्णिमा में आमावास्या के प्रतिबिम्ब से चन्द्रमा की सोलह कलाओं का उपचार होता है। उसके पश्चात् फिर प्रतिपत् तिथि से लेकर दोनो (चन्द्र और सूर्य) मण्डलों के विषम भाव के कारण कला का ह्रास होता है । उस समय कलाओं की उत्पत्ति आदि होते हैं जलीय मण्डल आदि का नहीं । उसी तरह आत्मा के युवत्व आदि भी कलाओं के समान शरीर में ही होते हैं आत्मा में नहीं ।।४८।।

कालेन ह्योघवेगेन भूतानां प्रभवाप्ययौ । नित्यावपि न दृश्येते आत्मनोऽग्नेर्यथार्चिषाम् ।।४९।।

अन्वयः— अग्नेः अर्चिषम् यथा ओघवेगेन कालेन नित्यौ अपि आत्मनः प्रभवाप्ययौ न दृश्येते ।।४९।।

अनुवाद— जिस तरह आग की लपट क्षण-क्षण में उत्पन्न और नष्ट होती है उसका वह क्रम निरन्तर चला रहता है किन्तु दीख नहीं पड़ता हैं वैसे ही जल प्रवाह के समान वेगवान् काल के द्वारा प्रत्येक क्षण में प्राणियों के शरीर की उत्पत्ति और नाश होते रहते हैं किन्तु अज्ञानवशात् वह दिखाई नही पड़ता है ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

सिंहावलोकनेनाग्निदृष्टान्तेनैव देहानां क्षणभङ्गुरतया वैराग्यं शिक्षितमित्याह-कालेनेति । ओघवद्वेगो यस्य तेन । आत्मनः संबन्धिनां भूतानां देहानामित्यर्थः । अर्चिषां ज्वालानाम् ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

सिंहावलोकन न्याय से अग्नि के दृष्टान्त से ही शरीर के क्षणभङ्गुर होने से **कालेन॰ इत्यादि** श्लोक के द्वारा वैराग्य की शिक्षा देते हैं । **ओघवद्वेगन** अर्थात् जल प्रवाह के समान वेग । आत्मा से सम्बन्ध रखने वाले शरीर की क्षणभङ्गुरता बतलाते हैं । अर्चिषाम् अर्थात ज्वालाओं की ।।४९।।

गुणैर्गुणानुपादत्ते यथाकालं विमुञ्चति । न तेषु युज्यते योगी गोभिर्गा इव गोपतिः ।।५०।।

अन्वयः— गोपति गाः इव गुणैः गुणान् उपादते यथा कालं विमुञ्चति योगी तेषु न युज्यते ।।५०।।

अनुवाद— जिस तरह सूर्य अपनी किरणों से पृथिवी का जल खींचते है और समय आने पर उसकी वर्षा कर देते हैं वैसे ही योगी पुरुष अपनी इन्द्रियों के द्वारा विषयों का ग्रहण करता है और समय आने पर उनका त्याग भी कर देता है । किसी भी समय उसे इन्द्रियों के विषयों से आसक्ति नहीं होती है ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

आदित्याच्छिक्षितमाह–द्वयेन गुणैरिति । गुणैरिन्द्रियैर्गुणान्विषयानुपादत्ते यथाकालमर्थिन्यागते सति विमुञ्चति च, न तेषु युज्यते लब्धमिति दत्तमिति वाऽभिनिवेशं न करोति । गोभी रश्मिभिर्गाः जलानि गोपतिः सूर्यो यथा ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

सूर्य से प्राप्त हुई शिक्षा को **गुणैः इत्यादि** दो श्लोको से बतलाते है योगी अपनी इन्द्रियों द्वारा विषयों का ग्रहण करके समयानुसार उन विषयो के अर्थी के आने पर उन विषयों को प्रदान कर देता है उसका उसमें अभिनिवेश नहीं होता है यह नही सोचता है कि मैंने प्राप्त किया और उसे दान भी कर दिया यह उसी तरह होता है जिस तरह सूर्य अपनी किरणो से जल को खीचते हैं और बरसात के दिनो में बरसा कर देते हैं ।।५०।।

बुध्यते स्वे न भेदेन व्यक्तिस्थ इव तद्गतः । लक्ष्यते स्थूलमतिभिरात्मा चावस्थितोऽर्कवत् ।।५१।।

अन्वयः— स्थूलमतिभिः आत्मा अर्कवत् स्थितः लक्ष्यते स्वे भेदेन न व्यक्तिस्थः तद्गत इव बुध्यते ।।५१।।

अनुवाद— जिस तरह मोटी बुद्धि वाला व्यक्ति भिन्न-भिन्न जलपात्रों में भिन्न-भिन्न सूर्य को समझता है किन्तु सूर्य जैसे एक है, उसी तरह से आत्मा स्वरूपतः एक है और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग प्रतीत होती है । आत्मा की भिन्नता की प्रतीति का कारण शरीर रूपी उपाधियों की भिन्नता के कारण होती है जिस तरह जलपात्र की भिन्नता के कारण सूर्य अनेक प्रतीत होता है ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

स्वतो भेदशून्यस्याप्यात्मनो भेदप्रतीतिरुपाधिवशादित्यादित्यदृष्टान्तेनैव संभावितमित्याह-बुध्यत इति । स्वे स्वस्वरूपेऽवस्थित आत्मा भेदेन न बुध्यते । अभिव्यनक्तीति व्यक्तिरूपाधिः । व्यक्तिस्थ उपाधौ प्रतिबिम्बितस्तु तद्गत इव उपाधिप्रविष्ट इव भेदेने स्थूलमतिभिर्लक्ष्यते । अर्कवदित्यन्वयः ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

भेदशून्य आत्मा की भी भिन्नता की प्रतीति देहादि रूप उपाधि के कारण होती है यह सूर्य के दृष्टान्त से संभावित है इस बात को **बुध्यते० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । स्वे अर्थात् अपने स्वरूप में स्थित आत्मा में भेद नहीं है । किन्तु व्यक्ति की भिन्नता के कारण प्रतीत होती है । व्यक्तियों में विद्यमान उपाधि में प्रतिबिम्बित आत्मा उस उपाधि में प्रविष्ट के समान स्थूल बुद्धि वालों को प्रतीत होता है । भिन्न-भिन्न पात्रों प्रतिबिम्बित सूर्य के समान ।।५१।।

नातिस्नेहः प्रसङ्गो वा कर्तव्यः क्वापि केनचित् । कुर्वन्विन्देत संतापं कपोत इव दीनधीः ।।५२।।

अन्वयः— क्वापि अति स्नेहः प्रसङ्गो वा केनचित न कर्तव्यः कुर्वन् दीनधीः कपोत इव सन्तापं विन्देत ।।५२।।

अनुवाद— कहीं पर किसी के साथ बहुत अधिक स्नेह नहीं करना चाहिए जब वह याद करता है तो उसकी बुद्धि अपना स्वातन्त्र्य खोकर दीन बने हुए कबूतर के समान वह संताप को प्राप्त करता है ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

कपोताच्छिक्षितमाह–नातिस्नेह इति । स्नेहः प्रीतिः । प्रसङ्गः उपलालनाद्यासक्तिः ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

कबूतर से प्राप्त शिक्षा को उन्होंने **नाति स्नेह० इत्यादि** श्लोक से कहा । स्नेहः अर्थात् प्रेम प्रसङ्गः अर्थात् उपलालन आदि आसक्ति ।।५२।।

कपोतः कश्चनारण्ये कृतनीडो वनस्पतौ । कपोत्या भार्यया सार्धमुवास कतिचित्समाः ॥५३॥

अन्वयः अरण्ये वनस्पतौ कृतनीडः कश्चन कपोतः भार्यया कपोत्या सार्धम् कतिचित्समाः उवास ॥५३॥

अनुवाद वन मे एक वृक्ष पर अपना घोसला बनाकर रहने वाला एक कबूतर अपनी पत्नी कबूतरी के साथ कुछ वर्षों तक निवास किया ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

दृष्टान्तं पपञ्चयति-कपोतः कश्चनेति ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

दृष्टान्त का विस्तार से वर्णन कपोतः कश्चन० इत्यादि श्लोक से करते हैं ॥५३॥

कपोतौ स्नेहगुणितहृदयौ गृहधर्मिणौ । दृष्टिं दृष्ट्याङ्गमङ्गेन बुद्धिं बुद्ध्या बबन्धतुः ॥५४॥

अन्वयः— गृहधर्मिणौ कपोतौ । स्नेहगुणितहृदयौ दृष्ट्या दृष्टिम् अङ्गेन अङ्गम् बुद्धया बुद्धिं बबन्धतुः ॥५४॥

अनुवाद— गृहस्थधर्मी उन दोनों कबूत्तर के जोड़ों के हृदय में एक दूसरे के प्रति प्रेम निरन्तर बढ़ता रहता था । वे दोनो दृष्टि से दृष्टि अङ्गों से अङ्ग तथा बुद्धि परस्पर एक दूसरे के साथ मिला रखे थे ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

तयोर्मिथः स्नेहप्रसङ्गौ दर्शयति-कपोताविति त्रयेण । स्नेहेन गुणितं बद्धं हृदयं ययोस्तौ ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

कपोतौ इत्यादि तीन श्लोकों से उन दोनों के स्नेह की पूर्ण आसक्ति को बतलाते हैं दोनों के हृदय स्नेहातिरक के कारण परस्पर में एक दूसरे से बँधे हुए थे ॥५४॥

शय्यासनाटनस्थानवार्ताक्रीडाशनादिकम् । मिथुनीभूय विस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ॥५५॥

अन्वयः— मिथुनीभूय विस्रब्धौ शयासनाटनस्थानवार्ताकीडाशनादिकम् वनराजिषु चेरतुः ॥५५॥

अनुवाद— एक-दूसरे के जोड़ी बनाकर उन दोनों का एक दूसरे पर इतना विश्वास हो गया था कि वे दोनों साथ-साथ ही सोते-बैठते घूमते-फिरते, ठहरते, बातचित करते खेलते और खाते-पिते थे और उस वनावली में विचरण करते थे॥५५॥

भावार्थ दीपिका

विस्रब्धौ निःशङ्कौ ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

विस्रब्धौ अर्थात् बिना किसी शङ्का के ॥५५॥

यं यं वाञ्छती सा राजंस्तर्पयन्त्यनुकम्पिता । तं तं समनयत्कामं कृच्छ्रेणाप्यजितेन्द्रियः ॥५६॥

अन्वयः— राजन् सा यं यं वाञ्छति तं तं कामं अजितेन्द्रियः कृच्छ्रेणापि समतनयत् अनुकम्पिता तर्पयन्ती ॥५६॥

अनुवाद— राजन् वह कबूतरी जो-जो चाहती थी कामुक कबूत्तर उसको कष्ट उठाकर भी उसको पूरा करता था । और कबूतरी भी उस कबुत्तर की इच्छा पूर्ण करती थी ॥५६॥

भावार्थ दीपिका

सा कपोती तर्पयन्ती सहासवीक्षितालापादिभिः प्रीणयन्त्यत एव तेनानुकम्पिता सती यं यं वाञ्छति तं तं कामं समनयत्संपादयामास। राजन्निति त्वं यथेति सूचितम् ॥५६॥

भाव प्रकाशिका

वह कबूतरी हँसकर उसको देखती, बात करती इत्यादि उस तरह से वह कबूतर को प्रसन्न करती थी। उस कामुक कबूतर के द्वारा अनुमोदित वह कबूतरी जो जो चाहती थी उसकी सारी इच्छाओं को वह पूरा करता था राजन् इस संबोधन के द्वारा यह सूच्य है कि तेरा नृप ॥५६॥

कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णती काल आगते । अण्डानि सुषुवे नीडे स्वपत्युः संनिधौ सती ॥५७॥

अन्वयः काले आगते कपोती प्रथमं गर्भं गृह्णती स्वपत्युः सन्निधौ सती नीडे अण्डानि सुषुवे ॥५७॥

अनुवाद कबूतरी ने समयानुसार गर्भ धारण किया और अपने पति के सन्निकट में ही उसने अण्डा दिया॥५७॥

भावार्थ दीपिका नहीं है ॥५७॥ ।

तेषु काले व्यजायन्त रचितावयवा हरेः । शक्तिभिर्दुर्विभाव्याभिः कोमलाङ्गतनूरुहाः ॥५८॥

अन्वयः— तेषु काले हरेः दुर्विभाव्याभिः शक्तिभिः रचितावयवाः कोमलाङ्ग तनूरुहाः व्यजायन्त ॥५८॥

अनुवाद— समयानुसार वे अण्डे फूटे और श्रीहरि की अचिन्त्य शक्ति के द्वारा अङ्गों वाले बच्चे निकले। उनके अङ्ग और रोएँ कोमल थे ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

तेषु जलभरितेष्वण्डेषु हरेः स्वभावकर्मादिशक्तिभी रचितावयवाः पक्षिणः । कोमलान्यङ्गानि तनूरुहाश्च येषां ते ॥५८॥

भाव प्रकाशिका

उन जल भरे अण्डों में श्रीहरि की स्वभाव कर्म आदि शक्तियों से जिनके अङ्ग निर्मित थे ऐसे पक्षी निकले। उनके अङ्ग रोएँ कोमल थे ॥५८॥

प्रजाः पुपुषतुः प्रीतौ दम्पती पुत्रवत्सलौ । शृण्वन्तौ कूजितं तासां निर्वृतौ कलभाषितैः ॥५९॥

अन्वयः— पुत्र वत्सलौ प्रीतौ, दम्पती तासां कलभाषितैः कूजितं शृण्वन्तौ निर्वृतौ प्रजाः पुपुषतुः ॥५९॥

अनुवाद— पुत्र वात्सल्य से सम्पन्न कबूत्तर और कबूतरी उन बच्चों की मनोहर कूजित को सुनकर आनन्दमग्न होकर अपने बच्चों का पालन-पोषण करते थे ॥५९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५९॥

तासां पतत्रैः सुस्पर्शैः कूजितैर्मुग्धचेष्टितैः । प्रत्युद्गमैरदीनानां पितरौ मुदमापतुः ॥६०॥

अन्वयः— सुस्पर्शैः पतत्रैः मुग्धचेष्टितैः कूजितै, अदीनानां प्रत्युद्गमैः पितरौ मुदमापतुः ॥६०॥

अनुवाद— सदा प्रसन्न रहने वाले बच्चे अपने सुकुमार पङ्खों से जब अपने माँ-बाप का स्पर्श करते कूजते, मनोहर चेष्टाएँ करते, फुदक-फुदक कर अपने माँ-बाप के पास दौड़ आते तो कबूतर-कबूतरी आनन्दमग्न हो जाते थे ॥६०॥

भावार्थ दीपिका

पतत्रैः पक्षैः । अदीनानां हृष्टानाम् ॥६०॥

भाव प्रकाशिका

पतत्रै अर्थात् पङ्खों से । **अदीनानाम** अर्थात् सदा प्रसन्न रहने वाले ॥६०॥

स्नेहानुबद्धहृदयावन्योन्यं विष्णुमायया । विमोहितौ दीनधियौ शिशून्पुपुषतुः प्रजाः ॥६१॥

अन्वयः – अन्योन्यं स्नेहानुबद्धहृदयौ विष्णुमायया विमोहितौ दीनधियौ शिशूनप्रजाः पुपुषतुः ॥६१॥

अनुवाद उन दोनो का हृदय परस्पर मे एक दूसरे के स्नेह से बँधा था भगवान विष्णु की माया मे मोहित होने के कारण वे अपने बच्चो के ही पालन-पोषण मे व्यग्र रहते थे ॥६१॥

भावार्थ दीपिका

शिशून्बालान् । प्रजाः पुत्रान् ॥६१॥

भाव प्रकाशिका

शिशून् अर्थात् बालक प्रजाः अर्थात् पुत्रो को ॥६१॥

एकदा जग्मतुस्तासामन्नार्थं तौ कुटुम्बिनौ । परितः कानने तस्मिन्नर्थिनौ चेरतुश्चिरम् ॥६२॥

अन्वयः— एकदा कुटुम्बिनौ तौ अर्थिनौ तस्मिन् कानने तासाम् अन्नार्थम् चिरम् चेरतुः ॥६२॥

अनुवाद— एक दिन वे दोनों (नर और मादा) कुटुम्बी अपने बच्चों को चारा लाने के लिए गये और द तक उस वन में घूमते रहे ॥६२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६२॥

दृष्ट्वा ताँल्लुब्धकः कश्चिद्यदृच्छातो वनेचरः । जगृहे जालमातत्य चरतः स्वालयान्तिके ॥६३॥

अन्वयः— यदृच्छातः कश्चिद् वनेचरः तान् स्वालयान्तिके चरतः तान् दृष्ट्वा कश्चित् लुब्धकः जालम् आतत्य जगृहे॥६३॥

अनुवाद— एक बहेलिया संयोगवशात् घूमता हुआ उन बच्चों को अपने घोसले के पास फुदकते हुए देखकर जाल फैलाकर पकड़ लिया ॥६३॥

भावार्थ दीपिका

स्वालयान्तिके चरतः क्रीडतः तान्कपोतपुत्रान् । आतत्य प्रसार्य ॥६३॥

भाव प्रकाशिका

अपने घोसले के पास फुदकते हुए उन बच्चों आतत्य अर्थात् फैलाकर ॥६३॥

कपोतश्च कपोती च प्रजापोषे सदोत्सुकौ । गतौ पोषणमादाय स्वनीडमुपजग्मतुः ॥६४॥

अन्वयः— कपोश्च कपोतीच प्रजापोषे सदा उत्सुकौ गतौ पोषणम् आदाय स्वनीडम् उपजग्मतुः ॥६४॥

अनुवाद— कबूतर और कबूतरी दोनों अपने बच्चों के पालन में सदा तत्पर रहते थे वन में गये हुए जब वे दोनों अपने घोसले के पास आये ॥६४॥

भावार्थ दीपिका

उत्सुकत्वादेव तत्पोषणार्थं गतौ सन्तौ । पोषणं भक्ष्यम् ॥६४॥

भाव प्रकाशिका

उत्सुक होने के कारण उनको पोषने के लिए बाहर गये थे । पोषणम् अर्थात् चारा ॥६४॥

कपोती स्वात्मजान्वीक्ष्य बालकान् जालसंवृतान् । तानभ्यधावत्क्रोशन्ती क्रोशतो भृशदुःखिता ॥६५॥

अन्वयः— कपोती स्वात्मजान् बालकान् जाल संवृतान् भृशदुःखिता क्रोशतः वीक्ष्य क्रोशन्ती तान अभ्यधावत्॥६५॥

अनुवाद— कबूतरी अपने छोटे बच्चों को जाल में बंधे हुए अत्यन्त दुःखी और चीं चीं करते हुए देखकर चिल्लाती हुई उन सबों के पास आकर जाल में फँस गयी ।।६५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६५।।

साऽसकृत्स्नेहगुणिता दीनचित्ताऽजमायया । स्वयं चाबध्यत शिचा बद्धान्पश्यन्त्यपस्मृतिः ।।६६।।

अन्वयः— अजमायया दीनचित्ता असकृत्स्नेहगुणिता सा शिचा बद्धान् पश्यन्ती अपस्मृतिः सा स्वयं अबध्यत।।६६।।

अनुवाद— परमात्मा की माया से मोहित उसका अन्तः करण अत्यन्त दुःखी हो रहा था, वह उमड़ते हुए स्नेह की रस्सी से बँधी हुई थी । अपने बच्चों को जाल में फँसा देखकर उसे अपनी भी यादगारी नहीं थी और स्वयं जाकर जाल में फँस गयी ।।६६।।

भावार्थ दीपिका

शिचा जालेन ।।६६।।

भाव प्रकाशिका

शिचा अर्थात् जाल से ।।६६।।

कपोतश्चात्मजान्बद्धानात्मनोऽप्यधिकान्प्रियान् । भार्यां चात्मसमां दीनो विललापातिदुःखितः ।।६७।।

अन्वयः— कपोतश्च आत्मनः प्रियान् बद्धान् आत्मजान् आत्मसमां भार्या च विलोक्य दीनः अतिदुःखितः विललाप।।६७।।

अनुवाद— कबूतर भी अपनी आत्मा से भी प्रिय अपने पुत्रों को तथा प्राण के समान प्रियतमा को बँधे हुए देखकर अत्यन्त दुःखी हो गया और विलाप करने लगा ।।६७।।

भावार्थ दीपिका

आत्मानुरूपां भार्यां च विललाप शुशोच ।।६७।।

भाव प्रकाशिका

अपने अनुरूप पत्नी के विषय में शोक करने लगा ।।६७।।

अहो मे पश्यतापायमल्पपुण्यस्य दुर्मतेः । अतृप्तस्याकृतार्थस्य गृहस्त्रैवर्गिको हतः ।।६८।।

अन्वयः— अहो मे अल्पपुण्यस्य दुर्मतेः अपायं पश्यत अतृप्तस्य अकृतार्थस्य त्रैवर्गिकः गृहःहतः ।।६८।।

अनुवाद— अरे मैं अभागा हूँ और दुर्मति हूँ, तब तक मेरा नाश हो गया । अभी मैं तृप्त भी नहीं हुआ था और न मेरी आशाएँ ही पूर्ण हुई थी कि त्रिवर्ग (धर्म अर्थ एवं काम) का साधन भूत गृह ही विनष्ट हो गया।।६७।।

भावार्थ दीपिका

विलापमाहत्रयेणण अहो इति अतृप्तस्य दुष्टसुखे अकृतार्थस्या दृष्टमसंपादयतः ।।६७।।

भाव प्रकाशिका

अहो इत्यादि तीन श्लोकों से कबूतर के विलाप का वर्णन है । अतृप्तस्य लौकिक भोगों से अतृप्त तथा मैंने तो परलोक सुख का भी सम्पादन नहीं किया है ।।६८।।

अनुरूपानुकूला च यस्य मे पतिदेवता । शून्ये गृहे मां संत्यज्य पुत्रैः स्वर्याति साधुभिः ।।६९।।

अन्वयः— अनुरूपा अनुकूला च यस्य मे पतिदेवता शून्ये गृहे मां संत्यज्य साधुभिः पुत्रैः स्वर्याति ।।६९।।

अनुवाद— मेरी पत्नी मेरे अनुकूल और अनुरूप थी । वह पत्निव्रता थी । वह मुझे इस शून्य घोसला रूपी गृह में छोड़कर मेरे साधु प्रकृति के बच्चों के साथ स्वर्ग जा रही है ।।६९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६९।।

सोऽहं शून्ये गृहे दीनो मृतदारो मृतप्रजः । जिजीविषे किमर्थं वा विधुरो दुःखजीवित; ॥७०॥

अन्वयः— सोऽहं शून्ये गृहे दीनः मृतदारः मृतप्रजाः किमर्थं जिजिविषे, विधुरो वा दुःख जीवितः ॥७०॥

अनुवाद वह मैं इस शून्य गृह मे दीन बनकर रहूँगा मेरी पत्नी भी मर गयी, मेरे बच्चे भी मर गये अब मैं किसलिए जीना चाहता हूँ विधुर होकर जीना तो दुखमय ही जीवन है ॥७०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७०॥

तांस्तथैवावृतान् शिग्भिर्मृत्युग्रस्तान्विचेष्टतः । स्वयं च कृपणः शिक्षु पश्यन्नप्यबुधोऽपतत् ॥७१॥

अन्वयः— तान् तथैव शिग्भिः आवृतान् मृत्युग्रस्तान् विचेष्टतः शिक्षु पश्यन् अपि कृपणः अबुधः स्वयं च अपतत्॥७१॥

अनुवाद— राजन् कबूतर के बच्चे जाल में फँसकर तड़फड़ा रहे थे । दीख ही रहा था कि वे काल के गाल मे हैं । वह मूर्ख कबूतर यह सब देखते हुए इतना दीन बन गया था कि वह स्वयं जाल में कूद पड़ा ॥७१॥

भावार्थ दीपिका

तानावृतान्पश्यन्नपि । शिक्षु जालेषु ॥७१॥

भाव प्रकाशिका

उन सबों को बँधे हुए देखकर भी शिक्षु अर्थात् जालेषु ॥७१॥

तं लब्ध्वा लुब्धकः क्रूरः कपोतं गृहमेधिनम् । कपोतकान्कपोतीं च सिद्धार्थं प्रययौ गृहम् ॥७२॥

अन्वयः— तं गृहमेधिनम् कपोतम् कपोतकान् कपोतीं च लब्ध्वा क्रूरः लुब्धकः सिद्धार्थः गृहम् ययौ ॥७२॥

अनुवाद— राजन् उस गृहस्थाश्रमी कबूतर, कबूतर के बच्चों तथा कबूतरी को पाकर वह क्रूर बहेलिया बड़ा प्रसन्न हुआ और अपने घर चला गया ॥७२॥

भावार्थ दीपिका

दर्ष्टान्तिके योजयति तलब्ध्वेति ॥७२॥

भाव प्रकाशिका

तलब्धवा इत्यादि श्लोक से दृष्टान्त को दार्ष्टान्तिक से जोड़ा गया है ॥७२॥

एवं कुटुम्ब्यशान्तात्मा द्वन्द्वारामः पतत्रिवत् । पुष्णान्कुटुम्बं कृपणः सानुबन्धोऽवसीदति ॥७३॥

अन्वयः— एवम् कुटुम्बी द्वन्द्वारामः पतत्रिवत् कुटुम्बम् पुष्णन् कृपणः सानुबन्धः अवसीदतिः अशान्तात्मा ॥७३॥

अनुवाद— इसी तरह जो कुटुम्बी है उसे विषयों और लोगों के सङ्ग में ही सुख मिलता है । वह उस कबूतर के ही समान अपने परिवार के ही पालन में अपना सुध-बुध खो बैठता है । वह उस कबूतर के ही समान दुखः पाता है । उसको शान्ति कभी मिलती ही नहीं है ॥७३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७३॥

यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम् । गृहेषु खगवत्सक्तस्तमारूढच्युतं विदुः ॥७४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अन्वयः— यः अपावृतम् मुक्तिद्वारम् मानुषं लोकं प्राप्य गृहेषु खगवत् आसक्तः तम् आरूडच्युतम् विदुः ॥७४॥

अनुवाद— यह मानव शरीर मुक्ति का खुला हुआ द्वार है । इस मानव शरीर को भी प्राप्त करके उस कबूतर

पक्षी के समान अपने-अपने परिवार के ही पालन-पोषण में लगा रहता है, वह बहुत ऊँचे चढ़कर गिर रहा है शास्त्र की भाषा में उसको आरूढपतित कहते हैं ।।७४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।७।।

भावार्थ दीपिका

एवं गृहासक्तिस्तिरश्चामप्यनर्थहेतुर्मनुष्यस्य त्वतिनिन्दितेत्याह-यः प्राप्येति ।।७४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादश स्कन्धे भावार्थ दीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

यः प्राप्य० इत्यादि श्लोक के द्वारा बतलाया गया है कि गृह में होने वाली आसक्ति जब पशु-पक्षियों के भी लिए अनर्थावह होता है तो फिर मनुष्यों के लिए तो अत्यन्त निन्दित है ।।७४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के सातवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका सम्पूर्ण हुई ।।७।।

* * *

आठवाँ अध्याय

अवधूतोपाख्यान अजगर से लेकर पिङ्गला तक नव गुरुओं की कथा

ब्राह्मण उवाच

सुखमैन्द्रियकं राजन्स्वर्गे नरक एव च । देहिनां यद्यथा दुःखं तस्मान्नेच्छेत तद्बुधः ॥१॥

अन्वयः— राजन् देहिनां यत् यथा दुःखम् तथा ऐन्द्रियिकं सुखम् अपि स्वर्गेनरके एव च तस्मात् बुधः तत् नेच्छेत्॥१॥

अवधूत दत्तात्रेयजी कहते हैं

अनुवाद— राजन् प्राणियों को जैसे बिना किसी प्रयास के दुःख की प्राप्ति होती है, उसी तरह उसे स्वर्ग में तथा नरक में भी ऐन्द्रियिक सुख की प्राप्ति होती है। अतएव विज्ञ पुरुष को चाहिए कि वह ऐन्द्रियिक सुख की प्राप्ति की कामना नहीं करे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टमेऽजगरादिभ्यो नवभ्यः शिक्षितं हरिः । अवधूतगिरा प्राह विवेकायोद्धवं प्रति ॥१॥ प्रारब्धकर्मभोगस्यावश्यंभावित्वात्तदर्थोद्यमैर्नायुर्व्ययो वृथा कर्तव्य इत्यजगराच्छिक्षितमित्याह-सुखमित्यादिना । यदैन्द्रियकं सुखं तत्स्वर्गे नरके च भवत्येव । यथा दुःखम् तस्माद्बुधस्तन्नेच्छेत् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

आठवें अध्याय में अजगर आदि नव गुरुओं से प्राप्त होने वाली शिक्षाओं का वर्णन श्रीहरि ने अवधूत श्रीदत्तात्रेय भगवान के मुख से उद्धवजी को विवेक प्राप्ति के लिए किया है ॥१॥ प्रारब्ध कर्म का फल अवश्य होता है। उसके लिए प्रयास करके आयु को विताना व्यर्थ है, यह अजगर से शिक्षा प्राप्त हुई है, इस बात को **सुखमैन्द्रियकम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। जो ऐन्द्रियिक सुख है। वह तो स्वर्ग एवं नर्क दोनों में होता ही

हैं। यह उसी तरह से होता है जैसे दुःख बिना प्रयास के ही प्राप्त होता है। अतएव ज्ञानी व्यक्ति ऐन्द्रियिक सुख की इच्छा न करे ॥१॥

ग्रासं सुमृष्टं विरसं महान्तं स्तोकमेव वा। यदृच्छयैवापतितं ग्रसेदाजगरोऽक्रियः ॥२॥

अन्वयः— यदृच्छयैव आपतितं सुमृष्टं विरसं महान्तम् स्तोकम् एव वा आजगरः अक्रियः ग्रसेत् ॥२॥

अनुवाद— बिना माँगे ही अनायास जो कुछ मिल जाय चाहे स्वादिष्ट हो। अथवा विरस हो अधिक हो या थोड़ा हो बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि वह अजगर के समान उसे ही खाले ॥२॥

भावार्थ दीपिका

शरीरनिर्वाहमात्रं तु यथालब्धेन कर्तव्यमित्याह-ग्रासमिति। आजगरोऽजगरवृत्तिः। अक्रिय उदासीनः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

जिस किसी तरह भी मिल जा उतने से ही केवल शरीर निर्वाह मात्र करना चाहिए। इस बात का **ग्रासम० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। **आजगरः** अर्थात् अजगर के समान वाला, अक्रियः अर्थात् उदासीन पुरुष ॥२॥

शयीताहानि भूरीणि निराहारोऽनुपक्रमः। यदि नोपनमेद्ग्रासो महाहिरिव दिष्टभुक् ॥३॥

अन्वयः— यदि ग्रासः नोपनमेत् महाहिरिव दिष्टभुक् निराहारः अनुपक्रमः भूरीणि अहानि शयीत ॥३॥

अनुवाद— यदि कुछ भी न मिले तो उसे ही अपना प्रारब्ध समझकर किसी प्रकार की चेष्टा न करे बिना कुछ खाये ही बहुत दिनों तक सोया रहे ॥३॥

भावार्थ दीपिका

यदा नापतति तदा किं कर्तव्यं तत्राह-शयीतेति। अनुपक्रमो निरुद्यमः। दिष्टभुक् दैवमेव प्रापकमिति धैर्यवान् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कुछ भी न मिले तो क्या करना चाहिए ? इस पर **शयीत० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। अनुपक्रमः अर्थात् उद्योग रहित। दिष्टभुक् अर्थात् भाग्य से ही कुछ मिलता इस तरह से धैर्य सम्पन्न ॥३॥

ओजः सहोबलयुतं बिभ्रद्देहमकर्मकम्। शयानो वीतनिद्रश्च नेहेतेन्द्रियवानपि ॥४॥

अन्वयः— ओजः सहो बलयुतं अकर्मकम् देहं बिभ्रत् वीतनीद्रश्च शयानः इन्द्रियवान् अपि नेहेत ॥४॥

अनुवाद— शरीर में मनोबल इन्द्रिबल और देहबल तीनों हो तो भी निश्चेष्ट रहे। नींद नहीं आने पर भी सोया सा पड़ा रहे। कर्मेन्द्रियों के रहने पर भी कोई चेष्टा न करे। राजन् मैंने अजगर से यही सीखा है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

ननु समर्थोऽपि शयीतैव किम्, ओमित्याह-ओज इति। ओज इन्द्रियबलम्। सहो मनोबलम्। बलं शारीरमेव। तद्युक्तमपि देहमकर्मकमेव बिभ्रच्छयान एव भवेत्। वीतनिद्रः स्वार्थे दत्तदृष्टिश्च भवेन्न पुनरीहेत्। इन्द्रियवानपीति दर्शनादिव्यापारमपि निवारयति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

यदि समर्थ भी हो तो भी सोता ही रहे क्या ? इस पर उन्होंनें कहा हाँ। इस बात को ओजः इत्यादि श्लोक से कहा गया है। ओजः अर्थात् इन्द्रिय बल, सहः अर्थात् मनोबल, बलम् अर्थात् शरीर ही बल हो इन सबों से युक्त भी निश्चेष्ट शरीर को धारण किए हुए मनुष्य सोता ही रहे। नींद नहीं लगने पर अपने स्वार्थ पर दृष्टि रखे, कुछ भी न चाहे। इन्द्रियवानपि कहकर उसकी देखने आदि की क्रिया का निषेध किया गया है ॥४॥

मुनिः प्रसन्नगम्भीरो दुर्विगाह्यो दुरत्ययः । अनन्तपारो ह्यक्षोभ्यः स्तिमितोदइवार्णवः ॥५॥

अन्वयः— मुनिः प्रसन्नगम्भीरः दुर्विगाह्यः दुरत्ययः अनन्तपारः अक्षोभ्यः स्तिमितोद अर्णव इव ॥५॥

अनुवाद— मैंने समुद्र से यह सीखा है कि साधक को सदा प्रसन्न और गम्भीर होना चाहिए। उसका भाव अथाह आपार और असीम होना चाहिए। किसी भी कारण से उसमें क्षोभ नहीं होना चाहिए। जिस तरह ज्वार और भाटे से रहित शान्त समुद्र होता है, उसे वैसे ही शान्त होना चाहिए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

समुद्राच्छिक्षितमाह-मुनिरिति । बहिः प्रसन्नश्चासावन्तर्गम्भीरश्च । दुर्विगाह्य एवंभूत इति । परिकलयितुमशक्यः, अलदेयाभिप्रायत्वात्। दुरत्ययोऽनतिक्रमणीयः, तेजस्वित्वात् । अनन्तपारः कालतो देशतश्चापरिच्छेद्यः, स्वरूपाविर्भावात् । अक्षोभ्योऽविकार्यः, रागाद्यभावात् । स्तिमितोदो निश्चलोदकोऽर्णवो यथा तद्वदेतैर्गुणैर्भवेदित्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

मुनिः इत्यादि श्लोक के द्वारा समुद्र से प्राप्त होने वाली शिक्षा को अवधूत दत्तात्रेय भगवान् ने कहा है कि मुनि को बाहर से प्रसन्न और भीतर से गम्भीर होना चाहिए उसके भाव को इतना गम्भीर होना चाहिए कि दूसरा उसको जान न सके। अभिप्राय के अलक्षित होने के कारण उसे अनतिक्रमणीय और तेजस्वी होना चाहिए। अनन्तपारः अर्थात् देश और काल की सीमा रहित होना चाहिए क्योंकि उसके स्वरूप का आविर्भाव हो गया होता है। राग और द्वेष से रहित होने से साधक अविकार्य होता है। इन सभी गुणों से सम्पन्न होने के कारण उसे अथाह शान्त सागर के सामन होना चाहिए ॥५॥

समृद्धकामो हीनो वा नारायणपरो मुनिः । नोत्सर्पेत न शुष्येत सरिद्भिरिव सागरः ॥६॥

अन्वयः— सारिद्भिः सागर इव मुनि समृद्धकामः हीनो वा नारायणपरः मुनिः नोत्सर्पेत न शुष्येत ॥६॥

अनुवाद— जिस तरह वर्षा के दिनों में नदियों से समृद्ध होने पर भी समुद्र न तो बढ़ता है और न तो गर्मी के दिनों में घटता है, वेसे ही भगवत् परायण साधक को न तो सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति से प्रसन्न होना चाहिए और उसके घटने से उसे उदास भी नहीं होना चाहिए ॥६॥

भावार्थ दीपिका

किंच वर्षासु सरिद्भिः समृद्धोऽपि सागरो यथा नोत्सर्पेत, ग्रीष्मे तद्विहीनोऽपि न शुष्येत । तथा समृद्धकामस्तद्विहीनो वा न हृष्येन्न शोचेदित्यर्थः । अत्र हेतुः-नारायणपरो न तु विषयपर इति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह वर्षा के दिनों में नदियों से समृद्ध होने पर सागर नहीं बढ़ता है और ग्रीष्म काल में वह नदियों की समृद्धि से रहित होने पर भी सूखता भी नहीं है उसी तरह साधक समृद्धि कम होने पर भी न तो प्रसन्न होए और साधनों के घटने से उसे शोक नहीं करना चाहिए। उसका कारण यह है कि वह साधक भगवत्परायण होता है वह विषय परायण नहीं होता है ॥६॥

दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः । प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतङ्गवत् ॥७॥

अन्वयः— अजितेन्द्रियः देवमायां स्त्रियं दृष्ट्वा तद्भावैः प्रलोभितः अग्नौ पतङ्गवत् अन्धे तमसि पतति ॥७॥

अनुवाद—इस श्लोक में पतङ्ग (कीड़े) से प्राप्त होने वाली शिक्षा का वर्णन है जिस साधक की इन्द्रियाँ अपने वश में नहीं होती है वह देवताओं की माया के समान सुन्दर स्त्री को देखकर उस पर मोहित हो जाता है और वह

मृत्यु के पश्चात् घोर अन्धकार मय नरको में जाता है जिस तरह दीपक के सुन्दर लौ को देखकर उसको प्राप्त करने की इच्छा वाला पातिङ्गा जलकर मर जाता है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

रूपगन्धस्पर्शशब्दरसैः पञ्चभिर्विषयैर्मोहिताः पतङ्गमधुकरगजहरिणमीना हताः, अतस्तेष्वनासक्तौ पञ्चैते गुरवः । तदुक्तम्-पतङ्गमातङ्गकुरङ्गभृङ्गमीना हताः पर्ञ्चभिरेव पञ्च । एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ।' इति । तत्र रूपविलासमोहितो नश्यतीति पतङ्गाच्छिक्षितमाह-दृष्ट्वेति । तस्या भावैः प्रलोभितः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

प्रदीप के रूप पर मोहित पतङ्ग, गन्ध पर मोहित भ्रमर, स्पर्श पर मोहित हाथी, शब्द पर मोहित हरिण तथा रस पर मोहित मछली ये सबके सब मारे गये अतएव रूप गन्ध, स्पर्श शब्द एवं रस इन पाञ्चो विषयों से अनासक्त रहना चाहिए इस बात को उपदेश पतिङ्गा, भौरा, हाथी हिरण और मछली ये पाञ्चो गुरु देते हैं । कहा भी गया हैं- **पतङ्गमातङ्गकुरङ्ग भृङ्ग मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च । एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च** । अर्थात् प्रदीप के सुन्दर रूप को देखकर उस पर मोहित होने वाला पतिङ्गा जलकर मर जाता है, हाथी अपनी हथिनी के स्पर्श पर मोहित हो जाता है अतएव वह हथिनी के पीछे-पीछे चलता हुआ भयङ्कर गढ़े में गिरकर फँस जाता है । बहेलिया की वंशी की मनोहर ध्वनि को सुनकर उस पर मोहित हो जाने वाला कस्तूरी मृग बहेलिया के हाथों मारा जाता है । ऐसे ही कमल पुष्प की सुगन्धि के उपभोग में मस्त भौरा सायंकाल कमल कोश में बंध गया और हाथी ने उसको मार दिया । इसी तरह जोक के सुन्दर रस पर मोहित मछली दूरसे दौड़कर आती है और मछली बंझाने वाले की वंशी में फंसकर मारी जाती है । जब ये पाँचों केवल एक-एक विषय के सेवन करने के कारण मारे गये तो अपने काल को भी जो भूल गया ऐसा प्रमादी मनुष्य तो अपनी पाञ्चों इन्द्रियों से पाञ्चों विषयों का सेवन करता है इस प्रकार का विषयोपभोग लोलुप मनुष्य के विनष्ट होने में कौन सी शङ्का है ? इनमें से रूप के हाव-भाव पर मोहित हो जाने वाला अजितेन्द्रिय साधक विनष्ट हो जाता है, यह पातिङ्गे से शिक्षा मिलती है, इस बात को दृष्ट्वा स्त्रियम् इत्यादि श्लोक से कहा गया है । क्योंकि सुन्दरी तो देवताओं की माया है अतएव साधक उसके रूप पर मोहित हो जाता है और अपना सर्वस्व खो बैठता है ।।७।।

योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः ।
प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्ध्या पतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ।।८।।

अन्वयः— योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायारचितेषु उपभोगबुद्ध्या प्रलोभितात्मा नष्टदृष्टिः मूढः पतङ्गवत् नश्यति।।८।।

अनुवाद— कामिनी, कञ्चन, उसके आभूषण तथा सुन्दर वस्त्र आदि नश्वर मायिक पदार्थों में फँसे हुए मूर्ख व्यक्ति अपने विवेक और बुद्धि को खो देता है, उसकी चित्तवृत्ति उसके उपभोग के लिए लालायित हो जाती है । और उसके उपभोग में ही फँसकर साधक अपनी सम्पूर्ण साधना उसी तरह विनष्ट कर देता है जिस तरह प्रदीप पर गिरकर पतिङ्गा जल मरता है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

स्त्रियमुपलक्षणीकृत्यैतत्प्रपञ्चयति-योषिदिति ।।८।।

भाव प्रकाशिका

स्त्री को उपलक्षण बनाकर इसका विस्तार से वर्णन करते हैं ।।८।।

स्तोकं स्तोकं ग्रसेद्ग्रासं देहो वर्तेत यावता । गृहानहिंसन्नातिष्ठेद्वृत्तिं माधुकरीं मुनिः ।।९।।

अन्वयः— माधुकरीं वृत्तिम् आतिष्ठन् मुनिः गृहान अहिंसन् स्तोकं स्तोकं ग्रासं ग्रसेत् यावता देहो वर्तेत ।।९।।

अनुवाद— माधुकरी वृत्ति को अपनाकर रहने वाले मुनि को चाहिए कि वे किसी एक ही गृहस्थ के यहाँ से भिक्षा न लेकर थोड़ा-थोड़ा कई गृहस्थों के यहाँ से भिक्षा माँग ले । उसको उतनी ही भिक्षा माँगनी चाहिए । जितने से पेट भर जाय उससे अधिक भिक्षा नहीं माँगे ।।९।।

भावार्थ दीपिका

मधुकराच्छिक्षितमाह-स्तोकमिति । गृहान्गृहस्थानहिंसन्नपीडयन् । अयं भावः-यथा मधुकरो विशिष्टगन्धलोभेनैकस्मिन्नेव पद्मे वसन्नस्तमयसमये मुकुलिते तस्मिन्बध्यते, एवं मुनिरपि गुणलोभेनैकमेव गृहमाश्रितस्तन्मोहेन वध्यत इति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

भौंरे से प्राप्त होने वाली शिक्षा का वर्णन **स्तोकम्० इत्यादि** श्लोक से वर्णन करते हैं । गृहानपीडयन् अर्थात् गृहस्थों को पीडित नहीं करते हुए । कहने का अभिप्राय है कि जैसे विशिष्ट गन्ध के लोभ में कमल की सुगन्धि का उपभोग करने वाला भौंरा सायंकाल कमलकोश के मुकलित हो जाने से उसी में बँध गया उसी तरह अधिक गुण सम्पन्न भिक्षा के लोभ में यदि एक ही गृह से भिक्षा लेने लगता है तो वह उसी के लोभ में बँध जाता है । अतएव उसको थोड़ा-थोड़ा अनेक गृहों से भिक्षा ले लेनी चाहिए ।।९।।

अणुभ्यश्च महद्भ्यश्च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः । सर्वतः सारमादद्यात्पुष्पेभ्य इव षट्पदः ।।१०।।

अन्वयः— अणुभ्यः महद्भ्यः च शास्त्रेभ्यः कुशलो नरः पुष्पेभ्य षटपदः इव सारमादद्यात् ।।१०।।

अनुवाद— निपुण व्यक्ति को चाहिए कि जिस तरह भौरा छोटे-बड़े सभी पुष्पों से उन सबों का सार संगृहीत करता है उसी तरह से छोटे-बड़े सभी शास्त्रों का वह सार भाग संगृहीत कर ले ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

किंच, अणुभ्यश्चेति ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

वुद्धिमान पुरुष छोटे-बड़े सभी शास्त्रों का सारभाग भौरे के समान संगृहीत कर ले ।।१०।।

सायंतनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षितम् । पाणिपात्रोदरामत्रो मक्षिकेव न संग्रही ।।११।।

अन्वयः— भिक्षुक सायंतनं श्वस्तनं वा भिक्षितम् न संगृह्णीत पाणि पात्रोदरामत्रो मक्षिकेव संग्रही ।।११।।

अनुवाद— राजन् मैंने मधुमखी से यह शिक्षा प्राप्त की है कि संन्यासी सायंकाल अथवा दूसरे दिन तक के लिए भिक्षा में प्राप्त वस्तु का संग्रह न करे । उसके पास भिक्षा लेने के लिए हाथ ही पात्र होना चाहिए और भिक्षा रखने के पात्र के रूप में केवल पेट ही होना चाहिए । यदि वह संग्रह करता है तो वह उसी के साथ मधुमखियों के साथ विनष्ट हो जाता है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

द्विविधो मधुकृत् । मधु कृन्तति पुष्पादाच्छिद्य गृह्णातीति मधुकृद्भ्रमरः । मधु करोत्याहारत्वेन स्वरूपेण चेति मधुमक्षिका च । तत्र प्रथमाच्छिक्षितमुक्तम्, द्वितीयाच्छिक्षितमाह-सायमिदं भोक्ष्यामि, श्व इदं भोक्ष्यामीति भिक्षितमन्नादि न संगृह्णीत, किंतु पाणिपात्रस्तन्मात्रग्राही । यद्वा उदरमेवामत्रं पात्रं यस्य सः । एकभिक्षायामुदरमात्रग्राही भवेत् । संग्रही तु मक्षिकेव न भवति न जीवतीत्यर्थः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

मधु बनाने वाले दो प्रकार के हैं- १. पुष्पो आदि से पराग छिनकर पराग लेने वाले भौंरे । २. अपने आहार रूप में स्वरूपत: मधु बनाने वाली छोटी मधुमक्खी । भौंरो से प्राप्त शिक्षा का वर्णन किया जा चुका है। छोटी मधुमक्खी से प्राप्त होने वाली शिक्षा का वर्णन करते हैं । मैं सायं काल इसे खाऊँगा और इसको कल खाऊँगा इस तरह से भिक्षा का संग्रह नहीं करना चाहिए उसको हाथ में ही भिक्षा लेकर अथवा वह पेट रूपी पात्र में जितना आँटे उतना ही खाले यदि वह एक ही बार भिक्षा लेता है तब तो पेट पर भिक्षा ले । भिक्षित अन्न का संग्रह करने वाला जीवित नहीं रहता है ॥१२॥

सायंतनं श्वस्तनं वा न संगृह्णीत भिक्षुकः । मक्षिका इव संगृह्णन्सह तेन विनश्यति ॥१२॥

अन्वय:— सायन्तनं श्वस्तनं वा भिक्षुकः न संगृह्णीत संगृहणन् तेन सह माक्षिका इव विनश्यति ॥१२॥

अनुवाद— संन्यासी सायंकाल के लिए अथवा दूसरे दिन कि लिए संग्रह न करे संग्रह करने वाला उसी के साथ मधुमक्खी के समान मारा जाता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

एतद्विवृणोति-पुनः सायंतनमिति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

सायं तनम्० इत्यादि श्लोक से पुन: इसी अर्थ की व्याख्या की गयी है ॥१२॥

पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि । स्पृशन्करीव बध्येत करिण्या अङ्गसङ्गतः ॥१३॥

अन्वय:— भिक्षुः दारवीम् अपि युवतीं पदापि न स्पृशेत् स्पृशन् करिण्या अङ्गसङ्गतः करीव बध्येत ॥१३॥

अनुवाद— भिक्षु को लकड़ी की भी बनी हुई युवती को अपने पैर से भी स्पर्श नहीं करना चाहिए । स्पर्श करने वाला उसी प्रकार बँध जाता है जिस तरह हथिनी के अङ्ग स्पर्श का लोभी हाथी गढ़े में गिरकर बन्धन में पड़ जाता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

स्पर्शासक्तिर्नाशहेतुरिति गजाच्छिक्षितमित्याह-पदापीति । पादेनापि दारवीं दारुमयीमपि । गजो हि करिणीं प्रदर्श्य निखाततृणपिहितगर्ते निपात्य बध्यते ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

अवधूत भगवान् दत्तात्रेय ने **पदापि० इत्यादि** श्लोक से कहा कि स्पर्श की आसक्ति नाश का कारण होता हैं यह मैंने हाथी से शिक्षा प्राप्त की है । लकड़ी की भी बनी हुई युवती को पैर से भी स्पर्श न करे । हाथी को हथिनी को दिखाकर तृण से ढंके हुए गढ़े में हाथी को गिरा दिया जाता है और अन्त में हाथी बन्धन में पड़ जाता है ॥१३॥

नाधिगच्छेत्स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचिन्मृत्युमात्मनः । बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥१४॥

अन्वय:— प्राज्ञः कर्हिचित् आत्मनः मृत्युंस्त्रियं नाधिगच्छेत् अन्यैः गजैः गजो यथा बलाधिकैः सः हन्येत ॥१४॥

अनुवाद— विवेकी पुरुष को किसी भी स्त्री को भोग्या रूप में नहीं स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि स्त्री-पुरुष की मूर्तिमती मृत्यु हैं जो भोग्या के रूप में स्वीकार करता है, वह दूसरे बलवान पुरुषों द्वारा उसी तरह मारा जाता है जैसे हथिनी को अपनी भोग्या मानने वाला हाथी दूसरे बलवान हाथियों द्वारा मार दिया जाता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

किंच, नाधिगच्छेदिति । नोपगच्छेत् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

नाधिगच्छेत् इत्यादि श्लोक के द्वारा उपर्युक्त अर्थ की ही व्याख्या की गयी है। नाधिगच्छेत अर्थात् उसके पास न जाय ॥१४॥

न देयं नोपभोग्यं च लुब्धैर्यद्दुःखसंचितम्। भुङ्क्ते तदपि तच्चान्यो मधुहेवार्थविन्मधु ॥१५॥

अन्वयः— लुब्धैः यद् दुःख संचितं न देयं न उपभोग्यं त्व। मधु हा इव अर्थवित् तदपि तच्चान्य भुंक्ते ॥१५॥

अनुवाद— मैंने मधु निकालने वाले से यह शिक्षा प्राप्त की है कि संसार के लोभी पुरुष बड़ी ही कठिनाई से धन संचित करते हैं, किन्तु वे उस धन का न तो दान करते हैं न उसका उपभोग ही कर पाते हैं। उस धन को जानने वाला पुरुष उसे उसी तरह से ले लेता है जिस तरह बड़ी ही कठिनाई से मधु एकत्रित करने वाली मखियों का मधु कोई मधु निकालने वाला निकाल ले जाता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

त्यागभोगविहीनो धनसंचयः परगामी भवतीत्यत्र मधुहा गुरुरित्याह–न देयमिति। तदन्यो बलवान्भुङ्क्ते तदप्यन्यस्तच्चान्यः। मधुहा मक्षिकाभिः संचितं मधु यथा भुङ्क्ते तद्वत्। ननु सुगुप्तं धंन कथमन्यो ज्ञास्यति हरिष्यति चेति तत्राह–अर्थवित् लिङ्गैरर्थं तदुपायं च वेत्तीत्यर्थवित्। यथा मधुहा तरुकोटरादिगतं मधु वेत्ति हरति च ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

जिस धन का न तो दान किया जाता है और न धनी उपभोग ही करता है वह धन दूसरे लोगों के ही हाथ लगता है। इस विषय में मधु निकालने वाला ही गुरु है। उस कठिनाई से एकत्रित धन का दूसरा ही कोई उपभोग करता है। उससे बचे को दूसरा जैसे मधुमखियों द्वारा संचित मधु का मधु निकालने वाला उपभोग करता है। प्रश्न है कि अच्छी तरह छिपाकर रखे गये धन को दूसरा कैसे जानेगा या लेगा। इस पर कहते है कि जो उस गुप्त धन को जानता है वह उसे ले लेगा जैसे पेड़ पर लगे मधु के छत्ते का मधु मधुनिकालने वाला निकाल लेता है ॥१५॥

सुदुःखोपार्जितैर्वित्तैराशासानां गृहाशिषः। मधुहेवाग्रतो भुङ्क्ते यतिर्वै गृहमेधिनाम् ॥१६॥

अन्वयः— सुदुःखोपार्जितै वित्तै गृहाशिषः आशसाना गृहमेधिनां मधुहा इव अग्रतः वै यतिः भुंक्ते ॥१६॥

अनुवाद— अत्यन्त कठिनाई पूर्वक अर्जित की गयी सम्पत्ति सुखभोग की आशा रखने वाले गृहस्थ से पहले उसके घर में ब्रह्मचारी और संन्यासी उसी तरह भोजन करते हैं जिस तरह कठोर परिश्रम से मधुमखियों द्वारा संचित मधु को मधु निकालने वाला निकाल लेता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

स्वोद्यमं विनापि भोगः संभवतीत्यत्रापि स एव गुरुरित्याह–सदुःखेति। आशासानानामिति वक्तव्ये वर्णलोप आर्षः। 'यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ। तयोरन्नमदत्त्वा तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।' इति गृहिणामावश्यकत्वेन दानविधानात्॥१६॥

भाव प्रकाशिका

उद्योग किए बिना भी भोग होता है, इस विषय में मधु निकालने वाला ही गुरु है। इस अर्थ का प्रतिपादन सुदुःखोपार्जितैः वित्तैः इत्यादि श्लोक से कहा गया है। आशासानां में ना इस वर्ण का लोप आर्ष है। कहा भी गया है कि पकाए हुए अन्न के अधिकारी संन्यासी और ब्रह्मचारी दोनों है। उन लोगों को भोजन कराये बिना स्वयं भोजन कर लेने वाले को प्रायश्चित के रूप में चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। इस स्मृति वाक्य के अनुसार गृहस्थ को अवश्य दान करने का विधान है ॥१६॥

ग्राम्यगीतं न शृणुयाद्यतिर्वनचरः क्वचित् । शिक्षेत हरिणाद्बद्धान्मृगयोर्गीतमोहितात् ॥१७॥

अन्वयः— वनचरः यतिः ग्राम्य गीतं कर्हिचित् न शृणुयात् इति मृगयोः गीतमोहितात् बद्धात् मृगात् शिक्षेत ॥१७॥

अनुवाद— वनवासी संन्यासी को कभी भी विषय-विषयक गीतों को नहीं सुनना चाहिए इस बात को बहेलिए के गीत से मोहित बँधे हुए मृग से शिक्षा लेनी चाहिए ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

हरिणाच्छिक्षितमाह-ग्राम्येति । भगवद्गीतं तु शृणुयादेव । मृगयोर्लुब्धकस्य ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

हरिण से प्राप्त हुई शिक्षा के विषय में भगवान् दत्तात्रेय ने कहा कि वन में रहने वाले संन्यासियों को ग्राम्य गीत नहीं सुनना चाहिए । वह श्रीभगवान् विषयक गीत को तो सुने । मृगयोः अर्थात् बहेलिए के ॥१७॥

नृत्यवादित्रगीतानि जुषन् ग्राम्याणि योषिताम् । आसां क्रीडनको वश्य ऋष्यशृङ्गो मृगीसुतः ॥१८॥

अन्वयः— मृगीसुतः ऋष्यशृङ्गग्राम्याणि नृत्यवादित्रगीतानि जुषन् आसां क्रीडनकः वश्य अभूत् ॥१८॥

अनुवाद— ऋष्यशृङ्ग हरिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे वे वेश्याओं के विषय विषयक गीतों वाद्यों और नृत्यों को सुनकर उन सबों के वशवर्ती क्रीडामृग बन गये थे । यह मैंने हरिणी से सीखा है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

हरिणशब्दादेव हरिणीसुतः ऋष्यशृङ्गोऽपि गुरुर्ज्ञातव्य इत्याह-नृत्येति । वश्यो बभूवेति शेषः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

हरिण शब्द से ही हरिणी पुत्र ऋष्यशृङ्ग को भी गुरु समझना चाहिए, इस बात को **नृत्य वादित्र० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । वशवर्ती हो गये ऐसा अर्थ होना चाहिए ॥१८॥

जिह्वयातिप्रमाथिन्या जनो रसविमोहितः । मृत्युमृच्छत्यसद्बुद्धिर्मीनस्तु बडिशैर्यथा ॥१९॥

अन्वयः— मीनस्तु बडिशैः यथाः अतिप्रमाथिन्या जिह्वया रसविमोहितः असद्बुद्धिजनः मृत्युम् ऋच्छति ॥१९॥

अनुवाद— जिस तरह काँटे में लगे माँस की लोभी मछली काँटे में फँसकर अपनी जान गँवा देती है, उसी तरह स्वाद के लोभ में दुर्बुद्धि मनुष्य के मन को मथकर व्याकुल बना देने वाली जिह्वा मनुष्य को मृत्यु का ग्रास बना देती है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

रसासक्तिर्नाशहेतुरिति मीनाच्छिक्षितमित्याह-जिह्वयेति । अतिप्रमाथिन्या अतिक्षोभिकया दुर्जयया । ऋच्छति प्राप्नोति। बडिशैरामिषलिप्तैर्लोहकण्टकैः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

अवधूत भगवान् दत्तात्रेय **जिह्वया० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं कि रस में अत्यन्त आसक्ति का होना भी नाश का कारण होता है । जिह्वा मन को मथ देने के कारण दुर्जया है । ऋच्छति अर्थात् प्राप्त कर लेता है मांस लगे हुए लोहे के काँटे से ॥१९॥

इन्द्रियाणि जयन्त्याशु निराहारा मनीषिणः । वर्जयित्वा तु रसनं तन्निरन्नस्य वर्धते ॥२०॥

अन्वयः— निराहाराः मनीषिण आशु इन्द्रियाणि रसनं वर्जयित्वा आशु जयन्ति निरन्नस्य तत् वर्धते ॥२०॥

अनुवाद— निराहार रहने वाले विवेकी पुरुष अपनी दूसरी इन्द्रियों को तो शीघ्र वश में कर लेते हैं किन्तु रसनेन्द्रिय को छोड़कर उपवास करने वाले पुरुष की रसनेन्द्रिय और प्रबल हो जाती है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

दुर्जयत्वमुपपादयति-इन्द्रियाणीति द्वाभ्याम् । अयं भाव:-यद्याहारस्त्यज्यते तर्ह्यन्येन्द्रियजय: केवलं भवति, रसनेन्द्रियं तु वर्धते । यदि तु भुज्यते तर्हि पुनश्च रसासक्त्या सर्वेन्द्रियक्षोभ: स्यात् । अतो रसासक्तिं परित्यज्यौषधवद्भुञ्जीतेति, प्राणवृत्त्यैव संतुष्येदित्यत्रोक्तमपि रसनस्यातिदुर्जयत्वज्ञापनायोच्यत इति विशेष ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्रियाणि इत्यादि दो श्लोकों से रसनेन्द्रिय के दुर्जयत्व का प्रतिपादन करते हैं । कहने का अभिप्राय है कि यदि कोई भोजन करना बन्द कर दे तो इन्द्रियाँ तो वश में हो जाती है किन्तु रसनेन्द्रिय वश में नहीं होती है । बल्कि उपवास के समय रसनेन्द्रिय अत्यधिक तेज हो जाती है । जब मनुष्य भोजन करने लग जाता है । तो फिर रसासक्ति के कारण सभी इन्द्रियों में क्षोभ हो जाता है । अतएव चाहिए यह कि रस की आसक्ति को त्यागकर औषध के समान भोजन करे । वह प्राणों की वृत्ति से ही सन्तुष्ट रहे । यहाँ पर कहे गये रसनेन्द्रिय के दुर्जयत्व का बोध कराने के लिए कहा गया है ॥२०॥

तावज्जितेन्द्रियो न स्याद्विजितान्येन्द्रिय: पुमान् । न जयेद्रसनं यावज्जितं सर्वं जिते रसे ॥२१॥

अन्वय:— विजितान्येन्द्रिय: पुन: तावज्जितेन्द्रिय: न स्यात् यावद्रसंन न जयेत् । रसेजिते सर्वं जितम् ॥२१॥

अनुवाद— दूसरी इन्द्रियों के वश में हो जाने पर भी मनुष्य तब तक जितेन्द्रिय नहीं होता है जब तक कि रसनेन्द्रिय वश में न हो जाय । रसनेन्द्रिय के वश में हो जाने पर सभी इन्द्रियाँ वश में हो ही जाती है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

पिङ्गला नाम वेश्यासीद्विदेहनगरे पुरा । तस्य मे शिक्षितं किंचिन्निबोध नृपनन्दन ॥२२॥

अन्वय:— हे नृपनंदन विदेह नगरे पिङ्गलानाम वेश्या आसीत् तस्या: अहं किञ्चित् शिक्षितं निबोध ॥२२॥

अनुवाद— हें नृपनन्दन विदेह की नगरी में पिङ्गला नाम की वेश्या थी उससे मैंने कुछ सीखा है, उसे आप जान लें ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

पिङ्गलाया नैराश्यं शिक्षितमिति वक्तुं तदाख्यानमाह-पिङ्गलेत्यादिना मे मया शिक्षितम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

पिङ्गला नामक वेश्या से निराशा मैंने सीखा है इस बात को बतलाने के लिए उसकी कथा **पिङ्गला० इत्यादि** श्लोक से कही गयी है । मैंने सीखा है ॥२२॥

सा स्वैरिण्येकदा कान्तं संकेत उपनेष्यती । अभूत्काले बहिर्द्वारि बिभ्रती रूपमुत्तमम् ॥२३॥

अन्वय:— सा स्वैरिणी एकदा कान्तं संकेते उपनेष्यती काले उत्तमम् रूपम् विभ्रती दारि बहिरभूत् ॥२३॥

अनुवाद— वह वेश्या थी एक दिन किसी पुरुष को अपने रमण स्थान पर लाने के लिए खूब सज-धजकर कर अपने द्वार पर खड़ी रही ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

स्वैरिणी कामचारिणी । संकेते रतिस्थाने ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

स्वैरिणी अर्थात् वेश्या, सङ्केते अर्थात् रमण स्थान पर ॥२३॥

मार्ग आगच्छतो वीक्ष्य पुरुषान्पुरुषर्षभ । तान् शुल्कदान्वित्तवतः कान्तान्मेनेऽर्थकामुका ॥२४॥

अन्वयः— हे पुरुषर्षभ, मार्गे आगच्छतः पुरुषान् वीक्ष्य सा अर्थकामुका तान् वित्तवतः शुल्कदान् कान्तान् मेने॥२४॥

अनुवाद— हे पुरुषश्रेष्ठ मार्ग में आने वाले पुरुषों को देखकर वह उसे धनवान् तथा शुल्क देने वाला है। मुझे धन देकर मेरा उपभोग करने वाला है । वह धन चाहती थी यह मानती थी ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तान्वित्तवतः सधनानत एव शुल्कदान्मूल्यदान् । कान्तान्सुरतार्हान् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

उन सबों को धनी और उपभोग करने वाला समझती थी ॥२४॥

आगतेष्वपयातेषु सा संकेतोपजीविनी । अप्यन्यो वित्तवान्कोऽपि मामुपैष्यति भूरिदः ॥२५॥

अन्वयः— आगतेषु अपयातेषु सङ्केतोपजीविनी सा अन्यः अपि कोऽपि भूरिदः वितवान् माम् उपैष्यति ॥२५॥

अनुवाद— आकर चले जाने पर वह संकेतोपगी जीविनी यह सोचती थी कोई दूसरा आयेगा जो मुझे बहुत धन देकर मेरा उपभोग करेगा ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अपिः संभावनायाम् । अन्योऽपि मामुपैष्यत्यैवं दुराशयेत्युत्तरेणान्वयः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

अपि यह अव्यय सम्भावना के अर्थ में है दूसरा भी कोई आयेगा इस तरह दुराशा के कारण इस तरह से आगे के श्लोक से अन्वय है ॥२५॥

एवं दुराशया ध्वस्तनिद्रा द्वार्यवलम्बती । निर्गच्छन्ती प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥२६॥

अन्वयः— एवं दुराशया ध्वस्तनिद्रा द्वरि अवलम्बती निर्गच्छति प्रविशती निशीथं समपद्यत ॥२६॥

अनुवाद— इस तरह की दुराश के कारण उसकी नींद जाती रही । वह अपने द्वार पर खड़ी रही । वह कभी भीतर जाती थी कभी बाहर आती थी इस तरह आधी रात हो गयी ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

द्वार्यवलम्बाना पुनः प्रविशति पुनर्निर्गच्छन्ती एवं कुर्वती । निशीथमर्धरात्रं प्राप ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

दरवजे पर खड़ी रहने वाली वह कभी घर में जाती थी और फिर निकलकर बाहर आती थी उसके इस तरह करते हुए आधी रात हो गयी ॥२६॥

तस्या वित्ताशया शुष्यद्वक्त्राया दीनचेतसः । निर्वेदः परमो जज्ञे चिन्ताहेतुः सुखावहः ॥२७॥

अन्वयः— तस्याः वित्ताशया शुष्यद्वक्त्रायाः दीनचेतसः परमो निर्वेदः चिन्ताहेतुः सुखावहः जज्ञे ॥२७॥

अनुवाद— धन की आशा करते-करते उसका मुँह सूखने लगा। चित्त व्याकुल हो गया। उसे इस वृत्ति से बड़ा ही वैराग्य उत्पन्न हो गया। उसके इस वैराग्य का कारण चिन्ता ही थी किन्तु ऐसा भी वैराग्य सुखद ही होता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

निर्वेदोऽलंबुद्धिः वित्तचिन्तैव हेतुर्यस्य सः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

निर्वेद अर्थात् वैराग्य उस वैराग्य का कारण भी धन की चिन्ता ही थी ॥२७॥

तस्या निर्विण्णचित्तायां गीतं शृणु यथा मम। निर्वेद आशापाशानां पुरुषस्य यथा ह्यसिः ॥२८॥

अन्वयः— निर्विण्णचित्तायाः तस्या यथाममगीतं शृणु पुरुषस्य आशापाशानां निर्वेदः असिः यथा ॥२८॥

अनुवाद— जिसके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया था उस पिङ्गला के गीत को तुम सुनो मैं सुनाता हूँ। मनुष्य आशा के पाश में बँधा है उसके इस आशापाश के काटने का काम निर्वेदरूप तलवार ही करता है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

यथा यथावत। मम मत्तः शृण। ननु किं निर्विण्णाया गीतश्रवणेन तत्राह-हि यस्मात्पुरुषस्याशापाशानां निर्वेदोऽसिर्यथा तथा छेत्ता ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

यथा अर्थात् यथावत्। मम अर्थात् मुझसे सुनो। उस वैराग्य प्राप्त वेश्या के गीत सुनने से कौन लाभ है ? इस पर कहते हैं क्योंकि निर्वेद, पुरुष के आशा रूपी पाश को तलवार के समान कटने वाला है ॥२८॥

न ह्यङ्गाजातनिर्वेदो देहबन्धं जिहासति। यथा विज्ञानरहितो मनुजो ममतां नृप ॥२९॥

अन्वयः— हे अङ्ग नहि जातनिर्वेदः देह बन्धं न जिहासति यथा विज्ञान रहितो मनुजः ममतां न जिहासति ॥२९॥

अनुवाद— राजन् जिसे वैराग्य नहीं हुआ है तथा इस प्रपञ्च से जो ऊबा नहीं है वह शरीर और उसके बन्धन को उसी तरह नहीं छोड़ना चाहता है जिस तरह अज्ञानी पुरुष ममता के बन्धन को नहीं त्यागना चाहता है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः- न हीति। अङ्ग हे राजन् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

उसके कारण को **नह्यङ्ग० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। अङ्ग अर्थात् हे राजन् ॥२९॥

पिङ्गलोवाच

अहो मे मोहविततिं पश्यताऽविजितात्मनः। या कान्तादसतः कामं कामये येन बालिशा ॥३०॥

अन्वयः— अहो अविजितात्मनः मे मोहं पश्यत येन अहं या बालिशा असतः कान्तात् कामं कामये ॥३०॥

पिङ्गला ने कहा

अनुवाद— अरे मैं इन्द्रियों के अधीन हो गयी। भला मेरे मोह का विस्तार तो देखो। मैं इन दुष्ट विषयी पुरुषों से विषय सुख की अभिलाषा कर रही हूँ। वस्तुतः मैं मूर्ख हूँ ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

अविजितात्मत्वे हेतुः-याऽहं बलिशा विवेकशून्या तस्याः। कुतः। येन कारणेनासतस्तुच्छान्नरात्कामं कामये ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अजितेन्द्रिय होने में कारण बतलाती है। मैं तो वस्तुतः मूर्ख हूँ इसीलिए तो मैं तुच्छ पुरुषों से अपनी कामना की पूर्ति करना चाहती हूँ ॥३०॥

सन्तं समीपे रमणं रतिप्रदं वित्तप्रदं नित्यमिमं विहाय ।
अकामदं दुःखभयाधिशोकमोहप्रदं तुच्छमहं भजेऽज्ञा ॥३१॥

अन्वयः— समीपे सन्तं रमणं रतिप्रदं वितप्रदं नित्यम् इमं रमणं विहाय अकामदं दुःखभयाधिशोकमोहप्रदं तुच्छम् अहम अज्ञा भजे ॥३१॥

अनुवाद— मेरे सच्चे स्वामी श्रीभगवान् तो मेरे हृदय में विद्यमान हैं। वे अत्यन्त सन्निकट में हैं। वे ही वास्तविक प्रेम, सुख और परमार्थ रूप सच्चा धन प्रदान करने वाले हैं वे नित्य हैं और जगत् के पुरुष तो अनित्य हैं। उनको छोड़कर मैं उन तुच्छ मनुष्यों की मैंने सेवा की है वे सब तो मेरी एक भी कामना पूरी नहीं कर सकते हैं। वे सब तो मुझको शोक भय आधि व्याधि शोक तथा मोह ही प्रदान करते हैं। यह मेरी अत्यन्त मूर्खता है कि मैं उन सबों की ही सेवा करती हूँ ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

बालिशत्वं प्रपञ्चयति-सन्तमिति चतुर्भिः। समीपे संतमन्तर्यामित्वात्। इममपरोक्षमीश्वरम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

अपनी मूर्खता का विस्तार से वर्णन **सन्तम् इत्यादि** चार श्लोक से करती है। परमात्मा अन्तर्यामी होने के कारण अत्यन्त समीप हैं। इमम् अथा अपरोक्ष स्वामी ईश्वर को ॥३१॥

अहो मयात्या परितापितो वृथा सांकेत्यवृत्त्यातिविगर्ह्यवार्तया ।
स्त्रैणान्नराद्यार्थतृषोऽनुशोच्यात्क्रीतेन वित्तं रतिमात्मनेच्छती ॥३२॥

अन्वयः— अहो सांकेत्यवृत्या अति विगह्र्यवार्तया मया वृथा आत्मा परितापितः स्त्रैण्यात् नरात् या अर्थतृषः अनुशोच्यात् क्रीतेन वित्तम् आत्मनेरतिम् इच्छतीम् ॥३२॥

अनुवाद— यह अत्यन्त खेद का विषय है कि मैंने अत्यन्त निन्दनीय आजीविका वेश्यावृत्ति को लिया है और व्यर्थ में ही अपने शरीर और मन को क्लेश पहुँचाया है। मेरा यह शरीर बिक गया है। लम्पट लोभी और निन्दित लोगों ने इसको खरीदा है। मैं इतना मूर्ख हूँ कि इसी शरीर से मैं धन और रति चाहती हूँ। धिक्कार है मुझको ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

अतिविगर्ह्यातिनिन्द्या या वार्ता जीविका तया। कुतः। सांकेत्येन या वृत्तिस्तया। बहुव्रीहिणा स्वविशेषणं वा। परितापं प्रपञ्चयति-स्त्रैणादिति। स्त्रीलम्पटादथ चार्थतृषो लुब्धादत एवानुशोच्यान्नराद्याहं वित्तं रतिं चेच्छती मया वृथात्मा परितापितः। केन वित्तमिच्छती, तेन नरेण क्रीतेन स्वयं विक्रीतेनात्मना देहेन ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त निन्दनीय जीविका के द्वारा। क्योंकि, वेश्यावृत्ति से अथवा बहुब्रीहि समास के द्वारा यह स्व का विशेषण है। अपने होने वाला संताप का विस्तार **स्त्रैणात्० इत्यादि** से करती है। स्त्रीलम्पट लोभी एवं शोचनीय पुरुषों से मैं धन और रति चाहती हूँ। मैंने अपने शरीर अथवा मन को व्यर्थ ही संतप्त किया है। जिसने मेरे शरीर खरीदा है उसी से मैं धन चाहती हूँ। अथवा बिके हुए शरीर से मैं धन चाहती हूँ ॥३२॥

यदस्थिभिर्निर्मितवंशवंश्यस्थूणं त्वचा रोमनखैः पिनद्धम् ।
क्षरन्नवद्वारमगारमेतद्विण्मूत्रपूर्णं मदुपैति कान्या ॥३३॥

अन्वयः— यदस्थिभिः निर्मितवंशवंश्य स्थूणं त्वचा रोमनखैः पिनद्धम् क्षरन्नवद्वारमगारमेतत् विण्मूत्रपूर्णं मदुपैति कान्या ॥३३॥

अनुवाद— शरीर एक घर है, इसमें हड्डी के टेढे तीरछे बांस और स्तम्भ लगे हैं, यह चमड़े रोओं और नखों से छाया गया है । इस घर में नवद्वार हैं जिनसे सदा मल ही निकलते रहते हैं । यह शरीर मल-मूत्र से भरा है मुझको छोड़कर कौन स्त्री होगी जो इस शरीर को अपना समझकर इसका सेवन करेगी ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अहो धिङ्मां याहमतिबीभत्सितं भजामीत्याह-यदिति । वंशो नाम स्थूणासु निहितस्तिर्यग्वेणुः । वंश्यास्तस्मिन्नुभयतो निहिता वेणवः । अस्थिभिरेव निर्मिता वंशादयो यस्मिंस्तत् । तत्र पृष्ठे दीर्घमस्थि यत्स वंशः । पार्श्वास्थीनि वंश्यानि । स्थूणा हस्तपादास्थीनि । तथा रोमभिर्नखैश्च पिनद्धं छादितम् । तथापि क्षरन्ति नवद्वाराणि यस्मिंस्तत् । एवंभूतागाररूपं नृशरीरमेतन्मत् मत्तोऽन्या का वा कान्तबुद्ध्या उपैति सेवते ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

अरे मुझको धिक्कार है कि मैं अत्यन्त निन्दित शरीर की सेवा कर रही हूँ । इस बात को **यत् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । स्तम्भों में लगाये गये तिरछे बाँस को वंश कहा जाता है । उसमें दोनों ओर से लगाये गये बाँसों बाँसो को वश्य कहते हैं इस शरीर में हड्डियों से वंश आदि बनाये गये हैं । पीठ में जो लम्बी हड्डी है वही वंश हैं। उसके बगल में विद्यमान हड्डियाँ वंश्य हैं । हाथ, पैर इत्यादि ही स्थूणा है । वह रोओं और चमड़ों से ढँका हुआ है। शरीर में विद्यमान नवद्वार मल क्षरण करते है । इस प्रकार का यह मानव शरीर जो है, उसको मुझको छोड़कर कान्त की दृष्टि से दूसरी कौन स्त्री सेवन करती है ॥३३॥

विदेहानां पुरे ह्यस्मिन्नहमेकैव मूढधीः । यऽन्यमिच्छन्त्यसत्यस्मादात्मदात्काममच्युतात् ॥३४॥

अन्वयः— विदेहानां अस्मिन् पुरे अहम् एकैव मूढधी यान्यम् इच्छन्ती असत्यस्मात् आत्मदात् काममच्युतात् ॥३४॥

अनुवाद— यह विदेहों जीवनमुक्तों की नगरी है । इस नगरी में केवल मैं ही मूर्ख हूँ । क्योंकि मैं ही परमप्रियतम आत्मदानी परमात्मा को छोड़कर दूसरे पुरुषों की अभिलाषा करती हूँ ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

सत्सङ्गतौ सत्यामप्यहो मम मोह इत्याह-विदेहानामिति । याहमसती अच्युतादन्यं कामं भोगमिच्छन्ती सा ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

सत्पुरुषों की सङ्गति होने पर भी मुझको अज्ञान बना ही है यह अत्यन्त निन्द्य है । इस बात को **विदेहानाम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । मैं इतना मूर्ख हूँ कि अपने भक्तों को काल के भय से मुक्त करने वाले भगवान् अच्युत को छोड़कर दूसरे से काम और भोग प्राप्त करना चाहती हूँ ॥३४॥

सुहृत्प्रेष्ठतमो नाथ आत्मा चायं शरीरिणाम् । तं विक्रीयात्मनैवाहं रमेऽनेन यथा रमा ॥३५॥

अन्वयः— अयं नाथ सुहृत्, प्रेष्ठतमः शरीरिणाम् अयम् आत्मा, तम् अहम् आत्मनैव विक्रीय अनेन रमा यथ रमे ॥३५॥

अनुवाद— मेरे हृदय में विद्यमान मेरे स्वामी सबों के स्वामी हितैषी और प्रियतम है ये सभी शरीरधारियों की आत्मा हैं । मैं अपने को इन्हीं को समर्पित करके इन्हें खरीद लूँगी और जिस तरह लक्ष्मी जी इनके साथ विहार करती हैं, उसी तरह मैं इनके साथ विहार करूँगी ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

एवं निर्विण्णा सती अतः परमेवं करिष्यामीत्याह-सुहृदिति । अयमीश्वरः । आत्मनैवात्मानमेव निवेद्य तं विक्रीय विशेषेण क्रीत्वाऽनेनैव सह रमे । रमा लक्ष्मीर्यथा ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह संसार से विरक्त होकर मैं इसके पश्चात् ऐसा करूँगी इस बात को **सुहृत्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। अयम् शब्द से वह हृदय में विद्यमान परमेश्वर को निर्देश करती है । अपने को ही निवेदित करके उन श्रीभगवान् को विशेष रूप से खरीदकर उनके साथ उसी तरह से विहार करूँगी जैसे लक्ष्मी जी उनके साथ विहार करती हैं ।।३५।।

कियत्प्रियं ते व्यभजन्कामा ये कामदा नराः । आद्यन्तवन्तो भार्याया देवा वा कालविद्रुताः ।।३६।।

अन्वयः— ये कामदा नराः ते कियत् प्रियं कामा व्यभजन् आद्यन्तवन्तः भार्यायाः देवा वा कालविद्रुताः ।।३६।।

अनुवाद— वह अपने मन से कहती है, अरे मेरे मन जगत् के विषय भोगों ने तथा उनको देने वाले लोगों ने तुमको कितना सुख दिया है, वे जब स्वयम् जन्म लेने और मरने वाले है, उन लोगों ने अपनी पत्नियों को कितना सुख प्रदान किया है । मनुष्य ही क्या देवता भी तो काल के गाल में पड़े हुए कष्टानुभव कर रहे हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

अन्यस्यासेव्यत्वं दर्शयति-कियदिति । आद्यन्तवन्तो ये कामा विषयाः कामदा नरा वा देवा वा कालकलिता भार्यायाः कियत्प्रियं कृतवन्तो न किंचित् । अतो नेहामुत्र च तद्व्यतिरिक्तः कोऽपि सेव्योऽस्तीत्यर्थः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मव्यत्तिरिक्त असेव्यत्व का प्रतिपादन करती हुई वह अपने मन से ही पूछती है जितनी भी कामनाएँ भोग के विषय तथा कामनाओं को पूरा करने वाले देवता अथवा मनुष्य हैं उन सबों की उत्पत्ति और मृत्यु होती है, वे स्वयं ही काल के शिकार बने हैं ? वे देवता अथवा मनुष्य अपनी पत्नियों का कितना प्रिय कार्य कर सके। अतएव इस लोक में अथवा परलोक में परमात्मा से भिन्न कोई भी सेवनीय नहीं है ।।३६।।

नूनं मे भगवान्प्रीतो विष्णुः केनापि कर्मणा । निर्वेदोऽयं दुराशाया यन्मे जातः सुखावहः ।।३७।।

अन्वयः— नूनं भगवान् विष्णु केनापि कर्मणा प्रीतः यत मे दुराशायाः सुखावहः निर्वेद जातः ।।३७।।

अनुवाद— निश्चित रूप से मेरे किसी कर्म के फलस्वरूप मुझ पर भगवान् विष्णु प्रसन्न हुए हैं जिसके कारण मुझे दुराशा से इस प्रकार का वैराग्य हुआ है । यह वैराग्य मुझको सुख प्रदान करने वाला है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

एवं निश्चित्य स्वभाग्यमभिनन्दति-नूनमिति । दुष्टा आशा यस्यास्तस्या मे ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से निश्चित करके वह अपने भाग्य की सराहना करती है मेरी दोष दूषित आशा रूप दुराशा से वैराग्य पैदा हुआ है ।।३७।।

मैवं स्युर्मन्दभाग्यायाः क्लेशा निर्वेदहेतवः । येनानुबन्धं निर्हृत्य पुरुषःशममृच्छती ।।३८।।

अन्वयः— मन्दभाग्यायाः निर्वेदहेतवः क्लेशाः न स्युः । येन अनुबन्धं निर्हृत्य पुरुषः शममृच्छति ।।३८।।

अनुवाद— यदि मुझ मन्द भाग्य वाली को क्लेश के कारण निर्वेद (वैराग्य) नही उत्पन्न हुआ होता । वैराग्य के द्वारा ही मनुष्य गृह आदि अनुबन्धों का परित्याग करके शान्ति को प्राप्त करता है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

ननु धनाप्राप्त्या क्लिष्टासि, कथं विष्णुः प्रीतस्तत्राह-मैवमिति । मन्दभाग्या चेदहं स्यां तर्ह्येव निर्वेदहेतवः क्लेशा न स्युरित्यर्थः । येन निर्वेदेनानुबन्धं गृहादिकं निर्हृत्य परित्यज्य ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि धन नहीं प्राप्त होने के कारण तुम दुःखी हो गयी हो । उसमें भगवान् विष्णु कैसे प्रसन्न हो गये इस पर मैवम् इत्यादि श्लोक कहती है यदि मैं मन्दभाग्य वाली होती तो मुझे वैराग्य के कारणभूत क्लेश नहीं होता उस वैराग्य के द्वारा ही मनुष्य घर इत्यादि का परित्याग शान्ति को प्राप्त करता है ।।३८।।

तेनोपकृतमादाय शिरसा ग्राम्यसंगताः । त्यक्त्वा दुराशाः शरणं व्रजामि तमधीश्वरम् ।।३९।।

अन्वयः— तेन उपकृतम् शिरसा आदाय ग्राम्यसंगताः दुराशाः त्यक्त्वा तमधीश्वरं शरणं व्रजामि ।।३९।।

अनुवाद— उस परमात्मा के द्वारा किए गये उपकार को मैं शिर झुकाकर स्वीकार करती हूँ । और विषय भोगों की दुराशा का त्याग करके उन्हीं जगदीश्वर की शरण ग्रहण करती हूँ ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

अतस्तेन श्रीविष्णुनोपकृतं कृतमुपकारं निर्वेदलक्षणम् । ग्राम्येषु नरेषु विषयेषु वा सङ्गताः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

अतएव उन भगवान् विष्णु के द्वारा किया गया उपकार वैराग्य स्वरूप है । अब मैं ग्राम्य विषयो पर मनुष्यों की सङ्गति से होने वाली भोगाभिलाषा का परित्याग करती हूँ ।।३९।।

संतुष्टा श्रद्दधत्येतद्यथालाभेन जीवति । विहराम्यमुनैवाहमात्मना रमणेन वै ।।४०।।

अन्वयः— यथा लाभेन जीवति एतत् संतुष्टा श्राद्दधती अमुनैव अहम् आत्मना रमणेन वै विहरामि ।।४०।।

अनुवाद— अब मुझे प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ भी मिल जायेगा उसी से निर्वाह करूँगी तथा सन्तोष एवं श्रद्धा पूर्वक रहूँगी । अब मैं किसी दूसरे पुरुष की ओर नहीं देखकर अपने हृदय में विद्यमान आत्म स्वरूप श्रीहरि के ही साथ विहार करूँगी ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

कथं व्रजसि तदाह-संतुष्टेति ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई पूछे कि भगवान् के शरण में कैसे जाती हो तो इसका उत्तर है संतोष पूर्वक ।।४०।।

संसारकूपे पतितं विषयैर्मुषितेक्षणम् । ग्रस्तं कालाहिनात्मानं कोऽन्यस्त्रातुमधीश्वरः ।।४१।।

अन्वयः— संसार कूपे पतितं विषयै मुषितेक्षणम्, कालाहिना ग्रस्तं आत्मानं त्रातुमधीश्वरः अन्य कः ?।।४१।।

अनुवाद— यह जीव संसार रूपी कुएँ में गिरा हुआ है, विषयों ने इसे अन्धा बना दिया है, काल रूपी अजगर ने इसे अपने मुख में रख लिया है ऐसी स्थिति में इसको श्रीभगवान् को छोड़कर दूसरा कौन बचाने में समर्थ हैं।।४१।।

भावार्थ दीपिका

ननु ब्रह्मादीन्हित्वा अमुनैवेति कोऽयं नियमस्तत्राह-संसारेति । मुषितेक्षणमपहृतविवेकम् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि ब्रह्मा आदि देवताओं को छोड़कर श्रीभगवान् के साथ ही विहार करने का कौन सा नियम है ? इस पर कहती है । विषयों ने जीव के विवेक को विनष्ट कर दिया है ।।४१।।

आत्मैव ह्यात्मनो गोप्ता निर्विद्येत यदाखिलात् । अप्रमत्त इदं पश्येद्ग्रस्तं कालाहिना जगत् ।।४२।।

अन्वयः— यदा अखिलात् निर्विद्येत आत्मैव हि आत्मनः गोप्ता, अप्रमतः इदं जगत् कालाहिना ग्रस्तं पश्येत् ।।४२।।

अनुवाद— जब मनुष्य सभी विषयों से विरक्त हो जाता है तो वह अपनी रक्षा स्वयं कर लेता अतएव बड़ी ही सावधानी के साथ इस सम्पूर्ण जगत् को कालरूपी सर्प से ग्रस्त देखना चाहिए ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि किमात्मत्राणोपाधिना तं भजिष्यसि, न, तत्र सर्वतो निर्विद्य भगवद्भजने प्रवृत्तस्यात्मन एव समर्थत्वादित्याह-आत्मैवेति । यदा एवं जगत्पश्येत्ततश्चाप्रमत्तः सन्निखिलादिहामुत्र च भोगान्निर्विद्येत तदा ह्यात्मनैवात्मनो गोप्तेत्यन्वयः । अतः केवलं प्रेम्णैव भजामीति भावः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि क्या अपनी आत्मरक्षा रूपी उपाधि के कारण परमात्मा का भजन करोगी ? तो ऐसी बात नहीं है सम्पूर्ण विषयों से विरक्त भगवद् भजन करने पर जीवात्मा अपनी रक्षा करने में स्वयं समर्थ हो जाता है । इस बात को **आत्मैव इत्यादि** से कहा गया है । जब भगवद् भक्त सावधानी पूर्वक सम्पूर्ण जगत् को काल रूपी सर्प के मुख में प्रविष्ट देखेगा उसको सम्पूर्ण लौकिक एवं पारलौकिक भोगों से विराग हो जाता है । उस स्थिति में वह अपना रक्षक स्वयं हो जाता है । अतएव केवल परमात्मा का ही भजन मैं प्रेम पूर्वक करती हूँ ।।४२।।

ब्राह्मण उवाच

एवं व्यवसितमतिर्दुराशां कान्ततर्षजाम् । छित्त्वोपशममास्थाय शय्यामुपविवेश सा ।।४३।।

अन्वयः— एवं व्यसितमतिः सा कान्ततर्षजां दुराशां छित्वा उपशमम् आस्थाय शय्यामुपविवेश ।।४३।।

अवधूत भगवान् दत्तत्रेय जी ने कहा

अनुवाद— राजन् पिङ्गला ने इस तरह अपना सुदृढ निश्चय कर लिया अपने प्रिय धनिकों से मिलने की लालसा का त्याग कर दिया वह शान्त भाव से जाकर अपनी शय्या पर सो गयी ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

कान्तस्य तर्षोऽभिलाषस्ततो जातम् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

अपने प्रियतम से मिलने की अभिलाषा से उत्पन्न वैराग्य ।।४३।।

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् । यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला ।।४४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे पिङ्गलोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ।।८।।

अन्वयः— आशा एवं परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् यथा पिङ्गला कान्ताशां परित्यज्य सुखं सुष्वाप ।।४४।।

अनुवाद— वस्तुतः आशा ही बड़ा दुख है और नैराश्य सबसे बड़ा सुख है । इस तरह से पिङ्गला ने पुरुषों से मिलने की आशा छोड़ दी और जाकर सुख पूर्वक सो गयी ।।४४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

भावार्थ दीपिका

फलितमाह-आशा हीति ।।४४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टमोऽध्यायः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

पिङ्गला के वैराग्य का फल **आशाहि इत्यादि** *श्लोक से कहा गया है* ।।४४।।

तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के आठवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।८।।

* * *

नवाँ अध्याय

अवधूतोपाख्यान कुरर से लेकर भृंगी तक के सात गुरुओं की कथा

ब्राह्मण उवाच

परिग्रहो हि दुःखाय यद्यत्प्रियतमं नृणाम् । अनन्तं सुखमाप्नोति तद्विद्वान्यस्त्वकिञ्चन ॥१॥

अन्वयः— नृणाम् यद्‌यत् प्रियतमं परिग्रहो हि दुःखाय तद् विद्वान् अनन्तं सुखम् आप्नोति यस्तु अकिञ्चन ॥१॥

अवधूत भगवान् दत्तात्रेयजी ने कहा

अनुवाद— मनुष्य को जो-जो प्रिय उसका संग्रह करना दुःख का कारण होता है। जो विद्वान् पुरुष यह समझकर कि परिग्रह दुःखद होता है, उसको परम सुख की प्राप्ति होती है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

नवमे कुररादिभ्यो देहतश्चोपशिक्षितम्। श्रुत्वा यदुः कृतार्थोऽभूदिति कृष्णेन वर्णितम्। कुरराच्छिक्षितमाह-परिग्रहो हीति। यद्यत्प्रियतमं तस्य तस्य परिग्रहः। तद्विद्वान् परिग्रहो दुःखमिति विद्वान्सन्, यस्त्वकिंचनस्त्यक्तपरिग्रहो न तु दरिद्रः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

नवें अध्याय में कुरर से लेकर देह पर्यन्त के गुरुओं से प्राप्त शिक्षा का वर्णन अवधूत दत्तात्रेयजी ने किया। उसे सुनकर महाराज यदु कृतकृत्य हो गये। इस तरह से भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजी को बतलाये। **परिग्रहो हिदुःखाय** इस श्लोक मे कुरर पक्षी से प्राप्तशिक्षा का वर्णन किया गया है। जो-जो वस्तु अत्यन्त प्रियतम हो उसका उसका संग्रह करना उस परिग्रह को दुःखमय जानने विद्वान् अकिञ्चन हो जाता है, दरिद्र नहीं ॥१॥

सामिषं कुररं जघ्नुर्बलिनो ये निरामिषाः । तदामिषं परित्यज्य स सुखं समविन्दत ॥२॥

अन्वयः— सामिसं कुररं बलिनः निरामिषः जघ्नुः तदामिषं परित्यज्य स सुखसमविन्दत ॥२॥

अनुवाद— एक कुररपक्षी अपनी चोंच में मांस का टुकड़ा लिए था। दूसरे बलवान् पक्षी जिनके पास मांस नहीं था वे उसका चोंच से मारने लगे और जब वह उस मांस के टुकड़े से छोड़ दिया तो वह सुखी हो गया॥२॥

भावार्थ दीपिका

तदाह-सामिषमिति ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उसी बात को सामिषम्० इत्यादि श्लोक से कहा गया है ॥२॥

न मे मानावमानौ स्तो न चिन्ता गेहपुत्रिणाम् । आत्मक्रीड आत्मरतिर्विचरामीह बालवत् ॥३॥

अन्वयः मे मानावमानौ न स्तः गेहपुत्रिणाम् चिन्ता न, आत्मक्रीडः आत्मरतिः इह बालवत् विचरामि ॥३॥

अनुवाद मुझको मान एवं अपमान की कोई परवाह नहीं है । घर परिवार वालों को जो चिन्ता होती है, वह भी मुझे नहीं है । मैं अपनी आत्मा में ही क्रीडा करता हूँ, आत्मा से ही प्रेम करता हूँ और मैं इस संसार में बालक के समान विचरण करता हूँ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अर्भकशिक्षामाह-नेति । गेहपुत्रिणां तद्वतां या भवति चिन्ता सा च मे नास्ति । आत्मनैव क्रीडा यस्य । आत्मनि रतिः प्रीतिर्यस्य सः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

बालक से प्राप्त होने वाली शिक्षा को उन्होंने बतलाया जिन लोगों के पास अपना घर है और पुत्र हैं उन लोगों को भी होने वाली चिन्ता मुझे नहीं है । मैं अपनी आत्मा के साथ क्रीडा करता हूँ और आत्मा से ही प्रेम करता हूँ ॥३॥

द्वावेव चिन्तया मुक्तौ परमानन्द आप्लुतौ । यो विमुग्धो जडो बालो यो गुणेभ्यः परं गतः ॥४॥

अन्वयः— द्वौ एव चिन्तया मुक्तौ परमानन्दे आप्लुतौ । यः विमुग्ध जड़ बालः यः गुणेभ्यः परंगतः ॥४॥

अनुवाद— इस लोक में दो ही प्रकार के लोग चिन्तामुक्त रहकर आनन्द सागर में गोते लगाते हैं । एक तो भोला भाला निश्चेष्ट बालक और दूसरा वह जो ज्ञान की पराकाष्ठा पर पहुँचकर गुणातीत हो गया है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

नन्वज्ञसर्वज्ञयोः किं सादृश्यं नैश्चिन्त्यं परमसुखमित्याह-द्वाविति । विमुग्धोऽज्ञः जडोऽनुद्यमः एवं भूतो यो बालो यश्च प्रकृतेः परमीश्वरं प्राप्तस्तौ द्वौ ॥४॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि अज्ञ एवं सर्वज्ञ में कौन सी समता है इसके उत्तर में कहा गया है निश्चितता रूपी परम सुख की ही समानता होती है । इस बात को **द्वौ० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । अत्यन्त ज्ञान रहित तथा उद्यम रहित बालक तथा जो प्रकृति से परे परमात्मा को प्राप्त कर लिए है वे जीव । ये दोनों परमानन्द में मग्न रहते हैं ॥४॥

क्वचित्कुमारी त्वात्मानं वृणानान्गृहमागतान् । स्वयं तानर्हयामास क्वापि यातेषु बन्धुषु ॥५॥

अन्वयः— क्वचित् कुमारी तु आत्मानं वृणानान् गृहम् आगतान् बन्धुषु क्वापि यातेषु स्वयं तान् अर्हयामास ॥५॥

अनुवाद— एक बार किसी कुमारी कन्या के घर उसका वरण करने के लिए कुछ लोग आये थे । उस दिन उसके घर के लोग कही बाहर गये थे । अतएव उन आये हुए लोगों का उसने स्वयम् अतिथ्य सत्कार किया ॥५॥

भावार्थ दीपिका

कुमार्याः शिक्षितं वक्तुमाख्यायिकामाह-क्वचिदित्यादिना । वृणानान् स्ववरणायागतान् । बन्धुषु पित्रादिषु ॥५॥

भाव प्रकाशिका

कुमारी के द्वारा प्राप्त शिक्षा का वर्णन करने के लिए क्वचित् इत्यादि श्लोक के द्वारा आख्यायिका का वर्णन करते हैं । वृणानान् उसका वरण करने के लिए आये हुए । बन्धुषु अर्थात् पिता आदि के ॥५॥

तेषामभ्यवहारार्थं शालीन्रहसि पार्थिव । अवघ्नन्त्याः प्रकोष्ठस्थाश्चक्रुः शङ्खाः स्वनं महत् ॥६॥

अन्वयः— हे पार्थिव ! तेषाम् अभ्यवहारार्थम् रहसि शालीन् अवघ्नन्त्याः प्रकोष्ठस्थाः शङ्खाः महत् स्वनं चक्रुः ॥६॥

अनुवाद— हे राजन् ! उन सबों को भोजन कराने के लिए वह एकान्त में धान कूटने लगी किन्तु उस समय उसकी कलाई में पड़ी हुई शङ्ख की चूड़ियाँ जोर-जोर से शब्द करने लगीं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

शङ्खाः शङ्खवलयाः महद्यथा भवति तथा स्वनं चक्रुः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

शङ्खाः अर्थात् शङ्ख की चूड़ियाँ जोर-जोर से शब्द करने लगीं ॥६॥

सा तज्जुगुप्सितं मत्वा महती व्रीडिता ततः । बभञ्जैकैकशः शङ्खान्द्वौ द्वौ पाण्योरशेषयत् ॥७॥

अन्वयः— सा तत् जगुप्सितं मत्वां महती व्रीडिता ततः एकैकशः शङ्खान् बभञ्ज, पाण्योः द्वौ–द्वौ अशेषयत् ॥७॥

अनुवाद— वह कुमारी उस ध्वनि को लज्जाजनक मानकर अधिक लज्जित हुई । उसने एक-एक करके सभी चूड़ियों को तोड़ दिया और दोनों हाथों में दो-दो चूड़ियाँ रहने दी ॥७॥

भावार्थ दीपिका

सा महती बुद्धिमती । तत्स्वयं शाल्यवहननम् । जुगुप्सितं दरिद्रताद्योतकम् । एकैकशः क्रमेणैकमेकं बभञ्ज स्वकरादपसारितवती ॥७॥

भाव प्रकाशिका

वह कुमारी बुद्धिमान थी । स्वयं धान कूटना दरिद्रता का द्योतक है । उसने एक-एक करके सभी चूड़ियों को हाथ से निकाल दिया ॥७॥

उभयोरप्यभूद्घोषो ह्यवघ्नन्त्याः स्म शङ्खयोः । तत्राप्येकं निरभिददेकस्मान्नाभवद्ध्वनिः ॥८॥

अन्वयः—उभयोः अपि शङ्खयोः अवघ्नन्त्या घोषः अभवत् । तत्र अपि एकं निरभिदत् एक स्मात् ध्वनिः न अभवत्॥८॥

अनुवाद— उन दोनों चूड़ियों से ध्वनि हो रही थी उसने एक-एक चूड़ियों को भी उतार दिया अब एक से ध्वनि नहीं होती थी ॥८॥

भावार्थ दीपिका

निरभिदत् पृथक्कृतवती ॥८॥

भाव प्रकाशिका

निरभिदत् अर्थात् उतार दिया ॥८॥

अन्वशिक्षमिमं तस्या उपदेशमरिंदम । लोकाननुचरन्नेताँल्लोकतत्त्वविवित्सया ॥९॥

अन्वयः— हे अरिन्दम् एतां लोक तत्त्वविवित्सया लोकान् अनुचरन् तस्याः इमम् उपदेशम् अन्वशिक्षम् ॥९॥

अनुवाद— हे शत्रुदमन उस समय लोक व्यवहार जानने की इच्छा से वहाँ पहुँच गया था । उस कुमारी से मैंने यह शिक्षा प्राप्त की ॥९॥

भावार्थ दीपिका

ननु कुमार्यास्तव च कथं सङ्गतिस्तत्राह-लोकानिति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि आपकी कुमारी से कैसे सङ्गति हुई ? इसके उत्तर में उन्होंने लोकान् इत्यादि कहा । अर्थात् लोक व्यवहार जानने के लिए विचरण कर रहा था ॥९॥

वासे बहूनां कलहो भवेद्वार्ता द्वयोरपि । एक एव चरेत्तस्मात्कुमार्या इव कङ्कणः ॥१०॥

अन्वयः— बहूनां वासे कलहः, द्वयोः अपि वार्ता भवेत् तस्मात् कुमार्याः कङ्कण इव एक एव चरेत् ॥१०॥

अनुवाद— अनेक लोगों के एक साथ रहने पर कलह होता है और दो लोगों के रहने पर भी बातें तो होती ही हैं । अतएव कुमारी की चूड़ियों के समान अकेले ही विचरण करना चाहिए ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

वास इति प्रथमान्तपाठे कलहहेतुः । वार्ता गोष्ठी हेतुर्भवेदित्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

वासः पद से प्रथमान्त मानने पर कलह होता है वार्ता अर्थात् बातचित ॥१०॥

मन एकत्र संयुज्याज्जितश्वासो जितासनः । वैराग्याभ्यासयोगेन ध्रियमाणमतन्द्रितः ॥११॥

अन्वयः— जितासनः जितश्वासः वैराग्याभ्यासयोगेन, अतन्द्रितः ध्रियमाणं मनः एकत्र संयुज्यात् ॥११॥

अनुवाद— राजन् मैंने बाण बनाने वाले से यह सीखा है कि आसन एवं श्वास को जितकर वैराग्य एवं अभ्यास के द्वारा अपने मन को वश में कर ले फिर बड़ी सावधानी से उसको एक लक्ष्य में लगा दे ॥११॥

भावार्थ दीपिका

चित्तैकाग्रता द्वैतास्फूर्तिलक्षणसमाधिहेतुरिति शरकाराच्छिक्षितमित्याह-मन इति । तत्रोपायमाह-जितेति । आसनजये श्वासजय;, तस्य च जये श्वासाधीनं मनो निश्चलं भवति । ननु क्षणं निश्चलं सदपि मनो विषयवासनया यदि विक्षिप्येत सुषुप्ताविव सर्वथा लीयेत वा तदा किं तत्राह-वैराग्येति । वैराग्येणाविक्षिप्यमाणमभ्यासयोगेन लक्ष्ये ध्रियमाणं स्थिरीक्रियमाणम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

अर्थात् भेद की प्रतीति के अभावरूप समाधि के हेतु रूप चित्तैकाग्रता को बाण बनाने वाले से मैंने सीखा है इस बात को **मनः एकत्र० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । चित्त को एकाग्र करने के उपाय को **जितश्वासः इत्यादि** से कहा गया है । श्वास को अपने वश में कर लेने पर श्वास के अधीन रहने वाला मन निश्चल हो जाता है । प्रश्न होता है कि मन क्षणभर के लिए निश्चल होकर भी विषयों की वासना के कारण यदि मन विक्षिप्त हो जाय अथवा सुषुप्ति काल के सर्वथा लीन हो जाय तो उस समय क्या करना चाहिए तो इसके उत्तर में कहते हैं **वैराग्याभ्यासयोगेन०** वैराग्य के द्वारा विक्षिप्त नहीं होने वाले मन को अभ्यास के द्वारा लक्ष्य में स्थिर करे और मन को लक्ष्य में लगाये ॥११॥

यस्मिन्मनो लब्धपदं यदेतच्छनैः शनैर्मुञ्चति कर्मरेणून् । सत्त्वेन वृद्धेन रजस्तमश्च विधूय निर्वाणमुपैत्यनिन्धनम्॥१२॥

अन्वयः— यस्मिन्लब्धपदं एतत् मनः शनैः शनैः कर्मरेणून् मुञ्चति, वृद्धेन सत्वेन रजस्तमः विधूय अविन्धनं निर्वाणम् उपैति ॥१२॥

अनुवाद— जिस समय परमानन्द स्वरूप परमात्मा में मन स्थिर हो जाता है तब वह धीरे-धीरे कर्म वासनाओं की धूल को धो देता है और सत्त्वगुण की वृद्धि के द्वारा रजोगुणी और तमोगुणी वृत्तियों का त्याग करके मन वैसे ही शान्त हो जाता है जैसे इन्धन के अभाव में अग्नि शान्त हो जाती है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

एकत्रेति कुत्र तदाह-यस्मिन्निति । यल्लयविक्षेपात्मकं मन एतद्यस्मिन्परमानन्दरूपे भगवति लब्धास्पदं सत्कर्मरेणून् कर्मवासना मुञ्चति तस्मिन् । ननु कर्मवासना त्यागेऽपि सुषुप्तिवल्लयो दुर्वारः, न, सत्त्वेनेति । वृद्धेनोपशमात्मकेन रजस्तमसोरभावे विक्षेपलयाभावान्निर्वाणमवृत्तिकं ध्येयाकारेणावस्थानमुपैति । कुतः । अनिन्धनम् । इन्धनं गुणास्तत्कार्यं च तद्रहितम् । तदुक्तं योगशास्त्रे-'मनसो वृत्तिशून्यस्य ब्रह्माकारतया स्थितिः । याऽसंप्रज्ञातनामासौ समाधिरभिधीयते ।' इति ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि मन को एकत्र संयुक्त करने को जो कहा गया है वह किसमें मन को लगाये इस पर कहते हैं **यस्मिन् इत्यादि** लय विक्षेपात्मक मन जिस परमानन्द स्वरूप परमात्मा में संलग्न होकर कर्म की वासनाओं को त्याग देता है । यदि कहें कि कर्म की वासना का त्याग होने पर भी सुषुप्ति के समान उसके लय को रोका नहीं जा सकता है, तो ऐसी बात नहीं हैं सत्त्वगुण के समृद्ध हो जाने के कारण रजोगुण एवं तमोगुण का अभाव हो जाने पर विक्षेप और लय का अभाव हो जाने से वृत्ति रहित मन ध्येयाकार रूप से स्थिर हो जाता है । क्योंकि उस समय गुणों तथा गुणों के कार्यों से मन रहित हो जाता है । योगशास्त्र में कहा भी गया है **मनसो० इत्यादि** अर्थात् वृत्ति से रहित मन की स्थिति ब्रह्माकार रूप हो जाती है । उसी को असम्प्रज्ञात समाधि के नाम से अभिहित किया जाता है ।।१२।।

तदैवमात्मन्यवरुद्धचित्तो न वेद किंचिद्बहिरन्तरं वा ।
यथेषुकारो नृपतिं व्रजन्तमिषौ गतात्मा न ददर्श पार्श्वे ।।१३।।

अन्वयः— तत् एवम् आत्मनि, अवरुद्धचित्तः किञ्चिद् बहिः अन्तरं वा न वेद यथा इषुकारः इषौ गतात्मा पार्श्वे व्रजन्तं नृपतिं न ददर्श ।।१३।।

अनुवाद— अतएव इस प्रकार जब मन परमात्मा में ही अवरुद्ध हो जाता है तो उसको बाहर भीतर का कुछ पता उसी तरह नहीं चल पाता है जिस प्रकार बाण बनाने वाले का मन इस प्रकार लगा था कि उसके बगल से ही राजा की दलबल के साथ सवारी निकल गयी किन्तु उस बाण बनाने वाले को पता नहीं चला ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ततश्च न द्वैतस्फूर्तिरित्याह-तदेति । बहिर्दर्शनादिना । अन्तरं स्मृत्या । इषौ गतात्मा तस्य ऋजूकरणे दत्तचित्तौ भेरीघोषैरन्तिके व्रजन्तं नृपतिमपि न वेद तद्वत् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

मन के परमात्मा में लग जाने पर भेद की प्रतीति नहीं होती है, इस बात को **तदैवम्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । बाहर देखने आदि से । भीतर की स्मृति के द्वारा बाण को सीधा बनाने में जिसका मन ऐसा लगा था कि बगल से ही भेरीघोष पूर्वक जाते हुए राजा को वह नहीं जान सका ।।१३।।

एकचार्यऽनिकेतः स्यादप्रमत्तो गुहाशयः । अलक्ष्यमाण आचारैर्मुनिरेकोऽल्पभाषणः ।।१४।।

अन्वयः— एकचारी अनिकेतः स्यात् अप्रमत्तः गुहाशयः आचारैः अलक्ष्यमाणः मुनिः एक अल्पभाषणः ।।१४।।

अनुवाद— राजन् मैंने सर्प से यह शिक्षा पायी है कि संन्यासी को सर्प के समान अकेले ही विचरण करना चाहिए । वह कहीं अपना मठ नहीं बनाये । वह किसी एक स्थान पर न रहे, प्रमाद न करे गुफा आदि में पड़ा रहे । वह बाह्य आचारो से पहचाना न जाय वह मनन परायण रहे तथा कम बोले ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

सर्पाच्छिक्षितमाह-एकचारीति । योगिसंमर्दस्यापि त्यागे कुमारी गुरुः, जनसङ्गत्यागे सर्पः । स यथा जनाच्छङ्कमान

एकाकी विचरति नियतनिकेतरहितश्च सदाऽप्रमत्तश्चैकान्तवासी च । आचारैर्गतिभिः सविषो निर्विषो वेति न लक्ष्यते च । असहायश्च मितभाषी च तद्वन्मुनिर्वर्तेतेत्यर्थः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

एकचारी इत्यादि श्लोक से सर्प से प्राप्त शिक्षा को अवधूत भगवान दत्तात्रेय ने बतलाया है कि संन्यासी योगियों की भीड़ के त्याग ने में कुमारी गुरु है । लोगों की सङ्गति के परित्याग में सर्प गुरु है । जिस तरह सर्प लोगों से शङ्कित रहकर अकेले विचरण करता है, उसका कोई भी अपना घर नहीं होता है । वह सावधानी पूर्वक एकान्त में रहे सर्प जैसे अपनी गति से विषैला अथवा निर्विष रूप से नहीं पहचान में आता है । उसी तरह संन्यासी को कम बोलने वाला होना चाहिए ।।१४।।

गृहारम्भोऽतिदुःखाय विफलश्चाध्रुवात्मनः । सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ।।१५।।

अन्वयः— अध्रुवात्मनः गृहारम्भः अतिदुखाय विफलश्च सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ।।१५।।

अनुवाद— इस अनित्य शरीर के लिए घर बनाना दुखद होता है तथा व्यर्थ भी है, सर्प तो दूसरे के बनाए हुए गृह में प्रवेश करके सुख प्राप्त करता है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

किंच, गृहारम्भ इति । अध्रुवात्मनो नश्वरदेहस्य । सुखं यथा भवति तथा वर्धते ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

गृहारम्भ इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है कि नश्वर शरीर के लिए गृह बनाना तो दुःखद ही है । अतएव सर्प दूसरे के घर में प्रवेश करके सुख पूर्वक रहता है ।।१५।।

एको नारायणो देवः पूर्वसृष्टं स्वमायया । संहृत्य कालकलया कल्पान्त इदमीश्वरः ।।१६।।
एक एवाद्वितीयोऽभूदात्माधारोऽखिलाश्रयः । कालेनात्मानुभावेन साम्यं नीतासु शक्तिषु ।।
सत्त्वादिष्वादिपुरुषः प्रधानपुरुषेश्वरः ।।१७।।
परावराणां परम आस्ते कैवल्यसंज्ञितः । केवलानुभवानन्दसंदोहो निरुपाधिकः ।।१८।।
केवलात्मानुभावेन स्वमायां त्रिगुणात्मिकाम् । संक्षोभयन्सृजत्यादौ तया सूत्रमरिंदम ।।१९।।
तामाहुस्त्रिगुणव्यक्तिं सृजन्तीं विश्वतोमुखम् । यस्मिन्प्रोतमिदं विश्वं येन संसरते पुमान् ।।२०।।

अन्वयः— एकः नारायण देवः ईश्वरः कल्पान्ते पूर्वसृष्टम् इदम् कालकलया स्वमायाया संहृत्य अखिलाश्रयः आत्माधारः एकएव अद्वितीयः अभूत् आत्मानुभावेन कालेन साम्यं नीतासुशक्तिषु सत्त्वादिषु आदिपुरुषः प्रधानपुरुषेश्वरः परावराणां परमः निरुपाधिकः आत्मानन्दसन्दोहः कैवल्य संज्ञितः आस्ते, केवलात्मानुभावेन त्रिगुणात्मिकां स्वमायां संक्षोभयन् तया आदौ हे अरिन्दम आदौ सूत्रम् सृजति तामाहु तामाहुत्रिगुणां शक्तिं सृजन्ती विश्वतोमुखम्, यस्मिन् प्रोतमिदं विश्वं येन पुमान संसरते ।।१६-२०।।

अनुवाद— मकड़ी से प्राप्त हुई शिक्षा का वर्णन करते हुए अवधूत भगवान दत्तात्रेय ने कहा एक मात्र भगवान् नारायण ही सबों के नियामक और प्रकाशक हैं । पूर्व कल्प में अपनी ही माया से बिना किसी की सहायता के सृष्ट इस जगत् को कल्प के अन्त में कालशक्ति के द्वारा नष्ट कर दिए । अर्थात् उसे अपने में ही लीन कर लिए और सजातीय विसजातीय एवं स्वगतभेद शून्य अकेले ही शेष रह गये । श्रीभगवान् ही सबों के आश्रय और अधिष्ठान है और वे स्वयम् अपने ही आश्रय पर रहते हैं । वे प्रकृति एवं पुरुष दोनों के नियामक हैं । कार्य एवं कारणात्मक जगत् के आदि कारण परमात्मा ही हैं । वे अपनी कालशक्ति के द्वारा सत्त्वादि तीनों गुणों को उनकी साम्यावस्था में

पहुँचा देते है एवं स्वयं वे कैवल्य रूप से एक एवं अद्वितीय रूप में विराजमान रहते हैं । वे केवल अनुभव स्वरूप और आनन्दधन मात्र हैं । उनसे किसी भी प्रकार की उपाधि का संबन्ध नहीं हो पाता है । वे ही प्रभु सृष्टि काल के आने पर अपनी काल शक्ति के द्वारा त्रिगुणात्मिका माया को क्षुब्ध करते हैं और उससे पहले क्रिया शक्ति महत् तत्त्व की रचना करते हैं । यह महत् तत्त्व ही तीन गुणों की पहली अभिव्यक्ति है । वही सभी प्रकार की सृष्टि का मूल कारण है । यह सारा विश्व उसी में ताने-बाने के समान ओत-प्रोत है । इसी के कारण जीव को जन्म मृत्यु के चक्र में पड़ना पड़ता है ।।१६-२०।।

भावार्थ दीपिका

कारकसामग्रीनिरपेक्षात्केवलादीश्वराद्विश्वसृष्टिसंहारावूर्णनाभिदृष्टान्तेन मया संभाविताविति वक्तुं प्रथमं संहारप्रकारमाह-एक इति सार्धत्रयेण । एकः कारकनिरपेक्षः । पूर्वसृष्टमिदं जगत्कालकलया कालशत्तया संहृत्य । एक एवाद्वितीयः सजातीयविजातीयभेदशून्योऽभूत् । कारणभूतासु सत्त्वादिषु शक्तिष्वपि साम्यं नीतासु सतीषु । गुणसाम्यं प्रधानं तदुपाधिः पुरुषश्च तयोरीश्वरः । परावराणां परे ब्रह्मादयः अवरेऽन्ये च मुक्ता जीवास्तेषां परमः प्राप्य आस्ते । कुतः । कैवल्यसंज्ञितो मोक्षशब्दाभिधेयः । तत्र हेतुः-केवलेति । केवलो निर्विषयः स्वप्रकाशः आनन्दानां संदोहः समूहः परमानन्द इत्यर्थः । कुतः। निरुपाधिकः । अतः केवलादेव सृष्टिं दर्शयति । केवलेनात्मानुभावेन कालेन । सूत्रं क्रियाशक्तिप्रधानं महत्तत्त्वं सृजति । जीवसंसारहेतुभूते सूत्रे सृष्टेऽपि त्वं मा भैरिति संबोधयति । अरिंदम अरीन् रागादीन्दमयितुं समर्थ । सूत्रस्यैव व्यक्तिशब्देनोच्यमानस्य तामिति स्त्रीलिङ्गेन परामर्शः । त्रिगुणव्यक्तिं गुणत्रयकार्यम् । अतएव विश्वतोमुखं नानाविधं त्रिगुणात्मकं विश्वमहंकारद्वारेण सृजन्तीम् । त्रिगुणकार्यस्य सूत्रसंज्ञायां कारणमाह-यस्मिन्निति । कारणभूते समष्टिरूपे यस्मिन्निदं विश्वं प्रोतं ग्रथितम्- 'वायुर्वै गौतम सूत्रं वायुना वै गौतम सूत्रेणायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि संदृब्धानि' इति श्रुतेः । येन वाय्वात्मना प्राणरूपेण जीवः संसरति ।।१६-२०।।

भाव प्रकाशिका

कारक सामग्री की बिना किसी अपेक्षा के केवल ईश्वर ही जगत् की सृष्टि और संहार करते हैं, इस बात को मकड़ी के दृष्टान्त से मैंने जाना हैं । इस बात को कहने के लिए पहले संहार के प्रकार को **एकः इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । **एकः** अर्थात् कारक निरपेक्ष रूप से पूर्व कल्प में सृष्ट इस जगत् को भी कवलित करने वाली अपनी काल शक्ति द्वारा जगत् का संहार करके श्रीभगवान् सजातीय विजातीय एवं स्वगत भेद शून्य रूप से अवस्थित रहते हैं । जगत् के कारण स्वरूप सत्त्वादि शक्ति को भी श्रीभगवान् अपनी कालशक्ति के द्वारा उनकी साम्यावस्था में पहुँचा देते हैं गुणों की साम्यावस्था प्रकृति और पुरुष इन दोनों के स्वामी ईश्वर हैं । ब्रह्माजी तथा दूसरे जो मुक्त जीव हैं उन सबों से श्रेष्ठ परम पुरुष ईश्वर ही हैं । क्योंकि कैवल्य शब्द से मोक्ष कहा जाता हैं । उसका कारण है कि परमात्मा निर्विषय स्वप्रकाश तथा आनन्दों के सन्दोह (समूह) एवं परमानन्द स्वरूप हैं । उनके साथ किसी भी उपाधि का संबन्ध नहीं होता है । इसलिए केवल से ही सृष्टि को बतलाते हैं। केवल अपने प्रभाव रूप काल से सूत्र अर्थात् क्रियाशक्ति प्रधान महत् तत्त्व की सृष्टि सर्वप्रथम होती है । जीवों के संसार के कारणभूत सूत्र की सृष्टि हो जाने पर तुम डरो मत इस तरह से संबोधित करने का काम परमात्मा करते हैं । राग इत्यादि का दमन के कारण महाराज यदु को अरीन्दम् कहा गया है । सूत्र का ही व्यक्ति शब्द से कहे जाने वाले **ताम्** पद से परामर्श किया गया है । त्रिगुणव्यक्ति अर्थात् त्रिगुण के कार्य। वह अनेक प्रकार के त्रिगुणात्मक विश्व की सृष्टि अहङ्कार के द्वारा की जाती है। त्रिगुण के सूत्र संज्ञा का कारण बतलाते हुए कहा गया है कि जिस कारण भूत समष्टि रूप में यह सारा विश्व ओत-प्रोत है । कहा भी गया है । गौतम वायु ही सूत्र है । सूत्र से ही यह लोक परलोक तथा सभी भूत बंधे हुए हैं । उस वायु रूप प्राण के साथ जीव संसरण करता है ।।१६-२०।।

यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णां संतत्य वक्रतः । तया विहृत्य भूयस्तां ग्रसत्येवं महेश्वरः ॥२१॥

अन्वयः— यथा ऊर्णनाभिः हृदयात् उर्णा वक्रतः संतत्य तया विहृत्य भूयः तां ग्रसति एवं महेश्वरः ॥२१॥

अनुवाद— जिस तरह मकड़ी अपने हृदय से मुहँ द्वारा जाल फैलाकर उसमें विहार करके उसे पुनः निगल जाती है उसी तरह परमेश्वर भी अपने में से इस जगत् को उत्पन्न करते हैं और उसमें जीव रूप से बिहार करते हैं और फिर उसका संहार कर देते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं शिक्षितमर्थमुक्त्वा दृष्टान्तमाह-यथेति । हृदयादुद्गताम् । वक्रतो वक्रेण संतत्य प्रसार्य विहृत्य क्रीडित्वा ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह शिक्षित अर्थ को बतलाकर **यथा० इत्यादि** श्लोक से दृष्टान्त को बतलाते हैं । हृदय से निकली हुई जाला को मुख से फैलाकर तथा विहृत्य अर्थात् क्रीडा करके ॥२१॥

यत्र यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया । स्नेहाद्द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्सरूपताम् ॥२२॥

अन्वयः— देही यत्र-यत्र धियासकलंमनः स्नेहात् द्विषेत् भयाद् वा अपि धारयेत् तत्सरूपताम् याति ॥२२॥

अनुवाद— शरीरधारी जीव स्नेह से, भय से अथवा द्वेष से अपने मन के किसी में लगा देता है तो उसे उसी वस्तु के स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है । राजन यह शिक्षा मैंने भृङ्गी कीड़े से प्राप्त की है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

भगवद्ध्यानपराणां तत्सारूप्यं न चित्रमिति पेशस्कृतो भ्रमरविशेषाज्ज्ञातमित्याह-यत्र यत्रेति । सकलमेकाग्रम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

जो प्राणी श्रीभगवान् का ध्यान करते रहते हैं, वे भगवत् स्वरूप ही हो जाता है यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है । इस बात की शिक्षा मैंने भृङ्गी कीडा से सीखा है इस बात को यत्र-यत्र इत्यादि श्लोक से कहा गया है । सकलम् अर्थात् एकाग्र रूप से ॥२२॥

कीटः पेशस्कृतं ध्यायन्कुड्यां तेन प्रवेशितः । याति तत्सात्मतां राजन्पूर्वरूपमसंत्यजन् ॥२३॥

अन्वयः— राजन् पेशस्कृतं तेन कुड्यां प्रवेशितः कीटः ध्यायन् पूर्वरूपं असंत्यजन् तत्साम्यतां याति ॥२३॥

अनुवाद— राजन् भृंगी नामक कीडा किसी कीड़े को पकड़कर लाता है और उसके किसी छिद्र में बन्द कर देता है । वह कीड़ा उसी शरीर से भृङ्गी का ध्यान करते-करते भृङ्गी कीड़ा बन जाता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

कुड्यां प्रवेशितो निरुद्धो भयेन ध्यायन्सात्मतां तत्सारूप्यम्। साम्यतामिति पाठे त्वार्षता । पूर्वरूपमसंत्यजन्नित्यस्यायमभिप्रायः। यदा तेनैव देहेनान्यसारूप्यं दृश्यते तदा किं वक्तव्यं देहान्तरेण सारूप्यं घटत इति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

कुड्यां प्रवेशितः अर्थात् दिवालकेछिद्र में बन्द कर देता है । वह कीड़ा भय के कारण भृङ्गी का ही ध्यान करते-करते अपने शरीर का त्याग किए बिना ही भृङ्गी कीडा हो जाता है कहने का अभिप्राय है कि जब अपने पूर्व शरीर से ही ध्यान करते-करते भृङ्गी हो जाता है तो फिर दूसरे देह को प्राप्त करके परमात्मा स्वरूप हो जाता है यह क्या कहना है ?॥२३॥

एवं गुरुभ्य एतेभ्य एषा मे शिक्षिता मतिः । स्वात्मोपशिक्षितां बुद्धिं शृणु मे वदतः प्रभो ॥२४॥

अन्वयः— एवं एतेभ्यः गुरूभ्यः मे एषा मतिः शिक्षिता हे प्रभो ! स्वात्मोपशिक्षितां बुद्धिं मे वदतः शृणु ॥२४॥

अनुवाद— राजन् इन सभी शिक्षाओं को मैंने इन गुरुओं से सीखा है, अब मैं आपको अपने ही शरीर से प्राप्त हुई शिक्षा को मैं सुनाता हूँ आप सुनिये ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

स्वदेहादेव शिक्षितमाह-स्वात्मेति । स्वात्मनो देहाच्छिक्षिताम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

अपने देह से ही प्राप्त शिक्षा को अवधूत भगवान् दत्तात्रेय ने बतलाते हुए कहा ॥२४॥

देहो गुरुर्मम विरक्तिविवेकहेतुर्बिभ्रत्स्म सत्त्वनिधनं सततार्त्युदर्कम् ।
तत्त्वान्यनेन विमृशामि यथा तथापि पारक्यमित्यवसितो विचराम्यसङ्गः ॥२५॥

अन्वयः— मम विरक्ति विवेक हेतुः देह गुरुः सत्त्वनिधनं विभ्रत्स्म, सततात्युदर्कम् अनेन यथा तत्त्वानि विमृशामि तथापि पारक्यमित्यवसितः असङ्गः विचरामि ॥२५॥

अनुवाद— मेरी विरक्ति एवं वैराग्य का कारण भूत यह शरीर भी मेरा गुरु हैं, यह हमेशा उत्पन्न होता है और मरता है । इस शरीर को धारण किए रहने का फल एक दुःख के बाद दूसरे दुःख की प्राप्ति है । यद्यपि मैं इस शरीर से तत्त्वों का विचार करता हूँ फिर भी मैं जानता हूँ कि एक दिन न एक दिन इसको स्यार और कुत्ते खायेंगे ही अतएव इससे अनासक्त होकर मैं विचरण करता हूँ ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

गुरुत्वे हेतुः-विरक्तिविवेकयोर्हेतुः । विरक्तिहेतुत्वमाह-सत्त्वनिधनमुत्पत्तिविनाशौ बिभ्रत्स्म । किंच, सततं संततमार्त्युदर्कं दुःखमेवोत्तरफलं बिभ्रत् । यद्वा, सततिरेवोदर्क उत्तरफलं यस्य तत्सत्त्वनिधनं बिभ्रत् । विवेकहेतुत्वमाह-तत्त्वानीति । यथा यथावत् । एवमत्युपकारित्वेऽपि देहेनैवास्था कर्तव्येत्याह-तथापीति । पारक्यं श्वशृगालादिभक्ष्यमिति निश्चितवान् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

शरीर इस लिए गुरु है कि यह मेरी विरक्ति और विवेक का कारण है । यह उत्पन्न होता है और मरता रहता है । अतएव यह विरक्ति का कारण है । तथा इसको धारण किए रखने का फल है कि इससे एक दुःख के बाद दूसरा दुःख मिलता रहता है । अथवा सदा सदा कष्ट ही इसका बाद में मिलने वाला फल है क्योंकि यह सदा जन्मता और मरता ही रहता है । यह शरीर विवेक का कारण इसलिए है कि इस शरीर से ही मैं तत्त्वों का यथावत् विचार कर पाता हूँ । अतएव यह उपकारी भी है । परन्तु इस देह में आस्था नही करना चाहिए । इस बात को **तथापि इत्यादि** से कहा गया है । यह शरीर दूसरे के लिए है क्योंकि अन्त में यह कुत्ते और स्यारों का भक्ष्य होने वाला है । यह मैंने निश्चित कर लिया है ॥२५॥

जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान्पुष्णाति यत्प्रियचिकीर्षया वितन्वन् ।
स्वान्ते सकृच्छ्रमवरुद्धधनः स देहः सृष्ट्वास्य बीजमवसीदति वृक्षधर्मा ॥२६॥

अन्वयः— यत् प्रियचिकीर्षया जायात्मजार्थपशुभृत्यगृहाप्तवर्गान् वितन्वन् सदेहः सकृच्छ्रमवरुद्धधनः स्वान्ते अस्य बीजम् सृष्ट्वा वृक्ष धर्मा अवसीदति ॥२६॥

अनुवाद— जीव जिस शरीर का प्रिय करने के लिए ही अनेक प्रकार की कामनाएँ और कर्म करता है तथा स्त्री-पुत्र धन पशु, भृत्य, गृह तथा बन्धु बान्धवों का विस्तार करते हुए उनका पालन पोषण करता है । वह

कठिनाइयों को सहकर धन संचय करता है, वही देह आयु के समाप्त होने पर स्वयं तो नष्ट हो जाता है और वृक्ष के समान दूसरे शरीर के लिए बीज बोकर उसके लिए भी दुःख की व्यवस्था कर जाता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

सततातर्युदर्कतां प्रपञ्चयति-जायेति द्वाभ्याम् । यस्य देहस्य प्रियचिकीर्षया भोगसंपादनेच्छया जायादिवर्गान् वितन्वन्पुष्णाति पुरुषः । कथंभूतः । सकृच्छ्रं यथा भवति तथावरुद्धानि संचितानि धनानि येन सः, देहविशेषणं वा । स देहः स्वान्ते स्वस्यायुषोऽन्तेऽवसीदति नश्यति । किंच, देहनाशेऽपि न दुःखसमाप्तिरित्याह-अस्य पुरुषस्य देहान्तरबीजं कर्म सृष्ट्वेति । वृक्षस्येव धर्मो यस्य सः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

जाया इत्यादि दो श्लोकों से इस बात का प्रतिपादन किया गया है कि शरीर सदा दुःख ही देता है जिस शरीर में प्रिय कार्य करने के लिए पुरुष पत्नी इत्यादि का पोषण करता है तथा बड़ी ही कठिनाई से धनार्जन करता है वह देह अपनी आयुष के अन्त में नष्ट हो जाता है । और देह का नाश होने पर भी दुःखों की समाप्ति नहीं होती है इस पुरुष के दूसरे देह के बीजरूप कर्म की सृष्टि वृक्ष के समान कर देता है ॥२६॥

जिह्वैकतोऽमुमपकर्षति कर्हि तर्षा शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥२७॥

अन्वयः— बह्व्यः सपत्न्य इव अमुम गेहपति इव अमुम् जिह्वाएकतः, अपकर्षति, कर्हितर्षा, शिश्नः अव्यतः त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित्, घ्राणोऽन्यतः चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिः लुनन्ति ॥२७॥

अनुवाद— जिस तरह बहुत सी सौतें अपने एक पति को अपनी-अपनी ओर खींचती हैं, उसी तरह इस जीव को जीभ स्वादिष्ट पदार्थों की ओर खींचती है, प्यास जल की ओर खींचती है, जननेन्द्रिय उसको पत्नी संभोग की ओर खींचती है, त्वगिन्द्रिय पेट और कान उसको क्रमशः कोमल स्पर्श, भोजन और मधुर शब्द की ओर खींचते हैं, नाक सुगन्धि की ओर ले जाना चाहती है, और पंचल नेत्र सुन्दर रूप देखने के लिए प्रेरित करती है । इस तरह इस जीव को कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ सताने का काम करती हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

किंच जिह्वेति । अमुं देहं तदभिमानिनं पुरुषं वा एकतो रसं प्रति जिह्वा अपकर्षत्याच्छिनत्ति । कर्हि कदाचित्तर्षा पिपासा जलं प्रति । शिश्नो व्यवायं प्रति । त्वक् स्पर्शं प्रति । उदरमन्नमात्रं प्रति । श्रवणं शब्दं प्रति । घ्राणो गन्धं प्रति । चपलदृक् रूपं प्रति । क्व च क्वचित्स्वस्वविषयं प्रति कर्मशक्तिः । अन्यदपि कर्मेन्द्रियम् । लुनन्ति त्रोटयन्ति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

जिह्वैकतः० इत्यादि श्लोक में बतलाया गया है कि जीव को सभी इन्द्रियाँ सताने का काम करती हैं । इस देह के अभिमानी जीव को जिह्वा रस की ओर आकृष्ट करती है, तो कभी प्यास उसको जल की ओर आकर्षित करती है। जननेन्द्रिय उसको स्त्री संभोग की ओर आकर्षित करती है, त्वगिन्द्रिय कोमल स्पर्श की ओर पेट भोजन की ओर, श्रोत्र मधुर शब्द की ओर, घ्राण सुगन्ध की ओर, चञ्चल नेत्र सुन्दर रूप की ओर, कर्म शक्ति अपने विषय की ओर आकर्षित करती है कर्मेन्द्रियाँ भी अपने विषय की ओर आकर्षित करती हुई उसे दुःखित करती हैं ॥२७॥

सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या वृक्षान्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान् ।
तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमाप देवः ॥२८॥

अन्वयः— अजया आत्मशक्त्या वृक्षान् सरीसृपपशून् खगदंशमत्स्यान् पुराणि सृष्ट्वा तैः तैः अतुष्ट हृदयः देवः ब्रह्मावलोकधिषणं पुरुषं विधाय मुदमाप ॥२८॥

अनुवाद— अपनी अचिन्त्यशक्ति माया से परमात्मा ने वृक्ष सरीसृप रेंगकर चलने वाले सर्प आदि पशुओं, पक्षियों, दंशो एवं मछलियों के शरीर की रचना की किन्तु उससे उनको सन्तोष नहीं हुआ। उसके पश्चात् उन्होंने मनुष्य शरीर की रचना की मानव शरीर ऐसी बुद्धि से युक्त था कि उसके द्वारा वह ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है। इस शरीर की रचना करके परमात्मा को बड़ी प्रसन्नता हुई ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं देहो गुरुरित्यादित्रिभिर्विरक्तिविवेकहेतुत्वमुपपाद्येदानीमस्य देहस्यातिदुर्लभत्वं दर्शयन्नीश्वरनिष्ठां विधत्ते-सृष्ट्वेति द्वाभ्याम् । पुराणि शरीराणि । पुरुषं पुरुषदेहम् । ब्रह्मणोऽवलोकायापरोक्ष्याय धिषणा बुद्धिर्यस्मिंस्तम् । तदुक्तम्-'तासां मे पौरुषी प्रिया' इति, श्रुतिश्च-'पुरुषत्वे चाविस्तरामात्मा' इत्यादिः (ईश्वरो हि करणाधिष्ठात्रीरग्न्यादिदेवता वागादिभिः सह सृष्टवान्। ताश्च तं प्रति भोगार्थं शरीरमयाचन्त । स च ताभ्यो गोशरीरमश्वशरीरं पुरुषशरीरं यथाक्रममानीतवान् । ततस्ता देवताः सोऽब्रवीद्यथायतनं चक्षुरादिस्थानमस्मिन्देहे प्रविशतेति । तदाह-ताभ्य इत्यादि) तथा-'ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वैनोऽयमलमिति ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वैनोऽयमलमिति ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन्सुकृतं बत' इति च ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

देहो गुरुः इत्यादि तीन श्लोकों से इस अर्थ का प्रतिपादन किया जा चुका है कि यह शरीर विरक्ति एवं विवेक की प्राप्ति का कारण होने से यह देह गुरु है। अब इस श्लोक में मानव शरीर की दुर्लभता का प्रतिपादन किया गया है। **सृष्ट्वा० इत्यादि** दो श्लोकों से ईश्वर निष्ठा का प्रतिपादन किया गया है। पुराणि अर्थात् शरीरों को पुरुषम् अर्थात् पुरुष का शरीर मानव शरीर में ऐसी बुद्धि है जिसके द्वारा मनुष्य परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है। कहा भी गया है। **तासां मे पौरुषी प्रिया**। अर्थात् उन सभी शरीरों में पुरुष का शरीर मुझको प्रिय हैं श्रुति भी कहती हैं। **पुरुषत्वे चा विस्तरामात्मा।** पुरुषत्व की प्राप्ति हो जाने पर आत्मा का विस्तार नहीं होता है। परमात्मा ने इन्द्रियों के अधिष्ठातृ अग्नि आदि देवताओं की वाक् आदि इन्द्रियों के साथ ही सृष्टि की। वे सब इन्द्रियाँ ईश्वर से अपने भोग के लिए शरीर की याचना की। ईश्वर ने उन इन्द्रियों को गौ के शरीर अश्व के शरीर तथा पुरुष के शरीर क्रमशः दिखाया इसके पश्चात् परमात्मा ने इन्द्रियों से कहा कि तुम लोग अपने आयतन के अनुसार इस पुरुष शरीर के चक्षुरादि स्थानों में प्रवेश कर जाओ। इस बात को श्रुतियों ने कहा है **ताभ्यो गामानयत् ता अब्रवन् न वै नोऽयमलमिति ताभ्यो अश्वमानयत्ता अब्रुवन् न वैनोऽयमलमिति ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन् सुकृतं बत ।।२८।।**

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसंभवान्ते मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावन्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥२९॥

अन्वयः— मानुष्यम् अनित्यमपि इह अर्थदम् धीरः बहुसम्भवान्ते इदं सुदुर्लभं लब्ध्वा अनुमृत्यु यावत् पतेत तूर्णमिह निःश्रेयसाय यतेत् । विषयः खलुसर्वतः स्यात् ।।२९।।

अनुवाद— यद्यपि मनुष्य शरीर अनित्य है फिर भी इसके द्वारा परम पुरुषार्थ की प्राप्ति हो सकती है। अनेक जन्मों के बाद अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीर को प्राप्त करके बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि शीघ्र ही वह मुक्ति की प्राप्ति का प्रयत्न कर ले। मोक्ष की प्राप्ति ही मानव शरीर का उद्देश्य है। विषयों की प्राप्ति तो सभी योनियों में सम्भव है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तस्माद्बहूनां संभवानां जन्मनामन्ते मानुष्यमनित्यमप्यर्थदं पुरुषार्थप्रापकं दैवाल्लब्ध्वेदमनुमृत्यु अन्वनु निरन्तरं मृत्यवो यस्य तद्यावन्न पतेत्तावदेन तूर्णं शीघ्रं निःश्रेयसाय यतेत । विषयः पुनः सर्वतः पश्वादियोनिष्वपि स्यादेव ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

अनेक जन्मों के पश्चात् यह अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ है। यद्यपि यह अनित्य भी है फिर भी इसके द्वारा मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। मृत्य तो इसके पीछे पड़ी रहती है। अतएव मृत्यु के आने से पहले ही धीर पुरुष शीघ्रता से मुक्ति की प्राप्ति का प्रयास कर ले। विषय भोग तो पशुओं आदि की भी योनियों में भी प्राप्त हो सकता है ।।२९।।

एवं संजातवैराग्यो विज्ञानालोक आत्मनि । विचरामि महीमेतां मुक्तसङ्गोऽनहंकृतिः ।।३०।।

अन्वयः— एवं संजात वैराग्यः आत्मनि विज्ञानालोकः, मुक्तसङ्गः अनहंकृतिः एतां महीम् विचरामि ।।३०।।

अनुवाद— राजन् यही सब सोच विचार कर मुझे संसार से वैराग्य हो गया है। मेरी आत्मा (अन्तःकरण) में ज्ञान-विज्ञान की ज्योति जगमगाती रहती है। मैं अहङ्कार से रहित हूँ मुझे कहीं भी आसक्ति नहीं है। अब मैं स्वच्छन्द रूप से पृथिवी पर विचरण करता हूँ ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं हेयोपादेयविवेकं बहुधा निरूप्येदानी यदुक्तं-'त्वं तु कल्पः कविर्दक्षः' इत्यादि तत्रोत्तरमाह-एवमिति। एवं बहुभ्यो गुरुभ्यः शिक्षितेन विशिष्टं ज्ञानमेवालोकः प्रदीपो यस्य सः। सप्तम्यन्तं वा आत्मविशेषणम्। आत्मनि स्थित एव महीं विचरामि।।३०।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से हेय (त्याज्य) क्या है ? और उपादेय क्या है, इन सारी बातों का अनेक प्रकार से निरूपण करके अब राजा यदु ने यह जो कहा है कि आप तो समर्थ ब्रह्मज्ञानी और निपुण है। तो इसका उत्तर **एवम्० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं कि इस तरह अनेक गुरुओं से प्राप्त शिक्षा से विशिष्ट ज्ञान के प्रकाश से सम्पन्न अथवा विज्ञानलोक पद सप्तम्यन्त आत्म का विशेषण है। मैं अपनी आत्मा में ही स्थित रहकर इस पृथिवी पर विचरण करता हूँ ।।३०।।

न ह्येकस्माद्गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपुष्कलम् । ब्रह्मैतदद्वितीयं वै गीयते बहुधर्षिभिः ।।३१।।

अन्वयः— एकस्मात् गुरोः ज्ञानं न सुस्थिरं सुपुष्कलं न एतत् वै अद्वितीयं ब्रह्म ऋषिभिः बहुधा गीयते ।।३१।।

अनुवाद— राजन् एक ही गुरु से यथेष्ठ रूप से सुदृढ ज्ञान नहीं होता है। स्वयम् बहुत सोचना विचारना पड़ता हैं। ब्रह्म एक एवं अद्वितीय है। किन्तु ऋषियों ने ब्रह्म का विभिन्न प्रकार से वर्णन किया है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

ननु किं बहुभिर्गुरुभिर्न हि श्वेतकेतुभृगुप्रमुखैर्बहवो गुरव आश्रिन्तास्तत्राह-न ह्येकस्मादिति। बहुधा सप्रपञ्चनिष्प्रपञ्चभेदादिभिः। अयं भावः-नैते परमार्थोपदेशगुरवः किंत्वन्वयव्यतिरेकाभ्यामात्मन्वसंभावनादिमात्रनिवर्तकास्तेषां बहुत्वं युक्तमेवेति। ज्ञानप्रदं गुरुमेवेति ज्ञानप्रदं। गुरुमेकमेव वक्ष्यति-'मदभिज्ञां गुरु शान्तमुपासीत' इति। उक्तं च- 'तस्माद्गुरूं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्' इति ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है आपने अनेक गुरुओं को गुरु बनाया है, इसे क्या हुआ ? श्वेतकेतु और भृगु आदि महर्षियों ने अनेक गुरुओं को गुरु नहीं बनाया था। इस पर कहते हैं कि एक गुरु से ज्ञान नहीं होता है। बहुधा अर्थात् सप्रपञ्च और निष्प्रपञ्च रूप से। कहने का अभिप्राय है कि ये सभी परमार्थोपदेश करने वाले गुरु नहीं हैं किन्तु अन्वय व्यतिरेक के द्वारा आत्मा में असंभावना आदि के निवर्तक हैं, अतएव उनका अनेक होना उचित ही हैं। जिससे ज्ञान मिले वह गुरु हैं। आगे श्रीभगवान् मदभिज्ञं गुरु शान्तमुपासीत्। अर्थात् मुझको ज्ञान वाले शान्त गुरु की उपासना करनी चाहिए। **तस्माद्गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।** आत्मा के परम कल्याण के जिज्ञासु व्यक्ति गुरु की शरणागति करे ।।३१।।

श्रीभगवानुवाच

इत्युक्त्वा स यदुं विप्रस्तमामन्त्र्य गभीरधीः । वन्दितोऽभ्यर्थितो राज्ञा ययौ प्रीतो यथागतम् ॥३२॥

अन्वयः— स गभीर धीः विप्रः यदुम् इति उक्त्वा तम् आमन्त्र्य राज्ञा च वन्दितः अभ्यर्थितः प्रीतः यथागतम् ययौ॥३२॥

श्रीभगवान् ने उद्धवजी से कहा

अनुवाद— उद्धव गम्भीर बुद्धि अवधूत दत्तात्रेय ने राजा यदु को इस प्रकार से उपदेश देकर राजा यदु के द्वारा पूजित एवं वन्दित होकर अत्यन्त प्रसन्न हो गये और राजा से अनुमति लेकर अपनी इच्छानुसार चले गये॥३२॥

भावार्थ दीपिका

विप्रो दत्तात्रेयः-'योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयद्याः' इत्युक्तत्वात् । यथागतं तथैव । यदृच्छया ययावित्यर्थः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

विप्रो दत्तात्रेयः योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयाद्याः अर्थात् यदु तथा हैहय आदि योग की समृद्धि से सम्पन्न वैपुल्यमय हो गये हैं । यह कहा जा चुका है । अपनी इच्छानुसार चले गये ॥३२॥

अवधूतवचः श्रुत्वा पूर्वेषां नः स पूर्वजः । सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः समचितो वभूव ह ॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे नवमोऽध्यायः ॥९॥

अन्वयः— अवधूतवचः श्रुत्वा नः पूर्वेपां पूर्वजः सर्वसङ्गविनिर्मुक्तः समचित्तो वभूव ॥३३॥

अनुवाद— अवधूत दत्तात्रेयजी के उपदेश को सुनकर हमारे पूर्वजों के भी पूर्वज महाराज यदु सभी प्रकार की आसक्तियों का परित्याग करके समदशी हो गये । अतएव तुम्हें भी अव समदर्शी हो जाना चाहिए ॥३३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९॥

भावार्थ दीपिका

भगवान्स्वीयं ब्रह्मवित्कुलमिति श्लाघते-नः पूर्वेषां पूर्वज इति ॥३३॥ अत्र संग्रहश्लोकाः:-'कपोतमीनहरिणकुमारीगजपन्नगाः। पतङ्गः कुररश्चाष्टौ हेयार्थे गुरवो मताः ॥१॥ मधुकृन्मधुहर्ता च पिङ्गलाथ द्वयोस्त्रयः । उपादेयार्थविज्ञाने शेषाः पृथ्व्यादयो मताः॥२॥ तदवान्तरभेदश्च तत्र तत्र स्फुटीकृतः । अध्यायत्रितये चाप्टनवाष्टावीरिताः क्रमात् ॥३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां नवमोऽध्यायः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् अपने वंश को ब्रह्मज्ञानियों का वंश बतलाकर उसकी प्रशंसा करते है । पूर्वेषामपि पूर्वजः अर्थात् पूर्वजों के भी पूर्वज ॥३३॥ इस विषय में संग्रह श्लोक इस प्रकार है । कबूतर, मछली, हरिण, कुमारी, हार्थी, सर्प कीड़ा, और कुरर ये आठ ज्याज्य विषयों के गुरु हैं ॥१॥ भौरा, मधु निकालने वाला, तथा पिङ्गला ये तीनों उपादेय (ग्राह्य) विषय विषयक गुरु हैं । अवशिष्ट पृथिवी आदि उन सबों के भेदोपभेदों के गुरु हैं यह स्थान-स्थान पर स्पष्ट किया गया है । ये सभी क्रमश: सातवें, आठवें और नवें इन तीन अध्यायों में वर्णित हैं ।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के नवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥९॥

दसवाँ अध्याय

लौकिक तथा पारलौकिक भोगों की असारता का निरूपण

श्रीभगवानुवाच

मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु मदाश्रयः । वर्णाश्रमकुलाचारमकामात्मा समाचरेत् ।।१।।

अन्वयः— मदाश्रयः मयोदितेषु स्वधर्मेषु अवहितः वर्णाश्रमकुलाचारम् अकामात्मा समाचरेत् ।।१।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— उद्धव ! साधक को चाहिए कि वह सब तरह से मेरी शरण में रहकर गीता आदि में मेरे द्वारा उपदिष्ट अपने धर्मों का पालन करे, साथ ही जहाँ तक उनसे विरोध न हो वहाँ तक निष्काम भाव से अपने वर्ण एवं आश्रम तथा कुल के अनुसार सदाचार का भी पालन करे ।।१।।

भावार्थ दीपिका

चतुर्विंशतिगुर्वाख्यालब्धसंभावनाभुवः । उद्धवस्यात्मतत्त्वाप्त्यै साधनोक्तिरतः परैः ।।१।। दशमे देहसंबन्धात्संसृतिर्नात्मनः स्वतः । इत्येतद्वर्णयामास मतान्तरनिरासतः ।।२।। तदेवमन्वयव्यतिरेकाभ्यामुत्पन्नविवेकज्ञानस्य तत्त्वज्ञानायादिति आरभ्य साधनान्युपदिशति भगवान्-मयेति । मया पञ्चरात्राद्युक्तवैष्णवधर्मेष्ववहितोऽप्रमत्तः संस्तदविरोधेन वर्णाद्याचारमनुतिष्ठेत् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

चौबीस गुरुओं से प्राप्त संभावना भूमिका वाले उद्धवजी को आत्मतत्त्व की प्राप्ति के लिए इसके बाद के अध्यायों में साधनों का वर्णन है ।।१।। इस दसवें अध्याय में बतलाया गया है कि देह के संबन्ध से संसार में संसरण करना पड़ता है केवल आत्मा संसरण नहीं करती है, इसी अर्थ का प्रतिपादन भगवान् श्रीकृष्ण ने मतान्तरों के निरास पूर्वक किया है ।।२।। इस तरह अन्वव्यतिरेक के द्वारा जिनको विवेकज्ञान उत्पन्न हो गया था ऐसे उद्धवजी को तत्त्वज्ञान के लिए श्रीभगवान् प्रारम्भ से ही साधनों का उपदेश करते है । **मया० इत्यादि** श्लोक के द्वारा मैंने पञ्चरात्र आदि में जो वैष्णव धर्म का उपदेश दिया है उसके अनुकूल सदाचारों का भी अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुष्ठान करना चाहिए।।१।।

अन्वीक्षेत विशुद्धात्मा देहिनां विषयात्मनाम् । गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्वारम्भविपर्ययम् ।।२।।

अन्वयः— विशुद्धात्माविषयात्मनाम् देहिनाम् गुणेषु तत्त्वध्यानेन सर्वारम्भविपर्ययम् पश्येत् ।।२।।

अनुवाद— निष्काम भाव की प्राप्ति के लिए अपने धर्म का पालन करने वाला तथा शुद्ध अन्तःकरण वाला पुरुष अपने मन में विचार करे कि विषयीप्राणी शब्दादि विषयों को सत्य मानकर उनकी प्राप्ति इसलिए करना चाहते हैं कि उनसे सुख मिले; किन्तु विषयों से केवल दुःख की ही प्राप्ति होती है ।।२।।

भावार्थ दीपिका

कथमकामात्मता संभवति तत्राह-अन्वीक्षेतेति । स्वधर्मैर्विशुद्धचित्तः सन्देहिनां विषयेषु सत्यत्वाभिनिवेशेन ये सर्वे आरम्भास्तेषां फलवैपरीत्यं पश्येत् । एवं फलवैपरीत्यादकामः स्यात् ।।२।।

भाव प्रकाशिका

कामना राहित्य की प्राप्ति कैसे हो, इसके विषय में भगवान् कहते हैं कि देहधारियों को शब्दादि विषयों में सत्यत्वभिनिवेश हैं इसीलिए । उसी के कारण वे जिन कर्मों को करना प्रारम्भ करते हैं,उन कर्मों का विपरीत ही फल मिलता है । सुख के बदले में उन्हें दुःख ही मिलता है ।।२।।

सुप्तस्य विषयालोको ध्यायतो वा मनोरथः । नानात्मकत्वाद्विफलस्तथा भेदात्मधीर्गुणैः ॥३॥

अन्वयः सुप्तस्य विषयालोकः ध्यायतो वा मनोरथः नानात्मकत्वाद्विफलः तथा भेदात्मधीर्गुणः ॥३॥

अनुवाद स्वापकाल में तथा जाग्रतावस्था में मनोरथों के द्वारा हम मन ही मन अनेक प्रकार के विषयों का अनुभव करते हैं । किन्तु ये सारी कल्पनाएं वस्तुशून्य होने के कारण व्यर्थ है । इसीतरह इन्द्रियों के द्वारा होने वाली भेद बुद्धि भी व्यर्थ है । क्योंकि ये भी इन्द्रियजन्य और नाना वस्तुविषयक होने के कारण असत्य है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

किंच काम्यविषयाणां मिथ्यात्वादपीत्याह-सुप्तस्येति । विफलोऽर्थशून्यः । अत्रैवं प्रयोगः-इन्द्रियैर्या बहिर्नानाबुद्धिः सा विफला, नानात्मकत्वात् ऐन्द्रियकत्वाच्च । मनोजन्यस्वप्नमनोरथवदिति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च काम्यविषयों के मिथ्या होने के कारण भी श्रीभगवान् ने कहा **सुप्तस्य इत्यादि विफलः** अर्थात् व्यर्थ। यहाँ पर इस तरह का अनुमान अभिप्रेत है इन्द्रियों के द्वारा जो बाह्य नाना बुद्धि होती है, वह व्यर्थ है, क्योंकि वह नानात्मक (भेदात्मक) है तथा ऐन्द्रियक भी है, मन से उत्पन्न स्वापकालिक तथा मनोरथों के समान ॥३॥

निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं मत्परस्त्यजेत् । जिज्ञासायां संप्रवृत्तो नाद्रियेत्कर्मचोदनाम् ॥४॥

अन्वयः— मत्परः निवृत्तं कर्म सेवेत प्रवृत्तं त्यजेत् जिज्ञासायां संप्रवृत्तः कर्मचोदनाम् नाद्रियेत् ॥४॥

अनुवाद— मेरी शरण में रहने वाला जीव निष्काम कर्मों को ही करे वह सकाम कर्मों का बिल्कुल परित्याग कर दे । जब आत्मज्ञान की जिज्ञासा हो जाय तब तो कर्म सबन्धी विधिविधानों को भी त्याग दे ॥४॥

भावार्थ दीपिका

'मोक्षार्थी न प्रवर्तेत तत्र काम्यनिषिद्धयोः । नित्यनैमित्तिके कुर्यात्प्रत्यवायजिहासया ।' इति स्मृतिरतः प्रवृत्तं काम्यं कर्म त्यजेन्निवृत्तं नित्यनैमित्तिकमेव कुर्यात् । आत्मविचारे तु सम्यक्प्रवृत्तो निवृत्तकर्मचोदनामपि नाद्रियेत ॥४॥

भाव प्रकाशिका

स्मृति कहती है कि मुमुक्षु जीव को काम्य कर्मों तथा निषिद्ध कर्मों को नहीं करना चाहिए । बीच में होने वाले विघ्नों को विनष्ट करने के लिए नित्य एवं नैमित्तिक कर्मों को करता रहे । जो व्यक्ति आत्मज्ञान में अच्छी तरह से प्रवृत्त हो गया हो उसे कर्म संबन्धी विधिवाक्यों पर भी ध्यान नहीं देना चाहिए ॥४॥

यमानभीक्ष्णं सेवेत नियमान्मत्परः क्वचित् । मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीत मदात्मकम् ॥५॥

अन्वयः— मत्परः यमान् अभीक्ष्णं सेवेत, क्वचित् नियमान्, मदभिज्ञं मदात्मकं शान्तं गुरुम् उपासीत ॥५॥

अनुवाद— मेरे भक्त को चाहिए कि वह अहिंसा, सत्य एवं अस्तेय आदि यमों का सदैव पालन करे । किन्तु शौच आदि नियमों का पालन अपनी शक्ति के तथा जो आत्मज्ञान के विरोधी न हो उसका पालन करना चाहिए । जिज्ञासु पुरुष को यम तथा नियमों के भी पालन से अधिक आवश्यक बात यह है कि मेरे स्वरूप को जानने वाले शान्त एवं मेरे स्वरूप भूत गुरु की उपासना करे ॥५॥

भावार्थ दीपिका

किंच यमानहिंसादीनभीक्ष्णमादरेण सेवेत । शौचादींस्तु नियमान्क्व चिद्यदा शक्तिस्तदा आत्मज्ञानाविरोधेन । यमान्द्वादशे, नियमांश्चैकोनविंशेऽध्याये वक्ष्यति । किंच यमेश्वप्यादरं परित्यज्य गुरुमुपासीतेत्याह-मदभिज्ञमिति ॥ मदात्मकं मद्रूपम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च अहिसा आदि यमों का आदर पूर्वक सेवन करे तथा नियमों का पालन अपनी शक्ति के अनुसार करे तथा जो आत्मज्ञान के अनुकूल हो उसी का पालन करना चाहिए। यमों का निरूपण बारहवें अध्याय में तथा नियमों का निरूपण उन्नीसवें अध्याय में करेंगे। तथा यमों के भी विषय में होने वाले आदर का परित्याग करके गुरु की उपासना करनी चाहिए इस बात को **मदभिज्ञम० इत्यादि** से कहा गया है। **मदात्मकम्** अर्थात् मेरे स्वरूपभूत ॥५॥

अमान्यमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः । असत्वरोऽर्थजिज्ञासुरनसूयुरमोघवाक् ॥६॥

अन्वयः— अमानी अमत्सरः दक्षः निर्ममः दृढसौहृदः असत्वरः अर्थजिज्ञासुः, अनसूयुः अमोघवाक् ॥६॥

अनुवाद— शिष्य को अभिमानी नहीं होना चाहिए, वह किसी का बुरा न सोचे उसे कार्यों को करने में चतुर होना चाहिए, उसकी किसी में ममता भी नहीं होनी चाहि, उसका गुरु के चरणों में सुदृढ अनुराग होना चाहिए, वह किसी भी काम को घबरा कर नहीं करे वह कार्य को सावधानीसे पूरा करे। वह परमार्थ के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखे, किसी के गुण में दोष बुद्धि न करे और न तो व्यर्थ की बातें करे ॥६॥

भावार्थ दीपिका

गुरुसेवकस्य धर्मानाह–अमानीति। दक्षोऽनलसः। निर्ममो जायादिषु ममताशून्यः। गुरौ तु दृढसौहृदः। असत्वरोऽव्यग्रः। अमोघवाक् व्यर्थालापरहितः। एतान्येव शिष्यस्य लक्षणानि ज्ञेयानि ॥६॥

भाव प्रकाशिका

गुरु की सेवा करने वाले शिष्य के धर्मों को बतलाते हुए कहते हैं अमानी अर्थात् अभिमनरहित, दक्ष अर्थात् अलस्य रहित, निर्ममः अर्थात् पत्नी आदि में ममता से रहित, गुरु में सुदृढ प्रेम सम्पन्न होना चाहिए। असत्वरः अर्थात् उसको किसी भी कार्य को करते समय व्यग्र नहीं होना चाहिए। अमोघवाक् अर्थात् व्यर्थ की बातें नहीं करने वाला होना चाहिए। ये ही शिष्य के भी लक्षण हैं ॥६॥

जायापत्यगृहक्षेत्रस्वजनद्रविणादिषु । उदासीनः समं पश्यन्सर्वेष्वर्थमिवात्मनः ॥७॥

अन्वयः— जायापत्यगृहक्षेत्र स्वजनद्रविणादिषु उदासीनः आत्मनः अर्थमिव सर्वेषु समं पश्यन् ॥७॥

अनुवाद— जिज्ञासु का परम धन आत्मा है। इसलिए उसे स्त्री, पुत्र, गृह, क्षेत्र (खेत) स्वजन संबन्धी तथा धन सम्पत्ति के विषय में उदासीन बने रहना चाहिए। वह सभी पदार्थों में समान रूप से आत्मा को देखे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

ननु स्वजायादिषु कथं निर्ममः स्यात्तत्राह–जायेति। औदासीन्यहेतुं विवेकं दर्शयति–आत्मनोऽर्थ प्रयोजनं सर्वत्र सममिव पश्यन्निति। अयं भावः–सर्वदेहेष्वात्मन एकात्वाज्जायादिदेहेऽस्मिंश्च स्वदेहे आत्मनोऽर्थः सुखादिः सम एव केन विशेषेणैतेष्वेव ममत्वाभिनिवेश इत्येवमुदासीनः सन् गुरुं प्रपद्येतेति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि अपनी पत्नी इत्यादि के विषय में वह कैसे उदासीन रह सकता है तो इसके उत्तर में कहते हैं। औदासीन्य का कारण विवेक है। वह आत्मा के प्रयोजन को सर्वत्र समान रूप से देखे। कहने का अभिप्राय है कि सभी शरीरों में आत्मा एक ही हैं पत्नी आदि के शरीर में तथा अपने इस शरीर में आत्मा के अर्थभूत सुख आदि एक समान ही हैं। अतएव किस विशेषता के कारण इन शरीरों में ममत्व हो सकता है ? इस तरह पत्नी आदि से उदासीन होकर आचार्य की शरणागति करे ॥७॥

विलक्षणः स्थूलसूक्ष्माद्देहादात्मेक्षिता स्वदृक् । यथाग्निर्दारुणो दाह्याद्दाहकोऽन्यः प्रकाशकः ॥८॥

अन्वयः— यथा दाह्यद् दारुणः दाहकोग्निः अन्य प्रकाशकः तथा आत्मेक्षिता स्वदृक् आत्मा स्थूल सूक्ष्माद्देहाद् विलक्षणः ॥८॥

अनुवाद— उद्धव जिस तरह जलने वाली लकड़ी से उसको जलाने वाली तथा प्रकाशक अग्नि सर्वथा विलक्षण है उसी तरह आत्मा पञ्चभूतों से बने स्थूल शरीर तथा मन, बुद्धि आदि सत्रह अवयवों वाले सूक्ष्म शरीर से सर्वथा भिन्न है। ये दोनों शरीर जड एवं दृश्य हैं। यह आत्मा उनको जानने वाला तथा प्रकाशित करने वाला साक्षी एवं स्वयम्प्रकाश है। अतएव देह से आत्मा भिन्न है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अहो कोऽसौ देहादिव्यतिरिक्त आत्मा यस्यैक्यादर्थः सर्वेषु समः स्यात्तमाह-विलक्षण इति। स्थूलसूक्ष्मदेहद्वयादात्माऽन्यो यतो विलक्षणः द्वेधा वैलक्षण्यं दर्शयति-ईक्षिता स्वदृगिति। द्रष्टा हि दृश्याद्विलक्षणः। स्वप्रकाशश्च जडाद्विलक्षणः। तयोरन्यत्वे दृष्टान्तः-यथाग्निर्दाहकः प्रकाशकश्च दाह्यात्प्रकाश्याच्च दारुणः काष्ठादन्यस्तद्वदिति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि देहादि से भिन्न आत्मा कौन पदार्थ है। जिसकी एकता के कारण सबों में समान प्रयोजन होए इसके उत्तर में **विलक्षणः इत्यादि** श्लोक कहा गया है। सूक्ष्म एवं स्थूल दोनों प्रकार के शरीरों से आत्मा विलक्षण ही है। शरीर से आत्मा की दो प्रकार की विलक्षणता बतलायी गयी है। आत्मा द्रष्टा है अतएव दृश्य शरीर से विक्षण है। वह स्वप्रकाश है अतएव जड़ शरीर से विलक्षण है। शरीर और आत्मा के परस्पर में विलक्षण होने का दृष्टान्त है जैसे दाह्य काष्ठ से दाहक एवं प्रकाशक अग्नि विलक्षण है उसी तरह शरीर से आत्मा विलक्षण है ॥८॥

निरोधोत्पत्त्यणुबृहन्नानात्वं तत्कृतान् गुणान् । अन्तःप्रविष्ट आधत्त एवं देहगुणान्परः ॥९॥

अन्वयः— निरोधोत्पत्यणुबृहन्नात्वं तत्कृतान् गुणान् अन्तः प्रविष्टः आधत्ते एवं परः देहगुणान् ॥९॥

अनुवाद— जब अग्नि लकड़ी में प्रज्वलित होती है तब लकड़ी के उत्पत्ति विनाश, बड़ाई-छोटाई और अनेकता आदि सभी गुण वह स्वयं धारण कर लेती हैं, किन्तु लकड़ी के उन गुणों से आग का कोई संबन्ध नहीं है, वैसे ही आत्मा जब अपने को शरीर मान लेती हैं तो वह देह के जड़ता, अनित्यता स्थूलता अनेकता आदि गुणों से सर्वथा रहित होने पर भी देह के गुणों को धारण कर लेती है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अनेनैव दृष्टान्तेन नित्यत्वानादित्वविभुत्वैकत्वादयोऽपि सिध्यन्तीत्याह-निरोधेति। यथा दारुष्वन्तः प्रविष्टोऽग्निस्तत्कृतान्नाशादीन्प्राप्नोति, न तु स्वतो नाशादिमान्। एवं देहगुणाननित्यत्वादीन् देहात्परो नित्यादिस्वरूपोऽप्यात्मानुभवति। ततश्च नित्यवादिभिरपि वैलक्षण्यादन्यत्वमिति भावः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इसी दृष्टान्त से आत्मा के नित्यत्व, अनादित्व, विभुत्व तथा एकत्व आदि की सिद्धि हो जाती है, इस बात को **निरोधोत्पत्त्य० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। जिस तरह काष्ठ के भीतर प्रवेश की हुई अग्नि में काष्ठ के नाशादि गुणों को प्राप्त कर लेती है किन्तु वह नाशादिमान नहीं है। इसी तरह देह के भीतर प्रविष्ट आत्मा वस्तुत: नित्यत्वादि स्वरूप होने पर भी देह के अनित्यत्व गुणों का अनुभव करने लगती हैं। अतएव नित्यत्वादि के भी कारण आत्मा शरीर से विलक्षण है ॥९॥

योऽसौ गुणैर्विरचितो देहोऽयं पुरुषस्य हि । संसारस्तन्निबन्धोऽयं पुंसो विद्याछिदात्मनः ॥१०॥

अन्वयः— पुरुषस्य गुणैः अयं देहः विरचितः तन्निबन्धोऽयं पुंसः संसारः आत्मनः विद्याछित् ॥१०॥

अनुवाद— परमात्मा की माया के गुणों से ही इस स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर का निर्माण हुआ है । जीव को जन्म मृत्यु रूप संसार केवल इसी भ्रम अथवा अध्यास के कारण है । आत्मा का ज्ञान हो जाने पर उसकी जड़ कट जाती है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

नन्वग्रेर्दरुसंयोगात्तद्धर्मभाक्त्वं घटते, आत्मनस्त्वसङ्गत्वात्कथं देहेन, तद्धर्मैर्वा संबन्धः, संबन्धे वा कुतस्तन्निवृत्तिस्तत्राह- योऽसाविति । पुरुषस्येश्वरस्याधीनैर्मायागुणैर्योऽसौ सूक्ष्मोऽयं च स्थूलो देहो विरचितः पुंसो जीवस्यायं संसारस्तन्निबन्धनस्तदध्यासकृतः। हि यस्मादेवं तस्मादात्मविद्या तन्निवर्तिकेत्याह-आत्मनो विद्या विज्ञानं तस्य छित् छेत्री आच्छिदिति वा पदच्छेदः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि अग्नि का काष्ट से संयोग हो जाने से काष्ट के धर्मों से युक्तता अग्नि की सम्भव है किन्तु आत्मा तो असङ्ग है, उसका देह से अथवा देह के धर्मों से कैसे सम्बन्ध होता है अथवा सम्बन्ध हो जाने पर उसकी निवृत्ति कैसे होती है ? तो इसके उत्तर में **योऽसौ० इत्यादि** श्लोक श्रीभगवान् कहते हैं-परमात्मा की माया के गुणों से ही स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर का निर्माण हुआ है । इस शरीर संबन्ध के ही कारण जीव को जन्म मृत्यु रूप भ्रम अध्यास के कारण ही होता है । चूकि ऐसी बात है अतएव ज्ञान ही उसका निवर्तक है । विद्याछिदात्मनः में अछित् भी पदच्छेद सम्भव है ॥१०॥

तस्माज्जिज्ञासयात्मानमात्मस्थं केवलं परम् । संगम्य निरसेदेतद्वस्तुबुद्धिं यथाक्रमम् ॥११॥

अन्वयः— तस्मात् जिज्ञासयात्मानम् आत्मस्थं केवलं परम् संगम्य यथाक्रमम् एतद्वस्तुबुद्धिं निरसेत् ॥११॥

अनुवाद— चूकि जन्म मृत्यु रूप संसार का कारण अज्ञान ही है अतएव अपने स्वरूप को ही जानने का प्रयास करना चाहिए । आत्मा जगत् से अतीत है । यह द्वैत की गन्ध से रहित और अपने आप में स्थित है । इसका कोई आधार नहीं है । इस तरह से आत्मा के स्वरूप को जानकर स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर में जो सत्यत्व बुद्धि हो रही है, उसको धीरे-धीरे त्याग देना चाहिए ॥११॥

भावार्थ दीपिका

यस्मादेव तस्माज्जिज्ञासया विचारेण । आत्मस्थमात्मनि कार्यकारणसंघात एव स्थितं सम्यग्ज्ञात्वा एतदेतस्मिन्देहादौ वस्तुबुद्धिं स्थूलसूक्ष्मक्रमेण निरसेत् त्यजेत् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

चूकि अज्ञान के ही कारण संसार है, अतएव आत्मा के स्वरूप को जानने का प्रयास करना चाहिए। आत्मा अपने आप में ही स्थित है । कार्य कारण समूह ही स्थित है, इस बात को अच्छी तरह जानकर इन देहादि में सत्यत्यत्व बुद्धि का क्रमशः त्याग कर देना चाहिए ॥११॥

आचार्योऽरणिराद्यः स्यादन्तेवास्युत्तरारणिः तत्संधानं प्रवचनं विद्या संधिः सुखावहः ॥१२॥

अन्वयः— आचार्यः आद्यः अरणिः स्यात् अन्तेवासी उत्तरारणिः प्रवचनं तत् संघानम् विद्या सन्धिः सुखावहः॥१२॥

अनुवाद— यज्ञ में अरणि मन्थन करके अग्निदेव को प्रकट किया जाता है अरणि में दो लकड़ियाँ होती है एक नीचे होती है और एक ऊपर होती है । बीच में मन्था होता है । उसी तरह विद्यारूपी अग्नि को प्रकट करने के

लिए आचार्य ही अधरारणि हैं और शिष्य उत्तरारणि है। आचार्य द्वारा किया जाने वाला प्रवचन ही सन्धान है तथा उससे होने वाली विद्या की प्राप्ति ही सन्धि है। यह विद्यारूपी विलक्षण अग्नि सुख प्रदान करने वाली है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

गुरोर्लब्धा विद्या अविद्यातत्कार्यनिरसनक्षमेति स्फुटीकर्तुं विद्योत्पत्तिमग्न्युत्पत्तिरूपकेण निरूपयति-आचार्य इति। आद्योऽधरः। तत्संधानं तयोर्मध्यमं मन्थनकाष्ठम्। प्रवचनमुपदेशः। विद्या तु संधिः, संधौ भवन्नग्निरिव। तथा च श्रुतिः- 'आचार्यः पूर्वरूपम्। अन्तेवास्युत्तररूपम्। विद्या संधिः प्रवचनँसंधानम्' इति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

आचार्य से प्राप्त होने वाली विद्या अविद्या और उसके कार्यों को विनष्ट कर देने में समर्थ होती है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए अग्नि उत्पत्ति रूप रूपक के द्वारा विद्या की उत्पत्ति का निरूपण **आचार्यः इत्यादि** श्लोक से किया गया है। आद्यः अर्थात् नीचे की। उसका सन्धान अर्थात् अधरारणि और उत्तरारणि के बीच में रहने वाला **काष्ठा प्रवचनम्** अर्थात् आचार्य के द्वारा किया जाने वाला उपदेश। विद्या ही सन्धि है। जिस तरह सन्धि में अग्नि उत्पन्न होती है। श्रुति भी कहती है- आचार्य ही पूर्वरूप हैं, (अर्थात् अधरारणि हैं) छात्र ही उत्तरारणि हैं विद्या ही उन दोनों की सन्धि है उसमें उत्पन्न होने वाली विलक्षण अग्नि है तथा प्रवचन (आचार्य के द्वारा किया जाने वाला) उपदेश ही सन्धान है ॥१२॥

वैशारदी साति विशुद्धबुद्धिर्धुनोति मायां गुणसंप्रसूताम्।
गुणांश्च संदह्य यदात्ममेतत्स्वयं च शाम्यत्यसमिद्यथाग्निः ॥१३॥

अन्वयः— वैशारदी सा अतिविशुद्धबुद्धिः गुण सम्प्रसूताम् मायां धुनोति गुणान् च संदह्य एतत् यदआत्मम् असमित् अग्नि यथा स्वयं च शाम्यति ॥१३॥

अनुवाद— बुद्धिमान शिष्य सद्गुरु से जिस विशुद्ध ज्ञान को प्राप्त करता है वह गुणों से बनी हुई विषयों की माया को भस्म कर देता है। उसके पश्चात् वे गुण भी भस्म हो जाते हैं जिनसे संसार बना है। इस प्रकार सबके भस्म हो जाने पर जब आत्मव्यतिरिक्त कोई भी वस्तु अवशिष्ट नहीं रह जाती है जब वह ज्ञानाग्नि भी अपने वास्तविक स्वरूप में उसी तरह शान्त हो जाती है जिस तरह इन्धन के अभाव में अग्नि शान्त हो जाती है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अग्निसादृश्यमेवाह-वैशारदीति। विशारदोऽतिनिपुणस्तेन शिष्येण प्राप्ता तेन गुरुणोपदिष्टा वा अतिविशुद्धा बुद्धिर्गुणकार्यरूपां मायां निवर्तयति। यदात्मकमेतद्विश्वं जीवस्य संसृतिर्निमित्तं तान् गुणांश्च दग्ध्वा असमिन्निरिन्धनः, तस्मात्कार्येण कारणेन विद्यया च व्यवधानाभावात्साक्षात्परमानन्दरूपो भवतीति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

वैशारदी इत्यादि श्लोक से विद्या को अग्नि के सदृश बतलाया गया है। अत्यन्त निपुण शिष्य आचार्योपदिष्ट अत्यन्त विशुद्ध बुद्धि रूपी अग्नि को प्राप्त करता है, वह गुणों से बनी विषयों की माया को भस्म कर देती है। उस माया से ही यह संसार बना हैं उसी के कारण जीव संसार में संसरण करता है। वह अग्नि गुणों के भी भस्म कर देती है। गुणों को जलाकर अपने वास्तविक रूप में उसी तरह शान्त हो जाती है जिस तरह निरिन्धान अग्नि देहेन्द्रिय इत्यादि रूप कार्य, अज्ञान रूप कारण आचार्योपदिष्ट अभेद ज्ञान रूप विद्या के द्वारा व्यवधान नहीं होने से ज्ञान परमानन्द स्वरूप होता है ॥१३॥

नानात्वमथ नित्यत्वं लोककालागमात्मनाम् ॥१४॥
अथैषां कर्मकर्तृणां भौक्तृणां सुखदुःखयोः । तत्तदाकृतिभेदेन जायते भिद्यते च धीः ॥१५॥
मन्यसे सर्वभावानां संस्था ह्यौत्पत्तिकी यथा । कालावयवतः सन्ति भावा जन्मादयोऽसकृत्॥१६॥
एवमप्यङ्ग सर्वेषां देहिनां देहयोगतः । भोक्तुश्च दुःखसुखयोः को न्वर्थो विवशं भजेत्॥१७॥
अत्रापि कर्मणां कर्तुरस्वातन्त्र्यं च लक्ष्यते ।

अन्वयः— अथ एषां कर्म कर्तृणां, सुखदुःखयोः भोक्तृणां नानात्वम् अथ लोककालागमात्मनाम् नित्यं मन्यसे सर्वभावानां संस्था हि औत्पतिकी यथा तत्तदाकृतिभेदेन जायते भिद्यते च धीः । हे अङ्ग स्वम् अपि सर्वेषां देहिनां देहयोगतः कालावयवतः जन्मादयः भावाः असकृत् सन्ति । अत्रापि कर्मणां कर्तुः अस्वातन्त्र्यं च लक्ष्यते । सुख दुःखयोः भोक्तुः कः नु अर्थः विवशं भजेत् ॥१४-१७॥

अनुवाद— यदि तुम कर्मों को करने वाले एवं सुख-दुख को भोगने वाले जीव को अनेक तथा जगत् काल वेद तथा आत्माओं को नित्य मानते हो, साथ ही समस्त पदार्थों की स्थिति प्रवाहतः नित्य एवं यथार्थ मानते हो, तथा यह समझते हो कि घट-पट आदि आकृतियों के भेद से उनके अनुसार ज्ञान ही बदलता है तो इस मत को मानने में बड़ा ही अनर्थ हो जायेगा । क्योंकि इस प्रकार जगत् के कर्ता आत्मा की नित्य सत्ता और जन्म मृत्यु के चक्र से मुक्ति भी नहीं सिद्ध होगी। यदि ऐसा स्वीकार भी कर लिया जाय तो देह और संवत्सर आदि काल के अवयवों के संबन्ध से होने वाली जीवों के जन्म और मृत्यु आदि अवस्थाएँ नित्य होने के कारण दूर नहीं हो सकेंगी क्योंकि तुम देहादि और काल पदार्थ की नित्यता स्वीकारते हो । इसके अतिरिक्त यहाँ भी कर्मों को करने वाला तथा सुख-दुःखादि को भोगने वाला जीव परतन्त्र ही दिखता है । यदि वह स्वतन्त्र होगा तो दुःख रूप फल को क्यों भोगेगा ? इस तरह सुख भोग की समस्या सुलझ जाने पर भी दुःख भोग की समस्या तो उलझी ही रहेगी । अतएव इस मत के अनुसार जीव को कभी मुक्ति नहीं मिलेगी । यदि जीव स्वरूपतः परतन्त्र है (विवश) है तो वह स्वार्थ या परमार्थ किसी का भी सेवन नहीं करेगा । वह स्वार्थ एवं परमार्थ दोनों से वञ्चित रह जायेगा ॥१४-१७॥

भावार्थ दीपिका

एवं तावत्स्वप्रकाशज्ञानस्वरूपो नित्य एक एवात्मा, कर्तृत्वादयश्च धर्मास्तस्य देहोपाधिकास्तद्व्यतिरिक्तं सर्वमनित्यं मायामयं चातः सर्वतो विरक्तः सन्नात्मज्ञानेन मुच्यत इत्युक्तं-'विलक्षणः स्थूलसूक्ष्मात्' इत्यादिना, तदेव श्रुतिसमन्वयेन निर्णीतेऽप्यर्थे मतान्तरविरोधेन संदेहो मा भूदिति तन्मतं निराकर्तुमुद्भावयति-अथेति । अथ मन्यसे एषां जीवात्मनां कर्मकर्तृणां सुखदुःखयोर्भोक्तृणां च नानात्वमिति । एवं हि जैमिनीया मन्यन्ते । अहंप्रत्ययविज्ञेय एवात्मा स च प्रतिशरीरं भिन्नः कर्तृभोक्तृरूपश्च न तु तत्स्वरूपभूतो निर्विकार एकः परमात्मास्तीति । यथाहुः-'अहंप्रत्ययविज्ञेयो ज्ञातव्यं सर्वदैव हि' इति । तथा वैराग्यं च न संभवति । तथाहि-भोगस्थानानामनित्यत्वाद्वा वैराग्यं भवेत्, भोगकालस्य वा तदुपायकर्मबोधकागमस्य वा भोक्तुरात्मनो वा नन्वेतदस्तीत्याह-अथ नित्यत्वं लोककालागमात्मनां मन्यस इति । न च सर्वभोग्यानां विच्छेदान्मायापयत्बाद्वा वैराग्यस्यादित्याह सर्वभावनां स्रकचन्दनादीना संस्था स्थितिरौत्पत्तिकी प्रवाहरूपेण नित्या । तथा च वदन्ति, 'न कदाचिदनीदृशं जगत्' इति । अतस्तत्कर्ता कश्चिदीश्वरो नास्तीति भावः । किंच यथा यथावत् । न तु मायामयीत्यर्थः । न चात्मस्वरूपभूतं नित्यमेकं ज्ञानमस्तीत्याह-तत्तदिति । घटपटाद्याकारभेदेन धीर्जायते अतोऽनित्या भिद्यते च । अयं गूढोऽभिप्रायः । नहि नित्यज्ञानरूप आत्मा, अपि तु ज्ञानपरिणामवान्, न च विकारित्वेनानित्यत्वप्रसङ्गः । यथाहुः- 'विक्रियाज्ञानरूपास्य न नित्यत्वे विरोत्स्यते' इति । अतो मुक्ताविन्द्रियादिरहितस्य परिणामासंभावाज्जडत्वेन तत्प्राप्तेरपुरुषार्थत्वात्प्रवृत्तिरेव श्रेयसी न निवृत्तिरिति । तत्र तावदुक्तमङ्गीकृत्य वैराग्योपपादनाय प्रवृत्तिमार्गस्यानर्थहेतुत्वं प्रपञ्चयति-एवमपीत्यादिना लोकानां लोकपालानामित्यतः प्राक्तनेन ग्रन्थेन । अङ्ग हे उद्धव । कालावयवतः संवत्सरादिरूपात् । अत्रापीति । स्वातन्त्र्यपक्षे दुष्कर्मणो दुःखभोगस्य वाऽसंभवादित्यर्थः ॥१४-१७॥

भाव प्रकाशिका

आत्मा एक है, वह स्वयं प्रकाश ज्ञानस्वरूप और नित्य है । उससे प्रतीत होने वाले कर्तृत्व आदि धर्म देहौपाधिक हैं । आत्मा से भिन्न सब कुछ अनित्य एव मायामय है । अतएव सबों से विरक्त होकर आत्मज्ञान प्राप्त करने से जीव मुक्त हो जाता है । इस बात को **विलक्षणः स्थूलसूक्ष्मात् इत्यादि** श्लोक से कहा जा चुका है। उसी श्रुतिसमन्वय के द्वारा निर्णीत भी अर्थ में, मतान्तर से विरोध होने के कारण संदेह न हो एतदर्थ उस मत का खण्डन करने के लिए **अथैषाम्० इत्यादि** श्लोक से कहते है । यदि तुम कर्मों को करने वाले तथा सुख-दु:ख को भोगने वाले जीवों को अनेक मानते हो । इसी तरह मीमांसक भी मानते हैं । वे कहते हैं जिसको मैं मैं इस रूप से जाना जाता है वही आत्मा है । वह प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न है । वही कर्ता एवं भोक्ता है । वह ब्रह्म स्वरूपभूत निर्विकार एक परमात्मा ही है, ऐसा नहीं मानते हैं । मीमांसको ने कहा भी है **अहं प्रत्यय विज्ञेयो ज्ञातव्यः सर्वदैव हि** अर्थात् आत्मा को सदैव मैं मैं इस रूप से ही जानना चाहिए । किन्तु ऐसा होने पर वैराग्य का भी होना सम्भव नहीं है । अथवा भोगस्थान में रहने वाले के अनित्य होने के कारण वैराग्य हो सकता है । अथवा भोग काल का या भोग के उपायभूत कर्मों के बोधक आगम का अथवा भोक्ता आत्मा का किन्तु ऐसा होना सम्भव नहीं है, इसी बात को भगवान् कहते है कि यदि जगत् काल तथा आगमों को तुम नित्य मानते हों । यह भी नहीं कहा जा सकता है कि सभी भोग्य पदार्थों का विच्छेद हो जाने से अथवा मायामय होने के कारण वैराग्य हो सकता है । इस बात को स्त्रकचन्दनादि सभी भाव पदार्थों की उत्पत्ति जन्य स्थिति प्रवाह रूप से नित्य है । मीमांसक कहते हैं कि कभी भी इससे भिन्न प्रकार का जगत् नहीं होता है । अतएव उस जगत् का कर्ता कोई ईश्वर नहीं है; यह जगत् जैसा है, वैसा ही रहता है, यह मायामय नहीं है । आत्मा स्वरूप भूत एक ही ज्ञान हो ऐसी भी बात नहीं है । इस बात को **तत्तदाकृतिभेदेन** इत्यादि से कहा गया है । यदि कहे की घट-पट आदि आकर की भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न होता है । मीमांसकों का गूढाभिप्राय इस प्रकार का है । आत्मा नित्य एवं ज्ञान रूप नहीं है । वह ज्ञान के परिणाम वाला है । उसके विकार युक्त होने के कारण अनित्यत्व का भी प्रसङ्ग नहीं हो सकता है । जैसा कि मीमांसको ने कहा भी है विक्रिया, **ज्ञान रूपस्य न नित्यवे विरोत्स्यते** अर्थात् ज्ञान स्वरूप विकार के कारण आत्मा के नित्यत्व का विरोध नहीं होता है । अतएव मुक्ति में इन्द्रियादि रहित आत्मा का परिणाम सम्भव नहीं होने से जडत्व के कारण मुक्ति प्राप्ति पुरुषार्थ नहीं होने से संसार में प्रवृत्ति ही निवृत्ति अपेक्षा श्रेष्ठ है उक्त बातों को स्वीकार करके वैराग्य के प्रतिपादन के लिए श्रीभगवान् प्रवृत्ति मार्ग के अनर्थकारित्व विस्तार **एवमपि इत्यादि** श्लोक से करते हैं । पहले कहा जा चुका है कि लोक तथा लोकपाल सभी काल के द्वारा ग्रस्त हैं। अङ्ग अर्थात् हे उद्धव । संवत्सरादिरूप काल के अवयवों से । अत्रापि अर्थात् तुम्हारे द्वारा स्वीकृत स्वातन्त्र्य पक्ष में भी दु:खों का भोग असम्भव होगा ।।१४-१७।।

न देहिनां सुखं किंचिद्विद्यते विदुषामपि । तथा च दुःखं मूढानां वृथाहंकरणं परम् ।।१८।।

अन्वयः— विदुषामपि देहिनां किञ्चित् सुखं न विद्यते मूढानां च दुःखं न अतः वृथाहंकारणं परम् ।।१८।।

अनुवाद— लोक में देखा जाता है कि कर्मों को करने में निपुण व्यक्तियों को कभी सुख नहीं मिलता है और कर्म के विषय में अज्ञानी जीवों को कभी दु:ख नहीं मिलता है, अतएव कर्मों को करने में निपुणता का अहङ्कार व्यर्थ ही है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

ननु ये सम्यक्कर्म कर्तुं जानन्ति ते सुखिन एव, ये तु न जानन्ति त एव दुःखिन इति चेत्तत्राह-नेति । विदुषामपि क्वचित्सुखं न विद्यते तथा मूढानामपि दुःखं न विद्यते, अतो वयं कर्मकुशलत्वात्सुखिन इति तेषां केवलं वृथैवाहङ्कार इत्यर्थः।।१८।।

भाव प्रकाशिका

यदि यह कहा जाय कि जो लोग कर्मों को करने में निपुण हैं वे सुखी ही रहते हैं तथा जो कर्मों को करना नहीं जानते हैं वे दुःखी रहते हैं तो यह कहना ठीक नहीं है । देखा जाता है कि जो कर्मों को करने में निपुण हैं ऐसे भी कुछ लोगों को कभी सुख नहीं मिलता है, इसी तरह कुछ लोग कर्मों के विषय में पूर्ण रूप से अज्ञानी होते हैं और उनको कभी दुःख नहीं है । अतएव कर्मों के सम्पादन में नैपुण्य का अहङ्कार व्यर्थ ही है ॥१८॥

यदि प्राप्तिं विघातं च जानन्ति सुखदुःखयोः । तेऽप्यद्धा न विदुर्योगं मृत्युर्न प्रभवेद्यथा ॥१९॥

अन्वयः— यदि प्राप्ति विघातं च सुखदुःखयोः जानन्ति ते अपि अद्धा योगं न विदुः यथा मृत्युः न प्रभवेत् ॥१९॥

अनुवाद— यदि यह मान लिया जाय कि वे सुख की प्राप्ति और दुःख के विनाश का ठीक-ठीक उपाय जानते हैं तो भी यह मानना ही होगा कि वे उस उपाय को नहीं जानते हैं जिससे कि मृत्यु उनके ऊपर प्रभाव न डाल सके ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

अङ्गीकृत्याप्याह-यदीति । तं योगमुपायं न विदुर्यथा साक्षान्मृत्युर्न प्रभवेत् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

पूर्वपक्षी की बात को स्वीकार करके कहते हैं वे लोग उस योग (उपाय) को नहीं जानते हैं जिससे मृत्यु उनके ऊपर प्रभाव न डाल सके ॥१९॥

को न्वर्थः सुखयत्येनं कामो वा मृत्युरन्तिके । आघातं नीयमानस्य वध्यस्येव न तुष्टिदः ॥२०॥

अन्वयः— मृत्युः अन्तिके को न्वर्थः एनं सुखयति आघातं नीयमानस्य वध्यस्य इव तुष्टिदः न ॥२०॥

अनुवाद— जब मृत्यु सिर पर नाच रही है तो फिर कौन सी ऐसी भोग सामगी है जो उसको सन्तुष्ट कर सके जिस मनुष्य को फाँसी पर लटकाने के लिए ले जाया जा रहा हो उसको कौन सा पदार्थ सन्तुष्ट कर सकता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तथापि यावज्जीवं सुखं भविष्यतीति चेन्नेत्याह-को न्विति । यतोऽन्तिके वर्तमानो मृत्युः न तुष्टिदो न तुष्टिं ददाति । आघातं वधस्थानं प्रति नीयमानस्य वध्यस्य स्रक्चन्दनादि यथा न सुखयेत् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि वह अपने जीवन भर तो सुखी रहेगा ही तो इस पर श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसी बात नहीं है। जब सामने मृत्यु विद्यमान हो तो कोई वस्तु उसको सन्तुष्ट नहीं कर सकती है । यह उसी तरह है जिस तरह फाँसी पर चढाने के लिए ले जाये जाने वाले लोगों को स्रक् चन्दनादि सुखी नहीं बना पाते हैं ॥२०॥

श्रुतं च दृष्टवद्दुष्टं स्पर्धासूयात्ययव्ययैः । बह्वन्तरायकामत्वात्कृषिवच्चापि निष्फलम् ॥२१॥

अन्वयः— श्रुतं च लोकवद् दुष्टं स्पर्धासूयात्ययव्ययैः ब्रह्वन्तरायकामत्वात् कृषिवत् चापि निष्फलम् ॥२१॥

अनुवाद— लौकिक सुख के समान पारलौकिक सुख भी दोषों से दूषित है । परलोक में भी बराबरी वालों से स्पर्धा होती है । अधिक सुख भोगने वालों के प्रति असूया अर्थात् उनके गुणों में दोष निकालना रूप असूया होती है । पुण्य के क्षीण होने से उन सुखों का नाश अधिक करने के कारण होता है । वहाँ की कामनाओं के पूर्ण होने में भी यजमान, ऋत्विज एवं कर्म में होने वाली स्पधा के कारण बहुत अधिक विघ्न आते रहते हैं । जिस तरह हरी खेती भी ओला वृष्टि अतिवृष्टि के कारण नष्ट हो जाती है, इसी तरह स्वर्ग भी कर्मों में त्रुटियों के कारण मिलते-मिलते नहीं मिलता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

एवमस्मिँल्लोके सुखं नास्तीत्युक्तं लोकान्तरेऽपि तथैवेत्याह–श्रुतमिति । श्रुतं स्वर्गादि तदपि दुष्टम् । स्पर्धा परसुखासहनम्, असूया परगुणे दोषाविष्करणम्, अत्ययो नाशः, व्ययोऽपक्षयस्तैर्दुष्टम् । यद्वा व्ययो नाशः, अत्ययोऽन्यस्यातिशयः, तं दृष्ट्वा तदप्राप्त्या दुःखमित्यर्थः । किंच बहवोऽन्तराया वैगुण्यादिरूपा विघ्ना यस्मिन्कामे सुखे तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् । कृषिर्यथा बहुविघ्ना तद्वत् । बहुसुखत्वेन श्रुतमपि निष्फलम् ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार यह बतलाया जा चुका है, कि इस लोक में सुख नहीं है । परलोक में भी सुख नहीं है इस बात को **श्रुतम्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । श्रुतम् अर्थात् स्वर्गादि भी उसी दोष से दूषित है । स्पर्धा अर्थात् दूसरे के सुख को नहीं सहना, असूया अर्थात् दूसरे के गुण में दोष देखना, अत्यय: अर्थात् नाश, व्यय अर्थात् क्षीण होना, इन सभी दोषों से दूषित है स्वर्गादि । अथवा व्यय अर्थात् नाश, अत्यय: दूसरे का उत्कर्ष, उसको देखकर उसकी प्राप्ति नहीं होने से कष्ट का अनुभव करना किञ्च स्वर्गादि वैगुण्य रूप से बहुत से बाधाएँ भी स्वर्गादि में हैं । जिस कामना में सुख है उसमें अनेक विघ्नों का होना । जैसे कृषि में ओला वृष्टि आदि अनेक प्रकार के विघ्न होते हैं उसी तरह । यद्यपि सुना जाता है कि स्वर्ग में बहुत सुख है फिर भी वह व्यर्थ हैं ।।२१।।

अन्तरायैरविहतो यदि धर्मः स्वनुष्ठितः । तेनापि निर्जितं स्थानं यथा गच्छति तच्छृणु ।।२२।।

अन्वयः— यदि स्वनुष्ठितः धर्म अन्तरायैः अविहितः तेनापि निर्जितं स्थानं यथा गच्छति तत् शृणु ।।२२।।

अनुवाद— यदि यज्ञ यागादि धर्म बिना किसी विघ्न के पूरा हो जाय तो उसके द्वारा जो स्वर्गादि लोक मिलते हैं उनकी प्राप्ति का प्रकार मैं बतलाता हूँ ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

विघ्नवैगुण्याद्यभावमङ्गीकृत्यापि नाशदुःखं दुष्परिहरमित्याह–अन्तरायैरिति पञ्चभिः । निर्जितं साधितम् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

विघ्न वैगुण्य आदि का अभाव मानकर नाशजन्य दु:ख तो होता ही है । उसको नहीं टाला जा सकता है। पाञ्च प्रकार के विघ्नों से प्राप्त ।।२२।।

इष्ट्वेह देवता यज्ञैः स्वर्लोकं याति याज्ञिकः । भुञ्जीत देववत्तत्र भोगान्दिव्यान्निजार्जितान् ।।२३।।

अन्वयः— इह यज्ञैः देवता, इष्ट्वा याज्ञिकः स्वर्लोकं याति । तत्र निजर्जितान् दिव्यान् भोगान देववत् भुञ्जीत ।।२३।।

अनुवाद— याज्ञिक पुरुष लोक में यज्ञों के द्वारा देवताओं की आराधना करके स्वयम् अर्जित दिव्य भोगों को देवताओं के समान भोगता है ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

यज्ञैर्देवता इन्द्रादिरूपा इष्ट्वा ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

यज्ञों के द्वारा याज्ञिक इन्द्रादि देवताओं की आराधना करके ।।२३।।

स्वपुण्योपचिते शुभ्रे विमान उपगीयते । गन्धर्वैर्विहरन्मध्ये देवीनां हृद्यवेषधृक् ।।२४।।

अन्वयः— स्वपुण्योपचिते शुभ्रे विमाने हृद्यरूप धृक् गन्धर्वैः देवीनां मध्ये विहरन् उपगीयते ।।२४।।

अनुवाद— उसके पुण्यों के फलरूप से उसको एक चमकीला विमान मिलता है । वह उस पर सवार होकर

सुर सुन्दरियों के साथ विहार करता है और गन्धर्व उसके गुणों का गान करते हैं उसके रूप को देखकर दूसरे लोग उस पर लुभा जाते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

स्वपुण्यैरुपचिते सर्वभोगसंपन्ने देवीनां मध्ये विहरन् गन्धर्वैरूपगीयते ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

अपने पुण्यों के फलरूप से सभी भोगों से सम्पन्न सुरसुन्दरियों के बीच में विहार करता है। गन्धर्व उसके गुणों का गान करते हैं ॥२४॥

स्त्रीभिः कामगयानेन किङ्किणीजालमालिना । क्रीडन्न वेदात्मपातं सुराक्रीडेषु निर्वृतः ॥२५॥

अन्वयः— स्त्रीभिः कामगयानेन किंकिणीजालमालिना क्रीडन सुरक्रीडेषु निर्वृतः आत्मपातं न वेद ॥२५॥

अनुवाद— वह जहाँ चाहता है उसका विमान वहाँ जाता है। उसकी घंटियाँ बजती रहती हैं। अप्सराओं के बीच में क्रीडा करता हुआ देवताओं की विहार स्थलियों में क्रीडा करता है। उसी में वह इतना वेसुध रहता है कि उसको यह भी पता नहीं चलता कि अब मैं यहाँ से ढकेल दिया जाऊँगा ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

कामगेनेच्छया गच्छता विमानेन। किङ्किणीजालमालिना क्षुद्रघण्टिकासमूहशोभिना। सह स्त्रीभिः सुराक्रीडेषु नन्दनादिषु क्रीडन्नात्मपातं न वेद ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

कामगविमान के द्वारा **किङ्किणी जालमालिना** छोटी-छोटी घंटियों से सुशोभित स्त्रियों के साथ देवताओं की क्रीडा स्थली में नन्दन आदि वनों में क्रीडा में मग्न उसे इस बात को भी पता नहीं रहता है कि हम यहाँ से ढकेल दिए जायेंगे॥२५॥

तावत्प्रमोदते स्वर्गे यावत्पुण्यं समाप्यते । क्षीणपुण्यः पतत्यर्वागनिच्छन्कालचालितः ॥२६॥

अन्वयः— यावत् पुण्यं समाप्यते तावत् स्वर्गे प्रमोदते, क्षीणपुण्यः कालचालितः अनिच्छन् अर्वाक् पतति ॥२६॥

अनुवाद— जब तक पुण्य अवशिष्ट रहता है, जब तक वह स्वर्ग में आनन्दानुभव करता है, जब पुण्य समाप्त हो जाता है तब नहीं चाहने पर भी काल के द्वारा प्रेरित होकर उसे नीचे गिरना पड़ता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

कालेन चालितः पातितः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

काल के द्वारा गिरा दिया जाता है ॥२६॥

यद्यधर्मरतः सङ्गादसतां वाऽजितेन्द्रियः । कामात्मा कृपणो लुब्धः स्त्रैणो भूतविहिंसकः॥२७॥
पशूनविधिनाऽऽलभ्य प्रेतभूतगणान्यजन् । नरकानवशो जन्तुर्गत्वा यात्युल्बणं तमः ॥२८॥

अन्वयः— यदि असतां सङ्गात् अधर्मरतः वा अजितेन्द्रियः, कामात्मा कृपणः लुब्धः, स्त्रैणः भूतविहिंसकः, अविधिना पशून् आलभ्य प्रेतभूतगणान् यजन् अवशः नरकान् गत्वा उल्वणं तमः याति ॥२७-२८॥

अनुवाद— यदि कोई मनुष्य दुष्टों की सङ्गति में पड़कर अधर्म परायणहो जाय, अपनी इन्द्रियों के वश में पड़कर मनमानी करने लगे, लोभ के वश में हो जाय और कृपणता करने लगे, स्त्री लम्पट हो जाय प्राणियों के सताने लगे, विधि विरुद्ध पशुओं की हिंसा करके भूतों और प्रेतों की पूजा करने लगे तो उसको विवश होकर

घोर नरक में जाना पड़ता है । और अन्त में घोर अन्धकार स्वार्थ परमार्थ रहित स्थावर योनियों में भटकना पड़ता है ।।२७-२८।।

भावार्थ दीपिका

प्रवृत्तिर्द्विविधा । विध्यनुसारेण काम्ये कर्मणि वा तल्लङ्घनेषु तल्लङ्घनेनाधर्मे वा । तत्र काम्यप्रवृत्तेर्गतिरुक्ता-यदीति अधर्मप्रवृतेर्गतिमाह-यदीति । यदि लेत्यन्वयः । अजितेन्द्रियत्वात्कामात्माऽतः कृपणोऽतो लुब्धो भोगतृष्णाकुलोऽतस्त्रैणः स्त्रीलम्पटस्तदर्थं भूतविहिंसकः । किंच दुष्टजनप्रलोभितो धनाद्यर्थं पशूनविधिना हत्वा । तमः स्थावरतां याति ।।२७-२८।।

भाव प्रकाशिका

प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है, काम्य कर्मों में विधि के अनुसार उसका उल्लंघन करके अधर्म में होने वाली प्रवृत्ति । तो काम्य कर्मों में होने वाली प्रवृत्ति का वर्णन किया जा चुका है । अधर्म में होने वाली प्रवृत्ति की यदि **अधर्म० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । इन्द्रियों को वश में नहीं कर सकने के कारण मनमानी ढंग से कामों को करना उसके कारण कृपणता, लोभी होना, स्त्री परायण और स्त्रीलम्पट होना । उसी के लिए जीवों की हिंसा करना । दुष्ट जनों द्वारा लालच दिए जाने के कारण धन आदि की प्राप्ति के लिए अविधि पूर्वक पशुओं को मारने वाला व्यक्ति स्थावर वृक्षों आदि की योनि में चला जाता है ।।२७-२८।।

कर्माणि दुःखोदर्काणि कुर्वन्देहेन तैः पुनः । देहमाभजते तत्र किं सुखं मर्त्यधर्मिणः ।।२९।।

अन्वयः— दुःखोदर्काणि कर्माणि कुर्वन् तैः पुनः देहेन देहमाभजते तत्र किं सुखं मर्त्यधर्मिणः ।।२९।।

अनुवाद— जितने भी सकाम कर्म हैं वे बर्हिमुख बना देने वाले हैं । उनका फल दुःख ही होता है । उन कर्मों के द्वारा मनुष्य बाम्बार जन्म लेता है और मरता है । ऐसी स्थिति मृत्युधर्मा जीव को कौन सा सुख है ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

एवं कर्मसु प्रवृत्तस्य न सुखं न च दुःखनिवृत्तिरित्युपसंहरति-कर्माणीति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से सकाम कर्म करने वालों को न तो सुख मिलता है और न उसके दुःखों की निवृत्ति ही होती है । इस बात को **कर्माणि इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ।।२९।।

लोकानां लोकपालानां मद्भयं कल्पजीविनाम् । ब्रह्मणोऽपि भयं मत्तो द्विपरार्धपरायुषः ।।३०।।

अन्वयः— लोकानाम् लोकपालानाम् कल्पजीविनाम् मद्भयम् द्विपरार्धायुषः ब्रह्मणः अपि मद्भयम् ।।३०।।

अनुवाद— सभी लोकों और इन्द्र आदि लोकपालों को मेरा भय लगा रहता है, अरे दो परार्धों पर्यन्त जीवित रहने वाले ब्रह्माजी को भी मेरा भय बना ही रहता है ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

तथापि लोकानां नित्यत्वादमर्त्यधर्मत्वाच्च लोकपालानां सुखमस्तीति चेत्तत्राह-लोकामिति । द्वौ परार्धौ परमायुर्यस्य तस्य ब्रह्मणोऽपि । तथा च श्रुतिः-'भीषाऽस्माद्वातः पवते, भीषोदेति सूर्यः । भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च, मृत्युर्धावति पञ्चमः' इति। अतः प्रवृत्तिमार्गस्यैवमनर्थहेतुत्वाद्विरक्त्या ततो निवृत्तिरेव युक्तेति तात्पर्यार्थ ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि लोक तो नित्य है । वह मर्त्य धर्मा नहीं है । अतएव उन लोकों की रक्षा करने वाले जो लोकपाल हैं । वे सुखी ही हैं । इस पर श्रीभगवान् कहते हैं कि उन लोकों और लोकपालों को भी मेरा भय वना रहता है

एक कल्प पर्यन्त की जिनकी आयु होती है, उन पुरुषों को भी मेरा भय बना रहता है। यहाँ तक कि जिनकी आयु दोपरार्धों की होती ही उन ब्रह्माजी को भी मेरा भय बना ही रहता है। श्रुति भी कहती है **भीषास्माद्वातः पवते......पञ्चमः।** अर्थात् परमात्मा के भय से वायु सदा चलती रहती है, परमात्मा के ही भय से सूर्य सदा समय से ही उदित होते हैं, इस परमात्मा के ही भय से इन्द्र समयानुसार त्रिलोकी का प्रशासन करते हैं और अग्नि सदा उष्ण ही रहते हैं परमात्मा के ही भय से मृत्यु किसी को भी कालकवलित करती है। अतएव प्रवृत्ति मार्ग ही अनर्थ का कारण है तथा विरक्ति के द्वारा अनर्थ की निवृत्ति होती है यही इसका तात्पर्य है ॥३०॥

गुणाः सृजन्ति कर्माणि गुणोऽनुसृजते गुणान् । जीवस्तु गुणसंयुक्तो भुङ्क्ते कर्मफलान्यसौ ॥३१॥

अन्वयः— गुणा कर्माणि सृजन्ति गुणः गुणान् अनुसृजते, असौ गुणसंयुक्तः जीवस्तु कर्मफलानि भुंक्ते ॥३१॥

अनुवाद— सत्त्व, रज एवं तम ये तीनों गुण, इन्द्रियों को उनके कर्मों में प्रेरित करते हैं और इन्द्रियाँ कर्म करती है। जीव अज्ञानवशात् सत्त्व रज एवं तम एवं इन्द्रियों को अपना स्वरूप मान लेता है। और उनके द्वारा किए हुए कर्मो का फल-सुख दुःख आदि भोगता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

एतेनैव स्वयमीश्वरत्वाविष्कारेणेश्वराभावाङ्गीकारः परित्यक्तः, अन्यदपि प्रौढ्या पूर्वमङ्गीकृतं निराकरोति चतुर्भिः। तत्र यदुक्तं कर्तृभोक्तृरूप एवात्मेति तन्निराकरोति-गुणा इति। गुणा इन्द्रियाणि कर्माणि सृजन्ति न त्वात्मा आत्मैवेन्द्रियाणि प्रवर्तयन्कर्माणि करोतीति चेन्नेत्याह-गुण इति। गुणः सत्त्वादिर्गुणानिन्द्रियाण्यनुसृजते प्रवर्तयति, न त्वात्मा। अत आत्मनः कर्तृत्वं तावन्नास्ति। भोक्तृत्वमप्यौपाधिकमित्याह-जीवस्त्विति। गुणसंयुक्त इन्द्रियादिसंयुक्तः। कुत इत्यत आह-असौ तेष्वहंकारवानित्यर्थः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह ईश्वरत्व का आविष्कार ईश्वराभाव को स्वीकारना छोड़ देता है। दूसरी भी बातों को प्रौढी के कारण जिनको पहले स्वीकार कर लिया था उसका खण्डन चार श्लोकों द्वारा करते हैं। पहले यह जो कहा गया था कि आत्मा ही कर्ता एवं भोक्ता है। उसका खण्डन **गुणाः सृजन्ति॰ इत्यादि** श्लोक से करते हैं। गुण अर्थात् इन्द्रियाँ ही कर्मों के करते है आत्मा नहीं आत्मा ही इन्द्रियों को प्रवर्तित करता हुआ कर्मों को करती हैं, तो ऐसा नहीं कहा जा सकता है इस बात को **गुणः** आदि से कहते है अर्थात् सत्त्वादि गुण ही इन्द्रियों को प्रवर्तित करते है, आत्मा नहीं। अतएव कर्तृत्व आत्मा का धर्म नहीं है। **जीवस्तु॰ इत्यादि** से कहा गया है कि जीव का भोकृत्व भी औपाधिक है। गुण संयुक्तः अर्थात् इन्द्रियादि से युक्त। यह कैसे कहा जा सकता है ? तो इसका उत्तर है **असौ॰** अर्थात् उन सबों में अहङ्कार वाला ॥३१॥

यावत्स्याद्गुणवैषम्यं तावन्नानात्वमात्मनः । नानात्वमात्मनो यावत्पारतन्त्र्यं तदैव हि ॥३२॥

अन्वयः— यावद्गुणवैषम्य तावदात्मनः नानात्वं यावदात्मनो नानात्वं तदैव हि पारतन्त्रयम् ॥३२॥

अनुवाद— जब तक सत्त्वादि गुणों की विषमता रहती है तब तक आत्मा के नानात्व की प्रतीति होती है। जब तक आत्मा के नानात्व की प्रतीति होती है तब तक पारतंत्र्य बना रहता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

यच्चोक्तमात्मनो नानात्वं तदप्यौपाधिकमित्याह-यावत्स्यादिति। गुणानां वैषम्यमहंकारादिकार्यरूपम्। नन्वात्मन एकत्वे कथं पारतन्त्र्यमुक्तं कथं वा लोकपालादीनामपि मद्भयमित्युक्तं तत्राह-नानात्वमिति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

आत्मा का जो नानात्व बतलाया गया है वह औपाधिक है। इस बात को **यावत् स्यात्॰ इत्यादि** से कहा

गया है। गुणों की विषमता अहङ्कार आदि का कार्य है। प्रश्न है कि यदि आत्मा एक है तो उसको परतन्त्र केसे कहा गया है। अथवा लोकपालों आदि को मेरा भय कैसे है ? इसके उत्तर में **नानात्वमित्यादि** कहा गया है ॥३२॥

यावदस्यास्वतन्त्रत्वं तावदीश्वरतो भयम् । य एतत्समुपासीरंस्ते मुह्यन्ति शुचार्पिताः ॥३३॥

अन्वयः— यावत् अस्य अस्वतन्त्रत्वं तावदीश्वरतः भयम् य एतत् समुपासीन् ते शुचार्पिता मुह्यन्ति ॥३३॥

अनुवाद— जब तक इस आत्मा की पराधीनता रहती है तब तक ईश्वर से भय है। जो लोग इसीकी उपासना करते हैं वे शोक सन्तप्त होकर मोहित होते हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

यच्च गूढमभिप्रेतं प्रवृत्तिरेव श्रेयसीति तत्राह-य एतदिति। एतद्गुणवैषम्यं तत्कृतं भोगं कर्म चेत्यर्थः। उपासीरन् सेवेरन्। ते लोकादीनामनित्यत्वाच्छुचार्पिताः प्रोताः सन्तो मुह्यन्ति ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

जो गूढरूप से अभिप्रेत है, प्रवृत्ति ही कल्याण कारिणी है। इस पर यः **एतत् इत्यादि** श्लोक कहते हैं। वे लोक आदि के अनित्य होने के कारण शोक समन्वित होते हुए मोहित होते हैं ॥३३॥

काल आत्मागमो लोकः स्वभावो धर्म एव च । इति मां बहुधा प्राहुर्गुणव्यतिकरे सति ॥३४॥

अन्वयः— कालः आत्मा आगमः लोकः स्वभाव एव च धर्मः इति गुणव्यति करे सति मां बहुधा प्राहुः ॥३४॥

अनुवाद— गुणों का सम्मिश्रण होने पर महर्षियों ने मुझको काल, आत्मा, आगम (शास्त्र) स्वभाव एवं धर्म रूप से अनेक प्रकार का बतलाया है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

न केवलमनित्यतामात्रं किंतु मायामयत्वमपीत्याह-काल इति। स्वभावो देवत्वादिपरिणामहेतुः। धर्मस्तद्भोगकारणम्। गुणव्यतिकरे मायाक्षोभे सति मामेव प्राहुर्न तु मद्व्यतिरिक्ताः सन्ति ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

केवल अनित्य ही नहीं है अपि मायामय भी कहा है। इस बात को **काल इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। देवता आदि रूप से परिणत होने के कारण स्वभाव। उसके भोग के कारणभूत होने से कारण, माया के गुणों में वैषम्य होने पर मुझको ही ऋषियों ने कहा है ॥३४॥

उद्धव उवाच

गुणेषु वर्तमानोऽपि देहजेष्वनपावृतः । गुणैर्न बध्यते देही बध्यते वा कथं विभो ॥३५॥

अन्वयः— हे विभो ! देहजेषु गुणेषु न अपावृतः देही गुणैः वध्यते वा कथं न बध्यते ॥३५॥

अनुवाद— हे विभो ! देह जन्य गुणों में रहने वाला भी शरीरधारी गुणों से कैसे नहीं बँधता है अथवा कैसे बँधता है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

ततो निवृत्तिरेव मुक्तिहेतुत्वाच्छ्रेयसीति सिद्धम्। एवं तावदेक एवात्मा, तस्य च गुणकार्यदेहसंबन्धकृतः संसारः, आत्मज्ञानाच्च मुक्तिरित्युक्तं-'विलक्षणः स्थूलसूक्ष्मात्' इत्यादिना। तदेव च मतान्तरनिरासेन दृढीकृतम् 'अथैषाम्' इत्यादिना। तत्र पृच्छति-गुणेष्विति। अयमर्थः। गुणेष्वसत्सु मुक्तिः सत्स्वेव वा। आद्ये ज्ञानसाधनाभावान्न मुक्तिः। द्वितीये च गुणेषु वर्तमानोऽपि तत्कार्यदेहजेषु कर्मसु सुखादिषु च कथं न बध्येत। तथापि तैराकाशवदनावृतत्वान्न बध्यत इति चेत्तर्हि बन्धो न संभवतीत्याह-अनपावृतः कथं बध्यत इति ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

अतएव संसार से निवृत्ति कल्याण करने वाली है। क्योंकि यही मुक्ति का कारण है। इस तरह आत्मा एक ही है। उसका गुणो के कारण देह से सम्बन्ध होता है। देह सम्बन्ध के कारण संसार होता है। आत्म ज्ञान के कारण मुक्ति होती है। इस बात को **विलक्षणः स्थूल सूक्ष्मात् इत्यादि** श्लोक में कहा गया है। उसको दूसरे मतों का खण्डन करके **अथौषधम् इत्यादि** के द्वारा सुदृढ किया गया है। उसके विषय में उद्धवजी **गुणेषु इत्यादि** के द्वारा पूछते हैं। कहने का अभिप्राय है कि गुणों के रहने पर ही मुक्ति होती है, अथवा नहीं रहने पर ? प्रथम पक्ष को इसलिए नहीं स्वीकारा जा सकता है कि इस पक्ष में ज्ञान का अभाव होने से मुक्ति नहीं हो सकती है। दूसरे पक्ष में प्रश्न होता है कि गुणों के रहने पर भी उनके कारणभूत देहसृज्य सुखादि कर्मों के रहने पर उसका बाध क्यों नहीं होता है। ऐसा रहने पर भी उन सबों द्वारा आकाश के समान आवृत होने के कारण नहीं बाधित होता है तो फिर संसार का बन्धन नहीं हो सकता है इस बात को **अनपावृतः** से कहा गया है। अर्थात अनपावृत्त यह कैसे बँध जाता है ।।३५।।

कथं वर्तेत विहरेत्कैर्वा ज्ञायेत लक्षणैः । किं भुञ्जीतोत विसृजेच्छयीतासीत याति वा ।।३६।।

अन्वयः— यतिः कथं वर्तेत विहरेत् नवा कैः लक्षणैः ज्ञायेत किं भुञ्जीत, उत विसृजेत् शयीत असीत् याति वा ।।३६।।

अनुवाद— उद्धवजी श्रीभगवान् से पूछते हैं कि सन्यासी को विहार कैसे करना चाहिए ? अथवा किसके साथ विहार करना चाहिए ? अथवा उसको किन लक्षणों से जाना जाय ? अथवा यति क्या खाय; तथा क्या त्याग दें ? कैसे सोये तथा कैसे बैठे ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

यदि तु सत्स्वेव तदहंकारेण बध्यते तन्निवृत्त्या च मुच्यत इति मतं तर्हि तत्कथं ज्ञातव्यमिति पृच्छति-बद्धो मुक्तो वा कथं वर्तेतेत्यादि । किं भुञ्जीत कथं भुञ्जीतेत्यर्थः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

यदि जीव गुणों के रहने पर भी अहङ्कार के कारण बँध जाता है और उसकी निवत्ति हो जाने पर यति मुक्त हो जाता है। यह आपको अभिप्रेत है ? उसको किन लक्षणों से जाना जाय। बद्ध अथवा मुक्त उसे कैसे व्यवहार करना चाहिए। यति क्या खाय और कैसे खाय ?।।३६।।

एतदच्युत मे ब्रूहि प्रश्नं प्रश्नविदां वर । नित्यमुक्तो नित्यबद्ध एक एवेति मे भ्रमः ।।३७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे दशमोऽयायः ।।१०।।

अन्वयः— हे प्रश्नविदांवर अच्युत ! मे एतत् प्रश्नं ब्रूहि मे भ्रमः नित्य मुक्तः नित्यबद्धःकथम् ।।३७।।

अनुवाद— प्रश्नों के जानकरों में श्रेष्ठ हे अच्युत मेरे इस प्रश्न का आप उत्तर दें कि आत्मा तो एक ही है। वह अनादि काल से गुणों का सम्बन्ध होने के कारण नित्यबद्ध है। और वह नित्य मुक्त है कैसे ? मेरे इस भ्रम को आप दूर न करें ।।३७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के श्रीभगवान् और उद्धवजी के संवाद के अन्तर्गत दसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

एतत् एतद्विषयं प्रश्नम्। किंच एक एवात्माऽनादिगुणसंबन्धान्नित्यबद्धः। मुक्तेर्जन्यत्वेऽनित्यत्वप्रसङ्गान्नित्यमुक्त इत्यप्यङ्गीकार्यं स्यात्। तत्र मे भ्रमो भवतीत्याह-नित्यबद्ध इति ।।३७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां दशमोऽध्यायः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

मेरा इस विषय में प्रश्न है कि एक ही आत्मा अनादि काल से गुणों से सम्बन्ध होने के कारण वह नित्यबद्ध है। यदि इसको जन्य माना जाय तो उसके अनित्य होने का प्रसङ्ग होता। अतएव उसको नित्य मुक्त भी मानना होगा। इस नित्यबद्ध को लेकर मुझे भ्रम है ॥३७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के एकादश स्कन्ध के दशवें अध्याय की भावार्थ दीपिका टीका की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१०॥

* * *

ग्यारहवाँ अध्याय

भागर्व यदु संवाद

श्रीभगवानुवाच

बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः । गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम् ॥१॥

अन्वयः— मे बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतः वस्तुतः न । गुणस्य मायामूलत्वात् न मे मोक्षो न बन्धनम् ॥१॥

अनुवाद— मेरी बद्ध तथा मुक्त इस तरह की व्याख्या गुण के कारण है वास्तविक नहीं है । गुणों के मूल कारण माया होने के कारण मेरा न तो बन्ध होता है और न मोक्ष होता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

एकादशे तु बद्धानां मुक्तानां चाथ लक्षणम् । साधूनां च तथा भक्तेर्लक्षणं हरिणेरितम् ॥१॥ 'नित्यमुक्तो नित्यबद्ध एक एवेति मे भ्रमः' इति यदुक्तं तत्किं वस्तुतो विरोधः, प्रतीतितो वा । नाद्यः । बन्धमोक्षयोर्वास्तवत्वाभावादित्याह-बद्धो मुक्त इति द्वाभ्याम्। बद्धो मुक्तश्च मे गुणतो मदधीनसत्त्वादिगुणोपाधितः न तु वस्तुतः । नन्वौपाधिकत्वेऽपि तण्डुलपाकादिवद्वास्तवत्वं किं न स्यात्तत्राह-गुणस्य मायामूलत्वाद्बन्धनं नास्ति । अतएव मोक्षश्च नास्ति । ननु कथं सर्वशास्त्रविरुद्धमुच्यते तत्राह-इति मे व्याख्येति । एवं मत्कृतो निर्णयः । अलमतिकुतर्कैरित्यर्थः । अथवैवमन्वयः-आत्मा बद्धो मुक्त इति या व्याख्या उक्तिः सा मे गुणतो मद्गुणपारतन्त्र्यात् । अत्र हेतुत्वेन गुणनियन्तरि स्वस्मिंस्तद्व्यतिरेकमाह-अतएव न मे बन्धनं मोक्षो वैतत् । अन्यत्समानम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

ग्यारहवें अध्याय में श्रीहरि ने बद्धो और मुक्तों के लक्षण को बतलाया है । इसी अध्याय में उन्होंने साधुजनों के तथा भक्ति के भी लक्षण को बतलाया है । एक ही आत्मा नित्य मुक्त और नित्य बद्ध कही गयी हैं । यह मेरा भ्रम है । यह जो कहा गया है वह वास्तविक रूप से विरोध है अथवा प्रतीति मात्र के कारण है ? प्रथम पक्ष इसलिए नहीं माना जा सकता है कि बन्ध एवं मोक्ष दोनों ही वास्तव नहीं है । इस बात को **बद्धो मुक्तः इत्यादि** दो श्लोकों से कहा गया है । बद्ध और मुक्त तो मेरे अधीन रहने वाली गुणों की उपाधियों के कारण है । वह वास्तव नहीं है। प्रश्न होता है कि उपाधि के कारण होने पर भी उसको तण्डुलपाक के समान वास्तव क्यो न माना जाय? इसके उत्तर में श्रीभगवान् कहते है गुण तो माया मूलक हैं अतएव बन्धन है ही नहीं । इसीलिए मोक्ष भी नहीं है। प्रश्न होता है कि यह आप सभी शास्त्रों के विरुद्ध कैसे कहते है ? इस पर श्रीभगवान् कहते हैं यह मेरे द्वारा किया गया निर्णय है। अतएव अत्यधिक कुतर्क करना उचित नहीं है । अथवा इस तरह से अन्वय है आत्मा, बद्ध एवं मुक्त है यह जो व्याख्या है वह मेरे गुणों के परतन्त्र होने के कारण है । यहाँ हेतु रूप से गुणों के नियामक अपने में उससे अलग है । अतएव मेरा न तो बन्ध होता है और न मोक्ष होता है । अन्य सारी बाते पूर्व के समान हैं ॥१॥

शोकमोहौ सुखं दु:खं देहापत्तिश्च मायया । स्वप्नो यथात्मन: ख्याति: संसृतिर्न तु वास्तवी ॥२॥

अन्वय:— शोकमोहौ सुखं दु:खं देहापति: च मायया यथा स्वप्ने आत्मन: ख्याति: न तु संसृति: वास्तवी ॥२॥

अनुवाद— शोक, मोह, सुख-दु:ख तथा देहपात ये सब माया के द्वारा अवास्तविक होते हैं जैसे स्वप्न में दिखाई देने वाली सृष्टि मिथ्या होती है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

एवं कारणभूतगुणानां मायामयत्वात्तत्कार्यसंसृतिर्मायेति प्रपञ्चयति-शोकमोहाविति । यथा स्वप्न आत्मनो बुद्धेरेव ख्यातिर्विवर्तस्तद्वत् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से कारण भूत गुणों के माया स्वरूप होने के कारण उसका कार्यभूत सृष्टि भी माया ही है । इसी का विस्तार शोक **मोहौ इत्यादि** श्लोक में किया गया है । जैसे स्वप्न में बुद्धि ही ख्याति का विवर्त होती है वैसे ही ॥२॥

विद्याविद्ये मम तनू विद्ध्युद्धव शरीरिणाम् । मोक्षबन्धकरी आद्ये मायया मे विनिर्मिते ॥३॥

अन्वय:— शरीरिणाम् विद्याविद्ये ममतनू विद्धि । आद्ये मोक्षबन्धकरी मायया विनिर्मिते ॥३॥

अनुवाद— हे उद्धव विद्या और अविद्या ये दोनों मेरे शरीर हैं मेरी माया से निर्मित विद्या और अविद्या से जीव को मोक्ष और संसार बन्ध प्रदान करते हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

अतो वस्तुविरोधस्तावन्नास्ति, प्रतीतिसत्त्वौपाधिकी घटत इत्याह-विद्याविद्ये इति । तन्येते मोक्षबन्धावाभ्यामिति तनू शक्ती। कुत: । मे मायया विनिर्मिते, मायावृत्तिरूपत्वात् । मोक्षबन्धकरीत्येकवचनं द्विवचनार्थे । ननु तत्कार्यत्वे बन्धमोक्षयोरनादित्वनित्यत्वे न स्याताम्, न, आद्ये अनादी । अतो यावदविद्यां प्रवर्तयामि तावद्बन्ध:, यदा विद्यां ददामि तदा मोक्ष: स्फुरतीत्यर्थ: । तथा च स्कन्दपुराणे- 'बन्धको भवपाशेन भवपाशाच्च मोचक: । कैवल्यद: परं ब्रह्म विष्णुरेव सनातन:।' इति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

अतएव वस्तु विरोध नही है । औपाधिकी प्रतीति तो समन्वित होती है, इस बात को **विद्याविद्ये० इत्यादि** श्लोक से श्रीभगवान् ने कहा है विद्या और अविद्या दोनों से मोक्ष और बन्ध का विस्तार करते हैं । अतएव ये दोनो तनु अर्थात् शक्ति हैं । तनू अर्थात् देहक्तियाँ हैं । क्योंकि ये दोनों मेरी माया से निर्मित हैं क्योंकि ये दोनों माया की वृत्ति स्वरूपिणी हैं । **मोक्षबन्धकरी** में एक वचन द्विवचन के अर्थ में है । प्रश्न होता है कि विद्या और अविद्या के माया का कार्य होने पर उन दोनों का अनादित्व नहीं सिद्ध होगा । तो ऐसी बात नहीं है वे दोनों आदि और अनादि हैं । अतएव जब तक मैं अविद्या को प्रवर्तित करता हूँ तब तक बन्ध है । जब मैं विद्या को प्रदान करता हूँ तब मोक्ष की प्रतीति होती है । स्कन्दपुराण में कहा भी गया है संसार रूपी पाश के द्वारा बन्ध होता है और संसार पाश से मोक्ष होता है, परब्रह्म भगवान् विष्णु ही कैवल्य रूपी मोक्ष को प्रदान करने वाले हैं ॥३॥

एकस्यैव ममांशस्य जीवस्यैव महामते । बन्धोऽस्याविद्ययाऽनादिर्विद्यया च तथेत्तर: ॥४॥

अन्वय:— हे महामते ! ममांशस्य एकस्यैव अस्य अविद्यया अनादिबन्ध: तथा विद्यया इतर: ॥४॥

अनुवाद— हे महामते ! मेरे अंशभूत एक ही जीव को इसकी अविद्या के द्वारा अनादि बन्ध है और विद्या के द्वारा मोक्ष होता है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तत्र शरीरिणामिति बहुवचननिर्देशाद्विषयभेदेनाविरोध उक्त इति भ्रान्तिं व्यावर्तयन् बन्धमोक्षव्यवस्थामुपपादयति-एकस्यैवेति।

तर्हि किमात्माभेदात्तवापि, बन्धो नहीत्याह-अस्य जीवस्यैवेति । नन्वात्माभेदे जीवो नाम कोऽन्योऽस्ति पृथक्, कथं न बन्धमोक्षसुखदुःखादिव्यवस्था तत्राह-ममांशस्येति । अयं भावः-यथैकस्यापि चन्द्रादेर्जलाद्युपाधिना विम्बप्रतिविम्बरूपो भेदः, यथा च तत्र जलकृताः कम्पादयः प्रतिविम्बस्यैव । यथा च प्रतिविम्बानामप्युपाधिभेदेन भेदादेकस्मिन्नुदकुम्भे भग्ने तद्गतप्रतिविम्बस्यैव विम्बैक्यं नान्यगतस्य तथाऽविद्यायां प्रतिबिम्बस्य मदंशस्य जीवस्यैव तत्कृतो बन्धस्तस्य चोपाधितो भेदान्नव्यवस्थेति । तथा चाहुः- 'यथैकस्मिन्घटाकाशे रजोभूतादिभिर्युते । न सर्वे संप्रयुज्यन्ते तथा जीवाः सुखादिभिः ।।' इति एतच्चातिरहस्यं स्वबुद्ध्याथा निश्चेतव्यमिति संबोधयति । हे महामते । इतरो मोक्षः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

शरीरिणाम् इस बहुवचनान्तनिर्देश के द्वारा विषय के भेद से अविरोध कहा गया है । इस तरह भ्रम को दूर करते हुए श्रीभगवान् बन्ध और मोक्ष की व्यवस्था को प्रतिपादित **एकस्यैव** श्लोक से करते हैं । तो फिर प्रश्न होता है कि आत्मा के भेद के कारण आपको भी संसार बन्ध है क्या ? तो इसके उत्तर में श्रीभगवान् कहते है कि ऐसी बात नहीं है । जीव को ही बन्ध होता है । प्रश्न होता है कि आत्मा का भेद होने पर उससे भिन्न जीव नामक कौन दूसरा है ? बन्ध मोक्ष सुख-दुःख आदि की व्यवस्था भी कैसे है ? तो इसके उत्तर में श्रीभगवान् कहते हैं जीव मेरा अंश है । कहने का अभिप्राय है कि जैसे एक ही चन्द्रमा आदि की जल आदि रूप उपाधि के द्वारा विम्ब प्रतिबिम्ब रूपी भेद है होता है । तथा जैसे जल आदि में होने वाले कम्प आदि के कारण प्रतिविम्ब में ही कम्प प्रतीत होता है उसी तरह मेरे अंश भूत जीव को संसारबन्ध होता है । जीव की उपाधि के कारण भेद होता है । अतएव कोई भी अव्यवस्था नहीं है । जैसा कि कहा गया है- जैसे एक ही घटाकाश में जो रजोगुण वैपुल्य से युक्त है सभी घट वैसा नहीं होते हैं । उसी तरह से जीवों में सुख आदि भी होते हैं । यह अत्यन्त रहस्यमय है, इसका निश्चय बुद्धि द्वारा करना चाहिए इसीलिए श्रीभगवान् उद्धवजी को महामते शब्द से संबोधित करते हैं । **इतर** अर्थात् मोक्ष ।।४।।

अथ बद्धस्य मुक्तस्य वैलक्षण्यं वदामि ते । विरुद्धधर्मिणोस्तात स्थितयोरेकधर्मिणि ।।५।।

अन्वयः— हे तात ! अथ बद्धस्य मुक्तस्य विरुद्धधर्मिणोः स्थितयोः एकधर्मिणि ते वैलक्षण्यं वदामि ।।५।।

अनुवाद— हे उद्धव अब मैं बद्ध एवं मुक्त जो परस्पर में विरुद्ध धर्मी में रहते हैं, उन दोनों की एक ही धर्मी में होने वाली भिन्नता को मैं आपको बतला रहा हूँ ।।५।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं व्यवस्थामुपपाद्य कथं वर्ततयादिवैलक्षण्यप्रश्नस्योत्तरमाह-अथेति । तच्च वैलक्षण्यं द्विविधम् । जीवेश्वरयोरेकं जीवानां चैकम् । तत्र जीवेश्वरयोर्वैलक्षण्यमाह-विरुद्धधर्मिणोरिति सार्धद्वयेन । शोकानन्दधर्मवतोरेकस्मिन्धर्मिणि शरीरे नियम्यनियन्तृत्वेन स्थितयोः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से व्यवस्था का प्रतिपादन करके श्रीभगवान् कैसे व्यवहार करना चाहिए इस प्रश्न का उत्तर **अथ इत्यादि** श्लोक से देते हैं । वह विलक्षणता दो प्रकार की होती है एक जीव एवं ईश्वर दोनों में होती है और एक जीव में होती है । तो पहले जीव एवं ईश्वर में होने वाली विलक्षणता को **विरुद्धधर्मिणोः इत्यादि** ढाई श्लोकों से बतलाते हैं शोक तथा आनन्द इन दोनों धर्मों से युक्त एक ही धर्मी रूपी शरीर में नियाम्य एवं नियामक रूप से विद्यमान रहने वाले जीवात्मा और परमात्मा में ।।५।।

सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ यदृच्छयैतौ कृतनीडौ च वृक्षे ।
एकस्तयोः खादति पिप्पलान्नमन्यो निरन्नोऽपि बलेन भूयान् ॥६॥

अन्वयः— एतौ सखायौ, सदृशौ सुपर्णौ यदृच्छया वृक्षे कृतनीडौ । तयोः एकः पिप्पलान्नं खादति अन्यो निरन्नः अपि बलेन भूयान् ॥६॥

अनुवाद— ये जीव और ईश्वर दोनों परस्पर में मित्रभाव से रहने वाले समान रूप वाले पक्षी हैं, और एक हीं शरीर रूपी वृक्ष पर निवास करते है । उन दोनों में से एक जीवात्मा अपने कर्मफलों का भोग करता है और दूसरा बिना खाये हुए अधिक पुष्ट रहता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

सुपर्णौ वृक्षात्पक्षिणाविव देहात्पृथग्भूतौ । सदृशौ चिद्रूपत्वात् । सखायौ अवियोगादैकमत्याच्च । यदृच्छयाऽनिरुक्तया मायया । वृश्च्यत इति वृक्षो देहः- 'ऊर्ध्वमूलमवाक्शाखं वृक्षं यो वेद संप्रति' इति श्रुतेः, 'ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्। छान्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ।' इति स्मृतेश्च । तस्मिन्कृतं नीडं निकेतनं हृदयरूपं याभ्यां तौ । तयोर्मध्ये एको जीवः पिप्पलान्नं पिप्पलोऽश्वत्थो देहस्तस्मिन्नदनीयं कर्म फलमित्यर्थः । खादति भक्षयति । अन्य ईश्वरो निरन्नोऽभोक्तापि निजानन्दतृप्तो बलेन ज्ञानादिशक्तया भूयानधिकः । श्रुतिश्च- 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।' इति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह वृक्ष पर रहने वाले पक्षी वृक्ष से भिन्न होते हैं, उसी तरह शरीर रूपी वृक्ष पर रहने वाले जीवात्मा और परमात्मा शरीर से भिन्न हैं ज्ञान स्वरूप होने के कारण दोनों एक समान है । एक दूसरे से जो कभी अलग नहीं होते हैं और दोनों की समान बुद्धि होती है अतएव दोनों मित्र हैं । यदृच्छया अर्थात् अनिरुक्त माया के द्वारा विनष्ट होने के कारण देह को वृक्ष कहा गया है । श्रुति कहती है- ऊपर की ओर मूल वाले तथा नीचे की ओर शाखाओं वाले वृक्ष को जो जानता है । गीता में भी कहा गया है **ऊर्ध्वमूलाम्० इत्यादि** अर्थात् जिसकी जड़ ऊपर की और है नीचे की ओर शाखाओं वाले पिप्पल के वृक्ष को अव्यय (निर्विकार) कहा गया है । उस वृक्ष के छन्द हीं पत्ते हैं । उसको जानने वाला ही वेदज्ञ है । उसी पर जिन दोनों ने हृदय रूपी घोसले को बना रखा है। उन दोनों में से शरीर रूप वृक्ष के कर्म फलों का भोग करता है । ईश्वर अभोक्ता होकर भी ज्ञान आदि शक्ति के द्वारा अधिक बलवान है इसी अर्थ का प्रतिपादन द्वा सुपर्णा श्रुति करती है ॥६॥

आत्मानमन्यं च स वेद विद्वानपिप्लादो न तु पिप्पलादः ।
योऽविद्यया युक् स तु नित्यबद्धो विद्यामयो यः स तु नित्यमुक्तः ॥७॥

अन्वयः— सः अपिप्पलादः आत्मानम् अन्यम् च वेद पिप्लादः तु न यः अविद्यया युक् स तु नित्यबद्धः यः तु विद्यामयः सः तु नित्यमुक्तः ॥७॥

अनुवाद— कर्म फलों के अभोक्ता ईश्वर अपने को तथा जीव को दोनों को जानते हैं जो कर्म फलों का भोक्ता जीव है वह ईश्वर को नहीं जानता है जो अविद्या से युक्त है वह जीव नित्य बद्ध है और जो विद्या से युक्त है वह ईश्वर नित्य मुक्त है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

वलाधिक्यमेवाह- आत्मानमिति । अतो योऽविद्यया युग्युक्तः स तु नित्यबद्धोऽनादिबद्धः । यस्तु विद्याप्रधानः स तु नित्यमुक्तः, मायाया अनावरकत्वादाश्रयाव्यामोहकत्वात्त्च ॥७॥

भाव प्रकाशिका

आत्मानम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा ईश्वर के बलाधिक्य को बतलाते हैं । अतएव जो अविद्या से युक्त है वह नित्यबद्ध (अनादिबद्ध) है । जो विद्या से युक्त है वह नित्यमुक्त है । माया उसको आवृत नहीं कर सकती है । वह अपने आश्रय को व्यामोहित नहीं कर सकती है ॥७॥

देहस्थोऽपि न देहस्थो विद्वान् स्वप्राद्यथोत्थितः । अदेहस्थोऽपि देहस्थः कुमतिः स्वप्रदृग्यथा ॥८॥

अन्वयः— स्वप्नात् उत्थितः यथा विद्वान् देहस्थोऽपि देहस्थः न । अदेहस्थः अपि कुमति स्वप्न दृग्यथा देहस्थः ॥८॥

अनुवाद— सोने से जगे हुए के समान विद्यायुक्त देह में रहकर भी देह में नहीं रहता है । और वस्तुतः देह में नहीं रहने वाला भी अज्ञानी जीव देह में नहीं रहकर भी अज्ञान निमित्तक सुख-दुःख को भोगता है । उसी तरह जिस तरह स्वप्न शरीर में रहने वाला सुख-दुःख का अनुभव करता है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं बद्धमुक्तजीवानामेव मिथो वैलक्षण्यमाह-देहस्थोऽपीति दशभिः । विद्वान्मुक्तः संस्कारवशेन देहस्थोऽपि देहस्थो न भवति । यथा स्वप्रादुत्थितः स्मर्यमाणे स्वप्रदेहे स्थितोऽपि तत्रस्थो न भवति, तद्गतसुखदुःखाद्यभावात्, तद्वत् । तथा च वस्तुतोऽदेहस्थोऽपि कुमतिरविद्वान्देहस्थस्तन्निमित्तसुखदुःखभाक् । यथा स्वप्रदेहगत इति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् बद्ध एवं मुक्त जीवों में होने वाली विलक्षणता को **देहस्थोऽपि० इत्यादि** दश श्लोको द्वारा बतलाते हैं । विद्वान् अर्थात् मुक्त संस्कार के कारण देह में रहकर भी देह में नहीं रहता है जैसे सोकर जगा हुआ व्यक्ति जिसकी याद आती है उस स्वप्न देह के ही समान देह में रहकर भी उसमें नहीं रहता है । क्योंकि उस शरीर में होने वाले सुख-दुःख का वह अनुभव नहीं करता है । और वस्तुतः शरीर में नहीं रहकर भी अज्ञानी जीव देह में होने वाले सुख-दुःख का अनुभव करता है । जैसे स्वप्न के देह में रहने वाला उस शरीर में होने वाले सुख-दुःख का अनुभव करता है ॥८॥

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु गुणैरपि गुणेषु च । गृह्यमाणेष्वहंकुर्यान्न विद्वान्यस्त्वविक्रियः ॥९॥

अन्वयः— इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु गृह्यमाणेषु अपि विद्वान् अहं न कुर्यात् यः अविकृतः ॥९॥

अनुवाद— विद्वान् मुक्त पुरुष इन्द्रियों में गृहीत होने वाले विषयों में तथा गुणों द्वारा गृहीत होने वाले गुणों में अहन्त्व बुद्धि नहीं करता है । वह सदा निर्विकार बना रहता है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अत्र हेतुत्वेन वैलक्षण्यान्तरमाह द्वाभ्याम् । इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु गृह्यमाणेष्वपि यस्तु विद्वान्स नाहंकुर्यादहं गृह्णामीति मतिं न कुर्यादित्यर्थः । कुतः । गुणैर्गुणेषु गृह्यमाणेषु । अत एवाविक्रियो रागादिशून्यः । तदुक्तं गीतासु- 'तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः । गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ।' इति ॥९॥

भाव प्रकाशिका

यहाँ पर भी भगवान् दो श्लोकों द्वारा कारण रूप से दूसरे प्रकार की विलक्षणता को बतलाते हैं । इन्द्रियों के द्वारा इन्द्रियों के विषयों के गृहीत होने पर जो विद्वान होता है वह इसका ग्रहण मैं करता हूँ इस प्रकार की बुद्धि को नहीं करता है । क्योंकि गुणों के द्वारा गुण गृहीत होते हैं । अतएव उन विषयों में राग आदि नहीं करता है । गीता में श्रीभगवान् कहते हैं- **तत्त्ववित्तु० इत्यादि** हे महाबाहो ! अर्जुन ! तत्त्वज्ञ पुरुष गुणों तथा कर्मों के विभाग के विषय में एक गुण दूसरे गुणों से व्यवहार करते हैं । यह मानकर अनासक्त रहता है ॥९॥

दैवाधीने शरीरेऽस्मिन् गुणभाव्येन कर्मणा । वर्तमानोऽबुधस्तत्र कर्ताऽस्मीति निवध्यते ॥१०॥

अन्वयः अस्मिन् दैवाधीने शरीरे गुणभाव्येन कर्मणा वर्तमानः अबुधः तत्र कर्ता अस्मीति मन्यते ॥१०॥

अनुवाद यह शरीर दैव के अधीन है गुणजन्य क्रम के द्वारा वर्तमान अज्ञानी पुरुष उसी में अपने को कर्ता मानकर बँध जाता है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

अबुधस्तु पूर्वकर्माधीनेऽस्मिन् शरीरे वर्तमानो गुणैरिन्द्रियैर्भाव्येन कर्मणा तत्र देहादौ निबध्यते । कुतः । कर्तास्मीत्यहङ्कारेण। तदुक्तं तत्रैव- 'प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः । अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमति मन्यते ।' इति । एतैस्त्रिभिः श्लोकैः कथं वर्तेतेत्यस्य प्रश्नस्य सुखदुःखशून्यो निरभिमानश्च देहे वर्तत इत्युत्तरमुक्तं भवति ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

अज्ञानी तो पूर्वजन्म में किए गये कर्मों के अनुसार प्राप्त शरीर में वर्तमान रहकर इन्द्रियों के द्वारा किए जाने वाले कर्म के द्वारा देह आदि में बँध जाता है । क्योंकि वह मानता है कि मैं ही इस कर्म को करने वाला हूँ । गीता में ही कहा गया है । **प्रकृतेः इत्यादि** अर्थात् प्रकृति के गुणों द्वारा किए जाने वाले सभी कर्मों को अहङ्कार के कारण अज्ञानी बना हुआ, अपने को ही उन कर्मों को करने वाला मानता है । इन तीन श्लोकों द्वारा **कथं वर्तेति** इस प्रश्न का उत्तर भगवान् ने दिया है कि सुखों एवं दुःखों से रहित तथा देहाभिमान से रहित होकर देह में मुक्त पुरुष रहता है ॥१०॥

एवं विरक्तः शयन आसनाटनमज्जने । दर्शनस्पर्शनघ्राणभोजनश्रवणादिषु ॥११॥
न तथा बध्यते विद्वांस्तत्र तत्रादयन् गुणान् । प्रकृतिस्थोऽप्यसंसक्तो यथा खं सवितानिलः॥१२॥

अन्वयः— एवं विरक्तः शयने, आसने, अटने, मज्जने दर्शनस्पर्शनघ्राणभोजनश्रवणादिषु प्रकृतिस्थोऽपि तत्र गुणान् आदयन् खंसविताः अनिलं यथा असंसक्तः ॥११-१२॥

अनुवाद— इस तरह से विरक्त पुरुष बैठने-चलने स्नान करने देखने, छूने, सूंघने भोजन करने तथा सुनने आदि में शरीर में रहकर भी इन्द्रियों को भोग करते हुए आकाश, सूर्य तथा वायु के समान कहीं भी आसक्त नहीं होता है ॥११-१२॥

भावार्थ दीपिका

वैलक्षण्यान्तरं वदन् 'किं भुञ्जीत' इत्यादिप्रश्नोत्तरमाह-एवमिति त्रिभिः । अन्यगतमेव कर्म मां बध्नातीत्येवं विरक्तो विद्वान् । तथा अविद्वानिव शयनासनादिषु न बध्यते । कुतः । तत्र तत्र विषयेषु गुणानिन्द्रियाण्यादयन् भोजयंस्तत्साक्षित्वेन वर्तमानो न तु स्वयमदन् । एतदेव कुतस्तत्राह-प्रकृतिस्थोऽपीति सार्धेन । यथा खं सर्वत्र स्थितमपि न सज्जते । तथा सविता जले प्रतिबिम्बितोऽपि । यथानिलः सर्वत्र संचरन्नपि तद्वत् ॥११-१२॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे में होने वाला कर्म मुझको बाँध रहा है इस तरह से विद्वान् तथा अविद्वान के समान शयन आसन आदि के विषय में आसक्त नहीं होता है । सर्वत्र विषयों में इन्द्रियों को ही भोग कराते हुए स्वयं बिना भोग किए ही उसके साक्षी रूप से बना रहता है । यह कैसे ? इसका उत्तर **प्रकृतिस्थोऽपि इत्यादि** डेढ श्लोक से देते हैं । जेसे सर्वत्र रहने वाला भी आकाश किसी से आसक्त नहीं होता है । जैसे सूर्य सर्वत्र संचरण करते हुए भी किसी में आसक्त नहीं होते हैं, तथा वायु भी सर्वत्र संचरण करती हुई ही आसक्त नहीं होती है । एवमित्यादि तीन श्लोकों से दूसरी विलक्षणता को बताते हुए **कथं भुञ्जीत** इस प्रश्न का उत्तर दिए हैं ॥११-१२॥

वैशारद्येक्षयाऽसङ्गशितया छिन्नसंशयः । प्रतिबुद्ध इव स्वप्नान्नानात्वाद्विनिवर्तते ॥१३॥

अन्वयः— असङ्गशितया वैशारद्येक्षया छिन्नसंशयः स्वप्नात् प्रतिबुद्ध इव नानात्वाद् विनिवर्तते ॥१३॥

अनुवाद— असङ्ग से तीक्ष्ण बने निपुण वैराग्य के द्वाराजिसके सारे संशय विनष्ट हो गये हैं स्वप्न से जगे हुए पुरुष के समान देह आदि प्रपञ्चों से विरक्त हो जाता है विद्वान् पुरुष ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

असङ्गेन वैराग्येन शितया तीक्ष्णया छिन्नाः संशया असंभावनादयो यस्य सः । नानात्वाद्देहादिप्रपञ्चात् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

निपुण वैराग्य से तीक्ष्ण बने अनासक्ति के कारण जिसके सारे नानात्व से निवृत्त हो जाता है ॥१३॥

यस्य स्युर्वीतसङ्कल्पाः प्राणेन्द्रियमनोधियाम् । वृत्तयः स विनिर्मुक्तो देहस्थोऽपि हि तद्गुणैः ॥१४॥

अन्वयः— यस्य प्राणेन्द्रिय मनोधियाम् वृत्तयः वीतसङ्कल्पाः स्युः स देहस्थोऽपि तद्गुणैः विनिर्मुक्तः ॥१४॥

अनुवाद— जिसके देह, इन्द्रिय, मन एवं बुद्धि की वृत्तियाँ सङ्कल्प रहित हो गयी हैं, वह विरक्त पुरुष देह में रहकर भी देह के गुणों से रहित हो जाता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

कथं विहरेदित्यस्योत्तरत्वेन वैलक्षण्यान्तरमाह-यस्य स्युरिति । तद्गुणैर्देहगुणैः सङ्कल्पशून्याभिः । प्राणादिवृत्तिभिर्विहरन्मुक्तः इत्यर्थः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

कथं विहरेत् के उत्तर रूप से विलक्षणता **यस्य स्युः इत्यादि** श्लोक द्वारा बतलाते हैं । **तदगुणैः** अर्थात् देह के गुणों से सङ्कल्प रहित प्राण की वृत्तियों में विहरण करने वाला मुक्त पुरुष है ॥१४॥

यस्यात्मा हिंस्यते हिंस्रैर्येन किंचिद्यदृच्छया । अर्च्यते वा क्वचित्तत्र न व्यतिक्रियते बुधः ॥१५॥

अन्वयः— यस्य आत्मा हिंस्रैर्हिस्यते तेन किञ्चित् यदृच्छया अर्च्यते वा क्वचित् च तत्र बुध न व्यतिक्रियते ॥१५॥

अनुवाद— जिसका शरीर किसी दुष्ट से अथवा किसी हिंस्र प्राणी से पीडित होता है अथवा सौभग्यवशात् किसी से कहीं पूजित होता है फिर भी उसमें किसी प्रकार का विकार नहीं आता है, वहीं ज्ञानी है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

एवं तावद्बद्धमुक्तयोः स्वसंवेद्यमेव वैलक्षण्यमुक्तमिदानीं 'कैर्वा ज्ञायेत लक्षणैः' इत्यस्योत्तरतया परैरपि सुज्ञेयं वैलक्षण्यमाह-यस्यात्मेति त्रिभिः । हिंस्रैर्दुर्जनैरन्यैर्वा प्राणिभिर्यस्यामा देहः पीड्यते । यदृच्छया येन केनापि क्वचित्किंचिदर्च्यते वा स बुधश्चेत्तत्र न व्यतिक्रियते, नातिविक्रियते इत्यर्थः । तदुक्तं याज्ञवल्येन-'यः कण्टकैर्वितुदति चन्दनैर्यश्च लिम्पति । अक्रुद्धोऽपरिक्कचित्किंचिदर्च्यते वा स बुधश्चेत्तत्र न व्यतिक्रियते, नातिविक्रियते इत्यर्थः । तदुक्तं याज्ञवल्क्येन- 'यः कण्टकैर्वितुदति चन्दनैर्यश्च लिम्पति । अक्रुद्धोऽपरितुष्टश्च समस्तस्य च तस्य च ।' इति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह बद्ध और मुक्त में स्वसंवेद्य विलक्षणता बतलायी गयी है, अब किन लक्षणों से जाने इस प्रश्न का दूसरों के द्वारा भी जानने योग्य विलक्षणता को **यस्य आत्मा० इत्यादि** तीन श्लोकों से बतलाते हैं । जिसका शरीर दुष्टों द्वारा, हिंस्र पशुओं द्वारा पीडित किए जाने पर अथवा कहीं किसी के द्वारा अर्चित (पूजित) किया जाता है, उसमें यदि किसी प्रकार का विकार नहीं आता है वही ज्ञानी पुरुष है । याज्ञवल्क्य महर्षि ने कहा भी है **यः कण्डकैः**

इत्यादि अर्थात् जो कण्टकों अर्थात् दुष्ट प्राणियों द्वारा दु:खी किए जाने पर अथवा जिसके शरीर में चन्दन का लेप भी लगाये जाने पर भी वह न तो किसी पर प्रसन्न होता है और न ही हर्षित होता है, वह दोनों ही स्थितियों में एक समान बना रहता है वही ज्ञानी है ॥१५॥

न स्तुवीत न निन्देत कुर्वतः साध्वसाधु वा । वदतो गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृङ्मुनिः ॥१६॥

अन्वयः— यः साधु असाधु वा कुर्वतः वदतो वा न स्तुवीत न निन्देत, गुणदोषाभ्यां वर्जितः समदृक् मुनिः ॥१६॥

अनुवाद— जो किसी के द्वारा भलाई या बुराई किए जाने पर भलाई करने वाले की न तो स्तुति प्रशंसा करता है, और न तो किसी की निन्दा करता है, वही गुणों एवं दोषों से ऊपर उठा हुआ समदर्शी मुनि है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

किंच साध्वसाधु वा कुर्वतो वदतो वा जनान्न स्तुवीत न च निन्देत । यो लौकिकव्यवहारेण विमुखः स मुक्त इत्यर्थः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च जो भलाई करने वाले की न तो प्रशंसा करता है और न तो बुराई करने वाले की निन्दा करता है । वह गुणों एवं दोषों से ऊपर उठा हुआ समदर्शी मुनि है । वह लौकिक व्यवहार पराङ्मुख मुक्त है ॥१६॥

न कुर्यान्न वदेत्किंचिन्न ध्यायेत्साध्वसाधु वा । आत्मारामोऽनया वृत्त्या विचरेज्जडवन्मुनिः ॥१७॥

अन्वयः— यः किञ्चित् न वदेत् किंञ्चित्न कुर्यात् न साधु असाधु वा ध्यायेत् आत्मारामः जडवत् मुनिः अनयावृत्या विचरेत् ॥१७॥

अनुवाद— जो न तो कुछ बोलता है और न तो कुछ करता है और न तो अच्छे बुरे पर ध्यान ही देता हो वह आत्माराम मुनि जड़ के समान इसी वृत्ति से विचरण करता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अपि च, न कुर्यादिति । यो दैहिकेऽपि कर्मण्युदासीनः स मुक्तः । इतरो बद्ध इत्यर्थः । एतान्येव सर्वाणि मुमुक्षोः साधनानि ज्ञातव्यानि ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च जो देह सम्बन्धी कर्मों के विषय में उदासीन रहता है वह मुक्त है । उससे भिन्न जीव बद्ध है । ये सब ही मुमुक्षु जीव को पहचानने के साधन हैं इनको जानना चाहिए ॥१७॥

शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात्परे यदि । श्रमस्तस्य श्रमफलो ह्यधेनुमिव रक्षतः ॥१८॥

अन्वयः— यः शब्दब्रह्मणि निष्णातः परे यदि न निष्णायात् तस्य श्रमः अधेनुः रक्षतः इव श्रमफलः ॥१८॥

अनुवाद— जो शब्द ब्रह्म (शास्त्रों) में निपुण होता है । केवल पाण्डित्य प्राप्त करता है किन्तु उसका अनुष्ठान नहीं करता है, उसका शास्त्रों का ज्ञान उसी तरह व्यर्थ है जो दूध नहीं देने वाली गौ की रक्षा दूध प्राप्त होने की आशा से करता है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

यस्तु केवलं शब्दब्रह्मण्यभिज्ञः पाण्डित्यमात्रश्लाघी न तूक्तैः साधनैस्तदर्थनिष्ठो भवेत्तं निन्दति । शब्दब्रह्मणि निष्णातोऽर्थतः पारं गतोऽपि परे ब्रह्मणि न निष्णायाद्ध्यानाद्यभियोगं न कुर्यात्तस्य शास्त्रश्रमः श्रमैकफलः, न तु पुरुषार्थपर्यवसायी । अधेनुं चिरप्रसूताम् ॥१८॥'

भाव प्रकाशिका

जो केवल शब्दब्रह्म शास्त्रों का ज्ञाता है । अर्थात् केवल पाण्डित्य की प्रशंसा करने वाला वह उन ज्ञानों का अनुष्ठान नहीं करता है उसकी इस श्लोक में निन्दा की गयी है । अर्थात् जो शास्त्रों का पारंगत विद्वान् है किन्तु वह परब्रह्म के विषय में अपने को निष्णात नहीं बनाता है अर्थात् परब्रह्म का ध्यान आदि नहीं करता है। उसका शास्त्र में किया गया परिश्रम व्यर्थ ही होता है, उसके द्वारा पुरुषार्थ की प्राप्ति नहीं होती है । अधेनुम् अर्थात् बहुत दिनों की व्याइ हुई गौ ॥१८॥

गां दुग्धदोहामसतीं च भार्यां देहं पराधीनमसत्प्रजां च ।
वित्तं त्वतीर्थीकृतमङ्ग वाचं हीनां मया रक्षति दुःखदुःखी ॥१९॥

अन्वयः— हे अङ्ग दुग्धदोहाम् गाम् असतीं भार्याम्, पराधीनं देहम् च असत् प्रजां अतीर्थी कृतं मया हीनां वाचम् दुःखदुःखी रक्षति ॥१९॥

अनुवाद— हे उद्धव जिसका अन्तिम बूंद तक दूध दूह लिया गया है जो कभी आगे दूध नहीं देने वाली है, ऐसी गौ, काम शून्य पत्नी, दूसरे के अधीन रहने वाला शरीर, कुपुत्र, पात्रभूत याचक के आने पर भी जिसका दान नहीं किया गया इस प्रकार की संपत्ति तथा मुझसे रहित वाणी की जो रक्षा करता है, वह बार-बार दुःख भोगता है॥१९॥

भावार्थ दीपिका

एतदेवान्यार्थनिदर्शनैः प्रपञ्चयति-गामिति । दुह्यत इति दोहः पयः । दुग्धो दोहो नोत्तरत्र दोह्योऽस्ति यस्यास्तामर्थशून्याम्। असतीं भार्यां कामशून्याम् । देहं पराधीनं प्रतिक्षणं दुःखहेतुम् । असत्प्रजां दृष्टादृष्टसाधनशून्यं पुत्रम् । अतीर्थीकृतमागते पात्रेऽदत्तं वित्तं दुष्कीर्तिदुरितापादकम् । अङ्ग हे उद्धव, दुःखानन्तरं दुःखमेव यस्य स रक्षति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

इसका ही अन्य पदार्थ के दृष्टान्तों के द्वारा विस्तार करते है । **गाम्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा किया गया है । जिसका अन्तिम बूंद तक दूध दूह लिया गया हो इस प्रकार की गौ, कामशून्य पत्नी, पराधीन रहने वाला शरीर जो प्रत्येक क्षण दुःख देने वाला शरीर, असत् प्रजा अर्थात् दृष्टा दृष्ट (लौकिक एवं पार लौकिक) साधन रहित पुत्र, याचक के आने पर भी दान नहीं किया गया धन जो केवल दुष्कृत तथा पाप को ही प्रदान करने वाला धन, तथा मुझसे रहित वाणी इन सबों की रक्षा करने वाला बार-बार दुःख का अनुभव करता है ॥१९॥

यस्यां न मे पावनमङ्ग कर्म स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य ।
लीलावतारेप्सितजन्म वा स्याद्बन्ध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः ॥२०॥

अन्वयः— हे अङ्ग यस्यां मे अस्य स्थित्युदभवप्राणनिरोधम् पावनं कर्म लीलावतारेऽप्सितजन्मवा न स्यात् तां बन्ध्यां गिरं धीरः न विभृयात् ॥२०॥

अनुवाद— हे उद्धव जिसवाणी में इस जगत् की सृष्टि स्थिति और संहार के कारणभूत मेरे पवित्र कर्म का वर्णन अथवा मेरे लीवतारों के अत्यन्त प्रिय जन्म का वर्णन न हो उस बन्ध्या वाणी का धीर पुरुष वर्णन नहीं करते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

मया हीनां वाचमित्युक्तं विवृणोति । यस्यां वाचि मे जगतः शोधकं चरित्रं न स्यात् । किं तत् । अस्य विश्वस्य स्थित्यादिरूपम्, तद्धेतुरित्यर्थः । लीलावतारेष्वीप्सितं जगतः प्रेमास्पदं श्रीरामकृष्णादिजन्म वा न स्यात् । तां निष्फलं गिरं धीरो धीमान्न धारयेत् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त मया हीनां वाणी का श्रीभगवान् इस श्लोक में विस्तार से वर्णन करते हैं जिस वाणी में मेरे जगत् को पवित्र बनाने वाले चरित्र का वर्णन न हो । वह पावन चरित्र क्या है ? तो उसका उत्तर है कि इस जगत् की स्थिति आदि के कारणभूत कर्म, लीलावतारों में अभिप्रेत जगत् को प्रसन्न करने वाला श्रीराम कृष्ण आदि के जन्म का वर्णन न हो उस निष्फल वाणी को बुद्धिमान पुरुष धारण नहीं करते हैं ॥२०॥

एवं जिज्ञासयापोह्य नानात्वभ्रममात्मनि । उपारमेत विरजं मनो मय्यर्प्य सर्वगे ॥२१॥

अन्वयः— एवं जिज्ञासया आत्मनिनानात्वभ्रमम् अपोह्य विरजं मनः सर्वगे मयि अर्प्य उपारमेत ॥२१॥

अनुवाद— इस प्रकार जिज्ञासा के द्वारा आत्मा के विषय में नानात्व नाम को दूर करके रजोगुण एवं तमोगुण से रहित शुद्ध सत्त्वमय अपने मन को सर्वत्र व्यापक मुझमें अपने मन को समर्पित करके उपरत हो जाय, केवल शास्त्रपाण्डित्य मात्र से नहीं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

उक्तं ज्ञानमार्गमुपसंहरति-एवं निश्चित्य विचारेणात्मनि नानात्वभ्रमं देहाद्यध्यासं निरस्य निर्मलं मनो मयि सर्वगे परिपूर्णे समर्प्य संधार्य उपारमेत । न शास्त्रपाण्डित्यमात्रेणेत्यर्थः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त ज्ञानमार्ग का उपसंहार करते हुए श्रीभगवान् कहते है कि इस प्रकार से विचार के द्वारा आत्मा के विषय में नानात्व भ्रम अर्थात् देह आदि के अध्यास को दूर करके अपने निर्मल मन को सर्वत्र व्यापक परिपूर्ण मुझमें लगाकर उपरत हो जाय । केवल शास्त्र पाण्डित्य मात्र से नहीं ॥२१॥

यद्यनीशो धारयितुं मनो ब्रह्मणि निश्चलम् । मयि सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः समाचर ॥२२॥

अन्वयः— यदि ब्रह्मणि निश्चलं मन धारयितुम् अनीशः सर्वाणि कर्माणि निरपेक्षः मयि समाचर ॥२२॥

अनुवाद— यदि तुम अपने निश्चल मन को मुझ परंब्रह्म में लगाने में असमर्थ हो तो निरपेक्ष होकर अपने समस्त कर्मों को मेरे लिए किया करो ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

यद्यनीशोऽशक्तस्तर्ह्यास्तामिदं मद्भक्तयैव कृतार्थो भविष्यसीत्याह-मयीति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

यदि असमर्थ हो मुझमें मन लगाने में तो इसको छोड़ो भक्ति के ही द्वारा तुम कृत-कृत्य हो जाओगे । इस बात को श्रीभगवान् **मयि॰ इत्यादि** श्लोक के उत्तरार्ध के द्वारा कहे हैं ॥२२॥

श्रद्धालुर्मे कथाः शृण्वन्सुभद्रा लोकपावनीः । गायन्ननुस्मरन्कर्म जन्म चाभिनयन्मुहुः ॥२३॥

अन्वयः— मे लोकपावनीः सुभद्राः कथाः श्रद्धालु शृण्वन् गायन् अनुस्मरन् जन्म कर्म च मुहुः अभिनयन् ॥२३॥

अनुवाद— मेरी कथाएँ सम्पूर्ण लोकों को पवित्र बनाने वाली एवं कल्याण स्वरूपिणी हैं उन्हें श्रद्धापूर्वक सुने उसका गान करे, स्मरण करे तथा मेरे जन्म और लीलाओं का बार-बार अभिनय करे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

मदर्पणेन कर्मणा विशुद्धसत्त्वस्यान्तरङ्गां भक्तिमाह-श्रद्धालुरिति द्वाभ्याम् । अभिनयन्स्वयमनुकुर्वन् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

अपने समस्त कर्मों को श्रीभगवान् को समर्पित करने से अन्त:करण की शुद्धि हो जाती है अतएव ऐसे भक्त के लिए श्रीभगवान् दो श्लोकों से अन्तरङ्ग भक्ति को बतलाते हैं । अभिनयन् अर्थात् अभिनय करे ॥२३॥

मदर्थे धर्मकामार्थानाचरन्मदपाश्रयः । लभते निश्चलां भक्तिं मय्युद्धव सनातने ॥२४॥

अन्वयः— हे उद्धव ! मदपाश्रयः मदर्थेधर्मकामार्थान् आचरन् सनातने मयि निश्चलां भक्तिं लभते ॥२४॥

अनुवाद— मेरे अधीन रहकर मेरे ही लिए धर्म, काम एवं अर्थ का सेवन करने वाला साधक मुझ अविनाशी पुरुष के विषय में निश्चल भक्ति को प्राप्त करता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

आचरन्सेवमानः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

आचरन् अर्थात् सेवन करने वाला ॥२४॥

सत्सङ्गलब्धया भक्त्या मयि मां स उपासिता । स वै मे दर्शितं सद्भिरञ्जसा विन्दते पदम् ॥२५॥

अन्वयः— सत्सङ्गात् लब्धया भक्त्या मयि मां स उपासिता, स वै मे दर्शित सद्भिः अञ्जसा पदं लभते ॥२५॥

अनुवाद— भक्ति की प्राप्ति सत्सङ्ग से होती है, जिसे भक्ति की प्राप्ति हो जाती है, वह मेरी उपासना करता है । इस तरह से जब उसका अन्त:करण शुद्ध हो जाता है, तब वह मेरे सान्निध्य का अनुभव करता है । उसके पश्चात् वह सन्त पुरुषों के उपदेशों के अनुसार उनके बतलाए हुए मार्ग से वह मेरे परमपद को अनायास ही प्राप्त कर लेता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

ततश्चानेन प्रकारेण मयि मत्सङ्गेन लब्धया भक्त्या स भक्तो मामुपासिता ध्याता भवति । स च ध्यानशीलः सद्भिर्दर्शितं वै निश्चितं सुखेनैव मे पदं स्वरूपं प्राप्नोति ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

तदनन्तर इस प्रकार से मेरे सङ्ग के द्वारा प्राप्त भक्ति के द्वारा मेरा ध्यान करने वाला बन जाता है । वह मेरा ध्यान करने वाला भक्त सत्पुरुषों द्वारा उपदिष्ट मार्ग से अनायास ही मेरे स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ॥२५॥

उद्धव उवाच

साधुस्तवोत्तमश्लोक मतः कीदृग्विधः प्रभो । भक्तिस्त्वय्युपयुज्येत कीदृशी सद्भिरादृता ॥२६॥

अन्वयः— हे उत्तम श्लोक हे प्रभो कीदृग्विधः साधुः तव मतः, त्वयि कीदृशी भक्तिः उपयुज्येत सद्भिरादृता ॥२६॥

उद्धवजी ने कहा

अनुवाद— हे उत्तमश्लोक, हे सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन् आप यह बतलायें कि आपके विचार से सन्त पुरुष का कौन सा लक्षण है ? आपके विषय में कैसी भक्ति करनी चाहिए जिसका संत पुरुष समादर करते हों ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

सत्सङ्गलब्धया भक्तयेत्युक्तं तत्र सतां भक्तेश्च विशेषं पृच्छति-साधुरिति । साधवः स्वस्वमतिकल्पिताः सन्ति बहवः, तव तु कीदृशः संमतः । भक्तिरपि बहुविधा लोके, कीदृशी पुनस्त्वय्युपयुज्येत । सद्भिश्च नारदादिभिरादृता ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा है कि सत्सङ्ग से भक्ति की प्राप्ति होती है । अब उद्धवजी सन्तों और भक्ति के विषय में उनके लक्षण को पूछते हैं । सन्तजन तो अपने-अपने मतानुसार कल्पित होने के कारण अनेक प्रकार के होते हैं । लोक में भक्ति भी अनेक प्रकार की देखी जाती है । आपके प्रति कैसी भक्ति का उपयोग करना चाहिए ? जिस भक्ति का नारदजी आदि समादर करते हैं ॥२६॥

एतन्मे पुरुषाध्यक्ष लोकाध्यक्ष जगत्प्रभो । प्रणतायानुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥२७॥

अन्वयः— हे पुरुषाध्यक्ष ! हे लोकाध्यक्ष ! हे जगतप्रभो ! एतत् प्रणताय अनुरक्ताय प्रपन्नाय च कथ्यताम् ॥२७॥

अनुवाद— हे ब्रह्मा आदि देवताओं के नियामक, सत्यादि लोको के स्वामिन्, हे जगत् के स्वामिन मैं आपका विनीत, प्रेमी और शरणागत भक्त हूँ । आप इसे मुझे बतलाने की कृपा करें ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

एतच्च कथ्यताम् । इदं चातिगुह्यं त्वयैव वक्तव्यमित्यैश्वर्यमाविष्करोति-हे पुरुषाध्यक्षेत्यादिना । ब्रह्मादिनियन्तः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

आप हमें इन सबों को बतलायें । यह अत्यन्त गोपनीय बातें हैं अतएव इसको आप ही बतलायें यह कहकर उद्धवजी भगवान् श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य को आविष्कृत करते हैं । हे पुरुषाध्यक्ष अर्थात् हे ब्रह्मादि देवताओं के भी नियन्ता प्रभो ॥२७॥

त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः । अवतीर्णोऽसि भगवन्स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥२८॥

अन्वयः— भगवन् त्वं प्रकृतेः परः पुरुषः परमं व्योम स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः अवतीर्ण असि ॥२८॥

अनुवाद— हे भगवन् मैं जानता हूँ कि आप प्रकृति से भी परे पुरुषोत्तम है, आप चिदाकाश स्वरूप हैं, आप अपनी इच्छा से पृथक शरीर धारण करके इस भूतल पर अवतीर्ण हुए हैं । अतएव आप ही भक्ति तथा भक्त के रहस्य को बतला सकते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अत्र हेतुः-त्वमिति । व्योमवदसङ्गः । यतः प्रकृतेः परः । स्वेषां भक्तानामिच्छयोपात्तं पृथक्परिमितं वपुर्येन सः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

इसमें कारण त्वम् इत्यादि श्लोक से बतलाते है आप आकाश के समान अनासक्त है । क्योंकि आप प्रकृति से परे पुरुषोत्तम हैं । आप अपने भक्तों की इच्छा से ही यह श्रीकृष्ण रूप परिमित शरीर धारण किए हैं ॥२८॥

श्रीभगवानुवाच

कृपालुरकृतद्रोहस्तितिक्षुः सर्वदेहिनाम् । सत्यसारोऽनवद्यात्मा समः सर्वोपकारकः ॥२९॥

अन्वयः— कृपालुः सर्वदेहिनाम् अकृतद्रोहः तितिक्षुः सत्यसारः अनवद्यात्मा, समः सर्वोपकारकः ॥२९॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— उद्धव मेरा भक्त दयालु होता है । वह किसी जीव से वैरभाव नहीं रखता है । वह बड़े-बड़े कष्ट को बड़ी आसानी से सह लेता है । उसके जीवन का सार यही है कि वह सदा सत्य ही बोलता है । उसके मन में किसी भी प्रकार की पाप वासना नहीं आती है । वह समदर्शी होता है तथा वह सबों का उपकार ही करता है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

तत्र त्रिंशल्लक्षणैः साधुं निरूपयति-कृपालुरिति पञ्चभिः । कृपालुः परदुःखासहिष्णुः । सर्वदेहिनां केषांचिदप्यकृतद्रोहः ।

तितिक्षुः क्षमावान् । सत्यं सारः स्थिरं बलं वा यस्य सः । अनवद्यात्मासूयादिरहितः । सुखदुःखयोः समोहर्षविषादरहितः । यथाशक्ति सर्वेषामुपकारकः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् तीस लक्षणों के द्वारा अपने भक्तों का निरूपण करते हैं । इस श्लोक में भगवान् भक्तों के पाँच लक्षणों को बतलाते हैं । कृपालु अर्थात् दूसरे के दुःखों नहीं सह सकने वाला । किसी भी शरीरधारी जीव से द्रोह नहीं करने वाला, तितिक्षु: सभी प्रकार के कष्टों को सहने वाला क्षमाशील । सत्यसार: मेरे भक्त के जीवन का सार है कि वह सदा सत्य ही बोलता है । अनवद्यात्मा अर्थात् असूया आदि दोषों से रहित, समः अर्थात् सुख एवं दुःखों मे एक समान बने रहने वाला अर्थात् हर्ष विवाद से रहित । अपनी शक्ति के अनुसार सभी जीवों का उपकार करने वाला ।।२९।।

कामैरहतधीर्दान्तो मृदुः शुचिरकिंचनः । अनीहो मितभुक् शान्तः स्थिरो मच्छरणो मुनिः ।।३०।।

अन्वयः— कामैरहतधीः दान्तः मृदुः शुचिः अकिञ्चनः, अनीहः मितभुक् शान्तः स्थिरः मच्छरणः मुनिः ।।३०।।

अनुवाद— उसकी बुद्धि कभी भी कामनाओं से कलुषित नहीं होती है । दान्तः अर्थात् अपनी बहिरिन्द्रियों को वश में रखने वाला, मुदुः अर्थात् कोमलचित्तवाला, शुचिः सदाचार का पालन करने वाला । अकिञ्चन किसी प्रकार के दान को नहीं लेने वाला, अनीहः किसी भी अभिप्रेत वस्तु को प्राप्त करने के लिए कोई क्रिया नहीं करने वाला, मितभुक् अल्पभोजी, शान्तः निश्चित अन्तःकरण वाला, स्थिरः अपने धर्म में सुदृढ, मच्छरणः केवल मुझको ही अपना एक मात्र रक्षक मानने वाला मुनिः तत्त्वों का सदा मनन करने वाला ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

कामैर्विषयैरक्षुभितचित्तः । दान्तः संयतबाह्येन्द्रियः । मृदुरकठिनचित्तः । शुचिः सदाचारः । अकिंचनोऽपरिग्रहः । अनीहो इष्टक्रियाशून्यः । मितभुक् लघ्वाहारः । शान्तो नियतान्तःकरणः । स्थिरः स्वधर्मे । मच्छरणो मदेकाश्रयः । मुनिर्मननशीलः।।३०।।

भाव प्रकाशिका

जिस विषयों के द्वारा चित्त कभी क्षुब्ध नहीं होता । दान्तः अर्थात् मेरा भक्त अपनी बाह्य इन्द्रियों को अपने वश में किए रहता है । मृदुः अर्थात् वह कोमल चित्त वाला होता है । शुचिः अर्थात् सदाचार सम्पन्न होता है । अकिञ्चनः अर्थात् वह सभी प्रकार के परिग्रहों से रहित होता है । **अनीहा०** अर्थात् किसी भी अभिप्रेत वस्तु की प्राप्ति की चेष्टा नहीं करता है । मितभुक् वह अल्प आहार करता है । शान्तः उसका अन्तःकरण बिल्कुल शान्त होता है। स्थिरः अर्थात् अपने धर्म में स्थिर रहने वाला । मच्छरणः वह सदा मेरे शरण में रहता है । मुनिः वह तत्त्व चिन्तन में संलग्न रहता है ।।३०।।

अप्रमतो गभीरात्मा धृतिमान् जितषड्गुणः । अमानी मानदः कल्पो मैत्रः कारुणिकः कविः ।।३१।।

अन्वयः— अप्रमतः, गभीरात्मा, धृतिमान् जितषड्गुणः, आमानी, मानदः कल्पः, मैत्र कारुणिकः कविः ।।३१।।

अनुवाद— वह मेरा भक्त प्रमाद रहित, गम्भीर स्वभाव वाला, धैर्य सम्पन्न तथा भूख-प्यास, शोक-मोह, एवं जन्म-मृत्यु इन छहों को अपने वश में किए रहता है । वह किसी से सम्मान प्राप्त करना नहीं चाहता है । वह दूसरों को सदा सम्मान प्रदान करता है, दूसरों को कोई भी बात समझाने में निपुण होता है । सबों के साथ वह मित्रता का व्यवहार करता है । उनका अन्तःकरण करुणापूर्ण होता है और वह परमात्मतत्त्व का ज्ञाता होता है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

अप्रमत्तः सावधानः । गभीरात्मा निर्विकारः । धृतिमान्विपद्यप्यकृपणः । जितषड्गुणः-'क्षुत्पिपासे शोकमोहौ जरामृत्यु षड्डूर्मयः' एते जिता येन सः । अमानी न मानाकाङ्क्षी । अन्येभ्यो मानदः । कल्पः परबोधने दक्षः । मैत्रोऽवञ्चकः । कारुणिकः करुणयैव प्रवर्तमानो न दृष्टलोभेन । कविः सम्यग्ज्ञानी ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

वह अप्रमत्त अर्थात् सावधान रहता है । गम्भीरात्मा उसके मन में कोई विकार नहीं होता है । धृतिमान अर्थात् वह विपत्ति में भी घबराता नहीं है । जितषड्गुण वह भूख-प्यास, शोक-मोह, तथा जरा एवं मृत्यु इन छहों को अपने वश में किए रहता है । अमानी वह किसी से सम्मान नहीं चाहता है, मानदः वह दूसरों को सदा सम्मान देता है । कल्पः कोई भी बात दूसरों को समझाने में निपुण होता है । मैत्रः किसी को धोखा नहीं देता है । कारुणिकः वह करुणा के कारण ही किसी कार्य में प्रवृत्त होता दृष्ट पदार्थ के लोभ से नहीं कविः वह अच्छी तरह से ज्ञन सम्पन्न होता है ।।३१।।

आज्ञायैवं गुणान्दोषान्मया दिष्टानपि स्वकान् । धर्मान्संत्यज्य यः सर्वान्मां भजेत स सत्तमः ।।३२।।

अन्वयः— मया आदिष्टान् गुणान् दोषान् आज्ञाय स्वकान् अपि सर्वान् धर्मान् संत्यज्य यः मां भजेत स सत्तमः।।३२।।

अनुवाद— प्रिय उद्धवजी मैंने वेदों और शास्त्रों के माध्यम से मनुष्य धर्म का उपदेश दिया । उनका पालन करने से अन्तःकरण की शुद्धि तथा उल्लंघन करने से नरकादि की प्राप्ति होती है । किन्तु मेरा सर्वोत्तम भक्त होता है वह अपने सभी धर्मों को तथा परमात्मोपदिष्ट धर्मों भगवद् ध्यान में विक्षेप समझकर उन सबों को त्याग देता है और निरन्तराय मेरे भजन में संलग्न रहता है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

किंच, मया वेदरूपेणादिष्टानपि स्वधर्मान्संत्यज्य यो मां भजेत सोऽप्येवं पूर्वोक्तवत्सत्तमः । किमज्ञानान्नास्तिक्याद्वा, न, धर्माचरणे सत्त्वशुद्यधादीन् गुणान् विपक्षे नरकपातादीन्दोषांश्चाज्ञाय ज्ञात्वापि मद्ध्यानविक्षेपकतया मद्भक्तयैव सर्वं भविष्यतीति दृढनिश्चयेनैव धर्मान्संत्यज्य । यद्वा भक्तिदार्ढ्येन निवृत्ताधिकारतया संत्यज्य । अथवा विद्धैकादश्युपवासकृष्णैकादश्यनुपवासानिवेद्यश्राद्धादयो ये भक्तिविरुद्धा धर्मास्तान्संत्यज्येत्यर्थः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

वेद मेरा स्वरूप है । वेद रूप में मैंने जिन धर्मों का उपदेश किया है, वह उन धर्मों का भी त्याग करके जो मेरा भजन करता है वह भी पूर्वोक्त के समान श्रेष्ठतम है । क्या अज्ञान अथवा नस्तिकता के कारण धर्म का आचरण नहीं करने पर अन्तःकरण की शुद्धि आदि धर्मों को तथा धर्मों का आचरण नहीं करने पर नरक में जाना पड़ता है, इन सभी दोषों को जानकर भी यह सोचकर कि ये सभी धर्म मेरे निरन्तर निरन्तराय ध्यान में विक्षेप करने वाले हैं। भक्ति के द्वारा ही मेरा सबकुछ होगा इस तरह से विचार करके धर्मों का परित्याग कर देता है । अथवा भक्ति की सुदृढता के कारण धर्माचरणाधिकार के समाप्त हो जाने के कारण वह धर्मों का परित्याग कर देता है । अथवा विद्धा एकादशी उपवास तथा कृष्णपक्ष की एकादशी के दिन उपवास नहीं करने के कारण अथवा श्राद्ध आदि जो भक्ति के विरोधी धर्म हैं उन सबों का परित्याग करके ।।३२।।

ज्ञात्वाज्ञात्वाथ ये वै मां यावान्यश्चास्मि यादृशः । भजन्त्यनन्यभावेन ते मे भक्ततमा मताः ।।३३।।

अन्वयः— ये वै यावान् यादृशः यश्च अस्मि इति ज्ञात्वा अज्ञात्वा वा अनन्यभावेन मां भजन्ति ते मे भक्ततमाः मताः।।३३।।

अनुवाद— उद्धव मैं जितना हूँ, जैसा हूँ तथा जो हूँ, इन बातों को जानकर अथवा बिना जाने ही अनन्य भाव से जो लोग मेरा भजन करते हैं, वे मेरे सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

किंच यावान्देशकालापरिच्छिन्नः । यश्च सर्वात्मा । यादृशः सच्चिदानन्दादिरूपः । तं मां ज्ञात्वा अज्ञात्वापि । यद्वा विशेषतः पुनः पुनर्ज्ञात्वा एकान्तभावेन ये भजन्तीति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

यावान् देश एवं काल से अपरिच्छिन्न यः अर्थात् सर्वों की आत्मा यादृशः अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप में हूँ, इस तरह से मुझको जानकर अथवा जाने बिना ही । अथवा विशेष रूप से बार-बार मुझको जानकर एकान्त भाव से जो लोग मेरा भजन करते हैं ।।३३।।

मल्लिङ्गमद्भक्तजनदर्शनस्पर्शनार्चनम् । परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् ।।३४।।

अन्वयः— मल्लिङ्गमद भक्तजन दर्शन स्पर्शनार्चनम् परिचर्या स्तुतिः प्रह्वगुणकर्मानुकीर्तनम् ।।३४।।

अनुवाद— मेरे भक्त को चाहिए कि वह मेरी मूर्ति अथवा मेरे भक्तों का दर्शन करे, उनका स्पर्श करे, उनकी सेवा कर तथा स्तुति करके प्रणाम करे एवं मेरे गुणों एवं कर्मों का कीर्तन करे ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

साधुलक्षणमुक्तम्. भक्तेर्लक्षणमाह-मल्लिङ्गेत्यष्टभिः । लिङ्गानि प्रतिमादीनि ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

साधु का लक्षण करने के बाद अब श्रीभगवान् मल्लिङ्ग इत्यादि आठ श्लोको से भक्ति के लक्षण को बतलाते हैं लिङ्गानि अर्थात् प्रतिमा आदि को ।।३४।।

मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव । सर्वलाभोपहरणं दास्येनात्मनिवेदनम् ।।३५।।

अन्वयः— हे उद्धव मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानम् सर्वलाभोपहरणम् दास्येन आत्मनिवेदनम् ।।३५।।

अनुवाद— उद्धव मेरी कथा सुनने में उसकी श्रद्धा होनी चाहिए, वह निरन्तर मेरा ध्यान करता रहे । जो कुछ भी उसे प्राप्त हो उसे वह मुझे समर्पित कर दे तथा दास्य भाव से वह आत्म निवेदन करे ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

सर्वलाभोपहरणं सर्वस्य लब्धस्य समर्पणम् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

सर्वलाभोपहरणम् अर्थात् जो कुछ भी मिले उसे मुझको समर्पित कर देना चाहिए ।।३५।।

मज्जनमकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम् । गीतताण्डववादित्रगोष्ठीभिर्मद्गृहोत्सवः ।।३६।

अन्वयः— मज्जन्मकर्मकथनं मम पर्वानुमोदनम् गीतताण्डववादित्र गोष्ठीभिः मम गृहोत्सवः ।।३६।।

अनुवाद— मेरे जन्म और कर्मों की चर्चा कर मेरे जन्माष्टमी और रामनवमी आदि पर्वों पर आनन्द मना तथा गीत, नृत्य, वाद्य तथा समाज द्वारा मेरे मन्दिर में उत्सव करे और करवाये ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

पर्वाणि जन्माष्टम्यादीनि तदनुमोदनम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

मेरे जन्माष्टमी आदि के पर्वों पर आनन्द मनाये ।।३६।।

यात्राबलिविधानं च सर्ववार्षिकपर्वसु । वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥३७॥

अन्वयः— सर्ववार्षिकपर्वसु यात्रा बलिविधानं च, वैदिकी तान्त्रिकी दीक्षा मदीयव्रतधारणम् ॥३७॥

अनुवाद— मेरे वार्षिक त्योहारों के दिन मेरे स्थानों की यात्रा कर अनेक प्रकार के उपहारों से मेरी पूजा करे वैदिक अथवा तान्त्रिक दीक्षा ग्रहण करके मेरे व्रतों का पालन करे ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

बलिविधानं पुष्पोपहारादिसमर्पणम् । सर्ववार्षिकपर्वसु चातुर्मास्यैकादशादिषु विशेषतः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

बलिविधानम् पुष्प तथा उपहार आदि को समर्पित करना, **सर्व वार्षिकपर्वषु** अर्थात् विशेष रूप से चातुर्मास्य व्रत के एकादशाह के दिन ॥३७॥

ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य चोद्यमः । उद्यानोपवनाक्रीडपुरमन्दिरकर्मणि ॥३८॥

अन्वयः— ममार्चास्थापने श्रद्धा स्वतः संहत्य च उद्यमः, उद्यानोपवनाक्रीडपुरमन्दिर कर्मणि ॥३८॥

अनुवाद— मेरी मूर्ति की स्थापना में श्रद्धा रखे यदि स्वयं न सामर्थ्य हो तो औरों के साथ मिलकर अर्चामूर्ति की स्थापना का प्रयास करे । मेरे लिए पुष्प वाटिका बागीचा, क्रीडा स्थान नगर और मन्दिर बनवाये ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

उद्यानादिकरणे सामर्थ्ये सति स्वतः । असति चान्यैः संभूयोद्यमः । उद्यान पुष्पप्रधानम् । उपवनं फलप्रधानं वनम् । आक्रीडं क्रीडास्थानम् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

उद्यान आदि के निर्माण में सामर्थ्य हो तो स्वयं करे । यदि सामर्थ्य न हो तो दूसरों के साथ मिलकर प्रयास करना चाहिए । जिसमें पुष्पों की प्रधानता होती है उसे उद्यान कहते हैं । जिसमें फलों की प्रधानता हो उसे वन कहते है । अक्रीडम् क्रीडा स्थान ॥३८॥

संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्तनैः । गृहशुश्रूषणं मह्यं दासवद्यदमायया ॥३९॥

अन्वयः— दासवद् अमायया संमार्जनोपलेपाभ्यां सेकमण्डलवर्तनैः मह्यं गृहशुश्रूषणम् ॥३९॥

अनुवाद— सेवक के समान श्रद्धा पूर्वक बिना किसी कपट के मन्दिरकी सेवा शुश्रूषा करे झाड़े-बुहारे, लीपे-पोंते, तरह-तरह के चौक बनाए ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

संमार्जनं रजसोपाकरणम् । उपलेपो गोमयादिभीरालेपनम् । सेकस्तैरेव प्रोक्षणम् । मण्डलवर्तनं सर्वतोभद्रादिकरणम्। मह्यं मम ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

संमार्जन अर्थात् धूल को झाड़ना, गोबर आदि से लिपने को उपलेप कहते है, गोबर आदिसे प्रोक्षण करने को प्रोक्षण कहते है । मण्डल वर्तनम् अर्थात् सर्वतोभद्र आदि का निर्माण मह्यम् अर्थात् मेरे ॥३९॥

अमानित्वमदम्भित्वं कृतस्यापरिकीर्तनम् । अपि दीपावलोकं मे नोपयुञ्ज्यान्निवेदितम् ॥४०॥

अन्वयः— अमानित्वम् अदम्भित्वम् कृतस्य अपरिकीर्तनम्, अपि दीपावलोकं मे नोपयुञ्ज्यात् निवेदितम् ॥४०॥

अनुवाद— भक्त को चाहिएकि वह अभिमान न करे वह दम्भ न करे, वह अपने द्वारा किए गये शुभ कर्मों का प्रचार न करे। मेरे चढावे की वस्तु को अपने काम में न लगाये, यहाँ तक कि भगवान् को समर्पित दीप के प्रकाश को अपने काम के उपयोग में न लगाये। किञ्च किसी दूसरे देवता को चढायी हुई वस्तु को भगवान् को नहीं चढाए ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

कृतस्य धर्मस्यापरिकीर्तनम्। स्वयमन्येन वा निवेदितं न स्वीकुर्यात्। एतच्च साधारणं स्थावरविषयं रागप्राप्तविषयं वा भक्त्या तु ग्राह्यमेव। 'षड्भिर्मासोपवासैस्तु यत्फलं परिकीर्तितम्। विष्णोर्नैवेद्यसिक्थेन पुण्यं तद्भुञ्जतां कलौ। हृदि रूपं मुखे नाम नैवेद्यमुदरे हरेः। पादोदकं च निर्माल्यं मस्तके यस्य सोऽच्युतः।' इत्यादिवचनेभ्यः। यद्वा अन्यस्मै निवेदितं मे नोपयुञ्जयात्। मह्यं न निवेदयेदित्यर्थः। 'विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम्। पितृभ्यश्चैव तद्देयं तदानन्त्याय कल्पते। पितृशेषं तु यो दद्याद्धरये परमात्मने। रेतोधाः पितरस्तस्य भवन्ति क्लेशभागिनः।' इत्यादिवचनेभ्यः ॥४०॥'

भाव प्रकाशिका

अपने द्वारा किए गये धर्म का प्रचार न करे, अपने अथवा दूसरे द्वारा निवेदित वस्तु को अपने उपयोग में न ले। यह सब तो स्थावर अथवा राग प्राप्त विषय है। किन्तु भक्तिपूर्वक तो उसका ग्रहण करना ही चाहिए। कहा भी गया है छ मास तक उपवास करने से जिस फल की प्राप्ति होती है कलियुग में उस फल की प्राप्ति भगवान् विष्णु के नैवेद्य के सिक्थ का भोजन करने वाले को प्राप्ति होती है। जिसके हृदय में श्रीहरि का रूप, मुख में श्रीहरि का नाम, उदर में श्रीहरि का प्रसाद श्रीभगवान् का चरणोदक और निर्माल्य जिसके सिर पर रहता है, वह भगवान् अच्युत का रूप होता है। अथवा दूसरे देवता को निवेदित वस्तु मेरे उपयोग में न लाए। कहा भी गया है। भगवान् विष्णु को निवेदित अन्न से दूसरे देवता की पूजा करनी चाहिए। उसको पितरों को समर्पित करने पर उसका अनन्त फल होता है। पितरों की पूजा से बची वतुओं को जो श्रीहरि को समर्पित करता है। उसके रेत:पात करने वाले पितृगण कष्टों की प्राप्त करते हैं। इत्यादि वचन इस अर्थ में प्रमाण हैं ॥४०॥

यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियमात्मनः। तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्याय कल्पते ॥४१॥

अन्वयः— लोके यत् यत् इष्टतमं यच्च आत्मनः प्रियम्, तत् तत् मह्यं निवेदयेत तदा आनत्याय कल्पते ॥४१॥

अनुवाद— संसार में जो वस्तु अपने को प्रियप्रतीत हो या जो सबसे अभीष्ट हो उसको मुझे समर्पित करे तो वह वस्तु अनन्त फल देने वाली होती है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४१॥

सूर्योऽग्निर्ब्राह्मणो गावो वैष्णवः खं मरुज्जलम्। भूरात्मा सर्वभूतानि भद्र पूजापदानि मे ॥४२॥

अन्वयः— भद्र ! सूर्य, अग्नि, ब्रह्माण्ड गौ, वैष्णवः खं, मरुत् जलम् भूः आत्मा सर्वभूतानि मे पूजापदानि ॥४२॥

अनुवाद— भद्र ! सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, गौ, वैष्णव, आकाश, वायु, जल, पृथिवी, आत्मा एवं सभी जीव ये सभी हमारे पूजन के स्थान हैं। अर्थात् इन सबों से मेरी पूजा करनी चाहिए ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

इदानीमेकादश पूजाधिष्ठानान्याह-सूर्य इति। हे भद्र ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

सूर्य० इत्यादि श्लोक में श्रीभगवान् अपनी पूजा के ग्यारह स्थानों का निर्देश किए है। हे भद्र अर्थात् हे कल्यणस्वरूप उद्धव ॥४२॥

सूर्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाग्नौ यजेत माम् । आतिथ्येन तु विप्राग्र्ये गोष्वङ्ग यवसादिना ॥४३॥

अन्वयः— हे अङ्ग सूर्ये तु त्रय्याविद्यया अग्नौ हविषा माम्, विप्राग्र्येषु आतिथ्येन गोषु यवसादिना यजेत ॥४३॥

अनुवाद— प्रिय उद्धव सूर्य में मेरी आराधना ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के मन्त्रों द्वारा मेरी आराधना करे, अग्नि में मेरी आराधना हविष्य के होम के द्वारा करे, श्रेष्ठ ब्राह्मण में मेरी आराधना उनके आतिथ्य सत्कार करके और गौ में मेरी आराधना गौ को घास प्रदान द्वारा करनी चाहिए ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

अधिष्ठानभेदेन पूजासाधनान्याह-सूर्य इति त्रिभिः । त्रय्या विद्यया सूक्तैरुपस्थानादिना । अङ्ग हे उद्धव । यवसादिना तृणादिना ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

भिन्न-भिन्न अधिष्ठानों में अपनी पूजा की सामग्री को श्रीभगवान बतलाते हैं- सूर्य में त्रयीविद्या अर्थात् तीनों वेद के मन्त्रों तथा सूक्तों द्वारा अथवा सूक्तों द्वारा सूर्योपस्थान के द्वारा आराधना करें । **हे अङ्ग** अर्थात् **हे उद्धव यवसादिना** अर्थात् घास आदि प्रदान करके ॥४३॥

वैष्णवे बन्धुसत्कृत्या हृदि खे ध्याननिष्ठया । वायौ मुख्यधिया तोये द्रव्यैस्तोयपुरस्कृतैः ॥४४॥

अन्वयः— वैष्णवे बन्धुसत्कृत्या, हृदि खे ध्याननिष्ठया, वायौ मुख्याधिया तोये तोयपुरस्कृतैः द्रव्यैः ॥४४॥

अनुवाद— बन्धु बान्धव का सत्कार करके वैष्णव में, हृदयाकाश में निरन्तर मेरा ध्यान करते रहकर, वायु में मुझको मुख्य प्राण समझकर तथा जल में जल आदि द्रव्यों से तर्पण आदि के द्वारा मेरी आराधना करे ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

बन्धुसत्कृत्या बन्धुवत्संमानेन । हृदि खे हृदयाकाशे । मुख्यधिया प्राणदृष्ट्या । तोये तोयादिभिर्द्रव्यैस्तर्पणादिना ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

बन्धुसत्कृत्या अर्थात् बन्धु के समान सत्कार के द्वारा, हृद खे अर्थात् हार्दाकाश में मुख्यधिया अर्थात् मुख्य प्राण की दृष्टि से, जल में जल आदि द्रव्यों से तर्पण आदि के द्वारा श्रीभगवान् की आराधना करे ॥४४॥

स्थण्डिले मन्त्रहृदयैर्भोगैरात्मानमात्मनि । क्षेत्रज्ञं सर्वभूतेषु समत्वेन यजेत माम् ॥४५॥

अन्वयः— मन्त्रहृदयैः स्थण्डिले, भोगैः आत्मनि, सर्वभूतेपु समत्वेन क्षेत्रज्ञम्, आत्मानं माम् यजेत ॥४५॥

अनुवाद— रहस्यमय मन्त्रों के न्यास के द्वारा स्थण्डिल में उपयुक्त भोगों द्वारा आत्मा में; तथा समदृष्टि के द्वारा सभी भूतों में क्षेत्रज्ञ रूप से विद्यमान मेरी अराधना करे ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

स्थण्डिले भुवि । मन्त्रहृदयैः रहस्यमन्त्रन्यासैः ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

स्थण्डिले अर्थात् पृथिवी मे मन्त्रहृदयैः अर्थात् रहस्यमय मन्त्रों के न्यास के द्वारा ॥४५॥

धिष्ण्येष्वेष्विति मद्रूपं शङ्खचक्रगदाम्बुजैः । युक्तं चतुर्भुजं शान्तं ध्यायन्नर्चेत्समाहितः ॥४६॥

अन्वयः— एषु धिष्ण्येषु इति शङ्खचक्रगदाम्बुजैः युक्तं ममचतुर्भुजं शान्तं रूपं ध्यायन् समाहितः अर्चेत् ॥४६॥

अनुवाद— इन सभी स्थानों में शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किए हुए चार भुजाओं वाले परम शान्त श्रीभगवान् विद्यमान हैं इस प्रकार से ध्यान करते हुए एकाग्रमना होकर श्रीभगवान् की अर्चना करनी चाहिए ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

सर्वाधिष्ठानेषु ध्येयमाह-धिष्ण्येष्विति । इत्यनेन मन्त्रप्रकारेण । एषु धिष्ण्येषु ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

इन स्थानों मे ध्येय को **धिष्णेषु० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । इस तरह मन्त्र के प्रकार से, एषु अर्थात् इन अधिष्ठानों में ।।४६।।

इष्टापूर्तेन मामेवं यो यजेत समाहितः । लभते मयि सद्भक्तिं मत्स्मृतिः साधुसेवया ।।४७।।

अन्वयः— यः समाहितः एवं इष्टापूर्तेन माम यजेत मयि सद्भक्तिं, साधुसेवया मत्स्मृतिः लभते ।।४७।।

अनुवाद— जो मनुष्य एकाग्रचित्त से मेरी आराधना, यज्ञ यागादि तथा वावली कूप आदि के निर्माण के द्वारा करता है वह मेरी श्रेष्ठ भक्ति को प्राप्त करता है, तथा सन्तों की सेवा करने से उसे मेरे स्वरूप का भी ज्ञान हो जाता है ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

उक्ताया भक्तेः फलमाह-इष्टापूर्तेनेति । सद्भक्तिं दृढां भक्तिम् । अस्या भक्तेरन्तरङ्गसाधनमाह-इत्थं मत्स्मृतिः साधुसेवया भवति । यद्वा स्मृतिर्ज्ञानम् । ततश्च दृढभक्तिमतः पुंसः साधुसेवया मज्ज्ञानं भवतीत्यर्थः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

वर्णित भक्ति के फल को **इष्टापूर्तेन० इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । सद्भक्तिम् अर्थात् सुदृढ भक्ति को, इस भक्ति के अन्तरङ्ग साधन को इस तरह से मेरे स्वरूप का ज्ञान सन्तों की सेवा से हो जाता है, कहकर बतलाया गया है । अथवा स्मृतिः अर्थात् ज्ञान । अतएव मेरी भक्ति करने वाले पुरुष को सन्तों की सेवा से मेरे स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, यही अर्थ है ।।४७।।

प्रायेण भक्तियोगेन सत्सङ्गेन विनोद्धव । नोपायो विद्यते सध्यङ् प्रायणं हि सतामहम् ।।४८।।

अन्वयः— हे उद्धव ! प्रायेण भक्तियोगेन सध्यङ्सत्सङ्गेन विना प्रायेण उपायः न विद्यते अहं हि सतां प्रायणम्।।४८।।

अनुवाद— हे उद्धव ! मेरे विचार से भक्तियोग और सत्सङ्ग दोनों का अनुष्ठान साथ-साथ करना चाहिए। प्रायः इन दोनों साधनों के बिना इस संसार सागर को पार करने का कोई दूसरा उपाय नहीं है, क्योंकि सन्त पुरुष मुझे ही अपना आश्रय समझते हैं मैं सदा सर्वदा उनके पास बना रहता हूँ ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

ज्ञानभक्तिमार्गावुक्तौ, तत्र ज्ञानमार्गादपि भक्तिमार्गः श्रेष्ठ इत्याह-प्रायेणेति । सत्सङ्गेन यो भक्तियोगस्तेन विनोपायः संसारतरणे न विद्यते । सत्सङ्गेनेत्यत्र हेतुमाह-हि यस्मात् सतामहं प्रायणं प्रकृष्टमयनमाश्रयः । अतः सत्सङ्गो मय्यन्तरङ्ग इत्यर्थः ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

ज्ञानमार्ग एवं भक्तिमार्ग दोनों का वर्णन किया गया है । उसमें भी ज्ञानमार्ग की अपेक्षा भक्तिमार्ग की श्रेष्ठता का प्रतिपादन **प्रायेण० इत्यादि** श्लोक से किया गया है । सत्सङ्ग से प्राप्त भक्तियोग के बिना संसार सागर को पार करने का कोई दूसरा उपाय नहीं है । सत्सङ्गेन में कारण को बतलाते हुए कहा गया है क्योंकि मैं सत्पुरुषों का श्रेष्ठ आश्रय हूँ । अतएव सत्सङ्ग मेरे विषय में अन्तरङ्ग साधन हैं ।।४८।।

अथैतत्परमं गुह्यं शृण्वतो यदुनन्दन । सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत्सखा ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे एकादशोऽध्यायः ।।११।।

अन्वयः— हे यदुनन्दन अथ एतत् परमं गुह्यं शृण्वतः सुगोप्यमपि वक्ष्यामि त्वं मे भृत्यः सुहृत् सखा ।।४९।।

अनुवाद— हे उद्धव अब मैं तुमको एक अत्यन्त गोपनीय बात बतलाऊँगा क्योंकि तुम मेरे प्रिय सेवक, हितैषी और सखा हो ।।४९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं सांख्ययोगादीनि साधनान्तरसव्यपेक्षाणि सव्यभिचाराणि च, सत्सङ्गस्तु स्वतन्त्र एव समर्थः फलाव्यभिचारी चेति वर्णयितुमाह-अथेति । एतद्वक्ष्यमाणं परमं गुह्यमतः शृण्वित्यर्थः ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामेकादशोऽध्यायः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

***अथ०* इत्यादि** श्लोक में श्रीभगवान् बतलाते हैं कि सांख्य योग आदि साधनान्तर सापेक्ष तथा व्यभिचार युक्त साधन हैं । सत्सङ्ग तो स्वतंत्र रूप से ही समर्थ है तथा निश्चित रूप से फल प्रदान करने वाला है । अब इस गोपनीय साधन को तुम सुनो ।।४९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के ग्यारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।११।।

◆

बारहवाँ अध्याय

सत्सङ्ग की महिमा और कर्म तथा कर्मत्याग की विधि

श्रीभगवानुवाच

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तं न दक्षिणा ॥१॥
व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः । यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम् ॥२॥

अन्वयः— सर्वसङ्गापहः सत्सङ्गः माम् हि यथावरुन्धे तथा मां योगः सांख्यं धर्म एव, न स्वाध्यायः तपः त्यागः न इष्टापूर्तः न दक्षिणा व्रतानि, यज्ञः छन्दांसि, तीर्थानि नियमा यमाः न ॥१-२॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— प्रिय उद्धव ! संसार की सारी आसक्तियों को सत्सङ्ग नष्ट कर देता है । इसीलिए जिस तरह सत्सङ्ग मुझको अपने वश में कर लेता है, उस तरह सांख्य, योग धर्मपालन एवं स्वाध्याय भी मुझे अपने वश में नहीं कर पाते हैं । इसी तरह व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, नियम, यम भी सत्सङ्ग के समान मुझे वश में नहीं कर पाते हैं ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशे साधुसङ्गस्य महिमा वर्णितः पुरा । कर्मानुष्ठानतत्त्यागव्यवस्था च ततः परम् । न रोधयति न वशीकरोति । योग आसनप्राणायामादिः । सांख्यं तत्त्वानां विवेकः । धर्मः सामान्यतोऽहिंसादिः । स्वाध्यायो वेदजपः । तपः कृच्छ्रादि । त्यागः संन्यासः । इष्टापूर्तमिष्टं च पूर्तं च । तत्रेष्टमग्निहोत्रादि । पूर्तं कूपारामादिनिर्माणम् । दक्षिणाशब्देन सामान्यतो दानं लक्ष्यते । व्रतानि एकादश्युपवासादीनि । यज्ञो देवपूजा । छन्दांसि रहस्यमन्त्राः । अवरुन्धे वशीकरोति ॥१-२॥

भाव प्रकाशिका

बारहवें अध्याय में सर्वप्रथम सत्सङ्ग की महिमा का वर्णन श्रीभगवान् ने किया है। उसके पश्चात् वे, कर्मानुष्ठान और कर्मत्याग की व्यवस्था का वर्णन किए हैं। **न रोधयति** अर्थात् अपने वश में नहीं कर पाता है आसन प्राणाय आदि को, योग शब्द से कहा गया है। तत्त्वों के भेदपूर्वक ज्ञान को सांख्य कहते हैं। सामान्यत: अहिंसा आदि का पालन ही धर्म है। वेद का पाठ ही स्वाध्याय शब्दवाच्य है। कृच्छ्र आदि को तप कहा गया है। त्याग अर्थात् संन्यास। इष्टापूर्तम् इष्ट अर्थात् यज्ञ यागादि, और कूप निर्माण आदि को कहते हैं। दक्षिणा शब्द से सामान्यत: दान को लक्षित किया गया है। व्रत एकादशी के दिन उपवास आदि करना। देवपूजन को यज्ञ कहा गया है। रहस्य मन्त्रों को **छन्द** कहा गया है। अवरुन्धे अर्थात् अपने वश में कर लेता है ।।१-२।।

सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः। गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः ।।३।।
विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः। रजस्तमः प्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन्युगेऽनघ ।।४।।
बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः। वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः ।।५।।
सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः। व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथाऽपरे।।६।।

अन्वयः— सत्सङ्गेन हि दैतेयाः, यातुधानाः, मृगाः खगाः, गन्धर्वा अप्सरसः, नागाः सिद्धाः चारणगुह्यकाः, विद्याधराः मनुस्येषु वैश्या, शूद्राः अन्त्यजाः हे अनघ रजस्तमः प्रकृतयः तस्मिन् तस्मिन युगे बहवः त्वाष्ट्र, कायाधवः मत्पदं प्राप्तः, वृषपर्वा, बलिः, बाणः मयः अथ विभीषणः सुग्रीवः, हनुमान्, ऋक्षः गजः गृधः वणिक्पथः व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यः, यज्ञपत्न्यः तथा अपरे ।।३-६।।

अनुवाद— हे विदुर ! सत्सङ्ग के ही द्वारा दैत्य, राक्षस, पशु, पक्षी, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग सिद्ध चारण, गुह्यक और विद्याधरों को मेरी प्राप्ति हुई। इसी तरह मनुष्यों में भी वैश्य, शूद्र, स्त्री और अन्त्यज आदि तथा निष्पाप विदुर ! रजोगुणी एवं तमोगुणी प्रकृति के जीव मेरे परमपद को प्राप्त कर लिए। वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषचर्वा, बाणासुर मयदानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, गजेन्द्र जटायु, तुलधारवैश्य, धर्मव्याध कुब्जा, व्रज की गोपियाँ एवं यज्ञ पत्नियाँ तथा दूसरे लोग भी मेरे परमपद को सत्सङ्ग की महिमा से ही प्राप्त कर लिए ।।३-६।।

भावार्थ दीपिका

यातुधाना राक्षसाः। त्वाष्ट्रो वृत्रः। कायाधवः प्रह्लादः। ऋक्षो जाम्बवान्। गृध्रो जटायुः। वणिक्पथस्तुलाधारः। व्याधो धर्मव्याधः। यज्ञपत्न्यो दीक्षितभार्याः ।।३-६।।

भाव प्रकाशिका

यातुधानाः अर्थात् राक्षस। त्वाष्ट्र अर्थात् वृत्रासुर, कायाधवः अर्थात् प्रह्लाद ऋक्षः जाम्बवान्, गृध्रः जटायुः वणिक्पथः अर्थात् तुलाधार वैश्य, व्याधः अर्थात् धर्मव्याध, यज्ञपत्न्य अर्थात् याग में दीक्षित ब्राह्मणों की पत्नियाँ ।।३-६।।

ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः। अव्रतातप्ततपसः सत्सङ्गान्मामुपागताः ।।७।।

अन्वयः— ते अधीत श्रुतिगणाः न, उपासितमहत्तमाः न, अव्रतातप्रप्ततपसः सत्सङ्गात् माम् उपागताः ।।७।।

अनुवाद— उन लोगों ने तो वेदाध्ययन किया था, और न विधिपूर्वक महापुरुषों की सेवा की थी, इसी प्रकार उन लोगों ने न तो कृच्छ्र चान्द्रायण कि आदि व्रत किया था और न तपस्या की थी, केवल सत्सङ्ग के प्रभाव से वे सब मुझे प्राप्त कर लिए ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तेषां सत्सङ्गव्यतिरिक्तसाधनान्तराभावमाह-न इति। न अधीताः श्रुतिगणा यैः, तदर्थं च नोपासिता महत्तमा यैस्ते तथा।

किंच अव्रतातप्ततपसः, न व्रतानि येषां, न तप्तानि तपांसि यैस्ते च ते च । तथा सत्सङ्गादिति, सद्भिः सङ्गो नाम मयैव सङ्ग इत्यभिप्रेत्योक्तम् । यद्वा स्वसङ्गस्यापि सत्सङ्गत्वं विवक्ष्यते, स्वस्यापि सत्त्वात् । यद्वा मदीयसङ्गादित्यर्थः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

ते० इत्यादि श्लोक से उन सबों की सत्सङ्गव्यतिरिक्त साधन का अभाव बतलाया गया है । उन सबों ने वेदों का अध्ययन नही किया था, और न तो उन लोगों ने विधि पूर्वक महापुरुषों की उपासना ही की थी । उन लोगो ने न तो चान्द्रायण व्रत किया था और न तपस्या की थी । उन लोगों ने सन्तों की सङ्गति से ही मुझको प्राप्त कर लिया था । अथवा श्रीभगवान् को स्वयं अपने को भी सत्सङ्गत्व विवक्षित है । अथवा मेरी ही सङ्गति से ।।७।।

केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः । येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा ।।८।।

अन्वयः— केवलेन भावेन हि गोप्यः, गावः, नगाः, मृगाः अन्ये ये मूढधियः, नागा, सिद्धा माम् अञ्जसा ईयुः ।।८।।

अनुवाद— उद्धव ! केवल प्रेमपूर्ण भाव से ही गोपियाँ, गायें, यमवलार्जुन वृक्ष व्रज के हरिण, आदि पशु तथा दूसरे अज्ञानी जीव कालियनाग आदि मुझको प्राप्त कर लिए ।।८।।

भावार्थ दीपिका

तत्र वृत्रादीनां भवतु नाम कथंचित्साधनान्तरं, गोपीप्रभृतीनां तु नान्यदस्तीत्याह-केवलेनेति । सत्सङ्गलब्धेन केवलेनैव भावेन प्रीत्या नगा यमलार्जुनादयः । नागाः कालियादयः । यद्वा तदानीन्तनानां सर्वतरुगुल्मादीनामपि भगवति भावोऽस्तीति गम्यते । तदुक्तं भगवतैव-'अहो अमी देववरामरार्चितं पादाम्बुजं ते सुमनःफलार्हणम् । नमन्त्युपादाय शिखाभिरात्मनस्तमोपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम् ।' इत्यादि । सिद्धाः कृतार्थाः सन्त ईयुः प्रापुः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

वृत्रासुर आदि के द्वारा हो सकता है कि साधनान्तर भी अपनाये गये हो गोपियों आदि को तो दूसरा कोई साधन भी नहीं प्राप्त था । सत्सङ्ग को प्राप्त केवल प्रेम के ही द्वारा नगा अर्थात् यमलर्जुन वृक्ष, कालिय आदि नाग, अथवा उस समय विद्यमान सभी वृक्ष गुल्म आदि का भी श्रीभगवान् में भाव था यह पता चलता है । श्रीभगवान् ने ही श्रीबलरामजी से कहा है ये श्रेष्ठ देवताओं से पूजित वृक्ष पुष्प तथा फल आदि पूजा के उपकरण को लेकर आपके चरणों में इसलिए अपने अग्रभाग से झुककर प्रणाम कर रहे हैं कि वृक्ष जन्म प्राप्ति के कारण भूत हमलोगों के पापों का विनाश हो जाय । सिद्धा अर्थात् कृतकृत्य, ईयुः अर्थात् प्राप्त कर लिए ।।८।।

यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः । व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद्यत्नवानपि ।।९।।

अन्वयः— यं प्रयत्नवानपि योगेन, सांख्येन, दानव्रततपोध्वरैः व्याख्यास्वाध्याय संन्यासैः न प्राप्नुयात् ।।९।।

अनुवाद— उद्धव ! बड़े-बड़े प्रयत्नशील साधक योग, सांख्य, दान, तप, व्रत, तपस्या और यज्ञों के द्वारा, श्रुतियों की व्याख्या, स्वाध्याय और संन्यास आदि साधनों के द्वारा मुझको नहीं प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु सत्सङ्ग के द्वारा तो मैं अत्यन्त सुलभ हो जाता हूँ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

स्वप्राप्तेर्दुर्लभतामाह-यमिति । योगादिभिः कृतप्रयत्नोऽपि यं न प्राप्नुयात्तं मामीयुरिति पूर्वेणान्वयः । अत्र च प्रथमं या गोप्यः पश्वादयो वा श्रीकृष्णेन सह सङ्गतास्ते सन्तस्तत्सङ्गोऽन्येषां सत्सङ्गस्तेन च तेषां भक्तिरिति ज्ञातव्यम् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

यम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् अपनी प्राप्ति की दुर्लभता को बतलाते हैं । योग आदि के द्वारा

जिस मुझको प्रयास करके भी साधक नहीं प्राप्त कर सकते हैं । उस मुझको लोग सत्सङ्ग के द्वारा अनयास प्राप्त कर लिए यह पहले के श्लोक के साथ अन्वय है । पहले जो गोपियों अथवा पशु आदि भगवान् श्रीकृष्ण के साथ मिल गये सन्त थे और उन सबों का सङ्ग दूसरों का सत्सङ्ग है उसके द्वारा उन सबों की भक्ति की प्राप्ति हो गयी थी । यह जानना चाहिए ॥९॥

रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते श्वाफल्किना मय्यनुरक्तचित्ता: ।
विगाढभावेन न मे वियोगतीव्राधयोऽन्यं ददृशुः सुखाय ॥१०॥

अन्वयः— श्वफल्किना रामेणसार्धं मथुरां प्रणीते मयि अनुरक्तचित्ता: विगाढभावेन मे वियोगतीव्राधय: मत्त:अन्यं सुखाय न ददृशुः ॥१०॥

अनुवाद— जिस समय अक्रूरजी श्रीबलरामजी के साथ मुझे मथुरा लाये उस समय गोपियों का हृदय प्रगाढ़ प्रेम के कारण अनुराग के रङ्ग में रङ्गा था । मेरे वियोग की तीव्र व्याधि से वे व्याकुल हो रही थीं एवं मुझको छोड़कर कोई भी दूसरी वस्तु उन सबों को सुख कारक नहीं प्रतीत होती थी ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

गोपीनां भावं प्रपञ्चयति-रामेणेति चतुर्भिः । श्वाफल्किना, अक्रूरेण मयि प्रणीते सति मे मत्तोऽन्यं सुखाय न ददृशुः । कुतः। वियोगेन तीव्रो दुःसह आधिर्यासां ताः । अत्र हेतुः-मयि विगाढेनातिदृढेन भावेन प्रेम्णानुरक्तानि संसक्तानि चित्तानि यासां ताः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

रामेण० इत्यादि चार श्लोकों द्वारा गोपियों के भाव को श्रीभगवान् स्पष्ट करते हैं । अक्रूर के द्वारा मुझको मथुरा लाये जाने पर वे गोपियाँ मुझको छोड़कर किसी भी दूसरी वस्तु को सुखद रूप से नहीं देखीं । मेरे वियोग जन्य उन सबो को व्याधि दुःसह (असहय) थी । क्योंकि उन सबों का मुझमें प्रेम के कारण अनुराग अत्यन्त सुदृढ हो गया था ॥१०॥

तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयैव वृन्दावनगोचरेण ।
क्षणार्धवत्ताः पुनरङ्ग तासां हीना मया कल्पसमा बभूवुः ॥११॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! वृन्दावनं गोचरण प्रेष्ठतमेन मयैव तास्ताः क्षपाः क्षणार्धवत् नीताः, मया हीनाः ताः पुनः कल्पसमाः बभूवुः ॥११॥

अनुवाद— हे उद्धव ! जब मैं वृन्दावन में था उस समय उन सबों ने उन रास की रात्रियों को आधे क्षण के समान बिता दिया किन्तु मेरे बिना वे ही रात्रियाँ उन सबों को एक-एक कल्प के समान हो गयीं; क्योंकि उन सबों का एकमात्र प्रियतम मैं ही था ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तीव्राधित्वं व्यनक्ति-तास्ता इति । मया सह या एव क्षपा रात्रयः क्षणार्धवन्नीतास्ता एव पुनर्मया हीनास्तासां कल्पसमा बभूवुः । कथंभूताः । तास्ताः वाचामगोचरा इत्यर्थः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

गोपियों की **मनोव्यथा को तास्ताः इत्यादि** श्लोक से तीव्रता को श्रीभगवान् बतलाते हैं । मेरे साथ गोपियों ने जिन रात्रियों को आधे क्षण के समान बिता दी वे ही रात्रियाँ उन सबों के लिए मेरे बिना एक-एक कल्प के समान हो गयीं । उनका वर्णन नहीं किया जा सकता है ॥११॥

ता नाविदन्मय्यनुषङ्गबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तथेदम् ।
यथा समाधौ मुनयोऽब्धितोये नद्यः प्रविष्टा इव नामरूपे ॥१२॥

अन्वयः— समाधौ मुनयो यथा अब्धितोये प्रविष्टाः नामरूपे इव मयि अनुषङ्गबद्धधियःता स्वम् आत्मानम् अदः तथेदम् ॥१२॥

अनुवाद— जिस तरह बड़े-बड़े ऋषि मुनि समाधिस्थ होकर तथा बड़ी-बड़ी गङ्गा आदि नदियाँ जैसे समुद्र के जल में प्रवेश करके अपने नाम और रूप को खो देती हैं, उसी तरह गोपियाँ अपने परम प्रेम के द्वारा मुझमें इतना तन्मय हो गयी थीं कि उन सबों को लोक परलोक अपना कहलाने वाले पति पुत्र इत्यादि तथा अपने शरीर आदि का भी ध्यान नहीं रह गया था ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

किंच एवं तीव्रधयस्ता मोहमिषेण समाधिं प्राप्ता इत्याह-ता इति । मय्यनुषङ्गेणासक्त्या बद्धा धियो याभिस्ताः स्वमात्मानं स्वदेहमदो दूरस्थमिदं संनिहितं च नाविदन् । यद्वा स्वं पतिपुत्रादिममतास्पदम् । आत्मानमहंकारास्पदं देहम् । अदः परं लोकमिदमिमं लोकं च नाविदन्निति । यथा मुनयः समाधौ नामरूपे न विदुस्तद्वत् । किंत्वब्धितोये नद्य इव मयि प्रविष्टा इत्यन्वयः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

किञ्च इस प्रकार की तीव मनोव्यथा रूप मोह के व्याज से उन सबों की समाधि लग गयी इस बात को श्रीभगवान् ने **ताः नाविदन्० इत्यादि** श्लोक से कहा है । मुझमें आसक्ति होने के कारण उन सबों की बुद्धि उन सबों की अपने शरीर की भी स्थिति को नहीं जान सकी । वे यह नहीं जान सकीं कि यह दूर है या सन्निकट ? अथवा **स्वं** शब्द से अपना कहलाने वाले ममता के विषय भूत पति पुत्र आदि तथा अहङ्कारास्पद शरीर और उससे भिन्न लोक परलोक का भी उन सबों को ख्याल नहीं रहा । जिस तरह मुनियों को समाधि काल में अपने नाम और रूप आदि का पता नहीं रहता है, अथवा जैसे समुद्र के जल में प्रविष्ट होकर नदियाँ अपने नाम और रूप को खो देती हैं उसी तरह गोपियों को इन सबों का भान नहीं रहा ॥१२॥

मत्कामा रमणं जारमस्वरूपविदोऽबलाः । ब्रह्म मां परमं प्रापुः सङ्गाच्छतसहस्रशः ॥१३॥

अन्वयः— अस्वरूपविदः शतसहस्रशः अबलाः सङ्गात् जारम् रमणं मां मत्कामाः परमं ब्रह्म प्रापुः ॥१३॥

अनुवाद— वे गोपियाँ मेरे स्वरूप को नहीं जानती थी । ऐसी गोपियाँ सैकड़ों हजारों थी । वे मुझको भगवान् नहीं जानकर मुझे केवल प्रियतम समझती थीं । जारभाव से ही मुझसे मिलने की इच्छा रखती थीं । वे केवल सङ्ग के प्रभाव से मुझ परंब्रह्म को प्राप्त कर लीं ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

एवं ता अबलाः केवलं मत्कामा अस्वरूपविदः स्वरूपं तु न जानन्ति तथापि, सत्सङ्गाज्जारं ब्रह्म जारबुद्धिवेद्यमपि ब्रह्मस्वरूपमेव मां परमं प्रापुरित्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार वे गोपियाँ केवल मुझसे मिलने की कामना करती थीं, वे सब मेरे स्वरूप को नहीं जानती थीं। फिर भी जार बुद्धि से ही मुझसे मिलती थी । इस प्रकार सङ्ग के कारण वे सब परं ब्रह्म मुझको प्राप्त कर लीं॥१३॥

तस्मात्त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रतिचोदनाम् । प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेव च ॥१४॥
मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् । याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ॥१५॥

अन्वयः— हे उद्धव ! तस्मात् त्वम् चोदनां प्रतिचोदनाम् प्रवृत्तं च निवृत्तं श्रोतव्यं श्रुतमेव च उत्सृज्य सर्वदेहिनाम् आत्मानं माम् एकमेव सर्वात्मभावेन शरणं याहि मया हि अकुतोभयः स्याः ॥१४-१५॥

अनुवाद— इसलिए उद्धव तुम श्रुति स्मृति, विधि-निषेध, प्रवृत्ति निवृत्ति एवं सुनने योग्य और सुने हुए विषय का भी परित्याग करके सर्वत्र मेरी ही भावना करते हुए सभी प्राणियों की आत्मा सम्पूर्ण रूप से केवल मेरे ही शरण में आ जाओ, मेरी शरण में आ जाने से तुम सर्वथा निर्भय हो जाओगे ॥१४-१५॥

भावार्थ दीपिका

यस्मादेवंभूतो मद्भजनप्रभावस्तस्मात्त्वं चोदनां श्रुतिं प्रतिचोदनां स्मृतिं च । यद्वा विधि च निषेधं चोत्सृज्य मां शरणं याहि । मयैवाकुतोभयः स्याः भव ॥१४-१५॥

भाव प्रकाशिका

चूकि मेरे भजन का प्रभाव इस प्रकार का है इसीलिए श्रुति एवं स्मृति को अथवा विधि एवं निषेध को त्यागकर मेरी शरणागति करो मेरे द्वारा ही निर्भय बन जाओ ॥१४-१५॥

उद्धव उवाच

संशयः शृण्वतो वाचं तव योगेश्वरेश्वर । न निवर्तत आत्मस्थो येन भ्राम्यति मे मनः ॥१६॥

अन्वयः— हे योगेश्वर तव वाचः शृण्वतः आत्मस्थः संशय न निवर्तते येन मे मनः भ्राम्यति ॥१६॥

श्रीउद्धवजी ने कहा

अनुवाद— हे सनकादियोगेश्वरों के भी ईश्वर प्रभो, मैं आपका उपदेश तो सुन रहा हूँ किन्तु मेरे हृदय में विद्यमान संशय नहीं मिटता है । मुझे अपने धर्म का पालन करना चाहिए या सबकुछ छोड़कर आपकी शरणागति करना चाहिए इसी दुविधा में मेरा मन पड़ा हुआ हैं । अतएव आप मुझे अच्छी तरह से समझाइये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

पूर्वं तावत् 'मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु' इत्यादिना कर्म कर्तव्यमित्युक्तम्, इदानीं तु सर्वं त्यक्त्वा मां शरणं याहीत्युच्यते, तत्र किमात्मनः कर्तृत्वाद्यस्ति नास्ति वेत्यात्मस्थ आत्मविषयः संशयो न निवर्तते । यद्वा कर्म कार्यं त्याज्यं वेत्यात्मस्थो हृदिस्थः संशयो न निवर्तत इति पृच्छति-संशय इति । येन संशयेन ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

पहले आप कह चुके हैं कि मैंने जिन धर्मों का उपदेश दिया है, इत्यादि वाक्य के अनुसार कर्मों को करना चाहिए और इस समय आप कह रहे हैं कि सब कुछ छोड़कर मेरी शरणागति करो । प्रश्न है कि आत्मा कर्ता है कि नहीं ? इस तरह का मेरे हृदय में संशय है वह दूर नहीं हो पा रहा है । अथवा कर्म करना चाहिए अथवा उसका त्याग कर देना चाहिए ? यह हृदय में विद्यमान संशय दूर नहीं हो रहा है, इस तरह से उद्धवजी श्रीभगवान् से पूछते हैं । येन अर्थात् संशय से ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच

स एष जीवो विवरप्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः ।
मनोमयं सूक्ष्ममुपेत्य रूपं मात्रा स्वरो वर्ण इति स्थविष्ठः ॥१७॥

अन्वयः— एष जीवः विवर प्रसूतिः प्राणेन घोषेण गुहां प्रविष्टः मनोमयं सूक्ष्मं रूपम् उपेत्य मात्रा स्वरः वणी इति स्थविष्ठः ॥१७॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— यह, जीवयति इस व्युत्पत्ति के अनुसार जीव शब्द वाच्य परमात्मा हैं । घोषयुक्त प्राण के द्वारा आधार चक्र में प्रविष्ट हैं । वह मनोमय सूक्ष्म रूप को प्राप्त किए हुए है । मात्रा स्वर तथा वर्ण उसका स्थूलतम रूप है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

उत्तरम्- स एष इत्यष्टभि: । अयं भाव:-ईश्वरस्तावत्स्वमायावशात्प्रपञ्चात्मना भाति, तत्प्रपञ्चाध्यासाच्च जीवानामनाद्यविद्यया कर्तृत्वादि, ततो विधिप्रतिषेधाधिकारस्तदानीं सत्त्वशुद्‌यर्थं कर्माणि कुर्वित्युक्तम् । सत्त्वे च शुद्धे पुन: कर्मजाड्यपरिहाराय भक्तिविक्षेपककर्मादरं परित्यज्य दृढविश्वासेन भजेत्युक्तम् जातायां तु विद्यायां न किंचित्कर्तव्यमस्तीति । तत्र तावादीश्वराद्भागादीन्द्रियद्वारा जीवसंसृतिकारणभूतं प्रपञ्चोद्गममाहसार्धैश्चतुर्भि: । स एषोऽपरोक्ष: । जीवयतीति जीव: परमेश्वर: । अपरोक्षत्वे हेतु:- विवरेष्वाधारादिचक्रेषु प्रसूतिरिव प्रसूतिरभिव्यक्तिर्यस्य स: । तामेवाभिव्यक्तिमाह-घोषेणेति । घोषेण पराख्येन नादवता प्राणेन सह गुहामाधारचक्रं प्रविष्ट: सन् मनोमयं सूक्ष्मं रूपं पश्यन्त्याख्यं मध्यमाख्यं च मणिपूरचक्रे विशुद्धिचक्रे चोपेत्य प्राप्य वक्त्रे मात्रा ह्रस्वादि:, स्वर उदात्तादि, वर्ण: ककारादिरित्येवं वैस्वर्याख्य: स्थविष्ठोऽतिस्थूलो नानावेदशाखात्मको भवति । तथा च श्रुति:- 'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण: । गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति' इति । (श्रुतेरर्थ:-वाक्परिमितानि वाच: परिमितानि शास्त्रनिर्णीतानि चत्वारि पदानि स्थानानि परा पश्यन्ती मध्यमा वैखरीति, तानि च ये ब्राह्मणा मनीषिणोऽध्यात्मकुशलास्ते विदु: । तेषां मध्ये आदौ त्रीणि पदानि गुहायां शरीरे आधारनाभिहृदयेषु निहितानि नेङ्गयन्ति न जानन्ति । तुरीयं चतुर्थं वैखर्याख्यं मनुष्या वदन्ति । मनुष्याणां वदने वर्तमानोऽर्थबोधक: शब्दो भवतीत्यर्थ:।) अभियुक्तश्लोकश्च- 'या सा मित्रावरुणसदनादुच्चरन्ती त्रिषष्टिं वर्णानन्त:प्रकटकरणै: प्राणसङ्गात्प्रसूते । तां पश्यन्तीं प्रथममुदितां मध्यमां बुद्धिसंस्थां वाचं वक्त्रे करणविशदां वैखरीं च प्रपद्ये' । (श्लोकार्थश्च- तां वित्रिधां भारतीं प्रपद्ये । या सा भारती मित्रावरुणसदनादग्निसोमस्थानादुच्चरन्ती उद्भवन्ती । मित्रोऽग्निर्वरुण: सोमस्तयो: सदनमावासमास्थानं परमात्मा यत: श्वासस्य शीतोष्णत्वं तस्मादुच्चरन्ती त्रिषष्टिं वर्णान् जनयति । अइउवर्णा ह्रस्व-दीर्घ-प्लुतभेदेन त्रिविधा नव । ऋकार: प्लुतहीनो द्विविध:, ऌकारोऽपि द्विविधो दीर्घहीन: । सन्ध्यक्षराणि ह्रस्वहीनान्यष्ट । एवमेकविंशतिस्वरा: । स्पर्शा: पञ्चविंशति: कादयो मान्ता: । यादयोऽष्टावन्तस्था ऊष्माणश्च । अनुनासिका: पञ्च । अनुस्वारविसर्गौ जिह्वामूलीयोपध्मानीयौ चेति त्रिषष्टि: । एतान्वर्णान्वायुसङ्गजान्। प्रकटकरणैर्बुद्धिं गतै: प्रत्यक्षरूपैरिन्द्रियैरन्त: पश्यति न तूच्चारयति सा पश्यन्त्याख्या तां प्रथममुदितामुत्पन्नाम्। बुद्धिसंस्थामुच्चारयामीति। विचारयुक्तां मध्यमाम् । मुखेऽवस्थितां करणविशदां स्थानप्रयत्ननिर्मलां वैखरीं च प्रपद्ये।) ।।१७।।'

भाव प्रकाशिका

स एष इत्यादि आठ श्लोकों से श्रीभगवान् उद्धवजी के प्रश्न का उत्तर देते हैं । इसका भाव इस प्रकार है। ईश्वर अपनी माया के वश में होकर प्रपञ्च के रूप में प्रतीत होता है । वह भी प्रपञ्च का अध्यास होने के कारण होता है । अनादि काल से प्रवृत्त अविद्या के कारण ही जीवों में कर्तृत्व आदि धर्म आते हैं । उसके कारण ही जीव विधि एवं निषेध वाक्यों का अधिकारी होता है । उसके पश्चात् जीव को विधि एवं प्रतिषेध का अधिकार प्राप्त होता है । उस समय अन्त:करण की शुद्धि के लिए मैंने कर्मो को करने के लिए कहा है । अन्त:करण की शुद्धि हो जाने पर कर्म जन्य जाड्य को दूर करने के लिए भक्ति में विक्षेप करने वाले कर्म के प्रति होने वाले समादर का परित्याग करके दृढ विश्वास पूर्वक परमात्मा का भजन करो यह मैंने कहा है । ज्ञान के उत्पन्न हो जाने पर तो फिर कुछ भी कर्तव्य अवशिष्ट नहीं रह जाता है । उस समय तो ईश्वर से इन्द्रिय द्वारा जीव की सृष्टि के कारणभूत प्रपञ्च की उत्पत्ति को साढे चार श्लोकों के द्वारा श्रीभगवान् ने कहा है । स: एष अर्थात् य अपरोक्ष जीवयति इस व्युत्पत्ति के अनुसार जीव शब्द परमेश्वर का वाचक है । परमात्मा के अपरोक्ष होने का कारण है कि विवरेषु अर्थात् आधार आदि चक्रों में जिसकी प्रसूति अर्थात् अभिव्यक्ति होती है । वे ही पहले अनाहताद स्वरूप परा वाणी नामक प्राण के साथ मूलाधार चक्र में प्रवेश करते हैं। उसके पश्चात् मणिपूरक चक्र (नाभि स्थान) में आकर पश्यन्ती वाणी का मनोमय सूक्ष्म रूप धारण करते हैं । तदनन्तर कण्ठदेश में स्थित विशुद्धि चक्र में आते हैं और वहाँ मध्यमा वाणी के रूप में व्यक्त होते हैं । तदनन्तर क्रमश: मुख में आकर ह्रस्व दीर्घ आदि मात्रा, उदात्त अनुदात्त आदि स्वर तथा ककारादि वर्ण रूप स्थूल वैखरी वाणी का रूप धारण

कर लेते हैं । यह अत्यन्त स्थूल वैखरी वाणी वेदों की अनेक शाखाओं का रूप धारण कर लेती है । श्रुति कहती भी है- **चत्वारिवाक्यरिमिता पदानि, तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण: । गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति, तुरीयं वाच: मनुष्या वदन्ति** । इस श्रुति का अर्थ इस प्रकार है वाणी के शास्त्र निर्णीत चार स्थान है । परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी । उन सबों को कुशल ब्राह्मण ही जानते हैं । चौथे प्रकार की वैखरी वाणी को मनुष्य बोलते हैं। अर्थात् मनुष्यों के मुख्य में रहकर अर्थ बोधक शब्द हो जाती है । इसके विषय में प्रामाणिक पुरुषों का श्लोक भी इस प्रकार है- **या सा मित्रावरुणसदनादुच्चरन्ती त्रिषष्ठिं वर्णानन्त: प्रकटकरणै: प्राणसङ्गात् प्रसूते । तां पश्यन्तीं प्रथममुदितां मध्यमां बुद्धि संस्थां वाचं वक्त्रे करणविशदां वैखरीं च प्रपद्ये** । श्लोक का अर्थ इस प्रकार है । उस तीन प्रकार की वाणी की मैं शरणागति करता हूँ जो वाणी मित्रावरुणसदनात् अर्थात् वरुण सोमस्थान से उत्पन्न होती है। मित्रावरुण शब्द के मित्र शब्द से अग्नि को और वरुण शब्द से सोम को कहा गया है । उन दोनों के आवासस्थान स्वरूप परमात्मा चूकि श्वास के शीतोष्णत्व स्थान से तिरसठ वर्णों को उत्पन्न करते हैं । अइउ वर्णों के ह्रस्व दीघप्लुत भेद के द्वारा नव भेद हो जाते हैं । ऋ दो प्रकार का होता है । क्योंकि उसका प्लुत नहीं होता है । ऌ का दीर्घ नहीं होता है अतएव वह भी दो प्रकार का ही होता है । सन्ध्यक्षरों के ह्रस्व नहीं होती है । उनकी संख्या आठ है। इस तरह स्वरों की संख्या इक्कीस हो जाती है । स्पर्शवर्ण पचीस हैं क से लेकर म तक । य से लेकरा ह पर्यन्त आठ वर्ण अन्तस्थ एवं उष्मा वर्ण हैं । अनुनासिक वर्ण (ञ म ङ ण न) पाँच हैं अनुस्वार और विसर्ग ये क्रमश: जिह्वामूलीय और उपध्मानीय कहलाते हैं इस तरह वर्णों की संख्या तिरसठ हो जाती है । वायु के सङ्ग से उत्पन्न होने वाले बुद्धि गत प्रत्यक्ष रूप इन्द्रियों के द्वारा जो भीतर देखती है, न कि उच्चारण करती है, उस वाणी का नाम पश्यन्ती है । उस प्रथम उत्पन्न हुई पश्यन्ती को उच्चारण करता हूँ, इस तरह के विचार से युक्त बना देने वाली बाणी का नाम मध्यमा को मुख में स्थित इन्द्रियों द्वारा विशद बनाई गयी स्थान एवं प्रयत्न से निर्मल बनी हुई वैखरी वाणी की मैं शरणागति करता हूँ ॥१७॥

यथाऽनल: खेऽनिलबन्धुरुष्मा बलेन दारुण्यधिमथ्यमान: ।
अणु: प्रजातो हविषा समिध्यते तथैव मे व्यक्तिरियं हि वाणी ॥१८॥

अन्वय:— यथा अनिलबन्धु: अनल: खे उष्मा, बलेन दारुणि अधिमथ्यमान: प्रजात: अणु:, हविषा समिध्यते तथैव मे इयं व्यक्ति हि वाणी ।।१८।।

अनुवाद— जिस तरह वायु सखा अग्नि आकाश में उष्मा रूप में अथवा विद्युत् के रूप में अव्यक्त रूप में स्थित हैं जब बल पूर्वक काष्ठ मन्थन (अरणि मन्थन) किया जाता है तब वायु की सहायता से पहले अत्यन्त सूक्ष्म चिनगारी के रूप में प्रकट होती है । फिर आहुति देने पर प्रचण्ड रूप धारण कर लेती है । वैसे ही मैं भी शब्द ब्रह्मरूप से क्रमश: परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी वाणी के रूप में प्रकट होता हूँ ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अव्यक्तस्य सत: सूक्ष्ममध्यमक्रमेणाभिव्यक्तौ दृष्टान्त:-यथेति । यथाऽग्नि: । खे ऊष्मा अव्यक्तोष्मरूप: । दारुण्यधिकं मथ्यमानोऽनिलसहाय: सन्नणु: सूक्ष्मविस्फुलिङ्गादिरूपो भवति । पुन: प्रकृष्टो जातो हविषा संवर्धत । तथैवेयं वाणी ममाभिव्यक्ति:।।१८।।

भाव प्रकाशिका

अव्यक्त अर्थात् किसी के विषय नहीं बनने वाले, परंब्रह्म के सूक्ष्म, मध्यम क्रम से अभिव्यक्ति में **यथा इत्यादि** श्लोक से दृष्टान्त उपन्यस्त किया गया है । जैसे अग्नि आकाश में उष्मा या अव्यक्तोष्मा विद्युत रूप से रहती है । जब

बल पूर्वक अरणि मन्थन किया जाता है तो वह वायु के सहारे चिनगारी के रूप में प्रकट होती है। हविष्य की आहुति देने पर प्रचण्ड रूप को धारण कर लेती है। इस तरह वाणी के रूप में मेरी (श्रीभगवान्) अभिव्यक्ति होती है ॥१८॥

एवं गदिः कर्मगतिर्विसर्गो घ्राणो रसो दृक् स्पर्शः श्रुतिश्च ।
सङ्कल्पविज्ञानमथाभिमानः सूत्रं रजःसत्त्वतमोविकारः ॥१९॥

अन्वयः— एवं गदिः कर्म, गतिः विसर्ग, घ्राणो रसो दृक् स्पशः श्रुतिश्च सङ्कल्पः विज्ञानम् अथ अभिमानः सूत्रं रजः सत्त्व तमोविकारः ॥१९॥

अनुवाद— बोलना हाथों से काम करना, पैरों से चलना, मूत्रेन्द्रिय और पायु इन्द्रिय से मलमूत्र त्याग करना, सूंघना चलना देखना, छूना, सुनना, सङ्कल्प विकल्प करना, अहङ्कार के द्वारा अभिमान करना महत् तत्त्व के रूप में ताना-बाना बुनना तथा सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण के समस्त विकार, समस्त कर्ता, कर्म और करण मेरी ही अभिव्यक्तियाँ हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

उक्तां वाग्वृत्तिमुपसंहरन्नितरेन्द्रियवृत्तिष्वतिदिशति। एवं गदिर्गदनं भाषणं मे व्यक्तिरित्युपसंहारः। कर्महस्तयोर्वृत्तिर्गतिः पादयोर्विसर्गः पायूपस्थयोरिति कर्मेन्द्रियाणाम्। घ्राणोऽवघ्राणं रसो रसनं दृक् दर्शनं स्पर्शः स्पर्शनं श्रुतिः श्रवणमिति ज्ञानेन्द्रियाणाम्। सङ्कल्पो मनसो विज्ञानं बुद्धिचित्तयोरभिमानोऽहङ्कारस्य सूत्रं प्रधानस्य सत्त्वरजस्तमसां विकारोऽधिदैवादिस्त्रिविधः प्रपञ्चो मे व्यक्तिरिति पूर्वेणान्वयः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

वर्णित वाणी की वृत्ति को उपसंहृत करते हुए दूसरी इन्द्रियों की वृत्ति में अतिदिष्ट **एवं गदिः इत्यादि** श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् करते हैं। इसी तरह बोलना मेरी (श्रीभगवान की) अभिव्यक्ति है यह कहकर उपसंहार कर देते हैं। हाथों से काम करना, पैरों से चलना, वायु एवं उपस्थ के द्वारा त्याग करना, ये कर्मेन्द्रियों की वृत्तियाँ हैं, नाक से सूंघना, जिहवा से रसास्वादन करना आँखों से देखना त्वगिन्द्रि से स्पर्श करना श्रोत्रेन्द्रिय से सुनना ये ज्ञानेन्द्रियों की वृत्तियाँ हैं। मन से सङ्कल्प करना, बुद्धि से जानना चिन्तन करना अहङ्कार से अभिमान करना महत् तत्त्व के रूप में ताना बाना बुनना रजोगुण सत्त्वगुण एवं तमोगुण तथा उनके अधिदैव आदि तीन प्रकार के विकार सब परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है ॥१९॥

अयं हि जीवस्त्रिवृदब्जयोनिरव्यक्त एको वयसा स आद्यः ।
विश्लिष्टशक्तिर्बहुधेव भाति बीजानि योनिं प्रतिपद्य यद्वत् ॥२०॥

अन्वयः— अयं हि जीवः त्रिवृत् अब्ज योनिः अव्यक्त एकः वयसा स, आद्यः विश्लिष्ठ शक्तिः यद्वत् बीजानि योनिं प्रतिपद्य बहुधा इव भाति ॥२०॥

अनुवाद— सबों को जीवित करने वाला परमेश्वर इस त्रिगुणात्मक ब्रह्मण्ड कमल का कारण है। यह आदि पुरुष एक और अव्यक्त था। जिस तरह उपजाऊ खेत में बोया हुआ बीज शाखा, पत्र एवं पुष्प आदि अनेक रूप धारण कर लेता है वैसे ही कालगति से माया का आश्रय लेकर शक्ति विभाजन के द्वारा परमेश्वर अनेक रूपों में प्रतीत होने लगते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तस्मादीश्वरादिव्यक्तिरूपः प्रपञ्चो नेश्वराद्भिन्नोऽस्तीत्याह-अयमिति। अयं जीव ईश्वर आदावव्यक्त एक एव। वयसा कालेन विश्लिष्टा विभक्ता वागादीन्द्रियरूपाः शक्तयो यस्य। यद्वा विशेषेण श्लिष्टा आलिङ्गिता माया शक्तिर्येन सः। बहुप्रकार

इवभाति । यतः स एवाद्यः । त्रिवृत् त्रिगुणाश्रयः । अब्जयोनिर्लोकपद्मस्य कारणभूतः । एकस्य बहुधा भाने दृष्टान्तः- योनिं क्षेत्रं प्रतिपद्य प्राप्य बीजानि यद्वदिति ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

अतएव ईश्वर की आदि अभिव्यक्ति रूप संसार ईश्वर से भिन्न नहीं है । यह बात **अयं हि जीवः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । सबको जीवन प्रदान करने वाले ईश्वर प्रारम्भ में एक एवं अव्यक्त थे । काल के द्वारा शक्ति का विभाजन होने से उससे वाणी आदि इन्द्रियाँ उत्पन्न होती है । अथवा विशेष रूप से जिसने माया शक्ति को स्वीकार कर लिया । वही अनेक प्रकार के समान प्रतीत होता है । चूकि वही आदि पुरुष हैं वही त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्ड कमल का कारण है । एक ही परमेश्वर अनेक रूप से प्रतीत होते है उसका दृष्टान्त है । जैसे खेत में बोया गया बीज पत्र शाखा अनेक रूप में अभिव्यक्त होता है उसी के तरह ।।२०।।

यस्मिन्निदं प्रोतमशेषमोतं पटो यथा तन्तुवितानसंस्थः ।
य एष संसारतरुः पुराणः कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूते ।।२१।।

अन्वयः— तन्तुवितानसंस्थ; पटो यथा अशेषं इदं यस्मिन् ओतं-प्रोतम् यः एषः पुराणः संसारतरुः कर्मात्मकः पुष्पफले प्रसूतः ।।२१।।

अनुवाद— जैसे तागों के तानों में वस्त्र ओत-प्रोत रहता है वैसे ही यह सम्पूर्ण विश्व परमात्मा में ओत-प्रोत है। जैसे सूत्र के बिना वस्त्र का अस्तित्व नहीं होता, किन्तु वस्त्र के बिना सूत्र रहता है । वैसे ही इस जगत के नहीं रहने पर भी परमेश्वर रहते हैं । यह जगत् परमात्म स्वरूप है । परमात्मा के बिना जगत् का अस्तित्व नहीं रह सकता है । यह संसार वृक्ष अनादि और प्रवाह रूप से नित्य है । इसका स्वरूप कर्म की परम्परा है तथा इसके फल मोक्ष और भोग हैं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

तस्मात्तन्मायाविलसितत्वात्तदाश्रयमिदं जगन्न ततः पृथगिति सदृष्टान्तमाह-यस्मिन्निति । तन्तुविताने संस्था स्थितिर्यस्य स पटो यथा तथा यस्मिन्निदं विश्वमोतं दीर्घतन्तुषु पट इव, प्रोतं तिर्यक्तन्तुष्विव । एवंभूतं समष्टिव्यष्ट्यात्मकं विश्वमविद्ययात्मन्यध्यस्तं वृक्षरूपं जीवस्य कर्तृत्वादिसंसारहेतुरतस्तद्विवेकज्ञानेन कर्मादि सर्वम । त्याज्यमित्युक्तमित्याशयेनाह- य एंष इति सार्धैस्त्रिभिः । पुराणोऽनादिः । कर्मात्मकः प्रवृत्तिस्वभावः । पुष्पफले भोगापवर्गौ कर्म तत्फले वा । प्रसूते जनयति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

चूकि यह जगत परमात्मा की माया का विलास मात्र हैं अतएव यह जगत परमात्माश्रित है । यह परमात्मा से पृथक नहीं है । इस बात को श्रीभगवान् दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक यस्मिन्निदम् इत्यादि श्लोक से कहते हैं जैसे वस्त्र तन्तु के वितान तानाबाना में ओत-प्रोत है । इसी तरह समष्टि व्यष्टि रूप जगत् अविद्यात्मा परमात्मा में अध्यस्त वृक्षरूप है । जीव के कर्तृत्व आदि जो संसार में संसार का कारण है अतएव वे सभी विवेक ज्ञान के द्वारा ज्याज्य हैं । इसी अभिप्राय से **य एषः इत्यादि** साढे तीन श्लोकों से कहा गया है । पुराणः अर्थात् अनादि । कर्मात्मकः अर्थात् प्रवृत्ति स्वभाव वाला है । उस संसार वृक्ष पुष्प तथा फल हैं भोग तथा मोक्ष । अथवा कर्म और उसके फल। प्रसूते अर्थात् उत्पन्न करता है ।।२१।।

द्वे अस्य बीजे शतमूलस्त्रिनालः पञ्चस्कन्धः पञ्चरसप्रसूतिः ।
दशैकशाखो द्विसुपर्णनीडस्त्रिवल्कलो द्विफलोऽर्कं प्रविष्टः ।।२२।।

अन्वयः— अस्य द्वे मूले शतमूलः त्रिनालः पञ्चस्कन्धः पञ्चरसप्रसूतिः दशैकशाखः द्विसुपर्णनीडः त्रिवल्कलः द्विफलः अर्कं प्रविष्टः ।।२२।।

अनुवाद— इस संसार वृक्ष के दो मूल हैं पाप और पुण्य, इसकी असंख्य वासनाएँ जड़े हैं। इसके तीन गुण तने हैं। पाञ्च महाभूत इसके इसकी प्रधान मोटी-मोटी शाखाएँ हैं। इसके शब्दादि पाँच विषय रस है ग्यारह इन्द्रियाँ शाखाएँ हैं एवं इस पर जीव तथा ईश्वर दो पक्षी घोसला बनाकर निवास करते हैं। इस वृक्ष में वात-पीत कफ ये तीन तरह के छाल हैं। इसमें दो तरह के फल लगते हैं। सुख तथा दुःख यह विशाल वृक्ष सूर्यमण्डल तक फैला है। इस सूर्य मण्डल का भेदन करने वाला मुक्त पुरुष फिर संसार-चक्र में नहीं पड़ता हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

वृक्षरूपकं प्रपञ्चयति-द्वे इति। द्वे पुण्यपापे अस्य बीजे। स च शतमूलः शतमपरिमिता वासना मूलानि यस्य। त्रयो गुणा नालानि प्रकाण्डा यस्य। पञ्चभूतानि स्कन्धा यस्य। पञ्चरसाः शब्दादिविषयास्तेषां प्रसूतिर्यस्मात्। दश च एका च शाखा इन्द्रियाणि यस्य। द्वयोः सुपर्णयोर्जीवपरमात्मनोर्नीडं यस्मिन्। त्रीणि बल्कलानि त्वचो वातपित्तश्लेष्माणो यस्य। द्वे सुखदुःखे फले यस्य सः। अर्कं प्रविष्टः सूर्यमण्डलपर्यन्तं व्याप्तः, तन्निर्भिद्य गतस्य संसाराभावात् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में श्रीभगवान् वृक्षरूपक का निरूपण करते हैं। इस संसार वृक्ष के दो बीज है। (पुण्य और पाप) इसके अपरिमित जड़े हैं तीन गुण ही इसके नाल हैं इसके पाँच (महाभूत) प्रधान शाखाएँ है। इस वृक्ष के (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) ये पाँच रस हैं। ग्यारह इन्द्रियाँ ही इसकी शाखाएँ हैं। इस संसार वृक्ष पर जीवात्मा और परमात्मा दो पक्षियों के घोसले हैं। इसके कफ, वात एवं पीत ये तीन प्रकार के छाल हैं। इसके सुख और दुःख दो फल हैं। यह संसार वृक्ष सूर्यमण्डल पर्यन्त फैला है। इस अर्कमण्डल का भेदन करने वाला मुक्त पुरुष इस संसार में पुनः नहीं आता है ॥२२॥

अदन्ति चैकं फलमस्य गृध्रा ग्रामेचरा एकमरण्यवासाः ।
हंसा य एकं बहुरूपमिज्यैर्मायामयं वेद स वेद वेदम् ॥२३॥

अन्वयः— ग्रामोचराः गृध्रा च अस्य एकं फलम् अदन्ति अरण्यवासाः हंसाः ये अस्य एकं इज्यै बहुरूपम्। यः मायामयं वेद सवेदम् वेद ॥२३॥

अनुवाद— जो गृहस्थ रूप, रस, आदि विषयों में आसक्त है वे कामनाओं से भरे हुए होने के कारण गीध के समान हैं। वे इस वृक्ष के दुःख रूप फल को भोगते हैं। जो अरण्यवासी परमहंस विषयों से विरक्त है वे इस वृक्ष में राजहंस के समान है। वे इस वृक्ष के सुख रूप फल को भोगते हैं। प्रिय उद्धव वास्तविकता है कि मैं एक ही हूँ। मेरा जो अनेक प्रकार का रूप है वह मायामय है। जो इस बात को गुरुओं से समझ लेता है, वह वस्तुतः समस्त वेदों को जानता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तत्फलभोक्तॄनाह-गृध्यन्तीति गृध्राः कामिनो ग्रामेचरा गृहस्था अस्य वृक्षस्यैकं फलं दुःखमदन्ति। परिणामतः स्वर्गादेरपि दुःखरूपत्वात्। हंसा विवेकिनोऽरण्यवासाः संन्यासिन एकं फलं सुखमदन्ति। एकं परमात्मानं मायामयमेव बहुरूपमिज्यैर्गुरुभिः कृत्वा यो वेद स वेदं वेद तत्त्वार्थं वेद ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

संसार रूपी वृक्ष के फलों का भोग करने वाले जीवों का वर्णन करते हैं। जो कामना करे वे गृध्र हैं। जो ग्रामो में रहने वाले गृहस्थ हैं वे इस संसार वृक्ष के दुःख नामक फल भोग करते हैं। अरण्य में निवास करने वाले संन्यासी इस संसार वृक्ष के एक सुख रूप फल का भोग करते हैं। यहाँ हंस शब्द से विवेकी पुरुष संन्यासियों

[redacted] परमात्मा के मायामय अनेक रूपों को जो लोग पूजनीय [redacted] अर्थ को जानता है ॥२३॥

एवं गुरूपासनयैकभक्त्या विद्याकुठारेण शितेन धीरः ।
विवृश्च्य जीवाशयमप्रमत्तः संपद्य चात्मानमथ त्याजास्त्रम् ॥२४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अन्वयः— एवं गुरूपासनया एक भक्त्या शितेन विद्याकुठारेण धीरः अप्रमत्तः जीवाशयं विवृश्चय आत्मानं संपद्य अथ अस्त्रमत्यज ॥२४॥

अनुवाद— उद्धव तुम इस प्रकार गुरुदेव की उपासना रूप अनन्य भक्ति के द्वारा अपनी तीक्ष्ण ज्ञान की कुल्हाड़ी धैर्य पूर्वक सावधानी से जीव भाव को काट डालो। फिर परमात्मा स्वरूप होकर वृति रूप अस्त्रों को त्याग दो ॥२४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्याहरवें स्कन्ध के श्रीभगवान् और उद्धव के संवाद के प्रकरण में बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

त्वं चैवं ज्ञात्वा कृतकृत्यः सर्वं साधनं त्यजेत्याह-एवमिति। एकान्तभक्त्या शितेन तीक्ष्णेन ज्ञानकुठारेण। स्वतन्त्रता वा द्वयोर्ज्ञानभक्त्योः जीवोपाधिं त्रिगुणात्मकं लिङ्गशरीरं विवृश्च्य छित्त्वा परमात्मानं च संपद्य प्राप्याथास्त्रं साधनं त्यजेति ॥२४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

तुम भी इस प्रकार से जानकर कृतकृत्य हो जाओ और सभी साधनों को त्याग दो। ऐकान्तिक भक्ति रूपी तीक्ष ज्ञान रूपी कुल्हाड़ी से काट डालो। अथवा ज्ञान और भक्ति दोनों की स्वतन्त्रता है। जीवोपाधि रूप त्रिगुणात्मक लि शरीर को काटकर परमात्मा को प्राप्त करके उसके पश्चात् साधनों को त्याग दों ॥३४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के बारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१२

* * *

तेरहवाँ अध्याय

श्रीभगवान् द्वारा हंस रूप से सनकादि को उपदेश

श्रीभगवानुवाच

सत्त्वं रजस्तम इति गुणा बुद्धेर्न चात्मनः । सत्त्वेनान्यतमौ हन्यात्सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥१॥

अन्वयः— सत्त्वं रजः तम इति बुद्धेर्गुणा आत्मनः न सत्त्वेन अन्यतमौ हन्यात् सत्त्वं सत्त्वेन चैव हि ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— सत्त्व, रजस एवं तमस ये तीनों बुद्धि प्रकृति के गुण हैं आत्मा के नहीं सत्त्वगुण के द्वारा रजागुण एवं तमोगुण पर विजय प्राप्त कर लेनी चाहिए और उसके पश्चात् सत्त्वगुण के द्वारा सत्व दया आदि सत्त्वगुण की वृत्तियों को शान्त कर लेना चाहिए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोदशेऽग्नि सत्त्वस्य वृद्ध्या विद्योदयक्रमः । हंसेतिहासतश्चित्तगुणविश्लेषवर्णनम् । विद्याकुठारेण जीवाशयं विवृश्च्य साधनं त्यजेत्युक्तम् । ननु तत्र तमआदिगुणत्रयवृत्तिप्रतिबन्धे सति काथ विद्योत्पत्तिरित्याशङ्क्य तन्निवृत्त्या विद्योत्पत्तिप्रकारमाह-सत्त्वमिति सप्तभिः । तत्र यद्यानन्दादिवदात्मधर्मा गुणाः स्युस्तर्हि तत्स्वरूपत्वात्तेषामनिवृत्त्या विद्योत्पर्त्तिर्न स्यात् न त्वेतदस्तीतयाह बुद्धेः प्रकृतेरेते गुण न त्वात्मन इति । अतः सत्त्वेन सत्त्ववृद्ध्याऽन्यतमौ हन्यात् । रजस्तमोवृत्तीर्जयेदित्यर्थः । सत्त्वं च सत्यदयादिवृत्तिरूपमुपशमात्मकेन सत्त्वेनैव हन्यात् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

तेरहवें अध्याय में सत्त्वगुण की समृद्धि के द्वारा विद्या प्राप्ति के क्रम का वर्णन है । हंस के इतिहास के द्वारा चित्त के गुण के विश्लेषण का वर्णन है । बारहवें अध्याय के अन्तिम श्लोक में श्रीभगवान् ने उद्धवजी से कहा है कि तुम विद्या रूपी तीक्ष्ण कुठार के द्वारा जीव की वासना को काटकर साधन को त्याग दो । प्रश्न होता है कि तम आदि तीनों गुणों की वृत्तियों के रहने पर विद्या की उत्पत्ति कैसे सम्भव है ? इस तरह की आशङ्का करके उसकी निवृत्ति के द्वारा विद्या की उत्पत्ति के प्रकार को **सत्यम् इत्यादि** सात श्लोकों द्वारा बतलाते है । प्रश्न होता है कि यदि आनन्द आदि के ही समान गुण भी आत्मा के धर्म होंगे तब तो फिर सत्त्वादि स्वरूप होने के कारण सत्त्वादि गुणों की निवृत्ति के द्वारा विद्या की उत्पत्ति नहीं हो सकती है । इस पर श्रीभगवान् कहते हैं कि सत्त्वादि आत्मा के गुण नहीं है, अपितु बुद्धि (प्रकृति) के गुण है । अतएव सत्त्वगुण की समृद्धि के द्वारा रजोगुण एवं तमोगुण इन दो गुणों की वृत्ति पर विजय प्राप्त करनी चाहिए । सत्त्वं च सत्य दयादि वृत्ति को शमात्मक सत्त्व के द्वारा ही अपने वश में करे ।।१।।

सत्त्वाद्धर्मो भवेद्वृद्धात्पुंसो मद्भक्तिलक्षणः । सात्त्विकोपासया सत्त्वं ततो धर्मः प्रवर्तते ।।२।।

अन्वयः— वृद्धात् सत्त्वात् मद्भक्तिलक्षणः धर्मः पुंसो भवेत् । सात्त्विकोपासया सत्त्वं ततो धर्म प्रवर्तते ।।२।।

अनुवाद— जब सत्त्वगुण समृद्ध होता है तब ही मेरी भक्ति रूपी स्वधर्म की प्राप्ति पुरुष को होती है । निरन्तर सात्त्विक वस्तुओं का सेवन करने से ही सत्त्वगुण की वृद्धि होती है । उसके बाद मेरी भक्ति रूप स्वधर्म में पुरुष की प्रवृत्ति होती है ।।२।।

भावार्थ दीपिका

ननु गुणत्रयवृत्तीनां परस्परोपमर्दनरूपत्वात्कथं सत्त्ववृत्त्यैवेतरवृत्त्यो नियमेन हन्तव्यास्तत्राह-सत्त्वादिति । मद्भक्तिं लक्षयति यो धर्मः स मद्भक्तिरूप एव वा । सत्त्वमेव कथं वर्धेत तत्राह-सात्त्विकानां पदार्थानामुपासया सेवया सत्त्वं वृद्धं भवतीत्यर्थः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि गुणत्रय की वृत्तियाँ परस्पर में एक दूसरे गुण के अभिभूत करने का काम करती हैं । ऐसी स्थिति में सत्त्व की वृत्ति से ही दूसरे गुणों की वृत्ति को जीतना चाहिए यह कैसे कहा जा सकता है । इसके उत्तर में श्रीभगवान् **सत्त्वाद् धर्मः इत्यादि** श्लोक कहते हैं मेरी भक्ति को लक्षित करने वाला धर्म मेरी भक्ति रूप ही है। प्रश्न होता है कि सत्व की वृद्धि कैसे हो इस पर श्रीभगवान् कहते हैं कि सात्विक वस्तु का सेवन करने से ही सत्त्व की वृद्धि होती है ।।२।।

धर्मो राजस्तमो हन्यात्सत्त्ववृद्धिरनुत्तमः । आशु नश्यति तन्मूलो ह्यधर्म उभये हते ।।३।।

अन्वयः— धर्मः राजस्तमो हन्यात् सत्त्ववृद्धिः अनुत्तमः । उभये हते तन्मूलः अधर्मः आशु नश्यति ।।३।।

अनुवाद— जो धर्म रजोगुण और तमोगुण को नष्ट करता है वही धर्म सर्वोत्तम धर्म है । उसी का पालन करना चाहिए । क्योंकि उसी से सत्त्वगुण की वृद्धि होती है । अतएव रजोगुण एवं तमोगुण के नष्ट हो जाने पर, उन दोनों के कारण होने वाला अधर्म शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है ।।३।।

भावार्थ दीपिका

स च धर्मो रजस्तमश्च हन्यात् । कुतः । न विद्यते उत्तमो यस्मात्स सर्वोत्तमः । यतः सत्त्ववृद्धिः सत्त्वस्य वृद्धिर्यस्मिन्कारणे सः । अतएव तत्कार्यों धर्मप्रतिबन्धोऽपि नास्तीत्याह तस्मिन्नुभयस्मिन्हते तन्मूलः । ते रजस्तमसी रागद्वेषादिना प्रमादालस्यादिना च मूलं यस्य सः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

वह धर्म रजोगुण एव तमोगुण को विनष्ट कर देता है, अतएव वही धर्म सर्वोत्तम धर्म है । उस धर्म से सत्त्वगुण की वृद्धि होती है । अतएव रजोगुण और तमोगुण विनष्ट हो जाने पर उनके कार्यभूत धर्म के प्रतिबन्धक का भी नाश हो जाता है । रजोगुण और तमोगुण राग एवं द्वेष आदि से तथा प्रमाद एवं आलस्य आदि के द्वारा अधर्म के मूल होते है ।।३।।

आगमोऽपः प्रजा देशः कालः कर्म च जन्म च । ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारो दशैते गुणहेतवः ।।४।।

अन्वयः— आगमः, अपः, प्रजा, देशः, कालः, कर्म, जन्म च ध्यानम् मन्त्रः अथ संस्कारः एतोदश गुण हेतवः ।।४।।

अनुवाद— आगम, जल, प्रजा देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मन्त्र और संस्कार ये दश गुणों के कारण है । इन दस वस्तुओं के सात्त्विक होने पर सत्त्व गुण की वृद्धि होती है, राजसिक होने पर रजोगुण की वृद्धि होती है, तामसिक होने पर तमोगुण की वृद्धि होती है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

सात्त्विकोपासया सत्त्वं वर्धत इत्युक्तं तानेव सत्त्ववृद्धिहेतून् दर्शयितुं सामान्यतो गुणत्रयवृद्धिहेतूनाह-आगमः शास्त्रम्। अपः आपः । क्वचिदागमोऽर्थ इति पाठः । (प्रजा सत्पुत्रः । देशः कृष्णमृगसंचारः । कालो वसन्तादिः । कर्म वर्णाश्रमादिविहितम्। जन्म उभयकुलविशुद्धम् । ध्यानं देवताविषयम् । मन्त्रो गायत्र्यादिः । संस्कारो गर्भाधानादिः । एते दश त्रिगुणोत्पत्तिहेतवः।)।।४।।

भाव प्रकाशिका

कहा जा चुका है कि सात्त्विक वस्तु के सेवन सत्त्व गुण बढ़ता है । उन सत्त्वगुण की वृद्धि हेतुओं को बतलाने के लिए तीनों गुणों की वृद्धि के हेतुओं को आगमः इत्यादि श्लोक से कहा गया है । आगम अर्थात् शास्त्र अपः, जल कहीं-कहीं पर आगमनोऽर्थः भी पाठ है । प्रजाः सत्पुत्र, देशः अर्थात् जहाँ काले मृग संचरण करते हों, वसन्त आदि काल, वर्णाश्रमों आदि के लिए विहित धर्म, माता एवं पिता दोनों के विशुद्ध वंश, गायत्री आदि मन्त्र तथा गर्भाधनादि संस्कार ये दशो तीनों गुणों की उत्पत्ति के कारण हैं ।।४।।

तत्तत्सात्त्विकमेवैषां यद्यदृद्धाः प्रचक्षते । निन्दन्ति तामसं तत्तद्राजसं तदुपेक्षितम् ।।५।।

अन्वयः— एषां तत्-तत् सात्त्विकं यद् यद् वृद्धाः प्रचक्षते, यद यद्निन्दन्ति तत्तद् तामसं राजसंतदुपेक्षितम् ।।५।।

अनुवाद— इनमें से जिन-जिन के शास्त्रज्ञ महात्मा प्रशंसा करते हैं वे सात्त्विक हैं, जिन-जिन की निन्दा करते हैं वे तामस हैं तथा जिनकी वे उपेक्षा कर देते हैं वे राजस हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

एषु सात्त्विकादिनिर्णयमाह-एषामेव मध्ये यद्यद्वृद्धाः शास्त्रज्ञाः प्रचक्षते प्रशंसन्ति तत्तत्सात्त्विकम् । यच्च निन्दनि तत्तामसम् । यत्तु तैर्वृद्धैरूपेक्षितं न स्तुतं न च निन्दितं तद्राजसम् ।।५।।

भाव प्रकाशिका

इन दसो हेतुओं के सात्त्विकत्व आदि के निर्णय को बतलाते हैं । इन दसों में से जिन-जिन की शास्त्र वृद्ध पुरुष प्रशंसा करते हैं वे सात्विक हैं, जिनकी निन्दा करते हैं वे तामसिक हैं और जिनकी वे उपेक्षा कर देते हैं वे राजसिक हैं ॥५॥

सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान्सत्त्वविवृद्धये । ततो धर्मस्ततो ज्ञानं यावत्स्मृतिरपोहनम् ॥६॥

अन्वयः— यावत् स्मृतिरपोहनम् पुमान् सत्त्वविवृद्धये सात्त्विकानि एव सेवेत ततो धर्मः ततो ज्ञानम् ॥६॥

अनुवाद— जब तक अपनी आत्मा का साक्षात्कार तथा स्थूल सूक्ष्म शरीर और उनके कारण तीनों गुणों की निवृत्ति न हो जाय तब तक सत्त्वगुण की वृद्धि के लिए पुरुष को सात्त्विक वस्तुओं का ही सेवन करना चाहिए। उससे धर्म की वृद्धि होती है, और धर्म की वृद्धि से ज्ञान होता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

सात्त्विकान्येवेति । निवृत्तिशास्त्राण्येव सेवेत, न प्रवृत्तिपाखण्डशास्त्राणि । तीर्थाप एव , न गन्धोदकसुराद्याः प्रजाजनाः निवृत्तान् जनान्, न प्रवृत्तदुराचारान् । विविक्तदेशं, न रथ्याद्यूतदेशान् । कालं ब्राह्ममुहूर्तादिकं ध्यानादौ, न प्रदोषनिशीथादीन्। कर्म च नित्यं, न काम्याभिचारादीनि । जन्म च वेष्णवशैवदीक्षालक्षणं, न शाक्तक्षुद्रदीक्षारूपम् । ध्यानं श्रीविष्णोः, न कामिनीविद्विषाम्। मन्त्रं प्रणवादिकं, न काम्यक्षुद्रान् । संस्कारमात्मनः शोधकं, न तु केवलं देहगृहादीनाम् । ननु ज्ञानं महावाक्यश्रवणादेवोत्पद्यते, किं तत्र सत्त्ववृद्ध्या धर्मेण वाऽत आह–यावत्स्मृतिरात्मापारोक्ष्यम् । यावच्च देहद्वयतत्कारणभूतगुणापोहस्तावत्पर्यन्तं ज्ञानं भवतीत्यर्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

सात्विकान्येव० इत्यादि श्लोक से कहा गया है कि निवृत्ति शास्त्र का ही सेवन करना चाहिए प्रवृत्ति शास्त्र पाखण्ड शास्त्र का सेवन नहीं करना चाहिए, तीर्थों के ही जल का सेवन करे, गन्धोदक अथवा मदिरा आदि का सेवन न करे । संसार से निवृत्त ही पुत्रादिकों का सेवन करे दुराचारी पुत्रों का नहीं । एकान्त स्थान का ही सेवन करे, द्यूत एवं रथ्या आदि का सेवन न करे । ब्रह्ममुहूर्त का ही सेवन करे प्रदोष तथा अर्धरात्रि का सेवन न करे । नित्य कर्मों का ही अनुष्ठान करे काम्य एवं अभिचार कर्मों को न करे, वैष्णव अथवा शैव दीक्षा से सम्पन्न कुल में ही जन्म होना चाहिए शाक्त तथा क्षुद्र दीक्षा वाले वंश में नहीं । ध्यान भगवान् विष्णु का ही कर कामिनी आदि का नहीं । प्रणव आदि का ही जप करे क्षुद्र काम्य मन्त्रों का नहीं, आत्मा को शुद्ध करने वाले संस्कारों से ही सम्पन्न होना चाहिए देह आदि के संस्कार से नहीं । प्रश्न होता है कि ज्ञान तो महावाक्यार्थ के श्रवण से ही होता है, सत्त्व अथवा धर्म की समृद्धि से क्या लाभ है ? तो इसका उत्तर है कि जब तक आत्म साक्षात्कार नहीं होता है, दोनों देहों की निवृत्ति नहीं हो जाती है तमोगुण एवं रजोगुण की निवृत्ति हुए विना ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती है ॥६॥

वेणुसंघर्षजो वह्निर्दग्ध्वा शाम्यति तद्वनम् । एवं गुणव्यत्ययजो देहः शाम्यति तत्क्रियः ॥७॥

अन्वयः— वेणु संघर्षजः बह्निः तद्वनं दग्ध्वा शाम्यति, एवं गुणवैषम्यजः देहः तत्क्रियः शम्यति ॥७॥

अनुवाद— जैसे बाँसों के संघर्ष से उत्पन्न हुई अग्नि बाँस के वन को जलाकर शान्त हो जाती है, उसी तरह गुणों के वैषम्य से उत्पन्न हुआ यह शरीर विचार द्वारा मन्थन करने पर इससे ज्ञानग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है और वह समस्त शरीरों गुणों को भस्म करके शान्त हो जाती है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

ननु गुणव्यतिकराज्जातो देहः कथं स्वाश्रयभूतान् गुणान्स्वत एवोत्पन्नया विद्ययाऽपोह्य स्वयमप्युपरमेत्तत्राह–वेणूनां संघर्षाज्जातोऽग्निर्यथा स्वत एवोत्पन्नाभिर्ज्वालाभिस्तद्वनं सर्वं दग्ध्वा पश्चात्स्वयं शाम्यति । एवं देहोऽपि तत्क्रियस्तस्याग्नेरिव क्रिया व्यापारो यस्य सः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि गुणों के मिश्रण से यह शरीर उत्पन्न हुआ है, वह अपने आश्रय भूत गुणों को अपने से उत्पन्न ज्ञान के द्वारा विनष्ट करके स्वयं भी कैसे शान्त हो जा सकता है ? इस पर श्रीभगवान् **वेणुसंघर्षजः इत्यादि** श्लोक कहते हैं। जिस तरह बासों की रगड़ से उत्पन्न हुई अग्नि बाँस के वन को जलाकर शान्त हो जाती है उसी तरह देह भी बनाग्नि के ही समान क्रिया करने वाला है ।।७।।

उद्धव उवाच

विदन्ति मर्त्याः प्रायेण विषयान्पदमापदाम् । तथापि भुञ्जते कृष्ण तत्कथं श्वखराजवत् ।।८।।

अन्वयः— हे कृष्ण प्रायेण जनाः विषयानापदाम् पदम् विदन्ति तथापि तत् कथं श्वखराजवत् भुञ्जते ।।८।।

उद्धवजी ने कहा

अनुवाद— हे श्रीकृष्ण प्रभो ! प्रायः सभी लोग यह जानते हैं कि विषयों का उपभोग विपत्तियों का घर है फिर वे क्यों कुत्ता, गधे और बकरे के समान उसका उपभोग करते हैं ।।८।।

भावार्थ दीपिका

ननु नियतेन्द्रियतया सात्त्विकसेवायामियानस्ति पुरुषार्थस्तथापि राजसादीन्विषयान्दुःखमिति जानन्तोऽपि कथं सेवन्त इति पृच्छति-विदन्तीति । पदं स्थानम् । श्वानो यथा भर्त्स्यमाना अपि । खरा यथ पद्भ्यां ताड्यमाना अपि खरीमनुधावन्तः। अजा यथा निर्लज्जा हन्तुमानीता अपि । तद्वत् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि प्रत्येक इन्द्रियों के विषय नियत हैं। सात्त्विक विषयों का सेवन करने से तो पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है किन्तु जो राजस एवं तामस विषय है उनका सेवन तो दुःखप्रद ही होता है । इस बात को प्रायः सभी लोग जानते हैं, फिर भी उन विषयों का सेवन कुत्ते, गधे और बकरे के समान करते ही रहते हैं। कुत्ता डाँटे और मारे जाने पर भी विषयोपभोग करते हैं, गधे को गधी पैरों से मारती है किन्तु फिर भी वे विषयोपसेवन करते ही रहते है, बकरे भी निर्लज्ज के समान मारे जाने के लिए लाये जाते हैं फिर भी वे विषयोपसेवन करते है, उसी तरह लोग भी विषयों का सेवन करते हैं ।।८।।

श्रीभगवानुवाच

अहमित्यन्यथाबुद्धिः प्रमत्तस्य यथा हृदि । उत्सर्पति रजो घोरं ततो वैकारिकं मनः ।।९।।

अन्वयः— यथा प्रमत्तस्य हृदि अहमिति अन्यथा बुद्धि ततः वैकारिकं मनः घोरं रजः उत्सर्पति ।।९।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— उद्धव जब जीव अज्ञान वशात् शरीर में ही आत्म बुद्धि कर लेता है, जो कि सर्वथा भ्रम है उस समय उसका सत्त्व प्रधान मन रजोगुण की ओर प्रवृत्त हो जाता है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

मिथ्याभिनिवेशेन भुञ्जत इति सहेतुकमाह–अहमिति त्रिभिः प्रमत्तस्य विवेकशून्यस्य देहादावहमिति मिथ्याबुद्धिर्हृदि यथावदुत्सर्पति ततोऽहंबुद्धेश्च वैकारिकं सत्त्वप्रधानमपि मनःप्रति घोरं दुःखात्मकं रज उत्सर्पति । मनो व्याप्रोतीत्यर्थः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

जीव मिथ्या अभिनिवेश के कारण भोगों को भोगता है, इस बात को श्रीभगवान् हेतु के उपन्यास द्वारा **अहम्०**

इत्यादि तीन श्लोकों से कहते हैं । अज्ञानी जीव शरीर आदि को ही आत्मा मानते हैं किन्तु उनकी यह बुद्धि भ्रम पूर्ण ही है । उसी समय उन अज्ञानी जीवों का सात्त्विक मन रजोगुण से व्याप्त हो जाता है ।।९।।

रजोयुक्तस्य मनसः सङ्कल्पः सविकल्पकः । ततः कामो गुणध्यानाद्दुःसहः स्याद्धि दुर्मतेः ।।१०।।

अन्वयः— रजोयुक्तस्य मनसः सविकल्पकः सङ्कल्पः, ततः दुर्मतेः गुणध्यानात् दुःसहः कामः स्याद्धि ।।१०।।

अनुवाद— जब मन में रजोगुण की प्रधानता आ जाती है तो उसका मन सङ्कल्प विकल्प करने लगता है । इसके पश्चात् वह अपनी दुर्बुद्धि के कारण काम के फँदे में फँस जाता है । उसके बाद तो उससे छूटकारा पाना भी कठिन हो जाता है ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

इदमेवमिदमेवं भोग्यमिति सविकल्पः सङ्कल्पः स्यात्ततश्च अहो रूपमहो भाव इति गुणाभिध्यानाद्दुर्धरः कामः स्यात्।।१०।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् तो इसका इस प्रकार से भोग करना चाहिए और इसका इस प्रकार से भोग करना चाहिए। उसके पश्चात् तो किसी सुन्दरी के रूप और भावों का ध्यान करके मन में चिन्तन होता है फिर कितना सुन्दर उसका रूप है और कितना सुन्दर उसके हाव-भाव हैं । इस तरह से जिसका रोक पाना कठिन होता है, इस तरह का काम मन में उत्पन्न हो जाता है ।।१०।।

करोति कामवशगः कर्माण्यविजितेन्द्रियः । दुःखोदर्काणि संपश्यन्रजोवेगविमोहितः ।।११।।

अन्वयः— अविजितेन्द्रियः कामवशगः दुःखोदर्काणिसंपश्यन् रजोवेग विमोहितः कर्माणि करोति ।।११।।

अनुवाद— अजितेन्द्रिय वह अज्ञानी मनुष्य काम के वशवर्ती बनकर यह जानते हुए भी कि इन कर्मों का परिणाम दुःख ही है । वह अनेक प्रकार के कर्मो को करता है क्योंकि वह रजोगुण के वेग के कारण अत्यन्त मोहित रहता है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

ततो विषयान् भोक्तुं कर्माणि करोति ।।११।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् विषयों का भोग करने के लिए वह कर्मो को करता है ।।११।।

रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान्विक्षिप्तधीः पुनः । अतन्द्रितो मनोयुञ्जन्दोषदृष्टिर्न सज्जते ।।१२।।

अन्वयः— यदपि रजः तमोभ्यां विद्वान् अपि विक्षिप्त धीः पुनः दोषदृष्टिः अतन्द्रितः मनोयुञ्जन् न सज्जते ।।१२।।

अनुवाद— यद्यपि विवेकी पुरुष का चित्त भी कभी-कभी रजोगुण एवं तमोगुण के वेग से विक्षिप्त हो जाता है। फिर भी उसकी विषयों में दोष दृष्टि बनी ही रहती है, अतएव वह बड़ी सावधानी से अपने चित्त को एकाग्र करने का प्रयास करता है । उसके कारण उसकी विषयों में आसक्ति नहीं होती है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

एवं चेन्न कस्यापि दुःखनिवृत्तिः स्यादित्याशङ्क्याह-यदपि यद्यपि रजस्तमोभ्यां विक्षिप्तधीर्मूढधीश्च तथापि विद्वान्विवेकी पुनर्मनो निरुन्धन्न सज्जते ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

यदि ऐसी बात है तब किसी के भी दुःख की निवृत्ति नहीं हो सकती इस बात को श्रीभगवान् **रजस्तमो०**

इत्यादि श्लोक से कहते है, यद्यपि रजोगुण और तमोगुण से विवेकी पुरुष की भी बुद्धि विक्षिप्त होती है, किन्तु विवेकी पुरुष अपने मन को निरोधित करके उसमें आसक्त नहीं होता है ।।१२।।

अप्रमत्तोऽनुयुञ्जीत मनो मय्यर्पयन् शनैः । अनिर्विण्णो यथा कालं जितश्वासो जितासनः ।।१३।।

अन्वयः— जितश्वासो जितासनः अप्रमत्तः शनैः मयि अर्पयन् अनिर्विण्णः यथा कालं अनुयुञ्जीत ।।१३।।

अनुवाद— साधक को चाहिए कि वह आसन और प्राण वायु पर विजय प्राप्त कर ले, अपनी शक्ति और समय के अनुसार अत्यन्त सावधानी से धीरे-धीरे मुझमें अपने मन को लगाये। अपनी असफलता को देखकर उबे नहीं अपितु और अधिक उत्साह से उस कार्य में लग जाय ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

विषयदोषदृष्ट्यापि मनोनिरोधाशक्तौ सुखं तन्निरोधोपायमाह-अप्रमत्त इति । अनिर्विण्णोऽनलसः । यथाकालं त्रिषवणम्। मयि परमानन्दरूपेऽर्पयन्समादध्यात् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

विषय में होने वाली दोष की दृष्टि से भी मन का निरोध करने में असमर्थ होने पर भी सुख पूर्वक मन के निरोध के उपाय को अप्रमत्तः इत्यादि श्लोक से कहते हैं। अनिर्विण्णः अर्थात् आलस्य रहित होकर यथाकालम् अर्थात् तीनों सवनों में मुझ परमानन्द परमात्मा में मन को लगाये ।।१३।।

एतावान्योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः । सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धावेश्यते यथा ।।१४।।

अन्वयः— मच्छिष्यैः सनकादिभिः एतावान् योग आदिष्टो यत सर्वतो मन आकृष्य मयि अद्धा यथा आवेश्येत्।।१४।।

अनुवाद— मेरे शिष्यों सनकादियों ने इसी को योग बतलाया है कि सभी ओर से अपने मन को हटाकर साक्षात् मुझ परमात्मा में ही मन को लगा दे विराट् आदि में मन को न लगाये ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

विषयैः संग्रथितस्य मनसस्तद्वियोगेनेश्वरनिष्ठत्वमसंभावितं मन्यमानं प्रति तन्निरूपणायेतिहासमुपक्षिपति-एतावानिति । यथा यथावन्मय्यावेश्यते एतावानित्यर्थः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

जो मन विषयों में लगा हुआ है, वह मन विषयों को छोड़कर मुझ परमात्मा में लगे यह असम्भव है, इस तरह मानने वाले के प्रति उसका निरूपण करने के लिए श्रीभगवान् इतिहास को उद्धृत **एतावान्० इत्यादि** श्लोक को करते है। यथोचित्त रीति से मुझमें लगा देना ही योग है ।।१४।।

उद्धव उवाच

यदा त्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव । योगमादिष्टवानेतद्रूपमिच्छामि वेदितुम् ।।१५।।

अन्वयः— हे केशव त्वम् यदा येन रूपेण योगम् आदिष्टवान् एतद् रूपम् वेदितुम् इच्छामि ।।१५।।

उद्धवजी ने कहा

अनुवाद—हे श्रीकृष्ण ! आपने जिस समय जिस रूप से सनकादियों को उपेदश दिया था मैं उसे जानना चाहता हूँ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

मच्छिष्येरित्युक्ते तेषामतिज्यायसामनेन रूपेण निरूपणासंभवात्पृच्छति-यदेति । तं कालं तदेतद्रूपं च वेदितुमिच्छामि तत्कथयेति ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् ने कहा है कि मेरे शिष्य सनकादिको ने । किन्तु सनकादि तो अत्यन्त पुराने हैं, उनको आपने इस रूप से उपदेश दिया हो यह असम्भव है, इसीलिए उद्धवजी **यदात्वम्० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं कि मैं उस काल और उस रूप को जानना चाहता हूँ उसे आप मुझे बतलाएँ ॥१५॥

श्रीभगवानुवाच

पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः । पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकान्तिकीं गतिम् ॥१६॥

अन्वयः— हिरण्यगर्भस्य मानसाः पुत्राः सनकादयः पितरं योगस्य सूक्ष्मां योगस्य ऐकान्तिकी गतिं पप्रच्छुः ॥१६॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— ब्रह्माजी के मानस पुत्र सनकादि हैं उन सबों ने अपने पिता ब्रह्माजी से योग की सूक्ष्म एवं ऐकान्तिक गति को पूछा ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

मानसाः पुत्राः । सूक्ष्मां दुर्ज्ञेयाम् । ऐकान्तिकीं गतिं परां काष्ठम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

मानसिक पुत्र सूक्ष्मां अर्थात् जिसको जानना कठिन है, ऐकान्तिकीं गतिम् अर्थात् परकाष्ठा को ॥१६॥

सनकादय ऊचुः

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो । कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः ॥१७॥

अन्वयः— हे प्रभो गुणेषु चेतः आविशते गुणाः चेतसि चाहे प्रभो अति तितीर्षोः मुमुक्षोः कथं अन्योन्यसंत्यागः॥१७॥

सनकादिकों ने कहा

अनुवाद— हे पितः ! चित्त गुणों अर्थात् विषयों में प्रविष्ट रहता है और गुण (विषय) चित्त की एक-एक वृत्ति में प्रविष्ट रहते हैं, ऐसी स्थिति में संसार सागर को पार करने के इच्छुक पुरुष इन दोनों को कैसे अलग-अलग कर सकता है ?॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-गुणेष्विति । विषयेषु स्वभावतो रागादिवशाच्चेतः प्रविशति । ते चानुभूता विषया वासनारूपेण चेतसि प्रविशन्ति। अतितितीर्षोर्विषयानतिक्रमितुमिच्छोः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

उसी बात को श्रीभगवान् **गुणेषु० इत्यादि** श्लोक से कहते है । चित्त रागादि के कारण स्वभावतः विषयों में प्रवेश किए रहता है और जिन विषयों का अनुभव किया जा चुका है वे चित्त की वृत्तियों में प्रवेश किए रहते हैं अतितितीर्षो अर्थात् संसार सागर को पार करने के इच्छुक ॥१७॥

श्रीभगवानुवाच

एवं पृष्टो महादेवः स्वयंभूर्भूतभावनः । ध्यायमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः ॥१८॥

अन्वयः— एवंपृष्टः महादेवः स्वयम्भुः भूतभावनः ध्यायमानः प्रश्नबीजं कर्मधीः न अभ्यपद्यत ॥१८॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— इस तरह से पूछे जाने पर ब्रह्माजी सभी देवताओं से बड़े हैं तथा प्राणियों को जन्म देने वाले है, किन्तु ध्यान करके भी वे इस प्रश्न के मूल कारण को नहीं जान सके क्योंकि वे कर्म प्रवण थे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

एवमिति । महान्देवोऽपि स्वयंभूरपि भूतानां स्रष्टापि ध्यायमानो विचारयन्नपि प्रश्नस्य बीजं यदज्ञानादयं प्रश्नस्तन्नाविन्दत्। यतः कर्मविक्षिप्तधीः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

एवम्० इत्यादि श्लोक का अर्थ है कि महान् देवता होकर तथा स्वयम्म् होकर एवं जीवों की सृष्टि करने वाले होकर भी ब्रह्माजी बहुत अधिक विचार करके भी इस प्रश्न के मूल कारण को नहीं जान सके, क्योंकि उनकी बुद्धि कर्म प्रवण थी ।।१८।।

स मामचिन्तयद्देवः प्रश्नपारतितीर्षया । तस्याहं हंसरूपेण सकाशमगमं तदा ।।१९।।

अन्वयः— स देवः प्रश्नपारतितीषर्या माम् अचिन्तयत् तदा अहं तस्य सकाशं हसरूपेण अगमम् ।।१९।।

अनुवाद— ब्रह्माजी उस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए मेरा ध्यानकिए तो उनके सन्निकट में हंस रूप से आया।।१९।।

भावार्थ दीपिका

प्रश्नस्य पारमुत्तरमभिप्रायो वा तस्य तितीर्षया जिज्ञासया । हंसरूपेणेति । यथा हंसो नीरं क्षीरं च पृथक्कर्तुं शक्त एवमहं गुणांश्चेतश्चेति द्योतयितुं हंसरूपेण गतोऽस्मीति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न के अभिप्राय को जानने की जिज्ञासा से ब्रह्मा ने मेरा ध्यान किया । जिस तरह हंस ही नीर-क्षीर को पृथक्-पृथक् करने में समर्थ होता है, उसी तरह मैं भी वैसे ही गुण वाला एवं अन्तःकरण वाला हूँ इस अर्थ को द्योतित करने के लिए हंस का रूप धारण करके वहाँ गया ।।१९।।

दृष्ट्वा मां त उपव्रज्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् । ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः को भवानिति ।।२०।।

अन्वयः— दृष्ट्वा ते ब्रह्माणम् अग्रतः कृत्वा माम् उपव्रज्य को भवान् इति पप्रच्छुः ।।२०।।

अनुवाद— मुझको देखकर सनकादि ब्रह्माजी को आगे करके मेरे पास आये । उन लोगों ने मेरे चरणों की वन्दना की और मुझसे पूछा कि आप कौन हैं ?।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

इत्यहं मुनिभिः पृष्टस्तत्त्वजिज्ञासुभिस्तदा । यदवोचमहं तेभ्यस्तदुद्धव निबोध मे ।।२१।।

अन्वयः— हे उद्धव ! इति अहं तत्त्वजिज्ञासुभिः मुनिभिः पृष्टः तदातेभ्यः यद अबोचम् तत् मे निबोध ।।२१।।

अनुवाद— उद्धव ! सनकादि परमार्थ तत्त्व को जानने के इच्छुक थे, अतः उस समय उनके पूछने पर मैंने जो कहा उसे तुम सुनो ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

इत्यहं मुनिभिः पृष्ट इति पृथग्वाक्यम् । यदवोचमिति च पृथक् । अतोऽस्मच्छब्दावृत्तिरदोषः । तेभ्यो यदवोचं तन्मे वचनं निबोध ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से मुनियों द्वारा पूछे जाने पर यह अलग वाक्य है । जो मैंने कहा यह भी अलग वाक्य है । अतए अस्मत शब्द की जो इस श्लोक में अहम् इस रूप से हुई उसमें कोई दोष नहीं है । उन सकादियों को मैंने जो क उसे तुम सुनो ।।२१।।

वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः प्रश्न ईदृशः । कथं घटेत वो विप्रा वक्तुर्वा मे क आश्रयः ॥२२॥

अन्वयः— हे विप्राः यदि वस्तुनः अनानात्वम् आत्मनः वः इदृशः प्रश्नः कथं घटेत वक्तुर्वा मे कः आश्रयः ॥२२॥

अनुवाद— ब्राह्मणों यदि परमार्थ वस्तु नानात्व से सर्वथा रहित है तब आत्मा के विषय में आपलोगों का इस तरह का प्रश्न कैसे युक्त हो सकता है । अथवा मैं यदि उत्तर देने के लिए बोलूं भी किस जाति, गुण क्रिया और संबन्ध आदि का आश्रय लेकर उत्तर दूँ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

देहादिविविक्तात्मज्ञाने सति तन्निष्ठस्य रागाद्यसंभवात्स्वयमेव विषयचेतसोर्विश्लेषो भवतीति वक्तुं प्रश्नखण्डनमिषेणैव तावदात्मानात्मविवेकमाह-वस्तुन इति त्रिभिः । किमात्मनोऽयं प्रश्नस्तदुपाधेर्भूतसङ्घस्य वा । यद्यात्मनस्तर्हि तस्य वस्तुनः परमार्थरूपस्यानानात्वे सति हे विप्राः, वो युष्माभिः कृतः प्रश्न ईदृशो बहुषु निर्धारणरूपः कथं घटेत । वक्तुरुत्तरदातुर्वा मे मम क आश्रयः । अविशेषे आत्मनि कं जातिगुणादिविशेषमाश्रित्योत्तरं वक्ष्यामीत्यर्थः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

देह आदि से रहित आत्मा का ज्ञान हो जाने पर आत्मनिष्ठ साधक का राग आदि होना असम्भव है । स्वयं ही विषय और अन्तःकरण का विश्लेष हो जाता है इस बात को कहने के लिए प्रश्न के खण्डन के व्याज से ही आत्मा एवं अनात्मा का **वस्तुनः इत्यादि** तीन श्लोक से विवेक बतलाते हैं । प्रश्न है कि आपलोगों का यह प्रश्न आत्मा के विषय में हैं ? या उपाधि के विषय में ? या भूतसंघात के विषय में है ? यदि आत्मा के विषय में है तो फिर परमार्थ स्वरूप वस्तु के सर्वथा नानात्व से रहित होने से आपलोगों के द्वारा किया गया प्रश्न इस प्रकार का (बहुतों में निर्धारण रूप) कैसे युक्ति संगत हो सकता है । उत्तर देने वाले मेरा आश्रय कौन है ? आत्मा यदि निर्विशेष है तो फिर किस जातिं, गुण क्रिया आदि को आश्रय बनाकर उत्तर दूँ ॥२२॥

पञ्चात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः । को भवानिति वः प्रश्नो वाचारम्भो ह्यनर्थकः ॥२३॥

अन्वयः— पञ्चात्मकेषु भूतेषु वस्तुत समानेषु च को भवान् इति वः प्रश्नः वाचारम्भः अनर्थकः हि ॥२३॥

अनुवाद— देव, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी शरीर पञ्चभूतात्मक होने के कारण अभिन्न ही हैं और परमार्थ रूप से भी अभिन्न है । ऐसी स्थिति में आप कौन हैं ? इस तरह का आपलोगों का प्रश्न वाग्विलास मात्र होने के कारण निरर्थक है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

भूतसङ्घविषय त्वेऽप्ययं वः प्रश्नो वाचारम्भो वाङ्भात्रेणारब्धः । यतोऽनर्थकः । कुतः । भूतेषु देवमनुष्यादिदेहेषु पञ्चभूतात्मकेष्वतः समानेष्वभिन्नेषु पुनश्च वस्तुतः परमकारणात्मना अभिन्नेषु । 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्' इति श्रुतेः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

यदि आपलोगों का प्रश्न भूत समूह के विषय है तो यह आपलोगों यह वाग्विलास मात्र ही होने के कारण कोई अर्थ नहीं रखता है । क्योंकि देवता मनुष्य आदि सभी प्राणियों के शरीर पञ्चभूतात्मक होने के कारण अभिन्न हैं, वास्तविक रूप से परम कारण रूप होने से अभिन्न हैं । श्रुति भी कहती है वाचारम्भणं विकारो नाम धेयं मृतिकेत्येव सत्यम् अर्थात् घट, उदञ्चन, मणिक आदि जितने भी विकार और नामधेय हैं वे वाणी के विलास मात्र ही है, वस्तुत सबों में अनुगत मिट्टी ही सत्य है ॥२३॥

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः । अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा ॥२४॥

अन्वयः— मनसा, वचसा, दृष्ट्या अन्यैः अपि इन्द्रियैः यद् गृह्यते अहमेव मत्तः अन्यत् न इति अञ्जसा बुध्यध्वम्॥२४॥

अनुवाद— मन, वाणी और दृष्टि एवं अन्य इन्द्रियों से जो भी गृहीत होता है, वह मैं ही हूँ। मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं हैं। यह सिद्धान्त आपलोग तत्त्वविचार के द्वारा जान लें ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तत्र पञ्चात्मकत्वं प्रत्यक्षादिसिद्धमेवेति परमकारणाभेदमेवोपपादयति-मनसेति। मन आदिभिर्यद्गृह्यते तत्तदहमेवेत्यर्थः अञ्जसा तत्त्वविचारेण। एतेनैव सर्वात्मकोऽहमित्यञ्जसाप्युत्तरमुक्तं भवति ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

पञ्चात्मकत्व तो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से ही सिद्ध है। **मनसा०** आदि श्लोक के द्वारा परम कारण के अभेद का ही प्रतिपादन करते हैं। मन आदि से जो कुछ भी गृहीत होता है वह मैं ही हूँ। अञ्जस अर्थात् तत्त्वविचार के द्वारा तत्त्व की एकता होने के कारण मैं सर्वात्मक हूँ यह तत्त्व विचार के द्वारा मैंने उत्तर दे दिया ॥२४॥

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः। जीवस्य देह उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः ॥२५॥

अन्वयः— हे प्रजाः! गुणेषु चेतः आविशते, गुणाश्च चेतसि, जीवस्य देहः उभयम् गुणाः चेतोमदात्मनः ॥२५॥

अनुवाद— हे पुत्रों यह चित्त चिन्तन करते-करते विषयाकार हो जाता है और विषय चित्त में प्रविष्ट हो जाते हैं यह सत्य हैं। तथापि चित्त और विषय दोनों ही मेरे स्वरूप भूत जीव के देह हैं (उपाधि हैं) अतएव आत्मा का चित्त एवं विषय के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

एवं प्रश्नखण्डनमिषेणैवात्मस्वरूपं सामान्यतो निरूप्य ब्रह्मणोऽपि दुष्परिहरं यत्पृष्टं तत्रोत्तरमाह-गुणेष्वित्यादिना यावदध्यायसमाप्तिम्। अयमभिप्रायः-यदि कर्तृत्वभोक्तृत्वादिरूपतया विषयैः संग्रथितं चित्तं बुद्यधादिशब्दवाच्यमेव जीवस्य स्वरूपं भवेत्ततस्तद्वियोगो न घटेत। तस्य तु स्वरूपमहं ब्रह्मैव। चित्ताध्यासेन तु तत्स्वभावतया विषयैः संग्रथितम्। अतः स्वस्य ब्रह्मत्वभावनया विषयाणां च मिथ्यात्वानुसंधानेन सर्वतो निर्विद्य भगवन्तं भजतो भवत्येव परिपूर्णस्वरूपावस्थानमिति। हे प्रजाः पुत्रकाः, सत्यं गुणेषु चेत आविशति गुणाश्च चेतसि एवं गुणाश्चेतश्चोभयं ग्रथितं मदात्मनो ब्रह्मरूपस्य जीवस्य देहोऽध्यस्त उपाधिर्न तु स्वरूपम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह प्रश्न के खण्डन के व्याज से ही आत्मा का स्वरूप समान्यतः निरूपण करके ब्रह्माजी को भी जिसका उत्तर देना कठिन था। उस प्रश्न का भगवान् हंस **गुणेषु० इत्यादि** श्लोक से लेकर इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त उत्तर देते हैं। कहने का अभिप्राय है कि यदि कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व आदि विषयों से संयुक्त चित्त बुद्धिशब्द वाच्य ही जीव का स्वरूप होगा तब तो उसका वियोग संभव नहीं होगा। उस जीव का स्वरूप तो मैं ब्रह्म ही हूँ। चित्त का अध्यास हो जाने के कारण उसका स्वभाव रूप से वह विषयों से संग्रथित है। अतएव अपने में ब्रह्मत्व की भावना से तथा विषयों के मिथ्यात्वानुसंधान से सबों से विरक्त होकर जो श्रीभगवान् का भजन करता है उसकी परिपूर्ण स्वरूप में अवस्थिति हो ही जाती है। हे प्रजाः अर्थात् हे पुत्रों यह सत्य है कि गुणों (विषयों) में चित्त आविष्ट होता है और विषय चित्त में आविष्ट हो जाते हैं और विषय तथा चित्त दोनों संग्रथित हो जाते हैं कि मदात्मक ब्रह्म रूप जीव के साथ जीव में अध्यस्त यह देह उपाधि है स्वरूप नहीं है ॥२५॥

गुणेषु चाविशच्चित्तमभीक्ष्णं गुणसेवया । गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत् ॥२६॥

अन्वयः— अभीक्ष्णं गुणसेवया गुणेषु च आविशत् चित्तं चित्तप्रभवाः गुणाः मद्रूपः उभयं त्यजेत् ।।२६।।

अनुवाद— इसलिए बार-बार विषयों का सेवन करने से जो चित्त विषयों में आसक्त हो गया है तथा विषय भी चित्त में प्रविष्ट हो गये हैं इन दोनों को अपने वास्तविक रूप से अभिन्न मुझ परमात्मा का साक्षात्कार करके छोड़ देना चाहिए ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

तस्मादभीक्ष्णं पुनःपुनर्गुणसेवया तत्संस्कारेण गुणेष्वाविशच्चित्तं ते च पुनर्वासनारूपेण चित्ते प्रकर्षेण भवन्तीति तथा ते गुणाश्चेतश्च । एवं यदुभयं तन्मद्रूपः संस्त्यजेत् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

अतएव बार-बार विषयों का सेवन करने से उसके संस्कार से चित्त विषयों में आविष्ट हो जाता है । और वे विषय फिर वासना रूप से चित्त में प्रवेश कर जाते हैं और विषय और चित्त दोनों को मुझसे अभेद की भावना से आविष्ट जीव छोड़ दे ।।२६।।

जाग्रत्स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः । तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः ॥२७॥

अन्वयः— जाग्रत् स्वप्नं सुषुप्तं च गुणतः बुद्धिवृत्तयः तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः ।।२७।।

अनुवाद— जाग्रत स्वप्न एवं सुषुप्ति ये तीनों अवस्थाएँ सत्त्वादि गुणों के अनुसार होती हैं । ये बुद्धि की वृत्तियाँ हैं । ये सच्चिदानन्द का स्वभाव नहीं है । जीव इन सबों से भिन्न हैं क्योंकि वह इन वृत्तियों का साक्षी है । यह सिद्धान्त श्रुति, युक्ति और अनुभूति से युक्त है ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

ननु जाग्रदाद्यवस्थावतः कुतः कूटस्थत्वरूपता तत्राह-जाग्रज्जागरः स्वप्नः सुषुप्तं चेति बुद्धेरेता वृत्तयो न तु जीवस्य, ताश्च न स्वाभाविक्यः किंतु 'सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत् । प्रस्वापं तमसा जन्मोस्तुरीयं त्रिषु संततम् ।' इति वक्ष्यमाणक्रमेण गुणत एव । जीवस्तु विलक्षणस्तदवस्थारहित एव विनिश्चितः । कुतः । तासां साक्षित्वेन ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि जीव की तो जाग्रदादि अवस्थाएँ होती हैं, अतएव वह कूटस्थ कैसे हो सकता है ? इस पर श्रीभगवान् कहते हैं कि जाग्रत्, स्वस्न और सुषुप्ति ये तीनों बुद्धि की वृत्तियाँ है जीव की नहीं । ये स्वाभाविक भी नहीं है । आगे कहा भी जायेगा **सत्त्वाज्जागरणम्० इत्यादि** सत्त्वगुण के उद्रिक्त होने पर जागरण होता है । रजोगुण के उद्रिक्त होने पर स्वप्नावस्था होती है, और तमोगुण के उद्रिक्त होने पर सुषुप्तावस्था होती है तथा तुरीयावस्था इन तीनों में अनुगत होती है । अतएव ये अवस्थाएँ गुणों के अनुसार होती हैं । जीव तो इन सबों से विलक्षण हैं उसकी कोई अवस्था नहीं होती है । इस तरह इन सबों का साक्षी होने के कारण निश्चित है ।।२७।।

यर्हि संसृतिबन्धोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः । मयि तुर्ये स्थितो जह्यात्त्यागस्तद्गुणचेतसाम् ॥२८॥

अन्वयः— यर्हि अयम् संसृतिबन्धः आत्मनः गुणवृत्तिदः मयि तुये स्थितः जह्यात् तद्गुणचेतसाम्त्यागः ।।२८।।

अनुवाद— बुद्धि की वृत्तियों द्वारा होने वाला यह बन्धन ही आत्मा में त्रिगुणमयी वृत्तियों का दान करता है । अतएव तीनों अवस्थाओं से विलक्षण और उसमें अनुगत मुझ तुरीय तत्त्व में स्थित होकर इस बुद्धि के बन्धन का त्याग कर देना चाहिए । उस समय विषय और चित्त दोनों का त्याग हो जाता है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि कथमहं जागर्मीत्यादिप्रतीतिस्तत्राह-यर्हि यस्मात्सम्यक् सृतिः सरणमनयेति संसृतिर्बुद्धिस्तया बन्धोऽयमात्मनो गुणवृत्तीर्ददाति । तस्मान्मयि तुर्ये स्थितः सन्निमं संसृतिबन्धं जह्यात् । तत्तदा गुणचेतसां गुणानां चेतसश्चान्योन्यं त्यागो भवति।।२८।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि तो फिर मैं जागता हूँ यह प्रतीति कैसे होती है ? चूकि सम्यक् संसृतिः अनया इस व्युत्पत्ति के अनुसार संसृति शब्द से बुद्धि को कहते हैं उसी के द्वारा संसार का बन्धन आत्मा के होता है यह बन्धन ही आत्मा में त्रिगुणात्मिका वृत्ति का दान करता है । अतएव मुझ तुरीय में स्थित होकर इस बुद्धि के बन्धन का त्याग कर देना चाहिए । उसी समय गुणों और चित्त का परस्पर में त्याग हो जाता है ।।२८।।

अहङ्कारकृतं बन्धमात्मनोऽर्थविपर्ययम् । विद्वान्निर्विद्य संसारचिन्तां तुर्ये स्थितस्त्यजेत् ।।२९।।

अन्वयः— अहङ्कारकृतं बन्धं आत्मनोऽर्थविपर्ययम् विद्वान् निर्विद्य तुर्ये स्थितः संसारचिन्तां त्यजेत् ।।२९।।

अनुवाद— यह बन्धन अहङ्कार कृत है यही आत्मा के परिपूर्णतम सत्य, अखण्डज्ञान और परमानन्द स्वरूप को छिपा देता है । इस बात को जानकर संसार से विरक्त हो जाय और अपनी तीनों अवस्थाओं में अनुगत तुरीय स्वरूप में स्थित होकर संसार की चिन्ता छोड़ दे ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

कथं संसृत्या बन्धः कथं च तं जह्यात्तदाह- अहङ्कारेण कृतं बन्धमात्मनोऽर्थविपर्ययमानन्दाद्यावरणेनानर्थहेतुं विद्वान् जानन्सन्निर्विद्य दुःखमेतदिति ज्ञात्वा तुर्ये स्थितो भूत्वा संसारचिन्तां संसारोऽबुद्धिस्तस्मिंश्चिन्तामभिमानं तत्कृतां भोगचिन्तां च त्यजेदिति ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि बुद्धि से बन्धन कैसे होता है ? उसका परित्याग कैसे करना चाहिए ? तो इसके विषय में कहते हैं । अहङ्कार की रचना संसार बन्धन है । यह बन्ध ही आत्मा के परिपूर्णत सत्य तथा परमानन्द स्वरूपता को आवृत करके अनर्थ का कारण बन जाता है । इस बात को जानने वाला साधक इस संसार को दु:ख स्वरूप जानकर इससे विरक्त तुरीय में स्थित होकर संसार की चिन्ता छोड़ दें । संसार अज्ञान स्वरूप है उस संसार में होने वाले अभिमान तथा अभिमान जन्य भोग की चिन्ता को छोड़ दे ।।२९।।

यावन्नानार्थधीः पुंसो न निवर्तेत युक्तिभिः । जागर्त्यपि स्वपन्नज्ञः स्वप्ने जागरणं यथा ।।३०।।

अन्वयः— यावत् नानार्थ धीः पुंस; युक्तिभिः न निवर्तेत अज्ञः जागर्त्यपि स्वपन् यथा स्वप्ने जागरणम् ।।३०।।

अनुवाद— जब तक पुरुष की भिन्न-भिन्न पदार्थों में सत्यत्व बुद्धि अहं बुद्धि और मम बुद्धि युक्तियों के द्वारा निवृत्त नहीं हो जाती है तब तक वह अज्ञानी जागता हुआ भी सोता ही है । यह उसी तरह होता है जैसे स्वप्नावस्था में प्रतीत होता है । कि मैं जाग रहा हूँ ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

यावदेव न त्यजेत्तावत्तस्य कर्म ज्ञानादि सर्वं व्यर्थमित्याह-यावदिति । यद्यपि जागर्ति कर्मादिषु तथापि स्वपन्स्वप्नान्पश्यन्निव भवति । यतोऽज्ञः असम्यग्दर्शी । अज्ञजागरस्य स्वप्नत्वे दृष्टान्तः-स्वप्न इति ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

जब तक साधक संसार का त्याग नहीं कर देता है तब तक उसके कर्म ज्ञान आदि सब व्यर्थ हैं इस बात को **यावत्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । यद्यपि वह कर्म आदि के विषय में जागता है फिर भी उसका वह

जागना स्वप्न में जगने के समान होता है क्योंकि वह अज्ञ अर्थात् सम्यग्दर्शी नहीं है। **स्वप्ने जागरणं यथा** से अज्ञानी जीव के जागने का दृष्टान्त उपन्यस्त किया गया है ॥३०॥

असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा । गतयो हेतवश्चस्य मृषा स्वप्नदृशो यथा ॥३१॥

अन्वयः— आत्मनः अन्येषां भावानां असत्त्वात् तत्कृताभिदा अस्य गतयः हेतवः च स्वप्नदृशः यथा मृषा ॥३१॥

अनुवाद— आत्मा से भिन्न प्रतीयमान नाम रूपात्मक देह सारा प्रपञ्च मिथ्या है। इसका अस्तित्व नहीं है। अतएव उसके कारण होने वाले वर्णाश्रमादि भेद तथा उनके कारणभूत कर्म ये सबके सब आत्मा के लिए वैसे ही मिथ्या है जैसे स्वप्न देखने वाले पुरुष के लिए स्वाप्निक पदार्थ ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

ननु कथं वेदप्रमितवर्णाश्रमकर्मादिनानाधीर्निवर्तेत तत्राह-असत्त्वादिति। भावानां देहादीनां तत्कृता भिदा वर्णाश्रमादिरूपा। गतयः स्वर्गादिफलानि। हेतवः कर्माणि चास्यात्मनो मृषा। अविद्यावद्विषयो वेद इति भावः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि वेद से प्रमाण सिद्ध वर्णाश्रम धर्मकर्मादि भेदों की बुद्धि कैसे दूर हो सकती है ? तो इसके उत्तर में **असत्वात्० इत्यादि** श्लोक हंस भगवान् कहते है देहादि भेद जन्यही वर्णाश्रम आदि है। **गतयः** अर्थात् स्वर्गादि रूप फल। **हेतवः** अर्थात् कर्म। इस आत्मा के लिए मिथ्या हैं। वह भी अविद्या युक्त विषयों वाला है ॥३१॥

यो जागरे बहिरनुक्षणधर्मिणोऽर्थान्भुङ्क्ते समस्तकरणैर्हृदि तत्सदृक्षान् ।
स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः स्मृत्यन्वयान्त्रिगुणवृत्तिदृगिन्द्रियेशः ॥३२॥

अन्वयः— यः इन्द्रियेशः जगारे समस्त करणैः अनुक्षणधर्मिणः अर्थान् भुङ्क्ते हृदि तत्सदृक्षान् स्वप्ने सुषुप्तः उपसंहरते स एकः स्मृत्यन्वयात् त्रिगुण वृत्ति दृगिन्द्रियेशः ॥३२॥

अनुवाद— जो जागरावस्था में भी सभी इन्द्रियों द्वारा बाहर दिखने वाले समस्त क्षणिक पदार्थों का अनुभव करता है। और स्वप्नावस्था में हृदय में ही जाग्रत में देखे हुए पदार्थो के ही समान वासनामय विषयों का अनुभव करता है। और सुषुप्तावस्था में उन सब विषयों को समेटकर उनके लय का भी अनुभव करता है। वह एक ही है। जग्रदावस्था की इन्द्रियाँ, स्वापकाल का मन तथा सुषुप्तावस्था की संस्कारयुक्त बुद्धि का भी स्वामी वही है। क्योंकि वह त्रिगुणात्मिका अवस्थाओं का साक्षी है। जिस मैंने स्वप्न देखा, जो मैं सोया वही मैं जाग रहा हूँ इस स्मृति के द्वारा एक ही आत्मा की समस्त अवस्थाओं का होना सिद्ध होता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

युक्तिभिरित्युक्तं ता एव युक्तीराह-य इति। अर्थान्स्थूलान्देहादीन्समस्तकरणैश्चक्षुरादिभिर्भुङ्क्ते। कथंभूतान्। अनुक्षणधर्मिणः क्षणिकवाल्यतारुण्यादिधर्मवतो यश्च स्वप्ने हृदि जागरदृष्टसदृशान्वासनामयान्भुङ्क्ते, यश्च सुषुप्ते तान् सर्वानुपसंहरति स एकः। कुतः। त्रिगुणवृत्तिदृग् अवस्थात्रयद्रष्टा। ननु जाग्रदवस्थां सर्वेन्द्रियाणि पश्यन्ति स्वप्नं मनः सुषुप्ति तत्संस्कारशेषं बुद्धिः कथमात्मा तद्द्रष्टा तत्राह-इन्द्रियेशः। ननु इन्द्रियेशा अपि विश्वतैजसप्राज्ञा भिन्नाः। न, कुतः। स्मृत्या प्रतिसंधानेन सर्वावस्थास्वन्वयात्। यः स्वप्नानद्राक्षं यश्च तदनन्तरं न किंचिदवेदिषं स एवैतर्हि जागर्मीत्युपाधिभेदेन विश्वादिव्यवहार इति भावः। एतेन बालेयुवाद्यवस्थास्वपि प्रतिसंधानेनात्मैक्यं द्रष्टव्यम् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

तीसवें श्लोक से **युक्तिभिः** कहा गया है। **यः जागरे० इत्यादि** श्लोक से उन्हीं युक्तियों को श्रीभगवान् ने कहा है। अर्थात् स्थूल देहों आदि का भोग जीव **चक्षुः** आदि सभी इन्द्रियों द्वारा करता है। कैसे स्थूल देहों का ?

तो इसका उत्तर है कि यह स्थूल शरीर क्षणिक बाल्य तारुण्य आदि धर्मों वाले शरीर को । जो स्वप्न में जागरावस्था में अनुभूत वस्तुओं के समान हृदय में विद्यमान वासनामय होता है उसका भोग करता है । और सुषुप्तावस्था में जो रहता है उन सबों का उपसंहरण एक ही जीव करता है । वही तीनों जागर स्वप्न और सुषुप्ति का द्रष्टा है। यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि जागरावस्था में सभी इन्द्रियाँ देखती हैं । स्वप्न को मन देखता है । और सुषुप्ति को उसके संस्कार युक्त बुद्धि देखती है तो फिर आत्मा को द्रष्टा कैसे कहा जा सकता है ? तो इसके उत्तर में कहते हैं कि आत्मा इन्द्रियों का स्वामी है । यहाँ भी प्रश्न होता है कि इन्द्रियेश आत्माएँ भी विश्व, तैजस और प्राज्ञ के भेद से तीन प्रकार के होते हैं तो ऐसा नहीं कहा जा सकता है क्योंकि स्मृति के द्वारा प्रतिसंधान करने के कारण आत्मा का सभी विश्व तैजस एवं प्राज्ञ की अवस्थाओं से संबन्ध बना रहता है । जो मैंने स्वप्नों को देखा और उसके पश्चात् वही अनुभव करता है कि मैंने कुछ भी नहीं जाना, वही मैं इस समय जग रहा हूँ इस प्रकार से उपाधि के भेद के कारण एक ही आत्मा के विश्व, तैजस एवं प्राज्ञ व्यवहार होते हैं । इससे स्पष्ट है कि जो मैं बालक था वहीं मैं युवा हो गया इत्यादि रूप से एक ही आत्मा का अनुसन्धान होता है ॥३२॥

एवं विमृश्य गुणतो मनसस्त्र्यवस्था मन्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः ।
संछिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्णज्ञानासिना भजत माऽखिलसंशयाधिम् ॥३३॥

अन्वयः— एवं विमृश्य मनसः त्र्यवस्थाः गुणतः मन्मायया मयि कृता इति निश्चितार्थाः इति हार्दम् अनुमान सदुक्तितीक्ष्ण ज्ञानासिना अखिलसंशयाधिम् संछिद्यहार्दं मा भजत ॥३३॥

अनुवाद— इस तरह विचार करके मन की ये तीनों अवस्थाएँ गुणों के द्वारा मेरी माया से मेरे अंश स्वरूप जीव में कल्पित की गयी है । आत्मा में ये बिल्कुल असत्य है । इस तरह निश्चय करके तुमलोग सत्पुरुषों द्वारा किए गये अनुमानों उपनिषदों के श्रवण तथा तीक्ष्ण ज्ञान खड्ग के द्वारा सम्पूर्ण संशयों के आधार अहङ्कार का छेदन करके हृदय में स्थित मेरा भजन करो ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह-एवमिति । गुणतो या एता मनसस्त्र्यवस्थास्ता मदविद्यया मयि कृता न तत्त्वतः सन्तीति निश्चित आत्मरूपोऽर्थो यैस्ते यूयमखिलसंशयानामाधिं आधीयन्तेऽस्मिन्नित्याधिरहंकारस्तं संछिद्य हार्दं हृदि स्थितं मां भजत । केन छित्त्वा तदाह-अनुमानैः सदुक्तिभिः सतामुपदेशैः श्रुतिभिश्च । तीक्ष्णेन ज्ञानखड्गेन ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

उससे क्या हुआ ? इस पर श्रीभगवान् एवम् इत्यादि श्लोक कहते हैं । गुणों के द्वारा ये सब मन की व्यवस्थाएँ जो हैं मेरी माया कृत है, तात्त्विक नहीं है यह निश्चित है आत्मा रूप विषय है उन सबों से लोगों की मन के सारे लोग मन में जिस आहित होते है उस अहङ्कार को काटकर तुमलोग सबों के हृदय में विद्यमान मेरा भजन करो । किस साधन से काटकर तो इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं- **अनुमानो सदुक्तियों** तथा श्रुतियों के द्वारा तीक्ष्ण ज्ञान रूपी खड्ग से काटकर ॥३३॥

ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं दृष्टं विनष्टमतिलोलमलातचक्रम् ।
विज्ञानमेकमुरुधेव विभाति माया स्वप्नास्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः ॥३४॥

अन्वयः— इदम् मनसोविभ्रमम् इति ईक्षेत्, मनसो विलासं दृष्टम् विनष्टम् अतिलोलम् आलत चक्रम एकं विज्ञानम् उरुधेव विभातिमाया स्वप्नान् गुण विसर्गकृतः विकल्पः ॥३४॥

अनुवाद— यह जगत् मन का विलास, दिखने पर भी नष्ट प्राय है । आलात चक्र के समान अत्यन्त

चञ्चल है । और भ्रम मात्र है । ऐसा तुम लोग जानो । ज्ञाता एवं ज्ञेय के भेद से रहित एक मात्र ज्ञान स्वरूप आत्मा ही अनेक के समान प्रतीत होता है । स्थूल शरीर इन्द्रिय और अन्त:करण रूप तीन प्रकार का विकल्प गुणों की रचना मात्र है । यह स्वप्न के समान माया का खेल है और अज्ञान से कल्पित है ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

अनुमानादि दर्शयति-ईक्षेतेति । इदं जगद्विभ्रममीक्षेत। तत्र हेतवः । मनोविजृम्भितत्वात् । दृष्टत्वाद्विनाशित्वाच्च स्वप्नवत्। अतिचञ्चलत्वाच्चलातचक्रवत् । ननु भ्रमोऽपि निर्विषयः कथं स्यात्तत्राह-विज्ञानमिति निगमनम् । तस्मात्त्रिधा योऽयं गुणपरिणामकृतो विकल्पो भेदः स मायेति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

अनुमान आदि को **इक्षेत इत्यादि** श्लोक से प्रदर्शित करते हैं इस जगत् को भ्रम रूप से देखे, क्योंकि यह मन: कल्पित है, क्योंकि यह दृश्य है तथा स्वप्न के समान विनाशवान है । अत्यन्त चञ्चल होने के कारण आलात् चक्र के समान है । प्रश्न है कि भ्रम के लिए किसी विषय का होना आवश्यक है । विना विषय के भ्रम तो होता नहीं है ? इस प्रकार **विज्ञानम्० इत्यादि** कहते है । अर्थात् विज्ञान स्वरूप एक ही आत्मा गुणों के भेद से तीन प्रकार का प्रतीत होता है । वह भी मेरी मायाकृत ही है ।।३४।।

दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवो निरीहः ।
संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत्स्मृतिरानिपातात् ।।३५।।

अन्वयः— ततः दृष्टि निवर्त्य निवृत्ततृष्णः निजसुखानुभवो निरीहः तुष्णीभवेत् क्व च इदम् यत् अस्तु बुद्ध्या संदृश्यते त्यक्तं भ्रमाय न भवेत् स्मृतिः आनिपात् ।।३५।।

अनुवाद— उस देहादि रूप दृश्य से दृष्टि को हटाकर तृष्णा रहित इन्द्रियों के व्यापार से हीन और निरीह होकर आत्मानन्द के अनुभव में मग्न हो जाय । यद्यपि कभी-कभी आहार आदि के समय यह देहादि प्रपञ्च देखने में आता है । फिर भी यह पहले ही आत्म वस्तु से अतिरिक्त और मिथ्या समझकर छोड़ा जा चुका है । अतएव वह फिर भ्रांतिमूलक मोह को उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होता है शरीरपात पर्यन्त केवल संस्कार मात्र की उसकी प्रतीति होती है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

तस्मात्ततो दृश्याद्दृष्टिं प्रतिनिवर्त्य निजसुखानुभवो भवेत् । तन्नैश्चल्यार्थं च निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं निरीहश्च भवेत् । मनोवाक्कायव्यापाररहित इत्यर्थः । ननुः देहवतः सर्वथा द्वैतदृष्टिप्रतिनिवर्तनायोगात्पुनः संसारः स्यादेव तत्राह-संदृश्यत इति । क्वचिदावश्यकाहारादिषु यद्यपीदं संदृश्यते तथापि पूर्वमवस्तुबुद्ध्या यत्त्यक्तं तत्पुनर्मोहाय न भवेदेव किंतु देहपातपर्यन्तं स्मृतिरिव स्मृतिः संस्कारमात्रेणावभासो भवेदित्यर्थः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

अतएव देहादि से दृष्टि को हटाकर आत्मा अनुभव जन्य सुख का अनुमान करे । उसकी निश्चलता के लिए तृष्णा आदि से रहित मौन तथा निरीह हो जाय । अर्थात् मन, वाणी तथा शरीर के व्यापार से रहित हो जाय । यदि यह कहा जाय की शरीरधारी का द्वैत से पूर्ण रूप से दृष्टि को हटाना असम्भव होने के कारण पुन: संसार हो ही सकता है । इस पर श्रीभगवान् कहते हैं- **संदृश्यते० इत्यादि** यद्यपि आहार आदि के समय यह देहादिक प्रपञ्च देखने में आता है, लेकिन पहले मिथ्या दृष्टि से परित्यक्त होने के कारण वह मोह कारक नहीं होता है किन्तु देहपात पर्यन्त इसकी स्मृति तो बनी ही रहती है । इसकी संसार मात्र के द्वारा प्रतीति होती है ।।३५।।

देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ।
दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः ॥३६॥

अन्वयः— यथा मदिरामदान्धः वासो यथा परिकृतम् तथा सिद्धः यतः स्वरूपम् अध्यगमत् दैववशात् नश्वरम् देहं च अवस्थितम् उत्थितम् वा दैवाद् उपेतम् अपेतं वा न पश्यति ॥३६॥

अनुवाद— जिस तरह मदिरा पीकर मदान्ध बना हुआ व्यक्ति यह नहीं जान पाता है कि उसके द्वारा पहना गया वस्त्र उसके शरीर पर है कि नहीं। वैसे सिद्ध पुरुष जिस शरीर से सिद्धि प्राप्त करता है। वह शरीर, प्रारब्ध वशात् नश्वर शरीर बैठा है, खड़ा है, प्रारब्ध वश कही गया है या आया है इन बातों पर वह दृष्टि नहीं डालता है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

एतदेवोपपादयति-देहमिति। आसनादुत्थितमुत्थाय तत्रैव स्थितं ततः क्वचिदपेतं निर्गतं पुनस्तत्रैवोपेतं वा देहमपि नानुसंधत्ते, कुतोऽन्यत्। यतो येन देहेन स्वरूपमध्यगमज्ज्ञातवांस्तं देहम्। यतः कारणादिति वा। परिकृतं परिहितं वासो गतं स्थितं वा यथा न वेत्ति तद्वत् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

इसी अर्थ का प्रतिपादन **देहं च० इत्यादि** श्लोक से करते हैं। उपासक जिस शरीर से सिद्धि प्राप्त करता वह शरीर अपने आसन से उठा या उठकर बैठ गया उसकी कोई वस्तु छूट गयी पुनः वह शरीर प्राप्त हो गया क्या इत्यादि रूप से अपने शरीर का भी अनुसंधान नहीं करता है। यह उसी तरह होता है जिस तरह मदिरा पीकर मदान्ध व्यक्ति को इस बात का पता नहीं होता है कि वह जिस वस्त्र को धारण किया था वह वस्त्र उसके शरीर पर है कि नहीं ॥३६॥

देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारम्भकं प्रति समीक्षत एव सासुः ।
तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥३७॥

अन्वयः— दैववशगः देहोऽपि सासुः खलु स्वारम्भकं कर्म प्रति सासुः समीक्षत एव अधिरूढ समाधियोगः प्रतिबुद्धवस्तु सप्रपञ्चं तम् स्वप्नं पुनः न भजते ॥३७॥

अनुवाद— प्राण तथा इन्द्रियों के साथ यह शरीर भी प्रारब्ध के अधीन है अतएव वह अपने आरम्भक कर्म पर्यन्त बना ही रहता है। किन्तु आत्मा वस्तु का साक्षात्कार करने वाला समाधि पर्यन्त योग में आरूढ पुरुष स्त्री पुरुष आदि प्रपञ्च के साथ पुनः उस शरीर को कभी स्वीकार नहीं करता है। ठीक उसी तरह जिस तरह स्वप्न के शरीर को जगा हुआ पुरुष अपना नहीं मानता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

ननु च यः परिपाल्यमानोऽपि मुमूर्षति तं चेन्न पश्यति तर्हि पतेदेव, नेत्याह-देहोऽपीति। देहो दैववशेन गच्छन्स्वारम्भकं कर्म यावदस्ति तावत्पर्यन्तं प्रतिसमीक्षत एव जीवत्येव। सासुः प्राणेन्द्रियसहितः। ननु तर्हि तस्मिन्कदाचिदासज्जेतापि, नेत्याह-तमिति। स्वाप्नं स्वप्नतुल्यम्। अधिरूढः प्राप्तः समाधिपर्यन्तो योगो येनात एव प्रतिबुद्धं ज्ञातं परमार्थवस्तु येन सः। तथा च श्रुतिः-'तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्ये अथ संपत्स्ये' इति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि जिस शरीर का पालन किया जाता है, उस शरीर से यदि साधक मर जाना चाहता है तो वह शरीर विनष्ट ही हो जाय तो ऐसी बात नहीं है, इस बात को श्रीभगवान् **देहोऽपि दैववशगः इत्यादि** श्लोक से कहते हैं देह भी दैवाधीन है, और वह तब तक नहीं विनष्ट हो जाता है जब तक उस देह का आरम्भक कर्म बना ही रहता

है । वह अपने प्राण और इन्द्रियों के साथ बना रहता है । यदि कहें कि तब तो वह कभी उस शरीर में आसक्त भी हो सकता है तो ऐसी बात नहीं है । वह स्वप्न तुल्य है । जिसने समाधि पर्यन्त योग को किया है वह परमार्थ वस्तु का ज्ञाता मनुष्य उसे नहीं स्वीकार करता है । श्रुति भी कहती है ज्ञानी पुरुष अनुसन्धान करता है मुक्ति की प्राप्ति में तब तक ही देर है जब तक मैं इस शरीर से मुक्ति नहीं प्राप्त करता हूँ । उसके पश्चात् मैं संसार के बन्धन से मुक्त हो जाऊँगा ।।३७।।

मयैतदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत्सांख्ययोगयोः । जानीतमागतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया ।।३८।।

अन्वयः— हे विप्राः मया वः एतत् सांख्ययोगयोः यत् गुह्यं उक्तम् युष्मद् धर्म विवक्षया आगतं यज्ञं मा जानीत।।३८।।

अनुवाद— सनकादिक महर्षियों मैंने तुम लोगों को सांख्य एवं योग के गोपनीय तत्त्व का उपेदश दिया है। तुमलोगों को धर्मोपदेश करने के लिए आये हुए मुझे परमात्मा जानो ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

उक्तार्थे तेषां विश्वासार्थं स्वस्वरूपमाह-मयेति । सांख्यमात्मानात्मविवेको योगोऽष्टाङ्गस्तयोर्गुह्यं रहस्यम् । यज्ञं विष्णुम् 'यज्ञो वै विष्णुः' इति श्रुतेः । युष्मद्धर्मविवक्षयेत्यनेन धर्मा अप्युपदिष्टा इति ज्ञेयम् अतएव 'यत्तेन हंसरूपेण ब्रह्मणेऽभ्यात्थ माधव' इत्यनुवादो भविष्यति ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

उपदिष्ट अर्थ में सनकादियों को विश्वास हो जाय इसलिए श्रीभगवान् अपने स्वरूप को **मयैतदुक्तम् इत्यादि** श्लोक से बतलाते । आत्मानात्मविवेक को ही सांख्य कहते हैं । अष्टाङ्ग योग को यहाँ योग शब्दसे कहा गया है । उन दोनों के रहस्य को । **यज्ञोवै विष्णुः** इस श्रुति के अनुसार यज्ञ शब्द भगवान् विष्णु का वाचक है । **युष्मद्धर्मविवक्षया** पद से स्पष्ट है श्रीभगवान् ने धर्म का भी उपदेश किया । इसलिए **यत् तेन हंस रूपेण ब्रह्मणेऽभ्यात्थ माधव'** इस तरह आगे अनुवाद किया जायेगा ।।३८।।

अहं योगस्य सांख्यस्य सत्यस्यर्तस्य तेजसः । परायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियः कीर्तेर्दमस्य च ।।३९।।

अन्वयः— हे द्विजश्रेष्ठाः अहं योगस्य, सांख्यस्य सत्यस्य ऋतस्य तेजसः श्रियः कीर्तेः दमस्य च परायणम् ।।३९।।

अनुवाद— विप्रवर्यो मैं योग, सांख्य, सत्य, ऋत (मधुर भाषण) तेज, श्री, कीर्ति और दम (इन्द्रिय निग्रह) इन सबों का परम अधिष्ठान हूँ ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

ऋतं प्रमीयमानो धर्मः सत्यमनुष्ठीयमानो धर्मः । तेजः प्रभावः एतेषां परमयनम् ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

प्रतीत होने वाले धर्म को ऋत कहते हैं अनुष्ठीयमान धर्म को सत्य कहते हैं । तेजः अर्थात् प्रभाव इन सबों का सर्वश्रेष्ठ आश्रय ।।३९।।

मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम् । सुहृदं प्रियमात्मानं साम्यासङ्गादयोऽगुणाः ।।४०।।

अन्वयः— निर्गुण, निरपेक्षकम् सुहृदं, प्रियमात्मानम् सम्य असङ्ग आदि गुणाः मां निर्गुणं भजन्ति ।।४०।।

अनुवाद— ये सभी गुणों से रहित हूँ और किसी की अपेक्षा भी नहीं रखता हूँ, फिर भी साम्य और असङ्ग आदि सभी गुण मेरा ही सेवन करते हैं, क्योंकि सबों का हितैषी सुहृद् प्रियतम और आत्मा हूँ वस्तुतः ये गुण है ही नहीं क्योंकि ये सत्त्वादि गुणों के परिणाम नहीं है ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

किंच मामिति । कथंभूताः । अगुणाः गुणपरिणामरूपा न भवन्ति किंतु नित्या इत्यर्थः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

मां भजन्ति इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है कि निर्गुण मेरी सेवा साम्यादि गुण करते हैं वस्तुतः वे गुण हैं ही नहीं क्योंकि वे सत्त्वादि गुणों के परिणाम नहीं है ।।४०।।

इति मे छिन्नसंदेहा मुनयः सनकादयः । सभाजयित्वा परया भक्तयाऽगृणत संस्तवैः ।।४१।।

अन्वयः— इति मे छिन्नसंदेहाः सनकादयः मुनयः परया भक्त्या सभाजयित्वा संस्तवैः अगृणत ।।४१।।

अनुवाद— इस तरह से मैंने सनकादि मुनियों के संदेह को मिटा दिया उन लोगों ने परम भक्ति से मेरी पूजा की और मेरी स्तुति उन लोगों ने की ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

मे मया । अगृणत मां तुष्टुवुः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

मे अर्थात् मेरे द्वारा अगृणत अर्थात् मेरी स्तुति की ।।४१।।

तैरहं पूजितः सम्यक् संस्तुतः परमर्षिभिः । प्रत्येयाय स्वकं धाम पश्यतः परमेष्ठिनः ।।४२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

अन्वयः— अहं तैः सम्यक् पूजितः संस्तुतः परमर्षिभिः परमेष्ठिनः पश्यतः स्वकं धाम प्रत्येयाय ।।४२।।

अनुवाद— उन सनकादि ने मेरी अच्छी तरह पूजा की और उन परमर्षियों द्वारा स्तुति किया गया मैं ब्रह्मा के सामने ही अपने धाम में लौट आया ।।४२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

प्रत्येयाय प्रत्यागतोऽस्मि ।।४२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

प्रत्येयाय अर्थात् लौट आया ।।४२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१३।।

चौदहवाँ अध्याय

भक्तियोग की महिमा और ध्यान विधि का वर्णन

उद्धव उवाच

वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः । तेषां विकल्पप्राधान्यमुताहो एकमुख्यता ॥१॥

अन्वयः— हे कृष्ण ब्रह्मवादिनः बहूनि श्रेयांसि वदन्ति तेषां विकल्प प्राधान्यम् उत एक मुख्यता ॥१॥

उद्धवजी ने कहा

अनुवाद— भगवन् श्रीकृष्ण ब्रह्मवादी महात्मा आत्म कल्याण के बहुत से साधन बतलाते हैं उनमें अपनी-अपनी दृष्टि से सभी श्रेष्ठ हैं अथवा किसी एक की प्रधानता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्दशे परं श्रेयो भक्तिरेव न चेतरत् । इत्येतद्वर्ण्यते ध्यानयोगश्च सह साधनैः । एवं तावद्भगवतो भक्तया मोक्ष इत्युक्तमन्ये त्वन्यानि साधनानि वदन्ति, तत्र विशेषनिर्धारणाय पृच्छति-वदन्तीति । श्रेयांसि श्रेयःसाधनानि । किं विकल्पेन प्राधान्यमुताहो किंवा एकस्यैव मुख्यता ॥१॥

भाव प्रकाशिका

चौदहवें अध्याय में बतलया गया है कि सबसे श्रेष्ठ साधन भक्ति ही है दूसरे साधन नहीं । इसका वर्णन करके साधनो सहित ध्यान योग का वर्णन किया गया है । इस तरह श्रीभगवान् ने कहा है कि भक्ति से ही मुक्ति होती है, दूसरे लोग दूसरे साधन को बतलाते है । इसमें विशेष निर्धारण के लिए श्रीउद्धवजी **वदन्ति इत्यादि** श्लोक से पूछते हैं । श्रेयांसि अर्थात् आत्म कल्याण के साधन, उनमें से अपनी-अपनी रुचि के अनुसार प्रधानता होती है अथवा किसी एक की मुख्यता होती हैं ॥१॥

भवतोदाहृतः स्वामिन्भक्तियोगोऽनपेक्षितः । निरस्य सर्वतः सङ्गं येन त्वय्याविशेन्मनः ॥२॥

अन्वयः— हे स्वामिन् भवता अनपेक्षितः भक्तियोगः उदाहृतः सर्वतः सङ्गं निरस्य येन त्वयि मनः आविशेत् ॥२॥

अनुवाद— हे स्वामिन् आपने तो भक्तियोग को ही निरपेक्ष साधन बतलाया है, जिससे कि सब ओर से आसक्ति को हटाकर मन आपमें प्रवेश कर सके ॥२॥

भावार्थ दीपिका

एकमुख्यतापक्षोत्थाने कारणम्- भवतेति । न अपेक्षितमपेक्षा यस्मिन्सोऽहैतुकः । अयमर्थः-भवता यो भक्तियोग उक्तोऽन्ये च यानि श्रेयः साधनानि वदन्ति तेषां किं साक्षात्फलसाधनत्वेन प्राधान्यमेव सर्वेषामुताङ्गाङ्गित्वम् । प्राधान्येऽपि किं विकल्पेन सर्वेषां तुल्यफलत्वम् । यद्वा कश्चिदस्ति विशेष इति ॥२॥

भाव प्रकाशिका

एकमुख्यता पक्ष को स्वीकार करने का कारण है कि आपने भक्ति को अहैतुक कहा है । कहने का अभिप्राय है कि आपने जो भक्तियोग को बतलाया है तथा दूसरे लोग जिन कल्याण के साधनों को बतलाते हैं, उन सबों में साक्षात्फल प्रदान करने के कारण मुख्यता है अथवा उन सबों की प्रधानता है । प्रधानता होने पर भी वे सब विकल्प के समान फल प्रदान करते हैं अथवा प्रधानता में कोई विशेषता है ॥२॥

श्रीभगवानुवाच

कालेन नष्टा प्रलये वाणीयं वेदसंज्ञिता । मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः ॥३॥

अन्वयः— कालेन इयं वेदसंज्ञिता वाणी प्रलयेकालेन नष्टा आदौ मया ब्रह्मणे प्रोक्ता यस्यां मदात्मको धर्मः ॥३॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— प्रिय उद्धव समय के फेर से प्रलय के समय यह वेद वाणी लुप्त हो गयी मैने सृष्टि के प्रारम्भ में अपने सत्यसङ्कल्प से इसका उपदेश ब्रह्माजी को दिया जिसमें मेरे भागवत धर्म का वर्णन है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्र भक्तिरेव महाफलत्वेन मुख्या, अन्यानि तु स्वस्वप्रकृत्यनुसारेण पुष्पस्थानीयस्वर्गादिफलबुद्धिभिः प्राणिभिः प्राधान्येन परिकल्पितानि क्षुल्लकफलानीति विवेक्तुं प्रकृत्यनुसारेण बहुधा वेदार्थप्रतिपत्तिमाह-कालेनेति सप्तभिः । मदात्मकः मय्येवात्मा चित्तं येन सः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उनमें भक्ति ही मुख्य है क्योंकि वह महान् फल प्रदान करने वाली है । दूसरे साधन तो अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार स्वर्गादि की प्राप्ति की इच्छा वाले लोगों के प्रधान रूप से परिकल्पित है । वे छोटे-छोटे फल प्रदान करने वाले है । इस तरह अलग-अलग विवेचन करने के लिए प्रकृति के अनुसार अनेक प्रकार से वेदार्थ का ज्ञान होता है, इस बात को **कालेन इत्यादि** सात श्लोकों से कहा गया है । जिस भागवत धर्म के द्वारा साधक का मन मुझमें ही लगा रहता है ॥३॥

तेन प्रोक्ता च पुत्राय मनवे पूर्वजाय सा । ततो भृग्वादयोऽगृह्णन्सप्त ब्रह्ममहर्षयः ॥४॥

अन्वयः— तेन पूर्वजाय मनवे पुत्रा प्रोक्ता ततः भृग्वादयः सप्त ब्रह्मर्षयः अगृह्णन् ॥४॥

अनुवाद— ब्रह्माजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र स्वायम्भुव मनु को उसका उपदेश दिया और स्वायाम्भुव मनु से भृगु, अङ्गिरा, मरीचि, पुलह, अत्रि पुलस्त्य और क्रतु इन सात ब्रह्मर्षियों ने ग्रहण किया ॥४॥

भावार्थ दीपिका

भृग्वादयः भृगुश्च- 'मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः' इत्येते च सप्त ब्रह्माणः प्रजापतयस्ते च ते ब्रह्मर्षयश्च॥४॥

भाव प्रकाशिका

भृग्वादयः भृगुश्च भुगु, मरीचि अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्यः पुलहः ये सब ब्रह्माजी के पुत्र और प्रजापति है और वे ब्रह्मर्षि हैं ॥४॥

तेभ्यः पितृभ्यस्तत्पुत्रा देवदानवगुह्यकाः । मनुष्याः सिद्धगन्धर्वाः सविद्याधरचारणाः ॥५॥

अन्वयः— तेभ्यः पितृभ्यः तत्पुत्राः देवदानवगुह्यकाः, मनुष्या; सिद्धगन्धर्वाः सविद्याधर चारणाः ॥५॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उन ब्रह्मर्षियों की सन्तान देवता, दानव, गुह्यक, मनुष्य, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और चाणों ने उसे प्राप्त किया ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

किंदेवाः किंनरा नागा रक्षःकिंपुरुषादयः । बह्व्यस्तेषां प्रकृतयो रजःसत्त्वतमोभुवः ॥६॥

अन्वयः— किं देवाः किनराः नागाः रक्षः किं पुरुषादयः तेषां बह्वयः रजः सत्त्वतमोभुवः ॥६॥

अनुवाद— किंदेव, किन्नर, नाग, राक्षस, किंपुरुष आदि उन सबों के बहुत से रजोगुण, सत्त्वगुण एवं तमोगुण से उत्पन्न उनकी सन्तानों ने ग्रहण किया ॥६॥

भावार्थ दीपिका

किंदेवाः क्लमस्वेददौर्गन्ध्यादिराहित्येन किं देवा मनुष्या वेति संदेहास्पदभूता द्वीपान्तरमनुष्याः । एवं किंनराः किंचिन्नराः इव मुखतः शरीरतो वा । किंपुरुषाः किंचित्पुरुषा इव वानरादयः । प्रकृतयो वासनाबह्वयः । कुतः । रजःसत्त्वतमांसि भुवः जन्मस्थानानि यासां ताः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

किं देवाः अर्थात् थकान, पसीना, दुर्गन्ध आदि से रहित होने के कारण **किं देवा** अथवा मनुष्य अथवा सन्देहास्पद दूसरे द्वीप के मनुष्य । किंनरा अर्थात् कुछ मनुष्य के समान, मुख अथवा शरीर वाले । किं पुरुषाः अर्थात् मनुष्यों के समान कुछ आकार वाले । प्रकृत्यः बहुत अतिवासनाएँ जो रजोगुण, सत्त्वगुण एवं तमोगुण से उत्पन्न होने वाली ॥६॥

याभिर्भूतानि भिद्यन्ते भूतानां मतयस्तथा । यथाप्रकृति सर्वेषां चित्रा वाचः स्त्रवन्ति हि ॥७॥

अन्वयः— याभिः भूतानि तथा भूतानां प्रकृत्यः भिद्यन्ते, यथा प्रकृति सर्वेषां चित्रावाचः सवन्ति हि ॥७॥

अनुवाद— जातियों और व्यक्तियों के स्वभाव, उनकी वासनाएँ सत्त्वादि तीनों गुणों के कारण भिन्न-भिन्न है। इसीलिए उनमें और उनकी बुद्धि की वृत्तियों में भी अनेक भेद हैं। इसीलिए वे अपनी प्रकृति के अनुसार उस वेदवाणी का भिन्न-भिन्न अर्थ करते हैं। वेद वाणी अलौकिक है उससे स्वभावत; भिन्न-भिन्न अर्थ निकलता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

भूतानि देवासुरमनुष्यादीनि । चित्रा वाचो वेदार्थव्याख्यानविषयाः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

देवता, असुर तथा मनुष्य आदि चित्रावाचः वेदों के अर्थ के व्याख्यान विषयक ॥७॥

एवं प्रकृतिवैचित्र्याद्भिद्यन्ते मतयो नृणाम् । पारम्पर्येण केषांचित्पाखण्डमतयोऽपरे ॥८॥

अन्वयः— एवं प्रकृतिवैचित्र्यात् नृणां मतयो भिद्यन्ते पारम्पर्येण केषञ्चित् अपरे पाखण्डमतयः ॥८॥

अनुवाद— स्वभाव की भिन्नता और परम्परागत उपदेश के भेद से मनुष्यों की बुद्धि में भिन्नता आ जाती है । कुछ लोग तो विचार किए बिना ही पाखण्ड मतानुयायी हो जाते हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

एवमित्युक्तोपसंहारः केषांचिदध्ययनादिशून्यानामप्युपदेशपारम्पर्येण । अपरे पाखण्डमतयो वेदविरुद्धार्थमतयः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह कही गयी बातों का उपसंहार करते है । केषाञ्चित् जिन लोगों ने वेदाध्ययन नहीं किया है तथा जिनकी जैसी उपदेश परम्परा है, वैसा ही । **पाखण्डमतयः** अर्थात् वेदविरुद्ध अर्थ करने वाले ॥८॥

मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ । श्रेयो वदन्त्यनेकान्तं यथाकर्म यथारुचि ॥९॥

अन्वयः— हे पुरुषर्भ ! मन्मायामोहित धियः पुरुषाः यथाकर्म यथारुचि श्रेय अनेकान्तं वदन्ति ॥९॥

अनुवाद— हे मनुष्यों में श्रेष्ठ उद्धवजी सबों की बुद्धि मेरी माया से मोहित हो रही है, इसीलिए वे अपने कर्म संस्कार और अपनी रुचि के अनुसार आत्मकल्याण के साधनों को एक नहीं अनेक मानते हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तत्प्रकृतीनां मायागुणमूलत्वान्मन्मायामोहितधियः । अनेकान्तं नानाविधम् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

माया के गुण सत्त्वादि गुण मूलक प्रकृति वाले मनुष्यों की बुद्धिमाया मोहित होकर कल्याण के साधनों को अनेक बतलाते हैं ।।९।।

धर्ममेके यशश्चान्ये कामं सत्यं दमं शमम् । अन्ये वदन्ति स्वार्थं वा ऐश्वर्यं त्यागभोजनम् ॥
केचिद्यज्ञतपोदानं व्रतानि नियमान्यमान् ॥१०॥

अन्वयः— एके धर्मम् अन्ये यशः, कामं, सत्यं, दमं शमम् अन्ये, स्वार्थं ऐश्वर्य त्यागभोजनम् वदन्ति ।।१०।।

अनुवाद— पूर्वमीमांसक धर्म को, साहित्यिक यश को, कामशास्त्री काम को योगी सत्य एवं शमदमदि को, दण्डनीतिकार ऐश्वर्य को, त्यागी त्याग को और चर्वाक भोग को ही मनुष्य जीवन का स्वार्थ मानते हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-धर्ममिति सार्धेन । धर्मं कर्म मीमांसकाः । यदुक्तम्- 'मोक्षार्थी न प्रवर्तेत तत्र काम्यनिषद्धयोः । नित्यनैमित्तिके कुर्यात्प्रत्यवायजिहासया ।' इत्यादि । यशः काव्यालंकारकृतः । यथाहुः-'यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्य पुण्यलोकेषु गीयते । तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।' इति । कामं वात्स्यायनादयः । सत्यं दमं शमं च योगशास्त्रकृतः । अन्ये दृष्टार्थवादिनो दण्डनीतिकृतो वै प्रसिद्धं ऐश्वर्यमेव स्वार्थं पुरुषार्थं वदन्ति । अतः सामाद्युपाया एव श्रेयःसाधनमिति तेषां मतम् । तथैव त्यागं भोजनं च लोकायतिकाः । यज्ञतपोदानं यज्ञो देवतानां पूजनं तपश्च दानं च ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

आत्म कल्याण की अनेकता को **धर्मम् इत्यादि** डेढ श्लोक से बतलाते हैं कर्ममीमांसक कर्मों को श्रेय का साधन मानते हैं। कहा भी गया है मोक्षार्थी **न प्रवर्तेत० इत्यादि** अर्थात् मोक्ष चाहने वाला मुमुक्षु पुरुष काम्य तथा निषिद्ध कर्मों को नहीं करता है वह नित्य एवं नैमित्तिक कर्मों को संभावित पाप के प्रणाश के लिए करता है। साहित्यिक यश को ही आत्म कल्याण का साधन मानते हैं। साहित्यिक का कहना है **यावत् कीर्तिमनुष्यस्य० इत्यादि** मनुष्य की कीर्ति जब तक पुण्यलोकों में गायी जाती है, उतने हजार वर्ष तक वह जीव स्वर्ग लोक में पूजित होता है। कामशास्त्र के ज्ञाता वात्स्यायन आदि है। योगशास्त्रकार सत्य दम एवं शम को कल्याण का साधन मानते हैं। दण्डवादी अर्थात् दण्ड नीतिकार ऐश्वर्य को ही स्वार्थ परमार्थ मानते है। अतएव साम आदि उपाय को ही वे कल्याण का साधन मानते हैं उसी तरह चार्वाक त्याग और भोजन को कल्याण का साधन मानते हैं। कुछ लोग, यज्ञ, तप दान को कल्याण का साधन मानते हैं। देवताओं के पूजन को यज्ञ कहा जाता है ।।१०।।

आद्यन्तवन्त एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः । दुःखोदर्कास्तमोनिष्ठाः क्षुद्रानन्दाः शुचार्पिताः ॥११॥

अन्वयः— कर्मविनिर्मिताः एषां लोका अद्यन्तवन्त एव, दुखोदर्काः तमोनिष्ठाः क्षुद्रानन्दाः शुचार्पिताः ।।११।।

अनुवाद— परन्तु ये सभी कर्म हैं। इनके फल स्वरूप मिलने वाले लोक उत्पत्ति और विनाश वाले होते हैं। कर्मों का फल समाप्त हो जाने पर उनको दुःख ही मिलता है। उनकी अन्तिम गति घोर अज्ञान है। उनसे तुच्छ सुख मिलता है। कर्म करने वाले लोग भोग के समय भी असूया आदि दोषों के कारण शोक से पूर्ण होते हैं ।।११।।

भावार्थ दीपिका

तेषां तुच्छफलत्वमाह-आद्यन्तवन्त इति । एषां लोका एतैः साध्यानि फलानि । तमोनिष्ठा मोहावसानाः । भोगकालेऽप्यसूयादिभिः शुचार्पिता व्याप्ताः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

आद्यन्तवन्त० इत्यादि श्लोक से इन कर्मों का फल तुच्छ होता है यह बतलाया गया है इन कर्मों के फल रूप से प्राप्त होने वाले लोक उत्पत्ति और विनाश वाले होते हैं । इन कर्मों का अन्त अज्ञ अज्ञान में होता है । इन कर्मों के फलों के भोग के समय भी असूया आदि दोषों के कारण वे शोक से परिपूर्ण होते हैं ।।११।।

मय्यर्पितात्मनः सभ्य निरपेक्षस्य सर्वतः । मयात्मना सुखं यत्तत्कुतः स्याद्विषयात्मनाम् ।।१२।।

अन्वयः— हे सभ्य सर्वतः निरपेक्षस्य मयि अर्पितात्मनः, मयात्मना यत् सुखं तत् विषयात्मनाम् कुतः ।।१२।।

अनुवाद— हे प्रिय उद्धव ! जो पुरुष सब ओर से निरपेक्ष हो गया है और पूर्ण रूप से जिसने अपने मन को मुझमें लगा दिया है । जिनको मैं आत्मा रूप से प्रतीत होता हूँ ऐसे अधिकारी को जिस सुख की प्राप्ति होती है वह विषयी पुरुषों को कहाँ से प्राप्त हो सकती हैं ?।।१२।।

भावार्थ दीपिका

भक्तेर्मुख्यत्वमाह-मयीति यावत्समाप्ति । हे सभ्य, मया परमानन्दरूपेणात्मना स्वरूपत्वेन स्फुरता ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

मयि० इत्यादि श्लोक से प्रारम्भ करके इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त भक्ति की मुख्यता बतलाते हैं । हे प्रिय उद्धव जिस उपासक को मैं परमानन्द स्वरूप आत्मा रूप से प्रतीत होने लगता हूँ ।।१२।।

अकिंचनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः । मया संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ।।१३।।

अन्वयः— अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसः मया सन्तुष्टमनसः सर्वादिशः सुखमयाः ।।१३।।

अनुवाद— जो सभी प्रकार के संग्रहों एवं परिग्रहों से रहित होने के कारण अकिञ्चन हैं जो अपनी इन्द्रियों को वश में करके शान्त एवं समदर्शी हो गया है, जो मेरी प्राप्ति से ही सदा सन्तुष्ट बना रहता है, ऐसे मेरे भक्त को सभी दिशाएँ सुखमय ही बनी रहती हैं ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

किंच, अन्येषां तत्तल्लोकादिपरिच्छिन्नं सुखं भक्तस्य तु परिपूर्णमित्याह-अकिंचनस्येति ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

अकिञ्चनस्य श्लोक से बतलाया गया है कि दूसरे उपासकों को फलरूप से प्राप्त होने वाले लोक सीमित होते हैं । किन्तु भक्तों को प्राप्त होने वाले लोक सुख से परिपूर्ण होते हैं ।।१३।।

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत् ।।१४।।

अन्वयः— मयि अर्पितात्मा मद्बिना पारमेष्ठयं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यं न, योगसिद्धीः वा अपुनर्भवं न इच्छति ।।१४।।

अनुवाद— जिसने पूर्णरूप से अपने मन को मुझमें लगा दिया है वह मुझको छोड़कर न तो ब्रह्माजी के पद को प्राप्त करना चाहता है, न इन्द्र के पद को प्राप्त करना चाहता है । सार्वभौम राजा भी नहीं होना चाहता है, वह सम्पूर्ण पृथिवी का स्वामी नहीं होना चाहता है । वह अणिमा आदि सिद्धियों या मोक्ष को भी नहीं प्राप्त करना चाहता है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

परिपूर्णतामेवाह-नपारमेष्ठ्यमिति । रसाधिपत्यं पातालादिस्वाम्यम् । अपुनर्भवं मोक्षमपि । मद्विना मां हित्वाऽन्यन्नेच्छति। अहमेव तस्य प्रेष्ठ इत्यर्थः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

न पारमेष्ठ्यम् इत्यादि से भक्त की परिपूर्णता को ही बतलाते हुए श्रीभगवान् कहते हैं कि जो मेरा भक्त होता है। वह न तो ब्रह्मा का पद प्राप्त करना चाहता है। न इन्द्र का पद प्राप्त करना चाहता है। वह पातालों आदि का भी स्वामी नहीं बनना चाहता है, वह मोक्ष भी नहीं प्राप्त करना चाहता है। वह मुझको छोड़कर किसी भी दूसरी वस्तु को नहीं प्राप्त करना चाहता है। उसका मैं ही प्रियतम हूँ ॥१४॥

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः । न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान् ॥१५॥

अन्वयः— यथा भवान् मे तथा प्रियः आत्मयोनिः न शङ्करः न, न च सङ्कर्षण न श्रीः न आत्मा प्रियः ॥१५॥

अनुवाद— मुझको जितना तुम प्रिय हो उतना प्रिय न तो ब्रह्मा न शङ्कर न भैया बलरामजी, न लक्ष्मीजी और न मेरी आत्मा ही मुझे प्रिय है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

ममापि स एव प्रेष्ठ इत्याह-न तथेति द्वाभ्याम्। आत्मयोनिर्ब्रह्मा पुत्रोऽपि। शङ्करो मत्स्वरूपभूतोऽपि। सङ्कर्षणो भ्रातापि श्रीर्भार्यापि। आत्मा मूर्तिरपि। यथा भक्त इति वक्तव्येऽतिर्षेणाह-भवानिति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

मुझको भी वही (भक्त ही) सर्वाधिक प्रिय है, इस बात को **न तथेत्यादि** दो श्लोकों से कहा गया है। **आत्मयोनिः** अर्थात् ब्रह्मा अर्थात् मेरे पुत्र, मेरे स्वरूप भूत शङ्कर सङ्कर्षण अर्थात् मेरे बड़े भाई श्रीबलरामजी, श्रीः मेरी पत्नी लक्ष्मी, आत्मा अर्थात् शरीर इन सबों से प्रिय तुम (उद्धव) हो ॥१५॥

निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् । अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥१६॥

अन्वयः— निरपेक्षं मुनिशान्तं, निर्वैरं, समदर्शनं अहं नित्यम् अनुव्रजामि अङ्घ्रिरेणुभिः पूयेय ॥१६॥

अनुवाद— सभी प्रकार की अपेक्षाओं से रहित जो सदैव मेरे ही चिन्तन में तल्लीन रहता है, पर शान्त, राग एवं द्वेष से रहित होकर किसी से भी वैर नहीं करता है, व समदर्शी मेरा भक्त होता है, उसके पीछे-पीछे मैं सदा धूमा करता हूँ कि उसके चरणों की धूल मुझको भी पवित्र बना दे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

पूयेय मदन्तर्वर्तिब्रह्माण्डानि पवित्रीकुर्यामिति भावेनेत्यर्थः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

पूयेय अर्थात् मेरे भीतर जो ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं उन सबों को मैं पवित्र बना दूँ। इस भावना से ॥१६॥

निष्किंचना मय्यनुरक्तचेतसः शान्ता महान्तोऽखिलजीववत्सलाः ।
कामैरनालब्धधियो जुषन्ति यत्तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम ॥१७॥

अन्वयः— निष्किञ्चनाः, मयि अनुरक्तचेतसः शान्ताः महान्तःअखिलजीववत्सलाः कामैः अनालब्धधियः यत् जुषन्ति तत् नैरपेक्ष्यं मम सुखं न विदुः ॥१७॥

अनुवाद— मेरे जो भक्त अकिञ्चन हैं, जिनका चित्त सदा मुझमें ही लगा रहता है, जो संसार की वासनाओं से उपरत हो चुके हैं, जो अपनी महत्ता के कारण स्वभावतः सभी प्राणियों से दया का भाव रखते हैं किसी से वैर नहीं रखते, जिनकी बुद्धि को किसी प्रकार की बुद्धि स्पर्श भी नहीं करती है, वे मेरे भक्त जिस परमानन्द स्वरूप का अनुभव करते हैं, उसे कोई नहीं जान सकता है, क्योंकि वह परमानन्द तो निरपेक्षता से ही प्राप्त होता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

किंच, मद्भक्तानां सुखमेतावदेवंभूतमिति वा को वक्तुं समर्थो यतस्तत्स्वसंवेद्यं निरूपममित्याह-निष्किंचना इति । महान्तो निरभिमानाः । अनालब्धधियोऽस्पृष्टचित्ताः । निष्किंचनत्वादीनां यथेष्टं हेतुहेतुमद्भावः । एवंभूता मम मदीया यत्सुखं जुषन्ति सेवन्ते तत्सुखं त एव विदुर्लभन्ते नान्ये । कुतः । नैरपेक्ष्यं नास्त्ययेक्षणीयं येषां ते निरपेक्षास्तैरेव लभ्यं न तु मोक्षापेक्षैरपीत्यर्थः। यद्वा, एवंभूताः सन्तो ये मम मामित्यर्थः, जुषन्ति प्रीणन्ति त एव यन्नैरपेक्ष्यं सुखं तद्विदुर्नान्य इत्यन्वयः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

निष्किञ्चनाः इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् यह बतलाते हैं कि मेरे भक्तों को जिस सुख की प्राप्ति होती है उसको यह सुख ऐसा है, इस प्रकार से बतलाने में कोई भी समर्थ नहीं है । वह सुखनिरुपम है । महान्त अर्थात् निरभिमान, अनालब्धधि उनके कुछ भी नहीं हो सका है । निष्किञ्चनत्व आदि में हेतुहेतुमद्भाव है । इस प्रकार के जो मेरे भक्त हैं वे जिस सुख का सेवन करते हैं, उस सुख को केवल वे ही जानते हैं दूसरा कोई नहीं क्योंकि जिनको कुछ भी नहीं अपेक्षित होता है वे ही उसे प्राप्त कर सकते हैं जो मोक्ष की भी अपेक्षा रखते हैं वे भी उस सुख को नहीं प्राप्त कर सकते हैं । अथवा इस प्रकार के जो सन्त है मुझको प्रसन्न करते हैं वे ही उस सुख को प्राप्त करते हैं, कोई दूसरा नहीं ।।१७।।

बाध्यमानोऽपि मद्भक्तो विषयैरजितेन्द्रियः । प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयैर्नाभिभूतये ॥१८॥

अन्वयः— अजितेन्द्रियः विषयैः बाध्यमानोऽपि मद्भक्त, प्रायः प्रगल्भया भक्त्या विषयै न अभिभूयते ।।१८।।

अनुवाद— जो मेरा भक्त अभी जितेन्द्रिय नहीं हुआ है । और बार-बार विषय उसको अपनी ओर खींचते भी हैं किन्तु वह अपनी प्रतिक्षण बढने वाली भक्ति के कारण विषयों से पराजित नहीं होता है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

अपि च आस्तां तावदुत्तमभक्तकथा, यतः प्राकृतोऽपि भक्तः कृतार्थ एवेत्याह-बाध्यमान इति द्वाभ्याम् । विषयैराकृष्यमाणोऽपि। प्रगल्भया समर्थया ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

मेरे उत्तम भक्तों की कथा को छोड़ो मेरा प्राकृत भक्त भी कृतार्थ ही होता है । इस बात को **बाध्यमानः इत्यादि** दो श्लोकों से कहा गया है । विषयों द्वारा अपनी ओर आकृष्ट किए जाने पर भी । प्रगल्भया अर्थात् समर्थ ॥१८॥

यथाग्निः सुसमृद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात् । तथा मद्विषया भक्तिरुद्धवैनांसि कृत्स्नशः ॥१९॥

अन्वयः— उद्धव ! यथा सुसमृद्धार्चिः अग्निः एधांसि भस्मसात् तथा मद्विषया भक्तिः कृत्स्नशः एनांसि करोति।।१९।।

अनुवाद— उद्धव ! जिस तरह धधकती हुई अग्नि इन्धन के ढेर को भी जलाकर भस्म कर देती है, उसी तरह मेरी भक्ति समस्त पापों को जलाकर भस्म कर देती है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

पाकाद्यर्थं प्रज्वालितोऽग्निर्यथा काष्ठानि भस्मीकरोति तथा रागादिनापि कथंचिन्मद्विषया सती भक्तिः समस्तपापानीति भगवानपि स्वभक्तिमहिमाश्चर्येण संबोधयति-अहो उद्धव विस्मयं शृण्विति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

जिस तरह भोजन आदि बनाने के लिए जलायी गयी अग्नि इन्धन को जलाकर भस्म कर देती है, उसी तरह राग आदि के भी कारण किसी की मेरे विषय में हुई भक्ति सारे पापों को जला देती हे । इस तरह से श्रीभगवान् भी अपनी भक्ति की महीमा का वर्णन बड़े आश्चर्य से करते हुए कहते हैं कि अरे उद्धव सुनो ।।१९।।

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव । न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता ॥२०॥

अन्वयः— हे उद्धव ! योगः सांख्यं, धर्मः, स्वाध्यायः तपः, त्यागः, मां तथा न साधयति यथा मम उर्जिता भक्तिः।।२०।।

अनुवाद— उद्धव ! योग साधन, ज्ञान विज्ञान, वेदाध्ययन, तपस्या एवं त्याग मेरी प्राप्ति कराने में उतना समर्थ नहीं है जितना कि मेरे विषय में दिनों-दिन बढ़ने वाली भक्ति ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

अत एवंभूतं श्रेयो नान्यदस्तीत्याह-न साधयतीति द्वाभ्याम् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

नसाधयति इत्यादि दो श्लोकों से श्रीभगवान् बतलाते हैं कि भक्ति के समान कल्याण का दूसरा कोई भी साधन नहीं है ।।२०।।

भत्तयाऽहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयात्मा प्रियः सताम् । भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि संभवात्॥२१॥

अन्वयः— सताम् प्रियआत्मा अहम् एकया श्रद्धया भक्त्या ग्राह्यः मन्निष्ठा भक्तिः संभवात् श्वपाकान् अपि पुनाति।।२१।।

अनुवाद— मैं सन्तों की प्रिय आत्मा हूँ मैं केवल श्रद्धा युक्त भक्ति के ही द्वारा ग्राह्य हूँ। मुझमें होने वाला भक्ति जन्मतः, चाण्डाल को भी पवित्र बना देती है ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

श्रद्धया या भक्तिस्तया । संभवाज्जातिदोषादपीत्यर्थः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

श्रद्धा सम्पन्न भक्ति के द्वारा । संभवात् अर्थात् जन्मदोषात् ।।२१।।

धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता । मद्भत्तयापेतमात्मानं न सम्यक्प्रपुनाति हि ॥२२॥

अन्वयः— सत्यादयोपेतः धर्मः तपसान्विता वा विद्या, मद्भक्त्यपतम् आत्मानं नहि प्रपुनान्ति ।।२२।।

अनुवाद— सत्य इत्यादि से युक्त धर्म और तपस्या से युक्त विद्या ये दोनों मेरी भक्ति से रहित आत्मा को अच्छी तरह पवित्र नहीं बनाते हैं ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

भक्त्यभावेऽन्यत्साधनं वयर्थमित्याह द्वाभ्याम्- धर्म इति ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

धर्म० इत्यादि दो श्लोकों से भगवान् ने बतलाया है कि भक्ति के अभाव में दूसरे साधन व्यर्थ हैं ।।२२।।

कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना । विनानन्दाश्रुकलया शुध्येद्भक्त्या विनाशयः ॥२३॥

अन्वयः— रोमहर्षं विना, द्रवताचेतसा बिना आनन्दाश्रुकलया बिना भक्त्या बिना आशयः कथं शुद्धयेत् ।।२३।।

अनुवाद— जब तक सम्पूर्ण शरीर में रोमाञ्च नहीं हो जाता है, जब तक चित्त द्रवित नहीं हो जाता है जब तक आँखों से आनन्दाश्रु प्रवाहित नहीं होने लगता है तब तक अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग भक्ति के प्रवाह में अन्तःकरण सराबोर नहीं हो जाता है तब तक उसकी शुद्धि कैसे सम्भव हैं ?।।२३।।

भावार्थ दीपिका

रोमहर्षादिकं विना कथं भक्तिर्गम्यते, भक्त्या विना च कथमाशयः शुध्येदिति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

रोमाञ्च आदि के बिना भक्ति का पता कैसे चलें भक्ति के बिना अन्त:करण की कैसे शुद्धि हो सकती हैं ? ॥२३॥

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च ।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति ॥२४॥

अन्वयः— यस्य वाक् गद्गदा यस्य चित्तम् द्रवते, यः अभीक्ष्णं रुदति, क्वचित् हसति च, विलज्जः उदगायति च मद्भक्ति युक्तः भुवनं पुनाति ॥२४॥

अनुवाद— मेरे जिस भक्त की वाणी प्रेम से गद्गद बनी रहती है, जिसका चित्त द्रवित होकर प्रवाहित होता रहता है, जो मेरे विप्रयोग का अनुभव करके बार-बार रोता है, और कभी-कभी तो वह हँसने लगता है कभी-कभी वह लज्जा का परित्याग करके गाने और नाचने लगता है । इस प्रकार का मेरा भक्त अपने को ही नहीं सम्पूर्ण संसार को पवित्र कर देता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

किंच, भक्तिः स्वाश्रयं शोधयतीति किं वक्तव्यं, यतो गद्गदवागादिलक्षणो मद्भक्तियुक्तो लोकं सर्वं पुनातीत्याह-वागिति।॥२४॥

भाव प्रकाशिका

भक्ति अपने आश्रयभूत पुरुष को पवित्र बना देती है यह क्या कहना है जिसकी वाणी सदा मेरे प्रेम में गद्गद बनी रहती है इस प्रकार की भक्ति से परिपूर्ण भगवद् भक्त सम्पूर्ण संसार को पवित्र बना देता है । इस बात को **वाक० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ॥२४॥

यथाग्निना हेम मलं जहाति ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम् ।
आत्मा च कर्मानुशयं विधूय मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम् ॥२५॥

अन्वयः— यथाग्निना ध्मातं हेम मलं जहाति स्वंरूपं च पुनः भजते, आत्मा च मद्भक्ति योगेन कर्माशयं विधूय अथो मां भजते ॥२५॥

अनुवाद— जिस तरह आग से तपाने पर सुवर्ण, मैल छोड़ देता और अपने वास्तविक रूप को प्राप्त कर लेता है, उसी तरह आत्मा भी भक्तियोग के द्वारा कर्मों की वासना को विनष्ट करके मुझको प्राप्त कर लेती है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अपि च भक्त्यैवात्मशुद्धिर्नान्यत इति सदृष्टान्तमाह-यथेति । यथाग्निना ध्मातं तापितमेव हेम सुवर्णमन्तर्मलं जहाति न क्षालनादिभिः । स्वं निजं रूपं च भजते । कर्मानुशयं कर्मवासनाम् । मां भजते मद्रूपतामापद्यते ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

यथाग्निना इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक बतलाते हैं कि जैसे अग्नि से तपाया हुआ सोना अपने मैल को छोड़ देता है प्रक्षालन आदि से नहीं और उसके पश्चात् वह अपने वास्तविक रूप को प्राप्त कर लेता है, कर्मानुशय अर्थात् कर्मों की वासना और मेरे रूप को प्राप्त कर लेता है ॥२५॥

यथा यथात्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः ।
तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवाञ्जनसंप्रयुक्तम् ॥२६॥

अन्वयः— मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः असौ आत्मा यथा-यथा परिमृज्यते तथा तथा सूक्ष्मंवस्तु पश्यति यथा एवं अंजनसंप्रयुक्तम् अञ्जनम् ॥२६॥

अनुवाद— प्रिय उद्धव मेरी अत्यन्त पवित्र लीला कथा के श्रवण के द्वारा जैसे-जैसे चित्त का मल धुलता जाता है, वैसे-वैसे उसे सूक्ष्म वस्तु के वास्तविक तत्त्व के दर्शन होने लगते हैं। जैसे अञ्जन के द्वारा नेत्रों के दोषों के मिट जाने पर उनमें सूक्ष्म वस्तुओं को देखने की शक्ति आ जाती है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

ननु **'ब्रह्मविदाप्नोति परम्'**, 'तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति' इत्यादिश्रुतिभ्यो ज्ञानादेवाविद्यानिवृत्त्या त्वत्प्राप्तिरवगम्यते, कुतो भक्तियोगेनेत्युच्यते तत्राह-यथा यथेति। आत्मा चित्तं परिमृज्यते शोध्यते मत्पुण्यकथानां श्रवणैरभिधानैश्च भक्तेरेवावान्तरव्यापारो ज्ञानं न पृथगित्यर्थः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहे कि मैं **'ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्' 'तमेवविदित्वातिमृत्युमेति' इत्यादि** श्रुतियों से उत्पन्न ज्ञान के द्वारा ही अविद्या की निवृत्ति हो जाती है। आप भक्तियोग के द्वारा अज्ञान की निवृत्ति कैसे बतलाते हैं ? तो इसके उत्तर में श्रीभगवान् ने **यथा यथा इत्यादि** श्लोक कहा, मेरी परम पवित्र कथाओं के सुनने और कहने से ही अन्त:करण की शुद्धि होती है। भक्ति के ही अवान्तर व्यापार को ज्ञान कहते है, भक्ति से ज्ञान अलग नहीं है ॥२६॥

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते । मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ॥२७॥

अन्वयः— विषयान् ध्यायतः चित्तं विषयेषु विसज्जते, माम् अनुस्मरतः चित्तं मयि एव प्रविलीयते ॥२७॥

अनुवाद— जो मनुष्य सदा विषयों का चिन्तन करता है उसका चित्त विषयों में फँस जाता है, और जो मेरा स्मरण करता है उसका चित्त मुझमें ही तल्लीन हो जाता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

किंच ज्ञानं नाम चित्तस्य मदाकारपरिणामः, स च मां भजतः स्वभावत एव भवति, न च यत्नान्तरमपेक्षत इति सदृष्टान्तमाह-विषयानिति ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

विषयान्० इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् ने बतलाया कि चित्त जब मेरे आकार को धारण कर लेता है, तो उसे ही ज्ञान कहते हैं। और जो मेरा भजन करता रहता है तो उसका चित्त **स्वभावतः मदाकाराकारित** हो जाता है उसके लिए कोई अलग से प्रयास नहीं करना पड़ता है ॥२७॥

तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथम् । हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम् ॥२८॥

अन्वयः— तस्मात् स्वप्नमनोरथम् असत् अभिध्यानं हित्वा मद्भावभावितम् मनः मयि समाधत्स्व ॥२८॥

अनुवाद— अतएव स्वप्न अथवा मनोरथ कल्पित वस्तुओं के समान इस मिथ्या वस्तुओं का चिन्तन करना तुम बन्द करो और मेरी भक्ति के भावना के संस्कार से संस्कृत अपने मन को मुझमें लगा दो ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

यस्मादन्यसाधनं तत्फलं च स्वप्नमनोरथवदसदभिध्यानमात्रं तस्मात्तद्विहाय मय्येव मनः समाहितं कुर्विति प्रकरणार्थमुपसंहरति-तस्मादिति। मद्भावभावितं मद्भावेन भजनेनैव शोधितम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

चूकि दूसरे साधन और उन साधनों के स्वप्न तथा मनोरथ कल्पित राज्य के समान मिथ्या हैं, अतएव उन वस्तुओं का चिन्तन करना छोड़ दो और अपने मन को मुझमें ही लगाओ इस तरह से श्रीभगवान् इस प्रकरण का उपसंहार **तस्मात्० इत्यादि** श्लोक से करते हैं। मेरा भजन करने से ही पवित्र बने मन को मुझमें लगा दो॥२८॥

स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं त्यक्त्वा दूरत आत्मवान् । क्षेमे विविक्त आसीनश्चिन्तयेन्मामतन्द्रितः ॥२९॥

अन्वयः— आत्मवान् स्त्रीणां स्त्रीसङ्गिनां सङ्गं दूरतः त्यक्त्वा क्षेमे विविक्ते आसीनः माम् अतन्द्रितः चिन्तयेत् ॥२९॥

अनुवाद— संयमी पुरुष स्त्रियों का तथा स्त्रियों के प्रेमी मनुष्यों का सङ्ग दूर से ही त्यागकर पवित्र एकान्त स्थान में बैठकर सावधानी पूर्वक मेरा चिन्तन करे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

विशेषतो वात्स्यायनाद्युक्तकाममार्गाः परित्याज्या इत्याह-स्त्रीणामिति । आत्मवान् धीरः सन् । क्षेमे निर्भये देशे । विविक्ते विजने ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

वात्स्यायनादि के द्वारा उक्त काममार्ग वाले परिज्याज्य हैं । आत्मवान् अर्थात् संयमी पुरुष, क्षेमे अर्थात् निर्भय स्थान में विविक्त अर्थात् विजन स्थान में ॥२९॥

न तथास्य भवेत्क्लेशो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः । योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः ॥३०॥

अन्वयः— पुंसः यथा योषित् सङ्गात् तत्सङ्गिसङ्गतः सङ्गात् यथा क्लेशः बन्धश्च तथा अस्य अन्य प्रसङ्गतः न ॥३०॥

अनुवाद— उद्धव ! स्त्रियों के सङ्ग से तथा स्त्रियों के सङ्गियों के सङ्ग से जैसे क्लेश और बन्धन में पड़ना पड़ता है वैसा क्लेश और बन्धन किसी और के सङ्ग से नहीं होता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

एतदुपपादयति-न तथेति । अस्य पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गत क्लेशो भवेत् । यथा च बन्धो योषित्सङ्गतस्तथान्यप्रसङ्गतो न भवेदिति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त कथन का ही प्रतिपादन **न तथा० इत्यादि** श्लोक से करते हैं । पुरुष को स्त्रियों के सङ्गी के सङ्ग से जैसा क्लेश होता है इस तरह का बन्धन न तो स्त्री के सङ्ग से होता है और न तो किसी दूसरे के सङ्ग से होता है ॥३०॥

उद्धव उवाच

यथा त्वामरविन्दाक्ष यादृशं वा यदात्मकम् । ध्यायेन्मुमुक्षुरेतन्मे ध्यानं मे वक्तुमर्हसि ॥३१॥

अन्वयः— हे अरविन्दाक्ष ! मुमुक्षु : त्वाम् यथा यादृशं यदात्मकम् वा ध्यायेत एतत् ध्यानं मे वक्तुम् अर्हसि ॥३१॥

श्रीउद्धवजी ने कहा

अनुवाद— हे कमल नयन ! मुमुक्षु पुरुष आपका जैसा जिस प्रकार तथा जिस भाव से ध्यान करे हमें उस ध्यान को आप बतलाइये ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

मां चिन्तयेदित्युक्तंतत्प्रकारं पृच्छति-यथेति ध्यानाङ्गप्रश्नः । यादृशमिति ध्येयविशेषणप्रश्नः । यदात्मकमिति यस्य तानि विशेषणानि तत्स्वरूपप्रश्नः । एतन्मे ध्यानं मे वक्तुमर्हसीति पाठः । तत्रायमर्थः-मुमुक्षुस्त्वां यथा ध्यायेत्तन्मे वक्तुमर्हसीति जिज्ञासोः कथनाय । मे पुनरेतत्त्वद्दास्यमेव पुरुषार्थो न तु ध्यानेन कृत्यमस्तीति । तदुक्तम् । 'त्वयोपभुक्तस्रग्गन्ध-' इत्यादि। 'त्वं वक्तुमर्हसि' इति पाठः सुगमः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

पहले श्रीभगवान् कह चुके हैं कि उपासक मेरा चिन्तन करे, **यथात्वाम् इत्यादि** श्लोक से उद्धवजी उसके प्रकार को पूछते हैं । **यथा० इत्यादि** श्लोक ध्यानाङ्ग विषयक है । यादृशम् इस पद से ध्येय विशेषण विषयक प्रश्न किया गया है । **यदात्मकम्० इत्यादि** पद से जिस परमात्मा के वे विशेषण है उनके स्वरूप विषयक प्रश्न है। मुझको इस ध्यान को आप बतलाएँ, उस श्लोक का अर्थ इस प्रकार है । मुमुक्षु जिस प्रकार का ध्यान करे वह मुझे बतलाइये, इस तरह जिज्ञासु को बतलाने के लिए कहा गया है । मेरे लिए तो आपकी दासता ही पुरुषार्थ है, मुझे ध्यान से कोई मतलब नहीं है । उद्धवजी ने **त्वयोपभुक्तस्रग्गन्ध० इत्यादि, त्वं वक्तुम् अर्हसि** यह सुगम पाट है।।३१।।

श्रीभगवानुवाच

सम आसन आसीनः समकायो यथासुखम् । हस्तावुत्सङ्ग आधाय स्वनासाग्रकृतेक्षणः ॥३२॥

अन्वयः— समे आसने आसीनः समकायः यथासुखम् आसीन हस्तौ उत्सङ्ग आधाय स्वनासाग्र कृतेक्षणः ।।३२।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— उपासक को चाहिए कि वह समतल आसन पर सुखपूर्वक बैठकर शरीर को सीधा रखे, अपने दोनों हाथों को अपनी गोद में रखकर अपनी नासिका के अग्रभाग को देखे ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

तत्र ध्यानाङ्गत्वेनासनप्राणायामप्रकारमाह-सम इति चतुर्भिः । समे नात्युच्छ्रिते नातिनीचे आसने कम्वलादौ समकायः सन्। यथासुखमासीन इति नास्ति स्वस्तिकादिनियम इत्युक्तम् । नासाग्रनिरीक्षणं च चित्तस्थैर्याय-'अन्तर्लक्ष्योऽवहिर्दृष्टिः स्थिरचित्तः सुसंयतः' इति योगशास्त्रोक्तेः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

ध्यान के अङ्ग रूप से आसन एवं प्राणायाम को **समे० इत्यादि** चार श्लोक से बतलाते हैं न तो अधिक ऊँचा और न तो अधिक नीचा हो इस प्रकार के स्थान में कम्वल आदि के आसन पर अपने शरीर को सीधा रखकर सुख पूर्वक बैठे । **अतः स्वस्तिकादि आसन इत्यादि** का नियम नहीं हैं । चित्त की स्थिरता के लिए अपनी नासिका के अग्रभाग में देखे । योगशास्त्र में कहा गया है कि **अन्तर्लक्ष्योऽबर्हिः दृष्टिः स्थिरचितः सुसंयतः।** अर्थात् अपने हृदय में ध्येय का ध्यान करे, वाहर दृष्टि न करे, संयमी का चित्त स्थिर होना चाहिए तथा वह अच्छी तरह संयत बना रहे ।।३२।।

प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः । विपर्ययेणापि शनैरभ्यसेन्निर्जितेन्द्रियः ॥३३॥

अन्वयः— प्राणस्य मार्गं। पूरक कुम्भकरेचकैः विपर्ययेणापि शोधयेत् निर्जितेन्द्रियः शनैः अभ्यसेत् ।।३३।।

अनुवाद— प्राणायाम के पूरक कुम्भक रेचक तथा रेचक कुम्भक पूरक के द्वारा पहले नाड़ियों के मार्गों का शोधन करे। प्रणायाम के अभ्यास को धीरे-धीरे बढ़ाये, तथा अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखें ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

विपर्ययेण रेचकपूरककुम्भकक्रमेणापि । यद्वा वामनाड्या पूरितं दक्षिणया त्यजेत्तया वा पूरितं वामयेत्येवं विपर्ययेण। यथोक्तं योगे-'इडया पूरयेद्वायुं त्यजेत्पिङ्गलया ततः । पिङ्गलापूरितं वायुमिडया च परित्यजेत् ।' इति । निर्जितेन्द्रिय इति प्रत्याहार उक्तः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

विपर्ययेण अर्थात् रेचक पूरक तथा कुम्भक के क्रम से भी अथवा वायीं नाड़ी से पूरक करके दाहिनी नाड़ी से

श्वास छोडे । अथवा दाहिनी नाड़ी से पूरक करके बायी नाड़ी से छोड़े । योग शास्त्र में कहा गया है । **इडया पूरयेद्वायुं त्यजेत् पिङ्गलया ततः । पिङ्गला पूरितं वायुमिडया च परित्यजेत् ।** अर्थात् इडा नाड़ी से वायु को खीचंकर पिङ्गला नाडी से रेचक करे । तथा पिङ्गला नाड़ी से वायु खीचंकर इडा नाड़ी से रचेक करे । निर्जितेन्द्रियः पद से प्रत्याहार को कहा गया है ॥३३॥

हृद्यविच्छिन्नमोङ्कारं घण्टानादं बिसोर्णवत् । प्राणेनोदीर्य तत्राथ पुनः संवेशयेत्स्वरम् ॥३४॥

अन्वयः— हृदि विसोर्णवत् अविच्छिन्नं घण्टानादम् ॐकारम् प्राणेनोदीर्य अथ तत्र पुनः स्वरम् संवेशयेत् ॥३४॥

अनुवाद— हृदय में कमलनाल के सूत के समान पतले ॐकार का चिन्तन करे प्राण के द्वारा उसे ऊपर ले जाय और उसमें घण्टा नाद के समान स्वर स्थिर करे । उस स्वर का तांता टूटने न पाये ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

प्राणायामो द्विविधः-सगर्भोऽगर्भश्चेति । तत्र श्रेष्ठत्वात्प्रणवगर्भमाह-हृदीति द्वाभ्याम् । मूलाधारादारभ्याविच्छिन्नं सन्तं घण्टानादतुल्यमोङ्कारं हृदि संस्थितं प्राणेनोदीर्योर्ध्वं द्वादशान्तपर्यन्तं नीत्वा । कथम् । विसोर्णवत् कमलनालतन्तुवत् । तत्र मात्रातीते स्वरं पञ्चदशं बिन्दुः संवेशयेत् । अथ पुनरित्यस्य तं च विन्दुशिरस्कं कुर्यादित्यर्थः । यद्वा, मूलाधारादारभ्य मूर्धान्तपर्यन्तं बिसतन्तुवत्सूक्ष्ममविच्छिन्नं सन्ततं हृदि मनसि प्राणेनोदीर्याभिव्यज्याथ पुनस्तत्रोङ्कारे घण्टानादतुल्यं स्वरमुदात्तं नादं स्थिरीकुर्यादिति ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

प्राणायाम दो प्रकार का होता है सगर्भ और अगर्भ । उनमें श्रेष्ठ होने के कारण प्रणवगर्भ को **हृदि० इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा कहा गया है । मूलाधार से लेकर अविच्छिन्न घण्टानाद के समान ओङ्कार जो हृदय में विद्यमान है उसको प्राण के द्वारा ऊपर की ओर द्वादशान्त पर्यन्त लाकर । कैसे ? कमलनाल गत सूत के समान । वहाँ पर मात्रा रहित स्वर पन्द्रह विन्दु को प्रवेश कराये । **अथ पुनः** इसका अर्थ है उसके ऊपर के भाग में विन्दु करे। अथवा मूलाधार से प्रारम्भ करके शिरोभाग पर्यन्तं कमलनालगत तन्तु के समान पतला और निरन्तर मन में प्राण के द्वारा उच्चारण करके उस ओङ्कार में घण्टानाद के समान उदात्त स्वर को स्थिर करे ॥३४॥

एवं प्रणवसंयुक्तं प्राणमेव समभ्यसेत् । दशकृत्वस्त्रिषवणं मासादर्वाग्जितानिलः ॥३५॥

अन्वयः— एवं प्रणव संयुक्तं प्राणमेव दशकृत्वः त्रिषवणं समभ्यसेत् मासादर्वाक् जितानिल भवतीति शेष ॥३५॥

अनुवाद— इस प्रकार प्रतिदिन तीनों कालों में दस-दस बार ओङ्कार सहित प्राणायाम का अभ्यास करे । ऐसा करने से एक महीने के भीतर ही प्राणवायु वश में हो जाती है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

मासादर्वाक् जितानिलो भवति ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

प्राणवायु वश में हो जाती है ॥३५॥

हृत्पुण्डरीकमन्तस्थमूर्ध्वनालमधोमुखम् । ध्यात्वोर्ध्वमुखमुन्निद्रमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥३६॥

अन्वयः— हृत्पुण्डरीकम् अन्तस्थं ऊर्ध्वनाम् अधोमुखम् ऊर्ध्वमुखम् उन्निद्रं अष्टपत्रं सकर्णिकम् ध्यात्वा ॥३६॥

अनुवाद— इसके पश्चात् ऐसा चिन्तन करे कि हृदय एक कमल है, वह शरीर के भीतर ऐसे स्थित है । उसकी डंडी तो ऊपर की ओर गयी है और मुहँ नीचे की ओर है । अब ध्यान करना चाहिए कि उसका मुँह ऊपर की ओर होकर खिल गया है । उसके आठ दल हैं और उसके बीचो-बीच अत्यन्त सुकुमार पीली गदी है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

एवं ध्यानाङ्गमुक्त्वा यादृशमित्यस्योत्तरं वक्तुं ध्येयपीठमाह-हृत्पुण्डरीकमिति सार्धेन । अन्तस्थं देहान्तर्वर्ति ऊर्ध्वनालमधोमुखं मुकुलितं च कदलीपुष्पसंकाशं यदस्ति तद्विपरीतं ध्यात्वेत्यर्थः ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से ध्यान के अङ्ग का वर्णन करके उद्धवजी के **यादृशम्** इस प्रश्न का उत्तर बतलाने के लिए ध्येय के पीठ का वर्णन श्रीभगवान् **हृत्पुण्डरीकम् इत्यादि** डेढ श्लोक से करते है । शरीर के भीतर विद्यमान ऊपर की ओर डंडी वाला तथा नीचे की ओर मुकुलित, कदली पुष्प के समान जो उसके विपरीत कमल है उसका ध्यान करें।।३६।।

कर्णिकायां न्यसेत्सूर्यसोमाग्नीनुत्तरोत्तरम् । वह्निमध्ये स्मरेद्रूपं ममैतद्ध्यानमङ्गलम् ।।३७।।

अन्वयः— कर्णिकायां सूर्यसोमाग्नीन् उत्तरोत्तरम् न्यसेत् वह्निमध्ये मम एतद् ध्यान मङ्गलं रूपं स्मरेत् ।।३७।।

अनुवाद— कर्णिका पर क्रमशः सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि का न्यास करे । उसके पश्चात् अग्नि के भीतर मेरे इस रूप का स्मरण करे । मेरा यह स्वरूप ध्यान के लिए अत्यन्त मङ्गलकारी है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

न्यसेच्चिन्तयेत् । सविशेषणं ध्यानमाह-वह्निमध्य इति षड्भिः । ध्यानमङ्गलं ध्यानस्य शुभं विषयम् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

न्येसत् अर्थात् चिन्तन करे । विशेषण विशिष्ट ध्यान वह्निमध्ये इत्यादि छह श्लोकों से बतलाते हैं **ध्यानमङ्गलम्** ध्यान का शुभ विषय है ।।३६।।

समं प्रशान्तं सुमुखं दीर्घचारुचतुर्भुजम् । सुचारु सुन्दरग्रीवं सुकपोलं शुचिस्मितम् ।।३८।।

अन्वयः— समं प्रशान्तं सुमुखम् दीर्घचारुतुर्भुजम् सुचारु सुन्दरग्रीवं सुकपोलम् शुचिस्मितम् ।।३८।।

अनुवाद— मेर अवयवों की गठन बड़ी ही सुडौल है । रोम-रोम से शान्ति टपकती हे । विकसित कमल के समान मनोहर मुख अत्यन्त प्रसन्न है । घुटनों तक लटकने वाली मेरी चार भुजाएँ हैं । सुन्दर ग्रीवा है । मरकत मणि के समान सुस्निग्ध कपोल है । मुख पर मन्द-मन्द मुस्कान की मनोहर छटा है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

सममनुरूपावयवम् । दीर्घाश्चारवश्चत्वारो भुजा यस्मिंस्तत् । सुचारु अतिरम्यम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

सभी अङ्ग समान एवं स्वरूपानुरूप हैं । लम्बी तथा मनोहर चार भुजायें है । सुचारु अर्थात् अत्यन्त मनोज्ञ।।३८।।

समानकर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम् । हेमाम्बरं घनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम् ।।३९।।
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् । नूपुरैर्विलसत्पादं कौस्तुभप्रभया युतम् ।।४०।।
द्युमत्किरीटकटककटिसूत्राङ्गदायुतम् । सर्वाङ्गसुन्दरं हृद्यं प्रसादसुमुखेक्षणम् ।।
सुकुमारमभिध्यायेत्सर्वाङ्गेषु मनो दधत् ।।४१।।

अन्वयः— समान कर्णविन्यस्तस्फुरन्मकरकुण्डलम् हेमाम्बरं घनश्यामं श्रीवत्सश्रीनिकेतनम्, शङ्खचक्रगदापद्मवनमाला विभूषितम्, नूपुरैः विलसत्पादम्, कौस्तुभप्रभया युतम् द्युमत्किरीट कटककटिसूत्रांगदायुतम् सर्वाङ्गसुन्दर हृद्यम् प्रसादसुमुखेक्षणम् सुकुमारम् सर्वाङ्गेषु मनोदधत् अभिध्येयित् ।।३९-४१।।

अनुवाद— उपासक को ध्यान करना चाहिए कि हमारे दोनों ओर के कान बराबर हैं और उनमें मकराकृति कुण्डल

चमक रहे हैं। वर्षा कालीन मेघ के समान श्याम वर्ण के शरीर पर पीला पीताम्बर सुवर्ण के समान चमक रहा है। श्रीवत्सचिह्न और श्रीलक्ष्मीजी के निवास स्थान का चिह्न वक्षस्थल पर वायीं और दायीं ओर सुशोभित हो रहा है, हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण किए हुए हैं और गले में वनमाला लटक रही है, चरणों में नूपुर सुशोभित हो रहे हैं गले में कौस्तुभमणि चमचमा रही है। अपने-अपने स्थानों पर चमकते हुए किरीट, कङ्कण, कटिसूत्र और अङ्गद सुशोभित हो रहे हैं। मेरे सभी अङ्ग सुन्दर और हृदयहारी हैं, सुन्दर मुख और नेत्र प्रसन्न हैं। उपासक को मेरे सुकुमार रूप का ध्यान करना चाहिए और अपने मन को मेरे एक-एक अङ्ग में लगाना चाहिए ॥३९-४१॥

भावार्थ दीपिका

समानयोः कर्णयोर्विन्यस्ते स्फुरती मकराकारे कुण्डले यस्मिंस्तत्। श्रीवत्सश्रियोर्निकितनं वक्षसि दक्षिणवामतः। ताभ्यां युक्तमित्यर्थः। द्युमद्भिः किरीटादिभिरासमन्ताद्युतमलंकृतम्। प्रसादेन शोभनं मुखमीक्षणं च यस्मिंस्तत्। सुकुमारमतिकोलम्॥३९-४१॥

भाव प्रकाशिका

दोनों ओर के बराबर कानों में मकराकृति कुण्डल चमक रहे हैं। श्रीवत्स चिह्न और श्रीदेवी दोनों के निवास स्थान वक्षस्थल के दोनों ओर विराजमान हैं। उन दोनों से युक्त मेरा वक्षस्थल है। चमचमाते किरीट आदि सुशोभित हैं मेरे अङ्ग मेरा मुखकमल और नेत्र प्रसन्नता से सुशोभित हैं। सुकुमारम् अर्थात् अत्यन्त कोमल ॥३९-४१॥

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यो मनसाकृष्य तन्मनः। बुद्ध्या सारथिना धीरः प्रणयेन्मयि सर्वतः ॥४२॥

अन्वयः— धीरः मनसा इन्द्रियाणि इन्द्रियार्थेभ्यः आकृष्य तन्मनः सर्वतः मयि प्रणयेत् ॥४२॥

अनुवाद— बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह मन के द्वारा इन्द्रियों के उनके विषयों से खींचकर उन मन को मुझमें पूर्णरूप से लगा दे ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

सविशेषणं ध्यानमुपसंहरतिं-इन्द्रियाणीति। प्रकर्षेण नयेत्। सर्वतः सर्वाङ्गयुक्ते ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

विशेषण विशिष्ट रूप से ध्यान का उपसंहार करते है प्रणयेत् अर्थात् सर्वाङ्ग सम्पन्न मुझमें मन को लगा दे ॥४२॥

तत्सर्वव्यापकं चित्तमाकृष्यैकत्र धारयेत्। नान्यानि चिन्तयेद्भूयः सुस्मितं भावयेन्मुखम् ॥४३॥

अन्वयः— तत् सर्वव्यापके चित्तम् आकृष्य एकत्र धारयेत् अन्यानि न चिन्तयेत् भूयः सुस्मितं मुखं भावयेत् ॥४३॥

अनुवाद— जब सम्पूर्ण शरीर का ध्यान होने लगे तो उस चित्त कों खीचंकर किसी एक स्थान में लगा दे। उसके बाद किसी अंग का चिन्तन न करे केवल मन्द-मन्द मुस्कान से युक्त मेरे मुख का ध्यान करता रहे ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

यादृशमित्यस्योत्तरत्वेन सविशेषणमुक्त्वा यदात्मकमित्यस्योत्तरतया शनैर्विशेषणत्यागेन ध्यानमेव समाधिपर्यन्तमाह-तदिति त्रिभिः। एकत्राङ्गे। अन्यान्यङ्गानि न चिन्तयेत्। एकत्रेति यदुक्तं तदेवाङ्गं दर्शयति-सुस्मितमिति ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी के जिस तरह का इस प्रश्न के उत्तर में विशेषण विशिष्ट बतलाकर **यदात्मकम्** इस प्रश्न के उत्तर रूप से विशेषण का त्याग के द्वारा ध्यान को ही **तत्सर्व० इत्यादि** तीन श्लोकों द्वारा समाधि पर्यन्त का वर्णन श्रीभगवान् ने किया है। एक अङ्ग में यह एकत्र का अर्थ है। दूसरे अङ्गों का चिन्तन न करे एकत्र शब्द से भगवान् ने जिस अङ्ग को कहा उसी को सुस्मितम् पद से बतलाते हैं ॥४३॥

तत्र लब्धपदं चित्तमाकृष्य व्याम्नि धारयेत् । तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥४४॥

अन्वयः— तत्र लब्धपदं चित्तम् आकृष्य व्योम्नि धारयेत् तच्च त्यक्त्वा मदारोहः नकिञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥४४॥

अनुवाद— जब मेरे मुखारविन्द में चित्त टिक जाय तो उसे वहाँ से हटाकर उसको आकाश में लगा दे । आकाश से चित्त को हटाकर मेरे स्वरूप में ही आरूढ हो जाय और उसके पश्चात् किसी का भी चिन्तन न करे ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

व्योम्नि सर्वकारणरूपे । तच्च कारणत्वमपि त्यक्त्वा मदारोहो मयि शुद्धे ब्रह्मण्यारूढः सन् किंचिद्ध्यातृध्येयविभागमपि न चिन्तयेत् ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

सबों के कारण रूप व्योम में उस कारणत्व का भी त्याग करके मुझ शुद्ध ब्रह्म में आरूढ होकर ध्याता एवं ध्येय रूप विभाग का भी चिन्तन न करे ॥४४॥

एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि । विचष्टे मयि सर्वात्मन् ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम् ॥४५॥

अन्वयः— एवं समाहितमतिः ज्योतिषि संयुतम् ज्योतिः इव माम् एव आत्मानम् आत्मनि मयि सर्वात्मन् विचष्टे॥४५॥

अनुवाद— जब चित्त इस प्रकार समाहित हो जाय तब एक ज्योति जैसे दूसरी ज्योति से मिलकर एक हो जाती है । वैसे ही अपने में मुझे और मुझ सर्वात्मा में अपने को अनुभव करने लगता है ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

मामेवात्मनि विचष्टे आत्मानं च सर्वात्मनि मयि संयुतं विचष्टे । ज्योतिर्ज्योतिषि संयुक्तमिवेत्यन्वयः ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

मुझको ही अपनी आत्मा में अनुभव करने लगता है और सर्वात्मा मुझमें अपने को अनुभव करने लगता है । जिस तरह एक ज्योति दूसरी ज्योति से मिलकर एक हो जाती है, उसी तरह ॥४५॥

ध्यानेनेत्थं सुतीव्रेण युञ्जतोयोगिनो मनः । संयास्यत्याशु निर्वाणं द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धव संवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अन्वयः— इत्थं सुतीव्रेण ध्यानेन युञ्जतः योगिनः मनः द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमः आशु निर्वाणं संयास्यति ॥४६॥

अनुवाद— इस तरह तीव्र ध्यान के द्वारा अपने मन को मुझमें लगाने वाला युञ्जान योगी का शीघ्र ही द्रव्य ज्ञान क्रिया रूप भ्रम या अधिभूत, अधिदैव तथा अध्यात्म रूप भ्रम, या दृश्य, द्रष्टा एवं दर्शन रूप भ्रम शीघ्र दूर हो जाता है ॥४६॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के श्रीभगवान् और उद्धव संवाद के अन्तर्गत चौदहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतसमाधिपर्यन्तध्यानस्य फलमाह-ध्यानेनेति । मनोयुञ्जतः समादधतः । द्रव्यज्ञानक्रियाभ्रमोऽधिभूताधिदैवाध्यात्मरूपो दृश्यद्रष्टृदर्शनरूपो वा भ्रमो निर्वाणं शान्तिं सम्यग्यास्यतीति ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह समाधि पर्यन्त ध्यान के फल को कहकर जिस युञ्जान योगी का मन मुझमें लग गया है, उसका शीघ्र

ही द्रव्य, ज्ञान और क्रिया रूप भ्रम या अधिभूत, अधिदैव एवं अध्यात्म रूप भ्रम, या दृश्य, द्रष्टा और दर्शन रूप भ्रम शीघ्र ही शान्त हो जाता है ।।४६।।

इस तरह *श्रीमद्भागवत* महापुराण के *ग्यारहवें स्कन्ध* की भावार्थदीपिका नामक टीका के चौदहवें *अध्याय* की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१४।।

* * *

पन्द्रहवाँ अध्याय

भिन्न-भिन्न सिद्धियों के नाम और उनका लक्षण

श्रीभगवानुवाच

जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः । मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धयः ॥१॥

अन्वयः— जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिनः मयि चेतः ध्यायतः सिद्धयः उपतिष्ठन्ति ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— प्रिय उद्धव जब साधक अपनी इन्द्रियों प्राण एवं मन को अपने वश में कर लेता है और अपना चित्त मुझमें लगाने लगता है तब उसके सामने सिद्धियाँ उपस्थित होती हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ततः पञ्चदशे प्रोक्ताः सिद्धयो धारणानुगाः । श्रीविष्णुपदसंप्राप्तवन्तरायतया मताः । एवं मनो युञ्जतो योगिनोऽन्तराविर्भवन्त्यः सिद्धयोऽप्यन्तरायप्राया एव, अतस्ताः परिहृत्य परमेश्वरपर एव भवेदिति वक्तुं सिद्धीराह-जितेन्द्रियस्येति । युक्तस्य स्थिरचित्तस्य॥१॥

भाव प्रकाशिका

ध्यान के वर्णन के पश्चात् पन्द्रहवें अध्याय में धारणा का अनुगमन करने वाली सिद्धियों को बतलाया गया है वे सिद्धियाँ भगवान् विष्णु के पद की प्राप्ति में अन्तराय (विघ्न) स्वरूप मानी गयी हैं । इस प्रकार से अपने मन को भगवान् में लगाने वाले योगी के अन्तराय भूत सिद्धियाँ योगियों के मन में उत्पन्न होती है । अतएव उन सिद्धियों को त्यागकर परमात्म परायण ही हो जाना चाहिए । इस बात को बतलाने के लिए **जितेन्द्रियस्य० इत्यादि** श्लोक के द्वारा सिद्धियों को श्रीभगवान् बतलाते हैं । युक्तस्य अर्थात् उसका चित्त स्थिर हो गया है ॥१॥

उद्धव उवाच

कया धारणया का स्वित्कथं स्वित्सिद्धिरच्युत । कति वा सिद्धयो ब्रूहि योगिनां सिद्धिदो भवान्॥२।

अन्वयः— हे अच्युत ! कया धारणया कथंस्वित् कास्वित् सिद्धिः कति वा सिद्धयः ब्रूहि भवान् योगिनां सिद्धिदः॥२।

अनुवाद— हे अच्युत ! किस धारणा के करने से किस प्रकार की कौन सी सिद्धि प्राप्त होती है ? सिद्धियं कितनी हैं । आप ही योगियों को सिद्धि प्रदान करते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

स्विदिति वितर्के । का स्वित्किंनामा, कथं स्वित्कीदृशी वा । धारणाश्च कतीति प्रश्नान्तरे वाशब्दः । त्वमेवैतज्जानासि नान इत्याशयेनाह-योगिनामिति ॥२॥

भाव प्रकाशिका

स्वित् शब्द वितर्क का बोधक है कास्वित अर्थात् कौन सी ? कथंस्वित् अर्थात् किस प्रकार की ? धारणा भी कितने प्रकार की होती है ? कति यह दूसरे प्रश्न के अर्थ में वा शब्द का प्रयोग है । आप ही इसको जानते हैं दूसरा कोई नहीं जानता है । इसी अभिप्राय से कहा गया है कि आप ही योगियों को सिद्धि प्रदान करते हैं।।२।।

श्रीभगवानुवाच

सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता धारणा योगपारगैः । तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुणहेतवः ।।३।।

अन्वयः— धारणा योगपारगैः सिद्धयः अष्टादश प्रोक्ता तासाम् अष्टौ मत्प्रधानाः दशैव गुणहेतवः ।।३।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— प्रिय उद्धवजी धारणायोग के पारंगत योगियों ने अठारह सिद्धियों को बतलाया है उनमें आठ तो प्रधान रूप से मुझमें ही रहती हैं दूसरों में वे न्यून मात्रा में होती हैं । शेष दश सिद्धियाँ सत्त्वगुण के उत्कर्ष से हो जाती हैं ।।३।।

भावार्थ दीपिका

धारणाश्चाष्टादशेत्यनुषङ्गः' योगपारगैरिति । त्रिकालज्ञत्वादिक्षुद्रसिद्धीरन्येऽपि जानन्तीति भावः । अहमेव प्रधानं मुख्यः स्वभावत आश्रयो यासां ताः । मत्सारूप्यं प्राप्तेषु किंचिन्न्यूनां भवन्तीति भावः । गुणहेतवः सत्त्वोत्कर्षहेतुकाः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

धारणा भी अठारह होती है । योगपारगैः अर्थात् योगपारंगत त्रिकालज्ञ इत्यादि हो जाना छोटी सिद्धियाँ हैं उनको दूसरे भी जानते हैं । मैं ही उन आठ सिद्धियों का स्वभावत मुख्य आश्रय हूँ । मेरे सारुप्य को प्राप्त वे सब कुछ न्यून होते हैं । गुणहेतवः अर्थात् सत्व गुण के उत्कर्ष से प्राप्त हो जाती हैं ।।३।।

अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः । प्राकाश्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ।।४।।

अन्वयः— मूर्ते अणिमा, महिमा, लघिमा, इन्द्रियैः प्राप्तिः, श्रुतदृष्टेषु प्राकाश्यम् शक्तिप्रेरणमीशिता ।।४।।

अनुवाद— इनमें तीन सिद्धियाँ शरीर की हैं **अणिमा, महिमा और लघिमा** इन्द्रियों की एक सिद्धि है **प्राप्ति,** लौकिक एवं पारलौकिक पदार्थों का इच्छानुसार अनुभव करने वाली सिद्धि **प्राकाम्य** है । माया और उसके कार्यों के संचालित करना **ईशिता** नाम की सिद्धि है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

ताः स्वरूपेणोपदिशति-अणिमेति सार्धैः पञ्चभिः । अणिमा महिमा लघिमा च मूर्तेर्देहस्य तिस्रः सिद्धयः । प्राप्तिर्नाम सिद्धिः । सर्वप्राणिनामिन्द्रियैः सह तत्तदधिष्ठतृदेवतारूपेण संबन्ध इत्यर्थः । श्रुतेषु पारलौकिकेषु दृष्टेषु दर्शनयोग्येष्वपि सर्वेषु भूविवरादिपिहितेष्वपि प्राकाश्यं भोगदर्शनसामर्थ्यं सिद्धिः शक्तीनां मायातदंशभूतानां प्रेरणम् । तत्रेश्वरे मायाया अन्येषु तदंशानां प्रेरणमीशिता नाम सिद्धिः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

उन सिद्धियों का स्वरूपतः उपदेश अणिमा आदि साढे पाञ्च श्लोकों से देते हैं । अणिमा, महिमा और लघिमा ये तीन सिद्धियाँ शरीर की हैं । सभी प्राणियों की इन्द्रियों के साथ उनकी अधिष्ठात्री देवता के रूप में संबन्ध होना प्राप्ति नामक सिद्धि है। पारलौकिक तथा दृष्ट एवं देखने योग्य भी पृथिवी के विवरों में गड़े हुए पदार्थों के भोग तथा देखने के सामर्थ्य रूप सिद्धि का नाम प्राकाश्य है । शक्तियों माया और उसके कार्यों को अपनी इच्छानुसार संचालित करने वाली सिद्धि का नाम ईशिता है। ईश्वर में माया के अन्य अंशों को प्रेरित करना ही **ईशिता** है ।।४।।

गुणेष्वसङ्गो वशिता यत्कामस्तदवस्यति । एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः ॥५॥

अन्वयः— गुणेषु असङ्गः वशिता यत्कामस्त तदवस्यति, हे सौम्य एतामे अष्टौ सिद्धयः औत्पत्तिका; मताः ॥५॥

अनुवाद— विषयों में रहकर उनमें आसक्त न रहना **वशिता** नाम की सिद्धि है । जिस-जिस सुख की इच्छा हो उसकी सीमा तक पहुँच जाना ही कामावसायिता नाम की आठवीं सिद्धि हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

विषयभोगेष्वसङ्गो वशिता सिद्धिः । यत्कामो यद्यत्सुखं कामयते तत्तदवस्यति तस्य तस्य सीमानं प्राप्नोतीति सिद्धिः। औत्पत्तिकाः स्वाभाविक्यो निरतिशयाश्चेत्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

विषयों में रहकर भी उनमे आसक्त न होना ही **वशिता** नाम की सिद्धि है । जिस-जिस सुख की इच्छा हो उसकी सीमा तक पहुँच जाना ही **कामावसायिता** नाम की सिद्धि है । ये सभी आठो सिद्धियाँ स्वाभाविक रूप से मुझ परमेश्वर में निःसीम रूप से रहती हैं ॥५॥

अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन्दूरश्रवणदर्शनम् । मनोजवः कामरूपं परकायप्रवेशनम् ॥६॥
स्वच्छन्दमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम् । यथासङ्कल्पसंसिद्धिराज्ञाऽप्रतिहता गतिः ॥७॥

अन्वयः— अस्मिंन् देहे अनूर्मिमत्त्वं दूरश्रवणदर्शनम्, मनोजवः कामरूपः परकायप्रवेशनम् स्वच्छन्दमृत्युः, देवानां सहक्रीडानुदर्शनम्, यथा सङ्कल्प संसिद्धिः, आज्ञाप्रतिहता गतिः ॥६-७॥

अनुवाद— इस शरीर में भूख प्यास आदि वेगों का न होना, बहुत दूर की वस्तु को देख लेना और बहुत दूर की बात को सुन लेना, मन के साथ ही शरीर का उस स्थान पर पहुँच जाना, अपनी इच्छा के अनुसार रूप बना लेना, दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाना, अपनी इच्छा के अनुसार ही शरीर त्याग करना, अप्सराओं के साथ होने वाली देव कीड़ा का दर्शन सङ्कल्प की सिद्धि, सर्वत्र सबों द्वारा बिना किसी रोक-टोक के आज्ञा का पालन, ये दस सिद्धियाँ सत्त्वगुण के विशेष विकास से होती हैं ॥६-७॥

भावार्थ दीपिका

गुणहेतुसिद्धीराह-अनूर्मिमत्त्वं क्षुत्पिपासादिराहित्यम् । दूरे श्रवणं दर्शनं चेति द्वे सिद्धी । मनोवेगेन देहस्य गतिः । कामितरूपप्राप्तिः । परकाये प्रवेशः । स्वेच्छामृत्युः । अप्सरोभिः सह देवानां याः क्रीडास्तासामनुदर्शनं प्राप्तिः । संकल्पानुरूपप्राप्तिः। अप्रतिहता आसमन्ताद्गतिर्यस्याः सा आज्ञा चेत्येता दश ॥६-७॥

भाव प्रकाशिका

सत्त्व के विकास से होने वाली सिद्धियों को अनूर्मिमत्त्व इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् बतलाते हैं, शरीर में भूख-प्यास का न होना यही **अनूर्मिमत्व है । दूरश्रवण** अर्थात् दूर की बात को सुन लेना, **दूरदर्शनम्** दूर की वस्तु को देख लेना, **मनोजव** मन के साथ ही शरीर का भी अभिप्रेत स्थान पर पहुँच जाना, **कामरूप** अपनी इच्छा के अनुसार रूप बना लेना, **परकाय प्रवेश** दूसरे के शरीर में प्रवेश कर जाना, **स्वच्छन्द मृत्यु** अपनी इच्छा के अनुसार शरीर का त्याग करना, **देवानां सहक्रीडानुदर्शनः** देवताओं की अप्सराओं के साथ होने वाली क्रीडा को देख लेना । **यथांसकल्प सिद्धिः** अपने सङ्कल्प की सिद्धि, **आज्ञाप्रतिहतागतिः** अव्यवहित रूप से सबों का आज्ञा पालन करना ये दस सिद्धियाँ सत्त्वगुण के उत्कर्ष से प्राप्त होती हैं ॥६-७॥

त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ताद्यभिज्ञता । अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भोऽपराजयः ॥८॥
एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता योगधारणसिद्धयः । यया धारणया या स्याद्यथा वा स्यान्निबोध मे॥९॥

अन्वयः— त्रिकालज्ञत्वम, अद्वन्द्वम् परचित्ताद्यभिज्ञता अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भः अपराजयः । एताः च योग धारण सिद्धयः उद्देशतः प्रोक्ता; यया धारणया या स्यात् यथा वा स्यात् मे निबोध ॥८-९॥

अनुवाद— त्रिकालज्ञता अर्थात् भूत भविष्यत् एवं वर्तमान की बातों को जान लेना, अद्वन्द्वम् अर्थात्, शीत उष्ण, राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों के वश में नहीं होना, परचित्ताद्यभिज्ञता अर्थात् दूसरे के मन की बातों को जान लेना, अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टभः अग्नि, सूर्य तथा विष की शक्ति को रोक देना, अपराजयः, किसी से पराजित नहीं होना। उद्धव मैंने योग धारणा से जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उनका नाम निर्देश पूर्वक वर्णन किया अब मैं यह बतलाता हूँ कि किस धारणा से कौन सी सिद्धि प्राप्त होती है, उसे तुम सुनो ॥८-९॥

भावार्थ दीपिका

क्षुद्रसिद्धीश्च पञ्चाह-त्रिकालज्ञत्वमिति । अद्वन्द्व शीतोष्णाद्यनभिभवः । अग्न्यादीनां संस्तम्भनम् । तत्तद्धारणाभिः सह विशेषतो निरूपयति-ययेति यावत्समाप्ति ॥८-९॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् छोटी-छोटी योग से प्राप्त होने वाली पाँच सिद्धियों को त्रिकाल ज्ञत्वम् इत्यादि श्लोक से बतलाये। अद्वन्द्वम् शीत-उष्ण आदि द्वन्दों से अभिभूत न होना । अग्नि आदि को स्तम्भित कर देना, यया इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त यह बतलाते है कि किस-किस धारण से किस-किस सिद्धि की प्राप्ति होती है ?॥८-९॥

भूतसूक्ष्मात्मनि मयि तन्मात्रं धारयेन्मनः । अणिमानमवाप्नोति तन्मात्रोपसको मम ॥१०॥

अन्वयः— भूतसूक्ष्मात्मनि मयि तन्मात्रं मनः धारयेत् मम तन्मात्रोपासकः अणिमानम् आप्नोति ॥१०॥

अनुवाद— भूतों की तन्मात्राएँ (सूक्ष्मतमावस्थाएँ) मेरा शरीर हैं । जो साधक मेरे उस शरीर की ही उपासना करता है । उस मेरे शरीर से अतिरिक्त किसी भी वस्तु का चिन्तन नहीं करता है, उसे अणिमा नामक सिद्धि की प्राप्ति होती है । इस सिद्धि से योगी पत्थर में भी प्रवेश कर जाता है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

भूतसूक्ष्मोपाधौ मयि तन्मात्रं भूतसूक्ष्माकारम् । स तन्मात्रोपासकः । मम मदीयमणिमानम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

भूतों की सूक्ष्मतमावस्था रूप मुझमें । तन्मात्रम् अर्थात् भूतों का सूक्ष्मतम आकार । वह तन्मात्राओं का उपासक मेरी अणिमा सिद्धि को प्राप्त कर लेता है ॥१०॥

महत्यात्मन्मयि परे यथासंस्थं मनो दधत् । महिमानमवाप्नोति भूतानां च पृथक्पृथक् ॥११॥

अन्वयः— महत्यात्मन्मयि परे यथा संस्थं मनोदधत् भूतानां पृथक् पृथक् च मनो दधत् महिमानम् अवाप्नोति॥११॥

अनुवाद— महत् तत्त्व भी मेरा शरीर है । उस मेरे शरीरभूत महत् तत्त्व में जो साधक अपने तदाकार मन को लगा देता है, वह महिमा नामक सिद्धि को प्राप्त कर लेता है । पञ्चभूत भी मेरा शरीर है । उनकी महत्ता में अलग-अलग जो अपने मन को लगा देता है, वह उनकी महत्ता को प्राप्त कर लेता है, यह भी महिमा सिद्धिका एक रूप है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञानशक्तिमहत्तत्वोपाधौ मयि यथासंस्थं महत्तत्वाकारम् । भूतानां चेति । आकाशादिभूतोपाधौ च मयि मनो धारयंस्तत्तद्भुतमहिमानं प्राप्नोतीत्यर्थः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

ज्ञान शक्ति रूप महत् तत्त्व उपाधि भूत मेरे शरीर में महत् तत्त्वाकार । आकाशादि भूत भी मेरा शरीर है उन सबों के अलग महत्त्वाकार में अपने मन को लगाने ये योगी मेरी महिमा नाम की सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।।११।।

परमाणुमये चित्तं भूतानां मयि रञ्जयन् । कालसूक्ष्मार्थतां योगी लघिमानमवाप्नुयात् ।।१२।।

अन्वयः— भूतानां परमाणु मये मयि चित्तं रञ्जयन् योगी कालसूक्ष्मार्थतां लघिमानम् अवाप्नोति ।।१२।।

अनुवाद— जो योगी वायु आदि चारभूतों के परमाणुओं को मेरा ही रूप समझकर अपने चित्त को तदाकार बना देता है, उसे परमाणु रूप काल के समान सूक्ष्म वस्तु बनने का सामर्थ्य प्राप्त हो जाता है । इसे लघिमा सिद्धि कहते हैं ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

वाय्वादिभूतानां ये परमाणवस्तन्मये तदुपाधौ मयि चित्तं रञ्जयन् योगी कालसूक्ष्मार्थतां कालपरमाणूपाधिरूपतामिति लघुत्वविवरणम् । तदुक्तम्- 'स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम्' इति ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

वायु आदि (चार) भूतों के परमाणु स्वरूप मुझ परमाणु उपाधि में अपने चित्त को लगाने वाला योगी काल की सूक्ष्मार्थता अर्थात् काल की परमरूपता को प्राप्त कर लेता है । यह लघुता का विवरण है । कहा भी गया है वह काल परमाणु रूप है, उसका भोग करने वाला परमाणु रूपता को प्राप्त कर लेता है ।।१२।।

धारयन्मय्यहंतत्त्वे मनो वैकारिकेऽखिलम् । सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं प्राप्तिं प्राप्नोति मन्मनाः ।।१३।।

अन्वयः— वैकारिके अहं तत्त्वे मयि अखिलं मनो धारयन् मन्मनाः सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं प्राप्तिं प्राप्नोति ।।१३।।

अनुवाद— सात्विक अहङ्कार को मेरा स्वरूप समझकर मेरे उसी रूप में जो योगी अपने सम्पूर्ण चित्त को लगा देता है वह समस्त इन्द्रियों का अधिष्ठाता रूप प्राप्ति सिद्धि को प्राप्त कर लेता है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

वैकारिकाहंकारोपाधौ मयि । अखिलमेकाग्रम् । आत्मत्वमधिष्ठातृत्वम् । अत्र हेतुः-मन्मनाः । मयि मनोधारणप्रभावादेवं भवति, नात्रातीव हेतुरनुसन्धेय इति भावः । एवं मद्धारणानुभावेन मद्योगबलमाश्रय इत्यादिषु द्रष्टव्यम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

वैकारिक अहङ्कारोपाधि रूप में अपने समग्र मन को लगाने वाला योगी । आत्मत्वम् अर्थात् अधिष्ठातृत्व। उसका कारण है कि योगी अहङ्कार स्वरूप परमात्मा का ही चिन्तन करता है । मुझमें मन को लगाने का यह प्रभाव है । इस विषय में दूसरे हेतु को नहीं जानना चाहिए । इस तरह मेरी धारणा के प्रभाव से वह मेरे बल रूपी आश्रय वाला इत्यादि ।।१३।।

महत्यात्मनि यः सूत्रे धारयेन्मयि मानसम् । प्राकाश्यं पारमेष्ठ्यं मे विन्दतेऽव्यक्तजन्मनः ।।१४।।

अन्वयः— यः महत्यात्मनि सूत्रे मयि मानसम् धारयेत् अव्यक्त जन्मनः मे प्राकाम्यं पारमेष्ठ्यं प्राप्नोति ।।१४।।

अनुवाद— जो योगी महत्तत्वाभिमानी सूत्रात्मा मुझमें अपने चित्त को लगाता है, वह अव्यक्तजन्मा मेरी प्राकाम्य नामक सिद्धि को प्राप्त कर लेता है उसे इच्छानुसार सभी भोगों की प्राप्ति हो जाती है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

क्रियाशक्तिप्रधानं महत्तत्त्वमेव सूत्रं तदुपाधौ मयि स मे पारमेष्ठ्यं सर्वोत्कृष्टं प्राकाम्यं विन्दते । कथंभूतस्य । अव्यक्ताज्जन्म यस्य तस्य सूत्रस्य । तदुपाधेर्ममेत्यर्थः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

क्रिया शक्ति प्रधान महत् तत्त्व को ही सूत्रात्मा कहते हैं । महत् तत्त्वोंपाधि मुझमें वह मेरे सर्वोत्कृष्ट प्रकाम्य को प्राप्त कर लेता है । मैं अव्यक्तजन्मा सूत्रात्मा हूँ ।।१४।।

विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत्कालविग्रहे । स ईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ।।१५।।

अन्वयः— यः त्र्यधीश्वरे काल विग्रह विष्णौ चित्तं धारयेत् सः क्षेत्रक्षेत्रज्ञचोदनाम् ईशित्वम् आप्नोति ।।१५।।

अनुवाद— जो योगी त्रिगुणात्मिका माया के नियामक मेरे काल स्वरूप विश्व रूप की धारणा करता है वह शरीरो और जीवों को अपनी इच्छानुसार प्रेरित करने के सामर्थ्य रूप ईशित्व नामक सिद्धि को प्राप्त कर लेता है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

त्र्यधीश्वरे त्रिगुणमायानियन्तरि अतएव कालविग्रहे आकलयितृरूपेऽन्तर्यामिणि । ईशित्वं विशिनष्टि-क्षेत्रज्ञानां जीवानां क्षेत्राणां तदुपाधीनां च चोदनां प्रेरणं, न तु विश्वसृष्ट्यादिकर्तृत्वलक्षणमित्यर्थः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

त्र्यधीश्वरे अर्थात् त्रिगुणात्मिका माया के स्वामी, अतएव कालविग्रेह सबों को काल कवलित करने वाले अन्तर्यामी में । इस सिद्धि के नियामकत्व रूप विशेषता को बतलाते हैं । सभी जीवों तथा शरीर को अपनी इच्छा के अनुसार प्रेरित करने के सामर्थ्य को न कि सृष्टि करने के सामर्थ्य को ।।१५।।

नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते । मनो मय्यादधद्योगी मद्धर्मा वशितामियात् ।।१६।।

अन्वयः— नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्द शब्दिते मयि मनो दधद् योगी मद्धर्मा वशिताम् इयात् ।।१६।।

अनुवाद— मेरे नारायण स्वरूप में जिसे तुरीय और भगवान् भी कहते हैं उसमें अपने मन को लगाने वाला योगी में मेरे स्वाभाविक गुण उद्भूत हो जाते हैं । उस योगी को वशिता नामक सिद्धि की प्राप्ति होती है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

तुरीयाख्ये विराट् हिरण्यगर्भश्च कारणं चेत्युपाधयः ईशस्य यन्त्रिभिर्हीनं तुरीयं तत्पदं विदुरित्येवंलक्षणे-'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणां ।' तद्वति भगवच्छब्दशब्दिते ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

तुरीयनामक विराट् हिरण्यगर्भ और कारण ये उपाधियाँ है । परमात्मात्मा की तीनों से रहित जिसे तुरीय शब्द से कहा जाता है इस प्रकार जिसे भगवत शब्द से कहा जाता है । जिसमें छहो प्रकार के ऐश्वर्य हों उसको भगवान् कहते हैं । सम्पूर्ण ऐश्वर्य सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण यश और सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण ज्ञान और सम्पूर्ण वैराग्य ये छह़ ऐश्वर्य हैं, इन छहो ऐश्वर्यों से युक्त होने के कारण भगवान् नारायण को भगवान कहा जाता है ।।१६।।

निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन्विशदं मनः । परमानन्दमाप्नोति यत्र कामोऽवसीयते ।।१७।।

अन्वयः— निर्गुणे ब्रह्मणि मयि विशदं मनः धारयन् परमानन्दम् यत्र कामः अवसीयते ।।१७।।

अनुवाद— मैं निगुर्ण ब्रह्म भी हूँ, मुझमें अपने मन को लगाने वाले योगी को परमानन्द स्वरूप कामावसायिता नामक सिद्धि की प्राप्ति होती है । इस सिद्धि की प्राप्ति हो जाने पर योगी की सारी कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

यत्र परमानन्दरूपे सर्वोऽपि कामस्तदंशभूतोऽवसीयते समाप्यते तम् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

कामावसायिता सिद्धि परमानन्दस्वरूपिणी होती है सिद्धि की प्राप्ति हो जाने पर उस सिद्धि के अंश भूत योगी की सारी कानाएँ समाप्त हो जाती हैं ।।१७।।

श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि । धारयन् श्वेततां याति षडूर्मिरहितो नरः ।।१८।।

अन्वयः— श्वेतद्वीपपतौ शुद्धे धर्ममये मयि चित्तं धारयन् नरः षडूर्मिरहितः श्वेततां याति ।।१८।।

अनुवाद— मेरा जो रूप श्वेतद्वीप का स्वामी है वह अत्यन्त शुद्ध एवं धर्ममय है। मेरे उस रूप की जो धारण करता है, वह भूख-प्यास, शोक-मोह एवं जन्म-मृत्यु रूप छह उर्मियों से रहित हो जाता है और उसको शुद्ध रूपता की प्राप्ति हो जाती है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

अतः परं गुणहेतुकाः सिद्धीराह-शुद्धे सत्त्वात्मके । श्वेततां शुद्धरूपताम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

अब इस श्लोक से सत्त्वगुण के उत्कर्ष से होने वाली सिद्धि को बतलाते हैं शुद्धे अर्थात् सत्त्वगुणात्मक। श्वेतताम् अर्थात् श्वेतरूपता को प्राप्त कर लेते हैं ।।१८।।

मय्याकाशात्मनि प्राणे मनसा घोषमुद्वहन् । तत्रोपलब्धा भूतानां हंसो वाचः शृणोत्यसौ ।।१९।।

अन्वयः— आकाशात्मनि प्राणे मयि मनसा घोषम् उद्वहन असौ तत्र भूतानां हंसः वाचम् शृणोति ।।१९।।

अनुवाद— मैं समष्टि प्राण रूप आकाशात्मा हूँ जो योगी मेरे इस रूप में मन के द्वारा अनाहतनाद का चिन्तन करता है वह दूर श्रवण नामक सिद्ध से सम्पन्न हो जाता है और आकाश में ही उपलब्ध होने वाली विविध प्राणियों की बोली को सुन समझ सकता है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

आकाशात्मा यः प्राणः समष्टिरूपस्तद्रूपे मयि मनसा घोषं नादं चिन्तयन्नसौ हंसो जीवस्तत्राकाशे उपलब्धा ज्ञाता सन् तत्रस्था विचित्रा वाचः शृणोति । यद्वा, तत्राकाशे उपलब्धा अभिव्यक्ता या वाचस्ता दूरतः शृणोतीति ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

आकात्मा जो प्राण की समष्टि है मेरे उस रूप में मन से अनाहत नाद का चिन्तन करने वाला जीव आकाश में उपलब्ध होने वाली विचित्र बोलियों को दूर से ही समझ लेता है। अथवा आकाश में ही अभिव्यक्त होने वाली वाणी को दूर से ही सुन लेता है ।।१९।।

चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारमपि चक्षुषि । मां तत्र मनसा ध्यायन्विश्वं पश्यति सूक्ष्मदृक् ।।२०।।

अन्वयः— त्वष्टरि चक्षुः संयोज्य त्वष्टारमपि चक्षुषि संयोज्य मांतत्र मनसाध्यायन् सूक्ष्मदृक् विश्वंपश्यति ।।२०।।

अनुवाद— जो योगी अपने नेत्रों को सूर्य से संयुक्त करके तथा सूर्य को अपने नेत्रों में सयुक्त करके दोनों के संयोग में मन से मेरा चिन्तन करता है वह सूक्ष्म द्रष्टा सम्पूर्ण विश्व को देख लेता है। इसको प्राप्त होने वाली सिद्धि का नाम दूरदर्शन है ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

त्वष्टा आदित्यस्तस्मिन्नपरिच्छिन्ने चक्षुः संयोज्य तं च चक्षुषि संयोज्य तत्रोभयसंयोगे मां ध्यायन् विश्वं दूरतः पश्यति।।२०।।

भाव प्रकाशिका

त्वष्टा सूर्य को कहते है । असीमित सूर्य में अपने नेत्रों को संयुक्त करके तथा सूर्य को अपने नेत्रों में संयुक्त करके उन दोनों के संयोग में मेंरा चिन्तन करने वाला दूर से ही सम्पूर्ण विश्व को देख लेता है । उसको प्राप्त होने वाली सिद्धि का नाम दूरदर्शन है ।।२०।।

मनो मयि सुसंयोज्य देहं तदनु वायुना । मद्धारणानुभावेन तत्रात्मा यत्र वै मनः ।।२१।।

अन्वयः— देहं मनः तदनुवायुना मयि सुसंयोज्य मद्धारणानुभावेन तत्रात्मा यत्रवै मनः ।।२१।।

अनुवाद— देह और मन को प्राण वायु के साथ मुझमें संयुक्त करके जो मेरी धारणा करता है, उसको मनोजव नाम सिद्धि की प्राप्ति होती है । मुझ परमात्मा की धारणा के प्रभाव से योगी जहाँ कही भी जाने का सङ्कल्प करता है, वहीं उसका शरीर पहुँच जाता है ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

मनो देहं च तदनुवर्तिना वायुना सह मयि सुसंयोज्य या मद्धारणा क्रियते तस्याः प्रभावेण यत्र मनो याति तत्रात्मा देहो यातीत्यर्थः । यद्वा, मनः कर्तृ आत्मानं वायुना सह देहं च मयि सुसंयोज्य यत्र याति तदनु तत्र देहो यातीति ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

मन और देह उसका अनुगामी प्राणवायु को मुझमें संयुक्त करके मेरी धारण करने वाला योगी मेरी धारणा के प्रभाव से जहाँ जाना चाहता है वहीं पहुँच जाता है । अथवा मन आत्मा को प्राण के साथ देह को संयुक्त करके चिन्तन करने वाला जहाँ मन जाता है वही उसका शरीर भी पहुँच जाता है ।।२१।।

यदा मन उपादाय यद्यद्रूपं बुभूषति । तत्तद्भवेन्मनोरूपं मद्योगबलमाश्रयः ।।२२।।

अन्वयः— यदा मनः उपादाय यद् यद् रूपं बुभूषति मद्योगबलमाश्रयः तत् तत् मनो रूपं भवेत् ।।२२।।

अनुवाद— जो योगी अपने मन को उपादान कारण बनाकर जिस देवता आदि का रूप धारण करना चाहता है, वह अपने मन के अनुकूल वैसा ही रूप धारण कर लेता है । इसका कारण है कि उसने अपने चित्त को मेंरे साथ जोड़ रखा है ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

मन उपादाय उपादानकारणं कृत्वा यद्यद्देवादिरूपं भवितुमिच्छति तत्तन्मनोरूपं मनसोऽभीष्टरूपं योगी भवेत् । कुतः। यतो मद्योगबलम् । योऽहमचिन्त्यशक्तिर्नानाकारस्तस्मिन्मयि मनसो योगो धारणा तस्य बलं प्रभावः स एवाश्रयः कारणम्।।२२।।

भाव प्रकाशिका

जो योगी अपने मन को उपादान कारण बनाकर जिस जिस देवता आदि का रूप धारण करना चाहता है वह अपने मन के अनुसार उसी देवता का रूप धारण कर लेता है । इसका कारण है कि वह मुझमें ही अपने मन को लगा रखा है ।।२२।।

परकायं विशन्सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत् । पिण्डं हित्वा विशेत्प्राणो वायुभूतः षडङ्घ्रिवत् ।।२३।।

अन्वयः— परकायं विशन् सिद्धं तत्र आत्मनं भावयेत् वायुभूतः प्राणः षड्ङ्घ्रिवत् पिण्डं हित्वा विशेत् ।।२३।।

अनुवाद— जो योगी दूसरे के शरीर में प्रवेश करना चाहे वह ऐसी भावना करे कि मैं उसी शरीर में हूँ।

ऐसा करने से उसका प्राण वायु रूप हो जाता है और जिस तरह भौंरा एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर चला जाता है, उसी तरह प्राण भी अपना शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

यत्र प्रविविक्षति तत्रात्मानं चिन्तयेत् । ततः पिण्डं स्वदेहं हित्वा प्राणः प्राणप्रधानलिङ्गशरीरोपाधिर्वायुभूतो बाह्यवायौ भूतः प्रविष्टस्तेन मार्गेणेत्यर्थः । षडङ्घ्रिवत् भृङ्गो यथा पुष्पात्पुष्पान्तरमनायासेन प्रविशति तद्वत् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

योगी जिस शरीर में प्रवेश करना चाहता है अपनी आत्मा को उसी शरीर में होने का चिन्तन करे । ऐसा करने से उसका प्राण वायु रूप होकर उसी शरीर में उसी तरह प्रवेश कर जाता है जिस तरह भौंरा एक फूल से उड़कर दूसरा फूल पर चला जाता है ॥२३॥

पार्ष्ण्यापीड्य गुदं प्राणं हृदुरः कण्ठमूर्धसु । आरोप्य ब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्म नीत्वोत्सृजेत्तनुम् ॥२४॥

अन्वयः— पार्ष्ण्या गुदं आपीड्य प्राणं हृत् उरः कण्ठमूर्धसु आरोप्य ब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्म नीत्वा तनुम् उत्सृजेत् ॥२४॥

अनुवाद— यदि योगी का शरीर परित्याग करना हो तो एंडी से गुदा मार्ग को दबाकर प्राणवायु को क्रमशः हृदय, वक्षस्थल कण्ठ और मस्तक में ले जाय उसके बाद ब्रह्म रन्ध्र के मार्ग से ब्रह्म में लीन करके शरीर का परित्याग कर दे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

पिण्डं हित्वेत्युक्तं तत्प्रकारं कथयन्स्वच्छन्दमृत्युमाह-पार्ष्ण्या पार्ष्णिना गुदं निरुध्य प्राणं प्राणोपाधिमात्मानं ब्रह्मरन्ध्रेण मूर्धद्वारेण । ब्रह्मेत्युपलक्षणम् । ब्रह्म वा अन्यद्वा अपेक्षितं स्थानं मनसा नीत्वा ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

यह कहा गया है कि शरीर का परित्याग करने के लिए शरीर त्याग के प्रकार का वर्णन करते हुए स्वच्छन्द मृत्यु का वर्णन करते हैं । एड़ी से गुदाद्वार को दबाकर प्राणोपाधि आत्मा को ब्रह्मरन्ध्र मार्ग से ब्रह्म में अथवा किसी दूसरे स्थान में मन से ले जाकर उसमें लीन कर दे ॥२४॥

विहरिष्यन् सुराक्रीडे मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् । विमानेनोपतिष्ठन्ति सत्त्ववृत्तीः सुरस्त्रियः ॥२५॥

अन्वयः— सुराक्रीडे, विहरिष्यन् मत्स्थं सत्वं विभावयेत् सत्ववृतीः सुरस्त्रियः विमानेन उपतिष्ठन्ति ॥२५॥

अनुवाद— यदि योगी देवताओं के क्रीडा स्थल में जाकर विहार करने की इच्छा करे तो वह मेरे शुद्ध सत्त्वमय स्वरूप की भावना करे । ऐसा करने से सत्त्वगुण की अंश स्वरूपा देवस्त्रियाँ वहाँ पर विमान से चली आती हैं ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

मत्स्थं मन्मूर्तिरूपं शुद्धं सत्त्वं चिन्तयेत् । तदा सत्त्ववृत्तयः सत्त्वांशभूताः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

मेरी मूर्ति रूप शुद्ध सत्त्व का चिन्तन करे । उस समय सात्त्विक वृत्ति वाली ॥२५॥

यथा सङ्कल्पयेद्बुद्ध्या यदावा मत्परः पुमान् । मयि सत्ये मनो युञ्जंस्तथा तत्समुपाश्नुते ॥२६॥

अन्वयः— मत् परः पुमान् बुद्ध्या यथा यदा सङ्कल्पयेत् मयि सत्ये मनोयुञ्जन् तथा तत् समुपाश्नुते ॥२६॥

अनुवाद— जो मेरा भक्त अपनी बुद्धि से जब और जैसा सङ्कल्प करता है, और मेरे सत्यसङ्कल्प स्वरूप के चिन्तन में संलग्न है, उसी समय उसको उस सङ्कल्प की सिद्धि होती है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

यदा वा अकालेऽपि । यथा वेति पाठे यथा वा येन केनापि प्रकारेण बुद्ध्या सङ्कल्पयेत्तत्तथा यथावत्प्राप्नोतीत्यर्थः। यद्वा, यथा सङ्कल्पयेद्यथा वा मत्परो मयि विश्वासवान् भवति तथा तदनुरूपं सर्वमाप्नोतीत्यर्थः । किं कुर्वन् । सत्ये सत्यसङ्कल्पे मयि मनो युञ्जन् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

यदावा अर्थात् अनुचित समय में भी । यथा वा इस तरह का पाठ मानने पर अर्थ होगा कि जिस किसी प्रकार भी अपनी बुद्धि के अनुसार संकल्प करता है, उसी तरह उसके सङ्कल्प की पूर्ति हो जाती है । जो जिस प्रकार से मुझमें विश्वास करता है, वह उसके अनुरूप ही सबकुछ प्राप्त करता है क्या करते हुए ? तो इसका उत्तर है कि सत्यसङ्कल्प मुझ परमात्मा में मन लगाए रहकर ।।२६।।

यो वै मद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुः पुमान् । कुतश्चिन्न विहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ।।२७।।

अन्वयः— यो वै मत् ईशितुः वशितुः भावम् आपन्न पुमान् तस्य आज्ञा मम यथा कुतश्चित् न विहन्येत् ।।२७।।

अनुवाद— जो साधक ईशित्व एवं वशित्व के स्वामी मेरे उस रूप का चिन्तन करता है, उसकी आज्ञा को कोई भी उसी प्रकार नहीं टाल सकता है जिस तरह मेरी आज्ञा को कोई नहीं टाल पाता है ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

मदिति पृथक्पदम्, ममेत्यर्थः । ईशितुः सर्वनियन्तुर्वशितुः स्वतन्त्रस्य मम भावं स्वभावं प्राप्तः । एता गुणहेतवः।।२७।।

भाव प्रकाशिका

मत् यह अलग पद है । इस अर्थ है मेरा **ईशितुः** अर्थात् सबों के नियामक और **वशितुः** अर्थात् स्वतन्त्र इस तरह मेरे स्वभाव को जिसने प्राप्त कर लिया है । ये सिद्धियाँ सत्त्व नामक गुण के उत्कर्ष के कारण होती हैं ।।२७।।

मद्भक्त्या शुद्धसत्त्वस्य योगिनो धारणाविदः । तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ।।२८।।

अन्वयः— मद्भक्त्या शुद्धसत्त्वस्य धारणविदः योगिनः तस्य जन्म मृत्यु उपबृंहिता बुद्धिः त्रैकालिकी ।।२८।।

अनुवाद— जिस योगी का चित्त मेरी धारण करते-करते मेरी भक्ति के प्रभाव से शुद्ध हो गया है, उसकी बुद्धि जन्म मृत्यु आदि अदृष्ट विषयों को भी जान लेती है, उस योगी को भूत और भविष्यत् की भी बाते ज्ञात हो जाती हैं ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

अतः परं क्षुद्राः । धारणाविद इति त्रिकालज्ञेश्वरधारणा सूचिता त्रैकालिकी त्रिकालवस्तुविषया । स्वजन्ममृत्युभ्यामुपबृंहिता तत्सहिता । अनयैव परचित्ताद्यभिज्ञतापि व्याख्याता ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

अब इसके पश्चात् छोटी-छोटी सिद्धियों का वर्णन श्रीभगवान् करते हैं । **धारणाविदः** पद के द्वारा त्रिकालेश्वर की धारण सूचित है । त्रैकालिकी अर्थात् त्रिकाल वस्तु विषयिणी । वह अपने जन्म और मृत्यु की भी बातें जान लेता है । इसी सिद्धि से दूसरे के भी मन की बात ज्ञात हो जाती है ।।२८।।

अग्न्यादिभिर्न हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः । मद्योगश्रान्तचित्तस्य यादसामुदकं यथा ।।२९।।

अन्वयः— यादसाम् उदकं यथा मदयोगश्रान्त चित्तस्य मुनेः योगमयं वपु अग्न्यादिभिः न हन्येत् ।।२९।।

अनुवाद— जिस तरह जल में रहने वाले जीवों का जीवन जल से नष्ट नहीं होता है उसी तरह जिस योगी

ने अपना चित्त मुझमें लगाकर शिशिल कर दिया है, उस योगी के योगमय शरीर को अग्नि, जल आदि नष्ट नही कर पाते हैं ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

अग्न्यादिसर्वोपघातशून्यो भगवानित्येवंभूतयोगमयम् । तैर्नाभिभूयेत। अत्र हेतुः–मद्योगेति । यादसामुदकं यथाभिघातकं न भवति तथा तस्य वपुषोऽग्न्यादय इत्यर्थः । अनयैवाद्वन्द्वतापि व्याख्याता ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् अग्नि आदि समस्त उपघातों से रहित हैं, इस तरह की योग की धारणा करने वाले योगी कभी अभिभूत नहीं होता है । क्योंकि वह योग करके उसे शिथिल कर दिया है जैसे जल जन्तुओं का नाश जल से नहीं होता है उसी तरह उस योगी के शरीर को अग्नि आदि नहीं नष्ट कर सकते हैं । इसी सिद्धि के द्वारा अद्वन्द्वता की भी व्याख्या कर दी गयी ।।२९।।

मद्विभूतीरभिध्यायन् श्रीवत्सास्त्रविभूषिताः । ध्वजातपत्रव्यजनैः स भवेदपराजितः ।।३०।।

अन्वयः— श्रीवत्सास्त्रविभूषिताः ध्वजातपत्रव्यजनैः विभूषिताः मद् विभूतीरभिध्यायन् स अपराजितः भवेत् ।।३०।।

अनुवाद— जो योगी श्रीवत्सचिह्न से शङ्ख, चक्र गदा पद्म से तथा ध्वजा छत्र और चमर से विभूषित मेरे अवतारों का ध्यान करता है वह कही भी पराजित नहीं होता है ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

मद्विभूतीर्ममावतारान् । ध्वजादिभिः सह ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

मद्विभूतिः अर्थात् मेरे अवतरों को, ध्वजादिभिः सह ध्वज आदि के साथ ।।३०।।

उपासकस्य मामेवं योगधारणया मुनेः । सिद्धयः पूर्वकथिता उपतिष्ठन्त्यशेषतः ।।३१।।

अन्वयः— माम् एवं योगधारणया उपासकस्य मुनेः पूर्वकथिताः सिद्धयः अशेषतः उपतिष्ठन्ति ।।३१।।

अनुवाद— जो मनन शील उपासक इस प्रकार से योग धारणा के द्वारा मेरी उपासना करता है उसके समक्ष ये सारी सिद्धियाँ पूर्ण रूप से उपस्थित होती हैं ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-उपासकस्येति । एवं पृथग्धारणाभिः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

सिद्धियों के वर्णन का उपसंहार करते हैं श्रीभगवान् एवं अर्थात् अलग-अलग धारणाओं से ।।३१।।

जितेन्द्रियस्य दान्तस्य जिश्वासात्मनो मुनेः । मद्धारणां धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभा ।।३२।।

अन्वयः— जितेन्द्रियस्य दान्तः जितश्वासात्मनः मुनेः मद् धारणां धारयतः सा का सिद्धिः या दुर्लभा ।।३२।।

अनुवाद— जिसने अपने इन्द्रियों तथा प्राणों पर विजय प्राप्त कर लिया है, उस मननशील तथा मेरी धारणा को धारण करने वाले योगी को कोई भी सिद्धि दुर्लभ नहीं है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

यद्वा, कि नानाधारणाप्रयासेन एकयैवसर्वाः सिद्धयो भवन्तीत्याह-जितेन्द्रियस्येति । मद्धारणां 'नारायणे तुरीयाख्ये' इत्यत्रोक्ताम् । या सुदुर्लभा स्यात्सा का, न काचिदित्यर्थः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

अथवा बहुत सी धारणाओं को धारण करने की क्या आवश्यकता है ? एक ही धारणा से सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं । मद् धारणा पद से **नारायणे तुरीयाख्ये० इत्यादि** श्लोक में वर्णित धारणा से, कोई भी सिद्धि दुर्लभ नहीं होती हैं ॥३२॥

अन्तरायान्वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम् । मया संपद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥३३॥

अन्वयः— उत्तमं योगम् युञ्जतः मया सम्पद्यमानस्य एताः कालक्षपण हेतवः अन्तरायान् बदन्ति ॥३३॥

अनुवाद— श्रेष्ठ पुरुषों का कहना है कि भक्तियोग अथवा ज्ञानयोग आदि उत्तम योग का अभ्यास करने वाले के लिए ये सिद्धियाँ विघ्न स्वरूप हैं, और इन सबों में व्यर्थ ही समय बितता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

यद्यप्येवं तथापि न प्रार्थ्या इत्याह-अन्तरायानिति ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि श्रीभगवान् की धारणा करने वाले के लिए कोई भी सिद्धि दुर्लभ नहीं है, फिर भी इन सबों की प्राप्ति की इच्छा नहीं करनी चाहिए, इस बात को **अन्तरायान्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ॥३३॥

जन्मौषधितपोमन्त्रैर्यावतीरिह सिद्धयः । योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत् ॥३४॥

अन्वयः— जन्मौषधितपोमन्त्रैः इह यावती; सिद्धयः ताः सर्वाः योगेन आप्नोति नान्यैः योगगति व्रजेत् ॥३४॥

अनुवाद— जन्म औषधि, तपस्या, तथा मन्त्र इन सबों से जितनी सिद्धियाँ प्राप्त होती है, वे सब योग से प्राप्त होती है, किन्तु अन्य साधनों से योग के द्वारा प्राप्त होने वाली सारूप्यसालोक्य आदि की प्राप्ति नहीं होती है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

तस्मादहैतुकीयमेव धारणा कार्या नान्याः काम्या इत्याह-जन्मेति । जन्मनैव काश्चित्सिद्धयो भवन्ति । यथा देवानां यथा च यादसामुदकस्तम्भः पक्ष्यादीनां खेचरत्वादि । तदुक्तं पातञ्जले- 'जन्मौ षधितपोमन्त्रयोगजाः सिद्धयः' इति । योगेन मद्धारणामित्युक्तेन। योगगतिं मत्सालोक्यादिरूपाम् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

अतएव यह अहैतुकी धारणा ही करनी चाहिए । किसी कामना विशेष से नहीं कुछ सिद्धि जन्म से ही होती है जैसे देवताओं की सिद्धियाँ, पक्षियों की आकाश में चलने की सिद्धि । पातञ्जल योग दर्शन में कहा गया है। जन्मौषधिधितपो मन्त्रयोगजाः सिद्धयः अर्थात् जन्म, औषधि, तपस्या एवं मन्त्र जन्य सिद्धियाँ **मदधारणां इत्यादि** से कही गयी योग की सारूप्य सालोक्य आदि गतियाँ ॥३४॥

सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः । अहं योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ॥३५॥

अन्वयः— ब्रह्मवादिनाम् योगस्य सांख्यस्य धर्मस्य सर्वासांसिद्धीनाम् अपि अहं हेतुः पतिः प्रभुः ॥३५॥

अनुवाद— ब्रह्मवादियों ने योग, सांख्य तथा धर्म आदि साधनों को बतलया है । उन सबों का तथा सभी सिद्धियों का हेतु स्वामी और प्रभु मैं ही हूँ ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

कुत इत्यात आह-सर्वासामित्यर्धेन । प्रभुत्वोपपादनं हेतुः कारणं पतिः पालयिता चेति । किंच, न केवलं सिद्धीनामेव प्रभुरपितु मोक्षादीनामपीत्याह-अहमिति । योगो मोक्षः, सांख्यं तत्साधनं ज्ञानम् । धर्मस्य तदुपदेष्टॄणां ब्रह्मवादिनां च ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

क्योंकि सार्वासाम् इत्यादि आधे श्लोक से कहते हैं मैं सबों का प्रभु इसलिए हूँ कि मैं सबों का कारण और स्वामी हूँ । मैं केवल सिद्धियों का ही प्रभु नहीं अपितु मोक्ष आदि का भी मैं प्रभु हूँ । योग अर्थात् मोक्ष, सांख्य अर्थात् मोक्ष के साधन भूत ज्ञान, तथा धर्मों का उपदेश करने वाले ब्रह्मवादियों का भी मैं प्रभु हूँ ।।३५।।

अहमात्मान्तरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् । यथा भूतानि भूतेषु बहिरन्तः स्वयं तथा ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

अन्वयः— यथा भूतेषु भूतानि बहिः अन्तः स्वयं तथा अहम् सर्वदेहिनाम् आन्तरः अबाह्यः अनावृतः ।।३६।।

अनुवाद— जिस तरह स्थूल पञ्च महाभूतों में बाहर भीतर सर्वत्र सूक्ष्म पञ्च महाभूत ही है । सूक्ष्म महाभूतों के अतिरिक्त स्थूल महाभूतों की कोई सत्ता नहीं है उसी तरह मै समस्त प्राणियों के भीतर द्रष्टा रूप से और बाहर दृश्य रूप से स्थित हूँ, मुझमें भीतर बाहर का भेद भी नहीं है । क्योंकि मैं निरावरण एक एवं अद्वितीय हूँ ।।३६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के पन्द्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

कुतस्तत्राह–अहमिति । सर्वदेहिनां जीवानामात्मा । यत आन्तरोऽन्तर्यामी– 'एष त आत्मान्तर्याम्यमृत;' इति श्रुतेः । तर्हि किमन्तर्वर्तित्वात्परिच्छिन्ना, न, बाह्यश्च व्यापक इत्यर्थः । तत्र हेतुः–अनावृतः । एतत्सदृष्टान्तमाह–भूतेषु चतुर्विधेषु महाभूतानि यथा वहिश्चान्तश्च भवन्ति, स्वयमहमपि तथेत्यर्थः ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

ऐसा कैसे इस पर **अहम् इत्यादि** श्लोक कहते हैं । मैं सभी देहधारियों की आत्मा हूँ क्योंकि मैं अन्तर्यामी भी हूँ । श्रुति भी कहती है **एष त आत्मा अन्तर्यान्यमृतः** ये परमात्मा ही तुम्हारे अन्तर्यामी और अमृत हैं तो क्या अन्तर्यामी होने के कारण परिच्छिन्न हैं तो ऐसी बात नहीं है मैं व्यापक भी हूँ क्योंकि मैं निवारण हूँ । इसी बात को दृष्टान्त के साथ कहते हैं । जिस तरह चारो महाभूतों में सूक्ष्ममहाभूत भीतर और बाहर व्याप्त होते हैं मैं भी स्वयम् उसी तरह हूँ ।।३६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के पन्द्रहवे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१५।।

सोलहवाँ अध्याय

श्रीभगवान् की विभूतियों का वर्णन

उद्धव उवाच

त्वं ब्रह्म परमं साक्षादनाद्यन्तमपावृतम् । सर्वेषामपि भावानां त्राणस्थित्यप्ययोद्भवः ॥१॥
उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयमकृतात्मभिः । उपासते त्वां भगवन्याथातथ्येन ब्राह्मणः ॥२॥

अन्वयः— त्वं साक्षात् परमं ब्रह्म अनाद्यन्तम् अपावृतम् सर्वेषाम् अपि भावानां त्राणस्थित्याप्योद्‌भवः उच्चावचेषु भूतेषु अकृतात्मभिः दुर्ज्ञेयम् हे भगवन् ब्राह्मणास्त्वां याथातथ्येन उपासते ॥१-२॥

श्रीउद्धवजी ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! आप साक्षात् परं ब्रह्म हैं, आप आदि और अन्त से रहित, आवरण रहित है । आप सभी पदार्थों की रक्षा स्थिति और संहार के कारण हैं । आप ऊँच नीच सभी प्राणियों में स्थित हैं । किन्तु जिन लोगों ने अपने मन और इन्द्रियों को अपने वश में नहीं किया है उन लोगों के लिए आप दुर्ज्ञेय है । आपकी यथोचित उपासना तो ब्रह्मवेत्ता पुरुष ही करते हैं ॥१-२॥

भावार्थ दीपिका

षोडशे तु हरेराविर्भावयुक्ता विभूतयः । ज्ञानवीर्यप्रभावादिविशेषेणोपवर्णिताः । अन्तश्चित्तेन यद्‌ध्यानमशक्यमकृतात्मनाम्। अतस्तद्योग्यतापत्त्ये विभूत्यादिनिरूपणम् । एवं तावन्नवाध्याय्यामष्ट प्रश्ना निरूपिताः । ब्रह्मत्वसंभवे तावत्सप्तमादिचतुष्टये । वन्धमुत्तयोस्तु निधरि सद्भत्तयोश्च ततः परे । द्वादशेऽनन्तरं कर्म कृतित्यागव्यवस्थितौ । हंसेतिहासतो योगनिष्ठायां च त्रयोदशे। श्रेय;साधननिधरि ध्याने चैव चतुर्दशे । धारणासिद्धिभेदे च प्रसङ्गेन निरन्तरे । उद्धवप्रश्नतो दत्तमुत्तरं हरिणोचितम् । षोडशे भूतिविस्तारे द्वयोर्वर्णाश्रमव्रते । ज्ञानादिनिर्णये चातो यमादीनां च निर्णये । योगत्रयाधिकारे तु विंशे च तदनन्तरे । सत्त्वसंख्याविवादे च पुंप्रकृत्योर्विवेचने । जन्ममृत्युप्रकारे च द्वाविंशे दत्तमुत्तरम् । परापराधसहने चतुर्भिस्तदनन्तरैः । सप्तविंशे क्रियायोगप्रश्ने तदुपवर्णनम् । अष्टाविंशे ततः प्रोक्ता ज्ञानयोगोपसंहृतिः । संसारासंभवप्रश्ने तन्मध्ये दत्तमुत्तरम् । तदशक्त्या पुनः प्रश्ने भक्तियोगोपसंहृति। एवं प्रश्नोत्तराण्यत्र क्रमेणैतानि विंशतिः । 'अहमात्मान्तरो वाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् । यथा भूतानि भूतेषु बहिरन्तः स्वयं तथा' इत्युक्तम्, तत्र भूतानि यथा क्वचित्केनचिद्गुणविशेषेणोद्रिक्तानि वर्तन्ते क्वचित्सामान्यरूपेणैव, तथा त्वमपि क्व कथं वर्तस इति विभूतीः प्रष्टुं प्रथमं तावदुक्तमेव सर्वात्मकत्वमनुवदति-त्वं ब्रह्मेति । अपावृतं निरावरणं स्वतन्त्रं वा । अत एव सर्वेषामपि त्राणं रक्षणम् । स्थितिर्जीवनम् । त्राणस्थितिसहितावप्ययोद्भवौ यस्मात् । सत्त्वमुपादानकारणमित्यर्थः । अत्र सदाचारं प्रमाणमाह-याथातथ्येन यथार्थत्वेन । सर्वभूतकारणं त्वाम् । ब्राह्मणा वेदतात्पर्यविदः ॥१-२॥

भाव प्रकाशिका

सोलहवें अध्याय में श्रीहरि के आविर्भाव से युक्त विभूतियाँ, ज्ञान, वीर्य (शक्ति) तथा प्रभाव आदि का विशेष रूप से वर्णन किया गया है । श्रीभगवान् का अन्तःकरण से ध्यान करना अज्ञानियों के लिए अशक्य है अतएव उसकी योग्यता प्राप्ति के लिए विभूति आदि का निरूपण किया गया है । इस तरह से सातवें अध्याय से लेकर पन्द्रहवें अध्याय तक नव अध्यायों में आठ प्रश्नों का निरूपण किया गया है । ब्रह्मत्व की प्रप्ति के लिए साधनों को सातवें से लेकर दसवें अध्याय पर्यन्त निरूपित किया गया है । उसके पश्चात् बन्ध एवं मुक्ति के साधन रूप से सत्सङ्ग और भक्ति का निरूपण किया गया है । उसके पश्चात् बारहवें अध्याय में कर्म और कर्तृत्व का त्याग बतलाया गया है । हंसावतार के इतिहास के माध्यम से तेरहवें अध्याय में योग निष्ठा का निरूपण किया गया हैं और चौदहवें अध्याय में आत्म कल्याण के साधन रूप से ध्यान का निरूपण किया गया है । विभिन्न प्रकार की धारणाओं से विभिन्न प्रकार की सिद्धियों के

प्रसङ्ग से श्रीभगवान् श्रीकृष्ण श्रीउद्धवजी के प्रश्न का उचित उत्तर पन्द्रहवें अध्याय में दिया गया है। सोलहवें अध्याय में श्रीभगवान् ने अपनी विभूतियों और उनके विस्तार का वर्णन किया है। सत्रहवे और अठारहवें अध्याय में श्रीभगवान् ने वर्णों एवं आश्रमों के व्रत का निरूपण किया है। उसके पश्चात् ज्ञान आदि का निर्णय तथा यम आदि का निरूपण उन्नीसवें अध्याय में किया गया है। बीसवें अध्याय में ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग इन तीनों का निरूपण किया गया है। सत्त्व एवं संख्या के विषय में विवाद होने पर पुरुष एवं प्रकृति का विवेचन किया गया है। जन्म तथा मृत्यु के प्रकार के विषय में श्रीभगवान् बाइसवें अध्याय में उत्तर दिए हैं। उसके पश्चात् चार अध्यायों में श्रीभगवान् ने दूसरों के अपराध को सहने का उपदेश दिया है। क्रिया योग के विषय में उद्धवजी द्वारा प्रश्न किया गया है और श्रीभगवान् क्रियायोग का वर्णन किये हैं। उसके पश्चात् अठाइसवें अध्याय में ज्ञानयोग का उपसंहार किया गया है। संसार का बन्धन समाप्ति विषयक प्रश्न किए जाने पर श्रीभगवान् उसके बीच में उसका उत्तर दिए है उसमें भी असमर्थता होने पर भगवान् ने भक्तियोग का उपसंहार किया है। इस तरह इस ग्यारहवें स्कन्ध में उद्धवजी ने बीस प्रश्नों को किया और श्रीभगवान् ने उन सबों का उत्तर दिया है ॥१२॥ पन्द्रहवें अध्याय में श्रीभगवान् ने कहा है कि मैं सभी देह धारियों के भीतर भी हूँ और बाहर भी तथा आवरण रहित हूँ। यह उसी तरह से है जिस तरह सभी भूतों की तन्मात्रा वर्तमान रहती है। उसके विषय में जीव में कही किसी गुणविशेष के उद्रिक्त होते हैं तथा कही सामान्य रूप से होते हैं। ऐसी स्थिति में आप कहाँ पर और किस रूप में रहते हैं, इस तरह श्रीभगवान की विभूतियों के विषय में पूछने के लिए सर्वप्रथम उक्त ही सर्वात्मकत्व का अनुवाद करके उद्धवजी **त्वं ब्रह्म इत्यादि** श्लोक से पूछते हैं। **अपावृतम्** अर्थात् आवरण रहित अथवा स्वतंत्र अतएव आप सबों की रक्षा करते हैं। **स्थितिः जीवनः** रक्षण और जीवन के साथ संहार और उत्पत्ति आपसे ही होते हैं। सत्वम् अर्थात् उपादान कारण। इस विषय में सदाचार को ही प्रमाण अर्थात् यथार्थ रूप से बतलाते हैं। उद्धवजी कहते हैं कि सम्पूर्ण भूतों के कारण आप है। ब्राह्मण शब्द से वेदों के तात्पर्य वेत्ताओं को कहा गया है ॥१-२॥

येषु येषु च भावेषु भक्त्या त्वां परमर्षयः। उपसीनाः प्रपद्यन्ते संसिद्धिं तद्वदस्व मे ॥३॥

अन्वयः— परमर्षयः येषु-येषु भावेषु भक्त्या उपासीनाः त्वां प्रपद्यन्ते तत् संसिद्धिं में वदस्व ॥३॥

अनुवाद— परमर्षिगण आपके जिन-जिन रूपों की भक्ति पूर्वक उपासना करते हुए आपकी शरणागति करते हैं तथा उससे जिन सिद्धियों को प्राप्त करते हैं, उन्हें आप मुझे बतलाइये ॥३॥

भावार्थ दीपिका

एवं कारणत्वेन सर्वात्मत्वमनूद्य विभूतीः पृच्छति-येष्विति। उपासीनाः सवेमानाः सन्तः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार कारण रूप श्रीभगवान् के सर्वात्मकत्व का अनुवाद करके उद्धवजी उनकी विभूतियों के विषय में **येषु० इत्यादि** श्लोक से पूछते हैं। उपासीनाः अर्थात् सेवन करते हैं ॥३॥

गूढश्चरसि भूतात्मा भूतानां भूतभावन। न त्वां पश्यन्ति भूतानि पश्यन्तं मोहितानि ते ॥४॥

अन्वयः— हे भूतभावन भूतानां आत्मा गूढः चरसि भूतानि पश्यन्तं मोहितानि ते त्वां न पश्यन्ति ॥४॥

अनुवाद— हे सभी प्राणियों के जीवनदाता आप समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा हैं। आप उनमें अपने को गुप्त रखकर लीला करते हैं। आप तो सबों को देखते हैं किन्तु आपकी माया से मोहित जीव आपको नहीं देख पाते हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

दुर्ज्ञेयत्वमेवाह-गूढः अस्फुटः । भूतानां प्राणिनां मध्ये । अत्र हेतुः-भूतानामात्मा अन्तर्यामी । अत्रापि हेतुः-हे भूतभावनेति। ते त्वया ।।४।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में उद्धवजी श्रीभगवान् के दुर्ज्ञेयत्व को ही बतलाते हैं **गूढः** अर्थात् अस्पष्ट रूप से प्राणियों के भीतर । इसका कारण है कि आप भूतों के अन्तर्यामी हैं । इसका भी कारण है कि आप सबों के जीवन प्रदान करने वाले हैं । ते अर्थात् आपके द्वारा ।।४।।

या; काश्च भूमौ दिवि वै रसायां विभूतयो दिक्षु महाविभूते ।
ता मह्यमाख्याह्यनुभावितास्ते नमामि ते तीर्थपदाङ्घ्रिपद्मम् ।।५।।

अन्वयः— हे महाविभूते ! भूमौ, दिवि वा रसायां दिक्षु अनुभावितास्ते याः काश्च महाविभूतयः ताः मह्यम् आख्याहि ते तीर्थपदाङ्घ्रिपदम् नमामि ।।५।।

अनुवाद— हे अचिन्त्य ऐश्वर्य सम्पन्न प्रभो पृथिवी पर, स्वर्ग लोक में पाताल में तथा दिशाओं में आपकी शक्ति विशेष से संयोजित, जितनी भी विभूतियाँ हैं, उन सबों को आप मुझे बतलाएँ मैं आपके उन चरण कमलों को नमस्कार करता हूँ जो तीर्थों को भी तीर्थ बना देने वाले हैं ।।५।।

भावार्थ दीपिका

ता एव साकल्येन पृच्छति-हे महाविभूते, याः काश्चिद्भूम्यादिषु ते विभूतयः । रसायां रसातले अनुभावितास्त्वयैव केनचिच्छक्तिविशेषेण संयोजिताः तीर्थानां पदं च तदङ्घ्रिपद्मं च ।।५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् से उन सभी विभूतियों को उद्धवजी पूछते है । हे अचिन्त्य ऐश्वर्य सम्पन्न विभो पृथिवी आदि में आपकी जो कोई विभूतियाँ है । रसायाम् अर्थात् रसातल में आपके ही किसी शक्ति विशेष के द्वारा संयोजित । तीर्थों को तीर्थ बनाने वाले आपके चरण कमलों की ।।५।।

श्रीभगवानुवाच

एवमेतदहं पृष्ट प्रश्नं प्रश्नविदांवर । युयुत्सुना विनशने सपत्नैरर्जुनेन वै ।।६।।

अन्वयः— हे प्रश्नविदांवर विनशने सपत्नैः युयुत्सुना अर्जुनेन वै अहम् एवम एतत् प्रश्नं पृष्टः ।।६।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे प्रश्न के मर्म को समझने वाले उद्धव, जिससमय कुरुक्षेत्र में युद्ध हो रहा था, उस समय शत्रुओं के साथ युद्ध करने के इच्छुक अर्जुन ने इसी प्रकार का प्रश्न मुझसे पूछा था ।।६।।

भावार्थ दीपिका

नरावतारभूतार्जुनप्रश्नसंवादित्वात्तवायं प्रश्नः साधीयानिति तावदनुमोदते-एवमिति त्रिभिः । प्रश्नं प्रष्टव्यम् । सपत्नैर्योद्धुमिच्छता। विनशने कुरुक्षेत्रे ।।६।।

भाव प्रकाशिका

नरावतार अर्जुन के प्रश्नों के ही समान तुम्हारा यह प्रश्न श्रेष्ठ है इस प्रकार से श्रीभगवान् उद्धवजी के प्रश्नों का **एवम्० इत्यादि** तीन श्लोकों से करते हैं । प्रश्नं अर्थात् पूछने योग्य **युयुत्सुना** अर्थात् युद्ध करना चाहने वाले। **विनशने** अर्थात् कुरुक्षेत्र में ।।६।।

ज्ञात्वा ज्ञातिवधं गर्ह्यमधर्मं राज्यहेतुकम् । ततो निवृत्तो हन्ताहं हतोऽयमिति लौकिकः ।।७।।

अन्वयः— राज्यहेतुकम् ज्ञातिवधं गर्हयम् अधर्मं ज्ञात्वा ततः अहम् हन्ता, अयम् हत इति लौकिकः ततः निवृतः।।७।।

अनुवाद— राज्य प्राप्त करने के लिए अपने कुटुम्बियों को मारना अत्यन्त निन्दित और अधर्म है, इस तरह मे विचार करके अर्जुन लौकिकों के समान यह सोच रहा था कि मैं मारने वाला हूँ और ये सब मारे जाने वाले है । इस तरह से सोचकर अर्जुन युद्ध पराङ्मुख हो गया ।।७।।

भावार्थ दीपिका

युयुत्सोर्विभूतिप्रश्ने कः प्रसङ्गस्तत्राह-ज्ञात्वेति । लौकिकः प्राकृतमतिः सन् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

यदि तुम कहो कि युद्ध करने की इच्छा वाले का विभूति विषयक प्रश्न करने का कौन सा अवसर है ? इस पर श्रीभगवान् ज्ञात्वा इत्यादि श्लोक कहते हैं । लौकिक अर्थात् साधारण मनुष्य के समान ।।७।।

स तदा पुरुषव्याघ्रो युक्त्या मे प्रतिबोधितः । अभ्यभाषत मामेवं यथा त्वं रणमूर्धनि ।।८।।

अन्वयः— तदा स पुरुष व्याघ्रो मे युक्त्या प्रतिबोधितः माम् एवं यथा त्वं रणमूर्धनि अभ्यभाषत ।।८।।

अनुवाद— उस समय पुरुष शिरोमणि अर्जुन को मैंने युक्तियों से समझाया उसी समय तुम्हारे ही तरह उसने युद्ध के मैदान में मुझसे पूछा ।।८।।

भावार्थ दीपिका

स च यदा ततो ज्ञातिवधान्निवृत्तस्तदा मया प्रतिबोधितः सन् यथा त्वमभिभाषसे एवं संग्राममुखे मामभ्यभाषत । तद्वदेव तवापि कथयिष्यामीति भावः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुन उस समय अपने कुटुम्बियों को मारने के कार्य से पराङ्मुख हो गया उस समय मैंने अर्जुन को समझाया जिस तरह से तुम पूछते हो उसी तरह अर्जुन ने भी मुझसे युद्ध के मैदान में पूछा ! अर्जुन को मैंने जैसे समझाया उसी तरह तुमको भी मैं बतलाऊँगा ।।८।।

अहमात्मोद्धवामीषां भूतानां सुहृदीश्वरः । अहं सर्वाणि भूतानि तेषां स्थित्युद्भवाप्ययः ।।९।।

अन्वयः— हे उद्धव अमीषाम् भूतानाम् अहम् आत्मा सुहृद् ईश्वरः अहं सर्वाणि भूतानि तेषां स्थित्युद्भवाप्ययः ।।९।।

अनुवाद— उद्धव मैं इन सभी प्राणियों की आत्मा हितैषी और नियामक हूँ, मैं ही इन सभी प्राणियों और पदार्थों के रूप में हूँ तथा मैं ही इन सबों, की स्थिति, उत्पत्ति एवं संहार का कारण भी हूँ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

ता विभूतिः कथयति-अहमिति । अस्मच्छब्दसमानाधिकरणाः प्रथमान्ता द्वितीयान्ताश्च सर्वा विभूतयस्तास्ताश्चोपासनार्थं कथ्यन्ते । षष्ठी च क्वचिन्निर्धारणे संबन्धे च क्वचिद्यथायोग्यं द्रष्टव्यां ततश्चामीषां भूतानामात्मेति ते सुहृदिति ईश्वर इति च सामान्येनाहमुपास्य इत्यर्थः । एवं सर्वत्र । तेषां स्थित्युद्भवाप्ययः तत्तद्धेतुरित्यर्थः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

अहम्० इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् अपनी विभूतियों का वर्णन करते हैं । **अस्मत्** शब्द के समानाधिकरण में पढ़े गये सभी प्रथमान्त और द्वितीयान्त शब्द से पढ़ी गयी सभी विभूतियाँ उपासनार्थ हैं । षष्ठी विभक्ति भी कहीं तो निर्धारण रूप अर्थ में तथा कहीं सबन्धी के अर्थ में है । उनका यथायोग्य अन्वय करना चाहिए । अतएव इन सभी

प्राणियों की आत्मा हितैषी और नियामक हूँ। इस तरह मैं सामान्य रूप से उपास्य हूँ। इसी तरह सर्वत्र जानना चाहिए। और इन सबों की स्थिति, उत्पत्ति और संहार का कारण भी हूँ ॥९॥

अहं गतिर्गतिमतां कालः कलयतामहम्। गुणानां चाप्यहं साम्यं गुणिन्यौत्पत्तिको गुणः ॥१०॥

अन्वयः— अहं गतिमताम् गतिः कलयताम् अहम् कालः, अहं गुणानाम् अपि साम्यम्, गुणिनि औत्पत्तिको गुणः॥१०॥

अनुवाद— मैं गतिशील पदार्थों में गति हूँ, अपने अधीन करने वालें में मैं काल हूँ, गुणों में मैं उनके मूल स्वरूप साम्य नामक गुण हूँ और गुणियों में मैं उनका स्वभाविक गुण हूँ ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

विशेषतो विभूतीराह-कलयतां वशीकुर्वताम्। गुणानां मध्ये साम्यं सर्वत्र समत्वम्। गुणानां सत्त्वादीनां साम्यमव्याकृतं वा गुणिनि धर्मिणि औत्पत्तिकः स्वाभाविको यो गुणः सोऽहम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् विशेष रूप से अपनी विभूतियों को बतलाते हैं। कलयताम् अपने अधीन करने वालों में मैं काल हूँ। मैं गुणों में सर्वत्र समता हूँ अथवा सत्त्व आदि गुणों में प्रकृति हूँ। गुणवानों में मैं स्वाभाविक गुण हूँ ॥१०॥

गुणिनामप्यहं सूत्रं महतां च महानहम्। सूक्ष्माणामप्यहं जीवो दुर्जयानामहं मनः ॥११॥

अन्वयः— गुणिनाम् अहं सूत्रं महताम् च अहं महान्। सूक्ष्माणाम् अपि अहं जीवः दुर्जयानाम् अहं मनः ॥११॥

अनुवाद— जिनमें सत्त्वादि गुण उद्भूत हैं ऐसे पदार्थों में मैं क्रिया शक्ति प्रधान प्रथम कार्य सूत्रात्मा हूँ, और महानों में ज्ञान शक्ति प्रधान मैं महत् तत्त्व हूँ, सूक्ष्म पदार्थों में मैं जीव और कठिनाई से वश में किया जाने वालों में मैं मन हूँ ॥११॥

भावार्थ दीपिका

सूत्रं प्रथमकार्यम्। महत्तत्त्वं महान्। सूक्ष्मोपाधित्वाद्दुर्ज्ञेयत्वाच्च जीवस्य सूक्ष्मत्वम्। 'बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव वालाग्रमात्रोऽवरोऽपि दृष्टः' इति श्रुतेः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

सूत्रम् अर्थात् प्रथम कार्य सूत्रात्मा, महत्तत्वम् अर्थात् महान्। सूक्ष्मोपाधि से युक्त होनें तथा कठिनाई से जानने योग्य होने के कारण जीव सूक्ष्म हैं। **बुद्धेर्गुणेन० इत्यादि** श्रुति भी कहती है जीवात्मा बुद्धि के गुण से तथा आत्मा के गुण से युक्त है और वह बाल के अग्रभाग के समान अत्यन्त सूक्ष्म है ॥११॥

हिरण्यगर्भो वेदानां मन्त्राणां प्रणवस्त्रिवृत्। अक्षराणामकारोऽस्मि पदानि च्छन्दसामहम् ॥१२॥

अन्वयः— अहं वेदानां हिरण्यगर्भः मन्त्राणां त्रिवृत् प्रणवः, अक्षराणाम् अकारः छन्दसाम् पदानि अस्मि ॥१२॥

अनुवाद— मैं वेदों का अभिव्यक्ति स्थान हिरण्यगर्भ हूँ, मन्त्रों में तीन मात्राओं (अ+उ+म्) वाला ओङ्कार हूँ और छन्दों में मैं त्रिपदा गायत्री हूँ ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

वेदानां संबन्धी तेषामध्यापकः। पदानि त्रिपदा गायत्रीत्यर्थः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

वेदानाम् अर्थात् वेद सम्बन्धी, पदानि अर्थात् त्रिपादा गायत्री ॥१२॥

इन्द्रोऽहं सर्वदेवानां वसूनामस्मि हव्यवाट् । आदित्यानामहं विष्णू रुद्राणां नीललोहितः ॥१३॥

अन्वयः— अहं सर्वदेवानां इन्द्रः, वसूनाम् हव्यवाट् अस्मि, आदित्यानाम् अहं विष्णु रुद्राणां नीललोहितः अस्मि।।१३।।

अनुवाद— मैं सभी देवताओं में इन्द्र हूँ, वसुओं में मैं हव्यवाट् हूँ । आदित्यों में मैं विष्णु हूँ और रुद्रों में मैं नीललोहित नामक रुद्र हूँ ।।१३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१३।।

ब्रह्मर्षीणां भृगुरहं राजर्षीणामहं मनुः । देवर्षीणां नारदोऽहं हविर्धान्यस्मि धेनुषु ॥१४॥

अन्वयः— अहं ब्रह्मर्षीणां भृगुः, अहं राजर्षीणां मनुः अहं देवर्षीणां नारदः, धेनुषु हविर्धानी अस्मि ।।१४।।

अनुवाद— मैं ब्रह्मर्षियों में भृगु, राजर्षियों में मनु, देवर्षियों में नारद और गोओं में मैं कामधेनु हूँ ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

हविर्धानी कामधेनुः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

हर्विधानी अर्थात् कामधेनु ।।१४।।

सिद्धेश्वराणां कपिलः सुपर्णोऽहं पतत्रिणाम् । प्रजापतीनां दक्षोऽहं पितॄणामहमर्यमा ॥१५॥

अन्वयः— अहं सिद्धेश्वराणां कपिलः, पतत्रिणाम् सुपर्णः अहं प्रजापतीनां दक्षः अहम् पितॄणाम् अर्यमा ।।१५।।

अनुवाद— सिद्धेश्वरों में कपिल, पक्षियों में गरुड़, प्रजापतियों में दक्ष और पितरों में अर्यमा हूँ ।।१५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१५।।

मां विद्ध्युद्धव दैत्यानां प्रह्लादमसुरेश्वरम् । सोमं नक्षत्रौषधीनां धनेशं यक्षरक्षसाम् ॥१६॥

अन्वयः— ऊद्धव मां दैत्यानाम् असुरेश्वरं प्रह्लादम् नक्षत्रौषधीनाम् सोमं यक्षरक्षसाम् धनेशं विद्धि ।।१६।।

अनुवाद— प्रिय उद्धव मुझे दैत्यों में असुरेश्वर प्रह्लाद, नक्षत्रों में चन्द्रमा ओषधियों में सोमरस तथा यक्षराक्षसों में मुझको कुबेर समझो ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

नक्षत्रौषधीनां प्रभुं सोमम् । यक्षरक्षसां प्रभुम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा और औषधियों का स्वामी सोमरस, यक्षों एवं राक्षसों का स्वामी कुबेर हूँ ।।१६।।

ऐरावतं गजेन्द्राणां यादसां वरुणं प्रभुम् । तपतां द्युमतां सूर्यं मनुष्याणां च भूपतिम् ॥१७॥

अन्वयः— गजेन्द्राणां प्रभुम् ऐरावतम् यादसां वरुणम्, तपतां द्युमतां सूर्यम् मनुष्याणां च भूपतिम् ।।१७।।

अनुवाद— मुझे गजेन्द्रों का स्वामी ऐरावत जलचरों का स्वामी वरुण, तपने और चमकने वालों का स्वामी सूर्य और मनुष्यों का स्वामी राजा जानो ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

यादसां प्रभुम् । तपतां तापवताम् । द्युमतां दीप्तिमतां च मध्ये ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

जलचरों का स्वामी । तपताम् अर्थात् संतप्त करने वालों का द्युमताम् अर्थात् चमकने वालों का स्वामी ।।१७।।

उच्चैःश्रवास्तुरङ्गाणां धातूनामस्मि काञ्चनम् । यमः संयमतां चाहं सर्पाणामस्मि वासुकिः ॥१८॥

अन्वयः— तुरङ्गाणां उच्चैश्रवाः, धातूनाम् काञ्चनम् अस्मि, संयमताम् च अहं यमः, सर्पाणाम् वासुकिः अस्मि॥१८॥

अनुवाद— मैं अश्वों का राजा उच्चैःश्रवा हूँ, धातुओं में मुझे सोना समझो दण्डधारियों मे यम और सर्पों में मैं वासुकि हूँ ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

संयमतां दण्डयतामित्यर्थः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

संयमताम् अर्थात् दण्ड देने वालों में ॥१८॥

नागेन्द्राणामनन्तोऽहं मृगेन्द्रः शृङ्गिदंष्ट्रिणाम् । आश्रमाणामहं तुर्यो वर्णानां प्रथमोऽनघ ॥१९॥

अन्वयः— हे अनघ नागेन्द्राणाम् अहं अनन्तः शृंगिदंष्ट्र आश्रमाणाम् अहं तुर्यः वर्णानाम् च प्रथमः॥१९॥

अनुवाद— हे निष्पाप उद्धव ! मैं नागों का स्वामी अनन्त (शेषनाग) सींग और दाँत वालों में मैं सिंह हूँ आश्रमों में चतुर्थ आश्रम संन्यास हूँ और वर्णों में ब्राह्मण हूँ ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

शृङ्गिणां दंष्ट्रिणां च मध्ये तेषां प्रभुर्वा । तुर्यः संन्यासः प्रथमो ब्राह्मणः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

सींङ्गों और दाँत वालों में उन सबों का स्वामी । तुर्यः अर्थात् संन्यास, प्रथमः अर्थात् ब्राह्मण ॥१९॥

तीर्थानां स्रोतसां गङ्गा समुद्रः सरसामहम् । आयुधानां धनुरहं त्रिपुरघ्नो धनुष्मताम् ॥२०॥

अन्वयः— तीर्थानां स्रोतसां गङ्गा, सरसाम् अहं समुद्रः आयुधानाम् अहं धनुः, धनुष्मताम् अहं त्रिपुरघ्नः ॥२०॥

अनुवाद— मैं तीर्थों और नदियों में गङ्गा हूँ और जलाशयों में समुद्र हूँ, अस्त्र शस्त्रों में धनुष और धनुधारियों त्रिपुरारि शङ्कर हूँ ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

स्रोतसां प्रवाहाणां च । सरसां स्थिरोदकाशयानाम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

सोतसाम् अर्थात् प्रवाहित होने वालों में सरसाम् जिन जलाशयों का जल सदा एक बराबर रहता है ॥२०॥

धिष्ण्यानामस्म्यहं मेरुर्गहनानां हिमालयः । वनस्पतीनामश्वत्थ ओषधीनां महं यवः ॥२१॥

अन्वयः— अहं धिष्ण्यानाम् मेरुः गहनानां हिमालयः, वनस्पतीनाम् अश्वत्थः ओषधीनाम् अहम् यवः अस्मि ॥२१॥

अनुवाद— मैं निवास स्थानों में सुमेरु दुर्गम स्थानों में हिमालय ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

धिष्ण्यानां निवासस्थानानाम् । गहनानां दुर्गमानाम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

धिष्ण्यानाम् अर्थात् निवास स्थानों में गहनानाम् दुर्गम स्थानों में ॥२१॥

पुरोधसां वसिष्ठोऽहं ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः । स्कन्दोऽहं सर्वसेनान्यामग्रण्यां भगवानजः ॥२२॥

अन्वयः— अहं पुरोधसां वसिष्ठः ब्रह्मिष्ठानां बृहस्पतिः, सर्वसेनान्याम् अहं स्कन्दः अग्रण्यां भगवान अजः ॥२२॥

अनुवाद— मैं पुरोहितों में वसिष्ठ, वेदार्थ वेत्ताओं में बृहस्पति, मैं समस्त सेनापतियों में स्वामी कार्तिकेय, तथा सन्मार्ग प्रवर्तकों में भगवान् ब्रह्मा हूँ ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मिष्ठानां वेदार्थनिष्ठानाम् । सेनान्यां चमूपतीनाम् । अग्रण्यां सन्मार्गप्रवर्तकानाम् । अजो ब्रह्मा ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मिष्ठानाम् अर्थात् वेदार्थ वेत्ताओं में सेनान्याम् अर्थात् सेनापतियों में । अग्रण्याम् अर्थात् सन्मार्ग प्रवर्तकों में अजः अर्थात् ब्रह्मा ॥२२॥

यज्ञानां ब्रह्मयज्ञोऽहं व्रतानामविहिंसनम् । वाय्वग्न्यर्काम्बुवागात्मा शुचीनामप्यहं शुचिः ॥२३॥

अन्वयः— अहं यज्ञानाम् ब्रह्मयज्ञः व्रतानाम् अविहिंसनम्, शुचीनाम् अपि अहं शुचिः ॥२३॥

अनुवाद— मैं पञ्च यज्ञों में ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय यज्ञ) व्रतों में अहिंसाव्रत शुद्ध करने वाले पदार्थों में मैं नित्य शुद्ध वायु, अग्नि, सूर्य, जल, वाणी एवं आत्मा हूँ ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

शुचीनां शोधकानामपि मार्जनतक्षणघर्षणादीनां मध्ये वाय्वादिरूपः शोधकोऽहम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

शुचीनाम् अर्थात् शुद्ध करने वालों में माँजना, छिलना, घिसना, आदि घिसना आदि क्रियाओं में पवित्र बनाने वाला हूँ ॥२३॥

योगानामात्मसंरोधो मन्त्रोऽस्मि विजिगीषताम् । आन्वीक्षिकी कौशलानां विकल्पः ख्यातिवादिनाम्॥२४॥

अन्वयः— योगानाम् आत्मसंरोध; विजिगीषताम् मन्त्रः कौशलानाम् आन्वीक्षिकी ख्यातिवादिनाम् विकल्पः अस्मि॥२४॥

अनुवाद— अष्टाङ्ग योगों में मैं मनोनिरोध रूप समाधि, विजय की इच्छा रखने वालों में मन्त्र बल, कौशलों में आत्मा एवं अनात्मा का विवेक रूप कौशल हूँ ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

योगानां योगाङ्गानामष्टानां मध्ये आत्मसंरोधः समाधिरहम् । मन्त्रो नीतिः। कौशलानां विवेकादिनैपुणानां मध्ये आन्वीक्षिकी आत्मानात्मविवेकविद्या अख्यात्यन्यथाख्यातिशून्यख्यात्यसतख्यात्यनिर्वचनीयख्यातिवादिनामेवमिदं वेति यो दुरन्तो विकल्पः सोऽहम्॥२४॥

भाव प्रकाशिका

योग के आठ अङ्गों में **आत्मसंरोधः** अर्थात् समाधि । मन्त्र अर्थात् नीति अर्थात् मन्त्रबल । कौशलानाम् अर्थात् विवेक नैपुण्यों में मैं आन्वीक्षिकी अर्थात् आत्मा और अनात्मा का विद्या । ख्यातिवादिनाम् अख्याति, अन्यथाख्याति शून्यख्याति, असतख्याति तथा अनिर्वचनीयख्यातियों में काठिन्य को जानने वाला मैं विकल्प हूँ ॥२४॥

स्त्रीणां तु शतरूपाहं पुंसां स्वायंभुवो मनुः । नारायणो मुनीनां च कुमारो ब्रह्मचारिणाम् ॥२५॥

अन्वयः— अहम् स्त्रीणां शतरूपा पुंसां स्वायम्भुवः मनुः मुनीनां नारायणः ब्रह्मचारिणाम् च कुमारः ॥२५॥

अनुवाद— मैं स्त्रियों में शतरूपा पुरुषों में स्वायभुव मनु, मुनियों में मैं नारायण मुनि और ब्रह्मचारियों मैं सनत्कुमार हूँ ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

कुमारः सनत्कुमारः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

कुमारः अर्थात् सनत्कुमार ॥२५॥

धर्माणामस्मि संन्यासः क्षेमाणामबहिर्मतिः । गुह्यानां सूनृतं मौनं मिथुनानामजस्त्वहम् ॥२६॥

अन्वयः— अहम् धर्माणां संन्यासः, क्षेमाणाम् अबहिर्मतिः गुह्यानां सुनृतं मौनम् मिथुनानां तु अजः अस्मि ॥२६॥

अनुवाद— मैं धर्मों में संन्यास (जीवों को अभय प्रदान रूप) अभय के स्थानों में अन्तःनिष्ठ, गोपनीयों में प्रियवचन (मीठीवाणी) और मौन, प्रिय भाषण करने से अथवा मौन धारण करने वाले पुरुष के अभिप्राय का पता नहीं चलता है। स्त्री पुरुष के जोड़ों में मैं प्रजापति हूँ। जिनके शरीर के दो भागों से पुरुष एवं स्त्री का पहला जोड़ा पैदा हुआ ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

संन्यासो भूताभयदानम्। क्षेमाणामभयस्थानांनां मध्ये अबहिर्मतिरन्तर्निष्ठा। सूनृतं प्रियवचनं मौनं च। नहि प्रियभाषणे मौने च पुरुषस्याभिप्रायो ज्ञायते। अजः प्रजापतिः। यस्य देहार्धाभ्यां मिथुनमभूत्स एवं मुख्यं मिथुनम्। 'अर्धो ह वा एष आत्मनो यत्पत्नी' इति श्रुतेः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

संन्यास अर्थात् अभय प्रदान, क्षमाणाम् अर्थात् अभय प्रदान के स्थानों में मैं अन्तःनिष्ठ हूँ। सुनृतम् अर्थात् प्रियवचन और मौन प्रिय वाणी बोलने तथा मौन धारण करने से पुरुष का अभिप्राय नहीं ज्ञात होता है। अजः अर्थात् प्रजापति जिनके शरीर के दो भागों से पुरुष और स्त्री का पहला जोड़ा उत्पन्न हुआ ॥२६॥

संवत्सरोऽस्म्यनिमिषामृतूनां मधुमाधवौ । मासानां मार्गशीर्षोऽहं नक्षत्राणां तथाभिजित् ॥२७॥

अन्वयः— अहम् अनिमिषाम् संवत्सरः ऋतूनां मधुमाधवौ, मासानां मार्गशीर्षः तथा नक्षत्राणां अभिजित् अस्मि॥२७॥

अनुवाद— सदा सावधान रहकर जागते रहने वालों में संवत्सर स्वरूप काल हूँ, ऋतुओं में वसन्त (चैत्र और वैशाख दो महीने) महीनों में मार्गशीर्ष (अगहन) और नक्षत्रों में अभिजित् नक्षत्र हूँ ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अनिमिषामनिमिषाणामप्रमत्तानाम्। मधुमाधवौ वसन्त इत्यर्थः। अभिजिदुत्तराषाढा चतुर्थपादः श्रवणप्रथमपादश्च। तथा च श्रुतिः-'अभिजिन्नाम् नक्षत्रमुपरिष्टादषाढानामधस्ताच्छ्रोणायाः' इत्यादिः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

अनिमिषाम् अर्थात् सावधान रहकर जागते रहने वालों में मधुमाधवौ अर्थात् वसन्त ऋतु। अभिजित् उत्तराषाढा नक्षत्र के चतुर्थ चरण तथा श्रवण नक्षत्र के प्रथम पाद दोनों मिलकर अभिजित् नक्षत्र होता है। श्रुति भी कहती हैं- **अभिजिन्नाम० इत्यादि** अर्थात् उषराषाढानक्षत्र के अन्तिम चरण और श्रोणा (श्रवण) नक्षत्र के प्रथम चरण को मिलाकर अभिजित् नक्षत्र होता है ॥२७॥

अहं युगानां च कृतं धीराणां देवलोऽसितः । द्वैपायनोऽस्मि व्यासानां कवीनां काव्य आत्मवान्॥२८।

अन्वयः— अहं युगानां कृतम् धीराणां देवलः असितः व्यासानां द्वैपायनः, कवीनाम् आत्मवान् काव्यः अस्मि ॥२८।

अनुवाद— मैं युगों में सत्ययुग, विवेकियों में महर्षि देवल और असित, व्यासो द्वैपायन महर्षि व्यास तथा कवि में मैं मनस्वी शुक्राचार्य हूँ ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

कृतं कृतयुगम् । देवलोऽसितश्च । व्यासानां वेदविभागकर्तॄणाम् । कवीनां विदुषां काव्यः शुक्रः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

कृतम् अर्थात् सत्ययुग, देवल और असित महर्षि व्यासानाम् अर्थात् वेदों का विभाग करने वालों में कवीनां अर्थात् विद्वानों में काव्यः अर्थात् शुक्राचार्य ॥२८॥

वासुदेवो भगवतां त्वं तु भागवतेष्वहम् । किंपुरुषाणां हनुमान्विद्याध्राणां सुदर्शनः ॥२९॥

अन्वयः— अहम् भगवताम् वासुदेवः भागवतेषु तु त्वम्, किं पुरुषाणाम् हनुमान् विद्याध्राणाम् सुदर्शनः ॥२९॥

अनुवाद— सृष्टि की उत्पत्ति और लय प्राणियों के जन्म और मृत्यु तथा विद्या एवं अविद्या को जानने वाले भगवानों में (विशिष्ट महापुरुषों में) मैं वासुदेव हूँ, मेरे प्रेमी भक्तों में मैं तुम हूँ, किंपुरुषों में हनुमान और विद्याधरों मैं सुदर्शन हूँ ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

भगवताम् 'उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ।' इत्येवंलक्षणानाम्॥२९॥

भाव प्रकाशिका

भगवताम् अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय, प्राणियों के जन्म और मृत्यु तथा विद्या एवं अविद्या को जो जानता है, वही भगवान् शब्द वाच्य है । इस प्रकार के लक्षण से युक्त महापुरुषों में ॥२९॥

रत्नानां पद्मरागोऽस्मि पद्मकोशः सुपेशसाम् । कुशोऽस्मि दर्भजातीनां गव्यमाज्यं हविःष्वहम् ॥३०॥

अन्वयः— अहम् रत्नानाम् पद्मरागः सुपेशसाम् पद्मकोशः, दर्भजातीनां कुशः हविःषु गव्यम् आज्यम् ॥३०॥

अनुवाद— मैं रत्नों में पद्मराग, सुन्दर वस्तुओं में कमल की कली, कुश की जातियों में मैं कुश हूँ और हविष्यों में मैं गोघृत हूँ ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

सुपेशसां सुन्दराणाम् । दर्भजातीनां काशदूर्वादीनाम् । हविःषु चरुपुरोडाशादिषु घृतेषु वा ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

सुपेशसाम् अर्थात् सुन्दर वस्तुओं में, दर्भजातीनाम कुश काश, दूर्वा आदि को मैं हविःषु अर्थात् चरु पुरोडाशादि में अथवा धृतों में ॥३०॥

वसायिनामहं लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः । तितिक्षास्मि तितिक्षूणां सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥३१॥

अन्वयः— अहम् व्यवसायिनाम् लक्ष्मीः कितवानां छलग्रहः, तितिक्षूणां तितिक्षा अस्मि, सत्त्ववतां च सत्त्वम् अस्मि॥३१॥

अनुवाद— मैं व्यापारीयों की लक्ष्मी हूँ, छलकपट करने वालों में द्युतक्रीडा हूँ, तितिक्षुओं की मैं तितिक्षा ष्ट सहिष्णुता) हूँ और सात्त्विक पुरुषों में रहने वाला मैं सत्त्वगुण हूँ ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

लक्ष्मीर्धनादिसंपत् ॥३१॥

ओजः सहो बलवतां कर्माहं विद्धि सात्त्वताम् । सात्त्वतां नवमूर्तीनामादिमूर्तिरहं परा ॥३२॥

अन्वयः— अहम् बलवतां ओजः सहः सत्त्वताम् कर्म विद्धि, सात्त्वताम् नवमूर्तीनाम् अहम् आदिः परा ॥३२॥

अनुवाद— मैं बलवानों में उत्साह पराक्रम हूँ। भगवद् भक्तों मेंमैं भक्तियुक्त निष्काम कर्म हूँ। वैष्णवों के पूज्य वासुदेव, सङ्कर्षण प्रद्युम्न, अनिरुद्ध नारायण हयग्रीव वराह, नृसिंह और ब्रह्मा इन नव मूर्तियों में प्रथम और श्रेष्ठ वासुदेव मूति हूँ ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

बलवतामोजश्च सहश्च । सात्त्वतां भागवतानां भक्त्या कृतं कर्माहमित्यर्थः । तेषामेव नवव्यूहार्चने वासुदेवसङ्कर्षण-प्रद्युम्नानिरुद्धनारायणहयग्रीववराहनृसिंहब्रह्माण इति या नवमूर्तयस्तासां मध्ये वासुदेवाख्या ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

बलवानों में मैं उत्साह और पराक्रम हूँ। भगवद् भक्तों द्वारा भक्ति पूर्वक किया गया निष्काम कर्म हूँ श्रीवैष्णवों द्वारा जिनकी अर्चना की जाती है उन वासुदेव, सङ्कर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध, नारायण, हयग्रीव, वराह नृसिंह और ब्रह्मा इन नवमूर्तियों में मैं प्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ मूर्ति वासुदेव हूँ ॥३२॥

विश्वावसुः पूर्वचित्तिर्गन्धर्वाप्सरसामहम् । भूधराणामहं स्थैर्यं गन्धमात्रमहं भुवः ॥३३॥

अन्वयः— गन्धर्वाप्सरसाम् अहं विश्वावसुः पूर्वचित्तिः च, भूधाराणां स्थैर्यम् भुवः, अहम् गन्धमात्रम् ॥३३॥

अनुवाद— मैं गन्धर्वों में विश्वावसु और अप्सराओं में ब्रह्माजी के दरबार की अप्सरा पूर्वचिति हूँ, पर्वतों में मैं स्थिरता और पृथिवी में गन्धतन्मात्रा हूँ ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

गन्धर्वाणां विश्वावसुः । अप्सरसां पूर्वचित्तिः । गन्धमात्रमविकृतम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

गन्धर्वों में मैं विश्वावसु हूँ, अप्सराओं में मैं ब्रह्माजी के दरबार की अप्सरा पूर्वचिति हूँ। गन्धामत्रमविकृतम् अर्थात् गन्धतन्मात्रा हूँ ॥३३॥

अपां रसश्च परमस्तेजिष्ठानां विभावसुः । प्रभा सूर्येन्दुताराणां शब्दोऽहं नभसः परः ॥३४॥

अन्वयः— अपां रसः तेजिष्ठानां परमः विभावसुः सूर्येन्दुताराणां प्रभा, नभसः अहं परः शब्दः ॥३४॥

अनुवाद— मैं जल में रस, तेजस्वियों में परमतेजस्वी अग्निः, सूर्य, चन्द्रमा और तारों में प्रभा, तथा आकाश में मैं उसका एकमात्र गुण शब्द हूँ ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

परमो मधुरः परः पराख्यः शब्दः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

परम अर्थात् मधुर, परः अर्थात् पर नामक शब्द ॥३४॥

ब्रह्मण्यानां बलिरहं वीराणामहमर्जुनः । भूतानां स्थितिरुत्पत्तिरहं वै प्रतिसंक्रमः ॥३५॥

अन्वयः— अहं ब्रह्मण्यानां बलिः वीराणाम् अहमर्जुनः अहम् भूतानां स्थितिः उत्पत्तिः प्रतिसंकमः ॥३५॥

अनुवाद— मैं ब्राह्मणभक्तों में बलि, वीरों में अर्जुन और प्राणियों में उनकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय हूँ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

अर्जुनः पार्थः । भूतानां प्राणिनां प्रतिसंक्रमः प्रलयः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

अर्जुनः अर्थात् पृथा के पुत्र अर्जुन, भूतानाम् अर्थात् प्राणियों में मैं उनका प्रतिसंक्रमः अर्थात् प्रलय ।।३२।।

गत्युक्त्युत्सर्गोपादानमानन्दस्पर्शलक्षणम् । आस्वादश्रुत्यवघ्राणमहं सर्वेन्द्रियेन्द्रियम् ।।३६।।

अन्वयः— अहम् गत्युक्त्युत्सर्गोपादानम् आनन्दस्पर्शलक्षणम्, आस्वादश्रुत्यवघ्राणम् सर्वेन्द्रियेन्द्रियम् ।।३६।।

अनुवाद— में पैरों में चलने की शक्ति, वाणी में बोलने की शक्ति पायु में मल त्याग की शक्ति, हाथों में पकड़ने की शक्ति, जननेन्द्रिय में अनन्दोपभोग की शक्ति, त्वगिन्द्रिय में स्पर्श की शक्ति, नेत्रों में देखने की शक्ति, रसना में आस्वाद लेने की शक्ति, कानों में सुनने की शक्ति और नासिका में सूघने की शक्ति भी मैं ही हूँ। समस्त इन्द्रियों की इन्द्रियशक्ति भी मैं ही हूँ ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

गत्यादयः पञ्च कर्मेन्द्रियव्यापाराः । स्पर्शादयो ज्ञानेन्द्रियव्यापाराः । तत्र लक्षणं दर्शनम् । सर्वेन्द्रियाणामिन्द्रियं तत्तदर्थग्रहणशक्तिरप्यहम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

गमन आदि पाञ्च कर्मेन्द्रियों के व्यापार हैं। स्पर्श आदि पाञ्च ज्ञानेन्द्रियों के व्यापार हैं। लक्षण अर्थात् पाया जाना। सर्वेन्द्रियाणामिन्द्रियम् अर्थात् उन इन्द्रियों द्वारा विभिन्न विषयों के ग्रहण किए जाने की शक्ति भी मैं ही हूँ ।।३६।।

पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतिरहं महान् । विकारः पुरुषोऽव्यक्तं रजः सत्त्वं तमः परम् ।।
अहमेतत्प्रसंख्यानं ज्ञानं तत्त्वविनिश्चयः ।।३७।।

अन्वयः— पृथिवी वायुः आकाशः आपः ज्योतिः अहं, महान् विकारः पुरुषः, अव्यक्तं, रजः, सत्त्वं, तमः परम् अहम् एतत् प्रसंख्यानं ज्ञानतत्वविनिश्चयः ।।३७।।

अनुवाद— पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज, अहङ्कार, महत् तत्त्व, पञ्चमहाभूत, जीव, अव्यक्त, प्रकृति, सत्त्व, रजस्, तमस् और उनसे परे रहने वाला ब्रह्म यह सबकुछ में ही हूँ। इन तत्त्वों की गणना लक्षणों द्वारा उनका ज्ञान तथा तत्त्वज्ञान रूप उसका फल भी मैं ही हूँ ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं तत्र-तत्र निर्धारणेन तत्तत्संबन्धेन च विशेषतो विभूतीर्निरूप्येदानीं सामान्यतः सर्वा अपि निरूपयति-पृथ्वीति सार्धद्वयेन । पृथिव्यादिशब्दैस्तन्मात्राणि विवक्षितानि । अहमहंकारः । महान्महत्तत्वम् । एताः सप्त प्रकृतिविकृतयः । विकारः पञ्चमहाभूतानि एकादशेन्द्रियाणि चेत्येवं षोडशसंख्याकः । पुरुषो जीवः । अव्यक्तं प्रकृतिः । एवं पञ्चविंशतितत्त्वानि । तदुक्तम्- 'मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त । षोडशकश्च विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः ।' इति । किंच रजः सत्त्वंतम इति प्रकृतेर्गुणाश्च परं ब्रह्म च । तदेतत्सर्वमहमेव । किंचैतत्प्रसंख्यानमेतेषां परिगणनमेतेषां लक्षणतो ज्ञानं च तत्फलं तत्त्वनिश्चयश्चाहमेव ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार स्थान-स्थान पर निर्धारण के द्वारा और उसके संबन्ध के द्वारा विशेष रूप से विभूतियों का निरूपण करके, अब सामान्य रूप से सभी विभूतियों का निरूपण पृथ्वी इत्यादि ढाई श्लोकों से करते हैं। पृथिवी इत्यादि शब्दों से उनकी तन्मात्राएँ विवक्षित हैं। अहम् अर्थात् अहङ्कार महान् अर्थात् महत्तत्त्व, ये सात प्राकृति और विकार

दोनो है। विकारः अर्थात् पञ्च महाभूत, ग्यारह इन्द्रियाँ इस तरह से सोलह संख्या वाली पुरुष अर्थात् जीव अव्यक्त अर्थात् प्रकृति। इस तरह तत्त्वों की संख्या पचीस हो जाती है। सांख्यकारिकाकार ने कहा है मूल प्रकृतिः इत्यादि। अर्थात् प्रकृति ही मूल है, वह किसी का कार्य नहीं है, सात प्रकृति और विकृति (कारण और कार्य दोनों है। सोलह केवल विकार (कार्य) ही है। पुरुष न तो किसी का कारण है और न किसी का कार्य है। किञ्च सत्त्व रजः तमस् ये तीनों प्रकृति के गुण हैं। और **परं ब्रह्म** भी यह सबकुछ मैं ही हूँ। किञ्च यह इन सबों की गणना इन सबों का लक्षण द्वारा ज्ञान, और उसका फल तत्त्वों का निश्चय मैं ही हूँ ॥३७॥

मयेश्वरेण जीवेन गुणेन गुणिना विना। सर्वात्मनापि सर्वेण न भावो विद्यते क्वचित् ॥३८॥

अन्वयः— मया ईश्वरेण, जीवेन, गुणेन गुणिना बिना, सर्वात्मना अपि सर्वेण क्वचित् भावो न विद्यते ॥३८॥

अनुवाद— मैं ही ईश्वर हूँ, मैं ही जीव हूँ, मैं ही गुण हूँ और मैं ही गुणी हूँ, मैं ही सबों की आत्मा हूँ, मैं ही सबकुछ हूँ मुझसे भिन्न कोई भी पदार्थ कहीं भी नहीं है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव संक्षिप्याह-मयेति। जीवेश्वररूपो द्विविधो यो भावो यश्च गुणिगुणरूपो यश्च क्षेत्रज्ञक्षेत्ररूप; स सर्वोऽपि मया विना मद्व्यतिरेकेण नास्ति, अहमेव सर्वमित्यर्थः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

इसी बात को श्रीभगवान् संक्षेप में कहते हैं जो जीव और ईश्वर रूप दो भाव पदार्थ है, जो गुण और गुणी रूप जो क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ रूप, भाव पदार्थ हैं वह सबकुछ मुझसे अतिरिक्त नहीं है मैं ही सबकुछ हूँ ॥३८॥

संख्यानं परमाणूनां कालेन क्रियते मया। न तथा मे विभूतीनां सृजतोऽण्डानि कोटिशः ॥३९॥

अन्वयः— मया कालेन परमाणूनां संख्यानां क्रियते कोटिशः अण्डानि सृजतः में विभूतीनां तथा न ॥३९॥

अनुवाद— यदि मैं गिनूं तो पृथिवी के परमाणुओं की गणना किसी समय कर सकता हूँ, उसी तरह करोड़ो ब्रह्माण्डों की सृष्टि करने वाले मेरी विभूतियों की गणना नहीं की जा सकती है, क्योंकि जब ब्रह्माण्डों की ही गणना नहीं की जा सकती हो फिर विभूतियों की गणना कैसे की जा सकती है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

ननु सामान्यतः किमेवं संक्षिप्य कथयसि पूर्ववन्निर्धारणसंबन्धाभ्यां विशेषतः सर्वाः कथयेति-चेत्तत्राह-संख्यानं पृथिव्यादिपरमाणूनां कालेन महता तदपि मयैव क्रियते कृत्वा च वक्तुं शक्यते, तथ मे विभूतीनां संख्यानं कुतुं न शक्यते। कुत इत्यत आह-सृजतोऽण्डानीति। यदा मया सृज्यमानानां ब्रह्माण्डानामेव तावत्संख्या नास्ति तदा कुतस्तद्गतानां विभूतीनां संख्येत्यर्थः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि इस तरह से सामान्यतः संक्षेप में आप क्यों कहते हैं पहले के ही समान, निर्धारण और संबन्ध पूर्वक आप सभी विभूतियों को बतलायें। तो इसके उत्तर में श्रीभगवान् **संख्यानं परमाणूनाम् इत्यादि** श्लोक कहते हैं। मैं पृथ्वी आदि के परमाणूओं की चाहूँ तो गणना किसी समय कर सकता हूँ और गणना करके बतला सकता हूँ। उसी प्रकार मेरी विभूतियों की गणना नहीं जा सकती है क्योंकि करोड़ो ब्रह्माण्डों की सृष्टि करता हूँ जब मेरे द्वारा सृजित किए जाने वाले ब्रह्माण्डों की ही संख्या नही की जा सकती है तो उन ब्रह्माण्डों में रहने वाली विभूतियों की गणना कैसे की जा सकती है ?॥३९॥

तेजः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यं ह्रीस्त्यागः सौभगं भगः । वीर्यं तितिक्षा विज्ञानं यत्र यत्र स मेंऽशकः ॥४०॥

अन्वयः— यत्र-यत्र तेजः श्रीः कीर्तिः ऐश्वर्यम् ह्रीः त्यागः सौभगं भगः वीर्य तितिक्षा विज्ञानं स मे अंशकः ॥४०॥

अनुवाद— जिसमें भी तेज, श्री, कीर्ति, ऐश्वर्य, लज्जा, त्याग, सौन्दर्य, सौभाग्य, पराक्रम, तितिक्षा और विज्ञान आदि श्रेष्ठ गुण हों, उसे तुम मेरा ही अंश समझो ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

तथापि विशेषत एव सर्वा अपि संक्षेपतः कथयामीत्याह-तेजः प्रभावः । श्रीः संपत् । सौभगं मनोनयनाह्लादकत्वम्। भगो भाग्यम् । वीर्यं बलम् । अंशको विभूतिः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

तेजः इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् ने कहा कि फिर भी मैं विशेष रूप से अपनी सभी विभूतियों को संक्षेपत बतला रहा हूँ । **तेजः** अर्थात् प्रभाव, **श्रीः** अर्थात् संपत्ति, **सौभगम्** अर्थात् मन एवं नेत्र को आह्लादित करने का गुण, **भगः** अर्थात् भाग्य, **वीर्यम्** अर्थात् बल, अंशकः अर्थात् विभूति ॥४०॥

एतास्ते कीर्तिताः सर्वाः संक्षेपेण विभूतयः । मनोविकारा एवैते यथा वाचाभिधीयते ॥४१॥

अन्वयः— ते एताः सर्वाः विभूतयः संक्षेपेण कीर्तिताः एते मनोविकारा एव यथा वाचाभिधीयते ॥४१॥

अनुवाद— उद्धव मैंने तुम्हारे प्रश्न के अनुसार अपनी सभी विभूतियों का वर्णन कर दिया । ये सभी मन के विकार हैं क्योंकि मन से सोची हुई और वाणी से वर्णन की गयी कोई भी वस्तु सत्य नहीं होती है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-एता इति । एते च विभूतिभेदा मयि चित्तावताराय कल्पिताः, अतो नात्रातीवाभिनिवेशः कर्तव्य इत्याह-मनोविकारा एव न तु परमार्थाः । यथा किंचित् खपुष्पादि वाङ्मात्रेणाभिधीयते तत्तुल्याः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

अपनी विभूतियों के वर्णन का उपसंहार श्रीभगवान् **एताः इत्यादि** श्लोक से करते हैं । विभूतियों के ये भेद मुझमें चित्त को लगाने के लिए वर्जित है । अतएव इन सबों में बहुत अधिक अभिनिवेश नहीं करना चाहिए इस बात को भगवान् **मनोविकाराः एव** कहकर बतलाये हैं । ये विभूतियाँ परमार्थ नहीं हैं । अतएव जैसे आकाशपुष्पादि केवल वाणी मात्र से कहे जाते है उसी के तरह हैं ॥४१॥

वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान्यच्छेन्द्रियाणि च । आत्मानमात्मना यच्छ न भूयः कल्पसेऽध्वने॥४२॥

अन्वयः— वाचं यच्छ मनो यच्छ प्राणान् यच्छ इन्द्रियाणि च, आत्मानम् आत्मना यच्छ भूयः अध्वने न कल्पसे॥४२॥

अनुवाद— तुम अपनी वाणी को स्वच्छन्द भाषण से रोको, मन को सङ्कल्प विकल्प करने से रोको, अपने प्राणों को वश में करो तथा इन्द्रियों का दमन करो, सात्त्विक बुद्धि के द्वारा प्रापाञ्चाभिमुख बुद्धि को शान्त करके तुम भवाटवी में भटकने से बच जाओगे ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

तस्माद्वागादीन्नियच्छ । आत्मानं बुद्धिमात्मना सत्त्वसंपन्नया तयैव नियच्छ । अध्वने संसारमार्गाय ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

अतएव तुम वाणी आदि को नियन्त्रित करो । आप अपनी सात्त्विक बुद्धि के द्वारा प्रपञ्चाभिमुख बुद्धि को शान्त कर अध्वने अर्थात् संसार मार्ग के पथिक नहीं बनोगे ॥४२॥

यो वै वाङ्मनसी सम्यगसंयच्छन्धिया यतिः । तस्य व्रतं तपो दानं स्रवत्यामघटाम्बुवत् ॥४३॥

अन्वयः— यः वै यति धिया वाङ्मनसी सम्यक असंयच्छन् तस्य व्रतं तपोदानं आमघटाम्बुवत् स्रवति ॥४३॥

अनुवाद— जो साधक अपनी बुद्धि के द्वारा वाणी और मन का अच्छी तरह से नियमन नहीं करता है उसके द्वारा किए गये व्रत, तप एवं दान कच्चे घड़े के जल के समान क्षीण हो जाते हैं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

असंयमने दोषमाह-य इति । असंयच्छन्नसंयच्छति ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

इन सबों का नियमन नहीं करने पर होने वाले दोष को **यः इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । असंयमन् अर्थात् संयमिति नहीं करता है ॥४३॥

तस्मान्मनोवचःप्राणान्नियच्छेन्मत्परायणः । मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या ततः परिसमायते ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अन्वयः— तस्मात् मत्परायणः मद्भक्तियुक्तया बुद्ध्या मनोवचः प्राणान् नियच्छेत् ततः परिसमाप्यते ॥४४॥

अनुवाद— अतएव मेरे प्रेमी भक्त को चाहिए कि वह मेरे आश्रित होकर भक्तियुक्त बुद्धि के द्वारा वाणी, मन और प्राणों का संयम करे । ऐसा करके उसे कुछ भी करने के लिए अवशेष नहीं रह जाता है वह कृतकृत्य हो जाता है ॥४४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के सोलहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

परिसमाप्यते कृतकृत्यो भवतीत्यर्थः ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

परिसमाप्यते अर्थात् कृतकृत्य हो जाता है ॥४४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के सोलहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१६॥

सत्रहवाँ अध्याय

वर्णाश्रम धर्म निरूपण

उद्धव उवाच

यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः । वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥१॥
यथानुष्ठीयमानेन त्वयि भक्तिर्नृणां भवेत् । स्वधर्मेणारविन्दाक्ष तत्समाख्यातुमर्हसि ॥२॥

अन्वयः— हे अरविन्दाक्ष पूर्वं वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि यत्त्वद्भक्ति लक्षणः धर्म अभिहितः यथा अनुष्ठीयमानेन नृणां भक्तिः भवेत् तत्समाख्यातुम् अर्हसि ॥१-२॥

सत्रहवाँ अध्याय

वर्णाश्रम धर्म निरूपण

उद्धव उवाच

यस्त्वयाभिहितः पूर्वं धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः । वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि ॥१॥
यथानुष्ठीयमानेन त्वयि भक्तिर्नृणां भवेत् । स्वधर्मेणारविन्दाक्ष तत्समाख्यातुमर्हसि ॥२॥

अन्वयः— हे अरविन्दाक्ष पूर्वं वर्णाश्रमाचारवतां सर्वेषां द्विपदामपि यत्त्वद्भक्ति लक्षणः धर्म अभिहितः यथा अनुष्ठीयमानेन नृणां भक्तिः भवेत् तत्समाख्यातुम् अर्हसि ॥१-२॥

श्रीउद्धवजी ने कहा

अनुवाद— हे कमल नयन भगवन् आपने पूर्वकाल में वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले तथा सामान्यत: मनुष्यमात्र के लिए ऐसे धर्म का उपदेश किया था जिससे आपकी प्राप्त होती है । अब आप यह बतलाएँ कि मनुष्य किस प्रकार से अपने धर्म का अनुष्ठान करे कि उसकी आपमें भक्ति हो ।।१-२।।

भावार्थ दीपिका

ततः सप्तदशे पृष्टे स्वधर्मे भक्तिलक्षणे । हंसोक्तं धर्ममन्वाह ब्रह्मचारिगृहस्थयोः । 'कर्माहं विद्धि सात्त्वताम्' इत्यत्र भक्तया कृतं कर्म मोक्षसाधनं मद्विभूतिरित्युक्तम्, भक्तिसाधनत्वं च कर्मणां- 'मयोदितेष्ववहितः स्वधर्मेषु' इत्यादिना तत्र तत्रोक्तम्, न च कर्मानुष्ठातृणां नियमेन भक्तिर्दृश्यतेऽतः पृच्छति-यस्त्वयेति सप्तभिः । पूर्वं कल्पादौ त्वद्भक्तिलक्षणस्तत्प्रापकस्तत्साधनमित्यर्थः। वर्णाश्रमहीनानामपि द्विपदां नरायणम् । यथा येन प्रकारेणानुष्ठीयमानेन स्वधर्मेण ।।१-२।।

भाव प्रकाशिका

सत्रहवें अध्याय में श्रीउद्धवजी द्वारा भक्ति स्वरूप के एवं स्वधर्म के पूछे जाने पर, हंस रूप से जो सनकादियों को ब्रह्मचारी तथा गृहस्थों के लिए जो धर्म बतलाए थे उसी धर्म को बतलाएँ । इसी अध्याय में अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए श्रीभगवान् कहे हैं कि मैं भागवतधर्मावलम्बियों के द्वारा अनुष्ठीयमान कर्म हूँ । यहाँ पर श्रीभगवान् ने बतलाया है कि भक्तिपूर्वक किया जाने वाला कर्म, मोक्ष प्राप्ति का साधन है । वह मेरी विभूति है कर्मों का भक्ति साधनत्व मेरे द्वारा वर्णित सावधानी पूर्वक अपने धर्मों का अनुष्ठान से होता है । इस बात को स्थान-स्थान पर कहा गया है । कर्मों का अनुष्ठान करने वालों के नियम के द्वारा भक्ति नहीं दिखती है । इस बात को **यस्त्वया इत्यादि** सात श्लोकों के द्वारा श्रीउद्धवजी पूछते हैं । कल्प के प्रारम्भ में यह पूर्वम् पद का अर्थ है आपकी भक्ति स्वरूप भक्ति को प्राप्त कराने वाले और भक्ति के साधन हैं । वह धर्म वर्णाश्रम से रहित भी मनुष्यों के लिए है। यह जिस प्रकार से अनुष्ठान किए जाने वाले धर्म से ।।१-२।।

पुरा किल महाबाहो धर्मं परमकं प्रभो । यत्तेन हंसरूपेण ब्रह्मणेऽभ्यात्थ माधव ।।३।।

अन्वय:— हे महाबाहो माधव पुरा किल परमकं धर्मं यत् तेन हंस रूपेण अभ्यात्थ ।।३।।

अनुवाद— हे महाबाहो माधव इस कल्प के प्रारम्भ में अपने हंस रूप से जिस श्रेष्ठ धर्म का आपने श्रीब्रह्माजी को उपदेश दिया था ।।३।।

भावार्थ दीपिका

ननु संप्रदायादेव ज्ञास्यते किं पुनर्वर्णनेन तत्राह-पुरेति । परमकं परमश्चासौ कं सुखस्वरूपश्च तम् । यत यम् । हंसरूपेण धर्मोऽप्युक्त एव न तु योगमात्रम्, 'जानीतमागतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया' इत्युक्तत्वात् ।।३।।

भाव प्रकाशिका

यदि आप यह कहें कि उस धर्म को तो सम्प्रदाय की परम्परा से ही तुम जान सकते हो । उसे वर्णन करने से क्या लाभ ? इस पर उद्धवजी कहते है कि आपने जिस परम सुख स्वरूप कर्म को जिस धर्म को आपने हंस रूप से कहा ही है वह योग मात्र नहीं है । कहा भी गया है कि मैं आपलोगों को धर्मोपदेश करने के लिए आया हुआ मैं विष्णु हूँ ।।३।।

स इदानीं सुमहता कालेनामित्रकर्शन । न प्रायो भविता मर्त्यलोके प्रागनुशासित: ।।४।।

अन्वय:— हे अमित्रकर्शन प्रागनुशासित; स इदानीं सुमहता कालेन मर्त्यलोके प्राय: न भविता ।।४।।

अनुवाद— हे शत्रुदमन ! बहुत दिन पहले उपेदश दिए जाने के कारण बहुत अधिक समय बीत जाने से आपके द्वारा उपदिष्ट वह धर्म प्रायः पृथिवी पर नहीं सा रह गया है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

प्रागनुशासितोऽपि न भविता न भविष्यति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

बहुत समय पहले आपके द्वारा अनुशिष्ट होने पर भी वह धर्म पृथिवी पर नहीं रह गया होगा ।।४।।

वक्ता कर्ताऽविता नान्यो धर्मस्याच्युत ते भुवि । सभायामपि वैरिञ्च्यां यत्र मूर्तिधराः कलाः ।।५।।

अन्वयः— हे अच्युत ! भुवि, वैरिञ्च्यां सभायाम् अपि यत्र यत्र कलाः मूर्तिधराः ते धर्मस्य वक्ता, कर्ता अविता अन्यः न ।।५।।

अनुवाद— हे सदा अपने स्वरूप में स्थिर रहने वाले अच्युत भगवन् ! पृथिवी पर तथा ब्रह्माजी की उस सभा में जहाँ वेद मूर्तिमान होकर विराजमान रहा करते हैं, आपको छोड़कर कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है । जो उस धर्म का उपदेश कर सके या अनुष्ठान कर सके, उसका प्रवर्तन कर सके अथवा संरक्षण कर सके ।।५।।

भावार्थ दीपिका

अत्र हेतुमाह-वक्तेति द्वाभ्याम् । ते त्वत्तोऽन्यः । कला वेदाद्याः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

वक्ता० इत्यादि दो श्लोकों द्वारा इसका कारण बतलाया गया है **ते नान्यः** अर्थात् आपसे भिन्न कोई नहीं है। कला: अर्थात् वेद आदि ।।५।।

कर्त्राऽवित्रा प्रवक्त्रा च भवता मधुसूदन । त्यक्ते महीतले देव विनष्टं कः प्रवक्ष्यति ।।६।।

अन्वयः— हे मधुसूदन ! कर्त्रा, अवित्रा प्रवक्त्रा च भवता महीतले त्यक्ते हे देव विनष्टं कः प्रवक्ष्यति ।।६।।

अनुवाद— हे मधूसूदन ! इस धर्म के प्रर्वतक, रक्षक और उपदेशक आप ही हैं । आप जब इस भूलोक का परित्याग कर देंगे उस समय हे देव, इस धर्म का लोप ही हो जायेगा फिर उसका उपदेश दूसरा कौन करेगा।।६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६।।

तत्त्वं नः सर्वधर्मज्ञ धर्मस्त्वद्भक्तिलक्षणः । यथा यस्य विधीयेत तथा वर्णय मे प्रभो ।।७।।

अन्वयः— प्रभो हे सर्वधर्मज्ञ ! त्वं त्वद्भक्तिलक्षणः धर्मः यथा यस्य विधीयेत तथा न वर्णय ।।७।।

अनुवाद— प्रभो आप तो सभी धर्मों को जानते हैं, अतएव आप अपनी भक्ति स्वरूप उस धर्म का वर्णन कीजिये । औरयह भी हमें बतलाइये कि उसका अनुष्ठान किसके लिए कैसे करे । अर्थात् उसका कैसा विधान है।।७।।

भावार्थ दीपिका

तत्तस्मान्नोऽस्माकं मनुष्याणां मध्ये यस्य यथा विधीयते ।।७।।

भाव प्रकाशिका

अतएव हम मनुष्यों में जिस धर्म का जिस प्रकार से विधान किया गया है ।।७।।

श्रीशुक उवाच

इत्थं स्वभृत्यमुख्येन पृष्टः स भगवान्हरिः । प्रीतः क्षेमाय मर्त्यानां धर्मानाह सनातनान् ।।८।।

अन्वयः— इत्थं स्वभृत्येन पृष्ट स भगवान् हरिः प्रीतः मर्त्यानाम् सनातनान् धर्मान् आह ।।८।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् इस प्रकार से भगवद्भक्त शिरोमणि, उद्धवजी द्वारा पूछे जाने पर भगवान् श्रीहरि प्रसन्न हो गये और मनुष्यों के कल्याण के लिए उन्हें सनातन धर्म का उपदेश दिये ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

श्रीभगवानुवाच

धर्म्य एष तव प्रश्नो नैःश्रेयसकरो नृणाम् । वर्णाश्रमाचारवतां तमुद्धव निबोध मे ॥९॥

अन्वयः— हे उद्धव तव एषः प्रश्नः धर्म्यः वर्णाश्रमचारवतां नृणां नैःश्रेयसकरः तम् मे निबोध ॥९॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा

अनुवाद— प्रिय उद्धव ! तुम्हारा प्रश्न धर्ममय है, इससे वर्णाश्रमी मनुष्यों का परम कल्याण मोक्ष की प्राप्ति होती है । अतएव मैं तुमको उस धर्म का उपदेश देता हूँ सावधानी पूर्वक सुनो ॥९॥

भावार्थ दीपिका

धर्म्यो धर्मादनपेतः । कुतः । नैःश्रेयसकरो भक्तिजनकः । अतो मे मत्तस्तं धर्मं निबोध ॥९॥

भाव प्रकाशिका

धर्म्यः अर्थात् धर्ममय, क्योंकि यह **नैःश्रेयस्करः** अर्थात् भक्ति को उत्पन्न करने वाला है । अतएव मुझसे उस धर्म को सावधानी पूर्वक सुनो ॥९॥

आदौ कृतयुगे वर्णो नृणां हंस इति स्मृतः । कृतकृत्याः प्रजा जात्या तस्मात्कृतयुगं विदुः ॥१०॥

अन्वयः— आदौ कृतयुगे नृणां वर्णः हंस इति स्मृतः जात्याप्रजा; कृतकृत्याः तस्मात् कृतयुगं विदुः ॥१०॥

अनुवाद— इस कल्प के प्रारम्भ में अर्थात् प्रथम सत्ययुग में सभी प्रजाओं का एक ही हंस वर्ण था । उस समय प्रजाएँ जन्म से ही कृतकृत्य होती थीं । इसीलिए उसका नाम कृतयुग भी है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तत्रादौ मदुपासनालक्षण एव मुख्यो धर्म आसीत् । आचारलक्षणस्तु पश्चात्प्रवृत्तः । स चैवमनुष्ठितो भक्तिहेतुरिति वर्णयितुमाह-आदाविति । कल्पादौ यत्कृतयुगं तस्मिन् । ते च तदा मामुपासत एव केवलं नान्यत्कुर्वन्तीति वक्तुं कृतयुगनामनिरुक्तिमाह-कृतकृत्या इति । जात्या जन्मैव ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

उस प्रथम सत्ययुग में मेरी उपासना स्वरूप ही मुख्य धर्म था । सदाचार पालन स्वरूप धर्म तो बाद में प्रारम्भ हुआ । इस प्रकार का अनुष्ठित धर्म भक्ति का हेतु है, इस बात को बतलाने के लिए श्रीभगवान् **आदौ० इत्यादि** श्लोक कहते हैं कल्प के प्रारम्भ में जो सत्ययुग हुआ उसमें वे लोग उस समय मेरी ही उपासना करते थे, इसके अतिरिक्त वे कुछ नहीं करते थे इस बात को बतलाने के लिए कृतयुगनाम का निवर्चन करते हुए श्रीभगवान् कहै कि लोग जन्म से ही कृतकृत्य होते थे ॥१०॥

वेदः प्रणव एवाग्रे धर्मोऽहं वृषरूपधृक् । उपासते तपोनिष्ठा हंसं मां मुक्तकिल्बिषाः ॥११॥

अन्वयः— अग्रे प्रणव एव वेदः वृषरूपधृक् अहं धर्मः तपोनिष्ठाः मुक्तकिल्विषाः हंसं मां उपासते ॥११॥

अनुवाद— उस समय केवल प्रणव ही वेद था तपस्या, शौच, दया एवं सत्यरूप चार चरणों से युक्त मैं वृषरूपधारी धर्म था और परम तपस्वी अतएव निष्पाप भक्तजन हंस रूपधारी मेरी उपासना करते थे ॥११॥

भावार्थ दीपिका

किंच विधायकाभावादपि तदानीं नान्यत्कर्मास्तीत्याह-वेद इति। धर्मश्च मनोविषयोऽहमेव वृषरूपधृक् चतुष्पात्र क्रियाविशेषो यज्ञादिः। अतस्तपोनिष्ठाः- 'मनसश्चेन्द्रियाणां च स्वैकाग्र्यं परमं तपः' इति वचनादेकाग्रतया हंसं शुद्धं मां ध्यायन्तीत्यर्थः।।११।।

भाव प्रकाशिका

विधि वाक्यों के अभाव के कारण भी उस समय कोई कर्म नहीं था इस बात को वेदः प्रणव इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् ने कहा मन के विषयभूत धर्म भी वृषभरूपधारी चार पैर वाला था। उस समय यज्ञादि क्रियाएँ नहीं होती थीं। अतएव भक्तजन तपोनिष्ठ थे। मन और इन्द्रियों का अच्छी तरह से एकाग्र करना ही परम तप है। इस वचन के अनुसार सभी लोग शुद्ध हंस स्वरूप मेरा ध्यान करते थे ॥११॥

त्रेतामुखे महाभाग प्राणान्मे हृदयात्त्रयी। विद्या प्रादुरभूत्तस्या अहमासं त्रिवृन्मखः ॥१२॥

अन्वयः— महाभाग! त्रेतामुखे मे हृदयात् प्राणात् त्रयी विद्या प्रादुरभूत् तस्या अहं त्रिवृन्मखः आसम् ।।१२।।

अनुवाद— परम भाग्यवान् उद्धव सत्ययुग के बाद त्रेतायुग के प्रारम्भ में मेरे हृदय से श्वास-प्रश्वास के द्वारा ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद रूप त्रयी विद्या प्रकट हुई और उस त्रयी विद्या से होता, अध्वर्यु और उद्गाता के कर्म रूप तीन भेदो वाले यज्ञ के रूप से मैं प्रकट हुआ ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

पश्चात्रेतायुगप्रवेशे मे वैराजरूपस्य प्राणान्निमित्तात्। हृदयात्सकाशात्। तस्यास्त्रय्याः सकाशात् हौत्राध्वर्यवौद्गात्रैस्त्रिवृत्त्रिरूपः 'यज्ञो वै विष्णुः' इति श्रुतेः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

सत्ययुगे के बाद त्रेतायुग के प्रारम्भ में मेरे वैराजरूप के प्राणों द्वारा हृदय से त्रयी विद्या प्रकट हुई। उससे होता अध्वर्यु और उद्गाता के कर्म रूप से त्रिवृत् यज्ञ रूप से मैं प्रकट हुआ। श्रुति भी कहती है **यज्ञो वै विष्णुः** ॥१२॥

विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा मुखबाहूरुपादजाः। वैराजात्पुरुषाज्जाता य आत्माचारलक्षणाः ॥१३॥

अन्वयः— वैराजात् पुरुषात् मुखबाहूरुपादजाः विप्रक्षत्रियविट् शूद्राः जाताः। ये आत्माचार लक्षणाः ।।१३।।

अनुवाद— विराट् पुरुष के मुख बाहु जङ्घा और चरणों से क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की उत्पत्ति हुई, उनकी पहचान उनके स्वभावानुसार और आचरण से होती है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

वर्णानामाश्रमाणां च धर्मान्वक्तुं तेषामुत्पत्तिमाह-विप्रेति द्वाभ्याम्। आत्माचारः स्वधर्म एव लक्षणं ज्ञापको येषां ते।।१३।।

भाव प्रकाशिका

वर्णों एवं आश्रमों के धर्मों का वर्णन करने के लिए उन सबों की उत्पत्ति का वर्णन श्रीभगवान् **विप्रक्षत्रिय० इत्यादि** दो श्लोकों से किए। आत्माचार अर्थात् उनका अपना धर्म ही उनका ज्ञापक है ॥१३॥

गृहाश्रमो जघनतो ब्रह्मचर्यं हृदो मम। वक्षःस्थानाद्वने वासो न्यासः शीर्षणि संस्थितः ॥१४॥

अन्वयः— मम जघनतः गृहाश्रमः हृदो ब्रह्मचर्यं वक्षः स्थानाद् वने वासः न्यास; शीर्षणि संस्थितः ।।१४।।

अनुवाद— उद्धवजी मैं ही विराट पुरुष भी हूँ। मेरी जङ्घाओं से गृहस्थाश्रम की हृदय से ब्रह्मचर्याश्रम की, वक्षःस्थल से वानप्रस्थाश्रम की और मेरे शिरोभाग से संन्यास की उत्पत्ति हुई ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

मम वैराजरूपस्य हृदो वक्षसोऽधस्तात् । ब्रह्मचर्यमिति नैष्ठिकाभिप्रायम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

विराट् रूप वाले मेरे हृदय से अर्थात् वक्षःस्थल के नीचले भाग से । ब्रह्मचर्य शब्द का यहाँ नैष्ठिक ब्रह्मचर्य (आजीवन ब्रह्मचर्य पालन) से अभिप्राय है ॥१४॥

वर्णानामाश्रमाणां च जन्मभूम्यनुसारिणीः । आसन्प्रकृतयो नृणां नीचैर्नीचोत्तमोत्तमाः ॥१५॥

अन्वयः— वर्णानाम् आश्रमाणां च नृणाम् प्रकृतयः जन्मभूम्यनुसारिणी नीचैः नीचत्तमोत्तमाः आसन् ॥१५॥

अनुवाद— इन वर्णों और आश्रमों के मनुष्यों का स्वभाव भी उनकी जन्मस्थान के अनुसार ही होता है। नीच जन्म स्थानों वाले वर्णों का स्वभाव नीच होता है, और उत्तम जन्म स्थान वाले पुरुषों का स्वभाव उत्तम होता है । यहाँ जन्म स्थान का अभिप्राय विराट् पुरुष के मुख आदि स्थानों से है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तेषामधिकारिविशेषेण स्वभावानाह-वर्णानामिति पञ्चभिः । जन्मस्थानानुसारिण्यः । नीचैरित्यव्ययम् । अतोऽयमर्थः- मन्दाभिर्जन्मभूमिभिर्मन्दाः । उत्तमाभिरुत्तमाश्चेति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

वर्णानाम् इत्यादि पाँच श्लोकों से श्रीभगवान् उन वर्णों एवं आश्रमों के अधिकार विशेष के अनुसार उनके स्वभावों को बतलाते हैं । जन्म स्थान के अनुसार । यहाँ जन्म स्थान का अभिप्राय विराट पुरुष के मुख आदि स्थानों से है । नीचैः यह अव्यय पद है । कहने का अभिप्राय है कि मन्द जन्म स्थानों वाले वर्णों एवं आश्रमों का स्वभाव मन्द होता है और उत्तम जन्म स्थान वाले वर्णों एवं आश्रमों वाले पुरुषों का स्वभाव उत्तम होता है ॥१५॥

शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षान्तिरार्जवम् । मद्भक्तिश्च दया सत्यं ब्रह्मप्रकृतयस्त्विमाः ॥१६॥

अन्वयः— शमो, दमः, तपः, शौचं सन्तोषः क्षान्तिः आर्जवम्, मद्भक्तिः च दया, सत्यं इमाः तुः ब्रह्मप्रकृतयः ॥१६॥

अनुवाद— शम, दम, तपस्या, पवित्रता, सन्तोष, क्षमाशीलता ऋजुता (सीधा पन) मेरी भक्ति दया और सत्य ये ब्राह्मण वर्ण के स्वभाव के हैं ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

तप आलोचनम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

तप अर्थात् विचार करना ॥१६॥

तेजो बलं धृतिः शौर्यं तितिक्षौदार्यमुद्यमः । स्थैर्यं ब्रह्मण्यतैश्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥१७॥

अन्वयः— तेजः बलं धृतिः शौर्यं तितिक्षा, औदार्यम् उद्यमः स्थैर्यं, ब्रह्मण्यता, ऐश्वर्यं इमाः तु क्षत्रप्रकृतयः ॥१७॥

अनुवाद— तेज, बल, धैर्य, वीरता, क्षमाशीलता, उदारता, उद्योगशीलता स्थिरता, ब्राह्मणभक्ति और ऐश्वर्य ये क्षत्रिय वर्ण के स्वभाव हैं ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तेजः प्रतापः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

तेज अर्थात् प्रताप ॥१७॥

आस्तिक्यं दाननिष्ठा च अदम्भो ब्रह्मसेवनम् । अतुष्टिरर्थोपचयैर्वैश्यप्रकृतयस्त्विमाः ॥१८॥

अन्वयः— आस्तिक्यं, दाननिष्ठा, अदम्भः ब्रह्मसेवनम् अर्थोपचयैः अतुष्टिः इमाः तु वैश्य प्रकृतयः ॥१८॥

अनुवाद— आस्तिकता, दानशीलता, दम्भहीनता ब्राह्मणों की सेवा करना तथा धनसंचय से सन्तुष्ट न होना, ये वैश्यवर्ण के स्वभाव हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

शुश्रूषणं द्विजगवां देवानां चाप्यमायया । तत्र लब्धेन संतोषः शूद्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥१९॥

अन्वयः— द्विजगवां देवानां च अमायया शुश्रूषणं, तत्र लब्धेन सन्तोषः इमाः तु शूद्रप्रकृतयः ॥१९॥

अनुवाद— निष्कपट भाव से ब्राह्मणों गौओं तथा देवताओं की सेवा करना और उससे जो कुछ भी मिल जाय उससे सन्तुष्ट रहना यह शूद्रों का स्वभाव है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

एतैरेवाश्रमस्वभावा अपि ज्ञेयाः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

इन सबों से ही आश्रमों का भी स्वभाव जान लेना चाहिए ॥१९॥

अशौचमनृतं स्तेयं नास्तिक्यं शुष्कविग्रहः । कामः क्रोधश्च तर्षश्च स्वभावोऽन्तेवसायिनाम् ॥२०॥

अन्वयः— अशौचम्, अनृतं, स्तेयं, नास्तिक्यम्, शुष्कविग्रहः कामः, क्रोधः च तर्षः च अन्तेऽवसायिनाम् स्वभावः ॥२०॥

अनुवाद— अपवित्रता, झूठ बोलना, चोरी करना, नास्तिकता, शुष्कविग्रह, काम, क्रोध, तर्ष च अनत्यजों का स्वभाव होता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तद्बाह्यानां स्वभावानाह-अशौचमिति । शुष्कविग्रहो निर्मूलकलहः । तर्षस्तृष्णा ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

वर्णाश्रमवाह्यो के स्वभाव का वर्णन **अशौचम्० इत्यादि** श्लोक से किया गया है । शुष्क विग्रह: अकारण कलह करना । तर्ष: अर्थात् तृष्णा ॥२०॥

अहिंसा सत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता । भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः॥२१॥

अन्वयः— अहिंसा, सत्यम्, अस्तेयम् अकामक्रोधलोभता, भूतप्रियहितेहा च अयं सार्ववर्णिकः धर्मः ॥२१॥

अनुवाद— प्रिय उद्धव, मन, वाणी और शरीर से किसी की हिंसा न करना, सत्य बोलना, चोरी न करना, काम, क्रोध तथा लोभ न करना, जिन कामों को करने से सभी जीवों का कल्याण हो, ये चारो वर्णों एवं चारो आश्रमों के सामन्य धर्म हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तावत्सर्वसाधारणं धर्ममाह-अहिंसेति । वर्णग्रहणमुपलक्षणार्थम् । वर्णधर्मान् गृहस्थप्रकरणे वक्ष्यति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

इस **अहिंसा० इत्यादि** श्लोक से सभी वर्णों के लिए सर्वसाधरण धर्मों का वर्णन श्रीभगवान् करते हैं । वर्ण पद का ग्रहण उपलक्षणार्थक है । श्रीभगवान् वर्ण धर्मों का वर्णन गृहस्थ प्रकरण में करेंगे ॥२१॥

द्वितीयं प्राप्यानुपूर्व्याज्जन्मोपनयनं द्विजः । वसन् गुरुकुले दान्तो ब्रह्माधीयीत चाहुतः ॥२२॥

अन्वयः— द्विजः आनुपूर्व्यात् द्वितीय उपनयनं जन्म प्राप्य दान्तः गुरुकुले वसन् आहूतः च ब्रह्माधीयीत् ।।२२।।

अनुवाद— ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य गर्भाधान आदि संस्कारों के क्रम से यज्ञोपवीत संस्कार रूपी दूसरा जन्म प्राप्त करके गुरुकुल में रहे और अपनी इन्द्रियों को वश में रखे और आचार्य के बुलाने पर वेदाध्ययन करे और उसके अर्थ का भी विचार करे ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

प्रथमं तावदाश्रमेषु ब्रह्मचारिणो धर्मा वर्ण्यन्ते । स च द्विविधः-उपकुर्वाणको नैष्ठिकश्च । तत्राद्यस्य धर्मानाह-द्वितीयमिति नवभिः । द्विजस्त्रैवर्णिकः । आनुपूर्व्याद्गर्भाधानादिसंस्कारक्रमेण द्वितीयमुपनयनाख्यं जन्म प्राप्याचार्येणाहूतो ब्रह्म वेदमधीयीत। चकारात्तदर्थं च विचारयेत् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से सर्वप्रथम श्रीभगवान् ब्रह्मचर्याश्रम के ब्रह्मचारियों के धर्म का निरूपण करते हैं । ब्रह्मचारी भी दो प्रकार के होते हैं- उपकुर्वाणक तथा नैष्ठिक । इसमें पहले प्रकार के ब्रह्मचारी के धर्मो का वर्णन द्वितीयम् इत्यादि नव श्लोकों से करते हैं । द्विज: अर्थात् त्रिवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) इन तीन वर्णों में किसी वर्ण का पुरुष जिसका गर्भाधान संस्कार से लेकर सभी संस्कार क्रमशः संपन्न किए गये हों उसका उपनयन संस्कार के द्वारा दूसरा जन्म होता है । उस जन्म को प्राप्त करके द्विज ब्रह्मचारी को चाहिए कि आचार्य के द्वारा बुलाये जाने पर वेदाध्ययन करे और वेदार्थ का विचार भी करे ।।२२।।

मेखलाजिनदण्डाक्षब्रह्मसूत्रकमण्डलून् । जटिलोऽधौतदद्वासोऽरक्तपीठः कुशान् दधत् ॥२३॥

अन्वयः— मेखलाजिनदण्डाक्षब्रह्मसूत्रकमण्डलून्, जटिलः अधौतदद्वासः अरक्तपीठः कुशान्दधात् ।।२३।।

अनुवाद— वह मेखला, मृगचर्म, वर्ण के अनुसार दण्ड, रुद्राक्ष की माला यज्ञोपवीत और कमण्डलू धारण करे । सिर पर जटा रखे, शौकीनी के लिए दाँत और वस्त्र न धोए और न रङ्गीन आसन पर बैठे, वह कुशों को धारण किए रहे।।२३।।

भावार्थ दीपिका

किंच मेखलादीन्कुशांश्च दधत् । तत्राक्षशब्देनाक्षमाला । कथंभूतः । जटिलः अनभ्यङ्गादिना जातजटः । तथा अधौतदद्वासोऽरक्तपीठः, दन्ताश्च वासश्च दद्वासांसि न धौतानि तानि यस्य सः अधौतदद्वासाः, स चासावरक्तपीठश्च न तु कौतुकादिना रक्तं पीठमासनं यस्य सः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

और वह मेखला आदि एवं कुशों को धारण करे । अक्ष शब्द के द्वारा रुद्राक्ष की माला कही गयी है । वह कैसा रहे ? शरीर में तेल आदि नहीं लागने से उसके सिर पर जटा हो जाय । उसे अपने वस्त्रों और दाँतों को नहीं धोना चाहिए वह कभी कौतुकवशात् भी रङ्गीन आसन पर न बैठे ।।२३।।

स्नानभोजनहोमेषु जपोच्चारे च वाग्यतः । न च्छिन्द्यान्नखरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि ॥२४॥

अन्वयः— स्नानभोजन होमेषु जपोच्चारे च वाग्यतः, कक्षोपस्थगतानि अपि नखरोमाणि न छिन्द्यात् ।।२४।।

अनुवाद— वह स्नान, भोजन एवं होम करते समय तथा मन्त्र का जप करते समय मौन रहे । वह नखों को न काटे तथा काँख एवं उपस्थ के केशों को न काटे ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

जपश्चोच्चारो मूत्रपुरीषोत्सर्गो जपोच्चारं तस्मिन्वाग्यतो मौनी भवेत् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

वह मन्त्र जप करते समय तथा मल-मूत्र त्याग करते समय भी मौन रहे ।।२४।।

रेतो नावकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतधरः स्वयम् । अवकीर्णेऽवगाह्याप्सु यतासुस्त्रिपदीं जपेत् ।।२५।।

अन्वयः— ब्रह्मव्रतधरः स्वयम् जातु स्वयं रेतः न अवकिरेत् अवकीर्णः अप्सुअवगाह्य यतासुः त्रिपदीं जपेत् ।।२५।।

अनुवाद— पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला कभी भी अपने से रेतः पात न करे । यदि रेतः पात हो जाय तो जल में स्नान करके प्राणायाम करके त्रिपदा गायत्री मन्त्र का जप करे ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

रेतो बुद्धिपूर्वं नावकिरेन्नोत्सृजेत् । ब्रह्मव्रतधरो गृहस्थः । स्वयमेव कथंचिदवकीर्णे अवगाह्य स्नात्वा यतासुः कृतप्राणायामस्त्रिपदीं गायत्रीं जपेत् ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह जानकर वीर्यपात न करे । ब्रह्मव्रतधर; अर्थात् गृहस्थ । यदि किसी तरह स्वयं वीर्यपात हो जाय तो जल में स्नान करके प्राणायाम करे और त्रिपदा गायत्री का जप करे ।।२५।।

अग्न्यर्काचार्यगोविप्रगुरुवृद्धसुरान् शुचिः । समाहित उपासीत संध्ये च यतवाग्जपन् ।।२६।।

अन्वयः— शुचिः समाहित; अग्न्यर्काचार्यगोविप्रान् उपासीत सन्ध्ये च युतवाग् जपन् ।।२६।।

अनुवाद— ब्रह्चारी को चाहिए कि वह पवित्रता पूर्वक एकाग्रचित्त होकर अग्नि, सूर्य, आचार्य, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्धजन देवताओं की आराधना करे तथा प्रातःकाल एवं सायंकाल सन्ध्योपासन करे और गायत्री का जप करे ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

संध्ये च द्वे यतवाग्जपन्नुपासीत । मध्याह्ने संध्यानिमित्तं मौनं नास्तीति द्विवचनम् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

प्रातःकाल एवं सायंकाल में मौन होकर जप करे मध्याह्न में संध्या करते समय मौन का विधान नहीं है, इसीलिए द्विवचन का प्रयोग किया गया है ।।२६।।

आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् । न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ।।२७।।

अन्वयः— आचार्यं मां विजानीयात् कर्हिचित् न अवमन्येत मर्त्यबुद्ध्या च नहि अवसूयेत गुरुः सर्वदेवमयः ।।२७।।

अनुवाद— आचार्य को मेरा स्वरूप समझे, उनका कभी अपमान न करे, उनको सामान्य मनुष्य समझ कर उनसे कभी द्वेष न करे, गुरु सर्वदेवमय होते हैं ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

सायंप्रातरुपानीय भैक्ष्यं तस्मै निवेदयेत् । यच्चान्यदप्यनुज्ञातमुपयुञ्जीत संयतः ।।२८।।

अन्वयः— सायं प्रातः भैक्ष्यं उपानीय तस्मै निवेदयेत् यच्च अन्यत् अपि, अनुज्ञातः संयतः उपयुंजीत ।।२८।।

अनुवाद— सायंकाल और प्रातःकाल भिक्षा में जो मिले उसे गुरुदेव को समर्पित करे, केवल भोज्य पदार्थ ही नहीं दूसरी भी जो वस्तु मिले उसको भी समर्ष्ति करे । आचार्य की आज्ञा के अनुसार भिक्षा का संयत होकर उपयोग करें।।२८।।

भावार्थ दीपिका

अन्यदपि यत्संप्राप्तं तच्च निवेदयेत् । तेनानुज्ञातं तु संयतः सन्नुपयुञ्जीतेत्यर्थः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

दूसरी वस्तुएँ जो भिक्षा में मिले उसे भी आचार्य को समर्पित कर दे । आचार्य की आज्ञा के अनुसार भिक्षा का संयत होकर उपयोग करे ॥२८॥

शुश्रूषमाण आचार्यं सदोपासीत नीचवत् । यानशय्यासनस्थानैर्नातिदूरे कृताञ्जलिः ॥२९॥

अन्वयः— आचार्य शूश्रूषमाण; सदा नीचवत् । यानशयासनस्थानैः नातिदूरे कृताञ्जलिः उपासीत ॥२९॥

अनुवाद— आचार्य यदि जाते हों तो उनके पीछे-पीछे चले उनके सो जाने पर सावधानी पूर्वक उनके सन्निकट में ही सो जाय । थके हों तो पास बैठकर पैर दबाये । बैठे होतें उनके आदेश देने की प्रतीक्षा करते हुए सन्निकट में ही हाथ जोड़कर खड़ा रहे । इस तरह बहुत छोटे मनुष्य के समान आचार्य की सेवा करे । सदा आचार्य की आज्ञा में तपत्पर रहे ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

यानशय्यासनस्थानैः । यान्तं पृष्ठतो यानेन । निद्रितमप्रमत्ततया समीपशयनेन । विश्रान्तं पादसंवाहनादिभिः समीपासनेन। आसीनं कृताञ्जलिः । नियोगप्रतीक्षया नातिदूरेऽवस्थानेनेत्यर्थः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

यान शय्या० इत्यादि का अभिप्राय है कि यदि आचार्य कहीं जा रहे तों तो उनके पीछे-पीछे चले, यदि सो रहे हों तो ब्रह्मचारी को चाहिए कि उनके समीप ही सावधानी पूर्वक सो जाय । यदि वे थके हों तो उनके समीप बैठकर उनके पैर को दबाये । वे बैठे हो तो उनके सन्निकट ही हाथ जोड़कर खड़ा रहे । उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुए थोड़ी दूर पर हाथ जोड़कर खड़ा रहे ॥२९॥

एवंवृत्तो गुरुकुले वसेद्भोगविवर्जितः । विद्या समाप्यते यावद्बिभ्रद्व्रतमखण्डितम् ॥३०॥

अन्वयः— यावद्विद्यासमाप्यते भोगविवर्जितः एवं वृतः गुरुकुले अखण्डितं व्रतम् विभ्रद्वसेत् ॥३०॥

अनुवाद— जब तक विद्या समाप्त नहीं होती है तब तक इसी प्रकार से सभी प्रकार के भोगों से रहित होकर अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत को धारण किए हुए निवास करे ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतं वृत्तं यस्य सः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

इसी प्रकार से ॥३०॥

यद्यसौ छन्दसां लोकमारोक्ष्यन् ब्रह्मविष्टपम् । गुरवे विन्यसेद्देहं स्वाध्यायार्थं बृहद्व्रतः ॥३१॥

अन्वयः— यदि असौ छन्दसां लोकमारोक्ष्यन् ब्रह्मविष्टपम् बृहद्व्रतः स्वाध्यायार्थं गुरवेदेहं विन्यसेद् ॥३१॥

अनुवाद— यदि ब्रह्मचारी चाहे कि मैं मूर्तिमान वेदों के ब्रह्म लोक में जाऊँ तो वह अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत धारण किए हुए वेदाध्ययनार्थ, अचार्या को अपना शरीर समपर्ति कर दे ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

एवमुपकुर्वाणकस्य धर्मानुक्त्वा नैष्ठिकस्य विशेषधर्मानाह-यदीति षड्भिः । असौ ब्रह्मचारी यदि छन्दसां लोकं महर्लोकं

ततो ब्रह्मलोकं चारोक्ष्यन्नारोढुमिच्छन्नित्यर्थः । यद्वा, छन्दसां लोकमिति ब्रह्मलोकविशेषणम्, 'यत्र मूतिधराः कलाः' इत्युक्तत्वात्। तर्हि बृहद्व्रतः सन् बृहन्नैष्ठिकं व्रतं यस्य सः । विन्यसेत्समर्पयेदधिकस्वाध्यायार्थमधीतनिष्क्रयार्थं च ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से उपकुर्वाण ब्रह्मचारी की धर्मों का वर्णन करके नैष्ठिक ब्रह्मचारी के विशेष धर्मों का **यदि० इत्यादि** छह श्लोकों से वर्णन श्रीभगवान् करते हैं । ब्रह्मचारी यदि छन्दों के महर्लोक में और उसके पश्चात् ब्रह्मलोक में जाना चाहता है । अथवा छन्दसांलोकम् यह ब्रह्मलोक का विशेषण है । कहा भी गया है **यत्र मूर्तिधराः कलाः** जहाँ पर मूर्तिमान वेद रहा करते हैं तो वह आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए अधिक वेदाध्ययनार्थ और अधीत वेद के निष्क्रय रूप से आचार्य को अपना शरीर समर्पित कर दे ।।३१।।

अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेषु मां परम् । अपृथग्धीरुपासीत ब्रह्मवर्चस्व्यकल्मषः ।।३२।।

अन्वयः— ब्रह्मवर्चस्वी अकल्मषः अग्नौ, गुरौ, आत्मानि सर्वभूतेषु च अपृथग्धीः मां परम् उपासीत ।।३२।।

अनुवाद— इस प्रकार का ब्रह्मचारी ब्रह्मवर्चस्वी हो जाता है उसके सभी पाप विनष्ट हो जाते है । वह अग्नि में, गुरु में, अपने शरीर में तथा सभी भूतों में मेरी उपासना करे वह यह भाव रखे कि मेरे और सबों के हृदय में एक ही परमात्मा का निवास है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मवर्चो वेदाभ्यासजं तेजस्तद्वान् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मवर्च ? अर्थात् वेदाभ्यास जन्य तेज से युक्त ।।३२।।

स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्शसँल्लापक्ष्वेलनादिकम् । प्राणिनो मिथुनीभूतानगृहस्थोऽग्रतस्त्यजेत् ।।३३।।

अन्वयः— अगृहस्थः स्त्रीणां निरीक्षणस्पर्श संलापक्ष्वेलनादिकम् मिथुनीभूतान् प्राणिनाः अग्रतःत्यजेत् ।।३३।।

अनुवाद— ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी को चाहिए कि वे न तो स्त्रियों को देखें, न उनका स्पर्श करे न उन सबों से बातें करे और न उन सबों से हँसी मजाक करें । मैथुन करते हुए प्राणियों को तो वे कभी देखें भी नहीं।।३३।।

भावार्थ दीपिका

तस्यैव वनस्थयतिसाधारणधर्मानाह-स्त्रीणामिति । निरीक्षणं भावगर्भम् । क्ष्वेलनं परिहासः । एवमादिकं त्यजेत् । मिथुनीभूतानग्रतस्त्यजेत्, न पश्येदित्यर्थः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी तीनों के एक समान धर्म को **स्त्रीणाम्० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । निरीक्षण अर्थात् भावपूर्वक अवलोकन । क्ष्वेलनम् हँसी मजाक, इसी तरह के कर्मों को त्याग दे । मैथुनरत प्राणी को कभी भी नहीं देखे ।।३३।।

शौचमाचमनं स्नान सन्ध्योपासनमार्जवम् । तीर्थसेवा जपोऽस्पृश्याभक्ष्यासंभाष्यवर्जनम् ।।३४।।
सर्वाश्रमप्रयुक्तोऽयं नियमः कुलनन्दन । मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायसंयमः ।।३५।।

अन्वयः— हे कुलनन्दन शौचम्, आचमनं, स्नानं सन्ध्योपासनम् आर्जवम् तीर्थसेवाजपः । अस्पृश्य, अभक्ष्य, असंभाष्यवर्जनम्, मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायसंयमः सर्वाश्रम प्रयुक्तोऽयं नियमः ।।३४-३५।।

अनुवाद— हे प्रिय उद्धव ! शौच, आचमन, स्नान, सन्ध्योपासन, सरलता, तीर्थ सेवन, जप और सभी प्राणियों

में मुझको देखना, मन, वाणी और शरीर का संयम, यह ब्रह्मचारी, गृहस्थ संन्यासी और वानप्रस्थी सब के लिए नियम है । अस्पृश्यों को न छूना, अभक्ष्य भक्षन न करना और असंभाष्य से भाषण न करना भी सबों के लिए सामान्य नियम हैं ॥३४-३५॥

भावार्थ दीपिका

तस्यैव सर्वाश्रमसाधारणं धर्ममाह-शौचमिति द्वाभ्याम् ॥३४-३५॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मचारी आदि आश्रमों के लिए **शौचम्० इत्यादि** दो श्लोकों से साधारण धर्मों को श्रीभगवान् ने बतलाया है ॥३४-३५॥

एवं बृहद्व्रतधरो ब्राह्मणोऽग्निरिव ज्वलन् । मद्भक्तस्तीव्रतपसा दग्धकर्माशयोऽमलः ॥३६॥

अन्वयः— एवं बृहद्व्रतधरः ब्राह्मणः अग्निरिव ज्वलन् मद्भक्तः तीव्रतपसा दग्धकर्माशयः अमलः ॥३६॥

अनुवाद— इस तरह से नैष्ठिक ब्रह्मचारी के व्रत का पालन करने वाला ब्राह्मण ब्रह्मचारी अग्नि के समान तेजस्वी हो जाता है । तीव्र तपस्या के कारण उसके सारे कर्म भस्म हो जाते हैं । उसका अन्तःकरण निर्मल हो जाता है । इसप्रकार का वह मेरा भक्त मुझे प्राप्त कर लेता है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

निष्कामनैष्ठिकस्य तु मोक्षं फलमाह-एवमिति । अमलो निष्कामश्चेद्दग्धः कर्माशयोऽन्तःकरणं यस्य तथाभूतः सन्मद्भक्तो भवति ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

निष्काम नैष्ठिक ब्रह्मचारी को इन इन नियमों के पालन का फल मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है इस बात को **एवम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । अमलः अर्थात् यदि निष्काम, ब्रह्मचारी है तो उसकी कर्म की वासनाएँ भस्म हो जाती हैं । और वह मेरा भक्त हो जाता है ॥३६॥

अथानन्तरमावेक्ष्यन्यथाजिज्ञासितागमः । गुरवे दक्षिणां दत्त्वा स्नायाद्गुर्वनुमोदितः ॥३७॥

अन्वयः— अथ अनन्तरम् आवेक्ष्यन् यथा जिज्ञासितागमः गुरवे दक्षिणां दत्वा गुर्वनुमोदितः स्नायात् ॥३७॥

अनुवाद— यदि वह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहता है तो वह शास्त्रानुमोदित विधि से वेदाध्ययन के पूर्ण हो जाने पर आचार्य को दक्षिणा देकर गुरु से आज्ञा लेकर अपना समावर्तन संस्कार कराये ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

उपकुर्वाणस्य समावर्तनप्रकारमाह-अथेति । अनन्तरं द्वितीयाश्रममावेक्ष्यन्प्रवेष्टुमिच्छन् यथा यथावद्विचारितवेदार्थः स्नायात् । अभ्यङ्गादिकं कृत्वा समावर्तेतेत्यर्थः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

अथानन्तर० इत्यादि श्लोक से उपकुर्वाण ब्रह्मचारी के समावर्तन प्रकार को श्रीभगवान् ने बतलाया है । **अनन्तरमावेक्ष्यन्** अर्थात् गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होना चाहने वाला ब्रह्मचारी, वेदार्थ विचार के समाप्त होने पर समावर्तन संस्कार कराये। शरीर में तेल मर्दन इत्यादि करके समावर्तन संस्कार कराये ॥३७॥

गृहं वनं वोपविशेत्प्रव्रजेद्वा द्विजोत्तमः । आश्रमादाश्रमं गच्छेन्नान्यथा मत्परश्चरेत् ॥३८॥

अन्वयः— गृहं वनं वा उपविशेत् वा द्विजोत्तमः प्रव्रजेत् आश्रमात् आश्रमं गच्छेत् मत्परः अन्यथा न चरेत् ॥३८॥

अनुवाद— समावर्तन के बाद वह ब्रह्मचारी या तो गृहस्थ हो जाय अथवा वानप्रस्थ हो जाय । यदि ब्राह्मण है तो वह संन्यास भी ले सकता है, मेरे भक्त को चाहिए कि वह एक आश्रम के बाद दूसरे आश्रम में प्रवेश करे, वह इसके विपरीत क्रम से आश्रम परिवर्तन नहीं करना चाहिए । उसको अनाश्रमी भी नहीं रहना चाहिए ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

तस्याधिकारानुरूपमाश्रमविकल्पसमुच्चयावाह-गृहमिति । सकामश्चेद्गृहमन्तःकरणशुद्‌यधादिकामश्चेद्वनं प्रविशेत् । शुद्धान्तःकरणः स च द्विजोत्तमो ब्राह्मणश्चेत्प्रव्रजेदित्यर्थः । द्विजोत्तम इत्युक्तेः क्षत्रियवैश्ययोर्न प्रव्रज्याधिकार इति सूचयति । यद्वा आश्रमादाश्रमान्तरं गच्छेत् । अन्यथा अनाश्रमी प्रतिलोमं च नाचरेदित्यर्थः । अमत्पर इति वा छेदः । स्वभक्तस्याश्रमनियमाभावस्य वक्ष्यमाणत्वात् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

उस अधिकारी के अधिकार के अनुकूल आश्रम का विकल्प तथा समुच्चय दोनों को **गृहम्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । यदि वह सकाम हो तब तो उसे गृहस्थ हो जाना चाहिए । यदि वह अन्तःकरण की शुद्धि चाहता हो तो उसको वानप्रस्थी हो जाना चाहिए । जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है वह ब्राह्मण श्रेष्ठ को संन्यास ग्रहण कर ले । द्विजोत्तम शब्द के द्वारा सूचित किया गया है कि क्षत्रिय एवं वैश्य को संन्यास ग्रहण का अधिकार नहीं है । अथवा वह एक आश्रम के बाद दूसरे आश्रम में प्रवेश करे । उसे अनाश्रमी अथवा प्रतिलोमी नहीं होना चाहिए । अथवा अमत्परः यह पदछेद के अनुसार से सारे नियम उसके लिए हैं जो भगवद् भक्त नहीं है, क्योंकि आगे चलकर श्रीभगवान् कहने वाले हैं कि मेरे भक्तों के लिए आश्रम का कोई नियम नहीं है ।।३८।।

गृहार्थी सदृशीं भार्यामुद्वहेदरजुगुप्सिताम् । यवीयसीं तु वयसा यां सवर्णामनुक्रमात् ।।३९।।

अन्वयः— गृहार्थी सदृशीं अजुगुप्सिताम् वयसा तु यवीयसीम् सवर्णाम् अनुक्रमात् भार्याम् उद्वहेत् ।।३९।।

अनुवाद— यदि ब्रह्मचर्याश्रम के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना हो तो ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह अपने अनुरूप पत्नी से विवाह करे । उसे शास्त्रोक्त लक्षणों से युक्त तथा कुलीन होना चाहिए । उसे अवस्थामें अपने से छोटी और उसे अपने ही वर्ण की होनी चाहिए । यदि वह कामवशात् और विवाह करना चाहता है तो अपने से हीन वर्ण की कन्या से विवाह कर सकता है ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

विवाहनियमपूर्वकं वर्णधर्मैः सह गृहस्थधर्मानाह-गृहार्थीति । सदृशीं सवर्णाम् । अजुगुप्सितां कुलतो लक्षणतश्चानिन्दिताम्। कामतस्तु यामन्यामुद्वहेत्तां सवर्णामनु तस्या अनन्तरम् । तत्रापि वर्णक्रमेणोद्वहेदित्यर्थः । 'तिस्रोवर्णानुपूर्व्येण द्वे तथैका यथाक्रमत्। ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्याः स्वाः शूद्रजन्मनः ।' इति स्मृतेः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

विवाह के नियम पूर्वक वर्णों के धर्मो के साथ गृहस्थ के धर्मो को श्रीभगवान् **गृहार्थी० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । सदृशीम् अर्थात् अपने से हीन वर्ण की **अजुगुप्सिताम्** अर्थात् कुलीन एवं शास्त्रोक्त लक्षणों से युक्त। यदि वह काम वशात् दूसरी पत्नी से विवाह करना चाहे तो उस पत्नी को अपने वर्ण से हीन वर्ण वाली होनी चाहिए । उस दूसरे विवाह में वर्णों का क्रम से विवाह करे । स्मृतियों में कहा भी गया है । ब्राह्मण वर्णो के क्रम से तीन पत्नियों के साथ विवाह करें, क्षत्रिय अपने वर्णक्रम से क्षत्रिय और वैश्य इन दो वर्णों की कन्या से विवाह करे, वैश्य अपने वर्ण की केवल एक ही पत्नी से विवाह करे और शूद्र भी केवल अपने ही वर्ण की पत्नी से विवाह करे ।।३९।।

इज्याध्ययनदानानि सर्वेषां च द्विजन्मनाम् । प्रतिग्रहोऽध्यापनं च ब्राह्मणस्यैव याजनम् ॥४०॥

अन्वयः— इज्याध्ययनदानानि सर्वेषां च द्विजन्मनाम् प्रतिग्रहः अध्यापनं याजनम् च ब्राह्मणस्यैव ॥४०॥

अनुवाद— यज्ञ यागादि० अध्यन और दान करने का अधिकार सभी ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को है किन्तु दान लेने, अध्यापन करने और यज्ञ यागादि कराने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को है ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

इज्यादयस्त्रैवर्णिकानामावश्यका धर्माः । प्रतिग्रहादित्रयं तु वृत्तिः । सा च ब्राह्मणस्यैव ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञ करना आदि तो त्रैवार्णिकों का आवश्यक धर्म है किन्तु प्रतिग्रह आदि (वेदाध्यापन और यज्ञयागादि कराना) ये तीनों केवल ब्राह्मणों का ही धर्म है ॥४०॥

प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम् । अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वादोषदृक् तयोः ॥४१॥

अन्वयः— प्रतिग्रहं तप; तेजः यशः नुदम् मन्यमानः अन्याभ्यामेव जीवेत वा तयोः दोषदृक् शिलैःजीवेत ॥४१॥

अनुवाद— दान लेना तपस्या, तेज और यश को विनष्ट करने वाला मानने वाला ब्राह्मण वेदाध्यापन तथा यागादि कराकर ही अपनी जीविका चलाये । अथवा उन दोनों में भी दोष दृष्टि रखने वाला ब्राह्मण शिलोञ्छ वृत्ति से अपनी जीविका चलाये ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

तत्रापि मुख्यां मुख्यतमां चान्यां वृत्तिमाह-प्रतिग्रहमिति । तयोर्याजनाध्यापनयोरपि कार्पण्यादिदोषं पश्यन् शिलैः स्वामित्यक्तैः क्षेत्रपतितैः कणिशैः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

उसमें भी दूसरी मुख्यतमा वृत्ति को प्रतिग्रहम् इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् ने बतलाया है । **तयोः** अर्थात् यज्ञादि कर्मों को कराने में तथा वेदाध्यापन में कार्पण्य आदि दोषों को देखने वाला ब्राह्मण खेत में गिरे हुए अन्न कणों को बीन कर उससे अपनी जीविका चलाये ॥४१॥

ब्राह्मणस्य हि देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते । कृच्छ्राय तपसे चेह प्रेत्यानन्तसुखाय च ॥४२॥

अन्वयः— अयं ब्राह्मणस्य देहः क्षुद्रकामाय न इष्यते इह कृच्छ्राय तपसे च प्रेत्य अनन्तसुखाय च ॥४२॥

अनुवाद— उद्धव ! यह ब्राह्मण का शरीर अत्यन्त दुर्लभ है, यह इसलिए नहीं है कि इसके द्वारा तुच्छ विषय भोग ही भोगे जायँ । यह तो जीवन भर कष्ट भोगने और तपस्या आदि करने के लिए और मृत्यु के पश्चात् अनन्त आनन्द स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करने के लिए है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

एवं च वृत्तिकार्श्यं ब्राह्मणेन सोढव्यमित्याह-ब्राह्मणस्येति ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह ब्राह्मण को जीवन भर कष्टमयी वृत्ति सहना चाहिए इस बात को श्रीभगवान् ब्राह्मणस्य इत्यादि श्लोक से कहे हैं ॥४२॥

शिलोञ्छवृत्त्या परितुष्टचित्तो धर्मं महान्तं विरजं जुषाणः ।
मय्यर्पितात्मा गृह एव तिष्ठन्नातिप्रसक्तः समुपैति शान्तिम् ॥४३॥

अन्वयः— शिलोञ्छवृत्त्या परितुष्टचित्तः महान्तं, विरजं धर्मं जुषाणः मयि अर्पितात्मा गृहे स्वतिष्ठन् नाति प्रसक्तः शान्तिम् समुपैति ॥४३॥

अनुवाद— जो ब्राह्मण शिलोञ्छ वृत्ति से (खेतों में तथा बजारों में गिरे पड़े अन्नों को बीनकर) सन्तोष पूर्वक अपने जीवन का निर्वाह करता है वह सन्यास लिए बिना ही घर में रहकर परमशान्ति रूप मेरे परमपद को प्राप्त कर लेता है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

उञ्छवृत्तिर्नाम विपण्यादिपतितकणोपादानं तां शिलवृत्त्यैकीकृत्य तथा तुष्टचित्तस्य मोक्षं फलमाह-शिलोञ्छेति। महान्तमातिथ्यादिलक्षणम् । विरजं निष्कामम् । जुषाणः सेवमानः । गृह एवं गृहस्थाश्रम एवं नातिप्रसक्तोऽतिशयेन रागमकुर्वन्। शान्तिमुपैति मोक्षाधिकारी भवति ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

बाजारों में पड़े हुए अन्न के दानों को बीनकर शिलवृत्ति के द्वारा एकत्रित करके जिसका चित्त सन्तुष्ट रहता है उसको मोक्ष नामक फल की प्राप्ति होती है, इस बात को **शिलोञ्छ० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । शिलोञ्छ वृत्ति महान् इसलिए है कि उसके द्वारा आतिथि सत्कारादि कर्म भी किए जाते हैं । विरजम् अर्थात् कामना रहित। जुषाण अर्थात् पालन करने वाला, गृहस्थाश्रम में ही रहकर किसी से भी अत्यधिक आसक्त नहीं रहने वाला ब्राह्मण मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी होता है ॥४३॥

समुद्धरन्ति ये विप्रं सीदन्तं मत्परायणम् । तानुद्धरिष्ये नचिरादापद्भ्यो नौरिवार्णवात् ॥४४॥

अन्वयः— ये सीदन्तं मत्परायणम् विप्रं समुद्धरन्ति तान् नचिरात् आपदभ्यः अर्णवात् नौरिव उद्धरिष्ये ॥४४॥

अनुवाद— जो लोग विपत्ति में पड़े हुए तथा कष्ट भोगते हुए मेरे भक्त ब्राह्मण को विपत्ति से बचा लेते हैं, उन लोगों को मैं विपत्तियों से उसी तरह बचा लेता हूँ जिस तरह समुद्र में डूबते हुए लोगों को नाव बचा लेती है ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

एवमधनस्य महत्फलमुक्त्वा सधनानामप्याह त्रिभिः । समुद्धरन्ति दारिद्र्यादुत्तारयन्ति । विप्रमित्युपलक्षणम् । मत्परायणं यं कमपि ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह निर्धन ब्राह्मण को महान् फल की प्राप्ति का वर्णन करके श्रीभगवान् धनिकों के भी महान् फल की प्राप्ति तीन श्लोकों से बतलाते हैं । समुद्धरन्ति अर्थात् दारिद्र्य से बचा लेते हैं । ब्राह्मण यह उपलक्षण है सभी वर्णों का जिस किसी भी मेरे भक्त को ॥४४॥

सर्वा; समुद्धरेद्राजा पितेव व्यसनात्प्रजाः । आत्मानमात्मना धीरो यथा गजपतिर्गजान् ॥४५॥

अन्वयः— राजा सर्वाः प्रजाः पितेव व्यसनात् समुद्धरेत् । गजपतिः गजान् यथा धीर; आत्मानम् आत्मना समुद्धरेदित्यर्थः॥४५॥

अनुवाद— राजा को चाहिए कि वह पिता के समान सभी प्रजाओं का कष्ट से उद्धार करे, और जिस तरह गजराज दूसरे हाथियों को बचा लेता है, उसी तरह धैर्य पूर्वक अपना भी अपने से ही उद्धार करे ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

राज्ञस्त्वावश्यकमेतदित्याह-सर्वा इति ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

राजा के लिए जो प्रजाओं का कष्ट से उद्धार आवश्यक है इस बात को **सर्वाः इत्यादि** श्लोक से श्रीभगवान ने कहा है ।।४५।।

एवंविधो नरपतिर्विमानेनार्कवर्चसा । विधूयेहाशुभं कृत्स्नमिन्द्रेण सह मोदते ।।४६।।

अन्वयः— एवं विधः नरपतिः इह कृत्स्नम् अशुभं विधूय अर्कवर्चसा विमानेन इन्द्रेण सह मोदते ।।४६।।

अनुवाद— जो राजा हर प्रकार से अपनी प्रजा की रक्षा करता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर अन्त में सूर्य के समान चमकते हुए विमान पर बैठकर स्वर्गलोक में जाता है और इन्द्र के साथ सुख भोगता है ।।४६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४६।।

सीदन्विप्रो वणिग्वृत्त्या पण्यैरेवापदं तरेत् । खड्गेन वाऽऽपदाक्रान्तो न श्ववृत्त्या कथंचन ।।४७।।

अन्वयः— सीदन् विप्रः वणिग्वृत्त्या पण्यै एव आपदं तरेत् वा आपदाक्रान्तः खड्गेन वा, श्ववृत्त्या कथंचन न।।४७।।

अनुवाद— यदि ब्राह्मण अध्यापन अथवा यज्ञ यागादि से अपनी वृत्ति नहीं चला सके तो वह वणिग् वृत्ति को अपनाकर व्यापार करे । यदि बहुत बड़ी विपत्ति का सामना करे तो तलवार उठाकर क्षत्रियों की वृत्ति से अपना काम चला ले किन्तु किसी भी अवस्था में नीचों की सेवा (नौकरी) जिसे श्वानवृत्ति कहते न करे ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

सर्वेषामापद्वृत्तीराह-सीदन्निति । त्रिभिः । पण्यैर्विक्रयार्हैर्न तु सुरालवणाद्यैः । तत्राप्यापदाक्रान्तश्चेत्खड्गेन क्षत्रियवृत्त्या वा । यद्यपि गौतमोऽनन्तरा पापीयसीं वृत्तिमातिष्ठेदिति स्मरन्खड्गधारणं पण्यविक्रयाच्छ्रेष्ठं मन्यते तथापि हिंसातो वणिग्वृत्तिरेव श्रेष्ठेति भगवतो मतम् । न तु श्ववृत्त्या नीचसेवया ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सबों की आपद्वृत्ति का वर्णन **सीदन् इत्यादि** तीन श्लोकों से करते हैं । पण्यैः अर्थात् जिन वस्तुओं को बेंचा जा सकता है, न कि सुरा तथा लवण आदि को बेंचकर । उस पर भी यदि वह आपत्ति से आक्रान्त हो तो वह क्षत्रिय की वृत्ति से अपना काम चलाये । यद्यपि महर्षि गौतम ने अपने सन्निकट की पापयसी वृत्ति को अपनाने को कहते हैं । अतएव उनके अनुसार क्षत्रिय की वृत्ति वैश्य की वृत्ति से श्रेष्ठ है फिर भी हिंसा करने की अपेक्षा वणिग्वृत्ति ही श्रेष्ठ है । यही श्रीभगवान् का मत है । नीचों की सेवारूप वृत्ति को नहीं अपनाये ।।४७।।

वैश्यवृत्त्या तु राजन्यो जीवेन्मृगययाऽऽपदि । चरेद्वा विप्ररूपेण न श्ववृत्त्या कथंचन ।।४८।।

अन्वयः— राजन्यः तु आपदि वैश्यवृत्त्या मृगयया जीवेत् विप्ररूपेण वा चरेत् श्ववृत्त्या कथंचन न ।।४८।।

अनुवाद— क्षत्रिय आपत्ति काल में वैश्य वृत्ति से अपना समय काट ले अथवा आखेट करके अपनी जीवन यात्रा चला ले किन्तु नीचों की सेवा रूपी नौकरी (श्वावृत्ति को कभी न अपनाये ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

तत्राप्यापदि मृगयया । विप्ररूपेण वा अध्यापनादिना ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

क्षत्रिय भी आपत्तिकाल में आखेट के द्वारा जीविका चला ले अथवा अध्यापन आदि के द्वारा अपना काम चला ले ।।४८।।

शूद्रवृत्तिं भजेद्वैश्यः शूद्रः कारुकटक्रियाम् । कृच्छ्रान्मुक्तो न गर्ह्येण वृत्तिं लिप्सेत कर्मणा ॥४९॥

अन्वयः— शूद्रवृत्तिं भजेद् वैश्यः शूद्राकारुकटक्रियः कृच्छ्रात मुक्तः गर्ह्येण कर्मणा वृत्तिं न लिप्सेत् ॥४९॥

अनुवाद— आपत्ति के दिनो में वैश्य भी शूद्र की वृत्ति (नौकरी) को अपना ले और शूद्र भी चटाई बनाने का काम कर ले किन्तु ये नियम आपत्ति काल के ही लिए है । आपत्ति काल समाप्त हो जाने पर निन्दित कर्म से वृत्ति प्राप्त नहीं करना चाहिए ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

कारवः प्रतिलोमजविशेषा बुरुडादयस्तेषां वृत्ति कटादिक्रियाम् । आपदुत्तीर्णस्तु नानुकल्पेन वर्तेतेत्याह-कृच्छ्रादिति॥४९॥

भाव प्रकाशिका

एक प्रकार के प्रति लोमज जाति विशेष का नामकारु (बढ़ई) है बुरुड आदि भी प्रतिलोम जाति के ही जीव है। ये चटाई बनाने का काम करते हैं आपत्ति और कष्ट के समाप्त हो जाने पर नीच वृत्ति का परित्याग कर देना चाहिए। इस बात को श्रीभगवान् ने **कृच्छ्रात् इत्यादि** श्लोक के उत्तरार्द्ध के द्वारा कहा है ॥४९॥

वेदाध्यायस्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम् । देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत् ॥५०॥

अन्वयः— वेदाध्याय स्वधा स्वाहा बलि अन्नाद्यैः यथोदयम् । देवर्षि पितृभूतानि मद्रूपाणि अन्वहं यजेत ॥५०॥

अनुवाद— गृहस्थ को चाहिए कि वेदाध्ययन रूप ब्रह्मयज्ञ, तर्पण रूप, पितृयज्ञ, हवन रूप, देव यज्ञ, काक बलि आदि भूत यज्ञ, तथा अन्नदान रूपी अतिथि यज्ञ आदि के द्वारा मेरे स्वरूप भूत ऋषि देवता, पितृगण, मनुष्य तथा अन्य समस्त प्राणियों की यथा शक्ति पूजा करनी चाहिए ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं वृत्तिव्यवस्थामुक्त्वा पुनर्गृहस्थस्यावश्यकान्पञ्चयज्ञानाह-वेदाध्ययनं ब्रह्मयज्ञस्तेन ऋषीन्स्वधाकारेण पितॄन्स्वाहाकारेण देवान्बलिहरणेन भूतानि अन्नाद्यैरन्नोदकादिभिर्मनुष्यानिति ज्ञातव्यम् । यथोदयं विभवानुसारतः । तेष्वीश्वरदृष्टिं विधत्ते-मद्रूपाणीति॥५०॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से वृत्ति व्यवस्था का वर्णन करके उसके पश्चात् गृहस्थों के लिए आवश्यक पञ्चमहायज्ञों को बतलाते हैं । वेदाध्ययन को ही ब्रह्मयज्ञ कहते हैं, उसके द्वारा ऋषियों की, स्वधाकार के द्वारा पितरों की स्वाहाकार (होम) के द्वारा देवताओं की पूजा करके अन्न इत्यादि से काक बलिरूप भूत यज्ञों को तथा अन्न जल के दान द्वारा अतिथियों की सेवा रूप मनुष्य याग को करना चाहिए । यह सारा काम अपने विभव के अनुसार ही करना चाहिए । **मद्रूपाणि०** इस श्लोकांश से देवऋषिभूत तथा मनुष्यादिकों मैं श्रीभगवान् ईश्वर दृष्टि का विधान करते हैं ॥५०॥

यदृच्छयोपपन्नेन शुक्लेनोपार्जितेन वा । धनेनापीडयन्भृत्यान्न्यायेनैवाहरेत्क्रतून् ॥५१॥

अन्वयः— यदृच्छयोपपन्नेन, वा शुक्लेनोपार्जितेन धनेन भृत्यान् अपीडयन् न्यायेन एव क्रतून् आहरेत् ॥५१॥

अनुवाद— गृहस्थ पुरुष को चाहिये कि वह अनायास प्राप्त धन से अथवा न्यायार्जित धन से अपने भृत्यों को किसी प्रकार से कष्ट दिए बिना यज्ञों को करे ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

आवश्यकं धर्ममुक्त्वा शक्त्यनुसारं धर्ममाह-यदृच्छया उद्यमं विना । उपार्जितेन वा शुक्लेन स्ववृत्त्या लब्धेन शुद्धेन वा धनेन भृत्यान्पोष्यान् ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

आवश्यक धर्म का वर्णन करके शक्ति के अनुसार किए जाने वाले धर्म को **यदृच्छया इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। यदृच्छया अर्थात् प्रयास के बिना। अपनी वृत्ति द्वारा न्याय पूर्वक उपार्जित शुद्ध धन के द्वारा भृत्यों का पोषण करते हुए यज्ञादि करे ॥५१॥

कुटुम्बेषु न सज्जेत न प्रमाद्येत्कुटुम्ब्यपि । विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥५२॥

अन्वयः— कुटुम्बेषु न सज्जेत, कुटुम्बी अपि न प्रमाद्येत् विपश्चित् अदृष्टम् अपि दृष्टवत् नश्वरं पश्येत् ॥५२॥

अनुवाद— उद्धव ! गृहस्थ पुरुष को परिवार में आसक्त नहीं होना चाहिए, बड़ा परिवार होने पर भी ईश्वराराधन में प्रमाद न करे। बुद्धिमान पुरुष को यह जान लेना चाहिए कि जिस तरह इस लोक की वस्तुएँ नाशवान हैं उसी तरह स्वर्ग में मिलने वाले सुखादि भी नश्वर हैं ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

गृहस्थस्यापि निवृत्तिनिष्ठामेवाह-कुटुम्बेष्विति त्रिभिः। न प्रमाद्येदीश्वरनिष्ठायां प्रमत्तो न भवेत्। ननु दृष्टादृष्टार्थकर्मासक्तस्य कथमप्रमादो विचारेणेत्याह-विपश्चिदिति ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

कुटुम्बेषु० इत्यादि तीन श्लोकों से गृहस्थ की भी निवृत्ति निष्ठा का वर्णन करते हैं। न प्रमादेत् अर्थात् ईश्वर निष्ठा में भी प्रमाद न करे। यदि कहें कि लौकिक एवं पारलौकिक कर्मों में आसक्त पुरुष का किस प्रकार से अप्रमाद हो सकता है ? तो इसका उत्तर है कि विचार के द्वारा। इस बात को **विपश्चित्० इत्यादि** के द्वारा कहा गया है ॥५२॥

पुत्रदाराप्तबन्धूनां सङ्गमः पान्थसङ्गमः । अनुदेहं वियन्त्येते स्वप्नो निद्रानुगो यथा ॥५३॥

अन्वयः— पुत्रदाराप्तबन्धूनां पान्थसङ्गमः यथा संगमः निद्रानुगः स्वप्नः यथा एते अनुदेहं वियन्ति ॥५३॥

अनुवाद— यह जो पुत्र पत्नी, भाई बन्धु और गुरुजनों का मिलना किसी पनघट पर एकत्रित हुए राहगीरों के एकत्रित हुए के समान है। सबों का मार्ग अलग-अलग है, और सबको अलग-अलग जाना है। यह स्वप्न के समान है। जिस तरह स्वप्न में मिलने वाले स्वप्न टूटते ही समाप्त हो जाते है उसी तरह इन सबों का भी मिलना शरीर त्याग से पूर्व काल तक का ही है। शरीर-त्याग के पश्चात् सब छूट जायेंगे ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

तत्रापि दृष्टेष्वासक्तेरधिकत्वात्तेषां नश्वरतां प्रपञ्चयति-पुत्रादीनामेकत्र सङ्गमः पान्थानां प्रपायां सङ्गम इव। तत्र हेतुः- अनुदेहं प्रतिदेहमेते वियन्ति नश्यन्ति निद्रानुवर्ती स्वप्नो निद्रापाये यथेति ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

दृष्ट पुत्र-पत्नी आदि परिवार में अधिक आसक्ति होने के कारण उन सबों की नश्वरता का विस्तार करते हैं। पुत्र आदि का एक स्थान पर होने वाला सङ्गम किसी पनघट पर पथिकों का होने वाले सङ्गम के समान है। उसका कारण है कि ये सब प्रत्येक शरीर में नष्ट हो जाते हैं नींद टूट जाने पर विनष्ट हो जाने वाले स्वप्न के समान ॥५३॥

इत्थं परिमृशन्मुक्तो गृहेष्वतिथिवद्वसन् । न गृहैरनुबध्येत निर्ममो निरहंकृतः ॥५४॥

अन्वयः— इत्थं परिमृशन् मुक्तः गृहेषु अतिथिवत् वसेत् निर्ममः निरहंकृतः गृहैः न अनुबध्येत् ॥५४॥

अनुवाद— इस प्रकार विचार करने वाला मुक्त पुरुष अपने गृह में भी अतिथि के समान रहे। अहंत्व एवं ममत्व से रहित वह गृह में आसक्त न होए ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

अतिथिवदुदासीनः ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

अतिथि के समान अनासक्त ।।५४।।

कर्मभिर्गृहमेधीयैरिष्ट्वा मामेव भक्तिमान् । तिष्ठेद्वनं वोपविशेत्प्रजावान्वा परिव्रजेत् ।।५५।।

अन्वयः— भक्तिमान् गृहमेधीयैः कर्मभिः मामेव इष्ट्वा तिष्ठेत् प्रजावान् वा वनं उपविशेत् वा परिव्रजेत् ।।५५।।

अनुवाद— भक्ति सम्पन्न पुरुष शास्त्रोक्त गृहस्थोचित कर्मों के द्वारा मेरी ही आराधना करता हुआ घर में रहे या पुत्रों वाला हो तो वन में चला जाय या संन्यास ग्रहण कर ले ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

अस्याप्याश्रमविकल्पमाह- कर्मभिरिति । गृहाश्रम एव तिष्ठेत् । यदि प्रजावांस्तर्हि प्रव्रजेद्वा ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

इसके भी आश्रम का विकल्प श्रीभगवान् ने बतलाया है अपने शास्त्रोक्त गृहस्थोचित कर्मों से गृहाश्रम में ही रहे, याद सान्तानों वाला हो तो वन में चला जाय या संन्यास ग्रहण कर लें ।।५५।।

यस्त्वासक्तमतिर्गेहे पुत्रवित्तैषणातुरः । स्त्रैणः कृपणधीर्मूढो ममाहमिति बध्यते ।।५६।।

अन्वयः— यः तु गेहे आसक्त मतिः पुत्रवित्तैषणातुरः स्त्रैणः कृपणधीः मूढः ममाहमिति बध्यते ।।५६।।

अनुवाद— जो व्यक्ति अपने घर में ही आसक्त बुद्धि वाला होता है वह पुत्र एवं धन की कामनाओं में फँसकर व्याकुल बना रहता है तथा स्त्रीलम्पट अज्ञानी वह मूर्ख अहन्त्व एवं ममत्व में ही फँसा रह जाता है ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

गृहाद्यासङ्गे दोषमाह-यस्त्विति त्रिभिः ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

गृह आदि की आसक्ति में होने वाले दोष को यस्तु इत्यादि तीन श्लोकों से बतलाते हैं ।।५६।।

अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या बालात्मजात्मजाः । अनाथा मामृते दीनाः कथं जीवन्ति दुःखिताः।।५७।।

अन्वयः— अहो मे पितरौ वृद्धौ भार्या, बालात्मजाः आत्मजा माम् ऋते अनाथाः दीनाः दुःखिता; कथं जीवन्ति।।५७।।

अनुवाद— वह सोचते रहता है मेरे माता पिता वृद्ध है, पत्नी पुत्र तथा पुत्रो के पुत्र बालक है मेरे बिना ये सब दुःखी और दीन बने हुए कैसे जीवित रहेंगे ।।५७।।

भावार्थ दीपिका

बन्धमेवाभिनयेन दर्शयति-अहो इति । बाला आत्मजा यस्याः सा, आत्मजाश्च मां बिना अनाथाः सन्तः कथं जीविष्यन्तीति।।५७।।

भाव प्रकाशिका

गृह की आसक्ति को ही अभिनय के द्वारा श्रीभगवान् **अहो मे० इत्यादि** श्लोक से बतला रहे हैं । मेरी पत्नी के पुत्र बालक हैं । ये बालक मेरे बिना अनाथ होकर कैसे जीयेंगे ?।।५७।।

एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयो मूढधीरयम् । अतृप्तस्ताननुध्यायन्मृतोऽन्धं विशते तमः ॥५८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अन्वयः— एवं गृहाशयाक्षिप्तहृदयः अयं मूढधीः अतृप्तः तान् अनुध्यायन् मृतः अन्धं तमः विशते ॥५८॥

अनुवाद— इस प्रकार से जिसका अन्तःकरण गृह में लगा हुआ है ऐसा यह अज्ञानी पुरुष विषयोपभोगों से कभी तृप्त नहीं होता है । पुत्र परिवार में ही उलझकर अपना जीवन गवाँ देता है और मरकर घोर अन्धकारमय नरकों में चला जाता है ॥५८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के श्रीभगवान् तथा उद्धव संवाद के अन्तर्गत सत्रहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

गृहे य आशयो वासना तेन आ सर्वतः क्षिप्तं हृदयं यस्य सः । अन्धं तमोऽतितामसीं योनिम् ॥५८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

जिसकी गृह में ही वासना बनी हुई है उसके कारण उसका चित्त भी उसी में आक्षिप्त रहता है । उसके कारण वह मरकर अत्यन्त तामसी योनि को ही प्राप्त करता है ॥५८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के सत्रहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१७।।

अठारहवाँ अध्याय

वानप्रस्थ और संन्यासी के धर्म

श्रीभगवानुवाच

वनं विविक्षुः पुत्रेषु भार्यां न्यस्य सहैव वा । वन एव वसेच्छान्तस्तृतीयं भागमायुषः ॥१॥

अन्वयः— वनं विविक्षुः भार्यां पुत्रेषु न्यस्य सहैव आयुषः तृतीयम् भागं वनएव शान्तः वसेत् ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— उद्धव ! यदि गृहस्थ मनुष्य वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करना चाहे तो पत्नी को पुत्रों को सौंप दे अथवा अपने साथ ही लेकर जीवन के तृतीय भाग को शन्तमना होकर वन में ही निवास करता हुआ बिताये॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टादशेऽवदद्धर्मं वनस्थयतिगोचरम् । अधिकारविशेषेण विशेषं चापि तद्गतम् । क्रमप्राप्तान्वनस्थधर्मानाह-वनमिति। आयुषस्तृतीयं भागं पञ्चसप्ततिवर्षपर्यन्तम् । ततः परं क्षीणेन्द्रियस्येषद्विरागेऽपि संन्यासाधिकारः स्यादिति भावः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

अठारहवें अध्याय में श्रीभगवान् वानप्रस्थों और संन्यासियों के धर्मों का वर्णन किए हैं तथा अधिकार विशेष के द्वारा उनमें होने वाली विशेष बातों का भी वर्णन किया गया है । क्रमशः प्राप्त वानप्रस्थ के धर्मों का श्रीभगवान् **वनं विविक्षु० इत्यादि** श्लोक से वर्णन किए हैं । एकावनवें वर्ष से लेकर पचहत्तरवें वर्ष की आयु पर्यन्त आयु का तृतीय

भाग होता है । उसके पश्चात् मनुष्य की इन्द्रियाँ क्षीण हो जाती है अतएव संसार से थोड़ा भी वैराग्य हो जाने पर भी संन्यास ग्रहण में अधिकार हो जाता है ।।१।।

कन्दमूलफलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत् । वसीत बल्कलं वासस्तृणपर्णाजिनानि च ।।२।।

अन्वयः— मेध्यैः वन्यैः कन्दमूलफलैः वृत्तिं प्रकल्पयेत् वल्कलं वासः तृणपर्णाजिनानि च वसीत ।।२।।

अनुवाद— उसे वन के पवित्र कन्द-मूल और फलों से ही शरीर निर्वाह करना चाहिए और वस्त्र के बदले में वृक्षों की छाल पहने अथवा घास पता और मृगचर्म से ही काम चलावे ।।२।।

भावार्थ दीपिका

वसीत परिदधीत ।।२।।

भाव प्रकाशिका

वसीत अर्थात् पहनना चाहिए ।।२।।

केशरोमनखश्मश्रुमलानि बिभृयाद्दतः । न धावेदप्सु मज्जेत त्रिकालं स्थण्डिलेशयः ।।३।।

अन्वयः— केशरोमनखश्मश्रु मलानि दतः न धावेत् त्रिकालं अप्सुमज्जेत् स्थण्डिलेशयः ।।३।।

अनुवाद— केश रोएँ, नख और दाढ़ी मूंछ शरीर के मल को न हटाये । दातुन न करे जल में घूसकर त्रिकाल स्नान करे और भूमि पर ही सोए ।।३।।

भावार्थ दीपिका

दतो दन्तान्न धावेन्न शोधयेत् । त्रिकालमप्सु मज्जेत मुसलवत्स्नायात् । स्थण्डिलेशयो भूमिशायी ।।३।।

भाव प्रकाशिका

दातून न करे, तीनों कालों में जल में घुसकर स्नान करे । भूमि पर ही सोए ।।३।।

ग्रीष्मे तप्येत पञ्चाग्नीन्वर्षास्वासारषाड् जले । आकण्ठमग्नः शिशिर एवंवृत्तस्तपश्चरेत् ।।४।।

अन्वयः— ग्रीष्मे पञ्चाग्नीन् तपेत वर्षासु आसारषाट् शिशिरे आकण्ठमग्नः एवं वृत्तः तपः चरेत् ।।४।।

अनुवाद— ग्रीष्म ऋतु में पञ्चाग्नि तापे, वर्षा ऋतु में खुले मैदान में रहकर वर्षा की बौछारों को सहे, जाड़े के दिनों में गला पर्यन्त जल में डूबा रहे । इस तरह घोर तपस्यामय जीवन बिताये ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तप्येत पञ्चाग्नीन्सूर्येण सह चतुर्दिशमग्नीन्निधायात्मानं तापयेदित्यर्थः । आसारषाट् आसारं घारासंपातं सहत इति तथा अभ्रावकाशं नाम व्रतं चरेत् । जले आकण्ठमग्नः उदकवासं नाम व्रतं चरेत् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

चारो ओर से चार अग्नियाँ जलाकर बीच में बैठ जाय और ऊपर से सूर्य के संताप को सहे । आसारषाट् वर्षा की बौछारों के खुले मैदान में रहकर सहने को आसारसाट् कहते हैं । इसे ही अभ्रावकाश नामक व्रत कहते हैं । गले पर्यन्त जल में मग्न रहने को उदकवास नामक व्रत कहते हैं ।।४।।

अग्निपक्वं समश्नीयात्कालपक्वमथापि वा । उलूखलाश्मकुट्टो वा दन्तोलूखल एव वा ।।५।।

अन्वयः— अग्निपक्वं समश्नीयात् अथापि कालपक्वं वा, उलूखलश्मकुट्टोवा, दन्तोलूखल एव वा ।।५।।

अनुवाद— कन्दमूलों को आग में पकाकर खाले अथवा समयानुसार पके हुए फलों आदि से काम चलावे। उन सबों को कूटने की आवश्यकता हो तो ओखली में या पत्थर पर कूट ले, नहीं तो दाँतों से चबाकर खाले ।।५।।

भावार्थ दीपिका

उलूखलेन वाश्मना वा कुट्टयति कण्डयतीति तथा। दन्ता एवोलूखलं यस्य स तथा ॥५॥

भाव प्रकाशिका

ओखली में अथवा पत्थर से जो कूटता है। अथवा जिसके दाँत ही ओखली का काम करते हों इस प्रकार से वानप्रस्थ को रहना चाहिए ॥५॥

स्वयं संचिनुयात्सर्वमात्मनो वृत्तिकारणम्। देशकालबलाभिज्ञो नाददीतान्यदाहृतम् ॥६॥

अन्वयः— देशकालबलाभिज्ञः आत्मनः वृत्तिकारणम् सर्वस्वयं संचिनुयात् अन्यदाहृतम् न आददीत ॥६॥

अनुवाद— वानप्रस्थी को चाहिए कि कौन सा पदार्थ कहाँ से लाना है ? कैसे लाना है ? किस समय लाना है? कौन-कौन पदार्थ अपने अनुकूल है ? इन बातों को जानकर अपने जीवन निर्वाह के लिए स्वयं ही उसे लाना चाहिए। देश काल आदि से अनभिज्ञ लोगों द्वारा लाये गये अथवा दूसरे समय के संचित पदार्थों का काम में न लाए ॥६॥

भावार्थ दीपिका

संचिनुयादाहरेत्। अन्यदा कालान्तरे आहृतं कालान्तरे नाददीत। 'लब्धे नवे नवेऽन्नाद्ये पुराणं तु परित्यजेत्' इति नारदोक्तेः॥६॥

भाव प्रकाशिका

संचिनुयात् अर्थात् लाए। दूसरे समय में लाए हुए कन्दमूल को दूसरे समय में ग्रहण न करे। नारदजी ने कहा भी है नवीन-नवीन अन्न आदि के उपलब्ध होने पर पुराने अनादि का परित्याग कर देना चाहिए ॥६॥

वन्यैश्चरुपुरोडाशैर्निर्वपेत्कालचोदितान्। न तु श्रौतेन पशुना मां यजेत वनाश्रमी ॥७॥

अन्वयः— वन्यैः चरुपुराडाशैः कालचोदितान् निर्वपेत। वनाश्रमी श्रौतेनपशुना मां न यजेत ॥७॥

अनुवाद— निवार आदि जंगली अन्य से ही चरु पुरोडाश आदि तैयार करे, और उनसे ही समयोचित आग्रयण आदि वैदिक कर्मों को करे, वानप्रस्थ हो जाने पर वेद विहित पशुओं द्वारा मेरा यजन न करे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

कालचोदितानाग्रयणादीन् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

कालचोदितान् अर्थात् अग्रयण आदि वैदिक कर्म ॥७॥

अग्निहोत्रं च दर्शश्च पूर्णमासश्च पूर्ववत्। चातुर्मास्यानि च मुनेराम्नातानि च नैगमैः ॥८॥

अन्वयः— नैगमैः अग्निहोत्रं, दर्शः, पौर्णमासः च चातुर्मास्यानि च मुनेः पूर्ववत् आम्नातानि ॥८॥

अनुवाद— वेदज्ञ पुरुषों ने वानप्रस्थों के लिए भी गृहस्थों के ही समान अग्निहोत्र, दर्श पौर्णमास और चातुर्मास्य का विधान किया है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

किंच अग्निहोत्रमिति। मुनेश्च नैगमैर्वेदवादिभिः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

वेदज्ञों ने वानप्रस्थों के भी लिए अग्निहोत्र आदि का भी ॥८॥

एवं चीर्णेन तपसा मुनिर्धमनिसंततः। मां तपोमयमाराध्य ऋषिलोकादुपैति माम् ॥९॥

अन्वयः— एवं चिर्णेनतपसा धमनिसंततः मुनि तपोमयम् माम् आराध्य ऋषिलोकात् माम् उपैति ॥९॥

अनुवाद— इस तरह कठोर तपस्या करने के कारण तथा मांस सूख जाने के कारण वनाश्रमी की एक-एक नस दिखने लगती है । इस तपः स्वरूप मेरी आराधन से वह पहले ऋषिलोक में जाता है और उसके पश्चात् मेरे लोक में आता है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

अस्य निष्कामस्य फलमाह-एवमिति । धमनीभिः शिराभिः संततो व्याप्तः । यावज्जीवं कृतेन तपसा शुष्कमांस इत्यर्थः । ऋषिलोकान्महर्लोकादिक्रमेण अयं भावः-अन्तःकरणशुद्धिभक्तिद्वाराऽत्रैव तावन्मुच्येत । प्रतिबन्धकबाहुल्ये त्वनेन क्रमेण मुच्यत इति ।।९।।

भाव प्रकाशिका

कामना रहित वनाश्रमी के फल को **एवम् इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । नसों से व्याप्त । जीवन पर्यन्त तपस्या करने के कारण मांस सूख जाता है । ऋषियों के लोक से महर्लोक आदि के क्रम से । कहने का अभिप्राय है कि, अन्तःकरण की शुद्धिरूप भक्ति के द्वारा वनाश्रमी इस लोक में ही मुक्त हो जा सकता है । किन्तु बहुत अधिक प्रतिबन्धक के रहने पर तो वह इस क्रम से मुक्त होता है ।।९।।

यस्त्वेतत्कृच्छ्रतश्चीर्णं तपो निःश्रेयसं महत् । कामायाल्पीयसे युञ्ज्याद्बालिशः कोऽपरस्ततः ।।१०।।

अन्वयः— यः तु एतत् कृच्छ्रत वीर्णं महत् निश्रेयसं तपः अल्पीयसे कामाय युञ्ज्यात् ततः अपरः बालिशः कः?।।१०।।

अनुवाद— जो पुरुष बड़े कष्ट से की गयी इस तपस्या के द्वारा जो मोक्ष प्रदान करती है, उसको स्वर्ग, ब्रह्मलोक आदि छोटे फलों की प्राप्ति के लिए करता है, उससे बड़ा मूर्ख इस संसार में कौन है ?।।१०।।

भावार्थ दीपिका

तं सकामं निन्दति-यस्त्विति । निःश्रेयसं मोक्षफलम् । अल्पीयसे आविरिञ्च्यादत्यल्प एव तस्मै ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

सकाम तपस्या करने वाले वनाश्रमी की निन्दा करते हुए श्रीभगवान् **यस्तु० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । निःश्रेयसम् अर्थात् मोक्ष रूपी फल अल्पीयसे अर्थात् ब्रह्मलोक पर्यन्त की प्राप्तिरूपी छोटे फल के लिए ।।१०।।

यदासौ नियमेऽकल्पो जरया जातवेपथुः । आत्मन्यग्नीन्समारोप्य मच्चित्तोऽग्निं समाविशेत् ।।११।।

अन्वयः— यदा जरया जातवेपथुः असौ नियमे अकल्पः आत्मनि अग्नीन् समारोप्य मच्चितः अग्निं समाविशेत्।।११।।

अनुवाद— उद्धव ! जब बुढापे के कारण वनाश्रमी का शरीर काँपने लगता है वह नियमों का पालन करने में असमर्थ हो जाता है तो वह यज्ञाग्नियों की भावना के द्वारा अपने अन्तःकरण में आरोपित कर ले और अपना मन मुझमें लगाकर अग्नि में प्रवेश कर जाय ।।११।।

भावार्थ दीपिका

एवं यावज्जीवं वर्तमानस्य मोक्षः । तृतीयभागावसाने तु मन्दविरागेऽपि संन्यासाधिकारः । यदि तु ततोऽर्वागेव स्वधर्माशक्तो भवेत्तदापि सम्यगविरक्तो विरक्तो वा । तत्राविरक्तस्य कृत्यमाह-यदेति । जातो वेपथुः कम्पो देहे यस्य सः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से आजीवन नियम का निर्वाह करने वाले वनाश्रमी को मोक्ष की प्राप्ति होती है । जीवन के तीसरे भाग में वैराग्य के मन्द होने पर भी संन्यास का अधिकार होता है । यदि उससे पहले ही वनाश्रमी अपने धर्म के पालन में असमर्थ हो जाता है तो चाहे वह अच्छी तरह से विरक्त हो गया हो अथवा नहीं विरक्त हुआ हो वह

संन्यास का अधिकारी हो जाता है। जो विरक्त नहीं हुआ हो उसके कृत्यों को बतलाते हुए श्रीभगवान् कहते हैं जिसके शरीर में कँपकँपी होने लगती हैं ॥११॥

यदा कर्मविपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु । विरागो जायते सम्यक् न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः ॥१२॥

अन्वयः— यदा कर्म विपाकेषु निरयात्मसुलोकेषु सम्यक् विरागे जायते ततः न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत् ॥१२॥

अनुवाद— यदि यह बात ज्ञात हो जाय कि काम्य कर्मों से प्राप्त होने वाले लोक नरक के तुल्य हैं। वे नरकों के समान दुःख से परिपूर्ण हैं, मन में लोक एवं परलोक से पूर्ण रूप से वैराग्य हो जाय तो फिर विधि पूर्वक अग्नियों का परित्याग करके संन्यास ग्रहण कर ले ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

विरक्तं प्रत्याह-यदेति ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

यदा इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् विरक्तों के विषय में कहे हैं ॥१२॥

इष्ट्वा यथोपदेशं मां दत्त्वा सर्वस्वमृत्विजे । अग्नीन्स्वप्राण आवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥१३॥

अन्वयः— यथोपदेशं मां इष्ट्वा सर्वस्वं ऋत्विजे दत्त्वा अग्नीन् स्वप्राणे आवेश्य निरपेक्षः परिव्रजेत् ॥१३॥

अनुवाद— जो वानप्रस्थी संन्यासी होना चाहे वह पहले वेदविधि के अनुसार आठो प्रकार के श्राद्धों और प्राजापत्य यज्ञ से मेरा यजन करके अपना सर्वस्व ऋत्विज को देकर किसी भी स्थान, वस्तु व्यक्ति से अपेक्षा न रखकर स्वच्छन्द विचरण करे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

तत्रादौ कृत्यमाह-इष्ट्वेति। यथोपदेशं श्राद्धाष्टकपूर्वकं प्राजापत्येष्ट्या मामिष्ट्वा। स्वे प्राणे आत्मनि ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

संन्यास ग्रहण से पहले किए जाने वाले कृत्य का इष्ट्वा इत्यादि श्लोक से बतलाया है श्रीभगवान् ने यथोपदेशं आठ श्राद्धों को करने के पश्चात् प्राजापत्य इष्टि के द्वारा मेरी आराधना करके स्वेप्राणे अर्थात् आत्मा में ॥१३॥

विप्रस्य वै संन्यसतो देवा दारादिरूपिणः । विघ्नान्कुर्वन्त्ययं ह्यस्मानाक्रम्य समियात्परम् ॥१४॥

अन्वयः— संन्यसतः विप्रस्य दारादि रूपिणः देवाः विघ्नान् कुर्वन्ति अयं हि अस्मान् आक्रम्य परम सम् इयात्॥१४॥

अनुवाद— जब ब्राह्मण संन्यास लेने लगता है तो पत्नी आदि के रूप में विद्यमान देवगण यह सोचकर विघ्न करते हैं कि यह हमलोगों को छोड़कर परमात्मा को प्राप्त करने वाला है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

संन्यासे विघ्ना भवन्ति तानविगणय्य संन्यसेदेवेत्याशयेनाह-विप्रस्येति। केनाभिप्रायेण कुर्वन्ति तमाह-अयमिति। परं परंब्रह्म ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

संन्यास ग्रहण में विघ्न होता ही है, उसकी परवाह किए बिना संन्यास ग्रहण कर ही लेना चाहिए इस आशय से श्रीभगवान् ने **विप्रस्य० इत्यादि** श्लोक से कहा है। देवता किस अभिप्राय से विघ्न करते हैं तो उसे **अयम्० इत्यादि** श्लोकांश से बतलाया गया है। परम अर्थात् परंब्रह्म ॥१४॥

विभृयाच्चेन्मुनिर्वासः कौपीनाच्छादनं परम् । त्यक्तं न दण्डपात्राभ्यामन्यत्किंचिदनापदि ॥१५॥

अन्वयः— मुनिः वासः चेद् विभृयात् कौपीनात् छादनं परम् दण्डपात्राभ्यां त्यक्तं अनापदि किञ्चित् न ॥१५॥

अनुवाद— संन्यासी यदि वस्त्र धारण करे तो उसको उतना ही बड़ा होना चाहिए जिससे कि लंगोटी ढंक जाय । संन्यासी दण्ड और कमलडलू को छोड़कर कोई दूसरी वस्तु अपने पास न रखे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

एवं प्रव्रजितस्य धर्मानाह-विभृयाच्चेदिति । परं कौपीनादन्यद्वासो यदि धारयितुमिच्छति तर्हि कौपीनमाच्छाद्यते यावता तावन्मात्रं धारयेदित्यर्थः । त्यक्तं प्रेषोच्चारात्पूर्वमेव । अतोअन्यत्त्किंचिदपि न बिभृयात् । दण्डपात्राभ्यामित्यावश्यकजलपात्रादेरुपलक्षणम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

संन्यास ग्रहण करने वाले के धर्मों को **विभृयाच्चेत्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । संन्यासी यदि वस्त्र धारण करना चाहे तो उस वस्त्र को इतना ही बड़ा होना चाहिए कि उससे लंगोटी ढँक जाय **त्यक्तम्** अर्थात् प्रोषोच्चार से पहले ही । उसके अतिरिक्त कुछ भी धारण न करे । **दण्डपात्राभ्याम्** यह आवश्यक जलपात्र इत्यादि का उपलक्षण है ॥१५॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् । सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥१६॥

अन्वयः— दृष्टिपूतं पादं न्यसेत्, वस्त्रपूतं जलं पिबेत् सत्यपूतांवा चं वदेत् मनः पूतं समाचरेत् ॥१६॥

अनुवाद— संन्यासी को चाहिए कि वह आँखों से देखकर ही पृथिवी पर पैर रखे, वस्त्र से छानकर पानी पिए, सत्य बोले और शरीर से जितना भी काम करे मन से विचार करके ही करे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

परमहंसस्य विधिनिषेधागोचरत्वाद्बहूदकादिधर्मान् भगवानह-मनःपूतम् मनसा सम्यग् विचार्य यच्छुद्धं तदाचरेत् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

परमहंस शास्त्रोक्त विधि एवं निषेध वाक्यों का विषय नहीं होता है अतएव उसे मन से अच्छी तरह विचार करके ही कोई भी काम करना चाहिए ॥१६॥

मौनानीहानिलायामा दण्डा वाग्देहचेतसाम् । न ह्येते यस्य संत्यङ्ग वेणुभिर्न भवेद्यतिः ॥१७॥

अन्वयः— हे अङ्ग यस्य मौनानीहानिलायामा एतेहि वाग्देहचेतसाम् दण्डा न सन्ति वेणुभिः यतिः न भवेत् ॥१७॥

अनुवाद— हे प्रिय उद्धव ! वाणी के लिए मौन, शरीर के लिए निश्चेष्ट स्थिर और मन के लिए प्राणायाम ये तीन दण्ड नहीं है, वह केवल बाँस के दण्डों को लेकर सन्यासी नहीं हो सकता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

मौनं वाचो दण्डः अनीहा काम्यकर्मत्यागो देहस्य, प्राणायामश्चेतस;, एते अन्तस्त्रयो दण्डा यस्य न सन्ति । **अङ्ग हे** उद्धव । अङ्गे धृतैर्वेणुभिरिति वा ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

वाणी का दण्ड मौन, देह का दण्ड काम्य कर्मों का परित्याग, मन का दण्ड प्राणायाम ये तीनों **आभ्यन्तर दण्ड** जिसके नहीं है वह अपने शरीर पर बाँस के दण्डों को रखकर संन्यासी नहीं हो सकता है ॥१७॥

भिक्षां चतुर्षु वर्णेषु विगर्ह्यान्वर्जयंश्चरेत् । सप्तागारानसंक्लृप्तांस्तुष्येल्लब्धेन तावता ॥१८॥

अन्वयः— विगहर्यान् वर्जन् चतुर्षुवर्णेषु भिक्षां चरेत् असंक्लृप्तान् सप्तागारान् लब्धेन तावता **संतुष्येत्** ॥१८॥

अनुवाद— संन्यासी को चाहिए कि जातिच्युत और गोघाती आदि पतितों को छोड़कर चारो वर्णों के यहाँ भिक्षा ले । केवल अनिश्चित सात घरों से जितनी भिक्षा मिले उतने से ही सन्तोष कर लेना चाहिए ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

चतुर्ष्विति । ब्राह्मणेष्वेव वृत्तिभेदेन चतुर्विधेषु । पूर्वपूर्वासंभवे वा विगर्ह्यानभिशस्तपतितान् । असंक्लृप्तान् अत्रायं लाभो भविष्यतीति पूर्वमनुद्दिष्टान् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

चतुर्षु० इत्यादि श्लोक से कहा गया है वृत्ति की भिन्नता के कारण चार प्रकार के ब्राह्मणों के ही यहाँ, अथवा पूर्व-पूर्व के यहाँ सम्भव नहीं होने पर निन्दित जातिच्युत तथा गोघाती आदि पतितों को छोड़कर अनिश्चित सात घरों से जितनी भिक्षा मिले उसी से संन्यासी को संतुष्ट हो जाना चाहिए ।।१८।।

बहिर्जलाशयं गत्वा तत्रोपस्पृश्य वाग्यतः । विभज्य पावितं शेषं भुञ्जीताशेषमाहृतम् ।।१९।।

अन्वयः— बहि जलाशयं गत्वा तत्र उपस्पृश्य वाग्यतः पावितं विभज्य शेषं अशेषम् आहृतम् भुञ्जीत ।।१९।।

अनुवाद— भिक्षा लेकर नगर से बाहर किसी जलाशय पर जाकर हाथ पैर धोकर आचमन करे पुनः भिक्षा को पवित्र करके पुनः शास्त्रोक्त विधि से जिन्हें भिक्षा का भाग देना चाहिए उसे देकर अवशिष्ट लायी हुई सम्पूर्ण भिक्षा को खा जाय । दूसरे समय के लिए बचा कर न रखे ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

वहिर्ग्रामात् । पावितं प्रोक्षणादिभिः शोधितम् । विभज्य विष्णुब्रह्मार्कभूतेभ्यः । अशेषमित्यधिकाहरणं निरस्तम् । याचितमिति पाठेमाधुकरेण याचितमन्नं चेत्तर्हि विभज्य भुञ्जीत नत्वयाचितादिभैक्ष्यचतुष्टयमित्यर्थः । 'माधूकरे तु नैवेद्यं भैक्ष्ये नान्येषु विद्यते । नैवेद्यकं क्षिपेदप्सु त्रितयं भौतिकं वहिः ।' इति स्मृतेः । यद्वा तदानीं केनापि याचितं चेन्मध्ये तस्मै किंचिद्विभज्य दत्त्वेत्यर्थः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

बहिः ग्रामात् अर्थात् गाँव के बाहर जाकर पवित्र की हुई, विभज्य अर्थात् विष्णु सूर्य तथा ब्रह्माजी को समर्पित करके, अशेष कहकर सूचित किया गया है कि अधिक माँगकर लाये भी नहीं । **याचितम्** यह पाठ होने पर अर्थ होगा कि मधुकरी के द्वारा माँगा गया अन्न होने पर उसको विभक्त करके खाना चाहिए, किन्तु बिना माँगे आदि भिक्षा से प्राप्त चार प्रकार भक्ष्य को विभाजित न करे । स्मृति भी कहती है । मधुकरी से प्राप्त भिक्षा में नैवेद्य होता है उससे भिन्न में नहीं नैवेद्य को जल में डाल दे और तीन प्रकार के भूतों के अन को बाहर डाल दे । अथवा उस समय किसी के द्वारा बीच में याचना किए जाने पर उसको थोड़ा देकर ही खाये ।।१९।।

एकश्चरेन्महीमेतां निःसङ्गः संयतेन्द्रियः । आत्मक्रीड आत्मरत आत्मवान्समदर्शनः ।।२०।।

अन्वयः— निःसङ्गः संयतेन्द्रियः आत्मक्रीडः आत्मरतः आत्मवान् समदर्शनः एकः एताम् महीम् चरेत् ।।२०।।

अनुवाद— संन्यासी को चाहिए कि उसकी कहीं भी आसक्ति न हो, उसकी इन्द्रियाँ अपने वश में हो, वह अपने आप में क्रीडा करे, वह आत्मा में ही तन्मय रहे, वह प्रतिकूल परिस्थिति में भी धैर्य नहीं खोये । वह अकेला ही पृथ्वी पर संचरण करे वह समान रूप से सर्वत्र परमात्मा का अनुभव करे ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

किंच, एकश्चरेदिति । आत्मन्येव क्रीडा कौतुकं यस्य सः । आत्मन्येव च रतस्तुष्टः । आत्मवान् धीरः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

संन्यासी अकेले पृथिवी पर संचरण करे, आत्मक्रीड: अर्थात् अपने आप में ही क्रीडा करे। आत्मरत: अपने आप में तन्मय रहे, आत्मवान् अर्थात् धैर्य सम्पन्न ॥२०॥

विविक्तक्षेमशरणो मद्भावविमलाशयः । आत्मानं चिन्तयेदेकमभेदेन मया मुनिः ॥२१॥

अन्वयः— मुनिः विविक्तक्षेमशरणः मद्भावविमलाशयः मया अभेदेन एकम् आत्मानं चिन्तयेत् ॥२१॥

अनुवाद— संन्यासी को निर्जन निर्भय और एकान्त स्थान में रहना चाहिए। उसका हृदय निरन्तर मेरी भावना से शुद्ध रहना चाहिए। वह अपने आपको मुझसे अभिन्न, अद्वितीय और अखण्ड रूप से चिन्तन करे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

विविक्तं विजनं क्षेमं निर्भयं शरणं स्थानं यस्य सः। मयि भावेन विमल आशयो यस्य सः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

संन्यासी का स्थान निर्जन, निर्भय और एकान्त स्थान में होना चाहिए। निरन्तर मेरी भावना करते रहने से उसका अन्तःकरण शुद्ध होना चाहिए ॥२१॥

अन्वीक्षेतात्मनो बन्धं मोक्षं च ज्ञाननिष्ठया । बन्ध इन्द्रियविक्षेपो मोक्ष एषां च संयमः ॥२२॥

अन्वयः— ज्ञाननिष्ठया आत्मनोबन्धं मोहं च चिन्तयेत्, इन्द्रियविक्षेपः बन्ध एषां संयमः मोक्षः ॥२२॥

अनुवाद— संन्यासी अपनी ज्ञान निष्ठा से चित्त के बन्धन और मोक्ष पर विचार करे। वह निश्चय करे कि इन्द्रियों का विषय के लिए विक्षिप्त होना (चञ्चल होना) ही बन्धन है, इन्द्रियों को वश में होना ही मोक्ष है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

बन्धं मोक्षं च केन बन्धः केन वा मोक्ष इति। तावाह-बन्ध इति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

चित्त में बन्ध और (मोक्ष) किसके द्वारा बन्ध होता है और किसके द्वारा मोक्ष होता है ? इस बात को **बन्धः इत्यादि** श्लोक के उत्तरार्ध से कहा गया है ॥२२॥

तस्मान्नियम्य षड्वर्गं मद्भावेन चरेन्मुनिः । विरक्तः क्षुल्लकामेभ्यो लब्ध्वात्मनि सुखं महत् ॥२३॥

अन्वयः— तस्मात् मुनिः षड्वर्गं नियम्य क्षुल्लकामेभ्यो विरक्तः आत्मनि महत् सुखं लब्ध्वा मद्भावेन चरेत् ॥२३॥

अनुवाद— अतएव संन्यासी को चाहिए कि वह मन तथा पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को वश में रखकर भोगो को क्षुद्र समझकर उनकी ओर से मुख मोड़ ले। वह अपने आपमें परम आनन्द का अनुभव करे। इस प्रकार वह मेरी भावना से भरकर पृथिवी पर विचरण करे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

पुरग्रामव्रजान्सार्थान्भिक्षार्थं प्रविशंश्चरेत् । पुण्यदेशसरिच्छैलवनाश्रमवतीं महीम् ॥२४॥

अन्वयः— भिक्षार्थं पुरग्रामव्रजान् सार्थान् प्रविशन् पुण्यदेशसरितछैलवनाश्रमवतीं महीं चेरत् ॥२४॥

अनुवाद— वह केवल भिक्षा के लिए, नगर, ग्राम, अहीरों की बस्ती या यात्रियों की टोली में जाय और पवित्र देश, नदी, पर्वत, वन तथा आश्रम वाली पृथिवी पर संचरण करे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

पुराणि हट्टादिमन्ति । ग्रामास्तद्रहिताः । व्रजा गोष्ठानि तान् । सार्थान् । यात्रिकजनसमूहान् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

पुर अर्थात् बाजारो आदि से युक्त नगर । ग्राम अर्थात् बाजार आदि से रहित गाँव व्रज अर्थात् अहीरों की बस्ती, सार्थान् यात्रियों का समूह ॥२४॥

वानप्रस्थाश्रमपदेष्वभीक्ष्णं भैक्ष्यमाचरेत् । संसिध्यत्याश्वसंमोहः शुद्धसत्त्वः शिलान्धसा ॥२५॥

अन्वयः— वानप्रस्थाश्रमपदेषु अभीक्ष्णं भैक्ष्यम् आचरेत् शिलान्धसा शुद्धसत्त्वः असम्मोहः आशु संसिध्यति ॥२५॥

अनुवाद— संन्यासी को चाहिए कि वह वानप्रस्थों के आश्रम में बार-बार भिक्षा माँगे क्योंकि शिलवृत्ति से प्राप्त वानप्रस्थों के अन्न से अन्तःकरण के शुद्ध हो जाने से अवशिष्ट मोह शीघ्र ही विनष्ट हो जाता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

यतः शिलवृत्त्या प्राप्तेन तदीयेनान्धसान्नेन शुद्धसत्त्वः सन्निवृत्तमोहः संसिध्यति मुच्यते ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

चूकि शिलवृत्ति से प्राप्त वानप्रस्थाश्रमों के अन्नों से अन्तःकरण शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है और बचा खुचा मोह विनष्ट हो जाता है ॥२५॥

नैतद्वस्तुतया पश्येद्दृश्यमानं विनश्यति । असक्तचित्तो विरमेदिहामुत्रचिकीर्षितात् ॥२६॥

अन्वयः— एतत् वस्तुतया न पश्येत्, दृश्यमानं विनश्यति, आसक्तचित्तः इहामुत्र चिकीर्षितात् विरमेत् ॥२६॥

अनुवाद— संन्यासी को चाहिए वह इस जगत् को सत्य न समझे क्योंकि यह तो प्रत्यक्षतः ही नाशवान् है । वह इस जगत् में कही भी अपने चित्त को न लगाये । इस लोक में तथा परलोक में जो कुछ करने और पाने की इच्छा हो उससे विरक्त हो जाय ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

ननु मिष्ठान्नं विहाय कथं शिलान्ने प्रवृत्तिः स्यादत आह-नैतदिति । एतत् दृश्यमानं मिष्टान्नादि वस्तुतया न पश्येत् । यतो विनश्यति । अत इहामुत्र च लोके असक्तचित्तः संश्चिकीर्षितात्तदर्थकृत्याद्विरमेत् ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि स्वादिष्ट अन्न को छोड़कर शिलवृत्ति से प्राप्त अन्न में प्रवृत्ति का कारण क्या है ? तो इस पर श्रीभगवान् **नैतत्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं- संन्यासी को चाहिए कि वह दिखने वाले स्वादिष्ट अन्न आदि को सत्य न समझे, क्योंकि वह विनष्ट होता है । विनष्ट ही होने के कारण लोक तथा परलोक में आसक्त चित्त होने से जो कुछ भी वह करना चाहता है, उससे विरक्त हो जाय ॥२६॥

यदेतदात्मनि जगन्मनोवाक्प्राणसंहतम् । सर्वं मायेति तर्केण स्वस्थस्त्यक्त्वा न तत्स्मरेत् ॥२७॥

अन्वयः— यदेतत् आत्मनि मनोवाक्प्राणसंहतम् जगत्, सर्वं मायेति स्वस्थः तर्केण त्यक्त्वा न स्मरेत् ॥२७॥

अनुवाद— संन्यासी को विचार करना चाहिए कि आत्मा में यह जो मन, वाणी तथा प्राणों का संघात रूप जगत् है वह माया ही है, इस बात को अपने स्वरूप में स्थित होकर तर्क के द्वारा इसका बाध करके पुनः कभी इसका स्मरण न करे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

ननु तथापि यावद्विनाशं सुखहेतुत्वात्तच्चिन्तावतः कुतो विरागः स्यात्तत्राह-यदेतदिति । एतज्जगन्ममतास्पदं मनोवाक्प्राणैः संहतं सहितमहंकारास्पदं शरीरं च सर्वं तज्जन्यं सुखं चात्मनि मायामात्रमिति तर्केण स्वप्नादिदृष्टान्तेन त्यक्त्वा स्वस्थ आत्मनिष्ठः सन् तन्न स्मरेन्न चिन्तयेत् ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि जब तक इस जगत् बिनाश नहीं होता तब तक तो सुख देता ही है, अतएव इसका चिन्तन करने वाला उससे विरक्त कैसे हो सकता है ? इस पर श्रीभगवान् **यदेतदात्मनि० इत्यादि** श्लोक कहते है । यह जगत् ममता का विषय है यह मन, वाणी और प्राण के द्वारा संहत है । मैं मैं इस रूप से कहा जाने वाला अहङ्कार का विषय यह शरीर तथा शरीर जन्य सुख सबके सब केवल माया है । इस तरह स्वप्नादि के दृष्टान्त द्वारा विचार करके उसका त्याग करे और अपने स्वरूप में स्थित होकर पुनः कभी स्मरण न करे ।।२७।।

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा मद्भक्तो वाऽनपेक्षकः । सलिङ्गानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः ।।२८।।

अन्वयः— ज्ञाननिष्ठः विरक्तो वा अनपेक्षको वा मद्भक्तः सलिङ्गानाश्रमान् त्यक्त्वा अविधि गोचरः चरेत् ।।२८।।

अनुवाद— ज्ञान निष्ठ, विरक्त, मुमुक्षु तथा मोक्ष की भी अपेक्षा नहीं रखने वाला मेरा भक्त आश्रमों की मर्यादा में बद्ध नहीं है । वह चाहे तो आश्रमों और उनके चिह्न का परित्याग करके शास्त्रों के विधिनिषेध से परे होकर स्वच्छन्द विचरण करे ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

एवं बहूदकादिधर्मानुक्त्वा परमहंसधर्मानाह-ज्ञाननिष्ठ इति सार्धैर्दशभिः । बहिर्विरक्तो मुमुक्षुः सन् ज्ञाननिष्ठो वा मोक्षेऽप्यनपेक्षो मद्भक्तो वा सलिङ्गांस्त्रिदण्डादिसहितानाश्रमांस्तद्धर्मांस्त्यक्त्वा तदासक्तिं त्यक्त्वा यथोचितं धर्मं चरेदित्यर्थः । न पुनरत्यन्तत्याग एव विवक्षितः । पुनर्धर्मविधानात्, अक्रियत्वस्योत्तराध्याये वक्ष्यमाणत्वाच्च । तर्हि पूर्वस्मात्को विशेषस्तमाह- अविधिगोचरो विधिकिङ्करो न स्यार्दिति एतदेव स्फुटीकरिष्यति-'शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत्' इत्यादिना ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह बहूदक आदि संन्यासियों के धर्मों का वर्णन करके परमहंस के धर्मों को **ज्ञान निष्ठः इत्यादि** साढे दस श्लोकों से बतलाते हैं । बाहर से विरक्त, मुमुक्षु ज्ञाननिष्ठ, अथवा मोक्ष की भी अपेक्षा नहीं रखने वाला मेरा भक्त संन्यासी के चिह्न त्रिदण्ड आदि के साथ ही आश्रम के धर्मों का परित्याग करके, धर्मासक्ति का परित्याग करके यथोचित धर्म का आचरण करे । यहाँ अत्यन्त त्याग विवक्षित नहीं है । क्योंकि फिर धर्म का विधान किया गया है । भक्तों के क्रिया राहित्य का वर्णन आगे के अध्याय में किया जाना है । तो प्रश्न होता है इससें पहले के धर्म से कौन सी विशेषता है । तो इसका उत्तर श्रीभगवान् अविधि गोचर कहकर दिए हैं । अर्थ विधि एवं निषेध का वह विषय ही नहीं रह जाता है । इस बात को श्रीभगवान् **शौचमाचमनं ध्यानम् स्नानं न तु चोदनया चरेत्।** अर्थात् मेरा भक्त विधि वाक्यों के अनुसार शौच, आचमन ध्यान तथा स्नान नहीं करता है इत्यादि ।।२८।।

बुधो बालकवत्क्रीडेत्कुशलो जडवच्चरेत् । वदेदुन्मत्तवद्विद्वान्गोचर्यां नैगमश्चरेत् ।।२९।

अन्वयः— बुधो बालकवत् क्रीडेत् कुशलो जडवत् चरेत् विद्वान् उन्मत्तवद् वदेत् नैगमः गोचर्यां चरेत् ।।२९।।

अनुवाद— वह बुद्धिमान होकर भी बालक के समान क्रीडा करे, निपुण होकर भी जड के समान आचर करे, विद्वान् होकर भी वह पागल के समान बोले और शास्त्रों का ज्ञाता होकर भी पशुवृत्ति से (अनियत आच वाला) से रहे ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

कथं चरेत्तदाह-बुधो विवेकवानपि बालकवन्मानावमानविवेकशून्यः । कुशलो निपुणोऽपि जडवत्फलानुसंधानाभावेन विद्वान् पण्डितोऽप्युन्मत्तवल्लोकरञ्जनाभावेन नैगमो वेदार्थनिष्ठोऽपि गोचर्यामनियताचारमिव ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

कथंचरेत् का उत्तर **बुधो० इत्यादि** श्लोक से देते हैं । बुध: अर्थात् विवेक सम्पन्न होकर भी मानापमान के विवेक से रहित होकर क्रीडा करे । निपुण होकर फलानुसन्धान के अभाव के कारण जड के समान आचरण करे । पण्डित होकर भी लोकरञ्जन नहीं करने के कारण जड़ के समान बोले । वेदार्थनिष्ठ होकर भी अनियत आचारवान् के समान रहे ।।२९।।

वेदवादरतो न स्यान्न पाखण्डी न हैतुकः । शुष्कवादविवादे न कंचित्पक्षं समाश्रयेत् ।।३०।।

अन्वयः— वेदवादरतः न स्यान्न पाखण्डी हैतुकः शुष्कवादविवादे कंचित् पक्षं न समाश्रयेत् ।।३०।।

अनुवाद— वह वेदों के कर्मकाण्ड भाग की व्याख्या में न लगे वह न तो पाखण्ड करे और तर्क-विर्तक करे । कोरे बाद विवाद में कोई भी पक्ष ग्रहण न करे ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

वेदवादरतः कर्मकाण्डव्याख्यानादिनिष्ठः । पाखण्डी श्रुतिस्मृतिविरुद्धधर्मानुष्ठानवान् । हैतुकः केवलतर्कनिष्ठः । शुष्कवादे निष्प्रयोजनगोष्ठ्यां यो विवादस्तस्मिन् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

वेदवादरतः अर्थात् कर्मकाण्डव्याख्यानादि निष्ठ न भवेत् पाखण्डी अर्थात् श्रुतियों तथा स्मृतियों के विरुद्ध धर्मानुष्ठान करने वाला हैतुक: अर्थात् केवल तर्क निष्ठा शुष्कवादे अर्थात् निष्पयोजन गोष्ठी में होने वाले विवाद में ।।३०।।

नोद्विजेत जनाद्धीरो जनं चोद्वेजयेन्न तु । अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन ।।
देहमुद्दिश्य पशुवद्वैरं कुर्यान्न केनचित् ।।३१।।

अन्वयः— धीरः जनात् न उद्विजेत् न तु जनं उद्वेजयेत्, अतिवादान् तितिक्षेत कंचन न अवमन्येत, देहम् , उद्दिश्य पशुवत् केनचित् वैरं न कुर्यात् ।।३१।।

अनुवाद— उसे इतना धैर्य सम्पन्न होना चाहिए कि उसके मन में किसी भी प्राणी से उद्वेग न हो वह स्वयं भी किसी प्राणी को उद्विग्न न करे । यदि कोई उसकी निन्दा करे तब उसे प्रसन्नता से सह ले । वह किसी का अपमान न करे । संन्यासी को चाहिए कि वह इस शरीर के लिए किसी से भी वैर न करे । ऐसा वैर तो पशु करते हैं ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

अतिवादान् दुरुक्तानि ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

अतिवाद अर्थात् निन्दा ।।३१।।

क एव परो ह्यात्मा भूतेष्वात्मन्यवस्थितः । यथेन्दुरुदपात्रेषु भूतान्येकात्मकानि च ।।३२।।

अन्वयः— यथा इन्दुः उदपात्रेषु एक एवहि परः आत्मा भूतेषु आत्मानि अवस्थित; भूतानि एकात्मकानि च ।।३२।।

अनुवाद— जिस तरह एक ही चन्द्रमा जल से भरे भिन्न-भिन्न पात्रों में अलग-अलग दिखाई देता है वैसे

ही परमात्मा सभी प्राणियों में और अपने में अवस्थित हैं। सबों की आत्मा एक ही है। पञ्चभूतों से बने शरीर भी सबों के एक ही हैं, क्योंकि सभी शरीर पाञ्चभौतिक हैं। अतएव किसी से भी वैर-विरोध करना अपने से ही बैर विरोध है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

आत्मदृष्ट्या तावद्वैरकारणं नास्तीत्युक्तमेक एवेति-देहदृष्ट्यापि नास्तीत्याह-भूतानि च देहा अपि कारणरूपेणैकात्मकानि।।३२।।

भाव प्रकाशिका

एक एव० इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है कि आत्मा की दृष्टि से वैर का कोई भी कारण नही है, क्योंकि सभी शरीरों में एक ही आत्मा है। देह की दृष्टि से भी वैर का कारण नहीं क्योंकि सबों के शरीर पाञ्चभौतिक होने के कारण एकात्मक ही हैं ॥३२॥

अलब्ध्वा न विषीदेत काले कालेऽशनं क्वचित्। लब्ध्वा न हृष्येद्धृतिमानुभयं दैवतन्त्रितम् ॥३३॥

अन्वयः— धृतिमान् काले-काले क्वचित् अशनं अलब्ध्वा न विषीदेत लब्ध्वान हृष्येत् उभयं हि दैवतन्त्रितम् ।।३३।।

अनुवाद— उद्धव! संन्यासी को चाहिए कि उसे किसी दिन समयानुसार भोजन न मिले तो वह दुःखी न हो और समय पर भोजन मिलने पर उसे प्रसन्न भी नहीं होना चाहिए क्योंकि भोजन का मिलना और नहीं मिलना दोनों ही प्रारब्ध के अधीन है। उसे धैर्य रखना चाहिए मन में हर्ष और विषाद रूप किसी प्रकार के विकार को नहीं आने देना चाहिए ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

दैवतन्त्रितं दैवाधीनं यतः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

दैवतन्त्रितम् अर्थात् प्रारब्धाधीन है ॥३३॥

आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम्। तत्त्वं विमृश्यते तेन तद्विज्ञाय विमुच्यते ॥३४॥

अन्वयः— आहारार्थं समीहेत तत् प्राणधारणम् युक्तं तेन तत्त्वं विमृश्यते तद् विज्ञाय विमुच्यते ।।३४।।

अनुवाद— भोजन के लिए भिक्षा अवश्य माँगनी चाहिए, क्योंक भिक्षा से ही प्राण की रक्षा होती हैं और प्राण रहने से ही तत्त्व का विचार होता है। तत्त्व विचार से तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है। तत्त्वज्ञान से मुक्ति होती है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

अलं तर्हि भिक्षाप्रयत्नेनापि तत्राह-आहारमात्रार्थं समीहेतैव। यतः तस्य प्राणधारणं युक्तं सम्यक्। कथम्। तेन प्राणधारणेन तत्त्वं विचार्यते। किं तेनापि तदाह-तद्विज्ञायेति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि तब तो भिक्षा के लिए प्रयत्न करना भी व्यर्थ है, इस पर श्रीभगवान ने कहा आहार के लिए संन्यासी को भिक्षा अवश्य माँगना चाहिए। उससे ही प्राण की रक्षा होती है। यदि कहे कि उस प्राणधारण से कौन लाभ है। तो इसका उत्तर है कि उससे तत्त्व का चिन्तन होता है। तत्त्व चिन्तन से ज्ञान की प्राप्ति होती है और उससे मुक्ति हो जाती है ॥३४॥

यदृच्छयोपपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम्। तथा वासस्तथा शय्यां प्राप्तं प्राप्तं भजेन्मुनिः ॥३५

अन्वयः— मुनिः यदृच्छयोपपन्नम् श्रेष्ठम् उत अपरम् अद्यात् तथा वासः तथा शय्यां प्राप्तं प्राप्तं भजेत् ।।३५।।

अनुवाद— संन्यासी को चाहिए कि प्रारब्धवशात् अच्छा या बुरा जैसा अन्न भिक्षा में मिल जाय उससे पेट भ ले, वस्त्र और बिछौना जैसा मिल जाय उसी का उपयोग कर ले । उसमें अच्छा बुरा न देखे ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

तर्हि किं मिष्टान्नादिकमग्राह्यमेव, केनैवमुक्तमित्याह-यदृच्छयेति ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि क्या फिर संन्यासी को स्वादिष्ट भोजन नहीं करना चाहिए क्या ? किसने ऐसा कहा है ? इस पर श्रीभगवान् ने यदृच्छया० इत्यादि श्लोक कहा ॥३५॥

शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत् । अन्यांश्च नियमान् ज्ञानी यथाहं लीलयेश्वरः ॥३६॥

अन्वयः— यथा अहं लीलया ईश्वरः ज्ञानी शौचम् आचमनम् स्नानम् अन्यान् च नियमान् न तु चोदनया चरेत् ॥३६॥

अनुवाद— जिस तरह मैं ईश्वर होकर लीला पूर्वक ही शौच आदि शास्त्रोक्त नियमों का पालन करता हूँ उसी तरह ज्ञानी पुरुष ही लीला पूर्वक, शौच, अचामन, स्नान तथा अन्य नियमों का पालन लीलापूर्वक ही करे वह शास्त्र के अधीन होकर न करे ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

यथाहमीश्वरो लीलया चरामि तथा ज्ञानी ज्ञाननिष्ठोऽनासक्तः कुर्यान्न तु विधिकिङ्करत्वेन । तस्य ज्ञाननिष्ठाविरोधादित्यर्थः॥३६॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह ईश्वर होकर मैं लीला पूर्वक ही आचरण करता हूँ उसी तरह ज्ञानी पुरुष भी अनासक्त होकर लीला पूर्वक ही स्नानादि क्रियाओं को करे शास्त्रवशवर्ती होकर न करे क्योंकि शास्त्र वशर्तित्व का ज्ञाननिष्ठा से विरोध है ॥३६॥

नहि तस्य विकल्पाख्या या च मद्वीक्षया हता । आदेहान्तात्क्वचित्ख्यातिस्ततः संपद्यते मया ॥३७॥

अन्वयः— तस्य विकल्पाख्या नहि। या च मदवीक्षया हता आदेहान्तात् क्वचित् क्वचित् ख्यातिः ततः मया सम्पद्यते॥३७॥

अनुवाद— क्योंकि ज्ञाननिष्ठ को भेद की प्रतीति होती ही नहीं । जो पहले थी वह मुझ सर्वात्मा के साक्षात्कार से नष्ट हो गयी । यदि कभी-कभी मारण पर्यन्त भेद की प्रातीति होती है तब भी देहपात हो जाने पर मुझसे एक हो जाता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

कुतो विधिकिङ्करत्वाभावस्तस्य तत्राह-न हि तस्य विकल्पाख्या भेदप्रतीतिः । नन्वस्ति सा, सत्यम्, या चासीत्सापि मद्वीक्षया ज्ञानेन हता । ननु न हता, पुनर्दृश्यमानत्वात्तत्राह-आदेहान्तात्क्वचित्कदाचिद्बाधितैव ख्यातिर्भवति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि ज्ञानी पुरुष शास्त्र वशवर्ती क्यों नहीं होता है ? इस पर श्रीभगवान् कहते हैं कि ज्ञानी को विकल्प नामक भेद की प्रतीति होती ही नहीं यदि कहें कि भेद की प्रतीति है तो इसका उत्तर है कि मुझ सर्वात्मा के साक्षात्कार से नष्ट हो गयी, यदि कहें कि वह विनष्ट नहीं हुई है क्येंकि उसकी पुनः प्रतीति होती है, तो इसका उत्तर है कि मरण पर्यन्त बाधित ही भेद की प्रतीति होती है ॥३७॥

दुःखोदर्केषु कामेषु जातनिर्वेद आत्मवान् । अजिज्ञासितमद्धर्मो गुरुं मुनिमुपाव्रजेत् ॥३८॥

अन्वयः— कामेषु दुःखोदर्केषु जातनिर्वेदः आत्मवान् अजिज्ञासित मद्धर्म; मुनिं गुरुम् उपाव्रजेत् ॥३८॥

अनुवाद— (यहाँ तक तो श्रीभगवान् ज्ञानवान की बात कहें हैं अब यहाँ से वैरागयवान की बातें कह रहे

हैं) जितेन्द्रिय पुरुष को जब इस बात का निश्चय हो जाय कि सांसारिक विषयों के भोग का फल केवल दुःख ही होता है तब उसे विरक्त हो जाना चाहिए यदि उसको मेरी प्राप्ति के साधनों का ज्ञान न हो तो वह भगवच्चिन्तन में तन्मय रहने वाले सद्‌गुरु के शरण में जाय ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं विरक्तस्य परोक्षज्ञानवतः संन्यासं तद्धर्मांश्चोक्त्वा केवलं वैराग्यवन्तं विविदिषुं प्रत्याह-दुःखोदर्केष्विति । न जिज्ञासितो मद्धर्मो मत्प्राप्तिसाधनं येन सः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह परोक्ष ज्ञान वाले विरक्त के संन्यास और उसके धर्मों का वर्णन करके केवल वैराग्यवान् तत्त्व जिज्ञासु के प्रति श्रीभगवान् **दुःखोदकेषु० इत्यादि** श्लोक कहे हैं। जिसको मेरी प्राप्ति के साधनों का ज्ञान नहीं है वह पुरुष ।।३८।।

तावत्परिचरेद्भक्तः श्रद्धावाननसूयकः । यावद्ब्रह्म विजानीयान्मामेव गुरुमादृतः ।।३९।।

अन्वयः— श्रद्धावान् अनसूयकः भक्तः तावत् परिचरेद् यावद ब्रह्म विज्ञानीयात् आदृतः मामेव गुरुं विजानीयात्।।३९।।

अनुवाद— उस जिज्ञासु पुरुष को चाहिए कि वह गुरु की श्रद्धा पूर्वक भक्ति करे। वह उनमें कभी दोष न निकाले। जब तक ब्रह्म का ज्ञान हो तब तक बड़े आदर से मुझे ही गुरु के रूप में जाने और गुरु की सेवा करे ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

मामेव मद्दृष्ट्यैव गुरुं परिचरेत् । ततः परमेकश्चरेदित्यादि धर्मैर्वर्तेतेति भावः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

मेरी दृष्टि से ही गुरु की सेवा करे। उसके पश्चात् वह एकाकी विचरण करे इत्यादि संन्यासी के धर्मों का पालन करे ।।३९।।

यस्त्वसंयतषड्वर्गः प्रचण्डेन्द्रियसारथिः । ज्ञानवैराग्यरहितस्त्रिदण्डमुपजीवति ।।४०।।
सुरानात्मानमात्मस्थं निह्नुते मां च धर्महा । अविपक्वकषायोऽस्मादमुष्माच्च विहीयते ।।४१।।

अन्वयः— यः तु असंयतषड्वर्गः प्रचण्डेन्द्रियसारथिः ज्ञानवैराग्यरहित; त्रिदण्डम् उपजीवति, सुरान् आत्मानम् आत्मस्थं मां च निह्नुते धर्महा अविपक्वकषाय अस्मात् अमुष्मात् च विहीयते ।।४०-४१।।

अनुवाद— जिसने अपने मन तथा पाँच इन्द्रियों पर विजय प्राप्त नहीं किया है। जिसके इन्द्रिय रूपी घोड़े और बुद्धि रूप सारथि बिगड़े हुए हैं। जिसके हृदय में न तो ज्ञान है और न वैराग्य है, वह त्रिदण्डी संन्यासी का वेष धारण करके पेट पालन करने का काम करता है। वह संन्यास धर्म का सत्यानाश करता है। वह अपने पूज्य देवताओं को अपने आपको और अपने हृदय में स्थित मुझ परमात्मा को ठगने का काम करता है। उसका वेषमात्र संन्यासी है उसकी वासनाएँ क्षीण नहीं हुई हैं। अतएव वह लोक-परलोक दोनों को खो देता है ।।४०-४१।।

भावार्थ दीपिका

अनधिकारिणः संन्यासं निन्दति द्वाभ्याम्-यस्त्विति । प्रचण्डोऽत्यासक्त इन्द्रियसारथिर्बुद्धिर्यस्य सः । सुरान् यष्टव्यान् देवानात्मानं च स्वात्मानमात्मस्थं मां च निह्नुते प्रतारयति । निह्नवफलमाह-अस्मादिति ।।४०-४१।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् **यस्तु इत्यादि** दो श्लोकों से अनधिकारी के संन्यास की निन्दा करते हैं। जिसके इन्द्रिय रूपी घोड़े

और बुद्धि रूपी सारथि अत्यन्त आसक्त हैं। वह पूज्य देवताओं, अपनी आत्मा और आत्मा में स्थित मुझ परमात्मा को भी बञ्चित करता है। उस प्रवञ्चन का फल है कि उसके लोक और परलोक दोनों विगड़ जाते हैं ।।४०-४१।।

भिक्षोर्धर्मः शमोऽहिंसा तप ईक्षा वनौकसः । गृहिणो भूतरक्षेज्या द्विजस्याचार्यसेवनम् ।।४२।।

अन्वयः— भिक्षोः धर्मः शमः अहिंसा, वनौकसः तपः ईक्षा गृहिणः भूतरक्षेज्या द्विजस्य आचार्यसेवनम् ।।४२।।

अनुवाद— संन्यासी के मुख्य धर्म हैं शान्ति और अहिंसा, वानप्रस्थ के मुख्य धर्म हैं तपस्या तथा भगवद् भक्ति, गृहस्थ के मुख्य धर्म हैं प्राणियों की रक्षा और यज्ञ यागादि तथा ब्रह्मचारी का मुख्य धर्म है अचार्य की सेवा ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

चतुर्णां प्रधानधर्मानाह-भिक्षोरिति ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

चारो आश्रमों के प्रधान धर्मों को भिक्षों इत्यादि श्लोक में कहा गया है ।।४२।।

ब्रह्मचर्यं तपः शौचं संतोषो भूतसौहृदम् । गृहस्थस्याप्यृतौ गन्तुः सर्वेषां मदुपासनम् ।।४३।।

अन्वयः— गृहस्थस्याप्यृतौ गतुः ब्रह्मचर्यः, तपः शौचम् सन्तोषः भूतसौहृदम् मदुपासनं सर्वेषाम् ।।४३।।

अनुवाद— गृहस्थ भी केवल ऋतुकाल में अपनी पत्नी का सहवास करे उसके लिए भी ब्रह्मचर्य, तपस्या, शौच, सन्तोष और समस्त प्राणियों के प्रति प्रेमभाव ये मुख्य धर्म हैं, मेरी उपासना सबों का धर्म है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

अन्यधर्मान्कांश्चिद्गृहस्थस्याप्यतिदिशति-ब्रह्मचर्यमिति। शौचं रागादिराहित्यं च। तस्य ब्रह्मचर्यप्रकारमाह-ऋतौ गन्तुरिति।।४३।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मचर्यम्० इत्यादि श्लोक से गृहस्थों के कुछ दूसरे धर्मों को बतलाते हैं श्रीभगवान् शौच अर्थात् पावित्र्य का पालन राग आदि का न रहना, गृहस्थ के ब्रह्मचर्य के प्रकार को **ऋतौ गन्तुः इत्यादि** से बतलाते है। ऋतुकाल में पत्नी के साथ सहवास करना ब्रह्मचर्य के ही समान है ।।४३।।

इति मां यः स्वधर्मेण भजन्नित्यमनन्यभाक् । सर्वभूतेषु मद्भावो मद्भक्तिं विन्दतेऽचिरात् ।।४४।।

अन्वयः— इति मां यः स्वधर्मेण नित्यं अनन्यभाक् भजन सर्वभूतेषु मद्भावः मत् दृढाम् भक्तिं विन्दते ।।४४।।

अनुवाद— इस प्रकार से जो पुरुष अपने धर्मानुसार अनन्य भाव से मेरा भजन करता है तथा सभी प्राणियों में मेरी भावना करता है, उसे मेरी अविचल भक्ति प्राप्त होती है ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

एवंभूतवर्णाश्रमधर्मफलमाह-इति मामिति । दृढः मद्भक्तिं विन्दते ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के वर्णाश्रम धर्मों के फल को **इतिमाम्० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं मेरी सुदृढ भक्ति को प्राप्त करता है ।।४४।।

भक्तयोद्धवानपायिन्या सर्वलोकमहेश्वरम् । सर्वोत्पत्त्यप्ययं ब्रह्म कारणं मोपयाति सः ।।४५।।

अन्वयः— उद्धव ! सः अनपायिन्या भक्त्या सर्वलोकमहेश्वरम् सर्वोत्पत्यप्ययं ब्रह्म कारणं मा उपयाति ।।४५।।

अनुवाद— प्रिय उद्धव वह भक्त अपनी प्रतिदिन बढ़ने वाली भक्ति के द्वारा सम्पूर्ण लोक के एकमात्र स्वामी, सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति और प्रलय के परम कारण ब्रह्म मुझको प्राप्त कर लेता है ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह-भत्तयेति । महेश्वरत्वे हेतुः-सर्वोत्पत्त्यप्ययं सर्वस्योत्पत्त्यप्ययौ यस्मात् अतएव तत्कारणं मा मां ब्रह्मरूपं वैकुण्ठनिवासिनम् । यद्वा, ब्रह्मणो वेदस्य कारणं मामुपयाति सामीप्येन प्राप्नोति ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि उस सुदृढ भक्ति की प्राप्ति से क्या हुआ ? इस पर श्रीभगवान् **भक्त्योद्धव० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । श्रीभगवान् के महेश्वरत्व का कारण है कि वे सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति और प्रलय के परम कारण हैं तथा ब्रह्म स्वरूप अर्थात् वैकुण्ठ लोक में निवास करने वाले हैं ऐसे श्रीभगवान् को अपनी अनन्या भक्ति से प्राप्त कर लेता है । अथवा वेद के कारणभूत मुझको प्राप्त कर लेता है ।।४५।।

इति स्वधर्मनिर्णिक्तसत्त्वो निर्ज्ञातमद्गतिः । ज्ञानविज्ञानसंपन्नो नचिरात्समुपैति माम् ।।४६।।

अन्वयः— इति स्वधर्म निर्णिक्तसत्त्वनिर्ज्ञातमद्गतिः ज्ञान-विज्ञान सम्पन्नः न चिरात् माम् समुपैति ।।४६।।

अनुवाद— इस प्रकार वह गृहस्थ अपने धर्म पालन द्वारा अपने अन्तःकरण को शुद्ध करके मेरे ऐश्वर्य को अर्थात् मेरे स्वरूप को जान लेता है ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न होकर शीघ्र ही मुझे प्राप्त कर लेता है ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

ततश्चासौ मुक्त एवेत्याह-इत्येवंभूतेन स्वधर्मेण निर्णिक्तं शुद्धं सत्त्वं यस्य सः । अतएव निर्ज्ञाता मम गतिरैश्वर्यं येन।।४६।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् वह भक्त मुक्त हो जाता है इस बात को **इतिस्वधर्म० इत्यादि** श्लोक से कहा है । स्वधर्म के पालन से जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है वह मेरे ऐश्वर्य को जान लेता है ।।४६।।

वर्णाश्रमवतां धर्म एष आचारलक्षणः । स एव मद्भक्तियुते निःश्रेयसकरः परः ।।४७।।

अन्वयः— वर्णाश्रमधर्मवतां एष सदाचार लक्षणः धर्मः स एव मद्भक्तियुतो परः निःश्रेयसकरः ।।४७।।

अनुवाद— मैंने यह तुम्हें वर्णाश्रम धर्मियों का सदाचार स्वरूप धर्म बतलाया है । वही सदाचार लक्षण धर्म यदि भक्ति सम्पन्न के द्वारा पालन किया जाता है तो यह अनायास ही परम निःश्रेयस रूपी मोक्ष को प्राप्त करा देता है ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

उक्तमर्थं संक्षिप्याह-य एष आचारलक्षणः पितृलोकप्राप्तिफलः स एव मद्भक्तियुतो मदर्पणेन कृतः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

उक्त अर्थ को संक्षेप में श्रीभगवान् को बतलाते हैं यह जो आचार स्वरूप धर्म पितृलोक को प्राप्ति कराने वाला है वही यदि भक्ति पूर्वक मुझको समर्पित कर दिया जाता है तो उससे उपासक को मुक्ति प्राप्ति हो जाती है ।।४७।।

एतत्तेऽभिहितं साधो भवान्पृच्छति यच्च माम् । यथा स्वधर्मसंयुक्तो भक्तो मां समियात्परम् ।।४८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे अष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

अन्वयः— साधो यत् च भवान् माम् पृच्छति एतत्ते अभिहितं यथा स्वधर्म संयुक्त भक्तः परम मां समियात् ।।४८।।

अनुवाद— हे साधु स्वभाव वाले उद्धव ! तुमने जो मुझसे पूछा उसे मैंने तुम्हे बतला दिया जिस धर्म का पालन करने वाला भक्त मुझ परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है ।।४८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के श्रीभगवान् और दद्धव के संवाद के अन्तर्गत अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

प्रकरणार्थमुपसंहरति-एतच्च तेऽभिहितम् । यथा भक्तो भूत्वा मां परं संप्राप्नुयादिति ।।४८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टादशोऽध्यायः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

एतच्चतेऽभिहितम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् इस प्रकरण का उपसंहार करते हैं । जिस तरह से उपासक भक्त होकर मुझ परब्रह्म को प्राप्त कर सकता है ।।४८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के अठारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१८।।

उन्नीसवाँ अध्याय

भक्ति ज्ञान और यम नियमादि साधनों का वर्णन

श्रीभगवानुवाच

यो विद्याश्रुतसंपन्न आत्मवान्नानुमानिकः । मायामात्रमिदं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥१॥

अन्वयः— यः विद्याश्रुत सम्पन्नः आत्मवान् आनुमानिकः च इदं मायामात्रं ज्ञात्वा ज्ञानं च मयि संन्यसेत् ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— प्रिय उद्धव ! जिसने उपनिषदादि शास्त्रों के श्रवण मनन और निदिध्यासन के द्वारा आत्मसाक्षात्कार कर लिया है, श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ है, जिसका केवल युक्तियों और अनुमानों पर ही नहीं टिकता है, अर्थात् जो परोक्ष ज्ञानी नहीं है, वह यह जानकर कि सम्पूर्ण द्वैत प्रपञ्च और इसकी निवृत्ति का साधन वृत्तिज्ञान मायामात्र है उन्हें मुझमें लीन कर दे, वे दोनों ही मुझ आत्मा में अध्यस्त हैं इस प्रकार से जान लें ॥१॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञानादेर्निर्णयः पूर्वं कृतो ह्याश्रमधर्मतः । अत्रोनविंशतितमे ज्ञानादेस्त्याग उच्यते । तदेवं तर्कतो बाधितोऽपि देहादिप्रपञ्चो यावदपरोक्षानुभवेन दिङ्मोहादिरिव न लीयते तावज्ज्ञानाभ्यासस्ततो मुक्तिरित्युक्तम्- 'आदेहान्तात्क्वचित्ख्यातिस्ततः संपद्यते मया' इत्यादिनां । यस्य त्वपरोक्षानुभवेन प्रपञ्चो लीनप्रायस्तस्य न किंचित्कृत्यमस्तीत्याह-य इति । विद्या अनुभवस्तत्पर्यन्तेन श्रुतेन संपन्नोऽत एवात्मवान्प्राप्तात्मतत्त्वो नानुमानिकः केवलपरोक्षज्ञानवान्न भवति । अनकारपाठे प्राक्श्रुत्यनुकूलतर्कतो निर्णीतार्थ इत्यर्थः । स इदं द्वैतं तन्निवृत्तिसाधनं च मयि मायामात्रमिति ज्ञात्वा ज्ञानं च तत्साधनं संन्यसेत् । अयमेव विद्वत्संन्यासो नाम।।१।।

भाव प्रकाशिका

इससे पहले के अध्याय में श्रीभगवान ने आश्रम धर्म के अनुसार ज्ञान आदि का निर्णय किया है, इस उन्नीसवें अध्याय में ज्ञान आदि के त्याग को बतलाते हैं । इस तरह तर्क के द्वारा देहादि प्रपञ्च का बाध हो जाने पर भी जब तक अपरोक्षानुभव के द्वारा उसका दिग्भ्रम के समान बाध नहीं लीन हो जाता है तब तक ज्ञान का अभ्यास और उससे मुक्ति नहीं होती है । इस बात को श्रीभगवान् ने कहा है । आदेहान्तात् इत्यादि अर्थात् जब तक देह रहता है तब तक कभी-कभी बाधित प्रपञ्च भ्रम की अनुवृत्ति होती ही रहती है और देहपात हो जाने पर वह एक

हो जाता है । जिसको अपरोक्ष अनुभव से प्रपञ्च का बाध हो जाता है उसके लिए कुछ भी कृत्य अवशिष्ट नहीं रह जाता है । इसी बात को **यः विद्याश्रुत० इत्यादि** श्लोक के द्वारा कहा गया है । विद्या अर्थात् अनुभव पर्यन्त श्रवणादि से सम्पन्न आत्मज्ञानी आत्मतत्त्व को प्राप्त कर लेता है । वह केवल परोक्ष ज्ञानवान् नहीं होता है । नकार रहित पाठ के होने पर अर्थ होगा है कि पहले से श्रुत अर्थ के अनुकूल तर्क के द्वारा निर्णीत अर्थ । यह भेद प्रपञ्च और उसकी निवृत्ति के साधन मुझमें मायामात्र है इस तरह से जानकर ज्ञान और उसके साधन को मुझमें लीन कर दे ।।११।।

ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः स्वार्थो हेतुश्च संमतः । स्वर्गश्चैवापवर्गश्च नान्योऽर्थो मदृते प्रियः ।।२।।

अन्वयः— ज्ञानिनः तु अहम् स्वेष्टः स्वार्थः हेतुश्च संमतः स्वर्गः चैव अपवर्गः च मदृते अन्यः अर्थ; प्रियः न ।।२।।

अनुवाद— ज्ञानी पुरुष का मैं ही अभीष्ट पदार्थ हूँ, उसके लिए साधन साध्य, स्वर्ग और अपवर्ग मैं ही हूँ । मुझको छोड़कर उसका कोई भी दूसरा पदार्थ प्रिय नहीं होता है ।।२।।

भावार्थ दीपिका

अत्र हेतुमाह-ज्ञानिनस्त्विति । यस्मादहमेव तस्येष्टोऽपेक्षितः, स्वार्थः फलम्, हेतुस्तत्साधनं च संमतः स्वर्गोऽभ्युदयश्च। अपवर्गः संसारनिवृत्तिश्च । अतस्तस्य न प्राप्यं कृत्यं वा किंचिदस्तीत्यर्थः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

इसका कारण बतलाते हुए श्रीभगवान् ने **ज्ञानिनस्तु० इत्यादि** श्लोक को कहा है । चूकि ज्ञानी पुरुष को अपेक्षित पदार्थ मैं ही हूँ । मैं ही फल साधन-साध्य तथा स्वर्ग और अपवर्ग रूप से अभिप्रेत हूँ । स्वर्ग अर्थात् अभ्युदय और अपवर्ग अर्थात् संसार निवृत्ति अतएव उसको मुझको छोड़कर कुछ भी प्राप्य अथवा कृत्य नहीं है।।२।।

ज्ञानविज्ञानसंसिद्धाः पदं श्रेष्ठं विदुर्मम । ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे ज्ञानेनासौ बिभर्ति माम् ।।३।।

अन्वयः— ज्ञानविज्ञानसंसिद्धा ममश्रेष्ठ पदं विदुः अतो ज्ञानी मे प्रियतमः असौ माम् ज्ञानेन विभर्ति ।।३।।

अनुवाद— ज्ञान और विज्ञान से सम्पन्न सिद्ध पुरुष ही मेरे वास्तविक स्वरूप को जानते हैं । अतएव ज्ञानी पुरुष मुझको सबसे प्रिय है । ज्ञानी पुरुष अपने ज्ञान के द्वारा निरन्तर मुझे अपने अन्तःकरण में धारण करता है।।३।।

भावार्थ दीपिका

अत्र विद्वदनुभवं प्रमाणयति-ज्ञानेति । यथोक्तं ज्ञानिनमभिनन्दति-ज्ञानीति । यतोऽसौ ज्ञानेन मां धारयति ।।३।।

भाव प्रकाशिका

इस विषय में ज्ञानी पुरुष के अनुभव को प्रमाण रूप से श्रीभगवान् ज्ञान इत्यादि श्लोक के द्वारा उपन्यस्त करते है । ऊपर बतलाये गये रूप से श्रीभगवान् ज्ञानी को अभिनंदित करते हैं । क्योंकि ज्ञानी पुरुष ज्ञान के द्वारा मुझको अपने अन्तःकरण में निरन्तर धारण करता है ।।३।।

तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्राणीतराणि च । नालं कुर्वन्ति तां सिद्धिं या ज्ञानकलया कृता ।।४।।

अन्वयः— ज्ञानस्य कलया या कृता तां सिद्धि तपः तीर्थं जपः दानं इतराणि पवित्राणि अलं न कुर्वन्ति ।।४।।

अनुवाद— तत्त्वज्ञान के लेशमात्र के उदय होने से जिस सिद्धि की प्राप्ति होती है, वह तपस्या, तीर्थ, जप, दान अथवा अन्तःकरण की शुद्धि के किसी दूसरे साधन से नहीं प्राप्त होती है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तस्य ज्ञानं स्तौति-तप इति । अलमत्यर्थम् । ज्ञानस्य कलया लेशेन ।।४।।

भाव प्रकाशिका

तप: इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् ज्ञान की प्रशंसा करते हैं । अलम् अर्थात् अधिक । ज्ञानस्य कलया तत्त्वज्ञान के लेश मात्र से ।।४।।

तस्माज्ज्ञानेन सहितं ज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव । ज्ञानविज्ञानसंपन्नो भज मां भक्तिभावत: ।।५।।

अन्वय:— हे उद्धव ! तस्मात् ज्ञानेन सहितं स्वात्मानं ज्ञात्वा ज्ञानविज्ञान सम्पन्न: मां भक्तिभावत: भज ।।५।।

अनुवाद— हे प्रिय उद्धव ! इसलिए तुम तत्त्वज्ञान के साथ अपनी आत्मा को जान लो और ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न होकर मुझे भक्तिभाव पूर्वक भजो ।।५।।

भावार्थ दीपिका

ज्ञानेन सहितं तत्पर्यन्तं यथा भवति तथा ज्ञात्वा तत्संपन्न: सन् मामेव भज । अन्यत्सर्वं त्यजेत्यर्थ: ।।५।।

भाव प्रकाशिका

ज्ञान पर्यन्त तुम आत्मा का ज्ञान प्राप्त करके ज्ञान से सम्पन्न होकर मेरी ही आराधना को अन्य सारी बातों को छोड़ दो ।।५।।

ज्ञानविज्ञानयज्ञेन मामिष्ट्वात्मानमात्मनि । सर्वयज्ञपतिं मां वै संसिद्धिं मुनयोऽगमन् ।।६।।

अन्वय:— ज्ञान विज्ञानयज्ञेन सर्वयज्ञपतिं आत्मानम् माम् आत्मनि इष्ट्वा मुनय: संसिद्धिम् अगमन् ।।६।।

अनुवाद— ज्ञान-विज्ञान रूपी यज्ञ के द्वारा अपने अन्त:करण में आत्मस्वरूप सम्पूर्ण यज्ञों के स्वामी मेरी ही आराधना करके मुनियों ने मुक्ति प्राप्त कर ली ।।६।।

भावार्थ दीपिका

तस्य प्रत्ययार्थं पूर्वेषां वृत्तमाह-ज्ञानेति । मामेव संसिद्धिं प्राप्ता: ।।६।।

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी के ज्ञान के लिए ज्ञान० इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् पूर्वकालिक ऋषियों के वृत्त को बतलाते हैं । **मामेव संसिद्धिं प्राप्ता:** अर्थात् मुझको ही मुक्ति रूप से प्राप्त कर लिए ।।६।।

त्वय्युद्धवाश्रयति यस्त्रिविधो विकारो मायान्तराऽऽपतति नाद्यपवर्गयोर्यत् ।
जन्मादयोऽस्य यदमी तव तस्य किं स्युराद्यन्तयोर्यदसतोऽस्ति तदेव मध्ये ।।७।।

अन्वय:— हे उद्धव ! त्वयि य: त्रिविध: विकार: आश्रयति, यत् आदि अपवर्गयो: न मायान्तराऽऽपतति, अस्य यत् अमी जन्मादय: तस्य तव स्यु: आद्यन्तयो: असतो: यत् तदेवमध्ये अस्ति ।।७।।

अनुवाद— उद्धव ! आध्यात्मिक, अधिदैविक और आधिभौतिक इन तीन प्रकार के विकारों की समष्टि ही यह शरीर है और यह पूर्ण रूप से तुम्हारे आश्रित है । यह पहले नहीं था और अन्त में भी नहीं रहेगा केवल बीच में ही दीख रहा है । अतएव यह माया ही है । इसमें जो जन्म आदि अर्थात् जन्मना, रहना, बढना बदलना, घटना और नष्ट होना ये छह प्रकार के विकार होते हैं, इनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है, ये विकार शरीर के भी नहीं है, क्योकि शरीर असत् पदार्थ है । असत् वस्तु पहले नहीं थी बाद में भी नहीं रहेगी अतएव बीच में भी इसका कोई अस्तित्व नहीं है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तदेव ज्ञानं संक्षेपत उपदिशति-त्वयतीति । त्रिविध आध्यात्मिकादिर्विकारो देहादि: स माया न तु परमार्थ: । यद्यस्मादन्तरा

मध्य एवापतति । रज्जौ सर्पमालादिवत् । नाद्यपवर्गयोर्न त्वादावन्ते चास्ति । अतो यद्यदा अस्य विकारस्यामी जन्मादयः स्युस्तदा तस्य तवाधिष्ठानभूतस्य किं । न किंचिदित्यर्थः । ननु तस्यापि वस्तुतो न सन्ति, तस्यासत्त्वादित्याह-आद्यन्तयोरिति। असतः सपदिराद्यन्तयोर्यदस्ति रज्ज्वादि तदेव मध्येऽपि न तु सर्पादि, तद्वदयं विकारो नास्तीत्यर्थः । यद्वा, आद्यन्तयोर्यदन्ति तन्मध्येऽप्यस्त्येव। न तस्य जन्मादयः सन्त्यतस्त्वं निर्विकारं ब्रह्मेति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् उसी ज्ञान का संक्षेप में उपदेश **त्वयुद्धवाश्रयति० इत्यादि** श्लोक से देते हैं । आध्यात्मिक आदि तीन प्रकार के विकारों की समष्टि ही देह आदि हैं । वह माया ही है परमार्थ नहीं है । क्योंकि यह बीच में होता है आदि और अन्त में नहीं रहता है । रस्सी में प्रतीत होने वाले सर्प अथवा माला के समान । यह आदि और अन्त में नहीं रहता है । अतएव इसमें होने वाले जन्म आदि विकारों से इन सबों के अधिष्ठान भूत तुमसे इनका कोई संबन्ध नहीं है । असत् सर्प आदि के आदि और अन्त में रहने वाली रस्सी ही बीच में भी रहती है, सर्प आदि नहीं रहते हैं । अथवा आदि और अन्त में जो है वही बीच में भी रहता है । इन शरीरादिको में होने वाले विकार तुममें नहीं हैं । तुम तो निर्विकार ब्रह्म हो ।।७।।

उद्धव उवाच

ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथैतद्वैराग्यविज्ञानयुतं पुराणम् ।
आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्वद्भक्तियोगं च महद्विमृग्यम् ।।८।।

अन्वयः— हे विश्वेश्वर विश्वमूर्ते वैराग्यविज्ञानयुतं पुराणम् ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यथा महद्विमृग्यं त्वद् भक्तियोगं च आख्याहि ।।८।।

श्रीउद्धवजी ने कहा

अनुवाद— हे विश्व के स्वामिन् हे विश्वरूप प्रभो, आपका यह वैराग्य विज्ञान युक्त सनातन एवं विशुद्ध ज्ञान जिस प्रकार सुदृढ हो उसको तथा महापुरुष ब्रह्माजी इत्यादि जिसे ढूँढा करते है उसे मुझे समझाइये ।।८।।

भावार्थ दीपिका

ज्ञानादेर्विशेषं जिज्ञासुः पृच्छति-ज्ञानमिति । विशुद्धमेतज्ज्ञानं विपुलं निश्चितं यथा भवति तथा कथयेति । महद्भिर्ब्रह्मादिभिर्विमृग्यम् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी ज्ञान आदि की विशेष बातें जानने की इच्छा से **ज्ञानम्० इत्यादि** श्लोक से पूछते हैं । यह विशुद्ध ज्ञान जिस प्रकार निश्चित होता है, उसे आप मुझे बतलायें । ब्रह्माजी इत्यादि महापुरुष जिसको ढूँढा करते हैं ।।८।।

तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे संतप्यमानस्य भवाध्वनीश ।
पश्यामि नान्यच्छरणं तवाङ्घ्रिद्वन्द्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ।।९।।

अन्वयः— हे ईश ! घोरे भवाध्वनि तापत्रयेण अभिहतय संतप्यमानस्य अमृताभिवर्षात् द्वन्द्वातपत्रात् अन्यत् शरणं न पश्यामि ।।९।।

अनुवाद— हे स्वामिन् इस अत्यन्त भयङ्कर इस संसार मार्ग में आध्यात्मिक अधिदैविक तथा आधिभौतिक इन तीनों प्रकार के संतापों से संतप्त तथा जो भीतर बाहर जलते भुनते रहने वाले लोगों के लिए आपके अमृतमय दोनों चरणकमल रूपी छत्र-छाया के अतिरिक्त और कोई भी आश्रय मुझे नहीं दिखता है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

महद्विमृग्यत्वमभिनयेनाह-तापत्रयेणेति । तापत्रयेणाभितो हतस्य । अतः संतप्यमानस्य । अङ्घ्रिद्वन्द्वमेवातपत्रं तस्मात्। न केवलमातपात्त्रातुः किंत्वमृतमप्यभितो वर्षति यत्तस्मात् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

भगवद्भक्ति महद्जन विमृग्य है इस बात को **तापत्रयेण इत्यादि** श्लोक से अभिनय के द्वारा कहते है, तीनों संतापों के थपेड़े खाते रहने के कारण संतप्त होते रहने वाले लोगों के लिए । दोनों चरण कमल रूपी छत्र-छाया से। केवल धूप से ही रक्षा करने वाले से नहीं अपितु सर्वतः अमृतवर्षा करने वाले से ।।९।।

दंष्टं जनं संपतितं विलेऽस्मिन्कालाहिना क्षुद्रसुखोरुतर्षम् ।
समुद्धरैनं कृपयापवर्ग्यैर्वचोभिरासिञ्च महानुभाव ।।१०।।

अन्वयः— हे महानुभाव ! अस्मिन् विले संपतितं कालाहिना दष्टं क्षुद्रसुखोरुतर्षं एनं जनं समुद्धर ! कृपया अपवर्ग्यैं वचोभिः आसिञ्च ।।१०।।

अनुवाद— हे महानुभाव ! इस संसार रूप औंधे कुएँ में गिरे हुए तथा काल रूप सर्प ने जिसको डंस लिया है फिर भी जिसे विषयोंपभोग की तृष्णा बढ़ती ही जाती है, ऐसे अपने इस अज्ञानी सेवक का आप उद्धार करें और इससे मुक्त करने वाली वाणी रूपी सुधा की धारा से आप सीञ्च दें ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

अतिकृपामुत्पादयन्नाह-दष्टमिति । अस्मिन्विले संसारकूपे पतितं तत्र च कालाहिना दंष्टम्, एवमपि क्षुद्रसुखेष्वेव उरुस्तर्षस्तृष्णा यस्य तम् । दह्यमानः कथं समुद्धरणीय इति चेत्तत्राह-आपवर्ग्यैरपवर्गवोधकैर्वागमृतैरासिञ्चेति ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

दष्टं जनम्० इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् में अत्यधिक कृपा उत्पन्न करते हुए श्रीउद्धवजी ने कहा कि मैं इस संसार कूप में गिरा हुआ हूँ, उसमें काल रूपी सर्प ने मुझे डंस लिया है फिर भी मेरी क्षुद्रविषय भोगों की तृष्णा बढ़ती ही नाती है । दग्ध होने वाले तुम्हारा कैसे उद्धार किया जाय तो इस पर उद्धवजी कहते हैं, कि संसार से मुक्त करने वाली अपने वाणी रूपी सुधाधार से आप सींच दे ।।१०।।

श्रीभगवानुवाच

इत्थमेतत्पुरा राजा भीष्मं धर्मभृतां वरम् । अजातशत्रुः पप्रच्छ सर्वेषां नोऽनुशृण्वताम् ।।११।।

अन्वयः— पुरा राजा अजातशत्रु इत्थम् एतत् नः सर्वेषाम् अनुशृण्वताम् धर्मभृतां वरम् भीष्मं पप्रच्छ ।।११।।

अनुवाद— आपने जिस प्रश्न को किया है यही प्रश्न राजा युधिष्ठिर ने हम सबों के सामने ही धार्मिक शिरोमणि भीष्म से किया था ।।११।।

भावार्थ दीपिका

तद्विश्वासार्थं विद्वत्सभायां निर्णीतमहं वक्ष्यामीत्याशयेनाह-इत्थमिति ।।११।।

भाव प्रकाशिका

इत्थम्० इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् उद्धवजी के विश्वास के लिए विद्वत्सभा में निर्णीत अर्थ को मैं बतलाऊँगा इसी अभिप्राय से कहे हैं ।।११।।

निवृत्ते भारते युद्धे सुहृन्निधनविह्वलः । श्रुत्वा धर्मान्बहून्पश्चान्मोक्षधर्मानपृच्छत ।।१२।।

अन्वयः— भारते युद्धे निवृत्ते सुहृन्निधन विह्वलः बहून धर्मान् श्रुत्वा पश्चात् मोक्षधर्मान् अपृच्छत् ।।१२।।

अनुवाद— महाभारत के युद्ध के समाप्त हो जाने के पश्चात् धर्मराज युधिष्ठिर अपने स्वजन संबन्धियों के संहार से शोक संतप्त हो रहे थे । उस समय वे श्रीभीष्म पितामह से बहुत से धर्मों के सुनने के पश्चात्मोक्षधर्मों के विषय में प्रश्न किए ।।१२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१२।।

तानाहं तेऽभिधास्यामि देवव्रतमुखाच्छ्रुतान् । ज्ञानवैराग्यविज्ञानश्रद्धाभक्त्युपबृंहितान् ।।१३।।

अन्वयः— अहं ते ज्ञानवैराग्य विज्ञान श्रद्धा भक्त्युपबृंहितान्, देवव्रतमुखात् श्रुतान् तान् अभिधास्यामि ।।१३।।

अनुवाद— मैं तुमको ज्ञान, वैराग्य, विज्ञान श्रद्धा एवं भक्ति की भावों से परिपूर्ण उस समय भीष्म पितामह के मुख से सुने हुए मोक्षधर्म को सुनाता हूँ ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ज्ञानादिभिरुपबृंहितान् । तत्सहितानित्यर्थः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

ज्ञानादि से परिपूर्ण उनके साथ ।।१३।।

नवैकादश पञ्च त्रीन्भावान्भूतेषु येन वै । ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम् ।।१४।।

अन्वयः— नवैकादशपञ्चत्रीन् भावान् येन वै अथैकमपि एषु भूतेषु ईक्षेत तज्ज्ञानम् मम निश्चितम् ।।१४।।

अनुवाद— जिस ज्ञान से, प्रकृति, पुरुष, महान् अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा ये नव पाञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ और मन ये ग्यारह, पञ्च महाभूत, तीन गुण इन आठ तत्त्वों को ब्रह्माजी से लेकर तृण पर्यन्त सभी कार्यों में देखा जाता है और इनमें एक परमात्म तत्त्व को अनुगत देखा जाता है वह परोक्ष ज्ञान है, इस प्रकार का मेरा निश्चय है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

तत्र ज्ञानं कथयति-नवेति । प्रकृतिपुरुषमहदहंकारपञ्चतन्मात्राण्येकादशेन्द्रियाणि पञ्चमहाभूतानि त्रयो गुणाः एतान्भावानष्टाविंशतितत्त्वानि भूतेषु ब्रह्मादिस्थावरान्तेषु कार्येष्वनुगतानि येन ज्ञानेनेक्षेत । अथ एष्वपि भावेष्वेकं परमात्मतत्त्वमनुगतं येनेक्षेत । कार्यकारणात्मकं जगत्पश्यन् परमकारणात्मकमेवैतन्न तु ततः पृथगिति येन पश्येत्तज्ज्ञानमित्यर्थः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् सर्वप्रथम ज्ञान का वर्णन करते हैं । प्रकृति पुरुष महान्, अहङ्कार, तथा पञ्च तन्मात्राए ग्यारह इन्द्रियाँ पञ्च महाभूत तीन सत्त्वादिगुण ये अठाइस भावात्मक तत्त्व हैं, ये सबके सब ब्रह्माजी से लेकर एक तृण पर्यन्त जिस ज्ञान के द्वारा अनुगत प्रतीत होते हैं । अतएव इन सबों में एक परमात्म तत्त्व को जिसके द्वारा देखा जा सकता है । कार्य कारणमय इस सम्पूर्ण जगत् को देखते हुए ये सबके सब परम कारण परमात्मात्मक ही है उससे पृथक नहीं है, जिस ज्ञान के द्वारा जाना जाता है, वही ज्ञान है ।।१४।।

एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत् । स्थित्युत्पत्यप्ययान्पश्येद्भावानां त्रिगुणात्मनाम् ।।१५।।

अन्वयः— यत् येन एकेन त्रिगुणात्मकानां भावानां तथा न पश्येत् स्थित्युत्पत्यप्यवान् पश्येत् एतदेवहि विज्ञानम्।।१५।।

अनुवाद— जब जिस एक तत्त्व से अनुगत एकात्मक तत्त्वों को पहले देखता था उसको पहले के समान देखे किन्तु एक परम कारण ब्रह्म को ही देखे तब यह निश्चित विज्ञान (अपरोक्ष) ज्ञान कहा जाता है । इस ज्ञान और विज्ञान की प्राप्ति की युक्ति है कि ये शरीर आदि जितने भी त्रिगुणात्मक सावयव पदार्थ हैं उनकी स्थिति उत्पत्ति और प्रलय का विचार करे ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

विज्ञानमाह-एतदेवेति श्लोकार्धेन । यद्यदा येनैकेनानुगतानेकात्मकान् भावान् पूर्वमैक्षत तांस्ताथा पूर्ववन्नेक्षेत । किंतु तदेकं परमकारणं ब्रह्मैव । तदा एतदेव विज्ञानमुच्यते । एतदुक्तं भवति-परोक्षनेनापरोक्षभ्रमस्य दिङ्मोहादिष्विव निवृत्त्यभावात्तदात्मकं जगत्पश्यन्नप्यात्मनः पृथक् सदिति मन्यते, अपरोक्षज्ञाने तु बाधितमेव दग्धपटवजीवन्मुक्तः संस्कारशेषं पश्यति, ततः परं न पश्यति चातः परोक्षापरोक्षज्ञाने ज्ञानविज्ञानशब्दाभ्यामुच्येते इति । एकेन सर्वकार्याणामनुगतिं कार्याणां कारणात् पृथगसत्त्वं चोपपादयति सार्धेन । तत्र यदि न कदाचिदनीदृशं जगदित्यादिमतेनैतेषां भावानामुत्पत्त्यादयो न स्युस्तर्हि कारणस्यैकस्याभावादेकात्मकता मिथ्यात्वं च न स्यादतस्तेषामुत्पत्त्यादीन्साधयति-स्थितीति । त्रिगुणात्मनां सावयवानामित्यर्थः। विमता भावा उत्पत्त्यादिमन्तः, सावयवत्वात्, घटादिवदिति पश्येत् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

एतदेव० इत्यादि आधे श्लोक से विज्ञान का निरूपण श्रीभगवान् किए हैं । जब एक ही परम कारण के द्वारा अनुगत एकात्मक भाव पदार्थों को जो देखते थे उन भाव पदार्थों के उस तरह नहीं देखो बल्कि उस एकमात्र परंकारण ब्रह्म को ही देखो । तो इसको ही निश्चित विज्ञान (अपरोक्षज्ञान) कहा जाता है । कहने का अभिप्राय है कि परोक्ष ज्ञान के द्वारा अपरोक्ष भ्रम का दिग्भ्रम इत्यादि के समान निवृत्ति नहीं होने के कारण तदात्मक जगत् को देखने वाला भी आत्मा से अलग सप्त पदार्थ मानता है । अपरोक्ष ज्ञान में तो बाधित प्रपञ्च को ही दग्ध पट के समान जीवन्मुक्त संस्कार शेष को देखता है । उससे अधिक नहीं देखता है । अतएव परोक्ष ज्ञान एवं अपरोक्ष ज्ञान और विज्ञान इन दो शब्दों से कहे जाते हैं एक ज्ञान के द्वारा सभी कार्यो की अनुगति कार्यो की कारण से पृथक् सत्ता का अभाव, डेढ़ श्लोक के द्वारा प्रतिपादित करते हैं । यदि जगत् कभी भी इस प्रकार का नहीं था इत्यादि के मत से तो फिर इन सभी भावपदार्थों की उत्पत्ति इत्यादि नहीं होती । ऐसी स्थिति में एक कारण का अभाव होने से सभी भाव पदार्थों की एकात्मता तथा मिथ्यात्व भी नहीं होता । अतएव श्रीभगवान् उन सबों की उत्पत्ति आदि की सिद्धि स्थित्युत्पत्ति इत्यादि श्लोक के उत्तरार्ध से करते हैं । त्रिगुणात्मक अर्थात् सावयव । यहाँ पर इसप्रकार का अनुमान अभिप्रेत है । विवादास्पद तत्त्व उत्पत्ति आदि से युक्त हैं, क्योंकि वे सावयव हैं, क्योंकि वे सावयव हैं, घटादि के समान, इस तरह से जाने ।।१५।।

आदावन्ते च मध्ये च सृज्यात्सृज्यं यदन्वियात् । पुनस्तत्प्रतिसंक्रामे यच्छिष्येत तदेव सत् ।।१६।।

अन्वयः— आदौ अन्ते च यदन्वियात् तदेव मध्ये च, सृज्यात् सृज्यं च पुनः तत् प्रतिसंक्रमे यत् शिष्येत् तदेव सत्।।१६।।

अनुवाद— जो तत्त्व वस्तु सृष्टि के प्रारम्भ में और अन्त में रहती है वही मध्य में भी रहती है । वही प्रतीयमान कार्य से प्रतीयमान कार्यान्तर में भी अनुगत होती है । उन कार्यों का प्रलय अथवा बाध होने पर उसके साक्षी और अधिष्ठान रूप से रह भी जाती है । वही वस्तु सत्य एवं परमार्थ है, ऐसा समझना चाहिए ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

तत आदावुत्पत्तौ अन्ते परिणामान्तरापत्तौ च कारणत्वेन मध्ये चाश्रयत्वेन सृज्यात्सृज्यं कार्यात्कार्यान्तरं प्रति यदन्वियादनुगच्छेत्प्रतिसंक्रमे तेषां प्रलये च यदवशिष्यते तदेव सदिति पश्येदित्यर्थः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

जो वस्तु तत्त्व उत्पत्ति काल में तथा दूसरे परिणामों के होने पर कारणरूप से तथा बीच में आश्रय रूप से एक कार्य से दूसरे कार्य के प्रति जो अनुगत होता है वही उन सबों के प्रलय काल में अवशिष्ट रह जाता है, वही सत्य है, इस तरह से जानना चाहिए ।।१६।।

श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानं चतुष्टयम् । प्रमाणेष्वनवस्थानाद्विकल्पात्स विरज्यते ॥१७॥

अन्वयः— श्रुतिः प्रत्यक्षम् ऐतिह्यं अनुमानं चतुष्टयम् प्रमाणेषु अनवस्थानात् विकल्पात् स विरज्यते ॥१७॥

अनुवाद— श्रुतिः, प्रत्यक्ष, ऐतिह्य और अनुमान ये चार प्रमाण मुख्य है, इन प्रमाणों द्वारा परीक्षा करने पर यह दृश्य प्रपञ्च, नश्वर, अस्थिर एवं विकारयुक्त सिद्ध होने के कारण सत्य नहीं सिद्ध होता है अतएव विवेकी पुरुष विविध कल्पना रूप प्रपञ्च से विरक्त हो जाता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

वैराग्यमाह-श्रुतिरिति द्वाभ्याम् । श्रुतिः-'नेह नानास्ति किंञ्चन' इत्यादिः प्रत्यक्षम्-पटादिकार्यं तन्त्वादिव्यतिरेकेण न दृश्यते। ऐतिह्यम्- महाजनप्रसिद्धिः। अनुमानम्-विमतं मिथ्या, दृश्यत्वात्, शुक्तिरजतादिवदित्यादि। एवं प्रमाणचतुष्टयम्। एतेष्वनवस्थानादेतैर्बाधितत्वात् । स एवं सर्वानुगतं सत्यमात्मतत्त्वं पश्यन्विकल्पस्य च मिथ्यात्वात्ततो विरज्यते विरक्तो भवतीत्यर्थः।।१७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् विवेकी पुरुष को होने वाले वैराग्य श्रुति इत्यादि दो श्लोकों से बतलाते हैं । श्रुति कहती है इस जगत् में नाना (भेदवान) कुछ भी सत्य नहीं है । अतएव यह भेदात्मक प्रपञ्च सत्य नहीं है । प्रत्यक्ष प्रमाण के अनुसार भी जगत् मिथ्या है, क्योंकि जितने भी कार्य होते हैं वे अपने कारण भूततन्तु से अतिरिक्त नहीं है । प्रपञ्च भी अपने कारण परब्रह्म से अलग नहीं है । महापुरुषों में प्रसिद्धि को ऐतिह्य कहते । तत्त्वज्ञानी पुरुष इस दृश्य प्रपञ्च को मिथ्या बतलाते हैं । प्रपञ्च के विषय में यहाँ अभिप्रेत अनुमान है कि विवादास्पद प्रपञ्च मिथ्या है, क्योंकि यह दृश्य है, शुक्ति में प्रतीत होने वाले रजत के समान । इस तरह चारो प्रमाणों की कसौटी पर दृश्य प्रपञ्च मिथ्या सिद्ध होता है । इन सभी प्रमाणों से बाधित होने के कारण प्रपञ्च मिथ्या है । इस प्रकार वह विवेकी पुरुष सबों में अनुस्यूत रहने वाले विविध कल्पना रूप जगत् से विरक्त हो जाते है ॥१७॥

कर्मणां परिणामित्वादाविरिञ्चादमङ्गलम् । विपश्चिन्नश्वरं पश्येददृष्टमपि दृष्टवत् ॥१८॥

अन्वयः— विपश्चित्, कर्मणां परिणामित्वात् आविरिञ्चात् अदृष्टम् अपि दृष्टवत् अमङ्गलं नश्वरं पश्येत् ॥१८॥

अनुवाद— विवेकी पुरुष को चाहिए कि वह स्वर्गादि फल प्रदान करने वाले यज्ञादि कर्मों के नश्वर होने के कारण ब्रह्मलोक पर्यन्त स्वर्गादि सुख, अदृष्ट को भी प्रत्यक्ष विषय सुख के समान ही अमङ्गल, दुःखदायी एवं नश्वर समझे॥१८॥

भावार्थ दीपिका

ननु वेदोक्तस्वर्गादिसुखाशया न विरज्येतेत्याह-कर्मणामिति । आविरिञ्चाद्ब्रह्मलोकपर्यनतमदृष्टमपि सुखममङ्गलं दुःखरूपं नश्वरं च पश्येत् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे स्वर्गादि सुख की आशा से विवेकी पुरुष संसार से विरक्त नहीं हो सकता है तो इसके उत्तर में श्रीभगवान् **कर्मणां परिणामित्वात्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं ब्रह्मलोक पर्यन्त अदृष्ट स्वर्गादि सुख को भी अमङ्गलमय दुःख रूप तथा नश्वर समझना चाहिए ॥१८॥

भक्तियोगः पुरैवोक्तः प्रीयमाणाय तेऽनघ । पुनश्च कथयिष्यामि मद्भक्तेः कारणं परम् ॥१९॥

अन्वयः— हे अनघ भक्तियोग; पुरैव उक्तः पुनः प्रियमाणाय मद्भक्तेः परं कारणम् कथयिस्यामि ॥१९॥

अनुवाद— भक्तियोग का वर्णन तुमको मैं पहले ही सुना चूका हूँ किन्तु उसमें तुम्हारी बहुत भक्ति है अतएव मैं तुमको अपनी भक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन बतलाता हूँ ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

भक्तियोगं सकारणमाह-भक्तियोगः पूर्वमुक्त एव तथापि तस्मिन्प्रीतिं प्राप्नुवते तुभ्यं पुनश्च कथयिष्यामि ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में कारण निर्देश पूर्वक भक्ति का निरूपण करते है। यद्यपि भक्तियोग का वर्णन मैं तुमको पहले ही सुना चूका हूँ, अतएव उसमें तुम्हारी अधिक प्रीति होने से तुम्हें मैं पुनः सुनाऊँगा ।।१९।।

श्रद्धाऽमृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् । परिनिष्ठा च पूजायां स्तुतिभिः स्तवनं मम ।।२०।।

अन्वयः— मे अमृत कथायां श्रद्धा, शश्वत् मदनुकीर्तनम्, पूजायां च परिनिष्ठा, स्तुतिभिः मम स्तवनम् ।।२०।।

अनुवाद— मेरी भक्ति प्राप्त करना चाहने वाले को चाहिए कि वह मेरी अमृतमयी कथा में श्रद्धा रखे, मेरे नामों, गुणों और लीलाओं का कीर्तन करे, मेरी पूजा में उसकी निष्ठा होनी चाहिए और उसे चाहिए कि वह स्तुतियों द्वारा मेरी स्तुति करे ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

श्रद्धा श्रवणादरः । शश्वदिति सर्वत्रानुषज्जते । मदनुकीर्तनं श्रवणानन्तरं मत्कथाव्याख्यानमित्यर्थः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

श्रद्धा अर्थात् सुनने में आदर, शाश्वत का सर्वत्र सम्बन्ध होना चाहिए। निरन्तर मेरे नामों, गुणों और लीलाओं का कीर्तन मेरी कथा सुनने के पश्चात मेरी कथाओं की व्याख्या करना ।।२०।।

आदरः परिचर्यायां सर्वाङ्गैरभिवन्दनम् । मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ।।२१।।

अन्वयः— परिचर्यायां आदरः, सर्वाङ्गैः अभिवन्दनम् मद्भक्तपूजाऽभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः ।।२१।।

अनुवाद— मेरी सेवा-पूजा में प्रेम रखे, मुझको साष्टाङ्ग प्रणाम करना, मेरे भक्तों की पूजा मेरी पूजा से बढ़कर करे, तथा समस्त प्राणियों में मुझको ही देखे ।।२१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२१।।

मदर्थेष्वङ्गचेष्टा च वचसा मद्गुणेरणम् । मय्यर्पणं च मनसः सर्वकामविवर्जनम् ।।२२।।

अन्वयः— च मदर्थेष्वङ्गचेष्टा, वचसा मद्गुणेरणम्, मनसः च मयि अर्पणम् सर्वकाम विवर्जनम् ।।२२।।

अनुवाद— मेरे भक्त को चाहिए कि उसके प्रत्येक अङ्ग की चेष्टा मेरे लिए ही हो, वह आनी वाणी से मेरे गुणों का कीर्तन करे, वह अपने मन को मुझमें ही लगाये तथा उसे अपनी सारी कामनाओं, का परित्याग कर देना चाहिए ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

अङ्गचेष्टा लौकिकी क्रिया। वचसा लौकिकेनापि मद्गुणानामीरणं कथनम् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

अङ्ग की चेष्टाएँ अर्थात् लौकिक क्रियाएँ वाणी के द्वारा लौकिक पुरुषों को भी मेरे गुणों को सुनाना ।।२२।।

मदर्थेऽर्थपरित्यागो भोगस्य च सुखस्य च । इष्टं दत्तं हुतं जप्तं मदर्थं यद्व्रतं तपः ।।२३।।

अन्वयः— मदर्थे अर्थपरित्यागः भोगस्य च सुखस्य च, इष्टं दत्तं, हुतं, जप्तं यदव्रतं तपः मदर्थे ।।२३।।

अनुवाद— मेरे भक्त को चाहिए कि वह मेरे लिए धन, भोग तथा सुख का परित्याग कर दे, वह जो कुछ भी यज्ञ, दान, होम, जप, व्रत और तप करे सबकुछ मेरे लिए ही करे ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

मदर्थे मद्भजनार्थम् । तद्विरोधिनोऽर्थस्य परित्यागः । भोगस्य तत्साधनस्य चन्दनादेः । सुखस्य पुत्रोपलालनादेः । इष्टादि वैदिकं यत्कर्म तदपि मदर्थं कृतं भक्तेः कारणमित्यर्थः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

मदर्थे अर्थात् मेरे भजन के लिए उसके विरोधी विषयों का परित्याग, भोग एवं भोग के साधन चन्दन आदि का पुत्र का लालन-पालन जन्य सुख का यज्ञ आदि वह भी मेरी भक्ति के लिए त्याग दे ।।२३।।

एवं धर्मैर्मनुष्याणामुद्धवात्मनिवेदिनाम् । मयि संजायते भक्तिः कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते ।।२४।।

अन्वयः— उद्धव एवं धर्मैः मनुष्याणाम् आत्म निवेदिनाम् मयि संजायते भक्तिः अस्य कः अन्यः अर्थ; अवशिष्यते।।२४।।

अनुवाद— उद्धव जो मनुष्य इन धर्मों का पालन करता है और मुझको आत्मनिवेदन कर देता हैं, उसके हृदय में मेरी प्रेममयी भक्ति उदित होती है । जिसको मेरी भक्ति प्राप्त हो जाती है उसके लिए किसी भी दूसरी वस्तु का प्राप्त होना शेष नहीं रह जाता है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

भक्तिः प्रेमलक्षणा संजायते । अस्य भक्तस्यान्यः कोऽर्थः साधनरूपः साध्यरूपो वाऽवशिष्यते । सर्वोऽपि स्वत एव भवतीत्यर्थः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

जिसको मेरी प्रेमलक्षणा भक्ति प्राप्त हो जाती है, उस भक्त के लिए कोई भी साधन रूप अथवासाध्यरूप वस्तु प्राप्त होने के लिए कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह जाता है । उसके लिए तो सबकुछ स्वतः होता रहता है ।।२४।।

यदात्मन्यर्पितं चित्तं शान्तं सत्त्वोपबृंहितम् । धर्मं ज्ञानं सवैराग्यमैश्वर्यं चाभिपद्यते ।।२५।।

अन्वयः— यदात्मन्यर्पितं चित्तं शान्त सत्त्वोपबृंहितम्, धर्मं ज्ञानं सवैराग्यम् ऐश्वर्यं च अभिपद्यते ।।२५।।

अनुवाद— इस प्रकार के धर्मों का पालन करने से चित्त में जब सत्त्वगुण की वृद्धि होती है और वह शान्त होकर आत्मा में लग जाता है । उस समय साधक को धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य अपने आप प्राप्त हो जाते हैं।।२५।।

भावार्थ दीपिका

किं बहुना, चित्तमेवान्तर्बहिर्निष्ठमर्थानर्थयोः कारणमित्याह-यदात्मनीति द्वाभ्याम् । यदा आत्मनि मयि ईश्वरे चित्तमर्पितं तदा पुमान् धर्मादीन्प्राप्नोत्येव ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

बहुत क्या कहना है, चित्त ही बाह्य एवं आभ्यन्तर अर्थों एवं अनर्थों का कारण है । इस बात को श्रीभगवान् **यदात्मनि० इत्यादि** दो श्लोकों द्वारा कहे हैं । जब मुझ ईश्वर में भक्त का चित्त लग जाता है वह पुरुष धर्म आदि को स्वयं प्राप्त कर लेता है ।।२५।।

यदर्पितं तद्विकल्पे इन्द्रियैः परिधावति । रजस्वलं चासन्निष्ठं चित्तं विद्धि विपर्ययम् ।।२६।।

अन्वयः— यत तद् विकल्पे अर्पितं इन्द्रियैः परिधावति रजस्वलं असत्निष्ठं च चित्तम् विपर्ययम् विद्धि ।।२६।।

अनुवाद— यह जगत् अनेक प्रकार की कल्पनाओं से परिपूर्ण है इसका नाम तो है किन्तु यह कोई वस्तु नहीं है । जब चित्त इस संसार में लगा दिया जाता है तो यह इन्द्रियों के साथ इधर-उधर भटकने लगता है । इस तरह यह चित्त रजोगुण से परिपूर्ण हो जाता है । वह असत् वस्तु में लग जाता है । इस तरह उसके धर्म ज्ञान आदि तो लुप्त हो जाते हैं वह अधर्म अज्ञान और मोह का भी घर बन जाता है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

एतदेव व्यतिरेकेण द्रढयति-यद्यदा तच्चित्तं विकल्पे देहगृहादावर्पितं सत् विषयेषु परिधावति तदाधिकं रजस्वलमसन्निष्ठं च भवति । ततश्च विषर्ययमधर्मादिकं विद्धि ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

उसके विपरीत के द्वारा उपर्युक्त अर्थों को ही सुदृढ बनाते है । जब चित्त देह गेह आदि में लगा दिया जाता है तो विषयों की ओर दौड़ने लगता है । वह रजोगुण से परिपूर्ण होकर असत्‌निष्ठ हो जाता है । उसके कारण अधर्म इत्यादि होते है ।।२६।।

धर्मो मद्भक्तिकृत्प्रोक्तो ज्ञानं चैकात्म्यदर्शनम् । गुणेष्वसङ्गो वैराग्यमैश्वर्यं चाणिमादयः ।।२७।।

अन्वयः— मद्भक्तिकृत् धर्मः प्रोक्तः, ऐकात्म्यदर्शनम् ज्ञानम् गुणेषु असङ्गः वैराग्यम् अणिमादयः ऐश्वर्यम् ।।२७।।

अनुवाद— धर्म वही है जिससे मेरी भक्ति हो, ब्रह्म आत्मा की एकता का साक्षात्कार ही ज्ञान कहलाता है, सत्त्वादि गुणों में आसक्ति का नहीं होना ही वैराग्य है और अणिमा आदि सिद्धियाँ ही ऐश्वर्य हैं ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

स्वाभिप्रेतान्धर्मादीन्व्याचष्टे-धर्मो मद्भक्तिकृत् । यतः स एव प्रोक्तः प्रकृष्ट उक्तः शास्त्रेषु ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

अपने अभिप्रेत धर्म आदि को श्रीभगवान् बतलाते हैं जिससे मेरी भक्ति हो उसे ही धर्म कहते हैं क्योंकि उसी को शास्त्रों सर्वोत्कृष्ट धर्म कहा गया है ।।२७।।

उद्धव उवाच

यमः कतिविधः प्रोक्तो नियमो वारिकर्शन । कः शमः को दमः कृष्ण का तितिक्षा धृतिः प्रभो।।२८।।

अन्वयः— हे अरिकर्शन, यमः कतिविधः ? नियमो वा कतिविधः ? शम कः ? दमः कः ? हे कृष्ण तितीक्षा का? हे प्रभो धृतिः का ? ।।२८।।

श्रीउद्धवजी ने कहा

अनुवाद— हे रिपूसूदन भगवान् श्रीकृष्ण ! यम कितने प्रकार के होते हैं ? तथा नियम कितने प्रकार के होते हैं? शम किसे कहते हैं ? दम किसे कहते हैं, तितिक्षा का स्वरूप क्या है ? तथा धृति का स्वरूप क्या है ?।।२८।।

भावार्थ दीपिका

धर्मादीनां महाजनप्रसिद्धानामन्यथा व्याख्याततत्वाद्यमादिष्वपि संख्यातः स्वरूपतो वा किंचिद्वैलक्षण्यं स्यादित्येवं संभावनया तद्विशेषं जिज्ञासुः पृच्छति-यम इति पञ्चभिः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

धर्म आदि जो महापुरुषों में प्रख्यात है उन सबों की दूसरी प्रकार से व्याख्या किए जाने के कारण यमादिकों के भी स्वरूप तथा संख्या आदि के विषय में कुछ वैलक्षण्य सम्भव हो सकता है, इसी संभावना से यमादि के विषय में विषय बातें जानने के लिए **यमः इत्यादि पाञ्चश्लोकों** से उद्धवजी पूछते हैं ।।२८।।

किं दानं किं तपः शौर्यं किं सत्यमृतमुच्यते । कस्त्यागः किं धन चेष्टं को यज्ञः का च दक्षिणा।।२९।।

अन्वयः— दानं किं तपः किं, किं सत्यम्, किम् ऋतम् उच्यते कः त्यागः, इष्टं धनं कि, को यज्ञः का च दक्षिणा।।२९।।

अनुवाद— आप मुझे दान, तपस्या, शूरता, सत्य तथा ऋत को भी स्वयप समझाएँ । त्याग क्या है ? अभीष्ट धन कौन सा है ? यज्ञ किसे कहते हैं और दक्षिणा पदार्थ क्या है ? ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

इष्टमभ्यर्हितं धनं च किम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

पूजनीय धन क्या है ?।।२९।।

पुंसः किंस्विद्बलं श्रीमन् भगो लाभश्च केशव । का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखमेव च ।।३०।।

अन्वयः— श्रीमन् पुंसः बलम् किं स्वित् ? भगो लाभः च हे केशव का विद्या ह्रीः परा का श्रीः किं सुखं दुःखमेव च किम् ? ।।३०।।

अनुवाद— हे श्रीमन् केशव पुरुष का सच्चा बल क्या है ? भग किसे कहते है ? लाभ पदार्थ क्या है? उत्तम विद्या, लज्जा श्री तथा सुख और दुःख क्या हैं ? ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

परेति विद्यादीनां विशेषणम् । श्रीर्मण्डनम् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

पराविद्या इत्यादि का विशेषण है । श्रीः अलङ्करण को कहते हैं ।।३०।।

कः पण्डितः कश्च मूर्खः कः पन्था उत्पथश्च कः ।
कः स्वर्गो नरकः कः स्वित्को बन्धुरुत किं गृहम् ।।३१।।

अन्वयः— पण्डितः कः ? मूर्खः कः ? कः पन्थाः ? उत्पथः च कः ? स्वर्ग कः ? नरकः कः ? कः स्वित बन्धुः? उत गृहम् किम् ? ।।३१।।

अनुवाद— पण्डित कौन है ? मूर्ख कौन है ? मार्ग कौन है ? उन्मार्ग कौन है ? स्वर्ग कौन है ? नरक कौन है ? अपने विशिष्ट बन्धु कौन है ? अथवा गृह किसे कहते हैं ?।।३१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३१।।

क आढ्यः को दरिद्रो वा कृपणः कः क ईश्वरः । एतान्प्रश्नान्मम ब्रूहि विपरीतांश्च सत्पते ।।३२।।

अन्वयः— कः आढ्यः ? को दरिद्रः ? कृपणः कः ? ईश्वरः कः ? हे सत्पते ? ! एतान् प्रश्नान् विपरीतां च ब्रूहि ।।३२।।

अनुवाद— धनवान् किसे कहते हैं निर्धन किसे कहते हैं ? कृपण कौन है ? और ईश्वर किसे कहते हैं? हे सत्पुरुषों को स्वामिन् ! आप हमारे इन प्रश्नों का उत्तर दें और साथ ही विरोधी भावों की भी व्याख्या करें ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

प्रश्नान्पृष्टानर्थान् विरनीतान्शमादीन् ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न में पूछे गये अर्थों के विपरीत शम आदि को ।।३२।।

श्रीभगवानुवाच

अहिंसा सत्यमस्तेयमसङ्गो ह्रीरसंचयः । आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाऽभयम् ।।३३।।

अन्वयः— अहिंसा, सत्यम्, अस्तेयम् असङ्गः ह्रीः असंचयः अस्तिक्यं, ब्रह्मचर्यं च मौनम् स्थैर्यम्, क्षमा भयम्।।३३।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— अहिंसा, सत्य बोलना, चोरी न करना, अनासक्ति, लज्जा, संचय का अभाव, आस्तिकता, ब्रह्मचर्य का पालन, मौन, स्थिरता, क्षमा और भय ये यम बारह हैं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

यमनियमानाह-अहिंसेति त्रिभिः । अस्तेयं मनसापि परस्वाग्रहणम् । आस्तिक्यं धर्मे विश्वासः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

अहिंसा इत्यादि तीन श्लोकों से यमों और नियमों को बतलाते हैं, अस्तेयम् मन से भी दूसरे की सम्पत्ति का ग्रहण न करना । आस्तिक्यम् अर्थात् धर्म में विश्वास ।।३३।।

शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धातिथ्यं मदर्चनम् । तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम् ।।३४।।

अन्वयः— शौचम् जपः, तपः, होमः, श्रद्धातिथ्यम् मदर्चनम् तीर्थाटनम् परार्थेहा, तुष्टिः आचार्य सेवनम् ।।३४।।

अनुवाद— नियमों की भी संख्या बारह है शौच अर्थात् बाहय एवं आभ्यन्तर पवित्रता, जप, तप, होम, श्रद्धा, अतिथिसेवा, मेरी पूजा, तीर्थयात्रा, परोपकार की चेष्टा, सन्तोष और गुरुसेवा ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

शौचं बाह्यमाभ्यन्तरं चेति द्वयम् । अतो द्वादश नियमाः । श्रद्धा धर्मादरः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

शुद्धि दो प्रकार की होती है बाह्य एवं आभ्यन्तर अतएव बारह नियम हैं । धर्म के समादर को श्रद्धा कहते हैं ।।३४।।

एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः । पुंसामुपासितास्तात यथाकामं दुहन्ति हि ।।३५।।

अन्वयः— हे तात ! एते सनियमाः यमाः उभयोः द्वादश स्मृताः उपासिता; पुंसम् यथा कामं हि दुहन्ति ।।३५।।

अनुवाद— हे तात ! ये यम और नियम बारह-बारह होते है । ये सकाम और निष्काम दोनों प्रकार के साधकों के लिए उपयोगी हैं जो पुरुष इनका पालन करते हैं ये यम और नियम उनकी इच्छा के अनुसार उन्हें भोग और मोक्ष दोनों प्रदान करते हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

उभयोः श्लोकयोर्ये स्मृतास्ते यमा नियमाश्च । यद्वा, उभयोः प्रवृत्तनिवृत्तयोः । मुमुक्षोर्यमा मुख्याः सकामस्य नियमा मुख्याः स्मृता इत्यर्थः । अत्र हेतुमाह-हि यस्मादुपासिताः सेविताः सन्तः पुंसां प्रवृत्तानां निवृत्तानां च यथाकामं कामानुसारेण मोक्षमभ्युदयं च दुहन्तीति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

दोनों श्लोकों में जो यम और नियम बतलाये गये हैं । अथवा उभयो: अर्थात् प्रवृत्त और निवृत दोनों के। मुमुक्षओं के लिए यम प्रधान हैं और सकाम पुरुष के लिए नियम प्रधान बतलाये गये हैं । इसका कारण बतलाते हैं चूकि इनका पालन करने वाले पुरुषों के पालन किए गये यम और नियम प्रवृत्त एवं निवृत्त दोनों प्रकार के पुरुषों की इच्छा के अनुसार भोग तथा मोक्ष प्रदान करते हैं ।।३५।।

शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्दम इन्द्रियसंयमः । तितिक्षा दुःखसंमर्षो जिह्वोपस्थजयो धृतिः ।।३६।।

अन्वयः— बुद्धेः मन्निष्ठता शमः, इन्द्रिय संयम; दमः, दुःख संमर्ष; तितिक्षा जिह्वोपस्थजयः धृतिः ।।३६।।

अनुवाद— बुद्धि का मुझमें लग जाना शम है, इन्द्रियों को अपने वश में रखने को दम कहते हैं, न्यायत: प्राप्त दु:ख को सहना ही तितिक्षा है तथा जिह्वा और उपस्थेन्द्रिय को अपने वश में रखने को धृति (स्थैर्य) कहते हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

मुमुक्षोरुपादेयान् शमादीन्हेयाश्च दुःखादीन्महाजनप्रसिद्धेभ्यो विलक्षणानाह-शम इत्यादिना यावत्समाप्ति । एतेनैव तद्विपरीता अशमादयोऽप्युन्नेयाः । शमो मन्निष्ठता लुद्धे, न तु शान्तिमात्रम् । दम इन्द्रियसंयमः, न चौरादिदमनम् । तितिक्षा विहित्दःखस्य संमर्षः सहनं, न भारादेः । ज़िह्वोपस्थयोर्जयो वेगधारणं धृतिः, न त्वनुद्वेगमात्रम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

मुमुक्षु के लिए उपादेय शमादिकों को और परित्याज्य दु:ख आदि को महापुरुषों में प्रसिद्धि से विलक्षण प्रकार से ही शम से लेकर अध्याय की समाप्ति पर्यन्त श्रीभगवान् बतलाये हैं इसी के द्वारा इनके विपरीत होने वाले अशम आदि को भी जान लेना चाहिए । मुझमें बुद्धि के लग जाने को शम कहते हैं । केवल शान्ति मात्र को नहीं । इन्द्रियों के दमन को दम कहते हैं, न कि चोंरो आदि के दमन को दम कहते हैं । विहित दु:ख को बर्दास्त करने को तितिक्षा कहते हैं भार आदि के सहने को नही । जिह्वा और जननेन्द्रिय के वेग को धारण करने को धृति कहते है, उद्वेग राहित्य मात्र को नहीं ।।३६।।

दण्डन्यासः परं दानं कामत्यागस्तपः स्मृतम् । स्वभावविजयः शौर्यं सत्यं च समदर्शनम् ।।३७।।

अन्वयः— दण्डन्यासः, परं दानम्, कामत्यागः तपः स्मृतः स्वभाव विजय; शौयम्, समदर्शनम् सत्यम् ।।३७।।

अनुवाद— किसी से दोहन करना, दण्डन्यास कहलाता है, अभय प्रदान करने को दान कहते हैं । अपने स्वभाव पर विजय प्राप्त करने को शौर्य कहते है समदर्शिता को ही सत्य कहते हैं ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

दण्डो भूतद्रोहस्तस्य त्यागो दानं, न धनार्पणम् । कामत्यागो भोगोपेक्षा तपः, न कृच्छ्रादिः स्वभावो वासना तस्य विजयः प्रतिबन्धः शौर्य, न विक्रान्तिः । समं ब्रह्म तस्य दर्शनमालोचनं सत्यविषयत्वात्सत्यं, न यथार्थभाषणमात्रम् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

दण्डन्यास: का अर्थ है प्राणियों से द्रोह नहीं करना, उसके त्यागना सबसे बड़ा दान है, धन प्रदान करने को दान नहीं कहते है । कामत्याग: अर्थात् भोग की उपेक्षा कर देना ही तप है, चान्द्रायणादि कृच्छ्रव्रत नहीं । स्वभाव बासना को कहते हैं उस पर विजय प्राप्त करना ही शौर्य है पराक्रम प्रदर्शन नहीं ब्रह्म ही सम है, उनका विचार ही सत्य है, क्योंकि वह सत्य विषयक है । यर्थार्थ भाषण सत्य नहीं है ।।३७।।

ऋतं च सूनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता । कर्मस्वसंगमः शौचं त्यागः संन्यास उच्यते ।।३८।।

अन्वयः— ऋतम् सुनृता वाणी कविभिः परिकीर्तिता, कर्मसु असंगमः शौचम्, कामत्यागः संन्यासः ।।३८।।

अनुवाद— सत्य एवं प्रिय वाणी को महात्माओं ने ऋत कहा है, कर्मों में आसक्ति का नहीं होना ही शौच है। कामनाओं के त्याग को संन्यास कहा गया है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

अन्यच्च, ऋतं सूनृता सत्या प्रिया च वाक् । एवं च ऋतसत्ययोः स्फुट एव विवेकः । क्रमप्राप्तं त्यागं व्याख्यातुमादौ ततोऽर्थभेदेन शौचं व्याचष्टे-तस्यापि मलत्यागरूपत्वे त्यागाभेदप्रतीतेः । कर्मस्वसङ्गमोऽनासक्तिः शौचं, त्यागस्तु संन्यास इति तयोर्भेद इत्यर्थः ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

सत्य एवं प्रिय वाणी को ऋत कहते हैं, इस तरह ऋत एवं सत्य में भेद स्पष्ट है । क्रमशः प्राप्त त्याग का निरूपण करने के लिए पहले अर्थ भेद के कारण शौच की व्याख्या करते हैं श्रीभगवान् शौच के भी मल त्याग रूप होने से उसका त्याग से अभेद प्रतीति होने के कारण । कर्मों में आसक्ति के अभाव को ही शौच कहते हैं त्याग तो संन्यास को कहते हैं । इस तरह दोनों में भेद है ।।३८।।

धर्म इष्टं धनं नृणां यज्ञोऽहं भगवत्तमः । दक्षिणा ज्ञानसंदेशः प्राणायामः परं बलम् ।।३९।।

अन्वयः— नृणाम् इष्टं धनं धर्मः, अहं भागवत्तमः यज्ञः, ज्ञान संदेशः दक्षिणा, परं बलं प्राणायामः ।।३९।।

अनुवाद— मनुष्यों का अभीष्ट धन धर्म है, मैं परमेश्वर ही यज्ञ हूँ, ज्ञान का उपदेश ही दक्षिणा है, प्राणायाम ही सबसे श्रेष्ठ बल है ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

नृणामिष्टं धनं धर्मः, न पश्वादिसाधारणम् । भगवत्तमः परमेश्वरोऽहमेव यज्ञः, मद्बुद्ध्या यज्ञोऽनुष्ठेयः, न क्रियाबुद्ध्येत्यर्थः। यज्ञार्थं दानं दक्षिणा, सा च ज्ञानोपदेशः, न हिरण्यादिदानम् । तेन हि यज्ञरूपो विष्णुः प्राप्यते । दुर्दमदमनं बलम्, तच्च मनोदमनहेतुत्वात्प्राणायाम् इति ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

मनुष्यों का अभीष्ट धर्म ही है, पशु आदि साधारण नहीं, मैं परमेश्वर ही यज्ञ हूँ, परमात्म बुद्धि से ही यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए कर्म की बुद्धि से नहीं यज्ञ के लिए दिया गया दान ही दक्षिणा है, वह ज्ञानोपदेश रूप ही है सुवर्णादि दान को दक्षिणा नहीं कहा गया है । ज्ञान के ही द्वारा यज्ञ स्वरूप भगवान् विष्णु की प्राप्ति होती है, जिसका दमन करना ही (दुर्दम दमन) बल है मन ही दुर्दम है उसको वश में करने का साधन प्राणायम है अतएव प्राणायाम ही सर्वश्रेष्ठ बल है ।।३९।।

भगो म ऐश्वरो भावो लाभो मद्भक्तिरूत्तमः । विद्यात्मनि भिदाबाधो जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ।।४०।।

अन्वयः— मे ऐश्वरः भगः, मद्भक्तिः उत्तमः लाभः, आत्मनिभिदा बाधः विद्या, अकर्मसु जगुप्सा ह्रीः ।।४०।।

अनुवाद— मेरा ऐश्वर्य ही भग है मेरी श्रेष्ठ भक्ति ही उत्तम लाभ है, जिससे ब्रह्म और आत्मा का भेद मिट जाता है वही सच्ची विद्या है । पाप करने से धृणा होना ही लज्जा है ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

लाभं व्याचिख्यासुः प्रथमं भगं ततो भेदेन व्याचष्टे । लोके तयोरभेदप्रसिद्धेः । भगो भाग्यं तच्च मे ऐश्वरो भावो मदीयमैश्वर्यादिषाड्गुण्यमित्यर्थः । उत्तमो लाभस्तु मद्भक्तिः, न पुत्रादिः । विद्या चात्मनि प्रतीतस्य भेदस्य बाधः, न ज्ञानमात्रम्। अकर्मसु जुगुप्सा हेयत्वदर्शनं ह्रीः, लज्जामात्रम् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

लाभ की व्याख्या करने की इच्छा से पहले लाभ से भिन्न भग की व्याख्या करते हैं । लोग में लाभ और भग के अभेद की प्रसिद्धि है । भग भाग्य को, कहते हैं, वह ऐश्वरभाव रूप होता है । मेरा ऐश्वर्य आदि षाड्गुण्य रूप ऐश्वर्य ही भग है । सर्वोत्तमलाभ मेरी भक्ति की प्राप्ति है । पुत्रादि की प्राप्ति नहीं । आत्मा और ब्रह्म में प्रतीत होने वाले भेद के बाधक ही विद्या कहते है । ज्ञानमात्र को विद्या नही कहते है । निन्दित कर्मों में त्याज्यत्व की बुद्धि बन जाना ही ह्री हैं लज्जा मात्र को नहीं ।।४०।।

श्रीर्गुणानैरपैक्ष्याद्याः सुखं दुःखसुखात्ययः । दुःखं कामसुखापेक्षा पण्डितो बन्धमोक्षवित् ॥४१॥

अन्वयः— नैरपेक्ष्याद्यागुणा श्रीः दुःखसुखात्ययः सुखम्, कामसुस्वापेक्षा दुःखम्, बन्धमोक्षवित् पण्डितः ॥४१॥

अनुवाद— निरपेक्षता आदि गुण ही शरीर का वास्तविक सौन्दर्य श्रीः है दुःख एवं सुख दोनों की भावना के त्याग को सुख कहते हैं, विषय भोगों की चाह ही दुःख है, तथा बन्ध एवं मोक्ष दोनों को जानने वाला पण्डित है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

गुणा एव श्रीर्मण्डनं, न किरीटादि । दुःखसुखयोरत्ययोऽतिक्रमोऽननुसंधानं सुखं, न भोगः । विषयभोगापेक्षैव दुःखं, नाग्निदाहादि । बन्धान्मोक्षं द्वयं वा यो वेत्ति स पण्डितः, न विद्वन्मात्रम् ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

गुण ही अलङ्कार है किरीट आदि वास्तविक अलङ्कार नहीं हैं । दुःख एवं सुख दोनों के अनुसान्ध का अभाव ही सुख है, भोग सुख नहीं है । विषयभोगों की अपेक्षा को ही दुःख कहते है, अग्नि दाह इत्यादि को नहीं । संसार के बन्ध से मुक्ति ही मोक्ष है अथवा बन्ध और मोक्ष के स्वरूप को जानने वाला ही पण्डित है । केवल विद्वान् पण्डित नहीं है ॥४१॥

मूर्खो देहाद्यहंबुद्धिः पन्था मन्निगमः स्मृतः । उत्पथश्चित्तविक्षेपः स्वर्गः सत्त्वगुणोदयः ॥४२॥

अन्वयः— देहाद्यहं बुद्धिःमूर्खः, मन्निगमः पन्थाः स्मृतः चित्तविक्षेपः उत्पथः सत्त्वगुणोदयः स्वगः ॥४२॥

अनुवाद— देह आदि में आत्मत्व बुद्धि वाला ही मूर्ख है, मुझको प्राप्त करा देने वाला निवृत्ति मार्ग ही सन्मार्ग है, कण्टक इत्यादि से रहित मार्ग ही सन्मार्ग नहीं है । चित्तविक्षेप अर्थात् प्रवृत्ति मार्ग ही कुमार्ग है, चोरों इत्यादि से परिपूर्ण मार्ग को कुमार्ग नहीं कहा जाता है । सत्त्वगुण का उद्रेक हो जाना स्वर्ग है, इन्द्रादि का लोक वास्तविक स्वर्ग नहीं है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

अहम्बुद्धिरित्युपलक्षणम् । देहगेहादिष्वहम्ममेत्यभिमानवान्मूर्ख इत्यर्थः । मन्निगमो मां नितरां गमयति प्रापयति येका निवृत्तिमार्गः स तु पन्थाः सन्मार्ग, न कण्टकादिशून्यः । चित्तविक्षेपः प्रवृत्तिमार्गः स उत्पथः कुमार्गः, न तु चौराद्याकुलः । सत्वगुणस्योदय उद्रेकः स्वर्गः, नेन्द्रादिलोकः ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

अहम्बुद्धि उपलक्षण है, देह-गेह में अहन्त्व एवं ममत्व की बुद्धि रखने वाला मूर्ख है । जो निश्चित रूप से मेरी प्राप्ति करा दे वह निवृत्ति मार्ग सन्मार्ग है न कि काँटों आदि से रहित सन्मार्ग है । चित्त विक्षेप अर्थात् प्रवृत्ति मार्ग ही कुमार्ग है, चोरों आदि से परिपूर्ण मार्ग कुमार्गनहीं है । सत्त्वगुण का उद्रेक हो जाना ही स्वर्ग है, इन्द्रादि देवता का लोक स्वर्ग नहीं है ॥४२॥

नरकस्तमउन्नाहो बन्धुर्गुरुरहं सखे । गृहं शरीरं मानुष्यं गुणाढ्यो ह्याढ्य उच्यते ॥४३॥

अन्वयः— तम उन्नाहो नरकः, गुरुः बन्धुः अहं सखे, मानुष्यं शरीरं गृहम् गुणादयः हि आद्यः उच्यते ॥४३॥

अनुवाद— तमोगुण की वृद्धि ही नरक है, गुरु ही सच्चा भाई बन्धु है और हे सखे वह गुरु मैं ही हूँ, मनुष्य शरीर ही सच्चा घर है, जो गुणों से सम्पन्न है, वही धनी है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

तमस उन्नाह उद्रेकः स नरकः, न तामिस्रादिः । गुरुरेव बन्धुः, न भ्रात्रादिः, स चाहमेव यथाहं जगद्गुरुः- 'एक एव परो

बन्धुर्विषमे समुपस्थिते । गुरुः सकलधर्मात्मा यत्राकिंचनगो हरिः ।।' इति ससाधनं भोगायतनं गृहं तच्च मानुष्यं मानुषरूपं शरीरमेव, न हर्म्यादि । गुणैः संपन्न आढ्य उच्यते, न धनी ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

तमोगुण का उद्रेक ही नरक है, तामिस्र आदि वास्तविक नरक नहीं है, गुरु ही भाई बन्धु है भाई आदि सच्चे बन्धु नहीं हैं । और वह गुरु मैं ही हूँ, क्योंकि मैं जगद्गुरु हूँ । कहा भी गया है **एक एव परो० इत्यादि** अर्थात् विपत्ति काल के आने पर सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता गुरु ही सबसे बड़े बन्धु है, क्योंकि जहाँ पर गुरु का निवास है वहीं पर अकिञ्चनों के पास रहने वाले श्रीहरि का निवास है । साधनों से सम्पन्न भोग का एक मात्र आश्रय मानव शरीर ही गृह है, मनुष्य शरीर ही गृह है । महल आदि सच्चे गृह नहीं है । जो गुणों से सम्पन्न होता है, वही वस्तुत: धनी है, धनी सच्चा धनी नहीं है ।।४३।।

दरिद्रो यस्त्वसंतुष्टः कृपणो योऽजितेन्द्रियः गुणेष्वसक्तधीरीशो गुणसङ्गो विपर्ययः ।।४४।।

अन्वयः— यस्तु असंतुष्टः दरिद्रः, यः अजितेन्द्रियः कृपणः, गुणेषु असक्त धीःईशः, गुणसङ्गः विपर्ययः ।।४४।।

अनुवाद— जिसके चित्त में असन्तोष है, वही दरिद्र है, जो जितेन्द्रिय नहीं है, वही कृपण है, जिसकी बुद्धि गुणों में आसक्त नहीं होती वही ईश्वर है और जिसकी बुद्धि गुणों में आसक्त हो जाती है, वही असमर्थ है।।४४।।

भावार्थ दीपिका

असंतुष्टो यः स दरिद्रः, न निःस्वः । योऽजितेन्द्रियः स कृपणः शोच्यः, न दीनः । विषयेष्वनासक्तधीर्यः स ईशः स्वतन्त्रः, न राजादिः । गुणसङ्गो गुणेषु सङ्गो यस्य स विपर्ययोऽनीशः । एतच्च शमादिविपर्ययोपलक्षणार्थम् ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

जिसके चित्त में संतोष नहीं है वही दरिद्र है, निर्धन नहीं, जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं वही कृपण अर्थात् शोचनीय है दीन व्यक्ति नहीं । जिसकी बुद्धि विषयों में आसक्त नहीं होती है, वही ईश्वर अर्थात् स्वतन्त्र है, राजा इत्यादि नहीं, जिसकी बुद्धि विषयों में आसक्त है वही असमर्थ है । यह शमदमादि के विपर्यय का उपलक्षण है।।४४।।

एत उद्धव ते प्रश्नाः सर्वे साधु निरूपिताः । किं वर्णितेन बहुना लक्षणं गुणदोषयोः ॥
गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः ।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे एकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

अन्वयः— हे उद्धव एते ते प्रश्नाः सर्वे साधुनिरूपिताः गुणदोषयोः लक्षणं बहुना वर्णितेन किम् ? गुणदोषदृशिः दोष गुणः तु उभय वर्जितः ।।४५।।

अनुवाद— उद्धव तुम्हारे सभी प्रश्नों का मैंने अच्छी तरह से उत्तर दे दिया है । गुण तथा दोष के विषय में बहुत बातें कहने से कोई लाभ नहीं है, वश तुम इतना ही समझो कि गुण और दोष में दृष्टि का जाना ही दोष है और गुण और दोष में दृष्टि का नहीं जाना ही गुण है ।।४५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-एत इति । साधु मोक्षोपयोगितया । एतच्च सर्वं गुणदोषयोर्विवेकायोद्धवेन पृष्टमिति तयोः संक्षेपतो लक्षणमाह-

किं बहुना, वर्णितेन गुणदोषयोर्लक्षणमेतावदेव। तदाह–गुणदोषयोर्दृशिर्दर्शनं दोषः, गुणस्तु तदुभयदर्शनविवर्जितः स्वभाव इति।।४५।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

अपने कथन का उपसंहार श्रीभगवान् **एते उद्धव० इत्यादि** श्लोक से करते हैं। यह उपदेश मोक्षोपयोगी होने के कारण साधु शब्द वाच्य है। यह सब कुछ गुण एवं दोष के भेद पूर्वक ज्ञान के लिए श्रीउद्धवजी ने पूछा है, अत श्रीभगवान् गुण एवं दोष दोनों का संक्षेप में लक्षण बताये है। गुण एव दोष का बहुत अधिक वर्णन करने से कोई लाभ नहीं है। उन दोनों का लक्षण इतना ही है। गुण तथा दोष को देखना ही दोष है और गुण एवं दोष के देखने के स्वभाव से रहित होना ही गुण है ।।४५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के उन्नीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१९।।

* * *

बीसवाँ अध्याय

ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का निरूपण

उद्धव उवाच

विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते । अवेक्षतेऽरविन्दाक्ष गुणं दोषं च कर्मणाम् ॥१॥

अन्वयः— हे अरविन्दाक्ष ! ते ईश्वरस्य हि विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमः कर्मणाम् गुणदोषश्च अवेक्षते ॥१॥

श्रीउद्धवजी ने कहा

अनुवाद— हे कमलनयन प्रभो श्रीकृष्ण ! आपकी विधि प्रतिषेध रूप आज्ञायें ही वेद हैं । यह विधि और प्रतिषेध कर्मों के गुण और दोष की परीक्षा करके ही होते हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

विंशे योगत्रयं प्रोक्तं भक्तिज्ञानक्रियात्मकम् । गुणदोषव्यवस्थार्थमधिकारिविभागतः । 'गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः' इत्युक्तं तदाक्षिपति–विधिश्चेति पञ्चभिः । विधिश्च प्रतिषेधश्चेश्वरस्य तव निगम आज्ञारूपो वेदः । स च विधेयानां प्रतिषेध्यानां च कर्मणां गुणं दोषं च पुण्यपापफलरूपमवेक्षते ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बीसवें अध्याय में कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग इन तीनों योगों का वर्णन गुणदोष की व्यवस्था के लिए अधिकारियों के विभाग पूर्वक किया गया है । यह पहले कहा जा चुका है कि गुण और दोष पर दृष्टि देने को दोष कहते हैं तथा गुण एवं दोष पर दृष्टि नहीं देने को गुण कहा जाता है । श्रीभगवान् के इस कथन पर आक्षेप श्रीउद्धवजी विधिश्च० इत्यादि पाँच श्लोकों से करते हैं । विधि और निषेध वाक्य आपकी आज्ञा रूपी वेद हैं । ये विधि एवं निषेध करने योग्य और नहीं करने योग्य कर्मों के गुण और दोष को पुण्य और पाप फल रूप से निरीक्षण करते हैं ॥१॥

वर्णाश्रमविकल्पं च प्रतिलोमानुलोमजम् । द्रव्यदेशवयः कालान्स्वर्गं नरकमेव च ॥२॥

अन्वयः— वर्णाश्रमविकल्पं प्रतिलोमानुलोमजम् द्रव्य देशवयः कालान् स्वर्गं नरकमेव च ॥२॥

अनुवाद— वर्णों एवं आश्रमों के भेद, प्रतिलोम और अनुलोम वर्ण संकर कर्मों के लिए उपयुक्त और अनुपयुक्त द्रव्य, देश आयु और काल, स्वर्ग तथा नरक में होने वाले भेद का ज्ञान भी वेदों से ही होता है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

उत्तमाधमभावेन तदधिकारिणां वर्णानामाश्रमाणां विकल्पं भेदं च गुणदोषरूपमवेक्षते । प्रतिलोमानुलोमजं च गुणं दोषं च तथैवावेक्षते । प्रतिलोमजा उत्तमवर्णासु स्त्रीषु हीनवर्णेभ्यः पुरुषेभ्यो जाताः सूतवैदेहकादयः । अनुलोमजास्तूत्तमवर्णेभ्यः पुरुषेभ्यो हीनवर्णासु स्त्रीषु जाता मूर्धावसिक्ताम्बष्ठादयस्तेषां च- 'असत्सन्तस्तु विज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः' इति गुणदोषौ । द्रव्यादीन्कर्मार्हतानर्हताभ्याम् । स्वर्गं नरकं च तत्फलतया गुणदोषरूपमेवावेक्षते । एतच्चोत्तराध्याये प्रपञ्चयिष्यते ॥२॥

भाव प्रकाशिका

उत्तम, मध्यम भाव के कारण उनके अधिकारियों को वर्णों एवं आश्रमों के भेद को भी गुण एवं दोष को देखते हैं, प्रतिलोमजों और अनुलोमजों के गुण तथा दोष को भी वैसे ही देखते हैं । उत्तम वर्ण की स्त्रियों के गर्भ से और हीन वर्ण के पुरुषों से उत्पन्न पुत्र सूत तथा वैदेहक आदि प्रतिलोमज वर्णसङ्कर होते हैं । उत्तमवर्ण के पुरुषों से और हीन वर्ण की स्त्रियों के गर्भ से उत्पन्न होने वाली सन्तान अनुलोमज वर्णसङ्कर होते हैं । ऐसे ही मूधेवसिक्त अम्बष्ठ आदि होते हैं । उन सबों के असत् सन्तस्तु विज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः अर्थात् प्रतिलोम सङ्करों को असत् तथा अनुलोम सङ्करों को सत् समझना चाहिए । इस तरह से गुण एवं दोष बतलाये गये हैं । **द्रव्या० आदि** अर्थात् द्रव्य आदि में कर्म योग्यता और अयोग्यता रूप गुणदोष को देखा जाता है । स्वर्ग नरक में भी उनके फलरूप से गुण और दोष ही देखते हैं । इस बात की विस्तृत चर्चा हम आगे के अध्याय में करेंगे ॥२॥

गुणदोषभिदादृष्टिमन्तरेण वचस्तव । निःश्रेयसं कथं नृणां निषेधविधिलक्षणम् ॥३॥

अन्वयः— गुणदोष भिदादृष्टिमन्तरेण तव निषेध विधिलक्षणं वचः नृणां निःश्रेयसं कथम् ॥३॥

अनुवाद— आपकी वाणी ही वेद हैं । उसमें विधि निषेध ही भरे हैं । यदि उसमें गुण में और दोष में भेद करने वाली दृष्टि नहीं रखी जाय तो फिर आपकी वाणी प्राणियों का कल्याण कैसे करेगी ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तथापि प्रस्तुते किमायातमत आह-गुणदोषेति । गुणदोषदृशिर्दोष इति निराकृतत्वाद्गुणदोषभिदादृष्टिमन्तरेण तां विना निषेधविधिलक्षणं कर्मकाण्डगतं तव वचः कथम् । तच्च वचोन्तरेण नृणां निःश्रेयसं कथं स्यात्तत्रापि 'श्रोतव्यो मन्तव्यः' इति साधनविधेः 'नानुध्यायेद्बहून् शब्दान्वाचो विग्लापनं हि तत्' इत्यादिनिषेधस्य चावश्यकत्वादिति भावः । यद्वा, गुणदोपभिदादृष्टिरूपं निषेधविधिलक्षणं तव वचो विनेति सामानाधिकरण्यमेवास्तु । यद्वा, गुणदोषभिदादृष्टिमन्तरेण निषेधविधिलक्षणमपि वचः कथं नु तत्त्वमस्यादिवाक्यवन्निःश्रेयसपरं स्यात् । सर्वस्य वेदस्य तत्परत्वाङ्गीकारादित्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

फिर भी प्रस्तुत में क्या आया ? इस पर उद्धवजी **गुणदोषभिदा० इत्यादि श्लोक** कहते हैं । गुणदोषदृशिः दोषः इत्यादि श्लोक को निराकृता किए जाने के कारण गुण एवं दोष में होने वाली भेद की दृष्टि के बिना कर्मकाण्ड भाग में विद्यमान आपकी विधि निषेध रूप वाणी कैसे है ? और वह दूसरे वाक्य से मनुष्यों का परम कल्याण रूप कैसे हो सकती है ? वहाँ भी श्रोतव्य, मन्तव्यः इस तरह से साधन का विधि के तथा **नानुध्यायेद् बहून् शब्दान् वाचो विग्लापनं हितत्** । अर्थात् बहुत शब्दों का स्मरण न करे, क्योंकि वह वाणी को मलीन करना है, इत्यादि निषेध भी आवश्यक है । **यद्वा० इत्यादि** गुण एवं दोष में होने वाले भेद की दृष्टि के बिना विधि निषेध रूप वाणी भी किस प्रकार तत्त्वमसि इत्यादि वाक्य के समान निःश्रेयस का बोधक हो सकती है । क्योंकि सम्पूर्ण वेद को विधि निषेध रूप से स्वीकार किया जाता है ॥३॥

पितृदेवमनुष्याणां वेदश्चक्षुस्तवेश्वर । श्रेयस्त्वनुपलब्धेऽर्थे साध्यसाधनयोरपि ॥४॥

अन्वयः— हे ईश्वर ! देवपितृमनुष्याणां तववेदः चक्षुः अनुपलब्धे अर्थे साध्यसाधनयोरपि ॥४॥

अनुवाद— सर्वशक्तिमान परमेश्वर आपकी वाणी वेद ही पितर, देवता और मनुष्य के लिए श्रेष्ठ मार्ग दर्शक का काम करता है, क्योंकि उसी के द्वारा अदृष्ट वस्तुओं का बोध होता है । इस लोक में भी किसका कौन साध्य है और क्या साधन है ? इस बात का निर्णय आपकी वाणी से होता है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

ननु पितरो देवाश्च सर्वज्ञाः प्रत्यक्षतो दृष्ट्वा मनुष्येभ्यः कथयिष्यन्ति नेत्याह-पित्रादीनां सर्वेषां तव त्वद्वाक्यरूपो वेद एव तु श्रेयः श्रेष्ठं चक्षुःप्रमापकम् । क्व । अनुपलब्धेऽर्थे मोक्षे स्वर्गादौ च । तथा साध्यसाधनयोरिदमस्य साध्यम्, इदमस्य साधनमित्यत्रापि । तदेवं गुणदोषदृष्ट्यभावे निःश्रेयसं न घटेत ॥४॥

भाव प्रकाशिका

पितर एवं देवता सर्वज्ञ होते हैं वे प्रत्यक्षतः देखकर मनुष्यों को उसको कहते हैं ऐसी भी बात नहीं है । सभी पितरों आदि के लिए आपकी वाणी रूप वेद ही श्रेष्ठ चक्षु हैं । कहाँ पर ? तो इसका उत्तर है कि अनुपलब्ध अर्थ मोक्ष और स्वर्ग के विषय में । और साध्य साधन कभी यह साध्य है और यह साधन है इस विषय में भी आपकी वाणी वेद ही प्रसिद्ध है । अतएव गुण एवं दोष विषयिणी दृष्टि के अभाव में निःश्रेयस् भी सम्भव नहीं होगा ॥४॥

गुणदोषभिदादृष्टिर्निगमात्ते न हि स्वतः । निगमेनापवादश्च भिदाया इति ह भ्रमः ॥५॥

अन्वयः— गुण दोष भिदा दृष्टि ते निगमात् स्वतः नहि निगमेन अपवादश्च भिदाया इति ह भ्रमः ॥५॥

अनुवाद— प्रभो निःसन्देह रूप से गुण और दोष में भेद की दृष्टि आपकी वाणी वेद के अनुसार ही है। किसी की अपनी कल्पना नहीं है । प्रश्न है कि आपकी वाणी ही भेद का निषेध भी करती है । इस विरोध को देखकर भ्रम हो रहा है आप मेरे इस भ्रम को दूर करें ॥५॥

भावार्थ दीपिका

किंच शास्त्रेणैव विहितां भेददृष्टिं तस्मिन्नेव विषये शास्त्रं कथं निवर्तयेदित्याह-ते निगमात्त्वदाज्ञारूपाद्वेदादेव, न हि स्वतः। यस्मादर्थप्राप्तत्वेन निवर्तेत । ह स्फुटम् । भ्रमो भवति तं निवर्तयेति शेषः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि शास्त्र के द्वारा विहित भेददृष्टि को उसी विषय में शास्त्र कैसे उसे दूर कर सकता है ? इस पर कहते है कि वेद द्वारा आपकी आज्ञा रूप भेद के ही कारण स्वतः चूकि अर्थ प्राप्त होने के कारण उसको दूर नहीं कर सकता है अर्थात् स्पष्ट रूप से भ्रम होता है उसे आप दूर करें ॥५॥

श्रीभगवानुवाच

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया । ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्॥६॥

अन्वयः— नृणां श्रेयो विधित्सया मया त्रयो योगाप्रोक्तः ज्ञानं कर्म च भक्तिः च अन्यः उपायः कुत्रचित् नास्ति ॥६॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— उद्धव ! मैनें ही वेदों में तथा अन्यत्र भी मनुष्यों का कल्याण करने के लिए अधिकारी भेद से तीन प्रकार के योगों का उपदेश दिया है । वे हैं, ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग मनुष्यों के कल्याण का कोई भी अन्य साधन नहीं है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

विषयाभेदेऽप्यधिकारिभेदेनाविरोधं वक्तुं प्रथमं योगत्रयमाह-योगा इति । योगा उपाया ब्रह्मकर्मदेवताकाण्डैः प्रोक्ताः। कर्म च निष्कामम् । श्रेयोविधित्सया मोक्षसाधनेच्छया । अन्य उपयो नास्तीति काम्यकर्मादिकं व्यावर्तयति । तथा चोत्तराध्याये स्फुटीकरिष्यति य एतानित्यादिना ।।६।।

भाव प्रकाशिका

विषय की अभिन्नता रहने पर भी अधिकारी के भेद से विरोधाभाव को बतलाने के लिए पहले तीन योगों को **योगास्त्रयः इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । योग शब्द यहाँ उपाय का बोधक है । ये तीनों योग ब्रह्म कर्म एवं देवता काण्डों द्वारा कहे गये हैं । कर्म शब्द से निष्काम कर्म को कहा गया है । श्रेयोविधित्सया अर्थात् मोक्ष साधन की इच्छा से, दूसरा कोई उपाय नहीं है कहकर काम्यकर्म का व्यावर्तन करते है । यः **एतान्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा इस बात को श्रीभगवान् स्पष्ट करेंगे ।।६।।

निर्विण्णानां ज्ञानयोगो न्यासिनामिह कर्मसु । तेष्वनिर्विण्णचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ।।७।।

अन्वयः— इह कर्मसुनिर्विण्णानाम् न्यासिनाम् ज्ञानयोगः, तेषु अनिर्विण्णचित्तानां कामिनां तु कर्मयोगः ।।७।।

अनुवाद— जो लोग कर्मों तथा उनके फलों से विरक्त होने के कारण कर्मों को त्याग चुके हैं, उनके लिए ज्ञानयोग सिद्धि प्रद होता है, जिनके चित्त में कर्मों और उनके फलों से वैराग्य नहीं हुआ है अर्थात् उनमें दुःख बुद्धि नहीं उत्पन्न हुई है वे कर्मयोग के अधिकारी हैं ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तेष्वधिकारिभेदमाह-निर्विण्णानामिति । द्वाभ्याम् । इह एषां मध्ये कर्मसु निर्विण्णानां दुःखबुद्ध्या तत्फलेषु विरक्तानामत एव तत्साधनभूतकर्मन्यासिनां ज्ञानयोगः सिद्धिद इत्युत्तरेणान्वयः । अनिर्विण्णचित्तानां दुःखबुद्धिशून्यानाम् । अतः कामिनां तत्फलेष्वविरक्तानामित्यर्थः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

उन सबों में अधिकारियों के भेद को **निविण्णाना० इत्यादि** दो श्लोकों से बतलाते हैं । इन अधिकारियों में जो अधिकारी कर्मों और उनके फलों से विरक्त हो गये है । वे दुःख बुद्धि से कर्म के फलों से विरक्त हो गये हैं, उसके साधन कर्मों का परित्याग कर चुके हैं, ऐसे अधिकारियों के लिए ज्ञानयोग सिद्धि प्रदान करता है जिन लोगों के चित्त में कर्म उनके फलों में दुःख बुद्धि नहीं उत्पन्न हुई है ऐसे लोग कर्मयोग के अधिकारी हैं । इस प्रकार के कामी पुरुष कर्म के फलों से विरक्त नहीं होते हैं ।।७।।

यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् । न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः।।८।।

अन्वयः— यः पुमान् न निविण्णः नाति सक्तः यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धः अस्य भक्तियोगः सिद्धिदः ।।८।।

अनुवाद— जो पुरुष न तो विरक्त है और न तो अत्यन्त आसक्त ही है, तथा पूर्वजन्म के पुण्य के अनुसार सौभाग्यवशात् मेरी लीला आदि में जिसकी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी है वह भक्तियोग का अधिकारी है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

यदृच्छया केनापि भाग्योदयेन । तत्र काम्यकर्मसु प्रवर्तमानस्य सर्वात्मना विधिप्रतिषेधाधिकार इत्युत्तराध्याये वक्ष्यति। निष्कामकर्मयोगाधिकारिणस्तु यथाशक्ति । स च ज्ञानभक्तियोगाधिकारात्प्रागेव । तदधिकृतयोस्तु स्वल्पः । ताभ्यां सिद्धानां तु न किंचिदिति ।।८।।

भाव प्रकाशिका

यदृच्छया अर्थात् किसी भाग्योदय के कारण जो काम्यकर्मों में लगा हुआ है उसका पूर्णरूप से विधि तथा प्रतिषेध में अधिकार है, इस बात को इसके बाद वाले अध्याय में श्रीभगवान् कहेंगे। निष्काम कर्म योगाधिकारी की तो अपनी शक्ति के अनुसार। वह ज्ञान तथा भक्तियोग के अधिकार से पहले ही उसमें अधिकृतों का तो स्वल्प। उन दोनों से जो सिद्ध हैं उनका तो विधि प्रतिषेध में थोड़ा सा अधिकार है ॥८॥

तावत्कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता। मत्कथाश्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते ॥९॥

अन्वयः— यावता न निविद्येत मत् कथा श्रवणादौ वा यावत् श्रद्ध न जायेत तावत् कर्माणि कुर्वीत ॥९॥

अनुवाद— कर्म के सम्बन्ध में जितने भी विधिनिषेध हैं उनके अनुसार तब तक कर्म करते रहना चाहिए जब तक कर्ममय जगत् और उनके फलों से वैराग्य न हो जाय अथवा मेरी कथा के श्रवण आदि में श्रद्धा न उत्पन्न हो जाय ॥९॥

भावार्थ दीपिका

सावधिं कर्मयोगमाह-तावदिति नवभिः। कर्माणि नित्यनैमित्तिकानि। यावता यावत् ॥९॥

भाव प्रकाशिका

तावत् इत्यादि नव श्लोकों से श्रीभगवान् सावधिकर्मयोग का वर्णन करते हैं। कर्माणि अर्थात् नित्य एवं नैमितिक कर्मों को। यावता अर्थात् जब तक ॥९॥

स्वधर्मस्थो यजन्यज्ञैरनाशीःकाम उद्धव। न याति स्वर्गनरकौ यद्यन्यन्न समाचरेत् ॥१०॥

अन्वयः— उद्धव ! स्वधर्मस्थ अनाशीः कामः यदि अन्यत् न समाचरेत् स्वर्गनरकौ न याति ॥१०॥

अनुवाद— उद्धव अपने वर्ण एवं आश्रम के अनुकूल धर्म का पालन करने वाला मनुष्य बिना किसी आशा और कामना के मेरी आराधना करता रहे तथा यदि पाप कर्म न करे तो उसको स्वर्ग अथवा नरक में नहीं जाना पड़ता है ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

कर्मयोगिनो ज्ञानभक्तिभूमिकारोहप्रकारमाह-स्वधर्मस्थ इति। अनाशीःकामोऽफलकामः। अन्यन्निषिद्धं काम्यं च। नरकयानं हि द्वेधैव विहितातिक्रमाद्वा निषिद्धाचरणाद्वा। अतः स्वधर्मस्थत्वान्निषिद्धवर्जनाच्च नरकं न याति। अफलकामत्वान्न स्वर्गमपीत्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

स्वधर्मस्थ इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् कर्मयोगी के ज्ञान और भक्तियोग की भूमिका पर आरोहण के प्रकार को बतलाते हैं। **अनाशी कामः** अर्थात् फल की कामना से रहित। अन्यत् अर्थात् काम्य तथा निषिद्ध कर्मों को। नरक में दो ही कारणों से जाना पड़ता है, विहित कर्मों को नहीं करने से अथवा निषिद्ध कर्मों को करने से। अतएव अपने धर्म में स्थित रहने तथा निषिद्ध कर्मों को नहीं करने के कारण उपासक नरक में नहीं जाता है। फल की कामना नहीं करने के कारण वह स्वर्ग में भी नहीं जाता है ॥१०॥

अस्मिँल्लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थोऽनघः शुचिः। ज्ञानं विशुद्धमाप्नोति मद्भक्तिं वा यदृच्छया ॥११॥

अन्वयः— अस्मिन् लोके वर्तमानः स्वधर्मस्थः अनघः शुचिः विशुद्धं ज्ञानम् आप्नोति वा यदृच्छया मद्भक्तिम् ॥११॥

अनुवाद— अपने धर्म में निष्ठा रखने वाला इस शरीर में रहते हुए ही निषिद्ध कर्म का परित्याग कर देता है और वह रागादिमलों से भी मुक्त हो जाता है। इसीसे उसे आत्मसाक्षात्कार रूप विशुद्धतत्व ज्ञान अथवा चित्त के द्रवित हो जाने पर मेरी भक्ति प्राप्त हो जाती है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

किंतु अस्मिँल्लोकेऽस्मिन्नेव देहे । अनघो निषिद्धत्यागी । अतः शुचिर्निवृत्तरागादिमलः । यदृच्छयेति केवलानादपि भक्तेर्दुर्लभतां द्योतयति ।।११।।

भाव प्रकाशिका

इस लोक में इस शरीर में ही रहते हुए **अनघः** अर्थात् निषिद्ध कर्मों का परित्याग कर देने वाला । अतएव शुचि अर्थात् रागादि मलों से रहित । यदृच्छया कहने का अभिप्राय है कि केवल ज्ञान की भी अपेक्षा भक्ति दुर्लभ है इस अर्थ को द्योतित किया है ।।११।।

स्वर्गिणोऽप्येतमिच्छन्ति लोकं निरयिणस्तथा। साधकं ज्ञानभक्तिभ्यामुभयं तदसाधकम्।।१२।।
न नरः स्वर्गतिं काङ्क्षेन्नारकीं वा विचक्षणः । नेमं लोकं च काङ्क्षेत देहावेशात्प्रमाद्यति ।।१३।।

अन्वयः— एतम् लोकं स्वर्गिण अपि इच्छन्ति तथ निरयिणः, ज्ञानभक्तिभ्याम् उभयं साधकं तत् असाधकम्, विचक्षणः नर, न स्वर्गतिम् इच्छेत् नारकीं वा, इमं लोकं च न कांक्षेत देहावेशात् प्रमाद्यति ।।१२-१३।।

अनुवाद— यह शरीर अत्यन्त दुर्लभ है, स्वर्ग लोक में रहने पर भी जीव इस लोक को प्राप्त करना चाहते तथा नरक लोक में रहने वाले भी इसे प्राप्त करना चाहते हैं, क्याकि इसी शरीर में अन्तःकरण की प्राप्ति होने पर ज्ञान अथवा भक्ति की प्राप्ति हो सकती है, भोग प्रधान स्वर्ग तथा नरक का शरीर किसी भी साधन के लिए उपयोगी नहीं है । बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि वह न तो स्वर्गप्राप्ति की अभिलाषा करे और न नरक की । उसे इस मनुष्य शरीर की भी कामना नही करनी चाहिए । किसी भी शरीर में गुण, बुद्धि और अभिमान हो जाने से अपने वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति के साधन में प्रमाद होने लगता है ।।१२-१३।।

भावार्थ दीपिका

अनेन प्रकारेण ज्ञानभक्तिसाधनत्वान्नरदेहं स्तौति-स्वर्गिणोऽपीति । निरयिण इति दृष्टान्तत्वेनोक्तम् । ज्ञानभक्तिभ्यां ज्ञानभक्त्योः। तदुभयं स्वर्गिनारकिशरीरम् । अतो नरः स्वर्गतिं न काङ्क्षेत् । नारकीमिति दृष्टान्तः- यद्वा, स्वर्गनरकसाधनकर्माणि न कुर्यादित्यर्थः । अस्यातिश्रेष्ठत्वात्पुनरपि मनुष्यो भवेयमित्यपि न काङ्क्षेत् । यतो देहावेशाद्देहासक्तया स्वार्थे प्रमाद्यत्यनवधानशून्यो भवति ।।१२-१३।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह ज्ञान और भक्ति का साधन होने के कारण श्रीभगवान् मानव शरीर की प्रशंसा **स्वर्गिणोऽपीति० इत्यादि** श्लोक से करते है । नारकीय यह दृष्टान्त के रूप से कहा गया है । ज्ञान भक्तिभ्याम् अर्थात् ज्ञान और भक्ति दोनों द्वारा। तदुभयम् अर्थात् स्वर्गीय शरीर और नारकी शरीर । अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह न तो स्वर्ग लोक को प्राप्त करना चाहे और न नरकलोकों को नारकी यह दृष्टान्त है । अथवा स्वर्ग या नरक प्राप्ति के साधन भूत कर्मो को नहीं करे। इस शरीर के अत्यन्त श्रेष्ठ होने के कारण मैं पुनः मनुष्य ही होऊँ यह भी न चाहे क्योंकि शरीर में आवेश होने से तथा शरीर में आसक्ति होने से अपने स्वरूप की प्राप्ति में वह असावधान हो जाता है ।।१२-१३।।

एतद्विद्वान्पुरा मृत्योरभवाय घटेत सः । अप्रमत्त इदं ज्ञात्वा मर्त्यमप्यर्थसिद्धिदम् ।।१४।।

अन्वयः— एतद् विद्वान् सः मृत्योः पुरा अभवाय घटेत अप्रमतः इदं ज्ञात्वा मर्त्यम् अपि अर्थम् सिद्धम् ।।१४।।

अनुवाद— यद्यपि यह मानव शरीर मृत्यु ग्रस्त हैं, किन्तु इसके द्वारा परमार्थ की प्राप्ति हो सकती है इस बात को जानकर बुद्धिमान पुरुष इस प्रकार की साधना करे कि उसके जन्म मरण का चक्र समाप्त हो जाय । वह मुक्त हो जाय।।१४।।

भावार्थ दीपिका

अपि त्वेतद्देहसाधकमिति विद्वांस्तच्चार्थसिद्धिदमपि मर्त्यं ज्ञात्वा अप्रमत्तोऽनलसः सन् मृत्योः पूर्वमेव मोक्षाय घटेत प्रयत्नं कुर्यात् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

बल्कि यह मानव शरीर स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति का साधक है इस बात को जानने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह सावधानी पूर्वक मृत्यु से पहले ही ऐसा प्रयास करे कि वह मुक्त हो जाय ।।१४।।

छिद्यमानं यमैरेतैः कृतनीडं वनस्पतिम् । खगः स्वकेतमुत्सृज्य क्षेमं याति ह्यलम्पटः ।।१५।।

अन्वयः— कृतनीडम् वनस्पतिम् एतैः यमैः छिद्यमानम् स्वकेतम् उत्सृज्य अलम्पटः हि खगः क्षेमं याति ।।१५।।

अनुवाद— यह शरीर एक वृक्ष है, इसमें घोंसला बनाकर जीव रूप पक्षी निवास करता है । इसको यमदूत प्रतिक्षण काट रहे हैं । जैसे पक्षी कटते हुए वृक्ष को छोड़कर उड़ जाते है वैसे ही अनासक्त जीव भी इस शरीर को त्यागकर मुक्त हो जाता है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अप्रमत्तो मुक्तसङ्गः । सुखं प्राप्नोतीत्यत्र दृष्टान्तः-छिद्यमानमिति । यमैर्यमवन्निर्दयैः पुरुषैः कृतं नीडं यस्मिंस्तम् । स्वकेतं स्वस्याश्रयम् । अलम्पटोऽनासक्तः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

अप्रमत्तः अर्थात् अनासक्त सुख प्राप्त करता है इसमें दृष्टान्त उपन्यस्त किया गया है **छिद्यमान० इत्यादि** श्लोक से । यम के समान निर्दय यमदूतों द्वारा जिसमें जीव रूपी पक्षी निवास करता है, उस शरीर को । **स्वकेतम्** अर्थात् अपने आश्रय भूत शरीर को आलम्पटः अर्थात् अनासक्त ।।१५।।

अहोरात्रैश्छिद्यमानं बुद्ध्वायुर्भयवेपथुः । मुक्तसङ्गः परं बुद्ध्वा निरीह उपशाम्यति ।।१६।।

अन्वयः— आयुः अहोरात्रैः छिद्यमानं बुद्ध्वा भववेपथुः मुक्तसङ्गः परं बुद्ध्वा निरीहः उपशाम्यति ।।१६।।

अनुवाद— दिन और रात प्रतिक्षण आयु को क्षीण किए जा रहे है, इस बात को जानकर जो भय से काँप उठता है वह व्यक्ति इस शरीर में होने वाली आसक्ति को छोड़कर तथा परमात्मतत्त्व को जानकर और उसके पश्चात् जीवन मरण निरपेक्ष होकर अपनी आत्मा में ही शान्त हो जाता है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

दार्ष्टान्तिकमाह- अहोरात्रैश्छिद्यमानमायुर्बुद्ध्वा । भयेन वेपथुः कम्पो यस्य सः ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

अहोरात्रैः इत्यादि श्लोक से दार्ष्टान्तिक को निरूपित किया गया है दिन और रात प्रतिक्षण इस शरीर को क्षीण बनाये जा रहे है, इस बात को जानकर जो भय से काँप उठता है ।।१६।।

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा ।।१७।।

अन्वयः— नृदेहम् आद्यं सुदुर्लभं सुलभम् सुकल्पंप्लवम्, गुरुकर्णकर्णधारम् मया अनुकूलेन नभस्वता ईरित यः पुमान् न तरेत् स आत्महा ।।१७।।

अनुवाद— यह मानव शरीर समस्त शुभ फलो का मूल है । और यह अत्यन्त दुर्लभ है फिर भी सौभाग्यवशात्

प्राप्त हो गया है । इस संसार सागर से पार जाने के लिए यह सुदृढ़ नौका है । गुरुदेव की शरणागति करने मात्र से इसके केवट बनकर पतवार का काम करने लगते हैं । और स्मरण मात्र से ही मैं वायु बनकर इसे लक्ष्य की ओर बढाने लगता हूँ। इतनी सुविधा होने पर भी जो मनुष्य इस भवाब्धि को पार नहीं कर पाता है वह आत्मघाती है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

एवमप्रयतमानं प्रमत्तं निन्दति-नृदेहं प्लवं नावं प्राप्येत्यध्याहारः । यो भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा । तत्र हेतवः-आद्यं सर्वफलानां मूलम्, एतदुपार्जितकर्मभिः सर्वप्राप्तेः । किंच सुदुर्लभमुद्यमकोटिभिरपि प्राप्तुशक्यम् । तथापि तु सुलभम् यदृच्छया लब्धत्वात् । तं च सुकल्पं पटुतरम् । किंच, गुरुः संश्रितमात्र एव कर्णधारो नेता यस्य तम् । मया च स्मृतमात्रेणानुकूल- मारुतेन प्रेरितम् ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

जो इस प्रकार से प्रयास नहीं करता है उसकी निन्दा करते हुए श्रीभगवान् **नृदेहमाद्यम्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । यह मानव शरीर संसार सागर को पार करने के लिए एक सुदृढ नौका है । ऐसे शरीर को प्राप्त करके जो संसार सागर को नहीं पार करता है वह आत्मघाती है । उसका कारण है कि यह शरीर समस्त शुभ कर्मो का फल है । इस शरीर से उपार्जित कर्मो से सभी फलों की प्राप्ति का मूल है । **किञ्च** यह शरीर अत्यन्त दुर्लभ है । करोड़ों प्रयास के पश्चात् भी इसको नहीं प्राप्त किया जा सकता है । फिर भी सुलभ इसलिए है कि दैववशात् यह प्राप्त हो गया है । इस सुदृढ नौका किञ्च शरण ग्रहण करने मात्र से गुरु केवट बनाकर उस शरीर रूपी नौका के कर्णधार बन जाते है । स्मरण करने मात्र से मैं अनुकूल वायु बनकर उसे लक्ष्य की ओर बढ़ाने लगता हूँ ।।१७।।

यदारम्भेषु निर्विण्णो विरक्तः संयतेन्द्रियः । अभ्यासेनात्मनो योगी धारयेदचलं मनः ।।१८।।

अन्वयः— यदा आरम्भेषु निर्विण्णः विरक्तः संयतेन्द्रियः योगी अत्मनः अभ्यासेन अचलंमनः धारयेत् ।।१८।।

अनुवाद— उद्धव जब पुरुष दोष दर्शन के कारण कर्मों से विरक्त हो जाय तब जितेन्द्रिय होकर वह योग में स्थित हो जाय और अभ्यास अर्थात् आत्मानुसन्धान के द्वारा अपना मन मुझ परमात्मा में निश्चल रूप से धारण करें।।१८।।

भावार्थ दीपिका

एवं तावदविरक्तस्य वैराग्यद्वारा ज्ञानभक्तिसाधकं कर्मयोगमुक्त्वेदानीं सम्यग्विरक्तस्य ज्ञानयोगं तस्य च ज्ञानप्राप्तेः पूर्वं किंचित्कृत्यं वर्जनीयं चाह सार्धैर्नवभिः-यदा त्वारम्भेषु कर्मसु निर्विष्णो दुःखदर्शनेनोद्विग्नस्तत्फलेषु विरक्तश्च तदा संयतेन्द्रियः सन्नात्मनोऽभ्यासेनात्मविषयवृत्तिसन्तत्या अचलं यथा भवति तथा मनो धारयेत् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह से जो विरक्त नहीं है उसके लिए वैराग्य के द्वारा ज्ञान तथा भक्तियोग के साधक कर्मयोग का वर्णन करके जो पूर्ण रूप से विरक्त है ऐसे साधक के लिए ज्ञानयोग और उस ज्ञान की प्राप्ति से पहले कुछ करने योग्य और कुछ त्यागने योग्य कर्मो साढे नव श्लोकों से कहते हैं । जब आरम्भेषु अर्थात् कर्मों से, निर्विण्ण अर्थात् दुःख दर्शन के कारण उद्विग्न और कर्म के फलों से विरक्त पुरुष को चाहिए कि वह जितेन्द्रिय हो जाय और निरन्तर आत्म विषयिणी वृत्ति के द्वारा मन को अचल बना दे ।।१८।।

धार्यमाणं मनो यर्हि भ्राम्यदाश्वनवस्थितम् । अतन्द्रितोऽनुरोधेन मार्गेणात्मवशं नयेत् ।।१९।।

अन्वयः— धार्यमाणं मनः यर्हि भ्राम्यत् आशु अनवस्थितम् अतन्द्रितः अनुरोधेन मार्गेण आत्मवशं नयेत् ।।१९।।

अनुवाद— जब स्थिर करते समय मन चञ्चल होकर इधर-उधर भटकने लगे तब बड़ी ही सावधानी से उसको समझा-बुझाकर उसकी कुछ अपेक्षाएँ पूरी करके अपने वश में कर ले ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रथममेवात्यन्तधारणासंभवात्तत्स्वभावानुसारेण वशीकरणमाह-यर्हि आशु भ्राम्यत्परिभ्रमदनवस्थितं भवति तदाऽनुरोधेन किंचिदपेक्षापूरणद्वारेण ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

पहले ही अत्यन्त धारणा का होना असम्भव होने के कारण मन को स्थिर करते समय मन चञ्चल होकर इधर-उधर जब भ्रमण करने लगे तो उसको अनुरोध मार्ग से उसकी कुछ अपेक्षाओं को पूरा करके अपने में कर लेना चाहिए॥१९॥

मनोगतिं न विसृजेज्जितप्राणो जितेन्द्रियः । सत्त्वसंपन्नया बुद्ध्या मन आत्मवशं नयेत् ॥२०॥

अन्वयः— जितप्राणः जितेन्द्रियः मनोगतिं न विसृजेत् सत्त्वसंपन्नया बुद्ध्या मनः आत्मवंश नयेत् ॥२०॥

अनुवाद— इन्द्रियों और प्राणों को अपने वश में रखे और मन को क्षणभर के लिए भी स्वतन्त्र न छोड़े । इस प्रकार सत्त्वगुण सम्पन्न बुद्धि के द्वारा धीरे-धीरे मन को अपने वश में कर लेना चाहिए ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि यथापूर्वमेव स्यात्तत्राह-मनोगतिं तु न विसृजेन्नोपेक्षेत किंतु अप्रमत्तः सन् लक्षयेदित्यर्थः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

ऐसे तो मन पहले के समान हो जायेगा । इस पर श्रीभगवान् कहें कि मन की गति की उपेक्षा न करे, अपितु बड़ी सावधानी पूर्वक मन की वृत्ति को देखता रहे ॥२०॥

एष वै परमो योगो मनसः संग्रहः स्मृतः । हृदयज्ञत्वमन्विच्छन् दम्यस्येवार्वतो मुहुः ॥२१॥

अन्वयः— एषः मनसः संग्रह परमः योगः स्मृतः हृदयज्ञत्वमृ अन्विच्छन् अर्वतः मुहुदमस्य इव ॥२१॥

अनुवाद— जिस तरह सवार अश्व को अपने वश में करने के लिए पहले उसे अपने मनोभाव की पहचान कराना चाहता है । इसके लिए वह उसको बार-बार चुचुकार कर अपने वश में कर लेता है । इसी तरह मन को अपने वश में करना सबसे बड़ा योग कहलाता है । इसके लिए मन को अनुरोध मार्ग से ही अपने वश में करे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अनुरोधमार्गं सदृष्टान्तं स्तौति-एषोऽनुवृत्तिमार्गेण मनसः संग्रहः परमो योगः । तत्साधनत्वादुपचारेण स्तुतिः । यथा अदान्तस्य दमनीयस्यार्वतोऽश्वस्य हृदयज्ञत्वं स्वाभिप्रायेण गतिमन्विच्छन्नपेक्षमाणोऽश्वधारकः प्रथमं किंचित्तद्गतिमनुवर्तते तदा च रश्मिना तं धृत्वैव गच्छति, न तूपेक्षते तद्वदित्यर्थः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् अनुरोध मार्ग की प्रशंसा करते हैं । यह अनुरोध मार्ग से मन को वश में करना परम योग कहलाता है । यह मन को वश में करने का साधन है अतएव भगवान इसकी प्रशंसा करते हैं । जैसे जो घोड़ा वशवर्ती नहीं बना है उसको अपने वश में करने के लिए उसको अपने अभिप्राय से परिचित कराना होता है अतएव सवार पहले कुछ उसकी गति का अनुवर्तन करता है । उस समय वह उसकी लगाम पकड़ कर ही चलता है । उसकी उपेक्षा नहीं करता है, उसी तरह साधक को मन की गति की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ॥२१॥

सांख्येन सर्वभावानां प्रतिलोमानुलोमतः । भवाप्ययावनुध्या येन्मनो यावत्प्रसीदति ॥२२॥

अन्वयः— सांख्येन सर्वभावानां प्रतिलोमानुलोमतः भवाप्ययौ अनुध्यायेत् यावत्मनः प्रसीदति ॥२२॥

अनुवाद— सांख्य शास्त्र के अनुसार प्रकृति से लेकर शरीर पर्यन्त जो सृष्टि का क्रम बतलाया गया उसके अनुसार

सृष्टि का चिन्तन करे और शरीर आदि का जिस क्रम से प्रकृति में लय होता है उस प्रकार से लय का चिन्तन करना चाहिए। इस तरह से तब तक चिन्तन करते रहना चाहिए जब तक कि मन शान्त न हो जाय॥२२॥

भावार्थ दीपिका

एवमीषद्वशीकृतस्य मनसोऽत्यन्तनैश्चल्योपायानाह-सांख्येनेति त्रिभिः। सांख्येन तत्त्वविवेकेन सर्वभावानां महदादिदेहान्तानामनुलोमतः प्रकृत्यादिक्रमेण भवं प्रतिलोमतः पृथिव्यादिक्रमेणाप्ययं चान्वनुध्यायेत्। प्रसीदति निश्चलं भवति॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार अल्पमात्रा में वशीकृत मन के अत्यन्त निश्चलता के उपायों को श्रीभगवान् **सांख्येन० इत्यादि** तीन श्लोकों से बतलाते हैं। सांख्यशास्त्रोक्त तत्त्वविवेक के अनुसार महत् तत्त्व से लेकर देहपर्यन्त सृष्टि के अनुसार सृष्टि का तथा देह आदि सभी पदार्थों का जिस क्रम से प्रकृति में लय होता है उस लय का तब तक चिन्तन करते रहना चाहिए जब तक कि मन निश्चल (शान्त) न हो जाय ॥२२॥

निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः। मनस्त्यजति दौरात्म्यं चिन्तितस्यानुचिन्तया ॥२३॥

अन्वयः— निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः चिन्तिस्य अनुचिन्तया मनः दौरात्म्यं त्यजति ॥२३॥

अनुवाद— जो मनुष्य संसार से विरक्त हो गया है तथा जिसको संसार के पदार्थों में दुःख की बुद्धि हो गयी है वह अपने गुरु के उपदेश को भली-भाँति समझकर बार-बार अपने स्वरूप के चिन्तन में ही संलग्न रहता है उसका मन जो शरीर अनात्मा शरीर आदि में आत्मबुद्धि बना रखा है वह शीघ्र ही अपनी चञ्चलता का परित्याग करके शान्त हो जाता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

ननूपायसहस्रेणापि मनो विषयाकारतां न त्यजति, किं भूयोभूय उपदेशेनेति चेत्तत्राह-निर्विण्णस्येति। ततश्चागमापायिषु तेष्ववधिभूतात्मदर्शनात्तदविवेकापन्नसंसारे निर्विण्णस्यातो विरक्तस्य ततश्चोक्तवेदिनो गुरूपदिष्टार्थालोचकस्य ततो गुरूपदिष्टस्यैव चिन्तितस्य पुनः पुनरनुचिन्तया दौरात्म्यं देहाद्यभिमानं त्यजति ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि हजारों उपायों को करने पर भी मन विषयाकरता का परित्याग नहीं करता है। बार-बार उपदेश करने से क्या लाभ है ?इस पर श्रीभगवान् **निर्विण्णस्य० इत्यादि** श्लोक कहते है। उत्पन्न होकर विनष्ट हो जाने वाले शरीरादि में आत्माभिमान के कारण इस अविवेकापन्न संसार में दुःख बुद्धि हो जाने के कारण संसार से विरक्त पुरुष अपने आचार्य के उपदेश को समझकर उसका बार-बार जब चिन्तन करता है तो उस समय उसका मन देहादि में होने वाली आत्मत्वबुद्धि का परित्याग कर देता है ॥२३॥

यमादिभिर्योगपथैरान्वीक्षिक्या च विद्यया। ममार्चोपासनाभिर्वा नान्यैर्योग्यं स्मरेन्मनः ॥२४॥

अन्वयः— यमादिभिः योगपथैः आन्वीक्षिक्या विद्यया च वा ममार्चोपासनादिभिः मन अन्यैयोग्यं न स्मरति ॥२४॥

अनुवाद— यम, नियम, आसन, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन आठ अङ्गो वाले योग मार्ग से, वस्तु तत्त्व का निरीक्षण परीक्षण करने वाली आत्मविद्या के द्वारा तथा मेरी प्रतिमा की उपासना करने से अर्थात् कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग से मन परमात्मा का ही चिन्तन करने लगता है किसी दूसरे वस्तु का चिन्तन नहीं करता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

किंच, यमादिभिर्योगमार्गैरान्वीक्षिक्या पदार्थद्वयशोधनेन ममार्चनध्यानादिभिर्वा । वाशब्देनास्य पक्षस्य स्वातन्त्र्यं दर्शयति-एतैरुपायैर्योग्यं परमात्मानं मनः स्मरेन्नान्यैरतोऽन्यत्र कुर्यादित्यर्थः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

यम, नियम आदि योग मार्ग अथवा वस्तुतत्व का चिन्तन परीक्षण करने वाली आत्मविद्या तथा मेरीप्रतिमा की पूजा अर्थात् कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग से उपासना करने से मन शान्त हो जाता है और परमात्मा से भिन्न किसी दूसरे पदार्थ का वह चिन्तन नहीं करता है ॥२४॥

यदि कुर्यात्प्रमादेन योगी कर्म विगर्हितम् । योगेनैव दहेदंहो नान्यत्तत्र कदाचन ॥२५॥

अन्वयः— यदि योगी प्रमादेन विगर्हितं कर्म कुर्यात् योगेन एव अहं देहेत् तत्र अन्यत् कदाचन न ॥२५॥

अनुवाद— यों तो योगी कोई भी निन्दित कर्म करता ही नहीं है, यदि उससे प्रमाद वशात् कोई पाप कर्म बन भी जाय तो वह उस पाप को योग के ही द्वारा जला दे और कोई भी कृछ्र चान्द्रायण आदि व्रत को वह न करें ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

ननु पापापत्तौ प्रायश्चित्तं कार्यमेव, तत्राह-यदीति । योगेन ज्ञानाभ्यासेनैव, एतच्च भक्तस्यापि नामकीर्तनाद्युपलक्षणार्थम्, नान्यत्कृच्छ्रादि ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि पाप हो जाने पर योगी को भी प्रायश्चित्त करना ही चाहिए । इस पर श्रीभगवान् **यदि योगी०** **इत्यादि** श्लोक कहते है । योगेनैव अर्थात् ज्ञानाभ्यास के ही द्वारा, यह भक्त के लिए भी नाम कीर्तन आदि के उपलक्षण के लिए है । वह पाप के प्रायश्चित्त रूप से चान्द्रायण कृछ्रादि न करे ॥२५॥

स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः । कर्मणां जात्यशुद्धानामनेन नियमः कृतः॥
गुणदोषविधानेन सङ्गानां त्याजनेच्छया ॥२६॥

अन्वयः— स्वे स्वे अधिकारे या निष्ठा सः गुणः परिकीर्तितः जात्यशुद्धानां कर्मणां अनेन नियमः कृतः, गुणदेर्विधानेन सङ्गानां त्याजनेच्छया ॥२६॥

अनुवाद— अपने-अपने अधिकार में जो निष्ठा है उसे ही गुण कहा गया है । कर्म तो जन्म से ही अशुद्ध हैं, अतएव गुण-दोष तथा विधि-निषेध का नियम इसलिए किया गया है कि किसी तरह विषयासक्ति छूट जाय। जहाँ तक हो सके प्रवृत्ति का संकोच ही करना चाहिए ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

ननु नित्यनैमित्तिकं कर्म सत्त्वशोधकत्वाद्गुणो हिंसादिकं त्वशुद्धिहेतुत्वाद्दोषः, तत्र च तन्निवर्तकत्वात्कृच्छ्रादिप्रायश्चित्तं गुण इति विधिप्रतिषेधाभ्यामुक्तत्वात्प्रायश्चित्तं विना योगेनैव कथं पापं दहेत्तत्राह-स्वे स्व इति सार्धेन । स एव गुणो नेतरः । तदुपपादयति-यस्माद्विधिप्रतिषेधाभ्यामनेन गुणदोषविधानेन कर्मणां नियमः संकोचः कृतः । कुत इत्यत आह-जात्या उत्पत्त्यैवाशुद्धानाम्। स च प्राप्तानां सङ्गानां त्याजनेच्छया । अयं भावः-पुरुषस्याशुद्धिर्नाम न प्रवृत्तेरन्यास्ति, स्वाभाविकप्रवृत्त्यैव तस्य मलिनत्वात्, न च सहसा सर्वतो निवृत्तिः कर्तुं शक्यते, अत इदं न कर्तव्यम्, इदमेव कर्तव्यम्, इत्येवं स्वाभाविकप्रवृत्तिसंकोचद्वारेण निवृत्तिरेव क्रियते, यथा च न प्रवृत्तिपरो वेदस्तथोत्तराध्याये वक्ष्यामः-'उत्पत्त्यैव हि कामेषु' इत्यादिना अतो योगिनः स्वाभाविकप्रवृत्त्यभावात्र प्रायश्चित्तादिविधिगोचरतेति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि नित्य नैमित्तिक आदि कर्म अन्त:करण को पवित्र बनाने वाले हैं अतएव गुण हैं, हिंसा इत्यादि तो अशुद्धि के कारण होने से दोष हैं। पापों का निवर्तक होने के कारण कृच्छ्र चान्द्रायणादि प्रायश्चित्त तो गुण हैं। अतएव विधि तथा निषेध के द्वारा उक्त होने के कारण प्रायश्चित्त किए बिना ज्ञानयोग उस पाप कर्म का संदाहक कैसे हो सकता है। इस के उत्तर में श्रीभगवान् **स्वे-स्वे इत्यादि** डेढ श्लोक को कहे हैं। वह निष्ठा ही गुण है उससे भिन्न नहीं इसी का प्रतिपादन करते हुए श्रीभगवान् कहते हैं चूकि विधि एवं प्रतिषेधशास्त्र के द्वारा गुण एवं दोष का विधान से कर्मों का संकोच किया गया है, क्योकिं कर्म तो जन्म से ही अशुद्ध हैं। संकोच तो प्राप्त आसक्ति का परित्याग कराने की इच्छा से किया गया है। कहने का अभिप्राय है कि पुरुष की अशुद्धि प्रवृत्ति से भिन्न नहीं है। स्वाभाविक प्रवृत्ति के द्वारा ही कर्म मलिन हैं। सहसा सबों से निवृत्ति नहीं हो सकती है। अतएव यह नहीं करना चाहिए और यही करना चाहिए इस प्रकार से स्वाभाविक प्रवृत्ति में सङ्कोच के द्वारा निवृति का ही विधान किया जाता है। वेद प्रवृत्ति परक नहीं है इस बात का प्रतिपादन हम इसके बाद वाले अध्याय में **उत्पत्यैव हि कामेषु० इत्यादि** श्लोक की व्याख्या में करेंगे। अतएव योगी की स्वाभाविक प्रवृत्ति का अभाव होने के कारण वे प्रायश्चित आदि विधियों के विषय नहीं हैं ॥२६॥

जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु । वेद दुःखात्मकान्कामान्परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥२७॥
ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः । जुषमाणश्च तान्कामान्दुःखोदर्कांश्च गर्हयन् ॥२८॥

अन्वयः— सर्वकर्मसु निर्विण्ण मत्कथासुजातश्रद्धः दुःखात्मकान् कामान् वेद परित्यागे अपि अनीश्वरः ततः प्रीतः श्रद्धालुः दृढनिश्चयः मां भजेत तान् दुःखोदर्कान् कामान् जुषमाणः गर्हयन् ॥२७-२८॥

अनुवाद— जो साधक सभी कर्मों से विरक्त हो गया हो, और उन कर्मों में दु:ख-बुद्धि रखता हो, मेरी लीला कथा में श्रद्धालु हो, यह भी जानता हो कि सभी भोग और भोगवासनाएँ दु:ख रूप हैं, किन्तु इतना सब जानकर भी जो उनके परित्याग में समर्थ न हो, उसे चाहिए कि उन भोगों को तो भोग ले किन्तु उन भोगों को सच्चे हृदय से दु:खात्मक समझे और मन ही मन उनकी निन्दा भी करे। इस दुविधा से छूटकारा पाने के लिए श्रद्धा और दृढनिश्चय से प्रेम पूर्वक मेरा भजन करे ॥२७-२८॥

भावार्थ दीपिका

भक्त्यधिकारिणो भक्तियोगमाह-जातश्रद्ध इति नवभिः। मत्कथासु जातश्रद्धोऽत एवान्येषु कर्मसूद्विग्नो न तु तत्फलेषु विरक्तः। तदाह-वेदेति। यद्यपि वेद तथापि तत्परित्यागेऽनीश्वरोऽशक्तः। एवंभूतो यः श्रद्धालुर्भक्त्यैव सर्वं भविष्यतीति दृढनिश्चयः संस्तस्तदनन्तरं मां प्रीत्या भजेत्। विषयांस्तु सेवमानोऽपि तेषु प्रीतिं न कुर्यादित्याह-गर्हयन्निति ॥२७-२८॥

भाव प्रकाशिका

भक्ति के अधिकारी के लिए **जातश्रद्धः इत्यादि** नव श्लोकों से भगवान् श्रीकृष्ण भक्ति का निरूपण करते हैं। मेरी लीला कथाओं में जिसकी श्रद्धा हो गयी हो अतएव दूसरे कर्मों से उद्विग्न रहने वाला किन्तु कर्मों के फलों से विरक्त नहीं रहने वाला **वेद दुःखात्मकान् इत्यादि** से इसी बात को कहा गया है। यद्यपि वह कर्मों के फलों दु:खात्मक जानता है किन्तु उसको त्याग नहीं सकता है। इस प्रकार का जो श्रद्धालु यह निश्चय कर लिए रहता है कि भक्ति से ही सबकुछ होगा अतएव वह प्रेम पूर्वक मेरा भजन करता है। यद्यपि वह विषयों का सेवन तो करता है किन्तु विषयों में उसकी प्रीति नहीं होती है। बल्कि वह उन विषयों की मन ही मन निन्दा भी करता है ॥२७-२८॥

प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो माऽसकृन्मुनेः । कामा हृदय्या नश्यन्ति सर्वे मयि हृदि स्थिते ॥२९॥

अन्वयः— प्रोक्तेन भक्तियोगेन असकृत् मा भजतः मुनेः मयि हृदि स्थिते सर्वे हृदयाः कामाः नश्यन्ति ॥२९॥

अनुवाद— मेरे द्वारा बतलाये गये भक्तियोग के द्वारा निरन्तर भजन करने वाले मुनि के हृदय में मैं स्वय आकर विराजमान हो जाता हूँ। मेरे हृदय में विराजमान होते ही उसके अन्तःकरण की सारी वासनाएँ अपने संस्कार के साथ विनष्ट हो जाती हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

कथं भजेत किं वा ततो भवति तदाह-प्रोक्तेनेति द्वाभ्याम्। 'श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम्' इत्यादिना तत्र तत्रोक्तेन मा मामसकृन्नित्यं भजतो हृदय्या हृद्गताः कामा नश्यन्ति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि वह अधिकारी किस प्रकार भजन करे और उससे क्या होता है ? इसपर भगवान् श्रीकृष्ण **प्रोक्तेन भक्तियोगेन० इत्यादि** दो श्लोकों को कहते हैं। **श्रद्धामृतकथायां मे शश्वन्मदनुकीर्तनम् इत्यादि** श्लोको से स्थान-स्थान पर कहे गये प्रकारसे वह भक्त जब निरन्तर भजन करता है तो उसके हृदय में विद्यमान सारी कानमाएँ नष्ट हो जाती है ॥२९॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि मयि दृष्टेखिलात्मनि ॥३०॥

अन्वयः— मयि अखिलात्मनि दृष्टे हृदयग्रंथिः भिद्यते सर्वसंशयाः छिद्यन्ते, अस्य कर्माणि च क्षीयन्ते॥३०॥

अनुवाद— जब वह भक्त मुझ सर्वात्मा का साक्षात्कार कर लेता है, तो उसके हृदय की सारी दुर्मोच ग्रन्थियाँ टूट जाती है, तथा उसके सारे संशय विनष्ट हो जाते है। उस भक्त के सारे कर्म भी विनष्ट हो जाते हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

हृदयमेव ग्रन्थिरहंकारस्तत्पूर्वकाश्च सर्वे संशया असंभावनादयः। कर्माण्यनारब्धफलानि संसारहेतुभूतानि च ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

हृदय रूपी ग्रन्थि अर्थात् अहङ्कार पूर्वक सभी असम्भावना आदि संशय विनष्ट हो जाते हैं। और उसके संसार के हेतुभूत सभी कर्मो का नाश हो जाता है ॥३०॥

तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः । न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥३१॥

अन्वयः— तस्मात् मदभक्तियुक्तस्य मदात्मनः योगिनः इह न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥३१॥

अनुवाद— अतएव मेरी भक्ति से युक्त जो योगी मेरी भक्ति में संलग्न रहता है उसका कल्याण ज्ञानयोग अथवा वैराग्य से नहीं होता है उसका सारा कल्याण मेरी भक्ति से ही हो जाता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं व्यवस्थयाधिकारत्रयमुक्तम्। तत्र च भक्तेरन्यनिरपेक्षत्वादन्यस्य च तत्सापेक्षत्वाद्भक्तियोग एव श्रेष्ठ इत्युपसंहरति-तस्मादिति त्रिभिः मदात्मनो मय्यात्मा चित्तं यस्य तस्य। श्रेयः श्रेयःसाधनम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् व्यवस्था पूर्वक तीन अधिकारों को बतलाये। उसमें भी भक्ति अन्य अधिकारों की अपेक्षा नहीं रखती है और अन्य अधिकारों को भक्ति की अपेक्षा होने के कारण भक्तियोग ही श्रेष्ठ है, इस बात का उपसंहार श्रीभगवान् **तस्मात्० इत्यादि** तीन श्लोकों से करते हैं। **मदात्मनः** अर्थात् जिसका चित्त मुझमें ही सदा लगा रहता है। **श्रेयः** अर्थात् कल्याण का साधन ॥३१॥

यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् । योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥३२॥
सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा । स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथंचिद्यदि वाञ्छति ॥३३॥

अन्वयः— यत् कर्मभिः यत् तपसा, यत् च ज्ञानवैराग्यतः योगेन, दानधर्मेण इतरैः श्रेयोभिः अपि यत् मद्भक्तः मद्भक्तियोगेन यदि वाञ्छति कथंचित् स्वर्गापवर्गं मद्धाम अञ्जसा लभते ॥३२-३३॥

अनुवाद— कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म और दूसरे कल्याण के साधनों से भी जो कुछ प्राप्त होता है, मेरा भक्त भक्तियोग के द्वारा वह सब कुछ अनायास ही प्राप्त कर लेता है। यदि वह चाहे तो भक्ति से ही स्वर्ग अपवर्ग (मोक्ष) तथा मेरे धाम को भी प्राप्त कर लेता है ॥३२-३३॥

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः-यत्कर्मभिरित्यादि। इतरैरपि तीर्थयात्राव्रतादिभिः। श्रेयःसाधनैर्यद्भाव्यं सत्त्वशुद्ध्यादि तत्सर्वमञ्जसा अनायासेनैव स्वर्गमपवर्गं मद्धाम वैकुण्ठं लभत एव। वाञ्छा तु नास्तीत्युक्तम्, यदि वाञ्छतीति ॥३२-३३॥

भाव प्रकाशिका

भक्ति सर्वश्रेष्ठ साधन है, उसका कारण **यत् कर्मभिः इत्यादि** श्लोक से श्रीभगवान् बतलाये हैं। इतरैरपि अर्थात् तीर्थ यात्रा व्रत इत्यादि से भी। कल्याण के साधनों से जो अन्तःकरण की शुद्धि आदि होती है वह सबकुछ अनायास ही स्वर्ग, मोक्ष तथा मेरे वैकुण्ठ आदि लोकों को भी मेरा भक्त प्राप्त कर लेता है। मेरे भक्त को कोई अभिलाषा ही नहीं होती है, किन्तु यदि वह चाहे तो सबकुछ प्राप्त कर लेता है ॥३२-३३॥

न किंचित्साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम । वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥३४॥

अन्वयः— ऐकान्तिनः साधवः धीराःमद्भक्ताः किञ्चित् वाञ्छन्ति अपि नहि मया दत्तम् कैवल्यम् अपुनर्भवम् अपि नहि वाञ्छन्ति ॥३४॥

अनुवाद— मेरे अनन्य प्रेमी, साधु स्वभाव वाले धैर्यवान मेरे भक्त, कुछ भी नहीं चाहते हैं, मेरे द्वारा कैवल्य तथा मोक्ष भी दिए जाने पर वे उसे नहीं लेना चाहते हैं ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुमाह-न किंचिदिति। धीरा धीमन्तो यतो मम एकान्तिनो मय्येव प्रीतियुक्ता अतो मया दत्तमपि न गृह्णन्ति। कि वक्तव्यं न वाञ्छन्तीत्यर्थः। अपुनर्भवमात्यन्तिकमपि कैवल्यम् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

कारण बतलाते हुए श्रीभगवान् **न किञ्चित् इत्यादि** श्लोक कहते हैं, बुद्धिमान मेरे अनन्य प्रेमी भक्त मुझसे ही प्रेम करते हैं अतएव मेरे द्वारा आत्यन्तिक मोक्ष भी प्रदान किए जाने पर नहीं लेना चाहते हैं यह क्या कहना है॥३४॥

नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम् । तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत् ॥३५॥

अन्वयः— परं अनल्पकम् पंर निःश्रेयसं नैरपेक्ष्य प्राहुः तस्मात् निराशिषः निरपेक्षस्य मे भक्तिःभवेत् ॥३५॥

अनुवाद— उद्धव सर्वश्रेष्ठ निःश्रेयस् तो निरपेक्षता को ही कहा गया है। अतएव निष्काम और निरपेक्ष को ही मेरी भक्ति प्राप्त होती है ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

तदुपपादयति-नैरपेक्ष्यमेव परमुत्कृष्टमनकल्पकं महन्निःश्रेयसं फलं तत्साधनं च प्राहुः। मे भक्तिर्निराशिषः प्रार्थनाशून्यस्य निरपेक्षस्य प्रार्थनाकारणभूतापेक्षारहितस्य पुंसो भवेत्। यद्वा, मे निरपेक्षस्य या भक्तिः सा निराशिषो भवेदित्यर्थः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का प्रतिपादन करते हुए श्रीभगवान् कहते हैं कि निरपेक्षता को ही सर्वश्रेष्ठ और महान फल और उसकी प्राप्ति का साधन कहा गया है । मेरा भक्त निष्काम और निरपेक्ष होता है । क्योंकि मेरे भक्तों को किसी वस्तु की अपेक्षा ही नहीं होती है । अथवा मेरे भक्त की जो भक्ति होती है वह निष्काम होती है ॥३५॥

न मय्येकान्तभक्तानां गुणदोषोद्भवा गुणाः । साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परमुपेयुषाम् ॥३६॥

अन्वयः— मयि एकान्तभक्तानां साधूनां समचित्तानां बुद्धेः परम् उपेयुषाम् गुणदोषोद्भवाः गुणाः न ॥३६॥

अनुवाद— जो मेरे अनन्य भक्त है समदर्शी महात्मा हैं तथा जो बुद्धि से अतीत परम तत्त्व को प्राप्त कर चुके हैं मेरे उन भक्तों का विधि और निषेध से होने वाले पुण्यों और पापों से कोई मतलब नहीं होता है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

अनेन प्रकारेण सिद्धानां न गुणदोषा इति । विरोधपरिहारमुपसंहरति-न मयीति । गुणदोषैर्विहितप्रतिषिद्धैरुद्भवो येषां ते गुणाः पुण्यपापादयः । साधूनां निरस्तरागादीनामतः समचित्तानामत एव बुद्धेः परमीश्वरं प्राप्तानाम् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

इसी तरह से सिद्ध हो गये भक्तों को पाप और पुण्य नहीं होते हैं । इस तरह से विरोध परिहार का उपसंहार करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण **न मयि इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । विहित एवं प्रतिषिद्धों से उत्पन्न होने वाले गुण (पुण्य पाप आदि) साधूनाम् अर्थात् राग एव द्वेष से रहित तथा समचित होने के कारण परमेश्वर को जिन सबों ने प्राप्त कर लिया है ॥३६॥

एवमेतान्मयादिष्टाननुतिष्ठन्ति मे पथः । क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद्ब्रह्म परमं विदुः ॥३७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥

अन्वयः— एवम् एतत् मयादिष्टान् येमे पथः अनुतिष्ठन्ति ते क्षेमं मत्स्थानं विन्दन्ति यत् परमं ब्रह्मविदुः ॥३७॥

अनुवाद— इस प्रकार से मेरे द्वारा उपदिष्ट ज्ञान, भक्ति एवं कर्ममार्ग का आश्रय जो लेते है वे मेरे परम कल्याण स्वरूप धाम को प्राप्त कर लेते हैं । क्योंकि वे परब्रह्म तत्त्व को जान लेते हैं ॥३७॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की श्रीभगवान् तथा उद्धव संवाद के अन्तर्गत बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

काम्यकर्मनिष्ठां निन्दिष्यन्नेतान्मुक्तिमार्गानुपसंहरति-एवमिति । मे पथो मत्प्राप्त्युपायान् येऽनुतिष्ठन्ति ते क्षेमं कालमायादिरहितं मम लोकं विन्दन्ति, यत्परमं ब्रह्म तच्च विदुः ।।३७।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थ दीपिका टीकायां विंशतितमोऽध्यायः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

काम्य कर्मों में होने वाली निष्ठा की निन्दा करने के लिए इस मुक्तिमार्ग का श्रीभगवान् उपसंहार **एवम्० इत्यादि** श्लोक से करते हैं । मेरी प्राप्ति के साधनभूत इन उपायों का जो लोग अनुष्ठान करते हैं वे लोग, काल तथा माया आदि से रहित मेरे लोक को प्राप्त करते हैं क्योंकि वे लोग परम ब्रह्म को जान लिए रहते हैं ।।३७।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के बीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२०।।

* * *

इक्कीसवाँ अध्याय

गुणदोष व्यवस्था का स्वरूप और रहस्य

श्रीभगवानुवाच

य एतान्मत्पथो हित्वा भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् । क्षुद्रान्कामांश्चलैः प्राणैर्जुषन्तः संसरन्ति ते ॥१॥

अन्वयः— य एतान् भक्तिज्ञानक्रियात्मकान् मत्पथः हित्वा चलैः प्राणैः क्षुद्रान् कामान् जुषन्तः ते संसरन्ति ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— उद्धव जो लोग मेरी प्राप्ति के साधन भक्ति, ज्ञान और कर्मयोग के मार्ग का परित्याग करके चञ्चल इन्द्रियों के द्वारा क्षुद्र भोगों को भोगते रहते हैं, वे लोग इस संसारचक्र में भटकते रहते हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

जयति स्वपरानन्दः परानन्दनृकेसरी । यत्कृपालवलेशेन श्रीधरः सत्कृति कृती । ईक्षन्तामिच्छया सन्तः क्षमन्तां मम साहसम् । मया हि स्वीयबोधाय कृतमेतन्न सर्वतः । एकविंशे क्रियाज्ञानभक्तिष्वनधिकारिणाम् । कामिनां द्रव्यदेशादिगुणदोषाः प्रपञ्चिताः । तदेवं गुणदोषव्यवस्थार्थं योगत्रयमुक्तं, तत्र ज्ञानभक्तिसिद्धानां न किंचिद्गुणदोषौ, साधकानां तु प्रथमतो निवृत्तिकर्मनिष्ठानां यथाशक्ति नित्यनैमित्तिकं कर्म सत्त्वशोधकत्वाद्गुणः, तदकरणं निषिद्धकरणं च तन्मलीमसकरणत्वाद्दोषः, तन्निवर्तकत्वाच्च प्रायश्चित्तं गुणः, विशुद्धसत्त्वानां तु ज्ञाननिष्ठानां ज्ञानाभ्यास एव सिद्धिहेतुत्वाद्गुणः, भक्तिनिष्ठानां पुनः श्रवणकीर्तनादिभक्तिरेव गुणः, तद्विरुद्धं सर्वमुभयेषां दोष इत्युक्तम् । इदानीं ये तु न सिद्धा नापि साधकाः किंतु केवलं काम्यकर्मप्रधानास्तेषां सकलगुणदोषान्प्रपञ्चयिष्यन्नादौ ताननतिबहिर्मुखान्निन्दति-य एतानिति । मत्पथो मदुक्तमार्गान् क्षुद्रांस्तुच्छाश्चलैरस्थिरैः प्राणैर्देहवायुभिरिन्द्रियैर्वा जुषन्तः सेवमाना भवन्ति ते संसरन्ति । निखिलगुणदोषभाक्त्वेन नानायोनीः प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

अपने भक्तों तथा दूसरे लोगों के आनन्द स्वरूप परमानन्दस्वरूप भगवान् नृसिंह की जय हो, जिनकी कृपा के लेशमात्र से कृती श्रीधरस्वामी सत्कृतिः सुन्दर कृतियों के निर्माता हो गये । सन्त महापुरुष इस व्याख्या को अपनी इच्छा के अनुसार अवलोकन करें और मैने इस व्याख्या का प्रणयन अपने ज्ञान के लिए किया है । इस इक्कीसवें अध्याय में कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग के अनधिकारियों जो विभिन्न कामनाओं से ग्रस्त हैं उनके लिए द्रव्य देश आदि तथा गुणों एवं दोषों का विस्तार से वर्णन किया गया है । इस तरह गुणों एवं दोषों की व्यवस्था के लिए तीन योगों का निरूपण किया जा चुका है । उनमें जो ज्ञानयोग एवं भक्तियोग को अपनाए हैं उन लोगों में कोई भी गुण अथवा दोष नहीं है । निवृत्तिकर्मनिष्ठ साधकों द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार नित्यनैमिमितिक कर्मों का अनुष्ठान उनके अन्तःकरण को शुद्ध बनाने होने के कारण गुण है। और उन कर्मों को नहीं करना अथवा निषिद्ध कर्मों को करना अन्तःकरण को मलीन बनाने के कारण दोष है । प्रायश्चित्त कर्म उन दोषों को दूर करने वाला है अतएव वह गुण है । जिन ज्ञान योग का अनुष्ठान करने वालों का अन्तःकरण शुद्ध है उन लोगों के लिए ज्ञान का अभ्यास ही सिद्धि का साधन होने के कारण गुण है । जो भक्तिनिष्ठ है उन लोगों के लिए तो मेरी कथाओं का श्रवण तथा मेरे नामों और गुणों का कीर्तन रूप भक्ति ही गुण है । उसके विरुद्ध सारी बातें दोनों प्रकार के लोगों के लिए दोष है । अब श्रीभगवान् यह बतला रहे हैं कि जो लोग न तो सिद्ध हैं और न साधक हैं प्रधान रूप से केवल काम्य कर्मों को ही करते हैं उन लोगों के समस्त गुणों एवं दोष का वर्णन करने की इच्छा से उन अत्यन्त बर्हिमुखों की निन्दा **य एतान् इत्यादि** श्लोक से करते हैं । मत्पथः अर्थात् मेरे द्वारा कहे मार्गों । चञ्चल इन्द्रियों अथवा प्राणों से क्षुद्र भोगों को भोगते रहते हैं वे लोग संसार चक्र में भटकते रहते हैं । सम्पूर्ण दोषों से युक्त अनेक योनियों में जाते हैं ॥१॥

स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः । विपर्ययस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः ॥२॥

अन्वयः— स्वे-स्वे अधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः विपर्यय; तु दोषः स्याद् उभयो एष निश्चयः ।।२।।

अनुवाद— अपने-अपने अधिकार के अनुसार धर्म में दृढ निष्ठा रखना ही गुण और इसके विपरीत अनधिकार चेष्टा करना दोष है । अर्थात् गुण एवं दोषों की व्यवस्था अधिकार के अनुसार ही होती है वस्तु के अनुसार नहीं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

ननु तैरेव कर्मभिः केचिद्गुणदोषभाजः केचिन्निति कुतो वैषम्यम्, न ह्यग्निना केचित्तप्यन्ते केचिन्नेति संभवति, तत्राह-स्वे स्व इति । अधिकारभेदेन कल्पितौ गुणदोषौ न वस्तुनिष्ठाविति भावः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि एक ही प्रकार के कर्मों के करने से कुछ कर्म गुण एवं दोष के पात्र होते हैं और कर्मों के करने से नहीं इस प्रकार की विषमता कैसे होती है । लोक में यह नहीं देखा जाता है कि एक ही अग्नि से कुछ लोग संतप्त होते हों और कुछ लोग नहीं संतप्त होते हैं । इस पर श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि अधिकार की भिन्नता से ही गुण दोष की कल्पना की जाती है वस्तु की भिन्नता के अनुसार नहीं ।।२।।

शुद्ध्यशुद्धी विधीयेते समानेष्वपि वस्तुषु । द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं गुणदोषौ शुभाशुभौ ॥३॥

अन्वयः— समानेष्वपि वस्तुषु शुद्ध्यशुद्धी गुणदोषौ शुभाशुभौ द्रव्यस्य विचिकित्सार्थं विधीयेते ।।३।।

अनुवाद— वस्तुओं के समान होने पर भी शुद्धि-अशुद्धि, गुण-दोष शुभ तथा अशुभ का जो विधान किया जाता है, उसका अभिप्राय है कि पदार्थ का ठीक-ठीक निरीक्षण और परीक्षण हो सके ।।३।।

भावार्थ दीपिका

तदाह-शुद्ध्यशुद्धी इति । विचिकित्सार्थं योग्यमयोग्यं वेति संदेहद्वारा स्वाभाविकप्रवृत्तिप्रतिबन्धार्थमित्यर्थः । तत्र शुद्यधशुद्धी योग्यत्वायोग्यत्वे । गुणदोषौ तन्निमित्तोपादेयत्वानुपादेयत्वे । शुभाशुभौ तन्निमित्तावर्थानर्थौ ।।३।।

भाव प्रकाशिका

उसी बात को शुद्ध्यशुद्धी इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् बतलाते हैं विचिकित्सार्थ अर्थात् यह योग्य है कि अयोग्य है इस प्रकार के संदेह द्वारा स्वाभाविक प्रवृत्ति पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए शुद्ध्यशुद्धी अर्थात् योगयत्व अयोग्यत्व, गुणदोषौ अर्थात् गुणदोष निमित्तक उपादेयत्व तथा अनुपादेयत्व, शुभाशुभौ अर्थात् शुभ एवं अशुभ के कारण अर्थकारी तथा अनर्थकारी ।।३।।

धर्मार्थं व्यवहारार्थं यात्रार्थमिति चानघ । दर्शितोऽयं मयाचारो धर्ममुद्वहतां धुरम् ॥४॥

अन्वयः— हे अनघ धर्मार्थं, व्यवहारार्थं, यात्रार्थमिति च मया अयम् आचारः धर्मम् धुरम् उद्वहताम् दर्शितः ।।४।।

अनुवाद— हे निष्पाप उद्धव ! जिसके द्वारा धर्म का सम्पादन कर सके, समाज का व्यवहार ठीक-ठीक चले अपने व्यक्तिगत जीवन में निर्वाह की भी सुविधा हो, इस आचार का उपदेश मैंने ही मनु के रूप में दिया है । यह उपदेश मैंने धर्म का भार ढोने वाले कर्म जड़ों के लिए दिया है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तत्र शुद्धशुद्धी धर्मार्थम् । शुद्धेन धर्मः, अशुद्धेनाधर्म इति । गुणदोषौ व्यवहारार्थम् । अशुद्धावपि राजादीनां व्यवहार-दर्शनाद्युपादेयं नान्यदिति । शुभाशुभौ यात्रार्थं दोषत्वेऽप्यापत्यु शरीरनिर्वाहमात्रोपादाने न पापमधिकोपादाने तु पापमिति मया मन्वादिरूपेण । धर्मरूपां धुरं भारम् कर्मजडानामित्यर्थः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

शुद्धि तथा अशुद्धि धर्म के लिए है। शुद्ध वस्तु से धर्म होता है, और अशुद्ध वस्तु से अधर्म होता है। गुण तथा दोषों ये दोनों व्यवहार के लिए हैं। वस्तु के अशुद्ध होने पर भी राजा आदि का व्यवहार उपादेय होता है। किन्तु दूसरे लोगों का नहीं। शुभाशुभौ शुभ और अशुभ अपने व्यक्तिगत जीवन में भी सुविधा के लिए शरीर मात्र के निर्वाह के लिए वस्तु को ग्रहण करने में कोई पाप नहीं है किन्तु अनावश्यक रूप से अधिक उपयोग करने पर पाप होता है, यह मैंने मनु रूप से कहा है। यह मैंने धर्म का भार ढोने वाले कर्म जड़ों के लिए कहा है॥४॥

भूम्यम्ब्वग्न्यनिलाकाशा भूतानां पञ्चधातवः। आब्रह्मस्थावरादीनां शारीरा आत्मसंयुताः ॥५॥

अन्वयः— भूम्यम्ब्वग्न्यनिलाकाशाः भूतानां पञ्चधातवः आब्रह्मस्थावरादीनां आत्मसंयुता शारीराः ॥५॥

अनुवाद— पृथिवी, जल, तेज, वायु आकाश ये पञ्चभूत ही ब्रह्माजी से लेकर पर्वत वृक्षपर्यन्त सभी प्राणियों के शरीर के मूल कारण है। इस तरह ये सब शरीर की दृष्टि से एक समान हैं। सबों की आत्मा भी एक ही है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

शुद्यधशुद्धी प्रपञ्चयिष्यन्वेदोक्तत्वेन तदभिनिवेशो मा भूदिति समानेष्वपि वस्तुष्विति यदुक्तं तत्प्रपञ्चयति-भूमीति त्रिभिः। भूतानां प्राणिनाम्। धारयन्तीति धातवः कारणानि। शारीराः शरीरारम्भकाः। देहतः साम्यमुक्तं जीवतोऽप्याह-आत्मसंयुता इति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

शुद्धि एवं अशुद्धि का विस्तार से वर्णन करने की इच्छा से, वेदोक्त होने से उनमें अभिनिवेश न हो जाय एतदर्थ वस्तुओं के एक समान होने पर भी जो कहा गया है उसी का विस्तार भूमि० इत्यादि तीन श्लोकों से करते हैं। भूतानाम् अर्थात् प्राणियों को धातवः अर्थात् कारण शरीर अर्थात् शरीर को उत्पन्न करने वाले देह की दृष्टि से समानता तो बतलायी ही गयी है आत्मा की दृष्टि से भी समानता बतलायी गयी है। इस बात को आत्मसंयुताः पद से कहा गया है ॥५॥

वेदेन नामरूपाणि विषमाणि समेष्वपि। धातुषूद्धव कल्प्यन्त एतेषां स्वार्थसिद्धये ॥६॥

अन्वयः— हे उद्धव समेषु अपि धातुषु एतेषां स्वार्थसिद्धये विषमाणि नामरूपाणि कल्प्यन्ते ॥६॥

अनुवाद— हे उद्धव यद्यपि सबों के शरीरों के पञ्चधातु समान हैं फिर भी वेदों ने इनके वर्ण और आश्रम के नाम और रूप को अलग-अलग इसलिए बना दिया है कि ये अपनी वासना मूलक प्रवृत्तियों को संकुचित करके अपने धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष इन चारों के पुरुषार्थों को सिद्ध कर सकें ॥६॥

भावार्थ दीपिका

धातुषु देहेषु। नामरूपाणि वर्णाश्रमादीनि। कल्पनायाः प्रयोजनमाह-एतेषां प्राणिनां स्वार्थसिद्धये प्रवृत्तिनियमद्वारा धर्मादिपुरुषार्थसिद्धये ॥६॥

भाव प्रकाशिका

धातुषु अर्थात् देहों में, नामरूपाणि अर्थात् वर्णाश्रम आदि। श्रीभगवान् कल्पना का प्रयोजन बतलाये कि प्राणियों के स्वार्थ की सिद्धि के लिए अर्थात् प्रवृत्ति के सङ्कोच क्रम से धर्म आदि चारो पुरुषार्थों की सिद्धि के लिए नाम और रूप की कल्पना की जाती हैं ॥६॥

देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम। गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम् ॥७॥

अन्वयः— हे सत्तम ! देशकालादिभावानां वस्तूनां मम कर्मणाम् नियमार्थमेव हि गुणदोषौ विधेयेते ॥७॥

अनुवाद— हे साधुश्रेष्ठ देश, काल, फल निमित्त, अधिकारी और धान्य आदि वस्तुओं के गुण और दोष का विधान भी मेरे द्वारा इसलिए किया जाता है कि कर्मों में लोगों की उच्छृंखल प्रवृत्ति न हो अर्थात् कहीं मर्यादा का भङ्ग न होने पाये ॥७॥

भावार्थ दीपिका

न केवलं देहेष्वेव, अपितु देशकालादिभावानामपि । आदिशब्देनानुपादेयानां फलनिमित्ताधिकारिणां ग्रहणम् । वस्तूनामुपादेयानां व्रीह्यादीनामपि । मम मया । नियमार्थं संकोचार्थमित्यर्थः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

केवल शरीरों में ही नहीं अपतु देश-काल आदि भाव पदार्थों में भी । यहाँ आदि पद से अनुपादेय फल, निमित्त और अधिकारियों का ग्रहण होता है । वस्तूनाम् अर्थात् उपादेय धान्य इत्यादि भी । मम अर्थात् मेरे द्वारा । नियमार्थम् अर्थात् सङ्कोच करने के लिए ॥७॥

अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत् । कृष्णसारोऽप्यसौवीरकीकटासंस्कृतेरिणम् ॥८॥

अन्वयः— देशानाम् अकृष्णसारः अब्रह्मण्यः अशुचिः, कृष्णसारः अपि असौवीरकीकट असंस्कृतेरिणम् ॥८॥

अनुवाद— देशों में वह देश अपवित्र है जहाँ कृष्ण सार मृग नहीं पाये जाते हों, और जिस देश के निवासी ब्राह्मण भक्त न हों, उन प्रदेशों का छोड़कर जहाँ सन्त पुरुष न रहते हों वह कीकट देश अपवित्र हैं । संस्कार रहित और उषर स्थान भी अपवित्र हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

एवं गुणदोषविषयं परिशोध्य तयोः शुद्ध्यशुद्धिमूलत्वाच्छुद्ध्यशुद्धी प्रपञ्चति-अकृष्णसार इत्यष्टभिः । देशानां मध्ये कृष्णहरिणरहितोऽशुचिः । तत्राप्यब्रह्मण्यो ब्राह्मणभक्तिशून्योऽत्यन्तमशुचिः । कृष्णसारोऽपि कृष्णेन मृगेण सारः श्रेष्ठो यः सोऽप्यसौवीरकीकटः सुवीराः सत्पुरुषास्तद्वान्सौवीरः कीकटोऽपि शुचिः । तदुक्तम्- 'स वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं यत्र लभ्यते' इति । तद्वर्जितो यः कीकटोऽङ्गवङ्गकलिङ्गादिः । असंस्कृतः संमार्जनादिशून्यो म्लेच्छबहुलो वा । ईरिणमूषरम् । एकवद्भावः। तदशुचि । तदन्यः शुचिरित्यर्थादुक्तं भवति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से गुण एवं दोष को संशोधित करके वे दोनों ही अशुद्धि के मूल होने के कारण शुद्धि तथा अशुद्धि को अकृष्णसार इत्यादि आठ श्लोकों द्वारा निरूपण करते हैं । कृष्णसार कृष्णमृग से जो सुवीरों सत्पुरुषों से सेवित सौवीर देश तथा कीकट प्रदेश भी प्रवित्र हैं । कहा भी गया है कि सवैपुण्यतमोदेशः सत्पात्रंयत्र लभ्यते । अर्थात् जहाँ पर सत्पात्र पुरुष रहते हैं वह देश पवित्र देश है । उससे भिन्न कीकट, अङ्ग-वङ्ग तथा कलिङ्ग देश अपवित्र है, सम्मार्जनादि रहित अथवा म्लेच्छ बहुल स्थान, ऊषर स्थान भी अपवित्र होता है । इन सबों से भिन्न स्थान पवित्र हैं ॥८॥

कर्मण्यो गुणवान्कालो द्रव्यतः स्वत एव वा । यतो निवर्तते कर्म स दोषोऽकर्मकः स्मृतः ॥९॥

अन्वयः— कर्मण्यः गुणवान् कालः द्रव्यतः स्वतः वा । यतो निवर्तते दोषः स अकर्मकः । स्मृतः ॥९॥

अनुवाद— काल वही शुद्ध है जिसमें कर्म करने योग्य सामग्री मिले । जिसमें कर्म करने योग्य सामग्री न मिले वह काल अशुद्ध है । आगन्तुक दोष के कारण अथवा स्वाभाविक दोष के कारण कर्म न हो सके वह काल अशुद्ध है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

कालस्य शुद्ध्यशुद्धी दर्शयति-कर्मण्य इति । द्रव्यतो द्रव्यसंपत्त्या स्वतो वा पूर्वाह्णादिर्यः कर्मण्यः कर्मार्हः स कालस्तस्मिन्कर्मणि गुणवान् । यतो यस्मिन्द्रव्यालाभेन वा राष्ट्रविप्लवादिना वा कर्म निवर्तते । यश्च सूतकादौ दशाहादिलक्षणोऽकर्मकः कर्मानर्हः स्मृतः स कालो दोषः, अशुद्ध इत्यर्थः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

कर्मण्य इत्यादि श्लोक के द्वारा काल की शुद्धि और अशुद्धि को दिखलाते हैं । द्रव्य की सम्पत्ति के कारण अथवा अपने आप पूर्वाह्ण काल शुद्ध है । क्योंकि वह काल कर्मों के करने योग्य होता है । अतएव कर्म करने योग्य काल गुणवान होता है । जिस काल में द्रव्य की प्राप्ति नहीं होने, अथवा राष्ट्र में होने वाले उपद्रवों आदि के कारण कर्म न हो सके वह काल अशुद्ध है । सूतक आदि दश दिनो में होने वाले कर्मों के कारण काल अशुद्ध होता है ।।९।।

द्रव्यस्य शुद्ध्यशुद्धी च द्रव्येण वचनेन च । संस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाथवा ।।१०।।

अन्वयः— द्रव्यस्य शुद्धि अशुद्धिः, द्रव्येण, वचनेन, संस्कारेण कालेन, महत्त्वतया अल्पतया वा भवति ।।१०।।

अनुवाद— द्रव्य का शुद्धि अथवा अशुद्धि द्रव्य के कारण, वचन के कारण, संस्कार के कारण काल के कारण द्रव्य की महत्ता को लेकर अथवा अल्पता के कारण होती हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

वस्तुशब्दोपात्तानां द्रव्याणां शुद्ध्यशुद्धीं दर्शयति-द्रव्यस्येति चतुर्भिः । द्रव्येण तोयादिना शुद्धिः, मूत्रादिना त्वशुद्धिः । वचनेन शुद्धमशुद्धं वेति संदेहे शुद्धमित्येवरूपेण ब्राह्मणवचनेन शुद्धिर्विपरीतेनाशुद्धिः । संस्कारेण प्रोक्षणादिना पुष्पादेः शुद्धिरवघ्राणादिना त्वशुद्धिः । कालेन दशाहादिना नवोदकादेः शुद्धि 'काले मेघोदकं ग्राह्यं वर्ज्यं तु त्र्यहमेव हि । अकाले दशरात्रं स्यात्ततः शुद्धिर्विधीयते।' विपरीतेनाशुद्धिः पर्युशितान्नादेरशुद्धिः । अन्त्यजाद्युपहतानां तडागाद्युदकानां महत्त्वाल्पत्वाभ्यां शुद्ध्यशुद्धी।।१०।।

भाव प्रकाशिका

वस्तु शब्द से कहे जाने वाले द्रव्यों की शुद्धाशुद्धी **द्रव्यस्य० इत्यादि** चार श्लोकों से श्रीभगवान् बतलाते हैं। द्रव्येण अर्थात् जल आदि से शुद्धि होती है और मूत्र इत्यादि से कोई वस्तु आदि अपवित्र होती है । वचन से शुद्ध है कि अशुद्ध है इस तरह का सन्देह होने पर शुद्ध है इस तरह के ब्राह्मण के वचन से शुद्धि हो जाती है अशुद्ध है, इस तरह के ब्राह्मण के वचन से अशुद्धि हो जाती है । प्रोक्षण आदि से पुष्पों की शुद्धि हो जाती है और सूंघ लेने से पुष्प आदि अशुद्ध हो जाते हैं । नवीन जल की दश दिन के बाद शुद्धि होती है । कहा भी गया है **काले० इत्यादि** अर्थात् वर्षा होते समय का जल ग्राह्य है, तीन दिन तक वह वर्ज्य है । अकाल में नवीन जल की दश रात बीत जाने पर शुद्धि होती है । इसके विपरीत जल अशुद्ध होता है । बासी अन्न अशुद्ध होता है । शूद्र के द्वारा दूषित किया गया बहुत अधिक जल शुद्ध होता है । अल्प जल अशुद्ध होता है ।।१०।।

शक्त्याऽशक्त्याथवा बुद्ध्या समृद्ध्या च यदात्मने । अघं कुर्वन्ति हि यथा देशावस्थानुसारतः ।।११।।

अन्वयः— शक्त्या अशक्त्या, अथवा बुद्ध्या, समृद्ध्या च यद्आत्मने यथा देश अवस्था अनुसारतः अघं कुर्वन्ति।।११।।

अनुवाद— शक्ति, अशक्ति, बुद्धि, वैभव के अनुसार भी पवित्रता और अपवित्रता की व्यवस्था होती है। उसमें भी स्थान और उपयोग करने वाले की आयु का भी विचार करते हुए ही अशुद्ध वस्तुओं के व्यवहार का दोष ठीक किया जाता है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

शक्त्याऽशक्त्या सूर्योपरागादिसूतकान्नादेः शक्तान्प्रत्यशुद्धिः, अशक्तान्प्रति शुद्धिः । बुद्ध्या पुत्रजननादौ दशाहाद्बहिर्ज्ञानेन

शुद्धिरन्तर्ज्ञानेनाशुद्धिः । समृद्धया जीर्णमलवद्वस्त्रादेः समृद्धं प्रत्यशुद्धिर्दरिद्रं प्रति शुद्धिः । तत्रापि विशेषमाह-यदिति । एते च द्रव्यवचनादयो द्रव्याशुद्धिद्वारा आत्मने यदघं कुर्वन्ति तद्देशावस्थानुसारत एव यथा यथावत्कुर्वन्ति न सर्वतः । तथा हि-निर्भय एव देशे कुर्वन्ति, न तु चौराद्याकुले । तथा रोगादिव्यक्तिरिक्तयुवाद्यवस्थायामेव कुर्वन्ति, न बाल्यरोगाद्यवस्थायामिति । तथा च स्मृतिः- 'देशं कालं तथात्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम् उपपत्तिमवस्थां च ज्ञात्वा शौचं प्रकल्पयेत् । इति ।।११।।

भाव प्रकाशिका

शक्ति और अशक्ति के द्वारा जैसे सूर्य ग्रहण आदि के कारण सूतक का अन्न शक्त पुरुष के लिए अशुद्ध होता है जबकि बाल, वृद्ध एवं आतुर पुरुषों के लिए शुद्ध होता है । बुद्धि के द्वारा जैसे पुत्रोत्पत्ति होने पर दश दिन से बाहर के ज्ञान से शुद्धि होती है तथा आन्तर ज्ञान से अशुद्ध होता है । समृद्धि के द्वारा जैसे पुराना तथा मैला वस्त्र समृद्ध पुरुष के लिए अशुद्ध होता है और दरिद्र के लिए पवित्र होता है । **यदात्मने० इत्यादि** से विशे बतलाते हैं। ये सभी द्रव्यवचन आदि द्रव्य की अशुद्धि द्वारा अपने लिए जो पाप करते हैं वह देश और अवस्था के अनुसार ही ठीक-ठीक करते है सबों के लिए नहीं । उदाहरणार्थ निर्भय स्थान में ही करते हैं चोर आदि से भरे स्थान में नहीं । रोग आदि से भिन्न युवावस्था में ही पाप करते है । बाल्यावस्था रोगी आदि की अवस्था में नहीं । स्मृतियाँ कहती भी हैं- देश, काल, आत्मा, द्रव्य द्रव्य के प्रयोजन, उपपत्ति तथा अवस्था को जानकर ही पावित्र्य की कल्पना करनी चाहिए ।।११।।

धान्यदार्वस्थितन्तूनां रसतैजसचर्मणाम् । कालवाय्वग्निमृत्तोयैः पार्थिवानां युतायुतैः ।।१२।।

अन्वयः— धान्य, दार्वस्थितन्तूनाम् रसतैजसचर्मणाम्, कालवाय्वग्निमृततोयैः पार्थिवानां युतायुतैः ।।१२।।

अनुवाद— अन्न काष्ठ, हाथीदाँत आदि हड्डी, सूत, मधु, नमक, तेल, घी आदि रस, सोना, पारा आदि तैजस पदार्थ, चमड़ा तथा घड़ा आदि मिट्टी के बने पदार्थ, समय पर अपने आप हवा लगने से, अग्नि में जलाने से, मिट्टी लगाने से, अथवा जल में धोने से शुद्ध हो जाने से, देश, काल और अवस्था के अनुसार कहीं जल मिट्टी आदि शोधक सामग्री के संयोग से शुद्धि करनी पड़ती है तो कहीं-कहीं एक-एक से भी शुद्धि हो जाती है।।१२।।

भावार्थ दीपिका

द्रव्यादिभिर्द्रव्यस्य शुद्धिरित्युक्तं तत्र वचनादिशुद्धिरेकरूपैव, द्रव्यतस्तु शुद्धिर्बहुरूपेति तां प्रपञ्चयतिधान्येतिं । दारु लौकिकं ग्रहचमसादि च । अस्थि गजदन्तादि । रसास्तैलघृतादयः । तैजसाः सुवर्णादयः । तेषां पार्थिवानां च रथ्याकर्दमघटेष्टकादीनां यथायथं कालादिभिः शुद्धिः । तत्रापि काकान्त्यजाद्युमघाततारतम्येन देशकालावस्थाद्यनुसारेणैव । एतैरन्यैश्च युतायुतैर्मिलितैः केवलैश्च । कालस्य पुनर्ग्रहणं युतत्वप्रदर्शनार्थम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

द्रव्य आदि से द्रव्य की शुद्धि होती है, इस बात को कहा जा चुका है । उसमें वचन आदि से शुद्धि एक प्रकार की होती है । द्रव्य से होने वाली शुद्धि अनेक प्रकार की होती है उसी का श्रीभगवान् विस्तार धान्य इत्यादि श्लोक से करते हैं । दारु शब्द से लौकिक ग्रह और चमस आदि को कहा गया है । अस्थि अर्थात् हाथी के दाँत की हड्डी। रस अर्थात् तेल, घी आदि तैजस सुवर्ण आदि उन सबों की और पार्थिव गली, कीचड़, घट तथा ईंट इत्यादि की तथा चमड़े की, शुद्धि क्रमशः काल वायु अग्नि, मृत्तिका तथा जल से शुद्धि होती है । उसमें भी कौआ, चाण्डाल आदि के द्वारा होने वाले तारतम्य से देश, काल तथा अवस्था आदि के अनुसार ही शुद्धि होती है । इन सबों से तथा दूसरी वस्तुओं से मिलित रूप से तथा एक-एक से शुद्धि होती है । काल का पुनः ग्रहण मिलितत्व के प्रदर्शनार्थ हुआ है । क्योंकि जल वायु आदि से शुद्धि होने में काल व्यापक रूप से विद्यमान रहता है ।।१२।।

अमेध्यलिप्तं यद्येन गन्धं लेपं व्यपोहति । भजते प्रकृतिं तस्य तच्छौचं तावदिष्यते ॥१३॥

अन्वयः— अमेध्यलिप्तं येन यद् गन्धं लेपं व्यापोहति प्रकृतिं भजते तस्य शौचं तावत् तत् इष्यते ॥१३॥

अनुवाद— अपवित्र पदार्थ का लेप लग जाने पर जिसके द्वारा वह गन्ध तथा लेप दूर हो जाता है, और वह वस्तु अपने स्वाभाविक अवस्था में आ जाती है उस वस्तु का वही पावित्र्य कहलाता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अस्पृश्यस्पर्शे शुद्धिमुक्त्वा लेपविषयेऽप्याह-यत्पीठपात्रवस्त्रादि येन तक्षणक्षाराम्लोदकादिना गन्धं लेपं च व्यपोहति त्यजति, स्वगतं च मलं त्यक्त्वा प्रकृतिं स्वमेव रूपं भजते, तस्य तच्छौचं शोधकम् । यावता च तक्षणादिना व्यपोहति तावत्प्रमाणं स्वरूपत आवृत्तितो वा तत्कर्तव्यमिष्यते ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

अस्पृश्य का स्पर्श हो जाने पर शुद्धि को बतलाकर लेप के भी विषय में शुद्धि को भी श्रीभगवान् वतलाये लकड़ी से बनी वस्तु की शुद्धि छीलने से, पात्र की शुद्धि नमक, खटाई तथा जल तीनों को मिलाकर घोने से, वस्त्र की शुद्धि जल से धाने से हो जाती है इस अमेध्य लेप की गन्ध और लेप दोनों दूर हो जाते हैं । और ये वस्तुएँ अपने स्वाभाविक रूप से आ जाते हैं, यहीं उन वस्तुओं की शुद्धि कहलाती है । काठ की वस्तु जितना छिलने से वह लेप और लेप का गन्ध दूर हो जाय उतना हीं उसको छिलना चाहिए यदि न गन्ध दूर हो तो दूसरे बार भी छिले ॥१३॥

स्नानदानतपोवस्थावीर्यसंस्कारकर्मभिः । मत्स्मृत्या चात्मनः शौचं शुद्धः कर्माचरेद्द्विजः ॥१४॥

अन्वयः— स्नान-दान तपोवस्था वीर्यसंस्कार कर्मभिः मत्स्मृत्या च आत्मनः शौच शुद्धः द्विजः कर्म आचरेत् ॥१४॥

अनुवाद— स्नान, दान, तपस्या, अवस्था (वीर्य) सामर्थ्य, संस्कार, कर्म और मेरे स्मरण से चित्त की शुद्धि होती है । इन सबों से शुद्ध होकर ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र विहित कर्मो का आचरण करे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

एवं तावद्द्रव्यशुद्धिरुक्ता, इदानीं कर्तृशुद्धिमाह-स्नानेति । अवस्था कौमारादिः । वीर्यं शक्तिः । संस्कार उपनयनादिः कर्मसन्ध्योपासनदीक्षादिलक्षणम् । आत्मनः साहंकारस्य कतुरितैः स्नानादिभिर्यथायथं तत्कार्यानुसारिणी शुद्धिः । इयं च शुद्धिर्न व्यवहारार्था किंतु विहित कर्मार्थेत्याह-शुद्ध इति । द्विज इत्युपलक्षणं शूद्रादेरपि ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से द्रव्य की शुद्धि का वर्णन किया गया अब **स्नान० इत्यादि** श्लोक से कर्ता की शुद्धि का वर्णन किया जा रहा हैं । अवस्था अर्थात् कुमरादि अवस्था, वीर्य अर्थात् सामर्थ्य, संस्कार अर्थात् उपनयन आदि संस्कार, कर्म अर्थात् संन्धयोपासन, दीक्षाग्रहण, आदि, अहङ्कार युक्त कर्ता आत्मा की स्नान आदि यथोचित्त रूप से भिन्न-भिन्न कार्यों के अनुसार शुद्धि होती है । यह शुद्धि व्यवहार के लिए नहीं बतलायी गयी है, अपितु विहित कर्मों को करने के लिए कही गयी है । द्विज शब्द शूद्र आदि का उपलक्षण है ॥१४॥

मन्त्रस्य च परिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्पणम् । धर्मः संपद्यते षड्भिरधर्मस्तु विपर्ययः ॥१५॥

अन्वयः— मन्त्रस्य परिज्ञानम्, कर्मशुद्धिर्मदर्पणम्, षड्भि, धर्म सम्पद्यते, अधर्मः तुविपर्ययः ॥१५॥

अनुवाद— गुरु मुख से सुनकर हृदयङ्गम कर लेने से मन की शुद्धि होती है । मुझे समर्पित कर देने से कर्म की शुद्धि होती है । इस तरह देश, काल, पदार्थ, कर्त्ता मन्त्र और कर्म इन छहों के शुद्ध होने पर धर्म होता है और अशुद्ध होने पर अधर्म होता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

मन्त्रशुद्धिमाह-सद्गुरुमुखाद्यथावत्परिज्ञानं मन्त्रस्य शुद्धिः । कर्मशुद्धिमाह-ईश्वरार्पणं कर्मणः शुद्धिः । धर्माद्यर्थं शुद्ध्यशुद्धी प्रपञ्चतः प्रदर्श्योपसंहरति-धर्म इति देशकालद्रव्यकर्तृमन्त्रकर्मभिः षड्भिः शुद्धैर्धर्मः संपद्यते । एतेषां यो विपर्ययः सोऽधर्मस्तद्धेतुरित्यर्थः ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

मन्त्र की शुद्धि कहते हैं गुरुमुख से सुनकर हृदयंगम कर लेने से मन्त्र शुद्ध होता है, श्रीभगवान् को समर्पित कर देने से कर्म की शुद्धि होती है । धर्म इत्यादि के लिए शुद्धि तथा अशुद्धि को विस्तार से बतलाकर इसका उपसंहार धर्म इत्यादि श्लोक के उत्तरार्द्ध से करते हैं । देश, काल, द्रव्य कर्ता, मन्त्र तथा कर्म इन छहों के शुद्ध होने पर धर्म होता है और अशुद्ध होने पर अशुद्ध होता है । अर्थात् इन छहों की अशुद्धि ही अधर्म के कारण है ।।१५।।

क्वचिद्गुणोऽपि दोषः स्याद्दोषोऽपि विधिना गुणः । गुणदोषार्थनियमस्तद्भिदामेव बाधते ।।१६।।

अन्वयः— क्वचित् गुणः अपि दोषः स्यात् विधिना दोषोऽपि गुणः गुण दोषार्थ नियमः तद्भिदामेव बाधते ।।१६।।

अनुवाद— कहीं पर तो शास्त्र विधि से गुण दोष बन जाता है और दोष गुण बन जाता है अतएव दोष और गुण का भेद इसीलिए कल्पित होने के कारण बाधित हो जाता है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

अयं चं गुणदोषविभागो न वास्तव इत्याह क्वचिदिति । आपदि प्रतिग्रहो गुणोऽप्यनापदि निषिद्धत्वाद्दोषः । परधर्मश्च परस्य गुणोऽपि स्वस्य दोषः । दोषोऽपि कुटुम्बत्यागादिर्विरक्तादेर्न दोषः, अपि तु विधिबलेन गुणः । एवं योऽयं गुणदोषयोरेकस्मिन्नर्थे नियमो, गुणदोषार्थं वा यो नियमो नियामकं शास्त्रं स तयोर्भेदमेव बाधते ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

यह गुण एवं दोष का विभाग वास्तविक नहीं है इस बात को श्रीभगवान् **क्वचित्० इत्यादि** श्लोक से कहे हैं । जैसे आपत्ति काल में प्रतिग्रह लेना गुण हैं किन्तु आपत्तिकाल के नहीं होने पर प्रतिग्रह को स्वीकार करना निषिद्ध होने के कारण दोष है । जैसे दूसरे का धर्म अपने लिए दोष होता है और दूसरे के लिए गुण होता है। परिवार का परित्याग करना दोष है किन्तु विरक्त के लिए परिवार का परित्याग गुण हैं क्योंकि विरक्त के लिए परिवार त्याग करने का शास्त्र विधान करता है । इस तरह से यह जो एक ही विषय में गुण एवं दोष का नियम है अथवा गुण एवं दोष का जो नियम है अथवा गुण एवं दोष के नियम का शास्त्र है वह गुण एवं दोष के भेद को ही बाधित करता है ।।१६।।

समानकर्माचरणं पतितानां न पातकम् । औत्पत्तिको गुणः सङ्गो न शयानः पतत्यधः ।।१७।।

अन्वयः— समान कर्माचरणम् पतितानां न पातकम् औपत्तिकः गुणः सङ्गः शयानः अधः शयानः न पतति ।।१७।।

अनुवाद— मदिरापान रूप काम का आचरण जो जाति अथवा कर्म से पतित हैं उनके पतन का कारण नहीं बनता है, जबकी वही कर्म जो पतित नहीं हैं उनके अधः पतन का कारण बन जाता है । इसी तरह स्त्री का सङ्ग करना **ऋतौ भार्याम् उपेयात् इत्यादि** विधान के अनुसार गृहस्थ के लिए पहले से ही स्वीकृत किए रहने के कारण गुण है जबकि संन्यासी के लिए महापाप है । जो पहले से ही नीचे सोया है वह कहाँ गिरेगा ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

दोषस्य क्वचिद्दोषत्वाभावे गुणत्वे चोदाहरणं दर्शयति-समानस्य तस्यैव कर्मणः सुरापानादेराचरणमपतितानां पतनहेतुरपि जात्या कर्मणा वा पतितानां पुनः पातकमधिकारभ्रंशकं न भवति, पूर्वमेव पतितत्वात् । अतोऽत्र दोषस्यापि दोषता नास्तीत्यर्थः।

तथा सङ्गोऽपि यो यतेर्दोष: स गृहस्थस्यौत्पत्तिक: पूर्वस्वीकृतो न दोष:, अपि तु गुण: । 'ऋतौ भार्यामुपेयात्' इत्यादिविधानात्। उभयत्र दृष्टान्त:-पूर्वमेवाध: शयानो यथा न पततीति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

दोष कहीं दोष न होकर गुण हो जाता है इसका उदाहरण समान कर्माचरणम् इत्यादि श्लोक से देते हैं। मदिरा पान आदि कर्म जाति अथवा कर्म से पतित पतितों के लिए पुन: पातक अथवा अधिकार भ्रंशक नहीं होता है क्योंकि वे तो पहले से ही पतित हैं किन्तु जो पतित नहीं है उसके लिए पतन का कारण बन जाता है । इसी तरह स्त्री का सङ्ग एक संन्यासी के लिए महान् पाप है किन्तु वही एक गृहस्थ के लिए स्वाभाविक रूप से पहले से स्वीकृत होने के कारण दोष नहीं अपितु गुण है । शास्त्र भी गृहस्थ के लिए ऋतुकाल में पत्नी गमन का विधान करता है ऋतौ भार्यामुपेयात् दोनों स्थानों में पहले से ही नीचे सोने वाला जैसे नहीं गिरता है, यह दृष्टान्त है ।।१७।।

यतो यतो निवर्तेत विमुच्येत ततस्तत: । एष धर्मो नृणां क्षेम: शोकमोहभयापह: ।।१८।।

अन्वय:— यतो यत: निवर्तेत तत: तत: विमुच्येत, एष: धर्म: नृणां क्षेम:, शोक मोहभयापह: ।।१८।।

अनुवाद— जिन-जिन दोषों और गुणों से मनुष्य का चित्त उपरत हो जाता है वह उन वस्तुओं के बन्धन से मुक्त हो जाता है । मनुष्यों के लिए यह निवृत्ति रूप धर्म ही परम कल्याण का साधन है, कयोंकि यही शोक मोह और भय को मिटाने वाला है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

अतो गुणदोषनियमविधीनां प्रवृत्तिसंकोचद्वारा निवृत्तावेव तात्पर्यमित्यभिप्रेत्याह-यतो यत इति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

अतएव गुण एवं दोष नियम विधियों का प्रवृत्ति संकोच द्वारा निवृत्ति मे ही तात्पर्य है इसी अभिप्राय से भगवान् श्रीकृष्ण ने **यतोयत: इत्यादि** श्लोक कहा है ।।१८।।

विषयेषु गुणाध्यासात्पुंस: सङ्गस्ततो भवेत् । सङ्गात्तत्र भवेत्काम: कामदेव कलिर्नृणाम् ।।१९।।

अन्वय:— विषयेषु गुणाध्यासात तत: पुंस: सङ्गो भवेत् सङ्गात् तत्र काम: भवेत् कामदेवतत: नृणाम् कलह:।।१९।।

अनुवाद— कहीं भी विषयों में गुण का आरोप हो जाने पर उसके प्रति आसक्ति हो जाती है, आसक्ति होने पर उसे अपने पास रखने की कामना होती है । और कामना की पूर्ति में किसी तरह बाधा पड़ने पर लोगों में कलह होने लगता है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

यथाश्रुतप्रवृत्तिपरतां वेदस्य निराकर्तुं प्रवृत्तिमार्गस्यानर्थहेतुतां दर्शयति-विषयेष्विति चतुर्भि: । सङ्ग आसक्ति: । तत्र तेषु विषयेषु । येन प्रतिहन्यते कामस्तेन सह कामादेव कलि: कलहो विवाद: ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

प्राय: सुना जाता है कि वेद प्रवृत्ति परक है । वेद की उस प्रवृत्ति परत्व का खण्डन करने के लिए प्रवृत्ति मार्ग अनर्थ का कारण है इस बात को भगवान् श्रीकृष्ण **विषयेषु इत्यादि** चार श्लोको को कहते हैं । सङ्ग अर्था आसक्ति। तत्र अर्थात् उन विषयों में जिसके द्वारा कामना की पूर्ति में बाधा होती है उसके साथ कामना के ही कारण विवाद होता है।।१९।।

कलेर्दुर्विषह: क्रोधस्तमस्तमनुवर्तते । तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम् ।।२०।।

अन्वय:— कलेर्दुविषह: क्रोध: तम् तम: अनुवर्तते, तमसा पुंस: व्यापिनी चेतना द्रुतम् ग्रस्यते ।।२०।।

अनुवाद— कलह से असह्य क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध के समय अज्ञान छा जाता है, हित अनहित का ज्ञान नहीं रह जाता है, इस अज्ञान से मनुष्य की कार्य अकार्य का निर्णय करने वाली बुद्धि शीघ्र ही लुप्त हो जाती है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

दुर्विषहस्तीव्रः । तमः संमोहः । तं क्रोधम् । चेतना कार्याकार्यस्मृतिः । द्रुतं शीघ्रम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

दुर्विषहः अर्थात् असह्य, तमः अर्थात् अज्ञान, तम् अर्थात् क्रोध को, चेतना अर्थात् कार्य एंव अकार्य की याद, द्रुतम् अर्थात् शीघ्र ॥२०॥

तया विरहितः साधो जन्तुः शून्याय कल्पते । ततोऽस्य स्वार्थविभ्रंशो मूर्च्छितस्य मृतस्य च ॥२१॥

अन्वयः— हे साधो तया विरहितः जन्तु शून्याय कल्पते ततः अस्य मूर्छितस्य मृतस्य च स्वार्थविभ्रंशः ॥२१॥

अनुवाद— हे साधु स्वभाव वाले उद्धवजी चेतना शक्ति के लुप्त हो जाने पर वह मनुष्य शून्य के समान अस्तित्वहीन हो जाता है । उस समय उसकी अवस्था मूर्छित अथवा मूर्दे के समान हो जाती है । फलतः उसका स्वार्थ और परमार्थ दोने विनष्ट हो जाता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

शून्याय कल्पते । असत्तुल्यो भवतीत्यर्थः । स्वार्थविभ्रंशः पुरुषार्थहानिः । मूर्च्छितस्य मृततुल्यस्य ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

शून्याय कल्पते अस्तित्व विहीन के समान हो जाता है । स्वार्थविभ्रंशः अर्थात् पुरुषार्थ हानि । मूर्छितस्य अर्थात् मरे हुए के समान ॥२१॥

विषयाभिनिवेशेन नात्मानं वेद नापरम् । वृक्षजीविकया जीवन्व्यर्थं भस्त्रेव यः श्वसन् ॥२२॥

अन्वयः— विषयाभिनिवेशेन वृक्षजीविकया जीवन् भस्त्रेव यः श्वसन् न आत्मानं वेद न अपरम् ॥२२॥

अनुवाद— विषयों का चिन्तन करते वह विषय रूप हो जाता है । उसका जीवन वृक्ष के समान जड़ हो जाता है । उसके शरीर में श्वास उसी तरह चलता रहता है जैसे लोहार की धौंकनी की हवा । उसे न तो अपना ज्ञान रहता है और न दूसरे का वह सर्वथा आत्म वञ्चित हो जाता है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तत्तुल्यत्वं प्रपञ्चयति-विषयेति । व्यर्थं वृक्षजीविकयैव यो जीवन्वर्तते स मूर्च्छिततुल्यः । अतएव यो भस्त्रेव श्वसन्वर्तते स मृततुल्यः । अतः स्वार्थनाश इत्यर्थः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

विषयाभिनिवेशेन० इत्यादि श्लोक से मृततुल्यत्व का विस्तार करते हैं जो व्यर्थ के वृक्ष के समान जड़ का जीवन जीता है । वह मूर्च्छित के समान है । अतएव जो लोहार की धौंकनी के समान श्वास लेता है अतएव मृततुल्य है । अतएव उसके चारो प्रकार के पुरुषार्थों की हानि हो जाती है ॥२२॥

फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचनं परम् । श्रेयोविवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम् ॥२३॥

अन्वयः— नृणाम् इयं फलश्रुतिः श्रेयः नः परम् रोचनम् श्रेयो विवक्षया प्रोक्तम् भैषज्यरोचनम् यथा ॥२३॥

अनुवाद— स्वर्गादि रूप फल की श्रुति मनुष्यों के लिए तत् तत् लोकों को परम पुरुषार्थ नहीं बतलाती है अपितु

बहिर्मुख पुरुषों के लिए अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा परम कल्याण मोक्ष की विवक्षा से ही कर्मों में रुचि उत्पन्न करने के लिए उस प्रकार का वर्णन करती है । जिस तरह बच्चों से औषधि पीने के लिए रोचक वाक्य कहे जाते है, उसी तरह ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

ननु प्रवृत्तस्य स्वर्गादिफलश्रवणात्कुतः स्वार्थविभ्रंशस्तत्राह-फलश्रुतिरिति । इयं फलश्रुतिर्न श्रेयः, परमपुरुषार्थपरा न भवतीत्यर्थः । किंतु बहिर्मुखानां नृणां मोक्षविवक्षयाऽवान्तरफलैः कर्मसु रुच्युत्पादनमात्रम् । यथा भैषज्ये औषधे रोचनं रुच्युत्पादनम् । तथा हि- 'पिब निम्बं प्रदास्यामि खलु ते खण्डलड्डुकान् । पित्रैवमुक्तः पिबति न फलं तावदेव तु ।' (तथा मातृवाक्यं च- 'शिखा ते वर्धते वत्स गुडूचीं श्रद्धया पिब' इति । न फलं तावदेव तु किंत्वारोग्यम्) ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि प्रवृत्ति मार्ग में प्रवृत्त पुरुष को स्वर्गादि । लोक की प्राप्ति रूप फल को श्रुति बतलाती हैं उससे चतुर्विध पुरुषार्थ की हानि कैसे कहा जा सकता है ? इस पर भगवान् श्रीकृष्ण **फलश्रुति० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। अर्थात् स्वर्गादि रूप फलश्रुति का श्रवण परम पुरुषार्थ रूप नहीं हो सकती है, किन्तु बर्हिमुख लोगों को मोक्ष की विवक्षा से दूसरे फलों से कर्मों में रुचि उत्पन्न करने के लिए फलश्रुति श्रावण है । उसी तरह जिस तरह औषधि पानमें रुचि उत्पन्न करने के लिए बच्चों को रोचक वाक्य कहा जाता है । उदाहरणार्थ बच्चे से पिता कहते हैं **पिब निम्बं प्रदास्यामि खलुते खण्लड्डुकान्** । अर्थात् यह नीम से बनी औषधि को पीलों मैं तुमको लड्डू दूँगा । पिता के इस तरह कहने पर भी जब बच्चा औषधि नहीं पीता है तो माँ कहती है शिखा ते वर्धते वत्स गूडूचीं श्रद्धयापिव । अर्थात् बच्चे गिलोय का रस श्रद्धा पूर्वक पिया करो इससे तुम्हारी शिखा बड़ी हो जायेगी । औषधि पीने का फल शिखा का बढ़ना मात्र नहीं है अपितु आरोग्य की प्राप्ति उसका फल है ॥२३॥

उत्पत्त्यैव हि कामेषु प्राणेषु स्वजनेषु च । आसक्तमनसो मर्त्या आत्मनोऽनर्थहेतुषु ॥२४॥

अन्वयः— मर्त्याः कामेषु प्राणेषु स्वजनेषु च आत्मनोऽनर्थहेतुषु उत्पत्त्यैव आसक्त मनसः ।२४॥

अनुवाद— निश्चित रूप से मनुष्य भोगों में प्राणों में अपने सगे संबन्धियों में जन्म से ही आसक्त होते हैं, और ये सभी अनर्थ के कारण है । इससे आत्मोन्नति में बाधा होती है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

ननु कर्मकाण्डे मोक्षस्य नामापि न श्रूयते, कुत एवं व्याख्यायते यथाश्रुतस्याघटनादित्याह-उत्पत्त्येति द्वाभ्याम् । उत्पत्त्या स्वभावत एव कामेषु पश्वादिषु प्राणेष्वायुरिन्द्रियबलवीर्यादिषु । स्वजनेषु पुत्रादिषु । अनर्थहेतुषु परिपाकतो दुःखहेतुषु ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि कर्मकाण्ड में तो मोक्ष का नाम भी नही आता है अतएव आप निवृत्ति परक रूप से व्याख्या कैसे करते हैं ? यह तो यथाश्रुत के अनुसार नहीं है । इस पर श्रीभगवान् **उत्पत्त्याः इत्यादि** दो श्लोकों को कहते हैं । **उत्पत्त्या** अर्थात् स्वभाव से ही कामेषु अर्थात् पशु आदि में, प्राणेषु अर्थात् आयु इन्द्रिय, बल वीर्यादि में स्वजनेषु अर्थात् पुत्रादिकों में, जिन सबों का परिणाम दुःख में ही होता है उन सबों में मन से आसक्त होते हैं ॥२४॥

न तानविदुषः स्वार्थं भ्राम्यतो वृजिनाध्वनि । कथं युञ्ज्यात्पुनस्तेषु तांस्तमो विशतो बुधः ॥२५॥

अन्वयः— स्वार्थम् अविदुषः तान् न तान् भ्राम्यतः ततः तमो यानि विशतः तान् बुधः कथं पुनः तेषु युञ्ज्यात् ॥२५॥

अनुवाद— जो लोग अपने परम पुरुषार्थ को नहीं जानते हैं अतएव वेदों में जो स्वर्गादि का वर्णन मिलता है उसे शिर झुकाकर ज्यों के त्यों मान लेते हैं, इस प्रकार के काममार्ग में देवादि योनियों में भटकते रहते हैं । और उसके

बाद वृक्षादि योनियों में प्रवेश कर जाते हैं । उन पशुओं को तथा आयु इन्द्रियादि कामना वाले लोगों को कोई भी विज्ञ पुरुष अथवा वेद प्रवृत्ति मार्ग में क्यों लगायेगा ?॥२५॥

भावार्थ दीपिका

अतस्तान्स्वार्थं परमसुखमविदुषः । अतो नतान् प्रह्वीभूतान् । वेदो यद्बोधयिष्यति तदेव श्रेय इति विश्वसितानित्यर्थः। तानेवंभूतान्वृजिनाध्वनि कामवर्त्मनि देवादियोनिषु भ्राम्यतः । ततः पुनस्तमो वृक्षादियोनि विशतः । पशुकाम इति आयुरिन्द्रिय दिकाम इति च पुत्रादिकाम इति च कथं पुनस्तेष्वेन कामेषु स्वयं बुधो वेदो युञ्ज्यात्प्रवर्तयेत्, तथा सति अनाप्तः स्यादिति भावः॥२५॥

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों को परम सुख रूपी अपने स्वार्थ का ज्ञान नहीं है अतएव वेदों में जैसा मिलता है उसी को शिर झुका कर स्वीकार कर लेते हैं । वेद जो बतलाता है वही श्रेय है इस तरह से जो विश्वस्त हैं इस तरह के जीव इस काम मार्ग के देवादि योनियों में भटकते रहते हैं ओर फिर वे वृक्षादि योनियों में प्रवेश कर जाते हैं । वे पशु आदि, आयु तथा इन्द्रियों आदि की कामना में तथा पुत्रादि की कामना में आसक्त रहते हैं ऐसे लोगों को वेद अथवा विद्वान पुरुष काममार्ग में क्यों लगायेंगे, ऐसा करके तो वे अनाप्त हो जायेंगे ॥२५॥

एवं व्यवसितं केचिदविज्ञाय कुबुद्धयः । फलश्रुतिं कुसुमितां न वेदज्ञा वदन्ति हि ॥२६॥

अन्वयः— केचित् कुबुद्धयः एवं व्यवसितं अविज्ञाय कुसुमितां फलश्रुति वेदज्ञाः न वदन्ति ।।२६।।

अनुवाद— कुछ दुर्बुद्धि लोग वेदों के इस अभिप्राय को नहीं समझ पाने के कारण कर्मासक्तिवशात् पुष्पों के समान स्वर्गादि लोकों का वर्णन देखते हैं और उनको ही सर्वश्रेष्ठ फल मानकर उसी में भटक जाते हैं, किन्तु वेदज्ञ पुरुष श्रुतियों का तात्पर्य इस प्रकार का नहीं मानते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

कथं तर्हि कर्म मीमांसकाः फलपरतां वदन्ति, तत्राह-एवमिति । व्यवसितं वेदस्याभिप्रायम् । कुसुमितामवान्तरफलप्ररोचनया रमणीयां परमफलश्रुतिं वदन्ति । कुतस्ते कुबुद्धयस्तदाह-हि यस्माद्वेदज्ञा व्यासादयस्तथा न वदन्तीति ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि तो फिर कर्म मीमांसक विद्वान् वेद को फल परक कैसे बतलाता है । इस पर श्रीभगवान् एवं व्यवसितः इत्यादि श्लोक कहते हैं । व्यवसितम् अर्थात् वेद का अभिप्राय । कुसुमिताम् अर्थात् दूसरे फल की प्ररोचना द्वारा मनोहर श्रेष्ठ फलश्रुति को वदन्ति अर्थात् बतलाते हैं । अब प्रश्न होता है कि कर्म मीमांसक कुबुद्धि क्यों हैं ? तो इसका उत्तर है कि वेदवेत्ता पुरुष महर्षि व्यास आदि वैसा नहीं बतलाते हैं ॥२६॥

कामिनः कृपणा लुब्धाः पुष्पेषु फलबुद्धयः । अग्निमुग्धा धूमतान्ताः स्वं लोकं न विदन्ति ते॥२७॥

अन्वयः— कामिनः कृपणाः लुब्धाः पुष्पेषु फलबुद्धय, अग्निमुग्धाः धूमतान्ताः ते स्वं लोकं न विदन्ति ।।२७।।

अनुवाद— विषय वासनाओं में फसे हुए दीन-हीन रङ्ग-विरङ्गे पुष्पों के समान स्वर्गादि लोकों को ही सब कुछ मान लेते हैं । अग्नि के द्वारा सिद्ध होने वाले यज्ञयागादि कर्मों में ही मुग्ध हो जाते हैं । अन्त में उन्हें देवलोक पितृलोक की ही प्राप्ति होती है । उन लोगों को अपने धाम का ज्ञान नहीं होता है ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

कुबुद्धितां प्रपञ्चयति-कामिन इत्यष्टभिः । कामित्वात्कृपणास्ततो लुब्धास्तृष्णाकुला अतः पुष्पेष्वान्तरफलेषु परमफलबुद्धयोऽत एवाग्निमुग्धा अग्निसाध्यकर्माभिनिवेशेन लुप्तविवेकास्ततश्च धूमवान्ता धूमता धूममार्गोऽन्ते येषां ते । स्वं लोकमात्मतत्त्वम् ।

तथा च श्रुतिः- 'कश्चिद्ध वा अस्माल्लोकात् प्रेत्य आत्मानं वेद अयमहमस्मीति । कश्चित्स्वं लोकं न प्रतिजानाति । अग्निमुग्धो हैवधूमतान्तः ।' इति ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

कामिन: इत्यादि आठ श्लोकों से कर्म मीमांसकों दुर्बद्धिता का ही वर्णन करते हैं । कामना युक्त होने के कारण कृपण होने से वे लालची वे होते हैं । अतएव यही कारण है कि पुष्पों के समान अवान्तर फल को ही सर्वश्रेष्ठ फल समझ लेते हैं । अग्नि के द्वारा किए जाने वाले यज्ञ यागादि कर्मों में अभिनिविष्ट होने के कारण उनका विवेक नष्ट हो जाता है । अन्त में उन लोगों को धूमादि मार्ग की ही प्राप्ति होती है । वे आत्मतत्त्व को नहीं जान पाते हैं । श्रुति भी कहती है कोई ही इस लोक से मरकर आत्मा तत्त्व को जान पाते हैं कि मैं यह हूँ । कोई तो न तो आत्मा को जानते हैं और न अपने लोक को ही जान पाते हैं । वे अग्नि साध्य धूमादि मार्ग को ही प्राप्त करते हैं ।।२७।।

न ते मामङ्ग जानन्ति हृदिस्थं य इदं यतः । उक्थशस्त्रा ह्यसुतृपो यथा नीहारचक्षुषः ।।२८।।

अन्वयः— उक्थशस्त्र ही अशुतृपः नीहार चक्षुषः यथा । हे अङ्ग ते हृदिस्थं मां न जानन्ति य इदं यतः ।।२८।।

अनुवाद— उनके पास केवल कर्म की साधना होती है, जिसका फल केवल इन्द्रियों की तृप्ति होती हैं। उनकी आँखें धुंधली हो गयी हैं । यही कारण है कि वे अपने हृदय में विद्यमान परमात्मा जो जगत के रूप में हैं तथा जिनसे इस जगत् की सृष्टि आदि होती है नहीं जान पाते हैं ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

कोऽसौ स्वलोकस्तमाह-हृदिस्थमात्मानं मां स्वलोकम् । ननु हृदिस्थमहंकारास्पदं जानन्त्येव, सत्यम्, परमात्मानं तु न जानन्तीत्याह-य इदं यद्व्यतिरिक्तं जगन्नास्ति । कुतः । यत इदं जगज्जातम् । तं कुतो न जानन्ति । हि यस्मात्, उक्थं कार्मैव शस्त्रं शंस्यं कथनीयं पशुहिंसासाधनं वा येषां ते । अतः केवलमसुतृपः प्राणतर्पणपराः । नीहारं तमस्तेन व्याप्तानि चक्षूंषि येषां ते यथा संनिहितमपि न जानन्ति तद्वत् । तथा च श्रुतिः- 'न तं विदाथ य इमा जजानाऽन्यद्युष्माकमन्तरं बभूव । नीहारेण प्रावृत्ता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ।' इति ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि अपना लोक कौन है ? हृदय में विद्यमान मुझ स्वलोक को । यदि कहें कि वे हृदय में विद्यमान अहंकारास्पद जीव को जानते ही हैं । यह कहना तो ठीक है किन्तु आत्मा के भीतर विद्यमान परमात्मा को नहीं जानते हैं । इस बात को **यइदं यतः** से कहा गया इसका अर्थ है कि परमात्मा से भिन्न जगत नहीं है । परमात्मा से ही यह जगत् उत्पन्न है । उस परमात्मा को कर्म मीमांसक इसलिए नहीं जानते हैं कि उक्थम् अर्थात् कर्म ही उनका प्रशंसनीय पशुओं की हिंसा का साधन है । अतएव केवल असुतृप् अपने प्राणों को परिपुष्ट बनाते हैं । अज्ञानान्धकार से उनके नेत्र व्याप्त है अतएव वे अपने सन्निकट में विद्यमान परमात्मा को नहीं जान पाते हैं । श्रुति भी कहती है- **न तं विदाथ० इत्यादि** अर्थात् आपलोग ईश्वर को भी नहीं जानते जिस परमात्मा ने सम्पूर्ण प्रजाओं को जन्म दिया। देह आदि पोषण के कारण आपलोगों की आँखे धूंधली हो गयी है । तुमलोग अज्ञान के कारण तर्कों के आधार पर कर्मोपदेश करते हो ।।२८।।

ते मे मतमविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः । हिंसायां यदि रागः स्वाद्यज्ञ एव न चोदना ।।२९।।

अन्वयः— हिंसायां यदि रागः स्यात् ! यज्ञ एव न चोदना ते मे परोक्षम् मतम् अविज्ञाय विषयात्मकाः ।।२८।।

अनुवाद— उन कर्म मीमांसकों का यदि हिंसा और उसके फल मांस भक्षण में ही राग हो, उसको यदि वे नहीं छोड़

सकें तो केवल यज्ञ में ही हिंसा करनी चाहिए। यह परिसंख्या विधि सन्ध्या वन्दनादि के समान अपूर्व विधि नहीं है। इस प्रकार मेरे परोक्ष अभिप्राय को नहीं जानकर वे विषयलोलुप पुरुष हिंसा से खिलवाड़ करते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

वेदतात्पर्याज्ञानाच्चान्यान्यजन्तीत्याह–ते परोक्षमस्फुटं मे मतमविज्ञाय देवतादीन् यजन्त इत्युत्तरेणान्वयः। स्वमतमेवाह–हिंसायां मांसभक्षणार्थं तत्फलार्थं च यदि राग; स्यात्तर्हि यज्ञ एवेत्यभ्यनुज्ञाद्वारा परिसंख्येयं न त्वावश्यकत्वेन चोदनेत्येवंरूपम्। यद्यपि नित्यनैमित्तिकयोः कामविशेषानुबन्धो नास्ति तथापि 'कर्मणा पितृलोकः' इति श्रुतेः सामान्यतः पितृलोककामनास्त्येव। अन्तःकरणशुद्धिकामना चेति भावः। तदुक्तम्– 'नाकामस्य क्रिया काचिद्दृश्यते चेह कर्हिचित्। यद्यद्धि कुरुते जन्तुस्तत्तत्कामस्य चेष्टितम्।' इति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

वेद के तात्पर्य को नहीं जानने के कारण वे कर्ममीमांसक देवताओं पितरों आदि का यजन करते हैं इस बात को श्रीभगवान् **ते मे० इत्यादि** श्लोक से कहे हैं। श्लोक का अर्थ है कि वे कर्म मींमासक मेरे परोक्ष मत को नहीं जानने के कारण देवता आदि का यजन करते हैं। अपने मत को भगवान् ने बतलाया कि यदि हिंसा में ही राग हो, उसे वे नहीं त्याग सकते हों तो कर्म मीमांसक यज्ञ में ही हिंसा और उसके फल मांस भक्षण करें यह परिसंख्या विधि है संन्ध्या वन्दनादि के समान अपूर्व विधि नहीं है। यद्यपि नित्य नैमित्तिक कर्मो का कामना विशेष के साथ संबन्ध नहीं है। फिर भी **कर्मणा पितृलोकः** इस श्रुति के अनुसार सामान्यतः पितृलोक कामना तो है ही। और अन्तःकरण की शुद्धि की भी कामना है। कहा भी गया है बिना किसी कामना के कोई भी किसी क्रिया को नहीं करता है। प्राणी जो कुछ भी करता है वह काम जन्य ही चेष्टा है ॥२९॥

हिंसाविहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया। यजन्ते देवता यज्ञैः पितृभूतपतीन्खलाः ॥३०॥

अन्वयः— हिंसाविहाराः हि खलाः अलब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया यज्ञैः देवताः पितृभूतपतीन् यजन्ते ॥३०॥

अनुवाद— वे विषय लोलुप पुरुष हिंसा का खिलवाड़ खेलते हैं, दुष्टतावश अपनी इन्द्रियों की तृप्ति के लिए बध किए हुए पशुओं के मांस से यज्ञ करके देवता पितर तथा भूत पतियों के यजन का ढोंग करते हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

अज्ञत्वादेव हिंसया विहारः क्रीडा येषां ते ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अज्ञानी होने के ही कारण वे हिंसा का खिलवाड़ करते हैं ॥३०॥

स्वप्नोपमममुं लोकमसन्तं श्रवणप्रियम्। आशिषो हृदि संकल्प्य त्यजन्त्यर्थान्यथा वणिक् ॥३१॥

अन्वयः— स्वप्नोपमम् अमुं लोकम् असन्तश्रवण प्रियम् आशिषः हृदि सङ्कल्प्य वणिक् यथा अर्थान् त्यजन्ति॥३१॥

अनुवाद— स्वर्ग आदि परलोक स्वप्न के समान होने से वस्तुतः असत् हैं केवल उन लोकों की बातें सुनने में बहुत मीठी प्रतीत होती हैं। सकाम पुरुष वहाँ के भोगों के लिए अपने मन में न जाने कितना सङ्कल्प कर लेते हैं। जिस तरह व्यापारी अधिक लाभ की आशा में अपना मूल धन भी गवाँ बैठते हैं उसी प्रकार वे सकाम पुरुष यज्ञों द्वारा अपने धन का नाश करते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

किंच, तेऽतिमन्दबुद्धय इत्याह-स्वप्नोपममिति। अमुं परलोकम्। आशिषश्चास्मिन् लोके सङ्कल्प्य न तु निश्चित्य,

विघ्नबाहुल्यात् । त्यजन्ति कर्मसु विनियोजयन्ति । यथा कश्चिद्वणिक् दुस्तरसमुद्रादिलङ्घनेन बहुधनार्जनेच्छया सिद्धं धनं त्यजन्नुभयभ्रष्टो भवति तद्वदित्यर्थः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

स्वप्नोपमम्० इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् बतलाते हैं कि वे अत्यन्त मन्द बुद्धि वाले होते हैं । अमुम् अर्थात् परलोक, वे इस लोक में हीं सुख भोगों का सङ्कल्प करके न कि निश्चित करके, विघ्नों की अधिकता के कारण, त्यजन्ति अर्थात् यज्ञादि कर्मों में विनिवेश करते हैं । जिस तरह कोई व्यापारी कठिनाई से पार किए जाने वाले समुद्र को बहुत अधिक धन कमाने की इच्छा से पार करके अपने मूल धन को भी गँवा देते हैं उसी तरह वे सकाम पुरुष यज्ञों द्वारा अपने धन का नाश करते हैं ।।३१।।

रजःसत्त्वतमोनिष्ठा रजःसत्त्वतमोजुषः । उपासते इन्द्रमुख्यान्देवादीन्न तथैव माम् ।।३२।।

अन्वयः— रजः सत्त्व तमोजुषः रजः सत्त्वतमोनिष्ठाः इन्द्रमुख्यान् देवादीन् यजन्ते तथैव माम् न ।।३२।।

अनुवाद— रजोगुण सत्त्वगुण और तमोगुण का सेवन करते हैं अतएव वे रजोगुणी सत्त्वगुणी और तमोगुणी प्रकृति के होने के कारण रजोगुणी, सत्त्वगुणी तथा तमोगुणी इन्द्रादि देवताओं की उपासना करते हैं, उस तरह से वे मेरी उपासना नहीं करते हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

अतो रजःसत्त्वतमोजुषः स्वानुरूपानिन्द्रादीनेवोपासते, न तु मां गुणातीतम् । यद्यपीन्द्रादीनामपि मदंशत्वान्मदुपासनमेव तत्तथापि यथावन्नोपासते भेददर्शित्वादित्यर्थः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

अतएव रजोगुण सत्त्वगुण एवं तमोगुण प्रधान वे अपने स्वरूपानुरूप इन्द्रादि देवताओं की ही उपासना करते हैं । मुझ गुणातीत की उपासना वे नहीं करते हैं । यद्यपि इन्द्रादि देवता भी मेरे ही अंश हैं, फिर भी वे यथोचित्त प्रकार से उपासना नहीं करते हैं क्योंकि उन लोगों की भेद दृष्टि बनी ही रहती है ।।३२।।

इष्ट्वेह देवता यज्ञैर्गत्वा रंस्यामहे दिवि । तस्यान्त इह भूयास्म महाशाला महाकुलाः।।३३।।
एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्तमनसां नृणाम्। मानिनां चातिस्तब्धानां मद्वार्तापि न रोचते ।।३४।।

अन्वयः— एवं पुष्पितया वाचा व्याक्षिप्तमनसां मानिनां नृणाम् च अति स्तब्धानां मद्वार्ता अपि न रोचते । इह देवताः यज्ञैः इष्ट्वा दिविगत्वा तस्यान्तः इह भूयास्ममहाशालाः महाकुलाः ।।३३-३४।।

अनुवाद— इस प्रकार पुष्प के समान अत्यन्त चञ्चल मन वाले अभिमानी अत्यन्त हठी मनुष्यों को मेरी बात भी अच्छी नहीं लगती है । वे मन ही मन सङ्कल्प करते हैं कि इस लोक में यज्ञों के द्वारा यजन करके स्वर्ग लोक में भोगों को भोगने के पश्चात् हम पुनः विशाल महलों वाला कुलीन गृहस्थ होंगे ।।३३-३४।।

भावार्थ दीपिका

'हृदि सङ्कल्प' इत्युक्तं तमेव सङ्कल्पं दर्शयति-इष्ट्वेति । तस्य भोगस्यान्ते । महाशाला महागृहस्थाः । ततः किमत आह-एवमिति । अतो मत्प्रवणत्वाभावान्नित्यं संसारिणो भवन्तीति भावः ।।३३-३४।।

भाव प्रकाशिका

पहले यह कहा जा चुका है कि अपने हृदय में सङ्कल्प करके **इष्ट्वा० इत्यादि** श्लोक से उस सङ्कल्प को बतलाते हैं श्रीभगवान् । तस्य अर्थत् उस स्वर्गादि भोग के अन्त में । महाशालाः अर्थात् महागृहस्थ । उससे क्या

हुआ इस पर एवम् इत्यादि श्लोक कहते हैं । अतएव मेरी भक्ति नहीं करने के कारण वे (मीमांसक) नित्य संसारी होते हैं ।।३३-३४।।

वेदा ब्रह्मात्मविषयास्त्रिकाण्डविषया इमे । परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम् ।।३५।।

अन्वयः— इमे वेदा त्रिकाण्डविषयाः ब्रह्मात्मविषयाः ऋषयः परोक्षवादाः परोक्षं च ममप्रियम् ।।३५।।

अनुवाद— इन वेदों के तीन काण्ड है कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों काण्डों का प्रतिपाद्य विषय है ब्रह्मात्मैक्य विज्ञान । सभी मन्त्र और मन्त्रों के द्रष्टा ऋषिगण इस विषय को स्पष्ट रूप से नहीं अपितु गुप्त रूप से बतलाते है, मुझको भी इस बात को गुप्त रूप से कहना ही अभीष्ट हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं वेदानां प्रवृत्तिपरत्वं निराकृत्य प्रकृतं निवृत्तिपरत्वमेवोपसंहरति-वेदा इति । कर्मब्रह्मदेवताकाण्डविषया इमे वेदा ब्रह्मात्मविषयाः ब्रह्मैवात्मा न संसारीत्येतत्पराः, तत्परत्वाप्रतीतौ च । 'फलश्रुतिरियं नृणां न श्रेयो रोचनं परम् । श्रेयोविवक्षया प्रोक्तं यथा भैषज्यरोचनम । इत्युक्तमेव कारणमनुस्मारयति-परोक्षेति । ऋषयो मन्त्रास्तद्द्रष्टारो वा । तत्किमिति यतः परोक्षमेव मम च प्रियम् । अयं भावः-शुद्धान्तःकरणैरेवैतद्बोद्धव्यं नान्यैरनधिकारिभिर्वृथा कर्मत्यागेन भ्रंशप्रसङ्गादिति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार वेद प्रवृत्ति परक हैं इस बात का खण्डन करके श्रीभगवान् उसका निवृत्ति परत्व रूप से उपसंहार **वेदा० इत्यादि** श्लोक से करते हैं । वेदों के तीन काण्ड हैं, कर्मकाण्ड, ब्रह्मकाण्ड और देवता काण्ड । ये वेद इस अर्थ का प्रतिपादन करते हैं कि ब्रह्म ही आत्मा है वे संसारी नहीं है । क्योंकि वेद इसी अर्थ का प्रतिपादन करते हुए प्रतीत होते हैं यह फलश्रुति रोचक वाक्य हैं, इससे मनुष्यों का कल्याण सम्भव नहीं है । यह परम कल्याण की विवक्षा कहा गया है । दवा पिलाने के लिए रोचक वाक्य के ही समान फलाश्रुति है । इस तरह से कहे गये कारण प्रवृत्ति के संकोच के द्वारा कर्मों में रुचि उत्पन्न करने के लिए कही गयी है । इस बात को पुनःयाद दिलाते हैं । मन्त्र अथवा मन्त्रों के द्रष्टा ऋषिगण हैं । क्योंकि गुप्त रूप से कहना मुझको भी प्रिय है । कहने का अभिप्राय है कि इस बात को वे ही लोग भी जान पाते हैं जिनका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है । अनधिकारी व्यक्ति इसको दूसरा अनधिकारी नहीं अतएव व्यर्थ ही कर्मों का त्याग करने से उनके भ्रंश का प्रसङ्ग होगा ।।३५।।

शब्दब्रह्म सुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयम् । अनन्तपारं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ।।३६।।

अन्वयः— शब्दब्रह्म सुदुर्बोधम् प्राणेन्द्रिय मनोमयम् अनन्तपरं गम्भीरं दुर्विगाह्यं समुद्रवत् ।।३६।।

अनुवाद— वेदों का ही नाम शब्द ब्रह्म है । इसके अर्थ तथा स्वरूप को जानना अत्यन्त कठिन है । यह शब्द ब्रह्म परा पश्यन्ती और मध्यमा वाणी के रूप में प्राण, इन्द्रिय और मनोमय है । इसका पार पाना कठिन है यह समुद्र के समान सीमातींत एवं गम्भीर भावों से युक्त है । इसका थाह लगाना कठिन है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

ननु वेदज्ञा अपि जैमिन्यादयः किमिति तथा न वर्णयन्ति, मां बिना तत्त्वतो वेद तदर्थं वा न कोऽपि वेदेत्याशयेनाह-शब्दब्रह्मेति यावत्समाप्ति । स्वरूपतोऽर्थतश्च दुर्विज्ञेयम् । तथा सूक्ष्मं स्थूलं चेति द्विविधम् । तत्र सूक्ष्मं तावत्स्वरूपतोऽपि दुर्ज्ञेयमित्याह-प्राणेन्द्रियमनोमयम् । प्रथमं प्राणमयं पराख्यं, ततो मनोमयं पश्यन्त्याख्यं, तत इन्द्रियमयं मध्यमाख्यम् । तस्य वाग्व्यञ्जकत्वेन वागिन्द्रियग्रधानत्वात् । किंच अनन्तपारम् । समष्टिप्राणादिमयस्य निर्विशेषस्य च तस्य कालतो देशतश्चापरिच्छेदात् अर्थतोऽपि दुर्ज्ञेयत्वमाह-गम्भीरं निगूढार्थम् । अतो दुर्विगाह्यं मतिप्रवेशानर्हम् । तथा च श्रुतिः- 'चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः । गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ।' अयमर्थः-वाचः शब्दब्रह्मणः

परिमितानि गणितानि पद्यते ज्ञायते परं तत्त्वमेभिरिति पदानि रूपाणि चत्वारि, तानि चत्वर्यापि ये मनीषिणोऽन्तर्दृष्टयस्त एव विदुर्नान्ये। यतो गुहायां देहमध्ये त्रीणि निहितानि नेङ्गयन्ति स्वरूपं न प्रकाशयन्ति, अतः केवलं वाचस्तुरीयं चतुर्थं भागं वैखरीरूपं मनुष्याः प्राणिनो वदन्ति, तदपि वदन्त्येव, न तत्त्वतो जानन्ति ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है वेदार्थ के ज्ञाता जैमिनि इत्यादि महर्षि हैं वे भी वेदों का वैसा तात्पर्य नहीं बतलाते हैं जैसा कि आप कहते हैं । इस पर श्रीभगवान् कहे कि मुझको छोड़कर वेदों के तात्पर्य को कोई नहीं जानता है । इसी अभिप्राय से श्रीभगवान् शब्द **ब्रह्म० इत्यादि** श्लोक से इस अध्याय की समाप्ति पर्यन्त कहे हैं । वेद को कोई भी न तो स्वरूपतः जानता है और न अर्थतः जाता है । वेद दो प्रकार का है सूक्ष्म और स्थूल । सूक्ष्म वेद स्वरूप से दुर्विज्ञेय है । इस बात को **प्राणेन्द्रिय मनोमयम्** कहा गया है । प्रथम प्राणमय परा नामक वाणी स्वरूप है । दूसरा मनोमय पश्यन्ती वाणी से युक्त है । तीसरा इन्द्रिमय मध्यमा वाणी से युक्त है । वह वेद वाणी का व्यञ्जक होने से वागिन्द्रिय प्रधान है । वह वेद अनन्तपार है अर्थात् निस्सीम है । समष्टि प्राणादिमय तथा निर्विशेष वेद कालतः एवं देशतः अपरिच्छिन्न है । वेद अर्थतः भी दुर्ज्ञेय है इस बात को भगवान गम्भीर पद से कहे हैं । अर्थात् वेद के अर्थ अत्यन्त निगूढ है । इसीलिए वेद दुर्विगाह्य है । उसमें बुद्धि का प्रवेश करना कठिन है । श्रुति भी कहती है **चत्वारि वाक् परिमिता पदानि, तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः, गुहात्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचं मनुष्या वदन्ति ।** इसका अर्थ है कि वाचः अर्थात् शब्द ब्रह्म के, परिमितानि अर्थात् परिगणित परंतत्त्व को जानने वाले मनीषी ब्राह्मण है । इन चारो प्रकार की वाणियों में तीन तो शरीर रूपी गुफा के भीतर छीपी हैं, अतएव नेङ्गयन्ति अर्थात वे अपने स्वरूप का प्रकाशन नहीं करते हैं । अतएव वाणी के चौथे भाग वैखरी को ही मनुष्य बोलते है, तत्त्वतः जानते नहीं हैं ।।३६।।

मयोपबृंहितं भूम्ना ब्रह्मणानन्तशक्तिना । भूतेषु घोषरूपेण बिसेपूर्णेव लक्ष्यते ।।३७।।

अन्वयः— भूम्ना अनन्तशक्तिना ब्रह्मणा मया उपबृंहिताः विसे पूर्णेव घोषरूपेण लक्ष्यते ।।३७।।

अनुवाद— उद्धव मैं अनन्त शक्ति सम्पन्न एवं स्वयम् अनन्त हूँ । मैंने ही वेदों का विस्तार किया है । जिस तरह कमलनाल में पतला सा सूत रहता है उसी तरह वह वेदवाणी प्राणियों के अन्तःकरण में अनाहतनाद के रूप में प्रकट होती है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

तत्र मनीषिभिरेव ज्ञेयं सूक्ष्मं तत्त्वरूपं दर्शयति-मयेति । मयान्तर्यामिणोपबृंहितमतधिष्ठितम् । अन्तस्थत्वेऽप्यपरिच्छेदमाह-भूम्नेति । अधिष्ठातृत्वेऽप्यविकारित्वमाह-ब्रह्मणेति । अविकृतस्यापि नियन्तृत्वं घटयति-अनन्तशक्तिनेति । भूतेषु सर्वप्राणिषु घोषरूपेण नादरूपेण लक्ष्यते मनीषिभिः । अन्तः सूक्ष्मत्वेन दर्शने दृष्टान्तः-विसेपूर्णातन्तुरिवेति ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

मयोपबृंहितम् इत्यादि श्लोक से यह बतलाया जा रहा है कि वेद को मनीषी पुरुष ही जान सकते हैं । वह वेद सूक्ष्म तत्त्व स्वरूप है । उसको अन्तर्यामी रूप से मैंने ही वेदों का विस्तार किया है । वह मेरे ही द्वारा अधिष्ठित है । प्राणियों के अन्तःकरण में स्थिर होने पर भी अपरिच्छेद्य अर्थात् निस्समी हैं । इस बात को **भूम्ना** पद से कहा गया है । **ब्रह्मणा** पद से बतलाया गया है कि यद्यपि मैं अधिष्ठाता हूँ फिर भी मुझमें कोई भी विकार नहीं होता है । **अनन्तशक्ति** पद का अभिप्राय है कि यद्यपि मैं अविकृत हूँ फिर भी मै नियामक हूँ क्योंकि मेरी शक्ति अनन्त है । मेरे द्वारा उपबृंहित वेद सबों के भीतर अनाहत नाद के रूप से विद्यमान वेद का साक्षात्कार अप्ततम मनीषि पुरुष ही

करते है। सभी प्राणियों के भीतर सूक्ष्म रूप से देखे जाने का दृष्टान्त है विसेपूर्णतन्तुरिव। अर्थात् कमलनाल के भीतर विद्यमान सूक्ष्म तन्तु के समान वेद लक्षित होता है ॥३७॥

यथोर्णनाभिर्हृदयादूर्णामुद्वमते मुखात् । आकाशाद्घोषवान्प्राणो मनसा स्पर्शरूपिणा ॥३८॥
छन्दोमयोऽमृतमयः सहस्रपदवीं प्रभुः । ओंकाराद्व्यञ्जितस्पर्शस्वरोष्मान्तस्थभूषिताम् ॥३९॥
विचित्रभाषाविततां छन्दोभिश्चतुरुत्तरैः । अनन्तपारां बृहतीं सृजत्याक्षिपते स्वयम् ॥४०॥

अन्वयः— यथा उर्णनाभिः हृदयात् सकाशात् उर्णाम् मुखात् उद्वमते, प्राणः प्रभुः छन्दोमयः अमृतमयः घोषवान् मनसा ओङ्कारात् व्यञ्जितस्पर्श स्वरोष्मानतस्थभूषितम् विचित्रभाषाविततताम् छन्दोभिः चतुरुत्तरै, अनन्तपारां बृहतीम् सृजति आक्षिपते स्वयम् ॥३८-४०॥

अनुवाद— भगवान् हिरण्यगर्भ स्वयं वेदमूर्ति एवं अमृतमय हैं प्राण उनकी उपाधि हैं एवं स्वयं अनाहतनाद के द्वारा उनकी अभिव्यक्ति हुई है। जैसे मकड़ी अपने हृदय और मुख द्वारा जाला उगलती है और फिरउसे निगल लेती है वैसे ही स्पर्श आदि वर्णों का सङ्कल्प करने वाले मन रूप निमित्त कारण के द्वारा हृदयाकाश से अनन्त आपार अनेक मार्गों वाली वैखरी रूप वेदवाणी को स्वयं ही प्रकट करते हैं और फिर उसे अपने में लीन कर लेते हैं। वह वाणी हृदय में विद्यमान ओङ्कार के द्वारा अभिव्यक्त स्पर्श, स्वर, उष्मा और अन्तस्थ इन वर्णों से विभूषित है, उसमें ऐसे छन्द है जिनमें उत्तरोत्तर चार-चार वर्ण बढ़ते जाते हैं और उनके द्वारा वह विचित्र भाषा के रूप में विस्तृत हुई है ॥३८-४०॥

भावार्थ दीपिका

ततो वैखर्याख्याया बृहत्या वाच उत्पत्तिप्रकारं सदृष्टान्तमाह-यथेति त्रिभिः। हृदयात्सकाशात् मुखात् द्वारात् उद्वमते बहिः प्रकटयति। दार्ष्टान्तिके योजयति-आकाशादिति। प्राणस्तदुपाधिर्हिरण्यगर्भरूपः प्रभुर्भगवान्। तेन रूपेण च्छन्दोमयी वेदेमूर्तिः। स्वतस्त्वमृतमयः। घोपवान्नादोपादानवान्। मनसा निमित्तभूतेन। निमित्ततामेव दर्शयति-स्पर्शादीन्वर्णान् रूपयति सङ्कल्पयतीति स्पर्शरूपि तेन। स्पर्शग्रहणमुपलक्षणम्। हृदयाकाशाद्बृहतीं सृजतीति तृतीयश्लोकेनान्वयः। बृहतीशब्दार्थव्याख्यानाय विशेषणानि-सहस्रपदवीं बहुमार्गाम्। तदेवाह-ओंकारादुरःकण्ठादिसङ्गेन व्यञ्जितैः स्पर्शादिभिर्भूषिताम्। ओंकारश्चात्र हृद्गतः सूक्ष्मोऽभिप्रेतो नत्वकारादिवर्णरूपः, तस्य व्यङ्ग्यकोटित्वात्। तत्र स्पर्शाः कादिपञ्चवर्गाः। स्वरा आकारादयः षोडश। ऊष्माणः शषसहाः। अन्तस्था यरलवाः। एवं विचित्राभिर्वैदिकलौकिकभाषाभिर्विततताम्। यथोत्तरं चत्वारि चत्वार्यक्षराण्युत्तराण्यधिकानि येषां तैश्छन्दोभिरुपलक्षिताम्। एवमनन्तपारां सृजति स्वयमेवाक्षिपते उपसंहरति ॥३८-४०॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् वैखरी नाम की वेद स्वरूप वाणी से उत्पत्ति के प्रकार को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक श्रीभगवान् **यथोर्णनाभिः इत्यादि** तीन श्लोकों से बतलाते हैं। हृदय और मुख के द्वारा उगलती है अर्थात् बाहर प्रकट करती है। दृष्टान्त को दार्ष्टान्तिक को **आकाशात्० इत्यादि** श्लोक के उत्तरार्द्ध द्वारा जोड़ते हैं। वाणी की उपाधिभूत भगवान् हिरण्यगर्भ रूप हैं। उसी रूप से वे छन्दोमय वेदमूर्ति हैं। भगवान् हिरण्यगर्भ तो स्वयम् अमृतमय हैं। घोषवान् अर्थात् नादोपादानवान् इसके द्वारा परा वाणी का निर्देश किया गया है। मन रूप निमित कारण के द्वारा, इसके द्वारा पश्यन्ती वाणी को कहा गया है। मन की निमित्त कारणता को ही बतलाते हैं। स्पर्श आदि वर्णों का सङ्कल्प करने वाले मन के द्वारा। स्पर्श का ग्रहण उपलक्षण है हृदयाकाश से वेदवाणी की सृष्टि करते हैं। इस तरह से तृतीय श्लोक से अन्वय है। आकाशात् पद के द्वारा हिरण्यगर्भ के आधार चक्र को आश्रय बनाकर ओङ्कार से मध्यमा वाणी का निर्देश है। बृहती शब्द के अर्थ का व्याख्यान करने के लिए विशेषणों का प्रयोग किया गया है। सहस्रपदवीम् अर्थात् अनेक मार्गों वाली उसी को कहते हैं- **उरः कण्ठादि सङ्गेन** अर्थात् हृदय तथा कण्ठ आदि उच्चारण स्थानों के संयोग से अभिव्यक्त स्पर्श आदि वर्णों से अलंकृत। यहाँ

पर हृदय में विद्यमान ओङ्कार सूक्ष्म रूप से अभिप्रेत है। अकार आदि वर्ण रूप नहीं, क्योंकि अकार आदि तो व्यंग्य कोट में हैं। क से लेकर म तक पाँच वर्गों (कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग और पवर्ग) के पचीस वर्ण स्पर्श कहलाते हैं। अकार आदि सोलह स्वर वर्ण हैं श ष स एवं ह ये उष्मा वर्ण हैं, य, र, ल, और व ये अन्तस्थ वर्ण हैं। इस तरह विचित्र लौकिक भाषाओं से विस्तार प्राप्त। उत्तरोतर जिन छन्दों में चार-चार वर्णों से आगे-आगे छन्दों बढ़ाते जाते हैं, ऐसे छन्दों से उपलक्षित, अनन्तपार वाली वाणी का भगवान् हिरण्यगर्भ स्वयम् उपसंहार करते हैं ॥३८-४०॥

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च। त्रिष्टुब् जगत्यतिच्छन्दो ह्यत्यष्टतिजगद्विराट् ॥४१॥

अन्वयः— गायत्री, उष्णिक् अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिच्छन्दः, अत्यष्टिः, अतिजगत् विराट् ॥४१॥

अनुवाद— गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप, जगती, अतिच्छन्द, अत्यष्टि, अतिजगती, और विराट् ये सभी वैदिक छन्द उत्तरोत्तर चार-चार अधिक अक्षरों वाले हैं ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

तेषु कतिचिच्छन्दांसि दर्शयति–गायत्रीति। तत्र चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री। ततश्चतुरक्षरवृद्ध्योष्णिगादिच्छन्दांसि–अत्यष्टिः, अति जगती, अतिविराट् चेत्यर्थः। एतैश्छन्दोभिरुपलक्षितमिति पूर्वेणान्वयः। अतो बृहत्यपि साकल्येन स्वरूपतो दुज्ञेया इत्युक्तम्॥४१॥

भाव प्रकाशिका

उन छन्दों में से कुछ छन्दों को **गायत्री० इत्यादि** श्लोक से दिखलाते हैं, उन छन्दों में गायत्री चौबीस अक्षरों वाली है। उसके पश्चात् चार-चार अक्षरों की वृद्धि वाले उष्णिक् आदि छन्द हैं। अत्यष्टि, अतिजगति, अतिविराट् ये इन्ही छन्दों से उपलक्षित होते है अतएव बृहती भी (वेद भी) स्वरूपतः दुर्ज्ञेय है ॥४१॥

किं विधत्ते किमाचष्टे किमनूद्य विकल्पयेत्। इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन ॥४२॥

अन्वयः— कि विधते, किम् आचाष्टे किम् अनूद्य विकल्पयेत् इति अस्याः हृदयं मदन्य; लोके कश्चन न वेद ॥४२॥

अनुवाद— वेद वाणी कर्मकाण्ड में क्या विधान करती है ? उपासनाकाण्ड में किन देवताओं का वर्णन करती है और ज्ञानकाण्ड में किन प्रतीतियों का अनुवाद करके उनमें अनके प्रकार का विकल्प करती हैं। इन बातों को इस सम्बन्ध में श्रुति के रहस्य को मुझको छोड़कर कोई नहीं जानता है ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

अर्थतोऽपि दुर्ज्ञेयत्वमाह–किमिति। कर्मकाण्डे विधिवाक्यैः किं विधत्ते। देवताकाण्डे मन्त्रावाक्यैः किमाचष्टे प्रकाशयति। ज्ञानकाण्डे किमनूद्य विकल्पयेन्निषेधार्थमित्येवमस्या हृदयं तात्पर्यं मत् मत्तोऽन्यः कश्चिदपि न वेद ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

वेद वाणी का अर्थ जानना भी बड़ा ही कठिन है इस बात को श्रीभगवान् **किं विधत्ते० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं। वेदवाणी कर्मकाण्ड में क्या विधान करती है, देवताकाण्ड में वेदवाणी मन्त्र वाक्यों द्वारा किसकी उपासना का विधान करती है तथा ज्ञानकाण्ड में किन प्रतीतियों का अनुवाद करके विविध विकल्प करती है तथा निषेध करती है, इस प्रकार से वेदवाणी के हार्दिक रहस्य को मुझको छोड़कर संसार में कोई भी नहीं जानता है॥४२॥

मां विधत्तेऽभिधत्ते मां विकल्प्यापोह्यते त्वहम्। एतावान्सर्ववेदार्थः शब्द आस्थाय मां भिदाम् ॥
मायामात्रमनूद्यान्ते प्रतिषिध्य प्रसीदति ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

अन्वयः— कर्मकाण्डे मां विधत्ते अभिधत्ते च मां विकल्प अपोह्यते अहम्। एतावान् वेद सर्वार्थः शब्दभिदाम् आस्थाय माम्। मायामात्रम् अनूद्य अन्त प्रतिषिध्य प्रसीदति ॥४३॥

अनुवाद— कर्मकाण्ड में सभी श्रुतियाँ मेरा ही विधान करती है, और उपासनाकाण्ड में उपास्य देवताओं के रूप में मेरा ही वर्णन करती है। और ज्ञानकाण्ड में आकाशादि रूप में मुझमें ही अन्य वस्तुओं का आरोप करके उनका निषेध कर देती है ॥४३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यहवें स्कन्ध के श्रीभगवान् और उद्धवजी के संवाद के अन्तर्गत इक्कीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

ननु तर्हि त्वं मत्कृपया कथय, ओमिति कथयति। मामेव यज्ञरूपं विधत्ते। मामेव तत्तद्देवतारूपमभिधत्ते, न मत्तः पृथक्। यच्चकाशादिप्रपञ्चजातं 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः' इत्यादिना विकल्प्यापोह्यते निराक्रियते तदप्यहमेव, न मत्तः पृथगस्ति। कुत इत्यपेक्षायां सर्ववेदार्थं संक्षेपतः कथयति–एतावानेव सर्वेषां वेदानामर्थः। तमेवाह–शब्दो वेदो मां परमार्थरूपमाश्रित्य भिदां मायामात्रमित्यनूद्य, 'नेह नानास्ति किंचन' इति प्रतिषिध्य प्रसीदति निवृत्तव्यापारो भवति। अयं भावः–यथा ह्यङ्कुरे यो रसः स एव तद्विस्तारभूतनानाकाण्डशाखास्वपि, तथैव प्रणवस्य योऽर्थः परमेश्वरः स एव तद्विस्तारभूतानां सर्ववेदकाण्डशाखानामपि सङ्गच्छते, नान्य इति ॥४३॥ नित्यमुक्तः स्वतः सर्ववेदकृत्सर्ववेदवित्। स्वपरज्ञानदाता यस्तं वन्दे गुरुमीश्वरम् ॥१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां एकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

तो फिर मुझ पर कृपा करके आप ही बतला दीजिये। उद्धवजी की इस प्रार्थना को स्वीकार करके श्रीभगवान् कहते हैं श्रुति कर्मकाण्ड भाग में मेरा यज्ञ रूप से विधान करती है, व देवता काण्ड में मेरा ही तत्तद् देवताओं के रूप में बतलाती है, देवता मुझसे अलग नहीं हैं। यह जो आकाशादि प्रपञ्च समूह है **'तस्माद् वा एतस्मात् इत्यादि** श्रुति के अनुसार विकल्प करके उसका निषेध करती है। वह भी मैं ही हूँ। मुझसे पृथके प्रपञ्च नहीं है। यह कैसे? इस प्रकार की अपेक्षा होने पर श्रीभगवान् सम्पूर्ण वेदार्थ का संक्षेप में वर्णन करते हैं, सम्पूर्ण वेदों का इतना ही अर्थ है। उसी को बतलाते हुए श्रीभगवान् कहते हैं, वेद मुझको परमार्थ रूप से मानकर सम्पूर्ण भेदों को मायामात्र रूप से अनुवाद करके **'नेह नानास्ति किञ्चन'** के अनुसार निषेध करके अपने व्यापार से विरत हो जाता है। कहने का अभिप्राय है कि जिस तरह अङ्कुर में जो रस होता है वही वृक्ष रूप में परिणत उस अङ्कुर की शाखाओं और उप शाखाओं में भी है। उसी तरह प्रणव का जो परमेश्वर अर्थ है वही प्रणव के विस्तार भूत सम्पूर्ण वेद में तथा उसकी शाखाओं में भी उपलब्ध होता है, उससे भिन्न नहीं ॥४३॥

नित्य मुक्त० इत्यादि सम्पूर्ण वेद के कर्ता तथा सम्पूर्ण वेद के अर्थ के ज्ञाता अपने और पराये के ज्ञान को देने वाले श्रीभगवान् नित्यमुक्त हैं। मैं उनकी वन्दना करता हूँ ॥१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के इक्कीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भाव प्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२१।।

* * *

बाइसवाँ अध्याय

तत्त्वों की संख्या और पुरुष प्रकृति विवेक

उद्धव उवाच

कति तत्त्वानि विश्वेश संख्यातान्यृषिभिः प्रभो । नवैकादश पञ्च त्रीण्यात्थ त्वमिह शुश्रुम ॥१॥

अन्वयः— हे विश्वेश ! प्रभो ! ऋषिभिः कति तत्त्वानि संख्यातानि ? त्वम् इह नवैकादश पञ्च त्रीणि आत्थ इति शुश्रुम॥१॥

श्रीउद्धवजी ने कहा

अनुवाद— हे सम्पूर्ण विश्व के नियामक प्रभो ऋषियों ने तत्त्वों की कितनी संख्या बतलायी है, अपने तो नव, ग्यारह पाँच और तीन बतलाया है, उसे तो हम सुन चुके हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वाविंशे तत्त्वसंख्यानामविरोधविधोच्यते । प्रुंप्रकृत्योर्विवेकश्च जन्ममृत्युविधादि च । तदेवं वेदानां प्रवृत्तिपरत्वं निराकृत्य मोक्षपरत्वं निर्णीतम्, सन्ति च मोक्षपरत्वेऽपि तदवान्तरविवादाः । तथा हि, -केचित्तत्वसंख्यासु विवदन्ते, तत्रापि जह्यार्थसदसत्त्वे आत्मत्वेऽप्येकत्वनानात्वादिषु तत्र किं सत्यमिति जिज्ञासया पृच्छति-कतीति । ऋषिभिरागमेषु बहुधा संख्यातानि तेषु कति युक्तानीत्यर्थः । भगवन्मतानुवादपूर्वकं बहुधा संख्यानं प्रपञ्चयति-न वेति त्रिभिः । त्वं तावदष्टाविंशतितत्त्वान्यात्थ । तानि च वयं शुश्रुम श्रुतवन्तः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बाइसवें अध्याय में तत्त्वों की संख्या के विरोधाभाव के प्रकार को भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है । इसके अतिरिक्त पुरुष प्रकृति के विवेक तथा जन्म एवं मृत्यु के प्रकार का भी श्रीभगवान् ने वर्णन किया है । इस प्रकार वेदों के प्रवृत्तिपरत्व का खण्डन करके श्रीभगवान ने वेदों को मोक्ष परक बतलाया है । ऐसा होने पर भी उसके अवान्तर विवाद को बतलाया है । उदाहराणर्थ कुछ लोग तत्त्वों की संख्या के विषय में विवाद करते हैं, उसमें भी बाह्य विषयों से सत्त्वासत्व, आत्मा के भी एकत्व और नानात्व को लेकर विवाद करते हैं । उसमें सत्य क्या है ? इस जिज्ञासा से उद्धवजी कति० इत्यादि श्लोक से पूछते हैं । ऋषियों ने आगमों में अनेक प्रकार से तत्त्वों की गणना की है । उसमें कितने तत्त्व उचित हैं यह उद्धवजी के पूछने का अभिप्राय है । तत्त्वों के विषय में श्रीभगवान् के मत का अनुवाद करके उद्धवजी तत्त्वों की संख्या का विस्तार **नवैकादश० इत्यादि** श्लोक से करते हैं । आपने तो अठाइस तत्त्वों को कहा है उसको मैंने सुन लिया है ॥१॥

केचित्षड्विंशतिं प्राहुरपरे पञ्चविंशतिम् । सप्तैके नव षट् केचिच्चत्वार्येकादशापरे ॥२॥

अन्वयः— केचित् षड्विंशतिं प्राहुः अपरे पञ्चविंशतिम्, एके सप्त नव षट् केचित् चत्वारि अपरे एकादश ॥२॥

अनुवाद— कुछ लोग छब्बीस तत्त्व मानते हैं, कुछ लोग पचीस, एक प्रकार के विचारक सात, नव अथवा छह मानते हैं, कुछ लोग चार और दूसरे प्रकार के लोग ग्यारह तत्त्व मानते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२॥

केचित्सप्तदश प्राहुः षोडशैके त्रयोदश । एतावत्त्वं हि संख्यानामृषयो यद्विवक्षया ॥
गायन्ति पृथगायुष्मन्निदं नो वक्तुमर्हसि ॥३॥

अन्वयः— केचित् सप्तदश प्राहुः, एके षोडश, एके त्रयोदश, एतावत्त्वं हि संख्यानाम् यद्विवक्षया ऋषयः गायन्ति आयुष्मन् इदं नो पृथक् पृथक् वक्तुमर्हसि ॥३॥

अनुवाद— कुछ ऋषिगण सत्रह तत्त्वों को कहते हैं कुछ लोग सोलह तो कुछ लोग तेरह तत्त्वों को बतलाते हैं। सनातन श्रीकृष्ण ऋषिगण इतनी भिन्न संख्याएँ जिस अभिप्राय से कहे हो उसे आप कृपा करके मुझे बतलाएँ।।३।।

भावार्थ दीपिका

एतावतीनां भाव एतावत्त्वं नानात्वमित्यर्थः । यद्विवक्षया यत्प्रयोजनमभिप्रेत्य च गायन्ति । आयुष्मन्नित्यमूर्ते ।।३।।

भाव प्रकाशिका

कुछ ऋषिगण सत्रह बतलाते है और कुछ तेरह । ऋषियों जिस अभिप्राय से तत्त्वों की इतनी भिन्न संख्या बतलाते है, मुझे आप उसे समझाएँ । आयुष्मान् अर्थात् नित्यमूर्ते०, हे श्रीकृष्ण ।।३।।

श्रीभगवानुवाच

युक्तं च सन्ति सर्वत्र भाषन्ते ब्राह्मणा यथा । मायां मदीयामुद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ।।४।।

अन्वयः— ब्राह्मणाः यथा भाषन्ते सर्वत्र युक्तं च सन्ति मदीयां मायाम् उद्गृह्य वदतां किं नु दुर्घटम् ।।४।।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा

अनुवाद— उद्धव वेदज्ञ ब्राह्मण जो भी कहें वह सब ठीक हैं, क्योंकि सभी तत्त्व सभी में अन्तर्भूत हैं । मेरी माया को अपना कर कुछ भी कहना असम्भव नहीं है ।।४।।

भावार्थ दीपिका

विवक्षाभेदेन सर्वं युक्तमेव । मायया च किं नाम न युक्तमित्याह-युक्तमिति । यथा ब्राह्मणा भाषन्ते तद्युक्तं, न च वस्तुतः। यस्मात्सन्ति सर्वत्रान्तर्भूतानि सर्वाणि तत्त्वानि । किंच, मायामिति असत्त्वेऽपि मायाश्रयत्वाद्धटत एवेत्यर्थः । उद्गृह्य स्वीकृत्य । न हि मरीचिजलपरिमाणादिविवादे किंचिदघटितमिव भवति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

विवक्षा की भिन्नता के कारण सब उचित ही है । माया के द्वारा क्या उचित नहीं है ? इस बात को श्रीभगवान् युक्तम्० इत्यादि श्लोक से कहते है कि वेदज्ञ ब्राह्मण जो कहते हैं वह ठीक ही, किन्तु वस्तुतः ठीक नहीं है । क्योंकि सभी तत्त्वों में सभी तत्त्व अन्तर्भूत हैं । असत् वस्तु भी माया के द्वारा प्रतीत ही होती है । उदगृह्य अर्थात् स्वीकार करके मृग मरीचिका में प्रतीत होने वाले जल के परिमाण आदि के विषय में विवाद होने पर कुछ भी अघटित के समान नहीं होता है ।।४।।

नैतदेवं यथात्थ त्वं यदहं वच्मि तत्तथा । एवं विवदतां हेतुं शक्तयो मे दुरत्ययाः ।।५।।

अन्वयः— त्वम् यथा आत्थएतद् एवं न तत् यत् अहं वच्मि तथा इति विवदतां हेतुं मे दुरत्ययाः शक्तयः ।।५।।

अनुवाद— तुम जैसा कहते हो यह वैसा नहीं है मैं जैसा कहता हूँ यह वैसा है, इस तरह से विवाद करने के कारण मेरी शक्तियों, सत्त्व, रजस्, तमस् के रहस्य के कोई नहीं जान पाता है ।।५।।

भावार्थ दीपिका

ननु यदि सर्वमपि युक्तं तर्हि कुतो विवादः, यदि च मायैवालम्बनं तर्हि कुतो हेतुं प्रति विवादस्तत्राह-नैतदेवमिति । हेतुं प्रति च विवदमानानां मदीया दुरतिक्रमाः शक्तयः सत्त्वाद्या अन्तःकरणवृत्तिविशेषरूपेण परिणता एव हेतुरित्यर्थः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि यदि सब सत्य है तो फिर विवाद क्यों होता है ? यदि माया ही आश्रय है तो फिर किस कारण से विवाद होता है ? इस पर श्रीभगवान् कहते है ? हेतु के विषय में विवाद करने वालों में मेरी सत्त्वगुण आदि दुरतिक्रम शक्तियाँ जो अन्तःकरण की वृत्ति रूप से परिणत होती हैं वे ही हेतु हैं ।।५।।

यासां व्यतिकरादासीद्विकल्पो वदतां परम् । प्राप्ते शमदमेऽप्येति वादस्तमनु शाम्यति ॥६॥

अन्वयः— यासां व्यतिकरा विवदताम् पदम् आसीत् शम-दमे प्राप्ते विकल्प अप्येति तम् अनुवादः शाम्यति ॥६॥

अनुवाद— सत्वादि गुणों में क्षोभ होने के कारण ही यह विविध कल्पना रूप प्रपञ्च जो सत्य नहीं है उठ खड़ा हुआ है । वाद-विवाद करने वालों का यही विवाद का विषय है । जब इन्द्रियाँ अपने वश में हो जाती हैं तब चित्त शान्त हो जाता है तो यह प्रपञ्च भी निवृत्त हो जाता है और विवाद भी समाप्त हो जाता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

तासां विवादहेतुत्वमुपपादयति'-यासामिति । यासां व्यतिकरात्क्षोभाद्वदतां पदं विषयो विकल्पो भेद आसीदन्तः कारणवृत्तिविकल्पो वा तन्मूलभूतः । एतदेव व्यतिरेकेणद्रढयति-शमदमयोर्द्वन्द्वैक्यम् । तस्मिन्प्राप्ते विकल्पोऽप्येति लीयते । तं च विकल्पनाशमनु वादः शाम्यतीति ॥६॥

भाव प्रकाशिका

उन शक्तियों के विवाद हेतुत्व का प्रतिपादन करते है । उन सत्त्वादिकों में क्षोभ होने पर वह विवाद करने वालों के विवाद का विषय बन जाता है । अथवा उन सबों के कारणभूत अन्तःकरण की वृत्ति ही विविध कल्पना रूप विवाद है । इसी बात के विपरीत क्रम से सिद्ध करते हैं, जब शम-दम की प्राप्ति (अर्थात् इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं) हो जाती है तो विकल्प रूप इस प्रपञ्च की निवृत्ति हो जाती है । जब विकल्प प्रपञ्च का नाश हो जाता है तो उसके पश्चात् वाद भी शान्त हो जाता है ॥६॥

परस्परानुप्रवेशात्तत्त्वानां पुरुषर्षभ । पौर्वापर्यप्रसंख्यानं यथा वक्तुर्विवक्षितम् ॥७॥

अन्वयः— पुरुषर्षभ तत्त्वानां परस्पररानुप्रवेशात् वक्तुः विवक्षितं यथा पौर्वापर्यप्रसंख्यानम् ॥७॥

अनुवाद— पुरुषश्रेष्ठ चूकि सभी तत्त्व एक दूसरे में प्रविष्ट हैं अतएव वक्ता तत्त्वों की जितनी संख्या बतलाना चाहता है उसके अनुसार कारण को कार्य में मिलाकर अथवा कार्य को कारण में मिलाकर अपनी अभिप्रेत संख्या सिद्ध कर लेता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

'सन्ति सर्वत्र' इति यदुक्तं तत्प्रपञ्चयति-परस्परेति द्वाभ्याम् । अन्योन्यस्मिन्ननुप्रवेशाद्वक्तुर्यथा विवक्षितं तथा पूर्वं कारणमपरं कार्यम् । कार्यकारणभावेन प्रसंख्यानं भवति । यद्वा, पूर्वा अल्पसंख्या, अपराधिकसंख्या, तयोर्भावः पौर्वापर्यं तेन प्रसंख्यानं गणनमिति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् यह जो कहे हैं कि सभी तत्त्व सभी तत्त्वों में अनुप्रविष्ट है उसी का विस्तार **परस्परानु० इत्यादि** दो श्लोकों से करते हैं । परस्पर में अनुपविष्ट होने के कारण वक्ता को तत्त्वों की जितनी संख्या बतलाना अभिप्रेत होता है, उसके अनुसार कार्य को कारण में मिलाकर अथवा कारण को कार्य में मिलाकर तत्त्वों की उतनी संख्या सिद्ध कर लेते हैं । अथवा पहले की अल्प संख्या बाद की अधिक उन दोनों के भाव को पौर्वापर्य कहते हैं । उसके द्वारा गणना करना ही पौवीपर्य प्रसंख्यान कहते है ॥७॥

एकस्मिन्नपि दृश्यन्ते प्रविष्टानीतराणि च । पूर्वस्मिन्वा परस्मिन्वा तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः ॥८॥

अन्वयः— एकस्मिन् अपि इतराणि प्रविष्टानि दृश्यन्ते पूर्वस्मिन् वापरस्मिन् तत्त्वे तत्त्वानि सर्वशः प्रविष्टानि सन्ति॥८॥

अनुवाद— ऐसा देखा जाता है कि एक ही तत्त्व में बहुत से दूसरे तत्त्वों का प्रवेश हो गया रहता है ।

इसका कोई बन्धन नहीं कि किसका किसमें अन्तर्भाव हो। कभी घट-पट आदि वस्तुओं को उनके कारणभूत मृत्पिण्ड सूत्र इत्यादि में तो कभी मृत्पिण्ड सूत्र आदि का घट पट आदि कार्यों में अन्तर्भाव हो जाता है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

अनुप्रवेशं दर्शयति-एकस्मिन्नपीति । पूर्वस्मिन्कारणभूते तत्त्वे कार्यतत्त्वानि सूक्ष्मरूपेण प्रविष्टानि मृदि घटवत् । अपरस्मिन्कार्यतत्त्वे कारणतत्त्वान्यनुगतत्त्वेन प्रविष्टानि घटे मृद्वत् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

एक तत्त्व में दूसरे तत्त्व का अनुप्रवेश **एकस्मिन् इत्यादि०** श्लोक से दिखलाते हैं । कारणतत्त्व में कार्य तत्त्व सूक्ष्म रूप से अनुपविष्ट रहते हैं जैसे मृत्पिण्ड में घट आदि कार्य तत्त्वों में कारणतत्त्व अनुगत रहते हैं जैसे घट में मिट्टी ।।८।।

पौर्वापर्यमतोऽमीषां प्रसंख्यानमभीप्सताम् । यथा विविक्तं यद्वक्त्रे गृह्णीमो युक्तिसंभवात् ।।९।।

अन्वयः— अतः अमीषां प्रसंख्यानम् अभीप्सताम् पौर्वापर्यं यथा, सेम युक्तिसंभवात् यद्वक्त्रं विविक्तं गृह्णीमः ।।९।।

अनुवाद— अतएव वादी प्रतिवादियों में से जिसकी वाणी ने जिस कार्य को जिसका कारण में अथवा जिस कारण को जिस कार्य में अन्तर्भूत करके तत्त्वों की जितनी संख्या स्वीकार की है, उसे हम निश्चित रूप से स्वीकार करते हैं, क्योंकि उनके द्वारा किया गया वह उपादान युक्तिसङ्गत हैं ।।९।।

भावार्थ दीपिका

अविरोधमुपसंहरति-अतोऽमीषां तत्त्वानां पौर्वापर्यं तत्तत्कारणकार्यत्वं प्रसंख्यानं च न्यूनाधिकमभीप्सतां वादिनां मध्ये यथा विवक्षया यद्वक्त्रं यस्य मुखं प्रवर्तते तत्सर्वं विविक्तं निश्चितं वयं गृह्णीमः । उक्तन्यायेन सर्वत्र युक्तेः संभवात् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

अतोमीषाम् इत्यादि श्लोक से अविरोध का उपसंहार करते हैं । इन तत्त्वों का कार्यकारण भाव और तत्त्वों की संख्या कम-वेशी चाहने वाले वादियों में विवक्षा के अनुसार जिसका मुख प्रवृत्त होता है उन सारी बातों को हम निश्चित रूप से स्वीकार करते हैं क्योंकि उपर्युक्त न्यास से युक्ति का होना सर्वत्र सम्भव है ।।९।।

अनाद्यविद्यायुक्तस्य पुरुषस्यात्मवेदनम् । स्वतो न संभवादन्यस्तत्त्वज्ञो ज्ञानदो भवेत् ।।१०।।

अन्वयः— अनादि अविद्या युक्तस्य पुरुषस्य आत्मवेदनम् स्वतः न संभवात् अन्यस्तत्त्वज्ञः ज्ञानदः भवेत् ।।१०।।

अनुवाद— उद्धवजी छब्बीस तत्त्वों को स्वीकार करने वालों का मत है कि जीव अनादि काल से अविद्या ग्रस्त है, उसे आत्मज्ञान स्वयं नहीं हो सकता, उसे आत्मज्ञान करने के लिए दूसरे तत्त्वज्ञ ईश्वर की आवश्यकता होती है। इस तरह चौबीस प्राकृतिक तत्त्व, जीव और ईश्वर मिलकर कुल तत्त्वों की संख्या छब्बीस हो जाती हैं।।१०।।

भावार्थ दीपिका

ननु कार्यकारणतत्त्वानां पृथक्त्वापृथक्त्वविवक्षया भवतु नाम संख्याभेदः, जीवेश्वरयोस्तु कथं भेदाभेदविवक्षा यया षड्विंशतिपञ्चविंशतिपक्षौ प्रवृत्तावत आह-अनादीति । स्वतो न संभवति, अन्यतस्तु संभवात्स्वतः सर्वज्ञः परमेश्वरोऽन्यो भवितव्य इति षड्विंशतिआभिप्राय इत्यर्थः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कार्य एवं कारण दोनों के पृथक्त्व और अपृथक्व की विवक्षा से संख्या को भेद तो होए किन्तु जीव एवं ईश्वर में भेद एवं अभेद कीजिए विवक्षा से पचीस एव छवीस तत्त्वों वाले प्रतिपादन **अनादि० इत्यादि** श्लोक

करते हैं । अपने आप नहीं हो सकता है, दूसरे सर्वज्ञ ईश्वर से सम्भव होने के कारण ईश्वर, जीव और चौबीस प्राकृतिक तत्त्व मिलकर तत्त्वों की संख्या छब्बीस हो जाती है ॥१०॥

पुरुषेश्वरयोरत्र न वैलक्षण्यमण्वपि । तदन्यकल्पनाऽपार्था ज्ञानं च प्रकृतेर्गुणः ॥११॥

अन्वयः— **पुरुषेश्वरयोः वैलक्षण्यम् अणु अपि न, तदन्यकल्पना अयार्था, ज्ञानं च प्रकृतेर्गुणः ॥११॥**

अनुवाद— शरीर के भीतर रहने वाले जीव और ईश्वर में अणुमात्र भी भेद नहीं है, अतएव पुरुष से भिन्न ईश्वर की कल्पना व्यर्थ है, ज्ञान तो सत्त्वात्मिका प्रकृति का गुण है । अतएव चौबीस प्राकृत तत्त्वों के साथ जीव को मिलाकर तत्त्वों की संख्या पचीस हो जाती है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

कथं तर्हि पञ्चविंशतिपक्षस्तत्राह-पुरुषेति । वैलक्षण्यं विसदृशत्वं नास्ति द्वयोरपि चिद्रूपत्वादतस्तयोरत्यन्तमन्यत्वकल्पना अपार्था व्यर्था । एवं पञ्चविंशतिपक्षः प्रवृत्त इत्यर्थः । नन्वेवमपीश्वरप्रसादलभ्यज्ञानस्य पृथक्त्वात्पक्षद्वयमपि न घटतेऽत आह-ज्ञानं चेति । सत्त्वगुणवृत्तित्वात्तदन्तर्भूतमित्यर्थः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

तो फिर पचीस तत्त्ववाद कैसे उपपन्न होता है ? इसका उत्तर श्रीभगवान् **पुरुषेश्वरयोः इत्यादि** श्लोक से देते हैं । वैलक्षण्यम् अर्थात् विसदृशता नहीं हो सकती हैं । क्योंकि दोनों ज्ञान स्वरूप हैं । अतएव जीव और ईश्वर में भेद की कल्पना व्यर्थ है । इसी तरह पचीस तत्त्ववाद प्रवृत्त हुआ है । प्रश्न है कि ईश्वर की कृपा रूप ज्ञान के अलग तत्त्व होने से दोनों पक्षों की सिद्धि नहीं हो सकती है । इस पर श्रीभगवान् ने कहा कि ज्ञान तो सत्त्वात्मिका प्रकृत्ति का गुण है वह अलग तत्त्व नहीं है । वह प्रकृति तत्त्वों में ही अन्तर्मूत हैं ॥११॥

प्रकृतिर्गुणसाम्यं वै प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः । सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥१२॥

अन्वयः— गुणसाम्यं वै प्रकृतिः गुणाः प्रकृतेः आत्मनो न सत्त्वं रजः तम इति स्थित्युत्पत्न्तहेतवः ॥१२॥

अनुवाद— गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति कहलाती है अतएव ये गुण प्रकृति के हैं आत्मा के नहीं है। सत्त्व, रजस् एवं तमस् ये तीनों गुण स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय के कारण हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

ननु ज्ञानं जीवधर्मः कथं प्रकृतेर्गुणः स्यादत आह-प्रकृतिरिति । गुणसाम्यं हि प्रकृतिरतस्तद्विशेषरूपा गुणास्तस्या एव, न त्वात्मनो जीवस्य अकर्तृत्वात्तस्य स्थित्यादिहेतुभूतगुणाश्रयत्वानुपपत्तेः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि ज्ञान तो जीव का धर्म है वह प्रकृति का गुण कैसे हो सकता है ? इस पर श्रीभगवान् कहे कि गुणों की साम्यावस्था को ही प्रकृति कहते हैं । उसी का विशेष रूप गुण हैं । अतएव गुण प्रकृति के ही धर्म है आत्मा के नहीं क्योंकि कर्तृत्व आदि जीव के धर्म नहीं हैं । वह स्थिति आदि के कारणभूत गुणों का आश्रय नहीं हो सकता है ॥१२॥

सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म तमोऽज्ञानमिहोच्यते । गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः सूत्रमेव च ॥१३॥

अन्वयः— सत्त्वं ज्ञानं रजः कर्म इह तम अज्ञानम् उच्यते, गुणव्यतिकरः कालः स्वभावः च सूत्रम् एव ॥१३॥

अनुवाद— सत्त्वगुण ही काल है, रजोगुण ही कर्म, तथा लोक में तमोगुण को ही अज्ञान कहा जाता है । गुणों में व्यतिकर (क्षोभ) उत्पन्न करने वाले ईश्वर ही काल हैं तथा स्वभाव महत् तत्त्व ही स्वभाव है । वही सूत्र कहलाता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अतः सत्त्वं सत्वमयं ज्ञानं प्रकृतेर्गुण इति पूर्वेणैवान्वयः । ननु तन्निवर्त्यं कर्माज्ञानं च तत्त्वान्तरं स्यात्, न, रजःकर्म रजसो वृत्तिः, अज्ञानं च तमसः ।अतः कर्माज्ञानयो रजस्तमोद्वारा प्रकृतावेवान्तर्भाव इति भावः । तथापि कालस्वभावयोस्तत्त्वान्तरता स्यात्, न गुणव्यतिकर इति । गुणानां व्यतिकरो यस्मात्स ईश्वर एव कालो नाम । स्वभावो नाम सूत्रं महत्तत्त्वमेव । तस्य सर्वशक्तिमत्त्वात् । तदेवं ज्ञानादीनां यथायथमन्तर्भावान्न पक्षद्वयेऽपि तत्त्ववृद्धिः । एतश्च पक्षान्तरेष्वपि ज्ञेयम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

अतएव सत्त्वमय ज्ञान प्रकृति का ही गुण है यह इससे पहले के श्लोक के साथ अन्वय है । यदि कहें कि ज्ञान के द्वारा निवर्तित किया जाने वाला कर्म तो अलग से तत्त्व है तो ऐसी बात नहीं है रजोगुण की वृत्ति है कर्म और तमोगुण की वृत्ति अज्ञान है अतएव कर्म तथा अज्ञान इन दोनों का रजोगुण और तमोगुण के द्वारा प्रकृति में अन्तर्भाव हो जाता है । फिर काल और स्वभाव तो अलग से तत्त्व हो सकते है तो इस पर कहते है, तो ऐसी बात नहीं ही गुणों में व्यतिकर (क्षोभ) उत्पन्न करने वाले ईश्वर ही काल है । सूत्र अर्थात् महत्त्व ही स्वभाव है, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान है । अतएव ज्ञान आदि का भी यथायथ प्रकृति में अन्तर्भाव हो जाने से पचीस तत्त्ववाद और छबीस तत्त्ववाद में तत्त्वों की वृद्धि नहीं हो सकती हैं ।।१३।।

पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमहङ्कारो नभोऽनिलः । ज्योतिरापः क्षितिरिति तत्त्वान्युक्तानि मे नव ।।१४।।

अन्वयः— पुरुषः प्रकृतिः व्यक्तम् अहङ्कारः नभः अनिलः ज्योतिः आपः क्षितिः मे नव तत्त्वानि उक्तानि ।।१४।।

अनुवाद— पुरुष, प्रकृति, महत् तत्त्व (व्यक्त) अहङ्कार, आकाश वायु, तेज, जल और पृथिवी इन नव तत्त्वों को मैं कह चुका हूँ ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

(पक्षान्तरमुद्भावयति-के ते गुणाः, किंप्रयोजनाः, किंस्वरूपाः, एतत्सर्वं दर्शयन्नर्थान्नवैकादश पञ्च त्रीणीति स्वमत्तत्त्वप्रतिपादनश्लोके त्रीणीति पदं व्याचष्टे-सत्त्वं रजस्तम इति । मतान्तरे,-कालः, सूत्रं, पुरुष इति) स्वमते तु गुणानामागमापायित्वात्प्रकृतेर्भेदो विवक्षितोऽतो गुणास्त्रीणि तत्त्वान्यपराणि पञ्चविंशतितत्त्वानि पूर्वोक्तपक्षद्वयसाधारणानि दर्शयति-पुरुष इति सार्धद्वाभ्याम् । व्यक्तं महत्तत्त्वम् । नभआदीनि पञ्चतन्मात्राणि । मे मया ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

(दूसरे पक्ष की उद्भावना श्रीभगवान् करते हैं वे गुण कौन हैं ? उनका क्या स्वरूप है ? इन सारी बातों को दिखाते हुए अर्थात्, नव, ग्यारह, पाँच, तीन इस तरह अपने मत के तत्त्वों की प्रतिपादक श्लोक में विद्यमान् तीन इस पद की व्याख्या **सत्त्वं रजस्तम० इत्यादि** श्लोक से बतलाते मतान्तर के अनुसार काल सूत्र तथा पुरुष इस प्रकार है ।) अपने मत में तो गुणों के आगमापायी (उत्पन्न होने वाले तथा विनष्ट होने वाले) होने के कारण प्रकृति के भेद रूप से विवक्षित हैं । अतएव तीनों गुण पचीस से भिन्न तीन तत्त्व है । पूर्वोक्त दोनों पक्षों (पचीस तत्त्वाद और छबीस तत्त्वाद) को समान रूप से श्रीभगवान् **पुरुषः० इत्यादि** डेढ श्लोक से दिखलाते हैं । व्यक्तम् अर्थात् महत् तत्त्व, नभ आदि पाँच तनमात्राएँ । **मे** अर्थात् मेरे द्वारा ।।१४।।

श्रोत्रं त्वग्दर्शनं घ्राणो जिह्वेति ज्ञानशक्तयः । वाक्पाण्युपस्थपाय्वङ्घ्रिः कर्माण्यङ्गोभयं मनः ।।१५।।
शब्दः स्पर्शो रसो गन्धो रूपं चेत्यर्थजातयः। गत्युक्त्युक्त्युत्सर्गशिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः।।१६।।

अन्वयः— हे अङ्ग श्रोत्रं त्वक् दर्शनं घ्राणः जिह्वा इति ज्ञानशक्तियः, वाक्पाण्युपस्थ, पाय्वङ्घ्रि कर्माणि उभयं मनः। शब्दः स्पर्शः रसः गन्धः, रूपं च अर्थजातयः गत्युक्तियुत्सर्ग शिल्पानि कर्मायतनसिद्धयः ।।१५-१६।।

अनुवाद— हे उद्धवजी ! श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, घ्राण और रसना ये पाँच ज्ञानेन्द्रियों वाक् पाणि, पाद, पायु तथा उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथ मन जो ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों है । ये ग्यारह इन्द्रियाँ तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये ज्ञानेन्द्रियों के पाँच विषय, इस प्रकार तीन, पाँच नव और ग्यारह सब मिलकर ये अठाइस तत्त्व होते हैं । कर्मेन्द्रियों के पाँच विषय चलना, बोलना, मल, त्याग, मूत्र-त्याग करना इन सबों से तत्त्वों की संख्या नहीं बढ़ती है । इन सबों को कर्मेन्द्रिय रूप ही मानना चाहिए ।।१५-१६।।

भावार्थ दीपिका

एकादश दर्शयति–श्रोत्रमिति । दर्शनं चक्षुः । ज्ञानशक्तयो ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च । वागादिपाय्वन्तानि द्वन्दैक्येनोक्तानि चत्वार्यङ्घ्रिश्चेति कर्माणि कर्मेन्द्रियाणि पञ्च । उभयात्मकं मनः । उभयेन्द्रियसाधारणमित्यर्थः । अङ्ग हे उद्धव । एवमेतान्येकादश पञ्च दर्शयति शब्द इति । शब्दादीनि विषयतया परिणतानि पञ्चमहाभूतानि । ननु गत्यादिभिस्तत्त्वाधिक्यं पक्षत्रयेऽपिस्यान्नेत्याह गतीति। गतिश्च उक्तिश्च उत्सर्गौ च शिल्पं च तानि कर्मायतनानां कर्मेन्द्रियाणां सिद्धयः, फलनि न तत्त्वान्तराणीत्यर्थः।।१४-१५।।

भाव प्रकाशिका

ग्यारह तत्त्वों को **श्रोत्रम्० इत्यादि** श्लोक से दिखाते हैं । दर्शनम् अर्थात् चाक्षुरिन्द्रिय ज्ञानशक्तय: अर्थात् ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच है । वागिन्द्रिय से लेकर पायु पर्यन्त की चार इन्द्रियों को द्वन्द समासान्तर्गत एकवचनान्त प्रयोग से कही गयी है। पाँचवी कर्मेन्द्रिय पादेन्द्रिय हैं । इस तरह कर्मेन्द्रियाँ भी पाँच हैं मन, कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दोनों है । हे अङ्ग अर्थात् हे उद्धव इस तरह इनकी संख्या ग्यारह है । पाञ्च तत्त्वों को **शब्द० इत्यादि** श्लोक से बतलाते है । शब्द आदि जो पाँच है तथा विषय रूप से परिणत हैं ये पाँच भूत ही हैं । यदि कहें कि गति आदि क्रियाओं के द्वारा तत्त्वों की संख्या तीनों पक्षों में अधिक हो जाती हैं, तो ऐसी बात नहीं है, क्योंकि गति, उक्ति दोनों प्रकार के उत्सर्ग तथा शिल्प ये पाँचों कर्मेन्द्रियों के फल हैं । तत्त्व नहीं है ।।१५-१६।।

सर्गादौ प्रकृतिर्ह्यस्य कार्यकारणरूपिणी । सत्त्वादिभिर्गुणैर्धत्ते पुरुषो व्यक्त ईक्षते ।।१७।।

अन्वयः— सर्गादौ प्रकृतिः हि अस्य कार्यकारणरूपिणी सत्त्वादिभिः गुणैः धत्ते पुरुषः अव्यक्तः ईक्षते ।।१७।।

अनुवाद— सृष्टि के प्रारम्भ कार्य (ग्यारह इन्द्रियाँ और पञ्च महाभूत) और कारण (महत्तत्व) आदि के रूप में प्रकृति ही रहती है । वही सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण की सहायता से जगत् की स्थिति, उत्पत्ति और संहार रूप अवस्थाओं को धारण करती है । पुरुष तो साक्षीमात्र है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं मतत्रयेऽपि तत्त्वसंख्याभेदं निरूप्य यद्विवक्षया गायन्तीति यत्पृष्टं तत्तन्मततात्पर्य दर्शयति–सर्गादाविति । कार्याणि षोडश विकाराः, कारणानि महदादीनि सप्त, तद्रूपिणी सती प्रकृतिरस्य विश्वस्य सर्गादौ गुणैः सृज्यत्वाद्यवस्थां धत्ते । उपादानकारणरूपतत्वात्। पुरुषस्त्वव्यक्तोऽपरिणामी निमित्तभूतः केवलमीक्षते । अतः परिणामिन्याः प्रकृतेः पुरुषो भिन्न इति।।१७।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह तीनों मतों में तत्त्वों का होने वाले संख्या के भेद का निरूपण करके ऋषिगण जिस विवक्षा से तत्त्वों का गायन करते हैं यह श्रीउद्धवजी ने पूछा है उन सभी मतों के तात्पर्य को श्रीभगवान् सर्गादौ इस श्लोक के द्वारा बतलाते हैं । ग्यारह इन्द्रियाँ और पञ्च महाभूत ये कार्य शब्द से कहे जाने वालों की संख्या सोलह है । कारण सात हैं (महान् अहङ्कार और पञ्च तन्मात्राएँ) इस तरह की प्रकृति इस विश्व को सृष्टि के प्रारम्भ में सृष्टि आदि की अवस्था को धारण करती हैं । क्योंकि प्रकृति ही जगत् का उपादान कारण है । पुरुष तो अव्यक्त और उपपरिणामी होने के कारण निमित्त स्वरूप एवं साक्षीमात्र है अतएव वह परिणत होने वाली प्रकृति से भिन्न हैं ।।१७।।

व्यक्तादयो विकुर्वाणा धातवः पुरुषेक्षया । लब्धवीर्याः सृजन्त्यण्डं संहताः प्रकृतेर्बलात् ॥१८॥

अन्वयः— व्यक्तादयः धातवः विकुर्वाणाः पुरुषेक्षया लब्धवीर्याः संहताः प्रकृते बलात् अण्डं सृजन्ति ॥१८॥

अनुवाद— महतत्त्व आदि कारण धातुएँ विकार को प्राप्त होते हुए पुरुष के ईक्षण मात्र से शक्ति प्राप्त करके परस्पर में मिल जाते हैं । और प्रकृति का आश्रय प्राप्त करके उसी के बल से ब्रह्माण्ड की सृष्टि करते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

तत्त्वैरारब्धकार्यस्य तदन्तर्भावमभिप्रेत्याह-व्यक्तादय इति । व्यक्तादयो महदादयः प्रकृतेरुत्पन्ना ये धातवस्ते विकुर्वाणाः पुरुषेक्षणेन लब्धवीर्याः संहता अण्डं सृजन्ति । प्रकृतेर्थलाभात्तामाश्रित्येत्यर्थः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

तत्त्वों के द्वारा ब्रह्माण्ड के निर्माण का उसके भीतर ही अन्तर्भाव के अभिप्राय से **व्यक्तादयः इत्यादि** श्लोक कहते हैं । **व्यक्तादयः** अर्थात् महत्तत्व आदि प्रकृति से उत्पन्न धातुएँ विकृतः होते हैं । पुरुष के ईक्षण से शक्ति प्राप्त करके आपस में मिल जाते और के आश्रय पाकर प्रकृति के ही बल से ब्रह्माण्ड की सृष्टि करते हैं ॥१८॥

सप्तैव धातव इति तत्रार्थाः पञ्च खादयः । ज्ञानमात्मोभयाधारस्ततो देहेन्द्रियासवः ॥१९॥

अन्वयः— धातव सप्त एव तत्र खादयः पञ्च अर्थाः ज्ञानम् आत्मोभयाधारः देहेन्द्रियासवः ॥१९॥

अनुवाद— जो लोग सात ही धातु है, यह मानते हैं उनके मतानुसार आकाश आदि (वायु, तेज, जल और पृथिवी) ये पाँच महाभूत छठा जीव और सातवाँ ईश्वर जो साक्षी जीव और साक्ष्य जगत् दोनों का अधिष्ठान है, देह, इन्द्रिय और प्राण आदि की उत्पत्ति पञ्च महाभूतों से हुई है इसीलिए वे इनको अलग नहीं गिनते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

एवं स्वमतमुपसंहृत्य मतान्तरेष्वपि सामान्यतो निरूपितां घटनां विशेषतः सतात्पर्यां दर्शयति-सप्तैवेति । ज्ञानं जानातीति द्रष्टा जीवः उभयोर्द्रष्टृदृश्ययोराधार आत्मा चेति सप्त । तत्र प्रकृत्यादीनां कारणत्वेन खादिष्वन्तर्भावः । उत्तरेषामन्तर्भावार्थमाह-ततस्तेभ्यः सप्तभ्यो देहेन्द्रियासवः सर्वकार्याणि जायन्ते ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह अपने मत का उपसंहार करके श्रीभगवान् दूसरे मतों में भी सामान्यतः निरूपित घटना को विशेष रूप से उनके तात्पर्य पूर्वक **सप्तैव० इत्यादि** श्लोक से निरूपण करते हैं । ज्ञान को जानने वाला द्रष्टा जीव द्रष्टा और दृश्य प्रपञ्च दोनों के आश्रय आत्मा अर्थात् परमात्मा हैं । इस तरह तत्त्वों की संख्या सात हो जाती है । प्रकृति आदि ही कारण हैं । देह, इन्द्रिय और प्राणों की उत्पत्ति तो पञ्चभूतों से होती है, अतएव इनको वे अलग से धातु नहीं मानते हैं । देहे इन्द्रिय आदि का अन्तर्भाव बतलाते हुए श्रीभगवान् कहे कि उन सात तत्त्वों से ही देह तथा इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है ॥१९॥

षडित्यत्रापि भूतानि पञ्च षष्ठः परः पुमान् । तैर्युक्त आत्मसंभूतैः सृष्ट्वेदं समुपाविशत् ॥२०॥

अन्वयः— षट् इत्यत्रापि भूतानि पञ्च षष्ठः पर पुमान् तैः आत्मसम्भूतैः युक्तः इदं सृष्ट्वा समुपाविशत् ॥२०॥

अनुवाद— छह ही धातु हैं यह मानने वालों के मतानुसार पाँच महाभूत और छठा परमात्मा इस जगत् की सृष्टि करके इसके भीतर अन्तर्यामी रूप से प्रवेश कर गये ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

षडिति मतेऽपि भौतिकस्य भूतान्तर्भावं जीवस्य च परमात्मान्तर्भावमाह-तैर्युक्त इति । (स च परः पुमांस्तैरात्मसंभूतैः

पञ्चभूतैर्युत इदं देहादिकं सृष्ट्वा तत्स्वयं समुपाविशत् । पूर्वस्मिन्कारणे पञ्चभूतात्मके भौतिकेन्द्रियादीनामन्तर्भाव उक्तः पूर्वोक्ततया ज्ञातव्यः) ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

छह ही तत्त्व है इस तरह से मानने वालों के मत में पञ्च महाभूत में ही भौतिक पदार्थों का अन्तर्भाव और जीव का परमात्मा में अन्तर्भाव होता है । तैः युक्तः इत्यादि से कहा गया है । वे परमात्मा अपने से ही उत्पन्न पञ्चभूतों से युक्त देह आदि की सृष्टि करके उन सबों के भीतर स्वयं प्रवेश कर गये । पहले कारण में भौतिक इन्द्रियों आदि का अन्तर्भाव कहा गया है यह पूर्वोक्ति के द्वारा जानना चाहिए ॥२०॥

चत्वार्येवेति तत्रापि तेज आपोऽन्नमात्मनः । जातानि तैरिदं जातं जन्मावयविनः खलु ॥२१॥

अन्वयः— चत्वारि एव इति तत्रापि आत्मनः तेजः पृथिवी आपः अन्नम् जातानि तैः इदं जातं अवयविनः खलु जन्म॥२१॥

अनुवाद— जो चार ही तत्त्व हैं, यह मानते हैं उनके अनुसार आत्मा से तेज, जल और पृथिवी की उत्पत्ति हुई । इन्हीं से जगत् की उत्पत्ति हुई । वे लोग सभी कार्यो का इन्हीं में समावेश कर लेते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अन्नं पृथिवी । आत्मनो जातानि आत्मना सह चत्वारि तत्त्वानि । अन्तर्भावार्थमाह–तैरिति । अवयविनः कार्यस्य॥२१॥

भाव प्रकाशिका

अन्न अर्थात् पृथ्वी । आत्मा से उत्पन्न हुए है । आत्मा के साथ मिलकर ये चार हो जाते हैं ॥२१॥

संख्याने सप्तदशके भूतमात्रेन्द्रियाणि च । पञ्चपञ्चैकमनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥२२॥

अन्वयः— सप्तदशके संख्याने भूतमात्रेन्द्रियाणि च पञ्च पञ्चैकमनसा आत्मा सप्तदशः स्मृतः ॥२२॥

अनुवाद— जो तत्त्वों की संख्या सत्रह बतलाते है उनके अनुसार पाँच, भूत, पाँच तन्मात्राएँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एक मन और एक आत्मा ये तत्त्व हैं ॥ २२॥

भावार्थ दीपिका

भूतानि च मात्राणि च इन्द्रियाणि च पञ्च पञ्च । एकेन मनसा सह आत्मा सप्तदशः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्राएँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन के साथ आत्मा ये सभी मिलकर सत्रह तत्त्व हो जाते हैं ॥२२॥

तद्वत्षोडशसंख्याने आत्मैव मन उच्यते । भूतेन्द्रियाणि पञ्चैव मन आत्मा त्रयोदश ॥२३॥

अन्वयः— तद्वत् षोडश संख्या आत्मैव मन उच्यते । भूतेन्द्रियाणि पञ्चैव मन आत्मैव त्रयोदश ॥२३॥

अनुवाद— जो लोग तत्त्वों की संख्या सोलह मानते हैं उनकी भी गणना उसी प्रकार की है । वे लोग केवल आत्मा में ही मन का समावेश कर लेते हैं । वे कहते हैं कि आत्मा ही मन कहलाता है तरेह तत्त्वों की संख्या मानने वाले आकाश आदि पञ्च महाभूत, श्रोत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मन, आत्मा और परमात्मा इन तेरह तत्त्वों को मानते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

आत्मैव संकल्पयन्मन उच्यते । त्रयोदशपक्षे भूतानि तन्मात्रैरेकीकृतानि पञ्चैव । इन्द्रियाणि तत्प्रकाशकानि पञ्चैव । मनश्चैकमिन्द्रियाधिष्ठातृ । आत्मा च द्विविधः । एवं त्रयोदश ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

षोडश तत्ववादी कहते है कि जब आत्मा सङ्कल्प करता है तो वह मन कहलाने लगता है। अतएव मन से अतिरिक्त तत्व नहीं है। त्रयोदश तत्त्व वादियों के पक्ष में तन्मात्राओं के साथ एकीकृत पञ्च महाभूत, पाञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ ये इन्द्रिया भूतों के प्रकाशक हैं। इन्द्रियों का अधिष्ठाता मन एक तथा आत्मा एवं परमात्मा सब मिलकर तेरह तत्त्व हैं ।।२३।।

एकादशत्व आत्मासौ महाभूतेन्द्रियाणि च । अष्टौ प्रकृतयश्चैव पुरुषश्च नवेत्यथ ।।२४।।

अन्वयः— एकादशत्वे असौ आत्मा महाभूतेन्द्रियाणि च, अष्टौ प्रकृतयः चैव पुरुषश्च नव इति ।।२४।।

अनुवाद— ग्यारह तत्त्व मानने वालों का कहना है कि पञ्च महाभूत तथा पाञ्च ज्ञानेन्यिाँ और आत्मा ये ग्यारह तत्व है नव तत्ववादियों का कहना है कि पाँच महाभूत मन, बुद्धि और अहङ्कार तथा आत्मा ये सभी नव तत्त्व हैं।।२४।।

भावार्थ दीपिका

एकादशत्वपक्षे, पञ्चमहाभूतानि पञ्चेन्द्रियाणि। जीवमनसोश्चत्मान्तर्भावेनैतान्येवैकादश। नवपक्षे, अष्टौ प्रकृतयः पुरुषश्च। विकाराणां तदन्तर्भावः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

ग्यारह तत्त्वों को मानने वाले के मत में यह आत्मा पञ्च महाभूत और पाञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ ये ग्यारह तत्त्व है। नव तत्त्वों को मनने वालों के मतानुसार पाञ्च महाभूत, मन, बुद्धि, अहङ्कार और आत्मा ये नव तत्त्व हैं ।।२४।।

इति नानाप्रसंख्यानं तत्त्वानामृषिभिः कृतम् । सर्वं न्याय्यं युक्तिमत्त्वाद्विदुषां किमशोभनम् ।।२५।।

अन्वयः— इति ऋषिभिः तत्त्वानां नना प्रसंख्यानम् कृतम् सर्वंन्यायं त्युक्तिमत्त्वाद विदुषां किम् अशोभम् ?।।२५।।

अनुवाद— उद्धवजी इस प्रकार ऋषियों ने अनेके प्रकार से तत्त्वों की गणना की है, और वे सब के सब संख्या युक्ति युक्त है, अतएव ज्ञानियों का कुछ भी असुन्दर नहीं होता ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-इतीति। इति एभिः प्रकारैः प्रकृतिपुरुषभेदज्ञापनायेत्यर्थः। (ननु एतेषां कतमः पक्षस्त्याज्य इति चेत्तत्राह-सर्वमिति) ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

इति० इत्यादि श्लोक के द्वारा तत्त्व निरूपण का उपसंहार करते हैं। इस प्रकार से प्रकृति तथा पुरुष में होने वाले भेद को बोधित करने के लिए (यदि कोई पूछे कि इतने मतों में कौन सा मत त्याज्य है तो इसपर श्रीभगवान् कहते हैं सभी मत ग्राह्य हैं क्योंकि वे सब युक्तियुक्त हैं ।।२५।।

उद्धव उवाच

प्रकृतिः पुरुषश्चोभौ यद्यप्यात्मविलक्षणौ । अन्योन्यापाश्रयात्कृष्ण दृश्यते न भिदा तयोः।।
प्रकृतौ लक्ष्यते ह्यात्मा प्रकृतिश्च तथात्मनि ।।२६।।

अन्वयः— कृष्ण यद्यपि प्रकृति पुरुषौ आत्म विलक्षणौ अन्योन्यापाश्रयात् तयोः भिदा न दृश्यते। आत्मा प्रकृतौ लक्ष्यते तथा प्रकृतिः च आत्मनि ।।२६।।

श्रीउद्धवजी ने कहा

अनुवाद— भगवन् श्रीकृष्ण यद्यपि प्रकृति और पुरुष दोनों एक दूसरे से विलक्षण हैं फिर भी वे आपस में इतने घुल-मिल गये हैं कि इनमें भेद प्रतीत ही नहीं होता है। आत्मा में भी प्रकृति की प्रतीति होती है और प्रकृति में भी आत्मा की प्रतीति होती है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

ननु गुणसाम्यं प्रकृतिस्तस्याः सत्त्वादयो गुणाः, नत्वात्मन इति तयोर्भेदाप्रतीतेः कथं ज्ञातुं शक्यत इत्युद्धवः पृच्छति-प्रकृतिरिति। आत्मना जडाजडस्वभावेन विलक्षणौ । अन्योन्यापाश्रयात्परस्परपरिहारेणाप्रतीतेरित्यर्थः । अन्योन्यापाश्रयत्वमेवाह-प्रकृताविति । प्रकृतौ तत्कार्ये देहे । प्रकृतिश्चात्मनि । तेन विना तस्या अप्रतीतेः । अहमित्यभेदप्रतीतेर्न देहात्मनो भेदो लक्ष्यत इत्यर्थः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि गुणों की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं । प्रकृति के सत्त्व, रजस् एवं तमस् ये तीन गुण हैं, न कि ये आत्मा के गुण हैं किन्तु इन दोनों में होने वाले भेद की प्रतीति नहीं होने के कारण इसे कैसे जाना जा सकता है, इस तरह से श्रीउद्धव जी **प्रकृतिः इत्यादि** श्लोक से पूछते हैं । अजड, स्वभाव वाले आत्मा से जड़ा प्रकृति का विलक्षण ही है । किन्तु ये दोनों परस्पर में ऐसे मिल गये हैं कि दोनों में होने वाले भेद की प्रतीति ही नहीं होती है। दोनों के परस्पर में मिल जाने का ही वर्णन **न प्रकृतौ इत्यादि** से कहा गया है । प्रकृति तथा उसके कार्य भूत शरीर में आत्मा की प्रतीति होती है और उसी तरह प्रकृति भी आत्मा में प्रतीत होती है । आत्मा के बिना प्रकृति की प्रतीति हो ही नहीं सकती है । इसी तरह देह में भी मैं इस तरह की प्रतीति होने से देह और आत्मा में भेद नहीं प्रतीत होता है ।।२६।।

एवं मे पुण्डरीकाक्ष महान्तं संशयं हृदि । छेत्तुमर्हसि सर्वज्ञ वचोभिर्नयनैपुणैः ।।२७।।

अन्वयः— हे पुण्डरीकाक्ष ! हे सर्वज्ञ ! एवं में हृदि महान्तं संशयं नयनैपुणैः वचोभिः छेतुम् अहसि ।।२७।।

अनुवाद— हे कमलनयन ! हे सर्वज्ञ ! इस प्रकार से मेरे हृदय में विद्यमान संशय को आप अपनी युक्तियुक्त वाणी से दूर करने की कृपा करें ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

हृदि वर्तमानं संशयम् । नये युक्तौ नैपुणं प्रावीण्यं येषां तैः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

हृदय में विद्यमान संशय को **नयनैपुणैः** अर्थात् प्राविण्य पूर्ण युक्तियों से ।।२७।।

त्वत्तो ज्ञानं हि जीवानां प्रमोषस्तेऽत्र शक्तितः । त्वमेव ह्यात्ममायाया गतिं वेत्थ न चापरः ।।२८।।

अन्वयः— जीवनां ज्ञानं त्वत्तः हि अत्र ते शक्तितः प्रमोषः त्वमेव आत्ममायायाः गतिं वेत्थ, अपरः च न ।।२८।।

अनुवाद— भगवन् आपकी कृपा से ही जीवों को ज्ञान प्राप्त होता है, और इस लोक में आपकी माया से ज्ञान का नाश हो जाता है । आप ही अपनी माया की गति को जानते हैं, दूसरा कोई भी नहीं जानता है, अतएव आप मेरे संशय को अवश्य मिटा दें ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

अर्हसीत्युक्तं, तत्र हेतुमाह-त्वत्त इति । हि यस्मात् त्वत्तस्त्वत्प्रसादादेव । अत्र ज्ञाने प्रमोषो भ्रंशश्च ते शक्तितो मायातः। ननु स्वप्रकाशस्यात्मनः कथं ज्ञानप्रमोषः, ज्ञानदाने तत्प्रमोषे वा मम किं प्रयोजनं, तत्राह-त्वमेवेति ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

अर्हसि यह कह चुके है, **त्वत्तः इत्यादि** श्लोक से उसमें कारण उपन्यस्त करते हैं चूकि आपकी कृपा से ही आपके द्वारा ज्ञान और इसका प्रमोष होता है, आपकी शक्ति के द्वारा । प्रश्न है स्वयं प्रकाश आत्मा के ज्ञान का प्रमोष (नाश) कैसे होता है ? ज्ञान के देने और ज्ञान का प्रमोष करने में मेरा कौन सा प्रयोजन है ? इस पर **परत्वमेव इत्यादि** कहते हैं ।।२८।।

श्रीभगवानुवाच

प्रकृतिः पुरुषश्चेति विकल्पः पुरुषर्षभ । एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः ॥२९॥

अन्वयः— हे पुरुषर्षभ ! प्रकृतिः पुरुषः चेति विकल्पः, एष सर्गः वैकारिकः गुणव्यतिकरात्मकः ॥२९॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— पुरुषश्रेष्ठ उद्धवजी ! प्रकृति और पुरुष दोनों में अत्यन्त भेद है । यह देह आदि के सङ्घात की सृष्टि विकारों से युक्त है, क्योंकि यह सृष्टि गुणों के क्षोभ के कारण हुई है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

विकाराविकाराभ्यां नानात्वैकत्वाभ्यां सापेक्षनिरपेक्षत्वाभ्यां प्रकाशाप्रकाशाभ्यां चात्यन्तं भेदं वक्तुमाह-प्रकृतिः पुरुषश्चेति विकल्पोऽत्यन्तभेद एव । कुत इत्यपेक्षायां प्रकृतिशब्दोक्तदेहादिसङ्घातस्य विकारित्वं तावद्दर्शयति-एष इति द्वाभ्याम् । एष सर्गः सृज्यत इति सर्गो देहादिसङ्घातो वैकारिको विकारवान् । अत्र हेतुः-गुणव्यतिकरात्मको गुणक्षोभकृतः ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

प्रकृति हमेशा विकृत होती रहती है जब कि आत्मा अविकृत रहता है । प्रकृति चतुर्विंशति तत्त्वात्मिका होने के कारण नानात्मिका है और आत्मा एक है । प्रकृति पुरुष सापेक्ष होती है, किन्तु आत्मा निरपेक्ष है । आत्मा प्रकाश स्वरूप है जब कि प्रकृति जड़ा होने से अप्रकाश रूप है । इन सभी प्रकारों से प्रकृति एवं पुरुष में होने वाले भेद को बतलाने के लिए श्रीभगवान् **प्रकृतिः इत्यादि** श्लोक कहे हैं । प्रकृति और पुरुष में अत्यन्त भेद है । क्योंकि प्रकृति शब्द से कहे जाने वाले देहादि के समूह के **विकारित्व को एष इत्यादि** दो श्लोकों से बतलाते हैं । यह सृष्ट देहादि समूह विकारों से युक्त है, क्योंकि यह गुणों के क्षोभ से उत्पन्न है ॥२९॥

ममाङ्ग माया गुणमय्यनेकधा विकल्पबुद्धीश्च गुणैर्विधत्ते ।
वैकारिकस्त्रिविधोऽध्यात्ममेकमथाधिदैवमधिभूतमन्यत् ॥३०॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! मम मायागुणमयी अनेकधा गुणैः च विकल्प बुद्धिः विधत्ते, वैकारिकः त्रिविधः एकम् अध्यात्मम्, अथ अधिदैवम् अधिभूतम् ॥३०॥

अनुवाद— उद्धव जी ! मेरी माया त्रिगुणात्मिका है, सत्त्व रजस एवं तमस इन तीनों गुणों के भेद से अनेक प्रकार की वृत्तियों को उत्पन्न करती है । यद्यपि इसका विस्तार असीम है फिर भी इस विकार युक्त सृष्टि को तीन भागों में विभक्त करती है, वे तीन भाग है, अध्यात्म, अधिभूत, और अधिदैव ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

नानात्वमाह-ममेति । विकल्पं भेदं तद्बुद्धीश्च । अनेकधात्वं प्रपञ्चयति । वैकारिकोऽनेकविकारवानपि स्थूलेन मार्गेण तावत्त्रिविधः । त्रैविध्यमाह-अध्यात्ममिति । एकं रूपम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

प्रकृति में होने वाले नानात्व को **ममाङ्ग इत्यादि श्लोक** से दिखलाते हैं । विकल्पः अर्थात भेद तथा भेद बुद्धि। प्रकृति के अनेक प्रकारत्व का विस्तार बतलाते हुए कहते हैं- **वैकारिकः** अर्थात् विकार वाली । स्थूल दृष्टि से तीन प्रकार के भेद हैं **अध्यात्मम्० इत्यादि** से सृष्टि के तीन भेद बतलाये गये हैं अध्यात्म, अधिदैव तथा अधिभूत । एकम् एकरूप ॥३०॥

दृग्रूपमार्कं वपुरत्र रन्ध्रे परस्परं सिध्यति यः स्वतः खे ।
आत्मा यदेषामपरो य आद्यः स्वयाऽनुभूत्याखिलसिद्धसिद्धिः ॥
एवं त्वगादि श्रवणादि चक्षुर्जिह्वादि नासादि च चित्तयुक्तम् ॥३१॥

अन्वयः— दृक्, रूपमार्कं वपुः अत्ररन्ध्रे परस्प्रं सिध्यति, यः खे स्वतः, एषाम् अपरः यः आत्मा आद्यः स्वयानुभूत्या खिलसिद्धसिद्धिः एवम् त्वगादि श्रवणादि चक्षुर्जिह्वादि नासादि च चित्तयुक्तम् ।।३१।।

अनुवाद— जैसे चक्षरिन्द्रिय अध्यात्म है, उसका विषय रूप अधिभूत है और नेत्र गोलक में प्रविष्ट सूर्य देवता का अंश अधिदैव है, ये तीनों परस्पर में एक दूसरे के आश्रय से सिद्ध होते हैं । अतएव अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव ये तीनों परस्पर में सापेक्ष हैं । किन्तु आकाश में स्थित सूर्यमण्डल इन तीनों से निरपेक्ष है क्योंकि वह स्वतः सिद्ध है । इसीतरह आत्म भी इन तीनों से निरपेक्ष होने से स्वतः सिद्ध और इन तीनों का मूलकारण है । वह अपने स्वयं सिद्ध प्रकाश से समस्त सिद्ध पदार्थों की मूल सिद्धि है । उसी के द्वारा सबों का प्रकाश होता है । जिस तरह चक्षु के तीन भेद बतलाये गये हैं । उसी प्रकार त्वचा श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा और चित्त के तीन-तीन भेद होते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

तानि रूपाणि दर्शयति-दृगध्यात्मम् । रूपमधिभूतम् । अत्र रन्ध्रे चक्षुर्गोलके प्रविष्टमार्कं वपुरंशोऽधिदैवमिति । सापेक्षप्रकाशतामाह-परस्परमिति । चक्षुषा रूपं ज्ञायते । तदन्यथानुपपत्त्या चक्षुः तत्प्रवृत्त्यन्यथानुपपत्त्या तदधिष्ठात्री देवता । ततश्च चक्षुषः प्रवृत्तिस्ततो रूपज्ञानमित्येवमेतत्त्रयं परस्परं सिध्यति । अत्र रन्ध्र इति विशेषणव्यावर्त्यमाह दृष्टान्तोपयोगितया-यस्तु खे आकाशे अर्को वर्तते मण्डलात्मा स तु स्वतः सिध्यति । चक्षुर्विषयत्वेऽपि प्रतियोग्यपेक्षाभावमात्रेण स्वत इत्युक्तम्। इदानीमात्मनो विकारित्वाद्यभावेन भेदमाह-यद्यस्मादात्मा एषामध्यात्मादीनामाद्यः कारणमत एकरूपोऽभिन्नश्च । तस्मादेतेभ्योऽपरो भिन्नः । स्वप्रकाशत्वादपीत्याह-स्वयानुभूत्या स्वतःसिद्धप्रकाशेनाखिलानां सिद्धानां परस्परप्रकाशकानामपि प्रकाशकः, सर्वेषामपि सामान्यतश्चित्प्रकाशविषयत्वात् । अत एव स्वप्रकाशत्वं सिद्धम् । चक्षुषि दर्शितं त्रैविध्यमिन्द्रियान्तरेष्वप्यतिदिशति एवमिति। यथा चक्षुरेवं त्वगाद्यपीत्यर्थः । त्वक्स्पर्शो वायुरिति । श्रवणं शब्दो दिश इति । जिह्वा रसो वरुण इति । नासा गन्धोऽश्विनाविति। चित्तेन युक्तमोन्तः करणान्तरमपि । तत्र चित्तं चेतयितव्यं वासुदेव इति । मनो मन्तव्यं चन्द्र इति । बुद्धिर्बोद्धव्यं ब्रह्मेति । अहङ्कारोऽहङ्कर्तव्यं रुद्र इत्येवं त्रिविधमित्यर्थः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

उन अध्यात्म इत्यादि रूपों को श्रीभगवान् दिखलाते हैं । चक्षुरिन्द्रिय, अध्यात्म है । रूप अधिभूत है और नेत्रगोलक के भीतर प्रविष्ट सूर्य का जो अंश है, वह अधिदैव है । इन तीनों की सापेक्ष प्रकारता को **परस्परम् इत्यादि** के द्वारा दिखाया गया है । चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा रूप का ज्ञान होता है । उसकी अन्यथानुपत्ति के कारण चक्षु और चक्षुरिन्द्रिय की प्रवृत्ति की अन्यथाऽनुपपति के कारण उसकी अधिष्ठातृ देवता । उसी के द्वारा चक्षुरिन्द्रिय में प्रवृत्ति होती है । उसी के द्वारा रूप का ज्ञान होता है । इस तरह ये तीनों की परस्पर में सिद्धि होती है । इस श्लोक में रन्ध्र इस विशेषण के द्वारा व्यावर्त्य को दृष्टान्तेपयोगी रूप से कहा गया है । जो सूर्य आकाश में मण्डल रूप से रहते हैं । वे तो स्वयम्प्रकाश है । यद्यपि वे चक्षुरिन्द्रिय के विषय है फिर भी उन्हे प्रतियोगी की अपेक्षा नहीं होने के कारण उनको स्वतः सिद्ध कहा गया है । अब आत्मा के अविकारित्व इत्यादि के अभाव के कारण भेद को बतलाते है । चूकि आत्मा इन अध्यात्म आदि के मूल कारण हैं अतएव वह एकरूप और अभिन्न भी है। श्रीभगवान् स्वप्रकाशत्व के कारण भी स्वतः सिद्धि बतलाते हैं । अपनी अनुभूति के कारण भी स्वतः सिद्ध प्रकाश के कारण आत्मा समस्त सिद्ध पदार्थों का जो परस्पर में एक दूसरे के प्रकाशक भी हैं उन सबों का भी प्रकाशक है । सब-के-सब ज्ञान के प्रकाश के

विषय सामान्य रूप से बनते है, इसलिए भी वह सबों का प्रकाशक है। इस तरह आत्मा के स्वप्रकाशत्व की सिद्धि हो गयी। जिस त्रैविध्य को चक्षुरिन्द्रिय में बतलाया गया है, वही त्रैविध्य श्रोत्र घ्राण, जिह्वा, त्वक् तथा चित्त में भी होता है, इस बात को **एवम्० इत्यादि** से कहा गया है। त्वगिन्द्रिय का अधिष्ठातृ देवता वायु है, और उसका विषय स्पर्श है, श्रोत्र का विषय शब्द है और उसके अधिष्ठातृ देवता दिशाएँ हैं, जिह्वा का विषय रस है और उसके अधिष्ठातृ देवता वरुण हैं, नासिका का विषय गन्ध है और उसके अधिष्ठातृ देवता दोनों अश्विनी कुमार हैं। चित्त से युक्त अन्त:करण भी है। चित्त के विषय चेतयितव्य हैं और उसके अधिष्ठातृ देवता वसुदेव हैं, मन का विषय मन्तव्य हैं और उसके अधिष्ठातृ देवता चन्द्रमा हैं, बुद्धि का विषय ज्ञातव्य है और उसके अधिष्ठातृ देवता ब्रह्माजी है। अहङ्कार का विषय अहङ्कर्तव्य है और उसके अधिष्ठातृ देवता रुद्र हैं। ये सबके सब तीन-तीन प्रकार के है ॥३१॥

योऽसौ गुणक्षोभकृतो विकार: प्रधानमूलान्महत: प्रसूत: ।
अहं त्रिवृन्मोहविकल्पहेतुर्वैकारिकस्तामस ऐन्द्रियश्च ॥३२॥

अन्वय:— य: असौगुणक्षोभकृत: विकार: प्रधानमूलात् महत: विकार: त्रिवृत् अहं विकल्पहेतु: वैकारिक: तामस ऐन्द्रिय: च ॥३२॥

अनुवाद— प्रकृति से महान् उत्पन्न होता है, महान् से अहङ्कार, इस तरह यह अङ्कार गुणों के क्षोभ से उत्पन्न हुआ प्रकृति का ही विकार है। अहङ्कार के तीन भेद होते हैं सात्त्विक तामस एवं राजस। यह अहङ्कार ही अज्ञान और सृष्टि का मूलकारण है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

ननु पुनरपि वैलक्षण्यमात्रमेवोक्तम्, त्रिविधप्रपञ्चव्यतिरिक्तात्मप्राप्तिस्तु कुत: स्यात्। अहङ्कारनिवृत्त्या। तत्कुत: त्रिविधविकल्पनिवृत्त्यैवेत्याशयेनाह-योऽसावहमहंकार:। तमेवाह-गुणक्षोभं करोतीति। तथा तत: परमेश्वरात्कालाद्वा निमित्तात्प्रधानं मूलमुपादानं यस्य तस्मान्महत: प्रसूतो विकार: स त्रिवृत् त्रिविधो मोहमयस्य विकल्पस्य हेतु:। त्रिवृत्त्वमेवाह-वैकारिक इति॥३२॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि पुन: आपने केवल विलक्षणता को ही कहा, तीन प्रकार के प्रपञ्च से भिन्न आत्मा की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? तो इसका उत्तर है कि अहङ्कार की निवृत्ति के द्वारा ही आत्मा की प्राप्ति सम्भव है। उस अहङ्कार की निवृत्ति कैसे होती है ? तीन प्रकार के भेद की निवृत्ति से ही अहङ्कार की निवृत्ति होती है, इसी अभिप्राय से श्रीभगवान् ने कहा- यह जो अहङ्कार है, वह गुणों के क्षोभ से प्रकृति जन्य महत् तत्त्व से उत्पन्न है। और परमेश्वर अथवा काल के द्वारा प्रधान ही जिसका उपादान कारण है उस महत् तत्त्व से उत्पन्न है। वह अहङ्कार तीन प्रकार का होता है। वह अज्ञानमय भेद का कारण है। सात्त्विक (वैकारिक) राजस (तैजस) और तामस (भूतादि)॥३२॥

आत्मापरिज्ञानमयो विवादो ह्यस्तीति नास्तीति भिदाऽर्थनिष्ठ: ।
व्यर्थोऽपि नैवोपरमेत पुंसां मत्त: परावृत्तधियां स्वलोकात् ॥३३॥

अन्वय:— आत्मा परिज्ञानमय:, अस्तीति, नास्तीति विवाद: भिदार्थनिष्ठ: मत्त: स्वलोकात् परावृत्तधियां पुंसा नैव उपरमेत्॥३३॥

अनुवाद— यह आत्मा ज्ञानमय है। उसका इन पदार्थों से कोई सम्बन्ध नहीं है। उसमें कोई विवाद की भी बात नहीं है, अस्ति नास्ति, सगुण, निर्गुण, सत्य-मिथ्या आदि जितने भी विवाद हैं, उन सबों का कारण भेद दृष्टि है। यह विवाद विष्प्रयोजन है, किन्तु जो लोग मुझसे पराङ्मुख हैं अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप से विमुख हैं वे इस विवाद से मुक्त नहीं हो सकते हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

स कुतो निवर्तते । आत्माज्ञानविलसितत्वात्तज्ज्ञानेनेत्याशयेनाह-आत्मापरिज्ञानमय इति । ननु कथं मोहमयत्वं विकल्पस्याहङ्कारस्य वा कैश्चित्सत्यत्वाङ्गीकारात्तत्राह-विवाद इति । अयं भिदा अर्थनिष्ठो विवादोप्यात्माऽपरिज्ञानमय इत्यन्वयः। यद्वा, विवादः सर्वोऽपि भिदाऽर्थनिष्ठ एव, न तु वस्तुमात्रनिष्ठः । अतः परस्परं युक्तिभिरेव भेदस्य निराकृतत्वान्मोहमयत्वं सिद्धमिति । ननु यद्यहङ्कारो विकल्पश्च नास्ति, अलं तर्हि तन्निवृत्तिप्रयासेन, तत्राह-व्यर्थोऽप्यर्थरहितोऽपि स्वरूपभूतान्मत्तो बहिर्मुखानां नैवोपरमेत् । प्रत्युत तत्कृतैः कर्मभिरुच्चनीचदेहेषु ते संसरन्तीति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि उस अहङ्कार की निवृत्ति कैसे होती है ? तो इसका उत्तर है कि अहङ्कार चूकि आत्मा के अज्ञान के कारण होता है अतएव आत्मा के ज्ञान से ही उसकी निवृत्ति होती है, इसी अभिप्राय से भगवान् ने **आत्मापरिज्ञानमयः इत्यादि** श्लोक कहा है । प्रश्न होता है कि भेद अथवा अहङ्कार का अज्ञानमयत्व कैसे होता है । तो इसका उत्तर है कि कुछ लोगों ने उसे सत्य मान लिया है । इसलिए । इस पर भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं, विवाद भेद विषयक है । सत्य-मिथ्या, है नहीं है,सगुण निर्गुण ये इन सभी भेदों से आत्मा का सम्बन्ध नहीं है, वह तो ज्ञान स्वरूप है । आत्मा का ज्ञान नहीं होने के कारण ही ये सारे विवाद होते हैं । अथवा सम्पूर्ण विवाद भेद विषयक है । वास्तविक नहीं है। अतएव आपस में युक्तियों के द्वारा ही भेद का निराकरण हो जाता है अतएव उसके मोहमयत्व की सिद्धि हो जाती है। प्रश्न होता है कि यदि अहङ्कार और भेद दोनों नहीं हैं तो इसकी निवृत्ति का प्रयास व्यर्थ है ? तो इसके उत्तर में श्रीभगवान् कहते हैं । कि व्यर्थ होने पर भी जो लोग स्वरूपभूत मुझसे पराङ्मुख है उन लोगों से भेद की निवृत्ति होती ही नहीं है । बल्कि अहङ्कार जन्य अच्छे बुरे कर्मों के हो जाने से वे लोग इस भवाटवी में भटकते रहते हैं ।।३३।।

उद्धव उवाच

त्वत्तः परावृत्तधियः स्वकृतैः कर्मभिः प्रभो । उच्चावचान् यथा देहान् गृह्णन्ति विसृजन्ति च॥३४॥
तन्ममाख्याहि गोविन्द दुर्विभाव्यमनात्मभिः । न ह्येतत्प्रायशो लोके विद्वांसः सन्ति वञ्चिताः ॥३५॥

अन्वयः— हे प्रभो ! त्वत्तः परावृत्तधियः स्वकृतैः कर्मभिः यथा उच्चावचान् देहान् गृह्णन्ति विसृजन्ति च तत् मम आख्याहि । हे गोविन्द अनात्मभिः दुर्विभाव्यम् लोके प्रायः विद्वासः एतत् नहि वञ्चिताः सन्ति ।।३५।।

श्रीउद्धवजी ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो जो जीव आपसे विमुख हैं वे अपने किए हुए अच्छे बुरे (पुण्य-पाप रूप) कर्मों के कारण अच्छी बुरी योनियों में आते-जाते रहते हैं । प्रश्न है कि व्यापक आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर में आना जाना कैसे होता है, इसे आप मुझे बतलाएँ । गोविन्द जो लोग आत्मज्ञान से रहित हैं वे तो इस विषय में ठीक से सोच भी नहीं सकते हैं । इस विषय के ज्ञाता विद्वान् संसार में मिलते भी नहीं है क्योंकि सभी लोग आपकी माया में पड़े हैं । अतएव कृपा करके इसे आप मुझे बतलाएँ ।।३४-३५।।

भावार्थ दीपिका

तत्र पृच्छति-त्वत्त इति । व्यापकस्यात्मनो देहाद्देहान्तरगमनमकर्तुः कर्माणि नित्यस्य च जन्ममरणादीनि कथमिति भावः । एतद्विद्वांसो न सन्ति । हि यस्मान्मायया वञ्चिता मोहिताः ।।३४-३५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीउद्धवजी **त्वत्तः इत्यादि** श्लोक से पूछते हैं । आत्मा तो व्यापक है वह एक देह से दूसरे देह में कैसे जाता है?

अकर्ता आत्मा अकर्ता है, तो वह कर्मों को कैसे करता है ? नित्य आत्मा का जन्म-मरण भी कैसे होता है ? लोक में प्राय: इसके विद्वान भी नहीं मिलते । क्योंकि संसार में तो सबके सब आपकी माया से ही मोहित हैं ॥३५॥

श्रीभगवानुवाच

मनः कर्ममयं नृणामिन्द्रियैः पञ्चभिर्युतम् । लोकाल्लोकं प्रयात्यन्य आत्मा तदनुवर्तते ॥३६॥

अन्वयः— पञ्चभिः इन्द्रियैः युतम् मनः कर्ममयम् लोकात् लोकं प्रयाति अन्यः आत्मातदनुवर्तते ॥३६॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— मनुष्यों का मन कर्म के संस्कार का पुञ्ज है । इसके साथ इन्द्रियाँ भी लगी रहती हैं । इसी को लिङ्ग शरीर कहते हैं । मन ही एक लोक से दूसरे लोक में जाता आता है । आत्मा इस लिङ्ग शरीर से भिन्न है । वह कहीं नहीं आता जाता है । किन्तु जब वह अपने को लिङ्ग शरीर ही मान लेता है तो उसे आना-जाना प्रतीत होने लगता है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

लिङ्गशरीराध्यासेन सर्वं घटत इत्युत्तरमाह-मन इति । प्रधानत्वेन पञ्चभिरिति निर्देशोऽन्येषामप्युपलक्षणार्थम् । देहाद्देहान्तरं प्रति याति । ततोऽन्य एवात्मा तन्मनोऽनुवर्तते अहङ्कारेणानुगच्छति ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

मनः कर्ममयम्० इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् बतलाये हैं कि लिङ्गशरीर का अध्यास होने से सबकुछ सम्भव है । ज्ञानेन्द्रियों के प्रधान होने को पञ्चभि: पद के द्वारा सभी इन्द्रियों निर्देश किया गया है । एक देह से दूसरे देह में जाने वाले मन से आत्मा पृथक् ही हैं । वह मन का अनुवर्तन करता है ॥३६॥

ध्यायन्मनोऽनुविषयान्दृष्टान्वाऽनुश्रुतानथ । उद्यत्सीदत्कर्मतन्त्रं स्मृतिस्तदनु शाम्यति ॥३७॥

अन्वयः— कर्मतन्त्रं मनः दृष्टान् वा श्रुतान् अथ विषयान् ध्यायन्, उद्यत् सीदत् तदनु स्मृतिः शाम्यति ॥३७॥

अनुवाद— मन कर्मो के अधीन है । वह देखे हुए या सुने हुए विषयों का चिन्तन करने लगता है और चिन्तन करते-करते तदाकार हो जाता है । तथा वह उन्हीं पूर्व चिन्तित विषयों में लीन हो जाता है । धीरे-धीरे उसकी स्मृति भी समाप्त हो जाती है । वह पूर्वापर अनुसन्धान नहीं कर पाता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

ननु मनसोऽपि पूर्वदेहवियोगो देहान्तरयोगश्च कथं भवतीति चेत्स्मृतिवियोगयोगाभ्यामिति वक्तुं तयोः कारणमाह-ध्यायेदिति। कर्मतन्त्रत्वात्कर्मोपस्थापितान् दृष्टान्वा अनुश्रुतान्वेदोक्तान्विषयाननुध्यायत् । अथानन्तरं ध्यायमानेषद्यदाविर्भवत्पूर्वविषयेषु च सीदल्लीयमानं भवति, तदनन्तरं तस्य स्मृतिः पूर्वापरानुसंधानं नश्यति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि मन का भी पूर्व शरीर से वियोग तथा देहान्तर से संयोग कैसे होता है ? तो इसका उत्तर है कि उसका कारण है स्मृति का वियोग तथा संयोग । इस बात को बतलाने के लिए उन दोनों का कारण **ध्यायन् मनः इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । कर्माधीन होने के कारण कर्मों के द्वारा उपस्थापित देखे अथवा सुने हुये विषयों का मन अनुचिन्तन करने लगता है । उसके पश्चात् ध्यान किए जाने वाले कर्मों में वह लीन हो जाता है । उसके पश्चात् उसकी पूर्वापर की स्मृति भी नष्ट हो जाती है ॥३७॥

विषयाभिनिवेशेन नात्मानं यत्स्मरेत्पुनः । जन्तोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः ॥३८॥

अन्वयः— विषयाभिनिवेशेन, आत्मानं यत् पुनः न स्मरेत् । कस्यचित् हेतोः जन्तोः अत्यन्त विस्मृतिः मृत्युः ॥३८॥

अनुवाद— उन देवादि शरीरों में इसका इतना अभिनिवेश हो जाता है कि उसको अपने पूर्व शरीर की स्मृति भी नहीं रह जाती है । किसी भी कारण से शरीर को सर्वथा भूल जाना ही मृत्यु है ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह–विषयेति । कर्मोपस्थापितदेवादिदेहात्यन्ताभिनिवेशेनात्मानं पूर्वदेहं पुनर्न स्मरेदिति यत्सैव यातनादेहाभिनिवेशेन भयशोकादेर्देवादि देहाभिनिवेशेन वा हर्षतर्षादेर्हेतोः पूर्वदेहेऽत्यन्तविस्मृतिरहंकारनिवृत्तिस्तदभिमानिनो जन्तोर्जीवस्य मृत्युरुच्यते न तु देहवन्नाशः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् क्या होता है ? इस तरह श्रीभगवान् कहते है **विषयाभिनिवेशेन इत्यादि** अर्थात् कर्मोपस्थापित देवादि शरीर में इतना अभिनिवेश हो जाता है कि वह अपेन पूर्व देह को भी भूल जाता है । उसे उसका स्मरण नहीं रह जाता है । वही यातना देह में अभिनिवेश के कारण भय शोक आदि होता है । अथवा हर्ष इत्यादि के कारण पहले के देह से अहङ्कार की निवृत्ति हो जाती है । उस अभिमान के ही कारण जीव की मृत्यु कहलाता है । जीव का शरीर के समान नाश नहीं होता है ॥३८॥

जन्म त्वात्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद । विषयस्वीकृतिं प्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथः ॥३९॥

अन्वयः— हे भूरिद पुंसः जन्मतु आत्मतया सर्वभावेन विषयस्वीकृतिं प्राहुः यथा स्वप्नमनोरथः ॥३९॥

अनुवाद— हे उदार उद्धव ! जब यह जीव किसी भी शरीर को आत्मारूप से सर्वात्मना स्वीकार कर लेता है तो इसे उसका जन्म कहा जाता है । यह ठीक उसी प्रकार होता है जिस तरह स्वप्न कालीन और मनोरथ कालीन शरीर में अभिमान करना स्वप्न और मनोरथ कहलाता है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

जन्म तु विषयस्य देहस्यात्मतया स्वीकृतिमभिमानं प्राहुः, न तु देहवदुत्पत्तिः । न च पुत्रादिदेहवत्प्रीत्यतिशयमात्रेण किंतु सर्वभावेनाभेदेन । अभिमानमात्रेणोत्पत्तिमरणयोर्दृष्टान्तद्वयम्–यथा खाप्रश्च मनोरथश्चेत्यर्थः ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

जीव का जन्म यही कहलाता है कि जब वह देह को ही आत्मा रूप से अभिमान कर लेता है, देह के समान उत्पत्ति को नहीं । पुत्र आदि के देह में होने वाले प्रेमातिशय मात्र से नहीं किन्तु सर्वात्मना अभेद रूप से, अभिमान मात्र से उत्पत्ति और मृत्यु के दो दृष्टान्त उपन्यस्त करते है श्रीभगवान् जैसे स्वप्न और मनोरथ अर्थात् जिस तरह स्वप्न कालीन और मनोरथ कालीन शरीर में अभिमान करना ही स्वप्न और मनोरथ कहलाता है ॥३९॥

स्वप्नं मनोरथं चेत्थं प्राक्तनं न स्मरत्यसौ । तत्र पूर्वमिवात्मानमपूर्वं चानुपश्यति ॥४०॥

अन्वयः— स्वप्नं मनोरथं च इत्थं असौ प्राक्तनं न स्मरति । तत्र पूर्वम् आत्मानम् अपूर्वमिव च अनुपश्यति ॥४०॥

अनुवाद— जिस प्रकार वर्तमान शरीर में स्थित जीव अपने पूर्व शरीर को नहीं स्मरण करता है, उसी तरह स्वप्न एवं मनोरथ में स्थित जीव पहले के स्वप्नों और मनोरथों का स्मरण नहीं करता है, बल्कि पूर्वसिद्ध होने पर भी अपने को अपूर्व सा अनुभव करता है ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

दृष्टान्तौ विवृणोति-स्वप्नमिति । तत्र वर्तमाने स्वप्नादौ । पूर्वं चेति अपूर्वमिवेति चान्वयः । पूर्वसिद्धमप्यात्मानमपूर्वमिवाद्य जातमिव पश्यतीत्यर्थः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

स्वप्नमित्यादि श्लोक के द्वारा दोनों दृष्टान्तों का विस्तार करते हैं । तत्र वर्तमाने अर्थात् स्वप्नादि काल में पहले से ही वर्तमान शरीर को अपूर्व के समान देखता है । पहले से ही विद्यमान शरीर को अपूर्व के समान अर्थात् आज ही उत्पन्न के समान देखता है ।।४०।।

इन्द्रियायनसृष्ट्येदं त्रैविध्यं भाति वस्तुनि । बहिरन्तर्भिदाहेतुर्जनोऽसज्जनकृद्यथा ।।४१।।

अन्वयः— इन्द्रियायनसृष्ट्वा इदं वस्तुनि त्रैविध्यं भाति, बहिः अन्तः भिदा हेतुः जनः असत्जन कृत् यथा ।।४१।।

अनुवाद— इन्द्रियों के आश्रय मन या मन की सृष्टि से आत्मा में यह उत्तम, मध्यम तथा अधम की त्रिविधता भासती है । उनमें अभिमान करने से ही आत्मा बाह्य और आभ्यन्तर भेदों का हेतु मालुम पड़ने लगता है । जैसे दुष्ट पुत्र को उत्पन्न करने वाला पिता पुत्र के शत्रु मित्र आदि के लिए भेद का हेतु हो जाता है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-इन्द्रियाणामयनं मनस्तस्य देहान्तराभिनिवेशेन या सृष्टिरुत्पत्तिस्तया वस्तुन्यात्मनि तदभिमानेनेदं त्रैविध्यमुत्तम-मध्यमनीचत्वमसदेव भातीत्यन्वयः । एवंभूत आत्मा बाह्याभ्यन्तरभेदहेतुश्च भवति । बाह्यविषयानान्तरान्सुखादींश्च पश्यतीत्यर्थः। यथा जनो जीवः स्वप्ने बहूनसतो जनान् देहान्कुर्वन्पश्यन् बहुरूपो भाति तद्वत् । यद्वा, इदं त्रैविध्यमध्यात्मादिरूपं भाति । असज्जनकृद्दुष्टपुत्रोत्पादको जनः पिता स्वयं समोऽपि पुत्राभिमानतस्तदरिमित्रादिषु यथा भेदहेतुर्भवति तद्वदिति । अन्यत्समानम्।।४१।।

भाव प्रकाशिका

उपसंहरति उपसंहार करते हुए श्रीभगवान् कहते हैं कि इन्द्रियों के आश्रय मन का दूसरे शरीर में अभिनिवेश द्वारा जो सृष्टि होती है उसके द्वारा आत्मा में उस अभिमान के कारण असत् भी उत्तम, मध्यम और अधम भेद प्रतीत होता है । इस प्रकार की आत्मा बाह्य और आभ्यन्तर भेद का भी हेतु होती है । बाह्य विषयों तथा आभ्यन्तर सुखादि को देखता है । जैसे जीव स्वप्न में बहूत से असत् शरीरों को देखते हुए अनेक रूपों वाला प्रतीत होता है, उसी तरह अथवा यह तीन प्रकार आध्यात्म आदि रूप भेद प्रतीत होता है । दुष्ट पुत्र को उत्पन्न करने वाला पिता स्वयं सम होने पर भी पुत्र के अभिमान के कारण उस पुत्र के शत्रु मित्र आदि में जिस तरह भेद का कारण होता है उस तरह । और सब सामान्य है ।।४१।।

नित्यदा ह्यङ्ग भूतानि भवन्ति न भवन्ति च । कालेनालक्ष्यवेगेन सूक्ष्मत्वात्तन्न दृश्यते ।।४२।।

अन्वयः— हे अङ्ग, अलक्ष्य वेगेन कालेन भूतानि नित्यदा भवन्ति न भवन्ति च सूक्ष्मत्वात् तन्न दृश्यते ।।४२।।

अनुवाद— हे उद्धवजी ! काल की गति अत्यन्त सूक्ष्म है । उसको साधारणतः नही देखा जा सकता है। उसके द्वारा प्रत्येक क्षण शरीरों की उत्पत्ति और नाश होते रहते हैं, किन्तु सूक्ष्म होने के कारण प्रत्येक क्षण होने वाली उत्पत्ति और नाश दिखाई नहीं पड़ते हैं ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं लोकप्रसिद्धौ जन्ममृत्यू निरूप्य सूक्ष्मावपृष्टावपि तौ वैराग्याय निरूपयति-नित्यदा प्रतिक्षणं भूतानि शरीराणि उत्पद्यन्ते नश्यन्ति च । कालस्यातिसूक्ष्मत्वात्तत्कृतं भवनमभवनं वाऽविवेकिभिर्न लक्ष्यते ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह लोकप्रसिद्ध जन्म और मृत्यु के निरूपण के पश्चात् नहीं पूछे जाने पर भी सूक्ष्म जन्म और मृत्यु वैराग्य के लिए निरूपित करते हैं । नित्यदा अर्थात् प्रतिक्षण शरीर उत्पन्न होते हैं और विनष्ट होते हैं । काल के अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण कालकृत जन्म और मृत्यु की प्रतीति अज्ञानियों को नहीं होती हैं ॥४२॥

यथार्चिषां स्रोतसां च फलानां वा वनस्पतेः । तथैव सर्वभूतानां वयोऽवस्थादयः कृताः ॥४३॥

अन्वयः— यथा अर्चिषां, स्रोतसां च फलानां वनस्पतेः वा तथैव सर्वभूतानां वयः अवस्थादयः कृतः ॥४३॥

अनुवाद— जिस तरह काल के प्रभाव से दीपक की लौ नदियों के प्रवाह, अथवा वृक्ष के फलों की नवीन-नवीन अवस्थाएँ बदलती रहती है, उसी तरह सभी प्राणियों के शरीरों की आयु, अवस्था आदि भी बदलते रहते हैं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

सतोर्जन्ममरणयोर्ज्ञाने कारणमेतद्भवेत् सत्त्वमेव तयोः कुत इत्याशङ्क्यानुमानेन साधयति-यथेति । अर्चिषां परिणामादिभिः स्रोतसां गत्यादिभिः फलानां रूपादिभिर्यथावस्थाविशेषाः कृताः कालेनेति पूर्वस्यानुषङ्गः आदिशब्देन तेजोबलकामकौशलादीनामुपादानम्। विमतं प्रतिक्षणोत्पत्तिविनाशवत्, अवस्थाभेदवत्त्वात्, दीपज्वालादिवदित्यनुमानम् ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह सत् भी जन्म और मरण के ज्ञान में काल की सूक्ष्मता के कारण होता है । उन दोनों के सत्व ही इस प्रकार की आशंका करके अनुमान के द्वारा सिद्ध करते हैं । लौ के परिणाम आदि, प्रवाहों की गति आदि, तथा फलों के रूप आदि के द्वारा जिस तरह अवस्था विशेष काल कृत होते हैं । आदि शब्द के द्वारा प्राणियों के तेज, बल, काम, कौशल आदि का ग्रहण होता है । विवादास्पद अवस्था विशेष जैसे प्रतिक्षण उत्पत्ति तथा विनाशवान् होते हैं, क्योंकि वे अवस्था विशेष हैं दीपक की ज्वाला आदि के समान ॥४३॥

सोऽयं दीपोऽर्चिषां यद्वत्स्रोतसां तदिदं जलम् । सोऽयं पुमानिति नृणां मृषा गीर्धीर्मृषायुषाम् ॥४४॥

अन्वयः— अर्चिषां सोऽयंदीपः यद्वत् स्रोतसां तदिदं जलम् सोऽयं पुमान् इति गीः धीः च मृषा ॥४४॥

अनुवाद— जिस तरह सादृश्य के कारण ज्योतियों का ही यह वही दीप है, इस तरह की मिथ्या प्रत्यभिज्ञा होती है, प्रवाह के जलों का जैसे यह वही जल है, तथा यह वही मनुष्यों में यह वही मनुष्य इस प्रकार की मिथ्या आयु वाले मनुष्यों की होने वाली बुद्धि और वाणी मिथ्या है इस तरह के अनेक अज्ञानी मनुष्यों की प्रत्यभिज्ञा भी मिथ्या होती है ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

कथं तर्हि प्रत्यभिज्ञा तद्वदेव सादृश्यावलम्बिनीत्याह-सोऽयमिति । सादृश्यादर्चिषामेव यथा सोऽयं दीप इति प्रत्यभिज्ञा, यथा च स्रोतसां प्रवाहजलानामेव तदिदं जलमिति, तथा सोऽयं पुमानिति धीर्गीश्च मृषा नृणां बहूनां शरीरिणां मृषा व्यर्थमायुर्येषामविवेकिना तेषां भवति ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि तो फिर सादृश्य को अपना आधार बनाकर होने वाली प्रत्यभिज्ञा कैसे होती है ? तो इस पर श्रीभगवान् सोऽयम् इत्यादि श्लोक कहते हैं । सादृश्य के कारण ज्योतियों के विषय में यह वही दीप है । जल प्रवाह के सादृश्य के कारण यह वही जल है, तथा जिस तरह यह वही पुरुष है,इस प्रकार की होने वाली बहुत से मनुष्यों की जो व्यर्थ में ही आयु विताते हैं उन अज्ञानी मनुष्यों की वाणी और बुद्धि भी मिथ्या है ॥४४॥

मा स्वस्य कर्मबीजेन जायते सोऽप्ययं पुमान् । म्रियते वामरो भ्रान्त्या यथाग्निर्दारुसंयुतः ॥४५॥

अन्वयः— सः अपि अयं पुमान् स्वस्य कर्म बीजेन मा जायते म्रियते, अमरः भ्रान्त्या यथा दारुसंयुतः अग्निः ॥४५॥

अनुवाद— वह भ्रान्त पुरुष भी यद्यपि अपने कर्मबीजों द्वारा न तो जन्मता है और न मरता है, वह भी अजर-अमर है किन्तु भ्रमवशात् वह उत्पन्न है और मर जाता है, उसी तरह जिस तरह काष्ठ से युक्त अग्नि उत्पन्न होती है और नष्ट होती दिखाई पड़ती है ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

ननु कथं देहाध्यासवतः पुंसः कर्मजन्ममरणानि सन्ति नान्यस्येति व्यवस्था न हि घटते, घटस्य पुरुषभेदेन सत्त्वमसत्त्वं चेति । न । अज्ञस्यापि वस्तुतस्तदभावादित्याह-मा स्वस्य नैवात्मनः कर्मणा बीजभूतेन । सोऽप्यज्ञोऽपि पुमान् जायते म्रियते वा किंत्वयं भ्रान्त्या अजन्मापि जायत इवामरोऽपि म्रियत इव । यथा महाभूततेजोरूपोऽग्निराकल्पान्तमवस्थितोऽपि दारुयोगवियोगाभ्यां जन्मनाशौ प्राप्नोति तद्वत् ॥४५॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि देह में आत्मा की जिसको प्रतीति होती है उस पुरुष के कर्म जन्म और मरण होते हैं दूसरे की नही, यह व्यवस्था किस तरह समन्वित नहीं होती है । घट पुरुष से भिन्न है, उसकी सत्ता और असत्ता भी भिन्न है । तो ऐसी बात नहीं कही जा सकती है । अज्ञ पुरुष के भी कर्मजन्य और मरण नहीं होते है । इस बात को भगवान् श्रीकृष्ण **मास्वस्य० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । वह अज्ञ पुरुष भी अपने कर्म बीज से न तो जन्म लेता है और न मरता है, बल्कि यह अजन्मा होकर भी भ्रम के कारण उत्पन्न सा होता है, जैसे तेज नामक महाभूत रूप अग्नि कल्प पर्यन्त रहने वाली है । फिर भी काष्ठ के संयोग के कारण वह उत्पन्न और मरती सी है; उसी तरह ॥४५॥

निषेकगर्भजन्मानि बाल्यकौमारयौवनम् । वयोमध्यं जरा मृत्युरित्यवस्थास्तनोर्नव ॥४६॥

अन्वयः— निषेक, गर्भजन्मानि वाल्यकौमारयौवनम् वयोमध्यं जरा मृत्युः इत्यवस्था तनोः नव ॥४६॥

अनुवाद— उद्धवजी गर्भाधान, गर्भ, जन्म, बाल्यावस्था, कौमारावस्था, युवावस्था, अधेड़ अवस्था वृद्धावस्था और मृत्यु ये शरीर की नव अवस्थाएँ होती हैं ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

सिद्धवत्कृत्योक्ता वयोवस्थाः प्रपञ्चयति-निषेको जठरे प्रवेशः । गर्भस्तन्मध्ये वृद्धिः । बाल्यं शिशुत्वमापञ्चमाब्दात् । कौमारमाषोडशाद्वर्षात् । ततो यौवनमापञ्चाशत् । ततो वयोमध्यमाषष्टिवर्षात् ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

सिद्ध के समान मानकर अवस्थाओं का विस्तार भगवान् श्रीकृष्ण करते हैं । **निषेकः** अर्थात् गर्भाधान, अर्थात उदर में प्रवेश, गर्भः अर्थात् उदर में बढ़ना, वाल्यं अर्थात् शिशुत्व, कौमार्यम् सोलह वर्ष पर्यन्त की अवस्था उसके पश्चात् पचास वर्ष पर्यन्त की अवस्था उसके पश्चात् वयोमध्यम् अर्थात् पचास से साठ वर्ष की अवस्था (अधेड़ अवस्था) ॥४६॥

एता मनोरथमयीर्ह्यन्यस्योच्चावचास्तनूः । गुणसङ्गादुपादत्ते क्वचित्कश्चिज्जहाति च ॥४७॥

अन्वयः— एताः मनरथमयीः हि अन्यस्य उच्चावचा तनूः गुणसङ्गात् उपादत्ते, क्वचित् कश्चित् जहाति च ॥४७॥

अनुवाद— यह जीव शरीर से भिन्न है, और ये ऊँची-नीची अवस्थाएँ उसके मनोरथ के अनुसार होती हैं। किन्तु जीव अज्ञानवशात् गुणों के सङ्ग से उन्हें अपनी मानकर भटकने लगता है और कभी-कभी विवेक हो जाने पर उन्हें छोड़ भी देता है ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

देहसंबन्धाज्जन्ममरणादीनीत्युपपादितमर्थमुपसंहरति-एता इति । हि स्फुटम् । अन्यस्य देहस्य । तनूरवस्थाः । गुणसङ्गात् प्रकृत्यविवेकात् । कश्चित्परमेश्वरानुग्रहतः क्वचित्कथंचिज्जहाति । अवस्थावतो देहस्य द्रष्टा नासाववस्थावानिति विवेकज्ञानेन ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

देह के सम्बन्ध से ही जन्म और मरण आदि होते हैं इस प्रतिपादित अर्थ का उपसंहार **एता० इत्यादि** श्लोक के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण करते हैं । हि अर्थात् स्पष्ट रूप से, अन्यस्य अर्थात् शरीर की अवस्थाएँ होती हैं । गुणसङ्गात् अर्थात् प्रकृति से भेद का ज्ञान नहीं होने से । कोई-कोई पुरुष परमात्मा की कृपा से कभी-कभी त्याग भी देता है । अवस्थाओं वाले शरीर का यह जीव द्रष्टा है यह अवस्था वाला नहीं है इस प्रकार का ज्ञान हो जाने के कारण वह त्याग देता है ।।४७।।

आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ । न भवाप्ययवस्तूनामभिज्ञो द्वयलक्षणः ।।४८।।

अन्वयः— पितृपुत्राभ्याम् आत्मनः भवाप्ययौ अनुमेयौ भवाप्ययवस्तूनाम् अभिज्ञः द्वयलक्षणः न ।।४८।।

अनुवाद— पिता को पुत्र के जन्म और पुत्र को पिता की मृत्यु से अपने भी जन्म और मृत्यु का अनुमान कर लेना चाहिए । जन्म और मृत्यु युक्त शरीरों का द्रष्टा जीवात्मा जन्म और मृत्यु से युक्त शरीर नहीं है ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

ननु तदानीं मूर्च्छितत्वेन जन्ममरणवान्देहो न दृश्यते, तत्राह-आत्मन इति । पितृदेहस्यौर्ध्वदेहिकं कुर्वताऽप्ययदर्शनात्पुत्रदेहस्य च जातकर्मणि जन्मदर्शनादात्मनः स्वस्य देहस्यापि भवाप्ययावनुमेयौ । एवं च दृश्यत्वे सति भवाप्ययवतां वस्तूनां देहानामभिज्ञो द्रष्टा द्वयलक्षणो भवाप्ययधर्मको न भवति ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि उस समय मूर्छित होने के कारण जन्म और मरण से युक्त शरीर नहीं दिखायी देता है । इसके उत्तर में भगवान् श्रीकृष्ण आत्मनः इत्यादि श्लोक कहते हैं । श्लोक का अर्थ है कि पिता के देह की और्ध्व दैहिक क्रिया करने वाले पुत्र को पिता की मृत्यु को देखकर और पुत्र के शरीर का जातकर्म में जन्म को देखकर अपने भी देह के जन्म और मृत्यु का अनुमान कर लेना चाहिए । इस तरह दृश्य होने के साथ जन्म और मृत्यु वाले देहों को जानने वाली आत्मा जन्म और मृत्यु से युक्त शरीर नहीं है ।।४८।।

तरोर्बीजविपाकाभ्यां यो विद्वान् जन्मसंयमौ । तरोर्विलक्षणो द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ।।४९।।

अन्वयः— यः तरोर्बीजविपाकाभ्याम् जन्मसंयमौ विद्वान् तरोः विलक्षणः द्रष्टा एवं द्रष्टा तनोः पृथक् ।।४९।।

अनुवाद— जो विज्ञ वृक्ष के बीज और उसके परिणाम को देखकर जन्म और संयम (मृत्यु) को जानता है कि वह ज्ञाता वृक्ष नहीं है, उसी तरह इस शरीर का द्रष्टा शरीर से पृथक् है ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

एतदेव दृष्टान्तेन स्पष्टयति-तरोरिति । तरुशब्दो नोद्भिज्जमात्रस्योपलक्षणं किंतु फलपाकान्तस्य व्रीह्यादेरित्यर्थः । यद्वा, तरोरेवान्त्यः परिणामो विपाकः । बीजाज्जन्म विपाकात्संयमं नाशं च विद्वान् । द्रष्टा तरुद्रष्टा । एवं तनोर्द्रष्टा ततः पृथक् । अतस्तत्र वर्तमानोऽपि भवाप्ययाभ्यां न संबध्यते ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

तरोः इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् उपर्युक्त बात को दृष्टान्त के द्वारा स्पष्ट करते हैं । तरु शब्द केवल उद्भिज मात्र का उपलक्षण नहीं है फल के पकने से जिनका अन्त हो जाता है उन धान इत्यादि का भी उपलक्षण है । अथवा वृक्ष का ही अन्तिम परिणाम अर्थात् विपाक होता है । अर्थात् बीज को देखकर जन्म को और पक जाना देखकर मृत्यु को जानने वाला

द्रष्टा अर्थात् वृक्ष को देखने वाला जिस तरह वृक्ष भिन्न होता है उसी तरह शरीर को देखने वाला जीव शरीर से पृथक् है, अतएव शरीर में रहने पर भी जीव का जन्म और मृत्यु से सम्बन्ध नहीं होता है ।।४९।।

प्रकृतेरेवमात्मानमविविच्याबुधः पुमान् । तत्त्वेन स्पर्शसंमूढः संसारं प्रतिपद्यते ।।५०।।

अन्वयः— अबुधः पुमान् एवम् आत्मानम् प्रकृतेः अविविच्य तत्त्वेन स्पर्शसंमूढः संसारं प्रतिपद्यते ।।५०।।

अनुवाद— अज्ञानी पुरुष इस प्रकार से आत्मा को प्रकृति और शरीर से पृथक आत्मा का विवेचन नहीं करते हैं और विषय भोग में ही सच्चा सुख मानने लगते हैं । और उसी में मोहित होकर संसार में भटकते रहते हैं ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

अविवेकिनः संसारं प्रपञ्चयति-प्रकृतेरिति पञ्चभिः । तत्त्वेन तत्त्वतोऽविविच्य। तत्त्वदृष्ट्या स्पर्शेषु विषयेषु संमूढ इति वा।।५०।।

भाव प्रकाशिका

अज्ञानी जीव को संसार की प्राप्ति होती है इस अर्थ का विस्तार **प्रकृतेः इत्यादि** पाञ्च श्लोकों से करते हैं । तत्त्वेन अर्थात् तत्त्वतः विवेचन करके अथवा तत्त्वतः विवेचन करके विषयभोगों में मोहित हुए रहते हैं ।।५०।।

सत्त्वसङ्गादृशीन्देवान्रजसाऽसुरमानुषान् । तमसा भूततिर्यक्त्वं भ्रामितो याति कर्मभिः ।।५१।।

अन्वयः— कर्मभिः भ्रामितः सत्त्वसंगात् ऋषीन् देवान्, रजसा असुर मानुषान् तमसा भूततिर्यक्त्वं भ्रामितो यादि कर्मभिः।।५१।।

अनुवाद— अज्ञानी जीव अपने कर्मों के अनुसार जन्म और मृत्यु के चक्र में भटकता रहता है । सात्त्विक कर्मों की आसक्ति से ऋषियों और देवों की योनि में जाता है, राजसी कर्मों में आसक्त मनुष्य असुरों और मनुष्यों की योनि में जाता है । तामसी कर्मों में आसक्त मनुष्य भूत, प्रेत, एवं पशुओं तथा पक्षियों की योनि मे जाता हैं ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

गुणभेदेन त्रिविधं, तत्रापि च तत्तारतम्येनैकैकत्र द्विविधं संसारमाह-सत्त्वेति ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

सत्त्वादि गुणों के भेद तीन प्रकार का है । उसमें भी तारतम्य के अनुसार प्रत्येक में दो-दो प्रकार का संसार होता, इस बात को **सत्त्वेन० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ।।५१।।

नृत्यतो गायतः पश्यन्यथैवानुकरोति तान् । एवं बुद्धिगुणान्पश्यन्ननीहोऽप्यनुकार्यते ।।५२।।

अन्वयः— नृत्यतः गायतः पश्यन् तान् यथैव अनुकरोति एवं बुद्धिगुणान् पश्यन् अनीहः अपि अनुकार्यते ।।५२।।

अनुवाद— जिस तरह नाचते और गाते हुए मनुष्य को देखने वाला उन सबों का अनुसरण करने लगता है उसी तरह जीव जब बुद्धि के गुणों को देखता हैं तब स्वयं निष्क्रिय होने पर भी उसका अनुसरण करने के लिए बाध्य हो जाता है ।।५२।।

भावार्थ दीपिका

नन्वकर्तुरात्मनः कुतः कर्मभिर्भ्रमणं तत्राह-नृत्यतो गायतो जनान्पश्यन्ननुकरोति । तद्गतस्वरतालादिगतिं शृङ्गारकरुणादिरसं च मनस्यनुवर्तयतीत्यर्थः । अनुकार्यते गुणैर्बलादित्यर्थः । अनेन दृष्टान्तेन दृश्यधर्मो द्रष्टरि स्फुरतीति दर्शितम् ।।५२।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि आत्म तो अकर्ता हैं वह कर्मों के द्वारा प्रेरित होकर संसार में भटकता है यह कैसे कहा गया है ? इस पर भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं लोक में देखा जाता है कि नाचते और गाते हुए पुरुष को देखकर जैसे-जैसे मनुष्य तान छेड़ने लगता है, उसके ताल, स्वर आदि गति को तथा शृङ्गारादि रसों का भी अपने मन में अनुवर्तन

करने लगता है गुणों के द्वारा बलपूर्वक । इस दृष्टान्त के द्वारा यह बतलाया गया है कि दृश्य के धर्म द्रष्टा में प्रतीत होते हैं ॥५२॥

यथाम्भसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव । चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते भ्रमतीव भूः ॥५३॥

अन्वयः— यथा प्रचलता अम्भसा तरवः अपिचलाः इव भ्राम्यमाणेन चक्षुषा भूः भ्रमतीव दृश्यते ॥५३॥

अनुवाद— जिस तरह नदियों और तलाब के जल के हिलने-डोलने पर नदी में प्रतिबिम्बित होने वाल पेड़ हिलते से प्रतीत होते है और नेत्रों के घुमने पर पृथिवी घुमती हुई सी प्रतीत होती है ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

उपाधिधर्माश्चोपहितेऽवभासन्ते इत्यत्र दृष्टान्तमाह-यथाम्भसेति । तटस्थास्तरवो धावन्त इव दृश्यन्ते जले प्रतिबिम्बिता वा चञ्चला इवेति । विषयग्राहकेण मनसा परिकल्पिता एव तेषु लावण्यादयो गुणा न वस्तुतः सन्ति, अतो मनोनिबन्धन एव संसार इत्यभिप्रेत्य ग्राहकगुणा ग्राह्येऽवभासन्त इत्यत्र दृष्टान्तमाह-चक्षुषेति ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

उपाधि के धर्म उपहित में प्रतीत होते है । इस विषय में दृष्टान्त बतलाते हुए भगवान् श्रीकृष्ण **यथाम्भसा० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । जल के चञ्चल होने पर जल में प्रतिबिम्बित होने वाले पेड़ भी हिलते से प्रतीत होते है । विषयों को ग्रहण करने वाले मन के द्वारा परिकल्पित ही लावण्य आदि गुण वास्तविक नहीं है । अतएव मन के ही कारण संसार है । इसी अभिप्राय से श्रीभगवान् ने ग्राहक के गुणग्राह्य में प्रतीत होते हैं । इसमें दृष्टान्त वे **चक्षुषा इत्यादि** श्लोक से उपन्यस्त किया है ॥५३॥

यथा मनोरथधियो विषयानुभवो मृषा । स्वप्नदृष्टाश्च दाशार्ह तथा संसार आत्मनः ॥५४॥

अन्वयः— हे दाशार्ह ! यथा मनोरथधियः विषयानुभवः मृषा एवम् स्वप्न दृष्टश्च आत्मनः संसारः ॥५४॥

अनुवाद— हे उद्धवजी जिस प्रकार मन के द्वारा सोचे गये तथा स्वप्न में देखे गये भोग पदार्थ सर्वथा मिथ्या ही होते हैं वैसे ही आत्मा का विषयानुभव रूप संसार भी सर्वथा असत्य है ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

भोगस्यापि मिथ्यात्वे दृष्टान्तद्वयमाह-यथेति । यथा एताः प्रसिद्धा मनोरथधियः स्वप्नदृष्टाश्च धियो मृषा एवमात्मनो विषयानुभवः संसारो मृषा ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

विषय भोग के भी मिथ्यात्व में दो दृष्टान्तों को उपन्यस्त किया गया है । जिस तरह से प्रसिद्ध मनोरथ के विषय और स्वप्न में देखे गये विषय मिथ्या है इसी प्रकार से आत्मा का विषयानुभव रूप संसार मिथ्या ही है ॥५४॥

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते । ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥५५॥

अन्वयः— अविद्यमाने अपि अर्थे संसृतिः न निवर्तते एवं विषयान् ध्यायतः अस्य स्वप्ने अनर्थागमः यथा ॥५५॥

अनुवाद— विषयों के सत्य नहीं होने पर भी जो विषयों का ही चिन्तन करता है उसका जन्म मृत्यु रूप संसार चक्र कभी नहीं निवृत्त होता है । जैसे स्वप्न में प्राप्त अनर्थ परम्परा जागे बिना निवृत्त नहीं होती है ॥५५॥

भावार्थ दीपिका

ननु यदि मृषा तर्हि किं तन्निवृत्तिश्रमेणात आह-अर्थे हीति । अस्यात्मनः ॥५५॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि यदि विषय सत्य नहीं है तो फिर निवृत्ति का प्रयास व्यर्थ है । इस पर श्रीभगवान् **अर्थे० हि इत्यादि** श्लोक कहते है । अस्य अर्थात् आत्मा का ।।५५।।

तस्मादुद्धव मा भुङ्क्ष्व विषयानसदिन्द्रियैः । आत्माग्रहणनिर्भातं पश्य वैकल्पिकं भ्रमम् ।।५६।।

अन्वयः— उद्धव तस्मात् असत् इन्द्रियैः विषयान् मा भुंक्ष्व आत्माग्रहण निर्भातं वैकल्पिकं भ्रमम् पश्य ।।५६।।

अनुवाद— उद्धव ! इसलिए तुम कभी नहीं तृप्त होने वाली दुष्ट इन्द्रियों से विषयों को मत भोगो। आत्मा के अज्ञान के कारण प्रतीत होने वाले संसारिक भेदभ्रम मूलक ही हैं ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

अतो भोगोद्यमो न कर्तव्य इत्याह-तस्मादिति ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

अतएव भोगों की प्राप्ति के लिए प्रयास न करो इस बात को **तस्मात् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है ।।५६।।

क्षिप्तोऽवमानितोऽसद्भिः प्रलब्धोऽसूयितोऽथवा । ताडितः संनिबद्धो वा वृत्त्या वा परिहापितः ।।५७।।
निष्ठितो मूत्रितो वाऽज्ञैर्बहुधैवं प्रकम्पितः । श्रेयस्कामः कृच्छ्रगत आत्मनात्मानमुद्धरेत् ।।५८।।

अन्वयः— असद्भिः क्षिप्तः अवमानितः प्रलब्धः अथवा असूयितः, ताडितः संनिबद्धः वा, वा वृत्या परिहापितः अज्ञैः निष्ठितः, मूत्रितः वा एवं बहुधा प्रकम्पितः श्रेयस्कामः कृच्छ्रगतः आत्मानम् आत्मना उद्धरेत् ।।५७-५८।।

अनुवाद— यदि दुष्ट पुरुष बाहर निकाल दे, अपमान कर दे, उपहास करे निन्दा करे, मारे-पीटे, बाँध दे, आजीविका छिन ले, उपर थूक दे, मूत दे या विभिन्न प्रकार से विचलित करे तो भी कल्याण चाहने वाले को, चाहिए किसी से भी विचलित नहीं होना चाहिए । क्योंकि अज्ञानी तो अज्ञानी ही है, उसको परमार्थ का पता है ही नहीं । अतएव सभी कठिनाईयों से अपनी विवेक बुद्धि द्वारा अपने को बचा लेना चाहिए । आत्म बुद्धि ही समस्त विपत्तियों से बचने का एकमात्र साधन है ।।५७-५८।।

भावार्थ दीपिका

दुःखप्रतीकारोद्यममपि परित्यज्य परमेश्वरनिष्ठेनेव भाव्यमित्याह-क्षिप्त इति द्वाभ्याम् । क्षिप्त आक्षिप्तो नुन्न इति वा । प्रलब्ध उपहसितः । निष्ठितो निष्ठीवनविषयीकृतः, मूत्रितो मूत्रेणार्द्रीकृतः, प्रकम्पितः परमेश्वरनिष्ठातः प्रच्यावितोऽपि, कृच्छ्रगतः कृच्छ्रं प्राप्तोऽपि ।।५७-५८।।

भाव प्रकाशिका

दुःख के प्रतिकार का प्रयास छोड़कर परमेश्वर निष्ठ हो जाना चाहिए । इस बात को क्षिप्तः आदि दो श्लोकों से कहा गया है । क्षिप्त अर्थात् आक्षिप्त या बाहर निकाल दिए गये होने पर प्रलब्धः अर्थात् उपहास किए जाने पर निष्ठित थूक देने पर, मूत्रितः मूत देने पर, प्रकम्तिः परमात्म निष्ठा से डिगाये जाने पर भी कृछ्रगतोऽपि विपत्ति में पड़ जाने पर भी ।।५७-५८।।

उद्धव उवाच

यथैवमनुबुध्येयं वद नो वदतां वर । सुदुःसहमिमं मन्य आत्मन्यसदतिक्रमम् ।।५९।।

अन्वयः— हे वदतां वर ! आत्मनि असत् अतिक्रमम् इमम् सुदुःसहम् मन्ये यथैवमनुसन्ध्ये यम् वद ।।५९।।

श्रीउद्धवजी ने कहा

अनुवाद— प्रभो आप तो समस्त वक्ताओं में श्रेष्ठ हैं। दुर्जनों द्वारा किए गये तिर:स्कार को मैं असह्य समझता हूँ। आपके इस उपदेश को मैं जैसे धारण कर सकूँ वैसे ही आप मुझको उपदेश दें ॥५९॥

भावार्थ दीपिका

एवं तदुक्तं यथा अनुबुध्येयं तथा नोऽस्मान्सर्वान्प्रति वद ॥५९॥

भाव प्रकाशिका

आपके द्वारा कहे उपदेश को मैं जैसे धारण कर सकूँ वैसे आप हमसबों को समझाइये ॥५९॥

विदुषामपि विश्वात्मन्प्रकृतिर्हि बलीयसी । ऋते त्वद्धर्मनिरतान् शान्तास्ते चरणालयान् ॥६०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अन्वयः— हे विश्ववात्मन् त्वद्धर्मनिरतान् शान्तान् ते चरणालयान् ऋते विदुषाम् अपि प्रकृतिः हि बलीयसी ॥६०॥

अनुवाद— हे विश्वात्मन् जो आपके भागवत धर्म के आचरण में प्रेम पूर्वक संलग्न हैं जिन्होंने आपके चरण कमलों का ही आश्रय लिया है उन शान्त पुरुषों के अतिरिक्त विद्वानों के लिए भी दुष्टों द्वारा किए गये तिरस्कार को सहना कठिन है; क्योंकि प्रकृति ही बलवती होती है ॥६०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के बाइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

त्वद्धर्मनिरतान् ऋते विदुषामप्यसद्भिः कृतमतिक्रममपराधं सुदुःसहं मन्य इत्यन्वयः । प्रकृतिः स्वभावः ॥६०॥

निरस्य सर्वसंदेहमेकीकृत्य सुदर्शनम् । प्रकाशितरहस्यं तं भजस्व गुरुमीश्वरम् ।।१।।

इति श्रीमद्भागवत महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थ दीपिका टीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

आपके भागवत धर्म में जो लोग सदा संलग्न रहते हैं उन सबों को छोड़कर दुष्टों द्वारा किए गये असह्य अपराध विद्वानों के भी लिए असह्य हो जाता है। क्योंकि स्वभाव ही बलवाल होता है ॥६०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के बाइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२२।।

* * *

तेइसवाँ अध्याय

एक अतितितिक्षु ब्राह्मण का इतिहास

वादरायणिरुवाच

स एवमाशंसित उद्धवेन भागवतमुख्येन दाशार्हमुख्यः ।
सभाजयन्भृत्यवचो मुकुन्दस्तमाबभाषे श्रवणीयवीर्यः ॥१॥

अन्वयः— भागवतमुख्येन उद्धवेन आशंसितः दाशार्हमुख्यः मुकुन्दः श्रवणीयवीर्यः स भृत्यवचः सभाजयन् तम् आब भाषे ॥१॥

श्रीशुकदेवजी से कहते हैं कि

अनुवाद— भगवद्भक्तों में प्रधान श्रीउद्धवजी के द्वारा प्रार्थना किए जाने पर जिनकी लीला कथा सुनने योग्य ही होती है यदुवंशियों में प्रधान भगवान श्रीकृष्ण उद्धवजी के वचनों की सराहना करते हुए उनसे कहे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोविंशे तिरस्कारसहनोपाय ईर्यते । भिक्षुगीतप्रकारेण मनसः संयमो धिया ॥१॥ दुर्जनोपद्रवो नूनं दुःसहो हि महीयसाम्। अतश्चतुर्भिरध्यायैः सहनोपायवर्णनम् ॥२॥ तत्र तावदस्मिन्नध्याये भिक्षुगीतया मनोविजय उत्तरस्मिन्प्रकृतिपुरुषविवेकस्तदुत्तरस्मिन्गुणवृत्तिविजयस्ततः परस्मिन्नैलगीतया विषयसङ्गत्यागेन सत्सङ्ग इति क्रमेणोपाया भगवता वर्ण्यन्ते । आशंसितः प्रार्थितो भृत्यस्य वचः सत्कुर्वंस्तं भृत्यं प्रति आवभाषे ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तेइसवें अध्याय में भिक्षुगीत के समान मन का बुद्धि पूर्वक संयम करके तिरस्कार को सहने के उपाय का वर्णन किया गया है ॥१॥ दुर्जनों के द्वारा किया गया उपद्रव निश्चित रूप से महापुरुषों के लिए भी असह्य होता है इसीलिए श्रीभगवान् चार अध्यायों द्वारा सहने के उपायों का वर्णन किए हैं ॥२। उसमें भी इस अध्याय में भिक्षु के द्वारा गाये गये मन पर विजय प्राप्त करने के उपाय का, उसके बाद प्रकृति पुरुष विवेक का, उसके पश्चात् तीसरे अध्याय में गुणों की वृत्ति पर विजय प्राप्ति का और अन्तिम चौथे अध्याय में ऐल के द्वारा गाये गये विषय के त्याग से सत्सङ्ग का इसी क्रम से श्रीभगवान् के द्वारा वर्णन किया गया है । आशंशित प्रार्थना किए जाने पर अपने अनुचर श्रीउद्धवजी की बातों का सम्मान करते हुए श्रीभगवान् श्रीउद्धवजी से कहे ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

बार्हस्पत्य स वै नात्र साधुर्वै दुर्जनेरितैः । दुरुक्तैर्भिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः ॥२॥

अन्वयः— हे वार्हस्पत्य, स वै साधुः अत्र न यः दुर्जनेरितैः दुरुक्तैः भिन्नमात्मानं समाधातुमीश्वरः ॥२॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे बृहस्पतिजी के शिष्य श्रीउद्धवजी इस संसार में ऐसे संत पुरुष प्रायः नहीं मिलते हैं जो दुर्जनों के द्वारा कहे गये कठोर वाग्बाणों से विद्ध अपने हृदय का समाधान करने में समर्थ हो ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तावदङ्गीकारतस्तद्वचः संपूजयति द्वाभ्याम्- हे बार्हस्पत्य बृहस्पतेः, शिष्य, अत्र लोके स साधुर्नास्ति यो दुर्जनोक्तैर्भिन्नं क्षुभितं मनः शमयितुमीश्वरः स्यात् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

स्वीकार करने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण दो श्लोको द्वारा उद्धवजी के वचनों का सम्मान करते हुए कहते हैं हे बृहस्पतिजी के शिष्य उद्धवजी इस संसार में ऐसा को सन्त नहीं उपलब्ध होता है जो दूर्जनोक्तियों से क्षुब्ध हुए बिन अपने मन को शान्त करने में समर्थ हो ॥२॥

न तथा तप्यते विद्धः पुमानबाणैः सुमर्म्मगैः । यथा तुदन्ति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः ॥३॥

अन्वयः— सुमर्म्मगैः बाणैः विद्धः पुमान् तथा न परितप्यते यथा असतां मर्मस्थाः परुषेंषवः तुदन्ति ॥३॥

अनुवाद— मनुष्य का हृदय मर्म भेदी वाणों से विधने पर भी उतना व्यथित नहीं होता है जितना दुष्टजनों के मर्मान्तक और कठोर वाग्बाण व्यथा पहुँचाते हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

कुत इत्यत आह-नेति । यथा मर्मस्था मर्मस्वेव नित्यं स्थिताः परुषोक्तिरूपा इषवस्तुदन्ति व्यथयन्ति तथा इतरे वाणा न तुदन्ति । अतस्तैस्तथा न तप्यत इत्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

ऐसा क्यों इस पर भगवान् श्रीकृष्ण **न तथा० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । जितना मर्मस्थल में सदा विद्यमान रहने वाले कठोर वाग्बाण जितना कष्ट पहुँचाते हैं उतना कष्ट दूसरे बाण नहीं दे पाते हैं । अतएव उन बाणों से उतना संताप्त नहीं होता है ॥३॥

कथयन्ति महत्पुण्यमितिहासमिहोद्धव । तमहं वर्णयिष्यामि निबोध सुसमाहितः ॥४॥

अन्वयः— हे उद्धव ! इह महत्पुण्यम् इतिहासं कथयन्ति तम अहं वर्णयिष्यामि सुसमाहितः निबोध ॥४॥

अनुवाद— हे उद्धवजी ! इस विषय में महापुरुष जन एक अत्यन्त पवित्र इतिहास बतलाते है उसे मैं तुम्हें सुनाता हूँ सावधानी पूर्वक सुनो ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तथापि मया वक्ष्यमाणैरुपायैः सर्वं सोढुं शक्यमित्यभिप्रायेणेतिहासं प्रस्तौति-महद्यथा भवति तथा पुण्यमितिहासं गाथां कथयन्ति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

फिर भी मैं जिन उपायों का वर्णन करने वाला हूँ, उन सबों को अपनाकर सबकुछ सहा जा सकता है। उस महान तथा पवित्र इतिहास को सन्त पुरुष कहा करते हैं ॥४॥

केनचिद्भिक्षुणा गीतं परिभूतेन दुर्जनैः । स्मरता धृतियुक्तेन विपाकं निजकर्मणाम् ॥५॥

अन्वयः— केनचित् दुर्जनैः परिभूतेन निजकर्मणाम् विपाकयुक्तेन धृतियुक्तेन भिक्षुणा गीतम् ॥५॥

अनुवाद— जिसे दुष्टों ने बहुत सताया था किन्तु उस समय भी उसने अपना धैर्य नहीं छोड़ा उसने उसे अपने कर्मों का परिणाम समझ लिया ऐसे भिक्षुक ने जिसे गाया था उसी का इतिहास इसमें वर्णित है ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

अवन्तिषु द्विजः कश्चिदासीदाढ्यतमः श्रिया । वार्तावृत्तिः कदर्यस्तु कामी लुब्धोऽतिकोपनः ॥६॥

अन्वयः— अवन्तिषु कश्चित् श्रिया आद्यतमः वार्तावृत्तिः कदर्यः तु कामी लुब्धः अतिकोपनः द्विजः आसीत् ॥६॥

अनुवाद— प्राचीन काल में अवन्ती प्रदेश में अत्यन्त धनवान, खेती व्यापार करने वाला कदर्य, कामी, लोभी तथा अत्यन्त क्रोधी ब्राह्मण था ॥६॥

भावार्थ दीपिका

स भिक्षुः पूर्वं धनाढ्यः कृच्छ्रार्जितस्य धनस्य नाशेन संतप्यमानो निर्विण्णः सन्प्रव्रज्य भिक्षार्थमटन् दुर्जनैरुपद्रुतः प्रस्तुतोपयोगिनीं गाथामगायतेति वक्तुं तस्य पूर्वचरितमाह-अवन्तिष्वित्यादिना । अवन्तिषु मालवेषु वार्ता कृषिवाणिज्यादिरूपा वृत्तिर्यस्य। कदर्यस्तु स्मृतावुक्तः- 'आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च पीडयन् । देवतातिथिभृत्यांश्च स कदर्य इति स्मृतः ।।' इति ।।६।।

भाव प्रकाशिका

वह भिक्षुक पहले अत्यन्त धनी था । कष्ट पूर्वक कमाये हुए उसके उस धन का नाश हो गया उसके कारण संतप्त होकर संसार से विरक्त हो गया और संन्यास ग्रहण कर लिया । जब वह भिक्षा प्राप्त करने के लिए धूम रहा था उसको दुष्टों ने बहुत सताया, दुष्टों से उपद्रुत होकर उसने प्रकृतोपयोगिनी गाथा को गाया । इस बात को बतलाने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण **अवन्तिषु० इत्यादि** श्लोक से उसके चरिता का वर्णन किए हैं । मालवा प्रदेश में कृषी तथा व्यापार की वृत्ति वाला एक ब्राह्मण था । कदर्य को लक्षित करते हुए स्मृति में कहा गया है । अपने को धार्मिक कर्मो को पुत्र तथा पत्नी को पीडित करने वाला तथा देवता, अतिथि एवं भृत्यों को पीडित करने वाला ही कदर्य कहलाता है । वह ब्राह्मण कदर्य भी था ॥६॥

ज्ञातयोऽतिथयस्तस्य वाङ्मात्रेणापि नार्चिताः । शून्यावसथ आत्मापि काले कामैरनर्चितः ॥७॥

अन्वयः— तस्य ज्ञातयः अतिथयः वङ्मात्रेणापि नार्चिताः, शून्यावसथे आत्मा अपि काले कामैः अनर्चितः ।।७।।

अनुवाद— उसने अपने बन्धवों तथा अतिथियों का वाणी से भी कभी सम्मान नहीं किया । वह धर्म कर्म से रहित अकेले घर में रहता था । समय आने पर धन सम्पत्ति से अपने शरीर को भी सुखी नही रखता था ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तस्य ये ज्ञातयो बान्धवा अतिथयोऽध्वनीनाश्च तेन नार्चिता इत्यर्थः । शून्यावसथे धर्मकर्महीने गृहे देहे वा ।।७।।

भाव प्रकाशिका

उसने कभी भी अपने बान्धवों अतिथियों आदि का सम्मान नहीं किया । अकेले घर में धर्म कर्म से हीन रहता था । वह अपने शरीर को पीडित करता था ।।७।।

दुःशीलस्य कदर्यस्य द्रुह्यन्ते पुत्रबान्धवाः । दारा दुहितरो भृत्या विषण्णा नाचरन् प्रियम् ॥८॥

अन्वयः— दुःशीलस्य कदर्यस्य पुत्र बान्धवाः द्रुह्यन्ते, दाराः दुहितरः भृत्याः विषण्णाः प्रियम् ना चरन् ।।८।।

अनुवाद— उसकी कृपणता और बुरे स्वभाव के कारण उसके पुत्र, बन्धु बान्धव उससे द्रोह करते थे । उसकी पत्नी पुत्रियाँ, भृत्यवर्ग, उससे दुःखी रहते थे और कोई भी ऐसा व्यवहार नहीं करते थे जो उसको अच्छा लगे ।।८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।८।।

तस्यैवं यक्षवित्तस्य च्युतस्योभयलोकतः । धर्मकामविहीनस्य चुक्रुधुः पञ्चभागिनः ॥९॥

अन्वयः— उभयलोकच्युतस्य यक्षवित्तस्य धर्मकामविहीनस्य तस्य एवं पञ्चभागिनः चक्रुधुः ।।९।।

अनुवाद— लोक परलोक दोनों से गिरा हुआ था वह यक्षों के समान धन की रक्षा करता था । उस धन से वह न तो धर्म करता था और न भोग-भोगता था इस तरह का जीवन बिताने के कारण उसके पञ्चमहायज्ञों के देवता क्रुद्ध हो गये ।।९।।

भावार्थ दीपिका

यक्षाणां वित्तमिव केवलं रक्षणीयं वित्तं यस्य । पञ्चभागिनः पञ्चयज्ञदेवताः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

उसका धन यक्षों के धन के समान केवल रक्षा करने के लिए था । पञ्चभागिनः अर्थात् पञ्च यज्ञों के देवता, देव, ऋषि, पितर, मनुष्य और छोटे-छोटे जीव जन्तु उस पर क्रुद्ध हो गये ।।९।।

तदवध्यानविस्रस्तपुण्यस्कन्धस्य भूरिद । अर्थोऽप्यगच्छन्निधनं बह्वायासपरिश्रमः ।।१०।।

अन्वयः— हे भूरिद तदवध्यानविस्रस्तपुण्य स्कन्धस्य अर्थः अपि निधनम् अगच्छत् बह्वायास परिश्रमः ।।१०।।

अनुवाद— उदार उद्धवजी पञ्चमहायज्ञ के भागियों के तिरस्कार से उसके पूर्व पुण्यों का सहारा जिससे धन अब तक टिका था विनष्ट हो गया और उसकी आँखों के सामने ही जिसे उसने बहुत परिश्रम से कमाया था विनष्ट हो गया ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

तेषामवध्यानमनादरस्तेन विस्रस्तो विशीर्णः पुण्यस्य स्कन्धोऽर्थलाभमात्रहेतुरंशो यस्य । वह्वायासैः कृष्यादिभिः केवलं श्रमो यस्मिन्सः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

उन सबों के अवध्यान अर्थात् अनादर के कारण उसके पुण्य का स्कन्ध जिसके कारण उसको अर्थ लाभ होता था वह विशीर्ण (विनष्ट) हो गया । कृषि आदि के करने में जिसने खूब श्रम किया था वह भी विनष्ट हो गया ।।१०।।

ज्ञातयो जगृहुः किंचित्किंचिद्दस्यव उद्धव । दैवतः कालतः किं चिद्ब्रह्मबन्धोर्नृपार्थिवात् ।।११।।

अन्वयः— उद्धव ब्रह्मबन्धो नृपार्थिवात् किञ्चित् ज्ञातयः किञ्चित् दस्यवः, किञ्चित् दैवतः कालतः च ।।११।।

अनुवाद— हे उद्धवजी नीच ब्राह्मण के धन में कुछ तो उसके बान्धवों ने ले लिया कुछ चोरों ने चुरा लिया, कुछ धन देवताओं के कोप के कारण आग आदि लगने से विनष्ट हो गया और कुछ धन समय के फेर से विनष्ट हो गया ।।११।।

भावार्थ दीपिका

कुतो निधनमगच्छत्तदाह-ज्ञातय इति। दैवतो गृहदाहादिना। कालतो निखातधान्यादि। नृणां पार्थिवानां च द्वन्द्वैक्यम्, तस्मात्।।११।।

भाव प्रकाशिका

ज्ञातयः इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् बतलाते हैं कि उसका धन कैसे विनष्ट हो गया । **दैवतः** अर्थात् आग लग जाने से, कालतः अर्थात् निखात धान्य आदि । द्वन्द्व समास के कारण नृषार्थिव में एकवचनान्त प्रयोग है ।।११।।

स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः । उपेक्षितश्च स्वजनैश्चिन्तामाप दुरत्ययाम् ।।१२।।

अन्वयः— एवं द्रविणे नष्टे धर्मकाम विवर्जितः स्वजनैः उपेक्षितः च दुरत्ययाम् चिन्ताम् आप ।।१२।।

अनुवाद— इस प्रकार धन के विनष्ट हो जाने पर उसके अपने लोगों ने उसकी उपेक्षा कर दी । उसने अपने धन से न तो धर्म ही कमाया और न तो भोग ही भोगा । इसके कारण उसको अत्यधिक चिन्ता हुई ।।१२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१२।।

तस्यैवं ध्यायतो दीर्घं नष्टरायस्तपस्विनः । खिद्यतो बाष्पकण्ठस्य निर्वेदः सुमहानभूत् ।।१३।।

अन्वयः— नष्टरायः तपस्विनः तस्य दीर्घं ध्यायतः खिद्यतः वाष्पकण्ठस्य सुमहान् निर्वेद अभूत् ।।१३।।

अनुवाद— धन का नाश हो जाने से अत्यन्त संतप्त वह अत्यधिक चिन्ता करता रहता था उसका गला रुँध गया था। इस प्रकर के उस ब्राह्मण के मन में संसार के प्रति उत्कट वैराग्य उत्पन्न हो गया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

नष्टरायः नष्टो रा अर्थो यस्य तस्य। तपस्विनः संतप्तस्य ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

उसकी सम्पत्ति नष्ट हो गयी थी उसके कारण अत्यन्त संतप्त था ॥१३॥

स चाहेदमहो कष्टं वृथात्मा मेऽनुतापितः। न धर्माय न कामाय यस्यार्थायास ईदृशः ॥१४॥

अन्वयः— स आह च इदम् अहोकष्टम् मे आत्मा वृथा अनुतापितः यस्य इदृशः अर्थायासः न धर्माय नकामाय॥१४॥

अनुवाद— अपने मन में वह कहने लगा यह अत्यन्त कष्ट की बात हैं मैने व्यर्थ ही अपनी आत्मा को कष्ट दिया। मेरा धनप्रप्ति के लिए किया गया। इस प्रकार का प्रयास इससे मैंने न तो भोगों को ही भोगा और न धर्म ही कामाया ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

मे मया। आत्मा देहः। वृथा वृथैव। आत्मानुतापं प्रपञ्चयति-न धर्मायेत्यादिना। यस्य ईदृशोऽर्थायासस्तेन मया॥१४॥

भाव प्रकाशिका

मे अर्थात् मेरे द्वारा आत्मा अर्थात् शरीर, वृथा अर्थात् व्यर्थ ही **न धर्माय इत्यादि** के द्वारा वह अपने आत्मा अर्थात् शरीर के संताप का विस्तार किया गया है। मैंने धन कमाने के लिए इतना जो प्रयास किया ऐसे मेरे द्वारा ॥१४॥

प्रायेणार्थाः कदर्याणां न सुखाय कदाचन। इह चात्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥१५॥

अन्वयः— कदर्याणां अर्थः प्रायः कदाचन सुखाय न इह च आत्मोपतापाय मृतस्य नरकाय च ॥१५॥

अनुवाद— कदर्यों का धन प्रायः न तो सुख भोग के लिए होता है वह केवल शरीर को सतप्त करने का साधन होता है और मर जाने पर उससे नरक की ही प्राप्ति होती हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

नरकाय सत्यप्यर्थे धर्माननुष्ठानात् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

नरकाय अर्थात् धन के रहने पर भी धर्म का अनुष्ठान नहीं करने के कारण ॥१५॥

यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः। लोभः स्वल्पोऽपि तान् हन्ति श्वित्रो रूपमिवेप्सितम्॥१६॥

अन्वयः— श्वित्रं इप्सितम् रूपमिव स्वल्पः अपि लोभः यशस्विनां शुद्धंयशः गुणिनाम् गुणाः तान् हन्ति ॥१६॥

अनुवाद— जिस तरह थोड़ा सा भी श्वेत कुष्ठ मनोहर रूप को विगाड़ देता है उसी तरह यशस्वियों के शुद्ध यश को तथा गुणी पुरुषों के गुण को थोड़ा सा भी लोभ विगाड़ देता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

श्वित्रः श्वेतकुष्ठम् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

शिववत्र अर्थात् श्वेतकुष्ठ ॥१६॥

अर्थस्य साधने सिद्ध उत्कर्षे रक्षणे व्यये । नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम् ॥१७॥

अन्वयः— अर्थस्य साधने सिद्धे, उत्कर्षे, रक्षणे, व्यये नाशोपभोगे, नृणाम् आयासः त्रासः चिन्ता भ्रमः ॥१७॥

अनुवाद— धन कमाने में कमा लेने पर उसको बढ़ाने, रखने, खर्च करने उसके नाश एवं उपभोग करने में, जहाँ देखो वहाँ निरन्तर परिश्रम, भय चिन्ता और भ्रम का ही सामना करना पड़ता है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

सिद्धेऽप्यर्थे तस्य उत्कर्षे संवर्धने । नाशोपभोगयोर्द्वन्द्वैक्यम् । नाशे उपभोगे चेत्यर्थः । साधनोत्कर्षयोरायासस्त्रासश्चिन्ता च नाशे भ्रम इति ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

धन की प्राप्ति हो जाने पर भी उसको बढ़ाने में नाश हो जाने पर और उसका उपभोग करने पर, कमाने तथा बढ़ाने में तो परिश्रम करना होता है । त्रास (भय) अर्थात् चिन्ता होती है एवं धन का नाश हो जाने पर भ्रम होता है ॥१७॥

स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः । भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥१८॥
एते पञ्चदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम् । तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोर्थी दूरतस्त्यजेत् ॥१९॥

अन्वयः— स्तेयं हिंसा अनृतं दम्भः कामः, क्रोधः स्मयः मदः, भेदः वैरम् अविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च नृणाम् एते पञ्चदशानर्थाः अर्थमूलाः मताः तस्मात् श्रेयोऽर्थी अनर्थाख्यं अर्थम् दूरतः त्यजेत् ॥१८-१९॥

अनुवाद— चोरी, हिंसा झूठ बोलना, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहङ्कार, भेद बुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्द्धता, लम्पटता जूआ और शराब ये पन्द्रह अनर्थ मनुष्य में अर्थ के कारण आते हैं, अतएव कल्याण कामी पुरुष को चाहिए कि वह स्वर्थ एवं परमार्थ के विरोधी अनर्थनामधारी अर्थ को दूर से ही त्याग दे ॥१८-१९॥

भावार्थ दीपिका

किंच, अर्थप्राप्त्यर्थास्तेयादयः षडनर्थाः, प्राप्तेऽर्थे स्मयादयो व्यसनैः सह नव । व्यसनानि स्त्रीद्यूतमद्यविषयाणि त्रीणि ॥१८-१९॥

भाव प्रकाशिका

धन की प्राप्ति के लिए स्तेय (चोरी करना आदि) छह अनर्थ होते है । अर्थ की प्राप्ति हो जाने पर समय आदि व्यसनों के साथ मिलकर वे नव हो जाते हैं । स्त्री, जूआ, शराब, आदि विषयक तीन व्यसन और बढ़ जाते हैं ॥१८-१९॥

भिद्यन्ते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा । एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः ॥२०॥

अन्वयः— भ्रातरः दाराः पितरः सुहृदः तथा एकस्निग्धाः भिद्यन्ते काकणिना सर्वे अरयः कृताः ॥२०॥

अनुवाद— भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, माता-पिता, सगे-सम्बन्धी जो स्नेह के बन्धन से बँधकर बिल्कुल स्निग्ध हुए रहते हैं । वे सबके सब कौड़ी के कारण इतना फूट जाते हैं कि शत्रु बन जाते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

भेदवैरस्पर्धाः प्रपञ्चयति द्वाभ्याम्-भिद्यन्ते स्नेहं त्यजन्ति । कथंभूताः । एकास्निग्धाः एके एकप्राणास्ते च ते आस्निग्धा अतिप्रियाश्चेत्यर्थः । कुतः । काकिणिना । पुंस्त्वमार्षम् । विंशतिवराटिका काकिणी तया ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

भिद्यन्ते इत्यादि श्लोक से वैर और स्पर्धा का वर्णन करते हैं । भिद्यन्ते अर्थात् स्नेह त्याग देते हैं । कैसे लोग त्याग देते हैं ? एकास्निग्धाः जो स्नेह के बन्धन में बँधकर एक प्राण हो गये हैं और उनमें अत्यन्त स्नेह होता

है । किसलिए स्नेह त्याग देते हैं ? तो उत्तर है **काकड़िना** अर्थात् कौड़ी के लिए । काकणिना में पुलिङ्ग वैदिक है । बत्तीस कौड़ियों का एक काकड़ी होती है, उसके द्वारा ॥२०॥

अर्थेनाल्पीयसा ह्येते संरब्धा दीप्तमन्यवः । त्यजन्त्याशु स्पृधो घ्नन्ति सहसोत्सृज्य सौहृदम् ॥२१॥

अन्वयः— एते हि अल्पीयसा अर्थेन संरब्धाः दीप्तमन्यवः आशु सौहृदम् सहसा उत्सृज्य त्यजन्ति स्पृधः घ्नन्ति॥२१॥

अनुवाद— ये सबके सब थोड़े से धन के लिए भी क्षुब्ध और क्रुद्ध हो जाते हैं । थोड़ी से बात के लिए सौहार्द संब्ध को त्याग देते है । एक दूसरे से स्पर्धा करते हैं और एक दूसरे को मार भी डालते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

संरब्धाः क्षुभिताः । स्पृधः स्पर्धमानाः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

संरब्धाः अर्थात् क्षुब्ध हुए । स्पृध एक दूसरे से लाग डाँट रखने वाले ॥२१॥

लब्ध्वा जन्मामरप्रार्थ्यं मानुष्यं तद्द्विजाग्र्यताम् । तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नन्ति यान्त्यशुभां गतिम्॥२२॥

अन्वयः— अमर प्रार्थ्यम् द्विजाग्र्यताम् मानुष्यं लब्ध्वा तत् अनादृत्य ये स्वार्थं घ्नन्ति अशुभां गतिं यान्ति ॥२२॥

अनुवाद— जिसको देवता भी प्राप्त करना चाहते हैं ऐसे द्विजों में श्रेष्ठ ब्राह्मणत्व सम्पन्न मनुष्य के शरीर को प्राप्त करके भी जो लोग उसका अनादर करते हैं तथा अपने स्वार्थ परमार्थ का नाश करते हैं वे लोग मरकर अशुभ गति को प्राप्त करते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

इह तावदर्थनिष्ठानामेतेऽनर्थाः परलोकेऽप्यनर्था एव तेषामित्याह-लब्ध्वेति त्रिभिः । मानुष्यं जन्म, तत्रापि द्विजाग्र्यतां ब्राह्मण्यम् । स्वार्थं घ्नन्ति आत्महितं न कुर्वन्ति ये ते यान्ति ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इस लोक में जो लोग निरन्तर धनार्जन में ही लगे रहते हैं उनके साथ उपर्युक्त पन्द्रह प्रकार के अनर्थ तो इस लोक में होते है और परलोक में भी उनका अनर्थ ही होता है इस बात को **लब्ध्वा० इत्यादि** तीन श्लोकों से कहा गया है । **मानुष्यं** अर्थात् मनुष्य का जन्म उससें भी **द्विजाग्र्यताम्** ब्राह्मणत्व । **स्वार्थं घ्नन्ति** अर्थात् अपना कल्याण नहीं करते हैं और अशुभ गति को प्राप्त करते हैं ॥२२॥

स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान् । द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि ॥२३॥

अन्वयः— स्वर्गापवर्गयोद्वारं इमम् लोकम् प्राप्य पुमान् अनर्थस्य धामनि कः मर्त्यः द्रविणे अनुषज्जेत ॥२३॥

अनुवाद— यह मनुष्य शरीर स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति का द्वार है इसको प्राप्त करके कौन ऐसा पुरुष होगा जो श्रेष्ठ ब्राह्मण का शरीर प्राप्त करके समस्त अनर्थो के आश्रय धन के चक्कर में फँसे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

अमरप्रार्थ्यतां दर्शयन्नाह-स्वर्गेति । लोकं देहम् । अनुषज्जेत आसक्तिं कुर्यात् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

स्वर्गापवर्गयोः इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है कि मनुष्य शरीर को देवता भी प्राप्त करना चाहते हैं। **लोकम्** अर्थात् देह को । अनुषज्जेत अर्थात् आसक्त होए ॥२३॥

देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन्बन्धूंश्च भागिनः । असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः ॥२४॥

अन्वयः— देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन् बन्धूंश्च भागिन असंविभज्य च यक्षवित्तः अधः पतति ।।२४।।

अनुवाद— जो मनुष्य देवता ऋषि, पितर, प्राणी, बन्धु-बान्धव, और कुटुम्बी तथा धन के दूसरे भागीदारों को धन को बाँटे बिना और स्वयम् भी जो धन का उपयोग नहीं करता है । केवल धन की रखवाली करने वाले यक्ष के समान धन का रक्षक मात्र होता है, उसकी अधोगति होती है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

ऋषयो मनुष्ययज्ञब्रह्मयज्ञयोर्देवता: । देवपितृभूतानि इतरेषु ज्ञातयः सगोत्राः । बन्धवो विवाहादिना संबद्धास्तान् । अन्यांश्च भागिनो भागार्हान् । आत्मानं चासंविभज्यान्नादिभिरसंतर्प्य ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

मनुष्ययज्ञ एवं ब्रह्म यज्ञ दोनों के देवता ऋषिगण, देवता पितर, तथा दूसरे प्राणी एवं सगोत्र भाई बन्धु, विवाह आदि से संबद्ध भाई बन्धु तथा दूसरे धन के भागीदारों को तथा स्वयं अपनी आत्मा को भोजन आदि से तृप्त किए बिना ।।२४।।

व्यर्थयार्थेहया वित्तं प्रमत्तस्य वयो बलम् । कुशला येन सिध्यन्ति जरठः किं नु साधये ॥२५॥

अन्वयः— व्यर्थया अर्थेहया, प्रमत्तस्य वित्तम् वयः, बलम्, गत्तमिति शेषः। येन कुशला; सिध्यन्ति, जरठः किं नुसाधये।।२५।।

अनुवाद— व्यर्थ ही धन की कामना में प्रमत्त बना हुआ मैंने धन, आयु और बल, इन सबों को गँवा दिया। जिन साधनो से विवेकी पुरुष मोक्ष को भी प्राप्त कर लेता है, मैंने उन साधनों को व्यर्थ में गँवाया । अब तो मेरी बृद्धावस्था है, अब मैं क्या कर सकता हूँ ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

एवं विमृश्यानुतप्यमान आह-व्यर्थयार्थेहया प्रमत्तस्य मम वित्तादि गतिमिति शेषः । येन वित्तादिना कुशला विवेकिनः सिध्यन्ति मुच्यन्ते । जरठो वृद्धः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से विचार करके वह ब्राह्मण मन-ही-मन पछताने लगा कि व्यर्थ की धन कमाने की चेष्टाओं में रात-दिन लगा रहता था, इसी में मेरा धन, आयु और बल सबके सब समाप्त हो गए । इन धन आदि साधनों से ही विवेकी पुरुष मोक्ष को भी प्राप्त कर लेते हैं । **जरठः** अर्थात् बूढा ।।२५।।

कस्मात्संक्लिश्यते विद्वान्व्यर्थयार्थेहयाऽसकृत् । कस्यचिन्मायया नूनं लोकोऽयं सुविमोहितः ॥२६॥

अन्वयः— विद्वान् कस्मात् व्यर्थया अर्थेहया कस्मात् असकृत् संक्लिश्यते । नूनम् अयं लोकः कस्यचित् मायया सुविमोहितः ।।२६।।

अनुवाद— न जाने क्यों बड़े-बड़े विद्वान् भी धन की तृष्णा में बार-बार क्यों दु:खी होते हैं निश्चित रूप से अवश्य ही यह संसार किसी की माया से अत्यन्त मोहित हो रहा है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

अन्यमपि स्वसदृशं शोचति-कस्मादेवमनर्थं विद्वानपि संक्लिश्यत इति । कारणं संभावयति-कस्यचिदिति ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

अपने ही समान दूसरे के भी विषय में सोचता है । क्या कारण है कि इस प्रकार के अनर्थकारी अर्थ के लिए विद्वान् पुरुष भी कष्ट का अनुभव करते हैं । कस्यचित् पद के द्वारा कारण की सम्भावना करते हैं ।।२६।।

किं धनैर्धनदैर्वा किं कामैर्वा कामदैरुत । मृत्युना ग्रस्यमानस्य कर्मभिर्वोत जन्मदैः ॥२७॥

अन्वयः— मृत्युनाग्रस्यमानस्य धनैः किम्? धनदैः किम्? कामैः वा कामदैः उत जन्मदैः कर्मभिः उत किम् ॥२७॥

अनुवाद— यह शरीर काल के गाल में पड़ा हुआ है, इसको धन से अथवा धन देने वाले देवताओं से तथा लोगों से भोग वासनाओं से अथवा भोगवासनाओं की पूर्ति करने वाले लोगों से क्या मतलब हैं। अथवा बार-बार जन्म देने वाले कर्मों से क्या लाभ है ?॥२७॥

भावार्थ दीपिका

ननु नायं मोहितः क्लिश्यति किंतु धनादिभिर्भोगादिविधित्सयाऽत आह-किं धनैरिति । उत पुनरपि ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि यह मोहित होने के कारण नहीं अपितु धन इत्यादि के द्वारा भोगवासनाओं की पूर्ति करने के लिए कष्ट का अनुभव करता है, तो इस पर कहते हैं धनों से क्या लाभ है । उत और फिर भी ॥२७॥

नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः । येन नीतो दशामेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः ॥२८॥

अन्वयः— नूनं मे सर्वदेवमयः हरिः तुष्टः येन एतां दशां नीतः आत्मनः प्लवः निर्वेदश्च ॥२८॥

अनुवाद— निश्चित रूप से भगवान् श्रीहरि सर्वदेवमय हैं। वे हम पर प्रसन्न हैं। इसीलिए तो उन्होंने मुझे इस दशा में पहुँचाया और संसार से वैराग्य प्रदान किया है। वैराग्य ही संसार सागर से पार होने के लिए सुदृढ नौका है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं संपन्नविवेकः संहृष्यन्नाह-नूनमिति त्रिभिः । येन प्रीतेनात्मनः प्लवरूपो निर्वेदश्च भवति स हरिर्मे नून प्रीत इति॥२८॥

भाव प्रकाशिका

नूनम् इत्यादि तीन श्लोकों से बतलाया गया है कि उन ब्राह्मण को विवेक प्राप्त हो गया है । वे प्रसन्नता का अनुभव करते हुए कहते हैं । श्रीभगवान् की प्रसन्नता से ही संसार सागर से पार होने के लिए नौका के समान वैराग्य मुझे प्राप्त हुआ है । अतएव इसमें सन्देह नहीं की श्रीहरि मुझ पर प्रसन्न हैं ॥२८॥

सोऽहं कालावशेषेण शोषयिष्येऽङ्गमात्मनः । अप्रमत्तोऽखिलस्वार्थे यदि स्यात्सिद्ध आत्मनि ॥२९॥

अन्वयः— सोऽहं, कालावशेषेण आत्मनः अङ्गशोषयिष्ये । अखिलस्वार्थे अप्रमत्तः यदि आत्मनि सिद्धः स्यात्॥२९॥

अनुवाद— अब मेरी आयु का जितना समय बचा हुआ है उससे तपस्या करके अपने शरीर को सुखा दूँगा। अपने सम्पूर्ण स्वार्थ और परमार्थ के विषय में सावधान रहकर हो सकता है, अपने इसी शरीर से मोक्ष भी प्राप्त कर लूँ ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अङ्ग शोषयिष्ये तपसा । यद्वा विद्यया लयं नेष्यामि । यदि स्यात्कालावशेषस्तर्ह्यात्मन्येव सिद्धस्तुष्ट सन् । अखिले स्वार्थे धर्मादिसाधनेऽप्रमत्तः सन् ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

तपस्या के द्वारा अपने शरीर को सुखा दूँगा । अथवा विद्या के द्वारा इसका लय कर दूँगा । यदि मेरा कुछ समय बचा हुआ है उसमें मैं अपने में ही सन्तुष्ट रहा करूँगा । और धर्मादि के साधन के विषय में असावधान नहीं होऊँगा ॥२९॥

तत्र मामनुमोदेरन् देवास्त्रिभुवनेश्वराः । मुहूर्तेन ब्रह्मलोकं खट्वाङ्गः समसाधयत् ॥३०॥

अन्वयः— तत्र माम् त्रिभुवनेश्वराः देवाः अनुमोदेरन् । खट्वाङ्गः मूहुर्तेन ब्रह्मलोकं समसाधयत् ॥३०॥

अनुवाद— तीनों लोकों के स्वामी देवगण मेरे इस निश्चय का अनुमोदन करें अभी निराश होने की आवश्यकता नहीं है । राजा खट्वाङ्ग ने तो ब्रह्म लोक को एक मुहूर्त में ही प्राप्त कर लिया था ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

अनुमोदेरन्ननुगृह्णन्तु । ननु देवैरनुमोदितोऽपि जरठः स्वल्पेन कालेन किं साधयिष्यसि, तत्राह-मुहूर्तेनेति ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अनुमोदेरन् अर्थात् अनुगृहीत करें प्रश्न है कि देवताओं द्वारा अनुगृहीत होने पर भी तुम बूढ़े हो गये हो क्या कर लोगे । इस पर ब्राह्मण ने कहा खट्वाङ्ग ने तो एक ही मुहुर्त में ब्रह्मलोक प्राप्त कर लिया था ॥३०॥

श्रीभगवानुवाच

इत्यभिप्रेत्य मनसा ह्यावन्त्यो द्विजसत्तमः । उन्मुच्य हृदयग्रन्थीन् शान्तो भिक्षुरभून्मुनिः ॥३१॥

अन्वयः— इति मनसा अभिप्रेत्य आवन्त्यो हि द्विजसत्तमः हृदयग्रन्थीन् उन्मुच्य शान्तो भिक्षुः मुनिः अभूत् ॥३१॥

श्रीभगवान् कृष्ण ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार मन से निश्चय करके वह उज्जैन निवासी ब्राह्मण श्रेष्ठ "मै" और "मेरे' की गाँठ खोल दी उसके पश्चात् शान्त होकर वह मौनी संन्यासी हो गया ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

अभिप्रेत्य निश्चित्य । आवन्त्योऽवन्तिदेशभवः । हृदयग्रन्थीनहंकारममकारान् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

अभिप्रेत्य अर्थात् निश्चय करके । आवन्त्य: अर्थात् अवन्तिका प्रदेश में उत्पन्न, हृदयग्रन्थीन् अर्थात् अहङ्कार और ममकार को ॥३१॥

स चचार महीमेतां संयतात्मेन्द्रियानिलः । भिक्षार्थं नगरग्रामानसङ्गोऽलक्षितोऽविशत् ॥३२॥

अन्वयः— संयतात्मेन्द्रियानिलः सः एतां महीं चचार । भिक्षार्थं नगरग्रामान् असङ्गः अलक्षितः अविशत् ॥३२॥

अनुवाद— अब उसके चित्त में किसी भी स्थान, वस्तु या व्यक्ति प्रति आसक्ति नहीं थी । उसने अपने मन, इन्द्रिय और प्राणों को अपने वश में कर लिया था । वह पृथिवी पर स्वच्छन्द रूप से विचरण करने लगा। वह भिक्षार्थ ग्रामों और नगरों में जाता अवश्य था किन्तु ऐसे जाता था कि कोई उसे पहचान न ले ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

असङ्ग आसक्तिशून्यः । अलक्षितः श्रैष्ठ्यमद्योतयन् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

असङ्गः अर्थात् आसक्तिरहित, अलक्षित: अर्थात् अपनी श्रेष्ठता प्रकाशित किए बिना ॥३२॥

तं वै प्रवयसं भिक्षुमवधूतमसज्जनाः । दृष्ट्वा पर्यभवन् भद्र बह्वीभिः परिभूतिभिः ॥३३॥

अन्वयः— हे भद्र प्रवयसं अवधूतम् भिक्षुम् तं दृष्ट्वा असज्जनाः बह्वीभिः परिभूतिभिः पर्यभवन् ॥३३॥

अनुवाद— उद्धव, वह अवधूत भिक्षु बहुत बूढा हो गया था उसको देखकर दुष्टजन अनेक प्रकार के तिरस्कारों द्वारा अपमान करते थे ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

प्रवयसं वृद्धम् । अवधूतं मलिनम् । पर्यभवन्नवमेनिरे । हे भद्र । परिभूतिभिस्तिरस्कारैः ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

प्रवयसम् अर्थात् बृद्ध । अवधूतम् अर्थात् मलिन, पर्यभवन् अर्थात् अपमान करते थे । हे भद्र कल्याणमय उद्धवजी, परिभूतिभिः अर्थात् तिरस्कारों द्वारा ।।३३।।

केचित्त्रिवेणुं जगृहुरेके पात्रं कमण्डलुम् । पीठं चैकेऽक्षसूत्रं च कन्थां चीराणि केचन ।।३४।।

अन्वयः— केचित् त्रिवेणुं जगृहुः एके पात्रं कमण्डलुम् पीठं चैके अक्षसूत्रं च कन्थां चीराणि केचन ।।३४।।

अनुवाद— कोई उनका त्रिदण्ड छिन लेता था, कोई भिक्षा का पात्र, कोई कमण्डलू, कोई उनका आसन ले लेता था, कोई रुद्राक्ष की माला तो कोई उनकी कन्था ही ले लेता था, कोई उनकी लंगोटी और वस्त्र ही लेकर भाग जाता था ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

परिभवानेव दर्शयति-केचिदिति सप्तभिः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

केचित् इत्यादि सात श्लोकों द्वारा तिरस्कार को ही दिखाया गया है ।।३४।।

प्रदाय च पुनस्तानि दर्शितान्याददुर्मुनेः । अन्नं च भैक्ष्यसंपन्नं भुञ्जानस्य सरित्तटे ।।३५।।
मूत्रयन्ति च पापिष्ठाः ष्ठीवन्त्यस्य च मूर्धनि । यतवाचं वाचयन्ति ताडयन्ति न वक्ति चेत् ।।३६।।

अन्वयः— मुनेः तानि प्रदाय पुनः दर्शितानि आददुः सरित् तटे भैक्ष्यसम्पन्नम् अन्नं च भुञ्जानस्य पापिष्ठा मूत्रयन्ति अस्य मूर्धनिष्ठीवन्ति च । यतवाचं वाचयन्ति, न वक्तिचेत् ताडयन्ति ।।३५-३६।।

अनुवाद— कोई-कोई उन वस्तुओं को देकर और कोई दिखलाकर उनसे पुनः छिन लेता था । जब वे अवधूत मधूकरी माँगकर लाते और नदी के तट पर भोजन करने बैठते तो अत्यन्त पापी लोग उनके सिर पर मूत देते थे और कोई उनके सिर पर थूक देता था । वे दुष्ट पापी उनको बोलने के लिए तरह-तरह से विवश करते थे और नहीं बोलने पर पीटते थे ।।३५-३६।।

भावार्थ दीपिका

भो भगवन्, गृहाणेति दर्शितानि सन्ति प्रदाय पुनश्चाददुः । अन्ने मूत्रयन्ति । मूर्धनि च ष्ठीवन्ति । फूत्कारेण श्लेष्माणं प्रक्षिपन्ति ।।३५-३६।।

भाव प्रकाशिका

हे भगवन् इसे लीजिए कहकर दिखलाते और फिर ले लेते । अन्न में मूत देते थे और सिर पर थूक देते थे खंखार फेंकते थे ।।३५-३६।।

तर्जयन्त्यपरे वाग्भिः स्तेनोऽयमिति वादिनः । बध्नन्ति रज्ज्वा तं केचिद्बध्यतां बध्यतामिति ।।३७।।

अन्वयः— अपरे वाग्भिः तर्जयन्ति, अयम् स्तेनः इति वादिनः बध्यताम् बध्यताम् इति रज्वा बध्नन्ति ।।३७।।

अनुवाद— दूसरे दुष्ट उनको जोर-जोर से डाँटते थे यह चोर है यह कहकर कोई कहता इसको बाँध दो और रस्सी से उनको बाँध देते थे ।।३७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३७।।

क्षिपन्त्येकेऽवजानन्त एष धर्मध्वजः शठः । क्षीणवित्त इमां वृत्तिमग्रहीत्स्वजनोज्झितः ॥३८॥

अन्वयः— एकेक्षिपन्ति अवजानन्तः एषः धर्मध्वजः शठः क्षीणवित्तः स्वजनोज्झितः इमां वृत्तिम् अग्रहीत् ॥३८॥

अनुवाद— कोई उनका तिरस्कार करके कहता था यह दुष्ट ढोंगी है, धन नष्ट हो जाने पर जब घर वालों ने इसको घर से निकाल दिया तो इसने यह वेष धारण कर लिया ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

क्षिपन्ति निन्दन्ति । निन्दामेवाह-एष धर्मध्वजस्त्रिदण्डलिङ्गोपजीवी । शठो लोकवञ्चकः । तदेवाहुः-क्षीणवित्त इति॥३८॥

भाव प्रकाशिका

कोई उनकी निन्दा करके उनका अपमान करता था । उस निन्दा को ही बतलाते हैं यह ढोगी है अपनी जीविका के लिए त्रिदण्डी बना है । यह ठग है । उसी को क्षीणवित्तः से बतलाते हैं ॥३८॥

अहो एष महासारो धृतिमान् गिरिराडिव । मौनेन साधयत्यर्थं बकवद्दृढनिश्चयः ॥३९॥

अन्वयः— अहो एषः महासारः गिरिराट् इव धृतिमान मौनेन अर्थं साधयति बकवत् दृढ निश्चयः ॥३९॥

अनुवाद— कोई कहता है देखो तो यह कितना मोटा तगड़ा है । पर्वतराज हिमालय के समान धैर्य सम्पन्न है। मौनी बनकर अपना कार्य सिद्ध करता है यह पर्वत से भी अधिक दृढ निश्चय वाला है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

महासारोऽतिबली ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

महासारः अर्थात् अत्यन्त बलवान् ॥३९॥

इत्येके विहसन्त्येनमेके दुर्वातयन्ति च । तं बबन्धुर्निरुरुधुर्यथा क्रीडनकं द्विजम् ॥४०॥

अन्वयः— इति एके एनम् विहसन्ति एके दुर्वातयन्ति च । तं बबन्धुः निरुरुधुः क्रीडनकं द्विजम् यथा ॥४०॥

अनुवाद— कोई उस अवधूत की हँसी उड़ाता था तो उन पर अधोवायु छोड़ देता था । जिस तरह कोई तोता-मैना को बाँध लेते हैं और पिंजड़े में बन्द कर देते है वैसे वे सब भी उन अवधूत को बाँध देते थे और बन्द कर देते थे ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

दुर्वातयन्ति तदुपर्यधोवायुं मुञ्चन्ति । बबन्धु शृङ्खलैः । निरुरुधुः कारागृहादिषु । द्विजं शुकसारिकादि यथा ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

दुर्वातयन्ति अर्थात् उन पर कोई अधोवायु छोड़ देता था । जैसे लोग तोता-मैना इत्यादि पक्षियों को पिंजड़े में बन्द कर देते है उसी तरह वे सब भी उन अवधूत को कमरे आदि में बन्द कर देते थे ॥४०॥

एवं स भौतिकं दुःखं दैविकं दैहिकं च यत् । भोक्तव्यमात्मनो दिष्टं प्राप्तं प्राप्तमबुध्यत ॥४१॥

अन्वयः— एवं स भौतिकं दैविकं, दैहिकं च यत् दुःखम् आत्मने दिष्टं प्राप्तं-प्राप्तं भोक्तव्यम् अबुध्यत ॥४१॥

अनुवाद— किन्तु वे अवधूत सबकुछ चुपचाप सह लेते थे, कभी ज्वरादि के कारण दैहिक पीड़ा होती, कभी दैविक कष्ट, तो कभी दुष्टों द्वारा किए अपमान को सह लेते थे । उनके मन में कोई विकार नहीं आता था। वे समझते थे कि यह सब मेरे पूर्व जन्म के कर्मों का फल है अतएव मुझे सहना ही पड़ेगा ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

भौतिकं दुर्जनादिकृतम् । दैहिकं ज्वरादिनिमित्तम् । दैविकं शीतोष्णादिप्रभवम् । दिष्टं दैवप्राप्तम् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

दुष्टों आदि से किया हुआ कष्ट भौतिक है, ज्वर आदि के कारण होने वाला कष्ट दैहिक है, सर्दी-गर्मी से होने वाला कष्ट दैविक है । दैव प्राप्त कष्ट दिष्ट है ।।४१।।

परिभूत इमां गाथामगायत नराधमैः । पातयद्भिः स्वधर्मस्थो धृतिमास्थाय सात्त्विकीम् ।।४२।।

अन्वयः— सत्त्विकीम् धृतिमास्थाय स्वधर्मस्थः पातयद्भिः नराधमैः परिभूतः इमां गाथामगायत् ।।४२।।

अनुवाद— सात्त्विक धैर्य को अपनाकर वे अवधूत अपने धर्म में स्थित रहते थे, नीच पुरुषों द्वारा अपने धर्म से च्युत करने का प्रयास करने पर भी अपने धर्म का पालन करते थे और उन सबों के द्वारा तिरस्कृत होकर यह गाथा गाये ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

धर्मात्पातयद्भिः परिभूतोऽपि सात्त्विकीं धृतिमास्थाय स्वधर्म एव स्थित इमां वक्ष्यमाणां गाथामगायत । सात्त्विकी धृतिश्च,- 'धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः । योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ।' इति ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

धर्म से च्यूत कराने वालों के द्वारा अपमानित किए जाने पर भी सात्त्विकी धृति का अपनाकर अपने धर्म में स्थित रहकर उन्होंने वक्ष्यमाण गाथा को गाया । सात्त्विकी धृति को लक्षित करते हुए श्रीभगवान् गीता में कहे हैं **धृत्या यया धारयते० इत्यादि** योग में सदा बनी रहने वाली मनप्राण तथा इन्द्रियों को धारण करने वाली जिस धृत्ति के द्वारा योगी धारण करता है, वह सात्त्विकी धृति है ।।४२।।

द्विज उवाच

नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवतात्मा ग्रहकर्मकालाः ।
मनः परं कारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्तयेद्यत् ।।४३।।

अन्वयः— मे सुख दुःख हेतुः अयंजनः देवतात्मा ग्रहकर्म कालाः न परंकारणं मनः आमनन्ति यत् संसार चक्रं परिवर्तयेत्।।४३।।

ब्राह्मणों ने कहा

अनुवाद— मेरे सुख अथवा दुःख के कारण न तो ये लोग हैं न देवता हैं, न शरीर है, न ग्रह न काल हैं। महापुरुष इन सबों का कारण मन को ही कहते हैं, मन ही इस संसार चक्र को चलाने का काम करता है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

तामेवाष्टादशश्लोकीं गाथामाह-नायमिति । न चात्मा नापि ग्रहादयः मनः परं केवलं सुखदुःखयोः कारणं वदन्ति-'मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति' इत्यादिश्रुतयः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

नायंजनः इत्यादि से उस अठारह श्लोकों वाली गाथा को कहा गया है । न तो शरीर है और न ग्रह आदि हैं । सुख दुःख का सर्व श्रेष्ठ कारण मन को ही श्रुतियाँ तथा श्रेष्ठ पुरुष बतलाते हैं । श्रुति कहती है मनसा ह्येव पश्यति मनसा शृणोति । अर्थात् पुरुष मन से ही देखता है और मन से ही सुनता है ।।४३।।

मनो गुणान्वै सृजते बलीयस्ततश्च कर्माणि विलक्षणानि ।
शुक्लानि कृष्णान्यथ लोहितानि तेभ्यः सवर्णाः सृतयो भवन्ति ॥४४॥

अन्वयः— बलीयः मनः वै गुणान् ततःच विलक्षणानि अथ शुक्लानि कृष्णानि अथ लोहितानि कर्माणि सृजते तेभ्यः सवर्णाः सृतयः भवन्ति ।।४४।।

अनुवाद— यह बलवान् मन विषयो, उनके कारण गुणो और उनसे सम्बन्ध रखने वाली वृत्तियों की सृष्टि करता है । उन वृत्तियों के समानही सात्त्विक, राजस, एवं तामस इत्यादि विभिन्न प्रकार के कर्म होते हैं और कर्मों के अनुसार ही जीवों की विविध गतियाँ होती हैं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

परिवर्तनप्रकारमाह-मन इत्यादि । गुणान् गुणवृत्तीः सृजति । ततश्च तेभ्यो गुणेभ्यः शुक्लानि सात्त्विकानि । कृष्णानि तामसानि । लोहितानि राजसानि । सवर्णास्तत्तत्कर्मानुरूपाः सृतयो देवतिर्यङ्नरादिगतयः ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

मन के परिवर्तन प्रकार को मन इत्यादि श्लोक से कहा गया है । गुणान् अर्थात् गुणों की वृत्ति की सृष्टि करता है । उन गुणों से ही सात्त्विक, राजस एवं तामस कर्म होते हैं । उन कर्मों के अनुसार जीव की मनुष्य आदि योनियों में गति होती है ।।४४।।

अनीह आत्मा मनसा समीहता हिरण्मयो मत्सख उद्विचष्टे ।
मनः स्वलिङ्गं परिगृह्य कामान् जुषन्निबद्धो गुणसङ्गतोऽसौ ॥४५॥

अन्वयः— समीहता मनसा अनीह आत्मा हिरण्मयः मत्सखः उद्विचष्टे, मनः स्वलिङ्ग परिगृह्य कामान् जुषन् असौ गुण सङ्गतः निबद्धः ।।४५।।

अनुवाद— मन ही सारी चेष्टाओं को करता है । उसके साथ रहने पर भी आत्मा निश्चेष्ट ही रहता है । वह ज्ञान शक्ति प्रधान है । मुझ जीवात्मा का सनातन सखा है । वह अपने अलुप्तज्ञान से सबकुछ देखता रहता है । उसकी अभिव्यक्ति मन के द्वारा ही होती है । जब वह मन को स्वीकार करके उसके द्वारा विषयों का भोक्ता बन जाता है तब कर्म के साथ आसक्ति होने के कारण उनसे बँध जाता है ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

तर्हि मनस एव संसारः स्यान्नात्मन इत्याशङ्क्याह-अनीह इति । अयमर्थः-अविद्ययाध्यासेनेयमात्मनः संसृतिर्न तु स्वतः। यतस्तद्रहितस्येश्वरस्य सा नास्ति किंतु तद्वतो जीवस्यैवेति । तदेवाह-मनसा समीहमानेन सहनियन्तृत्वेन वर्तमानोऽपि परमात्मा अनीहस्तत्क्रियासङ्गरहितः । यतो हिरण्मयो विद्याशक्तिप्रधानः । यतो मत्सखः । मम जीवस्य सखा नियन्ता । अत उदुच्चैर्विचष्टे। अतिरोहितज्ञानेन केवलं पश्यतीत्यर्थः । असौ पुनरहं जीवः स्वलिङ्गं स्वस्मिन्नात्मनि लिङ्गयति द्योतयति संसारमिति तथा तन्मनः परिगृह्यात्मत्वेन स्वीकृत्य मनसो गुणैः कर्मभिः सङ्गतः संबद्धो गुणसङ्गाद्वा कामान् जुषन्निबद्ध इति।।४५।।

भाव प्रकाशिका

तब तो मन का ही संसार होना चाहिए आत्मा का नहीं, इस प्रकार की आशङ्का करके **अनीह इत्यादि** श्लोक कहते हैं । इसका अर्थ है कि अविद्या के अध्यास के कारण आत्मा का संसार है । स्वत: नहीं क्योंकि अविद्या से रहित ईश्वर को संसार नहीं होता किन्तु अविद्या से युक्त जीव को संसार होता है । इसी बात को कहते है- मन के साथ नियामक होने के कारण वर्तमान रहने पर भी परमात्मा उन कर्मों की आसक्ति से रहित है । तथा वह विद्या शक्ति प्रधान है । किञ्च जीव का सखा है और नियामक है । अतएव परमात्मा का ज्ञान कभी तिरोहित नहीं

होता है अतएव वह ज्ञान के द्वारा केवल देखता है । और यह जीव अपनी आत्मा में संसार को प्रकाशित करता है तथा वह उस मन को स्वीकार करके मन के कर्मों से संबद्ध होकर अथवा गुणों में आसक्ति के कारण काम्य पदार्थों का सेवन करता हुआ संसार में बँध जाता है ।।४५।।

दानं स्वधर्मो नियमो यमश्च श्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि ।
सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः परो हि योगो मनसः समाधिः ।।४६।।

अन्वयः— दानं स्वधर्मो, नियमो यमः चश्रुतं च कर्माणि च सद्व्रतानि सर्वे मनोनिग्रहलक्षणान्ताः परो हि योगो मनसः समाधिः ।।४६।।

अनुवाद— दान अपने धर्म का पालन, नियम, यम वेदाध्ययन और ब्रह्मचर्य आदि श्रेष्ठ व्रत, इन सबों का अन्तिम फल है कि मन एकाग्र होकर श्रीभगवान् में लग जाय इसी को मन का समहित हो जाना परमयोग कहते हैं ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

अतो मनोनिग्रहे कृते सर्वं कृतं स्यात्, तं विना तु सर्वं व्यर्थमित्याह-दानमिति द्वाभ्याम् । स्वधर्मो नित्यनैमित्तिकः । सद्व्रतान्येकादश्युपवासादीनि । अन्यानि च यावन्ति कर्माणि । एते सर्वे उपाया मनोनिग्रहलक्षणोऽन्तो निष्ठा फलं येषां ते तथा। ननु ज्ञानाङ्गत्वं तेषां प्रसिद्धं तत्राह-मनसः समाधिर्निग्रह एव परो योगो ज्ञानम् ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

अतएव मन को निगृहीत कर लेने पर तो मनुष्य जीवन के समस्त कर्तव्य कर्मों को कर लेता है । मन का निग्रह किए बिना सबकुछ करना व्यर्थ है । इस बात को **दानम् इत्यादि** दो श्लोकों से कहा गया है । स्वधर्म अर्थात् नित्य नैमित्तिक कर्मों का पालन । सद्व्रतानि अर्थात् एकादशी का उपवास आदि तथा दूसरे भी जितने कर्म है, इन सभी कर्मों का फल मन का निग्रह हो जाना है । प्रश्न होता है वे सब ज्ञान के अङ्ग रूप से प्रसिद्ध हैं । तो इसके उत्तर में कहते हैं कि मन का निग्रह ही सर्वश्रेष्ठ योग अर्थात् ज्ञान है ।।४६।।

समाहितं यस्य मनः प्रशान्तं दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम् ।
असंयतं यस्य मनो विनश्यद्दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः ।।४७।।

अन्वयः— यस्य समाहितं मनः प्रशान्तं वद तस्य दानादिभिः किं कृत्यम् ? यस्य असंयतं मनः विनश्यद् दानादिभिः चेद परं किमेभिः ।।४७।।

अनुवाद— जिसका मन समाहित और प्रशान्त है तो फिर बतलाओ उसे दान आदि सत्कर्मों को करने से कौन सा लाभ है ? क्योंकि उसको तो इन सभी कर्मों का फल प्राप्त हो चुका । जिसका मन चञ्चल अथवा आलस्य से अभिभूत है उसको भी दान आदि कर्मों को करने से कोई लाभ नहीं हुआ ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

अतो यस्य मनः समाहितं भवति तस्य किं कृत्यमस्ति वदेत्यपरं प्रत्युपदिशन्निव स्वयमेवाह-असंयतं विक्षिप्तं चेत् । यद्वा, विनश्यदालस्यादिना लीयमानं चेद्भवेत्तर्ह्येभिर्दानादिभिः किमपरं प्रयोजनं स्यात् । न किंचिदित्यर्थः ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

अतएव जिसका मन समाहित होता है, बतलाओं उसे क्या करने के लिए अवशेष रह गया ? दूसरे को उपदेश देते हुए के समान वे ब्राह्मण स्वयं अपने में कहते हैं यदि मन चञ्चल बना हुआ है अथवा आलस्य पूर्ण होने के कारण लीन है तो फिर इन दानादिकों से फिर क्या प्रयोजन है । कोई नहीं ।।४७।।

मनोवशेऽन्ये ह्यभवंस्म देवा मनश्च नान्यस्य वशं समेति ।
भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान्युञ्ज्याद्वशे तं स हि देवदेवः ॥४८॥

अन्वयः— अन्ये देवाः मनोवशे हि अभवनस्म, मनः च अन्यस्य वशं न समेति । भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान् युञ्ज्याद् वशे तं स हि देवदेवः ॥४८॥

अनुवाद— सभी इन्द्रियाँ मन के वश में है मन किसी के भी वश में नहीं हैं । यह मन बलवान् से भी अधिक भयङ्कर बलवान् है, जो मन को अपने वश में कर लेता है वह सभी इन्द्रियों का विजेता (देव देवः) है॥४८॥

भावार्थ दीपिका

नन्वितरेन्द्रियजयः प्रयोजनं स्यान्नेत्याह-मनोवश इति । देवा इन्द्रियाणि तदधिष्ठातारो वा । भीष्मो योगिनामपि भयङ्करो मनोलक्षणो देवः । कुतः । सहसो बलादपि बलिनोऽपि वा सहीयान्बलवान् । अतस्तं यो वशवर्तिनं कुर्यात्स एव देवदेवः सर्वेन्द्रियजेता भविता नान्यः । तथा च श्रुतिः-'मनसो वशे सर्वमिदं बभूव नान्यस्य मनो वशमन्वियाय । भीष्मो हि देवः सहसः सहीयान् ।' इति ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि मन से भिन्न इन्द्रियों को अपने वश में करने का प्रयोजन है कि नहीं ? तो इसका उत्तर है कि नहीं, इस बात को **मनोवशे० इत्यादि** श्लोकों से कहा गया है । देवाः अर्थात् इन्द्रियाँ अथवा इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता । भीष्मः अर्थात् मन नामक इन्द्रिय योगियों के लिए भी भयङ्कर है । क्योंकि वह बलवानों से भी बलवान् है । सहीयान् अर्थात् बलवान् । अतएव जो मन को भी वश मे कर लेता है । वह सभी इन्द्रियों का विजेता है । उससे भिन्न कोई नहीं है । श्रुति भी कहती है- **मनसो वशे० इत्यादि** अर्थात् मन के वश में हो जाने पर यह समस्त इन्द्रियों का समूह वश में हो जाता है । मन किसी भी इन्द्रिय के वश में नहीं है । यह मन नामक इन्द्रिय बलवान् से भी बलवान् है तथा भयङ्कर है ॥४८॥

तं दुर्जयं शत्रुमसह्यवेगमरुन्तुदं तन्न विजित्य केचित् ।
कुर्वन्त्यसद्विग्रहमत्र मर्त्यैर्मित्राण्युदासीनरिपून्विमूढाः ॥४९॥

अन्वयः— तं दुर्जयं शत्रुम् असह्यवेगम् अरुन्तुदम् केचित् विमूढाः तत् न विजित्य अत्र मर्त्यैः असद् विग्रहं कृत्वा मित्राणि उदासीन रिपून् कुर्वन्ति ॥४९॥

अनुवाद— मन अत्यन्त दुर्जय शत्रु है, उसका आक्रमण असह्य होता है । वह केवल शरीर को ही नही हृदय आदि अन्तःकरण को भी व्यथित कर देता है । उसको जीतना अत्यन्त कठिन है । अतएव मनुष्यों को सर्वप्रथम मन को ही जीतने का प्रयास करना चाहिए किन्तु कुछ ऐसे अज्ञानी लोग हैं कि वे अपने को अपने वश में नहीं करके दूसरों से व्यर्थ ही ही झगड़ा किया करते है और लोगों को अपना शत्रु मित्र तथा उदासीन बनाया करते हैं ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

अतोऽसह्या रागादयो वेगा यस्य तम्, अत एवारुन्तुदं अरुर्मर्म तत्तुदति व्यथयतीत्यरुन्तुदस्तम् । तत् नेति च्छेदः । तं न विजित्याजित्वा तत् ततो ये केचिन्मर्त्यैः कैश्चिदसद्विग्रहं कुर्वन्ति । तत्र चानुकूलप्रतिकूलादीनन्यान्मित्रादीन्कुर्वन्ति ते मूढा इत्यर्थः॥४९॥

भाव प्रकाशिका

अतएव मन के राग आदि वेग असत्य है । अतएव वह हृदय आदि मर्म स्थलों को भी व्यथित कर देता है। उस मन को अपने वश में नहीं करके कुछ मूर्ख मनुष्यों के साथ झगड़ा किया करते हैं और लोगों को शत्रु, मित्र तथा उदासीन बनाया करते हैं ॥४९॥

देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा ममाहमित्यन्धधियो मनुष्याः ।
एषोऽहमन्योऽयमिति भ्रमेण दुरन्तपारे तमसि भ्रमन्ति ॥५०॥

अन्वयः— मनोमात्रम् देहं गृहित्वा अन्यधियः मनुष्याः ममाहम् इति अहम् एषः अयम् अन्यः इति भ्रमेण दुरन्तपारे तमसि भ्रमन्ति ॥५०॥

अनुवाद— साधारणतः मनुष्यों की बुद्धि अन्धी हो गयी है, वे इस मनः कल्पित शरीर में ही अहन्त्व और ममत्व की बुद्धि कर लेते हैं । उसके पश्चात् वे भ्रम के कारण यह मैं हूँ और यह यह है, समझने लगते है और इसी भ्रम के कारण वे अनन्त अज्ञानान्धकार में भटकते रहते हैं ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

ततश्चानेन प्रकारेण संसारे भ्रमन्तीत्याह-देहमिति । मनोमात्रपरिकल्पितमिमं स्वदेहमहमिति पुत्रादिदेहं च ममेति स्वीकृत्य। तमसि संसारे ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

उसी के कारण वे इस प्रकार से संसार में भटकते रहते हैं इस बात को **देहम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । केवल मनः कल्पित इस देह में 'मैं' इस प्रकार की तथा पुत्रादि के शरीर में ममकार की बुद्धि करके तमसि अर्थात् संसार में ॥५०॥

जनस्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनश्चात्र ह भौमयोस्तत् ।
जिह्वां क्वचित्संदशति स्वदद्भिस्तद्वेदनायां कतमाय कुप्येत् ॥५१॥

अन्वयः— चेत् सुख-दुःखयो हेतुः जनः अत्रह भौमयोः तत् आत्मनः किम् ? क्वचित् जिह्वा स्वदद्भिः स्वदद्भिः तदवेदनायां कतमाय कुप्येत ?॥५१॥

अनुवाद— यदि सुख एवं दुःख का कारण मनुष्य ही है तो भी उनसे आत्मा का क्या सम्बन्ध है ? क्योंकि सुख-दुख पहुँचाने वाला तथा भोगने वाला दोनों पार्थिव शरीर ही है । यदि कभी भोजन आदि के समय अपने ही दाँतों से अपनी जीभ कट जाय तो फिर मनुष्य किस पर क्रोध करे ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं मनस एव दुःखकारणत्वमुपपाद्येदानीं जनादीनां षण्णामकारणत्वं प्रपञ्चयति-जनस्त्विति षड्भिः । अत्र चास्मिन्नपि पक्षे आत्मनः किं, न किंचित् । सुखदुःखकर्मत्वं तत्कर्तृत्वं चेत्यर्थः । कुत इत्यत आह-ह निश्चितं भौमयोर्विकारयोर्देहयोस्तत्, न त्वात्मनः । अमूर्तस्याक्रियस्य च हननादिषु कर्मत्वकर्तृत्वानुपपत्तेः । तथापि दुःखमात्मपर्यवसाय्येवेति चेदेवमपि परमात्मन उभयत्राप्येकत्वात्र कोपविषयोऽस्तीति स्वदृष्टान्तेन दर्शयति-जिह्वामिति ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह मन को ही दुख का कारण प्रतिपादित करके अब जन आदि छहों के अकारणत्व का प्रतिपादन **जनस्तु० इत्यादि** छह श्लोकों से करते हैं । इस पक्ष में आत्मा का क्या सम्बन्ध है ? कोई नहीं सुख तथा दुःख के कर्ता और कर्म दोनों पार्थिव है यदि कहें कि यंह कैसे तो इसका उत्तर है कि दोनों ही देह पृथिवी के विहार है; ये आत्मा के विकार नहीं है । आत्मा तो अमूर्त और विकार रहित है अतएव वह हनन आदि क्रियाओं का न तो कर्ता हो सकता है और न कर्म । यदि कहें कि दुःख तो आत्मा को ही होता है तो ऐसा मानने पर भी दुःख देने और दुःख सहने वाला एक ही परमात्मा के होने से से वह क्रोध का विषय नहीं हो सकता है । उसका दृष्टान्त **जिह्वा क्वचित् इत्यादि** उत्तरार्द्ध से उपन्यस्त करते हैं ॥५१॥

दुःखस्य हेतुर्यदि देवतास्तु किमात्मनस्तत्र विकारयोस्तत् ।
यदङ्गमङ्गेन निहन्यते क्वचित्क्रुध्येत कस्मै पुरुषः स्वदेहे ॥५२॥

अन्वयः— यदि दुःखस्य हेतुः देवता अस्तु तत्र आत्मनः किम् तत् विकारयोः यदि क्वचित् अङ्गेन अङ्गम् निहन्यते पुरुषः स्वदेहे कस्मै क्रुध्येत ॥५२॥

अनुवाद— यदि दुःख का कारण देवता को माना जाय तो उसमें भी आत्मा का क्या सम्बन्ध है ? क्योंकि यदि दुःख के कारण देवता है तो दुःख सहने वाले भी इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता ही है देवता सभी शरीरों में एक हैं । जो देवता एक शरीर में है, वही देवता दूसरे शरीर में भी है ऐसी स्थिति में अपने ही शरीर के किसी एक अङ्ग से दूसरे अङ्ग को चोट लग ही जाय तो फिर किस पर क्रोध किया जायेगा ?॥५२॥

भावार्थ दीपिका

यदि देवता अस्तु नाम, तत्रापि पक्षे आत्मनः किम् । यतो विकारयोर्विक्रियमाणयोर्देवयोस्तद्धस्तेन मुखेऽभिहते । तेन वा हस्ते दष्टे तदभिमानिनोर्वह्नीन्द्रयोरेव तत्, न त्वविक्रियस्यानहंकारस्य चात्मनः । देवतानां च सर्वदेहेष्वभेदान्न कोपविषयोऽस्तीति स्वदेहदृष्टान्तमाह- यद्यदा अङ्गं देवताधिष्ठानं हस्तमुखादि । अत एव पूर्वत्र देवतानधिष्ठानरूपभूविकारदन्तोदाहरणम् ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

यदि दुख प्रदाता देवता को माना जाय तो उस पक्ष में भी आत्मा का क्या सम्बन्ध है ? क्योंकि दोनों विकार और विकृत होने वाले तो देवता ही हैं । यदि हाथ से मुँह में चोट लग जाय अथवा कोई अपने ही दाँत से हाथ को काट ले तो दोनों के अभिमानी देवता अग्नि और इन्द्र है । उसमें आत्मा का क्या सम्बन्ध है आत्मा तो विकार और अहङ्कार से रहित है । और सभी शरीरों में अधिष्ठातृ देवता एक हैं इसीलिए अपने देह का दृष्टान्त उपन्यस्त किया गया है । देवता के द्वारा अधिष्ठित अङ्ग हाथ और मुख दोनों तो एक समान है । इसीलिए देह पक्ष में देवता के अधिष्ठान से रहित पृथिवी के विकार दाँत का उदाहरण किया गया है ॥५२॥

आत्मा यदि स्यात्सुखदुःखहेतुः किमन्यतस्तत्र निजस्वभावः ।
न ह्यात्मनोऽन्यद्यदि तन्मृषा स्यात्क्रुध्येत कस्मान्न सुखं न दुःखम् ॥५३॥

अन्वयः— यदि आत्मा सुख दुःख हेतु स्यात् तत्र अन्यतः किम् निजस्वभावः आत्मनः अन्यत् नहि, यदि स्यात् तत् मृषा कस्मात् क्रुध्येत न सुखं न दुःखम् ॥५३॥

अनुवाद— यदि आत्मा को सुख-दुःख का कारण माना जाय तो वह तो अपना आप ही है । कोई दूसरा तो है नहीं आत्मा से भिन्न कुछ है ही नही, यदि प्रतीत होता है तो मिथ्या है इसलिए न सुख है न दुःख फिर क्रोध कैसा, क्रोध का कारण क्या है ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

आत्मनः सुखदुःखाद्याकारपरिणामोऽतः स एव यदि हेतुः स्यात्तत्र तस्मिन्पक्षे अन्यतः किम् । न किंचिदन्यतो भवति तस्मै कुप्येदित्यर्थः, यतो निज एव स्वभावः सः । नन्वात्मनस्तथा परिणामोऽन्यनिमित्तो भवत्यतोऽस्ति कोपविषय इति चेत्तत्राह-न हीति। आत्मव्यतिरिक्तं नास्त्येव । यदि स्यादस्तीति प्रतीयेत, तर्हि तन्मृषैवातः कस्माद्धेतो क्रुध्येत, यतो नास्ति निमित्त न च सुखं दुःखं चेत्यर्थः ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

यदि आत्मा ही सुख-दुःख के रूप में परिणत होता है, अतएव यदि वही कारण है तो उस पक्ष में दूसरे से क्या सम्बन्ध है ? आत्मा से भिन्न कोई दूसरा है ही नहीं जिस पर क्रोध किया जाय । क्योंकि वह उसका अपना स्वभाव

ही है । यदि कहें कि आत्मा का उस रूप में परिणाम का कारण दूसरा होता है, अतएव कोप का विषय दूसरा है । आत्मा से भिन्न कुछ है ही नहीं यदि प्रतीत होता है तो वह मिथ्या है । अतएव क्रोध का कोई कारण है ही नहीं अतएव न दुःख है न सुख ।।५३।।

ग्रहा निमित्तं सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनोऽजस्य जनस्य ते वै ।
ग्रहैर्ग्रहस्यैव वदन्ति पीडां क्रुध्येत कस्मै पुरुषस्ततोऽन्यः ।।५४।।

अन्वयः— चेत् सुखदुःखयोः निमित्तं अजस्य आत्मनः किम् ते वै जनस्य । ग्रहैः ग्रहस्यैव पीडां वदन्ति ततः अन्यः पुरुषः कस्मै क्रुध्येत ।।५४।।

अनुवाद— यदि ग्रहों को सुख और दुःख का कारण मानें तो उनसे भी अजन्मा आत्मा की क्या हानि है? उनका प्रभाव जन्म और मृत्युशील शरीर पर होता है । ग्रहों की पीड़ा तो उनका प्रभाव ग्रहण करने वाले शरीर को होती है । आत्मा उन ग्रहों और शरीर से सर्वथा भिन्न है । ऐसी स्थिति में वह किस पर क्रोध करे ?।।५४।।

भावार्थ दीपिका

ग्रहपक्षेऽप्यजस्यात्मन; किं, यतो जन्यत इति जनो देहस्तस्यैव जन्मलग्नापेक्षया द्वादशाष्टमादिराशि स्थास्ते सुखदुःखयोर्निमित्तं भवन्ति । किंच, अन्तरिक्षस्थैर्ग्रहैस्तत्रस्थस्य ग्रहस्यैव पादार्धादिदृष्ट्यादिभेदैः पीडां वदन्ति दैवज्ञाः, न तु ग्रहकोणादिषु स्थितस्य तदृष्ट्यगोचरस्य पुरुषस्य । ग्रहगतैव तु पीडा तल्लग्नोत्पन्ने देहे तस्याभिमानाद्भवति । अतः पुरुषस्ततो ग्रहाद्देहाच्चान्यः कस्मै क्रुध्येत ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

ग्रह पक्ष में भी आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है । जन्म लग्न की अपेक्षा तो शरीर को होता है । बारहवें आठवें आदि राशियों में स्थित ग्रह सुख और दुःख के कारण होते हैं । दैवज्ञों का कहना है कि अन्तरिक्ष में रहने वाले ग्रह अन्तरिक्षस्थ ही ग्रह को पाद अथवा अर्थ दृष्टि आदि से पीडा करते हैं । ग्रहों में होने वाली पीडा उसके लग्न में उत्पन्न होने वाले देह में ही होती है । पुरुष तो उस ग्रह से भिन्न है वह किस पर क्रोध करे ।।५४।।

कर्मास्तु हेतुः सुखदुःखयोश्चेत्किमात्मनस्तद्धि जडाजडत्वे ।
देहस्त्वचित्पुरुषोऽयं सुपर्णः क्रुध्येत कस्मै न हि कर्म मूलम् ।।५५।।

अन्वयः— चेत् सुखदुःखयोः हेतु कर्मास्तु आत्मनः किम् ? तद्धि जडाजडत्वे, देहस्तु अचित् अयं पुरुषः सुपर्णः कस्मै कुप्येत कर्म मूलम् नहि ।।५५।।

अनुवाद— यदि कर्मों को ही सुख दुःख का कारण माना जाय तो उसमें आत्मा का क्या प्रयोजन है ? वे तो एक पदार्थ के जड और चेतन उभय रूप होने पर ही होते हैं । जो वस्तु विकार युक्त और अपना हिताहित जानने वाली होती है, उसी के कर्म हो सकते हैं । विकार युक्त होने के कारण उसे जड़ होना चाहिए और हिताहित का ज्ञान रखने के कारण चेतन भी होना चाहिए, किन्तु शरीर तो अचेतन है और उसमें रहने वाली आत्मा का निर्विकार और साक्षी मात्र है । इस प्रकार कर्मों का तो कोई आधार ही सिद्ध नहीं हो सकता । फिर क्रोध किस पर करें ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

कर्म हेतुश्चेदस्त्वित्यसूयोपगमः कर्मैव नास्ति कुतस्तस्य हेतुत्वमिति, तदाह-हि यस्मात्कर्म एकस्य जडाजडत्वे सति स्यात्, जडत्वाद्विकारित्वोपपत्तेः, अजडत्वाच्च हितानुसंधानतः प्रवृत्तिसंभवात् । अचिज्जडो देहोऽतस्तस्य प्रवृत्तिर्न संभवति। पुरुषस्तु सुपर्णः शुद्धज्ञानस्वरूपोऽतः कस्मै क्रुध्येत, यतः सुखदुःखयोर्मूलभूतं कर्मैव नास्तीति ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

यदि सुख-दु:ख का हेतु कर्म को माना जाय तो यह दोष दृष्टि को स्वीकार करना होगा । जब कर्म ही नहीं है तो वह सुख दु:ख का हेतु कैसे हो सकता है ? तो इस पर कहते हैं यदि एक वस्तु जड़ एवं अजड़ दोनों हो तो कर्म हो सकता है । जो जड़ होगा वह विकारवान् भी होगा । और अजड़ होने के कारण उसमें प्रवृत्ति हो सकती है। देह जड़ है अतएव उसमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती है पुरुष तो सुपर्ण है अर्थात् शुद्ध ज्ञान स्वरूप है । अत: वह किस पर क्रोध करे । क्योंकि सुख एवं दु:ख का मूल कर्म ही नहीं है ।।५५।।

कालस्तु हेतुः सुखदु:खयोश्चेत्किमात्मनस्तत्र तदात्मकोऽसौ ।
नाग्नेर्हि तापो न हिमस्य तत्स्यात्क्रुध्येत कस्मै न परस्य द्वन्द्वम् ।।५६।।

अन्वय:— चेत् सुख दु:खयो हेतु: काल: तत्र आत्मन: किम् आसौ तदात्मक: हि अग्ने: ताप: न तत् हिमस्य न स्यात् कस्मै क्रुध्येत् परस्य द्वन्द्वम् न ।।५६।।

अनुवाद— यदि सुख एवं दु:ख का कारण काल को माना जाय तो उसका आत्मा पर क्या प्रभाव होगा, क्योंकि काल तो आत्मा स्वरूप है । अग्नि-अग्नि को जलाने का काम नही करती है और न तो वर्फ वर्फ को नही गला सकता है । इसी तरह आत्मा स्वरूप काल आत्मा को दु:ख नहीं दे सकता है, फिर किस पर क्रोध किया जाय । आत्मा शान्ति उष्ण आदि सभी द्वन्दों से रहित है ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

तत्र कालपक्षेऽप्यात्मन: किं, यतोऽसौ कालात्मक एवं ब्रह्मांशत्वात् । स्वांशस्य स्वत: पीडा नास्तीत्यत्र दृष्टान्त:- नाग्नेर्हेतोस्तदंशस्य ज्वालादेस्तापो दाहतो नाशोऽस्ति । तत्रोपाधिभूतकाष्ठांशदाहान्नाश: स्यादिति दृष्टान्तान्तरमाह-हिमस्य तच्छैत्यं तदंशस्य तुषारकणस्य नाशकं न स्यादित्यर्थ: । किंच आस्तामंशत्वं वस्तुत: पर एवायं न च परस्य द्वन्द्वं सुखदु:खादिकमस्तीति।।५६।।

भाव प्रकाशिका

काल पक्ष में आत्मा का क्या सम्बन्ध है ? क्योंकि काल भी जीवात्मा ही है । क्योंक वह ब्रह्म का अंश हैं । अपना अंश अपने को ही कष्ट नहीं दे सकता है । इसमें दृष्टान्त अग्नि और वर्फ है । अग्नि अपने अंश भूत अग्नि को संतप्त नहीं कर सकता है और न तो वर्फ-वर्फ को गला सकता है । अग्नि का उपाधि भूत काष्ठंश का दाह से नाश होता है । दूसरा दृष्टान्त वर्फ है, वर्फ के कणों को नहीं गलाता है । किञ्च काल तो ब्रह्म का अंश है । आत्मा सबसे परे है अतएव जो सबसे पर होता है, उसको सुख-दु:ख आदि द्वन्द्व नहीं होते हैं ।।५६।।

न केनचित्क्वापि कथंचनास्य द्वन्द्वोपराग: परत: परस्य ।
यथाऽहम: संसृतिरूपिण: स्यादेवं प्रबुद्धो न बिभेति भूतै: ।।५७।।

अन्वय:— केनचित् क्वापि, कथंचन अस्य परत: परस्य द्वन्द्वोपरागो न यथाहम: संसृति रूपिण: स्यात् एवं प्रबुद्ध: भूतै: न विभेति ।।५७।।

अनुवाद— अत्मा प्रकृति के स्वरूप, धर्म, कार्य, लेश, संबन्ध एवं गन्ध से रहित है । उसे कभी कही किसी के द्वारा किसी भी प्रकार से द्वन्द्व का स्पर्श नहीं होता है । वह तो जन्म-मरण के चक्र में भटकने वाले अहङ्कार के होता है । जो इस बात को जान लेता है, वह किसी भय के निमित्त से भयभीत नहीं होता है ।।५७।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं षडेते हेतव; प्रसिद्धा निरस्ता:, यदि कश्चिद्धेत्वन्तरमुद्भावयेत्तदपि वस्तुमहिमापेक्षायां न संभवतीत्याह-न केनचिदिति। नन्वपरोक्ष: कथमपह्नूयते तत्राह-यथेति । संसृतिमविद्यमानामेव रूपयति प्रकाशयतीति तथा तस्य अहमोऽहङ्कारस्य यथा स्यान्न तथा परत: प्रकृते: परस्यात्मनो द्वन्द्वसंबन्ध: । अहङ्कारनिमित्तोऽसौ न वास्तव इत्यर्थ: एवं प्रबुद्धो य: स भूतै: कृत्वा न विभेति।।५७।।'

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से सुख दुःख के छह हेतुओं का निरास कर दिया गया। यदि कोई किसी दूसरे कारण की उद्भावना करेगा तो उसका भी वस्तु की महिमा की दृष्टि से सम्भव नहीं हो पायेगा। इस बात को **न केनचित् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। यदि कोई यह कहे कि सुख-दुःख का प्रत्यक्ष तो सब लोक करते हैं, आप उसका अपलाप कैसे करते है ? इस पर **यथाऽहमः इत्यादि श्लोकाशं** से कहते हैं। अविद्यमान ही संसार को प्रकाशित करने वाले अहङ्कार को जैसा संसार होता है इस प्रकार प्रकृति से भी श्रेष्ठ आत्मा को द्वन्द्व का संबन्ध नहीं होता है। अहङ्कार निमित्त मात्र है वह वास्तविक नहीं है। इस तरह से जानने वाला भय के किसी कारण से भयभीत नहीं होता है ॥५७॥

एतां स आस्थाय परात्मनिष्ठामध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः ।
अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं तमो मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैव ॥५८॥

अन्वयः— पूर्वतमैः महर्षिभि अध्यासितां एतां परात्मनिष्ठाम् आस्याय मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयेव अहम् दुरन्तरपारं तमः तरिष्यामि ॥५८॥

अनुवाद— बड़े-बड़े ऋषि मुनि जन जिस परमात्मनिष्ठा का आश्रय ग्रहण किए हैं मैं भी उसी का आश्रय ग्रहण करूँगा तथा मुक्ति एवं प्रेम के दाता श्रीभगवान् के चरणों की सेवा करके इस घोर अज्ञान सागर को पार कर लूगाँ ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

अतोऽहमपि तथैव परमात्मनिष्ठतया तरिष्यामीत्याह-एतामिति। सोऽहमित्यन्वयः। नन्वियं निष्ठैव कथं भवेत्तदाह-मुकुन्देति ॥५८॥

भाव प्रकाशिका

अतएव मैं भी उसी प्रकार परमात्मा की भक्ति करके संसार सागर को पार कर जाऊँगा। इस बात को अवधूत ब्राह्मण ने **एतामित्यादि** श्लोक से कहा है। इस प्रकार का मेरा भी प्रश्न है कि इस प्रकार की निष्ठा ही कैसे हो सकती है ? इसके उत्तर में कहा गया है कि श्रीभगवान् के चरण कमलों की उपासना करने से ही हो जायेगी॥५८॥

श्रीभगवानुवाच

निर्विद्यनष्टद्रविणो गतक्लमः प्रव्रज्य गां पर्यटमान इत्थम् ।
निराकृतोऽसद्भिरपि स्वधर्मादकम्पितोऽमूं मुनिराह गाथाम् ॥५९॥

अन्वयः— नष्टद्रविणः गतक्लमः निर्निध प्रव्रज्य इत्थम् गां पर्यटमानः असद्भिः निराकृतः अपि स्वधर्माद अकम्पितः मुनिः अमुः गाथाम् आह ॥५९॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा

अनुवाद— उद्धवजी उस ब्राह्मण का धन क्या नष्ट हुआ ? उसका सारा क्लेश ही दूर हो गया। संसार से विरक्त होकर उसने संन्यास ग्रहण कर लिया। वह पृथिवी पर स्वच्छन्द विचरण करता रहा। दुष्टों ने उसे खूब सताया फिर भी वह अपने मौन धर्म से विचलित नहीं हुआ। उस समय वह अवधूत अपने मन में इस गाथा को गाया करता था ॥५९॥

भावार्थ दीपिका

प्रस्तावेन सह गाथार्थं संक्षेपतो दर्शयति द्वाभ्याम्- इत्थं नष्टद्रविणो निर्विद्य गतक्लमः प्रव्रज्य गां पर्यटन्नसद्भिर्निराकृतोऽपि स्वधर्मादकम्पितः सन्मुनिरमूं गाथामगायतेत्यन्वयः ।।५९।।

भाव प्रकाशिका

प्रस्ताव के साथ गाथा के अर्थ को दो श्लोकों द्वारा श्रीभगवान् बतलाते हैं । उस प्रकार से नष्ट धन संपत्ति वाला वह ब्राह्मण क्लेश रहित हो गया । उसको संसार से वैराग्य हो गया वह संन्यास ग्रहण करके पृथिवी पर स्वच्छन्द भ्रमण करने लगा । दुष्टों के द्वारा सताये जाने पर भी वह अपने मौनधर्म में अडिग बना रहा । इस प्रकार वह मुनि इस गाथा को गाया ।।५९।।

सुखदुःखप्रदो नान्यः पुरुषस्यात्मविभ्रमः । मित्रोदासीनरिपवः संसारस्तमसः कृताः ।।६०।।

अन्वयः— पुरुषस्य अन्यः सुख दुःखप्रदो न आत्मविभ्रमः मित्रोदासीनरिपवः । संसारः तमसः कृताः ।।६०।।

अनुवाद— इस संसार में मनुष्य को कोई भी सुख अथवा दुःख नहीं देता है यह तो उसके चित्त का भ्रम है । यह सारा संसार और इसके भीतर मित्र, उदासीन और शत्रु के भेद अज्ञान कल्पित हैं ।।६०।।

भावार्थ दीपिका

मित्रोदासीनरिपवः सर्वोऽपि संसारस्तमसोऽज्ञानत आत्मनो मनसो विभ्रममात्रः कृतो न तात्त्विक इत्यर्थः ।।६०।।

भाव प्रकाशिका

मित्र उदासीन और शत्रु और यह सम्पूर्ण संसार अज्ञान कल्पित है । मन का भ्रम मात्र है तात्त्विक नहीं है ।।६०।।

तस्मात्सर्वात्मना तात निगृहाण मनो धिया । मय्यावेशितया युक्त एतावान्योगसंग्रहः ।।६१।।

अन्वयः— तात ! तस्मात् मय्यावेशितया धिया सर्वात्मना मनो निगृहाण युक्तः एतावान् योगसंग्रहः ।।६१।।

अनुवाद— प्रिय उद्धवजी, आप अपनी सारी वृत्तियों को मुझमें लगाकर मुझमें ही अविष्ट बुद्धि के द्वारा वाले मन को अपने वश में कर लो । उसके पश्चात् मुझमें ही नित्य मुक्त होकर स्थित हो जाओ । सम्पूर्ण योग का इतना ही सार संग्रह है ।।६१।।

भावार्थ दीपिका

उक्तं द्वन्द्वसहनोपायमुपसंहरति-तस्मादिति ।।६१।।

भाव प्रकाशिका

तस्मात्० इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् द्वन्द्वों के सहने के उपाय का उपसंहार करते है ।।६१।।

य एतां भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः । धारयन् श्रावयन् शृण्वन् द्वन्द्वैर्नैवाभिभूयते ।।६२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे भिक्षुगीता नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

अन्वयः— यः समाहितः भिक्षुगीताम् एताम् ब्रह्मनिष्ठां धारयन् शृण्वन् द्वन्द्वैः नैव अभिभूयते ।।६२।।

अनुवाद— जो कोई भी एकाग्रमन से भिक्षु के द्वारा गायी गयी ब्रह्मनिष्ठा को धारण करता है सुनता है वह संसार के द्वन्दों से अभिभूत नहीं होता है ।।६२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के भिक्षु गीता नामक तेइसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

मनोनिग्रहाशक्तोऽप्येतच्छ्रवणादिनिष्ठस्तत्फलं प्राप्नोतीत्याह-य इति । द्वन्द्वैः सुखदुःखादिभिः ।।६२।।

भिक्षुगीतं मिषं कृत्वा भक्तचित्तगतं हरिः । मोहं निघ्नन्निहाभाति परमानन्दरूपतः ।।१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

अपने मन का निग्रह करने में असमर्थ भी व्यक्ति इसके श्रवण आदि से मनोनिग्रह के फल को प्राप्त कर लेता है । इस बात को **यः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । द्वन्द्वैः अर्थात् सुख दुःख दिये ।।६२।।

भिक्षु गीत को ब्याज बनाकर श्रीहरि भक्त के चित्त में प्रवेश कर जाते हैं और भक्त के मोह को विनष्ट करके इस संसार में परमानन्दरूप से प्रकाशित होते हैं ।।१।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के तेइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२३।।

चौबीसवाँ अध्याय

सांख्ययोग वर्णन

श्रीभगवानुवाच

अथ ते संप्रवक्ष्यामि सांख्यं पूर्वैर्विनिश्चितम् । यद्विज्ञाय पुमान्सद्यो जह्याद्वैकल्पिकं भ्रमम् ।।१।।

अन्वयः— अथ ते पूर्वैविनिश्चितं सांख्यं प्रवक्ष्यामि यद् विज्ञाय पुमान् सद्यः वैकल्पिकं भ्रमम् जह्यात् ।।१।।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा

अनुवाद— उद्धवजी अब मैं तुमको सांख्यशास्त्र को सुनाता हूँ। उसको जानकर पुरुष भी तत्काल सुख दुःखादि भेद मूलक बुद्धि रूप यम का परित्याग कर देता है ।।१।।

भावार्थ दीपिका

चतुर्विंशे तु सांख्येन मनोमोहो निर्वार्यते । आत्मनः सर्वभावानामागमापायचिन्तया ।।१।। स्वपदद्वन्द्वभक्तानामद्वन्द्वत्वाय संयमम् । चित्तस्योक्त्वा पुनः कृष्णः सांख्यमत्राह तत्कृते ।।२।। अद्वितीयात्परमात्मनो मायया प्रकृतिपुरुषद्वारा सर्वं द्वैतमुदेति पुनस्तत्रैव लीयत इत्यनुसंदधानस्य द्वन्द्वभ्रमो निवर्तत इति वक्तुं सांख्यं प्रस्तौति–अथेति । पूर्वैः कपिलादिभिर्विनिश्चितम् । वैकल्पिकं भेदनिमित्तम् । भ्रमं सुखदुःखादिरूपम् ।।१।।

भाव प्रकाशिका

चौबीसवें अध्याय में भगवान् श्रीकृष्ण सांख्य शास्त्र के माध्यम से आत्मा के सभी भाव पदार्थों (प्रकृत्यादिभूपर्यन्त) का उत्पत्ति विनाशशील रूप से चिन्तन के द्वारा मानसिक अज्ञान को दूर किए है ।।१।। श्रीभगवान् के चरणों के भक्तों के संसार की निवृत्ति का साधन तो उनके चरणों का चिन्तन ही है । उसी से उनका चित्त संयमित हो जाता है । उसके पश्चात् वे इस अध्याय में सांख्य शास्त्र का वर्णन किए हैं ।।२।। अद्वितीय परमात्मा की माया से ही सम्पूर्ण भेद उत्पन्न होते हैं किञ्च उन सबों का परमात्मा की माया में ही लय हो जाता है । इस प्रकार से अनुसन्धान करने वाले पुरुष के द्वन्द्व की निवृत्ति हो जाती है । इस बात को ही बतलाने के लिए भगवान् कृष्ण सांख्यशास्त्र को

उपन्यस्त **अथते० इत्यादि** श्लोक से करते हैं । पूर्वविनिश्चितम् अर्थात् कपिल आदि महर्षियों द्वारा निश्चय किया गया है । वैकल्पिकम् भेद के कारण, भ्रमम् अर्थात् सुखदु:खादि रूप भ्रम ॥१॥

आसीज्ज्ञानमथो अर्थ एकमेवाविकल्पितम् । यदा विवेकनिपुणा आदौ कृतयुगेऽयुगे ॥२॥

अन्वय:— अयुगे आदौकृतयुगे यदा विवेक निगुणा एकम् एव अविकल्पितम् अथो ज्ञानम् हि अर्थ आसीत् ॥२॥

अनुवाद— युगों से पहले अर्थात् प्रयलकाल में प्रथम सत्ययुग में जब कभी पुरुष विवेक निपुण होते हैं, इन सभी अवस्थाओं में यह सम्पूर्ण द्रष्ट दृश्य जगत् तथा जीव विकल्प रहित किसी प्रकार के भेद से रहित केवल ब्रह्म ही होते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अथोशब्द: कात्स्न्र्ये । ज्ञानं द्रष्टा तेन दृश्य: कृत्स्नोऽप्यर्थश्चाविकल्पितं विकल्पशून्यमेकमेव । ब्रह्मण्येव लीनमासीदित्यर्थ:। कदेत्यपेक्षायामाह-अयुगे युगेभ्य: पूर्वम्, प्रलय इत्यर्थ: । तथा आदौ यत्कृतयुगं तस्मिंश्चान्यदापि यदा विवेकनिपुणा जना भवन्ति तदापि तेषां भेदास्फूर्ते: ॥२॥

भाव प्रकाशिका

अथो शब्द सम्पूर्ण का वाचक है ज्ञान अर्थात द्रष्टा उसके द्वारा दृश्य सम्पूर्ण पदार्थ विकल्प शून्य (भेद रहित) एक ही था । सब कुछ ब्रह्म में ही लीन था । प्रश्न होता है कि ऐसा कब था तो उसे भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा-प्रलय काल में । कल्प के प्रथम सत्ययुग में जब सभी लोग विवेक निपुण होते हैं उस समय भी उन सबों के भेद की प्रतीति नहीं होती है ॥२॥

तन्मायाफलरूपेण केवलं निर्विकल्पितम् । वाङ्मनोगोचरं सत्यं द्विधा समभवद्बृहत् ॥३॥

अन्वय:— बृहत् केवलं निर्विकल्पितम् वाङ्मन: अगोचरं सत्य तन्मायाफलरूपेण द्विधा समभवत् ॥३॥

अनुवाद— ब्रह्म में किसी प्रकार का विकल्प नहीं है वह अद्वितीय सत्य है । वह मन और वाणी का विषय नहीं बनता है वह ब्रह्म ही माया और उसमें प्रतिबिम्बित जीव के रूप में दृश्य और द्रष्टा के रूप में दो भागों में विभक्त हो गया ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तद्बृहद्ब्रह्म वाङ्मनोऽगोचरं यथा भवति तथा माया दृश्यं फलं तत्प्रकाशस्तद्रूपेण मायाविलासरूपेण वा द्विधाभूत्॥३॥

भाव प्रकाशिका

अथवा वह ब्रह्म मन और वाणी का विषय नहीं बनता है । माया के विलास रूप से वह दो भागों में विभक्त हो गया ॥३॥

तयोरेकतरो ह्यर्थ: प्रकृति: सोभयात्मिका । ज्ञानं त्वन्यतमो भाव: पुरुष: सोऽभिधीयते ॥४॥

अन्वय:— तयो: एकतर: ह्यर्थ: प्रकृति: सा उभयात्मिका । ज्ञानं तु अन्यतम: भाव: स: पुरुष: अभिधीयते ॥४॥

अनुवाद— उन दोनों भागों में से एक भाग को प्रकृति कहते हैं । वही कार्य कारण रूप हो गयी । दूसरे भाग जो ज्ञान स्वरूप है उसको पुरुष कहते हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

तयोर्द्विधाभूतयोरंशयोर्मध्ये उभयात्मिका कार्यकारणरूपिणी ॥४॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनों भागों में उभयात्मिका अर्थात् कार्य कारणरूपिणी ॥४॥

तमो रजः सत्त्वमिति प्रकृतेरभवन्गुणाः । मया प्रक्षोभ्यमाणायाः पुरुषानुमतेन च ॥५॥

अन्वयः— पुरुषानुमतेन मया प्रक्षोभ्यमाणायाः तमो रजः सत्त्वम् प्रकृतेः गुणाः अभवन् ॥५॥

अनुवाद— जीव की आज्ञा से मैंने प्रकृति में क्षोभ उत्पन्न किया तो प्रकृति के तीन गुण हो गये, तमस्, रजस् एवं सत्त्व ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अभवन्नभिव्यक्ता बभूवु; । मया परमेश्वरेण । जीवादृष्टप्रयुक्तत्वात्सृष्टेः पुरुषानुभूतत्वम् । यद्वा, स्वस्यैव प्रकृतीक्षणरूपा या पुरुषावस्था तदनुमतेन तद्द्वारेणेत्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अभवन् अर्थात् अभिव्यक्त हुए । मया अर्थात् मुझ परमेश्वर के द्वारा जीवों के अदृष्ट के अनुसार ही सृष्टि होती है । अथवा अपना ही प्रतीक्षणरूप जो पुरुष की अवस्था उसके द्वारा ॥५॥

तेभ्यः समभवत्सूत्रं महान्सूत्रेण संयुतः । ततो विकुर्वतो जातो योऽहंकारो विमोहनः ॥६॥

अन्वयः— तेभ्यः सूत्रं समभवत् सूत्रेणसंयुतः महान् ततः विकुर्वतः यः विमोहनः अहङ्कारः संजातः ॥६॥

अनुवाद— उन तीनों गुणों से क्रिया शक्ति प्रधान सूत्र और ज्ञान शक्ति प्रधान महत् तत्त्व (महान्) प्रकट हुए । वे दोनों परस्पर में मिले हुए है । महत् तत्त्व में विकार होने पर अहङ्कार प्रकट हुआ । वह अहङ्कार ही जीव को मोहित करता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

सूत्रं क्रियाशक्तिमान् प्रथमो विकार; । ततो महान् ज्ञानशक्तिः । नन्वयं महानेव प्रथमो विकारः प्रसिद्धस्तत्राह-स च ज्ञानक्रियागर्भत्वात्सूत्रेण संयुतो न पृथक् । एकमेव तत्त्वं क्रियाज्ञानशक्तिभ्यां द्विधोच्यत इत्यर्थः । विमोहनो जीवस्य भ्रमहेतुः स जातः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

क्रियाशक्ति प्रधान प्रथम विकार सूत्र हुआ । उससे ज्ञान शक्ति प्रधान दूसरा विकार हुआ प्रश्न होता है कि महान ही प्रथम विकार रूप से प्रसिद्ध है । इसके उत्तर में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि महान् ज्ञान और क्रिया युक्त होने के कारण सूत्र से संयुक्त है उससे वह अलग नहीं है । एक ही तत्त्व क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति से युक्त होने के कारण दो प्रकार का कहा जाता हैं । विमोहनः अर्थात् जीव के भ्रम का कारण प्रकट हुआ ॥६॥

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिवृत् । तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणं चिदचिन्मयः ॥७॥

अन्वयः— अहं त्रिवृत् वैकारिकः तैजस; तामसश्च । तन्मात्रेन्द्रियमनसां कारणम् चित् अचिन्मयः ॥७॥

अनुवाद— वह अहङ्कार तीन प्रकार का है सात्त्विक, राजस और तामस अहङ्कार पञ्च तन्मात्रा इन्द्रिय और मन का कारण है । अतएव वह जड़ एवं चेतन उभयात्मक है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

यतस्तन्मात्रादीनां कारणम् । मनःशब्देन देवानामप्युपलक्षणम् । चिदचिन्मयः, चिदाभासव्याप्तत्वादुभयग्रन्थिरूप इति जीवोपाधित्वं दर्शितम् । यद्यपि-'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः' इत्यादिश्रुतेः, 'अन्नमयं हि सौम्यं मनः' इत्यादिश्रुतेश्च प्रथमं भूतानि जायन्ते, तेभ्यश्चापञ्चीकृतेभ्यः प्राणादिक्रमेण समष्टयात्मकं लिङ्गशरीरं, पञ्चीकृतेभ्यश्च ब्रह्माण्डं, तस्मिन्वैराजस्तदन्तर्यामी लीलाविग्रहः क्षीराब्धिशायी श्रीनारायणस्तन्नाभिपद्मे च वैराजस्य भोगविग्रहश्चतुराननस्ततो यथावसरमन्येषां जीवानामाविर्भाव

इति प्रक्रिया तथापि चित्ताभिव्यक्तिपूर्वकोऽहङ्कारस्ततो भूतेन्द्रियादिव्यवहार इत्येतावता महदादिक्रमेण सृष्टिरुच्यते । तथा चोक्तम्- 'मृल्लोहविस्फुलिङ्गाद्यैः सृष्टिर्या चोदिताऽन्यथा । उपायः सोऽवताराय नास्ति भेदः कथंचन ।' इति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

चूकि अहङ्कार तन्मात्रा आदि कारण है । मनः शब्द इन्द्रियों का भी उपलक्षण है । चिदचिन्मयः अर्थात् चिदामास से व्याप्त होने के कारण यह दोनों जड़ एवं चेतन की ग्रन्थि रूप है । इस तरह से जीवोपाधित्व को बतलाया गया। यद्यपि **'तस्माद वा एतस्मादात्मनः आकाशः संभूतः इत्यादि'** श्रुति के अनुसार तथा **अन्नमय हि सोम्य मनः इत्यादि** श्रुति के अनुसार पहले भूतों की ही उत्पत्ति होती है । उन अपञ्चीकृत भूतों से प्राणादि के क्रम से लिङ्ग शरीर तथा पञ्चीकृत भूतों से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है । उसमें वैराज, उसके अन्तर्यामी लीला विग्रह, क्षीरसागर में शयन करने वाले नारायण के नाभिकमल पर वैराज के भोग विग्रह ब्रह्माजी प्रकट हुए । उसके पश्चात् अवसर के अनुसार दूसरे जीवों का अविर्भाव होता है । यही प्रक्रिया है । फिर भी अहङ्कार चित्त की अभिव्यक्ति पूर्वक ही होता है । उसके पश्चात् भूत तथा इन्द्रिय आदि का व्यवहार होता है । इतने मात्र से महदादि के क्रम से सृष्टि कही जाती है । कहा भी गया है **मृल्लोहविस्फुलिङ्गाद्यैः......कथचनं इति** । अर्थात् मृत्तिका का लोह तथ स्फुलिङ्ग आदि के द्वारा श्रुति में दूसरे प्रकार से सृष्टि कही गयी है । वही अवतार का उपाय है उसमें किसी भी प्रकार का भेद नहीं है ।।७।।

अर्थस्तन्मात्रिकाज्जज्ञे तामसादिन्द्रियाणि च । तैजसाद्देवता आसन्नेकादश च वैवृतात् ।।८।।

अन्वयः— तामसात् तन्मात्रिका अर्थजज्ञे, तैजसात् इन्द्रियाणि वैकृतात् च एकादश देवता आसन् ।।८।।

अनुवाद— तामस अहङ्कार से पञ्च तन्मात्राएँ उत्पन्न हुई और उनसे पञ्च महाभूत प्रकट हुए । तैजस अहङ्कार से इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई और सात्त्विक अहङ्कार से इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता प्रकट हुए ।।८।।

भावार्थ दीपिका

तस्मात्त्रिविधात्त्रिविधप्रपञ्चोत्पत्तिं दर्शयति-अर्थ इति । तन्मात्रिकाच्छब्दादितन्मात्रकारणात्तामसात्तद्वारा अर्थो महाभूतरूपो जज्ञे बभूव, भूतानामावरणस्वभावत्वात् । इन्द्रियाणि दश तैजसाद्राजसात् । तेषां प्रवृत्तिस्वभावत्वात् । वैकृतात्सात्त्विकाद्देवताः 'दिग्वातार्कप्रचेतोश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः'। चन्द्रश्चेत्येकादशः । चशब्दान्मनश्च । तेषां प्रकाशस्वभावत्वात् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

उस त्रिविध अहङ्कार से तीन प्रकार के प्रपञ्च की उत्पत्ति को **अर्थस्तन्मात्रिकात् इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । शब्द तन्मात्राओं के कारण तामसाहङ्कार पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति हुई । भूत स्वभावतः आवरक होते हैं राजसाहङ्कार से दश इन्द्रियों की उत्पत्ति हुई इन्द्रियाँ स्वभावतः प्रवृत्ति वाली होती है । सात्त्विकाहङ्कार से इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं की उत्पत्ति हुई । वे देवता हैं- दिशाएँ वायु, सूर्य, प्रचेता अश्विनीकुमार इन्द्र, उपेन्द्र तथा मित्र एवं चन्द्रमा इस तरह सब मिलकर ग्यारह हुए । च शब्दसे मन का भी ग्रहण होता है । देवता स्वभावतः प्रकाशमय होते हैं ।।८।।

मया संचोदिता भावाः सर्वे संहत्यकारिणः । अण्डमुत्पादयामासुर्ममायतनमुत्तमम् ।।९।।

अन्वयः— मया संचोदिताः सर्वे संहत्यकारिण भावाः मम उत्तमम् आयतनम् अण्डम् उत्पादयामासुः ।।९।।

अनुवाद— मेरे द्वारा प्रेरित होकर ये सभी पदार्थ साथ मिल गये और मेरे लिए उत्तम स्थान ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किए ।।९।।

भावार्थ दीपिका

मम वैराजान्तर्यामिणः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

मुझ अन्तर्यामी स्वरूप वैराज के लिए ॥९॥

तस्मिन्नहं समभवमण्डे सलिलसंस्थितौ । मम नाभ्यामभूत्पद्मं विश्वाख्यं तत्र चात्मभूः ॥१०॥

अन्वयः— अण्डे सलिलसंस्थितौ तस्मिन् अहम् समभवम् मम नाभ्यां विश्वाख्यं पद्ममभूत् ॥१०॥

अनुवाद— जब वह ब्रह्माण्ड जल में स्थित हो गया तब मैं उसमें नारायण रूप से स्थित हो गया । मेरी नाभि में विश्व नामक कमल उत्पन्न हुआ उसी पर ब्रह्माजी का जन्म हुआ ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

सलिले संस्थितिर्यस्य तत्सलिलसंस्थिति तस्मिन् सलिलसंस्थितावण्डे श्रीनारायणरूपो लीलाविग्रहेण समभवं स्थित इत्यर्थः । विश्वाख्यं लोककारणभूतम् । तत्र चात्मभूश्चतुराननरूपभोगविग्रहेण पुनर्वैराज एवं तस्मिन्नाविर्भूत इत्यर्थः ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

जल में स्थित हो जाने पर उसमें श्रीनारायण रूप से लीला विग्रह वाला मैं स्थित हो गया । विश्वाख्यम् अर्थात् जगत् के कारण स्वरूप । ब्रह्मारूप भोग विग्रह के द्वारा पुनः वैराज ही कमल पर प्रकट हुआ ॥१०॥

सोऽसृजत्तपसा युक्तो रजसा मदनुग्रहात् । लोकान्सपालान्विश्वात्मा भूर्भुवः स्वरिति त्रिधा ॥११॥

अन्वयः— मदनुग्रहात् तपसा युक्तः सः विश्वात्मा रजसा भूर्भुवः स्वः इति सपालान् लोकान् त्रिधा असृजत् ॥१॥

अनुवाद— मेरी ही कृपा से तपस्या से युक्त विश्वात्मा ब्रह्माजी ने रजोगुण से सम्पन्न होकर भूः भुवः तथा स्वः इन तीन लोकों की सृष्टि की ॥११॥

भावार्थ दीपिका

रजसा युक्तो मदनुग्रहात्तपसासृजत्। भूरतलादिसहिता। भुवः अन्तरिक्षलोकः। स्वः स्वर्लोकः। महर्लोकादेरप्युपलक्षणम्॥११॥

भाव प्रकाशिका

रजोगुण से युक्त तथा मेरी ही कृपा से तपस्या के द्वारा सृष्टि किए भूमि के नीचे अतल आदि सात पातालों के साथ भूलोक की, भुवः अर्थात् अन्तरिक्ष लोक की स्वः अर्थात् स्वर्ग लोक की स्वर्लोक महर्लोक आदि का भी उपलक्षण है ॥११॥

देवानामोक आसीत्स्वर्भूतानां च भुवः पदम् । मर्त्यादीनां च भूर्लोकः सिद्धानां त्रितयात्परम् ॥१२॥

अन्वयः— देवानाम् ओकः स्वः आसीत् भूतानां च पदम् भुवः मर्त्यादीनाम् च भूर्लोकः सिद्धानां त्रितयात् परम्॥१२॥

अनुवाद— देवताओं का निवास स्थान स्वर्लोक हुआ, भूत, प्रेत पिशाचों का निवास स्थान भुवर्लोक मनुष्यों का निवास स्थान भूलोक हुआ और सिद्धों का निवास स्थान इन तीनों लोको सेऊपर महदादि लोक हुए ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

लोकसृष्टिप्रयोजनमाह-देवानामिति सार्धेन । ओको निवासः । पदं स्थानम् । त्रितयात्परं महर्लोकादि ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

देवनाम्० इत्यादि डेढ श्लोकों द्वारा लोकों की सृष्टि का प्रयोजन बतलाया गया है । **ओकः** अर्थात् निवास स्थान, पदम् अर्थात् स्थान, त्रितयात् परम अर्थात् महर्लोकादि ॥१२॥

अधोऽसुराणां नागानां भूमेरोकोऽसृजत्प्रभुः । त्रिलोक्यां गतयः सर्वाः कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥१३॥

अन्वयः— प्रभुः भूमेः अधः असुराणां नागानां ओकः असृजत् त्रिगुणात्मनाम् कर्मणाम् सर्वाः गतयः त्रिलोक्याम्॥१३॥

अनुवाद— सृष्टि करने में समर्थ ब्रह्माजी ने नागों और असुरों का निवास पृथिवी के नीचे के अतलादि पातालों में बनाया त्रिगुणात्मक कर्म करने वाले मनुष्यादि की सारी गतियाँ इन तीन लोकों में होती हैं ॥१३।

भावार्थ दीपिका

भूमेरधः अतलादि । एवं व्यवस्थायां कारणमाह सार्धेन-त्रिलोक्यां पातालादिसहितायाम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

भूमेरधः अर्थात् अतल आदि पाताल लोक । इस प्रकार की व्यवस्था का कारण डेढ श्लोक में बतलाया गया है । **त्रिलोक्याम्** पाताल सहित तीनों लोक ॥१३॥

योगस्य तपसश्चैव न्यासस्य गतयोऽमलाः । महर्जनस्तपः सत्यं भक्तियोगस्य मद्गतिः ॥१४॥

अन्वयः— योगस्य तपसः चैव न्यासस्य अमलाः गतयः महर्जनः तपः सत्यं भक्तियोगस्य मद्गतिः ॥१४॥

अनुवाद— योग, तपस्या और संन्यास के द्वारा महर्लोक, जनोलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक में उत्तम गतियाँ होती हैं तथा भक्तियोग के द्वारा मेरे वैकुण्ठ लोक में गति होती है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

योगादितारतम्येन यथोत्तरं महर्लोकादयः । मद्गतिर्वैकुण्ठलोकः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

योग आदि के न्यूनाधिक भाव से उत्तरोत्तर लोकों में गतियाँ होती है । मद्गतिः अर्थात् वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति होती है ॥१४॥

मया कालात्मना धात्रा कर्मयुक्तमिदं जगत् । गुणप्रवाह एतस्मिन्नुन्मज्जति निमज्जति ॥१५॥

अन्वयः— इदं कर्मयुक्तं जगत् कालात्मना मया धात्रा स्वस्मिन् गुण प्रवाहे उन्मज्जति निमज्जति ॥१५॥

अनुवाद— यह सम्पूर्ण जगत्, कर्म और उनके संस्कारों से युक्त है, मैं काल रूप से उनके कर्मों के अनुसार फलों का विधान करता हूँ । गुणों के प्रवाह में पड़कर जीव कभी डूब जाता है और कभी ऊपर आ जाता है । अर्थात् उसकी कभी अधोगति होती है तो कभी उच्च गति ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तत्र तु मद्गतिव्यतिरेकेणेतरा गतयश्चञ्चला इत्याह वैराग्यार्थम् । मया कालशक्तिना धात्रा परमेश्वरेण कर्मफलप्रदेन हेतुभूतेन गुणप्रवाहे संसारे उन्मज्जत्यासत्यलोकमुत्तमा गतीः प्राप्नोति पुनर्निमज्जत्यास्थावरं नीचा गतीः प्राप्नोति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त सभी गतियों में मेरे लोक में होने वाली गति से भिन्न सभी गतियाँ चञ्चल है इस बात को श्रीकृष्ण भगवान् ने वैराग्य के लिए कहा है । परमेश्वर कालशक्तिस्वरूप हैं, वे ही किए गये कर्मों का फल प्रदान करते हैं, उनके द्वारा गुणों के प्रवाह रूप संसार में पड़ा हुआ जीव सत्यलोक पर्यन्त उत्तम गतियों को जीव प्राप्त करता है, तथा कभी स्थावर जैसी नीच गतियों को प्राप्त करता है ॥१५॥

अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो यो यो भावः प्रसिध्यति । सर्वोऽप्युभयसंयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥१६॥

अन्वयः— अणु बृहत् कृशः स्थूलः यः यः भावः प्रसिध्यति सर्वः अपि उभय संयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥१६॥

अनुवाद— जगत् में जितने भी छोटे-बड़े, दुबले मोटे, जितने भी पदार्थ बनते हैं, वे सब के सब प्रकृति एवं पुरुष के संयोग से बनते हैं ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

सृष्टिनिरूपणस्याद्वितीयात्मप्रतिपत्त्यर्थत्वात्तत्प्रतिपादनाय कारणेन कार्यस्य व्याप्तिमाह-अणुरिति । उभयेन संयुक्तो व्याप्तः। तदेवाह-प्रकृत्येति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

सृष्टि का निरूपण अद्वितीय आत्मा के ज्ञान के लिए किया जाता है, इसी अर्थ का प्रतिपादन करने के लिए **अणुः इत्यादि** श्लोक से कारण की कार्य में व्याप्ति बतलायी गयी है । सम्पूर्ण पदार्थ प्रकृति और पुरुष से व्याप्त हैं इस बात को **प्रकृत्या पुरुषेण च** द्वारा कहा गया है ।।१६।।

यस्तु यस्यादिरन्तश्च स वै मध्यं च तस्य सन् । विकारो व्यवहारार्थो यथा तैजसपार्थिवाः ।।१७।।

अन्वयः— यस्य आदिः अन्तः च यः स वै तस्य मध्यं च सन् । विकारो व्यवहारार्थः यथा तैजसपार्थिवाः ।।१७।।

अनुवाद— जिसके आदि और अन्त में जो रहता है, वही मध्य में भी विद्यमान रहता है, विकार तो व्यवहार के लिए होता है । जैसे पार्थिव पदार्थ तथा तैजस पदार्थ । जैसे मिट्टी घट से पहले भी रहती है और विनष्ट होते-होते घट मिट्टी ही बना जाता है । इसी तरह सुवर्ण तैजस हार मुकुट आदि बनने से पहले सोना ही रहता है और जब मुकुट को गलाया जाता है तो भी वह सोना ही हो जाता है । अतएव मुकुट और हार के रूप में भी सोना ही रहता है, आकार परिवर्तन के कारण बीच में सुवर्ण ही हार तथा मुकुट आदि शब्दों से कहलाने लगता है।।१७।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं कार्यस्य कारणात्मतां दर्शयति-यस्य कार्यस्य आदिः कारणमन्तो लयस्थानं च तस्य मध्यं मध्यावस्थापि स एव। वै प्रसिद्धं मृत्सुवर्णादिषु । अत एवाव्यभिचारित्वात्स एव सन्नेतरः । अलं तर्हि मिथ्याभूतकार्यसृष्ट्या, तत्राह-विकार इति। तैजसाः कटककुण्डलादयः, पार्थिवा घटशरावादयश्च यथेति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

अब **यस्तु० इत्यादि** श्लोक से भगवान् बतलाते हैं कि कार्य कारण से व्याप्त रहता है । जिस कार्य के आदि में जो कारण रहता है वही लय स्थान में और बीच में भी रहता है । यह मिट्टी और सुवर्ण आदि में देखा जाता है अतएव कारण तत्व ही सभी अवस्थाओं में पाये जाने के कारण वही सत्य है । उससे भिन्न नहीं । यदि कोई कहे कि तब तो मिथ्याभूत कार्य की सृष्टि व्यर्थ है, इस पर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि विकार (कार्य) तो व्यवहार के लिए होता है । जैसे कङ्कन तथा कुण्डल आदि को ही धारण किया जा सकता है, सुवर्ण को कोई नहीं धारण करता है । इस तरह से मिट्टी से बने घट आदि का ही व्यवहार होता है ।।१७।।

यदुपादाय पूर्वस्तु भावो विकुरुते परम् । आदिरन्तो यदा यस्य तत्सत्यमभिधीयते ।।१८।।

अन्वयः— यत् पूर्वः भावः उपादाय अपरम् विकुरुते यस्य यदा आदिः अन्तः तत् सत्यम् अभिधीयते ।।१८।।

अनुवाद— पूर्ववर्ती कारण (महत् तत्त्व आदि) भी जिस परम कारण को उपादान बनाकर अपर (अहङ्कार आदि) कार्यवर्ग की सृष्टि करते हैं वही उनकी अपेक्षा परम सत्य है । अर्थात् जब जो जिस कार्य वर्ग के आदि और अन्त में रहता है, वही सत्य है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं तर्हि स्वकार्यं प्रति महदादीनामप्याद्यन्तरूपत्वात्सत्यत्वं स्यात्तत्राह-यदिति । यद्रूपमुपादायोपादानकारणतया स्वीकृत्य

पूर्वः कारणरूपो महदादिर्भावः अपरमहङ्कारादिकं भावं विकुरुते सृजति । यथा पिण्डो मृदमुपादाय स्वयं निमित्तभूतो घटं सृजति तद्वत् । स एव सन्निति पूर्वस्यानुषङ्गः कथं तर्हि 'मृत्तिकेत्येव सत्यम्' इत्यादिश्रुतिस्तत्राह आदिरिति । यद्यदा यस्यादिन्तश्च विवक्ष्यते तदा तत्सत्यमित्यभिधीयते श्रुत्या । परमकारणात्मनः सत्यत्वविग्वक्षयेत्यर्थः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहा जाय कि तब तो अपने कार्य के प्रति महदादि के भी आदि अन्त रूप होने के कारण सत्यता होगी तो इस पर **यदुपादाय इत्यादि** श्लोक कहते हैं, जिसको उपादान कारण रूप से स्वीकार करके उससे पहले कारण स्वरूप जो महदादि पदार्थ अहङ्कार आदि कार्य वर्ग की सृष्टि करते हैं, जैसे मृतपिण्ड को लेकर स्वयं निमित्तकारण होकर कुलाल घटादि की सृष्टि करता है । वह सत्य पदार्थ है । यदि कहें कि तो फिर श्रुति मृतिकेत्येव सत्यम् कैसे कहती है ? इस पर **आदिरन्तः इत्यादि** कहते हैं । जो जिस कार्य वर्ग के आदि और अन्त में रहता है, वही सत्य कहा जाता है । परम आत्मा ही सत्य है यही यहाँ पर विवक्षित अर्थ है ।।१८।।

प्रकृतिर्ह्यस्योपादानमाधारः पुरुषः परः । सतोऽभिव्यञ्जकः कालो ब्रह्म तन्त्रितयं त्वहम् ।।१९।।

अन्वयः— अस्य हि उपादानम् प्रकृतिः परः पुरुषः आधारः सतः अभिव्यञ्जकः काल ब्रह्म तत् त्रितयं तु अहम्।।१९।।

अनुवाद— इस कार्यभूत जगत् का उपादान कारण प्रकृति है, परम पुरुष ही इसके आधार हैं इसको प्रकट करने वाला काल है । व्यवहार काल की यह त्रिविधता वस्तुतः ब्रह्म स्वरूप है, वही मैं शुद्ध ब्रह्म हूँ ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

ननु तथापि प्रकृतिपुरुषकालानामकार्यभूतानां भिन्नत्वात्कथमद्वितीयता तत्राह-प्रकृतिरिति । अस्य सतः कार्यस्योपादानं या प्रकृतिः प्रसिद्धा यश्च तस्या आधरोऽधिष्ठाता परः पुरुषो यश्च गुणक्षोभेणाभिव्यञ्जकः कालस्तन्त्त्रितयं ब्रह्मरूपोऽहमेव न तु पृथक्, प्रकृतेः शक्तित्वात्पुरुषकालयोरवस्थारूपत्वात् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि फिर भी प्रकृति पुरुष और काल ये तीनों कार्य नहीं है और परस्पर में ये पृथक्-पृथक् ऐसी स्थिति में अद्वितीय कैसे होगी ? इस पर भगवान् श्रीकृष्ण **प्रकृतिर्यस्य० इत्यादि** श्लोक कहते हैं- जिस कार्य का उपादान जो प्रसिद्ध प्रकृति है तथा उस प्रकृति का जो आधार है वह परम पुरुष हैं । तथा गुणों में क्षोभ उत्पन्न करके जो उसका अभिव्यञ्जक है वह काल है और इन तीनों रूपों वाला ब्रह्म मैं ही हूँ । मुझसे भिन्न नहीं । प्रकृति की शक्ति होने से तथा पुरुष तथा काल इन दोनों की अवस्था रूप होने के कारण ।।१९।।

सर्गः प्रवर्तते तावत्पौर्वापर्येण नित्यशः । महान् गुणविसर्गार्थः स्थित्यन्तो यावदीक्षणम् ।।२०।।

अन्वयः— सर्ग; तावत् पौवापर्येण नित्यशः प्रवर्तते यावदीक्षणम् महान् गुणविसर्गार्थः स्थित्यन्तः ।।२०।।

अनुवाद— जब तक परमात्मा की ईक्षण शक्ति काम करती है तथा जब तक उनकी पालन प्रवृत्ति बनी रहती है, तब तक जीवों के कर्म भोग के लिए कारण कार्य रूप से सृष्टि चक्र निरन्तर चलता रहता है ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

एवं तावत्कालत्रयेऽप्यव्यभिचारित्वाद्ब्रह्मैव सत्यमिति वक्तुं तस्य सृष्टिकारणत्वेनादौ सत्त्वमुक्त्वा मध्येऽपि तस्यैव सत्वमुपपाद्यान्तेऽप्यवधित्वेन सत्त्वं दर्शयिष्यन्सर्गप्रवाहरूपायाः स्थितेरवधिमाह-सर्ग इति । महान्बहुलः । पौर्वापर्येण पितृपुत्रादिरूपेण। नित्यशः अविच्छेदेन । किमर्थं प्रवर्तते तदाह-गुणेषु देहेषु विविधतया सृज्यत इति गुणविसर्गो जीवस्तदर्थस्तद्भोगप्रयोजनः । किंपर्यन्तं प्रवर्तते । यावत्स्थितेरन्तः । सोऽपि किमवधिस्तत्राह-यावदीक्षणं परमेश्वरस्य तावत् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से तीनों कालों में विद्यमान रहने के कारण ब्रह्म ही सत्य हैं इस बात को कहने के लिए ब्रह्म को सृष्टि के कारण रूप से कहकर, मध्य में भी उसकी ही सत्ता का प्रतिपादन करके अन्त में अवधि रूप से ब्रह्म की ही सत्ता का प्रतिपादन करने के लिए प्रवाह स्वरूपिणी स्थिति की अवधि को **सर्ग० इत्यादि** से कहते हैं । **महान्** अर्थात् महत्व बहुल, **पौर्वापर्येण** पिता पुत्र रूप से, नित्य अर्थात् निरन्तर । किसलिए यह सृष्टि चक्र चलता रहता है ? इस पर श्रीभगवान् ने कहा देहों में जो अनेक प्रकार से सृष्टि होती है । **गुण विसर्गः अर्थात्** जीव द्वारा उसका भोग ही सृष्टि का प्रयोजन है । कितने समय तक सृष्टि होती है ? इसका उत्तर है कि जबतक स्थिति का अन्त नहीं होता । उसकी भी अवधि क्या है ? तो इसका उत्तर है परमेश्वर की ईक्षण शक्ति जब तक काम करती रहती है ।।२०।।

विराण्मयासाद्यमानो लोककल्पविकल्पकः । पञ्चत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ।।२१।।

अन्वयः— लोककल्पविकल्पकः विराट्मया आसाद्यमानः पञ्चत्वाय विशेषाय कल्पते भुवनैः सह ।।२१।।

अनुवाद— यह विराट् ही विविध लोकों की सृष्टि, स्थिति और संहार भूमि है । जब मैं काल रूप से इसमें व्याप्त होता हूँ और प्रलय का सङ्कल्प करता हूँ, तब यह (ब्रह्माण्ड) भुवनों के साथ विनाश रूप विभाग के योग्य बनता है ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

प्रलयं निरूपयति-विराट् ब्रह्माण्डं मया कालात्मना आसाद्यमानो व्याप्यमानो लोकानामहरहः कल्पाः सृष्टिप्रलया विविधाः कल्पन्ते यस्मिंस्तान्वा स्वस्मिन्विकल्पयतीति स तथाभूतोऽपि पञ्चत्वरूपाय विशेषाय विभागाय कल्पते योग्यो भवति। पञ्चानां भूतानामैक्यरूपस्तेषां पृथग्भावापत्त्या नश्यतीत्यर्थः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

विराण्मया० इत्यादि श्लोक से भगवान् श्रीकृष्ण प्रलय का निरूपण करते हैं, काल रूप मैं विराट् में जब व्याप्त होता हूँ लोकों के प्रतिदिन जिसमें सृष्टि स्थिति और प्रलय होते हैं, उन सबों को अथवा जो अपने में करने वाला है, उसको वैसा होने पर भी विनाश रूप विभाग के लिए जो योग्य बनता है, पाञ्चों महाभूतों की एकत्व उन सबों के अलग हो जाने पर वह (ब्रह्माण्ड) नष्ट हो जाता है ।।२१।।

अन्ने प्रलीयते मर्त्यमान्नं धानासु लीयते । धाना भूमौ प्रलीयन्ते भूमिर्गन्धे प्रलीयते ।।२२।।

अन्वयः— मर्त्यम् अन्ने प्रलीयते, अन्नधानासु लीयते, धानाः भूमौ प्रलीयन्ते भूमिर्गन्धे प्रलीयते ।।२२।।

अनुवाद— यह मर्त्य शरीर अन्न में लीन होता है, अन्न बीज में लीन हो जाता है, बीज भूमि में प्रलीन होता है और भूमि गन्धतन्मात्रा में लीन हो जाती है । यही लीन होने का क्रम है ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

तत्र 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधीभ्योऽन्नम् । अन्नात्पुरुषः' इति श्रुत्युक्तसृष्टिक्रमप्रातिलोम्येन लयमाह-अन्न इति । मर्त्यं शरीरं येनो पचितं तस्मिन्नन्ने शतवर्षायामनावृष्टौ क्षीणे सति तत्रैव लीयत इत्यर्थः । अन्नं धानासु बीजमात्रावशेषं भजतीत्यर्थः । धाना भूमौ उप्ता न प्रोहन्तीत्यर्थः । भूमिर्गन्धे संवर्तकादित्यशोषिता सङ्कर्षणमुखाग्निना दग्धा च सती भूतसूक्ष्मरूपगन्धमात्रावशेषा भवति।।२२।।

भाव प्रकाशिका

सृष्टि के क्रम का वर्णन करती हुई श्रुति कहती है उस आत्म शब्द वाच्य ब्रह्म से आकाश की उत्पत्ति होती है, आकाश से वायु की वायु से, तेज की तेज से, जल की जल से, पृथिवी की पृथिवी से, ओषधियों की ओषधियों

से, अन्न की अन्न से पुरुष की उत्पत्ति होती है । और लय इस श्रुति वर्णित सृष्टि क्रम के ठीक विपरीत क्रम से होता है । उस लय को ही यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण **अन्ने इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । यह मर्त्य शरीर जिससे बढ़ता है उस अन्न में लीन होता है, सौ वर्ष की अनावृष्टि होने पर शरीर क्षीण होकर अन्न में ही लीन हो जाता है । अन्न बीजों में लीन हो जाता है । बीज भूमि में बोये जाने पर बढ़ता नहीं है । भूमि संवर्त कालीन सूर्य से सुखाई हुई भूमि सङ्कर्षण के मुख से निकली हुई अग्नि से दग्ध होकर भूतों की सूक्ष्मावस्था गन्ध तन्मात्रा में लीन हो जाती है ।।२२।।

अप्सु प्रलीयते गन्ध आपश्च स्वगुणे रसे । लीयते ज्योतिषि रसो ज्योति रूपे प्रलीयते ।।२३।।

अन्वयः— अप्सु गन्धः प्रलीयते, आपः च स्वगुणे रसे, लीयते, रसः ज्योतिः रूपे, प्रलीयते ।।२३।।

अनुवाद— गन्ध जल में लीन हो जाता है, जल अपने गुण रसमें लीन हो जाता है और रस तेज में लीन हो जाता है ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

गन्धः शतवार्षिक्या वृष्ट्या प्लाव्यमानोऽप्सु लीयते । एवमेवापो ज्योतिषा शोष्यमाणा रसमात्रावशेषा भवन्ति । ततो रसोऽपि तस्मिन् लीयते । ज्योतिश्च वायुनाभिभूयमानं रूपमात्रं सत्तस्मिन् लीयते ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

गन्ध सौ वर्षों तक होते रहने वाली वृष्टि से प्लावित होता हुआ जल में लीन हो जाता है । इस तरह जल तेज के द्वारा सुखाया जाता हुआ केवल रस रूप हो जाता है । उसके बाद रस भी उसी तेज में लीन हो जाता है । वायु के द्वारा अभिभूत किया जाता हुआ तेज भी अवशिष्ट रूप में लीन हो जाता है ।।२३।।

रूपं वायौ स च स्पर्शे लीयते सोऽपि चाम्बरे । अम्बरं शब्दतन्मात्र इन्द्रियाणि स्वयोनिषु ।।२४।।

अन्वयः— रूपं वायौ, स च स्पर्शे लीयते सोऽपि च अम्बरे, अम्बरं शब्द तन्मात्रे, इन्द्रियाणि स्वयोनिषु ।।२४।।

अनुवाद— रूप वायु में वायु स्पर्श में स्पर्श भी आकाश में और आकाश शब्द तन्मात्रा में लीन हो जाता है । इन्द्रियाँ अपने कारण देवताओं में और अन्ततः राजस अहङ्कार में लीन हो जाती हैं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

वायुश्च कालप्रेरितेनाम्बरेण ग्रस्तः स्पर्शमात्रः संस्तस्मिन् । अम्बरं च भूतादिनाहंकारणे ग्रस्यमानं शब्द तन्मात्रे । तदेवं तामसाहंकारकार्यस्य शब्दपर्यन्तं लयमुक्त्वा राजसाहंकारकार्यस्याप्याह-इन्द्रियाणि स्वयोनिष्विति । स्वप्रवर्तकदेवतासु । तेषां प्रवृत्तिस्वभावत्वात्प्रवृत्तेश्च देवताधीनत्वात्तासु लय इति वाचोयुक्तिः । वस्तुतस्तु स्वकारणे राजसाहंकारे लयोऽभिप्रेतः ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

वायु काल के द्वारा प्रेरित आकाश द्वारा ग्रस्त स्पर्श तन्मात्र में आकाश भी भूतादि (तामस) अहङ्कार के द्वारा ग्रसा जाता हुआ शब्द तन्मात्रा में लीन हो जाता है । इस प्रकार से तामसाहङ्कार के कार्य का शब्द पर्यन्त में लय बतलाकर राजसाहङ्कार के भी कार्य इन्द्रियों का अपने प्रवर्तक अपने अधिष्ठातृ देवता में लय हो जाता है । इन्द्रियों के प्रवृत्ति स्वभाव वाली होने के कारण तथा प्रवृत्ति के देवताओं के अधीन होने से, इन्द्रियों का देवताओं में लय बतलाया गया है । वास्तविकता तो यह है कि इन्द्रियों का राजसाहङ्कार में लय अभिप्रेत है ।।२४।।

योनिर्वैकारिके सौम्य लीयते मनसीश्वरे । शब्दो भूतादिमप्येति भूतादिर्महति प्रभुः ।।२५।।

अन्वयः— हे सौम्य योनिः वैकारिके, ईश्वरे मनसि लीयते, शब्दः भूतादिम् अप्येति भूतादिः महति ।।२५।।

अनुवाद—हे सौम्य ! राजस अहङ्कार अपने नियन्ता सात्त्विक अहङ्कार रूप मन में, शब्द तन्मात्रा पञ्च भूतों के कारण तामस अहङ्कार में तथा सम्पूर्ण जगत् को मोहित करने वाला तीनों प्रकार का अहङ्कार महत् तत्त्व में मिल जाता है ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

योनिरित्युद्देश्यगतत्वादेकत्वमविवक्षितम् । योनयो देवतास्तु मनसि । कुतः । ईश्वरे नियन्तरि, 'मनो वशेऽन्ये ह्यभवं स्म देवाः' इत्युक्तत्वात् । इन्द्रियलयोक्त एवात्राप्यभिप्रायः । मनश्च देवताभिः सह वैकारिकेऽहङ्कार इत्यर्थः । तामसाहंकारकार्याविशेषितस्य शब्दस्य लयमाह-शब्दो भूतादिं तामसाहंकारमप्येति, तस्मिन् लीयत इत्यर्थः । भूतादिरित्युपलक्षणम्। त्रिविधोऽप्यहङ्कारो महति जडांशं विहाय ज्ञानक्रियाशक्तिमात्ररूपो भवति । कथंभूतः । प्रभुः समर्थः । सर्वजगन्मोहकत्वात्।।२५।।

भाव प्रकाशिका

उद्देश्य में योनि यह एक वचनान्त पढा गया है किन्तु यहाँ एक वचनान्त विवक्षित नहीं हैं अतएव योनियाँ देवता रूप हैं वे मन में लीन हो जाती हैं । क्योंकि इन्द्रियों के नियामक देवता ही हैं । कहा भी गया है कि दूसरे देवता मन के वश हो गयीं । इन्द्रियों का जो लय कहा गया है वह यहाँ भी अभिप्राय है । भूतादि यह तीनों प्रकार के अहङ्कारों का उपलक्षण है । तीनों प्रकार का अहङ्कार महत तत्त्व में लीन होता है । जडांश का परित्याग करके ज्ञान क्रिया शक्ति स्वरूप हो जाता है । वह कैसा है ? तो इसका उत्तर है **प्रभु** अर्थात् समर्थ है क्योंकि सम्पूर्ण जगत् को मोहित करता है अहङ्कार ।।२५।।

स लीयते महान्स्वेषु गुणेषु गुणवत्तमः । तेऽव्यक्ते संप्रलीयन्ते तत्काले लीयतेऽव्यये ।।२६।।

अन्वयः— स गुणवत्तमः महान् स्वेषु गुणेषु लीयते, ते अव्यक्ते संप्रलीयन्ते, तत् अव्यये काले लीयते ।।२६।।

अनुवाद— ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति प्रधान महत् तत्त्व अपने कारण गुणों में लीन हो जाता है । गुण अव्यक्त प्रकृति में और प्रकृति काल में लीन हो जाता है ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

स च महान्स्वकारणेषु गुणेषु । ज्ञानक्रियाशक्तिमत्त्वाद्गुणवत्तमस्तादृग्भावं विहाय गुणमात्ररूपो भवति । तेऽव्यक्ते प्रकृतौ। साम्यावस्थां गच्छन्तीत्यर्थः । तदव्यक्तं काले कालाधीनत्वात्तेनैकीभूयावतिष्ठते । अव्यये उपरतवृत्तौ ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

वह महान् अपने कारण गुणों में ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति प्रधान होने के कारण महान् को **गुणवत्तम** कहा गया है । वह अपने उस प्रकार के भाव का परित्याग करके गुण मात्रा स्वरूप हो जाता है । गुण अव्यक्त प्रकृति में। अर्थात् वे अपनी साम्यावस्था को प्राप्त कर लेते हैं । वह प्रकृति काल में लीन हो जाती है, अर्थात् कालाधीन होने के कारण काल के समान हो जाती है । अव्यये का अभिप्राय है कि प्रलय काल में काल की वृत्ति समाप्त हो जाती है ।।२६।।

कालो मायामये जीवे जीव आत्मनि मय्यजे । आत्मा केवल आत्मस्थो विकल्पापायलक्षणः ।।२७।।

अन्वयः— कालः मायामये जीवे, जीवः अजे आत्मनि मयि, विकल्पाय लक्षणः आत्मा आत्मस्थः ।।२७।।

अनुवाद— काल मायामय जीव में, जीव अजन्मा मुझ आत्मा में, आत्मा विकल्प रहित अपने स्वरूप में ही लीन हो जाता है । वह जगत् की सृष्टि और लय का अधिष्ठान एवं अवधि है ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

मायामये मायाप्रवर्तके ज्ञानमये वा । अतएव जीवयतीति जीवस्तस्मिन्महापुरुषे । अयं भावः- विश्वस्त्रष्टुर्महापुरुषस्योपकरणरूपः कालो वृत्त्यंशेन सृज्यश्चातस्तदात्मनावतिष्ठत इति । तदुक्तं सप्तमे-'कालं चरन्तं सृजतीश आश्रयं प्रधानपुंभ्यां नरदेव सत्यकृत्' इति । दशमे च,-'योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् । निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयांस्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये ।।' इति जीव आत्मनि । प्रकृतेर्लीनत्वेन प्रतियोग्यभावात्परिपूर्णत्वेन सद्रूपेणावतिष्ठते । आत्मा चात्मस्थ

एवं नान्यत्र लीयते । यतः केवलो निरुपाधिः । तत्र हेतुः-विकल्पापायाभ्यां विश्वोत्पत्तिप्रलयाभ्यां लक्ष्यतेऽधिष्ठानत्वेनावधित्वेन वेति तथा सः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

मायामये अर्थात् माया के प्रवर्तक अथवा ज्ञानमय । उस महापुरुष परमात्मा में जीवित रहने के कारण वह जीव कहलाता है । कहने का अभिप्राय है विश्व के स्रष्टा महापुरुष के उपकरण रूप है जीव । काल अपनी वृत्त्यंश के द्वारा सृज्य है । अतएव तदात्मक रूप से बना रहता है । सातवें स्कन्ध में कहा भी गया है- **कालं चरन्तम्० इत्यादि** अर्थात् वृत्यात्मक काल की परमात्मा सृष्टि आश्रय रूप से करते हैं । राजन् प्रकृति एवं पुरुष के द्वारा सत्य का निर्माण करते हैं । दसवें स्कन्ध में भी कहा गया है- **हे अव्यक्तबन्धो** यह जो काल है वह आपकी चेष्टा कहा गया है । उसी के द्वारा संसार चेष्टा करता है । निमेष से लेकर संवत्सर पर्यन्त यह, अधिक महान् काल है । इस प्रकार के क्षेमधाम आप परमात्मा की मैं शरणागति करता हूँ । जीव का आत्मा में लय होता है । प्रकृति के लीन होने के कारण, प्रतियोगी का अभाव होने से, परमात्मा परिपूर्ण होने से सतत् रूप से बने रहते हैं । आत्मा अपने स्वरूप में ही स्थित रहते हैं उनका किसी में यल नहीं होता है । क्योंकि वे केवल और उपाधि रहित हैं उसका कारण है कि वे विश्व की सृष्टि के अधिष्ठान रूप से लक्षित होते हैं इस प्रकार के वे हैं ॥२७॥

एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः । मनसो हृदि तिष्ठेत व्योम्नीवार्कोदये तमः ॥२८॥

अन्वयः— एवम् अन्वीक्षमाणस्य वैकल्पिकः भ्रमः कथं मनसो हृदि व्योम्नि आर्कोदये तम इव तिष्ठेत ॥२८॥

अनुवाद— उद्धवजी जो इस प्रकार होता है, उसे प्रपञ्च का भ्रम कैसे होगा ? यदि हो भी जाय तो वह उसी तरह शीघ्र विनष्ट हो जायेगा जिस तरह सूर्योदय के होते ही आकाश में अन्धकार विनष्ट हो जाता है ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

अस्य कथनस्य प्रस्तुतोपयोगमाह-एवमिति । मनसः कथं भेदनिमित्तो भ्रमः स्यात् । जातो वा कथं हृदि तिष्ठेत् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

इस कथन को प्रस्तुत में होने वाले उपयोग को **एवम्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । मन में भेद निमित्तक भ्रम नहीं हो सकता है । और यदि किसी प्रकार भ्रम हो भी जाय तो वह हृदय में टीक भी नहीं सकता है ॥२८॥

एष सांख्यविधिः प्रोक्तः संशयग्रन्थिभेदनः । प्रतिलोमानुलोमाभ्यां परावरदृशा मया ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अन्वयः— परावरदृशा मया प्रतिलोमानुलोमाभ्यां एषः संशयविधिभेदनः सांख्यविधिः प्रोक्तः ॥२९॥

अनुवाद— उद्धवजी मैं कार्य और कारण दोनों का साक्षी हूँ । मैंने तुम्हें सृष्टि से प्रलय और प्रलय से सृष्टि तक की सांख्य विधि बतला दी । इससे संदेह की गाँठ कट जाती है और पुरुष अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-एष इति ॥२९॥ प्रत्यक्षमिव येनेदं दर्शितं तत्त्वमात्मनः । सांख्यप्रख्यानतस्तस्मै हरये गुरवे नमः ॥१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

एष इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् सांख्योपदेश का उपसंहार किये है ॥२९॥ **प्रत्यक्षमिव० इत्यादि** जिन

श्रीभगवान् ने प्रत्यक्ष के ही समान आत्मा के स्वरूप का निरूपण सांख्य स्थान के अनुसार किया उन श्रीहरि गुरु को मेरा नमस्कार है ॥१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के चौबीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२४।।

* * *

पचीसवाँ अध्याय

तीनों गुणों की वृत्तियों का वर्णन

श्रीभगवानुवाच

गुणानामसमिश्राणां पुमान्येन यथा भवेत् । तन्मे पुरुषवर्येदमुपधारय शंसतः ॥१॥

अन्वयः— हे पुरुषवर्य असमिश्राणां गुणानां येन पुमान् यथा भवेत् तत् शंसतः मेइदम्पधारय ॥१॥

श्रीकृष्णभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे पुरुषश्रेष्ठ उद्धवजी ! जिस अमिश्रित गुण के कारण पुरुष का जो स्वभाव होता है, उसे मैं बतला रहा हूँ उसे तुम सावधानी पूर्वक सुनो ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चविंशे स्वनैर्गुण्यप्रतिपत्त्यै निरूप्यते । चित्तप्रभवसत्त्वादिगुणवृत्तिरनेकधा ॥१॥ प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञानवतोऽपि यावत्प्रयत्नविशेषेण गुणत्रयवृत्तिजयो न स्यान्न तावद्द्वन्द्वोपरमोऽतस्तज्जयोपायगुणवृत्तिनिरूपणार्थमाह–गुणानामिति । सह मिश्रीभूय वर्तमानाः समिश्राः न समिश्रा असमिश्रास्तेषां विभक्तानां गुणानां मध्ये येन गुणेन यथा यादृशो भवेत्तदिदं कथयतो मत्तो निबोधेत्यर्थः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

पचीसवें अध्याय में अपने नैर्गुण्य का प्रतिपादन करने के लिए चित्त से उत्पन्न होने वाले सत्त्वादि गुणों की वृत्तियों का अनेक प्रकार से निरूपण करते हैं । प्रकृति पुरुष के विवेक रूप ज्ञान से सम्पन्न पुरुष के प्रयत्न विशेष के द्वारा पुरुष जब तक तीनों गुणों की वृत्तियों को नहीं जीत लेता है तब तक प्रपञ्चभ्रम समाप्त नहीं होता है, अतएव उसको जीतने के उपाय को गुणों की वृत्तियों का निरूपण करने के लिए श्रीभगवान् **गुणानाम्० इत्यादि** श्लोक को कहते हैं । असमिश्राणाम् अर्थात् विभक्त गुणों में से मनुष्य का जिस प्रकार का स्वभाव होता है मैं उसका वर्णन करता हूँ उसको तुम सावधानी पूर्वक सुनो ॥१॥

शमो दमस्तितिक्षेक्षा तपः सत्यं दया स्मृतिः । तुष्टिस्त्यागोऽस्पृहा श्रद्धा ह्रीर्दयादिः स्वनिर्वृतिः॥२॥

अन्वयः— शमः, दमः, तितिक्षा, ईक्षा, तपः सत्यं, दया, स्मृतिः, तुष्टिः त्यागः, अस्पृहा श्रद्धा, ह्रीः दया, दानम्, आदि (अर्जवम् विनयः) आत्मरतिः, इमाः सत्त्वगुणस्य वृत्तयः सन्ति ॥२॥

अनुवाद— शमः (मन का संयम) दम (इन्द्रिय निग्रह) तितिक्षा (सहिष्णुता) ईक्षा (विवेक) तपस्या, सत्य, दया, स्मृति सन्तोष, त्याग, विषयों के प्रति अनिच्छा, श्रद्धा, लज्जा (पाप करने में स्वभावतः सङ्कोच) आत्मरति, दान, विनय और सरलता आदि सत्त्व गुण की वृत्तियाँ हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

तत्र सत्त्ववृत्तीराह–शम इति । शमो मनोनिग्रहः । दमो वाह्येन्द्रियनिग्रहः । तितिक्षा सहिष्णुत्वम् । ईक्षा विवेकः । तपः

स्वधर्मवर्तित्वम् । स्मृतिः पूर्वापरानुसंधानम् । तुष्टिर्यथालाभसंतोषः । त्यागो व्ययशीलता । अस्पृहा विषयेषु वैराग्यम् । श्रद्धा आस्तिक्यं गुर्वादिषु । ह्रीरनुचिते कर्मणि लज्जा तेषामनवलोकनम् । दया दानम्, 'दय दानगतिरक्षणेषु' इति स्मरणात् । आदिशब्देनार्जवविनयादि । स्वनिर्वृतिरात्मरतिः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

शम० इत्यादि श्लोक के द्वारा सत्त्वगुण की वृत्तियों का वर्णन किया गया है । शम अर्थात् मन को वश में करना, दम इन्द्रियों का निग्रह, तितिक्षा अर्थात् सहिष्णुता, ईक्षा अर्थात् विवेक, तपः अर्थात् अपने धर्म का पालन करना, स्मृति पूर्वापरानुसन्धान, तुष्टि जितना मिले उतने में संतुष्ट रहना, त्यागः अर्थात् व्यय करने का स्वभाव, अस्पृहा अर्थात् विषयों को प्राप्त करने की इच्छा का नहीं होना अथवा विषयों के प्रति वैराग्य, श्रद्धा अर्थात् गुरु आदि में आस्तिक्य बुद्धि, ह्रीः निषिद्ध कर्मों को करने में लज्जा का होना । दया, दान दय धातु को दान, गति और रक्षा के अर्थ में पढ़ा गया है । आदि शब्द के द्वारा ऋजुता तथा विनय का ग्रहण होता है । निवृत्ति अर्थात् आत्मा में रमण करना ।।२।।

काम ईहा मदस्तृष्णा स्तम्भ आशीर्भिदा सुखम् । मदोत्साहो यशःप्रीतिर्हास्यं वीर्यं बलोद्यमः ।।३।।

अन्वयः— कामः ईहा, मदः तृष्णा, स्तम्भः, आशीः भिदा, सुखम्, मदोत्साह, यशः प्रीतिः हास्यं, वीर्यं बलोद्यमः इमाः रजोगुणस्यवृत्तयः सन्तीत्यर्थः ।।३।।

अनुवाद— इच्छा प्रयत्न, घमण्ड, तृष्णा (असन्तोष) स्तम्भ अर्थात् ऐंठ या अकड़, आशीः अर्थात् देवताओं से धन आदि की याचना करना, भिदा अर्थात् भेद की बुद्धि सुखम् (विषयभोग) मदोत्साहः अर्थात् युद्ध आदि के लिए मद जन्य उत्साह, यशः प्रीतिः अर्थात् अपने यश में प्रेम, हास्य, पराक्रम, और हठ पूर्वक उद्योग करना आदि ।।३।।

भावार्थ दीपिका

रजसो वृत्तीराह–कामोऽभिलाषः । ईहा व्यापारः । मदो दर्पः । तृष्णा लाभे सत्यप्यसंतोषः । स्तम्भो गर्वः । आशीर्धनाद्यभिलाषेण देवतादिप्रार्थनम् । भिदा अहमन्य इति भेदबुद्धिः । सुखं विषयभोगः । मदोत्साहो मदेन युद्धाद्यभिनिवेशः। यशः प्रीतिः स्तुतिप्रियता। हास्यमुपहासः । वीर्यं प्रभावाविष्कारः । बलेनोद्यमो न्यायेनोद्यमः सात्त्विक एव ।।३।।

भाव प्रकाशिका

काम इत्यादि से रजोगुण की वृत्तियों का वर्णन किया गया है । **कामः** अर्थात् अभिलाषा हो होना, ईहा अर्थात् व्यापार, मदः अर्थात् घमण्ड तृष्णा अर्थात् लाभ होने पर सन्तोष का अभाव, स्तम्भः अर्थात् गर्व, आशीः धन आदि की अभिलाषा से देवता आदि की प्रार्थना करना भिदा भेद की बुद्धि, सुखम् अर्थात् विषय भोग, मदोत्साहः अर्थात् मद के कारण युद्ध आदि में अभिनिवेश । यशः प्रीति अर्थात् अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होना हास्यम् किसी का उपहास करना, वीर्यम् अर्थात् प्रभाव का आविष्कार बलोद्यम, हठ पूर्वक उद्योग करना । यदि न्याय पूर्वक हो तो वह सात्त्विक ही होगा ।।३।।

क्रोधो लोभोऽनृतं हिंसा याच्ञा दम्भः क्लमः कलिः । शोकमोहौ विषादार्ती निद्राशा भीरनुद्यमः ।।४।।

अन्वयः— क्रोधः लोभः, अनृतम् हिंसा, याच्ञादम्भः क्लमः कलिः, शोकमोहो, विषादार्ती, निद्राशा, भी; अनुद्यमः ।।४।।

अनुवाद— निम्नांकित तमोगुण की वृत्तियाँ है क्रोध (असहिष्णुता) लोभ, मिथ्याभाषण, हिंसा, याचना करना, पाखण्ड, श्रम, कलह, शोक, मोह, विषाद, दीनता निद्रा आशा भय तथा अकर्मण्यता ।।४।।

भावार्थ दीपिका

तमोवृत्तीराह–क्रोध इति । क्रोधोऽसहिष्णुता । लोभो व्ययपराङ्मुखता । अनृतमशास्त्रीयं प्रमाणमिति भाषणम् । हिंसा

द्रोहः । याञ्चा प्रार्थना । दम्भो धर्मध्वजित्वम् । क्लमः श्रमः । कलिः कलहः । शोकमोहौ अनुशोचनं भ्रमश्च । विषादार्ती दुःखं दैन्यं च । निद्रा तन्द्रा । आशा मे इदं भविष्यतीत्यन्वीक्षा । भीर्भयम् । अनुद्यमो जाड्यम् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

क्रोध० इत्यादि श्लोक से तमोगुण की वृत्तियों का वर्णन किया गया है । क्रोध अर्थात् असहिष्णुता, लोभः अर्थात् व्यय न करना, **अनृतम्** अशास्त्रीय भाषण, हिंसा अर्थात् द्रोह करना, याच्ञा अर्थात् प्रार्थना (माँगना) दम्भः धार्मिकता का दिखावा करना, क्लमः अर्थात् थकना, कलिः झगड़ा करना, शोक मोहौ, किसी बात का शोक करना तथा अज्ञान, विषादार्ती अर्थात् दुःख एवं दीनता, निद्रा सोना, तन्द्रा जम्भाई लेना, आशा यह मुझको मिल जाय इस प्रकार की इच्छा करना, भीः भय, अनुद्यमः अकर्मण्यता ।।४।।

सत्त्वस्य रजस श्चैतास्तमसश्चानुपूर्वशः । वृत्तयो वर्णितप्रायाः संनिपातमथो शृणु ।।५।।

अन्वयः— सत्त्वस्य, रजसः च एताः तमसः अनुपूर्वशः वृतयः वर्णितप्रायाः अथो सन्निपातम् शृणु ।।५।।

अनुवाद— इस प्रकार क्रमशः सत्त्वगुण, रजोगुण एवं तमोगुण की वृत्तियों का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया अब उन गुणों के मिश्रण से होने वाली वृत्तियों को तुम सावधानी पूर्वक सुनो ।।५।।

भावार्थ दीपिका

'अनुपूर्वशः क्रमेणैताः श्लोकत्रयोक्ता वर्णितप्रायाः । अन्या अप्यूह्या इति भावः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

अनुपूर्वशः अर्थात् क्रमानुसार इन तीन श्लोकों द्वारा जिनका प्रायः वर्णन कर दिया गया है । इनसे भिन्न वृत्तियों को भी तर्क के द्वारा जानना चाहिए ।।५।।

संनिपातस्त्वहमिति ममेत्युद्धव या मतिः । व्यवहारः संनिपातो मनोमात्रेन्द्रियासुभिः ।।६।।

अन्वयः— उद्धव अहमिति ममेति या मतिः सन्निपातः संनिपातः व्यवहारः मनोमात्रेन्द्रियासुभिः ।।६।।

अनुवाद— उद्धवजी यह मैं हूँ और यह मेरा है इस बात की होने वाली बुद्धि में तीनों गुणों सत्त्व, रजस एवं तमस गुणों का समिश्रण है । जिन मन, शब्दादि विषय इन्द्रिय और प्राणों के कारण पूर्वोक्त वृत्तियों का उदय होता है । वे सबके सब सात्त्विक राजस एवं तामस हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

विभक्तानां गुणानां वृत्तयो वर्णिताः, मिश्राणामाह-संनिपात इति त्रिभिः । अहं ममेति ममतानुषक्तसर्ववृत्तिसामानाधिकरण्यदर्शनात्संनिपातजत्वम् । अहं शान्तः कामी क्रोधीत्यादि । तथा मम शान्तिरस्ति कामः क्रोध इत्यादि द्रष्टव्यम् । तत्पूर्वकः सर्वो व्यवहारश्च संनिपातकार्यमित्याह-व्यवहार इति । अत्र हेतुः-मनश्च मात्राणि चेन्द्रियाणि चासवश्च तैः । मनआदीनां सात्त्विकतामसराजसत्वात्तैर्व्यवहारः संनिपातज इति भावः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

अलग-अलग तीनों गुणों की वृत्तियों का वर्णन किया जा चुका है । **संनिपात० इत्यादि** तीन श्लोकों से मिश्रित गुणों की वृत्तियों का वर्णन करते हैं । मैं और मेरा इस ममता से संबद्ध सभी वृत्तियों का सामानाधिकरण्य देखे जाने के कारण संनिपातज अर्थात् गुणों के मिश्रण का कार्य व्यवहार इत्यादि शब्द से कहते है । मैं शान्त हूँ कामी हूँ, क्रोधी हूँ इत्यादि । तथा मेरी शान्ति है, काम है, क्रोध है इत्यादि देखना चाहिए । तत्पूर्वक सभी व्यवहार संनिपात कार्य हैं । इस बात को **व्यवहारः इत्यादि** से कहा गया है । मन, तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ और प्राण ये सबके सब सत्त्विक राजस एवं तामस होते हैं । अतएव इन सबों के द्वारा किया जाने वाला व्यवहार संनिपातज होता है ।।६।।

धर्मे चार्थे च कामे च यदासौ परिनिष्ठितः । गुणानां संनिकर्षोऽयं श्रद्धारतिधनावहः ॥७॥

अन्वयः— यदा असौ धर्मे, अर्थे च कामे च परिनिष्ठतः अयं गुणानां सन्निकर्षः श्रद्धा रतिधनावहः ॥७॥

अनुवाद— जब मनुष्य धर्म, अर्थ और काम में संलग्न रहता है उस समय उसको सत्त्वगुण से श्रद्धा, रजोगुण से रति और तमोगुण से धन की प्राप्ति होती है । यह भी गुणों का सम्मिश्रण है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

असौ पुरुषो यदा धर्मादिषु परिनिष्ठितो भवति तदायं त्रिषु निष्ठारूपः संनिकर्षः संनिपातकार्यम् । धर्मादीनां सत्त्वतमोरंजः कार्यत्वाद्विषयत; संनिपातजत्वमुक्तम् । फलतश्च तथात्वमाह-श्रद्धारतिधनानि सत्त्वरजस्तमोमयान्यावहतीति तथा ॥७॥

भाव प्रकाशिका

पुरुष जब धर्म इत्यादि में संलग्न हो जाता है उस समय तीनों में निष्ठा रूप संनिकर्ष संनिपात का कार्य होता है । धर्म आदि के सत्त्व, रजस एवं तमस् का कार्य होने से विषयानुसार संनिपातजत्व को कहा गया है । और उसका फल भी सत्त्वगुण से श्रद्धा, रजोगुण से रति और तमोगुण से धन की प्राप्ति बतलाया गया है ॥७॥

प्रवृत्तिलक्षणे निष्ठा पुमान्यर्हि गृहाश्रमे । स्वधर्मे चानुतिष्ठेत गुणानां समितिर्हि सा ॥८॥

अन्वयः— यर्हि पुमान् प्रवृत्तिलक्षणे गृहाश्रमे निष्ठा स्वधर्मे चानुतिष्ठेत सा हि गुणानां समितिः ॥८॥

अनुवाद— जब पुरुष सकाम कर्म, गृहस्थाश्रम में और स्व धर्माचरण में अधिक प्रीति रखता है उस समय भी उसमें तीनों गुणों का मिश्रण ही समझना चाहिए ॥८॥

भावार्थ दीपिका

धर्मनिष्ठायामेव संनिपातं दर्शयति-प्रवृत्तिलक्षणे काम्यधर्मे यदा पुंसो निष्ठा भवति । तथा पुमान् यदा गृहाश्रम एवासक्तस्तिष्ठेत्। अनु पश्चात्स्वधर्मे च नित्यनैमित्तिके तिष्ठेत्सापि समितिः संनिपातः । हि यस्मात्काम्यधर्मगृहासक्तिस्वधर्मा रजस्तमः-सत्त्वमया इत्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

धर्मनिष्ठा में ही संनिपात दिखलाते हैं । प्रवृत्ति रूप काम्य कर्मों में जब पुरुष की निष्ठा होती हैं । और जब मनुष्य गृहस्थाश्रम में ही आसक्त बना रहता है । तथा वाद में नित्य नैमित्तिक कर्मो में प्रेम करे वह भी संनिपात ही है। क्योंकि काम्य कर्म गृह में आसक्ति तथा अपना धर्म ये क्रमशः रजोगुण, तमोगुण और सत्त्वगुणमय होते हैं ॥८॥

पुरुषं सत्त्वसंयुक्तमनुमीयाच्छमादिभिः । कामादिभी रजोयुक्तं क्रोधाद्यैस्तमसा युतम् ॥९॥

अन्वयः— शमादिभिः पुरुषं सत्त्वसंयुक्तम् अनुमीयात् कामादिभिः रजोयुक्तं क्रोधाद्यैः तमसा युतम् अनुमीयात् ॥९॥

अनुवाद— पुरुष के शम आदि गुणों को देखकर उसके सत्त्वगुण संपन्न होने का अनुमान करना चाहिए कामादि के द्वारा उसके रजोगुणी होने का अनुमान करना चाहिए, तथा क्रोध आदि गुणों को देखकर उसके तमोगुणी होने का अनुमान करे ॥९॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं मिश्रामिश्रगुणवृत्तीः प्रदर्श्येदानीं पुमान्येन यथा भवेदिति यदुक्तं तद्दर्शयति-पुरुषमिति त्रिभिः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह मिश्र एवं अमिश्र गुणों की वृत्तियों का निरूपण करने के पश्चात् अब पुरुष ही जिस गुण से जैसा होता है, उसको पुरुषम् इत्यादि तीन श्लोकों से बतलाते हैं ॥९॥

यदा भजति मां भक्त्या निरपेक्षः स्वकर्मभिः । तं सत्त्वप्रकृतिं विद्यात्पुरुषं स्त्रियमेव वा ॥१०॥

अन्वयः— यदा निरपेक्ष, स्वकर्मभिः मा भक्त्यां भजति तं पुरुषं स्त्रियं वा सत्त्वप्रकृतिं विद्यात् ।।१०।।

अनुवाद— जब कोई पुरुष हो अथवा स्त्री निष्काम होकर अपने नित्य नैमित्तिक कर्मों से मेरी आराधना करे तो उसको सात्त्विक प्रकृति वाली जानना चाहिए ।।१०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१०।।

यदा आशिष आशास्य मां भजेत स्वकर्मभिः । तं रजःप्रकृतिं विद्याद्धिंसामाशास्य तामसम् ॥११॥

अन्वयः— यदा आशिष आशास्य स्वकर्मभिः मां भजेत तं रजः प्रकृतिं विद्यात् हिंसाम् आशास्य तामसम् ।।११।।

अनुवाद— जब कोई पुरुष किसी कामना विशेष से मेरी आराधना अपने कर्मों से करता है, उसको रजोगुणी जानना चाहिए तथा जो कोई अपने शत्रु आदि के मारण आदि के लिए मेरी आराधना करे तो उसको तमोगुणी जानना चाहिए ।।११।।

भावार्थ दीपिका

हिंसां शत्रुमरणादिकमाशास्य यो भजेत्तं तामसं विद्यात् । एतैर्गुणैरेवंभूतो भवतीति तात्पर्यार्थः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

शत्रु मारण आदि हिंसा की कामना से जो मेरा भजन करता है, उसको तमोगुणी जाने । इन गुणों द्वारा उपासक इस प्रकार का हो जाता है, यही इसका तात्पयर्यार्थ है ।।११।।

सत्त्वं रजस्तम इति गुणा जीवस्य नैव मे । चित्तजा यैस्तु भूतानां सज्जमानो निबध्यते ॥१२॥

अन्वयः— सत्त्वं रजः तमः इति जीवस्य चित्तजा गुणाः मे नैव यैः तु भूतानां सज्जमानः निबध्यते ।।१२।।

अनुवाद— सत्त्व, रजस् और तमस इन गुणों के कारण जीव का चित्त है, इन्हीं गुणों के कारण मनुष्य शरीर अथवा धन आदि में आसक्त होकर बन्धन में पड़ जाता है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

ननु तवापि गुणवशेन कर्तृत्वाविशेषात्केन विशेषेण त्वं सेव्यो जीवस्तु सेवक इति नियमो यतो मां भजेतेति बारंवारमुच्यते तत्राह-सत्त्वमिति । जीवस्यैव, न मे । कुतः । यतश्चित्तजाः जीवोपाधौ चित्तेऽभिव्यज्यन्तेऽतो यैः स एव बध्यते । कीदृशः। भूतानां देहरूपाणामन्येषां च मध्ये सज्जमानः । अहं त्वसज्जमानो गुणनियन्तृत्वेन सृष्ट्यादिकर्तापि नित्यमुक्तोऽतो महान्विशेष इति भावः । यद्वा, भूतानामपञ्चीकृतानां यत्कार्यभूतं चित्तम् । 'अन्नमयं हि सोम्यं मनः' इति श्रुतेः । तत्प्रभवाः अतो भूतोपहितस्य जीवस्यैवेति । अन्यत्समानम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि भगवन् आप भी तो गुणों के अधीन होकर तत्-तत् कार्यो को करते हैं अतएव किस विशेषण से आपकी सेवा करनी चाहिए, यदि आप कहें कि जीव तो सेवक है, यह मैंने बार-बार कहा है। इस पर श्रीभगवान् **सत्त्वम्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । अर्थात् गुण जीवों के हैं मेरे नहीं, क्योंकि गुणों की उत्पत्ति चित्त से होती है । अर्थात् जीवोपाधि में ये गुण चित्त से ही अभिव्यक्त होते हैं । अतएव उन गुणों से ही जीव बन्धन में पड़ जाता है । देह रूप जीवों में जो आसक्त होता है वही बन्धनगत होता है । मैं तो किसी से भी आसक्त नहीं होता हूँ क्योंकि मैं गुणों का नियामक हूँ, सृष्टि आदि का कर्ता भी होकर नित्यमुक्त हूँ । अतएव जीवों से मेरा महान् अन्तर है । अथवा आपञ्चीकृत भूतों का कार्य है चित्त । श्रुति भी कहती है, **अन्नमयं हि सोम्य मनः** हे सोम्य

मन अन्नमय है । उसी से ये गुण उत्पन्न होते हैं । अतएव गुण भूतोपहित जीव के ही होते हैं । अन्य सारी बातें सामान्य है ।।१२।।

यदेतरौ जयेत्सत्त्वं भास्वरं विशदं शिवम् । तदा सुखेन युज्येत धर्मज्ञानादिभिः पुमान् ।।१३।।

अन्वयः— यदा इतरौ भास्वरं विशदं शिवम् सत्त्वम् जयेत् तदा पुमान् धर्मज्ञानादिभिः सुखेन युज्येत ।।१३।।

अनुवाद— सत्त्वगुण देदीप्यमान, विशद एवं कल्याणमय होता है । वह जब रजोगुण एवं तमोगुण को अभिभूत कर देता है उस समय पुरुष ज्ञान तथा धर्म आदि के साथ सुख पूर्वक जुड़ जाता है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं मिश्रामिश्रगुणकार्याणि प्रदर्श्येदानीमेकैकगुणोद्रेककार्याणि दर्शयति-यदेति सप्तदशभिः । यदेतरौ गुणौ जयेदभिभवेत्। भास्वरं प्रकाशकम् । विशदं स्वच्छम् । शिवं शान्तम् । शिवत्वविशदत्वभास्वरत्वानां यथाक्रमं सुखधर्मज्ञानहेतुत्वात्तदा तैर्युज्येत्। आदिशब्दाच्छमदमादिभिश्च ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार मिश्र एवं अमिश्र गुणों को प्रदर्शित करके अब प्रत्येक गुणों के उद्रेकजन्य कार्यों को **यदेतरौ० इत्यादि** सत्रह श्लोकों से दिखलाते हैं । जब भास्वर अर्थात् प्रकाशक तथा विशदम् अर्थात् स्वच्छ शिवम् अर्थात् शान्त सत्त्वगुण रजोगुण एवं तमोगुण को अभिभूत कर देता है । शिवत्व, विशदत्व, एवं भास्वरत्व के क्रमशः कार्य हैं । सुख, धर्म एवं ज्ञान, वह पुरुष इन सबों का पात्र बन जाता है ।।१३।।

यदा जयेत्तमः सत्त्वं रजः सङ्गं भिदा बलम् । तदा दुःखेन युज्येत कर्मणा यशसा श्रिया ।।१४।।

अन्वयः— यदा रजः सत्त्वं तमः जयेत् तदा सङ्गं, भिदा, बलं तदा दुःखेन, कर्मणा, यशसाश्रिया युज्येत ।।१४।।

अनुवाद— जब रजोगुण सत्त्वगुण एवं तमोगुण को अभिभूत कर लेता है तो रजोगुण आसक्ति का है, भेद का कारण है और बल प्रवृत्ति वाला वह है । अतएव सङ्ग का कारण होने से वह यश और ऐश्वर्य युक्त होता है । अर्थात् वह यश एवं श्री (ऐश्वर्य) प्राप्त करना चाहता है । भेद का कारण होने से वह दुःखी हो जाता है और बल का कारण होने के कारण कर्म से जुड़ जाता है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

तमः सत्त्वं च कर्मभूतम् । रजः कर्तृ । सङ्गंसङ्गहेतुः । भिदा भेदहेतुः । बलं प्रवृत्तिस्वभावम् । अतः सङ्गहेतुत्वाद्यशसा श्रिया युज्येत् । तत्कामः पुमान्भवतीत्यर्थः । भिदाहेतुत्वाद्दुःखेन युज्येत, 'द्वितीयाद्वै भयं भवति' इति श्रुतेः । बलहेतुत्वात्कर्मणा युज्येत ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

तमोगुण एवं सत्त्वगुण अभिभव के विषय है । और अभिभूत करने वाला रजोगुण है । सङ्गम् अर्थात् सङ्ग यानी आसक्ति का कारण है रजोगुण, वह भेद का हेतु है तथा बल स्वभाव वाला है । अतएव सङ्ग का कारण होने से यश और श्री को प्राप्त करता है । अर्थात् रजोगुणी पुरुष यश और श्री प्राप्त करना चाहता है । भेद का कारण होने से वह दुःख को प्राप्त करता है, श्रुति भी कहती है दूसरे से ही भय होता है । बल का कारण होने से वह कर्मों को करता है ।।१४।।

यदा जयेद्रजः सत्त्वं तमो मूढ़ं लयं जडम् । युज्येत शोकमोहाभ्यां निद्रया हिंसयाशया ।।१५।।

अन्वयः— यदा तमः मूढं जडम् लयम् सत्त्वं रजः जयेत् तदा शोकमोहाभ्यां निद्रया हिंसया आशया युज्येत ।।१५।।

अनुवाद— तमोगुण का स्वरूप अज्ञान है । उसका स्वभाव आलस्य और बुद्धि की मूढ़ता । जब वह बढ़कर रजोगुण को दबा लेता है तब मनुष्य तरह-तरह की आशाएँ करता है । शोक मोह में पड़ जाता है । हिंसा करता है । अथवा निद्रा आलस्य के वशीभूत होकर पड़ा रहता है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

यदा रजः सत्त्वं च कर्मभूतं तमः कर्तृ जयेत् । मूढं विवेकभ्रंशकम् । लयमावरणात्मकम् । जडमनुद्यमात्मकम् । अतो मूढत्वाच्छोकमोहहिंसाभिर्लयत्वान्निद्रया जडत्वादुद्यमाभावेन केवलमाशया युज्येतेति द्रष्टव्यम् । 'जन' इति पाठे लयात्मकमेव निद्राशयोर्हेतुः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

जब तमोगुण बढ़कर रजोगुण और सत्त्वगुण को अभिभूत कर देता है । तमोगुण मूढ अर्थात् विवेक नाश करने वाला है । वह आवरणात्मक होता है । अतएव ज्ञान को ढँक देता है । वह जड़ अर्थात् निरुद्योग होता है । अतएव मूढ होने के कारण प्राणी शोक, मोह तथा हिंसा से, लय रूप होने के कारण नींद से, जड़ होने के कारण केवल आशा करता है । जन पाठ होने पर लयात्मक ही होने से निद्रा और नाश का कारण होता है ॥१५॥

यदा चित्तं प्रसीदेत इन्द्रियाणां च निर्वृतिः । देहेऽभयं मनोऽसङ्गं तत्सत्त्वं विद्धि मत्पदम् ॥१६॥

अन्वयः— यदा चित्तं प्रसीदेत, इन्द्रियाणां च निवृत्तिः, देहे अभयं, मन आसङ्गं तत् मत्पदम् सत्त्वं विद्धि ॥१६॥

अनुवाद— जब चित्त प्रसन्न हो, इन्द्रियाँ शान्त हो, देह निर्भय हो और मन में आसक्ति न हो तब सत्त्वगुण की वृद्धि समझनी चाहिए । सत्त्व गुण मेरी प्राप्ति का साधन है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

किंच, यदा चित्तं प्रसीदेत स्वच्छं भवेत् । निर्वृतिरुपरतिः । तत्तदा मत्पदं मदुपलब्धिस्थानं सत्त्वमुद्रिक्तं विद्धि ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

जब चित्त प्रसन्न हो निवृत्तिः अर्थात् शान्त, उसे मेरे लोक की प्राप्ति का साधन समझना चाहिए ॥१६॥

विकुर्वन् क्रियया चाधीरनिर्वृत्तिश्च चेतसाम् । गात्रास्वास्थ्यं मनो भ्रान्तं रज एतैर्निशामय ॥१७॥

अन्वयः— यदा क्रियया विकुर्वन् आधीः चेतसाम् अनिर्वृतिः गात्राणि अस्वारस्यान् मनः भ्रान्तं तदा रजः उत्कटं निशामया ॥१७॥

अनुवाद— जब काम करते-करते जीव की बुद्धि चञ्चल, ज्ञानेन्द्रियाँ असन्तुष्ट, कर्मेन्द्रियाँ विकार युक्त, मन भ्रान्त, तथा शरीर अस्वस्थ हो जाय उस समय जानना चाहिए कि रजोगुण उद्रिक्त हो गया है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

यदा पुनः क्रियया विकुर्वन्विकारं प्राप्नुवन् आधीर्भवति, आ समन्ताद्विक्षिप्ता धीर्यस्य सः । चेतसां बुद्धीन्द्रियाणामनिर्वृत्तिरनुपरतिः गात्राणि कर्मेन्द्रियाणि तेषामस्वास्थ्यं विकाराधिक्यं मनो भ्रान्तं चञ्चलं तदा रज उत्कटं निशामय जानीहीति॥१७॥

भाव प्रकाशिका

जब कार्यों को करते-करते जीव की बुद्धि चञ्चल हो जाय अर्थात् बुद्धि पूर्णरूप से विक्षिप्त हो जाती है। ज्ञानेन्द्रियाँ असन्तुष्ट हो जायँ, कर्मेन्द्रियाँ अत्यधिक विकारयुक्त होकर अस्वस्थ हो जाय, मन चञ्चल हो जाय तब जानना चाहिए कि हमारे शरीर में रजोगुण उद्रिक्त हो गया है ॥१७॥

सीदच्चित्तं विलीयेत चेतसो ग्रहणेऽक्षमम् । मनो नष्टं तमो ग्लानिस्तमस्तदुपधारय ॥१८॥

अन्वयः— यदा सीदत् चित्तम् चेतसः ग्रहणे अक्षमं विलीयेत, मनो नष्टम् तमो ग्लानिः तत, तमः उपधारय ।।१८।।

अनुवाद— जब चित्त ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा विषयों को यथावत् समझने में असमर्थ हो जाय, और खिन्न होकर लीन होने लगे, मन सुन्न सा होने लगे अज्ञान और विषाद बढ़ने लगे तब समझना चाहिए कि तमोगुण उद्रिक्त हो रहा है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

यदा सीदत्तिरोभवच्चेतसो ग्रहणे चिदाकारपरिणामेऽक्षमं सच्चित्तं विलीयेत । मनोऽपि सङ्कल्पात्मकं नष्टं लीनम् । तमोऽज्ञानं ग्लानिर्विषादश्च भवति । तत्तदा तम उत्कटमुपधारय विद्धि ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

जब चित्त खिन्न होकर लीन होने लगे और ज्ञानाकाराकारित होने में असमर्थ होकर विलीन होने लगे, सङ्कल्पात्मक मन भी लीन हो जाय । अज्ञान और विषाद बढ़ने लगे, तब यह समझना चाहिये कि तमोगुण उद्रिक्त हो रहा है ।।१८।।

एधमाने गुणे सत्त्वे देवानां बलमेधते । असुराणां च रजसि तमस्युद्धव रक्षसाम् ॥१९॥

अन्वयः— हे उद्धव सत्त्वे गुणे एधमाने देवानाम् बलम् एधते रजसि च असुराणाम् तमसि रक्षसाम् ।।१९।।

अनुवाद— हे उद्धव सत्त्व गुण के उद्रिक्त होने पर देवताओं का बल बढ़ता है, रजोगुण के बढ़ने पर असुरों का बल बढ़ता है तथा तमोगुण के बढ़ने पर राक्षसों का बल बढ़ता है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

किंच, एधमान इति । इन्द्रियाण्येव निवृत्तिप्रवृत्तिमोहस्वभावानि देवासुररक्षांसि । यद्वा, प्रसङ्गादाधिदैविकानां गुणानामुत्कर्षकार्याण्युक्तानीति ज्ञेयम् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

निवृत्ति प्रवृत्ति एवं मोह स्वभाव वाली इन्द्रियाँ ही देवता, असुर और राक्षस स्वभाव वाली होती हैं । अथवा प्रसङ्गवशात् आधिदैविक गुणों का उत्कर्ष करने के कार्ययुक्त होती हैं, यह जानना चाहिए ।।१९।।

सत्त्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्न मादिशेत् । प्रस्वापां तम स्याजन्तोः तुरीयं त्रिषुसंततम् ॥२०॥

अन्वयः— सत्त्वात् जागरणं विद्यात् रजसा स्वप्नमादिशेत तमसा जन्तोः प्रस्वापं विद्यात् तुरीयं त्रिषु संन्ततम् ।।२०।।

अनुवाद— सत्त्वगुण के बढ़ने पर जीव की जागरावस्था जानना चाहिए, रजोगुण के बढ़ने पर स्वापावस्था जाने, तमोगुण के उद्रिक्त होने पर जीव की घोर निद्रा की अवस्था जाने और तुरीयावस्था तीनों में अनुस्यूत रहती है ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

गुणोत्कर्षतोऽवस्था भेदं दर्शयति सत्त्वादिति प्रसङ्गान्निगुणावस्थामाह तुरीयं चतुर्थमवस्थान्तरं नाम त्रिषुजागरणादिषु सन्ततमेकरूपमात्मतत्त्वमेवेत्यर्थः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

गुणों का उत्कर्ष होने के कारण अवस्थाओं के भेद को **सत्त्वाद इत्यादि** श्लोक के द्वारा बतलाते हैं । प्रसङ्गवशात् निर्गुणावस्था को बतलाते हैं । इन तीन से भिन्न चतुर्थ तुरीयावस्था इत्यादि तीनोवस्थाओं में आत्मतत्त्व एक समान बना रहता है ।।२०।।

उपर्युपरि गच्छन्ति सत्त्वेन ब्राह्मणा जनाः । तमसाधोऽध आमुख्याद्रजसान्तरचारिणः ॥२१॥

अन्वयः— ब्राह्मणाः जना सत्त्वेन उपर्युपरिगच्छन्ति, तमसाऽधोधः रजसा अमुख्यात् अन्तरचारिणः ॥२१॥

अनुवाद— वेदाध्ययन परायण ब्राह्मण सत्त्वगुण के द्वारा ऊपर के सत्यलोक में जाते है, तमोगुण के कारण जीवों को वृक्षादि पर्यन्त अधोगति होती है । और रजोगुण से मनुष्य शरीर की प्राप्ति होती है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

गुणोत्कर्षद्वारेण तत्तत्कर्मफलनिष्ठां दर्शयति-उपर्युपरीति । ब्राह्मणा वेदानुष्ठानयुक्ताः । 'आब्रह्मण' इति पाठे ब्रह्मलोकमभिव्याप्य। आमुख्यात्स्थावरानभिव्याप्य । अन्तरचारिणो मनुष्या एव भवन्ति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

गुणों की उत्कृष्टता के द्वारा विभिन्न प्रकार के होने वाले फलों की निष्ठा को **उपर्युपरि० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं वेदानुष्ठान परायण ब्राह्मण ब्रह्माजी के सत्यलोक पर्यन्त जाते हैं । वृक्षादि पर्यन्त बीच के लोक में रहने वाले मनुष्य होते हैं ॥२१॥

सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यान्ति नरलोकं रजोलयाः । तमोलयास्तु निरयं यान्ति मामेव निर्गुणाः ॥२२॥

अन्वयः— सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यान्ति, रजोलयाः नरलोकं तमोलयाः तु निरयम् निर्गुणाः मामेव यान्ति ॥२२॥

अनुवाद— सत्त्वगुण की वृद्धि के समय जिनकी मृत्यु होती है वे लोग स्वर्ग में जाते हैं, रजोगुण की वृद्धि के समय जिसकी मृत्यु होती है, वे लोग मनुष्य लोक में जाते हैं और तमोगुण की वृद्धि के समय जिसकी मृत्यु होती है, वे जीव नरकलोक में जाते हैं और निर्गुण की वृद्धि के समय जिसकी मृत्यु होती है वे जीव मेरे वैकुण्ठ लोक में जाते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

देहादुत्क्रान्तिकालीनगुणोत्कर्षफलमाह-सत्त्वे वृद्धे सति प्रलीना मृताः । रजोलयाः रजसि प्रवृद्धे सति लयो येषां ते । एवं तमोलया इत्यपि । निर्गुणा इत्यत्र तु लयशब्दानुपादानाज्जीवन्तोऽपि निर्गुणाश्चेन्मामेव यान्तीत्यर्थः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

देह से उत्क्रमण के समय गुणोत्कर्ष के फल को बतलाते हुए श्रीभगवान् कहते हैं सत्त्वगुण की वृद्धि के समय शरीर त्याग करने वाले जीव स्वर्ग में जाते हैं । रजोगुण की वृद्धि के समय मरने वाले । रजोलयाः अर्थात् रजोगुण की वृद्धि के समय मरने वाले, तमोलयाः अर्थात् तमोगुण की वृद्धि के समय, निर्गेणाः में लय शब्द का प्रयोग नहीं करने के कारण जीवित रहने पर भी यदि कोई मनुष्य निर्गुण हो जाता है तो वह मेरे ही लोक में आता है ॥२२॥

मदर्पणं निष्फलं वा सात्त्विकं निजकर्म तत् । राजसं फलसङ्कल्पं हिंसाप्रायादि तामसम् ॥२३॥

अन्वयः— मदर्पणं निष्फलं वा निजकर्म तत् सात्त्विकम् फलसंङ्कल्पं राजसम् हिंसाप्रायादि तामसम् ॥२३॥

अनुवाद— जिस कर्म का फल मुझको समर्पित करके किया जाता है अथवा निष्काम कर्म सात्त्विक होता है, किसी फल की कामना से किये जाने वाले कर्म राजस होता है । जिस कर्म को किसी को मारने या सताने आदि की कामना से किया जाता है वह कर्म तामस होता है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं गुणोत्कर्षकृतमेव तत्तत्फलसाधनकर्मत्रैविध्यमाह-मदर्पणं मत्प्रीत्युद्देशेन कृतं निष्फलं केवलं दासभावेनैव कृतं यन्निजं कर्म नित्यादि तत्सात्त्विकम् । फलं सङ्कल्प्यतेऽस्मिंस्तत् । हिंसाप्रायं हिंसोद्देशेन कृतं हिंसाबहुलं च । आदिशब्दाद्दम्भमात्सर्यादिकृतम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

अब **मदर्पणम् इत्यादि** श्लोक से गुणों की उत्कृष्टता जन्य विभिन्न फलों के साधनभूत तीन प्रकार के कर्मों को बतलाते हैं । मेरी प्रसन्नता के उद्देश्य से किया गया अथवा निष्काम केवल दास भाव से किया गया अपना नित्य नैमित्तिक आदि कर्म सात्त्विक होता है । फल सङ्कल्पम् अर्थात् फल विशेष की कामना से किया गया कर्म हिंसा प्रायादि अर्थात् हिंसा के उद्देश्य से किया जाने वाला अथवा हिंसा बहुल कर्म आदि शब्द से दम्भ मात्सर्य आदि के द्वारा किया जाने वाला कर्म ॥२३॥

कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानं रजो वैकल्पिकं च यत् । प्राकृतं तामसं ज्ञानं मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम् ॥२४॥

अन्वयः— कैवल्यं ज्ञानं सात्त्विकम् यत् राजसम् प्राकृतं तामसं, मन्निष्ठं निर्गुणम् स्मृतम् ॥२४॥

अनुवाद— शुद्ध आत्मा का ज्ञान सात्त्विक है, उसको कर्ता भोक्ता समझना राजस ज्ञान है, उसे (आत्मा को) शरीर समझना तामस ज्ञान है, मेरे स्वरूप का ज्ञान तो निर्गुण है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं सगुणनिर्गुणभेदेन ज्ञानादीनां चातुर्विध्यमाह-कैवल्यं देहादिव्यतिरिक्तात्मविषयम् । वैकल्पिकं देहाद्यव्यतिरिक्तात्मविषयं यत्तद्रजो राजसम् । प्राकृतं बालमूकादिज्ञानतुल्यम् । मन्निष्ठं परमेश्वरविषयम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

अब सगुण निर्गुण भेद के कारण ज्ञान आदि को चार प्रकार का बतलाते हैं । आत्मा देह आदि से भिन्न ही है, इस प्रकार का ज्ञान सात्त्विक है, देहादि से भिन्न आत्मविषयक ज्ञान राजस है । प्राकृतम् अर्थात् बालक तथा गूङ्गे आदि के ज्ञान के समान । मन्निष्ठम् परमेश्वर विषयक ज्ञान ॥२४॥

वनं तु सात्त्विको वासो ग्रामो राजस उच्यते । तामसं द्यूतसदनं मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥२५॥

अन्वयः— वनं तु सात्त्विको वासः ग्रामो वासः राजसः, द्यूतसदनं तामम् मन्निकेतं तु निर्गुणम् ॥२५॥

अनुवाद— वन में रहना सात्त्विक वास है, ग्राम में रहना राजस निवास है । द्यूतगृहमें रहना तामस निवास है मेरे मन्दिर में रहना तो निर्गुण निवास है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

वनं विविक्तत्वात्सात्त्विको वासः, भगवन्निकेतनं तु साक्षात्तदाविर्भावान्निर्गुणं स्थानम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

एकान्त होने के कारण वन में रहना सात्त्विक है । भगवान् का मन्दिर साक्षात् श्रीभगवान् के आर्विभाव के कारण निर्गुण है ॥२५॥

सात्त्विकः कारकोऽसङ्गी रागान्धो राजसः स्मृतः । तामसः स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणो मदपाश्रयः ॥२६॥

अन्वयः— असङ्गी कारकः सात्त्विकः रागान्धः राजसः स्मृतः स्मृति विभ्रष्टः तामस; मदपाश्रयः निर्गुणः ॥२६॥

अनुवाद— अनासक्त भाव से कर्मों को करने वाला सात्त्विक होता है, रागान्ध होकर कर्मों को करने वाला राजस है, जो पूर्वापर के विचार से रहित होकर कर्मों को करता है, वह तामस है और जो मेरी ही शरण में रहकर बिना अहङ्कार के कर्म करता है वह निर्गुण कर्ता ही है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

कारकः कर्ता । असङ्गी अनासक्तः । रागान्धोऽत्यभिनिवेशवान् । स्मृतिविभ्रष्टोऽनुसन्धानशून्यः । मदपाश्रयो मदेकशरणः । स हि निरहङ्कारत्वान्निर्गुणः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

कारकः अर्थात् करने वाला, **असङ्गी** अर्थात् अनासक्त, **रागान्धः** अर्थात् अभिनिवेश युक्त, **स्मृतिविभ्रष्टः** अर्थात् अनुसन्धान शून्य, मदपाश्रयः अर्थात् केवल मेरी शरण में रहने वाला, वही अहङ्कार रहित होने के कारण निर्गुण है ।।२६।।

सात्त्विक्याध्यात्मिकी श्रद्धा कर्मश्रद्धा तु राजसी । तामस्यधर्मे या श्रद्धा मत्सेवायां तु निर्गुणा।।२७।।

अन्वयः— आध्यात्मिकी श्रद्धा सात्त्विकी, कर्मश्रद्धा तु राजसी, अधर्मे या श्रद्धा तामसी मत्सेवायां तु निर्गुणा ।।२७।।

अनुवाद— वेदान्तविषयिणी श्रद्धा सात्त्विकी होती है, अर्थात् आत्मज्ञान विषयिणी श्रद्धा सात्त्विकी होती है, कर्म विषयिणी श्रद्धा राजसी है, अधर्म विषयिणी जो श्रद्धा है, वह तामसी है मेरी सेवा में जो श्रद्धा होती है, वह निर्गुण होती है ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

अधर्मे धर्म इति या श्रद्धा ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

अधर्मे धर्म इति या श्रद्धा अर्थात् अधर्म को ही धर्म मानकर उसमें होने वाली जो श्रद्धा है वह तामसी है ।।२७।।

पथ्यं पूतमनायस्तमाहार्यं सात्त्विकं स्मृतम् । राजसं चेन्द्रियप्रेष्ठं तामसं चार्तिदाशुचि ।।२८।।

अन्वयः— पथ्यं पूतम् अनायस्तम् आहार्यं सात्त्विकं स्मृतम्, इन्द्रिय प्रेष्ठं च राजसं स्मृतम्, आर्तिदा अशुचि च तामसम्।।२८।।

अनुवाद— आरोग्य प्रदान करने वाला, पवित्र, अनयास प्राप्त भोजन सात्त्विक है । भोजन के समय इन्द्रियों को रुचिकर और स्वादिष्ट भोजन राजस है । दुःखद तथा अपवित्र भोजन तामस है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

पथ्यं हितम् । पूतं शुद्धम् । अनायस्तमनायासतः प्राप्तम् । आहार्यं भक्ष्यभोज्यादि । इन्द्रियाणां प्रेष्ठं भोगकाले सुखदं कट्वम्ललवणादि । आर्तिदाशुचि दैन्यकरमशुद्धं च । चशब्दान्मन्निवेदितं निर्गुणमित्यभिप्रेतम् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

पथ्यम् अर्थात् हितकारी, पूतम् अर्थात् पवित्र, अनायस्तम् अर्थात् बिना प्रयास के ही प्राप्त, आहार्यम् अर्थात् भोजन, इन्द्रियाणां प्रेष्ठम् भोजन के समय प्रिय लगने वाला कडुवा खट्टा आदि । आर्तिदाशुचि अर्थात् दुखद तथा अपवित्र चकार के द्वारा भगवान् को भोग लगाया हुआ भोजन निर्गुण रूप से अभिप्रेत है ।।२८।।

सात्त्विकं सुखमात्मोत्थं विषयोत्थं तु राजसम् । तामसं मोहदैन्योत्थं निर्गुणं मदपाश्रयम् ।।२९।।

अन्वयः— आत्मोत्थं सुखं सात्त्विकम् विषयोत्थं सुखं राजसम् । मोहदैन्योत्थं तामसम्, मदायाश्रयम् निर्गुणम् ।।२९।।

अनुवाद— आत्म चिन्तन से (अन्तर्मुखता से) प्राप्त होने वाला सुख सात्त्विक होता है, बर्हिमुखता से (विषयोपभोग से) प्राप्त होने वाला सुख राजस है, अज्ञान तथा दीनता से प्राप्त होने वाला सुख तामस है मेरी शरणागति से प्राप्त होने वाला सुख निर्गुण है ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

आमोत्थं सुखम् । मदपाश्रयमित्यपि त्वन्तत्पदार्थविषयत्वेन ज्ञानवदेव द्रष्टव्यम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

आत्मोत्थं सुखम् आत्म चिन्तन से मिलने वाला सुख । मदमाश्रयम् यह भी तु पदार्थ का विषय होने से उसको ज्ञान को ही समझना चाहिए ।।२९।।

द्रव्यं देशः फलं कालो ज्ञानं कर्म च कारकः । श्रद्धावस्थाकृतिर्निष्ठा त्रैगुण्यः सर्व एव हि ॥३०॥

अन्वयः— द्रव्यं देशः, फलं, कालः, ज्ञानं, कर्म च कारकः, श्रद्धा अवस्था, आकृतिः निष्ठा सर्वे एव हि त्रैगुण्याः ॥३०॥

अनुवाद— द्रव्य (वस्तु) देश (स्थान) फल, काल, ज्ञान, कर्म, कर्ता, श्रद्धा, अवस्था, देव, मनुष्य तिर्यक् आदि शरीर और निष्ठा ये सबके सब त्रिगुणात्मक हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

उक्तं संसारहेतुभूतं त्रैगुण्यमुपसंहरतिद्वाभ्याम्-द्रव्यं पथ्यपूतादि । (देशो वनग्रामादिः) फलं सात्त्विकं सुखमित्यादि । कालो यदा भजेत मां भक्त्या यदेतरौ जयेदित्यादिना योऽर्थादुक्तः । ज्ञानं कैवल्यं सात्त्विकं ज्ञानमित्यादि । कर्म मदर्पणमित्यादि। कारकः सात्त्विकः, कारकोऽसङ्गीत्यादिः । श्रद्धा सात्त्विक्याध्यात्मिकीत्यादिः । अवस्था सत्त्वाज्जागरणमित्यादिः । आकृतिरुपर्युपरि गच्छन्तीत्यादिनोक्ता देवत्वादिरूपा । निष्ठा सत्त्वे प्रलीनाः स्वर्यान्तीत्यादिनोक्तः स्वर्गादिः । एवं सर्वोऽप्ययं भावस्त्रैगुण्यस्त्रिगुणात्मकः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ने कहा है कि त्रैगुण्य ही संसार का कारण है । अब इस श्लोक से भगवान् श्रीकृष्ण उसका उपसंहार करते हैं । **द्रव्य आरोग्य** पद तथा पवित्र आदि, **देशः** वन ग्राम इत्यादि **फलम्** सात्त्विक तथा सुखद आदि फल **कालः** अर्थात् जिस समय भक्ति पूर्वक मेरा भजन कर सके तथा रजोगुण एवं तमोगुण को जित सके, यहाँ जो अर्थवशात् कहा गया है । **ज्ञान** आत्मविषयक सात्त्विकज्ञान इत्यादि **कर्म** जो श्रीभगवान की प्रसन्नता के लिए किया जाय, **कारक** अर्थात् सात्त्विक कर्ता इत्यादि, **कारक** अर्थात् अनासक्त भाव से कर्मों को करने वाला, **श्रद्धा** आध्यात्मिक सात्त्विक इत्यादि, अवस्था सात्त्विक जागरण आदि । **आकृति** ऊपर के सत्य लोक पर्यन्त जाने वाले देवत्व, मनुष्यत्व इत्यादि **निष्ठा** सत्व में शरीर परित्याग करने वाली स्वर्ग में जाने वाली इत्यादि । इस तरह भी भाव पदार्थ त्रैगुण्य युक्त हैं ॥३०॥

सर्वे गुणमया भावाः पुरुषाव्यक्तधिष्ठिताः । दृष्टं श्रुतमनुध्यातं बुद्ध्या वा पुरुषर्षभ ॥३१॥

अन्वयः— हे पुरुषर्षभ ! पुरुषाव्यक्तधिष्ठताः सर्वे भावाः गुणमयाः दृष्टं, श्रुतं, बुद्ध्या वा अनुध्यातम् ॥३१॥

अनुवाद— हे पुरुष श्रेष्ठ उद्धवजी जो प्रकृति एवं पुरुष के द्वारा अधिष्ठित हैं, सभी भाव पदार्थ गुणमय हैं, चाहे वे आँखों से देखे गये हो, या कानों से शास्त्रों में सुने गये हों अथवा बुद्धि के द्वारा अथवा नेत्रादि इन्द्रियों से अनुभव किए गये हों अथवा बुद्धि के द्वारा विचारे गये हों ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

न केवलमेष एव किंतु यावन्तः पुरुषाव्यक्तधिष्ठितास्ते सर्वे भावा गुणमया एव । तत्प्रपञ्चः-दृष्टमिति ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

केवल इतना ही नहीं बल्कि जितने भी प्रकृति एवं पुरुष के द्वारा अधिष्ठित भाव पदार्थ है, वे सबके सब गुणमय हैं, उसका विस्तार दृष्टम् इत्यादि से किया गया है ॥३१॥

एताः संसृतयः पुंसो गुणकर्मनिबन्धनाः । येनेमे निर्जिताः सौम्य गुणा जीवेन चित्तजाः॥
भक्तियोगेन मन्निष्ठो मद्भावाय प्रपद्यते ॥३२॥

अन्वयः— हे सौम्य ! पुंसः एताः संसृतयः गुणकर्म निबन्धनाः येन, जीवेन चित्तजाः इमे गुणाः निर्जिताः भक्तियोगेन मन्निष्ठः मदभावाय प्रपद्यते ॥३२॥

अनुवाद— हे सौम्य उद्धवजी जीव के प्राप्त होने वाली सारी योनियाँ गुण और कर्म के कारण, होती हैं। जिस जीव ने चित्त से उत्पन्न होने वाले इन सभी गुणों को जीत लिया है वह भक्तियोग के द्वारा मुझमें ही परिनिष्ठत हो जाता है और अन्त में मेरे वास्तविक रूप जिसे मोक्ष भी कहते हैं, प्राप्त कर लेता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

इदानीमुक्तं त्रैगुण्यस्य संसारहे्तुत्वमनुवदंस्तन्निर्जयान्मोक्षइत्याह-एता इति सार्धेन। येन निर्जिताः स पश्चादविक्षिप्तेन भक्तियोगेन मन्निष्ठः सन् मद्भावाय मोक्षाय प्रपद्यते योग्यो भवति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

एताः इत्यादि डेढ श्लोक के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण कहे गये त्रैगुण्य के संसार कारणत्व का अनुवाद करते हुए बतलाते हैं कि गुणों पर विजय प्राप्त कर लेने से मुक्ति की प्राप्ति होती है। जिसने गुणों को जीत लिया है वह उसके पश्चात् चित्त के स्थिर हो जाने के कारण मुझमें ही परिनिष्ठत हो जाता है और वह मोक्ष प्राप्ति के योग्य हो जाता है ॥३२॥

तस्माद्देहमिमं लब्ध्वा ज्ञानविज्ञानसंभवम् ॥३३॥

अन्वयः— तस्मात् ज्ञान विज्ञानं संभवं इमं देहम् प्राप्य ॥३३॥

अनुवाद— अतएव ज्ञान और विज्ञान के द्वारा उत्पन्न होने वाले इस मनुष्य शरीर को प्राप्त करके ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तस्माद्विवेकिनामिदमेव युक्तमित्याह-तस्मादिति। ज्ञानविज्ञानयोः संभवो यस्मिंस्तमिमं नरदेहम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

अतएव विवेकी पुरुष को यही चाहिए कि जिसमें ज्ञान और विज्ञान का होना सम्भव है, अर्थात् जिसमें ज्ञान विज्ञान उत्पन्न हो सकता है उस मनुष्य के शरीर को प्राप्त करके ॥३३॥

गुणसङ्गं विनिर्धूय मां भजन्तु विचक्षणाः। निःसङ्गो मां भजेद्विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रियः ॥३४॥

अन्वयः— हे विचक्षणाः गुणसङ्गं विनिर्धूय मां भजन्तु। अप्रमतः जितेन्द्रियः निः सङ्गः मां भजेत् ॥३४॥

अनुवाद— हे विवेकशील पुरुषों आप सभी गुणों की आसक्ति का परित्याग करके मेरा ही भजन करें। सदा सावधान रहने वाले तथा जितेन्द्रिय पुरुष को ही अनासक्त होकर ही मेरा भजन करना चाहिए ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

भजनप्रकारमाह-निःसङ्ग इति सार्धेन ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

निःसङ्गः इत्यादि डेढ श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् भजन किस प्रकार से करना चाहिए इस बात को बतलाते हैं ॥३४॥

रजस्तमश्चाभिजयेत्सत्त्वसंसेवया मुनिः। सत्त्वं चाभिजयेद्युक्तो नैरपेक्ष्येण शान्तधीः ॥३५॥

अन्वयः— मुनिः सत्त्व संसेवया रजः तमः च अभिजयेत् युक्तः शान्तधीः नैरपेक्ष्येण सत्त्वं च अभिजयेत् ॥३५॥

अनुवाद— सत्त्व गुणका अच्छी तरह सेवन करके उपासक को रजोगुण और तमोगुण पर विजय प्राप्त कर लेना चाहिए और योग की युक्तियों के द्वारा चित्त की वृत्तियों को शान्त करके, सत्त्वगुण पर भी विजय प्राप्त कर लेना चाहिए ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

सत्त्वसं सेवया 'सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान्सत्त्वविवृद्धये' इति प्रागुक्तया । नैरपेक्ष्येणोपशमात्मकेन सत्त्वेनैव ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् पहले यह कह चुके हैं कि सत्त्वगुण की समृद्धि के लिए सात्त्विक पदार्थों का ही सेवन करना चाहिए। इस बात को सत्वसंसेवया पद के द्वारा बतलाया गया है । नैरपेक्ष्येण पद का अभिप्राय है कि उपशमात्मक अन्त:करण के द्वारा ही ।।३५।।

संपद्यते गुणैर्मुक्तो जीवो जीवं विहाय माम् । जीवो जीवविनिर्मुक्तो गुणैश्चाशयसंभवैः ।।
मयैव ब्रह्मणा पूर्णो न बहिर्नान्तरश्चरेत् ।।३६।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे पञ्चविंशोऽध्यायः ।।२५।।

अन्वयः— गुणैः मुक्तो जीवः जीवं विहाय माम् संपद्यते । जीव विनिर्मुक्तः जीवः आशय संभवैः गुणैः च विनिर्मुक्तः जीवः मयैव ब्रह्मणा पूर्णः न बहिः नान्तरः चरेत् ।।३६।।

अनुवाद— इस तरह गुणों से मुक्त जीव अपने जीवभाव को छोड़ देता है, और मुझको प्राप्त कर लेता है । जीव लिङ्ग शरीर रूपी अपनी उपाधि जीवत्व से तथा एवम् अन्तःकरण में उदित होने वाली सत्त्वादि गुणों की वृत्तियों से मुक्त होकर मुझ ब्रह्म की अनुभूति से एकत्व दर्शन से पूर्ण हो जाता है और उसके बाद वह बाह्य एवं आन्तरिक किसी भी विषय में नहीं जाता है ।।३६।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के भगवान् श्रीकृष्ण एवं उद्धव के संवाद रूप पच्चीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

एवं च सति मां प्राप्नोतीत्याह-संपद्यत इति । जीवं जीवत्वकारणं लिङ्गशरीरम् । मां प्राप्तस्य न पुनः संसार इत्याह-जीव इति । न बहिर्विषयभोगेन नान्तरस्तत्स्मरणेन ।।३६।। गुणकृतामनुसंसरणप्रथामजितपुण्यकथाकथनादिभिः । धुनुत भक्तिरसेन विवेकिनो न हि पुनः सुलभं जनुरीदृशम् ।।१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

सम्पद्यते० इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् ने कहा है कि इस तरह से जीव मुझको प्राप्त कर लेता है । जीवम् अर्थात् जीवत्व का कारण लिङ्ग शरीर **जीवः इत्यादि** श्लोक के उत्तरार्ध से बतलाया गया है मुझको (श्रीभगवान् को) प्राप्त कर लेने वाले जीव को फिर इस संसार में नहीं आना पड़ता है । **न बहि** अर्थात् बाह्य विषयों के भोग के द्वारा, **नान्तरः** अर्थात् उन विषयों के स्मरण के द्वारा ।।३६।।

गुणकृताम्० इत्यादि हे विवेकी पुरुषों सत्त्वादि गुणों के कारण इस संसार में संसरण करने की परम्परा को श्रीभगवान् की पवित्र कथाओं के कीर्तन श्रवण इत्यादि के द्वारा भक्तिरस के प्रवाह में बहा दें फिर इस प्रकार का मनुष्य जन्म मिलना आसान नहीं है ।।१।।

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के पचीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२५।।

* * *

छब्बीसवाँ अध्याय

पुरुरवा की वैराग्योक्ति

श्रीभगवानुवाच

मल्लक्षणमिमं कायं लब्ध्वा मद्धर्म आस्थितः । आनन्दं परमात्मानमात्मस्थं समुपैति माम् ॥१॥

अन्वयः— मल्लक्षणम् इमं कायं लब्ध्वा मद्धर्मे आस्थितः आत्मस्थं आनन्दं परमात्मानम् माम् समुपैति ॥१॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा

अनुवाद— यह मनुष्य शरीर मेरे स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति का मुख्य साधन है । इसे प्राप्त करके जो मनुष्य सच्चे प्रेम से मेरी भक्ति करता है वह अपने अन्त:करण में स्थित मुझको प्राप्त कर लेता है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षड्विंशे योगनिष्ठाया विघातो दुष्टसङ्गतः । साधुसङ्गेन तन्निष्ठापराकाष्ठेति वर्ण्यते ॥१॥ योगिनो योगविभ्रंशः सङ्गतः संभवेदिति । सर्वथातन्निवृत्त्यर्थमैलगीतं वितन्यते ॥२॥ 'निःसङ्गो मां भजेद्विद्वानप्रमत्तो जितेन्द्रियः' इत्युक्तं, तत्र विपक्षेऽनर्थं कथयिष्यन् जीवन्मुक्तस्यापि तर्हि सङ्गो दुर्वार इत्यनर्थः स्यादित्याशङ्क्योक्तानुवादपूर्वकं परिहरति सार्धाभ्याम्-मल्लक्षणं मत्स्वरूपं लक्ष्यते येन तमिमं नरदेहं लब्ध्वा मद्धर्मे भक्तिलक्षणे आस्थितः सन्नात्मस्थमात्मन्येव नियन्तृत्वेन स्थितं परमानन्दरूपमात्मानं मां समुपैति सम्यक्प्राप्नोति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

छबीसवें अध्याय में यह बतलाया गया है कि दुष्टों की सङ्गति से योगनिष्ठा का **विघात** (विनाश) हो जाता है तथा सन्त पुरुषों की सङ्गति से योगनिष्ठा अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है ॥१॥ आसक्ति के कारण योगियों के योग का विभ्रंश हो जाता है । आसक्ति की पूर्ण रूप से निवृत्ति के लिए ऐलगीत 'पुरुरवा की वैराग्योक्ति का वर्णन किया जाता है । पीछे के अध्याय में कहा जा चुका है ब्राह्मण को चाहिए वह अनासक्त होकर मेरा भजन करे।' और आसक्ति के द्वारा अनर्थ होता है इस बात को कहने के लिए मुक्त जीव की सङ्गति अवश्य होगी, इस प्रकार से आशङ्का करके कहते हैं उपर्युक्त वाक्यों का अनुवाद करके उसका परिहार डेढ श्लोक से करते हैं । जिसके द्वारा मेरे स्वरूप का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है ऐसे मनुष्य के शरीर को प्राप्त करके जो मनुष्य मेरी भक्ति करता है, वह अपने अन्त:करण में विद्यमान मुझ परमात्मा को पूर्ण रूप से प्राप्त कर लेता है ॥१॥

गुणमय्या जीवयोन्या विमुक्तो ज्ञाननिष्ठया । गुणेषु मायामात्रेषु दृश्यमानेष्ववस्तुतः ॥
वर्तमानोऽपि न पुमान्युज्यते वस्तुभिर्गुणैः ॥२॥

अन्वयः— गुणमय्या जीवयोन्या ज्ञाननिष्ठया विमुक्तः मायामात्रेषु गुणेषु दृश्यमानेषु वर्तमानः अपि पुमान् अवस्तुतः अवस्तुभिः गुणैः न युज्यते ॥२॥

अनुवाद— जीवों की सारी योनियाँ त्रिगुणमय हैं, ज्ञाननिष्ठा के द्वारा मनुष्य उनसे सदा के लिए मुक्त हो जाता है । सत्त्व रजतम ये दिखायी देने वाले गुण वास्तविक नहीं माया मात्र है । ज्ञान हो जाने के पश्चात् मनुष्य उनके बीच रहने पर भी उनसे बँधता नहीं है । इसका कारण है कि उन गुणों की वास्तविक सत्ता ही नहीं है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

न चैवंभूतस्य विषयसङ्गो नामास्तीत्याह-गुणमय्येति । गुणमयी या जीवयोनिर्जीवोपाधिस्तया विमुक्तो गुणेषु वर्तमानोऽपि तैर्न युज्यते सङ्गं न प्राप्नोति । अत्र हेतुः-अवस्तुभिः । नन्ववस्तुभिरप्यन्ये युज्यमाना दृश्यन्ते तत्राह-अवस्तुत्वेन दृश्यमानेषु॥२॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के व्यक्ति की विषयों में आसक्ति नहीं हो सकती है। इस पर भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं जीवों की योनि अर्थात् जीव की उपाधि जो लिङ्गशरीर है वह त्रिगुणात्मक है। उससे रहित पुरुष ज्ञानी होने के कारण गुणों में आसक्त नहीं होता है। उसका कारण है कि वे सब वास्तविक नहीं मिथ्या हैं। यदि कहें कि उन सभी वस्तुओं के अवास्तविक होने पर भी उन सबों के बन्धन में दूसरे लोग तो पड़ जाते हैं। इस पर श्रीभगवान् ने कहा कि अवास्तविक होने पर भी वे दृश्य हैं इसलिए अज्ञानी जीव उन सबों के बन्धन में पड़ जाते हैं ॥२॥

सङ्गं न कुर्यादसतां शिश्नोदरतृपां क्वचित्। तस्यानुगस्तमस्यन्धे पतत्यन्धानुगान्धवत् ॥३॥

अन्वयः— असतां शिश्नोदरतृपां क्वचित् सङ्गम् न कुर्यात् तस्यानुगः अधानुगान्धवत् अन्धे तमसि पतति ॥३॥

अनुवाद— सामान्य लोगों को इस पर ध्यान रखना चाहिए कि जो लोग विषयों को सेवन और उदर पोषण में लगे हुए हैं उन असत् पुरुषों की सङ्गति कभी न करें। उनका अनुगमन करने वाले पुरुष की वही गति होती है जो अन्धे पुरुष के पीछे चलने वाले की होती है। वे लोग घोर अज्ञानान्धकार में भटकते रहते हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तथापि सङ्गं वर्जयेदित्याह-सङ्गमिति। असतां लक्षणमाह-शिश्नोदरे तर्पयन्तीति शिश्नोदरतृपस्तेषां क्वचित्कदाचिदपि, आस्तां तावद्बहूनां सङ्गः, किंतु तस्यैकस्याप्यनुगोऽनुवर्ती अन्धमनुगच्छति योऽन्धस्तद्वत् ॥३॥

भाव प्रकाशिका

फिर भी सङ्ग नहीं करना चाहिए इस बात को श्रीभगवान् सङ्गं न कुर्यात् इत्यादि श्लोक से कहे हैं। असत् पुरुषों का लक्षण बतलाते हुए श्रीभगवान् ने कहा जो विषय भोग परायण हैं वे ही असत् पुरुष हैं। ऐसे लोगों की सङ्गति कभी नहीं करनी चाहिए। संसार में तो बहुत से लोगों की सङ्गति होती है किन्तु उन सबों में से यदि एक भी असत् पुरुष होगा तो उसकी सङ्गति करने वालें को तो उसी तरह गति होती है, जिस तरह अन्धे के पीछे चलने वाले की होती है ॥३॥

ऐलः सम्राडिमां गाथामगायत बृहच्छ्रवाः। उर्वशीविरहान्मुह्यन्निर्विण्णः शोकसंयमे ॥४॥

अन्वयः— उर्वशी विरहात् मुह्यनिर्विण्ण शोक संयमे बृहच्छ्रवा सम्राट् ऐलः इमांगाथाम् अगायत ॥४॥

अनुवाद— उद्धवजी पहले तो चक्रवर्ती सम्राट् परम यशस्वी इला के पुत्र पुरुरवा उर्वशी के वियोग में बेसुध हो गया था, किन्तु बाद में जब उसका शोक समाप्त हो गया तो उसे संसार से वैराग्य हो गया उन्होंने इस गाथा को गाया ॥४॥

भावार्थ दीपिका

अत्रेतिहासमाह-ऐलः पुरूरवाः। सम्राट् चक्रवर्ती। बृहच्छ्रवः कीर्तिर्यस्य सः। उर्वशीविरहात्प्रथमं मुह्यन् पश्चात्कुरुक्षेत्रे तां समागम्य गन्धर्वदत्तेनाग्निना देवानिष्ट्वा पुनरुर्वशीलोकं प्राप्य शोकसंयमे शोकापगमे सति ततो निर्विण्णः सन्निमां गाथामगायतेति नवमस्कन्धानुसारेण द्रष्टव्यम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

इस विषय में भगवान् श्रीकृष्ण इतिहास को उपन्यस्त करते हैं। इला का पुत्र चक्रवर्ती सम्राट परम यशस्वी था। पहले तो उर्वशी के विरह में मोहित होकर पागल हो गया था। उसके पश्चात् कुरुक्षेत्र में जाकर गन्धर्वों के द्वारा समागम करके, गन्धर्वों के द्वारा प्रदत्त अग्नि से देवताओं का यजन करके तथा उर्वशी के लोक में जाकर जब उसका शोक दूर हो गया तो वह संसार से विरक्त हो गया और उसने इस गाथा को गाया। इस बात को नवें स्कन्ध में वर्णित पुरुरवोपाख्यान के अनुसार जानना चाहिए ॥४॥

त्यक्त्वात्मानं व्रजन्तीं तां नग्न उन्मत्तवन्नृपः । विलपन्नन्वगाज्जाये घोरे तिष्ठेति विक्लवः ॥५॥

अन्वयः— आत्मानं त्यक्त्वा व्रजन्तीं तां उन्मत्तवत् नग्नः नृपः व्रजन्तीं विक्लवः जाये घोरे तिष्ठ इति विलपन अन्वगात्॥५॥

अनुवाद— अपने को (राजा पुरुरवा को) छोड़कर जाती हुई पागल के समान नङ्गे ही राजा पुरुरवा विलाप करता हुआ उसके पीछे दौड़ने लगा । व्याकुल राजा कह रहा था कि ऐ निष्ठुर हृदय वाली देवी थोड़ी देर ठहर जा भागो मत ॥५॥

भावार्थ दीपिका

प्राक्तनीं मोहावस्थामाह-त्यक्त्वेति । आत्मानं राजानं त्यक्त्वा । अथवा शय्यायामात्मानं त्यक्त्वा व्रजन्तीम् । घोरे तिष्ठेति 'हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु । न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन्परतरे च नाहन्' इत्येवं मन्त्रैर्विलपन् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

वैराग्य होने से पहले की मोहावस्था का वर्णन करते हैं भगवान् ! आत्मा अर्थात् राजा पुरुरुवा को छोड़ कर जाती हुई अथवा शय्या पर राजा को छोड़कर जाती हुई उर्वशी के पीछे 'हये जाये जाये० इत्यादि' मन्त्र के अनुसार विलाप करते हुए । मन्त्र का अर्थ है कि मन से घोर उर्वशी ठहरो । हम दोनों एक साथ मिलकर प्रेमालाप करते थे। हम दोनों का प्रेमालाप निन्दित नहीं हैं । हे प्रेम करने वाली ! हम लोगों की बातें नष्ट नहीं हुई हैं ॥५॥

कामानतृप्तोऽनुजुषन्क्षुल्लकान्वर्षयामिनीः । न वेद यान्तीर्नायान्तीरुर्वश्याकृष्टचेतनः ॥६॥

अन्वयः— उर्वश्याकृष्ट चेतनः अतृप्तः क्षुल्लकान् कामान् जुषन् वर्षयामिनीः न यान्तीः आयान्तीः वेद ॥६॥

अनुवाद— राजा पुरुरवा का चित्त उर्वशी ने आकृष्ट कर लिया था । उनको अभी तृप्ति नहीं हुई थी । वे विषयों के सेवन में इस तरह संलग्न थे कि उनको वर्षो की रात्रियाँ न तो जाती हुई ज्ञात हुई और न आती हुई ज्ञात हुई ॥६॥

भावार्थ दीपिका

वैक्लव्ये कारणमाह-कामानिति । वर्षाणां यामिनी रात्रीर्यान्तीरपयान्तीः अयान्तीरागामिनीः । उर्वश्या आकृष्टा चेतना यस्य सः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

राजा की विकलता का कारण बतलाते हुए श्रीभगवान् बतलाये कि राजा के चित्त को उर्वशी ने आकृष्ट कर लिया था । भोगों से अतृप्त राजा को वर्षों की रात्रियाँ न तो जाती हुई और न आती हुई मालुम पड़ी ॥६॥

ऐल उवाच

अहो मे मोहविस्तारः कामकश्मलचेतसः । देव्या गृहीतकण्ठस्य नायुःखण्डा इमे स्मृताः ॥७॥

अन्वयः— अहो मे मोहविस्तार कामकश्मलचेतसः देव्या गृहीतकण्ठस्य इमे आयुः खण्डाः न स्मृताः ॥७॥

राजा पुरुरवा ने कहा

अनुवाद— काम की वासना से कलुषित चित्त वाले मेरे मोह के विस्तार को तो देखो, देवी उर्वशी ने मेरा ऐसे गला पकड़ा कि मैंने अपनी आयु के बहुत बड़े खण्ड को गवाँ दिया और मुझको इसका पता भी नहीं चला॥७॥

भावार्थ दीपिका

तस्य गन्धर्वलोके प्राप्तस्य बहुकालमुर्वशीसंभोगानन्तरं निर्विण्णस्य गाथामाह अष्टादशभिः । तत्राष्टभिरनुतापः प्रपञ्च्यते-अहो इति । यतो मया इमे अहोरात्ररूपा आयुःखण्डा न स्मृताः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

राजा पुरुरवा को गन्धर्व लोक में प्राप्त बहुत समय तक उर्वशी के सम्भोग के पश्चात् वैराग्य प्राप्त राजा ने अठारह श्लोकों में गाथा को गाया। उसमें आठ श्लोकों में राजा को होने वाले पश्चात्ताप का वर्णन **अहो० इत्यादि** श्लोक से करते हैं। अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि मैंने दिन और रात्रि रूप अपनी आयु का ख्याल नहीं किया ॥७॥

नाहं वेदाभिनिर्मुक्तः सूर्यो वाभ्युदितोऽमुया । मुषितो वर्षपूगानां बताहानि गतान्युत ॥८॥

अन्वयः— अमूयामुषितः अहम् सूर्यः अभिनिर्मुक्तः अभ्युदितः वा न वेद बत वर्षपूगानां अहानि गतानि उत ॥८॥

अनुवाद— इस उर्वशी के द्वारा मोहित हुआ मैं उर्वशी के साथ रमण करते हुए मेरे अनेक वर्षों के दिन समूह बीत गये मुझे इस बात का पता भी नहीं चला कि कब सूर्य उदित हुआ और कब डूब गया। बत यह अव्यय खेदार्थक है, और उत यह अप्यर्थक है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-नाहमिति। अभिनिर्मुक्तो मयि रममाणेऽस्तं गतोऽभ्युदितो वा सूर्य इति। अमुया उर्वश्या वञ्चितः। बत खेदे। उतापि। वर्षपूगानामपि गतान्यहानि न वेदेति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

नाहम् इत्यादि श्लोक से पुरुरवा ने सन्ताप करते हुए कहा है कि उर्वशी के साथ रमण करते हुए मुझे इस बात का पता नहीं चला कि सूर्य कब अस्त हुआ और कब उदित हुआ इस तरह से उर्वशी ने मुझे ठगा। इस तरह अनेक वर्षों के दिन बीत गये। बत अव्यय खेदार्थक है और उत अप्यर्थक है ॥८॥

अहो मे आत्मसंमोहो येनात्मा योषितां कृतः । क्रीडामृगश्चक्रवर्ती नरदेवशिखामणिः ॥९॥

अन्वयः— अहो मे आत्मसंमोह येन नरदेवशिखामणिः चक्रवर्ती आत्मा योषितां क्रीडामृगः कृतः ॥९॥

अनुवाद— आश्चर्य है मेरे मन के सम्मोह का कि उसने नरदेव शिखामणि चक्रवर्ती सम्राट् मुझ पुरुरवा को स्त्रियों का क्रीडा मृग बना दिया ॥९॥

भावार्थ दीपिका

येन संमोहेन। आत्मा देहः क्रीडामृगवदधीनः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

येन अर्थात् जिस अज्ञान ने, आत्मा अर्थात् शरीर क्रीडमृग के समान स्त्रियों का वशवर्ती बना दिया ॥९॥

सपरिच्छदमात्मानं हित्वा तृणमिवेश्वरम् । यान्तीं स्त्रियं चान्वगमं नग्न उन्मत्तवद्रुदन् ॥१०॥

अन्वयः— सपरिच्छदम् ईश्वरम् आत्मानम् तृणम् इव हित्वा यान्तीम् स्त्रियम् नग्नः उन्मत्तवत् रुदन् अन्वगमम्॥१०॥

अनुवाद— राज्यादि सहित प्रजाओं के नियामक चक्रवर्ती सम्राट मुझ पुरुरवा को तृण के समान त्याग कर जाती हुई उर्वर्शी का मैंने नङ्ग घडङ्ग पागल के समान रोता हुआ उसके पीछे दौड़ गया ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

ननु प्रणयकुपिताया अनुनयार्थमधीनता युक्तैव, सत्यम्, न त्वत्र तदस्तीत्याह सपरिच्छदं राज्यादिसहितमैश्वरं चक्रवर्तिनं तृणमिव त्यक्त्वा यान्तीमप्यन्वगममनुगतोऽस्मि ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहो कि प्रणयकुपिता को मनाने के लिए उसकी अधीनता उचित ही है, तो ठीक है किन्तु ऐसी भी बात नहीं है। राजादि के साथ प्रजाओं के नियामक चक्रवर्ती सम्राट् जाती हुई उसके पीछे मैंने उसका अनुगमन किया ॥१०॥

कुतस्तस्यानुभावः स्यात्तेज ईशत्वमेव वा । योऽन्वगच्छं स्त्रियं यान्तीं खरवत्पादताडितः ॥११॥

अन्वयः— खरवत्पादताडितः यान्तीं स्त्रियं यः अन्वगछं तस्यानुभावः तेजः ईशत्वमेव वा कुतः स्यात् ॥११॥

अनुवाद— गधे के समान दुलत्तियाँ खाकर भी जाती हुई उर्वशी का जो मैंने अनुगमन किया तो फिर मेरा प्रभाव मेरा तेज अथवा मेरा नियामकत्व कहाँ रहा ॥११॥

भावार्थ दीपिका

किंच, मम प्रभावाद्यभिमानो वृथैवेत्याह-कुतस्तस्य मे तेजो बलम् । खरो यथा पादताडितोऽपि खरीमनुगच्छति तद्वत्॥११॥

भाव प्रकाशिका

कुतः इत्यादि श्लोक से कहा गया है कि गधी की दुलत्तियाँ खाकर भी उसका अनुगमन करने वाले गधे के समान मेरा बल इत्यादि कहाँ रहा ? अतएव अपने प्रभाव का मेरा अभिमान व्यर्थ ही है ॥११॥

किं विद्यया किं तपसा किं त्यागेन श्रुतेन वा । किं विविक्तेन मौनेन स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम् ॥१२॥

अन्वयः— यस्य मनः स्त्रीभिः हृतम् तस्य विद्यया, तपसा, त्यागेन, श्रुतेनवाकिम् ॥१२॥

अनुवाद— जिसके मन को स्त्रियों ने अपने वश में कर लिया है उसकी विद्या, तपस्या, त्याग और शास्त्र ज्ञान से कौन सा लाभ हुआ ?॥१२॥

भावार्थ दीपिका

एवंभूतस्य सर्वं साधनं व्यर्थमित्याह-किमिति । त्यागेन संन्यासेन । विविक्तेन एकान्तसेवया । मौनेन वाङ्नियमेन॥१२॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के मनुष्य के सभी साधन व्यर्थ हैं इस बात को **किं विद्यया इत्यादि** श्लोक से कहा गया है त्यागेन अर्थात् संन्यास के द्वारा, विविक्तेन अर्थात् एकान्त सेवन के द्वारा मौनेन अर्थात् मौन के द्वारा ॥१२॥

स्वार्थस्याकोविदं धिङ्मां मूर्खं पण्डितमानिनम् । योऽहमीश्वरतां प्राप्य स्त्रीभिर्गोखरवज्जितः ॥१३॥

अन्वयः— स्वार्थस्य अकोविदं पण्डितमानिनं मां धिक् यः अहम् ईश्वरतांप्राप्य गोखरवत् स्त्रीभिः जितः ॥१३॥

अनुवाद— अपने स्वार्थ को भी नहीं समझने वाले तथा अपने को पण्डित मानने वाले मुझको धिकार है क्योंकि मैं चक्रवर्ती सम्राट होकर भी गधे और सांड़ के समान स्त्री ने मुझे अपने वश में कर लिया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अनुतप्तः सन्नात्मानं निन्दति द्वाभ्याम् । स्वार्थस्येति । अकोविदमज्ञातारम् । गोखरवत् गौरिव खर इवेति ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

पश्चात्ताप करते हुए पुरुरवा अपने आप की निन्दा **स्वार्थस्य० इत्यादि** दो श्लोक से करते हैं ॥१३॥

सेवतो वर्षपूगान्मे उर्वश्या अधरासवम् । न तृप्यत्यात्मभूः कामो वह्निराहुतिभिर्यथा ॥१४॥

अन्वयः— उर्वश्याः अधरासवम् वर्षपूगान् सेवतो मे आत्मभूः कामः आहुतिभिः वह्निर्यथा न तृप्यति ॥१४॥

अनुवाद— उर्वशी के ओष्ठों की मदिरा का सेवन करते हुए मेरे कई वर्ष बीत गये फिर भी मेरी कामवासना उसी तरह तृप्त नहीं होती है जिस तरह आहुतियों के द्वारा अग्नि की तृप्ति नहीं होती है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अधरासवं सेवमानस्यात्मभूर्मनसिजः पुनःपुनरुद्भवन् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

अधरो की मदिरा का सेवन करने वाले मेरे मन में बार-बार उत्पन्न होने वाला कामदेव तृप्त नहीं होता है ।।१४।।

पुंश्चल्यापहृतं चित्तं को न्वन्यो मोचितुं प्रभुः । आत्मारामेश्वरमृते भगवन्तमधोक्षजम् ।।१५।।

अन्वयः— पुंश्चल्या मे चित्तं अपहृतम् आत्मारामेश्वरम् भगवन्तम् अधोक्षजमृते को न अन्यो मोचितुं प्रभुः ।।१५।।

अनुवाद— उस कुलटा ने मेरे चित्त को चुरा लिया अब आत्माराम महापुरुषों के स्वामी भगवान् कमलनयन को छोड़कर दूसरा ऐसा कौन है ? जो मुझको उसके चङ्गुल से मुक्त कर सके ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

एवमष्टभिर्निर्वेदो निरूपितः, इदानीं तस्य विवेकमाह दशभिः-पुंश्चल्येति । अयं भावः-कर्मभिर्देवानिष्ट्वा दुःखमेव प्राप्तोस्मि, अतः परमेश्वरमेव भजेयमिति ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह आठ श्लोकों के द्वारा पश्चात्ताप का निरूपण करके अब उस पुरुरवा के विवेक का दस श्लोकों द्वारा निरूपण पुंश्चाल्या इत्यादि से करते हैं कहने का भाव है कि यज्ञादि कर्मों द्वारा देवताओं की आराधना करके मैंने दुःखों को ही प्राप्त किया अतएव मैं श्रीभगवान् की ही आराधना करूँ ।।१५।।

बोधितस्यापि देव्या मे सूक्तवाक्येन दुर्मतेः । मनोगतो महामोहो नापयात्यजितात्मनः ।।१६।।

अन्वयः— देव्या सूक्तवाक्येन बोधितस्यापि मे दुर्मतेः मनोगतो महामोहः अजितात्मनः न अपयाति ।।१६।।

अनुवाद— उर्वशी ने तो वैदिक वाक्य के माध्यम से मुझको समझाया ही था किन्तु मेरी बुद्धि मारी गयी। मेरी इन्द्रियाँ वश में ही नहीं अतएव मेरे मन का मोह मिटता ही नहीं है ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

परमेश्वरप्रसादं बिना देवैरूपदिष्टादपि वेदवाक्यान्मोहो न निवर्तत इत्याह-बोधितस्यापीति । देव्या उर्वश्या सूक्तवाक्येन यथार्थवचनेन,-'पुरुरवो मा मृथा मा प्रतप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन् । न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता' इत्यनेन ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

परमात्मा की कृपा के बिना देवताओं द्वारा वेद वाक्यों से उपदेश किए जाने पर भी अज्ञान दूर नहीं होता है, इस बात को **बोधितस्यापि इत्यादि** श्लोक द्वारा कहा गया है । देवी उर्वशी ने यथार्थ वाक्य से कहा **पुरुरवो मामृथा० इत्यादि** अर्थात् हे पुरुरवा तुम मरो मत, मेरे विरह में संतप्त मत होओ, इन्द्रिय रूपी वृक तुमको खा न जायँ तुमको स्त्रियों पर विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि स्त्रियों का हृदय कुत्तों के समान नवीन-नवीन पुरुषों को प्राप्त करना चाहता है ।।१६।।

किमेतया नोऽपकृतं रज्वा वा सर्पचेतसः । रज्जुस्वरूपाविदुषो योऽहं यदजितेन्द्रियः ।।१७।।

अन्वयः— रज्जुस्वरूपाविदुषः रज्वा सर्पचेतसः किम् एतया नोपकृतम् योऽहम् अजितेन्द्रियः ।।१७।।

अनुवाद— जो रस्सी के स्वरूप को जाने बिना ही उसमें सर्प का भ्रम करता है और दुःखी होता है तो रस्सी ने उसका क्या बिगाड़ा है, इस उर्वशी ने मेरा क्या बिगाड़ा है ? क्योंकि मैं ही स्वयम् अपराधी हूँ ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

पूर्वं पुंश्चल्यापहृतं चित्तमित्यादिना तस्या अपकरोऽनुस्मृतः, इदानीं ममैवायमपराध इत्याह-किमेतयेति । नोऽस्माकं

कामिनामेतया किमपकृतम्, न किंचिदपि। यथा रज्जुस्वरूपाविदुषो रज्जुद्रष्टुः पुंसस्तस्या सर्पकल्पनया खिद्यतोऽपि रज्ज्वा किमपि नापकृतं तद्वत्। यद्यस्माद्योऽहमेवंभूतः त एवाजितेन्द्रियत्वादपराधीत्यर्थः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

इससे पहले के श्लोक में कुलटा ने मेरे चित्त को चुरा लिया यह उर्वशी के द्वारा किए गये अपकार का स्मरण पुरुरवा ने किया, इस श्लोक में पुरुरवा कहता है कि अपराधी तो मैं ही हूँ हम सभी पुरुषों का इस उर्वशी ने कौन सा अपराध किया है ? कोई नहीं। जैसे रस्सी के स्वरूप को नहीं जानने वाला पुरुष रस्सी को देखकर उसमें सर्प की कल्पना करता है और दुःखी होता है उसी तरह चूकि मैं अजितेन्द्रिय हूँ इसलिए अपराधी तो मैं हूँ ।।१७।।

क्वायं मलीमसः कायो दौर्गन्ध्याद्यात्मकोऽशुचि। क्व गुणाः सौमनस्याद्या ह्यध्यासोऽविद्यया कृतः।।१८।।

अन्वयः— क्वायं मलीमसः कायः दौर्गन्ध्याद्यात्मकः अशुचिः, क्व गुणाः सौमनस्पाद्याः अध्यासः हि अविद्या कृतः।।१८।।

अनुवाद— कहाँ तो मैला कुचैला शरीर जो दुर्गन्ध और अपवित्रता से भरा हुआ है, और कहाँ तो सुकुमारता, पवित्रता, सुगन्ध आदि पुष्पोचित गुण किन्तु मैंने अज्ञान वशात् असुन्दर में सुन्दरता का आरोप कर लिया ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

ननु तथापि सैव सौगन्ध्यप्रेमादिगुणैः संमोहमूलमित्याशङ्क्य, तेऽपि स्वमतिपरिकल्पिता एवेत्याह चतुर्भिः-क्वायमिति। मलीमसोऽतिमलिनः । सुमनसां कुसुमानामिव गन्धसौकुमार्यादिसौमनस्यं शोभनमनोभावो वा ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि फिर भी सौगन्ध तथा प्रेम आदि गुणों के द्वारा वह ही (उर्वशी ही) इस मोह का कारण है, इस तरह से आशङ्का करके पुरुरवा कहता है कि वे भी गुण मेरे ही द्वारा कल्पित हैं, इस बात को वह क्वायम् इत्यादि चार श्लोकों से कहता है। मलीमसः अर्थात् अत्यन्त मलीन, सुमनसाम् अर्थात् पुष्पों के समान गन्ध, सौकुमार्य तथा सौगन्ध्य आदि सुन्दर मनोभाव ।।१८।।

पित्रोः किं स्वं नु भार्यायाः स्वामिनोऽग्नेः श्वगृध्रयोः। किमात्मनः किं सुहृदामिति यो नावसीयते।।१९।।

अन्वयः— पित्रोः स्वं किं, नु भार्यायाः, स्वामिनः वा, अग्नेः वा श्वगृध्रयोः वा आत्मनः वा किं सुहृदाम् इति यः न अवसीयते ।।१९।।

अनुवाद— यह शरीर माता-पिता की सम्पत्ति है क्या ? या पत्नी की सम्पत्ति है ? या स्वामी स्वामी की खरीदी हुई वस्तु है ? अथवा अग्नि का इन्धन है ? अथवा कुत्ते और गीधों का भोजन है, इसको अपना कहे कि सगे संबन्धियो का इस तरह से बहुत सोचने पर भी निश्चय नहीं हो पाता है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

ममत्वमपि तस्मिन्परिकल्पितमेवेत्याह-पित्रोः किं स्वं कायः जनकत्वात्। नु वितर्के। भार्याया वा भोगप्रदत्वात्। अत्रानुपयुक्तमप्येतन्न्यायतुल्यत्वादुक्तम्। स्वामिनो वाऽधीनत्वात्। अग्रेर्वा अन्त्येष्ट्यां तदाहुतित्वात्। श्वगृध्रयोर्वा भक्ष्यत्वात् किं वात्मनः। तत्कृतशुभाशुभागित्वात्। सुहृदां वा उपकारित्वात्। एवं यो न निश्चीयते ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

इस शरीर में ममत्व भी परिकल्पित ही है, इस बात को **पित्रोः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। यह माता-पिता की संपत्ति है, क्योंकि वे इसके जनक है, अथवा यह पत्नी की सम्पत्ति है क्योंकि यह उसके भोग प्रदान करती है। यह उपयुक्त नहीं पर भी यह तुल्य न्याय से कहा गया है। अथवा यह स्वामी का क्योंकि शरीर स्वामी के ही अधीन रहता है। अथवा यह अग्नि का इन्धन क्योंकि अन्त्येष्टि में उसकी आहुति दी जाती है। अथवा कुत्तों एवं

गीधों का भक्ष्य पदार्थ हैं, अथवा यह अपना है क्योंकि शरीर कृत पुण्य पाप का भागी आत्मा ही होता है, अथवा यह मित्रों का उपकारक है ? इस तरह से विचार करने पर कोई निश्चय नहीं होता है ॥१९॥

तस्मिन्कलेवरेऽमेध्ये तुच्छनिष्ठे विषज्जते । अहो सुभद्रं सुनसं सुस्मितं च मुखं स्त्रियः ॥२०॥

अन्वयः— तस्मिन् अमेध्ये तुच्छनिष्ठे कलेवरे विषज्जते अहो सुभद्रं सुनसं, सुस्मितं च मुखं स्त्रियः ॥२०॥

अनुवाद— उपयुक्त प्रकार से वर्णित मलमूत्र से भरे होने के कारण अपवित्र तथा जो इसी लायक है कि इसके सड़ जाने पर कीड़े इसको खाकर विष्ठा कर दें, इस प्रकार के शरीर में लोग आसक्त हो जाते है और कहने लगते है कि उसका मुख कितना सुन्दर है ? इसकी नाक कितनी सुन्दर है और मन्द-मन्द मुस्कान कितनी मनोहर है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तुच्छा कृमिविड्भस्मलक्षणा निष्ठा अन्तो यस्य तस्मिन् काये कलेवरे प्रियत्वेन गृहीते । विषङ्गमेवाह–अहो इति । सुनसं शोभननासिकम् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

जिस शरीर का अन्त कृमि के वीट अथवा भस्म में होता है उस शरीर में प्रियत्व की बुद्धि करने में । शरीर में होने वाले विषङ्ग (आसक्ति के प्रकार) को ही बतलाते हैं । सुनसं अर्थात् सुन्दर नाक वाला ॥२०॥

त्वङ्भांसरुधिरस्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ । विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम् ॥२१॥

अन्वयः— त्वङ्गमांसरुधिर स्नायुमेदोमज्जास्थिसंहतौ विण्मूत्रपूये रमतां कृमीणां कियदन्तरम् ॥२१॥

अनुवाद— त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, मेदा, मज्जा और हड्डियों की तथा मल, मूत्र तथा पीब से भरे हुए शरीर में यदि मनुष्य रमण करता है, तो मल-मूत्र के कीड़ों और उस मनुष्य में क्या अन्तर हैं ?॥२१॥

भावार्थ दीपिका

अतो गुणारोपेण रममाणा मादृशाः कृमितुल्या इत्याह–त्वगादिसंहतौ तत्सङ्घाते देहे । विण्मूत्रादिसंहतौ रमतां कृमीणां वा॥२१॥

भाव प्रकाशिका

अतएव इस अपवित्र शरीर में गुणों का आरोप करके उसमें रमण करने वाले मेरे ही समान लोग कीड़ों के समान है इस बात का **त्वङ्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । चमड़ा मांस आदि की ढेर शरीर में विष्टा मूत्र आदि में रमण करने वाले लोगों और मलमूत्र के कीड़ों में ॥२१॥

अथापि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित् । विषयेन्द्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यथा ॥२२॥

अन्वयः— अथापि अर्थवित् स्त्रीषु स्त्रैणेषु च न उपसज्जेत विषयेन्द्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति अन्यथा न ॥२२॥

अनुवाद— फिर भी विवेकी पुरुष को चाहिए कि स्त्रियों और स्त्री लम्पट पुरुषों का सङ्ग न करे विषय तथा इन्द्रियों का संयोग होने पर ही मन में विकार पैदा होता है अन्यथा विकार का कोई अवसर नहीं है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

यद्यप्येवं वीभत्सिता एव स्त्रियोऽथापि नोपसज्जेतावलोकनादिनापि सङ्गं न कुर्यात्। अर्थविद्विवेकी । अत्र हेतुः-विषयेति॥२२॥

भाव प्रकाशिका

यद्यपि स्त्रियाँ इतना विभत्स हैं अतएव स्त्रियों को देखना भी नहीं चाहिए । स्त्रियों के सङ्ग से बचे । **अर्थ वित्** अर्थात् विवेकी पुरुष । इसका कारण है कि विषय एवं इन्द्रियों के संयोग से ही मन में विकार उत्पन्न होता है ॥२२॥

अदृष्टादश्रुताद्भावान्न भाव उपजायते । असंप्रयुञ्जतः प्राणान् शाम्यति स्तिमितं मनः ॥२३॥

अन्वयः— अदृष्टात् अश्रुतात् भावात् भावः न उपजायते असंप्रयुञ्जतः प्राणान् स्तिमितं मनः शाम्यति ।।२३।।

अनुवाद—जो वस्तु कभी न तो कभी देखी गयी है और न सुनी गयी है, उसके लिए मन में कभी विकार पैदा नहीं होता है जो लोग विषयों के साथ इन्द्रियों का संयोग नहीं होने देते हैं उनका मन अपने आप निश्चल होकर शान्त हो जाता है ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

नन क्वचिन्निमीलितनयनादेरपि मनःक्षोभो दृश्यते, सत्यम्, सोऽपि पूर्वदर्शनादिकं विना न भवतीत्याह-अदृष्टादिति । भावात्पदार्थात् । भावो मनःक्षोभः । अतः प्राणानिन्द्रियाण्यसंप्रयुञ्जतोऽनियच्छतः । स्तिमितं निश्चलं सत् ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि कहीं-कहीं नेत्रों को बन्द किए हुए भी लोगों के मन में क्षोभ देखा जाता है तो यह कथन अर्धसत्य है क्योंकि वह भी क्षोभ विषय को पहले देखे बिना नहीं होता है । इस बात को अदृष्टात् इत्यादि श्लोक से कहा गया है । भावात् अर्थात् पदार्थ से । भावः अर्थात् मनःक्षोभ । अतएव इन्द्रियों का विषयों से संयोग नहीं करने वाले, स्तिमित अर्थात् निश्चल मन शान्त हो जाता है ।।२३।।

तस्मात्सङ्गो न कर्तव्यः स्त्रीषु स्त्रैणेषु चेन्द्रियैः विदुषां चाप्यविश्रब्धः षड्वर्गः किमु मादृशाम् ॥२४॥

अन्वयः— तस्मात् स्त्रीषु स्त्रैणेषु इन्द्रियैः सङ्गःनकर्तव्य विदुषां चापि अविश्रब्धः षड्वर्गः मादृशाम् किमु ।।२४।।

अनुवाद— अतएव वाणी, कान तथा मन आदि इन्द्रियों से भी स्त्रियों और स्त्री लम्पटों का सङ्ग नहीं करना चाहिए । क्योंकि बड़े-बड़े विद्वानों के भी षड्वर्ग (छहो इन्द्रियों) विश्वसनीय नहीं होती हैं, तो मुझ जैसे अज्ञानियों की क्या बात है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

इन्द्रियैः कृत्वा । अविश्रब्धोऽविश्वसनीयः । मादृशामविवेकिनाम् ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

इन्द्रियों से करके । अविश्रब्ध अर्थात् विश्वसनीय, मादृशाम् मुझ जैसे अविवेकियों के ।।२४।।

श्रीभगवानुवाच

एवं प्रगायन्नृपदेवदेवः स उर्वशीलोकमथो विहाय ।
आत्मानमात्मन्यवगम्य मां वै उपारमज्ज्ञानविधूतमोहः ॥२५॥

अन्वयः— सः नृपदेवदेवः एवं प्रगायन् अथो उर्वशी लोकं विहाय आत्मनि आत्मानम् माम् अवगम्य ज्ञानविधूतमोहः उपारमत् ।।२५।।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा

अनुवाद— राजराजेश्वर पुरुरवा के मन में जब इस प्रकार का उद्गार भाव उद्भूत होने लगा तो वे अपने अन्तःकरण में आत्मारूप से मेरा सत्कार कर लिए । ज्ञान के द्वारा उनका अज्ञान विनष्ट हो गया और वे अपने स्वरूप में स्थित हो गये ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

फलितमाह द्वाभ्याम्- एवमिति । नृपेषु देवेषु च दीव्यतीति तथा ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

सम्पूर्ण कथन का सारांश भगवान् श्रीकृष्ण ने दो श्लोकों में बतलाया है राजाओं और देवताओं में क्रीडा करते हैं ॥२५॥

ततो दुःसङ्गमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान् । सन्त एतस्य छिन्दति मनोव्यासङ्गमुक्तिभिः ॥२६॥

अन्वयः— ततः दुःसङ्गम् उत्सृज्य बुद्धिमान सत्सु सज्जेत् सन्तः एतस्य मनोव्यासङ्गम् उक्तिभिः छिन्दन्ति ॥२६॥

अनुवाद— इसलिए बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह दुष्टों के सङ्ग का परित्याग करके सत्पुरुषों का सङ्ग करे सन्त पुरुष अपने उपदेशों द्वारा उसके मन की आसक्ति को विनष्ट कर देते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

उक्तिभिर्हितोपदेशैरिति तीर्थदेवादिसङ्गादपि सत्सङ्गः श्रेयानिति दर्शयति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

उक्तिभिः अर्थात् कल्याणोपदेश के द्वारा तीर्थों के सेवन तथा देतवाओं आदि की आराधना से भी अधिक कल्याणकारी सत्सङ्ग है इस बात को भगवान् बतलाये हैं ॥२६॥

सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः । निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥२७॥

अन्वयः— सन्तः अनपेक्षाः सच्चिताः प्रशान्ताः समदर्शिनः निर्ममाः निरहङ्काराः निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ॥२७॥

अनुवाद— सन्तपुरुषों का लक्षण है कि उनको किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं होती है, उनका मन मुझमें ही लगा रहता है । वे अत्यन्त शान्त होते हैं, वे सबों में समान रूप से सर्वत्र मेरा दर्शन करते हैं । उनके भीतर ममकार का लेश भी नहीं होता है और वे अहङ्कार से रहित होते हैं । वे समस्त द्वन्द्वों से ऊपर उठे रहते हैं । वे किसी भी प्रकार का परिग्रह भी नहीं स्वीकार करते हैं ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

सतां लक्षणमाह-सन्त इति । विशेषणाष्टकस्य यथेष्टं हेतुहेतुमद्भावः ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

सन्तों का लक्षण इस श्लोक में बतलाया गया है । इस श्लोक में सन्त पुरुषों के छह विशेषण है । उन सबों में यथेष्ट रूप से कारण कार्य भाव रूप संबन्ध है ॥२७॥

तेषु नित्यं महाभाग महाभागेषु मत्कथाः । संभवन्ति हिता नृणां जुषतां प्रपुनन्त्यघम् ॥२८॥

अन्वयः— हे महाभाग ! तेषु महाभागेषु नित्यं मत्कथा, नृणां हिताः संभवन्ति जुषतां अघं प्रपुनन्ति ॥२८॥

अनुवाद— हे महाभाग्यवान् उद्धवजी ! वे सन्त पुरुष महाभाग्यवान होते हैं । उनके यहा तो नित्य ही मेरी कथा होती है मेरी कथा मनुष्यों का कल्याण करने वाली है । जो मनुष्य उन कथाओं का सेवन करते हैं उनके समस्त पापों को वह धो डालती हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

न च तेषूपदेशापेक्षा, अपि तु केवलं तत्संनिधिरेव तारयतीत्याह-तेष्विति सप्तभिः ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

उन सत्पुरुषों को उपदेश करने की अपेक्षा भी नहीं होती है उन सन्त पुरुषों का सन्निधान ही इस संसार सागर से पार उतार देता है । इस बात को तेषु नित्यम् इत्यादि सात श्लोकों से कहा गया है ॥२८॥

ता ये शृण्वन्ति गायन्ति ह्यनुमोदन्ति चादृताः । मत्पराः श्रद्दधानाश्च भक्तिं विन्दन्ति ते मयि ॥२९॥

अन्वयः— ताः ये शृण्वन्ति गायन्ति अनुमोदन्ति हि आदृताः मत्पराः श्रद्दधानाश्च मयि ते भक्तिं विदन्ति ॥२९॥

अनुवाद— मेरी उन कथाओं को जो लोग सुनते हैं और सुनकर दूसरों को सुनाते हैं, आदर पूर्वक अनुमोदन करते हैं मेरी भक्ति करते हैं तथा उन कथाओं में श्रद्धा करते हैं, उन लोगों को मेरी भक्ति प्राप्त हो जाती है ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

श्रवणादिभिरेव मत्पराः श्रद्दधानाश्च सन्तो भक्तिं विन्दन्ति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

श्रवण तथा कीर्तन इत्यादि के ही द्वारा जो मेरे भक्त हो जाते है, तथा मेरी कथाओं में श्रद्धा रखते हैं वे लोग मेरी भक्ति प्राप्त कर लेते हैं ॥२९॥

भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यदवशिष्यते । मय्यनन्तगुणे ब्रह्मण्यानन्दानुभवात्मनि ॥३०॥

अन्वयः— अनन्तगुणे ब्रह्मणि, आनन्दानुभवात्मनि मयि भक्तिं लब्धवतः साधोः किमन्यत् अवशिष्यते ॥३०॥

अनुवाद— उद्धवजी मैं अचिन्त्य अनन्त गुणों का आश्रय हूँ मैं साक्षात् परब्रह्म हूँ । मैं केवल आनन्द, केवल अनुभव तथा विशुद्ध आत्मा हूँ, जिसको मेरी भक्ति मिल जाती है, उसको प्राप्त करने के लिए कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह जाता है । वह सन्त पुरुष हो जाता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम् । शीतं भयं तमोऽप्येति साधून्संसेवतस्तथा ॥३१॥

अन्वयः— साधून् संसेवतः यथा भगवन्तं विभावसुम् उपश्रयमाणस्य शीतं भयं तम अत्येति ॥३१॥

अनुवाद— उन साधु पुरुषों की सेवा करने वाले की कर्म जड़ता, संसारमय उसी प्रकार से विनष्ट हो जाते हैं। जिस तरह भगवान् अग्नि शरण स्वीकार करने वाले को ठंढी का भय तथा अन्धकार का भय नहीं होता है॥३१॥

भावार्थ दीपिका

विभावसुमग्निं सेवमानस्य । अप्येति नश्यति । तथा कर्मजाड्यमागामिसंसारभयं तन्मूलज्ञानं च नश्यतीत्यर्थः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

अग्नि की सेवन करने वाले का । अप्येति अर्थात् नष्ट हो जाता है । उसी तरह कर्मों की जड़ता, आगामी संसार का भय तथा उसका कारणभूत अज्ञान नष्ट हो जाता है ॥३१॥

निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम् । सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम् ॥३२॥

अन्वयः— अप्सु मज्जतां दृढा नौरिव घोरे भवाब्धौ निमज्ज्य उन्मज्जतां ब्रह्मविदः शान्ताः सन्तः परमायनम् ॥३२॥

अनुवाद— जिस तरह जल में डूबने वाले लोगों के लिए सुदृढ़ नौका सहारा होती है उसी तरह इस घोर संसार सागर में डूबने और उतराने वाले संसारी जीवों के लिए ब्रह्मज्ञानी, शान्त सन्तजन ही सर्वश्रेष्ठ आश्रय हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

निमज्ज्योन्मज्जतामुच्चावचयोनीर्गच्छताम् । परमायनं परमाश्रयः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

निज्ज्योन्मज्जताम् अर्थात् अच्छी बुरी योनियों में जाने वाले परमायनम् सर्वश्रेष्ठ आश्रय ॥३२॥

अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम् । धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग् बिभ्यतोऽरणम्॥३३॥

अन्वयः— प्राणिनां प्राणः अन्नम् आर्तानां शरणं तु अहम्, प्रेत्य नृणां वित्तम धर्मः अर्वाग्विभ्यतः अरणम् सन्तम्॥३३॥

अनुवाद— जिस तरह प्राणियों के प्राण की रक्षा अन्न से होती है । जैसे दीन दुखियों का रक्षक मैं हूँ, मरकर परलोक में जाने वाले मनुष्यों की एक मात्र पूंजी धर्म है, उसी तरह संसार से भयभीत लोगों के लिए रक्षक सन्तजन हैं ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

किंच, यथान्न मेव प्राणो जीवनम् । अहमेव यथा शरणम् । धर्म एवं यथा प्रेत्य परलोके वित्तम् । तथा सन्त एवार्वाक् संसारपाताद्बिभ्यतः पुंसः अरणं शरणम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

जैसा अन्न होता है वैसा ही जीव होता है । जैसे मैं ही शरण हूँ । मृत्यु के पश्चात् धर्म के अनुसार परलोक में वित्त होता है । जैसे सन्त ही संसारपात से डरने वालों के लिए शरण होते हैं ॥३३॥

सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः । देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च ॥३४॥

अन्वयः— समुत्थितः अर्कः बहि चक्षूंषि, सन्तः चक्षूंषिदिशन्ति सन्तः देवता बान्धवाः सन्त आत्मा अहमेव च॥३४॥

अनुवाद— जिस तरह आकाश में उदित होकर सूर्य लोगों को जगत् तथा अपने को देखने के लिए नेत्र दान करते हैं, वैसे ही सन्त पुरुष अपने को तथा भागवान् को देखने के लिए अन्तदृष्टि प्रदान करते हैं । सन्त अनुग्रह करने वाले देवता हैं, हितैषी सुहृद हैं । प्रियतम आत्मा हैं और सन्त के रूप में मैं ही विद्यमान रहता हूँ ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

किंच, सन्तश्चक्षूंषि सगुणनिर्गुणज्ञानानि । अर्कः पुनः सम्यगुत्थितोऽपि बहिस्तदप्येकमेव चक्षुरित्यर्थः ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

सन्तजन ही सगुण निर्गुण का ज्ञान प्रदान करते है, किन्तु सूर्य तो आकाश में उदित होकर एक ही प्रकार का नेत्र प्रदान करते हैं ॥३४॥

वैतसेनस्ततोऽप्येवमुर्वश्या लोकनिस्पृहः । मुक्तसङ्गो महीमेतामात्मारामश्चचार ह ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे ऐलगीतं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

अन्वयः— ततः वैतसेनः अपि उर्वश्याः लोकनिःस्पृहः मुक्तसङ्गः आत्मारामः एताम् महीम् चचार ह ॥३५॥

अनुवाद— उसके पश्चात् पुरुरवा भी उर्वशी के लोक से निःस्पृह होकर आसक्ति रहित हो गये । वे आत्माराम होकर इस पृथिवी पर विचरण करने लगे ॥३५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के भगवान् श्रीकृष्ण और उद्धव संवाद के अन्तर्गत ऐलगीत नामक छब्बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

अध्यायार्थमुपसंहरति-वैतसेन इति । सुद्युम्नप्रभावेनोमावनं प्रविष्टस्य वीता सेना स्त्रीभावं प्राप्ता यस्य तस्य स्त्रीभावं प्राप्तस्य पुत्रो वैतसेनः पुरूरवाः । एवमुक्तप्रकारेणोर्वश्या लोकात्स्थानादवलोकनाद्वा निस्पृहस्ततोऽपि सत्सङ्गादपि हेतोर्मुक्तसङ्गः सन्नात्मारामो भूत्वा यथेष्टं चचारेति ॥३५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षड्विंशोऽध्यायः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् अध्याय का उपसंहार करते है । सुद्युम्न के उमा वन में प्रवेश करते ही उनकी सेना स्त्री हो गयी और सुद्युम्न भी स्त्री हो गये वे बीतसेन हो गये । वीतसेन के पुत्र वैतसेन पुरुरवा हैं । वे इस प्रकार से उर्वशी के लोक से निःस्पृह हो गये और सत्सङ्ग के द्वारा आत्माराम बनकर पृथिवी पर विचरण करने लगे ।।३५।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के छब्बीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२६।।

* * *

सत्ताइसवाँ अध्याय

क्रिया योग का वर्णन

उद्धव उवाच

क्रियायोगं समाचक्ष्व भवदाराधनं प्रभो । यस्मात्त्वां ये यथार्चन्ति सात्वताः सात्वतर्षभ ॥१॥

अन्वयः— हे सात्वतर्षभ प्रभो क्रियायोगं भवदाराधनं समाचक्ष्व यस्मात् येसात्वताः त्वां यथा अर्चन्ति ॥१॥

श्रीउद्धवजी ने कहा

अनुवाद— हे भक्त वत्सल श्रीकृष्ण प्रभो आपके आराधन रूप क्रियायोग का आप वर्णन करे जिसे जो भक्त जन जिस उद्देश्य से आपकी आराधना किया करते हैं ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तविंशे क्रियायोगः सद्यश्चित्तप्रसादकः । सर्वकामाप्तिहेतुश्च साङ्गः प्रोक्तः समासतः ॥१॥ रागाद्याकुलचित्तानां कुतोऽसङ्गादिसंभवः । इति कृष्णार्चनं भद्रमनुस्मृत्यानुपृच्छति ॥२॥ क्रियायोगमिति । भवदाराधनरूपम् । यस्मादिति कारणाधिष्ठानादिप्रश्नः, सर्वकारकाणां निमित्तत्वस्याविशिष्टत्वात् । यथेति कस्मिन्नधिष्ठानादौ केन प्रकारेणेति प्रश्नः । ये अधिकारिणः। सात्वता भक्ताः॥१॥

भाव प्रकाशिका

सताइसवें अध्याय में शीध्र ही चित्त को प्रसन्न कर देने वाले, सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले साङ्ग क्रियायोग संक्षेप में कहा गया है ॥१॥ राग इत्यादि के कारण जिन संसारी मनुष्यों का चित्त व्याकुल है ऐसे संसारी जीव आसक्ति रहित कैसे हो सकते हैं ? इसीलिए श्रीउद्धवजी श्रीभगवान् से कल्याणकारी क्रियायोग को पूछते हैं।॥२॥ **क्रियायोगम्० इत्यादि** श्लोक से श्रीभगवान् की आराधना रूप यस्मात् पद से कारण तथा अधिष्ठान के विषय में प्रश्न किया गया है । क्योंकि श्रीभगवान् ही सभी कर्ताओं के समान रूप से कारण है । **यथा०** इस पद के द्वारा जिस अधिष्ठान आदि में तथा जिस प्रकार से, भगवद्भक्त अधिकारिगण ॥१॥

एतद्वदन्ति मुनयो मुहुर्निःश्रेयसं नृणाम् । नारदो भगवान्व्यास आचार्योऽङ्गिरसः सुतः ॥२॥

अन्वयः— नारदः भगवान् व्यासः आचार्यः अङ्गिरसः सुतः एतत् नृणाम् मुहुर्निःश्रेयसं वदन्ति ॥२॥

अनुवाद— देवर्षि नारद, भगवान व्यास, आचार्य बृहस्पति इत्यादि बड़े-बड़े मुनिगण इस क्रिया योग को मनुष्यों का सर्वाधिक कल्याणकारी बतलाते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

अस्य पुनर्विशेषतः प्रश्ने कारणमाह चतुर्भिः-एतत्त्वदर्चनं निःश्रेयसकरं वदन्ति । अङ्गिरसः सुतो बृहस्पतिः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

इस क्रियायोग के विषय में श्रीउद्धवजी के विशेष रूप से पूछने का कारण **एतत्० इत्यादि** चार श्लोकों से बतलाते हैं कि आपके इस अर्चना को मनुष्यों का परम कल्याणकारी बतलाते हैं । अङ्गिरसः सुतः अर्थात् आचार्य बृहस्पति ॥२॥

निःसृतं ते मुखाम्भोजाद्यदाह भगवानजः । पुत्रेभ्यो भृगुमुख्येभ्यो देव्यै च भगवान् भवः ॥३॥

अन्वयः— ते मुखम्भोजात् निःसृतं यद् भगवान् अजः भृगुमुख्येभ्यः देव्यै च भगवान् भवः आह ॥३॥

अनुवाद— जिसको आपने अपने मुख कमल से कहा है, उसी को ब्रह्माजी ने अपने भृगु आदि पुत्रों को बतलाया तथा भगवान् शङ्कर पार्वतीजी को उसका उपदेश किए ॥३॥

भावार्थ दीपिका

निःसृतं त्वयोपदिष्टमित्यर्थः । देव्यै पार्वत्यै ॥३॥

भाव प्रकाशिका

निःसृतम् अर्थात् आपके द्वारा उपदिष्ट देव्यै अर्थात् पार्वतीजी को ॥३॥

एतद्वै सर्ववर्णानामाश्रमाणां च संमतम् । श्रेयसामुत्तमं मन्ये स्त्रीशूद्राणां च मानद ॥४॥

अन्वयः— हे मानद ! एतत् सर्ववर्णानाम् सर्वआश्रमाणां च सम्मतम् स्त्री शूद्राणां च उत्तमं श्रेयसां मन्ये ॥४॥

अनुवाद— हे अपने भक्तों का सम्मान बढ़ाने वाले प्रभो इसको सभी वर्णों एवं सभी आश्रमों के भी लिए सम्मत माना जाता है मेरे विचारानुसार यह स्त्रियों तथा शूद्रों के भी लिए सर्वोत्तम कल्याणकारी है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

सर्ववर्णानां त्रैवर्णिकानाम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

सर्ववर्णानाम् अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के ॥४॥

एतत्कमलपत्राक्ष कर्मबन्धविमोचनम् । भक्ताय चानुरक्ताय ब्रूहि विश्वेश्वरेश्वर ॥५॥

अन्वयः— हे कमलपत्राक्ष ! कर्मबन्ध विमोचनम् हे विश्वेश्वरेश्वर भक्ताय अनुरक्ताय च एतत् ब्रूहि ॥५॥

अनुवाद— हे कमलदल के समान मनोज्ञ नेत्रों वाले भगवन् कर्म के बन्धन से मुक्ति प्रदान करने वाले इस क्रियायोग को, हे संसार के समस्त स्वामियों के स्वामिन् आपके प्रेमी भक्त मुझको आप बतलायें ॥५॥

भावार्थ दीपिका

विश्वेश्वरा ये तेषामीश्वरा ॥५॥

भाव प्रकाशिका

विश्वेश्वरेश्वर ! अर्थात् संसार के सभी स्वामियों के स्वामिन् ॥५॥

श्रीभगवानुवाच

न ह्यन्तोऽनन्तपारस्य कर्मकाण्डस्य चोद्धव । संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥६॥

अन्वयः— हे उद्धव अनन्तपारस्य कर्मकाण्डस्य अन्तःनहि यथावत् अनुपूर्वशः संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि ॥६॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे उद्धवजी ! कर्मकाण्ड का कोई भी अन्त नहीं है, अतएव मैं तुझे संक्षेप में ही इसको क्रमानुसार बतलाऊँगा ॥६॥

भावार्थ दीपिका

कर्मकाण्डस्य पूजाविधानस्य । नास्त्यन्तो ग्रन्थत: पारं वाऽनुष्ठानतो यस्य तस्य ॥६॥

भाव प्रकाशिका

कर्मकाण्ड का अर्थात् पूजा के विधान का न तो ग्रन्थ की दृष्टि से अन्त है औन न तो अनुष्ठान की दृष्टि से अन्त है । अतएव यह अनन्त है ॥६॥

वैदिकस्तान्त्रिको मिश्र इति मे त्रिविधो मखः । त्रयाणामीप्सितेनैव विधिना मां समर्चयेत् ॥७॥

अन्वयः— मे मखः त्रिविधः वैदिकः तान्त्रिकः मिश्रः इति, त्रयाणाम् इप्सितेनैव विधिना समाचरेत् ॥७॥

अनुवाद— मेरी पूजा की विधियाँ तीन है, वैदिक, तान्त्रिक और मिश्र, इन तीनों में से भक्तों को जो अनुकूल हो उसी विधि से मेरी आराधना वे करें ॥७॥

भावार्थ दीपिका

वैदिक एव मन्त्रो वैदिकान्येवाङ्गानि च यस्मिन् पुरुषसूक्तादौ स वैदिकः । एवं तान्त्रिकोऽपि मिश्रोऽष्टाक्षरादिः । मखः पूजा ॥७॥

भाव प्रकाशिका

जिसमें वैदिक ही मन्त्र होते है वह वैदिक विधि है । उसके अङ्ग भी वैदिक होते है । पुरुष सूक्त इत्यादि मैं वैदिकत्व है, इसी तरह तान्त्रिक विधि में भी मन्त्र तान्त्रिक होते हैं । अष्टाक्षर आदि से की जाने वाली पूजा मिश्र है । मख: अर्थात् पूजा ॥७॥

यदा स्वनिगमेनोक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः । यथा यजेत मां भक्त्या श्रद्धया तन्निबोध मे ॥८॥

अन्वयः— यदा स्वनिगमेन उक्तं द्विजत्वं प्राप्य पूरुषः मां यदा भक्त्या श्रद्धया वा यथा यजेत ॥८॥

अनुवाद— पहले अपने अधिकारानुसार शास्त्रोक्त विधि से समय पर यज्ञोपवीत संस्कार से संस्कृत होकर द्विजत्व प्राप्त करे फिर श्रद्धा और भक्ति से जिस प्रकार मेरी पूजा करे उसे तुम सुनो ॥८॥

भावार्थ दीपिका

यदा त्रैवर्णिको यजेत तदा विशेषमाह-यदा गर्भाष्टमैकादशद्वादशाब्दादिकाले स्वनिगमेन स्वाधिकारप्रवृत्तेन वेदेनोक्तं द्विजत्वमुपनयनम् ॥८॥

भाव प्रकाशिका

यदि कोई त्रैवर्णिक ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मेरी पूजा करे तो वे उसके विषय विशेष में नियम कहा गया है कि गर्भ के आठवें वर्ष में उसका यज्ञोपवीत संस्कार हो जाना चाहिए ॥८॥

अर्चायां स्वण्डिलेऽग्नौ वा सूर्ये वाप्सु हृदि द्विजे । द्रव्येण भक्तियुक्तोऽर्चेत्स्वगुरुं माममायया ॥९॥

अन्वयः— अर्चाया स्थण्डिले अग्नौ सूर्ये, अप्सु, हृदि द्विजे वा द्रव्येण भक्तियुक्तः स्वगुरुम् माम् अमायया अर्चेत् ॥९॥

अनुवाद— मूर्ति में वेदी पर, अग्नि में, सूर्य में, या जल में, या हृदय या ब्राह्मणों में इनमें से चाहे जिस किसी में, भक्ति-पूर्वक निष्कपट भाव से अपने पिता अथवा गुरु रूप मुझ परमात्मा की पूजा करे ।।९।।

भावार्थ दीपिका

आर्चायां प्रतिमादौ ।।९।।

भाव प्रकाशिका

अर्चायां अर्थात् प्रतिमा आदि में ।।९।।

पूर्वं स्नानं प्रकुर्वीत धौतदन्तोऽङ्गशुद्धये । उभयैरपि च स्नानं मन्त्रैर्मृद्ग्रहणादिना ।।१०।।

अन्वयः— धौतदन्तः अङ्गशुद्धये पूर्वं स्नानं कुर्वीत उभयैः अपि मन्त्रैः मृद्ग्रहणादिना च स्नानं कुर्यात् ।।१०।।

अनुवाद— उपासक को चाहिए कि प्रातःकाल दतौन करके पहले स्नान करे । फिर वैदिक तथा तान्त्रिक दोनों प्रकार के मन्त्रों से मिट्टी और भस्म आदि लगाकर स्नान करे ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

स्नाने विशेषमाह-उभयैर्वैदिकैस्तान्त्रिकैश्च मन्त्रैः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

स्नान की विशेषता बतलाते हैं कि वैदिक एवं तान्त्रिक दोनों प्रकार के मन्त्रों से स्नान ।।१०।।

सन्ध्योपास्त्यादिकर्माणि वेदेनाचोदितानि मे । पूजां तैः कल्पयेत्सम्यक् सङ्कल्पः कर्मपावनीम् ।।११।।

अन्वयः— मे वेदेन आचोदितानि सन्ध्योपास्त्यादिकर्माणि सम्यक् सङ्कल्पः कल्पयेत तैः कर्मपावनीं पूजां कल्पयेत ।।११।।

अनुवाद— उसके पश्चात् वेदोक्त संध्या वन्दनादि कर्म करे तदन्तर सुदृढ सङ्कल्प करे उसके पश्चात् वैदिक एवं तान्त्रिक विधियों से कर्म के बन्धनों से छुड़ाने वाली मेरी पूजा करे ।।११।।

भावार्थ दीपिका

किंच, सन्ध्योपासनादीनि कर्माणि आचोदितानि साकल्येन विहितानि यस्य यानि तैः सह मे पूजां कुर्यात् । न तु तानिपरित्यजेदित्यर्थः । सम्यक् परमेश्वरविषय एवं सङ्कल्पो यस्य तथाभूतः सन् । कर्मपावनीं कर्मनिर्हारिणीम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् वेदोक्त सन्ध्यावन्दनादि कर्मों को करे । उन सबों से मेरी पूजा करनी चाहिए। सन्ध्यावन्दन का परित्याग न करे । सङ्कल्प को परमेश्वर विषयक ही करना चाहिए कर्मापावनीम् अर्थात् कर्म के बन्धनों से छुड़ा देने वाली मेरी पूजा करे ।।११।।

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती । मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता ।।१२।।

अन्वयः— प्रतिमाष्टविधा स्मृता शैली, दारुमयी लौही, लेप्या, लेख्या सैकती, मनोमयी, मणिमयी च ।।१२।।

अनुवाद— मेरी प्रतिमा आठ प्रकार की बतलायी गयी है, पत्थर की लकड़ी की, धातु की, मिट्टी की या चन्दन आदि की, चित्रमयी, बालू की, मनोमयी या मणि की ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

अर्चाभेदानाह सार्धेन-शैली शिलामयी लौही सुवर्णादिमयी । लेप्या मृच्चन्दनादिमयी । हृदि पूजायां मनोमयी ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

डेढ श्लोकों से प्रतिमा के भेदों को भगवान् श्रीकृष्ण बतलाये हैं। शैली अर्थात् पत्थर से निर्मित, लौही सुवर्ण आदि की, लेप्या अर्थात् मिट्टी अथवा चन्दन की बनी हुई, हृदय में श्रीभगवान् की पूजा करने में मनोमयी ॥१२॥

चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमन्दिरम्। उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ॥१३॥

अन्वयः— चला अचला इति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमन्दिरम् उद्धवा स्थिरायाम् अर्चने उद्वासावाहने न स्तः ॥१३॥

अनुवाद— चल और अचल दो प्रकार की प्रतिमा का ही मुझ परमात्मा का मन्दिर है। उद्धवजी अचल प्रतिष्ठा वाली मूर्ति की पूजा में आवाहन और विसर्जन नहीं किया जाता है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

प्रकर्षेण तिष्ठत्यस्यामिति प्रतिष्ठा प्रतिमैव जीवस्य भगवतो मन्दिरम्। यद्वा, प्रतिष्ठया कलान्यासेन भगवन्मन्दिरं भवतीति। प्रतिमाभेदेन विशेषमाह सार्धेन–उद्वासो विसर्जनम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

प्रतिष्ठा में परमात्मा प्रकृष्ठ रूप से स्थित रहते है, प्रतिमा ही श्रीभगवान् का मन्दिर है अथवा कलान्यास के द्वारा प्रतिमा श्रीभगवान् का मन्दिर हो जाती है डेढ श्लोकों में प्रतिमाओं का भेद विशेष बतलाया गया है। उद्वास अर्थात् विसर्जन ॥१३॥

अस्थिरायां विकल्पः स्यात्स्थण्डिले तु भवेद्द्वयम्। स्नपनं त्वविलेप्यायामन्यत्र परिमार्जनम् ॥१४॥

अन्वयः— अस्थिरायां विकल्पः स्यात् स्थण्डिले तु द्वयम् भवेत्। अविलेप्यायाम् स्नपनम् अन्यत्र परिमार्जनम्॥१४॥

अनुवाद— चल प्रतिमा के विषय में विकल्प है मन करे तो आवाहन और विसजन करे और मन करे तो न करे। बालू की प्रतिमा का तो प्रतिदिन आवाहन और विसर्जन होता है। मिट्टी और चन्दन की बनी हुई प्रतिमा को स्नान न कराये केवल मार्जन कर दे, इसके अतिरिक्त सभी प्रतिमाओं को स्नान कराना चाहिए ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

अस्थिरायामर्चने विकल्पः। शालग्रामे न कुर्यात्सैकत्यां कुर्यादन्यत्र कुर्याद्वा न वेति। अविलेप्यायां मृन्मयलेख्यव्यतिरिक्तायाम्। अन्यत्र विलेप्यायां लेख्यायां च परिमार्जनमेव ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

चल प्रतिमा की पूजा में मन करे तो आवाहन और विसर्जन करे और मन करे तो न करे। बालू की प्रतिमा का तो आवाहन और विसर्जन दोनों करना चाहिए। शालग्राम की पूजा में आवाहन विसर्जन न करे। मिट्टी की अथवा चित्रलिखित को छोड़कर मिट्टी और चन्दन की बनी मूर्ति का परिमार्जन ही करे ॥१४॥

द्रव्यैः प्रसिद्धैर्मद्यागः प्रतिमादिष्वमायिनः। भक्तस्य च यथालब्धैर्हृदि भावेन चैव हि ॥१५॥

अन्वयः— प्रतिमादिषु मद्यागाः प्रसिद्धैः द्रव्यैः अमायिनः भक्तस्य यथालब्धैः हृदि भावेन चैव हि ॥१५॥

अनुवाद— प्रतिमा आदि में मेरी पूजा प्रसिद्ध द्रव्यों से होती है किन्तु निष्काम भक्त तो अनायास प्राप्त पदार्थो से अपने हृदय में भावना करके मेरी पूजा कर ले ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं सकामनिष्कामभेदेन विशेषमाह-द्रव्यैरिति। प्रकर्षेण सिद्धैः सुशोभनैः। अमायिनो निष्कामस्य भक्तस्य तु यथालब्धैः। यत्र चन्दनादि सर्वथा न लभ्यते तत्र हृदि भावेन भावनया। यद्वा, हृदि चेन्मद्यागस्तदा भावेन मनोमयैर्द्रव्यैरित्यर्थः॥१५॥

भाव प्रकाशिका

अब सकाम और निष्काम भेद से पूजन में विशेषता बतलाते हैं प्रसिद्धैः अर्थात् सुन्दर । अमापिनः अर्थात् निष्काम भक्त तो अनायास लब्ध पदार्थों से ही मेरी पूजा करे । जहाँ पर चन्दन आदि बिल्कुल नहीं मिलते वहाँ अपने हृदय में ही भावना द्वारा मेरी पूजा कर ले । अथवा यदि हृदय में ही मेरी पूजा करनी हो तो मनोमय द्रव्यों से मेरी पूजा कर ले ।।१५।।

स्नानालंकरणं प्रेष्ठमर्चायामेव तूद्धव । स्थण्डिले तत्त्वविन्यासो वह्नावाज्यप्लुतं हविः ।।१६।।

अन्वयः— उद्धव ! अर्चायामेव तु स्नानालङ्करणं प्रेष्ठम् स्थण्डिले तत्त्वविन्यासः बह्नौ आज्यप्लुतं हविः ।।१६।।

अनुवाद— उद्धवजी, पाषाण अथवा धातु से बनी प्रतिमा की पूजा में स्नान तथा अलङ्कार (वस्त्राभूषण) आदि उपयोगी हैं, बालू की या मिट्टी की बनी वेदी में पूजा करनी हो तो उसमें तत्त्वों का न्यास करना अपेक्षित होता है । अग्नि में पूजा करनी हो तो घृत मिश्रित हवन सामग्रियों से आहुति दे ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

अधिष्ठानभेदेन प्रधानोपचारमाह सार्धेन-स्नानेति । तत्त्वविन्यासो यथास्थानमङ्गप्रधानदेवतानां तत्तन्मन्त्रैः स्थापनम्।।१६।।

भाव प्रकाशिका

स्नानालङ्करणम् इत्यादि डेढ श्लोक से अधिष्ठान की भिन्नता के कारण प्रधान उपचारों की भिन्नता को बतलाते हैं । **तत्त्व विन्यासः** अर्थात् यथा स्थान अङ्ग देवताओं और प्रधान देवता की भिन्न-भिन्न मन्त्रों से स्थापना करे ।।१६।।

सूर्ये चाभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभि । श्रद्धयोपाहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्यपि ।।१७।।

अन्वयः— सूर्ये च अभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभिः श्रद्धया उपहृतं प्रेष्ठ भक्तेन मम वारि अपि ।।१७।।

अनुवाद— सूर्य को प्रतीक मानकर की जाने वाली मेरी पूजा अत्यन्त प्रिय है सूर्य की उपासना में अर्ध्यदान और सूर्योपस्थान ही प्रिय हैं । जल में मेरी पूजा जल आदि से की जाती है । किसी भक्त के द्वारा श्रद्धा पूर्वक समर्पित किया जाने वाला भी जल मुझे अत्यन्त प्रिय है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

अभ्यर्हणमुपस्थानार्घादि । सलिलादिभिस्तर्पणादिना यजनम् । सर्वसाधारणमाह-श्रद्धयेति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

अभ्यर्हणम् उपस्थान आदि (अर्ध्यदान) जल आदि से तर्पण आदि करना सर्व साधारण के लिए श्रद्धापूर्वक प्रदत्त जल भी ।।१७।।

भूर्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते । गन्धो धूपः सुमनसो दीपोऽन्नाद्यं च किं पुनः ।।१९।।

अन्वयः— अभक्तोपाहृतं भूरि अपि मे तोषाय न कल्पते गन्धो धूपः सुमनसः दीपः अन्नाद्यं च पुनः किम् ।।१९।।

अनुवाद— अभक्त के द्वारा समर्पित बहुत सी बहुतुओं से मैं प्रसन्न नहीं होता दूँ । जब कि मैं भक्ति पूर्वक समर्पित जल से ही प्रसन्न हो जाता हूँ तो फिर धूप चन्दन दीप तथा अन्न आदि के नैवेद्य समर्पण करने पर क्या कहना है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१८।।

शुचिः संभृतसंभारः प्राग्दर्भैः कल्पितासनः । आसीनः प्रागुदग्वाऽर्चेदर्चायामथ संमुखः ।।१९।।

अन्वयः— शुचि सम्भृतसम्भारः प्राग्दर्भैकल्पितासनः प्रागुदग्वा आसीनः अर्चेत् । अथ अर्चायाम् सम्मुखः ।।१९।।

अनुवाद— पहले पवित्र होकर सामग्री को एकत्रित करे फिर पूर्वाभिमुख कुशों के आसन को बिछाकर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठकर पूजा करे । यदि मूर्ति स्थापित हो तो उसके सामने ही मुख करके बैठे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

एवमधिकारादिव्यवस्थामुक्त्वा इदानीं पूजाप्रकारमाह-शुचिरिति । संभृताः संभाराः पूजासाधनानि येन सः । प्रागग्रैर्दर्भैः। यद्वा, प्रागेव संभृतसंभारः सन्नासीनः, न त्वासीनः सन् पश्चात्तत्संभारार्थं वारंवारमुत्तिष्ठेदित्यर्थः । प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा आसीनः। अर्चायां तु स्थिरायां संमुखोऽर्चाभिमुख उपविष्ट सन् ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से अधिकार आदि की व्यवस्था का वर्णन करके **शुचि० इत्यादि** श्लोक से पूजा के प्रकार को बतलाते हैं । जिसने पूजा की सामग्री को एकत्रित कर ली है वह पूर्वाग्र कुशों द्वारा निर्मित । अथवा पहले ही सामग्री को एकत्रित करके बैठे हुए, न कि पहले बैठकर सामग्री लेने के लिए बार-बार उठे । पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठे । अचल मूर्ति के रहने पर तो मूर्ति की ओर मुख करके बैठे ॥१९॥

कृतन्यासः कृतन्यासां मदर्चां पाणिनाऽऽमृजेत् । कलशं प्रोक्षणीयं च यथावदुपसाधयेत् ॥२०॥

अन्वयः— कृतन्यासः कृतन्यासां मदर्चां पाणिना आमृजेत् कलशं प्रोक्षणीयं च यथावत् उपसाधयेत् ॥२०॥

अनुवाद— पहले विधिपूर्वक अङ्गन्यास और करन्यास कर ले, उसके पश्चात् मूर्ति में मन्त्र न्यास करे और हाथ से पूर्व समर्पित सामग्री को मूर्ति पर से हटा दे । उसके पश्चात् जल भरे कलश और प्रोक्षण पात्र आदि की गन्ध और आदि से पूजा करे ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अनन्तरं गुर्वादिनमस्कारपूर्वकं यथोपदेशं स्वस्मिन्कृतन्यासः कृतो मूलमन्त्रन्यासो यस्यां तां ममार्चामामृजेन्निर्माल्यापकर्षणादिना शोधेयत् । कलशं पूर्णकुम्भम् । प्रोक्षणीयं प्रोक्षणार्थोदकपात्रमुपसाधयेच्चन्दनपुष्पादिभि संस्कुर्यात् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् गुरु आदि को नमस्कार पूर्वक उनके उपदेशानुसार अपने शरीर में न्यास करे । जिसमें मूल मन्त्र का न्यास कर दिया गया है उस अर्चामूति को पोंछ दे और उस मूर्ति पर पहले से ही चढ़ी सामग्री को उस पर से हटा दे । तदनन्तर जल भरे कलश तथा प्रोक्षण के लिए रखे गये जल पात्र की चन्दन इत्यादि से संस्कार सम्पन्न करे ॥२०॥

तदद्भिर्देवयजनं द्रव्याण्यात्मानमेव च । प्रोक्ष्य पात्राणि त्रीण्यद्भिस्तैस्तैर्द्रव्यैश्च साधयेत् ॥२१॥

अन्वयः— तत् अद्भिः देवयजनं, द्रव्याणि आत्मानम् एव च प्रोक्ष्य त्रीणि पात्राणि अद्भिः तैः द्रव्यैः च साधयेत्॥२१॥

अनुवाद— प्रोक्षणपात्र के जल से पूजा सामग्री और अपने शरीर का प्रोक्षण करे । जल से भरे तीन पात्रों के, और उन द्रव्यों द्वारा संस्कार युक्त करे ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तदद्भिः प्रोक्ष्णीयाद्भिर्देवयजनं देवपूजास्थानम् । पाद्याद्यर्थं त्रीणि पात्राणि कलशोदकैः पूरितानि तैस्तैर्द्रव्यैः साधयेत् । तत्र पाद्यादिद्रव्याणि 'पाद्ये श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्तादिरिष्यते । गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपाः । दूर्वा चेति क्रमादर्घद्रव्याष्टकमुदीरितम्। जातीलवङ्गकङ्कोलैर्मतमाचमनीयकम् ।' इति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उस जल से तथा प्रोक्षण के जल से देवता के पूजा स्थान पाद्य, अर्ध्य एवं आचमन के लिए कलश के जल

से भरे हुए तीन पात्रों को विभन्न द्रव्यों से संस्कार युक्त करे। पाद्य पात्र में सावां के दाना, दूब कमल, विष्णुकान्ता, और चन्दन तुलसी दल डाले, अर्घ्य पात्र में गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, कुश, तिल, सरसों और दूब डाले, आचमन पात्र में जायफल, तथा लौंग डाले ॥२१॥

पाद्यार्घाचमनीयार्थं त्रीणि पात्राणि दैशिकः। हृदा शीर्ष्णाथ शिखया गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत्॥२२॥

अन्वयः— पाद्यार्घाचमनीयार्थं दैशिकः त्रीणि पात्राणि हृदाशीर्ष्णा अथ शिखया गायत्र्याच अभिमन्त्रयेत्॥२२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् पूजा करने वाले को चाहिए कि तीनों मन्त्रों को क्रमशः हृदय मन्त्र, शिरोमन्त्र और शिखा मन्त्र से अभिमन्त्रित करके गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तानि त्रीणि यथाक्रमं हृदयादिमन्त्रैर्गायत्र्या च सर्वाण्यभिमन्त्रयेत्॥२२॥

भाव प्रकाशिका

उन तीनों पात्रों को क्रमानुसार हृदयादि मन्त्रों से तथा गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करे ॥२२॥

पिण्डे वाय्वग्निसंशुद्धे हृत्पद्मस्थां परां मम। अण्वीं जीवकलां ध्यायेन्नादान्ते सिद्धभाविताम्॥२३॥

अन्वयः— वाय्वग्निसंशुद्धे पिण्डे हृत्पद्मस्थां मम परां अण्वीं जीवकलां नादान्ते सिद्धभाविताम् ध्यायेत्॥२३॥

अनुवाद— प्राणायाम के द्वारा प्राण वायु तथा भावनाओं के द्वारा शरीरस्थ अग्नि के शुद्ध हो जाने पर हृदय कमल में सूक्ष्म और श्रेष्ठ दीप शिखा के समान मेरी जीव कला का ध्यान करे। बड़े-बड़े सिद्ध मुनिजन ॐकार के अकार उकार माकार विन्दु और नाद इन पाँच कलाओं के अन्त में उस जीव कला का ध्यान करते हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तदनन्तरं पिण्डे देहे। वाय्वग्निसंशुद्ध इति कोष्ठगतेन वायुना शोषिते आधारगतेनाग्निना दग्धे पुनर्ललाटस्थचन्द्रमण्डलामृतप्लावनेनामृतमये जाते तस्मिन्हृत्पद्मस्थां परां श्रेष्ठां जीवकलां श्रीनारायणमूर्तिं ध्यायेत्। कथंभूताम्। नादान्ते सिद्धैर्भाविताम्। प्रणवस्याकारोकारमकारविन्दुनादाः पञ्चांशास्तत्र नादान्ते सिद्धैर्ध्याताम्। तथा च श्रुतिः- 'यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः। तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः।' इति॥२३॥

भाव प्रकाशिका

वायु तथा अग्नि के द्वारा शरीर के शुद्ध हो जाने पर कुक्षिगत वायु के द्वारा सुखा दिए जाने पर आधारगत अग्नि द्वारा दग्ध हो जाने पर उसके पश्चात् ललाट में विद्यमान चन्द्रमण्डलगत अमृत के द्वारा धो दिये जाने पर जब वह अमृतमय हो जाता है उस शरीर के हृदय कमल में विद्यमान मेरी श्रेष्ठ जीव कला का ध्यान जो श्रीनारायण मूर्ति है, उसका ध्यान करे। कैसी मूर्ति का तो इसका उत्तर है कि नाद के अन्त में जिसका सिद्ध पुरुष ध्यान करते हैं। प्रणव के अकार, उकार, मकार विन्दु एवं नाद ये पाँच अंश हैं उसमें नाद के अन्त में सिद्ध पुरुष उसका ध्यान करते हैं श्रुति भी कहती है **यो वेदादौ स्वरः इत्यादि** अर्थात् जिसको वेद आदि में स्वर कहा गया है तथा जो वेदान्त में प्रतिष्ठित है उस प्रकृति में लीन जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, वही महेश्वर परमात्मा है ॥२३॥

तयात्मभूतया पिण्डे व्याप्ते संपूज्य तन्मयः। आवाह्यार्चादिषु स्थाप्य न्यस्ताङ्गं मां प्रपूजयेत्॥२४॥

अन्वयः— तया आत्मभूतया पिण्डे व्याप्ते सम्पूज्य तन्मयः मां आवाह्य अर्चादिषु स्थाप्य न्यस्ताङ्गं प्रपूजयेत्॥२४॥

अनुवाद— वह जीव कला आत्मस्वरूपिणी है। उसके तेज से सम्पूर्ण अन्तःकरण और शरीर के भर जाने पर मानसिक उपचारों से मन ही मन उसकी पूजा करे। उसके पश्चात् तन्मय होकर मेरा आवाहन करे और प्रतिमा आदि में स्थापना करे। फिर मन्त्रों के द्वारा अङ्गन्यास करके उसमें मेरी पूजा करे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तयात्मभूतया स्वेनैव भावेन चिन्तितया अमृतमये पिण्डे दीपेन प्रभया गृहमिव व्याप्ते सति तस्मिन्नेवादौ मानसैरूपचारैः संपूज्य तन्मयः सन्नर्चादिष्वावाह्य स्थापनमुद्रया स्थापयित्वा ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

आत्म स्वरूपिणी जीव कला के तेज से उस अमृतमय देह के भर जाने पर उस शरीर में ही मानसिक उपचारों से उसकी तन्मय होकर अर्चादि में स्थापन मुद्रा के द्वारा स्थापित करके पूजा करे ।।२४।।

पाद्योपस्पर्शार्हणादीनुपचारान्प्रकल्पयेत् । धर्मादिभिश्च नवभिः कल्पयित्वासनं मम ।।२५।।
पद्ममष्टदलं तत्र कर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् । उभाभ्यां वेदतन्त्राभ्यां मह्यं तूभयसिद्धये ।।२६।।

अन्वयः— धर्मादिभिश्च नवभिः ममासनं कल्पयित्वा तत्र अष्टदलं कमलम् तत्र कर्णिका केसरोज्वलम् उभाभ्यांवेदतन्त्राभ्यां महयं पाद्योपस्र्शार्हणादीन् उपचारान् प्रकल्पयेत् ।।२५-२६।।

अनुवाद— मेरे आसन में धर्म गुणों तथा विमलादि शक्तियों की भावना करे । उस आसन के धर्म ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य ये चार पाये हैं । सत्त्वरजस एवं तमस इन तीन पटरियों का बना हुआ पीठ है । अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य ये चारो दिशाओं के डंडे हैं । उस पर विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या ईशाना और अनुग्रहा ये नव शक्तियाँ विराजमान हैं । उस आसन पर एक अष्टदल कमल है, उसकी कर्णिका अत्यन्त प्रकाशमान है और उस पर पीली-पीली केसरों की छटा छिटकी हुई है आसन के विषय में इस प्रकार की भावना करके, पाद्य, आचमनीय और अर्घ्य आदि उपचार प्रस्तुत करे । तदनन्तर भोग और मोक्ष की सिद्धि के लिए वैदिक एवं तान्त्रिक विधि से मेरी पूजा करे ।।२५-२६।।

भावार्थ दीपिका

कथं पूजयेत्तत्राह-पाद्येति द्वाभ्याम् । धर्मादिभिर्ममासनं तत्र पद्मं च कल्पयित्वोभाभ्यां वेदतन्त्राभ्यामुभयसिद्धये मह्यं पाद्यादीनुपचारान्प्रकल्पयेदित्यन्वयः । उपस्पर्श आचमनम्, अर्हणमर्ध्यम् । उभयसिद्धये वेदतन्त्रोक्तभुक्तिमुक्तिप्राप्तये । अयमर्थः- धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याण्यासनपर्यङ्कस्याग्नेयादिचतुष्कोणेषु पादाः । अधर्मादीनि पूर्वादिदिक्षु गात्राणि । त्रयो गुणाः पट्टिकाः । तत्र पूर्वादिक्रमेण मध्ये च विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया योगा प्रह्वी सत्येशानाऽनुग्रहेति नव शक्तयः । एवं यथोपदेशं धर्मादिभिर्नवभिः शक्तिभिश्चासनं कल्पयित्वेति । कर्णिकया केसरैस्तत्रस्थसूर्यादिमण्डलैश्चोज्ज्वलमित्यर्थः ।।२५-२६।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि श्रीभगवान् की पूजा कैसे करे ? तो इसके उत्तर में श्रीभगवान् **पाद्य० इत्यादि** दो श्लोको को कहते हैं धर्मादि से युक्त मेरे आसन की तथा उसके ऊपर कमल की कल्पना करके भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए वैदिक एवं तान्त्रिक दोनों प्रकार के मन्त्रों से मेरे लिए पाद्य इत्यादि उपचारों की कल्पना करे । इस तरह से अन्वय है । **उपस्पर्शः** अर्थात् आचमन अर्हणम् अर्थात् अर्घ्य । उभयासिद्धये अर्थात् वेदों तथा तन्त्र ग्रन्थों में वेदोक्त भोग तथा मोक्ष दोनों की प्राप्ति के लिये कहने का अभिप्राय है कि धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य मेरे आसन आसन के आग्नेय आदि चारों कोनों में चार पाये हैं । अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य पूर्वादि दिशाओं के शरीर है । सत्त्व आदि तीनों गुण उस आसन पर्यङ्क की तीन पटरियाँ हैं । पूर्व आदि के क्रम से तथा बीच में विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना तथा अनुग्रहा इस तरह से नव शक्तियाँ हैं । इस तरह से उपदेशानुसार धर्मादि को तथा नव शक्तियों से युक्त मेरे आसन की कल्पना करके कर्णिका, केसर, उस पर विद्यमान सूर्यादि मण्डल से देदीप्यमान अष्टदल कमल की कल्पना करे ।।२५-२६।।

सुदर्शनं पाञ्चजन्यं गदासीषुधनुर्हलान् । मुसलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं चानुपूजयेत् ॥२७॥

अन्वयः— सुदर्शनं पाञ्चजन्यं, गदासीषु धनुर्हलान् मुसलं कौस्तुभं मालां श्रीवत्सं च अनुपूजयेत् ॥२७॥

अनुवाद— सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शङ्ख, कौमोदकी गदा, खड्ग, बाण, धनुष, हल और मूसल इन आठ आयुधों की पूजा आठ दिशाओं में करे कौस्तुभमणि, वैजयन्ती माला तथा श्रीवत्सचिह्न की वक्षःस्थल पर यथा स्थान पूजा करे ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

आयुधादिपूजामाह-सुदर्शनमिति त्रिभिः । तत्र न्यस्ताङ्गमित्यङ्गावरणपूजा सूचिता । आसनेनैव शक्त्यावरणमित्युक्तम्। ततः सुदर्शनादिमुसलान्तान्यायुधान्यष्टदिक्षु । कौस्तुभमालाश्रीवत्सानुरसि ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

सुदर्शनम् इत्यादि तीन श्लोकों से आयुध आदि की पूजा बतलायी गयी हे । **न्यस्ताङ्गम् इत्यादि** से अङ्गों के आवरण की पूजा सूचित की गयी है । आसन के ही द्वारा शक्तियों तथा अवरणों को कह दिया गया है । उसके पश्चात् **वन्यस्ताङ्गम् इत्यादि** से अङ्गों के सुदर्शन आदि आयुधों की आठ दिशाओं में पूजा कही गयी है । कौस्तुभ मणि तथा श्रीवत्सचिह्न की पूजा वक्षःस्थल पर करे ॥२७॥

नन्दं सुनन्दं गरुडं प्रचण्डं चण्डमेव च । महाबलं बलं चैव कुमुदं कुमुदेक्षणम् ॥२८॥
दुर्गां विनायकं व्यासं विष्वक्सेनं गुरून् सुरान् । स्वे स्वे स्थाने त्वभिमुखान्पूजयेत्प्रोक्षणादिभिः ॥२९॥

अन्वयः— नन्दं, सुनन्दं, गरुडं प्रचण्डं चण्डम् एव च, महाबलं, बलं चैव कुमुदं, कुमुदेक्षणं, दुर्गां, विनायकं, व्यासं, विष्वक्सेनं गुरून् सुरान् स्वे-स्वे स्थाने तु अभिमुखान् प्रोक्षणादिभिः पूजयेत् ॥२८-२९॥

अनुवाद— नन्द, सुनन्द, प्रचण्ड, चण्ड, महाबल, बल, कुमुद एवं कुमुदेक्षण इन आठ पार्षदो की आठ दिशाओं में गरुड की सामने, दुर्गा, विनायक, व्यास और विष्वक्सेन की चारो कोनों में स्थापना करके पूजा करे, वायीं ओर गुरुकी और क्रमानुसार पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि आठ लोक पालों की स्थापना करके प्रोक्षण अर्घ्यदान आदि के क्रम से उनकी पूजा करनी चाहिए ॥२८-२९॥

भावार्थ दीपिका

नन्दादीन्पार्षदानष्टदिक्षु । गरुडं पुरतः । दुर्गादीनि कोणेषु । गुरून्वामतः । सुरानिन्द्रादिलोकपालान्पूर्वादिदिक्षु । एवमेतान्देवस्याभिमुखान्प्रोक्षणादिभिरर्घादिभिः पूजयेदित्यर्थः ॥२८-२९॥

भाव प्रकाशिका

नन्द आदि आठ पार्षदों की आठ दिशाओं में गरुड की सामने, दुर्गा आदि की कोणों में, गुरुओं को वायीं ओर इन्द्र आदि आठ लोकपालों की पूर्व आदि आठ दिशाओं में इस तरह से इन देवताओं की जो श्रीभगवान् के समान रहा करते हैं उन सबों की प्रोक्षण आदि से तथा अर्घ्य आदि से पूजा करे ॥२८-२९॥

चन्दनोशीरकर्पूरकुङ्कुमागुरुवासितैः । सलिलैः स्नापयेन्मन्त्रैर्नित्यदा विभवे सति ॥३०॥

अन्वयः— विभवे सति चन्दनोशरीर कर्पर कुङ्कुमागुरुवासितैः सलिलैः मन्त्रैः नित्यदा स्नापयेत् ॥३०॥

अनुवाद— यदि सामर्थ्य हो तो प्रतिदिन चन्दन, खश, कर्पूर कुङ्कुम तथा अगरु से सुवासित जल से तथा मन्त्रों से मुझे स्नान कराये ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

पाद्यादीनुपचारान्प्रकल्पयेदित्युक्तं तानेव गुणविधिभिः प्रपञ्चयति-चन्दनेति षड्भिः ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

कहा जा चुका है कि पाद्य आदि उपचारों की कल्पना करे । चन्दनोशीर० इत्यादि छह श्लोकों से उसका ही विस्तार किया गया है ।।३०।।

स्वर्णधर्मानुवाकेन महापुरुषविद्यया । पौरुषेणापि सूक्तेन सामभी राजनादिभिः ।।३१।।

अन्वयः— स्वर्णधर्मानुवाकेन, महापुरुषविद्यया, पौरुषेण सूक्तेन अपि, राजनादिभिःसामभिः ।।३१।।

अनुवाद— श्रीभगवान् को स्नान कराते समय **स्वर्णधर्मानुवाकमहापुरुषविद्या** (जितं ते पुण्डरी काक्ष) **सहस्रशीर्षा० इत्यादि** पुरुषसूक्त तथा **इन्द्रं नरो नेमधिताहवन्त इत्यादि** मन्त्रोंसे कहे गये राजनादि सामगायन का पाठ भी करता रहे ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

मन्त्रानाह-स्वर्णधर्मानुवाकः 'सुवर्णं धर्मं परिवेदवेनम्' इत्यादिः । महापुरुषविद्या 'जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन। सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुषपूर्वज । ' इति । पौरुषं सूक्तं सहस्रशीर्षा' इत्यादि । राजनादीनि सामानि 'इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते' इत्यस्यामृचि गीतानि । आदिशब्देन रौहिणादीनि ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

मन्त्रों को बतलाते हैं **स्वर्णधर्मानुवाक सुवर्णं धर्मं परिवेदनम् इत्यादि** महापुरुष विद्या **जितं ते पुण्डरीकाक्ष** पुरुष सूक्त **सहस्रशीर्षा० इत्यादि** राजनादिसाम **इन्द्रनरो नेमधित हवन्त** इस ऋचा में गाये गये साम को आदि शब्द के द्वारा **रोहिण्य आदि** का पाठ करे ।।३१।।

वस्त्रोपवीताभरणपत्रस्रग्गन्धलेपनैः । अलंकुर्वीत सप्रेम मद्भक्तो मां यथोचितम् ।।३२।।

अन्वयः— मद्भक्तः वस्त्रोपवीताभरणपत्रस्रग्गन्धलेपनैः सप्रेम मां यथोचितम् अलंकुर्वीत ।।३२।।

अनुवाद— मेरा भक्त, वस्त्र, यज्ञापवीत, आभूषण, पत्र, माला, गन्ध और चन्दन आदि से प्रेम पूर्वक मेरा यथावत् अलङ्कार करे ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

वस्त्राद्युपचारेष्वलङ्कारलक्षणं गुणं विधत्ते-वस्त्रेति । पत्राणि कपोलवक्षःस्थलादिषु लिखिताः पत्रभङ्ग्यः । मद्भक्तश्चेत् सप्रेम यथा भवति तथा ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

वस्त्र० इत्यादि श्लोक से वस्त्र आदि उपचारों में अलङ्कार नामक गुण का विधान करते हैं। कपोल तथा वक्षः स्थल आदि पर बनायी गयी पत्र की भङ्गिमाएँ। यदि मेरा भक्त हो तो प्रेम पूर्वक इन सबों से मुझे अलंकृत करे ।।३२।।

पाद्यमाचमनीयं च गन्धं सुमनसोऽक्षतान् । धूपदीपोपहार्याणि दद्यान्मे श्रद्धयार्चकः ।।३३।।

अन्वयः— अर्चकः श्रद्धयामेपाद्यम् आचमनीयं च गन्धं सुमनसः अक्षतान् धूपदीपोपहार्याणि दद्यात् ।।३३।।

अनुवाद—अर्चक श्रद्धा पूर्वक मुझको पाद्य, आचमन, चन्दन, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप और उपहार समर्पित करे।।३३।।

भावार्थ दीपिका

थोचितमलंकुर्वीतेत्युक्तार्थं सर्वसाधारणं श्रद्धालक्षणं गुणं विधत्ते-पाद्यमिति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

पाद्यमित्यादि श्लोक के द्वारा यथोचितमलंकुर्वीत इस वाक्यांश के द्वारा उक्त अर्थ का सर्वसाधारण श्रद्धा रूप गुण विधान करते हैं ।।३३।।

गुडपायससर्पींषि शष्कुल्यापूपमोदकान् । संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत् ।।३४।।

अन्वयः— सति गुडपायससर्पींषि शष्कुल्यापूपमोदकान् संयावदधिसूपांश्च नैवेद्य कल्पयेत् ।।३४।।

अनुवाद— हो सके तो गुड, पायस, घी, पूड़ी, पूआ, मिठाई हलुआ, दही और दाल का मुझको भोग लगाएँ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

नैवेद्ये वैभवलक्षणं गुणं विधत्ते-गुडपायसेति । शष्कुल्यस्तैलपक्वविशेषाः । आपूपाः अपूपानां मण्डकादीनां समूहाः। सूपा व्यञ्जनानि । सति विभव इति शेषः ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

नैवेद्य में वैभवरूप गुण का विधान **गुडपायस इत्यादि** श्लोक से करते हैं । तेल आदि में पकेशष्कुली इत्यादि, पूआ, तथा मठ्ठा आदि का समूह, व्यञ्जन । ऐसा अपने वैभव के अनुसार करे ।।३४।।

अभ्यङ्गोन्मर्दनादर्शदन्तधावाभिषेचनम् । अन्नाद्यगीतनृत्यादि पर्वणि स्युरुतान्वहम् ।।३५।।

अन्वयः— अभ्यंजन्मर्दनादर्श, दन्तधावाभिषेचनम्, अन्नाद्यगीत नृत्यादि पर्वणि स्युः उत अन्वहम् ।।३५।।

अनुवाद— भगवान् के विग्रह में तेल लगाये, उनके विग्रह को दबाये, दर्पण दिखाए, स्नान कराये अन्न आदि का भोग लगाए एकादशी आदि के दिन गीत एवं नृत्य का आयोजन करे । यदि शक्ति हो तो प्रतिदिन नृत्य गीत करे ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

कालभेदेन गुणं विधत्ते-अभ्यङ्गेति । अभिषेचनं पञ्चामृतादिस्नपनम् । अन्नाद्येति । अन्नं भोज्यम् । आद्यं भक्ष्यम् । पर्वण्येकादश्यादौ । अन्वहं प्रत्यहं वा विभवे सति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

एकादशी आदि पर्वविशेष के लिए गुण का विधान करते हैं । अभिषेचनम् अर्थात् पञ्चामृत आदि से स्नान कराये । अन्नम् अर्थात् भोजन, आद्यम् अर्थात् भक्ष्य । पर्वणि अथवा एकादशी आदि तिथियों को अथवा सामर्थ्य हो तो प्रतिदिन ।।३५।।

विधिना विहिते कुण्डे मेखलागर्तवेदिभिः । अग्निमाधाय परितः समूहेत्पाणिनोदितम् ।।३६।।

अन्वयः— विधिना मेखलागर्तवेदिभिः विहिते कुण्डे अग्निम् आधाय पाणिना उदितम् परितः समूहेत् ।।३६।।

अनुवाद— पूजा के पश्चात् शास्त्रोक्त विधि से निर्मित, परिधि तथा मेखला से सुशोभित कुण्ड में अग्नि का आधान करके उसे हाथ की हवा से प्रज्वलित करके एकत्रित कर दे ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

फलभूयस्त्वार्थिनोऽग्नावपि पूजाप्रकारमाह-विधिना स्वगृह्योक्तप्रकारेण । मेखलादिभिरुपलक्षिते । विहिते निर्मिते । तदुक्तं-'विस्तारोच्छ्रायतस्तिस्रो मेखलाश्चतुरङ्गुलाः । हस्तमात्रो भवेद्गर्तः सयोनिर्वेदिका तथा ।' इत्यादि । उदित प्रज्वलितमग्निं परितः समूहेदेकत्र मेलयेत् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

अधिक फल चाहने वाले के लिए अग्नि में भी भगवान् की आराधना का प्रकार बतलाते है । विधिना अर्थात् अपने गृह्यसूत्र में उक्त प्रकार से, मेखला तथा परिधि आदि से युक्त निर्मित कुण्ड में । कहा भी गया है विस्तार ऊँचाई तथा चार अङ्गुल चौड़ी तीन मेखलायें एक हाथ का गहरा कुण्ड होता है । उसको योनि और वेदी से युक्त होना चाहिए। उदित अर्थात् प्रज्वलित अग्नि एकत्रित कर दे ।।३६।।

परिस्तीर्याथ पर्युक्षेदन्वाधाय यथाविधि । प्रोक्षण्यासाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्याग्नौ भावयेत माम् ।।३७।।

अन्वयः— अथ परिस्तीर्य पर्युक्षेत् यथाविधि अन्वाधाय प्रोक्षणी आसाद्य द्रव्याणि प्रोक्ष्य अग्नौ माम् भावयेत् ।।३७।।

अनुवाद— वेदी के चारो ओर कुशकण्डिका करके अर्थात् चारो ओर बीस-बीस कुश विछाकर मन्त्र पढ़ते हुए उन पर जल छिड़के । उसके बाद चारो समिधाओं का आधान रूप अन्वाधान करे । उसके बाद अग्नि की उत्तर ओर होमोपयोगी सामग्री रखे और प्रोक्षणी पात्र के जल से प्रोक्षण करे । उसके पश्चात् अग्नि में मेरा इस प्रकार ध्यान करे ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

दर्भैः परिस्तीर्य परितः प्रोक्षयेत् । अन्वाधायान्वाधानसंज्ञकं व्याहृतिभिः समित्प्रक्षेपादिरूपं कर्म कृत्वा अग्नेरुत्तरतो द्रव्याणि होमोपयोगीन्यासाद्य निधाय प्रोक्षण्या प्रोक्षणीपात्रोदकेन प्रोक्ष्याग्नौ मां ध्यायेत् ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

कुशों से चारो ओर झाड़ दे । व्याहृतियों से अन्वाधान संज्ञक समिधा प्रक्षेप रूप कर्म को करके अग्नि के उत्तर दिशा में होमोपयोगी सामग्री को रखकर प्रोक्षणी पात्र के जल से प्रेक्षण करके अग्नि में मेरा ध्यान करे ।।३७।।

तप्तजाम्बूनदप्रख्यं शङ्खचक्रगदाम्बुजैः । लसच्चतुर्भुजं शान्तं पद्मकिञ्जल्कवाससम् ।।३८।।

अन्वयः— तप्तजाम्बूनदप्रख्यं शङ्ख चक्रगदाम्बुजैः लसत्चतुर्भुजं शान्तं पद्मकिञ्जत्कवासम् ।।३८।।

अनुवाद— मेरी मूर्ति तपाये हुए सुवर्ण के समान चमक रही है, मेरी चारो भुजाओं में शङ्ख, चक्र, गदा और कमल सुशोभित हो रहे हैं । मेरी शान्त मूर्ति है मेरा पीताम्बर कमल के पराग के समान अत्यन्त मनोहर है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

शङ्खादिभिरुल्लसन्तः शोभमानाश्चत्वारो भुजा यस्य तम् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

मेरी चारो भुजाएँ शङ्ख आदि से सुशोभित हो रही हैं ।।३८।।

स्फुरत्किरीटकटककटिसूत्रवराङ्गदम् । श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ।।३९।।

अन्वयः— स्फुरत्किरीटकटक कटिसूत्रवराङ्गदम् श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभम् वनमालिनम् ।।३९।।

अनुवाद— मेरे सिर पर मुकुट, कलाइयों में कङ्गन, कमर में करधनी और बाहों में बाजूबन्द सुशोभित हो रहे हैं । मेरे वक्षःस्थल पर श्रीवत्सचिह्न सुशोभित हो रहा है । मेरे गले में वनमाला सुशोभित हो रही है ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

स्फुरन्ति किरीटादीनि यस्य तम् ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

जिनके मुकुट आदि आभूषण चमक रहा है ऐसे श्रीभगवान् का ध्यान करे ।।३९।।

ध्यायन्नभ्यर्च्य दारूणिहविषाभिघृतानि च । प्रास्याज्यभागावाघारौ दत्त्वा चाज्यप्लुतं हविः ॥४०॥

अन्वयः— ध्यायन्, अभ्यर्च्य, हविषाभिघृतानि च दारुणि प्रास्य, आज्यभागौ आधारौ दत्वा आज्यप्लुतं हविः दत्त्वा॥४०॥

अनुवाद— इस प्रकार से श्रीभगवान् का ध्यान करते हुए उनका पूजन करके हविष्य तथा घी के साथ समिधा अग्नि में डाले । इसके पश्चात् आज्य भाग तथा आधार भाग नाम की आहुति घी की दे ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

हविषा घृतेनाभिघृतानि संसिक्तानि दारूणि शुष्कसमिधः प्रास्य प्रक्षिप्य । आघारौ तत्संज्ञकौ यागौ । एवमाज्यभागौ च दत्त्वा, तदर्थाहुतीर्हुत्वेत्यर्थः । तत्राघारौ 'प्रजापतये स्वाहा, इन्द्राय स्वाहा' इति चोत्तरदक्षिणपरिधिसन्धिमारभ्याग्निमध्यादापरिध्यन्तं घृतक्षारणरूपौ । आज्यभागौ 'अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा' इत्येवं होमरूपौ ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

घी नामक हविष्य से भिंगोयी हुई सूखी समिधाएँ अग्नि में डाले आधार संज्ञक याग तथा आज्यभाग नामक घी की आहुतियाँ देकर । प्रजापतये स्वाहा, इन्द्राय स्वाहा इन दो मन्त्रों से उत्तर दक्षिण परिधि की सन्धि से आरम्भ करके अग्नि के बीच से परिधि पर्यन्त घृत क्षरण रूप दो आहुतियाँ दी जाती हैं । इसे ही आधार संज्ञक आहुति कहते हैं । आज्य भाग भी अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा इन दो मन्त्र से इसी तरह आहुति दी जाती है ॥४०॥

जुहुयान्मूलमन्त्रेण षोडशर्चावदानतः । धर्मादिभ्यो यथान्यायं मन्त्रैः स्विष्टकृतं बुधः ॥४१॥

अन्वयः— मूलमन्त्रेण जुहुयात् षोडशर्चावदानतः । धर्मादिभ्यः यथा न्यायं बुधः मन्त्रै स्विष्टकृतं कुर्यात् ॥४१॥

अनुवाद— मूलमन्त्र **ओमनमोनारायणाय** इस अष्टाक्षर मन्त्र से तथा सोलह मन्त्रों वाले पुरुष सूक्त के प्रत्येक मन्त्र से आहुति दे । विद्वान् को चाहिए कि वह धर्म आदि के लिए भी आहुति प्रदान करे । उसके पश्चात् नियमानुसार स्विष्टकृत होम करे ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

मूलमन्त्रेणाष्टाक्षरेण । तथा षोडश ऋचो यस्मिंस्तेन पुरुषसूक्तेन चावदानतः प्रत्यृचमाहुतिग्रहणेनेत्यर्थः । पुरुषसूक्तेनाराधनपक्षे स एव मूलमन्त्रस्तेनैव प्रत्यृचमवदानतो होम इति । मन्त्रैः स्वाहान्तैर्नाममन्त्रैः । यथान्यायं पूजाक्रमेणैव । 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इत्येवं स्विष्टकृतं च हुत्वा ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

ओम् नमो नारायणाय इस अष्टाक्षर मन्त्र से तथा सोलह मन्त्रों वाले पुरुष सूक्त के प्रत्येक मन्त्र से आहुति दे । जहाँ पुरुष सूक्त से ही आराधना होती है तो पुरुष सूक्त रूपी मूल मन्त्र के प्रत्येक मन्त्र से आहुति दे । यथान्यायम् अर्थात् पूजा के क्रम से ही अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा, इस मन्त्र से स्विष्टकृत आहुति दे ॥४१॥

अभ्यर्च्याथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो बलिं हरेत् । मूलमन्त्रं जपेद्ब्रह्म स्मरन्नारायणात्मकम् ॥४२॥

अन्वयः— अभ्यर्च्य नमस्कृत्य पार्षदेभ्यः बलिं हरेत् ब्रह्म स्मरन् नारायणात्मकं मूलमन्त्रं जपेत् ॥४२॥

अनुवाद— तदनन्तर श्रीभगवान् की पूजा करके श्रीभगवान् को नमस्कार करे, तदनन्तर नन्द सुनन्द आदि पार्षदों के लिए आठो दिशाओं में बलि प्रदान करे । इसके पश्चात् श्रीभगवान् के समक्ष आकर उनका स्मरण करते हुए ओम नमो नारायणाय इस अष्टाक्षर मन्त्र का यथा शक्ति जप करे ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

ततो बहिस्थं भगवन्तमन्तर्यामिणमभ्यर्च्याथ नमस्कृत्य पार्षदेभ्यो नन्दादिभ्योऽष्टदिक्षु बलिं हरेत् । ततः पूजास्थानमागत्य देवस्याग्रे समुपविश्य यथाशक्ति मूलमन्त्रं जपेत् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् अग्नि में विपमान अन्तर्यामी श्रीभगवान् की पूजा करे उसके पश्चात् उनको नमस्कार करे । फिर नन्द आदि पार्षदों के लिए आठो दिशाओं में बलि प्रदान करे फिर पूजा के स्थान में आकर बैठे और अपनी शक्ति के अनुसार **ओम् नमो नारायणाय** इस मन्त्र की यथाशक्ति जप करे ।।४२।।

दत्त्वाचमनमुच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयेत् । मुखवासं सुरभिमत्ताम्बूलाद्यमथार्हयेत् ।।४३।।

अन्वयः— विष्वक्सेनाय आचमनं दत्त्वा उच्छेषं मुखवासं अथसुरभिमत् ताम्बूलाद्यमर्हयेत् ।।४३।।

अनुवाद— उसके पश्चात् श्रीभगवान् को आचमन कराये और उनका प्रसाद श्री विश्वक्सेनजी को निवेदित करे। उसके पश्चात् अपने इष्टदेव की सेवा में मुखवास तथा सुगन्धित ताम्बूल निवेदित करे ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

तत्र उभयत्र भगवतो भोजनसमाप्तिं ध्यात्वा आसनं दत्त्वा उच्छेषं विष्वक्सेनाय कल्पयित्वा तदनुज्ञया पश्चात्स्वयं भुञ्जीत। ततः सुरभिमत्सुगन्धवत्ताम्बूलाद्यं मुखवासं दत्त्वाथ पुनरप्यर्हयेत्पुष्पाञ्जलिना पूजयेत् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् श्रीभगवान् को आचमन कराये और उनका प्रसाद श्रीविष्वक्सेनजी को निवेदित करे । उसके पश्चात् अपने इष्टदेव की सेवा में मुखवास तथा सुगन्धित ताम्बूल निवेदित करे ।।४३।।

उपगायन्गृणन्नृत्यन्कर्माण्यभिनयन्मम । मत्कथाः श्रावयन् शृण्वन् मुहूर्तं क्षणिको भवेत् ।।४४।।

अन्वयः— उपगायन् गृणन् नृत्यन् ममकर्माणि अभिनयन्, मम कथा श्रावयन् शृण्वन् मुहूर्तं क्षणिको भवेत ।।४४।।

अनुवाद— मेरे गुणों का गायन करे, नृत्य करे, मेरी ही लीलाओं का अभिनय करे । यह सब करते समय प्रेमोन्मत्त होकर नृत्य करने लगे । मेरी कथाओं को सुने और दूसरों को सुनाये । कुछ समय तक संसार को वह भूल जाय और मुझमें ही तन्मय हो जाय ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

अभिनयन् स्वस्मिन्नाविष्कुर्वन् । क्षणिको वैयग्र्यं परित्यज्य लब्धावसरो भवेत् ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

मेरी लीलाओं का अभिनय करे । वह अपनी व्याकुलता का परित्याग करके मेरी भक्ति में अवसर प्राप्त करे।।४४।।

स्तवैरुच्चावचैः स्तोत्रैः पौराणै प्राकृतैरपि । स्तुत्वा प्रसीद भगवन्निति वन्देत दण्डवत् ।।४५।।

अन्वयः— पौराणैः प्राकृतैः अपि उच्चावचैः स्तवैः स्तोत्रैः स्तुत्वा प्रसीद भगवन् इति दण्डवत् वन्देत ।।४५।।

अनुवाद— प्राचीन ऋषियों द्वारा तथा प्राकृत भक्तों द्वारा प्रणीत छोटी बड़ी स्तुतियों तथा स्तोत्रों द्वारा मेरी स्तुति करके मेरी प्रार्थना करे भगवन् आप मुझ पर प्रसन्न होइये । फिर श्रीभगवान् को साष्टाङ्ग (दण्डवत) प्रणाम करे ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

स्तवस्तोत्राणां भेदं दर्शयति-पौराणैः प्राकृतैरपीति ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

स्तव और स्तोत्रों में भेद प्राकृत भक्तों द्वारा किए गये स्तोत्रों और पौराणिक ऋषियों द्वारा प्रणीत स्तव हैं।।४५।।

शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम् । प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥४६॥

अन्वयः— मत्पादयोः शिरः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परं हे ईश प्रपन्नं पाहि माम् भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ॥४६॥

अनुवाद— मेरे भक्त को चाहिये कि वह अपना सिर मेरे चरणों पर रख दे और अपने दाहिने हाथ से दाये और बाये हाथ से पैर को पकड़कर प्रार्थना करे कि हे प्रभो आप मेरी रक्षा करें। मृत्यु रूपी ग्रह से मैं भयभीत हूँ आप इस संसार सागर से मेरी रक्षा करें ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

कथं प्रणमेदित्यपेक्षायामाह-शिर इति । बाहुभ्यां दक्षिणोत्तराभ्यां परस्परं मम दक्षिणोत्तरौ पादौ गृहीत्वा । यद्वा, पृष्ठतः परस्परं निबद्धाभ्यां कृतापराध इव प्रपन्नमित्यादिविज्ञप्त्या च प्रणमेत् ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

उपासक किस प्रकार की अपेक्षा होने पर श्रीभगवान् **शिरोमत्पादयोः इत्यादि** श्लोक कहते हैं **बाहुभ्याम्** अर्थात् दायें हाथ से मेरा दाहिना पैर पकड़कर और बायें हाथ से बायें पैर पकड़कर । अथवा पीछे से परस्पर बंधे अपराधी के समान मैं आपके शरण में आया हूँ इस प्रकार से विज्ञापन करके प्रणाम करे ॥४६॥

इति शेषां मया दत्तां शिरस्याधाय सादरम् । उद्वासयेच्चेदुद्वास्यं ज्योतिर्ज्योतिषि तत्पुनः ॥४७॥

अन्वयः— इति मया दत्तं शेषां सादरं शिरसि आधाय उद्वास्यं चेद् उद्वासयेत् तत्पुनः ज्योतिः ज्योतिषि ॥४७॥

अनुवाद— इस तरह से स्तुति करके मुझे समर्पित की हुई माला आदर के साथ अपने सिर पर रखे और उसे मेरा दिया हुआ प्रसाद समझे । यदि विसर्जन करना हो तो ऐसी भावना करनी चाहिए कि प्रतिमा से एक दिव्य ज्योति निकली और वह मेरे हृदयस्थ ज्योति में लीन हो गयी । वह यही विसर्जन है ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

ततः शेषाग्रहणपूर्वकं वैकल्पिकोद्वासनप्रकारमाह-इतीति । अनयैव प्रार्थनया शेषां निर्माल्यं मया दत्तां ध्यात्वा शिरस्याधाय धृत्वा यद्युद्वासयेत्तर्हि प्रतिमायां यन्न्यस्तं ज्योतिस्तत्पुनरपि हृत्पद्मस्थज्योतिष्येवोद्वास्यमुद्वासनीयम् ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् श्रीभगवान् पर चढ़ाई हुई माला आदर पूर्वक लेकर अपने शिर पर रखे । वैकल्पिक उद्वासन प्रकार को **इति शेषाम्० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । इसी प्रार्थना के द्वारा श्रीभगवान् पर चढ़ाये हुए निर्माल्य का ध्यान करे कि उसे मैंने प्रदान किया है उसको अपने सिर पर धारण करे । यदि उसका विसर्जन करे तो ऐसा ध्यान करे कि प्रतिमा में स्थापित दिव्य ज्योति निकल कर मेरे हृदयस्थ ज्योति में लीन हो गयी, बस यही उद्वासन है ॥४७॥

अर्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत् । सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्माहमवस्थितः ॥४८॥

अन्वयः— यदा यत्र अर्चादिषु श्रद्धा मां तत्र च अर्चयेत् अहं सर्वभूतेषु आत्मनि च सर्वात्मा अवस्थितः ॥४८॥

अनुवाद— जब, जहाँ जिस अर्चा आदि में श्रद्धा हो वहीं पर मेरी पूजा करे । मैं सभी भूतों में तथा अपने हृदय में भी स्थित हूँ ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

एतेष्वधिष्ठानेषु किं मुख्यमित्यपेक्षायामाह-अर्चादिष्विति । यदा यत्र श्रद्धा तदा तत्र न त्वधिष्ठाने मुख्यामुख्यत्वम् । कुतः। यतः सर्वभूतेष्विति ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

इन अधिष्ठानों में कौन सा मुख्य है, इस प्रकार की आकांक्षा होने पर श्रीभगवान् **अर्चादिषु० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। जहाँ जिसमें श्रद्धा हो जाय उस समय वही मुख्य हैं अधिष्ठानों में कोई भी मुख्य और अमुख्य नहीं होता है। क्योंकि मैं तो सभी भूतों में आत्मारूप से स्थित हूँ ॥४८॥

एवं क्रियायोगपथैः पुमान्वैदिकतान्त्रिकैः । अर्चन्नुभयतः सिद्धिं मत्तो विन्दत्यभीप्सिताम् ॥४९॥

अन्वयः— एवं पुमान् वैदिकतान्त्रिकैः क्रियायोगपथैः अर्चन् मत्तः अभीप्सिताम् उभयतः सिद्धिं विन्दति ॥४९॥

अनुवाद— इस तरह से उपासक वैदिक एवं तान्त्रिक दोनों प्रकार के क्रियायोग मार्ग से मेरी आराधना करता हुआ मेरे द्वारा प्रदत्त भोग तथा मोक्ष दोनों प्रकार की अपनी अभिप्रेत सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

उभयतः इहामुत्र च ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

लोक एवं परलोक में ॥४९॥

मदर्चां संप्रतिष्ठाप्य मन्दिरं कारयेद्दृढम् । पुष्पोद्यानानि रम्याणि पूजायात्रोत्सवाश्रितान् ॥५०॥

अन्वयः— मदर्चां सं प्रतिष्ठाप्य बुधः दृढं मन्दिरं रम्याणिपुष्पोद्यानानि पूजायात्रोत्सवाश्रितान् कारयेत् ॥५०॥

अनुवाद— यदि शक्ति हो तो उपासक सुन्दर सुदृढ मन्दिर बनवाकर उसमें मेरी प्रतिमा स्थापित करे। सुन्दर पुष्पों का उद्यान बनवाये और नित्य की पूजा, पर्व की यात्रा और बड़े-बड़े उत्सवों की व्यवस्था कर दे ॥५०॥

भावार्थ दीपिका

समर्थं प्रत्याह-मदर्चामिति त्रिभिः। पुष्पोद्यानानि च कारयेत्। पूजायात्रोत्सवाश्रितान्, पूजा प्रत्यहम्, यात्रा विशिष्टे पर्वणि, बहुजनसमागमः, उत्सवो वसन्तादिमहोत्सव, तदाश्रितान् क्षेत्रादीन् दत्त्वा ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

समर्थ व्यक्तियों के लिए श्रीभगवान् **मदर्चाम् इत्यादि** तीन श्लोकों से कहते हैं, पुष्पों का उद्यान लगवाये। पूजा यात्रोत्सवाश्रितान् अर्थात् प्रतिदिन कीपूजा, विशिष्ट पर्व पर बहुत लोगों के समागम पूर्वक यात्रा कराये वसन्त महोत्सव आदि महोत्सव और उसके लिए क्षेत्र आदि देकर ॥५०॥

पूजादीनां प्रवाहार्थं महापर्वस्वथान्वहम् । क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्त्वा मत्सार्ष्टितामियात् ॥५१॥

अन्वयः— महापर्वसु अथ अन्वहम् पूजादीनां प्रवाहार्थं क्षेत्रापणपुरग्रामान् दत्त्वा मत्सार्ष्टिताम् इयात् ॥५१॥

अनुवाद— जो मनुष्य पर्वों के उत्सव तथा प्रतिदिन की पूजा आदि लगातार चलने के लिए खेत, बाजार, नगर अथवा ग्राम मेरे नाम पर समर्पित करते हैं वे मेरे समान ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेते हैं ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

पूजायात्रोत्सवाश्रितानित्यस्य विवरणम्- पूजादीनामिति। प्रवाहार्थं संततानुवृत्त्यर्थम्। मत्सार्ष्टितां मत्समानैश्वर्यम् ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

पूजादीनामित्यादि श्लोक से **पूजायात्रोत्सवान्** की व्याख्या की गयी है। प्रवाहार्थम् अर्थात् सदा चलते रहने के लिए। मत्सार्ष्टिताम् अर्थात् मेरे समान ऐश्वर्य ॥५१॥

प्रतिष्ठया सार्वभौमं सद्मना भुवनत्रयम् । पूजादिना ब्रह्मलोकं त्रिभिर्मत्साम्यतामियात् ॥५२॥

अन्वयः— प्रतिष्ठया सार्वभौमं, सद्मना भुवनत्रयम्, पूजादिना ब्रह्मलोकम् त्रिभिः मत्साम्यताम् इयात् ॥५२॥

अनुवाद— मेरी मूर्ति की प्रतिष्ठा कराने से पृथिवी का एक छत्र राज्य, मन्दिर का निर्माण करने से त्रिलोकी का राज्य, पूजा आदि की व्यवस्था करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति और इन तीनों कार्यों को करने से मेरी समानता प्राप्त होती है ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

प्रतिष्ठादीनां व्यस्तसमस्तानां फलमाह-प्रतिष्ठयेति । मत्साम्यतां मया साम्यमित्यर्थः ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

प्रतिष्ठा आदि के अलग-अलग और समस्त रूप से फल को **प्रतिष्ठया इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। **मत्साम्यताम्** अर्थात् मेरे साथ समानता को प्राप्त करता है ॥५२॥

मामेव नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन विन्दति । भक्तियोगं स लभत एवं यः पूजयेत माम् ॥५३॥

अन्वयः— नैरपेक्ष्येण भक्तियोगेन मामेव विन्दति । यः एवं माम् पूजयेत् सः भक्तियोगं लभते ॥५३॥

अनुवाद— निष्काम भक्तियोग के द्वारा उपासक मुझको ही प्राप्त कर लेता है । जो इस प्रकार से मेरी पूजा करता है वह भक्तियोग को प्राप्त करता है ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

सकामं प्रत्युक्तं अहैतुकभक्तं प्रत्याह-मामेवेति । अहैतुको भक्तियोग एवं कथं भवति तत्राह-भक्तियोगमिति ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

सकाम भक्त से संबद्ध सारी बातें ऊपर कही गयी हैं अब निष्काम भक्त के प्रति श्रीभगवान् **मामेव० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । प्रश्न है कि अहैतुक भक्तियोग ही कैसे होता है । इस पर श्रीभगवान् ने कहा जो इस प्रकार से मेरी पूजा करता है । वह भक्तियोग को प्राप्त करता है ॥५३॥

यः स्वदत्तां परैर्दत्तां हरेत सुरविप्रयोः । वृत्तिं स जायते विड्भुग्वर्षाणामयुतायुतम् ॥५४॥

अन्वयः— यः स्वदत्तां परैर्दत्तां सुरविप्रयोः वृत्तिं हरेत स विडभुक् वर्षाणामयुतायुतम् जायते ॥५४॥

अनुवाद— जो अपने द्वारा दी हुई अथवा दूसरे के द्वारा दी हुई ब्राह्मण अथवा देवता की वृत्ति का अपहरण कर लेता है वह करोड़ों वर्षों तक विष्ठा का कीड़ा होता है ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

दातुः फलमुक्तम्, अपहर्तारं निन्दति-य इति । विड्भुक् विष्ठाभोजी कृमिः ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

दान देने वाले के फल का वर्णन किया गया, अब दान के अपहरण करने वाले की भगवान् निन्दा करते हैं । विड्भुक् अर्थात् विष्ठा खाने वाला कीड़ा ॥५४॥

कर्तुश्च सारथेर्हेतोरनुमोदितुरेव च । कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम् ॥५५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धवसंवादे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अन्वयः— कर्तुः च सारथेः हेतोः अनुमोदितुः एव च कर्मणां भागिनः प्रेत्य भूयो भूयसि तत्फलम् ॥५५॥

अनुवाद— अपहरण करने वाले की सहायता करने वाले अथवा उसका अनुमोदन करने वाले को भी वही फल प्राप्त होता है, जो अपहरण करने वाले का होता है । यदि अपहरण करने वाले का अधिक हाथ होता है तो उसको अधिक भी फल भोगना पड़ता है ॥५५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के भगवान श्रीकृष्ण तथा उद्धवजी के संवाद के प्रसङ्ग में सताईसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

कर्तुर्यत्फलं तदेवान्येषामपीत्याह-कर्तुरिति । सारथेः सहकारिणो हेतोः प्रयोजकस्यानुमोदितुश्च प्रेत्यैतत्फलमित्यन्वयः । कुतः । यतः । कर्मणामेते भागिनो भागार्हाः । तत्रापि विशेषमाह-भूयसि कर्मणि सारथ्यादौ च भूयोऽधिकं फलमिति ॥५५॥

पयःपत्रादिमात्रेण पूजितो यः परं पदम् । प्रागेव दिशति प्रीतः स कृष्णः शरणं मम ।।१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

अपहरण कर्ता को जिस फल की प्राप्ति होती है, वही फल उसमें सहायता करने वाले दूसरे लोगों को भी मिलता है इस बात को श्रीभगवान् कर्तुः इत्यादि श्लोक से कहे हैं । सारथेः अर्थात् सहकारी हेतु के प्रयोजक को अथवा अनुमोदन करने वाले को भी मिलता है । और सहायक का यदि अधिक हाथ हो तो अधिक भी फल मिलता है ॥५५॥

पयः पत्रादिमात्रेण.......शरणं मम ।।१।। अर्थात् जल एवं पत्र मात्र से पूजित जो भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर अपना पद प्रदान करते हैं, वेही भगवान् श्रीकृष्ण मेरा एक मात्र रक्षक हैं ॥१॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के सत्ताइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२७।।

* * *

अठाइसवाँ अध्याय

परमार्थ निरूपण

श्रीभगवानुवाच

परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेन्न गर्हयेत् । विश्वमेकात्मकं पश्यन्प्रकृत्या पुरुषेण च ॥१॥

अन्वयः— परस्वभावकर्माणि न प्रशंसेत् न गर्हयेत् विश्वम् एकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण च ॥१॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— यद्यपि जगत् व्यवहार में पुरुष एवं प्रकृति द्रष्टा और दृश्य के भेद से दो प्रकार का प्रतीत होता है किन्तु परमार्थ दृष्टि से देखने पर वह एक ही अधिष्ठान स्वरूप है । अतएव किसी के शान्त, घोर और मूढ स्वभाव की न तो निन्दा करे और न प्रशंसा करे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टविंशे तु यः पूर्वं विस्तरेणोपवर्णितः । ज्ञानयोगः पुनश्चासौ समाहृत्य निरूप्यते ॥१॥ इदानीमतिविस्तरेणोक्तं ज्ञानयोगं संक्षेपेण वक्तुमाह-परेषां स्वभावान् शान्तघोरादीन् कर्माणि च । तत्र हेतुः-विश्वमिति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

सत्ताइसवें अध्याय में जिस ज्ञानयोग का विस्तार से वर्णित है इस अठाइसवें अध्याय में उसी ज्ञान योग का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है ॥१॥ अब अत्यन्त विस्तार से वर्णित ज्ञानयोग का अत्यन्त संक्षेप में वर्णन करने के लिए कहा गया है । दूसरों के शान्त घोर आदि स्वभाव का सम्पूर्ण जगत् को एकात्मक देखते हुए न तो प्रशंसा करे और न निन्दा करे ॥१॥

परस्वभावकर्माणि यः प्रशंसति निन्दति । स आशु भ्रश्यते स्वार्थादसत्यभिनिवेशतः ॥२॥

अन्वयः— यः परस्वभावकर्माणि प्रशंसति निन्दति सः असत्याभिनिवेशतः स्वार्थात् आशु भ्रंश्यते ॥२॥

अनुवाद— जो पुरुष दूसरे के स्वभाव का अथवा कर्म की प्रशंसा अथवा निन्दा करता है वह शीघ्र ही अपने स्वार्थ तथा परमार्थ से च्युत हो जाता है, क्योंकि साधन तो उसके अभिनिवेश का उसके प्रति सत्यत्व बुद्धि का निषेध करता है और प्रशंसा और निन्दा उसके सत्यता के भ्रम को और भी दृढ कर देती है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

विपक्षे दोषमाह-परेति । स्वार्थात् ज्ञाननिष्ठालक्षणात् । असति मिथ्याभूते द्वैतेभिनिवेशात् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

प्रशंसा अथवा निन्दा करने पर दोष को **परस्वभावकर्माणि० इत्यादि** श्लोक से दोष को बतलाते हैं । स्वार्थात् ज्ञाननिष्ठा स्वरूप से । क्योंकि ऐसा करने पर असत्य का अभिनिवेश होता है ॥२॥

तैजसे निद्रयापन्ने पिण्डस्थो नष्टचेतनः । मायां प्राप्नोति मृत्युं वा तद्वन्नानार्थदृक् पुमान् ॥३॥

अन्वयः— तैजसे निद्रयापन्ने पिण्डस्थः नष्ट चेतनः मायां प्राप्नोति मृत्युं वा तद्वन्नानार्थदृक् पुमान् ॥३॥

अनुवाद— जिस समय इन्द्रियाँ निद्रा से अभिभूत हो जाती हैं, उस समय शरीर में विद्यमान जीव केवल मन के द्वारा स्वप्न को देखँता है । अर्थात् उसे बाहरी शरीर की स्मृति नहीं रह जाती है । उस समय यदि बचा रहा तब तो वह स्वप्न को झूठे दृश्यों में भटकने लगता है । यदि मन भी लीन हो गया तो वह मृत्यु के समान सुषुप्ति में लीन हो जाता है । इसी तरह जब जीव अपने अद्वितीय स्वरूप को भूल जाता है तो वह नाना वस्तुओं को देखने लगता है तब वह स्वप्न के झूठे दृश्यों में फँस जाता है अथवा वह मृत्यु के समान अज्ञान में लीन हो जाता है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

भ्रंशमेव दृष्टान्ततो दर्शयति-तैजसे राजसाहंकारकार्ये इन्द्रियगणे निद्रया आपन्नेऽभिभूते सति पिण्डस्थो जीवः केवलं मनोमात्रेण मायां स्वप्नरूपां प्राप्नोति, ततो मनसि लीने सति नष्टचेतनः सन्मृत्युं वा मृत्युतुल्यां सुषुप्तिं वा प्राप्नोति यथा तद्वदेव नानार्थदृक् द्वैताभिनिवेशी विक्षेपं लयं च प्राप्नोति । यथा प्राज्ञसंपर्काद्विश्वस्य भोगक्षयलक्षणो भ्रंश एवमनात्मसंपर्कादात्मनोऽपि स्वरूपभ्रंश इति भावः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

भ्रंश को ही दृष्टान्त के द्वारा उपन्यस्त करते हैं । राजसाहङ्कार के कार्यभूत इन्द्रियों के निद्रा के द्वारा अभिभूत हो जाने पर शरीर में विद्यमान जीव केवल मन के सहारे ही स्वरूपी माया को देखता है । जब मन भी लीन हो जाता है तो उसकी चेतना नष्ट हो जाती है और वह गाढ़ी निद्रा रूप सुषुप्ति में लीन हो जाता है । वह सुषुप्ति मृत्यु के तुल्य ही होती है । उसी तरह जब जीव अपने अद्वितीय स्वरूप को भूल जाता है और नानात्व को देखने लगता है । जिस तरह प्राज्ञ के संपर्क से विश्व का भोगक्षय रूप भ्रंश होता है । इसी तरह अनात्मा के सम्पर्क से आत्मा का भी स्वरूप भ्रंश हो जाता है ॥३॥

किं भद्रं किमभद्रं वा द्वैतस्यावस्तुनः कियम् । वाचोदितं तदनृतं मनसा ध्यातमेव च ॥४॥

अन्वयः— अवस्तुनः द्वैतस्य किं भद्रं किम् अभद्रम् वा कियत् वाचोदितं तदनृतं मनसयातमेव वा ॥४॥

अनुवाद— उद्धवजी जब द्वैतनाम की कोई वस्तु है ही नहीं उसमें अमुक वस्तु भली है तथा अमुक वस्तु बुरी है यह कहने का प्रश्न ही कहाँ उठता है । विश्व की सारी वस्तुएँ वाणी से कही जा सकती हैं अथवा मन से सोची जा सकती हैं । इस तरह उनके दृश्य और अनित्य होने के कारण उनका मिथ्यात्व सिद्ध होता है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

द्वैतासत्यतया स्तुतिनिन्दयोर्निर्विषयत्वं प्रपञ्चयति सार्धैः षड्भिः-किं भद्रमिति । अवस्तुनो द्वैतस्य मध्ये किं भद्रं किं वाऽभद्रं कियद्भद्रं कियद्वाऽभद्रमित्यर्थः । अवस्तुत्वमेवाह-वाचेति वाह्येन्द्रियोपलक्षणम् । वाचा उदितमुक्तं चक्षुरादिभिश्च यद्दृश्यं तदनृतमिति ॥४॥

भाव प्रकाशिका

द्वैत मिथ्या है अतएव उसकी निन्दा अथवा स्तुति निर्विषय होती है इसी अर्थ का विस्तार श्रीभगवान् किं **भद्रम० इत्यादि** साढे छह श्लोक से बतलाते हैं । मिथ्या द्वैत की अमुक वस्तु भली है और अमुक वस्तु बुरी है । इस कथन का कोई विषय नहीं है । जो वाणी से कहा जाता है तथा आखों से देखा जाता है वह मिथ्या है ॥४॥

छायाप्रत्याह्वयाभासा ह्यसन्तोऽप्यर्थकारिणः । एवं देहादयो भावा यच्छन्त्यामृत्युतो भयम् ॥५॥

अन्वयः— छायाप्रत्याह्वयाभासाः हि असन्त अप्यर्थकारिणः एवं देहादयः अपि भावाः आमृत्युतः भयम् यच्छन्ति॥५॥

अनुवाद— छाया, प्रतिध्वनि और सीपी में रजंत का आभास यद्यपि मिथ्या हैं किन्तु उनके द्वारा मनुष्य के हृदय में भय तथा कम्प और भ्रम संचार होती ही है । उसी तरह देह आदि भाव पदार्थ मिथ्या होने पर भी मृत्यु पर्यन्त भय उत्पन्न करते ही हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेवं सति देहादिभावानामप्यसत्त्वात्कथं भयहेतुत्वं तत्र सदृष्टान्तमाह-छाया प्रतिबिम्बः । प्रत्याह्वयः प्रतिध्वनिः । आभासः शुक्तिरजतादिः । एते यथाऽसन्तोऽप्यर्थकारिणो भवन्ति । आमृत्युतो मृत्युमभिव्याप्य । यद्वा, मृत्युर्लयः । यावन्नैव लीयन्ते तावत्पर्यन्तमित्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि यदि देह आदि भाव पदार्थ मिथ्या हैं तो फिर ये भय के कारण कैसे बनते हैं इसके उत्तर में श्रीभगवान् दृष्टान्त उपन्यास पूर्वक कहते है । छाया अर्थात् प्रतिबिम्ब, प्रत्याह्वय अर्थात् प्रतिध्वनि और आभास अर्थात् शुक्ति रजतादि ये सभी यद्यपि मिथ्या हैं किन्तु ये मनुष्य के हृदय में, भय, कम्प तथा भ्रम उत्पन्न करते हैं उसी तरह देहादि यद्यपि मिथ्या हैं फिर भी ये मृत्युकाल पर्यन्त भय उत्पन्न करते हैं । जब तक ज्ञान के द्वारा इनकी असत्यता का बोध नहीं हो जाता है और इनकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं हो जाती है, तब तक देहादि भी अज्ञानियों को भयभीत करते ही रहते हैं ॥५॥

आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः । त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः ॥६॥

अन्वयः— तदिदं विश्वं आत्मैव सृज्यते सृजति प्रभुः विश्वात्मा त्राति, त्रायते ह्रियते हरति प्रभुः ॥६॥

अनुवाद— जो कुछ प्रत्यक्ष या परोक्ष वस्तु है वह आत्मा ही है । वही सर्वशक्तिमान भी है । जो कुछ विश्वसृष्टिप्रतीत होती है उसका वही निमित्तकारण है । वही विश्व बनता है और बनाता भी है । रक्षक और रक्षित भी वही है । सर्वात्मा परामात्मा जगत् का संहार करते हैं और संहत भी वही होते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

ननु सृष्ट्यादिश्रुतिभिरेव द्वैतं निरूपितं कथमसत्यं स्यात्तत्राह–आत्मैवेति सार्धद्वाभ्याम् । त्रायते पाल्यते । त्राति पालयति।।६।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि सृष्टि आदि का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियाँ ही द्वैत का प्रतिपादन करती हैं, अतएव द्वैत असत्य कैसे हो सकता है ? इस पर श्रीभगवान् ढाई श्लोक में बतलाते हैं कि आत्मा ही सबकुछ है । त्रायते अर्थात् रक्षित होता है । त्राति पालन करता है ।।६।।

तस्मान्नह्यात्मनोऽन्यस्मादन्यभावो निरूपितः । निरूपितेयं त्रिविधा निर्मूला भातिरात्मनि ॥
इदं गुणमयं विद्धि त्रिविधं मायया कृतम् ॥७॥

अन्वयः— तस्मात् अन्यस्मात् आत्मनः अन्यः नहि निरूपितः, इयं त्रिविधा निरूपिता निर्मूला आत्मनि भाति इदं गुणमयं त्रिविधं मायया कृतम् विद्धि ।।७।।

अनुवाद— अवश्य ही व्यवहार दृष्टि से देखने वाली आत्मा इस विश्व से भिन्न हैं, किन्तु आत्मदृष्टि से उसके अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं । उसके अतिरिक्त जो कुछ भी प्रतीत हो रहा है उसका किसी भी प्रकार निर्वचन नहीं किया जा सकता है, अनिर्वचनीय तो केवल आत्मस्वरूप ही है । अतएव आत्मा में सृष्टि, स्थिति संहार अध्यात्म अधिदैव और अधिभूत ये तीन प्रकार की होने वाली प्रतीतियाँ सर्वथा निर्मूल है । सत्त्व रज और तम के कारण द्रष्टा, दर्शन और दृश्य आदि की त्रिविधता माया का खेल है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

अन्यस्मात्सृज्यादिव्यतिरिक्तात्। त्रिविधा आध्यात्मिकादिरूपा । भातिः प्रतीतिः । ननु कथं निर्मूलं प्रतीयते तत्राह–इदमिति।।७।।

भाव प्रकाशिका

अन्यस्मात् अर्थात् सृज्य पदार्थों से भिन्न, त्रिविधा अर्थात् आध्यात्मिक आदि (आधिभौतिक) आधिदैविक भक्तिः अर्थात् प्रतीति । यदि कहें कि देहादि यदि असत्य है, इनका कोई मूल नहीं है तो फिर इनकी प्रतीति कैसे होती है ? तो इसके उत्तर में कहते है यह त्रिगुणात्मक एवं त्रिविध जगत् माया का कार्य है ।।७।।

एतद्विद्वान्मदुदितं ज्ञानविज्ञाननैपुणम् । न निन्दति न च स्तौति लोके चरति सूर्यवत् ॥८॥

अन्वयः— एतत् मदुदितं ज्ञान विज्ञान नैपुण विद्वान् न निन्दति न स्तौति लोके सूर्यवत् चरति ।।८।।

अनुवाद— उद्धव तुमसे जो मैंने ज्ञान विज्ञान की जिस उत्तम स्थिति का वर्णन किया है, है उसको जो पुरुष जान लेता है, वह न तो किसी की प्रशंसा करता है और न तो किसी की निन्दा करता है । वह इस लोक में सूर्य के समान समभाव से विचरण करता है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

ज्ञानविज्ञानयोर्नैपुणं निष्ठाम् । सूर्यवत्समो भूत्वा ।।८।।

भाव प्रकाशिका

ज्ञान विज्ञानयोर्नैर्पुणम् अर्थात् ज्ञान विज्ञान की सर्वोत्तम स्थिति (पराकाष्ठा) सूर्यवत् अर्थात् सूर्य के समान सम भाव से रहकर विचरण करता है ।।८।।

प्रत्यक्षेणानुमानेन निगमेनात्मसंविदा । आद्यन्तवदसज्ज्ञात्वा निःसङ्गो विचरेदिह ॥९॥

अन्वयः— प्रत्यक्षेण, अनुमानेन, निगमेन आत्मसंविदा आद्यन्तवत् असत् ज्ञात्वा निःसङ्गः इह विचरेत् ।।९।।

अनुवाद— प्रत्यक्ष, अनुमान, शास्त्र तथा आत्मानुभव इन सभी प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि जिसकी उत्पत्ति और विनाश होते हैं, वह असत् होता है। इस बात को जानकर अनासक्त भाव से विचरण करना चाहिए।।९।।

भावार्थ दीपिका

एतन्निष्ठाप्राप्त्युपायमाह-प्रत्यक्षेणेति। यदाद्यन्तवत् द्वैतं तदसदिति ज्ञात्वा निःसङ्गो विचरेत्। आद्यन्तवत्त्वे प्रमाणानि-प्रत्यक्षेण घटादि। अनुमानेन सावयवत्वेन दृश्यं पृथिव्यादि। निगमेनाप्रत्यक्षमाकाशादि। आत्मसंविदा स्वानुभवेन सर्वं दृश्यमाद्यन्तवदसच्चेति ज्ञात्वा। निःसङ्गस्तदासक्तिशून्यः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

इस उत्तम ज्ञान की स्थिति की प्राप्ति के उपाय को **प्रत्येक्षण० इत्यादि** श्लोक से बतलाते है। जो-जो आदि तथा अन्त वाला द्वैत होता है, वह असत् (असत्य) होता है, इस बात को जानने वाले को चाहिए कि वह पूर्ण रूप से अनासक्त होकर विचरण करे। आदि तथा अन्त वाला होने में निम्नांकित प्रमाण हैं। **प्रत्यक्ष** इसके द्वारा ज्ञात होने वाले घटादि नाशवान हैं तथा असत् हैं। **अनुमान** प्रमाण के द्वारा ज्ञात होता है कि जो-जो सावयव होता है, दृश्य होता है पृथिवी के समान। पृथिवी अवयवों वाली होने के ही कारण दृश्य और असत्य हैं। शास्त्र के द्वारा जैसा आकाश। आकाश सावयव नहीं है और प्रत्यक्ष का विषय भी नहीं है किन्तु वह दृश्य है। नीला आकाश सब को प्रतीत होता है। अतएव आकाश आदि और अन्त वाला होने के कारण असत्य है। श्रुति भी कहती **तस्माद् वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः**। अतएव आकाश असत् है। आत्मसंविदा अर्थात् आत्मानुभव के द्वारा यह जानकर कि जो-जो दृश्यमान होता है वह वह आदि तथा अन्त वाला होने के कारण असत् होता है। इस तरह सम्पूर्ण द्वैत प्रपञ्च को असत् जानकर सबसे अनासक्त होकर विचरण करना चाहिए ।।९।।

उद्धव उवाच

नैवात्मनो न देहस्य संसृतिर्द्रष्टृदश्ययोः। अनात्मस्वदृशोरीश कस्य स्यादुपलभ्यते ।।१०।।

अन्वयः— द्रष्ट दृश्ययोः नैव आत्मनः नदेहस्य संसृतिः, अनात्मसु अदृशेः ईश कस्य स्यात् उपलभ्यते ।।१०।।

श्रीउद्धवजी ने कहा

अनुवाद— भगवान् आत्मा तो द्रष्टा है और देह दृश्य है, आत्मा चेतन है और शरीर जड़ है अतएव अनात्मा औद अदृश्य दोनों में से किसी का भी मृत्यु रूप संसार नहीं हो सकता है, किन्तु देखा जाता है कि होता है, यह कैसे ?।।१०।।

भावार्थ दीपिका

ननु यद्यात्मसंविदा सर्वं दृश्यमसदित्युच्यते तर्ह्यात्मा स्वप्रकाशो देहादिद्वैतं च जडमित्युक्तं स्यात्, तथा च संसारप्रतिभासो न घटेतेति चोदयति-नैवेति। अनात्मस्वदृशोर्जडाजडयोः। अत्र हेतुः-द्रष्टृदृश्ययोः। मा भूद्द्वयोरपि तत्राह-उपलभ्यत इति।।१०।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि यदि आत्मानुभूति के द्वारा सम्पूर्ण दैत दृश्य होने के कारण असत्य है तो फिर आत्मा तो स्वयम्प्रकाश है तथा देहादि द्वैत जड़ है। ऐसी स्थिति में संसार की प्रतीति समन्वित नहीं हो सकती है। इस प्रकार से उद्धवजी भगवान श्रीकृष्ण से **नैवात्मनो० इत्यादि** श्लोक से प्रश्न करते हैं- जड़ एवं अजड दोनों में से किसी को संसार प्रतिभास नहीं हो सकता है किन्तु संसार की प्रतीति की उपलब्धि होती है। यह कैसे ? जन्म मरण रूपी संसार की अनुभूति होती है यह देखा जाता है ।।१०।।

आत्माऽव्ययोऽगुणः शुद्धः स्वयंज्योतिरनावृतः । अग्निवद्दारुवदचिद्देह कस्येह संसृतिः ॥११॥

अन्वयः— आत्मा अव्यय अगुणः शुद्धः स्वयं ज्योतिः अनावृतः अग्निवत् देहः दारुवत् अचित् इह संसृतिः कस्य?॥११॥

अनुवाद— आत्मा, निर्विकार, प्राकृत तथा आप्राकृत सभी प्रकार के गुणों से रहित स्वयम्प्रकाश आवरण रहित तथा अग्नि के समान प्रकाशमान है, जब कि शरीर इसके विपरीत विनाशी सगुण, अशुद्ध, प्रकाश्य और आवृत तथा काष्ठ के समान अचेतन है, फिर यह जन्म-मृत्यु रूप संसार किसे होता है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति-आत्मेति । अव्ययत्वादिपञ्चविशेषणैर्नाशादिरागादिपुण्यापुण्याज्ञानपरिच्छेदानामसंभवं दर्शयति-हेतुहेतुमत्त्वं तु यथेष्टम् । अचिज्जडः । अयं भावः यथैवाग्निदारुणोर्भेदेनानुपलम्भेऽपि दारु प्रकाश्यमेवाग्निश्च प्रकाशकः, तथा देहात्मनोरपीति न संसृतिस्तयोरन्यतरस्यापि घटत इति ॥११॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बातों को ही उद्धवजी विस्तार से आत्मा इत्यादि श्लोक से कहते हैं अव्ययत्व आदि पाञ्च विशेषणों से युक्त होने के कारण आत्मा नाश आदि, राग आदि पुण्यपाप आदि परिछेदों से रहित है इस बात को दिखलाया गया है। इन सबों में हेतुहेतु मद्भाव भी यथेष्ट मात्रा में विद्यमान है। अचित् अर्थात् जड़। कहने का भाव है कि जिस तरह अग्नि और काष्ठ भेद होने के कारण उपलब्धि नहीं हो सकने पर भी प्रकाश्य काष्ठ को ही अग्नि प्रकाशित करती है उसी तरह देह विशिष्ट ही आत्मा इन दोनों में किसी एक की संसृति (संसार) संम्भव है ॥११॥

श्रीभगवानुवाच

यावद्देहेन्द्रियप्राणैरात्मनः संनिकर्षणम् । संसारः फलवांस्तावदपार्थोऽप्यविवेकिनः ॥१२॥

अन्वयः— यावद्देहेन्द्रिय प्राणैरात्मनः संनिकर्षणम् तावत् अपार्थोऽपि संसार अविवेकिनः फलवान् ॥१२॥

श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा

अनुवाद— जब तक देह इन्द्रियों और प्राणों से आत्मा का सन्निकर्ष बना रहता है तब मिथ्या भी संसार अज्ञानी जीवों सत्य ही प्रतीत होता है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

सत्यं तथाप्युभयोरेवमविवेक एव संसारालम्बनमित्याह पञ्चभिः-यावदिति । संनिकर्षणं संबन्धः । नन्वसङ्गस्य कुतः संबन्धस्तत्राह-अविवेकिनः, अज्ञानकृत इत्यर्थः । ननु स्वप्रकाशस्य कथमज्ञानकृतः संसारस्तत्राह-अपार्थोऽपि मिथ्याभूतोऽपि केवलं फलवान् । फलं स्फूर्तिर्न तु तत्त्वतोऽस्तीत्यर्थः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

फिर भी दोनों का अविवेक (भेद पूर्वक ज्ञान न होना) ही संसार का आधार हैं। इस बात को यावत् इत्यादि पाञ्च श्लोकों से कहा गया है। संनिकर्षणम् अर्थात् संबन्धः। प्रश्न है कि आत्मा तो असङ्ग (अनासक्त) है उसका संबन्ध कैसे होता है ? इस पर श्रीभगवान् कहते हैं कि अज्ञानी जीवों को संसार का प्रतिभास होता है। प्रश्न है कि स्वप्रकाश आत्मा का अज्ञान जन्य कैसे संसार सम्भव है ? इस पर श्रीभगवान् कहते है संसार यद्यपि मिथ्या है फिर भी वह केवल फलवान होता है अर्थात् उसको संसार की केवल स्फूर्ति होती है किन्तु वह स्फूर्ति सत्य नहीं है ॥१२॥

अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते । ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥१३॥

अन्वयः— यथा विषयान्ध्यातः अस्य स्वप्ने अनर्थागमः एवं अर्थे अविद्यमानेऽपि संसृतिः न निवर्तते ॥१३॥

अनुवाद— जैसे स्वप्न में अनेक विपत्तियाँ आती हैं किन्तु वस्तुत: वे होती नहीं हैं फिर भी स्वप्न टूटने तक उनका अस्तित्व नहीं मिटता है, वैसे ही संसार के नहीं रहने पर भी जो उसमें प्रतीत होने वाले विषयों का चिन्तन करते रहते हैं उनके जन्म मृत्यु रूप संसार की निवृत्ति नहीं होती है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

नन्वसतो देहादेः कुतः संसारस्फूर्तिहेतुत्वमपि तत्राह-अर्थे हीति । अस्यात्मनः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि असत्य देहादि संसार की स्फूर्ति के कारण कैसे बनते हैं ? उस पर **अर्थे इत्यादि** श्लोक कहते हैं । **अस्य आत्मनः** अर्थात् जीव का ॥१३॥

यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् । स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥१४॥

अन्वयः— यथा हि अप्रतिबुद्धस्य प्रस्वाप: बहु अनर्थकृत् प्रतिबुद्धाय स एव वै मोहाय न कल्पते ॥१४॥

अनुवाद— मनुष्य जिस समय स्वप्न देखता है उसको नींद टूटने से पहले बहुत सी विपत्तियाँ आती हैं किन्तु जब मनुष्य जग जाता है । उस समय न तो मोह जन्य विपत्तियाँ होती है आर न तो उनके कारण होने वाले मोह आदि विकार होते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

ननु कथंचिज्जानतो विषयस्फूर्तिर्जीवन्मुक्तस्यापि दुवरित्यनिर्मोक्षप्रसङ्गः स्यात्तत्राह-यथा हीति । प्रस्वापः स्वप्नः । बहूननर्थान् बिभर्ति पुष्णातीति तथा ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि जो लोग जीवन्मुक्त हो गये है उनको भी तो विषयों की स्फूर्ति होती ही रहती है, ऐसी स्थिति में उनको मोक्ष नहीं हो सकता है उस पर श्रीभगवान् **यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । **प्रस्वापः** अर्थात् स्वप्न । अनेक प्रकार की विपत्तियों को पोषित करता है ॥१४॥

शोकहर्षभयक्रोधलोभमोहस्पृहादयः । अहङ्कारस्य दृश्यन्ते जन्म मृत्युश्च नात्मनः ॥१५॥

अन्वयः— शोकहर्षभयक्रोध लोभ मोह स्पृहादय: जन्म मृत्युः च अहङ्कारस्य दृश्यन्ते आत्मनः न ॥१५॥

अनुवाद— उद्धव शोक हर्ष, भय, क्रोध लोभ, मोह स्पृहा आदि तथा जन्म और मृत्यु अहङ्कार को होते हैं आत्मा से इन सबों का सबन्ध नहीं है ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

अहङ्कारलक्षणो देहादिसंनिकर्ष एवं संसारालम्बनमित्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां दर्शयति-शोकेति । सुषुप्त्यादौ तेषामदर्शनादहं सुखीतिवच्चैतन्यं सुखीति प्रतीत्यभावाच्च दृश्यत्वाच्च सुखादीनां कृशत्वादिवद्द्रष्टृधर्मत्वानुपपत्तेरिति भावः । उक्तं च- 'सुप्तेऽहमि न दृश्यन्ते सुखदोषप्रवृत्तयः । अतस्तस्यैव संसारो न मे संसृतिसाक्षिणः ।' ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

देह आदि का सन्निधान होने पर ही अहङ्कार होता है । अतएव देहादि का सन्निधान ही संसार का आलम्बन है । इस बात को अन्वयव्यतिरेक के द्वारा दिखाते है । अहङ्कार के रहने पर ही संसार की प्रतीति होती है और अहङ्कार के अभाव में संसार का अभाव होता है । यही अन्वय और व्यतिरेक है । सुषुप्ति काल में शोक, हर्ष इत्यादि की प्रतीति नहीं होती है । मैं सुखी हूँ इस तरह से होने वाली प्रतीति ज्ञान स्वरूप आत्मा के धर्म सुखित्व

नहीं है । जिस तरह कृशत्व आदि आत्मा के धर्म नहीं है उसी तरह कहा भी गया है अहङ्कार के सो जाने पर सुख दोष आदि की प्रवृत्तियाँ नहीं होती हैं । अतएव अहङ्कार को ही संसार होता है संसार के साक्षी आत्मा के ये धर्म नहीं है ॥१५॥

देहेन्द्रियप्राणमनोभिमानो जीवोऽन्तरात्मा गुणकर्ममूर्तिः ।
सूत्रं महानित्युरुधेव गीतः संसार आधावतिकालतन्त्रः ॥१६॥

अन्वयः— देहेन्द्रियप्राणमनोभिमानः अन्तरात्मा जीवः गुणकर्ममूर्तिः, सूत्रं महान इति उरुधेव गीतः कालतन्त्रः संसारे आधावति ॥१६॥

अनुवाद— देह, इन्द्रिय, प्राण तथा मन में रहने वाला आत्मा जब उनका अभिमान कर बैठता है, अर्थात् उनको स्वरूप मान लेता है तो वही जीव कहलाने लगता है । गुणों और कर्मो से बना हुआ लिङ्गशरीर उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्मा की मूर्ति (शरीर) है । उस लिङ्ग शरीर को ही कहीं सूत्रात्मा कहा जाता है और कही महान् (महत् तत्त्व) उसके और भी कई नाम हैं वह कालरूप परमेश्वर के अधीन होकर (जन्म-मृत्यु रूपों) संसार में इधर-उधर भटकता रहता है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

ननु यद्यहङ्कारस्य संसारस्तर्हि मुक्तिरपि तस्यैवेति मुक्तावहंकारावशेषः प्रसज्जेत तत्राह-देहेति । देहादिष्वभिमानो यस्य सः । आत्मैव तेषामन्तर्हितो जीवः । अतएव गुणकर्ममयी मूर्तिर्यस्य सः । एवं च सूक्ष्मोपाधिभिर्बहुधेव सूत्रादिशब्दैर्गीतः संसारे परमेश्वराधीनः सर्वतो धावति, अतोनायं दोष इति भावः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि यदि अहङ्कार को ही संसार होता है तो फिर मुक्ति भी अहङ्कार की ही होगी फलतः मुक्ति हो जाने पर केवल अहङ्कार मात्र अवशिष्ट रहेगा । इस पर श्रीभगवान् **देहेन्द्रियप्राण० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । देह इन्द्रिय मन और प्राण में रहने वाला आत्मा ही जब इन सबों में अभिमान करके देहेन्द्रियादि को ही अपना स्वरूप समझ लेता है तो वह आत्मा ही जीव कहलाने लगता है । उसकी मूर्ति (शरीर) गुण और कर्ममयी है । सूक्ष्मगति सूक्ष्म आत्मा की उपाधि लिङ्ग शरीर ही कहीं सूत्रात्मा तो कहीं महान् कहलाता है । संसार में वह काल रूप परमात्मा के अधीन रहकर जन्म मृत्यु रूप संसार में भटकता रहता है ॥१६॥

अमूलमेतद्बहुरूपरूपितं मनोवचः प्राणशरीरकर्म ।
ज्ञानासिनोपासनया शितेन छित्त्वा मुनिर्गां विचरत्यतृष्णः ॥१७॥

अन्वयः— मनोवचः प्राण शरीर कर्म, एतत् अमूलं बहुरूपरूपितम् उपासनया शितेन ज्ञानासिनाछित्त्वा मुनिः अतृष्णः गां विचरति ॥१७॥

अनुवाद— मन, वाणी, प्राण और शरीर वस्तुतः अहङ्कार के ही कार्य हैं । यद्यपि यह निर्मूल हैं किन्तु देव, मनुष्य आदि अनेक रूपों में यह प्रतीत होता है । उपासक उपासना के शाण पर चढ़ाकर ज्ञान रूपी तलवार को तीक्ष्ण बना लेता है और उसके द्वारा अहङ्कार का मूलोच्छेदन करके निस्पृह होकर संसार में विचरण करता रहता है । उसमें किसी प्रकार की तृष्णा नहीं रहती है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवमहंकारकृतं बन्धमुपपाद्येदानीं ज्ञानेन तन्निवृत्तौ मुक्तिरित्याह-अमूलमिति । वस्तुतो मूलशून्यमज्ञातस्तु बहुभी रूपैर्देवादिशरीरै रूपितं प्रकाशितमैन्द्रजालिकतुल्यमिति वा । किं तत्तदाह-मन इति । मनआदीनां द्वन्द्वः, यद्वा, मनआदिषु क्रियत इति कर्म अहङ्करणं गुरोरुपासनया निशितेन तीक्ष्णेन ज्ञानखड्गेन छित्त्वा ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से यह संसार का बन्धन अहङ्कार का ही कार्य है इस बात का प्रतिपादन करके अब **आमूलम् इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं कि ज्ञान के द्वारा ही संसार की निवृत्ति हो जाना ही मुक्ति है । वस्तुत: वह निर्मूल है । उसके ज्ञान नही होने के कारण वह देव मनुष्य आदि नामों से अभिहित होता है । अथवा इन्द्रजालिक के इन्द्र जाल के समान प्रतीत होता है । देहेन्द्रिय प्राणमनोभिमान: में द्वन्द्व समास है । अर्थात् वह मन आदि में रहने वाला ही आत्म इन सबों में अभिमान करने के कारण जीव कहलाता है । अथवा मन आदि में अहङ्कार की क्रिया को करने वाला गुरु की उपासना द्वारा तीक्ष्ण बने हुए ज्ञान रूपी खड्ग के द्वारा काटकर ।।१७।।

ज्ञानं विवेको निगमस्तपश्च प्रत्यक्षमैतिह्यमथानुमानम् ।
आद्यन्तयोरस्य यदेव केवलं कालश्च हेतुश्च तदेव मध्ये ।।१८।।

अन्वयः— ज्ञानं विवेको निगम: तप: च प्रत्यक्ष मैतिह्यम् अथ अनुमानम् अस्य अदि अन्तयो: यदेव केवल काल: च हेतु: च तदेव मध्ये ।।१८।।

अनुवाद— आत्मा एवं अनात्मा के स्वरूप अलग-अलग समझ लेना ही ज्ञान है । क्योंकि विवेक होते ही द्वैत का अस्तित्व मिट जाता है । उसका साधन है । तपस्या के द्वारा अन्त:करण को शुद्ध करके, वेदादि शास्त्रों का श्रवण करना । इसके अतिरिक्त श्रवणानुकूल युक्तियाँ, महापुरुषों के उपदेश और इन दोनों से अविरुद्ध स्वानुभूति प्रमाण है । इन सबों का सार यह है कि इस संसार के आदि और अन्त में जो रहता है जो इसका मूल कारण और प्रकाशक है, वही अद्वितीय और उपाधि शून्य परमात्मा बीच में भी है । उसके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

तदेव ज्ञानं स्वरूपसाधनफलैर्निरूपयति-ज्ञानमिति । विवेको ज्ञानम् । साधनान्याहनिगमो वेद: । तप: स्वधर्म: । प्रत्यक्षं स्वानुभव: । ऐतिह्यमुपदेश: । अनुमानं तर्क: । फलमाह-आद्यन्तयोर्यदस्य जगतो मध्येऽपि तदेव केवलं न तु जगदिति । किं तत्काल: कलयति प्रकाशयति यस्तथा हेतु: कारणं च यत् तदेव । एतदुक्तं भवति-यदस्य विश्वस्य कारणं प्रकाशकं च ब्रह्म तदात्मकमेवैतत्, न तत: पृथगित्येवं निश्चयफलो निगमादिसाधनैर्जायते यो विवेकस्तज्ज्ञानमिति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

उस ज्ञान का ही उसके स्वरूप, उसके साधन तथा उसके फल के द्वारा निरूपण **ज्ञानम्० इत्यादि** श्लोक के द्वारा करते हैं । विवेक को ही ज्ञान कहते है । विवेक के साधनों को बतलाते हैं निगम अर्थात् वेद, तप: अर्थात् अपने धर्म का पालन, प्रत्यक्षम् अर्थात् स्वानुभव, ऐतिह्यम् अर्थात् महापुरुषों के उपदेश, अनुमानम् अर्थात् वेदशास्त्र के अविरोधी तर्क, इन समस्त साधनों से यही ज्ञात होता है कि जो इस जगत् के आदि और अन्त में रहता है, वही मध्य में भी रहता है न कि जगत् रहता है । प्रश्न होता है कि जिसको काल प्रकाशित करता है इस प्रकार का जो जगत् का कारण है वह ब्रह्म ही है । ब्रह्म ही जगत के आदि और अन्त में भी रहता है, मध्य में भी यह ब्रह्मात्मक ही जगत् रहता है उस ब्रह्म से अलग नहीं है । इस तरह से निगमादि साधनों से होने वाला ज्ञान ही विवेक है ।।१८।।

यथा हिरण्यं स्वकृतं पुरस्तात्पश्चाच्च सर्वस्य हिरण्मयस्य ।
तदेव मध्ये व्यवहार्यमाणं नानापदेशैरहमस्य तद्वत् ।।१९।।

अन्वयः— यथा स्वकृतं पुरस्तात् हिरण्यं सर्वस्य हिरण्मयस्य पश्चात् च तदेव नानापदेशै: व्यवहार्यमाणं तद्वत् अस्य अहम् ।।१९।।

अनुवाद— जिस तरह सुवर्ण से निर्मित कटक कुण्डलादि से पहले सुवर्ण ही रहता है, और जितने सुवर्ण से बने कटक कुण्डलादि हैं उनके नहीं रहने पर भी सुवर्ण ही रहेगा और बीच में कटक कुण्डलादि शब्दों से व्यवहृत किए जाने वाले भी सुवर्ण ही रहते हैं, वे सुवर्ण से भिन्न नहीं होते है, उसी तरह इस जगत् के आदि, अन्त और मध्य में रहने वाला मैं ही हूँ, मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है। वस्तुतः मैं ही सत्य सत्त्व हूँ ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तत्र नानाभेदव्यवहारालम्बनस्यापि विश्वस्य कारणमात्रात्मकत्वं सदृष्टान्तमाह-यथेति। स्वकृतं सुष्ठु कुण्डलादिरूपेणाविरचितं यद्धिरण्यम्। कीदृशम्। हिरण्यमस्य कुण्डलादेरुत्पत्तेः पुरस्तान्नाशाच्च पश्चान्मध्ये च यदस्ति कटकं कुण्डलमित्यादिनानाव्यपदेशैर्व्यवहारं प्राप्यमाणमपि तदेव यथा तद्वदस्य विश्वस्य कारणभूतोऽहमेव नानाव्यवहारालम्बनं, न तु मत्तः पृथग्विश्वमिति॥१९॥

भाव प्रकाशिका

उसमें भी अनेक प्रकार के होने वाले भेद व्यवहार के आलम्बन विश्व के कारण मात्रात्मकत्व को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक **यथा० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं। कटक कुण्डल आदि रूप से निर्मित सुवर्ण सुवर्ण निर्मित कुण्डलादि के निर्माण से पहले सुवर्ण ही था और इन कटक कुण्डलादि के नाश के पश्चात् भी सुवर्ण ही रहेगा। अतएव बीच में जो कुण्डल कटक आदि रूप में जो व्यवहृत होते है, वे भी सुवर्णात्मक ही हैं। इसी तरह इस जगत् के आदि में मैं ही था और अन्त में भी मैं रहूँगा। मध्य में भी जगत् के रूप में मैं ही हूँ अर्थात् सम्पूर्ण जगत् मदात्मक ही है यह मुझसे पृथक नहीं है ॥१९॥

विज्ञानमेतन्त्रियवस्थमङ्ग गुणत्रयं कारणकार्यकर्तृ। समन्वयेन व्यतिरेकतश्च येनैव तुर्येण तदेव सत्यम्॥२०॥

अन्वयः— हे अङ्ग! एतत् विज्ञानम् त्रियवस्थम् गुणत्रयम् कारणम्, कारणकार्यकर्तृ, येनैव तुर्येण समन्वयेन व्यतिरेकतः च तदेव सत्यम् ॥२०॥

अनुवाद— हे उद्धव! मन की तीन अवस्थाएँ होती हैं, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। इन अवस्थाओं के कारण भी तीन गुण है, सत्त्व, रजस एवं तमस् जगत् के भी तीन भेद हैं अध्यात्म (इन्द्रियाँ) अधिभूत (पृथिवीआदि) और अधिदैव (कर्ता) ये सारी त्रिविधताएँ जिसकी सत्ता से सत्य के समान प्रतीत होती है तथा समाधि आदि में इस त्रिविधता के नहीं रहने पर भी जिसकी सत्ता बनी रहती है, वह तुरीय तत्त्व इन तीनों से परे और इनमें अनुगत है वह चौथा ब्रह्मतत्त्व ही सत्य है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं कार्यस्य कारणमात्रात्मकतामुक्त्वा प्रकाश्यस्य प्रकाशकात्मकतामाह-विज्ञानमिति। त्रियवस्थम्। यकारस्य पृथक्पाठश्छन्दोनुरोधेन। जाग्रदादित्र्यवस्थं यद्विज्ञानं मनस्तदवस्थाकारणरूपं च यद्गुणत्रयम्। यच्च कारणकार्यकर्तृ। कारणमध्यात्मं, कार्यमधिभूतं, कर्तृ अधिदैवम्। एवं गुणत्रयकार्यभूतं त्रिविधं जगत्। एतद्येन तुर्येण सामान्यज्ञानमात्रेण समन्वयेन भवति। येनानुगतं प्रकाशत इत्यर्थः। 'तमेव भान्तमनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति' इति। तथा 'चक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो ये मनो विदुः' इत्यादिश्रुतेश्च। ननु विशेषविज्ञानव्यतिरेकेण न तुर्यं नामोपलभामहे तत्राह-व्यतिरेकतश्च समाध्यादौ यदस्ति तदेव सत्यमिति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह श्रीभगवान् कार्य को कारणात्मक कहकर **विज्ञानम् इत्यादि** श्लोक से प्रकाश्य को प्रकाशकात्मक बतलाते हैं। त्रियवस्थम् में यकार का अलग पाठ छन्दानुरोध के कारण है। जाग्रत तीन अवस्थाओं वाला जो विज्ञान अर्थात् मन है। उन अवस्थाओं का कारणभूत, सत्त्व, रजस् एवं तमस् ये तीन गुण, तीनों गुणों का कार्यभूत

जो जगत् है वह भी कारण आध्यात्म (इन्द्रियादि) कार्य अधिभूत (पृथिव्यादि) तथा अधिदैव (कर्ता) त्रिविध है । यह त्रिविधात्मक जगत् जिस तुरीय सामान्य ज्ञान मात्र के समन्वय है तथा जिससे अनुगत (प्रकाशित) होता है । श्रुति भी कहती है । उस परब्रह्म के ही प्रकाशित होते रहने से सभी प्रकाशित होने वाले प्रकाशित होते है, उसी परब्रह्म के ही प्रकाश से प्रकाशित होता है । इसी तरह केन श्रुति भी कहती है जो परंब्रह्म चक्षु के भी चक्षु प्रकाशक है, श्रोत्रेन्द्रिय का जो श्रोत्र है, तथा जो मन का भी मन है, इस प्रकार से जो जानते हैं । प्रश्न होता है कि विशेष विज्ञान के अलग तुरीय की उपलब्धि नही होती है, तो इस पर श्रीभगवान् ने कहा व्यतिरेकतश्च अर्थात् समाधि आदि की भी अवस्था में रहने वाले परंब्रह्म ही सत्य है ॥२०॥

न यत्पुरस्तादुत यन्न पश्चान्मध्ये च तन्न व्यपदेशमात्रम् ।
भूतं प्रसिद्धं च परेण यद्यत्तदेव तत्स्यादिति मे मनीषा ॥२१॥

अन्वयः— यत् पुरस्तात् न यत् प्रश्चात् न तत् मध्ये च न व्यपदेश मात्रं यत् यत् परेण भूतं प्रसिद्धं च तत् तदेव स्यात् इति मे मनीषा ॥२१॥

अनुवाद— जो उत्पत्ति से पहले नही था तथा जो प्रलय के पश्चात् भी नहीं रहेगा, वह बीच में भी नही रहता है, वह केवल कल्पना मात्र, नाम मात्र है । जो पदार्थ जिससे बनता है तथा जिससे प्रसिद्ध है, वह वही होता है, वही वास्तविक स्वरूप है, यह मेरा दृढ़ विश्वास है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

एवं कालत्रयेऽप्यव्यभिचारिणः सत्यत्वमुक्तं, व्यभिचारिणस्त्वसत्यतामाह-न यदिति । मध्ये च तत्पृथक् नास्ति किंतु व्यपदेशमात्रम् । कुतः । यतो यद्यत्परेणान्येन भूतं जातं प्रसिद्धं प्रकाशितं च तत्तदेव कारणप्रकाशकतावन्मात्रं स्यान्न पृथगिति मे मनीषा बुद्धिः । 'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादिश्रुतेः । कारणप्रकाशकव्यतिरेकेण कार्यस्य प्रकाश्यस्य चानुपलम्भादिति भावः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

न यत्० इत्यादि इस श्लोक से बतलाया गया है कि जो तीनों कालों में अव्यभिचरित होता है वह सत्य होता है और जो व्यभिचरित होता है, वह सत्य नहीं होता है इस बात को श्रीभगवान् ने कहा । बीच में भी वही वस्तु होती है जो आदि और अन्त में होती है किन्तु उसका व्यपदेश मात्र होता है । क्योंकि जो अपने से जिस भिन्न से उत्पन्न होता है तथा प्रकाशित होता है वह वही होता है । कारण केवल प्रकाशतावान होता है । वह उससे भिन्न नहीं होता है । यह मेरा मानना है । श्रुतियाँ भी कहती हैं **वाचारभ्भण इत्यादि** अर्थात् जितने भी विकार और नामधेय होते हैं, वागालम्बन मात्र होते है । मृत्तिका ही सत्य होती है । दूसरी श्रुति कहती है यह सम्पूर्ण जगत ब्रह्मस्वरूप है । कारण की प्रकाशक रूप से उपलब्ध होता है और कार्य प्रकाश्य मात्र रूप से उपलब्ध होता है ॥२१॥

अविद्यमानोऽप्यवभासते यो वैकारिको राजससर्ग एषः ।
ब्रह्म स्वयंज्योतिरतो विभाति ब्रह्मेन्द्रियार्थात्मविकारचित्रम् ॥२२॥

अन्वयः— यः अविद्यमानः अपि अवभासते एषः वैकारिकः, राजसः सर्गः ब्रह्म स्वयं ज्योतिः अतो बाह्येन्द्रियार्थात्म विकार चित्रम् ॥२२॥

अनुवाद— जो वस्तु अविद्यमान रहकर भी प्रकाशित होती है वह राजस सृष्टि है, इसीलिए, इन्द्रिय, विषय, मन और पञ्चभूतादि जितने विविध विचित्र नाम और रूप हैं उन सबों रूप में ब्रह्म प्रकाशित हो रहे हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

एवं सामान्यतः कार्यप्रकाश्ययोः कारणप्रकाशकाभ्यामभेदमुपपाद्य प्रस्तुते तदुभयविवेकपूर्वकं प्रपञ्चस्य ब्रह्माभेदमाह- अविद्यमान इति । योऽयं वैकारिको विकारसमूहः स एव प्रागविद्यमानो राजससर्गः । रजोद्वारेण ब्रह्मकार्यभूत इत्यर्थः । अवभासतेऽपि ब्रह्मप्रकाश्यश्चेत्यर्थः । ब्रह्म तु स्वयं स्वतः सिद्धं, न तु कार्यमित्यर्थः । ज्योतिश्च प्रकाशकमित्यर्थः । अतः कारणादिन्द्रियाणि च अर्थास्तन्मात्राणि चात्मा मनश्च । देवानामप्युपलक्षणम् । विकाराः पञ्चभूतानि । एवं चित्रं ब्रह्मैव भातीति।।२२।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह सामान्यतः कार्य तथा प्रकाश्य का कारण तथा प्रकाशक रूप से भेद की सिद्धि करके प्रस्तुत में उन दोनों के विवेकपूर्वक प्रपञ्च से ब्रह्म के अभेद को **अविद्यमानः इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं यह जो विकार समूह ही राजस सृष्टि है । वह रजोगुण के द्वारा ब्रह्म का कार्य है । यह ब्रह्म का प्रकाश्य है । ब्रह्म तो स्वयं प्रकाश अतएव स्वतः सिद्ध होने के कारण किसी का कार्य नहीं है । वह अर्थात् प्रकाश भी है । अतएव कारणादि तथा इन्द्रियाँ, विषय तथा तन्मात्राएँ भी आत्मा और मन यह देवताओं का भी उपलक्षण है विकार अर्थात् पञ्चमहाभूत। इस तरह से विचित्र ब्रह्म ही है ।।२२।।

एवं स्फुटं ब्रह्मविवेकहेतुभिः परापवादेन विशारदेन ।
छित्त्वात्मसंदेहमुपारमेत स्वानन्दतुष्टोऽखिलकामुकेभ्यः ।।२३।।

अन्वयः— एवं स्फुटं ब्रह्म विवेकहेतुभिः विशारदेन परापवादेन आत्मसन्देहं छित्त्वा स्वानन्द तुष्टः अखिल कामुकेभ्यः उपारमेत ।।२३।।

अनुवाद— शास्त्र, स्वधर्म पालन रूप तपस्या प्रत्यक्ष, स्मृति तथा अनुमान नामक साधनों से स्पष्ट रूप से ज्ञात तथा ब्रह्म ज्ञान के साधन भूत श्रवण मनन एवं निदिध्यासन तथा इस कार्य में सहायक आत्मज्ञानी गुरु के द्वारा देह आदि के अपवाद न्याय से आत्मत्व का निरास करके आत्मा के विषय में संभावित संदेह को विनष्ट करके अपने आत्मानन्द से ही सन्तुष्ट होकर सम्पूर्ण इन्द्रियों आदि से अनासक्त हो जाना चाहिए ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-एवं निगमतपःप्रत्यक्षैतिह्यानुमानैः स्फुटं यथा भवति तथा ब्रह्मविवेकहेतुभिस्तथा परस्य देहादेरपवा- देनात्मत्वनिरासेन च । कीदृशेन । विशारदेन निपुणेन । गुरुणा निमित्तभूतेनेति वा । आत्मविषयं संदेहं छित्त्वा स्वानन्दतुष्टः सन्नखिलेभ्यः कामुकेभ्य इन्द्रियादिभ्य उपारमेत निःसङ्गो भवेत ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

शास्त्र तपस्या प्रत्यक्ष एतिहय (स्मृति) तथा अनुमान (तर्क) के द्वारा स्पष्ट रूप से ज्ञात, ब्रह्म विचार के साधन भूत श्रवण मनन एवं निदिध्यासन और आत्मानुभूति है । इसमें सहायक हैं आत्मज्ञानी गुरुदेव । उनके द्वारा विचार करके स्पष्ट रूप से देहादि अनात्मपदार्थों का निषेध कर देना चाहिए । इस तरह निषेध के द्वारा आत्मविषयक सन्देहों को छिन्न-भिन्न करके अपने आनन्द स्वरूप आत्मा में ही आनन्दमग्न हो जाय और सभी प्रकार के विषय वासनाओं से रहित हो जाना चाहिए ।।२३।।

नात्मा वपुः पार्थिवमिन्द्रियाणि देवा ह्यसुर्वायुजलं हुताशः ।
मनोऽन्नमात्रं धिषणा च सत्वमहंकृतिः खं क्षितिरर्थसाम्यम् ।।२४।।

अन्वयः— पार्थिवं वपुःइन्द्रियादि देवाः असुः वायुः जलं हुताशः आत्मा न, अन्नमात्रं मनः धिषणा सत्त्वम् अहंकृतिः खं क्षितिः अर्थसाम्यम् ।।२४।।

अनुवाद— निषेध करने का प्रकार यह है कि शरीर आत्मा नहीं है, क्योंकि वह पृथिवी का विकार है इन्द्रियाँउसके अधिष्ठातृ देवता, प्राण, वायु, जल, अग्नि एवं मन भी आत्मा नहीं हैं क्योंकि इन सबों का धारण पोषण शरीर के समान अन्न के द्वारा होता है। बुद्धि, चित्त, अहङ्कार आकाश, पृथिवी तथा शब्दादि विषय तथा गुणों की साम्यावस्था प्रकृति भी आत्मा नहीं है, क्योंकि वे सब दृश्य एव जड़ हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

परापवादं प्रपञ्चयति-वपुरात्मा न भवति, पार्थिवत्वाद्घटवत्। तथा इन्द्रियाणि तदधिष्ठातारो वा देवा असुः प्राणो धिषणा बुद्धिः सत्त्वं चित्तमहंकृतिरित्येते आत्मा न भवन्ति। कुतः। अन्नमात्रम्। अन्नोपष्टभ्यत्वाच्छरीरवत्। वायुर्जलं च हुताशस्तेजः खं क्षितिरिति पञ्चभूतान्यर्थाः शब्दादयः साम्यं प्रकृतिर्नात्मा जडत्वाद्घटवदिति। यद्वा, हिशब्देनानुमानान्तराणि सूचितानि; तद्यथा-इन्द्रियाण्यात्मा न भवन्ति, करणत्वाद्वास्यादिवत्, देवाश्च वैकारिकत्वान्मनोवत्, प्राणश्च वायुत्वाद्वाह्यवायुवदित्यादि ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

देहव्यतिरिक्त देहादि के अपवाद का विस्तार से वर्णन करते हैं। शरीर आत्मा नहीं है, क्योंकि वह पृथिवी का विकार है घटादि के समान। इसी तरह इन्द्रियाँ, इन्द्रियों के अधिष्ठातृदेवता, प्राण, बुद्धि चित्त तथा अहङ्कार ये सब भी आत्मा नहीं हैं, क्योंकि ये सब भी शरीर के ही समान अन्न के ही द्वारा परिपुष्ट होते हैं। वायु, जल, अग्नि, आकाश और पृथिवी ये पाञ्चों महाभूत और शब्द आदि विषय एवं गुणों की साम्यावस्था प्रकृति भी आत्मा नहीं है क्योंकि ये सब भी घटादि के समान जड़ हैं। अथवा मूल के हि शब्द के द्वारा दूसरे अनुमान सूचति होते है। अनुमानों का स्वरूप इस प्रकार है इन्द्रियाँ आत्मा नहीं हो सकती है क्योंकि वे कारण हैं, वसूली के समान देवता आत्मा नही है क्योंकि वे वैकारिक हैं मन के समान, प्राण आत्मा नहीं क्योंकि वह वायु विशेष है, बाह्य वायु के समान इत्यादि ॥२४॥

समाहितैः कः करणैर्गुणात्मभिर्गुणो भवेन्मत्सुविविक्तधाम्नः।
विक्षिप्यमाणैरुत किं नु दूषणं घनैरुपेतैर्विगतै रवेः किम् ॥२५॥

अन्वयः— समाहितैः गुणात्मभिः करणैः कः, गुणो भवेत् मत्सु विविक्त धाम्नः, उतविक्षिप्यमाणैः किं नु दूषणं, धनैः उपेतैः विगतैः रवेः किम् ॥२५॥

अनुवाद— उद्धवजी जिसे मेरे स्वरूप का ज्ञान हो गया है उसकी वृत्तियाँ और इन्द्रियाँ यदि समाहित रहती हैं उसे उनसे कौन सा लाभ है और यदि वे विक्षिप्त रहती हैं तो उनसे उसकी कौन सी क्षति होने वाली हैं क्योंकि अन्तः करण और बाह्यकरण सभी गुणमय हैं। और आत्मा से इन सबों का सम्बन्ध नहीं है। भला आकाश में बादलों के छा जाने अथवा तितर-वितर हो जाने से सूर्य का क्या विगड़ता है?॥२५॥

भावार्थ दीपिका

एवं विवेकज्ञानवतो मुक्तस्य नेन्द्रियादिकृतगुणदोषसंबन्ध इत्याह-समाहितैरिति। मत्सुविविक्तधाम्नः मम सुष्ठु विविक्तं धाम स्वरूपं येन तस्य। प्रकाशकस्य प्रकाश्यगुणदोषा न भवन्तीति रविदृष्टान्तेनोक्तम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

जिनको विवेक ज्ञान हो गया है ऐसे मुक्त पुरुष को इन्द्रियादि जन्य गुण अथवा दोष से संबन्ध नहीं होता है। इस बात को समाहितैः इत्यादि श्लोक से कहा गया है। मेरा सुन्दर एकान्तिक धाम अर्थात् स्वरूप जिसके द्वारा होता उसके प्रकाशक में प्रकाश्यगत गुणों अथवा दोषों का सम्बन्ध नहीं होता है इस बात को सूर्य के दृष्टान्त से कहा गया है ॥२५॥

यथा नभो वाय्वनलाम्बुभूगुणैर्गतागतैर्वर्तुगुणैर्न सज्जते ।
तथाक्षरं सत्त्वरजस्तमोमलैरहंमतेः संसृतिहेतुभिः परम् ॥२६॥

अन्वयः— यथा नभः वाय्वनलम्बुभूगुणैः गतागतैर्वर्तुगुणै र्न सज्जते तथा अक्षरं सत्वरजस्तमोमलैः अहं मतेः संसृतिहेतुभिः परम् ॥२६॥

अनुवाद— जिस तरह वायु आकाश को नहीं सुखा सकती हैं, अग्नि उसे नहीं जला सकती है, जल उसको नहीं भिंगो सकता है, धूल धुँआ उसको मलीन नहीं कर सकते हैं,ऋतुओं के गुण गर्मी सर्दी आदि उसको प्रभावित नहीं कर सकते हैं क्योंकि ये सब आने जाने वाले हैं और इन सबों का अधिष्ठान आकाश एक रस है, इसी तरह सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण की वृत्तियाँ तथा कर्म अविनाशी आत्मा का स्पर्श भी नहीं कर पाते हैं, वह इन सबों से सर्वथा परे है । इन सबों के द्वारा केवल वहीं संसार में भटकता है जो इन सबों में अहङ्कार कर बैठता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

असङ्गब्रह्मत्वेनावस्थितस्य न केऽपि गुणदोषा इत्याकाशदृष्टान्तेनाह-यथेति । वाय्वादीनां शोषणदहनक्लेदनरजोधूसरत्वादिभिर्गतागतैरागमापायिभिर्ऋतुगुणैः शीतोष्णादिभिर्वा । अहंमतेरहंकारात्परमक्षरं संसृतिहेतुभिर्न युज्यते । यद्वा, अहङ्कारस्य संसृतिहेतुभिरिति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

जो सर्वथा अनासक्त होकर ब्रह्म रूप से विद्यमान है उसको किसी भी गुण अथवा दोष से संबन्ध नहीं होता है। इस बात को **यथानभो० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है वायु आदि के सुखाने, जलाने भिंगोने तथा धूल के मैलावना ने आदि गुणों से आकाश का संबन्ध नहीं होता है, क्योंकि वे सभी तो आने जाने वाले है । इसी तरह ऋतुओं के गुण सर्दी, गर्मी से भी आकाश प्रभावित नहीं होता है । आत्मा इन सबों से तथा अहङ्कार से परे श्रेष्ठ है । वह सृष्टि के कारणों से युक्त नहीं होता है । अथवा अहङ्कार के सृष्टि के कारणों से संपृक्त नहीं होता है ॥२६॥

तथापि सङ्गः परिवर्जनीयो गुणेषु मायारचितेषु तावत् ।
मद्भक्तियोगेन दृढेन यावद्रजो निरस्येत मनःकषायः ॥२७॥

अन्वयः— तथापि मायारचितेषु गुणेषु तावत् सङ्गः परिवर्जनीयः यावत् दृढेन भक्तियोगेन रजः मनः कषग्यः निरस्येत्॥२७॥

अनुवाद— यद्यपि ऐसी बात है फिर भी माया रचित गुणों और उनके कार्यों को त्याग देना चाहिए जब तक कि मेरे सुदृढ भक्ति योग के द्वारा मन का रजोगुण रूप मल पूर्णरूप से निकल न जाय ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

मुक्तवदसम्यग्ज्ञानी न यथेष्टमाचरेदित्याह द्वाभ्याम्-तथापीति । गुणेषु विषयेषु । रजो रागः मनसः कषाय इति दुर्निरासतामाह॥२७॥

भाव प्रकाशिका

जिसको मुक्त जीव के समान अच्छी तरह से ज्ञान नहीं हुआ है वह यथेष्ट रूप से आचरण न करे । इस बात को तथापि इत्यादि दो श्लोक से भगवान् श्रीकृष्ण कहे हैं । गुणेषु अर्थात् विषयों में रजोगुण को मन का कषाय कहकर बतलाया गया है कि उसको मन से निकाल पाना बड़ा ही कठिन है ॥२७॥

यथामयोऽसाधुचिकित्सितो नृणां पुनः पुनः संतुदति प्ररोहन् ।
एवं मनोऽपक्वकषायकर्म कुयोगिनं विध्यति सर्वसङ्गम् ॥२८॥

अन्वयः— यथा अस्राधु चिकित्सितः आमयः पुनः पुनः प्ररोहन् नृणां संतुदतिं एवं अपक्वकषाय कर्म कुयोगिनं सर्वसङ्गम् विध्यति ॥२८॥

अनुवाद— जिस तरह से जिसकी अच्छी तरह से चिकित्सा नहीं की गयी है वह रोग बार-बार उभड़कर मनुष्य को कष्ट देता रहता है, वेसे ही जिस मन की वासना एवं कर्मों के संस्कार नहीं मिट गये हैं । जो स्त्री पुत्र में आसक्त हैं । वह बार-बार अधूरे योगी को वेधता रहता है और उसे योगभ्रष्ट भी बना देता है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

तदेव दृष्टान्तेनोपपादयति-यथेति । नृणामामयो रोगः । असाध्वसम्यक् यथा भवति तथा । अपक्वकषायकर्म अदग्धाः कषाया रागादयस्तन्मूलानि कर्माणि यस्मिंस्तत् । अतएव सर्वसङ्गं सर्वेषु पुत्रादिषु सज्जमानं मनः कुयोगिनमसम्यग्ज्ञानिनं विध्यति भ्रंशयति ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

यथामय इत्यादि श्लोक के द्वारा उपर्युक्त अर्थ का ही दृष्टान्तोपन्यास के द्वारा प्रतिपादन करते हैं । जैसे मनुष्यों के रोग इत्यादि ठीक से चिकित्सा नहीं करने पर असाध्य हो जाता है, उसी तरह जिस तरह मनुष्य के राग (वासना) तथा उनके मूलभूत कर्मो का संस्कार जब तक विनष्ट नहीं हो जाता है अतएव पुत्र आदि सबों में होने वाली आसक्ति युक्त होने पर ऐसे कुयोगियों का असम्यक् ज्ञान उनको भ्रष्ट कर देने का काम भी करता है ।।२८।।

कुयोगिनो ये विहितान्तरायैर्मनुष्यभूतैस्त्रिदशोपसृष्टैः ।
ते प्राक्तनाभ्यासबलेन भूयो युञ्जन्ति योगं न तु कर्मतन्त्रम् ।।२९।।

अन्वयः— त्रिदशोपसृष्टैः मनुष्यभूतै विहितान्तरायैः ये कुयोगिनः ते प्राक्तनाभ्यास बलेन भूयः योगं युञ्जन्ति कर्मतन्त्रम् त न ।।२९।।

अनुवाद— देवताओं के द्वारा प्रेरित शिष्य पुत्रों द्वारा किए हुए विघ्नों से कदाचित् अधूरा योगी मार्गच्युत हो जाय तो वह पूर्वाभ्यास के कारण पुनः योगाभ्यास में ही लग जाता है, उसकी कर्मों में प्रवृत्ति नहीं होती है।।२९।।

भावार्थ दीपिका

ननु कथंचिद्विषयसङ्गे यदि योगभ्रंशः स्यादलं तर्हि सोपायेन योगमार्गेण तत्राह-कुयोगिन इति । मनुष्यभूतैर्बन्धुशिष्यादिरूपैस्त्रिदशैरुपसृष्टैः प्रेरितैः । तथा च श्रुतिः-'यस्मात्तदेषां न प्रियं यदेतन्मनुष्या विद्युः' इति । भूयो जन्मान्तरे, न तु कर्मतन्त्रं कर्मविस्तारम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई यह कहे कि यदि विषयों में आसक्ति होने पर योगी योग भ्रष्ट हो जाता है तो फिर विषय दोषदर्शन रूप साधन के द्वारा योग मार्ग का अपनाना व्यर्थ है, तो इस पर श्रीभगवान् **कुयोगिनो ये० इत्यादि** श्लोक कहते हैं- अर्थात् देवताओं के द्वारा प्रेरित शिष्य अथवा पुत्र के द्वारा वह उपस्थित करने पर अधूरा योगी यदि योग भ्रष्ट हो जाता है तो वह अगले जन्म में भी वह कुयोगी योगाभ्यास में प्रवृत्त होजाता है कर्मों में नहीं लगता है । श्रुति भी कहती है **यस्मात्तदेतेषाम्० इत्यादि** मनुष्य इस ब्रह्म को जो जान लेता है । वह ब्रह्म ज्ञान देवताओं को प्रिय नहीं हैं, क्योंकि अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानी की अपेक्षा गौण हो जाता है ।।२९।।

करोति कर्म क्रियते च जन्तुः केनाप्यसौ चोदित आनिपातात् ।
न तत्र विद्वान्प्रकृतौ स्थितोऽपि निवृततृष्णः स्वसुखानुभूत्या ।।३०।।

अन्वयः— असौ जन्तु केनापि चोदितः कर्म करोति क्रियते च आनिपातात् विद्वान् प्रकृतौ स्थितः अपि स्वसुखानुभूत्या निवृत्ततृण्णः ।।३०।।

अनुवाद— जीव संस्कार आदि से प्रेरित होकर जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त कर्मों को करता ही रहता है

और उनमें इष्ट अनिष्ट बुद्धि करके हर्ष विषाद आदि विकारों को प्राप्त करता है क्योंकि आनन्द स्वरूप आत्मा के साक्षात्कार से उसकी संसार संबन्धी सारी आशा तृष्णाएँ पहले ही नष्ट हो चुकी हैं ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

ननु विदुषामपि सर्वथा कर्म दुष्परिहरमिति पुनः संसारः स्यादत आह-करोतीति । विदुषोऽन्योऽसौ जन्तुर्देह एव भोजनादिकर्म करोति क्रियते विक्रियते च तेन कर्मणा पुष्ट्याद्यपि प्राप्नोतीत्यर्थः । केनापि संस्कारादिना चोदित आनिपातान्मरणपर्यन्तं करोति । विद्वांस्तु प्रकृतौ देहे स्थितोऽपि कर्मणि न विक्रियते, निरहंकारित्वात् । हर्षविषादादिभिः संसारं न प्राप्नोति ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि ज्ञान प्राप्त जीव भी पूर्ण रूप से कर्मों का परित्याग नहीं कर सकता है अतएव उसको भी पुनः संसार प्राप्त होने का प्रसङ्ग होगा । इस पर श्रीभगवान् **करोति इत्यादि** श्लोक कहते है । श्लोक का अर्थ है कि ज्ञानी जीवों से भिन्न जीव देह में ही भोजन आदि कर्मों को करता है और विकार युक्त होता है । उस कर्म के द्वारा वह वर्तमान में ही पुष्टि को प्राप्त करता है । और वह किसी संस्कार आदि से प्रेरित होकर मृत्यु काल पर्यन्त कर्मों को करता रहता है । किन्तु जो ज्ञानी पुरुष है वह देह में स्थित रहकर भी कर्मों के विषय में विकार युक्त नहीं होता है । क्योंकि वह अहङ्कार से रहित होता है । वह हर्ष विषाद इत्यादि द्वारा विकारों को पुनः संसार को नहीं प्राप्त करता है ।।३०।।

तिष्ठन्तमासीनमुत व्रजन्तं शयानमुक्षन्तमदन्तमन्नम् ।
स्वभावमन्यत्किमपीहमानमात्मानमात्मस्थमतिर्न वेद ।।३१।।

अन्वयः— आत्मस्थमतिः, तिष्ठन्तम् आसीनम् उत व्रजन्तं शयानम् उक्षन्तम् अन्नम् अदन्तम् स्वभावम् अन्यन्त् किमपीहमानम् आत्मानम् न वेद ।।३१।।

अनुवाद— जो अपने स्वरूप में स्थित है, वह यह भी नहीं जानता है कि उसका शरीर खड़ा है कि बैठा है, या चल रहा है या सो रहा है, या मल-मूत्र त्याग रहा है, या भोजन कर रहा है क्योंकि उसकी वृत्ति तो आत्म स्वरूप में स्थित ब्रह्माकार हो जाती है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

किंच, आस्तां तावद्दैहिककर्मभिर्विकारशङ्का, यतो देहमप्यसौ न पश्यतीत्याह-तिष्ठन्तमिति । उक्षन्तं मूत्रयन्तम् । स्वभावप्राप्तमन्यदपि दर्शनस्पर्शनादि ईहमानं कुर्वन्तमात्मानं देहम् ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

स्वरूप में स्थित पुरुष को देह संबन्धी कर्मों से विकार की भी शङ्का नहीं की जा सकती है, क्योंकि स्वरूपस्थित पुरुष को अपने शरीर का भी पता नहीं रहता है, इस बात को तिष्ठन्तम् इत्यादि श्लोक से कहा गया है । उक्षन्तम् अर्थात् मूत्र त्याग करते हुए को स्वभावत होने वाले दूसरे को भी देखना, स्पर्श करना, या चेष्टा करने वाले अपने शरीर को ।।३१।।

यदि स्म पश्यत्यसदिन्द्रियार्थं नानाऽनुमानेन विरुद्धमन्यत् ।
न मन्यते वस्तुतया मनीषी स्वाप्नं यथोत्थाय तिरोदधानम् ।।३२।।

अन्वयः— यदि इन्द्रियार्थम् असत् नानानुमानेन अन्यत् विरुद्धम् पश्यति स्म, उत्थाय तिरोदधानं स्वप्नं यथा मनीषी वस्तुतया अन्यत् न मन्यते ।।३२।।

अनुवाद— यदि ज्ञानी पुरुष की दृष्टि में इन्द्रियों के विविध बाह्य विषय, जो असत् हैं आते भी हैं तो वह उन्हें

अपनी आत्मा से भिन्न नहीं मानता है, क्योंकि वे युक्तियों प्रमाणों और स्वानुभूति से सिद्ध नहीं होते हैं। जैसे नींद टूट जाने पर स्वप्न में देखे हुए और जग जाने पर तिरोहित हुए पदार्थों को कोई सत्य नहीं मानता है वैसे ही ज्ञानी पुरुष भी अपने से भिन्न प्रतीत होने वाले पदार्थों को सत्य नहीं मानता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

नन्विन्द्रियवतः सर्वथा कथमदर्शनं संभवति तत्राह-यदि स्मेति। यद्यप्यसतां बहिर्मुखानामिन्द्रियाणामर्थं पश्यति तथापि नानात्वान्मिथ्यास्वप्नवदित्यनुमानेन विरुद्धं बाधितं सदन्यदात्मव्यतिरिक्तं मनीषी वस्तुतया न मन्यते। स्वप्नादुत्थाय प्रबुध्य संस्कारमात्रेण स्वाप्नं विषयं स्फुरन्तमत एव स्वयमेव तिरोभवन्तं यथा तद्वत् ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि जिसकी इन्द्रियाँ काम करती हैं वह अपने शरीर आदि को बिल्कुल न जाने यह कैसे सम्भव है ? इस पर भगवान् **यदि स्म पश्यति इत्यादि** श्लोक कहते हैं ज्ञानी पुरुष बहिर्मुख इन्द्रियों के विषयों को देखता है फिर भी वह जो नाना होता है वह मिथ्या होता है स्वप्न के समान, इस अनुमान के द्वारा विरुद्ध एंव बाधित आत्मा से भिन्न वस्तुओं को सत्य नहीं मानता उसी तरह जिस तरह स्वप्न से जग जाने पर पुरुष को संस्कार वशात् स्वप्न के विषयों की स्फूर्ति होते रहने पर भी उन तिरोहित वस्तुओं को जैसे सत्य नहीं मानता है ॥३२॥

पूर्वं गृहीतं गुणकर्मचित्रमज्ञानमात्मन्यविविक्तमङ्ग ।
निवर्तते तत्पुनरीक्षयैव न गृह्यते नापि विसृज्य आत्मा ॥३३॥

अन्वयः— हे अङ्ग पूर्वं गृहीतं गुणकर्मचित्रम् अज्ञानम् आत्मनि अविविक्तम् तत् पुनः ईक्षयैव निवर्तते आत्मा नापि विसृज्य न गृह्यते ॥३३॥

अनुवाद— अनेक प्रकार के गुण और कर्म से युक्त देह, इन्द्रिय आदि पदार्थ, पहले अज्ञान के कारण आत्मा से अभिन्न मान लिए गये थे, उनका पहले ज्ञान नहीं था। किन्तु जब आत्मदृष्टि हो जाती है तो अज्ञान और उसके कार्यों की निवृत्ति हो जाती है। अतएव अज्ञान की निवृत्ति ही अभिप्रेत है। वृत्तियों के द्वारा आत्मा का न तो ग्रहण हो सकता है और न तो त्याग ही हो सकता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तदेवम् 'आत्मा न विक्रियते' इत्युक्तम्। नन्वेतदनुपपन्नं, बद्धावस्थायां त्यज्यमानत्वात्, मुक्तावस्थायां च गृह्यमाणत्वात्, नहि ब्रीहयोऽवधातेन ब्रीहिभावत्यागतस्तण्डुलीभावेन गृह्यमाणा न विक्रियन्ते तत्राह-पूर्वमिति। बद्धावस्थायां गुणैः कर्मभिश्च चित्रमज्ञानकार्यं देहेन्द्रियादिलक्षणमात्मन्यध्यासेनाविविक्तं गृहीतमासीत्तदेव पुनर्ज्ञानेन निवर्तते। आत्मा तु न केनापि रूपेण गृह्यते, नापि त्यज्यते। अयं भावः-मुक्तेः क्रियाफलत्वे भवेत्तावदात्मनो विकारः तस्यास्त्वारोपिताज्ञानमात्रनिवृत्तिरूपत्वान्नात्मसंस्पर्शित्वं बन्धमोक्षयोः, अतो न विकार इति ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह यह बतलाया जा चुका है कि आत्मा में कोई विकार नहीं होता है। यदि कोई यह कहे कि यह कथन सिद्ध नहीं हो सकता है, क्योंकि बद्धावस्था में उसका त्याग हो जाता है और मुक्तावस्था में उसका ग्रहण हो जाता है। यह नहीं कहा जा सकता है कि कूटने के कारण धान भी चावल बनकर अपने ब्रीहिभाव का त्याग कर देता है, अतएव ब्रीहि में विकार आ ही जाता है। इस पर श्रीभगवान् **पूर्वं गृहीतम्० इत्यादि** श्लोक कहते हैं। बद्धावस्था गुणों तथा कर्मों के द्वारा अज्ञान के विचित्र कार्य देह इन्द्रिय आदि का आत्मा में अध्यास हो जाने के कारण आत्मा का देहादि से पृथक् ग्रहण नहीं होता था किन्तु ज्ञान हो जाने से देहादि में होने वाली आत्मत्व बुद्धि दूर हो जाती है। आत्मा का

न तो किसी रूप से ग्रहण होता है और न तो उसका त्याग ही हो सकता है । कहने का अभिप्राय है कि यदि मुक्ति किसी क्रिया का फल होगी तब तो आत्मा में विकार होगा । किन्तु आरोपित अज्ञान की निवृत्ति मात्र ही मुक्ति है । अतएव बन्ध तथा मोक्ष में आत्मा का संस्पर्श नहीं होता है । अतएव आत्मा में कोई विकार नहीं होता है ।।३३।।

यथा हि भानोरुदयो नृचक्षुषां तमो निहन्यान्न तु सद्विधत्ते ।
एवं समीक्षा निपुणा सती मे हन्यात्तमिस्रं पुरुषस्य बुद्धेः ।।३४।।

अन्वयः— यथा हि भानोः उदयः नृचक्षुषां तमः निहन्यात् न तु सद्विधत्ते । एवं मे निपुणा समीक्षा सती पुरुषस्य बुद्धे तमिस्रं हन्यात् ।।३४।।

अनुवाद— जिस तरह सूर्य उदय होकर मनुष्यों के नेत्रों के सामने से अन्धकार का परदा हटा देते हैं, वे किसी नई वस्तु का निर्माण नहीं करते हैं, इसी तरह मेरे स्वरूप का सुदृढ अपरोक्ष ज्ञान पुरुष के बुद्धिगत अज्ञान का आवरण नष्ट कर देता है, वह इदं रूप से किसी वस्तु का ग्रहण नहीं करता है ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

एतदेव दृष्टान्तेन स्पष्टयति-यथेति । न तु पूर्वमेव सत् घटादि पुनर्विधत्ते करोति । मे या समीक्षा आत्मविद्या ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ का दृष्टान्त के माध्यम से **यथा हि भानोः इत्यादि** श्लोक द्वारा स्पष्ट करते हैं भगवान श्रीकृष्ण पहले से विद्यमान प्रकाश्य घटादि का पुनः निर्माण नहीं करता है । मेरी जो समीक्षा अर्थात् आत्म विद्या ।।३४।।

एष स्वयंज्योतिरजोऽप्रमेयो महानुभूतिः सकलानुभूतिः ।
एकोऽद्वितीयो वचसां विरामे येनेषिता वागसवश्चरन्ति ।।३५।।

अन्वयः— एषः स्वयं ज्योतिः अजः अप्रमेयः महानुभूतिः सकलानुभूतिः एकः अद्वितीये वचसां विराम येन ईषिताः वागसवः चरन्ति ।।३५।।

अनुवाद— उद्धवजी ! आत्मानित्य अपरोक्ष है, उसकी प्राप्ति नहीं करनी पड़ती हैं । वह स्वयम्प्रकाश है, उसमें अज्ञान आदि कोई भी विकार नहीं है, उसका जन्म नहीं होता है, अर्थात् वह कभी किसी प्रकार भी वृत्ति में आरूढ नहीं होता है । इसीलिए वह अप्रमेय है । ज्ञान आदि के द्वारा आत्मा का संस्कार भी नहीं होता है । आत्मा में देश, काल, और वस्तुकृत परिच्छेद नहीं होने के कारण उसका अस्तित्व, वृद्धि, परिवर्तन, ह्रास और विनाश से संस्पर्श भी नहीं होता है । सबकी और सब प्रकार की अनुभूतियाँ आत्म स्वरूप हैं । जिस समय मन और वाणी आत्मा को अपना अविषय समझकर लौट जाते हैं तब वह सजातीय विजातीय और स्वगत भेद शून्य एक और अद्वितीय रह जाता है । व्यवहार की दृष्टि से उसके स्वरूप को वाणी और प्राण आदि के प्रवर्तक के रूप में निरूपित किया जाता है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

आत्मनो निर्विकारतां प्रपञ्चयति-एष इत्यनेनापरोक्षतया नित्यप्राप्तस्यात्मनः प्राप्तिं वारयति । स्वयंज्योतिरित्यनेनाज्ञानमलापाकरणलक्षणां विकृतिं वारयति । अज इत्युत्पत्तिं वारयति । अप्रमेय इति ज्ञानलक्षणातिशयाधानेन संस्कारम् । महानुभूतिरिति देशकालपरिच्छेदाभावेनास्तित्ववृद्धिविपरिणामापक्षयनाशान् । स्वयंज्योतिष्ट्वादौ हेतुः-सकलानुभूतिरिति। एकोऽद्वितीय इति विकारहेतोरन्यस्याभावान्न कोऽपि विकार इति दर्शयति । ननु श्रुतिविषस्य कथं स्वयंज्योतिष्ट्वादि तत्राह-वचसां विरामेऽगोचरत्वेन निवृत्तौ सत्याम् । तथा च श्रुतिः- 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इति । तत्र हेतुः- येनेषिताः प्रेषिताः । तथा च श्रुतिः-

'केनेषितं पतति प्रेषितं मन: केन प्राण: प्रथम: प्रैति युक्त: । केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षु: श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति। श्रोत्रस्य श्रोत्रं यन्मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षु:' इति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

एष: इत्यादि श्लोक के द्वारा श्रीभगवान् आत्मा की निर्विकरता का विस्तार से पतिपादन करते है । एष: इस पद के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से नित्य प्राप्त आत्मा की प्राप्ति का निषेध किया जा रहा है । स्वयं ज्योति: आत्मा को बतलाकर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अज्ञान रूप मल का अपाकरण (दूरीकरण) रूप विकार का भी आत्मा में निषेध किया जा रहा है । अज: पद के द्वारा आत्मा की उत्पत्ति का निषेध किया गया है । अप्रमेय शब्द के द्वारा ज्ञान स्वरूप अतिशयता के अधान से किए जाने वाले संस्कार का निषेध किया गया है । महानुभूति पद के द्वारा आत्मा में देश काल एवं वस्तु परिच्छेद के अभाव के कारण अस्तित्व, वृद्धि विपरिणाम, अपक्षय एवं नाश का निषेध किया गया है । सकलानुभूति पद से आत्मा के स्वयं **ज्योतिष्ट्व में हेतु** को उपन्यस्त किया गया है । एक एवं अद्वितीय कहकर आत्मा में किसी दूसरे विकारों का अभाव होने के कारण ब्रह्म में कोई भी विकार नहीं होता है। प्रश्न है कि आत्मा का वर्णन श्रुतियाँ करती हैं अतएव आत्मा श्रुतियों का विषय है । फलत: आत्मा स्वयम्प्रकाश नहीं हो सकता है । इस पर श्रीभगवान् कहते हैं कि वाणी जब आत्मा को अपना अविषय समझकर लौट जाती है उस समय वह स्वयम्प्रकाश होता है । श्रुति भी कहती है अर्थात् मन के साथ वाणी भी जिस आत्मा को अपना अविषय जानकर लौट जाती है । उसका कारण बतलाती है श्रुति **केनेषितं इत्यादि** के द्वारा नियन्त्रित होकर मन और प्राण किसी को अपना विषय बनाती है किसके द्वारा नियन्त्रित होकर वाणी बोलने का काम करती है तथा कौन देवता चक्षुरिन्द्रिय को रूप देखने में और श्रोत्रेन्द्रिय को सुनने के काम में लगाते हैं ? इसके उत्तर में श्रुति कहती है कि जो परब्रह्म श्रोत्र के भी श्रोत्र, मन का भी मन, वाणी की भी वाणी है प्राण का भी प्राण है तथा चक्षुरिन्द्रिय का भी चक्षु है ।।३५।।

एतावानात्मसंमोहो यद्विकल्पस्तु केवले । आत्मन्नृते स्वमात्मानमवलम्बो न यस्य हि ।।३६।।

अन्वय:— एतावान् आत्मसम्मोह: यत् केवले विकल्पत: आत्मन् ऋते यस्य हि स्वमात्मानम् अवलम्बो न ।।३६।।

अनुवाद— उद्धवजी आत्मा अद्वितीय उसमें अर्थहीन नामों के द्वारा वैविध्य को मान लेना ही मन का भ्रम है । यह सबसे बड़ा मोह है क्योंकि अपनी आत्मा से अतिरिक्त उस भ्रम का भी और कोई अधिष्ठान नहीं है । अधिष्ठिान सत्ता से अध्यस्त की सत्ता नहीं होती है । अतएव सब कुछ आत्मा ही है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

अद्वितीयत्वमुपपादयितुं भेदस्यावास्तवत्वमाह–एतावानिति । केवलेऽभिन्ने आत्मन्नात्मनि विकल्प इति यदेतावान्सर्वोऽप्यात्मनो मनस: संमोहो भ्रम: । यत: स्वमात्मानमृते विना यस्य विकल्पस्यावलम्ब आश्रयो नास्ति । रजतभ्रमस्येव शुक्तिं बिना, 'नेह नानास्ति किंचन', 'इन्द्रो मायाभि: पुरुरूप ईयते । युक्ता ह्यस्य हरय: शता दश' इयादिश्रुतेरित्यर्थ: ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

आत्मा के अद्वितीयत्व का प्रतिपादन करने के लिए भगवान् भेद को अवास्तविक **एतावान् इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । **अद्वितीय आत्मा** में भेद को मान लेना ही मन का सबसे बड़ा मोह है । क्योंकि आत्मा को छोड़कर उस भेद का कोई दूसरा आश्रय नहीं है । जैसे शुक्ति नहीं रहने पर रजत का भ्रम नहीं हो सकता है । **नेह ना नास्ति किञ्चन** श्रुति कहती है कि आत्मा को छोड़कर भेद पदार्थ है ही नहीं । **इन्द्रोमायाभि पुरुरूपम् ईयते।** परमात्मा माया को स्वीकार करके उसके द्वारा अनेक रूपों को धारण कर लेता है । युक्ताहयस्य हर: शतादशा । इस आत्मा के विषयों का हरण करने वाली इन्द्रियाँ प्राणियों के भेद से एक हजार हो जाती हैं ।।३६।।

यन्नामाकृतिभिर्ग्राह्यं पञ्चवर्णमबाधितम् । व्यर्थेनाप्यर्थवादोऽयं द्वयं पण्डितमानिनाम् ॥३७॥

अन्वयः— पण्डितमानिनाम् यन्नामाकृतिभिग्राह्यं पञ्चवर्णम् अबाधितम् अयं द्वयं अर्थवादः ॥३७॥

अनुवाद— बहुत से पण्डिताभिमानी लोग कहते हैं कि यह पाञ्च भौतिक द्वैत विभिन्न नामों और रूपों के रूप में इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जाता है, इसलिए सत्य है; किन्तु यह तो अर्थहीन वाणी का आडम्बर मात्र हैं क्योंकि तत्त्वत: इन्द्रियों की पृथक् सत्ता सिद्ध नहीं होती है फिर वे किसी को प्रमाणित कैसे करेंगी ?॥३७॥

भावार्थ दीपिका

केचित्पुनः प्रत्यक्षादिप्रतीतस्य प्रपञ्चस्य बाधायोगाद्वेदान्तार्थानां च क्रत्वर्थकर्तृप्रतिपादनपरत्वेनार्थवादत्वाद्वैतं सत्यमिति मन्यन्ते, तन्मतमनूद्य दूषयति-यदिति । नामाकृतिभिर्ग्राह्यं नामरूपोपलक्षितं पञ्चवर्णं पञ्चभूतात्मकं द्वयं द्वैतं यत्तदबाधितमिति पण्डितमानिनामत्र वयमेव पण्डिता इत्यभिमानवतां वेदान्तेष्वयमर्थवाद इति प्रतीतिर्न तत्त्वविदाम् । यतो व्यर्थेनापि विनाप्यर्थेन सा प्रतीतिः । तथा हि-न तावद्विध्येकवाक्यत्वं तेषामस्ति यतोऽर्थवादत्वं स्यात् । न चाकर्तृभोक्तृपरमानन्दरूपात्मप्रतिपादनं कर्मविधिशेषतां भजते । न चाबाधितत्वं द्वैतस्य, नामरूपात्मकत्वात्, ग्राह्यत्वात्, पञ्चवर्णात्मकत्वात्, स्वप्नवदित्याद्यनुमानैर्वाचारम्भणादिश्रुतिभिश्च वाधितत्वादिति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

प्रत्यक्षत: प्रतीत होने वाले प्रपञ्च का बाध नहीं होने से तथा वेदान्तों के अर्थों के क्रतुओं के अनुष्ठाता का प्रतिपादनकरने के कारण अर्थवाद के कारण अपने को पण्डित मानने वाले लोग कहते हैं कि वेदान्तों में यह अर्थवाद की प्रतीति तत्त्वज्ञों को नहीं होती है । क्योंकि वह प्रतीति अर्थ के बिना भी होती है । उदाहरणार्थ वेदान्तों के वाक्य केवल विधि वाक्य ही नहीं है क्योंकि वे अर्थवाद हैं । कर्ता भोक्ता के बिना आनन्द स्वरूप आत्मा का प्रतिपादन भी कर्मविधि का शेष भी नहीं हो सकता है । दैत बाध रहित भी नहीं है, क्योंकि वह नाम तथा रूप युक्त है । उसका ग्रहण भी होता है । वह पञ्चभूतो वाला भी है । स्वप्न आदि के समान इत्यादि अनुमानों द्वारा तथा **'वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्' इत्यादि** श्रुतियों से प्रपञ्च बाधित भी होता है ॥३७॥

योगिनोऽपक्वयोगस्य युञ्जतः काय उत्थितैः । उपसर्गैर्विहन्येत तत्रायं विहितो विधिः ॥३८॥

अन्वयः— अपक्वयोगस्य युञ्जतः योगिनः काय उत्थितैः उपसर्गैः विहन्येत तत्र अयं विधिः विहितः ॥३८॥

अनुवाद— हे उद्धव ! यदि योगसाधना पूर्ण होने से पहले ही किसी साधक का शरीर रोगादि उपद्रवों से पीडित हो तो उसे उपायों की सहायता लेनी चाहिए ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

तदेवं ज्ञानयोगं सपरिकंर निरूप्येदानी तन्निष्ठस्य विघ्नप्रतीकारमाह-योगिन इति त्रिभिः । योगं युञ्जतः कायो यद्यन्तरेवोत्पन्नैरुपसर्गै रोगाद्युपद्रवैरभिभूयेत । विधिः प्रतीकारः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह साङ्गोपाङ्ग ज्ञानयोग का निरूपण करके श्रीभगवान् अब ज्ञान योग में निष्ठित पुरुष को होने वाले विघ्नों के प्रतिकार कों **योगिनोऽपक्व इत्यादि** तीन श्लोकों से बतलाते हैं । ज्ञानयोग में निष्ठित पुरुष का शरीर यदि बीच में ही उत्पन्न होने वाले रोगादि उपद्रवों से अभिभूत हो जाय । तो विधि: अर्थात् प्रतिकार ॥३८॥

योगधारणया कांश्चिदासनैर्धारणान्वितैः । तपोमन्त्रौषधैः कांश्चिदुपसर्गान्विनिर्दहेत् ॥३९॥

अन्वयः— कांश्चित् योगधारणया धारणान्वितैः आसनैः कांश्चित् उपसर्गान् तपोमन्त्रौषधैः विनिर्दहेत् ॥३९॥

अनुवाद— सर्दी गर्मी आदि को चन्द्रमा और सूर्य की धारणा के द्वारा, बात आदि रोगों को वायु की धारण से युक्त आसनों के द्वारा तथा ग्रह सर्पादिकृत विघ्नों को तपस्या, मन्त्र तथा औषधि के द्वारा नष्ट कर देना चाहिए ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

योगधारणया सोमसूर्यादिधारणया संतापशैत्यादीन् । आसनैर्वायुधारणान्वितैर्वातादिरोगान् । तपोमन्त्रौषधैः पापग्रहसर्पादिकृतान्।।३९।।

भाव प्रकाशिका

सर्दी गर्मी आदि को सोम एवं सूर्य की धारणा से युक्त योग धारणा के द्वारा वातरोगादि को वायु की धारणा से युक्त आसनों द्वारा तथा पापग्रह तथा सर्पो आदि के द्वारा किए गये उपद्रवों को तपस्या मन्त्र एवं औषधि के द्वारा विनष्ट कर देना चाहिए ।।३९।।

कांश्चिन्ममानुध्यानेन नामसंकीर्तनादिभिः । योगेश्वरानुवृत्त्या वा हन्यादशुभदान् शनैः ।।४०।।

अन्वयः— कांश्चिन् मम अनुध्यानेन नामसंकीर्तनादिभिः वा योगेश्वरानुवृत्त्या अशुभदान् शनैः हन्यात् ।।४०।।

अनुवाद— काम, क्रोध आदि विघ्नों को मेरे चिन्तन तथा नाम संकीर्तन आदि के द्वारा तथा पतन की ओर ले जाने वाले दम्भ मद आदि विघ्नों को धीरे-धीरे महापुरुषों की सेवा आदि से नष्ट कर देना चाहिए ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

ममानुध्यानादिभिः कामादीन् । योगेश्वरानुवृत्त्या दम्भमानादीन्हन्यात् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

मेरे चिन्तन आदि के द्वारा तथा नाम संकीर्तन आदि के द्वारा काम, क्रोध आदि को तथा पतन की ओर ले जाने वाले दम्भ मद आदि को योगेश्वरों की सेवा के द्वारा विनष्ट कर देना चाहिए ।।४०।।

केचिद्देहमिमं धीराः सुकल्पं वयसि स्थिरम् । विधाय विविधोपायैरथ युञ्जन्ति सिद्धये ।।४१।।

अन्वयः— केचिद्धीराः इमं देहम् स्थिरां वयसि विविधोपायैः सुकल्पं विधाय अथ सिद्धये युंजन्ति ।।४१।।

अनुवाद— कुछ मनस्वी योगी युवावस्था में ही अनेक उपायों द्वारा शरीर को सुदृढ बनने के बाद अणिमादि सिद्धियों के लिए योग साधना करते हैं ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

अन्ये तु देहसिद्ध्यर्थमेवैतत्सर्वं कुर्वन्ति, तद्दूषयति-केचित्पुनरेतैरन्यैश्चोपायैर्देहमेव सुकल्पं जरारोगादिरहितं वयसि तारुण्ये स्थिरं च कृत्वा अद्वन्द्वपरकायप्रवेशादिसिद्धये तत्तद्धारणारूपं योगं युञ्जन्ति, न तु ज्ञाननिष्ठारूपम् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

कुछ योगी तो देह की सिद्धि के लिए ही इन सभी कार्यों को करते हैं । उसका श्रीभगवान् खण्डन **केचित् इत्यादि** श्लोक से करते हैं । कुछ योगी तो इन सभी उपायों से तथा अन्य उपायों से शरीर को ही सुदृढ बनाकर युवावस्था में ही द्वन्द्व रहित परकाय प्रवेश आदि की सिद्धि के लिए विभिन्न प्रकार की धारणा रूप योग करते हैं। वे ज्ञानयोग में निष्ठित नहीं होते हैं ।।४१।।

न हि तत्कुशलादृत्यं तदायासो ह्यपार्थकः । अन्तवत्त्वाच्छरीरस्य फलस्येव वनस्पतेः ।।४२।।

अन्वयः— तत् कुशलादृत्यं न तत् अयासो हि अपार्थकः शरीरस्य वनस्पतेः फलस्य इव ।।४२।।

अनुवाद— बुद्धिमान् पुरुष ऐसे प्रयासों का समादर नहीं करते हैं, क्योंकि वह प्रयास व्यर्थ है । शरीर तो वृक्ष के पके फल के समान विनष्ट होने वाला है ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

कुशलैः प्राज्ञैरादरणीयं न भवति । वनस्पतिवदात्मैव स्थायी, शरीर तु फलवन्नश्वरमित्यर्थः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

प्राज्ञ पुरुष ऐसे प्रयास का समादर नहीं करते हैं । वृक्ष के समान आत्मा ही स्थायी है, शरीर तो वृक्ष के पके फल के समान नश्वर है ।।४२।।

योगं निषेवतो नित्यं कायश्चेत्कल्पतामियात् । तच्छ्रद्दध्यान्न मतिमान् योगमुत्सृज्य मत्परः ।।४३।।

अन्वयः— नित्यं योगं निषेवतः चेत् कायः कल्पताम् इयात मत्परः मतिमान् योगम् उत्सृज्य तत् न श्रद्दध्यात् ।।४३।।

अनुवाद— यदि कदाचित् बहुत दिनों तक निरन्तर योग साधना करने के कारण शरीर सुदृढ भी हो जाय तो मेरे भक्त को चाहिए कि वह योग का परित्याग करके शरीर का समादर न करे ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

ननु क्वचित्समाध्यङ्गत्वेनापि प्राणायामादियोगे क्रियमाणे जरारोगाद्यभावो दृश्यते, सत्यम्, तथापि समाधिमुत्सृज्य न तत्र सज्जेतेत्याह-योगमिति । तत् तां देहसिद्धिं न श्रद्दध्यान्न विश्वसेत् ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

यदि समाधि के अङ्ग रूप से भी प्राणायाम आदि करते रहने से जरा एवं रोग आदि का अभाव हो जाय तो भी समाधि का परित्याग करके शरीर में ही आसक्त नहीं होना चाहिए । इस बात को **योगंनिषेवतः इत्यादि** श्लोक से श्रीभगवान् ने कहा है । योगी को उस शरीर की सिद्धि पर विश्वास नहीं करना चाहिए ।।४३।।

योगचर्यामिमां योगी विचरन्मदव्यपाश्रयः । नान्तरायैर्विहन्येत निःस्पृहः स्वसुखानुभूः ।।४४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भगवदुद्धसंवादे अष्टाविंशोऽध्याय: ।।२८।।

अन्वयः— मद् व्यापाश्रयः योगी इमां योगचर्यां विचरन् निःस्पृहः स्वसुखानुभूः अन्तरायैः न विहन्येत ।।४४।।

अनुवाद— जो साधक मेरा आश्रय लेकर मेरे द्वारा प्रोक्त योगसाधना में संलग्न रहता है उसे कोई भी विघ्न विचलित नहीं कर सकता है वह आत्मानाद की अनुभूति में मग्न हो जाता है ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं विघ्नप्रतीकारैर्योगं कुर्यादित्युक्तं, मच्छरणस्य तु न विघ्नशङ्कापीत्याह-योगचर्यामिति । विचरन्स्वसुखे अनुभूरनुभूतिर्यस्य सः । स्पृहामूला हि विघ्नाः, सा च मदपाश्रयस्य निवर्तते, अतोऽन्तरायैरविहतः स्वानन्दपूर्णो भवतीति ।।४४।।

समाहृत्य स्वयोगं तु समस्तोपनिषद्रसम् । सख्ये मुख्यतमां भक्तिं मुक्तौ पुनरुपादिशत् ।।१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह यह बतलाया गया है कि विघ्नों का प्रतिकार के द्वारा योग करना चाहिए किन्तु जो मेरे (श्रीभगवान्) के शरण में रहता है, उसके योग करने में तो विघ्न की शङ्का भी नहीं हो सकती है । इस बात को **योगचर्याम इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । विचरन्सुखानुभूः अर्थात् आत्मानुभव रूप आनन्द में मग्न रहने वाला सुखपूर्वक विचरण करता है । जितने भी विघ्न होते हैं, उनका मूल कारण कामना ही होती है । किन्तु जो मेरा भक्त होता है उसकी कोई कामना ही नहीं होती है । अतएव वह विघ्नों से रहित होकर आत्मानन्द से पूर्ण हो जाता है ।।४४।।

समस्त उपनिषदों के सारांश को संक्षेप करके सर्वश्रेष्ठ भक्तियोग को अपने योग रूप से श्रीभगवान् ने उद्धवजी को मुक्ति के साधन रूप से उपदेश किया ॥१॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के अठाइसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२८।।

* * *

उनतीसवाँ अध्याय

भागवत धर्मों का निरूपण और उद्धवजी का वदरिकाश्रम गमन

ऊद्धव उवाच

सुदुस्तरामिमां मन्ये योगचर्यामनात्मनः । यथाञ्जसा पुमान्सिध्येत्तन्मे ब्रूह्यञ्जसाच्युत ।।१।।

अन्वयः— अच्युत अनात्मनः इमां योगाचर्यां सुदुश्चराम् मन्ये पुमान् यथा अञ्जसा सिद्धयेत् तन्मे ब्रूहि ।।१।।

श्रीउद्धवजी ने कहा

अनुवाद— हे अच्युत ! जिसने अपने मन को अपने वश में रहीं रखा है उसके लिए तो योग साधना जिसको आपने बतलाया है, उसे मैं बहुत कठिन मानता हूँ अतएव आप ऐसा कोई सरल साधन बतलाइये जिससे मनुष्य अनयास ही परमपद को प्राप्त कर ले ।।१।।

भावार्थ दीपिका

ऊनत्रिंशे तु यः पूर्वं विस्तरेण निरूपितः । भक्तियोगस्तमेवाह स्वभक्ताय समासतः ।।१।। अतिक्लेशमिवालक्ष्य योगेऽसङ्गैकसंपदि। सुखोपायं पुनः कृष्णमुद्धवः परिपृच्छति ।।२।। अनात्मनोऽवशीकृतमनसः अञ्जसा अप्रयासेन यथा सिध्येत्तत्तथा अञ्जसा सुबोधं यथा तथा मे ब्रूहि ।।१।।

भावप्रकाशिका

पहले श्रीभगवान् ने जिस भक्तियोग का पहले विस्तार से वर्णन किया है उसीका वे अपने भक्त श्रीउद्धवजी को संक्षेप में उनतीसवें अध्याय में वर्णन किया है ।।१।। अनासक्ति मात्र से ही प्राप्त होने वाले भक्तियोग में क्लेशधिक्य को देखकर उद्धवजी मुक्ति की प्राप्ति के आसान उपाय को श्रीभगवान् से पुनः पूछते हैं ।।२।। अनात्मनः अर्थात् जिसने अपने मन को अपने वश में नहीं किया है । अञ्जसा अर्थात् अनायास ही परमपद की प्राप्ति का कोई सुबोध उपाय बतलायें ।।१।।

प्रायशः पुण्डरीकाक्ष युञ्जन्तो योगिनो मनः । विषीदन्त्यसमाधानान्मनोनिग्रहकर्शिताः ।।२।।

अन्वयः— हे पुण्डरीकाक्ष ! प्रायशः मनः युञ्जन्तः योगिनः असमाधानात् मनोनिग्रहकर्शिताः विषीदन्ति ।।२।।

अनुवाद— हे कमलनयन ! आप जानते हैं कि अधिकांश योगी जब अपने मन को एकाग्र करने लगते हैं तब वे बार-बार चेष्टा करने पर भी सफल नहीं होने के कारण हार मान लेते हैं । और उसे वश में नहीं कर सकने के कारण दुःखी हो जाते हैं ।।२।।

भावार्थ दीपिका

सुदुष्करतां प्रपञ्चति-प्रायश इति । मनो युञ्जन्तो निगृह्णन्तो विषीदन्ति क्लिश्यन्ति । कुतः । असमाधानादनिग्रहात् । कथंचिन्मनसो निग्रहे च कर्शिताः श्रान्ताः सन्तः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

भक्ति की काठिन्यातिरेक को बतलाते हैं मन को एकाग्र करने वाले दु:खी हो जाते हैं। किसी तरह मन के वश में हो जाने पर भी थक कर छोड़ देते हैं ॥२॥

अथात आनन्ददुघं पदाम्बुजः हंसाः श्रयेरन्नरविन्दलोचन ।
सुखं नु विश्वेश्वर योगकर्मभिस्त्वन्माययाऽमी विहता न मानिनः ॥३॥

अन्वयः— हे अरविन्दलोचन ! हे विश्वेश्वर ! अथात हंसाः ते सुखं आनन्ददुघं पदाम्बुजं श्रयेरन् योगकर्मभिः अमी मानिलः त्वन्मायया न विहता ॥३॥

अनुवाद— हे कमलनयन आप तो विश्वेश्वर हैं। आप ही सम्पूर्ण जगत् का नियमन करते हैं। अतएव सारासार के विचार में चतुर मनुष्य आपके आनन्दप्रद चरण कमलों का आश्रय लेते हैं। और अनायास ही सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। आपकी माया उनका कुछ भी नहीं विगाड़ सकती है। क्योंकि उनको योगसाधन और कर्मानुसार का अभिमान नहीं होता है। जो लोग आपके चरणों का आश्रय नहीं लेते हैं वे योगी और कर्मी अपने साधन के घमण्ड में फूल जाते हैं आपकी माया ने उनकी बुद्धि को अवश्य ही हर ली है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

यस्मादेवं केवलं विषीदन्ति अथातः अतएव ये हंसाःसारासारविवेकचतुरास्ते त्वानन्ददुघं समस्तानन्दपरिपूरकं तव पदाम्बुजमेव सुखं यथा भवति तथा नु निश्चितं श्रयेरन् सेवन्ते। अमी तु त्वन्मायया विहताः। के। ये योगकर्मभिमानिनः सन्तो न श्रयन्ते। यद्वा, अमी त्वद्भक्तास्त्वन्मायया न विहता अतएव योगकर्मभिः कृत्वा मानिनो न भवन्ति। अन्ये तु त्वन्मायया मोहिता; सन्तो वयं योगज्ञा वयं कर्मकुशला इति केवलं गर्विता भवन्ति, न तु मुच्यन्त इत्यर्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

चूकि इस तरह से वे केवल विषाद ही करते हैं अतएव सार एवं असार का विचार करने में चतुर परमहंस जन समस्त आनन्दों को प्रदान करने वाले आपके चरण कमलों की ही शरणागति बड़ी आसानी से कर लेते है। जो लोग योगसाधना और कर्मों के अनुष्ठान का अभिमान करते है और आपके चरणों को शरण रूप से नहीं अपनाते हैं उनको तो आपकी माया मोहित कर रखी है। वे सब केवल गर्व ही करते हैं उन्हें मुक्ति भी नहीं प्राप्त होती है ॥३॥

किं चित्रमच्युत तवैतदशेषबन्धो दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् ।
योऽरोचयत्सह मृगैः स्वयमीश्वराणां श्रीमत्किरीटतटपीडितपादपीठः ॥४॥

अन्वयः— हे अशेषबन्धो अच्युत तव एतत् किं चित्रम् यत अनन्य शरणेषु दासेषु आत्म सत्त्वम् यः मृगैः सह अरोचयत् स्वयमीश्वराणां श्रीमत् किरीट तट पीडित पादपीठः ॥४॥

अनुवाद— हे अच्युत आप तो सबों के हितैषी सुहृत हैं आप अपने शरणागत दासों बलि आदि सेवकों के अधीन हो गये इसमें कौन सी विचित्रता है रामावतार में आप प्रेमवश वानरों से भी मैत्री का निर्वाह किया यद्यपि बड़े-बड़े लोकेश्वरगण भी अपने दिव्य किरीटों को आपके चरण कमल रखने की चौकी पर रगड़ते हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

त्वद्भक्तास्तु त्वत्प्रसादेन कृतार्था भवन्तीति नातिचित्रमित्याह-किमिति। अनन्यशरणेषु दासेषु तवात्मसात्त्वं तदधीनत्वं यद्यथा नन्दगोपीबलिप्रभृतिष्वेतत्किं चित्रं नाश्चर्यमित्यर्थः। यतो यो भवान् श्रीरामरूपेण मृगैर्वानरैः सह साहित्यं सख्यमिति यावत्। अरोचयत् प्रीत्या कृतवान्। कथं भूतः। ईश्वराणां ब्रह्मादीनां यानि श्रीमन्ति किरीटानि तेषां तटान्यग्राणि तैः पीडितं विलुठितं पादपीठं यस्य। स्वयं तथाभूतोऽपि सन् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

आपके भक्त तो आपकी प्रसन्नता से ही कृत-कृत्य हो जाते हैं। यह भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है इस बात के **किं चित्रम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। आपके भक्त जो आपके ही शरण में रहा करते हैं आप अपने उन भक्तों के अधीन हो जाते हैं जैसे नन्दजी, गोपियाँ तथा बलि आदि आपके भक्त है आप अपने उन भक्तों के अधीन हो गये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि श्रीरामावतार में आपने तो वानरों के साथ भी मित्रता का निर्वाह किया। आप कैसे है ? ब्रह्मा इत्यादि जो बड़े-बड़े देवता अपने ऐश्वर्य सम्पन्न किरीटों के अग्रभाग को आपकी चरण चौकी पर रगड़ते हैं। स्वयम् ऐसा होने पर भी आप इतना सरल हैं ॥४॥

तं त्वाखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां सर्वार्थदं स्वकृतविद्विसृजेत को नु ।
को वा भजेत्किमपि विस्मृतयेऽनु भूत्यै किं वा भवेन्न तव पादरजोजुषां नः ॥५॥

अन्वयः— तम् अखिलात्मदयितेश्वरम् अश्रितानां सर्वार्थदम् स्वकृतविद् कोऽन विसृजेत को वा किमपि विस्मृतयेऽअनुभूत्यै भजेत् तवपाद रजोजुषां नः किं वा न भवेत् ॥५॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आप सबके प्रियतम स्वामी और आत्मा हैं आप अपने अनन्य शरणागतों को सबकुछ दे देते हैं। आपने बलि, प्रह्लाद को जो कुछ दिया उसको जानने वाला कौन ऐसा होगा जो आपको छोड़ देगा। यह बात समझ में नहीं आती कि कोई भी विचारवान् व्यक्ति विस्मृतियों के गर्त में डाल देने वाले तुच्छ विषयों में ही फँसाये रखने वाले भोगों को क्यों चाहेगा ? हमलोग आपके चरण कमलों के उपासक है, हमारे लिए कौन सी वस्तु दर्लभ है ?॥५॥

भावार्थ दीपिका

अतस्त्वां परित्यज्य को नामान्यत्संश्रयेदित्याह-तं त्वेति। तमेवंभूतं त्वां को नु विसृजेन्न भजेत्। कथंभूतः। स्वकृतवित् बलिप्रह्लादादिषु त्वया कृतमनुग्रहं जानन्। यद्वा, स्वस्मिन्नेवान्तर्यामितया कृतमुपकारं विद्वान्। तदेवाह-अखिलात्मदयितेश्वरम्। अखिलस्य जगत आत्मानं चेतयितारमात्ममत्वादेव दयितं प्रेष्ठंसुसेव्यमीश्वरत्वादवश्यं भजनीयम्। किंच, आश्रितानां सर्वार्थदम्। तर्हि किं फलोद्देशेनाहं सेव्यः। नहि नहि। किमप्यनिरुक्तं त्वद्व्यतिरिक्तं स्वर्गादि त्वया दत्तमपि को वा भजेत्सेवेत। कथंभूतं तत्। यत्केवलं भूत्यै इन्द्रियभोगाय। अनु अनन्तरमेव त्वद्विस्मृतये भवति। यद्वा, त्वद्व्यतिरिक्तं किमपि देवतान्तरं धर्मज्ञानादिसाधनं वा भूत्यै ऐश्वर्याय संसारस्य विस्मृत्ये मोक्षाय को वा भजेन्न कोऽपि। ननु तत्साधनं बिना भोगमोक्षादिफलं कथं स्यात्तत्राह-किं वेति। तदुक्तम्- 'या वै साधनसंपत्तिः पुरुषार्थचतुष्टये। तया बिना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः।' इति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

अतएव ऐसा कौन सा व्यक्ति होगा जो आपको छोड़कर किसी दूसरे का आश्रय ग्रहण करेगा ? इस बात को **तंत्वा० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। इस प्रकार के आपको कौन ऐसा है जो त्याग दे। आप कैसे हैं? आपने जो बलि तथा प्रह्लाद आदि पर जो कृपा की उसको जानने वाला, अथवा अपने पर ही अन्तर्यामी रूप से आपने जो उपकार किया है उसको जानने वाला, उसी बात को बतलाते हुए श्रीउद्धवजी कहते हैं- आप सम्पूर्ण जगत् की आत्मा हैं और आत्मा होने के ही कारण अत्यन्त प्रिय हैं, तथा ईश्वर होने के कारण आप भजनीय हैं। अपने आश्रित भक्तों को सबकुछ दे देने वाले हैं। तो फिर प्रश्न होता है कि किसी फल विशेष के लिए मेरा भजन करना चाहिए तो इस पर उद्धवजी कहते हैं कि ऐसी बात नहीं यदि आप अपने से भिन्न स्वर्ग आदि प्रदान करते हैं तो उसे कौन लेगा कोई नहीं। क्योंकि वे वस्तुएँ कैसी हैं कि जो केवल इन्द्रियों के भोग के लिए हैं। उनके भोगने के बाद शीघ्र ही आपकी विस्मृति हो जाती है। अथवा आपसे भिन्न धर्मज्ञान आदि के साधन रूप से किसी दूसरे देवता का ऐश्वर्य के लिए संसार की विस्मृति अर्थात् मोक्ष के लिए कौन भजन कर सकता है। ऐसा कोई नहीं है। प्रश्न होता है कि भोग मोक्ष आदि

के साधनों के बिना भोग तथा मोक्ष रूप फलों की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? इसके उत्तर में उद्धवजी कहते हैं- आपके चरण कमल के रज का सेवन करने वाले हमलोगों को क्या प्राप्त नहीं हैं ? कहा भी गया है कि जो कोई भी साधन सम्पत्ति है और पुरुषार्थ जो श्रीभगवान् को तुष्ट करने वाले हैं, उनको उन्हें प्रदान किए बिना भी भगवान् नारायण का आश्रित भक्त उसे प्राप्त कर लेता है ।।५।।

नैवोपयन्त्यपचितिं कवयस्तवेश ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः स्मरन्तः ।
योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं विधुन्वन्नाचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ।।६।।

अन्वयः— यः अन्तर्बहि स्तनुभृताम् अशुभं विधुन्वन् आचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति ब्रह्मायुषापि कृतम् ऋद्धमुदः स्मरन्तः हे ईश कवयः तव अपचितिं नैव उपयन्ति ।।६।।

अनुवाद— भगवान् आप समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में अन्तर्यामी रूप से तथा बाहर गुरुरूप से स्थित रहकर उसके समस्त पाप तापों को मिटा देते है । और अपने स्वरूप को उनके समक्ष प्रकट कर देते हैं । बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी ब्रह्माजी के सदृश लम्बी आयु को पाकर भी आपके उपकारों का बदला नहीं चुका सकते हैं । इसीलिए वे आपके उपकारों का स्मरण करके प्रतिक्षण अधिकाधिक आनन्द का अनुभव करते रहेंगे ।।६।।

भावार्थ दीपिका

आस्तामन्यभजनवार्ता त्वत्कृतोपकारस्य त्वय्यात्मनि वेदनेनैव निष्कृतिर्नान्यथेत्याह-नैवेति । अपचितिं प्रत्युपकारमानृण्यमिति यावत् । कवयो ब्रह्मविदोऽपि नैव प्राप्नुवन्ति । यतः तत्कृतमुपकारं स्मरन्तः । ऋद्धमुद उपचितपरमानन्दाः । उपकारमेवाह-यो भवान् बहिराचार्यवपुषा गुरूरूपेणान्तश्च चैत्यवपुषान्तर्यामिरूपेणाशुभं विषयवासनां विधुन्वन्निरस्यन् स्वगतिं निजं रूपं प्रकटयति तस्य तव ।।६।।

भाव प्रकाशिका

दूसरे का भजन की बात तो दूर रहे आपके द्वारा किए गये उपकार का अपने आप में जानने मात्र से ही निष्कृति हो सकती है अन्यथा नहीं हो सकती है । इस बात को **नैवोपयन्ति० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। अपचिति अर्थात् प्रत्युपकार अर्थात् बदला चुकाना । ब्रह्मज्ञानी भी उस आनृण्य को नहीं प्राप्त कर सकते है । क्योंकि आपके द्वारा किए गये उपकार का स्मरण करते हुए परमानन्द मग्न हो जाते हैं । श्रीभगवान् के द्वारा किए गये उपकार को उद्धवजी बतलाते हैं । आप अपने उपासकों के अन्तःकरण में अन्तर्यामी रूप से तथा बाहर आचार्य रूप से स्थिर रहकर उनकी विषय वासना को विनष्ट करके अपने स्वरूप को भी उनके समाने प्रकट कर देते हैं।।६।।

श्रीशुक उवाच

इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा पृष्टो जगत्क्रीडनकः स्वशक्तिभिः ।
गृहीतमूर्तित्रय ईश्वरेश्वरो जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ।।७।।

अन्वयः— इहित अत्यनुरक्त चेतसा उद्धवेन पृष्टः जगत् क्रीडनकः स्वशक्तिभिः गृहीत मूर्तित्रयः सप्रेम मनोहर स्मितः ईश्वरेश्वरः जगाद ।।७।।

श्रीशुकदेव जी ने कहा

अनुवाद— इस तरह अत्यन्त अनुराग भरे चित्त से उद्धवजी ने जब श्रीभगवान् से पूछा तो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार रूप खेल खेलने वाले तथा अपनी सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण नामक शक्तियों को अपनाकर विष्णु, ब्रह्मा तथा शङ्कर नाम का तीन शरीरों को धारण करने वाले श्रीभगवान् जो समस्त स्वामियों के भी स्वामी है, मन्दमन्द मुस्कुराते हुए बड़े ही प्रेम से कहना प्रारम्भ किए ।।७।।

भावार्थ दीपिका

ईश्वरेश्वरत्वे हेतुः-जगत्क्रीडनकं क्रीडोपकरणं यस्य सः । ननु जगत्सृष्ट्यादिना ब्रह्मेशादयः क्रीडन्ति तत्राह-स्वशक्तिंभिः सत्त्वादिभिर्गृहीतं मूर्तित्रयं येन सः । सप्रेम प्रेमसहितं मनोहरं स्मितं यस्य सः, सप्रेम यथा तथा जगादेति वा ।।७।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व का कारण यह है कि आप जगत् रूपी खिलौने से खेल खेला करते हैं । यदि कहें कि जगत् की सृष्टि आदि के द्वारा ब्रह्माजी आदि क्रीडा करते हैं । तो इसके उत्तर में उद्धवजी ने कहा कि अपनी शक्तियों को अपनाकर भगवान् ही ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र का शरीर धारण करते हैं । प्रेम पूर्वक मन्द-मन्द मनोहर मुस्कुराते हुए श्रीभगवान् ने कहा ।।७।।

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि मम धर्मान्सुमङ्गलान् । यान्श्रद्धया चरन्मर्त्यो मृत्युं जयति दुर्जयम् ।।८।।

अन्वयः— हन्त ते मम सुमङ्गलान् मम धर्मान् कथयिष्यामि यान् श्रद्धया आचरन् मर्त्यः दुर्जयम् मृत्युं जयति ।।८।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— प्रिय उद्धव अब मैं तुमको अपने भागवत धर्मों का उपदेश करता हूँ जिन धर्मों का श्रद्धापूर्वक अनुष्ठान करने वाला पुरुष जिसको जीत पाना बड़ा ही कठिन है उस मृत्यु को भी जीत लेता है ।।८।।

भावार्थ दीपिका

हन्तेति सहर्षं संबोधनम् । सुमङ्गलान् सुखरूपान् । मृत्युं संसारम् । दुर्जयमन्यैरुपायैः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

हन्त यह उद्धवजी को किया जाने वाला हर्ष पूर्वक संबोधन है । सुमङ्गलान् अर्थात् सुखस्वरूप । मृत्युम् अर्थात् संसार को दूसरे साधनों से संसार पर विजय प्राप्त करना बड़ा ही कठिन है ।।८।।

कुर्यात्सर्वाणि कर्माणि मदर्थं शनकैः स्मरन् । मय्यर्पितमनश्चितो मद्धर्मात्ममनोरतिः ।।९।।

अन्वयः— मयि अर्पित मनः चित्तः, मद धर्मात्ममनोरतिः शनकैः माम् स्मरन् मदर्थं सर्वाणि कर्माणि कुर्यात् ।।९।।

अनुवाद— मेरे भक्त को चाहिए कि वह मुझमें ही अपने मन और चित्त को लगाए । और मेरे भागवत धर्मों में ही जिसका मन लगा रहे वह अपने सभी कर्मों को मेरे लिए ही करे और मेरा स्मरण भी करता रहे ।।९।।

भावार्थ दीपिका

धर्मनिवाह-कुर्यादिति त्रयोदशभिः । मां स्मरन् शनकैरसंरम्भतः कुर्यात् । तदाह-मय्यर्पिते मनश्चिते संकल्पविकल्पानुसंधानात्मके येन । अतएव मद्धर्मेष्वेवात्ममनसो रतिर्यस्य सः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

कुर्यात् इत्यादि तेरह श्लोकों से श्रीभगवान् भागवत धर्मों का वर्णन करते हैं । धीरे-धीरे मेरा स्मरण कर रहे है। शीघ्रता से नहीं । जिसने सङ्कल्प विकल्पात्मक मन और चित को मुझमें लगा दिया है वह मेरे लिए ही कर्मों को करे ।।९।।

देशान्पुण्यानाश्रयेत मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् । देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च ।।१०।।

अन्वयः— मद्भक्तैः साधुभिः श्रितान् पुण्यान् देशान् देवासुरमनुष्येषु मद्भक्ताचरितानि च आश्रयेत ।।१०।।

अनुवाद— जहाँ मेरे भक्त और साधुजन निवास करते हैं उन पवित्र स्थानेषु में ही निवास करे और देवता असुर एवं मनुष्यों में मेरे भक्त देवता, असुर अथवा मनुष्य जैसा आचरण करें उसी प्रकार का आचरण भी करे।।१०।।

भावार्थ दीपिका

पुण्यदेशलक्षणम्- मद्भक्तैरिति । देवादिषु ये मद्भक्तास्तेषामाचरितानि कर्माणि चाश्रयेत ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

जहाँ पर मेरे भक्त निवास करते हों वही पवित्र देश है । देवता असुर मनुष्यों में जो मेरा भक्त हों वे जैसा आचरण करतें हों वैसा ही आचरण करे ।।१०।।

पृथक् सत्रेण वा मह्यं पर्वयात्रामहोत्सवान् । कारयेद्गीतनृत्याद्यैर्महाराजविभूतिभिः ।।११।।

अन्वयः— पर्व यात्रामहोत्सवेषु पृथक् सत्रेण वा मह्यम् महाराज विभूतिभिः गीत नृत्याद्यैः कारयेत् ।।११।।

अनुवाद— पर्वों के अवसर पर सबके साथ मिलकर अथवा अकेले ही महाराज की विभूतियों द्वारा गीत, नृत्य आदि के द्वारा मेरी यात्रा आदि का महोत्सव मनाए ।।११।।

भावार्थ दीपिका

सत्रेण संभूय वा ।।११।।

भाव प्रकाशिका

अथवा सबों के साथ मिलकर ।।११।।

मामेव सर्वभूतेषु बहिरन्तरपावृतम् । ईक्षेतात्मनि चात्मानं यथा खममलाशयः ।।१२।।

अन्वयः— सर्वभूतेषु बहिःअन्तः अपावृतम् आत्मनि च अहमलाशयः खम् यथा मामेव इक्षेत् ।।१२।।

अनुवाद— भीतर बाहर आवरण रहित मुझको ही सभी भूतों में तथा अपनी आत्मा में भी मुझको ही देखे।।१२।।

भावार्थ दीपिका

अन्तरङ्गां भक्तिमाह-मामिति त्रिभिः । सर्वभूतेष्वात्मनि चात्मानमीश्वरं स्थितं मामेवेक्षेत । ननु कथमेकस्य सर्वेषु वृत्तिस्तत्राह-बहिरन्तःपूर्णमित्यर्थः । तत्कुतः । अपावृतमनावरणम् । तदपि कुतः । यथा खमसङ्गत्वादित्यर्थः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

माम् इत्यादि तीन श्लोकों से श्रीभगवान् अन्तरङ्ग भक्ति को बतलाते हैं । सभी जीवों तथा अपनी आत्मा में भी मुझ ईश्वर को ही स्थित देखे । प्रश्न होते है कि एक ही परमात्मा अनेक में कैसे रह सकते हैं ? इस पर श्रीभगवान् ने कहा कि भीतर बाहर सर्वत्र व्यापक होने के कारण वह कैसे ? इस पर कहते है आवरण रहित रूप से । अनासक्त आकाश के समान ।।१२।।

इति सर्वाणि भूतानि मद्भावेन महाद्युते । सभाजयन्मन्यमानो ज्ञानं केवलमाश्रितः ।।१३।।

अन्वयः— हे महाद्युते ! इति सर्वाणि भूतानि केवलं ज्ञानम् आश्रितः मद्भावेन सभाजयन् मन्यमानः ।।१३।।

अनुवाद— हे निर्मल बुद्धि उद्धव जी जो साधक केवल इस ज्ञान दृष्टि को अपनाकर सम्पूर्ण प्राणियों और पदार्थों में मेरा ही दर्शन करता है, और उन्हें ही मेरा ही रूप मानकर सत्कार करता है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

हे महाद्युते अतिप्राज्ञ । इत्यनेन प्रकारेण केवलं ज्ञानरूपां दृष्टि माश्रितः सन्सर्वाणि भूतानि मद्भावेन मन्यमानः सभाजयन्पण्डितो मत इत्युत्तरेणान्वयः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

हे निर्मल बुद्धि इस प्रकार केवल ज्ञान दृष्टि को अपनाकर सभी जीवों को मेरी ही भावना से मानकर उनका सत्कार करने वाला पण्डित है इस तरह से आगे के श्लोक से अन्वय है ॥१३॥

ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मण्येऽर्के स्फुलिङ्गके । अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक्पण्डितो मतः ॥१४॥

अन्वयः— ब्राह्मणे पुल्कसे स्तेने ब्रह्मणि, अर्के स्फुलिङ्गके अक्रूरे क्रूरके चैव समदृक् पण्डित मतः ॥१४॥

अनुवाद— ब्राह्मण चाण्डाल, चोर और ब्राह्मणभक्त सूर्य और चिन्गारी, क्रूर और दयालु में समान दृष्टि रखने वाला ही पण्डित माना जाता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

ननु उत्तमाधममध्यमेष्वेकरूपेण सभाजनमपाण्डित्यमेव स्यात् पूज्यपूजादिव्यतिक्रमादित्याशङ्क्य तामेव ज्ञानदृष्टि प्रपञ्चयति-ब्राह्मण इति । विषमेष्वपि समदृक् समं मामेव पश्यन् । वैषम्यमेव चतुर्धा दर्शयति-ब्राह्मणे पुल्कसे इति । जातितो वैषम्यम्। पुल्कसोऽन्त्यजजातिविशेषः । स्तेने ब्रह्मस्वहारिणि ब्रह्मण्ये ब्राह्मणेभ्यो दातारि इति कर्मतः । अर्के विस्फुलिङ्ग इति गुणतः । अक्रूरे शान्ते क्रूरे चेति स्वभावतः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि उत्तम, मध्यम और अधम इन तीनों प्रकार के लोगों का समान रूप से समादर करना तो अज्ञानकृत होगा, क्योंकि ऐसा करने पर पूज्य एवं पूजन का व्यतिक्रम होगा । इस तरह से आशङ्का करके उसी ज्ञानदृष्टि का विस्तार से वर्णन करते हैं । विषम कोटि के पुरुषों में समान दृष्टि तब ही होगी जब कि मेरा भक्त सबों में मेरी व्याप्ति का दर्शन करने लग जाय । विषमता को इस श्लोक में श्रीभगवान् चार प्रकार से दिखलाए हैं । ब्राह्मण और चाण्डाल में जातिगत विषमता है पुल्कस एक प्रकार की शूद्र जाति है । उस जाति को ही चाण्डाल जाति कहते हैं । स्तेन और ब्रह्मण्य में कर्म को लेकर विषमता है । स्तेन जो ब्राह्मण की संपत्ति को चुराता है और ब्रह्मण्य ब्राह्मणों को जो दान देता है । सूर्य और विस्फुलिङ्ग में गुण को लेकर विषमता है । अक्रूर और क्रूर में स्वभाव को लेकर विषमता है ॥१४॥

नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतोऽचिरात् । स्पर्धासूयातिरस्काराः साहंकारा वियन्ति हि ॥१५॥

अन्वयः— नरेषु अभीक्ष्णं मद्भावं भावयतः पुंसः अचिरात्, स्पर्धाअसूयातिरस्काराः साहङ्काराः अचिरात् वियन्ति॥१५॥

अनुवाद— मनुष्यों में सदैव मुझ ईश्वर का सद्भाव देखने वाले मनुष्य के चित्त से शीघ्र ही स्पर्धा (होड़) ईर्ष्या, तिरस्कार और अहङ्कार आदि दोष दूर हो जाते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

नरेष्वीश्वरदृष्टिं कुर्वतः सद्यः फलविशेषमाह-नरेष्विति । समोत्तमहीनेषु स्पर्धादयः । स्वस्मिन्नहङ्कारश्च । हि निश्चितम्। वियन्ति नश्यन्ति ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

मनुष्यों में ईश्वर की दृष्टि करने वाले मनुष्य को होने वाले फल विशेष को बतलाते हैं- समान उत्तम और हीन कोटियों के मनुष्यों में स्पर्धा आदि दोष होते हैं । अहङ्कार अपने में होता है । हि अर्थात् निश्चित रूप से वियन्ति अर्थात् नष्ट हो जाते हैं ॥१५॥

विसृज्य स्मयमानान्स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम् । प्रणमेद्दण्डवद्भूमावाश्वचाण्डालगोखरम् ॥१६॥

अन्वयः— स्मयमानान् स्वान् दृशं व्रीडां च दैहिकीम्, विसृज्य आश्वचाण्डालगोखरम् दण्डवत् भूमौ प्रणमेत् ॥१६॥

अनुवाद— अपने ही लोग यदि हँसी करों तो करने दें करने दें । मैं अच्छा हूँ यह बुरा है, इस प्रकार की देह दृष्टि को तथा लज्जा को छोड़कर किसी कुत्ते, चाण्डाल गौ तथा गधे को भी देखकर पृथिवी पर दण्डे के समान गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम करे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

अतोऽन्तर्यामीश्वरदृष्ट्या सर्वान्प्रणमेदित्याह-विसृज्येति । स्मयमानान्हसतः स्वान्सखीन् । तथा दैहिकीं दृशमहमुत्तमः स तु नीच इति दृष्टिम् । तया दृशा या व्रीडा लज्जा तां च विसृज्य श्वचाण्डालादीनभिव्याप्य प्रणमेत् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

विसृज्य इत्यादि श्लोक से श्रीभगवान् ने कहा है कि अन्तयार्मी की दृष्टि से भी सबों को प्रणाम करे स्मयमानान् अर्थात् हँसने वाले स्वान् अर्थात् अपने मित्र देह को लेकर दृष्टि जैसे मैं उत्तम हूँ यह अधम है इत्यादि । व्रीडा अर्थात् लज्जा, उसको छोड़कर कुत्ते तथा चाण्डाल आदि को भी प्रणाम करे ॥१६॥

यावत्सर्वेषु भूतेषु मद्भावो नोपजायते । तावदेवमुपासीत वाङ्मनः कायवृत्तिभिः ॥१७॥

अन्वयः— यावत् सर्वेषु भूतेषु, मद्भावो न उपजायते तावत् एवम् वाङ्मनः कायवृत्तिभिः उपासीत ॥१७॥

अनुवाद— जब तक सभी जीवों में मेरी दृष्टि न बन जाय तब तक इसी तरह, वाणी मन एवं शरीर से उपासना करे ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

एवं पञ्चभिः श्लोकैरुक्तायाः समदृष्टेरवधिमाह द्वाभ्याम्- यावदिति ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह पाञ्च श्लोकों से बतलायी गयी समदृष्टि की सीमा का निरूपण यावत् इत्यादि दो श्लोकों से किया गया है ॥१७॥

सर्वं ब्रह्मात्मकं तस्य विद्ययात्ममनीषया । परिपश्यन्नुपरमेत्सर्वतो मुक्तसंशयः ॥१८॥

अन्वयः— तस्य आत्ममनीषया विद्यया सर्वं ब्रह्मात्मकं परिपश्यन् सर्वतः मुक्त संशयः उपरमेत् ॥१८॥

अनुवाद— जब इस प्रकार सर्वत्र आत्मबुद्धि किया जाता है तो, थोड़े ही दिनों में उसे ज्ञानहोकर सबकुछ ब्रह्मात्मक दिखने लगता है । इस प्रकार वह मन वाणी और शरीर के सभी सङ्कल्पों और कर्मों में मेरी उपासना करता रहे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

तस्य एवं कुर्वतः पुंसः सर्वं ब्रह्मात्मकमेव भवति । कुतः । आत्ममनीषया सर्वत्रेश्वरदृष्ट्या या विद्या तया । अतः परितो ब्रह्मैव पश्यन्सर्वतः । क्रियामात्रादुपरमेत् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से आचरण करने वाले उस पुरुष के लिए सबकुछ ब्रह्मात्मक ही हो जाता है क्योंकि सबमें परमात्मा विद्यमान हैं इस विद्या के द्वारा अतएव अपने चारो ओर ब्रह्म का दर्शन करने वाला वह हर प्रकार की क्रियाओं से मुक्त हो जाय ॥१८॥

अयं हि सर्वकल्पानां सध्रीचीनो मतो मम । मद्भावः सर्वभूतेषु मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥१९॥

अन्वयः— सर्वकल्पेषु अयं ही मतः मम सध्रीचीनः यत् सर्वभूतेषु मनोवाक्काय वृतिभिः मद्भावः ॥१९॥

अनुवाद— सभी साधनो में मुझको यही साधन श्रेष्ठ प्रतीत होता है कि सभी भूतों एवं पदार्थों में मन, वाणी और शरीर की सभी वृत्तियों से मेरी ही भावना की जाय ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

किमयमेवोपायोऽस्ति वान्योऽपीत्यपेक्षायां सन्ति बहवः, समीचीनस्त्वयमेवेत्याह-अयं हीति ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

उद्धव जी ने पूछा कि क्या केवल यही उपाय है ? अथवा दूसरा भी कोई है ? इस पर भगवान ने कहा, बहुत से है किन्तु सभी साधनों में अच्छा साधन यही है इस बात को श्रीभगवान् **अयं हि० इत्यादि** वाक्य से बतलाये हैं ॥१९॥

न ह्यङ्गोपक्रमे ध्वंसो मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि । मया व्यवसितः सम्यङ्निर्गुणत्वादनाशिषः ॥२०॥

अन्वयः— हे अङ्ग ! मद्धर्मस्य उपक्रमे अण्वपि ध्वंसोन मया सम्यक् व्यवसितः निर्गुणत्वादनाशिषः ॥२०॥

अनुवाद— हे उद्धवजी यह मेरा धर्म है, उसका प्रारम्भ कर देने पर इसमें थोड़ी सी भी विघ्न बाधा नहीं होती है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

भगवद्धर्मलक्षणोपायस्य समीचीनत्वमेवोपपादयति द्वाभ्याम्- न हीति । अङ्ग हे उद्धव, अनाशिषो निष्कामस्य मद्धर्मस्योपक्रमे सत्यण्वपीषदपि वैगुण्यादिभिर्नाशो नास्त्येव, यतो मयैव निर्गुणत्वादयं धर्मः सम्यग्व्यवसितो निश्चितो न तु मन्वादिमुखेन कथंचित्॥२०॥

भाव प्रकाशिका

भागवत धर्म स्वरूप उपाय की समीचीनता का प्रतिपादन करते हैं **न हि० इत्यादि** दो श्लोको से । अङ्ग अर्थात् हे उद्धव ! मेरा धर्म निष्काम होता है, इसको एक बार प्रारम्भ कर देने पर भी वैगुण्य इत्यादि के द्वारा इसका थोड़ा भी नाश नहीं होता है । क्योंकि निर्गुण होने के कारण इसका निश्चय मैंने ही किया है । इसको मनु आदि महर्षियों ने नहीं कहा है ॥२०॥

यो यो मयि परे धर्मः कल्पते निष्फलाय चेत् । तदायासो निरर्थः स्याद्भयादेरिव सत्तम ॥२१॥

अन्वयः— परे मयि यो यो धर्मः निष्फलाय कल्प्यते हे सत्तम ! तदायासः निरर्थः भयादेरिव ॥२१॥

अनुवाद— हे उद्धवजी भागवत धर्म में किसी प्रकार की त्रुटि होती ही नही हैं । यदि इस धर्म का साधक भय शोक आदि के समय होने वाली भावना से रोने आदि निरर्थक कर्म भी निष्काम भाव से मुझे समर्पित कर दे तो वह भी धर्म हो जाता है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

किंच, यो य इति । अयमर्थः-किं वक्तव्यं मद्धर्मस्य न ध्वंस इति । यतो लौकिकोऽपि यो यो निरर्थो व्यर्थ आयासः सोऽपि मयि परे निष्फलाय चेत्कल्पते निष्कामतयार्पितश्चेत्तर्हि धर्म एव स्यात् । निरर्थायासे दृष्टान्तः-यथा भयशोकादेर्हेतोः पलायनाक्रन्दनादिक्लेशस्तद्वत् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

और यो **यः इत्यादि** यह क्या कहना है कि मेरे धर्म की थोड़ी सी भी त्रुटि नहीं होती है । क्योंकि निरर्थक भी

जो प्रयास होता है, वह भी यदि मुझ परमात्मा को निष्काम भाव से समर्पित कर दिया जाय तो वह भी धर्म बन जाता है । निरर्थक प्रयास का उदाहरण जैसे भय शोक आदि के समय भागने लगना, रोने लगना आदि क्लेश यदि मुझे समर्पित कर दिया जाय तो वह भी धर्म बन जाता है ।।२१।।

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम् । यत्सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम् ।।२२।।

अन्वयः— एषा बुद्धिमतां बुद्धिः मनीषिणाम् मनीषा इह अनृतेन कर्मणा सत्यम् अमृतम् माम् आप्नोति ।।२२।।

अनुवाद— बुद्धिमानों की बुद्धि और चतुरों की चतुराई यही है कि विनाशी और असत्य शरीर से सत्य और अमृत मुझको प्राप्त कर लिया जाय ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

अतो मद्भजनमेव बुद्धेर्विवेकस्य मनीषायाश्चातुर्यस्य च फलमित्याह-एषेति । तामेव दर्शयति-सत्यममृतं च मा मामनृतेनासत्येन मर्त्येन विनाशिना मनुष्यदेहेन हास्मिन्नेव जन्मनि प्राप्नोतीति यत्सैव बुद्धिर्मनीषा चेति । बुद्धिर्विवेकः । मनीषा चातुर्यम् ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

अतएव मेरा भजन ही बुद्धि के विवेक का और मनीषा के चातुर्य का फल है यह **एष० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । उसी को बतलाते हैं- सत्य तथा अमृत मुझको अनृत तथा असत्य एषं मर्त्य शरीर से इसी जन्म में जो प्राप्त कर लेती है वही बुद्धि मनीषा है । बुद्धि विवेक को कहते हैं और मनीषा चातुर्य को कहते हैं ।।२२।।

एष तेऽभिहितः कृत्स्नो ब्रह्मवादस्य संग्रहः । समासव्यासविधिना देवानामपि दुर्गमः ।।२३।।

अन्वयः— एषः ते ब्रह्मवादस्य कृत्स्नः संङ्गहः समासव्यासविधिना अभिहितः, देवानामपि दुर्गमः ।।२३।।

अनुवाद— उद्धवजी यह मैंने आपको सम्पूर्ण ब्रह्मविद्या का रहस्य समास तथा व्यास की विधि से बतला दिया । इस रहस्य को समझना मनुष्य की क्या बात है देवताओं के लिए भी समझना कठिन है ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

महाप्रकरणार्थमुपसंहरति द्वाभ्याम्-एष इति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

इस महाप्रकरणार्थ का उपसंहार **एष० इत्यादि** दो श्लोको से करते हैं ।।२३।।

अभीक्ष्णशस्ते गदितं ज्ञानं विस्पष्टयुक्तिमत् । एतद्विज्ञाय मुच्येत पुरुषो नष्टसंशयः ।।२४।।

अन्वयः— ते अभीक्ष्णशः विस्पष्ट युक्तिमत ज्ञानं गदितं पुरुषः एतविज्ञाय नष्टसंशयः मुच्येत ।।२४।।

अनुवाद— मैंने तुम्हें जिस स्पष्ट और युक्ति-युक्त ज्ञान का वर्णन सुनाया है उसके अभिप्राय को जो मनुष्य समझ लेता है, उसके हृदय की ग्रन्थियाँ छूट जाती हैं और वह मुक्त हो जाता है ।।२४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२४।।

सुविविक्तं तव प्रश्नं मयैतदपि धारयेत् । सनातनं ब्रह्म गुह्यं परं ब्रह्माधिगच्छति ।।२५।।

अन्वयः— एतत् मया तव प्रश्नं सुविविक्तं धारयेत् वेदगुह्यं सनातनं परं ब्रह्माधिगच्छति ।।२५।।

अनुवाद— मैंने तुम्हारे प्रश्नों का स्पष्ट रूप से विवेचन कर दिया जो पुरुष हमारे इस प्रश्नोत्तर को विचार पूर्वक धारण करेगा वह परब्रह्म को प्राप्त कर लेगा ।।२५।।

भावार्थ दीपिका

आस्तां तावज्ज्ञानमेतदनुसंधानकथनपठनश्रवणपराणामप्येतदेव फलं भवतीत्याह चतुर्भिः-सुविविक्तमिति । मया सुविविक्तं दत्तोत्तरं एतदाख्यानमपि यो धारयेदनुसंदध्यात्स ब्रह्मगुह्यं वेदेऽपि रहस्यम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

अब यह ज्ञान यहीं पूर्ण हो गया, इसके अनुसंधान कहते, पढते तथा सुनते रहने वालों को भी यही फल होता है । इस बात को **सुविविक्तम्० इत्यादि** चार श्लोकों से कहा गया है । मैंने स्पष्ट रूप से उत्तर दे दिया है । जो मनुष्य इस आख्यान को भी धारण करेगा तब वह वेदों के रहस्य भूत का अनुसंधान करेगा ॥२५॥

य एतन्मम भक्तेषु संप्रदद्यात्सुपुष्कलम् । तस्याहं ब्रह्मदायस्य ददाम्यात्मानमात्मना ॥२६॥

अन्वयः— यः एतत् मम भक्तेषु, सुपुष्कलं संप्रदद्यात् अहं तस्य ब्रह्मदायस्य आत्मना आत्मानं ददामि ॥२६॥

अनुवाद— जो मनुष इसको मेरे भक्तों को अच्छी तरह से समझायेगा, उस ज्ञान दाता को मैं प्रसन्न मन से अपना स्वरूप दे दूँगा अर्थात् उसे आत्मज्ञान करा दूँगा ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

सुपुष्कलं यथा भवति तथा ब्रह्मदायस्य ब्रह्म ददातीति तथा तस्य ज्ञानोपदेष्टुः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

विस्तार पूर्वक जो समझायेगा उस ज्ञान दाता पुरुष को ॥२६॥

य एतत्समधीयीत पवित्रं परमं शुचि । स पूयेताहरहर्मां ज्ञानदीपेन दर्शयन् ॥२७॥

अन्वयः— यः शुचि एतत् परमं पवित्रं समधीयीत सः अहरहः मां ज्ञानदीपेन दर्शयन् पूयेत ॥२७॥

अनुवाद— जो मनुष्य इस परम पवित्र हम दोनों के संवाद का अच्छी तरह से पाठ करेगा वह मुझको ज्ञान दीपक दिखाने के कारण पवित्र हो जायेगा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

समधीयीत उच्चैः पठेत् । परमं शुचि अन्येषामपि शोधकम् । पूयेत शुध्येत ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

उच्च स्वर से पाठ करता है । यह दूसरों को भी पवित्र करने वाला है । पूयेत अर्थात् शुद्ध हो जाय ॥२७॥

य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः । मयि भक्तिं परां कुर्वन्कर्मभिर्न स बध्यते ॥२८॥

अन्वयः— यः अव्यग्रः नरः एतत् श्रद्धया शृणुयात् मयि परां भक्तिं कुर्वन् सः कर्मभिः न बध्यते ॥२८॥

अनुवाद— जो इस हम दोनों के संवाद को प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक सुनेगा उसको मेरी पराभक्ति प्राप्त होगी और वह कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जायेगा ॥२८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२८॥

अप्युद्धव त्वया ब्रह्म सखे समवधारितम् । अपि ते विगतो मोहः शोकश्चासौ मनोभवः ॥२९॥

अन्वयः— सखे ! उद्धव अपित्वया ब्रह्म समवधारितम् ? अपि ते मोहः, असौमनोभवः शोकश्च विगतः ?॥२९॥

अनुवाद— मित्र उद्धव क्या तुमने ब्रह्म को अच्छी तरह समझ लिया ? क्या तुम्हारे मन में उत्पन्न होने वाला शोक दूर हो गया ?॥२९॥

भावार्थ दीपिका

सम्यक् ज्ञानानुत्पत्तौ पुनरुपदेक्ष्यामीत्याशयेन पृच्छति-अपीति । अपि किम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

यदि तुम्हे ठीक से ज्ञान नहीं उत्पन्न हुआ हो तो फिरसे उपदेश दूँगा इसी अभिप्राय से भगवान् अपिशब्द का प्रयोग करते हैं । अपि अर्थात् क्या ?।।२९।।

नैतत्त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च । अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ।।३०।।

अन्वयः— एतत् त्वया दाम्भिकाय, नास्तिकाय, शठाय, अशुश्रूषोः अभक्ताय, दुर्विनीतय न दीयताम् ।।३०।।

अनुवाद— मेरे द्वारा उपदिष्ट इस ज्ञान को तुम दाम्भिक (घमण्डी) नास्तिक, शठ, अश्रद्धालु भक्तिहीन और उद्धत पुरुषों को कभी मत बतलाना ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

उपधारितमाकलय्याह-नैतदिति । शठाय वञ्चकाय ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

इसने ब्रह्मतत्त्व को समझ लिया यह सोचकर श्रीभगवान् ने नैतत् यह श्लोक कहा है । **शठाय** अर्थात् वञ्चक (ठग) को ।।३०।।

एतैर्दोषैर्विहीनाय ब्रह्मण्याय प्रियाय च । साधवे शुचये ब्रूयाद्भक्तिः स्याच्छूद्रयोषिताम् ।।३१।।

अन्वयः— एतै दोषैः विहीनाय, ब्रह्मण्याय, प्रियाय, साधके शुचये ब्रूयात् भक्तिःस्यात् शूद्र योषिताम् ।।३१।।

अनुवाद— जो इन दोषों से रहित हो ब्राह्मण भक्त हो, प्रिय हो, साधु स्वभावा वाला हो, पावित्र्य का पालन करने वाला हो । उसको तुम बतलाना तथा जिनमें मेरे प्रति भक्ति हो ऐसे शूद्र तथा स्त्रियों को भी यह ज्ञान प्रदान कर देना ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

शूद्राणां योषितां च यदि भक्तिः स्यात्तर्हि ब्रूयात् ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

निश्चित किए की विचारकर **नैतत् इत्यादि** कहते हैं शठ अर्थात् ठग के लिए ।।३१।।

नैतद्विज्ञाय जिज्ञासोर्ज्ञातव्यमवशिष्यते । पीत्वा पीयूषममृतं पातव्यं नावशिष्यते ।।३२।।

अन्वयः— यथा पीयूषम् अमृतं पीत्वा पातव्यम् न अवशिष्यते तथा एतद् विज्ञाय जिज्ञासोः ज्ञातव्यम् न अवशिष्यते।।३२।।

अनुवाद— जिस तरह अमृत का पान कर लेने पर पीने के लिए कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह जाता है उसी तरह इस ज्ञान को जान लेने पर जानने के लिए कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह जाता है ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

एतज्ज्ञानेन पुमान्कृतार्थो भवतीत्याह-नैतदिति । अत्र दृष्टान्तमाह-पीत्वेति । पीयूषं स्वादु ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

इस ज्ञान के द्वारा जीव कृतकृत्य हो जाता है इस बात को **नैतत्० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । इस विषय में दृष्टान्त **पीत्वा इत्यादि** से उपन्यस्त किया गया है । पीयूषम् अर्थात् स्वादिष्ट ।।३२।।

ज्ञाने कर्मणि योगे च वार्तायां दण्डधारणे । यावानर्थो नृणां तात तावांस्तेऽहं चतुर्विधः ॥३३॥

अन्वयः— हे तात ! ज्ञाने, कर्मणि, योगे, वार्तायां दण्डधारणे यावान् अर्थः तावान् चतुर्विधः ते अहम् ॥३३॥

अनुवाद— प्रिय उद्धव ! जिस तरह मनुष्यों के ज्ञान, कर्म, योग, वाणिज्य, और राजदण्डादि से क्रमशः मोक्ष, धर्म, काम और अर्थ रूप फल की प्राप्ति होती है, किन्तु तुम जैसे जिज्ञासु के लिए तो चारो प्रकार का फल मैं ही हूँ ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

ननु सन्ति बहूनि ज्ञेयानि तत्तत्फलसाधनानि,-सत्यम्, सन्त्यभक्तानां, भक्तस्य तु सर्वमहमेवातो मदकेशरणो भवेत्याह-ज्ञान इति । ज्ञानादौ यावान्धर्मादिलक्षणश्चतुर्विधोऽर्थस्तावान्सर्वोऽपि तेऽहमेव । तत्र ज्ञाने मोक्षः । कर्मणि विहिते धर्मः । कर्मण्येव स्वाभाविके तु कामः । योगे त्वणिमादिसिद्धयः । वार्तायां कृष्यादावर्थः । दण्डनीतावैश्वर्यमिति । सिद्ध्यैश्वर्ययोरपि कामान्तर्गतत्वाच्चातुर्विध्यम् ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहे कि अब भी बहुत से ज्ञेय पदार्थ हैं और उन फलों की प्राप्ति के लिए साधन भी ज्ञेय हैं, तो इस पर श्रीभगवान् कहते हैं कि किन्तु वे सब अभक्तों के लिए हैं, भक्त के लिए तो सबकुछ मैं ही हूँ । अतएव केवल मेरे शरण में हो जाओ इस बात को ज्ञाने इत्यादि श्लोक से कहा गया है । ज्ञान इत्यादि से जितने धर्म आदि रूप चार प्रकार के अर्थो की प्राप्ति होती है, वे सभी फल तुम्हारे लिए तो मैं ही हूँ । ज्ञान से मोक्ष विहित कर्मानुष्ठान से धर्म, स्वाभाविक कर्मों से काम, योग से अणिमा आदि की सिद्धि, कृषि आदि से अर्थ तथा दण्डनीति से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । सिद्धि तथा ऐश्वर्य ये दोनों काम के अन्तर्गत हैं अतएव चार प्रकार के फल बतलाये गये हैं ॥३३॥

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ।
तदाऽमृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयात्मभूयाय च कल्पते वै ॥३४॥

अन्वयः— मर्त्यो यदात्यक्त समस्त कर्मा, निवेदितात्माविचिकीर्षितो मे, तदा अमृतत्वं प्रतिपद्यमानः मया आत्मभूयाय च कल्पते ॥३४॥

अनुवाद— मनुष्य जब सभी प्रकार के कर्मों का परित्याग करके, मुझे आत्मसमर्पण कर देता है, उस समय वह मेरा विशेष मननीय हो जाता है और मैं उसका जीवत्व से उसे छुड़ाकर अमृत स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति कर देता हूँ और मुझसे मिलकर वह मेरा स्वरूप हो जाता है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

कुत इत्यत आह-मर्त्य इति । यदा त्यक्तसमस्तकर्मा सन् मे निवेदितात्मा भवति तदाऽसौ मे विचिकीर्षितो विशिष्टः कर्तुमिष्टो भवति, ततश्चामृतत्वं मोक्षत्वं प्रतिपद्यमानो मयात्मभूयाय मदैक्याय मत्समानैश्वर्यायेति यावत्, कल्पते योग्यो भवति । वै ध्रुवम् ॥३४॥

भाव प्रकाशिका

यह कैसे होता है, इस पर श्रीभगवान् मर्त्य इत्यादि श्लोक कहते हैं । जब उपासक समस्त कर्मों को त्याग कर मुझको आत्म निवेदन कर देता है, उस समय वह मेरे लिए अधिक सम्माननीय होता है । उसके पश्चात् वह मोक्ष को प्राप्त करके मुझमें मिल जाता है । अर्थात् वह मेरे ही समान ऐश्वर्य से युक्त होने के योग्य हो जाता है ॥३४॥

श्रीशुक उवाच

स एवमादर्शितयोगमार्गस्तदोत्तमश्लोकवचो निशम्य ।
बद्धाञ्जलिः प्रीत्युपरुद्धकण्ठो न किंचिदूचेऽश्रु परिप्लुताक्षः ॥३५॥

अन्वयः— एवम् आदर्शित योगमार्ग अश्रुपरिप्लुताक्षः स उत्तमश्लोकवचः निशम्य बद्धाञ्जलिः प्रीत्युपरुद्ध कण्ठः सकिञ्चित् न ऊचे ॥३५॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस प्रकार उद्धवजी जब योग मार्ग का सम्पूर्ण उपदेश प्राप्त कर चुके थे, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण की वाणी सुनकर उनकी आँखों में आंसू उमड़ पड़े थे, प्रेम के प्रवाह से उनका गला रून्ध गया । चुपचाप वे हाथ जोड़े रह गये कुछ भी बोल नहीं सके ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

आदर्शितो योगमार्गो यस्मै सः ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

जिनको योगमार्ग का उपदेश दे दिया जा चुका था ॥३५॥

विष्टभ्य चित्तं प्रणयावघूर्णं धैर्येण राजन् बहुमन्यमानः ।
कृताञ्जलिः प्राह यदुप्रवीरं शीर्ष्णा स्पृशंस्तच्चरणारविन्दम् ॥३६॥

अन्वयः— राजन् प्रणयावघूर्णं चित्तं विष्टभ्य धौर्येण बहुमन्यमानः कृताञ्जलिः शीर्ष्णा तच्चरणाविन्दं स्पृशन् यदुप्रवीरं प्राह॥३६॥

अनुवाद— राजन् उद्धवजी का मन प्रेम से विलुप्त हो रहा था । उन्होंने धैर्य पूर्वक उसको रोका और अपने को अत्यन्त सौभाग्यशाली अनुभव करते हुए सिर से यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का स्पर्श किया और हाथ जोड़ कर प्रार्थना किए ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

प्रणयेनावघूर्णं क्षुभितं चित्तं धैर्येण विष्टभ्य बहुमन्यमान आत्मानं कृतार्थं मन्यमानः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

प्रेम के कारण जो अत्यन्त विह्वल हो रहा था उस चित्त को धैर्यपूर्वक रोककर, अपने को कृतार्थ मानते हुए॥३६॥

उद्धव उवाच

विद्रावितो मोहमहान्धकारो य आश्रितो मे तव संनिधानात् ।
विभावसोः किं नु समीपगस्य शीतं तमोभीः प्रभवन्त्यजाद्य ॥३७॥

अन्वयः— यः मोहमहान्धकारः मे आश्रितः तव सन्निधानात् विद्रावितः हे अजाद्य ! विभासो समीपगस्य किं नु शीतं तमोभीः प्रभवन्ति ? ॥३७॥

उद्धवजी ने कहा

अनुवाद— प्रभो ! मैं जिस अज्ञान रूपी महा अन्धकार को अपनाए हुए था वह आपकी कृपा से दूर हो गया । जो अग्नि के समीप पहुँच गया है, उसकी सर्दी और अन्धकार का भय हो सकता है क्या ? नहीं हो सकता ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

मे मया य आश्रित आसीत्स तव संनिधानेनैव विद्रावितः । प्रभवन्ति किं नु बाधाय समर्था भवन्ति । अजाद्य ब्रह्मणोऽपि जनक ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

जिसको मैंने अपनाया उसको आपने दूर कर दिया क्या बाधित कर सकते हैं । हे ब्रह्माजी को भी उत्पन्न करने वाले प्रभो ।।३७।।

प्रत्यर्पितो मे भवतानुकम्पिना भृत्याय विज्ञानमयः प्रदीपः ।
हित्वा कृतज्ञस्त्व पादमूलं कोऽन्यत्समीयाच्छरणं त्वदीयम् ।।३८।।

अन्वयः— अनुकम्पिना भवता मे भृत्याय ज्ञानप्रदीपः प्रत्यर्पितः कः कृतज्ञः तव पादमूलं त्वदीयं शरणं हित्वा अन्यत् समीयात् ।।३८।।

अनुवाद— प्रभो आपकी माया ने मेरे ज्ञान दीपक को छिन लिया था किन्तु कृपा करके आपने मुझे अपने भृत्य को पुनः लौटा दिया कौन ऐसा कृतज्ञ पुरुष होगा जो आपकी कृपाप्रसाद का अनुभव करके भी आपके चरण कमलों की शरण छोड़ दे और किसी दूसरे की सहारा ले ले ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

किंच, यद्यपि तव संनिधानादेव गतस्तथाप्यनुकम्पिना भवता विज्ञानमयः प्रदीपश्च प्रत्यर्पितः स्वमाययापहृतः पुनः समर्पितः, अतस्तव कृतज्ञो यस्त्वया कृतमनुग्रहं जानाति स को नाम त्वदीयं पादमूलं हित्वाऽन्यच्छरणं समीयादाश्रयेत् ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

आपके सन्निधान से ही जो चला गया था फिर भी आपने कृपा करके उस विज्ञानमय दीपक को लौटा दिया । वह आपकी के द्वारा अपहृत हो गया था । अतएव जो आपका कृतज्ञ हो गया वह आपके अनुग्रह का अनुभव किया होगा वह आपके चरण कमलों को छोड़कर दूसरे के शरण में कैसे जायेगा ।।३८।।

वृक्णश्च मे सुदृढः स्नेहपाशो दाशार्हवृष्ण्यन्धकसात्त्वतेषु ।
प्रसारितः सृष्टिविवृद्धये त्वया स्वमायया ह्यात्मसुबोधहेतिना ।।३९।।

अन्वयः— स्वमायया सृष्टि विवृद्धये त्वया दाशार्ह वृष्ण्यन्धकसात्वतेषु प्रसारितः सुदृढः मे स्नेहपाशः आत्मसुबोध हेतिना त्वया वृक्णः ।।३९।।

अनुवाद— आपने अपनी माया से सृष्टि की वृद्धि के लिए दाशार्ह, वृष्णि, अन्धक और सात्वत वंशी यादवों के साथ मुझे सुदृढ स्नेह से बाँध दिया था । आज आपने आत्मबोध की तीखी तलवार से उसे काट दिया ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

किंच, दाशार्हादिषु त्वया यः स्वमायया स्नेहपाशः प्रसारितः स त्वयैवात्मतत्त्वज्ञानशस्त्रेण वृक्णश्छिन्नः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

और आपने दाशार्ह आदि यदुवंशियों पर जो स्नेह का बंधन फैलाया था उसे आपने ही अपनी ज्ञान के तीक्ष्ण तलवार से काट दिया ।।३९।।

नमोऽस्तु ते महायोगिन् प्रपन्नमनुशाधि माम् । यथा त्वच्चरणाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी ।।४०।।

अन्वयः— हे महायोगिन् ते नमः अस्तु प्रपन्नं माम् अनुशाधि यथा ते चरणाम्भोजे अनपायिनी रतिः स्यात् ।।४०।।

अनुवाद— हे महायोगेश्वर आपको मेरा नमस्कार है अब आप मुझे ऐसी आज्ञा दे जिससे कि आपके चरण कमलों में मेरी अनन्या भक्ति बनी रहे ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

एवं यद्यपि त्वया बहूपकृतं तथाप्येतावत्प्रार्थये इत्याह–नमोऽस्त्विति । अनुशाध्यनुशिक्षय । अनुशासनीयमाह–यथेति। मुक्तावप्यनपायिनी ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

यद्यपि आपने मेरा बहुत उपकार किया है, फिर भी मैं आपसे इतनी प्रार्थना करता हूँ इस बात को **नामोऽस्तु० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । **यथेति इत्यादि** से प्रार्थनीय को उद्धवजी ने कहा है । मुक्ति में भी अनन्या भक्ति ।।४०।।

श्रीभगवानुवाच

गच्छोद्धव मयादिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमम् । तत्र मत्पादतीर्थोदे स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ।।४१।।

अन्वयः— हे उद्धव मयादिष्टः बदर्याख्यं ममाश्रमम् गच्छ तत्र मत्पादतीर्थोके स्नानोपस्पर्शनैः शुचिः ।।४१।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— उद्धवजी ! तुम मेरी आज्ञा से बदरिकाश्रम नामक मेरे आश्रम में चले जाओ, वहाँ मेरे चरणोदक गङ्गाजल का स्नान तथा पान द्वारा सेवन करके तुम पवित्र हो जाओगे ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

तदुक्तमोमित्यङ्गीकृत्य, तथापि मयादिष्टो लोकसंग्रहार्थमेतावत्कुर्वित्याह–गच्छेति । आदिष्टो नियुक्तः ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

उद्धवजी के द्वारा उक्त बातों को स्वीकार करके, भगवान् ने कहा फिर भी लोकसंग्रह के लिए मेरी आज्ञा से यह कार्य करो । आदिष्टः अर्थात् आदेशित होकर ।।४१।।

ईक्षयाऽलकनन्दाया विधूताशेषकल्मषः । वसानो वल्कलान्यङ्ग वन्यभुक्सुखनिस्पृहः ।।४२।।

अन्वयः— अलकनन्दायाः ईक्षया विधूताशेष कल्पषः हे अङ्ग, वल्कलानि वसानः वन्यभुक् सुख निःस्पृहः ।।४२।।

अनुवाद— अलक नन्दाके दर्शनमात्र से तुम्हारे सारे पाप ताप विनष्ट हो जायेंगे, वहाँ तुम वृक्षों के छाल को पहनना, कन्दमूल को खाना निःस्पृह होकर विचरण करना ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

स्नानादेः पूर्वमेव मत्पादतीर्थोदकभूताया अलकनन्दाया गङ्गाया ईक्षया । वसानः परिदधानः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

स्नान इत्यादि से पहले ही मेरे चरणोदक भूत अलकनन्दा के दर्शन मात्र से । वसानः पहने हुए ।।४२।।

तितिक्षुर्द्वन्द्वमात्राणां सुशीलः संयतेन्द्रियः । शान्तः समाहितधिया ज्ञानविज्ञानसंयुतः ।।४३।।

अन्वयः— द्वन्द्वमात्राणां तितिक्षुः सुशील संयतेन्द्रियः शान्तः समाहितधिया ज्ञानविज्ञानसंयुतः ।।४३।।

अनुवाद— सर्दी गर्मी, सुख दुःख को सहना, स्वभाव सौम्य रखना, अपनी इन्द्रियों को वश में रखना, चित्त शान्त रहना चाहिए, बुद्धि समाहित रहे और तुम स्वयम् मेरे स्वरूप के अनुभव में डूबे रहना ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

द्वन्द्वमात्राणां शीतोष्णादिविषयाणाम् । सुशील आर्जवादिस्वभावः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

द्वन्द्वमात्राणां अर्थात् शीत उष्ण आदि विषयों का सुशील: स्वभावत: ऋजु रहना ।।४३।।

मत्तोऽनुशिक्षितं यत्ते विविक्तमनुभावयन् । मय्यावेशितवाक्चितो मद्धर्मनिरतो भव ॥
अतिव्रज्य गतीस्तिस्रो मामेष्यसि ततः परम् ॥४४॥

अन्वयः— यत्तो मत्तोऽनुशिक्षितः विविक्तमनुभावयन् मयि आवेशित वाक्चित्तः, मद्धर्म निरतो भव, अतिव्रज्य गतिस्तिस्रः ततः परम माम् एष्यसि ।।४४।।

अनुवाद— मैंने तुम्हे जो शिक्षा दी है, उसका एकान्त में अनुभव करते रहना, अपनी वाणी और चित्त को मुझमें लगाये रखना, मेरे द्वारा बतलाये गये भागवत धर्म में रम जाना अन्त में त्रिगुण और उससे सम्बन्ध रखने वाली गतियों को पार करके उनसे परे मेरे परमार्थ स्वरूप में मिल जाओगे ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

ते त्वया विविक्तं सुविचारितम् । तिस्रस्त्रिगुणात्मिका गतीरतिक्रम्य ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

तुम एकान्त में रहकर विचार करना, त्रिगुणात्मिक गतियों को पार करके ।।४४।।

श्रीशुक उवाच

स एवमुक्तो हरिमेधसोद्धवः प्रदक्षिणं तं परिसृत्य पादयोः ।
शिरो निधायाश्रुकलाभिरार्द्रधीर्न्यषिञ्चदद्वन्द्वपरोऽप्यपक्रमे ॥४५॥

अन्वयः— एवम् उक्तः हरिमेधसः उद्धवः तं प्रदक्षिणं परिसृत्य, पादयोः शिरः निधाय द्वन्द्वपरः अपि आर्द्रधीः अश्रुकलाभिः न्यसिंचत् ।।४५।।

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— जब श्रीभगवान् ने उद्धवजी को इस प्रकार का उपदेश दिया तो भगवद् भक्त उद्धवजी श्रीभगवान् की परिक्रमा किए और श्रीभगवान् के चरणों पर सिर रख दिए, यद्यपि उद्धवजी सुख दु:ख आदि द्वन्दों से ऊपर उठ गये थे, क्योंकि वे श्रीभगवान् के चरण कमलों की शरणागति कर चुके थे फिर भी वहाँ से चलते समय उनका चित्त प्रेमावेश से भर गया और वे अपनी आँसुओं से श्रीभगवान् के चरणों को भिंगो दिए ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

हरिमेधसा संसारं हरति मेधा यस्य तेन श्रीकृष्णेन । अद्वन्द्वपरोऽपि सुखदुःखविनिर्मुक्तोऽपि । अपक्रमे निर्गमनसमये।।४५।।

भाव प्रकाशिका

हरिमेधसा संसार का हरण कर देने वाली मेधा से युक्त भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा, **अद्वन्द्वपरोऽपिसुखदु:ख** से रहित होकर **अपक्रमे** वहाँ से चलते समय ।।४५।।

सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो न शक्नुवंस्तं परिहातुमातुरः ।
कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः ॥४६॥

अन्वयः— सुदुस्त्यजस्नेहवियोग कातरः तं परिहातुम् न शक्नुवन् आतुरः भर्तृपादुके मूर्धनि विभ्रन् पुनः पुनः नमस्कृत्य कृच्छ्रं ययौ ।।४६।।

अनुवाद— परीक्षित् श्रीभगवान् के प्रति प्रेम करके उसको त्यागना कठिन है श्रीभगवान् के वियोग की कल्पना से उद्धवजी कातर हो गये, वे बार-बार मूर्छित होने लगे। उन्होंने श्रीभगवान् के चरणों की पादुकाएँ अपने सिर पर रख लिए और बार-बार श्रीभगवान् के चरणों में प्रणाम करके वहाँ से प्रस्थान किए ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

किंच, सुदुस्त्यजः स्नेहो यस्मिंस्तेन वियोगात्कातरो भीतोऽत एव तं परिहातुमशक्नुवन्नातुरोऽतिविह्वलः सन्कृच्छ्रं कष्टं ययौ प्राप। ततश्च भर्तृपादुके तेनैव कृपया दत्ते मूर्ध्नि बिभ्रदतिनिर्बन्धरूपया तदाज्ञया तं पुनः पुनर्नमस्कृत्य ययौ। अत्र च, 'पृष्ठतोऽन्वगमं भर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः' इत्यादितृतीयस्कन्धोपक्रमोक्तानुसारेकण वदरिकाश्रमं गच्छन्भगवतः प्रभासयात्रामुपश्रुत्य शनैः पृष्ठतो गतः सन्नुपसंहतनिजकुलं भगवन्तमेकान्ते दृष्ट्वा तत्कालप्राप्तेन मैत्रेयेण सह पुनः कृपया भगवतोपदिष्टं तत्त्वमाकलय्य तदाज्ञातो ययाविति द्रष्टव्यम् ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के प्रति हुए स्नेह को त्यागना कठिन है, श्रीभगवान् के प्रति वियोग से कतार बने हुए, श्रीभगवान् को छोड़ने में असमर्थ होने के कारण विह्वल बने हुए उद्धवजी मूर्छित हो गये। उसके पश्चात् श्रीभगवान् के द्वारा दी गयी पादुका को अपने सिर पर रखकर श्रीभगवान् के आदेश रूप आज्ञा के द्वारा श्रीभगवान् को बार-बार नमस्कार करके चले गये। यहाँ पर तीसरे स्कन्ध के प्रारम्भ में कहे गये उद्धवजी श्रीभगवान् से वियुक्त होने में असमर्थ होने के कारण आपने स्वामी के पीछे-पीछे गये। वे बदरिकाश्रम जाते हुए श्रीभगवान् के प्रभास क्षेत्र की यात्रा को सुनकर भगवान् के पीछे वहाँ देखकर जब कि श्रीभगवान् के वंश का उपसंहार हो गया था ऐसे भगवान् को एकान्त में देखकर उसी समय आये हुए मैत्रेय जी के साथ श्रीभगवान् के द्वारा उपदेश प्राप्त करके श्रीभगवान् के द्वारा उपदिष्ट तत्त्व का चिन्तन करके श्रीभगवान् की ही आज्ञा से उद्धवजी बदरिकाश्रम गये ।।४६।।

ततस्तमन्तर्हृदि संनिवेश्य गतो महाभागवतो विशालाम् ।
यथोपदिष्टां जगदेकबन्धुना ततः समास्थाय हरेरगाद्गतिम् ।।४७।।

अन्वयः— ततः तम् हृदि अन्तः सन्निवेश्य विशालां गतो महाभागवतः जगदेकबर्न्धुना यथोपदिष्यम् हरेः गतिम् तपः समास्थाय अगात् ।।४७।।

अनुवाद— उसके पश्चात् श्रीभगवान् को अपने हृदय में धारण करके, बदरिकाश्रम गये। महाभागवत श्रीउद्धवजी संसार के एकमात्र बन्धु भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा उपदिष्ट गति को तपोमार्ग को अपना कर प्राप्त कर लिए ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

विशालां बदरिकाश्रमं गतः सन् हरेर्गतिमगात्। कथंभूताम्। तेनैव जगदेकबन्धुना यथोपदिष्टाम्। 'तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयात्मभूयाय च कल्पते वै।', 'अतिव्रज्य गतिस्तिस्रो मामेष्यसि ततः परम्' इत्येवमुक्तप्रकाराम् ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

बदरिकाश्रम में गये हुए उद्धवजी संसार के एक मात्र बन्धु श्रीभगवान् के द्वारा उपदिष्ट गति को प्राप्त कर लिए। उद्धवजी को श्रीभगवान् ने कहा था उस समय तुम अमृतत्व को प्राप्त करके मुझमें मिल जाओगे। तथा त्रिगुण सबन्धी गतियों को पार करके तुम मुझको प्राप्त करोगे। इस तरह से श्रीभगवान् ने उद्धवजी को उपदेश दिया था ।।४७।।

य एतदानन्दसमुद्रसंभृतं ज्ञानामृतं भागवताय भाषितम् ।
कृष्णेन योगेश्वरसेविताङ्घ्रिणा सच्छ्रद्धयाऽऽसेव्य जगद्विमुच्यते ।।४८।।

अन्वयः— योगेश्वरसेविताङ्घ्रिणा कृष्णेन भागवताय भाषितम् यः एतत् आनन्दसमुद्रसंभृतं ज्ञानामृतं सत् श्रद्धया आ सेव्या जगद्विमुच्यते ।।४८।।

अनुवाद— श्रीशङ्करजी प्रभृति बड़े-बड़े योगेश्वर जिनके चरणों की सेवा करते हैं इस तरह के भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा भागवत श्रीउद्धवजी के लिए प्रदत्त आनन्द के समुद्र के समान ज्ञान रूपी अमृत का श्रद्धा पूर्वक सेवन करता है वह संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

आनन्दसमुद्रो भगवद्भक्तिमार्गस्तस्मिन्संभृतमेकीकृतमेतद्यः सच्छ्रद्धया आसेव्य ईषदपि सेवित्वा वर्तते स विमुच्यते इति किं वक्तव्यम्, तत्सङ्गाज्जगदपि विमुच्यत इत्यर्थः ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की भक्ति का मार्ग आनन्द के सागर से भरा हुआ है । इसका जो श्रद्धा पूर्वक थोड़ा सा भी सेवन करता है वह भी मुक्त हो जाता है यह क्या कहना है । भगवद् भक्ति के सङ्गति से संसार भी मुक्त हो जाता है ।।४८।।

भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद्वेदसारम् ।
अमृतमुदधितश्चापाययद्भृत्यवर्गान्पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।।२९।।

अन्वयः— निगमकृत् भृंगवद् वेदसारम् भवभयम् अपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारम् उपजह्रे अमृतमुदधितश्चापाययद् भृत्यवर्गान् आद्यं ऋषभं पुरुषं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ।।४९।।

अनुवाद— वेदों को प्रकाशित करने वाले, भगवान् श्रीकृष्ण जिस तरह भौरा पुष्पों का रस निकाल लेता है उसी तरह भक्तों के संसारामय को विनष्ट करने वाले वेदों के सार को जो ज्ञान विज्ञान का सार है उसका उपदेश श्रीभगवान् ने दिया है । उन्होंने क्षीरार्णव को मथकर अमृत को निकाला और अपने भक्त देवताओं को उसे पिलाया, इस तरह के पुरुषों में अग्रगण्य भगवान् श्रीकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूँ ।।४९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के उनतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

एवं कृतोपदेशं जगद्गुरुं प्रणमति-भवभयमिति । भवः संसारो भयं च जरारोगादिनिमित्तं तदुभयं निवृत्तानां प्रवृत्तानां च भृत्यवर्गाणां यथायोग्यमपहन्तु योऽमृतद्वयमुपजह्रे उद्धृतवान् । तदेवाह-वेदसारमेकम् । किं तत् ज्ञानविज्ञानरूपं च तत्सारं श्रेष्ठं च । भृङ्गवत् भृङ्गो यथा पुष्पमकोपयन्नेवामृतमुपहरति तथा स्वयं स्वकृतवेदानुसारेणैवोदधितश्चैकं तच्चोभयं यथायथं भृत्यवर्गानपाययत्तं नतोऽस्मीति ।।४९।।

येनानुकम्पितं विश्वमुद्धवप्रश्ननिर्णयैः । तं वन्दे परमानन्दं नन्दनन्दनरूपिणम् ।।१।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह जिन्होंने उपदेश दे दिया था उन जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण को **भवभयम् इत्यादि** श्लोक से प्रणाम करते हैं । संसार के भय को विनष्ट करने के लिए तथा जरा रोग आदि को दूर करने के लिए निवृत्तिमार्गी तथा प्रवृत्तिमार्गी अपने दोनों प्रकार के भक्तों के लिए वेदों के सारभूत ज्ञान-विज्ञान रूप तथा क्षीरार्णव के सारभूत अमृत को यथायोग्य अपने भृत्यवर्ग को, जिस तरह भौरां पुष्प को कुपित किए बिना ही अमृत को निकाल लेता है, उसी तरह अपने द्वारा निर्मित वेदों से तथा क्षीरार्णव से यथा योग्य अपने भक्तो पिलाये ।।४९।।

उद्धवजी के प्रश्नों के निर्णय के माध्यम से जिन्होंने संसार पर कृपा किया उन परमानन्द स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ ॥१॥

इस तरह से श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के उनतीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२९।।

तीसवाँ अध्याय

यदुकुल का संहार

राजोवाच

ततो महाभागवत उद्धवे निर्गते वनम् । द्वारवत्यां किमकरोद्भगवान्भूतभावनः ॥१॥

अन्वयः— ततः महाभागवते उद्धवे वनम् निर्गते, भूतभावनो भगवान् द्वारवत्यां किमकरोत् ॥१॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— उसके पश्चात् श्रीभगवान् के महान प्रेमी श्रीउद्धवजी के बदरिकाश्रम के लिए प्रस्थान कर जाने पर जीवों को जीवन प्रदान करने वाले श्रीभगवान् द्वारका में क्या किए ?॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रिंशे तु प्रागुपक्षिप्तमौसलच्छलतो हरिः । स्वधाम गन्तुमन्विच्छन्संजहार निजं कुलम् ॥१॥ विरागाय पुरा घोरमुपक्षिप्तं हि मौसलम् । कथावसाने तत्रैव विशेषं परिपृच्छति ॥२॥ तत इति त्रिभिः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तीसवें अध्याय में तो पहले से ही उपक्रान्त मुसल के व्याज से भगवान् श्रीकृष्ण अपने धाम में जाने की इच्छा से अपने वंश का संहार कर दिये ॥१॥ संसार से वैराग्य के लिए भयङ्कर मुसल वृत्तान्त को उन्होंने उपक्रान्त किया है । कथा के अन्त में राजा परीक्षित् उसी के विषय में विशेष रूप से श्रीशुकदेवजी से **ततः इत्यादि** तीन श्लोकों से पूछते हैं ॥१॥

ब्रह्मशापोपसंसृष्टे स्वकुले यादवर्षभः । प्रेयसीं सर्वनेत्राणां तनुं स कथमत्यजत् ॥२॥

अन्वयः— ब्रह्मशापोपसंसृष्टेस्वकुले यादवर्षभः सर्वनेत्राणा प्रेयसीम् तनुम् कथम् अत्यजत् ॥२॥

अनुवाद— ब्रह्मशाप से संयुक्त अपने वंश के विषय में यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण सबों के नेत्रों को प्रिय लगने वाले अपने शरीर का परित्याग कैसे किए ॥२॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मशापोपसंसृष्टे कुले सति । अयं भावः-भगवति नहि शापः प्रभवति, यादवत्वानुकरणाच्च सोऽपि कथंचिन्मान्यः, अतः किमकरोदिति । तदेतदुक्तम्-कथमत्यजदिति । सर्वनेत्राणामिति सर्वेन्द्रियोपलक्षणम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

अपने वंश के ब्राह्मणों के शाप से संयुक्त हो जाने पर कहने का भाव है कि, श्रीभगवान् पर शाप का प्रभाव नहीं हो सकता है । फिर भी यदुवंश का अनुसरण करने के कारण किसी प्रकार से उनको उसे मानना चाहिए अतएव उन्होंने क्या किया ? सबों की इन्द्रियों के अत्यन्त प्रिय अपने शरीर का त्याग उन्होंने कैसे किया ?॥२॥

प्रत्याक्रष्टुं नयनमबला यत्र लग्नं न शेकुः कर्णाविष्टं न सरति ततो यत्सतामात्मलग्नम् ।
यच्छ्रीर्वाचां जनयति रतिं किं नु मानं कवीनां दृष्ट्वा जिष्णोर्युधि रथगतं यच्च तत्साम्यमीयुः ॥३॥

अन्वयः— यत्र लग्नम् नयनम् अबलाः प्रत्याक्रष्टुं न शेकुः, सताम् आत्म लग्नम् यत् कर्णाविष्टम् ततः न सन्ति यत् वाचां श्रीः रतिंजनयति कवीनां मानं किंनु युधि जिष्णोः रथगतम् यच्च दृष्ट्वा तत् साम्यम् ईयुः ॥३॥

अनुवाद— हे भगवन् ! जब स्त्रियों के नेत्र उनके मङ्गलमय विग्रह में लग जाते थे तो वे उन्हें वहाँ से हटाने में असमर्थ हो जाती थीं । जब सन्त पुरुष उनकी रूप माधुरी का वर्णन सुनते हैं तब वह श्रीविग्रह कानों के रास्ते उनमें प्रवेश करके उनके चित्त में गड़ जाता था, वहाँ से वह हटना नहीं चाहता, उसकी शोभा कवियों के काव्य में अनुराग का राग भर देती है और उनका सम्मान बढ़ा देती है । महाभारत के युद्ध में मेरे पितामह के रथ पर देखकर वीर जब अपना प्राण त्याग देते थे तो उनकी सायुज्य मुक्ति हो जाती थी ॥३॥

भावार्थ दीपिका

तत्प्रपञ्चयति-प्रत्याक्रष्टुमिति । यस्मिन् रूपे लग्नं नयनं प्रत्याक्रष्टुं परावर्तयितुमबला न शेकुः । यच्च कर्णरन्ध्रेण प्रविष्टं सत्सतामात्मनि लग्नं लिखितमिव तिष्ठति, ततो न सरति न निर्गच्छति । यस्य श्रीः शोभा संकीर्त्यमाना कवीनां वाचां रतिमुल्लासविशेषं जनयति । तेषां मानं जगत्पूज्यतां जनयतीति किं नु वक्तव्यम् । यच्च विष्णो रूपं जिष्णोरर्जुनस्य रथे स्थितं दृष्ट्वा युधि मृतास्तत्साम्यं सारूप्यमीयुः प्राप्तास्तत्केन रूपेणात्यजदित्यन्वयः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के श्रीविग्रह की शोभा का विस्तार **प्रत्याक्रष्टुम् इत्यादि** श्लोक से करते हैं । भगवान् के जिस श्रीविग्रह में लगे हुए नेत्रों को हटा पाने में स्त्रियाँ असमर्थ हो जाती थीं । जो सन्तों के अन्तःकरण में कानों के माध्यम से प्रवेश करके वहाँ से हट नहीं पाता था । जिसकी शोभा वर्णन करने में लग्न कवियों के काव्यों में अनुराग भर देता था और उन काव्यों को जगत् पूज्य बना देता है । और युद्ध में मेरे पितामह अर्जुन के रथ पर बैठे देखकर वीर अपने शरीर का त्याग कर देते थे सायुज्य मुक्ति हो जाती थी उस अपने श्रीविग्रह का उन्होंने त्याग कैसे किया ?॥३॥

ऋषिरुवाच

दिवि भुव्यन्तरिक्षे च महोत्पातान्समुत्थितान् । दृष्ट्वासीनान्सुधर्मायां कृष्णः प्राह यदूनिदम् ॥४॥

अन्वयः— दिवि भुवि, अन्तरिक्षे च समुत्थितान् महोत्पातान् दृष्ट्वा सुधर्मायाम् आसीनान् यदून् कृष्णः इदम् आह ॥४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— आकाश में, पृथिवी पर तथा अन्तरिक्ष में होने वाले महान् उत्पातों को देखकर सुधर्मा सभा में बैठे हुए यदुवंशियों से भगवान् ने कहा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

दिवि सूर्यपरिवेषादीन् भुवि भूकम्पादीनन्तरिक्षे दिग्दाहादीन्महोत्पातान् स्वयमेवोत्पादितत्वादन्यैर्दुष्प्रतीकारान् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

आकाश में सूर्य के चारो ओर वृत्ताकार परिवेष आदि, पृथिवी पर भूकम्प आदि अन्तरिक्ष में दिग्दाह आदि स्वयं ही उत्पादित होने के कारण जिनका प्रतिकार कठिन है, ऐसे उत्पातों को देखकर ॥४॥

श्रीभगवानुवाच

एते घोरा महोत्पाता द्वार्वत्यां यमकेतवः । मुहूर्तमपि न स्थेयमत्र नो यदुपुङ्गवाः ॥५॥

अन्वयः— हे यदुपुण्ङ्गवा द्वार्वत्यां एते महोत्पाता यमकेतवः अत्र मुहर्तमपि न स्थेयम् ॥५॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे यदुवंश श्रेष्ठों देखो द्वारका में बड़े-बड़े उत्पात होने लगे हैं ये साक्षात् यमराज की ध्वजा के समान है अब यहाँ पर एक मुहूर्त भी नहीं ठहरना चाहिए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

यमस्य केतवो ध्वजा इव मृत्युसूचका इत्यर्थः । नोऽस्माभिः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

ये उत्पात यमराज की ध्वजा के समान भयङ्कर हैं ये मृत्यु के सूचक हैं । **नः** अर्थात् हमलोगों कों ॥५॥

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च शङ्खोद्धारं व्रजन्त्वितः । वरं, प्रभासं यास्यामो यत्र प्रत्यक्सरस्वती ॥६॥

अन्वयः— स्त्रियः बालाः च वृद्धाः च व्रजान्वितः शङ्खोद्धारं वयं प्रभास यास्यामः यत्र प्रत्यक् सरस्वती ॥६॥

अनुवाद— स्त्रियाँ, बालक और वृद्ध व्रज के साथ शङ्खोद्धार चले जायँ और हमलोग प्रभास क्षेत्र में चलेंगे जहाँ पश्चिम वाहिनी सरस्वती नदी समुद्र में जाकर मिलती हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

प्रत्यक् पश्चिमवाहिनी ॥६॥

भाव प्रकाशिका

प्रत्यक् अर्थात् पश्चिमवाहिनी ॥६॥

तत्राभिषिच्य शुचय उपोष्य सुसमाहिताः । देवताः पूजयिष्यामः स्नपनालेपनार्हणैः ॥७॥

अन्वयः— तत्र अभिषिच्य शुचयः उपोष्य सुसमाहिताः स्नपनालेपनार्हणैः देवताः पूजयिष्यामः ॥७॥

अनुवाद— वहाँ स्नान करके पवित्र बने हुए हमलोग उपवास करके एकाग्रचित्त से स्नान, चन्दन आदि पूजन सामग्रियों से देवताओं की पूजा करेंगे ॥७॥

भावार्थ दीपिका

अभिषिच्य स्नात्वा ॥७॥

भाव प्रकाशिका

अभिषित्त्य अर्थात् स्नान करके ॥७॥

ब्राह्मणांस्तु महाभागान्कृतस्वस्त्ययना वयम् । गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः ॥८॥

अन्वयः— कृतस्वस्त्ययना वयम् महाभागान् ब्राह्मणान् गो भूः हिरण्यवासोभिः गजाश्वरथवेश्मभिः ॥८॥

अनुवाद— वहाँ स्वस्विवाचन के पश्चात् हमलोग महाभाग्यवान् ब्राह्मणों का गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र, हाथी, घोड़े, रथ एवं गृह आदि के द्वारा सत्कार करेंगे ॥८॥

भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणांश्च तैः कृतशान्तिकाः सन्तो गवादिभिः पृजयिष्यामः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों के द्वारा स्वस्तिवाचन कर लेने के बाद उन ब्राह्मणों की गौ आदि से पूजन करेंगे ॥८॥

विधिरेष ह्यरिष्टघ्नो मङ्गलायनमुत्तमम् । देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥९॥

अन्वयः— एष विधिः हि अरिष्टघ्नः उत्तमं मङ्गलायनम् देवद्विजगवां पूजा भूतेषु परमो भवः ॥९॥

अनुवाद— यह विधि सभी प्रकार के अरिष्टों का नाश करने वाली और सर्वोत्तम मङ्गलमयी है । श्रेष्ठ यदुवंशियों, देवता, ब्राह्मण और गौओं की पूजा प्राणियों के जन्म का परम लाभ है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

विधिः प्रकारः मङ्गलायनं च । किंच, देवद्विजगवां पूजा । भव उद्भवहेतुः । देवलोके परम उद्भवो भविष्यतीति भावः॥९॥

भाव प्रकाशिका

विधि अर्थात् प्रकार, मङ्गलायनम् अर्थात् मङ्गलमय । और देवता, ब्राह्मण और गौओं की पूजा । भवः जन्म लेने के कारण । अर्थात् देवताओं के लोक में श्रेष्ठ जन्म होगा ॥९॥

इति सर्वे समाकर्ण्य यदुवृद्धा मधुद्विषः । तथेति नौभिरुत्तीर्य प्रभासं प्रययू रथैः ॥१०॥

अन्वयः— इति सर्वे यदुवृद्धाः मधुद्विषः समाकर्ण्य तथेति, नौभिः उत्तीर्य रथैः प्रभासं प्रययुः ॥१०॥

अनुवाद— परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्ण की बातों को सुनकर सभी वृद्ध यदुवंशियों ने तथास्तु कहकर उसका अनुमोदन किया और नौकाओं से समुद्र पार करके रथों द्वारा प्रभास क्षेत्र की यात्रा की ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

मधुद्विषो वाक्यमाकर्ण्य तथेत्यभिनन्द्य । उत्तीर्य समुद्रम् ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की बातों को सुनकर तथास्तु कहकर उसका अनुमोदन करके, और समुद्र को पार करके॥१०॥

तस्मिन् भगवतादिष्टं यदुदेवेन यादवाः । चक्रुः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् ॥११॥

अन्वयः— तस्मिन् भगवता यदुदेवेन आदिष्टं यादवाः परमया भक्त्या सर्वश्रेयोपबृंहितम् चक्रुः ॥११॥

अनुवाद— उस प्रभास क्षेत्र में जाकर यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण का आदेश पाकर यदुवंशियों ने अत्यन्त भक्ति पूर्वक अत्यन्त कल्याणकारी एवं स्वस्तिवाचन आदि पुण्य कर्मों को सम्पन्न किया ॥११॥

भावार्थ दीपिका

सर्वश्रेयोपबृंहितमित्यत्र संधिरार्षः । भगवतानुक्तैरपि सर्वैः श्रेयोभिः सहितं चक्रुः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

सर्वश्रेयोपबृंहितम् में सन्धिआर्ष है । श्रीभगवान् जिन्हें कहे भी नहीं थे, उन सभी कल्याणों के साथ किए॥११॥

ततस्तस्मिन्महापानं पपुर्मैरेयकं मधु । दिष्टविभ्रंशितधियो यद्द्रवैर्भ्रश्यते मतिः ॥१२॥

अन्वयः— ततः तस्मिन् दिष्टविभ्रंशितधिय मैरेयकं महापानं मधु पपुः यद् द्रवैः भ्रंश्यते मतिः ॥१२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् दैव ने उनकी बुद्धि हर ली और वे सब मैरेयक मदिरा का पान करने लगे जिससे बुद्धि नष्ट हो जाती है ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

पीयत इति पानम् । मैरेयकं मदिराविशेषम् । मधु सुरसम् । दिष्टेन दैवेन विभ्रंशितधियः । नह्यन्यथा तस्मिन्स्थाने तदुचितमिति भावः । यद्द्रवैर्यस्य द्रवै रसैः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

पीने की क्रिया को पान कहते है। मदिरा विशेष के मैरेयक कहते हैं। **सुरसम्** अर्थात् स्वादिष्ट। दैव के द्वारा जिनकी बुद्धि हर ली गयी थी अन्यथा उस मदिरा का पान उचित नहीं था। जिसके रस से ॥१२॥

महापानाभिमत्तानां वीराणां दृप्तचेतसाम्। कृष्णमायाविमूढानां संघर्षः सुमहानभूत् ॥१३॥

अन्वयः— महापानाभिमत्तानाम् दृप्तचेतसां वीराणां कृष्णमाया विमूढानां सुमहान् संघर्ष अभूत् ॥१३॥

अनुवाद— उस मैरेयक मदिरा के पीने से सबके सब मतवाले हो गये और घमण्डी वीर एक दूसरे से लड़ने लगे क्योंकि वे भगवान् श्रीकृष्ण की माया से मोहित हो गये थे ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

कृष्णमायाविमूढानामिति मुख्यो हेतुः। संघर्षः कलहः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण की माया से अज्ञानी होना ही मुख्य कारण था ॥१३॥

युयुधुः क्रोधसंरब्धा वेलायामाततायिनः। धनुर्भिरसिभिर्भल्लैर्गदाभिस्तोमरर्ष्टिभिः ॥१४॥

अन्वयः— ते आततायिनः क्रोध संरब्धा बेलायाम् धनुर्भिरसिभिः भल्लैः गदाभिः तोमरारिर्ष्टिभिः ॥१४॥

अनुवाद— वे सब आततायी हो गये। वे क्रोध से भरकर समुद्र तट पर ही धनुष, बाण, तलवार, भाले, गदा, तोमर तथा ऋष्टि आदि अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध करने लगे ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

ततो युयुधुश्च ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

युद्ध भी करने लगे ॥१४॥

पतत्पताकै रथकुञ्जरादिभिः खरोष्ट्रगोभिर्महिषैर्नरैरपि।
मिथः समेत्याश्वतरैः सुदुर्मदान्यहन् शरैर्दद्भिरिव द्विपा वने ॥१५॥

अन्वयः— पतत्पातकैः रथकुञ्जरादिभिः खरोष्ट्रगोभिः महिषै नरैरपि, सुदुर्मदाः मिथः समेत्य वने दद्भिः द्विपा इव आश्वतरैः शरै न्यहन् ॥१५॥

अनुवाद— जिन पर पताका फहरा रहा था ऐसे, रथ, हाथी आदि गधे, ऊँट, बैल, भैंसा तथा मनुष्यों पर चढ़कर मदमत्त यदुवंशी एक दूसरे पर उसी तरह प्रहार करने लगे जैसे बन में हाथी अपने दाँतों से एक-दूसरे पर प्रहार करते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

पतन्त्य इतस्ततश्चलन्त्यः पताका येषु तै रथादिभिर्मिथः समेत्य न्यहन्यघ्नन्नित्यर्थः। दद्भिर्दन्तैरिव ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

जिनकी पताकाएँ फहरा रही थीं ऐसे रथ आदि से परस्पर में एक दूसरे के साथ प्रहार करने लगे। जैसे दाँतों से ॥१५॥

प्रद्युम्नसाम्बौ युधि रूढमत्सरावक्रूरभोजावनिरुद्धसात्यकी ।
सुभद्रसंग्रामजितौ सुदारुणौ गदौ सुमित्रासुरथौ समीयतुः ॥१६॥

अन्वयः— प्रद्युम्न साम्बौ, अक्रूरभोजौ, अनिरुद्ध सात्यकी, सुभद्रसंग्रामजितौ सुदारुणौ गदौ, सुमित्रासुरथौ रुढ मत्सरौ युधिसमीयतुः ॥१६॥

अनुवाद— प्रद्युम्न साम्बसे, अक्रूर भोज से, अनिरुद्ध सात्यकी से, समुद्र संग्रामजित् से एक गद दूसरे गद से सुमित्र सुरथ से युद्ध करन लगे ये भयङ्कर योद्धा थे और क्रोध में भरकर एक दूसरे का नाश करने लगे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

मिथः समेत्येत्यस्य प्रपञ्चः-प्रद्युम्नेत्यादिचतुर्भिः । गदौ श्रीकृष्णस्य भ्राता एकः, पुत्रश्चापरस्तौ । सुमित्रासुरथाविति दैर्ध्यमार्षम् । असुरथनामा वा कश्चित् ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

परस्पर में एक दूसरे से आकर का विस्तार कर प्रद्युम्न आदि चार श्लोकों से किया गया है । गदौ अर्थात् एक श्रीकृष्ण के भाई और दूसरा उनका पुत्र ये दोनों कानाम गद था । सुमित्र और सुरथ यहाँ सन्धि आर्ष हैं । अथवा असुरथ नामक कोई दूसरा पुरुष ॥१६॥

अन्ये च ये वै निशठोल्मुकादयः सहस्रजिच्छतजिद्भानुमुख्याः ।
अन्योन्यमासाद्य मदान्धकारिता जघ्नुर्मुकुन्देन विमोहिता भृशम् ॥१७॥

अन्वयः— अन्ये च ये वै, निशठोल्मुकादयः, सहस्रजित्, शतजित् भानुमुख्याः मुकुन्देन भृशम् विमोहिताः मदान्धकारिताः अन्योन्यमासाद्य जघ्नुः ॥१७॥

अनुवाद— इन सबों के अतिरिक्त जो निशठ उल्मुक आदि सहस्रजित् और शतजित् और भानु आदि यादव भी एक दूसरे से युद्ध कर लगे । क्योकिं श्रीभगवान् की माया ने इन सबों को मोहित कर रखा था । और मदिरा के नशे ने उन सबों को अन्धा बना दिया ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

मदान्धेन मदतमसा बलात्कारिताः ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

मदान्धेन अर्थात् अत्यन्त अज्ञानवशात् ॥१७॥

दाशार्हवृष्ण्यन्धकभोजसात्त्वता मध्वर्बुदा माथुरशूरसेनाः ।
विसर्जनाः कुकुराः कुन्तयश्च मिथस्ततस्तेऽथ विसृज्य सौहृदम् ॥१८॥

अन्वयः— दाशार्हवृष्णिअन्धकभोजसात्त्वता मधु, अर्बुदाः माथुर शूरसेनाः विसर्जनः कुकुराः कुन्तयः च ततः तेमिथः विसृज्य सौहृदम् ॥१८॥

अनुवाद— दाशार्ह वृष्णि, अन्धक, भोज सात्वत मधु अर्बुद माथुर, शूरसेन तथा कुन्ति वंश के वीर अपने सौहार्द एवं प्रेम को भुलाकर आपस में युद्ध करने लगे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

दाशार्हादयो नव तत्तद्वंश्याः । अर्बुदा माथुराः शूरसेनाश्च तत्तद्देशीयाः ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

दाशार्ह आदि नव विभिन्न वंश वाले अर्बुद, माथुर तथा शूरसेन ये भिन्न-भिन्न देश के वीर थे ॥१८॥

पुत्रा अयुध्यन्पितृभिर्भ्रातृभिश्च स्वस्रीयदौहित्रपितृव्यमातुलैः ।
मित्राणि मित्रैः सुहृदः सुहृद्भिर्ज्ञातींस्त्वहन् ज्ञातय एव मूढाः ॥१९॥

अन्वयः— मूढाएव पुत्राः पितृभिः भ्रातृभिः च स्वस्रीय, दौहित्रपितृव्य मातुलैः मित्राणि मित्रैः सुहृदः सुहृद्भिः मूढाः ज्ञातयः ज्ञातीन अहन् ॥१९॥

अनुवाद— अज्ञानवशात् पुत्र पिता को भाई को भाञ्जा मामा को नाती नाना का, मित्र मित्र को, सुहृद् सुहृद् को चाचा-भतीजे को तथा समान गोत्र वाले एक दूसरे को मारने लगे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

भ्रातृभिश्चेति भ्रात्रादिशब्दानां सप्रतियोगिवाचित्वाद्भ्रतरो मातुला इत्यादि ज्ञेयम् । मित्रैश्च मित्राणि च । अहन् हतवन्तः॥१९॥

भाव प्रकाशिका

भाईयों से भाई आदि शब्द सप्रतियोगी के वाचक है, भाई मामा इत्यादि को जानना चाहिए मित्रों के साथ मित्र युद्ध करने लगे ॥१९॥

शरेषु क्षीयमाणेषु भज्यमानेषु धन्वसु । शस्त्रेषु क्षीयमाणेषु मुष्टिभिर्जह्रुरेरकाः ॥२०॥

अन्वयः— क्षीयमाणेषु शरेषु भज्यमानेषु धन्वसु, क्षीयमाणेषु शस्त्रेषु मुष्टिभिः एरकाः जह्रुः ॥२०॥

अनुवाद— अन्त में उन सबों के बाण समाप्त हो गये और धनुष टूट गया, शस्त्र समाप्त हो गये तब वे अपनी मुट्ठियों में एरका नामक घास ले लिए । वह घास ऋषियों के शाप रूप मुसल के चूर्ण से उगी थी ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

धन्वसु धनुःषु । जह्रुर्जगृहुः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

धन्वसु अर्थात् धनुषों जह्रुः अर्थात् ले लिए ॥२०॥

ता वज्रकल्पा ह्यभवन्परिघा मुष्टिना भृताः । जघ्नुर्द्विषस्तैः कृष्णेन वार्यमाणास्तु तं च ते॥२१॥
प्रत्यनीकं मन्यमाना बलभद्रं च मोहिताः । हन्तुं कृतधियो राजन्नापन्ना आततायिनः ॥२२॥

अन्वयः— राजन् मुष्टिना भृताः ताः व्रजकल्पाः ह्यभवन् तैः द्विषः ते जघ्नुः कृष्णेन वार्यमाणाः ते तं बलभद्रं च प्रत्यनीकं मन्यमानाः मोहिताः आततायिन हन्तुं कृतधियः आपन्नाः ॥२१-२२॥

अनुवाद— राजन् उन सबों के हाथ में आते ही वह घास व्रज के समान कठोर मद्गरों के रूप में परिणत हो गयी । वे सब उसी घास के द्वारा विपक्षियों पर प्रहार करने लगे । भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा मना करने पर वे आततायी गण उनको और बलरामजी को भी अपना विरोधी समझ लिए । उनकी बुद्धि इतनी मूढ हो गयी कि वे उनको मारने के लिए दौड़ पड़े ॥२१-२२॥

भावार्थ दीपिका

परिघा लोहदण्डाः । भृताः धृताः । तं च श्रीकृष्णमपि । प्रत्यनीकं प्रतिपक्षम् ॥२१-२२॥

भाव प्रकाशिका

परिघाः लोहे के डंडे । **भृताः** धारण करते ही **तंच** अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण को भी । प्रत्यनीकम् विरोधी ॥२१-२२॥

अथ तावपि संक्रुद्धावुद्यम्य कुरुनन्दन । एरकामुष्टिपरिघौ चरन्तौ जघ्नतुर्युधि ॥२३॥

अन्वयः— हे कुरुनन्दन अथ संक्रुद्धौ तो अपि एरका मुष्टिपरिधौ उद्यम्य युधि चरन्तौ जघ्नतुः ॥२३॥

अनुवाद— परीक्षित् उसके पश्चात् वे दोनों भी एरका घास रूपी परिध को उठाकर युद्ध भूमि में विचरण करते हुए प्रहार करने लगे ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

एरकामुष्टिरूपौ परिघावुद्यम्य ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

एरका घास की मुट्ठी रूपी पारिध को उठाकर ॥२३॥

ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् । स्पर्धाक्रोधः क्षयं निन्ये वैणवाऽग्निर्यथा वनम् ॥२४॥

अन्वयः— वैणवो अग्निः वनम् यथा ब्रह्मशापोपसृष्टानां कृष्णमायावृतात्मनाम् स्पर्धा क्रोधः क्षयं निन्ये ॥२४॥

अनुवाद— जिस तरह बाँस की रगड़ से उत्पन्न अग्नि बाँस के वन को जला देती है उसी तरह ब्रह्मशाप से ग्रस्त तथा भगवान श्रीकृष्ण की माया से मोहित यदुवंशियों को स्पर्धा मूलक क्रोध ने उनका विनाश कर दिया॥२४॥

भावार्थ दीपिका

स्पर्धानिमित्तः क्रोधः कुलं क्षयं निन्ये ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

स्पर्धा मूलक क्रोध ने वंश का विनाश कर दिया ॥२४॥

एवं नष्टेषु सर्वेषु कुलेषु स्वेषु केशवः । अवतारितो भुवो भार इति मेनेऽवशेषितः ॥२५॥

अन्वयः— एवं सर्वेषु स्वेषु कुलेषु नष्टेषु केशवः अवशेषितः भुवो भारः अवतारितः इति मेने ॥२५॥

अनुवाद— जब भगवान् ने देखा कि समग्र यदुवंश का विनाश हो चुका, तब वे यह सोच करकि मैंने पृथिवी का बचा हुआ भार उतार दिया सन्तुष्ट हो गये ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

रामः समुद्रवेलायां योगमास्थाय पौरुषम् । तत्याज लोकं मानुष्यं संयोज्यात्मानमात्मनि ॥२६॥

अन्वयः— रामः समुद्रवेलायां पौरुष योगम आस्थाय आत्मानि आत्मानं संयोज्य मानुष्य लोकं तत्याज ॥२६॥

अनुवाद— बलरामजी समुद्र तट पर बैठकर एकाग्रचित्त से परमात्म चिन्तन करते हुए अपनी आत्मा को आत्म स्वरूप में स्थिर करके मनुष्य शरीर का परित्याग कर दिए ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

पौरुषं योगं परमपुरुषध्यानलक्षणम् । तमेवाह-संयोज्येति । मानुष्यं लोकं भूर्लोकं मनुष्यरूपतां वा ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

पौरुषं योगम् अर्थात् परम पुरुष ध्यान रूपम् । उसी को संयोज्य पद से कहा गया है । मानुष्यं लोकम् अर्थात् भूलोक अथवा मनुष्य शरीर को ॥२६॥

रामनिर्याणमालोक्य भगवान्देवकीसुतः । निषसाद धरोपस्थे तूष्णीमासाद्य पिप्पलम् ॥२७॥

अन्वयः— राम निर्याणम् आलोक्य भगवान् देवकी सुतः घरोपस्थे पिप्पलम् आसद्य तुष्णीम् निषसाद ॥२७॥

अनुवाद— जब भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि बलरामजी परम धाम में लीन हो गये तो वे एक पिप्पल के पेड़ के नीचे पृथिवी पर ही चुपचाप बैठ गये ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

धरोपस्थे भूतले ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

धरोपस्थे अर्थात् पृथिवी पर ।।२७।।

बिभ्रच्चतुर्भुजं रूपं भ्राजिष्णु प्रभया स्वया । दिशो वितिमिराः कुर्वन्विधूम इव पावकः ।।२८।।

अन्वयः— भ्राजिष्णु चतुर्भुजं रूपं बिभ्रत् स्वयाप्रभया विधूमः पावक इव दिशः वितिमिरा कुर्वन् ।।२८।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण उस अपनी अङ्गकान्ति से चतुर्भुज रूप धारण किए हुए सभी दिशाओं को उसी तरह प्रकाशित कर रहे थे जिस तरह धूम रहित अग्नि दिशाओं को प्रकाशित करती हैं ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

भ्राजिष्णु रूपं बिभ्रदिति ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

देदीप्यमान रूप धारण किए हुए ।।२८।।

श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् । कौशेयाम्बरयुग्मेन परिवीतं सुमङ्गलम् ।।२९।।

अन्वयः— घनश्यामं तप्तहाटकवर्चसम् श्रीवत्साङ्कम् कौशेयाम्बरयुक्तेन परिवीतं सुमङ्गलम् ।।२९।।

अनुवाद— वर्षाकालीन मेघ के समान साँवले शरीर से तपे हुए सुवर्ण के समान ज्योति निकल रही थी। वक्षः स्थल पर श्रीवत्स चिह्न सुशोभित हो रहा था, वे रेशमी पीताम्बर की धोती और दुपट्टा धारण किए हुए थे। उनका वह रूप बड़ा ही मङ्गलमय था ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

तदेवानुवर्णयति-श्रीवत्साङ्कमिति चतुर्भिः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के श्रीविग्रह का वर्णन चार श्लोकों से करते हैं ।।२९।।

सुन्दरस्मितवक्त्राब्जं नीलकुन्तलमण्डितम् । पुण्डरीकाभिरामाक्षं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ।।३०।।

अन्वयः— सुन्दरस्मितवक्त्राब्जं नीलकुन्तलमण्डितम् पुण्डरीकाभिरामाक्षं स्फुरन् मकरकुण्डलम् ।।३०।।

अनुवाद— मुख कमल पर सुन्दर मुस्कान सुशोभित हो रहा था कपोलों पर काले घुंघराले केश सुशोभित हो रहे थे, फूल के समान मनोज्ञ एवं कमल नेत्र थे और कानों में मकराकृति कुण्डल सुशोभित हो रहा था ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

सुन्दरस्मितं वक्राब्जं यस्मिंस्तत् । पुण्डरीकवदभिरामे सुन्दरे अक्षिणी यस्मिंस्तत् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

मुख कमल पर मानो मुस्कान सुशोभित हो रहा था तथा कमल के समान मनोहर एवं सुकुमार नेत्र सुशोभित हो रहे थे ।।३०।।

कटिसूत्रब्रह्मसूत्रकिरीटकटकाङ्गदैः । हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ।।३१।।

अन्वयः— कटिसूत्रब्रह्मसूत्र किरीटकटकाङ्गदैः हारनूपुरमुद्राभिः कौस्तुभेन विराजितम् ।।३१।।

अनुवाद— कमर में करधनी, कन्धे पर ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) सिर पर मुकुट कलाइयों में कङ्गन, बाहों में बाजूबन्द वक्ष:स्थल पर एवं गले में कौस्तुभमणि लटक रही थी ।।३१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३१।।

वनमालापरीताङ्गं मूर्तिमद्भिर्निजायुधैः । कृत्वोरौ दक्षिणे पादमासीनं पङ्कजारुणम् ।।३२।।

अन्वयः— वनमालापरीताङ्गम् मूर्तिमद्भिः निजायुधैः कृत्वोरौदक्षिणं पादं आसीनं पङ्कजारुणम् ।।३२।।

अनुवाद— घुटनों तक वनमाला लटकी हुई थी, शंख, चक्र, गदा आदि आयुध मूर्तिमान होकर सेवा कर रहे थे । उस समय श्रीभगवान् अपनी दाहिनी जाङ्घ पर बायाँ चरण रखकर बैठे हुए थे, लाल-लाल तलवा कमल के समान चमक रहा था ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

वनमालापरीतान्यङ्गानि यस्मिंस्तत् । निजायुधैश्च परीताङ्गम् । पङ्कजारुणं वामं पादं दक्षिण ऊरौ कृत्वा आसीनं रूपं बिभ्रदिति पूर्वेणान्वयः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

पूरे शरीर पर वनमाला सुशोभित हो रही थी, श्रीभगवान् के अपने आयुधों द्वारा भी चारो ओर से घिरे थे । कमल के समान बायाँ चरण दाहिनी जङ्घा पर रखकर बैठे हुए श्रीभगवान् का शरीर सुशोभित हो रहा था ।।३२।।

मुसलावशेषायः खण्डकृतेषुर्लुब्धको जरा । मृगास्याकारं तच्चरणं विव्याध मृगशङ्कया ।।३३।।

अन्वयः— मुसलवशेषायः खण्डकृतेषु लुब्धकः जरा मृगस्याकारं तच्चरणं मृगशङ्कयां विव्याध ।।३३।।

अनुवाद— मुसल के बचे हुए टुकड़े से जरा नामक बहेलिया अपने बाण की गाँसी बनाया था । उसने दूर से भगवान् के लाल-लाल तलवे को हरिन के मुख समझकर अपने बाण से बेध दिया ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

जरा नाम कश्चिल्लुब्धको मृगयुः । मृगास्यमिवाकारो यस्य तं चरणम् ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

जरा नामक बहेलिया मृग के मुख के समान आकार वाले उस चरण को ।।३३।।

चतुर्भुजं तं पुरुषं दृष्ट्वा स कृतकिल्बिषः । भीतः पपात शिरसा पादयोरसुरद्विषः ।।३४।।

अन्वयः— कृत किल्विषः स तं चतुर्भुजं पुरुषं दृष्ट्वा भीतः असुरद्विषः पादयोः शिरसा अपतत् ।।३४।।

अनुवाद— वह अपराधी श्रीभगवान् के चतुर्भुज पुरुष देखकर भयभीत हो गया वह श्रीभगवान् के चरणों पर सिर रखकर पृथिवी पर गिर पड़ा ।।३४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३४।।

अजानता कृतमिदं पापेन मधुसूदन । क्षन्तुमर्हसि पापस्य उत्तमश्लोक मेऽनघ ।।३५।।

अन्वयः— हे मधुसूदन अजानता पापेन इदं कृतम् हे अनघ हे उत्तम श्लोक पापस्य क्षन्तुमर्हसि ।।३५।।

अनुवाद— हे मधुसूदन ! यह पाप मुझसे अनजाने मे हो गया । मै पापी हूँ हे उत्तम श्लोक ! हे अनघ आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें ।।३५।।

भावार्थ दीपिका— नही है ।।३५।।

यस्यानुस्मरणं नृणामज्ञानध्वान्तनाशनम् । वदन्ति तस्य ते विष्णो मयाऽसाधु कृतं प्रभो ॥३६॥

अन्वयः— हे प्रभो ! यस्य अनुस्मरणम् अज्ञानध्वान्तनाशनम् वदन्ति हे विष्णो ते मया असाधुकृतम् ॥३६॥

अनुवाद— हे प्रभो ! सन्त पुरुषों का कहना है कि आपका स्मरण अज्ञानान्धकार को विनष्ट कर देने वाला है । हे विष्णो मैने आपका अपराध किया है ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

तन्माशु जहि वैकुण्ठ पाप्मान मृगलुब्धकम् । यथा पुनरहं त्वेवं न कुर्यां सदतिक्रमम् ॥३७॥

अन्वयः— हे वैकुण्ठ ! तत् मृगलुब्धकं पाप्मानं मा आशु जहि यथाऽहं पुनः एवं सदतिक्रमं न कुर्याम् ॥३७॥

अनुवाद— हे वैकुण्ठ प्रभो ! अतएव आप मृगों को मारने वाले पापी मुझको शीध्र मार दीजिए, जिससे कि मैं पुनः इस प्रकार किसी सन्त पुरुष का अपकार न कर सकूँ ॥३७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

यस्यात्मयोगरचितं न विदुर्विरिञ्चो रुद्रादयोऽस्य तनयाः पतयो गिरां ये ।
त्वन्मायया पिहितदृष्टय एतदञ्जः किं तस्य ते वयमसद्गतयो गृणीमः ॥३८॥

अन्वयः— यस्य आत्मयोगरचितं विरिञ्चः न विदुः अस्य, तनयाः रुद्रादयः ये गिरां पतयः त्वन्मायया पिहितदृष्टयः एतदञ्जः तस्यते असद्गतयः ते वयम् कि गृणीमः ॥३८॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आपकी योगमाया के विलास को सम्पूर्ण विद्याओं के ज्ञाता ब्रह्माजी, उनके पुत्र रुद्र आदि तथा वेदों के ज्ञाता महापुरुष नहीं जान पाते हैं । उनकी दृष्टि को आपकी माया ने ढँक दिया है । ऐसी स्थिति में पापी हमलोग क्या कह सकते हैं ?॥३८॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मशापकृतमेतत्तव नापराध इति चेदत आहयस्य तवात्मयोगरचितं स्वाधीनमायया रचितं विरिञ्चः अस्य तनया रुद्रादयश्च ये चान्ये गिरां पतयो वेदद्रष्टारस्तेऽपि न विदुस्तस्य तेऽचिन्त्यमायस्य एतद्ब्रह्मशापादि अञ्जसा असद्गतयः पापयोनयो वयं किं गृणीमः कथं वर्णयामः । अतस्तदास्ताम् । आशु मां जहीति भावः ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

यदि आप कहें कि ब्रह्मा के शाप के कारण तुम से यह कार्य हो गया है । इसमें तुम्हारा अपराध नहीं है। इस पर जरा ने कहा आपकी योगमाया के विलास को ब्रह्मा, उनके पुत्र रुद्र आदि तथा वेदों के द्रष्टा महर्षिगण भी नहीं जानते है इस तरह आपकी माया अचिन्त्य है । यह ब्रह्माजी के शाप आदि के कारण पापी हमलोग क्या कह सकते हैं यह तो है किन्तु आप मेरा वध करें ॥३८॥

श्रीभगवानुवाच

मा भैर्जरे त्वमुत्तिष्ठ काम एष कृतो हि मे । याहि त्वं मदनुज्ञातः स्वर्गं सुकृतिनां पदम् ॥३९॥

अन्वयः— हे जरे मा भैः त्वम् उत्तिष्ठ ! एष हि मे कामकृतः मदनुज्ञातः त्वं सुकृतिनां पदं स्वर्गं याहि ॥३९॥

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे जरे ! तुम डरो मत उठो यह तुमने मेरी इच्छा से किया है । मेरी आज्ञा से तुम पुण्यवानों के स्वर्गलोक में जाओ ॥३९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३९॥

इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छाशरीरिणा । त्रिः परिक्रम्य तं नत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥४०॥

अन्वयः— इति इच्छा शरीरेण भगवता कृष्णेन आदिष्टः तं त्रिः परिक्रम्य नत्वा विमानेन दिवं ययौ ॥४०॥

अनुवाद— इस तरह अपनी इच्छा से शरीर धारण करने वाले भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा से श्रीभगवान् की तीन बार परिक्रमा करके वह जरा विमान से स्वर्ग चला गया ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

'इच्छाशरीरिणा' इत्यस्यायं भावः-शुद्धसत्त्वमयीं निजां मूर्तिमन्तर्धाय तत्प्रतिकृत्यैव विडम्बनमात्रमिति । एतदेव स्फुटीकरिष्यति-देवादयो ब्रह्ममुख्या इत्यादिना ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

इच्छा शरीरिणा पद का अभिप्राय यह है कि श्रीभगवान् अपनी शुद्ध सत्त्वमयी मूर्ति छिपाकर उसकी प्रतिकृति रूप से उसका अनुकरण करते है । इसी बात को आगे **देवादयोब्रह्ममुख्याः इत्यादि** श्लोक से स्पष्ट करेंगे ॥४०॥

दारुकः कृष्णपदवीमन्विच्छन्नधिगम्य ताम् । वायुं तुलसिकामोदमाघ्रायाभिमुखं ययौ ॥४१॥

अन्वयः— कृष्णपदवीम् अन्विच्छन् दारुकः ताम् अधिगम्य तुलसिकामोदम् आघ्राय अभिमुखं ययौ ॥४१॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण का सारथि दारुक उनके स्थान का पता लगाते हुए श्रीभगवान् के द्वारा धारण की गयी तुलसी की गन्ध से युक्त वायु को सूंघकर और उनके होने का अनुमान करके श्रीभगवान् के सामने गया॥४१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४१॥

तं तत्र तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं ह्यश्वत्थमूले कृतकेतनं पतिम् ।
स्नेहप्लुतात्मा निपपात पादयो रथादवप्लुत्य स बाष्पलोचनः ॥४२॥

अन्वयः— तिग्मद्युभिरायुधैर्वृतं तत्र अश्वत्थमूले कृतकेतनं पतिम् रथादवप्लुत्य स्नेहप्लुतात्मा वाष्पलोचनः पादयोः स निपपात ॥४२॥

अनुवाद— तीव्र तेज से युक्त आयुधों से घिरे हुए तथा पिप्पल के वृक्ष नीचे बैठे हुए अपने स्वामी भगवन् श्रीकृष्ण को देखकर रथ से उतरकर स्नेह पूर्ण मन से आँखों में आँसू भरे हुए श्रीभगवान् के चरणों पर वह गिर पड़ा॥४२॥

भावार्थ दीपिका

तं पतिं तत्र दृष्ट्वा तस्य पादयोर्निपपात ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

अपने स्वामी भगवान श्रीकृष्ण को वहाँ देखकर उनके चरणों पर गिर पड़ा ॥४२॥

अपश्यतस्त्वच्चरणाम्बुजं प्रभो दृष्टिः प्रनष्टा तमसि प्रविष्टा ।
दिशो न जाने न लभे च शान्ति यथा निशायामुडुपे प्रनष्टे ॥४३॥

अन्वयः— हे प्रभो ! निशायाम् उडुपे प्रनष्टे यथा त्वत्त्चरणाम्बुजम् अपश्यतः दृष्टिः प्रनष्टा तमसि प्रविष्टा दिशः न जाने न च शान्तिं लभे ॥४३॥

अनुवाद— हे प्रभो ! जैसे रात्रि में चन्द्रास्त हो जाने पर चारो ओर अन्धकार छा जाता है उसी तरह आपके चरण कमलों के नहीं देखने के कारण मेरे आँखों की ज्योति चली गयी और वह अन्धकार में प्रवेश कर गयी है । मुझे न तो दिशाओं का ज्ञान है और न तो मुझे शान्ति ही मिल पा रही है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४३॥

इति ब्रुवति सूते वै रथो गरुडलाञ्छनः । खमुत्पपात राजेन्द्र साश्वध्वज उदीक्षतः ॥४४॥

अन्वयः— हे राजेन्द्र ! इति सूते ब्रुवति सूते उदीक्षतः गरुडलाञ्छनः रथ साश्वध्वजः खम् उत्पपात् ॥४४॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् जब दारुक इस तरह कह रहा था उसी समय दारुक के सामने ही श्रीभगवान् का गरुडध्वजरथ अपने अश्वों और ध्वज के साथ उड़कर आकाश में चला गया ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

उदीक्षतः उदीक्षमाणस्य सूतस्य सतः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

सारथि के सामने ही ॥४४॥

तमन्वगच्छन्दिव्यानि विष्णुप्रहरणानि च । तेनातिविस्मितात्मानं सूतमाह जनार्दनः ॥४५॥

अन्वयः— तम् दिव्यानि विष्णु प्रहरणानि अन्वगच्छन् तेन अति विस्मितात्मानं सूतम् जनार्दनः आह ॥४५॥

अनुवाद— उसके पीछे भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य आयुध भी चले गये । यह सब देखकर दारुक के आश्चर्य की सीमा नहीं रहीं । तब श्रीभगवान ने दारुक से कहा ॥४५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४५॥

गच्छ द्वारवतीं सूत ज्ञातीनां निधनं मिथः । संकर्षणस्य निर्याणं बन्धुभ्यो ब्रूहि मद्दशाम् ॥४६॥

अन्वयः— सूत द्वारवतीं गच्छ बन्धुभ्यः ज्ञानीनां मिथः निधनं संकर्षणस्य निर्याणं मद्दशाम् ब्रूहि ॥४६॥

अनुवाद— दारुक अब तुम द्वारका चले जाओ और वहाँ यदुवंशियों के पारस्परिक संहार बलरामजी की परम गति और मेरे स्वधाम गमन की बात कहो ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

निर्याणं योगमार्गेण । मद्दशामितीच्छाशरीर्यभिप्रायेण ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

योगमार्ग से परम गति । मेरे इच्छा शरीर से स्वधाम गमन को बतला दो ॥४६॥

द्वारकायां च न स्थेयं भवद्भिश्च स्वबन्धुभिः । मया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लावयिष्यति ॥४७॥

अन्वयः— भवद्भिः च स्वबन्धुभिः द्वारकायां च न स्थेयं, मया त्यक्तां यदुपुरीं समुद्रः प्लवयिष्यति ॥४७॥

अनुवाद— उन लोगों से यह कहना कि अब आपलोगों को द्वारकापुरी में नहीं रहना चाहिए । मेरे नहीं रहने पर समुद्र द्वारका को डुबो देगा ॥४७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४७॥

स्वं स्वं परिग्रहं सर्वे आदाय पितरौ च नः । अर्जुनेनाविताः सर्व इन्द्रप्रस्थं गमिष्यथ ॥४८॥

अन्वयः— सर्वेस्वं स्वं परिग्रहम् नः पितरौ च आदाय अर्जुनेन अविताः सर्वे इन्द्रप्रस्थं गमिष्यथ ॥४८॥

अनुवाद— सबलोग अपनी धन सम्पत्ति और सामग्री को लेकर तथा मेरे माता-पिता को लेकर अर्जुन के संरक्षण में इन्द्रप्रस्थ चले जायँ ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

अविता रक्ष्यमाणा इन्द्रप्रस्थं गमिष्यथेति ब्रूहीति पूर्वेणान्वयः ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

अविताः अर्थात् संरक्षित, इन्द्रप्रस्थ चले जाओ यह कहना ॥४८॥

त्वं तु मद्धर्ममास्थाय ज्ञाननिष्ठ उपेक्षकः । मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज ॥४९॥

अन्वयः— त्वं तु मदधर्मम् आस्थाय ज्ञाननिष्ठः उपेक्षकः एतां मत् मायारचितां विज्ञाय उपशमं व्रज ॥४९॥

अनुवाद— तुम मेरे द्वारा उपदिष्ट भागवत धर्म को अपनाकर ज्ञाननिष्ठ होकर सबकी उपेक्षा कर दो । और इस दृश्य को मेरी माया की रचना समझकर शान्त हो जाओ ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

मन्मायारचनामेतां विज्ञायेति निजमूर्तेरन्तर्हिततत्वाद्वृथा शोकं मा कुर्वित्यर्थः ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

मेरी माया की रचना समझकर मेरे इस शरीर के अन्तर्हित होने से व्यर्थ का शोक मत करो ॥४९॥

इत्युक्तस्तं परिक्रम्य नमस्कृत्य पुनः पुनः । तत्पादौ शीर्ष्ण्युपाधाय दुर्मनाः प्रययौ पुरीम् ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे यदुकुलसंक्षयो नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

अन्वयः— इति उक्तं तं परिक्रम्य पुनः पुनः नमस्कृत्य तत्पादौ शीष्णि उपाधाय दुर्मना पुरीं ययौ ॥५०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् के द्वारा अदिष्ट होकर दारुक ने श्रीभगवान् की परिक्रमा की उनको बार-बार प्रणाम किया। श्रीभगवान् के चरणों को अपने सिर पर धरकर उदास मन से द्वारका के लिए चल दिया ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध के तीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

कुलस्य विनष्टत्वाद्दुर्मनाः ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे एकादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

कुल के विनष्ट हो जाने के कारण उदास ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के तीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥३०॥

* * *

इकतीसवाँ अध्याय

श्रीभगवान् का स्वधाम गमन

श्रीशुक उवाच

अथ तत्रागमद्ब्रह्मा भवान्या च समं भवः । महेन्द्रप्रमुखा देवा मुनयः सप्रजेश्वराः ॥१॥
पितरः सिद्धगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः । चरणा यक्षरक्षांसि किन्नराप्सरसो द्विजाः ॥२॥
द्रष्टुकामा भगवतो निर्याणं परमोत्सुकाः । गायन्तश्च गृणन्तश्च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥३॥

अन्वयः— अथ तत्र ब्रह्मा, अगमत् भवान्या च समंभवः महेन्द्र प्रमुखाः देवाः सप्रजेश्वराः मुनयः पितरः सिद्ध गन्धर्वाः विद्याधर महोरगाः, चारणाः यक्ष रक्षांसि किन्नरा अप्सरसः द्विजाः भगवतो निर्याणं द्रष्टुकामाः गायन्तः च गृणन्तः च शौरेः कर्माणि जन्म च ॥१-३॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित दारुक के चले जाने पर ब्रह्माजी, पार्वतीजी के साथ शङ्करजी, इन्द्र आदि लोकपाल, मरीचि आदि प्रजापति बड़े-बड़े ऋषि मुनि, पितर सिद्धगन्धर्व, विद्याधर नाग-चारण, यक्ष, राक्षस, किन्नर-अप्सरायें, गरुड लोक के विभिन्न पक्षी, अथवा मैत्रेय आदि ब्राह्मण, भगवान् श्रीकृष्ण के परम धाम प्रस्थान को देखने के लिए पूरी उत्सुकता से वहाँ आये थे । वे सभी भगवान् के जन्म तथा लीलाओं का गान कर रहे थे ॥१-३॥

भावार्थ दीपिका

एकत्रिंशे स्वकं धाम जगाम भगवानितः । तमेवानुययुः प्रीत्या वसुदेवादयस्ततः । देवान्यदून्विधायादौ भूयो देवान्विधाय च । श्रीकृष्णः स्वेच्छया धाम स्वतन्वैव समाविशत् । मुनयः सनकादयः । प्रजेश्वरा मरीच्यादयः । द्विजा गरुडलोकनिवासिनः पक्षिणः । मैत्रेयादयो वा । भगवतो निर्याणं द्रष्टुकामाः सन्तः परमोत्सुकास्तत्रागमन् । तेषामौत्सुक्यकृतं महोत्सवमाह सार्धेन-गायन्तश्चेति ॥१-३॥

भाव प्रकाशिका

इकतीसवें अध्याय में श्रीभगवान् इस लोक से अपने लोक में चले गये और श्रीभगवान्के प्रति प्रेम होने के कारण वसुदेवजी इत्यादि उनका अनुगमन किए । पहले उन्होंने देवताओं को यदुवंशी बनाया और फिर यदुवंशियों को देवता बनाकर भगवान् श्रीकृष्ण अपने शरीर के साथ ही स्वेच्छाऽनुसार अपने धाम में प्रवेश कर गये । मुनयः अर्थात् सनकादि गण, **प्रजेश्वरः** अर्थात् मरीचि आदि । द्विजाः अर्थात् गरुड लोक निवासी पक्षीगण अथवा मैत्रेय आदि । श्रीभगवान् का परमधाम गमन देखने की इच्छा से ही अत्यन्त उत्सुकता से, वहाँ आये थे । उन देवताओं के औत्सुक्यजन्य महोत्सव को **गायन्तश्च० इत्यादि** डेढ श्लोक से बतलाया गया है ॥१-३॥

ववृषुः पुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः । कुर्वन्तः संकुलं राजन् भक्त्या परमया युताः ॥४॥

अन्वयः— राजन् परमया भक्त्या युता विमानावलिभिनभ संकुल कुर्वन् पुष्पवर्षाणि ववृषुः ॥४॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् अत्यन्त उत्कृष्ट भक्ति पूर्वक वे फूलों की वर्षा कर रहे थे । ऐसे देवताओं आदि के विमान समूह से आकाश भर गया था ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

भगवान् पितामहं वीक्ष्य विभूतीरात्मनो विभुः । संयोज्यात्मनि चात्मानं पद्मनेत्रे न्यमीलयत् ॥५॥

अन्वयः— विभुः भगवान् पितामहं आत्मनो विभूतीः वीक्ष्य आत्मनि आत्मानं संयोज्य पद्मनेत्रे नेत्रे न्यमीलयत् ॥५॥

अनुवाद— सर्वव्यापक श्रीभगवान् ब्रह्माजी को तथा अपनी विभूति भूत देवताओं को देखकर कमल के समान मनोज्ञ एवं सुकुमार आँखों को बन्द कर लिए ॥५॥

भावार्थ दीपिका

विभूतीरिन्द्रादींश्च । 'पद्मनेत्रे न्यमीलात्' इत्यत्रायं भावः-पूर्वं ब्रह्मादिभिः 'सलोकान् लोकपालान्नः पाहि वैकुण्ठ किङ्करान्' इति प्रार्थितत्वादिदानीं च स्वं स्वं लोकं प्रति नेतुमागतत्वाद्बहुषु च तेषु दाक्षिण्यात्तान्वञ्चयितुं समाधिमिव कुर्वन्नेत्रे न्यमीलयदिति।।५।।

भाव प्रकाशिका

विभूतीः अर्थात् इन्द्र आदि को । कमल के समान अपने नेत्रों को बन्द कर लिए कि पहले ब्रह्माजी तथा लोको के साथ लोकपालों की हे वैकुण्ठ हम आपके भृत्य है आप हमारी रक्षा करें । इत्यादि रूप से प्रार्थना किए जाने के कारण, और अब अपने लोकों में ले जाने के लिए आये हुए, उन सबों के अत्यन्त अनुकूल्य के कारण उन सभी देवताओं को ठगने के लिए समाधि के समान अपने नेत्रों को बन्द कर लिए ॥५॥

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणाध्यानमङ्गलम् । योगधारणयाग्नेय्याऽदग्ध्वा धामाविशत्स्वकम् ॥६॥

अन्वयः— धारणाध्यानमङ्गलम् लोकाभिरामां स्वतनूम्आग्नेय योगधारणया अदग्ध्वा स्वकम् धामाविशत् ।।६।।

अनुवाद— संसार के समस्त शरीरों से सुन्दर तथा योगियों की धारणा और ध्यान के लिए मङ्गलमय अपने शरीर को योगाग्नि से जलाये बिना ही अपने धाम में प्रवेश कर गये ॥६॥

भावार्थ दीपिका

योगिनामिव स्वच्छन्दमृत्युभ्रमं वारयति-लोकाभिरामामिति । अयमर्थः-योगिनो हि स्वच्छन्दमृत्यवः स्वां तनुमाग्नेय्या योगधारणया दग्ध्वा लोकान्तरं प्रविशन्ति । भगवांस्तु न तथा, किंत्वदग्ध्वैव स्वतनुसहित एव स्वकं धाम वैकुण्ठाख्यमाविशत्। तत्र हेतुः-लोकाभिरामाम् । लोकानामभिरामोऽभितो रमणं स्थितिर्यस्यां ताम् । जगदाश्रयत्वेन जगतोऽपि दहनप्रसङ्गादित्यर्थः । किंच, धारणया ध्यानस्य च मङ्गलं शोभनम् । विषयमितरथा तयोर्निर्विषयत्वं स्यात् । दृश्यते चाद्यापि तदुपासकानां तथैव तद्रूपसाक्षात्कारः फलप्राप्तिश्चेति भावः । इच्छाशरीराभिप्रायेण वा यथाश्रुतमेवास्तु, तत्रापि तु लोकाभिरामामित्यादीनां विशेषणानामानर्थक्यप्रसङ्गात्तदप्यदग्ध्वा तिरोधाय निर्गत इत्येव सांप्रतम् ।।६।।

भाव प्रकाशिका

लोकाभिरामम् इत्यादि के द्वारा योगियों के समान स्वच्छन्द मृत्यु का वरण किया गया है । कहने का अभिप्राय है कि योगिगण स्वच्छन्द मृत्यु वाले वे आग्नेय योगधारणा से अपने शरीर को भस्म करके लोकान्तर में प्रवेश करते हैं। श्रीभगवान् ने वैसा नहीं किया । वे अपने शरीर को दग्ध किए बिना ही सशरीर अपने वैकुण्ठ लोक में प्रवेश कर गये । उसका कारण है कि वह शरीर संसार के सभी शरीरों से सुन्दर था । संसारियों के लिए हर प्रकार से मनोज्ञ स्थिति जिस शरीर में थी । वह शरीर जगत् का आश्रय था । उसके दग्ध होने पर संसार भी दग्ध हो जाता है तथा धारणा एवं ध्यान के लिए वह मङ्गलमय विषय था उसके दग्ध हो जाने पर धारणा और ध्यान निर्विषय हो जाते । आज भी देखा जाता है कि श्रीभगवान् के उपासक श्रीभगवान् के उस शरीर का साक्षात्कार करते हैं तथा फल की प्राप्ति भी होती है । अथवा इच्छा शरीर धारण करने वाले होने वाले के कारण जैसा सुना गया है, वैसा ही होए । वैसा होने पर भी उस शरीर के लोकाभिरामत्व आदि विशेषणों के निरर्थक होने का प्रसङ्ग होने से उस शरीर को दग्ध किए बिना ही तिरोहित करके श्रीभगवान् निकल गये यही अर्थ करना उचित है ॥६॥

दिवि दुन्दुभयो नेदुः पेतुः सुमनसश्च खात् । सत्यं धर्मो धृतिर्भूमेः कीर्तिः श्रीश्चानु तं ययुः ॥७॥

अन्वयः— दिवि दुन्दुभयः नेदुः खात् सुमनसः च पेतुः तम् अनु भूमेः सत्यं, धर्म, धृतिः कीर्तिः श्रीः ययुः ।।७।।

अनुवाद— उस समय स्वर्ग में नगाड़े बजने लगे और आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। श्रीभगवान् के पिछे भूलोक से सत्य, धर्म, धैर्य, कीर्ति तथा श्री भी चले गये ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तदा स्वं स्वमेव लोकप्रगमिष्यतीति संभ्रमेण देवादिकृतः सर्वतो दुन्दुभिनादपुष्पवृष्ट्यादिमहोत्सवोऽभवदित्याह-दिवीति। भूमेः सकाशात्। श्रीकृष्णमनु ययुः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

उस समय हमारे लोक में श्रीभगवान् आयेंगे इस शीघ्रता के कारण देवताओं ने सर्वत्र दुन्दुभियों को बजाया और पुष्प वृष्टि आदि के द्वारा महोत्सव मनाया। इस बात को **दिवि दुन्दुभयः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। **भूमेः** अर्थात् भूलोक से, श्रीकृष्णमनु भगवान् श्रीकृष्ण के पीछे चले गये ॥७॥

देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशन्तं स्वधामनि। अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥८॥

अन्वयः— ब्रह्ममुख्याः देवादयः अतिविस्मिताः अविज्ञातगतिं कृष्णं स्वधामनि विशान्तं न ददृशुः ॥८॥

अनुवाद—ब्रह्मा आदि देवता, अत्यन्त आश्चर्यित थे। जिनकी गति कोई नहीं जान सकता है ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण के अपने धाम में जाते हुए नहीं देख सके ॥८॥

भावार्थ दीपिका

तदा श्रीकृष्णेऽन्तर्हिते सति कुतो गत इति वितर्कयन्तोऽपि ब्रह्ममुख्या देवादयः स्वधामनि विशन्तं श्रीकृष्णं न ददृशुः। तत्र हेतुः-अविज्ञातगतिमिति। क्वचित्क्वचिद्ददृशुश्च ततोऽतिविस्मिता बभूवुरित्यर्थः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

भगवान् के अन्तर्धान हो जाने पर श्रीभगवान् कहाँ गये इस तरह तर्क करते हुए ब्रह्म आदि देवता अपने धाम में प्रवेश करते हुए श्रीभगवान् को नहीं देख सके। उसका कारण है कि भगवान् अविज्ञातगति हैं। उनकी गति को कोई नहीं जान सकता है। कहीं वे देखे भी तो अत्यन्त आश्चर्यित हो गये ॥८॥

सौदामन्या यथाकाशे यान्त्या हित्वाऽभ्रमण्डलम्। गतिर्न लक्ष्यते मर्त्यैस्तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥९॥

अन्वयः— यथा अभ्रमण्डलम् हित्वा आकाशे सौदामिन्याः यान्त्याः गतिः मर्त्यै न लक्ष्यते तथा कृष्णस्य दैवतैः ॥९॥

अनुवाद— जिस तरह मेघसमूह का त्याग करके आकाश में जाती हुई विद्युत् की गति मनुष्य नहीं जान पाते हैं, वैसे ही देवता श्रीभगवान् की गति को नहीं जान सके ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अविज्ञातगतित्वं दृष्टान्तेन स्पष्टयति-सौदामिन्याः गतिर्यथा मर्त्यैर्न लक्ष्यते, देवैस्तु लक्ष्यते तथा भूमण्डलं हित्वा गच्छतः श्रीकृष्ण्स्य गतिर्देवैरपि न लक्ष्यते किंतु तत्पार्षदैरेवेत्यर्थः ॥९॥

भाव प्रकाशिका

दृष्टान्त के द्वारा श्रीभगवान् के अविज्ञात गतित्व को स्पष्ट करते हैं जिस तरह मेघमण्डल को त्याग कर आकाश में जाती हुई विद्युत् की गति को कोई मनुष्य नहीं जानता हैं, उसी तरह भगवान् की गति को देवता नहीं जान सके ॥९॥

ब्रह्मरुद्रादयस्ते तु दृष्ट्वा योगगतिं हरेः। विस्मितास्तां प्रशंसन्तः स्वं स्वं लोकं ययुस्तदा ॥१०॥

अन्वयः— ते ब्रह्मरुद्रादयः हरेः योगगति दृष्ट्वा विस्मिताः प्रशंसन्तः स्वं स्वं लोकं ययुः ॥१०॥

अनुवाद— वे ब्रह्मा रुद्र आदि देवता श्रीहरि की योगमयी गति को देखकर आश्चर्यित होकर उनकी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने लोग में चले गये ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

राजन्परस्य तनुभृज्जननाप्ययेहा मायाविडम्बनमवेहि यथा नटस्य ।
सृष्ट्वात्मनेदमनुविश्य विहृत्य चान्ते संहृत्य चात्ममहिनोपरतः स आस्ते ॥११॥

अन्वयः— राजन् परस्यतनुभृत जनन अप्यय इहाः नटस्य विडम्बनं यथा इवेहि, आत्मना इदं सृष्ट्वा अनुविश्य, विहृत्य अन्ते संहृत्य च स आत्म महिना आस्ते ॥११॥

अनुवाद— राजन् परमात्मा की मनुष्य के समान जन्म लेना तथा संहार आदि की चेष्टाएँ नट के अनेक प्रकार के स्वाग रचना के समान । नट अनेक प्रकार का रूप बनाता है किन्तु स्वयं वह उन सबों से असम्पृक्त रहता है वैसे ही यह सबकुछ परमात्मा का विलास मात्र है । परमात्मा जगत् की सृष्टि करके उसमें प्रवेश करके क्रीडा करते है और अन्त में उसका संवरण करके अपने स्वरूप में स्थित हो जाते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

अभिप्रायापरिज्ञानात्प्रथमं परिक्लिष्टं ततश्च दृष्टान्तेन स्पष्टमुक्ते हृष्टं दृष्ट्वा पुनस्तमेवार्थं प्रपञ्चयति-राजन्निति त्रिभिः । परस्य सर्वकारणस्य तनुभृत्सु यादवादिषु जननाप्ययेहाः आविर्भावतिरोभावरूपाश्चेष्टा मायया अनुकरणमात्रमवेहि । नटो यथाऽविकृत एव नानारूपैर्जन्मादीन्विडम्बयति तद्वत् । आस्तां तावद्यादवादिषु जन्मादिशङ्का, यावद्विश्वसर्गनिरोधादिष्वप्यसावविकृत एवास्त इत्याह-सृष्टेति । आत्मना स्वयमेवेदं जगत्सृष्ट्वान्तर्यामित्वेनानुविश्य आत्ममहिना स्वमहिम्ना उपरत आस्ते ॥११॥

भाव प्रकाशिका

श्रीशुकदेवजी के अभिप्राय को नहीं जानने के कारण कठिनाई की अनुभूति होने और बाद में राजा के अभिप्राय के ज्ञात होने से प्रसन्न होने पर तथा दृष्टान्त के द्वारा स्पष्ट होने से प्रसन्न राजा के लिए पुनः **राजन इत्यादि** तीन श्लोकों से विस्तार करते हैं । सम्पूर्ण जगत् के कारण स्वरूप परमात्मा के श्रीकृष्ण आदि रूप से जन्म लेने आदि की चेष्टाओं को माया का अनुकरण मात्र समझो । जैसे नट राजा मन्त्री आदि अनेक रूपों को धारण करके भी स्वयम् अविकृत ही रहता है । उसीतरह परमात्मा भी जन्मादि का स्वांग बनाते हैं किन्तु स्वयं तो अविकृत रहते हैं। वे जगत् की भी सृष्टि करके अविकृत ही रहते हैं । इस बात को सृष्ट्वा इत्यादि से कहा गया है । वे स्वयम् इस जगत् की सृष्टि करके तथा उसमें प्रवेश करके अपनी महिमा से उपरत ही रहते है ॥११॥

मर्त्येन यो गुरुसुतं यमलोकनीतं त्वां चानयच्छरणदः परमास्त्रदग्धम् ।
जिग्येऽन्तकान्त कमपीशमसावनीशः किं स्वावनेस्वरनयन्मृगयुं सदेहम् ॥१२॥

अन्वयः— यः यमेन स्वलोकं नीतं गुरुसुतं मर्त्येन अनयत परमास्त्र दग्धं त्वां च शरणागतरक्षकः स अन्तकान्तकमपि ईशं जिग्ये मृगयुं स्वर्गम् अनयत् स; स्व अवने अनीशः किम् ॥१२॥

अनुवाद— जो भगवान् श्रीकृष्ण यमराज के द्वारा अपने लोक में लाये गये गुरु के पुत्र को मनुष्य शरीर के साथ लौटा लाये ब्रह्मास्त्र से तुम्हारा शरीर दग्ध हो गया था किन्तु शरणागत रक्षक भगवान् तुमको जीवित कर दिये, युद्ध में जो भगवान, काल के भी काल स्वरूप शङ्करजी को परास्त कर दिए तथा अपने शरीर पर प्रहार करने वाले जरा नामक बहेलिए को भगवान् सशरीर स्वर्ग लोक में भेज दिए वे भगवान् अपनी रक्षा नहीं कर सकते थे क्या ?॥१२॥

भावार्थ दीपिका

न पुनरन्यथा मन्तव्यं, यतोऽस्मिन्नेवावतारे तत्प्रभावो निरतिशयो इष्ट इत्याह–मर्त्येनेति । यमेन स्वलोकं प्रति नीतं गुरुसुतं मर्त्येन तेनैव शरीरेण य आनयदानीतवान् । शरणदः शरणागतरक्षकस्त्वां च ब्रह्मास्त्रदग्धं यो रक्षितवान् । यश्चान्तकानामन्तकमपि ईशं श्रीरुद्रं बाणसंग्रामे जितवान् । मृगयुं लुब्धकं सदेहं स्वः स्वर्गमनयन्निन्ये । असौ स्वावने स्वरक्षणे अनीशोऽसमर्थः किम्।।१२।।

भाव प्रकाशिका

तुम्हें अन्यथा नहीं मानना चाहिए । क्योकि श्रीकृष्णावतार में ही भगवान् के सर्वोत्कृष्ट प्रभाव को बतलाते हैं । जिसको यमराज अपने लोक में ले गये थे उस गुरु के पुत्र को उसके मनुष्य शरीर के साथ लौटा लाए, वे शरणागत रक्षक भी भगवान् ब्रह्मास्त्र से दग्ध हुए तुम्हारी रक्षा किए, जो भगवान् काल के भी काल भगवान् शङ्कर को युद्ध में पराजित कर दिए, तथा अपने देह पर प्रहार करने वाले बहेलिया को सशरीर स्वर्ग में भेज दिए, वे भगवान् क्या अपनी रक्षा करने में असमर्थ थे ?।।१२।।

तथाप्यशेषस्थितिसंभवाप्ययेष्वनन्यहेतुर्यदशेषशक्तिधृक् ।
नैच्छत्प्रणेतुं वपुरत्र शेषितं मर्त्येन किं स्वस्थगतिं प्रदर्शयन् ।।१३।।

अन्वयः— तथापि अशेष स्थिति संभवाप्ययेषु अनन्यहेतुः यत् अशेषशक्तिधृक् शेषितं वपुः अत्र प्रणेतुं नैच्छत् मर्त्येन कि स्वस्थगति प्रदर्शयन् ।।१३।।

अनुवाद— जो श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार के निरपेक्ष कारण हैं, जो भगवान् सर्वशक्ति सम्पन्न है वे श्रीभगवान् अपने शरीर को बचाए रखना नही चाहे । लोगों को इस बात की शिक्षा देने के लिए कि आत्मनिष्ठ को इस मर्त्यशरीर से क्या प्रयोजन है । आदर्श पुरुष को चाहिए कि अपने इस शरीर को बचाये रखने की चेष्टा न करें ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ननु यदि समर्थस्तर्हि किंचित्कालमत्रैव तेनैव बपुषा किं नातिष्ठत्तत्राह–तथापीति । यद्यप्युक्तप्रकारेणाशेषस्य जगतश्चराचरस्य स्थित्यादिष्वनन्यहेतुर्निरपेक्ष एव कारणं स्वयं यद्यस्मादशेषशक्तिधृक् तथापि यादवान् संहृत्य निजं वपुरत्र शेषितमवशेषितं प्रणेतुं कर्तुं नैच्छत् किंतु स्वमेव लोकमनयत् । तत्र हेतुः- मर्त्येन देहेन किं, न किंचित्कार्यमिति स्वस्थानामात्मनिष्ठानां दिव्यां गतिमेव प्रकृष्टां दर्शयन् । अन्यथा तेऽपि दिव्यां गमिमनादृत्य योगबलेन देहसिद्धिं विधायात्रैव रन्तुं यतेरंस्तन्मा भूदित्येतदर्थमिति भावः।।१३।।

भाव प्रकाशिका

यदि कोई कहे कि यदि वे समर्थ थे तो कुछ और समय तक अपने उस शरीर को बचाये रखते । इसके उत्तर में कहते है जो श्रीभगवान् जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं संहार के अन्य निरपेक्ष हेतु हैं, तथा सर्वशक्तिमान हैं, वे यदुवंश के संहार के बाद बचे हुए अपने शरीर को बचाये रखना नही चाहे अपितु अपने लोक में ही ले गये । वे सोचे कि मर्त्य शरीर से क्या प्रयोजन है । आत्मनिष्ठ पुरुषों के लिए सर्वोत्तम को प्रदर्शित करने के उस शरीर को नहीं रखे। अन्यथा आत्मनिष्ठ पुरुष भी योग के बल से देह की सिद्धि करके इस लोक में ही रमण करने लगेंगे ।।१३।।

य एतां प्रातरुत्थाय कृष्णस्य पदवीं पराम् । प्रयतः कीर्तयेद्भक्तया तामेवाप्नोत्यनुत्तमाम् ।।१४।।

अन्वयः— यः प्रातः उत्थाय एताम् पराम् पदवीं भक्त्या प्रयतः कीर्तयेत् तामेव अनुत्तमाम् प्राप्नोति ।।१४।।

अनुवाद— जो मनुष्य प्रातःकाल जगकर एकाग्रता और भक्ति के साथ कीर्तन करेगा वह भी भगवान् के उस सर्वश्रेष्ठ धाम को प्राप्त करेगा ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

य एनामुक्तप्रकाराम् । पदवीं गतिम् ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त प्रकार से वर्णित श्रीभगवान् परमधाम की गति को ।।१४।।

दारुको द्वारकामेत्य वसुदेवोग्रसेनयोः । पतित्वा चरणावस्त्रैर्न्यषिञ्चत्कृष्णविच्युतः ।।१५।।

अन्वयः— कृष्णविच्युतः दारुकः द्वारकाम् एत्य वसुदेवोग्रसेनयोः चरणौ पतित्वा अस्त्रैः न्यषिञ्चत् ।।१५।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के विरह से व्याकुल दारुक द्वारका आया तथा वसुदेवजी तथा उग्रसेन के चरणों पर गिरकर उनके चरणों को आँसुओं से सींच दिया ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

तदैव भगवता स्वलोकं गच्छता वसुदेवादीनामपि तत्प्राप्तये उपायश्चिन्तित आसीत्तमाह-दारुक इत्यादिना ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

उसी समय अपने लोक में जाते समय श्रीभगवान् ने उपाय सोचा कि वसुदेव आदि को भी उनके लोक की प्राप्ति हो जाय । उसी को दारुकः इत्यादि से कहा गया है ।।१५।।

कथयामास निधनं वृष्णीनां कृत्स्नशो नृप । तच्छ्रुत्वोद्विग्नहृदया जनाः शोकविमूर्च्छिताः ।।१६।।

अन्वयः— हे नृप ! वृष्णीनां कृत्स्नशः निधनं कथयामास तत् श्रुत्वा उद्विग्नहृदयाः जनाः शोकविमूर्छिताः ।।१६।।

अनुवाद— सम्पूर्ण यदुवंशियों के विनाश को दारुक ने बतलाया उसे सुनकर सबलोग मूर्छित हो गये ।।१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१६।।

तत्र स्म त्वरिता जग्मुः कृष्णविश्लेषविह्वलाः । व्यसवः शेरते यत्र ज्ञातयो घ्नन्त आननम् ।।१७।।

अन्वयः— कृष्ण विश्लेष विह्वलाः त्वरिताः तत्र आननम् ध्नन्तः जग्मु यत्र व्यसवः ज्ञातयः शेरते स्म ।।१७।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के वियोग से व्याकुल बने लोग अपना मुँह पीटते हुए वहाँ शीघ्र गये जहाँ उनक बन्धुगण मरे पड़े थे ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

देवकी रोहिणी चैव वसुदेवस्तथा सुतौ । कृष्णरामावपश्यन्तः शोकार्ता विजहुः स्मृतिम् ।।१८।।

अन्वयः— देवकी रोहिणी चैव तथा वसुदेवः कृष्णरामौ सुतौ अपश्यन्तः शोकार्ताः स्मृतिं जहुः ।।१८।।

अनुवाद— देवकी रोहिणी और वसुदेव जी अपने पुत्र बलरामजी तथा श्रीकृष्ण भगवान् को नहीं देखकर शोकार्त हो गये और उनकी स्मृति चली गयी ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

कृष्णरामौ सुतावपश्यन्तः ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी इन दोनों पुत्रों को नहीं देखकर ।।१८।।

प्राणांश्च विजहुस्तत्र भगवद्विरहातुराः । उपगुह्य पतींस्तात चितामारुरुहुः स्त्रियः ।।१९।।

अन्वयः— भगवद्विरहातुराः तत्र प्राणान् च विजहुः हेतात स्त्रियः पतीन् उपगुह्य चिताम् आरुरुहुः ।।१९।।

अनुवाद— श्रीभगवान् के विरह से व्याकुल हुए वे लोग वहीं पर अपने प्राणों का परित्याग कर दिये । परीक्षित् अपने पतियों का आलिङ्गन करके पत्नियाँ चिता में प्रवेश कर गयीं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१९॥

रामपत्न्यश्च तद्देहमुपगुह्याग्निमाविशन् । वसुदेवपत्न्यस्तद्गात्रं पद्युम्नादीन्हरेः स्नुषाः ॥
कृष्णपत्न्योऽविशन्नग्निं रुक्मिण्याद्यास्तदात्मिकाः ॥२०॥

अन्वयः— राम पत्न्यश्च तद्देहम् उपगुह्याग्निमाविशन् । वसुदेवपत्न्यः तद् गात्रम् हरेः स्नुषाः प्रदुम्नादीन् रुक्मिण्याद्यातदात्मिकाः कृष्णपत्न्यः अग्निम् आविशन् ॥२०॥

अनुवाद— बलरामजी की पत्नियाँ उनके शरीर का आलिङ्गन करके अग्नि में प्रवेश कर गयी, वसुदेवजी की पत्नियाँ उनके शरीर को लेकर अग्नि में प्रवेश कर गयी । श्रीहरि की पुत्रबधुएँ प्रद्युम्न आदि के शरीर को लेकर रुक्मिणी आदि जो भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियाँ जोतदात्मक थी वे भी सब अग्नि में प्रवेश कर गयीं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२०॥

अर्जुनः प्रेयसः सख्युः कृष्णस्य विरहातुरः । आत्मानं सान्त्वयामास कृष्णगीतैः सदुक्तिभिः ॥२१॥

अन्वयः— प्रेयसः सख्युः कृष्णस्य विरहातुरः अर्जुनः कृष्णगीतौ सदुक्तिभिः आत्मानं सान्त्वयामास ॥२१॥

अनुवाद— अपने प्रियतम सखा भगवान् श्रीकृष्ण के वियोग में आतुर बने हुए अर्जुन गीतोक्त सदुक्तियों का स्मरण करके अपने को संभाले ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

सदुक्तिभिः सत्योऽवितथा उक्तयो येषु तैः, 'नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः । मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ।' इत्यादिभिः ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

सदुक्तिभि० अर्थात् जिसमें सत्य उक्तियाँ है ऐसे वाक्यों द्वारा योगमाया से समावृत होने के कारण किसी को प्रकाशित नहीं होता हूँ, यह अज्ञानी संसार अजन्मा और अव्यय (निर्विकार) मुझको नहीं जानता है इत्यादि से ॥२१॥

बन्धूनां नष्टगोत्राणामर्जुनः सांपरायिकम् । हतानां कारयामास यथावदनुपूर्वशः ॥२२॥

अन्वयः— नष्टगोत्राणां बन्धूनां हतानां साम्परायिकम् अर्जुनः यथावत् अनुपूर्वशः कारयामास ॥२२॥

अनुवाद— यदुवंश के मृत व्यक्तियों में जिनको कोई पिण्ड देने वाला नही था उनका श्राद्ध अर्जुन ने विधि पूर्वक क्रमशः करवाया ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

नष्टगोत्राणां नष्टसंततीनाम् । सांपरायिकं पिण्डोदकादि ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

जिनकी सन्तानें नष्ट हो गयी थीं । साम्परायिकम् जल दान पिण्डदान इत्यादि ॥२२॥

द्वारकां हरिणा त्यक्तां समुद्रोऽप्लावयत्क्षणात् । वर्जयित्वा महाराज श्रीमद्भगवदालयम् ॥२३॥

अन्वयः— हे महाराज हरिणा परित्यक्तां द्वारकां समुद्रः श्रीमद्भगवदालयं वर्जयित्वा तत्क्षणम् आप्लावयत् ॥२३॥

अनुवाद— महाराज परीक्षित् श्रीभगवान् के द्वारा परित्यक्त द्वारका को श्रीभगवान् के महल को छोड़कर समुद्र ने उसी क्षण डुबो दिया ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

नित्यं संनिहितस्तत्र भगवान्मधुसूदनः । स्मृत्याऽशेषाशुभहरं सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥२४॥

अन्वयः— स्मृत्या अशेषाशुभ हरं सर्वमङ्गलमङ्गलम् भगवान् मधुसूदनः तत्र नित्यं सन्निहित ॥२४॥

अनुवाद— स्मरण करने मात्र से समस्त पापों का विनाश करने तथा समस्त मङ्गलों को भी मङ्गल बनाने वाले श्रीभगवान् का वहाँ नित्य ही निवास होता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका-- नहीं है ॥२४॥

स्त्रीबालवृद्धानादाय हतशेषान् धनञ्जयः । इन्द्रप्रस्थं समावेश्य वज्रं तत्राभ्यषेचयत् ॥२५॥

अन्वयः— हतशेषान् स्त्रीबालवृद्धान् आदाय धनंजयः इन्द्रप्रस्थं समावेश्य तत्र वज्रं अभ्यषेचयत् ॥२५॥

अनुवाद— मरने से बची हुई स्त्रियों, बालकों और वृद्धों को लेकर अर्जुन, इन्द्रप्रस्थ में लाकर सबों को बसाये और अनिरुद्ध के पुत्र वज्र का वहाँ अभिषेक कर दिए ॥२५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२५॥

श्रुत्वा सुहृद्वधं राजन्नर्जुनात्ते पितामहाः । त्वां तु वंशधरं कृत्वा जग्मुः सर्वे महापथम् ॥२६॥

अन्वयः— राजन् ते पितामहाः अर्जुनात् सुहृद्वधं श्रुत्वा त्वां तु वंशधरं कृत्वा सर्वेमहापथम् जग्मुः ॥२६॥

अनुवाद— राजन् आपके पितामह युधिष्ठिर आदि अर्जुन के मुख से अपने सुहृदों का वध सुनकर अपने वंश धर तुमको यहाँ का राजा बनाकर हिमालय की वीर यात्रा किए ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

य एतद्देवदेवस्य विष्णोः कर्माणि जन्म च । कीर्तयेच्छ्रद्धया मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२७॥

अन्वयः— यः मर्त्यः एतद् देवदेवस्य जन्म कर्माणि श्रद्धया कीर्तयेत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२७॥

अनुवाद— जो मनुष्य देवताओं के आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म और लीलाओं का वर्णन करेगा वह सभी पापों से मुक्त हो जायेगा ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

आदित आरभ्य श्रीकृष्णचरितकीर्तनस्य फलमाह-य एतदिति द्वाभ्याम् ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

प्रारम्भ से लेकर श्रीकृष्ण चरित के कीर्तन (वर्णन) का फल य **एतत् इत्यादि** दो श्लोकों से बतलाते हैं॥२७॥

इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतारवीर्याणि बालचरितानि च शंतमानि ।
अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत ॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां वैयासिक्यां पारमहस्यां संहितायां एकादशस्कन्धे एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३१॥

समाप्तोऽयमेकादशः स्कन्धः ॥११॥

अन्वयः— इत्थं हरेभर्गवतो रुचिरावतार वीर्याणि शंतमानि बालचरितानि च इह च अन्यत्र च श्रुतानि गृणान् मनुष्यः परमहंस गतौ परां भक्ति लभेत ॥२८॥

अनुवाद— जो मनुष्य इस प्रकार निखिल सौन्दर्य माधुर्य निधि भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार सबन्धी मनोज्ञ

पराक्रम और इस श्रीमद्भागवत पुराण में तथा अन्य पुराणों में वर्णित परमानन्दमयी बाल लीला आदि का संकीर्तन करता है, वह परमहंस मुनीन्द्रों के परम प्राप्तव्य भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में भक्ति प्राप्त करता है ॥२८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के महर्षि व्यास द्वारा प्रणीत अष्टादश साहस्त्री परमहंस संहिता के ग्यारहवें स्कन्ध के इकतीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

शंतमानि परममङ्गलानि। परमहंसगतौ श्रीकृष्णे ॥२८॥ एवमेकादशस्कन्धभावार्थस्य प्रदीपिका। स्वाज्ञानध्वान्तभीतेन श्रीधरेण प्रकाशिता ।।१।।

इति श्रीमद्भागवते महपुराणे अष्टादशसाहस्त्र्यां वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां एकादशस्कन्धटीकायां श्रीधरस्वामिविरचितायां भावार्थदीपिकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ।।३१।।

समाप्तोऽयमेकादशः स्कन्धः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

शंतमानि अर्थात् मङ्गलमय परमहसों के प्राप्य भगवान् श्रीकृष्ण में ॥२८॥

इस तरह महर्षि व्यास प्रणीत अष्टदश साहस्त्री पारमहंस्य संहिता श्रीमद्भागवत महापुराण के ग्यारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के इकतीसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३१।।

यह ग्यारहवाँ स्कन्ध सम्पूर्ण हो गया ।।११।।

।। ओम नमो भगवते वासुदेवाय ।।

द्वादशस्कन्धः

पहला अध्याय

कलियुग के राज वंशों का वर्णन

राजोवाच

स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे । कस्य वंशोऽभवत्पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने ।।१।।

अन्वयः— हे मुने यदुवंश विभूषणे कृष्णे स्वधामानुगते पृथिव्यां कस्य वंशः अभवत एतद् मे आचक्ष्व ।।१।।

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण के अपने परम धाम में पधार जाने पर पृथिवी पर किस वंश का राज्य हुआ यह मुझे आप बतलायें ।।१।।

भावार्थ दीपिका

श्रीगोपालकृष्णाय नमः । श्रीगुरुं परमानन्दं वन्द आनन्दविग्रहम् । यस्य संनतिमात्रेण चिदानन्दायते वपुः ।।१।। जयन्ति श्रीपरानन्दकृपाऽपाङ्गलसद्दृशः । या नित्यमनुवर्तन्ते संपदो विगतादृशः ।।२।। उक्तस्त्रयोदशाध्यायैर्द्वादशे त्वाश्रयः सतः। अधिष्ठानावधित्वाभ्यामाश्रयश्चेश्वरः सतः ।।३।। उक्तो लयावधित्वेन प्राकृतात्यन्तिके लये । अधिष्ठानतया चोक्तो महापुरुषवर्णने।।४।। तत्रादौ षड्भिरध्यायैः शुकः प्राह परीक्षिते । शेषैस्तत्राखिलान्याहसूतः पृष्टोऽथ सत्रिभिः ।।५।। स्वाश्रयश्रवणे कार्यो न विलम्बो मनीषिणा । इत्येतत्कालवैषम्यं चतुर्भिस्तावदुच्यते ।।६। तत्र तु प्रथमे भावि मागधान्वयभूमिपान् । कलिप्रभावतः प्राह संकरादिमलीमसान् ।।७।। एवंभूते सोमवंशे मुकुन्दस्वैरक्रीडावर्णिताथो स एव । वंशो भावी वर्ण्यते कृष्णभक्तिं मुक्त्वा मुक्त्यै वर्त्म नास्तीति वक्तुम् ।।८।। तदेवं वैवस्वतमनुवंशे सोमवंशप्रस्तावेन श्रीकृष्णावतारचरितानि सप्रपञ्चमनुवर्णितानि, अथेदानीं भावी सोमवंशः कलौ विजातीयसंकारादिमलीमसो वैराग्यद्वारा श्रीकृष्णैकभक्तिनिगमनायानुवर्ण्यते, तत्र तु सोमवंशशाखासु चिरकालानुवर्तितया मागधवंशोऽनुक्रम्यते, तत्र पूरोर्वंशे उपरिचरो वसुस्तस्य बृहद्रथस्तय जरासन्धस्तस्य सहदेवः पुत्रोऽभूदित्युक्तं नवमस्कन्धे । तत्रैव सहदेवान्मार्जारिस्ततः श्रुतश्रवा इत्यादयो रिषुञ्जयान्ता विंशतिर्भाविनो राजानो निरूपिताः । (तत्र राजा पृच्छति-स्वधामेति इदानीं) ।।१।।

भाव प्रकाशिका

परमानन्द स्वरूप आनन्दमय दिव्य विग्रह सम्पन्न अपने गुरुवर्य की वन्दना करता हूँ, जिनको प्रणाम मात्र करने से शरीर ज्ञानमय एवं आनन्दमय हो जाता है ।।१।। श्रीपरमानन्द की कृपा से सुशोभित नेत्रों की जय हो।।१।। जो नित्य ही अद्भुत सम्पत्ति नित्य ही अनुवृत्त होती है । बारहवें स्कन्ध में तेरह अध्यायों से सदाश्रय का वर्णन किया गया है । अधिष्ठान और अवधि (सीमा) इन दोनों के द्वारा ईश्वर ही सदाश्रय हैं ।।३।। प्राकृतिक और आत्यन्तिकलय में लय को ही अवधि रूप से बतलाया गया है । महापुरुष के वर्णन में उसी को अधिष्ठान भी कहा गया है ।।४।। प्रारम्भ में छह अध्यायों को शुकदेवजी ने महाराज परीक्षित को सुनाया है । बचे हुए सात अध्यायों को शौनकादि ऋषियों द्वारा

पूछ जाने पर उन्हें सूतजी ने सुनाया है ॥५॥ बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह अपने आश्रय को सुनने में देर न करे । इस तरह चार अध्यायों के द्वारा काल की विषमता को चार अध्यायों से कहा गया है ॥६॥ पहले अध्याय में बतलाया गया है कि मागधवंश के राजा होने वाले हैं । यह कहा गया की कलि के प्रभाव से वे सभी राजा सांकर्य दोष से दूषित होंगे ॥७॥ इस तरह के सोमवंश के हो जाने पर श्रीभगवान की स्वच्छन्द क्रीडा का वर्णन किया गया है । इसके पश्चात् वहीं वंश होने वाला है । यह वर्णन किया गया है । भगवान कृष्ण की भक्ति को छोड़कर दूसरा कोई भी मार्ग नहीं है ॥८॥ इस तरह से वैवस्वत मनु के वंश में सोमवंश का प्रस्ताव होने से विस्तार पूर्वक श्रीकृष्ण चरित का वर्णन किया गया है । अब इस समय कलियुग में विजातीय सांकर्य आदि दोषों से दूषित हो जायेगा । वैराग्य के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति का निगमन के लिए वर्णन किया गया है । सोमवंश की शाखाओं में दीर्घकाल से चले आ रहने के कारण मागध वंश का वर्णन प्रारम्भ किया जा रहा है । उसमें भी पुरु के वंश में उपरिचर वसु हुए उनके पुत्र बृहद्रथ हुए । बृहद्रथ का पुत्र जरासन्ध हुआ। जरासन्ध के पुत्र सहदेव हुए । उसी वंश में सहदेव के पुत्र मार्जारि हुए । उसके पश्चात श्रुतश्रवा से लेकर रिपुञ्जय पर्यन्त होने वाले बीस राजाओं का वर्णन है । राजा परीक्षित **स्वधाम० इत्यादि** श्लोक से पूछते हैं ॥१॥

श्रीशुक उवाच

योऽन्त्यः पुरञ्जयो नाम भविष्यो बारहद्रथः । तस्यामात्यस्तु शुनको हत्वा स्वामिनमात्मजम् ॥२॥
प्रद्योतसंज्ञं राजानं कर्ता यत्पालकः सुतः । विशाखयूपस्तत्पुत्रो भविता राजकस्ततः ॥३॥
नन्दिवर्धनस्तत्पुत्रः पञ्च प्रद्योतना इमे । अष्टत्रिंशोत्तरशतं भोक्ष्यन्ति पृथिवीं नृपाः ॥४॥

अन्वयः— हे नृप बार्हद्रथः यः अन्त्यः पुरञ्जयः भाव्यः तस्य आमात्यः तु शुनकः स्वामिनम् हत्वा प्रद्योत संज्ञं राजानं कर्ता, तस्य सुतः, पालकः पालकस्य पुत्रः विशाखयूप तत् पुत्रः रजकः ततः रजक पुत्र नन्दिवर्धनः । इमे पञ्च प्रद्योतनाः। इमे नृपाः अष्टत्रिंशोतर शतं पृथिवीं भोक्ष्यन्ति ॥२-४॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित मैंने नवें स्कन्ध में बतलाया था कि जरासंन्ध के पिता बृहद्रथ के वंश में अन्तिम राजा पुरञ्जय होगा । उसके मंत्री का नाम शुनक होगा । वह अपने स्वामी पुरञ्जय को मारकर प्रद्योत संज्ञक अपने पुत्र को राजा बनायेगा । प्रद्योत का पुत्र पालक होगा, पालक का पुत्र विशाखयूप होगा । विशाख यूप का पुत्र रजक होगा और रजक का पुत्र नन्दिवर्धन होगा । प्रद्योत के वंश में ये ही पाँच राजा होंगे । ये एक सौ अड़तीस वर्ष तक पृथिवी पर राज्य करेंगे ॥२-४॥

भावार्थ दीपिका

तदुपरितनं वंशं संकरादिदोषैः प्रपञ्चयति-योऽन्त्य इति । रिपुञ्जय एवं पुरञ्जयः । स्वामिनं पुरञ्जयं हत्वा स्वपुत्रं प्रद्योतसंज्ञं राजानं करिष्यति । यस्य पालको नाम सुतो भविष्यति । प्रद्योतना प्रद्योतसंज्ञाः ॥२-४॥

भाव प्रकाशिका

अब पुरञ्जय के पश्चात् होने वाला वंश सांकर्य आदि दोषों से दूषित होगा । उसी को योन्त्यः इत्यादि श्लोक से विस्तार से वर्णन करते हैं । रिपुञ्जय का ही नाम पुरञ्जय है । अपने स्वामी पुरञ्जय को मारकर अपने प्रद्योत संज्ञक पुत्र को राजा बनायेगा । उसका पुत्र पालक होगा । प्रद्योतनाः अर्थात् प्रद्योत संज्ञक ॥२-४॥

शिशुनागस्ततो भाव्यः काकवर्णस्तु तत्सुतः । क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ॥५॥

अन्वयः— ततः शिशुनागो भाव्यः तत्सुतः काक वर्णः तत्सुतः क्षेमधर्मा तस्य सुतः क्षेत्रज्ञः क्षेमधर्मजः ॥५॥

अनुवाद— उसके पश्चात् शिशुनाग नामक राजा होगा शिशुनाग के पुत्र काकवर्ण हुए। काकवर्ण के पुत्र क्षेमधर्मा और क्षेमधर्मा का पुत्र क्षेत्रज्ञ होगा ।।५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५।।

विधिसारः सुतस्तस्याजातशत्रुर्भविष्यति । दर्भकस्तत्सुतो भावी दर्भकस्याजयः स्मृतः ।।६।।

अन्वयः— विधिसारः तस्य सुतः तस्य पुत्र अजातशत्रु भविष्यति। तत्सुतः दर्भकः भावी दर्भकस्य अजयः भविष्यति।।६।।

अनुवाद— क्षेत्रज्ञ का पुत्र विधिसार होगा। उसका पुत्र अजातशत्रु होगा, उसके बाद दर्भक और दर्भक का पुत्र अजय होगा ।।६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६।।

नन्दिवर्धन आजेयो महानन्दिः सुतस्ततः। शिशुनागा दशैवैते षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ।।७।।
समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कुरुश्रेष्ठ कलौ नृपाः। महानन्दिसुतो राजन् शूद्रीगर्भोद्भवो बली ।।८।।

अन्वयः— आजेयः नन्दिवर्धनः ततः सुतः महानन्दिः, एते शिशुनागाः दश एव षष्ठयुत्तर शातत्रयम् समाः कलौनृपाः पृथिवीं भोक्ष्यन्ति। राजन् महानन्दि सुत शूद्रीगर्भोद्भवः बली ।।७-८।।

अनुवाद— ये शिशुनाग के वंश में दस राजा होंगे। ये सभी मिलकर पृथिवी पर तीन सौ साठ वर्षों तक राज्य करेंगे। राजन् परीक्षित् महानन्दि की शूद्रा पत्नी के गर्भ से नन्द नामक पुत्र होगा वह बहुत बलवान् हो ।।७-८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।७-८।।

महापद्मपतिः कश्चिन्नन्दः क्षत्रविनाशकृत् । ततो नृपा भविष्यन्ति शूद्रप्रायास्त्वधार्मिकाः ।।९।।

अन्वयः— महापद्मपतिः कश्चित् नन्दक्षत्रविनाशकृत ततः शूद्रप्रायाः अधार्मिकाः नृपाः भविष्यन्ति ।।९।।

अनुवाद— महानन्दि के पुत्र का नाम महापद्मपति होगा, क्योंकि वह पद्म नामक निधि का स्वामी है। वह क्षत्रियों का विनाश करने वाला होगा। उसके पश्चात् प्रायः सभी राजा शूद्र और अधार्मिक होंगे ।।९।।

भावार्थ दीपिका

नन्दो नाम कश्चिन्महापद्मसंख्याया सेनायाः धनस्य वा पतिर्भविष्यति। अतएव महापद्म इत्यपि तस्य नाम ।।९।।

भाव प्रकाशिका

नन्द नाम का कोई राजा महापद्म संख्या वाली सेना का अथवा महापद्म नामक निधि का स्वामी होगा, इसीलिए उनका एक नाम महापद्म भी होगा ।।९।।

स एकच्छत्रां पृथिवीमनुल्लङ्घितशासनः । शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः ।।१०।।

अन्वयः— तत सः अनुल्लंघितशासनः महापद्मः द्वितीयः भार्गव इव एकच्छत्रां पृथिवीं शासिष्यति ।।१०।।

अनुवाद— वह महापद्म की आज्ञा का कोई उल्लंघन नहीं कर पायेगा। वह सम्पूर्ण पृथिवी का एक छत्र राजा होगा। क्षत्रियों का वह परशुरामजी के समान विनाश करने वाला होगा ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

एकमेव छत्रं यस्यां तां पृथिवीं शासिष्यति पालयिष्यति। क्षत्रोत्सादने दृष्टान्तः-भार्गवः परशुराम इव ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

एक छत्र पृथिवी का राज्य करेगा क्षत्रियों का विनाश करने के कारण वह परशुराम के समान होगा ।।१०।।

तस्य चाष्टौ भविष्यन्ति सुमाल्यप्रमुखाः सुताः । य इमां भोक्ष्यन्ति महीं राजानः स्म शतं समाः॥११॥

अन्वयः— तस्य सुमाल्यप्रमुखाः अष्टौ पुत्राः भविष्यन्ति ये राजानः इमां महीम् शतं समाः पृथिवीं भोक्ष्यन्ति ॥११॥

अनुवाद— महापद्म के सुमाल्य आदि आठ पुत्र होंगे । वे सभी राजा होंगे वे सौ वर्षों तक पृथिवी का भोग करेंगे॥११॥

भावार्थ दीपिका

समाः संवत्सरान् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

समाः अर्थात् वर्ष ॥११॥

नव नन्दान् द्विजः कश्चित्प्रपन्नानुद्धरिष्यति । तेषामभावे जगतीं मौर्या भोक्ष्यन्ति वै कलौ ॥१२॥

अन्वयः— कश्चित् द्विजः प्रपन्नान् नवनन्दान् उद्धरिष्यति तेषाम् अभावे कलौ वे जगतीम् मौर्याः भोक्ष्यति ॥१२॥

अनुवाद— कौटिल्य वात्स्यायन के पर्यायभूत चाणक्य नामक कोई विश्वविख्यातनव नन्दों का विनाश कर देगा ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

नव नन्दान्नन्दं च तत्पुत्रांश्चेत्येवं नव । प्रपन्नान्विश्वस्तान्विख्यातान्वा । द्विजः कौटिल्यवात्स्यायनादिपर्यायश्चाणक्य उद्धरिष्यत्युन्मूलयिष्यति । मौर्या मौर्यसंज्ञाः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

नव नन्दान् अर्थात् एक नन्द और उसके आठ पुत्र सब मिलकर नव नन्द हो गये । इन सबों का कौटिल्य तथा वात्स्यायन आदि के पर्याय भूत चाणक्य नामक विश्व विख्यात ब्राह्मण नव नन्दों का विनाश कर देगा । उसके पश्चात् कलियुग में मौर्य वंश के राजाओं का राज्य होगा ॥१२॥

स एव चन्द्रगुप्तं वै द्विजो राज्येऽभिषेक्ष्यति । तत्सुतो वारिसारस्तु ततश्चाशोकवर्धनः ॥१३॥

अन्वयः— स एव द्विजः चन्द्रगुप्तं राज्ये अभिषेक्ष्यति तत् सुतःवारिसारः ततः च अशोकवर्धनः ॥१३॥

अनुवाद— वही ब्राह्मण चन्द्रगुप्त को राजा के पद पर अभिसिक्त करेगा । चन्द्रगुप्त का पुत्र वारिसार होगा और वारिसार का पुत्र अशोक वर्धन होगा ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

कथं भोक्ष्यन्ति तदाह-स एवेति । चन्द्रगुप्तं मौर्यप्रथमम् ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

मौर्यवंशीय राजा कैसे पृथिवी का भोग करेंगे तो इसका उत्तर है **स एव० इत्यादि** श्लोक से दिया गया है । चन्द्रगुप्त अर्थात् मौर्य वंश का पहला राजा ॥१३॥

सुयशा भविता तस्य सङ्गतः सुयशः सुतः । शालिशूकसततस्तस्य सोमशर्मा भविष्यति ॥१४॥

अन्वयः— तस्य सुयशाभविता, सुयशः सुतः सङ्गतः ततः तस्य शालिशूकः तस्य सोमशर्मा भविष्यति ॥१४॥

अनुवाद— अशोक वर्द्धन का पुत्र सुयशा होगा । सुयश का पुत्र सङ्गत होगा, उसका पुत्र शालिशूक होगा तथा शालिशूक का पुत्र सोमशर्मा होगा ॥१४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१४॥

शतधन्वा ततस्तस्य भविता तद्बृहद्रथः । मौर्या ह्येते दश नृपाः सप्तत्रिंशच्छतोत्तरम् ॥
समा भोक्ष्यन्ति पृथिवीं कलौ कुरुकुलोद्वह ॥१५॥

अन्वयः— शतधन्वा ततः तस्य तत् बृहद्रथः भविता एते दशनृपाः मौर्या सप्तत्रिंशच्छतोतरम् समाः पृथिवी भोक्ष्यन्ति॥१५॥

अनुवाद— सोमशर्मा के पुत्र शतधन्वा होंगे, उनके पुत्र बृहदरथ होंगे, ये दश राजा मौर्यवंशी हैं। इन सबों ने पृथिवी पर एक सौ सैंतीस वर्षों तक राज्य किया ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तेषां पञ्चमो दशरथः पराशरादिभिरुक्तोऽत्राप्यनुसंधेयः। तेन सह मौर्या दश। सप्तत्रिंशच्छतोत्तरं सप्तत्रिंशदुत्तरं शतं समाः॥१५॥

भाव प्रकाशिका

पराशर आदि ने मौर्य वंश के पाँचवें राजा का नाम दशरथ बतलाया है। दशरथ को लेकर मौर्य वंश के दस राजा होंगे। इन सबों ने एक सौ सैंतीस वर्षों तक राज्य किया ॥१५॥

हत्वा बृहद्रथं मौर्यं तस्य सेनापतिः कलौ। पुष्पमित्र स्तु शुंगाह्वः स्वयं राज्यं करिष्यति ॥
अग्निमित्रस्ततस्तस्मात्सुज्येष्ठोऽथ भविष्यति ॥१६॥

अन्वयः— कलौ तस्य सेनापतिः बृहद्रथं मौर्यं हत्वा पुष्पामित्रः शुङ्गाह्वः स्वयं राज्यं करिष्यति। ततः तस्मात् अग्निमित्रः सुज्येष्ठोऽथ भविष्यति ॥१६॥

अनुवाद— बृहद्रथ का सेनापति पुष्पमित्र शुंग होगा वह बृहद्रथ को मारकर स्वयं राजा बन बैठेगा। पुष्पमित्र का पुत्र अग्निमित्र होगा और अग्निमित्र का पुत्र सुज्येष्ठ होगा ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

बृहद्रथस्य सेनापतिः पुष्पमित्रो नाम स्वामिनं बृहद्रथं हत्वा राज्यं करिष्यति। स च शुङ्गानां प्रथमः। ततोऽग्निमित्रादयो॥१६॥

भाव प्रकाशिका

बृहद्रथ का सेनापति पुष्पमित्र अपने स्वामी को मारकर स्वयं राजा बन जायेगा। यह शुंग वंश का पहला राजा होगा उसके पश्चात् अग्निमित्र इत्यादि होंगे ॥१६॥

वसुमित्रो भद्रकश्च पुलिन्दो भविता ततः। ततो घोषः सुतस्तसमाद्वज्रमित्रो भविष्यति ॥१७॥
ततो भगवतस्तस्माद्देवभूतिरिरिति श्रुतः। शुङ्गा दशैते भोक्ष्यन्ति भूमिं वर्षशताधिकम्॥१८॥

अन्वयः— वसुमित्रः भद्रकश्च ततःपुलिन्दः भविता। ततः घोषः सुतः तस्माद् वज्रमित्रो भविष्यति। ततः भागवतः तस्मात् देवभूतिः इति श्रुतः एते दश शुङ्गाः वर्षशताधिकम् भूमिं भोक्ष्यन्ति ॥१७-१८॥

अनुवाद— सुज्येष्ठ का पुत्र वसुमित्र, वसुमित्र का भद्रक, भद्रक का पुलिन्द, पुलिन्द का घोष, और घोष का पुत्र वज्रमित्र वज्रमित्र का भागवत और भागवत का पुत्र देवभूति ये शुङ्ग वंश के दश राजा पृथिवी पर एक सौ बारह वर्ष राज्य करेंगे ॥१७-१८॥

भावार्थ दीपिका

दशैते शुङ्गा दशवर्षशताधिकं द्वादशाधिकं वर्षशतम् ॥१७-१८॥

भाव प्रकाशिका

शुङ्गवंश के दश राजा एक सौ बारह वर्ष तक राज्य करेंगे ॥१७-१८॥

ततः कण्वानियं भूमिर्यास्यत्यल्पगुणान्नृप। शुङ्गं हत्वा देवभूतिं कण्वोऽमात्यस्तु कामिनम् ॥१९॥
स्वयं करिष्यते राज्यं वसुदेवो महामतिः। तस्य पुत्रस्तु भूमित्रस्तस्य नरायणः सुतः ॥२०॥
काण्वायना इमे भूमिं चत्वारिंशच्च पञ्च च। शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ति वर्षाणां च कलौ युगे॥२१॥

अन्वयः— नृप ततः इयं भूमिः अल्पगुणान् कण्वान् यास्यति शुङ्गं हत्वा कामिनं देवभूतिं हत्वा महामति वसुदेवः

राज्यं करिष्यति, तस्य पुत्रः तु भूमित्रः तस्य नारायणः सुतः । इमे कण्वायना भूमिं वर्षाणां चत्वारिंशत् च पञ्च त्रीणिशतानि कलौयुगे भोक्ष्यन्ति ।।१९-२१।।

अनुवाद—परीक्षित् शुङ्ग वंशीय राजाओं का राज्य काल समाप्त होने पर यह पृथिवी कण्ववंशीय राजाओं के हाथ में चली जायेगी। कण्वंशी राजा अपने पूर्ववर्ती राजाओं की अपेक्षा कम गुण वाले होंगे। शुङ्गवंश का अन्तिम राजा देवभूति कामी होगा उसको उसका मन्त्री वसुदेव को मार देगा और अपनी बुद्धि के बल से राजा हो जायेगा। वसुदेव का पुत्र भूमित्र होगा, भूमित्र का पुत्र नारायण होगा, नारायण का सुशर्मा वह बड़ा यशस्वी होगा। कण्ववंश के ये चार राजा काण्वायन कहलायेंगे और कलियुग में पृथिवी पर तीन सौ पैंतालिस वर्ष राज्य करेंगे ।।१९-२१।।

भावार्थ दीपिका

कथं कण्वान्यास्यति तदाह-शुङ्गमिति। परस्त्रीकामिनं देवभूतिनामानं शुङ्गं हत्वा तदमात्यो वसुदेवनामा कण्वो राज्यं करिष्यति। काण्वानां चतुर्थः सुशर्मा ज्ञेयः। इमे वसुदेवादयः काण्वायना वर्षाणां त्रीणि शतानि पञ्चचत्वारिंशद्वर्षाणि च भूमिं भोक्ष्यन्ति ।।१९-२१।।

भाव प्रकाशिका

कैसे काण्वों के हाथ में चली जायेगी ? इस पर कहते हैं परस्त्रीकामी देवभूमि नामक शुङ्ग राजा को मारकर उसका वसुदेव नामक मन्त्री राज्य करेगा। कण्वों में चौथा राजा सुशर्मा होगा। ये वसुदेव इत्यादि कण्वायन राजागण पृथिवी पर तीन सो पैंतालिस वर्ष राज्य करेंगे ।।१९-२१।।

हत्वा काण्वं सुशर्माणं तद्भृत्यो वृषलो बली । गां भोक्ष्यत्यन्ध्रजातीयः कंचित्कालमसत्तमः ।।२२।।

अन्वयः— सुशर्माणं काण्वं तं हत्वा बली वृषलो भृत्यःअन्ध्र जातीयः असत्तमः कंचित्कालं गां भोक्ष्यति ।।२२।।

अनुवाद— काण्ववंशी सुशर्मा का एक शूद्र सेवक होगा आन्ध्र जाति का वह दुष्ट होगा। वह सुशर्मा को मारकर कुछ समय तक पृथिवी पर राज्य करेगा ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

काण्वानामन्तिमं सुशर्माणं हत्वा बलीनामा तद्भृत्यो गां भोक्ष्यति ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

काण्व वंश को अन्तिम राजा सुशर्मा को मारकर उसका बली नामक भृत्य कुछ समय तक पृथ्वी पर राज्य करेगा।।२२।।

कृष्णनामाथ तद्भ्राता भविता पृथिवीपतिः । श्रीशान्तकर्णस्तत्पुत्रः पौर्णमासस्तु तत्सुतः ।।२३।।

अन्वयः— अथ तद्कृष्णनामा भ्राता पृथिवीपति भविता, तत्पुत्रः श्रीशान्तकर्णः तत्पुत्र पौर्णमास तत्सुतः ।।२३।।

अनुवाद— उसके बाद उसका कृष्ण नामक भाई पृथिवी पति होगा, उसके बाद कृष्ण का पुत्र श्रीशान्त कर्ण और उसका पुत्र पौर्णमास राजा होगा ।।२३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२३।।

लम्बोदरस्तु तत्पुत्रस्तस्माच्चिबिलको नृपः । मेघस्वातिश्चिबिलकादटमानस्तु तस्य च ।।२४।।
अनिष्टकर्मा हालेयस्तलकस्तस्य चात्मजः । पुरीषभीरुस्तत्पुत्रस्ततो राजा सुनन्दनः ।।२५।।

अन्वयः— तत्पुत्रः लम्बोदर तस्मात् चिविलिकः नृपः, चिविलकात् मेघस्वाति तस्य च अटमानः तस्य च अनिष्ट कर्मा, तस्य हालेयः तस्य च आत्मजः तलकः, तत्पुत्रः पुरीषभीरुः ततो राजा सुनन्दनः ।।२४-२५।।

अनुवाद— पूर्णमास का पुत्र लम्बोदर लबोदर का पुत्र चिविलिक होगा, चिबिलिक का पुत्र मेघस्वाति मेघस्वाति

का अट्टमान, अट्मान का अनिष्टकर्मा, अनिष्टकर्मा का हालेय, हालेय का तलक, तलक का पुरीषभीरू, पुरीषभीरु का पुत्र राजा सुनन्दन होगा ।।२४-२५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२४-२५।।

चकोरो बहवो यत्र शिवस्वातिररिन्दमः । तस्यापि गोमतीपुत्रः पुरीमान्भविता ततः ।।२६।।

अन्वयः— हे अरिन्दम ! चकोर यत्र बहवः शिवस्वातिः तस्यापि गोमतीपुत्रः पुरीमान् भविता ।।२६।।

अनुवाद— परीक्षित् सुनन्दन का पुत्र चकोर होगा । चकोर के आठ पुत्र होंगे जो बहु कलहायेंगे । इनमें सबसे छोटे का नाम शिवस्वाति होगा । वह शत्रुओं का दमन करेगा, शिवस्वाति का पुत्र गोमती पुत्र होगा, उसका पुत्र पुरीमान् होगा ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

यत्र येषु बहुसंज्ञेष्वष्टसु चरमः शिवस्वातिनामा भविता ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

जिन बहुसंज्ञकों में अन्तिम शिवस्वाति होगा ।।२६।।

मेदशिराः शिवस्कन्दो यज्ञश्रीस्तत्सुतस्ततः । विजयस्तत्सुतो भाव्यश्चन्द्रविज्ञः सलोमधिः ।।२७।।

अन्वयः— मेदशिराः शिवस्कन्दः यज्ञश्रीः तत्सुतः ततः विजयः तत्सुतः स्कन्दो भाव्यः चन्द्रविज्ञः सलोमधीः ।।२७।।

अनुवाद— पुरीमान् का पुत्र मेदशिरा, उसका पुत्र शिवस्कन्द शिवस्कन्द का पुत्र यज्ञश्रीः, उसका पुत्र विजय और विजय के दो पुत्र होंगे चन्द्रविज्ञ और लोमधीः ।।२७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२७।।

एते त्रिंशन्नृपतयश्चत्वार्यब्दशतानि च । षट्पञ्चाशच्च पृथिवीं भोक्ष्यन्ति कुरुनन्दन ।।२८।।

अन्वयः— हे कुरुनन्दन एते त्रिशत् नृपतयः चत्वार्यब्दशतानि षट्पंचाशत् च पृथिवीं भोक्ष्यन्ति ।।२८।।

अनुवाद— हे कुरुनन्दन ! ये तीस राजा चार सौ छप्पन वर्षों तक पृथिवी पर राज्य करेंगे ।।२८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२८।।

सप्ताभीरा आवभृत्या दश गर्दभिनो नृपाः । कङ्काः षोडश भूपाला भविष्यन्त्यतिलोलुपाः ।।२९।।

अन्वयः— सप्त आभीराः आवभृत्यादश गर्दभिनः नृपाः षोडश कंकाः भूपालाः अतिलोलुपाः भविष्यन्ति ।।२९।।

अनुवाद— उसके बाद अवभृति नगरी के सात आभीर, दस गर्दभी और सोलह कङ्क पृथिवी पर राज्य करेंगे। ये सबके सब राजा अत्यन्त लोभी होंगे ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

आवभृत्याः अवभृतिर्नगरी तद्राजानः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

आवभृत्या० अर्थात् अवभृति नगरी के राजागण ।।२९।।

ततोऽष्टौ यवना भाव्याश्चतुर्दश तुरुष्ककाः । भूयो दश गुरुण्डाश्च मौना एकादशैव तु ।।३०।।

अन्वयः— ततः अष्टौ यवनाः भाव्या चतुर्दश तुरुष्ककाः भूयः दश गुरुण्डा, एकादशैव तु मौनाः ।।३०।।

अनुवाद— इन सबों के पश्चात् आठ यवन और चौदह तुर्क राजा होंगे, उसके पश्चात् दस गुरुण्ड और बारह मौन राज्य करेंगे ।।३०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३०।।

एते भोक्ष्यन्ति पृथिवीं दशवर्षशतानि च । नवाधिकां च नवतिं मौना एकादश क्षितिम्।।३१।।
भोक्ष्यन्त्यब्दशतान्यङ्ग त्रीणि तैः संस्थिते ततः । किलिकिलायां नृपतयो भूतनन्दोऽथ वाङ्गिरिः।।३२।।

अन्वयः— एते दशवर्षशतानिपृथिवीं भोक्ष्यन्ति, नवाधिकां चनवतिं एकादश मौनाः क्षितिम् त्रीणि अब्दशतानि भोक्ष्यन्ति। तैः संस्थिते ततः किल किला यां नृपतयः भूतनन्दः अथ वंगिरिः ।।३१-३२।।

अनुवाद— मौनों को छोड़कर ये राजागण एक हजार निन्यानवे बर्ष राज्य करेंगे । ग्यारह मौन नरपति तीन सौ वर्ष तक राज्य करेंगे । उन सबों के समाप्त हो जाने पर किलकिला नाम की नगरी में भूतनन्द नामक राजा होगा। भूतनन्द का पुत्र वाङ्गिरि होगा ।।३१-३२।।

भावार्थ दीपिका

एते आभीरादयो मौनव्यतिरिक्ताः पञ्चषष्टिनृपा एकोनशताधिकं वर्षसहस्रं पृथिवीं भोक्ष्यन्ति । ततः पूर्वोक्ता एवैकादश मौनास्त्रीण्यब्दशतानि क्षितिं भोक्ष्यन्ति । तैः संस्थिते तेषु मृतेषु किलिकिलायां पुर्यां नृपतयो भविष्यन्तीत्युत्तरेणान्वयः।।३१-३२।।

भाव प्रकाशिका

ये अभीर इत्यादि मौनों से भिन्न हैं । पैंसठ राजागण नव सौ निन्यानवे वर्ष तक पृथिवी पर राज करेंगे । उसके पश्चात् पहले कहे गये ग्यारह मौन राजा तीन सौ वर्ष तक पृथिवी पर राज करेंगे । उन सबों के मर जाने पर किलकिला पुरी में राजा होंगे । यह आगे के श्लोक से अन्वय है ।।३१-३२।।

शिशुनन्दिश्च तद्भ्राता यशोनन्दिः प्रवीरकः । इत्येते वै वर्षशतं भविष्यन्त्यधिकानि षट् ।।३३।।

अन्वयः— तद्भ्राता शिशुनन्दिः यशोनन्दिः प्रवीरकः इत्येते वै वर्षशतं भविष्यन्ति अधिकानिषट् ।।३३।।

अनुवाद— वाङ्गिरी के भाई शिशुनन्दि, यशोनन्दि तथा प्रवीरक ये एक सौ छह वर्ष राज्य करेंगे ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

अधिकानि षड्वर्षाणि च ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

सौ से छह वर्ष अधिक अर्थात् एक सो छह वर्ष ।।३३।।

तेषां त्रयोदश सुता भवितारश्च बाह्लिकाः । पुष्पमित्रोऽथ राजन्यो दुर्मित्रोऽस्य तथैव च ।।३४।।

अन्वयः— तेषां त्रयोदशसुताः बाह्लीकाः भवितारः अथ पुष्पमित्र राजन्यः तस्य दुर्मित्रः तथैव ।।३४।।

अनुवाद— इन सबों के तेरह पुत्र होंगे बाह्लीक कहलायेंगे । उसके पश्चात् पुष्प मित्रनामक क्षत्रिय और उसके पुत्र दुर्मित्र का राज्य होगा ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

तेषां भूतनन्दादीनां यथायथं वाह्लिकनामानस्त्रयोदश सुता भविष्यन्ति । अथ पुष्पमित्रो नामान्यो राजन्यः । अस्य च

भाव प्रकाशिका

भूतनन्द आदि के तेरह पुत्र होंगे। उसके पश्चात् पुष्पमित्र नामक दूसरा राजा होगा और उसका पुत्र दुर्मित्र का राज्य होगा ॥३४॥

एककाला इमे भूपाः सप्तान्ध्राः सप्त कौशलाः । विदूरपतयो भाव्या निषधास्तत एव हि ॥३५॥

अन्वयः— इमे सप्तान्ध्राः सप्तकोसला भूपाः एककालाः विदूरपतयः भाव्याः तत एव हि निषधाः ॥३५॥

अनुवाद— बह्लिक वंशी राजा एक ही साथ विभिन्न प्रदेशों में राज्य करेंगे इनमें सात अन्ध्र प्रदेश के तथा सात कोसल प्रदेश के राजा होंगे। कुछ विदूर भूमि के शासक और कुछ निषध देश के स्वामी होंगे ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

तथा आन्ध्राः कोशला विदूरपतयो निषधाश्च एते च तत्तद्देशनामभिः प्रख्यातास्तुल्यकालाः खण्डमण्डलेषु भूपास्तत एव तेभ्यो बाह्लिकेभ्य एव भाव्या भविष्यन्ति ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

आन्ध्र प्रदेश के कोसल प्रदेश के तथा विदूर भूमि के तथा निषध प्रदेश के शासक होंगे। विभिन्न नामों से प्रख्यात समान काल में ये सभी राजागण छोटे-छोटे मण्डलों में राजा होंगे। ये उन बाह्लिकों में से ही होंगें॥३५॥

मागधानां तु भविता विश्वस्फूर्जिः पुरञ्जयः । करिष्यत्यपरो वर्णान्पुलिन्दयदुमद्रकान् ॥३६॥

अन्वयः— मागधानां तु भविता विश्वफूर्जिः पुरञ्जयः अपरो वर्णन् पुलिन्द यदुमद्रकान् करिष्यति ॥३६॥

अनुवाद— उसके पश्चात् मगध देश का राजा विस्फूर्जि होगा। यह पूर्वोक्त पुरञ्जय से भिन्न पुरञ्जय होगा। यह ब्राह्मण आदि दूसरे वर्णों को पुलिन्द, यदु और मद्र आदि म्लेच्छ प्राय जातियों के रूप में परिणत करेगा ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च मागधानां तु राजा विश्वस्फूर्जिर्नाम भविता। स चापूर्वोक्तात्पुरञ्जयादपरः पुरञ्जय इति प्रसिद्धः सन्वर्णान्ब्राह्मणादीन्पुलिन्दयदुमद्रकसंज्ञान्म्लेच्छप्रायान्करिष्यति। अपरानिति पाठे अन्यान्पुलिन्दादिसंज्ञान्वर्णान्करिष्यतीत्यर्थः॥३६॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् मगध देश का राजा विस्फूर्जि होगा। वह पूर्वोक्त पुरञ्जय से अलग होगा। वह ब्राह्मण आदि वर्णों को पुलिन्द, यदु मन्द्र नामक म्लेच्छ जाति का बना देगा ॥३६॥

प्रजाश्चाब्रह्मभूयिष्ठाः स्थापयिष्यति दुर्मतिः । वीर्यवान्क्षत्रमुत्साद्य पद्मवत्यां स वै पुरि ॥
अनुगङ्गामाप्रयागं गुप्तां भोक्ष्यति मेदिनीम् ॥३७॥

अन्वयः— सः दुर्मतिः अब्रह्मभूष्ठिाः प्रजाः च स्थापपिष्यति वीर्यवान् सः क्षत्रमुत्साद्य पद्मावत्यां पुरि अनुगङ्गाम् आप्रयागं मेदिनीम् भोक्ष्यति ॥३७॥

अनुवाद— यह दुष्ट, ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्यों का नाश करके शूद्रप्राय जनता की रक्षा करेगा। वह अपने पराक्रम से क्षत्रियों का विनाश कर देगा पद्मावती पुरी को अपनी राजधानी बनाकर हरिद्वार से प्रयाग तक की पृथिवी पर राज्य करेगा ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

किंचैवं कृत्वाऽब्रह्मभूयिष्ठा अत्रैवर्ण्यप्रचुराः सतीः प्रजाः स्थापयिष्यति पालयिष्यति। स च पद्मवत्यां पुरि वसन् अनुगङ्गां गङ्गाद्वारमारभ्य प्रयागपर्यन्तं गुप्तां पालितां मेदिनीं भोक्ष्यति ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मणादि तीनों वर्णों से रहित शूद्र प्राय प्रजा को बनाकर उसकी रक्षा करेगा । पद्मावती में रहकर हरिद्वार से लेकर प्रयाग तक की पृथिवी की रक्षा करेगा ।।३७।।

सौराष्ट्रावन्त्याभीराश्च शूरा अर्बुदमालवाः । व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्रप्राया जनाधिपाः ।।३८।।

अन्वयः— सौराष्ट्रा वन्त्यभीराश्च शुरा अर्बुदमालवाः द्विजाः व्रात्याः भविष्यन्ति जनाधिपा शूद्रप्राया ।।३८।।

अनुवाद— सौराष्ट्र अवन्ती, आभीर मालव शूरसेन, तथा यदुवंश प्रदेश के ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य व्रात्य हो जायेंगे और राजा शूद्रप्राय हो जायेगे ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

तदनन्तरं च सौराष्ट्रादिदेशवर्तिनो द्विजा व्रात्या उपनयनरहिता भविष्यन्ति ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात सौराष्ट आवन्ती, आभीर शूरसेन अर्बुद तथा मालवा प्रदेश के ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, व्रात्य हो जायेंगे अर्थात् यज्ञोपवीत नहीं धारण करेंगे ।।३८।।

सिन्धोस्तटं चन्द्रभागां कौन्तीं काश्मीरमण्डलम् । भोक्ष्यन्ति शूद्रा व्रात्याद्या म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चसः ।।३९।।

अन्वयः— सिन्धोस्तटं चन्द्रभागां कौन्तीं काश्मीरमण्डलम् शूद्राः व्रात्याद्याः म्लेच्छाः च अब्रह्मवर्चसः भोक्ष्यन्ति ।।३९।।

अनुवाद— समुद्रतट, चन्द्रभागा का तटवर्ती प्रदेश, कौन्तीपुरी, और काश्मीर मण्डल पर प्रायः शूद्रों का संस्कार ब्रह्मतेज से हीन नाम मात्र के द्विजों का और म्लेच्छों का राज्य होगा ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

अब्रह्मवर्चसो वेदाचारशून्याः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

अब्रह्मवर्चस अर्थात् वैदिक सदाचार रहित ।।३९।।

तुल्यकाला इमे राजन्म्लेच्छप्रायाश्च भूभृतः । एतेऽधर्मानृतपराः फल्गुदास्तीव्रमन्यवः ।।४०।।

अन्वयः— राजन् इमे तुल्यकालाः म्लेच्छप्रायाः च भूभृता एते अधर्मा नृतपराः फल्गुदा तीव्र मन्यवः ।।४०।।

अनुवाद— राजन् ये सभी राजा एक समय में भिन्न मण्डलों मे राज करेंगे । ये आचार-विचार से रहित होने के कारण म्लेच्छ प्राय होंगे । ये अधर्म निष्ट और मिथ्याभाषी होंगे । ये अत्यन्त अल्पदान करने वाले तथा तीव्र क्रोध करने वाले होंगे ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

इमे च म्लेच्छप्राया भूभृतस्तुल्यकाला भविष्यन्ति । किंच, एते सर्वेऽधर्मानृतपरा अधर्मेऽनृते च परिनिष्ठिताः फल्गुदा अल्पदातारः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

ये म्लेच्छ प्रायः सभी राजा एक ही समय में होंगे । ये सभी अधार्मिक और मिथ्याभाषी होंगे । ये आपदान करने वाले तथा अत्यधिक क्रोधी होंगे ।।४०।।

स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च परदारधनादृताः । उदितास्तमितप्राया अल्पसत्त्वाल्पकायुषः ।।४१।।

अन्वयः— स्त्री बालगोद्विजघ्नाः परदार धनादृताः उवितास्तमितप्रायाः अल्प सत्त्वाल्पकायुषः ।।४१।।

अनुवाद— ये राजागाण, स्त्रियों, बालकों, गौओं तथा द्विजों का वध करने वाले होंगे दूसरे की पत्नी और दूसरे के धन के लोभी होंगे । इनके न बढ़ने में देर लगती है और न घटने में । ये अल्प पराक्रम वाले तथा अल्पायु होंगे ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

उदितास्तमितप्राया: हर्षशोकादिबहुला: ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

उदितास्तमित प्राया: अर्थात् बहुत अधिक हर्ष और शोक करने वाले ॥४१॥

असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसा वृताः । प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः ॥४२॥

अन्वयः— असंस्कृताः क्रियाहीनाः रजसातमसावृताः ते म्लेच्छाःप्रजाः भक्षयिष्यन्ति ॥४२॥

अनुवाद— संस्कार हीन, आचार हीन, रजोगुण एवं तमोगुण से भरे हुए वे राजा का वेष बनाये म्लेच्छ अपनी प्रजाओं का ही खून चूसेंगे ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

असंस्कृता गर्भाधानादिसंस्काररहिताः । प्रजा भक्षयिष्यन्ति धनाद्यपहरादिना पीडयिष्यन्ति ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

गर्भाधानादि संस्कार से रहित प्रजा: भक्षयिष्यन्ति अर्थात् प्रजाओं का धन लेकर उनको दुख देंगे ॥४२॥

तन्नाथास्ते जनपदास्तच्छीलाचारवादिनः । अन्योन्यतो राजभिश्च क्षयं यास्यन्ति पीडिताः ॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे प्रथमोऽध्याय: ॥१॥

अन्वयः— तन्नाथास्ते जनपदाः तत् शीलाचारवादिनः अन्यन्तो राजभिः च पीडिताः क्षयं यास्यन्ति ॥४३॥

अनुवाद— इस प्रकार के राजाओं का स्वभाव होने पर प्रजाओं का भी वही स्वभाव हो जायेगा । आचरण और भाषण की वृद्धि होगी । राजागण प्रजा का शोंषण करेंगे प्रजाएँ भी एक दूसरे को पीडित करेगी । अन्ततः सबके सब नष्ट हो जायेंगे ॥४३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के प्रथम अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

किंच तन्नाथा: ते नाथा येषां ते जनपदा देशवर्तिनो मनुष्यास्तच्छीलाचारवादिनस्तेषामिव शीलमाचारो वादश्च तद्वन्त:॥४३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के स्वभाव वाले जिस प्रदेश के राजा होंगे, उसी स्वभाव वाली प्रजा भी हो जायेगी और वे भी राजाओं के ही समान मिथ्याभाषी हो जायेंगे ॥४३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के प्रथम अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१॥

दूसरा अध्याय

कलियुग के धर्म

श्रीशुक उवाच

ततश्चानुदिनं धर्मः सत्यं शौचं क्षमा दया । कालेन बलिना राजन्नङ्क्ष्यत्यायुर्बलं स्मृतिः ॥१॥

अन्वयः— ततः बलिना कालेन अनुदिनं धर्मः, सत्यं, शौचं, क्षमा, दया, आयुः बलम् स्मृतिः नंक्ष्यति ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— ज्यों-ज्यों कलियुग बढ़ता जायेगा तैसे-तैसे प्रतिदिन बलवान काल के द्वारा प्रेरित होकर धर्म, सत्य, शौच, क्षमा, दया, आयुः बल स्मृति नष्ट हो जायेंगे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वितीये तु कलेर्दोषवृद्धौ कल्क्यवतारतः । अधर्मिष्ठे जने नष्टे पुनः कृतयुगामः ॥१॥ कलिधर्मान्प्रपञ्चयति–ततश्चेत्यादिना॥१॥

भाव प्रकाशिका

दूसरे अध्याय में कलि के दोषों को बढ़ जाने पर अधार्मिकों का नाश हो जाने पर पुनः सत्ययुग आयेगा। कलि के धर्मो का विस्तार ततश्च इत्यादि श्लोक से किया गया है ॥१॥

वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः । धर्मन्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥२॥

अन्वयः— कलौ नृणां वित्तम् एव जन्माचारगुणोदयः धर्मन्याय व्यवस्थायां बलम् एव हि कारणम् ॥२॥

अनुवाद— कलियुग में लोग उसी को कुलीन, सदाचारी तथा गुणवान् मानेंगे जो धनवान होगा । जिनके हाथ में शक्ति होगी वहीं धर्म और न्याय की व्यवस्था अपने अनुकूल करा पायेगा ॥२॥

भावार्थ दीपिका

धर्मन्याययोर्व्यवस्थायां बलमेव ॥२॥

भाव प्रकाशिका

धर्म और न्याय की व्यवस्था वही करेगा जिसके हाथ में शक्ति होंगी ॥२॥

दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुर्मायैव व्यावहारिके । स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिर्विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥३॥

अन्वयः— दाम्पत्ये अभिरुचिः हेतुः व्यावहारिके मायाएव, स्त्रीत्वें पुंस्त्वे च रतिः विप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥३॥

अनुवाद— स्त्री पुरुष में रुचि ही कारण होगा, वंश तथा गोत्र इत्यादि नहीं, व्यावहारिकी निपुणता छल और कपट ही होगा । स्त्री एवं पुरुष की श्रेष्ठता का आधार रति कौशल ही होगा, ब्राह्मण की पहचान उसके गुणों से नहीं यज्ञोपवीत से ही होगा ॥३॥

भावार्थ दीपिका

दाम्पत्ये भार्यापतिभावेऽभिरुचिरेव हेतुर्न कुलगोत्रादिः । व्यावहारिके क्रयविक्रयादौ । स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च तयोः श्रैष्ठ्ये रतिकौशलमेव हेतुर्न कुलमाचारो वा ॥३॥

भाव प्रकाशिका

पति-पत्नी भाव का कारण अभिरुचि ही होगी, वंश और गोत्र इत्यादि नहीं । व्यावहारिक अर्थात् बेंचने और खरीदने में, स्त्री-पुरुष की श्रेष्ठता की पहचान रति कौशल ही होगा कुल और आचार नहीं ॥३॥

लिङ्गमेवाश्रमख्यातावन्योन्यापत्तिकारणम् । अवृत्त्या न्यायदौर्बल्यं पाण्डित्ये चापलं वचः ॥४॥

अन्वयः— आश्रमख्यातौ लिङ्गमेव अन्योन्यापति कारणम् अवृत्या न्यायदौर्बल्यम् पाण्डित्ये वचः चापलम् ॥४॥

अनुवाद— वस्त्र दण्ड कमण्डलु से ही ब्रह्मचारी गृहस्थ, संन्यास आदि आश्रमों की पहचान होगी । एक-दूसरे का चिह्न स्वीकार कर लेना ही एक आश्रम से दूसरे आश्रम में प्रवेश का स्वरूप होगा । जो घूस देने में असमर्थ होगा उसे अदालत से न्याय नहीं मिल पायेगा । जो बोलचाल में जितना चालाक होगा उसे उतना ही बड़ा पण्डित माना जायेगा ॥४॥

भावार्थ दीपिका

आश्रमाणां ख्यातौ ज्ञाने लिङ्गमेव दण्डाजिनादिकं हेतुर्न त्वाचारविशेषः । अन्योन्यापत्तिकारणं चाश्रमादाश्रमान्तरप्राप्तौ च कारणम् । यद्वा बहूदकहंसादीनामन्योन्यापत्तौ नमस्कारादि व्यवहारे कारणम् । अवृत्त्या मुद्रार्पणादिदानासामर्थ्येन न्याये दौर्बल्यं पराजयः । चापलं वचो बहुभाषणम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

आश्रमों के ज्ञान में दण्ड, मृगचर्म आदि कारण होगा आचार विशेष नहीं, एक दूसरे का वेष स्वीकार कर लेना ही एक आश्रम से दूसरे आश्रम में प्रवेश माना जायेगा । अथवा बहूदक हंस आदि के स्वीकार में नमस्कार आदि व्यवहार ही कारण होगा । घूस आदि देने में जो असमर्थ होगा उसे न्याय नहीं मिलेगा । **चापलं वचः** अर्थात् बहुत बोलना ॥४॥

अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु । स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ॥५॥

अन्वयः— अनाढ्यता एव असाधुत्वे, दम्भ एव साधुत्वे स्वीकार एव उदवाहे, स्नानम् एव प्रसाधनम् ॥५॥

अनुवाद— गरीबी ही असाधुता (दोषी) होने की पहचान होगी, पाखण्ड करना ही साधुता की पहचान होगी, विवाह के लिए एक-दूसरे की स्वीकृति पर्याप्त होगी, बाल आदि सँवार कर कपड़े लत्ते से लैस होना ही स्नान होगा ॥५॥

भावार्थ दीपिका

असाधुत्वे चौर्याद्यभियोगे । प्रसाधनमलं कारः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

असाधुत्वे अर्थात् चोरी आदि का अभियोग चलाने में । प्रसाधनम् अर्थात् अलङ्कार कर लेना ही ॥५॥

दूरे वार्ययनं तीर्थं लावण्यं केशधारणम् । उदरम्भरता स्वार्थः सत्यत्वे धार्ष्ट्यमेव हि ॥६॥

अन्वयः— दूरे वार्ययनं तीर्थं, केशधारणं लावण्यं, उदरम्भरता । स्वार्थः सत्यत्वेहि धार्ष्ट्यम् एव ॥६॥

अनुवाद— लोग दूर के तलाब आदि को तीर्थ मानेगें नजगदीक की गङ्गा गोमती या माता-पिता की उपेक्षा करेंगे केश को बढ़ना ही सुन्दरता होगी पेट भरना ही उनका स्वार्थ होगा, धृष्टता ही सत्यता होगी ॥६॥

भावार्थ दीपिका

दूरे वर्तमानं वार्ययनं जलाशयस्तीर्थ, न तु गुर्वादि । स्वार्थः पुरुषार्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

लोग दूर के तलाब आदि को तीर्थ मानेंगे, केश बढा लेने को लावण्य (सौन्दर्य) मानेंगे । धृष्टता करना ही सत्यता मानी जायेगी । स्वार्थ ही पुरुषार्थ माना जायेगा ॥६॥

दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोर्थे धर्मसेवनम् । एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमण्डले ॥७॥

अन्वयः— कुटुम्बभरणमेव दाक्ष्यं, यशोऽर्थे धर्मसेवनम् एवं प्रजाभिः दुष्टाभिः आकीर्णे क्षितिमण्डले ॥७॥

अनुवाद— अपने कुटुम्ब का पालन कर लेना ही दक्षता अर्थात् चतुराई होगी, यश की प्राप्ति के लिए धर्म का लोग सेवन करेंगे। इस तरह की दुष्ट प्रजा जब सारी पृथिवी पर फैल जायेगी, तो राजा होने का कोई नियम नहीं होगा ॥७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७॥

ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः । प्रजा हि लुब्धै राजन्यैर्निर्घृणैर्दस्युधर्मभिः ॥८॥
आच्छिन्नदारद्रविणा यास्यन्ति गिरिकाननम् । शाकमूलामिषक्षौद्रफलपुष्पाष्टिभोजनाः ॥९॥

अन्वयः— ब्रह्मविटक्षत्रशूद्राणां यो बली नृपः भविता लुब्धैः राजन्यैः निघृणैः दस्युधर्मभिः आच्छिन्नदारद्रविणाः गिरिकानम् यास्यन्ति शाकमूलामिषक्षौद्रफलपुष्पाष्टिभोजनाः ॥८-९॥

अनुवाद— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र में से जो बलवान् होगा वही राजा हो जायेगा, उस समय के नीच राजा अत्यन्त क्रूर होंगे। लोभी तो इतना होंगे कि उनमें और, लुटेरे में कोई अन्तर नहीं होगा। वे प्रजा की सम्पत्ति और पत्नियों के छिनकर वन में चले जायेंगे। उस समय प्रजा उनसे डरकर जङ्गलों एवं पर्वतों पर चली जायेगी। उससमय प्रजा तरह-तरह की शाक, कन्दमूल, मांस, मधु फल-मूल और बीज गुरु की आदि खाकर निर्वाह करेगी ॥८-९॥

भावार्थ दीपिका

आच्छिन्न अपहृता दारा द्रविणानि च यासां ताः अष्टिर्वीजम् ॥८-९॥

भाव प्रकाशिका

जिन सबों की पत्नियाँ छिन ली गयी हैं ऐसे प्रजाएँ बीज खाती हैं ॥८-९॥

अनावृष्ट्या विनङ्क्ष्यन्ति दुर्भिक्षकरपीडिताः । शीतवातातपप्रावृड्हिमैरन्योन्यतः प्रजाः ॥१०॥

अन्वयः— अनावृष्ट्या दुर्भिक्षकरपीडिताः शीत वातातप प्राविड्हिमैरन्योन्यतः प्रजाः विनङ्क्ष्यन्ति ॥१०॥

अनुवाद— अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, बार-बार कर लगाये जाना, सर्दी, बात गर्मी तथा पाला के कारण तथा परस्पर में सघर्ष के कारण सभी प्रजाएँ विनष्ट हो जायेंगी ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

क्षुत्तृड्भ्यां व्याधिभिश्चैव संतप्स्यन्ते च चिन्तया । त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥११॥

अन्वयः— कलौ क्षुत्तृडभ्यां व्याधिभिः चैव चिन्तया चैव नृणाम् त्रिंशद्विंशति वर्षाणि परमायुः ॥११॥

अनुवाद— कलियुग में भूख-प्यास रोग तथा चिन्ता से ग्रस्त होने के कारण लोगों की अधिक से अधिक तीस वर्ष अथवा बीस वर्ष की आयु होगी ॥११॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥११॥

क्षीयमाणेषु देहेषु देहिनां कलिदोषतः । वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥१२॥

अन्वयः— कलिदोषतः देहिनां देहेषु क्षीयमाणेषु वर्णाश्रमवतां नृणाम् वेदपथे धर्मे नष्टे ॥१२॥

अनुवाद— कलियुग के दोष के कारण प्राणियों के शरीर छोटे और रोगों से क्षीण होने लगेंगे वर्णों एवं आश्रमों के धर्मों को बताने वाले वेदमार्ग नष्ट हो जायेगा ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

क्षीयमाणेष्वित्यादीनामित्थं कलौ गतप्राय इति पञ्चमेनान्वयः । क्षीयमाणेष्वल्पप्रायेषु ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

क्षीयमाणेषु इत्यादि का आगे के पाँच श्लोक के साथ अन्वय है । उस समय कलियुग समाप्त प्राय रहेगा। क्षीयमाणेषु अर्थात् छोटा होने लगेगा ।।१२।।

पाखण्डप्रचुरे धर्मे दस्युप्रायेषु राजसु । चौर्यानृतवृथाहिंसानानावृत्तिषु वै नृषु ।।१३।।

अन्वयः— धर्मे पाखण्डप्रचुरे राजसु दस्युप्रायेषु, चौर्यानृत वृथा हिंसा नानावृत्तिषु वै नृषु ।।१३।।

अनुवाद— धर्म में पाखण्ड की प्रधानता हो जायेगी, राजे महाराजे लुटेरों के समान हो जायेंगे । मनुष्य, चोरी झूठ तथा निरपराध हिंसा आदि नानाप्रकार के कुकर्मों से अपनी जीविका चलाने लगेंगे ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

दस्युप्रायेषु चौरतुल्येषु । चौर्यानृतवृथाहिंसाद्या नानावृत्तयो येषां तेषु ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

दस्युप्रायेषु अर्थात् चोरों के समान, लोग चोरी झूठ व्यर्थ हिंसा आदि कुकर्मों से जीविका वाले हो जायेगें।।१३।।

शूद्रप्रायेषु वर्णेषु छागप्रायासु धेनुषु । गृहप्रायेष्वाश्रमेषु यौनप्रायेषु बन्धुषु ।।१४।।

अन्वयः— शूद्रप्रायेषु वर्णेषु छागप्रायेषु धेनुषु गृहप्रायेषु आश्रमेषु यौनप्रायेषु बन्धुषु ।।१४।।

अनुवाद— चारो वर्णों के लोग शूद्र के समान हो जायेंगे, गौएँ बकरियों के समान छोटी-छोटी और कमदूध देने वाली हो जायेंगी, वानप्रस्थी और संन्यासी आदि विरक्त आश्रम वाले भी घर गृहस्थी जुटाकर गृहस्थों जैसा व्यापार करने लगेंगे जिन लोगों से वैवाहिक संबन्ध होगा उन्हीं को अपना बन्धु माना जायेगा ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

छागप्रायासु प्रमाणतः क्षीरतश्चाजातुल्यासु ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

छागप्रयासु अर्थात् प्रमाण तथा दूध की दृष्टि से गायें बकरी के समान हो जायेंगी ।।१४।।

अणुप्रायास्वोषधीषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु । विद्युत्प्रायेषु मेघेषु शून्यप्रायेषु सद्मसु ।।१५।।

अन्वयः— अणुप्रायासु ओषधिषु शमीप्रायेषु स्थास्नुषु, विद्युत्प्रायेषु मेधेषु, शून्यप्रायेषु सद्मसु ।।१५।।

अनुवाद— धान, गेहूँ आदि अनाजों के पौधे छोटे होने लगेंगे, अधिकांश वृक्ष शमी वृक्ष के समान एवं कंटीले हो जायेंगे, मेघों में बिजली तो चमकेगी किन्तु वर्षा कम होगी, गृहस्थों के घर अतिथि सत्कार तथा वेदाध्ययन का अभाव हो जाने से उनके घर सूने-सूने प्रतीत होंगे ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

अणुप्रायासु श्यामाकतुल्यासु । स्थास्नुषु वृक्षेषु । विद्युत्प्रायेषु । तडिद्बहुलेषु । शून्यप्रायेषु धर्मादिरहितेषु सद्मसु गृहेषु।।१५।।

भाव प्रकाशिका

धान, चावल आदि अणुप्राय अर्थात् सावाँ के चावल के समान छोटे हो जायेंगे । स्थास्नुषु अर्थात् वृक्षों के विद्युत्प्रायेषु अर्थात् बहुत अधिक बिजली के चमकते रहने पर । शून्यप्रायेषु अर्थात् धर्माचरणादि से रहित, सद्मसु अर्थात् गृहों के हो जाने पर ।।१५।।

इत्थं कलौ गतप्राये जने तु खरधर्मिणि । धर्मत्राणाय सत्त्वेन भगवानवतरिष्यति ॥१६॥

अन्वयः— इत्थं, कलौ गतप्राये जने खरधर्मिणि धर्मत्राणाय सत्त्वेन भगवान् अवतरिष्यति ॥१६॥

अनुवाद— कलियुग का अन्त होते-होते मनुष्यों का स्वभाव गधे जैसा हो जायेगा, लोग गृहस्थी का भार ढोने वाले विषयी हो जायेंगे। ऐसी स्थिति में सत्त्व को अपनाकर धर्म की रक्षा करने के लिए श्रीभगवान् अवतीर्ण होंगे ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

जने तु खरधर्मिणि दु:सहचेष्टिते कलौ गतप्राये समाप्तप्राये ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

लोगों दु:सह चेष्टायें करने लग जायेंगे। जिस समय कलियुग समाप्त प्राय रहेगा ॥१६॥

चराचरगुरोर्विष्णोरीश्वरस्याखिलात्मनः । धर्मत्राणाय साधूनां जन्म कर्मापनुत्तये ॥१७॥

अन्वयः— अखिलात्मनः ईश्वरस्य चराचरगुरोर्विष्णोः धर्मत्राणाय साधूनां कर्मापनुत्तये ॥१७॥

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् की आत्मा ईश्वर जो चराचर गुरु हैं ऐसे भगवान् धर्म की रक्षा के लिए तथा सन्तों को मोक्ष प्रदान करने के लिए अवतार लेंगे ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति चतुर्भि:-चराचरगुरोरीश्वरस्येति च । धर्मत्राणे हेतु:-गुरुत्वेश्वरत्वयोरुपपादनमखिलस्य विश्वस्यात्मनः कारणस्येति । एवंभूतस्य विष्णोर्जन्म साधूनां धर्मत्राणाय । धर्मत्राणप्रयोजनमाह-कर्मापनुत्तये मोक्षाय ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त बातों का ही विस्तार चराचर गुरो विष्णों इत्यादि चार श्लोकों से किया गया है। श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् के नियामक हैं तथा स्वामी हैं। अपने गुरुत्व तथा ईश्वरत्व के प्रतिपादन के ही लिए श्रीभगवान् धर्म की रक्षा करते हैं। क्योंकि वे सम्पूर्ण जगत् की आत्मा अर्थात् कारण हैं। इस प्रकार के भगवान् विष्णु का जन्म सन्तों के धर्म की रक्षा के लिए होता है। धर्मत्राण का प्रयोजन सन्त पुरुषों को मुक्ति प्रदान है ॥१७॥

शम्भलग्राममुख्यस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः । भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥१८॥

अन्वयः— शम्भलग्राममुख्यस्य महात्मनः ब्राह्मणस्य भवने विष्णुयशसः कल्किः प्रादुर्भविष्यति ॥१८॥

अनुवाद— शम्भलग्राम में प्रधान विष्णुयशा ब्राह्मण के घर में कल्कि भगवान् अवतार ग्रहण करेंगे ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

शम्भलग्रामे मुख्यस्य प्रधानस्य नाम्ना विष्णुयशसो ब्राह्मणस्य । भवने गृहे ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

शम्भल ग्राम के प्रधान विष्णुयशा नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण के घर में श्रीभगवान् अवतार लेंगे ॥१८॥

अश्वमाशुगमारुह्य देवदत्तं जगत्पतिः । असिनाऽसाधुदमनमष्टैश्वर्यगुणान्वितः ॥१९॥

अन्वयः— अष्टैश्वय गुणान्वितः जगत्पतिः देवदत्तं आशुगम् अश्वम् आरुह्य असिना असाधुदमनम् करिष्यतीति शेषः॥१९॥

अनुवाद— आठों ऐश्वर्य रूपी गुणों से सम्पन्न जगत् के स्वामी कल्की भगवान् देवताओं द्वारा प्रदत्त शीघ्रगामी अश्व पर सवार होकर तलवार से दुष्टों का दमन करेंगे ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

धर्मत्राणप्रकारमाह-अश्वमिति । असाधवो दम्यन्ते येन तमश्वमारुह्यासिना दस्यून्कोटिशो निहनिष्यतीत्युत्तरेणान्वयः । असाधुदमन इति पाठे कल्किविशेषणम् । अणिमाद्यष्टैश्वर्याणि गुणाश्च सत्यसङ्कल्पत्वादयस्तैरन्वितः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

धर्म की रक्षा के प्रकार को बतलाते हैं । अश्वमित्यादि श्लोक के द्वारा जिसके द्वारा दुष्टों का दमन होता है ऐसे अश्व पर सवार होकर तलवार से करोड़ों लुटेरों को मार देंगे । इस तरह से आगे के श्लोक से सम्बन्ध है । असाधुदमन पाठ होने पर वह कल्की भगवान् का विशेषण होगा । अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य रूपी गुण तथा सत्य सङ्कल्प आदि गुणों से भी युक्त है ॥१९॥

विचरन्नाशुना क्षोण्यां हयेनाप्रतिमद्युतिः । नृपलिङ्गच्छदो दस्यून्कोटिशो निहनिष्यति ॥२०॥

अन्वयः— क्षोण्यां आशुना हयेन विचरन् अप्रतिमद्युतिः नृपालिङ्गच्छदः कोटिशः दस्यून् निहनिष्यति ॥२०॥

अनुवाद— पृथिवी पर शीघ्रगामी अश्व से विचरण करते हुए अप्रतिम कान्ति सम्पन्न तथा राजा के चिह्न को धारण किए हुए कल्कि भगवान् करोड़ों लुटेरों को मार देंगे ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तत्प्रपञ्चः-आशुना शीघ्रगामिना तेन हयेनाश्वेन क्षोण्यां पृथिव्यां विचरन् । नृपलिङ्गच्छदो राजवेषच्छन्नान् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

उसी का विस्तार करते हुए कहते हैं । उस शीघ्रगामी अश्व के द्वारा पृथिवी पर विचरण करते हुए नृपलिङ्ग छदः अर्थात् राजा का वेष धारण किए हुए ॥२०॥

अथ तेषां भविष्यन्ति मनांसि विशदानि वै । वासुदेवाङ्गरागातिपुण्यगन्धानिलस्पृशाम् ॥
पौरजानपदानां वै हतेष्वखिलदस्युषु ॥२१॥

अन्वयः— अखिल दस्युषु हतेषु अथ पौरजानपदानां वै वासुदेवाङ्गरागातिपुण्य गन्धानिलस्पृशां तेषां मनांसि विशदानि भविष्यन्ति ॥२१॥

अनुवाद— जिस समय समस्त डाकुओं का संहार हो जायेगा उस समय समस्त नगरों और देश की प्रजाओं का श्रीभगवान् के शरीर में लगे अङ्गराग की सुगन्धि को लेकर चलने वाली वायु के स्पर्श से सबों का मन पवित्र हो जायेगा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

ततश्च पुनः कृतयुगप्रवृत्तिं वक्तुमाह-अथेति सार्धाभ्याम् । तेषां पौरजानपदानां मनांसि विशदानि भविष्यन्ति । तत्र हेतुः-वासुदेवस्याङ्गरागेण चन्दनादिनातिपुण्यगन्धो योऽनिलस्तं स्पृशन्तीति तथा तेषाम् ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् पुनः सत्ययुग की प्रवृत्ति को बतलाने के लिए **अथ० इत्यादि** डेढ श्लोकों से कहते हैं । नगर के निवासियों का मन पवित्र हो जायेगा । उसका कारण बतलाया गया है कि श्रीभगवान् के शरीर में लगे चन्दन के अत्यन्त पवित्र गन्ध से युक्त वायु उन सबों का स्पर्श करेगी ॥२१॥

तेषां प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठः संभविष्यति । वासुदेवे भगवति सत्त्वमूर्तौ हृदि स्थिते ॥२२॥

अन्वयः— सत्त्वमूर्तौ वासुदेवे भगवति हृदिस्थिते तेषां प्रजाविसर्गश्च स्थविष्ठः संभविष्यति ॥२२॥

अनुवाद— सत्वमूर्ति भगवान वासुदेव के हृदय में स्थित रहने के कारण नगर और देश की प्रजाओं की सन्तानें भी हृष्ट पुष्ट और बलवान् होने लगेगी ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

स्थविष्ठः स्थूलः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

स्थविष्ठ हृष्टपुष्ट बलवान और लम्बी ॥२२॥

यदाऽवतीर्णो भगवान्कल्किर्धर्मपतिर्हरिः । कृतं भविष्यति तदा प्रजासूतिश्च सात्त्विकी ॥२३॥

अन्वयः— यदा भगवान् धर्मपतिः हरिः अवतीर्णः तदा कृतं भविष्यति प्रजासूतिश्च सात्त्विकी ॥२३॥

अनुवाद— जिस समय धर्म के स्वामी श्रीहरि अवतार ग्रहण करेंगे उस समय सत्ययुग हो जायेगा और प्रजाओं की सन्तानें भी सात्त्विकी हो जायेंगी ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

कृतयुगप्रवृत्तिमाह--यदावतीर्ण इति । प्रजानां सूतिः प्रसूतिः ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

सत्ययुग की प्रवृत्ति को **यदावतीर्ण० इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं **प्रजानां सूतिः** अर्थात् प्रजाओं की सन्तानें॥२३॥

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती । एकराशौ समेष्यन्ति तदाभवति तत्कृतम् ॥२४॥

अन्वयः— यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च बृहस्पतिश्च तिष्यंनक्षत्रे च एकराशौ समेष्यन्ति तदा तत्कृतम् भवति ॥२४॥

अनुवाद— जिस समय चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति पुष्य नक्षत्र के एक राशि पर आते हैं उस समय सत्ययुग प्रारम्भ होता है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तदवतारकालोपलक्षणमाहयदा चन्द्रश्चेति । तिष्यः पुष्यः । अयमर्थः-चन्द्रसूर्यबृहस्पतीनां यदा पुष्यनक्षत्रे योगस्तदा तत्कृतयुगं भवति । यद्यपि च प्रतिद्वादशाब्दं कर्कराशौ बृहस्पतौ वर्तमाने द्वित्रास्वमावास्यासु तेषां त्रयाणामपि पुष्ययोगः संभवति, तथापि तेषां सह प्रवेशोऽत्र विवक्षितः । समेष्यन्तीति वचनात् । अतो नातिप्रसङ्गः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

सत्ययुग के अवतार काल की पहचान बतलाते हैं । यदा चन्द्रश्च इत्यादि श्लोक से । तिष्यः अर्थात् पुष्य **अयमर्थः** कहने का अभिप्राय है कि यद्यपि सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पति का पुष्य नक्षत्र में योग होता है तब सत्ययुग होता है । यद्यपि प्रत्येक बारह वर्ष पर सूर्य, चन्द्रमा और बृहस्पति कर्कराशि पर आते हैं किन्तु ये तीनों भिन्न-भिन्न काल में कर्क राशि पर आते हैं, जब तीनों ग्रह एक साथ पुष्य नक्षत्र के प्रथम पल में प्रवेश करते हैं तब सत्ययुग आता है ॥२४॥

येऽतीता वर्तमाना ये भविष्यन्ति च पार्थिवाः । ते त उद्देशतः प्रोक्ता वंशीयाः सोमसूर्ययोः ॥२५॥

अन्वयः— सोम सूर्ययोः वंशीयाः ये अतीताः वर्तमानाः भविष्यन्ति ये पार्थिवाः ते त उद्देशतः मया प्रोक्ताः ॥२५॥

अनुवाद— सूर्य और चन्द्र वंशों में जितने राजा हो चुके है, जो वर्तमान में है तथा जो भविष्य में होने वाले है उन सबों का वर्णन आपको सुना चुका हूँ ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

एवं नवमस्कन्धमारभ्यानुक्रान्तं वैवस्वतमनोर्वंशद्वयं निगमयति-येऽतीता इति । उद्देशतः संक्षेपतः ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार नवें स्कन्ध से प्रारम्भ करके कहे गये वैवस्वत मनु के दो वंशों का निगमन करते है । उद्देशतः अर्थात् संक्षेप में ।।२५।।

आरभ्य भवतो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम् । एतद्वर्षसहस्रं तु शतं पञ्चदशोत्तरम् ।।२६।।

अन्वयः— भवतो जन्ममारभ्य नन्दाभिषेचनं यावत् एतत् वर्ष सहस्रं तु शतं पञ्चदशोत्तर ।।२६।।

अनुवाद— इसी तरह आपके जन्म से लेकर नन्द के अभिषेक के समय पर्यन्त का समय होने में एक हजार एक सौ पन्द्रह वर्ष लगेगा ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

कलियुगावान्तरविशेषं वक्तुमाह-आरभ्येत्यादिना । वर्षसहस्रं पञ्चदशोत्तरं शतं चेति कथापि विवक्षयावान्तरसंख्येयम्। वस्तुतस्तु परीक्षिन्नन्दयोरन्तरं द्वाभ्यां न्यूनं वर्षाणां सार्धसहस्रं भवति । यतः परीक्षित्समकालं मागधं मार्जारिमारभ्य रिपुञ्जयान्ता विंशतिराजानः सहस्रसंवत्सरं भोक्ष्यन्तीत्युक्तं नवमस्कन्धे- 'ये बार्हद्रथभूपाला भाव्याः सहस्रवत्सरम्' इति । ततः परं पञ्च प्रद्योतना अष्टत्रिंशोत्तरं शतम् । शिशुनागाश्च षष्ट्युत्तरशतत्रयं भोक्ष्यन्ति पृथिवीमित्यत्रैवोक्तत्वात् ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

कलियुग की दूसरी विशेषताओं को बतलाने के लिए कहते हैं कि एक हजार एक सौ पन्द्रह वर्ष किसी बात को बतलाने की इच्छा से दूसरी असंख्य विशेषताएँ हैं वास्तविकता तो यह है कि परीक्षित और नन्द के बीच का समय डेढ हजार वर्ष से दो हजार वर्ष का होता हैं । क्योंकि परीक्षित् के समकालिक मागध मार्जारि से लेकर रिपुञ्जय पर्यन्त के बीस राजा एक हजार वर्ष पर्यन्त पृथिवी का भोग करेंगे यह नवें स्कन्ध में शुकदेवजी ने कहा है । उन्होंने कहा बृहद्रथ के वंश में होने वाले जितने राजा हैं वे एक हजार वर्ष पर्यन्त रहेंगे । उसके पश्चात् प्रद्योत वंश के पाँच राजा एक सौ अड़तीस वर्ष रहेंगे । शिशुनाग वंश के राजा तीन सौ साठ वर्ष, पर्यन्त पृथिवी पर राज्य करेंगे यह इस बारहवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय में ही कहा गया है ।।२६।।

सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि । तयोस्तु मध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि ।।२७।।

अन्वयः— सप्तर्षीणां तु यौ पूर्वौ पूर्वस्यां दिवि दृश्येते ते तयोः मध्यं निशि यत् समं नक्षत्रं दृश्यते ।।२७।।

अनुवाद— जिस समय आकाश में सप्तर्षियों का उदय होता है पहले उनमें से दो ही तारे दिखायी देते हैं । उनके बीच में दक्षिणोत्तर रेखा पर समभाग में अश्विनी आदि नक्षत्रों में से एक नक्षत्र दिखता है ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

कलेः प्रवृत्तिं वृद्धिं च निरूपयितुं कालज्ञानोपलक्षणमाह-सप्तर्षीणां त्विति । अयमर्थः-प्रागग्रशकटाकारं तारासप्तकं सप्तर्षिमण्डलम् । तत्र किंचिदुन्नतेषाग्रस्थानीयो मरीचिः । ततः पश्चादानम्रयुगकन्धराकारो वसिष्ठः सभार्यः ततः पश्चादीषदुन्नतेषामूलस्थानीयोऽङ्गिराः । ततः पश्चाच्चतुरस्रताराचतुष्के ईशान्यामत्रिः । ततो दक्षिणतः पुलस्त्यः । पुलस्त्यात्पश्चिमतः पुलहः । तत उत्तरतः क्रतुः । एव स्थिते तेषां मध्ये यौ पूर्वौ उदयसमये प्रथममुदितौ द्रुश्येते पुलहक्रतुसंज्ञौ तयोस्तु मध्ये तयोः पूर्वयोस्तु मध्ये यत्समं दक्षिणोत्तररेखायां समदेशावस्थितमश्विन्यादिषु यदन्यतमं नक्षत्रं दृश्यते, तेन तथैव युक्ता ऋषयः नृणामब्दशतं तिष्ठन्ति, ते च द्विजास्त्वदीये कलेऽधुना मघा आश्रिता वर्तन्ते ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

कलि के प्रारम्भ और वृद्धि का निरूपण करने के लिए काल ज्ञान का उपलक्षण **सप्तर्षिणाम् तु० इत्यादि** बतलाते हैं। पहले आगे गाड़ी के आकार के सात तारों को सप्तर्षि मण्डल कहते हैं। उसमें कुछ ऊपर उठे हुए ईषादण्ड पर मरीचि का स्थान है। उसके पश्चात् झुके हुए दो कन्धों के आकार वाले वसिष्ठ अपनी पत्नी के साथ विद्यमान हैं। उसके पश्चात् ईषा दण्ड के मूलस्थानी अङ्गिरा हैं। उसके पश्चात् चौकोर तारों में ईशान कोण पर अत्रि महर्षि हैं, उनके दाहिनी ओर पुलस्त्य महर्षि हैं। पुलस्त्य से पश्चिम की ओर पुलह महर्षि हैं, उससे उत्तर की ओर क्रतु हैं। इन सबों में जो पूर्व की ओर उदित होते समय दक्षिणोत्तर रेखा पर समान स्थान में स्थित अश्विनी आदि ताराओं में से जो एक तारा दिखता है। उसके साथ उसी प्रकार से ये ऋषिगण सौ वर्षों तक रहते हैं। वे ब्राह्मण इस समय तुम्हारे समय में मघा के आश्रित हैं ।।२७।।

तेनैव ऋषयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम् । ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः ।।२८।।

अन्वयः— तेनैव ऋषिणा युक्ताः नृणाम् अब्दशतं तिष्ठन्ति ये त्वदीये काले द्विजाः अधुना मघाश्रिताः ।।२८।।

अनुवाद— उस नक्षत्र के साथ सप्तर्षिगण मनुष्य की गणना से सौ वर्ष तक रहते हैं और इस समय भी मघा नक्षत्र पर हैं ।।२८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२८।।

विष्णोर्भगवतो भानुः कृष्णाख्योऽसौ दिवं गतः । तदाऽविशत्कलिर्लोकं पापे यद्रमते जनः ।।२९।।

अन्वयः— भगवतो विष्णोः असौ कृष्णाख्यः भानुः यदा दिवंगतः तदा कलिः लोकम् अविशत् यद् जनः पापे रमते।।२९।।

अनुवाद— भगवान् विष्णु का शुद्ध सत्त्वमय देह जब वैकुण्ठ लोक में चला गया उसी समय इस संसार में कलियुग का प्रवेश हो गया उसी के कारण मनुष्यों का मन पाप कर्म में लगता है ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

तेषु मघासु वर्तमानेषु सत्सु यदा विष्णोर्भानुर्भातीति भानुः शुद्धसत्त्वात्मको देहो दिवं वैकुण्ठं गतस्तदा कलियुगमविशत्। यद्यस्मिन्युगे जनः पापे रमते इति कलियुगस्य लक्षणम् ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

जब सप्तर्षिगण मघा नक्षत्र पर विद्यमान थे, उस समय भगवान् विष्णु का शुद्ध सत्त्वमय कृष्ण नामक शरीर वैकुण्ठ लोक में चला गया उस समय कलियुग ने संसार में प्रवेश किया कलियुग के ही कारण मनुष्यों का मन पाप में रमण करता है। यही कलियुग का लक्षण है ।।२९।।

यावत्स पादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्ते रमापतिः । तावत्कलिर्वै पृथिवीं पराक्रान्तुं न चाशकत् ।।३०।।

अन्वयः— यावत् सः रमापति पादपद्माभ्यां स्पृशन्नास्ते तावत् वै कलिः पृथिवी पराक्रमितुं च न अशकत् ।।३०।।

अनुवाद— जब तक वे भगवान् श्रीकृष्ण अपने चरण कमल से पृथिवी का स्पर्श करते रहे तब तक कलियुग का पृथिवी पर पराक्रम नहीं चल सका ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

ननु श्रीकृष्णे पृथिव्यां वर्तमानेऽपि संध्यारूपेण कलिः प्रविष्ट एवासीत्, सत्यम्, तथापि तावत्तस्य पराक्रमो नाभवदित्याह- यावदिति । पराक्रान्तुमभिभवितुम् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि भगवान् श्रीकृष्ण के पृथिवी पर रहने पर भी कलि पृथिवी पर संध्या रूप से प्रवेश किया था, तो यह कथन ठीक है किन्तु जब तक भगवान् इस लोक में विद्यमान थे तब तक कलियुग पृथिवी के लोगों को अभिभूत नहीं कर सका ॥३०॥

यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि । तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥३१॥

अन्वयः— यदा देवर्षयः सप्त मघायां विचरन्ति हि तदा प्रवृत्तः हि कलिः द्वादशाब्दशतात्मकः ॥३१॥

अनुवाद— जब तक सप्तर्षिगण मघा नक्षत्र पर रहते हैं तब तक देवताओं के मान से कलि बारह सौ वर्षों तक बना रहता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

अतो यथोक्त एवं कलिप्रवेशकाल इत्याह-यदा देवर्षय इति । द्वादशाब्दशतात्मक इति । दिव्येन मानेन संध्यासंध्याशाभ्यां सह यो द्वादशाब्दशतात्मकः स कलिस्तदा संध्यामतिक्रम्य प्रविष्ट इत्यर्थः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

अतएव जैसा कि बतलाया गया है वही कलि का प्रवेश काल है, इस बात को यहाँ **देवर्षयः इत्यादि** श्लोक के माध्यम से कहा गया है । कलिका जो दिव्य बारह सौ वर्ष का काल बतलाया गया है । देवताओं के मान से अपनी और संध्यांश काल के साथ कलि बारह सौ वर्षों वाला है । उस समय वह अपनी संध्या को पार करके संसार में प्रविष्ट हुआ ॥३१॥

यदा मघाभ्यो यास्यन्ति पूर्वाषाढां महर्षयः । तदा नन्दात्प्रभृत्येष कलिर्वृद्धिं गमिष्यति ॥३२॥

अन्वयः— यदा मघाभ्यो महर्षयः पूर्वाषाढां यास्यन्ति तदानन्दात् प्रभृति एषः कलिः वृद्धिं गमिष्यति ॥३२॥

अनुवाद— जिस समय मघा से चलकर महर्षिगण पूर्वाषाढा नक्षत्र पर जायेंगे उस समय नन्द का राज्य रहेगा। उसी समय से कलियुग की वृद्धि होगी ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

कलेः प्रवेशकालमुक्त्वा तस्य वृद्धि कालमाह-यदेति । तदा प्रद्योतनात्प्रभृति वृद्धिं गच्छन्नन्दात्प्रभृत्यतिवृद्धिं गमिष्यतीत्यर्थः॥३२॥

भाव प्रकाशिका

यदा इत्यादि श्लोक से कलि के प्रवेश काल के वर्णन के पश्चात् कलि के वृद्धिकाल को बतलाया गया है । उस समय प्रद्योतन आदि से वृद्धि को प्राप्त कलि नन्द के राज्य काल तक वृद्धि प्राप्त करेगा ॥३२॥

यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि । प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुराविदः ॥३३॥

अन्वयः— कृष्णः यस्मिन्नेव दिवं यातः तदा तस्मिन्नेव अहनि कलियुगं प्रपन्नमिति पुराविदः प्राहुः ॥३३॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण जिस दिन और जब वैकुण्ठ चले गये उसी दिन उस समय कलियुग पृथिवी पर आ गया पुराविदों का कहना है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

ननु यदा कलेर्लिङ्गमुपलब्धं तदैव प्रविष्ट इति युक्तम्, ततः पूर्वमेव प्रवेशस्ततः परं वृद्धिरित्यत्र किं प्रमाणं तत्राह-यस्मिन्निति । प्रतिपन्नं प्रविष्टमिति ज्ञातम् । पुराविदः पूर्वज्ञातारः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

जब कलि का चिह्न उपलब्ध हो गया उसी समय कलियुग का पृथिवी पर प्रवेश हो गया यही मानना चाहिए। वह पहले ही प्रवेश किया उसके पश्चात् उसकी वृद्धि हुई इस तरह से कथन में क्या प्रमाण है । **प्रतिपन्नम्** अर्थात् प्रवेश किया यह पता चला **पुराविदः अर्थात्** एतिह्य के ज्ञाता ।।३३।।

दिव्याब्दानां सहस्रान्ते चतुर्थे तु पुनः कृतम् । भविष्यति यदा नृणां मन आत्मप्रकाशकम् ।।३४।।

अन्वयः— दिव्याब्दानां सहस्रान्ते चतुर्थे तु पुनः कृतम् भविष्यति यदा नृणां मनः आत्म् प्रकाशकम् ।।३४।।

अनुवाद— परीक्षित् जब देवताओं की वर्षगणाना के अनुसार एक हजार वर्ष बीत जायेगा तब कलियुग के चतुर्थ चरण के अन्त में पुनः भगवान् कल्कि की कृपा से लोग अपने वास्तविक स्वरूप को जान सकेंगे । उसी समय से सत्ययुग का प्रारम्भ होगा ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

कलेरनन्तरं कृतयुगप्रवेशमाह-दिव्याब्दानामिति । चतुर्थे कलौ प्रवेशनाब्दपरिमितेनांशेनापि सहातीते सतीत्यर्थः । कृतयुगप्रवेशचिह्नमाह-यदा नृणां मन आत्मप्रकाशकं भविष्यति तदेति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

दिव्याब्दानाम्० इत्यादि श्लोक के द्वारा कलि के पश्चात् सत्ययुग को प्रवेश को बतलाते हैं कलियुग के प्रवेश के चतुर्थ अंश के भी बीत जाने पर सत्ययुग के प्रवेश का चिह्न बतलाते हैं । उस समय मनुष्यों का मन आत्मा के स्वरूप का प्रकाश करने वाला बन जायेगा ।।३४।।

इत्येष मानवो वंशो यथा संख्यायते भुवि । तथा विट्शूद्रविप्राणां तास्ता ज्ञेया युगे युगे ।।३५।।

अन्वयः— इति एष मानवः वंशः यथा भुवि संख्यायते तथा युगे-युगे ताः ता तथा विट्शूद्रविप्राणां ज्ञेया ।।३५।।

अनुवाद— यह जो मनु के वंश की जिस तरह से गणना भूलोक में की जाती है वैसे ही प्रत्येक युग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्रों की गणना की जाती है इस बात को जानना चाहिए ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

राजवंशोक्तां स्थितिं ब्राह्मणादिवंशेष्वप्यतिदिशति-इत्येष इति । यथा याभिरुच्चनीचावस्थाभिः । तास्ता अवस्थाः । वंशा इति वा पाठः ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

राजवंश की जो स्थिति है उसी का ब्राह्मण आदि वंशों में **इत्येष० इत्यादि** श्लोक से अतिदेश किया गया है । यथा अर्थात् जो उच्च नीच अवस्था बतलायी गयी है । वे सभी अवस्थाएँ । ताः ताः वंशाः यह भी पाठ हो सकता है ।।३५।।

एतेषां नामलिङ्गानां पुरुषाणां महात्मनाम् । कथामात्रावशिष्टानां कीर्तिरेव स्थिता भुवि ।।३६।।

अन्वयः— एतेषां नामलिङ्गानां महात्मनाम् पुरुषाणां कथामात्रवशिष्टानां कीर्तिरेव भुवि स्थिता ।।३६।।

अनुवाद— जिन महापुरुषों का तुमसे में मैंने वर्णन किया है, उनकी नाम मात्र से ही पहचान होती है, उनकी केवल चर्चा मात्र होती है, वे लोग अब पृथिवी पर नहीं रह गये, उनकी कीर्तिमात्र पृथिवी पर रह गयी है ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

एतत्कीर्तनस्य वैराग्योपयोगितामाह-एतेषामिति । नामैव लिङ्गं ज्ञापकं येषां तेषां कथामात्रेणैवावशिष्टानां कीर्तिरेव स्थिता न तु राज्यं पुत्रादयो वा ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

एतेषाम० इत्यादि श्लोक से इस वर्ण की वैराग्योत्पत्ति में उपयोगिता को बतलाया गया है। नाम से ही जिनकी पहचान होती है, जो इस पृथिवी पर नहीं रह गये, अपितु उनकी कीर्ति मात्र अवशिष्ट है अब न तो उनका राज्य है और न पुत्र आदि ।।३६।।

देवापिः शन्तनोर्भ्राता मरुश्चेक्ष्वाकुवंशजः । कलापग्राम आसाते महायोगबलान्वितौ ।।३७।।

अन्वयः— शन्तनोः भ्राता देवापिः इक्ष्वाकुवंशजः महायोगबलान्वितौ कलापग्राम आस्ते ।।३७।।

अनुवाद— शन्तनु के भाई देवापि तथा इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न मरु वे दोनों योग के महान् बल से युक्त हैं। वे दोनों कलाप ग्राम में विद्यमान हैं ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

कलावुत्सन्नानां राजवंशानां पुनः प्रवृत्तिप्रकारमाह-देवापिः सोमवंशजः। मरुस्तु सूर्यवंशजः। कलापग्रामो नाम योगिनामावासः प्रसिद्धः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

कलियुग में जिन राजवंशों का विनाश हो गया है उनमें सोमवंश के देवापि और सूर्यवंश के मरु दोनों योगियों के निवास स्थान रूप से प्रसिद्ध कलायग्राम में विद्यमान हैं ।।३७।।

ताविहैत्य कलेरन्ते वासुदेवानुशिक्षितौ । वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत्प्रथयिष्यतः ।।३८।।

अन्वयः— कलेः अन्ते वासुदेवानुशिक्षितौ इह एत्य वर्णाश्रमयुतं धर्मं पूर्ववत्प्रथयिष्यतः ।।३८।।

अनुवाद— कलियुग के अन्त में कल्कि भगवान् की आज्ञा से इस संसार में आकर पुनः वर्णों एवं आश्रमों से युक्त धर्म का पहले के ही समान प्रसार करेंगे ।।३८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३८।।

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् । अनेन क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्तते ।।३९।।

अन्वयः— कृतं, त्रेता, द्वापर च कलिः च इति चतुर्युगम् अनेन् क्रमयोगेन भुवि प्राणिषु वर्तते ।।३९।।

अनुवाद— सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापर और कलियुग ये ही चार युग हैं, ये पूर्वोक्त क्रम से पृथिवी के प्राणियों पर अपना प्रभाव दिखाते हैं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

इममेव प्रकारं प्रतिचतुर्युगं दर्शयति-कृतमिति ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

चतुर्युग का यही प्रकार होता है, इस बात को कृतम् इत्यादि श्लोक से दिखाते हैं ।।३९।।

राजन्नेते मया प्रोक्ता नरदेवास्तथापरे । भूमौ ममत्वं कृत्वान्ते हित्वेमां निधनं गताः ।।४०।।

अन्वयः— राजन् एते मया प्रोक्ताः नरदेवाः तथा अपरे भूमौ ममत्वं कृत्वा अन्ते इमां हित्वा निधनं गताः ।।४०।।

अनुवाद— परिक्षित् जिन राजाओं का मैने वर्णन किया है वे तथा उनसे भिन्न भी राजागण पहले तो पृथिवी में उन लोगों की ममता हुई अन्त में वे सब इस पृथिवी का परित्याग करके मृत्युं को प्राप्त कर लिए ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

'एतेषां नामलिङ्गानाम्' इत्यादि यदुक्तं तत्प्रपञ्चयति-राजन्निति पञ्चभिः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

जिन सबों का नाम ही पहचान है यह जो पहले कहा गया है, उसका विस्तार **राजन्० इत्यादि** पाञ्च श्लोकों से किया गया है ॥४०॥

कृमिविड्भस्मसंज्ञान्ते राजनाम्नोऽपि यस्य च । भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥४१॥

अन्वयः— च राजन् नाम्नः अपि अन्ते कृमि विट्, भस्म संज्ञा तत्कृते भूतध्रुक यतो निरयः किं स्वार्थं वेद ॥४१॥

अनुवाद— जिसको राजा के नाम से अभिहित किया जाता है । वह शरीर अन्त में क्रीडा, विष्ठा या राख के रूप में परिणत होगा । उसी के लिए दूसरे जीवों से द्रोह करने वाला अपना न तो स्वार्थ जानता है न परमार्थ, जीवों से द्रोह करने का फल नरक की प्राप्त ही है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

ममत्वं कृत्वेत्यनेन सूचिता भूतद्रोहप्रवृत्तिं निन्दति-कृमीति । राजनाम्नो राजेति नाम यस्य तस्यापि देहस्यान्ते कृमयो विष्ठा भस्मेति वा संज्ञा भविष्यति । तत्कृते तदर्थं यो भूतध्रुक् भूतेभ्यो द्रुह्यति स किं स्वार्थं वेद । किंतु न वेदैव । कुत इत्यपेक्षायां हेतुत्वेन भूतद्रोहं विशिनष्टि-यतो भूतद्रोहान्निरयो भवति ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

ममत्वंकृत्वा० इसके द्वारा यह सूचित किया गया है कि जीवों से द्रोह करने की प्रवृत्ति निन्दित है । इस बात को **कृमि० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । जिसको राजा भी कहते है उसका भी शरीर अन्त में कृमि, विष्ठा अथवा राख की ढेर के रूप में परिणत होगा । उस शरीर के लिए जो जीवों से द्रोह करता है वह अपने स्वार्थ को भी नहीं जानता है, क्योंकि जीवों से द्रोह करने का फल तो नरक की प्राप्ति है ॥४१॥

कथं सेयमखण्डा भूः पूर्वैर्मे पुरुषैर्धृता । मत्पुत्रस्य च पौत्रस्य मत्पूर्वा वंशजस्य वा ॥४२॥

अन्वयः— मे पूर्वैः पुरुषैः धृता सेयम अखण्डा भू कथं पुत्रस्य च पौत्रस्य, मत्पूर्वा वंशजस्य वा ॥४२॥

अनुवाद— वे लोग सोचते हैं मेरे पूर्वज इस अखण्ड भूमण्डल का प्रशासन करते थे, अब यह मेरे अथवा मेरे पुत्र के या पौत्र के अधीन किस प्रकार होगी ?॥४२॥

भावार्थ दीपिका

ममत्वप्रकारं प्रपञ्चयति-कथमिति। सेयमखण्डा भूर्मे पूर्वजैर्धृता सती इदानीं मत्पूर्वा च सती मत्पुत्रादेः कथं स्यादित्येवम्॥४२॥

भाव प्रकाशिका

ममत्व के प्रकार का विस्तार करते है **कथम् इत्यादि** श्लोक से इस अखण्ड पृथिवी के सम्राट् मेरे पूर्वज थे अब यह किस प्रकार मेरे अथवा मेरे पुत्र पौत्रों के अधीन होगी ?॥४२॥

तेजोबन्नमयं कायं गृहीत्वात्मतयाऽबुधाः । महीं ममतया चोभौ हित्वान्तेऽदर्शनं गताः ॥४३॥

अन्वयः— तेजोबन्नमयं कायं आत्मतया गृहित्वा अबुधाः महीं ममतया च हित्वा अन्ते अदर्शनं गताः ॥४३॥

अनुवाद— तेज, जल और पृथिवी से बने शरीर को ही आत्मा मानकर वे अज्ञानी लोग अन्त में पृथ्वी तथा शरीर दोनों को त्यागकर अदृश्य हो जाते हैं ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

उभौ महीं कायं च । अदर्शनं मृत्युम् ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

पृथिवी और शरीर दोनों को त्याग कर मर जाते हैं ॥४३॥

ये ये भूपतयो राजन्भुञ्जते भुवमोजसा । कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अन्वयः— ये ये भूपतयो राजानः भुवमोजसा भुञ्जते ते सर्वे कालेन कथासु च कथामात्रशेषाः कृताः ॥४४॥

अनुवाद— परीक्षित् जो राजागण इस पृथिवी के भोग में अत्यन्त उत्साह से प्रवृत्त थे उन सभी राजाओं को भयङ्कर काल उन सबों को इतिहास का विषय बना दिया । अब तो उनकी कथा मात्र अवशिष्ट है ॥४४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के दूसरे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।२।।

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-ये ये इति । ते सर्वे च कथासु क्रियमाणासु । कथामात्राः कालेन कृताः ।।४४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

भाव प्रकाशिका

ये ये इत्यादि श्लोक के द्वारा कलिधर्म वर्णन का उपसंहार श्रीशुकदेवजी करते हैं । उन सभी राज समूह को काल ने केवल कथा का विषय बना दिया ।।४४।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के दूसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।२।।

तीसरा अध्याय

राज्य युगधर्म और कलि के दोषों से बचने के उपाय

श्रीशुक उवाच

दृष्ट्वात्मनि जये व्यग्रान्नृपान्हसति भूरियम् । अहो मा विजिगीषन्ति मृत्योः क्रीडनका नृपाः ॥१॥

अन्वयः— जये व्यग्रान् नृपान् दृष्ट्वा इयं भूः आत्मनि हसति अहो मृत्योः क्रीडन काः नृपाः मां विजिगिषन्ति ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— राजन् परीक्षित् पृथिवी राजाओं को देखती है किये मृत्यु के हाथ के खिलौने मुझको जीत लेना चाहते हैं, तो वह मन ही मन हँसती है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

तृतीये भूमिगीतैश्च राज्योदोषादि वर्ण्यते । कलौ च दोषभूयिष्ठे दोषहन्त्री हरेर्नतिः ॥१॥ देहेऽहंतां भूमौ च ममतां कुर्वन्त्यतोऽबुधा इत्युक्तं तदेव भूमिगीतैः प्रपञ्चयति-दृष्ट्वेत्यादि । आत्मनि पृथिव्या जये व्यग्रानुद्युक्तान् । हासप्रकारमेवाह-अहो इति । मा माम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तीसरे अध्याय में भूमि के गीत के माध्यम से राज्य के दोषों आदि का वर्णन किया गया है । कलियुग स्वयं दोष बहुल है अतएव श्रीहरि को नमस्कार करना ही उन दोषों का विनाशक है ॥१॥ अज्ञानी पुरुष देह में अहङ्कार तथा पृथिवी

के प्रति ममत्व करते हैं। इसी बात का भूमि गीत के माध्यम से विस्तार दृष्टवा इत्यादि श्लोक से किया गया है। अपने शरीर के घमण्ड से भरकर पृथिवी को जीत लेने के लिए प्रयास करने वालों को देखकर पृथिवी हँसती है। **अहो इत्यादि** श्लोक के उत्तरार्द्ध से पृथिवी के हँसने का प्रकार वर्णित है। **मा** अर्थात् मुझ पृथिवी को ॥१॥

काम एष नरेन्द्राणां मोघः स्याद्विदुषामपि । येन फेनोपमे पिण्डे येऽतिविश्रम्भिता नृपाः ॥२॥

अन्वयः— विदुषामपि नरेन्द्राणां एषः कामः मोघः येन फेनोपमे पिण्डे ये नृपाः अतिविश्रम्भिताः ॥२॥

अनुवाद— विद्वान् भी राजाओं की यह कामना व्यर्थ (विफल) है जिस कामना के कारण पानी के बुलबुले के समान क्षणभङ्गुर अपने शरीर पर वे राजागण अत्यधिक विश्वस्त रहते हैं ॥२॥

भावार्थ दीपिका

येन कामेन। फेनोपमे पिण्डे देहेऽतिविश्रम्भिता विश्वासं नीता ये तेषां नरेन्द्राणामेष कामो मोघ एव स्यात् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

जिस कामना के कारण वे अपने फेन के समान क्षणभङ्गुर शरीर पर अत्यन्त विश्वास करते हैं, उन राजाओं की यह कामना व्यर्थ ही है ॥२॥

पूर्वं निर्जित्य षड्वर्गं जेष्यामो राजमन्त्रिणः । ततः सचिवपौराप्तकरीन्द्रानस्य कण्टकान् ॥३॥

अन्वयः— पूर्व षड्वर्गं निर्जित्य राजमन्त्रिणः जेष्यामः ततः सचिव पौराप्तकरीन्द्रान् अस्य कण्टकान् ॥३॥

अनुवाद— वे राजागण सोचते हैं कि सर्वप्रथम मैं मन के साथ अपनी पाँचों इन्द्रियों को अपने वश में करूँगा क्योंकि पहले इन भीतरी शत्रुओं को जीते बिना बाहरी शत्रुओं को वश में नहीं किया जा सकता है इसके बाद मैं शत्रु राजा के मन्त्रियों, आमात्यों, नागरिकों नेताओं तथा समस्त सैनिकों को भी अपने वश में कर लूँगा तथा हमारी विजय यात्रा में जो भी विरोधी होंगे उनको भी मैं जीत लूँगा ॥३॥

भावार्थ दीपिका

काममेव दर्शयति द्वाभ्याम्-पूर्वमिति। इन्द्रियार्थलम्पटस्य न राज्यप्राप्तिः स्यादिति प्रथममिन्द्रियषड्वर्गं निर्जित्य राजमन्त्रिणो जेष्यामो वशीकरिष्यामः सचिवा अमात्याः करीन्द्रा हस्तिपास्तांश्च जेष्यामः । कण्टकान्प्रतिपक्षान् । अस्य अपास्य । 'अथ कण्टकान्' इति वा पाठः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

उन राजाओं की कामना का ही वर्णन **पूर्वम्० इत्यादि** दो श्लोकों से करते हैं। जो इन्द्रियों के भोगों में आसक्त रहता है उसको राज्य नहीं मिलता है। अतएव सर्व प्रथम अपने छह इन्द्रियों को ही वशमें करूँगा। उसके पश्चात् शत्रुराजा के मन्त्रियों को जीतकर अपने वश में कर लूँगा। उसके बाद आमात्यों हस्तिपकों को जीतूगा। विपक्षियों को भी अपने वश में कर लूँगा। अथवा अथकण्टकान् यह भी पाठ हो सकता है ॥३॥

एवं क्रमेण जेष्यामः पृथ्वीं सागरमेखलाम् । इत्याशाबद्धहृदया न पश्यन्त्यन्तिकेऽन्तकम् ॥४॥

अन्वयः— एव क्रमेण सागरमेखलाम् पृथिवी जेष्यामः । इति आशावद्धहृदयाः अन्तिकेऽन्तकम् न पश्यन्ति ॥४॥

अनुवाद— इस तरह से क्रमशः मैं समुद्र पर्यन्त की पृथ्वी को जीत लूँगा। इस तरह वे अपने मन में अनेक अशाओं को पाल लेते हैं। वे इस बात पर ध्यान नहीं देते हैं कि उनके सिर पर काल सवार है ॥४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४॥

समुद्रावरणां जित्वा मां विशन्त्यब्धिमोजसा । कियदात्मजयस्यैतन्मुक्तिरात्मजये फलम् ॥५॥

अन्वयः— समुद्रावरणां मां जित्वा ओजसा अब्धिं विशन्ति आत्मजये मुक्तिफलम् एतन् कियत् ॥५॥

अनुवाद— समुद्र पर्यन्त की पृथिवी को जीतने के पश्चात् वे बड़े ही उत्साह से समुद्र पार करके दूसरे द्वीप को जीत लेना चाहते हैं । जिस इन्द्रियों को वश में कर लेने से मुक्ति जैसे फल की प्राप्ति सम्भव है । उसकी तुलना में भूमि की किसी खण्ड की प्राप्ति कितना तुच्छ है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

एवं केचिदाशाबद्धा एव केचिन्मां पुनर्जित्वाप्यतितृष्णयाब्धिं विशन्ति । तदेवमिन्द्रियजयेन ये राज्यं साधयितुमिच्छन्ति तेऽतिमन्दा इत्याह-कियदिति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

उस तरह आशा लगाये हुए कुछ लोग मुझको जीतकर पुनः समुद्र पार करके दूसरे द्वीप को प्राप्त करना चाहते हैं । इस तरह से इन्द्रियों को वश में करके राज्य को प्राप्त करना चाहते है, वे अत्यन्त मन्द हैं, इस बात को **कियत्० इत्यादि** से कहा गया है ॥५॥

यां विसृज्यैव मनवस्तत्सुताश्च कुरूद्वह । गता यथागतं युद्धे तां मां जेष्यन्त्यबुद्धयः ॥६॥

अन्वयः— हे कुरुद्वह ! यां विसृज्य मनवः तत् सुताः च यथागतं गताः, तां मां अबुद्धयः युद्धे जेष्यन्ति ॥६॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् ! जिस मुझ पृथिवी को छोड़कर मनुगण और उनके पुत्रगण जहाँ से आये थे वहीं खाली हाँथ चले गये, मुझे अपने साथ नहीं ले गये अब ये मूर्ख राजागण मुझे युद्ध में जीतकर अपने वश में करना चाहते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

'अन्तकं न पश्यन्ति' इत्युक्तं तदेवाह-यामिति । कुरूद्वहेति भूमिगीतं कथयन् शुकः संबोधयति । 'कुलोद्वहाः' इति तु पाठः सुगमः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यह कहा जा चुका है कि अपने सिर पर सवार काल को नहीं देखते हैं । उसी बात को **याम० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । इस तरह भूमिगीत का वर्णन करते हुए शुकदेवजी राजा परीक्षित को **कुरुद्वह** शब्द से सम्बोधित करते हैं । **कुरुद्वहाः** यह पाक और सुगम है ॥६॥

मत्कृते पितृपुत्राणां भ्रातृणां चापि विग्रहः । जायते ह्यसतां राज्ये ममताबद्धचेतसाम् ॥७॥

अन्वयः— मत्कृते असताम् ममताबद्ध चेतसाम् पितृपुत्राणाम् चापि विग्रहो जायते ॥७॥

अनुवाद— मेरे लिए ही जिन दुष्टों के मन में यह बात सुदृढ हो गयी है कि यह पृथिवी मेरी है उन पिता-पुत्रों में भी कलह होता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

'अबुद्धयः' इत्युक्तं तत्प्रपञ्चयति-मत्कृत इति ॥७॥

भाव प्रकाशिका

जिनको अबुद्धय शब्द से कहा गया है उसी का विस्तार मत्कृते इत्यादि श्लोक से किया गया है ॥७॥

ममैवेयं मही कृत्स्ना न ते मूढेति वादिनः । स्पर्धमाना मिथो घ्नन्ति म्रियन्ते मत्कृते नृपाः ।।८।।

अन्वयः— इयं कृत्स्ना मही ममैव तेन इतिवादिनः मूढाः मिथः स्पर्धमानाः घ्नन्ति नृपा मत्कृते म्रियन्ते ।।८।।

अनुवाद— यह सम्पूर्ण पृथिवी मेरी है तुम्हारी नहीं इस तरह से परस्पर में स्पर्धा करने वाले राजागण मेरे लिए ही दूसरे को मारते हैं और स्वयं भी मारे जाते हैं ।।८।।

भावार्थ दीपिका नहीं है ।।८।।

पृथुः पुरूरवा गाधिर्नहुषो भरतोऽर्जुनः । मान्धाता सगरो रामः खट्वाङ्गो धुन्धुहा रघुः।।९।।
तृणबिन्दुर्ययातिश्च शर्यातिः शन्तनुर्गयः । भगीरथः कुवलयाश्वः ककुत्स्थो नैषधो नृगः।।१०।।
हिरण्यकशिपुर्वृत्रो रावणो लोकरावणः । नमुचिः शम्बरो भौमो हिरण्याक्षोऽथ तारकः।।११।।
अन्ये च बहवो दैत्या राजानो ये महेश्वराः । सर्वे सर्वविदः शूराः सर्वे सर्वजितोऽजिताः।।१२।।
ममतां मय्यवर्तन्त कृत्वोच्चैर्मर्त्यधर्मिणः । कथावशेषाः कालेन ह्यकृतार्थाः कृता विभो।।१३।।

अन्वयः— पृथु पुरुरवा, गाधिः, नहुषः, भरत: अर्जुनः, मान्धाता, सगरः, रामः खट्वाङ्गः धुन्धुहा रघुः, तृणविन्दुः, ययाति, शर्यातिः शन्तनुः, गयः, भगीरथः, कुबलयाश्वः, ककुत्स्थः, नैषधः नृगः हिरण्यकशिपुः वृत्रः लोकरावणः रामः, नमुचिः शम्बरः भौमः हिरण्याक्षः अथ तारकः अन्ये च बहवः दैत्याः ये महेश्वराः राजानः सर्वेशूराः सर्वविदः सर्वे अजिताः सर्वजितः उच्चैः मयिममतां कृत्वा मर्त्यधर्मिणः मयि अवर्तन्त, हे विभो कालेन ते अकृतार्थाः कथावशेषाः कृताः ।।९-१३।।

अनुवाद— पृथुः पुरुरवा, गाधि, नहुष, भरत, सहस्रबाहु, अर्जुन मान्धाता सगर राम, खट्वाङ्ग, धुन्धुमार, रघु, तृण विन्दु, ययाति, शर्याति, शन्तनु, गय, भगीरथ, कुवलयाश्व, ककुत्स्थ, नैषध, नृग हिरण्यकशिपु, वृत्र, संसार को रुलाने वाला रावण, राम, नमुचि, शम्बरासुर, भौमासुर, हिरण्याक्ष, तारकासुर और दूसरे बहुत से दैत्य तथा बड़े राजागण । ये सभी सबकुछ समझते थे, सभी शूरवीर थे, इन सबों ने दिग्विजय में दूसरों को हरा दिया और दूसरे लोग इन सबों को नहीं जीत सके । इन लोगों ने पुरी ममता से मुझको अपना समझा, किन्तु भयंकर काल ने इन लोगों की इच्छा पूरी नहीं होने दिया, अब इनके बल, पौरुष और शरीर आदि का कुछ भी पता नहीं हैं केवल इन लोगों की कहानी मात्र अवशिष्ट है ।।९-१३।।

भावार्थ दीपिका

रामो नाम कश्चिद्राजा । यद्वा, लोकदृष्ट्या दाशरथिरेव निर्दिष्टः । लोकं रावयति रोदयतीति लोकरावणः । मयि उच्चैर्ममतां कृत्वा येऽवर्तन्त ते कालेन कथावशेषाः कृताः । विभो इति संबोधनं कुरूद्वहेतिवत् ।।९-१३।।

भाव प्रकाशिका

राम अर्थात् रामनाम का कोई राजा, अथवा लोकदृष्टि से महाराज दशरथ के पुत्र राम को निर्देश किया गया है । लोक रावणः अर्थात् संसार को रुलाने वाला रावण । जिन लोगों ने मुझसे (पृथिवी से) बहुत अधिक ममता की किन्तु काल ने उन लोगों को भी मार दिया । विभो यह कुरुद्वह के समान परीक्षित् का सम्बोधन है ।।९-१३।।

कथा इमास्त कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम् ।
विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम् ।।१४।।

अन्वयः— ते महीयसां इमाः कथा कथिता आस्ते, लोकेषु परेयुषाम् यशो विताय, विज्ञान वैराग्य विवक्षया वचो विभूतिः न तु पारमार्थ्यम् ।।१४।।

अनुवाद— परीक्षित् संसार में बड़े-बड़े प्रतापी और महान पुरुष हुए हैं । वे सभी लोक में अपने यश का

विस्तार करके चले गये। तुमको ज्ञान और वैराग्य का उपदेश करने के लिए ही उन सबों की कथा को सुनाया है। यह सब वाणी का विलास मात्र परमार्थ नहीं है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

राजवंशानुकथनस्य तात्पर्यमाह-कथा इमा इति। विज्ञानं विषयासारताज्ञानं ततो वैराग्यं तयोर्विवक्षया परेयुषां मृतानां वचोविभूतीर्वाग्विलासमात्ररूपा न तु पारमार्थ्यं परमार्थं युक्तं कथनं न भवतीत्यर्थः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीशुकदेवजी ने राजवंशों के वर्णन का तात्पर्य **कथा इमाः इत्यादि** श्लोक से कहा है। विषयों की असारता का ज्ञान और संसार से वैराग्य इन दोनों के ही लिए कहा है। जो मर गये उनकी वाणी और ऐश्वर्य वाणी का विलास मात्र हैं परमार्थ सत्य नहीं है ॥१४॥

यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्णममङ्गलघ्नः ।
तमेव नित्यं श्रृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ॥१५॥

अन्वयः— कृष्णे अमलां भक्तिम् अभीप्समानः। यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः अभीक्ष्णम् अमङ्गलघ्नः तमेव नित्यं शृणुयात्॥१५॥

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण में निर्मल भक्ति को चाहने वाला अमङ्गलों का विनाश करने वाले भगवान् के गुणों का वर्णन है उसका ही नित्य श्रवण करना चाहिए ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

कस्तर्हि पुरुषाणामुपादेय; परमार्थस्तमाह-यस्त्विति। नित्यं प्रत्यहम्। तत्राप्यभीक्ष्णम् ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

तो फिर जीवों के लिए उपदेश क्या है ? सदैव श्रीभगवान् के गुणों का बार-बार वर्णन सुना करे ॥१५॥

राजोवाच

केनोपायेन भगवन्कलेर्दोषान्कलौ जनाः । विधमिष्यन्त्युपचितांस्तन्मे ब्रूहि यथा मुने ॥१६॥

अन्वयः— हे भगवन् केनउपायेन जनाः कले उपचितान् दोषान् विधमिष्यनि हे मुने मे तत् मे ब्रूहि ॥१६॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— हे भगवन् ! लोग बढ़े हुए कलियुग के दोषों को किस साधन से विनष्ट कर पायेंगे ? हे मुने आप मुझे उसे बतलाइये ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

कलिदोषोपचये सति भक्तेरसंभवं मन्यमानः पृच्छति-केनोपायेनेति। विधमिष्यन्ति नाशयिष्यन्ति। यथा यथावत्॥१६॥

भाव प्रकाशिका

कलि के दोषों को बढ़ जाने पर भक्ति का होना असम्भव हो जायेगा, इस तरह से मानने वाले राजा परीक्षित् पूछते हैं कि किस साधन से विधमिष्यन्ति अर्थात् विनष्ट कर देंगे। यथा अर्थात् पूर्ण रूप से ॥१६॥

युगानि युगधर्मांश्च मानं प्रलयकल्पयोः । कालस्येश्वररूपस्य गतिं विष्णोर्महात्मनः ॥१७॥

अन्वयः— युगानि युगधर्मान् च प्रलयकल्पयोः मानम् महात्मनः विष्णोः ईश्वररूपस्य कालस्य गतिं ब्रूहि ॥१७॥

अनुवाद— युगों का स्वरूप, युगों का मान, युगों के धर्म, प्रलय काल के मान एव सर्वव्यापक भगवान के कालचक्र की गति का भी आप वर्णन करें ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

कलियुगे कः परो धर्म इति वुभुत्सया पृच्छति-युगानीति । ब्रूहीत्यनुषङ्गः । आत्यन्तिकप्रलयजिज्ञासया पुनः पृच्छति-प्रलयकल्पयोः संहारस्थितिकालयोः । न चायं वहिर्मुखः प्रश्न इत्याह-कालस्येति ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

कलियुग में सबसे बड़ा धर्म क्या है ? इस वात को जानने के लिए राजा परीक्षित् **युगानि** इस श्लोक के द्वारा पूछते हैं। आत्यन्तिक प्रलय को जानने की इच्छा से राजा फिर संहार तथा स्थिति इन दोनों कालों को पूछते हैं। यह कोई बाहर का प्रश्न नहीं है इस बात को कालस्य० इत्यादि के द्वारा कहा गया है ॥१७॥

श्रीशुक उवाच

कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः । सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप ॥१८॥

अन्वयः— कृते तज्जनैः धृतः धर्मः चतुष्पात् । सत्यं दया तपो दानम् इति विभोः पादाः ॥१८॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— सत्ययुग में धर्म के चार पैर होते हैं, सत्य, दया, तप और दान । राजन् धर्म स्वयं भगवान् का स्वरूप है ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

तत्र युगधर्मांस्तावदाह-कृत इति । तज्जनैस्तत्कालीनैर्जनैः । दानमरागद्वेषतयाऽभयदानम् । तदेव प्रथमस्कन्धे शौचशब्देनोक्तम् । विभोः संपूर्णस्य धर्मस्य ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम शुकदेवजी युगधर्मों का वर्णन **कृते० इत्यादि** के द्वारा करते हैं । तज्जनैः अर्थात् सत्ययुग के लोगों द्वारा अनम् अर्थात् राग एवं द्वेष से रहित रूप से अभय प्रदान । उसी को प्रथम स्कन्ध में शौच शब्द से कहा गया है । **विभोः** सम्पूर्ण धर्म के ॥१८॥

संतुष्टाः करुणा मैत्राः शान्ता दान्तास्तितिक्षवः । आत्मारामाः समदृशः प्रायशः श्रमणा जनाः॥१९॥

अन्वयः—सत्ययुगस्य जना संतुष्टाः करुणाः, मैत्राः, शान्ताः दान्ताः तितिक्षवः, आत्मारामाः, समदृशः प्रायशः श्रमणाः॥१९॥

अनुवाद— सत्ययुग के लोग संतुष्ट, करुणा युक्त, सबों से मित्रता का व्यवहार करने वाले एवं शान्त रहते हैं । उनकी इन्द्रियाँ और मन उसके वश में रहती हैं । वे लोग सुख एवं दुःख को समान रूप से सहते हैं । अधिकांश लोग समदर्शी और आत्माराम होते हैं । शेष लोग स्वरूप स्थिति के लिए अभ्यास करते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तदानीन्तनजनानाह-संतुष्टा इति । मैत्रा भूतमैत्रीयुक्ताः । श्रमणा आत्माभ्यासवन्तः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

सत्ययुग के लोगों को **संतुष्टाः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है **मैत्राः** सभी जीवों से मित्रता रखने वाले, **श्रमणाः** अर्थात् आत्माभ्यास करने वाले ॥१९॥

त्रेतायां धर्मपादानां तुर्यांशो हीयते शनैः । अधर्मपादैरनृतहिंसाऽसंतोषविग्रहैः ॥२०॥

अन्वयः— त्रेतायां अधर्मपादैः अनृतहिंसा सन्तोष विग्रहैः धर्मपादानां तुर्यांशः हीयते ॥२०॥

अनुवाद— परीक्षित् धर्म के ही समान अधर्म के भी चार चरण होते हैं- अनृत (मिथ्य भाषण) हिंसा, असन्तोष और कलह, इन अधर्म के पादों के द्वारा धर्म के चरणों का चतुर्थांश क्षीण हो जाता है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अनृतेन सत्यं, हिंसया दया, असंतोषेण तपः, विग्रहेण दानमिति यथासंख्यं योज्यम् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

मिथ्याभाषण के सत्य के, हिंसा के द्वारा दया, असन्तोष द्वारा तपस्या एवं विग्रह के द्वारा दान का चतुर्थांश विनष्ट हो जाता है ।।२०।।

तदा क्रियातपोनिष्ठा नातिहिंस्रा न लम्पटाः । त्रैवर्गिकास्त्रयीवृद्धा वर्णा ब्रह्मोत्तरा नृप ।।२१।।

अन्वयः— हे नृप ! तदा वर्णाः ब्रह्मोत्तरा क्रिया तपोनिष्ठाः नाति हिंसा न लम्पटाः त्रैवर्गिकाः त्रयीवृद्धाः वर्णाः ।।२१।।

अनुवाद— उस समय ब्राह्मणों की लोगों में प्रधानता होती है, सभी लोग कर्मकाण्ड एवं तपस्या में निष्ठा रखते हैं, लोगों में न तो अत्यन्त हिंसा होती है और न लोग अत्यन्त लम्पट होते हैं, लोग, धर्म, अर्थ एवं काम रूप त्रिवर्ग का सेवन करते हैं अधिक लोग कर्म प्रतिपादक वेदों के पारंगत विद्वान होते हैं ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मोत्तरा ब्राह्मणाधिकाः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मोत्तराः अर्थात् ब्राह्मणों की प्रधानता ।।२१।।

तपःसत्यदयादानेष्वर्धं ह्रसति द्वापरे । हिंसातुष्ट्यनृतद्वेषैर्धर्मस्याधर्मलक्षणैः ।।२२।।

अन्वयः— द्वापरे हिंसा तुष्टयनृत द्वेषैः अधर्मलक्षणैः धर्मस्य तपः सत्यदयादानेषु अर्धं ह्रसति ।।२२।।

अनुवाद— द्वापर में हिंसा, असत्य, असन्तोष तथा द्वेष अधर्म के इन चार चरणों के द्वारा तपस्या, सत्य, दया और दान ये चारों आधे-आधे क्षीण हो जाते हैं ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

हिंसाऽतुष्ट्यनृतद्वेषैरित्ययं क्रमो न विवक्षितः । धर्मस्यार्धं ह्रसति क्षीयते । अधर्मस्य लक्षणैश्चिह्नैः, पादैरित्यर्थः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

हिंसा, असन्तोष, झूठ और द्वेष रूप अधर्म के चार चरणों से धर्म के चरणों के आधाभाग क्षीण हो जाते हैं ।।२२।।

यशस्विनो महाशीला; स्वाध्यायाध्ययने रताः । आढ्याः कुटुम्बिनो हृष्टा वर्णाः क्षत्रद्विजोत्तराः।।२३।।

अन्वयः— यशस्विनः महाशीलाः स्वाध्यायाध्ययनेसताः आढ्याःकुटुम्बिनःहृष्टाः वर्णा क्षत्र द्विजोत्तराः ।।२३।।

अनुवाद— द्वापर, युग के लोग, महायशस्वी, कर्मकाण्डी, वेदाध्ययन परायण, धनी, बड़े परिवार वाले एवं प्रसन्न रहते हैं । वर्णों में ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों की प्रधानता होती है ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

यशस्विनः कीर्तिप्रियाः । क्षत्रद्विजोत्तराः क्षत्रियब्राह्मणप्रधानाः ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

द्वापर के लोग यशस्विनः । क्षत्रद्विजोत्तरा क्षत्रिय एवं ब्राह्मण प्रधान होते हैं ।।२३।।

कलौ तु धर्महेतूनां तुर्यांशोऽधर्महेतुभिः । एधमानैः क्षीयमाणो ह्यन्ते सोऽपि विनङ्क्ष्यति ।।२४।।

अन्वयः— कलौ तु एधमानैः अधर्महेतुभिः धर्महेतुनां क्षीयमाणः तुर्यांशः अन्ते सोऽपि विनङ्क्ष्यति ।।२४।।

अनुवाद— कलियुग में अधर्म के साधनों के बढ़ जाने के कारण धर्म के चरण क्षीण होकर चतुर्थांश मात्र बचे रहते हैं और कलियुग के अन्त में तो वे भी विनष्ट हो जायेंगे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

कलौ धर्मपादानां तुर्यांशश्चतुर्थांशोऽवशिष्यते ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

कलियुग में धर्म के चारो चरणों का चतुर्थांश मात्र बचा रहता है ॥२४॥

तस्मिँल्लुब्धा दुराचारा निर्दयाः शुष्कवैरिणः । दुर्भगा भूरितर्षाश्च शूद्रदाशोत्तराः प्रजाः ॥२५॥

अन्वयः— तस्मिन् प्रजा लुब्धाः दुराचाराः निर्दयाः शुष्कवैरिणः दुर्भगाः भूरितर्षाः च शूद्रादाशोत्तराः ॥२५॥

अनुवाद— कलियुग में प्रजाएँ लोभी, दुराचारी, निर्दय तथा झूठ-मुठ के परस्पर में वैर करने वाली । एवं दुर्भाग्य पूर्ण होंगी । कलियुग में शूद्रों एवं केवट आदि की प्रधानता होगी ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

शूद्रदाशोत्तराः शूद्रकैवर्तादिप्रधानाः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

शूद्रदाशोत्तरा अर्थात् शूद्रों एवं केवटों की प्रधानता ॥२५॥

सत्त्वं रजस्तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः । कालसंचोदितास्ते वै परिवर्तन्त आत्मनि ॥२६॥

अन्वयः— सत्त्वं रजस्तम इति गुणाःपुरुषे दृश्यन्ते कालसंचोदिताः ते वै आत्मनि परिवर्तन्ते ॥२६॥

अनुवाद— सभी प्राणियों में तीन गुण पाये जाते हैं सत्त्व, रजस एवं तमस् काल की प्रेरणा से उनका मन में ह्रास एवं विकास हुआ करता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

युगानामेवंभूतवैपम्ये कारणमाह–सत्त्वमिति पञ्चभिः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

युगों में इस प्रकार की होने वाली विषमता का कारण **सत्त्वम्० इत्यादि** पाँच श्लोकों से बतलाते हैं ॥२६॥

प्रभवन्ति यदा सत्त्वे मनोबुद्धीन्द्रियाणि च । तदा कृतयुगं विद्याज्ज्ञाने तपसि यद्रुचिः ॥२७॥

अन्वयः— यदा मनोबुद्धिन्द्रियाणि सत्त्वे प्रभवन्ति तदा कृतयुगं विद्यात् ज्ञाने तपसि यद्रुचिः ॥२७॥

अनुवाद— जब मन, बुद्धि एवं इन्द्रियाँ सत्त्वगुण में स्थित होकर अपना-अपना कार्य करती हैं, उस समय सत्ययुग जानना चाहिए उस समय लोगों की तपस्या और ज्ञान में रुचि होती है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

मनश्च बुद्धिश्चेन्द्रियाणि च सत्त्वे यदा प्रभवन्त्यतिशयेन वर्तन्ते ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ जब सत्त्व में स्थित होकर अपना-अपना कार्य करती हैं ॥२७॥

यदा धर्मार्थकामेषु भक्तिर्भवति देहिनाम् । तदा त्रेता रजोवृत्तिरिति जानीहि बुद्धिमन् ॥२८॥

अन्वयः— हे बुद्धिमन् ! यदा देहिनाम् धर्मार्थ कामेषु भक्तिः भवति तदा त्रेता जानीहि रजोवृत्तिः इति ॥२८॥

अनुवाद— हे बुद्धिमान राजन् परीक्षित् जब प्राणियों की धर्म, अर्थ, एवं काम अर्थात् लौकिक एवं पारलौकिक सुख भोगों की ओर प्रवृत्ति होती है उस समय रजोगुण की प्रवृत्ति होती है यह तुम्हें जानना चाहिए ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

यदा धर्मादिषु भक्तिं प्रीतिस्तदा रजोवृत्तिप्रधानं त्रेतायुगमिति जानीहि ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

जिस समय लोगों की धर्म, अर्थ एवं काम में प्रीति होती है उस समय रजोगुण की प्रधानता होती है यह तुम जानो ।।२८।।

यदा लोभस्त्वसंतोषो मानो दम्भोऽथ मत्सरः । कर्मणां चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः ।।२९।।

अन्वयः— यदा लोभः तु असन्तोषः, मानः, दम्भः, अथ मत्सरः काम्यानां कर्मणां चापि तत् रजस्तमः द्वापरं जानीहीति शेषः ।।२९।।

अनुवाद— जब प्राणियों में लोभ, असन्तोष, मान, दम्भ और मान (अभिमान) काम्य कर्मों की प्रधानता हो जाती है, उस समय रजोगुण एवं तमोगुण प्रधान द्वापरयुग जानो ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

काम्यानां कर्मणां विषये यदा प्रीतिस्तत्तदा रजस्तमःप्रधानं द्वापरं जानीहीति पूर्वेणानुषङ्गः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

जब लोगों की काम्यकर्मों में प्रीति होती है, उस समय रजोगुण एवं तमोगुण, प्रधान द्वापरयुग जाने इस तरह से इससे पहले के श्लोक के साथ अन्वय है ।।२९।।

यदा मायानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसा विषादनम् । शोको मोहो भयं दैन्यं स कलिस्तामसः स्मृतः।।३०।।

अन्वयः— यदा माया अनृतं, तन्द्रा निद्रा, हिंसा विषादनम् शोकः मोहः भयं दैन्यं स कलिः तामसः स्मृतः ।।३०।।

अनुवाद— जिस समय लोगों में झूठ-कपट, तन्द्रा (जम्भाई) नींद, हिंसा, विषाद, शोक, मोह, भय और दीनता का प्राचूर्य हो जाय उस समय तमोगुण प्रधान कलियुग जानना चाहिए ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

विषादनम् दुःखम् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

विषादनम् अर्थात् दुःख ।।३०।।

यस्मात्क्षुद्रदृशो मर्त्याः क्षुद्रभाग्या महाशनाः । कामिनो वित्तहीनाश्च स्वैरिण्यश्च स्त्रियोऽसतीः ।।३१।।

अन्वयः— यस्मात् मर्त्या क्षुद्रदृशः हीनाः महाशनाः क्षुद्रभाग्या कामिनः स्त्रियः आसतीः स्वैरिण्यः च ।।३१।।

अनुवाद— चूकि कलियुग में मनुष्यों की दृष्टि हो जाती है । वे होते हैं तो निर्धन किन्तु खाते हैं बहुत अधिक, वे मन्दभाग्य होते हैं किन्तु मन में कामनाएँ बहुत अधिक होती है । स्त्रियों दुष्टता और कुलटापन की वृद्धि हो जाती है ।।३१।।

भावार्थ दीपिका

कलिदोषान् प्रपञ्चयति यस्मादित्यादिना । यस्मात्कलेर्हेतोः । क्षुद्रदृशो मन्दमतयः । क्षुद्रभाग्या अल्पभाग्याः । महाशना वह्वाहाराः । वित्तहीना अपि कामिनश्च । स्वैरिण्यः पुंश्चल्यः । असतीरसत्यः ।।३१।।

भाव प्रकाशिका

यस्मात्० इत्यादि श्लोक के द्वारा कलि के दोषों का विस्तार करते हैं । **यस्मात्** अर्थात् कलियुग के कारण, क्षुद्रदृश: अर्थात् मन्दमति, महाशना: अत्यधिक भोजन करने वाले, क्षुद्रभाग्या अर्थात् मन्दभाग्य । निर्धन होकर कामी हुआ करते है । स्वैरिण्य: अर्थात् भ्रष्टचरित्र असती: अर्थात् दुष्ट स्वभाव वाली ।।३१।।

दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदा: पाखण्डदूषिता: । राजानश्च प्रजाभक्षा: शिश्नोदरपरा द्विजा: ।।३२।।

अन्वय:— जनपदा: दस्यूत्कृष्टा: वेदा: पाखण्डदूषिता: राजान: च प्रजाभक्षा: द्विजा: शिश्नोदरपरा: ।।३२।।

अनुवाद— जनपदों में लुटेरों की भरमार हो जायेगी, पाखण्डी लोग अपने मनमानी ढंग से वेदों का अपार्थ करने लगेंगे, राजागण प्रजाओं की संपत्ति हड़प लेंगे और ब्राह्मण अपना पेट भरने में तथा शिश्नेन्द्रिय को तृप्त करने में लगे रहेंगे ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

दस्यव उत्कृष्टा: प्रचुरा येषु ते ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

लुटेरों से परिपूर्ण ।।३२।।

अव्रता बटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुम्बिन: । तपस्विनो ग्रामवासा न्यासिनोऽत्यर्थलोलुपा: ।।३३।।

अन्वय:— बटव: अव्रता अशौचा:, भिक्षव: कुटुम्बिन:, तपस्विन: ग्रामवासा: न्यासिन: अत्यर्थ लोलुपा: ।।३३।।

अनुवाद— कलियुग में ब्रह्मचारीगण न तो व्रत का पालन करेंगे और न पावित्र्य का । गृहस्थ स्वयं भिक्षुक हो जायेंगे, तपस्वीजन गावों में रहने लगेंगे । संन्यासी गण अत्यन्त धन के लोभी हो जायेंगे ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

अव्रता विहिताचारशून्या: । अशौचा: शौचशून्याश्च वटवो ब्रह्मचारिणो भविष्यन्ति । कुटुम्बिनश्च गृहस्था: स्वयं भिक्षाटनपरा भविष्यन्ति, न तु भिक्षां दास्यन्ति। तपस्विनो वनस्था वनं हित्वा ग्रामवासा भविष्यन्ति। न्यासिनो यतयोऽतीवार्थलोलुपा भविष्यन्ति।।३३।।

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मचारीगण अपवित्र रहने लगेंगे और अध्ययनोपयोगी व्रतों का पालन नहीं करेंगे । गृहस्थी किसी को भिक्षा नहीं देंगे अपितु स्वयं भिक्षा मांगने लगेंगे । वानप्रस्थी तपस्वीगण वनों का परित्याग करके गावों में रहने लगेंगे और संन्यासीगण धन के अत्यधिक लोभी होने लगेंगे ।।३३।।

ह्रस्वकाया महाहारा भूर्यपत्या गतह्रिय: । शश्वत्कटुकभाषिण्यश्चौर्यमायोरुसाहसा: ।।३४।।

अन्वय:— ह्रस्वकाया: महाहारा: भूर्यपत्या: गह्रिय:, शश्वत्कटुकभाषिण्य: धौर्यमायोरुसाहसा: ।।३४।।

अनुवाद— स्त्रियों का आकार तो छोटा हो जायेगा किन्तु वे खायेंगी बहुत अधिक, उनकी बहुत सन्तानें होगी वे लज्जा का परित्याग कर देंगी । वे सदा कटुभाषण करेंगी चोरी करने में निपुण होंगी और बहुत अधिक साहसी होंगी ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

पुनरपि स्त्रीणां स्वभावमाह–ह्रस्वकाया इति। कटुकभाषिण्योऽप्रियवादिन्य:। चौर्यं च माया कपटमुरु च साहसं यासां ता:।।३४।।

भाव प्रकाशिका

ह्रस्वकाया: इत्यादि से स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन करते हैं कटुभाषिण: अर्थात् अप्रिय बोलने वाली बहुत अधिक चोरी छल-कपट और साहस से वे सम्पन्न होंगी ।।३४।।

पणयिष्यन्ति वै क्षुद्राः किराटाः कूटकारिणः । अनापद्यपि मंस्यन्ते वार्तां साधु जुगुप्सिताम् ॥३५॥

अन्वयः— क्षुद्राः किराटाः पाणयिष्यन्ति कूटकारिणः, अनापद्यपि साधुजुगुप्सितां वार्तां मंस्यन्ते ॥३५॥

अनुवाद— व्यापारी क्षुद्र बुद्धि वाले हो जायेंगे और छल कपट करेंगे । विपत्ति काल के नहीं होने पर भी साधु पुरुषों द्वारा निन्दित व्यापार करेंगे ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

किंच, किराटा वणिजः । पणयिष्यन्ति क्रयविक्रयादिव्यवहारं प्रवर्तयिष्यन्ति । किंच, सर्वे जना अनापद्यपि जुगुप्सितां निन्दितां वार्तां वृत्तिं साधु मंस्यन्ते ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

व्यापारी क्रय-विक्रय आदि व्यापार करेंगे । सभी लोग बिना विपत्ति के ही निन्दित व्यापार को भी करना अच्छा मानेंगे ॥३५॥

पतिं त्यक्ष्यन्ति निर्द्रव्यं भृत्या अप्यखिलोत्तमम् । भृत्यं विपन्नं पतयः कौलं गाश्चापयस्विनीः ॥३६॥

अन्वयः— भृत्याः निर्द्रव्यं अखिलोत्तमम् अपि पति त्यक्ष्यन्ति विपन्नं कौलं भृत्यं पतयः त्यक्ष्यन्ति अपयस्विनीः गाश्च पतय त्यक्ष्यन्ति ॥३६॥

अनुवाद— सभी गुणों से सम्पन्न स्वामी के निर्धन हो जाने पर उसे उसके नौकर त्याग देते हैं । कुल परम्परा से अपने यहाँ रहने वाले मृत्य को भी उसके स्वामी त्याग देते हैं । जब गौ दूध देना बन्द कर देती हैं तो उसके भी स्वामी उस गौ को त्याग देते हैं ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

सर्वोत्तममपि पतिं द्रव्यहीनं भृत्यास्त्यक्ष्यन्ति । पतयश्च विपन्नं रोगादिभिर्व्यापाराक्षमं कौलं कुलपरम्परायातं त्यक्ष्यन्ति। अपयस्विनीर्दुग्धदोहाः ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

सर्वोत्तम भी स्वामी के निर्धन हो जाने पर उसके भृत्यगण उसे त्याग देते हैं । रोग आदि के कारण व्यापार करने में असमर्थ, तथा कुल परम्परा से ही रहने वाले नौकर को स्वामीगण भगा देते है । ऐसे ही दूध नहीं देने वाली गौ को उसके स्वामी त्याग देते हैं ॥३६॥

पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन्हित्वा सौरतसौहृदाः । ननन्दृस्यालसंवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः ॥३७॥

अन्वयः— सौरत सौहृदाः पितृभ्रातृ सुहृज्ज्ञातीन् हित्वा कलौ दीनाः स्त्रैणाः नराः ननन्दृस्यालं संवादाः भविष्यन्तीति शेषः ॥३७॥

अनुवाद— काम वासना की पूर्ति के लिए सौहार्द रखने वाले लोग अपने पिता, भाई और हितैषियों को छोड़कर साली, साले से ही सलाह करेंगे । स्त्री लम्पट लोग कलियुग में अत्यन्त दीन हो जाते हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

सौरतं सुरतनिमित्तं सौहृदं येषां ते । अतएव ननन्दारोऽत्र भार्याभगिन्यः, स्याला भार्याभ्रातरस्तैः संवादो मन्त्रालोचनं येषां ते । ननन्दृ इति वा पाठः ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

जिन लोगों का सौहार्द केवल वासना की पूर्ति के लिए होता है वे लोग पिता-भाई हितैषियों को छोड़कर अपनी साली-साला इत्यादि से ही सलाह लेंगे । यहाँ ननन्दृ भी पाठ हो सकता है ॥३७॥

शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपोवेषोपजीविनः । धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् ॥३८॥

अन्वयः— तपोवेषोपजीविनः शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति अधर्मज्ञाः उत्तमासनम् अधिरुह्य धर्मं वक्ष्यन्ति ।।३८।।

अनुवाद— कलियुग तपस्वी का वेष बनाकर शूद्र दान लेंगे, जिन लोगों को धर्म का ज्ञान नहीं है, वे लोग उत्तम आसन पर बैठकर धर्मोपदेश करेंगे ।।३८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३८।।

नित्यमुद्विग्नमनसो दुर्भिक्षकरकर्शिताः । निरन्ने भूतले राजन्ननावृष्टिभयातुराः ॥३९॥
वासोन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः । हीनाः पिशाचसंदर्शा भविष्यन्ति कलौ प्रजाः॥४०॥

अन्वयः— राजन् कलौ प्रजाः दुर्भिक्षकरकर्शिताः नित्यमुद्विग्नमनसः । राजन् निरन्ने अनावृष्टि भयातुराः वा सोन्नपानशयन व्यवायस्नानभूषणैः हीनाः पिशाच संदर्शा भविष्यन्ति ।।३९-४०।।

अनुवाद— हे परीक्षित् ! कलियुग में प्रजा सूखा पड़ने के कारण अत्यन्त भयभीत, और आतुर हो जायेगी। एक तो दुर्भिक्ष और दूसरे शासकों की कर वृद्धि के कारण प्रजा के शरीर में अस्थिपंजर और उद्विग्नता ही रह जायेगी । प्राण की रक्षा करने के लिए रोटी का टुकड़ा मिलना मुश्किल हो जायेगा । कलियुग में प्रजा शरीर ढँकने के लिए वस्त्र, भूख की ज्वाला शान्त करने के लिए रोटी, पीने के लिए पानी सोने के लिए जमीन से भी वंचित रह जायेगी । दाम्पत्य जीवन, स्नान तथा आभूषण की कोई सुविधा नहीं होगी । लोगों की आकृति और चेष्टाएँ पिशाच के समान हो जायेगी ।।३९-४०।।

भावार्थ दीपिका

पिशाचसंदर्शाः पिशाचसदृशाः ।।३९-४०।।

भाव प्रकाशिका

पिशाचसंदर्शा: अर्थात् पिशाच के समान ।।३९-४०।।

कलौ काकिणिकेऽप्यर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः । त्यक्ष्यन्ति च प्रियान्प्राणान् हनिष्यन्ति स्वकानपि॥४१॥

अन्वयः— कलौ काकिणिके अपि अर्थे विगृह्य त्यक्तसौहृदाः प्रियान् प्राणान् त्यक्ष्यन्ति स्वकान् अपि हनिष्यन्ति।।४१।।

अनुवाद— कलियुग में लोग कौड़ी-कौड़ी के लिए झगड़ा करके तथा परस्पर के सौहार्द का परित्याग कर देंगे। अपने प्रिय प्राणों का भी परित्याग कर देंगे और अपने लोगों को मार डालेंगे ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

काकिणिके विंशतिवराटकामात्रेऽप्यर्थे विषयभूते । विगृह्य वैरं कृत्वा ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

बीस कौड़ियों के लिए भी वैर करके ।।४१।।

न रक्षिष्यन्ति मनुजाः स्थविरौ पितरावपि । पुत्रान्सर्वार्थकुशलान्क्षुद्राः शिश्नोदरंभराः ॥४२॥

अन्वयः— शिश्नोदंरभराः क्षुद्राः मनुजाः स्थविरौ पितरावपि न रक्षिष्यन्ति सर्वार्थ कुशलान् पुत्रान् पितरावपि ।।४२।।

अनुवाद— अपनी जननेन्द्रिय की तृप्ति और पेट भरने में लगे हुए क्षुद्र पुरुष अपने वृद्ध भी माता-पिता की रक्षा नहीं करेंगे और हर प्रकार से सभी कार्यों में कुशल पुत्रों को माता-पिता भी अलग कर देंगे रक्षा नहीं करेंगे ।।४२।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४२।।

कलौ न राजन् जगतां परं गुरुं त्रिलोकनाथानतपादपङ्कजम् ।
प्रायेण मर्त्या भगवन्तमच्युतं यक्ष्यन्ति पाखण्डविभिन्नचेतसः ।।४३।।

अन्वयः— राजन् कलौ जगतां परं गुरुम् त्रिलोकनाथानत पादपङ्कजम् भगवन्तम् अच्युतम् पाखण्ड विभिन्न चेतसः मर्त्याः न यक्ष्यन्ति ।।४३।।

अनुवाद— परीक्षित् कलियुग में लोग सम्पूर्ण संसार के एकमात्र स्वामी त्रैलोक्य के स्वामी इन्द्र इत्यादि देवता जिनके चरण कमलों में प्रणाम किया करते हैं ऐसे भगवान् अच्युत की आराधना नहीं करते हैं क्योंकि पाखण्डियों के कारण उन लोगों का चित्त इतना भटक जाता है कि वे श्रीभगवान् की आराधना से पराङ्मुख हो जाते हैं ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

महान्तमनर्थमाह द्वाभ्याम्-कलाविति । त्रिलोकनाथैरानतं नमस्कृतं पादपङ्कजं यस्य तम् । न यक्ष्यन्ति न पूजयिष्यन्ति। पाखण्डैर्विभिन्नमन्यथा कृतं चेतो येषां ते ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

कलियुग में होने वाले महान् अनर्थ को **कलौ० इत्यादि** दो श्लोकों से बतलाते हैं । त्रिलोकी के स्वामियों इन्द्रादि देवता जिनके चरणों में सिर झुकाते रहते हैं उनकी पूजा नहीं करते हैं क्योंकि पाखण्डियों ने उनके चित्तों को भटका दिया है ।।४३।।

यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन्स्खलन्वा विवशो गृणन्पुमान् ।
विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ।।४४।।

अन्वयः— म्रियमाण आतुरः पतन् स्खलन वा विवशः पुमान् यन्नामधेयं गृणन् विमुक्त कर्मार्गलः उत्तमां गतिं प्राप्नोति तं कलौ जनाः न यक्ष्यन्ति ।।४४।।

अनुवाद— यदि कोई मनुष्य मरते समय आतुर होकर अथवा गिरते या फिसलते समय विवश होकर श्रीभगवान् का कोई एक नाम भी उच्चारण कर ले तो उसके कर्मों के वन्धन छिन्न भिन्न हो जाते हैं उन श्रीभगवान् की कलियुगी लोग आराधना नहीं करते है ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

विवशो गृणन्सन् । विमुक्ताः कर्मरूपा अर्गलाः प्रतिवन्धा यस्य सः ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

विवश भी होकर यदि उच्चारण कर ले तो । उसके सारे कर्मों के वन्धन विनष्ट हो जाते हैं ।।४४।।

पुंसां कलिकृतान्दोषान् द्रव्यदेशात्मसंभवान् । सर्वान्हरति चित्तस्थो भगवान्पुरुषोत्तमः ।।४५।।

अन्वयः— कलिकृतान् द्रव्यदेशात्मसंभवान् चित्तस्थो भगवान् पुरुषोत्तमः पुंसां सर्वान् दोषान् हरति ।।४५।।

अनुवाद— कलियुग अपने दोषों से सभी वस्तुओं को दूषित कर देता है । स्थानों में भी दोषों की प्रधानता हो जाती है । किन्तु जब भगवान् पुरुषोत्तम हृदय में आकर विराज जाते हैं तो उनकी सन्निधि मात्र से ही पुरुषों के समस्त दोष विनष्ट हो जाते हैं ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

तदेवं कलिदोषान्प्रपञ्च्य प्रस्तुतं तन्निस्तारोपायमाह-पुंसामिति षड्भिः। द्रव्यदेशात्मभिः संभवो येषां तान् । चित्तस्थश्चित्ते स्फुरितः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के दोषों का विस्तार से वर्णन करके उन दोषों से बचने के उपाय को श्रुतः इत्यादि श्लोक कहते हैं ॥४५॥

श्रुतः संकीर्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोऽपि वा । नृणां धुनोति भगवान् हृत्स्थो जन्मायुताशुभम् ॥४६॥

अन्वयः— श्रुतः सङ्कीर्तितः ध्यातः पूजितः वा आदृतः अपि हृत्स्थो भगवान नृणां जन्मायुताशुभम धुनोति ॥४६॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित श्रीभगवान के नाम, गुण, लीला आदि को सुनने से, कीर्तन करने से तथा ध्यान करने से, पूजन करने से अथवा समादर करने से श्रीभगवान उस मनुष्य के हृदय में आकर विराजमान हो जाते हैं और उस मनुष्य के अनन्त जन्मों के पापों को विनष्ट कर देते हैं ॥४६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥४६॥

यथा हेम्नि स्थितो वह्निर्दुर्वर्णं हन्ति धातुजम् । एवमात्मगतो विष्णुर्योगिनामशुभाशयम् ॥४७॥

अन्वयः— यथा हेम्निस्थितः वह्निः धातुजदुर्वर्णं हन्ति एवम् आत्मगतः विष्णुः योगिनाम् अशुभाशयम् ॥४७॥

अनुवाद— जिस तरह अग्नि सोने के साथ संयुक्त होकर सुवर्ण के दोषों को दूर कर देता है, उसी तरह साधकों के हृदय में स्थित होकर श्रीभगवान् विष्णु उन सबों के समस्त अशुभ संस्कारों को मिटा देते हैं ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

अयमेवोपायो नान्य इति सदृष्टान्तमाह-यथेति । धातुजं ताम्रादिसंश्लेषजातं हेम्नो दुर्वर्णं मालिन्यं तत्र स्थितो वह्निरेव हन्ति हरति,न तु तोयादि । एवं योगिनामपि विष्णुरेव, न तु योगादिकमित्यर्थः ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

कलि के दोषों से बचने का यही उपाय है दूसरा कोई नहीं है, इस बात को दृष्टान्त के द्वारा बतलाते हैं। धातुजं ताम्बे आदि के संश्लेष से उत्पन्न सुवर्ण की मलीनता को सुवर्ण के साथ स्थित अग्नि दूर कर देती है । किन्तु पानी इत्यादि नहीं, उसी तरह योगियों के हृदय में स्थित भगवान् विष्णु योगियों के हृदय में विद्यमान दुर्वासनाओं को ही विनष्ट करते है, किन्तु योग इत्यादि दूर नहीं करते हैं ॥४७॥

विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्रीतीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः ।
नात्यन्तशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ॥४८॥

अन्वयः— विद्यातपःप्राणनिरोधमैत्री तीर्थाभिषेक व्रतदान जप्यैः अन्तरात्मा अत्यन्त शुद्धिं न लभते ॥४७॥

अनुवाद— राजन् विद्या, तपस्या प्राणायाम प्राणियों के प्रति मैत्री का भाव भी, तीर्थ में स्नान, व्रत, दान और जप आदि साधनों से किसी भी साधन से अन्तःकरण की वैसी शुद्धि नहीं होती है जितनी शुद्धि श्रीभगवान् के हृदय में विराज जाने से होती है ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

एतदेव विवृणोति-विद्येति । विद्या देवतोपासना ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

उपर्युक्त अर्थ को ही श्रीशुकदेवजी विद्यातपः आदि श्लोक से विस्तार से वर्णन करते हैं ॥४८॥

तस्मात्सर्वात्मना राजन् हृदिस्थं कुरु केशवम् । म्रियमाणो ह्यवहितस्ततो यासि परां गतिम् ॥४९॥

अन्वयः— राजन् तस्मात् सर्वात्मना हृदिस्थं केशवं कुरु म्रियमाणः हि अवहितः ततः परां गतिं यासि ॥४९॥

अनुवाद— परीक्षित् इसलिए तुम श्रीभगवान् केशव को पूर्णरूप से अपने हृदय में बैठा लो। सावधानी पूर्वक तुम परम गति को प्राप्त करोगे ।।४९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४९।।

म्रियमाणैरभिध्येयो भगवान्परमेश्वरः । आत्मभावं नयत्यङ्ग सर्वात्मा सर्वसंश्रयः ।।५०।।

अन्वयः— हे अङ्ग भगवान् परमेश्वरः म्रियमाणैरभिध्येयः सर्वात्मा सर्वसंश्रयः आत्मभावं नयति ।।५०।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् मरने वाले सभी लोगों को भगवान् परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए ऐसा करने से सबों की आत्मा तथा सबों के आश्रय श्रीभगवान् उस उपासक को अपना स्वरूप प्रदान कर देते हैं ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

आत्मभावं स्वस्वरूपम् ।।५०।।

भाव प्रकाशिका

आत्मभावम् अपना स्वरूप बना लेते हैं ।।५०।।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः । कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ।।५१।।

अन्वयः— राजन् दोषनिधेः कलेः एकः महान् गुणः अस्ति कृष्णस्य कीर्तनात् एव मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ।।५१।।

अनुवाद— राजन् यों तो कलियुग दोष का खजाना है किन्तु इसमें एक महान् गुण है। वह यह कि भगवान् कृष्ण का कीर्तन करने मात्र से मनुष्य सभी आसक्तियों से छूटकर परम पद को प्राप्त कर लेता है ।।५१।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं कलिं स्तौति द्वाभ्याम्-कलेर्दोषनिधे राजन्निति ।।५१।।

भाव प्रकाशिका

कलेर्दोषनिधे० इत्यादि श्लोक से कलि की प्रशंसा करते हैं ।।५१।।

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः । द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ।।५२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

अन्वयः— कृते विष्णुं ध्यायतः यत् (फलम्) त्रेतायां मखैः यजतः द्वापरे परिचर्यायाम् यत् फलम् तत् कलौ हरिकीर्तनात् ।।५२।।

अनुवाद— सत्ययुग में श्रीहरि का ध्यान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, त्रेतायुग में यज्ञों के द्वारा यजन के द्वारा जिस फल की प्राप्ति होती है तथा द्वापर में सेवा करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसी फल की प्राप्ति कलियुग में भगवान् के नाम गुण एवं लीला का कीर्तन करने से होती है ।।५२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के तीसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।३।।

भावार्थ दीपिका

तत्सर्वं हरिकीर्तनादेव कलौ भवति नान्यस्मिन्युगे । उक्तं च- 'ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् । यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ।' इति ।।५२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

कलियुग में वह सब प्राप्त हो जाता है, दूसरे युग में ऐसा नहीं होता है। कहा भी गया है **ध्यायन् कृते० इत्यादि** अर्थात् सत्ययुग में ध्यान करने से त्रेतायुग में यज्ञों द्वारा आराधना करने से तथा द्वापर युग में श्रीहरि की अर्चना करने से जिस फल की प्राप्ति होती है कलियुग में उस फल की प्राप्ति भगवान् का कीर्तन करने से हो जाती है।।५२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के तीसरे अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।३।।

◆

चौथा अध्याय

चार प्रकार का प्रलय

श्रीशुक उवाच

कालस्ते परमाण्वादिर्द्विपरार्धवधिर्नृप । कथितो युगमानं च शृणु कल्पलयावपि ॥१॥

अन्वयः— हे नृप ते परमाण्वादिः द्विपरार्धावधिः कालः कथितः युगमानं च कथितं कल्पलयौ अपि शृणु ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— परीक्षित् मैंने आपको परमाणु से लेकर द्विपरार्ध पर्यन्त का तथा युगों के परिमाण का भी वर्णन सुना चूका हूँ अब आप कल्प और लय के भी विषय में मुझसे सुने ॥१॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्थे तु चतुर्धोक्ता लया नैमित्तिकादयः । तत्र संसारनिस्तारो हरिकीर्त्यैव वर्ण्यते ॥१॥ कलिदोषनिवर्तकं हरिनामसंकीर्तनादिकं सएव च कलौ परमो धर्म इति प्रश्नद्वयस्योत्तरमुक्तम्, यच्चान्यत्पृष्टं प्रलयकल्पयोर्मानं ब्रूहीति तदिदानीं तृतीयस्कन्धोक्तकालमानानुवादपूर्वकं निरूपयति-काल इति । 'स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम्' इत्यादिना कालः कथितः । 'चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम् । संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च ।' इति युगमानं कथितम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

इस चौथे अध्याय में चार प्रकार के प्रलयों का वर्णन किया गया है । वे लय नैमित्तिक इत्यादि हैं । इस अध्याय में श्रीहरि के कीर्तन से संसार से मुक्ति बतलायी गयी है ॥१॥ कलि के दोषों को दूर करने वाले श्रीहरि के नाम सङ्कीर्तन आदि हैं । कलियुग में श्रीहरि के नामों का संकीर्तन हीं परम धर्म है । राजा परीक्षित् के दो प्रश्नों का उत्तर दे दिया गया है । राजा परीक्षित् ने जो कल्प और प्रलय के मान को पूछा था । उसका तृतीय स्कन्ध में वर्णित काल के अनुवाद पूर्वक वर्णन करते हैं । परमाणुत्व को प्राप्त करने वाला काल परमाणु कहलाता है । इत्यादि श्लोक से काल का वर्णन किया गया है । सत्ययुग चार हजार वर्ष का त्रेतायुग तीन हजार वर्ष का, द्वापर दो हजार वर्ष का और कलियुग देवताओं के वर्ष मान से एक हजार वर्ष का होगा है । इसी तरह सत्ययुग की पूर्व एवं उत्तर सन्ध्या मिलाकर आठ सौ वर्ष, त्रेता की दोनों संध्याएँ मिलकर छह सौ वर्ष की द्वापर की दोनों सन्ध्यायें मिलकर चार सौ वर्ष और कलियुग की दोनों सन्ध्यायें मिलकर दो सौ वर्ष की होते हैं ॥१॥

चतुर्युगसहस्रं च ब्रह्मणो दिनमुच्यते । स कल्पो यत्र मनवश्चतुर्दश विशांपते ॥२॥

अन्वयः— हे विशंपते सहस्रंचतुर्युगम् ब्रह्मणो दिनमुच्यते । सः कल्पः यत्र चतुर्दश मनवः ॥२॥

अनुवाद— एक हजार चतुर्युगों का ब्रह्माजी का एक दिन होता है । ब्रह्माजी के एक दिन रूप एक कल्प में चौदह मनु बीत जाते है । ये चौदहो मनु क्रमश: होते है ।।२।।

भावार्थ दीपिका

तत्र कल्पमानमाह-चतुर्युगेति । यत्र चतुर्दश मनवः क्रमेण भवन्ति ।।२।।

भाव प्रकाशिका

चतुर्युग सहस्रंतु० इत्यादि अर्थात् एक हजार चतुर्युगों का एक कल्प होता है । एक कल्प में चौदह मनुओं का समय बीत जाता है ।।२।।

तदन्ते प्रलयस्तावान्ब्राह्मी रात्रिरुदाहृता । त्रयो लोका इमे तत्र कल्पन्ते प्रलयाय हि ।।३।।

अन्वयः— तदन्तेतावान् प्रलयः ब्राह्मी रात्रीः उदाहृता तत्र इमे त्रयो लोकाः प्रलयाय हि कल्पन्ते ।।३।।

अनुवाद— जितना बड़ा कल्प होता है, उतनी ही बड़ी ब्रह्माजी की रात्रि भी हो जाती है । उसी को प्रलय कहते हैं । प्रयल के समय ये तीनों लोक लीन हो जाते हैं । उनका भी प्रलय हो जाता है ।।३।।

भावार्थ दीपिका

प्रलयस्तु चतुर्विधः-नैमित्तिकः, प्राकृतिकः, आत्यन्तिकः, नित्यश्चेति । तत्र नैमित्तिकं प्रलयं मानसहितमाह-तदन्त इति द्वाभ्याम् । तावान् चतुर्युगसहस्रप्रमाणः । सैव ब्राह्मी रात्रिः ।।३।।

भाव प्रकाशिका

प्रयल चार प्रकार के होते हैं । नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यन्तिक और नित्य । इन सबों में से नैमित्तिक, प्रलय को तो प्रमाण के साथ **तदन्ते इत्यादि** दो श्लोकों से बतलाते हैं । तावान् तथा एक हजार चतुर्युग प्रमाण वाली ब्रह्मा जी की रात्रि भी होती है ।।३।।

एष नैमित्तिकः प्रोक्तः प्रलयो यत्र विश्वसृक् । शेतेऽनन्तासनो विश्वमात्मसात्कृत्य चात्मभूः ।।४।।

अन्वयः— एष नौमित्तिकः प्रोक्तः यत्र विश्वसृक् विश्वम् आत्मसात्कृत्य आत्मभूश्च अनन्तासने शेते ।।४।।

अनुवाद— इसी को नैमित्तिक प्रलय कहते हैं, इसमें सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी सम्पूर्ण जगत् को अपने भीतर समेटकर तथा भगवन् विष्णु दोनों शेष शय्या पर शयन करते हैं ।।४।।

भावार्थ दीपिका

नैमित्तिकत्वं दर्शयति-यत्र यदा विश्वसृक् श्रीनारायणो विश्वमात्मसात्कृत्य स्वस्मिन्नुपसंहृत्य शेते । आत्मभूर्ब्रह्मा च तस्मिन् शेते तयोरभेदविवक्षया वा ब्रह्मण एवानन्तासनत्वमुक्तम् । ब्रह्मणो निद्रां निमित्तीकृत्य प्रवर्तमानो लोकत्रयप्रलयो नैमित्तिक इत्यर्थः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

नैमित्तिक प्रलय को बतलाते हैं जिस समय सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करने भगवान् नारायण सम्पूर्ण जगत् को अपने में समेटकर शयन करते । उस समय ब्रह्माजी भी सोते है या ब्रह्मा और भगवान् विष्णु में अभेद की विवक्षा से, ब्रह्माजी को ही अनन्तासन पर सोने के बात कही गयी है । ब्रह्माजी की निद्रा को ही कारण बनाकर होने वाले तीनों लोकों के प्रलय को नैमित्तिक प्रलय कहते हैं ।।४।।

द्विपरार्धे त्वतिक्रान्ते ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । तदा प्रकृतयः सप्त कल्पन्ते प्रलयाय वै ।।५।।

अन्वयः— परमेष्ठिनः ब्रह्मणः हि द्विपराधे अतिक्रान्ते तदा सप्त प्रकृतयः वै प्रलयाय कल्पन्ते ।।५।।

अनुवाद— इसी तरह ब्रह्माजी के दिन के बाद रात और रात के बाद दिन होते रहते है। इस तरह ब्रह्माजी के अपने मान से उनके सौ वर्ष बीत जाते हैं तो महत् तत्त्व अहङ्कार और पञ्च तन्मात्राएँ प्रकृति में लीन हो जाते हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

प्राकृतिकं प्रलयमाह द्वाभ्याम्-द्विपरार्धे तु ब्रह्मण आयुषि। सप्तप्रकृतयो महदहङ्कारपञ्चतन्मात्राणि ॥५॥

भाव प्रकाशिका

द्विपरार्धे तु० इत्यादि दो श्लोकों से प्राकृतिक प्रलय को बतलाते हैं ब्रह्माजी की जब सौ वर्ष की आयु समाप्त हो जाती है। **सप्तप्रकृतयः** सात प्रकृतियाँ अर्थात् महान् और अहङ्कार एवं पञ्च तन्मात्राएँ ॥५॥

एष प्राकृतिको राजन्प्रलयो यत्र लीयते। आण्डकोशस्तु संघातो विघात उपसादिते ॥६॥

अन्वयः— राजन् एष प्राकृतिकः प्रलयः यत्र अण्डकोषस्तुसङ्घातः विघाते उपसादिते लीयते ॥६॥

अनुवाद— राजन् इसी को प्राकृत प्रलय कहते हैं। इस प्रलय में प्रलय का कारण उपस्थित होने पर पञ्चभूतों के मिश्रण से बना हुआ ब्रह्माण्ड अपना स्थूल रूप छोड़कर अपने कारण रूप में स्थित हो जाता है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

सङ्घातो महदादिकार्यभूतः, प्रकृतीनां तत्कार्यब्रह्माण्डस्य च प्रलयात्प्राकृतिक इत्यर्थः। विघाते विघातकारणे उपसादिते सति॥६॥

भाव प्रकाशिका

महत्तत्त्व आदि के कार्यभूत प्राकृत पदार्थों के कार्यभूत ब्रह्माण्ड का प्रलय हो जाने से इसे प्राकृत प्रलय कहते हैं। विघाते अर्थात् विनष्ट होने के कारण के उपस्थित होने पर ॥६॥

पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ राजन्न वर्षति। तदा निरन्ने ह्यन्योन्यं भक्षमाणाः क्षुधार्दिताः ॥७॥

अन्वयः— राजन् पर्जन्यः शतवर्षाणि भूमौ न वर्षति तदा निरन्ने क्षुधार्दिताः अन्योन्यं भक्षमाणाः ॥७॥

अनुवाद— राजन् उस समय मेंघ सौ वर्षों तक पृथिवी पर वर्षा नहीं करते हैं, उस समय किसी को अन्न नहीं मिलता है। भूख प्यास से व्याकुल होकर प्रजा एक दूसरे को खाने लगती है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तदेवाह-पर्जन्य इत्यादिना बुद्धीन्द्रियार्थरूपेणेत्यतः प्राक्तनेन ग्रन्थेन ॥७॥

भाव प्रकाशिका

तदेवाह पर्जन्यः इत्यादि के पहले के ग्रन्थ से उस कारण को ही बतलाया गया है ॥७॥

क्षयं यास्यन्ति शनकैः कालेनोपद्रुताः प्रजाः। सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं सांवर्तको रविः ॥८॥
रश्मिभिः पिबते घोरैः सर्वं नैव विमुञ्चति। ततः संवर्तको वह्निः सङ्कर्षणमुखोत्थितः ॥९॥

अन्वयः— कालेनोपद्रुताः प्रजाः शनकैः क्षयं यास्यन्ति सांवर्तकः रविः सामुद्रं दैहिकं भौमं रसं घोरैः रश्मिभिः सर्वं रसंपिबते नैव विमुञ्चति, ततः सङ्कर्षणमुखोत्थितः वह्निः ॥८-९॥

अनुवाद— इस तरह के उपद्रव से पीडित होकर धीरे-धीरे सारी प्रजा क्षीण हो जाती है। प्रलय कालीन सांवर्तक सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणों से समुद्र, प्राणियों के शरीर और पृथिवी का सारा रस खींच कर सोख लेते हैं और फिर उन्हें सदा की भाँति पृथिवी पर नहीं बरसाते हैं। उसी समय सङ्कर्षण (शेषनाग) के मुख से प्रलय कालीन संवर्तक अग्नि प्रकट होती है ॥८-९॥

भावार्थ दीपिका

सामुद्रादिकं सर्वं रसं रविः पिबते आकर्षति ॥८-९॥

भाव प्रकाशिका

समुद्र आदि के सम्पूर्ण जल को सोख लेते हैं ॥८-९॥

दहत्यनिलवेगोत्थः शून्यान्भूविवरानथ । उपर्यधः समन्ताच्च शिखाभिर्वह्निसूर्ययोः ॥१०॥
दह्यमानं विभात्यण्डं दग्धगोमयपिण्डवत् । ततः प्रचण्डपवनो वर्षाणामधिकं शतम् ॥११॥

अन्वयः— ततः अनिलवेगोत्थः शून्यान् भूविवरान् अथ उपरि अधः समन्ताच्च बह्नि सूर्ययोः शिरवाभिः दह्यमानं दग्धगोममपिण्डवत् अण्डं विभाति, ततः प्रचण्डपवनः वर्षाणाम् अधिकंशतम् ॥१०-११॥

अनुवाद— वायु के वेग से वह अग्नि और बढ़ जाती है और तब अतल आदि पृथिवी के नीचे के सातो लोकों को भस्म कर देती है। वहाँ के प्राणी तो पहले ही मर चुके रहते हैं। नीचे से आग की लपट और ऊपर से सूर्य की गर्मी के कारण यह ब्रह्माण्ड चारो ओर से जलने लगता है। जैसे गोबर का उपला जलकर अंगार के रूप में दहकता हो। उसके पश्चात् सांवर्तक वायु सैकड़ों वर्षों तक चलती रहती हैं ॥१०-११॥

भावार्थ दीपिका

अनिलवेगोत्थो वायुवेगोद्भृतः। 'अनिलवेगो वा' इति पाठे अनिलेन वेगो यस्य सः, वाः रविणा रश्मिभिः पीतमुदकं च दहतीत्यर्थः। 'अनिलवेगो वै' इति तु पाठः सुगमः। भूविवरान्पातालादीन् शून्यान् रविणा दैहिकरसाकर्षणात्प्राणिरहितान्। शिखाभिर्ज्वालाभिः। किंचिदधिकं वर्षाणां शतम्। सांवर्तकः प्रलयहेतुः परो वायुर्वाति तदा रजसावृतं खं धूम्रं भवति॥१०-११॥

भाव प्रकाशिका

वायु के वेग से उत्पन्न **अनिलवेगोवा** इस तरह का पाठ होने पर अर्थ होगा कि वायु के कारण जिसका वेग होता है। अथवा सूर्य के द्वारा सम्पूर्ण जल के सोख लेने से। अनिलवेगो वै। यह पाठ सुगम है। सूर्य के द्वारा शरीरों के रस के सोख लेने से प्राणियों से रहित पातालों को अपनी ज्वाला से जला देती है। सौ वर्ष से कुछ अधिक वर्षों तक प्रलय करने वाली वायु चलती है। उस समय धूल से भर जाने के कारण आकाश धूम्र दिखता है ॥१०-११॥

परः सांवर्तको वाति धूम्रं खं रजसावृतम् । ततो मेघकुलान्यङ्ग चित्रवर्णान्यनेकशः ॥१२॥
शतं वर्षाणि वर्षन्ति नदन्ति रभसस्वनैः । तत एकोदकं विश्वं ब्रह्माण्डविवरान्तरम् ॥१३॥

अन्वयः— परः सांवर्तकः वाति रजसा आवृत्तम् खं धूम्रम्। ताः हे अङ्ग चित्रवर्णानि मेघकुलानि शतवर्षाणि वर्षन्ति रभसस्वनैः नदन्ति। ततः ब्रह्माण्ड विवरानान्तरम् विश्वं एकोदकम् ॥१२-१३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् सांवर्तक वायु सैकड़ों वर्ष तक चलती रहती है। उस समय का आकाश, धुएँ और धूल से भरा रहता है। वह धूम्र वर्ण का हो जाता है। उसके पश्चात् असंख्य रङ्ग-विरङ्गे मेघ मँडराने लगते हैं। वे अत्यन्त भयङ्कर रूप से गरज-गरज कर सैकड़ों वर्षों तक वर्षा करते रहते है उस समय का सारा विश्व एक समुद्र हो जाता है। सारा संसार जलमग्न हो गया रहता है ॥१२-१३॥

भावार्थ दीपिका

रभसस्वनैस्तीव्रगर्जितैः। ब्रह्माण्डविवरमध्यगतं विश्वमेकोदकमेकार्णवोदक व्याप्तं भवति ॥१२-१३॥

भाव प्रकाशिका

जोर-जोर से गरजते हैं। ब्रह्माण्ड के भीतर का सारा भाग एक समुद्र हो जाता है। और सबकुछ जलमग्न हो जाता है ॥१२-१३॥

तदा भूमेर्गन्धगुणं ग्रसन्त्याप उदप्लवे । ग्रस्तगन्धा तु पृथिवी प्रलयत्वाय कल्पते ।।१४।।

अन्वयः— तद भूमेः गन्ध गुणं उदप्लवे आपः ग्रसन्ति, गन्धग्रस्तातु पृथिवा प्रलयत्वाय कल्पते ।।१४।।

अनुवाद— इस तरह जब जल प्रलय हो जाता है तब पृथिवी के विशेष गुण गन्ध को जलग्रस्त लेता है। गन्ध गुण के जल में लीन हो जाने पर पृथिवी का प्रलय हो जाता है । वह घुलकर जल में मिल जाती हैं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

उदप्लवे उदकेनाप्लवे सति । प्रलयत्वायाभावाय ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

जलप्लवन होने पर प्रलय हो जाता है ।।१४।।

अपां रसमथो तेजस्ता लीयन्तेऽथ नीरसाः । ग्रसते तेजसो रूपं वायुस्तद्रहितं तदा ।।१५।।
लीयते चानिले तेजो वायोः खं ग्रसते गुणम् । स वै विशति खं राजंस्ततश्च नभसो गुणम्।।१६।।
शब्दं ग्रसति भूतादिर्नभस्तमनुलीयते । तैजसश्चेन्द्रियाण्यङ्ग देवान्वैकारिको गुणैः ।।१७।।

अन्वयः— अथो अपांरसम् तेजः नीरसाः ताः लीयन्ते तेजसः रूपं वायुः ग्रसते तदा तद्रहितं तेज अनिले लीयते वायोः गुणम् खं ग्रसते स वै खं विशति ततः च नभसो गुणम् शब्दं भूतादिः ग्रसति नभः तमनुलीयते हे अङ्ग तैजसः च इन्द्रियाणि देवान् वैकारिको गुणैः ।।१५-१७।।

अनुवाद— राजन् जल के गुण रस को तेज ग्रस लेता है, तथा तेज रूप रहित होकर वायु में मिल जाता है । तदनन्तर आकाश, वायु के गुण स्पर्श को ग्रस लेता है । स्पर्श गुण से रहित होकर वायु आकाश में मिल जाती है । उसके पश्चात् तामस अहङ्कार आकाश के गुण शब्द को ग्रस लेता है और शब्द हीन होकर आकाश तामस अहङ्कार में मिल जाता है । इसी प्रकार तैजस अहङ्कार इन्द्रियों को और वैकारिक अहङ्कार इन्द्रियाधिष्ठातृ देवों को तथा इन्द्रियों की वृत्ति को ग्रस लेता है ।।१५-१७।।

भावार्थ दीपिका

भूतादिस्तामसोऽहङ्कारः । गुणैर्वृत्तिभिः सह ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

भूतादिः अर्थात् तामस अहङ्कार, गुणैः अर्थात् इन्द्रियों की वृत्तियों के साथ ।।१५-१७।।

महान् ग्रसत्यहङ्कारं गुणाः सत्त्वादयश्च तम् । ग्रसतेऽव्याकृतं राजन् गुणान्कालेन चोदितम् ।।१८।।

अन्वयः— हे राजन् महान् अहङ्कार ग्रसति सत्त्वादयः गुणाः च तम् (अहंकारम्) कालेन चोदितम् अव्याकृतम् गुणान् ग्रसते ।।१८।।

अनुवाद— हे राजन् महान् अहङ्कार को ग्रस लेता है । काल के द्वारा प्रेरित होकर अव्याकृत (प्रकृति) महान् को ग्रस लेता है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

अव्याकृतं प्रधानम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

अव्याकृतम् अर्थात् प्रकृति ।।१८।।

न तस्य कालावयवैः परिणामादयो गुणाः । अनाद्यनन्तमव्यक्तं नित्यं कारणमव्ययम् ॥१९॥

अन्वयः— तस्य कालावयवैः परिणामादयः गुणाः न । अव्यक्तम् अनाद्यनन्तम् नित्यं कारणम् अव्ययम् ॥१९॥

अनुवाद— काल के अवयव दिन, रात, पक्ष, मास, वर्ष आदि के द्वारा प्राकृति में किसी प्रकार का परिणाम, क्षय, विनाश आदि नहीं होते हैं । प्रकृति अनादि, अनन्त, नित्य और विनाश रहित है । प्रलय के समय में प्रकृति अपने महदादि कार्यों को समेट कर साम्यावस्था को प्राप्त कर लेती है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

तस्य तु लयो नास्तीत्याह-न तस्येति । कालावयवैरहोरात्रादिभिः । गुणा भावविकाराः । परिणामो विपरिणामः । अव्यक्तमस्तित्वविकारशून्यम् । नित्यं सर्वदैकरूपं, ह्रासवृद्धिरहितमित्यर्थः । अव्ययमपक्षयशून्यम् । सर्वत्र हेतुः-कारणमिति॥१९॥

भाव प्रकाशिका

न तस्य० इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है कि प्रकृति का लय नहीं होता है । **कालावयवैः अर्थात्** दिन-रात इत्यादि के द्वारा । **परिणामः** अर्थात् विकार । अव्यक्त का अस्तित्व विकार से रहित है । नित्य अर्थात् सदा एक रूप रहने वाली, ह्रास और वृद्धि से रहित । अपक्षय से रहित, वह सबों का कारण है ॥१९॥

न यत्र वाचो न मनो न सत्त्वं तमो रजो वा महदादयोऽमी ।
न प्राणबुद्धीन्द्रियदेवता वा न संनिवेशः खलु लोककल्पः ॥२०॥

अन्वयः— यत्र वाचो न, मनो न सत्त्वं रजः तमः अमी महादादयो वा न, प्राणबुद्धि इन्द्रियदेवता वा न, लोककल्पः सन्निवेशो न ॥२०॥

अनुवाद— उस समय प्रकृति में स्थूल अथवा सूक्ष्म रूप से वाणी, मन, सत्त्वगुण रजोगुण, तमोगुण महत् तत्त्व आदि विकार, प्राण, बुद्धि, इन्द्रियाँ उनके देवता आदि कुछ नहीं रहते हैं । सृष्टि के समय रहने वाले लोकों की कल्पना और उनकी स्थिति नहीं रहती है ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

किंच, वागादिगोचरस्य सविशेषस्य विकारा भवन्ति, इदं तु न तथेत्याह-न यत्रेति द्वाभ्याम् । लोककल्पो लोकरूपाः संनिवेशो रचनाविशेषो नास्ति ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

न यत्र० इत्यादि दो श्लोकों से बतलाया गया है कि विकार तो उन्हीं वस्तुओं में होते है जो वाणी आदि के विषय होती हैं । तथा विशेषण से युक्त होती है किन्तु अव्यक्त प्रकृति तो वैसी है नहीं लोक रूप सन्निवेश अर्थात् रचना विशेष भी प्रकृति में नहीं हैं ॥२०॥

न स्वप्नजाग्रन्न च तत्सुषुप्तं न खं जलं भूरनिलोऽग्निरर्कः ।
संसुप्तवच्छून्यवदप्रतर्क्यं तन्मूलभूतं पदमामनन्ति ॥२१॥

अन्वयः— न स्वप्न जाग्रत् न च तत् सुषुप्तं, न खं, जलं, भूः अनिलः अग्निः अर्कः संसुप्तवत् शून्यवत् अप्रतर्क्यं, तन्मूलभूतं पदम् आमनन्ति ॥२१॥

अनुवाद— उस प्रलय में स्वप्न, जाग्रत् तथा सुषप्ति ये तीनों अवस्थाएँ नहीं रहती है, उस समय सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण ये तीन गुण भी नहीं रहते हैं महत् तत्त्व आदि भी नहीं रहते हैं । प्राण, बुद्धि, इन्द्रियाँ तथा इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता भी नहीं रहते हैं । सृष्टि के समय में जो लोक रहते हैं वे तथा उन लोकों की कल्पना भी नहीं रहती है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

स्वप्नजाग्रत्स्वप्नजागरावस्थायुक्तम्। संसुप्तवदिन्द्रियाभावात्। शून्यसादृश्ये हेतुः-अप्रतर्क्यम्। न पुनः शून्यमेवेत्याह-तदति।।२१।।

भाव प्रकाशिका

स्वप्न जाग्रत से युक्त अच्छी तरह से सोए हुए के समान इन्द्रिय आदि का प्रलय काल में अभाव रहता है। शून्य के समान होने का कारण प्रलय काल अप्रतर्क्य होता है । वह काल शून्य भी नहीं है ।।२१।।

लयः प्राकृतिको ह्येष पुरुषाव्यक्तयोर्यदा । शक्तयः संप्रलीयन्ते विवशाः कालविद्रुताः ।।२२।।

अन्वयः— एष हि प्राकृतिको लयः यदा पुरुषाव्यक्तयोः कालविद्रुताः शक्तयः विवशाः प्रविलीयन्ते ।।२२।।

अनुवाद— यही प्राकृतिक लय है, इस समय काल के द्वारा प्रेरित होकर प्रकृति और पुरुष की शक्तियाँ क्षीण हो जाती है और विवश होकर अपने मूल स्वरूप में मिल जाती हैं ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-लय इति । शक्तयः सत्त्वादयः ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

लयः इत्यादि श्लोक से प्राकृतिक लय वर्णन का उपसंहार करते हैं । **शक्तयः** अर्थात् सत्त्वादि गुण ।।२२।।

बुद्धीन्द्रियार्थरूपेण ज्ञानं भाति तदाश्रयम् । दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामाद्यन्तवदवस्तु यत् ।।२३।।

अन्वयः— बुद्धीन्द्रियादि रूपेण तदाश्रयम् ज्ञानम् भाति दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्याम् आद्यन्तवत् यत् अवस्तु ।।२३।।

अनुवाद— अब इस श्लोक से आत्यन्तिक लय का वर्णन किया जाता है, बुद्धि, इन्द्रिय और उनके विषयों के रूप में उनका अधिष्ठान, ज्ञान, स्वरूप वस्तु ही भासित हो रहा है । वे सब के सब आदि और अन्त से युक्त होते हैं । आदि और अन्तवान् होने के कारण वे सब मिथ्या हैं ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

आत्यन्तिकं लयमाह-बुद्धीन्द्रियेति द्वादशभिः । आत्यन्तिकलयो मोक्षः स च ब्रह्मज्ञानेन सर्वप्रपञ्चलयात्मकः । न च प्रपञ्चस्यात्मवत्सत्यत्वे लयः संभवतीति ज्ञानरूपाद्ब्रह्मणः पृथग्भूतस्य तस्यासत्त्वमुपपादयति-बुद्धिश्चेन्द्रियाणि चार्थाश्चेत्येवं ग्राहककरणग्राह्यरूपेण तेषामाश्रयभूतं ज्ञानमेव भाति न पृथक् । तत्र हेतुमाह-दृश्यत्वाव्यतिरेकाभ्यामिति । अतो यदाद्यन्तवत्तदवस्तु। अत्रैवं प्रयोगः-विमतं सन्न भवति । दृश्यत्वात् कारणव्यतिरेकादाद्यन्तवत्त्वाच्च, रज्जुसर्पादिवदिति ।।२३।।

भाव प्रकाशिका

अब आत्यन्तिक लय मोक्ष का वर्णन बुद्धीन्द्रिय आदि बारह श्लोकों से मोक्ष को कहते हैं । मोक्ष ब्रह्म का जानने से ही होता है । उस सम्पूर्ण प्रपञ्च का लय हो जाता है । यदि प्रपञ्च आत्मा के समान सत्य हो जाय तो फिर उसका लय नहीं हो सकता है । ब्रह्म ज्ञान रूवरूप हैं उनसे पृथक् होने के कारण प्रपञ्च मिथ्या है । ग्राहिका बुद्धि, उन सबों का साधकतम इन्द्रियाँ हैं तथा इन्द्रियों के आश्रयभूत ज्ञान ही प्रतीत होता है, उससे भिन्न नहीं । उसका कारण है कि वे सब है, दृश्य से भिन्न नहीं हैं । अतएव जो आद्यन्तवान होता है वह अवस्तु होता है । यहाँ इस प्रकार से अनुमान अभिप्रेत है । विवादास्पद् जगत् सत्य नहीं है, क्योंकि वह दृश्य है । कारण तत्त्व से भिन्न तथा आद्यन्तवान् होने के कारण रस्सी में प्रतीत होने वाले सर्प के समान ।।२३।।

दीपश्चक्षुश्च रूपं च ज्योतिषो न पृथग्भवेत् । एवं धीः खानि मात्राश्च न स्युरन्यतमादृतात् ।।२४।।

अन्वयः— दीपः चक्षुः च रूपं च ज्योतिषः पृथक् न भवेत् । एवं धीः खानि मात्राश्च अन्यतमाद् ऋतात् पृथक न भवेयुः ।।२४।।

अनुवाद— दीपक, चक्षु, और रूप ये तीनों तेज से भिन्न नहीं है । उसी तरह बुद्धि, इन्द्रियाँ तथा तन्मात्राएँ एक मात्र परमार्थ ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

तत्राव्यतिरेकं दृष्टान्तेन प्रपञ्चयति-दीप इति । दीपचक्षुरूपाणां तेजोविशेषाणां तेजसो यथा न व्यतिरेकस्तथा धीः कर्त्री खानि करणानि मात्रा विषयाः ऋताद्ब्रह्मणः पृथक् न स्युर्ब्रह्मकार्यत्वात् । नन्वेंव कार्यकारणयोरभेदे कार्यासत्त्वे कारणस्याप्यसत्त्वं प्रसज्जेत तत्राह-अन्यतमादिति । कार्यादत्यन्तव्यतिरिक्ताद्ब्रह्मणः । प्रपञ्चाद्ब्रह्मणोऽस्ति व्यतिरेकः, प्रपञ्चस्य तु ततो नास्ति व्यतिरेक इत्यर्थः ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

बुद्धि इन्द्रियाँ और तन्मात्राएँ ये सत्यभूत ब्रह्म से पृथक् नहीं है, इस बात को दृष्टान्त के द्वारा दिखाते हैं दीपक, चक्षु और रूप ये तीनों जैसे तेज विशेष होने के कारण तेज से अलग नहीं है, उसी तरह से कर्त्रीधी करण (साधकतम्) इन्द्रियाँ, परमार्थब्रह्म से पृथक् नहीं है, क्योंकि ये ब्रह्म के कार्य है, यहाँ पर प्रश्न होता है कार्य तथा कारण में अभेद मानने पर तो कार्य के असत्य होने पर कारण ब्रह्म के भी असत्य होने का प्रसङ्ग होगा । इस पर शुकदेवजी ने कहा- **अन्यतमात् इत्यादि** ब्रह्म कार्य भूत प्रपञ्च से अत्यन्त भिन्न हैं । अतएव कार्य प्रपञ्च से ब्रह्म अत्यन्त भिन्न है किन्तु ब्रह्म से प्रपञ्च भिन्न नहीं है ॥२४॥

बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति चोच्यते । मायामात्रमिदं राजन्नानात्वं प्रत्यगात्मनि ॥२५॥

अन्वयः— राजन् बुद्धेः जागरणं, स्वप्नः सुषुप्तिः इति च उच्यते, इदं मायामात्रं नानात्वं प्रत्यगात्मनि ॥२५॥

अनुवाद— जागरण, स्वप्न और सुषुप्ति बुद्धि के ही होते हैं । राजन् **इदं मायामात्रम्** । बुद्धि की अवस्थाओं के ही कारण आत्मा में, विश्व, तैजस एवं प्राज्ञ नामक भेद तथा नानात्व की प्रतीति होती है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

यदा तु बुद्धेरसत्त्वं तदा तदवस्थानां सुतरामसत्त्वमित्याशयेनाह-बुद्धेरिति । ननु विश्वतैजसप्राज्ञानामेता अवस्था न बुद्धेरित्याशङ्क्याह-मायामात्रमिति । इदं विश्वतैजसप्राज्ञरूपम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

जब बुद्धि ही असत्य है तो उसकी अवस्थाएँ भी असत्य ही है, इसी बात को **बुद्धेः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । प्रश्न होता है कि विश्व तैजस एवं प्राज्ञ अवस्थाएँ भी बुद्धि की अवस्थाओं के कारण होने से असत्य ही हैं ॥२५॥

यथा जलधरा व्योम्नि भवन्ति न भवन्ति च । ब्रह्मणीदं तथा विश्वमवयव्युदयाप्ययात् ॥२६॥

अन्वयः— यथा जलधराः व्याम्नि भवन्ति न भवन्ति च तथा ब्रह्मणीदं विश्वम् अवयवी उदयाप्ययात् ॥२६॥

अनुवाद— जिस तरह आकाश में मेघ कभी रहते हैं और कभी नही रहते हैं । उसी तरह अवयवों का समूह भूत अवयवी जगत् कभी ब्रह्म में रहता है और कभी नहीं रहता है । क्योंकि इस जगत् की उत्पत्ति और विनाश होते रहते हैं ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

आद्यन्तवत्त्वादित्यस्य हेतोरसिद्धिमाशङ्क्य सावयवत्वेन साधयति-यथेति । अवयवीति । यत्सावयवं तदाद्यन्तवद्घटादिवदित्यर्थः । अत उदयाप्ययादाद्यन्तवत्त्वाद्विश्वं सन्न भवतीत्यर्थः । यद्वा, पृथगेवागमापायित्वाद्विश्वं मिथ्या । ब्रह्म तु

तदवधित्वात्सत्यमित्यनेन साध्यते । दृष्टान्तस्तु पूर्वोक्त एव यथा । जलधरा व्योम्नीति दृष्टान्तस्त्वागमापायितदवधित्वमात्रे, न तु मित्यात्वे ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

आद्यन्तवत्त्व हेतु की असिद्धि की शङ्का से सावयवत्व हेतु के द्वारा जगत् के असत्व की सिद्धि इस श्लोक में किया गया है । अवयवी कहकर बतलाया गया है कि जगत् अवयवों का समूह हैं । उसके द्वारा यह अनुमान अभिप्रेत है । जो अवयवों वाला होता है । वह आदि एवं अन्तवाला होता है । घट आदि के समान । अतएव उत्पत्ति एवं विनाश वाला यह विश्व सत् नहीं है । अथवा अलग से ही आगमापायित्व हेतु के द्वारा जगत् के मिथ्यात्व को सिद्ध किया गया है । ब्रह्म तो इसलिए सत्य है कि वह जगत् की अवधि है । यहाँ भी दृष्टान्त पूर्वोक्त ही है । यथा जलधरा व्योम्नि यह दृष्टान्त तो आगमापायी तथा तदवधित्व मात्र में है । मिथ्यात्व में यह दृष्टान्त नहीं है ।।२६।।

सत्यं ह्यवयवः प्रोक्तः सर्वावयविनामिह । विनार्थेन प्रतीयेरन्पटस्येवाङ्ग तन्तवः ।।२७।।

अन्वयः— हे अङ्ग इह सर्वावयविनाम् अवयवः हि सत्यं प्रोक्तः, पटस्य तन्तवः इव अर्थेन विना प्रतीयेरन् ।।२७।।

अनुवाद— हे परीक्षित् जगत् के व्यवहार जितने भी अवयवी पदार्थ हैं उनके नहीं होने पर भी उनके भिन्न-भिन्न अवयव प्रतीत ही होते हैं, जैसे वस्त्र रूपी अवयवी के नहीं होने पर भी उसके कारणभूत सूत का अस्तित्व माना ही जाता है । इसी तरह कार्यरूप जगत् के अभाव में भी इस जगत् के कारण भूत अवयव को माना ही जाता है ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

'अन्यतमादृतात्' इति प्रतिज्ञातकारणस्य सत्यत्वमुपपादयति–सत्यमिति । अवयवः कारणं प्रोक्तः–'वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्' इत्यादिश्रुतिभिः । अत्र युक्तिमपि दर्शयति–विनेति । अङ्ग हे राजन्, हि यस्मादर्थेनावयविना पृथगेवावयवाः प्रतीयेरन् । यथा पटस्यावयवास्तन्तवः पटात् पृथक्प्रतीयन्ते तद्वदिति ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

ऊपर अन्यतमात् ऋतात् अर्थात् केवल सत्य ब्रह्म को छोड़कर प्रतिज्ञात कारण का सत्यत्व प्रतिपादित करते हैं। **'वाचारम्भणं विकारो नामधेयम्' इत्यादि** श्रुतियों के द्वारा अवयव को ही कारण कहा गया है । अपने इस कथन में **विनार्थेन० इत्यादि** के द्वारा युक्ति भी प्रदर्शित की गयी है । हे राजन् ! चूकि कार्य भूत अवयवी के बिना भी अवयवों की प्रतीति होती है । जैसे वस्त्र के बिना भी उसके अवयवभूत सूत्र की प्रतीति होती है उसी तरह ।।२७।।

यत्सामान्यविशेषाभ्यामुपलभ्येत स भ्रमः । अन्योन्यापाश्रयात्सर्वमाद्यन्तवदवस्तु यत् ।।२८।।

अन्वयः— यत् सामान्य विशेषाभ्याम् उपलभ्येत स भ्रमः अन्योन्यापाश्रयात् यत् अवस्तु सर्वम् आद्यन्तवत् ।।२८।।

अनुवाद— ब्रह्म में कारण-कार्यभाव भी वास्तविक नहीं है, क्योंकि कारण तो सामान्य वस्तु है और कार्य विशेष वस्तु है । इस प्रकार का प्रतीत होने वाला भेद भी भ्रम है । इसका कारण यह है कि सामान्य और विशेष भाव सापेक्षिक है सामान्य के बिना विशेष की प्रतीति नहीं होती है और विशेष के बिना सामान्य की प्रतीति नहीं होती है । इस तरह दोनों अन्योन्याश्रित हैं । कार्य एवं कारण भाव का भी आदि और अन्त देखा जाता है अतएव वह भी स्वाप्न भेद के समान अवस्तु है ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

ननु कार्याभावे कारणत्वं ब्रह्मणः कुतो घटेत, सत्यम्, तदपि नातीव सत्यमित्याह–यदिति । सामान्यं कारणं, विशेषः कार्यं, तद्रूपेणान्योन्यापाश्रयात्परस्परापेक्षत्वेन निरूपणासहत्वादित्यर्थः । अतः कारणत्वमवधित्वं व्यापकत्वमित्यादिकमपि यत्परापेक्षत्वादाद्यन्तवत्तत्सर्वमवस्त्वित्यर्थः । यद्वा, तत्रैव हेत्वन्तरमेतत् । यदुपलभ्येत स भ्रमः सामान्यविशेषरूपत्वात्स्वप्नवत्।

'अन्योन्यापाश्रयात्' इतीदमपि हेत्वन्तरं गुणगुणिविशेषणविशेष्यव्याप्यव्यापकत्वादिरूपेण परस्पराधीनसिद्धत्वात् । तथाभूतस्वप्नवदिति निगमनम् । अतो यदाद्यन्तवत्तत्सर्वमवस्त्विति ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि कार्य जगत् के अभाव में कारणभूत ब्रह्म की सत्यता कैसे सिद्ध हो सकती है ? अतएव कारणत्व, अवधित्व तथा व्यापकत्व आदि जो अपने से भिन्न की अपेक्षा रखते हैं । वे सबके सब आद्यन्तवान् होने के कारण असत्य है । अथवा उसमें ये हेत्वन्तर हैं । जैसे जिसकी उपलब्धि होती है वह भ्रम है, क्योंकि वह सामान्य विशेष रूप है, स्वप्न के समान । अन्योन्यापाश्रयात् यह भी एक अलग से हेतु है । क्योंकि गुणगुण गुणी, विशेष विशेष्य, तथा व्याप्यव्यापक आदि रूप से उनकी परस्पराधीन सिद्धि होती है । स्वप्न के समान यह निगमन है । अतएव जो-जो आदि एवं अन्त वाला होता है वह सबके सब अवस्तु है ।।२८।।

विकारः ख्यायमानोऽपि प्रत्यगात्मानमन्तरा । न निरूप्योऽस्त्यणुरपि स्याच्चेच्चित्सम आत्मवत् ।।२९।।

अन्वयः— ख्यायमानोऽपि विकारः प्रत्यगात्मानम् अन्तरा अणुः अपि निरूप्यो न स्यात् चेत् चित् सम आत्मवत्।।२९।।

अनुवाद— यह प्रपञ्च रूप विकार स्वाप्न विकार के समान ही प्रतीत हो रहा है । वह अपने अधिष्ठान ब्रह्मरूप आत्मा से भिन्न नहीं हो सकता है । कोई चाहकर भी अणुमात्र को भी आत्मा से भिन्न नहीं सिद्धकर सकता है । यदि इसकी आत्मा से भिन्न सत्ता मानी भी जाय तो फिर यह चिद्रूप आत्मा के समान स्वयं प्रकाश होगा । ऐसी स्थिति में यह आत्मा के ही समान एक रूप सिद्ध होगा ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

तदेवमनेकैर्हेतुभिः प्रपञ्चस्यासत्त्वं साधितम् । तत्र शङ्का-ननु प्रपञ्चस्यापि प्रकाशमानत्वादात्मवत्सत्त्वं किं न स्यादिति तत्राह-विकार इति । ख्यायमानः प्रकाशमानोऽपि विकारः प्रपञ्चः प्रत्यगात्मप्रकाशं विनाऽणुमात्रोऽपि न निरूप्योऽस्ति । तं विना निरूप्यः चेत्तर्हि सोऽपि चित्समः स्याच्चिद्रूपेणात्मना समः स्वप्रकाशो भवेत् । तथा च सति सोऽप्यात्मवत्स्यात् । एकरूपः स्यादित्यर्थः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

इस तरह अनेक हेतुओं के द्वारा प्रपञ्च के असत्व की सिद्धि की गयी । यहाँ शङ्का होती है कि चूकि प्रपञ्च भी प्रकाशित होता है अतएव प्रपञ्च का भी आत्मा के ही समान सत्यत्व क्यों न हो । इस पर **विकारः ख्यायमानोऽपि० इत्यादि** श्लोक कहते हैं । यद्यपि विकारभूत प्रपञ्च प्रतीत होता है फिर भी यह प्रपञ्च अणुमात्र भी आत्मा के प्रकाश के बिना निरूपित नहीं किया जा सकता है । यदि आत्मा के बिना भी प्रपञ्च निरूपण किया जाय तो भी इसके चिद्रूप आत्मा के ही समान प्रकाशित होने का प्रसङ्ग होगा । ऐसी स्थिति में यह आत्मा के ही समान स्वयम्प्रकाश होगा और एकरूप होने लगेगा ।।२९।।

नहि सत्यस्य नानात्वमविद्वान्यदि मन्यते । नानात्वं छिद्रयोर्यद्वज्ज्योतिषोर्वातयोरिव ।।३०।।

अन्वयः— सत्यस्य नानात्वम् न अविद्वान यदि मन्यते नानात्वं छिद्रयोः यद्वत् ज्योतिषोः वातयोः अपि ।।३०।।

अनुवाद— यह निश्चय है कि सत्यवस्तु में नानात्व नहीं होता है, यदि कोई अज्ञानी सत्यवस्तु में भी नानात्व को मानता है तो उसका यह मानना आकाशस्थित सूर्य और घट आदि में प्रतिबिम्बित सूर्य का, महाकाश और घटाकाश का एवं बाह्य वायु तथा आन्तर वायु में भेद मानने के समान है ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

कुत इत्यत आह-नहीति । ननु सत्यस्याप्यात्मनो जीवब्रह्मरूपं नानात्वमस्त्येव तत्राह-यद्येवं नानात्वं मन्यते तर्ह्यविद्वान्।

कथं तर्हि तयोर्भेदव्यवहार:, उपाधिकृत इत्याह-नानात्वमिति। तत्र छिद्रयोर्घटाकाशमहाकाशयोरिवेति परिच्छेदापरिच्छेदे दृष्टान्त:। ज्योतिषोराकाशजलस्थयो: सूर्ययोरिवेत्युपाधिकृतविकारसदसद्भावे। वातयोर्बाह्यशरीरस्थवाय्वोरिवेति क्रियाभेदे ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि ऐसा कैसे है ? तो इसके उत्तर में शुकदेव जी **नहिनित्यस्य० इत्यादि** श्लोक पढ़ते हैं। यदि कहें कि यद्यपि ब्रह्म सत्य है फिर भी उसमें जीव तथा ब्रह्म रूप नानात्व है। इस पर कहते हैं यदि इस प्रकार का नानात्व मानो तो तुम अज्ञानी हो। तो प्रश्न होता है कि तो फिर जीव और ब्रह्म में भेद का व्यवहार कैसे होता है ? तो इसका उत्तर है कि वह भेद तो उपाधिजन्य है। जिस तरह घटाकाश और महाकाश दोनों आकाशत्वेन, आकाशस्थित सूर्य और जल में प्रतिबिम्बित सूर्य सूर्यत्वेन, और बाह्य वायु और आन्तर वायु वायुत्वेन अभिन्न है: उसी तरह जीव और ब्रह्म दोनों आत्मत्वेन एक हैं, उनमें भेद नहीं है, भेद तो अविद्या तथा तद्राहित्य को लेकर प्रतीत होता है ॥३०॥

यथा हिरण्यं बहुधा समीयते नृभि: क्रियाभिर्व्यवहारवर्त्मसु।
एवं वचोभिर्भगवानधोक्षजो व्याख्यायते लौकिकवैदिकैर्जनै: ॥३१॥

अन्वय:— यथा नृभि: क्रियाभि: व्यवहार वर्त्मसु हिरण्यं बहुधा समीयते, एवं लौकिक वैदिकै वचोभि: जनै: भवान् अधोक्षजो बहुधा व्याख्यायते ॥३१॥

अनुवाद— जैसे लोग एक ही सुवर्ण को गलाकर अनेक रूपों वाला बना लेते हैं। उसी तरह व्यवहार निपुण लौकिक एवं वैदिक पुरुष वाणी के द्वारा इन्द्रियातीत आत्मस्वरूप श्रीभगवान् का भी अनेक रूपों में वर्णन करते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मण एवं प्रपञ्चव्यवहारालम्बनत्वं दृष्टान्तेन स्पष्टयति-यथेति। क्रियाभिस्तत्तद्रचनाभेदैर्बहुधा कटककुण्डलादिरूपेण। लौकिकवैदिकैर्वचोभि:। जनैरहङ्कारोपहितै: ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

दृष्टान्त के द्वारा स्पष्ट करते हैं कि ब्रह्म ही प्रपञ्च व्यवहार का आधार है। क्रियाभि: अर्थात् विभिन्न रचना विशेष के द्वारा सुवर्ण कटक कुण्डल तथा हार आदि रूप से व्यवहार होता है उसी तरह से अहङ्कारोपहित एवं व्यवहार निपुण पुरुष वैदिक एवं लौकिक वचनों के माध्यम से श्रीभगवान् का वर्णन अनेक प्रकार से करते हैं ॥३१॥

यथा घनोऽर्कप्रभवोऽर्कदर्शितो ह्यर्कांशभूतस्य च चक्षुषस्तम:।
एवं त्वहं ब्रह्मगुणस्तदीक्षितो ब्रह्मांशकस्यात्मन आत्मबन्धन: ॥३२॥

अन्वय:— यथा अर्कप्रभव: घन: अर्कदर्शित: हि अर्कांश भूतस्य चक्षुष: तम: एवं तु अहं ब्रह्मगुण: तदीक्षित: ब्रह्मांशकस्य आत्मन: आत्मबन्धन: ॥३२॥

अनुवाद— जिस तरह मेघ सूर्य से उत्पन्न होता है तथा सूर्य से ही प्रकाशित भी होता है, किन्तु वही सूर्य के अंशभूत नेत्रों के लिए सूर्य के दर्शन में बाधक बन जाता है इसी तरह अहङ्कार ब्रह्म से ही उत्पन्न होता है और ब्रह्म से ही प्रकाशित होता है फिर भी ब्रह्म के अंशभूत जीव के लिए यह ब्रह्म स्वरूप के साक्षात्कार में बाधक बन जाता है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

नन्वहंकारस्य कथं ब्रह्मस्वरूपावरणेन भेदव्यवहारहेतुत्वम्, तस्य स्वकारणभूतब्रह्मावरकत्वासंभवादावरणे वा स्वस्यापि प्रकाशासंभवादित्याशङ्क्य सदृष्टान्तमाह-यथेति। अर्करश्मय एवं मेघरूपेण परिणता वर्षन्ति। 'अग्नौ प्रास्ताहुति: सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।

आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।' इत्यादिवचनात्तस्मादर्कप्रभवः, अर्केणैव दर्शितः प्रकाशितश्च तमःस्वरूपभूतार्कदर्शनप्रतिबन्धको भवति । अहमहंकारो ब्रह्मगुणो ब्रह्मकार्यभूतस्तदीक्षितस्तेनैव प्रकाशितश्चात्मनो जीवस्यात्मबन्धनो ब्रह्मस्वरूपदर्शनप्रतिबन्धको भवति ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि अहङ्कार ब्रह्म के स्वरूप को आवृत करके भेद व्यवहार का कारण कैसे बनता है ? क्योंकि अहङ्कार तो ब्रह्म का कार्य है, वह अपने कारणभूत ब्रह्म के स्वरूप को कैसे आच्छादित कर सकता है ? यदि वह ब्रह्म के स्वरूप का आच्छादक बन भी जाय तो फिर उसका स्वयं प्रकाश नहीं होगा इसी प्रकार से शङ्का करके दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहते हैं- सूर्य की किरणें ही मेघ के रूप में परिणत होती हैं । कहा गया है कि अग्नि में अच्छी तरह से डाली गयी आहुति सूर्यादि देवताओं तक पहुँचती है । सूर्य से ही वर्षा होती है, वृष्टि से अन्न पैदा होता है, अन्न से प्रजाएँ आप्यायित होती हैं । इस वाक्य के अनुसार सूर्य से ही मेघ की उत्पत्ति होती है। मेघ सूर्य से ही प्रकाशित भी होते हैं । वही मेघ अन्धकार रूप होकर सूर्य के दर्शन का प्रतिबन्धक भी होता है। इसी तरह अहङ्कार ब्रह्म का कार्य होता है और वे ब्रह्म के ही द्वारा प्रकाशित भी होते हैं तथा वही अहङ्कार आत्मा के स्वरूप के दर्शन का प्रतिबन्धक भी होता है ॥३२॥

घनो यदाऽर्कप्रभवो विदीर्यते चक्षुः स्वरूपं रविमीक्षते तदा ।
यदा ह्यहङ्कार उपाधिरात्मनो जिज्ञासया नश्यति तर्ह्यनुस्मरेत् ॥३३॥

अन्वयः— यदा अर्कप्रभवः घनः विदीर्यते तदा चक्षुः स्वरूपं रविमीक्षते । यदा ही आत्मनः जिज्ञासया अहङ्कारः उपाधिः नश्यति तर्हि अनुस्मरेत् ॥३३॥

अनुवाद— जब सूर्य से उत्पन्न होने वाला मेघ विदीर्ण हो जाता है तब चक्षु अपने स्वरूप भूत सूर्य का दर्शन करने में समर्थ हो जाता है । उसी तरह जब आत्मा की उपाधि अहङ्कार नष्ट हो जाता है तो उसे अपने स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

अत एवाहङ्कारनाशे स्वरूपदर्शनं भवतीति तेनैव दृष्टान्तेनाह-घन इति । आत्मन उपाधिः । जिज्ञासया विचारेण । तर्हि तदाऽनुस्मरेत् । ब्रह्माहमिति पश्यतीत्यर्थः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

अतएव अहङ्कार का नाश हो जाने पर जीव अपने स्वरूप का दर्शन कर लेता है इस बात को मेघ के दृष्टान्त से ही **घनोयदार्क० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । आत्म की उपाधि है अहङ्कार जिज्ञासया अर्थात् विचार द्वारा । उस समय स्वरूप साक्षात्कार कर लेता है । अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ, इस तरह अपने को जान लेता है ॥३३॥

यदैवमेतेन विवेकहेतिना मायामयाहङ्करणात्मबन्धनम् ।
छित्त्वाऽच्युतात्मानुभवोऽवतिष्ठते तमाहुरात्यन्तिकमङ्ग संप्लवम् ॥३४॥

अन्वयः— अङ्ग यदा एवम् एतेन विवेक हेतिना मायामयाहङ्करणात्मबन्धनम् छित्त्वाऽच्युतात्माऽनुभवोऽवतिष्ठते तम् आत्यन्तिकं संप्लवम् आहुः ॥३४॥

अनुवाद— प्रिय परीक्षित् जब मनुष्य अपने ज्ञान रूप तीक्ष्ण खड्ग से मायामय इस अहङ्कार के बन्धन को काट देता है तब अपने एक रस आत्मा के स्वरूप के साक्षात्कार में स्थित हो जाता है । आत्मा की यह मायामुक्त वास्तविक स्थिति ही आत्यन्तिक प्रलय कहलाता है ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

सोऽयमात्यन्तिकः प्रलय इत्युपसंहरति-यदैवमिति । विवेकहेतिना ज्ञानशस्त्रेण । अहङ्करणमेवात्मबन्धनम् । अच्युतं परिपूर्णमात्मानमनुभवतीति तथा ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

यदैवम्० इत्यादि श्लोक से वही आत्यन्तिक प्रलय कहलाता है इस तरह से प्रलय वर्णन का उपसंहार करते हैं । विवेक हेतिना ज्ञान रूप खड्ग से । अहङ्कार ही आत्मा का बन्धन है । **अच्युतम्** परिपूर्ण आत्मा का अनुभव करता है ।।३४।।

नित्यदा सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां परंतप । उत्पत्तिप्रलयावेके सूक्ष्मज्ञाः संप्रचक्षते ।।३५।।

अन्वयः— हे परंतप ! एके सूक्ष्मज्ञाः संप्रचक्षते ब्रह्मादीनां सर्वभूतानां नित्यदा उत्पत्तिप्रलयौ ।।३५।।

अनुवाद— हे शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले एक प्रकार के सूक्ष्मदर्शी पुरुष कहते हैं कि ब्रह्म से लेकर एक तिनके पर्यन्त जितने भी प्राणी है उनकी नित्य ही उत्पत्ति और विनाश होते हैं, इसी को नित्य प्रलय कहते हैं ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

नित्यप्रलयमाह-नित्यदेति ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

नित्यदा इत्यादि श्लोक से नित्य प्रलय कहते हैं ।।३५।।

कालस्रोतोजवेनाशु ह्रियमाणस्य नित्यदा । परिणामिनामवस्थास्ता जन्मप्रलयहेतवः ।।३६।।

अन्वयः— परिणामिनाम् कालस्रोतो जवेन आशुह्रियमाणस्य नित्यदा ताः अवस्थाः जन्मप्रलयहेतवः ।।३६।।

अनुवाद— संसार के सभी परिणामी नदी प्रवाह, दीप ज्वाला आदि प्रतिक्षण बदलते रहते हैं । इनकी बदलती अवस्था को देखकर यही निश्चय होता है कि ब्रह्माजी से लेकर एक तृण पर्यन्त सभी पदार्थों को काल रूप वेग के प्रवाह में शीघ्रता से प्रवाहित हो रहे हैं । अतएव उनकी क्षण क्षण में उत्पत्ति एवं प्रलय होते हैं । इसी को नित्य प्रलय कहते हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

कुत इत्यत आह-कालेति । परिणामिनां नदीप्रवाहप्रदीपज्वालादीपज्वालादीनां या उच्चनीचावस्थास्ताः कालरूपस्रोतसो वेगेनाशु ह्रियमाणस्य देहादेर्दृश्यमानास्ता एव नित्यदा जन्मप्रलयहेतवो भवन्ति । देहः प्रतिक्षणं प्रध्वंसी, प्रतिक्षणमवस्थाभेदास्पदत्वात्, प्रदीपादिवदित्यनुमानम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

कैसे यह नित्य प्रलय है तो इस पर **कालस्रोतः इत्यादि** श्लोक कहते हैं । जिनका परिणाम होता है उन नदी का प्रवाह तथा दीप की ज्वाला आदि की जो छोटी बड़ी अवस्थाएँ होती हैं, वे अवस्थाएँ काल के प्रवाह में प्रवाहित होते रहने वाले शरीर आदि को जो अवस्थाएँ दिखती हैं, वे ही नित्य जन्म और प्रलय के कारण हैं । यहाँ पर इस तरह अनुमान होता है शरीर का प्रत्येक क्षण प्रध्वंस होता है, क्योंकि उसकी प्रतिक्षण अवस्था बदलती रहती है । प्रदीप ज्वाला के समान ।।३६।।

अनाद्यन्तवताऽनेन कालेनेश्वरमूर्तिना । अवस्था नैव दृश्यन्ते वियति ज्योतिषामिव ।।३७।।

अन्वयः— अनेन अनाद्यन्तवता ईश्वरमूर्तिना कालेन वियति ज्योतिषामिव अवस्थाः नैव दृश्यन्ते ।।३७।।

अनुवाद— परमात्मा के स्वरूप भूत अनादि एवं अनन्त काल के कारण प्राणियों की अवस्थाएँ बदलती रहती हैं, किन्तु उनकी अवस्था का पता उसी तरह नहीं चलता है, जिस तरह प्रतिक्षण चलते रहने वाले आकाश के ताराओं की अवस्था का पता नहीं चलता है ।।३७।।

भावार्थ दीपिका

ननु यदि प्रति क्षणमवस्था भवन्ति तर्हि किं न दृश्यन्ते, अतो हेतुरसिद्ध इत्याशङ्क्याह-अनाद्यन्तवता कालेन जायमाना अवस्था नैव लक्ष्यन्ते । आकाशे गच्छतां ज्योतिषां चन्द्रादीनां गमनावस्थाविशेषा यथा नैव लक्ष्यन्ते तद्वत् । अतो यथा तेषां प्रदेशान्तरप्राप्त्या प्रतिक्षणं गत्यवस्थाः कल्प्यन्ते तद्वदत्रापि बाल्यतारुण्यादिदर्शनेन मध्यवर्तिन्योऽवस्थाः कल्प्यन्त इति न हेतुरसिद्ध इत्यर्थः ।।३७।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि यदि अवस्थाएँ प्रतिक्षण बदलती हैं तो उनका पता क्यों नहीं चलाता है, अतएव हेतु असिद्ध है । इस प्रकार की आशङ्का करके कहते हैं अनादि अनन्तकाल के द्वारा की जाने वाली अवस्था का पता उसी तरह नहीं चलता है, जिस तरह आकाश में चलते रहने वाले चन्द्रमा आदि की गति का पता नहीं चलती हैं । अतएव उन सबों के प्रदेशान्तर में स्थिति को देखकर उनकी गति की कल्पना की जाती है । उसी तरह यहाँ भी वाल्य तारुण्य आदि को देखकर उनकी बीच में होने वाली अवस्था की कल्पना की जाती है । अतएव असिद्ध हेतु नहीं है ।।३७।।

नित्यो नैमित्तिकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः । आत्यन्तिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी ।।३८।।

अन्वयः— नित्यः, नैमित्तिकः चैव प्राकृतिकः आत्यन्तिकः च लयः कथितः इदृशी कालस्य गतिः ।।३८।।

अनुवाद— प्रलय चार प्रकार के कहे गये है, नित्य, नैमित्तिक प्राकृतिक और आत्यन्तिक इसी तरह की काल की सूक्ष्मगति होती है ।।३८।।

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-नित्य इति ।।३८।।

भाव प्रकाशिका

उपसंहार करते है **नित्य० इत्यादि** श्लोक से ।।३८।।

एताः कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातुर्नारायणस्याखिलसत्त्वधाम्नः ।
लीलाकथास्ते कथिताः समासतः कार्त्स्न्येन नाजोऽप्यभिधातुमीशः ।।३९।।

अन्वयः— हे कुरुश्रेष्ठ जगद्विधातुः अखिलसत्त्वधाम्नः एताः लीलाः ते समासतः कथिताः कार्त्स्न्येन अजः अपि अभिधातुम् ईशः न ।।३९।।

अनुवाद— राजन् परीक्षित् सम्पूर्ण जगत् के स्रष्टा तथा समस्त प्राणियों एवं शक्तियों के आश्रय भगवान् नारायण की ये सभी कथाएँ तुमको मैंने संक्षेप में सुना दिया । भगवान् की समस्त लीलाओं का वर्णन तो ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते हैं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

पुराणार्थमुपसंहरति-एता इति । लीलाविषयाः कथा अजो ब्रह्मापि कार्त्स्न्येनाभिधातुं नेशः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

पुराण के अर्थ का उपसंहार करते हैं । लीला विषयक कथाओं को पूर्णरूप से तो ब्रह्माजी भी नहीं कह सकते हैं ।।३९।।

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नान्यः प्लवोभगवतः पुरुषोत्तमस्य ।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण पुंसो भवेद्विविधदुःखदवार्दितस्य ॥४०॥

अन्वयः— संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीषोः विविधदुख दवार्दितस्य पुंसः भगवतः पुरुषोत्तमस्य लीलाकथारसनिषेवणम् अन्तरेण अन्यः प्लवः न ॥४०॥

अनुवाद— जिसको पार करना अत्यन्त कठिन है ऐसे संसार सागर को पार करने के इच्छुक अनेक प्रकार के दुःख रूप दावानल से दग्ध हो रहे पुरुष के लिए पुरुषोत्तम भगवान् की लीला विषयक कथा के रस के सेवन को छोड़कर दूसरा कोई भी साधन नहीं है ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

ननु यदि साकल्येनाभिधातुं न शक्यन्ते तर्हि किं तदभिधानेन तत्राह-संसारेति । विविधं दुःखमेव दवो दावानलस्तेनार्दितस्य पीडितस्य उत्तितीर्षोः पुंसो भगवतो या लीलास्तासां कथास्तासां रसस्तन्निषेवणमन्तरेणान्यः प्लवस्तरणसाधनं न भवेत् । उपायान्तरासंभवात्तत्कथाश्रवणमेव यथाशक्ति निषेव्यमित्यर्थः ॥४०॥

भाव प्रकाशिका

यदि श्रीभगवान् की समस्त लीलाओं का वर्णन नहीं किया जा सकता है तो फिर उसका वर्णन करने से कौन सा लाभ है ? इस पर श्रीशुकदेवजी संसारसिन्धुः इत्यादि श्लोक कहते हैं । संसार के अनेक दुःख रूपी दावाग्नि से संतप्त संसार सागर को पार करने के इच्छुक पुरुषों को श्रीभगवान् की लीला कथा के रस का अपनी शक्ति के अनुसार सेवन करना चाहिए ॥४०॥

पुराणसंहितामेतामृषिर्नारायणोऽव्ययः । नारदाय पुरा प्राह कृष्णद्वैपायनाय सः ॥४१॥

अन्वयः— एतां पुराण संहिताम् अत्यय: नारायणः ऋषिः पुरा नारदाय प्राह सः कृष्णद्वैपायनाय ॥४१॥

अनुवाद— इस पुराण संहिता का प्राचीन काल में नारायण ऋषि ने नारदजी को उपदेश दिया और नारदजी ने कृष्णद्वैपायन व्यासजी को इसका उपदेश दिया ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

श्रोतुरादरदार्ढ्याय संप्रदायप्रवृत्तिमाह-पुराणसंहितामिति त्रिभिः ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

श्रोताओं में श्रीमद्भागवत के प्रति सुदृढ आदर के लिए सम्प्रदाय की प्रवृत्ति को पुराण संहिता में **ताम् इत्यादि** तीन श्लोक से बतलाया गया है ॥४१॥

स वै मह्यं महाराज भगवान्बादरायणः । इमां भागवतीं प्रीतः संहितां वेदसंमिताम् ॥४२॥

अन्वयः— हे महाराज ! सः भगवान् बादरायणः प्रीतः इमां वेदसंमिताम् भागवतीं संहिताम् मह्यम् ॥४२॥

अनुवाद— महाराज परीक्षित् वे महर्षि बादरायण प्रसन्न होकर वेद के तुल्य इस श्रीमद्भागवत संहिता का उपदेश मुझे दिए ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

स वै बादरायणः प्रीतः सन् मह्यमिमां संहितां प्राहेति पूर्वेणान्वयः ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

वे महर्षि बादरायण प्रसन्न होकर इस संहिता का उपदेश मुझे दिये ॥४२॥

एतां वक्ष्यत्यसौ सूत ऋषिभ्यो नैमिषालये । दीर्घसत्रे कुरुश्रेष्ठ संपृष्टः शौनकादिभिः ।।४३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

अन्वयः— हे कुरुश्रेष्ठ नैमिषालये शौनकादिभिः संपृष्टः दीर्घसत्र ऋषिभ्यः असौ सूत एतां वक्ष्यति ।।४३।।

अनुवाद— हे परीक्षित् ! नैमिषारण्य में शौनक आदि ऋषियों द्वारा पूछे जाने पर इस संहिता को यह सूत दीर्घकालिक सत्र के अवसर पर ऋषियों को सुनायेगा ।।४३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।४।।

भावार्थ दीपिका

असौ सूत इति पुरतः स्थितमङ्गुल्या निर्दिश्याह-नैमिषालये नैमिषारण्यस्थाने ।।४३।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

सामने बैठे हुए सूतजी को अङ्गुलि से निर्देश करके शुकदेवजी ने कहा नैमिषालये अर्थात् नैमिषारण्य स्थान में ।।४३।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुरण के बारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के चौथे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।४।।

पाँचवाँ अध्याय

श्रीशुकदेवजी का अन्तिम उपदेश

श्रीशुक उवाच

अत्रानुवर्ण्यतेऽभीक्ष्णं विश्वात्मा भगवान्हरिः । यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः ॥१॥

अन्वयः— अत्र विश्वात्मा भगवान् हरिः अभीक्ष्णं वर्ण्यते यस्य प्रसादतः ब्रह्मा क्रोधसमुद्भवः रुद्रः ॥१॥

श्रीशुकदेवजी ने कहा

अनुवाद— इस श्रीमद्भागवत महापुराण में बार-बार भगवान् श्रीहरि का वर्णन किया गया है। उन्हीं श्रीहरि की कृपा से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए तथा उनके क्रोध से रुद्र की उत्पत्ति हुई है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चमे तु समासेन परब्रह्मोपदेशतः । राज्ञस्तक्षकसंदंशान्मृत्युभीतिनिवारणम् ॥१॥ एतत्पुराणं शृण्वन्नभयं प्राप्नोतीत्यभिप्रेत्य पुराणार्थमनुस्मारयति–अत्रेति । अयं भावः–जगतः कर्ता ब्रह्मापि यस्य प्रसादजः । प्रसादोऽत्र रजोवृत्तिर्हर्षः । ततो जातत्वात्परतन्त्रः सर्वसंहर्ता रुद्रश्च यस्य क्रोधसंभवो न तु स्वतन्त्रः स विश्वस्यात्मा नियन्ता भगवानत्रानुवर्ण्यते । अत एवंभूतं भगवन्तं शृण्वतः कुतोऽन्यस्माद्भयशङ्केति ॥१॥

भाव प्रकाशिका

पाञ्चवें अध्याय में संक्षेप में ब्रह्मोपदेश करने के कारण राजा परीक्षित् के तक्षक के काटने से मेरी मृत्यु हो गयी इस भय को दूर किया गया है ॥१॥ इस पुराण को सुनने वाला व्यक्ति अभय हो जाता है। इसी अभिप्राय से इस

पुराण में वर्णित अर्थ को याद **अत्र० इत्यादि** श्लोक से दिलाते हैं। कहने का अभिप्राय है। कि जिनकी कृपा से जगत् के कर्ता ब्रह्माजी उत्पन्न हुए है। प्रसाद शब्द से रजोगुण की वृत्ति स्वरूप हर्ष को कहा गया है। उनके ही क्रोध से रुद्र की उत्पत्ति हुई। अतएव ब्रह्माजी तथा शङ्करजी श्रीभगवान् के परतन्त्र हैं। इस प्रकार के श्रीहरि का श्रवण कर लेने पर दूसरे किसी का कैसा भय ॥१॥

त्वं तु राजन्मरिष्येति पशुबुद्धिमिमां जहि। न जातः प्रागभूतोऽद्य देहवत्त्वं न नङ्क्ष्यसि ॥२॥

अन्वयः— राजन् त्वं मरिष्य इति इमां पशुबुद्धिं जहि, प्राक् न जातः अद्य अभूत् देहवत्त्वं न नंक्ष्यसि ॥२॥

अनुवाद— राजन् अब तुम पशुओं वाली इस अविवेक जन्य बुद्धि का परित्याग कर दो कि मैं मारूँगा। जैसे-पहले शरीर नहीं था, अब पैदा हुआ है और बाद में नष्ट हो जायेगा। इस तरह तुम पहले भी नहीं थे तुम्हरा जन्म हुआ है, तुम मर जाओगे ऐसी बात नहीं है ॥२॥

भावार्थ दीपिका

त्वं पुनः कृतार्थ एवेत्यनुस्मारयति-त्वं त्विति। पशुबुद्धिमविवेकम्। यस्मान्न नङ्क्ष्यसि। कुत इत्यत आह-न जात इति। यथा देहः प्रागभूत एवाद्य जातो नङ्क्ष्यति। नचैवं त्वं पूर्वं नाभूर्न चाद्य जातोऽस्यतो न नङ्क्ष्यसि ॥२॥

भाव प्रकाशिका

तुम कृत्यकृत्य हो गये हो इस बात की याद दिलाते हैं। पशुबुद्धि अर्थात् अविवेक क्योंकि तुम विनष्ट नहीं होओगे। क्योंकि पहले नहीं थे। जैसे शरीर पहले उत्पन्न हुआ वह विनष्ट जो जायेगा। तुम ऐसे नहीं हो। पहले तुम नहीं थे न तो आज उत्पन्न हुए हो अतएव तुम नहीं नष्ट होओगे ॥२॥

न भविष्यसि भूत्वा त्वं पुत्रपौत्रादिरूपवान्। बीजाङ्कुरवद्देहादेर्व्यतिरिक्तो यथाऽनलः ॥३॥

अन्वयः— पुत्र पौत्रादिवान्त्वं भूत्वा न भविष्यसि बीजाङ्कुरवद्देहाद् देहादेः अनलो यथा व्यतिरिक्तः ॥३॥

अनुवाद— तुम न तो किसी से उत्पन्न हुए और न तो पुत्र पौत्रादि के शरीर के रूप में उत्पन्न होओगे। जैसे आग लकड़ी से सर्वथा अलग है, उसी तरह तुम भी शरीर आदि से अलग हो। जैसे बीज से अङ्कुर उत्पन्न होता है और अङ्कुर से बीज उत्पन्न होता है उसी तरह एक शरीर से दूसरा शरीर उत्पन्न होता है॥३॥

भावार्थ दीपिका

ननु बीजादङ्कुरवत्स्वस्मात्पुत्ररूपेणापि स्वयमेव भवति। यथाह श्रुतिः-'अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादभिजायसे॥ आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्॥' इति ततः पुनरङ्कुराद्बीजमिव पौत्रादिरूपेणापि स्वयमेव भवति। 'पिता पुत्रेण पितृमान्योनियोनौ' इति श्रुतेः। अतस्तेषु नश्यत्सु कथं न नङ्क्ष्यामीति चेत्तत्राह-न भविष्यसीति। भूत्वा पुत्रपौत्रादिरूपवान्बीजाङ्कुरवन्न भविष्यसि। यस्माद्देहादेर्व्यतिरिक्तस्त्वं यथाऽनलः काष्ठात्। देहाद्देहो जायते नात्मेति भावः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

जिस तरह बीज से अङ्कुर होता है उसी तरह मनुष्य स्वयं पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है। श्रुति भी कहती है- **अङ्गवत् अङ्गात् संभव ति० इत्यादि** अर्थात् प्रत्येक अङ्ग शरीर के अङ्ग से उत्पन्न होते हैं। हृदय से उत्पन्न होता है। आत्मा ही पुत्र के नाम से अभिहित किया जाता है। वह जीव सौ वर्षो तक जीवित रहता है। अतएव जैसे अङ्कुर बीज से उत्पन्न होता है, उसी तरह मनुष्य पौत्र आदि के रूप में स्वयम् उत्पन्न होता है। श्रुति कहती है- योनि में पिता पुत्र से पितृमान होता है। अतएव उन शरीरों के नष्ट हो जाने पर कैसे मैं नष्ट नहीं होऊँगा। यदि इसप्रकार की शङ्का करो तो तुम अब बीजाङ्कुर के समान तुम पुत्र पौत्रादि वाले नहीं होओगे। क्योंकि तुम देह आदि से भिन्न हो उसी तरह जिस तरह आग काष्ठ आदि से भिन्न होती है। शरीर-से-शरीर उत्पन्न होता है आत्मा नहीं ॥३॥

स्वप्ने यथा शिरश्छेदं पञ्चत्वाद्यात्मनःस्वयम् । यस्मात्पश्यति देहस्य तत आत्मा ह्यजोऽमरः ॥४॥

अन्वयः— यथा स्वप्ने आत्मनः शिरः छेदः यस्मात् पञ्चत्वादि आत्मनः देहस्य पश्यति तत आत्मा अजः अमरः ॥४॥

अनुवाद— जैसे कोई स्वप्न में देखता है कि मेरा शिर कट गया मैं मर गया, किन्तु यह सब धर्म शरीर के होते हैं आत्मा के नहीं; अतएव आत्मा अजन्मा और अमर है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

जन्मादीनां देहधर्मत्वं दृष्टान्तेन प्रपञ्चयति-स्वप्ने यथात्मनः शिरश्च्छेदं स्वयं पश्यति, एवं जागरणेऽपि । यस्माद्देहस्य पञ्चत्वादिकं पश्यति ततस्तद्वदेवात्मन इदं भ्रममात्रम् । वस्तुतश्चात्माऽजोऽमरश्चेत्यर्थः । तदुक्तम्- 'आत्मनः पितृपुत्राभ्यामनुमेयौ भवाप्ययौ । न भवाप्ययवस्तूनामभिज्ञोऽद्वयलक्षणः ।' इत्यादि ॥४॥

भाव प्रकाशिका

जन्म आदि देह के धर्म है, यह दृष्टान्त के द्वारा कहते हैं । जिस तरह स्वप्न में अपना सिर कट जाता है यह स्वप्न मनुष्य स्वयं देखता है । इसी तरह जागरावस्था में भी होता है । चूकि स्वप्नद्रष्टा शरीर की मृत्यु आदि स्वप्न में देखता है । उसी आत्मा का भी नाश होता है, यह भ्रम है । वास्तविकता है कि आत्मा अजन्मा और अमर है । श्रुति भी कहती है । पिता और पुत्र के द्वारा शरीर की उत्पत्ति और विनाश का अनुभव करना चाहिए । वास्तविक जो आत्मा है वह न तो जन्म लेता है और न मरता है ॥४॥

घटे भिन्ने यथाकाश आकाशः स्याद्यथा पुरा । एवं देहे मृते जीवो ब्रह्म संपद्यते पुनः ॥५॥

अन्वयः— यथा घटे भिन्ने आकाशः पुरायथा आकाशः स्यात् एवं देहे मृते जीवब्रह्म सम्पद्यते ॥५॥

अनुवाद— जिस तरह घट के विनष्ट हो जाने पर घटाकाश पहले का ही आकाश हो जाता है । उसी तरह शरीर के विनष्ट हो जाने पर आत्मा ब्रह्म हो जाता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

यस्माद्देहोपाधिकोऽयमात्मनो जन्मादिसंसारभ्रमस्तस्मादुपाधिनिवृत्तौ मुच्यत इति सदृष्टान्तमाह-घट इति । यथा पुरा घटोपाधेः पूर्वमिव पुनर्घटे भिन्ने तदन्तर्वर्त्यवकाश आकाश एव स्याद्यथा । एवं देहे मृते तत्त्वज्ञानेन लीने सति ॥५॥

भाव प्रकाशिका

चूकि देहौपाधिक इस आत्मा का संसार भ्रम होता है, अतएव देह रूपी उपाधि के विनष्ट हो जाने पर आत्मा मुक्त हो जाता है । इस बात को दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक कहते हैं । जैसे घटरूप उपाधि से पहले आकाश रहता है, घट के नष्ट होने पर वह पहले के समान आकाश हो जाता है । इसी तरह शरीर के नष्ट हो जाने पर तत्त्वज्ञान के द्वारा आत्मा ब्रह्म में लीन होकर ब्रह्म हो जाता है ॥५॥

मनः सृजति वै देहान्गुणान्कर्माणि चात्मनः । तन्मनः सृजते माया ततो जीवस्य संसृतिः ॥६॥

अन्वयः— मनः आत्मनः देहान् गुणान् कर्माणि च सृजति, तत् मनः माया सृजते ततो जीवस्य संसृति ॥६॥

अनुवाद— मन ही आत्मा के लिए शरीर, विषय एवं कर्मों की कल्पना करता है और उस मन की सृष्टि करती है माया अविद्या माया ही जीव के संसार चक्र में पड़ने का कारण है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

ज्ञानेन लयं भावयितुं मायाकृतमात्मनो देहाद्युपाधिसंबन्धप्रकारमाह-मन इति । मन आत्मनो देहादीन्सृजति । तच्च मनो माया सृजति । ततो मायाद्युपाधिसमुदायाज्जीवस्य संसृतिः, न स्वतः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

ज्ञान के द्वारा लय कराने के लिए मायाजन्य देह आदि के उपाधि संबन्ध का प्रकार **मनः इत्यादि** श्लोक से वर्णन करते हैं। मन आत्मा देह आदि की कल्पना करता है, उस मन की सृष्टि माया करती है। अतएव माया आदि उपाधियों के संबन्ध से जीव संसार चक्र में पड़ता है। स्वयम् नहीं ॥६॥

स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्निसंयोगो यावदीयते । ततो दीपस्य दीपत्वमेवं देहकृतो भवः ॥
रजःसत्त्वतमोवृत्त्या जायतेऽथ विनश्यति ॥७॥

अन्वयः— यावत् स्नेहाधिष्ठानवर्त्यग्निसंयोगः ईयते ततो दीपस्य दीपत्वं, ततो दीपस्य दीपत्व एवं देहकृतो भवः, रजःसत्त्व तमोवृत्त्या जायते अथ विनश्यति ॥७॥

अनुवाद— जब तक तेल रखने का पात्र वत्ती तथा अग्नि का सयोग बना रहता है तब तक दीपक में दीपकत्व रहता है, इसी तरह जब तक आत्मा का मन, शरीर और इनमें रहने वाले चैतन्याध्यास के साथ सम्बन्ध, रहता है, तब तक उसे जन्म मृत्यु के चक्र संसार में भटकना पड़ता है एवं रजोगुण, सत्त्वगुण तथा तमोगुण की वृत्तियों से उसे उत्पन्न और विनष्ट होना पड़ता है ॥७॥

भावार्थ दीपिका

यस्मादुपाधिनिबन्धनो जीवस्य संसारोऽतस्तन्नाशे जीवत्वं गच्छतीत्येतदेव सदृष्टान्तमाह सार्धेन-स्नेहेति। दीपस्य ज्योतिषो दीपत्वं ज्वालारूपः परिणामः। तत्र तैलस्थानीयं कर्म, तदधिष्ठानस्थानीयं मनः, वर्तिस्थानीयो देहः, अग्निसंयोगस्थानीयश्चैतन्याध्यासः, दीपस्थानीय; संसार इति योज्यम्। देहकृतो देहनिबन्धनः। यद्वा देहकृतो मनसो न त्वात्मनः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

चूकि उपाधि के कारण जीव को संसार होता है, उसका नाश हो जाने पर जीवत्व भी समाप्त हो जाता है। इसी बात को **स्नेहेन० इत्यादि** डेढ श्लोक से कहते हैं। दीपक की ज्योति का दीपत्व, ज्वाला रूप है। तेल स्थानी कर्म हैं। उसका अधिष्ठान रूप मन है। वर्ती स्थानी देह है। अग्नि संयोग स्थानी चैतन्याध्यास है। दीप स्थानी संसार है, **देहकृतः** अर्थात् देह के कारण अथवा **देहकृतः** अर्थात् मन का आत्मा का नहीं ॥७॥

न तत्रात्मा स्वयंज्योतिर्यो व्यक्ताव्यक्तयोः परः । आकाश इव चाधारो ध्रुवोऽनन्तोपमस्ततः ॥८॥

अन्वयः— स्वयं ज्योतिः यः आत्मा व्यक्ताव्यक्तयोः परः तत्र न। आत्मा आकाश इव आधारः ध्रुव ततः अनन्तोपमः॥८॥

अनुवाद— जैसे दीपक के बुझ जाने से तत्त्व रूप तेज का विनाश नहीं होता है वैसे ही संसार का नाश होन से आत्मा का नाश नहीं होता है। आत्मा कार्य-कारण तथा व्यक्त एवं अव्यक्त सबसे परे है। वह आकाश के समान सब का आधार, नित्य, निश्चल एवं अनन्त है। आत्मा की उपमा आत्मा ही हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

अतो दीपवत्संसार एव नश्यति, न त्वात्मा ज्योतिर्वदित्याह-नेति। न तु तत्र प्रतीयमान आत्मा। कुत इत्यत आह-य इति। व्यक्ताव्यक्तयोः स्थूलसूक्ष्मदेहयोः परोऽन्यः। यतः स्वयंज्योतिः। परत्वं प्रपञ्चयति-आकाश इवेति। आधारो देहादेः प्रपञ्चस्य। ध्रुवो निर्विकारः। नास्त्यन्त उपमा च यस्य सोऽनन्तोपमः। ततो विभुः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

अतएव दीपक के समान संसार ही नष्ट होता है, ज्योति के समान आत्मा का नाश नहीं होता है। इस बात को **न तत्रात्मा० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है। प्रतीत होने वाली आत्मा नहीं विनष्ट होती है। ऐसा क्यों होता है। इस पर **यः इत्यादि** श्लोकांश से कहते हैं। **व्यक्ताव्यक्तयोः** अर्थात् स्थूल एवं सूक्ष्म से भिन्नही है। क्योंकि आत्मा स्वयमप्रकाश

है । आत्मा के परत्व का विस्तार **आकाश इत्यादि** श्लोकांश से हुआ है । यह आत्मा देह इत्यादि प्रपञ्च का आधार है। ध्रुव अर्थात् निर्विकार है । इसकी कोई उपमा नहीं । आत्मा की उपमा आत्मा है ।।८।।

एवमात्मानमात्मस्थमात्मनैवाऽऽमृश प्रभो । बुद्ध्यानुमानगर्भिण्या वासुदेवानुचिन्तया ।।९।।

अन्वयः— हे प्रभो एवम् आत्मस्थम् आत्मानम् आत्मनैव आमृश अनुमान गर्भिण्या बुद्ध्या वासुदेवानुचिन्तया ।।९।।

अनुवाद— परीक्षित ! तुम अपनी शुद्ध विवेक युक्त बुद्धि को परमात्म चिन्तन से परिपूर्ण कर लो । एवं स्वयं ही अपने अन्त:करण में स्थित परमात्मा का साक्षात्कार कर लो ।।९।।

भावार्थ दीपिका

अतस्त्वमेवं चिन्तयेत्याह-एवमिति । आत्मस्थं देहाद्युपाधिस्थितम् । आमृश विचारय । अनुमानगर्भिण्या द्रष्टृदृश्यान्वयव्यतिरेकयुक्तया ।।९।।

भाव प्रकाशिका

अतएव तुम इस प्रकार से विचार करो । इस बात का **एवम् इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । आत्मस्थ अर्थात् देह आदि उपाधियों से युक्त । आमृश अर्थात् विचार करो अनुमान गर्भिण्या अर्थात् द्रष्टा दृश्य अन्वयव्यतिरेक से युक्त बुद्धि के द्वारा ।।९।।

चोदितो विप्रवाक्येन न त्वां धक्ष्यति तक्षकः । मृत्यवो नोपधक्ष्यन्ति मृत्यूनां मृत्युमीश्वरम् ।।१०।।

अन्वयः— विप्रवाक्येन चोदितः तक्षकः त्वां न धक्ष्यति, मृयूनां मृत्युं त्वां मृत्यवः न उपधक्ष्यन्ति ।।१०।।

अनुवाद— ब्राह्मण के वाक्य से प्रेरित होकर तक्षक तुमको नही भस्म करेगा । तुम तो मृत्यु की भी मृत्यु हो तुम को मृत्युएँ भी नहीं विनष्ट कर सकती हैं ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

एवं च सति त्वां तक्षको न दहेदित्याह-चोदित इति । तत्र हेतवः मृत्यव इति । मृत्युहेतवः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

ऐसा विचार करने से तुम्हें तक्षक नहीं विनष्ट कर पायेगा इस बात को चोदित इत्यादि श्लोक से कहा गया है । उसका कारण है कि तुम मृत्यु की भी मृत्यु हों ।।१०।।

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् । एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ।।११।।

अन्वयः— अहं ब्रह्म, अहं परं ब्रह्म परं धाम परमं पदम् निष्कले आत्मनि आत्मानम् आधाय समीक्षन् ।।११।।

अनुवाद— तुम इस प्रकार अनुसंधान करो कि मैं ही ब्रह्म हूँ मैं ही परंब्रह्म हूँ, इस तरह से निष्फल आत्मा में मन लगाकर चिन्तन करो ।।११।।

भावार्थ दीपिका

विमर्शप्रकारं दर्शयंस्तक्षकादर्शनं दर्शयति द्वाभ्याम्-योऽहं स ब्रह्मैव यद्ब्रह्म तदहमेवेति । समीक्षन् । तत्राहं ब्रह्मेति भावनया जीवस्य शोकादिनिवृत्तिः । ब्रह्माहमिति भावनया च ब्रह्मणः पारोक्ष्यनिवृत्तिर्भवतीति व्यतिहारो दर्शितः । निष्कले निरूपाधौ । आत्मनि ब्रह्मणि ।।११।।

भाव प्रकाशिका

विचार के प्रकार को बतलाते हैं ऐसा करके तुम तक्षक के दंशने पर भी उसे देख नहीं पाओगे । मैं जो हूँ वह ब्रह्म ही है जो ब्रह्म है, वह मैं ही हूँ इस तरह विचार करते हुए । मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार की भावना से

जीव के शोक आदि की निवृत्ति हो जाती है। मैं ब्रह्म हूँ इस भावना से ब्रह्म के पारोक्ष्य की निवृत्ति हो जाती है। इस तरह से व्यतिहार दिखाया गया है। निष्कले अर्थात् निरुपाधि ब्रह्म में ॥११॥

दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः । न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः ॥१२॥

अन्वयः— विषाननैः लेलिहानं, पदे दशन्तं तक्षकं आत्मनः पृथक् शरीरं विश्वं च न द्रक्ष्यसि ॥१२॥

अनुवाद— अपनी विषैली जीभ लपलपाते हुए तक्षक आये तुम्हारे पैरों में डंस ले तो कोई परवाह नहीं। तुम अपनी आत्मा में स्थित होकर अपने से पृथक् शरीर को तथा विश्व को भी नहीं देखोगें ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

विषयुक्तैराननैर्दशन्तं ग्रसन्तं तक्षकम्। लेलिहानं सर्पम्। यद्वा, लेलिहानं जिह्वाभिरोष्ठप्रान्तान्सनिष्पेषमास्वादयन्तम्। आत्मनः पृथक् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

विषयुक्त मुहँ से डंसने वाले तक्षक को लेलिहानं अर्थात् सर्प को। अथवा अपनी जीभ से अपने ओष्ठ के प्रान्त भाग के चाटते हुए। आत्मा से भिन्न ॥१२॥

एतत्ते कथितं तात यथात्मा पृष्टवान्नृप । हरेर्विश्वात्मनश्चेष्टां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥१३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे ब्रह्मोपदेशो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अन्वयः— हेतात नृप यथात्मा पृष्टवान् एतते कथितम् विश्वात्मनः हरेः चेष्टां ते कथितं भूपः कि श्रोतुम् इच्छसिः॥१३॥

अनुवाद— राजन् परीक्षित् जैसा कि तुमने आत्मा के विषय में पूछा था उन सम्पूर्ण जगत् की आत्मा परमात्मा की चेष्टा रूप आत्मा का मैंने तुम्हें सुनाया अब आप क्या सुनना चाहते हैं ॥१३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के ब्रह्मोपदेश नामक पाँचवें अध्याय का हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥५॥

भावार्थ दीपिका

हरेश्चेष्टामात्मा त्वं यत्पृष्टवांस्तदेतत्ते कथितम्। शिष्यस्य कृतार्थतापरीक्षणाय पृच्छति-किमिति ॥१३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

आपने जो श्रीहरि की चेष्टा और आत्मा के विषय में पूछा था उसे मैंने सुना दिया अब आप क्या सुनना चाहते हैं ॥१३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के पाञ्चवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥५॥

छठा अध्याय

परीक्षित् की परमागति तथा जनमेजय द्वारा सर्पक्षत्र

सूत उवाच

एतन्निशम्य मुनिनाभिहितं परीक्षिद्व्यासात्मजेन निखिलात्मदृशा समेन ।
तत्पादमूलमुपसृत्य नतेन मूर्ध्ना बद्धाञ्जलिस्तमिदमाह स विष्णुरातः ॥१॥

अन्वयः— निखिलात्मदृशा, समेन मुनिना व्यासात्मजेन, एतत् अभिहितं निशम्य सः विष्णुरातः परीक्षित् तत् पादमूलम् उपसृत्य बद्धाञ्जलिः नतेन मूर्ध्ना तम्, इदम् आह ॥१॥

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— शौनाकादि महर्षियों महर्षि व्यास के पुत्र श्रीशुकदेवजी, समस्त चराचर जगत् को अपनी आत्मा के समान अनुभव करते हैं और व्यवहार में समदृष्टि हैं, श्रीभगवान् के द्वारा रक्षित और उनके द्वारा सुरक्षित् राजा परीक्षित् शुकदेवजी के उपदेशों को बड़ी ध्यान पूर्वक सुने । वे हाथ जोड़े हुए तथा सिर झुकाये हुए महर्षि शुकदेवजी के चरणों के सन्निकट आकर कहे ॥१॥

भावार्थ दीपिका

षष्ठे परीक्षितो मोक्षः सर्पहोमादि तत्सुतात् । वेदशास्त्रविभागोक्तौ त्रिवेदिव्यासवर्णनम् ॥१॥ एतत्पुराणं निशम्य निखिलात्मा हरिस्तं पश्यति निखिलं वात्मनि पश्यतीति तथा तेन । अतः समेन । नतेनावनतेन मूर्ध्ना तत्पादतलमुपसृत्य । तत्पादौ शिरसि निधायेत्यर्थः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

छठे अध्याय में परीक्षित् का मोक्ष का परीक्षित् के पुत्र जनमेजय द्वारा सर्पसत्र का, तथा वेदाशास्त्रों के विभाग का इस त्रिवेदिव्यास का वर्णन है ॥१॥ इस पुराण को सुनकर, सम्पूर्ण जगत् की आत्मा श्रीहरि का साक्षात्कार करने वाले अथवा सम्पूर्ण जगत् को अपनी आत्मा में देखने वाले अतएव सबों के प्रति समान दृष्टि रखने वाले। सिर झुकाकर शुकदेवजी के चरणों के सन्निकट आकर, श्रीशुकदेवजी के चरणों को अपने सिर पर रखकर ॥१॥

राजोवाच

सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना । श्रावितो यच्च मे साक्षादनादिनिधनो हरिः ॥२॥

अन्वयः— करुणात्मना भवता यत् च मे साक्षात् अनादिनिधनः हरिः श्रावितः अनुगृहीतः अस्मि सिद्धः अस्मि ॥२॥

राजा परीक्षित् ने कहा

अनुवाद— भगवन् आप तो करुणा मूर्ति है, अपने जो मुझको अनादि एवं अनन्त श्रीहरि को सुनाया उसके कारण मैं आपके द्वारा अनुगृहीत होकर कृत-कृत्य हो गया हूँ ॥२॥

भावार्थ दीपिका

सिद्धः कृतार्थोऽस्मि । यतोऽनुगृहीतोऽस्मि । अनुग्रहमेवाह-यद्यस्माच्छ्रावितः । चशब्दात्प्राप्तिसाधनं च श्रावितम्॥२॥

भाव प्रकाशिका

सिद्ध अर्थात् मैं कृतकृत्य हो गया हूँ, क्योंकि आपने मुझको अनुगृहीत किया है । उस अनुग्रह को बतलाते हैं, क्योंकि आपने मुझको साक्षात् श्रीहरि को और उनकी प्राप्ति के साधन को सुनाया है ॥२॥

नात्यद्भुतमहं मन्ये महतामच्युतात्मनाम् । अज्ञेषु तापतप्तेषु भूतेषु यदनुग्रहः ॥३॥

अन्वयः— अच्युतात्मनाम् महताम् तापतप्तेषु अज्ञेषु भूतेषु यदनुग्रहः अहम् अत्यद्भुतम् न मन्ये ॥३॥

अनुवाद— परमात्ममय महापुरुष का संसार के संतापों से संतप्त अज्ञानी जीवों पर जो अनुग्रह होता है, उसको मैं अत्यन्त आश्चर्यमय नहीं मानता हूँ ॥३॥

भावार्थ दीपिका

करुणात्मतामभिनन्दति द्वाभ्याम्-नात्यद्भुतमिति ॥३॥

भाव प्रकाशिका

राजा परीक्षित् शुकदेवजी के करुणामयत्व का अभिनन्दन इस **नात्यद्भुतम्० इत्यादि** दो श्लोकों से कहते हैं ॥३॥

पुराणसंहितामेतामश्रौष्म भवतो वयम् । यस्यां खलूत्तमश्लोको भगवाननुवर्ण्यते ॥४॥

अन्वयः— भवतः वयम् पुराणसंहिताम् एताम् अश्रौष्म यस्याम् खलु भगवान् उत्तमश्लोकः अनुवर्ण्यते ॥४॥

अनुवाद— आपने कृपा करके हमें पुराण संहिता को सुनाया है जिसमें पवित्र कीर्ति श्रीभगवान् का वर्णन है।।४॥

भावार्थ दीपिका

अश्रौष्म श्रुतवन्तः । भवतः सकाशात् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

हमलोगों ने आपसे सुना है ॥४॥

भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम् । प्रविष्टो ब्रह्मनिर्वाणमभयं दर्शितं त्वया ॥५॥

अन्वयः— भगवन् त्वया अभयं दर्शितं निर्वाणमयं ब्रह्मप्रविष्टः अस्मिअहम् तक्षकादिभ्यः मृत्युभ्यः न विभेमि ॥५॥

अनुवाद— भगवन् ! आपने मुझको अभयपद का दर्शन करा दिया है मैं निर्वाण स्वरूप ब्रह्म में प्रवेश कर गया हूँ । अतएव मुझे मृत्यु के साधन तक्षक इत्यादि से भय नहीं होता है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

'सिद्धोऽस्मि' इत्युक्तं तदेवाविष्करोति-भगवन्निति । यतस्त्वया दर्शितं ब्रह्म प्रविष्टः । कथंभूतम् । अभयम् । यतो निर्वाणं कैवल्यरूपम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

राजा ने दूसरे श्लोक में जो कहा है कि मैं सिद्ध (कृतकृत्य) हो गया हूँ, उसी को **भगवन् इत्यादि** श्लोक से अभिव्यक्त करते हैं राजा क्योंकि आपके द्वारा दिखलाये गये ब्रह्म में प्रवेश कर गया हूँ । वे ब्रह्म ही अभयपद हैं क्योंकि वे निर्वाणमय अर्थात् कैवल्य मोक्ष स्वरूप हैं ॥५॥

अनुजानीहि मां ब्रह्मन् वाचं यच्छाम्यधोक्षजे । मुक्तकामाशयं चेतः प्रवेश्य विसृजाम्यसून् ॥६॥

अन्वयः— ब्रह्मन् माम् अनुजानीहि वाचम् यच्छामि मुक्तकामाशयं चेतः अधोक्षजे प्रवेश्य असून् विसृजामि ॥६॥

अनुवाद— ब्रह्मन् अब आप मुझे आज्ञा दें मैं मौन होकर काम एवं वासना से रहित अन्तःकरण को श्रीभगवान् में प्रवेश कराकर अपने प्राणों का परित्याग करना चाहता हूँ ॥६॥

भावार्थ दीपिका

'किं भूयः श्रोतुमिच्छसि' इति यदुक्तं तत्र सिद्धोऽहं न किंचिच्छ्रोतुमिच्छामि । केवलमनुज्ञां देहीत्याह-

अनुजानीहीति। वाचमित्युपलक्षणं सर्वेन्द्रियाणाम् । वाचं नियम्य किं करिष्यसि तदाह-मुक्ताः कामाशयास्तद्वासना येन तच्चेतोऽधोक्षजे प्रवेश्यासून्विसृजामि ।।६।।

भाव प्रकाशिका

शुकदेवजी ने कहा कि अब और क्या सुनना चाहते हो ? इसके उत्तर में राजा ने कहा मैं कृत-कृत्य हूँ। अब कुछ भी नहीं सुनना चाहता हूँ केवल आप आज्ञा प्रदान करें । वाणी सभी इन्द्रियों का उपलक्षण है । यदि आप पूछें कि सभी इन्द्रियों का नियमन करके क्या करोगे ? तो इसका उत्तर है कि कामनाओं की वासनाओं से रहित अन्तःकरण को श्रीभगवान् में प्रवेश कराकर प्राणों का परित्याग करना चाहता हूँ ।।६।।

अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञानविज्ञाननिष्ठया । भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम् ।।७।।

अन्वयः— ज्ञानविज्ञान निष्ठया मे अज्ञानं निरस्तम् भवता परं क्षेम भगवतः पदं दर्शितम् ।।७।।

अनुवाद— आपके द्वारा उपदिष्ट ज्ञान और विज्ञान में परिनिष्ठित हो जाने से मेरा सारा अज्ञान विनष्ट हो गया है । आपने श्रीभगवान् के परम कल्याणमय स्वरूप का मुझे साक्षात्कार कर दिया है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

ननु किं प्राणात्यागेन किंचित्कालं ज्ञाननिष्ठो भवेति चेत्तत्राह-अज्ञानं चेति । चकारात्तत्संस्कारश्च तच्च त्वत्कृपयैवेत्याह-भवतेति ।।७।।

भाव प्रकाशिका

यदि कहें कि प्राण त्याग करने से क्या लाभ है कुछ समय तक ज्ञान में निष्ठित होकर रहो इस पर कहते हैं। अज्ञानं चेति मेरा सारा अज्ञान और उसका संस्कार भी आपकी कृपा से विनष्ट हो गया है ।।७।।

सूत उवाच

इत्युक्तस्तमनुज्ञाप्य भगवान्बादरायणिः । जगाम भिक्षुभिः साकं नरदेवेन पूजितः ।।८।।

अन्वयः— इत्युक्तः तम् अनुज्ञाप्य भगवान् बादरायणिः नरदेवेन पूजितः भिक्षुभिः साकं जगाम ।।८।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— राजा के इस तरह से कहने पर श्रीशुकदेवजी राजा के द्वारा पूजित होकर भिक्षुओं के साथ चले गये ।।८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।८।।

परीक्षिदपि राजर्षिरात्मन्यात्मानमात्मना । समाधाय परं दध्यावस्पन्दासुर्यथा तरुः ।।९।।

अन्वयः— राजर्षि परीक्षित् अपि आत्मनि आत्मना आत्मानं समाधाय अस्पन्दासुः यथा परं दध्यौ ।।९।।

अनुवाद— राजर्षि परीक्षित् भी अपनी अन्तरात्मा को आत्मा में समाहित कर दिए उस समय उनका श्वास प्रश्वास नहीं चलता था । मालुम पड़ता था जेसे कोई ठंडा वृक्ष हो ।।९।।

भावार्थ दीपिका

आत्मना बुद्ध्या आत्मानं मन आत्मनि प्रत्यक्प्रकाशे समाधाय परमात्मानं दध्यौ। अस्पन्दासुः लीनप्राणः। यथा तरुः स्थाणुः।।९।।

भाव प्रकाशिका

बुद्धि के द्वारा अपने मन को परमात्मा में समाहित करके परमात्मा का ध्यान करने लगे प्राण को लीन कर देने के कारण वे स्पन्द रहित ठूंठे वृक्ष के समान लगते थे ।।९।।

प्राक्कूले बर्हिष्यासीनो गङ्गाकूल उदङ्मुखः । ब्रह्मभूतो महायोगी निःसङ्गश्छिन्नसंशयः ॥१०॥

अन्वयः— प्राक्कूले गङ्गाकूले उदङमुखः वीर्हिषि ब्रह्मभूतः महायोगी निसङ्गःछिन्नसंशयः आसीनः ॥१०॥

अनुवाद— गङ्गाजी के पूर्व तट पर पूर्वाग्र कुश के आसन पर उत्तराभिमुख बैठे हुए वे सभी प्रकार की आसक्ति से रहित ब्रह्म और आत्मा के एकता के महापोक में स्थित होकर वे ब्रह्म स्वरूप हो गये थे ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

तमेव विशिनष्टि-प्राक्कूले प्रागग्रे । बर्हिषि दर्भे ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में राजा परीक्षित् की ही विशेषताएँ बतलाते हैं पूर्वमय परं की ओर जिन का अग्रभाग था ऐसे कुशों के आसन पर ॥१०॥

तक्षकः प्रहितो विप्राः क्रुद्धेन द्विजसूनुना । हन्तुकामो नृपं गच्छन्ददर्श पथि कश्यपम् ॥११॥

अन्वयः— हे विप्राः क्रुद्धेन द्विज सुनुनानृपं हन्तुकामः तक्षकः प्रहितः गच्छन्पथि कश्यपं ददर्श ॥११॥

अनुवाद— शौनकादि महर्षियों क्रुद्ध शृङ्गी ऋषि के पुत्र ने राजा को मारने की इच्छा से तक्षक को भेजा। राजा के पास जाते हुए तक्षक ने रास्ते में कश्यप नामक ब्राह्मण को देखा ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तदेव ब्रह्मभूते तस्मिंस्तक्षकागमनादिकं पिष्टपेषणमिवाभवदिति दर्शयति-तक्षक इति त्रिभिः । हे विप्राः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

हे ब्राह्मणों ! राजा परीक्षित के ब्रह्म स्वरूप हो जाने पर तक्षक का आना पिष्टपेषण के समान हो गया इस बात को **तक्षक० इत्यादि** तीन श्लोकों से बतलाया गया है ॥११॥

तं तर्पयित्वा द्रविणैर्निवर्त्य विषहारिणम् । द्विजरूपप्रतिच्छन्नः कामरूपोऽदशन्नृपम् ॥१२॥

अन्वयः— विषहारिणं तं द्रविणै तर्पयित्वानिवर्त्य कामरूपः द्विजप्रतिच्छन्नः नृपम् अदशत् ॥१२॥

अनुवाद— विषवैद्य को संपत्ति से संतुष्ट करके तक्षक लौटा दिया और अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाला वह राजा को ब्राह्मण का वेष धारण कर काट लिया ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तं विषचिकित्सया परीक्षिद्रक्षणेन द्रव्यार्जनायागच्छन्तम् । तत्र स्वालीढवटवृक्षस्य भस्मीभूतस्य पुनरङ्कुरादिक्रमेणोत्थापनाद्विषहारिणं तदपेक्षितद्रविणैः संतर्प्य ततो निवर्त्य द्विजरूपेण तिरोहितः सन्नदशत् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

विष की चिकित्सा करके परीक्षित् की रक्षा करके धन कमाने के लिए आने वाले तक्षक ने उस विष वैद्य को अपने चाट लेने मात्र से भस्म हुए वटवृक्ष के पुनः अङ्कुरादि क्रम से जीवित करने वाला विष वैद्य को धन प्रदान के द्वारा सन्तुष्ट करके वहाँ से लौटाकर ब्राह्मण वेष से अपने को छिपा कर राजा को काट लिया ॥१२॥

ब्रह्मभूतस्य राजर्षेर्देहोऽहिगरलाग्निना । बभूव भस्मसात्सद्यः पश्यतां सर्वदेहिनाम् ॥१३॥

अन्वयः— ब्रह्मभूतस्य तस्य राजर्षे देहः सर्वदेहिनाम्पश्यतः अहिगरलाग्निनाभस्मसात् बभूव ॥१३॥

अनुवाद— राजर्षि परीक्षित् तक्षक के आने से पहले ही ब्रह्म स्वरूप हो चुके थे । सर्पविष की अग्नि से उनका शरीर सबलोगों के सामने ही भस्म हो गया ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

तच्च पुत्रकृत्यमिव जातमित्याह-ब्रह्मभूतस्येति ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

जिस तरह से पुत्र मृत पिता के पुत्र को दग्ध करता है, वेसे ही सर्प की विषाग्नि से राजा का शरीर भस्म हो गया है । **ब्रह्मभूतस्य० इत्यादि** से यही बात कही गयी है ।।१३।।

हाहाकारो महानासीद्भुविखे दिक्षु सर्वतः । विस्मिता ह्यभवन्सर्वे देवासुरनरादयः ।।१४।।

अन्वयः— भुवि खे दिक्षु सर्वतः महान् हाहाकारः आसीत् सर्वे देवासुरनरादयः विस्मिता ह्यभवन् ।।१४।।

अनुवाद— भूलोक, आकाश और सभी दिशाओं में जोर-जोर से हाहाकार होने लगा देवता असुर और मनुष्य सबके सब आश्चर्यित हो गये ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

तत्र क्षणं सर्वेषां दुःखं च ततः परमुत्सवं चाह द्वाभ्याम-हाहाकार इति ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

उस समय सबों को कष्ट हुआ और बहुत अधिक उत्सव भी हुआ, इस बात को हाहाकार इत्यादि श्लोक से कहा गया है ।।१४।।

देवदुन्दुभयो नेदुर्गन्धर्वाप्सरसो जगुः । ववृषुः पुष्पवर्षाणि बिबुधाः साधुवादिनः ।।१५।।

अन्वयः— देवदुन्दुभयः नेदुः गन्धर्वाप्सरसः जगुः साधुवादिनः विवुधाः पुष्पवर्षाणि ववृषुः ।।१५।।

अनुवाद— देवताओं की दुन्दुभियाँ अपने आप बजने लगीं, गन्धर्व और अप्सराएँ गान करने लगे । देवताओं ने साधु-साधु के नारे लगाकर पुष्पों की वर्षा की ।।१५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१५।।

जन्मेजयः स्वपितरं श्रुत्वा तक्षकभक्षितम् । यथाजुहाव संक्रुद्धो नागान्सत्रे सह द्विजैः ।।१६।।

अन्वयः— जन्मेजयः स्वपितरं तक्षकभक्षितं श्रुत्वा संक्रुद्धः द्विजैः सह सत्रे नागान् यथा आजुहाव ।।१६।।

अनुवाद— जनमेजय जब सुने के उनके पिता को सर्प ने काट लिया तो अत्यधिक क्रुद्ध हुए और ब्राह्मणों के साथ में विधि पूर्वक सर्पो की आहुति देने लगे ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

प्रासङ्गिकमाह-जन्मेजय इत्यादि । सर्पाभिचारसत्रे द्विजैः सह वर्तमानो यथावदाजुहाव जुहावेति वा । सर्वसर्पावाहने कारणमाह-संक्रुद्ध इति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

जन्मेजयः इत्यादि श्लोक से प्रसङ्ग प्राप्त बात को कहे हैं सर्पो के अभिचारिक सत्र में ब्राह्मणों के साथ सर्पों की विधि पूर्वक आहुति देने लगे ।।१६।।

सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ दह्यमानान्महोरगान् । दृष्ट्वेन्द्रं भयसंविग्नस्तक्षकः शरणं ययौ ।।१७।।

अन्वयः— सर्पसत्रे समिद्धाग्नौ महोरगान् उह्यमानान् दृष्ट्वा भयसंविग्नः तक्षकः इन्द्रं शरणं ययौ ।।१७।।

अनुवाद— सर्पसत्र में धधकती हुई अग्नि में बड़े-बड़ै सर्पों को जलते हुए देखकर भयभीत तक्षक इन्द्र के शरण में चला गया ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

अपश्यंस्तक्षकं तत्र राजा पारीक्षितो द्विजान् । उवाच तक्षकः कस्मान्न दह्येतोरगाधमः ॥१८॥

अन्वयः— तत्र तक्षकं अपश्यन् पारीक्षितो राजाद्विजान उवाच उरगाधमः तक्षकः कस्मात् न दह्यते ॥१८॥

अनुवाद— वहाँ तक्षक को नहीं देखकर राजा जनमेजय ने ब्राह्मणों से कहा कि आपलोग अधम सर्प तक्षक को क्यों नहीं भस्म करते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१८॥

तं गोपायति राजेन्द्र शक्रः शरणमागतम् । तेन संस्तम्भितः सर्पस्तस्मान्नाग्नौ पतत्यसौ ॥१९॥

अन्वयः— राजेन्द्र शरणागतम् तं शक्रः गोपायति तेन सर्पः संस्तम्भितः तस्मात् असौ अग्नौ न पतति ॥१९॥

अनुवाद— ब्राह्मणों ने कहा राजेन्द्र ! तक्षक इस समय इन्द्र की शरण में चला गया है । इन्द्र उसकी रक्षा कर रहे हैं । उन्होंने तक्षक को स्तम्भित कर दिया है, इसलिए वह अग्नि में नहीं गिर रहा है ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

कस्मातक्षको न दह्यतेत्युक्ताः सन्तो द्विजा ऊचुः-तमिति । तेनेन्द्रण । असौ सर्पः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

तक्षक क्यों नहीं जल रहा है इस तरह से पूछने पर ब्राह्मणों ने **तम्० इत्यादि** कहा । उस इन्द्र के द्वारा असौ अर्थात् सर्प ॥१९॥

पारीक्षित इति श्रुत्वा प्राहर्त्विज उदारधीः । सहेन्द्रस्तक्षको विप्रा नाग्नौ किमिति पात्यते ॥२०॥

अन्वयः— उदारधीः पारीक्षितः इति श्रुत्वा ऋत्विजः प्राह, विप्रा सहेन्द्रः तक्षकः अग्नौ किमिति न पात्यते ॥२०॥

अनुवाद— परीक्षित् नन्दन जनमेजय ने ब्राह्मणों से कहा तो फिर इन्द्र के साथ ही तक्षक को आपलोग अग्नि में क्यों नहीं गिरा देते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

ऋत्विजः प्रत्याह-सहेन्द्रः इन्द्रसहितः किमिति न पात्यते ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

ऋत्विजों से जनमेजय ने कहा इन्द्र के साथ ही तक्षक को अग्नि में क्यों नहीं गिरा देते हैं ?॥२०॥

तच्छुत्वाजुहुवुर्विप्राः सहेन्द्रं तक्षकं मखे । तक्षकाशु पतस्वेह सहेन्द्रेण मरुत्वता ॥२१॥

अन्वयः— तच्छुत्वा विप्रा मखे सहेन्द्रं तक्षकं आजुहुवुः तक्षक आशु इह मरुत्वता इन्द्रेण सह पतस्व ॥२१॥

अनुवाद— उसे सुनकर ब्राह्मण ने सत्र में इन्द्र के साथ तक्षक का आह्वान किया कि हे तक्षक मरुद्गणों के साथ तुम आकर अग्नि में गिर जा ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तद्राज्ञो वचः श्रुत्वा आजुहुवुः । साक्षेपमाह्वानं दर्शयति-तक्षकेति इहाग्रावाशु पतस्व मरुत्वता मरुद्गणवतेन्द्रेण सह॥२१॥

भाव प्रकाशिका

राजा की उस वाणी को सुनकर ऋत्विजों ने आह्वान किया । **तक्षक० इत्यादि** से आक्षेण युक्त आह्वान को बतलाते हैं तक्षक मरुद्गण के साथ रहने वाले इन्द्र के साथ अग्नि में शीघ्र गिर पड़ो ॥२१॥

इति ब्रह्मोदिताक्षेपैः स्थानादिन्द्रः प्रचालितः । बभूव संभ्रान्तमतिः सविमानः सतक्षकः ॥२२॥

अन्वयः— इति ब्रह्मोदिताक्षेपैः इन्द्रः स्थानात् प्रचालितः सविमानः स तक्षकः संभ्रान्तमतिः बभूव ॥२२॥

अनुवाद— जब ब्राह्मणों ने इस प्रकार आकर्षण मन्त्र का पाठ किया तब इन्द्र का विमान अपने स्थान स्वर्ग लोक से विचलित हो गया । विमान पर विराजमान इन्द्र तक्षक के साथ ही बहुत घबरा गये, उनका विमान भी चक्कर काटने लगा ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणैरुक्तैराक्षेपैः परुषवाक्यैः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से ब्राह्मणों के द्वारा कहे गये कठोर वाक्यों के द्वारा ॥२२॥

तं पतन्तं विमानेन सहतक्षकमम्बरात् । विलोक्याङ्गिरसः प्राह राजानं तं बृहस्पतिः ॥२३॥

अन्वयः— सहतक्षकम् अम्बरात् विमानेन पततं तं विलोक्य आङ्गिरसः बृहस्पतिः तं राजानं प्राह ॥२३॥

अनुवाद— तक्षक के साथ स्वर्ग से विमान के साथ गिरते हुए इन्द्र को देखकर महर्षि अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति ने राजा जनमेजय से कहा ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

तं तक्षकम् । अङ्गिरसः पुत्रो बृहस्पतिः प्राह ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

तम् तक्षक को अगिरा महर्षि के पुत्र बृहस्पति ॥२३॥

नैष त्वया मनुष्येन्द्र वधमर्हति सर्पराट् । अनेन पीतममृतमथवा अजरामरः ॥२४॥

अन्वयः— हे मनुष्येन्द्र त्वया एषः सर्पराट् बधम् नार्हति अनेन अमृतम् पीतम् अथवा अजरामरः ॥२४॥

अनुवाद— नरेन्द्र सर्पराज तक्षक को मार डालना आपके लिए उचित काम नहीं है । अथवा अमृत पीकर यह अज अमर हो गया है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

जीवितं मरणं जन्तोर्गतिः स्वेनैव कर्मणा । राजंस्ततोऽन्यो नान्यस्य प्रदाता सुखदुःखयोः ॥२५॥

अन्वयः— राजन् जन्तोः जीवितं मरणं गतिः स्वेनैव कर्मणा ततः अन्यः अस्य सुखदुःखयोः प्रदाता न ॥२५॥

अनुवाद— राजन् मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार ही जीवन, मरण, मरण के पश्चात् होने वाली गति अपने कर्मों के अनुसार ही प्राप्त करता है । उससे भिन्न कोई उसको सुख अथवा दुःख नहीं दे सकता है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

भवतु नामाऽजरामरस्तथापि पितृमारकं धक्ष्यामीति चेत्तत्राह-जीवितमिति । गतिः परलोकः । अतो दुर्मरणनिमित्ता पितुर्दुर्गतिरनेन कृतेत्यपि न शङ्कनीयमित्यर्थः ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

हो सकता है कि वह अजर अमर हो गया है । किन्तु मैं अपने पिता को मारने वाले को भस्म करता हूँ, तो इसके उत्तर में बृहस्पतिजी ने कहा **जीवितम् जीवन, गतिः परलोक,** अतएव दुर्मरण के कारण हमारे पिता की दुर्गति इसने की है, ऐसी शङ्का आप न करें ॥२५॥

सर्पचौराग्निविद्युद्भ्यः क्षुत्तृड्ठयाध्यादिभिर्नृप । पञ्चत्वमृच्छते जन्तुर्भुङ्क्ते आरब्धकर्म तत् ॥२६॥

अन्वयः— हे नृप ! सर्पचौराग्नि विद्युद्भ्यः क्षुत् तृड्व्याध्यादिभिः जन्तुः पञ्चत्वमृच्छते तत् आरब्धकर्म भङ्क्ते ॥२६॥

अनुवाद— राजन् इस बहुत से लोगों की मृत्यु साँप, चोर, अग्नि और बिजली से तथा भूख, प्यास रोग आदि निमित्तों से होती है । प्राणी वस्तुत अपने आरब्ध कर्म का फल भोगता है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

कथमन्यः सुखदुःखप्रदाता नास्ति सर्पादीनामुपलभ्यमानत्वादिति चेत्तत्राह-सर्पादिना जन्तुः पञ्चत्वं मृत्युमृच्छति प्राप्नोतीति यत्तदारब्धं कर्मैव भुङ्क्ते, स्वकर्मप्रयुक्ता एव सर्पादयो न स्वतन्त्रा इति भावः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

सर्प आदि तो सुख-दुःख प्रदाता होते ही हैं अतएव कैसे कहा जा सकता है कि दूसरा कोई सुख-दुःख देने वाला नहीं है वे इस पर बृहस्पति जी कहते हैं सर्प आदि के द्वारा जो मृत्यु होती है वह भी मनुष्य अपने आरब्ध कर्म का फल ही भोगता है । सर्प आदि अपने कर्म के कारण ही काटने का काम करते है वे सब भी स्वतंत्र नहीं है ॥२६॥

तस्मात्सत्रमिदं राजन्संस्थीयेताभिचारिकम् । सर्पा अनागसो दग्धा जनैर्दिष्टं हि भुज्यते ॥२७॥

अन्वयः— राजन् ! तस्मात् आभिचारिकम् सत्रमिदं संस्थीयेताम्, अनागसः सर्पाः दग्धाः जनैः हि दिष्टं भुज्यते॥२७॥

अनुवाद— राजन् ! अतएव इस आभिचारिक यज्ञ को बन्द कर दें, बहुत से निरपराध सर्प जल गये । मनुष्य अपने कर्मों का ही फल भोगता है ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

संस्थीयेत समाप्यताम्। आभिचारिकं हिंसाफलम्। दिष्टं प्राचीनं कर्म। अतः सर्पादृष्टप्रयुक्तस्य तवाप्ययं नापराध इति भावः॥२७॥

भाव प्रकाशिका

संस्थीयेत अर्थात् समाप्त करें । अभिचारिकम् अर्थात् हिंसात्मक, दिष्टं प्राचीन कर्म, अतएव सर्पों के प्राचीन कर्म के कारण ही आपने यह यज्ञ किया है । इसमें आपका दोष नहीं है ॥२७॥

सूत उवाच

इत्युक्तः स तथेत्याह महर्षेर्मानयन्वचः । सर्पसत्रादुपरतः पूजयामास वाक्पतिम् ॥२८॥

अन्वयः— इत्युक्तः सः महर्षिः वचः मानयन् तथेत्याह, सर्पसत्रात् उपरतः वाक्पतिम् पूजयामास ॥२८॥

सूतजी ने कहा

अनुवाद— शौनकादि ऋषियों महर्षि बृहस्पतिजी का सम्मान करते हुए राजा जनमेजय ने कहा ठीक है । राजा जनमेजय ने सर्पसत्र बन्द कर दिया और बृहस्पतिजी की विधि पूर्वक पूजा की ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

वाक्पति बृहस्पतिम् ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

वाक्पतिम् अर्थात् बृहस्पतिजी की ॥२८॥

सैषा विष्णोर्महामायाऽबाध्ययाऽलक्षणा यया । मुह्यन्त्यस्यैवात्मभूता भूतेषु गुणवृत्तिभिः ॥२९॥

अन्वयः— सैषा विष्णो अवाध्यलक्षणा माया यया आत्मभूता भूतेषु गुणवृत्ति मुह्यन्ति ॥२९॥

अनुवाद— यह भगवान् विष्णु की माया कभी बाधित नहीं होती। वह माया ही है जिसके द्वारा परमात्मा के स्वरूप भूत जीव क्रोधादि गुणवृत्तियों के द्वारा शरीरों में मोहित हो जाते हैं और एक दूसरे को दु:ख देते और भोगते हैं।।२९।।

भावार्थ दीपिका

ननु कथं विदुषामप्येवं संमोहो यतो ब्रह्मकोपात्परीक्षितो मृत्युर्जनमेजयकोपात्सर्पाणामित्यादि तत्राह-सैषेति । तस्या महत्त्वं दर्शयति-अलक्षणा न लक्ष्यत इत्यलक्षणा, अप्रतर्क्येत्यर्थः । कासावित्यत आह-ययाऽस्य विष्णोरेवात्मभूता आत्मांशभूताः प्राणिनो गुणवृत्तिभिः क्रोधादिभिः सह भूतेषु देहेषु मुह्यन्ति । बाध्यबाधकतां व्रजन्तीत्यर्थः । ननु श्रवणादिना बाधितया तया कुतो मोहः स्यातत्राह-अबाध्यया बाधितुमशक्यया ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि ज्ञानियों को भी इस प्रकार का मोह कैसे हो जाता है ? जिसके कारण ब्राह्मण के क्रोध के कारण परीक्षित् की मृत्यु हुई तथा जनमेजय के क्रोध से सर्पो की मृत्यु हुई ? इसके उत्तर में सूतजी ने कहा वह भगवान् विष्णु की माया है । माया का महत्त्व बतलाते है । वह माया अप्रतर्क्य है । वह कौन है ? तो इस पर कहते हैं । उस माया के द्वारा भगवान् विष्णु के अंशभूत जीव अपनी गुणवृत्तियों क्रोध आदि के द्वारा जीवों के शरीर के विषय में मोहित हो जाते है । अर्थात् बाध्य बाधक बन जाते हैं । यदि कहे कि श्रवण इत्यादि के द्वारा बाधित होने के कारण मोह कैसे सम्भव है ? तो इसका उत्तर है कि उस माया का कभी बाध नहीं होता है ।।२९।।

न यत्र दम्भीत्यभया विराजिता मायात्मवादेऽसकृदात्मवादिभिः ।
न यद्विवादो विविधस्तदाश्रयो मनश्च सङ्कल्पविकल्पवृत्ति यत् ।।३०।।

अन्वयः— यत्र दम्भी इति अभया यत्र न विराजिता मायात्मवादे असकृत् आत्मवादिभिः यद विविधः वादः न तदाश्रय यत् मनः सङ्कल्प विकल्प वृति न ।।३०।।

अनुवाद— यह दम्भी है, कपटी है, इस प्रकार की बुद्धि में जो दम्भ कपट स्फुरित होता है वही माया है । जब आत्मवादी पुरुष चर्चा करने लगते हैं तब वह परमात्मा के स्वरूप में निर्भय रूप से प्रकाशित नहीं होती है । अपितु वह भयभीत होकर मोह आदि का कार्य भी नहीं करती है । केवल किसी प्रकार रहती भर है । इस तरह उसका प्रतिपादन किया गया है । माया के आश्रित नाना प्रकार के विवाद परमात्मा के स्वरूप में नहीं है, क्योंकि वे विशेष विषयक है। और परमात्मा निर्विशेष हैं । लोक परलोक के विषय में सङ्कल्प करने वाला मन भी शान्त हो जाता है ।।३०।।

भावार्थ दीपिका

कथं तर्हि मायातत्कार्यनिवृत्तिरित्याशङ्क्य श्रीविष्णुस्वरूपनिरूपणपूर्वकं तद्भजनात्सर्वानर्थनिवृत्तिरिति शास्त्रार्थमुपसंहरति-न यत्रेति पञ्चभिः । दम्भीति । माया, कपटवानयं पुमानित्येवंभूतायां बुद्धावसकृदुल्लिख्यमाना या मायेत्यर्थः । साऽऽत्मवादे क्रियमाणे आत्मवादिभिर्यत्राभया न विराजिता न प्रकाशिता किंतु भीतेव स्वकार्यं मोहादिकमकुर्वती कथंचिद्वर्तत इति प्रतिपादितेत्यर्थः। तदुक्तम्- 'तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि । यन्मायया दुर्जयया मां ब्रुवन्ति जगद्गुरुम् । विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया। विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः ।' इति । किंच, यद्यस्मिंस्तदाश्रयो मायाश्रयो विविधो विवादोऽपि नास्ति । विशेषविषयत्वाद्विवादानां तस्य विशेषातीतत्वादिति भावः । सङ्कल्पविकल्पा वृत्तयो यस्य तन्मनोऽपि यत्र नास्ति । सङ्कल्पविकल्पानामपि विशेषविषयत्वात् ।।३०।।

भाव प्रकाशिका

तो फिर माया और उसके कार्यों की निवृत्ति कैसे होती है ? इस तरह की शङ्का करके कहते हैं- भगवान् विष्णु

के स्वरूप पूर्वक श्रीभगवान् का भजन करने से ही समस्त अनर्थों की निवृत्ति हो जाती हैं। इस शास्त्रार्थ का **न यत्र० इत्यादि** पाँच श्लोकों से उपसंहार करते हैं। यह दम्भी है अर्थात् माया कपट करता है इस प्रकार की होने वाली बुद्धि में जिसकी बार-बार प्रतीति होती है, वही माया है। आत्मवादियों द्वारा किए जाने वाले आत्मवाद में वह निर्भय होकर नहीं विराजती है और न प्रकाशित होती है। बल्कि वहाँ पर वह भयभीत के समान अपना मोह आदि कार्य करती हुई किसी तरह निवास करती है इस बात का प्रतिपादन किया जा चुका है। कहा भी गया है- **तस्मै० नमः इत्यादि** उन भगवान् वासुदेव को मेरा नमस्कार है, उनकी दुर्जय माया से मोहित होकर लोग मुझे जगद्‌गुरु कहते हैं। विशेष रूप से लज्जित होती हुई जिनकी दृष्टि पथ ठहरने में असमर्थ है, इस माया से मोहित होकर अज्ञानी जीव मैं और मेरा कहकर आत्मश्लाघा करते है। और भी यदि जिसमें माया के कारण अनेक प्रकार के विवाद नहीं हैं। क्योंकि माया तो विशेष विवाद विषयिणी होती है और आत्मवस्तु तों निर्विशेष है। जिसकी वृत्ति सङ्कल्प विकल्प रूप होती है वह मन भी उसमें नहीं हैं क्योंकि सङ्कल्प भी तो विशेष विषयक ही होते हैं ॥३०॥

न यत्र सृज्यं सृजतोभयो परं श्रेयश्च जीवस्त्रिभिरन्वितस्त्वहम् ।
तदेतदुत्सादितबाध्यबाधकं निषिध्य चोर्मीन्विरमेत्स्वयं मुनिः ॥३१॥

अन्वयः— न यत्र सृज्यं सृजतोभयोः परं श्रेयश्च जीवस्त्रिभिः अन्वितः तु अहम्, तदेतदुत्सादित बाध्यबाधकं उर्मीन् निषिध्यमुनिः स्वयं विरमेत् ॥३१॥

अनुवाद— कर्म उनके सम्पादन की सामग्री तथा उनके द्वारा साध्य कर्म इन तीनों से अन्वित अहङ्कारात्मक जीव, इन तीनों में से कोई भी जिनमें नहीं है, वह आत्म स्वरूप परमात्मा न तो किसी के द्वारा बाधित होते है, और वह किसी का विरोधी भी नहीं है, जो पुरुष उस परम पद का विचार करता है, वह मन की माया मयी लहरों अहङ्कार आदि का बाध करके अपने आत्म स्वरूप में विहार करने लगता है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

किंच सृज्यं कर्म सृजता कारकवर्गेण सहोभयोः सृज्यस्रष्ट्रोः परं साध्यं श्रेयः फलमपि। अतस्त्रिभिः सृज्यस्रष्टृफलैरन्वितो जीवश्चाहङ्कारात्मको यत्र नास्ति। अत एवोत्सादितौ निरस्तौ बाध्यबाधकौ यस्मिंस्तदेतत्स्वयमात्मस्वरूपमित्यर्थः। तत्तस्मिन्नूर्मीनहंकारादीन्निषिध्य विरमेत्। विशेषेण क्रीडेदित्यर्थः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

सृज्य, कर्म, सृजन करने वाले कारक वर्ग के साथ दोनों सृज्य एवं स्रष्ट्रा से परे साध्य एवं श्रेयः फल भी। अतएव सृज्य, स्रष्टा और फल इन तीनों से युक्त अहङ्कार स्वरूप जीव जिसमें नहीं हैं। अतएव जिसमें बाध्य बाधक भाव नहीं है। वही आत्मा का स्वरूप है। उसमें अहङ्कार आदि लहरों का निषेध करके उसी में विशेष रूप से क्रीडा करें ॥३१॥

परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्यन्नेति नेतीत्येतदुत्सिसृक्षवः ।
विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्यावसितं समाहितैः ॥३२॥

अन्वयः— यत् वैष्णवं परं पदम् आमनन्ति यत् नेति नेति इत्येदुत्सिसृक्षवः अनन्य सौहृदाः दौरात्म्यं विसृज्य अवसितं समाहितैः हृदा उपगुह्य ॥३२॥

अनुवाद— जो मुमुक्षु एवं विचारशील पुरुष परमपद से भिन्न वस्तु का परित्याग करते हुए नेति-नेति के द्वारा उसका निषेध करके ऐसी वस्तु को प्राप्त करते हैं जिसका कभी निषेध नहीं हो सकता है और उसका कभी त्याग भी नहीं हो सकता है। वही भगवान् विष्णु का परमपद है। इस बात को सभी महात्मा एवं श्रुतियाँ समान

रूप से स्वीकार करती हैं । अपने चित्त को एकाग्र करने वाले पुरुष, अन्त:करण की अशुद्धियों, अनात्म भावनाओं को सदा के लिए मिटाकर अनन्य प्रेमपूर्ण भाव से परिपूर्ण ह्रदय के द्वारा उसी परम पद का आलिङ्गन करके उसमें प्रवेश कर जाते हैं ।।३२।।

भावार्थ दीपिका

यतस्तद्वैष्णवं पदमामनन्तीत्याह-परमिति । यदेतत्तदेव परं वैष्णवं पदं स्वरूपमामनन्ति । के । अतत् आत्मव्यतिरिक्तमुत्सिसृक्षवस्त्यक्तुमिच्छवः । यतोऽनन्यसौहृदाः नास्त्यन्यस्मिन्सौहृदं येषां ते । कुतः । दौरात्म्यं देहाद्यहंभावं विसृज्य । देहेऽहङ्काराभावादन्यत्र सौहृदं नास्त्यतस्त्यक्तुमिच्छव इत्यर्थः । कथम् । नेति नेतीत्येवम् । अत्र विद्वदनुभवमपि प्रमाणयति-हृदोपगुह्य ध्यानादिना । ततः समाहितैरवसितं निश्चितम् । यद्वा, अवसितमवबद्धमात्मतया गृहीतमित्यर्थः ।।३२।।

भाव प्रकाशिका

परमपदम् इत्यादि श्लोक के द्वारा यह बतलाते हैं कि जिसे भगवान् विष्णु का परम पद कहते हैं जो इस प्रकार का है श्रुतियाँ उसी को भगवान् विष्णु का परम पद बतलाती हैं । उस परम पद से वस्तुओं का जो लोग त्याग कर देना चाहते है । जो लोग परमपद व्यतिरिक्त वस्तु को नहीं चाहते है वे लोग देह आदि में होने वाले अहन्त्व का परित्याग करके नेति-नेति के द्वारा निषेध कर करके जिसका समर्थन ज्ञानी जन और श्रुतियाँ करती है, उस परम पद का ही आत्मा रूप से आलिङ्गन करके उसी में प्रवेश कर जाते हैं ।।३२।।

त एतदधिगच्छन्ति विष्णोर्यत्परमं पदम् । अहं ममेति दौर्जन्यं न येषां देहगेहजम् ।।३३।।

अन्वयः— येषां देहगेहजम् अहं ममेति न ते एतत् यद् विष्णोः परमं पदम् अधिगच्छन्ति ।।३३।।

अनुवाद— जिन लोगों को देह में अहन्त्व तथा गृह में ममत्व नहीं है वे ही लोग इस भगवान् विष्णु के परम पद के अधिकारी हैं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

एतत्प्राप्तावधिकारिणो दर्शयति-त एतदिति । देहजमहमिति । गेहजं ममेति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

परमपद की प्राप्ति के अधिकारियों को बतलाते हैं देह में अहन्त्व और गृह में ममत्व ।।३३।।

अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन । न चेमं देहमाश्रित्य वैरं कुर्वीत केनचित् ।।३४।।

अन्वयः— अतिवादान् तितिक्षेत् कंचन न अवमन्येत, इमं देहं च आश्रित्य केनचित् वैरं न कुर्यात् ।।३४।।

अनुवाद— शौनकादि महर्षियों परमपद की प्राप्ति चाहने वाले को चाहिए कि वह कटु उक्तियों को वर्दास्त करे, किसी का अपमान न करे, इस शरीर में अहन्त्व और गृहादि में ममत्व का परित्याग कर दे । किञ्च वह किसी से बैर न करें ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

तत्प्राप्त्युपायमाह-अतिवादानिति ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

अतिवादान् इत्यादि श्लोक से परम पद प्राप्ति के उपाय को बतलाया गया है ।।३४।।

नमो भगवते तस्मै कृष्णायाकुण्ठमेधसे । यत्पादाम्बुरुहध्यानात्संहितामध्यगामिमाम् ।।३५।।

अन्वयः— अकुण्ठमेधसे तस्मै कृष्णाय भागवते नमः यत् पादाम्बुरुहध्यानात् इमाम् संहिताम् अध्यगाम् ।।३५।।

अनुवाद— जिनका ज्ञान अनन्त है ऐसे भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है। जिनके चरण कमलों का ध्यान करने मात्र से मैंने इस श्रीमद्भागवत संहिता का अध्ययन किया ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

शास्त्रसमाप्तौ गुरुं प्रणमति- नम इति । कृष्ण्याय व्यासाय । अध्यगामधिगतवानस्मि ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

शास्त्र की समाप्ति के अवसर पर सूतजी अपने गुरु को नमस्कार **नमो भगवते तस्मै इत्यादि** श्लोक से करते हैं। कृष्णाय महर्षि व्यास को, अध्यगाम् अध्ययन कर सका ॥३५॥

शौनक उवाच

पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः । वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत्सौम्याभिधेहि नः ॥३६॥

अन्वयः— हे सौम्य पैलादिभिः महात्मभिः वेदाचार्यैः व्यासशिष्यै वेदाश्च कतिधा व्यस्ताः एतत् नः अभिधेहि॥३६॥

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे साधुशिरोमणे ! सूतजी व्यासजी के शिष्य पैल आदि वेदाचार्य जो बहुत बड़े महात्मा थे, उन लोगों ने वेदों का कितना विभाग किया ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

'इमां संहितामध्यगाम्' इत्युक्तं तत्र पुराणसंहिताविभागं विशेषतो बुभुत्सुर्वेदविभागमपि प्रसङ्गात्पृथक् पृच्छति–पैलादिभिरिति। हे सौम्य ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

सूतजी ने कहा कि मैंने इस संहिता को पढ़ा उसमें पुराण संहिता के विशेष रूप से विभाग को जानने की इच्छा वाले शौनक महर्षि प्रसङ्गवशात् अलग से **पैलादिभिः इत्यादि** श्लोक के द्वारा पूछते हैं- हे सौम्य ! स्वभाव वाले सूतजी॥३६॥

सूत उवाच

समाहितात्मनो ब्रह्मन्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । हृद्याकाशादभून्नादो वृत्तिरोधाद्विभाव्यते ॥३७॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् समाहितात्मनः परमेष्ठिनः ब्रह्मणः हृदयाकाशात् नादः आभूत वृत्तिरोधात् विभाव्यते ॥३७॥

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— हे शौनक महर्षे ! जिस समय परमेष्ठिब्रह्माजी पूर्वसृष्टि का ज्ञान सम्पादन करने के लिए एकाग्रचित्त हुए उस समय उनके हृदयाकाश से एक अनाहतनाद प्रकट हुआ। जिस समय जीव अपनी मनोवृत्तियों को रोक लेता हैं। तब उसको भी इस अनाहत नाद का अनुभव होता है ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

तत्र प्रथमं वेदाविर्भावप्रकारमाह–समाहितात्मन इत्यष्टभिः । ब्रह्मणो हृदि य आकाशस्तस्मान्नादोऽभूत् । यः कर्णपुटपिधानेन श्रोत्रवृत्तिनिरोधादस्मदादिष्वपि विभाव्यते वितर्क्यते ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

सर्वप्रथम वेदों के आविर्भाव के प्रकार को समाहितात्मनः इत्यादि आठ श्लोकों से बतलाते है। ब्रह्माजी के हृदय में विद्यमान आकाश से वह नाद उत्पन्न हुआ। अपने कानों को बन्द करके मन को एकाग्र करने से हमलोग भी उसे सुन सकते हैं ॥३७॥

यदुपासनया ब्रह्मन् योगिनो मलमात्मनः । द्रव्यक्रियाकारकाख्यं धूत्वा यान्त्यपुनर्भवम् ॥३८॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! यत् उपासनया योगिनः द्रव्यक्रिया कारकाख्यं आत्मनः मलम् धूत्वा अपुनर्भवम् यान्ति॥३८॥

अनुवाद— हे शौनक जी ! जिसकी उपासना करके योगिजन अपनी आत्मा के द्रव्य, क्रिया तथा कारक रूप मल को विनष्ट करके मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

प्रसङ्गान्नादोपासकानां मोक्षफलमाह-यस्य नादस्योपासनयात्मनो मलं धूत्वाऽपोह्य । कथंभूतं मलं तमाह-द्रव्यमधिभूतम्, क्रिया अध्यात्मम्, कारकमधिदैवम्, एवं त्रिधाभूता आख्या यस्येति तथा तम् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

प्रसङ्गवशात् नादोपासना करने वालों को मोक्ष मिल जाता है, इस बात को बतलाते हैं । जिसकी उपासना आत्मा के अध्यात्म, अधिभूत तथा अधिदैव इन प्रकार के तीनों मलों को दूर करता है ॥३८॥

ततोऽभूत्त्रिवृदोङ्कारो योऽव्यक्तप्रभवः स्वराट् । यत्तल्लिङ्गं भगवतो ब्रह्मणः परमात्मनः ॥३९॥

अन्वयः— ततः त्रिवृत् ओङ्कार अभूत् यः अव्यक्त प्रभवः स्वराट् यत् तल्लिङ्गो भगवतः ब्रह्मणः परमात्मनः ॥३९॥

अनुवाद— उसी अनाहतनाद से ओङ्कार प्रकट हुआ वह ओङ्कार तीन मात्राओं अ, उ और म् वाला है । उस ओङ्कार की शक्ति से ही प्रकृति अव्यक्त से व्यक्त रूप में परिणत हो जाती है । ओङ्कार स्वयं अव्यक्त एवं अनादि है। एवं परमात्म स्वरूप होने के कारण स्वयं प्रकाश है । जिस परम वस्तु को भगवान् अथवा ब्रह्म शब्द से अभिहित किया जाता है उसके स्वरूप का बोध भी ओङ्कार के द्वारा ही होता है ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

त्रिवृत् त्रिमात्रः कण्ठोष्ठादिभिरुच्चार्यमाणस्योङ्कारस्याक्षरसमाम्नायान्तर्भावात्सूक्ष्मतया तं विशिनष्टि-अव्यक्तः प्रभवो यस्य सः । तदेवाह-स्वराट् स्वत एव हृदि प्रकाशमानः । तमेव कार्येण लक्षयति-यत्तदिति । नपुंसकत्वं लिङ्गशब्दविशेषणत्वात् । लिङ्ग गमकम् ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

त्रिवृत् अर्थात् तीन मात्राओं वाला, कण्ठ ओष्ठ आदि उच्चारण स्थानों से जिसका उच्चारण होता है । इस ओङ्कार का अक्षर समाम्नान् में अन्तर्भाव होने के कारण सूक्ष्म रूप से उसकी विशेषता बतलाते हैं । यह अव्यक्त एवं अनादि है । यह हृदय में स्वयम्प्रकाशित होता है । यत तत् इत्यादि कार्य के द्वारा ओङ्कार को लक्षित करते हैं । लिङ्ग का विशेषण होने से यत् शब्द में नपुंसक लिङ्ग हैं । लिङ्गम् अर्थात् बोधक ॥३९॥

शृणोति य इमं स्फोटं सुप्तश्रोत्रे च शून्यदृक् । येन वाग्व्यज्यते यस्य व्यक्तिराकाश आत्मनः॥४०॥

अन्वयः— सुप्तश्रोत्रे य इमं स्फोटं शृणोति शून्यदृक् येन वाक् व्यज्यते यस्य व्यक्तिः आत्मनः आकाशे ॥४०॥

अनुवाद— श्रवणेन्द्रिय की शक्ति लुप्त हो जाने पर भी जो इस ओङ्कार को तथा अर्थात् समस्त अर्थों को प्रकाशित करने वाले स्फोट तत्त्व को जो सुनता है सुषुप्ति एवं समाधि की अवस्थाओं में जो सबके अभाव को जानता है, वही परमात्मा का विशुद्ध स्वरूप है । वही ओङ्कार परमात्मा से हार्दाकाश से प्रकट होकर वेदरूपा वाणी को अभिव्यक्त करता है ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

कौऽसौ परमात्मा तमाह-शृणोतीति । इमं स्फोटमव्यक्तमोङ्कारम् । ननु जीव एव तं शृणोतु, नेत्याह-सुप्तश्रोत्रे

कर्णपिधानादिनाऽवृत्तिकेऽपि श्रोत्रे सति । जीवस्तु करणाधीनज्ञानत्वान्न तदा श्रोता । तदुपलब्धिस्तु तस्य परमात्मद्वारिकैवेति भावः । ईश्वरस्तु नैवम्, यतःशून्यदृक् । शून्येऽपीन्द्रियवर्गे दृक् यस्य । तथा हि-सुप्तो यदा शब्दं श्रुत्वा प्रबुध्यते न तदा जीवः श्रोता, लीनेन्द्रियत्वात् । अतो यस्तदा शब्दं श्रुत्वा जीवं प्रबोधयति स यथा परमात्मैव तद्वत् । कोऽसावोङ्कारस्तं विशिनष्टि सार्धेन-येन वाग्वृहती व्यज्यते । यस्य च हृदयाकाशे आत्मनः सकाशाद्व्यक्तिरभिव्यक्तिः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि परमात्मा कौन हैं ? तो उसको शृणोति इत्यादि श्लोक से कहते हैं । **इमम्** अर्थात् अव्यक्त ओङ्कार को । यदि कहें कि उसको तो जीव ही सुनता है । तो इस पर कहते हैं नहीं । कानों को ढंक देने आदि के द्वारा जब कानों की शक्ति सो जाती है, उस समय भी सुनता है । जीव तो इन्द्रियों द्वारा जानता है अतएव उस समय सुनने वाला जीव नहीं है । उसका ज्ञान तो परमात्मा द्वारा ही होता है । ईश्वर तो ऐसा है नहीं । क्योंकि वह शून्य में देखता है । अर्थात् इन्द्रिय वर्ग के सो जाने पर भी जिसका ज्ञान होता है, यह शून्यदृक् का अर्थ है । जिस समय सोया व्यक्ति शब्द को सुनकर जग जाता है उसे सुनने वाला जीव नहीं होता है । क्योंकि स्वाप के समय सभी इन्द्रियाँ लीन हो जाती है । अतएव उस समय जो शब्द को सुनकर जीव को जगाता है, वह परमात्मा ही है । प्रश्न होता है कि ओङ्कार कौन है ? तो उसकी विशेषता डेढ श्लोकों से बतलाते हैं । जिसके द्वारा वाणी अभिव्यक्त होती है जिसका हार्दाकाश में आत्मा से अभिव्यक्ति होती है ।।४०।।

स्वधाम्नो ब्रह्मणः साक्षाद्वाचकः परमात्मनः । स सर्वमन्त्रोपनिषद्वेदबीजं सनातनम् ।।४१।।

अन्वयः— स्वधाम्नः ब्रह्मणः परमात्मनः साक्षात् वाचकः, स सर्वमन्त्रोपनिषद्वे सनातनम् बीजम् ।।४१।।

अनुवाद— ॐकार अपने आश्रय परमात्मा परंब्रह्म का वाचक है, ओङ्कार ही सभी मन्त्रों, उपनिषदों और वेदों का सनातन वीज है ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

किंच, स्वधाम्नः स्वस्याश्रयः कारणं यद्ब्रह्म तस्य । किंच, परमात्मांशभूतसमस्तदेवतावाचकोऽपीत्याशयेनाह-स इति। सर्वमन्त्राणामुपनिषद्रहस्यसूक्ष्मरूपमित्यर्थः । तत्र हेतुः-वेदानां बीजं कारणम् । बीजत्वेऽप्यविकारितामाह-सनातनं सदैकरूपम्, तस्य ब्रह्मरूपत्वात् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

स्वधाम्नः अर्थात् अपने आश्रय अर्थात् कारण जो ब्रह्म उसका प्रकाशक है ओङ्कार । तथा परमात्मा के अंशभूत समस्त देवताओं का वाचक भी ओङ्कार है । इसी अभिप्राय से **स सर्वमन्त्रो० इत्यादि** कहा गया है। यह सभी मन्त्रों का रहस्य सूक्ष्मरूप है । उसका कारण है कि यह वेदों का बीज है । बीज होने पर भी निर्विकार रहता है क्योंकि ओङ्कार ब्रह्म स्वरूप है ।।४१।।

तस्य ह्यासंस्त्रयो वर्णा अकाराद्या भृगुद्वह । धार्यन्ते यैस्त्रयो भावा गुणनामार्थवृत्तयः ।।४२।।

अन्वयः— हे भृगुद्वहतस्य अकराद्याः त्रयो वर्णा आसन् यैः गुणानाम् त्रयोभावः अर्थवृत्तयः धार्यन्ते ।।४२।।

अनुवाद— हे शौनक जी ॐकार के तीन वर्ण हैं, अ, उ, और म् ये तीनों वर्ण सत्त्व, रजस, तमस इन तीनां गुणों, ऋक यजुः और साम इन तीनां नामों भूः, भुवः स्वः इन तीनों अर्थों एवं जग्रत् स्वप्न सुषुप्ति इन तीनों वृत्तियों को धारण करते हैं ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

इदानीं ततः सर्वप्रपञ्चोत्पत्तिप्रकारमाह-तस्य हीति । त्रयस्त्रिसंख्यायुक्ता भावा यैरकारोकारमकारैर्धार्यन्ते तत्कारणत्वात्। तानेवाह-गुणाः सत्त्वादयः । नामानि ऋग्यजुःसामानि । अर्था भूर्भुवः स्वर्लोकाः । वृत्तयो जाग्रदाद्याः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

तस्य० इत्यादि श्लोक से ओङ्कार से ही सम्पूर्ण प्रपञ्च की उत्पत्ति के प्रकार को बतलाते हैं- तीन संख्या वाले भाव अकार उकार तथा मकार इन तीनां वर्णों के द्वारा धारण किए जाते हैं, क्यांकि वे इन सबों के कारण हैं। उन सबों को बतलाते हैं सत्त्व आदि गुणों ऋज यजु: साम इन तीनां नामों, अर्था: अर्थात् भू र्भुव: स्व: तीनों लोकों तथा जाग्रत् स्वप्न, एवं सुषुप्ति इन तीनों वृत्तियों को बतलाते हैं ॥४२॥

ततोऽक्षरसमाम्नायमसृजद्भगवानज: । अन्तस्थोष्मस्वरस्पर्शह्रस्वदीर्घादिलक्षणम् ॥४३॥

अन्वय:— तत: भगवान् अज: अन्त:स्थोष्मस्वरस्पर्श ह्रस्वदीर्धादिलक्षणम् अक्षर समाम्नायम् असृजत् ॥४३॥

अनुवाद— इसके पश्चात् सर्वशक्तिमान ब्रह्माजी ने ॐकार से ही अन्तस्थ (यर लव) उष्म (श, ष, स, ह) स्वर (अ से औ तक) स्पर्श (क से म तक) एवं ह्रस्व दीर्घ आदि लक्षणों से युक्त अक्षर समाम्नाय अर्थात् वर्णमाला की रचना की ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

ततस्तेभ्यो वर्णेभ्य: । अक्षराणां समाम्नायं समाहाराम् । तमेवाह-अन्तस्था यरलवा: । ऊष्माण: शषसहा: । स्वरा अकाराद्या: । स्पर्शा: कादय: । ह्रस्वदीर्घाश्च । आदिशब्दाज्जिह्वामूलीयादय: । त एव लक्षणं स्वरूपं यस्य तम् ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् उन वर्णों से अक्षरों के समूह की । उस अक्षर समान्नाय को बतलाते हैं अन्तस्थ, यरलव उष्मा (श, ष, स, ह) स्वर अकार आदि, स्पर्श (क से लेकर म तक) ह्रस्व तथा दीर्घ आदि से जिह्वामूलीय आदि का ग्रहण होता है । ये ही सब अक्षर समान्नाय के स्वरूप हैं ॥४३॥

तेनासौ चतुरो वेदांश्चतुर्भिर्वदनैर्विभु: । सव्याहृतिकान्सोङ्कारांश्चातुर्होत्रविक्षया ॥४४॥
पुत्रानध्यापयत्तांस्तु ब्रह्मर्षीन्ब्रह्मकोविदान् । ते तु धर्मोपदेष्टार: स्वपुत्रेभ्य: समादिशन् ॥४५॥

अन्वय:— तेन असौ विभु: चतुर्भि: वदनै: व्याहृतिकान् सोङ्कारान् चतुरो वेदान् चातुर्होत्र विवक्षया पुत्रानध्यापयत् तान् ब्रह्मकोविदान् ब्रह्मर्षीन् ते तु धर्मोपदेष्टार स्वपुत्रेभ्य: समादिशन् ॥४४-४५॥

अनुवाद— उसी वर्णमाला से उन्होंने अपने चारो मुखों से होता, अध्वर्यु उद्गाता और ब्रह्मा इन ऋत्विजों के कर्म को बतलाने के लिए ओङ्कार एवं व्याहृतियों के साथ चार वेदों को प्रकट किये और अपने पुत्र ब्रह्मर्षि मरीचि आदि को वेदाध्ययन में कुशल देखकर उन्हें वेदों की शिक्षा दी । वे सभी जीव धर्म का उपदेश देने में निपुण हो गये तब वे लोग अपने पुत्रों के इसका अध्ययन कराये ॥४४-४५॥

भावार्थ दीपिका

विभुश्चतुर्मुखस्वरूपो भगवान् । असृजदिति पूर्वस्यैवानुषङ्ग: । चातुर्होत्रविवक्षया चत्वारो होत्रोपलक्षिता ऋत्विजश्चतुर्होतारस्तैरनुष्ठेयं हौत्राध्वर्यवादिकं कर्म चातुर्होत्रं तद्विवक्षया। पुत्रान्मरीच्यादीन्। तान्वेदान्। ब्रह्मकोविदान्वेदोच्चारणादिनिपुणान्।।४४-४५॥

भाव प्रकाशिका

चार मुखों वाले ब्रह्माजी ने चारो होत्रोपलक्षित होता, अध्वर्यु उद्गाता और ब्रह्मा आदि के द्वारा अनुष्ठेय होता अध्वर्यु आदि के चातुर्होत्र कर्म की विवक्षा से अपने मरीचि आदि पुत्रों को जो ब्रह्मज्ञानी थे तथा वेदोच्चारण करने में कुशल थे पुत्रों को वेदों को पढ़ाये ॥४४-४५॥

ते परम्परया प्राप्तास्तत्तच्छिष्यैर्धृतव्रतै: । चतुर्युगेष्वथ व्यस्ता द्वापरादौ महर्षिभि: ॥४६॥

अन्वय:— ते परम्परया प्राप्ता तत्-तत् शिष्यै: धृतव्रतै: चतुर्युगेष्वथ व्यस्ता: द्वापरादौ महर्षिभि: ॥४६॥

अनुवाद— उसके बाद उन्हीं लोगों के नैष्ठिक ब्रह्मचारी शिष्यों तथा प्रशिष्यों के द्वारा चारो युगों में सम्प्रदाय के रूप में वेदों की रक्षा होती रही । द्वापर के अन्त में महर्षियों ने उनका विभाजन भी किया ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

एवं चतुर्युगेषु प्राप्ताः । द्वापरादौ द्वापरमादिर्यस्य तदन्त्यांशलक्षणस्य कालस्य तस्मिन्, द्वापरान्ते वेदविभागप्रसिद्धेः, शन्तनुसमकालं व्यासावतारप्रसिद्धेश्च । व्यस्ता विभक्ताः ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह से चारो युगों में होने पर, द्वापर के प्रारम्भ में उस काल के अन्त में क्योंकि द्वापर के अन्त में वेद का विभाग हुआ यह प्रसिद्ध है । प्रसिद्ध है कि महाराज शन्तनु के समय में ही महर्षि व्यास का अवतार हुआ । उसी समय वेदों के विभाग हुए ॥४६॥

क्षीणायुषः क्षीणसत्त्वान्दुर्मेधान्वीक्ष्य कालतः । वेदान्ब्रह्मर्षयो व्यस्यन्हृदिस्थाच्युतचोदिताः ॥४७॥

अन्वयः— ब्रह्मर्षयः कालतः क्षीणायुष, क्षीणसत्त्वान् दुर्मेधान् वीक्ष्य हृदिस्थाच्युतचोदिता वेदान् व्यस्यन् ॥४७॥

अनुवाद— काल के प्रभाव के कारण ब्रह्मवेता ऋषियों ने लोगों को अल्पायुष अल्पशक्ति वाले क्षीण बुद्धि वाले देखकर हृदय में स्थित परमात्मा से प्रेरित होकर वेदों का विभाग कर दिया ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

तत्र हेतुः-क्षीणायुषो जनान् । तर्हि पुरुषबुद्धिप्रभवत्वादनादरणीयत्वं स्यादित्याशङ्क्याह-हृदिस्थेति ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

वेदों के विभाग का कारण **क्षीणायुषः इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । लोगों को अल्पआयु वाले देखकर। यदि कहा जाय कि पुरुष की बुद्धि द्वारा विभाग किए जाने के कारण वेदों का विभाग का समादर नहीं करना चाहिए। इस प्रकार की शङ्का करके सूतजी ने कहा । ऋषियों ने अपने हृदय में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान श्रीहरि के द्वारा प्रेरित होकर विभाग किया ॥४७॥

अस्मिन्नप्यन्तरे ब्रह्मन् भगवाँल्लोकभावनः । ब्रह्मेशाद्यैर्लोकपालैर्याचितो धर्मगुप्तये ॥४८॥
पराशरात्सत्यवत्यामंशांशकलया विभुः । अवतीर्णो महाभाग वेदं चक्रे चतुर्विधम् ॥४९॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! अस्मिन् अपि अन्तरे लोकभावनः विभुः भगवान् ब्रह्मेशाद्यैः लोकपालैः याचितः धर्मगुप्तये पराशरात् सत्यवत्याम् अंशांशकलया अवतीर्णः । हे महाभाग चतुर्विधम् वेदम् चक्रे ॥४८-४९॥

अनुवाद— हे शौनक महर्षे ! इस वैवस्वत मन्वन्तर में भी ब्रह्माजी आदि लोकपालों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर सम्पूर्ण संसार को जीवन प्रदान करने वाले सर्वव्यापक श्रीभगवान् धर्म की रक्षा करने के लिए महर्षि पराशर के पुत्र के रूप में सत्यवती के गर्भ से महर्षि व्यास के रूप में अवतीर्ण हुए । परम भाग्यवान् शौनकजी ! उन्होंने ही वर्तमान युग में वेदों के चार विभाग किए ॥४८-४९॥

भावार्थ दीपिका

एवं समान्यतो वेदविभागक्रममुक्त्वा वैवस्वतमन्वन्तरे विशेषतो निरूपयितुमाह-अस्मिन्नपीति । अंशो माया तस्या अंशः सत्त्वं तस्य कलयांऽशेनावतीर्णः सन् ॥४८-४९॥

भाव प्रकाशिका

इस तरह सामान्य रूप से वेदों के विभाग का क्रम बतलाकर वैवस्वत मन्वन्तर में विशेष रूप से उसका

निरूपण करने के लिए सूतजी ने अस्मिन्नित्यादि श्लोक को कहा। अंश अर्थात् माया उसकी कला से अर्थात् अंश से अवतार लेकर ॥४८-४९॥

ऋगथर्वयजुः साम्नां राशीनृद्धृत्य वर्गशः। चतस्रः संहिताश्चक्रे मन्त्रैर्मणिगणा इव ॥५०॥
तासां च चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः। एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विभुः ॥५१॥

अन्वयः— मन्त्रैः मणिगणान् इव वर्गशः ऋग अथर्व यजुः साम्नां राशीन् उद्धृत्य मन्त्रैः चत स्रः संहिताः चक्रे। सः महमतिः चतुरः शिष्यान् उपाहूय हे ब्रह्मन् एकैकां संहिताम् ददौ ॥५०-५१॥

अनुवाद— शौनकजी जिस तरह मन्त्रों के समूह से विभिन्न प्रकार की मणियों से माला बनायी जाती है, उसी मन्त्र समूह से महा बुद्धिमान व्यास जी ने मन्त्र समुदाय से भिन्न-भिन्न प्रकरणों के अनुसार मन्त्रों का संग्रह करके ऋक् यजुः अर्थव और साम इन चार संहिताओं का निर्माण किया और अपने चार शिष्यों को बुलाकर उन्होंने प्रत्येक को एक-एक संहिता प्रदान कर दिया ॥५०-५१॥

भावार्थ दीपिका

चातुर्विध्यमेवाह-ऋगिति। ऋगादिमन्त्राणां राशीन्वर्गशस्तत्तत्प्रकरणभेदैरुद्धृत्य यथाऽनेकविधमणिराशेर्मणिगणाः पद्मरागादयो विविच्योद्ध्रियन्ते तद्वदुद्धृत्य तैर्मन्त्रैश्चतस्र ऋगादिसंहिताश्चके। तासां संहितानां मध्ये एकैकाम् ॥५०-५१॥

भाव प्रकाशिका

वेदों के चार प्रकार के विभागों को **ऋग० इत्यादि** श्लोक से सूतजी ने बतलाया। ऋक् आदि मन्त्रों के समूह को वर्ग के अनुसार विभिन्न प्रकरणों के अनुसार छाँटकर जिस तरह विभिन्न प्रकार की मणियों से पद्मराग आदि मणियाँ अलग कर ली जाती हैं उसी तरह उन मन्त्रों के द्वारा व्यासजी ने, ऋग, यजुः, साम एवं अथर्व में भेदों वाली चार संहिताओं का निर्माण किया। उन संहिताओं में से एक-एक संहिता को ॥५०-५१॥

पैलाय संहितामाद्यां बहवृचाख्यामुवाच ह। वैशंपायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥५२॥

अन्वयः— बहवृचाख्याम् आद्याम् संहिताम् पैलाय उवाच ह, वैशम्म्पायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥५२॥

अनुवाद— वह वृच नाम की पहली संहिता पैल को तथा निगद नाम की दूसरी यजुः संहिता वैशम्पायन को दी ॥५२॥

भावार्थ दीपिका

ऋक्समुदायरूपत्वाद्बह्वृचाख्याम्। नितरां प्रश्लेषेण गद्यमानत्वान्निगदाख्यम् ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

ऋक ऋचाओं का समुदाय रूप होने से वहवृच नाम की प्रश्लेष के द्वारा कहे जाने के कारण निगद को॥५२॥

साम्नां जैमिनये प्राह तथा छन्दोगसंहिताम्। अथर्वाङ्गिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे ॥५३॥

अन्वयः— साम्नाम् तथा छन्दोग संहिताम् जैमिनये, अथर्वाङ्गिरसी नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे प्राह ॥५३॥

अनुवाद— समश्रुतियों की छन्दोग संहिता जैमिनि महर्षि को तथा अथर्वाङ्गिरसी संहिता अपने शिष्य सुमन्तु को दिए ॥५३॥

भावार्थ दीपिका

छन्दःसु गीयमानत्वाच्छन्दोगाख्यां संहिताम् ॥५३॥

भाव प्रकाशिका

छन्दो में गाये जाने के कारण छन्दोगनाम की संहिता को ॥५३॥

पैलः स्वसंहितामूच इन्द्रप्रमितये मुनिः । बाष्कलाय च सोऽप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् ॥५४॥

अन्वयः— पैलः मुनिः स्वसंहिताम् इन्द्रप्रमितये उचे । सोऽपि च वाष्कलाय स्वशिष्येभ्यः ॥५४॥

अनुवाद— पैल मुनि अपनी संहिता का उपदेश इन्द्रप्रमित को प्रदान उन्होंने अपने शिष्य वाष्कल नामक अपने शिष्यों को दिया ॥५४॥

भावार्थ दीपिका

तत्र ऋग्वेदशाखाविभागमाह-पैल इति । स्वसंहितां द्विधा विभज्य इन्द्रप्रमितये बाष्कलाय च ऊचे । स बाष्कलोऽपि स्वकां संहितां चतुर्धा व्यस्य बोध्यादिभ्यः शिष्येभ्य आह-हे भार्गव, इन्द्रप्रमितिरपि स्वां संहितां स्वसुतं माण्डूकेयमध्यापयामास। तस्य माण्डूकेयस्य शिष्यो देवमित्रः ॥५४॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि पैल ने अपनी संहिता का दो भागों में विभक्त करके उसको अपने शिष्य इन्द्रप्रमिति और वाष्कल को पढ़ाया, वाष्कल भी अपनी संहिता को चार भागों में विभाग करके बोध्य आदि शिष्यों को पढ़ाया । इन्द्रप्रमिति भी अपनी संहिता को अपने पुत्र माण्डूकेय को पढ़ाये उन माण्डूकेय के शिष्य देवमित्र थे ॥५४॥

चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव । पराशरायाग्निमित्रे इन्द्रप्रमितिरात्मवान् ॥५५॥

अन्वयः— हे भार्गव, चतुर्धा व्यस्य बोध्याय, याज्ञवल्क्याय, पराशराय, अग्निमित्रे आत्मवान् इन्द्रप्रमितिः ॥५५॥

अनुवाद— वाष्कल महर्षि भी अपनी संहिता का चार विभाग करके अपने शिष्य बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशरा, और अग्निमित्र को पढ़ाये परम संयमी इन्द्रप्रमिति ॥५५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५५॥

अध्यापयत्संहितां स्वां माण्डूकेयमृषिं कविम् । तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ॥५६॥

अन्वयः— स्वां संहिता कविम् माण्डूकेयम् ऋषिं अध्यापयत् तस्य शिष्यः देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् ॥५६॥

अनुवाद— अपनी संहिता को माण्डूकेय ऋषि को पढाये और उनके शिष्य देवमित्र उसका उपदेश सौभरी आदि को दिए ॥५६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५६॥

शाकल्यस्तत्सुतः स्वां तु पञ्चधा व्यस्य संहिताम् । वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात् ॥५७॥

अन्वयः— तत्सुतः शाकल्यः स्वां संहितां स्वां संहिताम् पञ्चधा व्यस्य वात्स्य मुद्गल्य, शालीयगोखल्य शिशिरेष्वधात्॥५७॥

अनुवाद— माण्डूकेय के पुत्र शाकल्य अपनी संहिता का पाञ्च भागों में विभाग करके उन्हें वात्स्य, मुद्गल्य, शालीय, गोखाल्य तथा शिशिर नामक शिष्यों को पढ़ाया ॥५७॥

भावार्थ दीपिका

तत्सुतो माण्डूकेयसुतः शाकल्यो वात्स्यादिषु पञ्चस्वधात् । तानध्यापयामासेत्यर्थः ॥५७॥

भाव प्रकाशिका

माण्डूकेय के पुत्र शाकल्य वात्स्य आदि पाञ्च शिष्यों को पढ़ाया ॥५७॥

जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम् । बलाकपैजवैतालविरजेभ्यो ददौ मुनिः ॥५८॥

अन्वयः— तच्छिष्यः जातूकर्ण्यः मुनिः सनिरुक्तां स्वसंहिताम् बलाक पैजवैतालविरजेभ्यः ददौ ॥५८॥

अनुवाद— शाकल्य के एक शिष्य जातूकर्ण्य थे वह अपनि संहिता संबन्धी निरुक्त के साथ अपने शिष्य बलाक, पैज, वैताल तथा विरज को पढ़ाये ॥५८॥

भावार्थ दीपिका

तच्छिष्यः शाकल्यशिष्यः स्वसंहितां त्रेधा विभज्य चतुर्थं वैदिकपदार्थव्याख्यानरूपं निरूक्तं च कृत्वा बलाकादिभ्यश्चतुर्भ्यो ददौ ॥५८॥

भाव प्रकाशिका

शाकल्य के शिष्य अपनी संहिता का तीन विभाग करके वैदिक पदार्थ व्याख्यान स्वरूप निरुक्त के साथ अपने शिष्यों बलाक, पैज, वैताल और विरज को पढ़ाये ॥५८॥

बाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो वालखिल्याख्यसंहिताम् । चक्रे बालायनिर्भज्यः कासारश्चैव तां दधुः ॥५९॥

अन्वयः— वाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यः वालखिल्यसंहितां चक्रे बालायनिः भज्यः कासारः चैव तां दधुः ॥५९॥

अनुवाद— वाष्कल के पुत्र वाष्कलि प्रत्येक शाखाओं से बालखिल्य नामक संहिता का निर्माण किये और उसको, बालायनि, भज्य तथा कारक नामक शिष्यों ने धारण किया ॥५९॥

भावार्थ दीपिका

बाष्कलिः पूर्वोक्तस्य बाष्कलस्य पुत्रः । प्रतिशाखाभ्य उक्तसर्वशाखाभ्यः । बालायन्यादयस्तामादधुरधीतवन्तः ॥५९॥

भाव प्रकाशिका

पूर्वोक्त बाष्कल के पुत्र प्रत्येक शाखाओं से बाल्यखिल्य नामक संहिता का निर्माण किए । उस संहिता का अध्ययन बालायनि, भज्य तथा कासार नामक शिष्यों ने किया ॥५९॥

बह्वृचाः संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः। श्रुत्वैतच्छन्दसां व्यासं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६०॥

अन्वयः— एताः हि बह्वृचाः संहिता एभिः ब्रह्मर्षिभिः वृताः एतत् छन्दसां व्यासं श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥६०॥

अनुवाद— ये सभी ऋग्वेद की शाखाएँ हैं । इन ब्रह्मर्षियों ने इसका अध्ययन किया है । वेदों के इस विभाग का श्रवण करने वाला पुरुष सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥६०॥

भावार्थ दीपिका

ऋक्शाखोपसंहारपूर्वकं तच्छ्रवणफलमाह-वह्वृचा इति । एतच्छन्दसामेतेषां छन्दसाम् ॥६०॥

भाव प्रकाशिका

ऋग्वेद के विभाग का उपसंहार पूर्वक उसके श्रवण का फल सूतजी ने **वहवृचाः इत्यादि** श्लोक से बतलाया है । वेदों के इन विभागों का श्रवण करने वाला पुरुष सभी पापों से मुक्त हो जाता है ॥६०॥

वैशंपायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवत् । यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांहःक्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥६१॥

अन्वयः— वैशम्पायन शिष्याः चरक अध्वर्यवः अभवन् यत स्वगुरोः ब्रह्महत्यांहः क्षपणं व्रतम् चेरु ॥६१॥

अनुवाद— वैशम्पायन महर्षि के शिष्य चरक एवं अध्वर्यु हुए वे अपने गुरु के ब्रह्महत्या नामक पाप को दूर करने के लिए एक व्रतका अनुष्ठान किए । इसीलिए इन लोगों का नाम चरकाध्वर्यु है ॥६१॥

भावार्थ दीपिका

यजुर्वेदे तैत्तिरीयशाखोत्पत्तिप्रस्तावमाह- वैशंपायनशिष्या इत्यादिना । चरकनामनिरुक्तिमाह-यच्चेरुरिति । यद्यस्माद्ब्रह्महत्यारूपमंहः क्षपयतीति तथा तत्स्वगुरोरनुष्ठेयं व्रतं तच्चरणाच्चरका इत्यर्थः ॥६१॥

भाव प्रकाशिका

यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा की उत्पत्ति के प्रकार को वैशम्पायन शिष्या: इत्यादि श्लोक से बतलाते हैं । चरक नाम की निरुक्ति यच्चेरु । चूकि अपने गुरु ब्रह्महत्या रूप पाप को दूर करने के व्रत का आचरण किए अतएव ये चरक कहलाए ॥६१॥

याज्ञवल्क्यश्च तच्छिष्य आहाहो भगवन्कियत् । चरितेनाल्पसाराणां चरिष्येऽहं सुदुश्चरम् ॥६२॥

अन्वयः— तच्छिष्य याज्ञवल्क्यः आह अहो भगवन् अल्पसाराणां चरितेन कियत् अहं सुदुश्चरम् चरिष्ये ॥६२॥

अनुवाद— वैशम्पायन महर्षि के शिष्य याज्ञवल्क्य ने कहा हे भगवन् इन अल्प प्राण वालों के व्रताचरण करने से क्या लाभ हैं मैं अत्यन्त कठोर व्रत करूँगा ॥६२॥

भावार्थ दीपिका

तच्छिष्यो वैशंपायनशिष्यः । अल्पसाराणामेतेषां चरितेन कियत्, सुदुश्चरमहं चरिष्यामीति ॥६२॥

भाव प्रकाशिका

वैशम्पायन महर्षि के शिष्य याज्ञवल्क्य ने कहा । अल्पप्राण इन सबों के व्रताचरण से क्या लाभ है । मैं अत्यन्त कठोर व्रताचरण करूँगा ॥६२॥

इत्युक्तो गुरुरप्याह कुपितो याह्यलं त्वया । विप्रावमन्त्रा शिष्येण मदधीतं त्यजाश्विति ॥६३॥

अन्वयः— इत्यक्तः कुपितः गुरुरप्याह विप्रावमन्त्रा शिष्येणत्वया अलम् मद् अधीतं आशु त्यज इति ॥६३॥

अनुवाद— इस तरह की बात सुनकर गुरु वैशम्पायन क्रुद्ध होकर कहे ब्राह्मणों का अपमान करने वाले तुम्हारे जैसे शिष्य से कोई लाभ नहीं तुम यहाँ से चले जाओ मुझसे तुमने जो अध्ययन किया है, उसे त्याग दो ॥६३॥

भावार्थ दीपिका

विप्राणामवमन्त्राऽवज्ञाकर्त्रा । मत्तोऽधीतमाशु त्यजेति ॥६३॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणों का अपमान करने वाले । मुझसे जो अध्ययन किए हो उसे शीघ्र त्याग दो ॥६३॥

देवरातसुतः सोऽपि च्छर्दित्वा यजुषां गणम् । ततो गतोऽथ मुनयो ददृशुस्तान्यजुर्गणान् ॥६४॥

अन्वयः— देवरातसुतः अपि यजुषां गणम् छर्दित्वा ततो गतः । अथ मुनयः तान् यजुर्गणान् ददृशुः ॥६४॥

अनुवाद— देवरात ऋषि के पुत्र याज्ञवल्यक्य भी, उनके पढाए हुए यजुर्वेद का वमन कर दिए और चले गये । मुनियों ने उन यजुषों को देखा ॥६४॥

भावार्थ दीपिका

देवरातसुतो याज्ञवल्क्यः ॥६४॥

भाव प्रकाशिका

देवरात के पुत्र महर्षि याज्ञवल्क्य ॥६४॥

यजूंषि तित्तिराः भूत्वा तल्लोलुपतयाऽऽददुः । तैत्तिरीया इति यजुः शाखा आसन्सुपेशलाः ॥६५॥

अन्वयः— तल्लोलुपतया तित्तिराः भूत्वा आददुः । इति सुपेशलाः तैत्तिरीयाः यजुः शाखाः आसन् ॥६५॥

अनुवाद— जब मुनियों ने देखा तब उनके मन में लालच हुई कि हमलोग इसे प्राप्त कर लें, किन्तु ब्राह्मण होकर उगले हुए मन्त्रको लेना अनुचित है अतएव वे तितिर बनकर उन यजुष समूहों को चुग लिए ॥६५॥

भावार्थ दीपिका

छर्दितस्यादानं विप्ररूपेणानुचितमिति तित्तिराः पक्षिविशेषा भूत्वा आददुः । ततश्च तैत्तिरीया इति प्रसिद्धाः । सुपेशला अतिरम्याः । बहुवचनमवान्तरभेदविवक्षया ।।६५।।

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मण के द्वारा वमन कृत को ग्रहण करना अनुचित है । अतएव वे महर्षिगण तित्तिर बनकर उसे चुग लिए । वे ही यजुर्गण सुन्दर तैतिरीय शाखा बन गये । अवान्तर भेद की विवक्षा से बहुवचनान्त प्रयोग किया गया है ।।६५।।

याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मंश्छन्दांस्यधिगवेषयन् । गुरोरविद्यमानानि सूपतस्थेऽर्कमीश्वरम् ।।६६।।

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! ततः याज्ञवक्यः छन्दांसि अधिगवेषया गुरोः अविद्यमानानि ईश्वरमर्कम् सूपतस्थे ।।६६।।

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! उसके पश्चात् गुरु से अधीत छन्दों को नहीं देखकर वेदों को प्राप्त करने की इच्छा से भगवान् सूर्य की अराधना किए ।।६६।।

भावार्थ दीपिका

काण्वमाध्यन्दिनादिशाखाप्रसङ्गमाह–याज्ञवल्क्य इत्यादिना । गुरोर्वैशंपायनस्य व्यासेन विभज्यानुक्तत्वादविद्यमानान्यधिकानि गवेषयन्मृगयन्सूपतस्थे सम्यक् तुष्टाव । ईश्वरमृगादिवेदानाम् । तथा च श्रुतिः–'ऋग्भिः पूर्वाह्ले दिवि देव ईयते । यजुर्वेदे तिष्ठति मध्ये अह्नः । सामवेदेनास्तमये महीयते । वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः' इति ।।६६।।

भाव प्रकाशिका

याज्ञवल्क्य० इत्यादि श्लोक से काण्व, माध्यन्दिन आदि शाखाओं के भेद के प्रसङ्ग को बतलाये हैं । गुरु वैशाम्पायन के द्वारा विभाग के द्वारा नहीं कहे जाने के कारण अविद्यमान अधिक छन्दों को प्राप्त करने की इच्छा से भगवान् सूर्य की उपासना किए श्रुति भी कहती है- **ऋग्भिः पूर्वाह्ले दिवि देव० इत्यादि** ऋचाओं के द्वारा भगवान् सूर्य आकाश में पूर्वाह्ल में आते हैं । दोपहर की बेला में यजुर्वेद में रहते हैं । अस्त होते समय वे साम वेद से पूजित होते है । इन तीनों वेदों से भगवान् सूर्य अशून्य रहते हैं ।।६६।।

याज्ञवल्क्य उवाच

ॐ नमो भगवते आदित्यायाखिलजगतामात्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि चाकाश इवोपाधिनाऽव्यवधीयमानो भवानेक एव क्षणलवनिमेषावयवोपचितसंवत्सरगणेनापामादानविसर्गाभ्यामिमां लोकयात्रामनुवहति ।।६७।।

अन्वयः— अखिलजगताम् आत्मस्वरूपेण काल स्वरूपेण चतुर्विधभेदनिकायानाम् ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानाम् अन्तर्ह्दयेषु बहिरपि आकाश इव उपाधिना अव्यवधीयमानो भवानेक एव क्षणलव निमेष अबयवोपचित संवत्सर गणेन अपाम् आदान विसर्गाभ्यिाम् इमां लोकयात्राम्अनुहति ओम् आदित्याय भगवते नमः ।।६७।।

याज्ञवल्क्य महर्षि ने कहा

अनुवाद— भगवान् सूर्य सम्पूर्ण जगत् की आत्मा और काल स्वरूप हैं । ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त जितने भी जरायुज, अण्डज, स्वेदज और स्थावर चार प्रकार के प्राणी हैं, उन सबों के हृदय देश में और बाहर आकाश के समान रहकर भी आप उपाधि के धर्मों से असङ्ग रहने वाले अद्वितीय भगवान् ही हैं । आप ही क्षण लव निमेष आदि अवयवों से संघटित संवत्सरों के द्वारा एवं जल के आकर्षण विकर्षण के द्वारा समस्त लोकों की जीवन यात्रा चलाते हैं । ऐसे ओङ्कार स्वरूप भगवान् आदित्य को नमस्कार है ।।६७।।

भावार्थ दीपिका

नमो भगवते तुभ्यमादित्याय । यो भवानेक एवेमां लोकयात्रामनुवहतीत्यन्वयः । तदेव दर्शयति-अखिलजगतामात्मस्वरूपेणान्तर्हृदयेषु काल स्वरूपेण च बहिरपि वर्तमान इति । अखिलजगतामित्यस्य प्रपञ्चः-चतुर्विधेति । हृदयान्तर्वर्तित्वेऽपि जीववत्तेनोपाधिनाऽव्यवधीयमानोऽनाच्छाद्यमानः । कालस्वरूपेण चेत्यस्य प्रपञ्चः-क्षणेति । क्षणलवादयो येऽवयवास्तैरुपचिताः संवत्सरास्तेषां गणेन प्रत्यब्दमपामादानं शोषणं विसर्गो वृष्टिस्ताभ्याम् अनेन गायत्रीप्रथमपादोक्तवरेण्यतानुवर्णिता ।।६७।।

भाव प्रकाशिका

आप भगवान् आदित्य को नमस्कार है । क्योंकि आप अकेले ही संसार की यात्रा का निर्वाह करते हैं । उसी को बतलाते हैं । सम्पूर्ण संसार के जीवों के आत्मा रूप से उन सभी जीवों के हृदय में तथा बाहर भी काल रूप से वर्तमान हैं । अखिल जगत् का चतुर्विध इत्यादि विस्तार है । हृदय के भीतर वर्तमान रहने पर भी जीव के समान जीवोपाधि के द्वारा व्यवहित आच्छन्न ही होते है । कालस्वरूपेण का विस्तार है क्षण, लव आदि अवयवों से परिपूर्ण संवत्सरों के समूह के द्वारा प्रत्येक वर्ष जल का शोषण और उसी को वर्षा के रूप में इसके द्वारा गायत्री के प्रथम पाद में उक्त वरेण्यता का वर्णन किया गया है ।।६७।।

यदु ह वाव विबुधर्षभ सवितरदस्तपत्यनुसवनमहरहराम्नायविधिनोपतिष्ठमानानामखिलदुरितवृजिनबीजावभर्जन भगवतः समभिधीमहि तपनमण्डलम् ।।६८।।

अनुवाद— हे प्रभो आप समस्त देवताओं में श्रेष्ठ हैं । जो लोग प्रतिदिन तीनों सवनों में वैदिक विधि से आपकी उपासना करते हैं, उनके समस्त पापों एवं दुःखों के बीजों को आप भस्म कर देते हैं । हे सूर्यदेव ! आप सारी सृष्टि के मूल कारण और समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी हैं । इसीलिए हम पूरी एकाग्रता से आपके इस तेजोमय मण्डल का ध्यान करते हैं ।।६८।।

भावार्थ दीपिका

द्वितीयपादार्थानुवर्णनेन स्तौति-यदु हेति । हे विबुधर्मष हे सवितः, यदप्यदो भगवतस्तव मण्डलं तपति तत्समभिधीमहीति सम्यगाभिमुख्येन ध्यायेम । पुनस्तस्यैव संबोधनम् । प्रत्यहं त्रिषवणं वैदिककर्ममार्गेण स्तुवतां भक्तानां यान्यखिलानि दुरितानि तत्फलानि च वृजिनानि दुःखानि तेषां बीजमज्ञानं च तेषामवभर्जन विनाशक हे तपनेति ।।६८।।

भाव प्रकाशिका

द्वितीय पाद के अर्थ का वर्णन करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्य भगवान् सूर्य की स्तुति करते हैं । हे देवताओं में श्रेष्ठ सवितः देवता ! यद्यपि आपका मण्डल दूर चमकता है, हम आपके उस मण्डल का अच्छी तरह से ध्यान करते हैं । इस तरह से भगवान् सूर्य को पुनः संबोधित किया गया है, आपके जो भक्त तीनों सवनों में आपकी आराधना वैदिक विधि से करते हैं । उनके समस्त पाप और उसक फलभूत समस्त दुःखों के बीजों को आप भस्म कर देते हैं । हे तपन !।।६८।।

य इह वाव स्थिरचरनिकराणां निजनिकेतनानां मनइन्द्रियासुगणाननात्मनः स्वयमात्मान्तर्यामी प्रचोदयति।।६९।।

अनुवाद— गायत्री के पाद से भगवान् सूर्य की स्तुति करते हैं । वे कहते हैं- इस संसार में जितने भी चराचर प्राणी है वे सब आपके ही आश्रित हैं । आप ही सबों के अचेतन मन इन्द्रिय और प्राणों के प्रेरक हैं ।।६९।।

भावार्थ दीपिका

तृतीयपादेन स्तौति-य इहेति । भवान् स्थावरजङ्गमसमूहानां स्वाश्रयाणां जीवानां मनइन्द्रियप्राणगणाननात्मनो जडान्स्वयमात्मैवान्तर्यामी सन्प्रचोदयति प्रवर्तयति ।।६९।।

भाव प्रकाशिका

गायत्री के तीसरे चरण से भगवान् सूर्य की स्तुति महर्षि याज्ञवल्क्य करते हैं। आप स्थावर एवं जङ्गम जीव समूह वाले प्राणियों के मन इन्द्रिय प्राण समूह जो अनात्मा हैं उन सबों को अन्तर्यामी होकर उन सबों को प्रेरित करते हैं ॥६९॥

य एवेमं लोकमतिकरालवदनान्धकारसंज्ञाजगरग्रहगिलितं मृतकमिव विचेतनमवलोक्यानुकम्पया परमकारुणिक ईक्षयैवोत्थाप्याहरहरनुसवनं श्रेयसि स्वधर्माख्यात्मावस्थाने प्रवर्तयत्यवनिपतिरिवासाधूनां भयमुदीरयन्नटति ॥७०॥

अनुवाद— सम्पूर्ण संसार प्रतिदिन अन्धकार रूप अजगर के भयङ्कर मुख में पड़कर और मुर्दा के सदृश हो जाता है। आप परम दयालु है अतएव आप अपनी दृष्टि मात्रा से इसको सचेत कर देते हैं। और परम कल्याण के समय धर्मानुष्ठानों में लगाकर आत्माभिमुख करते हैं। जिस तरह राजा दुष्टों को भयभीत करके अपने राज्य में विचरण करता है वैसे ही आप दुष्टों को भयभीत करते हुए विचरण किया करते हैं ॥७०॥

भावार्थ दीपिका

तृतीयपादमेव मण्डलस्थपरतया व्याचक्षाण स्तौति-य एवेति। य एक एव भगवानतिकरालवदनो योऽन्धकारसंज्ञोऽजगरग्रहस्तेन गिलितमत एव मृतकमिव विचेतनं स्वधर्माख्यं यदा त्मावस्थानं प्रत्यक्प्रवणत्वं तदेव श्रेयस्तस्मिन्प्रवर्तयति। किंच, यो भवानवनिपतिरिवाटति गच्छति ॥७०॥

भाव प्रकाशिका

गायत्री के तीसरे पाद को ही मण्डल रूप से वर्णन करते हुए स्तुति करते हैं। आप अकेले ही अन्धकार रूप भयङ्कर अजगर के मुख में पड़ जाने के कारण अतएव मूर्दा के समान अचेत पड़े हुए अपने धर्म नामक अपनी आत्मा को स्थित कर आत्म प्रवण रूप कल्याणमार्ग पर प्रवृत करते हैं। आप राजा के समान विचरण करते हैं ॥७०॥

परित आशापालैस्तत्र तत्र कमलकोशाञ्जलिभिरुपहृतार्हणः ॥७१॥

अनुवाद— चारो ओर दिक्पाल अपनी कमल की कली के समान अञ्जलि के द्वारा आपको उपहार समर्पित करते हैं ॥७१॥

भावार्थ दीपिका

आशापालैरिन्द्रादिभिः। कमलकोशयुक्तैस्तत्तुल्यैर्वाऽञ्जलिभिरुपहृतार्हणो दत्तार्घः ॥७१॥

भाव प्रकाशिका

आशापालैः अर्थात् इन्द्र आदि दिक्पालों द्वारा कमल की कली से युक्त अथवा कमल कोश के समान अञ्जलि के द्वारा आपको अर्घ प्रदान करते हैं ॥७१॥

अथ ह भगवंस्तव चरणनलिनयुगलं त्रिभुवनगुरुभिर्वन्दितमहमयातयामयजुःकाम उपसरामीति ॥७२॥

अनुवाद— हे भगवन् आपके दोनों चरण कमल तीनों लोक के गुरु के समान महानुभावों से वन्दित हैं। मैं आपके दोनों चरणों की शरणों में इसलिए आया हूँ कि मुझे ऐसे यजुर्वेद की प्राप्ति हो जो अयातयाम (नित्य नवीन) हों ॥७२॥

भावार्थ दीपिका

यत एवंभूतस्त्वमथातः ह स्फुटमयातयामान्यन्यैर्यथावदविज्ञातानि यजूंषि तत्कामोऽहमुपसरामि भजामि ॥७२॥

भाव प्रकाशिका

चूकि इस प्रकार के आप हैं अतएव अतएव मैं ऐसे यजुर्वेद को प्राप्त करना चाहता हूँ जो अयातयाम हो अर्थात् जिसको दूसरा कोई प्राप्त नहीं कर सका हो ॥७२॥

सूत उवाच

एवं स्तुतः स भगवान्वाजिरूपधरो हरिः । यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात्प्रसादितः ॥७३॥

अन्वयः— एवं स्तुतः स भगवान् वाजिरूपधरः प्रसादितः वाजिरूपधरः मुनये अयातयामानि यजूंषि अदात् ॥७३॥

अनुवाद— महर्षि याज्ञवल्क्य के द्वारा स्तुति किए जाने के कारण प्रसन्न भगवान् सूर्य ने अश्व का रूप धारण करके महर्षि याज्ञवल्क्य को ऐसे यजुर्वेद को प्रदान किया जो उससे पहले किसी को भी नहीं मिला था ॥७३॥

भावार्थ दीपिका

एवं स्तुतः प्रसादितश्च ॥७३॥

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार से स्तुति किए जाने से प्रसन्न ॥७३॥

यजुर्भिरकरोच्छाखा दश पञ्चशतैर्विभुः । जगृहुर्वाजसन्यस्ताः काण्वमाध्यन्दिनादयः ॥७४॥

अन्वयः— विभुः शतैः यजुर्भिः दशपञ्च शाखाः अकरोत् । ताः वाजसन्यः काण्वमाध्यन्दिनादयः जगृहुः ॥७४॥

अनुवाद— इसके पश्चात् महर्षि याज्ञवल्क्य ने असंख्य मन्त्रों से युक्त पन्द्रह शाखाओं का निर्माण किया उन वाजसेनयी शाखाओं को काण्व तथा माध्यन्दिन आदि ऋषियों ने ग्रहण किया ॥७४॥

भावार्थ दीपिका

पञ्चदश शाखाः याः शतैरपरिमितैर्यजुर्भिरकरोत् । स तैरिति पाठे स एष याज्ञवल्क्यस्तैर्यजुर्भिरकोदिति । जगृहुरधीतवन्तः । रविणाश्वरूपेण वाजेभ्यः केसरेभ्यो वाजेन वेगेन वा संन्यस्तास्त्यक्ताः शाखा । वाजसनीसंज्ञास्ताः शाखा इति वा ॥७४॥

भाव प्रकाशिका

पन्द्रन्द्र शाखायें जो असंख्य मन्त्रों से युक्त थीं । **सतैः** इस तरह का पाठ होने पर वे महर्षि याज्ञवल्क्य उन यजुओं के द्वारा निर्माण किए । जागृहु अर्थात् अध्ययन किए । अश्व रूपधारी भगवान् सूर्य के द्वारा, वाजेभ्यः अर्थात् अपने आयालों से, अथवा वाजेन अर्थात् वेग के द्वारा परिदत्त होने के कारण उन शाखाओं का नाम वाजसनी हुआ वे ही शाखायें आगे चलकर वाजसनेयी के नाम से प्रसिद्ध हुईं ॥७४॥

जैमिनेः सामगस्यासीत्सुमन्तुस्तनयो मुनिः । सुन्वांस्तु तत्सुतस्ताभ्यामेकैकां प्राह संहिताम् ॥७५॥

अन्वयः— सामगस्य जैमिनेः तनयः सुमन्तुः मुनिः आसीत् तत् सुतः तु सुन्वान् ताभ्याम् एकैकाम् शाखां प्राह ॥७५॥

अनुवाद— सामवेदी महर्षि जैमिनि के पुत्र का नाम सुमन्तु मुनि था और पौत्र का नाम सुन्वान् था । जैमिनि महर्षि ने दोनों को एक-एक संहिता को पढ़ाया ॥७५॥

भावार्थ दीपिका

सामशाखाविभागमाह-जैमिनेरिति । तत्सुतः सुमन्तुसुतः । ताभ्यां पुत्रपौत्राभ्यां क्रमेणैकैकां प्राह ॥७५॥

भाव प्रकाशिका

सामवेद की शाखाओं का वर्णन । जैमिनि के पुत्र सुमन्तु थे और उनके पौत्र का नाम सुन्वान् था । अपने उन दोनों पुत्र एवं पौत्र को महर्षि ने एक-एक शाखा प्रदान किया ॥७५॥

सुकर्मा चापि तच्छिष्यः सामवेदतरोर्महान् । सहस्त्रसंहिताभेदं चक्रे साम्नां ततो द्विजः ॥७६॥

अन्वयः— तच्छिष्यः महान् सुकर्मा चासीत् ततोद्विजः सामवेदतरोः सहस्त्रसंहिताभेदं चक्रे ॥७६॥

अनुवाद— जैमिनि मुनि के एक शिष्य सुकर्मा थे वे महान् पुरुष थे । उन्होंने सामवेद रूपी वृक्ष की एक हजार शाखाएँ कर दी ॥७६॥

भावार्थ दीपिका

तच्छिष्यो जैमिनेः शिष्यः । महानतिमेधावी । सहस्त्रसंहितारूपं भेदं चक्रे । साम्रां तं संहिताभेदम् । ततस्तदनन्तरम्। सुकर्मणः शिष्य एकः कौशल्यो हिरण्यनाभः पौष्यञ्जिर्नामैकस्तौ जगृहतुः । आवन्त्यश्चान्यस्तस्यैव शिष्य; सोऽपि जग्राह ॥७६॥

भाव प्रकाशिका

तच्छिष्यः अर्थात् जैमिनि महर्षि के शिष्य । महान् अर्थात् अत्यन्त मेधावी । एक हजार संहिता रूप भेद कर दिए। सामवेद के उस संहिता भेद को सुकर्मा के शिष्य कौसल्य हिरण्यनाभ और पौष्यञ्जि थे उन दोनों ने उन संहिताओं का अध्ययन किया ॥७६॥

हिरण्यनाभः कौशल्यः पौष्यञ्जिश्च सुकर्मणः । शिष्यो जगृहतुश्चान्य आवन्त्यो ब्रह्मवित्तमः ॥७७॥

अन्वयः— सुकर्मणः शिष्यौ कौसल्यो हिरण्यनाभः, पौष्यञ्जिः जगृहतुः अन्यः ब्रह्मवित्तम आवन्त्यः ॥७७॥

अनुवाद— सुकर्मा के शिष्य कौसल देशवासी हिरण्यनाभ तथा पौष्यञ्जि थे उन दोनों ने इन संहिताओं को पढ़ा और एक दूसरे शिष्य आवन्त्य थे वे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ थे ॥७७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥७७॥

उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन्पञ्चशतानि वै । पौष्यञ्ज्यावन्त्ययोश्चापि तांश्च प्राच्यान्प्रचक्षते ॥७८॥

अन्वयः— पौष्यञ्ज्यावन्त्योः चापि उदीच्याः सामगाः शिष्या आसन् तान् च प्राच्यान् प्रचक्षते ॥७८॥

अनुवाद— पौष्यञ्जि और आवन्त्य के पाँच सौ सामवेदी शिष्य थे । उनको उत्तर देशवासी होने के कारण औदीच्य कहते हैं । उन्हीं को प्राच्य भी कहते हैं ॥७८॥

भावार्थ दीपिका

पौष्यञ्ज्यावन्त्ययोरपि चकाराद्धिरण्यनाभस्यापि पञ्चशतानि शिष्या आसन् । ते तावतीः शाखा यथायथं जगृहुः । तानुदीच्यान्सतः कालतः कांश्चित्प्राच्यांश्च प्रचक्षत इत्यर्थः । यथैवोक्तं वैष्णवे-'उदीच्यसामगाः शिष्यास्तस्य पञ्चशतं स्मृताः । हिरण्यनाभात्तावत्यः संहिता यैर्द्विजोत्तमैः । गृहीतास्तेऽपि चोच्यन्ते पण्डितैः प्राच्यसामगाः ।' इति ॥७८॥

भाव प्रकाशिका

पौष्यञ्जि आवन्त्य तथा चकारात् हिरण्यनाभ के भी पाँच-पाँच सौ शिष्य थे । वे सभी उन शाखाओं का यथोचित रूप से अध्ययन किए उन सबों को उदीच्य और कालक्रम से प्राच्य भी कहते हैं । जैसा कि विष्णु पुराण में कहा गया है । उनके उदीच्य पाँच सौ शिष्य थे हिरण्यनाभ के भी पाँच सौ शिष्य थे वे लोग भी संहिता का अध्ययन किए । उन उदीच्यों को ही पण्डित जन प्राच्य कहते हैं ॥७८॥

लौगाक्षिर्माङ्गलिः कुल्यः कुशीदः कुक्षिरेव च । पौष्यञ्जिशिष्या जगृहुः संहितास्ते शतं शतम् ॥७९॥

अन्वयः— पौष्यञ्जिशिष्याः लौगाक्षिः, मङ्गलिः कुल्यः कुशीदः कुक्षिः च । ते शतम्, शतम् संहिताः जगृहः ॥७९॥

अनुवाद— पौष्यञ्जि ऋषि के पाञ्च शिष्य थे, लौगाक्षि मङ्गलि, कुल्य कुशीद और कुक्षि । ये पाँचों सौ सौ संहिताओं का अध्ययन किए ॥७९॥

भावार्थ दीपिका

पुनरप्येतेषां त्रयाणां सुकर्मणः शिष्याणां शिष्यान्तरैः शाखाबाहुल्यं दर्शयति–लौगाक्षिरिति द्वाभ्याम् ।।७९।।

भाव प्रकाशिका

फिर इन तीनों सुकर्मा के शिष्यों को लौगाक्षिः इत्यादि दो श्लोकों से दूसरे शिष्यों को बतलाते हैं ।।७९।।

कृतो हिरण्यनाभस्य चतुर्विंशतिसंहिताः । शिष्य ऊचे स्वशिष्येभ्यः शेषा आवन्त्य आत्मवान् ।।८०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे वेदशाखाप्रणयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

अन्वयः— हिरण्यनाभस्य कृतः शिष्यः स्वशिष्येभ्यः चतुर्विंशति संहिताः ऊचे शेषाः अमवन्त्यः आत्मवान् ।।८०।।

अनुवाद— हिरण्यनाभ के शिष्य कृत थे वे अपने शिष्य को चौबीस संहिताओं को पढाये शेष संहिताओं को परम संयमी आवन्त्य ने अपने शिष्यों को दी ।।८०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के वेदशाखा प्रणयन नामक छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६।।

भावार्थ दीपिका

कृतो नाम हिरण्यनाभस्य शिष्यः स्वशिष्येभ्य ऊचे । शेषा अन्या अपि याः प्रसिद्धाः शाखास्ता आवन्त्यः स्वशिष्येभ्य ऊच इति ।।८०।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

भाव प्रकाशिका

हिरण्यनाभ के शिष्य कृत अपने शिष्यों को चौबीस संहिताआं को पढाये, बची हुई दूसरी जो प्रसिद्ध शाखाएँ थीं उनको आवन्त्य ने अपने शिष्यों को पढ़ाया ।।८०।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका के छठे अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।६।।

सातवाँ अध्याय

अथर्वाद की शाखाएँ और पुराणों के लक्षण

सूत उवाच

अथर्ववित्सुमन्तुश्च शिष्यमध्यापयत्स्वकाम् । संहितां सोऽपि पथ्याय वेददर्शाय चोक्तवान् ॥१॥

अन्वयः— अथर्ववित् सुमन्तुः च स्वकाम् संहिताम् शिष्यम् अध्यापयत् सः अपि वेददर्शाय पथ्याय चोक्तवान्॥१॥

श्रीसूत जी ने कहा

अनुवाद— शौनकादि महर्षियों अर्थवेद के वेत्ता सुमन्तु अपनी संहिता को अपने प्रिय शिष्य का बन्ध को पढाये और कबन्ध भी अपने दो शिष्यों वेददर्श और पथ्य को पढ़ाये ॥१॥

भावार्थ दीपिका

सप्तमेऽथर्वविस्तारः पुराणव्यसनं ततः । पुराणलक्षणादीनि फलं भागवतश्रुतेः ॥१॥ क्रमप्राप्तमथर्ववेदविभागमाह-

अथर्वविदिति । शिष्यं कबन्धनामानम् । स्वकां स्वकीयां संहिताम् । सोऽपि शिष्योऽपि तां द्विधा विभज्य । तदुक्तं वैष्णवे- 'अथर्ववेदं सः मुनिः सुमन्तुरमितद्युतिः । शिष्यमध्यापयामास कबन्धं सोऽपि च द्विधा । कृत्वा तु वेददर्शाय तथा पथ्याय दत्तवान्।' इति ।।१।।

भाव प्रकाशिका

सातवें अध्याय में अथर्ववेद का विस्तार तथा पुराण का लक्षण तथा भागवत श्रवण का फाल बतलाया गया है । क्रम प्राप्त अथर्ववेद के विभाग को **अर्थर्वविद् इत्यादि** श्लोक से बतलाया गया है । अपने कबन्ध नामक शिष्य को अपनी संहिता को पढ़ाये । उस शिष्य ने भी उसको दो भागों में विभक्त करके । विष्णुपुराण में कहा भी गया है । **अथर्ववेदम्० इत्यादि** मुनिः सुमन्तुः निस्सीम प्रकाश सम्पन्न अपने शिष्य कबन्ध को पढ़ाये । कबन्ध संहिता को दो भागों में विभक्त करके उसे वेददर्श तथा पथ्य को पढ़ाये ।।१।।

शौक्लायनिर्ब्रह्मबलिर्मोदोषः पिप्लायनिः । वेददर्शस्य शिष्यास्ते पथ्यशिष्यानथो शृणु ॥
कुमुदः शुनको ब्रह्मञ्जाजलिश्चाप्यथर्ववित् ।।२।।
बभ्रुः शिष्योऽथाङ्गिरसः सैन्धवायन एव च । अधीयेतां संहिते द्वे सावर्ण्याद्यास्तथापरे ।।३।।

अन्वयः— शौकलायनिः ब्रह्मबलिः मोदोषः पिप्पलायनि वेददर्शस्य शिष्याः हे ब्रह्मन् अथ पथ्य शिष्यान् श्रुणु कुमुदः शुनकः अथर्ववित् जाजलिः च, अथ आङ्गिरस शिष्यः बभ्रुः सैन्धवायन एव द्वे संहिते तथा अपरे सावर्ण्याद्याः ।।२-३।।

अनुवाद— शौक्लायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष पिप्लायान ये वेददर्श के चार शिष्य हुए । हे ब्रह्मन् ! अब आप पथ्य के शिष्यों को सुनें । कुमुद, शुनक, अथर्ववेद वेत्ता जाजलि भी । अङ्गिरा गोत्र में उत्पन्न शुनक के दो शिष्य हुए, बभ्रु तथा सैन्धवायन दो संहिताओं का दूसरे सावर्ण्य आदि ने अध्यपन किया ।।२-३।।

भावार्थ दीपिका

तत्र वेददर्शः स्वसंहितां चतुर्धा विभज्य चतुरः शिष्यानध्यापयामास । पथ्यश्च त्रिधा विभज्य त्रीनित्याह सार्धेन-शौक्लायनिरिति । अङ्गिरसः शुनकस्य शिष्यो बभ्रुः सैन्धवायनश्च । तदुक्तम्- 'शुनकस्तु द्विधा कृत्वा ददावेकां तु बभ्रवे । द्वितीयां संहितां प्रादात्सैन्धवायनसंज्ञिने ।' इति । सावर्ण्याद्याः सैन्धवायनादीनां शिष्याः ।।२-३।।

भाव प्रकाशिका

वेददर्श ने अपनी संहिता को चार भागों में विभक्त करके अपने चार शिष्यों को पढ़ाया । पथ्यने अपनी संहिता को तीन भागों में विभक्त करके तीन शिष्यों को पढ़ाया यह **शौक्लायनिः इत्यादि** डेढ श्लोक में कहा गया है । अङ्गिरस गोत्रीय शुनक के शिष्य ब्रभु और सैन्धवायन हुए । कहा भी गया है **शुनकस्तु इत्यादि** अर्थात शुनक अपनी संहिता का दो भागों में विभाग करके एक संहिता बभु को पढ़ाये और दूसरी संहिता अपने सैन्धवायन नामक शिष्य को पढाये। सावर्ण्य आदि सैन्धवायन के शिष्य हैं ।।२-३।।

नक्षत्रकल्पः शान्तिश्च कश्यपाङ्गिरसादयः । एते आथर्वणाचार्याः शृणु पौराणिकान्मुने ।।४।।

अन्वयः— हे मुने ! नक्षत्रकल्प, शान्तिः च कश्यपाङ्गिरसादयः एते अर्थवणाचार्याः पौराणिकान् शृणु ।।४।।

अनुवाद— हे मुने नक्षत्रकल्प, शान्तिः कश्यप एवं अङ्गिरस आदि ये सभी अर्थवेद के वेत्ता है । अब आप पौराणिकों को सुनें ।।४।।

भावार्थ दीपिका

नक्षत्रकल्पः शान्तिकल्पश्चेति द्वौ । तदुक्तम्- 'नक्षत्रकल्पो वेदानां संहितानां तथैव च । चतुर्थः स्यादाङ्गिरसः शान्तिकल्पश्च पञ्चमः ।' इति नक्षत्रकल्पादीनां कर्तारस्तत्तन्नामभिरुच्यन्ते ।।४।।

भाव प्रकाशिका

नक्षत्रकल्प और शान्ति कल्प ये दो है। कहा भी गया है- नक्षत्रकल्प, वेद कल्प, संहिता कल्प तथा चौथे अङ्गिरस एवं शान्ति कल्प पाँचवें नक्षत्र कल्प आदि के प्रणेताओं के नाम बतलाये गये हैं ॥४॥

त्रय्यारुणिः कश्यपश्च सावर्णिरकृतव्रणः । वैशंपायनहरीतौ षड्वै पौराणिका इमे ॥५॥

अन्वयः— त्रय्यारुणिः, कश्यपः सावर्णिः अकृतव्रणः वैशम्पायनः हरीतः श्च एते षट् पैराणिकाः ॥५॥

अनुवाद— त्रय्यारुणः कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन और हारीत ये छह पौराणिक हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥५॥

अधीयन्त व्यासशिष्यात्संहितां मत्पितुर्मुखात् । एकैकामहमेतेषां शिष्यः सर्वाः समध्यगाम् ॥६॥

अन्वयः— व्यासशिष्यात् मत्पितुः मुखात् संहिताम् अधीयन्त एतेषां शिष्य अहम् एकैकाम् सर्वाः संहिताः समध्यगाम्॥६॥

अनुवाद— इन लोगों ने व्यासजी के शिष्य और मेरे पिता के मुख से एक-एक संहिता का अध्ययन करके सभी संहिताओं को पढ़ा ॥६॥

भावार्थ दीपिका

मत्पितुर्मुखादिति । प्रथमं व्यासः षट्संहिताः कृत्वा मत्पित्रे रोमहर्षणाय प्रादात् । तस्य च मुखादेते त्रय्यारुण्यादय एकैकां संहितामधीयन्त । एतेषां षण्णां शिष्योऽहं ताः सर्वाः समधीतवान् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

मत्पितुर्मुखात्० इत्यादि श्लोक का अर्थ है कि पहले व्यासजी ने छह संहिताओं का निर्माण करके मेरे पिता रोमहर्षण सूत को पढ़ाया। त्रय्यारुणि इत्यादि छहों ने मेरे पिता सूत से एक-एक संहिता को पढा। इन छहों के शिष्य मैंने इन लोगों से सभी छहो संहिताओं को अध्ययन किया ॥६॥

कश्यपोऽहं च सावर्णी रामशिष्योऽकृतव्रणः । अधीमहि व्यासशिष्याच्चतस्रो मूलसंहिताः ॥७॥

अन्वयः— कश्यपः अहं, सावर्णी रामशिष्यः अकृतव्रणः व्यासशिष्यात् चतस्रः मूलसंहिताः अधीमहि ॥७॥

अनुवाद— चार मूल संहिताएँ और थीं, कश्यप मैं, सावर्णी तथा परशुरामजी के शिष्य अकृतव्रण हम चारों ने मेरे पिता रामहर्षण सूत से उन मूल संहिताओं का भी अध्ययन किया ॥७॥

भावार्थ दीपिका

रामशिष्योऽकृतव्रणः । एवं चत्वारो वयम् । मूलसंहिता इत्यनेन ततः संहिताबाहुल्यं सूचितम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

परशुरामजी के शिष्य अकृताव्रण इस तरह हम चारों ने मूल संहिता कहकर संहिताओं की बहुलता को सूचित किया गया है ॥७॥

पुराणलक्षणं ब्रह्मन्ब्रह्मर्षिभिर्निरूपितम् । शृणुष्व बुद्धिमाश्रित्य वेदशास्त्रानुसारतः ॥८॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मर्षिभिः वेदशास्त्रानुसारतः पुराण लक्षणं निरूपितम् बुद्धिमाश्रित्य शृणुष्व ॥८॥

अनुवाद— शौनकादि महर्षियों, ब्रह्मर्षियों ने वेदों तथा शास्त्रों के अनुसार पुराणों के लक्षण का निरूपण किया है अब आपलोग सावधान होकर उन सबों को सुनें ॥८॥

भावार्थ दीपिका

शुकपरीक्षित्संवादे निरूपितमपि पुराणलक्षणं तद्भेदकथनाय दर्शयति-पुराणेति ॥८॥

भाव प्रकाशिका

पुराण लक्षणं इत्यादि श्लोक से कहा गया है कि महर्षियों ब्रह्मर्षियों ने वेद एवं शास्त्र के अनुसार पुराणों के लक्षण का वर्णन किया है। उन सबों को आप सावधानी से सुनें ॥८॥

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्तिरक्षान्तराणि च । वंशो वंश्यानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः ॥९॥
दशभिर्लक्षणैर्युक्तं पुराणं तद्विदो विदुः । केचित्पञ्चविधं ब्रह्मन्महदल्पव्यवस्थया ॥१०॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् अस्य सर्गः अथविसर्गः वृत्तिः रक्षा मन्वन्तरणि, वंशः यंश्यानुचरितम्, संस्था, हेतुः अपाश्रयः इति दशभिः लक्षणैः युक्तं पुराणं तद्विदः विदुः केचित् महदल्प व्यवस्थया पञ्चविधं विदुः ॥९-१०॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् ! महदल्प व्यवस्थया अस्य सर्गः विसर्गः वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित संस्था (प्रलय) हेतु (ऊतिः) तथा अपाश्रय पुराणों के दश लक्षणों को महर्षियों ने कहा है और कुछ विद्वान् पुराणों के पाँच ही लक्षणों को मानते हैं ॥९-१०॥

भावार्थ दीपिका

अस्य विश्वस्य 'अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः। मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः।' इत्यत्रोक्ते स्थानपोषणे वृत्तिरक्षाशब्दाभ्यामुच्येते। अन्तराणि मन्वन्तराणि वंशो वंश्यानुचरितमितीशानुकथाः। संस्था निरोधः। अनेनैवात्यन्तिकलयरूपा मुक्तिरप्युक्ता। हेतुशब्देन जीवाश्रयवासनाशब्दवाच्या ऊतयो गृहीताः। दशभिरेतैर्लक्षणैरर्थैर्युक्तं महापुराणं विदुः केचित्पञ्चविधम् 'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्।' इति। महत्पुराणमल्पं चेति व्यवस्थया यत्र दशापि लक्षणानि पृथक् पृथङ्निरूप्यन्ते तन्महापुराणम्। यत्र त्वन्येषां पंचस्वेवान्तर्भावस्य विवक्षा तदल्पमिति व्यवस्थयेत्यर्थः ॥९-१०॥

भाव प्रकाशिका

इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि, विसर्ग, स्थान, पोषण ऊति, मन्वन्तरेशानुकथन, निरोध, मुक्ति और आश्रय। यहाँ पर स्थान और पोषण शब्द से वृत्ति और रक्षा को कहा गया है। अन्तराणि अर्थात् मन्वन्तर, वंशः वंश्यानुचरित, तथा ईशपरमात्मा की कथाएँ संस्था अर्थात् प्रलय, इसी के द्वारा आत्यन्तिक प्रलय स्वरूपिणी मुक्ति भी कह दी गयी है। हेतु शब्द के द्वारा जीवों के आश्रय वासना शब्द से कही जाने वाली ऊतियाँ इन सबों का ग्रहण हो गया। इन दश लक्षणों से युक्त महापुराण होते हैं। कुछ लोग पुराणों के पाँच लक्षणों को मानते हैं-सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित पाँच लक्षणों को बतलाते हैं। महापुराण तथा अल्प पुराण इस व्यवस्था के अनुसार जिस पुराणों में दशों लक्षण अलग निरूपित हैं वे महापुराण हैं। जिन पुराणों में पाञ्च में ही दस लक्षणों के अन्तर्भाव की विवक्षा होती है वे पुराण हैं ॥९-१०॥

अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः । भूतमात्रेन्द्रियार्थानां संभवः सर्ग उच्यते ॥११॥

अन्वयः— अव्याकृतगुणक्षोभ त्रिवृतः महतः, अहमः भूतमात्रा इन्द्रियार्थानां संभवः सर्ग ॥११॥

अनुवाद— सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् के सत्य सङ्कल्प से प्रकृति के गुणों में क्षोभ होता है उससे महान की उत्पत्ति हुई, वह महान् भी तीन प्रकार का होता है, सात्विक राजस और तामस, महान् से अहङ्कार तीन प्रकार का उत्पन्न होता है, अहङ्कार से पञ्चतन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं। इसी को सर्ग कहते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

सर्गादिलक्षणानि व्याचष्टे-अव्याकृतेत्यादिना। अव्याकृतस्य प्रधानस्य गुणानां क्षोभाद्यो महांस्तस्माद्यस्त्रिवृदहंकारस्तस्माद्भूतमात्राणां सूक्ष्माणामिन्द्रियाणां च तदर्थानां च स्थूलानां देवतानां च संभवः सर्गः कारणसृष्टिसर्ग इत्यर्थः। उच्यत इति यथाऽपेक्षमुत्तरत्राप्यनुषङ्गः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

सर्ग इत्यादि के लक्षणों को अव्याकृत इत्यादि श्लोक से बतलाते हैं। प्रकृति में होने वाले क्षोभ के कारण महान् उत्पन्न होता है और उससे तीन प्रकार के अहङ्कार की उत्पत्ति होती है उस अहङ्कार से पञ्चतन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है। इसी को सर्ग शब्द से अभिहित किया जाता है ॥११॥

पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः । विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद्बीजं चराचरम् ॥१२॥

अन्वयः— पुरुषेण अनुगृहीतानाम् एतेषां वासनामयः समाहारः बीजाद् बीजं चराचरम् ॥१२॥

अनुवाद— परमात्मा के अनुग्रह से सृष्टि का समार्थ्य पाकर महत्तत्व आदि पूर्व कर्म के अनुसार अच्छी और बुरी वासनाओं की प्रधानता जो यह चराचर शरीरात्मक जीव की उपाधि की सृष्टि करते हैं एक बीज से दूसरे बीज के समान इसी को विसर्ग कहते हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

विसर्गं व्याचष्टे-पुरुषेणेश्वरेणानुगृहीतानामेतेषां महदादीनाम्। पूर्वकर्मवासनाप्रधानोऽयं समाहारः-कार्यभूतश्चराचरप्राणिरूपो बीजाद्बीजमिव प्रवाहापन्नो विसर्ग उच्यत इत्यर्थः ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

विसर्ग की व्याख्या करते हैं। ईश्वर के द्वारा अनुगृहीत होकर ये सभी महत्तत्व आदि पूर्वजन्म कृत कर्मों के अनुसार चराचर प्राणी रूप एक बीज से दूसरे बीज के समान जो सृष्टि होती है उसे ही विसर्ग कहते हैं ॥१२॥

वृत्तिर्भूतानि भूतानां चराणामचराणि च । कृता स्वेन नृणां तत्र कामाच्चोदनयापि वा ॥१३॥

अन्वयः— चराणां भूतानाम् अचराणि वृत्तिः तत्रनृणां स्वेन कृता, चोदनयापि वा ॥१३॥

अनुवाद— चर प्राणियों के अचर पदार्थ वृत्ति अर्थात् जीविका के साधन है। इनमें कुछ को तो मनुष्यों ने चर प्राणियों के दुग्ध दही को अपनी जीविका साधन बना लिया इनमें से कुछ ने तो काम वाशात् जीविका का साधन बनाया कुछ लोगों ने शास्त्रों के अनुसार ॥१३॥

भांवार्थ दीपिका

चराणां भूतानां सामान्यतोऽचराणि चकाराच्चराणि च वृत्तिः। तत्र नृणां येन स्वभावेन कामाच्चोदनयापि वा या नियता वृत्तिर्जीवगत कृता सा वृत्तिरुच्यत इत्यर्थः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

चर प्राणियों के सामान्यत: अचर और चर भी जीविका के साधन है। मनुष्यों ने अपने जिस स्वभाव के कारण कामावशात् अथवा शास्त्र विहित होने के कारण जिसको अपनी निश्चित,जीविका का साधन बनाया वही वृत्ति है ॥१३॥

रक्षाच्युतावतारेहा विश्वस्यानुयुगे युगे । तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु हन्यन्ते यैस्त्रयीद्विषः ॥१४॥

अन्वयः— तिर्यङमर्त्यर्षिदेवेषु ये अच्युतावताराः ईहा विश्वस्य रक्षा, अनुयुगे युगे यैः त्रयीद्विषः हन्यन्ते ॥१४॥

अनुवाद— भगवान् अच्युत प्रत्येक युग में देवता ऋषि, मनुष्य तथा पशु पक्षी के रूप में अवतार ग्रहण करके जो विभिन्न प्रकार की लीलाएँ करते हैं, और उस प्रक्रम में वेद विरोधियों का वध करते है, उसी को विश्व की रक्षा शब्द से अभिहित किया जाता है ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

तिर्यङ्मर्त्यर्षिदेवेषु येऽच्युतावतारास्तेषामीहा लीला सा विश्वस्य रक्षोच्यत इत्यर्थः। यैरवतारैरिति समासान्निष्कृष्य कथंचित्संबन्धः। त्रयीद्विषो दैत्याः ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् प्रत्येक युग में देवता, ऋषि, मनुष्य तथा पशु, पक्षियों के रूप में अवतार ग्रहण करके अनेक प्रकार की लीला भी करते हैं, और लीला के ही प्रसङ्ग में अनेक वेदविरोधी दैत्यों का वध करके विश्व की रक्षा करते हैं, इसी को रक्षा शब्द से अभिहित किया जाता है ॥१४॥

मन्वन्तरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वराः । ऋषयोऽशावतारश्च हरेः षड्विधमुच्यते ॥१५॥

अन्वयः— मनुः देवाः मनुपुत्राः सुरेश्वराः ऋषयः हरेः अंशावतारः च मन्वन्तरम षड्विधमुच्यते ॥१५॥

अनुवाद— मनु, देवता, मनु के पुत्र, इन्द्र, ऋषिगण तथा श्रीहरि का अंशावतार इन छहों से युक्त समय को मन्वन्तर कहते हैं ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

षड्विधं मन्वन्तरमुच्यते । षड्विधत्वमेवाह-मनुरिति । मन्वादयः षडेते वर्गाः स्वस्वाधिकारेण यदा प्रवर्तन्ते तन्मन्वन्तरमित्यर्थः ॥१५॥

भाव प्रकाशिका

छह प्रकार का मन्वन्तर कहा जाता है । उन छहों को बतलातें हुए कहते हैं मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्दर, ऋषि तथा श्रीहरि के अंशावतार से युक्त काल को मन्वन्तर कहते हैं ॥१५॥

राज्ञां ब्रह्मप्रसूतानां वंशस्त्रैकालिकोऽन्वयः । वंशानुचरितं तेषां वृत्तं वंशधराश्च ये ॥१६॥

अन्वयः— ब्रह्म प्रसूतानां राज्ञां त्रैकालिक अन्वयः वंशःतेषां वृत्तं तेषां चरितम् वंशानुचरितम् ॥१६॥

अनुवाद— ब्रह्मजी से उत्पन्न हुए राजाओं के वंश का वर्णन राजाओं का वर्णन तथा उनके वंश के चरित को वंशानुचरित कहते है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

वंशमाह-राज्ञामिति । ब्रह्मणः सकाशात्प्रसूतिर्येषां शुद्धानामित्यर्थः । तेषामन्वयो वंशः । तेषां वृत्तम् । ये च तद्वंशधरास्तेषां च वृत्तं वंशानुचरितमुच्यते ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

राज्ञामित्यादि श्लोक से वंश का वर्णन किया गया है । जिनकी ब्रह्माजी से उत्पत्ति हुई है ऐसे शुद्ध वंश के चरित को तथा जिनसे वंश चलते रहते हैं उन वंशधरो के चरित को वंशानुचरित कहते हैं ॥१६॥

नैमित्तिकः प्राकृतिको नित्य आत्यन्तिको लयः । संस्थेति कविभिः प्रोक्ता चतुर्धास्य स्वभावतः॥१७॥

अन्वयः— अस्य स्वभावतः लयः नैमित्तिकः प्राकृतिकः नित्य आत्यन्तिक कविभिः संस्थेति प्रोक्ताः ॥१७॥

अनुवाद— इस संसार का स्वाभाविक रूप से लय होता है । वह प्रलय चार प्रकार का होता है, नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक इन्हीं को ज्ञानी पुरुषों ने संस्था कहा है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका

अस्य विश्वस्य । स्वभावतो मायातो निष्पन्नस्य । यद्वा, मायातो यश्चतुर्विधो लय इति ॥१७॥

भाव प्रकाशिका

इस विश्व का माया से होने वाला । अथवा माया से ही चार प्रकार के लय होते हैं ॥१७॥

हेतुर्जीवोऽस्य सर्गादेरविद्याकर्मकारकः । यं चानुशयिनं प्राहुरव्याकृतमुतापरे ॥१८॥

अन्वयः— अस्य सर्गादिः हेतुः जीवः अविद्या कर्मकारकः, यम् अनुशयिनं प्राहुः अपरे उत अव्याकृतम् प्राहुः ॥१८॥

अनुवाद— पुराण के लक्षण में जिसको हेतु कहा गया वह जीव ही है । वही सृष्टि आदि का हेतु है । वही अविद्या से ग्रस्त होकर कर्मों को करता है ज्ञानी पुरुष उसे अनुशयी कहते हैं, दूसरे लोग उसको उपाधि की दृष्टि से प्रकृति (अव्याकृत) कहते हैं ॥१८॥

भावार्थ दीपिका

अस्य जगतः सर्गादेर्हेतुर्निमित्तं जीवः सोऽत्र हेतुरुच्यत इत्यर्थः । तस्य निमित्ततामाह-अविद्यया कर्मकारकः । कर्मकर्ता। जीवादृष्टप्रयुक्तत्वाद्विश्वसर्गादेः स तु तत्र हेतुरित्यर्थः । नन्वनुशयी निमित्तमिति केचित्, अव्याकृतमित्यपरे, तत्राह-यमिति । चैतन्यप्राधान्येनानुशयिनमुपाधिप्राधान्यविवक्षयाऽव्याकृतम् ॥१८॥

भाव प्रकाशिका

इस जगत् की सृष्टि आदि का कारण जीव ही है । पुराणों के लक्षण के प्रसङ्ग में जिसको हेतु कहा गया है । उस जीव की निमित्तता को बतलाते हुए कहा गया है- अज्ञान के कारण वह कर्मों को करता है जीवों के अदृष्ट के कारण ही जगत् की सृष्टि इत्यादि हुआ करती है जीव ही विश्व की सृष्टि आदि की हेतु है । यदि कहें कि अनुशयी को ही निमित्त कुछ लोग मानते हैं उसी को दूसरे प्रकार के लोग अव्याकृत भी कहते हैं । इसके उत्तर में कहते हैं उस जीव को ही ज्ञान प्रधान होने के कारण अनुशयी तथा उपाधि की प्रधानता की विवक्षा से अव्याकृत कहते हैं ॥१८॥

व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु । मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः ॥१९॥

अन्वयः— मायामयेषु जाग्रत् स्वप्नसुषुप्तिषु यस्य व्यतिरेकान्वयः तत् जीव वृत्तिष्वपाश्रयः ब्रह्म ॥१९॥

अनुवाद— जीवों की वृत्तियाँ तीन प्रकार की होती हैं जाग्रत स्वप्न और सुषुप्ति, इन अवस्थाओं में इनके अभिमानी विश्व, तैजस और प्राज्ञ के मायामय रूपों में प्रतीत होता है और इन अवस्थाओं से परे तुरीय तत्त्व के रूप में भी लक्षित होता है । वही ब्रह्म हैं; उसे यहाँ अपाश्रय कहते हैं ॥१९॥

भावार्थ दीपिका

अपाश्रयमाह-व्यतिरेकेति । जाग्रदादिष्ववस्थासु जीवतया वर्तन्त इति जीववृत्तयो विश्व-तैजस-प्राज्ञास्तेषु मायामयेषु साक्षितयान्वयः समाध्यादौ च व्यतिरेको यस्य तद्ब्रह्म संसारप्रतीतिबाधयोरधिष्ठानावधिभूतमपाश्रय उच्यत इत्यर्थः ॥१९॥

भाव प्रकाशिका

व्यतिरेकान्वय: इत्यादि श्लोक से अपाश्रय को बतलाते हैं । जाग्रत आदि अवस्थाओं में जीव की वृत्तियाँ रहती हैं । वही मायामय विश्व तैजस प्राज्ञ उन मायामय वृत्तियों में साक्षी रूप से अन्वित रहती हैं तथ समाधि आदि कालों में जिसका व्यतिरेक होता है, वही ब्रह्म है । संसार की प्रतीति और बाध में जो अधिष्ठान की अवधिभूत होता है, उस ब्रह्म को ही अपाश्रय कहते हैं ॥१९॥

पदार्थेषु यथा द्रव्यं सन्मात्रं रूपनामसु । बीजादिपञ्चतान्तासु ह्यवस्थासु युतायुतम् ॥२०॥

अन्वयः— रूपनामसु पदार्थेषु द्रव्यं यथा सन्मात्रम् बीजादिपञ्चतान्तासु अवस्थासु युतायुतम् ॥२०॥

अनुवाद— नाम विशेष एवं रूप विशेष से युक्त पदार्थों पर विचार करने पर यही निश्चित होता है कि वे सत्तामात्र वस्तु के रूप में सिद्ध होते हैं । उनकी घट पटादि विशेषताएँ लुप्त हो जाती हैं । वास्तविकता यही है कि सतामात्र ही उन विशेषताओं के रूप में प्रतीत होती है । इसी प्रकार शरीर और विश्व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से लेकर मृत्यु महाप्रलय

पर्यन्त जितनी भी विशेष अवस्थाएँ हैं उनके रूप में परम सत्य स्वरूप ब्रह्म ही प्रतीत हो रहा है यही वाक्य भेद से अधिष्ठान और साक्षी के रूप में ब्रह्म ही पुराणोक्त अपाश्रय तत्व है ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

एतदेव सदृष्टान्तं प्रपञ्चयति-पदार्थेषु घटादिषु द्रव्यं मृदादि यथा युतमन्वितमयुतं च बहिरप्यवस्थानात् । रूपनामसु च सन्मात्रं सत्तामात्रं यथा । एवं बीजं गर्भाधानमादिर्यासां पञ्चताऽन्तो यासां तासु देहावस्थासु नवस्वप्यधिष्ठानत्वेन साक्षित्वेन च युतमयुतं च यत्तदपाश्रय इति ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

इसी का दृष्टान्तोपन्यास पूर्वक विस्तार करते हैं । जिस तरह घटादि पदार्थों में मृदादि द्रव्य अन्वित और बाहर रहने के कारण अयुत (अनन्वित) रहता है । इसी तरह रूपों और नामों में सत्तामात्र ही प्रतीत होता है उसी तरह जिसका गर्भाधान ही आदि और पञ्चता (मृत्यु) ही जिन सबों का अन्त होता है उन देह की नव अवस्थाओं में जो अधिष्ठान और साक्षी के रूप में अन्वित होता है, उसे अपाश्रय कहते हैं ।।२०।।

विरमेत यदा चित्तं हित्वा वृत्तित्रयं स्वयम् । योगेन वा तदात्मानं वेदेहाया निवर्तते ।।२१।।

अन्वयः— यदा चित्तम् वृत्तित्रयं हित्वा स्वयम् योगेन वा विरमेत तदा आत्मानं इहायाः निवर्तते ।।२१।।

अनुवाद— जब चित्त स्वयम् आत्मविचार अथवा योगाभ्यास के द्वारा सत्त्वगुण रजोगुण एवं तमोगुण सबन्धी व्यावहारिक वृत्तियों और जाग्रत स्वप्न आदि स्वाभाविक का परित्याग करके उपराम हो जाता है । तब शान्त वृत्ति में तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के द्वारा आत्मज्ञान का उदय होता है । उस समय पुरुष अविद्याजन्य कर्म वासना और कर्म प्रवृत्ति से निवृत्त हो जाता है ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

एवं दशापि लक्षणानि व्याख्याय 'दशमस्य विशुद्यधर्थं नवानामिह लक्षणम् । वर्णयन्ति महात्मानः' इति यदुक्तं तदाह-विरमेतेति । यदा सर्गादीनां मायामयत्वानुसंधानेन वामदेवादेरिव स्वयमेव चित्तं विरमेत । इहैवानुष्ठितेन योगेन वा देवहूत्यादिवत्। तदा विक्षेपाभावादात्मानं वेद । तदा चाविद्यानिवृत्तेरीहायाः संसाररूपाया निवर्तत इत्यर्थः ।।२१।।

भाव प्रकाशिका

इसप्रकार से दशो लक्षणों की व्याख्या करके दशवें की विशुद्धि के लिए नवों के यहा लक्षण किए गये हैं । इस तरह से महात्मागण वर्णन करते है । यह जो कहा गया है उसी को विरमेत इत्यादि श्लोक से कहा गया है । जब सृष्टि आदि मायामय हैं, इस तरह से अनुसन्धान करके वामदेव इत्यादि के समान चित स्वयम् उपरत हो जाय अथवा योगाभ्यास के द्वारा देवहूति इत्यादि के समान हो जाय तब विक्षेप का अभाव हो जाने के कारण आत्मा का ज्ञान हो जाता है । उस समय अविद्या की निवृत्ति हो जाने से संसार रूपी इहा की निवृत्ति हो जाती है ।।२१।।

एवंलक्षणलक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः । मुनयोऽष्टादश प्राहुः क्षुल्लकानि महान्ति च ।।२२।।

अन्वयः— एवं लक्षण लक्ष्याणि पुराणानि पुराविदः विदुः मुनय अष्टदश क्षुल्लकनि महान्ति च पुराणानि प्राहुः ।।२२।।

अनुवाद— इस तरह के लक्षणों से लक्षित अठारह पुराणों को ऐतिह्यविदों ने कहा है । मुनियों ने छोटे तथा बड़े अठारह पुराणों के बतलाया है ।।२२।।

भावार्थ दीपिका

पुराणविभागप्रस्तावेन तल्लक्षणादिप्रासङ्गिकमुक्त्वा प्रस्तुतमाह-एवंविधैर्लक्षणैर्लक्ष्याणि ।।२२।।

भाव प्रकाशिका

पुराणों के विभाग के प्रस्ताव से प्रासङ्गिक पुराणों के लक्षण आदि को बतलाकर प्रस्तुत बात को बतलाते हैं कि पुराण इस प्रकार के लक्षणों से युक्त होते हैं ॥२२॥

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं लैङ्गं सगारुडम् । नारदीयं भागवतमाग्नेयं स्कान्दसंज्ञितम् ॥२३॥
भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम् । वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट् ॥२४॥

अन्वयः— ब्राह्मं, पाद्मं, वैष्णवं, शैवं, लैङ्गम्, गारुडम्, नारदीयं भागवतम्, आग्नेयम् स्कान्दसंज्ञितम्, भविष्यं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं सवामनम् वाराहं मात्स्यं कौर्मं च ब्रह्माण्डाख्याम् इति त्रिषट् ॥२३-२४॥

अनुवाद— ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, लिङ्गपुराण, गरुडपुराण, नारदपुराण, भागवत पुराण, अग्नि पुराण, स्कन्द पुराण, भविष्यत्पुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, मार्कण्डेय पुराण, वामनपुराण, वराहपुराण, कूर्मपुराण तथा ब्रह्माण्डपुराण इसतरह पुराणों की संख्या अठारह है ॥२३-२४॥

भावार्थ दीपिका

त्रिषडष्टादश ॥२३-२४॥

भाव प्रकाशिका

त्रिषट् अर्थात् अठारह ॥२३-२४॥

ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः । शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजोविवर्धनम् ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् इदं मुनेः शाखाप्रणनं समाख्यातं इदं शिष्यशिष्यप्रशिष्याणां ब्रह्मतेजो विवर्धनम् समाख्यातम्॥२५॥

अनुवाद— हे शौनकजी महर्षि व्यासजी के शिष्यों ने जो वेद की शाखाओं का विभाग किया उसको मैंने आपको सुना दिया। यह सुनने और पढ़ने वालों के ब्रह्मतेज को बढ़ा देने वाला है ॥२५॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें सर्ग के सातवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥७॥

भावार्थ दीपिका

उपसंहरति-ब्रह्मन्निति। मुनेर्व्यासस्य शिष्यादीनां च। ब्रह्मतेजो ब्रह्मवर्चसं तद्विवर्धनम्। श्रोतॄणामिति शेषः ॥२५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मन्० इत्यादि श्लोक से संहिताओं के विभाग का उपसंहार करते है व्यास मुनि के शिष्यों आदि के ब्रह्मतेज को बढ़ाने वाला। श्रोताओं के भी तेज को बढ़ाने वाला है।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका नामक टीका के सातवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥७॥

* * *

आठवाँ अध्याय

तपस्यारत महर्षि मार्कण्डेय को वरदान की प्राप्ति

शौनक उवाच

सूत जीव चिरं साधो वद नो वदतां वर । तमस्यपारे भ्रमतां नृणां त्वं पारदर्शनः ॥१॥

अन्वयः— हे साधो सूत ! चिरंजीव हे वदतां वर अपारे तमसि भ्रमतां त्वं पारदर्शनः नो वद ॥१॥

शौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— हे साधुवर्य ! सूतजी आप आयुष्मान हों, हे वक्ताओं में श्रेष्ठ इस घोर अज्ञानान्धकार में भटकने वाले जीवों को आप उद्धार करने वाले हैं- आप हमारे एक प्रश्न का उत्तर दें ॥१॥

भावार्थ दीपिका

अष्टमे तु तपश्चर्या मार्कण्डेयस्य मोहकैः । कामादिभिरसंमोहो नरनारायणस्तुतिः ॥१॥ पुराणविभागप्रसङ्गेन पुराणकर्तुर्मार्कण्डेयस्य चरितप्रश्नमाह-सूतेति । त्वमेव वक्तुं योग्य इत्याह-तमसि संसारे भ्रमतां पारदर्शनस्तन्निवर्तकः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

आठवें अध्याय में तो महर्षि मार्कण्डेय की तपस्या तथा मोह उत्पन्न करने वाले काम आदि के द्वारा महर्षि को मोहित नहीं होने तथा भगवान् नरनारायण की स्तुति का वर्णन है ॥१॥ पुराणों के विभाग के प्रसङ्ग में पुराण कर्ता महर्षि मार्कण्डेय के चरित को **सूत जीव इत्यादि** श्लोक से पूछा गया है । शौनक महर्षि ने कहा कि आप ही इसको बतलाने में समर्थ हैं क्योंकि घोर अज्ञानान्धकार में भटकने वाले जीवों को आप पार लगाने वाले हैं॥१॥

आहुश्चिरायुषमृषिं मृकण्डतनयं जनाः । यः कल्पान्ते उर्वरितो येन ग्रस्तमिदं जगत् ॥२॥

अन्वयः— मृकण्डतनयमृषिं चिरायुषम् आहुः । येन इदं जगद्ग्रस्तं कल्पान्ते उर्वरित आसीत् ॥२॥

अनुवाद— लोग कहते हैं कि मृकण्ड ऋषि के पुत्र मार्कण्डेयचिरायु हैं । क्योंकि जिस समय प्रलय ने इस सम्पूर्ण जगत् को निगल लिया था उस समय भी वे बचे हुए थे ॥२॥

भावार्थ दीपिका

वक्तव्यमाह-आहुरिति । उर्वरितोऽवशिष्टः । येन कल्पान्तेन । एतत्कथं घटत इत्येकः प्रश्नः ॥२॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि शौनक को जो पूछना था वह पूछ रहे हैं । **उर्वरितः अवशिष्ट** । जिस कल्पान्त में अवशिष्ट यह कैसे हो गया यह एक प्रश्न है ॥२॥

स वा अस्मत्कुलोत्पन्नः कल्पेऽस्मिन्भार्गवर्षभः । नैवाधुनापि भूतानां संप्लवः कोऽपि जायते ॥३॥

अन्वयः— स वा भार्गवर्षभः अस्मत् कुलोत्पन्न अधुना अपि भूतानां कोऽपि संप्लवः नैव जायते ॥३॥

अनुवाद— निश्चित रूप से वे भृगुवंशियों में हमारे वंश में ही उत्पन्न हुए अभी तक इस कल्प में जीवों का कोई भी प्रलय नहीं हुआ और न तो होने वाला है ॥३॥

भावार्थ दीपिका

प्रलयाभावादप्येतन्न घटत इत्याह-स वा इति । यतो भार्गवर्षभः । कोऽपि प्राकृतिको नैमित्तिको वा ॥३॥

भाव प्रकाशिका

प्रलय काल का अभाव होने के कारण भी यह सम्भव नहीं है । इस बात को उन्होंने सवा इत्यादि श्लोक से कहा है । क्योंकि वे भृगुवंशियों में श्रेष्ठ हैं । कोई प्राकृतिक अथवा नैमित्तिक लय भी नहीं हुआ है ।।३।।

एक एवार्णवे भ्राम्यन्ददर्श पुरुषं किल । वटपत्रपुटे तोकं शयानं त्वेकमद्भुतम् ।।४।।

अन्वयः— एकार्णवे एव भ्राम्यन् वटपत्रपुटे एकम् अद्भुतं शयानं तोकं पुरुषं ददर्श ।।४।।

अनुवाद— यह बात कैसे सत्य हो सकती है जब वे एकार्णव में डूब उतरा रहे थे उस समय वे अक्षय वट के पत्ते के दोने में सोए हुए अद्भुत बालक पुरुष भगवान् मुकुन्द को देखे ।।४।।

भावार्थ दीपिका

अन्यदप्यघटितमेवेत्याह-एक एवेति । तोकं बालकम् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

दूसरी भी अघटित घटना को उन्होंने पूछा एक ही बालक को ।।४।।

एष नः संशयो भूयान्सूत कौतूहलं यतः । तं नश्छिन्धि महायोगिन्पुराणेष्वपि संमतः ।।५।।

अन्वयः— हे सूत एषः नः भूयान् संशयः यतः कौतूहलं पुराणेषु अपि संमतः हे महायोगिन् तत्रः छिन्धि ।।५।।

अनुवाद— हे सूतजी ! यह हमारा बहुत बड़ा संशय है । जिसके कारण मेरे मन में सन्देह और कौतूहल बना है । यह पुराण में भी कहा गया है । हे महायोगिन् हमारे इस सन्देह को आप दूर करें ।।५।।

भावार्थ दीपिका

कौतूहलमौत्सुक्यम् । तं संशयम् । न केवलं त्वं महायोगी किंतु पुराणेष्वपि ज्ञातृत्वेन संमतः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

कौतूहलम् अर्थात् उत्सुकता मेरे उस संशय को आप केवल महायोगी ही नहीं है, आप पुराणों के ज्ञाता रूप से भी आप प्रख्यात हैं ।।५।।

सूत उवाच

प्रश्नस्त्वया महर्षेऽयं कृतो लोकभ्रमापहः । नारायणकथा यत्र गीता कलिमलापहा ।।६।।

अन्वयः— हे महर्षे ! त्वया प्रश्नः लोकभ्रमापहः कृतः यत्र कलिमलापहा नारायण कथा गीता ।।६।।

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— हे महर्षे ! आपने यह ऐसा प्रश्न किया है कि इससे लोगों का भ्रम मिट जायेगा । इसमें कलि के पापों को दूर करने वाले भगवान् नारायण की कथा का गान है ।।६।।

भावार्थ दीपिका

प्रश्नमभिनन्दति-हे महर्षे- अयं प्रश्नः । तत्र हेतुः-नारायणेति यत्र प्रश्नविषये ।।६।।

भाव प्रकाशिका

सूतजी शौनक महर्षि के प्रश्न का अभिनन्दन हे महर्षे इत्यादि से करते हैं । यह प्रश्न उसका कारण है कि उसमें भगवान् नारायण की कथा वर्णित है ।।६।।

प्राप्तद्विजातिसंस्कारो मार्कण्डेयः पितुः क्रमात् । छन्दांस्यधीत्य धर्मेण तपःस्वाध्यायसंयुतः ।।७।।

अन्वयः— मार्कण्डेयः पितुः क्रमात् प्राप्तद्विजाति संस्कार धर्मेण छन्दांस्यधीत्य, तपः स्वाध्याय संयुतः ।।७।।

अनुवाद— महर्षि माकण्डेय के पिता मृकण्ड महर्षि से मार्कण्डेय महर्षि समस्त द्विजाति संस्कारों को प्राप्त करके, विधि पूर्वक वेदों का अध्ययन करके तपस्या और स्वाध्याय से सम्पन्न हो गये थे ।।७।।

भावार्थ दीपिका

तत्र मार्कण्डेयस्तपसा भगवन्तमाराध्य मायाप्रदर्शनं वव्रे । ततश्च तेनैव भगवन्मायया सप्तकल्पा दृष्टा नान्यैरित्युत्तरं वक्तुमादित आरभ्य तस्य चरितमाह-प्राप्त इत्यादिना । मार्कण्डेयो मृत्युं जिग्ये इति पञ्चश्लोकेनान्वयः । मध्यमग्रन्थेन तस्य धर्मः कथ्यते । प्राप्तो द्विजातिसंस्कार उपनयनाख्यो येन सः । पितुः सकाशाद्गर्भाधानादिक्रमात् । छन्दांसि वेदान् ।।७।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि माकण्डेय श्रीभगवान् की आराधना करके उनसे माया के दर्शन का वरदान माँगे । उसके पश्चात् श्रीभगवान् की उस माया से सात कल्पों को उनसे भिन्न किसी दूसरे ने नहीं देखा । मार्कण्डेय महर्षि ने मृत्यु को जीत लिया इस तरह से पाञ्चवें श्लोक से अन्वय है । बीच के श्लोक के द्वार उनके धर्म का वर्णन है । उन्होंने समयानुसार उपनयन आदि संस्कार प्राप्त किया था । उनके पिता ने गर्भाधान आदि समस्त संस्कारों को किया था । **छन्दांसि** अर्थात् वेदों को ।।७।।

बृहद्व्रतधरः शान्तो जटिलो वल्कलाम्बरः । बिभ्रत्कमण्लुं दण्डमुपवीतं समेखलम् ।।८।।

अन्वयः— बृहद्व्रतधरः शान्तः जटिलः बल्कलाम्बरः समेखलम् दण्डम् उपवीतं कमण्डलुं च विभ्रत् ।।८।।

अनुवाद— माकण्डेय महर्षि नैष्ठिक ब्रह्मचारी का व्रत धारण किए थे । वे शान्त जटा धारण किए हुए बल्कल वस्त्र धारण करते थे मौञ्जी मेखला के साथ वे दण्ड, यज्ञोपवीत और कमण्डलु धारण करते थे ।।८।।

भावार्थ दीपिका

बृहद्व्रधरो नैष्ठिको ब्रह्मचारी सन् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

बृहद्व्रतधर: अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे ।।८।।

कृष्णाजिनं साक्षसूत्रं कुशांश्च नियमर्द्धये । अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मस्वर्चयन्संध्ययोर्हरिम् ।।९।।

अन्वयः— नियमर्द्धये, साक्षसूत्रं कृष्णाजिनं कुशान् च धारयन् अग्न्यर्कगुरुविप्रात्मसु सन्ध्ययोः स्वर्चयन्।।९।।

अनुवाद— महर्षि मार्कण्डेय, कालामृगचर्म, रुद्राक्ष की माला, और कुश धर्म की वृद्धि के लिए धारण किये रहते थे । वे दोनों सन्ध्याओं में अग्निहोत्र सूर्योपस्थान गुरुबन्दन ब्राह्मण सत्कार मानस पूजा और मैं परमात्मा का स्वरूप हूँ, इस तरह की भावना आदि से भगवदाराधन किया करते थे ।।९।।

भावार्थ दीपिका

नियमर्द्धये धर्मवृद्धये अग्न्यादिषु पञ्चसु हरिमर्चयन् ।।९।।

भाव प्रकाशिका

धर्म की समृद्धि के लिए अग्नि आदि पाँच में श्रीहरि की आराधना किया करते थे ।।९।।

सायं प्रातः स गुरवे भैक्ष्यमाहृत्य वाग्यत; । बुभुजे गुर्वनुज्ञातः सकृन्नो चेदुपोषितः ।।१०।।

अन्वयः— सः सायं प्रातः गुरवे भैक्ष्यम् आहृत्य गुर्वनुज्ञातः वाग्यतः सकृत् अनुज्ञात बुभुजे नो चेत् उपोषितः ।।१०।।

अनुवाद— अपने गुरु के लिए सायंकाल एवं प्रात:काल भिक्षान्न माँग कर लाते उसके पश्चात् गुरु की आज्ञा होने पर एक बार भोजन करते यदि गुरु की आज्ञा न हो तो उपवास कर जाते थे ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

भैक्ष्यं गुर्वर्थमाहृत्य तेनानुज्ञातश्चेत्तर्हि बुभुजे नो चेत्सकृत्कदाचिदुपोषितो भवति ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

भिक्षान्न गुरु के लिए मार्कण्डेय महर्षि लाकर उसको गुरु के चरणों में निवेदित करते थे । गुरु की आज्ञा होने पर एक बार मौन होकर भोजन कर लेते अन्यथा उपवास कर जाते थे ।।१०।।

एवं तपःस्वाध्यायपरो वर्षाणामयुतायुतम् । आराधयन्हृषीकेशं जिग्ये मृत्युं सुदुर्जयम् ।।११।।

अन्वयः— एवं वर्षाणाम् अयुतायुतम् तपः स्वाध्याय परः हृषीकेशम् आराधयन् सुदुर्जयम् मृत्युं जिग्ये ।।११।।

अनुवाद— महर्षि मार्कण्डेय तपस्या एवं स्वाध्याय में तत्पर रहकर करोड़ों वर्षों तक भगवान् हृषीकेश की आराधना करते हुए मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लिए ।।११।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।११।।

ब्रह्मा भृगुर्भवो दक्षो ब्रह्मपुत्राश्च येऽपरे । नृदेवपितृभूतानि तेनासन्नतिविस्मिताः ।।१२।।

अन्वयः— ब्रह्मा, भृगुः भवः, दक्षः ये अपरे दक्षपुत्राः नृदेवपितृभूतानि तेन अतिविस्मिताः बभूवु रितिशेषः ।।१२।।

अनुवाद— मार्कण्डेय महर्षि द्वारा मृत्यु पर विजय देखकर ब्रह्मा, शङ्कर महर्षि भृगु, दक्ष प्रजापति और उनके दूसरे पुत्र अत्यन्त विस्मित हो गये ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

तेन मृत्युजयेन ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

मार्कण्डेय महर्षि द्वारा मृत्यु पर विजय देखकर ।।१२।।

इत्थं बृहद्व्रतधरस्तपः स्वाध्यायसंयमैः । दध्यावधोक्षजं योगी ध्वस्तक्लेशान्तरात्मना ।।१३।।

अन्वयः— इत्थं बृहद्व्रतधरः तपःस्वाध्यायसंयमैः योगी ध्वस्तक्लेशान्तरात्मना अधोक्षजं दध्यौ ।।१३।।

अनुवाद— आजीवन ब्रह्मचारीव्रतधारी योगी मार्कण्डेय महर्षि इस प्रकार तपस्या, स्वाध्याय और संयम आदि के द्वारा अविद्या आदि समस्त क्लेशों को मिटाकर शुभ अन्तःकरण से इन्द्रियातीत श्रीभगवान् का ध्यान किये ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

ध्वस्ताः क्लेशा रागादयो यस्य तेनान्तरात्मना प्रत्याहृतमनसा ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

समस्त क्लेश तथा राग आदि को मिटाकर शुद्ध अन्तःकरण से श्रीभगवान् का ध्यान किए ।।१३।।

तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं महायोगेन योगिनः । व्यतीयाय महान्कालो मन्वन्तरषडात्मकः ।।१४।।

अन्वयः— तस्य योगिनः एवं महायोगेन युञ्जतः मन्वन्तर षडात्मकः महान् कालः व्यतीयाय ।।१४।।

अनुवाद— योगी मार्कण्डेय महर्षि महायोग के द्वारा अपना चित्त भगवान् के स्वरूप में जोड़ते रहे । इस तरह ध्यान करते हुए छह मन्वन्तरों का महान काल बीत गया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१४।।

एतत्पुरन्दरो ज्ञात्वा सप्तमेऽस्मिन्किलान्तरे । तपोविशङ्कितो ब्रह्मन्नारेभे तद्विघातनम् ॥१५॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! पुरन्दरः एवंज्ञात्वा अस्मिन् सप्तमेकिलान्तरे तपोविशङ्कितः तद्विघातनम् आरेभे ॥१५॥

अनुवाद— हे शौनकजी इस बात का पता इन्द्र को चला तो इन्द्र भयभीत हो गये और महर्षि माकण्डेय की तपस्या में विघ्न डालने का प्रयास करने लगे ॥१५॥

भावार्थ दीपिका

तस्य तपोनिष्ठामितिहासेन वर्णयति-एतदित्यादिना । अस्मिन्सप्तमे मन्वन्तरे । तपसा मत्पदं ग्रहीष्यतीति विशङ्कितः॥१५॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि मार्कण्डेय की तप करने में निष्ठा का इतिहास के द्वारा वर्णन है । एतत् इत्यादि श्लोक से कहते हैं । इस सातवें मन्वन्तर में महर्षि तपस्या करके मेरे पद को ग्रहण कर लेंगे यह जानकर भयभीत हो गये ॥१५॥

गन्धर्वाप्सरसः कामं वसन्तमलयानिलौ । मुनये प्रेषयामास रजस्तोकमदौ तथा ॥१६॥

अन्वयः— तथा मुनये गन्धर्वाप्सरसः कामं वसन्तमलयानिलौ रजस्तोकमदौ प्रेषयामास ॥१६॥

अनुवाद— महर्षि की तपस्या में विघ्न डालने के लिए इन्द्र ने उनके आश्रम पर गन्धर्व अप्सरा काम, वसन्त, मलयानिल मद एवं लोभ को भेजा ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

मुनये मुनिं भ्रंशयितुम् । रजसस्तोकमतिप्रियमपत्यं लोभो मदश्च तौ ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि मार्कण्डेय को भ्रष्ट करने के लिए रजोगुण अत्यन्त प्रिय सन्तान लोभ एवं मद को भेजा ॥१६॥

ते वै तदाश्रमं जग्मुर्हिमाद्रेः पार्श्व उत्तरे । पुष्पभद्रा नदी यत्र चित्राख्या च शिला विभो ॥१७॥

अन्वयः— ते वै हिमाद्रेः उत्तरे पार्श्वे तदाश्रमं जग्मुः यत्र पुष्पभद्रा नदी चित्राख्या शिला च ॥१७॥

अनुवाद— वे सब इन्द्र की आज्ञा के अनुसार महर्षि मार्कण्डेय के आश्रम पर गये उनका आश्रम हिमालय की उत्तर दिशा में था । वहाँ पुष्पभद्रा नाम की नदी और चित्रा नाम की शिला है ॥१७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१७॥

तदाश्रमपदं पुण्यं पुष्यद्रुमलताञ्चितम् । पुण्यद्विजकुलाकीर्णं पुष्यामलजलाशयम् ॥१८॥
मत्तभ्रमरसंगीतं मत्तकोकिलकूजितम् । मत्तबर्हिनटाटोपं मत्तद्विजकुलाकुलम् ॥१९॥
वायुः प्रविष्ट आदाय हिमनिर्झरशीकरान् । सुमनोभिः परिष्वक्तो ववावुत्तम्भयन्स्मरन् ॥२०॥

अन्वयः— तत् आश्रमपदं पुण्यं पुण्यद्रुमलताञ्चितम्, पुण्य द्विजकुलाकीर्णं, पुण्यामलजलाशयम्, मत्तभ्रमर सङ्गीतम् मत्तकोकिलकूजितम् मत्तवर्हिनटाटोपं मत्तद्विजकुलाकुलम् वायुः हिम निर्झर शीकरान् आदाय सुमनोभिः परिष्वक्तः स्मरमुत्तम्भयन् ववौ ॥१८-२०॥

अनुवाद— महर्षि मार्कण्डेय का आश्रम अत्यन्त पवित्र था चारो ओर हरे-भरे वृक्षों की पंक्तियाँ थीं । वहाँ पवित्र वृक्षों के झुरमुट में स्थान-स्थान पर मुनिगण निवास करते हैं, पवित्र तथा निर्मल जल से परिपूर्ण जलाशय था । कहीं पर पुष्पों के पराग का पान करके मदमत्त भ्रमर गुनगुना रहे थे, कहीं पर मत्तवाली कोयल कू-कू की ध्वनि करती हुई कूज रही थी, कहीं पर मयूरगण अपना पङ्ख फैलाकर नृत्य कर रहे थे और कहीं पर अन्य मत्त पक्षियों का

समूह कलरव कर रहा था । इस प्रकार के आश्रम में शीतल झरनों के छोटे-छोटे जल के कणों को लेकर पुष्पों के सुगन्ध से युक्त होकर काम को उद्रिक्त करता हुआ वायु ने प्रवेश किया ॥१८-२०॥

भावार्थ दीपिका

तदाश्रमपदं प्रविष्टो वायुर्ववाविति तृतीयेनान्वयः । पुण्यैर्द्रुमैर्लताभिश्चाञ्चितं पूजितम् । पुण्यद्विजानामृषीणां कुलैराकीर्णम्। पुण्या अमला जलाशया यस्मिन् । मत्तभ्रमराणां सङ्गीतं यस्मिन् । मत्तकोकिलानां कूजितं यस्मिन् । मत्ता वर्हिण एव नटास्तेषामाटोपो नृत्यसंभ्रमो यस्मिन् । मत्तानां द्विजानां पक्षिणां कुलैराकुलं व्याप्तम् । एवंभूतं तदाश्रमपदं प्रविष्टः सन् वायुर्मलयानिलो ववौ प्रससार। उत्तम्भयन्नुद्दीपयन्। तत्र वृक्षेषु प्रवेशान्मान्द्यं हिमनिर्झरकणानामादानाच्छैत्यं पुष्पपरिष्वङ्गात्सौगन्ध्यं चोक्तम् ॥१८-२०॥

भाव प्रकाशिका

उस आश्रम में प्रवेश करके वायु बहने लगा । वह आश्रम पवित्र वृक्षों और लताओं से भरा हुआ था, पवित्र ऋषियों का उसमें निवास था, उस आश्रम में पवित्र एवं निर्मल जल से भरा हुआ एक आश्रम था । पुष्पों का पराग पान करके मत्त बने हुए भौंरे गुन-गुना रहे थे, मदमत्त कोयलें कूक रही थीं, कही पर मत्त मयूर अपने पङ्ख फैलाकर नाच रहे थे, तो अन्यत्र कहीं मत्त पक्षीगण कलरव कर रहे थे । इस प्रकार के आश्रम में प्रवेश करके मलयानिल वायु चलने लगी । वह काम की भावना को उद्दीप्त करने लगी । उस आश्रम में प्रवेशकर शीतल जल की फुहार से मन्द गति वाली वायु पुष्पों की सुगन्धि से परिपूर्ण थी ॥१८-२०॥

उद्यच्चन्द्रनिशावक्त्रः प्रवालस्तबकालिभिः । गोपद्रुमलताजालैस्तत्रासीत्कुसुमाकरः ॥२१॥

अन्वयः— तत्र उद्यच्चन्द्रनिशावक्त्रः प्रवाल स्तबकालिभिः गोपद्रुमलता जालैः कुसुमाकरः आसीत् ॥२१॥

अनुवाद— उस आश्रम में वसन्त ऋतु ने प्रवेश किया । सायंकाल की बेला में चन्द्रमा अपनी किरणों को चारो ओर फैला रहे थे प्रबाल गुच्छों की पंक्तियों से सुशोभित उस आश्रम के वृक्षों का लता समूह मानों आलिङ्गन कर रही हो ऐसे आश्रम में वसन्त ऋतु ने प्रवेश किया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

किंच, उद्यंश्चन्द्रो यस्मिंस्तन्निशावक्त्रं रजनीमुखं यस्मिन्सः । प्रवालस्तबकानामालयः श्रेणयो येषु तैः । गुप्यन्ति विटपैः संश्लिष्यन्तीति गोपा द्रुमा लताश्च तेषां जालैः समूहैरुपलक्षित आविर्वभूव ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

सांयकाल की बेला में उगता हुआ चन्द्रमा वही मानो निशा नायिका का मुख था, प्रवाल गुच्छों के समूह से वह आश्रम परिपूर्ण था बड़े-बड़े वृक्षों का लताओं का समूह जैसे आलिङ्गन कर रहा था । इस प्रकाश के आश्रम में वसन्त ऋतु ने अपनी माया फैलायी ॥२१॥

अन्वीयमानो गन्धर्वैर्गीतवादित्रयूथकैः । अदृश्यतात्तचापेषुः स्वःस्त्रीयूथपतिः स्मरः ॥२२॥

अन्वयः— गीतवादित्रयूथकैः अन्वीयमानः स्वः स्त्रीयूथपतिः स्मरः आत्तचापेषुः अदृश्यत ॥२२॥

अनुवाद— वसन्त का साम्राज्य देखकर उस आश्रम में स्वर्ग की स्त्रियों के समूह का स्वामी काम उसमें प्रवेश किया, उसके साथ गाने बजाने वाले गन्धर्व चल रहे थे । काम के हाथ में पुष्पों का धनुष था जिस पर सम्मोहन आदि बाण चढ़े हुए थे ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

किंच, तदा गीतवादित्रयूथकैर्गायकादिसमुदायिभिर्गन्धर्वैरन्वीयमानः । तथा स्वःस्त्रियोऽप्सरसस्तासां यूथस्य पतिः । आत्तं चापमिषुश्च येन स स्मरश्च तत्रादृश्यत ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

उस समय गाने बजाने वाला गन्धर्वों का समुदाय उसके पीछे चल रहा था। कामदेव अप्सराओं का स्वामी। वह अपने हाथ में धनुष बाण लिए हुए दिखायी पड़ा ॥२२॥

हुत्वाग्निं समुपासीनं ददृशुः शक्रकिङ्कराः । मीलिताक्षं दुराधर्षं मूर्तिमन्तमिवानलम् ॥२३॥

अन्वयः— अग्निंहुत्वा समुपासीनं मीलिताक्षं दुराधर्षं मूर्तिमन्तम् अनलम् इव शक्रकिङ्कराः तं ददृशुः ॥२३॥

अनुवाद— इन्द्र के दूतों ने देखा कि महर्षि मार्कण्डेय अग्निहोत्र करके भगवान् की उपासनारत है, उस समय उनकी आँखें बन्द थीं वे अत्यन्त तेजस्वी थे लग रहा था जैसे अग्निदेव ही अपना मूर्त रूप धारण करके बैठे हों ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

दुराधर्षमभिभवितुमशक्यम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

दुराधर्ष अर्थात् वे इतने तेज सम्पन्न थे कि उनको अभिभूत नहीं किया जा सकता था ॥२३॥

ननृतुस्तस्य पुरतः स्त्रियोऽथो गायका जगुः । मृदङ्गवीणापणवैर्वाद्यं चक्रुर्मनोरमम् ॥२४॥

अन्वयः— तस्य पुरतः स्त्रियः ननृतुः अथ गायकाः मनोहरं जगुः मृदङ्गवीणापवैः मनोरमं वाद्यं चक्रुः ॥२४॥

अनुवाद— महर्षि मार्कण्डेय के सामने ही अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, और गायक मनोहर गीत गाने लगे तथा मृदङ्ग वीणा, ढोल आदि वाद्यों को मनोहर स्वर में बजाने लगे ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

संदधेऽस्त्रं स्वधनुषि कामः पञ्चमुखं तदा । मधुर्मनो रजस्तोक इन्द्रभृत्या व्यकम्पयन् ॥२५॥

अन्वयः— कामः स्वधनुषि पञ्चमुखं अस्त्रं संदधे तदा मधुः मनः रजः स्तोक इन्द्रभृत्याः व्यकम्पयन् ॥२५॥

अनुवाद— उस समय कामदेव ने अपने पुष्प निर्मित धनुष पर पाञ्च मुखों वाला अस्त्र चढ़ाया जिस समय उसने निशानासाधा, उस समय वसन्त और लोभ मार्कण्डेय महर्षि के मन को विचलित करने के लिए प्रयास करने लगे ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

शोषणदीपनसंमोहनतापनोन्मादनाख्यानि पञ्च मुखानि यस्य तदस्त्रं संदधे। तदैव मधुर्वसन्तः। राजस्तोकश्च। पुंस्त्वमार्षम्। अन्ये चेन्द्रभृत्यास्तस्य मनो व्यकम्पयन् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

शोषण, दीपन, सम्मोहन, तापन और उन्मादन ये कामदेव के बाण के पाँच मुख थे, उसी समय वसन्त रजस्तोक तथा दूसरे इन्द्र के भृत्य महर्षि के मन को विचलित करने का प्रयास करने लगे ॥२५॥

क्रीडन्त्याः पुञ्जिकस्थल्याः कन्दुकैः स्तनगौरवात् । भृशमुद्विग्नमध्यायाः केशविस्रंसितस्रजः ॥२६॥

अन्वयः— कन्दुकैः क्रीडन्त्याः पुञ्जिकस्थल्याः स्तनगौरवात् मध्यायाः भृशम् उद्विग्नम् केश विस्रंसितस्रजः ॥२६॥

अनुवाद— महर्षि मार्कण्डेय के समक्ष ही पुञ्जिकस्थला नाम की अप्सरा कन्दुक क्रीडा कर रही थी। स्तनों के भार के कारण उसकी कमर लचक जाती थी और उसके केशों में गुथी हुई सुन्दर पुष्पों की माला पृथिवी पर गिर रही थी ॥२६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२६॥

इतस्ततो भ्रमद्दृष्टेश्चलन्त्या अनुकन्दुकम् । वायुर्जहार तद्वासः सूक्ष्मं त्रुटितमेखलम् ॥२७॥

अन्वयः— इतस्ततः भ्रमदद्‌टष्टेः अनुकन्दुकम् चलन्त्यः सूक्ष्मं मेखलम् त्रुटितम् तदवासः वायुर्जहार ॥२७॥

अनुवाद— वह अपने चञ्चल नेत्रों से इधर-उधर देख रही थी । उसके नेत्र गेंद के साथ कभी आकाश की ओर जाते थे । चञ्चल पुञ्जिकस्थला की करधनी टूट गयी और उसके सूक्ष्म वस्त्रों का अपहरण वायु ने कर लिया॥२७॥

भावार्थ दीपिका

किंच, वायुर्मलयानिलः पुञ्जिकस्थल्यास्तत्सूक्ष्मं वासो जहार ॥२७॥

भाव प्रकाशिका

और मलचयानिल वायु ने उसके सूक्ष्म वस्त्रों को उड़ा दिया ॥२७॥

विससर्ज तदा बाणं मत्वा तं स्वजितं स्मरः । सर्वं तत्राभवन्मोघमनीशस्य यथोद्यमः ॥२८॥

अन्वयः— स्वजितं तं मत्त्वा स्मरः तदा बाणं विससर्ज तत्र अनीशस्य उद्यमः यथा तत्र सर्वं मोघम् अभवत् ॥२८॥

अनुवाद— कामदेव ने यह समझ लिया कि अब मैंने मार्कण्डेय महर्षि को जित लिया । और अनुकूल परिस्थिति देखकर उसने बाण का प्रहार किया किन्तु यह सबकुछ उसी तरह व्यर्थ हो गया जिस तरह किसी असमर्थ के समस्त प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

सर्वं तेषां कर्म । तत्र तस्मिन् । मोघं व्यर्थम् । अनीशस्य निर्दैवस्य ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

उन सबों द्वारा किया जाने वाला सारा प्रयास व्यर्थ हो गया उसी तरह जिस तरह असमर्थ के द्वारा किया जाने वाला प्रयास व्यर्थ हो जाता है ॥२८॥

त इत्थमपकुर्वन्तो मुनेस्तत्तेजसा मुने । दह्यमाना निववृतुः प्रबोध्याहिमिवार्भकाः ॥२९॥

अन्वयः— हे मुने ! इत्थम् अपकुर्वन्तः ते मुनेः तेजसा दह्यमानाः अहिम् प्रबोध्य अर्भकाः इव निववृतुः ॥२९॥

अनुवाद— हे शौनक महर्षे ! इस प्रकार से महर्षि मार्कण्डेय का अपकार करने वाले वे सब महर्षि के तेज से जलते हुए वहाँ से उसी तरह भाग गये जिस तरह सोए साँप को जगाकर बच्चे भाग जाते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

मुनेरपकुर्वन्तः प्रतिकूलमाचरन्तः । हे मुने ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि मार्कण्डेय का अपकार करने वाले । हे शौनक महर्षे ॥२९॥

इतीन्द्रानुचरैर्ब्रह्मन्धर्षितोऽपि महामुनिः । यन्नागादहमो भावं न तच्चित्रं महत्सु हि ॥३०॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! इति इन्द्रानुचरैः धर्षितः अपि महामुनिः यत अहमो भावं नागात् तत् महत्सुहि ॥३०॥

अनुवाद— शौनकजी इन्द्र के अनुचरों ने महर्षि मार्कण्डेय को इस प्रकार पराजित करने का प्रयास किया किन्तु वे महर्षि बिल्कुल विचलित नहीं हुए । उनके मन में अहङ्कार की भावना बिल्कुल नहीं आयी, यह महापुरुषों के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

अहमोऽहङ्कारस्य । भावं विकारम् ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अहमः अर्थात् अहङ्कार का भावं विकार ॥३०॥

दृष्ट्वा निस्तेजसं कामं सगणं भगवान्स्वराट् । श्रुत्वानुभावं ब्रह्मर्षेर्विस्मयं समगात्परम् ॥३१॥

अन्वयः— भगवान् स्वराट् सगणं कामं निस्तेजसं दृष्ट्वा ब्रह्मर्षेः अनुभावं श्रुत्वा परम विस्मयं समगात् ॥३१॥

अनुवाद— अपने गण के साथ काम को तेजोविहीन देखकर और महर्षि मार्कण्डेय के प्रभाव को सुनकर ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्र को बड़ा ही आश्चर्य हुआ ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

निस्तेजसं म्लानवदनम् । स्वराडिन्द्रः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

निस्तेजसम् अर्थात् उदास मुख वाले स्वराट् अर्थात् इन्द्र ॥३१॥

तस्यैवं युञ्जश्चित्तं तपःस्वाध्यायसंयमैः । अनुग्रहायाविरासीन्नरनारायणो हरिः ॥३२॥

अन्वयः— एवं तपः स्वाध्याय संयमैः चित्तं युज्जतः तस्य अनुग्रहाय, नर नारयणो हरिः आविरासीत् ॥३२॥

अनुवाद— इस प्रकार से तपस्या, स्वाध्याय धारणा ध्यान एवं समाधि के द्वारा श्रीभगवान् में चित्त को लगाने वाले महर्षि मार्कण्डेय पर कृपा करने के लिए भगवान् नर-नारायण उनको दर्शन दिए ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

नरनारायणरूपो हरिः ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

नरनारायण भगवान् ॥३२॥

तौ शुक्लकृष्णौ नवकञ्जलोचनौ चतुर्भुजौ रौरववल्कलाम्बरौ ।
पवित्रपाणी उपवीतकं त्रिवृत्कमण्डलुं दण्डमृजुं च वैणवम् ॥३३॥

अन्वयः— शुक्लकृष्ण, नवकञ्जलोचनौ चतुर्भुजौ रौरववल्कलाम्बरौ पवित्रपाणी उपबीतकं त्रिवृत् कमण्डलुं ऋजुंवैणवम् दण्डम् ॥३३॥

अनुवाद— भगवान् नरनारायण में एक श्वेतवर्ण के तथा दूसरे श्याम वर्ण के थे । उनके नेत्र नवीन विकसित कमल के समान अत्यन्त मनोहर थे । वे सीधा वाँस का दण्ड धारण किए थे उनकी चार-चार भुजाएँ थी । एक मृगचर्म पहने थे तो दूसरे वृक्ष की छाल पहने थे । उन लोगों के कन्धे पर तीन-तीन सूत का यज्ञोपवीत सुशोभित होता था॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तावनुवर्णयति द्वाभ्याम्- ताविति । रौरवं कृष्णाजिनं बल्कलं चाम्बरं ययोस्तौ । पवित्रे पाण्योर्ययोस्तौ । त्रिवृत्त्रिगुणं नवन्तन्तुकमिति वा त्रिवृद्बहिः पवमानमित्यादौ नवके प्रयोगात् । उपवीतकादीन्दधानौ ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

तौ० इत्यादि दो श्लोकों से सूतजी भगवान् नरनारायण का वर्णन करते है । रौरव अर्थात् कृष्ण मृगचर्म तथा बल्कल के उन दोनों के वस्त्र थे । वे अपने हाथ में प्रवित्री धारण किए हुए थे, त्रिगुण नव तन्तुओं वाले

अथवा त्रिवत् होकर बाहर की वस्तुओं को पवित्र कर रहे हैं नव के अर्थ में प्रयोग होने के कारण यज्ञोपवीत को धारण किए थे ॥३३॥

पद्माक्षमालामुत जन्तुमार्जनं वेदं च साक्षात्तप एव रूपिणौ ।
तपत्तडिद्वर्णपिशङ्गरोचिषा प्रांशू दधानौ विबुधर्षभार्चितौ ॥३४॥

अन्वयः— पद्माक्षमालां उत जन्तुमार्जन साक्षात् तपएवरूपिणौ तपत्ताडिद्वर्ण पिशङ्गरोचिषा प्रांशूवेददधनौ विवुधर्ष भार्चितौ ॥३४॥

अनुवाद— वे दोनों कमलाक्ष की माला पहने थे और जीवों को हटाने के लिए वस्त्र की कुंची लिए थे वे वेद को धारण किए थे, वे दोनों मूर्तिमान तपस्या के समान प्रतीत होते थे उन दोनों के शरीर से चमकती हुई बिजली के समान पीले रङ्ग की ज्योति निकल रही थी, वे दोनों ऊँचे कद के थे, वे दोनों दर्भ मुष्टि को धारण किए थे तथा बड़े-बड़े देवताओं से वे पूजित थे ॥३४॥

भावार्थ दीपिका

वेदं दर्भमुष्टिं । किंच, साक्षात्तप एव तौ । तत्र हेतुः-तपत्तडिद्वर्णं देदीप्यमानविद्युत्संकाशं यत्पिशङ्गं रोचिस्तेन रूपिणौ मर्तिमन्तौ ˙ तादृकतेजोयुक्तमर्तिभ्यां तपोमयत्वेन प्रकाशमानावित्यर्थः । प्रांशू उन्नतौ ॥३४॥ '

भाव प्रकाशिका

वे अपने हाथ में कुशों को धारण किए थे । वे मूर्तिमान तप ही थे उसका कारण यह था कि उनके शरीर से देदीप्यमान विद्युत् के समान पीली कान्ति के समान मूर्तिमान थे । इस प्रकार के तेजो युक्त शरीर के द्वारा वे प्रकाशित होते थे, प्रांशू ऊँचे कद के ॥३४॥

ते वै भगवतो रूपे नरनारायणावृषी । दृष्ट्वोत्थायादरेणोच्चैर्ननामाङ्गेन दण्डवत् ॥३५॥

अन्वयः— ते वै भगवतो रूपे नरनारायणौ ऋषी दृष्ट्वा उत्थाय उच्चैः आदरेण अङ्गेन दण्डवत् ननाम् ॥३५॥

अनुवाद— उन दोनों भगवान् के साक्षात् रूप ऋषी नर नारायण को देखकर दृष्ट्वा अत्यन्त आदर पूर्वक पृथिवी पर दण्डे के समान लोटकर साष्टाङ्ग प्रणाम किए ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

उच्चैर्महतादरेण ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

अत्यन्त आदर पूर्वक ॥३५॥

स तत्संदर्शनानन्दनिर्वृतात्मेन्द्रियाशयः । हृष्टरोमाऽश्रुपूर्णाक्षो न सेहे तावुदीक्षितुम् ॥३६॥

अन्वयः— तत्संदर्शनानंद निर्वृत्तात्मेन्द्रियाशयः सः दृष्टरोमा अश्रुपूर्णाक्षः तौ उदीक्षितुम् न सेहे ॥३६॥

अनुवाद— उन दोनों ऋषियों के दर्शन से महर्षि मार्कण्डेय को इतना आनन्द हुआ कि उनका रोम-रोम, उनकी सारी इन्द्रियाँ एवं उनका अन्तःकरण आनन्द मग्न हो गये । उनका सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया और उनके नेत्रों में आनन्दाश्रु भर गये, जिसके कारण वे भर आँख उनको देख भी नहीं पा रहे थे ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

तयोः संदर्शनेन य आनन्दस्तेन निर्वृता उपशान्ता आत्मेन्द्रियाशया देहेन्द्रियमनांसि यस्य सः । न सेहे नाशक्नोत् ॥३६॥

भाव प्रकाशिका

उन दोनों ऋषियों के दर्शन जन्य आनन्द से महर्षि मार्कण्डेय के शरीर, इन्द्रियाँ और मन आनन्द मग्न हो गये । आँखों में आनन्दाश्रु के भर जाने के कारण वे उन ऋषियों को देख भी नहीं सकते थे ॥३६॥

उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व औत्सुक्यादाश्लिशन्निव । नमो नम इतीशानौ बभाषे गद्गदाक्षरः ॥३७॥

अन्वयः— उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्वः औत्सुक्यात् आश्लिशन् इव गदगदाक्षरः नमो नमः इति ईशानौ बभाषे ॥३७॥

अनुवाद— उसके पश्चात् वे उठकर खड़े हो गये, उनका प्रत्येक अङ्ग श्रीभगवान् के समक्ष झुका जा रहा था, उनके हृदय में इतनी उत्सुकता थी कि लगता था जैसे वे श्रीभगवान् का आलिङ्गन कर लेंगे । उनकी वाणी भर्रा गयी थी । वे केवल श्रीभगवान् को नमो नमः कह सके ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

आश्लिन्नालिङ्गन्निव ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

अश्लिशन्निव अर्थात् आलिङ्गन करते हुए के समान ॥३७॥

तयोरासनमादाय पादयोरवनिज्य च । अर्हणेनानुलेपेन धूपमाल्यैरपूजयत् ॥३८॥

अन्वयः— तयोः आसनम् आदाय, पादयोः अवनिज्य अर्हणेन अनुलेपेन धूपमाल्यैः अपूजयत् ॥३८॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उन दोनों ऋषियों को आसन पर बैठाकर उनके चरणों को होकर अर्घ्य, चन्दन, धूप आदि से उनकी पूजा किए ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

पादयोरवनिज्य पादौ प्रक्षाल्य । अर्हणेनार्घ्येण ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

दोनों पैरों को धोकर तथा अर्घ्य के द्वारा ॥३८॥

सुखमासनमासीनौ प्रसादाभिमुखौ मुनी । पुनरानम्य पादाभ्यां गरिष्ठाविदमब्रवीत् ॥३९॥

अन्वयः— सुखम् आसनमासीनौ प्रसादाभिमुखौ मुनी पादाभ्याम् आनम्य गरिष्ठौ इदम् अब्रवीत् ॥३९॥

अनुवाद— भगवान् नर-नारायण सुख पूर्वक आसन पर विराजमान थे और मार्कण्डेय महर्षि पर कृपा प्रसाद की वर्षा कर रहे थे । पूजन के पश्चात् मार्कण्डेय महर्षि ने उन सर्वश्रेष्ठ मुनि वेषधारी नर-नारायण के चरणों में प्रणाम किए और इस प्रकार से स्तुति किए ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

पादाभ्यां पादावानम्य । गरिष्ठौ पूज्यतौ तौ प्रति ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

चरणों में प्रणाम करके उन दोनों पूज्यतमौ के प्रति ॥३९॥

मार्कण्डेय उवाच

किं वर्णये तव विभो यदुदीरितोऽसुः संस्पन्दते तमनु वाङ्मनइन्द्रियाणि ।
स्पन्दन्ति वै तनुभृतामजशर्वयोश्च स्वस्याप्यथापि भजतामसि भावबन्धुः ॥४०॥

अन्वयः— हे विभो तव किं वर्णये, यद् उदीरितः असुः सस्पन्दते तमनु वाङ्मन इन्द्रियाणि तनुभृताम् अजशर्वयोः च स्पन्दति स्वस्यापि अथापि भजताम् भावबन्धु असि ॥४०॥

मार्कण्डेय महर्षि ने कहा

अनुवाद— प्रभो मैं अल्पज्ञ प्राणी हूँ, आपकी महिमा का वर्णन कैसे कर सकता हूँ ? आपकी ही प्रेरणा से प्राणियों ब्रह्मा शङ्कर तथा मेरे शरीर में भी प्राण शक्ति का संचार होता है तथा उसी के कारण वाणी, मन तथा इन्द्रियों में बोलने आदि की शक्ति का संचार होता है । आप सबों के प्रेरक होकर भी भक्तों के भाव के बन्धन में बँध जाते हैं ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

अन्तर्यामिणस्तस्यैव प्राणादिप्रवर्तकत्वादात्मनः स्तुतावस्वातन्त्र्यं पश्यन्नाह-किमिति । तव त्वां किमहं वर्णये कथं स्तौमि। यद्येन त्वयैवोदीरितः प्रेरितोऽसुः प्राणः संस्पन्दते प्रवर्तते तमनु च वागादयः स्पन्दन्ति । अत्र हेतुः-वै अन्वयव्यतिरेकाभ्यां 'श्रोत्रस्य श्रोत्रम्' इत्यादिश्रुतिभिश्चैतत्प्रसिद्धमित्यर्थः । न केवलं प्राकृतानां तनुभृतां किंत्वजशर्वयोश्चातः स्वस्य ममापि तथैव। एवं यद्यपि न कस्यापि स्वातन्त्र्यमथापि दारुयन्त्रवत्त्वत्प्रवर्तितैरपि वागादिभिर्भजतां पुंसां भावबन्धुरात्मबन्धुरसि, नतु पित्रादिवद्देहमात्रबन्धुः। अहो कृपालुता तवेत्यर्थः ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् ही अन्तर्यामी है उनके ही द्वारा शरीर में प्राण आदि का संचार होता है । अतएव अपने को स्वयं स्तुति करने में अस्वतंत्र अनुभव करते हुए **किम० इत्यादि** श्लोक महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं- आपकी स्तुति अल्पज्ञ मैं कैसे कर सकता हूँ । आपके ही द्वारा प्रेरित होकर प्राणों में स्पन्दन होता है । उसके पश्चात् इन्द्रियों आदि में गति आती है । उसका कारण है कि आप ही इन सबों के कारण अन्वय तथा व्यतिरेक के द्वारा प्रतीत होते हैं । श्रुतियाँ भी कहती है- **श्रोत्रस्य श्रोत्रम्** अर्थात् परमात्मा ही श्रवणेन्द्रिय के भी श्रवणेन्द्रिय है । केवल प्रकृत शरीर धारियों के ही नहीं बल्कि ब्रह्मा एवं शङ्कर जी के भी तथा मेरे भी प्राणों में गति आपकी ही प्रेरणा से आती है । यद्यपि कोई भी स्वतंत्र नहीं है फिर भी कठपुतली के समान आपके ही द्वारा प्रेरित होकर वाणी आदि इन्द्रियों से जो लोग आपका भाव पूर्वक भजन करते हैं उनके भी भावों के बन्धन में आप बन्ध जाते हैं । आप सबों के भाव बन्धु हैं माता-पिता के समान केवल देह बन्धु आप नहीं हैं । धन्य है आपकी कृपालुता ।।४०।।

मूर्ती इमे भगवतो भगवंस्त्रिलोक्याः क्षेमाय तापविरमाय च मृत्युजित्यै ।
नाना विभर्ष्यवितुमन्यतनूर्यथेदं सृष्ट्वा पुनर्ग्रससि सर्वमिवोर्णनाभिः ।।४१।।

अन्वयः— हे भगवन् त्रिलोक्या क्षेमाय, ताप विरमाय, मृत्युजित्यै अवितुम् नाना तनूः यथा बिभर्षि तथा इमे मूर्ती उर्णनाभिः यथा इदं सृष्ट्वा पुनः ग्रससि ।।४१।।

अनुवाद— हे भगवन् ! आप जिस तरह विश्व की रक्षा के लिए ही जैसे मत्स्य कूर्म आदि अनेक अवतारों को धारण करते हैं वैसे ही आप इन दोनों रूप में भी त्रिलोकी के कल्याण के लिए, उनके दुःख की निवृत्ति के लिए एवं विश्व के प्राणियों को मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए ग्रहण किए हैं । आप जगत् की रक्षा तो करते ही है। किन्तु मकड़ी के समान इस विश्व की सृष्टि करके इसका संहार भी करते हैं ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

ननु कथमावां प्राणादिप्रवर्तकौ धर्मपुत्रत्वादावयोरिति चेत्तत्राह-मूर्ती इति । हे भगवन्, भगवतस्तव इमे मूर्ती त्रिलोक्याः क्षेमाय पालनाय तापविरमाय च दुःखनिवृत्त्यै मृत्युजित्यै मोक्षाय, नतु त्वं कस्यापि पुत्र इत्यर्थः-अत्र दृष्टान्तः-यथेदं विश्वमवितुमन्यास्तनूर्मत्स्यकूर्मादिलक्षणा नाना अनेकप्रकारा विभर्षि तद्वत् । न केवलं पालनमात्रं तव कर्म किंतु सृष्टिलयावपीत्याह-सृष्ट्वेति । तत्राप्यन्यनिरपेक्षत्वे दृष्टान्तः-ऊर्णनाभिरिवेति ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है कि हम दोनों प्राणादि के प्रवर्तक कैसे हो सकते है ? हमदोनों तो धर्म के पुत्र है । तो इसके उत्तर में मर्कण्डेय महर्षि कहते हैं । हे भगवन् आपकी यह दोनों मूर्तियाँ त्रैलोक्य की रक्षा करने के लिए, उसके दु:खों का विनाश करने के लिए, दु:खों की निवृत्ति के लिए तथा मोक्ष प्रदान करने के लिए धारण किए है । आप किसी के पुत्र नहीं है । जिस तरह संसार की रक्षा करने के लिए आप मत्स्य कूर्म इत्यादि अनेक अवतारों को धारण करते है । उसी तरह । आप केवल पालन ही नहीं करते हैं अपितु सृष्टि और लय भी आप ही करते हैं । उसमें आप किसी की अपेक्षा नहीं करते जिस तरह मकड़ी जाल की सृष्टि भी करती है और अन्त में उसे निगल भी जाती है । उसी तरह ।।४१।।

तस्यावितुः स्थिरचरेशितुरङ्घ्रिमूलं यत्स्थं न कर्मगुणकालरजः स्पृशन्ति ।
यद्वै स्तुवन्ति निनमन्ति यजन्त्यभीक्ष्णं ध्यायन्ति वेदहृदया मुनयस्तदाप्त्यै ।।४२।।

अन्वयः— तस्य अवितुः स्थिरचरेशितुः अङ्घ्रिमूलं भजामि, यत्स्थं कर्मगुणकालरजः न स्पृशन्ति यद्वै स्तुवन्ति निनमन्ति यजन्त्यभीक्ष्णं वेद हृदयाः मुनयः तदाप्त्यै ध्यायन्ति ।।४२।।

अनुवाद— इस चराचर का पालन और नियमन करने वाले आपके चरणों की सेवा मैं करता हूँ । जो लोग आपके चरण कमलों की शरण ग्रहण कर लेने वाले लोगों को कर्म, गुण और काल जनित क्लेश स्पर्श भी नहीं कर सकते हैं वेद के मर्मज्ञ मुनिजन आपकी प्राप्ति के लिए आपकी निरन्तर स्तुति, नमस्कार बार-बार पूजन और ध्यान किया करते हैं ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

यस्मादेवंभूतस्त्वं तस्मात्त्वाङ्घ्रिमूलं भजामीत्याह-तस्येति । तस्यावितुः पालकस्य स्थावरजङ्गमानामीश्वरस्याङ्घ्रिमूलं भजामीति तृतीयश्लोकस्थस्यानुपङ्गः । कथंभूतमङ्घ्रिमूलम् । यत्स्थं यत्र स्थितम् । कर्मगुणकालानां रजो मलम् । अन्ये च पूर्वोक्तास्तापादयो न स्पृशन्ति । 'रुजः' इति वा पाठः । यतो वेदो हृदये येषां ते वेदतात्पर्यविदो मुनयो यदेव स्तुवन्ति नितरां नमन्ति तदाप्त्यै तत्प्राप्तये एवं स्तवनादि कुर्वन्ति ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

इस प्रकार के आपके चरण कमलों का मैं भजन करता हूँ । इस बात को **तस्यावितुः इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । इस चराचरात्मक जगत की आप रक्षा करने वाले तथा नियमन करने वाले हैं । अङ्घ्रिमूलम् भजामि का आगे के तीसरे श्लोक से अन्वय है । आपके जिस चरण कमल की शरणागति करने वालों को कर्म, काल तथा गुण जन्य पाप तथा पूर्वोक्त पाप इत्यादि नहीं स्पर्श करते हैं । **अथवा रजः** के स्थान पर रूज भी पाठ हो सकता है । वेदों के तत्त्व को जानने वाले मुनिजन आपके चरणों की स्तुति, नमन तथा ध्यान आपकी प्राप्ति के लिए किया करते हैं ।।४२।।

नान्यं तवाङ्घ्र्युपनयादपवर्गमूर्तेः क्षेमं जनस्य परितोभिय ईश विद्मः ।
ब्रह्मा विभेत्यलमतो द्विपरार्धधिष्ण्यः कालस्य ते किमुत तत्कृतभौतिकानाम् ।।४३।।

अन्वयः—हे ईश परितो भियः जनस्य अपवर्गमूर्तेः तवाङ्घ्रि उपनयादन्यः क्षेमंन अतःकालस्यते द्विपरार्ध धिष्ण्यः ब्रह्मा आलंविभेति तत्कृत भौतिकानाम् किमुत ।।४३।।

अनुवाद— हे सम्पूर्ण जगत् के नियामक प्रभो जीव के चारो ओर तो भय ही भय है । अतएव मोक्ष प्रदान करने वाले आपके चरणों की शरणागति से भिन्न कोई दूसरा उपाय जीवों के कल्याण का साधन नहीं है । यह मैं जानता

हूँ। आपके काल रूप से दो परार्धों के जीवन वाले ब्रह्माजी भी बहुत डरते हैं तो उनके द्वारा निर्मित इन भौतिक शरीर वाले जीवों की कौन सी बात है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

यतोऽन्यः पुरुषार्थो नास्तीत्याह-नान्यमिति । अङ्घ्र्युपनयाच्छ्रीमच्चरणप्राप्तेरन्यं क्षेमं न विद्मः । परितः सर्वेष्वपि लोकेषु भीर्यस्य तस्य जनस्य । तदेवाह-द्विपरार्धं धिष्ण्यं स्थानं यस्य स ब्रह्मापि ते कालस्य त्वद्भ्रूविजृम्भरूपात्कालादलं बिभेति । अतः किमुत वक्तव्यं तेन ब्रह्मणा कृतानां भौतिकानां प्राणिनां भयमिति ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

नान्यम्० इत्यादि श्लोक से बतलाया गया है कि भगवत् शरणागति से भिन्न कोई दूसरा पुरुषार्थ नहीं है। अङ्घ्रि उपनयात् अर्थात् आपके चरणों की शरणागति से भिन्न कल्याण का कोई दूसरा साधन नहीं है । सभी लोकों में जीव के लिए भय ही भय है । इसी बात को बतलाते हैं । जिनका स्थान दो पराधों पर्यन्त है वे ब्रह्माजी भी आपके भ्रूविजृम्भण स्वरूप काल से अत्यन्त भयभीत रहते है ऐसी स्थिति में ब्रह्माजी के द्वारा सृष्ट भौतिक जीवों के भयों के विषय में क्या कहना है ?।।४३।।

तद्वै भजाम्यृतधियस्तव पादमूलं हित्वेदमात्मच्छदि चात्मगुरोः परस्य ।
देहाद्यपार्थमसदन्त्यमभिज्ञमात्रं विन्देत ते तर्हि सर्वमनीषितार्थम् ।।४४।।

अन्वयः— तद् वै आत्मगुरोः परस्य ऋतधियः तव पादमूलम् इदम् आत्मच्छदि देहाद्यपार्थमसदन्त्यमभिज्ञमात्रं हित्वा भजामि तर्हि ते सर्वं मनीषितम् अर्थम् विन्देत ।।४४।।

अनुवाद— अतएव हे भगवन् आप समस्त जीवों के परम गुरु सर्वश्रेष्ठ ज्ञान स्वरूप है । अतएव आत्मा के स्वरूप को ढँक देने वाले देह आदि निष्फल असत्य नाशवान् और प्रतीति मात्र पदार्थों का परित्याग करके मैं आपके चरणों की शरणागति करता हूँ। कोई भी व्यक्ति यदि आपकी शरणागति कर लेता है तो उसी से उसको समस्त अभीष्ट पदार्थों की प्राप्ति हो जाती है ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

यस्मादेवं तत्तस्मात्तव पादमूलं भजामि । कथंभूतस्य । ऋतधियः सत्यज्ञानस्वरूपस्य । यद्वा, सत्या धीर्यस्य यस्मिन्वा तस्यात्मगुरोर्जीवनियन्तुरतः कारणात्परस्य । किं कृत्वा । आत्मच्छदि स्वात्मावरकमपार्थं च निष्फलमसच्च तुच्छमन्त्यं च नश्वरमिदं देहादि हित्वा देहादिभजनं त्यक्त्वा । असच्चेत्कथं प्रतीयेत तत्राह-अभिज्ञमात्रम् । नह्यत्यन्तमसत्, किंत्वात्ममात्रम्। न ततः पृथगस्तीत्यर्थः । नन्वपवर्गाय भवतु मद्भजनम्, फलान्तरार्थं त्वन्यभजनं कार्यमेव-तत्राह-तर्हीति । यदि त्वां भजति पुरुषस्तर्हि ते त्वत्त एवं सर्वं मनीषितमर्थं विन्देतेति ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

चूकि ऐसी बात है अतएव मैं आपके चरणों की शरणागति करता हूँ आप कैसे है ? आप सत्यज्ञान स्वरूप हैं । अथवा जिसमें बुद्धिसत्य स्वरूपा होती है ऐसे सभी आत्माओं के परम गुरु अर्थात् जीवों का नियमन करने वाले अतएव कारण से परे आपके चरणों की सेवा करता हूँ । क्या करके ? अपनी आत्मा को आच्छादित करने वाले असत्य एवं अपार्थ (निष्फल) तुच्छ तथा नश्वर देहादि का परित्याग करके । प्रश्न होता है कि देहादि यदि असत् हैं तो इनकी प्रतीति कैसे होता है ? इस पर कहते हैं कि देहादि अत्यन्त असत् न होकर आत्मा मात्र है । अर्थात् आत्मा से अलग नहीं है । यदि आप कहें कि मुक्ति के लिए ही मेरा भजन हो, किन्तु दूसरे फलों के लिए तो अन्य वस्तुओं का भजन करना ही चाहिए, इस पर महर्षि मार्कण्डेय कहते हैं यदि कोई आपका भजन करता है तो उसी से वह समस्त अभिप्रेत पदार्थों को प्राप्त कर लेता है ।।४४।।

सत्त्वं रजस्तम इतीश तवात्मबन्धो मायामयाः स्थितिलयोदयहेतवोऽस्य ।
लीला धृता यदपि सत्त्वमयी प्रशान्त्यै नान्ये नृणां व्यसनमोहभियश्च याभ्याम् ॥४५॥

अन्वयः— हे आत्मबन्धो, हे ईश सत्त्वं रजस्तम इति तव, मायामयाः अस्य स्थिति लपोदय हेतवः, यद्यपि लीलाधृता सत्त्वमयी प्रशान्त्यै अन्ये न याभ्याम् नृणां व्यसन मोहभिणश्च ।।४५।।

अनुवाद— हे जीवों के परम सुहृत्प्रभो ! यद्यपि सत्व, रजस एवं तमस् आपकी ही मूर्ति हैं, इनके द्वारा आप जगत् की सृष्टि स्थिति और लय करते हैं तथा मायामय अनेक लीलाएँ करते हैं, फिर भी आपकी सत्त्वगुणी मूर्ति से ही जीवों को शान्ति मिलती है । रजोगुणी एवं तमोगुणी मूर्तियों से शान्ति नहीं मिलती उनसे तो केवल दुःख-मोह एव भय की वृद्धि होती है ।।४५।।

भावार्थ दीपिका

ननु ब्रह्मरुद्रावपि ममैव मूर्ती, अतो मामेव किमत्यन्तमाद्रियसे तत्राह-सत्त्वमिति । यदपि यद्यपि तवैव मायया कृता एता लीलास्त्वयैव धृतास्तथापि या सत्त्वमयी सैव प्रशान्त्यै मोक्षाय न केवलमस्य प्रशान्त्यभावमात्रमन्यभजने किंत्वनिष्टं च भवेदित्याह-व्यसनेति ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न है कि ब्रह्माजी भी तथा शिवजी भी मेरी ही मूर्ति है, अतएव मेरा ही सर्वाधिक समादर क्यों ? यद्यपि आपकी ही माया से ये लीलाएँ की गयी हैं, किन्तु आपकी जो सत्त्वमयी मूर्ति है उसी से मुक्ति मिलती है । इन मूर्तियों का भजन करने से केवल शान्ति का अभाव ही नहीं है । किन्तु उससे भय मोह अनिष्ट भी होते हैं ।।४५।।

तस्मात्तवेह भगवन्नथ तावकानां शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशला भजन्ति ।
यत्सात्वताः पुरुषरूपमुशन्ति सत्त्वं लोको यतोऽभयमुतात्मसुखं न चान्यत् ॥४६॥

अन्वयः— हे भगवन् इह तव तावकामां शुक्लां तनुं स्वदयितां कुशलाः भजन्ति । यत् सात्वताः सत्त्वं पुरुषम् उशन्ति यतः अभयः लोकः उत आत्मसुखं यतः अन्यत् न ।।४६।।

अनुवाद— बुद्धिमान् पुरुष आपकी और आपके भक्तों की शुद्धमूर्ति नर-नारायण की उपासना करते हैं । पांचरात्र सिद्धान्त के अनुयायी विशुद्ध सत्त्व को ही आपका श्रीविग्रह मानते हैं । उनकी ही उपासना से नित्य धाम वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है । उस धाम की विलक्षणता है कि वह लोक होकर भी भय रहित और भोग युक्त होकर भी आत्मानन्द से परिपूर्ण है । वे आपकी रजोगुणी और तमोगुणी मूर्ति को नहीं स्वीकार करते हैं ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

तदेव सदाचारेण द्रढयति-तस्मादिति । हे भगवन्, तव शुक्लां तनुं श्रीनारायणाख्याम् । अथ तावकानां च शुक्लां तनुं नराख्याम् । यद्यस्मात्सात्वताः सत्त्वमेव पुरुषस्येश्वरस्य रूपमुशन्ति मन्यन्ते, नत्वन्यद्रजस्तमश्चेति । अत्र हेतुः- यतः सत्त्वाल्लोको वैकुण्ठाख्यो लोकत्वे सत्यप्यभयं च भोगे सत्यप्यात्मसुखं च ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

उसी का सदाचार के द्वारा समर्थन करते हैं । हे भगवान् आपकी सात्विकी नारायण नामक और आपके भक्त नर नाम की ही मूर्ति के । इसीलिए पाञ्चरात्र शास्त्रानुयायी आपके सात्त्विक रूप को ही ईश्वर रूप से मानते हैं । राजसी एवं तामसी मूर्ति को नही । उसी से वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति होती है । वैकुण्ठ लोक होकर भी अभय है और भोग युक्त होकर भी आत्मानन्दमय है ।।४६।।

तस्मै नमो भगवते पुरुषाय भूम्ने विश्वाय विश्वगुरवे परदैवताय ।
नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय हंसाय संयतगिरे निगमेश्वराय ॥४७॥

अन्वयः— तस्मै भगवते, पुरुषाय, भूम्ने विश्वाय, विश्व गुरवे परदैवताय नारायणाय ऋषये च नरोत्तमाय हंसाय, संयतगिरे निगमेश्वराय नमः ॥४७॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप अन्तर्यामी, सर्वव्यापक, सर्वस्वरूप, जगद्गुरु परमाराध्य शुद्ध स्वरूप हैं, समस्त लौकिक एवं वैदिक वाणी आपके अधीन हैं । आप ही वेदमार्ग के प्रवर्तक हैं । आपके युगल स्वरूप नरोत्तम नर और ऋषि श्रेष्ठ नारायण को मेरा नमस्कार है ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

अतस्तं प्रणमति तस्मैं नम इति । हंसाय शुद्धाय । संयतगिरे नियतवाचे । अथ च निगमेश्वराय वेदमार्गप्रवर्तकाय॥४७॥

भाव प्रकाशिका

अतएव भगवान् नरनारायण को **तस्मै नमः इत्यादि** श्लोक से प्रणाम करते हैं, **हंसाय** अर्थात् शुद्ध स्वरूप वाले, **संयतगिरे** अर्थात् कम बोलने वाले, और **निगमेश्वराय** अर्थात् वेदमार्ग के प्रवर्तक आपको मेरा नमस्कार है ॥४७॥

यं वै न वेद वितथाक्षपथैर्भ्रमद्धीः सन्तं स्वखेष्वसुषु हृद्यपि दृक्पथेषु ।
तन्माययावृतमतिः स उ एव साक्षादाद्यस्तवाखिलगुरोरुपसाद्य वेदम् ॥४८॥

अन्वयः— स्वखेषु असुषु हृद्यपि, दृक्पथेषु सन्तं यं तत् मायया आवृतमतिः वितताक्षपथैः भ्रमद्धीः न वेद स उ एव आद्यः तवाखिलगुरो वेदम साक्षात् उपसाद्य वेद ॥४८॥

अनुवाद— यद्यपि आप सबों की इन्द्रियों, प्राणों, हृदय तथा नेत्रों में व्याप्त हैं आपको आपकी ही माया से मोहित होने के कारण जीवों की बुद्धि इतनी मोहित हो जाती है कि वह निष्फल और झूठी इन्द्रियों के जाल में फँस जाता है और आपके दर्शन से वंचित रह जाता है । सम्पूर्ण जगत् के गुरु आपकी कृपा से पहले अज्ञानी होने पर भी वेदों को प्राप्त करके आपका साक्षात् दर्शन कर लेता है ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

वेदार्थसंप्रदायप्रवर्तने हेतुत्वं वदन् स्तौति-यमिति । वितथाक्षपथैः कपटेन्द्रियमार्गैर्भ्रमद्धीर्विक्षिप्तबुद्धिः पुमान्स्वेन्द्रियादिषु नियन्तृत्वेन सन्तमपि यं त्वां न वेद । दृक्पथेषु विषयेषु बुद्धिविक्षेपे हेतुः-तन्मायया तस्य तवैव मायया आवृता आत्मनिष्ठा मतिर्यस्य स उ सोऽपि आद्य एव पूर्वमविद्वानेवाखिलगुरोस्तव त्वत्प्रवर्तितं वेदमुपसाद्य प्राप्य तं त्वां साक्षाद्वेद ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

वेदार्थ सम्प्रदाय के प्रवर्तन के कारण को बतलाते हुए महर्षि मार्कण्डेय श्रीभगवान् की स्तुति करते हैं । वितताक्षपथैः अर्थात् कपट मय इन्द्रियों के मार्ग का द्वारा जिन लोगों की बुद्धिमोहित हो गयी है, ऐसा पुरुष अपनी इन्द्रियों में नियमन रूप से विद्यमान भी आपको नहीं जानता है । दृक्पथेषु अर्थात् विषयों में । आपकी ही माया से जिनकी बुद्धि मारी गयी है ऐसा भी व्यक्ति सम्पूर्ण जगत् के स्वामी आप से ज्ञान के भण्डार वेदों को प्राप्त करके आपको साक्षात् जान जाता है ॥४८॥

यद्दर्शनं निगम आत्मरहःप्रकाशं मुह्यन्ति यत्र कवयोऽजपरा यतन्तः ।
तं सर्ववादविषयप्रतिरूपशीलं वन्दे महापुरुषमात्मनिगूढबोधम् ॥४९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अन्वयः— यद् दर्शनं निगमे, आत्मरहः प्रकाशम् यत्र यतन्तः अजपरा मुहयन्ति, सर्ववाद विषय प्रतिरूपशीलं तं आत्म निगूढ बोधम् महापुरुषं वन्दे ॥४९॥

अनुवाद— हे प्रभो ! आपका पूर्ण रूप से ज्ञान वेद में ही है, वेद ही आपके स्वरूप का रहस्य प्रकट करता है। बड़े-बड़े ज्ञानी ब्रह्मा आदि उसे प्राप्त करने का प्रयास करते रहते हैं, फिर भी मोह में पड़ जाते हैं। विभिन्न मत वाले आपके विषय में सोचते विचारते हैं और आप भी उन लोगों के मत के अनुकूल हो जाते हैं। वास्तव में आप देह आदि समस्त उपाधियों में छिपे हुए विशुद्ध विज्ञान स्वरूप हैं। हे पुरुषोत्तम ! मैं आपकी वन्दना करता हूँ ।।४९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।८।।

भावार्थ दीपिका

वेदेनैव त्वज्ज्ञानमित्युपपादयन्प्रणमति-यस्य तव दर्शनं निगमे भवति । कथंभूतम् । आत्मनस्तव रहो रहस्यं तस्य प्रकाशकम् । अन्यथा दुर्ज्ञेयतामाहअजपरा ब्रह्ममुख्याः कवयोऽपि सांख्ययोगादिभिर्यतमाना यत्र त्वयि मुह्यन्ति । कुत इत्यत आह-सर्वेषां सांख्यादिवादिनां ये वादास्तेषां विषया भेदादयस्तेषां प्रतिरूपं तत्तदनुसारि शीलं स्वभावो यस्य तम् । कुतः । आत्मना देहादिसंघातेन निगूढो बोधो यस्य तम् । एवंभूतं महापुरुषं त्वां वन्दे ।।४९।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायामष्टमोऽध्यायः ।।८।।

भाव प्रकाशिका

वेद के ही द्वारा आपका ज्ञान होता है इस अर्थ का प्रतिपादन करते हुए महर्षि मार्कण्डेय भगवान् नरायण की **यद्दर्शनम्० इत्यादि** श्लोक से करते हैं। आपका ज्ञान वेद से ही होता है। किस प्रकार का वेद ? वह ज्ञान आपके रहस्यों का प्रकाशक है। अन्यथा आपका ज्ञान होना कठिन हैं क्योंकि ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता भी तथा संख्य योग के द्वारा आपके ज्ञान के लिए प्रयास करने वाले भी लोग मोहित हो जाते हैं। ऐसा क्यों होता है तो इसका उत्तर है कि सांख्य आदि वादियों के जो भिन्न-भिन्न प्रकार के वाद हैं, उन्हीं वादों के अनुसार आप अपना रूप भी बना लेते हैं। आपका अपना ज्ञान देहादि समूह में छिपा है ऐसे महापुरुष आपकी मैं वन्दना करता हूँ।।४९।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।८।।

नवा अध्याय

मार्कण्डेय महर्षि को माया का दर्शन

सूत उवाच

संस्तुतो भगवानित्थं मार्कण्डेयेन धीमता । नारायणो नरसखः प्रीत आह भृगूद्वहम् ।।१।।

अन्वयः— धीमता मार्कण्डेयेन इत्थं संस्तुतो भगवान् नरसखः नारायणः प्रीतः भृगुद्वहम् आह ।।१।।

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— महर्षि मार्कण्डेय के द्वारा इस तरह से स्तुति किए जाने पर भगवान् नर-नारायण ने प्रसन्न होकर मार्कण्डेय महर्षि से कहा ।।१।।

भावार्थ दीपिका

नवमे भगवन्मायादिदृक्षोर्दर्शनं मुहुः । मायाशिशोर्लयाब्धौ च मुनेर्निर्वेशनिर्गमैः ।।१।। भगवतः परितोषपूर्वकं तदपेक्षितवरदानं कथयितुमाह-संस्तुत इत्यादिना ।।१।।

भाव प्रकाशिका

नवें अध्याय में श्रीभगवान् की माया को देखने के इक्षुक महर्षि मार्कण्डेय का माया शिशु भगवान् मुकुन्द की माया का दर्शन, प्रलय कालीन एकार्णव में मार्कण्डेय महर्षि का भगवान् के मुख में प्रवेश करना और पुन: उससे निकलने का वर्णन है ।।१।। श्रीभगवान् की प्रसन्नता पूर्वक उसके लिए अपेक्षित वरदान का वर्णन करने के लिए सूतजी कहते हैं-संस्तुत: इत्यादि ।।१।।

श्रीभगवानुवाच

भो भो ब्रह्मर्षिवर्यासि सिद्ध आत्मसमाधिना । मयि भक्त्यानपायिन्या तपः स्वाध्यायसंयमैः ।।२।।

अन्वयः— भो-भो ब्रह्मर्षिवर्य तप: स्वाध्यायसंयमै: आत्म समाधिना, मयि अनपायिन्याभक्त्या सिद्ध असि।।२।।

श्रीभगवान् ने कहा

अनुवाद— हे ब्रह्मर्षियों में श्रेष्ठ महर्षि मार्कण्डेय, तपस्या, वेदाध्ययन और ब्रह्मचर्य पालन के द्वारा, अपने चित्त की एकाग्रता के द्वारा तथा मुझमें अनन्या भक्ति के द्वारा तुम सिद्ध हो गये हो ।।२।।

भावार्थ दीपिका

आत्मसमाधिना चित्तैकाग्र्येण ।।२।।

भाव प्रकाशिका

आत्मसमाधिना अर्थात् चित्त की एकाग्रता के कारण ।।२।।

वयं ते परितुष्टाः स्म त्वद्बृहद्व्रतचर्यया । वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरदेशादभीप्सितम् ।।३।।

अन्वयः— ते बृह्मद्व्रतचर्यया वयं त परितुष्टा, ते भद्रं वरदेशात् अभीप्सितम् वरं प्रतीक्ष ।।३।।

अनुवाद— मैं तुम्हारे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत को देखकर प्रसन्न हूँ । तुम्हारा कल्याण हो । समस्त वरदान देने वालों में श्रेष्ठ मुझसे वरदान माँगो ।।३।।

भावार्थ दीपिका

वयं ते परितुष्टाः स्मेति बहुवचनं सर्वदेवाभिप्रायेण । वरदेशादित्येकवचनं द्वयोरैक्याभिप्रायेण । प्रतीच्छ गृहाण ।।३।।

भाव प्रकाशिका

वयं ते परितुष्टाः स्म में बहुवचन सभी देवताओं के अभिप्राय से कहा गया है । वरदेशात् में एक वचन नर एवं नारायण हम दोनों एक ही है इस अभिप्राय से कहा गया है । प्रतीच्छ अर्थात् माँग लो ।।३।।

ऋषिरुवाच

जितं ते देवदेवेश प्रपन्नार्तिहराच्युत । वरेणैतावतालं नो यद्भवान्समदृश्यत ।।४।।

अन्वयः— हे प्रपन्नार्तिहराच्युत देवदेवेश ते जितम् नो एतावता वरेण अलं यद् भवान् समदृश्यत् ।।४।।

महर्षि मार्कण्डेय ने कहा

अनुवाद— हे शरणागतों के भय को दूर करने वाले भगवान् अच्युत आपकी जय हो हमारे लिए यही वरदान पूरा है कि आपने मुझे दर्शन दिया ।।४।।

भावार्थ दीपिका

वरेण च्छन्दयता त्वया जितमुत्कर्षो दर्शितः । मम तु वराकाङ्क्षा नास्तीत्याह-वरेणेति ।।४।।

भाव प्रकाशिका

वरदान देने वाले आपकी जय हो । मेरी वरदान की आकाङ्क्षा नहीं हैं । इस बात को **वरेण इत्यादि** से कहा गया है ॥४॥

गृहीत्वाजादयो यस्य श्रीमत्पादाब्जदर्शनम् । मनसा योगपक्वेन स भवान्मेऽक्षगोचरः ॥५॥

अन्वयः— अजादयः योगपक्वेन मनसा यस्य श्रीमत्पादाब्दजदर्शनं गृहित्वा स भवान् मे अक्षगोचरः ॥५॥

अनुवाद— ब्रह्माजी इत्यादि देवगण अपने योगपक्व मन से आपके सुन्दर चरणों का दर्शन प्राप्त करके कृतार्थ हो गये, वही आप आज मुझे दर्शन देकर धन्य बना दिए हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

यस्य तव श्रीमत्पादाब्जदर्शनं मनसापि गृहीत्वा प्राप्य कृतार्था अजादयो भवन्ति स भवान्मेऽक्षगोचरो जातोऽस्ति किमतः परं वरेणेत्यर्थः ॥५॥

भाव प्रकाशिका

आपके सुन्दर चरण कमलों का दर्शन मन से भी प्राप्त करके ब्रह्मा आदि देवता कृतार्थ हो गये, वही आप आज मेरे नेत्रों के समक्ष आ गये इससे बढ़कर दूसरा वरदान कौन होगा ?॥५॥

अथाप्यम्बुजपत्राक्ष पुण्यश्लोकशिखामणे । द्रक्ष्ये मायां यया लोकः सपालो वेद सद्भिदाम् ॥६॥

अन्वयः— हे अम्बुजपत्राक्ष ! हे पुण्यश्लोकशिखामणे ! मायां द्रक्ष्ये यया सपालो लोकः सद्भिदाम् वेद ॥६॥

अनुवाद— हे कमल दलाभिराम नेत्र वाले पवित्र कीर्ति वालों में श्रेष्ठ भगवन् मैं आपके कथानुसार वरदान माँगता हूँ। मैं आपकी माया का दर्शन करना चाहता हूँ, जिससे मोहित होकर सभी लोक और लोकपाल अद्वितीय वस्तु ब्रह्म में भेद देखने लगते हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

द्रक्ष्ये द्रष्टुमिच्छामि । लोकपालैर्ब्रह्मादिभिः सहितोऽयं लोको जनो यया सद्भिदां सति वस्तुनि भेदम् ॥६॥

भाव प्रकाशिका

द्रक्ष्ये अर्थात् देखना चाहता हूँ ब्रह्मादि लोकपालों सहित सभी लोक में जिस माया से मोहित होकर अद्वितीय वस्तु में भेद देखने लगते हैं ॥६॥

सूत उवाच

इतीडितोऽर्चितः काममृषिणा भगवान्मुने । तथेति स स्मयन्प्रागाद्बदर्याश्रममीश्वरः ॥७॥

अन्वयः— हे मुने इति ऋषिणा कामम् ईडितः आर्चितः सः ईश्वरः भगवान् तथेति स्मयन् वदर्याश्रमम् प्रागात् ॥७॥

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— हे शौनक महर्षे ! इस तरह से मार्कण्डेय महर्षि के द्वारा अच्छी तरह से भगवान् नर-नारायण की इच्छानुसार स्तुति और पूजा कर लिए जाने के बाद सम्पूर्ण जगत् के नियामक भगवान् नर-नारायण बदरिकाश्रम में चले गये ॥७॥

भावार्थ दीपिका

तथेति द्रक्ष्यसीति । स ईश्वरः स्मयन्प्रागात् । पाठान्तरे क्रियाविशेषणम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

तथेति अर्थात् देखे लोगे कहकर वे भगवान् मुस्कुराते हुए चले गये। पाठान्तर होने पर क्रिया विशेषण होगा॥७॥

तमेव चिन्तयन्नर्थमृषिः स्वाश्रम एव सः। वसन्नग्न्यर्कसोमाम्बुभूवायुवियदात्मसु ॥८॥
ध्यायन्सर्वत्र च हरिं भावद्रव्यैरपूजयत्। क्वचित्पूजां विसस्मार प्रेमप्रसरसंप्लुतः ॥९॥

अन्वयः— सः ऋषिः स्वाश्रम एवं वसन् अग्न्यर्कसोमाम्बुभूवायुवियदात्मसु तमेव सर्वत्रचिन्तयन् ध्यायन् हरिं भावद्रव्यैः अपूजयत् क्वचित् प्रेमप्रसरसम्प्लुतः पूजां विसस्मार ॥८-९॥

अनुवाद— मार्कण्डेय महर्षि अपने आश्रम पर ही रहकर निरन्तर इस बात की चिन्ता करते रहते थे कि मुझे माया के दर्शन कब होंगे। वे अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, जल, पृथिवी, वायु, आकाश एवं अन्तःकरण में सर्वत्र श्रीभगवान् का दर्शन करते हुए, मानसिक वस्तुओं से ही उनका पूजन करते रहते थे। कभी-कभी तो उनके हृदय में प्रेम का ऐसा प्रवाह बहने लग जाता था कि वे श्रीभगवान् की पूजा भी भूल जाते थे ॥८-९॥

भावार्थ दीपिका

तमेवार्थं मायादर्शनरूपम्। अग्न्यादिमूर्तिषु। भावद्रव्यैर्मनोमयैर्द्रव्यैः। क्वचित्कदाचित्प्रेमप्रसरसंप्लुतः प्रेमोद्रेकं प्राप्तः॥८-९॥

भाव प्रकाशिका

तमेवार्थम् माया दर्शन रूप अग्नि आदि मूर्तियों में। **भावद्रव्यै** मानिसक द्रव्यों से, कभी-कभी प्रेम प्रवाह में मग्न हो जाने के कारण ॥८-९॥

तस्यैकदा भृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटे मुनेः। उपासीनस्य सन्ध्यायां ब्रह्मन्वायुरभून्महान् ॥१०॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन्! हे भृगुश्रेष्ठ तस्य एकदा पुष्पभद्रातटे सन्धयायां उपासीनस्य तस्य मुनेः महान् वायुरभूत् ॥१०॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन्! शौनक महर्षे! हे भृगुवंशियों में श्रेष्ठ एक-दिन जब महर्षि मार्कण्डेय पुष्पभद्रा नदी के तट पर बैठे हुए श्रीभगवान् की आराधना में तल्लीन थे उसी समय जोर से आँधी चलने लगीं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

मायादर्शनमाह-तस्येत्यादिना ॥१०॥

भाव प्रकाशिका

तस्य० इत्यादि श्लोक से माया के दर्शन का वर्णन करते हैं ॥१०॥

तं चण्डशब्दं समुदीरयन्तं बलाहका अन्वभवन्कराला:।
अक्षस्थविष्ठा मुमुचुस्तडिद्भिः स्वनन्त उच्चैरभिवर्षधाराः ॥११॥

अन्वयः— चण्डशब्दम् उदीरयन्तं तं कराला: बलाहकाः अन्वभवन् तडिद्भिः उच्चैः स्वनन्तः अक्षस्थविष्ठाः वर्षधारा मुमुचुः ॥११॥

अनुवाद— आँधी के कारण जोर-जोर से शब्द हो रहा था उसी समय आकाश में भयङ्कर मेघ मँडराने लगे। बिजली चमक-चमक कर जोर-जोर से कड़कने लगी और पृथिवी पर रथ के धुरे के समान मोटी जलधारा गिरने लगी ॥११॥

भावार्थ दीपिका

तं वायुमनु बलाहका मेघा अभवन्नाविर्बभूवुः। ते च तडिद्भिः सहिता उच्चैः स्वनन्तो गर्जन्तः। अक्षो रथाङ्गं तद्वत्स्थविष्ठा अभितो वर्षधारा मुमुचुः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

उस वायु के पश्चात् आकाश में मेघ छा गये थे बिजली के साथ जोर-जोर से चमक-चमक कर तथा गरज-गरज कर वर्षा होने लगी। रथ के धूरे के समान मोटी जल की धारा पृथिवी पर गिरने लगी ॥११॥

ततो व्यदृश्यन्त चतु:समुद्रा: समन्तत: क्ष्मातलमाग्रसन्त: ।
समीरवेगोर्मिभिरुग्रनक्रमहाभयावर्तगभीरघोषा: ॥१२॥

अन्वय:— तत: समन्तत: क्ष्मातलमा ग्रसन्त: चतु: समुद्रा: समीरवेगोर्मेभि: उग्रनक्र महावर्त गभीरघोपा व्यादृश्यन्त॥१२॥

अनुवाद— उसके पश्चात् उन्होंने देखा कि चारो समुद्र उमड़कर पृथिवी को निगले हुए के समान आ रहे हैं। समुद्र में बड़ी लहरें उठ रही हैं। उनमें बड़े भयङ्कर आवर्त पड़ रहे हैं। और जोर-जोर से ध्वनि हो रही है॥१२॥

भावार्थ दीपिका

चतुर्दिक्षु वर्तमाना: समुद्रा: समीरवेगेनोर्मयस्तैर्भूतलं ग्रसन्त: । उग्रा नक्रा येषु, महाभया आवर्ता येषु, गभीरो घोषो येषु, ते च ते च ते च ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

चारो दिशाओं में वर्तमान समुद्र वायु के वेग से उत्पन्न लहरों से ध्वनि हो रही थी लग रहा था कि जैसे वे पृथिवी को निगल लेंगे उसमें भयङ्कर घड़ियाल हैं, भयङ्कर चकोह है और जारे से ध्वनि होने लगी ॥१२॥

अन्तर्बहिश्चाद्भिरतिद्युभि: खरै: शतह्रदाभीरुपतापितं जगत् ।
चतुर्विधं वीक्ष्य सहात्मना मुनिर्जलाप्लुतां क्ष्मां विमना: समत्रसत् ॥१३॥

अन्वय:— अन्तर्वहिश्चाद्भि: अतिद्युभि: खरै: शतह्रदाभि: जगत् उपतापितं, मुनि: चतुर्विधं आत्मना सह जलाप्लुतां क्ष्मां वीक्ष्य विमना समत्रसत् ॥१३॥

अनुवाद— उस समय बाहर भीतर चारो ओर जल ही जल था, उस जलाराशि में पृथिवी ही नहीं आकाश भी डूबा जा रहा है, जोर से आँधी चल रही है, बिजली चमक रही है, उससे सारा संसार संतप्त हो रहा है। चारो प्रकार के प्राणी तथा वे स्वयं भी अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं। इसके पश्चात् महर्षि उदास हो गये तथा अत्यन्त भयभीत हो गये ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

आत्मना सह जरायुजादिचतुर्विधं जगदन्तर्बहिश्चोपतापितं वीक्ष्य । क्ष्मां जलाप्लुतां वीक्ष्य । मुनि: समत्रसद्भयं प्राप । केनोपतापितम् । अद्भि: । कथंभूताभि: । अतिद्युभिरतिक्रान्ताद्यौर्याभि: । खरैश्च सूर्यरश्मिभिर्वायुभिर्वेति शेष: । शतह्रदाभिश्च विद्युद्भि: । दीर्घत्वमार्षं छन्दोनुसारेण ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

अपने साथ-साथ जरायुज आदि चारो प्रकार के प्राणी संतप्त तथा भीतर-बाहर सारे जगत् के संतप्त देखकर। पृथिवी को डूबी हुई देखकर मुनि भयभीत हो गये। किसके द्वारा वे संतप्त थे ? जल से। कैसे जल से जिसमें मानों पृथिवी के साथ ही मानो आकाश भी डूब जायेगा। तीक्ष्ण सूर्य की किरणों से अथवावायु के द्वारा, बिजलियों से यहाँ छन्द के अनुसार दीर्घत्व वैदिक है ॥१३॥

तस्यैवमुद्वीक्षत ऊर्मिभीषण: प्रभञ्जनाघूर्णितवार्महार्णव: ।
आपूर्यमाणो वरषद्भिरम्बुदै: क्ष्मामप्यधाद्द्वीपवर्षाद्रिभि: समम् ॥१४॥

अन्वय:— तस्य एवम् ऊर्मि भीषण: प्रभंजनाघूर्णितवार्महार्णव: वीक्षत: वरवर्षाद्भि: अम्बुदै: अपूर्यमाण द्वीपवर्षाद्रिभि: समम्क्ष्मामप्यधात् ॥१४॥

अनुवाद— महर्षि के सामने ही प्रलय समुद्र में भयङ्कर लहरें उठ रही थीं आँधी के वेग से जलराशि उछेल रही थी, प्रलय कालीन मेघ बरस बरस कर उसे भर रहे थे । उन्होंने देखा कि समुद्र ने द्वीप, वर्ष और पृथिवी को डुबा दिया ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

प्रभञ्जनेनाघूर्णितं प्रकम्पितं वा: उदकं यस्मिन् स: । अप्यधाच्छादयामास । समं सह ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

जोर से चलने वाली वायु के कारण जल राशि उछल रही थी अप्यधात् अर्थात् ढँक लिया, **समम्** अर्थात् साथ।।१४।।

सक्ष्मान्तरिक्षं सदिवं सभागणं त्रैलोक्यमासीत्सह दिग्भिराप्लुतम् ।
स एक एवोर्वरितो महामुनिर्बभ्राम विक्षिप्य जटा जडान्धवत् ।।१५।।

अन्वयः— सक्ष्मान्तरिक्षं सदिवं समागणं दिग्भिः सह त्रैलोक्य आप्लुतम् आसीत् एक एव उर्वरितः सः महामुनिः जडान्धवत् जटाः जटा विक्षिप्य बभ्राम ।।१५।।

अनुवाद— पृथिवी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, नक्षत्रगण दिशाओं के साथ सारा त्रैलोक्य डूब गया यह मार्कण्डेय महर्षि ने देखा था केवल मार्कण्डेय महर्षि बचे हैं और वे अपनी जान बचाने के लिए इधर से उधर पागल के समान भाग रहे हैं ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

सक्ष्मान्तरिक्षं भूम्यन्तरक्षिस्थप्राणिसहितम् । सदिवं स्वर्गस्थदेवसहितम् । भागणा ज्योतिर्गणास्तैः सहितम् । जटा विक्षिप्य विकीर्य ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी और अन्तरिक्ष के प्राणियों के साथ स्वर्गस्थ देवताओं के साथ ज्योतिर्गणों के साथ जटा को विखेरकर।।१५।।

क्षुत्तृट्परीतो मकरैस्तिमिङ्गिलैरुपद्रुतो वीचिनभस्वताहतः ।
तमस्यपारे पतितो भ्रमन्दिशो न वेद खं गां च परिश्रमेषितः ।।१६।।

अन्वयः— क्षुत्तृट् परीतः मकरैस्तिमिंगिलैः उपद्रुतः बीचिनभस्वता हतः अपारे तमसि पतितः दिशो भ्रमन् परिश्रमेषितः खं गां च न वेद ।।१६।।

अनुवाद— वे भूख प्यास से व्याकुल हो रहे थे, किसी ओर बड़े-बड़े मगर तो किसी ओर तिमिंगिल उन पर टूट पड़ते थे । किसी ओर हवा का झोका आता तो किसी ओर से लहरों के थपेड़े उनको घायल कर देते थे । इस तरह भटकते हुए वे घोर अन्धकार में पड़ गये । वे बेहोश हो गये और इतना थक गये कि उन्हें पृथिवी और आकाश का भी पता न चला ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

परिश्रमेण इषितो गतः प्राप्त इत्यर्थः । इषु सर्पणे इत्यस्मात् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

परिश्रम से थक गये थे । इषु सर्पणे धातु से इषितः व्युत्पन्न है ।।१६।।

क्वचिद्गतो महावर्ते तरलैस्ताडितः क्वचित् । यादोभिर्भक्ष्यते क्वापि स्वयमन्योन्यघातिभिः ।।१७।।

अन्वयः— क्वचित् महावर्ते गतः क्वचित् तरलैः ताडितः क्वापि यादोभिः भक्षितः स्वयमन्योन्य धातिभिः ।।१७।।

अनुवाद— उसी भँवर में वे पड़ जाते तो कहीं चञ्चल तरङ्गों से प्रताडित होते ही परस्पर में ही घात करने वाले जल जन्तुओं के शिकार बन जाते ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

अन्योन्यघातिभिस्तद्भक्षणाय परस्परं युध्यद्भिः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

अन्योन्यधातिभिः महर्षि मार्कण्डेय को खाने के लिए आपस में लड़ने वाले ।।१७।।

क्वचिच्छोकं क्वचिन्मोहं क्वचिद्दुःखं सुखं भयम् । क्वचिन्मृत्युमवाप्नोति व्याध्यादिभिरुतार्दितः ।।१८।।

अन्वयः— क्वचित् शोकं, क्वचिन्मोहं, क्वचिद् दुःखं, सुखं, भयम् व्याध्यादिभिः अर्दितः उत क्वचिन्मृत्युम् अवाप्नोति।।१८।।

अनुवाद— कहीं पर वे शोकग्रस्त हो जाते थे तो कहीं मोहग्रस्त हो जाते कहीं पर उन्हें दुःख ही दुख मिलता था ता कहीं सुख मिलता था, कहीं पर वे व्याधि आदि के कारण सताये जाकर मर भी जाते थे ।।१८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१८।।

अयुतायुतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च । व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन्विष्णुमायावृतात्मनः ।।१९।।

अन्वयः— विष्णुमायाऽवृतात्मनः तस्मिन् भ्रमतः वर्षाणां अयुतायुत सहस्राणि शतानि व्यतीयुः ।।१९।।

अनुवाद— भगवान् विष्णु की माया से मोहित महर्षि मार्कण्डेय के उस प्रलय कालीन सागर में भटकते हुए अनन्तानन्त वर्ष बीत गये ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

विष्णुमायावृतात्मन इति स तथा दृष्टवानित्यर्थः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

विष्णु मायावृतात्मनः अर्थात् महर्षि मार्कण्डेय ने वैसा देखा ।।१९।।

स कदाचिद्भ्रमंस्तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि द्विजः । न्यग्रोधपोतं ददृशे फलपल्लवशोभितम् ।।२०।।

अन्वयः— भ्रमन् स द्विजः भ्रमन् कदाचित् पृथिव्यां ककुदि फल पल्लवशोभितम् न्यग्रोधपोतं ददृशे ।।२०।।

अनुवाद— इस तरह से एकार्णव में भटकते हुए उन्होंने पृथिवी के ऊपर फल तथा पल्लव से सुशोभित छोटे से बट वृक्ष को देखा ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

ककुद्युन्नतप्रदेशे न्यग्रोधपोतं कोमलवटम् ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

पृथिवी के किसी ऊँचे स्थान पर कोमल वट वृक्ष को देखा ।।२०।।

प्रागुत्तरस्यां शाखायां तस्यापि ददृशे शिशुम् । शयानं पर्णपुटके ग्रसन्तं प्रभया तमः ।।२१।।

अन्वयः— तस्य अपि उत्तरस्यां शाखायां प्राक् प्रभया तमः ग्रसन्तं पर्णपुटके शयानं शिशुम् ददृशे ।।२१।।

अनुवाद— उस वृक्ष की उत्तर दिशा में विद्यमान शाखा के अग्रभाग में अपनी प्रभा से आस-पास के अन्धकार को दूर करते हुए पत्तों के दोनों में सोए हुए एक अत्यन्त सुन्दर बालक को देखे ।।२१।।

भावार्थ दीपिका

तस्येशानदिक्शाखायां शिशुमपि ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उस वट वृक्ष के ईशान कोण की शाखा पर बालक को भी ॥२१॥

महामरकतश्यामं श्रीमद्वदनपङ्कजम् । कम्बुग्रीवं महोरस्कं सुनासं सुन्दरभ्रुवम् ॥२२॥

अन्वयः— महामरकतश्यामं, श्रीमद्वदनपङ्कजम् कम्बुग्रीवं महोरस्कं सुनासं, सुन्दरभ्रुवम् शिशुम् ददृशे इतिपूर्वेणान्वयः॥२२॥

अनुवाद— उस बालक का नील मणि के समान श्याम रङ्ग था, उसका मुख कमल अत्यन्त मनोहर था, उसकी गला शङ्ख के समान मनोहर थी, उस बालक की विस्तृत छाती थी। नाक सुन्दर थी एवं भौहें भी सुन्दर थी ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

श्रीमद्रम्यं वदनपङ्कजं यस्य तम्। कम्बुवन्त्रिरेखावृता ग्रीवा यस्य तम्। महोरस्कं विशालवक्षसम्। सुनासं शोभना नासा यस्य तम्। सुन्दरे भ्रुवौ यस्य तम् ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

उस बालक का मुख कमल अत्यन्त मनोहर था, शङ्ख के समान तीन रेखाओं से युक्त उसकी गदरन थी, वक्षःस्थल विशाल था, नासिका सुन्दर थी एवं दोनों भौहे मनोहर थी ॥२२॥

श्वासैरेजदलकाभातं कम्बुश्रीकर्णदाडिमम् । विद्रुमाधरभासेषच्छोणायितसुधास्मितम् ॥२३॥

अन्वयः— श्वासैरेजदलकाभातं कम्बुश्रीकर्णदाडिमम् विद्रुमाधर भासेषत् शोणायितसुधास्मितम् ॥२३॥

अनुवाद— काले घुंघराले केश कपोलों पर लटक रहे थे श्वास लगने से कभी हिल भी जाते थे शङ्ख के समान घुमावदार कानों में अनार के लाल-लाल पुष्प सुशोभित हो रहे थे, मूङ्गे के समान लाल-लाल ओष्ठों की कान्ति से उस बालक की सुधामयी श्वेत मुस्कान कुछ लालिमा लिए हुई थी ॥२३॥

भावार्थ दीपिका

श्वासैरेजन्तः कम्पमाना अलकास्तैराभातं शोभितम्। कम्बुवदन्तर्वलयेन श्रीर्ययोस्तौ कम्बुश्रियौ तयोः कर्णयोर्दाडिमपुष्पे यस्य तम्। विद्रुमतुल्याधरभासा ईषच्छोणायितं सुधातुल्यं स्मितं यस्य तम् ॥२३॥

भाव प्रकाशिका

श्वास वायु से हिलने वाले केशों से सुशोभित, शङ्ख के समान घुमावदार शोभा सम्पन्न कानों में अनार के पुष्प जिनके कानों में लगाये गये थे, ओष्ठो की कान्ति मूङ्गे के समान थी। उस बालक की मधुर मुस्कान में कुछ लालिमा मिल सी गयी थी ॥२३॥

पद्मगर्भारुणापाङ्गं हृद्यहासावलोकनम् । श्वासैजद्वलिसंविग्ननिम्ननाभिदलोदरम् ॥२४॥

अन्वयः— पद्मगर्भारुणापाङ्गं हृद्यहासावलोकनम् श्वासैजद्वलिसंविग्नः निम्ननाभिदलोदरम् ॥२४॥

अनुवाद— नेत्रों के कोने कमल की भीतरी भाग के समान थोड़े लाल-लाल थे, मुस्कान और चितवन वरवश चित्त को अपनी ओर आकृष्ट करते थे। गहरी नाभि थी और श्वास लेते समय त्रिबली कुछ हिल सी जाती थी॥२४॥

भावार्थ दीपिका

पद्मगर्भवत् आ ईषदरुणावपाङ्गौ नेत्रप्रान्तौ यस्य तत् हृद्यो हासो यंस्मिस्तदवलोकनं यस्य तम्। श्वासैरेजन्त्यश्चलन्त्यो बलयस्तिर्यङ्निम्नरेखास्ताभिः संविग्ना चञ्चला निम्ना गम्भीरा नाभिर्यस्मिंस्तद्दलवदश्वत्थपत्रसङ्काशमुदरं यस्य तम् ॥२४॥

भाव प्रकाशिका

नेत्रों के कोने कमल के भीतरी भाग के समान लाल थे, मधुर मुस्कान कुछ हँसी से मिश्रित थी श्वास वायु से काँपती थी उदर की त्रिबली नाभि गहरी थी। उस बालक का उदर पिप्पल के पत्ते के समान आकार वाला था ॥२४॥

चार्वङ्गुलिभ्यां पाणिभ्यामुन्नीय चरणाम्बुजम्। मुखे निधाय विप्रेन्द्रो धयन्तं वीक्ष्य विस्मितः ॥२५॥

अन्वयः— चारु अङ्गुलिभ्यां पाणिभ्यां चरणाम्बुजम् उन्नीय मुखे निधाय धयन्तंवीक्ष्य विप्रेन्द्रः विस्मितः ॥२५॥

अनुवाद— मनोहर अङ्गुलियों वाले दोनों हाथों से चरण कमल को मुख में डालकर पीते हुए बालक को देखकर, विप्रवर्य महर्षि मार्कण्डेय आश्चर्यित हो गये ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

चारवाऽङ्गुलयो ययोस्ताभ्यामुन्नीयाकृष्य धयन्तं पिबन्तम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

मनोहर अङ्गुलियों वाले हाथों से खीच कर मुख में डालकर पीने वाले ॥२५॥

तद्दर्शनाद्वीतपरिश्रमो मुदा प्रोत्फुल्लहृत्पद्मविलोचनाम्बुजः।
प्रहृष्टरोमाद्भुतभावशङ्कितः प्रष्टुं पुरस्तं प्रससार बालकम् ॥२६॥

अन्वयः— तद् दर्शनात् बीतपरिश्रमः मुदा प्रोत्फुल्लहृत्पद्मविलोचनाम्बुजः प्रहृष्ट रोमाद्भुत भावशङ्कितः प्रष्टुं तम् बालकम् पुरः प्रससार ॥२६॥

अनुवाद— उस बालक को देखते ही महर्षि मार्कण्डेय का सारा श्रम जाता रहा, आनन्दातिरेक के कारण उनका हृदय कमल और नेत्र कमल विकसित हो गये। उनका सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया। वे अद्भुत भावों से भर गये और उससे पूछने के लिए बालक के सन्निकट आ गये ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

हृत्पद्मं च विलोचनाम्बुजे च प्रोत्फुल्लानि तानि यस्य सः। अद्भुतभावोऽत्याश्चर्यरूपं तेन शङ्कितः सन्नपि तं प्रष्टुं पुरः प्रससार समीपं गतः ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

हृदय कमल और दोनों नेत्र कमल विकसित हो गये, वे आश्चर्य मय भावों से भरकर पूछने के लिए बालक के समीप गये ॥२६॥

तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः सोऽन्तःशरीरं मशको यथाविशत्।
तत्राप्यदो न्यस्तमचष्ट कृत्स्नशो यथा पुराऽमुह्यदतीव विस्मितः ॥२७॥

अन्वयः— तावतः शिशोः वै श्वसितेन सः भार्गवः अन्त शरीरे मशको यथा अविशत् तत्रापि अदो कृत्स्नशः व्यस्तम् अचष्ट पुरा यथा अतीव विस्मितः अचष्ट ॥२७॥

अनुवाद— महर्षि मार्कण्डेय अभी पहुँचे भी नहीं थे कि उस शिशु के श्वास से वे उसके पेट में उसी तरह चले गये जैसे किसी के मुख मार्ग से मच्छर उसके पेट में चला जाय। पेट में जाकर वे सारी सृष्टि उसी तरह से देखे जैसी की प्रलय के पहले सृष्टि थी वे इस विचित्र दृश्य को देखकर आश्चर्यित हो गये और मोहवशात् कुछ भी नहीं सोच सके ॥२७॥

भावार्थ दीपिका

अदः इदं जगद्यथा पुरा प्रलयात्पूर्वं न्यस्तं विन्यस्तं दृष्ट्वा चातीव विस्मितः सन्नमुह्यत ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

प्रलय से पहले यह जगत् जैसा था वैसे वे वहाँ उसे विन्यस्त देखकर अत्यन्त आश्चर्यित हो गये ।।२७।।

खं रोदसी भगणानद्रिसागरान् द्वीपान् सवर्षान् ककुभः सुरासुरान् ।
वनानि देशान्सरितः पुराकरान् खेटान्व्रजानाश्रमवर्णवृत्तयः ।।२८।।
महान्ति भूतान्यथ भौतिकान्यसौ कालं च नानायुगकल्पकल्पनम् ।
यत्किंचिदन्यद्व्यवहारकारणं ददर्श विश्वं सदिवावभासितम् ।।२९।।

अन्वयः— खं रोदसी भगणान् अद्रिसागरान्, द्वीपान् सवर्षान्, ककुभः, सुरासुरान्, वनानि, देशान्, सरितः पुराकरान्, खेटान् व्रजान् आश्रम वर्णवृत्तयः, महान्तिभूतानि, अथ भौतिकानि असौ, कालं च नाना युगकल्पकल्पनम्, यत् किञ्चिदन्यं व्यवहारकारणं सदिवावभासितं विश्वं ददर्श ।।२८-२९।।

अनुवाद— महर्षि मार्कण्डेय ने उस बालक के उदर में आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिमण्डल, पर्वत, समुद्र, द्वीप, वर्ष, दिशाएँ, देवता, दैत्य वन, देश, नदियाँ, नगर, खानें, किसानों के गाँव, अहीरों की वस्तियाँ, आश्रम, वर्ण, उनके आचार, व्यवहार, पञ्चमहाभूत, भूतों से बने हुए प्राणियों के शरीर तथा पदार्थ, अनेक युग तथा कल्पों के भेद से युक्त काल आदि सबकुछ देखा । इतना ही नहीं जिन देशों कालों और वस्तुओं के द्वारा जगत् का व्यवहार सम्पन्न होता है, वह सबकुछ वहाँ विद्यमान था । यह सम्पूर्ण विश्व नहीं होने पर भी वहाँ सत्य के समान प्रतीत होते देखा ।।२८-२९।।

भावार्थ दीपिका

कृत्स्नशो दर्शनं प्रपञ्चयति-खमित्यादिना । ककुभो दिशः । पुराण्याकरांश्च । खेटान् कर्षकग्रामान् । व्रजान् गोकुलानि। आश्रमांश्च वर्णांश्च तेषां वृत्तीश्चेत्यर्थः । नानायुगानि कल्पांश्च कल्पयति तैर्वा कल्प्यत इति तथा तं कालं च । सदिव परमार्थ इवावभासितं तेनैव ।।२८-२९।।

भाव प्रकाशिका

सम्पूर्णतया दर्शन का विस्तार करते हैं- खमित्यादि श्लोक के द्वारा ककुभः अर्थात् दिशाएँ, पुण्याकरांश्च अर्थात् पवित्र खाने, खेटान् अर्थात् किसानों के गाँव, व्रजान, अर्थात् गो समूह को, आश्रमों, वर्णों और उनकी वृत्तियों को । अनेक गुणों तथा कल्पों की कल्पना करने वाले काल को देखा, जो परमार्थ के समान था उसके ही द्वारा ।।२८-२९।।

हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं निजाश्रमं तत्र ऋषीनपश्यत् ।
विश्वं विपश्यन् श्वसिताच्छिशोर्वै बहिर्निरस्तो न्यपतल्लयाब्धौ ।।३०।।

अन्वयः— हिमालयं तां पुष्पवहां नदीं च निजाश्रमं तत्र ऋषपीन् अपश्यत् विश्वं विपश्यन् वै शिशोः श्वसितात् बहिनिरस्तः लयाब्धौ न्यपतत् ।।३०।।

अनुवाद— महर्षि मार्कण्डेय वटपत्रशयी भगवान् के उदर में हिमालय पर्वत को उस पुष्ववहा नदी को, अपने आश्रम को तथा वहाँ पर विद्यमान ऋषियों को देखे । सम्पूर्ण विश्व को देखते हुए वे उस बालक के श्वास के द्वारा बारह आ गये और प्रलय सागर में गिर पड़े ।।३०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।३०।।

तस्मिन्पृथिव्याः ककुदि प्ररूढं वटं च तत्पर्णपुटे शयानम् ।
तोकं च तत्प्रेमसुधास्मितेन निरीक्षितोऽपाङ्गनिरीक्षणेन ॥३१॥

अन्वयः— तस्मिन् पृथिव्याः ककुदि प्ररूढं वटं च तत्पर्णपुटे शयानं तोकं च तत्प्रेमसुधास्तिेन अपांग निरीक्षणेन निरीक्षितः ॥३१॥

अनुवाद— महर्षि मार्कण्डेय ने देखा कि समुद्र के बीच में पृथिवी के टीले पर वही बरगद का पेड़ ज्यों के त्यों विद्यमान है और उसके पत्ते के दोने में वही बालक सोया है । उस बालक के अधरो पर प्रेमामृत से परिपूर्ण मन्द-मन्द मुस्कान है और वह अपने प्रेमपूर्ण चितवन से महर्षि मार्कण्डेय की ओर देख रहा है ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

वटं च तोकं च वीक्ष्य तस्य प्रेम्णा सुधातुल्यस्मितयुक्तेनापाङ्गनिरीक्षणेन निरीक्षितः सन् । अथ तं बालकमधोक्षजं परिष्वक्तुमभ्ययादिति द्वयोरन्वयः कथंभूतम् । नेत्राभ्यां हृदि धिष्ठितमधिष्ठितम् ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

वट वृक्ष तथा बालक को देखकर उसके प्रेमामृत से परिपूर्ण मन्द मुस्कान युक्त चितवन से देखे जाते हुए महर्षि उस बालक श्रीभगवान् का आलिङ्गन करने के लिए महर्षि उस बालक के सन्निकट मे गये वह बालक अपने नेत्रों से हृदय पर विराजमान ॥३१॥

अथ तं बालकं वीक्ष्य नेत्राभ्यां धिष्ठितं हृदि । अभ्ययादतिसंक्लिष्टः परिष्वक्तुमधोक्षजम् ॥३२॥

अन्वयः— अथ नेत्राभ्यां हृदिधिष्ठितम् तं बालकं वीक्ष्य अधोक्षजम् परिष्वक्तुम् अति संक्लिष्टः अभ्ययात् ॥३२॥

अनुवाद— जो बालक नेत्रों से हृदय में विराजमान हो चुका था उन श्रीभगवान् का आलिङ्गन करने के लिए बड़े ही कष्ट से सन्निकट आये ॥३२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३२॥

तावत्स भगवान्साक्षाद्योगाधीशो गुहाशयः । अन्तर्दध ऋषेः सद्यो यथेहानीशनिर्मिता ॥३३॥

अन्वयः— तावत् स भगवान् साक्षात् योगाधीशः गुहाशयः ऋषेः सद्यः अन्तर्दधे अनीशनिर्मिता इहा यथा ॥३३॥

अनुवाद— उसी समय योग के साक्षात् स्वामी श्रीभगवान् जो सबों के अन्तःकरण में निवास करते हैं मार्कण्डेय मुनि पहुँचे ही नहीं थे कि अभागे पुरुष की इच्छा के समान अन्तर्धान हो गये ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

तावत्परिष्वङ्गलाभात्पूर्वमेव ऋषेस्तस्यान्तर्हितो बभूव । तदुद्यमवैफल्ये दृष्टान्तः-अनीशो निर्दैवस्तेन निर्मिता ईहा क्रीडा यथेति ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

महर्षि के आलिङ्गन के लाभ से पहले ही भगवान उसी तरह अन्तर्धान हो गये जैसे अभागे की क्रीडा ॥३३॥

तमन्वथ वटो ब्रह्मन् सलिलं लोकसंप्लवः । तिरोधायि क्षणादस्य स्वाश्रमे पूर्ववत्स्थितः ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे मायादर्शनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् तमनुः बटः सलिलं, लोकसंप्लवः, क्षणादस्य तिरोधायि पूर्ववत् स्वाश्रमेस्थितः ॥३४॥

अनुवाद— हे शौनक महर्षे ! उस शिशु के अन्तर्धान होते ही वह वरगद का वृक्ष प्रलय कालीन दृश्य

ओर जल भी तत्काल ही अदृश्य हो गये और महर्षि मार्कण्डेय ने देखा कि मैं पहले के समान अपने आश्रम में बैठा हूँ ॥३४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।९।।

भावार्थ दीपिका

अन्तर्हितं भगवन्तमनु वटः सलिलं लोकसंप्लवश्च तिरोधाय्यन्तर्हितः । स च स्वाश्रम एव यथापूर्वं स्थित इति ॥३४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां नवमोऽध्यायः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के अन्तर्धान होने के पश्चात् ही, बरगद का वृक्ष, जल, प्रलयकालीन दृश्य भी तिरोहित हो गये। महर्षि भी पहले के समान अपने आश्रम में बैठै थे ॥३४॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका टीका के नवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।९।।

दसवाँ अध्याय

महर्षि मार्कण्डेय को भगवान् शिव का वरदान

सूत उवाच

स एवमनुभूयेदं नारायणविनिर्मितम् । वैभवं योगमायायास्तमेव शरणं ययौ ॥१॥

अन्वयः— स एवम् नारायण विनिर्मितं योगमायायाः वैभवम् अनुभूय तमेव शरणं ययौ ॥१॥

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— महर्षि मार्कण्डेय भगवान् नारायण के द्वारा निर्मित माया का वैभव अनुभव करके उन्हीं भगवान् नारायण की शरणागति किए ॥१॥

भावार्थ दीपिका

दशमे शिव आगत्य मुनेस्तुष्टो वरानदात् । तेन साकमतिप्रीत्या समाभाष्य सभाजयन् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

दसवें अध्याय में इस बात का वर्णन है कि मुनि मार्कण्डेय से प्रसन्न होकर भगवान् शिव आकर महर्षि को वरदान प्रदान किए और उनके साथ अत्यन्त प्रेम पूर्वक बातें किए ॥१॥

मार्कण्डेय उवाच

प्रपन्नोऽस्म्यङ्घ्रिमूलं ते प्रपन्नाभयदं हरे । यन्माययापि विबुधा मुह्यन्ति ज्ञानकाशया ॥२॥

अन्वयः— यत् ज्ञानकाशया मायया विवुधा अपि मुह्यन्ति, हे हरे प्रपन्नाभयदं ते अङ्घ्रिमूलं प्रपन्नोऽस्मि ॥२॥

महर्षि मार्कण्डेय ने कहा

अनुवाद— हे प्रभो ! आपकी सत्य के समान प्रतीत होने वाली माया के द्वारा आपके भजन के अभाव में मैं

ज्ञानी हूँ इस प्रकार से मोहित हो जाते हैं । अतएव शरणागत जीवों को अभय प्रदान करने वाले आपके चरणों की मैं शरणागति करता हूँ ।।२।।

भावार्थ दीपिका

ज्ञानकाशया ज्ञानवत्प्रकाशमानया। त्वद्भजनं बिना विद्वांसोऽपि यस्य तव मायया ज्ञानिनो वयमित्यहङ्कारेण विमुह्यन्तीत्यर्थः।।२।।

भाव प्रकाशिका

आपके भजन के अभाव में ज्ञान के समान प्रकाशित होने वाली आपकी माया से विद्वानों को भी अपने ज्ञानी होने का मोह हो जाता है ।।२।।

सूत उवाच

तमेवं निभृतात्मानं वृषेण दिवि पर्यटन् । रुद्राण्या भगवान् रुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ।।३।।

अन्वयः— रुद्राण्या स्वगणैवृतः रुद्रः वृषेण दिवि पर्यटन एवं निवृतात्मानं तं ददर्श ।।३।।

सूतजी ने कहा

अनुवाद— पार्वतीजी के साथ एवं अपने गणों से घिरे हुए भगवान् नन्दी पर सवार होकर स्वर्ग लोक में भ्रमण करते हुए उसी तरह से एकाग्रचित्त वाले महर्षि मार्कण्डेय को शङ्करजी ने देखा ।।३।।

भावार्थ दीपिका

श्रीनारायण एव स्वमायादर्शनश्रान्तं शिवरूपेण सान्त्वयामास, तदाह-तमेवमित्यादिना । निभृतात्मानं समाहितचित्तम्। रुद्राण्या भवान्या ।।३।।

भाव प्रकाशिका

भगवान् नारायण ही अपनी माया का दर्शन करके शान्त बने महर्षि मार्कण्डेय के रूप से शिवजी का रूप धारण करके सान्त्वना प्रदान किए इसी बात को तमेवम् इत्यादि श्लोक से कहा गया है । जिनके मन इन्द्रिय और अन्त:करण एकाग्र थे ऐसे महर्षि मार्कण्डेय को ।।३।।

अथोमा तमृषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत् । पश्येमं भगवन्विप्रं निभृतात्मेन्द्रियाशयम् ।।४।।

अन्वयः— अथ उमा तम् ऋषिं वीक्ष्य गिरिशं समभाषत हे भगवन् निभृतात्मेन्द्रियाशयम् इमं विप्रं पश्य ।।४।।

अनुवाद— महर्षि मार्कण्डेय को ध्यान की अवस्था में देखकर पार्वतीजी ने भगवान् शङ्करजी से कहा- हे भगवन् शान्त मन इन्द्रिय तथा अन्त:करण वाले इस विप्र को आप देखें ।।४।।

भावार्थ दीपिका

निभृता निश्चला आत्मेन्द्रियाशया देहेन्द्रियमनांसि यस्य तम् ।।४।।

भाव प्रकाशिका

देह इन्द्रिय और मन जिनके शान्त हैं उनको ।।४।।

निभृतोदझषव्रातं वातापाये यथार्णवम् । कुर्वस्य तपसः साक्षात्संसिद्धिं सिद्धिदो भवान् ।।५।।

अन्वयः— वातापाये नृभृतोदझषव्रातं अर्णवं यथा अस्य तपसः संसिद्धिं कुरु भवान् साक्षात् सिद्धिदः ।।५।।

अनुवाद— जिस तरह तूफान के शान्त हो जाने पर समुद्र का जल मछलियाँ और समुद्र शान्त हो जाते हैं उसी तरह इस ब्राह्मण की मन इन्द्रियाँ आदि शान्त है आप समस्त सिद्धियों को देने वाले हैं इन्हें सिद्धि प्रदान कर दें ।।५।।

भावार्थ दीपिका

निभृतं निश्चलमुदकं झषव्रातश्च यस्मिंस्तम् । संसिद्धिं फलं साक्षात्कुरु प्रकटीकुरु । यतो भवान्सिद्धिदः ।।५।।

भाव प्रकाशिका

जिसके जल जलचरों का समूह आदि शान्त है । आप इनको फल प्रदान करें क्योंकि आप वरद हैं ।।५।।

श्रीभगवानुवाच

नैवेच्छत्याशिषः क्वापि ब्रह्मर्षिर्मोक्षमप्युत । भक्तिं परां भगवति लब्धवान्पुरुषेऽव्यये ।।६।।

अन्वयः— ब्रह्मर्षिः क्वापि क्वापि आशिषः नैवेच्छति उतमोक्षमपि अव्यये पुरुषे भगवति परां भक्तिं लब्धवान् ।।६।।

भगवान् शङ्कर ने कहा

अनुवाद— देवि ! ये ब्रह्मर्षि लोक अथवा परलोक की कोई भी वस्तु नहीं चाहते हैं यहाँ तक कि मोक्ष भी। इनको श्रीभगवान् के चरणों में परमा भक्ति प्राप्त हो गयी हैं ।।६।।

भावार्थ दीपिका

आशिषोऽभ्युदयलक्षणाः । उत निश्चितम् । अत्र हेतुः-भक्तिमिति ।।६।।

भाव प्रकाशिका

आशिषः अर्थात् वरदान । क्योंकि इनकों श्रीभगवान् की भक्ति प्राप्त है ।।६।।

अथापि संवदिष्यामो भवान्येतेन साधुना । अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः ।।७।।

अन्वयः— हे भवानि ! अथापि एतेन साधुना संवदिष्यामः नृणां अयं हि परमो लाभः साधुसमागमः ।।७।।

अनुवाद— हे पार्वति ! फिर भी इन साधु पुरुष से हम बातें करेंगे सन्त पुरुषों की सङ्गति ही मानव जीवन का सबसे बड़ा लाभ है ।।७।।

भावार्थ दीपिका

संवदिष्यामः संवादं करिष्यामः ।।७।।

भाव प्रकाशिका

संवदिष्यामः अर्थात् हम इनसे बातें करेंगे ।।७।।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तमुपेयाय भगवान्स सतां गतिः । ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वदेहिनाम् ।।८।।

अन्वयः— इत्युक्त्वा सतांगतिः स भगवान् सर्वदेहिनाम, सर्वविद्यानाम् ईश्वरः ईशानः तम् उपेयाय ।।८।।

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से कहकर सभी प्राणियों के हृदय में निवास करने वाले सभी शरीर धारियों और समस्त विद्याओं के प्रवर्तक भगवान् शङ्कर महर्षि मार्कण्डेय के पास आये ।।८।।

भावार्थ दीपिका

सतां गतित्वे हेतुः-ईशान इति ।।८।।

भाव प्रकाशिका

सत्पुरुषों के प्राप्य होने का कारण है कि शिवजी सबों के प्रवर्तक है ।।८।।

तयोरागमनं साक्षादीशयोर्जगदात्मनो: । न वेद रुद्धधीवृत्तिरात्मानं विश्वमेव च ।।९।।

अन्वयः— साक्षादीशयो: तयो: आगमनं रुद्धधी वृत्तिरात्मानं विश्वमेव च न वेद ।।९।।

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् के नियामक भगवान् गौरी शङ्कर के आगमन का पता महर्षि को चला ही नहीं, क्योंकि उनकी सारी इन्द्रियों और बुद्धि की वृत्ति शान्त थी, अतएव उनको अपनी आत्मा और विश्व का भी पता नहीं था ।।९।।

भावार्थ दीपिका

रुद्धा धियोऽन्त:करणस्य वृत्तयो येन सः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

महर्षि अन्त:करण की वृत्तियों को रोक दिए थे ।।९।।

भगवांस्तदभिज्ञाय गिरिशो योगमायया । आविशत्तद्गुहाकाशं वायुश्छिद्रमिवेश्वरः ।।१०।।

अन्वयः— भगवान् गिरीशः तदभिज्ञाय योगमायया तद्गुहकाशं वायु: छिद्रमिव ईश्वर प्रोविशत् ।।१०।।

अनुवाद— शौनक महर्षे सर्वशक्तिमान भगवान् कैलास पति शङ्करजी इस बात को जानकर योगमाया के द्वारा उनके अन्त:करण में उसी तरह प्रवेश कर गये जिस तरह वायु किसी छिद्र में प्रवेश कर जाती है ।।१०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१०।।

आत्मन्यपि शिवं प्राप्तं तडित्पिङ्गजटाधरम् । त्र्यक्षं दशभुजं प्रांशुमुद्यन्तमिव भास्करम् ।।११।।

अन्वयः— आत्मनि अपि तडितपिङ्गजटाधरम्, दशभुजं प्रांशुं त्र्यक्षं उद्यन्तं भास्करमिव शिवं प्राप्तम् ।।११।।

अनुवाद— मार्कण्डेय महर्षि ने देखा कि उनके अन्त:करण में भी शङ्कर जी दर्शन दे रहे हैं, उनकी बिजली के समान पीली जटायें है, दस भुजाएँ है लम्बा शरीर है तथा उनके तीन नेत्र है, उदित होते हुए सूर्य के समान उनकी कान्ति हैं ।।११।।

भावार्थ दीपिका

न केवलं बहिरेवात्मन्यपि प्राप्तं शिवं विचक्ष्य विस्मितः कथं प्राप्तम् । सहसाकस्मादेव हृदि भातम् । कथंभूतम् । तडिद्वत्पिशङ्गा जटा धारयतीति तथा तम् । त्रीण्यक्षीणि यस्य तम् ।।११।।

भाव प्रकाशिका

केवल बाहर ही नहीं अन्त:करण में भी शङ्करजी को प्राप्त हुए देखकर महर्षि आश्चर्यित हो गये । उनके हृदय में वे अचानक प्रतीत होने लगे थे । वे बिजली के समान चमकती हुई पीली जटा धारण किए है तथा उनके तीन नेत्र हैं ।।११।।

व्याघ्रचर्माम्बरधरं शूलखट्वाङ्गचर्मभिः । अक्षमालाडमरुककपालासिधनुः सह ।।१२।।
बिभ्राणं सहसा भातं विचक्ष्य हृदि विस्मितः । किमिदं कुत एवेति समाधेर्विरतो मुनिः ।।१३।।

अन्वयः— व्याघ्रचर्माम्बरधरं शूल खट्वाङ्गचर्मभिः अक्षमालाडुमरुक, कपालासि धनु:सह विभ्राणं हृदि सहसा भातं विचक्ष्य विस्मितः किमिदं कुतएव इति मुनिः समाधेविरितः ।।१२-१३।।

अनुवाद— वे शरीर पर व्याघ्राम्बर धारण किए हैं, हाथ में शूल, खट्वाङ्ग ढाल रुद्राक्ष माला डमरु खप्पर तलवार और धनुष धारण किए हैं । मार्कण्डेय महर्षि अपने हृदय में अकस्मात् इस रूप को देखकर आश्चर्यित हो गये । यह क्या है ? कहाँ से आया है ? इस प्रकार की वृत्तियों को देखकर उन्होंने अपनी आँखें खोल दी ।।१२-१३।।

भावार्थ दीपिका

शूलादिभिः सहाक्षमालादीन्विभ्राणमित्यन्वयः । अक्षमालादीनां द्वन्दैक्यम् । विस्मयपूर्वकं बहिर्दर्शनमाह-किमिदमिति ।।१२-१३।।

भाव प्रकाशिका

त्रिशूलादि के साथ रुद्राक्ष की माला आदि को धारण किए हुए अक्षमाला आदि में द्वन्द्व समास के कारण एकवचनान्त प्रयोग है । **किमिदम् इत्यादि** के द्वारा बाह्य दर्शन को कहा गया है ।।१२-१३।।

नेत्रे उन्मील्य ददृशे सगणं सोमयागतम् । रुद्रं त्रिलोकैकगुरुं ननाम शिरसा मुनिः ।।१४।।

अन्वयः— मुनिः नेत्रे उन्मील्य सोमयागतं सगणं त्रिलोकैकगुरु रुद्रं ददृशे, शिरसा ननाम ।।१४।।

अनुवाद— मार्कण्डेय महर्षि अपनी आँखों को खोलकर जब देखे तो उन्होंने देखा कि त्रैलोक्य के एक मात्र गुरु भगवान् शिव अपने गण तथा पार्वतीजी के साथ पधारे हैं ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

सोमया उमया सहागतं रुद्रं ददृशे । ततो ननाम ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

पार्वतीजी के साथ आये हुए शङ्करजी को देखकर नमस्कार किए ।।१४।।

तस्मै सपर्या व्यदधात्सगणाय सहोमया । स्वागतासनपाद्यार्घगन्धस्रग्धूपदीपकैः ।।१५।।

अन्वयः— सगणाय सहोमया तस्मै स्वागतासनपाद्यार्घगन्ध धूपदीपकैः सपर्या व्यदधात् ।।१५।।

अनुवाद— उसके पश्चात् मार्कण्डेय महर्षि ने गणों तथा पार्वतीजी के साथ श्रीशङ्करजी की पूजा स्वगत, आसन, पाद्य, अर्घ, गन्ध, पुष्पमाला, धूप एवं दीप आदि उपचारों से की ।।१५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१५।।

आह चात्मानुभावेन पूर्णकामस्य ते विभो । करवाम किमीशान येनेदं निर्वृतं जगत् ।।१६।।

अन्वयः— आह हे विभो पूर्णकामस्य येन ते आत्मानुभावेन इदं जगत् निर्वृतं हे ईशान ते किम् करवाम् ।।१६।।

अनुवाद— इसके बाद उन्होंने कहा हे सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान प्रभो आप स्वयं पूर्णकाम हैं । हे ईशान (सम्पूर्ण जगत् के नियामक प्रभो) आपकी ही महिमा से सम्पूर्ण जगत् में सुख तथा शान्ति का विस्तार हो रहा है, ऐसी अवस्था में मैं आपकी कौन सी पूजा करूँ ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

पूर्णकामत्वं व्यनक्ति-येन त्वया जगन्निर्वृतं भवतीति ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

शिवजी की पूर्णकामता को बतलाते हैं आपके ही द्वारा यह जगत् सुखशान्ति से सम्पन्न है ।।१६।।

नमः शिवाय शान्ताय सत्त्वाय प्रमृडाय च । रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे ।।१७।।

अन्वयः— शिवाय, शान्ताय, सत्त्वाय, प्रमृडाय च रजोजुषे अपि अघोराय तमोजुषे नमः ।।१७।।

अनुवाद— मैं आपके त्रिगुणातीत सदाशिव स्वरूप को सत्त्वगुण से युक्त शान्त स्वरूप को नमस्कार करता हूँ । मैं आपके रजोगुण युक्त सर्वप्रवर्तक स्वरूप एवं तमोगुण युक्त अघोर स्वरूप को नमस्कार करता हूँ ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

निर्गुणत्वेन त्रिगुणत्वेन च नमस्करोति-नमः शिवाय निर्गुणाय । सत्त्वाय सत्त्वाधिष्ठात्रे । अतएव प्रमृडयति सुखयतीति तथा तस्मै ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

त्रिगुणातीत तथा त्रिगुणयुक्त रूप से महर्षि शङ्करजी को नमस्कार करते हैं। कल्याणकारी निर्गुण सत्त्वगुण के अधिष्ठाता अतएव जगत् को सुखी बनाने वाले आपको मैं नमस्कार करता हूँ ।।१७।।

सूत उवाच

एवं स्तुतः स भगवानादिदेवः सतां गतिः । परितुष्टः प्रसन्नात्मा प्रहसंस्तमभाषत ।।१८।।

अन्वयः— एवं स्तुतः स भगवान् आदिदेवः सतां गति परितुष्टः प्रसन्नात्मा प्रहसन् तम् अभाषत ।।१८।।

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— इस तरह से स्तुति किए जाने पर आदिदेव तथा सन्तों के आश्रय शङ्करजी प्रसन्न हो गये सदा प्रसन्न रहने वाले वे हँसते हुए मार्कण्डेयजी से कहे ।।१८।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१८।।

श्रीभगवानुवाच

वरं वृणीष्व नः कामं वरदेशा वयं त्रयः । अमोघं दर्शनं येषां मर्त्यो यद्विन्दतेऽमृतम् ।।१९।।

अन्वयः— कामं वरं वृणीष्व, वयंत्रयः वरदेशा येषां दर्शनं अमोघं यत् मर्त्यः अमतं विन्दते ।।१९।।

श्रीशङ्करजी ने कहा

अनुवाद— महर्षि मार्कण्डेय ! ब्रह्मा विष्णु एवं मैं, हम तीनों वरदान देने वालों के स्वामी है। हमलोगों का दर्शन कभी भी व्यर्थ नहीं होता है। हमलोगों से ही वरदान प्राप्त करके मरणशील मनुष्य अमृत हो जाता है ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

नोऽस्मत्तः त्रयो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । यद्येभ्यः ते वयम् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

हमलोगों से ही । त्रयः अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर । यत् जिन सबों से, ते वयम् ऐसे हमलोग हैं।।१९।।

ब्राह्मणाः साधवः शान्ता निःसङ्गा भूतवत्सलाः । एकान्तभक्ता अस्मासु निर्वैराः समदर्शिनः ।।२०।।

अन्वयः— ब्राह्मणाः साधवः शान्ताः निःसङ्गाः भूतवत्सलाः, एकान्तभक्ताः अस्मासु निर्वैराः समदर्शिनः ।।२०।।

अनुवाद— ब्राह्मण स्वभाव से ही परोपकारी, शान्तचित्त एवं अनासक्त होते हैं, वे किसी के साथ वैर नहीं रखते हैं, समदर्शी होने के साथ-साथ हम तीनों में से किसी के एकान्त भक्त होते हैं ।।२०।।

भावार्थ दीपिका

वरदानादिना भवत्सेवैवास्माभिः क्रियते, नत्वनुग्रहो जगद्वन्द्यत्वाद्भवतामिति ब्राह्मणान्स्तौति-ब्राह्मणा इत्यादि । ये साधवः सदाचाराः शान्ता मत्सरादिरहिताः । निःसङ्गा निष्कामाः ।।२०।।

भाव प्रकाशिका

वरदान प्रदान के द्वारा हमलोग आपकी सेवा ही करते हैं आप पर कृपा नहीं करते क्योंकि ब्राह्मण तो जगद्वन्द्य

होते हैं, इस तरह ब्राह्मणः इत्यादि श्लोक के द्वारा ब्राह्मणों की स्तुति ही करते हैं, साधु स्वभाव के तथा सदाचारी शान्त एवं मत्सर आदि से रहित तथा निष्काम होते हैं ब्राह्मण ॥२०॥

सलोका लोकपालास्तान्वन्दन्त्यर्चन्त्युपासते । अहं च भगवान्ब्रह्मा स्वयं च हरिरीश्वरः ॥२१॥

अन्वयः— तान् सलोकाः लोकपालाः तान् वन्दन्त्यर्चन्त्युपासते अहं च भगवान् ब्रह्मा स्वयं च हरिः ईश्वरः ॥२१॥

अनुवाद— समस्त लोक एवं लोकपाल ऐसे ब्राह्मण की वन्दना अर्चना और उपासना करते हैं । मैं भगवान् ब्रह्मा तथा सम्पूर्ण जगत् के नियामक श्रीहरि उन ब्राह्मणों की सेवा में संलग्न रहते हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

न केवलं त एव, किंत्वहं चेत्यादि ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

केवल लोक एवं लोकपाल ही नहीं हमलोग भी ॥२१॥

न ते मय्यच्युतेऽजे च भिदामण्वपि चक्षते । नात्मनश्च जनस्यापि तद्युष्मान्वयमीमहि ॥२२॥

अन्वयः— ते मयि, अच्युतो, अभी नात्मनः जनस्यापि अणु अपि भिदाम् न चक्षते, तत् युष्मान् वयम् ईमहि ॥२२॥

अनुवाद— ऐसे शान्त पुरुष मुझमें भगवान् विष्णु में, ब्रह्माजी में, अपने में सभी जीवों में अणुमात्र भी भेद नहीं देखते हैं । इसीलिए हम आप जैसे महात्मा की सेवा एवं स्तुति करते है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

पूज्यतमत्वे हेत्वन्तरमाह-नेति । अण्वप्यणुमात्रमपि । न चक्षते न पश्यन्ति । तत्तस्मादेवंभूतान्युष्मान् ईमहि भजेम॥२२॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणो के पूज्यतम होने का दूसरा कारण **न ते० इत्यादि** श्लोक से कहते हैं । अणुमात्र भी **न चक्षते** अर्थात् नहीं देखते हैं । यही कारण है कि हम आप जैसे ब्राह्मणों की सेवा करते हैं ॥२२॥

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः । ते पुनन्त्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ॥२३॥

अन्वयः— अप मयानि तीर्थानि न, चेतनोज्झिताः देवाः न ते उरुकालेन पुनन्ति यूयं दर्शन मात्रतः ॥२३॥

अनुवाद— महर्षि मार्कण्डेय केवल जलमय ही तीर्थ नहीं है तथा केवल जड मूर्तियाँ ही देवता नहीं होती क्योंकि वे तीर्थ और देवता तो बहुत दिनों में पवित्र बनाते हैं किन्तु तुमलोग तो दर्शन मात्र से ही पवित्र कर देते हो अतएव वास्तविक तीर्थ तो तुम जैसे सन्त ही हैं ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

ब्राह्मणेभ्यो नमस्यामो येऽस्मद्रूपं त्रयीमयम् । बिभ्रत्यात्मसमाधानतपःस्वाध्यायसंयमैः ॥२४॥

अन्वयः— ब्राह्मणेभ्यो नमस्यामः ये आत्मसमाधान तपः स्वाधयाय संयमैः अस्मत्रयीमयीम् रूपं विभ्रति ॥२४॥

अनुवाद— हम ब्राह्मणों को तो नमस्कार करते हैं क्योंकि वे समाधि, तपस्या, वेदाध्ययन तथा आत्मसंयम के द्वारा हमारे त्रयीमय रूप को धारण करते हैं ॥२४॥

भावार्थ दीपिका

ब्राह्मणेभ्यो ब्राह्मणान्। आत्मसमाधानं चित्तैकाग्र्यम्। तप आलोचनम् । स्वाध्यायोऽध्ययनम् । संयमो वागादिनियमस्तैः॥२४॥

भाव प्रकाशिका

ब्राह्मणेभ्यः अर्थात् ब्राह्मणों के लिए, आत्मसमाधानम् अर्थात् चित्त की एकाग्रता, तपस्या, वेदाध्ययन, तथा वाणी का नियन्त्रण आदि के नियमों द्वारा ।।२४।।

श्रवणाद्दर्शनाद्वापि महापातकिनोऽपि वः । शुध्येरन्नन्त्यजाश्चापि किमु संभाषणादिभिः ।।२५।।

अन्वयः— महापातकिनोऽपि वः श्रवणात् दर्शनात् वापि अन्त्यजाः चापि शुध्येरन संभाषणादिभिः किमु ।।२५।।

अनुवाद— महापातकी तथा चाण्डाल भी आपके दर्शन तथा श्रवण मात्र से ही पवित्र हो जाते हैं आपलोगों के साथ सहवास तथा वार्तालाप करने पर तो क्या कहना हैं ?।।२५।।

भावार्थ दीपिका

किंच, श्रवणादित्यादि ।।२५।।

भाव प्रकाशिका

श्रवण आदि से ही ।।२५।।

सूत उवाच

इति चन्द्रललामस्य धर्मगुह्योपबृंहितम् । वचोऽमृतायनमृषिर्नातृप्यत्कर्णयोः पिबन् ।।२६।।

अन्वयः— इति चन्द्रललामस्य धर्मगुह्योपबृंहितम् अमृतायनम् वचः कर्णयोः पिबन् ऋषि नाऽतृप्यत् ।।२६।।

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— शौनकादि ऋषियों चन्द्रभूषण भगवान् शङ्करकी एक-एक बात धर्म के गुप्तमय रहस्य से परिपूर्ण थे उसके एक-एक अक्षर में अमृत का समुद्र वसा था । महर्षि मार्कण्डेय बड़ी ही तन्मयता से सुन रहे थे । उनको सुनने से महर्षि को तृप्ति नहीं हुई ।।२६।।

भावार्थ दीपिका

चन्द्रो ललामो भूषणं यस्य तस्य धर्मरहस्ययुक्तममृतास्पदं वचः कर्णाभ्यां पिबन्नातृप्यदलमिति नामन्यत । कर्णयोरमृतायनमिति वान्वयः ।।२६।।

भाव प्रकाशिका

चन्द्रभूषण भगवान् शिव के अमृत के समान वाणी को अपने कानों द्वारा पीते हुए महर्षि मार्कण्डेय को तृप्ति नहीं हुई ।।२६।।

स चिरं मायया विष्णोर्भ्रामितः कर्शितो भृशम् । शिववागमृतध्वस्तक्लेशपुञ्जस्तमब्रवीत् ।।२७।।

अन्वयः— विष्णोः मायया चिरं भ्रामितः भृशम् कर्शितः शिववागमृतध्वस्तक्लेश पुञ्जःतम् अब्रवीत् ।।२७।।

अनुवाद— महर्षि भगवान् विष्णु की माया से भटकने के कारण अत्यन्त श्रान्त हो गये थे, शिवजी की वाणी रूपी अमृत से तृप्त होने के कारण उनके समस्त क्लेश पुञ्ज समाप्त हो गये थे, ऐसे महर्षि शङ्करजी से कहे ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

शिवस्य वागेवामृतं तेन ध्वस्तः क्लेशपुञ्जो यस्य सः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

शङ्करजी की वाणी रूपी अमृत से महर्षि का सारा कष्ट विनष्ट हो गया था ।।२७।।

ऋषिरुवाच

अहो ईश्वरलीलेयं दुर्विभाव्या शरीरिणाम् । यन्नमन्तीशितव्यानि स्तुवन्ति जगदीश्वराः ॥२८॥

अन्वयः— अहो इयं ईश्वर लीला शरीरिणाम् दुर्विभाव्या यत् ईशितव्यानि नमन्ति जगदीश्वराः स्तुवन्ति ॥२८॥

ऋषि मार्कण्डेय ने कहा

अनुवाद— श्रीभगवान् की लीला सभी मनुष्यों के समझ के बाहर की चीज है । ये सम्पूर्ण जगत् के स्वामी होकर भी अपने अधीन रहने वाले मेरी स्तुति करते हैं ॥२८॥

भावार्थ दीपिका

इयं लीला दुर्विभाव्याऽवितर्क्या । यद्यया ईशितव्यानि स्वनियम्यानि यानि भूतानि तानि जगदीश्वराः । स्वयं नमन्ति स्तुवन्ति चेति ॥२८॥

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् की इस लीला के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है । उसी के कारण अपने अधीन रहने वाले जीवों जगत् के स्वामी भी भगवान् शिव भी स्तुति करते हैं ॥२८॥

धर्मं ग्राहयितुं प्रायः प्रवक्तारश्च देहिनाम् । आचरन्त्यनुमोदन्ते क्रियमाणं स्तुवन्ति च ॥२९॥

अन्वयः— प्रायः धर्म प्रवक्तार देहिनाम् धर्मं गाहयितुं आचारन्ति, अनुमोदन्ते क्रियमाणं स्तुवन्ति ॥२९॥

अनुवाद— प्रायः जो धर्म प्रवक्ता हैं वे लोगों को धर्म ग्रहण करने के लिए स्वयम् आचरण करते है । धर्म का अनुमोदन करते हैं तथा धर्म का पालन करने वाले की स्तुति भी करते हैं ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

अथवा लोकसंग्रहमात्रमेतदित्याह-धर्ममिति । प्रवक्तारोऽपि यत्स्वयं देहिनां धर्मं ग्राहयितुमाचरन्ति ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

अथवा यह केवल लोक संग्रह है । धर्म का प्रवचन करने वाले भी लोगों द्वारा धर्म ग्रहण किए जाने के लिए स्वयं धर्माचरण करते हैं ॥२९॥

नैतावता भगवतः स्वमायामयवृत्तिभिः । न दुष्येतानुभावस्तैर्मायिनः कुहकं यथा ॥३०॥

अन्वयः— एतावता भगवतः स्वमाययावृत्तिभिः अनुभावः न दुष्येत मायिनः कुहकं यथा ॥३०॥

अनुवाद— जैसे जादूगर अनेक खेलो को दिख लाता है और उन खेलों से उसके प्रभाव में कोई भी अन्तर नहीं आता है वैसे ही आप अपनी स्वजन मोहिनी माया की वृत्तियों को स्वीकार करके किसी की स्तुति आदि करते हैं, किन्तु उससे आपकी महिमा में कोई अन्तर नहीं होता है ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

नन्वेतत्स्वप्रभावतिरस्कारकं कथं मया क्रियते तत्राह-नैतावतेति । एतावता लोकसंग्रहमात्रेण । तैर्नमनादिभिः कथंभूतैः। स्वमायामयी वृत्तिर्येषु तैर्भगवतो मायिनस्तवानुभवो न दुष्येत । यतः प्रसिद्धस्य मायिनः कुहकं कपटं यथा तथा एतानि नमनादीनि । अतस्तस्य यथा कुहकैरात्मानुभावो न दुष्यति तद्वत् । प्रदुष्येतानुभाव इति पाठे नकारस्य दृष्टान्तेऽप्यनुषङ्गः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

प्रश्न हैं कि अपने प्रभाव को क्षीण करने वाले इस कार्य को मैं क्यों करता हूँ ? इस पर मार्कण्डेय महर्षि कहते हैं । यह तो आपका लोकसंग्रह है । उन प्रणामादिकों से अपनी मायामयी वृत्तियों के द्वारा आपके

प्रभाव में कोई भी कमी नहीं आती है । जैसे जादूगर के विविध जादुओं को दिखाने से उसके प्रभाव में कोई कमी नहीं आती है, उसी तरह ॥३०॥

सृष्ट्वेदं मनसा विश्वमात्मनानुप्रविश्य यः । गुणै कुर्वद्भिराभाति कर्तेव स्वप्नदृग्यथा ॥३१॥

अन्वयः— यः मनसा इदं विश्वं सृष्ट्वा आत्मनाऽनुप्रविश्य गुणै कुर्वद्भि कर्तेव स्वप्नदृग्यथा आभाति ॥३१॥

अनुवाद— स्वप्नद्रष्टा के समान अपने मन से ही जगत् की सृष्टि करके तथा उसमे पुनः प्रवेश करके कर्ता न होने पर भी गुणों के कर्ता होने पर भी स्वयं कर्ता के समान प्रतीत होते हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

मायाचेष्टितं प्रपञ्चयति-सृष्ट्वेति । स्वप्नदृग्यथेत्यविद्या चेष्टिते दृष्टान्तः ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

माया की चेष्टाओं का वर्णन करते हैं स्वप्न द्रष्टा के समान यह अविद्या की चेष्टाओं में दृष्टान्त है ॥३१॥

तस्मै नमो भगवते त्रिगुणाय गुणात्मने । केवलायाद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये ॥३२॥

अन्वयः— भगवते, त्रिगुणाय, गुणात्मने, केवलाय, अद्वितीयाय गुरवे ब्रह्ममूर्तये नमः ॥३२॥

अनुवाद— हे भगवन् ! आप त्रिगुण स्वरूप होने पर भी उनसे परे हैं, आप केवल, अद्वितीय, ब्रह्म स्वरूप तथा गुरु स्वरूप हैं । ऐसे आपको नमस्कार है ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

त्रिगुणत्वेऽपि न जीववत्तदभिभूताय किंतु गुणानामात्मने नियन्त्रे ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

आप त्रिगुणी होकर जीवों के समान सबों से अभिभूत नहीं है बल्कि आप गुणों के नियामक है ॥३२॥

कं वृणे नुपरं भूमन्वरं त्वद्वरदर्शनात् । यद्दर्शनात्पूर्णकामः सत्यकामः पुमान्भवेत् ॥३३॥

अन्वयः— हे भूमन् त्ववरदद्दर्शनात् परंक नुवृणे, यददर्शनात् पूर्णकामः सत्यकामः पुमान् भवेत् ॥३३॥

अनुवाद— हे अनन्त ! आपके दर्शन से बढ़कर कौन सी वस्तु है जिसे आपसे मैं आपसे माँगू । आपके दर्शन मात्र से ही मनुष्य पूर्णकाम और सत्यकाम हो जाता है ॥३३॥

भावार्थ दीपिका

'वरं वृणीष्व' इति यदुक्तं तत्राह-कमिति । वरं दर्शनं यस्य तस्मात् त्वत्तः परं कं नु वरं वृणे । यस्य तव दर्शनादवलोकनात्पूर्णकामः सर्वानन्दसंदोहरूपः सत्यकामो यथेच्छं प्राप्तसर्वानन्दः ॥३३॥

भाव प्रकाशिका

शङ्करजी ने कहा था कि वरदान माँगो, उसके उत्तर में **कम्० इत्यादि** श्लोक कहा गया है । आपका दर्शन ही श्रेष्ठ है, उससे बढ़कर कौन सी वस्तु है जिसे मैं माँगू । आपका दर्शन करने मात्र से ही मनुष्य सर्वानन्द सन्दोह रूप सत्यकाम तथा समस्त आनन्द से सम्पन्न हो जाता है ॥३३॥

वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात्कामाभिवर्षणात् । भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥३४॥

अन्वयः— अर्थात् पूर्णात् कामाभिवर्षणात् एकं वरं वृणे भगवति, त्वयि, तत्परेषु अच्युतां भक्तिम् ॥३४॥

अनुवाद— फिर भी अपने आप में परिपूर्ण, कामनाओं को पूर्ण करने वाले आप से एक वरदान मैं माँगता हूँ । मेरी श्रीभगवान् में भगवद् भक्तों में तथा आपमें अविचल भक्ति होए ॥३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३४॥

सूत उवाच

इत्यर्चितोऽभिष्टुतश्च मुनिना सूक्तया गिरा । तमाह भगवान् शर्वः शर्वया चाभिनन्दितः ॥३५॥

अन्वयः— इति अर्चितः मुनिना सूक्तया गिरा अभिष्टुतः शर्वया चाभिर्नन्दितः तम् भगवान् शर्वः आह ॥३५॥

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— मार्कण्डेय महर्षि की सुन्दर वाणी से स्तुत तथा पूजित एवं पार्वतीजी द्वारा अभिनंदित महर्षि से भगवान् शङ्कर ने कहा ॥३५॥

भावार्थ दीपिका

वरदानाय स्वयमेव प्रवृत्तः शर्वयोमया चाभिनन्दितोऽनुमोदितः सन्नाह ॥३५॥

भाव प्रकाशिका

वरदान देने के लिए स्वयम् उद्यत तथा पार्वतीजी द्वारा अभिनन्दित शङ्करजी ने कहा ॥३५॥

कामो महर्षे सर्वोऽयं भक्तिमांस्त्वमधोक्षजे । आकल्पान्ताद्यशः पुण्यमजरामरता तथा ॥३६॥

अन्वयः— महर्षे सर्वोऽयं कामः त्वम अधोक्षजे भक्तिमान् आकल्पान्तात् पुण्यं यशः तथा अजारामरता ॥३६॥

अनुवाद— महर्षे ! तुम्हारी सारी कामनाएँ पूर्ण हों आप श्रीभगवान् के भक्त हैं । कल्प के अन्त पर्यन्त आप अजर अमर रहें ॥३६॥

भावार्थ दीपिका

कामोऽयं सर्वोऽप्यन्यच्च यत्पुण्यं यश इत्यादिब्रह्मवर्चस्विनस्ते भूयादित्युत्तरेणान्वयः । यतस्त्वमधोक्षजे भक्तिमान्॥३६॥

भाव प्रकाशिका

आपकी यह कामना पूरी होगी, किञ्च आपका पवित्र यश कल्प पर्यन्त होता रहेगा । आप ब्रह्मवर्चस्वी हैं। क्योंकि आपकी भगवान् में भक्ति हैं ॥३६॥

ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन्विज्ञानं च विरक्तिमत् । ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात्पुराणाचार्यतास्तु ते ॥३७॥

अन्वयः— ब्रह्मन् त्रैकालिकं ज्ञानं, विज्ञानं च विरक्तिमत् ब्रह्मवर्चस्विनः तुते ते पुराणाचार्यता तु भूयात् ॥३७॥

अनुवाद— ब्राह्मण आपको त्रैकालिक ज्ञान हो, विरक्ति से युक्त विज्ञान हो । आप ब्रह्मर्वर्चस्वी है । आप पुराणाचार्य हो जायँ ॥३७॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३७॥

सूत उवाच

एवं वरान्स मुनये दत्त्वागान्त्र्यक्ष ईश्वरः । देव्यै तत्कर्म कथयन्ननुभूतं पुराऽमुना ॥३८॥

अन्वयः— एवं स त्र्यक्ष ईश्वर वरान् दत्त्वा देव्यै तत्कर्म अमुनापुरा अनुभूतं कथयन् अगात् ॥३८॥

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— एवं त्रिनेत्र भगवान् शङ्कर महर्षि मार्कण्डेय को वरदान देकर भगवती पार्वतीसे मार्कण्डेय महर्षि की तपस्या तथा उनके प्रलय संबन्धी अनुभव का वर्णन करते हुए चले गये ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

तस्य कर्म तपआदि । अमुना पुरानुभूतं यद्भगवन्मायावैभवं तच्च कथयन् ॥३८॥

भाव प्रकाशिका

उनके कर्म तप आदि । तथा महर्षि द्वारा पहले अनुभव किए गये प्रलय के दृश्य का वर्णन करते हुए चले गये ।।३८।।

सोऽप्यवाप्तमहायोगमहिमा भार्गवोत्तमः । विचरत्यधुनाप्यद्धा हरावेकान्ततां गतः ।।३९।।

अन्वयः— सः अपि भार्गवोत्तमः अवाप्तयोग महिमाः हरौ एकान्ततां गतः अद्धा अधुनाऽपि विचरति ।।३९।।

अनुवाद— वे भी भृगवंश शिरोमणि महर्षि मार्कण्डेय महायोग के परम फल को प्राप्त करके श्रीभगवान् के अनन्य प्रेमी हो गये और आज भी विचरण किया करते हैं ।।३९।।

भावार्थ दीपिका

अवाप्तो महायोगमहिमा येन सः ।।३९।।

भाव प्रकाशिका

जो महायोग की महिमा प्राप्त कर लिए हैं ।।३९।।

अनुवर्णितमेतत्ते मार्कण्डेयस्य धीमतः । अनुभूतं भगवतो मायावैभवमद्भुतम् ।।४०।।

अन्वयः— एतत् धीमतः मार्कण्डेयस्य भगवतो मायावैभवमद्भुतं ते अनुवर्णितम् ।।४०।।

अनुवाद— हे शौनकजी यहाँ मैंने बुद्धिमान मार्कण्डेय महर्षि द्वारा अनुभव किया गया श्रीभगवान् की माया का अद्भुत वैभव आपलोगों को सुना दिया ।।४०।।

भावार्थ दीपिका

एतन्मार्कण्डेयस्य चरितं तेनानुभूतं च भगवन्मायावैभवं तेऽनुवर्णितम् ।।४०।।

भाव प्रकाशिका

इस महर्षि मार्कण्डेय के चरित का तथा उनके द्वारा अनुभूत श्रीभगवान् की माया का वैभव मैंने सुना दिया।।४०।।

एतत्केचिदविद्वांसो मायासंसृतिमात्मनः । अनाद्यावर्तितं नृणां कादाचित्कं प्रचक्षते ।।४१।।

अन्वयः— केचिदविद्वासः आत्मनः एतत् माया संसृतिम् अनाद्यावर्तितं नृणां कादाचित्कं प्रचक्षते ।।४१।।

अनुवाद— शौनकजी महर्षि मार्कण्डेय ने अनेक कल्पों की सृष्टि तथा कल्पों का अनुभव किया वह भगवान की ही माया का वैभव था वह तात्कालिक और उन्हीं के लिए था । इसको कुछ अज्ञानी लोग यह कहते हैं कि श्रीभगवान् की जो यह माया सृष्टि है अनादि काल से बार-बार होता आ रहा है अतएव कादाचित्क हैं, अतएव आपको इस बात की शङ्का नहीं होनी चाहिए कि महर्षि मार्कण्डेय की इतनी लम्बी आयु कैसे हो गयी ?।।४१।।

भावार्थ दीपिका

नन्वेवमप्यस्मत्कुलोत्पन्नस्यास्य सप्तकल्पायुष्ट्वं वृद्धैरुच्यमानं विरुद्धमेव तत्राह-एतन्मार्कण्डेयेनानुभूतं भगवन्मायावैभवं नानाकल्परूपं कादाचित्कमीश्वरेच्छया तस्यैवाकस्मिकं, नतु सर्वसाधारणम् । एतत्केचिदनादिबहुकालमावर्तितं दैवयुगसहस्रद्वयमानेन पुनःपुनः परिवर्तितं प्रचक्षते । के ते । नृणां संसृतिं सर्गप्रलयादिलक्षणामात्मनो भगवतो मायेत्येवमविद्वांसः । विद्वांसस्तु मायाशिशोः श्वासेच्छ्वासाभ्यां सप्तकृत्वस्तदुदरप्रवेशनिर्गमतः सप्तकल्पत्वं तत्क्षणमात्रेणेति वदन्ति, अतो न विरोध इत्यर्थः।।४१।।

भाव प्रकाशिका

प्रश्न होता है हमारे ही वंश में उत्पन्न महर्षि मार्कण्डेय की सात कल्प की आयु कैसे हो गयी वृद्धों का कथन विरुद्ध ही है । इसके उत्तर में कहते हैं- महर्षि मार्कण्डेय ने जिसका अनुभव किया वह भगवान् की माया का वैभव

था। वह अनेक कल्प रूप था कादाचित्क था ईश्वर की इच्छा से महर्षि मार्कण्डेय के ही लिए था। वह सर्व साधारण नहीं था। इसको कुछ लोग जो नहीं जानते हैं वे लोग अनादि, अनेक कालों में होते रहने वाला कहते हैं। वे लोग कौन हैं ? उत्तर है कि मनुष्यों की सृष्टि प्रलय आदि भगवान् की माया है, यह कहने वाले अज्ञानी लोग हैं। जो विद्वान हैं वे कहते हैं कि श्रीभगवान् के श्वास तथा उच्छ्वास के द्वारा महर्षि श्रीभगवान् के पेट में गये उनके उच्छ्वास और निःश्वास के द्वारा निकले। सात कल्प तो उसी क्षण हो गये अतएव इस कथन में कोई विरोध नहीं है ।।४१।।

य एवमेतद्भृगुवर्य वर्णितं रथाङ्गपाणेरनुभावभावितम् ।
संश्रावयेत्संश्रृणुयादु तावुभौ तयोर्न कर्माशयसंसृति र्भवेत् ।।४२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे दशमोऽध्यायः ।।१०।।

अन्वयः— हे भृगुवर्य यः एवम् एतत् वर्णितं रथाङ्गपाणेरनुभाव भावितं संश्रावयेत् उत संश्रृणुयात् उभौ एतौ तयोः कर्माशयसंसृतिः न भवेत् ।।४२।।

अनुवाद— हे भृगुवंश शिरोमणे, मैंने यह जो महर्षि मार्कण्डेय का चरित्र सुनाया है, वह भगवान् चक्रपाणि की महिमा से परिपूर्ण है। जो लोग इसका श्रवण तथा कीर्तन करते हैं वे दोनों ही कर्म वासनाओं के कारण होने वाले आवागमन के चक्र से छूट जाते हैं ।।४२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवे स्कन्ध के दसवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

संश्रृणुयात्। उ इति हर्षे। संश्रावयेद्वा। यौ तावुभौ। तयोः कर्मवासनाकृता संसृतिर्न भवेदिति ।।४२।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां दशमोऽध्यायः ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

संश्रृणुयात् अर्थात् सुने, उ हर्षार्थक अव्यय हैं। व संश्रावयेत् अथवा सुनता है, इन दोनों का कर्म की वासना के कारण सृष्टि नहीं होती है ।।४२।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बाहरवें स्कन्ध के दसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ।।१०।।

ग्यारहवाँ अध्याय

श्रीभगवान् के अङ्ग, उपाङ्ग तथा आयुधों के रहस्य तथा विभिन्न सूर्यगणों का वर्णन

शौनक उवाच

अथेममर्थं पृच्छामो भवन्तं बहुवित्तमम् । समस्ततन्त्रराद्धान्ते भवान्भागवत तत्त्ववित् ॥१॥

अन्वयः— बहुवित्तमम् भवन्तम् इमम् अर्थं पृच्छामः समस्ततन्त्रराद्धान्ते भवान् भावगत तत्त्ववित् ।।१।।

महर्षि शौनक ने कहा

अनुवाद— हे सूतजी ! आप बहूज्ञों में श्रेष्ठ हैं तथा श्रीभगवान् के परम भक्त हैं । आपसे मैं इस बात को पूछता हूँ क्योंकि आप अनेक शास्त्रों के ज्ञाता और भागवत तत्त्व के ज्ञाता हैं ।।१।।

भावार्थ दीपिका

एकादशे तु पूजार्थं महापुरुषवर्णनम् । रवेर्व्यूहस्य चाख्यानं प्रतिमासं पृथक् पृथक् ।।१।। येनामर्त्यत्वमापन्नो मर्त्योऽसौ भार्गवोत्तमः । तं पृच्छति क्रियायोगं साङ्गोपाङ्गादिकल्पितम् ।।२।। अथेति । हे भागवत, यतो भवान् सन्समस्तन्त्रराद्धान्ते तत्त्वविद्रहस्यज्ञः ।।१।।

भाव प्रकाशिका

ग्यारहवें अध्याय में पूजा करने के लिए महापुरुष परमात्मा का तथा प्रत्येक मास में होने वाले पृथक्-पृथक् सूर्य के व्यूह का वर्णन हैं ।।१।। जिसके द्वारा अमरत्व को प्राप्त महर्षि शौनक सूतजी से साङ्गोपाङ्ग रूप से कल्पित क्रिया योग को पूछते हैं ।।२।। हे भगवद् भक्त आप समस्त शास्त्रों के रहस्य के तत्त्ववेत्ता रहस्यज्ञ हैं ।।१।।

तान्त्रिकाः परिचर्यायां केवलस्य श्रियःपतेः । अङ्गोपाङ्गायुधाकल्पं कल्पयन्ति यथा च यैः ।।२।।
तन्नो वर्णय भद्रं ते क्रियायोगं बुभुत्सताम् । येन क्रियानैपुणेन मर्त्यो यायादमर्त्यताम् ।।३।।

अन्वयः— तान्त्रिकाः केवलस्य श्रियःपतेः यैः यथा च अङ्गोपाङ्गायुधाकल्पं कल्पयन्ति येन क्रिया नैपुण्येन मर्त्यः अमर्त्यताम् याति तत् क्रियायोगं बुभुत्सताम् नः वर्णय ।।२-३।।

अनुवाद— हे सूतजी ! पाञ्चरात्र तन्त्र इत्यादि के वेत्ता पुरुष केवल श्रीभगवान् की आराधना करते समय किन-किन तत्त्वों से उनके चरणादि अङ्ग गरुडादि उपाङ्ग सुदर्शनादि आयुध तथा कौस्तुभादि आभूषणों की कल्पना करते है ? जिस क्रिया नैपुण्य के द्वारा मरणशील भी मनुष्य अमरत्व को प्राप्त कर लेता है, उसे हमलोग जानना चाहते हैं, उसे आप हमलोगों को बतलायें ।।२-३।।

भावार्थ दीपिका

प्रष्टव्यमाह–तान्त्रिका इति । परिचर्यायामुपासनायां विषये । केवलस्य चैतन्यघनस्य । अङ्गानि पादादीन्युपाङ्गानि गरुडादीन्यायुधानि सुदर्शनादीन्याकल्पाः कौस्तुभादयस्तेषां द्वन्द्वैक्यम् । तद्यथा कल्पयन्ति यैश्च तत्त्वैः कल्पयन्ति तन्नो वर्णयेति ।।२-३।।

भाव प्रकाशिका

जो पूछना है उसको **तान्त्रिका इत्यादि** श्लोक से कहा गया है परिचर्यायाम् अर्थात् उपासना के विषय में केवलस्य अर्थात् ज्ञानमात्र स्वरूप । अङ्गानि अर्थात् चरण आदि, उपाङ्ग अर्थात् गरुड आदि सुदर्शन आदि आयुध तथा आभूषण कौस्तुभ मणि आदि की जैसी तथा जिससे कल्पना करते हैं वही हमलोगों को बतलाएँ ।।२-३।।

सूत उवाच

नमस्कृत्य गुरून्वक्ष्ये विभूतीर्वैष्णवीरपि । याः प्रोक्ता वेदतन्त्राभ्यामाचार्यैः पद्मजादिभिः ।।४।।

अन्वयः— याः वेदतन्त्राभ्याम् आचार्यैः पद्मजादिभिः प्रोक्ताः वैष्णवीः विभूतीः अपि गुरून् नमस्कृत्य वक्ष्ये ।।४।।

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद—ब्रह्माजी आदि आचार्यों ने वेदों तथा पाञ्चारात्रादि तन्त्रग्रन्थों ने भगवान् विष्णु की जिन विभूतियों का वर्णन किया है, मैं उन सबों का वर्णन अपने गुरुजनों को नमस्कार करके करूँगा ।।४।।

भावार्थ दीपिका

गुरूपदेशगम्यत्वादस्यार्थस्य तन्नमस्कारपूर्वकमाह–नमस्कृत्येति । विभूतीर्विराड्विग्रहाद्याः ।।४।।

भाव प्रकाशिका

आचार्यों द्वारा किये गये उपदेश के ही द्वारा जिनको जाना जा सकता है, इसीलिए सूतजी गुरुओं को नमस्कार करके ही वर्णन करते हैं । भगवान् विष्णु की विभूति अर्थात् विराट् विग्रह इत्यादि ।।४।।

मायाद्यैर्नवभिस्तत्त्वैः स विकारमयो विराट् । निर्मितो दृश्यते यत्र सचित्के भुवनत्रयम् ॥५॥

अन्वयः— सचित्के यत्र भुवन त्रयम् मायाद्यैः नवभिः तत्त्वैः निर्मितः विराट् भुवनत्रयम् यत्र दृश्यते ॥५॥

अनुवाद— भगवान् के जिस चेतनाधिष्ठित विराट् रूप में त्रैलोक्य दिखायी देता है वह प्रकृति सूत्रात्मा, महत्तत्व अहङ्कार और पञ्चतन्मात्राएँ इन नव तत्त्वों सहित ग्यारह इन्द्रियों तथा पञ्चमहाभूत इन सोलह विकारों से बना है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

अङ्गादिकल्पनां भूरादिभिर्दर्शयितुं प्रथमं तावद्यथा कल्पयन्तीति प्रश्नस्य वैराजरूपेणेत्युत्तरं वक्तुं विराड्विग्रहमाह-मायाद्यैः प्रकृतिसूत्रमहदहंकारपञ्चतन्मात्रैर्नवभिस्तत्त्वैः । विकार एकादशेन्द्रियाणि पञ्च महाभूतानीति षोडश तन्मयो विराट् स प्रसिद्धो निर्मितः । यत्र विराजि सचित्के चेतनाधिष्ठिते भुवनत्रयं दृश्यते । अनेनाङ्गादिकल्पनासौलभ्यं दर्शितम् ॥५॥

भाव प्रकाशिका

भू आदि को बतलाने के लिए अङ्ग आदि की कल्पना की गयी है । सर्वप्रथम कल्पयन्ति इस प्रश्न का उत्तर वैराज रूप देने के लिए विराट का विग्रह बतलाते हैं । प्रकृति, सूत्र महान् और अहङ्कार तथा पाञ्च तन्मात्राएँ इन नव तत्त्वों से निर्मित **विकार** अर्थात् एकादश इन्द्रियों तथा पञ्च महाभूत इस तरह सोलह से बना विराट् प्रसिद्ध रूप से निर्मित जहाँ पर चेतनाधिष्ठित त्रैलोक्य दिखता है । इसके द्वारा अङ्गादि की कल्पना की सुलभता दिखायी गयी है ॥५॥

एतद्वै पौरुषं रूपं भूः पादौ द्यौः शिरो नभः । नाभिः सूर्योऽक्षिणी नासे वायुः कर्णौ दिशः प्रभोः॥६॥

अन्वयः— हे प्रभो ! एतद् वै पौरुषं रूपम् भूः पादौ द्यौः शिः नभः नाभिः सूर्योक्षिणी नसेवायुः कर्णौ दिशः ॥६॥

अनुवाद— यह भगवान् का ही रूप है, पृथिवी इसके चरण है स्वर्गमस्तक है, अन्तरिक्ष नाभि है सूर्यनेत्र हैं, वायु ही नासिका हैं, दिशाएँ कान हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका

एतद्वै पौरुषं रूपम् । पुरुषस्य वैराजस्य रूपमेवेश्वरेणाधिष्ठितत्वात्तदभेदविवक्षया तस्य रूपमुच्यते । अङ्गकल्पनामाह-भूः पादावित्यादित्रिभिः । भूराद्यनुवादेन भगवत्पादादिभावना विधीयते ॥६॥

भाव प्रकाशिका

यह श्रीभगवान् का पौरुष रूप है । वैराज पुरुष का रूप ईश्वर द्वारा अधिष्ठित है । उससे अभेद की विवक्षा से उसके रूप को बतलाते हैं । श्रीभगवान् के अङ्गों की कल्पना को बतलाते हैं । भू आदि के अनुवाद के द्वारा उन सबों में श्रीभगवान् के पैर आदि की भावना करनी चाहिए ॥६॥

प्रजापतिः प्रजननमपानो मृत्युरीशितुः । तद्बाहवो लोकपाला मनश्चन्द्रो भ्रुवौ यमः ॥७॥

अन्वयः— प्रजापतिः प्रजननम् मृत्युः अपानः लोकपालाः तद्बाह्वः, चन्द्रः मनः, यमः भ्रुवौ ॥७॥

अनुवाद— प्रजापति लिङ्ग हैं, मृत्यु गुदा है, लोकपाल भुजाएँ हैं, चन्द्रमा मन है, और यमराज भौहें हैं॥७॥

भावार्थ दीपिका

प्रजननं मेढ्रम । अपानः पायुः ॥७॥

भाव प्रकाशिका

प्रजननम् अर्थात् लिङ्ग तथा गुदा ॥७॥

लज्जोत्तरोऽधरो लोभो दन्ता ज्योत्स्ना स्मयो भ्रमः । रोमाणि भूरुहा भूम्नो मेघाः पुरुषमूर्धजाः॥८॥

अन्वयः— भूम्नः लज्जा उत्तरः लोभः अधरः, दन्ताः ज्योत्स्ना, स्मयः भ्रमः रोमाणि भूरुहाः, मेधाः पुरुषमूर्धजाः॥८॥

अनुवाद— अनन्त परमात्मा का लज्जा ऊपर का ओष्ठ है, लोभ नीचे का ओष्ठ है। चाँदनी दन्त प्रंक्ति हैं। भ्रम मुस्कान है, वृक्ष रोम हैं और मेघ ही विराट् पुरुष के शिर के केश हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥८॥

यावानयं वै पुरुषो यावत्या संस्थया मितः । तावानसावपि महापुरुषो लोकसंस्थया ॥९॥

अन्वयः— यावान् अयं वै पुरुष यावत्या संस्थया मितः तावान् असौ महापुरुषः लोकसंस्थया ॥९॥

अनुवाद— जिस तरह यह पुरुष अपने प्रमाण से सात वित्ते का है, उसी प्रकार यह समष्टि पुरुष भी लोक संस्थिति के साथ सात वित्ते का है ॥९॥

भावार्थ दीपिका

अनुक्तमन्यदप्येवमूह्यमित्याह-यावानयं व्यष्टिः पुरुषः स्वमानतः सप्तवितस्तिः । संस्थयावयवसंनिवेशेन मितः परिमितः॥९॥

भाव प्रकाशिका

जिन अङ्गों को यहाँ नहीं बतलाया गया है उनकी इसी प्रकार से कल्पना कर लेनी चाहिए। जैसे यह व्यष्टि अपने मान से सात वित्ते का है उसी तरह विराट पुरुष भी अपने मान से सात वित्ते का है ॥९॥

कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिर्बिभर्त्यजः । तत्प्रभा व्यापिनी साक्षाच्छ्रीवत्समुरसा विभुः ॥१०॥

अन्वयः— अजः कौस्तुभव्यपदेशेन स्वात्मज्योतिविभर्ति तत्प्रभाव्यापिनी साक्षात् श्रीवत्समुरसा विभुः ॥१०॥

अनुवाद— अजन्मा प्रभु कौस्तुभमणि के बहाने चैतन्य रूप जीव आत्म ज्योति को धारण करते हैं। और उसकी सर्व व्यापिनी प्रभा को ही अपने वक्षःस्थलपर श्रीवत्स रूप से विद्यमान श्रीलक्ष्मीजी को धारण करते हैं ॥१०॥

भावार्थ दीपिका

भूषणादीन्याह-कौस्तुभेत्यादिना । स्वात्मज्योतिः शुद्धं जीवचैतन्यम् । या तस्य कौस्तुभस्य प्रभा तामेव श्रीवत्सं विभर्ति॥१०॥

भाव प्रकाशिका

विराट पुरुष के भूषणों आदि को बतलाते हैं। स्वयं ज्योतिः शुद्ध जीव चैतन्य उस कौस्तुभ मणि की जो प्रभा है उसी को श्रीवत्स रूप में धारण करके ॥१०॥

स्वमायां वनमालाख्यां नानागुणमयीं दधत् । वासश्छन्दोमयं पीतं ब्रह्मसूतं त्रिवृत्स्वरम् ॥११॥

अन्वयः— स्वमायां नानागुणमयीं वनमालाम्, पीतं वासः छन्दोमयं त्रिवृत् स्वरम् ब्रह्मसूत्रं दधत् ॥११॥

अनुवाद— अपनी सत्त्व, रजस् इत्यादि अनेक गुणों वाली माया को वनमाला के रूप में, छन्द को पीताम्बर के रूप में तथा अ+उ+म् इन मात्राओं वाले प्रणव को यज्ञापवीत के रूप में धारण करते हैं ॥११॥

भावार्थ दीपिका

त्रिवृत्स्वरं त्रिमात्रं प्रणवम् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

तीन मात्राओं वाले प्रणव को ॥११॥

बिभर्ति सांख्यं योगं च देवो मकरकुण्डले । मौलिं पदं पारमेष्ठ्यं सर्वलोकाभयङ्करम् ॥१२॥

अन्वयः— देव न सांख्य योगं च मकरकुण्डले सर्वलोकाभयङ्करम् पारमेष्ठयं पदं मौलिं विभर्ति ॥१२॥

अनुवाद— श्रीभगवान सांख्यशास्त्र तथा योगशास्त्र को मकरा कृति कुण्डल के रूप में तथा सभी लोकों को अभय बनाने वाले ब्रह्मलोक को मुकुट के रूप में धारण करते हैं ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

पारमेष्ठ्यं पदं ब्रह्मलोकम् ॥१२॥

भाव प्रकाशिका

पारमेष्ठ्यं पदम् अर्थात् ब्रह्मलोक को ॥१२॥

अव्याकृतमनन्ताख्यमासनं यदधिष्ठितः । धर्मज्ञानादिभिर्युक्तं सत्त्वं पद्ममिहोच्यते ॥१३॥

अन्वयः— अव्याकृतम् अनन्ताख्यमासनं यदधिष्ठितम् धर्मज्ञानादिभिः युक्तं सत्त्वम् इह पदम् उच्यते ॥१३॥

अनुवाद— प्रकृति ही उनकी शेषशय्या है जिस पर वे शयन करते हैं, तथा धर्म, तथा ज्ञान आदि गुणों से युक्त सत्त्वगुण उनका आसन है ॥१३॥

भावार्थ दीपिका

अव्याकृतं प्रधानम् । यदधिष्ठितोऽधिष्ठाय स्थितः । तदासनभूतं पद्मं सत्त्वं सत्त्वगुणः ॥१३॥

भाव प्रकाशिका

प्रकृति ही उनकी शय्या, जिसको अधिष्ठित करके उस पर स्थित हैं और धर्म एवं ज्ञान आदि से युक्त सत्त्व ही उनका पद्मासन है ॥१३॥

ओजः सहो बलयुतं मुख्यतत्त्वं गदां दधत् । अपां तत्त्वं दरवरं तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम् ॥१४॥

अन्वयः— ओजः सहोबल युतं मुख्यतत्त्वं गदां, अपां तत्त्वं दरवरम् तेज स्तत्वं सुदर्शनम् दधत् ॥१४॥

अनुवाद— वे मन, इन्द्रिय और शरीर संबन्धी शक्तियों से युक्त मुख्यप्राण तत्त्व रूप कौमोदकी गदा को, जल तत्त्व रूप पाञ्चजन्य शङ्ख को तथा तेजस्तत्व रूप सुदर्शन चक्र को धारण करते हैं ॥१४॥

भावार्थ दीपिका

मुख्यतत्त्वं प्राणतत्त्वम् । 'प्राणो वै मुख्यः' इति श्रुतेः । दरवरं शङ्खम् ॥१४॥

भाव प्रकाशिका

मुख्य तत्वम् अर्थात् मुख्य प्राण तत्त्व को श्रुति भी कहती है प्राण ही मुख्य है । **दरवरम्** अर्थात् शङ्ख को ॥१४॥

नभोनिभं नभस्तत्त्वमसिं चर्म तमोमयम् । कालरूपं धनुः शार्ङ्गं तथा कर्ममयेषुधिम् ॥१५॥

अन्वयः— नभोनिभं नभस्तत्त्वं असिम् चर्म तमोमयम्, कालरूपं शार्ङ्गं धनुः, तथा कर्ममयेषुधिम् ॥१५॥

अनुवाद— आकाश के समान निर्मल तलवार को अज्ञानमय ढाल को कालरूप शार्ङ्गधनुष को तथा कर्ममय तरकस को धारण करते हैं ।१५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१५॥

इन्द्रियाणि शरानाहुराकूतीरस्य स्यन्दनम् । तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्तिं मुद्रयार्थक्रियात्मताम् ॥१६॥

अन्वयः— इन्द्रियाणि शरानाहुः आकूतीः अस्य स्यन्दनम्, तन्मात्राण्यस्याभिव्यक्तिम् मुद्रयार्थक्रियार्थताम् ॥१६॥

अनुवाद— इन्द्रियों को ही श्रीभगवान् का बाण कहा गया है, क्रिया शक्ति युक्त मन ही उनका रथ है, तन्मात्राएँ रथ को बाहरी भाग हैं अभय आदि की मुद्राओं से उनकी अभय दान आदि क्रियाशीलता प्रकट होती है ॥१६॥

भावार्थ दीपिका

आकूतीः क्रियाशक्तियुक्तं मनः । अस्य रथस्याभिव्यक्तिं बहिरभिव्यक्तं रूपम् । मुद्रया घृतयार्थक्रियात्मतां वरदाभयदादिरूपत्वं विभर्ति । तत्तन्मुद्रया तथा तथा भावयेदित्यर्थः ॥१६॥

भाव प्रकाशिका

आकूती: अर्थात् क्रियाशक्ति युक्त मन । इनके रथ की अभिव्यक्ति अर्थात् रथ का बाहरी भाग, धारण की गयी मुद्रा के द्वारा श्रीभगवान् की अभयदान आदि की क्रियाएँ व्यक्त होती हैं ।।१६।।

मण्डलं देवयजनं दीक्षासंस्कार आत्मनः । परिचर्या भगवत आत्मनो दुरितक्षयः ।।१७।।

अन्वयः— मण्डलं देवयजनम् दीक्षा संस्कार आत्मनः परिचर्या भगवतः आत्मनोदुरितक्षयः ।।१७।।

अनुवाद— सूर्यमण्डल अथवा अग्नि मण्डल ही श्रीभगवान की पूजा स्थल है अन्तःकरण की शुद्धि ही मन्त्र दीक्षा है, अपने समस्त पापों को नष्ट कर देना ही भगवान् की पूजा है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

मण्डलं देवयजनम् । देवपूजाभूमिं सूर्यमण्डलत्वेन भावयेदित्यर्थः । अन्तर्वह्निमण्डलं वा । दीक्षासंस्कार आत्मनो गुरुकृतां मन्त्रदीक्षामेवात्मनस्तत्पूजायोग्यतां भावयेदित्यर्थः । परिचर्येति । भगवतस्तां परिचर्यां स्वस्य सकलपापक्षयायेत्येवं भावयेदित्यर्थः ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

सूर्यमण्डल अथवा उसके भीतर अग्नि मण्डल ही श्रीभगवान् की पूजा का स्थान है, गुरु के द्वारा दी गयी मन्त्र की दीक्षा ही श्रीभगवान् की पूजा की योग्यता है । श्रीभगवान् की उस पूजा से सभी पापों के नाश की भावना करें ।।१७।।

भगवान्भगशाब्दार्थं लीलाकमलमुद्वहन् । धर्मं यशश्च भगवांश्चामरव्यजनेऽभजत् ।।१८।।

अन्वयः— भगवान् भगशब्दार्थः लीलाकमलमुद्वहन् धर्मं यशश्च भगवान् चामर व्यजनेऽभजत् ।।१८।।

अनुवाद— समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य छह पदार्थों का नाम लीला कमल है, उसको भगवान् अपने कर कमल में धारण करते हैं । धाम और यश को चँवर एवं व्यजन के रूप में धारण करते हैं।।१८।।

भावार्थ दीपिका

पूर्वमासनपद्ममुक्तमिदानीं करस्थं पद्ममाह-भगवानिति । भगशब्दार्थमैश्वर्यादिषाड्गुण्यम् ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

इससे पहले आसन पद्म को कहा गया, इस श्लोक में हस्तस्थित कमल को कहा गया है । भगशब्द का अर्थ ऐश्वर्य आदि षाड्गुण्य है ।।१८।।

आतपत्रं तु वैकुण्ठं द्विजा धामाकुतोभयम् । त्रिवृद्वेदः सुपर्णाख्यो यज्ञं वहति पूरुषम् ।।१९।।

अन्वयः— हे द्विजाः अकुतोभयम् वैकुण्ठं तु आतपत्रं त्रिवृद्वेद सुपर्णाख्यः यज्ञं पुरुषं वहति ।।१९।।

अनुवाद— ब्राह्मण निभर्य धाम को वे छत्र के रूप में धारण किए हुए हैं । तीनों वेद का ही नाम गरुड हैं जो यज्ञ पुरुष श्रीभगवान् के वाहन का काम करते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

हे द्विजाः । एकवचनान्तो वा पाठः । अकुतोभयं कैवल्यं धाम गृहममजत् । यदा, वैकुण्ठस्य विशेषणमकुतोभयं यद्धामेति। त्रिवृत् ऋग्यजुःसामरूपो वेदः, 'सुपर्णोऽसि गरुत्मांस्त्रिवृत्ते शिरः' इत्यादिमन्त्रलिङ्गात् । यज्ञं यज्ञरूपं पुरुषम्, 'यज्ञो वै विष्णुः' इति श्रुतेः ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

हे ब्रह्मन् ! कैवल्य धाम ही श्रीभगवान् का गृह है । अथवा अकुतोभयम् वैकुण्ठ का विशेषण है । ऋग्यजुः तथा

साम रूप वेद ही गरुड है । श्रुति कहती भी है- हे सुपणर्द तुम गारुत्मान हो । गरुड़ ही यज्ञरूप पुरुष को वहन करने का काम करते है । श्रुति भी कहती है- **यज्ञो वै विष्णुः** ॥१९॥

अनपायिनी भगवती श्रीः साक्षादात्मनो हरेः । विष्वक्सेनस्तन्त्रमूर्तिर्विदितः पार्षदाधिपः ॥
नन्दादयोऽष्टौ द्वास्थाश्च तेऽणिमाद्या हरेर्गुणाः ॥२०॥

अन्वयः— हरेः साक्षात् आत्मनः अनपायिनी भगवती श्रीः तन्त्रमूर्तिः विष्वक्सेनः पार्षदाधिपः विदितः नन्दादयो अष्टौ द्वास्थाः च ते अणिमाद्याः हरे र्गुणाः ॥२०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् से कभी भी अलग नहीं होने वाली भगवती लक्ष्मी ही भगवान् की आत्मशक्ति हैं, श्रीभगवान् के सेनापति विष्वक्सेनजी विश्व विदित हैं । भगवान् के स्वाभाविक गुण अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों को ही नन्द सुनन्द आदि आठ द्वारपाल कहते हैं ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

अनपायिनी हरेः शक्तिः । तत्र हेतुः-साक्षादात्मनः स्वरूपस्य चिद्रूपत्वात्तस्यास्तदभेदादित्यर्थः । मन्त्रमूर्तिः पञ्चरात्राद्यागमरूपः। येऽणिमादयोऽष्टौ गुणास्ते हरेर्द्वारपाला नन्दादयः ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

लक्ष्मीजी भगवान् की अनपायिनी शक्ति है, उसका कारण है कि वे साक्षात् आत्म स्वरूप होने के कारण चिद्रूप हैं अतएव उनका श्रीभगवान् से अभेद है । मन्त्र मूर्तिः अर्थात् पाञ्चरात्र आगम रूप, अणिमा आदि आठ गुण ही श्रीभगवान् के नन्द आदि द्वारपाल हैं ॥२०॥

वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नः पुरुषः स्वयम् । अनिरुद्ध इति ब्रह्मन्मूर्तिव्यूहोऽभिधीयते ॥२१॥

अन्वयः— हे ब्रह्मन् ! वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नः, अनिरुद्ध इति स्वयम् पुरुषः व्यूहः मूर्तिः अभिधीयते ॥२१॥

अनुवाद— हे ब्रह्मन् वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध ये चारो श्रीभगवान् की व्यूह मूर्तियाँ हैं ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

तस्यैव चतुर्व्युहोपासनामाह-वासुदेवादिशब्दैः पुरुषः श्रीनारायण एव स्वयं मूर्तिभेदैरूपास्य इत्यभिधीयते ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

उन्हीं श्रीभगवान् की चतुर्व्यूह की उपासना बतलाते हुए कहते हैं, वासुदेवादि शब्दों से भगवान् नारायण ही मूर्तिभेदों के द्वारा उपास्य हैं ॥२१॥

स विश्वस्तैजसः प्राज्ञस्तुरीय इति वृत्तिभिः । अर्थेन्द्रियाशयज्ञानैर्भगवान्परिभाव्यते ॥२२॥

अन्वयः— सः विश्वः तैजसः प्राज्ञः तुरीय इति वृतिभिः अर्थेन्द्रियाशयज्ञाने भगवान् परिभाष्यते ॥२२॥

अनुवाद— वे ही जागरावस्था के अभिमानी विश्व बनकर शब्द स्पर्श आदि वाह्य विषयों को ग्रहण करते हैं स्वप्नावस्था के अभिमानी तैजस बनकर वाह्य विषयों के बिना ही मन-ही-मन अनेक विषयों का ग्रहण करते और देखते हैं, वे ही सुषुप्ति अवस्था के अभिमानी प्राज्ञ बनकर विषय एवं मन के संस्कारों से युक्त अज्ञान से ढँक जाते हैं और वे ही सबके साक्षी तुरीय रहकर समस्त ज्ञानों के अधिष्ठान रहते हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका

तस्यैवाप्यात्मनि चतुर्धोपासनामाह-स एव भगवान्विश्वादिशब्दैर्वृत्तिभिर्जाग्रदाद्यवस्थाभिः परिभाव्यते । तद्वृत्त्युपाधीनाह-अर्था वाह्याः । इन्द्रियं मनः । आशयस्तदुभयसंस्कारयुक्तमज्ञानम् । ज्ञानं त्रितयसाक्षि तैः ॥२२॥

भाव प्रकाशिका

उन भगवान् नारायण की चतुर्थ उपासना को बतलाते हैं वे ही भगवान् विश्वादि शब्दों और वृत्तियों के द्वारा जाग्रत आदि अवस्था द्वारा कहे जाते हैं, उनकी वृत्ति उपाधियों को बतलाते हैं, **अर्था:** अर्थात् बाह्यविषय, इन्द्रिय अर्थात् मन, **आशय:** अर्थात् विषयों और मन के संस्कारों से युक्त अज्ञान, ज्ञान उपर्युक्त तीनों के साक्षी द्वारा ।।२२।।

अङ्गोपाङ्गायुधाकल्पैर्भगवांस्तच्चतुष्टयम् । बिभर्ति स्म चतुर्मूर्तिर्भगवान्हरिरीश्वरः ।।२३।।

अन्वयः— अङ्गोपाङ्गायुधाकल्पैः भगवान् तत् चतुष्टयम् विभर्ति स्म चतुर्मूति भगवान् हरिरीश्वरः ।।२३।।

अनुवाद— अङ्गों, उपाङ्गो, आयुधों और आभूषणों से युक्त तथा वासुदेव, सङ्कर्षण प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इन चार मूर्तियों के रूप में प्रकट सर्वशक्तिमान भगवान् श्रीहरि ही क्रमश: विश्व, तैजस, प्राज्ञ तथा तुरीय रूप से प्रकाशित होते हैं ।।२३।।

भावार्थ दीपिका

उक्तचतुर्व्यूहद्वयोपासनेऽपि पूर्वोक्तमङ्गाद्युपासनमाह-अङ्गेति । अङ्गादिभिरुपलक्षितो भगवान्हरिर्वासुदेवादिचतुर्मूर्तिः सन्विश्वादिचतुष्टयं बिभर्ति स्म । विश्वादिभावेऽपि तन्नियन्तुस्तस्य न जीवत्वमित्याह-विश्वादिचतुष्टयं बिभ्रदपि भगवानीश्वर एवेति।।२३।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् को दो चतूव्यूहों की उपासना में भी पूर्वोक्त अङ्गादि उपासना को बतलाते हैं अङ्ग आदि के द्वारा उपलक्षित भगवान् भगवान् श्रीहरि वासुदेवादि चतुर्मूति विश्वादि चतुष्टय रूप को धारण करते हैं । उस नियन्ता परमात्मा का जीवत्व नहीं है । विश्व आदि चार रूपों को धारण करने वाले भी भगवान् श्रीहरि ही हैं ।।२३।।

द्विजऋषभ स एष ब्रह्मयोनिः स्वयंदृक् स्वमहिमपरिपूर्णो मायया च स्वयैतत् ।
सृजति हरति पातीत्याख्ययानावृताक्षो विवृत इव निरुक्तस्तत्परैरात्मलभ्यः ।।२४।।

अन्वयः— हे द्विजऋषभ, स एष ब्रह्मयोनिः स्वयंदृक् स्वमहिमपरिपूर्ण स्वया मायया एतत् सृजति, हरति पाति इत्याख्यानावृताक्षः विवृत इव निरुक्तः तत्परैः आत्मलभ्यः ।।२४।।

अनुवाद— हे शौनक जी वे ही सर्वस्वरूप भगवान् वेदों के मूल कारण हैं । वे स्वयं प्रकाश एवं अपनी महिमा से परिपूर्ण हैं । वे अपनी माया से ब्रह्मा आदि रूपों एवं नामों से इस विश्व की सृष्टि, स्थिति एवं संहार को सम्पन्न करते हैं । इन सभी कर्मों और नामों से उनका ज्ञान कभी आवृत नहीं होता है । यद्यपि शास्त्रों में उनका वर्णन भिन्न के समान हुआ हे । परन्तु वे अपने भक्तों को आत्मस्वरूप से ही प्राप्त होते हैं ।।२४।।

भावार्थ दीपिका

तस्यैव ब्रह्मादित्रिमूर्तितामाह-द्विजऋषभेति । स एष एक एव भगवान् ब्रह्मयोनिर्वेदस्य कारणमित्यादिहेतुत्रयम् । वस्तुतो भेदाभावेऽप्येतज्जगत्स्वगतमायया सृजति हरति पातीति कृत्वाख्यया ब्रह्मादिरूपयानावृताक्षोऽनाच्छन्नज्ञानोऽपि विवृत इव भिन्न इव निरुक्तः शास्त्रेषु नतु भिन्नः । अत्र विद्वदनुभवं प्रमाणयति-यतस्तत्परैरात्मत्वेनैव लभ्यत इति ।।२४।।

भाव प्रकाशिका

वे श्रीभगवान् ब्रह्मा आदि तीन शरीरों को धारण करते हैं । इस बात को **द्विज ऋषभ इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । वे एक ही श्रीभगवान् ब्रह्माजी के कारण हैं । वास्तविकता यह है कि यह जगत् अपनी माया के द्वारा ही इस जगत् की सृष्टि करते है संहार करते है और रक्षा करते हैं ।इन तीनों कार्यो को ब्रह्मा आदि रूप को धारण करके करते हैं । इससे उनका ज्ञान आच्छन्न नहीं होता है, फिर भी वे भिन्न के समान शास्त्रों में वर्णित हैं किन्तु वे भिन्न नहीं है। इस विषय में विद्वानों के अनुभव को प्रमाण के रूप में उपन्यस्त करते हैं । क्योंकि वे दूसरों को आत्मा रूप से ही उपलब्ध होते है ।।२४।।

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविन्द गोपवनिताव्रजभृत्यगीततीर्थश्रवः श्रवणमङ्गल पाहि भृत्यान् ॥२५॥

अन्वयः— हे श्रीकृष्ण ! हे कृष्णसख ! हे वृष्णि ऋषभ ! अवनिध्रुग् राजन्यवंशदहन । हे अनपवर्गवीर्य । हे गोविन्द। गोप वनिता वजभृत्य गीत तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गल भृत्यान् पाहि ॥२५॥

अनुवाद— हे कृष्ण ! हे अर्जुन के मित्र ! हे यदुवंशशिरोमणे, हे पृथिवी के द्रोही राजाओं को भस्म करने वाले आपका पराक्रम सदा एक समान बना रहता है, हे गोविन्द, व्रज की गोपियाँ तथा आपके नारदादि भक्त वर्ग आपके गुणों की गीत गाया करते है । आपकी लीलाओं नामों और गुणों का श्रवण करने से ही मङ्गल हो जाता हैं, हम सभी आपके भृत्य हैं आप हमारी रक्षा करें ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

यस्येदमुपासनमुक्तं तं श्रीकृष्णं प्रार्थयते-कृष्णसख अर्जुनस्य सखे । वृष्णिश्रेष्ठ । अवनिद्रुहो ये राजन्यास्तेषां वंशस्य दहन । अनपवर्गमक्षीणं वीर्यं यस्य । गोपवनितानां व्रजाः समूहा भृत्या नारदादयस्तैर्गीतं तीर्थभूतं श्रवः कीर्तिर्यस्य । श्रवणमेव मङ्गलं यस्य ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

जिन श्रीभगवान् की यह उपासना कही गयी है उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण से प्रार्थना करते हैं । हे अर्जुन के सखा, यदुवंशियों में श्रेष्ठ ! हे पृथिवी से द्रोह करने वाले राजाओं के वंश को भस्म करने वाले ! आपका पराक्रम कभी क्षीण नहीं होता है, गोपियों का समूह तथा नारदादि आपके भृत्य आपके गुणों का गान करते हैं । आपका यश श्रवण मङ्गलमय होता है ॥२५॥

य इदं कल्य उत्थाय महापुरुषलक्षणम् । तच्चितः प्रयतो जप्त्वा ब्रह्म वेद गुहाशयम् ॥२६॥

अन्वयः— य कल्य उत्थाय इदं महापुरुषलक्षणम् तच्चितः प्रयतः जप्त्वा गुहाशयम् ब्रह्मवेद ॥२६॥

अनुवाद— जो पुरुष प्रातः काल जगकर परंब्रह्म के चिह्न स्वरूप अङ्ग, उपाङ्ग, और आयुधों आदि के वर्णन का श्रीभगवान् में मन लगाकर तथा पवित्र होकर इसका पाठ करेगा उसको सबके हृदय में निवास करने वाले परंब्रह्म का ज्ञान हो जायेगा ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

एतज्जपमात्रस्यापि ब्रह्मज्ञानं फलमित्याह-य इति । कल्ये उषःकाले यत्तच्चित्तः प्रयतः शुचिश्च स जप्त्वा गुहाशयं हृदिस्थं ब्रह्म पश्यति ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

इसका केवल जप करने से ही उसका फल ब्रह्म ज्ञान इस श्लोक में बतलाया गया है कल्ये अर्थात् उषः काल में, जो श्रीभगवान् में ही मन लगाकर तथा पवित्र होकर जप करता है वह हृदय में विद्यमान ब्रह्म का दर्शन करता है॥२६॥

शौनक उवाच

शुको यदाह भगवान् विष्णुराताय शृण्वते । सौरो गणो मासि मासि नाना वसति सप्तकः ॥२७॥

अन्वयः— भगवान् शुकः शृण्वते विष्णुराताय यत् सौरो गणः मासि-मासि नानासप्तक वसति आह ॥२७॥

श्रीशौनक महर्षि ने कहा

अनुवाद— भगवान् श्रीशुकदेवजी ने राजा परीक्षित् को श्रीमद्भागवत की कथा को सुनाते समय पाँचवे स्कन्ध

में बतलाये हैं कि ऋषि गन्धर्व, नाग, अप्सरा, यक्ष, राक्षस और देवताओं का एक गण होता है और ये सातों प्रत्येक मास में बदलते रहते हैं। ये गण अपने स्वामी द्वादश आदित्यों के साथ रहकर क्या करते हैं ? उसके अन्तर्गत व्यक्तियों का नाम क्या है ? सूर्य के रूप में भी श्रीभगवान् ही है ।।२७।।

भावार्थ दीपिका

मण्डलं देवयजनमित्युक्त्या बुद्धिमागतो मूर्तिव्यूहप्रसङ्गेन रविव्यूहोऽत्र पृच्छ्यते-शुक इति । पञ्चमे यदाह-'तथान्ये च ऋषयो गन्धर्वा अप्सरसो नागा ग्रामण्यो यातुधाना देवा इत्येकैकशो गणाः सप्त' इत्यादिना । सौरः सूर्यसंबन्धी । सप्तकः सप्तानां गणः ।।२७।।

भाव प्रकाशिका

सूर्य मण्डल ही श्रीभगवान् का पूजा स्थल है यह कहा जा चुका है । यह बात बुद्धि में आ जाने से **शुक इत्यादि** श्लोक से सूर्य को शौनक महर्षि ने सूतजी से पूछा । पाञ्चवें स्कन्ध में यह जो कहा गया है कि दूसरे ऋषि, गन्धर्व, अप्सराएँ, श्रेष्ठ नागगण, राक्षस एवं देवता इन प्रत्येक का सात सात का सूर्य संबन्धी गण हैं ।।२७।।

तेषां नामानि कर्माणि संयुक्तानामधीश्वरैः । ब्रूहि नः श्रद्दधानानां व्यूहं सूर्यात्मनो हरेः ।।२८।।

अन्वयः— तेषां नामानि, कर्माणि, संयुक्तानामधीश्वरै नः श्रद्धानानां सूर्यात्मनो हरेः नः ब्रूहि ।।२८।।

अनुवाद— उन सबों के नाम, कर्म उन सबों के स्वामी सूर्य स्वरूप श्रीहरि के गण सप्तक को आप बतलाएँ उसे हम सुनना चाहते हैं ।।२८।।

भावार्थ दीपिका

तेषां सप्तानामधीश्वरैस्तत्तत्पतिभिस्तत्तन्मासाधिकृतसूर्यैर्वा व्यूहं विभागम् ।।२८।।

भाव प्रकाशिका

उन सतों के स्वामियों द्वारा अथवा प्रत्येक मासों में अधिकृत सूर्यों के द्वारा विभाग होता है ।।२८।।

सूत उवाच

अनाद्यविद्यया विष्णोरात्मनः सर्वदेहिनाम् । निर्मितो लोकतन्त्रोऽयं लोकेषु परिवर्तते ।।२९।।

अन्वयः— सर्वदेहिनाम् आत्मनः विष्णोःअनाद्यविद्यया निर्मितः अयं लोकतन्त्रः लोकेषु परिवर्तते ।।२९।।

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— सभी शरीरधारियों की आत्मा भगवन् विष्णु अनादि अविद्या द्वारा, अर्थात् श्रीभगवान् के वास्तविक स्वरूप के अज्ञान से सभी लोकों के व्यवहार प्रवर्तक प्राकृत सूर्य मण्डल का निर्माण हुआ है, वही लोकों में भ्रमण किया करता है ।।२९।।

भावार्थ दीपिका

तत्र तावत् व्यूहं निरूपयितुं प्रथमं सूर्यस्वरूपमाह-अनाद्यविद्यया मायया । अयं सूर्यः । लोकयात्रा प्रवर्तकः ।।२९।।

भाव प्रकाशिका

व्यूह का निरूपण करने के लिए सर्वप्रथम सूर्य के स्वरूप को बतलाते हैं । अनाद्यविद्यया अर्थात् माया के द्वारा ये सूर्य ही लोक यात्रा के प्रवर्तक हैं ।।२९।।

एक एव हि लोकानां सूर्य आत्मादिकृद्धरिः । सर्ववेदक्रियामूलमृषिभिर्बहुधोदितः ।।३०।।

अन्वयः— सूर्य एव लोकानाम् आत्मा आदिकृत्हरिः एक एव ऋषिभिः बहुधोदितः सर्ववेद क्रियामूलम् ।।३०।।

अनुवाद— समस्त लोकों की आत्मा सूर्य हैं वे ही आदि कर्ता एक मात्र श्रीहरि हैं, यद्यपि वे एक है, फिर भी ऋषियों ने उनका अनेक प्रकार से वर्णन किया है । वे ही समस्त वैदिक क्रियाओं के मूल हैं ॥३०॥

भावार्थ दीपिका

अतस्तस्य क्रियाभेदोपाधिकमेव नानात्वं, न स्वत इत्याह-एक एवेति । 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' इति श्रुतेः । जगदात्मा आदिकृत्सृष्टिकर्ता हरिरेव सूर्यः, स च सर्वासां वेदोक्तक्रियाणां मूलं संस्तेनोपाधिना बहुधोक्तः ॥३०॥

भाव प्रकाशिका

अतएव भगवान् सूर्य की क्रिया रूप उपाधि के कारण ही नानात्व की प्रतीति होती है, नानात्व स्वाभाविक नहीं है । श्रुति भी कहती है **सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च** समस्त जड़ चेतनो की आत्मा सूर्य हैं । जगदात्मा अर्थात् सृष्टि कर्ता श्रीहरि ही सूर्य है । वे ही समस्त वैदिक क्रियाओं के मूल हैं । उसी उपाधि के कारण उनका अनेक प्रकार से वर्णन किया गया हैं ॥३०॥

कालो देशः क्रिया कर्ता करणं कार्यमागमः । द्रव्यं फलमिति ब्रह्मन्नवधोक्तोऽजया हरिः ॥३१॥

अन्वयः— अजया हरिः कालो देशः क्रिया, कर्ता, करणं, कार्यम्, आगमः, द्रव्यं फलम् इति नवधा उक्तः ॥३१॥

अनुवाद— माया के कारण एक ही श्रीहरि काल, देश, यज्ञादि क्रिया कर्ता, कारण स्त्रुवा आदि, यागादि कर्म, वेद मन्त्र शाकल्य आदि द्रव्य वेद मन्त्र और फलरूप से नव प्रकार के कहे गये हैं ॥३१॥

भावार्थ दीपिका

कालरूपधारिणो हरेर्द्वादशादित्यरूपं भेदं क्रियोपाधिकं दर्शयितुं प्रथमं सर्वकर्मप्रवृत्तये मायाकृतं नवधा भेदमाह-काल इति। कालः प्रातरादिः । देशः समादिः । क्रिया अनुष्ठानम् । कर्ता ब्राह्मणादिः । करणं स्त्रुगादिः । कार्यं यागादि । आगमो मन्त्रादि। द्रव्यं व्रीह्यादि । फलं स्वर्गादि ॥३१॥

भाव प्रकाशिका

कालरूप धारण करने वाले श्रीहरि के द्वादशा दिव्यरूप भेद को क्रियोपाधिक बतलाने के लिए पहले सभी कर्मों की प्रवृत्ति के लिए मायाकृत नव प्रकार के भेदों को बतलाते हैं । प्रातः आदि काल, समतल आदि स्थान, अनुष्ठान, ब्राह्मण आदि कर्ता, स्त्रुवा आदि यागादि कर्म, मन्त्र आदि आगम, धान आदि द्रव्य तथा स्वर्ग आदि फल ॥३१॥

मध्वादिषु द्वादशसु भगवान्कालरूपधृक् लोकतन्त्राय चरति पृथग्द्वादशभिर्गणैः ॥३२॥

अन्वयः— कालरूपधृक् भगवान् माध्वादिषु द्वादशसु लोकतन्त्राय पृथक् द्वादशभिः गणैचरति ॥३२॥

अनुवाद— कालरूपधारी श्रीभगवान् सूर्य चैत्र आदि बारह महिनों में संसार का ठीक-ठीक व्यवहार चलाने के लिए अपने भिन्न-भिन्न बारह गणों के साथ चक्कर लगया करते हैं ॥३२॥

भावार्थ दीपिका

तत्र च कालस्वरूपधारी भगवान्पृथक् चरति । मध्वादिषु चैत्रादिषु । लोकतन्त्राय लोकयात्रानिर्वाहाय ॥३२॥

भाव प्रकाशिका

काल का रूप धारण करने वाले भगवान् सूर्य, अलग-अलग संचरण करते हैं । चैत्र आदि महिनों में लोकव्यवहार चलाने के लिए ॥३२॥

धाता कृतस्थली हेतिर्वासुकी रथकृन्मुने । पुलस्त्यस्तुम्बुरुरिति मधुमासं नयन्त्यमी ॥३३॥

अन्वयः— हे मुने ! धाता, कृतस्थली, हेतिः, वासुकिः, रथकृत पुलस्त्यः, तुम्बुरु, इति मधुमासं नयन्ति ॥३३॥

अनुवाद— महर्षे ! शौनक धातानामक सूर्य, कृतस्थली अप्सरा, हेतिराक्षस, वासुकि सूर्य, रथकृत् यक्ष, पुलस्त्य ऋषि और तुम्बुरु नामक गन्धर्व चैत्र मास में अपना-अपना कार्य करते हैं ।।३३।।

भावार्थ दीपिका

तानेव गणानाह-धोतेति द्वादशभिः धाता सूर्यः । कृतस्थली अप्सराः । हेती राक्षसः । वासुकिर्नागः । रथकृद्यक्षः । पुलस्त्य ऋषिः । तुम्बुरुर्गन्धर्वः । मधुमासं चैत्रम् । नयन्त्यनुवर्तयन्ति ।।३३।।

भाव प्रकाशिका

धाता नामक सूर्य, कृतस्थली अप्सरा हेति राक्षस, वासुकि नाग, रथकृत् यक्ष, पुलस्त्य ऋषि, तुम्बुरु, गन्धर्व चैत्र महीना में अनुवर्तन करते हैं ।।३३।।

अर्यमा पुलहोऽथौजाः प्रहेतिः पुञ्जिकस्थली । नारदः कच्छनीरश्च नयन्त्येते स्म माधवम् ।।३४।।

अन्वयः— अर्यर्मा पुलहः अथौजाः, प्रहेतिः, पुञ्जिकस्थली नारदः कच्छनीरः एतेमाधवम् नयन्ति ।।३४।।

अनुवाद— अर्यमा नामक सूर्य, पुलह, ऋषि, अथौजायक्ष, प्रहेति राक्षस पुञ्जिकस्थली अप्सरा, नारद गन्धर्व तथा कच्छ नीर सर्प ये वैशाख के महीने के कार्य निर्वाहक है ।।३४।।

भावार्थ दीपिका

अथौजा यक्षः । प्रहेती राक्षसः । नारदो गन्धर्वः । कच्छनीरो नागः । माधवं वैशाखम् ।।३४।।

भाव प्रकाशिका

अथौजा यक्ष, प्रहेति राक्षस कच्छनीर नाग माधवम् अर्थात् वैशाख का महीना ।।३४।।

मित्रोऽत्रिः पौरुषेयोऽथ तक्षको मेनका हहाः । रथस्वन इति ह्येते शुक्रमासं नयन्त्यमी ।।३५।।

अन्वयः— मित्रः अत्रिः, पौरुषेयः, तक्षकः मेनका, हहाः रथस्वनः, एते हिशुक्रमासंनयन्ति ।।३५।।

अनुवाद— मित्र सूर्य, अत्रि ऋषि, पौरुषेय राक्षस तक्षक नाग, मेनका अप्सरा, हहाः और रथस्वन यक्ष ये ज्येष्ठमास के निर्वाहक है ।।३५।।

भावार्थ दीपिका

मित्रः सूर्यः । पौरुषेयो राक्षसः । रथस्वनो यक्षः । शुक्रमासं ज्येष्ठम् ।।३५।।

भाव प्रकाशिका

मित्र सूर्य, पौरुषेय राक्षस रथस्वन यक्ष, शुक्रमासम् अर्थात् ज्येष्ठ मास को ।।३५।।

वसिष्ठो वरुणो रम्भा सहजन्यस्तथा हुहूः । शुक्रश्चित्रस्वनश्चैव शुचिमासं नयन्त्यमी ।।३६।।

अन्वयः— वसिष्ठः, वरुणः, रम्भा, सहजन्या तथा हुहुः, शुक्रः चित्रस्वनः चैव अमी शुचिमासं नयन्ति ।।३६।।

अनुवाद— वसिष्ठ ऋषिः वरुण नामक सूर्य, रम्भा अप्सरा, सहजन्य यक्ष, हुहुः गन्धर्व, शुक्रनाग और चित्रस्वन राक्षस ये आषाढमास के निर्वाहक हैं ।।३६।।

भावार्थ दीपिका

वरुणः सूर्यः । सहजन्यो यक्षः । शुक्रो नागः । चित्रस्वनो राक्षसः । शुचिमासमाषाढम् ।।३६।।

भाव प्रकाशिका

वरुण, सूर्य, सहजन्यक्ष, शुक्र, नाग, चित्रस्वन, राक्षस ये आषाढ़ मास के निर्वाहक हैं ।।३६।।

इन्द्रो विश्वावसुः श्रोता एलापत्रस्तथाङ्गिराः । प्रम्लोचा राक्षसो वर्यो नभोमासं नयन्त्यमी ॥३७॥

अन्वयः— इन्द्रो विश्वावसुः श्रोता एलापत्रः तथाङ्गिराः प्रम्लोचा राक्षसोवर्यो अमी नभोमास नयन्ति ॥३७॥

अनुवाद— इन्द्र सूर्य, विश्वावसु गन्धर्व श्रोता, यक्ष, एलापत्र नाग, अङ्गिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा वर्य राक्षस, ये सभी श्रावण मास का निर्वहण करने वाले हैं ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

इन्द्रः सूर्यः। विश्वावसुर्गन्धर्वः। श्रोता यक्षः। एलापत्रो नागः। वर्यो राक्षस इति स्वयमेव व्याख्यातम्। नभोमासं श्रावणम्॥३७॥

भाव प्रकाशिका

इन्द्र नामक सूर्य, विश्वावसु गन्धर्व, श्रोता यक्ष, एलापत्र नाग, वर्यराक्षस श्रावण मास का निर्वहण करते हैं ॥३७॥

विवस्वानुग्रसेनश्च व्याघ्र आसारणो भृगुः । अनुम्लोचा शङ्खपालो नभस्याख्यं नयन्त्यमी ॥३८॥

अन्वयः— विवस्वानुग्रसेनश्च व्याघ्र आसरणो भृगुः अनुम्लोचा शङ्खपालः अमी नभस्याख्यं नयन्ति ॥३८॥

अनुवाद— विवस्वान् सूर्य, उग्रसेन गन्धर्व, व्याघ्र राक्षस, आसारण यक्ष, भृगु महर्षि, अनुम्लोचा अप्सरा, तथा शङ्खपाल नाग ये भाद्रपद मास का नयन करते हैं ॥३८॥

भावार्थ दीपिका

विवस्वान् सूर्यः । उग्रसेनो गन्धर्वः । व्याघ्रो राक्षसः । आसारणो यक्षः । शङ्खपालो नागः । नभस्याख्यं भाद्रपदम्॥३८॥

भाव प्रकाशिका

विवस्वान नामक सूर्य, उग्रसेन नामक गन्धर्व, व्याघ्र नामक राक्षस आसारण नामक यक्ष, शङ्खपाल नामक नाग, नभस्याख्यं अर्थात् भाद्रपदमास ॥३८॥

पूषा धनंजयो वातः सुषेणः सुरुचिस्तथा । घृताची गौतमश्चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥३९॥

अन्वयः— पूषा, धनञ्जयो, वातः, सुषेणः सुरुचिः तथा घृताची, गौतमः चेति तपोमासं नयन्त्यमी ॥३९॥

अनुवाद— पूषा नामक सूर्य, धनञ्जय नामक नाग, वात नामक राक्षस सुषेण नामक गन्धर्व, सुरुचि नामक यक्ष, घृताची नामक अप्सरा और गौतम नामक ऋषि, माघ मास के सूर्य के साथ रहते हैं ॥३९॥

भावार्थ दीपिका

धनंजयो नागः वातो राक्षसः । सुषेणो गन्धर्वः । सुरुचिर्यक्षः । तपोमासं माघम् । मासक्रमातिलङ्घनं कौर्मोक्तादित्यानुक्रमानुसारेण। वैष्णवे तु मासक्रमेणोक्तिः । क्वचिन्नामव्यत्ययस्तु कल्पभेदेनेति ज्ञेयम् ॥३९॥

भाव प्रकाशिका

धनञ्जय नामक नाग, वात नामक राक्षस, सुषेण नामक गन्धर्व सुरुचि नामक यक्ष, तपोमास अर्थात् माघ का महीना, महीने के क्रम का अतिक्रमण कूर्म पुराणोक्त आदित्य के क्रम के अनुसार है यहाँ विष्णुपुराण में मास के क्रम से कहा गया है । कहीं पर नाम में उलट फेर कल्प के भेद से जानना चाहिए ॥३९॥

क्रतुर्वर्चा भरद्वाजः पर्जन्यः सेनजित्तथा । विश्व ऐरावतश्चैव तपस्याख्यं नयन्त्यमी ॥४०॥

अन्वयः— क्रतु, वर्चा, भरद्वाजः, पर्जन्यः, सेनजित्, विश्व, ऐरावतश्चैव, अमी तपस्याख्यं नयन्ति ॥४०॥

अनुवाद— पर्जन्य नामक सूर्य, क्रतु नामक यक्ष, वर्या नामक राक्षस, भरद्वाज ऋषिः सेनजित् अप्सरा, विश्वनामक गन्धर्व और ऐरावत नामक सर्प फाल्गुन मास का निर्वहण करते हैं ॥४०॥

भावार्थ दीपिका

क्रतुर्यक्षः । वर्चा राक्षसः । पर्जन्यः सूर्यः । सेनजिदप्सराः । विश्वो गन्धर्वः । ऐरावतो नागः । तपस्याख्यं फाल्गुनम्।।४०।।

भाव प्रकाशिका

क्रतुः अर्थात् क्रतु नामक यक्ष, वर्चा नामक राक्षस, पर्जन्य नामक सूर्य, सेनजित् अप्सरा, विश्व नामक गन्धर्व, ऐरावत नामक नाग, तपस्याख्यम् अर्थात् फल्गुन मास को ।।४०।।

अथांशुः कश्यपस्तार्क्ष्य ऋतसेनस्तथोर्वशी । विद्युच्छत्रुर्महाशङ्खः सहोमासं नयन्त्यमी ।।४१।।

अन्वयः— अमी सहो मासं नयन्ति अंशुः कश्यपः तार्क्ष्यः ऋतसेनः, उर्वशी, विद्युच्छत्रुः महाशङ्खः ।।४१।।

अनुवाद— ये मार्गशीर्ष (अगहन) मास का निर्वाहण करते हैं । अंशु नामक सूर्य, कश्यप नामक ऋषि, तार्क्ष्य नामक यक्ष, ऋतसेन नामक गन्धर्व, उर्वशी नाम की अप्सरा, विद्युच्छत्रु नामक राक्षस और महाशङ्ख नामक नाग ।।४१।।

भावार्थ दीपिका

अंशुः सूर्यः । अंश इति वा पाठ; । तार्क्ष्यो यक्षः ऋतसेनो गन्धर्वः । विद्युच्छत्रू राक्षसः । महाशङ्खो नागः । सहोमासं मार्गशीर्षम् ।।४१।।

भाव प्रकाशिका

अंशु अथवा अंश नामक सूर्य, तार्क्ष्य नामक यक्ष, ऋतसेन नामक गन्धर्व, विद्युच्छत्रु नामक राक्षस, महाशङ्ख नामक नाग सहोमासम् मार्गशीर्षम् ।।४१।।

भगः स्फूर्जोऽरिष्टनेमिरूर्ण आयुश्च पञ्चमः । कर्कोटकः पूर्वचित्तिः पुष्यमासं नयन्त्यमी ।।४२।।

अन्वयः— भगः स्फूर्जः अरिष्टनेमिः, ऊर्णः आयुः कर्कोटकः पूर्वचितिः अमीपुष्पमासं नयन्ति ।।४२।।

अनुवाद— भग नामक सूर्य स्फूर्ज राक्षस अरिष्टनेमि गन्धर्व, ऊर्ण यक्ष, आयुऋषिः, पूर्वचिति अप्सरा, तथा कर्कोटक नाग ये पौष मास का निर्वाह करते हैं ।।४२।।

भावार्थ दीपिका

भगः सूर्यः । स्फूर्जो राक्षसः । अरिष्टनेमिर्गन्धर्वः । ऊर्णो यक्षः आयुर्ऋषिः । कर्कोटको नागः ।।४२।।

भाव प्रकाशिका

भग नामक सूर्य, स्फूर्ज राक्षस, अरिष्टनेमि नामक गन्धर्व, ऊर्ण नामक यक्ष ।।४२।।

त्वष्टा ऋचीकतनयः कम्बलश्च तिलोत्तमा । ब्रह्मापेतोऽथ शतजिद्धृतराष्ट्र इषंभराः ।।४३।।

अन्वयः— त्वष्टा, ऋषीकतनयः, कम्बलः तिलोतमा, ब्रह्मापेतः, शतजित् धृतराष्ट्रः इषंभराः ।।४३।।

अनुवाद— त्वष्टा नामक सूर्य, ऋचीकतनय अर्थात् जमदग्निः, कम्बल नामक नाग, तिलोत्तमा नामक अप्सरा, ब्रह्मापेत राक्षस शतजित् यक्ष और धृतराष्ट्र गन्धर्व का कार्यकाल आश्विन मास है ।।४३।।

भावार्थ दीपिका

त्वष्टा सूर्यः । ऋचीकतनयो जमदग्निः । कम्बलो नागः । ब्रह्मापेतो राक्षसः । शतजिद्यक्षः । घृतराष्ट्रो गन्धर्वः । इषंभरा आश्विनपालकाः ।।४३।।

भाव प्रकाशिका

त्वष्टा सूर्यः, ऋचिकतयः अर्थात् जमदग्निः कम्बल नामक नाग, ब्रह्मापेत नामक राक्षस, शतजित् नामक यक्ष, धृतराष्ट्र नामक गन्धर्व इषंभराः अर्थात् आश्विन मास का पालन करने वाले ।।४३।।

विष्णुरश्वतरो रम्भा सूर्यवर्चाश्च सत्यजित् । विश्वामित्रो मखापेत ऊर्जमासं नयन्त्यमी ।।४४।।

अन्वयः— विष्णुः अश्वतरः रम्भा सूर्यवर्चा, सत्यजित् विश्वामित्रःमखापेतः अमी ऊर्जमासं नयन्ति ।।४४।।

अनुवाद— विष्णु नामक सूर्य, अंश्वतर नामक नाग, रम्भा नामक अप्सरा, सूर्यवर्चा गन्र्धव सत्यजित् नामक यक्ष, विश्वामित्र नामक ऋषि तथा मखापेत नामक राक्षस ये कार्तिक मास के पालक हैं ।।४४।।

भावार्थ दीपिका

विष्णु रादित्य; । अश्वतरो नागः । सूर्यवर्चा गन्धर्वः । सत्यजिद्यक्षः । मखापेतो राक्षसः । ऊर्जमासं कार्तिकमासम्। एते चादित्यादयः कौर्मे विभज्योक्ताः- 'धाताऽर्यमा च मित्रश्च वरुणश्चेन्द्र एव च । विवस्वानथ पूषा च पर्जन्यश्चांशुरेव च भगस्त्वष्टा च विष्णुश्च आदित्या द्वादश स्मृताः । पुलस्त्यः पुलहश्चात्रिर्वसिष्ठोऽथाङ्गिरा भृगुः । गौतमोऽथ भरद्वाजः कश्यपः क्रतुरेव च । जमदग्निः कौशिकश्च मुनयो ब्रह्मवादिनः । रथकूर्चोऽरिष्टनेमिर्ग्रामणीश्च रथस्वनः । रथचित्रस्वनः श्रोता अरुणः सेनजित्तथा । तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च ऋतजित्सत्यजित्तथा ।' एते यक्षाः । 'अथ हेतिः प्रहेतिश्च पौरुषेयो वधस्तथा । वर्यो व्याघ्रस्तथायश्च वायुर्विद्युद्दिवाकरः। ब्रह्मापेतश्च विप्रेन्द्रा यज्ञापेतश्च राक्षसः । वासुकिः । कच्छनीरश्च तक्षकः सर्पपुङ्गवः । एलापत्रः शङ्खपालस्तथैरावतसंज्ञितः । धनंजयो महापद्मस्तथा ककोटको द्विजाः । कम्बलोऽश्वतरश्चैव बहन्त्येनं यथाक्रमम् । तुम्बुरुर्नारदो हाहा हूहूर्विश्वावसुस्तथा । उग्रसेनो वसुरुचिर्विश्वावसुरथापरः । चित्रसेनस्तथोर्णायुर्धृतराष्ट्रो द्विजोत्तमाः । सूर्यवर्चा द्वादशेति गन्धर्वा गायतां वराः । कृतस्थल्यप्सरोवर्या तथान्या पुञ्जिकस्थली । मेनका सहजन्या च प्रम्लोचा च द्विजोत्तमाः । अनुम्लोचा घृताचीच विश्वाची चोर्वशी तथा । अन्या च पूर्वचित्तिः स्यादन्या चैव तिलोत्तमा । रम्भा चेति द्विजश्रेष्ठास्तथैवाप्सरसः । स्मृताः।।' इति ।।४४।।

भाव प्रकाशिका

विष्णु नामक सूर्य, अश्वतर नामक नाग, सूर्य वर्चा गन्धर्व, सत्यजित् यक्षः मखापेतः राक्षसः उर्जमासम् अर्थात् कार्तिक मास को । इन आदित्य आदि को कूर्म पुराण में विभाग पूर्वक कहा गया है । **धातार्यमाच इत्यादि** धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण इन्द्र, विवस्वान् पूषा, पर्जन्य, अंशु, भग, त्वष्टा और विष्णु नाम वाले बारह आदित्य हैं । पुलस्त्य, पुलह, अत्रि, वसिष्ठ, अङ्गिरा, भृगु, गौतम, भरद्वाज, कश्यप क्रतु, जमदग्नि, कौशिक (विश्वामित्र) ये बारह ब्रह्मवादी मुनिगण हैं । रथ, कूर्च, अरिष्टनेमि, ग्रामणी, रथस्वनः रथचित्रस्वनः श्रोता, अरुणः, सेनजित् तार्क्ष्यः अरिष्टनेमिः, रथजित् तथा सत्यजित् ये बारह यक्ष हैं । हेति, प्रहेति, पौरुषेय, वध, व्याघ्रवर्यः, आप, वायुः, विद्युत दिवाकर, ब्रह्मापेत, यज्ञापेतश्च ये बारह राक्षस हैं । वासुकि, कृच्छनीरः, तक्षक, एलापत्र, शङ्खपाल, ऐरावत, धनञ्जयः महापद्म कर्कोटक, कम्बल, अश्वतर, ये नाग क्रमशः वहन करने का क्रममानुसार करते हैं । तुम्बुरु, नारद, हाहा, हूहूँ, विश्वावसु, उग्रसेन विश्वरुचि विश्वाबसुः चित्रसेन, ऊर्णायुः, धृतराष्ट्र, सूर्यविर्चा ये गायकों में श्रेष्ठ बारह गन्धर्व हैं। अप्सराओं में श्रेष्ठ कृतस्थली, पुञ्जिकास्थली, मेनका, सहजन्या प्रम्लोचा, अनुम्लोच, धृताची विश्वाची, उर्वशी, पूर्वचित्तिः, तिलोत्तमा तथा रम्भा हे विप्रवर्यों ये बारह अप्सरायें हैं ।।४४।।

एता भगवतो विष्णोरादित्यस्य विभूतयः । स्मरतां संध्ययोर्नृणां हरन्त्यंहो दिने दिने ।।४५।।

अन्वयः— एताः भगवतः विष्णोः विभूतयः संध्ययोः स्मरतां नृणां अहं दिने-दिने हरन्ति ।।४५।।

अनुवाद— शौनकजी ये सब भगवान् विष्णु की विभूतियाँ हैं । जो कोई सायंकाल एवं प्रातःकाल इन सूर्य रूप विभूतियों का स्मरण करता है, उसके सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं ।।४५।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।४५।।

द्वादशस्वपि मासेषु देवोऽसौ षड्भिरस्य वै । चरन्समन्तात्तनुते परत्रेह च सन्मतिम् ।।४६।।

अन्वयः— असौ देवः द्वादशसु अपि मासेषे षड्भिः चरन् अस्यवै परत्र इह च समन्तात् सन्मतिम् तनुते ।।४६।।

अनुवाद— ये सूर्यदेव बारहो महीनों में अपने छह गणों के साथ सर्वत्र विचरण करते हुए इस लोक में तथा पर लोक में सन्मति (विवेक बुद्धि) का विस्तार करते हैं ॥४६॥

भावार्थ दीपिका

एतेषां पृथक्कर्माणि निरूपयति-द्वादशस्वपीति त्रिभिः । असौ देवः सूर्यः षड्भिर्गन्धर्वादिभिरस्य जनस्य समन्ताच्चरन्। शुभां मतिं तनुते गायत्र्यर्थोऽनेन सूचिताः ॥४६॥

भाव प्रकाशिका

द्वादशस्वपि इत्यादि तीन श्लोकों से इन सबों के पृथक् कर्म का निरूपण करते हैं । सूर्य देव अपने छह, गणों के साथ सर्वत्र विचरण करते हुए इस लोक के लोगों की विवेक बुद्धि का विस्तार करते है । इससे गायत्री के अर्थ को सूचित किया गया है ॥४६॥

सामर्ग्यजुर्भिस्तल्लिङ्गैर्ऋषयः संस्तुवन्त्यमुम् । गन्धर्वास्तं प्रगायन्ति नृत्यन्त्यप्सरसोऽग्रतः ॥४७॥

अन्वयः— ऋषय सामर्ग्यजुभिः तल्लिङ्गैः अमुम् संस्तुवन्ति, गन्धर्वा तं प्रगायन्ति अप्सरसः अग्रतो नृत्यन्ति ॥४७॥

अनुवाद— भगवान् सूर्य के गण में विद्यमान ऋषिगण ऋग्यजुः एवं सामवेद के मन्त्रों से भगवान् सूर्य की स्तुति करते हैं, गन्धर्व उनके यश का गान करते हैं तथा अप्सरा उनके समक्ष नृत्य करती हैं ॥४७॥

भावार्थ दीपिका

तल्लिङ्गैः सूर्यप्रकाशकैः ॥४७॥

भाव प्रकाशिका

तल्लिङ्गैः अर्थात् सूर्यदेव का वर्णन करने वाले ॥४७॥

उन्नह्यन्ति रथं नागा ग्रामण्यो रथयोजकाः । चोदयन्ति रथं पृष्ठे नैर्ऋता बलशालिनः ॥४८॥

अन्वयः— नागः रथं उन्नह्यन्ति, ग्रामण्यः रथ योगकाः बलशालिनः नैर्ऋताः पृष्ठे रथं चोदयन्ति ॥४८॥

अनुवाद— नाग गण रस्सी की तरह उनके रथ को कसे रहते है । गन्धर्व गण सजाते हैं रथ को । बलवान् राक्षस उनके रथ को ढकेलते हैं ॥४८॥

भावार्थ दीपिका

उन्नह्यन्ति दृढं बध्नन्ति । ग्रामण्यो यक्षाः । नैर्ऋता राक्षसाः ॥४८॥

भाव प्रकाशिका

उन्नह्यन्ति बाँधे रहते हैं । ग्रामण्यः अर्थात् यक्ष । नैर्ऋताः अर्थात् राक्षस ॥४८॥

बालखिल्याः सहस्राणि षष्टिर्ब्रह्मर्षयोऽमलाः । पुरतोऽभिमुखं यान्ति स्तुवन्ति स्तुतिभिर्विभुम् ॥४९॥

अन्वयः— षष्ठिसहस्राणि बालखिल्या; अमलाः ब्रह्मर्षयः विभुम्पुरतः अभिमुखं स्तुतिभिः स्तुवन्ति यान्ति ॥४९॥

अनुवाद— साठ हजार बालखिल्य नामक निर्मल स्वभाव वाले ब्रह्मर्षि गण, सूर्य की ओर मुख करके उनके आगे-आगे स्तुति पाठ करते चलते हैं ॥४९॥

भावार्थ दीपिका

किंच, वालखित्या इति । एवं प्रतिमासं त एवं स्तुवन्ति विभुं सूर्यम् ॥४९॥

भाव प्रकाशिका

बालखिल्यब्रह्मर्षिगण ही प्रत्येक मास में भगवान् सूर्य की स्तुति करते रहते हैं ॥४९॥

एवं ह्यनादिनिधनो भगवान्हरिरीश्वरः । कल्पे कल्पे स्वमात्मानं व्यूह्य लोकानवत्यजः ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे आदित्यव्यूहविवरणं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अन्वयः— एवं हि अनादि निधनो भगवान् हरिः ईश्वरः कल्पे-कल्पे स्वम् आत्मानम् व्यूह्य अजः लोकान् अवति॥५०॥

अनुवाद— इस प्रकार अनादि अनन्त अजन्मा भगवान् श्रीहरि ही प्रत्येक कल्प में अपने स्वरूप का विभाग करके लोकों का पालन पोषण करते हैं ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के आदित्यव्यूह वर्णन नामक ग्यारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥११॥

भावार्थ दीपिका

व्यूह विभज्य ॥५०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां एकादशोऽध्यायः ॥११॥

भाव प्रकाशिका

व्यूह्य विभक्त करके ॥५०॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध की भावार्थदीपिका नामक टीका के ग्यारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥११॥

बारहवाँ अध्याय

श्रीमद्भागवत की संक्षिप्त विषय सूची

सूत उवाच

नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे । ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान्वक्ष्ये सनातनान् ॥१॥

अन्वयः— महते धर्माय नमः वेधसे कृष्णाय नमः ब्राह्मणेभ्यः नमस्कृत्य सनातनान् धर्मान् वक्ष्ये ॥१॥

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद— भगवद् भक्ति स्वरूप महान् धर्म को नमस्कार हैं, विश्वविधाता भगवान् श्रीकृष्ण को नमस्कार है । अब मैं ब्राह्मणों को नमस्कार करके सनातन धर्मों का संक्षिप्त वर्णन सुनाता हूँ ॥१॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशे तु पुराणोक्तसर्वार्थानुक्रमः कृतः । प्रथमस्कन्धमारभ्य प्राधान्येन समासतः ॥१॥ तदेवमस्मिन्पुराणे विस्तरेणोक्तानर्थान्संक्षेपतो वर्णयिष्यन्धर्मादीन्प्रणमति–नम इति । महते हरिभक्तिलक्षणाय । ब्राह्मणेभ्यो ब्राह्मणान् । सनातनाननादीन्। धर्मानित्युपलक्षणं पुराणोक्तार्थानाम् ॥१॥

भाव प्रकाशिका

बारहवें अध्याय में इसपुराण में वर्णित सम्पूर्ण विषयों की विषयसूची प्रथम स्कन्ध से लेकर प्रधान रूप से तथा संक्षेप में वर्णन किया गया है । इस पुराण में विस्तर से वर्णित विषयों का संक्षेप में वर्णन करने की इच्छा से **नमः इत्यादि** श्लोक से प्रणाम करते हैं । **महते** अर्थात् श्रीहरि की भक्ति रूप । बाह्मणेभ्य: अर्थात् ब्राह्मणों को सनातनान् अर्थात् अनादि धर्म यह इस पुराण में वर्णित विषयों का ॥१॥

एतद्वः कथितं विप्रा विष्णोश्चरितमद्भुतम् । भवद्भिर्यदहं पृष्टो नराणां पुरुषोचितम् ॥२॥

अन्वयः— हे विप्राः भवद्भिः यत् नराणां पुरुषोचितं पृष्टम् तत् वः एतत् विष्णोः अद्भुतं चरितम कथितम् ॥२॥

अनुवाद— आपलोगों ने जो मनुष्यों के सुनने योग्य मुझसे पूछा था वह मैने आपलोगों को भगवान् विष्णु के अद्भुत चरित को सुना दिया ॥२॥

भावार्थ दीपिका

पुरुषत्वे उचितं श्रवणादियोग्यम् ॥२॥

भाव प्रकाशिका

सभी पुरुषों के लिए सुनने योग्य ॥२॥

अत्र संकीर्तितः साक्षात्सर्वपापहरो हरिः । नारायणो हृषीकेशो भगवान्सात्त्वतांपतिः ॥३॥

अन्वयः— अत्र सर्वपाप हरः हरिः नारायणः हृषिकेशः भगवान् सात्वतां पतिः साक्षात् संकीर्तितः ॥३॥

अनुवाद— इस श्रीमद्भागवत महापुराण सर्वपाप प्रणाशक साक्षात् भगवान् श्रीहरि का वर्णन किया गया है। वे ही नारायण हृषीकेश भगवान् तथा भगवद् भक्तों के स्वामी कहे जाते हैं ॥३॥

भावार्थ दीपिका

एतत्प्रपञ्चयति-अत्रेति । भगवानैश्वर्यादिषड्गुणः । साक्षात्संकीर्तित इति देवताकाण्डार्थः ॥३॥

भाव प्रकाशिका

इसका विस्तार करते हुए कहते हैं । भगवान् अर्थात् ऐश्वर्यादि षड्विध ऐश्वर्य सम्पन्नः साक्षात् देवता काण्ड के अर्थ का वर्णन किया गया है ॥३॥

अत्र ब्रह्म परं गुह्यं जगतः प्रभवाप्ययम् । ज्ञानं च तदुपाख्यानं प्रोक्तं विज्ञानसंयुतम् ॥४॥

अन्वयः— परं गुह्यं ब्रह्म जगतः प्रभवाप्ययम् ज्ञानं तदुपाख्यानं विज्ञान संयुतम् प्रोक्तम् ॥४॥

अनुवाद— इस श्रीमद्भागवत महापुराण में अत्यन्त गोपनीय ब्रह्मतत्त्व का वर्णन हुआ है । उस ब्रह्म में ही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की प्रतीति होती है । इस पुराण में उसी परमात्मतत्त्व का अनुभवात्मक ज्ञान एवं उसकी प्राप्ति के साधनों का स्पष्ट वर्णन किया गया है ॥४॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मकाण्डार्थमाह-अत्र ब्रह्मेति । गुह्यं निर्गुणम् । प्रभवाप्ययम्, प्रभवत्यस्मादिति प्रभवम्, अप्येत्यस्मिन्नित्यप्ययम्, तच्च तच्च । अनेनाश्रयशब्दार्थो दर्शितः । विज्ञानसंयुतमपरोक्षज्ञानपर्यन्तं ज्ञानम् । तदुपाख्यानं तज्ज्ञानमुपाख्यायते प्रकाश्यते येन तज्ज्ञानसाधनमित्यर्थः ॥४॥

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक में ब्रह्मकाण्ड के अर्थ का वर्णन किया गया है । गुह्यम् अर्थात् निगुणम्, जिससे जगत् की उत्पत्ति हो, जगत् जिसमें लीन होता है तथा इसके द्वारा आश्रय शब्द के अर्थ का वर्णन किया गया है । विज्ञान संयुतम् अर्थात् अपरोक्ष ज्ञान पर्यन्त ज्ञान **तदुपाख्यानम्** अर्थात् जिसके द्वारा वाह्य का ज्ञान होता है अर्थात् ब्रह्म का ज्ञान का साधन ॥४॥

भक्तियोगः समाख्यातो वैराग्यं च तदाश्रयम् । पारीक्षितमुपाख्यानं नारदाख्यानमेव च ॥५॥

अन्वयः— भक्तियोगः समाख्यातः तदाश्रयं वैराग्यं च, पारीक्षितमुपाख्यानम् नारदाख्यानमेव च ॥५॥

अनुवाद— इस श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध में भक्तियोग का वर्णन किया गया है, भक्ति से उत्पन्न होने वाले तथा भक्ति को स्थिर रखने वाले वैराग्य का वर्णन हुआ है। परीक्षित् का उपाख्यान तथा नारदोपाख्यान का भी वर्णन किया गया है ॥५॥

भावार्थ दीपिका

कर्मकाण्डार्थमाह-भक्तियोगश्च साध्यसाधनरूपः। तदाश्रयं भक्तियोगेन निष्पादितम्। एवं सामान्यतो निरूप्येदानीं द्वादशस्कन्धप्रकरणार्थाननुक्रामति-पारीक्षितमुपाख्यानं परीक्षिज्जन्मादि तत्प्रस्तावाय नारदाख्यानं च ॥५॥

भाव प्रकाशिका

कर्मकाण्ड के अर्थ का वर्णन भक्तियोगश्च इत्यादि श्लोक से किया गया है। भक्तियोग से निष्पादित। इस तरह से सामान्य रूप से निरूपण करके अब बारह स्कन्धों के प्रकरणार्थों का वर्णन करते हैं। परीक्षित् के जन्मादि की कथा तथा उसके प्रस्ताव के लिए नारदोपाख्यान का वर्णन किया गया है ॥५॥

प्रायोपवेशो राजर्षेर्विप्रशापात्परीक्षितः। शुकस्य ब्रह्मर्षभस्य संवादश्च परीक्षितः ॥६॥

अन्वयः— विप्रशापात् राजर्षेः परीक्षितः प्रायोपवेशः ब्रह्मर्षभस्य शुकस्य परीक्षितः च संवादः ॥६॥

अनुवाद— ब्राह्मण के शाप के कारण राजर्षि परीक्षित् का आमरण अनशन ऋषिवर्य शुकदेवजी के साथ राजा परीक्षित् का संवाद वर्णित है ॥६॥

भावार्थ दीपिका

ब्रह्मर्षभस्य ब्राह्मणोत्तमस्य। इति प्रथमस्कन्धार्थः ॥६॥

भाव प्रकाशिका

ब्रह्मर्षस्य अर्थात् ब्राह्मणोतम का इस तरह पहले स्कन्ध का अर्थ कहा गया है ॥६॥

योगधारणयोत्क्रान्तिः संवादो नारदाजयोः। अवतारानुगीतं च सर्गः प्राधानिकोऽग्रतः ॥७॥

अन्वयः— योगधारणयोत्क्रान्तिः नारदाजयोः संवादः, अवतारानुगीतं च, अग्रतः प्राधानिकः सर्गः ॥७॥

अनुवाद— योग धारण के द्वारा शरीरत्याग की विधि, ब्रह्माजी और नारदजी का संवाद, अवतारों की चर्चा तथा सर्वप्रथम प्रकृतिक सृष्टि का वर्णन ॥७॥

भावार्थ दीपिका

उत्क्रान्तिरर्चिरादिगतिः। प्राधानिकः प्रधानकार्यविराड्रूपः सर्गः। अग्रत आदितो महदादिक्रमेणेत्यर्थः। इति द्वितीयार्थः॥७॥

भाव प्रकाशिका

उत्क्राति अर्थात् अचिरादि गति, प्रधान के कार्य भूत विराट् रूप सृष्टि, महत् तत्त्व आदि के क्रम से यह दूसरे स्कन्ध का अर्थ है ॥७॥

विदुरोद्धवसंवादः क्षत्तृमैत्रेययोस्ततः। पुराणसंहिताप्रश्नो महापुरुषसंस्थितिः ॥८॥

अन्वयः— विदुरोद्धव संवादः ततः क्षत्तृमैत्रेययोः, पुराण संहिता प्रश्नः महापुरुष संस्थितिः ॥८॥

अनुवाद— विदुर एवं उद्धवजी का संवाद, उसके बाद विदुर एवं मैत्रेय महर्षि का संवाद, पुराण संहिता विषयक प्रश्न तथा श्रीभगवान् के परमधाम गमन का वर्णन है ॥८॥

भावार्थ दीपिका

महापुरुषस्य संस्थितिः प्रलये तूष्णीमवस्थानम् ।।८।।

भाव प्रकाशिका

महापुरुष संस्थित: अर्थात् प्रलय काल में मौन स्थिति ।।८।।

ततः प्राकृतिकः सर्गः सप्त वैकृतिकाश्च ये । ततो ब्रह्माण्डसंभूतिर्वैराजः पुरुषो यतः ।।९।।

अन्वयः— ततः प्राकृतिकः सर्गः सप्तवैकृतिकाश्च ये ततो ब्रह्माण्ड सम्भूतिः यतः वैराजः पुरुषः ।।९।।

अनुवाद— गुणों के क्षोभ से प्राकृतिक सृष्टि महत तत्त्व आदि सात प्रकृति विकृतियों के द्वारा कार्य सृष्टि का वर्णन । उसके बाद ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति उसमें विराट् पुरुष की स्थिति का स्वरूप समझाया गया है ।।९।।

भावार्थ दीपिका

प्राकृतिकः प्रकृतिभवो गुणक्षोभरूपः । वैकृतिका महदादयश्चकाराद्विकाराश्च ये तेषां सर्गः ।।९।।

भाव प्रकाशिका

प्रकृत जन्य गुणों के क्षोभ रूप प्राकृतिक, वैकृतिका: महत तत्व जन्य विकार उनकी सृष्टि ।।९।।

कालस्य स्थूलसूक्ष्मस्य गतिः पद्मसमुद्भवः । भुव उद्धरणेऽम्भोधेर्हिरण्याक्षवधो यथा ।।१०।।

अन्वयः— स्थूल सूक्ष्मस्य कालस्य गतिः पद्म समुद्भवः अम्भोधेःभुवः उद्धरणे यथा हिरण्याक्ष वधः ।।१०।।

अनुवाद— स्थूल एवं सूक्ष्म काल की गति, लोक कमल की उत्पत्ति, रसातल से भूदेवी के उद्धार के प्रसङ्ग में जैसे हिरण्याक्ष का वध हुआ ।।१०।।

भावार्थ दीपिका

गतिः स्वरूपम् । उद्धरणे उद्धारणे ।।१०।।

भाव प्रकाशिका

गतिः अर्थात् स्वरूप, उद्धरणे अर्थात् उद्धार करने के प्रसङ्ग में ।।१०।।

ऊर्ध्वतिर्यगवाक्सर्गो रुद्रसर्गस्तथैव च । अर्धनारीनरस्याथ यतः स्वायंभुवो मनुः ।।११।।

अन्वयः— ऊर्ध्वतिर्यक् अवाक् सर्गः रुद्रसर्गः तथैव च अथ अर्धनारी नरस्य यतः स्वयम्भुवःमनुः ।।११।।

अनुवाद— देवता, पशु-पक्षी, तथा मनुष्यों की सृष्टि एवं रुद्रों की उत्पत्ति का प्रसङ्ग है । उसके पश्चात् उस अर्धनारी नर के स्वरूप का वर्णन जिससे स्वायम्भुव मनु का जन्म वर्णित है ।।११।।

भावार्थ दीपिका

अर्धाभ्यां नारी च नरश्च तस्य सर्गः ।।११।।

भाव प्रकाशिका

आधा नारी और आधा नर का वर्णन और उससे सृष्टि का वर्णन है ।।११।।

शतरूपा च या स्त्रीणामाद्या प्रकृतिरुत्तमा । संतानो धर्मपत्नीनां कर्दमस्य प्रजापतेः ।।१२।।

अन्वयः— या च शतरूपा स्त्रीणाम् आद्या उत्तमाप्रकृतिः कर्दमस्य प्रजापतेः धर्मपत्नीनां सन्तानः ।।१२।।

अनुवाद— स्त्रियों की उत्तम आद्या प्रकृति शतरूपा का जन्म, कर्दम प्रजापतिका चरित्र उनसे मुनि पत्नियों के जन्म का वर्णन है ।।१२।।

भावार्थ दीपिका

संतानो धर्मपत्नीनामिति नवब्रह्मसमुत्पत्तिरित्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

मुनियों की धर्मपत्नियों की सन्तान उसके पश्चात् नवब्रह्म की समुत्पत्ति को जानना चाहिए ।।१२।।

अवतारो भगवतः कपिलस्य महात्मनः । देवहूत्याश्च संवादः कपिलेन च धीमता ।।१३।।

अन्वयः— महात्मन भगवतः कपिलस्य अवतारः देवहुत्याश्च धीमता कपिलेन संवादः ।।१३।।

अनुवाद— उसके पश्चात् महापुरुष भगवान् कपिल के अवतार का वर्णन है । उसके बाद महाबुद्धिमान महर्षि कपिल की माता देवहूति से संवाद का वर्णन है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१३।।

नवब्रह्मसमुत्पत्तिर्दक्षयज्ञविनाशनम् । ध्रुवस्य चरितं पश्चात्पृथोः प्राचीनबर्हिषः ।।१४।।

अन्वयः— नव ब्रह्म समुत्पत्तिः, दक्ष यज्ञ विनाशनम्, ध्रुवस्य चरितम् पश्चात् प्राचीनबर्हिषः ।।१४।।

अनुवाद— चौथे सर्ग में मरीचि आदि नव प्रजातियों की उत्पत्ति, फिर दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विध्वंस राजर्षि ध्रुव एवं पृथु का चरित प्राचीन बर्हि एवं नारदजी के संवाद का वर्णन है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका

इति तृतीयार्थः । चतुर्थस्कन्धार्थमाह-नवब्रह्मणां मरीच्यादीनां समुत्पत्तिः संतानः ।।१४।।

भाव प्रकाशिका

तृतीय स्कन्ध के पश्चात् चौथे स्कन्ध के अर्थ को बतलाते हैं मरीचि आदि नव प्रजापतियों की उत्पत्ति और उनकी सन्तानों का वर्णन है ।।१४।।

नारदस्य च संवादस्ततः प्रैयव्रतं द्विजाः । नाभेस्ततोऽनुचरितमृषभस्य भरतस्य च ।।१५।।

अन्वयः— हे द्विजाः नारदस्य च संवाद ततः प्रैयव्रतं ततः नाभेः अनुचरितम् ऋषभस्य भरतस्य ।।१५।।

अनुवाद— हे शौनकादि महर्षियों प्राचीन वर्हि तथा नारदजी के संवाद के पश्चात् प्रिय व्रतोपाख्यान का वर्णन है । तदनन्तर महाराज नाभि का वर्णन है । तदनन्तर ऋषभदेव का एवं उनके बड़े पुत्र भरतजी का चरित है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

पञ्चमस्कन्धार्थमाह-ततः प्रैयव्रतं प्रियव्रतस्य चरितम् ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

पाञ्चवें स्कन्ध के अर्थ का वर्णन करते है । प्रियव्रत का चरित वर्णित है ।।१५।।

द्वीपवर्षसमुद्राणां गिरिनद्युपवर्णनम् । ज्योतिश्चक्रस्य संस्थानं पातालनरकस्थितिः ।।१६।।

अन्वयः— द्वीपवर्षसमुद्राणां गिरिनद्युपवर्णनम् ज्योतिश्चक्रस्य संस्थानम् पातालनरकस्थितिः ।।१६।।

अनुवाद— द्वीपों, वर्षों, समुद्रों, पर्वतों, नदियों का वर्णन है, उसके पश्चात् ज्योतिश्चक्र विस्तार का वर्णन है। तदनन्तर पातालों एवं नरकों की स्थिति का वर्णन ।।१६।।

भावार्थ दीपिका

द्वीपाद्युपवर्णनं प्रथमं संक्षेपतस्ततो द्वीपादीनां ये गिरयो नद्यश्च तेषामुपवर्णनम् । पातालानां नरकाणां च संस्थितिः । अनेनैव नरकनिवर्तकमजामिलोपाख्यानं गृहीतं ततः पराचीनम् ।।१६।।

भाव प्रकाशिका

पहले द्वीपों आदि का संक्षेप में वर्णन है । उसके पश्चात् द्वीपों आदि के जो पर्वत हैं नदियाँ है उनका वर्णन हैं। पातालों और नरकों की स्थिति का वर्णन है । इसी के द्वारा नरकों को दूर करने वाला अजामिलोंपाख्यान का वर्णन उसके पश्चात् किया गया है ।।१६।।

दक्षजन्म प्रचेतोभ्यस्तत्पुत्रीणां च संततिः । यतो देवासुरनरास्तिर्यङ्नगखगादयः ।।१७।।

अन्वयः— प्रचेतोभ्यः दक्षजन्म, तत्पुत्रीणां च सन्ततिः यतः देवासुरनराः तिर्यङ्नगखगादयः ।।१७।।

अनुवाद— प्रचेताओं से दक्ष का जन्म दक्ष की पुत्रियों सन्ततियाँ, जिससे देवता, असुर, मनुष्य, पशु-पर्वत एवं पक्षियों का जन्म आदि का वर्णन छठे स्कन्ध में किया गया है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका

षष्ठार्थमाह-दक्षजन्मेति ।।१७।।

भाव प्रकाशिका

दक्ष जन्म इत्यादि श्लोक से छठे स्कन्ध के विषय बतलाये गये हैं ।।१७।।

त्वाष्ट्रस्य जन्म निधनं पुत्रयोश्च दितेर्द्विजाः । दैत्येश्वरस्य चरितं प्रह्लादस्य महात्मनः ।।१८।।

अन्वयः— हे द्विजाः त्वाष्ट्रस्य जन्म निधनं दितेः पुत्रयोश्च निधनं दैत्येश्वरस्य महात्मनः प्रह्लादस्य जन्म ।।१८।।

अनुवाद— हे शौनक महर्षियों ! वृत्रासुर का जन्म और उसकी मृत्यु का वर्णन दिति हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष की मृत्यु का वर्णन, महाभाग्यवान् प्रह्लादजी के चरित का वर्णन सातवें स्कन्ध में हुआ है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

सप्तमार्थमाह पुत्रयोश्चेति ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

पुत्रयोश्च इत्यादि श्लोकांश से सातवें स्कन्ध के विषयों को बतलाया गया है ।।१८।।

मन्वन्तरानुकथनं गजेन्द्रस्य विमोक्षणम् । मन्वन्तरावताराश्च विष्णोर्हयशिरादयः ।।१९।।

अन्वयः— मन्वन्तरानुकथनम्, गजेन्द्र सविमोक्षणम्, मन्वन्तरावताराश्च विष्णोः हयशिरादयः ।।१९।।

अनुवाद— आठवें स्कन्ध में मन्वन्तरों की कथा, गजेन्द्र मोक्ष की कथा, विभिन्न मन्वन्तरों में होने वाले हयग्रीव आदि अवतारों की कथा का वर्णन हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

अष्टमार्थमाह-मन्वन्तरानुकथनमिति । क्वचित्कस्यचिदनुक्तिर्व्युत्क्रमोक्तिश्च भक्तिरसाकुलत्वेनेति द्रष्टव्यम् ।।१९।।

भाव प्रकाशिका

मन्वन्तरानुकथनम्० इत्यादि श्लोक से आठवें स्कन्ध के अर्थ का वर्णन है । भक्ति रस के भरमार के कारण कहीं-कहीं पर अनुक्ति तथा विपर्ययोक्ति भी है ।।१९।।

कौर्मं धान्वन्तरं मात्स्यं वामनं च जगत्पतेः । क्षीरोदमथनं तद्वदमृतार्थे दिवौकसाम् ।।२०।।

अन्वयः— जगत्पतेः, कौर्म, धान्वन्तरं मात्स्यं वामनं च अवताराः दिवौकसाम् तदवद् अमृतार्थे क्षीरोदमथनम् ।।२०।।

अनुवाद— जगत् के स्वामी श्रीभगवान् के कूर्म, धन्वन्तरि, मत्स्य, वामन, आदि अवतारों के वर्णन है । देवताओं को अमृतपान कराने के लिए क्षीरसागर के मन्थन का वर्णन है ।।२०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।२०।।

देवासुरमहायुद्धं राजवंशानुकीर्तनम् । इक्ष्वाकुजन्म तद्वंशः सुद्युम्नस्य महात्मनः ॥२१॥

अन्वयः— देवसुर महासंग्राम, राजवंशानुकीर्तनम्, इक्ष्वाकुजन्म, तद्वंशः महात्मनः सुद्युम्नस्य ॥२१॥

अनुवाद— उसके पश्चात् देवासुर संग्राम का वर्णन है । उसके बाद राजाओं के वंशों का वर्णन फिर इक्ष्वाकु के जन्म तथा उनके वंश का वर्णन है उसके पश्चात् महात्मा सुद्युम्न के चरित का वर्णन है ॥२१॥

भावार्थ दीपिका

नवमार्थमाह-राजवंशेति ॥२१॥

भाव प्रकाशिका

राजवंशानुवर्णन इत्यादि नवें स्कन्ध के अर्थ का वर्णन है ॥२१॥

इलोपाख्यानमत्रोक्तं तारोपाख्यानमेव च । सूर्यवंशानुकथनं शशादाद्या नृगादयः ॥२२॥

अन्वयः— इलोपाख्याम् अत्रोक्तम्, तारोपाख्यानमेव च, सूर्यवंशानुकथनं, शशादाद्या नृगादयः ॥२२॥

अनुवाद— तदनन्तर इलोपाख्यान का यहाँ वर्णन है, उसके पश्चात् तारा के उपाख्यान का वर्णन है, उसके पश्चात् सूर्य वंश का, शशाद आदि का तथानृग आदि का वर्णन है ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

सौकन्यं चाथ शर्यातेः ककुत्स्थस्य च धीमतः । खट्वाङ्गस्य च मान्धातुः सौभरेः सगरस्य च॥२३॥

अन्वयः— अथ शर्यातेः सौकन्यं, धीमतः ककुत्स्थस्य खाट्वाङ्गस्य, मान्धातुः सौभरेः सगरस्य च ॥२३॥

अनुवाद— उसके पश्चात् महाराज शर्याति की पुत्री सुकन्या का चरित्र वर्णित है । बुद्धिमान महाराज काकुत्स्थ का चरित्र वर्णित है, खट्वाङ्ग का चरित, मान्धाता का चरित सौर्भार महर्षि का चरित एवं सगर का चरित्र वर्णित है ॥२३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

रामस्य कोशलेन्द्रस्य चरितं किल्बिषापहम् । निमेरङ्गपरित्यागो जनकानां च संभवः ॥२४॥

अन्वयः— कोसलेन्द्रस्य रामस्य किल्विषापहं चरितम् निमेः अङ्ग परित्यागः जनकाना च संभवः ॥२४॥

अनुवाद— उसके पश्चात् कोसलाधिपति श्रीरामचन्द्रजी का पापापहारी चरित का वर्णन किया गया है, उसके पश्चात् महाराज निमि के शरीर परित्याग का वर्णन है । तत्पश्चात् जनकों की उत्पत्ति का वर्णन है ॥२४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२४॥

रामस्य भार्गवेन्द्रस्य निःक्षत्रकरणं भुवः । ऐलस्य सोमवंशस्य ययातेर्नहुषस्य च ॥२५॥

अन्वयः— भार्गवेन्द्रस्य रामस्य भुवः निःक्षत्रकरणं ऐलस्य सोमवंशस्य ययातेः नहुषस्य च ॥२५॥

अनुवाद— उसके पश्चात् भृगुवंश शिरोमणि श्रीपरशुरामजी द्वारा क्षत्रियों के संहार का वर्णन है । उसके बाद चन्द्रवंशी राजा पुरुरवा, ययाति, और नहुष के चरित का वर्णन है ॥२५॥

भावार्थ दीपिका

सोमवंशादिभूतस्यैलस्य चरितम् ॥२५॥

भाव प्रकाशिका

सोमवंशी प्रथम राजा पुरुरवा के चरित का वर्णन ॥२५॥

दौष्यन्तेर्भरतस्यापि शन्तनोस्तत्सुतस्य च । ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशोऽनुकीर्तितः ॥२६॥

अन्वयः— दौष्यन्तेः भरतस्य अपि शन्तनोः तत्सुतस्य च ययातेः ज्येष्ठपुत्रस्य यदुवंशोऽनुकीर्तितः ॥२६॥

अनुवाद— दुष्यन्त के पुत्र भरत का शन्तनु का तथा शन्तनु के पुत्र का चरित वर्णित है । ययाति के ज्येष्ठ पुत्र उसके बाद यदु के वंश का वर्णन किया गया है ॥२६॥

भावार्थ दीपिका

तत्सुतस्य भीष्मस्य ॥२६॥

भाव प्रकाशिका

तत्सुतस्य अर्थात् भीष्मजी का ॥२६॥

यत्रावतीर्णो भगवान्कृष्णाख्यो जगदीश्वरः । वसुदेवगृहे जन्म ततो वृद्धिश्च गोकुले ॥२७॥
तस्य कर्माण्यपाराणि कीर्तितान्यसुरद्विषः । पूतनाऽसुपयःपानं शकटोच्चाटनं शिशोः ॥२८॥

अन्वयः— यत्र भगवान् कृष्णख्यो जगदीश्वरः वसुदेवगृहे अवतीर्णः ततो गोकुलेवृद्धिश्च तस्यासुरद्विषः अपाराणि कर्माणि कीर्तितानि पूतनासुपयः पानं शिशोः शकटोच्चाटनम् ॥२७-२८॥

अनुवाद— हे शौनकादि ऋषियों इस यदुवंश में जगत्पति भगवान् श्रीकृष्ण ने अवतार लिया, उन्होंने असुरों का संहार किया, उनकी अपरिमित लीलाओं का वर्णन करना असम्भव है, फिर भी दसवें स्कन्ध में उनकी कुछ लीलाएँ इस प्रकार की है । वे भगवान् वसुदेवजी के पुत्र के रूप में अवतीर्ण हुए । पूतना के स्तन्य के साथ-साथ उसके प्राणों को भी पी गये । वे शकटासुर का वध किये ॥२७-२८॥

भावार्थ दीपिका

दशमार्थमाह-तस्य कर्माणीति । पूतनाया असुसहितस्य स्तन्यपयसः । पानम् ॥२७-२८॥

भाव प्रकाशिका

वे पूतना के स्तन्य के साथ-साथ उसके प्राणों को भी पी गये ॥२७-२८॥

तृणावर्तस्य निष्पेषस्तथैव बकवत्सयोः । धेनुकस्य सहभ्रातुः प्रलम्बस्य च संक्षयः ॥२९॥

अन्वयः— तृणावर्तस्य निष्पेषः तथैव बकवत्सयोः भ्रातुः सह धेनुकस्य प्रलम्बस्य च संक्षयः ॥२९॥

अनुवाद— वे श्रीभगवान् तृणावर्त बकासुर एवं वत्सासुर को पीस डाले परिवार सहित धेनुकासुर और प्रलम्बासुर का वध किए ॥२९॥

भावार्थ दीपिका

सहभ्रातुः ससखस्य ॥२९॥

भाव प्रकाशिका

सहभ्रातुः अर्थात् मित्र के साथ ॥२९॥

गोपानां च परित्राणं दावाग्नेः परिसर्पतः । दमनं कालियस्याहेर्महाहेर्नन्दमोक्षणम् ॥३०॥

अन्वयः— परिसर्पतः दावाग्नेः गोपानां परित्राणम् कलियस्याहेः दमनम् महाहेः नन्दमोक्षणम् ॥३०॥

अनुवाद— श्रीभगवान् फैलती हुई दवाग्नि से गोपों की रक्षा किए कालिय नाग का दमन किए तथा अजगर से बाबा नन्द को बचाये ॥३०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३०॥

व्रतचर्या तु कन्यानां यत्र तुष्टोऽच्युतो व्रतैः । प्रसादो यज्ञपत्नीभ्यो विप्राणां चानुतापनम् ॥३१॥
गोवर्धनोद्धारणं च शक्रस्य सुरभेरथ । यज्ञाभिषेकं कृष्णस्य स्त्रीभिः क्रीडा च रात्रिषु॥३२॥

अन्वयः— कन्यानां व्रतचर्या, यत्र व्रतैः अच्युतः तुष्टः यज्ञपत्नीभ्यः प्रसादः विप्राणाम् अनुतापनं च, गोवर्धनोद्धारणं शक्रस्य सुरभेरथ, यज्ञाभिषेकं, कृष्णस्य रात्रिषु स्त्रीभिः क्रीडा च ॥३१-३२॥

अनुवाद— गोपियों ने श्रीभगवान् को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए व्रत किया प्रसन्न होकर श्रीभगवान् ने उन सबों को अभिप्रेत वरदान दिया उसके पश्चात् यज्ञ पत्नियों पर भगवान् ने कृपा की उनके पतियों को अत्यन्त मनस्ताप हुआ । भगवान् ने गोवर्धन पर्वत को धारण किया, इन्द्र और कामधेनु ने आकर श्रीभगवान् का यज्ञाभिषेक किया। शरद ऋतु की रात्रियों में श्रीभगवान् गोपियों के साथ रास रचाये ॥३१-३२॥

भावार्थ दीपिका

यज्ञाभिषेकम् । यज्ञः पूजा अभिषेकश्च तयोर्द्वन्द्वैक्यम् ॥३१-३२॥

भाव प्रकाशिका

यज्ञाभिषेक में यज्ञ और अभिषेक इन दोनों में समाहार द्वन्द्व होने से एक वचनान्त प्रयोग है ॥३१-३२॥

शङ्खचूडस्य दुर्बुद्धेर्वधोऽरिष्टस्य केशिनः । अक्रूरागमनं पश्चात्प्रस्थानं रामकृष्णयोः ॥३३॥
व्रजस्त्रीणां विलापश्च मथुरालोकनं ततः । गजमुष्टिकचाणूरकंसादीनां च यो वधः ॥३४॥

अन्वयः— दुर्बुद्धेः शंखचूडस्य वधः अरिष्टस्य केशिनः अक्रूरागमनम्, रामकृष्णयोः प्रस्थानं व्रजस्त्रीणां विलापः ततः मथुरालोकनम्, गज मुष्टिक चाणूरकंसादीनां च यो बधः ॥३३-३४॥

अनुवाद— श्रीभगवान् ने दुष्ट शङ्खचूड का वध किया, अरिष्टासुर और केशी को मारा तदनन्तर अक्रूरजी मथुरा से वृन्दावन आये, उनके साथ भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा के लिए प्रस्थान किए, यह देखकर गोपियों ने विलाप किया, भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा नगर का दर्शन किए । कुबलयापीड हाथी, मुष्टिक, चाणूर और कंस का श्रीभगवान् ने वध किया ॥३३-३४॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३३-३४॥

मृतस्यानयनं सूनोः पुनः सांदीपनेर्गुरोः । मथुरायां निवसता चदुचक्रस्य यत्प्रियम् ॥३५॥

अन्वयः— सान्दीपनेर्गुरोः मृतस्य सूनोः आनयनं मथुरायां निवसता यदुचक्रस्ययत् प्रियम् कृतम्॥३५॥

अनुवाद— विद्याध्यन करने के बाद सान्दीपनि गुरु के मरे हुए पुत्र को यमराज के यहाँ से लौटा लाए । उद्धवजी तथा बलरामजी के साथ मथुरा में निवास करते समय श्रीभगवान् यदुवंशियों का हर प्रकार से उपकार किए ॥३५॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३५॥

कृतमुद्धवरामाभ्यां युतेन हरिणा द्विजाः। जरासन्धसमानीतसैन्यस्य बहुशो वधः ॥
घातनं यवनेन्द्रस्य कुशस्थल्या निवेशनम् ॥३६॥

अन्वयः— जरासन्धसमानीत सैन्यस्य बहुशो बधः । यवनेन्द्रस्य घातनम् कुशस्थल्या निवेशनम् ॥३६॥

अनुवाद— जरासन्ध बहुत बार सेना लेकर आया और श्रीभगवान् ने उन सबों का वध करके पृथिवी के भार को हल्का कर दिया । मुचकुन्दजी से कालयवन को भस्म करा दिए और द्वारकापुरी का निर्माण कराकर सबलोगों को रातो-रात वहाँ पहुँचा दिए ॥३६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३६॥

आदानं पारिजातस्य सुधर्मायाः सुरालयात् । रुक्मिण्या हरणं युद्धे प्रमथ्य द्विषतो हरेः ॥३७॥

अन्वयः— सुरालयात् पारिजातस्य सुधर्मायाः आदानं हरिः द्विषतः युद्धे प्रमथ्य रुक्मिण्याः हरणम् ॥३७॥

अनुवाद— स्वर्गलोक से पारिजात वृक्ष को तथा सुधर्मा सभा को लाये युद्ध में श्रीहरि से द्वेष करने वाले राजाओं को परास्त करके रुक्मिणीजी का हरण किये ॥३७॥

भावार्थ दीपिका

द्विषतः शत्रून्प्रमथ्य ॥३७॥

भाव प्रकाशिका

द्वेष करने वाले शत्रुओं को हराकर ॥३७॥

हरस्य जृम्भणं युद्धे बाणस्य भुजकृन्तनम् । प्राग्ज्योतिषपतिं हत्वा कन्यानां हरणं च यत् ॥३८॥

अन्वयः— युद्धे हरस्य जृम्भणं बाणस्य भुजकृन्तनम् प्राग्ज्योतिषपतिं हत्वा कन्यानां हरणं च यत् ॥३८॥

अनुवाद— भगवान् युद्ध में शङ्करजी पर ऐसा बाण छोड़े कि वे जम्भाई लेने लगे और इधर श्रीभगवान् बाणासुर की भुजाओं को काट डाले प्राग्ज्योतिष्पुर के स्वामी नरकासुर को मारकर सोलह हजार कन्याओं को ग्रहण किए ॥३८॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥३८॥

चैद्यपौण्ड्रकशाल्वानां दन्तवक्त्रस्य दुर्मतेः । शम्बरो द्विविदः पीठो मुरः पञ्चजनादयः ॥३९॥
माहात्म्यं च वधस्तेषां वाराणस्याश्च दाहनम् । भारावतरणं भूमेर्निमित्तीकृत्य पाण्डवान् ॥४०॥

अन्वयः— चैद्य पुण्ड्रकशाल्वानां दुर्मतेः दन्तवक्त्रस्य शम्बरः द्विविदः, पाठ, मुरः पञ्चजनादयः, माहात्म्यं च वधस्तेषां वाराणस्याः च दाहनम् भूमेः भारावतरणं पाण्डवान् निमित्ती कृत्य ॥३९-४०॥

अनुवाद— शिशुपाल, पौण्ड्रक, शाल्व, दुष्ट दन्तवक्त्र, शम्बर, द्विविद, पीठ, मुर, पञ्चजन आदि दैत्यों के बल पौरुष का वर्णन करके यह बतलाया गया है कि ऐसे वीरों को भी श्रीभगवान् मारे, भगवान् के चक्र ने काशी पुरी को जला दिया। महाभारत युद्ध में पाण्डवों को निमित्त बनाकर श्रीभगवान् पृथिवीं के बहुत बड़े भार को दूर किए ॥३९-४०॥

भावार्थ दीपिका

ये च शम्बरादयस्तेषां माहात्म्यं प्रभावो वधश्च ॥३९-४०॥

भाव प्रकाशिका

शम्बरासुर आदि के प्रभाव को बतलाकर उन सबों का वध श्रीभगवान् ने किया ॥३९-४०॥

विप्रशापापदेशेन संहारः स्वकुलस्य च । उद्धवस्य च संवादो वासुदेवस्य चाद्भुतः ॥४१॥

अन्वयः— विप्रशापापदेशेन स्वकुलस्यसंहार, उद्धवस्य वासुदेवस्य अद्भुतः संवादः ॥४१॥

अनुवाद— ब्राह्मणों के शाप का बहाना बनाकर श्रीहरि अपने वंश का संहार किए। श्रीभगवान् का तथा उद्धवजी का संवाद अद्भुत है ॥४१॥

भावार्थ दीपिका

एकादशार्थमाह-विप्रशापेति ॥४१॥

भाव प्रकाशिका

विप्रशप इत्यादि श्लोक से ग्यारहवें स्कन्ध के अर्थ का वर्णन किया गया है ॥४१॥

यत्रात्मविद्या ह्यखिला प्रोक्ता धर्मविनिर्णयः । ततो मर्त्यपरित्याग आत्मयोगानुभावतः ॥४२॥

अन्वयः— यत्र अखिला आत्मविद्या धर्मविनिर्णयः प्रोक्ताः ततः आत्मयोगानुभावतः मर्त्यपरित्यागः ॥४२॥

अनुवाद— उस स्कन्ध में सम्पूर्ण आत्म विद्याओं का तथा धर्मों के निर्णय का वर्णन है । उसके पश्चात् श्रीभगवान आत्मयोग के प्रभाव से मर्त्यलोक का परित्याग किए ॥४२॥

भावार्थ दीपिका

धर्मविनिर्णयो वर्णाश्रमधर्मविनिश्चयः । मर्त्यपरित्यागो मनुष्यत्वस्यान्तर्धानम् ॥४२॥

भाव प्रकाशिका

वर्णाश्रमों के धर्म का निर्णय मनुष्यत्व का अन्तर्धान ॥४२॥

युगलक्षणवृत्तिश्च कलौ नृणामुपप्लवः । चतुर्विधश्च प्रलय उत्पत्तिस्त्रिविधा तथा ॥४३॥

अन्वयः— युगलक्षण वृतिश्च, कलौ नृणाम् उपप्लवः, चतुर्विधः च प्रलयः तथा त्रिविधा उत्पत्तिश्च ॥४३॥

अनुवाद— बारहवें स्कन्ध में युगों के लक्षण तथा उनमें रहने वाले लोगों के व्यवहारों का वर्णन है । कलियुग में मनुष्यों की गति विपरीत होगी चार प्रकार के प्रलय और तीन प्रकार की उत्पत्ति का वर्णन भी यहीं है ॥४३॥

भावार्थ दीपिका

द्वादशार्थमाह-युगेति । युगलक्षणं तदनुरूपा वृत्तिश्चेत्यर्थः । त्रिविधा प्राकृतिकी नैमित्तिकी नित्या चेति ॥४३॥

भाव प्रकाशिका

बारहवें स्कन्ध का अर्थ **युग० इत्यादि** श्लोक से कहा गया है । इसमें युगों का लक्षण, लोगों के व्यवहार का वर्णन है । चार प्रकार के प्रलयों का वर्णन है तथा प्राकृतिक, नैमित्तिक और नित्य इन तीन प्रकार की उत्पत्तियों का भी वर्णन है ॥४३॥

देहत्यागश्च राजर्षेर्विष्णुरातस्य धीमतः । शाखाप्रणयनमृषेर्मार्कण्डेयस्य सत्कथा ॥
महापुरुषविन्यासः सूर्यस्य जगदात्मनः ॥४४॥

अन्वयः— धीमतः विष्णुरातस्य राजर्षेः देहत्यागः शाखाप्रणयनम् ऋषेः मार्कण्डेयस्य सत्कथा, जगादात्मनः सूर्यस्य महापुरुष विन्यासः ॥४४॥

अनुवाद— परम ज्ञानी राजा परीक्षित् का शरीर त्याग, वेदों की शाखाओं का विभाग, तथा महर्षि माकण्डेय की सत्कथा का वर्णन है । श्रीभगवान् के अङ्गो उपाङ्गो का वर्णन तथा जगदात्मा भगवान् सूर्य के गणों का वर्णन भी इस स्कन्ध में किया गया है ॥४४॥

भावार्थ दीपिका

ऋषेर्व्यासस्य । सूर्यस्य च विन्यास इत्यर्थः ॥४४॥

भाव प्रकाशिका

ऋषेः अर्थात् व्यासजी के सूर्य के गुणों का विन्यास ॥४४॥

इति चोक्तं द्विजश्रेष्ठा यत्पृष्टोऽहमिहास्मि वः । लीलावतारकर्माणि कीर्तितानीह सर्वशः ॥४५॥

अन्वयः— हे द्विजश्रेष्ठ ! इति यत् अहम् वः पृष्ठोस्मि कथितम् इह सर्वशः लीलावतारतानि ॥४५॥

अनुवाद— श्रेष्ठ ब्राह्मणों आपलोगों ने मुझसे जो पूछा था उसे मैंने आपलोगों को सुना दिया । मैंने श्रीभगवान् की लीलाओं और अवतारों का वर्णन किया है ॥४५॥

भावार्थ दीपिका

इति चोक्तमिति चकारादन्यदपि वो युष्माभिरिह यत्पृष्टोऽस्मि तदुक्तमिति । किमेवं नानार्थकथनेन तत्राह-लीलेति । सर्वशः तत्तदर्थकीर्तनद्वारेणेत्यर्थः ।।४५।।

भाव प्रकाशिका

आपलोगों ने जो पूछा है उसको और जिसको नहीं पूछा है; उसको भी मैंने का दिया है । यदि कहें कि विभिन्न प्रकार के विषयों को कहने से क्या लाभ है ? इसका उत्तर है कि श्रीभगवान् की लीला और अवतारों का मैंने वर्णन किया है । उन लीलाओं के कहने का प्रयोजन भी मैंने बतलाया है ।।४५।।

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन् । हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ।।४६।।

अन्वयः— पतितः स्खलितः आर्तः क्षुत्त्वा विवशः हरये नमः इत्युच्चैः ब्रुवन् सर्वपातकात् मुच्यते ।।४६।।

अनुवाद— जो मनुष्य गिरते-पड़ते फिसलते हुए, या दुःख भोगते हुए या छींकते हुए विवशतावश भी यदि जोर से **हरये नमः** पद का उच्चारण कर लेता है, तो वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है ।।४६।।

भावार्थ दीपिका

तत्कीर्तनेनापि किमित्यपेक्षायां तत्फलमाह द्वाभ्याम्-पतितः कूपादिषु । स्खलितः सोपानादिषु । आर्तो दुःखितः । क्षुत्त्वा क्षुतं कृत्वा विवशोऽपि ।।४६।।

भाव प्रकाशिका

श्रीभगवान् के नामादि कीर्तन से क्या लाभ है तो इसका उत्तर है कि कुएँ आदि में गिरा हुआ, सीढ़ी आदि से फिसलते समय, दुःखी, छिकते समय या विवश होकर भी हरये नमः पद का उच्चारण करके पापों से छूट जाता है ।।४६।।

संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेष यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ।।४७।।

अन्वयः— अनन्तो भगवान् संकीर्त्यमानः श्रुतानुभावः पुंसां चित्तं प्रविश्य पुंसाम् अशेषं व्यसनं विधुनति अर्कतमो यथा अतिवातः अभ्रं यथा ।।४२।।

अनुवाद— समस्त परिच्छेदों से रहित श्रीभगवान् के नाम का संकीर्तन करने अथवा उनकी महिमा का श्रवण करने से पुरुषों के चित्त में प्रवेश करके उनके समस्त पापों का उसी तरह विनाश कर देते हैं । जिस तरह सूर्य अन्धकार को विनष्ट कर देते हैं, तथा आँधी मेघों को तितर-वितर कर देती है ।।४७।।

भावार्थ दीपिका

सङ्कीर्त्यमानो यद्वा श्रुतोऽनुभावो यस्य स पुंसां चित्तं प्रविश्य निःशेषं दुःखं विधुनति । हीति सतामनुभवं प्रमाणयति। अर्को गिरिगुहादिध्वान्तं न धुनोतीत्यपरितोषाद्दृष्टान्तान्तरमाह-अतिवातोऽभ्रमिवेति ।।४७।।

भाव प्रकाशिका

सङ्कीर्तन करने तथा उनकी महिमा का श्रवण करने वाले पुरुष के चित्त में प्रवेश करके श्रीहरि उसके समस्त पापों को विनष्ट उसी तरह से कर देते हैं जिस तरह सूर्य अन्धकार को विनष्ट कर देते हैं । सूर्य पर्वत की गुफा का अन्धकार नहीं दूर करते हैं, इसी असन्तोष के कारण दूसरा उदाहरण देते हैं, आँधी मेघों को तितर-वितर कर देती है ।।४७।।

मृषागिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः ।
तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ।।४८।।

अन्वयः— ताः गिरः मृषा असती असत्कथा यद् भगवान् अधोक्षजः न कथ्यते । तदेव सत्यं तदुहैवमङ्गलम् तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम् ।।४८।।

अनुवाद— जिस वाणी के द्वारा श्रीभगवान् के गुण, लीला, नाम, धाम आदि का वर्णन नहीं किया जाता है, वह सुन्दर वाणी भी असुन्दर है और जिस वाणी के द्वारा श्रीभगवान् के गुणों का वर्णन किया जाता है, वही वाणी पवित्र सत्य तथा मङ्गलमयी हैं ।।४८।।

भावार्थ दीपिका

हरिसंकीर्तनमेव महाफलं तद्व्यतिरिक्तं सर्वं मिथ्यालापमात्रमिति प्रपञ्चयति-मृषागिर इति चतुर्भिः । मृषागिरो मिथ्यावाचः। असतीरसत्यः । असतां कथा यासु ताः । यद्यासु उत्तमश्लोकस्य यशोऽनुगीयत इति यत्तदेव सत्यं तदेव हि मङ्गलम् । उ ह इति हर्षे । भगवद्गुणानामभ्युदयो यस्मात्तत् ।।४८।।

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि का सङ्कीर्तन ही महान फल है । उससे भिन्न सब कुछ मिथ्या अलाप मात्र ही है, इसी अर्थ का विस्तार करते हैं । असत् पुरुषों का ही जिसमें वर्णन हो उसे असती कथा कहेंगे । जिन वाणियों में श्रीभगवान् का ही गान किया जाता हो वह सत्य है तथा वही मङ्गलमय है । तथा ह ये दोनों अव्यय हर्षार्थक हैं । जिससे श्रीभगवान् के ही गुणों का अभ्युदय हो वहीं मङ्गलमय है ।।४८।।

तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम् ।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते ।।४९।।

अन्वयः— यदुत्तमश्लोक यशोऽनुगीयते तदेव रम्यं रुचिरं नवं-नवं तदेव शश्वत् मनसः महोत्सवम् तदेव नृणां शोकार्णवशोषणम् ।।४९।।

अनुवाद— जिस वचन के द्वारा भगवान् के परम पवित्र, यश का गान होता है, वही परम रमणीय रुचिकर एवं प्रत्येक क्षण में नवीन-नवीन प्रतीत होता है । उससे अनन्त काल तक मन को परमानन्द की अनुभूति होती हैं । मनुष्य का सारा शोक चाहे वह समुद्र के समान ही गहरा और लम्बा क्यों न हो उस वचन के प्रभाव से सदा-सदा के लिए सूख जाता है ।।४९।।

भावार्थ दीपिका

नवं नवं यथा भवति तथा रुचिरं रुचिप्रदम् । महानुत्सवो यस्मात् ।।४९।।

भाव प्रकाशिका

नवीन-नवीन जो प्रतीत होता है वही रुचिप्रद होता है वही मन का महान् उत्सव है ।।४९।।

न तद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद्ध्वाङ्क्षतीर्थं न तु हंससेवितं यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ।।५०।।

अन्वयः— तत् चित्रपद वचः जगत् पवित्रं हरेः यशः कर्हिचित् न प्रगृणीत तत् ध्वांक्ष तीर्थम् न तु हंस सेवितं यत्राच्युतः तव हि अमलाः साधवः ।।५०।।

अनुवाद— रस भाव, एवं अलङ्कार से भी परिपूर्ण जो वाणी जगत् को पवित्र करने वाले श्रीहरि के यशों का वर्णन नहीं करती है, वह कौओं के लिए उच्छिष्ट फेंकने के स्थान के समान अत्यन्त अपवित्र है । मानसरोवर वासी हँस उसका सेवन नहीं करते हैं । निर्मल साधु पुरुष तो उसी वाणी का सेवन करते है, जिसमें भगवान् अच्युत का वर्णन हो ।।५०।।

भावार्थ दीपिका

चित्राणि पदानि यस्मिन् । तदपि जगत्पवित्रयतीति तथा तद्धरेर्यशो न प्रगृणीत न वर्णयेत्तद्वचो ध्वाङ्क्षतीर्थं काकतुल्यनराणां रतिस्थानं नतु हंसैर्ज्ञानिभिः सेवितम् । तत्र हेतुः-यत्रेति ॥५०॥

भाव प्रकाशिका

जिसमें अत्यन्त मनोहर पदों का विन्यास हो वह भी वाणी यदि जगत को पवित्र करने वाले श्रीहरि के यशों का वर्णन न करे तो, वह वाणी कौओं के सदृश मनुष्यों के लिए आनन्दप्रद होती है । ज्ञानी पुरुष उसका सेवन नहीं करते हैं उसका कारण है **यत्र० इत्यादि** श्लोक के अन्तिम पाद से बतलाया गया है ॥५०॥

स वाग्विसर्गो जनताघसंप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ।
नामान्यनन्तस्य यशोङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥५१॥

अन्वयः— स वाग्विसर्गः जनताघसंप्लवः यस्मिन् प्रतिश्लोकम् अबद्धवत्यपि अनन्तस्य यशोङ्कितानि नामानि यत् साधवः शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति ॥५१॥

अनुवाद— वाणी का वही प्रयोग मनुष्यों के पाप समूह का विनाशक है, जो सुन्दर रचना नहीं है किन्तु जिसके प्रत्येक पद में श्रीभगवान् के सुयश सूचक नाम विद्यमान हैं । उसी वाणी का साधुजन श्रवण, गायन और कीर्तन किया करते हैं ॥५१॥

भावार्थ दीपिका

स वाग्विसर्गः स एव वाचः प्रयोगो जनताघसंप्लवो जनसमूहाघनाशकः । यद्यस्मात्तयैवान्यैः कीर्त्यमानानि शृण्वन्ति श्रोतरि सति गायन्ति, नो चेत्स्वयमेव गृणन्ति ॥५१॥

भाव प्रकाशिका

वाणी का वही प्रयोग जनता के पाप समूह का विनाशक है । क्योंकि दूसरे लोग भी कीर्तन करते हैं, यदि कोई श्रोता होता है तो सुनाते हैं नहीं तो स्वयं उसका गायन करते हैं तथा उच्चारण करते हैं ॥५१॥

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न ह्यर्पितं कर्म यदप्यनुत्तमम् ॥५२॥

अन्वयः— नैष्कर्म्यम् अपि अच्युतभाववर्जितम् अमलं निरञ्जन ज्ञानं न शोभते शश्वदभद्रमीश्वरे नहिअर्चितं कर्म यदप्यनुत्तमं पुनः कुतः ॥५२॥

अनुवाद— ब्रह्म का प्रकाशक निरूपाधिक भी ज्ञान यदि मोक्ष प्राप्ति का साधन भी हो किन्तु भगवान् की भक्ति के भाव से रहित हो तो उसकी शोभा नहीं होती है इसी तरह उत्तमोत्तम कर्म भी यदि श्रीभगवान् को नहीं समर्पित किया गया है । तो वह भी कैसे सुशोभित होगा ?॥५२॥

भावार्थ दीपिका

इदानीं ज्ञानकर्मादरादपि भगवत्कीर्तनादिष्वेवादरः कर्तव्य इत्याह त्रिभिः-नैष्कर्म्यं ब्रह्म तत्प्रकाशकं यज्ज्ञानं यतो निरञ्जनमुपाधिनिवर्तकं तदप्यच्युतभक्तिवर्जितं चेन्न शोभते, नापरोक्षपर्यन्तं भवतीत्यर्थः । ईश्वरे न चेदर्पितं तर्हि यदनुत्तमं सर्वोत्तममपि कर्म तदपि पुनः कुतः शोभते । यतः शश्वत्साधनकाले फलकाले चाभद्रं दुःखात्मकम् ॥५२॥

भाव प्रकाशिका

अब ज्ञान और कर्म के भी आदर से अधिक आदर भगवान् के नाम के कीर्तन का तीन श्लाको से बतलाते हैं । यद्यपि उपाधि निवर्तक तथा ब्रह्म प्रकाशक भी ज्ञान श्रीभगवान् की भक्ति के भाव मे रहित है तो वह अपरोक्षज्ञान

पर्यन्त नहीं रहता है । जो कर्म श्रीभगवान् को नहीं समर्पित किया गया है वह सर्वोत्तम कर्म होकर भी नहीं सुशोभित होता है । क्योंकि वह फलप्रदान के समय दु:खद ही होता है ।।५२।।

यशः श्रियामेव परिश्रमः परो वर्णाश्रमाचारतपःश्रुतादिषु ।
अविस्मृतिः श्रीधरपादपद्मयोर्गुणानुवादश्रवणादिभिर्हरेः ।।५३।।

अन्वयः— वर्णाश्रमाचारतपः श्रुतादिषु परः परिश्रमः यशः श्रियामेक गुणानुवाद श्रवणादिभिः हरेः श्रीधर पादपद्मयोः अविस्मृतिः ।।५३।।

अनुवाद— वर्णाश्रम के अनुकूल आचरण, तपस्या और अध्ययन आदि में जो अत्यधिक परिश्रम किया जाता है वह यश और श्रीप्रदान करने वाला होता है । किन्तु श्रीभगवान् का गुण लीला तथा नाम आदि का कीर्तन तो उनके चरणों की निरन्तर स्मृति को प्रदान करता है ।।५३।।

भावार्थ दीपिका

किंच, वर्णाश्रमाचारादिषु यः परो महान्परिश्रमः स यशोयुक्तायां श्रियामेव । कीर्तिः संपत्तिश्च केवलं परः पुरुषार्थ इत्यर्थः । गुणानुवादादिभिस्तु श्रीधरपादपद्मयोरविस्मृतिर्भवति ।।५३।।

भाव प्रकाशिका

किञ्च वर्णों एवं आश्रमों के अनुकूल आचरण आदि में जो कठोर परिश्रम किया जाता है उससे तो यश और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । उसे सबसे श्रेष्ठ पुरुषार्थ कीर्ति और सम्पत्ति की प्राप्ति होती है । श्रीभगवान् के गुणानुवादादि के द्वारा तो श्रीभगवान् के चरण कमलों की निरन्तर स्मृति होती है ।।५३।।

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः क्षिणोत्यभद्राणि शमं तनोति च ।
सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम् ।।५४।।

अन्वयः— कृष्णपदारविन्दयोः अविस्मृतिः अभद्राणिक्षिणोति शमं च तनोति सत्त्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं विज्ञानविरागयुक्तम् ज्ञानं च तनोति ।।५४।।

अनुवाद— भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्द का निरन्तर चिन्तन, समस्त अमङ्गलों का विनाश कर देता है । शान्ति, का विस्तार करता है, अन्तःकरण की शुद्धि एवं परमात्मा की भक्ति एवं परम वैराग्य से युक्त ज्ञान का विस्तार करता है ।।५४।।

भावार्थ दीपिका

ततः किमत आह-अविस्मृतिरिति । क्षिणोति नाशयति ।।५४।।

भाव प्रकाशिका

उसके पश्चात् क्या होता है तो इस बात को **अविस्मृति० इत्यादि** श्लोक से कहते है । क्षिणोति अर्थात् नष्ट कर देता है ।।५४।।

यूयं द्विजाग्र्या बत भूरिभागा यच्छश्वदात्मन्यखिलात्मभूतम् ।
नारायणं देवमदेवमीशमजस्रभावा भजताविवेश्य ।।५५।।

अन्वयः— हे द्विजाग्रया यूयं बत भूरिभागाः यत् शाश्वत अखिलात्मभूतम् देवदेवमीशम् नारायणम् आत्मनि आविवेश्य अजस्रभावाः भावाः यजत ।।५५।।

अनुवाद— हे ब्रह्मणवर्य शौनकादि महर्षियों, आपलोग निश्चित रूप से महाभाग्यवात् है, क्योंकि आपलोग शाश्वत,

सम्पूर्ण जगत् की आत्मा देवाधिदेव भगवान् नारायण को अपने अन्त:करण में प्रवेश कराकर निरन्तर आपलोग उनका भजन किया करते हैं ।।५५।।

भावार्थ दीपिका

अथेदानीं श्रोतॄनात्मानं चाभिनन्दन्नाह-यूयमिति द्वाभ्याम् । हे द्विजाग्र्याः यद्यस्मादात्मन्यन्तः करणे श्रीनारायणमाविवेश्य शश्वद्भजत। संभावनायां लोट् । अतो भूरिभागा बहुपुण्याः । कथंभूतम् । अखिलात्मभूतं सर्वान्तर्यामिणम् । अतएव देवं सर्वोपास्यम् । अदेवं न देवोऽन्यो यस्य तम् । कुतः । ईशम् यद्वा, यस्माद्यूयं भूरिभागास्तपआदिसंपन्नास्ततो नारायणं भजतेति विधिः ।।५५।।

भाव प्रकाशिका

अब इस **यूयम्०** **इत्यादि** श्लोक से सूतजी श्रोताओं और अपना भी अभिनन्दन करते हुए कहते हैं- क्योंकि आपलोग अपने अन्त:करण में भगवान् नारायण को प्रवेश कराकर निरन्तर भजन करें यहाँ सम्भावना के अर्थ में लोट्लकार है । अतएव आपलोग पुण्यवान हैं क्योंकि आपलोग सर्वात्मा एवं सर्वोपास्य जिनका कोई दूसरा उपास्य नहीं है । सबों के नियामक । अथवा चूकि आपलोग तपस्या आदि से सम्पन्न हैं अतएव भगवान नारायण का आपलोग भजन करें । यहाँ विधि है ।।५५।।

अहं च संस्मारित आत्मतत्त्वं श्रुतं पुरा मे परमर्षिवक्त्रात् ।
प्रायोपवेशे नृपतेः परीक्षितः सदस्यृषीणां महतां च शृण्वताम् ।।५६।।

अन्वयः— नृपतेः परीक्षितः सदसि महतां ऋषीणाम् शृण्वताम् परमर्षिक्त्रात् पुरा श्रुतं आत्मतत्त्वं संस्मारितः ।।५६।।

अनुवाद— राजा परीक्षित् जब प्रायोपवेशन पर बैठै थे उनकी सभा में बड़े-बड़े ऋषिगण सुन रहे थे उसी समय मैंने श्रीशकुदेवजी से आत्मतत्त्व का श्रवण किया था । उसी को आपलोग ने मुझे याद दिलाया है ।।५६।।

भावार्थ दीपिका

मे मया श्रुतम् ।।५६।।

भाव प्रकाशिका

मैंने श्रवण किया ।।५६।।

एतद्वः कथितं विप्राः कथनीयोरुकर्मणः । माहात्म्यं वासुदेवस्य सर्वाशुभविनाशनम् ।।५७।।

अन्वयः— हे विप्रा एतद् वः कथनीयोरुकर्मणः वासुदेवस्य सर्वाशुभविनाशनम् कथितम् ।।५७।।

अनुवाद— हे विप्रो ! भगवान् वासुदेव की एक-एक लीला सदा श्रवण करने योग्य । इस प्रसङ्ग में मैंने उन्हीं का वर्णन किया है । वह समस्त अशुभ संस्कारों को विनष्ट करने वाला है ।।५७।।

भावार्थ दीपिका

एतत्पुराणकीर्तनादिफलं प्रपञ्चयितुमाह-एतदित्यष्टभिः ।।५७।।

भाव प्रकाशिका

इस पुराण के कीर्तन आदि काफल विस्तार से आठ श्लोकों से करते हैं ।।५७।।

य एवं श्रावयेन्नित्यं यामक्षणमनन्यधीः । श्रद्धावान् योऽनुशृणुयात्पुनात्यात्मानमेव सः ।।५८।।

अन्वयः— यः एवं श्रद्धावान् अनन्यधी नित्यं यामक्षण श्रावयेत् यः अनुशृणुयात् सः आत्मानमेव पुनाति ।।५८।।

अनुवाद— जो उपासक इस प्रकार श्रद्धा पूर्वक तथा एकाग्र मन से एक प्रहर अथवा एक क्षण भी इसको सुनता है अथवा सुनाता है वह अपनी आत्मा को पवित्र बना देता है ।।५८।।

भावार्थ दीपिका

यामक्षणं यामं क्षणं चेत्यर्थः आत्मानमेव साक्षात्पुनाति नतु स्नानादिवद्देहमात्रम् ।।५८।।

भाव प्रकाशिका

एक प्रहर अथवा एकक्षण, साक्षात् अपनी आत्मा को नकि देह मात्र को पवित्र करता है ।।५८।।

द्वादश्यामेकादश्यां वा शृण्वन्नायुष्यवान्भवेत् । पठत्यनश्नन्प्रयतस्ततो भवत्यपातकी ।।५९।।

अन्वयः— द्वादश्यामेकादश्यां वा शृण्वनायुष्यवान् भवेत् अनश्नन् प्रयतः पठति अपातकी भवति ।।५९।।

अनुवाद— द्वादशी अथवा एकादशी के दिन इसको सावधानी पूर्वक पढ़ने वाला अथवा सुनने वाला आयुष्यवान् हो जाता है बिना खाये ही सावधानी पूर्वक पढ़ने वाला निष्पाप हो जाता है ।।५९।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।५९।।

पुष्करे मथुरायां च द्वारवत्यां यतात्मवान् । उपोष्य संहितामेतां पठित्वा मुच्यते भयात् ।।६०।।

अन्वयः— पुष्करे मथुरायां वा द्वारवत्यां यतात्मवान उपोष्य संहितामेतां पठित्वा भयात् मुच्यते ।।६०।।

अनुवाद— पुष्कर क्षेत्र में अथवा मथुरा में अथवा द्वारका में उपवास करके इस संहिता का पाठ करने वाला सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है ।।६०।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६०।।

देवता मुनयः सिद्धाः पितरो मनवो नृपाः । यच्छन्ति कामान्गृणतः शृण्वतो यस्य कीर्तनात् ।।६१।।

अन्वयः— यस्य कीर्तनात् देवताः मुनयः सिद्धाः पितरः मनवः नृपाः शृण्वतः गृणतः कामान् यच्छन्ति ।।६१।।

अनुवाद— इस श्रीमद्भागवत पुराण का कीर्तन करने से कहने अथवा सुनने से प्रसन्न होकर देवता, मुनि सिद्ध पितृगण मनु एवं राजा उसकी कामनाओं को पूर्ण करते रहते हैं ।।६१।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।६१।।

ऋचो यजूंषि सामानि द्विजोऽधीत्यानुविन्दते । मधुकुल्या घृतकुल्याः पयःकुल्याश्च तत्फलम् ।।६२।।

अन्वयः— ऋचो यजूंषि सामानि अधीत्य यत् मधुकुल्या, घृतकुल्या दुग्धकुल्या अनुविन्दते तत्फलम् ।।६२।।

अनुवाद— ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद का अध्ययन करके मनुष्य जो मधुकुल्या, घृतकुल्या तथा दुग्ध कुल्या के फलरूप से प्राप्त करता है, उस फल की प्राप्ति इस श्रीमद्भागवत पुराण के अध्ययन से हो जाती है ।।६२।।

भावार्थ दीपिका

ऋगाद्यधीत्य द्विजो मधुकुल्यादि यदनुविन्दते तत्फलमेतां पठित्वानुविन्दत इति ।।६२।।

भाव प्रकाशिका

ऋगादि वेदों का अध्ययन करके द्विज जो फलरूप से मधुकुल्या आदि को प्राप्त करता है उस फल की प्राप्ति इस पुराण का पाठ करने से होती हैं ।।६२।।

पुराणसंहितामेतामधीत्य प्रयतो द्विजः । प्रोक्तं भगवता यत्तु तत्पदं परमं व्रजेत् ।।६३।।

अन्वयः— एतां पुराणसंहिताम् अधीत्य प्रयतो द्विजः यत्तु भगवता प्रोक्तं तत्परमं पदं व्रजेत् ।।६३।।

अनुवाद— इस पुराण संहिता का पाठ करके संयमी विप्र श्रीभगवान् के उस परमपद को प्राप्त करता है जिसका वर्णन श्रीभगवान् ने स्वयं किया है ।।६३।।

भावार्थ दीपिका

किंच, प्रोक्तमिति ।।६३।।

भाव प्रकाशिका

वर्णित ।।६३।।

विप्रोऽधीत्याप्नुयात्प्रज्ञां राजन्योदधिमेखलाम् । वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुध्येत पातकात् ।।६४।।

अन्वयः— विप्रः अधित्य प्रज्ञाम् आप्नुयात् राजन्योदधिमेखलाम् वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुद्धयेत् पातकात्।।६४।।

अनुवाद— इस संहिता का अध्ययन करके ब्राह्मण प्रज्ञा को प्राप्त करता है, क्षत्रिय समुद्र पर्यन्त की पृथिवी का राज्य प्राप्त करता है । वैश्य निधिपति हो जाता है और शूद्र अपने पापों से मुक्त हो जाता है ।।६४।।

भावार्थ दीपिका

राजन्य उदधिमेखलां पृथ्वीम् । संधिरार्षः ।।६४।।

भाव प्रकाशिका

क्षत्रिय समुद्र पर्यन्त की पृथिवी का राज्य प्राप्त करता है । राजन्योदधि में सधि आर्ष है ।।६४।।

कलिमलसंहतिकालनोऽखिलेशो हरिरितरत्र न गीयते ह्यभीक्ष्णम् ।
इह तु पुनर्भगवानशेषमूर्तिः परिपठितोऽनुपदं कथाप्रसङ्गैः ।।६५।।

अन्वयः— अखिलेशः कलिमलकालनः हरिः इतरत्र अभीक्ष्णं नगीयते इह तु पुनः अशेषमूर्ति भगवान् कथाप्रसङ्गे अनुपदं परिपठितः ।।६५।।

अनुवाद— सम्पूर्ण जगत् के स्वामी, कलियुग के दोष समूह को विनष्ट करने वाले श्रीहरि का श्रीमद्भागवत पुराण व्यतिरिक्त पुराणों में श्रीभगवान् निरन्तर वर्णन नहीं है और इस पुराण में तो कथाओं के प्रसङ्ग में पग-पग पर सर्वस्वरूप श्रीभगवान् का ही वर्णन हुआ है ।।६५।।

भावार्थ दीपिका

अस्य पुराणस्यैवंप्रभावातिरेके कारणमाह-कलिमलानां संहतिं समूहंकालयति विनाशयतीति तथा । इतरत्र शास्त्रान्तरे।।६५।।

भाव प्रकाशिका

इस पुराण के इस तरह के प्रभावातिशय का कारण **कलिमलः इत्यादि** श्लोक से बतलाते हैं । कलि के दोष समूह के विनाशकता दूसरे शास्त्र में ।।६५।।

तमहमजमनन्तमात्मतत्त्वं जगदुदयस्थितिसंयमात्मशक्तिम् ।
द्युपतिभिरजशक्रशंकराद्यैर्दुरवसितस्तवमच्युतं नतोऽस्मि ।।६६।।

अन्वयः— तम् अजम् अनन्तम् आत्मतत्त्वं जगदुदयस्थित संयमात्मशन्तिम् द्युपतिभिरजशक्र शङ्कराद्यैः दुरवसित स्तवमच्युतं नतोस्मि ।।६६।।

अनुवाद— उन अजन्मा, अनन्त, परमात्म तत्त्व को जगत् की उत्पत्ति स्थिति एवं संहार की शक्ति से सम्पन्न ब्रह्मा, इन्द्र, तथा शङ्कर आदि लोकपालों की स्तुतियों के अविषयभूत सदा अपने स्वरूप में स्थित रहने वाले भगवान् अच्युत को प्रणाम करता हूँ ।।६६।।

भावार्थ दीपिका

शास्त्रप्रतिपादितं भगवन्तं नमस्करोति-तमिति द्वाभ्याम् । जगदुदयस्थितिसंयमात्मानो रजआदयः शक्तयो यस्य तम् । द्युपतिभिर्देवैरपि दुरवसितोऽज्ञातः स्तवः स्तोत्रं यस्य तम् ।।६६।।

भाव प्रकाशिका

शास्त्रों द्वारा जिनका प्रतिपादन किया गया है, ऐसे श्रीभगवान् को सूतजी **तम० इत्यादि** दो श्लोकों से करते हैं। जगत् की उत्पत्ति स्थिति एवं संहार की शक्ति से सम्पन्न, ब्रह्मा, इन्द्र तथा शङ्कर आदि देवताओं की स्तुतियों के अविषय भूत श्रीहरि को मैं नमस्कार करता हूँ ।।६६।।

उपचितनवशक्तिभिः स्व आत्मन्युपरचितस्थिरजङ्गमालयाय ।
भगवत उपलब्धिमात्रधाम्ने सुरऋषभाय नमः सनातनाय ।।६७।।

अन्वयः— उपचितनवशक्तिभिः स्व आत्मनि उपरचित स्थिरजङ्गमालयाय उपलब्धिधाम्ने भगवते सुरऋषभाय सनातनाय नमः ।।६७।।

अनुवाद— जिन्होंने अपनी आत्मा में ही प्रकृति आदि नव शक्तियों का सङ्कल्प करके इस चराचर जगत् की सृष्टि करने वाले तथा जो इसके अधिष्ठान रूप से स्थित है, एवं परमपद जिनकी अनुभूति मात्र है उन देवताओं के आराध्य श्रीभगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ ।।६७।।

भावार्थ दीपिका

उपचिताभिरुद्रिक्ताभिर्नवशक्तिभिः प्रकृतिपुरुषमहदहंकारतन्मात्ररूपाभिः स्व आत्मन्येवोपरचितं स्थिरं जङ्गमं चालयो यस्य तस्मै भगवते ।।६७।।

भाव प्रकाशिका

उद्रिक्त प्रकृति, पुरुष, महान् अहङ्कार तथा पञ्चतन्मात्र रूप नव शक्तियों द्वारा श्रीभगवान् में ही समृद्ध जड़ एवं जङ्गम के लय काल तक ।।६७।।

स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावोऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ।।६८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धार्थनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

अन्वयः— स्वसुखनिभृतचेताः तदव्युदस्तान्यभावः अपि अजित रुचिर लीलाकृष्टसारः तदीयम्, यः कृपया तत्त्वदीपं पुराण व्यतनुत अखिल वृजिनध्नं व्यासूनुं नतोऽस्मि ।।६८।।

अनुवाद— सदैव अपने आत्मानन्द में मग्न रहने वाले उसके कारण जिनकी भेददृष्टि समाप्त हो चुकी थी, भगवान् श्रीकृष्ण की अत्यन्त मधुर लीलाओं ने जिनकी वृत्तियों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था, जो जगत् के प्राणियों पर कृपा करके तत्त्वप्रकाशक श्रीमद्भागवत पुराण का विस्तार किए तथा जो समस्त पापों को विनष्ट करने वाले हैं। उन व्यासजी के पुत्र श्रीशुदकेवजी को मैं नमस्कार करता हूँ ।।६८।।

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतम महापुराणके अर्थ निरूपण नामक बारहवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ।।६८।।

भावार्थ दीपिका

श्रीगुरुं नमस्करोति-स्वसुखेनैव निभृतं पूर्णं चेतो यस्य । तेनैव व्युदस्तोऽन्यस्मिन् भावो यस्य तथाभूतोऽप्यजितस्य रुचिराभिर्लीलाभिराकृष्टः सारः स्वसुखगतं स्थैर्यं यस्य सः । तत्त्वदीपं परमार्थप्रकाशकं श्रीभागवतं यो व्यतनुत तं नतोऽस्मीति।।६८।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वादशस्कन्धे भावार्थदीपिकायां टीकायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

इस श्लोक से सूतजी अपने गुरु श्रीशुकदेवजी को नमस्कार करते हैं-आत्मानन्द में ही निरन्तर मग्न रहने के कारण जिनकी भेददृष्टि समाप्त हो चुकी थी। श्रीभगवान् श्रीकृष्ण की मङ्गलमय लीलाओं ने जिनके अन्तःकरण को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था तथा तत्त्वप्रकाशक पुराण श्रीमद्भागवत का विस्तार करने वाले व्यासात्मज शुकदेवजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥६८॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध की भावार्थ दीपिका टीका के बारहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत भावप्रकाशिका व्याख्या सम्पूर्ण हुई ॥१२॥

तेरहवाँ अध्याय

विभिन्न पुराणों की श्लोक संख्या और श्रीमद्भागवत की महिमा

सूत उवाच

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैर्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थितद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥१॥

अन्वयः— यम् बह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुत दिव्यैः स्तवैः स्तुन्वन्ति, साङ्गपदक्रमोपनिषदैः वैदै सामगाः । यं गायन्ति ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा योगिनः यं पश्यन्ति सुरासुरगणाः यस्यान्तं न विदुः तस्मै देवाय नमः ॥१॥

श्रीसूतजी ने कहा

अनुवाद—ब्रह्माजी, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गण अपनी स्तुतियों के द्वारा जिनके गुण गान में संलग्न रहते है, साम सङ्गीत वेत्ता ऋषिगण, पद, क्रम, तथा उपनिषदों के साथ वेदों द्वारा जिनका गायन करते हैं। ध्यान में अवस्थित योगिजन श्रीभगवान् में ही मन के लगे रहने से जिनका अपने अन्तःकरण में दर्शन किया करते हैं, देवता एवं असुरगण जिनके अन्तकापता नहीं लगा पाये उन स्वयं प्रकाश श्रीभगवान् को मेरा नमस्कार है ॥१॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोदशे पुराणानां संख्यामाह यथाक्रमम् । दानं दानस्य माहात्म्यं श्रीमद्भागवतस्यच ॥१॥ सर्वपुराणसंख्या-दीनुपवर्णयिष्यंस्तत्प्रतिपाद्यं देवं प्रणमति-यमिति । स्तर्वेदैश्च स्तुन्वन्ति स्तुवन्ति उपनिषच्छब्दस्याकारान्तत्वं छन्दोनुरोधेन । ध्यानेनावस्थितं निश्चलं तद्गतं च यन्मनस्तेन यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणाः ॥१॥

भाव प्रकाशिका

तेरहवें अध्याय में पुराणों, की क्रमशः श्लोक संख्या बतलायी गयी है तथा श्रीमद्भागवत महापुराण का दान करने की महिमा बतलायी गयी है ॥१॥ सभी पुराणों की श्लोक संख्या आदि का वर्णन करने की इच्छा से उनके प्रतिपाद्य देवता को **यम्० इत्यादि** श्लोक से सूतजी प्रणाम करते हैं । स्तुतियों तथा वेदों से जिनकी स्तुति करते हैं । उपनिषद् शब्द का अकारान्तत्व छन्द के अनुरोध से किया गया है । ध्यान के द्वारा जिनका मन जिनमें निश्चल हो गया उस मन के द्वारा देवता तथा असुरगण जिनके अन्त का पता नहीं लगा सके ॥१॥

पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयनान्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासानिलाः पान्तु वः ।
यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद्वेलानिभेनाम्भसां यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति ॥२॥

अन्वयः— पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरेग्रावाग्रकण्डूयनात् निद्रालोः कमठाकृतेः भगवत श्वासानिलाः यत्संस्कारकलानुवर्तनवशात् जलनिधे वेलनिभेनाम्भासां अतन्द्रितं यातायातम् अद्यापि नविश्राम्यति ।।२।।

अनुवाद— दुग्धाब्धि मन्थन के समय श्रीभगवान् ने कमठावतार ग्रहण किया था । उस समय उनकी पीठ पर मन्दराचल मथानि के समान धूम रहा था, मन्दराचल की चट्टानों की नोक से खुजलाने के कारण श्रीभगवान् को सुख मिला तो वे सोने लगे । उसके कारण श्रीभगवान् के श्वासो की गति बढ़ गयी । उस श्वासवायु का जो समुद्र जल को धक्का लगा, उसके संस्कार से आज भी समुद्र जल शान्त नहीं होता है, लहरों के रूप में लहराता रहता है । श्रीभगवान् की वही श्वास वायु आपलोगों की रक्षा करें ।।२।।

भावार्थ दीपिका

क्षीरोदमथनादौ दुर्ज्ञेयत्वमेव प्रदर्शयितुं कूर्मावतारमनुस्मारयन्नाशिषः प्रार्थयते-पृष्ठे भ्राम्यन्नमन्दो मन्दरगिरिर्गरिष्ठो मन्दराचलस्तस्य ग्रावाणस्तेषामग्राणि तैः कण्डूयनात्तेन सुखेन निद्रालोर्निद्राशीलस्य । येषां श्वासानिलानां संस्कारास्तेषां कलाश्च लेशास्तदनुवर्तनवशाज्जलनिधेरम्भसां यातायात न विश्राम्यति । ननु समुद्र क्षोभादेव तत्र संस्कारवशात्तत्राह-वेलाक्षोभस्तस्य निभेन मिषेण ।।२।।

भाव प्रकाशिका

क्षीरसागर के मंथन के प्रारम्भ में श्रीभगवान् के दुर्ज्ञेयत्व को प्रदर्शित करने के लिए कूर्मावतार का स्मरण दिलाते हुए उनसे अपनी रक्षा का आशीर्वाद माँगते हैं । भगवान् कूर्म के पीठ पर विशाल मन्दराचल पर्वत मथानी के समान घूम रहा था । पर्वत शिला की नोक से उनकी पीठ के खुजलाये जाने के कारण श्रीभगवान् को नींद लगने लगी। निद्रा के कारण श्वास की गति जो बढ़ी उसका धक्का लगने के कारण आज भी समुद्र में उत्ताल ताल तरङ्गे उठती रहती हैं । वह शान्त नहीं होती हैं । यदि कहें कि समुद्र में क्षोभ के कारण तरङ्गे उठती है तो ऐसी बात नहीं है, वह संस्कार के कारण ही समुद्र लहराता है ।।२।।

पुराणसंख्यासंभूतिमस्य वाच्यप्रयोजने । दानं दानस्य माहात्म्यं पाठादेश्च निबोधते ॥३॥

अन्वयः— पुराणसंख्या, सम्भूतिम् अस्यवाच्य प्रयोजने, दानं दानस्यमाहात्म्यम् पाठादेश्च माहात्म्यं निबोधत ।।३।।

अनुवाद— हे शौनकादि महर्षियो ! पुराणों की संख्या, अलग-अलग पुराणों की श्लोक संख्या उनका जोड़, श्रीमद्भागवतके प्रतिपाद्यविषय, तथा उसका प्रयोजन, श्रीमद्भागवत के दान की विधि, दान का माहात्म्य, तथा पाठ आदि की भी महिमा आपलोग सुनें ।।३।।

भावार्थ दीपिका

पुराणसंहितानां संख्यास्तासां संभूतिं समाहारम् । अस्य तु श्रीभागवतस्य वाच्यं विषयः प्रयोजनं च दानं च तस्य पाठादेश्च माहात्म्यं निबोधत ।।३।।

भाव प्रकाशिका

पुराण संहितानां (श्लोक) संख्या, उन सबों का जोड़, श्रीमद्भागवत महापुराण के प्रतिपाद्य विषय, उसका प्रयोजन, श्रीमद्भागवत पुराण की दान विधि, उसका प्रयोजन श्रीमद्भागवत के दान और उसके पाठ आदि का माहात्म्य आपलोग सुनें ।।३।।

ब्राह्मं दशसहस्राणि पाद्मं पञ्चोनषष्टि च । श्रीवैष्णवं त्रयोविंशच्चतुर्विंशति शैवकम् ॥४॥

अन्वयः— ब्राह्मं दश सहस्राणि, पाद्मं पञ्चोनषष्ठि च, श्रीवैष्णवं त्रयोविंशति चतुर्विंशति शैवकम् ॥४॥

अनुवाद— ब्रह्मपुराण में दस हजार, पद्मपुराण में पचपन हजार श्रीविष्णुपुराण में तेइस हजार शिवपुराण में चौबीस हजार श्लोक हैं ॥४॥

भावार्थ दीपिका

त्रयोविंशत्रयोविंशतिः सहस्राणि । चतुविंशति चतुर्विंशतिः । शैवकं शिवपुराणम् ॥४॥

भाव प्रकाशिका

त्रयोविंशत् अर्थात् तेइस हजार शिवपुराण में चौबीस हजार ॥४॥

दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पञ्चविंशतिः । मार्कण्डं नव वाह्नं च दशपञ्चचतुःशतम् ॥५॥

अन्वयः— दशाष्टौ श्रीभागवतं नारदं पञ्चीविंशतिः मार्कण्डं नव, वाह्नं च दशपञ्च चतुश्शतम् ॥५॥

अनुवाद— श्रीमद्भागवत में अठारह हजार, नारद पुराण में पचीस हजार मार्कण्डेय पुराण में नव हजार अग्नि पुराण में पन्द्रह हजार चार सौ श्लोक हैं ॥५॥

भावार्थ दीपिका

वाह्नमग्निपुराणम् । दशपच्चसहस्राणि चत्वारि शतानि च ॥५॥

भाव प्रकाशिका

वाह्नं अर्थात् अग्नि पुराण में १५ हजार चार सौ श्लोक हैं ॥५॥

चतुर्दश भविष्यं स्यात्तथा पञ्चशतानि च । दशाष्टौ ब्रह्मवैवर्तं लिङ्गमेकादशैव तु ॥६॥

अन्वयः— भविष्यं चतुर्दश तथा पञ्चशतानि, ब्रह्मवैवर्तं दशाष्टौ, लिङ्गं तु एकादश एव ॥६॥

अनुवाद— भविष्य पुराण में चौदह हजार पाँच सौ एक ब्रह्मवैवर्त पुराण में अठारह हजार और लिङ्ग पुराण में ग्यारह हजार श्लोक हैं ॥६॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥६॥

चतुर्विंशति वाराहमेकाशीतिसहस्रकम् । स्कान्दं शतं तथा चैकं वामनं दश कीर्तितम् ॥७॥

अन्वयः— वाराहं चतुर्विंशतिः स्कान्दं एकाशीति सहस्रकम् एकं शंत च वामनं दशकीर्तितम् ॥७॥

अनुवाद— वाराह पुराण में चौबीस हजार श्लोक हैं स्कन्द पुराण में इक्यासी हजार एक सौ श्लोक हैं तथा वामन पुराण में दस हजार श्लोक हैं ॥७॥

भावार्थ दीपिका

स्कान्दं शताधिकैकाशीतिसहस्रम् ॥७॥

भाव प्रकाशिका

स्कन्द पुराण में इक्यासी हजार एक सौ श्लोक हैं ॥७॥

कौर्मं सप्तदशाख्यातं मात्स्यं तत्तु चतुर्दश । एकोनविंशत्सौपर्णं ब्रह्माण्डं द्वादशैव तु ॥८॥

अन्वयः— कौर्मं सप्तदशाख्यातं, मात्स्यं तत्तु चतुर्दश, एकोनविंशति, सौपर्णं ब्रह्माण्डं द्वादशैवतु ॥८॥

अनुवाद— कूर्म पुराण में सत्रह हजार श्लोक हैं मत्स्य पुराण में चौदह हजार श्लोक हैं गरुड पुराण में उन्नीस हजार श्लोक है और ब्रह्माण्ड पुराण में बारह हजार श्लोक हैं ॥८॥

भावार्थ दीपिका

सौपर्णं गरुडपुराणमेकोनविंशदेकोनविंशतिः ॥८॥

भाव प्रकाशिका

गरुड पुराण में उन्नीस हजार श्लोक है ॥८॥

एवं पुराणसंदोहश्चतुर्लक्ष उदाहृतः । तत्राष्टादशसाहस्रं श्रीभागवतमिष्यते ॥९॥

अन्वयः— एवं पुराण संदोहः चतुर्लक्ष उदाहृतः । तत्र अष्टादशसाहस्रं श्रीभागवतमिष्यते ॥९॥

अनुवाद— सभी पुराणों की श्लोक संख्या चार लाख कही गयी है और भागवत पुराण की श्लोक संख्या अठारह हजार हैं ॥९॥

भावार्थ दीपिका

महाभारतं त्वितिहासः । रामायणं च ऋषिप्रोक्तं काव्यम् । अतः पुराणानां संदोहः समूहश्चतुर्लक्षसंख्याक एव । इदानीमस्य वाच्यप्रयोजनादीन् दर्शयितुमाह-त्रयेत्यादिना ॥९॥

भाव प्रकाशिका

महाभारत तो इतिहास और रामायण ऋषि के द्वारा प्रोक्त काव्य है । अतएव पुराणों की सम्पूर्ण संख्या चार लाख ही है । अब **अत्र इत्यादि** श्लोक से वाच्य के प्रयोजन इत्यादि को बतलाते हैं ॥९॥

इदं भगवतां पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे । स्थिताय भवभीताय कारुण्यात्संप्रकाशितम् ॥१०॥

अन्वयः— इदं पूर्वं नाभिपङ्कजेस्थिताय भवभीताय कारुण्यात् भगवता ब्रह्मणे प्रकाशितम् ॥१०॥

अनुवाद— सर्वप्रथम श्रीभगवान् के नाभिकमल पर स्थित एवं संसार के भय से भयभीत ब्रह्माजी पर कृपा करने के श्रीभगवान् इस पुराण को प्रकाशित किए ॥१०॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥१०॥

आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम् । हरिलीलाकथाव्रातामृतानन्दितसत्सुरम् ॥११॥

अन्वयः— आदिमध्यानेसानेषु वैराग्याख्यनसंयुतम् हरिलीला कथाव्रातामृतनानन्दितसत्सुरम् ॥११॥

अनुवाद— इसके आदि मध्य और अन्त में वैराग्योत्पादक कथाओं का वर्णन है । इस पुराण में जो श्रीभगवान् की लीलाओं की कथाएँ है, वे अमृत के समान है । उनके सेवन से सत्पुरुषों और देवताओं को आनन्द मिलता है ॥११॥

भावार्थ दीपिका

हरिलीलाकथानां व्रातः समूहःस एवामृतं तेनानन्दिताः सन्तः सुराश्च येन तत् ॥११॥

भाव प्रकाशिका

श्रीहरि की कथाओं के समूह रूपी अमृत से सत्पुरुषों और देवताओं को आनन्द मिलता है ॥११॥

सर्ववेदान्तसारं यद्ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् । वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥१२॥

अन्वयः— यत सर्ववेदान्तसारं यद्ब्रह्मात्मैक त्वलक्षणम्, अद्वितीयं वस्तु तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥१२॥

अनुवाद— जो समस्त वेदान्तों का सार है ब्रह्म और आत्मा का एकत्व रूप अद्वितीय सद्‌वस्तु वही श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य विषय हैं । इसके निर्माण का प्रयोजन है कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति ॥१२॥

भावार्थ दीपिका

तन्निष्ठं तद्विषयम् ।।१२।।

भाव प्रकाशिका

तन्निष्ठ अर्थात् तद्विषयक ।।१२।।

प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम् । ददाति यो भागवतं स याति परमां गतिम् ।।१३।।

अन्वयः— प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहासनन्वितं भागवतं यः ददाति स परमां गतिं याति ।।१३।।

अनुवाद— भ्रादपद की अमावास्या अथवा पूर्णिमा तिथि को सुवर्ण के सिंहासन पर रखकर जो श्रीमद्भागवत का दान करता है वह परम पद को प्राप्त करता है ।।१३।।

भावार्थ दीपिका

प्रौष्ठपद्यां भाद्रपद्याम् । हेमसिंहसमन्वितं सुवर्णसिंहासनारूढम् ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

प्रौष्ठपद्याम् अर्थात् भाद्रपद की अमावस्या को हेमसिंहासनारूढ़म अर्थात् सुवर्ण के सिंहासन पर रखकर ।।१३।।

राजन्ते तावदन्यानि पुराणानि सतां गणे । यावन्न दृश्यते साक्षाच्छ्रीमद्भागवतं परम् ।।१४।।

अन्वयः— सतांगणेतावदन्यानिपुराणानिराजन्ते यावत् परमं साक्षात् श्रीमद्भागवतं न दृश्यते ।।१४।।

अनुवाद— सन्तों की सभा में दूसरे पुराणों की शोभा तब तक होती है जब तक सर्वश्रेष्ठ श्रीमद्भागवत महापुराण का साक्षात् दर्शन नहीं हो जाता है ।।१४।।

भावार्थ दीपिका नहीं है ।।१४।।

सर्ववेदान्तसारं हि श्रीभागवतमिष्यते । तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित् ।।१५।।

अन्वयः— श्रीमद्भागवतं हि सर्ववेदान्त सारम् इष्यते तद्रसामृततृप्तस्य क्वचित् अन्यत्र रतिः न स्यात् ।।१५।।

अनुवाद— यह श्रीमद्भागवत महापुराण सभी वेदान्तों का सार माना जाता है । श्रीमद्भागवत के रसामृत से तृप्त व्यक्ति की किसी अन्य पुराण में प्रेम नहीं होता है ।।१५।।

भावार्थ दीपिका

तद्रस एवामृतं तेन तृप्तस्य निर्वृतस्य ।।१५।।

भाव प्रकाशिका

श्रीमद्भागवत के रस रूपी अमृत से संतृप्त पुरुष की ।।१५।।

निम्नगानां यथा गङ्गा देवानामच्युतो यथा । वैष्णवानां यथा शंभुः पुराणानामिदं तथा ।।१६।।

अन्वयः— निम्नगानां गङ्गयथा देवानाम् अच्युतो यथा, वैष्णवानां शम्भुः यथा तथा पुराणानामिदं ।।१६।।

अनुवाद— जैसे नदियों में गङ्गाजी श्रेष्ठ है, देवताओं में जैसे भगवान् अच्युत सर्वश्रेष्ठ है, वैष्णवों में भगवान् शङ्करजी जैसे सर्वश्रेष्ठ हैं वैसे ही पुराणों में श्रीमद्भागवत सर्वश्रेष्ठ हैं ।।१६।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१६।।

क्षेत्राणां चैव सर्वेषां यथा काशी ह्यनुत्तमा । तथा पुराणव्रातानां श्रीमद्भागवतं द्विजाः ।।१७।।

अन्वयः— हे द्विजाः यथा सर्वेषां क्षेत्राणा काशी हि अनुत्तमा तथा पुराणव्रातानां श्रीमद्भागवतम् ।।१७।।

अनुवाद— हे शौनकादि महर्षियो जिस तरह सभी क्षेत्रों में काशी सर्वोत्तम क्षेत्र है, उसी तरह पुराण समूह में श्रीमद्भागवत सबों में श्रेष्ठ है ।।१७।।

भावार्थ दीपिका— नहीं है ।।१७।।

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद्वैष्णवानां प्रियं यस्मिन्पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते ।
तत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृणवन्विपठन्विचारणपरो भत्तया विमुच्येन्नरः ॥१८॥

अन्वयः— श्रीमद्भागवतं पुराणम् अमलं यद वैष्णवानां प्रियम् यस्मिन् एकम् अमलं पारमहंस्यं परं ज्ञानं गीयते तत्र ज्ञानविराग भक्ति सहितम् नैष्कम्यम् आविष्कृतम् तत् शृण्वन् विपठन् विचारण परः नरः भक्त्या विमुच्यते ।।१८।।

अनुवाद— यह श्रीमद्भागवत पुराण सर्वथा निर्दोष है, भगवद् भक्त इससे प्रेम करते हैं। इस पुराण में जीवन मुक्त परमहंसों के सर्वश्रेष्ठ, अद्वितीय एवं माया के लेश से रहित ज्ञान का गान किया गया है। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विलक्षणता है कि इसका नैष्कर्म्य (कर्मों की आत्यन्तिक निवृति) ज्ञान वैराग्य एवं भक्ति से युक्त है। जो इसका श्रवण मनन एवं पठन करने लगता है उसे भगवान् की भक्ति प्राप्त हो जाती है और वह मुक्त हो जाता है ।।१८।।

भावार्थ दीपिका

पारमहंस्यं परमहंसैः प्राप्यम् । नैष्कर्म्यं सर्वकर्मोपरमः । भत्तया तच्छ्रवणादिपरो विमुच्यते ।।१८।।

भाव प्रकाशिका

पारमहंस्यम् अर्थात् परम हंसों से प्राप्य, नैष्कर्म्यम् समस्त कर्मों का परित्याग। भक्ति पूर्वक इस पुराण का श्रवणादि करने वाला मुक्त हो जाता है ।।१८।।

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ।
योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्राताय कारुण्यतस्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि ॥१९॥

अन्वयः— येन कस्मै अतुलः ज्ञान प्रदीपः पुराविभासितः, तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्राताय कारुण्यतः तच्छुद्धं विमलं विशोकम् अमृतं सत्यं परं धीमहि ।।१९।।

अनुवाद— श्रीमद्भागवत भगवत्तत्वज्ञान का श्रेष्ठ प्रकाशक है। इसके सदृश कोई भी पुराण नहीं है। सर्वप्रथम भगवान् नारायण ने इसको ब्रह्माजी के लिए प्रकाशित किया, तदनन्तर श्रीभगवान् ही ब्रह्माजी के रूप में इस पुराण का उपदेश देवर्षि नारद को दिये और नारदजी के रूप में भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास को तदनन्तर उन्होंने ही व्यास रूप से योगीन्द्र शुकदेवजी को और श्रीशुकदेवजी के रूप से अत्यन्त करुणावश राजर्षि परीक्षित् को उपदेश किया। वे भगवान् परमशुद्ध एवं मायाकल से रहित हैं। शोक एवं मृत्यु उनके पास तक नहीं जा सकते हैं। हम सभी उन्हीं परम सत्य स्वरूप परमेश्वर का ध्यान करते हैं ।।१९।।

भावार्थ दीपिका

श्रीभागवतसंप्रदायप्रवर्तकरूपेण भगवद्ध्यानलक्षणं मङ्गलमाचरति-कस्मै ब्रह्मणे अतुलोऽसमः । अयं श्रीभागवतरूपः। पुरा कल्पादौ । तद्रूपेण ब्रह्मरूपेण नारदाय तद्रूपिणा नारदरूपिणा कृष्णाय व्यासाय । तद्रूपिणा योगीन्द्राय शुकाय तदात्मना शुकरूपेण। तत्परं सत्यं श्रीनारायणाख्यं तत्त्वं धीमहि। इति गायत्र्यैव यथोपक्रममुपसंहरन् गायत्र्याख्यब्रह्मविद्येयमिति दर्शयति।।१९।।

भाव प्रकाशिका

श्रीमद्भागवत सम्प्रदाय के प्रवर्तक रूप से श्रीभगवान् के ध्यान रूपी अन्तमङ्गलाचरण श्रीसूतजी करते हैं। कस्मै अर्थात् ब्रह्माजी के लिए, अतुल अर्थात् सर्वश्रेष्ठ, यह श्रीमद्भागवत रूप, पुरा अर्थात कल्प के प्रारम्भ में तद्रूपेण

अर्थात् ब्रह्मा रूप से नारदजी को तद्रूपिणा अर्थात् नारद रूप से कृष्णाय अर्थात् महर्षि व्यास को तद्रूपिणा महर्षि व्यास रूप से योगीन्द्राय महर्षि शुकदेवजी को तदात्मना शुकदेव रूप से, तत्परं सत्यम् अर्थात् उस परम सत्य अर्थात् भगवान् नारायण का हम धीमहि अर्थात् ध्यान करते हैं। इस तरह से गायत्री के ही द्वारा उपक्रम के ही समान इस श्रीमद्भागवत का उपसंहार करते हुए, यह बतलाते हैं कि यह गायत्री नामक ब्रह्मविद्या है ॥१९॥

नमस्तस्मै भागवते वासुदेवाय साक्षिणे । य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे ॥२०॥

अन्वयः— तस्मै साक्षिणे वासुदेवाय भगवते नमः यः मुमुक्षवे कस्मै कृपया इदं व्याचचक्षे ॥२०॥

अनुवाद— हम उन सर्वसाक्षी भगवान् वासुदेव को नमस्कार करते हैं जिन्होंने मुमुक्षु ब्रह्माजी को कृपा पूर्वक इस श्रीमद्भागवत महापुराण का उपदेश दिया ॥२०॥

भावार्थ दीपिका

तमेव देवतारूपेण गुरुरूपेण च प्रणमति-नम इति द्वाभ्याम् । व्याचचक्षे व्याख्यातवान् ॥२०॥

भाव प्रकाशिका

उन्ही श्रीभगवान् को देवता रूप से तथा गुरुरूप से **नमः इत्यादि** दो श्लोको से नमस्कार करते हैं। **व्याचचक्षे०** अर्थात् उपदेश किया ॥२०॥

योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे । संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत् ॥२१॥

अन्वयः— तस्मै योगीन्द्राय ब्रह्मरूपिणे शुकाय नमः यः संसारसर्पदंष्टं विष्णुरातम् अमूमुचत् ॥२१॥

अनुवाद— उन योगिराज ब्रह्मस्वरूप महर्षि शुकदेवजी को नमस्कार है। जिन्होंने संसार रूपी सर्प से डँसे हुए राजर्षि परीक्षित् को मुक्त कर दिया ॥२१॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२१॥

भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते । तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो ॥२२॥

अन्वयः— हे देवेश यथा भवे-भवे तव पादयोः भक्ति जायते तथा कुरु । यतः त्वं नः नाथ; ॥२२॥

अनुवाद— हे देवाराध्य प्रभु प्रत्येक जन्मों में हमलोगों की आपके चरणों में भक्ति हो वैसा ही आप हमें बनायें, क्योंकि हमलोग के एक मात्र स्वामी और जीवन सर्वस्व आप ही हैं ॥२२॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२२॥

नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् । प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम् ॥२३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां वैयासिक्यां पारमहंस्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

अन्वयः— यस्य नाम संकीर्तनं सर्वपापप्रणशनं प्रणामो दुखशमनं, परम हरिम् नमामि ॥२३॥

अनुवाद— जिन श्रीहरि के नामों का सङ्कीर्तन समस्त पापों को विनष्ट कर देता है। जिन भगवान् के चरणों में प्रणति सभी दुःखों को सदा सर्वदा के लिए शान्त कर देती है उन्हीं परमतत्व रूप श्रीहरि को नमस्कार करता हूँ ॥२३॥

इस तरह श्रीमद्भागवत महापुराण के बारहवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१३॥

भावार्थ दीपिका— नहीं है ॥२३॥

भावार्थदीपिकामेतां भगवद्भक्तवत्सलाम् । परमानन्दपादाब्जभृङ्गश्रीः श्रीधरोऽकरोत् ।।१।।
स्वबालचपलालापैः स्वलीलापरिनर्तितैः । प्रीयतां परमानन्दनृहरिः सद्गुरुः स्वयम् ।।२।।
श्रीपरानन्दसंप्रीत्यै गुह्यं भागवतं मया । तन्मतेनेदमाख्यातं नतु मन्मतिवैभवात् ।।३।।
क्वेदं नानानिगूढार्थ श्रीमद्भागवतं क्व नु । मन्दबुद्धिरहं कृष्णप्रेम किं किं न कारयेत् ।।४।।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे श्रीमद्भागवतभावार्थदीपिकायां श्रीधरस्वामिविरचितायां टीकायां द्वादशस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

भाव प्रकाशिका

यह भावार्थ दीपिका भगवद् भक्तों के लिए वात्सल्य गुण सम्पन्न है । परमानन्द स्वरूप श्रीभगवान् के चरणों की शोभा स्वरूप श्रीधर स्वामी ने इसका निर्माण किया ।।१।। मेरे बालचापल्यरूप आलापो तथा मेरी बाल लीला रूप नर्तनों के द्वारा परमानन्द मूर्ति भगवान् नृसिंह हम पर प्रसन्न होएँ ।।२।। श्रीपरमानन्द आचार्य स्वरूप श्रीभगवान् की प्रसन्नता के लिए अत्यन्त गोपनीय श्रीमद्भागवत की मैंने अपने आचार्य के ही मतानुसार व्याख्या की है, इसमें मेरी बुद्धि का कोई भी महत्त्व नहीं है ।।३।। कहाँ तो अनेक प्रकार के रहस्यार्थों वाला श्रीमद्भागवत महापुराण और कहाँ तो अत्यन्त मन्दबुद्धि वाला मैं किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण में होने वाला प्रेम क्या नहीं कर सकता है ?।।४।।

इस तरह से श्रीमद्भागवत पुराण के बारहवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय की शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुई ।।१३।।

इस तरह ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ ।